योगवासिष्ठ प्रारम्भः ।

Translation:
HBL. III. 7413.
by Vihāri Lala Mitra

See Catalogus Catalogorum p. 478.

With the best
regards of
Bagnall.
Agra

ॐ

आदिकवि श्रीवाल्मीकिमुनिप्रणीतम् ।

श्रीयोगवासिष्ठमहारामायणम् ।

पूर्वार्द्धम् ।

वैराग्यमुमुक्षूत्पत्तिस्थित्युपशमप्रकरणपञ्चकात्मकम्

विद्वज्जनपदानुरक्त बी. ए. एफ. ए. यू. इत्याद्युपपदा-
लंकृत श्रीयुत रायबहादुर लाला बैजनाथ महाश-
याज्ञया श्रीयुत विद्वद्वर पं० ठाकुरप्रसाद
शर्माचार्यविरचित भाषानुवादसमेतम्

तच्च

मुंबय्यां

श्रीज्ञानसागरयन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये
"ज्ञानसागर" यन्त्रालये मुद्रितम्

संवत् १९६० शकाब्दाः १८२५. 1903 AD

समर्पणम्.

यतीन्द्रवर ब्रह्मलीन परमहंस परिव्राजका-
चार्य श्री १०८ स्वामी भास्करानन्द
सरस्वती चरणसरोरुहेषु

इदम्

श्रीयोगवासिष्ठ महारामायणं

आचार्य्योपाधिधारि
श्रीपं० ठाकुरप्रसाद द्विवेदिप्रणीतम्
भाषानुवादसमेतम्

तत्पादपङ्कजमकरन्दलुब्धवैजनाथगुप्तेन

परमभक्त्या समर्पितम्.

भूमिका।

सब वेदान्तके अनुरागी सज्जनोंको विदित है कि योगवासिष्ठमहारामायण नामक ग्रन्थ मुमुक्षुओंका सर्वस्व और ब्रह्मविद्याके ग्रन्थोंमें शिरोमणि गिना जाताहै, इसका नाम महारामायण इसकारणसे नियत किया गयाहै कि पूर्व वाल्मीकिरामायणमें श्रीरामचन्द्रजी महाराजके जन्मसे लेकर रावणवधआदि अनेक सांसारिक लीला इस आशयसे वर्णन कीगई हैं कि मनुष्य संसारमें पितृभक्ति, भ्रातृस्नेह, एकपत्नीव्रत, सज्जनरक्षा और सत्यधर्मका पालन किसप्रकार करसक्ता है इसीकारण रामायणमें मूलमन्त्र यह है कि–

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्म्मः सदाश्रितः। सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसिच। वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरोभवेत्॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा नचाज्ञानात्तमोन्वितः। सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः॥

"संसारमें सत्यही ईश्वररूप है, सत्यमेंही धर्म सदा स्थित है, सत्यही सबका मूल है और सत्यसे उत्तम कोई पद नहीं है. दान यज्ञ हवन तप और वेद ये सब सत्यकेही आश्रय हैं इसलिये सर्वथा सत्यपरायण हो, लोभसे, मोहसे, तमोगुणका आश्रय लेकर अज्ञानसे मैं सत्यकी मर्य्यादाको और अपने पिताके साथ अपनी सत्यप्रतिज्ञाको नहीं तोडूंगा"—रामचन्द्रजीका सब जीवनचरित्र इसीप्रकार व्यतीत हुआ जिससे उनके अनुयायिओंकोभी अपने जन्म सफल करनेका अवसर मिला। यह वृतान्त पूर्वरामायणका है।

दूसरी उत्तररामायण यह योगवासिष्ठ है इसमें वसिष्ठजीने रामचन्द्रजीको वह उपदेश किया कि जिससे वह संसारके कार्य्योंको करतेहुयेभी उनसे निर्लिप्त रहकर जीवन्मुक्तिके सुखको अनुभवकरके विदेहकैवल्यके भागी हुये यह कथाप्रसंग इसप्रकार है कि श्रीरामचन्द्रजी विद्याध्ययन करके पिताकी आज्ञासे तीर्थयात्रा और देशाटनको गये वहांसे आनेके पश्चात् उनको संसारके पदार्थोंसे ऐसा तीव्र वैराग्य हुआ कि आन्हिककृत्य तथा भोजनादिकसेभी उदासीन हो एकान्त सेवन करनेलगे और प्रतिदिन उनका शरीर कृश और दुर्बल होने लगा, उस समय विश्वामित्र मुनि महाराजा दशरथके सभामे आये और अपने यज्ञके विघ्नकारी राक्षसोंके मारनेकेलिये श्रीरामचन्द्रजीको मांगा परन्तु राजा दशरथने अपने पुत्रस्नेहकी अधिकता और दीनताको प्रकट करके श्रीरामचन्द्रजीके देनेमें संकोच किया और रामचन्द्रजीके चित्तकी जो दशा उससमय थी वर्णनकी, इसपर विश्वामित्रजीने रामचन्द्रको सभामें बुलवाकर उनके चित्तकी दशाका सब वृत्तान्त पूछा और कहा कि वह कौनसी चिन्ताहै जो आपको इतना क्लेश देरही है और उसका कारण क्याहै॥ श्रीरामचन्द्रने अपने चित्तकी दशा और संसारके पदार्थोंमें अरुचि प्रकट करके कहा कि इस जगत्में कोईभी वस्तु अविनाशी अथवा आनन्ददायक नहीं है, मनुष्य संसारमें जन्म लेकर उन्ही दुःखदाई विषयोंको कि जिनकी उसने अनेक पूर्वजन्मोंमें सेवाकीथी, भोगता सन्तोष नहीं पाता और दुःखसे दुःखान्तरको प्राप्त होकर मरजाताहै और पुनःजन्मता है; निदान यह अनादिकालसे जन्ममरणरूपी प्रवाहमें वहताहै और उसको इस आवर्तमें घूमतेघूमते कभी शान्ति नहीं मिलती। जगत्के सम्पूर्ण पदार्थ परस्पर कुछ सम्बन्ध नहीं रखते किन्तु मनसेही उनमें सम्बन्ध कल्पितहुआहै, और यद्यपि यह मनभी असत्है तथापि उसने इस जगत्को सत्के सदृश करदिखायाहै, और स्त्री, पुत्र, गृह, राज्य आदि अनेक असत्पदार्थोंसे मनुष्यको मोहित करदियाहै, इसलिये यदि मनका मिथ्यात्व निश्चय करलो तो फिर जगत्में कोई पदार्थभी सत्य न ठहरेगा, यह सब वासनारूपी जाल जिसमें प्राणीमात्र बंधाहुआहै, मनकाही फैलाया हुआहै. हमको किसीने नहीं बेचा, परन्तु हम अपनी वासनावशात् विकेहुयेके सदृशहैं, और यद्यपि हमको यह निश्चयहै कि यह जगत् सर्वथा मिथ्याहै तथापि हम उसीके पदार्थोंकी ओर दौडते हैं, प्रतिदिन हमारे सामने अनेक प्राणी मरते जाते हैं और अनेक पदार्थ नष्ट होतेजातेहैं, श्रीमानोंके श्रीकी कोई आस्था नहीं दिखाईपडती, ऊंचेसे नीचे नीचेसे ऊंचे प्रतिदिन होते रहतेहैं, तथापि हमको अपने मरनेका और संसारके नश्वरताका विश्वास नहीं होता. यद्यपि बाल्य यौवनआदि अवस्था, और श्रीआदिक पदार्थोंमें कोई रमणीयता नहीं

देखते तथापि उनमें सर्वथा मोहितहोकर अपना जन्म गमातेहैं और आत्मविचारमें किंचित्भी ध्यान नहीं देते इस सबका कारण हमारी वासना है, इसलिये मैं वासनासे मुक्त होनाचाहताहूं। जब श्रीरामचन्द्रजीने संसारके पदार्थोंसे ऐसा वैराग्य और राज्यादिमें सर्वथा अरुचि प्रकटकी और वसिष्ठ विश्वामित्र आदिक ऋषियोंसे जो उस सभामें उपस्थित थे यह प्रार्थनाकी कि आप मुझे वह उपदेश कीजिये कि जिससे मैं इस शोकसागरसे पार उतरूं। तब विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीसे कहा कि आप रामचन्द्रजीको ऐसा उपदेश करें कि जिससे उनका अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो, इसपर वसिष्ठजीने रामचन्द्रजीको यह महारामायणनामक शास्त्रका उपदेश किया, इसीका नाम योगवासिष्ठ है।

जैसा कि पूर्वरामायणमें बाललीला वर्णन कारी बालकाण्डसे अतिरिक्त अयोध्यादि छः कान्ड हैं वैसेही इस उत्तर रामायणमेंभी वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम, और निर्वाण छः प्रकरण हैं, और सम्पूर्ण ग्रन्थमें ३२००० (बत्तीससहस्र) श्लोक हैं, प्रथम वैराग्यप्रकरण है कि जिसमें जगत्के पदार्थोंका मिथ्यात्व और नश्वरता पूर्ण रीतिसे दर्शाकर यह वर्णन किया गयाहै कि जबतक मुमुक्षुको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता तहांतक वह मोक्षका अधिकारी कदापि नहीं होसक्ता, इसी वैराग्यके दृढताके अर्थ बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था, धन, और स्त्री आदिक पदार्थोंकी निन्दा और कालकी गति ऐसे २ मनोहररूपकालंकारद्वारा वर्णन की गई है कि जिसको पढकर संसारमें कैसाही लिप्त पुरुष हो वह एकबार तो उससे अवश्यही विरक्त होजावैगा॥

द्वितीय मुमुक्षुप्रकरण है, उसमें यह निरूपण कियागयाहै कि, चित्तरूपी बनमें वासनारूपी नदी बडे वेगसे बहती है, जिसका सहचारी होनेसे मनुष्य अज्ञानसागरमें अवश्य जा गिरताहै इसलिये प्राणीमात्रको उचित है कि, वासनारूपी नदीके प्रवाहको संसारकी ओरसे हटाकर आत्माकी ओर लावे, और मलिनवासनाओंको त्यागकर शुद्धवासनाओंको ग्रहण करै, परन्तु वह वासना त्याग पुरुषार्थसेही सिद्ध होसक्ताहै, प्रारब्धपर विश्वास करके बैठनेसे नहीं, प्रारब्धभी पुरुषार्थकाही नाम है, यदि प्रबल पुरुषार्थ किया जाय तो इस जन्म तथा जन्मान्तरकी सब मलिन वासनाओंको त्यागकर और आत्मज्ञान सम्पादनमें सब विघ्नोंको जीतकर मोक्षकी प्राप्ति होगी॥ इसप्रकरणमें अनेक उदाहरणोंसे यह सिद्ध कियाहै कि, पूर्वजन्मके पुरुषार्थकाही नाम वासना है। अर्थात् जो कर्म किसी जन्ममें प्रयत्नपूर्वक कियाजावै वह अभ्यासवशात् चित्तमें संस्काररूपसे स्थित होजाताहै, और वह संस्कार अनेक जन्मोंमें उस प्राणिको उसीप्रकारके कर्मकी ओर आकर्षण करताहै इसीका नाम वासना है, इसलिये शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि एकजन्मका पुरुषार्थ दूसरेजन्मके पुरुषार्थसे हीन अथवा बली होसकताहै॥ मोक्षरूपी मन्दिरके चार द्वारपाल हैं शम, विचार, साधुसंगम, और संतोष, यदि इन चारोंकी सेवा न होसके तो तीनकी दोकी अथवा एकहीकी सेवा करनेसे मोक्षमन्दिरमें, प्रवेश होताहै। रसायनके पान करनेसे अथवा लक्ष्मीकी प्राप्तिसेभी वह सुख प्राप्त नहीं होताहै जो शमसे होताहै। शुभाशुभ पदार्थोंको श्रवण करके, स्पर्श करके, दरशन करके, भोजन करके, संग कर जो न हर्षको प्राप्त होताहै न शोकको वही पुरुष शान्त कहाताहै, विचारसे बुद्धि तीव्र होती है, और परमपदकी प्राप्ति होती है॥ "मैं कौन हूं" "यह संसार किसका है" "यह कैसे उत्पन्न हुआ" इत्यादि वारम्वार चिन्तन करनेको विचार कहते हैं, अप्राप्तवस्तुकी इच्छाको त्यागना और सम्प्राप्तवस्तुमें समबुद्धि रखना, हर्षविषादसे रहित होने और चित्तको आशाके विवश न होने देनेका नाम सन्तोष है॥ साधुसंगमही इस संसारसमुद्रसे तरनेकी नौका है, और साधु वह है कि, जिसके हृदयकी ग्रन्थि टूटगईहो, और ज्ञान और समताका पूर्ण प्रकाश हो॥ सारांश इस प्रकरणका यह है कि, वासनाके क्षीण होनेकोही पंडितजन मोक्ष कहतेहैं, पदार्थोंकी वासनाके दृढ होनेहीका नाम बन्धन है॥

तृतीय उत्पत्तिप्रकरण है उसमें यह वर्णन कियागया है कि 'अस्मद्' और 'युष्मद्' अर्थात् "मैं" और "तूं" से लेकर यह सब दृश्य मनका विलासमात्र है, वास्तवमें कुछभी नहीं है, जैसे कथाका प्रसंग अथवा आकाशमें मोतियोंकी माला अथवा जलमें तरंग उत्पन्न हो २ कर नष्ट होजातेहैं और वास्तवमें आकाश और जलसे मोतियोंकी माला और तरंग भिन्न नहीं हैं, किन्तु आकाश और जलहीरूप हैं वैसाही यह जगत् मनरूप है, मनही सबका पर्वत कहै, और जैसा जिस पदार्थको चाहताहै वैसा कर दिखाताहै, जो कुछ इस जगत्में जहां कहीं है, वह सब मनसेही रचाहुआ है, बिना मनके रचे कुछ नहीं होसकता, इसलिये जब मन शांत होजायगा तो जगत् कुछ बाधा नहीं करैगा, जो वस्तु संकल्पसिद्ध है वह संकल्पसेही नाश होजाती है, इसलिये जबतक यह संकल्प स्थिर है कि "मैं ब्रह्म नहीं हूं" तबतक बन्धन है, जब यह संकल्प दृढ होगया कि "यह सब दृश्य ब्रह्म है" तब बन्धन

कहां रहा, इसलिये संसारकी वासनाको त्यागकर और परमपुरुषार्थसे मनको जीतकर योगकी सप्तभूमिद्वारा परम-पदको प्राप्त होवो, यही इसप्रकरणका सिद्धान्त है, इस कारणसें लीला और इन्द्र ब्राह्मण और राजा लवणादिकके उपाख्यानोंसे यह सिद्ध किया है कि यह जगत् संकल्पके वृद्धिसे वृद्धिको और उसकी क्षीणतासे क्षयको प्राप्त होताहै. इस प्रकरणमें दृष्टिसृष्टिवादको उत्तमरीतिसे दिखलाया है, और यह सिद्ध किया कि संकल्पके वशसेही संसारका भान होताहै, अर्थात् चित्तही संसार है। जब संकल्पका नाश होजाय तो संसाररूपी तुषार स्वयं नष्ट होजाताहै। और अनादि अनन्त ब्रह्मतत्वही है और कुछ नहीं. यह ब्रह्म ऐसे भासताहै जैसे शरदऋतुमें निर्मल आकाश। समष्टि-व्यष्टिभेद कल्पित जगत् मनोमात्र है। मन असत् अज्ञानका कार्य है अतः—वहभी असत् है, अधिष्ठान साक्षीकी सत्तासेही मनकी सत्ता है, और मनका स्फुरणही जगत्की उत्पत्ति तथा स्थितिका कारण है।

चतुर्थप्रकरण स्थितिप्रकरण है। इसमें यह निरूपण कियागया है कि जगत्की स्थितिभी उसकी उत्पत्ति-के सदृश मनोमात्र है, इसलिये इस संकल्पमयी जगत्की श्रीमें भावनाको त्यागकर स्वस्वरूपमें विचरो, सब पदा-र्थोंमें जो समदृष्टि है, वही चित्तकी परमस्थितिका कारण है, उसमें स्थिति होनेसे फिर मनुष्य जन्ममरणका भागी नहीं होता. "मैं न करताहूं" "न मैं यह हूं" "अथवा मैंही सबको करताहूं" और "मैंही सबहूं" इनमेंसे किसी एक दृष्टिका आश्रय लेनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाताहै। अहंकार तीनप्रकारका होताहै प्रथम कार्यरूप यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड तथा कारणरूप परमात्मा "मैंहीहूं" "मुझसे अन्य कुछ नहीं है" यह अहंकार बन्धनका हेतु नहीं है "मैं सबसे पृथक् शतधा कल्पित जो बालका अग्रभागसे उससेभी सूक्ष्महूं" यह दूसरा अहंकार है, यहभी बन्ध-नका हेतु नहीं है. और ये दोनोंप्रकारके अहंकार जीवन्मुक्तोंको होते हैं; तीसरा अहंकार देहादिमें "अहंबुद्धि" है यह अहंकार लौकिक है, इसको त्यागकर प्रथम दो अहंकारोंकी भावना करो और फिर उन दोनोंकोभी त्यागकर परमपदमें लय हो।

पंचम प्रकरण उपशमप्रकरण है। इसमें यह निरूपण कियागयाहै कि, "अहम्" "त्वम्" "एतत्" का जो परस्पर भेद भासताहै वहभी मनोमात्र है उसको दूर करनेका उपाय मनका निग्रह है, मनके नाशसेही परम-पदकी प्राप्ति होती है. जबतक चित्तकी सत्ता है तबतक दुःख है और चित्तके नाशसे दुःखका नाश होजाताहै। जब-तक यह निश्चय है. कि "मैं सुखी हूं" "दुःखी हूं" तबतक मन जो इस संसाररूपी वृक्षका बीज विद्यमान है जब मन मैत्रीआदि गुणद्वारा शुद्धवासनाको सम्पादन करताहै और फिर उस वासनाकोभी त्यागकर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार करताहै तो मनका मनोभाव नहीं रहता॥ यह नाश दो प्रकारका है एक सरूप दूसरा अरूप, जीव-न्मुक्तिके प्राप्त होनेपर जब मैत्रीआदि गुण प्रफुल्लित होते हैं, तो मनका स्वरूप नाश होता है, और जिससमय कि विद्वान् उस पदको प्राप्त होता है कि जहां न गुण है, न अगुण है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात है, न सन्ध्या है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, और जो मन वाणी और बुद्धिका विषय नहीं है, उससमय मनका अरूप नाश होताहै॥ मनोनाश वासनाक्षय और तत्वसाक्षात्कारसेही परमपदकी प्राप्ति होती है, यह तीनों एक दूसरेके सहचारी है. यदि वासनापरित्यागमें यत्न करोगे तो मनका नाश होगा और मनके नाशसे तत्वसाक्षा-त्कार होगा। जबतक मनोनाश नहीं तबतक वासनाक्षय नहीं और जबतक वासनाक्षय नहीं तबतक साक्षात्कार नहीं। जिसने थोडेसेही विचारसे चित्तको जीता उसने जन्म सफल करलिया उसको आधि व्याधि और विषय कोई दुःखदाई नहीं होते। जिन्होंने सब संकल्पोंकी सीमा परमपदमें विश्रांति पाई है वह मेरुकोभी तृणके समान जानतेहैं. संगही अर्थोंका कारण है, संगही संसारका कारण है, संगही आशाका कारण है, संगही आपत्तिका कारण, संगका त्या-गही मोक्ष है, संगके त्यागसेही बन्धन छूट जाताहै, जो ज्ञात ज्ञेय हैं वह सर्वजगत्को चिन्मात्र जानकर अन्तरमुख होकर जगत्में विचरते हैं।

षष्ठ प्रकरण निर्वाणप्रकरणहै. इसमें यह निरूपण कियागयाहै कि जब यह जीव इस संसारमें अनादिकालसे भ्रमण करते २ अपने पुरुषार्थसे सब वासनाओंका क्षय करके आत्मपरायण होताहै तब उसको यह भान होताहै कि जैसे अग्निसे उष्णता, अथवा कमलसे सुगन्धि, अथवा हिमसे शुक्लता भिन्न नहीं है वैसेही यह जगत् चित् अर्थात् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है. "मैं चिन्मात्र अर्थात् चित्स्वरूप हूं" "किंचिन्मात्र" अर्थात् दृश्य नहीं हूं, किन्तु आका-शसेभी सूक्ष्म हूं यह बुद्धि जब उदय होती है तब संसारके बन्धन छूटजाते हैं. जबतक यह बुद्धि उदय नहीं होती और यह बुद्धि रहती है कि "मैं देह हूं" तबतक संसारबन्धनसे मोक्ष नहीं होता, न शास्त्रसे, न गुरुके उपदेशसे, किन्तु

केवल अपनीही शुद्धबुद्धिसे परमपदकी प्राप्ति होती है, वह परमपद अन्य कुछ नहीं है केवल यही है कि "मुझसे भिन्न कुछ नहीं है" यह संसारचक्र जो अनादिकालसे चलरहाहै वास्तवमें ब्रह्मसे अर्थात् मेरे स्वरूपसे भिन्न नहीं है इसप्रकार ज्ञानके उदय होनेपर "अहम्" "मम" "कार्य" "कारणादिक" सब अभिमानको त्यागकर मनुष्य शरीरके विद्यमान रहतेही जीवन्मुक्तिका सुख भोगकर विदेहकैवल्यको प्राप्त होताहै.

इस प्रकरणकी अधिक व्याख्या द्वितीयभागमें करेंगे. इस ग्रन्थके विषयमें बहुतसे पाठकोंको यह शंका होती है कि यह वाल्मीकिमुनिप्रणीत नहीं है क्योंकि इसमें बौद्ध और अर्हत्मतोंका प्रसंगवशात् वर्णन किया गयाहै और भगवद्गीताकाभी संक्षेपसे निरूपण किया है और बौद्ध और अर्हत्मत और भगवद्गीता वाल्मीकिजीके पीछेकी हैं, ग्रन्थकी रचनाभी आदिकविकीसी प्रतीत नहीं होती, इसका उत्तर यही होसकता है कि ग्रन्थ वाल्मीकिजिका रचित हो वा न हो वह वेदान्तके सब ग्रन्थोंमें शिरोमणि है और कोई मुमुक्षु उसकी उपेक्षा नहीं करसकता. विद्यारण्यस्वामीने अपने जीवन्मुक्तिविवेकमें इसको बडे महत्वके साथ स्वीकार कियाहै, और महाभारतके टीकाकार श्रीनीलकण्ठजीनेभी स्थल स्थलपर उसकी महिमा प्रकट की है. इस ग्रन्थका आशय दृष्टिसृष्टिवाद है कर्थात् "दृष्टिसे सृष्टि" जिसका यह अर्थ है कि दृष्टि (मन) ही सृष्टि है इसी वादको श्रीनीलकण्ठजीने महाभारतसे सिद्ध कियाहै, और यूरोपमेंभी वर्तमानसमयमें जर्मनीके बडे विद्वान् कैन्ट और उनके अनुयायियोंकाभी यही सिद्धान्त है, इसलिये योगवासिष्ठ प्राचीनऋषियों और आधुनिक विद्वानोंके सिद्धान्तके सर्वथा अनुकूल है, इसका अंग्रेजी भाषानुवाद कलकत्तानिवासी श्रीयुत बिहारीलाल मित्रने बडे परिश्रमसे करके छपाया है.

वर्तमानसमयमेंभी यह ग्रन्थ मुमुक्षुओंको लाभदायक है पहिले यह ग्रन्थ संस्कृतटीकाके साथ मुम्बईमें गणपति कृष्णाजीके यन्त्रालयमें छपाथा, डेढसौबर्ष हुए कि पटियालेके अधिपति श्रीयुत साहिब सिंहजीकी दो बहनें विधवा होगई थीं उन्होंने साधु रामप्रसाद निरंजनीसे उनको योगवासिष्ठकी कथा सुनवाई उस कथाको दो गुप्तलेखक पंजाबीभाषामें लिखते गये वह ग्रन्थ योगवासिष्ठके नामसे सम्वत् १९२२ में पंजाबीभाषामें छपा, फिर यह ग्रन्थ लखनउमें पंजाबीसे हिन्दीभाषामें अनुवाद होकर छपा परन्तु ये दोनों अनुवाद पूरे नहीं हैं बहुतसे स्थलोंमें अध्यायके अध्याय छोडदिये गये हैं और बहुतसे स्थलोंमें मूलसे अर्थ नहीं मिलता इसलिये मेरा यह संकल्प हुआ कि इस अपूर्वग्रन्थको शुद्ध और सरल भाषानुवादसहित छपवाऊं, दैवयोगसे विद्वज्जनशिरोमणि वेदान्तआचार्य श्रीयुत पंडित ठाकुरप्रसादशर्माने इस महान् परिश्रमको अंगीकार किया और अब ग्रन्थका भाषानुवाद पूरा होगया है, इसमें उक्त महाशयने संस्कृतटीकाका पूरा आशय लेकर केवल अनुवादही नहीं किया किन्तु स्थल स्थलपर टिप्पणीभी दी हैं कि जिससे पाठकोंको उसके अर्थके समझनेमें सुलभता होवे. यह ग्रन्थ पूज्यपाद श्री १०८ परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीजी महाराजके चरणोंमें इसलिये समर्पण किया गया है कि जब इसके अनुवादका प्रारम्भ हुआथा तो मैंने स्वामीजीसे यह प्रार्थना की थी कि मैं आपके चरणोंमें इस ग्रन्थको समर्पण करना चाहताहूं उन्होंने इस प्रार्थनाको बहुत हर्षके साथ स्वीकार कियाथा और आज्ञा की थी कि यह ग्रन्थ हमारे विद्यमान रहतेही मुद्रित होजाय तो अच्छाहै परन्तु ईश्वरकी इच्छा यही थी कि वह यतीन्द्र इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेसे पूर्वही इस असार संसारको छोडकर स्वधामको प्राप्त हों. अब इस ग्रन्थको उनके गुणों और कृपाको जो सदैव मेरे और मेरे कुटुम्बके ऊपर चलीआई स्मरण करके उनके चरणारविन्दमें विनयपूर्वक समर्पण करताहूं.

आशा है कि विद्वज्जन इस ग्रन्थको पाठ करके वैसाही लाभ उठावेंगे जैसे कि श्रीरामचन्द्रजीने श्रीवसिष्ठजीके उपदेशद्वारा संसारके सब कार्य करतेहुयेभी जीवन्मुक्तिके सुखका अनुभव किया और विदेहकैवल्यको प्राप्त हुये.

श्रीमान् पंडित ठाकुरप्रसादजीको इस महान् कार्यके पूरा करनेमें जितना परिश्रम हुआ उसका जितना धन्यवाद दिया जावे उतनाही थोडा है। यह पंडितजीकाही छः वर्षका पुरुषार्थ व विद्वत्ता थी कि उन्होंने ऐसा अनुवाद किया जो विद्वज्जनोंको जैसा कि वर्तमानपत्रों और समालोचनाओंसे विदितहै। अनुकूल है। यह ग्रन्थ बहुत विस्तरित होनेके कारण दो भागोंमें छापनेका प्रबन्ध किया गयाहै और यह प्रथम भागहै जो प्रकाशित किया जाताहै।

विद्वज्जनोंका सेवक

बैजनाथ.

ॐ

श्रीहरिर्वन्दे ।

श्रीवृन्दावन विहारिणे नमः ।

योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित

प्रथम वैराग्य-प्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठ महाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियतेहिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्यच ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमस्सर्गः ।

श्रीगणेशायनमः ॥ यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभांति स्थितानि च ॥ यत्रैवोपशमं यांति तस्मै सत्यात्मनेनमः ॥ १ ॥ ज्ञाताज्ञानं तथाज्ञेयं द्रष्टा दर्शन दृश्यभूः ॥ कर्त्ता हेतुः क्रिया यस्मात्तस्मै ज्ञप्त्यात्मने नमः ॥ २ ॥ स्फुरंति सीकरा यस्मादानंदस्यांबरेऽवनौ ॥ सर्वेषांजीवनं तस्मै ब्रह्मानंदात्मने नमः ॥३॥ सुतीक्ष्णो ब्राह्मणः कश्चित्संशयाकृष्टमानसः ॥ अगस्तेराश्रमं गत्वा मुनिं पप्रच्छ सादरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सृष्टिकालमें जिस अद्वितीय वस्तुसे आकाशादि महाभूत और उनसे उत्पन्न पदार्थ सत्ताको पाकर भान होते हैं, स्थितिकालमें जिसकी सत्ताहीसे स्थित रहते हैं और प्रलयकालमें जिसमें लय होते हैं उस सत्यस्वरूप परमात्माको नमस्कारहै ॥ १ ॥ ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्ता, हेतु और और क्रिया जिससे भासती हैं उस ज्ञानस्वरूपको नमस्कारहै, जिस महानन्द समुद्रसे देवता मनुष्य तथा पश्वादि योनियोंमें उपाधियोंके भेदसे न्यूनाधिक आनन्द कण प्रतीत होते हैं और जो प्राणीमात्रका जीवनहै उस आनन्दस्वरूपको नमस्कारहै ॥ ३ ॥ संशयसहित सुतीक्ष्ण नाम ब्राह्मणने अगस्त्य मुनिके आश्रममें जाकर आदरसहित प्रश्न किया ॥ ४ ॥

सुतीक्ष्णउवाच-भगवन् धर्मतत्त्वज्ञ सर्वशास्त्रविनिश्चित ॥ संशयोऽस्ति महानेकस्त्वमेतं कृपया वद ॥५॥ मोक्षस्य कारणं कर्म ज्ञानं वा मोक्षसाधनम् ॥ उभयं वा विनिश्चित्य एकं कथय कारणम् ॥६॥ अगस्तिरुवाच-उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्॥७॥केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहिमोक्षोऽभिजायते॥किंतूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः ॥८॥

अर्थ—सुतीक्ष्ण बोले—हे धर्मके मर्मको जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम रीतिसे निश्चय करनेवाले, हे भगवन्! मुझे एक बडा संदेहहै आप कृपा करके इसको दूर करैं ॥ ५ ॥ मोक्षका कारण कर्म्म है अथवा ज्ञान वा दोनों इन तीनों पक्षोंमें एकको निश्चय करके बताइये ॥ ६ ॥ अगस्ति बोले—जिसप्रकार दोनों पक्षोंसे पक्षियोंकी आकाशमें गति होती है उसी प्रकार ज्ञान और कर्म्म दोनोंसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ केवल कर्म्म वा ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती; किन्तु दोनोंसे इसलिये ब्रह्मज्ञानियोंनें दोनोंको मोक्षका साधन कहाहै ॥ ८ ॥

अस्मिन्नर्थे पुरावृत्तमितिहासं वदामि ते ॥ कारुण्याख्यः पुरा कश्चिद्ब्राह्मणोऽधीतवेदकः ॥ ९ ॥ अग्निवेश्यस्य पुत्रोऽभूद्वेदवेदांगपारगः ॥ गुरोरधीतविद्यः सन्नाजगाम गृहं प्रति ॥१०॥ तस्थावकर्मकृत् तूष्णींसंशयानो गृहे तदा ॥ अग्निवेश्यो विलोक्याथ पुत्रं कर्मविवर्जितम् ॥ ११ ॥ प्राह एतद्वचोऽनिंद्यं गुरुः पुत्रं हिताय च ॥ अग्निवेश्य उवाच-किमेतत्पुत्र कुरुषे पालनं न स्वकर्मणः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस विषयमें तुमसे मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, पूर्वकालमें कारुण्य नाम एक वेदपाठी ब्राह्मण था ॥ ९ ॥ वह अग्निवेश्यका पुत्र था गुरुसे विद्यापढके वेद वेदांगमें जब निपुण होगया तब अपने स्थानपर आया ॥ १० ॥ उस समय संशययुक्त होकर कर्म्मरहित ग्रहमें रहने लगा, अग्निवेश्य अपने पुत्रको कर्म्मशून्य देखकर उसके हितके लिये यह उत्तम वचन बोला-अग्निवेश्य बोले, हे पुत्र ! अपने कर्म्मोंका पालन क्यों नहीं करते ॥ ११ ॥ १२ ॥

अकर्म निरतः सिद्धिं कथं प्राप्स्यसि तद्वद ॥ कर्मणोस्मान्निवृत्तेः किंकारणं तन्निवेद्यताम् ॥ १३ ॥ कारुण्य उवाच-यावज्जीवमग्निहोत्रं नित्यं संध्यामुपासयेत् ॥ प्रवृत्तिरूपो धर्मोऽयं श्रुत्या स्मृत्या च चोदिताः ॥ १४ ॥ न धनेन भवेन्मोक्षः कर्मणा प्रजया न वा ॥ त्यागमात्रेण किंत्वेके यतयोऽश्नंति चामृतम् ॥ १५ ॥ इति श्रुत्योर्द्वयोर्मध्ये किं कर्त्तव्यं मया गुरो ॥ इति संदिग्धतां गत्वा तूष्णीं भूतोस्मि कर्मणि ॥ १६ ॥

अर्थ—कर्म्मरहित होके किस प्रकार तुम सिद्धिको प्राप्तहोओगे सो कहो और तुह्मारी कर्म्मसे निवृत्तिका कारण क्याहै सोभी कहो ॥ १३ ॥ कारुण्य बोले-श्रुति और स्मृतिमें प्रवृत्तिरूप धर्म्म यह कहा गया है कि मनुष्य जबतक जीवे तबतक अग्निहोत्र और सन्ध्योपासनादिकरे और निवृत्तिरूप धर्म्म यह कहा है की धन अथवा कर्म वा सन्ततिसे मोक्ष नहीं होता किंतु त्यागमात्रसे यतिलोग अमृत (मुक्ति) पदको पाते हैं ॥१५॥ इन दोनों श्रुतियोंके बीच हे गुरो ! मुझे क्या करना उचित है ? इस सन्देहमें ग्रस्त होकर कर्म्मसे मुझे वैराग्य हुआ है ॥ १६ ॥

अगस्तिरुवाच-इत्युक्त्वा तात विप्रोसौ कारुण्यो मौनमागतः ॥ तथाविधं सुतं दृष्ट्वा पुनः प्राह गुरुः सुतम् ॥ १७ ॥ अग्निवेश्य उवाच-शृणु पुत्र कथामेकां तदर्थं हृदयेऽखिलम् ॥ मत्तोऽवधार्यपुत्र त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १८ ॥ सुरुचिर्नाम काचित्स्त्रीरप्सरोगण उत्तमा ॥ उपविष्टा हिमवतः शिखरे शिखिसंवृते ॥ १८ ॥ रमंते कामसंतप्ताः किन्नर्यो यत्र किन्नरैः ॥ स्वर्धुन्योघेन संसृष्टे महाघौघविनाशिना ॥ २० ॥

अर्थ—सुतीक्ष्णसे अगस्ति बोले-कि हे प्रिय ! वह कारुण्य नाम ब्राह्मण अपने पितासे इतना कहकर मौन होगया पिताने पुत्रको इस अवस्थामें देखकर कहा ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! एक कथा सुनो उसके अर्थको अपने हृदयमें निश्चय करके पुनः अपनी इच्छाके अनुसार करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण अप्सराओंमें उत्तम सुरुचिनाम एक स्त्री हिमालयके शिखरपर निवास करतीथी ॥ १९ ॥ महापापके समूहको नाश करनेवाले और अकाश गंगाके प्रवाहसे सिंचेहुये उस पर्वतके शिखरपर कामपीडित किन्नरी लोग किन्नरोंके साथ विहार करती थीं ॥ २० ॥

दूतमिंद्रस्य गच्छंतमंतरिक्षे ददर्श सा ॥ तमुवाच महाभागा सुरुचिश्चाप्सरोवरा ॥ २१ ॥ सुरुचिरुवाच-देवदूत महाभाग कुत आगम्यते त्वया ॥ अधुना कुत्र गंतासि तत्सर्वं कृपया वद ॥ २२ ॥ देवदूत उवाच-साधु पृष्टं त्वया सुभ्रू यथावत्कथयामि ते ॥ अरिष्टनेमी राजर्षिर्दत्वा राज्यं सुताय वै ॥ २३ ॥ वीतरागः स धर्मात्मा निर्ययौ तपसे वनम् ॥ तपश्चरत्यसौ राजा पर्वते गंधमादने॥२४॥

अर्थ—वहांपर महा भाग्यवती अप्सराओंमें श्रेष्ठ उस सुरुचिने आकाशमें जातेहुये इन्द्रके दूतको देखा और उससे बोली ॥ २१ ॥ हे कल्याणरूप इन्द्रके दूत ! आप कहांसे आतेहैं और अब कहां जाइयेगा सो सब कृपाकरके कहिये ॥ २२ ॥ देवदूत बोला-हे उत्तम भौंहवाली ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया मैं तुमसे सत्य २ कहता हूं, अरिष्टनेमि नाम एक राजा अपना राज्य पुत्रको देकर ॥ २३ ॥ और राग-द्वेष रहित होकर वह धर्मात्मा तप करनेकेलिये बनमें चला गया, अब वह गन्धमादन पर्वतपर तप करता है ॥ २४ ॥

कार्यं कृत्वा मया तत्र तत आगम्यतेऽधुना ॥ गंतास्मि पार्श्वे शक्रस्यतं वृत्तांतं निवेदितुम् ॥ २५ ॥ अप्सरा उवाच-वृत्तांतः कोभवत्तत्र कथयस्व ममप्रभो ॥ प्रष्टुकामा विनीतास्मि नोद्वेगं कर्तुमर्हं ॥२६॥ देवदूत उवाच-शृणु भद्रे यथावृत्तं विस्तरेण वदामिते ॥ तस्मिन् राज्ञि वने तत्र तप श्चरति दुस्तरम् ॥ २७ ॥ इत्यहं देवराजेन सुभ्रू राज्ञापितस्तदा ॥ दूत त्वं तत्र गच्छाशु गृहीत्वेदं विमानकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उस राजासे मेरा कुछ कार्य था वहांसे मैं उस कार्यको करके आताहूँ और अब इंद्रके निकट उस वृत्तांतको कहनेको जाता हूँ॥ २५ ॥ अप्सरा बोली—हे स्वामिन ! वहांपर क्या वृत्तांत हुआ सो कृपाकरके कहिये मुझे इसके पूछनेकी बहुत इच्छाहै मैं आपके सन्मुख अत्यन्त नम्र हूँ आप शीघ्रता न कीजिये॥ २६ ॥ इंद्रका दूत बोला—हे कल्याणि ! सुनो मैं विस्तार पूर्वक उस वृत्तांतको तुमसे कहता हूँ अरिष्टनेमि राजा उस बनमें उग्र तप करता था॥ ॥ २७ ॥ हे सुभ्रू ! उस समय इंद्रने मुझे यह आज्ञादी कि हे दूत ! तुम इस विमानको लेकर शीघ्र वहां जाओ ॥ २८॥

अप्सरोगणसंयुक्तं नानावादित्रशोभितम् ॥ गंधर्वसिद्धयक्षैश्च किन्नरा द्यैश्च शोभितम् ॥ २९ ॥ तालवेणुमृदंगादि पर्वते गंधमादने ॥ नानावृक्षसभाकीर्णे गत्वा तस्मिन् गिरौ शुभे ॥ ३० ॥ अरिष्टनेमिं राजानं दूतारोप्य विमानके ॥ आनय स्वर्गभोगाय नगरीममरावतीम्॥ ३१ ॥ दूत उवाच–इत्याज्ञां प्राप्य शक्रस्य गृहीत्वा तद्वि मानकम् ॥ सर्वोप स्करसंयुक्तं तस्मिन्नद्रावहं ययौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—अप्सराओंके समूहों और अनेक प्रकारके वाद्यों (बाजे) से शोभायमान और गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, तथा किन्नरादिकोंसे भूषित और अनेक प्रकारकी सामग्री सहित इस विमानको लेकर ॥ २९ ॥ तथा ताल वेणु (वंशी) और मृदंगादि सहित सेना लेकर अनेक प्रकारके पक्षियोंसे पूर्ण उस उत्तम गन्धमादन पर्वतपर जाकर ॥ ३० ॥ अरिष्ट नेमि राजाको इस विमानपर बैठाके स्वर्गका भोग करनेके लिये अमरावती नगरीमें लाओ ॥ ३१ ॥ देवदूत बोले इंद्रकी इस आज्ञाको पाकर संपूर्ण सामग्रीसहित उस विमानकी लेकर उस पर्वतपर मैं गया ॥ ३२ ॥

आगत्य पर्वते तस्मिन् राज्ञो गत्वाश्रमं मया ॥ निवेदिता महेंद्रस्य सर्वाज्ञारिष्टनेमये ॥ ३३ ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा संशयानोऽवदच्छुभे ॥ राजोवाच–प्रष्टुमिच्छामि दूत त्वां तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥३४॥ गुणा दोषाश्चके तत्र स्वर्गे वद ममाग्रतः ॥ ज्ञात्वा स्थितिं तु तत्रत्यां करिष्येहं यथारुचि ॥ ३५ ॥ दूत उवाच–स्वर्गे पुण्यस्य सामग्र्या भुज्यते परमं सुखम्॥ उत्तमेन तु पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गमुत्तमम्॥३६॥

अर्थ—उस पर्वतपर राजाके आश्रममें आकर इन्द्रकी सम्पूर्ण आज्ञाको अरिष्टनेमिराजासे कह दी ॥ ३३ ॥ हे शोभने ! मेरे इस बचनको सुनकर सन्देह करताहुआ राजा बोला—हे दूत ! जो आपसे मैं पूंछना चाहता हूं वह मुझसे कहना आपको उचित है ॥ ३४ ॥ मुझे आप यह बताइये कि स्वर्गमें कौन २ से गुण और कौन २ से दोष हैं, वहांकी दशाको जानकर मैं अपनी रुचिके अनुसार करूंगा ॥ ३५ ॥ देवदूत बोला कि—पुण्यकी सामग्रीसे स्वर्गमें मनुष्य परम सुख भोगता है, उत्तम पुण्यसे उत्तम स्वर्ग मिलता है ॥ ३६ ॥

मध्यमेन तथा मध्यः स्वर्गो भवति नान्यथा ॥ कनिष्ठेन तु पुण्येन स्वर्गो भवति तादृशः ॥ ३७ ॥ परोत्कर्षासहिष्णुत्वं स्पर्धाचैवसमैश्चतैः॥ कनिष्ठेषु च संतोषो यावत्पुण्यक्षयो भवेत् ॥ ३८ ॥ क्षीणेपुण्येविशंत्येतं मर्त्यलोकं च मानवाः ॥ इत्यादि गुणदोषाश्च स्वर्गे राजन्न व स्थिताः ॥ ३९ ॥ इति श्रुत्वावचोभद्रे स राजा प्रत्य भाषत ॥ राजोवाच–नेच्छामि देवदूताहं स्वर्गमी दृग्विधं फलम् ॥४०॥

अर्थ—और मध्यम पुण्यसे मध्यम स्वर्ग, तथा कनिष्ठ पुण्यसे कनिष्ठ स्वर्ग होता है, इसके विपरीत नहीं होता ॥ ३७ ॥ दूसरेके ऐश्वर्य्य को न सहना, बराबरवालोंके साथ ईर्ष्या और छोटोंके साथ संतोष करना अर्थात् भले यह दीन है ये बातें स्वर्गमें जबतक पुण्यका नाश नहीं होता तबतक होती हैं ॥ ३८ ॥ पुण्यके क्षीण होनेपर स्वर्गवासी मनुष्य इस मृत्युलोकमें आकर प्रवेश करते हैं. हे राजन् ! इत्यादि गुण और दोष स्वर्गमें हैं ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! इस बचनको श्रवण करके वह राजा बोला—हे देव दूत ! ऐसे फलवाले स्वर्गको मैं नहीं चाहता ॥ ४० ॥

अतःपरं महोग्रंतु तपःकृत्वा कलेवरम् ॥ त्यक्ष्याम्यहम शुद्धं हिर्जीर्णांत्विच मिवोरगः ॥ ४१॥ देवदूत विमानेदं गृहीत्वात्वं यथागतः ॥ तथा गच्छ महेंद्रस्य सन्निधौत्वं नमोस्तुते ॥ ४२ ॥ देवदूत उवाच–इत्युक्तोहं गतो भद्रे शक्रस्याग्रे निवेदितुं ॥ यथावृत्तं निवेद्याथमहदाश्चर्यतां गतः ॥ ४३ ॥ पुनः प्राह महेंद्रो मां लक्ष्णं मधुरयागिरा ॥ इंद्र उवाच–दूत गच्छ पुनस्तत्रतं राजानं नयाश्रमम् ॥ ४४ ॥ वाल्मीकेर्ज्ञात तत्त्वस्य स्वबोधार्थं विरागिणम् ॥ संदेशं मम वाल्मीकेर्महर्षेस्त्वं निवेदय ॥ ४५ ॥

अर्थ—अब मैं महाघोर तपकरके जैसे पुरानी काँचुलीको सर्प त्यागताहै वैसेही इस अशुद्ध शरीरको त्यागदूंगा ॥ ४१ ॥ हे देवदूत ! आपको नमस्कार है, आप इस विमानको लेकर जिस प्रकार मेरे निकट आये उसी रीतिसे इंद्रके निकट चले जाइये ॥ ४२ ॥ देवदूत बोले—हे भद्रे ! राजाके इस प्रकार कहनेपर मैं उस वृत्तान्तको कहनेकेलिये इंद्रके निकट गया और यथार्थ निवेदन करनेपर इंद्रको बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४३ ॥ पुनः शाभन और मधुरवाणीसे इंद्रने मुझ-

से कहा इंद्र बोले—हे दूत ! तुम पुनः वहां जावो और वैराग्यवान् राजाको आत्मज्ञानके लिये तत्वज्ञानी श्रीवाल्मीकि-ऋषिके आश्रमपर ले जाओ और वाल्मीकि महर्षिसे मेरा संदेश कह दो कि ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

महर्षेत्वं विनीतायराज्ञेस्मै वीतरागिणे ॥ नस्वर्ग मिच्छते तत्त्वं प्रबोधय महामुने ॥ ४६ ॥ तेन संसार दुःखार्तो मोक्षमेष्यति च क्रमात् ॥ इत्युक्त्वा देवराजेन प्रेषितोहं तदंतिके ॥ ४७ ॥ मयागत्य पुनस्तत्र राजा वल्मीक जन्मने ॥ निवेदितो महेंद्रस्य राज्ञा मोक्षस्य साधनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे महामुने आप तत्वज्ञानका बोध कराइये ॥ ४६ ॥ जिससे संसारके दुःखसे पीडित इस राजाको क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति हो ऐसा कहके मुझे उसके निकट भेजा ॥ ४७ ॥ मैं पुनः वाल्मीकिके निकट जाके राजाको विदित किया और उसके मोक्षसाधनके विषयमें महेन्द्रका संदेश कहा ॥ ४८ ॥

ततो वल्मीक जन्मासौ राजानं समपृच्छत ॥ अनामयम तिप्रीत्या कुशल प्रश्न वार्त्तया ॥ ४९ ॥ राजोवाच-भगवन् धर्मतत्त्वज्ञ ज्ञातज्ञेय विदावरं ॥ कृतार्थोहं भवद्दृष्ट्या तदेवकुशलं मम ॥ ५० ॥ भगवन् प्रष्टुमिच्छामि तद विघ्नेनमेवद ॥ संसारबंधदुःखार्तेः कथंमुंचामितद्वद ॥ ५१ ॥ वाल्मीकिरुवाच-शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामायणमखंडितम् ॥ श्रुत्वावधार्ययत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥५२॥

अर्थ—इसके पश्चात् वाल्मीकिजीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक राजासे आरोग्यता पूछी ॥ ४९ ॥ राजा बोला—हे भगवन् ! हे धर्मके तत्वोंके जाननेवाले हे संपूर्ण जाननेयोग्य पदार्थोंके जाननेवाले ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ होगया यही मेरा कुशलहै॥५०॥ हे भगवन् ! मैं आपसे पूंछता हूं सो निर्विघ्नतापूर्वक मुझसे कहो, संसारके बंधनरूपी दुःखसे मैं कैसे छूटूं सो आप कहो ॥ ५१ ॥ वाल्मीकि बोले-हे राजन् ! सुनो मैं संपूर्ण रामायण कहूंगा उसे सुनके और यत्नसे निश्चय करनेसे जीवनन्मुक्त हो जाओगे ॥ ५२ ॥

वसिष्ठरामसंवादं मोक्षपाय कथां शुभाम् ॥ ज्ञात स्वभावो राजेंद्र वदामि श्रूयतां बुध ॥ ५३ ॥ राजोवाच-कोरामः कीदृशः कस्य बद्धो वा मुक्त एवा वा ॥ एतन्मे निश्चितं ब्रूहि ज्ञानं तत्त्वविदांवर ॥५४॥ वाल्मीकिरुवाच-शापव्याजवशादेवराजवेशधरो हरिः ॥ आहृताज्ञानसंपन्नः किंचिज्ज्ञोसौभवत्प्रभुः ॥५५॥ राजोवाच-चिदानंदस्वरूपेहि रामेचैतन्यविग्रहे ॥ शापस्य कारणं ब्रूहि कःशप्ताचेतिमेवद ॥५६॥

अर्थ—हे राजेंद्र ! आत्मकी सत्ताको जाननेवाला मैं वसिष्ठ और रामचन्द्रजीका संवादरूप मोक्षोपाय की शुभ कथाको कहताहूं आप श्रवण किजीये॥५३॥ राजा बोला—हे तत्वज्ञानीयोंमें श्रेष्ठ ! रामचन्द्रजी किसके पुत्र और कैसेथे बद्ध थे ? अथवा मुक्त ! यह निश्चितज्ञान मुझसे कहिये॥५४॥ वाल्मीकि बोले—शापके मिषसेही श्रीविष्णुने राजावेष धारणकिया औ अपनी इच्छापूर्वक अज्ञानको अंगीकार करके न्यून ज्ञानवाले प्रभु होगये॥५५॥ राजा बोला—चैतन्य शरीर वाले सत्चिदानन्दस्वरूप रामचन्द्रजीके शापका कारण क्या था और उनको शाप किसने दिया यह मुझसे कहिये ५६

वाल्मीकिरुवाच-सनत्कुमारो निष्कामअवसद्ब्रह्मसद्मनि ॥ वैकुंठादागतो विष्णुस्त्रैलोक्याधिपतिः प्रभुः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणापूजितस्तत्र सत्यलोक निवासिभिः ॥ विना कुमारं तं दृष्ट्वा त्युवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ५८ ॥ सनत्कुमारस्तब्धोसि निष्कामो गर्वचेष्टया ॥ अतस्त्वं भवकामार्तःशरजन्मेतिनामत ॥ ५९॥ तेनापि शापितोविष्णुः सर्वज्ञत्वं तवास्तियत् ॥ किंचित्कालं हितस्त्यक्त्वात्वमज्ञानी भविष्यसि ॥६०॥

अर्थ—वाल्मीकि बोले—कामरहित सनत्कुमार ब्रह्माके स्थानपर रहतेथे वहांपर त्रैलोक्यके स्वामी विष्णुजीभि वैकुण्ठसे आये ॥५७॥ वहांपर सनत्कुमारके सिवाय ब्रह्माजी तथा अन्य ब्रह्मलोकनिवासियोंने विष्णुजीकी पूजा की, इसको देखिके विष्णुभगवान् बोले ॥ ५८ ॥ हे सनत्कुमार ! तुम निष्कामहो इस लिये गर्वी होगयेहो इसवास्ते शर जन्मनामवाले स्वामी कार्तिक कामसे अति पीडित अल्पज्ञ होओगे ॥ ५९ ॥ उन्होंनेभी विष्णुको शाप दिया कि आपका जो सर्वज्ञत्वका अभिमान है उसे त्यागके कुछ कालके लिये अल्पज्ञ हो जाओ ॥ ६० ॥

भृगुर्भार्यां हतांदृष्ट्वा त्युवाचक्रोधमूर्च्छितः ॥ विष्णो तवापि भार्याया वियोगो हि भविष्यति ॥ ६१ ॥ वृंदया शापितो विष्णुश्छलनं यत्त्वया कृतम् ॥ अतस्त्वं स्त्रीवियोगं तु वचनान्ममयास्यसि ॥ ६२ ॥ भार्या हि देवदत्तस्य पयोष्णीतीरसंस्थिता ॥ नृसिंहवेषधृग्विष्णुं दृष्ट्वा पंचत्वमागता ॥ ६३ ॥ तेन शप्तो हि नृहरिर्दुःखार्त्तःस्त्रीवियोगतः ॥ तवापि भार्ययासार्धं वियोगो हि भविष्यसि ॥ ६४ ॥

अर्थ—क्रोध मूर्च्छित भृगु मरीहुई अपनी स्त्रीको देखके बोले—कि मुझे तुमनेभी हँसा तुमकोभी स्त्रीका विरह होगा ॥ ६१ ॥ वृन्दाने विष्णुको शाप दिया कि आपने जो मुझसे छल किया इसलिये मेरे वचनसे तुमकोभी स्त्रीका वियोग होगा ॥ ६२ ॥ और पयोष्णी नदी तट निवासिनी देवदत्तकी स्त्रीने नरसिंह रूपधारी विष्णुको देखके अपने प्राण

(भयसे) त्याग दिया ॥ ६३ ॥ इसपर दुःखी स्त्रीवियोगी उस ब्राह्मणने विष्णुकोभी शाप दिया, कि तुह्माराभी स्त्रीके साथ अवश्य वियोग होगा ॥ ६४ ॥

भृगुणैवं कुमारेण शापितो देवशर्मणा ॥ वृंदया शापितो विष्णुस्तेनमानुष्यतांगतः ॥ ६५ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं शाप व्याजस्य कारणम् ॥ इदानीं वच्मितत्सर्वं सावधान मतिःशृणु ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये द्वात्रिंशत्साख्यां संहितायां वैराग्यप्रकरणे सूत्रपातनको नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—इसप्रकार भृगु सनत्कुमार, देवशर्मा और वृन्दाके शापसे विष्णुने मनुष्यरूप धारणकिया॥६५॥यह संपूर्ण शाप व्याजका कारण मैंने तुमसे कहदिया, अब वह सब मोक्षका साधन जो तुमने पूंछा सो सावधानचित्त होके सुनो६६॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोंके द्वात्रिंशत्साह सहितायां भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे सूत्रपातो नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ।

दिवि भूमौ तथाऽऽकाशे बहिरंतश्च मे विभुः ॥ योविभात्यवभासात्मा तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ १ ॥ वाल्मीकिरुवाच–अहं बद्धो विमुक्तः स्यामिति यस्यास्ति निश्चयः ॥ नात्यंतमज्ञो नोऽतज्ञः सोस्मिञ्छास्त्रेऽधिकारवान् ॥ २ ॥ कथोपायान्विचार्यादौ मोक्षोपायानिमानथ ॥ यो विचारयति प्राज्ञो न स भूयोभिजायते ॥ ३ ॥

अर्थ—जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा नानारूपसे इस भूलोकमें और अन्तरिक्ष लोकमें प्रकाश करता (भासता) है उस सर्वात्मरूप परमात्माको नमस्कारहै ॥ १ ॥ वाल्मीकिजी बोले–मैं बद्ध हूं मुक्त होजाऊं ऐसा जिसका निश्चय हो, और न अत्यन्त अज्ञानी हो और न ज्ञानी, ऐसा मनुष्य इस शास्त्रका अधिकारी है ॥ २ ॥ प्रारम्भमें छः कांड पूर्वरामायणको विचार करके अनन्तर इन मोक्षके उपाय वक्ष्यमाण वैराग्यादि छः प्रकरणोंको जो बुद्धिमान् विचारता है वह पुनः नहीं जन्मता ॥ ३ ॥

अस्मिन् रामायणे रामकथोपायान् महाबलान् ॥ एतांस्तु प्रथमं कृत्वा पुराऽहमरिमर्दन ॥ ४ ॥ शिष्यायास्मि विनीताय भरद्वाजाय धीमते ॥ एकाग्रो दत्तवांस्तस्मै मणिमब्धिरिवार्थिने ॥ ५ ॥ तत एते कथोपाया भरद्वाजेन धीमता ॥ कस्मिंश्चिन्मेरुगहने ब्रह्मणोऽग्र उदाहृताः ॥ ६ ॥ अथास्य तुष्टो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ वरं पुत्र गृहाणेति तमुवाच महाशयः ॥ ७ ॥ भरद्वाजउवाच–भगवन् भूतभव्येश वरोऽयं मेऽद्य रोचते ॥ येनेयं जनता दुःखान्मुच्यते तदुदाहर ॥ ८ ॥

अर्थ—हे शत्रुओंको मर्दन करनेवाले राजन्! इस (२४००० पूर्व और ३२००० उत्तर रामायण नामक ग्रन्थ) मेंसे पूर्वकालमें महाप्रबल कथाके उपाय ६ काण्ड पूर्वरामायणको मैंने प्रथम कहा ॥ ४ ॥ और समाहितचित्त होके मैंने इस पूर्व रामायणको बुद्धिमान् व नम्रतायुक्त भरद्वाजनाम अपने शिष्यको पढाया ॥ ५ ॥ यही पूर्वरामायण बुद्धिमान् भरद्वाजने मेरुके किसी वनमें ब्रह्माजीके सन्मुख कहा ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर लोकपितामह ब्रह्माजी उनके ऊपर संतुष्ट होगये, और बोले कि हे पुत्र! वर मांग ॥ ७ ॥ भरद्वाज बोले–हे भूतभविष्यत्के स्वामिन्! मुझे तो इस समय यह वरदान अच्छा लगताहै कि जिससे सम्पूर्ण अधिकारी जन दुःखसे छूट जांय वही कहिये ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्मोवाच–गुरुं वाल्मीकिमत्राशु प्रार्थयस्व प्रयत्नतः ॥ तेनेदं यत्समारब्धं रामायणमनिंदितम् ॥ ९ ॥ तस्मिञ्छ्रुते नरो मोहात्समग्रात्संतरिष्यति ॥ सेतुनेवांबुधेः पारमपारगुणशालिना ॥ १० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच–इत्युक्त्वा स भरद्वाजं परमेष्ठी मदाश्रमम् ॥ अभ्यागच्छत्समं तेन भरद्वाजेन भूतकृत् ॥११॥ तूर्णं संपूजितो देवः सोऽर्घ्यपाद्यदिना मया ॥ अवोचन्मां महासत्वःसर्वभूतहितेरतः १२

अर्थ—श्रीब्रह्माजी बोले–इसबातके अर्थ शीघ्र गुरु वाल्मीकिजीको प्रयत्नसे प्रार्थना करो उन्होंने जो यह निमित्तके विना रामायण आरम्भ कियाहै ॥ ९ ॥ उसके सुननेसे मनुष्य, जैसे अपार गुणसे शोभित समुद्रके पार होजाताहै ऐसेही मोहसमुद्रके पार होजावेगा ॥ १० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–ऐसा कहके संसारके रचनेवाले ब्रह्माजी भरद्वाजको साथ लेके मेरे आश्रमपर आये ॥ ११ ॥ शीघ्रही अर्घपाद्यादिकोंसे उस देवकी मैंने पूजा की और सर्व भूतके हितमें तत्पर वे महात्मा मुझसे बोले ॥ १२ ॥

रामस्वभावकथनादस्माद्वरमुने त्वया ॥ नोद्वेगात्स परित्याज्य आसमाप्तेरनिंदितात् ॥ १३ ॥ ग्रंथेनानेन लोकोऽयमस्मात्संसारसंकटात् ॥ समुत्तरिष्यति क्षिप्रं पोतेनेवाशु सागरात् ॥ १४ ॥ वक्तुं तदेवमेवार्थमहमागतवानयम् ॥ कुरु लोकहितार्थं त्वं शास्त्रमित्युक्तवानजः ॥ १५ ॥ मम पुण्याश्रमात्तस्मात्क्षणादंतर्द्धिमागतः ॥ मुहूर्त्तोभ्युत्थितः प्रोच्चैस्तरंगइववारिणि ॥ १६ ॥

अर्थ—हे श्रेष्ठमुने ! निन्दारहित इस श्रीरामजीके स्वभाव (कथादि समग्र वृत्तान्त) के वर्णनसे समाप्तिपर्य्यंत आपको त्यागना नहीं चाहिये ॥ १३ ॥ जैसे मनुष्य नौकाद्वारा समुद्रसे पार होजाताहै, वैसेही इस ग्रन्थसे यह लोक इस संसारके संकटसे पार होजायगा ॥ १४ ॥ इसी बातको कहनेके लिये मैं यहां आया हूं, आप लोकके हितके अर्थ शास्त्रको बनाओ ऐसा ब्रह्माजीने कहा ॥ १५ ॥ जैसे जलसे बडा ऊंचा तरंग मुहूर्तके लिये उठै और शान्त होजाय ऐसेही मेरे उस पवित्र आश्रमसे क्षणभरेमेंही ब्रह्माजी अंतर्ध्यान होगये ॥ १६ ॥

तस्मिन्प्रयाते भगवत्यहं विस्मयमागतः ॥ पुनस्तत्र भरद्वाजमपृच्छं स्वस्थया धिया ॥ १७ ॥ किमेतद्ब्रह्मणा प्रोक्तं भरद्वाज वदाशु मे ॥ इत्युक्तेन पुनः प्रोक्तं भरद्वाजेन तेन मे ॥ १८ ॥ भरद्वाज उवाच—एतदुक्तं भगवता यथा रामायणं कुरु ॥ सर्वलोकहितार्थाय संसारार्णवतारकम् ॥ १९ ॥ मह्यं च भगवन् ब्रूहि कथं संसारसंकटे ॥ रामो व्यवहृतो ह्यस्मिन् भरतश्च महामनाः ॥ २० ॥

अर्थ—भगवान्के चले जानेपर मैं विस्मित होगया, अनन्तर स्वस्थ चित्तसे भरद्वाजसे पूंछा ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने यह क्या कहा मुझसे शीघ्र कहो ऐसा कहनेपर भरद्वाजने मुझसे कहा ॥ १८ ॥ भगवान्ने यह कहाहै कि जैसे प्रथम रामायण बनायाहै वैसेही संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला रामायण पुनः निर्माण करो ॥ १९ ॥ और हे भगवन् ! मुझसेभी कहिये कि इस संसार संकटमें श्रीरामचन्द्रजी तथा महाशय भरतजीने कैसे व्यवहार किया ॥ २० ॥

शत्रुघ्नो लक्ष्मणश्चापि सीता चापि यशस्विनी ॥ रामानुयायिनस्ते वा मंत्रिपुत्रा महाधियः ॥ २१ ॥ निर्दुःखितां यथैते नु प्राप्तास्तद्ब्रूहिमेस्फुटम् ॥ तथैवाहं भविष्यामि ततो जनतया सह ॥ २२ ॥ भरद्वाजेन राजेंद्र वदेत्युक्तोऽस्मि सादरम् ॥ तदा कर्त्तुं विभो राज्ञामहं वक्तुं प्रवृत्तवान् ॥ २३ ॥ शृणुवत्स भरद्वाज यथा पृष्टं वदामि ते ॥ श्रुतेन येन संमोहमलं दूरे करिष्यसि ॥ २४ ॥

अर्थ—और शत्रुघ्नजी, लक्ष्मणजी, यशस्विनी श्रीसीताजी तथा रामचन्द्रके अनुयायी बडे २ बुद्धिमान् मंत्री तथा पुत्रादिकोंने कैसे व्यवहार किया ॥ २१ ॥ जिसप्रकार ये लोग दुःखसे छूटे वह मुझसे स्वच्छतासे कहो, जिससे मैंभी उन अधिकारियोंके सदृश हो जाऊं ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! आदरसहित भरद्वाजने मुझसे कहा कि कहिये तब मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा पालन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ २३ ॥ हे प्रिय भरद्वाज ! जैसा तुमने पूंछा वैसे मैं तुमसे कहताहूं सुनो जिसके सुननेसे अत्यन्त मोहरूपी मलको दूर करोगे ॥ २४ ॥

तथा व्यवहर प्राज्ञ यथा व्यवहृतःसुखी ॥ सर्वासंसक्त या बुद्धया रामो राजीवलोचनः ॥ २५ ॥ लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नश्च महामनाः ॥ कौसल्या च सुमित्रा च सीता दशरथस्तथा ॥ २६ ॥ कृतास्त्रश्चाविरोधश्च बोधपारमुपागताः ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च मंत्रिणोऽष्टौ तथेतरे ॥ २७ ॥ धृष्टिर्जयंतो भासश्च सत्यो विजय एव च ॥ बिभीषणः सुषेणश्च हनुमानिंद्रजित्तथा ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार सर्वथा संसारमें आसक्तिसेरहित कमलनेत्र रामचन्द्रने व्यवहार किया और सुखी रहे इसीप्रकार हे (बुद्धिमन्) तुमभी करो ॥ २५ ॥ महाशय लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौसल्याजी, सुमित्राजी और सीताजी तथा दशरथजी ॥ २६ ॥ कृतास्त्र और अविरोध ये सब बोध (ज्ञान) के पार प्राप्त हुये, वशिष्ठ, वामदेव और आठों मंत्री, तथा अन्य अनुयायी, लोगभी ज्ञानके पारंगत हुये ॥ २७ ॥ धृष्टि, जयन्त, भास, सत्य, विजय, बिभीषण, सुषेण, हनुमान्, और इन्द्रजित् ॥ २८ ॥

---

(१) प्रथकथोपायरूप रामायण कहा अब मोक्षोपाय कहो ॥ (२) उत्तररामायणका निर्माण कीजिये और उसे मुझे पढाइयेभी ॥ (३) भेंट पूजा रखके प्रार्थनापूर्वक प्रश्नरूप आदरसहित ॥ (४) आत्मज्ञानका प्रतिबन्धक जो अज्ञानरूपी मलहै उसको दूर करोगे ॥ (५) संसार मिथ्याहै ऐसा निश्चय करनेसे अभिनिवेशशून्य बुद्धिसे कार्य किया ॥ (६) सर्वव्यापी अपरिच्छिन्न ब्रह्मरूप वस्तुके ग्रहण करनेके योग्य होनेसे महाशय (महामना) यह विशेषण दिया गया ॥ (७) कृतार्थ और अविरोध ये दोनो रामचन्द्रजीके मित्र थे ॥ (८) जिसका बोध (ज्ञान होनेसे दूसरा ज्ञातव्य पदार्थ नहीं रहता ऐसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुये ॥

एतेऽष्टौ मंत्रिणः प्रोक्ताः समनीरागचेतसः ॥ जीवन्मुक्ता महात्मानो यथाप्राप्तानुवर्तिनः॥२९॥एतैर्यथा इतं दत्तं गृहीतमुषितं स्मृतम् ॥ तथा चेद्वर्त्तसे पुत्र मुक्त एवासि संकटात् ॥ ३० ॥ अपारसंसारसमुद्रपाती लब्ध्वा परां युक्तिमुदारसत्वः ॥ नशोक मायाति न दैन्यमेति गतज्वरस्तिष्ठतिनित्यतृप्तः॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु वै०

सूत्रपातनिकोनाम द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—ये आठों मंत्रीसम, रागरहित, जीवन्मुक्त, महात्मा और यथाप्राप्त प्रारब्धके अनुसार चलनेवाले कहे जातेहैं ॥ २९ ॥ इन लोगोंने जिसप्रकार हवन किया, दिया, निवास किया, स्मरण किया, उसी रीतिसे यदि बर्तोगे तो हे पुत्र! अपनेको संकटसे मुक्तही जानो ॥ ३० ॥ अपार संसाररूपी समुद्रमें डूबता हुआ ज्ञानरूप उत्तम युक्तिको पाकर प्रबल ज्ञानसे बलवान् मनुष्य, पुनः शोक और दीनताको नहीं प्राप्त होता किंतु संतापरहित होकर नित्य तृप्त रहताहै

इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे वाल्मीकीये दे० भाषाऽनुवादे मोक्षोपायेषु वै०

सूत्रपाता नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयस्सर्गः ।

भरद्वाज उवाच-जीवन्मुक्तस्थितिं ब्रह्मन्कृत्वा राघवमादितः ॥ क्रमात्कथय मे नित्यं भविष्यामि सुखी यथा ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच-भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनः स्मरणं मन्ये साधो विस्मरणं वरम् ॥ २ ॥ दृश्यात्यंताभावबोधं विना तन्नानुभूयते ॥ कदाचित्केन चिन्नाम स्वबोधोऽन्विष्यतामतः ॥ ३ ॥ सचेह संभवत्येव तदर्थमिदपाततम् ॥ शास्त्रमाकर्णयसि चेत्त्वमाप्स्यसि नान्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—भरद्वाजजी बोले—हे ब्रह्मन् ! रामचन्द्रसे आदि लेके क्रमसे जीवन्मुक्तिकी दशा मुझसे कहिये, जिस रीतिसे मैं नित्य सुखरूप होजाऊं ॥ १ श्रीवाल्मीकिजी बोले हे साधो ! जिसप्रकार आकाशमें नीले वर्णका भ्रम हुआ है और आकाशके वास्तविक रूप जाननेसे उसकापुनः स्मरण नहीं होता इसीप्रकार जगत्के सत्यत्व भ्रमका ब्रह्मके वास्तविक स्वरूप जाननेसेपुन स्मरण नै होनाही इसी दशाको मैं उत्तम जीवन्मुक्तकी स्थिति मानता हूं ॥ २ ॥ ब्रह्मज्ञानकेविना दृश्य (संसार)का अत्यन्ताभाव (संसार कभी था न है न होगा) किसीको कदापि अनुभूत नहीं होता इसलिये ब्रह्मज्ञानका संपादन करना उचितहै ॥ ३ ॥ वह (ब्रह्मज्ञान) इसशास्त्रके पढनेसे उत्तमतापूर्वक होताहै जिस ब्रह्मज्ञानके लिये यह वक्ष्यमाण योगवासिष्ट रामायण शास्त्रहै, यदि इसे सावधान होके सुनोगे तो तत्व पाओगे अन्यथा नहीं ॥४॥

जगद्भ्रमोयं दृश्योऽपि नास्त्येवेत्यनुभूयते ॥ वर्णो व्योम्नि इवाऽखेदाद्विचारेणामुनानघ ॥ ५ ॥ दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् ॥ संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः॥६॥ अन्यथा शास्त्र गर्त्तेषु लुठतां भवतामिह ॥ भवत्यकृत्रिमाज्ञानां कल्पैरपि न निर्वृतिः ॥ ७ ॥ अशेषेण परित्यागो वासनानां य उत्तमः ॥ मोक्ष इत्युच्यते ब्रह्मन्सएव विमलक्रमः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे विचारसे आकाशमें वर्ण नहीं भान होता इसी प्रकार आलस्य तजके इस ग्रन्थके विचारनेसे जगद्भ्रम यह दृश्यभी नहीं (सत्य नहीं) है ऐसा अनुभव होताहै॥५॥यह दृश्य जगत् त्रिकालमें हैही नहीं ऐसा जब आत्मज्ञानसे मनँसे दृश्यका मार्जन सिद्ध होजाय तो आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा—निर्वाणकी उत्पत्ति हुईही समझो ॥ ६ ॥ इसके सिवाय अन्य शास्त्रोंके गढेंमें लोटनेसे अज्ञानियोंको कल्पोंमेंभी अकृत्रिम शान्ति (स्वतःसिद्ध आत्मामें स्थिति) नहींहो सक्ती॥७॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वथा वासनाका परित्याग यह मुख्य मोक्षहै और वह अविद्यारहित मनुष्योंकोप्राप्त होताहै॥८॥

---

१ अन्तःकरणमें समवर्ती रागद्वेषरहित और ऊपरसे प्रारब्धाऽनुकूल वर्तनेवाले ॥ (२) वेदके ब्रह्मपरक वाक्य स्मरण करके और अर्थको मनन करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया (३) साधनचतुष्टयद्वारा समाधिरूप युक्ति ॥ (४) आकाशमें कोई रूप नहीं है क्योंकि नील पीतादि रूप साकार वस्तुमें होतेहैं और आकाश निराकारके सदृशमात्र है परन्तु वायुमण्डलमें तत्वके समूहोंका रूप वा किसीके मतसे वायुकापटलही नीलवर्ण प्रतीत होताहै ॥ (५) जगत् सत्यहै ऐसी स्फुरणाही कभी यथार्थ ज्ञानीको नहींहोती ॥ (६) ब्रह्मज्ञानीको जगत्की सत्ता असत् प्रतीत होतीहै वह सर्वत्र ब्रह्मसत्ताहीकी महिमा देखता है न कि जगत्की जगत् सत्यत्वरूपसे न प्रतीत होना यही उसका अत्यन्ताभाव है ॥ (७) अनेक प्रकारकी जो वासना हैं. उनका समूहही रूप मनहै उनके नष्ट होनेपर यह स्वयं नष्ट होजाता है ॥

क्षीणायां वासनायां तु चेतो गलति सत्वरम् ॥ क्षीणायां शीतसंतत्यां ब्रह्मन्हिमकणो यथा ॥ २९ ॥ अयं वासनया देहो ध्रियते भूतपंजरः ॥ तनुनांतर्निविष्टेन मुक्तौघस्ततुना यथा ॥ १० ॥ वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा ॥ मलिना जन्मनो हेतुःशुद्धा जन्मविनाशिनी ॥११॥ अज्ञानसुघनाकारा घनाहंकारशालिनी ॥ पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! जैसे शीतलताका विस्तार क्षीण होनेपर हिमकण नष्ट होजाता है इसी प्रकार वासनाके क्षीण होनेपर शीघ्रही मन नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥ जैसे तंतु अपने बीचिमें गुँथे हुये मोतियोका समूहको धारण करताहै वैसेही पंच भूतोंके समुदायसे बना हुआ यह देह वासना हीसे धारण किया गया है ॥ १० ॥ वासना दो प्रकारकी हैं एक शुद्ध दूसरी मलिन, मलिन वासना तो जन्मका हेतु है और शुद्ध जन्मका नाश करनेवाली है ॥ ११ ॥ अज्ञानसे सघन आकारवाली और घनीभूत अहंकारसे शोभायमान जो मलिन वासनाहै उसीको पुनः २ जन्म हेतुवाली पण्डितोंनें कहा है ॥ १२ ॥

पुनर्ज्जन्मांकुरं त्यक्त्वा स्थिता संभृष्टबीजवत् ॥ देहार्थं ध्रियते ज्ञातज्ञेया शुद्धेति चोच्यते ॥ १३ ॥ अपुनर्जन्मकरणी जीवन्मुक्तेषु देहिषु ॥ वासना विद्यते शुद्धा देहे चक्र इव भ्रमः ॥ १४ ॥ ये शुद्धवासना भूयो न जन्माऽनर्थभाजनम् ॥ ज्ञातज्ञेयास्त उच्यंते जीवन्मुक्ता महाधियः॥ १५ ॥ जीवन्मुक्तिपदं प्राप्तो यथा रामो महामतिः ॥ तत्तेऽहं शृणु वक्ष्यामि जरामरणशांतवे ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनर्जन्म अंकुरको त्याग कर भुने हुये बीजके समान ज्ञेय पदार्थको जाननेवाली शरीरधारण मात्र प्रयोजनके अर्थ जो वासना धारण की जाती है उसको शुद्ध कहते हैं ॥ १३ ॥ पुनर्जन्मको नष्ट करनेवाली शुद्ध वासना जीवन्मुक्त शरीरोंमें चक्रके भ्रमणके सदृश रहती है ॥ १४ ॥ जो शुद्धवासनायुक्त प्राणी हैं वे जन्मरूपी अनर्थके पात्र पुनः नहीं होते और वेही ज्ञातज्ञेय महाबुद्धिमान् जीवन्मुक्त कहे जाते हैं ॥ १५ ॥ महामति रामचन्द्रजी जिस प्रकार जीवन्मुक्ति पदको प्राप्त हुये वह मैं तुमसे जरा (वृद्धावस्था) और मृत्युके शान्तिके लिये कहूंगा तुम सुनो ॥ १६ ॥

भरद्वाज महाबुद्धो रामक्रममिमं शुभम् ॥ शृणु वक्ष्यामि तेनैव सर्वं ज्ञास्यसि सर्वदा ॥ १७ ॥ विद्यागृहाद्विनिष्क्रम्य रामो राजीवलोचनः ॥ दिवासान्यनयद्गेहे लीलाभिरकुतोभयः ॥ १८ ॥ अथ गच्छति काले तु पालयत्यवनिं नृपे ॥ प्रजासु वीतशोकासु स्थितासु विगतज्वरम् ॥ १९ ॥ तीर्थपुण्याश्रमश्रेणीर्द्रष्टुमुत्कंठितं मनः ॥ रामस्याभूद्भृशं तत्र कदाचिद्गुणशालिनः ॥ २० ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे भरद्वाज ! यह रामचन्द्रजीकी शुभ कथा मैं कहूंगा तुम सुनो. इसीसे, सब कुछ सदा जान जाओगे ॥ १७ ॥ कमलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजी संपूर्ण विद्याओंको पढके गुरुके घरसे निकलके निर्भय होके लीलासे दिवसको बिताने लगे ॥१८॥ इसके अनन्तर जिस समय राजा पृथ्वीका पालन करतेथे और प्रजा सर्वथा स्वस्थ शोक और सब प्रकारकी पीडासे रहित थी ॥ १९ ॥ उस समय अनेक गुणोंसे शोभायमान श्रीरामचन्द्रजीका चित्त तीर्थ और पवित्र आश्रमोंके समूहको देखनेके लिये अत्यन्त अभिलाषी हुआ ॥ २० ॥

राघवश्चिंतयित्वैवमुपेत्य चरणौ पितुः ॥ हंसः पद्माविव नवौ जग्राह नखकेसरौ ॥ २१ ॥ श्रीराम उवाच–तीर्थानि देवसद्मानिवन्यायतनानि च ॥ द्रष्टुमुत्कंठितं तात ममेदं नाथ मानसम् ॥ २२ ॥ तदेतामर्थितां पूर्वां सफलां कर्तुमर्हसि ॥ न सोऽस्ति भुवने नाथ त्वया योर्थीन मानितः ॥ २३ ॥ इति संप्रार्थितो राजा वसिष्ठेन समं तदा विचार्यामुंचदेवैनं रामं प्रथममर्थिनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस प्रकार विचार करके रामचन्द्रजी पिताके समीपे गये और जैसे हंस नूतन कमलको ग्रहण करता है इसीप्रकार नखरूपी केशरसंयुक्त पिताके चरणकमलको ग्रहण (प्रणाम) किया ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले हे पूज्य पितः ! तथा स्वामिन् ! तीर्थोंको देवताओंके स्थानोंके और विस्तृत वनोंको देखनेके लिये मेरा मन उत्कांठित हो रहा हो ॥ २२ ॥ इस लिये मेरी प्रथम प्रार्थनाको सफल (पूर्ण) करना आपको उचित है क्योंकि संसारमें ऐसा कोई अर्थी नहीं है जिसका मनोरथ आपने पूर्ण न किया है ॥ २३ ॥ इस रीतिसे प्रार्थित राजाने वसिष्ठजीके साथ विचारके प्रथम प्रार्थी रामचन्द्रजीको बिदा किया ॥ २४ ॥

---

(१) अज्ञानसे वारंवार विषयभोग और उसकी इच्छासे वृद्धिकी प्राप्तिमें परिणत अतएव निबिड (मोटी)॥ (२) जरा और मृत्युका हेतुभूत जो बासनाहै उसके नाशके लिये ॥ (३) राजा दशरथ ॥ (४) उत्तम राज्यके कारण जब प्रजाओंको मनकी पीडा शोक भय न था तो अन्य पीडाकी क्या कथा ॥ (५) पिताजीके जीवनदशामें पिताकी आज्ञासेही तीर्थाटन वा अन्य नैमित्तिक धर्मकार्य्य करना चाहिये ॥ (६) स्वामिन् इस पद कहनेसे मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी अपनेको पिताके परंतत्र सूचित्त किया॥

शुभे नक्षत्रदिवसे भ्रातृभ्यां सह राघवः ॥ मंगलालंकृतवपुः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ॥ २५ ॥ वसिष्ठप्रहितैर्विप्रैः शास्त्रज्ञैश्च समन्वितः ॥ स्निग्धैः कतिपयैरेव राजपुत्रवरैः सह ॥ २६ ॥ अंबाभिर्विहिताशीभिरालिंग्यालिंग्य भूषितः ॥ निरगात्स्वगृहात्तस्मात्तीर्थयात्रार्थमुद्यतः ॥ २७ ॥ निर्गतः स्वपुरात्पौरैस्तूर्यघोषेण वादितः ॥ पीयमानः पुरस्त्रीणां नेत्रैर्भृंगौघभंगुरैः ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तम नक्षत्र और दिनमें मंगल पदार्थोंसे शरीरको अलंकृतकरके ॥ २५ ॥ और ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन कराके और उत्तम भाइयोंको, शास्त्रज्ञ वसिष्ठादि ब्राह्मणोंको और प्रीतिकरनेवाले राजपुत्रोंको साथ लेकर ॥ २६ ॥ बार २ आलिंगनकरके आशीर्वाद देनेवाली माताओंसे भूषितशरीर श्रीरामचन्द्रजी तीर्थयात्राके लिये उस अपनेगृहसे जानेके अर्थ उद्यत हुये ॥ २७ ॥ नगरनिवासियोंने तुरही आदि मंगलसूचक वाद्योंके शब्द किये और स्त्रियोंने उन्हींको भृंगोंके समूहके सदृश कुटिल (अतिकाले) और चंचलनेत्रोंसे प्रेमसे देखा ॥ २८ ॥

ग्रामीणललनालोलहस्तपद्मापनोदितैः ॥ लाजवर्षैर्विकीर्णात्मा हिमैरिव हिमाचलः ॥ २९ ॥ आवर्जय न्विप्रगणान्परिशृण्वन्प्रजाशिषः ॥ आलोकयन्दिगंतांश्च परिचक्राम जांगलान् ॥ ३० ॥ अथाऽरभ्य स्वकात्तस्मात्क्रमात्कोशलमंडलात् ॥ स्नानदानतपोध्यानपूर्वकं स ददर्श ह ॥ ३१ ॥ नदीतीराणि पुण्यानि वनान्यायतनानि च ॥ जंगलानि जनांतेषु तटान्यब्धिमहीभृताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे हिमसे हिमालय ढंका रहताहै वैसेही ग्रामकी स्त्रियोंके चंचल हस्तोंसे फेंके हुये लाजाकी वृष्टिसे ढँके हुए शरीरवाले ॥ २९ ॥ रामचंद्रजी ब्राह्मणोंको दानमानादिसे सन्तुष्ट करके वशमें करतेहुये, और प्रजाओंके आशीर्वादोंको सुनतेहुये दिग्प्रांतोंको देखतेहुऐ प्राचीन जंगलोंमें भ्रमण किया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर अपने उस कोशल प्रान्तसे लेकर स्नान दान तप और ध्यानपूर्वक वक्ष्यमाण स्थानोंको देखा ॥ ३१ ॥ पवित्रनदियोंके तटे, वन, देवता, और मुनियोंके आश्रम नगर और ग्रामोंके समीपके जंगल, समुद्र और पर्वतोंके तटोंको देखा ॥ ३२ ॥

मंदाकिनीमिंदुनिभां कालिंदीं चोत्पलामलाम् ॥ सरस्वतीं शतद्रूं च चंद्रभागामिरावतीम् ॥ ३३ ॥ वेणीं च कृष्णवेणीं च निर्विंध्यां सरयूं तथा ॥ चर्मण्वतीं वितस्तां च विपाशां बाहुदामपि ॥ ३४ ॥ प्रयागं नैमिषं चैव धर्मारण्यं गयां तथा ॥ वाराणसीं श्रीगिरिं च केदारं पुष्करं तथा ॥ ३५ ॥ मानसं च क्रमसरस्तथैवोत्तरमानसम् ॥ वडवावदनं चैव तीर्थवृंदं स सादरम् ॥ ३६ ॥ अग्नितीर्थं महातीर्थमिंद्रद्युम्नसरस्तथा ॥ सरांसि सरितश्चैव तथा नद्न्हदावलीम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—चन्द्रमाकेसमान जिसका उदकहै ऐसी मन्दाकिनी, निर्म्मलकमलवाली कालिन्दी, सरस्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, और इरावती ॥ ३३ ॥ वेणी और कृष्णा, कृष्णवेणी, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्म्मण्वती, वितस्ता, विपाशा, और बाहुदा ॥ ३४ ॥ और प्रयाग, नैमिष, धर्मारण्य, गया, काशी, श्रीपर्वत, केदार और पुष्कर ॥ ३५ ॥ क्रमसे मानससर और उत्तरमानस, हयग्रीव, सादर सहित तीर्थवृन्द, अग्नितीर्थ, महातीर्थ, इन्द्रद्युम्नसर, तथा अन्यतालाव, नदी, नद और न्हदोंकी पंक्ति अनेक छोटे गहिरे तालावोंको देखा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

स्वामिनं कार्तिकेयं च शालग्रामं हरिं तथा ॥ स्थानानिच चतुःषष्टि हरेरथ हरस्य च ॥३८॥ नानाश्चर्य विचित्राणि चतुरब्धितटानि च ॥ विंध्यमंदरकुंजांश्च कुलशैलस्थलानि च ॥ ३९ ॥ राजर्षीणां च महतां ब्रह्मर्षीणां तथैव च ॥ देवानां ब्राह्मणानां च पावनानाश्रमाञ्छुभान् ॥ ४० ॥

अर्थ—कार्तिकस्वामी, तथा भगवान् शालिग्राम, तथा विष्णु और महादेवके चौंसट स्थानोंको देखा ॥ ३८ ॥ और अनेक प्रकारके आश्चर्यदायक चारोंसमुद्रोंके तट, विन्ध्याचल और मन्दराचलके कुंज और सात कुलाचलकेस्थान ॥ ३९ ॥ बडे २ महात्मा राजर्षियोंके ब्रह्मर्षियोंके देवताओंके और ब्राह्मणोंके पवित्र और कल्याणकारक आश्रमोंको रामचन्द्रजीने देखा ॥ ४० ॥

भूयो भूयः स बभ्राम भ्रातृभ्यां सह मानद ॥ चतुर्ष्वपि दिगंतेषु सर्वानेव महीतटान् ॥ ४१ ॥ अमरकिन्नरमानवमानितः समवलोक्य महीमखिलामिमाम् ॥ उपययौ स्वगृहं रघुनंदनो विहृतदिक्शिवलोकमिवेश्वरः ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्राकरणं नाम तृतीयः सर्ग ॥ ३ ॥

(१) प्रतिदिन तीर्थादिस्थानोंमें स्नानदानादि कर्म करके उनस्थानोंको देखतेथे ॥ (२) इन सबस्थानोंके आगे "देखा" यह क्रिया लगालेनी ॥ ३१ ॥ श्लोकमें जो 'दर्शन' क्रिया है उसका संबन्ध ४४ के अन्ततक है ॥

अर्थ—मानदायक श्रीरामचन्द्रजीने भाइयोंके साथ पृथिवीपर सबदिशाओंमें पुनः भ्रमण किया ॥ ४१ ॥ देवना किन्नर और मनुष्योंके मान्य रामचन्द्रजी जम्बूद्वीपकी सम्पूर्णपृथिवीपर भ्रमणकरके अपने स्थानको ऐसे गये जैसे शिवजीमहाराज सम्पूर्णदिशाओंमें भ्रमणकरके कैलासमें जातेहैं ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्राकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

श्रीवाल्मीकिरुवाच–रामः पुष्पांजलिव्रातैर्विकीर्णः पुरवासिभिः ॥ प्रविवेश गृहं श्रीमाञ्जयंतो विष्टपं यथा ॥ १ ॥ प्रणनामाथ पितरं वसिष्ठं भ्रातृबांधवान् ॥ ब्राह्मणान् कुलवृद्धांश्च राघवः प्रथमागतः॥ २ ॥ सुहृद्भिर्मातृभिश्चैव पित्रा द्विजगणेन च ॥ मुहुरालिंगिताचारो राघवो न ममौ मुदा ॥३ ॥ तस्मिन् गृहे दाशरथेः प्रियप्रकथनैर्मिथः ॥ जुघूर्णुर्मधुरैराशा मृदुवंशस्वनैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–जिसप्रकार इन्द्रका पुत्र जयन्त स्वर्गमें प्रवेशकरताहै इसीही नगरनिवासियोंकी पुष्पांजलीसे[१] आच्छादित श्रीमान् रामचन्द्रजीनें अपने गृहमें प्रवेशकिया ॥ १ ॥ आतेही प्रथम रामचन्द्रजीने पिताको वसिष्ठको भाईबन्धुओंको ब्राह्मणोंको और कुलवृद्धोंको प्रणामकिया ॥ २ ॥ मित्रोंसे माताओंसे पितासे और ब्राह्मणोंकेसमूहसे आलिंगित और प्रियभाषी रामचन्द्रजी प्रसन्नतासे शरीरमें फुलेहुये नहींसमातेथे ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीके उसस्थानमें परस्पर प्रियसंभाषणसे लोग दिशाओंमें ऐसे भ्रमणकरने लगे जैसे मधुर बंशीके शब्दोंसे आनन्दित होके भ्रमर ॥ ४ ॥

बभूवाथ दिनान्यष्टौ रामागमन उत्सवः ॥ सुखं मत्तजनोन्मुक्तकलकोलाहलाकुलः ॥ ५ ॥ उवास स सुखं गेहे ततः प्रभृति राघवः ॥ वर्णयन्विविधाकारान् देशाचारानितस्ततः ॥ ६ ॥ प्रातरुत्थाय रामोऽसौ कृत्वा संध्यां यथाविधि ॥ सभासंस्थं ददर्शेंद्रसमं स्वं पितरं तथा ॥ ७ ॥ सुविचित्राभिः कथाभिः स वसिष्ठादिभिः सह ॥ स्थित्वा दिनचतुर्भागं ज्ञानगर्भाभिरादृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुखपूर्वक प्रसन्नमनुष्योंके कोलाहलसे व्याप्त बडाभारी उत्सव रामचन्द्रजीके आगमनका ८ दिनतक होता रहा ॥५॥ इधरउधरके देशोंके अनेक आचारोंको वर्णनकरतेहुये रामचन्द्रजी गृहमें उससमयसे लेकर सुखपूर्वक रहनेलगे ॥ ६ ॥प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक सन्ध्याकरके इन्द्रके समान सभामें स्थित अपने पिताको देखा ॥ ७ ॥ वसिष्ठादिकोंके साथ ज्ञानसंयुक्त विचित्रकथाओंसे रामचंद्रजी दिनके चतुर्थभागपर्यंत ठहरके ॥ ८ ॥

जगाम पित्रानुज्ञातो महत्या सेनया वृतः ॥ वराहमहिषाकीर्णे वनमाखेटकेच्छया ॥ ९ ॥ तत आगत्य सदने कृत्वा स्नानादिकंक्रमम् ॥ समित्रबांधवो भुक्त्वा निनाय ससुहृन्निशाम् ॥ १० ॥ एवंप्रायदिनाचारो भ्रातृभ्यां सह राघवः ॥ आगत्य तीर्थयात्रायाः समुवास पितुर्गृहे ॥ ११ ॥ नृपतिसंव्यवहारमनोज्ञया सुजनचेतसि चंद्रिकयानया ॥ परिनिनाय दिनानि स चेष्टया स्तुतसुधारसपेशलयानघ ॥१२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे दे० मो० वै० दिवसव्यवहारनिरूपणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—पिताकी आज्ञालेकर, वराह और महिषोंसे पूर्ण वनमें आखेट (शिकार) की इच्छासे बडीभारी सेनाके साथ गये ॥ ९ ॥ वहांसे स्थानपर आके स्नानादि क्रिया करके और मित्रबंधुओंके साथ भोजनकरके मित्रोंके साथ रात्रिको विताया करतेथे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी तीर्थयात्रासे आकर भाइयोंके साथ प्रायः ऐसाही आचारपूर्वक अपने पिताके गृहमें निवासकरतेथे ॥ ११ ॥ हे अनघ! (अरिष्टनेमी राजन्) राजाओंके व्यवहारोंके योग्य सज्जनोंके चित्तमें चंद्रमाके समान आनंददेनेवाले, अमृतके समान सबमनुष्योंकरके प्रशंसितचेष्टासे रामचंद्रजी कालक्षेप करतेथे ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे दे० मो० भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे
दिवसव्यवहार निरूपणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

---

(१) सभोंने रामचन्द्रजीके ऊपर इतने पुष्प फेंके कि रामचन्द्रजी उससे ढकगये ॥

पंचमः सर्गः ५

इस पंचमसर्गमें रामचंद्रजीकी कृशता, राजाकी उसके कारण जाननेकी इच्छा और वसिष्ठकी कथाका उपक्रम वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ अथोनषोडशे वर्षे वर्तमाने रघूद्वहे ॥ रामानुयायिनि तथा शत्रुघ्ने लक्ष्मणेऽपि च ॥ १ ॥ भरते संस्थिते नित्यं मातामहगृहे सुखम् ॥ पालयत्यवनिं राज्ञि यथावदखिलामिमाम् ॥ २ ॥ जन्यत्रार्थं च पुत्राणां प्रत्यहं सह मंत्रिभिः ॥ कृतमंत्रे महाप्राज्ञे तज्ज्ञे दशरथे नृपे ॥ ३ ॥ कृतायां तीर्थयात्रायां रामो निजगृहे स्थितः ॥ जगामानुदिनं कार्श्यं शरदीवामलं सरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-इससमय रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी तथा उनके भ्राता शत्रुघ्न और लक्ष्मणकी १६ सोलह वर्षसे कुछ न्यून अवस्थाथी ॥ १ ॥ और भरत अपने मातामहके गृहमें निवासकरनेको गये, राजा दशरथ इस सम्पूर्णपृथिवीको पालनकरतेथे ॥ २ ॥ मंत्रियोंके साथ ज्ञानवान् राजा पुत्रोंके विवाहसंबंधी विचार करतेथे ॥ ३ ॥ तीर्थयात्रासे पश्चात रामचंद्रजी अपने पिताके गृहमें प्रतिदिन कृशता (दुर्बलता) को ऐसा प्राप्त होनेलगे जैसे शरत्कालमें निर्मल तालाव ॥ ४ ॥

कुमारस्य विशालाक्षं पांडुतां मुखमाददे ॥ पाकफुल्लदलं शुक्लं सालिमालमिवांबुजम् ॥ ५ ॥ कपोलतलसँल्लीनपाणिः पद्मासनस्थितः ॥ चिंतापरवशस्तूष्णीमव्यापारो बभूव ह ॥ ६ ॥ कृशांगश्चिंतया युक्तः खेदी परमदुर्मनाः ॥ नोवाच कस्यचित्किंचिल्लिपिकर्मार्पितोपमः ॥ ७ ॥ खेदात्परिजनेनासौ प्रार्थ्यमानः पुनः पुनः ॥ चकाराह्निकमाचारं परिम्लानमुखांबुजः ॥ ८ ॥

अर्थ—कुमार श्रीरामचंद्रजीके विशालनेत्रवाले मुखपर पीतता ऐसी छागई जैसे शालीधानसे घिरेहुये पाक विकसित कमलपर ॥ ५ ॥ कपोलतलपर हाथ रक्खेहुये और पद्मासनसे स्थित रामचंद्रजी चिंतानिमग्न मौन और व्यापाररहित होगये ॥ ६ ॥ अतिकृशशरीर चिंतायुक्त और खिन्न अत्यंतउदासीन चित्रमें लिखेके समान किसीसे कुछ नहींबोलतेथे ॥ ७ ॥ खेदसे उनका मुखरूप कमल अत्यंत कुह्मलायाथा और इष्टमित्रोंकी वार २ प्रार्थना करनेपर दिनके आचार स्नानादिक्रिया करतेथे ॥ ८ ॥

एवं गुणविशिष्टं तं रामं गुणगणाकरम् ॥ आलोक्य भ्रातरावस्य तामेवाययतुर्दशाम् ॥ ९ ॥ तथा तेषु तनूजेषु खेदवत्सु कृशेषु च ॥ सपत्नीको महीपालश्चिंताविवशतां ययौ ॥ १० ॥ का ते पुत्र घना चिंतेत्येवं रामं पुनः पुनः ॥ अपृच्छत्स्निग्धया वाचा नैवाकथयदस्य सः ॥ ११ ॥ न किंचित्तात मे दुःखमित्युक्त्वा पितुरंकगः ॥ रामो राजीवपत्राक्षस्तूष्णीमेव स्म तिष्ठति ॥ १२ ॥

अर्थ—संपूर्ण गुणोंके खानि रामचंद्रजीको उनके दोनोंभाईभी इसदशामें देखके आपभी उसीदशाको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पुत्रोंके अत्यंत खेदवान् और कृश होनेपर स्त्रीसहित राजा दशरथ चिंतासे विवश होगये ॥ १० ॥ हे पुत्र! तुमको कौनसी बडीभारी चिंताहै? इसप्रकार कोमल वाणीसे वार २ राजाने पूंछा, परंतु रामचंद्रजीने उनको कुछ उत्तर नहींदिया ॥ ११ ॥ कमलके सदृश नेत्रवाले, पिताकी गोदीमें बैठेहुये रामचंद्रजी बोले, कि हे पिताजीः! मुझे कोई क्लेश नहीं है इतना कहके मौनहोगये ॥ १२ ॥

ततो दशरथो राजा रामः किं खेदवानिति ॥ अपृच्छत्सर्वकार्यज्ञं वसिष्ठं वदतां वरम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तश्चिंतयित्वा स वसिष्ठमुनिना नृपः ॥ अस्त्यत्र कारणं श्रीमन्मा राजन्दुःखमस्तु ते ॥ १४ ॥ कोपं विषादकलनां विततं च हर्षं नाल्पेन कारणवशेन वहंति संतः ॥ सर्गेण संहृतिजवेन विना जगत्यां भूतानि भूप न महांति विकारवंति ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे कार्श्यनिवेदनम् नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—इसके अनंतर संपूर्णकार्योंके जाननेवाले और वक्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे राजादशरथने पूंछा कि रामचन्द्र उदासीन क्यों है ॥ १३ ॥ विचारकरके वसिष्ठजीने राजादशरथसे कहाकि हे राजन्! रामचन्द्रजीके उस

(१) रामचन्द्रजीकी चित्तशुद्धिकी उपायरूप दिनचर्य्या वर्णन करके अब उसका फलरूप वैराग्यादि सम्पत्तिका वर्णन करतेहैं।
(२) रामचन्द्रजीने शोचा कि पिताजीसे संसारकी अनित्यता तथा वैराग्यादिविषयमें कहनेसे केवल दुःखमात्र होगा क्योंकि पिता प्रायः पुत्रको संसारके कार्य्योंहीमें लगाना चाहताहै ॥

दुःखमें कारण है इसमें आपको दुःखी न होनाचाहिये ॥ १४ ॥ हे राजन्! महात्मालोग कोप विषाद (शोक) और अधिकहर्ष तुच्छकारणसे ऐसे नहींधारण करते जैसे सृष्टि वा संहारके वेगविना महाभूतोंमें विकार उत्पन्न नहींहोता ॥१५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भा० वैराग्यप्रकरणे
कार्श्यनिवेदनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

इस छठे सर्गमें विश्वामित्रजीका आगमन, राजाने कियाहुवा, उनका विधिपूर्वक पूजन और राजाकी प्रसन्नतासे कार्य (विश्वामित्रका) करनेकी प्रतिज्ञाका वर्णन करेंगे.

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्ते मुनिनाथेन संदेहवति पार्थिवे ॥ खेदवत्यास्थिते मौनं किंचित्कालप्रतीक्षणे ॥ १ ॥ परिखिन्नासु सर्वासु राज्ञीषु नृपसद्मसु ॥ स्थितासु सावधानासु रामचेष्टासु सर्वतः ॥२॥ एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्र इति श्रुतः ॥ महर्षिरभ्यगाद्द्रष्टुं तमयोध्यानराधिपम्॥३॥ तस्य यज्ञोऽथ रक्षोभिस्तथा विलुलुपे किल ॥ मायावीर्यबलोन्मत्तैर्धर्मकार्यस्य धीमतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके ऐसाकहनेपर खेदयुक्त कुछकालतक राजा प्रतीक्षा करतेथे ॥ १ ॥ और राजाके गृहमें सबरानियां उदासहोके सबतरहसे रामचन्द्रजीकी चेष्टाओंके विषयमें (निर्णयार्थ) सावधान थीं ॥ २ ॥ इसीसमय विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध महर्षि अयोध्याके स्वामी (दशरथ) को देखनेको आये ॥ ३ ॥ धर्मकार्यको करनेवाले और बुद्धिमान् उसऋषिके यज्ञको मायावी पराक्रम और बलसे उन्मत्त राक्षस नष्ट करदेतेथे ॥ ४ ॥

रक्षार्थं तस्य यज्ञस्य द्रष्टुमैच्छत्स पार्थिवम् ॥ न हि शक्नोत्यविघ्नेन समाप्तुं स मुनिः क्रतुम् ॥ ५॥ ततस्तेषां विनाशार्थमुद्यतस्तपसां निधिः ॥ विश्वामित्रो महातेजा अयोध्यामभ्यगात्पुरीम् ॥ ६ ॥ स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ॥ शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् ॥ ७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्वास्था राजगृहं ययुः ॥ संभ्रांतमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—उसयज्ञकी रक्षार्थ वे अयोध्याके स्वामीको देखने आयेथे, क्योंकि निर्विघ्नतासे यज्ञ नहींसमाप्तकर सक्तेथे ॥ ५ ॥ इसलिये महा तेजस्वी तपोनिधि विश्वामित्रजी उनके नाशार्थ उद्यत हुये और अयोध्या नगरीमें आये॥६॥ राजाके दर्शनाकांक्षी ऋषिने द्वारपालोंसे कहाकि शीघ्र जाके राजासे कहोकि गाधिका पुत्र कौशिक मैं यहां आया हूं॥ ७ ॥ उस वचनको सुनके भ्रांतचित्त सब द्वारपाल राजाके स्थानमें गये ॥ ८ ॥

ते गत्वा राजसदनं विश्वामित्रमृषिं ततः ॥ प्राप्तमावेदयामासुः प्रतिहाराः पतेस्तदा ॥ ९ ॥ अथा स्थानगतं भूपं राजमंडलमालिनम् ॥ समुपेत्य त्वरायुक्तो याष्टीकोऽसौ व्यजिज्ञपत् ॥ १० ॥ देव द्वारि महातेजा बालभास्करभासुरः ॥ ज्वालारुणजटाजूटः पुमाञ्छ्रीमानवीस्थतः ॥ ११ ॥ सभासुरपताकांतंसाश्वेभपुरुषायुधम् ॥ कृतवांस्तं प्रदेशं यस्तेजोभिः कीर्णकांचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उससमय उनद्वारपालोंने राजगृहमें जाके अपनेस्वामीसे कहाकि ऋषि विश्वामित्रजी आये हैं ॥ ९ ॥ इसके अनंतर राजसभामें विराजमान राजाओंसे आवृत राजाके निकट द्वारपालाधीशने जाके निवेदनकिया ॥ १० ॥ हे महाराज! बडेतेजस्वी, बालसूर्यके समान प्रकाशमान ज्वालाके सदृश अरुणजटाजूटवाले शोभायमान एकपुरुष स्थितहैं ॥ ११ ॥ वहपुरुष जिस स्थानपरहै वहांपर पताका, अश्व, हाथी, पुरुष, अस्त्र, शस्त्र, सबको अपने तेजसे स्वर्णके सदृश दैदीप्यमान कररहाहै ॥ १२ ॥

वीक्ष्यमाणे तु याष्टीके निवेदयति राजनि ॥ विश्वामित्रो मुनिः प्राप्त इत्यनुद्धतया गिरा ॥ १३ ॥ इति याष्टीकवचनमाकर्ण्य नृपसत्तमः ॥ स समंत्री ससामंतः प्रोत्तस्थौ हेमविष्टरात् ॥ १४ ॥ पदातिरेव सहसा राज्ञां वृंदेन मालितः ॥ वसिष्ठवामदेवाभ्यां सह सामंतसंस्तुतः ॥ १५ ॥ जगाम यत्र तत्रासौ विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ददर्श मुनिशार्दूलं द्वारभूमाववस्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जब राजाने ड्योढीदारकी ओर देखा और उसने कोमलवाणीसे निवेदन किया कि विश्वामित्रजी आये हैं ॥ १३ ॥ तौ उसके इस वचनको सुनके राजाओंमें उत्तम दशरथजी सबमंत्री और सामंत (मांडलिक राजाओं)

के साथ सोनेके सिंहासनसे उठ खडेहुये ॥ १४ ॥ और शीघ्रही राजा और वसिष्ठ और वामदेवके साथ सामंतोंसे प्रशंसित पैदलही ॥ १५ ॥ उसस्थानपर गये जहां विश्वामित्रजी थे, वहां मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजीको द्वारभूमिपर स्थित ऐसे देखा ॥ १६ ॥

केनापि कारणेनोर्वीतलमर्कमुपागतम् ॥ ब्राह्मेण तेजसाक्रांतं क्षात्रेण च महौजसा ॥ १७ ॥ जराजरठया नित्यं तपःप्रसररूक्षया ॥ जटावल्ल्यावृतस्कंधं ससंध्याभ्रमिवाचलम् ॥ १८ ॥ उपशांतं च कांतं च दीप्तमप्रतिघाति च ॥ निभृतं चोर्जिताकारं दधानं भास्वरं वपुः ॥ १९ ॥ पेशलेनातिभीमेन प्रसन्नेनाकुलेन च ॥ गंभीरेणातिपूर्णेन तेजसा रंजितप्रभम् ॥ २० ॥

अर्थ—मानो किसीकारण सूर्यनारायण पृथिवीतलपर आगये हैं महातेजस्वी ब्राह्म और क्षात्र दोनों तेजोंसे परिपूर्ण ॥ १७ ॥ अधिकअवस्थाके कारण पकी और तपस्याके प्रभावसे रूक्षवर्ण कुछ पीततालिये जटाकी पंक्तियोंसे उनके स्कंध ऐसे ढके हुएथे मानों संध्याकालके मेघसे पर्वत ॥ १८ ॥ शांत, प्रियदर्शन, प्रगल्भ, धृष्ट, नम्रतायुक्त किसीकी हानि न करनेवाले और प्रकाशमान शरीरको धारण कियेहुये ॥ १९ ॥ कोमल[1], भयानक[2], चंचल[3], गंभीर, अति परिपूर्णतेजसे प्रकाशित विश्वामित्र थे ॥ २० ॥

अनंतजीवितदशासखीमेकामनिंदिताम् ॥ धारयंतं करे श्लक्ष्णां कुंडीमम्लानमानसम् ॥ २१ ॥ करुणाक्रांतचेतस्त्वात्प्रसन्नैर्मधुराक्षरैः ॥ वीक्षणैरमृतेनेव संसिचंतमिमाः प्रजाः ॥ २२ ॥ युक्तयज्ञोपवीतांगं धवलप्रोन्नतभ्रुवम् ॥ अनंतं विस्मयं चांतःप्रयच्छंतमिवेक्षितुः ॥ २३ ॥ मुनिमालोक्य भूपालो दूरादेवानताकृतिः ॥ प्रणनाम गलन्मौलिमणिमालितभूतलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बहुत कालसे सखीके समान साथरहनेवाले, उत्तम और चिक्कण कमण्डलुको हाथमें धारण किये हुये प्रसन्नचित्त ॥ २१ ॥ करुणासे परिपूर्ण होनेके कारण प्रसन्नतायुक्त मधुरभाषणसे मानो इस संपूर्णप्रजाको अमृतसे सींच रहे हैं ॥ २२ ॥ यज्ञोपवीतयुक्त अंग धारणकियेहुये और शुभ्र और ऊँची है भौंह जिनकी ऐसे, देखनेवालोंके अंतःकरणमें अपरिमित विस्मयदेनेवाले ॥ २३ ॥ मुनि विश्वामित्रको राजादशरथने देखके शरीर झुकाके और पृथ्वीतक मणिकी माला गिररही है ऐसी दशाको प्राप्तहोके प्रणाम किया ॥ २४ ॥

मुनिरप्यवनीनाथं भास्वानिव शतक्रतुम् ॥ तत्राभिवादयांचक्रे मधुरोदारया गिरा ॥ २५ ॥ ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्वएव द्विजातयः ॥ स्वागतादिक्रमेणैनं पूजयामासुरादृताः ॥ २६ ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ अशंकितोपनीतेन भास्वता दर्शनेन ते ॥ साधो स्वनुगृहीताः स्मो रविणेवांबुजाकराः॥२७॥ यदनादि यदक्षुण्णं यदपायविवर्जितम् ॥ तदानंदसुखं प्राप्तं मया त्वद्दर्शनान्मुने ॥ २८ ॥

अर्थ—विश्वामित्र मुनिनेभी जैसे सूर्य इन्द्रको अभिवादन करते हैं ऐसेही मधुर और उदार वाणीसे आशिर्वाददिया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर आदरयुक्त वसिष्ठादि सब ब्राह्मणोंनेभी स्वागतादि क्रमसे उनकी पूजा की॥२६॥ दशरथ बोले—हे साधो! आकस्मित प्राप्त प्रकाशस्वरूप आपके दर्शनसे हम ऐसे अनुगृहीत हुये जैसे सूर्यसे कमलोंका वन ॥ २७ ॥ हे मुने! आपके दर्शनसे मुझे वह आनन्द प्राप्तहुआ जो किसी अन्यकारणसे नहीं होसकता जिसका स्वाद मैंने कभी नहींलिया. और जो सदा नाशरहित है ॥ २८ ॥[4]

अद्य वर्तामहे नूनं धन्यानां धुरि धर्मतः ॥ भवदागमनस्येमे यद्वयं लक्ष्यमागताः ॥ २९ ॥ एवं प्रकथयंतोऽत्र राजानोऽथ महर्षयः ॥ आसनेषु सभास्थानमासाद्य समुपाविशन् ॥ ३० ॥ स दृष्ट्वा मालितं लक्ष्म्या भीतस्तमृषिसत्तमम् ॥ प्रहृष्टवदनो राजा स्वयमर्घ्यं न्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ प्रदक्षिणं प्रकुर्वंतं राजानं पर्यपूजयत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने! आपके दर्शनसे आज हमलोग धर्मसे सबभाग्यवानोंमें अग्रणी हुये ॥२९॥ ऐसा जब दशरथ कहरहेथे उससमय सबराजालोग और ऋषि सभास्थानमें आकर अपने अपने आसनोंपर बैठगये ॥ ३० ॥ तपसे व्याप्त उस श्रेष्ठऋषिको देखकर भययुक्त प्रसन्नमुख होके राजाने आपही अर्घप्रदान किया ॥ ३१ ॥ उन्होंने शास्त्ररीतिसे अर्घ ग्रहणकरके प्रदक्षिणा करतेहुये राजाकी प्रशंसा की ॥ ३२ ॥

---

(१) वास्तविकमें यथार्थ कोमल ॥ (२) ऊपरसे देखनेमें भयानक ॥ (३) तेजकी अधिकतासे ऐसे चंचल प्रतीत होतेहैं मानो उडने चाहते हैं ॥ (४) तात्पर्य यहहै कि आपके दर्शनसे जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ उसका फल अनन्त है और इससे जो आनन्द प्राप्तहुआहै उसका अनुभवभी सदा रहेगा ॥

स राज्ञा पूजितस्तेन प्रहृष्टवदनस्तदा ॥ कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ॥ ३३ ॥ वसिष्ठेन समागम्य प्रहस्य मुनिपुंगवः ॥ यथार्हं चार्चयित्वैनं पप्रच्छानामयं ततः ॥ ३४ ॥ क्षणंयथार्हमन्योन्यं पूजयित्वा समेत्य च ॥ ते सर्वे हृष्टमनसो महाराजनिवेशने॥३५॥ यथोचितासनगता मिथःसंवृद्धतेजसः॥ परस्परेण पप्रच्छुःसर्वेऽनामयमादरात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—उस समय राजासे पूजित विश्वामित्रने प्रसन्नमुख होके कुशलता तथा कोशकी पूर्णता[1] पूंछी ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने आके हंसके और यथायोग्य उनकी पूजाकरके आरोग्यता पूंछी ॥ ३४॥ क्षणभर यथायोग्य मिलके और पूजाकरके राजाके स्थानमें सब प्रसन्नचित्त हुये ॥ ३५ ॥ यथोचित आसनपर बैठे हुये परस्पर एक दूसरेके तेजको बढानेवाले आपसमें मनुष्य और पश्वादिककी कुशलता पूंछी ॥ ३६ ॥

उपविष्टाय तस्मै स विश्वामित्राय धीमते ॥ पाद्यमर्घ्यं च गां चैव भूयो भूयो न्यवेदयत् ॥ ३७ ॥ अर्चयित्वा तु विधिवद्विश्वामित्रमभाषत ॥ प्रांजलिः प्रयतो वाक्यमिदं प्रीतमना नृपः ॥ ३८ ॥ यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमवर्षके ॥ यथांधस्येक्षणप्राप्तिर्भवदागमनं तथा ॥ ३९ ॥ यथेष्टदारसपर्कात्पुत्रजन्मा प्रजावतः ॥ स्वप्नदृष्टार्थलाभश्च भवदागमनं तथा ॥ ४० ॥

अर्थ—बैठनेके अनन्तर उसबुद्धिमान् विश्वामित्रको पाद्य, अर्घ्य, पृथिवी वा गौ, तांबूल पुष्पादि वार वार संप्रदान किया ॥३७ ॥ विधिपूर्वक पूजाकरके हाथजोडके सावधानीसे प्रसन्नमन होके राजाने विश्वामित्रसे यह बात कही ॥ ३८ ॥ जैसे अमृतकी प्राप्ति, जैसे सूखेकालमें वृष्टिका होना, जैसे अन्धेको नेत्रकी प्राप्ति, ऐसा आपका आगमन हमारेलिये हुआ है ॥ ३९ ॥ जैसे उत्तमस्त्रीके सम्बन्धसे संतानरहित मनुष्यको पुत्रका जन्म और स्वप्नमें देखे हुये पदार्थका मिलजाना ऐसा आपका आगमन हुआ ॥ ४० ॥

यथेप्सितेन संयोग इष्टस्यागमनं यथा ॥ प्रणष्टस्य यथा लाभो भवदागमनं तथा ॥ ४१ ॥ यथा हर्षो नभोगत्या मृतस्य पुनरागमात् ॥ तथा त्वदागमाद्ब्रह्मन्स्वागतं ते महामुने ॥४२॥ ब्रह्मलोकनिवासो हि कस्य न प्रीतिमावहेत् ॥ मुने तवागमस्तद्वत्सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥४३ ॥ कश्च ते परमः कामः किं च ते करवाण्यहम् ॥ पात्रभूतोऽसि मे विप्र प्राप्तः परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे इष्टपदार्थका संयोग और मित्रका आगमन और नष्टहुयेका पुनः लाभहोना ऐसा आपका आगमन हुआ ॥ ४१ ॥ जैसे आकाशकी गतिसे और मृतकके पुनः आगमनसे हर्ष होता है, हे ब्रह्मन्! महामुने! वैसाही आपके आगमनसे हर्ष हुआहै ॥४२ ॥ जैसे ब्रह्मलोकका निवास किसको सुख नहींदेता? वैसाही यह आपका आगमन है हे मुने! यह मैं आपसे सत्य कहताहूं ॥ ४३ ॥ आपका परमावश्यक क्या कार्य है और मैं आपके लिये क्या करूं हे विप्र! आप परमधार्मिक पात्रभूत (सब कुछ देनेके योग्य) मेरे यहां आये हैं ॥ ४४ ॥

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥ ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि भगवन्मया ॥ ४५ ॥ गंगाजलाभिषेकेण यथा प्रीतिर्भवेन्मम ॥ तथा त्वद्दर्शनात्प्रीतिरंतः शीतयतीव माम् ॥ ४६ ॥ विगतेच्छाभयक्रोधो वीतरागो निरामयः ॥ इदमत्यद्भुतं ब्रह्मन्यद्भवान्मामुपागतः ॥ ४७ ॥ शुभक्षेत्रगतं चाहमात्मानमपकल्मषम् ॥ चंद्रबिंब इवोन्मग्नं वेदवेद्यविदां वर ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रथम आप तपस्यासे प्रकाशमान् राजर्षिशब्दसे प्रसिद्ध थे और पीछे ब्रह्मर्षि पदवीको प्राप्तहुये इसलिये मेरे पूज्यहैं ॥ ४५ ॥ जैसे गंगाजलके स्नानसे प्रीति होती है इसीप्रकार आपके दर्शनसे जो प्रीति हुई है वह मेरे अंतःकरणको शीतल कररही है ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन्! आप इच्छा, भय, क्रोधसे रहित, वीतराग और सदा रोग और विघ्नरहित होके मेरे निकट जो आये हैं यह एक अद्भुत बातहै ॥ ४७ ॥ हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इससमय मैं अपनेको शुभ (पवित्र[2]) स्थानमें प्राप्त, पापरहित और अमृतमय चन्द्रमण्डलमें निमग्न मानता हूं ॥ ४८ ॥

साक्षादिव ब्रह्मणो मे तवाभ्यागमनं मतम् ॥ पूतोस्म्यनुगृहीतश्च तवाभ्यागमनान्मुने ॥ ४९ ॥ त्वदागमनपुण्येन साधो यदनुरंजितम् ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं तत्सुजीवितम् ॥ ५० ॥ त्वामिहाभ्यागतं दृष्ट्वा प्रतिपूज्य प्रणम्य च ॥ आत्मन्येव नमाम्यंतर्हृष्ट्वाइं जलधिर्यथा ॥५१॥ यत्कार्यं येन वार्थेन प्राप्तोऽसि मुनिपुंगव ॥ कृतमित्येव तद्विद्धि मान्योऽसीति सदा मम ॥ ५२ ॥

---

(१) ऋषिलोग जब राजाओंसे मिलतेथे तो और कुशलताके साथ कोश (खजाने) की पूर्णता अवश्य पूँछतेथे क्योंकि यदि राजाका खजाना मालामालहै तो सब कार्य उत्तम होंगे अन्यथा नहीं ॥ (२) ऋषिमहात्मा जहां प्राप्त हो वह पवित्र तीर्थस्थान माना जाताहै ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इससमय आपका आगमन मेरे लिये साक्षात् ब्रह्माके आगमनके सदृश हैं, हे मुने ! आपके आगमनसे मैं पवित्र और अनुग्रहीत होगया ,॥ ४९ ॥ हे साधो ! आपके पवित्रआगमनसे जो प्रसन्नता हुई है उससे आज मेरा जन्म सफल होगया और जीवनभी उत्तम जीवन होगया ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! आपको देखके और प्रणाम करके आज मैं अपने आत्मामें प्रसन्नताके मारे ऐसे नहीं समाता जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र ॥ ५१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो कार्य हो वा जिस अर्थके लिये आप आये हैं उसको कियाही हुआ समझैं. क्योंकि आप सदा मेरे मान्यहैं ॥ ५२ ॥

स्वकार्ये न विमर्शी त्वं कर्तुमर्हसि कौशिक ॥ भगवन्नास्त्यदेयं मे त्वयि यत्प्रतिपद्यते ॥ ५३ ॥ कार्यस्य न विचारं त्वं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥ कर्ता चाहमशेषं ते दैवतं परमं भवान् ॥ ५४ ॥ इदमतिमधुरं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मविदा विनीतमुक्तम् ॥ प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टं मुनिवृषभः परमं जगाम हर्षम् ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्राभ्यागमनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे कौशिक ! आप अपने कार्यकेलिये कुछभी विचार न कीजिये क्योंकि आपके लिये जो दीजाय वह वस्तु कुछभी मुझे देनी कठिन नहीं है ॥ ५३ ॥ आप कार्यका विचार न करें मैं सबकुछ धर्मसे करूंगा क्योंकि आप मेरे परम इष्टदेव हैं ॥ ५४ ॥ नम्रतापूर्वक बुद्धिमान् राजाकी कर्णोंको सुखदेनेवाली इसप्रकार वाणीको सुनके गुण और यशसे प्रसिद्ध ऋषियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त हर्षको प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्राभ्यागमनं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ।

राजाकी प्रशंसा, मुनिके यज्ञके विघ्नकी सूचना, और उसकी रक्षाके लिये रामचन्द्रजीको मांगना इन विषयोंका वर्णन इस ७ वे सर्गमें किया गयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच–तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् ॥ हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥ सदृशं राजशार्दूल तवैवैतन्महीतले ॥ महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठवशवर्तिनः ॥२॥ यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यविनिर्णयम् ॥ कुरुत्वं राजशार्दूल धर्मं समनुपालय ॥ ३ ॥ अहं धर्मं समातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ ॥ तस्य विघ्नकरा घोरा राक्षसा मम संस्थिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–राजसिंह दशरथके अद्भुत विस्तारयुक्त वाक्यको सुन रोम २ प्रसन्न महा तेजस्वी विश्वामित्रजी बोले ॥ १ ॥ महावंश, रघुवंशमें उत्पन्न और वसिष्ठजीकी आज्ञामें चलनेवाले भूतलमें आपहीके योग्य यह (बचन) है ॥ २ ॥ हे राजसिंह ! जो बात मेरे हृदयमें है उसके करनेका निश्चय आप कीजिये और धर्मपालन कीजिये ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं सिद्धिकेलिये यज्ञ आरम्भकरताहूं राक्षस उसके विघ्नके लिये उपस्थित होजाते हैं ॥ ४ ॥

यदा यदा तु यज्ञेन यजेऽहं विबुधव्रजान् ॥ तदा तदा तु मे यज्ञं विनिघ्नंति निशाचराः ॥ ५ ॥ बहुशो विहिते तस्मिन्मया राक्षसनायकाः ॥ अकिरंस्ते महीं यागे मांसेन रुधिरेण च ॥ ६ ॥ अवधूते तथाभूते तस्मिन्यागकदंबके ॥ कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादुपागतः ॥ ७ ॥ न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ तथाभूतं हि तत्कर्म न शापस्तस्य विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब २ मैं यज्ञसे देवतागणोंका पूजन करताहूं तब २ निशाचरलोग मेरा यज्ञविध्वंस करते हैं ॥ ५ ॥ मैंने बहुतवार यज्ञ किया परन्तु राक्षसोंके नायकोंने मेरे यज्ञमें रुधिर और मांसकी वृष्टि की ॥ ६ ॥ जब मेरे यज्ञोंके समूहके समूह इसप्रकार नष्ट करदियेगये तब मैं थकित और निरुत्साह होके चला आया ॥ ७ ॥ और हे राजन् ! क्रोध करनेकी मेरी बुद्धि नहींहोती क्योंकि वह कार्य ऐसाही है उसमें शाप नहीं दिया जाता ॥ ८ ॥

---

(१) आपको छोडकर सब देदूंगा और सब कुछ करूंगा यह दूसरा नहीं कहसक्ता ॥ (२) शाप देनेसे तपस्याका फल नष्ट होजाताहै और यज्ञ पूर्ण नहींहोता ॥

ईदृशी यज्ञदीक्षा सा मम तस्मिन्महाक्रतौ ॥ त्वत्प्रसादादविघ्नेन प्रापयेयं महाफलम् ॥ ९ ॥ त्रातु मर्हसि मामार्त्तं शरणार्थिनमागतम् ॥ अर्थिनां यन्निराशत्वं सत्तमेऽभिभवो हि सः ॥ १० ॥ तवास्ति तनयः श्रीमान् दृप्तशार्दूलविक्रमः ॥ महेंद्रसदृशो वीर्ये रामो रक्षोविदारणः ॥ ११ ॥ तं पुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ—वह यज्ञकी दीक्षा शापदेनेके अयोग्य है उस मेरे महायज्ञमें तुह्मारी कृपासे निर्विघ्नतापूर्वक महाफलको पाऊंगा ॥ ९ ॥ मुझ शरणार्थीकी आप रक्षाकरनेके योग्यहैं. अर्थियोंका निरास करनाही सज्जनोंमें तिरस्कारहै ॥१०॥ सिंहके समान पराक्रमवाले, वीर्यमें महेंद्रके समान, राक्षसोंको विदारण करनेमें समर्थ, शोभायमान, आपके पुत्र श्रीरामचंद्रजीको॥११॥ हे राजशार्दूल! उन काकपक्षधारी सत्यपराक्रम ज्येष्ठ पुत्र रामचंद्रजीको मुझे देनेके योग्य आपहैं१२

शक्तोह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ राक्षसा येऽपकर्तारस्तेषामूर्द्धविनिग्रहे ॥ १३ ॥ श्रेयश्चास्य करिष्यामि बहुरूपमनंतकम् ॥ त्रयाणामपि लोकानां येन पूज्यो भविष्यति ॥ १४ ॥ न च ते राममासाद्य स्थातुं शक्ता निशाचराः ॥ क्रुद्धं केसरिणं दृष्ट्वा वनेतृण इवैणकाः ॥१५॥ तेषां न चान्यः काकुत्स्थाद्योद्धुमुत्सहते पुमान् ॥ ऋते केसरिणः क्रुद्धान्मत्तानां करिणामिव ॥ १६ ॥

अर्थ—ये (राम) मुझसे रक्षित और अपनेदिव्यतेजसे अपकारी राक्षसोंके शिर काटनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥ मैं उनका बहुत अनन्तकल्याण करूंगा जिससे वे तीनोंलोकके पूज्य होजाँयगे ॥ १४ ॥ जैसे वनके तृणमें सिंहको देखके मृग नहीं ठहर सक्ते ऐसेही रामचन्द्रजीके पहुँचनेपर वे निशाचर नहीं ठहरसकेंगे ॥ १५ ॥ ककुत्स्थवंशोद्भव रामचंद्रजीके सिवाय उनके साथ दूसरा कोई युद्ध नहींकरसक्ता जैसे मत्तहाथियोंका सामना सिवाय क्रुद्धसिंहके अन्य नहींकरसक्ता ॥ १६ ॥

वीर्योत्सिक्ता हि ते पापाः कालकूटोपमा रणे ॥ खरदूषणयोर्भृत्याः कृतांताः कुपिता इव ॥ १७ ॥ रामस्य राजशार्दूल सहिष्यंते न सायकान् ॥ अनारतगता धारा जलदस्येव पांसवः ॥ १८ ॥ न च पुत्रकृतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ॥ न तदस्ति जगत्यस्मिन्यन्न देयं महात्मनाम् ॥ १९ ॥ हंत नूनं विजानामि हंतस्तान् विद्धि राक्षसान् ॥ न ह्यस्मदादयः प्राज्ञाः संदिग्धे संप्रवृत्तयः ॥ २० ॥

अर्थ—वे खरदूषणके भृत्य कुपित कालकेसमान पराक्रमसे अत्यन्तगर्वी पापी राक्षसरणमें कालकूट (हालाहल विष) के समानहैं ॥ १७ ॥ जैसे निरंतर मेघकी धाराको उडतीहुई धूली नहीं सहनकरसक्ती उसीप्रकार हे राजसिंह! वे राक्षस रामचन्द्रके बाणोंके सहन नहींकरसकेंगे ॥ १८ ॥ हे राजन्! आप पुत्रका स्नेह करनेके योग्यनहीं हैं क्योंकि इससंसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो महात्माओंको अदेय हो ॥ १९ ॥ यह निश्चयहै कि आप उनराक्षसोंको मरेही हुए समझें क्योंकि हमारे सदृश बुद्धिमानोंकी प्रवृत्ति संदेहके कार्यमें नहींहोती ॥ २० ॥

अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीवलोचनम् ॥ वसिष्ठश्च महातेजा ये चान्ये दीर्घदर्शिनः ॥ २१ ॥ यदि धर्मो महत्वं च यशस्ते मनसि स्थितम् ॥ तन्मह्यं समभिप्रेतमात्मजं दातुमर्हसि ॥ २२ ॥ दशरात्रश्च मे यज्ञो यस्मिन् रामेण राक्षसाः ॥ हंतव्या विघ्नकर्तारो मम यज्ञस्य वैरिणः ॥ २३ ॥ अत्राप्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददतां तव मंत्रिणः ॥ वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे तेन रामं विसर्जय ॥ २४ ॥

अर्थ—मैं तथा महा तेजस्वी वसिष्ठजी तथा औरभी दीर्घदर्शीलोग रामचंद्रजीको जानतेहैं ॥ २१ ॥ यदि तुह्मारे चित्तमें धर्मका महत्व और यशहै तो प्रियपुत्र रामचंद्रजीको मुझे देनेके योग्य आपहैं ॥ २२ ॥ वह मेरा यज्ञ दश रात्रिदिनमें सिद्ध होजायगा जिसमें मेरे यज्ञके शत्रु राक्षसोंको रामचंद्रजी मारेंगे ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ! इस विषयमें वसिष्ठादि सब आपके मंत्रियोंकोभी आज्ञा देनी चाहिये और उनकी संमतिसे आप रामचंद्रजीको बिदाकरो ॥२४॥

नात्येति कालः कालज्ञ यथायं मम राघव ॥ तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः ॥ २५ ॥ कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम् ॥ महानप्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः ॥ २६ इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥ विरराम महातेजा विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ २७ ॥ श्रुत्वा वचो मुनिवरस्य महानुभावस्तूष्णीमतिष्ठदुपपन्नपदं स वक्तुम् ॥ नो युक्तियुक्तकथनेन विनैति तोषं धीमानपूरितमनोऽभिमतश्च लोकः ॥ २८ ॥

---

(१) कानोंके मूलदेशमें जो दो शिखा चोटी क्षत्रियोंकी पूर्वरीतिकी अनुसार धारणकी जातीहैं उनको काकपक्ष कहते हैं ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे समयके जाननेवाले राजन्! जिसप्रकार मेरा यह काल न बीते वैसा करो, आपका कल्याण हो, और आप चित्तमें शोक न करैं ॥ २५ ॥ समयपर थोडाभी कियाहुआ कार्य बडा उपकार करता है और कुसमयमें बडा उपकारभी खाली जाता है ॥ २६ ॥ महा तेजस्वी धर्मात्मा मुनीश्वर विश्वामित्रजी, धर्म और अर्थसहित इतना बचन कहके चुप होगये ॥२७॥ मुनिवरके इस बचनको सुनके महानुभाव दशरथ युक्तियुक्त बात कहनेके अर्थ मौन होगये, क्योंकि संसार मनोरथके पूर्ण होनेसे सन्तुष्ट होताहै, परन्तु बुद्धिमान् तो युक्तियुक्त (उचित) वचन कहे विना संतुष्ट नहीं होताहै ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

रावणादिकके बलको जानके रामचन्द्रजीकी युद्धकी अयोग्यता और स्नेहके कारणसे राजाका विषाद इस सर्गमें वर्णन किया जायगा.

वाल्मीकिरुवाच–तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ॥ मुहूर्तमासीन्निश्चेष्टः सदैन्यं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऊनषोडशवर्षोऽयं रामो राजीवलोचनः ॥ न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥ इयमक्षौहिणी पूर्णा यस्याः पतिरहं प्रभो ॥ तया परिवृतो युद्धं दास्यामि पिशिताशिनाम् ॥३॥ इमे हि शूरा विक्रांता भृत्या मंत्रविशारदाः ॥ अहं चैषां धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्द्धनि ॥ ४ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजीबोले–राजसिंह दशरथजी विश्वामित्रके कथनको श्रवण करके मुहूर्तपर्यन्त चेष्टारहित होगये, और दीनतासे यह बचन बोले ॥ १ ॥ कमलसमान नेत्रवाले रामचन्द्रजी अभी पूरे १६ सोलह वर्षकेभी नहीं हैं, इसलिये राक्षसोंके साथ मैं इनकी युद्धकी योग्यता नहीं देखता ॥ २ ॥ हे प्रभो ! यह पूर्ण अक्षौहिणी सेना है, जिसका स्वामी मैं हूं सो इस सेनाके साथ राक्षसोंसे मैं युद्ध करूंगा ॥ ३ ॥ ये मेरे भृत्य बडे शूर, पराक्रमी, और बडे निपुण हैं, मैं स्वयं हाथमें धनुष लेके रणके अग्रभागमें रक्षा करूंगा ॥ ४ ॥

एभिः सहैव वीराणां महेंद्रमहतामपि ॥ ददामि युद्धं मत्तानां करिणामिव केसरी ॥ ५ ॥ बालो रामस्त्वनीकेषु न जानाति बलाबलम् ॥ अंतःपुरादृते दृष्टा नानेनान्या रणावनिः ॥ ६ ॥ न शस्त्रैः परमैर्युक्तो न च युद्धविशारदः ॥ नचास्त्रैः शूरकोटीनां तज्ज्ञः समरभूमिषु ॥ ७ ॥ केवलं पुष्पखंडेषु नगरोपवनेषु च ॥ उद्यानवनकुंजेषु सदैव परिशीलनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इनके साथ मैं जैसे सिंह हाथियोंको युद्ध देता है वैसेहीं महेन्द्रसेभी जो बडे हैं उनके साथभी युद्ध करूंगा ॥ ५ ॥ बालक रामचन्द्रजी सेनाओंमें बलाबल नहीं जानते, अन्तःपुरको छोडके उन्होंने अभी कोई रणभूमि नहीं देखी ॥ ६ ॥ नतो अभी उत्तम शस्त्रों करके युक्त है न अस्त्रोंमें और न युद्धमें निपुण है, और न शूरोंकी गणनामें समर भूमियोंके विषयमें कुछ जानते हैं ॥ ७ ॥ केवल पुष्पवाटिकाओंमें, नगरके उपवनोंमें, वाटिका और वनके लताकुंजोंमें खेलना जानते हैं ॥ ८ ॥

विहर्तुमेष जानाति सह राजकुमारकैः ॥ कीर्णपुष्पोपहारासु स्वकास्वजिरभूमिषु ॥ ९ ॥ अद्य त्वतितरां ब्रह्मन् मम भाग्यविपर्ययात् ॥ हिमेनेव हि पद्माभः संपन्नो हरिणः कृशः ॥ १० ॥ नात्तुमन्नानि शक्नोति न विहर्तुं गृहावनिम् ॥ अंतः खेदपरीतात्मा तूष्णीं तिष्ठति केवलम् ॥ ११ ॥ सदारः सह भृत्योऽहं तत्कृते मुनिनायक ॥ शरदीव पयोवाहो नूनं निःसारतां गतः ॥ १२ ॥

---

(१) अयुतंच नागास्त्रिगुणीरथानां लक्षैकयोद्धा दश लक्षवाजिनां ॥ पदातिसंख्या षट्त्रिंशकोटयः अक्षौहिणीं तां मुनयो वदन्ति ॥ (दश १० हजार हाथी, ३० हजार रथ, १ लाख बडे लडाके वीर, १० लाख सवार, ३६ करोड पैदल) इस संख्याको अक्षौहिणी कहतेहैं ॥ (२) क्रीडार्थ जो अन्तःपुरमें रणभूमि है उसको तो देखाहै दूसरी नहीं ॥ (३) जिसको हाथमें लेके (खड्गादि) युद्ध करते हैं उसको शस्त्र कहतेहैं जिसको फेंकके मारतेहैं उसको अस्त्र कहतेहैं ॥

अर्थ—पुष्पोंसे व्याप्त अपने अंगणकी पूजाभूमियोंमें ये राजकुमारोंके साथ खेलना जानते हैं ॥ ९ ॥ और इस समय तो मेरे भाग्यके दोषसे जैसे तुषारसे कमल पीला और कृश होजाताहै वैसे होगये हैं ॥ १० ॥ न भोजन करनेको और न गृहके भीतर विहार करनेको समर्थ हैं, अन्तःकरणके खेदसे व्याप्त, केवल मौन हैं ॥ ११ ॥ हे मुनिनायक! जैसा शरत्कालमें मेघ, सारहीन होजाताहै वैसाही उनके लिये स्त्री और भृत्योंके साथ मैं निस्सार होगयाहूं ॥ १२ ॥

ईदृशोऽसौ सुतो बाल आधिनाथ वशीकृतः ॥ कथं ददामि तं तुभ्यं योद्धुं सह निशाचरैः ॥ १३ ॥ अपि बालांगनासंगादपि साधो सुधारसात् ॥ राज्यादपि सुखयैव पुत्रस्नेहो महामते ॥ १४ ॥ ये दुरंता महारंभास्त्रिषु लोकेषु खेददाः ॥ पुत्रस्नेहेन संतोऽपि कुर्वते तानसंशयम् ॥ १५ ॥ असवोऽथ धनं दारास्त्यज्यंते मानवैः सुखम् ॥ न पुत्रो मुनिशार्दूल स्वभावो ह्येष जंतुषु ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार मेरे पुत्र मानसीपीडासे वशीभूत हैं उनको मैं आपको राक्षसोंके साथ युद्धकरनेको कैसे कहूं? ॥ १३ ॥ हे साधो! हे महामते! बालांगनाके संगसे, सुधाके रससे और राज्यसेभी पुत्रकी प्रीति अधिक सुखके लिये होती है ॥ १४ ॥ जो अधिककालसे साध्य (तपस्याके क्लेश) और तीनोंलोकमें दुःखदायक कार्य हैं उनकोभी महात्मालोग पुत्रकी प्रीतिसे अवश्य करते हैं ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह जीवोंका स्वभाव है कि मनुष्य प्राण, धन, स्त्री और सुखको त्याग देते हैं परन्तु पुत्र नहीं त्यागा जाता ॥ १६ ॥

राक्षसाः क्रूरकर्माणः कूटयुद्धविशारदाः ॥ रामस्तान्योधयत्वित्यं युक्तिरेवातिदुःसहा ॥ १७ ॥ विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ जीवितुं जिविताकांक्षी न रामं नेतुमर्हसि ॥ १८ ॥ नववर्षसहस्राणि मम जातस्य कौशिक ॥ दुःखेनोत्पादितास्त्वेते चत्वारः पुत्रका मया ॥ १९ ॥ प्रधानभूतस्तेष्वेव रामः कमललोचनः ॥ तं विनेह त्रयोऽप्यन्ये धारयंति न जीवितम् ॥ २० ॥

अर्थ—राक्षसलोग अत्यन्त क्रूरकर्मवाले और कपटयुद्धमें चतुर होते हैं उनसे रामचन्द्रजी युद्ध करैं यह युक्तिही दुःसहहै ॥ १७ ॥ रामचन्द्रजीके वियोगमें मैं एक मुहूर्तभी नहीं जी सक्ता, इसलिये यदि मेरा जीवन चाहते हैं तो आपको रामजीको नहीं लेजाना चाहिये ॥ १८ ॥ हे कौशिक! पुत्रकी कामनासे नवसहस्र वर्ष मुझे वीतगये, बडे दुःखसे चार पुत्र उत्पन्न किये हैं ॥ १९ ॥ उन सबमें कमलनेत्र रामचन्द्रजीही प्रधान हैं, उनके विना दूसरे तीनभी जीवनको धारण नहीं कर सक्ते ॥ २० ॥

स एव रामो भवता नीयते राक्षसान्प्रति ॥ यदि तत्पुत्रहीनं त्वं मृतमेवाशु विद्धि माम् ॥ २१ ॥ चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिरत्रैव मे परा ॥ ज्येष्ठं धर्ममयं तस्मान्न रामं नेतुमर्हसि ॥ २२ ॥ निशाचरबलं हंतुं मुने यदि तवेप्सितम् ॥ चतुरंगसमायुक्तं मया सह बलं नय ॥ २३ ॥ किं वीर्या राक्षसास्ते तु कस्य पुत्राः कथं च ते ॥ कियत्प्रमाणाः के चैव इति वर्णय मे स्फुटम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उन्ही रामचन्द्रजीको आप मृत्युरूप राक्षसोंके निकट लेजाते हैं यदि मैं उनसे रहित हुआ तो मुझे मराही आप समझैं ॥ २२ ॥ चारों पुत्रोंके मध्यमें ज्येष्ठ और धर्मात्मा जो रामचन्द्रजी हैं उन्हींमें मेरी बडी प्रीति है, इसवास्ते रामचन्द्रजीको आपको नहीं लेजाना चाहिये ॥ २२ ॥ हे मुने! यदि राक्षसोंका वध आपको इष्टहै तो आप चतुरंगिणी सेनाके साथ मुझे लेचलिये ॥ २३ ॥ वे राक्षस किसके पुत्र, कैसे पराक्रमवाले, कैसे और कितने प्रमाणवाले हैं, यह मुझसे साफ २ कहिये ॥ २४ ॥

कथं तेन प्रकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ॥ मामकैर्बालकैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम् ॥ २५ ॥ सर्वं मे शंस भगवन्यथा तेषां महारणे ॥ स्थातव्यं दुष्टभाग्यानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः ॥ २६ ॥ श्रूयते हि महावीर्यो रावणो नाम राक्षसः ॥ साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः ॥ २७ ॥ स चेत्तव मखे विघ्नं करोति किल दुर्मतिः ॥ तत्संग्रामे न शक्ताः स्मो वयं तस्य दुरात्मनः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! उन कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंके साथ रामचन्द्रजी, वा और मेरे बालक अथवा मैं कैसे व्यवहार करैं ॥ २५ ॥ हे भगवन्! जिसप्रकार उन दुष्टभाग्य राक्षसोंके साथ रणमें स्थित होना चाहिये वह सब मुझसे कहिये क्योंकि वे राक्षस पराक्रमसे अत्यन्त अभिमानी हैं ॥ २६ ॥ साक्षात् कुबेरका भाई विश्रवसमुनिका पुत्र रावण नाम राक्षस बडा पराक्रमी सुना जाताहै ॥ २७ ॥ यदि वह दुर्मति आपके यज्ञमें विघ्न करताहै तो उस दुष्टके संग्राममें हम लोग समर्थ नहीं हैं ॥ २८ ॥

काले काले पृथग्ब्रह्मन् भूरिवीर्यविभूतयः ॥ भूतेष्वभ्युदयं यांति प्रलीयंते च कालतः ॥ २९ ॥ अद्यास्मिस्तु वयं काले रावणादिषुशत्रुषु ॥ न समर्थाः पुरः स्थातुं नियतेरेष निश्चयः ॥ ३० ॥ तस्मा-

त्प्रसादं धर्मज्ञ कुरु त्वं मम पुत्रके ॥ मम चैवाल्पभाग्यस्य भवान् हि परदैवतम् ॥ ३१ ॥ देवदानवगंधर्वा यक्षाः पतगपन्नगाः ॥ न शक्ता रावणं योद्धुं किं पुनः पुरुषा युधि ॥ ३२ ॥

अर्थ—संसारके जीवोंमें समय २ पर पराक्रम और ऐश्वर्य युक्तविभूतियें अभ्युदयको प्राप्त होती हैं और कालसे नष्टभी होजाती हैं ॥ २९ ॥ इस समयमें तो रावणादिक शत्रुओंके सन्मुख हम लोग नहीं ठहर सक्ते ऐसी ईश्वरकी इच्छाहै ॥ ३० ॥ इस कारणसे हे धर्मज्ञ ! आप मेरे कृपापात्र पुत्रके ऊपर तथा अभागी मेरे ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि आप मेरे परम इष्ट देवहैं ॥ ३१ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, पक्षी और पन्नग येभी रावणसे युद्धमें लडनेको समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी कौन कथा ॥ ३२ ॥

महावीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि राक्षसः ॥ तेन सार्द्धं न शक्ताः स्म संयुगे तस्य बालकैः ॥ ३३ ॥ अयमन्यतमः कालः पेलवीकृतसज्जनः ॥ राघवोऽपि गतो दैन्यं यतो वार्द्धकजर्जरः ॥ ३४ ॥ अथ वा लवणं ब्रह्मन्यज्ञघ्नं ते मधोः सुतम् ॥ कथयत्वसुरप्रख्यं नैव मोक्ष्यामि पुत्रकम् ॥ ३५ ॥ सुंदोपसुंदयोश्चैव पुत्रौ वैवस्वतोपमौ ॥ यज्ञविघ्नकरौ ब्रूहि न ते दास्यामि पुत्रकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—वह राक्षस बडे बडे पराक्रमवालोंकाभी पराक्रम युद्धमें हर लेताहै, उसके साथ संग्राममें हमलोगभी समर्थ नहीं हैं तो बालकोंके साथ उसका संग्राम कैसे हो सक्ताहै ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! यह दूसराही काल वर्त रहाहै जिसने सज्जनोंको दुर्बल कर दियाहै, क्योंकि राघव (दशरथ) भी वृद्धावस्थासे जर्जरीभूत दीनदशाको प्राप्त होरहाहै ॥ ३४ ॥ अथवा हे ब्रह्मन् ! कहिये मधुका पुत्र असुरोंमें मुख्य लवण नाम राक्षस आपके यज्ञका विध्वंस करनेवाला तो नहीं है ? यदि है तो मैं अपने प्रिय पुत्रको नहीं त्यागूंगा ॥ ३५ ॥ अथवा कहिये यमके समान सुन्द और उपसुन्दके पुत्र मारीच और सुबाहु तो आपके यज्ञके विघ्नकर्ता नहीं हैं मैं अपने दयापात्र पुत्रको आपको नहीं दूंगा॥३६॥

अथ नेष्यसि चेद्ब्रह्मँस्तद्धतोऽस्म्यहमेव ते ॥ अन्यथा तु न पश्यामि शाश्वतं जयमात्मनः ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा मृदुवचनं रघूद्वहोऽसौ कल्लोले मुनिमतसंशये निमग्नः ॥ नाज्ञासीत्क्षणमपि निश्चयं महात्मा प्रोद्वीचाविव जलधौ स मुह्यमानः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे दशरथवाक्यं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! यदि इसपरभी आप मेरे पुत्रको तपोबलसे लेही जायंगे, तो मैं तो मरही चुका, इसके सिवाय किसीप्रकारसे अपना जय नहीं देखता ॥ ३७ ॥ महात्मा दशरथजी इतना कहके, विश्वामित्रको अभीष्ट जो रामजीको लेजानाहै उस संशयरूपी महातरंगजालमें डूबे हुये सुख और निश्चयको नहीं प्राप्त हुये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे दशरथवाक्यं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

इस सर्गमें ९ विश्वामित्रजीका उनके तप तथा अस्त्रबलके कथनसे कोप और वसिष्ठजीका धीरे धीरे राजाको समाधान देना वर्णन कियागयाहै.

वाल्मीकिरुवाच–तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलेक्षणम् ॥ समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १ ॥ करिष्यामीति संश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमर्हसि ॥ स भवान् केसरी भूत्वा मृगतामिव वांछसि॥२॥राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥ न कदाचन जायंते शीतांशोरुष्णरश्मयः॥३॥ यदि त्वं न क्षमो राजन् गमिष्यामि यथागतम् ॥ हीनप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सबांधवः ॥४॥

अर्थ—वाल्मीकिजी बोले–पुत्रके स्नेहसे आसुओंसे पूर्णनेत्र दशरथके वचनको श्रवणकरके क्रोधसहित विश्वामित्रने राजासे कहा ॥ १ ॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके उसे छोडना चाहते हो, तुम सिंह होके शृगाल होनेकी इच्छा करते हो ॥ २ ॥ यह वार्ता रघुवंशियोंमें कुलके विरुद्धहै, चन्द्रमासे कभी उष्ण किरण नहीं उत्पन्न होते ॥ ३ ॥ यदि

(१) यह लवणनाम दैत्य राक्षसीसे मधुनाम दैत्यसे उत्पन्न हुआथा शिवजीसे इसे त्रिशूल मिलाथा अतएव अजेय था और मांधाताकी मृत्युका हेतु था ॥

तुम इस कार्यके करनेमें असमर्थ हो तो मैं जैसे आया वैसाही चला जाऊंगा, हे काकुत्स्थ! तुम हीनप्रतिज्ञ बान्धवसहित सुखी हो ॥ ४ ॥

वाल्मीकिरुवाच–तस्मिन् कोपपरीतेऽथ विश्वामित्रे महात्मनि॥ चचाल वसुधा कृत्स्ना सुरांश्च भयमाविशत् ॥ ५ ॥ क्रोधाभिभूतं विज्ञाय जगन्मित्रं महामुनिम्॥ धृतिमान्सुव्रतो धीमान्वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ भवान् दशरथः श्रीमांस्त्रैलोक्यगुणभूषितः ॥ ७ ॥ धृतिमान्सुव्रतो भूत्वा न धर्मं हातुमर्हसि ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मेण यशसा युतः ॥ ८ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजी बोले–महात्मा विश्वामित्रके क्रोधित होनेपर संपूर्ण पृथिवी डगमगाने लगी और देवताओंकोभी भय हुआ ॥ ५ ॥ जगत्के मित्र महामुनि विश्वामित्रको क्रोधसे वशीभूत देखके, धैर्यवान् बुद्धिमान् और उत्तमव्रतवाले वसिष्ठजी बोले ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी बोले–इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न साक्षात् द्वितीयधर्मके समान् श्रीमान् तीनों लोकके उत्तमगुणोंसे भूषित आप दशरथ ॥ ७ ॥ तीनोंलोकमें प्रसिद्ध धर्म और यशसे युक्त, धैर्यवान् और उत्तम बलवान् आप धर्मको छोडने योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व न धर्मं हातुमर्हसि ॥ मुनेस्त्रिभुवनेशस्य वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ करिष्यामीति संश्रुत्य तत्ते राजन्नकुर्वतः ॥ इष्टापूर्तं हरेद्धर्मं तस्माद्रामं विसर्जय ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुवंशजातोऽपि स्वयं दशरथोऽपि सन् ॥ न पालयसि चेद्वाक्यं कोऽपरः पालयिष्यति ॥ ११ ॥ युष्मदादिप्रणीतेन व्यवहारेण जंतवः ॥ मर्यादां न विमुंचंति तां न हातुं त्वमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ—आप अपने धर्मको पालन कीजिये आपको धर्म नहीं छोडना चाहिये तीनोंलोकके इष्ट संपादन करनेमें समर्थ विश्वामित्रजीका वचन आपको करना उचित है ॥ ९ ॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके और उसके पालन न करनेवाला आपका इष्टापूर्त (तडाग और वापी आदि खोदना आदि) धर्म नष्ट हो जायगा इसलिये आप रामचन्द्रजीको बिदा कीजिये ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न होके और स्वयं दशरथ होके यदि अपना वाक्य न पालन करोगे तो दूसरा कौन पालन करेगा ॥ ११ ॥ तुह्मारेसदृश मनुष्योंके प्रवृत्त किये हुये व्यवहारसे अज्ञानी मनुष्यभी, मर्यादाको नहीं त्यागते, सो उसको आपको त्यागना न चाहिये ॥ १२ ॥

गुप्तं पुरुषसिंहेन ज्वलनेनामृतं यथा ॥ कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यंति राक्षसाः ॥ १३ ॥ एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः ॥ एष बुद्ध्याधिको लोके तपसां च परायणम् ॥ १४ ॥ एषोऽस्त्रं विविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ नैतदन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यति कश्चन ॥ १५ ॥ न देवा नर्षयः केचिन्नासुरा न च राक्षसाः ॥ न नागा यक्षगंधर्वाः समेताः सदृशा मुनेः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे अग्निसे अमृत रक्षितहै, उसी प्रकार पुरुषसिंहविश्वामित्रजीसे रक्षित रामचन्द्रजी अस्त्रविद्यामें निपुण हों वा न हों राक्षस इनका कुछ नहीं करसकेंगे ॥ १३ ॥ ये विश्वामित्र साक्षात् मूर्तिमान् धर्म, पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ, संसारमें बुद्धिमें अधिक, और तपके परमस्थान हैं ॥ १४ ॥ चराचरतीनों लोकमें ये अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रको जानते हैं, इनते अन्य कोई न जानता है और न जानेगा ॥ १५ ॥ देवता, ऋषि, असुर, नाग, और गन्धर्व, ये सब मिलकेभी इन मुनिके सदृश नहीं हैं ॥ १६ ॥

अस्त्रमस्मै कृशाश्वेन परैः परमदुर्जयम् ॥ कौशिकाय पुरा दत्तं यदा राज्यं समन्वगात् ॥ १७ ॥ ते हि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतोपमाः ॥ एनमन्वचरन् वीरा दीप्तिमंतो महौजसः ॥ १८ ॥ जया च सुप्रभा चैव दाक्षायिण्यौ सुमध्यमे ॥ तयोस्तु यान्यपत्यानि शतं परमदुर्जयम् ॥ १९ ॥ पंचाशतं सुतान् जज्ञे जया लब्धवरा पुरा ॥ वधार्थं सुरसैन्यानां ते क्षमाः कामचारिणः ॥ २० ॥

अर्थ—इनको प्रथम जब राज्य करते थे तब कृशाश्वने अस्त्र दिये थे ॥१७॥ वे अस्त्र प्रजापतिके पुत्रके समान वीर, प्रकाशवान्, महा तेजस्वी, सेवकके समान इनकी सेवा करते हैं ॥ १८ ॥ उत्तम मध्य भागवाली दक्षकी कन्या जया और सुप्रभा थीं, उनके जो १०० पुत्र थे वे शत्रुओंसे परम दुर्जय थे ॥ १९ ॥ जयाने पतिसे वरदान पाके देवताओंकी सेना जिससे असुरोंका वध करैं ऐसे समर्थ और कामचार ५० पुत्र उत्पन्न किये ॥ २० ॥

---

(१) इन्द्रके स्थानमें चारों ओरसे किलारूप अग्निसे अमृतकी रक्षा की जाती है यह वार्ता पुराणोंमें प्रसिद्ध है ॥ (२) अभावमें इनके सदृश नहीं है वा ज्ञानसे ब्रह्मरूप होनेसे इनके सदृश कोई नहीं है ॥

सुप्रभा जनयामास पुत्रान्पंचाशतं परान् ॥ संवर्षान्नाम दुर्धर्षान्दुराकारान्बलीयसः ॥ २१ ॥ एवं वीर्यो महातेजा विश्वामित्रो जगन्मुनिः ॥ न रामगमने बुद्धिं विक्कवां कर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ अस्मिन्म-हासत्वतमे मुनींद्रे स्थिते समीपे पुरुषस्य साधो ॥ प्राप्तेऽपि मृत्यावमरत्वमेति मा दीनतां गच्छ यथा विमूढः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे वसिष्ठसमाश्वासनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—सुप्रभाने शत्रुओंसे डरनेके अयोग्य भयंकर आकारवाले और बली संवर्ष नामवाले अन्य ५० पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ ऐसे प्रतापी जगन्मुनि विश्वामित्रजी हैं इसलिये रामके जानेमें तुम बुद्धिको व्याकुल करनेके योग्य नहीं हो ॥ २२ ॥ हे साधो ! ये महाप्रभावशोभित विश्वामित्रजी जिस मनुष्यके समीप स्थित रहैं तो यदि मृत्युभी प्राप्त होजाय तो वह मनुष्य अमरदशाको प्राप्त होजाय, इसलिये तुम मूर्खके समान दीनताको मत प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्य प्रकरणे वसिष्ठसमाश्वासनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

राजाका भेजाहुआ ड्योढीदार रामचन्द्रकी चेष्टाको जानके पुनः आके राजासे कहने लगा इत्यादि सब बातोंको वर्णन इस १० वें सर्गमें किया गयाहै.

वाल्मीकिरुवाच–तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथःसुतम् ॥ संप्रहृष्टमना राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥ दशरथ उवाच ॥ प्रतिहार महाबाहुं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ सलक्ष्मणमविघ्नेन पुण्यार्थं शी-घ्रमानय ॥ २ ॥ इति राज्ञा विसृष्टोऽसौ गत्वांतःपुरमंदिरम् ॥ मुहूर्त्तमात्रेणागत्य समुवाच महीप-तिम् ॥३॥ देव दोर्दलिताशेषरिपो रामः स्वमंदिरे ॥ विमनःसंस्थितो रात्रौ षट्पदःकमले यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजी बोले वसिष्ठजीके इतना कहनेपर राजा दशरथने प्रसन्नमन होके लक्ष्मणसहित पुत्र राम-चन्द्रजीको बुलवाया ॥ १ ॥ दशरथजी बोले हे प्रतिहार ! (ड्योढीदार) महाबाहु, सत्यपराक्रम रामचन्द्रको लक्ष्म-णसहित धर्मार्थ निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र यहां लाओ ॥ २ ॥ इस प्रकार राजाका भेजा हुआ अन्तःपुरमें जाके और मुहूर्त-मात्रमें आके प्रतिहार राजासे बोला ॥ ३ ॥ हे भुजाओंके बलसे संपूर्ण शत्रुओंको दलन करनेवाले राजन् ! रामजन्द्रजी अपने मन्दिरमें ऐसे उदासीनहैं जैसे रात्रिमें कमलके भीतर भ्रमर हो ॥ ४ ॥

आगच्छामि क्षणेनेति वक्ति ध्यायति चैकतः ॥ न कस्यचिच्च निकटे स्थातुमिच्छति खिन्नधीः ॥५॥ इत्युक्तस्तेन भूपालस्तं रामानुचरं जनम् ॥ सर्वमाश्वासयामास पप्रच्छ च यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ कथं कीदृग्विधो राम इति पृष्टो महीभृता ॥ रामभृत्यजनः खिन्नो वाक्यमाह महीपतिम् ॥ ७ ॥ देहयष्टि-मिमां देव धारयंत इमे वयम् ॥ खिन्नाःखेदे परिम्लानतनौ रामे सुते तव ॥ ८ ॥

अर्थ—क्षणभरमें आता हूं ऐसा वाणीसे कहते हैं और मनमें किसी (गम्भीर) वस्तुकी ओर ध्यान कररहे हैं और उदासीनहैं और किसीके निकट बैठनाभी नहीं चाहते ॥ ५ ॥ इसप्रकार प्रतिहारके कहनेपर राजाने उनके साथ आये हुये रामचन्द्रजीके भृत्यको धैर्य देकर सबबात यथाक्रमसे पूंछी ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कैसे और क्या करतेहैं इस प्रकार राजाके पूछनेपर अत्यन्त उदास रामचन्द्रजीका भृत्य बोला ॥ ७ ॥ हे राजन् ! खिन्न और अत्यन्त कुह्मला गया है शरीर जिनका ऐसे आपके पुत्र रामचन्द्रजीके शरीरके विषयमें हमलोग ऐसे दुःखी होगयेहैं कि यह केवल अस्थिपं-जर धारण कररहे हैं ॥ ८ ॥

रामो राजीवपत्राक्षो यतःप्रभृति चागतः ॥ सविप्रस्तीर्थयात्रायास्ततःप्रभृति दुर्मनाः ॥ ९ ॥ यत्नप्रा-र्थनयास्माकं निजव्यापारमाह्निकम् ॥ सोयमाम्लानवदनः करोति न करोति वा ॥ १० ॥ स्नानदेवार्च-नादानभोजनादिषु दुर्मनाः ॥ प्रार्थितोऽपि हि नात्यन्तश्चात्यशनमीश्वरः ॥ ११ ॥ लोलांतःपुरनारी-भिः कृतदोलाभिरंगणे ॥ नच क्रीडति लीलाभिर्धाराभिरिव चातकः ॥ १२ ॥

---

(१) मुनिके यज्ञरूप धर्मसिद्धयर्थ, अथवा पूर्वकृत प्रतिज्ञाके पालनरूप धर्मार्थ, क्योंकि विलम्ब होनेसे पुनः कोई विघ्न न उ-पस्थित होजाय अतः शीघ्र यह पद दिया ॥

अर्थ—कमलके सदृश नेत्रवाले रामचन्द्रजी विप्रसहित जिस दिनसे तीर्थयात्रासे आयेहैं उसी दिनसे उदासहैं ॥ ९ ॥ यह अति कुम्हलाये शरीरवाले रामचन्द्रजी हमलोगोंके बडे यत्न और प्रार्थनासे अपनी नित्यक्रिया (स्नानसंध्यादि) कभी करतेहैं और कभी नहीं करते ॥ १० ॥ स्नान, देवार्चन, दान, और भोजनादिमेंभी उदास रहते हैं प्रार्थनासेभी तृप्तिपर्यन्त भोजन नहीं करते ॥ ११ ॥ चंचल अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बनाये हुये जो आंगनमें दोलाचक्र (झूलनेका चक्र) है उसमें जैसे वर्षाकी धाराके साथ चातक क्रीडा करताहै ऐसे लीलाओंसे क्रीडा नहीं करते ॥ १२ ॥

माणिक्यमुकुलप्रोता केयूरकटकावलिः ॥ नानंदयति तं राजन् चौःपातविषयं यथा ॥ १३ ॥ क्रीडद्वधूविलोकेषु वहत्कुसुमवायुषु ॥ लतावलयगेहेषु भवत्यतिविषादवान् ॥ १४ ॥ यद्द्रव्यमुचितं स्वादु पेशलं चित्तहारि च ॥ बाष्पपूर्णेक्षण इव तेनैव परिखिद्यते ॥१५॥ किमिमा दुःखदायिन्यः प्रस्फुरंतीः पुरांगनाः ॥ इति नृत्तविलासेषु कामिनीः परिनिंदति ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे जल्दी स्वर्गसे निकल जानेवाले पुरुषको स्वर्ग आनन्द नहींदेता, इसीतरह माणिक्यसे जडी हुई बाजू और कडोंकी पंक्ति इनको आनन्द नहीं देतीं ॥ १३ ॥ जहां क्रीडाकरनेवाली स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणहैं और जहां वायुसे सुगन्ध पुष्प जहां उडरहेहैं ऐसे लताकुंजमेंभी अत्यन्त शोकयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥ जो द्रव्य उपभोगके उचित, स्वादु, कोमल और मनोहर हैं, उसीसे आसुसे पूर्ण नेत्रके समान अत्यन्त खेदित होते हैं ॥ १५ ॥ ये मेरे संमुख दुःख देनेवाली पुरकी स्त्रियां नाचती हुई क्यों देख पडती हैं इस प्रकार नृत्य विलासमें कामिनियोंकी निंदा करतेहैं,

भोजनं शयनं यानं विलासं स्नानमासनम् ॥ उन्मत्तचेष्टित इव नाभिनंदत्यनिंदितम् ॥ १७ ॥ किं संपदा किं विपदा किं गेहेन किमिंगितैः ॥ सर्व मेवासदित्युक्त्वा तूष्णीमेकोऽवतिष्ठते ॥ १८ ॥ नोदेति परिहासेषु न भोगेषु निमज्जति ॥ न च तिष्ठति कार्येषु मौनमेवावलंबते ॥ १९ ॥ विलोलालकवल्लर्यो हेलावलितलोचनाः ॥ नानंदयंति तं नार्य्यो मृग्यो वनतरुं यथा ॥ २० ॥

अर्थ—उत्तम भोजन, शयन, यान, (सवारी) विलास, (खेल) स्नान और आसनको उन्मत्तके सदृश पसन्द नहीं करते ॥१७॥ सम्पत्तिसे ? क्या विपत्तिसे क्या ? घरसे क्या ? मनोरथसे क्या होता है ? सब असत् है, ऐसा कहके अकेले मौन होजाते हैं ॥ १८ ॥ न हंसीमें प्रसन्न होतेहैं, न भोगके पदार्थमें आसक्त होतेहैं और न कार्योंमें विश्वास करतेहैं, केवल मौन धारण करते हैं ॥१९॥ जिस प्रकार वनके वृक्षको दीर्घचंचलनेत्रवाली हरिणियां नहीं आनन्द देतीं इसीप्रकार जिनके केशोंमें पुष्प और रत्नोंकी चंचल मालायें लटक रही हैं और शृंगारसे उत्पन्न हावभाव कटाक्षसे जिनके नेत्र तिरछे होरहे हैं ऐसी स्त्रियां इनको आनन्द नहीं देतीं ॥ २० ॥

एकांतेषु दिगंतेषु तीरेषु विपिनेषु च ॥ रतिमायात्यरण्येषु विक्रीत इव जंतुषु ॥ २१ ॥ वस्त्रपानाशनादानपराङ्मुखतया तया ॥ परिव्राड्धर्मिणं भूप सोनुयाति तपस्विनम् ॥ २२ ॥ एक एव वसन्देशे जनशून्ये जनेश्वर ॥ न हसत्येकया बुद्ध्या न गायति न रोदिति ॥ २३ ॥ बद्धपद्मासनः शून्यमना वामकरस्थले ॥ कपोलतलमाधाय केवलं परितिष्ठति ॥ २४ ॥

अर्थ—एकान्त देशमें, दिशाओंके अन्तमें, नदीके तीरोंपर, जंगलमें, ऐसे प्रीति करते हैं जैसे पामरोंमें विका हुआ उत्तम मनुष्य ॥ २१ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्ध वस्त्र, पान, भोजन, और आदानकी पराङ्मुखतासे तपस्वी संन्यासीके समान विरक्तता करते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जनशून्यदेशमें अकेले निवासकरते हुये अन्तःकरणसे न हंसते हैं, न गातेहैं, और न रोते हैं ॥ २३ ॥ पद्मासनको मारके उदास मन बांयेंहस्तपर कपोल रखके केवल बैठे रहतेहैं ॥ २४ ॥

नाभिमानमुपादत्ते न च वांछति राजताम् ॥ नोदेतिनास्तमायाति सुखदुःखानुवृत्तिषु ॥ २५ ॥ न विद्मः किमसौ याति किं करोति किमीहते ॥ किंध्यायति किमायाति कथं किमनुधावति ॥ २६ ॥ प्रत्यहं कृशतामेति प्रत्यहं याति पांडुताम् ॥ विरागं प्रत्यहं याति शरदंत इव द्रुमः ॥ २७ ॥ अनुयातौ तथैवैतौ राजञ्छत्रुघ्नलक्ष्मणौ ॥ तादृशावेव तस्यैव प्रतिबिम्बाविव स्थितौ ॥ २८ ॥

अर्थ — न कभी अभिमान धारण करते हैं, न राज्य चाहते हैं, सुख और दुःखके संयोगसे न कभी प्रसन्न होते हैं, न उदास होते हैं ॥ २५ ॥ यह हमलोग नहीं जानते कि क्यों ये जाते हैं, क्या करते हैं, क्या चाहते हैं, क्या ध्यान करतेहैं, क्यों आते हैं, और कैसे किसबातका अनुसरण करतेहैं ॥ २६ ॥ और शरत् कालके अन्तमें वृक्षके समान प्रतिदिन दुबले होते जातेहैं, प्रतिदिन पीले होते जाते हैं, और प्रतिदिन वैराग्यको प्राप्त होतेजाते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! शत्रुघ्न और लक्ष्मण उन्हीका अनुकरण कररहेहैं उनके प्रतिबिम्बके समान स्थित हैं ॥ २८ ॥

भृत्यैराजभिरंबाभिः संपृष्टोऽपि पुनः पुनः ॥ उक्त्वा न किंचिदेवेति तूष्णीमास्ते निरीहितः ॥ २९ ॥ आपातमात्रहृद्येषु मा भोगेषु मनः कृथाः ॥ इतिपार्श्वगतं भव्यमनुशास्ति सुहृज्जनम् ॥ ३० ॥ नाना-विभवरम्यासु स्त्रीषु गोष्ठीगतासु च ॥ पुरःस्थितमिवास्नेहो नाशमेवानुपश्यति ॥ ३१ ॥ नीतमायुरनायासपदप्राप्तिविवर्जितैः ॥ चेष्टितैरिति काकल्या भूयो भूयः प्रगायति ॥ ३२ ॥

अर्थ—नोकरोंके, राजाओंके, और माताओंके, वार २ पूछनेपर "कुछ नहीं" ऐसा कहके चेष्टारहित पुनः मौन हो जाते हैं ॥ २९ ॥ क्षणमात्र सुखदायी परिणाममें दुःखदायी भोगोंमें मनको मत लगावो, ऐसी शिक्षा समीप आये हुये विवेकीमित्रको देतेहैं ॥ ३० ॥ नाना प्रकारके विभव (आभूषण वस्त्रादि) से रमणीय, विलासस्थानमें प्राप्त स्त्रियोंमें स्नेहरहित, उनको सम्मुख स्थित अपने नाशकेही समान देखते हैं ॥ ३१ ॥ हमने अपनीआयु परिश्रमविना परमपदकी प्राप्तिसे वर्जित संसारकी चेष्टाओंसे व्यर्थ विताया ऐसा स्पष्ट और मधुर शब्दोंसे वार २ गान करतेहैं ॥३२॥

सम्राड् भवेति पार्श्वस्थं वदंतमनुजीविनिम् ॥ प्रलपंतमिवोन्मत्तं हसत्यन्यमना मुनिः ॥ ३३ ॥ न प्रोक्तमाकर्णयति ईक्षते न पुरोगतम् ॥ करोत्यवज्ञां सर्वत्र सुसमेत्यापि वस्तुनि ॥ ३४ ॥ अप्याकाशसरोजिन्या अप्याकाशमहावने ॥ इत्थमेतन्मन इति विस्मयोऽस्य न जायते ॥ ३५ ॥ कांता-मध्यगतस्यापि मनोऽस्य मदनेषवः ॥ न भेदयंति दुर्भेद्यं धारा इव महोपलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो कोई निकट स्थित अनुचर यह कहता है कि आप सम्राट्[2] हों उसके उन्मत्तके समान कहनेपर दूसरी ओर चित्त करके हँस देते हैं॥ ३३ ॥ न किसीकी सुनते हैं न किसीकी ओर देखतेहैं सब प्रकारसे उत्तमवस्तु पाकरभी उपेक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे आकाशरूपी महाजंगलमें आकाशरूप कैमलिनी हो ऐसाही इनका मन है इसीसे इनको विस्मय नहींहोता ॥ ३५ ॥ जैसे वृष्टिकी धारा बडेभारी पाषाणको तोड नहींसक्ती, ऐसेही उत्तमस्त्रियोंके मध्य प्राप्त होनेपरभी उनके दुर्भेद मनको कामदेवके बाण भेदन नहींकरसक्ते ॥ ३६ ॥

आपदामेकमावासमभिवाछसि किं धनम् ॥ अनुशिष्यति सर्वस्वमर्थिने संप्रयच्छति ॥ ३७ ॥ इयमापदियं संपदित्येवं कल्पनामयः ॥ मनसोभ्युदितो मोह इति श्लोकान्प्रगायति ॥ ३८ ॥ हा हतोऽहमनाथोऽहमित्याक्रंदपरोऽपि सन् ॥ न जनो याति वैराग्यं चित्रमित्येव वक्त्यसौ ॥ ३९ ॥ रघुकाननशालेन रामेण रिपुघातिना ॥ भृशमित्थं स्थितेनैव वयं खेदमुपागताः ॥ ४० ॥

अर्थ—विपत्तियोंका मुख्यस्थान ऐसे धनको क्यों चाहताहै, ऐसी शिक्षा देकर याचकको सर्वस्व[4] देतेहैं ॥ ३७ ॥ यह संपत्ति, यह विपत्ति, यह सब कल्पनामय यह जगत् मनसे उठा हुआ भ्रममात्र है ऐसे श्लोकोंको पढते हैं ॥ ३८ ॥ मैं मारागया, मैं अनाथ हूं ऐसा रोताहुआ मनुष्यभी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता यह आश्चर्य है, ऐसा ये कहा करतेहैं ॥ ३९ ॥ रघुवंशरूपी वनमें शालवृक्षके समान शत्रुघाती रामचन्द्रकी वार २ ऐसी स्थितिसे हम लोग खेदित होगये हैं ॥ ४० ॥

न विद्मः किं महाबाहो तस्य तादृशचेतसः ॥ कुर्मः कमलपत्राक्ष गतिरत्र हि नो भवान् ॥ ४१ ॥ राजानमथवा विप्रमुपदेष्टारमग्रतः ॥ हसत्यज्ञमिवाव्यग्रः सोऽवधीरयति प्रभो ॥ ४२ ॥ यदेवेदमिदं स्फारं जगन्नामयदुत्थितम् ॥ नैतद्वस्तु न चैवाहमिति निर्णीय संस्थितः ॥ ४३ ॥ नारौ नात्मनि नो मित्रे न राज्ये न च मातरि ॥ न संपदा न विपदा तस्यास्था न विभो बहिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र ! हे महाबाहो ! ऐसे चित्तवाले रामचन्द्रजीके शोक दूर करनेके लिये हमलोग क्या करें ? यह हम नहींजानते, आपही हमारी शरण हैं ॥४१॥ हे प्रभो ! कोई राज्यनीति सिखानेवाला राजा अथवा कोई उपदेश देनेवाला ब्राह्मण जाय तो उसको अज्ञानी समझके स्वयं धैर्यवान् होके हँसते हैं और उसका कथन न सुननेसे अपमानसा करते हैं ॥ ४२ ॥ जो यह विस्ताररूप जगत् है यह सत् वस्तु नहींहै; और जो बुद्धिगम्य मैं हूं वहभी सद्वस्तु नहींहै ऐसा निर्णय करके स्थितहैं ॥ ४३ ॥ न शत्रुमें, न आत्मामें, न मित्रमें, न राज्यमें, न मातामें, न सम्पत्तिमें, और न विपत्तिमें, किसीमें उनकी आस्था (विश्वास) नहीं है ॥ ४४ ॥

---

(१) अविवेकीको शिक्षा देना व्यर्थ जायगा इसलिये केवल विवेकीकोही देते हैं ॥ (२) सम्यक् प्रकाशरूपसे जो शोभित हो ऐसा जो परमात्माहै उस सम्राट्की ओर चित्तको लगाते हैं, न कि जिसने राजसूय यज्ञ किया हो और मण्डलका ईश्वर जो सम्राट् उसकी ओर ॥ (३) आकाशके जंगलमें आकाशकी कमलिनी यह असम्भवहै क्योंकि आकाशका जंगल और उसमें कमलिनी यह अत्यंत असम्भव है ॥ (४) जो कुछ आभूषण वस्त्रादि पासमें रहताहै या घरमें मिलताहै वह सब दे देतेहैं ॥

निरस्तास्थो निराशोऽसौ निरीहोऽसौ निरास्पदः ॥ न मूढो न च मुक्तोऽसौ तेन तप्यामहे भृशम् ॥ ४५ ॥ किं धनेन किमंबाभिः किं राज्येन किमीहया ॥ इति निश्चयवानंतः प्राणत्यागपरः स्थितः ॥ ४६ ॥ भोगेऽप्यायुषि राज्येषु मित्रे पितरि मातरि ॥ परमुद्वेगमायातश्चातकोऽवग्रहे यथा ॥ ४७ ॥ इति लोके समायातां शाखाप्रसरशालिनीम् ॥ आपत्तामलमुद्धर्तुं समुदेतु दयापरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—ये आस्था, आशा, इच्छा, और आत्मविश्रान्ति, इनसे शून्य हैं, न तो मूढही हैं और न मुक्तही हैं इसलिये हम लोगोंको सन्ताप है ॥ ४५ ॥ क्या धनसे होताहै? क्या माताओंसे होताहै? क्या राज्यसे होताहै क्या इच्छासे होताहै? ऐसा निश्चय किये प्राणत्यागनेपर तैय्यारहैं ॥ ४६ ॥ भोगसे, आयुसे, राज्यसे, मित्रसे, पितासे और मातासे, ऐसे व्याकुल होरहेहैं जैसे वृष्टिके अभावसे चातक ॥ ४७ ॥ हे राजन्! आप दयामें तत्पर होके पुत्रके ऊपर आई हुई, शाखाके विस्तारसे लहलहाती हुई जो आपत्तिरूप लता है उसको जडसे उखाडनेके अर्थ उद्यत हों ॥ ४८ ॥

तस्य तादृक्स्वभावस्य समग्रविभवान्वितम् ॥ संसारजालमाभोगि प्रभो प्रतिविषायते ॥४९॥ इदृशः स्यान्महासत्वः क इवास्मिन्महीतले ॥ प्रकृते व्यवहारे तं यो निवेशयितुं क्षमः ॥ ५० ॥ मनसि मो- हमपास्य महामनः सकलमार्तितमः किल साधुताम् ॥ सफलतां नयतीह तमोहरन्दिनकरो भु- भास्करतामिव ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवविषादो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—हे प्रभो! वैराग्ययुक्त स्वभाववाले रामचन्द्रजीको सम्पूर्णविभवसहित जो बनावटी वेष धारणाकिये ... यह संसारजालहै यह विषके समान भान होताहै ॥ ४९ ॥ इस संसारमें ऐसा महाबली कौन समर्थ है? जो रामचन्द्रजीको पुनः संसारके व्यवहारमें लगावे ॥ ५० ॥ जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करतेहुये अपनी भास्करता सफल करते हैं, ऐसेही वह महात्मा इस संसारमें कौन हैं जो दुःखरूपी अन्धकारको रामचन्द्रजीके मनसे दूरकरके अपने उपदेश सामर्थ्यको सफल करे ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० भा० वैराग्यप्रकरणे राघवविषादोनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

विश्वामित्रकी आज्ञासे सभाके मध्यमें लायेहुये रामचन्द्रजीकी मानसी व्यथाके मूलकारणका प्रश्न और उनको धैर्य देना इस ११ वें सर्गमें वर्णन कियाहै.

श्रीविश्वामित्र उवाच ॥ एवं चेत्तन्महाप्राज्ञा भवंतो रघुनंदनम् ॥ इहानयंतु त्वरिता हरिणं हरिणा इव ॥ १ ॥ एष मोहो रघुपतेर्नापद्भ्यो न च रागतः ॥ विवेकवैराग्यवतो बोध एव महोदयः ॥ २ ॥ इहायातु क्षणाद्राम इह चैव वयं क्षणात् ॥ मोहं तस्यापनेष्यामो मारुतोऽद्रेर्घनं यथा ॥ ३ ॥ एत- स्मिन्मार्जिते युक्त्या मोहे स रघुनंदनः ॥ विश्रांतिमेष्यति पदे तस्मिन्वयमिवोत्तमे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीविश्वामित्रजी बोले—यदि ऐसा है तो परीक्षामें कुशल महाबुद्धिमान् आपलोग, जैसे यूथपतिमृगको हरिण लातेहैं वैसेही शीघ्र रघुनन्दनको यहां लाओ ॥ १ ॥ यह रामजीका मोहन आपत्तियोंसे है और न प्रीतिसे है, किन्तु यह विवेकी और वैराग्यवान् रामजीका महोदय बोधही है ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी यहां आवैं हम उनके मोहको शीघ्र ऐसे दूर करेंगे जैसे वायु मेघको पर्वतसे दूर करता है ॥ ३ ॥ युक्तिपूर्वक इस मोहको हटानेपर रामजी उस उत्तमपद (आत्मामें) में हमारेसमान विश्रान्तिको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

सत्यतां मुदितां प्रज्ञां विश्रांतिमपतापताम् ॥ पीनतां वरवर्णत्वं पीतामृत इवैष्यति ॥ ५ ॥ निजां च प्रकृतामेव व्यवहारपरंपराम् ॥ परिपूर्णमना मान्य आचरिष्यत्यखण्डितम् ॥६॥ भविष्यति महासत्त्वो ज्ञातलोकपरावरः ॥ सुखदुःखदशाहीनः समलोष्टाश्मकांचनः ॥७॥ इत्युक्ते मुनिनाथेन राजा संपूर्ण- मानसः ॥ प्राहिणोद्राममानेतुं भूयो दूतपरंपराम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सत्यताको, प्रसन्नताको, अपरिच्छिन्न ज्ञानरूपताको, विश्रान्तिको, शान्तिको शरीरमें स्थूलता, और सौंदर्यताको अमृतपीनेवालेके समान प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ और वही अपनी सदाकी व्यवहारपरम्पराको, प्रसन्न चित्त मा-

ननीय रामचन्द्रजी अखण्डित रूपसे पालन करेंगे ॥ ६ ॥ संसारके कारण और कार्यत्वको जानके महासत्व (मननसे दृढज्ञानी) सुख और दुःखकी दशासे रहित पाषाण और सोनेमें सम दृष्टि होजायगे ॥ ७ ॥ मुनियोंके नाथ विश्वामित्रके ऐसे कहनेपर प्रसन्नमन राजाने पुनः रामजीको बुलानेको दूतोंको भेजा ॥ ८ ॥

एतावताथ कालेन रामो निजगृहासनात् ॥ पितुः सकाशमागंतुमुत्थितोऽर्क इवाचलात् ॥ ९ ॥ वृतः कतिपयैर्भृत्यैर्भ्रातृभ्यां च जगाम ह ॥ तत्पुण्यं स्वपितुः स्थानं स्वर्गं सुरपतेरिव ॥ १० ॥ दूरादेव ददर्शासौ रामो दशरथं तदा ॥ वृतं राजसमूहेन देवौघेनेव वासवम् ॥ ११ ॥ वसिष्ठविश्वामित्राभ्यां सेवितं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञेन मंत्रिवृंदेन मालितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस बीचमें रामचन्द्रजी अपने गृहसे पिताके निकट आनेको उदयाचलसे सूर्यके समान उठे ॥ ९ ॥ कुछ भृत्य और दोनोभाइयोंके साथ, इन्द्रके स्वर्गके समान उस पवित्र अपने पिताके स्थानमें गये ॥ १० ॥ जैसे देवताओंके समूहसे इन्द्र घिरे हों ऐसेही राजाओंके समूहसे घिरेहुये अपने पिता राजा दशरथको रामचन्द्रजीने दूरसेही देखा॥ ११॥ [illegible]रथजी दोनोंओर वसिष्ठ और विश्वामित्रसे युक्तहैं, और सबशास्त्रोंके अर्थोंका विस्तारकरनेवाले और जा-[illegible]ले ऐसे मंत्रियोंके समूहसे घिरे हैं ॥ १२ ॥

[illegible]रुचामरहस्ताभिः कांताभिः समुपासितम् ॥ ककुभिरिव मूर्ताभिः संस्थिताभिर्यथोचितम् ॥ १३ ॥ [illegible]सिष्ठविश्वामित्राद्यास्तथा दशरथादयः ॥ ददृशू राघवं दूरादुपायांतं गुहोपमम् ॥ १४ ॥ सत्त्वाव-[illegible]ध्यगर्भेण शैत्येनेव हिमाचलम् ॥ श्रितं सकलसेव्येन गंभीरेण स्फुटेन च ॥ १५ ॥ सौम्यं समं शुभाकारं विनयोदारमानसम् ॥ कांतोपशांतवपुषं परस्यार्थस्य भाजनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्तिमान् यथोचित स्थित दिशाओंके समान उत्तमचमर हाथमें लिये सुन्दरस्त्रियोंसे राजा दशरथ सेवितहैं ॥ १३ ॥ वसिष्ठविश्वामित्रादि ऋषि तथा दशरथादिराजाओंने दूरसेही स्वामीकार्तिकके समान आतेहुये रामचन्द्रजीको देखा ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी विवेक और शान्ति अभ्यन्तरमें होनेसे, सम्पूर्णजीवोंसे सेव्य जो शीतता और स्फुट स्वच्छ गम्भीरता है उससे आश्रित हिमाचलके समान थे ॥ १५ ॥ प्रियदर्शन, बराबर सुन्दरआकारवाले विनीत और उदारचित्त मनोहर और शान्त शरीर धारणकिये परमपुरुषार्थ (मुक्ति)के पात्र थे ॥ १६ ॥

समुद्यद्यौवनारंभं वृद्धोपशमशोभनम् ॥ अनुद्विग्नमनानंदं पूर्णप्रायमनोरथम् ॥ १७ ॥ विचारितजगद्यात्रं पवित्रगुणगोचरम् ॥ महासत्त्वैकलोभेन गुणैरिव समाश्रितम् ॥ १८ ॥ उदारमार्यमापूर्णमंतःकरणकोटरम् ॥ अविक्षुभितया वृत्त्या दर्शयंतमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ एवं गुणगणाकीर्णो दूरादेव रघुद्वहः ॥ परिमेयस्मिताच्छाच्छस्वहारांबरपल्लवः ॥ २० ॥

अर्थ—उससमय उनकी यौवनलक्ष्मी उत्तमरीतिसे उदयहोरहीथी और वृद्धके समान शान्तिसे शोभायमान व्याकुलताशून्य अप्राप्तपरमानन्द पूर्णमनोरथवाले सदृश थे ॥ १७ ॥ संसारकी दशाको विचारनेवाले पवित्रगुणोंके पात्र महासत्त्व (विवेक) के लोभसे सम्पूर्णगुणोंसे समाश्रित ॥ १८ ॥ उदार, श्रेष्ठ, किंचित्, पूर्ण, अन्तःकरणयुक्त अव्याकुल वृत्तिसे सर्वोत्तम मनोरथ देखलानेवालेथे ॥ १९ ॥ इसप्रकारके गुणोंसे पूर्ण और उचितस्मित (मुसाकिरान्) के समान अतिस्वच्छ हार और वस्त्र धारणकियेहुये रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ थे ॥ २० ॥

प्रणनाम चलच्चारुचूडामणिमरीचिना ॥ शिरसा वसुधाकंपलोलदेवाचलश्रिया ॥ २१ ॥ एवं मुनींद्रे ब्रुवति पितुः पादाभिवंदनम ॥ कर्तुमभ्याजगामाथ रामः कमललोचनः ॥ २२ ॥ प्रथमं पितरं पश्चान्मुनी मान्यैकमानितौ ॥ ततो विप्रांस्ततोबंधूस्ततो गुरुगणान्सुहृत् ॥ २३ ॥ जग्राह च ततो दृष्ट्या मनाङ्मूर्ध्ना तथा गिरा ॥ राजलोकेन विहितां तां प्रणामपरंपराम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उनके उत्तमचूडामणिसे प्रकाश निकलरहाथा श्रेष्ठगुणोंसे युक्त और पृथिवीके कम्पसे चंचल सुमेरुके समान शोभायमान रामचन्द्रजीने शिरसे पिताको दूरसे प्रणाम किया ॥ २१ ॥ ऐसा मुनीन्द्र जब कहरहेथे उस समय कमलनेत्र रामचन्द्रजी पिताके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये समीप आये ॥२२ ॥ प्रथम पिताको अनन्तर सबके मुख्य माननीय दोनोंमुनियोंको, उसके अनन्तर ब्राह्मणोंको और उसके अनन्तर बन्धुओंको बडेलोगोंको शुद्धचित्तवाले रामजीने प्रणाम किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर राजालोगोंके प्रणामोंको किंचित् नम्रशिर और वाणीसे ग्रहण किया ॥२४॥

विहिताशीर्मुनिभ्यां तु रामः सुसममानसः ॥ आससाद पितुः पुण्यं समीपं सुरसुंदरः ॥ २५ ॥ पादाभिवंदनपरं तमथासौ महीपतिः ॥ शिरस्यभ्यालिलिंगाशु चुचुंब च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ शत्रुघ्नं

लक्ष्मणं चैव तथैव परवीरहा ॥ आलिलिंग घनस्नेहो राजहंसोऽब्जे यथा ॥ २७ ॥ उत्संगे पुत्रतिष्ठेति वदत्यथ महीपतौ ॥ भूमौ परिजनास्तीर्णे सोऽशुकेऽथ न्यविक्षत ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुनियोंसे आशीर्वादको ग्रहण करके समानमनवाले देवताओंके समान सुन्दर रामचन्द्रजी पवित्र पिताके निकटस्थानमें बैठगये ॥ २५ ॥ चरणोंमें प्रणाम करनेमें तत्पर रामचन्द्रको शिरसे आलिंगन करके पिताने वार २ चुम्बन किया ॥ २६ ॥ शत्रुओंके हननमें समर्थ राजादशरथने, जिसप्रकार राजहंस कमलमें स्नेहयुक्त होताहै इसीप्रकार शत्रुघ्न और लक्ष्मणकोभी रामचन्द्रके सदृश आलिंगन और चुम्बन किया ॥ २७ ॥ हे पुत्र! गोदमें बैठो ऐसा राजाके कहनेपर भूमिपर नोकरोंके बिछाये बिछौनेपर दृष्टिलगारहे ॥ २८ ॥

राजोवाच ॥ ॥ पुत्र प्राप्तविवेकस्त्वं कल्याणानां च भाजनम् ॥ जडवज्जीर्णया बुद्धया खेदायात्मा न दीयताम् ॥ २९ ॥ वृद्धविप्रगुरुप्रोक्तं त्वादृशेनानुतिष्ठता ॥ पदमासाद्यते पुण्यं न मोहमनुधावता ॥ ३० ॥ तावदेवापदो दूरे तिष्ठंति परिपेलवाः ॥ यावदेव न मोहस्य प्रसरः पुत्र दीयते ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ राजपुत्र महाबाहो शूरस्त्वं विजितास्त्वया ॥ दुरुच्छेदा दुरारंभा अप्यमी विषयारयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पुत्र! तुम विवेकी हो और कल्याणोंके पात्र हो मूर्खके समान शिथिल बुद्धिसे आत्माको दुःख न दो ॥ २९ ॥ वृद्ध (पितादि) ब्राह्मण और गुरुओंके कथनको करनेवाला तुमारे समान मनुष्य पवित्र पदको पाता है न कि मोहग्रस्त ॥ ३० ॥ हे पुत्र! जबतक मोहको आनेको मार्ग नहीं दियाजाता तबतक आपत्ति दूर रहती हैं ॥ ३१ ॥ हे राजपुत्र! हे महाबाहो! तुमही बडे शूर हो, क्योंकि तुमने कठिनतासे छेदन करनेके योग्य और भयंकर परिणामवाले विषयोंकोभी जीतलिया ॥ ३२ ॥

किमतज्ज्ञ इवाज्ञानां योग्ये व्यामोहसागरे ॥ विनिमज्जसि कल्लोलबहुले जाड्यशालिनि ॥ ३३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चलन्नीलोत्पलव्यूहसमलोचनलोलताम् ॥ ब्रूहि चेतःकृतां त्यक्त्वा हेतुना केन मुह्यसि ॥ ३४ ॥ किन्निष्ठाः के च ते केन कियंतः कारणेन ते ॥ आधयः प्रविलुंपंति मनोगेहमिवाखवः ॥ ३५ ॥ मन्ये नानुचितानां त्वमाधीनां पदमुत्तमम् ॥ आपत्सु चाप्रयोज्यंते निहीनाअपि चाधयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—विक्षेपरूपी तरंगोंसे व्याप्त, जडतासे शोभित, अज्ञानियोंके योग्य व्यामोहरूपी समुद्रमें अज्ञानीके सदृश तुम क्यों डूब रहेहो ॥ ३३ ॥ विश्वामित्रजी बोले—चलायमान कमलसमूहके समान व्याकुलचित्तसे फेंकीहुई नेत्रोंकी चंचलताको त्यागकर कहो तुमारे मोहका कारण क्या है? ॥ ३४ ॥ किसस्वभाववाली, कौन, कितनी, किस कारणसे मानसी व्यथा तुमारेमनको, मूषक जैसे गृहको खोदके नष्टकरते हैं ऐसे नष्ट कररही हैं ॥ ३५ ॥ अनुचित मानसीपीडाके तुम उत्तमस्थान नहींहो विपत्तियां हटानेके अर्थ तुमको कुछ नहींकर्त्तव्यहै क्योंकि ये विपत्तियां स्वतः वा पिताकेद्वारा निरस्त हैं ॥ ३६ ॥

यथाभिमतमाशु त्वं ब्रूहि प्राप्स्यसि चानघ ॥ सर्वमेव पुनर्येन भेत्स्यंते त्वां तु नाधयः ॥ ३७ ॥ इत्युक्तमस्य सुमते रघुवंशकेतुराकर्ण्य वाक्यमुचितार्थविलासगर्भम् ॥ तत्याज खेदमभिगर्जति वारिवाहे बर्ही यथा त्वनुमिताभिमतार्थसिद्धिः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे राघवसमाश्वासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे अनघ! तुमको जो अभीष्टहै वही शीघ्र कहो सब कुछ तुमको मिलेगा, जिससे फिर कभी तुमको मानसीव्यथा भेदन नकरेंगी ॥ ३७ ॥ इसप्रकार सुबुद्धिमान् इसमुनिके उचित और तात्पर्यसहितवाक्यको रघुवंशके ध्वजरूपरामचन्द्रजीने श्रवणकरके खेदको ऐसे त्यागदिया जैसे मेघकी गर्जना सुननेपर मोर अपनी इष्टसिद्धिको अनुमानकरके शोकको त्यागता है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे राघवसमाश्वासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

---

(१) अज्ञान आनेपर तो मनुष्य सब आपत्तियोंका घर होजाताहै ॥ (२) जिसने अपने इंद्रियरूपशत्रूनको जीतलिये हैं वही सबसे बडा वीरहै ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

भोगादिकोंकी दुःखरूपता, विषयादिककी असत्यता और सम्पत्तियोंकी अनर्थकारिता इत्यादि इस १२ वें सर्गमें वर्णन कियागया है.

श्रीवाल्मीकिरुवाच॥ ॥ इति पृष्टो मुनीन्द्रेण समाश्वस्य च राघवः॥ उवाच वचनं चारु परिपूर्णार्थमंथरम् ॥१॥ श्रीराम उवाच॥ ॥ भगवन् भवता पृष्टो यथावदधुनाखिलम् ॥ कथयाम्यहमज्ञोऽपि को लंघयति सद्वचः ॥ २ ॥ अहं तावदयं जातो निजेऽस्मिन्पितृसद्मनि ॥ क्रमेण वृद्धिं संप्राप्तः प्राप्तविद्यश्च संस्थितः ॥३॥ ततः सदाचारपरो भूत्वाहं मुनिनायक॥ विहृतस्तीर्थयात्रार्थमुर्वीमंबुधिमेखलाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-इसप्रकार मुनींद्रके पूछनेपर रामचन्द्रजी भलीभांति धैर्यको पाकर, उत्तम अर्थसे परिपूर्ण गम्भीरतायुक्त वचन बोले ॥ १ ॥ हे भगवन्! यद्यपि मैं अज्ञानी हूं परंतु इससमय आपके पूछनेपर सब कुछ कहूंगा, क्योंकि सज्जनोंके वाक्यको कौन उल्लंघन करसक्ता है ॥ २ ॥ मैं यहां पिताके गृहमें उत्पन्नहुआ, क्रमसे बड़ा और विद्या प्राप्तकी ॥ ३ ॥ हे मुनिनायक! इसके अनन्तर सज्जनोंके आचारमें तत्परहोके, तीर्थयात्राकेलिये चारोंसमुद्रमेखलावाली पृथिवीपर बिचरा ॥ ४ ॥

एतावताथ कालेन संसारास्थामिमां हरन् ॥ समुद्भूतो मनसि मे विचारः सोऽयमीदृशः ॥ ५ ॥ विवेकेन परीतात्मा तेनाहं तदनुस्वयम् ॥ भोगनीरसया बुद्ध्या प्रविचारितवानिदम् ॥ किं नामेदं बत सुखं येयं संसारसंततिः ॥ जायते मृतये लोको म्रियते जननाय च ॥ ७ ॥ अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचरचेष्टिताः ॥ आपदां पतयः पापा भावा विभवभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—इतनेसमयमें इससंसारकी दशाको देख मेरेमनमें यह विचार उत्पन्नहुआ ॥ ५ ॥ उस (तीर्थयात्रा) के अनन्तर स्वयं विवेकपूर्ण होके संसारके भोगरससे शून्यबुद्धिसे मैंने यह विचारा है ॥ ६ ॥ यह संसारका जो विस्तारहै यह क्या सुखदायकहै? (अर्थात् कुछनहीं) कि प्राणी मरनेके अर्थ उत्पन्नहोताहै होनेकेलिये मरता है ॥ ७ ॥ संसारकी जितनी चेष्टा है वे सब चंचलहैं विभवकालमें स्थित जितने विषय हैं वे सब आपत्तिके मूल और पापजनक हैं ॥ ८ ॥

अयःशलाकासदृशाः परस्परमसंगिनः ॥ श्लिष्यंते केवलं भावा मनःकल्पनया स्वया ॥ ९॥ मनःसमायत्तमिदं जगदाभोगि दृश्यते ॥ मनश्चासदिवाभाति केन स्म परिमोहिताः ॥ १० ॥ असतैव वयं कष्टं विकृष्टा मूढबुद्धयः ॥ मृगतृष्णांभसा दूरे वने मुग्धमृगा इव ॥ ११ ॥ न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः ॥ बत मूढा वयं सर्वे जानाना अपि शांबरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जितनेपदार्थ और उनसे उत्पन्न जो विषयहैं सब लोहेकीशलाकाके समान एकदूसरेसे अलग अलग हैं केवल अपने मनकी कल्पनासेही मिलायेजाते हैं ॥ ९ ॥ कृत्रिमभोगका रूप धारणकियेहुये यह सम्पूर्णजगत् मनके आधीनहैं, और वहमनभी असत्के समान भासताहै (आश्चर्यहै) हमलोग किससे मोहित हुये हैं ॥ १० ॥ अत्यन्तखेदकी बातहै, कि हम थोडेकालतक रहनेवालेजगत्के सुखसे ऐसे खिंचे हैं, जैसे मृगतृष्णाके जलसे दूर वनमें मूढमृग खिंचते हैं ॥ ११ ॥ यद्यपि किसीने हमको बेचानहीं तथापि बिकेहुयेके समान स्थितहैं, खेदकी बातहै कि यह माया है ऐसा जानतेहुयेभी हम मूढ होगये हैं ॥ १२ ॥

किमेतेषु प्रपंचेषु भोगा नाम सुदुर्भगाः ॥ मुधैव हि वयं मोहात्संस्थिता बद्धभावनाः ॥ १३ ॥ अज्ञातं बहुकालेन व्यर्थमेव वयं वने ॥ मोहे निपतिता मुग्धाः श्वभ्रे मुग्धा मृगा इव ॥ १४ ॥ किं मे राज्येन किं भोगैः कोऽहं किमिदमागतम् ॥ यन्मिथ्यैवास्तु तन्मिथ्या कस्य नाम किमागतम् ॥ १५ ॥ एवं विमृशतो ब्रह्मन्सर्वेष्वेव ततो मम ॥ भावेष्वरतिरायाता पथिकस्य मरुष्विव ॥ १६ ॥

अर्थ—संसारके प्रपंचमें अभागे विषयसुख क्याहै? अर्थात् दुःखबीजही हैं हम मिथ्याभ्रममें बद्धहैं ॥ १३ ॥ जैसे वनकेगढेमें गिरे मूढमृग बहुतकालमें यह जानेकि हम गिरेहैं, ऐसेही बहुतकालमें हमने जानाकि मोहमें फसे ॥ १४ ॥ मुझे राज्यसे क्या? भोगसे क्या? मैं कौन हूं? इससंसारका क्या रूपहै? जो मिथ्या है वह मिथ्याही रहो,

---

(१) पूर्वोक्त नम्रताके साथ मुनिको वशमें करके अपने वृत्तान्तके बहानेसे धर्मानुष्ठानजनित चित्तकी शुद्धिसे विवेक और वैराग्यसे जो कुछ अपना विचार हुआ उसको वर्णनकरतेहैं ॥ (२) हरिण उष्णकालमें रेतीको देखके जलकी भ्रांतिसे उसकी ओर दौडते हैं और जल न मिलनेसे दुःखहीको प्राप्तहोतेहैं ऐसेही दुःखरूप संसारमें सुखकी भ्रांतिसे सब मोहितहैं ॥

उसके मिथ्याहोनेसे किसको क्या मिला? ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार विचारकरतेहुये मुझे पदार्थोंमें ऐसी अरुचि होगई जैसे पथिकको मरुदेशमें ॥ १६ ॥

तदेतद्भगवन्ब्रूहि किमिदं परिणश्यति ॥ किमिदं जायते भूयः किमिदं परिवर्द्धते ॥ १७ ॥ जरामरणमापच्च जननं संपदस्तथा ॥ आविर्भावतिरोभावैर्विवर्द्धते पुनः पुनः ॥ १८ ॥ भोगैस्तैरेव तैरेव तुच्छैर्वयममी किल ॥ पश्य जर्जरतां नीता वातैरिव गिरिद्रुमाः ॥ १९ ॥ अचेतना इव जनाः पवनैः प्राणनामभिः ॥ ध्वनन्तः संस्थिता व्यर्थं यथा कीचकवेणवः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन्! यह जगत् वा जीव क्या नाशको प्राप्तहोताहै? और नष्टहोके इसका क्या? यह पुनः उत्पन्नहोताहै उत्पन्नहोके क्या यह बढताहै? ॥ १७ ॥ वृद्धावस्था, मृत्यु, जन्म, आपत्ति, और सम्पत्ति, ये सब आविर्भाव और तिरोभावसे पुनः २ वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं ॥ १८ ॥ देखो इनहीतुच्छभोगोंसे विषयलम्पट हम ऐसे जर्जरदशाको प्राप्तहोगयेहैं जैसे वायुसे पर्वतपरके वृक्ष ॥ १९ ॥ प्राणरूपी पवनसे मनुष्य अचेतनकेसमान ऐसेशब्द करतेहैं जैसे वायुसे बांसे ॥ २० ॥

शाम्यतीदं कथं दुःखमिति तप्तोऽस्मि चिंतया ॥ जरद्द्रुम इवोग्रेण कोटरस्थेन वन्हिना ॥ २१ ॥ संसारदुःखपाषाणनीरंध्रहृदयोऽप्यहम् ॥ निजलोकभयादेव गलद्बाष्पं न रोदिमि ॥ २२ ॥ शून्या मन्मुखवृत्तीस्ताः शुष्करोदननीरसाः ॥ विवेक एव हृत्संस्थो ममैकांतेषु पश्यति ॥ २३ ॥ भृशं मुह्यामि संस्मृत्य भावाभावमयीं स्थितिम् ॥ दारिद्र्येणेव सुभगो दूरे संसारचेष्टया ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अपनीकोटरस्थअग्निसे प्राचीनवृक्ष जलताहै, ऐसेही इससंसारका दुःख कैसे शान्त हो, इस चिन्तारूपअग्निसे मैं भस्म होरहाहूं ॥ २१ ॥ संसारके दुःखोंसे मेरा हृदय निश्छिद्रपाषाणकेतुल्य होगया तोभी अपने इसमित्रादिकोंके भयसे अश्रुसहित नहींरोताँ ॥ २२ ॥ अश्रुसहित रोनेसे नीरस, हर्षशोकसेरहित हमारे भीतरकी वृत्तियोंको एकान्तदेशमें केवल हृदयका विवेकही देखताहै ॥ २३ ॥ जैसे कोई धनीपुरुष दैवेच्छासे दरिद्र होगया हो और वह अपनी पूर्वदशाको स्मरणकरके मोहको प्राप्तहो, ऐसेही इससंसारके प्रियतमपदार्थोंकी भाव और अभावरूपदशाको देखकर अत्यन्त मोहितहोताहूं ॥ २४ ॥

मोहयंति मनोवृत्तिं खंडयंति गुणावलिम् ॥ दुःखजालं प्रयच्छंति विप्रलंभपराः श्रियः ॥२५॥ चिंतानिचयचक्राणि नानन्दाय धनानि मे ॥ संप्रसूतकलत्राणि गृहाण्युग्रापदामिव॥२६॥विविधदोषदशापरिचिंतनैर्विततभंगुरकारणकल्पितैः ॥ मम न निर्वृतिमेति मनो मुने निगडितस्य यथा वनदंतिनः ॥२७॥खलाः काले काले निशि निशितमोहैकमिहिका गता लोके लोके विषयशतचोराः सुचतुराः ॥ प्रवृत्ताः प्रोद्युक्ता दिशि दिशि विवेकैकहरणे रणे शक्तास्तेषां क इव विदुषः प्रोज्झ्य सुभटाः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे प्रथमपरितापो नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—मनुष्यको ठगनेवाली जो सम्पत्तियां हैं वे मनकी वृत्तियोंको मोहलेतीहैं अनेकशुभगुणोंको नाश करदेती हैं और दुःखजालको देतीहैं ॥ २५ ॥ चिंताओंका समूहके चक्ररूपी धन मुझे इसीप्रकार आनन्द नहींदेते जैसे अतिदरिद्रयोंको बहुतकुटुम्बवाले गृह ॥ २६ ॥ संसारके अनेकदोषोंकी और दुर्दशाओंकी चिंतासे तथा देहादिकके कारणोंको सदा नाशवान् समझनेसे मेरा मन ऐसे शान्त नहींहोता जैसे जंगलमें बंधेहुये हाथीका ॥ ॥ २७ ॥ इससंसारमें अज्ञानरूपीरात्रिमें अविचाररूपी कुहिरासे गाढअन्धकार छागया है, उसमें सेकडों विषयरूपीचोर हरएकदिशामें विवेकरूपीरत्न हरनेको सदा उद्योगकरतेहैं उनको रणमें पराजयकरनेको ब्रह्मज्ञानी विद्वानोंके सिवाय कौन वीर समर्थ है ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वा० दे० मो० भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रथमपरितापोनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

---

(१) रामचंद्रजीका आशय यह है कि यह जगत् सत् है वा असत् अथवा सत् असत् विलक्षण या इस देहमें क्या नाशहोताहै क्या उत्पन्न होताहै और क्या बढताहै ॥(२)बांसकेसदृश बुद्धिमानभी अचेतनही हैं ॥ (३)मेरे दुःखसे ये भी रोवेंगे इससे नहीं रोता ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

जो सबमूर्खोंको प्रियहै और सदा भोगरूपी अनर्थोंको देनेवाली है उसलक्ष्मीकी निंदा इस१ ३सर्गमेंकीजायगी.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ इयमस्मिन् स्थितोदारा संसारे परिकल्पिता ॥ श्रीर्मुने परिमोहाय सापि नूनं कदर्थदा ॥ १ ॥ उल्लासबहुलानंतकल्लोलानलमाकुलान् ॥ जडान्प्रवहति स्फारान्प्रावृषीव तरंगिणी ॥२॥ चिंतादुहितरो बह्व्यो भूरिदुर्ललितैधिताः ॥ चंचलाः प्रभवंत्यस्यास्तरंगाः सरितो यथा ॥ ३ ॥ एषाहि पदमेकत्र न निबध्नाति दुर्भगा ॥ दग्धेवानियताचारमितश्चेतश्च धावति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुने! जो इससंसारमें रहनेपर अनेकसुखका कारणहोनेसे उदार मानीगई है वह निंदितअर्थोंको देनेवाली लक्ष्मीभी केवल मोहकेही लिये है ॥ १ ॥ जैसे वर्षाकालमें नदी अनेक बडे २ मलिन तरंगोंको धारणकरती है ऐसेही उत्साहकी अधिकतासे अनेक मनोरथरूपीतरंगवाले मूर्खमनुष्योंको यह वहातीहै ॥ २ ॥ इस लक्ष्मीसे अनेक दुष्टचेष्टाकरनेवाली चिंतारूपीकन्यायें उत्पन्नहोकर ऐसे बढती हैं जैसे नदियोंमें तरंग ॥ ३ ॥ यह अभागिनी एकस्थानमें कभी नहींठहरती किंतु जलीहुई अथवा शास्त्रविरूद्ध आचरणकरनेवाली असतीस्त्रीके समान इधरउधर दौडतीफिरती है ॥ ४ ॥

जनयंती परं दाहं परामृष्टांगिकासती ॥ विनाशमेव धत्तेंतर्दीपलेखेव कज्जलम् ॥५॥ गुणागुणविचारेण विनैव किल पार्श्वगम् ॥ राजप्रकृतिवन्मूढा दुरारूढावलंबते ॥ ६॥ कर्मणा तेन तेनैषा विस्तारमनुगच्छति ॥ दोषाशीविषवेगस्य यत्क्षीरं विस्तरायते ॥ ७ ॥ तावच्छीतमृदुस्पर्शः परे स्वे च जने जनः ॥ वात्ययेव हिमं यावच्छ्रिया न परुषीकृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके शरीरको कहींसे छुओं, अर्थात् व्ययकीजाय बाहरलीजाय तो अत्यन्त दाह उत्पन्न करती है, और अपने भीतर नाशकोही ऐसे धारणकरती है, जैसे दीपशिखा छूनेसे दाह और कज्जलको ॥ ५ ॥ दुःखसे उपार्जितभी यह लक्ष्मी राजाओंकी प्रकृतिके समान गुणवान् और मूर्खका कुछभी विचार नकरके जो समीपरहताहै उसीसे लिपटजाती है ॥ ६ ॥ जिनकर्मोंका फलरूपीदूध दोषरूपीसर्पके विषके बढानेका हेतु होताहै उन्हीं २ कर्मोंसे यह लक्ष्मी बढती है ॥ ७ ॥ यहमनुष्य दयास्नेहादिद्वारा तभीतक सुशील और कोमल रहताहै जबतक लक्ष्मी इसको उष्ण और कठोर ऐसे नहींकरती जैसे वायु बर्फको ॥ ८ ॥

प्राज्ञाः शूराः कृतज्ञाश्च पेशला मृदवश्च ये ॥ पांसुमुष्टयेव मणयः श्रिया ते मलिनीकृताः ॥ ९ ॥ न श्रीः सुखाय भगवन्दुःखायैव हि वर्द्धते ॥ गुप्ता विनाशनं धत्ते मृतिं विषलता यथा ॥ १० ॥ श्रीमानजननिंद्यश्च शूरश्चाप्यविकत्थनः ॥ समदृष्टिः प्रभुश्चैव दुर्लभाः पुरुषास्त्रयः ॥ ११ ॥ एषा हि विषमा दुःखभोगिनां गहना गुहा ॥ घनमोहगजेंद्राणां विंध्यशैलमहातटी ॥ १२ ॥

अर्थ—बडेबुद्धिमान् शूर कृतज्ञ उपकारको माननेवाले सबसे प्रीतिरखनेवाले और कोमलमनुष्योंकोभी यह लक्ष्मी ऐसे मलिन करदेती है जैसे धूलीकी मूठी रत्नोंको ॥ ९ ॥ हे भगवन्! यह लक्ष्मी सुखकेलिये नहीं किंतु दुःखकेलियेही बढती है, यदि रक्षाकरो तो रक्षाकरनेवालेका नाश इसप्रकार धारणकरती है जैसे विषकी लता मृत्युको ॥ १० ॥ श्रीमान् होके निंदारहित हो, शूरहोके अपनी बडाई न करे, प्रभु होके समदृष्टि हो, ये तीनों पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं ॥ ११ ॥ यह श्री महाभयंकर दुःखरूपीसर्पोंकी गहनगुहा, और मोहरूपी गजेन्द्रोंके लिये विन्ध्याचलकी तटी है ॥ १२ ॥

सत्कार्यपद्मरजनी दुःखकैरवचंद्रिका ॥ सुदृष्टिदीपिका वात्या कल्लोलौघतरंगिणी ॥ १३ ॥ संभ्रमाभ्रादिपदवी विषादविषवर्द्धिनी ॥ केदारिका विकल्पानां खेदाय भयभोगिनी ॥ १४ ॥ हिमं वैराग्यवल्लीनां विकारोलूकयामिनी ॥ राहुदंष्ट्रा विवेकेंदोः सौजन्यांभोजचंद्रिका ॥ १५ ॥ इंद्रायुधवदालोलनानारागमनोहरा ॥ लोला तडिदिवोत्पन्नध्वंसिनी च जडाश्रया ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सत्कार्यरूपी कमलोंकेलिये रात्रि है दुःखरूपी कुमुदके लिये चन्द्रकी चांदनी है, और परमार्थ दृष्टिरूपी दीपिकाके लिये महावात्या (आंधी) वा तरंगयुक्त नदी है ॥ १३ ॥ भ्रांति और भयरूपी मेघोंके लिये पूर्वकी वायुहै, विषयरूपीविषको बढानेवाली, विकल्परूपी धान्यके बढनेकी क्यारी, तथा खेद और भयके उत्पन्नकरनेकेलिये

(१) लक्ष्मीकी वृद्धि, युद्ध, जुआ, वाणिज्यादिकर्म्मोसे होतीहै, जिसमें प्रायः पापकी सम्भावना है, और यागदानादि कर्म्मोसे तो घटती है ॥

सर्पिणी है ॥ १४ ॥ वैराग्यरूपीलताके लिये पाला, दुष्टविकाररूपी उल्लूकोंके लिये रात्रि, विवेकरूपीचन्द्रमाकेलिये राहुका दन्त, और सुजनतारूपीकमलकेलिये चांदनी है ॥ १५ ॥ यह इंद्रके धनुषसदृश क्षणभंगुर और नानारंगोंसे मनोहर, बिजलीके समान चंचल और उत्पन्नहोतेही नष्टहोनेवाली तथा प्राय: मूर्खोंहीका आश्रय लेती है ॥ १६ ॥

चापलावजितारण्यनकुलीनकुलीनजा ॥ विप्रलंभनतात्पर्य्यजितोग्रमृगतृष्णिका ॥ १७ ॥ लहरीवैकरूपेण पदं क्षणमकुर्वती ॥ चला दीपशिखेवातिदुर्ज्ञेयगतिगोचरा ॥ १८ ॥ सिंहीव विग्रहव्यग्रकरींद्रकुलपोथिनी ॥ खड्गधारेव शिशिरा तीक्ष्णतीक्ष्णाशयाश्रया ॥ १९ ॥ नानयापहृतार्थिन्या दुराधिपरिलीनया ॥ पश्याम्यभव्यया लक्ष्म्या किंचिद्दुःखादृते सुखम् ॥ २० ॥

अर्थ—दुष्टकुलमें उत्पन्नहोनेवाली अपनीचंचलतासे जंगलकी नेवलीकोभी इसने जीतलिया है, और दूसरोंके ठगनेमें ग्रीष्मऋतुकी मृगतृष्णासेभी आगे बढीहुई है ॥ १७ ॥ तरंगके समान क्षणभरभी एकरूपसे नहींठहरती दीपकी शिखाके समान अत्यन्त चंचलहै, और इसकी गति सर्वथा जानी नहींजाती ॥ १८ ॥ युद्धमें व्याकुल मनुष्यरूपी हाथियोंके कुलको नाशकरनेकेलिये सिंहके समान खड्गधाराके समान तीक्ष्ण और कठोरहृदयवाले मनुष्योंका आश्रयकरनेवाली है ॥ १९ ॥ दूसरेके हरेहुये धनोंसे धनयुक्त और अनेकमानसीदु:खोंसे भरीहुई इसदुष्टलक्ष्मीमें दु:खको छोडके किंचित्भी सुख नहींदीखता ॥ २० ॥

दूरेणोत्सारितोऽलक्ष्म्या पुनरेव तमादरात् ॥ अहो बताश्लिष्यतीव निर्लज्जा दुर्जना सदा ॥२१॥ मनोरमा कर्षति चित्तवृत्तिं कदर्थसाध्या क्षणभंगुरा च ॥ व्यालावलीगात्रविवृत्तदेहा श्वभ्रोत्थिता पुष्पलतेव लक्ष्मीः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनिराकरणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—बडेआश्चर्यकी बात है कि जिसपुरुषको इसकी सौंपती दरिद्राने[1] दूर हटादिया उसीको यह निर्लज्जा और दुष्टा शीघ्र आदरसे आलिंगनकरने लगजाती है ॥ २१ ॥ यहलक्ष्मी स्त्रीके समान मनोहररूप धारणकरके चित्तकी वृत्तियोंको खींचलेती है दुष्टअर्थोंसे साध्य, क्षणभंगुर, सर्पोंकी पंक्तिकेसमान शरीरको लपेटेहुये, और पुराने कूपमें मनोहरपुष्पकी लताके समान दीखपडती है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनिराकरणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस १४ वें सर्गमें मानसिक तथा शारीरिक, रोग तथा वृद्धावस्थाग्रस्त और कामक्रोधादिसे मलिन, मूर्खके जीवन यौवन और आयुकी निंदा कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ आयुः पल्लवकोणाग्रलंबांबुकणभंगुरम् ॥ उन्मत्तमिव संत्यज्य यात्यकांडे शरीरकम् ॥ १ ॥ विषयाशीविषासंगपरिजर्जरचेतसाम् ॥ अप्रौढात्मविवेकानामायुरायासकारणम् ॥ २ ॥ ये तु विज्ञातविज्ञेया विश्रांता वितते पदे ॥ भावाभावसमाश्वासमायुस्तेषां सुखायते॥३॥ वयं परिमिताकारपरिनिष्ठितनिश्चयाः ॥ संसाराभ्रतडित्पुंजे मुने नायुषि निर्वृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-प्राणीकी आयु पल्लवके कोनेके अग्रभागमें लटकतेहुये हिमकणके समान क्षणभंगुर है वह उन्मत्तकीनाई कुसमयमेंही इसशरीरको त्यागकर चलदेती है ॥ १ ॥ जो जन विषयरूपीसर्पोंके संगसे व्याकुलचित्त है और जिनकी आत्माका प्रबलविवेक नहीं है उनका आयु केवल दु:खका कारणहै ॥ २ ॥ जिन्होंने ज्ञेयपदार्थ आत्माको जानलिया है और अनन्तपरमेश्वरके व्यापकपदमें जिनको विश्राम मिलाहै और जिनको लाभ हानि दोनोंमें धैर्य है उनकीही आयु सुखका कारण है ॥ ३ ॥ हे मुने ! हम लोगोंको देहादिमेंही आत्मबुद्धिहै इसीसे संसाररूपी मेघमें बिजलीके समान चंचलआयुमें सुखी नहीं हैं ॥ ४ ॥

---

(१) दरिद्रा और लक्ष्मी दोनों विष्णुभगवान्‌की स्त्री पुराणोंमें मानीगईहैं ॥

युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खंडनं ॥ ग्रथनं च तरंगाणामास्थानायुषि युज्यते ॥ ५ ॥ पेलवं शरदीवाभ्रमस्नेह इव दीपकः ॥ तरंगक इवालोलं गतमेवोपलक्ष्यते ॥ ६ ॥ तरंगं प्रतिबिंबेंदुं ताडित्पुंजं नभोंबुजम् ॥ ग्रहीतुमास्थां बध्नामि न त्वायुषि हतस्थितौ ॥ ७ ॥ अविश्रांतमनाः शून्यमायुराततमीहते ॥ दुःखायैव विमूढोंतर्गर्भमश्वतरी यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—वायुको लपेटलेना, आकाशको तोडदेना, और लहरोंका गूंथना, संभवहै परंतु आयुमें कुछभी विश्वास नहींहै ॥ ५ ॥ यह आयु, शरत्कालके अल्पमेघके समान तैलरहितदीपकके सदृश, और चंचलतरंगोंकीनाई नष्टसी जानपडती है ॥ ६ ॥ जलके तरंगोंमें प्रतिबिम्बितचन्द्रमाको, विद्युत् (विजुली के समूहको, और आकाशके कमलको पकडनेमें विश्वास करसक्ताहूं परंतु चंचलआयुमें नहीं॥७॥सर्वथा तृष्णाकी शान्ति होकर जिसका मन शांतनहीं हुआ है वह मूढ यही चाहताहै कि मेरी आयु बढे परंतु यह इसकी इच्छा ऐसेही दुःखके लिये है जैसे खच्चरीके गर्भ॥८॥

संसारसंसृतावस्यां फेनोऽस्मिन्सर्गसागरे॥कायवल्ल्यांभसो ब्रह्मन् जीवितं मे न रोचते॥९ ॥ प्राप्यं संप्राप्यते येन भूयो येन न शोच्यते ॥ पराया निर्वृतेः स्थानं यत्तज्जीवितमुच्यते ॥ १० ॥ तरवोपि हि जीवंति जीवंति मृगपक्षिणः ॥ स जीवति मनो यस्य मननेन न जीवति ॥ ११ ॥ जातास्त एव जगति जंतवः साधुजीविताः ॥ ये पुनर्नेह जायंते शेषा जरठगर्दभाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इससृष्टिरूपसागरमें जो संसाररूपी चक्र है उसमें शरीररूपीलता जलके फेनके समान नाशवान् है इससे इसमें जीवन मुझे अच्छानहींलगता ॥ ९ ॥ अवश्यप्राप्तकरनेके योग्य जो जिवन्मुक्तिका सुख जो परमशांतिका स्थान है वह जिसको मिलगया वह पुनः नहीं शोचता, और उसीका जीवन सफल है ॥ १० ॥ वृक्षभी जीते हैं मृग और पक्षीभी जीते हैं परंतु सच्चाजीना उसीका है जिसका मन वासनाके क्षयहोनेसे नष्टहोगयाहै ॥ ११ ॥ इसजगत्में उन्हीका उत्पन्नहोना सफलहै और उन्हीका जीवन प्रशंसनीय है, जो इसजगत्में पुनः नहीं उत्पन्नहोते, शेषप्राणियोंका जीवन गर्दभके समान है ॥ १२ ॥

भारो विवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः ॥ अशांतस्य मनो भारो भारोऽनात्मविदो वपुः ॥ १३॥ रूपमायुर्मनोबुद्धिरहंकारस्तथेहितम् ॥ भारो भारधरस्येव सर्वं दुःखाय दुर्धियः ॥ १४ ॥ अविश्रांतमनाःपूर्णमापदां परमास्पदम् ॥ नीडं रोगविहंगानामायुरायासनं दृढम् ॥ १५॥ प्रत्यहं खेदमुत्सृज्य शनैरलमनारतम् ॥ आखुनेव जरच्छवभ्रं कालेन विनिहन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—अविवेकीमनुष्यको शास्त्रका पढना भारहै, संसारमें लिप्तमनुष्यकेलिये ज्ञान भारहै, और अशान्त मनुष्यको मन भारहै जिसको आत्मज्ञान नही है उसको देह भारहै ॥ १३ ॥ भार ढोलेवालेको जैसे भार दुःखका हेतुहै इसीप्रकार अज्ञानीपुरुषका रूप, आयु, बुद्धि, अहंकार और चेष्टा सब भारस्वरूप दुःखकेही लिये हैं ॥ १४ ॥ जिसका मन अशान्तहै उसकी आयु संपूर्ण आपत्तियोंका स्थानहै रोगरूपीपक्षियोंका निवासस्थान और प्रबलदुःखका कारण है ॥ १५ ॥ प्रतिदिन श्रमके खेदसे अशान्तमनुष्यकी आयुको काल ऐसे नष्टकरताहै. जैसे चूहा उत्तमपृथिवीको ॥१६॥

शरीरबिलविश्रांतैर्विषदाहप्रदायिभिः ॥ रोगैरापीयते रौद्रैर्व्यालैरिव वनानिलः ॥ १७ ॥ प्रस्नुवानैरविच्छेदंतुच्छैरंतरवासिभिः ॥ दुःखैराव्रश्च्यते क्रूरैर्घुणैरिव जरद्द्रुमः ॥ १८ ॥ नूनं निगरणायाशुघनगर्द्धमनारतम् ॥ आखुर्माजारकेणेव मरणेनावलोक्यते ॥ १९ ॥ गंधादिगुणगर्भिण्या शून्यया शक्तिवेश्यया ॥ अन्नं महाशनेनेव जरया परिजीर्यते ॥ २० ॥

अर्थ—शरीररूपीबिलमें विश्रामकरनेवाले विषकेसमान सन्तापउत्पन्नकरनेवाले रोग प्राणिकी आयुको ऐसे पीते हैं जैसे भयंकरसर्प वनके पवनको ॥ १७ ॥ निरंतरहोनेवाले मनमें निवासकरनेवाले अतिक्रूरदुःखआयुको ऐसे काटते हैं, जैसे पुरानेवृक्षको घुन ॥ १८ ॥ सदा प्राणीको निगलजानेकेलिये बडीचावके साथ मृत्यु ऐसे देखतीरहतीहै जैसे बिल्ली चूहेको ॥ १९ ॥ गन्धादिगुणोंको धारणकरनेवाली प्रीतिशून्य वृद्धवेश्यारूपी वृद्धावस्था प्राणीको शक्तिरहितकरके ऐसे नष्टकरती है, जैसे अधिकभोजनकरनेवाला अन्नको ॥ २० ॥

(१।२) यद्यपि वायुका लपेटनाआदि और प्रतिबिम्ब (छाया) के चन्द्रादिका पकडनाभी असम्भवहै परन्तु कदाचित् इनके करनेकी सम्भावना हो तथापि आयुकी स्थिरतामें कुछभी विश्वास नहीं हैं. (३) घोडेसे गधीमें उत्पन्न हो उसको खच्चरी वा अश्वतरी कहते हैं. उसका गर्भ पेटकाटनेसे निकलता है ऐसा कहते हैं ॥

दिनैः कतिपयैरेव परिज्ञाय गतादरम् ॥ दुर्जनः सुजनेनेव यौवनेनावमुच्यते ॥ २१ ॥ विनाशसुहृदा नित्यं जरामरणबंधुना ॥ रूपं खिंगवरेणेव कृतांतेनाभिलष्यते ॥२२॥ स्थिरतया सुखभासितया तया सततमुज्झितमुत्तमफल्गु च ॥ जगति नास्ति तथा गुणवर्जितं मरणभाजनमायुरिदं यथा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे जीवितगर्हानाम चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ— गिनेहुयेदिनोंमे यौवनावस्था प्राणीको अनादरकेसाथ ऐसे छोडदेती है जैसे सज्जन दुर्जनको॥ २१ ॥ विनाशका मित्र, वृद्धावस्था और मृत्युका बन्धु जो काल है वह आयुको ऐसा चाहताहै, जैसे महाविषयी सुंदरताको ॥ २२ ॥ स्थिरता और जीवन्मुक्तिके सुखसे सदा त्यागीहुई और सबगुणोंसे वर्जित, मृत्युका पात्र यहआयु जैसे इस संसारमें अतितुच्छहै ऐसा तुच्छ कोईभी पदार्थ नहीं हैं ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जीवितगर्हा नामचतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

सबअनर्थोंका और ममतालताका मूल जो अहंकारहै उसकी निंदा विशेषकरकें इस १५ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ मुधैवाभ्युत्थितो मोहान्मुधैव परिवर्धते ॥ मिथ्यामयेन भीतोऽस्मि दुरहंकारशत्रुणा ॥ १ ॥ अहंकारवशादेव दोषकोशकदर्थताम् ॥ ददाति दीनदीनानां संसारो विविधाकृतिः ॥ २ ॥ अहंकारवशादापदहंकाराद्दुराधयः ॥ अहंकारवशादीहा त्वहंकारो ममामयः ॥ ३ ॥ तमहंकारमाश्रित्य परमं चिरवैरिणम् ॥ न भुंजे न पिबाम्यंभः किमु भोगान्भुजे मुने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—अज्ञानसे जो वृथा उत्पन्नहुआ व्यर्थही चारोओरसे बढरहाहै, ऐसे मिथ्यामूर्ति अहंकाररूपशत्रुसे मैं भयभीत होरहाहूं ॥ १ ॥ यहसंसार नानाप्रकारका रूप धारणकरके विषयलम्पटकामीजनोंको अहंकारकेही प्रतापसे दोषका कोशरूप अनेकअनर्थोंको देताहै ॥ २ ॥ अहंकारसेही आपत्तियां अहंकारसेही अनेकप्रकारकी मानसीपीडा होती हैं, अहंकारसेही नानाप्रकारकी चेष्टा होती हैं, और अहंकारही मेरा परमरोगहै ॥ ३ ॥ हे मुने ! अनादिकालसे परमवैरी इसीअहंकारकेही भयसे मैं नभोजनकरताहूं, न जल पीताहूं, पुनः अन्यभोगोंको कैसे भोगसक्ताहूं ॥ ४ ॥

संसाररजनी दीर्घा माया मनसि मोहिनी ॥ ततार्हकारदोषेण किरातेनेव वागुरा ॥ ५ ॥ यानि दुःखानि दीर्घाणि विषमाणि महांतिच ॥ अहंकारात्प्रसूतानि तान्यगात्खदिरा इव ॥ ६ ॥ शमेंदुसैंहिकेयास्यं गुणपद्महिमाशनिम् ॥ साम्यमेघशरत्कालमहंकारं त्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥ नाहं रामो न मे वांछा भावेषु न च मे मनः ॥ शांत आसितुमिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—संसाररूपीरात्रिमें मनमें मोहउत्पन्नकरनेवाली बडीभारी माया अहंकारके दोषसे ऐसे विस्तारको प्राप्तहुई है जैसे व्याधसे मृगोंको फसानेवाला जाल ॥ ५ ॥ जितने छोटे या बडे महाभयंकर दुःखहैं वे सब अहंकारसे ऐसे उत्पन्नहुये हैं जैसे पर्वतसे खदिरके वृक्ष ॥ ६ ॥ शमरूपीचन्द्रमाकेलिये राहुका मुख, उत्तमगुणरूपी कमलोंके लिये हिमरूपीवज्र और समदृष्टिरूपीमेघकेलिये शरत्कालरूप जो अहंकारहै उसे मैं त्यागताहूं ॥ ७ ॥ देहआदिमें अभिमान त्यागनेसे मैं दशरथका पुत्र राम नहींहूं, न संसारी पदार्थोंमें मेरी इच्छा और न मनहै, मैं बुद्धदेवकीनाई आत्मामेंही शान्तरहना चाहताहूं ॥ ८ ॥

अहंकारवशाद्यद्यन्मया भुक्तं हुतं कृतम् ॥ सर्वं तत्तदवस्त्वेव वस्त्वहंकाररिक्तता ॥९॥ अहमित्यस्ति चेद्ब्रह्मन्नहमापदि दुःखितः ॥ नास्ति चेत्सुखितस्तस्मादनहंकारिता वरं ॥ १० ॥ अहंकारं परित्यज्य मुने शांतमनस्तया ॥ अवतिष्ठे गतोद्वेगो भोगौघो भंगुरास्पदः ॥ ११ ॥ ब्रह्मन्यावदहंकारवारिदः परिजृंभते ॥ तावद्विकासमायाति तृष्णाकुटजमंजरी ॥ १२ ॥

अर्थ—अहंकारके वशसे जो मैंने खाया, हवनकिया, या अन्यकृत्य किया वह सब असारहै सारपदार्थ वही है जिसमें अहंकार नहीं है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि अहंकारहै तभी आपत्तियोंमें प्राणी दुःखीहोताहै और यदि अहंकार

नहीं तो सुखीहोताहै इसलिये अहंकारका न होनाही उत्तमहै ॥ १० ॥ हे मुने! अहंकारको त्यागकर शान्तचित्त हूं, भोगोंका समूह जो है वह तो क्षणभंगुरताका स्थानहै ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन्! जबतक अहंकाररूपी मेघ फैलाहुआहै तभी-तक तृष्णारूपी कुटकीलता लहलहाती है ॥ १२ ॥

अहंकारघने शांते तृष्णा नवतडिल्लता ॥ शांतदीपशिखावृत्त्या कापि यात्यतिसत्वरम् ॥ १३ ॥ अहंकारमहाविंध्ये मनोमत्तमहागजः ॥ विस्फूर्जतिघनास्फोटैः स्तनितैरिव वारिदः ॥ १४ ॥ इह देहमहारण्येघनाहंकारकेसरी ॥ योऽयमुल्लसति स्फारस्तेनेदं जगदाततम् ॥ १५ ॥ तृष्णातंतुलवप्रोता बहुजन्मपरंपरा ॥ अहंकारोग्रखिंगेन कंठे मुक्तावली कृता ॥ १६ ॥

अर्थ—अहंकाररूपीमेघके शान्तहोतेही तृष्णारूपी नईबिजुलीकी लता शान्त दीपशिखाके समान अतिशीघ्र नजाने कहां चलीजातीहै ॥ १३ ॥ अहंकाररूपी महाविन्ध्याचलमें मनरूपी महामत्तगज ऐसे बडीगर्जना करताहै जैसे बिजुलीसे मेघ ॥ १४ ॥ इस देहरूपी महाजंगलमें अहंकाररूपीसिंह जो बडेउत्साहसे विहार कररहाहै उसीके गर्वसे यह जगत् व्याप्त है ॥ १५ ॥ तृष्णारूपीसूत्रमें गूंथी हुई अनेक जन्मकी परम्पराको इस अहंकारने कण्ठमें ऐसे धारण कियाहै जैसे कामीपुरुषने मोतियोंकी मालाको ॥ १६ ॥

पुत्रमित्रकलत्रादि तंत्रमंत्रविवर्जितम् ॥ प्रसारितमनेनेह मुनेऽहंकारवैरिणा ॥ १७ ॥ प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदे स्वयमपि द्रुतम् ॥ प्रमार्जिता भवंत्येते सर्व एव दुराधयः ॥ १८ ॥ अहमित्यंबुदे शांते शनैश्च शमशातिनी ॥ मनोगगनसंमोहमिहिका कापि गच्छति ॥ १९ ॥ निरहंकारवृत्तेर्मे मौर्ख्याच्छोकेन सीदतः ॥ यत्किंचिदुचितं ब्रह्मंस्तदाख्यातुमिहार्हसि ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने! इस अहंकाररूपी शत्रुहीने तंत्रमंत्रके विनाही स्त्रीपुत्रादिकोंमें मोहजाल फैलारक्खाहै ॥ १७ ॥ इस अहंकारको मूलसे उखाडनेहीसे जितनी मानसीपीडाहैं सब आपसे आप शीघ्र दूरहोजाती हैं ॥ १८ ॥ इस अहंकाररूपी मेघके धीरे २ शान्तहोनेहीपर मनरूपी आकाशमें रहनेवाली जो भ्रान्तिरूपी कुहिराहै वह न मालूम कहां जाता है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! अहंकारसे रहित मैं मूर्खतासे दुःख पारहाहूं, अब मेरेलिये जो कुछ उचित हो वह कहिये ॥ २० ॥

सर्वापदां निलयमध्रुवमंतरस्थमुन्मुक्तमुत्तमगुणेन न संश्रयामि ॥ यत्नादहंकृतिपदं परितोऽतिदुःखं शेषेण मां समनुशाधि महानुभाव ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे अहंकारजुगुप्सानाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे महानुभाव! संपूर्णआपत्तियोंका स्थान, नाशवान् हृदयमें रहनेवाला उत्तमगुणोंसे शून्य, चारों ओरसे दुःखरूप जो अहंकारहै उसको मैं बडेयत्नसें छोडताहूं अब जो कुछ शेष (आत्मतत्व) हो, उसका उपदेश आप मुझे कीजिये ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० भा० वैराग्यप्रकरणे अहंकारजुगुप्सानाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने इस १६ वें सर्गमें अनेकयुक्तियों और दृष्टान्तोंसे चित्तके दोषोंको विस्तारपूर्वक वर्णनकियाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ दोषैर्जर्जरतां याति सत्कार्यादार्यसेवनात् ॥ वातांतःपिच्छलववच्चेतश्चलतिचंचलम् ॥ १ ॥ इतश्चेतश्च सुव्यग्रं व्यर्थमेवाभिधावति ॥ दूराद्दूरतरं दीनं ग्रामे कौलेयको यथा ॥ २ ॥ न प्राप्नोति क्वचित्किंचित्प्राप्तैरपि महाधनैः ॥ नांतःसंपूर्णतामेति करंडक इवांबुभिः ॥ ३ ॥ नित्यमेव मुने शून्यं कदाशावागुरावृतम् ॥ न मनो निर्वृतिं याति मृगो यूथादिव च्युतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजीबोले—वायुसे मोरके पंखका अग्रभाग जिसप्रकार चंचलहोताहै ऐसाही कामक्रोधादि दोषोंसे चंचल यह चित्त उत्तमकार्य और महात्माओंकी सेवाको छोडके परमपुरुषार्थके साधनमें सर्वथा असमर्थ होजाताहै ॥ १ ॥ जैसे ग्रामका कुत्ता इधरउधर दूर दौडताहै ऐसेही यह चित्तभी मनोरथ न पूर्णहोनेसे अतिव्याकुलतासे इधरउधर दौडताफिरताहै ॥ २ ॥ इधरउधर दौडताहुआभी यह कुछ नहींपाता, और यदि महाधन कहीं मिलगया तोभी इसकी

पूर्णता ऐसे नहींहोती; जैसे वांस या बेतकी सींकसे बनेहुये टोकरकी पानीसे ॥ ३ ॥ दुष्टआशाओंके जालसे बन्धा हुआ यह मन कभी शान्तिको ऐसे नहींपाता, जैसे झुण्डसे विछरा हुआ मृग ॥ ४ ॥

तरंगतरलां वृत्ति दधदालूनशीर्णताम् ॥ परित्यज्य क्षणमपि हृदये याति न स्थितिम् ॥ ५ ॥ मनो मननविक्षुब्धं दिशो दश विधावति ॥ मंदराहननोद्धूतं क्षीरार्णवपयो यथा ॥ ६ ॥ कल्लोलकलितावर्तं मायामकरमालितम् ॥ न निरोद्धुं समर्थोऽस्मि मनोमयमहार्णवम् ॥ ७ ॥ भोगदूर्वांकुराकांक्षी श्वभ्रपातमचिंतयन् ॥ मनोहरिणको ब्रह्मन्दूरं विपरिधावति ॥ ८ ॥

अर्थ—चारो ओरसे छिन्न और जर्जरीभूत वृत्तियोंको यह सदा धारणकरताहै, और महानष्ट विचारोंको छोडकर यह क्षणभरभी हृदयमें शान्तिको नहींपाता ॥ ५ ॥ यह मन सदा विषयके ध्यानसे व्याकुल दशोंदिशाओंमें ऐसे दौडताहै. जैसे मन्दराचलके आघातसे क्षीरसमुद्रका जल ॥ ६ ॥ तरंगोंके सदृश अनेकभोगोंके उत्साहरूपी भंवरेंहयुक्त मायारूपीमकरोंसे पूर्ण इसमनरुपी महासमुद्रको रोकनेमें मैं समर्थ नहींहूं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन्! गढेमें गिरनेकी कुछभी चिन्ता न करके सदा भोगरूपीदूवका अभिलाषी यह मनरूपी हरिण दूरही दूर दौडताहै ॥ ८ ॥

न कदाचन मे चेतः स्वामालूनविशीर्णताम् ॥ त्यजत्याकुलया वृत्त्या चंचलत्वमिवार्णवः ॥ ९ ॥ चेतश्चंचलया वृत्त्या चिंतानिचयचंचुरम् ॥ धृतिं बध्नाति नैकत्र पंजरे केसरी यथा ॥ १० ॥ मनो मोहरथारूढं शरीरात्समतासुखम् ॥ हरत्यपहतोद्वेगं हंसः क्षीरमिवांभसः ॥ ११ ॥ अनल्पकल्पनातल्पे विलीनाश्चित्तवृत्तयः ॥ मुनींद्र न प्रबुद्ध्यंते तेन तप्येऽहमाकुलः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे समुद्र चंचलताको कभी नहींत्यागता इसीप्रकार इस चित्तनेभी अपने छिन्नभिन्न अतिचंचल स्वभावको कभी नहींत्यागा ॥ ९ ॥ यह चित्त स्वयं चंचलस्वभाववालाहै और चिंताओंके समूहसे अतिचपलरूपको ऐसे धारणकरताहै, जैसे पिंजरेमें सिंह ॥ १० ॥ यह मन मोहरूपीरथपर आरूढ (चढके) होके बडी शीघ्रताकेसाथ शरीरसे समदृष्टिरूपसुखको ऐसे हरलेताहै; जैसे हँस जलमेंसे दूधको ॥ १२ ॥ हे मुनींद्र! अनेकप्रकारकी कल्पना (संसारिक विषयोंको चिंतन) रूपी शय्यापर चित्तकी वृत्तियां सोरही हैं वे किसीप्रकार नहींजागती; इससे मैं अत्यन्त व्याकुलहोकर संतप्तहूं ॥ १२ ॥

क्रोडीकृतदृढग्रंथितृष्णासूत्रे स्थितात्मना ॥ विहगो जालकेनेव ब्रह्मन्बद्धोऽस्मि चेतसा ॥ १३ ॥ संततामर्षधूमेन चिंताज्वालाकुलेन च ॥ वन्हिनेव तृणं शुष्कं मुने दग्धोऽस्मि चेतसा ॥ १४ ॥ क्रूरेण जडतां यातस्तृष्णाभार्यानुगामिना ॥ शवं कौलेयकेनेव ब्रह्मन्भुक्तोऽस्मि चेतसा ॥ १५ ॥ तरंगतरलास्फालवृत्तिना जडरूपिणा ॥ तटवृक्षइवौघेन ब्रह्मन्नीतोऽस्मि चेतसा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! संसारकी अनेक मायारूपी दृढग्रन्थियां हैं जिसमें ऐसे तृष्णारूपीसूत्रमें निवासकरनेवाले इसचित्तसे मैं ऐसा बन्धाहूं, जैसे जालसे पक्षी ॥ १३ ॥ हे मुने! निरंतर क्रोधरूपीधूमसे युक्त और चिंतारूपी ज्वालासे व्याप्त इसचित्तरूप अग्निसे मैं ऐसे जलाहुआहूं जैसे अग्निसे सूखातृण ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन्! तृष्णारूपी अपनीस्त्रीकेपीछे २ चलनेवाले इस निष्ठुरचित्तने मुझे जडबनाके ऐसे भक्षणकरलियाहै, जैसे कुत्तेने मृतकको ॥ १५ ॥ तरंगोंके सदृश चंचल और शीघ्रगतिको धारणकरनेवाले इस जडरूपीचित्तने मुझे ऐसा गिरादिया है; जैसे जलके प्रवाहने नदीके किनारेके वृक्षको ॥ १६ ॥

अवांतरनिपाताय शून्येवाभ्रमणाय च ॥ तृणं चंडानिलेनेव दूरे नीतोऽस्मि चेतसा ॥ १७ ॥ संसारजलधेरस्मान्नित्यमुत्तरणोन्मुखः ॥ सेतुनेव पयःपूरो रोधितोऽस्मि कुचेतसा ॥ १८ ॥ पातालाद्गच्छता पृथ्वीं पृथ्व्याः पातालगामिना ॥ कूपकाष्ठं कुदाम्नेव वेष्टितोऽस्मि कुचेतसा ॥ १९ ॥ मिथ्यैव स्फाररूपेण विचाराद्विशरारुणा ॥ बालो वेतालकेनेव गृहीतोऽस्मि कुचेतसा ॥ २० ॥

अर्थ—आवान्तर (मध्य) में गिरनेको वा तिर्य्यक्योनियोंमें भ्रमणकरनेकेलिये इसचित्तने धर्मसे मुझे ऐसे दूर करदिया है, जैसे प्रवलवायु तृणको ॥ १७ ॥ इस संसाररूपी समुद्रसे सदा पार होनेका अभिलाषी मैं इस दुष्ट चित्तसे ऐसा रुकाहूं; जैसे बांधसे जल ॥ १८ ॥ पातालसे पृथिवीपर जानेवाली और पृथिवीसे पातालमें जानेवाली अर्थात् नीचे ऊपर जानेवाली इस दुष्ट चित्तरूपीरस्सीसे मैं ऐसा बंधाहूं; जैसे कुयेंका काठ[1] ॥ १९ ॥ मिथ्याही भयंकर

(१) जहां कूयेसे टांकीसे पानी निकालते हैं वहां एक काठमें एक तरफ मट्टी या और किसीप्रकारका बोझा बांध देतेहैं जिसमें जल सरलतासे निकलआवै और एक रस्सीसे बांधी रहतीहै जिसमें जलखींचनेका पात्रभी यह नीचे ऊपर आता जाता रहता है इसीको कूपका काठ कहतेहैं ॥

दीर्घरूप धारणकियेहुये, और विचारसे स्वरूपरहित इस दुष्टचित्तने मुझे ऐसा पकडाहै जैसे वेतालने लडकेको॥२०॥

वन्हेरुष्णतरः शैलादपि कष्टतरक्रमः ॥ वज्रादपि दृढो ब्रह्मन् दुर्निग्रहमनोग्रहः ॥ २१ ॥ चेतः पतति कार्येषु विहगः स्वामिषेष्विव ॥ क्षणेन विरतिं याति बालः क्रीडनकादिव ॥ २२ ॥ जडप्रकृतिरालोलोविततावर्त्तवृत्तिमान् ॥ मनोब्धिरहितव्यालो दूरं नयति तात माम् ॥ २३ ॥ अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि ॥ अपि वह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! यह मनरूपीपिशाच, अग्निसेभी अधिकउष्ण, पर्वतसेभी उल्लंघनकरनेमें कठिन और वज्रसेभी कठोर है बडीकठिनतासेभी नहीं रुकता है ॥ २१ ॥ यह चित्त विषयके कार्य्योंमें तो ऐसे गिरता है; जैसे पक्षी मांसकी ओर, और सत्कार्योंसे शीघ्र ऐसे विरक्तहोताहै, जैसे बालक खिलौनेसे ॥ २२ ॥ हे तात ! यह जडप्रकृतिवाला, अतिचंचल, बडेविषयरूपीभवरवाला कामक्रोधादि शत्रुरूप सर्प हैं जिसमें ऐसा यह मनरूपी समुद्र मुझे अत्यन्तदूर खींचे लियेजाताहै ॥ २३ ॥ हे साधो! समुद्रके पानसे, बडेभारीसुमेरुपर्वतको मूलसे उखाडनेसे, और अग्निके भोजनसेभी चित्तको वशकरना अतिकठिनहै ॥ २४ ॥

चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्त्रयम्॥ तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः॥२५॥ चित्तादिमानि सुखदुःखशतानि नूनमभ्यागतान्यगवरादिव काननानि ॥ तस्मिन्विवेकवशतस्तनुतां प्रयाते मन्ये मुने निपुणमेव गलंति तानि॥२६॥सकलगुणजयाशा यत्र बद्धा महद्भिस्तमरिमिह विजेतुं चित्तमभ्युत्थितोऽहम्॥विगतरतितयांतर्नाभिनंदामि लक्ष्मीं जडमलिनविलासां मेघलेखामिवेंदुः॥२७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
वैराग्यप्रकरणेचित्तदौरात्म्यं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—सबपदार्थोंका कारण चित्तही है, उसके रहनेसेही तीनोंलोकका भान होताहै. और उसके क्षीणहोनेपर जगत्भी क्षीणहोजाताहै इसलिये इसचित्तको बडेयत्नसे रोकनाचाहिये ॥ २५ ॥ हे मुने ! इसबातको मैं मानताहूं कि चित्तसेही सम्पूर्ण सुख दुःख ऐसे उत्पन्नहुये हैं जैसे बडेपर्वतसे बन, इसके क्षीणहोनेहीपर वे आप ले आप क्षीणहोजाते हैं ॥ २६ ॥ जिसचित्तके जीतनेहीपर शांतिआदिगुणोंकी प्राप्तिकी आशा महात्माओंने बांधी है उसी प्रबलशत्रुको जीतनेकेलिये मैं उद्यतहूं. और वैराग्यके प्राप्तहोनेसे, मूर्ख और मलिनपुरुषोंको आनन्ददेनेवाली लक्ष्मीको मैं हृदयसे ऐसे नहींचाहता, जैसे चन्द्रमा मेघकी पंक्तिको ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

सबपापोंकी माता, दीनता, कृपणता और मृत्युको देनेवाली, संपूर्णजगत्को भ्रमणकरानेवाली और दोषोंमें प्रधान जो तृष्णा है, उसकी निंदा इस १७ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच॥ ॥हार्दांधकारशर्वर्या तृष्णयेह दुरंतया॥ स्फुरंति चेतनाकाशे दोषाः कौशिकपंक्तयः ॥ १ ॥ अंतर्दाहप्रदायिन्या समूढरसमार्द्दवः ॥ पंक आदित्यदीप्त्येव शोषं नीतोऽस्मि चिंतया ॥ २ ॥ मम चित्तमहारण्ये व्यामोहतिमिराकुले ॥ शून्ये तांडविनी जाता भृशमाशापिशाचिका॥३॥ वचोरचितनीहारा कांचनोपवनोज्ज्वला ॥ नूनं विकासमायाति चिंताचणकमंजरी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हृदयके परमप्रेमका स्थान जो आत्मतत्व वा विवेक है उसको आच्छादनकरनेको अंधकारमयदुःखसेभी हटानेके अयोग्य इस तृष्णारूपीरात्रिसेही जीवरूपीआकाशमें दोपरूपी उलूकोंकी पंक्ति चमकती है ॥ १ ॥ अन्तःकरणमें दाह उत्पन्नकरनेवाली इस तृष्णारूपचिन्तासे स्नेह और दयारहित मैं ऐसे सूखगयाहूं, जैसे सूर्यकी किरणसे रस और कोमलतारहित पंक ॥ २ ॥ अनेक व्यामोहरूपीअन्धकारसे व्याप्त, मेरे चित्तरूपी शून्य जंगलमें यह आशारूपीपिशाचिका बडी नाचनेवाली वेश्या होगई है ॥ ३ ॥ दुःखके वचनोंसे रचित आंसूरूपकुहिरावाली, सोने आदिकी इच्छासे पीतवर्णवाली यह चिन्तारूप चनेकी लता तृष्णारूपी खेतमें प्रफुल्लितहोती है ॥ ४ ॥

---

(१) जिस मनुष्यका चित्त, वासना नष्ट होनेसे क्षीण होजाताहै उसकेलिये दुःखदायी न होनेसे मानो जगत् नष्टही होगया ॥

अलमंतर्भ्रमायैव तृष्णा तरलिताशया ॥ आयाता विषमोल्लासमूर्मिरंबुनिधाविव ॥ ५ ॥ उद्दामकल्लोलरवा देहाद्रौ वहतीह मे ॥ तरंगतरलाकारा तरत्तृष्णातरंगिणी ॥ ६ ॥ वेगं संरोद्धुमुदितो वात्ययेव जरत्तृणम् ॥ नीतः कलुषया क्वापि तृष्णया चित्तचातकः ॥ ७ ॥ यां यामहमतीवास्थां संश्रयामि गुणश्रियम् ॥ तां तां कृंतति मे तृष्णा तंत्रीमिव कुमूषिका ॥ ८ ॥

अर्थ—कष्टसाध्य धनार्जनमें यह तृष्णा अन्तःकरणको भ्रमानेके लिये ऐसे आती है जैसे समुद्रमें तरंग ॥ ५ ॥ अधिकनिन्दा और मिथ्याभाषणरूपतरंगके शब्दसहित चंचलतरंगयुक्त और एकविषयसे दूसरेविषयमें शीघ्रतासे दौडनेवाली यह तृष्णारूपी नदी मेरे शरीररूपी पर्वतपर वहरही है ॥ ६ ॥ जब यह चित्तरूपी चातक, धर्म, मेघ, समाधिके रसके पानार्थ अपनी चपलता रोकनेमें उद्यतहोताहै उसीसमय यह दुष्टतृष्णा कहींसे कहीं उडाके ऐसे लेजाती है, जैसे पुराणे तृणको आँधी ॥ ७ ॥ विवेक और वैराग्यादि उत्तमपदार्थोंकी जिस जिस स्थितिका आश्रय मैं लेता हूं उस २ को यह तृष्णा ऐसे काटती है जैसे वीणाको दुष्टमूषिका ॥ ८ ॥

पयसीव जरत्पर्णं वायाविव जरत्तृणम् ॥ नभसीव शरन्मेघश्चिंताचक्रे भ्रमाम्यहम् ॥ ९ ॥ गंतुमास्पदमात्मीयमसमर्थधियो वयम् ॥ चिंताजाले विमुह्यामो जाले शकुनयो यथा ॥ १० ॥ तृष्णाभिधानया तात दग्धोस्मि ज्वालया तथा ॥ यथा दाहोपशमनमाशंके नामृतैरपि ॥ ११ ॥ दूरं दूरमितो गत्वा समेत्य च पुनः पुनः ॥ भ्रमत्याशु दिगंतेषु तृष्णोन्मत्ता तुरंगमी ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे पानीकेचक्रमें पुरानापत्ता वायुकेचक्रमें पुरानातृण और आकाशमें शरदृऋतुका मेघ भ्रमणकरता है, ऐसेही चिंतारूपीचक्रमें मैं भ्रमणकररहाहूं ॥ ९ ॥ हमारा जो वास्तविक निजरूप (आत्मा) है उसको प्राप्त करनेमें असमर्थबुद्धि हम चिन्ताकेजालमें ऐसे फसे हैं जैसे जालमें पक्षी ॥ १० ॥ हे तात! इस तृष्णारूपीअग्निने मुझे ऐसा भस्मकरदियाहै कि उस दाहके शान्तहोनेकी आशा मैं अमृतसेभी नहींकरता ॥ ११ ॥ जैसे उन्मत्तघोडी यहांसे वार २ अतिदूरजाती है और पुनः आती है इसीकारण तृष्णाभी दिशाओंके अन्ततक बडीशीघ्रतासे भ्रमण करतीरहती है ॥ १२ ॥

जडसंसर्गिणी तृष्णा कृतोर्ध्वाधोगमागमा ॥ क्षुब्धा ग्रंथिमती नित्यमारघट्टाग्ररज्जुवत् ॥ १३ ॥ अंतर्ग्रथितया देहे सर्वदुश्छेदयानया ॥ रज्ज्वेवाशु बलीवर्दस्तृष्णया वाह्यते जनः ॥ १४ ॥ पुत्रमित्रकलत्रादितृष्णया नित्यकृष्टया ॥ खगेष्विव किरात्येदं जालं लोकेषु रच्यते ॥ १५ ॥ भीषयत्यपि धीरं मामंधयत्यपि सेक्षणम् ॥ खेदयत्यपि सानंदं तृष्णा कृष्णेव शर्वरी ॥ १६ ॥

अर्थ—जडसे सम्बन्धरखनेवाली, नीचे ऊपर गमन आगमन करनेवाली, अनेकग्रंथिसहित अतिचंचल यह तृष्णाअरघट्ट (अरहठ) की रस्सीकेसमान सदा भ्रमणकियाकरती है ॥ १३ ॥ मनमें गूंथीहुई सर्वथा काटनेको असमर्थ यह तृष्णा मनुष्यको ऐसा घुमाती है जैसे नासिकाकी रस्सी बैलको ॥ १४ ॥ इस तृष्णाने संसारमें पुत्र, मित्र, स्त्री, और धनादिरूप जाल ऐसा फैलाया है जैसे व्याधने पक्षियोंके लिये ॥ १५ ॥ यह तृष्णारूपअंधेरीरात्रिमैं धीराभी हूं तोभी डराती है, विवेकरूपीनेत्रसहित हूं तोभी अन्धाकरती है, और आनन्दसहित हूं तोभी दुःखी करती है ॥ १६ ॥

कुटिला कोमलस्पर्शा विषवैषम्यशंसिनी ॥ दशत्यपि मनाक् स्पृष्टा तृष्णा कृष्णेव भोगिनी ॥ १७ ॥ भिंदती हृदयं पुंसां मायामयविधायिनी ॥ दौर्भाग्यदायिनी दीना तृष्णा कृष्णेव राक्षसी ॥ १८ ॥ तंद्री तंत्रीगणैः कोशं दधाना परिवेष्टितम् ॥ नानंदे राजते ब्रह्मंस्तृष्णा जर्जरवल्लकी ॥ १९ ॥ नित्यमेवातिमलिना कटुकोन्माददायिनी ॥ दीर्घतंत्री घनस्नेहा तृष्णा गह्वरवल्लरी ॥ २० ॥

अर्थ—कुटिल कोमलस्पर्शवाली, विषयरूपीमहादुःखदाय विपदेनेवाली इसतृष्णारूप कालीसांपिनीको तनिकभी छुओ तो तुरंत काटही लेती है ॥ १७ ॥ मनुष्योंके हृदयोंको वेधन करनेवाली अनेकमाया और सांसारिक प्रपंचरूपीरोगोंको उत्पन्नकरनेमें बडीप्रवीण, दौर्भाग्य और दीनताके देनेवाली यह तृष्णारूपी कालीराक्षसी है ॥ १८ ॥ नस और नाडीके समूहोंसे शरीरको धारणकियेहुये यह तृष्णारूपी फूटी और पुरानी वीणा मुझे मांगलिक उत्सव (आत्मज्ञान) के आनन्दमें अच्छी नहींलगती ॥ १९ ॥ नित्यही अत्यन्तमलिन परिणाममें दुःख और उन्मादकरनेवाली, दूरतक फैलीहुई, अधिकस्नेहवाली यह तृष्णारूपलता पर्वतकी गुफासे उत्पन्नहुई है ॥ २० ॥

अनानंदकरी शून्या निष्फला व्यर्थमुन्नता ॥ अमंगलकरी क्रूरा तृष्णा क्षीणेव मंजरी ॥ २१ ॥ अनावर्जितचित्ताऽपि सर्वमेवानुधावति ॥ न चाप्नोति फलं किंचित्तृष्णा जीर्णेव कामिनी ॥ २२ ॥ संसा-

रवृंदे महति नानारससमाकुले ॥ भुवनाभोगरंगेषु तृष्णा जरठनर्त्तकी ॥ २३ ॥ जराकुसुमितारूढा पातोत्पातफलावलिः ॥ संसारजंगले दीर्घे तृष्णा विषलता तता ॥ २४॥

अर्थ—दुःखदायिनी, फलोंसे शून्य व्यर्थ बहुतबढीहुई, अमंगलकरनेवाली, तथा अनेककांटोंसे क्रूर, यह तृष्णारूप क्षीणमंजरी है ॥ २१ ॥ चित्तको वशकरनेमें असमर्थभी यह तृष्णा वृद्धवेश्याकेसदृश चारोंओर दौडती है परंतु कहींभी कुछ फल नहींपाती ॥ २२ ॥ नानारससे व्याप्त इस बडेभारी संसारके समूहमें भुवनके भोगरूपनृत्यशालाओंमें यह तृष्णारूपिणी वृद्धनर्तकी है ॥ २३ ॥ इस संसाररूपीमहाजंगलमें वृद्धावस्थारूपीपुष्पको धारणकियेहुये, अनर्थ और उत्पातरूपीफलोंसे पूर्ण तृष्णारूपीविषकी लहलहातीलता व्याप्त होरही है ॥ २४ ॥

यन्न शक्नोति तत्रापि धत्ते तांडवितां गतिम् ॥ नृत्यत्यानंदरहितं तृष्णा जीर्णेव नर्त्तकी ॥२५॥ भृशं स्फुरति नीहारे शाम्यत्यालोक आगते ॥ दुर्लंघ्येषु पदं धत्ते चिंता चपलबर्हिणी ॥ २६ ॥ जडकल्लोलबहुला चिरं शून्यांतरांतरा ॥ क्षणमुल्लासमायाति तृष्णा प्रावृट्तरंगिणी ॥२७॥ नष्टमुत्सृज्य तिष्ठंतं तृष्णा वृक्षमिवापरम् ॥ पुरुषात्पुरुषं याति तृष्णा लोलेव पक्षिणी ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसकार्यको सिद्धकरनेमें या जहां जानेमें असमर्थ है, वहांभी यह अपनी तान आलापने लगती, और वृद्धवेश्याकेसमान आनन्दविनाभी नाचनेलगती है ॥ २५ ॥ यह चिन्तारूपिणीमयूरी, वर्षाकी झडीमें, (अज्ञानमें) खूब नाचती है, ज्ञानरूपप्रकाश आनेपर शान्त होजाती है, और असाध्यदुर्गमस्थानोंमेंभी अपना पद रखती है ॥ २६ ॥ जडोंकी तरंगोंसे पूर्ण, बीचबीचमें बहुतकालतक शून्य यह तृष्णा क्षणभरकेलिये ऐसे उत्साहको प्राप्तहोती है, जैसे वर्षाकालकी नदी ॥ २७ ॥ यह तृष्णा एकपुरुषको छोडके दूसरेके निकट ऐसे चलीजाती है, जैसे फलरहितवृक्षको छोडके फलसहितवृक्षपर पक्षिणी ॥ २८ ॥

पदं करोत्यलंघ्येऽपि तृप्तापि फलमीहते ॥ चिरं तिष्ठति नैकत्र तृष्णा चपलमर्कटी ॥ २९॥ इदं कृत्वेदमायाति सर्वमेवासमंजसम् ॥ अनारतं च यतते तृष्णा चेष्टेव दैविकी ॥ ३० ॥ क्षणमायाति पातालं क्षणं याति नभःस्थलम् ॥ क्षणं भ्रमति दिक्कुंजे तृष्णा हृत्पद्मषट्पदी ॥ ३१ ॥ सर्वसंसारदोषाणां तृष्णैका दीर्घदुःखदा ॥ अंतःपुरस्थमपि या योजयत्यतिसंकटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह तृष्णारूपिणी अतिचपलमर्कटी अलंघ्यस्थानमेंभी पद रखती है, तृप्तहोनेपरभी और फल चाहती है, और एकस्थानमें क्षणभरभी नहींठहरती ॥ २९ ॥ यह तृष्णा एककार्यका आरम्भकरके (उसको पूर्णकिये विनाही) दूसरे क्रमविरुद्धकार्यकी ओर आती है, और निरन्तर ऐसा यत्नकरतीरहती है, जैसे ब्रह्माकी चेष्टा ॥ ३० ॥ हृदयरूपीकमलमें तृष्णारूपीभ्रमरी, क्षणभरमें, पातालमें पहुंचती है, क्षणभरमें आकाशमें और क्षणभरमेंही दिशारूपीकुंजोंमें भ्रमणकरनेलगती है ॥ ३१ ॥ संपूर्णदोषोंमेंसे यह तृष्णाही अधिकदुःखदायिनी है और नगरके अन्तर्निवासी (जीव) कोभी अत्यंत संकटदेती है ॥ ३२ ॥

प्रयच्छति परं जाड्यं परमालोकरोधिनी ॥ मोहनीहारगहना तृष्णाजलदमालिका ॥ ३३॥ सर्वेषां जंतुजातानां संसारव्यवहारिणाम् ॥परिप्रोतमनोमाला तृष्णा बंधनरज्जुवत् ॥ ३४॥ विचित्रवर्णा विगुणा दीर्घा मलिनसंस्थितिः ॥ शून्या शून्यपदा तृष्णा शक्रकार्मुकधर्मिणी ॥ ३५ ॥ अशनिर्गुणसस्यानां फलिता शरदापदाम् ॥ हिमं संवित्सरोजानां तमसां दीर्घयामिनी ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञानरूपीकुहिरेसे महाभयंकर, यह तृष्णारूपीमेघोंकी माला परमप्रकाशको रोकती है, और बडी भारी जडता देती है ॥ ३३ ॥ यह तृष्णा संसारमें व्यवहारकरनेवाले संपूर्णप्राणिमात्रके मनरूपीकरोडोंको गूँथनेको प्रोतमाला (बैलोंके कण्ठमें बांधके घुमानेकी रस्सी) के समान बांधनेकी रस्सी है ॥ ३४ ॥ यह तृष्णा आश्चर्यजनक नानाप्रकारके वर्णोंको धारणकियेहुये प्रत्यंचा (डोरी) शून्य, बडेआकारवाली मलिनके आश्रयमें रहनेवाली स्वयं शून्यरूप और शून्यही स्थानमें रहनेवाली, इन्द्रके धनुषके समानहै ॥ ३५ ॥ यह तृष्णा गुणरूपीधान्योंके लिये वज्रके समान, आपत्तियोंको बढानेवाली, ज्ञानरूपीकमलोंकेलिये हिमके समान और अज्ञानरूपीअंधकारकेलिये बडी रात्रिके समानहै ॥ ३६ ॥

संसारनाटकनटी कार्यालयविहंगमी ॥ मानसारण्यहरिणी स्मरसंगीतवल्लकी ॥ ३७ ॥ व्यवहाराब्धिलहरी मोहमातंगशृंखला ॥ सर्गन्यग्रोधसुलता दुःखकैरवचंद्रिका ॥ ३८ ॥ जरामरणदुःखानामेका रत्नसमुद्गिका ॥ आधिव्याधिविलासानां नित्यं मत्ता विलासिनी ॥ ३९ ॥क्षणमालोकविमला सांधकारलवा क्षणम् ॥ व्योमवीथ्युपमा तृष्णा नीहारगहना क्षणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—पुनः यह संसाररूपी नाटककी नटी, प्रवृत्ति लक्ष कार्यरूपीघोसलेकी पक्षिणी, मनोरथरूपीमहावनकी हरिणी; और कामदेवरूपीसंगीतकी वीणाहै ॥ ३७ ॥ तथा व्यवहाररूपीसमुद्रकी लहरी, मोहरूपीमहाहस्तीकी शृंखला सृष्टिरूपीवटकी सुंदरलता, और दुःखरूपीकुमुदोंकी चांदनी है ॥ ३८ ॥ जरामरणके दुःखोंके लिये रत्नकी पेटारी, शारीरिक और मानसीदुःखरूपीविलासोंके लिये उन्मत्तविलासकरानेवाली वेश्याहै ॥ ३९ ॥ यह तृष्णा आकाशमार्गके समान क्षणभरकेलिये प्रकाशसे विमल,और क्षणभरमें भयंकर कुहिरासहित अन्धकारमयी होजाती है॥४०॥

गच्छत्युपशमं तृष्णा कायव्यायामशांतये ॥ तमी घनतमःकृष्णा यथा रक्षोनिवृत्तये ॥ ४१ ॥ तावन्मुह्यत्ययं मूको लोको विलुलिताशयः ॥ यावदेवानुसंधत्ते तृष्णा विषविषूचिका ॥ ४२ ॥ लोकोऽयमखिलं दुःखं चिंतयोज्झितयोज्झति ॥ तृष्णा विषूचिकामंत्रश्चिंतात्यागो हि कथ्यते ॥ ४३ ॥ तृणपाषाणकाष्ठादि सर्वमामिषशंकया ॥ आददाना स्फुरत्यंते तृष्णामत्सी ऱ्हदे यथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह तृष्णा शरीरके परिश्रमोंको शान्तकरनेकेलिये ऐसे शान्तहोजाती है जैसे महाअन्धकारसहित कृष्णपक्षकी रात्रि राक्षसोंकी निवृत्तिके लिये ॥ ४१ ॥ अध्यात्मशास्त्रकी कथासे शून्य, व्याकुलचित्त, यह प्राणी तभीतक मोहितहोताहै जबतक तृष्णारूपीविषकी विषूचिकाका संग नहींछोडता ॥ ४२ ॥ यह संसार चिन्ताके त्यागतेही सम्पूर्णदुःखोंको त्यागदेताहै चिन्ताका त्यागही तृष्णारूपीविषूचिकाका नाशक मंत्रहै ॥ ४३ ॥ यह तृष्णा, तृण, पाषाण, और काष्ठादि सबपदार्थोंको मांस जानके ग्रहणकरतीहुई ऐसे फिरती है जैसे तालावमें मछली ॥ ४४ ॥

रोगार्त्तिरंगना तृष्णा गंभीरमपिमानवम् ॥ उत्तानतां नयत्याशु सूर्यांशव इवांबुजम् ॥ ४५ ॥ अंतःशून्या ग्रंथिमत्यो दीर्घस्वांकुरकंटकाः ॥ मुक्तामणिप्रिया नित्यं तृष्णा वेणुलता इव ॥ ४६ ॥ अहो बत महच्चित्रं तृष्णामपि महाधियः ॥ दुश्छेदामपि कृंतंति विवेकेनामलासिना ॥ ४७ ॥ नासिधारा नवज्रार्चिर्न तप्तायःकणार्चिषः ॥ तथा तीक्ष्णा यथा ब्रह्मंस्तृष्णेयं हृदि संस्थिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—रोगोंकी पीडा, और स्त्री और तृष्णा धीरमनुष्यकोभी शीघ्रही ऐसे व्याकुलकरदेती है जैसे सूर्यके किरण कमलोंको ॥ ४५ ॥ भीतरसे पोली बडी चिन्तारूपकण्टकसहित अंकुरवाली मुक्ता और मणियोंसे प्रेमकरनेवाली यह तृष्णा बाँसकी लताके समानहै ॥ ४६ ॥ अहो ! अत्यन्त आश्चर्यकी बातहै कि बडेबुद्धिमान् महात्माजन, इस दुश्छेद्यतृष्णाकोभी विवेकरूपीविमलखड्गसे काट डालते हैं ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे तीक्ष्णधारवाली यह तृष्णा हृदयमें स्थितहै ऐसी तीक्ष्ण न तो तलवारकी धारहै, न वज्रकी किरणहै, और न तप्तलोहेके गोलेके कणहै ॥ ४८ ॥

उज्वलासिततीक्ष्णाग्रा स्नेहदीर्घदशापरा ॥ प्रकाशा दाहदुस्पर्शा तृष्णा दीपशिखा इव ॥ ४९ ॥ अपि मेरुसमं प्राज्ञमपि शूरमपि स्थिरम् ॥ तृणीकरोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम् ॥ ५० ॥ संस्तीर्णगहना भीमा घनजालरजोमयी ॥ सांधकारोग्रनीहारा तृष्णा विंध्यमहातटी ॥ ५१ ॥ एकैव सर्वभुवनांतरलब्धलक्ष्या दुर्लक्ष्यतामुपगतैव वपुःस्थितैव ॥ तृष्णा स्थिता जगति चंचलवीचिमाले क्षीरोदकांबुतरले मधुरेव शक्तिः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे तृष्णाभंगो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—मध्यमध्यमें उज्वल और अन्तमें कृष्ण और तीक्ष्णअग्रभागवाली, स्त्रीपुत्रादिके बडेस्नेहसे पूर्ण, प्रकाशरूपदाहके कारणसे कठिनतासे स्पर्श करनेके योग्य, यह तृष्णा दीपकी शिखाके समान है ॥ ४९ ॥ गौरवसे गम्भीर अति बुद्धिमान्, शूर और अपरिग्रहव्रतसे स्थिर उत्तममनुष्यकोभी यह अकेली तृष्णाही क्षणभरमें तृणके समान करडालती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह और लम्पटतादि साहसके कार्योंसे पूर्ण, भयंकररूपवाली, अतिकठिनबन्धनका कारण जालरूप रजोगुणमयी, अन्धकारमयकुहिरेको धारणकरनेवाली, यह तृष्णा विन्ध्याचलकी महाभयंकरबनकी पंक्तिहै ॥५०॥५१॥ यह अकेली तृष्णाही संपूर्णभुवनोंमें पहुंचनेवाली है; और आशा, काम और क्रोधादि अनेकनामोंसे दुर्ज्ञेय ऐसे स्थितहै, जैसे चंचल जलमात्रमें क्षीर, उदक और अम्बु, इत्यादिनामोंसे रसना इन्द्रियग्राह्य मधुरशक्ति ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे तृष्णाभंगोनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

---

(१) कहते हैं की बांससे मोती और एकप्रकारका मणी भी निकलताहै।

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

आधिव्याधि अनेकक्लेशोंसे व्याप्त वृद्धावस्था और मरणसे क्षणभंगुर तृष्णादिका मूलकारण जो यह शरीर है उसीकी निन्दा इस १८ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ आर्द्रांत्रतंत्रीगहनो विकारी परिपातवान् ॥ देहः स्फुरति संसारे सोऽपि दुःखाय केवलम् ॥ १ ॥ अज्ञोऽपि तज्ज्ञसदृशो वलितात्मचमत्कृतिः ॥ युक्त्या भव्योऽप्यभव्योऽपि न जडो नापि चेतनः ॥ २ ॥ जडाजडदृशोर्मध्ये दोलायितदुराशयः ॥ अविवेकी विमूढात्मा मोहमेव प्रयच्छति ॥ ३ ॥ स्तोकेनानंदमायाति स्तोकेनायाति खेदिताम् ॥ नास्तिदेहसमः शोच्यो नीचो गुणबहिष्कृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—भीगोई आंत और नाडियोंसे अतिभयंकर, अनेकविकारोंसे युक्त, क्षणभंगुर यह शरीर जो संसारमें स्फुरित होरहाहै. सोभी केवल दुःखहीकेलिये है ॥ १ ॥ अज्ञ होनेपरभी आत्मसदृश, आत्माके चमत्कारको धारण करनेवाला, मोक्षोपायकी युक्तिसे मंगलरूप होनेपरभी अमंगल, यह शरीर न जड है, और न चेतन ॥ २ ॥ यह शरीरचित् और जड, दोनों पक्षोंमें संशयग्रस्त, दुष्टाशयसहित, अनिष्टचिंतक, अविवेकी, मूढात्मा मोहकोही देताहै ॥ ३ ॥ थोडेहीमें सुखी, और थोडेहीमें दुःखी इस शरीरके समान शोचनीय, और सबगुणोंसेहीन और अधम कोई पदार्थ नहीं है ॥ ४ ॥

आगमापायिना नित्यं दंतकेसरशालिना ॥ विकासस्मितपुष्पेण प्रतिक्षणमलंकृतः ॥ ५ ॥ भुजशाखो घनस्कंधो द्विजस्तंभशुभस्थितिः ॥ लोचनालिबिलाक्रांतः शिरः पीठबृहत्फलः ॥ ६ ॥ श्रवदंतरसग्रस्तो हस्तपादसुपल्लवः ॥ गुल्मवान् कार्यसंघातो विहंगमततास्पदः ॥ ७ ॥ सच्छायो देहवृक्षोऽयं जीवपांथगणास्पदः ॥ कस्यात्मीयः कस्य पर आस्थानास्था किलात्रके ॥ ८ ॥

अर्थ—आगमापायी (उत्पन्न और नाश होनेवाले) दांतरूप केशरसे शोभायमान विकसितस्मितरूपीपुष्पसे सदा अलंकृत ॥ ५ ॥ शाखारूपीभुजाओंसे उन्नतस्कन्धवाला, दांतरूपीपक्षियोंका आधार होनेसे अत्यन्त शोभित, नेत्ररूपी भ्रमरोंके स्थानसे युक्त, शिररूपी बडे फलसहित ॥ ६ ॥ काष्टकुट्ट (कटफोडवा) नाम पक्षीसे किये हुये कर्णरूप छिद्रसहित, हस्तपादरूपी उत्तम पल्लववाला, केशरूपी गुल्मवाला, अनेक कार्योंका समूह, जीव और ईश्वररूपी पक्षियोंका स्थान ॥ ७ ॥ उत्तमछाया (कान्ति) वाला जीवरूपी पथिकसमूहोंका स्थान, यह शरीररूपी वृक्षहै, यह किसका मित्र और किसका शत्रुहै, और इस शरीररूपीवृक्षमें जो रहतेहैं उनसे न मुझे प्रीति है न द्वेषहै किंतु उपेक्षाहै ॥ ८ ॥

तात संतरणार्थेन गृहीतायां पुनःपुनः ॥ नावि देहलतायां च कस्य स्यादात्मभावना ॥ ९ ॥ देहनाम्नि वने शून्ये बहुगर्त्तसमाकुले ॥ तनूरुहासंख्यतरौ विश्वासं कोऽधिगच्छति ॥ १० ॥ मांसस्नाय्वस्थिवलिते शरीरपटहेऽदृढे ॥ मार्जारवदहं तात तिष्ठाम्यत्र गतध्वनौ ॥ ११ ॥ संसारारण्यसंरूढो विलसच्चित्तमर्कटः ॥ चिंतामंजरिताकारो दीर्घदुःखघुणक्षतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे तात ! संसाररूपीसमुद्रसे पारउतरनेकेलिये वार २ खरीदिहुई इसशरीररूपी नौकामें आत्मभावना किसकी होसक्ती है ॥ ९ ॥ इंद्रियरूपी अनेकगर्तोंसे व्याप्त, रोमरूपी असंख्यवृक्षसहित, इस देहनामवाले शून्य जंगलमें अधिककालतक निःशंक रहनेका विश्वास किसीको होसकताहै ॥ १० ॥ मांसनाडी और हड्डियोंसे पूर्ण अदृढ (असार) उपदेशरूपीशब्दसे वर्जित, इस देहरूपीनगरमें मार्जारकेसमान मैं रहता हूं ॥ ११ ॥ संसाररूपीवनमें उत्पन्न चिंतारूपीलताओंसे वेष्टित दुःखरूपीघुणोंसे छिद्रित ॥ १२ ॥

तृष्णाभुजंगमीगेहं कोपकाककृतालयः ॥ स्मितपुण्योद्गमः श्रीमाञ्छुभाशुभमहाफलः ॥ १३ ॥ सुस्कंधौघलताजालो हस्तस्तवकसुन्दरः ॥ पवनस्पंदिताशेषस्वांगावयवपल्लवः ॥ १४ ॥ सर्वेन्द्रियखगाधारः सुजानुस्तंभ उन्नतः ॥ सरसश्छायया युक्तः कामपांथनिषेवितः ॥ १५ ॥ मूर्द्धसंजनितादीर्घशिरोरुहतृणावलिः ॥ अहंकारगृध्रकृतकुलायः सुषिरोदरः ॥ १६ ॥

अर्थ—तृष्णारूपीसर्पिणीका स्थान, कोपरूपीकाकोंका आलय, हास्य और पुण्यरूपीपल्लवोंका उत्पत्तिस्थान, शोभावान् शुभाशुभरूपी महाफलसहित ॥ १३ ॥ उत्तम स्कन्धरूपीशाखासमूहसहित, हस्तरूपी गुच्छोंसे अतिसुन्दर, प्राणरूपीपवनसे कम्पित ॥ १४ ॥ संपूर्ण इंद्रियरूपीपक्षियोंका आधार, उत्तमजंघारूपी धड (मध्य-

---

(१) यह शरीर आत्मा न होनेपरभी अपनेको आत्मा समझता है.

पर्व) से उन्नत (ऊंचा) कामरूपीपथिकोंसे सेवित ॥ १५ ॥ अतिदीर्घ केशरूपीतृणोंकी पंक्तियोंको शिरपर धारण करनेवाला, अहंकाररूपीगृध्रों (गीधों) का घोसला, उदररूपीकोटरसहित ॥ १६ ॥

विच्छिन्नवासनाजालमूलत्वाद्दुर्लवाकृतिः ॥ व्यायामविरसःकायवृक्षोऽयं न सुखाय मे ॥ १७ ॥ कलेवरमहंकारगृहस्थस्य महागृहम् ॥ लुठत्वभ्येतु वा स्थैर्यं किमनेन मुने मम ॥ १८ ॥ पंक्तिबद्धेंद्रियपशुं वलत्तृष्णागृहांगनम् ॥ रागरंजितसर्वांगं नेष्टं देहगृहं मम ॥ १९ ॥ पृष्ठास्थिकाष्ठसंघट्टपरिसंकटकोटरम् ॥ आंत्ररज्जुभिराबद्धं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २० ॥

अर्थ—अनेक वासनारूपीजालोंसे बहुमूल होनेके कारणसे उखाडनेको असमर्थ, अनेक परिश्रमरूपीदीर्घतासे विरस, यह शरीररूपी वटका वृक्ष मेरे सुखके लिये नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! यह शरीर, अहंकाररूपी गृहस्थका बडा-भारी घरहै चाहै गिरपडे वा स्थिररहै मुझे इससे क्या प्रयोजन ॥ १८ ॥ जिसमें पंक्तिसे इन्द्रियरूपी पशु बँधे हैं और चंचल तृष्णारूपीस्त्री स्वामिनी (मालिक) है जिसमें रागरूपीगारेसे संपूर्णस्थान लिप्तहै. ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं है ॥ १९ ॥ पीछेकी हड्डीयोंके समूहसे न्यून अवकाशला मलमूत्रादिसे लिप्त, आँतोंसे बंधाहुआ शरीररूपी-गृह मुझे इष्टनहीं है ॥ २० ॥

प्रसृतस्नायुतंत्रीकं रक्तांबुकृतकर्दमम् ॥ जरासंकोलधवलं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २१ ॥ चित्तभृत्यकृतानंतचेष्टावष्टब्धसंस्थिति ॥ मिथ्यामोहमहास्थूणं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २२ ॥ दुःखार्भककृताक्रंदं सुखशय्यामनोरमम् ॥ दुरीहादग्धदासीकं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २३ ॥ मलाढ्यविषयव्यूहभांडोपस्करसंकटम् ॥ अज्ञानक्षारवलितं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेक नाडीरूपी विशालबंधनसहित, रक्तरूपीजलसे कीचडसहित, वृद्धावस्थारूपीचूनेसे धवल शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं है ॥ २१ ॥ जिसमें चित्तरूपी भृत्यने इसके गिरनेसें बचानेकी अनेकचेष्टा की है और जिसमें मिथ्या तथा अज्ञानरूपी बडे २ खम्भेहैं ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २२ ॥ दुःखरूपीबालकोंके महारोदनसे संयुक्त, सुखरूपीशय्यासे मनोरम, दुष्टचेष्टारूपी नष्टदासियोंसे पूर्ण, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट (प्रिय) नहीं है ॥ २३ ॥ मलसे पूर्ण विषयसमूहका वर्तन तथा अन्यगृहके साधनोंसे व्याप्त, अज्ञानरूपीक्षारद्रव्योंसे लिप्त यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं हैं ॥ २४ ॥

गुल्फगुग्गुलुविश्रांतजानूर्ध्वस्तंभमस्तकम् ॥ दीर्घदोर्दारुसुदृढं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २५ ॥ प्रकटाक्षगवाक्षांतःक्रीडत्प्रज्ञागृहांगनम् ॥ चिंताडुहितृकं ब्रह्मन्नेष्टं देहगृहं मम ॥ २६ ॥ मूर्धजाच्छादनच्छन्नकर्णश्रीचंद्रशालिकम् ॥ आदीर्घांगुलिनिर्व्यूहं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २७ ॥ सर्वांगकुड्यसंघातघनरोमयवांकुरम् ॥ संशून्यपेटविवरं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २८ ॥

अर्थ—जो जंघारूपी आधारकाष्ठपर विश्रान्तहै और जिसमें जलका भाग तथा मस्तक बडे २ दोषरूपी दीर्घ-भुजाओंके काष्ठसे दृढहै, ऐसा यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं हैं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियरूपीझरोखोंमें बुद्धिरूपी स्त्रीका क्रीडास्थान और चिन्तारूपीकन्यायोंका निवासस्थान, यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २६ ॥ केशरूपी आच्छादनोंसे छायाहुआ, मोती और कुण्डलयुक्त कर्णरूपी ऊपरकेगृहोंसे शोभित, दीर्घअंगुलीरूपीकाष्ठकी पुतलियोंसे सज्जित, यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २७ ॥ सम्पूर्णअंगरूपीभित्तियोंपर घनरोमरूपीयवके अंकुरोंसे परिपूर्ण, उदरके छिद्ररूपी शून्यपेटारीवाला, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २८ ॥

नखोर्णनाभिनिलयं सरमारणितांतरम् ॥ भाकारकारिपवनं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २९ ॥ प्रवेशनिर्गमव्यग्रवातवेगमनारतम् ॥ विततक्षगवाक्षं तन्नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३० ॥ जिव्हामर्कटिकाक्रांतवदनद्वारभीषणम् ॥ दृष्टदंतास्थिशकलं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३१ ॥ त्वक्सुधालेपमसृणं यंत्रसंचारचंचलम् ॥ मनःसदाखनोत्खातं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३२ ॥

अर्थ—नखरूपीमकरीका स्थान, क्षुधारूपी कुतियासे सर्वत्र शब्दायमान भयंकर शब्दकरनेवाले पवनसे व्याप्त शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २९ ॥ गमनागमनमें तत्पर वायुके बेगसे व्याकुल, विस्तृत इन्द्रियरूपझरोखेवाला, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं ॥ ३० ॥ जिव्हारूपीमर्कटी (वानरी) से व्याप्त, मुखरूपीदरवाजेसे अतिभयंकर और जिसमें दांतरूपीहड्डीके टुकडे देखपडतेहै ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है॥३१॥त्वचारूपी चूनेकेलेपसे चिक्कण अनेक भीतरके यंत्रोंके संचारसे अतिचंचल सदा मनरूपीमूषकसे खोदेहुये स्थानके तुल्य यह शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं ॥३२॥

स्मितदीपप्रभोद्भासि क्षणमानंदसुंदरम् ॥ क्षणं व्याप्तं तमःपूरैर्नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३३ ॥ समस्तरोगायतनं वलीपलितपत्तनम् ॥ सर्वाधिसारगहनं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३४॥ अक्षर्क्षक्षोभविषमा शून्या निःसारकोटरा ॥ तमोगहनदिक्कुंजा नष्टो देहाऽटवी मम ॥ ३५ ॥ देहाऽऽलयं धारयितुं न शक्नोमि मुनिश्वर ॥ पंकमग्नं समुद्धर्तुं गजमल्पबलो यथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्मित (किंचित् हास्य) रूपी दीपकसे कुछ कालके लिये प्रकाशमान, पुनः क्षणमेंही अज्ञानके प्रवाहरूपी अन्धकारसे व्याप्त, शरीररूपी गृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ ३३ ॥ समस्त रोगोंका स्थान, त्वचाओंकी शिथिलताका नगर, सम्पूर्ण मानसी पीडाओंसे अति भयंकर यह शरीररूपी गृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ ३४ ॥ इन्द्रियरूपी भालुओंसे महाभयंकर शून्य और असार गुफावाला, अज्ञानरूपी गहन कुंजोंसे पूर्ण, यह शरीररूपी महाजंगल मुझे इष्ट नहीं है ॥ ३५॥ हे मुनीश्वर ! इस देहरूपी आलयको धारण करनेमें मैं ऐसे असमर्थहूं, जैसे कीचडमें फसे हुये हाँथीको निकालनेकेलिये अल्प अवस्थावाला बालक ॥ ३६ ॥

किं श्रिया किं च राज्येन किं कायेन किमीहितैः ॥ दिनैः कतिपयैरेव कालः सर्वं निकृंतति ॥ ३७ ॥ रक्तमांसमयस्याऽस्य सबाह्याभ्यंतरं मुने ॥ नाशैकधर्मिणो ब्रूहि कैव कायस्य रम्यता ॥ ३८ ॥ मरणावसरे कायाजीवं नानुसरंति ये ॥ तेषु तातकृतघ्नेषु कैवाऽऽस्था वद धीमताम् ॥ ३९ ॥ मत्तेभकर्णाग्रचलः कायो लंबांबुभंगुरः ॥ नसंत्यजति मां यावत्तावदेनं त्यजाम्यहम् ॥ ४० ॥

अर्थ—लक्ष्मीसे क्या ? राज्यसे क्या ? शरीरसे क्या ? और चेष्टा तथा मनोरथोंसे क्या होताहै ? क्योंकि थोडे दिनमेंही काल इन सबको काटडालताहै ॥ ३७ ॥ हे मुने ! बाहरभीतरसे रक्त, मांस और अस्थिमय, सदा क्षणभंगुर इस शरीरकी कहिये, क्या रमणीयताहै ॥ ३८ ॥ मरणके समयमें (सदा पालित पोषित) शरीर जीवके पीछे नहीं जाती, ऐसे कृतघ्न शरीरोंमें बताईये बुद्धिमानोंका क्या विश्वास ॥ ३९ ॥ मत्तहाथीके कर्णके अग्रभागके समान चंचल, लटकते हुए पानीके बिन्दुके सदृश क्षणभंगुर यह शरीर जबतक मुझे नहीं त्यागता इसके पूर्वही मैं इसे त्यागता हूं ॥ ४० ॥

पवनस्पंदतरलः पेलवः कायपल्लवः ॥ जर्जरस्तनुवृत्तश्च नेष्टो मे कटुनीरसः ॥ ४१ ॥ भुक्त्वा पीत्वा चिरं कालं बालपल्लवपेलवाम् ॥ तनुतामेत्य यत्नेन विनाशमनुधावति ॥ ४२ ॥ तान्येव सुखदुःखानि भावाभाव मयान्यसौ ॥ भूयोऽप्यनुभवन्कायः प्राकृतो हि न लज्जते ॥ ४३ ॥ सुचिरं प्रभुतां कृत्वा संसेव्य विभवश्रियम् ॥ नोच्छ्रायमेति न स्थैर्यं कायः किमिति पाल्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्राणरूपी पवनकी गतिसे अति चंचल, कोमल, आधिव्याधिरूप सैंकडों कांटोंसे अति शिथिल, क्षुद्रस्वभाववाला कटु और नीरस यह शरीररूपी पत्र मुझे इष्टनहीं है ॥ ४१ ॥ अधिक कालतक उत्तम २ पदार्थोंका भोजन और पान करनेमेंभी कोमल पत्रकेसमान विनाकारणभी यह कृश (दुर्बल) होजाताहै और विनाशकीही ओर दौडताहै ॥ ४२ ॥ भाव और अभावमय उन्हीं २ सुखदुःखोंका वार २ अनुभव करताहुआभी यह पामर शरीरलज्जित नहीं होता ॥ ४३ ॥ बहुत कालतक बडी प्रभुता करके, और अनेक प्रकारके विभवोंको प्राप्त होकरभी यह शरीर न तो बढताहै और न जिस दशामें हैं उसी दशामें स्थिर रहताहै, पुनः इसका पालन क्यों करना ॥ ४४ ॥

जराकाले जरामेति मृत्युकाले तथा मृतिम् ॥ सम एवाऽविशेषज्ञः कायो भोगिदरिद्रयोः ॥ ४५ ॥ संसारांभोधिजठरे तृष्णाकुहरकांतरे ॥ सुप्तस्तिष्ठति मूकेहो मूकोऽयं कायकच्छपः ॥ ४६ ॥ दहनैकार्थयोग्यानि कायकाष्ठानि भूरिशः ॥ संसाराब्धाविहोह्यंते कंचित्तेषु नरं विदुः ॥ ४७ ॥ दीर्घदौरात्म्यवलयानिपातफलपातया ॥ न देहलतया कार्यं किंचिदस्ति विवेकिनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—वृद्धावस्थाके समयमें वृद्धअवस्थाको प्राप्त होताहै और मृत्युकेसमयमें मृत्युको, यह मूर्ख शरीर महाभोगी धनी और दरिद्र दोनोंकेलिये समानही है ॥ ४५ ॥ तृष्णारूपी छिद्रवाले संसाररूपी समुद्रके उदरमें यह कायरूपी कच्छप चेष्टारहित सो रहाहै ॥ ४६ ॥ केवल भस्म करने योग्य, ये शरीररूपी अनेक काष्ट, इस संसाररूपी समुद्रमें वह रहे हैं उनमेंसे किसी एकको मनुष्यभी कहतेहैं ॥ ४७ ॥ बडे २ दुष्टतारूपी बन्धनोंको धारण करनेवाली और कुकर्मरूपी फलोंसे नीचे गिरनेवाली, इस देहरूपी लतासे विवेकी पुरुषको क्या प्रयोजनहै ॥ ४८ ॥

मज्जन् कर्दमकोशेषु झटित्येव जरां गतः ॥ न ज्ञायते यात्यचिरात्क्व कथं देहदर्दुरः ॥ ४९ ॥ निःसारसकलारंभाः कायाश्चपलवायवः ॥ रजोमार्गेण गच्छंतो दृश्यंते नेह केन चित् ॥ ५० ॥ वायोदीपस्य मनसो गच्छतो ज्ञायते गतिः ॥ आगच्छतश्चभगवञ्छरीरस्य कदा च न ॥ ५१ ॥ बद्धास्था

ये शरीरेषु बद्धास्था ये जगत्स्थितौ ॥ तान्मोहमदिरोन्मत्तान्धिग्धिगस्तु पुनःपुनः ॥ ५२ ॥

अर्थ—विषयरूपी महादलदलमें प्रवेश करता हुआ, यह शरीररूपी मण्डूक न जाने कोन दुर्दशाओंसे कैसे और कहां शीघ्र चलाजाताहै ॥ ४९ ॥ संपूर्ण नीरस आरम्भवाले शरीररूपी चपल वायु, रजोगुणरूपी धूलियुक्त मार्गसे च-लेजा रहे हैं परंतु किसीको देख नहीं पडते ॥ ५० ॥ हे भगवन्! वायु, दीपक और मन इनकी उत्पत्ति और विनाश भान होते हैं. परंतु इस शरीरका किसीको भान नहीं होता ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य शरीर और जगत्की स्थितिका अधिक कालतक रहनेका विश्वास करते हैं, उन मोहरूपी मदिरासे मत्तजनोंको वार २ धिक्कारहै ॥ ५२ ॥

नाऽहं देहस्य नो देहो मम नाऽयमहं तथा ॥ इति विश्रांतचित्ता ये ते मुने पुरुषोत्तमाः ॥ ५३ ॥ मानावमानबहुलाबहुलाभमनोरमाः ॥ शरीरमात्रबद्धास्थं घ्नंति दोषदृशो नरम् ॥ ५४ ॥ शरीरश्वभ्रशायिन्या पिशाच्या पेशलांगया ॥ अहंकारचमत्कृत्या छलेन छलिता वयम् ॥ ५५ ॥ प्रज्ञा वराकी सर्वैव कायबद्धास्थयानया ॥ मिथ्याज्ञानकुराक्षस्या छलिता कष्टमे किका ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने! न मैं देहकाहूं; और न यह देह मेराहै. ऐसा विचार करके जो आत्मामें विश्रांति पातेहैं वेही मनुष्य पुरुषोंमें उत्तमहैं ॥ ५३ ॥ मान और अपमानसे पूर्ण, अनेक विषयके लाभोंसे मनोरम जो दोष दृष्टिपांते है, वे शरीरमात्रमें अभिमान रखनेवाले मनुष्यको मार लेती हैं ॥ ५४ ॥ शरीररूपी गढेमें शयन करनेवाली, उत्तम और कोमल शरीरवाली अहंकारकी चमत्कृति जो भोग तृष्णारूपिणी पिशाचिकांहै, उसने कपटसे हमको ठग लियाहै ॥ ५५ ॥ बडे खेदकी बातहै, कि इस शरीरमात्रमें विश्वास करनेवाली, मिथ्या अज्ञानरूपी दुष्टराक्षसीने, विचारी विवेकरूप सहायकसे शून्य अकेली सद्बुद्धिको ठगलियाहै ॥ ५६ ॥

न किंचिदपि दृश्येऽस्मिन्सत्यं तेन हताऽत्मना ॥ चित्रं दग्धशरीरेण जनता विप्रलभ्यते ॥ ५७ ॥ दिनैः कतिपयैरेव निर्झरांबुकणो यथा ॥ पतत्ययमयत्नेन जरठः कायपल्लवः ॥५८॥ कायोऽयमचिराऽपायो बुद्बुदोंबुनिधाविव ॥ व्यर्थं कार्यपरावर्त्ते परिस्फुरति निष्फलः ॥ ५९ ॥ मिथ्याज्ञानविकारेऽस्मिन्स्वप्नसंभ्रमपत्तने ॥ काये स्फुटतराऽपाये क्षणमास्था न मे द्विज ॥ ६० ॥

अर्थ—बडे आश्चर्यकी बातहै कि यद्यपि इस दृश्यमात्र जगत्में कोईभी पदार्थ सत्य नहीं है, तो यह दृश्यके अन्तर्गत शरीर कब सत्य होसक्ताहै, परंतु क्षणभंगुर इस दुष्ट शरीरने सम्पूर्ण प्राणीमात्रको ठगलियाहै ॥ ५७ ॥ जैसे झरनोंके जलका कण शीघ्रही नष्ट होजाताहै, ऐसेही यह शरीररूपी पुतला विना यत्नही शीघ्र गिर जाताहै ॥ ५८ ॥ समुद्रके फेनकेसमान शीघ्र नष्ट होनेवाला यह शरीर, कार्यरूपी जलके चक्रमें, परोपकार शून्य व्यर्थही स्फुरित होरहाहै ॥ ५९ ॥ हे ब्राह्मण ! मिथ्या अज्ञानका विकार स्वप्नके नगरके तुल्य, और प्रत्यक्ष नाशवाले इस शरीरमें मुझे क्षणभरके लियेभी विश्वास नहीं है ॥ ६० ॥

तडित्सु शरदभ्रेषु गंधर्वनगरेषु च ॥ स्थैर्यं येन विनिर्णीतं स विश्वसितु विग्रहे ॥ ६१ ॥ सततभंगुरकार्यपरंपराविजयि जातजयं हठवृत्तिषु ॥ प्रबलदोषमिदं तु कलेवरं तृणमिवाऽहमपोह्य सुखं स्थितः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे कायजुगुप्सानामाऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—विद्युत् (विजुली) में शरत्कालके मेघोंमें और गंधर्वनगरोंमें, जिसने स्थिरता निश्चितकर ली है, वही इस शरीरकी स्थिरतामें विश्वास करे ॥ ६१ ॥ निरन्तर एकदूसरेसे अधिक क्षणभंगुर जो विद्युत् शरत्कालका मेघ, और गंधर्वनगर कार्यके समूहहैं उन सबमें विजय पाने (अनित्यतामें) वाला प्रबल दोषोंके मूलकारण इस शरीरको तृणके समान त्यागके मैं इससमय सुखी हूं ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे कायजुगुप्सानामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अज्ञान, क्षुधा, रोग, अपवित्रता, और चपलतासे दूषित, तिर्यग् जन्तु (पशु पक्षी, कीट, पतंगों) ओंके समान, बाल्यावस्थाकी निन्दा इस १९ वे सर्गमें की गई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ लब्ध्वापि तरलाकारे कार्यभारतरंगिणि ॥ संसारसागरे जन्म बाल्यं दुःखाय केवलम् ॥ १ ॥ अशक्तिरापदस्तृष्णा मूकता मूढबुद्धिता ॥ गृध्नुता लोलता दैन्यं सर्वं बाल्ये प्रवर्त्तते ॥ २ ॥ रोषरोदनरौद्रासु दैन्यजर्जरितासु च ॥ दशासु बंधनं बाल्यमालानं करिणामिव ॥ ३ ॥ न मृतौ न जरा रोगे न चाऽऽपदि न यौवने ॥ ताश्चिंताः परिकृंतंति हृदयं शैशवेषु याः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-चंचल आकारवाले, अनेक कार्य्यके भाररूपी तरंगसहित, इस संसाररूपी समुद्रमें मनुष्यजन्म पाकेभी बाल्यअवस्था केवल दुःखहीके लिये है ॥ १ ॥ अशक्ति, अनेक आपत्तियां, तृष्णा, मूकता मूढबुद्धि, क्रीडादिमें अत्यन्त अभिलाषा और चपलता, इष्ट पदार्थके न मिलनेसे अतिदीनता, ये सब बाल्यअवस्थामें उपस्थित होते हैं ॥ २ ॥ क्रोध, रोदन व्याकुलतादिसे भयंकर और दीनतासे अति शिथिल दशाओंमें, यह बाल्यअवस्था मनुष्यके लिये ऐसा बन्धनहै जैसा हांथियोंके लिये लोहेका स्तंभ ॥ ३ ॥ जो चिन्ता यें बाल्यअवस्थामें हृदयको महापीडा देतीहैं, वे न तो मृत्युमें, न वृद्धावस्थामें, न रोगमें न आपत्तिमें और न युवावस्थामें ॥ ४ ॥

तिर्यग्जातिसमारंभः सर्वैरेवाऽवधीरितः ॥ लोलो बालसमाचारो मरणादपि दुःखदः ॥ ५ ॥ प्रतिबिंबघनाऽज्ञानं नानासंकल्पपेलवम् ॥ बाल्यमाऌनसंशीर्णमनः कस्य सुखावहम् ॥ ६ ॥ जलवन्ह्यनिलाजस्रजातभीत्या पदे पदे ॥ यद्भयं शैशवेऽबुद्ध्या कस्यापदि हि तद्भवेत् ॥ ७ ॥ लीलासु दुर्विलासेषु दुरीहासु दुराशये ॥ परमं मोहमाधत्ते बालो बलवदापतन् ॥ ८ ॥

अर्थ—सबलोग जिसका निरादर करतेहैं तथा पशु आदिके समान और जो अतिचंचल, यह बाल्यअवस्थाका आचरण मरणसेभी अधिक दुःखदायी है ॥५॥ अनेकविषयोंमें मिथ्या अज्ञानसहित अनेकप्रकारके संकल्पोंसे अतितुच्छ, इष्टपदार्थोंके न मिलनेसे चारोंओरसे छिन्न यह बाल्यअवस्था किसको सुखदायकहै ॥६॥ अज्ञानके कारणसे जल, अग्नि और वायु आदिसे पद पदपर जो भय बाल्याऽवस्थामें होताहै वह भय आपत्तिमेंभी किसको होताहै ॥ ७ ॥ क्रीडाओंमें, दुष्ट बिलासोंमें, दुष्ट चेष्टाओंमें, दुःखदायक इच्छाओंमें बालक बलात्कार गिरनेकेलिये महाअज्ञान धारण करताहै ॥८॥

विकल्पकल्पिताऽऽरंभं दुर्विलासं दुरास्पदम् ॥ शैशवं शासनायैव पुरुषस्य न शांतये ॥ ९ ॥ ये दोषा ये दुराचारा दुष्क्रमा ये दुराधयः ॥ ते सर्वे संस्थिता बाल्ये दुर्गर्त्त इव कौशिकाः ॥ १० ॥ बाल्यं रम्यमिति व्यर्थबुद्धयः कल्पयंति ये ॥ तान्मूर्खपुरुषान्ब्रह्मन्धिगस्तु हतचेतसः ॥ ११ ॥ यत्र दोलाकृति मनः परिस्फुरति वृत्तिषु ॥ त्रैलोक्याऽभव्यमपि तत्कथं भवति तुष्टये ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे बिना विचारे व्यर्थ कार्यारम्भ करनेवाली, दुष्ट चेष्टासे पूर्ण, तथा दुःखोंकी स्थान, यह बाल्याऽवस्था केवल बडोंकी ताडनाके लिये है न कि शांतिकेलिये ॥ ९ ॥ जितने दोषहैं, जितने दुराचारहैं और परिणाममें भयंकर जितने रोगहैं, वे सब बाल्यावस्थामें ऐसे आकर स्थित होतेहैं जैसे नष्ट गढोंमें उल्लूक ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! यह बाल्यावस्था अति रमणीयहै यह जो मिथ्या बुद्धिवाले कल्पना करतेहैं उन मूर्ख पुरुषोंको धिक्कारहै ॥ ११ ॥ जहां संपूर्ण विचारोंमें मन संशयग्रस्त रहताहै और तीनों लोकमें जो अमंगलहै, वह भला संतोषकेलिये कब हो सक्ताहै ॥१२॥

सर्वेषामेव सत्वानां सर्वावस्थाभ्य एव हि ॥ मनश्चंचलतामेति बाल्ये दशगुणं मुने ॥ १३ ॥ मनःप्रकृत्यैव चलं बाल्यं च चलतां वरम् ॥ तयोः संश्लिष्यतोस्त्राता क इवांतःकुचापले ॥ १४ ॥ स्त्रीलोचनैस्तडित्पुंजैर्ज्वालाजालैस्तरंगकैः ॥ चापलं शिक्षितं ब्रह्मञ्छैशवाऽऽक्रांतचेतसः ॥ १५ ॥ शैशवं च मनश्चैव सर्वास्वेव हि वृत्तिषु ॥ भ्रातराविव लक्ष्येते सततं भंगुरस्थिती ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मुने ! संपूर्ण प्राणियोंकी सब अवस्थाओंसे बाल्यावस्थामें मन दशगुण अधिक चंचल रहताहै ॥ १३ ॥ मन तो स्वभावहीसे चपलहै, और बाल्यावस्थाकी चंचलता सब चंचलताओंसे अधिकहै जब ये दोनों चंचलता मिलगई तो भला इनके बीचमें अनर्थोंसे कौन रक्षा करसक्ताहै ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्त्रियोंके नेत्र, विजुलीकेसमूह, ज्वालाकेसमूह और तरंग इनसभोंने अपनी २ चपलता बाल्यावस्थाके चित्तसेही सीखी है ॥ १५ ॥ बाल्यावस्था और मन ये दोनों सब वृत्तियोंमें सहोदरके समान प्रतीत होतेहैं; और दोनोंकी स्थिति सदाक्षणभंगुरहै ॥ १६ ॥

सर्वाणि दुःखभूतानि सर्वे दोषा दुराधयः ॥ बालमेवोपजीवंति श्रीमंतमिव मानवाः ॥ १७ ॥ नवं नवं

प्रीतिकरं न शिशुः प्रत्यहंयदि ॥ प्राप्नोति तदसौ याति विषवैषम्यमूर्छनाम् ॥ १८॥ स्तोकेन वशमायाति स्तोकेनैति विकारिताम् ॥ अमेध्य एव रमते बालः कौलेयको यथा ॥ १९ ॥ अजस्रबाष्पवदनः कर्दमाऽऽक्तो जडाशयः ॥ वर्षोक्षितस्य तप्तस्य स्थलस्य सदृशः शिशुः ॥ २० ॥

अर्थ—संपूर्ण बडे २ दुर्व्यसनादि दुःख, सबप्रकारके दुष्टरोग बाल्यअवस्थाका ऐसेही आश्रयलेतेहैं. जैसे धनीमनुष्यका दरिद्र ॥ १७ ॥ यदि बालक नित्यनई २ वस्तु अपनी प्रसन्नताके लिये नहींपाता तो विषभोजनसे जैसी दुःसह मूर्च्छा प्राप्तहोती है. वही दशा इसकी होती है ॥ १८ ॥ थोडेहीमें तो वशमें आजाताहै, और थोडेहीमें अति क्रुद्ध होजाताहै, और कुत्तेकेसमान सदा अपवित्रस्थानमेंही क्रीडा करताहै ॥ १९ ॥ सदा अश्रुसे परिपूर्णमुख, कीचडसे लिप्त, अचेतन, यहबालक ऐसे रहताहै. जैसे वर्षासे सिंचीहुई तप्तभूमि ॥ २० ॥

भयाहारपरं दीन दृष्टादृष्टाभिलाषि च ॥ लोलबुद्धि वपुर्द्धत्ते बाल्यंदुःखाय केवलम् ॥ २१॥ स्वसंकल्पाभिलषितान्भावानप्राप्य तप्तधीः ॥ दुःखमेत्य बलो बालो विनिष्कृत्त इवाशये ॥ २२ ॥ दुरीहालब्धलक्षाणि बहुवक्रोल्बणानि च ॥ बालस्य यानि दुःखानि मुने तानि न कस्य चित् ॥ २३ ॥ बालो बलवता स्वेन मनोरथविलासिना ॥ मनसा तप्यते नित्यं ग्रीष्मेणेव वनस्थली ॥

अर्थ—सदाभय और आहारमें तत्पर, दूर और निकटकेपदार्थोंका अभिलाषी, चंचलबुद्धि और शरीरको धारणकरनेवाली यह बाल्यावस्था केवल दुःखकेहीलिये है ॥ २१ ॥ अपने अभिलाषितपदार्थोंको न पाकर, सन्तप्तमन, बलरहितबालक ऐसा दुःखीहोताहै. मानों उसका हृदयही कटगया ॥ २२ ॥ हे मुने ! दुष्टचेष्टा वा दुष्टमनोरथोंसे प्राप्त और अनेकवक्र (टेढी) ठगनेकी युक्तियोंसे अतिक्रूर जो दुःख बालकोंको होते हैं वे दूसरे किसीको नहींहोते ॥ २३ ॥ बालक अनेकमनोरथोंमेंलीन अपने बलवान्मनसेही सदा ऐसे तपाकरताहै, जैसे ग्रीष्म(गर्मी)की ऋतुसेबनकीभूमि॥२४॥

विद्यागृहगतो बालो परामेति कदर्थनाम् ॥ आलान इव नागेंद्रो विषवैषम्यभीषणाम् ॥२५॥ नानामनोरथमयी मिथ्याकल्पितकल्पना ॥ दुःखायाऽत्यंतदौर्घाय बालता पेलवाशया ॥ २६ ॥ संहृष्टो भुवनं भोक्तुमिंदुमादातुमंबरात् ॥ वांछते येन मौर्ख्येण तत्सुखाय कथं भवेत् ॥ २७ ॥ अंतश्चित्तमशक्तस्य शितातपनिवारणे ॥ को विशेषो महाबुद्धे बालस्योर्वीरुहस्तथा ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि बालकपाठशालामें भेजाजाताहै तो विषकीसी भयंकर ऐसीपीडाको प्राप्तहोताहै, जैसे शृंखलामें बद्धहस्ती ॥ २५ ॥ नानाप्रकारके मनोरथोंसेपूर्ण, मिथ्यापदार्थोंमें सत्यकल्पनाकरनेवाली, अतिकोमल प्रकृतिवाली, यह बाल्यावस्था अत्यन्त दुःखोंकेही लियेहै ॥ २६ ॥ कभी २ अलभ्यपदार्थोंके भोजनकी इच्छासे रोतेहुये बालकसे जब यह कहाजाताहै. कि तुमको भोजनदेंगे तो अतिप्रसन्नहोजाताहै, और जिसमूर्खतासे आकाशसे चन्द्रमाको पकडना चाहताहै. वह सुखकेलिये किसप्रकार होसक्तीहै ॥ २७ ॥ हे महाबुद्धे ! भगवन् शीत और आतप निवारणकरनेमें असमर्थ परन्तु उनकी पीडाको अन्तःकरणमे अनुभवकरनेमें समर्थ ऐसे बालक और वृक्षमें क्या भेदहै ॥ २८ ॥

उड्डीतुमभिवांछंति पक्षाभ्यां क्षुत्परायणाः ॥ भयाहारपरा नित्यं बाला विहगधर्मिण ॥ २९ ॥ शैशवे गुरुतो भीतिर्मातृतः पितृतस्तथा ॥ जनतो ज्येष्ठबालाच्च शैशवं भयमंदिरम् ॥ ३० ॥ सकलदोषदशाविहताशयं शरणमप्यविवेकविलासिनः ॥ इह न कस्यं चिदेव महामुने भवति बाल्यमलं परितुष्टये ॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे बाल्यजुगुप्सानामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—क्षुधामें परायणहोके अपने भुजारूपीपक्षोंसे उडनाचाहतेहैं भय और भोजनकी चिंताहीमें सदा लीन ये बालक पक्षियोंकेसमान होते हैं ॥२९॥ बाल्यावस्थामें गुरुसेभय, मातासेभय, पितासेभय, मनुष्योंसेभय, और अपनेसे बडेलडकेसेभय, इसलिये बाल्यावस्था भयका स्थानही है ॥ ३० ॥ हे मुने ! संपूर्णदोषकी दशाओंसे अन्तःकरण जहांपर दूषितहै, और अविवेकरूपी विलासियोंका क्रीडास्थान, यह बाल्यावस्था किसीकीभी प्रसन्नताकेलियेनहीं है ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे बाल्यजुगुप्सानामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

---

(१)-वर्षासे सींची हुई तप्तभूमिमें आंसुओंके सदृश बिंदुओंका होना प्रसिद्धहै. (२) बालक और वृक्ष दोनों शीत और घामकी पीडा तो समझते हैं. परन्तु दूसरेसे अपनी पीडा कह नहींसक्ते.

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

लोभ, द्वेष, मद, असूया (गुणोंमेभी दोष दृष्टि) और ईर्षा, आदिसे दूषित, कामक्रोधादि बडे २ अनर्थोंका गृह जो यौवन उसकी निंदा इस २० वें सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ बाल्यानर्थमथत्यक्त्वा पुमानभिहताशयः ॥ आरोहति निपाताय यौवनं संभ्रमेण तु ॥ १ ॥ तत्राऽनंतविलासस्य लोलस्य स्वस्य चेतसः ॥ वृत्तिरनुभवन्याति दुःखाद्दुःखांतरं जडः ॥ २ ॥ स्वचित्तबिलसंस्थेन नानासंभ्रमकारिणा ॥ बलात्कामपिशाचेन विवशः परिभूयते ॥ ३ ॥ चिंतानां लोलवृत्तीनां ललनानामिवाऽवृतिः ॥ अर्पयत्यवशं चेतो बालानामंजनं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-यहं प्राणी बाल्यअवस्थाके अनर्थोंको छोडके, कामक्रोधादिरूपी पिशाचोंसे दूषित विषयभोगके उत्साहकी भ्रांतिसे यौवनअवस्थामें गिरनेहीके अर्थ चढताहै ॥ १ ॥ इस अवस्थामें अनेकप्रकारकी चेष्टा संयुक्त अपने चंचल अंतःकरणकी रागद्वेषादि पूर्णवृत्तियोंको अनुभव करता हुआही यह मूर्ख दुःखकेऊपर दुःखही पाता है ॥ २ ॥ अपनेही चित्तमें रहनेवाला, नानाप्रकारकी भ्रांतिको उत्पन्न करनेवाला, कामरूपी पिशाच बलात्कार (जबरदस्ती) से इस मनुष्यको अपने वशमें करके अनेक दुर्गति करताहै ॥ ३ ॥ इस युवाऽवस्थामें अवश चित्त स्त्रियोंकेसमान चंचल स्वभाववाली चिंताओंके स्वेच्छाचारको ऐसा देताहै जैसे बालकोंके नेत्रको सिद्धांजन[2] ॥ ४ ॥

ते ते दोषा दुरारंभास्तत्र तंतादृशाशयम् ॥ तद्रूपं प्रतिलुंपन्तिदुष्टास्तेनैव ये मुने ॥ ५॥ महानरकबीजेन संततभ्रमदायिना ॥ यौवनेन न ये नष्टा नष्टा नाऽन्येन तेजनाः ॥ ६ ॥ नानारसमयी चित्रवृत्तांतनिचयोंभिता ॥ भीमा यौवनभूर्येन तीर्णा धीरः स उच्यते ॥ ७ ॥ निमेषभासुराकारमालोलघनगर्जितम् ॥ विद्युत्प्रकाशमशिवं यौवनं मे न रोचते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! इस युवाऽवस्थामें कामादिसे वशीभूत अतएव कामादिरूप मनुष्यको, बडे भयंकर दोष इस अवस्थामें पुष्टकर दियाहै और जिनसे व्यभिचार हुआ, कलह, और हत्यादि होतेहैं मनुष्यको सर्वथा नष्टकर देतेहैं ॥ ५ ॥ महानरकका मूलकारण और सदा अनेक भ्रम उत्पन्न करनेवाले इस यौवनने जिनको नष्ट नहीं किया वे दूसरेसे नहीं नष्ट होसक्ते ॥ ६ ॥ नानाप्रकारके शृंगारादि विषयके अभिलाषरूपी दुस्तर जलोंसे पूर्ण, और रागद्वेषादिरूपी चोर और व्याघ्रादिके आश्चर्यजनक वृत्तान्तोंसे व्याप्त, इस युवाऽवस्थारूप जंगलभूमिसे जो पार होगयाहै वही धीर कहाताहै ॥ ७ ॥ निमेषमात्रकेलिये प्रकाशरूप अभिमानके वचनरूपी मेघकी गर्जनासहित विद्युत्के प्रकाशकेसदृश यह अमंगल यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ८ ॥

मधुरं स्वादु तिक्तं च दूषणं दोषभूषणम् ॥ सुराकल्लोलसदृशं यौवनं मे न रोचते ॥ ९ ॥ असत्यं सत्यसंकाशमचिराद्विप्रलंभदम् ॥ स्वप्नांगनासंगसमं योवनं मे न रोचते ॥ १० ॥ सर्वस्याऽग्रे सर्वपुंसः क्षणमात्रमनोहरम् ॥ गंधर्वनगरप्रख्यं यौवनं मे न रोचते ॥ ११ ॥ इषुप्रपातमात्रं हि सुखदं दुःखभासुरम् ॥ दाहदोषप्रदं नित्यं यौवनं मे न रोचते ॥ १२ ॥

अर्थ—भोग समयमें मधुर स्वाद युक्त, परिणाममें कटु और निंदादि दोषका हेतु, अनेक दोषोंका भूषण, मदिराकेमदकेसमान, यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ ९ ॥ असत्यहोनेपरभी सत्यकेसमान, बहुतशीघ्र वंचना (धोका) करनेवाला, स्वप्नकी स्त्रीके समागमकेसमान, यह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ १० ॥ सब मनोहर वस्तुओंसे क्षणमात्रकेलिये सबको अति मनोहर, गन्धर्वनगरकेसमान यह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ११ ॥ क्षणभरकेलिये सुखदायी, और सदाकेलिये दुःखदायी, अनेक सन्तापादि दोषोंको नित्य देनेवाला, यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ १२ ॥

आपातमात्ररमणं सद्भावरहितांतरम् वेश्यास्त्रीसंगमप्रख्यं यौवनं मे न रोचते ॥ १३ ॥ ये के च न समारंभास्ते सर्वे सर्वदुःखदाः ॥ तारुण्ये संनिधिं यांति महोत्पाता इव क्षये ॥ १४ ॥ हार्दांधकारकारिण्या भैरवाकारवानपि ॥ यौवनाज्ञानयामिन्या बिभेति भगवानपि ॥ १५ ॥ सुविस्मृतशुभाचारं बुद्धिवैधुर्यदायिनम् ॥ ददात्यतितरामेष भ्रमं यौवनसंभ्रमः ॥ १६ ॥

---

(१) कदाचित् किसीको यह शंका हो कि लडकई तो परतंत्र दोषोंसे निंदितहै परंतु यौवनमें तो स्वतंत्रता और विषयसुख मिलनेसे प्रशंसनीयहै सो नहीं किंतु वह अनर्थ मूल होनेसे अधिक निंद्यहै (२) ऐसी कहावतहै कि एक प्रकारका सिद्धांजन बालकोंके हस्तमें रख देनेसे वा नेत्रमें लगानेसे उनको विना रोक ठोक सब पृथ्वीका धन देख पडताहै यहां दृष्टान्तसे यह तात्पर्यहै कि जवानीमें स्त्रीविषय आदिकी चिन्ता मनुष्यके चित्तमें विना रूकावटके आती है.

अर्थ—विनाबिचारे थोडे कालकेलिये रमणीय, शुद्धचित्तसेबर्जित, वेश्यास्त्रीके संगमकेसमान यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ १३ ॥ जितने दुःखदायीकार्य हैं वे सब इसयुवाअवस्थामें ऐसे समीप आजाते हैं जैसे प्रलयकेसमयमें महाउत्पात ॥ १४ ॥ हृदयमें अन्धकारकरनेवाली, यौवनकी अज्ञानरूपिणी रात्रिसे महाविशाल आकारवाले भगवान्‌भी डरते हैं ॥ १५ ॥ उत्तम आचारोंको भलीभांति बिस्मृतकरानेवाली, दुष्टबुद्धिदायक, यह यौवनका मोह अनेक महाभ्रमोंको उत्पन्नकरताहै ॥ १६ ॥

कांतावियोगजातेन हृदि दुःस्पर्शवन्हिना ॥ यौवने दह्यते जंतुस्तरुर्दावाग्निना यथा ॥ १७ ॥ सुनिर्मलाऽपि विस्तिर्णा पावन्यपि हि यौवने ॥ मतिः कलुषतामेति प्रावृषेव तरंगिणी ॥ १८ ॥ शक्यते घनकल्लोला भीमा लंघयितुं नदी ॥ न तु तारुण्यतरला तृष्णा तरलितांतरा ॥ १९ ॥ सा कांता तौ स्तनौ पीनौ ते विलासास्तदाननम् ॥ तारुण्य इति चिंताभिर्याति जर्जरतांजनः ॥ २० ॥

अर्थ—हृदयमें अत्यन्तदाह उत्पन्नकरनेवालीस्त्रीके वियोगरूपअग्निसे युवावस्थामें प्राणी ऐसे जलताहै जैसे अग्निसेकाष्ट ॥ १७ ॥ दोषोंके न होनेसे निर्म्मल, औदार्य्यादिगुणोंसे विशाल और उत्तमगुणोंसे पवित्र बुद्धिभी युवावस्थामें ऐसी मलिन होजाती है जैसे वर्षाकालमें नदी ॥ १८ ॥ बडे २ तरंगोंसे भयंकरनदीकेपार मनुष्य जासक्ताहै परन्तु युवाअवस्थासे अतिचंचल, तथा अनेकप्रकारके विषयोंकी भोगेच्छाओंसे अन्तःकरण जिसमें दूषितहोगयाहै ऐसी चित्तकी वृत्तिकेपार नहींजासक्ता ॥ १९ ॥ हा ! वह सुन्दरतादि गुणसहितस्त्री, वह स्वर्णकलशकेसमान स्थूल उसके कुच वे उसके विलास, वह चन्द्रमाकेसमान उसकामुख ऐसी२चिन्ताओंसे युवावस्थामें मनुष्य सर्वथा जर्जरीभूतहोताहै॥२०॥

नरं तरलतृष्णार्त्तियुवानमिह साधवः ॥ पूजयंति न तु च्छिन्नं जरत्तृणलवं यथा ॥ २१ ॥ नाशायैव मदार्त्तस्य दोषमौक्तिकधारिणः ॥ अभिमानमहेभस्य नित्यालानं हि यौवनम् ॥ २२ ॥ मनोविपुलमूलानां दोषाशीविषधारिणाम् ॥ शोषरोदनवृक्षाणां यौवनं बत काननम् ॥ २३ ॥ रसकेसरसंबाधं कुविकल्पदलाकुलम् ॥ दुश्चिन्ताचंचरीकाणां पुष्करं विद्धि यौवनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—महात्माजन, युवावस्थाके दुःखसे पीडित कामीपुरुषका सन्मान पुराने तृणकेसमानभी नहींकरते, किंतु तिरस्कारही करते हैं ॥ २१ ॥ कामरूपीमदसे पीडित, दोषरूपीमोतीको धारणकियेहुये अभिमानसे महा मदोन्मत्त गजके सदृश अविवेकी पुरुषके नाशके लिये यह युवावस्था ऐसे है जैसे हांथीके सदा बन्धनके लिये स्तम्भ ॥ २२ ॥ मनरूपीविशाल मूलसहित, अनेकदोषरूपीसर्पोंका निवासस्थान इष्टपदार्थोंका अलाभ, वियोगरूपी अग्निकेदाह संयुक्त तथा रोदनरूपीवृक्षोंका यह यौवन वनहै ॥ २३ ॥ थोडेकालके लिये विषय सुखरूपीपुष्परस पूर्ण और राग द्वेषादिरूपी केंसरोंसे व्याप्त, कुतर्करूपी दांतोंसे पूर्ण और दुष्ट चिंतनरूपी भ्रमरोंका निवासस्थान यह यौवनरूपी कमलहै ॥ २४ ॥

कृताकृतकुपक्षाणां हृत्सरस्तीरचारिणाम् ॥ आधिव्याधिविहंगानामालयो नवयौवनम् ॥२५॥ जडानां गतसंख्यानांकल्लोलानां विलासिनाम् ॥ अनपेक्षितमर्यादो वारिधिर्नवयौवनम् ॥२६॥ सर्वेषां गुणसर्गाणां परिरूढरजस्तमाः ॥ अपनेतुं स्थितिं दक्षो विषमो यौवनाऽनिलः ॥ २७ ॥ नयंति पांडुतां वक्त्रमाकुलाऽवकरोत्कटाः ॥ आरोहंति परां कोटिं रूक्षा यौवनपांसवः ॥ २८ ॥

अर्थ—धर्म्माधर्म्मरूपीपक्ष संयुक्त हृदयरूपी तडागके तटपर विचरनेवाले आधिव्याधिरूपी पक्षियोंका निवासस्थान यह यौवनहै ॥ २५ ॥ अनेक कुसंकल्परूपी विलास करानेवाले तरंगोंसेयुक्त जडों (जलों) का निवासस्थान यह नवयौबन अवधिरहित समुद्रहै ॥ २६ ॥ रजोगुण और तमोगुणरूपी धूलिसे अन्धकारको उत्पन्न करनेसे संपूर्ण उत्तम गुणोंकी सृष्टिकी स्थितिको दूर करनेमें प्रवीण यह यौवनरूपी महाभयंकर वायुहै ॥ २७ ॥ चंचल इन्द्रियरूपी तृण और पत्रोंसे अत्यन्त दुःखदायी ये यौवनरूपी धूलि, दोषोंकी अधिकतारूपी आकाशकी परा सीमापर चढती है, और मुखको पीला करती हैं ॥ २८ ॥

उद्बोधयति दोषालिं निकृंतति गुणावलिम् ॥ नराणां यौवनोल्लासो विलासो दुष्कृतश्रियाम्॥२९॥शरीरपंकजरजश्चंचलां मतिषट्पदीम् ॥ निबध्नन् मोहयत्येष नवयौवनचंद्रमाः ॥ ३० ॥ शरीरखंडकोद्भूता रम्या यौवनवल्लरी ॥ लग्नमेव मनोभृंगं मदयत्युन्नतिं गता ॥ ३१ ॥ शरीरमरुतापोत्थां युवतामृगतृष्णिकाम् ॥ मनोमृगाः प्रधावंतः पतंति विषयाऽवटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनुष्योंके यौवनका उल्लास, (अधिक वृद्धि) पापोंकी संपत्तियोंका विलासहै, जो दोषके समूहोंको जगाताहै और उत्तम गूणोंके समुहोंको नष्ट करताहै ॥ २९ ॥ यह नूतन यौवनरूपीचन्द्रमा, शरीररूपीकमलके रजो-

गुणरूपीधूलिमें, अति चंचलबुद्धिरूप भ्रमरीको बांधके मोहित करलेताहै ॥ ३० ॥ शरीररूपी वनके खण्डमें उत्पन्न उन्नतिको प्राप्त यह यौवनरूपीलता, अपनेमें संलग्न मनरूपी भ्रमरको मदोन्मत्त करदेती है ॥ ३१ ॥ शरीररूपी मरूस्थलकी भूमिमें कामकेतापसे उत्पन्न जो युवाऽवस्थारूपी मृगतृष्णाहै,उसमें मनरूपीमृग दौडतेहैं और विषरूपीगढोमें गिरतेहैं ३२

शरीरशर्वरीज्योत्स्ना चित्तकेसरिणः सटा ॥ लहरी जीवितांभोधेर्युवता मे न तुष्टये ॥ ३३ ॥ दिनानि कतिचिद्येयं फलिता देहजंगले ॥ युवता शरदस्यां हि न समाश्वासमर्हथ ॥ ३४ ॥ झटित्येवप्रयात्येव शरीराद्युवताखगः ॥ क्षणेनैवाऽल्पभाग्यस्य हस्ताच्चिंतामणिर्यथा ॥ ३५ ॥ यदा यदा परां कोटिमध्यारोहति यौवनम् ॥ वल्गंति सज्वराः कामास्तदा नाशाय केवलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—शरीररूपी रात्रिकी चन्द्रिका, चिन्तारूपी सिंहकी सटा (कान्धेके ऊपरका बाल) और जीवनरूपी समुद्रकी तरंगोंकीमाला, यह युवाऽवस्था मेरी प्रसन्नताकेलिये नहीं है ॥ ३३ ॥ हे सुजनो ! इस शरीररूपी जंगलमें जो यह युवाऽवस्थारूपी शरदृऋतु अल्प कालकेलिये फलसहित देख पडती है, उसमें आप लोगोंको विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शरीररूपी वृक्षसे यौवनरूपी पक्षी शीघ्रतासे ऐसे चलाजाताहै जैसे मंदभागी मनुष्यके हाथसे चिन्तामणि ॥ ३५ ॥ जब २ यह युवाऽवस्था अपनी पराकाष्टाको प्राप्त होती है तब २ संतापसहित कामज्वर केवल नाशकेहीलिये वृद्धिको प्राप्त होंतेहैं ॥ ३६ ॥

तावदेव विवल्गंति रागद्वेषपिशाचकाः ॥ नास्तमेति समस्तैषा यावद्यौवनयामिनी ॥ ३७ ॥ नानाविकारबहुले वराके क्षणनाशिनि ॥ कारुण्यं कुरु तारुण्ये म्रियमाणे सुते यथा ॥ ३८ ॥ हर्षमायाति यो मोहात्पुरुषः क्षणभंगिना ॥ यौवनेन महामुग्धः स वै नरमृगः स्मृतः ॥ ३९ ॥ मानमोहान्मदोन्मत्तं यौवनं योऽभिलष्यति ॥ अचिरेण स दुर्बुद्धिः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—जबतक युवाऽवस्थारूपी रात्रि अस्त नहीं होती तबतक रागद्वेषादिरूपी पिशाच अधिकतासे विचरतेहैं ॥ ३७ ॥ हे मनुष्यो ! नानाप्रकारके कामादि विकारसहित, अति तुच्छ क्षणभंगुर इस यौवनपर ऐसे दया करो, जैसे मरते हुए पुत्रपर[1] ॥ ३८ ॥ जो महामूर्ख इस क्षणभंगुर यौवनके मोहसे अधिक प्रसन्न होताहै, वह मनुष्योंमें पशु समझा जाता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अभिमान और अज्ञानसे इस यौवनमें सार जानके लीन होकर अनर्थ करताहै वह दुर्बुद्धि शीघ्रहि पश्चात्ताप करताहै ॥ ४० ॥

ते पूज्यास्ते महात्मानस्त एव पुरुषा भुवि ॥ ये सुखेन समुत्तीर्णाः साधो यौवनसंकटात् ॥ ४१ ॥ सुखेन तीर्यतेऽभोधिरुत्कृष्टमकराकरः ॥ न कल्लोलबलोल्लासि सदोषं हतयौवनम् ॥ ४२ ॥ विनयभूषित मार्यजनास्पदं करुणयोज्ज्वलमावलितं गुणैः ॥ इह हि दुर्लभमंग सुयौवनं जगति काननमं बरगं यथा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे यौवनगर्हानाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—हे साधो ! वेही लोग पूज्यहैं, वेही महात्माहै और वेही इस संसारमें मनुष्य कोटिकी गणनाके योग्यहैं, जो इस यौवनरूपी संकटसे सुखपूर्वक पार होगयेहैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य बडे २ मकरादिसे पूर्ण समुद्रको सुखसे पार होजातेहैं, परन्तु कामादिरूप प्रबल तरंगोंसे पूर्ण अनेक दोषयुक्त इस नष्ट यौवनसे नहीं ॥ ४२ ॥ हे प्रिय महामुने ! विनय और सुजनतादिसे भूषित श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंका विश्रांतिस्थान दया औदर्यादि धर्मोंसे उज्वल और शांत्यादि उत्तम गुणोंसे परिपूर्ण यौवन इस संसारमें ऐसाही दुर्लभ है, जैसे नंदन वन ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे यौवनगर्हानाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

---

(१) जब पुत्रका मरण समीप आताहै तब लोग अधिक उत्साहादि नहीं करते ऐसेही इस नश्वर युवाऽवस्थामेंभी प्रमादादि नहीं करना चाहिये क्योंकि यह भी जानेवाली है ॥

एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

प्रत्यक्ष नरकके समूहहीसे जिनके सम्पूर्ण अंग उत्पन्न हुयेहैं, तथा पुरुषोंको नरक और जन्मदेनेवाली जो स्त्रियाँ हैं उनकी निंदा २१ वे सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच--मांसपांचालिकायास्तु यंत्रलोलेंगपंजरे ॥ स्नाय्वस्थिग्रंथिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ॥ १ ॥ त्वङ्मांसरक्त बाष्पांबु पृथक्कृत्वाविलोचनम् ॥ समालोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि ॥ २ ॥ इतः केशा इतोरक्तमितीयं प्रमदातनुः ॥ किमेतया निंदितया करोति विपुलाशयः ॥ ३ ॥ वासोविलेपनैर्यानि लालितानि पुनः पुनः ॥ तान्यंगान्यंग लुंठंति क्रव्यादाः सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रबोले—नाडी, हड्डी, और ग्रन्थियोंसे शोभित मांसकी पुतलीरूप जो स्त्री है. उसके यन्त्रकेसमान चंचल अंगरूपीपिंजरेमें कोनसी वस्तु शोभायमानहै अर्थात् कुछनहीं ॥ १ ॥ हे प्रियसुजन ! त्वचा (चर्म) मांस, रक्त, अश्रुजल, और नेत्र, इनसबको पृथक्करके विचारो, स्त्रीकेदेहमें यदि कोइवस्तु रमणीयहै तो इसमें लीनहो नहीं तो व्यर्थ क्यों मोहितहोरहेहो ॥ २ ॥ कहीं बालहै, कहींरक्तहै, और कहीं मांसकी ग्रन्थिहै, बस यही स्त्रीका शरीरहै. विवेकीपुरुष भला इसे निंदित शरीरसे अपना क्या प्रयोजन सिद्धकरे ॥ ३ ॥ हें प्रिय ! संपूर्णप्राणियोंके जो शरीर उत्तमवस्त्रोंसे और नानाप्रकारके तैलअभ्यंग (उबटन) आदिसे शोभित होतेहै उन्ही शरीरोंको मांसाहारी प्राणी लूटलूटके खाते हैं और उनके ऊपर मलमूत्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

मेरुश्रृंगतटोल्लासिगंगाजलरयोपमा ॥ दृष्टा यस्मिन् स्तने मुक्ताहार स्योल्लासशालिता ॥ ५ ॥ श्मशानेषु दिगंतेषु स एव ललनास्तनः ॥ श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिंड इवांधसः ॥ ६ ॥ रक्तमांसाऽस्थिदिग्धानि करभस्य यथा वने ॥ तथैवांऽगानि कामिन्यास्तांप्रत्यपि हिको ग्रहः ॥ ७ ॥ आपातरमणीयत्वं कल्प्यते केवलं स्त्रियाः ॥ मन्ये तदपि नाऽस्त्यत्र मुने मोहैककारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मेरूपर्वतके शृंगकेतटपर निर्म्मल गंगाजलकी धाराकेसमान, मोतियोंकी मालाकीशोभा जिसस्त्रीकेस्तनपर देखीगई है ॥ ५ ॥ कालपाके स्मशानभूमिमें या अन्यस्थानमें उसीस्त्रीकेस्तनका आस्वाद कुत्ते ऐसे लेते हैं जैसे चावलके छोटेपिण्डका ॥ ६ ॥ रक्त, मांस, और हड्डियोंसे, स्त्रीकेशरीर वैसेहीबने हैं जैसे जंगलमें ऊँट वा गर्दभके पुनः उसमें विशेषआग्रह क्यों ॥ ७ ॥ हे मुने ! विना विचारेही केवल स्त्रीकी सुन्दरता मानीगई है और मेरे विचारमें कल्पित रमणीयताभी स्त्रीमें नहीं है, क्योंकि इसमें केवल अज्ञानही कारणहै ॥ ८ ॥

विपुलोल्लासदायिन्या मदमन्मथपूर्वकम् ॥ को विशेषो विकारिण्या मदिरायाः स्त्रियास्तथा ॥ ९ ॥ ललनाऽऽलानसँल्लीना मुने मानवदंतिनः ॥ प्रबोधं नाऽधिगच्छंति दृढैरपिशमांकुशैः ॥ १० ॥ केशकज्जल धारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः ॥ दुष्कृताऽग्निशिखा नार्यो दहंति तृणवन्नरम् ॥ ११ ॥ ज्वलतामतिदूरेऽपि सरसा अपिनीरसाः ॥ स्त्रियोहि नरकाग्नीनामिंधनं चारु दारुणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कामदेवरूपी मादकशक्तिसे अनेकप्रकारके भ्रमदेनेवाली स्वयंवीर्य और रक्तकेविकारवाली, स्त्रीरूपीमदिरा, तथा और मदिरामें क्या भेदहै ॥ ९ ॥ हे मुने ! स्त्रीरूपीखम्भमें बँधेहुए मनुष्यरूपी हांथी अज्ञानरूपी ऐसी गाढनिद्रामें आगये हैं कि शमरूपी बडे दृढअंकुशसेभी नहींजागते ॥ १० ॥ केशरूपीकज्जल धारणकियेहुयी स्पर्शकरनेमें संतापदायिनी, नेत्रकोप्रिय, पापरूपी, अग्निकी ज्वालारूपस्त्रियाँ, पुरुषोंको तृणकेसमान जलाती हैं ॥ ११ ॥ ऊपरसे सरसहोनेपरभी वास्तविकमें नीरसस्त्रियाँ अतिदूरजलनेवालीभी नरककी अग्निके बहुत उत्तम इन्धनहैं ॥ १२ ॥

विकीर्णाऽऽकारकवरीतरत्तारकलोचना ॥ पूर्णेंदुबिंबवदना कुसुमोत्करहासिनी ॥ १३ ॥ लीलाविलोलपुरुषा कार्यसंहारकारिणी ॥ परं विमोहनं बुद्धेः कामिनीदीर्घयामिनी ॥ १४ ॥ पुष्पाभिराममधुरा करपल्लवशालिनी ॥ भ्रमराक्षिविलासाढ्या स्तनस्तवकधारिणी ॥ १५ ॥ पुष्पकेसरगौरांगी नरमारण तत्परा ॥ ददात्युन्मत्तवैवश्यं कांता विषलता यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—केशसमूहरूपी महाअन्धकारफैलानेवाली चंचलनेत्रकी पुतलीरूप तारागण संयुक्तमुखरूप पूर्णचन्द्रमंडलसहित हांसरूपीपुष्पोंकेसमूहसहित ॥ १३ ॥ शृंगारकी लीलाओंसे पुरुषोंको चंचलकरनेवाली, कामचेष्टाके सिवाय अन्यकार्योंका संहारकरनेवाली और बुद्धिको सर्वथा मोहनेवाली, यह कामिनीरूपी बडीयामिनी है ॥ १४ ॥ सुन्दरतारूपीपुष्पसे मनोहर, हस्तरूपीपल्लओंसें शोभायमान, चंचलनेत्ररूपीभ्रमरोंके विलासोंसे पूर्णस्तनरूपीपुष्पके गुच्छेको

(१) सींपमें जो चांदीकीभ्रांति होती है वहां अज्ञान और सींपरूप अधिष्ठानभीहै यहां तो केवल अज्ञानही मात्रहै ।

धारणकियेहुई ॥ १५ ॥ पुष्पके केंशरकेसमान गौरवर्ण तथा मनुष्योंके मारनेमें तत्पर, यह स्त्रीरूपी विषकीलता, निजसेवकमूर्खोंको मरणरूपी मूर्च्छा देती है ॥ १६ ॥

सत्कार्योच्छ्वासमात्रेण भुजंगदलनोत्कया ॥ कांतयोत्थ्रियते जंतुः करभ्येवोरगो बिलात् ॥ १७ ॥ कामनाम्ना किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसाम् ॥ नार्यो नरविहंगानामंग बंधनवागुराः ॥ १८ ॥ ललना विपुलाऽऽलाने मनोमत्तमतंगजः ॥ रतिशृंखलया ब्रह्मन्बद्धस्तिष्ठति मूकवत् ॥ १९ ॥ जन्मपल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् ॥ पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारी बडिशपिंडिका ॥ २० ॥

अर्थ—मिथ्या सत्कार्योंके अश्वासनमात्रसे कामीपुरुषोंके चित्त और वित्तके नाशमें निपुण स्त्रीपुरुषको अन्य कार्योंसे निकालके ऐसे अपने वशमें करलेती है जैसे भल्लूकी बिलमेंसे सर्पको ॥ १७ ॥ हे प्रिय ! स्त्रियोंको कामरूपी व्याधने मूढमनुष्यरूपी पक्षियोंके फसानेको अपना जाल फैला रक्खाहै ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मनरूपी उन्मत्त हाँथी स्त्रीरूपी खम्भेमें रतिरूपी शृंखलासे बँधाहुआ मूकके समान चुपचाप खडा रहताहै॥ १९ ॥ जन्मरूपी तडागके मत्स्य, कामासक्त चित्तरूपी कीचडके निवासी पुरुषोंकी दुष्ट वासनारूपी रस्सीमें स्त्रीरूप मछुयेके कांटेमें आटेकी गोली है ॥ २० ॥

मंदुरं चतुरंगाणामालानमिव दंतिनाम् ॥ पुंसां मंत्र इवाऽहीनांबंधनं वामलोचना ॥ २१ ॥ नानारसवती चित्रा भोगभूमिरियं मुने ॥ स्त्रियमा श्रित्य संयाता परामिह हि संस्थितिम् ॥ २२ ॥ सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्रिकयाऽनया ॥ दुःखश्रृंखलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ २३ ॥ किं स्तनेन किमक्ष्णा वा किं नितंबेन किं भ्रुवा ॥ मांसमात्रैकसारेण करोम्यहमवस्तुना ॥ २४ ॥

अर्थ—अश्वोंकेलिये वाजिशाला, हाथियोंकेलिये खम्भा, और सर्पोंकेलिये मंत्र जैसे बन्धनका कारणहै, ऐसेही पुरुषोंकेलिये स्त्री ॥२१॥ हे मुने ! यह स्त्री नानाप्रकारके शृंगारादि रसोंसे पूर्ण विषयभोगकी एक विचित्र भूमिहै इसीका आश्रय लेके इस संसारमें मनुष्य दृढस्थितिको प्राप्तहुये हैं ॥ २२ ॥ संपूर्ण दोषरूपी रत्नोंकी पेटारी, और सदा दुःखोंकी शृंखला जो स्त्री है उससे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥ स्त्रीके तुच्छ स्तनसे मैं क्या करूं ? नेत्रसे क्या करूं ? नितम्बसे क्या करू ? और भौंहसे भी क्या करूं ? क्योंकि इन सबमें मांसमात्रही सारहै, और कुछ नहीं ॥ २४ ॥

इतो मांसमितो रक्तमितोऽस्थीनीति वासरैः ॥ ब्रह्मन्कतिपयैरेव याति स्त्री विशरारुताम् ॥ २५ ॥ यास्तात पुरुषैः स्थूलैर्ललिता मनुजे प्रियाः ॥ ता मुने प्रविभक्तांग्यः स्वपंति पितृभूमिषु ॥ २६ ॥ यस्मिन् घनतरस्नेहं मुखे पत्रांकुराः स्त्रियः ॥ कांतेन रचिता ब्रह्मन्पीयते तेन जंगले ॥ २७ ॥ केशाः श्मशानवृक्षेषु यांति चामरलेखिकाम् ॥ अस्थीन्युडुवदाभांति दिनैरवनिमंडले ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! कहीं मांस, कही रक्त, कही, हड्डियां, इन्ही पदार्थोंसे बनी हुई स्त्री थोडेही दिनोंमें नष्ट होजाती है ॥ २५ ॥ हे तात ! हे मुने ! जिन स्त्रियोंको अविवेकी पुरुषोंने बडे प्रेमके साथ अतिप्यार कियाथा वेही स्त्रियां छिन्नभिन्न अंगवाली, स्मशानभूमिमें सोरही हैं ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस स्त्रिके मुखपर पतिने बडे प्रेमके साथ कर्पूर गोरोचन, और चन्दनादिका विचित्र तिलक रचाथा, वही मुख अब जंगलमें शूखरहाहै ॥ २७ ॥ थोडे दिनोंमें स्त्रियोंके केश, स्मशानभूमिके वृक्षोंके चमर होजातेहैं, और हड्डियाँ तारोंकेसमान पृथ्वीमण्डलपर चमकने लगती हैं ॥ २८ ॥

पिबंति पांसवो रक्तं क्रव्यादाश्चाऽप्यनेकशः ॥ चर्माणि च शिवा भुंक्ते खं यांति प्राणवायवः ॥ २९ ॥ इत्येषा ललनांगानामचिरेणैव भाविनी ॥ स्थितिर्मया वः कथिता किं भ्रांतिमनुधावथ ॥ ३० ॥ भूतपंचकसंघट्टसंस्थानं ललनाऽभिधम् ॥ रसादभिपतत्वेतत्कथं नामधियाऽन्वितः ॥ ३१ ॥ शाखाप्रतानगहना कट्वम्लफलमालिनी ॥ सुतालोत्तालतामेति चिंता कांतानुसारिणी ॥ ३२ ॥

अर्थ—रक्तको धूलि पीलेती है और माँसको अनेक मांसाहारी जीव भक्षण करलेते हैं, चर्म्म (चमडे) को शृगाल और शृगालियाँ खाजाती हैं और प्राणरूपी वायु आकाशमें चलेजातेहैं ॥ २९ ॥ यह स्त्रियोंके शरीरकी होनेवाली दशा मैंने आपलोगोंसे कहदी आप क्यों भ्रान्तिकेपीछे दौडतेहैं ॥ ३० ॥ पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) के समूह सेवनेहुये अंगोंका नाम स्त्री है, भला विवेकीमनुष्य रागसे कैसे इसकी ओर गिरै ॥ ३१ ॥ अनेक विषयसंबंधी विचाररूपी शाखाओंसे भयंकर, कटु, और आम्ल, (आमिल) फलोंसे लदी स्त्रीकेसंबन्धसे चिन्तारूपी उत्तम ताल (ताड) की लता अति उन्नत्तिको प्राप्त होरही है ॥ ३२ ॥

---

(१) भालू (मादी) सांपोंके बिलके निकट जाके केवल श्वाससेही सर्पोंको खींचके खा जाती है ऐसेही स्त्रीभी पुरुषके निकट श्वासमात्र लेनेसे अपने वशमें करती है.

कांदिग्भूततया चेतो घनगर्द्धांधमाकुलम् ॥ परं मोहमुपादत्ते यूथभ्रष्टमृगो यथा ॥ ३३ ॥ शोच्यतां परमां याति तरुणस्तरुणीपरः ॥ निबद्धः करिणीलोलो विंध्यखाते यथा गजः ॥ ३४ ॥ यस्य स्त्री तस्यभोगेच्छा निः स्त्रीकस्य क भोगभूः ॥ स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ३५ ॥ आपातमात्ररमणेषु सुदुस्तरेषु भोगेषु नाऽहमलिपक्षतिचंचलेषु ॥ ब्रह्मन् रमे मरणरोगजरादिभीत्या शाम्याम्यहं परमुपैमि पदं प्रयत्नात् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीजुगुप्सानामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—इसी पूर्वोक्त चिन्तासे अत्यन्त धनकी अभिलाषासे अन्धदशाको प्राप्त यह चित्त किधर जाउँ ? कहाँसे धन प्राप्तकरूं ? इत्यादि विचारोंसे ऐसा मोहित होताहै जैसे झुण्डसे बिछडा हुआ मृग ॥ ३३ ॥ तरुण स्त्रीमें लीनपुरुष ऐसी शोचनीय दशाको प्राप्तहोताहै जैसे हँथिनीमें आसक्त, विन्ध्याचलके गढेमें बँधा हाँथी ॥ ३४ ॥ जिसके स्त्री है उसीको भोगकरनेकी इच्छाहै, स्त्रीरहितको भोगकी इच्छा कहां जिसने स्त्रीको त्यागा मानो उसने संसारहीको त्यागदिया इसी रीतिसे मनुष्य संसारको त्यागकर सुखी होजाय ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बिनाबिचारे रमणीय, पारहोनेमें अशक्य, भ्रमरोंके पक्षकेसमान चंचल, भोगोंमे मरण रोग और वृद्धावस्थाकेभयसे मैं रमण नहीं करूंगा, किन्तु शान्तहोके प्रयत्नसे परमपदको प्राप्त होउंगा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीजुगुप्सानामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

शोक, मोह, पीडा, विषाद और अनेक रोगोंसे व्याप्त, चिंता और परिभव (हार)का स्थान जो वृद्धावस्था है उसकी निंदा इस २२ वे सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अपर्याप्तं हि बालत्वं बलात्पिबति यौवनम् ॥ यौवनं च जरा पश्चात्पश्य कर्कशतां मिथः ॥ १ ॥ हिमाशनिरिवांभोजं वात्येव शरदंबुकम् ॥ देहं जरा नाशयति नदी तीरतरुं यथा ॥ २ ॥ जर्जरीकृतसर्वांगी जरा जरठरूपिणी ॥ विरूपतां नयत्याऽऽशु देह विषलवो यथा ॥ ३ ॥ शिथिलादीर्घसर्वांगं जराजीर्णकलेवरम् ॥ समंपश्यंति कामिन्यः पुरुषं करभं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले बाल्यावस्था जबतक क्रीडा कौतुकादिकी अभिलाषासे संतुष्ट नहीं होती, इतनेहीमें युवावस्था आके बलात्कार उसको ग्रासलेती है,इसीप्रकार यौवनावस्था जबतक भोगविलासादिसे तृप्त नहींहोती कि इतनेहीमें वृद्धावस्था आके उसे ग्रासकरजाती है,आप इन अवस्थाओंका परस्पर क्रूरताकेसाथ विरोध तो देखिये ! ॥१॥ जैसे हिमवज्रकेसमान कमलको नष्टकरता है इसीप्रकार वृद्धावस्था भी शरीरको नष्टकरदेती है ॥ २ ॥ यह राक्षसी वृद्धावस्था शरीरको ऐसा कुरूप करदेती है जैसे भोजनसे विष ॥ ३ ॥ वृद्धावस्थासे शरीर जिसका जर्जरीभूत होगया और संपूर्ण अंग जिसके शिथिल होगयेहैं ऐसे सब पुरुषोंको स्त्रियाँ गर्दभ (गधे) के समान देखती हैं ॥ ४ ॥

अनायासकदर्थिन्या गृहीते जरसा जने ॥ पलाय्य गच्छति प्रज्ञा सपत्न्येवाऽहतांगना ॥ ५ ॥ दासाः पुत्राः स्त्रियश्चैव बांधवाः सुहृदस्तथा ॥ हसंत्युन्मत्तकमिव नरं वार्द्धककंपिनम् ॥६॥ दुःप्रेक्ष्यं जरठं दीनं हीनंगुणपराक्रमैः ॥ गृध्रो वृक्षमिवाऽदीर्घं गर्द्धोह्यभ्येति वृद्धकम् ॥ ७ ॥ दैन्यदोषमयी दीर्घा हृदि दाहप्रदायिनी ॥ सर्वापदामेक सखी वार्द्धके वर्द्धते स्पृहा ॥ ८ ॥

अर्थ—बिना परिश्रम दीनता देनेवाली यह वृद्धावस्था जब आके मनुष्यको ग्रासती है तब बुद्धिभागके ऐसे चलीजाती है जैसे सपत्नी (सौत) से पराजित (हारीहुई) दूसरी स्त्री ॥ ५ ॥ दास, पुत्र, स्त्रियाँ बंधु और मित्रगण ये सब वृद्धावस्थासे कँपाहुये मनुष्यको ऐसे हँसते हैं जैसे उन्मत्तको ॥ ६ ॥ देखनेकेअयोग्य, गुण, और पराक्रमोंसे हीन, और महादीन वृद्धपुरुषकेनिकट संसारी पदार्थोंका लोभ ऐसी तीक्ष्णतासे आताहैं जैसे बडेवृक्षपर गृध्र ॥ ७ ॥ दीनता तथा अन्य दोषोंसे पूर्ण बहुत बडी हृदयमें दाह देनेवाली, सम्पूर्ण विपत्तियोंकी मुख्य सखी, लालसा वृद्धावस्थामें बढतीही जाती है ॥ ८ ॥

कर्त्तव्यं किं मया कष्टं परत्रेत्यतिदारुणम् ॥ अप्रतीकारयोग्यं हि वर्द्धते वार्द्धके भयम ॥ ९ ॥ कोऽहं वराकः किमिव करोमि कथमेवच ॥ तिष्ठामि मौनमेवेति दीनतोदेति वार्द्धके ॥ १० ॥ कथं कदा मे किमिवस्वादु स्याद्भोजनं जनात् ॥ इत्यजस्रं जरा चैषा चेतो दहति वार्द्धके ॥ ११ ॥ गर्द्धोऽभ्युदेति सोल्लासमुपभोक्तुं न शक्यते ॥ हृदयं दह्यते नूनं शक्तिदौरुथ्येन वार्द्धके ॥ १२ ॥

अर्थ—हा ! मैं क्या करूँ ? परलोकमें मुझे महादारूण भय है इत्यादि जिसका उपाय कुछ नहीं होसक्ता ऐसा भय वृद्धावस्थामें बढताहै ॥ ९ ॥ हा ! कहाँ मैं महादरिद्र कहाँ बडे २ कार्य्य मैं कैसे और क्या करूं ? चुपचाप बैठा रहुं, ऐसी २ दीनता वृद्धावस्थामें उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ मनुष्योंको देखकर वृद्ध मनुष्य कहताहै कि मुझे कैसे और कब उत्तम स्वादिष्ट भोजन मिलेगा ! इस रीतिसे सदा यह वृद्धावस्था औरभी चित्तको भस्म करती है ॥ ११ ॥ अभिलाषा तो बडी उग्रतासे होती है परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे भोजन वा अन्यपदार्थोंका भोग नहीं कर सक्ता, इससे वृद्धावस्थामें हृदय अत्यन्त भस्म होताहै ॥ १२ ॥

जरा जीर्णबकी यावत्कायक्लेशाऽपकारिणी ॥ रौति रोगोरगाऽऽकीर्णा कायद्रुमशिरः स्थिता ॥ १३ ॥ तावदागत एवाऽऽशु कुतोपि परिदृश्यते ॥ घनांध्यतिमिराकांक्षी मुने मरणकौशिकः ॥ १४ ॥ सायं संध्यां प्रजातां वै तमः समनुधावति ॥ जरां वपुषि दृष्ट्वैव मृतिः समनुधावति ॥ १५ ॥ जराकुसुमितं देहद्रुमं दृष्ट्वैव दूरतः अध्यापतति वेगेन मुने मरणमर्कटः ॥ १६ ॥

अर्थ—अनेक क्लेशोंकेद्वारा शरीरका नाश करनेवाली, रोगरूपी सर्पोंसे व्याप्त वृद्धावस्थारूपी बकी शरीररूपी वृक्षके शिरपर बैठकर रोती है ॥ १३ ॥ कि इतनेहीमें हे मुने ! महामूर्च्छारूपी अन्धकारका अभिलाषी मृत्युरूपी कौशिक (उल्लूक) आके देखपडताहै ॥ १४ ॥ जिसप्रकार सायंकालकी सन्ध्याको देखकर अन्धकार दौडताहै, इसी प्रकार शरीरमें वृद्धावस्थाको देखकर मृत्युभी सन्मुख दौडती है ॥ १५ ॥ हे मुने ! वृद्धावस्थारूपी पुष्पसे फलित शरीररूपी वृक्षको दूरहीसे देखकर मृत्युरूपी मर्कट बडी वेगसे नाश करनेकेलिये उसकेऊपर आ गिरताहै ॥ १६ ॥

शून्यं नगरमाभाति भाति छिन्नलतोद्रुमः ॥ भात्यनावृष्टिमान्देशो न जराजर्जरं वपुः ॥ १७ ॥ क्षणान्निगरणायेव कासक्वणितकारिणी ॥ गृध्रीवाऽऽमिषमादत्ते तरसैव नरं जरा ॥ १८ ॥ दृष्ट्वैव सोत्सुकेवाऽऽशु प्रगृह्य शिरसि क्षणम ॥ प्रलुनाति जरा देहं कुमारी कैरवं यथा ॥ १९ ॥ सीत्कारकारिणी पांसुपरुषा परिजर्जरम् ॥ शरीरं शातयत्येषावात्येव तरुपल्लवम् ॥ २० ॥

अर्थ—शून्यनगर, कटाहुआ वृक्ष, और वृष्टिसेरहित देश तो कुछ २ शोभित भी होताहै, परन्तु वृद्धावस्थासे जर्जरीभूत शरीर तो किंचित्भी शोभित नहीं होता ॥ १७ ॥ कास (खाँसी) रूपी शब्द करतीहुई वृद्धावस्था मनुष्यको निगल जानेकेलिये ऐसे वेगसे ग्रहण करती है जैसे गृध्री मांसको ॥ १८ ॥ जैसे वालिका पुष्पको देखकर क्षणभर बडी इच्छाकेसाथ अपने शिरपर रखके नष्टकरदेती है ऐसेही यह वृद्धावस्था शरीरको शीघ्रही नाश कर देती है ॥ १९ ॥ जैसे शीतकालके वायुकासमूह शीत्कार शब्द करताहुआ और रूखी धूलिसे जर्जर करताहुआ वृक्षकेपत्रोंको नष्टकरता है, ऐसेहि यह वृद्धावस्था शरीरको ॥ २० ॥

जरसोपहतो देहो धत्ते जर्जरतां गतः ॥ तुषारनिकराकीर्णपरिम्लानां बुजश्रियम् ॥ २१ ॥ जराज्योत्स्नोदितैवेयं शिरःशिखरिपृष्ठतः ॥ विकासयति संरब्धं वातकासकुमुद्वती ॥ २२ ॥ परिपक्वं समालोक्य जराक्षारविधूसरम् ॥ शिरःकूष्मांडकं भुंक्ते पुंसां कालः किलेश्वरः ॥ २३ ॥ जराजन्हुसुतोद्युक्ता मूलान्यस्य निकृंतति ॥ शरीरतीरवृक्षस्य चलत्यायुषि सत्वरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अतिशिथिलदशाको प्राप्त, और वृद्धावस्थासे माराहुआ यह शरीर तुषारके समूहसे व्याप्त, और म्लानिको प्राप्त कमलोंकी शोभाको धारणकरताहै ॥ २१ ॥ शिररूपी पर्वतपर जब वृद्धावस्थारूपी चाँदनी उदय होती है तब वह बात और कास (खाँसी) रूपी कुमुदकी लताको विकासित करती है ॥ २२ ॥ वृद्धावस्थारूपी क्षारसे धूसर और परिपक्व शिरको कालरूपी ईश्वर ऐसे भक्षण करताहै. जैसे कूष्माण्ड (सपेदकोहडा) को उसका स्वामी ॥ २३ ॥ आयुरूपी प्रवाहके वेगसे चलनेपर वृद्धावस्थारूपी गंगा शरीररूपी तीरके वृक्षके मूलोंको बडे वेगसे उखाड देती है॥२४॥

जरामार्जारिका भुंक्ते यौवनाखुं तथोद्धता ॥ परमुल्लासमायाति शरीरामिषगर्द्धिनी ॥ २५ ॥ काचिदस्ति जगत्यस्मिन्नाऽमंगलकरी तथा ॥ यथा जरा क्रोशकरी देहजंगलजंबुकी ॥ २६ ॥ कासश्वासससीत्कारा दुःखधूमतमोमयी ॥ जराज्वाला ज्वलत्येषा यस्यासौ दग्ध एव हि ॥ २७ ॥ जरसा वक्रतामेति शुक्लावयवपल्लवा ॥ तात तन्वी तनुर्नृणां लता पुष्पाऽऽनता यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—शरीररूपी मांसको चाटनेवाली वृद्धावस्थारूपिणी मार्जारी यौवनरूपी मूसको भक्षण करजाती है और अत्यन्त प्रसन्न होती है ॥ २५ ॥ इस संसारमें ऐसी अमंगल करनेवाली और कोई वस्तु नहीं है, जैसे महारोदन करनेवाली शरीररूपी जंगलमें वृद्धावस्थारूपी शृगाली ॥ २६ ॥ कास श्वास और सीत्कारको करानेवाली दुःखरूपी धूमसे अन्धकारमयी वृद्धावस्थारूपी गीले काष्ठकी ज्वाला जिसकेऊपर जलरही है मानो वह भस्महो होचुका ॥ २७ ॥ हे तात ! अंगरूपी पत्र जिसके श्वेत होगये हैं ऐसी यह शरीररूपी लता ऐसे टेढी होजाती है जैसे पुष्पोंके भारसे सूक्ष्मलता ॥२८॥

जराकर्पूरधवलं देहकर्पूरपादपम् ॥ मुने मरणमातंगो नूनमुद्धरति क्षणात् ॥ २९ ॥ मरणस्य मुने राज्ञो जरा धवलचामरा ॥ आगच्छतोऽग्रे निर्याति स्वाधिव्याधिपताकिनी ॥ ३० ॥ न जिताः शत्रुभिः संख्ये प्रविष्टा येऽद्रिकोटरे ॥ ते जराजीर्णराक्षस्या पश्याऽऽशु विजिता मुने ॥ ३१ ॥ जरातुषारवलिते शरीरसदनांतरे ॥ शक्नुवंत्यक्षशिशवः स्पंदितुं न मनागपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने ! वृद्धावस्थारूप कर्पूरसे श्वेत रंगयुक्त इस शरीररूपी केळेके वृक्षको मृत्युरूपी हाँथी क्षणभरमें उखाडके फेंक देता है ॥ २९ ॥ हे मुने ! जब मृत्युरूपी राजा आता है तो वृद्धावस्थारूपी चमरको लिये आधिव्याधिरूपी सेना आगे २ चलती हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! जिनको बडे २ शत्रुओंनेभी युद्धमें नहीं जीता देखिये, उनको पर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेपरभी वृद्धावस्थारूपी राक्षसीने शीघ्रही जीतलिया ॥ ३१ ॥ यह शरीररूपी गृह जब वृद्धावस्थारूपी हिमसे व्याप्त हो जाता है तब इन्द्रियरूपी बालक किंचित् चेष्टा नहीं करसक्ते ॥ ३२ ॥

दंडतृतीयपादेन प्रस्खलंती मुहुर्मुहुः ॥ कासाधोवायुमुरजा जरा योषित्प्रनृत्यति ॥ ३३ ॥ संसारसंसृतेरस्या गंधकुट्यां शिरोगता ॥ देहयष्ट्यां जरा नाम्नी चामरश्रीर्विराजते ॥ ३४ ॥ जराचंद्रोदयसिते शरीरनगरे स्थिते ॥ क्षणाद्विकासमायाति मुने मरणकैरवम् ॥ ३५ ॥ जरासुधालेपसिते शरीरांतःपुरांतरे ॥ अशक्तिरार्तिरापच्च तिष्ठंति सुखमंगनाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—दण्डरूपी तीसरे पादपर वार २ गिरती हुई, खाँसी और अधोवायुरूपी मुरज बाजेको बजाती हुई, वृद्धावस्थारूपिणी स्त्री नाचती है ॥ ३३ ॥ संपूर्ण विषयभोगोंके स्थान, संसाररूपी राजाके व्यवहारोंको साधनेवाली इस शरीररूपी दण्डके ऊपर वृद्धावस्थारूपी चमरकी शोभा विराज रही है ॥ ३४ ॥ हे मुने ! जब यह शरीररूपी नगर वृद्धावस्थारूपी चन्द्रमासे श्वेत हो जाता है तब शीघ्रही मृत्युरूपी कुमुद विकसित हो जाता है ॥ ३५ ॥ जब वृद्धावस्थारूपी चूनेके लेपसे शरीररूपी गृह श्वेत होजाता है तब अशक्ति, पीडा, और आपत्तिरूप स्त्रियाँ सुखसे निवास करतीहैं ॥ ३६ ॥

अभावोऽग्रेसरी यत्र जरा जयति जंतुषु ॥ कस्तत्रेह समाश्वासो ममर्मंदमतेर्मुने ॥ ३७ ॥ किं तेन दुर्जीवितदुर्ग्रहेण जरागतेनाऽपि हि जीव्यते यत् ॥ जरा जगत्यामजिता जनानां सर्वैषणास्तात तिरस्करोति ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जराजुगुप्सानाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे मुने ! जब चारों प्रकारके प्राणियोंको जरा जीत लेतीहै और उसके पश्चात् मृत्यु आके उपस्थित होतीहै तो इस संसारमें मेरे सदृश मंदमतियोंका क्या विश्वासहै ॥ ३७ ॥ हे तात ! उस नष्ट जीवनसे क्या करना ? जो वृद्धावस्थासे ग्रस्त होकेभी जीनापडे इस संसारमें प्रचंड वृद्धावस्था संपूर्ण अभिलाषाओंको व्यर्थ कर देतीहै ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जराजुगुप्सानाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

गुण और दोषोंके बळकी उन्नत्ति सहित अपने विलासोंके समूहसे कर्माप्रिय सम्पूर्ण प्राणियोंको जो रमण करताहै उस कालकी महिमा इस २३ वें सर्गमेंकी गई है.

श्रीराम उवाच--विकल्पकल्पनानल्पजल्पितैरल्पबुद्धिभिः ॥ भेदैरुद्धुरतां नीतः संसारकुहरे भ्रमः ॥ १ ॥ सतां कथमिवास्थेह जायते जालपंजरे ॥ बाला एवात्तुमिच्छंति फलं मुकुरबिंबितम् ॥ २ ॥

इहापि विद्यते येषां पेलवा सुखभावना ॥ आखुस्तंतुमिवाशेषं कालस्तामपि कृंतति ॥ ३ ॥ न तद-स्तीह यदयं कालः सकलघस्मरः ॥ ग्रसते तज्जगज्जातं प्रोत्थाब्धिमिव वाडवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-यह मेरा भोग्य है और मैं इसका भोक्ता हूं इससे ऐसा करके विविध प्रकारके संसा-रमें अधिक कालतक विषय भोग करूंगा इत्यादि विकल्पकी कल्पनाओंसे नानाप्रकारके व्यवहार वचन संयुक्त देह-मात्रमें आत्माभिमानी मूढपुरुषोंने शत्रु मित्र, और उदासीन, भेदोंसे इससे संसाररूपी गर्त्त (गढे) में भ्रमको ऐसी उन्नति दी है कि उसका नाश करना महा कठिन हो गयाहै ॥ १ ॥ भला सज्जनोंको इस जालके पिंजरेमें कैसे विश्वास हो सक्ताहै ? ये अविवेकी लोग तो बालकोंके समान दर्पणमें जो फलका प्रतिबिम्ब है उसीको खाना चाहतेहैं ॥ २ ॥ ऐसे तुच्छ संसारमें जो लोगोंको किंचित् सुखकी भावनाहै, उसकोभी काल सर्वथा ऐसे काट डालताहै जैसे चूहा सूतको॥३॥ जैसे विशाल समुद्रको वडवानल ग्रास करजाताहै, ऐसेही इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हुई जिसको इस सर्वभक्षी कालने न ग्रसाहो ॥ ४ ॥

समस्तसामान्यतया भीमः कालो महेश्वरः ॥ दृश्यसत्तामिमां सर्वां कवलीकर्त्तुमुद्यतः ॥ ५ ॥ महता-मपि नो देवः प्रतिपालयति क्षणम् ॥ कालः कवलितानंतविश्वो विश्वात्मतां गतः ॥ ६ ॥ युगव-त्सर कल्पाख्यैः किंचित्प्रकटतां गतः ॥ रूपैरलक्ष्यरूपात्मा सर्वमाक्रम्य तिष्ठति ॥ ७ ॥ ये रम्या ये शुभारंभा सुमेरुगुरवोऽपिये ॥ कालेन विनिगीर्णास्ते गरुडेनेव पन्नगाः ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्व पदार्थोंसे महाभयंकररूप यह कालही संहारकर्ता महारूद्रहै जो इस दृश्यमात्र संसारकी सत्ताको कवल करनेको उद्यतहै ॥ ५ ॥ यह काल देव बडे बुद्धिमान् और बलवानोंकीभी क्षणभर प्रतीक्षा नहीं करता, किन्तु तत्कालही मारलेताहै, यह काल अनन्तब्रह्माण्डोंको कवल करके स्वयं विश्वरूप होरहाहै ॥ ६ ॥ सूर्यकी गतिरूप क्रि-याके औपाधिक रूपसे वर्ष, युग और कल्पादि नामोंसे यह काल प्रगटहै, परन्तु यथार्थमें अलक्ष्यरूपसे सबको दबाये हुये स्थितहै ॥ ७ ॥ अति रमणीय सुन्दरकारवाले, और सुमेरू जैसे गुरु पदार्थोंकोभी यह काल ऐसा निगल जाताहै जैसे गरुडजी सर्पोंको ॥ ८ ॥

निर्दयः कठिनः क्रूरः कर्कशः कृपणोऽधमः ॥ न तदस्ति यदद्यापि न कालो निगिरत्ययं ॥ ९ ॥ कालः कवलनैकांतमतिरत्ति गिरीनपि ॥ अनंतैरपि लोकौघैर्नायं तृप्तो महाशनः ॥ १० ॥ हरत्ययं नाशयति करोत्यत्ति निहंति च ॥ कालः संसारनृत्तं हि नानारूपं यथा नटः ॥ ११ ॥ भिनत्ति प्रविभागस्थभूत बीजान्यनारतम् ॥ जगत्यसत्तया बंधाद्दाडिमानि यथा शुकः ॥ १२ ॥

अर्थ—निर्दय, कठिन, क्रूर, कर्कश, कृपण, और अधम ऐसा आजतक कोई नहीं है जिसको यह काल न नि-गलता हो ॥ ९ ॥ पर्वत लता आदिसे लेके सबको कवलकर जाना यही कालका मुख्य सिद्धान्तहै अनंत लोकोंके समू-होंको इस महाभक्षी कालने स्वाहा करदिया, परन्तु अभीतक तृप्त नहीं हुआ ॥ १० ॥ हरण करना, नाश करना, भक्षण करना, मारना तथा अन्य प्रकारकी क्रियाओंका करना, यह सब कालहीके आधीनहै, नानारूपधारी यह संसाररूपी महानृत्तहै उसमें कालरूपी नटहै ॥ ११ ॥ इस जगत्में पृथ्वी, जल, तेज वायु ये चार प्रकारके सूक्ष्म स्थूल भूतहैं उन सबको विदीर्ण करके काल निरन्तर ऐसे भक्षणकर जाताहै जैसे दाडिमको शुक ॥ १२ ॥

शुभाशुभविषाणाग्रविलूनजनपल्लवः ॥ स्फूर्जति स्फीतजनताजीवराजीवनीगजः ॥ १३ विरिंचिमूल ब्रह्मांडबृहद्देवफलद्रुमम् ॥ ब्रह्मकाननमाभोगि परमावृत्य तिष्ठति ॥ १४ ॥ यामिनीभ्रमरा पूर्णारचयन् दिनमंजरीः ॥ वर्षकल्पकलावल्लीर्न कदा च न खिद्यते ॥ १५ ॥ भिद्यते नावभग्नोऽपि दग्धोऽपि हिन दह्यते ॥ दृश्यते नाऽपि दृश्योऽपि धूर्तचूडामणिर्मुने ॥ १६ ॥

अर्थ— अभिमान राग द्वेषादिसे वृद्धिको प्राप्त जीव समूहोंकी पंक्तिरूपी बनकी भूमिमें शुभ और अशुभ फल-रूपी दोनों दांतोके अग्रभागसे जनरूपी पत्रोंको नष्ट करनेवाला कालरूपी महागज गर्जताहै ॥ १३ ॥ जिसका ब्रह्मा मूलहै और जिसमें ब्रह्माण्डरूपी बडे २ देवताही फलसहित वृक्षहै ऐसे कृत्रिम भोगका वेष धारण कियेहुये ब्रह्मरूपी वनमें व्याप्त होके कालस्थितहै ॥ १४ ॥ रात्रीरूपी भ्रमरोंसे पूर्ण, दिनरूपी लता वृक्षोंको,और वर्ष, युग तथा कल्परूपी अनेक लताओंको बनाताहुआ यहकाल कभी नहीं थकता ॥ १५॥ यह काटा नहीं कटता, भस्म होनेपरभी नहीं जलता, और दृश्य होनेपरभी नहीं देख पडता. हे मुने ! यहकाल तो सब धूर्तोंका शिरोमणिहै ॥ १६ ॥

(१) पूर्व प्रसंगमें लक्ष्मी भोग, तृष्णा और बाल्यादि अवस्था तथा स्त्रियोंकी निन्दासे रामचंद्रने अपना इहा मुत्रार्थ (इस लोक और पर लोकके) भोगमें विराग देखाया अब नित्याऽनित्य वस्तु विवेककी भूमिका बांधते है ॥

एकेनैव निमेषेण किंचिदुत्थापयत्यलम् ॥ किंचिद्विनाशयत्युच्चैर्मनो राज्यवदाततः ॥ १७ ॥ दुर्विलास विलासिन्या चेष्टया कष्टपुष्टया ॥ द्रव्यैकरूपकद्रूपं जनमावर्त्तयन् स्थितः ॥ १८ ॥ तृणं पांसुं महेंद्रं चसुमेरुं पर्णमर्णवम् ॥ आत्मंभरितया सर्वमात्मसात्कर्तुमुद्यतः ॥ १९ ॥ क्रौर्यमत्रैवपर्याप्तं लुब्धताऽत्रैव संस्थिता ॥ सर्वदौर्भाग्यमत्रैव चापलंवापि दुःसहम् ॥ २० ॥

अर्थ—यहकाल मनोराज्यके सदृश, व्यापकरूप, एकही क्षणमें किसीको तो भलीभांति उठाके खडा करताहै और किसीको नष्ट करताहै ॥ १७ ॥ अनेक प्राणियोंके कष्टोंसेही पुष्ट, अपने दुष्टविलासोंसे विलास करनेवाली, सत्युगादिके योग्य चेष्टारूप स्त्रीसे अनेक द्रव्यादि पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाला यहकाल, अविवेकी जनोंको स्वर्ग नरकादिमें भ्रमण कराताहै ॥ १८ ॥ यहकाल केवल उदर पूर्णार्थी होनेके कारणसे तृण, धूलि, महेंद्र, सुमेरू, पत्र और समुद्र सबको भक्षण करनेमें उद्यतहै ॥ १९ ॥ क्रूरताकी पराकाष्ठा यहकालहीहै, लुब्धताभी इसीमें आके स्थिर हुईहै, दौर्भाग्यनेभी अपना गृह इसीको बनायाहै और चपलताभी ऐसी और स्थानोंमें दुर्लभहै ॥ २० ॥

प्रेरयन् लीलयार्केंदूक्रीडतीव नभस्तले ॥ निक्षिप्तलीलायुगलो निजेबाल इवांगणे ॥ २१ ॥ सर्वभूतास्थिमालाभिराशिरापादवलिताकृतिः ॥ विलसत्येव कल्पांते कालः कलितकल्पनः ॥ २२ ॥ अस्योड्डामरवृत्तस्य कल्पांतंगविनिर्गतैः ॥ प्रस्फुरत्यंबरे मेरुर्भूर्जत्वगिव वायुभिः ॥ २३ ॥ रुद्रो भूत्वा भवत्येष महेंद्रोऽथ पितामहः ॥ शक्रो वैश्रवणश्चापि पुनरेव न किंचन ॥ २४ ॥

अर्थ—आकाश मण्डलमें सूर्य और चन्द्रमाको प्रेरणा करता हुआ यह ऐसे क्रीडाकर रहा है, जैसे दो कन्दुकसे अपने आंगनमें बालक ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंकी हड्डियोंकी मालासे शिरसे पाओंतक शोभित, और सम्पूर्ण प्राणिमात्रके विभागोंको तथा संयोगोंको नाश करनेवाला, यह काल कल्पके अन्तमें विलास करताहै ॥ २२ ॥ कल्पके अन्तमें, स्वतंत्र चरित्रवाले इस कालके अंगोंसे निर्गत वायुसे इतना बडा यह सुमेरूपर्वतभी छिन्नभिन्नहोके आकाशमण्डलमें ऐसे भ्रमण करताहै, जैसे वायुके झोकोंसे भोजपत्र॥२३॥यह कालही रूद्रका रूप धारणकरके महेन्द्रका रूप धारणकरताहै, पुनः ब्रह्माजीका रूप धारण करताहै,इसके अनन्तर पुनः इन्द्र और कुबेर बन जाताहै और फिर कुछभी नहीं रहता ॥ २४ ॥

धत्तेऽजस्रोत्थितोत्ध्वस्तान्सर्गानमितभास्वरान् ॥ अन्यान्दधद्दिवानक्तं वीचीरब्धिरिवात्मनि ॥ २५ ॥ महाकल्पाभिधानेभ्यो वृक्षेभ्यः पारिशातयन् ॥ देवासुरगणान्पक्वान्फलभारानिव स्थितः ॥ २६ ॥ कालोऽयं भूतमशकघुंघुमानां प्रपातिनाम् ॥ ब्रह्मांडोडुंबरौघानां बृहत्पादपतां गतः ॥ २७ ॥ सत्तामात्रकुमुद्वत्या चिज्ज्योत्स्नापारफुल्लया ॥ वपुर्विनोदयत्येकं क्रियाप्रियतमान्वितः ॥ २८ ॥

अर्थ—यहकाल अपने कार्यमें रात्रि दिन सदा उद्यत एक प्रकारकी सृष्टिको बनाकर दूसरे अनेक प्रकाशमान सृष्टियोंको ऐसे नष्ट करताहै जैसे समुद्र अपने आत्मामें तरंगोंको ॥ २५ ॥ महाकल्प नामवाले वृक्षोंसे, देवता और असुरोंके समूहरूपी फलोंके भारोंको नाश करता हुआ यह स्थितहै ॥ २६ ॥ संपूर्ण प्राणीरूप शब्द करनेवाले मशकों सहित गिरनेवाले अनेक ब्रह्माण्डरूपी गूलरके फलोंका यह काल मानों एक महा वृक्षहै ॥२७॥ सबका अधिष्ठान रूप चेतनकी सत्तारूप चन्द्रिकासे विकसित सब पदार्थोंकी सत्तारूप कुमुदिनीसे प्राणियोंकी क्रियारूप अपनी स्त्रीके साथ यह काल अपनी शरीरको प्रसन्न करताहै ॥ २८ ॥

अनंतापारपर्यंतबद्धपीठं निजं वपुः ॥ महाशैलवदुत्तुंगमवलंब्य व्यवस्थितः ॥ २९ ॥ क्वचिच्छ्यामतमः स्याम्यं क्वचित्कांतियुतं ततम् ॥ द्वयेनाऽपि क्वचिद्रिक्तं स्वभावं भावयन्स्थितः ॥ ३० ॥ सर्लीनासंख्यसंसारसारया स्वात्मसत्तया ॥ उर्व्येवभारघनया निबद्धपदतां गतः ॥ ३१ ॥ न खिद्यते नाद्रियते नायति न च गच्छति ॥ नास्तमेति न चोदेति महाकल्पशतैरपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—आदि अन्त शून्य आपार परब्रह्मके स्वरूपमें अपने शरीरका सिंहासन स्थापन करके, बडे पर्वतके समान यह व्यापक होके ठहराहै ॥ २९ ॥ कहीं रात्रिआदि श्याम पदार्थोंमें श्यामरूप कहीं दिन चन्द्रिका मणिआदि प्रकाशमान पदार्थोंमें प्रकाशमय और कहीं घटगृहादि दोनोंरूपसे रहित अपने स्वरूपको प्रगट करता हुआ यह कालस्थितहै ॥ ३० ॥ अपने स्वरूपमें असंख्य प्राणि समूह सहित संसारोंको लीन करके सारभूत अपनी सत्तासे ऐसी स्थिर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआहै जैसे महाभारसे पृथ्वी ॥ ३१ ॥ सैकडों महाकल्पोंमेंभी यह काल न खिन्न होताहै, न प्रसन्न होताहै, न आताहै, न जाताहै, न अस्त होताहै, न उदय होताहै ॥ ३२ ॥

केवलं जगदारंभलीलया घनहेलया ॥ पालयत्यात्मनात्मानमनहंकारमाततम् ॥ ३३ ॥ यामिनीपंककलितां दिनकोकनदावलीम् ॥ मेघभ्रमरिकामात्मसरस्या रोपयन्स्थितः ॥ ३४ ॥ गृहीत्वा कृपणः कृष्णां रजनीं जीर्णमार्जनीम् ॥ आलोककनकक्षोदानाहरत्यभितो गिरिम् ॥ ३५ ॥ संचारयन् क्रियांगुल्या कोणेकेष्वर्कदीपिकाम् ॥ जगत्सद्मनि कार्पण्यात्क किमस्तीति विक्षते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अहंकारसे वर्जित, व्यापकरूप, यह काल, अती अनादरपूर्वक जगत् रचनेकी लीलासे अपने आत्माको आपही पालन करताहै ॥ ३३ ॥ रात्रिरूप कीचडमें उत्पन्न. मेघरूपी भ्रमर सहित, दिनरूपीलाल कमलोंको अपने आत्मारूपी तडागमें लगाकर यहस्थितहै ॥ ३४ ॥ यह कृपणलाल सदा वही कृष्णरात्रिरूपी मार्जनी (झाडू) हांथमें लेके और ऊसको चलाकर चारों ओरसे प्रकाशरूपी सुवर्णके चूर्णको बटोरा करताहै ॥ ३५ ॥ यहकाल अपनी कृपणताके कारणसे,जगत्रूपी गृहमें, क्रियारूप अंगुलीसे दिशाओंके कोनोंमें सूर्यरूपी दीपकका संचार करताहुआ कहांपर क्या पदार्थहै यही देखा करताहै ॥ ३६ ॥

प्रेक्ष्याहर्विनिमेषेण सूर्याक्ष्णापाकवंत्यलम् ॥ लोकपालफलान्यत्ति जगज्जीर्णवनादयम् ॥ ३७ ॥ जगज्जीर्णकुटीकीर्णानर्पयत्युग्रकोटरे ॥ क्रमेण गुणवल्लोकमणीन्मृत्युसमुद्गके ॥ ३८ ॥ गुणैरापूर्य्यते यैव लोकरत्नावली भृशम् ॥ भूषार्थमिव तामंगे कृत्वा भूयो निकृंतति ॥ ३९ ॥ दिनहंसानुसृतया निशेंदीवरमालया ॥ तारकेसरयाजस्रं चपलो वलयत्यलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यहकाल सूर्यरूपी नेत्र और दिनरूपी निमेषसे, जगत्रूपी प्राचीनवनसे, लोगपालरूपी परिपक्कफलोंको देख देख कर खाताहै ॥ ३७ ॥ यहकाल जगत्रूपी प्राचीन तृणके गृहमें गिरेहुये अनेक गुण सहित संसाररूपी माणियोंको बडे उदरवाले मृत्युरूप सन्दूकमें क्रमक्रमसे रक्खा करताहै ॥ ३८ ॥ जो संसाररूपी रत्नोंकी पंक्ति गुणोंसे परिपूर्ण होजातीहै उसको आभूषणके समान अपने युगादिरूप अंगोमें धारण करके पुनः उसको तोड डालताहै ॥ ३९ ॥ दिनरूपी हंससहित तारागणरूपी केशर संयुक्त, रात्रिरूपी नीलकमलकी मालाको, पांचो अनुरूपी अंगुलीवाले वर्षरूपी अपने हस्तमें यहकाल कटकके समान धारण करताहै ॥ ४० ॥

शैलार्णकधराशृंगजगदूर्णायुसौनिकः ॥ प्रत्यहं पिवते प्रेक्ष्य तारा रक्तकणानपि ॥ ४१ ॥ तारुण्यनलिनीसोम आयुर्मातंगकेसरी ॥ न तदस्ति न यस्याऽयं तुच्छातुच्छस्य तस्करः ॥ ४२ ॥ कल्पकेलिविलासेन पिष्टपातितजंतुना ॥ अभावो भावभासेन रमते स्वात्मनाऽऽत्मनि ॥ ४३ ॥ कर्त्ता भोक्ताऽथ संहर्ता स्मर्ता सर्वपदं गतः ४४ ॥

अर्थ—जिसके पर्वत, समुद्र, स्वर्ग, और पृथ्वी शृंगहैं ऐसे जगत्रूपी मेषोंका सौनिक (कसाई) यहकाल तारागणके कर्णोंसिभी रक्तवर्ण देखकर प्रतिदिन चाटलिया करताहै ॥ ४१ ॥ युवावस्थारूपी कमलिनीका तो यह चन्द्रमाहै, आयुरूपी हस्थिके लिये सिंहहै, छोटी या बडी संसारमें ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है जिसका यह चोर न हो॥४२ कल्परूपी प्रलयके मेघोंके विलाससे प्राणिमात्रको मृत्युके मुखमें डालनेवाला, पदार्थोंका अभावरूप यहकाल अपनी अधिष्ठानरूप चेतन सत्तामें रमण करताहै ॥ ४३ ॥ इसप्रकार प्रलयमें विश्राम करके पुनः संसारका कर्ता, भोक्ता, संहार कर्ता और स्मरण कर्ता, इत्यादि सब अवस्थाओंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

सकलमप्यकलाकलितांतरं सुभगदुर्भगरूपधरं वपुः ॥ प्रकटयन्सहसैव च गोपयन् विलसतीह हि कालबलंनृषु ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालापवादोनाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—जिसका रहस्य बुद्धिकी कुशलतासेभी नहीं जानाजाता ऐसे पुण्य और पापके फल भोगानुसार सम्पूर्णशरीरोंको शीघ्रही प्रगट और नाश कर्ता हुआ विहार करताहै, क्योंकि इस संसारमें कालका बल प्राणिमात्रमें प्रसिद्धहै॥४५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालापवादोनामः त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

चण्डी स्त्री सहित आखेट (अहेर) के कौतुकसे पूर्ण राजपुत्ररूपसे उसी कालका वर्णन इस २४ वें सर्गमें पुनः किया गयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अस्योद्दामरलीलस्य दूरास्तसकलाऽऽपदः ॥ संसारे राजपुत्रस्य कालस्याऽकलितौजसः ॥ १ ॥ अस्यैवाचरतो दीनैर्मुग्धैर्भूतमृगव्रजैः ॥ आखेटकं जर्जरिते जगज्जंगलजालके ॥२॥ एकदेशो लसच्चारुवडवानलपंकजा ॥ क्रीडापुष्करिणी रम्या कल्पकालमहार्णवः ॥ ३ ॥ कटुतिक्ताम्लभूताद्यैः सदधिक्षीरसागरैः ॥ तैरेव तैः पर्युषितैर्जगद्भिः कल्पवर्त्तनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—स्वतंत्र लीला करनेवाला सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रहित अतुलित पराक्रम सहित, सूर्य चन्द्रादिककाभी प्रकाशक जो परब्रह्मरूपी राजाहै उसकी अनादि कालकी मायारूप पटरानीसे जिसका जन्महुआहै और जो युवराज्यमें अभिषिक्त कालरूपी राजपुत्रहै उसका चरित्र वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥ जगत्‌रूपी पुराने जंगलके समूहमें, दीन और अज्ञ प्राणिरूप मृगोंके समूहोंमें अहेर करनेवाले इसी कालकी ॥ २ ॥ क्रीडाकेलिये प्रलयकालका जो समुद्रहै वह रमणीय पुष्करिणी (बावडी) बनाई गईहै, जिस बावडीके किसीदेशमें वडवानलरूपी कमल विकसित हो रहाहै ॥ ३ ॥ दधि क्षीर आदि सबप्रकारके समुद्रोंसहित कटु तिक्त और आम्लरूप जो अनेक मत तथा चिरस्थायी वा अल्पस्थायी जो जगत्‌है, उनका यहकालरूप राजपुत्रका प्रातःकालमें कलेवा करताहै ॥ ४ ॥

चंडी चतुरसंचारा सर्वमातृगणान्विता ॥ संसारवनविन्यस्ता व्याघ्री भूतौघघातिनी ॥ ५ ॥ पृथ्वीकरतले पृथ्वी पानपात्री रसान्विता ॥ कमलोत्पलकल्हारलोलजालकमालिता ॥ ६ ॥ विरावी विकटास्फोटो नृसिंहो भुजपंजरे ॥ सटाविकटपीनांसः कृतः क्रीडाशकुंतकः ॥ ७ ॥ अलाबुवीणामधुरः शरद्व्योमलसच्छविः ॥ देवः किल महाकालो लीलाकोकिलबालकः ॥ ८ ॥

अर्थ—चलनेमें बडी चतुर अपने सबमातृगणोंसहित, संसारके सब प्राणियोंकी संहारिणी और संसाररूपीवनमें विहारिणी व्याघ्रीके समान जो कालरात्रिहै वह इस कालकी प्रिया पत्नी है ॥ ५ ॥ श्वेत, नील, और रक्त, कमलोंके समूहसे मढीहुई, नानाप्रकारके रससहित यह जो बडी पृथ्वी है सो कालरूपी राजपुत्रका पान (मद्य) पात्रहै ॥ ६ ॥अपने भुजाओंके फटकारसे दुःसह, और महागर्जना करनेवाले, और सटा (स्कन्धकेवालों) से अतिभयंकर मूर्ति भगवान् नृसिंहावतार, जिस कालके भुजपंजरमें दानवोंके वधरूपी क्रीडाके लिये बाजनामक पक्षी बनायेगयेहैं॥ ७॥ नानाप्रकारके ब्रह्माण्डोंकी माला धारण करनेसे, अलावू (तुम्बे) की बीणासे मधुर शब्दकारी, शरत्‌कालके निर्मल आकाशकेसमान शोभायमान संहार भैरव जो महाकालदेवहैं वे इसकालकी लीलाके लिये कोकिलके बालक बनाये गयेहै ॥ ८ ॥

अजस्रस्फूर्जिताकारो वांतदुःखशरावलिः ॥ अभावनामकोदंडःपरिस्फुरति सर्वतः ॥ ९ ॥ अनुत्तमस्त्वधिकविलासपंडितो भ्रमच्चलन्परिविलसन् विदारयन् ॥ जरज्जगज्जनितविलोलमर्कटः परिस्फुरद्वपुरिह काल ईहते ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालविलासोनाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—सदा टंकारध्वनि करनेवाला दुःखरूपी बाणोंके समूहोंको फेंकनेवाला, और सबका संहारकारी इसकालका धनुष सर्वत्र स्फुरित हो रहाहै ॥ ९ ॥ स्वयं चंचल होनेपरभी चलायमान लक्ष्योंको विदीर्ण करके यहकाल विलास करताहै इसीसे सम्पूर्ण अहेरियोंमें अत्युत्तम पण्डित और विलासीहै, अतएव प्राचीन जगत्‌में विषयलंपट मनुष्यरूपी मर्कटोंको पीडित करके विराजमान यहकालरूप राजपुत्र अपनी चेष्टारूपी मृगया (अहेर) कर रहाहै॥ १०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदुतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालविलासोनाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

---

(१) कटु तिक्त आम्ल द्रव्य मिलाके प्रातःकालका केलवा द्रवीड देशमें प्रसिद्धहै ॥ (२) पाषाणकी आख्यायिकामें महाकालके विषयमें कहैंगे.

पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

प्रकृतिके चित्रके समान, क्रिया और उनके फल स्वरूप जो दूसरा कालहै उसके नृत्यके विस्तारका वर्णन इस २५ वें सर्गमें किया गयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अत्रैव दुर्विलासानां चूडामणिरिऽहापरः ॥ करोत्यत्तीति लोकेस्मिन्दैवं कालश्च कथ्यते ॥ १ ॥ क्रियामात्राद्दते यस्य स्वपरिस्पंदरूपिणः ॥ नान्यदालक्ष्यते रूपं न कर्म न समीहितम् ॥ २ ॥ तेनेयमखिला भूतसंततिः परिपेलवा ॥ तापेन हिममालेव नीता विधुरतां भृशम् ॥ ३ ॥ यदिदं दृश्यते किंचिज्जगदाभोगिमंडलम् ॥ तत्तस्य नर्त्तनागारमिहासावति नृत्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–इसी संसारमें संपूर्ण दुर्विलासियोंका शिरोमणि जो दूसराकालहै वही संपूर्ण क्रियाओंको करताहै, और संहारभी करताहै, उसीको प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके फल देनेसे तथा उनके साथ व्यवहार वा क्रीडा करनेसे दैव और कालभी कहते हैं ॥ १ ॥ जिस परिस्पंदमात्र रूपधारी इसकालका क्रियाके सिवाय न कुछरूप प्रतीत होताहै, न कर्म प्रतीत होताहै, और न चेष्टा प्रतीत होती है ॥ २ ॥ इसीने संपूर्ण प्राणीमात्रके समूहोंको ऐसा नष्टकर दियाहै जैसे आतपने हिमके समूहोंको ॥ ३ ॥ जो कुछ कृत्रिम भोगकारूप धारण किये यह दृश्यमात्र देख पडताहै यह सब इसके नृत्यका स्थानहै यहांपर वह स्वच्छन्दतासे क्रीडा करताहै ॥ ४ ॥

तृतीयं च कृतांतेति नाम बिभ्रत्सुदारुणम् ॥ कापालिकवपुर्मत्तं दैवं जगति नृत्यति ॥ ५ ॥ नृत्यतो हि कृतांतस्य नितांतमिव रागिणः ॥ नित्यं नियतिकांतयां मुने परमकामिता ॥ ६ ॥ शेषः शशिकलाशुभ्रो गंगावाहश्च तौ त्रिधा ॥ उपवीते अवीते च उभौ संसारवक्षसि ॥७॥ चंद्रार्कमंडले हेमकटकौ करमूलयोः ॥ लीलासरसिजं हस्ते ब्रह्मन्ब्रह्मांडकर्णिका ॥ ८ ॥

अर्थ—कापालिक वेष धारण किये हुये, यह अपना तीसरा नाम कृतान्त (यम) धारण करताहै और मत्त होके जगत्में नाचताहै ॥ ५ ॥ हे मुने ! रागीके समान नाचताहुआ यह कृतान्त नियति (कर्म्मके अनुसार अवश्य फल देनेवाली मर्य्यादा) रूप अपनी प्रियासे नित्य अत्यन्त प्रेम करताहै ॥ ६ ॥ शेषनाग, चन्द्रमाकी कला, और तीन प्रकारसे प्रसिद्ध गंगाजीका प्रवाह ये कालके त्रैलोक्यरूपी वक्षस्थलपर उपवीति और अवीति अर्थात् वाम तथा दक्षिण स्कन्धपर यज्ञोपवीतके सदृशहैं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रमा और सूर्य दोनों इसके हाथमें सुवर्णके कडेहैं, और सुमेरुपर्वत लीलार्थ इस कृतान्तके हस्तमें कमलहै ॥ ८ ॥

ताराबिंदुचितं लोलपुष्करावर्त्तपल्लवम् ॥ एकार्णवपयोधौत मेकमंबरमं बरम् ॥ ९ ॥ एवं रूपस्य तस्याऽग्रेनियतिर्नित्यकामिनी ॥ अनस्तमितसंरंभमारंभैः परिनृत्यति ॥ १० ॥ तस्या नर्त्तनलोलाया जगन्मंडपकोटरे ॥ अरुद्धस्पंदरूपाया आगमापायचंचुरे ॥ ११ ॥ चारुभूषणमंगेषु देवलोकांतरावली ॥ आपातालं नभोलंबं कबरीमंडलं बृहत् ॥ १२ ॥

अर्थ—तारागणरूपी चित्रबिन्दुयुक्त, पुष्कर और आवर्त नामधारी जो प्रलयकालके मेघहैं, वे इसके वस्त्रके किनारे हैं और पहिननेका एक वस्त्र समुद्रहै, और दूसरा ओढनेका निर्मल आकाशहै ॥ ९ ॥ ऐसा रूपधारी जो यह कापालिकहै उसके आगे नियतिरूप उसकी प्रियापत्नी प्राणीरूप सभ्योंके भोगाऽनुकूल कार्य्योंको आरंभ करके निरन्तर नृत्य किया करती है ॥ १० ॥ प्राणिरूप द्रष्टाओंके आगमापायसे (उत्पत्ति और विनाशसे) अति चंचल, जगत्रूपी मंडपके कोटरमें नृत्यसे चपल और अरूद्ध (वेरोक) क्रिया शक्तिवाली, उस नियतिका ॥ ११ ॥ मध्य २ में देवलोकोंकी पंक्तियाँ उत्तम भूषणहैं और पाताल पर्य्यन्त लंबमान श्याम नभस्तल उसका लम्बा केशपासहै ॥ १२ ॥

नरकाली च मंजीरमाला कलकलोज्वला ॥ प्रोता दुष्कृतसूत्रेण पातालचरणे स्थिता ॥ १३ ॥ कस्तूरिकातिलककं क्रियासख्योपकल्पितम् ॥ चित्रितं चित्रगुप्तेन यमे वदनपट्टके ॥ १४ ॥ कालास्यं समुपादाय कल्पांतेषु किलाऽऽकुला ॥ नृत्यत्येषा पुनर्देवी स्फुटच्छैलघनारवम् ॥ १५ ॥ पश्चात्प्रालंबविभ्रांतकौमारमृतबर्हिभिः ॥ नेत्रत्रयबृहद्रंध्रभूरिभांकारभीषणैः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके पातालरूपी चरणोंमें, रोदनके कोलाहलसे शब्दायमान पापरूपी सूत्रमें गूँथी हुई नरककी पंक्तियाँ घूंघरुहैं ॥ १३ ॥ प्राणियोंके कर्मरूपी सौगन्धके प्रगट करनेके लिये, क्रियारूप सखीसे रचित, चित्रगुप्तरूप कस्तूरीसे यमरूप ललाटपर तिलक कियागयाहै ॥ १४ ॥ कल्पके अन्तमें कालके मुख, भ्रकुटि, विलास और कटाक्षा-

दिसे सूचित अभिप्रायको जानकर अति व्याकुल यह नियति देवी पर्वतोंके महाशब्दोंके साथ नृत्य करती है ॥ १५ ॥ पृष्ठभागमें लम्बमान कौमार अवस्थामें मृतकरूपी मयूरोंसे शोभित होती है और तीनों नेत्रोंके बडे छिद्रोंके अधिक शब्दोंसे भयंकर तथा ॥ १६ ॥

लंबलोलजटाचंद्रविकीर्णहरमूर्द्धभिः ॥ उच्चरच्चारुमंदारगौरीकबरचामरैः ॥ १७ ॥ उत्तांडवाचलाकारभैर वोदरतुंबकैः ॥ रणत्सशतरंध्रेंद्रदेहभिक्षाकपालकैः ॥ १८ ॥ शुष्कशारीरखट्वांगभरैरापूरितांबरम् ॥ भीषयत्यात्मनात्मानं सर्वसंहारकारिणी ॥ १९ ॥ विश्वरूपशिरश्चक्रचारुपुष्करमालया तांडवेषुविवल्गंत्या महाकल्पेषु राजते ॥ २० ॥

अर्थ—लम्बी और चंचल जटामें स्थित चन्द्रमाके प्रकाशसे व्याप्त महादेवके मस्तकोंसे यह लक्षित होती है और चलायमान मन्दारके पुष्पोंसे शोभित पार्वतीके केश समूहरूपी चमरोंसे रमणीयताको प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ तथा पर्वताकार भयंकर उदरवाले तूंबोंसे सात अधिक सहस्र छिद्रयुक्त शब्दायमान इन्द्रके शरीररूपी भिक्षा कपालोंसे ॥ १८ ॥ और शुष्क शरीररूपी पाटियोंके समूहसे आकाश मंडलकोभी पूर्ण करनेवाले अपने स्वरूपको आपही डराती हुई सबका संहार करती है ॥ १९ ॥ महाभयंकर शब्द करनेवाली यह नानाप्रकारके मस्तकोंके समूहरूपी कमलकी मालाको धारण किये महाकल्पोंमें अपने ताण्डव नृत्योंसे शोभायमान होती है ॥ २० ॥

प्रमत्तपुष्करावर्त्तडमरुहामरारवैः ॥ तस्याः किल पलायंते कल्पांते तुंबुरादयः ॥ २१ ॥ नृत्यतोंतः-कृतांतस्य चंद्रमंडलभासिनः ॥ तारकाचंद्रिकाचारुव्योमपिच्छावचुलिनः ॥ २२ ॥ एकस्मिञ्छ्रवणे दीप्ता हिमवानस्थिमुद्रिका ॥ अपरे च महामेरुः कांताकांचनकर्णिका ॥ २३ ॥ अत्रैव कुंडले लोले चंद्रार्कौ गंडमंडले ॥ लोकालोकाचलश्रेणी सर्वतःकटिमेखला ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रमत्त पुष्कर और आवर्त्त नामक प्रलयकालके मेघरूपी जो इसके डमरूहैं उनके महाभयंकर शब्दोंसे कल्पके अन्तमें इसके नृत्यमें तुम्बुरू आदि गन्धर्व भाग जाते हैं ॥ २१ ॥ चन्द्रमण्डलसे प्रकाशमान, तारागणोंकी ज्योतिसे शोभायमान आकाशरूपी मयूरके पंखसे अपने केशसमूहोंको भूषित किये फल नियतिके साथ उक्त नृत्यशालामें नाचनेवाले कृतान्तके ॥ २२ ॥ एक कानमें तो हिमालयरूपी हड्डीका मुद्रिकाकार कुण्डलहै, और दूसरे कानमें अति प्रिय सुवर्णका महा सुमेरूरूपी कुण्डलहै ॥ २३ ॥ इन्ही कानोंमें सूर्य चन्द्रमारूपी मण्डलाकार दो और चंचल कुण्डलहैं और लोकालोक नामवाले पर्वतोंकी पंक्ति चारों ओरसे कटिमेखलाहै ॥ २४ ॥

इतश्चेतश्च गच्छंती विद्युद्वलयकर्णिका ॥ अनिलांदोलिता भाति नीरदांशुकपट्टिका ॥ २५ ॥ मुसलैः पट्टिशैः प्रासैः शूलैस्तोमरमुद्गरैः ॥ तीक्ष्णैः क्षीणजगद्व्रातकृतांतैरिव संभृतैः ॥ २६ ॥ संसारबंधनादीर्घे पाशे कालकरच्युते ॥ शेषभोगमहासूत्रप्रोते मालास्य शोभते ॥ २७ ॥ जीवोल्लसन्मकरिकारत्नतेजोभिरुज्ज्वला ॥ सप्ताब्धिकं कणश्रेणी भुजयोरस्य भूषणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा इधर उधर भ्रमण करनेवाली बिजुली जिसका कंकणहै और वायुसे कंपित मेघोंकी पंक्तिरूप कंथा जिसकी शोभित होरही है ॥ २५ ॥ नष्ट ब्रह्मांडोंसे अथवा पूर्वकालकी सृष्टियोंसे निकले कृतांतोंसे एकत्रित किये अति तीक्ष्ण, मूशल, भाला, बर्छी, त्रिशूल, पटा, और मुद्गरोंसे रचित तथा संसारके प्राणिरूप मृगोंके बन्धनार्थ, पूर्वोक्त कालरूपी राजपुत्रके हाँथसे गिरे पाशमें लटकती हुई और शेषजीके फणरूपी महासूत्रमें गूँथी माला इस कृतान्तरूपी कापालिकके कंठमें शोभित होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥ जीवरूपी मकरिकाके चिन्होंसे युक्त रत्नोंके तेजसे देदीप्यमान, सातों समुद्ररूपी कंकणोंकी श्रेणि इसके दोनों भुजाओंमें भूषित होरही हैं ॥ २८ ॥

व्यवहारमहावर्त्ता सुखदुःखपरंपरा ॥ रजःपूर्णतमःश्यामा रोमाली तस्य राजते ॥ २९ ॥ एवं प्रायः स कल्पांते कृतांतस्तांडवोद्भवाम् ॥ उपसंहृत्य नृत्येहां स्रष्टा सह महेश्वरम् ॥ ३० ॥ पुनर्लास्यमयीं नृत्यलीलां सर्गस्वरूपिणीम् ॥ तनोतीमां जराशोकदुःखाभिभवभूषिताम् ॥ ३१ ॥ भूयः करोति भुवनानि वनांतराणि लोकांतराणि जनजालककल्पनांच आचारचारुकलनामचलां चलां च पंकायधार्मिकजनो रचनामखिन्नः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वसिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कृतांतविलसितंनाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

---

(१) इसकी स्त्रिया नृत्य कहके अब कापालिक कृतान्तका वर्णन किया जाताहै ॥

अर्थ—शास्त्रीय और लौकिक व्यवहाररूपी भ्रमर जिसमें गूंज रहे हैं ऐसी रजोगुण तथा तमोगुणसे पूर्ण सुखदः स्वरूपी श्यामवर्ण मनोहर रोमावली इसकी शोभायमान हो रहीहै ॥ २९ ॥ इसप्रकार प्रायः कल्पके अन्तमें यह कृतान्त ताण्डवके उत्पन्न करनेवाली नृत्यकी इच्छाको बटोर कर किंचित् विश्राम करके पुनः महादेवादिकोंके साथ उठताहै ॥ ३० ॥ और वृद्धाऽवस्था, शोक तथा अनेक प्रकारके अन्य दुःख और पराजय आदिसे भूषित, अभिनय (भाव) सहित इस सृष्टिरूप नृत्यलीलाका पुनः विस्तार करताहै ॥ ३१ ॥ पुनः यह भुवनोंको, वनोंको, अन्य स्वर्गादि लोकोंको, और प्राणियोंके समूहोंको, सतयुगआदि युगोंके भेदसे अचल और चल वेद और स्मृति विहित आचारोंको ऐसे खेद रहित होके बनाताहै जैसे बालक मृतिकासे खिलौनोंके ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कृतान्तविलसितंनाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

कालादिकी परतंत्रतासे अनेक दोषोंके कारणसे संसारकी दुर्दशा इस २६ वें सर्गमें वर्णन की गईहै कि जिससे वैराग्य उत्पन्नहो ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ वृत्तेऽस्मिन्नेवमेतेषां कालादीनां महामुने ॥ संसारनाम्नि कैवाऽऽस्था मादृशानांवदत्विह ॥ १ ॥ विक्रीता इव तिष्ठाम एतैर्दैवादिभिर्वयम् ॥ मुने प्रपंचरचनैर्मुग्धा वनमृगा इव ॥ २ ॥ एषोऽनार्यसमाम्नायः कालः कवलनोन्मुखः ॥ जगत्यविरतं लोकं पातयत्यापदर्णवे ॥ ३ ॥ दहत्यंतर्दुराशाभिर्देवो दारुणचेष्टया ॥ लोकमुष्णप्रकाशाभिर्ज्वालाभिर्दहनो यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुने ! जब इस संसारमें कालादिका इसप्रकार चरित्रहै तो बताईये हमारे सदृश मनुष्योंका इसमें क्या विश्वासहै ॥ १ ॥ हे मुने ! इन दैवकालादिसे खरीदे हुयेके समान हम लोग शब्दादि विषयोंके प्रपंचकी रचनासे ऐसे मोहितहैं जैसे वनके मृग ॥ २ ॥ अनार्य तस्व भाववाला अपने उदरभरण मात्रमें तत्पर यह कालनामक महाधूर्त इस संसारमें सबको आपत्तिके समुद्रमें गिराताहै ॥ ३ ॥ यह कालनामक देव अपनी भयंकर चेष्टासे प्राणियोंको दुष्ट आशाओंसेभीतर तथाबाहर ऐसे जलाताहै जैसे अतिउष्ण और प्रकाशमान ज्वालाओंसे संसारको अग्नि

धृतिं विधुरयत्येषा मर्यादारूपवल्लभा ॥ स्त्रीत्वात्स्वभावचपला नियतिर्नियतोन्मुखी ॥ ५ ॥ ग्रसते विरतं भूतजालं सर्प इवानिलम् ॥ कृतांतः कर्कशाऽऽचारो जरां नीत्वाजरं वपुः ॥ ६ ॥ यमो निर्घृणराजेंद्रो नार्त्तं नामानुकंपते ॥ सर्वभूतदयोदारो जनो दुर्लभतां गतः ॥ ७ ॥ सर्वा एव मुने फल्गुविभवा भूतजातयः ॥ दुःखायैव दुरंताय दारुणाभोगभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्री होनेके कारण स्वभावसेही चपल नियति मर्यादारूप कृतान्तकी यह पत्नी सदा अपने कार्य्यमें तत्पर समाधिनिष्ट महात्माओंकाभी धैर्य्य नष्टकर देती है ॥ ५ ॥ यह महाक्रूर आचार धारी कृतान्त तरूण शरीरोंको वृद्ध बनाके सब प्राणि समूहको निरन्तर ऐसे भक्षण करताहै जैसे सर्प वायुको ॥ ६ ॥ संपूर्ण निर्दयोंका राजा यम तो दुःखियोंके ऊपर दया करना जानताही नहीं सब प्राणियोंपर दया करनेवाला जन तो दुर्लभ हो गयाहै ॥ ७ ॥ हे मुने ! चेंटीसे लेके ब्रह्मा पर्यन्त जितनी प्राणियोंकी जातियां हैं सब तुच्छहैं और सब विषयभोग महा भयंकरहैं और ये सब केवल दुरंत दुःखहीके लियेहैं ॥ ८ ॥

आयुरत्यंतचपलं मृत्युरेकांतनिष्ठुरः ॥ तारुण्यं चाऽतितरलं बाल्यं जडतया हृतम् ॥ ९ ॥ कलाकलंकितो लोको बंधवो भवबंधनम् ॥ भोगा भवमहारोगास्तृष्णाश्च मृगतृष्णिकाः ॥ १० ॥ शत्रवश्चेंद्रियाण्येव सत्यं यातमसत्यताम् ॥ प्रहरत्यात्मनैवाऽऽत्मा मनसैव मनो रिपुः ॥ ११ ॥ अहंकारः कलंकाय बुद्धयः परिपेलवाः ॥ क्रिया दुष्फलदायिन्यो लीलाः स्त्रीनिष्ठतांगताः ॥ १२ ॥

अर्थ—आयु अत्यन्त चपलहै, मृत्यु सर्वथा क्रूरहै, युवाऽवस्था अत्यन्तही क्षणभंगुर और चंचलहै, और बाल्य अवस्था तो अज्ञानहीसे नष्टहै ॥ ९ ॥ यह संसार विषयकी चिंतासे कलंकित होरहाहै, जितने बन्धुहैं वे संसारके बन्धन हैं, जितने भोगहैं वे संसारके महारोगहैं, और तृष्णा जो है वह केवल मृगतृष्णाही है ॥ १० ॥ इन्द्रियां जो हैं वेही शत्रु होरहीं हैं देहादिमें आत्माके सत्य होनेका अभिमानथा वह विवेकसे असत्य होगया बन्धनके हेतुसे मनही आत्माका

शत्रु होके आत्माही मनरूप आत्मासे आत्माहीके ऊपर प्रहार करके दुःखी करताहै ॥ ११ ॥ अहंकार युक्त अन्तःकरणकी वृत्ति, आत्मस्वरूप ज्ञानके विरोधी होनेसे केवल कलंकार्थही है स्वरूपकी दृढतासे शून्य होनेसे बुद्धि अति क्षीण होगई है, क्रिया सब दुःखफल देनेवाली होगई हैं, और मानसी विलास सब स्त्रीके आधीन होगये हैं ॥ १२ ॥

वांछाविषयशालिन्यः सच्चमत्कृतयः क्षताः ॥ नार्यो दोषपताकिन्योरसा नीरसतां गताः ॥ १३ ॥ वस्त्व वस्तुतया ज्ञातं दत्तं चित्तमहंकृतौ ॥ अभाववेधिता भावा भावांतो नाऽधिगम्यते ॥ १४ ॥ तप्यते केवलंसाधो मतिराकुलितांतरा ॥ रागरोगो विलसति विरागो नोपगच्छति ॥ १५ ॥ रजोगुणहता दृष्टिस्तमः संपरिवर्द्धते ॥ न चाधिगम्यते सत्वं तत्त्वमत्यंतदूरतः ॥ १६ ॥

अर्थ—संपूर्ण इच्छायें विषयसे शोभित होगईं, आत्माका चमत्कार नष्ट होगया, स्त्रियाँ दोषोंकी ध्वजा होगई और सब अनुरागरस शून्य होगये ॥ १३ ॥ आत्मवस्तुको अवस्तुरूपसे जानलिया, चित्तको अहंकारमें नियुक्त किया, सब भावपदार्थ नाशग्रस्तहैं, और भावपदार्थोंका अन्त अधिष्ठानरूप जो आत्माहैं वह नहीं जाना जाता ॥ १४ ॥ हे साधो! बुद्धि अत्यन्त व्याकुल होके केवल संतापको प्राप्त हो रही है, संसारमें रागही अधिक वृद्धिको प्राप्त होरहाहै, और वैराग्य नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ रजोगुणसे विवेक दृष्टि नष्ट होगई और तमोगुण बढ रहाहै, सत्वगुणकी प्राप्ति नहीं होती, और तत्वज्ञान तो अत्यन्तही दूरहै ॥ १६ ॥

स्थितिरस्थिरतां याता मृतिरागमनन्नोन्मुखी ॥ धृतिर्वैधुर्यमायाता रतिर्नित्यमवस्तुनि ॥ १७ ॥ मतिर्मांद्येन मलिना पातैकपरमं वपुः ॥ ज्वलतीव जरा देहे प्रतिस्फुरति दुष्कृतम् ॥ १८ ॥ यत्नेन याति युवता दूरे सज्जनसंगतिः ॥ गतिर्न विद्यते का चित्कचिन्नोदेति सत्यता ॥ १९ ॥ मनो विमुह्यतीवांतर्मुदिता दूरतां गता ॥ नोज्ज्वला करुणोदेति दूरादायाति नीचता ॥ २० ॥

अर्थ—जीवन तो अस्थिरहै और मृत्यु आनेको उन्मुखहै, धैर्य्य सर्वथा नष्ट होगया, और तुच्छ पदार्थोंमें प्रीति सर्वदा बढ रही है ॥ १७ ॥ मूर्खतासे बुद्धि मलिन होगई, शरीर गिरनेवालाही है, वृद्धाऽवस्था मानो शरीरपर जल रही है, और पाप जो है, वह जाज्वल्यमान होरहाहै ॥ १८ ॥ युवाऽवस्था बडे यत्नसे चली जा रही है, सज्जनोंकी संगति बहुत दूरहै, कहीं कोइ गति नहीं है, सत्यता कहीभी उदय नहीं होती ॥ १९ ॥ मन मोहितके समान होगयाहै, आत्मज्ञानका सुख दूर चलागया, उत्तम दया हृदयमें कभी नहीं होती, और नीचता दूरसे निकट आती है ॥ २० ॥

धीरताऽधीरतामेति पातोत्पातपरो जनः ॥ सुलभो दुर्जनाऽऽश्लेषो दुर्लभः सत्समागमः ॥ २१ ॥ आगमापायिनो भावा भावना भवबंधनी ॥ नीयते केवलं क्वाऽपि नित्यं भूतपरंपरा ॥ २२ ॥ दिशोऽपि हि न दृश्यंते देशोऽप्यन्यापदेशभाक् ॥ शैला अपि विशीर्यंते कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २३ ॥ अद्यते सत्त्याऽपिद्यौर्भुवनं चापि भुज्यते ॥ धराऽपि याति वैधुर्यं कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २४ ॥

अर्थ—धीरता अधीरताको प्राप्त होगई, प्राणी जन्ममरणमें वा नीचे ऊपर आने जानेमेंही निमग्नहैं, दुर्जनोंका संग अति सुलभहै, और सज्जनोंका समागम अत्यन्त दुर्लभहै ॥ २१ ॥ सब भावपदार्थ उत्पत्ति और नाशसे ग्रस्तहैं, बासना संसारका बन्धनहै, और प्राणियोंके समूहको काल न जाने कहाँ लिये जा रहाहै ॥ २२ ॥ जिनको कालसे भय नहीं है. ऐसी दिशायेंभी नहीं दीख पडती, न सद्व्यवहारका उपदेश प्रतीन होताहै, और न लौकिक व्यवहारही दीख पडताहै, यहांतकहै कि पर्वतभी नष्टहो जातेहैं तो हमारे सदृश मनुष्योंकी स्थितिमें क्या विश्वासहै ॥ २३ ॥ जब सन्मात्र ईश्वर आकाशकोभी ग्रस लेताहै, और भुवनोंकोभी भक्षण करलेताहै, तथा यह विशाल पृथ्वीभी नष्ट होजाती है तो हमारे सदृश मनुष्योंकी स्थितिमें क्या विश्वास! ॥ २४ ॥

शुष्यंत्यपि समुद्राश्च शीर्यंते तारका अपि ॥ सिद्धा अपि विनश्यंति कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २५ ॥ दानवा अपि दीर्यंते ध्रुवाऽप्यध्रुवजीविताः ॥ अमरा अपिमार्यंते कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २६ ॥ शक्रोऽप्याक्रम्यते वक्रैर्यमोऽपि हि नियम्यते ॥ वायुरप्येत्यवायुत्वं कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २७ ॥ सोमोऽपि व्योमतां याति मार्त्तंडोऽप्येति खंडताम् ॥ मग्नतामग्निरप्येति कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २८ ॥

अर्थ—चारों समुद्रभी सूख जाते हैं, तारागणभी विदीर्ण होजातेहैं और सिद्ध लोगभी नष्ट होजातेहैं, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ॥ २५ ॥ दानवभी विदीर्ण होजातेहैं, ध्रुव (तारा) भी अध्रुव जीवनहै, और अमर (देवता) भी मरते जातेहैं तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २६ ॥ शक्र (इन्द्र) परभी आक्रमण होताहै, यमभी शान्त होजातेहैं, और वायुभी अवायु होजाताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २७ ॥ चन्द्रमाभी

शून्य होजाताहै, सूर्यकेभी टुकडे २ होजातेहैं, और अग्निभी शान्त होजाताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास !

परमेष्ठ्यपि निष्ठावान् न्हियते हरिरप्यजः ॥ भवोऽप्यभावमायाति केवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २९ ॥ कालः संकाल्यते येन नियतिश्चाऽपि नीयते ॥ खमप्यालीयतेऽनंतं केवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ ३० ॥ अश्राव्यावाच्यदुर्दर्शतत्त्वेनाऽज्ञातमूर्तिना ॥ भुवनानि विडंब्यंते केन चिद्भ्रमदायिना ॥ ३१ ॥ अहंकारकलामेत्य सर्वत्रांतरवासिना ॥ न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यस्तेनेह न वाध्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्माजीकीभी समाप्ति होजातीहै, अज हरि जो भगवान्हैं उनकाभी संहार होजाताहै, भव (महादेव) जी भी अभावको प्राप्त होजातेहैं, तो हमारे सदृशप्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त तीन प्रकारका जो कालहै उसकोभी जो संहार करलेताहै, नियति (मर्य्यादा) को भी हटा देताहै, और जो सबको आच्छापन करनेवाला आकाशहै उसकोभी लयकर देताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंका क्या विश्वास ! ॥ ३० ॥ जो श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रियसे न सुना जाताहै बागिन्द्रियसे न कहा जाताहै, और न नेत्र इन्द्रियसे देखा जाताहै, अर्थात् सब इन्द्रियोंका अविषय, अज्ञानमूर्ति, कोई भ्रम देनेवाला (सन्मात्र चेतन) अपने स्वरूपमेंही मायासे तत्त्वको छिपाके सब ब्रह्माण्डोंको देखताहै॥ ३१ ॥सबके अन्तमें निवास करनेवाला,अहंकारांशको धारण करके तीनों लोकमें ऐसा कोई नहीं है जिसको वह बाधा न करताहो३२

शिलाशैलकवप्रेषु साश्वभूतो दिवाकरः ॥ वनपाषाणवन्नित्यमवशः परिचोद्यते ॥ ३३ ॥ धरागोलकमंतस्थसुरासुरगणास्पदम् ॥ वेष्ट्यते धिष्ण्यचक्रेण पक्वक्षोटमिव त्वचा ॥ ३४ ॥ दिवि देवा भुवि नराः पातालेषु च भोगिनः ॥ कल्पिताः कल्पमात्रेण नीयंते जर्जरां दशाम् ॥ ३५ ॥ कामश्च जगदीशानरणलब्धपराक्रमः ॥ अक्रमेणैवविक्रांतो लोकमाक्रम्य वल्गति ॥ ३६ ॥

अर्थ—किरणरूपी घोडोंके चरण सहित सूर्य्य भगवान्भी बनके सामान्य पाषाणके तुल्य प्रतिदिन अवश होके शिला पर्वत और पर्वतोंके शिखरोंपर फेके जातेहैं ॥ ३३ ॥ इस ब्रह्मांडके मध्यमें रहनेवाले देवता और दैत्योंके अनेक लोकोंको और संपूर्ण ज्योतिश्चक्रों (सूर्य तारा मण्डलादि अनेक लोक) को, वह ऐसा व्याप्त कियेहै जैसे पक्के अखरोटके फलको चारों ओरसे उसका चर्म्म ॥ ३४ ॥ स्वर्गमें देवता, भूलोकमें मनुष्य, और पातालमें सर्प, ये सब संकल्प मात्रसे बनाये गयेहैं, और ये महा दुर्दशाको प्राप्त होतेहैं, ॥ ३५ ॥ महादेवजीसे युद्ध करनेसे पराक्रमवाला महा विकराल स्वरूप काम अनुचित रीतिसे संपूर्ण जगत्को अपने वशमें करके गर्ज रहाहै ॥ ३६ ॥

वसंतो मत्तमातंगो मदैः कुसुमवर्षणैः ॥ आमोदितककुप्चक्रश्चेतोनयति चापलम् ॥ ३७ ॥ अनुरक्तांगनालोललोचना लोकिताकृति ॥ स्वस्थीकर्तुं मनःशक्तो न विवेको महानपि ॥ ३८ ॥ परोपकारकारिण्या परार्तिपरितप्तया ॥ बुद्ध एव सुखी मन्ये स्वात्मशीतलया धिया ॥३९॥ उत्पन्नध्वंसिनः कालवडवानलपातिनः ॥ संख्यातुं केन शक्यंते कल्लोलार्जावितांबुधैः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह वसन्तरूपी मत्त मातंग पुष्पकी वृष्टिरूपी मदकी वर्षासे सब दिशाओंको सुगन्धित करके चित्तको चंचलकर रहाहै ॥ ३७ ॥ स्त्रियोंके चंचल नेत्रोंमें जो मन अनुरक्त हो उसके स्वस्थ करनेको बडे विवेककाभी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३८ ॥ परोपकारको करनेवाले, दूसरोंकी पीडासे अत्यन्त पीडित, अपनी शीतल बुद्धिसे जिसको बोध (आत्मज्ञान) प्राप्तहुआहै, उसीको मैं सुखी मानताहूं ॥ ३९ ॥ सदा उत्पन्न और नष्ट होनेवाले कालरूपी वडवानलसे गिरनेवाले जीवनरूपी समुद्रमें पदार्थरूपी तरंगोंको कौन गिनसक्ताहै ॥ ४० ॥

सर्व एव नरा मोहादुरदुराशापाशपाशिनः ॥ दोषगुल्मकसारंगा विशीर्णा जन्मजंगले ॥ ४१ ॥ संक्षीयते जगति जन्मपरंपरासु लोकस्य तैरिहकुकर्मभिरायुरेतत् ॥ आकाशपादपलताकृतपाशकल्पं येषां फलं न हि विचारविदोऽपि विद्मः ॥ ४२ ॥ अद्योत्सवोऽयमृतुरेष तथेह यात्रा ते बंधवःसुखमिदं सविशेषभोगम् ॥ इत्थं मुधैव कलयन्सुविकल्पजालमालोलपेलवमतिर्गलतीह लोकः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे दैवदुर्विलासवर्णनंनाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—सब मनुष्य मोहके वश होके दुष्ट आशाओंकी फाँसीमें बँधे हुये, दोषरूपी गुल्मोंमें अटके हुये मृगोंके समान जन्मरूपी जंगलमें नष्ट होरहे है ॥ ४१ ॥ इस जगत्में जन्मोंकी परम्पराओंमें काम्य और निषिद्ध कुकर्म्मोंद्वारा संसारकी आयु नष्ट होरही है और आकाशके वृक्षकी लताके समान इस पाशसे बद्ध सुखदुःखरूपी फलको हम विचारवान्भी नहीं जानते ॥ ४२ ॥ आज यह महा उत्सवहै, यह मनोहर नूतन ऋतुका प्रारंभहै, आज यह अमुक देशकी

यात्राहै, वे हमारे बन्धुहै, यह कैसा सुखहै, और यह उत्तम स्त्रीआदिका भोगहै, इसप्रकार व्यर्थही सद्विचारके प्रतिकूल नानाविकल्प जालोंको रचता हुआ, चंचल और सुकुमार बुद्धिवाला यह लोक यहां नष्ट होजाताहै और परमार्थकी सामग्री कुछ नहीं संपादन करता ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे दैवविलासवर्णनंनाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

मोक्षके विरोधी पूर्वोक्त और वक्ष्यमाण पदार्थोंमें दोषोंका वर्णन वैराग्य प्राप्तिके लिये इस२७वे सर्गमें विस्तारसे कियागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अन्यच्च तातातितराम रम्ये मनोरमे चेह जगत्स्वरूपे ॥ न किंचिदायाति तदर्थजातं येनाऽतिविश्रांतिमुपैति चेतः ॥ १ ॥ बाल्ये गते कल्पितकेलिलोले मनोमृगे दारदरीषु जीर्णे ॥ शरीरके जर्जरतां प्रयाते विदूयते केवलमेव लोकः ॥ २ ॥ जरातुषाराभिहतां शरीरसरोजिनीं दूरतरे विमुच्य ॥ क्षणाद्गते जीवितचंचरीके जनस्य संसारसरोऽवशुष्कम् ॥ ३ ॥ यदा यदा पाकमुपैति नूनं तदा तदेयं रतिमातनोति ॥ जरा भराऽनल्पनवप्रसूना विजर्जरा कायलता नराणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे तात ! औरभी सुनिये, दर्शनमात्रके लिये रमणीय और वास्तविकमें अरमणीय इस जगत्में कोईभी ऐसा पदार्थोंका समूह मनमें नहीं भान होता जिससे चित्तको विश्राम मिले ॥ १ ॥ जिसमें कल्पनामात्र क्रीडाहै ऐसी बाल्य अवस्थाके बीत जानेपर, और मनरूपी मृगके स्त्रीरूपी गुफामें प्रवेश करनेपर, और वृद्धाऽवस्थासे शरीरके जर्जर होनेपर, परमपुरुषार्थ साधनसे हीन यह लोक केवल सन्तापकाही भागी होताहै ॥ २ ॥ वृद्धाऽवस्थारूपी तुषारसे मारी हुई शरीररूपी कमलिनीको दूरहीसे छोडके जब जीवरूपी भ्रमर चलाजाताहै, तब अनेकप्रकारके समारंभरूपी संसारका यह तडाग शुष्क होजाताहै ॥ ३ ॥ मनुष्योंकी यह शरीररूपी लता, वृद्धाऽवस्थाके कारण अधिक श्वेत पुष्पोंके भारसे जैसे २ जर्जर होके परिपक्वताको प्राप्त होती है तैसे २ मृत्युकी प्रीति अधिक बढती है ॥ ४ ॥

तृष्णानदीसारतरप्रवाहग्रस्ताखिलानंतपदार्थजाता ॥ तटस्थसंतोषसुवृक्षमूलनिकाषदक्षा वहतीह लोके ॥ ५ ॥ शरीरनौश्चर्मनिबंधबद्धा भवांबुधावालुलिता भ्रमंती ॥ प्रलोड्यते पंचभिरिंद्रियाख्यैरधोभवंती मकरैरधीरा ॥ ६ ॥ तृष्णालताकाननचारिणोऽमी शाखाशतं काममहीरुहेषु ॥ परिभ्रमंतः क्षपयंति कालं मनोमृगा नो फलमाप्नुवंति ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेषु दूरास्तविषादमोहाः स्वास्थ्येषु नोत्सिक्तमनोभिरामाः ॥ सुदुर्लभाः संप्रति सुंदरीभिरनाहतांतः करणा महांतः ॥ ८ ॥

अर्थ—अति प्रबल प्रवाहसे युक्त संपूर्ण पदार्थ मात्रको ग्रसनेवाली तटके सन्तोषरूपी वृक्षोंके मूलोंसे उखाडनेमें निपुण यह तृष्णारूपी नदी इस संसारमें वेगसे वह रही है ॥ ५ ॥ चर्म्मसे बँधी हुई यह शरीररूपी नौका संसाररूपी समुद्रमें चंचल होके भ्रमणकर रही है, और इसको विवेकहीन जीवन होनेसे पांचों इन्द्रियरूपी ग्राह डुबाते है, अतएव यह प्रतिक्षण नीचेहीको चलीजाती है ॥ ६ ॥ तृष्णारूपी लताके वनमें विचरनेवाले मनरूपी मर्कट कामरूपी वृक्षोंकी अनेक शाखाओंपर भ्रमण करके केवल कालक्षेप करते हैं और कहीं कुछभी फल नहीं पाते ॥ ७ ॥ विपत्तियोंमें शोक और मोहसे रहित और संपत्तियोंमें गर्व न होनेके कारण अति रमणीय और सुन्दरी स्त्रियोंसे अदूषित अन्तःकरणयुक्त महात्मा इस समय दुर्लभहैं ॥ ८ ॥

तरंति मातंगघटातरंगं रणांबुधिं ये मयि ते न शूराः ॥ शूरास्त एवेह मनस्तरंगं देहेंद्रियांभोधिमिमं तरंति ॥ ९ ॥ अक्लिष्टपर्यंतफलाभिरामा न दृश्यते कस्य चिदेव का चित् ॥ क्रियादुराशाहतचित्तवृत्तिर्यामेत्य विश्रांतिमुपैति लोकः ॥ १० ॥ कीर्त्या जगद्दिक्कुहरंप्रतापैः श्रिया गृहं सत्त्वबलेन लक्ष्मीम् ॥ ये पूरयंत्यक्षतधैर्यबंधा न ते जगत्यां सुलभा महांतः ॥ ११ ॥ अप्यंतरस्थं गिरिशैलभित्तेर्वज्रालयाभ्यंतरसंस्थितं वा ॥ सर्वं समायांति ससिद्धिवेगा सर्वाः श्रियः संततमापदश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—मत्तमातंग (हस्ती) रूपी तरंगोंसे पूर्ण रणरूपी समुद्रके जो पार होजाते है वे मेरी दृष्टिमें शूर नहीं हैं, किंतु शरीर और इन्द्रियरूपी समुद्रमें जो मनरूपी तरंगहैं, उसको जो पार करते हैं, अर्थात् मनके जीत लेनेसे वासना रहित होजाते है, वेही लोग मेरी दृष्टिमें शूरवीरहैं ॥ ९ ॥ क्लेश सहित संसाररूपी फल न देनेसे रमणीय और आशाको दूर करके चित्तकी चंचल वृत्तियोंको नष्ट करनेवाली कोईभी क्रिया किसीकीभी नहीं देख पडती, जिसका आश्रय

लेके यह संसार विश्रांतिको प्राप्तहो ॥ १० ॥ जो कीर्तिसे जगत्को, प्रतापोंसे दिशाओंके अन्तको, और धनसे अर्थियोंके गृहोंको पूर्णकर देते हैं, और विनय तथा उदारतादिसे लक्ष्मीकी पूर्ण शोभाको बढाते हैं, ऐसे अखण्डित धैर्य्यवाले महात्मा संसारमें दुर्लभहैं ॥ ११ ॥ पर्वतकी शिलामयी भित्तिके स्थानमें रहनेवाले, वा वज्रकेही अन्तमें क्यों न हो, परन्तु भाग्योदय होनेसे सब प्राणियोंके निकट अणिमादि सिद्धि सहित सर्वप्रकारकी संपत्तियाँ अवश्य आतीहैं, इसीप्रकार अभाग्योदयमें विपत्तियांभी आके सबको सब स्थानमें प्राप्त होतीहैं ॥ १२ ॥

पुत्राश्च दाराश्च धनं च बुद्ध्या प्रकल्प्यते तात रसायनाभम् ॥ सर्वं हुतन्नोपकरोत्यथांते यत्राऽतिरम्या विषमूर्छनेव ॥ १३ ॥ विषादयुक्तो विषमामवस्थामुपागतः कायवयोऽवसाने ॥ भावान्स्मरन्स्वानिह धर्मरिक्तान् जंतुर्जरावानिह दह्यतेऽतः ॥ १४ ॥ कामार्थधर्माप्तिकृतांतराभिः क्रियाभिरादौ दिवसानि नीत्वा ॥ चेतश्चलद्बर्हिणपिच्छलोलं विश्रांतिमागच्छतु केन पुंसः ॥ १५ ॥ पुरोगतैरप्यनवाप्तरूपैस्तरंगिणीतुंगतरंगकल्पैः ॥ क्रियाफलैर्दैववशादुपेतैर्विडंब्यते भिन्नरुचिर्हिलोकः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे तात ! पुत्र, स्त्रियां, और धन, ये सब भ्रांत बुद्धिसे प्रेमके पात्र कल्पित किये गये है, ये सब कुछभी उपकार नहीं करते; किन्तु अन्तकालमें अति रमणीय विषयभोगभी विषकी मूर्छनाके तुल्य महा दुःखदायी होते है ॥ १३ ॥ शरीर और आयुके अन्तमें शोकयुक्त और वृद्धावस्थासे ग्रस्त यह प्राणी महाभयंकर दशामें प्राप्त धर्म्म संग्रहसे शून्य अपने कर्म्मोंको स्मरण करता हुआ, अन्तःकरणमेंही भस्म होताहै ॥ १४ ॥ आरंभमें धनोपार्जन और विषयभोगकी तृष्णाकी प्रबलतासे काम और अर्थ प्राप्तिमें तत्पर और धर्म्मकी प्राप्तिमें जो विघ्नभूत क्रियायें है उन्हींमें दिनोंको व्यतित करके, पश्चात् आयुके अन्तमें मयूरके पंखके समान पुरुषका चंचल चित्त भला किस उपायसे विश्राम पावे ॥ १५ ॥ नदीके उच्चे तरंगके समान क्षणभंगुर इसीसे दैवेच्छासे प्राप्त होनेपरभी अप्राप्तरूप सन्मुख आये हुये क्रियाके फलोंसे आत्मासे भिन्न पदार्थोंमें प्रेम करनेवाला यह संसार ठगा जाताहै ॥ १६ ॥

इमान्यमूनीति विभावितानि कार्याण्यपर्यंतमनोरमाणि ॥ जनस्यजायाजनरंजनेन जवाजरांतं जरयंति चेतः ॥ १७ ॥ पर्णानि जीर्णानि यथा तरूणां समेत्य जन्माऽऽशु लयं प्रयांति ॥ तथैव लोकाः स्वविवेकहीनाः समेत्य गच्छंति कुतोऽप्यहोभिः ॥ १८ ॥ इतस्ततो दूरतरं विहृत्य प्रविश्य गेहं दिवसावसाने ॥ विवेकिलोकाश्रयसाधुकर्मरिक्तेऽह्नि रात्रौ क उपैति निद्राम् ॥ १९ ॥ विद्राविते शत्रुजने समस्ते समागतायामभितश्च लक्ष्म्याम् ॥ सेव्यंत एतानि सुखानि यावत्तावत्समायाति कुतोऽपि मृत्युः

अर्थ—ये कार्य्य मेरे करनेके अति निकटहैं, ये अन्य देशकालमें करनेके हैं, इत्यादि निरंतर विचार जो प्रथम मनोरम भान होते हैं, परंतु परिणाममें दुःखदायी हैं वे स्त्री और पुरुषोंके प्रिय आचरणरूप हेतुसे शरीरको वृद्ध करके चित्तको विवेकसे भ्रष्टकर देते हैं ॥ १७ ॥ जिसप्रकार वृक्षोंके पत्ते उत्पन्न होके शीघ्रहीं नाश होजाते हैं, इसीप्रकार आत्मस्वरूपके विवेकसे हीन प्राणी, जन्म धारण करके थोडेही दिनोंमें नष्ट होजाते हैं ॥ १८ ॥ इधर उधर दूरतक विहार करके और दिनके अन्तमें गृहमें प्रवेश करके विवेकी जनोंके समागम और उत्तम कर्म्मोंसे रहित दिवस बीत जानेपर रात्रिके समय मूढ पुरुषके सिवाय भला किसे निद्रा आती है ॥ १९ ॥ समस्त शत्रुजनोंको दूर भगा देनेपर और चारों ओरसे लक्ष्मीके आनेपर जबतक यह प्राणी विषयके सुखभोग करने लगताहै इतनेहीमें न जाने मृत्यु कहांसे आके उपस्थित होजाती है ॥ २० ॥

कुतोऽपि संवर्द्धिततुच्छरूपैर्भावैरमीभिः क्षणनष्टदृष्टैः ॥ विलोड्यमाना जनता जगत्यां न वेत्युपायातमहो नु पातम् ॥ २१ ॥ प्रियासुभिः कालमुखं क्रियंते जनैडकास्ते हतकर्मबद्धाः ॥ यैः पीनतामेव बलादुपेत्य शरीरबाधेन न ते भवंति ॥ २२ ॥ अजस्रमागच्छति सत्त्वरैव मनारतंगच्छति सत्वरैव ॥ कुतोऽपि लोला जनता जगत्यां तरंगमालाक्षणभंगुरेव ॥ २३ ॥ प्राणापहारैकपरा नराणां मनो मनोहारितया हरंति ॥ रक्तच्छदाश्चंचलषट्पदाक्ष्यो विषद्रुमालोललताः स्त्रियश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—किसी (अनिश्चित) हेतुसे वृद्धिको प्राप्त, तुच्छरूप, क्षणभंगुर, ये पदार्थ प्राणियोंको अनेकप्रकारसे भ्रमा रहे हैं, परन्तु आश्चर्य है कि वे निकट प्राप्त मृत्युको नहीं जानते ॥ २१ ॥ जो विषयमें आसक्त शरीरकेही पोषणसे बलात्कार स्थूल होगये हैं, और कुकर्मरूपी स्तम्भमें बन्धे हैं उन नररूप भेडोंको प्रियप्राणरूप यजमान मृत्युका मुख बनाते है और शरीरके नाश होनेपर वे प्राणभी नहीं रहते ॥ २२ ॥ तरंगोंकी मालाके समान क्षणभंगुर यह प्राणि-

योंका समूह नित्यही न जाने कहांसे अति शीघ्रही आताहै और पुनः चला जाताहै, ॥ २३ ॥ मनुष्योंके प्राण हरनेमें तत्पर, रक्त ओष्ठ धारण किये हुये और भ्रमररूप नेत्रवाली विषवृक्षोंकी लताके तुल्य स्त्रिय ऊपरसे मनोहर होनेसे चित्तको हरलेती हैं ॥ २४ ॥

इतोऽन्यतश्चोपगता मुधैव समानसंकेतनिबद्धभावा ॥ यात्रा समासंगसमा नराणां कलत्रमित्रव्यवहारमाया ॥ २५ ॥ प्रदीपशांतिष्विवभुक्तभूरिदशास्वतिस्नेहनिबंधनीषु ॥ संसारमालासु चलाऽचलासु नज्ञायते तत्त्वमतात्विकीषु ॥ २६ ॥ संसारसंरंभकुचक्रिकेयं प्रावृट्पयोबुद्बुदभंगुराऽपि ॥ असावधानस्य जनस्य बुद्धौ चिरस्थिरप्रत्ययमातनोति ॥ २७ ॥ शोभोज्ज्वला दैववशाद्विनष्टा गुणाः स्थिताः संप्रति जर्जरत्वे ॥ आश्वासना दूरतरं प्रयाता जनस्य हेमन्त इवाम्बुजस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—इस मनुष्य लोकसे वा अन्य स्वर्ग नरकादि लोकोंसे हम लोग आके एकत्र मिलेंगे, ऐसे संकेतमें बद्धभाव यह पुत्र मित्र और स्त्रियोंके व्यवहारकी जो मायाहै वह केवल देवोत्सव वा यात्राके मिलनेके सदृशहै ॥ २५ ॥ अधिक दशाओंको भोगनेवाली और अधिक स्नेहयुक्त दीपककी कभी बुझती कभी भभकती हुई ज्वालाके सदृश इस तुच्छ संसारकी जन्ममरणकी परम्परारूपी मालामें तत्वपदार्थ नहीं जाना जाता॥२६॥ वर्षाके बुदबुदके समान क्षणभंगुरभी यह संसारकी प्रवृत्तिरूप दुष्ट चक्रिका सर्वदा भ्रमण करतीहुई असावधान मनुष्यकी बुद्धिमें ऐसे भ्रम उत्पन्न करती है मानो अधिक कालसे स्थिरहै ॥ २७ ॥ युवावस्थामें जो गुण शोभायमानथे वेही दैववशसे मनुष्यके शरदऋतुके कमलके समान अब वृद्धावस्थामें नष्ट होगये, अतएव गुणोंमें विवेकी पुरुषोंका विश्वास होना दुर्लभहै ॥ २८ ॥

पुनः पुनर्दैववशादुपेत्य स्वदेहभारेण कृतोपकारः ॥ विलूयते यत्र तरुः कुठारैराश्वासने तत्र हिकः प्रसंगः ॥ २९ ॥ मनोरमस्याऽप्यतिदोषवृत्तेरंतर्विघाताय समुत्थितस्य॥ विष द्रुमस्येव जनस्य संगादासाद्यते संप्रति मूर्छनैव॥३०॥ कास्तादृशो यासु न सन्ति दोषाः कास्तादिशो यासु न दुःखदाहः ॥ कास्ताः प्रजा यासुन भंगुरत्वं कास्ताः क्रिया यासु ननाम माया ॥ ३१ ॥ कल्पाभिधानक्षणजीविनो हि कल्पौघसंख्याकलने विरिंच्याः ॥अतःकलाशालिनि कालजाले लघुत्वदीर्घत्वधियोऽप्यसत्याः ॥३२॥

अर्थ—पृथ्वी, जल और वायु आदिसे जो वृक्ष वार २ दैवेच्छासे जन्म धारण करके छाया, पत्र पुष्प और फलादिसे मनुष्योंका उपकार करताहै, वही वृक्ष जिस संसारमें (स्वार्थसे) कुठारोंसे काटा जाताहै उस संसारमें विश्वास करनेका क्या प्रसंगहै ? अर्थात् ऐसे विश्वास रहित संसारमें मृत्यु अनपराधियोंकोभी मारताहै ॥ २९ ॥ अनेक दोषोंको धारण करनेवाले शान्ति वा जीवको नाश करनेके लिये उत्पन्न विषके समान मनोरम स्वजन स्त्री पुत्र मित्रादिकेभी संगसे मनुष्योंको मूर्च्छाही प्राप्त होतीहै ॥ ३० ॥ संसारमें ऐसी कौनसी दृष्टिहैं जिनमें दोष नहीं है, कौनसी ऐसी दिशायें हैं जहांपर दुःख और दाह नहीं हैं, कोन वह प्रजाहै जो क्षणभंगुर न हो, और कौन वे लौकिक क्रियाहैं जिनमें छल न हो ? ॥ ३१ ॥ कल्पोंके समूहोंकी संख्याके अपरिज्ञानमें ब्रह्मा बिष्णु और महेशभी कल्प नामधारी क्षणभरही जीनेवाले हैं क्योंकि जैसे हमारी दृष्टिमें यह क्षणहै ऐसेही उनकी दृष्टिमें कल्पभी क्षणके तुल्यही है, इसलिये क्षण समूहरूपी इसकालमें लघु और दीर्घ बुद्धिभी मिथ्याही है, इसीप्रकार अनेक ब्रह्माण्डोंकी दृष्टिमें एक ब्रह्माण्ड परमाणुरूपही है अतएव सूक्ष्म और स्थूल बुद्धिभी मिथ्याही है ॥ ३२ ॥

सर्वत्र पाषाणमया महीध्रा मृदा मही दारुभिरेव वृक्षाः ॥ मांसैर्जनाः पौरुषबद्धभावा नापूर्वमस्तीह विकारहीनम् ॥ ३३ ॥ आलोक्यते चेतनयाऽनुविद्धा पयोनुबद्धोस्तनयोनभः स्थाः ॥ पृथग्विभागेन पदार्थलक्ष्म्या एतज्जगन्नेतरदस्ति किंचित् ॥ ३४ ॥ चमत्कृतिश्चेह मनस्विलोकचेतश्चमत्कारकरी नराणाम् ॥ स्वप्नेऽपि साधो विषयं कदाचित्केषां चिदभ्येति न चित्ररूपा ॥३५॥ अद्यापि यातेऽपि च कल्पनाया आकाशवल्लीफलवन्महत्त्वे ॥ उदेति नो लोभलवाहतानामुदारवृत्तान्तमयी कथैव ॥ ३६ ॥

अर्थ—संपूर्ण पर्वत पाषाणमयहैं पृथ्वी केवल मृत्तिकामयी है, सब वृक्ष काष्ठरूपहैं, और प्राणीमात्र मांस अस्थि और रक्तादि रूपही हैं, केवल व्यवहारके लिये नामरूपका संकेत करलियाहै, और विकारको छोड अपूर्व वस्तु संसारमें कोई नहीं है. अर्थात् आत्मवस्तुको छोड और सब नामरूप कल्पितहैं ॥ ३३ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सब एक दूसरेसे मिलकर गो, घटादिरूप नानाप्रकारके पदार्थोंसे युक्त इस जगत्की लक्ष्मी (शोभा) को सिद्ध करते हैं, अतः इस जगत्की लक्ष्मीको विवेकी पुरुष चेतनकी सत्तासे युक्तही देखते हैं, और आश्चर्य्य है कि अविवेकी लोग इसे चेतनसे पृथक् देखते हैं, परमार्थमें यह जगत् विकाररूप पंचभूतसे अतिरिक्त कुछभी

नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि यह कहो कि पदार्थ असत्यहैं तो मनुष्योंका व्यवहार और भोगका चमत्कार कैसे होताहै? सो भी नहीं, हे साधो! इस संसारमें पदार्थसमूह मिथ्या होनेपरभी बुद्धिमान् मनुष्योंके चित्तमें व्यवहारकी चमत्कृति, अपना भोगका चमत्कार दिखादेती है, यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं, क्योंकि स्वप्नमेंभी कभी २ किसी २ को यह आश्चर्य्यरूप विषयभोगका चमत्कार होताहै ॥ ३५ ॥ इस युवावस्थामें आकाशकी लताकेसमान, मिथ्यारूपभोगोंकी आसक्तिमें जब महत्व (उत्तम पदार्थ) की कल्पना होतीहै तो विषयभोग और धनादिके लोभसे नष्टपुरुषोंके चित्तमें परमउदार जो परमेश्वर उसकी कथा नहीं अच्छीलगती, तो वैराग्यादिका होनातो दूरहै ॥ ३६ ॥

आदातुमिच्छन् पदमुत्तमानां स्वचेतसैवापहतोऽद्य लोकः ॥ पतत्यशङ्कं पशुरद्रिकूटादनीलवल्लीफलवाञ्छयैव ॥ ३७ ॥ अवांतरन्यस्तनिरर्थकांशच्छायालतापत्रफलप्रसूनाः ॥ शरीर एव क्षतसंपदश्च श्वभ्रद्रुमा अद्यतना नराश्च ॥ ३८ ॥ क्वचिज्जना मार्दवसुन्दरेषु क्वचित्कठोरेषु च संचरन्ति ॥ देशान्तरालेषु निरन्तरेषु वनान्तखण्डेष्विव कृष्णसाराः ॥ ३९ ॥ धातुर्नवानि दिवसं प्रतिभीषणानि रम्याणि वा विलुलितांततमाकुलानि ॥ कार्याणि कष्टफलपाकहतोदयानि विस्मापयन्ति न शवस्य मनांसि केषाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उत्तम भोग और धनादि उपार्जनकरनेकी इच्छासे प्रयत्न करताहुआ मनुष्य, अपने चित्तसेही खिन्न होके निस्संदेह ऐसे गिरताहै जैसे पर्वतके शिखरसे विषमस्थानमें हरीलताके भोजनकी इच्छासे पशु ॥ ३७ ॥ जिन्होंने विद्या धनादि पदार्थोंको केवल अपने शरीरोंके पोषणमेंही नष्टकरदियाहै, ऐसे आजकलके मनुष्योंका जन्म ऐसे निरर्थकहै, जैसे दुर्गमभूमिमें लगाये वृक्षोंकी छाया, डाल, पत्र, पुष्प, फलादि ॥ ३८ ॥ जैसे कृष्णसार मृग, कभी कोमलभूमिपर और कभी कठोरभूमिपर विचरतेहैं, इसीरीति मनुष्यभी कभी २ दया, दाक्षिण्य, विनय और विद्यादि युक्त चित्तभूमिमें, और कभी २ काम, क्रोध, लोभ, मोह और निष्ठुरतादियुक्त चित्तभूमिमें ॥ ३९ ॥ शव (मुर्दे) केसमान अचेतन ब्रह्माके प्रतिदिन, महाभयंकर, ऊपरसे रम्य, यथार्थमें अरम्य, रागादिसे पूर्ण, परिणाममें कष्टदेनेवाले नित्य नये २ कार्य्य किन विवेकियोंको आश्चर्य्यजनक नहीं होते ॥ ४० ॥

जनः कामासक्तो विविधकुकलाचेष्टनपरः स तु स्वप्नेऽप्यस्मिन् जगति सुलभो नाद्य सुजनः ॥ क्रिया दुःखासंगा विधुरविधुरा नूनमखिला न जाने नेतव्या कथमिव दशा जीवितमयी ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे निःश्रेयसविरोधिभावानित्यताप्रतिपादनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—कामासक्त मनुष्य अनेकप्रकारकी कुटिलतादिमें तत्परहै. इसीसे दुःखोंका भागी है. और कुटिलतादि रहित विवेकी सज्जन तो इससमय दुर्लभहै, संपूर्णक्रियायें महानष्ट और दुःखसे युक्तहैं मैं नहींजानता कि इस जीवनकी दशा कैसे व्यतीत करनीचाहिये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे निःश्रेयसविरोधिभावानित्यताप्रतिपादनंनाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

संपूर्ण भोज्यपदार्थोंमें अरुचि होनेके अर्थ पदार्थोंका विरुद्धस्वभाव इस २८ वें सर्गमें वर्णनकियागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ यच्चेदं दृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ तत्सर्वमस्थिरं ब्रह्मन्स्वप्नसंगमसंनिभम् ॥ १ ॥ शुष्कसागरसंकाशो निखातो योऽद्य दृश्यते ॥ स प्रातरभ्रसंवीतो नगः संपद्यते मुने ॥ २ ॥ यो वनव्यूहविस्तीर्णो विलीढगगनो महान् ॥ दिनैरेव स यात्युर्वीसमतां कूपतां च वा ॥ ३ ॥ यदंगमद्य संवीतं कौशेयस्रग्विलेपनैः ॥ दिगम्बरं तदेव श्वो दूरे विशरिताऽवटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! जो कुछ यह स्थावर जंगम जगत् दीखपडताहै वह सब स्वप्नके समागमके समान अस्थिरहै ॥ १ ॥ हे मुने! जो शुष्कसागरके समान इससमय गर्त (गढा) दीखपडताहै वही कालान्तरमें मेघमण्डलसहित बडा पर्वत होजाताहै ॥ २ ॥ जो स्थल वनके समुदायसे विस्तृत है. और आकाशको चुम्बन क-

रताहुआ बडा विशाल दीखपडताहै, वही थोडेही दिनोंमें पृथ्वीकेसमान वा कूपपणाको प्राप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ जो अंग आज रेशमके वस्त्र, और अनेकप्रकारके सुगन्धद्रव्योंके लेपसे शोभितहै, वही कल नग्नहोके किसी गर्त (गढे) में सडके नष्टहोजायगा ॥ ४ ॥

यत्राद्य नगरं दृष्टं विचित्राचारचञ्चलम् ॥ तत्रैवोदेति दिवसैः संशून्यारण्यधर्मता ॥ ५ ॥ यः पुमानद्य तेजस्वी मण्डलान्यधितिष्ठति ॥ स भस्मकूटतां राजन् दिवसैरधिगच्छति ॥ ६ ॥ अरण्यानी महाभीमा या नभोमडलोपमा ॥ पताकाच्छादिताकाशा सैव संपद्यते पुरी ॥ ७ ॥ या लता वलिता भीमा भात्यद्य विपिनावली ॥ दिवसैरेव सा याति पुनर्मरुमहीपदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जहाँपर आज अनेकप्रकारके विचित्र आचारसे युक्त और उद्योगमें चंचल नगर दीखपडताहै, वहांही थोडेही दिनोंमें शून्य भयंकर जंगल होजाताहै ॥ ५ ॥ हे राजन्! जो पुरुष आज बडा तेजस्वी और चक्रवर्ती राज्य करताहै, वही थोडेदिनोंमें भस्मका समूह बनजाताहै ॥ ६ ॥ जहांपर महाभयंकर विशालता और नीलतामें आकाशके सदृश वनहै वहांही पताकाओंसे आकाशको आच्छादनकरनेवाली नगरी बसजाती है ॥ ७ ॥ जो भूमि अधिकजल होनेसे विविधप्रकारकी लताओंसे व्याप्त और बनकी पंक्तियोंसे शोभितहै वही थोडेदिनोंमें मरुस्थलके समान जल और वृक्षोंसे रहित होजातीहै ॥ ८ ॥

सलिलं स्थलतां याति स्थलीभवति वारिभूः ॥ विपर्यस्यति सर्वं हि सकाष्ठाम्बुतृणं जगत् ॥ ९ ॥ अनित्यं यौवनं बाल्यं शरीरं द्रव्यसंचयाः ॥ भावाद्भावान्तरं यान्ति तरंगवदनारतम् ॥ १० ॥ वातांतर्दीपकशिखालोलं जगति जीवितम् ॥ तडित्स्फुरणसंकाशा पदार्थश्रीर्जगत्त्रये ॥ ११ ॥ विपर्यासमियं याति भूरिभूतपरंपरा ॥ बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाणः पुनः पुनः ॥ १२ ॥

अर्थ—जलमयस्थान शुष्कस्थल होजाताहै, और शुष्कमरुस्थली जलमयी भूमि होजातीहै, काष्ठ जल और तृण सहित यह संपूर्णजगत् विपरीतभावको प्राप्तहोजाताहै ॥ ९ ॥ बाल्यअवस्था अनित्यहै, युवावस्था अनित्यहै, यह शरीरही अनित्यहै, और जितना द्रव्यका संग्रहहै वह सभी अनित्यहै क्योंकि जितने पदार्थ हैं वे सब अपने पूर्वस्वभावको त्यागके दूसरे स्वभावको निरन्तर प्राप्तहोते रहतेहैं ॥ १० ॥ वायुके मध्यमें लघुदीपककी शिखाके समान मनुष्यका जीवन इस जगत्में चंचलहै. और तीनोंलोकके पदार्थोंकी शोभा विद्युत्की चमककेसमान क्षणभंगुर है ॥ ११ ॥ जैसे धान्यादिकी राशि व्ययसे वा, क्षेत्रमें बोनेसे पूर्णहोनेसे अंकुरादिरूपसे निरन्तर विपर्य्ययको प्राप्तहोती है, ऐसे यह सबभूतोंकी श्रेणी पुनः २ विपर्य्यास (एक दशासे दूसरी दशा) को नित्य प्राप्तहोतीरहतीहै ॥ १२ ॥

मनः पवनपर्यस्तभूरिभूतरजःपटा ॥ पातोत्पातपरावर्तपराभिनयभूषिता ॥ १३ ॥ आलक्ष्यते स्थितिरियं जागति जनितभ्रमा ॥ नृत्तावेशविवृत्तेव संसाराराभटीनटी ॥ १४ ॥ गंधर्वनगराकारविपर्यासविधायिनी ॥ अपांगभंगुरोदारव्यवहारमनोरमा ॥१५॥ तडित्तरलमालोकमातन्वाना पुनः पुनः॥ संसाररचना राजन् नृत्तसक्तेव राजते ॥ १६ ॥

अर्थ—मनरूपी पवनसे उत्पन्न अनेक प्राणीरूप धूलिका वस्त्र धारणकियेहुये, नरकादिमें पतन, स्वर्गादिमें उत्पतन, और मध्यमलोकोंमें परावर्तन (पुनः २ जाना आना) रूप उत्तम अभिनयसे भूषित ॥ १३ ॥ जो अनेक कर्ता भोक्तारूप फल जगत्की स्थितिरूप आडम्बरकी अधिकतारूप नटी है यह नृत्यके उत्साहसे अनेकरूप धारणकरके भ्रम उत्पन्नकररही है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! गन्धर्वनगरकेसमान विपरीतविधानमें निपुण, कटाक्षकेसदृश क्षणभंगुरव्यवहारोंसे मनोरम ॥ १५ ॥ विद्युत्केसमान चंचल आलोकनको बार २ विस्तारकरतीहुई, यह संसारकी रचनारूप नटी नृत्यमें आसक्तकेसदृश शोभित होरहीहै ॥ १६ ॥

दिवसास्ते महान्तस्ते संपदस्ताः क्रियाश्च ताः ॥ सर्वं स्मृतिपथं यातं यामो वयमपि क्षणात् ॥१७॥ प्रत्यहं क्षयमायाति प्रत्यहं जायते पुनः ॥ अद्यापि हतरूपाया नातोऽस्या दग्धसंसृतेः ॥ १८ ॥ तिर्यक्त्वं पुरुषा यान्ति तिर्यंचो नरतामपि ॥ देवाश्चादेवतां यान्ति किमिवेह विभो स्थिरम् ॥ १९ ॥ रचयन् रश्मिजालेन रात्र्यहानि पुनः पुनः ॥ अतिवाह्य रविः कालो विनाशावधिमीक्षते ॥ २० ॥

अर्थ—वे उत्सवके दिन, वे महात्मालोग, वे अनेकप्रकारकी संपत्तियां, और वे उत्तमक्रिया सब स्मरणमात्र रहगई, और हम लोगभी क्षणमात्रमें चले ॥ १७ ॥ प्रतिदिन नष्ट होताहै, और प्रतिदिन पुनः २ उत्पन्नहोताहै, परन्तु अबभी इस दुष्टसंसारका अन्त नहीं ॥ १८ ॥ हे विभो! मनुष्य पशु, पक्षी, आदि योनियोंमें प्राप्तहोजातेहैं और पशु

पक्षी आदि मनुष्ययोनिमें प्राप्तहोतेहैं, और देवताभी अदेवता होजातेहैं, तो भला कौनसा पदार्थ इस संसारमें स्थिर है॥ १९ ॥ कालरूपी सूर्यभगवान् अपने किरणसमूहोंसे रात्रिदिन प्राणिके समूहको रचतेहैं और अपने समय (रात्रिदिन,) को बिताकर सबके नाशकी अवधिको देखाकरतेहैं ॥ २० ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातयः ॥ नाशमेवानुधावन्ति सलिलानीव वाडवम् ॥ २१ ॥ द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वता सरितो दिशः ॥ विनाशवाडवस्यैतत्सर्वं संशुष्कमिन्धनम् ॥ २२ ॥ धनानि बान्धवा भृत्या मित्राणि विभवाश्च ये ॥ विनाशभयभीतस्य सर्वं नीरसतां गतम् ॥ २३ ॥ स्वदन्ते तावदेवैते भावा जगति धीमते ॥ यावत्स्मृतिपथं याति न विनाशकुराक्षसः ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा सब प्राणियोंकी जाति नाशहीकी ओर ऐसे दौडरहेहैं, जैसे सबजल वडवाग्निकी ओर ॥ २१ ॥ अन्तरिक्ष लोक (स्वर्गादि) पृथ्वी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ, और सबदिशा, ये सब विनाशरूपअग्निके शुष्क इन्धन हैं ॥ २२ ॥ अनेकप्रकारका धन, बन्धुगण, भृत्य, मित्र, और ऐश्वर्य्य, ये सब विनाशसे भयभीतपुरुषकेलिये नीरस होजातेहैं ॥ २३ ॥ बुद्धिमानकेलिये संपूर्णसंसारके पदार्थ, तभीतक स्वादिष्ट प्रतीतहोतेहैं जबतक नाशरूपीदुष्टराक्षसका स्मरण नहींहोता ॥ २४ ॥

क्षणमैश्वर्यमायाति क्षणमेति दरिद्रताम् ॥ क्षणं विगतरोगत्वं क्षणमागतरोगताम् ॥२५॥ प्रतिक्षणविपर्यासदायिना निहतात्मना ॥ जगद्भ्रमेण के नाम धीमन्तो हि न मोहिताः ॥ २६ ॥ तमःपंकसमालब्धं क्षणमाकाशमण्डलम् ॥ क्षणं कनकनिष्यन्दकोमलालोकसुन्दरम् ॥ २७ ॥ क्षणं जलदनीलाब्जमालावलितकोटरम् ॥ क्षणमुद्दामररवं क्षणं मूकमिव स्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—क्षणमेंही ऐश्वर्य्य प्राप्तहोताहै और क्षणमें दरिद्रता आतीहै, क्षणमेंही नीरोगता आतीहै और क्षणभरमेंही अनेकरोग आके घेरलेतेहैं ॥ २५ ॥ प्रतिक्षण विपर्य्यय (उलट पुलट) देनेवाले, इस जगत्के भ्रमसे कौनसे ऐसे बुद्धिमान् हैं जो मोहित नहींहोगये ? ॥ २६ ॥ क्षणभरमेंही यह आकाशमण्डल अन्धकाररूपीपंकसे लिप्तहोताहै; और क्षणभरमेंही सुवर्णके द्रवकेसमान कोमल चन्द्रादिके प्रकाशसे रमणीय होताहै यही संसारकी दशाहै ॥ २७ ॥ क्षणमेंही मेघरूपी नीलकमलोंकी मालासे आकाशका अन्तराल शोभितहोताहै, क्षणमेंही बडे भयंकर उच्चशब्दोंसे पूर्ण होताहै, और क्षणमेंही मूकके समान स्थितहोजाताहै ॥ २८ ॥

क्षणं ताराविरचितं क्षणमर्केण भूषितम् ॥ क्षणमिन्दुकृताल्हादं क्षणं सर्वबहिष्कृतम् ॥ २९ ॥ आगमापायपरया क्षणसंस्थितिनाशया ॥ न बिभेति हि संसारे धीरोऽपि क इवानया ॥ ३० ॥ आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति संपदः ॥ क्षणं जन्म क्षणं मृत्युर्मुने किमिव न क्षणम् ॥ ३१ ॥ प्रागासीदन्य एवेह जातस्त्वन्यो नरो दिनैः ॥ सदैकरूपं भगवन् किंचिदस्ति न सुस्थिरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—क्षणमेंही तारागणोंकी रचनासे विचित्ररूप होजाताहै, क्षणभरमेंही सूर्य्यके प्रकाशसे शोभितहोताहै, क्षणभरमेंही चंद्रमाके प्रकाशसे अतिआनंददायक होताहै और क्षणमेंही उन सबसे रहितहोजाताहै ॥ २९ ॥ आगम और अपाय (प्रगट होना तथा लोपहोने) में लीन क्षणमेंही स्थिति नाशवाली, इस जगत्की दशासे कौन धीर पुरुष भी भयभीत नहींहोता ॥ ३० ॥ हे मुने! क्षणमेंही आपत्ति, क्षणमें संपत्ति, क्षणमेंही जन्म, और क्षणमेंही मृत्युमय इस जगत्में कौन ऐसी वस्तु है जो क्षणिक नहीं ? ॥ ३१ ॥ वही मनुष्य प्रथम औररूप था थोडेही दिनोंमे कुछका कुछ होगया ? हे भगवान्! इस संसारमें एकरूपसे स्थिर कोईपदार्थ नहीं है ॥ ३२ ॥

घटस्य पटता दृष्टा पटस्यापि घटस्थितिः ॥ न तदस्ति न यद्दृष्टं विपर्यस्यति संसृतौ ॥ ३३ ॥ तनोत्युत्पादयत्यत्ति निहंत्यासृजति क्रमात् ॥ सततं रात्र्यहानीव निवर्तन्ते नरं प्रति ॥ ३४ ॥ अशूरेण हतः शूर एकेनापि हतं शतम् ॥ प्राकृता प्रभुतां याताः सर्वमावर्त्यते जगत् ॥३५॥ जनतेयं विपर्यासमजस्रमनुगच्छति ॥ जडस्पन्दपरामर्शात्तरंगाणामिवावली ॥ ३६ ॥

अर्थ—घटके नष्टहोनेपर उसके चूर्णको कपासके खेतमें फेंकनेसे और उसके कपासके वृक्षमें परिणत (तवदील) होनेसे यह पटरूपमें परिवर्तित (तवदील) होताहै, अर्थात् घटका पट होना देखाजाताहै. इस संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो विपर्य्यय न होताहो ॥ ३३ ॥ विस्तार, उत्पत्ति, किंचित् नाश, सर्वथा नाश, और पुनर्जन्म, ये सब क्रमसे मनुष्यके निकट रात्रिदिनके चक्रके समान निरंतर आते जाते रहतेहैं ॥ ३४ ॥ जो वीर नहीं उसनें शूरवीरको मारलिया, और एकने सौकोभी मारलिया, जो सामान्यपुरुष थे वे बडेभारी धनाढ्य अनेकोंके स्वामी बनगये

और अनेकके स्वामी दरिद्र होगये इसीप्रकार यह जगत् (संसारचक्र) घूमा करताहै ॥ ३५ ॥ यह सब चेतनतासहित शरीरोंका समूह निरंतर विपर्य्ययदशाको ऐसे प्राप्तहोतारहताहै, जैसे जलकी गतिके संसर्गसे तरंगोंकी पंक्ति ॥ ३६ ॥

बाल्यमल्पदिनैरेव यौवनश्रीस्ततो जरा ॥ देहेऽपि नैकरूपत्वं कास्था बाह्येषु वस्तुषु ॥ ३७ ॥ क्षणमानन्दितामेति क्षणमेति विषादिताम् ॥ क्षणं सौम्यत्वमायाति सर्वस्मिन्नटवन्मनः ॥३८॥ इतश्चान्यदितश्चान्यदितश्चान्यदयं विधिः ॥ रचयन्वस्तुना याति खेदं लीलास्विवार्भकः ॥ ३९ ॥ चिनोत्युत्पादयत्यत्ति निहंत्यासृजति क्रमात् ॥ सततं रात्र्यहानीव निवर्तन्ते नरं प्रति ॥ ४० ॥

अर्थ—बाल्यअवस्था थोडेही दिनोंमे जातीरहतीहै, अनन्तर यौवनकी शोभाभी गिने दिनोंमें बीतजातीहै, पुनः वृद्धावस्था आके ग्रासलेती है, अनंतर मृत्यु आपहुंचताहै, जब शरीरमेंही एकरूपसे किसीवस्तुकी स्थिति नहीं तब बाह्यपदार्थोंमें क्या विश्वास ॥ ३७ ॥ यह मन क्षणमेंही आनंदित होताहै, क्षणमेंही शोकयुक्त होताहै, क्षणमेंही शांत होता है, और क्षणमेंही क्रुद्ध होताहै, यह सबमें नटकेसमान अपनी लीला दिखाताहै ॥ ३८ ॥ यह ब्रह्मा, यहां और वहां, और २ कहीं औरहीं; अर्थात् कहीं हर्ष, कहीं शोक, और कहीं मोहयुक्तवस्तुओंको रचताहुआ ऐसे नहीं थकता जैसे क्रीडामें बालक ॥ ३९ ॥ यह ब्रह्मा धान्यादिके समान किसीको एकत्र करताहै उनसे दूसरोंको उत्पन्नकरताहै और पुनः उनको मारताहै, और भक्षणकरजाताहै, अनन्तर भोजनके स्वादके लोभसे पुनः उनको क्रमसे उत्पन्न करताहै, इस संसारमें उत्पन्नहुये मनुष्यपर रात्रिदिनकेसमान यह चक्र फिरता रहताहै ॥ ४० ॥

आविर्भावतिरोभावभागिनो भवभागिनः ॥ जनस्य स्थिरतां यान्ति नापदो न च संपदः ॥ ४१ ॥ कालः क्रीडत्ययं प्रायः सर्वमापदि पातयन् ॥ हेलाविचलिताशेषचतुराचारचंचुरः ॥ ४२ ॥ समविषमविपाकतो विभिन्नास्त्रिभुवनभूतपरंपराफलौघाः ॥ समयपवनपातिताः पतंति प्रतिदिनमाततसंसृतिद्रुमेभ्यः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे सर्वभावाविरतविपर्यासप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—संसारके जितने पदार्थ हैं उनका कभी आविर्भाव (ग) और कभी तिरोभाव होताही रहताहै. इस जगत्में मनुष्यकी विपत्ति, और सम्पत्ति कुछभी स्थिरनहीं ॥ ४१ ॥ अनादिकालसेही चतुरजनोंकेभी आचारोंको परिवर्तनकरनेमें कुशल, यह काल प्रायः सबको आपत्तिमें डालकर क्रीडा करता है ॥ ४२ ॥ कर्मरूपीरसके विपाकसे अनेकरूप, त्रिभुवनोंके प्राणीयोंके शरिररूपीफलोंके समूह संसाररूपी बडेवृक्षोंसे समयपवनसे प्रतिदिन गिरायेजाते हैं अतएव इसमें विश्वासकरना योग्यनहीं है ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सर्वभावाविरतविपर्यासप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

पदार्थोंके दोषोंसे इस २९ वे सर्गमें रामचंद्रजीने अपनी ग्लानी वर्णनकरके शांतिके उपदेशार्थ प्रार्थना की है

श्रीराम उवाच ॥ ॥ इति मे दोषदावाग्निदग्धे महति चेतसि ॥ प्रस्फुरन्ति न भोगाशा मृगतृष्णासरःस्विव ॥ १ ॥ प्रत्यहं याति कटुतामेषा संसारसंस्थितिः ॥ कालपाकवशाल्लोला रसा निम्बलता यथा ॥ २ ॥ वृद्धिमायाति दौर्जन्यं सौजन्यं याति तानवम् ॥ करंजककर्कशे राजन् प्रत्यहं जनचेतसि ॥ ३ ॥ भज्यते भुवि मर्यादा झटित्येव दिनं प्रति ॥ शुष्केव माषशिम्बीका टंकारकरवं विना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—इसप्रकार दोषदर्शनरूपीदावाग्निसें दग्ध बीज विवेकयुक्त मेरे चित्तमें भोगोंकी आशा ऐसी नहीं फुरती जैसे तडागोंमें मृगतृष्णा ॥ १ ॥ प्रतिदिन यह संसारकी स्थिति कालवशसे अधिक २ कटुताको ऐसी प्राप्तहोतीजातीहै, जैसे पाक निंबसे लता ॥ २ ॥ हे राजन् ! कंटकके वृक्षके समान कर्कश मनुष्योंके चित्तोंमें धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होनेसे दुर्जनताकी तो वृद्धि और सुजनताका लोप होताजाताहै ॥ ३ ॥ प्रतिदिन टंकार शब्द विनाही मर्यादारूपी धनुषकी डोरी ऐसे टूटती जातीहै जैसे शुष्कमाषकी डोरी ॥ ४ ॥

राज्येभ्यो भोगपूगेभ्यश्चिन्तावद्भ्यो मुनीश्वर ॥ निरस्ताचिन्ताकलिता वरमेकान्तशीलता ॥ ५ ॥ नानन्दाय ममोद्यानं न सुखाय मम स्त्रियः ॥ न हर्षाय ममार्थाशा शाम्यामि मनसा सह ॥ ६ ॥ अनित्यश्चासुखो लोकस्तृष्णा तात दुरुद्वहा ॥ चापलोपहतं चेतः कथं यास्यामि निर्वृतिम् ॥ ७ ॥ नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितम् ॥ यथा तिष्ठामि तिष्ठामि तथैव विगतज्वरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुनीश्वर ! चिन्ताग्रस्त, और भोगोंके समूह राज्य उसे चिन्तारहितहोके एकान्त सेवनकरना उत्तम है और मैंने उसीको स्वीकारकिया है ॥ ५ ॥ वाटिकायें मेरे आनन्दके लिये नहीं हैं, स्त्रियाँ मेरे सुखकेलिये नहीं हैं, और न धनकी प्राप्ति मेरे सुखकेलिये है, मैं तो केवल मनमेंही शान्त हुं ॥ ६ ॥ हे तात ! यह लोक अनित्य और सुखरहित है, और तृष्णाका धारणकरना अत्यन्त दुःखदायी है, और चित्त तो चपलतासे नष्ट है, किसप्रकार मुझे शान्ति मिलेगी ? ॥ ७ ॥ न मैं मृत्युसे प्रसन्नहोताहुं और न जीवनसे प्रसन्न किन्तु जैसा स्थित हुं वैसा चिंता रहित स्थितरहूंगा ॥ ८ ॥

किं मे राज्येन किं भोगैः किमर्थेन किमीहितैः ॥ अहंकारवशादेतत्स एव गलितो मम ॥ ९ ॥ जन्मावलिवरत्रायामिन्द्रियग्रन्थयो दृढाः ॥ ये बद्धास्तद्विमोक्षार्थं यतन्ते ये त उत्तमाः ॥ १० ॥ मथितं मानिनीलोकैर्मनो मकरकेतुना ॥ कोमलं खुरनिष्पेषैः कमलं करिणा यथा ॥ ११ ॥ अद्य चेत्स्वच्छया बुद्ध्या मुनीन्द्र न चिकित्स्यते ॥ भूयश्चित्तचिकित्सायास्तत्किलावसरः कुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—राज्यसे मुझे क्या ? भोगोंसे क्या ? धनोंसे क्या ? और चेष्टाओंसे क्या ? ये सब अहंकारसे होतेहैं, सो अहंकारही मेरा नष्टहोगया ॥ ९ ॥ जन्मकी पंक्तिरूप चर्म्मकी रज्जुमें इन्द्रियरूपी दृढग्रन्थियोंसे सबजीव बद्धहैं, उन ग्रन्थियोंसे छूटनेके लिये जो प्रयत्न करते हैं वेही उत्तमजन हैं ॥ १० ॥ कामदेवने स्त्रियोंकेद्वारा सबके मनको ऐसे मथनकरडालाहै जैसे हाथी अपने पैरोंसे कोमलकमलको ॥ ११ ॥ हे मुनीन्द्र ! यदि इस बाल्यअवस्थामें स्वच्छ बुद्धिसे परलोकका उपाय नसोचाजायगा तो भला अन्यअवस्थामें विचारका अवसर कहाँ ? क्योंकि कोमलवृक्षका उखाडना बडे वृक्षसे सहज है ॥ १२ ॥

विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते ॥ जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम् ॥ १३ ॥ न सुखानि न दुःखानि न मित्राणि न बान्धवाः ॥ न जीवितं न मरणं बन्धाय ज्ञस्य चेतसः ॥ १४ ॥ तद्भवामि यथा ब्रह्मन्पूर्वापरविदां वर ॥ वीतशोकभयायासो ज्ञस्तथोपदिशाशु मे ॥ १५ ॥ वासनाजालवलिता दुःखकण्टकसंकुला ॥ निपातोत्पातबहुला भीमरूपाज्ञताटवी ॥ १६ ॥

अर्थ—विषयरूपी विषही भयंकर विष है, और विष जो है वह विष नहीं, क्योंकि विषयरूपी विष अज्ञानके द्वारा अनेक जन्ममें मृत्युसे मारताहै, और यह सामान्यविष तो केवल एकहीबार शरीरको नष्टकरताहै ॥ १३ ॥ आत्मज्ञानीके चित्तमें न सुख है, न दुःख है, न मित्र है, न बन्धु है, न जीवन है, न मरण है, और न बन्धनका कोई हेतु है, ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे पूर्वापरके वेत्ताओंमे श्रेष्ठ ! इसलिये जिसप्रकार मैं शोक, भय, और खेदरहित होके शीघ्र आत्मज्ञानी होजाऊं ऐसा उपदेश कीजिये ॥ १५ ॥ वासनाके जालसे वेष्टित दुःखरूपीकण्टकोंसे व्याप्त, निपतन और उत्पतनके कारण ऊंचे नीचे प्रदेशोंसे भयंकर यह अज्ञतारूप महाजंगल है ॥ १६ ॥

क्रकचाग्रविनिष्पेषं सोढुं शक्नोम्यहं मुने ॥ संसारव्यवहारोत्थं नाशाविषयवैशसम् ॥ १७ ॥ इदं नास्तीदमस्तीति व्यवहारांजनभ्रमः ॥ धुनोतीदं चलं चेतो रजोराशिमिवानिलः ॥ १८ ॥ तृष्णातन्तुलवप्रोतं जीवसंचयमौक्तिकम् ॥ चिदच्छांगतया नित्यं विकसच्चित्तनायकम् ॥ १९ ॥ संसारहारमरतिः कालव्यालविभूषणम् ॥ त्रोटयाम्यहमक्रूरं वागुरामिव केसरी ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने ! आरीके दांतोंके घर्षणको मैं सहसक्ताहूं, परंतु व्यवहारसे उत्पन्न आशा और विषयोंसे नाशको नहींसहसक्ता ॥ १७ ॥ यहहै यह नहीं है, इत्यादि संसारके व्यवहारके अंजनका भ्रम स्वभावसे चंचलचित्तको ऐसे कंपाता है जैसे धूलिकी राशिको वायु ॥ १८ ॥ जीवरूपी मोती तृष्णारूपी सूक्ष्मतंतु (सूत) में गुंफितहै, उसमें साक्षी चेतनकी सत्तासे चित्तरूपी नायक शिखामणि चमकता है ॥ १९ ॥ कालरूपी विषयीजनका भूषण, इससंसाररूपी हारको मैं अक्रूरतापूर्वक आपके उपदेशसे ऐसे तोडडालूंगा जैसे सिंह जालको ॥ २० ॥

नीहारं हृदयाटव्यां मनस्तिमिरमाशु मे ॥ केन विज्ञानदीपेन भिन्धि तत्वविदां वर ॥ २१ ॥ विद्यन्त एवेह न ते महात्मन् दुराधयो न क्षयमाप्नुवन्ति ॥ ये संगमेनोत्तममानसानां निशा तमांसीव निशा-

करेण ॥ २२ ॥ आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलम्बाम्बुवद्भंगुरं भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचंचलाः ॥ लोला यौवनलालना जलरयश्चेत्याकलय्य द्रुतं मुद्रैवाद्य दृढार्पिता ननु मया चित्ते चिरं शान्तये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सकलपदार्थानास्थाप्रतिपादनंनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे तत्वविदोंमें श्रेष्ठ ? मेरे हृदयरूपीवनमें आत्मस्वरूपके खोलनेकेलिये प्रवृत्त जो मन है उसके अज्ञानरूपी निहार (कुहरा) को विज्ञानरूपीसूर्यसे दूरकीजिये ॥ २१ ॥ हे महात्मन् ! जैसे चन्द्रमाके प्रकाशसे अंधकार नहींरहजाता, ऐसेही इससंसारमें कोईभी ऐसी दुष्ट मानसी व्यथा नहीं है जो महात्माओंके संग और उपदेशसे नष्ट न होजाय ॥ २२ ॥ यह आयु वायुके वेगसे संचालित मेघके पटलमें लटकतेहुए जलके बिन्दुकणकेसमान क्षणभंगुर है, सम्पूर्ण भोग, मेघकेसमूहमें विद्युत्के समान चंचल है,और युवावस्थाके सब आनन्द जलके प्रवाहकेसमान अस्थिर हैं, इसबातको मैंने इसीबाल्यावस्थामें निश्चयकरके चित्तमें शांति प्राप्तहोनेकेलिये अचल निश्चयकियाहै ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदुतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सकलपदार्थानास्थाप्रतिपादनंनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

इस ३० वे सर्गमें श्रीरामचंद्रजी अनेकहेतुओंसे अपना उद्वेग प्रकाशकरते हैं, और उसकी शांतिके लिये उपदेशकी प्रार्थना करते हैं.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ एवमभ्युत्थितानर्थशतसंकटकोटरे ॥ जगदालोक्य निर्मग्नं मनो मननकर्दमे ॥१॥ मनो मे भ्रमतीवेदं संभ्रमश्चोपजायते ॥ गात्राणि परिकम्पन्ते पत्राणीव जरत्तरोः ॥ २ ॥ अनाप्तोत्तमसंतोषधैर्योत्संगाकुला मतिः ॥ शून्यास्पदा बिभेतीह बाले वाल्पबलेश्वरा ॥ ३ ॥ विकल्पेभ्यो लुठन्त्येताश्चान्तःकरणवृत्तयः ॥ श्वभ्रेभ्य इव सारंगास्तुच्छालम्बविडम्बिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—इसप्रकार सैकडोंअनर्थोंसे संसाररूपीअन्धकूपमें सबजीवोंको निमग्नदेखके मेरा मन चिन्तारूपीपंकमें निमग्न है ॥ १ ॥ मेरा मन अत्यन्त भ्रमण कररहाहै भयभी उत्पन्नहोताहै और सबअंग ऐसे कांपते हैं जैसे वायुसे पुरानेवृक्षके पत्ते ॥ २ ॥ उत्तम संतोष और धैर्यादिरूपमाताके अंक न पानेसे अतिव्याकुल यह बुद्धि ऐसे डरती है जैसे अल्पअवस्थावाली बालिका शून्यवनमें ॥ ३ ॥ विकल्पोंसे अन्तःकरणकी वृत्तियां दुःखरूपी गर्तमें ऐसी गिरती हैं, जैसे लटकतेहुए तुच्छतृणके लोभसे मृग गढोंमें ॥ ४ ॥

अविवेकास्पदा भ्रष्टाः कष्टे रूढा न सत्पदे ॥ अन्धकूपमिवापन्ना वराकाश्चक्षुरादयः ॥ ५ ॥ नावस्थितिमुपायाति न च याति यथेप्सितम् ॥ चिन्ताजीवेश्वरायत्ता कांतेव प्रियसद्मनि ॥ ६॥ जर्जरीकृत्य वस्तूनी त्यजन्ती बिभ्रती तथा ॥ मार्गशीर्षान्तवल्लीव धृतिर्विधुरतां गता ॥ ७ ॥ अपहस्तितसर्वार्थमनवस्थितिरास्थिता ॥ गृहीत्वोत्सृज्य चात्मानं भवस्थितिरवस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—अविवेकी पुरुषोंके आश्रित चक्षुरादिक इन्द्रियां संसारी पदार्थोंमें ऐसे गिरती हैं जैसे मार्गदर्शकके बिना नेत्रहीन पुरुष कूपमें ॥ ५ ॥ यह चिंतारूपी स्त्री न तो उपरामको प्राप्तहोती है और न अपने इष्टविषय देशमें जाती है, किन्तु जीवरूपी अपने पतिके आधीन प्रियस्थानमें सदा निवासकरती है ॥ ६ ॥ धीरता सबवस्तुओंको शिथिलकरके कभी (विवेक होनेपर) पदार्थोंको त्यागती है और कभी पुनः धारणकरती है इसप्रकार यह पौषमासकी लताके समान जर्जर होगई है ॥ ७ ॥ सब स्वार्थ और परमार्थको हस्तसे नष्टकरके मेरे चित्तकी यह स्थिति है यह संसारकी स्थिति अर्थरूपसे आत्माको ग्रहणकरके और अर्धरूपसे त्यागकरके स्थित है, अर्थात् इससमयमें मैं न तो संसारको त्यागही सक्ताहूं और न ग्रहणही करसक्ताहूं ॥ ८ ॥

चलिता चलितेनान्तरवष्टम्भेन मे मतिः ॥ दरिद्राछिन्नवृक्षस्य मूलेनेव विडम्ब्यते ॥ ९ ॥ चेतश्चंचलमाभोगि भुवनांतविहारि च ॥ न संभ्रमं जहातीदं स्वविमानमिवाऽमराः ॥ १० ॥ अतोतुच्छमनाया-

समनुपाधिगतभ्रमम् ॥ किं तत्स्थितिपदं साधो यत्र शोको न विद्यते ॥ ११ ॥ सर्वारम्भसमारूढाः सुजना जनकादयः ॥ व्यवहारपरा एव कथमुत्तमतां गताः ॥ १२ ॥

अर्थ—आत्मतत्वके अवलंम्बसे रहित मेरीमति इससमय ऐसे संशयदशामें ग्रस्त है, जैसे शाखारहित वृक्षके ठूंठमें यह संशय हो कि यह ठूंठ है, अथवा चोर है इसीप्रकार बुद्धि यह निश्चय नहींकरसकती कि यह आत्मतत्व है वा नहीं ॥ ९ ॥ कृत्रिमभोगवेषधारी भुवनोंमें विहारकरनेवाला यह चंचलचित्त भ्रमको ऐसें नहींत्यागता जैसे देवता अपने विमानको ॥ १० ॥ हे साधो ! परमार्थमें सत्यरूप, देहादि उपाधिसे शून्य, और भ्रमरहित वह कौनसा स्थितिका पद है, कि जिसके प्राप्तहोनेपर शोक नहींरहता ॥ ११ ॥ मित्र और माता पिता आदि सब दृष्ट और अदृष्ट फलमें तत्परहैं ये सब संसारीही व्यवहारोंमें निमग्न हैं, भला उत्तमताको कैसे प्राप्तहो ॥ १२ ॥

लग्नेनापि किलांगेषु बहुधा बहुमानद ॥ कथं संसारपंकेन पुमानिह न लिप्यते ॥ १३ ॥ कां दृष्टिं समुपाश्रित्य भवन्तो वीतकल्मषाः ॥ महान्तो विचरन्तीह जीवन्मुक्ता महाशयाः ॥ १४ ॥ लोभयन्तो भयायैव विषया भोगभोगिनः ॥ भंगुराकारविभवाः कथमायान्ति भव्यताम् ॥ १५ ॥ मोहमातंगमृदिता कलंककलितान्तरा ॥ परं प्रसादमायाति शेमुषीसरसी कथम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे बहुमानद ! पुण्यपाप और शोकमोहादिरूपसे अंगोंमें लगेहुये संसाररूपी पंकमें पुरुष किसतरह लिप्त नहो ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! वह कौनसी दृष्टि है जिसका आश्रयलेकर तथा पापरहितहोकर जिससे आपके सदृश महात्मा जीवन्मुक्तहोकर इससंसारमें विचरतेहैं ॥ १४ ॥ भोगीपुरुषको विषय भयकेहीलिये मोहितकररहे हैं, यह क्षणभंगुरसंसारके ऐश्वर्य भला कैसे कल्याणकारी होसक्तेहैं ॥ १५ ॥ मोहरूपी हस्तीसे गदली कीहुई और कामादिकर्दमोंसे दूषित यह बुद्धिरूपतलाई कैसे निर्मल हो ॥ १६ ॥

संसार एव निवहे जनो व्यवहरन्नपि ॥ न बन्धं कथमाप्नोति पद्मपत्रे पयो यथा ॥ १७ ॥ आत्मवत्तृणवच्चेदं सकलं कलयन् जनः ॥ कथमुत्तमतामेति मनो मन्मथमस्पृशन् ॥ १८ ॥ कं महापुरुषं पारमुपयातं महोदधेः ॥ आचारेणानुसंस्मृत्य जनो याति न दुःखिताम् ॥ १९ ॥ किं तत्स्यादुचितं श्रेयः किं तत्स्यादुचितं फलम् ॥ वर्तितव्यं च संसारे कथं नामासमंजसे ॥ २० ॥

अर्थ—इस संसाररूपीप्रवाहमें व्यवहार करताहुआ मनुष्य, कमलके पत्रके भीतर जलकेसमान बन्धनको कैसे न प्राप्तहो ॥ १७ ॥ दूसरोंके दुःखोंको अपनेके समान, और अपने दुःखोंको तृणकेसमान समझनेवाला तथा कामादिवृत्तियोंसे पृथक् पुरुष किसप्रकार उत्तमताको प्राप्तहो ॥ १८ ॥ अज्ञानरूपी महासमुद्रके पारंगत, किस जीवन्मुक्त महापुरुषके चरित्रका अनुसरणकरनेसे और उसके कथनको उत्तमरीतिसे आचरणकरनेसे मनुष्य दुःखको नहींप्राप्तहोता ॥ १९ ॥ कौनसा नाशरहित कल्याणकारी मोक्षपदार्थ है. और कर्म उपासनादिका कौनसा अविनाशी फल है? और कैसे इसभयंकरसंसारमें वर्तना उचितहै ॥ २० ॥

तत्त्वं कथय मे किंचिद्येनास्य जगतः प्रभो ॥ वेद्मि पूर्वापरं धातुश्चेष्टितस्यानवस्थितेः ॥ २१ ॥ हृदयाकाशशशिनश्चेतसो मलमार्जनम् ॥ यथा मे जायते ब्रह्मंस्तथा निर्विघ्नमाचर ॥ २२ ॥ किमिह स्यादुपादेयं किं वा हेयमथेतरत् ॥ कथं विश्रान्तिमायातु चेतश्चपलमद्रिवत् ॥ २३ ॥ केन पावनमन्त्रेण दुःसंसृतिविषूचिका ॥ शाम्यतीयमनायासमायासशतकारिणी ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! मुझे कुछ तत्वपदार्थका उपदेश कीजिये, जिससे ब्रह्माकी चेष्टारूप इस अव्यवस्थितजगत्के आदि-अंतमें जो शेषवस्तु (आत्मतत्व) रहताहै. उसको मैं जानूं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदयाकाशमें चन्द्रमारूपी जो आभाससहित अन्तःकरण हैः उसके अज्ञानका निर्विघ्नतासे जैसे निवारणहो वैसा उपाय कीजिये ॥ २२ ॥ इस संसारमें क्या त्यागनेयोग्य है, और क्या ग्रहणकरनेयोग्य है? और वह कौन पदार्थ है, जो न त्याज्य है, न ग्राह्य है. और इस चंचलचित्तकी पर्वतकेसमान स्थिति कैसेहो ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! अनेकप्रकारके खेद उत्पन्नकरनेवाली, यह संसाररूपी महामारी विनापरिश्रम किसपवित्रमन्त्रसे शान्तहो ॥ २४ ॥

कथं शीतलतामन्तरानन्दतरुमंजरीम् ॥ पूर्णचंद्र इवाक्षीणां भृशमासादयाम्यहम् ॥ २५ ॥ प्राप्यांतःपूर्णतां पूर्णो न शोचामि यथा पुनः ॥ सन्तो भवन्तस्तत्त्वज्ञास्तथेहोपदिशन्तु माम् ॥ २६ ॥ अनुत्तमानन्दपदप्रधानविश्रांतिरिक्तं सततं महात्मन् ॥ कदर्थयंतीह भृशं विकल्पाः श्वानो वने देहमिवाल्पजीवम ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रयोजनकथनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—आनन्दरूपीवृक्षकी लताके सदृश, देशकालके परिच्छेदसे रहित, पूर्णचन्द्रकेसमान अभ्यन्तरकी शीतलताको मैं कैसे प्राप्तकरूं ॥ २५ ॥ जिस पूर्णताको प्राप्तहोके अन्तमें पूर्णस्वरूप मैं पुनः कदापि इससंसारमें शोच न करूं. ऐसा आप तत्वज्ञ महात्मा मुझे उपदेश करें ॥ २६ ॥ सर्वोत्तम आनन्दपदमें निरंतर स्थितिसे शून्य जीवके नानाप्रकारके विकल्प ऐसे अत्यन्त दुर्दशा करतेहैं. जैसे वनमें कुत्ते शरीरकी ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रयोजनकथनंनाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस संसारमें जीवन वर्षाकालके मेघकेसमान है. इसलिये आनन्दपदकी प्राप्तिका उपाय इस ३१ वे सर्गमें पूछागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ प्रोच्चवृक्षचलत्पत्रलम्बाम्बुलवभंगुरे ॥ आयुषीशानशीतांशुकलामृदुनि देहके ॥ १ ॥ केदारविरटद्भेककण्ठत्वक्कोणभंगुरे ॥ वागुरावलये जन्तोः सुहृत्सुजनसंगमे ॥ २ ॥ वासनावाततवलिते कदाशातडिति स्फुटे ॥ मोहोग्रमिहिकामेघे घनं स्फूर्जति गर्जति ॥ ३ ॥ नृत्यत्युत्ताण्डवं चण्डे लोले लोभकलापिनि ॥ सुविकासिनि सास्फोटे ह्यनर्थकुटजद्रुमे ॥ ४ ॥

अर्थ—उच्चवृक्षके चंचलपत्रमें लटकतेहुये जलबिंदुकेसमान क्षणभंगुर तथा शिवजीके मस्तकके भूषण चंद्रकलाकेसमान दुर्लक्ष्य ॥ १ ॥ और धान्यके खेतमें शब्दायमान मेढकके कंठकेसमान नश्वर, इस आयु और शरीरमें तथा सुजन, मित्र और बंधुओंके समागमरूपी जालके सदृश भंगुर वृक्षलताओंके समूहमें स्थिरताके लिये कौनसा उपाय वा गति है ॥ २ ॥ और जबही वासनारूपी पूर्वका वायु व्याप्तहोरहाहै. और दुष्ट आशारूपीविद्युत् अपनी तडकसे भयभीत कररही है. और मोहरूपी उग्रमेघ निरंतर गर्जरहेहैं ॥ ३ ॥ लोभरूपी चंचलमयूर प्रचण्ड ताण्डवनृत्यमें निमग्न हैं. अनर्थरूपी कुटजवृक्षकी कलिका विकसित होकर लहलहा रही है ॥ ४ ॥

क्रूरे कृतान्तमार्जारे सर्वभूताखुहारिणि ॥ अश्रान्तस्यन्दसंचारे कुतोऽप्युपरिपातिनि ॥५॥ क उपायो गतिः का वा का चिन्ता कः समाश्रयः ॥ केनेयमशुभोदर्का न भवेज्जीविताटवी ॥ ६ ॥ नतदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा क्वचित् ॥ सुधियस्तुच्छमप्येतद्यन्नयन्ति न रम्यताम् ॥ ७ ॥ अयं हि दग्धसंसारो नीरंध्रकलनाकुलः ॥ कथं सुस्वादुतामेति नीरसो मूढतां विना ॥ ८ ॥

अर्थ—और सबप्राणीरूपी मूषकोंके भक्षक यमरूपीमार्जारने क्रूरता धारणकररक्खी है. और कभी नीचेसे कभी ऊपरसे निरंतर अनर्थरूप जलके प्रवाह चलरहेहैं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! इस पश्चात् इस वनकी वर्षाकी पीडाके निवृत्यर्थ छत्रछपरादि कौनसा उपायहै ? रसगुटिका वा औषधादिके लेपोंमेंसे वृष्टिरहितहोके दूरदेशमें जानेकेलिये क्या गति है ? इस संकटसे पारहोनेके लिये, मंत्रदेवतादिमेंसे किसकी चिंता योग्य है ? और पर्वतगुफादिरूप कौनसा आश्रयका स्थान है ? वह कौनसा उपाय है जिससे उत्तरकालमें अशुभफलदेनेवाला यह जीवनरूपी जंगल न हो ॥ ६ ॥ पृथ्वीपर, अंतरिक्षलोकमें, और देवलोकमें, अथवा अन्यलोकोंमें ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है. जिसको तप और ज्ञानशक्तियुक्त आपकेसदृश बुद्धिमान् महात्मालोग रमणीय न करसकें ॥ ७ ॥ यह नष्टसंसार निरंतर दुःखसे व्याप्त है. सो किसप्रकार मूढताको दूरकरके उत्तम स्वादको प्राप्तहो ॥ ८ ॥

आशाप्रतिविपाकेन क्षीरस्नानेन रम्यताम् ॥ उपैति पुष्पशुभ्रेण मधुनेव वसुंधरा ॥ ९ ॥ अपमृष्टमलोदेति क्षालनेनामृतद्युतिः ॥ मनश्चंद्रमसः केन तेन कामकलंकितात् ॥ १० ॥ दृष्टसंसारगतिना दृष्टादृष्टविनाशिना ॥ केनेव व्यवहर्त्तव्यं संसारवनवीथिषु ॥ ११ ॥ रागद्वेषमहारोगा भोगपूगा विभूतयः ॥ कथं जन्तुं न बाधन्ते संसारार्णवचारिणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे वसन्तके उत्तम श्वेतादिवर्णके पुष्पोंसे यह पृथ्वी शोभितहोती है. ऐसेही किसउपायसे संपूर्णदुःखोंकी मूलभूत आशाके विरुद्ध पूर्णकामनारूपीदुग्धसे स्नान करनेसे यह संसार रमणीय होजाताहै ॥ ९ ॥ कामरूपी कलङ्कसे दूषित मनरूपी चन्द्रमासे, किस विद्वान्के अनुभवरूपी प्रक्षालनसे मलिनता रहित, अमृतकेसदृश शोभाय-

मान आनन्द देनेवाली चन्द्रिका खिलतीहै ॥ १० ॥ इस संसाररूपीबनके हाटमें संसारके अनर्थरूपपरिणामको देखनेवाले और इसलोक तथा परलोकके भोगसे विरक्त किसमहापुरुषकीतरह हमको व्यवहार करनाचाहिये ॥ ११ ॥ राग, द्वेष, भोगोंके समूह और विभूतिरूपमहारोग संसाररूपीसमुद्रमें चलनेवाले किसजन्तुको बाधा नहींकरते ॥ १२॥

कथं च धीरवर्याग्नौ पततापि न दह्यते ॥ पावके पारदेनेव रसेन रसशालिना ॥ १३ ॥ यस्मात्किल-जगत्यस्मिन्व्यवहारक्रियां विना ॥ न स्थितिः संभवत्यब्धौ पतितस्याजला यथा ॥ १४ ॥ रागद्वे-षविनिर्मुक्ता सुखदुःखविवर्जिता ॥ कृशानोर्दाहहीनेव शिखा नास्तीह सत्क्रिया ॥ १५ ॥ मनोमन-नशालिन्याः सत्ताया भुवनत्रये ॥ क्षयो युक्तिं विना नास्ति ब्रूत तामलमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे महामते ! जैसे रससे शोभायमान पारा अग्निमें गिरनेसे नहींजलता, ऐसेही वह कौन उपाय है जिससे संसाररूपीअग्निमें गिराहुआभी मनुष्य न जले ॥ १३ ॥ जैसे समुद्रमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीवोंकी निर्जलस्थानमें स्थिति नहींहोसक्ती इसीप्रकार संसारमें रहनेवाले प्राणीकी कर्मोंके उपार्जनविना स्थिति नहींहोसक्ती ॥ १४ ॥ जैसे अग्निकी ज्वाला दाहहीन नहींहोती इसीप्रकार रागद्वेषरहित और सुखदुःखसेवर्जित संसारमें कोईभी सत्क्रिया नहीं है ॥ १५ ॥ विषयवासनासहित मनकी सत्ताका नाश, सद्युक्तिकेविना तीनोंलोकमें नहींहोसक्ता, इसलिये उसीयुक्तिका उत्तमतासे उपदेश कीजिये ॥ १६ ॥

व्यवहारवतो युक्त्या दुःखं नायाति मे यया ॥ अथवा व्यवहारस्य ब्रूत तां युक्तिमुत्तमाम् ॥ १७ ॥ तत्कथं केन वा किं वा कृतमुत्तमचेतसा ॥ पूर्वं येनैति विश्रामं परमं पावनं मनः ॥१८॥ यथा जाना-सि भगवँस्तथा मोहनिवृत्तये ॥ ब्रूहि मे साधवो येन नूनं निर्दुःखतां गताः ॥ १९॥ अथवा तादृशी युक्तिर्यदि ब्रह्मन्न विद्यते ॥ न वक्ति मम वा कश्चिद्विद्यमानामपि स्फुटम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिसयुक्तिसे व्यवहार करनेसे मुझे दुःख न हो, अथवा व्यवहार न करनेकी जो उत्तम युक्ति हो सो कहिये ॥ १७ ॥ किसउत्तमपुरुषने और किसयुक्तिसे अज्ञानका निवारण प्रथम किया, और किसतत्वपदार्थकी प्राप्तिसे चित्तको विश्राम मिलताहै, और यह मन परमपावन होजाताहै ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! मोह निवृत्तहोनेकेलिये उस युक्तिको जैसे आप जानतेहो सो कहो जिससे साधुजन निस्संदेह दुःखसे रहितहोगयेहों ॥ १९ ॥ अथवा हे ब्रह्मन् वैसी कोई युक्ति नहीं है, अथवा है भी तो प्रत्यक्ष मुझसे कोई नहीं कहसक्ता ॥ २० ॥

स्वयं चैव न चाप्नोमि तां विश्रांतिमनुत्तमाम् ॥ तदहं त्यक्तसर्वेहो निरहंकारतां गतः ॥ २१ ॥ न भोक्ष्ये न पिबाम्यंबु नाहं परिदधेऽबरम् ॥ करोमि नाहं व्यापारं स्नानदानाशनादिकम् ॥ २२ ॥ न च तिष्ठामि कार्येषु संपत्स्वापद्दशासु च ॥ न किंचिदपि वाञ्छामि देहत्यागादृते मुने ॥ २३ ॥ केवलं वि-गताशंको निर्ममो गतमत्सरः ॥ मौन एवेह तिष्ठामि लिपिकर्मस्विवार्पितः ॥ २४ ॥

अर्थ—अथवा उस अनुत्तमविश्रांतिको मैं यदि स्वयं नहींप्राप्तकरसक्ता, तो मैं सबचेष्टाओंको त्यागकर और अहंकाररहित होकर ॥ २१ ॥ न तो भोजन करूंगा, न जल पिऊंगा, न वस्त्र धारणकरूंगा, और न स्नान, दान, और न शयनादि कोई व्यापार करूंगा ॥ २२ ॥ न किसीकार्य्यमें, न संपत्तियोंमें, न विपत्तियोंमें और न किसीअवस्थामें स्थिरहोताहूं हे मुने! मैं शरीरत्यागकेसिवाय और कुछ नहींचाहता, अर्थात् शरीरत्यागकेलिये अनशन व्रत करूंगा ॥ २३ ॥ शोक, ममता, और मत्सरसे रहितहोके, सब वाणीआदिके व्यापारसे शून्य, केवल मौन होके भित्तिमें चित्रकेसमान अर्पित होजाऊंगा ॥ २४ ॥

अथ क्रमेण संत्यज्य प्रश्वासोच्छ्वाससंविदः ॥ संनिवेशं त्यजामीममनर्थं देहनामकम् ॥ २५ ॥ नाह-मस्य न मे नान्यःशाम्याम्यस्नेददीपवत् ॥ सर्वमेव परित्यज्य त्यजामीदं कलेवरम् ॥ २६ ॥ श्रीवाल्मी-किरुवाच ॥ ॥ इत्युक्तवानमलशीतकराभिरामो रामो महत्तरविचारविकासिचेताः ॥ तूष्णींबभूव पुरतो महतां घनानां केकारवं श्रमवशादिव नीलकंठः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवप्रश्नोनामैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर क्रमसे श्वासका गमन, और आगमन, और चेतनाको त्यागकर अवयवयोंका संस्थानरूप, सबअनर्थोंका मूल इस शरीरकोही छोडदूंगा ॥ २५ ॥ न मैं इससंसारका हुं, और न यह संसार मेरा है, तथा म मैं दुसरेकाहुं, और न दूसरा मेरा है, मैं तैलरहित दीपकके समान शान्तहोजाऊंगा, यह सब त्यागके इसशरीरकोभी

त्यागदूंगा ॥ २६ ॥ महान् विचारशील और उदारचित्त, निर्म्मल और शीतलकिरणसंयुक्त चन्द्रमाकेसमान अभिरमणीय (अतिसुन्दर) श्रीरामचन्द्रजी इतना कहके जैसे मयूर केकावाणी बोलके श्रमकेकारणसे मेघोंकेसन्मुख चुप होजाताहै, ऐसेही महात्मा गुरु वसिष्ठादिके सन्मुख मौन होगये ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवप्रश्नोनामैकात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

श्रीरामचन्द्रकी वाणी सुननेवाले देवता और मनुष्योंका महान् विस्मय, और आकाशसे पुष्पवृष्टिका वर्णन इस ३२ वे सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ वदत्येवं मनोमोहविनिवृत्तिकरं वचः ॥ रामे राजीवपत्राक्षे तस्मिन् राजकुमारके ॥ १ ॥ सर्वे बभूवुस्तत्रस्था विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ भिन्नांबरा देहरुहैर्गिरः श्रोतुमिवोद्धुरैः ॥ २ ॥ विरागवासनापास्तसमस्तभववासनाः ॥ मुहूर्तममृतांभोधिवीचीविलुलिता इव ॥ ३ ॥ ता गिरो रामभद्रस्य तस्य चित्रार्पितैरिव ॥ संश्रुताः शृणुकैरंतरानंदपदपीवरैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—कमलकेसमान नेत्रवाले राजकुमार रामचन्द्रजीके, मनके मोहको नाशकरनेवाले वचनके कहनेपर, ॥ १ ॥ उस सभामें जितनेथे सब विस्मयसे विकसितनेत्र होगये, मानो श्रीरामचन्द्रकी वाणी सुननेको उत्कण्ठित और खडेरोमोंसे सबके वस्त्र छिदे गये, अर्थात् आश्चर्य्यदायक वाणीको सुनके सबके रोम कण्टककेसमान खडेहोगये ॥ २ ॥ वैराग्यकी वासनासे संसारीवासना सबोंकी नष्टहोगई, और सबके सब एकमुहूर्त्तके लिये मानो अमृतके समुद्रके तरंगमें लहर लेरहेहैं ॥ ३ ॥ कल्याणकारी रामचन्द्रजीके उन वचनोंको आनन्दसे प्रफुल्ल चित्रार्पितकेसमान होके बडे आदरकेसाथ सबने सुना ॥ ४ ॥

वसिष्ठविश्वामित्राद्यैर्मुनिभिः संसदि स्थितैः ॥ जयंतधृष्टिप्रमुखैर्मंत्रिभिर्मंत्रकोविदैः ॥ ५ ॥ नृपैर्दशरथप्रख्यैः पौरैः पारशवादिभिः ॥ सामंतै राजपुत्रैश्च ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ६ ॥ तथा भृत्यैरमात्यैश्च पंजरस्थैश्च पक्षिभिः ॥ क्रीडामृगैर्गतस्पंदैस्तुरंगैस्त्यक्तचर्वणैः ॥ ७ ॥ कौसल्याप्रमुखैश्चैव निजवातायनस्थितैः ॥ संशांतभूषणारावैरस्पंदैर्वनितागणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—उससभामें स्थित वसिष्ठविश्वामित्रादिऋषियोंनें, मंत्रमें निपुण, जयन्त और धृष्टि आदि मंत्रियोंने ॥ ५ ॥ दशरथादि राजाओंने, नगरनिवासियोंने, परशु (पादल) देशके राजाओंने करदेनेवाले छोटे २ राजाओंने, राजपुत्रोंने, ब्रह्मवादियोंने, ॥ ६ ॥ उसीप्रकार भृत्योंने, पंजरस्थ पक्षियोंने, क्रियारहितहोके क्रीडामृगोंने, भोजनको छोडके तुरंगोंनें ॥ ७ ॥ अपने २ झरोखेमें बैठकर कौसल्यादिरानियोंने भूषणके शब्दोंको बंदकरके वनितागणोंने॥८॥

उद्यानवल्लीनिलयैर्विटंकनिलयैरपि ॥ अक्षुब्धपक्षततिभिर्विहंगैर्विरतारवैः ॥ ९ ॥ सिद्धैर्नभश्वरैश्चैव तथा गंधर्वकिन्नरैः ॥ नारदव्यासपुलहप्रमुखैर्मुनिपुंगवैः ॥ १० ॥ अन्यैश्च देवदेवेशविद्याधरमहोरगैः ॥ रामस्य ता विचित्रार्था महोदारा गिरः श्रुताः ॥ ११ ॥ अथ तूष्णीं स्थितवति रामे राजीवलोचने ॥ तस्मिन् रघुकुलाकाशशशांके शशिसुंदरे ॥ १२ ॥

अर्थ—वाटिकामें रहनेवाले और आटारियोंकेऊपर रहनेवाले कपोतों (कबूतरों) ने परके और मुखके शब्दोंको बन्दकरके पक्षियोंके समूहोंने, ॥ ९ ॥ सिद्धोंने आकाशमें विचरनेवाले गन्धर्व और किन्नरोंने तथा नारद, व्यास, और पुलह आदि श्रेष्ठमुनियोंने ॥ १० ॥ तथा अन्यदेवताओंके स्वामी इन्द्रादिकोंने, विद्याधर और महोरगोंने, रामचन्द्रजीके विचित्रअर्थोंसे संयुक्त और बडे उदारवचनोंको बडे आदरकेसाथ सुना ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर, रघुकुलरूपीआकाशके पूर्णचन्द्रमाकेसमान सुन्दर कमलकेसदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजीके मौन होनेपर ॥१२॥

साधुवादगिरा सार्धं सिद्धसार्थसमीरिता ॥ वितानकसमा व्योम्नः पौष्पी वृष्टिः पपात ह ॥ १३ ॥ मंदारकोशविश्रांतभ्रमरद्वंद्वनादिनी ॥ मधुरामोदसौंदर्यमुदितोन्मदमानवा ॥ १४ ॥ व्योमवातविलूनेव ताराणकां परंपरा ॥ पतितेव धरापीठे स्वर्गस्त्रीहसितच्छटा ॥ १५ ॥ वृष्यमूककचन्मेघलवावलिरिव च्युता ॥ हैयंगवीनपिंडानामीरितेव परंपरा ॥ १६ ॥

अर्थ—सिद्ध गन्धर्वादि मुमुक्षु देवताओंने साधुवाद, धन्यवादकेसाथ आकाशसे पुष्पवृष्टि करी और वह वृष्टि मन्दारपुष्पोंके कोशोंमें विश्रामकरनेवाले भ्रमरोंके जोडोंसे शब्दायमान उत्तमसुगंधसे मनुष्योंको सन्तुष्ट और विवश करनेवालीथी ॥ १४ ॥ आकाशके वायुसे गिराईहुई तारागणोंकी पंक्तिकेसमान पृथ्वीपर गिरीहुई स्वर्गकी स्त्रियोंके हास्यकी शोभाकेसदृश थी ॥१५॥ विद्युत्से शोभायमान आकाशसे गिरेहुये मेघोंके खण्डोंके समूहकेसदृश और फेंकेहुये नवनीत (मखन) के पिण्डोंकेसमान थी ॥ १६ ॥

हिमवृष्टिरिवोदारा मुक्ताहारचयोपमा ॥ ऐन्दवी रश्मिमालेव क्षीरोर्मीणामिवाततिः ॥ १७ ॥ किंजल्कांभोजवलिता भ्रमद्भृंगकदंबका ॥ सीत्कारगायदामोदिमधुरानिललोलिता ॥ १८ ॥ प्रभ्रमत्केतकीव्यूहा प्रस्फुरत्कैरवोत्करा ॥ प्रपतत्कुन्दवलया चलत्कुवलयालया ॥ १९॥ आपूरितांगणरसा गृहाच्छादनचत्वरा ॥ उद्ग्रीवपुरवास्तव्यनरनारीविलोकिता ॥ २० ॥

अर्थ—बडी भारी हिमवृष्टिकेतुल्य मोतियोंके हारोंके समूहकेसमान चन्द्रमाकी किरणोंकी मालाकेसदृश क्षीरसमुद्रकी तरंगोंकी श्रेणीके तुल्य थी ॥ १७ ॥ केसरसहित कमलोंसे शोभित गूंजनेवाले भ्रमरसमूहसहित सीत्कारशब्दोंसे मधुरगानेवाले वायुसे किंचित् कम्पित होरहीथी ॥ १८ ॥ भ्रमणशील केतकीके समूहसहित और विकसित कुमुदिनियोंके समूह तथा गिरतेहुये कुन्दोंके समूहसहित और चंचलकमलोंसे पूर्ण थी ॥ १९ ॥ अंगण (आंगन) गृह और अँटारियोंको आच्छादन (ढांकने) करनेवाली उस वृष्टिको पुरवासी नरनारियां कण्ठ उठाउके देखरहींथी ॥ २० ॥

निरभ्रोत्पलसंकाशव्योमवृष्टिरनाकुला ॥ अदृष्टपूर्वा सर्वस्य जनस्य जनितस्मया ॥ १ ॥ अदृश्यांबरसिद्धौघकरोत्करसमोरिता ॥ सा मुहूर्त्तचतुर्भागं पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ २२ ॥ आपूरितसभालोके शांते कुसुमवर्षणे ॥ इमं सिद्धगणालापं शुश्रुवुस्ते सभागताः ॥ २३ ॥ आकल्पं सिद्धसेनासु भ्रमद्भिरभितो दिवम् ॥ अपूर्वमिदमस्माभिः श्रुतं श्रुतिरसायनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—खिलेहुये कमलकेतु और निर्मलआकाशसें गिरीहुई उस वृष्टिको किसीने अबतक नहीं देखाथा इसलिये सब प्राणियोंको विस्मयजनक हुई ॥ २१ ॥ वह वृष्टि आकाशमें अदृश्य सिद्धोंके समूहोंसे प्रेरित आधीघडीतक होतीरही ॥ २२ ॥ भरीहुई सभा तथा पुष्पवृष्टिके शान्तहोनेपर सभासदोंने सिद्धगणोंका यह वचन सुना ॥ २३ ॥ कल्पपर्यन्त सिद्धोंकी सेनाओंमें संपूर्णलोकमें हमलोग भ्रमण करते हैं परन्तु वेदोंका सार और कर्णोंको अमृतकेसमान मधुर यह अपूर्ववचन आजही सुनाहै ॥ २४ ॥

यदनेन किलोदारमुक्तं रघुकुलेंदुना ॥ वीतरागतया तद्धि वाक्पतेरप्यगोचरम् ॥ २५ ॥ अहो बत महत्पुण्यमद्यास्माभिरिदं श्रुतम् ॥ वचो राममुखोद्भूतं महाल्हादकरं धियः ॥ २६ ॥ उपशमामृतसुंदरमादरादधिगतोत्तमतापदमेष यत् ॥ कथितवानुचितं रघुनंदनः सपदि तेन वयं प्रतिबोधिताः ॥२७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरसाधुवादोनाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—रविकुलके चन्द्र श्रीरामचन्द्रजीने वीतराग होकर जो वचन कहा वह बृहस्पतिकोभी दुर्लभ है ॥ २५ ॥ अहो श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दसे निःसृत बुद्धिको आनन्ददायक यह महापवित्र वचन हमलोगोंनें आजही श्रवण कियाहै जिन्होंने ऐसे वचन नहीं श्रवणकिये उनका जन्म व्यर्थ है ॥ २६ ॥ शान्तिदायक अमृतकेसदृश अतिरमणीय ज्ञातिकुल चरित्र और धर्म्मादिज्ञानसे प्राप्त उत्तमताको सफलकारक और अनेकक्लेशोंसे रक्षाकरनेवाला यह श्रीरामचन्द्रजीका उचित कथन है उसको श्रवणकरके हमको शीघ्रही ज्ञान होगया अर्थात् इसके सुननेसे स्वर्गादिसुखभी हमको तुच्छ दीखनेलगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरसाधुवादोनाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ वे सर्गमें सिद्धोंका उस सभामें उतरना और उनका योग्यवचनोंसे रामचन्द्रजीकी प्रशंसा करना इसविषयका वर्णन कियागयाहै.

सिद्धा ऊचुः ॥ ॥ पावनस्यास्य वचसः प्रोक्तस्य रघुकेतुना ॥ निर्णयं श्रोतुमुचितं वक्ष्यमाणं मह-

र्षिभिः ॥ १ ॥ नारदव्यासपुलहप्रमुखा मुनिपुंगवाः ॥ आगच्छताश्वविघ्नेन सर्व एव महर्षयः ॥ २ ॥ पतामः परितः पुण्यामेतां दाशरथीं सभाम् ॥ नीरंध्रां कनकोद्योतां पद्मिनीमिव षट्पदाः ॥ ३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा सा समस्तैव व्योमावासनिवासिनी ॥ तां पपात सभां तत्र दिव्या मुनिपरंपरा ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्ध बोले–रघुकुलकेतुश्रीरामचन्द्रजीके इस परमपवित्रवचनका निर्णय (उत्तररूप) जो महर्षी भला कहैंगे उसको श्रवण करना सबको उचितहै ॥ १ ॥ हे नारद ! व्यास और पुलहआदि श्रेष्ठमुनिगण तथा अन्य महर्षी निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र इस वचनको सुननेकेलिये पधारो ॥ २ ॥ सम्पत्तिसे पूर्ण सुवर्णकेसमान प्रकाशमान चारोंओरसे पवित्र इस दशरथकी सभामें हम लोगोंको चलनाचाहिये जैसे कमलिनीपर भ्रमर जाताहै ॥ ३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–सिद्धोंके ऐसा कहनेपर आकाशनिवासिनी दिव्यमुनियोंकी माला उस विशालसभामें जहां रामचंद्रादि थे शीघ्रही आके उतरी ॥ ४ ॥

अग्रस्थितमनुत्सृष्टरणद्वीणं मुनीश्वरम् ॥ पयःपीनघनश्यामं व्यासमेव किलांतरा ॥ ५ ॥ भृग्वंगिरः पुलस्त्यादिमुनिनायकमंडिता ॥ च्यवनोद्दालकोशीरशरलोमादिमालिता ॥ ६ ॥ परस्परपरामर्शक्षुः-संस्थानमृगाजिना ॥ लोलाक्षमालावलया सुकमंडलुधारिणी ॥ ७ ॥ तारावलिरिव व्योम्नि तेजःप्रसरपाटला ॥ सूर्यावलिरिवान्योऽन्यं भासिताननमंडना ॥ ८ ॥

अर्थ—वीणा बजातेहुये मुनीश्वरनारदजी उसके अग्रभागमें थे जलसे पूर्ण कमण्डलु धारणकियेहुये श्यामवर्ण श्रीव्यासभगवान् मध्यमें थे ॥ ५ ॥ और भृगु, अंगिरा, और पुलस्त्य आदि मुनिनायकोंसे शोभित, च्यवन, उद्दालक, उशीर, और शरलोमा, आदि ऋषियोंसे भूषित वह मुनियोंकी माला थी ॥ ६ ॥ उस मुनिमंडलीमे आपसमें एकदूसरेकी रगडसे मृगछालाओंके रोम ऊंचे नीचे होगयेथे चंचल रूद्राक्षकी माला और उत्तम कमण्डलु धारणकियेहुये ॥ ॥ ७ ॥ और आकाशमें तारागणोंकी पंक्तिकेसमान, अधिकतेजके प्रसारसे श्वेतवर्ण, तथा सूर्य्योंकी पंक्तिकेसदृश एक दूसरेकी मुखकी शोभाको बढानेवाली थी ॥ ८ ॥

रत्नावलिरिवान्योऽन्यं नानावर्णकृतांगिका ॥ मुक्तावलिरिवान्योऽन्यं कृतशोभातिशायिनी ॥ ९ ॥ कौमुदीवृष्टिरन्येव द्वितीयेवार्कमंडली ॥ संभृतेवातिकालेन पूर्णचंद्रपरंपरा ॥ १० ॥ ताराजालइवांभोदो व्यासो यत्र विराजते ॥ तारौघ इव शीतांशुर्नारदोऽत्र विराजते ॥ ११ ॥ देवेष्विव सुराधीशः पुलस्त्योऽत्र विराजते ॥ आदित्य इव देवानामंगिरास्तु विराजते ॥ ४ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके रत्नोंकी पंक्तिकेसमान आपसके अंगोंको नानाप्रकारके वर्णसहित करनेवाली, और मोतियोंकेसमान एकदूसरेकी शोभा बढानेवाली थी ॥ ९ ॥ चन्द्रिकाकी वृष्टिकेसदृश विलक्षण सूर्य्यमंडलीकेतुल्य अधिककालसे एकत्र कीहुई पूर्णचन्द्रमाओंकी पंक्तिकेसमान, मुनियोंकी मंडली आके प्राप्तहुई ॥ १० ॥ उसमें एक ओर ताराओंके समूहमें मेघकेसमान श्यामवर्ण व्यास भगवान् शोभित होरहे हैं, और अन्यस्थानमें ताराओंके समूहमें चन्द्रमाकेसमान श्रीनारदजी विराजमान हैं ॥ ११ ॥ देवताओंके मध्यमें इन्द्रकेसमान इस सेनामें श्रीपुलस्त्यऋषिजी विराजमान हैं, देवताओंमें सूर्यकेसमान अंगिरामहर्षिजी वहांपर शोभित हैं ॥ १२ ॥

अथास्यां सिद्धसेनायां पतंत्यां नभसो रसाम् ॥ उत्तस्थौ मुनिसंपूर्णा तदा दाशरथी सभा ॥ १३ ॥ मिश्रीभूता विरेजुस्ते नभश्चरमहीचराः ॥ परस्परावृतांगाभा भासयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥ वेणुदंडावृतकरा लीलाकमलधारिणः ॥ दूर्वांकुराक्रांतशिखाः सचूडामणिमूर्द्धजाः ॥ १५ ॥ जटाजूटैश्च कपिला मौलिमालितमस्तकाः ॥ प्रकोष्ठगाक्षवलया मल्लिकावलयान्विताः ॥ १६ ॥

अर्थ— इसके अनन्तर जब सिद्धोंकी सेना पृथ्वीपर चलनेलगी, तब दशरथजीकी सम्पूर्णसभा उठके खडी होगई ॥ १३ ॥ एकस्थानमें एकत्रितहोके परस्पर मिलित अंगोंकी शोभावाले वे पृथ्वी और आकाशनिवासी, दशोंदिशाओंको प्रकाशित करतेहुये अत्यन्त शोभितहुये ॥ १४ ॥ कोई हाथोंमें बाँसकी छडी लिये हैं, कोई लीलाकमल धारण किये हैं, किसीके शिखामें दूर्वाके अंकुर हैं, किसीके केशोंमें चूडामणि गूँथे हैं ॥ १५ ॥ कोई जटाजूटसे कपिल (धूम) वर्णके होरहे हैं. किसीके मस्तक मालाओंसे भूषित हैं, किसीने अपनी २ कलाईयोंमें रुद्राक्षकी माला और किसी २ ने पुष्पोंकी मालायें धारणकर रक्खी हैं ॥ १६ ॥

चीरवल्कलसंवीताः स्रक्कौशेयावगुंठिताः ॥ विलोलमेखलापाशाश्चलन्मुक्ताकलापिनः ॥ १७ ॥ वसिष्ठविश्वामित्रौ तान् पूजयामासतुः क्रमात् ॥ अर्घ्यैः पाद्यैर्वचोभिश्च सर्वानेव नभश्चरान् ॥ १८ ॥ वसि-

ष्ठविश्वामित्रौ ते पूजयामासुरादरात् ॥ अर्घ्यैः पाद्यैर्वचोभिश्च नभश्चरमहागणाः ॥ १९ ॥ सर्वादरेण सिद्धौघं पूजयामास भूपतिः ॥ सिद्धौघो भूपतिं चैव कुशलप्रश्नवार्त्तया ॥ २० ॥

अर्थ--किसीने अपने शरीरको चीरवल्कलसे आच्छादित कियाहै, किसीने माला और पीताम्बरसे किसी २ के कटिमें मुंजकी मेखला पडी है, और कोई मोतियोंसे भूषितहै ॥ १७ ॥ उन सब नभश्चारियोंकी वसिष्ठजी और विश्वामित्रजीने अर्घ्य, पाद्य, और उत्तम वचनोंसे क्रमसे पूजाकी ॥ १८ ॥ तथा उन सब नभश्चारी सिद्ध आदि महात्मागणोंनेभी वसिष्ठ और विश्वामित्रजीकी अर्घ्य, पाद्य, और वचनोंसे बडे आदरसे पूजाकी ॥ १९ ॥ उस सम्पूर्ण सिद्धादिके समूहकी राजाने बडे आदरसे पूजाकी, और सिद्धसमूहनें कुशलप्रश्नकी वार्तासे राजाकी पूजाकी ॥ २० ॥

तैस्तैः प्रणयसंरंभैरन्योऽन्यं प्राप्तसत्क्रियाः ॥ उपाविशन्विष्टरेषु नभश्चरमहीचराः ॥ २१ ॥ वचोभिः पुष्पवर्षेण साधुवादेन चाभितः ॥ रामं ते पूजयामासुः पुरःप्रणतमास्थितम् ॥ २२ ॥ आसांचक्रे च तत्रासौ राज्यलक्ष्मीविराजितः ॥ विश्वामित्रो वसिष्ठश्च वामदेवोऽथ मंत्रिणः ॥ २३ ॥ नारदो देवपुत्रश्च व्यासश्च मुनिपुंगवः ॥ मरीचिरथ दुर्वासा मुनिरांगिरसस्तथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकारके प्रीति और दानमानादि सामग्रियोंसे आपसमें एकदूसरेसे सत्कृत वे आकाश और पृथ्वीके विहारी महात्मा अपने २ योग्य आसनोंपर बैठगये ॥ २१ ॥ योग्यवार्तालापसे पुष्पवृष्टिसे, और प्रशंसासे चारोंओरसे उनसभोंने, नम्रतासे सम्मुखस्थित श्रीरामचन्द्रजीकी पूजाकी ॥ २२ ॥ उनके मध्यमें राज्यलक्ष्मीसे शोभित श्रीरामचन्द्रजी विराजे, तथा विश्वामित्रजी, वसिष्ठजी, वामदेवजी, और सब मंत्रीगण ॥ २३ ॥ देवपुत्र नारदजी, मुनिश्रेष्ठ व्यासजी, मरीचि, दुर्वासा, तथा अंगिराजी ॥ २४ ॥

क्रतुः पुलस्त्यः पुलहः शरलोमा मुनीश्वरः ॥ वात्स्यायनो भरद्वाजो वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः ॥ २५ ॥ उद्दालको ऋचीकश्च शर्यातिश्च्यवनस्तथा ॥ २६ ॥ एते चान्ये च बहवो वेदवेदांगपारगाः ॥ ज्ञातज्ञेया महत्मान आस्थितास्तत्र नायकाः ॥ २७ ॥ वसिष्ठविश्वामित्राभ्यां सह ते नारदादयः ॥ इदमूचुरनूचाना राममानमिताननम् ॥ २८ ॥

अर्थ—क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, और मुनीश्वर शरलोमाजी, वात्स्यायन, भरद्वाज, और मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी, ॥ २५ ॥ उद्दालक, ऋचीक, शर्य्याति और च्यवनजी ॥ २६ ॥ ये तथा औरभी वेदवेदांगपारंगत, ब्रह्मज्ञानी मुख्य२ महात्मागण वहांपर विराजे ॥ २७ ॥ आचार्य्यसे विधिपूर्वक अंगसहित चारों वेदोंके पढनेवाले, वसिष्ठ और विश्वामित्रजीसहित नारद आदि महर्षियोंने श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें जो नम्रतासे मस्तक झुकाये हुयेथे यह वचन कहा ॥२८॥

अहो बत कुमारेण कल्याणगुणशालिनी ॥ वागुक्ता परमोदारा वैराग्यरसगर्भिणी ॥ २९ ॥ परिनिष्ठितवक्तव्यं सबोधमुचितं स्फुटम् ॥ उदारं प्रियमार्यार्हमविह्वलमपि स्फुटम् ॥ ३० ॥ अभिव्यक्तपदं स्पष्टमिष्टं स्पष्टं च तुष्टिमत् ॥ ॥ करोति राघवप्रोक्तं वचः कस्य न विस्मयम् ॥ ३१ ॥ शतादेकतमस्यैव सर्वोदारचमत्कृतिः ॥ ईप्सितार्थार्पणैकांतदक्षा भवति भारती ॥ ३२ ॥

अर्थ—बडे आश्चर्यकी बातहै कि अनेकगुणोंसे शोभित वैराग्यरससहित परम उदार वाणी, कुमार श्रीरामचन्द्रजीने कही ॥ २९ ॥ ऐसा वचन जिसके वक्तव्य अर्थ सिद्धान्तरूपहैं, जो पदार्थ, तत्वबोधसहित है, अर्थात् जो केवल कल्पनामात्रही नहीं है और पण्डितोंकी सभाके योग्य है, जिसके अक्षर स्वच्छ हैं, उत्तम और आशयसे पूर्ण, हृदयको आनन्ददायक, पूज्य श्रेष्ठपुरुषोंके उचित चित्तकी चंचलतादोषसे शून्य, स्वच्छयुक्त अर्थ है ॥ ३० ॥ जिसके पद व्याकरणकीरीतिसे शुद्ध हैं जिसका अर्थ बाधित नहीं है हितकारक ग्रस्त कुछ अक्षर बोलनेमें छोड और विलम्बितादिदोषोंसे वर्जित, और सन्तोषदायक ऐसा रामचन्द्रजीका वचन किसको विस्मयकारक नहीं है ॥ ३१ ॥ सर्वअंशोंमें हृदयको आनन्ददायक चमत्कारमें निमग्नकरनेवाली, इष्टअर्थोंके देनेमें सर्वदा शीघ्रस्मरण करानेवाली सरस्वती सैकडों वक्ताओंमेंसे किसीएककीही होती है ॥ ३२ ॥

कुमार त्वां विना कस्य विवेकफलशालिनी ॥ परं विकासमायाति प्रज्ञाशरलता तता ॥ ३३ ॥ प्रज्ञा दीपशीखा यस्य रामस्येव हृदि स्थिता ॥ प्रज्वलत्यसमालोककारिणी स पुमान् स्मृतः ॥ ३४ ॥ रक्तमांसास्थियंत्राणि बहून्यतितराणि च ॥ पदार्थानभिकर्षति नास्ति तेषु सचेतनः ॥ ३५ ॥ जन्ममृत्युजरादुःखमनुयांति पुनः पुनः ॥ विमृशंति न संसारं पशवः परिमोहिताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे कुमार! विवेकरूपीफलसे शोभायमान, यह बुद्धिरूप शरकी लता, आपको छोडके और किसीपुरुषकी

(१) सूक्ष्म पदार्थकोभी भेदन करनेसे बुद्धिको शरकी लतारूपसे वर्णन कियाहै.

विचार और वैराग्यरूपी पुष्प और पल्लवसे वृद्धिको प्राप्त नहींहोसक्ती है ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रकेसमान, असाधारण प्रकाश करनेवाली, बुद्धिरूपदीपककी शिखा जिसके हृदयमें है वही पुरुष है ॥ ३४ ॥ रक्त, मांस, और हड्डीरूप शरीरमेंही आत्मबुद्धिवाले जो शब्द, स्पर्श, रूप, आदि पदार्थोंके भोगनेमें जीवनको वितातेहैं, और आत्मज्ञानार्थ कुछ भी पुरुषार्थ नहींकरते वे जडकेही समानहैं ॥ ३५ ॥ जो इस संसारमें मनुष्यजन्म पाके आत्मतत्वका विचार नहीं करते, वे अज्ञानमें मोहित केवल पशुहैं, और वे बार २ जन्म और मृत्युके दुःखमें फंसते हैं ॥ ३६ ॥

कथंचित्क्वचिदेवैको दृश्यते विमलाशयः ॥ पूर्वापरविचारार्हो यथायमरिमर्दनः ॥ ३७ ॥ अनुत्तमचमत्कारफलाः सुभगमूर्त्तयः ॥ भव्या हि विरला लोके सहकारद्रुमा इव ॥ ३८ ॥ सम्यग्दृष्टजगद्यात्रास्वविवेकचमत्कृतिः ॥ अस्मिन्मान्यमतावंतरियमद्यैव दृश्यते ॥ ३९ ॥ सुभगाः सुलभारोहाः फलपल्लवशालिनः ॥ जायंते तरवो देशे न तु चंदनपादपाः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे कामादिशत्रुओंको मर्दनकरनेवाले श्रीरामचंद्रजी हैं, ऐसा पूर्वापरविचारकेयोग्य, निर्म्मल अभिप्रायका मनुष्य, बडीकठिनतासे कहींएक देखपडताहै ॥ ३७ ॥ सबसे उत्तम आत्मसाक्षात्कारूप फलयुक्त सुभगमूर्ति, आम्रके वृक्षोंकेसमान, कल्याणकारी विरलेही कोई २ इससंसारमें होते हैं ॥ ३८ ॥ उत्तमरीतिसे जगत्की दशाको दिखानेवाला आत्मतत्वदर्शनपर्य्यन्तका चमत्कार इस असामान्यबुद्धिवाले रामजीकेही अन्तःकरणमें इस अवस्थामें देखागयाहै ॥ ३९ ॥ सुन्दर और चढनेमें सुलभ फलदायक और पत्रोंसे शोभित सामान्यवृक्ष सबदेशोंमे होते हैं, न कि चन्दनवृक्ष ॥ ४० ॥

वृक्षाः प्रतिवनं संति नित्यं सफलपल्लवाः ॥ नत्वपूर्वचमत्कारो लवंगः सुलभः सदा ॥ ४१ ॥ ज्योत्स्नेव शीता शशिनः सुतरोरिव मंजरी ॥ पुष्पादामोदलेखेव दृष्टा रामाच्चमत्कृतिः ॥ ४२ ॥ अस्मिन्नुद्दामदौरात्म्यदैवनिर्माणनिर्मिते ॥ द्विजेंद्रा दग्धसंसारे सारो ह्यत्यंतदुर्लभः ॥४३ ॥ यतन्ते सारसंप्राप्तौ ये यशोनिधयो धियः ॥ धन्या धुरि सतां गण्यास्त एव पुरुषोत्तमाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—फल और पत्रोंसहित वृक्ष सदा सबवनमें होतेहैं परन्तु अपूर्वचमत्कारकारक लवंगका वृक्ष सर्वत्र सुलभ नहीं है ॥ ४१ ॥ चन्द्रमाकी चन्द्रिकाकेसमान शीतल उत्तमवृक्षकी कलीकेसदृश, रमणीय और पुष्पोंसे सुगन्धताकी पंक्तिकेसमान, श्रीरामचन्द्रजीमेंही चमत्कृति (विलक्षणता) देखीगई है ॥ ४२ ॥ हे द्विजेन्द्रगण! उद्दण्ड तथा दुष्टतासहित और दैवसे रचित इस नष्टसंसारमें सार अतिदुर्लभ है ॥ ४३ ॥ जो सदा ध्यानमे निमग्न कीर्तिके निधि, सारवस्तुकी प्राप्तिकेलिये सदा उद्योग कियाकरतेहैं, वेही धन्य, सज्जनोंमें अग्रणी, और पुरुषोत्तम हैं ॥ ४४ ॥

न रामेण समोऽस्तीह दृष्टो लोकेषु कश्चन ॥ विवेकवानुदारात्मा न भावी चेति नो मतिः ॥ ४५ ॥ सकललोकचमत्कृतिकारिणोऽप्यभिमतं यदि राघवचेतसः ॥ फलति नो तदिमे वयमेव हि स्फुटतरं मुनयो हतबुद्धयः ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वाल्मीकिविरचिते वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे नभश्चरमहीचरसंमेलनंनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ वैराग्यप्रकरणं संपूर्णम् ॥

अर्थ—रामचन्द्रजीकेसमान इससमय न कोई है और न प्रथम देखागया और न आगेभी होनेवालाहै, ऐसी हम लोगोंकी सम्मति है ॥ ४५ ॥ उचितप्रश्नसे और रहस्यके उद्घाटनसे, संपूर्णसंसारको आनन्दरूप चमत्कारदायक श्रीरामचन्द्रजीके चित्तका, आत्मज्ञानप्राप्तिरूप मनोरथ यदि सफल न हो तो निश्चय प्रत्यक्षरूपसे हम हतबुद्धि मुनियोंकाही यह दोषहै, अर्थात् यदि रामचन्द्रजीको ज्ञानप्राप्ति न हो तो हमारा ज्ञानी होना व्यर्थही है ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीवाल्मीकिविरचिते वासिष्ठमहारामायणे, देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपाये वैश्यवंशावतंसरूप जज्जपदारूढ रायबहादुरोपाधिधारि श्रीबैजनाथाज्ञया काशिराजकीय पाठशालाप्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रिशिष्य प्रयागमण्डलान्तर्गत हरिपुरनामकग्रामनिवासि द्विवेदोपनामक पूज्यपाद श्रीनचेईप्रसादात्मजाचार्य्योपाधिधारिठाकुरप्रसादविरचिते भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरमहीचरमेलनंनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

समाप्तमिदं वैराग्यप्रकरणम् ॥ शुभमस्तुः ॥

श्रीहरिंवन्दे:।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

द्वितीयं मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं। स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम्॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै। भाषानुवादः क्रियते हिताय॥ १॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे॥ २॥

प्रथमस्सर्गः।

श्रीगणेशाय नमः। अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम्॥

श्रीगणेशाय नमः॥अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम्॥ स्वयं अपने विचारसे आत्मतत्वके जाननेपर और पिताके कहनेपरभी अविश्वासकारी शुकदेवजीको जनकके कथनसे तत्वमें विश्राम मिला; इसविषयका वर्णन इस १ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच॥ ॥ इति नादेन महता वचस्युक्ते सभागतैः॥ राममग्रगतं प्रीत्या विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ १॥ न राघव तवास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतां वर॥ स्वयैव सूक्ष्मया बुद्ध्या सर्वं विज्ञातवानसि॥ २॥ केवलं मार्जनामात्रं मनागेवोपयुज्यते॥ स्वभावविमले नित्यं सुबुद्धिमुकुरे तव॥ ३॥ भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्येव मतिस्तव॥ विश्रांतिमात्रमेवांतर्ज्ञातज्ञेयाप्यपेक्षते॥ ४॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-जिससमय सभामें प्राप्तहोकर सिद्धादिकोंनें बडे उत्साहकेसाथ गम्भीरनादयुक्त वचन कहा, उससमय सम्मुखस्थित अधिकारियोंमें मुख्य श्रीरामचन्द्रजीसे विश्वामित्रजी बडेप्रेमसे बोले॥ १॥ हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ राघव! आपकेलिये अब कोई औरपदार्थ जाननेको शेष नहीं है स्वयं आपने अपनी सूक्ष्मबुद्धिसे सब जानलिया॥ २॥ स्वभावसे निर्म्मल आपकी बुद्धिरूपदर्पणमें किंचित् शोधमात्रकी आवश्यकता है॥ ३॥ भगवान् व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीकी बुद्धि जिसप्रकार ज्ञेयपदार्थको जानभी गईथी तथापि आचार्यके उपदेशद्वारा केवल अन्तमें विश्रांतिमात्रकी आवश्यकता रखतीथी ऐसीही दशा आपकी बुद्धिकीभी है॥ ४॥

श्रीराम उवाच॥ ॥ भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्य भगवन् कथम्॥ ज्ञेयेऽप्यादौ न विश्रांतं विश्रांतं च धिया पुनः॥ ५॥ विश्वामित्र उवाच॥ ॥ आत्मोदंतसमं राम कथ्यमानमिदं मया॥ शृणु व्यासात्मजोदंतं जन्मनामन्तकारणम्॥ ६॥ योऽयमंजनशैलाभो निविष्टो हेमविष्टरे॥ पार्श्वे तव पितुर्व्यासो भगवान् भास्करद्युतिः॥ ७॥ अस्याभूदिन्दुवदनस्तनयो नयकोविदः॥ शुको नाम महाप्राज्ञो यज्ञो मूर्त्येव सुस्थितः॥ ८॥

अर्थ—श्रीराम बोले-हे भगवन्! व्यासजीके पुत्र स्वयं तत्व जाननमें समर्थ थे परन्तु उनका चित्त विश्रामको क्यों नहीं प्राप्तहुआ, और गुरुके उपदेशसे शुद्धबुद्धिद्वारा कैसे प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ विश्वामित्र बोले-अपनेही वृत्तान्तकेसमान व्यासजीके पुत्रका वृत्तान्त जानो जोकि जन्मोंके अन्तका हेतु है उसवृत्तान्तको मैं आपसे कहताहूं आप सुनिये ॥ ६ ॥ सूर्य्यकेसदृश तेजस्वी, अंजनके पर्वतकेसमान दीप्तिमान ये व्यासजीभगवान् आपके पिताकेसमीप सुवर्णके आसनपर बैठेहैं ॥ ७ ॥ चन्द्रमाकेसमान मुखवाले सबशास्त्रोंके वेत्ता महाबुद्धिमान् शुकदेवनामसे प्रसिद्ध इनके पुत्रभी साक्षात् मूर्तिमान् यज्ञकेसदृश हैं ॥ ८ ॥

प्रविचारयतो लोकयात्रामलामिमां हृदि ॥ तवेव किल तस्यापि विवेक उदभूदयम् ॥ ९ ॥ तेनासौ स्वविवेकेन स्वयमेव महामनाः ॥ प्रविचार्य चिरं चारु यत्सत्यं तदवाप्तवान् ॥ १० ॥ स्वयं प्राप्ते परे वस्तुन्यविश्रान्तमनाः स्थितः ॥ इदं वस्त्विति विश्वासं नासावात्मन्युपाययौ ॥ ११ ॥ केवलं विररामास्य चेतो विगतचापलम् ॥ भोगेभ्यो भूरि भंगेभ्यो धाराभ्य इव चातकः ॥ १२ ॥

अर्थ—उन्होंने जब संसारकी दशाको भलीभांति हृदयमें विचारा तब उनकोभी आपकेहीसमान ऐसाही विचार उत्पन्नहुआ ॥ ९ ॥ इन महाबुद्धिमान् शुकदेवजीने उसी अपने विवेकसेही उत्तमरीतिसे दीर्घकालतक विचारकरके, जो परमार्थमें सत्य आत्मतत्व है उसको जानलिया ॥ १० ॥ परमार्थवस्तु स्वयं प्राप्तहोनेपरभी ये अशान्तचित्तही रहे क्योंकि परमार्थ सत्यवस्तु आत्मतत्व यही है ऐसा विश्वास इनके आत्मामें नहींहुआ ॥ ११ ॥ अनेकक्लेशोंकेकारण जो संसारके विषयभोग हैं उनसे इनका चित्त ऐसा विरक्तहुआ जैसे जलकी धाराओंसे चातकका ॥ १२ ॥

एकदा सोऽमलप्रज्ञो मेरावेकांतसुस्थितम् ॥ पप्रच्छ पितरं भक्त्या कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ १३ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं मुने ॥ कथं च प्रशमं याति कियत्कस्य कदेति वा ॥ १४ ॥ इति पृष्टेन मुनिना व्यासेनाखिलमात्मजे ॥ यथावदमलं प्रोक्तं वक्तव्यं विदितात्मना ॥ १५ ॥ आज्ञासिषं पूर्वमेतदहमित्यथ तत्पितुः ॥ स शुकः शुभया बुद्ध्या न वाक्यं बव्हमन्यत ॥ १६ ॥

अर्थ—इन निर्म्मलबुद्धियुक्त शुकदेवजीने, मेरूपर्वतपर एकान्तमें शान्तचित्त होके स्थित कृष्णद्वैपायनमुनि अपने पितासे भक्तिपूर्वक यह पूछा कि ॥ १३ ॥ हे भगवन्! प्राणियोंको भ्रममें डालके ठगनेकेलिये कृत्रिमचेष्टाधारी यह संसाररूपी आडम्बर, किस देशकालमें और कैसे उत्पन्नहुआ? कब और किसरीतिसे इसकी शांति होती है ॥ १४ ॥ इसप्रकार पूछनेपर आत्मतत्वके वेत्ता व्यासमुनिने यथावत् निर्म्मलज्ञान जो कुछ वक्तव्य था पूर्णरीतिसे कहदिया ॥ १५ ॥ इस उपदेशके अनन्तर शुकदेवजीने अपने मनमें विचारा कि यह तो मैं प्रथमहीसे जानताथा, पिताजीने कोई अपूर्वबात नहींकही, इसलिये श्रद्धाकी बुद्धिसे आदरपूर्वक पिताके वचनका अधिक सन्मान नहींकिया ॥ १६ ॥

व्यासोऽपि भगवान् बुध्वा पुत्राभिप्रायमीदृशम् ॥ प्रत्युवाच पुनःपुत्रं नाहं जानामि तत्वतः ॥ १७ ॥ जनको नाम भूपालो विद्यते वसुधातले ॥ यथावद्वेत्त्यसौ वेद्यं तस्मात्सर्वमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ पित्रेत्युक्ते शुकः प्रायात्सुमेरोर्वसुधातले ॥ विदेहनगरीं प्राप जनकेनाभिपालिताम् ॥ १९ ॥ आवेदितोऽसौ याष्टीकैर्जनकाय महात्मने ॥ द्वारि व्याससुतो राजन् शुकोऽत्र स्थितवानिति ॥ २० ॥

अर्थ—व्यासजी भगवान्भी पुत्रके इस आशयको जानके बोले कि—हे पुत्र! मैं इससे अधिक यथार्थरूपसे कुछ नहींजानता ॥ १७ ॥ पृथ्वीपर जनकनामसे प्रसिद्ध एक राजाहै, वह जाननेयोग्य वस्तुको यथावत् जानताहै, उससे तुमको सबकुछ प्राप्तहोगा ॥ १८ ॥ पिताजीके ऐसेकहनेपर शुकदेवजी सुमेरूपर्वतसे पृथ्वीपर जनकजीसे पालित विदेहनगरीमें आये ॥ १९ ॥ ड्योढीदारोंने महात्मा जनकजीसे निवेदनकिया कि द्वारपर व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी खडेहैं ॥ २० ॥

जिज्ञासार्थं शुकस्यासावास्तामेवेत्यवज्ञया ॥ उक्त्वा बभूव जनकस्तूष्णीं सप्तदिनान्यथ ॥ २१ ॥ ततः प्रवेशयामास जनकः शुकमंगणम् ॥ तत्राहानि स सप्तैव तथैवावसदुन्मनाः ॥ २२ ॥ अथ प्रवेशयामास जनकोऽतःपुरं शुकम् ॥ राजा न दृश्यते तावदिति सप्त दिनानि च ॥ २३ ॥ तत्रोन्मदाभिः कान्ताभिर्भोजनैर्भोगसंचयैः ॥ जनको लालयामास शुकं शशिसमाननम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जनकजीनेभी शुकदेवजीका वृत्तान्त जानकर यह विचाराकि यदि शीघ्र इनको उपदेश दियाजायगा तो कदाचित् विनाक्लेश वस्तु प्राप्तहोनेसे अनादरसे इनकी शांति न हो, इसलिये उपेक्षासे द्वारपालोंसे कहा कि,

(१) व्यास और शुकदेव यहां पूर्वद्वापरमें उत्पन्न ग्रहणकरना उचित है, क्योंकि प्रतिद्वापरमें व्यासावतारका भेद प्रसिद्ध है.

अच्छा रहनेदो, ऐसा कहके शुकदेवजीके वैराग्यादि साधनोंकी, और विश्वासकी स्थिरताकी परीक्षाकेलिये सातदिनतक चुपरहे ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर जनकजीने शुकदेवजीको आँगनमें बुलवाया वहांपरभी शुकदेवजी तत्वज्ञानकी प्रबलइच्छासे अनादरको विस्मृतकरके सातदिनतक उदासीनही पडेरहे ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर जनकजीने शुकदेवजीको अन्तःपुर (रनवास) में बुलवाकर यह कहवायाकी भोजनादिपदार्थोंसे जबतक सातदिन आपकी पूजा न होगी तबतक राजा नहींमिलेंगे ॥ २३ ॥ वहांपर उत्तमस्त्रियोंसे, अनेकप्रकारके भोजनसे, और भोगोंके समूहोंसे जनकजीने चन्द्रमाकेसमानमुखवाले शुकदेवजीको ललचाया ॥ २४ ॥

ते भोगास्तानि दुःखानि व्यासपुत्रस्य तन्मनः ॥ नाजन्हुर्मंदपवना बद्धपीठमिवाचलम् ॥ २५ ॥ केवलं सुसमः स्वस्थो मौनी मुदितमानसः ॥ अतिष्ठत्स शुकस्तत्र संपूर्ण इव चन्द्रमाः ॥ २६ ॥ परिज्ञातस्वभावं तं शुकं स जनको नृपः ॥ आनीतं मुदितात्मानमवलोक्य ननाम ह ॥ २७ ॥ निःशेषितजगत्काय प्राप्ताखिलमनोरथ ॥ किमीप्सितं तवेत्याशु कृतस्वागतमाह तम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अन्तःपुरके उत्तम भोग और द्वार तथा आंगनके १४ दिनके दुःख, व्यासजीके पुत्रके चित्तको ऐसे न खींचसके जैसे मन्दवायु दृढमूलवाले बडे पर्वतको ॥ २५ ॥ भोग और अनादरमें एकरस इसीसे शान्तचित्त वाणी आदि इन्द्रियोंको वशमें कियेहुये, प्रसन्न मन, पूर्णचन्द्रमाके समान शुकदेवजी केवल वहां ठहरेरहे ॥ २६ ॥ इसप्रकार परीक्षा करनेसे, तत्वदर्शनपर्यन्त प्रतिष्ठाको प्राप्त विचार और वैराग्यादिकी परिपक्वता निपुण और प्रसन्नचित्त शुकदेवजी जब राजा जनकजीके सम्मुख बुलाएगये तब उन्होंने उनको प्रणाम किया और बोलेकि हे सम्पूर्णजगत्के कार्य्योंको समाप्तकरनेवाले, और सब मनोरथोंको प्राप्त होनेवाले शुकदेवजी ! आपको कौनसा पदार्थ अभीष्ट है जिसकेलिये आपने शीघ्र शुभागमन किया ॥ २८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो ॥ कथं प्रशममायाति यथावत्कथयाशु मे ॥ २९ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ जनकेनति पृष्टेन शुकस्य कथितं तदा ॥ तदेव यत्पुरा प्रोक्तं तस्य पित्रा महात्मना ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ स्वयमेव मया पूर्वमेतज्ज्ञातं विवेकतः ॥ एतदेव च पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥ ३१ ॥ भवताप्येष एवार्थः कथितो वाग्विदां वर ॥ एष एव च वाक्यार्थः शास्त्रेषु परिदृश्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—शुकदेवजी बोले कि—हे गुरो ! यह संसाररूपी आडम्बर कैसे उत्पन्नहुआ ! और किसप्रकार शान्तिको प्राप्तहोताहै ! यह मुझसे शीघ्र यथावत् कृपाकरके कहिये ॥ २९ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि—इसप्रकार पूछनेपर जनकजीने वही बात कही, जो शुकदेवजीके पिता महात्मा व्यासजीनें प्रथम कहीथी ॥ ३० ॥ श्रीशुकजी बोले कि—इस बातको आपही मैंने विचारसे जानलियाथा, और पिताजीसे जब पूछा तो उन्होंनेभी अनेकउदाहरणों और युक्तियोंसे इसीको व्याख्यानकरके वर्णनकियाथा ॥ ३१ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ आपनेभी यही पदार्थ कहा, और उपनिषदोंके महावाक्योंकाभी यही तात्पर्य है, तथा वेदान्तादिशास्त्रोंमेंभी यही देखपडताहै ॥ ३२ ॥

यथायं स्वविकल्पोत्थः स्वविकल्पपरिक्षयात् ॥ क्षीयते दग्धसंसारो निःसार इति निश्चयः ॥ ३३ ॥ तत्किमेतन्महाबाहो सत्यं ब्रूहि ममाचलम् ॥ त्वत्तो विश्रान्तिमाप्नोमि चेतसा भ्रमता जगत् ॥ ॥ ३४ ॥ जनक उवाच ॥ ॥ नातः परतरः कश्चिन्निश्चयोऽस्त्यपरो मुने ॥ स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनः श्रुतम् ॥ ३५ ॥ अविच्छिन्नचिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत् ॥ स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पश्च मुच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—कि यह संसाररूपी आडम्बर विकल्पसे उत्पन्नहुआहै, और विकल्पके क्षय होनेसेही मूलसहित यह दुष्टसंसार सर्वथा नष्टहोजाताहै, अज्ञानोपहितआत्मामें नानाप्रकारके संसारकी कल्पनाका नाम विकल्पहै, आत्मतत्ववेत्ताओंका यह निश्चयहै ॥ ३३ ॥ सो हे महाबाहो ! मैंने यह जो स्वयं विचाराहै यदि सत्य है तो मेरे हृदयमें संदेहरहित जिसप्रकार अचल स्थितहो वैसा उपदेश दीजिये, जिससे यह तत्व है अथवा अन्य है ऐसे भ्रमदायकचित्तसे भ्रमताहुआ मैं आपके वचनमें विश्वासकरके शान्ति पाऊं ॥ ३४ ॥ जनकजी बोले कि—जो आपने स्वयं जाना, और पुनः उसीको गुरूके मुखसेभी सुना, हे मुने ! इससे अधिक कोई निश्चयकरनेयोग्य पदार्थ नहीं है ॥ ३५ ॥ अखण्ड एकरस चिदात्मा पुरुषकेसिवाय इससंसारमें अन्य कुछ नहीं है, अपनेही संकल्पसे वह बद्ध है, और संकल्पके न होनेसे मुक्तहोताहै ॥ ३६ ॥

(१) इसका अर्थ प्रथम व्याख्यासहित लिखचुकेहै.

तेन त्वया स्फुटं ज्ञातं ज्ञेयं यस्य महात्मनः ॥ भोगेभ्यो विरतिर्जाता दृश्यात्प्राक् सकलादिह ॥ ३७॥ तव बाल महावीर मतिर्विरतिमागता ॥ भोगेभ्यो दीर्घरोगेभ्यः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३८ ॥ न तथा पूर्णता जाता सर्वज्ञानमहानिधेः ॥ तिष्ठतस्तपसि स्फारे पितुस्तव यथा तव ॥ ३९ ॥ व्यासादधिक एवाहं व्यासशिष्योऽसि तत्सुतः ॥ भोगेच्छातानवेनेह मत्तोऽप्यत्यधिको भवान् ॥ ४० ॥

अर्थ—इसलिये आपने स्पष्टरीतिसे ज्ञेयपदार्थ जानलिया, क्योंकि आप महात्माको इस निश्चयदशामें दृश्यमात्र और सम्पूर्णभोगोंसे सबसे प्रथम वैराग्य उत्पन्नहुआ ॥ ३७ ॥ हे महावीर हे बाल! (अर्थात् यद्यपि आप तथा आपकी बुद्धि अभी बालरूपहै परन्तु विषय त्यागनेसे महावीरहैं) आपकी बुद्धि रोगरूपीभोगोंसे विरक्त होगई इसलिये अब अधिक क्या सुनना चाहतेहो ॥ ३८ ॥ सबज्ञानके समुद्ररूप, और उग्रतपमें स्थित जो आपके पिता हैं उनकी ऐसी पूर्णता नहींहुई जैसी तुमारी हुई है ॥ ३९ ॥ इससमय मैं व्याससेभी अधिकहुं, क्योंकि व्यासके पुत्र और शिष्य तुम मेरे शिष्यहो, और भोगकी इच्छाके कृशहोनेसे तुम मुझसेभी अतिअधिक हो ॥ ४० ॥

प्राप्तं प्राप्तव्यमखिलं भवता पूर्णचेतसा ॥ न दृश्ये पतसि ब्रह्मन् मुक्तस्त्वं भ्रांतिमुत्सृज ॥ ४१ ॥ अनुशिष्टः स इत्येवं जनकेन महात्मना ॥ अतिष्ठत्स शुकस्तूष्णीं स्वच्छे परमवस्तुनि ॥ ४२ ॥ वीतशोकभयायासो निरीहश्छिन्नसंशयः ॥ जगाम शिखरं मेरोः समाध्यर्थमनिन्दितम् ॥ ४३ ॥ तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना ॥ दश स्थित्वा शशामासावात्मन्यस्नेहदीपवत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! पूर्णचित्तसे आपने जो कुछ प्राप्तहोनेकी वस्तु थी वह सबकुछ प्राप्तकरली क्योंकि आप बाह्यविषयोंमें नहींगिरते और बाह्यपदार्थोंमें गिरनाही संसारमें गिरनाहै इसलिये तुम मुक्तहो, और जो कुछ तुमने जानाहै इससे ज्ञेयवस्तु कुछ अन्यहै, इस भ्रमको त्यागो ॥ ४१ ॥ अखण्ड एकरस चिदात्मा तुम हो इसप्रकार महात्माजनकसे शिक्षित शुकदेवजी, दृश्यकी मलिनतासे शून्य जो आत्मतत्त्व है उसमें मौन होके स्थितहोगये ॥ ४२ ॥ शोक भय खेद और चेष्टासे रहित, तथा संशयशून्य शुकदेवजी, समाधिके अनुकूल देवताओंके निवासस्थान और अनिन्दितमेरूके शिखरपर गये ॥ ४३ ॥ वहांपर १० दश सहस्रवर्ष निर्विकल्पसमाधिमें स्थितरहके स्नेहरहितदीपककेसमान आत्मामें शान्तहोगये, अर्थात् विदेहमुक्त होगये ॥ ४४ ॥

व्यपगतकलनाकलंकशुद्धः स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ ॥
सलिलकणइवाम्बुधौ महात्मा विगलितवासनमेकतां जगाम ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शुकनिर्वाणंनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—दृश्यकीओर अभिमुखतारूप कलङ्क और उसका मूलभूत अज्ञानके नष्ट होनेसे शुद्धरूप, महात्मा शुकदेवजी पुण्यपापसे रहित और प्रारब्धकर्म्मके क्षयहोनेसे शुद्ध देहाभिमानशून्य होकर परमपावन आत्मवस्तुमें एकरूप ऐसे होगये जैसे जलकण समुद्रमें एकरूप होजातेहैं ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शुकनिर्व्याणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

रामचन्द्रजीके उपदेशकेलिये बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने वसिष्ठकी प्रार्थना की उनका उत्साह इस २ रे सर्गमें वर्णनकियागयाहै.

श्रीविश्वामित्र उवाच–तस्य व्यासतनूजस्य मलमात्रोपमार्जनम् ॥ यथोपयुक्तं ते राम तावदेवोपयुज्यते ॥ १ ॥ ज्ञेयमेतेन विज्ञातमशेषेण मुनीश्वराः ॥ स्वदन्तेऽस्मै न यद्भोगा रोगा इव सुमेधसे ॥ २ ॥ ज्ञातज्ञेयस्य मनसो नूनमेतद्धि लक्षणम् ॥ न स्वदन्ते समग्राणि भोगवृन्दानि यत्पुनः ॥ ३ ॥ भोगभावनया याति बन्धो दार्ढ्यमवस्तुजः ॥ तयोपशान्तया याति बन्धो जगति तानवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीविश्वामित्रजी बोले–हे रामचन्द्रजी! उन व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीके केवल मलशोधनकेलिये जो उपदेश जिसप्रकार युक्तियोंसे उपयुक्त था उतनेही उपदेशकी आपकेलियेभी आवश्यकताहै ॥ १ ॥ विश्वामित्रजी बोले–हे मुनीश्वरो! रामचन्द्रजीने संपूर्णरूपसे ज्ञेयवस्तुको जानलिया, क्योंकि बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीको रोगकेसमान

भोग नहीं रूचते ॥ २ ॥ जो मन ज्ञेयपदार्थको जानगया है उसका निश्चयकरके यही लक्षण है कि पुनः उसको भोगसमूह नहींरूचते ॥ ३ ॥ भोगकी वासनासें अविद्याजनित बंध दृढताको प्राप्तहोताहै, और भोगकी वासना शान्तहोनेसें संसारका बन्धभी दुर्बलताको प्राप्तहोजाताहै ॥ ४ ॥

वासनातानवं राम मोक्ष इत्युच्यते बुधैः ॥ पदार्थवासनादार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥ स्वात्मतत्वाभिगमनं भवति प्रायशो नृणाम् ॥ मुने विषयवैरस्यं कदर्थाद्रुपजायते ॥ ६ ॥ सम्यक् पश्यति यस्तज्ज्ञो ज्ञातज्ञेयः स पंडितः ॥ न स्वदन्ते बलादेव तस्मै भोगा महात्मने ॥ ७ ॥ यशःप्रभृतिना यस्मै हेतुनैव विना पुनः ॥ भुवि भोगा न रोचन्ते स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी! वासनाओंका क्षीणहोनाही पण्डितोंने मोक्ष कहाहै और पदार्थोंमें वासनाका दृढहोनाही बन्ध कहाहै ॥ ५ ॥ आत्मतत्त्वका किंचित् ज्ञान प्रायः मनुष्योंको अल्पश्रवण आदिसेंभी होजाताहै. परन्तु विषयसें वैराग्य बडेक्लेशसें होताहै ॥ ६ ॥ रागद्वेषादिरहित जो आत्माको देखताहै वही तज्ज्ञ अर्थात् तत्त्वज्ञानजन्यअविद्याके नाशरूपी फलका भागी, ज्ञातज्ञेय और पण्डित कहाताहै, और उसमहात्माको बलात्कार करके भोगोंमें रुचि नहीं होती ॥ ७ ॥ यश, प्रतिष्ठा, और पूजा लाभादि किसीकारणविना सांसारिकभोग जिसको नहीं रूचते वही पृथ्वीपर जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ८ ॥

ज्ञेयं यावन्न विज्ञातं तावत्तावन्न जायते ॥ विषयेष्वरतिर्जन्तोर्मरुभूमौ लता यथा ॥९॥ अतएव हि विज्ञातज्ञेयं विद्धि रघूद्वहम् ॥ यदेनं रंजयन्त्येता न रम्या भोगभूमयः ॥ १० ॥ रामो यदन्तर्जानाति तद्वस्त्वित्यत्येव सन्मुखात् ॥ आकर्ण्य चित्तविश्रांतिमाप्नोत्येव मुनीश्वराः ॥ ११ ॥ केवलं केवलीभावविश्रांतिं समपेक्षते ॥ रामबुद्धिः शरल्लक्ष्मीः खलु विभ्रमणं यथा ॥ १२ ॥

अर्थ—जबतक ज्ञेयपदार्थ नहींजानाजाता तबतक विषयोंमें अरुचिका होना वैसाही असम्भवहै जैसे मरुभूमिमें लताका होना ॥ ९ ॥ इसीकारणसें रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको ज्ञातज्ञेय समझो, क्योंकि रमणीयविषय इनको आकर्षण नहींकरसक्ते ॥ १० ॥ हे मुनीश्वरो! श्रीरामचन्द्रजी जो अन्तःकरणमें जानते हैं वही सद्वस्तु है इनको ऐसे सज्जनके जैसे वसिष्ठजी हैं उनके मुखसे सुनके चित्तकी विश्रान्ति अवश्य प्राप्तहोगी, क्योंकि स्वयं ज्ञातवस्तुमें आपके मुखसे श्रवणकरनेसे विश्वास दृढ होजाताहै ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि केवल द्वैतनिरासपूर्वक अद्वैतआत्मतत्वमें विश्रान्तिमात्रकी अपेक्षा ऐसे रखती है जैसे शरदृतुकी शोभा केवल मेघरहित निर्मलआकाशकी ॥ १२ ॥

अत्रास्य चित्तविश्रांत्यै राघवस्य महात्मनः ॥ युक्तिं कथयतु श्रीमान् वसिष्ठो भगवानयम् ॥ १३ ॥ रघूणामेष सर्वेषां प्रभुः कुलगुरुः सदा ॥ सर्वज्ञः सर्वसाक्षी च त्रिकालामलदर्शनः ॥ १४ ॥ वसिष्ठ भगवन्पूर्वं कच्चित्स्मरसि यत्स्वयम् ॥ आवयोर्वैरशान्त्यर्थं श्रेयसे च महाधियाम् ॥ १५ ॥ निषधाद्रेर्मुनीनां च सानौ सरलसंकुले ॥ उपदिष्टं भगवता ज्ञानं पद्मभुवा बहु ॥ १६ ॥

अर्थ—यहांपर महात्मा रामचन्द्रजीके चित्तकी विश्रान्तिकेलिये श्रीमान् भगवान् वसिष्ठजी युक्तियोंको कहैं ॥ १३ ॥ सब शास्त्रोंके जाननेवाले योगबलसे सबपदार्थोंके साक्षात् द्रष्टा, तीनोंकालमें मोहके अज्ञानसेरहित अमलदर्शनवाले, ये भगवान् वसिष्ठजी रघुवंशियोंके प्रभु और सदाके कुलगुरु हैं अर्थात् इनकेसिवाय अन्य कोई इनका गुरु नहींहोसक्ता ॥ १४ ॥ हे वसिष्ठ भगवन्! क्या यह आपको स्मरणहै कि हम दोनोंके वैरकी शान्तिके लिये और महाबुद्धिमान् मुनियोंके कल्याणके अर्थ, सरलनामवृक्षोंसे पूर्ण निषधपर्वतके शिखरपर भगवान् ब्रह्माजीनें बहुत ज्ञानोपदेश कियाथा ॥ १५ ॥ १६ ॥

येन युक्तिमता ब्रह्मन् ज्ञानेनेयं हि वासना ॥ सांसारी नूनमायाति शमं श्यामेव भास्वता ॥ १७ ॥ तदेव युक्तिमज्ज्ञेयं रामायांतेनिवासिने ॥ ब्रह्मन्नुपदिशाशु त्वं येन विश्रांतिमेष्यति ॥ १८ ॥ कदर्थना च नैवैषा रामो हि गतकल्मषः ॥ निर्मले मुकुरे वक्त्रमयत्नेनैव बिम्बति ॥ १९ ॥ तज्ज्ञानं स च शास्त्रार्थस्तद्वैदग्ध्यमनिन्दितम् ॥ सच्छिष्याय विरक्ताय साधो यदुपदिश्यते ॥ २० ॥

अर्थ— हे ब्रह्मन् जिसयुक्तिसहित ज्ञानसे यह संसारकी वासना निश्चयकरके ऐसे नष्टहोजाय जैसे सूर्यसे रात्रि नष्टहोतीहै उसीयुक्तिसे ज्ञेयवस्तु अपने शिष्य रामचन्द्रजीको आप शीघ्र उपदेशकरें जिससे ये विश्रामको प्राप्तहों ॥ १७ ॥ १८ ॥ निष्फल अधिकप्रयास इसमें नहींहोगा, क्योंकि रामचन्द्रजी पापरहितहैं. और निर्म्मलदर्पणमें मुखका

प्रतिबिम्ब विनायत्नही पडताहै ॥ १९ ॥ हे साधो ! वही उत्तम ज्ञान है वही उत्तमशास्त्रका अर्थ है, और निन्दारहित उत्तम पाण्डित्य है जो विरक्त और उत्तमशिष्यको उपदेश कियाजाय ॥ २० ॥

अशिष्यायाविरक्ताय यत्किंचिदुपदिश्यते ॥ तत्प्रयात्यपवित्रत्वं गोक्षीरं श्वदृताविव ॥ २१ ॥ वीतरागभयक्रोधा निर्माना गलितैनसः ॥ वदन्ति त्वादृशा यत्र तत्र विश्राम्यतीह धीः २२ ॥ इत्युक्ते गाधिपुत्रेण व्यासनारदपूर्वकाः ॥ मुनयस्ते तमेवार्थं साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २३ ॥ अथोवाच महातेजा राज्ञः पार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ब्रह्मेव ब्रह्मणः पुत्रो वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ २४ ॥

अर्थ—अशिष्य और अविरक्तको जो कुछ उपदेश कियाजाताहै वह जैसे गौका दुग्ध कुत्तेके चर्म्ममें अपवित्र होजाताहै वैसाही अपवित्र होजाताहै ॥ २१ ॥ वीतराग, क्रोध और भयसे वर्जित, अभिमानशून्य, और निष्पाप आपकेसदृश महात्मालोग जहांपर इस आत्मतत्वके विषयमें उपदेश करतेहैं वहां अवश्य बुद्धि विश्राम पाती है ॥ २२ ॥ गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीके ऐसे कहनेपर व्यास और नारद आदि सबमुनियोंने साधु २ कहके उसी बातकी पुष्टि की ॥२३॥इसके अनन्तर राजाके निकट बैठेहुये ब्रह्माजीके समान ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् श्रीवसिष्ठजी मुनि बोले॥२४॥

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ मुने यदादिशसि मे तदविघ्नं करोम्यहम् ॥ कः समर्थः समर्थोऽपि सतां लंघयितुं वचः ॥ २५ ॥ अहं हि राजपुत्राणां रामादीनां मनस्तमः ॥ ज्ञानेनापनयाम्याशु दीपेनेव निशातमः ॥ २६ ॥ स्मराम्यखण्डितं सर्वं संसारभ्रमशांतये ॥ निषधाद्रौ पुरा प्रोक्तं यज्ज्ञानं पद्मजन्मना ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इति निगदितवानसौ महात्मा परिकरबंधगृहीतवक्त्रतेजाः ॥ अकथयदिदमज्ञतोपशांत्यै परमपदैकविबोधनं वसिष्ठः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—हे मुने ! जो आप मुझे आज्ञा देतेहैं उसे मैं निर्विघ्नतापूर्वक करूंगा, क्योंकि कार्यकरनेमें समर्थ होके महात्माओंके वचनको उल्लंघन कौन करसक्ताहै ॥ २५ ॥ मैं ज्ञानसे राम आदि राजपुत्रोंके मनका अज्ञान ऐसे दूरकरूंगा जैसे दीपकसे रात्रिका अन्धकार ॥ २६ ॥ संसारके भ्रमकी शान्तिकेलिये निषधपर्वतपर ब्रह्माजीने जो प्रथम कहाथा वह संपूर्णरूपसे मुझे स्मरणहै ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–जिसप्रकार भूषण वस्त्र और अस्त्र आदि सामग्रीसे युक्त उत्साहसहित शूर वा नट शोभित होताहै, इसीप्रकार शिष्योंके प्रबोधार्थ, दृष्टान्त, उपाख्यान, प्रमाण, तर्क, और, युक्ति, आदिके अनुसन्धान और उत्साहादिरूप सामग्रीसंयुक्त और वक्ताके तेजसहित महात्मा वसिष्ठजीने ऐसी प्रतिज्ञा की, और अनन्तर संसारके अज्ञानकी शान्तिकेलिये आत्मतत्वरूपपरमपदमें एकताबोधक शास्त्र कथनकिया ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यंनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

स्थूलादि जगत्का आरोप और उसके अपवादसे प्रत्यक् चिदात्मारूप विषय, रामचन्द्रजीकी शंकाके दूरकरनेके मिषसें इस ३ रे सर्गमें सिद्धकियाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ पूर्वमुक्तं भगवता यज्ज्ञानं पद्मजन्मना ॥ सर्गादौ लोकशांत्यर्थं तदिदं कथयाम्यहम् ॥ १ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ कथयिष्यसि विस्तीर्णां भगवन्मोक्षसंहिताम् ॥ इमं तावत् क्षणं जातं संशयं मे निवारय ॥ २ ॥ पिता शुकस्य सर्वज्ञो गुरुर्व्यासो महामतिः ॥ विदेहमुक्तो न कथं कथं मुक्तः सुतोऽस्य सः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ परमार्कप्रकाशांतस्त्रिजगत्त्रसरेणवः ॥ उत्पत्योत्पत्य लीना ये न संख्यामुपयांति ते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–पूर्वसृष्टिकी आदिमें संसारकी शान्तिकेलिये ब्रह्माजीने जो ज्ञान कथनकियाथा, वही मैं कहताहुं ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! आप विस्तारयुक्त मोक्षसंहिता तो अवश्य कहैंगेपरन्तु उसकेपूर्व इसीक्षणमें मुझे एकसंशय उत्पन्न हुआहै उसको निवारण कीजिये ॥ २ ॥ शुकदेवजीके पिता सर्वज्ञ महामति गुरु

व्यासजी विदेहमुक्त क्यों न हुये? और उनके पुत्र शुकदेवजी कैसे होगये ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–परमात्मारूपी सूर्यके प्रकाशमें अनन्तकोटि ब्रह्मांड उत्पन्न और स्थितहो होकर जो लीनहोगये हैं उनकी गणना कदापि नहींहोसक्ती ॥४॥

वर्त्तमानाश्च याः संति त्रैलोक्यगणकोटयः ॥ शक्यंते ताश्च संख्यातुं नैव काश्चन केनचित् ॥ ५ ॥ भविष्यंति परामभोधौ जगत्सर्गतरंगकाः ॥ तांश्च वै परिसंख्यातुं सा कथैव न विद्यते ॥ ६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ या भूता या भविष्यन्त्यो जगत्सर्गपरंपराः ॥ तासां विचारणा युक्ता वर्त्तमानास्तु का इव ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ तिर्यक्पुरुषदेवाद्यैर्यो नाम स विनश्यति ॥ यस्मिन्नेव प्रदेशेऽसौ तदैवेदं प्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—और वर्तमानकालमें जो त्रिलोकसमूहोंकी अनन्तकोटि हैं उनमें कोईभी किसीसे नहीं गिनीजासक्ती ॥ ३५ ॥ परमात्मारूपीसमुद्रमें जो अनन्तजगत्‌रूपी तरंग उत्पन्नहोंगे उनकी गणनाकरनेकी तो कथाही क्या? इससे यह वार्ता सिद्धहुई कि तीनों कालमें अनन्तजगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, और, प्रलयका आधारभूत जो परमात्मा है उसमें जगत्‌का अध्यारोप है ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले–संप्रति भूतभविष्यत्सृष्टिका विचारही युक्त है वर्तमानकी क्या आवश्यकता है भावार्थ यहहै कि अनन्तकोटिब्रह्माण्ड जो त्रिकालमें होतेहैं वे चिद्रूप हैं यह आपका आशय है ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–पशु पक्षी मनुष्य और देवताआदि प्राणियोंके समूहके मध्यमें जो जिसदेश और कालमें मरणको प्राप्त होताहै, वह प्रत्यक्चेतन वा आत्मा उसी देशकालमें वक्ष्यमाण तीनोंप्रकारके जगत्‌को देखताहै ॥ ८ ॥

आतिवाहिकनाम्नान्तःस्वहृद्येव जगत्त्रयम् ॥ व्योम्नि चित्तशरीरेण व्योमात्मानुभवत्यजः ॥ ९ ॥ एवं मृता म्रियंते च मरिष्यन्ति च कोटयः ॥ भूतानां यां जगंत्याशासमुदितानि पृथक् पृथक् ॥ १० ॥ संकल्पनिर्माणमिव मनोराज्यविलासवत् ॥ इन्द्रजालामाल इव कथार्थप्रतिभासवत् ॥ ११ ॥ दुर्वातभूकंप इव त्रस्तबालपिशाचवत् ॥ मुक्तालीवामले व्योम्नि नौस्पंदतरुयानवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—और वह किस सामग्री और किसस्वरूपसे देखताहै सो कहतेहैं, धूम और अर्चिरादिमार्गोंके अभिमानी देवताओंकेद्वारा (उत्तरायण और दक्षिणायनमार्ग) परलोकप्राप्तिके साधक आतिवाहिक (लिंग) नामवाले चित्तरूपशरीरसे, अर्थात् चित्त,अहङ्कार,मन,बुद्धि,प्राण और पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रियरूप वासनामय सूक्ष्मशरीरसे अपने हृदयरूपी दहराकाशमें,जन्मादिरहित चिदात्मा तीनोंप्रकारके जगत्‌को अनुभव करताहै.अर्थात् भ्रान्तिसे वासनामय वह वह शरीर प्राप्त होताहै, यथार्थमें वह चिदाकाश स्वरूप आत्मा एकरस जन्ममरणादिशून्य है ॥ ९ ॥ इसप्रकार प्राणियोंकी अनन्तकोटि मरगई, मरती है और मरेगी, यह नानाविध दृश्यजगत् मरणकालमें जिस २ वासनामें अपने कर्मके परिपाकानुसार लीनथा उसी २ वासनाके अनुसार देव, मनुष्य, और पशु पक्षी आदि पृथक् २ योनिभेदसे प्रगट होरहाहै, यदाभवन्ति तदाभवन्ति "यंयं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्" (मृत्युकालमें जैसी वासना होती है वैसीही गति मिलती है) इत्यादि श्रुतिस्मृति इसमें प्रमाणहैं ॥ १० ॥ संकल्पकी रचनाके और मनोराज्यके विलासके इन्द्रजालरूपी मालाके स्थानके और कथाके अर्थके भानके ॥ ११ ॥ और वातरोगमें भूकम्पकी प्रतीतिके और निर्म्मल आकाशमें मोतीके समूहके और नौकापर चढे पुरुषोंको वृक्षोंके गमनकी प्रतीतिके ॥ १२ ॥

स्वप्नसम्वित्तिपुरवत् स्मृतिजातखपुष्पवत् ॥ जगत्संसरणं स्वांतर्मृतोऽनुभवति स्वयम् ॥१३॥ तत्रातिपरिणामेन तदेव घनतां गतम् ॥ इह लोकोऽयमित्येव जीवाकाशे विजृंभते ॥ १४ ॥ पुनस्तत्रैव जन्मेहामरणाद्यनुभूतिमान् ॥ परं लोकं कल्पयति मृतस्तत्र तथा पुनः ॥ १५ ॥ तदंतरेऽन्ये पुरुषास्तेषामंतस्तथेतरे ॥ संसार इति भांतीमे कदलीदलपीठवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—और स्वप्नमें नगरदर्शनके और स्मरणसे कल्पित आकाश पुष्पके समान इस जगत्‌की गति है, मरण और उत्पत्तिद्वारा आत्मा अपनेही स्वरूपमें इसको अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ स्थूलदशामें अधिक परिचय होनेसे, वही सूक्ष्मरूप पंचीकरणसे दृढताको प्राप्तहोगयाहै, इस चिदाकाशमें यह संसार अपना रूप बदलता रहताहै ॥ १४ ॥ पुनः उसी चिदाकाशमें जन्मकी कल्पना करताहै और जन्मके उत्तर मरणपर्यंत चेष्टा किया करताहै. और मरण आदिका अनुभव करताहै, तथा मरके पुनः परलोककी कल्पना करताहै ॥ १५ ॥ वासनासे एकपुरुषमें दूसरे देह उत्पन्न होतेहैं और उन पुरुषोंकी वासनाके मध्यमें दूसरे, इसीप्रकार इस संसारमें केलेके छिलके समान ये प्राणीभी हैं ॥ १६ ॥

न पृथ्व्यादिमहाभूतगणा न च जगत्क्रमाः ॥ मृतानां संति तत्रापि तथाऽप्येषां जगद्भ्रमाः ॥ १७ ॥ अविद्यैव ह्यनंतेयं नानाप्रसरशालिनी ॥ जडानां सरिदादीर्घा तरत्सर्गतरंगिणी ॥ १८ ॥ परमार्था-

बुधौ स्फारे रामसर्गतरंगकाः ॥ भूयो भूयोऽनुवर्तंते त एवान्ये च भूरिशः ॥ १९ ॥ सर्वतः सदृशाः केचित् कुलक्रममनोगुणैः ॥ केचिदर्द्धेन सदृशाः केचिच्चातिविलक्षणाः ॥ २० ॥

अर्थ—यद्यपि न पृथ्वी आदि महाभूत हैं, न जगत्का क्रम है, तथापि मृत और उत्पन्न प्राणियोंको जगत्का भ्रम है ॥१७॥ अविवेकी पुरुषोंके लिये यह अनन्त अविद्याही नानाप्रकारकी गति धारणकरके ऐसे शोभितहोरही है, जैसे चंचलतरंगोंसे नदी ॥१८॥ हे रामचन्द्रजी! परमात्मारूपी महासमुद्रमें अनन्तसृष्टिरूपी तरंग हैं और अनेक दूसरे पुनः उत्पन्न होतेहैं और नष्ट होतेहैं ॥ १९ ॥ कोई २ कुलकी रीति, मन और गुण आदिसे सर्वथा सदृश होतेहैं, और कोई अर्द्धसदृश होतेहैं और कोई सर्वथा विलक्षण होतेहैं ॥ २० ॥

इमं व्यासमुनिं तत्र द्वात्रिंशं संस्मराम्यहम् ॥ यथा सम्भवविज्ञानदृशा संदृश्यमानया ॥ २१ ॥ द्वादशाल्पधियस्तत्र कुलाकारेहितैः समाः ॥ दश सर्वे समाकाराः शिष्टाः कुलविलक्षणाः ॥ २२ ॥ अद्याप्यन्ये भविष्यंति व्यासवाल्मीकयस्तथा ॥ भृग्वंगिरः पुलस्त्याश्च तथैवाप्यन्यथैव च ॥ २३ ॥ नराः सुरर्षिदेवानां गणाः संभूय भूरिशः ॥ उत्पद्यंते विलीयंते कदाचिच्च पृथक् पृथक् ॥ २४ ॥

अर्थ—पुराण और भारत आदि रचनाकी प्रसिद्धिसे, यथोचितजन्मसे, शास्त्रादि विज्ञान, और ब्रह्मविद्या आदि लक्षणसे, उन व्यासकी सृष्टियोंमें इन व्यासमुनिको मैं बत्तीसवां जानताहुं ॥ २१ ॥ १ ब्रह्मविद् २ ब्रह्मविद्वर, ३ ब्रह्मविद्वरीयान् और ४ ब्रह्मविद्वरिष्ठ इन प्रसिद्ध चारभेदोंमें चतुर्थस्थानतक न पहुंचनेसे १२ बारह व्यास अल्पबुद्धि, और कुल आकार और अधिकारिकचेष्टामें समानहुए. और १० दश व्यास सर्वथा अपने कुलक्रमसे पूर्व आकारके समानहुए. और शेष सर्वथा कुलके विलक्षण हुए ॥ २२ ॥ और आगेभी व्यास, वाल्मीकि, भृगु, अंगिरा, और पुलस्त्य, आदि ये सबऋषि पूर्वप्रकारके और उनसे विलक्षणप्रकारकेभी होंगे ॥ २३ ॥ मनुष्य, देवर्षि, और देवताओंके गण, ये सब अनेकवार साथ और पुनः पृथक् २ उत्पन्नहोकर नष्टहोतेरहतेहैं ॥ २४ ॥

ब्राह्मी द्वासप्रतिस्त्रेता आसीदस्ति भविष्यति ॥ स एवान्यश्च लोकाश्च त्वं चाहं चेति वेद्म्यहम् ॥२५॥ क्रमेणास्य मुनेरित्थं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ संलक्ष्यतेऽवतारोऽयं दशमो दीर्घदर्शिनः ॥ २६ ॥ अभूम व्यासवाल्मीकियुक्ता वयमनेकशः ॥ अभूम वयमेवेमे बहुशश्च पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥ अभूम वयमेवेमे सदृशा इतरे विदः ॥अभूम वयमेवेमे नानाकाराः समाशयाः ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्राह्मकल्पका अवयवभूत त्रेतायुग प्रतिब्राह्मकल्पमें था. और अब इस कल्पमें है, और आगेके कल्पमेंभी होगा, तुम राम और हम वसिष्ठ पूर्वप्रकारके और उससे विलक्षण हुए और होंगे ॥ २५ ॥ सम्मुखस्थित अद्भुतकर्मवाले दीर्घदर्शी इन व्यासमुनिके जीवका क्रमसे समानआकारवाला यह दशम अवतारहै ॥ २६ ॥ कई व्यास, वाल्मीकिसहित हमलोग एकहीसमयमें उत्पन्नहुए, और अनेकवार येही हमलोग भिन्न २ समयमेंभी हुए ॥ २७ ॥ हम सब कभी समान आकार और ज्ञानवान् हुए, और कभी असमान आकार और ज्ञानवान् हुए तथा कभी २ हम नानाप्रकारके आकारवाले और समान ज्ञानवाले हुए ॥ २८ ॥

भाव्यमद्याप्यनेनेह ननु वाराष्टकं पुनः ॥ भूयोऽपि भारतं नाम सेतिहासं करिष्यति ॥ २९ ॥ कृत्वा वेदविभागं च नीत्वानेन कुलप्रथाम् ॥ ब्रह्मत्वं च तथा कृत्वा भाव्यं वै देहमोक्षणम् ॥ ३० ॥ वीतशोकभयःशांतनिर्वाणो गतकल्पनः ॥ जीवन्मुक्तो जितमना व्यासोऽयमिति वर्णितः ॥ ३१ ॥ वित्तबंधुवयःकर्मविद्याविज्ञानचेष्टितैः ॥ समानि संति भूतानि कदाचिन्न तु तानि तु ॥ ३२ ॥

अर्थ—फिरभी आठवार येही व्यास उत्पन्नहोंगे, और पुनः येही इतिहाससहित भारतकी रचना करेंगे ॥२९॥ वेदोंका विभाग करके, और अपने वंश वा भरतवंशकी प्रख्याति विस्तारकरके, अनन्तर हिरण्यगर्भपदका अधिकार करके विदेहमुक्त होंगे ॥ ३० ॥ शोक और भयसे शून्य, शान्त और बन्धनरहित, कल्पनासे वर्जित, जीवन्मुक्त, और मनको जीतनेवाले ये व्यास वर्णनकिये गयेहैं ॥ ३१ ॥ धन, बन्धु, अवस्था, कर्म्म, विद्या, विज्ञान, और चेष्टा, ये जीवोंके कभी समान होतेहैं और कभी भिन्न भिन्न ॥ ३२ ॥

क्वचित्सर्गशतैस्तानि भवंति न भवंति वा ॥ कदाचिदपि मायेयमित्थमंतविवर्जिता ॥ ३३ ॥ यच्छतीयं विपर्यासं भूरि भूतपरंपरा ॥ बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाणः पुनः पुनः ॥ ३४ ॥ तेनैव सन्निवेशेन तथान्येन पुनः पुनः ॥ सर्गाकाराः प्रवर्त्तंते तरंगाः कालवारिधेः ॥ ३५ ॥ आश्वस्तांतःकरणः शांतविकल्पः स्वरूपसारमयः ॥ परमशमामृततृप्तस्तिष्ठति विद्वान्निरावरणः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे भूयोभूयः सर्गानुवर्णनंनाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—ये धन आदि सैकडों सृष्टियोंमें होते हैं और कभी नहींहोते, इसीप्रकार यह ईश्वरकी अनन्तमाया अपना कार्य्य करतीहै ॥ २३ ॥ यह जीवोंकी परम्परा प्रस्थ आदिमापसे पुनः २ मापीहुई धान्यराशिके सदृश, पूर्वक्रमसे कुछ न कुछ विपर्यय (उलटी पट्टी) होती रहतीहै ॥ २४ ॥ उसीक्रमसे अथवा अन्यक्रमसे सृष्टिके आकारमें कालरूपी समुद्रके तरंग पुनः २ उत्पन्न और नष्टहुआ करतेहैं ॥ २५ ॥ इससंसारके अनेक परिवर्तन होनेपरभी आत्मतत्वका यथार्थवेत्ता विवेकी पुरुष, समाहितचित्त, शान्तविकल्प, चेतनरूप आत्मतत्त्वमय, परमशान्तियुक्त, और देहादिकमें आत्माभिमानसे रहित सर्वथा अविद्याशून्य कूटस्थरूपसे स्थितरहताहै, इससे यह सिद्धहुआकि जीवन्मुक्तको योगबलसे अधिकारप्राप्त शरीरादिकेग्रहणकरनेसेभी मुक्तिस्वरूपकी च्युति नहींहोती, इसलिये व्यासजी विदेहमुक्तही हैं २६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

मुक्तपुरुषके अनुभवसे अदेहमुक्ति और सदेहमुक्तिका अभेद तथा मूलकी दृढताकेलिये शास्त्रीयपुरुषार्थकी प्रशंसाका वर्णन इस ४ सर्गमेंकियागयाहै.

वसिष्ठ उवाच—सौम्याम्बुत्वे तरंगत्वे सलिलस्याम्बुता यथा ॥ समैवाब्धौ तथाऽदेहसदेहमुनिमुक्तता ॥ १ ॥ सदेहा वास्त्वदेहा वा मुक्तता विषयेन च ॥ अनास्वादितभोगस्य कुतो भोज्यानुभूतयः ॥ २ ॥ जीवन्मुक्तं मुनिश्रेष्ठं केवलं हि पदार्थवत् ॥ पश्यामः पुरतो ज्ञास्य पुनर्विघ्नोऽतराशयम् ॥ ३ ॥ सदेहा देहमुक्तानां भेदः को बोधरूपिणाम् ॥ यदेवांबुतरंगत्वे सौम्यत्वेऽपि तदेव तत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—नित्य मुक्तस्वभाव आत्माका अज्ञानरूपी आवरणही बन्धन है, और ज्ञानसे अज्ञानका नाश होनाही मोक्ष है, अज्ञानके नष्टहोनेपर मिथ्यारूपसे निश्चित यह संसारचित्रके व्याघ्रकेसमान कौतुकके लियेही होताहै न कि अनर्थके लिये, इसप्रकार जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका अभेद दर्शाके और पूर्वशंकाका समाधान करके, आत्मतत्वके विस्तारसे वर्णनकी इच्छासे क्षीणमूलकी दृढताकेलिये प्रथम पुरुषार्थका समर्थन करतेहैं हे सौम्य रामचन्द्रजी ! जिसप्रकार समुद्रके निश्चलजलमें और तरंगरूपजलमें कोई भेद नहींहै इसीप्रकार जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमेंभी कुछ भेद नहींहै ॥ १ ॥ सदेह हो वा विदेह हो मुक्तिविषयके आधीन नहीं है, यदि स्वर्गादिके सदृश मुक्ति विषयके आधीन होती तो विषयके भेदसे स्वर्गादिके तुल्य मुक्तिकाभी भेद होता, जीवन्मुक्त अपनी शरीरयात्राके निर्वाहमात्रकेलिये विषयसे प्रयोजन रखताहै, और उनमें असत्यबुद्धि होनेसे आसक्त नहींहोता, इसीलिये उसको भोग दुःखदायी नहींहोते, क्योंकि जिसने देहादिमें आत्माभिमानसहित भोगोंमें सत्यबुद्धिसे भोगोंका आस्वाद नहींलिया उसको भोगोंका अनुभव दुःखदायी कहां ॥ २ ॥ जीवन्मुक्त, मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको केवल हम अपनी कल्पनासे देहसहित सम्मुख देखतेहैं. ये अपने निश्चयसे अन्तरमे विदेह हैं, इसीलिये देहधारण करनेसे इनको कुछ दुःख नहींहै ॥ ३ ॥ ज्ञानस्वरूप सदेह और अदेहमुक्तमें क्या भेद है, अर्थात् कुछ नहीं, समुद्रादिमें जो जल निश्चलदशामें वही तरंगदशामें है ॥ ४ ॥

न मनागपि भेदोऽस्ति सदेहादेहमुक्तयोः ॥ सस्पन्दोऽप्यथवा स्पन्दो वायुरेव यथानिलः ॥ ५ ॥ सदेहा वा विदेहा वा मुक्तता न प्रमास्पदम् ॥ अस्माकमपि तस्यास्ति स्वैकतास्त्यविभागिनी ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रकृतमेवेदं शृणु श्रवणभूषणम् ॥ मयोपदिश्यमानं त्वं ज्ञानमज्ञांध्यनाशनम् ॥ ७ ॥ सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन ॥ सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—तरंगदशा और निश्चलदशाके जलमें तो कदाचित् स्वच्छता और मलिनताका भेदभी हो,* परन्तु जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तमें तो किंचित्भी भेद नहींहै, जैसे गतिसहित हो वा गतिरहित हो वायुतो वायुही है ॥ ५ ॥ हमारी वा व्यासजीकी जीवन्मुक्ति परमार्थदशामें दृष्टिका विषय नहीं है किन्तु विभागरहित, द्वैतशून्य स्वात्मवस्तुमें एकतामात्र है, अर्थात् जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, बन्ध मोक्षव्यवहार यह सब अज्ञदृष्टिकी कल्पनामात्र है ॥ ६ ॥ इसलिये प्रच-

लितवस्तुश्रवणका भूषण ज्ञान मुझसे तुम सुनो, जो ज्ञान अज्ञतारूपी अन्धकारका नाशक है ॥ ७ ॥ हे रघुवंशियोंके आनन्ददायक रामचन्द्रजी ! इससंसारमें सबवस्तु, सबको उत्तमप्रयत्नसेही प्राप्तहोती है अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

इह हींदोरिवोदेति शीतलाल्हादनं हृदि ॥ परिस्पन्दफलप्राप्तौ पौरुषादेव नान्यतः ॥ ९ ॥ पौरुषं स्पन्दफलवदृष्टं प्रत्यक्षतो न यत् ॥ कल्पितं मोहितैर्मन्दैर्दैवं किंचिन्न विद्यते ॥ १० ॥ साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽगविचेष्टितम् ॥ तत्पौरुषं तत्सफलमन्यदुन्मत्तचेष्टितम् ॥ ११ ॥ योऽयमर्थं प्रार्थयते तदर्थं चेहते क्रमात् ॥ अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्द्धान्निवर्त्तते ॥ १२ ॥

अर्थ—शास्त्रविहित कायिक, वाचिक, और मानसिक कर्मोंसे चित्तकी शुद्धिद्वारा अतिपुरुषार्थसे ज्ञानकी प्राप्तिहोनेहीपर, चन्द्रमाकेसमान शीतल, सबआनन्दोंसे बढके ब्रह्मानन्दका उदय हृदयमें होताहै ॥ ९ ॥ गमन, और भोजनादिरूपपुरुषार्थ ऐसा कोई नहीं देखागया जिसका, दूसरे देशमें प्राप्ति, वा तृप्ति आदि प्रत्यक्ष फल न हो अज्ञानी मन्दबुद्धियोंने दैव (प्रारब्ध) की जो कल्पना की है वह कुछ नहीं है ॥ १० ॥ शास्त्रज्ञ महात्माओंके कथितमार्गसे जो मन और वाणी आदि इंद्रियोंकी चेष्टा है उसीका नाम पुरुषार्थ है और वही सफल है, इससे भिन्न उन्मत्तोंकी चेष्टा है ॥ ११ ॥ जो जिसपदार्थको चाहताहै, यदि शास्त्रोक्तक्रमसे उसकेलिये चेष्टा करताहै तो, यदि बीचमेंही प्रयत्नको न छोडदे तो अवश्य उस पदार्थको पाताहै ॥ १२ ॥

पौरुषेण प्रयत्नेन त्रैलोक्यैश्वर्यसुंदराम् ॥ कश्चित्प्राणिविशेषो हि शक्रतां समुपागतः ॥ १३ ॥ पौरुषेणैव यत्नेन सहसांभोरुहास्पदम् ॥ कश्चिदेव चिदुल्लासो ब्रह्मतामधितिष्ठति ॥ १४ ॥ सारेण पुरुषार्थेन स्वेनैव गरुडध्वजः ॥ कश्चिदेव पुमानेव पुरुषोत्तमतां गतः ॥ १५ ॥ पौरुषेणैव यत्नेन ललनावलिताकृतिः ॥ शरीरी कश्चिदेवेह गतश्चंद्रार्द्धचूडताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पुरुषार्थरूपप्रयत्नसेही, त्रिलोकके ऐश्वर्य्यसे उत्तम, कोई प्राणि (मनुष्य विशेष) इन्द्रपदवीको प्राप्तहुआहै ॥ १३ ॥ पुरुषार्थरूप प्रयत्नसेही कोई प्राणी चेतनका उल्लास शीघ्रही पद्मासनपर आरूढहोके ब्रह्माकी पदवीको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ सारभूत अपने पुरुषार्थसेकोई पुरुष गरूडध्वज पुरुषोत्तम (विष्णु) पदको प्राप्तहुआहै ॥ १५ ॥ पौरुषरूप यत्नसेही, कोई पुरुष, पार्वतीसे वेष्टित शरीर चन्द्रचूड श्रीमहादेवजीके पदको पहुंचगयाहै ॥१६॥

प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम् ॥ प्राक्तनाद्यतनेनाशु पुरुषार्थेन जीयते ॥१७॥ यत्नवद्भिर्दृढाभ्यासैः प्रजोत्साहसमन्वितैः ॥ मेरवोऽपि निगीर्यंते कैव प्राक्पौरुषे कथा॥१८॥ शास्त्रनियंत्रितपौरुषपरमा पुरुषस्य पुरुषता या स्यात् ॥ अभिमतफलभरसिद्ध्यै भवति हि सैवान्यथा त्वनर्थाय॥१९॥ कस्यां चित्स्वयमातमद्दुःस्थितिवशात्पुंसो दशायां शनैरंगुल्यग्रनिपीडितैकचुलुकादावाप बिन्दुर्बहुः ॥ कस्यांचिज्जलराशिपर्वतपुरद्वीपान्तरालीकृता भर्तव्योचितसम्विभागकरणे पृथ्वी न पृथ्वी भवेत् ॥२०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार पौरुषप्रकरणंनाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—पूर्वजन्मकृत, और इसजन्मकृत, दोप्रकारका पौरुष है, तिसमें इसजन्मके पौरुषसे पूर्वजन्मका पौरुष पराजित होजाताहै ॥ १७ ॥ यत्नवान् प्रजाओंके उत्साहसहित, और दृढविश्वासवाले प्रलयके अधिकारी देवता भावको प्राप्त पुरुष अन्नके मेरूकोभी निगलजातेहैं, पूर्वजन्मके पौरुषके जीतनेकी क्या कथाहै ॥ १८ ॥ जिस पुरुषका पुरुषार्थ शास्त्रके अनुकूल है, वही अभिमतफलसमूहोंकी सिद्धिकेलिये होताहै, और शास्त्रके विरुद्ध पुरुषार्थ अनर्थकेलिये होताहै ॥ १९ ॥ पुरुष अपने शास्त्रीयप्रयत्नके शिथिल होनेसे और असत्मार्गमें स्थितिके कारण, किसी रोगबन्धन वा दारिद्र्यादि दशामें, हस्त आदिके पराधीन होनेसे अंगुलीके अग्रभागसे निचोडके मुखमें डालेहुये जलके बिन्दुकोभी बहुत अधिकमानताहै, वही पुरुष शास्त्रीयप्रयत्नकी दृढतासे धर्म्मकी अधिकतासे प्रियव्रत आदिके सदृश सातों द्वीपकी आधिपत्यदशामें पालनीय पुत्रादिके लिये, समुद्रादि सीमा (हद्द) मध्यमें करके उचित विभाग करनेमें इस विशालपृथ्वीकोभी अधिक नहींमानता ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

पुरुषार्थकी प्रबलतासे फलसिद्धि अवश्य होतीहै और दैव वा प्रारब्ध पुरुषार्थरूपही है इसविषयमें युक्ति और दृष्टान्तका वर्णन इस ५ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ प्रवृत्तिरेव प्रथमं यथाशास्त्रविहारिणाम् ॥ प्रभेव वर्णभेदाना साधनी सर्वकर्मणाम् ॥ १ ॥ मनसा वांछ्यते यच्च यथाशास्त्रं न कर्मणा ॥ साध्यते मत्तलीलाऽसौ मोहनी नार्थसाधनी ॥ २ ॥ यथा संयतते येन तथा तेनानुभूयते ॥ स्वकर्मैवेति चास्तेऽन्या व्यतिरिक्ता न दैवदृक् ॥ ३ ॥ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम् ॥ तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—शास्त्रके अनुकूल मन, वाणी और शरीरसे व्यवहार करनेवाले पुरुषोंकी प्रवृत्तिही सबकार्य्योंको ऐसे सिद्धकरतीहै जैसे नील पीत आदि वर्णोंकी प्रतीतिको प्रकाश ॥ १ ॥ जो पुरुष मनसेही कार्य्यसिद्धि करनाचाहताहै, और शास्त्रोक्त कर्मसे नहींकरता वह केवल मोहकरानेवाली उन्मत्तोंकी चेष्टाही करताहै. नकि अर्थसाधनकी चेष्टा ॥ २ ॥ जो जैसा प्रयत्न करताहै, वह उसके फलको वैसाही अनुभव करताहै, अपने कर्मसे पृथक् दैव वा प्रारब्ध कुछ नहींहै ॥ ३ ॥ शास्त्रके विरुद्ध और शास्त्रके अनुकूल दोप्रकारका पुरुषार्थ है उनमें शास्त्रविरुद्ध अनर्थकेलिये होताहै, और शास्त्रके अनुकूल परमपुरुषार्थके लिये होताहै ॥ ४ ॥

द्वौ हुडाविव युद्ध्येते पुरुषार्थौ समासमौ ॥ प्राक्तनश्चैहिकश्चैव शाम्यत्यत्राल्पवीर्यवान् ॥ ५ ॥ अतःपुरुषयत्नेन यतितव्यं यथा तथा ॥ पुंसा तंत्रेण सद्योगाद्येनाश्वद्यतनो जयेत् ॥ ६ ॥ द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौसमासमौ ॥ आत्मीयश्चान्यदीयश्च जयत्यतिबलस्तयोः ॥ ७ ॥ अनर्थः प्राप्यते यत्र शास्त्रितादपि पौरुषात् ॥ अनर्थकर्तृ बलवत्तत्र ज्ञेयं स्वपौरुषम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके और इसजन्मके कभी समान और कभी असमान पुरुषार्थ दो मेढोंके समान लढतेहैं, इनमेंसे जो अल्पबलवाला होताहै वह हार होजाताहै ॥ ५ ॥ इसलिये पुरुषको उचितहै कि शास्त्रोक्तप्रयत्नसे, सज्जनमहात्माओंके संबन्धद्वारा ऐसा उद्योग करे कि इसजन्मका पौरुष पूर्वजन्मके पौरुषको शीघ्र जीतले ॥६॥ अपना और अन्यका समान और असमान पुरुषार्थ दोमेढोंके समान युद्धकरतेहैं उनमेंसे अधिक बलवान् विजयी होताहै, इससे यह बात सिद्धहुई कि मनुष्योंके देव, ऋषि, और पितृ तीन ऋण होते हैं ऐसा वेदमें लिखाहै सो मनुष्योंका परमार्थ मोक्ष जो है वो देवताओंको प्रिय नहीं है क्योंकि वे तो मनुष्योंसे यज्ञादिकराके अपनी तृप्ति चाहतेहैं, सो मनुष्य विवेक वैराग्यादिद्वारा जब ज्ञानार्थ प्रबल पौरुष करेगा, तो उससे भिन्न देवताओंका पुरुषार्थ पराजित होजायगा ॥ ७ ॥ जहांपर शास्त्रीयप्रयत्नसेभी रोगादिअनर्थकी प्राप्ति हो वहां अनर्थकारी अपना पौरुष प्रबल जानो, और उसको जीतनेकेलिये परमार्थकारी अधिक पौरुष करो ॥ ८ ॥

परं पौरुषमाश्रित्य दंतैर्दंतान् विचूर्णयन् ॥ शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तनं पौरुषं जयेत् ॥ ९ ॥ प्राक्तनः पुरुषार्थोऽसौ मां नियोजयतीति धीः ॥ बलादधस्पदी कार्या प्रत्यक्षादधिका न सा ॥ १० ॥ तावत्तावत्प्रयत्नेन यतितव्यं सुपौरुषम् ॥ प्राक्तनं पौरुषं यावदशुभं शाम्यति स्वयम् ॥ ११ ॥ दोषः शाम्यत्यसन्देहं प्राक्तनोऽद्यतनैर्गुणैः ॥ दृष्टांतोऽत्र ह्यस्तनस्य दोषस्याद्य गुणैः क्षयः ॥ १२ ॥

अर्थ—परमपुरुषार्थका आश्रय लेके दांतोंसे दांत पीसकर शुभ पौरुषसे, विघ्न करनेकेलिये उद्युक्त जो अशुभ पौरुष है उसको जीतलेनाचाहिये ॥ ९ ॥ पूर्वजन्मका कर्म हमको इसकार्य्यमें नियुक्त करताहै, इसको प्रबलप्रयत्नसे त्यागदेनाचाहिये क्योंकि वह प्रत्यक्षसे अधिक नहीं है, प्रत्यक्षमें एक पौरुष दूसरेको जीतलेताहै ऐसेही पूर्वपौरुषभी जीताजासकताहै ॥ १० ॥ उत्तमपौरुषकेअर्थ तबतक प्रयत्न करतेही रहनाचाहिये जबतक अशुभ पौरुष स्वयं न शान्त होजाय ॥ ११ ॥ इसजन्मके शुभपौरुषसे पूर्वजन्मका अशुभपौरुष निस्संदेह शान्त होजाताहै, इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे गतदिनका अजीर्ण आजके लंघन वा औषध आदिसे शान्त होजाताहै ॥ १२ ॥

असद्दैवमधःकृत्वा नित्यमुद्रिक्तया धिया ॥ संसारोत्तरणं भूत्यै यतेताधातुमात्मनि ॥ १३ ॥ न गंतव्यमनुद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः ॥ उद्योगस्तु यथाशास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये ॥ १४ ॥ संसारकुहरादस्मान्निर्गंतव्यं स्वयं बलात् ॥ पौरुषं यत्नमाश्रित्य हरिणेवारिपंजरात् ॥ १५ ॥ प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत देहं नश्वरमात्मनः ॥ संत्यजेत्पशुभिस्तुल्यं श्रयेत्सत्पुरुषोचितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—असत्यदैवको नीचेकरके नित्यही अधिक प्रयत्नसहित आत्मामें संसारसागरसे पारहोनेका उपाय धारण-करनेकेलिये, शम, दम, श्रवण, और मनन, आदि सम्पत्तिके अर्थ पुरुषार्थ करनाचाहिये ॥ १३॥ गर्दभतुल्य पुरुषोंके-समान उद्योगरहित कदापि नहीं रहनाचाहिये, किन्तु दोनों लोक (स्वर्ग और मोक्ष) की सिद्धिकेलिये शास्त्रके अनु-कूल उद्योग सदा करनाचाहिये ॥ १४ ॥ पौरुषरूपी उपायका आश्रय लेके इससंसाररुपी गर्त (गढे) से स्वयं बलसे ऐसे निकलनाचाहिये जैसे शत्रुओंके पिंजरेसे सिंह निकलताहै ॥ १५ ॥ प्रतिदिन इस बातका ध्यान करनाचाहिये कि यह शरीर नश्वर है इसलिये पशुओंकेसदृश जो विषयभोगादिमें आसक्ति है उसे त्यागनाचाहिये और मनुष्यकेयोग्य विद्वान् महात्माओंका समागम और सत्शास्त्रका आश्रय लेनाचाहिये ॥ १६ ॥

किंचित् कान्तान्नपानादि कलिलं कोमलं गृहे ॥ व्रणे कीट इवास्वाद्य वयःकार्यं न भस्मसात् ॥१७॥ शुभेन पौरुषेणाशु शुभमासाद्यते फलम् ॥ अशुभेनाशुभं नित्यं दैवं नाम न किंचन ॥ १८ ॥ प्रत्य-क्षमानमुत्सृज्य योऽनुमानमुपैत्यसौ ॥ स्वभुजाभ्यामिमौ सर्पाविति प्रेक्ष्य पलायते ॥ १९ ॥ दैवं सं-प्रेरयति मामिति दग्धधियां मुखम् ॥ अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्तते ॥ २० ॥

अर्थ—गृहमें जो स्त्री, अन्नपानादि, चिक्कण और कोमल हैं उन्हींमें फसके व्रावमे कीटके समान अपना यौवन नष्ट नहीं करनाचाहिये ॥ १७ ॥ शुभपौरुषसे शुभफल शीघ्र नित्यही प्राप्तहोताहै, और अशुभसे अशुभ, पूर्वजन्मके शुभाशुभ पौरुषके सिवाय दैव (प्रारब्ध) कोई वस्तु नहीं है ॥ १८ ॥ इसजन्मके अदृष्ट शुभ और अशुभपौरुषका प्रत्यक्ष प्रमाण वेद है. और दृष्ट शुभाशुभके नेत्रआदि, इसप्रकार सर्वव्यवहारसाधक प्रत्यक्ष श्रुतिप्रमाणको त्याग-कर अनुमानसिद्ध पूर्वजन्मका पौरुषरूप प्रारब्ध विघ्न करेगा, फल प्राप्त होगा या नहीं इस संदेहमें पडके जो इस जन्मके पौरुषसे अलग होजाताहै, वह जैसे कोई पुरुष अपनी भुजाओंकोही सर्प समझके उनसे भयभीत होके भागताहै ऐसाहै ॥ १९ ॥ पौरुषसेही ब्राह्मणत्वादि बडे २ फल प्राप्तकरनेवाले श्रेष्ठ विश्वामित्रआदिकी दृष्टिको जिन्होंने नहीं देखा, दैव हमको प्रेरणाकरताहै ऐसे नष्टबुद्धिपुरुषोंके मुखको देखके ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों लोकके सु-खकी देनेवाली लक्ष्मी भागतीहै ॥ २० ॥

तस्मात्पुरुषयत्नेन विवेकं पूर्वमाश्रयेत् ॥ आत्मज्ञानमहार्थानि शास्त्राणि प्रविचारयेत् ॥ २१ ॥ चित्ते चिन्तयतामर्थं यथाशास्त्रं निजेहितैः ॥ असंसाधयतामेव मूढानां धिग्दुरीप्सितम् ॥ २२ ॥ पौरुषं च न वानन्तं न यत्नमभिवांछयते ॥ न यत्नेनापि महता प्राप्यते रत्नमश्मतः ॥ २३ ॥ यथा घटः परिमितो यथा परिमितः पटः ॥ नियतः परिमाणस्थः पुरुषार्थस्तथैव च ॥ २४ ॥

अर्थ—इसकारण प्रथमही नित्यानित्य वस्तुविवेक १ इहामुत्रार्थफलभोगविराग २ शमादिषट् सम्पत्ति ३ और मोक्षकी इच्छा ४ इन चारों साधनोंका आश्रय पौरुषरूप यत्नसे लेनाचाहिये, और गंभीरअर्थयुक्त वेदान्तादिशास्त्रोंको विचारनाचाहिये ॥ २१ ॥ शास्त्रके अनुकूल श्रवण मनन आदि चेष्टासे आत्मतत्त्वका चिन्तन जो चित्तमें नहींकरते, वे परमपुरुषार्थको नहींकरते ऐसे मूढपुरुषोंकी भोगादिकी इच्छाको धिक्कारहै, क्योंकि-मनुष्यजन्म पाके जब अपने क-ल्याणकेलिये यत्न न किया तो इससे अधिक शोककी क्या बातहै ॥ २२ ॥ आत्मतत्त्वप्राप्तिकेलिये अनन्तपौरुष वा यत्नकी आवश्यकता नहीं, किन्तु आत्मसाक्षात्कारपर्य्यन्तही प्रयत्न अपेक्षितहै, क्योंकि "प्रत्यक्षाऽवगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्" (यह आत्मतत्वसाक्षात्कारपर्य्यन्त नाशरहित सुखसे करनेयोग्यहै) यह भगवत्का वाक्यहै, यह वाक्य प्ररोचक नहीं है, क्योंकि-रत्नतत्वपरीक्षामें जो कुशलहैं उनको विनाश्रमही रत्नलाभ होताहै ॥ २३ ॥ जिसप्रकार घट जलसे परिमितहै, और पट दैर्घ्यादिप्रमाणसे परिमितहै. इसीप्रकार आत्मतत्त्वसाक्षात्काररूपी फलकी अवधिमें पौरुषयत्नभी परिमितही है ॥ २४ ॥

स च सच्छास्त्रसत्संगसदाचारैर्निजं फलम् ॥ ददातीति स्वभावोऽयमन्यथा नार्थसिद्धये ॥ २५ ॥ स्वरूपं पौरुषस्यैतदेवं व्यवहरन्नरः ॥ याति निष्फलयत्नत्वं न कदाचन कश्चन ॥ २६ ॥ दैन्यदारि-द्र्यदुःखार्त्ता अप्यन्ये पुरुषोत्तमाः ॥ पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेंद्रतुल्यताम् ॥ २७ ॥ आबाल्यादल-मभ्यस्तैः शास्त्रसत्संगमादिभिः ॥ गुणैः पुरुषयत्नेन स्वार्थः संप्राप्यते यतः ॥ २८ ॥

अर्थ—वह पौरुषयत्नभी यदि सत्शास्त्र, सत्संग, और सदाचारसहित होताहै तो अपना फल देताहै यह उ-सका स्वभावहै, अन्यथा अर्थकी सिद्धि नहीं होती ॥ २५ ॥ यह सदाचारादिसहित पौरुषका स्वरूपहै, इसप्रकार पौ-रुषसे व्यवहार करनेवाला कोईभी मनुष्य कभीभी निष्फलयत्न नहीं होता॥२६॥ दैन्य और दारिद्र्यके दुःखसे पीडि-

तभी बहुतसे उत्तमपुरुष पौरुषरूपयत्नसे देवेंद्रकेतुल्य होगयेहैं ॥ २७ ॥ यदि कहो कि जो अधिक श्रमकी अपेक्षा नहीं है तो अन्तमें करलेंगे, अभी क्या आवश्यक है नहीं क्योंकि बाल्यअवस्थासे अत्यंत अभ्यास कियेहुये शास्त्र और सत्समागमादिगुणोंकेद्वाराही पौरुषसे स्वार्थ सिद्ध होताहै ॥ २८ ॥

इति प्रत्यक्षतो दृष्टमनुभूतं श्रुतं कृतम् ॥ दैवात्तमिति मन्यन्ते ये हतास्ते कुबुद्धयः ॥ २९ ॥ आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः को न स्याद्बहुधनको बहुश्रुतो वा ॥ आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ॥ ३० ॥ बाल्ये गतेऽविरतकल्पितके विलोले दोर्दण्डमण्डितवयःप्रभृति प्रयत्नात् ॥ सत्संगमैः पदपदार्थविशुद्धबुद्धिः कुर्यान्नरः स्वगुणदोषविचारणानि ॥ ३१ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायन्तनायविधयेऽस्तमितो जगाम॥ स्नातुं सभाकृतनमस्करणाजगाम श्यामाक्षये रविकरेण सहाजगाम ॥३२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषस्थापनं नाम पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—यह प्रत्यक्ष देखाहै, अनुभव कियाहै, सुनाहै, और कियाभी है, सब दैवके आधीनहै, ऐसा जो मानते हैं उनकी बुद्धियोंको नष्टही जानो ॥ २९ ॥ यदि इस संसारमें आलस्य न होता तो कौन बडा धनी अथवा बडा विद्वान् न होता. आलस्यकेही कारणसे समुद्रान्त यह पृथ्वी आत्मज्ञानरहित नरपशुओंसे और निर्धनीमनुष्योंसे पूर्ण है. ॥ ३० ॥ चपल बालकोंसे कल्पित क्रीडाओंसे चंचल बाल्यअवस्थाके बीतजानेपर, गुरुशुश्रूषाके समर्थ भुजाओंसे शोभित यौवनअवस्थाके आरम्भसेही महात्मा विद्वानोंके सत्संगद्वारा पदपदार्थमें कुशल होके अपने आत्माके शान्ति आदि गुणोंका और रागादि दोषोंका विचार करे कि, शांति आदिगुण हममें कितने आये, और रागादि दोष कहांतक हैं, इस विचारसे जो कुछ गुणोंमें न्यूनता हो उनको सम्पादन करे, और जो दोष हैं उनको त्यागदे ॥ ३१ ॥ देवदूत अरिष्टनेमि-राजासे कहता है कि–जब श्री वाल्मीकीजी वासिष्ठका इतना कथन भरद्वाजजीसे कह चुके तो दिन समाप्त हुआ और सूर्यास्तभी होगया और सम्पूर्ण सभा मुनीश्वरको नमस्कार करके सन्ध्या अग्निहोत्रादि सायंकालका कृत्य करनेकेलिये बिदा हुई और प्रातःकाल सूर्य्यकिरणके साथ पुनः प्राप्तहुई ॥ ३२ ॥ इति प्रथमो दिवसः ।

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषस्थापनंनाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

जहांपर दैव (प्रारब्ध) प्रबल है वहांभी प्रधान पौरुषही है. क्योंकि जिसको बलवान् दैव कहतेहैं वह अपना कियाहुवा पूर्वजन्मका पौरुष वा पुरुषार्थही है, इस विषयका वर्णन ६ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ तस्मात्प्राक् पौरुषाद्दैवं नान्यत्तत्प्रोज्झ्य दूरतः ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रैर्जीवमुत्तारयेद्बलात् ॥ १ ॥ यथा यथा प्रयत्नः स्याद्भवेदाशु फलं तथा ॥ इति पौरुषमेवास्ति दैवमस्तु तदेवच ॥ २ ॥ दुःखाद्यथा दुःखकाले हा कष्टमिति कथ्यते ॥ हा कष्टशब्दपर्यायस्तथा हा दैवमित्यपि ॥ ३ ॥ प्राक्स्वकर्मेतराकारं दैवं नाम न विद्यते ॥ बालः प्रबलपुंसेव तज्जेतुमिह शक्यते॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसकारणसे पूर्वजन्मके पौरुषसे पृथक् दैव कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये दैवको दूरसेही त्यागकर संसारसे जीवको अपना उद्धार बलसे करनाचाहिये ॥ १ ॥ जैसा अधिक प्रयत्न होगा वैसाही शीघ्र फल होगा इसीका नाम पौरुष है और इसीको दैवभी कहतेहैं ॥ २ ॥ दुःखसे जैसे दुःखके समयमें "हा कष्ट" ऐसा कहाजाताहै इसीप्रकार "हा कष्ट" इस शब्दका पर्याय उसी अर्थका दूसरा शब्द "हा दैव" यहभी है, यथार्थमें वह पूर्वजमन्के पौरुषका फल पुरुषार्थ है ॥३॥ जिसको दैव कहते हैं वह पूर्वजन्मके कर्मके स्वरूपको छोडके और कुछ नहींहै, सो जैसे प्रबलपुरुष बालकको जीतताहै ऐसेही इसजन्मके प्रबलपुरुषार्थसे वह जीतनेके योग्यहै ॥ ४ ॥

ह्यस्तनो दुष्ट आचार आचारेणाद्य चारुणा ॥ यथाशु शुभतामेति प्राक्तनं कर्म तत्तथा ॥ ५ ॥ तज्जयाय यतन्ते ये न लोभलवलम्पटाः ॥ ते दीनाः प्राकृता मूढाः स्थिता दैवपरायणाः ॥ ६ ॥ पौरुषेण कृतं कर्म दैवाद्यदभिनश्यति ॥ तत्र नाशयितुर्ज्ञेयं पौरुषं बलवत्तरम् ॥ ७ ॥ यदेकवृन्तफलयोरथैकं शून्यकोटरम् ॥ तत्र प्रयत्नः स्फुरितस्तथा तद्रससंविदः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार गतदिनका दुष्ट आचार आजके उत्तम आचारसे शुभदशाको प्राप्तहोताहै, इसीप्रकार पूर्वकर्म्मभी इसजन्मके कर्म्मसे उत्तमदशाको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ उस पूर्वजन्मकृत कर्मको जीतनेकेलिये जो विषयलम्पट मनुष्य यत्न नहींकरते, और दैवमें परायण रहतेहैं, वेही दीन पामर और महामूढ हैं ॥ ६ ॥ इसजन्मका कियाहुआ कर्म्म यदि दैवसे नष्टहोजाय तो वहांभी नाशकरनेवाला पूर्वजन्मका पौरुषही अधिक बली जाननाचाहिये, इससे उससेभी अधिक बलवान् पौरुष करकेउसे जीतनाचाहिये ॥ ७ ॥ एक वृन्त (गुच्छे)के दो फलोंमें जहां एक फल रसशून्य है वहां उस फलके खानेवाले पुरुष वा कीट आदिका पूर्वजन्मका यत्नही रसके विनाशके लिये स्फुरितहुआहै ॥ ८ ॥

यत्प्रयांति जगद्भावाः संसिद्धा अपि संक्षयम् ॥ क्षयकारकयत्नस्थ ह्यत्र ज्ञेयं महद्बलम् ॥ ९ ॥ द्वौ हुडाविव युद्ध्येते पुरुषार्थौ परस्परम् ॥ य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात् ॥ १० ॥ भिक्षुको मंगलेभेन नृपो यत्क्रियते बलात् ॥ तदमात्येभपौराणां प्रयत्नस्य बलं महत् ॥ ११ ॥ पौरुषेणान्नमाक्रम्य यथा दंतेन चूर्ण्यते ॥ अन्यः पौरुषमाश्रित्य तथा शूरेण चूर्ण्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जहांपर जगतमे संसिद्ध पदार्थभी क्षयको प्राप्तहोजातेहै, वहांभी क्षयकारक यत्न बलवान्है; ऐसा जाननाचाहिये ॥ ९ ॥ दो मेंढोंके समान पुरुषार्थ परस्पर युद्ध करतेहै, उनमें जो बलवान् होताहै, वही क्षणभरमें दूसरेको जीतलेताहै ॥ १० ॥ राजवंशके अभावमें जो नगरनिवासी, अमात्य (मंत्री) आदि जो अलंकृत गज आदिसे एक भिक्षुकको राजा अपने बलसे क्षणभरमें बनादेतेहैं, वहां मंत्री, नगरनिवासी, और हस्ती आदिकोंका प्रयत्न बली जाननाचाहिये ॥ ११ ॥ जैसे पुरुषार्थका आश्रय लेकर अन्न दांतसे चूर्ण कियाजाताहै, इसीप्रकार पुरुषार्थका आश्रय लेकर शूरवीर दूसरेको जीतलेताहै ॥ १२ ॥

अन्नभूता हि महतां लघवो यत्नशालिनाम् ॥ यथेष्टं विनियोज्यन्ते तेन कर्मसु लोष्ठवत् ॥ १३ ॥ शक्तस्य पौरुषं दृश्यमदृश्यं वापि यद्भवेत् ॥ तद्दैवमित्यशक्तेन बुद्धमात्मन्यबुद्धिना ॥ १४ ॥ भूतानां बलवद्भूतं यत्र दैवमिति स्थितम् ॥ तत्तेषामप्यधिष्ठातृ सतामेतत्स्फुटं मिथः ॥ १५॥ शास्त्रामात्येभपौराणामविकल्पा स्वभावधीः ॥ या सा भिक्षुकराज्यस्य कर्त्री धर्त्री प्रजास्थितेः ॥ १६ ॥

अर्थ—उद्योगशाली, महान्पुरुषोंके सन्मुख जन अन्नकेसमान हैं, इसी हेतुसे मृत्तिकाके पिण्डकेसमान वे कामोंमें लगायेजातेहैं ॥ १३ ॥ समर्थपुरुषको चाहे दृश्य हो वा अदृश्य हो सब कुछ उसकेलिये पुरुषार्थही है, उसीको अबुद्धि मूढपुरुष अपने आत्मामें दैव वा प्रारब्ध मानताहै ॥ १४ ॥ समर्थप्राणियोंमें जो अधिकबलवान् प्राणी हैं, वेही उनकेऊपर शासक राजा होतेहैं; दैव कोई पदार्थ नहींहै, यह बात वर्तमानप्राणियोंमें स्पष्ट है ॥ १५ ॥ शास्त्र, मंत्री, हस्ती, और नगरनिवासियोंकी एक मताकार बुद्धिही भिक्षुकको राजा बनाती है और वही प्रजाकी स्थितिको धारण करतीहै ॥ १६ ॥

भिक्षुको मंगलेभेन नृपो यत्क्रियते क्वचित् ॥ प्राक्तनं पौरुषं तत्र बलवद्वापि कारणम् ॥ १७ ॥ ऐहिकः प्राक्तनं हन्ति प्राक्तनोऽद्यतनं बलात् ॥ सर्वदा पुरुषस्पन्दस्तत्रानुद्वेगवान् जयी ॥ १८ ॥ द्वयोरद्यतनस्यैव प्रत्यक्षाद्बलिता भवेत् ॥ दैवं जेतुं यतो यत्नैर्बालो यूनेव शक्यते ॥ १९ ॥ मेघेन नीयते यद्वद्वत्सरोपार्जिता कृषिः ॥ मेघस्य पुरुषार्थोऽसौ जयत्यधिकयत्नवान् ॥ २० ॥

अर्थ—अथवा मंगल हाथी आदिसे जो भिक्षुक कहीं राजा बनादियाजाताहै, वहां उसका पूर्वजन्मका बलवान् पौरुषही कारण है ॥ १७ ॥ इसजन्मका पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थको जीतलेताहै, और वही प्रयत्न विजयी होताहै जो घबराके नहीं छोड दियाजाता. और ऐसा प्रयत्न इसीजन्मका है, क्योंकि पूर्वजन्मका तो समाप्त होगया और इस जन्मका तो चलरहाहै ॥ १८ ॥ दोनों पुरुषार्थोंमें इसजन्मका पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थको जीतनेको ऐसा समर्थ है जैसे युवा (जवान) पुरुष बालकको ॥ १९ ॥ जहांपर प्रबलमेघसे वर्षभरकी उत्पन्न किई हुई कृषि (खेती) नष्ट होजाती है वहांपर मेघका पुरुषार्थ प्रबल समझना चाहिये यही दशा अन्यस्थानमें भी है जो अधिकबलवान् होताहै वही जीतता है ॥ २० ॥

क्रमेणोपार्जितेऽप्यर्थे नष्टे कार्या न खेदिता ॥ न बलं यत्र मे शक्तं तत्र का परिदेवना ॥ २१ ॥ यन्न शक्नोमि तस्यार्थे यदि दुःखं करोम्यहम् ॥ तदमारितमृत्योर्मे युक्तं प्रत्यहरोदनम् ॥ २२ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यवशतो विस्फुरंत्यमी ॥ सर्व एव जगद्भावा जयत्यधिकयत्नवान् ॥ २३ ॥ तस्मात्पौरुषमाश्रित्य सच्छास्त्रैः सत्समागमैः ॥ प्रज्ञाममलतां नीत्वा संसारजलधिं तरेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—क्रमसे उपार्जन किये हुवे द्रव्यके नष्ट होजानेपर खेद करना योग्य नहीं क्योंकि जहांपर पुरुषार्थ हमारा समर्थ नहीं है वहां शोक करनेका क्या प्रयोजन, कहीं पौरुषके निष्फल होनेपरभी शोकसे उसे छोडना न चाहिये किंतु पुनः उद्योगमें लगारहना चाहिये ॥ २१ ॥ जो नहीं करसके यदि उसकेलियेभी दुःख करें तो जबतक मृत्युको हम न जीतलें तबतक प्रतिदिन रुदन करना क्या हमको उचित नहीं हैं ॥ २२ ॥ देश, काल, क्रिया, और द्रव्यके आधीन सब जगत्के पदार्थ स्फुरित होरहेहैं, जो अधिकबलवान् होताहै वही जीतताहै, अर्थात् जिस देशकाल आदिमें यत्न निष्फल हो उसको छोडके दूसरे देश, काल, क्रिया, और द्रव्यसे यत्न करनाचाहिये, तात्पर्य्य यह कि जबतक कार्य्यकी सिद्धि न हो तबतक यत्न करतेही रहना योग्य है, विश्वामित्रजीको पूर्व आदि तीनदिशामें विघ्न और उत्तरदिशामें सिद्धि प्राप्तहुई ॥ २३ ॥ इसलिये पुरुषार्थका आश्रय लेके, सत्शास्त्रोंसे और महात्मा विद्वानोंके संगसे बुद्धिको निर्मल करके संसाररूपी समुद्रसे पार हो जाय ॥ २४ ॥

प्राक्तनश्चैहिकश्चेमौ पुरुषार्थौ फलद्रुमौ ॥ संजातौ पुरुषारण्ये जयत्यभ्यधिकस्तयोः ॥ २५ ॥ कर्म यः प्राक्तनं तुच्छं न निहंति शुभेहितैः ॥ अज्ञो जन्तुरनीशोऽसावात्मनः सुखदुःखयोः ॥ २६ ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा ॥ स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः ॥ २७॥ यस्तू दारचमत्कारः सदाचारविहारवान् ॥ स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पंजरादिव ॥ २८ ॥

अर्थ—पूर्वजन्म और इस जन्मके दोनों पुरुषार्थरूपी फल उत्पन्नकरनेमें समर्थ वृक्ष पुरुषरूपी जंगलमें उत्पन्न हुये हैं. उनमेंसे एकको मूलसे छेदन करनेपर दूसरेकी उत्पत्तिरूप विजय होता है ॥ २५ ॥ जो प्राणी पूर्वजन्मके तुच्छकर्मको शुभचेष्टाओंसे नष्ट नहीं करता वह पराधीन जन्तु ईश्वरप्रेरित सदा स्वर्ग या नरकमें जायाकरता है ॥ २६ ॥ जो अपने पुरुषार्थसे पूर्वजन्मके बन्धनकारी पुरुषार्थको नहीं जीतता, वह ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग या नरकमें जाया करताहै, और वह सदा पराधीन पशुही है इसमें संशय नहींहै ॥ २७ ॥ जो पुरुष सदा प्रयत्न करनेमें कुशल है और नित्यही सज्जन ज्ञानी महात्माओंके आचारमें विहार करताहै वह जगत्के मोहसे ऐसा निकल जाता है जैसे पिंजरेसे सिंह ॥२८

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवमित्यनर्थकुकल्पने ॥ यः स्थितोऽदृष्टमुत्सृज्य त्याज्योऽसौ दूरतोऽधमः ॥ २९ ॥ व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च ॥ यथाशास्त्रं विहर्त्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे ॥ ३० ॥ यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः ॥ उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव ॥ ३१ ॥ स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः ॥ प्रोक्ता पौरुषशब्देन सा सिद्ध्यै शास्त्रयंत्रिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—कोई मुझे प्रेरणा करताहै ऐसी अनर्थकी कल्पनामें प्रयत्नको छोडके जो स्थित है, उस अधमप्राणीको दूरसेही त्यागना उचितहै ॥ २९ ॥ सहस्रों व्यवहार जिनमें लाभ अथवा हानि होतीहै उनमें राग द्वेष छोडके शास्त्रके अनुकूल प्रयत्न करनाचाहिये ॥ ३० ॥ शास्त्रके अनुकूल अखण्डित अपनी मर्यादाको जो नहीं त्यागता, उसको संपूर्ण अभीष्ट ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे समुद्रमें सब रत्न ॥ ३१ ॥ शास्त्रके अनुकूल संपूर्णदुःखोंकी निवृत्ति और निरतिशयसुखकी प्राप्तिके लिये जो अवश्य कर्तव्य साधनचतुष्टयसंपत्ति और श्रवणमननादि साधन हैं उनमें सदा आलस्य त्यागके तत्पर रहना, पण्डितजन इसीको पौरुष इस शास्त्रमें कहतेहैं. और उसीसे परमपुरुषार्थकी सिद्धि होतीहै॥ ३२ ॥

क्रियया स्पन्दधर्मिण्या स्वार्थसाधकता स्वयम् ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रतीक्ष्णयोन्नीयते धिया ॥ ३३ ॥ अनन्तं समतानन्दं परमार्थं विदुर्बुधाः ॥ स येभ्यः प्राप्यते नित्यन्ते सेव्याः शास्त्रसाधवः ॥ ३४ ॥ देवलोकादिहागत्य लोकद्वयहितं भवेत् ॥ प्राक्तनं पौरुषं तद्वै दैवशब्देन कथ्यते ॥ ३५ ॥ तद्युक्तमेतदेतस्मिन्नास्ति नापवदामहे ॥ मूढैःप्रकल्पितं दैवं मन्यन्ते ये क्षयं गताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—देह आदिसे गुरुशुश्रूषा तथा श्रवणआदि क्रियासे साधुसमागम और सत् शास्त्रके अभ्यासद्वारा तीव्रबुद्धिसे जो आत्माका उद्धार करना है इसीका नाम "स्वार्थसाधकता" है ॥ ३३ ॥ अज्ञानकी निवृत्तिसे विषमता दोषकी निवृत्तिद्वारा जो सम परिपूर्ण आत्मज्ञानसे अनन्त परमानन्दकी प्राप्ति है उसीको पण्डितजन "परमार्थ" कहतेहैं. वह परमार्थ जिन शास्त्रज्ञानसम्पन्न साधुओंसे प्राप्तहोताहै उनकी नित्यही सेवा करनी उचित है ॥ ३४ ॥ जो दोनों लोकका हितकारी पौरुष है और देवलोकके भोगसे शेष रहताहै देवलोकसे आके इसलोकमें भोगकेलिये स्थित है उसीको "दैव" शब्दसे कहतेहैं ॥ ३५ ॥ वह पौरुष ठीक है, वह नहीं है यह हम नहीं कहते, और न उसीकी निन्दा करतेहैं, किंतु मूढोंने जो पुरुषार्थसे भिन्न "दैव" की कल्पना की है और उसीके भरोसे पुरुषार्थको छोड देतेहैं, उनके नष्टजनोंपर शोक करतेहैं ॥ ३६ ॥

नित्यं स्वपौरुषादेव लोकद्वयहितं भवेत् ॥ ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा ॥ ३७ ॥ अद्यैवं प्राक्तनी तस्माद्यत्नाद्यः कार्यवान् भवेत् ॥ करामलकवद्दृष्टं पौरुषादेव तत्फलम् ॥ मूढाः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति ॥ ३८ ॥ सकलकारणकार्यविवर्जितं निजविकल्पबलादुपकल्पितम् ॥ तदनपेक्ष्य हि दैवमसन्मयं श्रय शुभाशयपौरुषमात्मनः ॥ ३९ ॥ शास्त्रैः सदाचरविजृम्भितदेशधर्मैर्यत्कल्पितं फलमतीव चिरप्ररूढम् ॥ तस्मिन् हृदि स्फुरति चोपनमेति चित्तमंगावली तदनु पौरुषमेतदाहुः ॥ ४० ॥

अर्थ— सदा अपने पुरुषार्थसेही दोनों लोकोंका हित होताहै, जैसे गतदिनका दुष्कर्म आजकी सत्क्रियासे शोभाको प्राप्तहोताहै ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार इसजन्मकी सत्क्रियासे पूर्वजन्मका दुष्कर्म शोभित होताहै, इसकारणसे जो उद्योगसे प्रयत्न करताहै उसको पुरुषार्थसे फलकी सिद्धि करामलकके समान है, मूढ इस पुरुषार्थसिद्ध प्रत्यक्षफलको त्यागकर वृथा दैवरूपी अज्ञानमें डुबताहै ॥ ३८ ॥ हे शुभाशय रामजी ! इसकारणसे अपनेही विकल्पसें कल्पित, सम्पूर्ण कारण और प्रयोजनसे शून्य, और असत्‌रूप जो "दैव" है उसको त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो ॥ ३९ ॥ अतिप्रसिद्धशास्त्रोंसे प्रमाणित जो सज्जनोंको आचारसे चित्तकी शुद्धिरूप वा ज्ञानरूप फल है, उसकी जब हृदयमें अति उग्र अभिलाषा होऔर उस अभिलाषाके अनुसार उधर चित्त जाय, और उसके अनन्तर श्रवण वाणी, हस्तपाद आदि शरीर, श्रवण मनन आदिमें प्रवृत्तहो इसीको पौरुष कहतेहैं ॥ ४० ॥

बुद्ध्वैव पौरुषफलं पुरुषत्वमेतदात्मप्रयत्नपरतैव सदैव कार्या ॥ नेया ततःसफलतां परममाथा सौ सच्छास्त्रसाधुजनपंडितसेवनेन ॥ ४१ ॥ दैवपौरुषविचारचारुभिश्चेदमाचरितमात्मपौरुषम् ॥ नित्यमेव जयतीति भावितैः कार्य आर्यजनसेवयोद्यमः ॥ ४२ ॥ जन्मप्रबन्धमयमामयमेष जीवो बुध्वैहिकं सहजपौरुषमेव सिद्धयै ॥ शान्तिं नयत्ववितथेन वरौषधेन मृष्टेन तुष्टपरपंडितसेवनेन ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दैवनिराकरणंनाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—पुरुषार्थसे आत्मज्ञानरूपफलकी प्राप्तिही पुरुषजन्मका फल है, नहीं तो मनुष्यजन्म निरर्थक है, ऐसा जानके सदा आत्मज्ञानके प्रयत्नमें तत्पर रहना और आत्मज्ञानप्राप्तिद्वारा उसप्रयत्नको सफल करना उचितहै यह सफलता सत् शास्त्र, और साधु पण्डितोंके सेवनसे प्राप्तहोतीहै ॥ ४१ ॥ दैव क्या है ? और पौरुष क्या है ? इस विचारमें कुशल और शम, दम आदि सम्पत्तिसहित जो मनुष्य हैं वे यदि पौरुष करें तो वह अवश्य दैवको जीततेहैं इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले अधिकारीपुरुषोंको श्रेष्ठ पण्डितजनोंकी सेवाद्वारा श्रवण मनन आदिसे उद्यम अवश्य करनाचाहिये ॥ ४२ ॥ इस जन्ममें कियाहुआ शास्त्रबोधित पुरुषार्थही सिद्धिकेलिये समर्थ है; ऐसा जानके यह जीव जन्म और मरणरूपसंसाररोगकी शान्ति, आत्मज्ञानसे सन्तुष्ट उत्तमपण्डितोंके सेवनरूपी सत्य मिष्ट और श्रेष्ठ औषधसे करे ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दैवनिराकरणंनाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

उदाहरण प्रत्युदाहरणके विस्तारसें तथा युक्तियोंसें पुरुषार्थकी प्रधानता इस ७ वे सर्गमें वर्णनकीगई है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ प्राप्य व्याधिविनिर्मुक्तं देहमल्पाधिवेदनम् ॥ तथात्मनि समादध्याद्यथा भूयो न जायते ॥ १ ॥ दैवं पुरुषकारेण यो निवर्तितुमिच्छति ॥इह वामुत्र जगति स सम्पूर्णाभिवाञ्छितः ॥२॥ ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः ॥ ते धर्म मर्थं कामंच नाशयन्त्यात्मविद्विषः ॥ ३ ॥ संवित्स्पन्दो मनःस्पन्द ऐंद्रियस्पन्द एव च ॥ एतानि पुरुषार्थस्य रूपाण्येभ्यः फलोदयः॥४॥

अर्थ—रोगरहितशरीरको पाके तथा मानसिकपीडासे शून्य होके ऐसा उद्योग करे कि पुनः इस संसारमें जन्म न हो ॥ १ ॥ जो मनुष्य पुरुषार्थसे दैवको जीतनेकी इच्छा करताहै उसके इसलोकमें वा परलोकमें सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होतेहैं ॥ २ ॥ जो उत्तम उद्योगको छोडके दैवमें परायण हैं वे आत्मशत्रु, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पुरु-

षार्थोंको नष्ट करदेतेहैं ॥ ३ ॥ संवित्स्पन्द आत्मामें पुरुषार्थ और उसके साधनकी इच्छा होना उससे, मनःस्पन्द २ पुरुषार्थसाधनकी इच्छाका यत्न मनमें होना उससे, ऐन्द्रियस्पन्द ३ कर्मेन्द्रियकी अंगोंके संचलनार्थ प्रवृत्ति, और उससे सबशरीरकी कार्यमें प्रवृत्ति अर्थात्, कार्य बाह्योपकरणस्पन्द शरीर तथा इन्द्रियोंकी कार्यमें प्रवृत्ति होतीहै. ये पुरुषार्थके रूप हैं, इन्हीसे फलका उदय होताहै ॥ ४ ॥

यथा सम्वेदनं चेतस्तत्तत्स्पन्दनमृच्छति ॥ तथैव कायश्चलति तथैव फलभोक्तृता ॥ ५ ॥ आबालमेतत्संसिद्धं यत्र यत्र यथा यथा ॥ दैवं तु न क्वचिद्दृष्टमतो जगति पौरुषम् ॥ ६ ॥ पुरुषार्थेन देवानां गुरुरेव बृहस्पतिः ॥ शुक्रो दैत्येन्द्रगुरुतां पुरुषार्थेन चास्थितः ॥ ७ ॥ दैन्यदारिद्र्यदुःखार्त्ता अपि साधो नरोत्तमाः ॥ पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेन्द्रतुल्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—साक्षी चेतनमें जैसी विषयकी स्फूर्ति होतीहै वैसाही मन होताहै, और मनकी इच्छाके अनुसार इन्द्रियोंकी स्पन्द (गति) के अनुकूल शरीरकी क्रिया होतीहै और क्रियाके अनुसार फलसिद्धि होतीहै ॥ ५ ॥ जहां २ लौकिक वैदिक फलमें जैसे २ पौरुषकी आवश्यकता है, वहां २ वैसेही पौरुषके उपयोगसे फलकी सिद्धि होतीहै, जैसे ध्यानादिमें मानसिकपौरुष प्रधान है, आसन और मौन उसके अंग हैं, स्तुति आदिमें वाचिकपौरुषप्रयत्न प्रधान है एकाग्रता और अभिमुखता उसके अंग हैं, और यात्राआदिमें कायिकपौरुषप्रयत्न प्रधान है, वाणी और मनका निग्रह रखना उसके अंग हैं, कहीं दो २ पौरुष प्रधान हैं और कहीं तीन २ वहां २ वैसाही पौरुष बालकसेलेके वृद्धपर्य्यन्तको प्रत्यक्ष सिद्ध है, और दैव तो कहीं नहीं देखागया, इसीसे असत् है ॥ ६ ॥ पुरुषार्थसेही बृहस्पतिजी देवताओंके गुरु हैं और पुरुषार्थसेही शुक्राचार्य्यजी दैत्येन्द्रोंकी गुरुपदवीको प्राप्तहुयेहैं ॥ ७ ॥ हे साधो ! दीनता और दरिद्रताके दुःखसें पीडित उत्तमपुरुष अपने पौरुषरूपी यत्नसे देवेन्द्रतुल्य होगये ॥ ८ ॥

महान्तो विभवास्वादैर्नानाश्चर्यसमाश्रयाः ॥ पौरुषेणैव दोषेण नरकातिथितां गताः ॥९॥ भावाभावसहस्रेषु दशासु विविधासु च ॥ स्वपौरुषवशादेव निस्तीर्णा भूतजातयः ॥ १० ॥ शास्त्रतो गुरुतश्चैव स्वतश्चेति त्रिसिद्धयः ॥ सर्वत्र पुरुषार्थस्य न दैवस्य कदाचन ॥ ११ ॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत् ॥ प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ १२ ॥

अर्थ—बडे २ महान् पुरुष (नहुष आदि) अनेकप्रकारके विभवके भोगोंके आस्वादसे और नानाप्रकारके आश्चर्यरूपविभवमेंही आश्रितहोके पौरुषके दोषसें, नरकके अतिथि (मिहमान) हुयेहैं ॥ ९ ॥ हे साधो ! सम्पत्ति और विपत्तियोंमें, तथा नानाप्रकारकी भयंकर दशाओंमें, अनेकप्राणियोंकी जाति अपने पौरुषकेही प्रतापसे पारहोगई है ॥ १० ॥ लौकिककार्य्य अपने पुरुषार्थमात्रसे होतेहैं. और यज्ञआदि अपने पुरुषार्थ और शास्त्रियसहायतासे होतेहैं, और आत्मज्ञान तो स्वतः अपने पुरुषार्थसे शास्त्रसे और गुरुकी सहायतासे होताहै, ए तीनोंप्रकारकी सिद्धियां सर्वत्र पुरुषार्थसेही हैं, दैवसे कदापि नहीं ॥ ११ ॥ अशुभकामोंमें प्रविष्ट चित्तको प्रयत्नसे शुभकाममेंही लगानाचाहिये, यह सबशास्त्रोंका सिद्धान्त है ॥ १२ ॥

यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम् ॥ तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः ॥ १३ ॥ यथा यथा प्रयत्नो मे फलमाशु तथा तथा ॥ इत्यहं पौरुषादेव फलभाङ्न तु दैवतः ॥ १४ ॥ पौरुषाद्दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद्धीमतां क्रमः॥ दैवमाश्वासनामात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु ॥ १५ ॥ प्रत्यक्षप्रमुखैर्नित्यं प्रमाणैः पौरुषक्रमः ॥ फलितो दृश्यते लोके देशान्तरगमादिकः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! जो सबसे उत्तम हो जो परमार्थमें सत्यरूप हो और जो नित्य हो उसीका आचरण करो, ऐसी आज्ञा महात्मा गुरुजन देतेहैं॥१३॥जैसा२ हमारा प्रयत्न होताहै वैसा वैसा हमको शीघ्र फल प्राप्तहोताहै, ऐसा निश्चयकरके यह समझना चाहिये कि हम पुरुषार्थसेही फलके भागी हैं दैवसे नहीं ॥१४॥पुरुषार्थसेही सबसिद्धि देख पडती है, और पुरुषार्थसेही बुद्धिमानोंका आचरण होताहै, और दैव तो दुःखमें रोतेहुये कोमलबुद्धियोंके लिये आंसू पोछना मात्रहै॥१५॥प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे पौरुषका व्यापार देशान्तरमें गमन आगमनआदि फलसहित लोकमें देखपडताहै॥१६॥

भोक्ता तृप्यति नाभोक्ता गन्ता गच्छति नागतिः ॥ वक्ता वक्ति न चावक्ता पौरुषं सकलं नृणाम् ॥१७॥ पौरुषेण दुरन्तेभ्यः संकटेभ्यः सुबुद्धयः ॥ समुत्तरंत्ययत्नेन न तु मोघतयानया ॥ १८ ॥ यो यो यथा प्रयतते स स तत्तत्फलैकभाक् ॥ न तु तूष्णीं स्थितेनेह केन चित्प्राप्यते फलम् ॥ १९ ॥ शुभेन पुरुषार्थेन शुभमासाद्यते फलम् ॥ अशुभेनाशुभं राम यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २० ॥

अर्थ—भोजनकरनेवालाही तृप्तहोताहै, जो भोजन नहीं करता वह नहीं तृप्त होता. चलनेवाला दूसरे देशमें जाताहै, न चलनेवाला नहीं; और जो वाणीसे व्यापार करताहै, वही बोलताहै, न करनेवाला नहीं, इनकारणोंसे मनुष्योंका पुरुषार्थ सफल है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् अपने पौरुषसेही महाभयंकर दुःसाध्य सङ्कटोंसे सहजमेंही पार होजाता है, परन्तु व्यापारशून्य इस दैवदृष्टिसे कभी नहींपारहोते ॥१८॥ जो जैसा प्रयत्न करताहै वह उसका फल नियमपूर्वक पाताहै, और जो व्यापाररहित मौन स्थित है उसको कहीं कुछ फल नहींमिलता ॥ १९ ॥ हे रामचन्द्रजी ! शुभपुरुषार्थसे शुभफल मिलताहै और अशुभपुरुषार्थसे अशुभफल मिलताहै अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये ॥ २० ॥

पुरुषार्थात्फलप्राप्तिर्देशकालवशादिह ॥ प्राप्ता चिरेण शीघ्रं वा यासौ दैवमिति स्मृता ॥ २१ ॥ न दैवं दृश्यते दृष्ट्या न च लोकान्तरे स्थितम् ॥ उक्तं दैवाभिधानेन स्वलोके कर्मणः फलम् ॥२२॥ पुरुषो जायते लोके वर्धते जीर्यते पुनः ॥ न तत्र दृश्यते दैवं जरायौवनबाल्यवत् ॥२३ ॥ अर्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः ॥ प्रोक्ता पौरुषशब्देन सर्वमासाद्यतेऽनया ॥ २४ ॥

अर्थ—देशकालके वशसे विलम्बसे या शीघ्र पुरुषार्थसे जो प्राप्ति होती है उसीका नाम दैव है, अर्थात् किसी पुरुषार्थने अब फलदिया किसीने जन्मान्तरमें जैसे किसीवृक्षके फल शीघ्र मिलतेहैं किसीके वीस या ४०वर्षके अनन्तर परन्तु हैं; वह फल पुरुषार्थही का ॥ २१ ॥ दैव न तो नेत्रोंसे देखपडता है और न दूसरेलोकमें रक्खा है. किंतु इस लोकके कर्मका फल जो स्वर्गलोकमें अथवा मृत्युके अनन्तर इसीलोकमें मिलताहै, उसीको दैवनामसे कहतेहैं ॥२२ ॥ संसारमें पुरुष उत्पन्नहोताहै, बढताहै, और पुनः वृद्ध होजाताहै, उस पुरुषमें, बाल्य, यौवन, और वृद्ध अवस्थाके समान दैव कहीं नहींदेखपडता ॥ २३ ॥ सत् अर्थ प्राप्तकरनेवाले कार्य्योंके प्रयत्नमें तत्पर रहना, इसको पण्डितजन पौरुषशब्दसे कहतेहैं; और इसीसे सब कुछ मिलताहै ॥ २४ ॥

देशाद्देशान्तरप्राप्तिर्हस्तस्य द्रव्यधारणम् ॥ व्यापारश्च तथांगानां पौरुषेण न दैवतः ॥ २५ ॥ अनर्थप्राप्तिकार्यैकप्रयत्नपरता तु या ॥ प्रोक्ता प्रोन्मत्तचेष्टेति न किंचित्प्राप्यतेऽनया ॥ २६ ॥ क्रियया स्पन्दधर्मिण्या स्वार्थसाधकता स्वयम् ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रतीक्ष्णयोन्नीयते धिया ॥ २७ ॥ अनन्तसमतानन्दं परमार्थं स्वकं विदुः ॥ स येभ्यः प्राप्यते यत्नात्सेव्यास्ते शास्त्रसाधवः ॥ २८ ॥

अर्थ—चरणोंके पुरुषार्थसे एकदेशसे दूसरेदेशमें जाताहै, हांथके पुरुषार्थसे पदार्थोंका लेना देना, और दूसरे अंगोंके पौरुषसे दूसरेकार्य्य होतेहैं और दैवसे कोई कार्य नहींहोता ॥ २५ ॥ जिनसे अनर्थकी प्राप्ति हो ऐसे कार्योंमें तत्परहोना इसको उन्मत्तचेष्टा कहतेहैं, इससे कोई शुभ फल नहीं मिलता ॥ २६॥ मन इन्द्रिय और शरीरकी क्रियासे साधुसमागम और सत्शास्त्रके अभ्याससे तीव्रबुद्धिसे अपने आत्माका आपही उद्धार करना, इसको स्वार्थसाधकता कहतेहैं ॥ २७ ॥ अज्ञानसे उत्पन्न विषमताकी निवृत्तिसे समताद्वारा अनन्त जो परमानन्दकी प्राप्ति है उसको अपना रमार्थ कहतेहैं वह आनन्द जिनसे मिले, उन शास्त्रज्ञानी साधुमहात्माओंकी प्रणाम, प्रश्न, और शुश्रूषा आदिसे सेवा करनीचाहिये ॥ २८ ॥

सच्छास्त्रादिगुणो मत्या सच्छास्त्रादिगुणान्मतिः ॥ विवर्धते मिथोऽभ्यासात्सरोऽब्जाविव कालतः ॥ २९ ॥ आबाल्यादलमभ्यस्तैः शास्त्रसत्संगमादिभिः ॥ गुणैः पुरुषयत्नेन स्वार्थः सम्पद्यते हितः ॥ ३० ॥ पौरुषेण जिता दैत्याः स्थापिता भुवनक्रियाः ॥ रचितानि जगन्तीह विष्णुना न च दैवतः ॥ ३१ ॥ जगति पुरुषकारकारणेऽस्मिन् कुरु रघुनाथ चिरं तथा प्रयत्नम् ॥ व्रजसि तरुसरीसृपाभिधानां सुभग यथा न दशामशंक एव ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषप्राधान्यसमर्थनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—बुद्धिसे सत्शास्त्र आदिकेअर्थका ज्ञान और सत्शास्त्रके अभ्यास तथा साधुसंगतिसे बुद्धि (आत्मतत्त्वबोध) ये परस्परके अभ्यासके कालगतिसे ऐसे बढतेहैं जैसे तडाग और कमल, तात्पर्य्य यह है कि ज्यों२यह मनुष्य गुरुशुश्रूषा और शास्त्रके अभ्यासमें तत्पर होताहै त्यों२इसका बोध बढताजाताहै और ज्यों२बोधकी वृद्धि होती है त्यों२गुरुशुश्रूषा और शास्त्रोंमें विश्वास बढताजाताहै और उससे उत्तरोत्तर सुखकी वृद्धिरूपभूमिकामें पहुंचताहै ॥ २९ ॥ बाल्यावस्थासे अत्यन्त अभ्यासकियेहुये शास्त्र और साधुसमागमादिगुणोंसे पुरुषार्थद्वारा हितकारी स्वार्थ

सिद्ध होताहै ॥ ३० ॥ विष्णूभगवान्‌ने पुरुषार्थसेही दैत्योंको जीता, पुरुषार्थसेही लोकोंके कर्म नियत किये और पुरुषार्थसेही अनेक जगत् रचे और दैवसे कुछभी नहीं ॥ ३१ ॥ हे रघुनाथ ! पुरुषार्थाधीन इससंसारमें दीर्घकालतक ऐसा पुरुषार्थ करो कि जिसमें पुनः वृक्ष और सर्पआदि योनियोंमें न प्राप्तहो ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषप्राधान्यसमर्थनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

पूर्वकथित दैवके मिथ्यात्वपुष्टि कारणके विरोध और युक्तिआदिके विस्तारसे इस८वे सर्गमें कीगई है.

श्री वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ नाकृतिर्न च कर्माणि न स्पन्दो न पराक्रमः ॥ तन्मिथ्याज्ञानवद्रूढं दैवं नाम किमुच्यते ॥ १ ॥ स्वकर्मफलसम्प्राप्ताविदमित्थमितीति याः ॥ गिरस्ता दैवनाम्नैताः प्रसिद्धिं समुपागताः ॥ २ ॥ तत्रैव मूढमतिभिर्दैवमस्तीति निश्चयः ॥ आत्तो दुरवबोधेन रज्ज्वामिव भुजंगमः ॥ ३॥ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा॥अद्यैवं प्राक्तनी तस्माद्यत्नात्सत्कार्यवान्भवेत् ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-न कोई आकार है, न कर्म है, न चेष्टा है और न इसके कोई पराक्रम है, इसलिये मिथ्याज्ञानकेसदृश दुर्वाच्य दैव क्या वस्तु है ॥ १ ॥ अपने कियेहुये कर्मके फल मिलनेपर, इसकर्मका फल इसप्रकारसे मिला ये जो वाणी हैं, वेही दैवशब्दसे प्रसिद्धहै ॥ २ ॥ उन्हीवाणियोंमें रज्जूमें सर्पकेसमान मूढबुद्धियोंने भ्रान्तिसे दैव है ऐसा निश्चय कियाहै ॥ ३ ॥ गतदिनका दुष्टकर्म जिसप्रकार आजके उत्तमकर्मसे उत्तमहोताहै इसकारणसे मनुष्यको उत्तमकर्म करनाचाहिये ॥ ४ ॥

मूढानुमानसंसिद्धं दैवं यस्यास्ति दुर्मतेः ॥ दैवाद्दाहोऽस्ति नैवेति गन्तव्यं तेन पावके॥५॥ दैवमेवेह चेत्कर्तृ पुंसः किमिव चेष्टया ॥ स्नानदानासनोच्चारान् दैवमेव करिष्यति ॥ ६ ॥ किं वा शास्त्रोपदेशेन मूकोऽयं पुरुषःकिल ॥ संचार्यते तु दैवेन किं कस्येहोपदिश्यते ॥७॥ न च निस्पन्दता लोके दृष्टेह शवतां विना ॥ स्पन्दाच्च फलसम्प्राप्तिस्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस दुर्मतिके सिद्धांतमे मूढोंके अनुमानसे दैव सिद्ध है, उनको अग्निमें गिरके देखनाचाहिये कि दैवसे दाह होताहै वा नहीं ॥ ५ ॥ यदि सबकार्योंका करनेवाला दैव ही है तो पुरुषकी चेष्टाका क्या प्रयोजन है? स्नान, दान, आसन, और मंत्रोंका उच्चारण आदि सबकार्य दैव करलेगा ॥ ६ ॥ यदि दैव (प्रारब्ध) ही सब करताहै तो शास्त्रके उपदेशसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि यह मनुष्य तो स्वयं मूक है. अर्थात् दैवके पराधीन है दैव जिधर चलाताहै उधरही जाताहै तो कौन किसको उपदेश देताहै ॥ ७ ॥ मृतककेविना चेष्टाका अभाव संसारमें कहीं नहीं देखागया, और चेष्टाहीसे फलकी प्राप्ति होती है इसलिये दैव व्यर्थ है ॥ ८ ॥

न चामूर्तेन दैवेन मूर्तस्य सहकर्तृता ॥ पुंसः सन्दृश्यते काचित्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥९॥ मिथोंगानि समासाद्य द्वयोरेकैककर्तृता ॥ हस्तादीनां हतत्वेह न दैवेन क्वचित्कृतम् ॥ १० ॥ मनोबुद्धिवदप्येतद्दैवं नेहानुभूयते ॥ आगोपालं कृतप्रज्ञैस्तेन दैवमसत्सदा ॥ ११ ॥ पृथक् चेद्बुद्धिरन्योर्थः सैव चेत्कान्यता तयोः ॥ कल्पनायां प्रमाणं चेत् पौरुषं किं न कल्प्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् कहीं दैव पुरुषकी चेष्टाका सहायक हो वहभी नहीं,क्योंकि मूर्तिरहित दैव मूर्तिसहित पुरुषका सहायक नहीं देखपडता, इसलिये दैव निरर्थक है ॥ ९ ॥ लेखन और क्षौर आदि कार्य्योंमें जहां लेखनी (कलम) और छूरा जब हस्तआदिमें आतेहैं तो कार्य्य होताहै, वातरोगादिसें हाथआदिके मारेजानेपर केवल दैवने कभी कलम, और छुरेसे कार्य्य नहींकिया ॥ १० ॥ गोपालसे लेके पंडितोंतकको मन बुद्धिकेसमान दैवका अनुभव किसीको नहींही होता, इसलिये दैव सदा असत्है ॥११॥ और दैवकी सिद्धि मानभी लीजावे तो उसमें बुद्धिही प्रमाण होगी, सो बुद्धिसे पृथक् है या बुद्धिस्वरूपही है, यदि पृथक् मानो तो किसी क्रियामें उसका उपयोग नहोनेसे निरर्थकपदार्थकी कल्पना हुई, और यदि बुद्धिरूपही मानो तो सिद्धबुद्धि और इस दैवमें भेद क्या ? यदि यह कहो कि गुरूके समीप कई विद्यार्थी

पढते हैं, और समान परिश्रमभी करतेहैं, परन्तु उनमेंसे दैवके वश किसीको विद्या प्राप्त होती है और किसीको नहीं, इसप्रमाणसे दैव सिद्ध होताहै सोभी नहीं, क्योंकि वहांभी बुद्धिके तीव्र होनेमें पूर्वजन्मका पुरुषार्थही सिद्ध होता है॥ १२॥

नामूर्त्तस्तेन संगोऽस्ति नभसेव वपुष्मतः ॥ मूर्त्तं च दृश्यते लग्नं तस्माद्दैवं न विद्यते ॥ १३ ॥ विनियोक्तथ भूतानामस्त्यन्यच्चेज्जगत्रये ॥ शेरते भूतवृन्दानि दैवं सर्वं करिष्यति ॥ १४॥ दैवेन त्वभियुक्तोऽहं तत्करोमीदृशं स्थितम् ॥ समाश्वासनवागेषा न दैवं परमार्थतः ॥ १५ ॥ मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ॥ प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशकेसमान मूर्तिरहितका मूर्तिसहितके साथ संयोग नहीं, जो मूर्तिसहित है उन्हीका परस्पर संयोग देखागयाहै इसलिये दैव नहीं है ॥ १३ ॥ क्रियामें तत्पर भूतोंसे अन्य यदि तीनोंलोकमें कोई दैव पदार्थ है तो सब जीवोंके समूह व्यापाररहित हो पौरुषको त्यागकर सोवें सब कार्य्य तो दैव करहीलेगा ॥ १४ ॥ दैवकी प्रेरणासे दैवके संकल्पसे सिद्ध मैं इस कार्य्यको करताहुं यह बचन केवल धैर्य्य देनेमात्रकेलिये है यथार्थमें पुरुषार्थकेसिवाय दैव कोई पदार्थ नहीं है ॥१५॥मूढोंने दैवकी कल्पना की है और जो उसके आश्रयको रहेहैं वे नष्ट होगये, और बुद्धिमान् तो अपने पुरुषार्थका आश्रय लेके इसलोकमें उत्तमपद तथा फल मोक्षको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥

ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः॥ तैस्तैः किमिव लोकेऽस्मिन् वद दैवं प्रतीक्ष्यते॥१७॥ कालविद्भिर्विनिर्णीता यस्यातिचिरजीविता ॥ स चेज्जीवति संछिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम् ॥१८॥ कालविद्भिर्विनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव ॥ अनध्यापित एवासौ तज्ज्ञश्चेद्दैवमुत्तमम् ॥ १९ ॥ विश्वामित्रेण मुनिना दैवमुत्सृज्य दूरतः ॥ पौरुषेणैव सम्प्राप्तं ब्राह्मण्यं राम नान्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—जो शूरहैं, जो पराक्रमी हैं जो बुद्धिमान्‌हैं और जो पण्डितहैं बताओ इस संसारमें वे कब दैवकी प्रतीक्षा करतेहैं॥१७॥ कालके जाननेवाले ज्योतिषियोंने जिसका आयु अधिककालतक निश्चय किया है, यदि वह शिर काटनेपरभी अधिककालतक जीवे तो दैवकी श्रेष्ठतामें उत्तम कारण सिद्ध हो ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! कालवेत्ताज्योतिषियोंने जिसका पण्डितहोना निर्णय करलिया है, यदि बिनापढाये वह पण्डित होजाय तो दैव श्रेष्ठ कारण सिद्ध हो॥१९॥ हे रामचन्द्रजी ! येही आपके सन्मुखस्थित विश्वामित्रजी दैवको दूर फेककर अपने पुरुषार्थके बलसेही ब्राह्मणत्वको प्राप्तहुयेहैं, और दूसरेबलसे नहीं ॥ २० ॥

अस्माभिरपरैराम पुरुषैर्मुनितां गतैः ॥ पौरुषेणैव सम्प्राप्ता चिरं गगनगामिता ॥ २१ ॥ उत्साद्य देवसंघातं चक्रुस्त्रिभुवनोदरे ॥ पौरुषेणैव यत्नेन साम्राज्यं दानवेश्वराः ॥ २२ ॥ आलूनशीर्णमाभोगि जगदाजह्रुरोजसा ॥ पौरुषेणैव यत्नेन दानवेभ्यःसुरेश्वराः ॥ २३ ॥ राम पौरुषयुक्त्या च सलिलं धार्य्यतेऽनश ॥ चिरं करण्डके चारु न दैवं तत्र कारणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! और हमभी अपने पुरुषार्थसेही मुनि हुये तथा उसीसे दीर्घकालतक आकाशमें चलनेकी शक्तिभी पाई ॥ २१ ॥ दानवोंके ईश्वरोने देवताओंके समूहोंको निकालके तीनोंलोकके भीतर अपने पुरुषार्थके यत्नसेही साम्राज्य किया ॥ २२ ॥ शत्रुओंको छिन्न भिन्न तथा जर्जरकरके यह विस्तीर्णजगत् देवताओंने जो पुनः अपने पराक्रमसे छीनलिया वह पुरुषार्थकाही प्रताप है अर्थात् दैवकाभी दैव पुरुषार्थहै ॥ २३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! राल और मोमके लेपनरूपपुरुषार्थकी इस युक्तिसे अधिककालतक वांस आदिके पात्रोंमें भलीभांति जल धारणकियाजाताहै॥२४॥

भरणादानसंरम्भविभ्रमश्रमभूमिषु ॥ शक्तता दृश्यते राम न दैवस्यौषधेरिव ॥ २५ ॥ सकलकारणकार्यविवर्जितं निजविकल्पवशाद्रुपकल्पितम् ॥ त्वमनपेक्ष्य हि दैवमसन्मयं श्रय शुभाशय पौरुषमुत्तमम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दैवनिराकरणं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—कुटुम्बका पोषण, बलात्कारसे दूसरेका राज्य लेना, क्रोधसे दूसरेका पराजय करना, भोग, विलास, तथा औरभी कष्टसाध्य रोगादिकी निवृत्तिरूपकार्य्योंमें पराक्रम, औषध और मणिमंत्रादिकी जैसी शक्ति देखपडतीहै वैसी दैवकी नहीं ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्रजी ! सम्पूर्ण कारण और कार्यसे शून्य, अपने विकल्पके कारजसे कल्पित असत्यदैवको त्यागकर हे शुभाशय ! पुरुषार्थका आश्रय ग्रहणकरो ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे दैवनिराकरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दैवके मिथ्यात्व सिद्धकरनेकेलिये, सफलकर्मकी मनोमात्रता, और मनकीभी चिद्रूपता इस९वे सर्गमें वर्णनकीगईहै.

श्रीराम उवाच—भगवन् सर्वधर्मज्ञ प्रतिष्ठाफलमागतम् ॥ यल्लोके तद्वद ब्रह्मन् दैवं नाम किमुच्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच-पौरुषं सर्वकार्याणां कर्तृ राघव नेतरत् ॥ फलभोक्तृ च सर्वत्र दैवं तत्र न कारणम् ॥ २ ॥ दैवं न किंचित्कुरुते न भुंक्ते न च विद्यते ॥ न दृश्यते नाद्रियते केवलं कल्पनेदृशी ॥ ३ ॥ सिद्धस्य पौरुषेणेह फलस्य फलशालिना ॥ शुभाशुभार्थसंपत्तिर्दैवशब्देन कथ्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—पुरुषार्थकी स्वतंत्रता सिद्धहोनेकेलिये, कहीं तो वसिष्ठजीने दैवको असत् कहा, और कहीं पूर्वजन्मका पुरुषार्थरूपही कहा, सो प्रथम मिथ्यात्वपक्षमें लोक वेदादिका विरोध है, और द्वितीयपक्षमें दैव सर्वथा असत् है, यह प्रतिज्ञाविरोध है. और इस जन्मकी प्रवृत्तिभी पूर्वजन्मके कर्मका फल होनेसे उनके अनुसारही होगी, इसलिये इसजन्मकी प्रवृत्तियोंसे यदि पूर्वजन्मके कर्म्मफलरूप दैवका जयभी हुआ तो कुछ विरोध नहीं; क्योंकि-इसजन्मकी प्रवृत्ति तो पूर्वजन्मके कर्म्मके अनुसारही हुई, और पुरुषकी परतंत्रताभी रही, इत्यादि गूढअभिप्रायवाले रामचन्द्रजी वसिष्ठजीसे कहतेहैं कि–हे भगवन् ! हे सबधर्मोंके जाननेवाले ! जो लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध दैव है वह क्या असत् है अथवा सत् है ॥ १ ॥ वसिष्ठजीभी रामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानके दैवका मिथ्यात्व सिद्धकरनेकेलिये जगन्मिथ्यात्वद्वारा अद्वितीय आत्मतत्वके बोध करानेकी इच्छासे दोनोंपक्षोंमें अभेद है इसविचारसे बोले कि–हे रामचन्द्रजी ! सबकार्योंका करनेवाला और फल भोगनेवाला, सबस्थानोंमें पुरुषार्थही है उसमें दैव कारण नहींहै ॥ २ ॥ न दैव कुछ करताहै, न भोगताहै, न देखपडताहै, न विवेकियोंमें उसका आदर है, और न वह है, केवल लोककी भ्रान्तिमात्र है ॥ ३ ॥ अवश्यफलदेनेवाले पुरुषार्थसे सिद्धफलकी शुभ और अशुभ प्राप्ति है उसीकों दैव कहतेहैं ॥ ४ ॥

पौरुषोपनता नित्यमिष्टानिष्टस्य वस्तुनः ॥ प्राप्तिरिष्टाप्यनिष्टा वा दैवशब्देन कथ्यते ॥५॥ भावी त्ववश्यमेवार्थः पुरुषार्थैकसाधनः ॥ यः सोऽस्मिँल्लोकसंघाते दैवशब्देन कथ्यते ॥ ६ ॥ ननु राघव लोकस्य कस्यचित्किंचिदेव हि ॥ दैवमाकाशरूपं हि करोति न करोति च ॥ ७ ॥ पुरुषार्थस्य सिद्धस्य शुभाशुभफलोदये ॥ इदमित्थं स्थितमिति योक्तिस्तद्दैवमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—इष्ट अथवा अनिष्टवस्तुसे पौरुषसे दीहुई इष्ट वा अनिष्टकी जो प्राप्ति है उसको दैव कहतेहैं ॥ ५ ॥ पुरुषार्थसे जो फलका भोग अवश्य होनेवाला है उसको संसारमें लौकायतकेमतमें दैव कहतेहैं ॥ ६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! कोई किसीका दैव शून्य आकाशको भ्रान्तिसे नीलरूपवाला बनादेताहै, और विवेकीकी दृष्टिमें वह शून्यहीहै, अर्थात् भ्रांतिसे दैव सिद्ध है और विवेकसे नहीं ॥ ७ ॥ सिद्धपुरुषार्थका जब शुभाशुभ फलका उदय होताहै उसमें जो कहाजाताहै कि–पूर्वजन्मके कर्मने हमको यह फल दिया इसीका नाम दैव है ॥ ८ ॥

इत्थं ममाभवद्बुद्धिरित्थं मे निश्चयो ह्यभूत् ॥ इति कर्मफलप्राप्तौ योक्तिस्तद्दैवमुच्यते ॥ ९ ॥ इष्टानिष्टफलप्राप्ताविदमित्यस्य वाचकम् ॥ आश्वासनामात्रवचो दैवमित्येव कथ्यते ॥ १० ॥ श्रीराम उवाच भगवन्सर्वधर्मज्ञ यत्प्राक्कर्मोपसंचितम् ॥ तद्दैवं दैवमित्युक्तमपमृष्टं कथं त्वया ॥ ११॥ श्रीवसिष्ठ उवाच-साधु राघव जानासि शृणु वक्ष्यामि तेऽखिलम्॥दैवं नास्तीति ते येन स्थिरा बुद्धिर्भविष्यति॥१२॥

अर्थ—कर्मके फल प्राप्तहोनेपर जो यह कथन होताहै कि–हमारी बुद्धि ऐसी हुई, और ऐसा हमारा निश्चय हुआ, इसी कथनका नाम दैव है ॥ ९ ॥ इष्ट और अनिष्टफलकी प्राप्तिमें इससे हमको यह फल मिला, यह जो धैर्य्य देनेकी वाणी है इसीको दैव कहतेहैं ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे सर्वधर्मज्ञ ! आपने यह बार २ कथन कियाहै कि–जो पूर्वजन्मका संचित् कर्म है वही दैव है सो आपने उसका निषेध किसअभिप्रायसे किया ॥ ११ ॥ श्रीवासिष्ठजी बोले—हे रामचंद्रजी ! आप दोनोंपक्षोंके विरोधको भलीभांति समझतेहैं. अब सुनिये मैं आपसे वह सम्पूर्णवृत्तांत कहूंगा, जिससे दैव नहीं है इसविषयमें आपकी बुद्धि सर्वथा दोष और शंकारहित स्थिरहोगी ॥ १२ ॥

या मनोवासना पूर्वं बभूव किल भूरिशः ॥ सैवेयं कर्मभावेन नृणां परिणतिं गता ॥ १३ ॥ जंतुर्यद्वासनो राम तत्कर्त्ता भवति क्षणात् ॥ अन्यकर्मान्यभावश्चेत्येतन्नैवोपपद्यते ॥ १४ ॥ ग्रामगो ग्राममाप्नोति पत्तनार्थी च पत्तनम् ॥ योयो यद्वासनस्तत्र स स प्रयतते सदा ॥ १५ ॥ यदेव तीव्रसंवेगाद्दृढं कर्म कृतं पुरा ॥ तदेव दैवशब्देन पर्यायेणेह कथ्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जो मनुष्योंकी मनकी वासना प्रथम अनेक हुईथी,वही कर्मरूपसे परिवर्त्तित होगई;क्योंकि–वेदमें लिखाहै "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति" (जैसा मनमें ध्यान करताहै वैसाही वाणीसें बोलताहै और शरीरसे कर्म करताहै)॥१३॥हे रामचन्द्रजी! प्राणीकी जैसी वासना होतीहै, उसीवासनाके अनुसार क्षणमेंही कार्यकरने लगजाताहै, और वासना दूसरी हो और कर्म दूसरा हो यह वार्ता नहीं बनसक्ती ॥ १४ ॥ ग्रामको जानेवाला ग्रामको जाताहै, और नगरको जानेवाला नगरको, जिसकी जैसी वासना होती है वह सदा वैसाही प्रयत्न करताहै ॥ १५ ॥ फलकी अधिकअभिलाषासे प्रबलप्रयत्नसे पूर्वजन्ममें जो कर्म कियाहै उसीको इसजन्ममें दैवकेनामसे कहतेहैं ॥ १६ ॥

एवं कर्मस्थकर्माणि कर्मप्रौढा स्ववासना ॥ वासना मनसो नान्या मनो हि पुरुषः स्मृतः ॥ १७ ॥ यद्दैवं तानि कर्माणि कर्म साधो मनो हि तत् ॥ मनो हि पुरुषस्तस्माद्दैवं नास्तीति निश्चयः ॥१८॥ एष एव मनो जन्तुर्यद्यत्प्रयतते हितम् ॥ कृतं तत्तदवाप्नोति स्वत एव हि दैवतः ॥ १९ ॥ मनश्चित्तं वासना च कर्म दैवं च निश्चयः ॥ राम दुर्निश्चयस्यैताः संज्ञास्सद्भिरुदाहृताः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार कर्ताके कर्म उक्तरीतिसे होतेहैं, और संचितकर्मोंसे वासना होती है, और वासना मनसे पृथक् कोई वस्तु नहींहैं, और मन जो है वही पुरुष कहागयाहै, क्योंकि–" तन्मनोऽकुरुत आत्मन्वी स्यामिति " (परब्रह्मने मन किया कि मैं शरीरवान् होऊं) यह श्रुति है ॥ इसका विपरीत क्रम ऐसाहै कि–पुरुष मनोमय, मन वासनामय, और वासना कर्ममय है ॥१७॥ हे साधो ! दैव कर्मरूप है और कर्म मनरूप है, और मन पुरुषरूप है, और पुरुष परमार्थदशामें निर्विकारी चेतनमात्र है, इससे मन असत् हुआ, और मनके असत्होनेसे कर्मभी असत् हुआ, इसप्रकार कर्मरूप दैवभी असत् (मिथ्या) हुआ; इसलिये दैव कोई वस्तु नहीं है यह निश्चयहै ॥ १८ ॥ इसप्रकार मनदशामें प्राप्त यह प्राणी जैसा २ प्रयत्न करताहै वैसाही अपना कियाहुआ स्वतः दैवनामसे प्रसिद्ध अपनेकर्मसे फल पाताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! चित्त, वासना, कर्म, और दैव, ये सब अनिर्वचनीय मनकी संज्ञा तत्वज्ञानीसज्जनोंने कहीहैं. और मन पुरुष है यह निश्चय है ॥ २० ॥

एवंनामा हि पुरुषो दृढभावनया यथा ॥ नित्यं प्रयतते राम फलमाप्नोत्यलं तथा ॥ २१ ॥ एवं पुरुषकारेण सर्वमेव रघूद्वह ॥ प्राप्यते नेतरेणेह तस्मात्स शुभदोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ श्रीराम उवाच— प्राक्तनं वासनाजालं नियोजयति मां यथा ॥ मुने तथैव तिष्ठामि कृपणः किं करोम्यहम् ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच—अतएव हि राम त्वं श्रेयः प्राप्नोषि शाश्वतम् ॥ स्वप्रयत्नोपनीतेन पौरुषेणैव नान्यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार मन चित्त और वासनादिनामवाला पुरुष नित्य दृढभावनासे जैसा प्रयत्न करताहै, वैसाही उसका फल अब पाताहै ॥ २१ ॥ हे रघूद्वह रामचंद्रजी ! इसप्रकार पुरुषार्थसेही सबकुछ मिलताहै अन्यसें नहीं; इसलिये वह पुरुषार्थ आपको शुभदायक हो ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे मुने ! पूर्वजन्मका वासनासमूह जैसे मुझे नियुक्तकरताहै वैसाही मैं स्थित हूं, कृपण परवश मैं क्या करसक्ताहूं ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसीवासनासे अपने पुरुषार्थकेद्वारा नित्यप्राप्त श्रेयको प्राप्तहोओगे अन्यथा नहीं ॥ २४ ॥

द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च ते ॥ प्राक्तनो विद्यते राम द्वयोरेकतरोऽथवा ॥ २५ ॥ वासनौघेन शुद्धेन तत्र चेदद्य नीयसे ॥ तत्क्रमेण शुभेनैव पदं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ २६ ॥ अथ चेदशुभो भावस्त्वां योजयति संकटे ॥ प्राक्तनस्तदसौ यत्नाज्जेतव्यो भवता बलात् ॥ २७ ॥ प्राज्ञश्चेतनमात्रस्त्वं न देहस्त्वं जडात्मकः ॥ अन्येन चेतसा तत्ते चेत्यत्वं क्केव विद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—वासनाका रूप शुभ और अशुभ दोप्रकारका होताहै, उनमें तुह्मारी वासनाका समूह शुभ हो वा अशुभ ॥ २५ ॥ यदि पूर्व शुद्धवासनाओंके समूहद्वारा इससमयभी शुद्धवासनामें प्राप्त हो तो शुभवासनाके क्रमसे नित्य पद अवश्य पावोगे ॥ २६ ॥ और यदि पूर्वजन्मकी अशुभवासना तुमको पापकीओर प्रेरणाकरतीहै तो उसे पुरुषार्थसे

जीतना चाहिये ॥ २७ ॥ यदि कहो कि प्राज्ञात्मामनका प्रेरक कोई दूसराही है तो वासनाके उद्भवमें हमारी स्वतंत्रता कहां रही, सो भी नहीं क्योंकि—चेतनमात्र मनका प्रेरक प्राज्ञ तुमही जडरूप देह तुम नहीं हो किसी दूसरेचेतनसे तुम प्रकाशित नहींहो किंतु स्वप्रकाश्य तुमही हो ॥ २८ ॥

अन्यस्त्वां चेतयति चेत्तं चेतयति कोऽपरः ॥ क इमं चेतयेत्तस्मादनवस्था न वास्तवी ॥ २९ ॥ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित् ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥ ३० ॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारय ॥ स्वं मनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर ॥ ३१ ॥ अशुभाच्चालितं याति शुभं तस्मादपीतरत् ॥ जन्तोश्चित्तं तु शिशुवत्तस्मात्तच्चालयेद्बलात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि तुह्मारा प्रकाशक कोई दूसरा चेतन है तो उसका प्रकाशक कौन है ? और उसका प्रकाशक कोइ तीसरा माना जाय तो उसका प्रकाशक कौन होगा ? इसप्रकार अनवस्था चलीजायगी जिससे किसीपदार्थकी सिद्धि नहींहोती ॥ २९ ॥ शुभ और अशुभ दोनोंमार्गोंसे वासनारूपीनदी वहतीहै. उसको पौरुषरूपीपुरुषार्थसे शुभमार्गमेंही लगानाचाहिये ॥ ३० ॥ हे बलियोमें श्रेष्ठ रामजी ! अशुभकार्योंमें प्रविष्ट अपने मनको पुरुषार्थके बलसे शुभकार्योंमें लगाओ ॥ ३१ ॥ चित्तरूपीनदी पुण्य और पापरूपी दोनोंप्रवाहोंमें वहरही है, यदि एक प्रवाह रोकाजाय तो दूसरीओर दूनेवेगसे बहतीहै यह योगशास्त्रका सिद्धांत है, इसीके अनुसार अशुभमार्गसे निवारणकियाहुआ प्राणीका चित्त बालकके समान शुभमार्गमें दूनेवेगसे चलताहै; और शुभमार्गसे निवारणकियाहुआ अशुभमार्गमेंभी दूनेवेगसे चलताहै, इसलिये अशुभमार्गसे रोककर शुभमार्गमेंही चित्तका लगाना उचितहै ॥ ३२ ॥

समतासान्त्वनेनाशु न द्रागिति शनैः शनैः ॥ पौरुषेणैव यत्नेन पालयेच्चित्तबालकम् ॥ ३३ ॥ वासनौघस्त्वया पूर्वमभ्यासेन घनीकृतः ॥ शुभो वाप्यशुभो वापि शुभमद्य घनीकुरु ॥ ३४ ॥ प्रागभ्यासवशाद्याता यदा ते वासनोदयम् ॥ तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन ॥ ३५॥ इदानीमपि ते याति घनतां वासनानघ ॥ अभ्यासवशतस्तस्माच्छुभाभ्यासमुपाहर ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसरीतिसे चित्तरूपीबालकको राग द्वेष आदि दोषरूपी विषमता दूरकरके स्वाभाविकसमतामें लगाकर पौरुषरूपयित्नसे धीरे२आत्मस्वरूपमें स्थितकरना चाहिये ॥ ३३ ॥ यद्यपि पूर्वजन्मके अभ्याससे शुभ वा अशुभवासनाओंका समूह एकत्र कियाहो, परंतु इस जन्ममें केवल शुभवासनाओंके समूहकोही एकत्र कीजिये ॥ ३४ ॥ हे अरिमर्दन ! पूर्वके अभ्यासकेवशसे जब तुमारी वासनाका उदय हो, अर्थात् वासना घनीभावको प्राप्तहो, तब जानों कि, अभ्यास सफल हुआ ॥ ३५ ॥ हे पापरहित रामचन्द्रजी ! अभ्यासवशसे इससमयभी तुमारी वासना घनी भूत होतीजाती है, इसलिये बार २ शुभ अभ्यासही कीजिये ॥ ३६ ॥

पूर्वं चेद्घनतां याता नाभ्यासात्तव वासना ॥ वर्द्धिष्यते तु नेदानीमपि तात सुखी भव ॥ ३७ ॥ संदिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाहर ॥ अस्यां तु वासनावृद्धौ शुभाद्दोषो न कश्चन ॥ ३८ ॥ यद्यदभ्यस्यते लोके तन्मयेनैव भूयते ॥ इत्याकुमारं प्राज्ञेषु दृष्टं सन्देहवर्जितम् ॥ ३९ ॥ शुभवासनया युक्तस्तदत्र भव भूतये ॥ परं पौरुषमाश्रित्य विजित्येन्द्रियपंचकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यदि पूर्वअभ्याससे तुमारी वासना घनी भूत नहींहुईहै तो वह अबभी नहींबढेगी, इसलिये दुर्वासनाकी वृद्धिसे अनर्थकी सम्भावनाका शोक त्यागके यथोचित सुखपूर्वक व्यवहार कीजिये ॥ ३७ ॥ शुभ और अशुभवासनाके फलके आरम्भमें सन्देह होनेपरभी शुभवासनाहीका वार २ अभ्यास करनाचाहिये क्योंकी शुभआचरणसे शुभवासनाकी वृद्धिमें कोई हानि नहींहै ॥ ३८ ॥ जैसा प्राणी अभ्यास करताहै वह उनका रूप होजाताहै. यह बात संसारमें बालकसे लेके बुद्धिमान् युवापर्यंतमें निश्चितरूपसे देखीगईहै ॥३९॥इसलिये तुम मोक्षरूपीऐश्वर्य प्राप्तहोनेकेलिये सबइन्द्रियोंको जीतकर और परमपुरुषार्थका आश्रयलेके शुभवासनासे युक्तहो ॥ ४० ॥

अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः ॥ गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥ ४१ ॥ ततः पक्वकषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना ॥ शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निराधिना ॥ ४२ ॥ यदतिसुभगमार्यसेवितं तच्छुभमनुसृत्य मनोज्ञभावबुद्ध्या ॥ अधिगमय पदं सदा विशोकं तदनु तदप्यवमुच्य साधु तिष्ठ ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे कर्मविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—जबतक बोध नहो और आप उस आत्मपदको न जानजाओ, तबतक गुरु, शास्त्र और प्रमाण, युक्ति, अनुभव आदिसे निर्णयकरके शुभवासनाका अभ्यास करो ॥४१॥ इसके अनन्तर राग द्वेष आदि मलके शिथिल होनेपर और आत्मवस्तुके जाननेके अनन्तर मानसदुःखरहित आप चाहै शुभवासनाओंकाभी त्यागकरदें ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! जो सबसे श्रेष्ठ है, श्रेष्ठजनोंसे सेवितहै, और सदा शोकरहित है, उसी आत्मपदको शुभमार्गकेअनुसार शुभ वासनायुक्तबुद्धिसे साक्षात्कार करो, और साक्षात्कारकरनेके अनन्तर शुभवासनाओंकोभी त्यागके कूटस्थरूपसे स्थित होजाहो ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार-
प्रकरणे कर्मविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अपना और ब्रह्माजीका जन्म तथा अपना उपदेश, यह ज्ञानकी भूमिका इस १० वे सर्गमें वर्णन कीगईहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—यथास्थितं ब्रह्मतत्त्वं सत्ता नियतिरुच्यते ॥ सा विनेतुर्विनेतृत्वं सा विनेयविनेयता ॥ १ ॥ अतः पौरुषमाश्रित्य श्रेयसे नित्यबान्धवम् ॥ एकाग्रं कुरु तच्चित्तं शृणु चोक्तमिदं मम ॥ २ ॥ अवान्तरनिपातीनि स्वारूढानि मनोरथम् ॥ पौरुषेणेन्द्रियाण्याशु संयम्य समतां नय ॥ ३ ॥ इहामुत्र च सिद्ध्यर्थं पुरुषार्थफलप्रदाम् ॥ मोक्षोपायमयीं वक्ष्ये संहितां सारनिर्मिताम् ॥४॥

अर्थ—कदाचित् यह कहो कि—पूर्वजन्मका पुरुषार्थही दैवनाम है,परन्तु नियति अथवा भवितव्यता जिसको वैराग्यप्रकरणमें कृतांतकी भार्यारूपसे वर्णनकियाहै, वह इस शंकाका परिहार करतेहुये श्रीवसिष्ठजी बोले—सर्वत्र समरूपसे स्थित जो व्यापक ब्रह्मकी सत्ता है उसीका नाम नियति है. और सत्ता नाम ब्रह्मतत्त्वका है; वही कार्यकारणके नियम्य और नियामकरूपसे स्थितहै, कारण होनेपर कार्य्य अवश्य होताहै; और कार्यहोनेपर कारण अवश्य होताहै, इसीनियमका नाम नियति है, वही कारण आदिकी नियामकता है; और वही कार्य आदिकी नियम्यताभी है ॥ १ ॥ सबके अनुकूल ब्रह्मसत्तारूप नियतिके होनेसे सत्ताका बन्धु जो पुरुषार्थ है उसीका आश्रय लेके चित्तको एकाग्र करो, और परमकल्याणकेलिये मैं जो कहताहूं उसे सुनो ॥ २ ॥ सबइंद्रियां विषयकी अभिलाषामें अति आरूढ हैं इसीलिये ऐहिक स्वर्गादिसुखकीओर अधिक गिरतीहै उनको पुरुषार्थरूपीयत्नसे जीतकर मनमें लीन करनाचाहिये ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी सिद्धिकेलिये पुरुषार्थके फलको देनेवाली मोक्षसाधन उपदेशोंसे पूर्ण सारभूत संहिताको मैं कहूंगा सुनिये ॥ ४ ॥

अपुनर्ग्रहणायांतस्त्यक्त्वा संसारवासनाम् ॥ सम्पूर्णो शमसन्तोषावादायोदारया धिया ॥ ५ ॥ सपूर्वापरवाक्यार्थविचारविषयाहतम् ॥ मनः समरसं कृत्वा सानुसन्धानमात्मनि ॥ ६ ॥ सुखदुःखक्षयकरं महानन्दैककारणम् ॥ मोक्षोपायमिमं राम वक्ष्यमाणं मया शृणु ॥ ७ ॥ इमां मोक्षकथां श्रुत्वा सह सर्वैर्विवेकिभिः ॥ परं यास्यसि निर्दुःखं नाशो यत्र न विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—सदाकेलिये संसारकी वासनाको त्यागकर और उदारबुद्धिसे पूर्ण शम और सन्तोषको ग्रहण करके॥५॥ कर्मकांड और उपासनाकांडकी श्रुतियोंके अर्थके विचारसहित और विषयवासनासे रहित समरस मनको आत्मामें लगाके ॥ ६ ॥ वैषयिकसुख और दुःखको क्षयकरनेवाला महाआनन्दका कारण यह जो मोक्षका उपाय मैं कहूंगा उसको हे रामजी ! सुनिये ॥ ७ ॥ सब विवेकियोंके साथ इस मोक्षकथाको सुनके अविनाशी और दुःखरहित परमपदको प्राप्तहोओगे ॥ ८ ॥

इदमुक्तं पुरा कल्पे ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ सर्वदुःखक्षयकरं परमाश्वासनं धियः ॥९॥ श्रीराम उवाच—केनोक्तं कारणेनेदं ब्रह्मन्पूर्वं स्वयम्भुवा ॥ कथं च भवता प्राप्तमेतत्कथय मे प्रभो ॥ १०॥ श्रीवसिष्ठ उवाच—अस्त्यनन्तविलासात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः ॥ चिदाकाशोऽविनाशात्मा प्रदीपः सर्वजन्तुषु ॥ ११ ॥ स्पन्दास्पन्दसमाकारात्ततो विष्णुरजायत ॥ स्यन्दमानरसापूरात्तरंगः सागरादिव ॥१२॥

१ जो विवेकरहित अथवा मन्दवैराग्यवाले हैं उनको ज्ञान नहींप्राप्तहोता, इसबातको दर्शानेकेलिये विवेकियोंके साथ यह कहा.

अर्थ— सबदुःखोंका नाशक बुद्धिको परमशांतिदायक इस मोक्षोपायको ब्रह्माजीने कल्पके आदिमें मुझसे कहाथा ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! किसकारणसे ब्रह्माजीने इसमोक्षोपायकी कथा कहीथी ? और वह कथा आपको कैसी प्राप्तहुई ? हे प्रभो ! यह वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—अनन्त मायाराचितविलासोंका अधिष्ठानरूप, सर्वव्यापि, सबका आश्रय, नाशरहित और सबप्राणियोंमें प्रकाशरूप, चिदाकाश (चेतन परमात्मा) है ॥ ११ ॥ माया और उसके कार्योंके चलायमान होनेपरभी निर्विकार समानरूप उसपरमात्मासे विष्णु ऐसे प्रकटहुये जैसे जलकी राशि एकरस समुद्रसे चंचल तरंग ॥ १२ ॥

सुमेरुकर्णिकात्तस्य दिग्दलाद्धृदयाम्बुजात् ॥ तारकाकेसरवतः परमेष्ठी व्यजायत ॥ १३ ॥ वेदवेदार्थविद्देवमुनिमण्डलमण्डितः ॥ सोऽसृजत्सकलं सर्गं विकल्पौघं यथा मनः ॥ १४ ॥ जम्बुद्वीपस्य कोणेऽस्मिन् वर्षे भारतनामनि ॥ ससर्ज जनसर्गौघं ह्याधिव्याधिपरिप्लुतम् ॥ १५ ॥ भावाभावविषण्णाङ्गमुत्पातध्वंसतत्परम् ॥ सर्गेऽस्मिन्भूतजातीनां नानाव्यसनसंकुलम् ॥ १६ ॥ जनस्यैतस्य दुःखं तद्दृष्ट्वा सकललोककृत् ॥ जगाम करुणामीशः पुत्रदुःखात्पिता यथा ॥ १७ ॥

अर्थ—जिसमें सुमेरु कर्णिका है, जिसमें दलरूप सब दिशायें हैं, और तारागण जिसमें केशर हैं, ऐसे उस विराट् परमात्माके हृदयकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्नहुये ॥ १३ ॥ वेद और वेदोंके अर्थोंके जाननेवाले देवता और मुनियोंके समूहसे शोभित ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार विकल्परूप संपूर्ण सृष्टि रची॥ १४ ॥ जम्बुद्वीपके भारतवर्षनामक कोनेमें शारीरिक और मानसी दुःखोंसे पूर्ण मनुष्योंके समूहको रचा ॥ १५ ॥ इस संसारके दुःखोंको, संपूर्णसंसारके कर्ता ब्रह्माजी देखकर ऐसे करुणासे पूर्णहुये जैसे पुत्रके दुःखसे पिता ॥ १६ ॥ १७ ॥

क एतेषां हताशानां दुःखस्यांतो हतायुषाम् ॥ स्यादिति क्षणमेकाग्रं चिन्तयामास भूतये ॥ १८ ॥ इति संचिन्त्य भगवान् ससर्ज स्वयमीश्वरः ॥ तपो धर्मं च दानं च सत्यं तीर्थानि चैव हि ॥ १९ ॥ एतत्सृष्ट्वा पुनर्देवश्चिन्तयामास भूतकृत् ॥ पुंसां नानेन सर्गस्य दुःखस्यांत इति स्वयम् ॥ २० ॥

अर्थ—इन हताश और नष्टआयुवाले प्राणियोंके दुःखके नाशका कौन उपाय है ? ऐसा उनके कल्याणके लिये एकाग्रचित्त होके क्षणभर विचार किया ॥ १८ ॥ दुःख हरनेमें समर्थ भगवान् ब्रह्माजीने ऐसी चिन्ता करके स्वयं तप, धर्म, दान,सत्य और तीर्थोंको उत्पन्नकिया ॥ १९ ॥ सबप्राणियोंके रचनेवाले देव ब्रह्माजीने सबको रचके पुनः स्वयं विचार किया कि ! सृष्टिके प्राणियोंका सर्वथा इससे दुःखका अन्त न होगा ॥ २० ॥

निर्वाणं नाम परमं सुखं येन पुनर्जनः ॥ न जायते न म्रियते तज्ज्ञानादेव लभ्यते ॥ २१ ॥ संसारोत्तरणे जन्तोरुपायो ज्ञानमेव हि ॥ तपो दानं तथा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥ तत्तावद्दुःखमोक्षार्थं जनस्यास्य हतात्मनः ॥ प्रत्यग्रन्तरणोपायमाशु प्रकटयाम्यहम् ॥ २३ ॥ इति संचिन्त्य भगवान् ब्रह्मा कमलसंस्थितः ॥ मनसा परिसंकल्प्य मामुत्पादितवानिमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिससे वह प्राणि इस संसारमें पुनः न उत्पन्नहोताहै और न मरताहै उस परमसुखका नाम निर्वाण है, वह केवल ज्ञानसेही प्राप्तहोताहै, अन्यथा नहीं ॥ २१ ॥ संसारसे पार उतरनेका उपाय केवल ज्ञानही है. तप, दान और तीर्थ, ये उसके उपाय नहींहैं ॥ २२ ॥ इसलिये दुःखसे छूटनेकोलिये और हतबुद्धिमनुष्योंके संसारसे पार उतरनेके लिये दृढ उपाय मैं शीघ्र प्रगटकरताहुं ॥ २३ ॥ कमलमें विराजमान ब्रह्माजीनें ऐसा विचार करके और मनसे संकल्प करके तुमारे सम्मुख स्थित जो मैं हूं उसको उत्पन्नकिया ॥ २४ ॥

कुतोऽप्युत्पन्न एवाशु ततोऽहं समुपस्थितः ॥ पितुस्तस्य पुनः शीघ्रमूर्मिरूर्मेरिवानघ ॥ २५ ॥ कमंडलुधरो नाथः सकमण्डलुना मया ॥ साक्षमालः साक्षमालं सप्रणम्याभिवादितः ॥ १६ ॥ एहि पुत्रेति मामुक्त्वा स स्वाब्जस्योत्तरे दले ॥ शुक्लाभ्र इव शीतांशुं योजयामास पाणिना ॥ २७ ॥ मृगकृत्तिपरीधानो मृगकृत्तिनिजांबरम् ॥ मामुवाच पिता ब्रह्मा सुहंसः सारसं यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे अनघ ! उसके अनन्तर मायाके वशसे शीघ्र अकस्मात् उत्पन्न मैं पिताके समीप ऐसे प्राप्तहुआ जैसे तरंगके समीप तरंग ॥ २५ ॥ कमण्डलु धारणकियेहुये, सबके स्वामी और जपमालासहित ब्रह्माजीको, कमण्डलु हाथमें लेके और जपमालाको धारण करके नम्र होके मैंने प्रमाण किया ॥ २६ ॥ आओ पुत्र ! ऐसे मुझसे कहके

श्वेतमेघमें चंद्रमाके समान अपने कमलके उत्तरदलमें हाथसे मुझे बैठालिया ॥ २७ ॥ मृगका चर्म धारणकिये पिता ब्रह्माजी मृगचर्म धारणकियेहुए मुझसे ऐसे बोले जैसे उत्तम हंस सारससे ॥ २८ ॥

मुहूर्त्तमात्रं ते पुत्र चेतो वानरचंचलम् ॥अज्ञानमभ्याविशतु शशः शशधरं यथा ॥२९॥ इति तेनाशु शप्तः सन् विचारसमनन्तरम् ॥ अहं विस्मृतवान् सर्वं स्वरूपममलं किल ॥३०॥ अथाहं दीनतां यातः स्थितोऽसम्बुद्धया धिया ॥ दुःखशोकाभिसन्तप्तो जातो जन इवाधनः ॥३१॥ कष्टं संसारनामाऽयं दोषः कथमिहागतः ॥ इति चिन्तितवानंतस्तूष्णीमेव व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अल्पकालकेलिये वानरके समान चंचल तुमारे चित्तमें अज्ञान ऐसे प्रवेश करे जैसे चंद्रमामें कलंक ॥ २९ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीसे शापित मैं, उनके विचारके अनन्तर अपना सम्पूर्ण स्वरूप शीघ्रही भूलगया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर अतिदीन, जडतायुक्त बुद्धिसहित, और दुःख तथा शोकसे संतप्त निर्धनजनके समान मैं होगया ॥ ६१ ॥ यह संसार अतिदुःखका हेतु है यह दोष कैसे आया ऐसा विचार चुप चाप मैंने अपने अन्तःकरणमेंही किया ॥ ३२ ॥

अथाभ्यधात्स मां तातः पुत्र किं दुःखवानसि ॥ दुःखोपघातं मां पृच्छ सुखी नित्यं भविष्यसि ॥३३॥ ततः पृष्टः स भगवान् मया सकललोककृत् ॥ हेमपद्मदलस्थेन संसारव्याधिभेषजम् ॥ ३४ ॥ कथं नाथ महादुःखमयः संसार आगतः ॥ कथं च क्षीयते जंतोरिति पृष्टेन तेन मे ॥ ३५ ॥ तज्ज्ञानं सुबहु प्रोक्तं यज्ज्ञात्वा पावनं परम् ॥ अहं पितुरभिप्रायः किलाधिक इव स्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पिताजीने मुझसे पूंछा कि पुत्र तुम क्यों दुःखी हो ? दुःखके नाशका उपाय मुझसे पूछो ! जिससे सदा सुखी होओगे ॥ ३३ ॥ पुनः सुवर्णके कमलपर बैठेहुये तथा सम्पूर्ण लोकके रचनेवाले ब्रह्माजीसे संसाररूपी रोगका औषध मैंने पूंछा कि ॥ ३४ ॥ हे पितः ! यह दुःखमय संसार प्राणिको कैसे प्राप्तहुआ ? और किसप्रकार इसका नाश होताहै ? इसप्रकार मेरे पूंछनेसे बहुत कुछ ज्ञान उन्होंने वर्णनकिया, जिसको जाननेसे परम पवित्रपद प्राप्तहोताहै, और उस ज्ञानसे पिताके सर्वोत्तम अभिप्रायके अनुकूल तत्वबोधके समान निर्मल परिपूर्ण स्वभायुक्त मैं होगया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

ततो विदितवेद्यं मां निजां प्रकृतिमास्थितम् ॥ स उवाच जगत्कर्ता वक्ता सकलकारणम् ॥ ३७ ॥ शापेनाज्ञपदं नीत्वा पृच्छकस्त्वं मया कृतः ॥ पुत्रास्य ज्ञानसारस्य समस्तजनसिद्धये ॥३८॥ इदानीं शांतशापस्त्वं परं बोधमुपागतः ॥ संस्थितोऽहमिवैकात्माऽकनकं कनकादिव ॥ ३९ ॥ गच्छेदानीं महीपृष्ठे जंबुद्वीपांतरस्थितम् ॥ साधो भारतवर्षं त्वं लोकानुग्रहहेतुना ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् जब मैं जाननेयोग्य वस्तुको जानगया और अपनी प्रकृतीमें स्थितहुआ तो जगत्कर्ता उपदेश करनेवाले ब्रह्माजीने मुझसे सब कारण कहा ॥ ३७ ॥ हे पुत्र समस्त अधिकारीजनोंकी ज्ञानसिद्धिकेलिये, शापसे तुमको अज्ञानी बनाके इस ज्ञानरूपी सारपदार्थका पूंछनेवाला मैंने बनायाथा ॥ ३८ ॥ इससमय तुम शापसे रहित परमबोधको प्राप्तहुयेहो, जैसे सुवर्ण दीर्घकालतक मालिनताके सबन्धसे सुवर्णसे पृथक् भासने लगताहै और शुद्धहोनेसे पुनः आदिस्वरूपको प्राप्तहोजाताहै, ऐसेही इससमय ज्ञानद्वारा शुद्धहोके तुम मेरेसमान हो ॥ ३९ ॥ हे साधो ! इससमय तुम संसारके ऊपर अनुग्रह करके जम्बुद्वीपके मध्यमें जो भारतवर्ष है वहांपर जाओ ॥ ४० ॥

तत्र क्रियाकांडपरास्त्वया पुत्र महाधिया ॥ उपदेश्याः क्रियाकांडक्रमेण क्रमशालिना ॥ ४१ ॥ विरक्तचित्ताश्च तथा महाप्राज्ञा विचारिणः ॥ उपदेश्यास्त्वया साधो ज्ञानेनानंददायिना ॥ ४२ ॥ इति तेन नियुक्तोऽहं पित्रा कमलयोनिना ॥ इह राघव तिष्ठामि यावद्भूतपरंपरा ॥ ४३ ॥ कर्तव्यमस्ति न ममेह हि किंचिदेव स्थातव्यमित्यतिमना भुवि संस्थितोऽस्मि ॥ संशांतया सततसुप्तधियेह वृत्त्या कार्यं करोमि न च किंचिदहं करोमि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ज्ञानावतरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—हे पुत्र ! वहांपर जो क्रियाकांडमें तत्पर हैं उनको तुम अपनी महाबुद्धिसे क्रमसे शोभायमान जो क्रियाकांड है उसीका उपदेश देना ॥ ४१ ॥ और जो विरक्तचित्त, महापण्डित और विचारशील जन हैं उनको

आनन्ददायी ज्ञानका उपदेश करना ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पिताकी आज्ञासे नियुक्त मैं जबतक अधिकारी जन रहैंगे तबतक यहांही हूं ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! मुझे इस संसारमें कुछ प्रयोजन नहीं है, कहीं रहनाचाहिये सो पृथ्वीपरही स्थित हूं, सदा निरभिमान होके यथाप्राप्त अज्ञानिओंकी बुद्धिसे कार्य करताहूं, और अपनी बुद्धिसे मैं कुछ नहींकरता ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ज्ञानावतरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विस्तारसे ज्ञानका अवतार, रामचन्द्रजीके वैराग्यकी स्तुति और प्रधानतासे वक्ता और प्रष्टाके लक्षण इस ११वें सर्गमें वर्णन कियेगयेहैं.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं ज्ञानावतरणं भुवि ॥ मया स्वमीहितं चैव कमलोद्भवचेष्टितम् ॥ १ ॥ तदिदं परमं ज्ञानं श्रोतुमद्य तवानघ ॥ भृशमुत्कण्ठितं चेतो महतः सुकृतोदयात् ॥२॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ कथं ब्रह्मन् भगवतो लोके ज्ञानावतारणे ॥ सर्गस्यानन्तरं बुद्धिः प्रवृत्ता परमेष्ठिनः ॥ ३ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ परमे ब्रह्मणि ब्रह्मा स्वभाववशतः स्वयम् ॥ जातः स्पन्दमयो नित्यमूर्मिरम्बुनिधाविव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह ज्ञानकी भूमिका और अपनी तथा ब्रह्माजीकी जन्मकी सम्पूर्ण चेष्टा आपसे मैंने कही ॥ १ ॥ हे पापरहित रामजी, इसलिये यह परमपवित्र जो ज्ञान है, इसके सुननेको जो आपके चित्तमें अत्यन्त इच्छा हुईहै यह आपके बडे भारी सुकृतका उदय हुआहै ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! सृष्टिके अनन्तरही भगवान् ब्रह्माजीकी संसारमें ज्ञानके अवतारकेलिये बुद्धि कैसे प्रवृत्तहुई, यह वार्ता विस्तारसे कृपाकरके वर्णनकीजिये ॥ ३ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले—परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें पूर्वजन्मके कर्मकी वासनाके समूहसे क्रियाशक्तिमय ब्रह्माजी ऐसें उत्पन्नहुये जैसे नित्यही समुद्रमें तरंग उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

दृष्ट्वैवमातुरं सर्गं सर्गस्य सकलां गतिम् ॥ भूतभव्यभविष्यस्थां ददर्श परमेश्वरः ॥ ५ ॥ स क्रियाक्रमकालस्य कृतादेः क्षय आगते ॥ मोहमालोच्य लोकानां कारुण्यमगमत्प्रभुः ॥६॥ ततो मामीश्वरः सृष्ट्वा ज्ञानेनायोज्य चासकृत् ॥ विससर्ज महीपीठं लोकस्याज्ञानशांतये ॥ ७ ॥ यथाहं प्रहितस्तेन तथान्ये च महर्षयः ॥ सनत्कुमारप्रमुखा नारदाद्याश्च भूरिशः ॥८॥

अर्थ—सम्पूर्णलोकमें और सबप्राणियोंकी सृष्टिके अनन्तर, उत्पन्नकिये जो प्राणी हैं उनको अज्ञानके कारणसे जन्म, वृद्धावस्था, और मृत्यु आदिसे दुःखको देखके उन प्राणियोंकी भूत, वर्तमान, और भविष्यकी दशाकोभी देखा ॥ ५ ॥ स्वर्ग और मोक्षके साधक अनुष्ठानयोग्य सतयुग आदि कालके बीतनेपर मनुष्योंके भावी अज्ञानको देखके अतिकरुणासे ब्रह्माजी पूर्ण होगये ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजीने मुझे उत्पन्नकरके और बार२ उपदेशद्वारा ज्ञानसे संयुक्तकरके, संसारके अज्ञानकी शांतिकेलिये पृथ्वीपर भेजा ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्माजीने मुझे भेजा ऐसेही सनत्कुमार आदि तथा नारदजी आदि औरभी अनेक ऋषियोंको भेजा ॥ ८ ॥

क्रियाक्रमेण पुण्येन तथा ज्ञानक्रमेण च ॥ मनो मोहामयोन्नद्धमुद्धर्त्तुं लोकमीरिताः ॥९॥ महर्षिभिस्ततस्तैस्तैः क्षीणे कृतयुगे पुरा ॥ क्रमात्क्रियाक्रमे शुद्धे पृथिव्यां तनुतां गते ॥ १० ॥ क्रियाकर्मविधानार्थं मर्यादानियमाय च ॥ पृथग्देशविभागेन भूपालाः परिकल्पिताः ॥११॥ बहूनि स्मृतिशास्त्राणि यज्ञशास्त्राणि चावनौ ॥ धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं कल्पितान्युचितान्यथ ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रियाकर्म उपासना तथा पवित्रज्ञानके उपदेशद्वारा मनमें स्थित अज्ञानरूपी रोगसे ग्रस्त संसारका उद्धार करनेकेलिये ये सब ऋषि भेजेगयेहैं ॥ ९ ॥ प्रथम सतयुगके क्षीण होजानेपर, और क्रमसे पृथ्वीपर शुद्ध यज्ञादिक्रियाओंके न्यून होजानेपर, महर्षियोंने क्रियाक्रमकी प्रवृत्तिकेलिये और मर्य्यादाओंके नियमकेलिये पृथक्२ देशोंमें राजाओंको स्थापितकिया ॥ १० ॥ ११ ॥ राजाओंको स्थापनेके उत्तर राजा और प्रजाके अपने २ नियमके योग्य धर्म कर्मकी सिद्धिकेलिये पृथ्वीपर अनेक स्मृति आदि शास्त्र बनाये ॥ १२ ॥

कालचक्रे वहत्यस्मिंस्ततो विगलिते क्रमे ॥ प्रत्यहं भोजनपरे जने शाल्यर्जनोन्मुखे ॥ १३ ॥ द्वंद्वानि संप्रवृत्तानि विषयार्थं महीभुजाम् ॥ दंड्यतां संप्रयातानि भूतानि भुवि भूरिशः ॥ १४ ॥ ततो युद्धं विना भूपा महीं पालयितुं क्षमाः ॥ न समर्थास्तदा याताः प्रजाभिः सह दैन्यताम् ॥१५॥ तेषां दैन्यापनोदार्थं सम्यग्दृष्टिक्रमाय च ॥ ततोऽस्मदादिभिः प्रोक्ता महत्यो ज्ञानदृष्टयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार कालचक्र जब चलरहाथा तथा शुद्धमर्यादा नष्ट होनेपरही थी और प्रतिदिन मनुष्य विषयभोगोंमें तत्पर होरहेथे ॥ १३ ॥ उससमय राजाओंमें विषयकेलिये आपसमें वैरबढगया, और पृथ्वीके प्राणी दण्डकेयोग्य होगये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर प्रथम जो राजालोग युद्धके विना पृथ्वीपालनेमें समर्थ थे, वे असमर्थ होगये; और देहमें आत्मबुद्धि होनेसे प्रजाओंकेसाथ दीन होगये ॥ १५ ॥ अनन्तर उनकी दीनता दूरकरनेकेलिये और ज्ञानके प्रचारके अर्थ हमने बडे २ ज्ञानके शास्त्र रचे ॥ १६ ॥

अध्यात्मविद्या तेनेयं पूर्वं राजसु वर्णिता ॥ तदनु प्रसृता लोके राजविद्येत्युदाहृता ॥ १७॥ राजविद्या राजगुह्य मध्यात्मज्ञानमुत्तमम् ॥ ज्ञात्वा राघव राजानः परां निर्दुःखतां गताः ॥ १८ ॥ अथ राजस्वतीतेषु बहुष्वमलकीर्त्तिषु ॥ अस्माद्दशरथाद्राम जातोऽद्यत्वमिहाऽवनौ ॥ १९ ॥ तव चातिप्रसन्नेऽस्मिन् जातं मनसि पावनम् ॥ निर्निमित्तमिदं चारु वैराग्यमरिमर्द्दन ॥ २० ॥

अर्थ—यह अध्यात्मविद्या प्रथम राजाओंमें वर्णन कीगईथी उसके अनन्तर संसारमें सबप्रजाओंमें प्रवृत्तहुई, इसीसे इसका नाम राजविद्या है ॥ १७ ॥ हे राघव ! यह राजाओंमें गोप्य राजविद्या उत्तम अध्यात्मज्ञान है, इसको जानके राजालोग दुःखरहित परम शांतिको प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर बहुतसे निर्म्मलकीर्ति राजाओंके व्यतीत होनेपर उदारकीर्ति राजा दशरथसे इससमय तुम पृथ्वीपर उत्पन्न हुये हो ॥ १९ ॥ हे अरिमर्दन रामजी ! आपके अतिप्रसन्न चित्तमें विनाकारण उत्तम वैराग्य यह उत्पन्नहुआहै ॥ २० ॥

सर्वस्यैव हि सर्वस्य साधोरपि विवेकिनः ॥ निमित्तपूर्वं वैराग्यं जायते राम राजसम् ॥ २१ ॥ इदं त्वपूर्वमुत्पन्नं चमत्कारकरं सताम् ॥ तवानिमित्तं वैराग्यं सात्त्विकं स्वविवेकजम् ॥२२॥ बीभत्सं विषयं दृष्ट्वा को नाम न विरज्यते ॥ सतामुत्तमवैराग्यं विवेकादेव जायते ॥ २३ ॥ ते महान्तो महाप्राज्ञा निमित्तेन विनैव हि ॥ वैराग्यं जायते येषां तेषां ह्यमलमानसम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण पुरुषसमूहके मध्यमें सब विवेकियोंकोभी पूर्वकालमें कुछ निमित्तहीसे राजस[1] वैराग्य उत्पन्नहोताहै ॥ २१ ॥ परंतु यह सज्जनोंको चमत्कारकारी, अपूर्व, विनाकारण निजके विवेकसे सात्त्विक वैराग्य आपकोही उत्पन्नहुआहै ॥ २२ ॥ घृणाजनक विषयोंको देखके किसको वैराग्य नहींहोता, परन्तु सज्जनपुरुषोंको विवेकसेही वैराग्य उत्पन्नहोताहै ॥२३॥ जिनको विनानिमित्त केवल विवेकसेही वैराग्य उत्पन्न होताहै वेही महात्माहैं, वेही महाबुद्धिमान्हैं, और उनका मन निर्मलहै ॥ २४ ॥

स्वविवेकचमत्कारपरामर्शविरक्तया ॥ राजते हि धिया जन्तुर्युवेव वरयालया ॥ २५ ॥ परामृश्य विवेकेन संसाररचनामिमाम् ॥ वैराग्यं येऽधिगच्छन्ति त एव पुरुषोत्तमाः ॥ २६ ॥ स्वविवेकवशादेव विचार्येदं पुनः पुनः ॥ इन्द्रजालं परित्याज्यं सबाह्याभ्यन्तरं बलात् ॥ २७ ॥ श्मशानमापदं दैन्यं दृष्ट्वा को न विरज्यते ॥ तद्वैराग्यं परं श्रेयः स्वतो यदभिजायते ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने विलक्षण विचारसे जो आत्मतत्त्वकीओर अभिमुखता होती है, उससे विषयोंसे विरक्त प्राणीकी ऐसी शोभा होती है, जैसे उत्तममोतियोंकी मालासे तरुणपुरुषकी ॥ २५ ॥ जिनको विवेकद्वारा इस संसारकी रचनाको विचारनेसे वैराग्य उत्पन्नहोताहै वेही उत्तम पुरुषहैं ॥ २६ ॥ अपने विवेकसे इसको वार २ विचार करके इस सम्पूर्ण बाह्य दृश्य और देह इन्द्रिय तथा बुद्धि आदिको मायिक समझके त्यागना चाहिये॥ २७ ॥ श्मशान, आपत्ति और दीनताको देखकर किसको वैराग्य नहीं उत्पन्नहोता, श्रेष्ठ वैराग्य तो वही है जो आपही विवेकसे उत्पन्नहो ॥२८॥

अकृत्रिमविरागत्वं महत्वमलमागतः ॥ योग्योऽसि ज्ञानसारस्य बीजस्येव मृदु स्थलम् ॥ २९ ॥ प्रसादात्परमेशस्य नाथस्य परमात्मनः ॥ त्वादृशस्य शुभा बुद्धिर्विवेकमनुधावति ॥ ३० ॥ क्रियाक्रमेण महता तपसा नियमेन च ॥ दानेन तीर्थयात्राभिश्चिरकालं विवेकतः ॥३१ ॥ दुष्कृते क्षयमापन्ने परमार्थविचारणे ॥ काकतालीययोगेन बुद्धिर्जंतोः प्रवर्त्तते ॥ ३२ ॥

---

(१) रजोगुणके कार्य दुःखके अनुभवसे राजस कहाजाताहै.

अर्थ—स्वाभाविक महान् वैराग्य आपको प्राप्तहुआहै, इसलिये आत्मविद्याके आप ऐसे पात्रहो जैसे बीजकी कोमल भूमि ॥ २९ ॥ सबके स्वामी परमात्माकी कृपाहीसे आपके सदृश मनुष्योंकी शुभबुद्धि विवेककी ओर दौ-डती है ॥ ३० ॥ क्रिया कर्म अर्थात् १६ सोलह संस्कारोंमें, पंचमहायज्ञ और पार्वणश्राद्धादि करनेसे तथा दया शान्ति और शौच आदि आत्मगुणोंसे, शीतउष्ण आदि सहन तथा चान्द्रायण आदि तपसे, इन्द्रिय, प्राण और मनके निग्रहरूप नियमसे, दानसे, तीर्थयात्रासे, और अधिककालके विवेकसे ॥ ३१ ॥ जब दुष्कृतका क्षय होताहै तब सब साधनोंके मेलरूप काकतालीयन्यायके तुल्य मनुष्यकी बुद्धि आत्मज्ञानके विचारकी ओर बडे सौ-भाग्यसे प्रवृत्तहोती है ॥ ३२ ॥

क्रियापरास्तावदलं चक्रावर्तिभिरावृताः ॥ भ्रमन्तीह जना यावन्न पश्यन्ति परं पदम् ॥ ३३ ॥ यथा-भूतमिदं दृष्ट्वा संसारं तन्मयीं धियम् ॥ परित्यज्य परं यान्ति निरालाना गजा इव ॥ ३४ ॥ विषमेय-मनन्तेह राम संसारसंसृतिः ॥ देहयुक्तो महाजन्तुर्विना ज्ञानं न पश्यति ॥ ३५ ॥ ज्ञानयुक्तिप्लवेनैव संसाराब्धि सुदुस्तरम् ॥ महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह ॥ ३६ ॥

अर्थ—जबतक यह प्राणी परंपद नहीं देखता, तबतक केवल क्रियाकाण्डमें तत्पर चक्रकेसदृश भ्रमणकारी रागद्वेषादिसे घिराहुआ इसी संसारमें भ्रमण करताहै ॥ ३३ ॥ इस संसारको विवेकयुक्तबुद्धिसे जैसाहै वैसा जान-कर, और तन्मयीबुद्धिको त्यागकर जैसे बन्धनरहित गज अपने अभीष्टस्थानपर जाते हैं, वैसेही दुःखमय संसारबं-धनसे रहित हो विवेकी जन परब्रह्मको प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! इस संसारकी अनन्त प्रवृत्ति सुखदुः-खादियुक्त होनेसे अतिभयंकरहै. जिसको देहमें आत्माका अभिमानहै, वह न तो संसारका यथार्थरूप जानताहै, और न ईश्वरका, इसलिये वह महान् धनाढ्य होनेपरभी कीट पतंगके तुल्यहै ॥ ३५ ॥ हे रघूद्वह रामजी ! ज्ञानयुक्तिरूप नौकासे विवेकी जन एकनिमेषमें दुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार होजाते हैं ॥ ३६ ॥

तामिमां ज्ञानयुक्तिं त्वं संसाराम्भोधितारिणीम् ॥ शृणुष्वावहितो बुद्ध्या नित्याऽवहितया तया ३७ यस्मादनन्तसंरम्भा जागत्यो दुःखभीतयः ॥ चिरायान्तर्दहन्त्येता विना युक्तिमनिन्दितान् ॥ ३८ ॥ शीतवातातपादीनि द्वंद्वदुःखानि राघव ॥ ज्ञानयुक्तिं विना केन सह्यतां यान्ति साधुषु ॥ ३९ ॥ आ-पतन्ति प्रतिपदं यथाकालं दहंति च ॥ दुःखचिन्ता नरं मूढं तृणमग्निशिखा इव ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा विचार और अभ्यासमें तत्पर तथा विवेक और वैराग्यसहित बुद्धिसे सावधानचित्त होकर संसाररूपसमुद्रसे पारकरनेवाली इस ज्ञानकी युक्तिको सुनो ॥ ३७ ॥ क्योंकि विना उत्तमज्ञानके वाणी, मन, क्रोध, जिव्हा, उदर और उपस्थ (गुह्येन्द्रिय) आदिके वेगयुक्त अनेक जगत्के दुःखोंके भय अधिककालतक हृदयको जलाते हैं ॥ ३८ ॥ हे राघव ! शीत, उष्ण, आदिरूप द्वंद्व दुःखोंको ज्ञानयुक्तिकेविना साधुमनुष्य कैसे सहन कर-सक्तेहैं ? ॥ ३९ ॥ दुःखकी चिन्ता मूढमनुष्यके निकट क्षण २ में आती है, और समयपाकर उसको ऐसे जलाती है जैसे अग्निकी ज्वाला तृणको ॥ ४० ॥

प्राज्ञं विज्ञातविज्ञेयं सम्यग्दर्शनमाधयः ॥ न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्निशिखा इव ॥ ४१ ॥ आधि-व्याधिपरावर्त्ते संसारमरुमारुते ॥ क्षुभितेऽपि न तत्त्वज्ञो भज्यते कल्पवृक्षवत् ॥ ४२ ॥ तत्त्वं ज्ञा-तुमतो यत्नाद्धीमानेव हि धीमता ॥ प्रामाणिकः प्रबुद्धात्मा प्रष्टव्यः प्रणयान्वितम् ॥ ४३ ॥ प्रामा-णिकस्य पृष्टस्य वक्तुरुत्तमचेतसः ॥ यत्नेन वचनं ग्राह्यमंशुकेनेव कुंकुमम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस बुद्धिमान् महात्माने विचारसे जानने योग्य वस्तुको जानलिया है और जिसको ब्रह्मसाक्षात्कार होगयाहै, उसको मानसिक पीडा ऐसे नहीं जला सक्ती जैसे वर्षासे भीगेहुये वनको अग्निकी ज्वाला ॥ ४१ ॥ मानसिक और शारीरिक दुःखरूपी चक्रयुक्त संसाररूपी मरुस्थलके पवनके चलनेपरभी, आत्मज्ञानी पुरुष कल्पवृक्षकेसमान पीडित नहीं होता ॥ ४२ ॥ इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि, प्रणाम सेवा आदि बडे यत्नसे आत्मतत्व जा-ननेकेलिये, जो श्रुति आदिके प्रमाणमें निपुण हो और आत्मज्ञानी (ब्रह्मनिष्ठ) और बुद्धिमान् हो उनसे नम्र होके प्रश्न करे ॥ ४३ ॥ शुद्धचित्त, पूंछेहुये वेदोंके प्रमाणमें कुशलवक्ताके वचनको ऐसे ग्रहण करना चाहिये जैसे कुंकुमके रसमें डालाहुआ नवीन वस्त्र कुंकुमको ग्रहण करता है ॥ ४४ ॥

अतत्त्वज्ञमनादेयवचनं वाग्विदां वर ॥ यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः ॥ ४५ ॥ प्रामा-

णिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः ॥ नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः ॥ ४६ ॥ अज्ञताऽतज्ज्ञते पूर्वं वक्तुर्निर्णीय कार्यतः ॥ यः करोति नरः प्रश्नं पृच्छकः स महामतिः ॥ ४७ ॥ अनिर्णीय प्रवक्तारं बालः प्रश्नं करोति यः ॥ अधमःपृच्छकः स स्यान्न महार्थस्य भाजनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जो आत्माको नहीं जानता, उसका वचन ग्रहणकरनेके योग्य नहीं है, ऐसे मनुष्यसे जो प्रश्न करताहै उससे बढके कोई मूर्ख नहीं है ॥ ४५ ॥ जो आत्मज्ञानी, और वेदोंके प्रमाणमें कुशल वक्ता है उसके वचनको जो बडे यत्नसे अंगीकार करके उसके अनुकूल आचरण नहीं करता उससेभी अधम कोई दूसरा मनुष्य नहीं है ॥ ४६ ॥ जो वक्ताके व्यवहारोंसे उसके ज्ञान और अज्ञानको निर्णय करके प्रश्न करताहै वही महाबुद्धिमान् है ॥ ४७॥ यह वक्ता ज्ञानी है वा अज्ञानी है इसबातका निर्णय न करके बालककेसमान जो प्रश्न करताहै वह मूर्ख है, और वह आत्मज्ञानका पात्र नहीं है ॥ ४८ ॥

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्धावनिन्दिते ॥ पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि ॥ ४९ ॥ प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्य च ॥ यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम् ॥ ५० ॥ त्वमतीव गुणश्लाघी पृच्छको रघुनन्दन ॥ अहं च वक्तुं जानामि समो योगोऽयमावयोः ॥ ५१ ॥ यदहं वच्मि तद्यत्नात्त्वया शब्दार्थकोविद ॥ एतद्वस्त्विति निर्णीय हृदि कार्यमखण्डितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी बुद्धि उक्त और अनुक्त दोनों विषयोंको विचारकर ग्रहण करनेमें समर्थ है और जिसके आचरण अनिन्दित हों ऐसेही पुरुषको बुद्धिमान् आत्मज्ञानका उपदेश करे, न कि मूर्ख पशुबुद्धिमनुष्यको ॥ ४९ ॥ पूंछनेवाला प्रामाणिकअर्थके योग्य है, इसबातको बिनाबिचारे जो आत्मज्ञानका कथन करताहै उसको बुद्धिमान् महामूर्ख कहतेहैं ॥ ५० ॥ हे रघुनन्दन ! आप ऐसे पूंछनेवाले हैं कि जिसके गुणप्रशंसाके योग्यहैं, और मैंभी कहना जानताहूं, इसलिये हम दोनोंका यह संयोग आमिलाहै ॥ ५१ ॥ हे शब्द और अर्थके जाननेमें चतुर रामजी ! जो कुछ मैं कहूं वह वस्तु है. ऐसा निर्णय करके, बडे यत्नकेसाथ उसको सम्पूर्णरूपसे हृदयमें धारण करो ॥ ५२ ॥

महानसि विरक्तोऽसि तत्त्वज्ञोऽसि जनस्थितौ ॥ त्वयि चोक्तं लगत्यन्तः कुंकुमाम्बु यथांशुके॥५३॥ उक्तावधानपरमा परमार्थविवेचिनी ॥ विशत्यर्थं तव प्रज्ञा जलमध्यमिवार्कभाः ॥ ५४ ॥ यद्यद्वच्मि तदादेयं हृदि कार्यं प्रयत्नतः ॥ नो चेत्प्रष्टव्य एवाहं न त्वयेह निरर्थकम् ॥ ५५ ॥ मनो हि चपलं राम संसारवनमर्कटम् ॥ संशोध्य हृदि यत्नेन श्रोतव्या परमार्थगीः ॥ ५६ ॥

अर्थ—आप मनुष्योंमें, कुलसे, गुणसे, और सदाचारसे बडे हो, तुमारेलिये जो कुछ कहा जायगा वह अन्तःकरणमें ऐसा लगेगा जैसे कुंकुमका जल श्वेतवस्त्रमें ॥ ५३ ॥ कथित विषयको धारण करनेमें निपुण और परमार्थका विवेक करनेवाली आपकी बुद्धि पदार्थमें ऐसे प्रवेश करती है जैसे जलके बीचमें सूर्यकी प्रभा ॥ ५४ ॥ जो २ मैं कहूंगा वह सब ग्रहण करनेके योग्य है उसको आपको उचित है कि दीर्घकालके अभ्यासादिसे हृदयमें धारण करो, और यदि ऐसा न हो तो आपको निरर्थक मुझसे पूंछनाही न चाहिये ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इस संसाररूपी बनमें मनरूपी वानर अति चंचल है उसको रोंककर मोक्षदायक परमार्थकी वाणीको सुनना चाहिये और उसको यत्नसे हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अविवेकिनमज्ञानमसज्जनरतिं जनम् ॥ चिरं दूरतरे कृत्वा पूजनीया हि साधवः ॥५७॥ नित्यं सज्जनसंपर्काद्विवेक उपजायते ॥ विवेकपादपस्यैव भोगमोक्षौ फले स्मृतौ ॥ ५८ ॥ मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ॥ शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसंगमः ॥ ५९ ॥ एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथ वा ॥ द्वारमुद्घाटयन्त्येते मोक्षराजगृहे तथा ॥ ६० ॥

अर्थ—जो अविवेकी तथा अज्ञानी है, और जिसकी दुष्टजनोंमें प्रीति हो, ऐसे मनुष्यको सदाकेलिये दूर करके, जो विवेकी, ज्ञानी, साधु, महात्मा हों उनकी सेवा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ सज्जनमहात्माके संगसे नित्यही विवेक उत्पन्न होताहै और विवेकरूप वृक्षकेही भोग और मोक्ष दोनो फल कहेगये हैं ॥ ५८ ॥ मोक्षके द्वारके शम, (इन्द्रियोंका निग्रह) विचार, सन्तोष, और सतसंग, चार द्वारपाल कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ इन चारोंकी, दोकी, अथवा तीनकी बडे यत्नसे सेवा करनीचाहिये; अर्थात् इनको सम्पादन करना चाहिये. क्योंकि–ये मोक्षरूपी राजाके द्वारको खोलदेते हैं ॥ ६० ॥

एकं वा सर्वयत्नेन प्राणांस्त्यक्त्वा समाश्रयेत् ॥ एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वशं यतः ॥६१॥ सविवेको हि शास्त्रस्य ज्ञानस्य तपसः श्रुतेः ॥ भाजनं भूषणाकारो भास्करस्तेजसामिव ॥ ६२ ॥ घनतामुपयातं हि प्रज्ञामान्द्यमचेतसाम् ॥ याति स्थावरतामम्बु जाड्यात्पाषाणतामिव ॥ ६३ ॥ त्वं तु राघव सौजन्यगुणशास्त्रार्थदृष्टिभिः ॥ विकासितान्तःकरणः स्थितः पद्म इवोदये ॥ ६४ ॥

अर्थ—अथवा प्राणोंकोभी त्यागकर सब यत्नसे इनमेंसे एकका भी आश्रय ग्रहणकरे क्योंकि—एकके वशमें होनेसे ये चारों वशमें होजाते हैं ॥ ६१ ॥ जो पुरुष विवेकसहित है वही शास्त्रका, ज्ञानका, तपस्याका, और श्रवणका पात्रहै. और वह सबका शिरोमणि ऐसा होताहै जैसा तेजस्वीपदार्थोंमें सूर्य ॥ ६२ ॥ जो अविवेकी हैं उनकी मूर्खता घनभूत अर्थात् अधिक होकर जड होजाती है. जैसे शीतकी अधिकतासे जल पाषाणकेतुल्य स्थिर होजाताहै ॥ ६३ ॥ हे राघव! तुम तो सुजनता, गुण, और शास्त्रके अर्थकी दृष्टियोंसे विकसित अन्तःकरणवाले सूर्यके उदयसे कमलके समान स्थित हो ॥ ६४ ॥

इमां ज्ञानगिरं श्रोतुमवबोद्धुं च सन्मते ॥ अर्हस्युद्धतकर्णस्त्वं जन्तुर्वीणास्वनं यथा ॥६५॥ वैराग्याभ्यासयोगेन समसौजन्यसम्पदाम् ॥ अर्जनां कुरुतां राम यत्र नाशो न विद्यते ॥ ६६ ॥ शास्त्रसज्जनसंसर्गपूर्वकैः सतपोदमैः ॥ आदौ संसारमुक्त्यर्थं प्रज्ञामेवाभिवर्द्धयेत् ॥ ६७ ॥ एतदेवास्य मौर्ख्यस्य परमं विद्धि नाशनम् ॥ यदिदं प्रेक्ष्यते शास्त्रं किंचित्संस्कृतया धिया ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे श्रेष्ठबुद्धिवाले रामजी! तुम इस ज्ञानकी वाणीके सुनने और मनन करनेको ऐसे योग्यहो, जैसे दोनों कानोंको उठायेहुये वीणाका शब्द सुननेको मृग ॥ ६५ ॥ वैराग्य और अभ्यासके योगसे हे रामजी! समता और सुजनता, आदि सम्पत्तियां ऐसी उपार्जन करो कि जिनका नाश कभी न हो ॥ ६६ ॥ शास्त्रोंका अभ्यास, सज्जनोंका संग, तप, तथा दम, (इन्द्रियनिग्रह) से सबसे प्रथम संसारसे युक्तिकेलिये विवेक ग्रहण करनेमें बुद्धिको बढाना उचितहै ॥ ६७ ॥ यदि यह (योगवासिष्ठ) ग्रन्थ शास्त्र कुछ संस्कारयुक्त बुद्धिसे देखाजाय तो इसी शास्त्रको महामूर्खतानाशक और सबसे उत्तम समझो ॥ ६८ ॥

संसारविषवृक्षोऽयमेकमास्पदमापदाम् ॥ अज्ञं संमोहयेन्नित्यं मौर्ख्यं यत्नेन नाशयेत् ॥ ६९ ॥ दुराशासर्पगत्येन मौर्ख्येण हृदि वल्गता ॥ चेतःसंकोचमायाति चर्माग्नाविव योजितम् ॥ ७० ॥ प्राज्ञे यथार्थभूतेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदति ॥ दृगिवेन्दौ निरम्भोदे सकलामलमण्डले ॥ ७१ ॥ पूर्वापरविचारार्थचारुचातुर्यशालिनी ॥ सविकासा मतिर्यस्य स पुमानिह कथ्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह संसाररूपी विषका वृक्ष सब विपत्तियोंका मुख्य स्थानहै और अज्ञानीको सदा मोहितकर लेताहै इसलिये यत्नसे मूर्खताका नाश करना चाहिये ॥ ६९ ॥ दुष्ट आशाओंसे सर्पकेसमान कुटिलगतिवाली मूर्खताके हृदयमें गर्जनेसे चित्त ऐसे सिकुडजाताहै जैसे अग्निके संयोगसे चमडा ॥ ७० ॥ बुद्धिमान् श्रोता और वक्ताके होनेपर यह यथार्थ आत्मबुद्धि ऐसे प्रफुल्लित होती है जैसे मेघरहित निर्म्मल सम्पूर्णचन्द्रमण्डलसे नेत्र ॥ ७१ ॥ पूर्व और परके विचारसे अतिसूक्ष्म पदार्थ ग्रहणकरनेमें समर्थ चतुरतासे शोभायमान और आत्मप्रकाशको ग्रहणकरनेवाली बुद्धिसे जो जनयुक्तहै वही इस संसारमें पुरुष कहलाताहै. क्योंकि परमपुरुषार्थ सिद्ध करनेसे उसीका जन्म सफलहै ॥ ७२ ॥

विकसितेन सितेन तमोमुचा वरविचारणशीतलरोचिषा ॥ गुणवता हृदयेन विराजस त्वममलेन नभः शशिना यथा ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे वक्तृपृच्छकलक्षणं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे रामजी! विकसित निर्मल, अज्ञाननाशक उत्तमविचारसे शीतल दीप्तियुक्त और नम्रता आदि गुणसहित हृदयसे आप ऐसे शोभित होरहेहैं जैसे चन्द्रमासे आकाश ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे वक्तृपृच्छकलक्षणंनामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

संसारकी दशाका अनर्थ, और ज्ञानका उत्तम माहात्म्य तथा श्रीरामजीनें उत्तम गुणोंकी सम्पत्ति इन विषयोंका वर्णन इस १२ वें सर्गमें कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच—परिपूर्णमना मान्यः प्रष्टुं जानासि राघव ॥ वेत्सि चोक्तं च तेनाहं प्रवृत्तो वक्तुमादरात् ॥१॥रजस्तमोभ्यां रहितां शुद्धसत्त्वानुपातिनीम्॥ मतिमात्मनि संस्थाप्य ज्ञानं श्रोतुं स्थिरो भव॥२॥ विद्यते त्वयि सर्वैव पृच्छकस्य गुणावली ॥ वक्तुर्गुणाली च मयि रत्नश्रीर्जलधौ यथा॥३॥ आप्तवानसि वैराग्यं विवेका संगजं सुत ॥ चन्द्रकान्त इवार्द्रत्वं लग्नचन्द्रकरोत्करः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्रजी ! अनेक गुणोंसे आपका मन परिपूर्ण है. तथा आप पूछनेकी रीतिको जानतेहैं. और जो बात साधारणरीतिसे कहीजाती है उसको तुम विशेषरीतिसे जानलेतेहो, इसलिये मैं आदरसे कहनेमें प्रवृत्त हुआहूं ॥ १ ॥ रजोगुण और तमोगुणसे रहित शुद्धगुण और परमात्मामें लीनबुद्धिको अपने आत्मामें स्थिर करके, ज्ञान सुननेकेलिये तुम उद्युक्त हो ॥ २ ॥ तुममें पूंछनेवालेके सम्पूर्णगुणोंकी पंक्ति और मुझमें कहनेवालेके सब गुणोंकी पंक्ति ऐसी है जैसे समुद्रमें रत्नोंकी सम्पत्ति ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! तुमको बिनाकिसीके संगसे विवेकसहित वैराग्य ऐसे प्राप्त है जैसे चन्द्रमाकी किरणोंकेसहित चन्द्रकान्तमणिमें आर्द्रता ॥ ४ ॥

चिरमाशैशवादेव तवाभ्यासोऽस्ति सद्गुणैः ॥ शुद्धैः शुद्धस्य दीर्घैश्च पद्मस्येवातिसन्ततैः ॥ ५ ॥ अथ श्रृणु कथां वक्ष्ये त्वमेवास्या हि भाजनम् ॥ न हि चन्द्रं विना शुद्धा सविकासा कुमुद्वती ॥६॥ ये केचन समारम्भा याश्च काश्च न दृष्टयः ॥ ते च ताश्च पदे दृष्टे निःशेषं यान्ति वै शमम् ॥ ७ ॥ यदि विज्ञानविश्रान्तिर्न भवेद्भव्यचेतसः ॥ तदस्यां संसृतौ साधुश्चिन्तामौढ्यं सहेत कः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमको बाल्यअवस्थासेही बडे २ उत्तम गुणोंका अभ्यास ऐसे है जैसे कमलकी उत्पत्तिके साथही सौगन्ध्य आदि गुण रहते हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इसलिये मैं इस कथाको कहताहूं आप सुनिये आपही इसके पात्रहैं, क्योंकि चन्द्रमाकेबिना शुद्ध आनन्ददायक विकाससहित कुमुदिनी नही होसक्ती ॥ ६ ॥ सब आरम्भ और सब प्रमाण प्रमेय व्यवहार उस परमपदके देखनेसे शान्त होजाते है अर्थात् जबतक परमपदका दर्शन न हो तबतक यह कथा श्रवण करनीचाहिये ॥ ७ ॥ यदि शुद्धचित्तवाले मनुष्यको ज्ञानसे शान्ति न होती, तो इस संसारमें अनेक अनर्थोंको कौन विवेकी पुरुष सहन करता, अर्थात् तुमारेसमान देह त्यागनेको उद्यत होजाता ॥ ८ ॥

परं प्राप्य विलीयन्ते सर्वा मननवृत्तयः ॥ कल्पान्तार्कगणासंगात्कुलशैलशिला इव ॥ ९ ॥ दुःसहा राम संसारविषावेशविषूचिका ॥ योगगारुडमन्त्रेण पावनेन प्रशाम्यति ॥ १० ॥ स च योगः सज्जनेन सह शास्त्रविचारणात् ॥ परमार्थज्ञानमन्त्रो नूनं लभ्यत एव च ॥ ११ ॥ अवश्यमिह हि विचारे कृते सकलदुःखपरिक्षयो भवतीति मन्तव्यं नाऽतो विचारदृष्टयोऽवहेलया द्रष्टव्याः ॥ १२ ॥

अर्थ—आत्माके साक्षात्कार होनेपर संपूर्ण हृदयकी ग्रन्थियाँ ऐसे छिन्नभिन्न होतीहैं जैसे कल्पके अन्तमें प्रलयकालके सूर्यके तेजसे महेन्द्रादि कुलपर्वतोंकी शिला ॥९॥ हे रामजी ! इस संसाररूपी विषके संबन्धसे जो बिषूचिका (महामारी) उत्पन्न होती है वह दुःसहहै, वह केवल जीवब्रह्मकी एकतारूपी परमपवित्र गरुडमंत्रसे शान्त होती है॥ ॥ १० ॥ वह जीवब्रह्मकी एकतारूप योग तथा परमार्थज्ञानका मंत्र सज्जनोंके संग और वेदान्तशास्त्रके विचारसे मिलता और फलीभूतभी होताहै ॥ ११ ॥ इस अधिकारी मनुष्यजन्ममें आत्मज्ञानसे संपूर्णक्लेशोंका नाश अवश्य होता है यह निश्चय है. इसलिये आत्मविचारका अनादर नहीं करनाचाहिये ॥ १२ ॥

विचारवता पुरुषेण सकलमिदमाधिपंजरं सर्पेण त्वचमिव परिपक्वां सन्त्यज्य विगतज्वरेण शीतलान्तःकरणेन विनोदादिन्द्रजालमिव जगदखिलमालोक्यते सम्यग्दर्शनवता असम्यग्दर्शनवतो हि परं दुःखमिदम् ॥ १३ ॥ विषमो ह्यतितरां संसाररागो भोगीव दशति असिरिव छिनत्ति कुन्त इव वेधयति रज्जुरिवावेष्टयति पावक इव दहति रात्रिरिवान्धयति अशंकितपरिपतितपुरुषान् पाषाण इवविवशीकरोति हरति प्रज्ञां नाशयति स्थितिं पातयति मोहान्धकूपे तृष्णा जर्जरीकरोति न तदस्ति किं चिद्दुःखं संसारी यन्न प्राप्नोति ॥ १४ ॥ दुरन्तेयं किल विषयविषूचिका यदि न चिकित्स्यते तन्नितरां नरकनगरनिकरफलानुबन्धिनी तत्तत्करोति ॥ १५ ॥ यत्र शिलाशितासिशातः पातउपलताडनमग्निदाहो हिमावसेकोंगावकर्त्तनं चन्दनचर्चा तरुवनानि घुणवृत्तांतः परिवेषोंगपरिमार्जनम-

नवरतानलविचलितसमरनाराचनिपातो निदाघविनोदनं धारागृहसीकरवर्षणं शिरच्छेदः सुखनिद्रा-मूकीकरणमाननमुद्राबांधुर्यं महानुपचयः ॥ १६ ॥

अर्थ — जो पुरुष विचारवान् चिन्तारहित शीतलहृदयसहित, और आत्मज्ञानी है वह संपूर्ण मानसीपीडा-ओंको ऐसे त्यागताहै जैसे सर्प अपने परिपक्कचर्म्मको, और वह संपूर्ण जगत्को कौतुकसे इन्द्रजालकेसमान देखताहै, और जो अज्ञानी है उसको केवल दुःखही दुःख इस संसारमें हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! इस संसारमें राग महाभयंकर है, यह सर्पके समान डसताहै तलवारके सदृश छेदन करताहै, बर्छीके तुल्य बेधताहै, रस्सीके समान बांधताहै अग्निके समान जलाताहै रात्रिके घोरअन्धकारके समान अन्धकार करदेताहै, अकस्मात् पाषाणके तुल्य पुरुषोंके ऊपर आगिरताहै, बेवश करदेताहै, बुद्धिको नाश करदेताहै, मर्य्यादाको तोडताहै, अज्ञानरूपी कुएमें गिराताहै. और तृष्णासे जर्जरकरदेताहै, ऐसा कोई दुःख नहीं जो संसारी पुरुषको नहीं होता॥१४॥ नरक अर्थात् मलमूत्रादिके नगरोंके समान जो शरीरोंके समूहहैं उनके फलोंमें प्रेम करानेवाली, यह विषयरूपी विषूचिकाहै यदि आत्मज्ञानरूपी औषध न कियाजायतो आगे कहेहुए नरकोंमें सहस्रों दुर्दशा होती हैं ॥ १५ ॥ जहां (नरकोंमें) पाषाणकी शिला-ओंका भोजन करनापडेगा, तलवारोंसे शरीरोंके टुकडे २ किये जांयगे, बडे २ पाषाण ऊपर गिरायेजांयगे, अग्निसे श-रीर जलायाजायगा, हिम (बर्फ) से जाडेमें स्नान करायाजायगा, कैंची आदिसे अंग कतरे जांयगे, चन्दनके समान पाषाणोंपर अंग घिसे जांयगे, तलवारोंके समान तीक्ष्णपत्रयुक्त जंगलोंमें दौडना पडेगा, घुनके समान सब अंगका-ष्ठके यंत्रमें दबाये जांयगे, जलती हुई लोहेकी जंजीरोंसे सब अंग जकडके बांधेजांयगे, कांटोंकी झाडू चर्म छिलनेप-र्य्यंत अंगोंपर फेरी जायगी, जिनमें अग्निकी ज्वाला निकल रहीहो, ऐसे युद्धसे फेंकेहुये बाणोंकी धारा निरन्तर शरी-रपर गिराईजायगी, छाया और जलके बिना ग्रीष्मऋतुको बितानापडेगा, शीतऋतुमें, फुहारोंका पानी निरन्तर ऊपर छोडा जायगा. शिर बार २ कटेंगे और पुनः जमेंगे सुखकी निद्रा तो कभी स्वप्नमेंभी न मिलेगी, मुख ऐसा बन्द किया जायगा कि—श्वासभी नहीं लियाजायगा, तथा सब अंग ऐसे छिन्नभिन्न किये जांयगे कि कामके न रहें और जहां ऊपर नीचे जानाही बडी उन्नति है (अर्थात् अवश्यही ऊपर नीचे जानापडेगा) ॥ १६ ॥

तदेवंविधकष्टचेष्टासहस्रदारुणे संसारबलयंत्रेऽस्मिन् राघव नावहेलना कर्त्तव्या अवश्यमेवं विचा-रणीयमेवं चावबोद्धव्यं यथा किल शास्त्रविचाराच्छ्रेयो भवतीति ॥ १७ ॥ अन्यच्च रघुकुलेन्दो यदि चैते महामुनयो महर्षयश्च विप्राश्च राजानश्च ज्ञानकवचेनावगुण्ठितशरीरास्ते कथमदुःखक्षमाअपि दुःखकरीं तां तां वृत्तिपूर्विकां संसारकदर्थनामनुभवन्तः सततमेव मुदितमनसस्तिष्ठन्ति ॥ १८ ॥ इह हि ॥ विकौतुका विगतविकल्पविप्लवा यथास्थिता हरिहरपद्मजादयः ॥ नरोत्तमाः समधिगतात्म-दीपकास्तथास्थिता जगति विशुद्धबुद्धयः ॥ १९ ॥ परिक्षीणे मोहे विगलति घने ज्ञानजलदे परिज्ञाते तत्त्वे समधिगत आत्मन्यतितते ॥ विचार्यार्यैः सार्द्धं चलितवपुषो वै सदृशतो धिया दृष्टे तत्त्वे रम-णमटनं जागतमिदम् ॥ २० ॥

अर्थ[1] — हे रामजी ! इस संसाररूपी चलायमान यन्त्रमें इसप्रकारके सहस्रों भयंकर दुःखहैं, इसमें कभी उ-पेक्षा नहीं करनीचाहिये, सदा शास्त्रोंसे अवश्य विचार करके वह बात जाननी चाहिये, जिससे मोक्ष प्राप्तहो ॥ १७ ॥ हे राघव ! यदि महानुभव, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, और राजालोग, अपने शरीरोंको ज्ञानरूपीकवचसे न ढांकते तो ये दुःख सहनेके अयोग्य होकरभी अनेक संसारकी पीडाओंको अनुभव करतेहुयेभी सदा प्रसन्नचित्त क्यों रहते ? ॥१८॥ और हे रामजी ! जिनको आत्मज्ञानरूपी प्रकाश प्राप्तहुआहै, वे उत्तम पुरुष शुद्धबुद्धिवाले कौतुक और विक्षेपसे रहित इस संसारमें ऐसे हैं जैसे विष्णु, शिव, और ब्रह्माजी ॥ १९ ॥ श्रेष्ठपुरुषोंके साथ "तत्त्वमसि" इत्यादि वाक्योंके अ-र्थके विचारसे शरीरमें आत्माभिमान नष्ट होनेसे आत्मतत्त्वका जब ज्ञान होताहै और उसके मननसे सर्वव्यापी अ-खण्ड आत्मामें असंभावनादि दोष निवृत्त होनेसे और निदिध्याससे विपरीत भावनाके नष्ट होनेपर इस संसारमें भ्रमण-भी रमणके तुल्य होताहै न कि पीडाजनक ॥ २० ॥

अन्यच्च राघव ॥ प्रसन्ने चित्तत्त्वे हृदि शमभवे वल्गति परे शमाभोगीभूतास्वखिलकलनादृष्टिषु पुरः॥ समं याति स्वान्तःकरणघटनास्वादितरसं धिया दृष्टे तत्त्वे रमणमटनं जागतमिदम् ॥ २१ ॥ अन्य-

[1] यदि ज्ञानी पुरुष ब्रह्मादिके समान पूर्ण कामहैं तो संसारमें उनका भ्रमण क्यों ? इस शंकाका समाधान है कि—उनका भ्रमणभी क्रीडाही है.

च ॥ रथः स्थाणुर्देहोऽस्तुरगरचना चेन्द्रियगतिः परिस्पन्दो वातो वहनकलितानन्दविषयः ॥ परोऽणुर्वा देही जगति विहरामीत्यनघया धिया दृष्टे तत्त्वे रमणमटनं जागतमिदम् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार-
प्रकरणे तत्त्वमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब परमार्थवस्तुके ज्ञानसे आत्मा प्रसन्न होता है हृदयमें उत्तम शान्तिभाव आताहै संपूर्ण वृत्तियां शान्त होके एकरसके आस्वादनमें तत्पर होतीहैं और ब्रह्मानन्दरूपी रसके आस्वादसें सम्पूर्ण अन्तःकरणकी अन्यवृत्तियां नष्ट होजातीहैं तब इस जगत्में भ्रमणभी रमणही है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! कटे वृक्षके ठूंठकेसमान यह अचेतन शरीर तो रथ है, और विषयरूपी भूमिपर दौडनेवाली इन्द्रियां घोडेहैं, रथादिके चलानेसे गतिशील प्राणप्रधान जो मन है वह लगाम है, और रथादिके चलानेसे आनन्दरूपी विषयको अनुभव करनेवाला जीव समाधिदशामें तो परमात्माही है, और व्यवहारदशामें बुद्धि आदि उपाधिके कारणसे सूक्ष्मरूप यह आत्मा रथी है, ऐसे रूपवाले जगत्में हम बिहारकरतेहैं इसप्रकार निदिध्याससे आत्मतत्वके जाननेपर इस जगत्में भ्रमणभी रमणहै ॥२२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार
प्रकरणे तत्वमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

जीवन्मुक्तिके फलसहित वैराग्यादि गुणोंका उदय, और विशेषकरके शमका वर्णन इस१३वें सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—एतां दृष्टिमवष्टभ्य दृष्टात्मानः सुबुद्धयः ॥ विचरन्तीह संसारे महान्तोऽभ्युदिता इव ॥ १ ॥ न शोचन्ति न वांछन्ति न याचन्ते शुभाऽशुभम् ॥ सर्वमेव च कुर्वन्ति न कुर्वन्तीह किंच न ॥ २ ॥ स्वच्छमेवाऽवतिष्ठन्ते स्वच्छं कुर्वन्ति यान्ति हि ॥ हेयोपादेयतापक्षरहिताः स्वात्मनि स्थिताः ॥ ३ ॥ आयान्ति च न चाऽयान्ति प्रयान्ति च न यान्ति च ॥ कुर्वन्त्यपि न कुर्वन्ति न वदन्ति वदन्ति च ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–आत्माका साक्षात्कार करनेवाले महात्मा इस ज्ञानदृष्टिको अवलंबन करके साम्राज्यके अभ्युदयको प्राप्तहुयेकेसमान आनन्दसे संसारमें विचरतेहैं ॥ १ ॥ न सोचतेहैं और शुभ और अशुभका ग्रहण वा त्याग नहीं चाहते, इसीलिये उनके साधनोंकीभी प्रार्थना नहीं करते सब कुछ व्यवहार करते हैं, और वास्तवमें कुछभी नहीं करते ॥ २ ॥ असंग आत्माके दर्शनसे निर्लेप रहतेहैं, शास्त्रीयकर्म करतेहैं, तथा सन्मार्गमें चलतेहैं, और ग्रहण तथा त्यागपक्षसेरहित अपने आत्मामेंही पूर्ण रहतेहैं ॥ ३॥ व्यवहारदृष्टिसे ज्ञानीलोग आते हैं, जातेहैं, कर्म करतेहैं. और बोलते हैं, परंतु आत्मदृष्टिसे न वे आतेहैं, न जातेहैं और न कर्म करते हैं और न वाणीसे बोलतेहैं ॥ ४ ॥

ये केचन समारम्भा याश्च काश्च न दृष्टयः ॥ हेयोपादेयतस्तास्ताः क्षीयन्तेऽधिगते पदे ॥ ५ ॥ परित्यक्तसमस्तेहं मनो मधुरवृत्तिमत् ॥ सर्वतः सुखमभ्येति चन्द्रबिम्ब इव स्थितम् ॥ ६ ॥ अपि निर्मननाऽऽरम्भमप्यस्ताऽखिलकौतुकम् ॥ आत्मन्येव न मात्यन्तरिन्दाविव रसायनम् ॥ ७ ॥ न करोतीन्द्रजालानि नाऽनुधावति वासनाम् ॥ बालचापलमुत्सृज्य पूर्वमेव विराजते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्माका ज्ञान होनेपर, अविद्याके जितने कार्य्य हैं, और असत्यमें जो सत्यदृष्टि है और हृदयकी जो सब ग्रंथियां हैं वे हेय और उपादेय न रहनेसे नष्ट होजाती हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानसे जिसकी संपूर्ण इच्छा वा चेष्टा निवृत्त होगई है, और जिसकी मनकी वृत्ति सदा शान्त ब्रह्माकारहै उसके ऊपर चन्द्रमाके बिम्बमें स्थित स्वर्गीयपुरुषकेसमान चारों ओरसे सुखकी वृष्टि होती है ॥ ६ ॥ जो पुरुष कौतुक और विषयके मननसेरहित होनेसे विक्षेपशून्यहै उसके आत्मामें आनन्द ऐसे नहीं समाता जैसे चन्द्रमामें अमृत ॥ ७ ॥ इन्द्रजालकेसमान मायाजनित विक्षेप उसको नहीं सताते, और वह वासनाके हेतु कर्मकीओर नहीं दौडता, बालककेसमान चंचलताको छोडके अनादिसिद्ध आत्मसुख उसको प्रथमसेही शोभित करता है ॥ ८ ॥

एवं विधा हि वृत्तय आत्मतत्त्वाऽवलोकनाल्लभ्यन्ते नाऽन्यथा ॥ ९ ॥ तस्माद्विचारेणात्मैवान्वेष्टव्य उपासनीयो ज्ञातव्यो यावज्जीवं पुरुषेण नेतरदिति ॥ १० ॥ स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैवैकवाक्य-

ता ॥ यस्याभ्यासेन तेनात्मा सन्ततेनावलोक्यते ॥ ११ ॥ अवहेलितशास्त्रार्थैरवज्ञातमहाजनैः ॥ कष्टामप्यापदं प्राप्तो न मूढैः समतामियात् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकारकी वृत्तियां केवल आत्मतत्वके दर्शनसेही मिलती हैं, और किसी रीतिसे नहीं ॥ ९ ॥ इसलिये, हे रामजी ! जबतक शरीरमें प्राण रहै तबतक आत्माका श्रवण मनन निदिध्यासन और ज्ञान संपादन करे ॥ १० ॥ हे रामजी ! निरन्तर अभ्याससे अपने अनुभवसे शास्त्रसे और गुरुसे एक अर्थका निश्चय होजाताहै और इस निश्चयसे निरन्तर आत्माका दर्शन होताहै ॥११॥ जिन्होंने शास्त्र और उसके अर्थका अनादर कियाहै, और ज्ञानी महात्माओंकी उपेक्षा की है, ऐसे मूढपुरुषोंके समान कष्टदशामेंभी नहीं होनाचाहिये ॥ १२ ॥

न व्याधिर्न विषं नापत्तथा नाधिश्च भूतले ॥ खेदाय स्वशरीरस्थं मौर्ख्यमेकं यथा नृणाम् ॥ १३ ॥ किंचित्संस्कृतबुद्धीनां श्रुतं शास्त्रमिदं यथा ॥ मौर्ख्यापहं तथा शास्त्रमन्यदस्ति न किंचन ॥१४॥ इदं श्राव्यं सुखकरं यथादृष्टान्तसुन्दरम् ॥ अविरुद्धमशेषेण शास्त्रं वाक्यार्थबन्धुना ॥ १५ ॥ अपदो या दुरुत्तारा याश्च तुच्छाः कुयोनयः ॥ तास्ता मौर्ख्यात्प्रसूयन्ते खदिरादिव कण्टकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने शरीरमेंही विद्यमान मूर्खता जैसी दुःखदायी है ऐसा दुःखदायी मनुष्योंको न तो कोई रोगहै न कोई विषहै, और न कोई आपत्ति है ॥ १३ ॥ थोडे बुद्धिमान् मनुष्योंकीभी मूर्खताको जैसे यह शास्त्र नाश करताहै वैसे दूसरा नहीं ॥ १४ ॥ जिनको परमात्मासे प्रीति हो अर्थात् जो आत्मज्ञानके अभिलाषी हों उनको पूर्वापर अविरुद्ध अनेक दृष्टान्तोंसे रमणीय सुखदायक यह संपूर्ण शास्त्र अवश्य सुननाचाहिये ॥ १५ ॥ तरनेमें कठिन बडी २ आपत्तियां और जो संपूर्ण दुष्टयोनि हैं वे सब अज्ञानसे ऐसे उत्पन्न होती हैं जैसे खदिरके वृक्षसे कांटे ॥ १६ ॥

वरं शरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु ॥ भिक्षार्थमटनं राम न मौर्ख्यहतजीवितम् ॥ १७ ॥ वरं घोरान्धकूपेषु कोटरेष्वेव भूरुहाम् ॥ अन्धकीटत्वमेकान्ते न मौर्ख्यमतिदुःखदम् ॥ १८ ॥ इममालोकमासाद्य मोक्षोपायमयं जनः ॥ अन्धतामेति न पुनः कश्चिन्मोहतमस्यपि ॥ १९ ॥ तावन्नयति संकोचं तृष्णा वै मानवाम्बुजम् ॥ यावद्विवेकसूर्यस्य नोदिता विमला प्रभा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! हाथमें शराव (सकोरा) लेकें गलियोंमें जाके चाण्डालके घरमें भिक्षा मांगना उत्तमहै, परन्तु अज्ञानसे नष्ट जीवन उत्तम नहीं ॥ १७ ॥ भयंकर अन्धकारयुक्त कूपमें अथवा वृक्षोंके कोटरोंमें वा अन्य एकान्तदेशमें अन्ध कीट (कीडा) होना उत्तमहै; परन्तु मनुष्यजन्ममें अतिदुःखदायी अज्ञान उत्तम नहीं ॥ १८ ॥ मोक्षोपायरूप इस प्रकाशको मनुष्य पाकर मृत्युका द्वार अज्ञानरूपी मूर्च्छाके अन्धकारसे कोई अन्धा नहीं होता अर्थात् सदा ज्ञानप्रकाशयुक्त रहताहै ॥ १९ ॥ तृष्णारूपी रात्रि मनुष्यरूपी कमलको तभीतक संकुचित करती है जबतक मनुष्यके हृदयमें विवेकरूपी सूर्यका निर्म्मल प्रकाश उदय नहीं होता ॥ २० ॥

संसारदुःखमोक्षार्थं मादृशैः सह बन्धुभिः ॥ स्वरूपमात्मनो ज्ञात्वा गुरुशास्त्रप्रमाणतः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्ताश्चरन्तीह यथा हरिहरादयः ॥ यथा ब्रह्मर्षयश्चान्ये तथा विहर राघव ॥ २२ ॥ अनन्तानीह दुःखानि सुखं तृणलवोपमम् ॥ नातः सुखेषु बध्नीयादृष्टिं दुःखानुबन्धिषु ॥ २३ ॥ यदनन्तमनायासं तत्पदं सारसिद्धये ॥ साधनीयं प्रयत्नेन पुरुषेण विजानता ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राघव ! संसारके दुःखकी निवृत्तिके लिये मेरेसमान बन्धुसे गुरु और शास्त्रोंके प्रमाणके अनुकूल अपने आत्माका स्वरूप जानकर अन्यमहर्षिगण विष्णु और शिव आदिके समान जीवन्मुक्त होकर जैसे संसारमें विचरते हैं, ऐसेही आपभी अपने आत्मस्वरूपको जानकर आनन्दसे विचरो ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस संसारमें दुःखतो अनन्तहैं और सुख तृणके कणके समानभी नहीं है इसलिये दुःखदायी जो संसारके पदार्थ हैं उनमें सुखकी दृष्टि करना उचित नहीं है ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको उचितहै कि पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये, जिससे दुःखरहित अनन्त आत्मपदकी प्राप्ति हो उस ज्ञानको प्राप्त करे ॥ २४ ॥

त एव पुरुषार्थस्य भाजनं पुरुषोत्तमाः ॥ अनुत्तमपदालम्बि मनो येषां गतज्वरम् ॥ २५ ॥ सम्भोगाशनमात्रेण राज्यादिषु सुखेषु ये ॥ सन्तुष्टा दुष्टमनसो विद्धि तानन्धदर्दुरान् ॥ २६ ॥ ये शठेषु दुरन्तेषु दुष्कृतारम्भशालिषु ॥ द्विषत्सु मित्ररूपेषु भक्ता वै भोगभोगिषु ॥ २७ ॥ ते यान्ति दुर्गमाद्दुर्गं दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम् ॥ नरकान्नरकं मूढा मोहमन्थरबुद्धयः ॥ २८ ॥

अर्थ—वेही उत्तम पुरुष पुरुषार्थके भागी हैं कि जिनका मन सबसे उत्तम जो आत्मपदहै उसमें चिन्तारहित होके लगाहै ॥ २५ ॥ जो पुरुष राज्यादिके भोगमात्रसे संतुष्टहैं उन दुष्ट जीवोंको अन्ध कूपके मेंढक समझो ॥ २६ ॥ जो मूढजन ठगनेवाले अंतमें दुःखदायी अति तुच्छ पापजनक ऊपरसे मित्र परन्तु भीतरसे शत्रुरूप भोगरूपी सर्पोंमें निमग्नहैं वे दुर्बुद्धि एक संकटसे दूसरे संकटमें एक दुःखसे दूसरे दुःखमें एक भयसें दूसरे भयमें और एक नरकसे दूसरे नरकमें सदा जाया करते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

परस्परविनाशोक्तेः श्रेयः स्थो न कदाचन ॥ सुखदुःखदशे राम तडित्प्रासरभंगुरे ॥ २९ ॥ ये विरक्ता महात्मानः सुविविक्ता भवादृशाः ॥ पुरुषान्विद्धि तान्वन्यान्भोगमोक्षैकभाजनान् ॥ ३० ॥ विवेकं परमाश्रित्य वैराग्याभ्यासयोगतः ॥ संसारसरितं घोरामिमामापदमुत्तरेत् ॥ ३१ ॥ न स्वप्तव्यं च संसारमायास्विह विजानता ॥ विषमूर्च्छनसंमोहदायिनीषु विवेकिना ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस संसारमें सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख सदा आतारहताहै प्राणी कभी ज्ञानविना सर्वथा सुखी नहीं होता क्यों कि संसारी सुख दुःखकी अवस्था बिजुलीकेसमान क्षणभंगुर है ॥२९ ॥ जो आपके सदृश विरक्त महात्मा, और एकान्तसेवी हैं वेही पुरुष बन्दनीय और भोग तथा मोक्षके भागी हैं ॥३०॥ प्राणियोंको उचित है कि वैराग्य और अभ्यासके संबन्धसे उत्तमविवेकका आश्रय लेकर इस संसारकी आपत्तिरूप नदीके पार उतरे ॥ ३१ ॥ विषकेसमान मूर्छादेनेवाली जो संसारकी माया हैं उनमें विवेकी विचारवान् पुरुषको उचित है कि कभी असावधान न रहे ॥ ३२ ॥

संसारमिममासाद्य यस्तिष्ठत्यवहेलया ॥ ज्वलितस्य गृहस्योच्चैः शेतेतार्णस्य संस्तरे ॥ ३३ ॥ यत्प्राप्य न निवर्त्तन्ते यदासाद्य न शोचते ॥ तत्पदं शेमुषीलभ्यमस्त्येवाऽत्र न संशयः ॥ ३४ ॥ नास्ति चेत्तद्विचारेण दोषः को भवतां भवेत् ॥ अस्ति चेत्तत्समुत्तीर्णा भविष्यथ भवार्णवात् ॥ ३५ ॥ प्रवृत्तिः पुरुषस्येह मोक्षोपायविचारणे ॥ यदा भवत्याशु तदा मोक्षभागी स उच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो पुरुष इस संसारमें आके इससे असावधान रहताहै, अर्थात् आत्मज्ञान नहीं सम्पादन करता वह मानो जलतेगृहमें तृणके बिछोनेपर निश्चित होके सोताहै ॥ ३३ ॥ जहांपर जाकर मनुष्य पुनः संसारमें नहीं आता, और जिसको पाकर शोच नहीं करता, वह पद केवल ज्ञानसे मिलताहै, और उसके होनेमे कोई सन्देह नहींहै, क्यों कि "असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्" (जो कहता है कि ब्रह्म नहीं है वह मानो अपनाही होना निषेधकरताहै) यह श्रुति है ॥ ३४ ॥ यदि तुमको आत्माके होनेमें सन्देह है तो विचारसे तुमारी क्या हानि है ? और यदि है तो विचारपूर्वक उसके ज्ञानसे तुम संसारसमुद्रसे पार होजाओगे ॥ ३५ ॥ जिससमय मनुष्य मोक्षके उपायके विचारमें प्रवृत्त होता है उसीसमय वह मोक्षका भागी होजाताहै ॥ ३६ ॥

अनपायि निराशङ्कं स्वास्थ्यं विगतविभ्रमम् ॥ न विना केवलीभावाद्विद्यते भुवनत्रये ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्तावुत्तमप्राप्तौ न क्लेश उपजायते ॥ न धनान्युपकुर्वन्ति न मित्राणि न बान्धवाः ॥ ३८ ॥ न हस्तपादचलनं न देशांतरसंगमः ॥ न कायक्लेशवैधुर्यं न तीर्थायतनाश्रयाः ॥ ३९ ॥ पुरुषार्थैकसाध्येन वासनैकार्थकर्मणा ॥ केवलं तन्मनोमात्रजयेनासाद्यते पदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नाशरहित, शंकारहित, शान्त तथा भ्रमशून्य केवलीभावको छोडके तीनोंलोकमें और कोई मोक्षका उपाय नहींहै ॥ ३७ ॥ उस केवलीभावके प्राप्तहोनेपर कैवल्य मुक्तिकी प्राप्तिमें कुछभी क्लेश नहीं होता, और ज्ञानके सिवाय धन, मित्र, और बन्धु कोईभी काम नहींआता ॥ ३८ ॥ आत्मज्ञानकेलिये हाथ पैर चलानेकी आवश्यकता नहीं, न देशान्तरमें जानापडताहै, न शरीरको क्लेश देनापडताहै, और न तीर्थोंमें निवास करना पडताहै ॥ ३९ ॥ वेदान्तश्रवण मनन, निदिध्यासनरूपपुरुषार्थसे द्वैतवासनाको निरुद्ध करके ब्रह्माकार दृढवासनासे और मनके जितनेसे आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४० ॥

विवेकमात्रसाध्यं तद्विचारैकान्तनिश्चयम् ॥ त्यजता दुःखजालानि नरेणैतदवाप्यते ॥ ४१ ॥ सुखसेव्यासनस्थेन तद्विचारयता स्वयम् ॥ न शोच्यते पदं प्राप्य न स भूयो हि जायते ॥ ४२ ॥ तत्सम-

---

देह तथा इन्द्रियादिमें आत्माभिमान त्यागके केवल ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थिति ।

स्तत्सुखासारसीमान्तं साधवो विदुः ॥ तदनुत्तमनिष्पन्दं परमाहू रसायनम् ॥४३॥ क्षयित्वात्सर्वभावानां स्वर्गमानुष्ययोर्द्वयोः ॥ सुखं नास्त्येव सलिलं मृगतृष्णास्विवैतयोः ॥ ४४ ॥

अर्थ—देह तथा इन्द्रियादिको आत्मासे पृथक् जाननेसे, विचार तथा एकान्तसेवनसे और दुःखोंके मूल जो विषयजालहैं, उनके त्यागसे मनुष्यको ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥४१॥ सुखासनपर बैठपर और स्वयं ब्रह्मका विचार करनेसे जो ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै, वह शोचके योग्य नहीं रहता, और पुनः इस संसारमें नहीं आता ॥ ४२॥ महात्मा जन ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिकोही समस्त आनन्दोंकी परमावधि कहतेहैं और उसीसे ध्यानकरनेवाले योगियोंको सर्वोत्तम, तथा अनिर्वचनीय आनन्दरसकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४३ ॥ मनुष्यलोक तथा देवलोकके सब पदार्थ नाशवान् हैं इसलिये जैसे मृगतृष्णामें जल नहीं है ऐसेही इन दोनों लोकोंके पदार्थोंमें सुखका लेशभी नहींहै ॥ ४४ ॥

अतो मनोजयश्चिन्त्यः शमसन्तोषसाधनः ॥ अनन्तसमसंयोगस्तस्मादानन्द आप्यते ॥ ४५ ॥ तिष्ठता गच्छता चैव पतता भ्रमता तथा ॥ रक्षसा दानवेनापि देवेन पुरुषेण वा ॥ ४६ ॥ मनः प्रशमनोद्भूतं तत्प्राप्यं परमं सुखम् ॥ विकासि शमपुष्पस्य विवेकोच्चतरोः फलम् ॥ ४७ ॥ व्यवहारपरेणापि कार्यवृन्दमविन्दता ॥ भानुनेवाम्बरस्थेन नोज्झ्यते न च वाच्छ्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसलिये शम और सन्तोष साधनसहित, अनन्तपरमात्माकी प्राप्तिकेलिये मनके जयकी चिन्ता करनीचाहिये, क्योंकि उसीसे आनन्दकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४५ ॥ चाहे चलताहो, वा बैठाहो, गिरता हो वा भ्रमण करता हो. राक्षस हो, दानव हो, देव हो, अथवा मनुष्य हो ॥ ४६ ॥ केवल मनकी शान्तिसेही विकासशील शम (शान्ति) रूप पुष्पसे शोभित विवेकरूपी बडेवृक्षका फल परमपदरूप सुख प्राप्तहोताहै ॥ ४७ ॥ परमपदकी प्राप्तिसे व्यवहारमें तत्परहोनेपर भी जीवका संसारीकार्य्योंसे संबन्ध नहीं रहता, आकाशस्थसूर्यके समान न तो वह किसी पदार्थको त्यागताहै, और न किसीको ग्रहणकरताहै ॥ ४८ ॥

मनः प्रशान्तमत्यच्छं विश्रान्तं विगतभ्रमम् ॥ अनीहं विगताभीष्टं नाभिवांछति नोज्झति ॥ ४९॥ मोक्षद्वारे द्वारपालानिमांञ्छृणु यथाक्रमम् ॥ येषामेकतमासक्त्या मोक्षद्वारं प्रविश्यते ॥ ५० ॥ सुखदोषदशा दीर्घा संसारमरुमण्डली ॥ जन्तोः शीतलतामेति शीतरश्मेः समप्रभा ॥ ५१ ॥ शमेनासाद्यते श्रेयः शमो हि परमं पदम् ॥ शमः शिवः शमः शान्तिः शमो भ्रान्तिनिवारणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो मन प्रशान्त, निर्मल, विश्रान्त, भ्रम तथा चेष्टारहित, और विषयकी अभिलाषारहितहै वह न तो कुछ चाहता और न कुछ त्यागताहै क्योंकि वह चारों ओरसे पूर्ण है ॥ ४९ ॥ मोक्षके द्वारपर द्वारपालहैं उनको क्रमसे विस्तारपूर्वक सुनो, उनमेंसे एककेसाथभी मेल होनेसे मोक्षके द्वारमें मनुष्यका प्रवेश होसक्ताहै ॥ ५० ॥ सुखकी आशारूप तापके समान और दोषदशासे पारहोनेके अयोग्य यह संसाररूपी मरुस्थली शमसे चन्द्रमाके किरणके समान प्राणीकेलिये शीतल होजाती है ॥ ५१ ॥ क्योंकि शमसेही मोक्ष प्राप्तहोताहै, शमही परमपदहै, शमही शिवहै, शमही शान्तिका मूलहै, और शमसेही भ्रमका निवारण होताहै ॥ ५२ ॥

पुंसः प्रशमतृप्तस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥ शमभूषितचित्तस्य शत्रुरप्येति मित्रताम् ॥ ५३ ॥ शमचन्द्रमसा येषामाशयः समलंकृतः ॥ क्षीरोदानामिवोदेति तेषां परमशुद्धता ॥ ५४ ॥ हृत्कुशेशयकोशेषु येषां शमकुशेशयम् ॥ सतां विकसितं ते हि द्विहृत्पद्माः समा हरेः ॥ ५५ ॥ शमश्रीः शोभते येषां मुखेन्दावकलंकिते ॥ ते कुलीनेन्दवो वन्द्याः सौन्दर्यविजितेन्द्रियाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो पुरुष शमसे तृप्त होरहाहै, और शमसे जिसका चित्त भूषितहै. उसका शत्रुभी मित्र होजाताहै ॥ ५३ ॥ शमरूपीचन्द्रमासे जिसका अन्तःकरण अलंकृतहै, उसको समुद्रकेसमान परम शुद्धता प्राप्त होती है ॥५४॥ जिन सज्जनमहात्माओंके हृदयकमलमें शमरूपी कमल विकसित हुआहै वे महात्माजन दो कमलधारी विष्णुभगवान्के समानहैं[1] ॥ ५५ ॥ जिनके कलंकरहित मुखपर शमरूपी लक्ष्मी शोभित होरही है वे अपनी सुन्दरतासे इन्द्रियोंको जीतनेवाले अपने कुलके चन्द्रमा वन्दनीयहैं ॥ ५६ ॥

त्रैलोक्योदरवर्तिन्यो नानन्दाय तथा श्रियः ॥ साम्राज्यसम्पत्प्रतिमा यथा शमविभूतयः ॥ ५७ ॥ यानि दुःखानि या तृष्णा दुःसहा ये दुराधयः ॥ तत्सर्वं शान्तचेतःसु तमोर्केष्विव नश्यति ॥ ५८ ॥

---

१ विष्णुके एक हृत्कमलसे ब्रह्माके कमलासनकी उत्पत्ति मानीगईहै.

मनो हि सर्वभूतानां प्रसादमधिगच्छति ॥ न तथेन्दोर्यथा शान्ते जने जनितकौतुकम् ॥ ५९ ॥ शमशालिनि सौहार्दवतिसर्वेषु जन्तुषु ॥ सुजने परमं तत्त्वं स्वयमेव प्रसीदति ॥ ६० ॥

अर्थ—त्रैलोक्यकी संपत्तियोंमें कोईभी इतना आनन्द नहीं देती जितना कि साम्राज्यसम्पत्तितुल्य शमके ऐश्वर्य सुख देते हैं ॥ ५७ ॥ संसारके दुःख और तृष्णा, तथा मनकी अनेक पीडा, सब शान्तचित्तवालेके ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे महान् अन्धकार सूर्य्यके प्रकाशसे ॥ ५८ ॥ आश्चर्यजनक सब प्राणियोंका चित्त चन्द्रमासे वैसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा कि एक शान्तमनुष्यके देखनेसे ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य शमसे शोभायमानहै, और सब प्राणियोंपर कृपा करनेवाला तथा सज्जनहै उसके ऊपर परमात्मा आपही कृपाकर प्रसन्नहोताहै ॥ ६० ॥

मातरीव परं यान्ति विषमाणि मृदूनि च ॥ विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमशालिनि ॥ ६१ ॥ न रसायनपानेन न लक्ष्म्याऽऽलिंगनेन च ॥ तथा सुखमवाप्नोति शमेनान्तर्यथा मनः ॥ ६२ ॥ सर्वाधिव्याधिचलितं क्रान्तं तृष्णावरत्रया ॥ मनः शमामृतासेकैः समाश्वासय राघव ॥ ६३ ॥ यत्करोषि यदश्नासि शमशीतलया धिया ॥ तत्रातिस्वदते स्वादु नेतरत्तात मानसे ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शमसे शोभायमानहै उसके ऊपर क्रूर और कोमलहृदयवाले संपूर्ण प्राणी विश्वास करते हैं जैसे मातापर ॥ ६१ ॥ अन्तःकरणमें जो सुख शमसे प्राप्त होताहै. वह न तो इन्द्र होके अमृतपानसे होता, और न विष्णु होके लक्ष्मीके आलिंगनसे होताहै ॥६२॥ हे रामजी ! यह मन जो शारीरिक तथा मानसिक अनेकदुःखोंसे चलायमान होरहाहै, और तृष्णारूपी रस्सीसे इधर उधर खिंचाहै उसको शमरूपीअमृतसे सींचके शांत करो ॥ ६३ ॥ हे-तात ! जहां बुद्धि शमसे शीतलहै वहां जो कुछ करतेहो,खातेहो, वह मनको अत्यन्त स्वादिष्ट लगताहै अन्यथा नहीं॥६४

शमामृतरसाच्छन्नं मनो यामेति निर्वृतिम् ॥ छिन्नान्यपि तयांगानि मन्ये रोहन्ति राघव ॥ ६५ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न दैत्या न च शत्रवः ॥ न च व्याघ्रभुजंगा वा द्विषन्ति शमशालिनम् ॥ ६६ ॥ सुसन्नद्धसमस्तांगं प्रशमामृतवर्मणा ॥ वेधयन्ति न दुःखानि शरावज्रशिलामिव ॥ ६७ ॥ न तथा शोभते राजा अप्यन्तःपुरसंस्थितः ॥ समयास्वच्छया बुद्धया यथोपशमशीलया ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! शमरूपी अमृतसे सिंचित मनसें ऐसा सुख प्राप्तहोताहै कि जिससे कटेहुयेभी अंग पुनः जुडजाते हैं ॥ ६५ ॥ शमसे शोभायमान पुरुषसे पिशाच, राक्षस, दैत्य, शत्रु, व्याघ्र और सर्प कोईभी द्वेष नहीं करता ॥ ६६ ॥ उत्तम शमरूपी कवचसे जिसके समस्त अंग रक्षितहैं उसको कामना ऐसे नहीं छेदनकरसकते जैसे वज्रकी शिलाको बाण ॥ ६७ ॥ अपने राजमहलमें विराजमान राजा वैसा शोभित नहीं होता जैसा शमसे शोभायमान स्वच्छ और समानबुद्धिसे साधारणपुरुष शोभितहोताहै ॥ ६८ ॥

प्राणात्प्रियतरं दृष्ट्वा तुष्टिमेति न वै जनः॥यामायाति जनः शान्तिमवलोक्य शमाशयम्॥६९॥समयाशमशालिन्या वृत्त्या यः साधु वर्तते ॥ अभिनन्दितया लोके जीवतीह स नेतरः ॥ ७० ॥ अनुद्धतमनाः शान्तः साधुकर्म करोति यत् ॥ तत्सर्वमभिनन्दन्ति तस्येमा भूतजातयः॥७१॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा शुभाशुभम् ॥ न हृष्यति ग्लायति यः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—प्राणसेभी प्रियजन (स्त्रीपुत्रादि) को देखकर मनुष्य वैसा प्रसन्न और शान्त नहीं होता, जैसा शमयुक्तअन्तःकरणवाले पुरुषको देखकर होताहै ॥ ६९ ॥ समतायुक्त सब मनुष्योंसे प्रशंसित शमसे शोभायमानवृत्तिसे इस संसारमें जो उत्तम व्यवहार करताहै उसीका जीवन सफल है दूसरेका नहीं ॥ ७० ॥ नम्रतायुक्त शान्तचित्त होके साधु पुरुष जो कार्य्य करताहै वही सबको प्रशंसनीय होताहै, और सब प्राणीमात्र उसके वशमें रहतेहैं ॥ ७१ ॥ जो शुभ वा अशुभ पदार्थको सुनकर, स्पर्श करके देखकर, भोजन करके, और स्नानकर न प्रसन्न होताहै और न ग्लानिको प्राप्त होताहै उसको शान्त कहते है ॥ ७२ ॥

यः समः सर्वभूतेषु भावि कांक्षति नोज्झति ॥ जित्वेन्द्रियाणि यत्नेन स शान्त इति कथ्यते ॥ ७३ ॥ स्पष्टावदातया बुद्ध्या यथैवान्तस्तथा बहिः ॥ दृश्यन्ते यत्र कार्याणि स शान्त इति कथ्यते ॥७४ ॥ तुषारकरबिम्बाभं मनो यस्य निराकुलम् ॥ मरणोत्सवयुद्धेषु स शान्त इति कथ्यते ॥ ७५ ॥ स्थितोऽपि न स्थित इव न हृष्यति न कुप्यति॥ यःसुषुप्तसमः स्वस्थः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७६॥

अर्थ—जो पुरुष प्रयत्नसे संपूर्ण इन्द्रियोंको जीतकर सबजीवोंमें समतासे वर्तता है, और सुख आदिकी इच्छा नहीं करता उसको (शमयुक्त) कहतेहै ॥७३॥ अपनी शुद्धबुद्धिसे दूसरेकी कुटिलता आदिको जानकरभी जो भीतर-

और बाहर एकरस रहताहै, और जिसमें मोक्षोपायके संपूर्ण कर्तव्य देखपडते हैं उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७४ ॥ मृत्यु आदिके भयमें, उत्सवमें, और क्रोधके समयमें जिसका मन व्याकुल न हो किन्तु चंद्रमाके बिम्बके समान निर्मल हो, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७५ ॥ हर्ष और शोकके स्थानमें वर्तमानभी जो न तो प्रसन्न होताहै और न क्रोध करताहै, और जो सुषुप्तकी दशाके समान स्वस्थचित्त रहताहै, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७६ ॥

अमृतस्यन्दसुभगा यस्य सर्वजनं प्रति ॥ दृष्टिः प्रसरति प्रीता स शान्त इति कथ्यते ॥ ७७ ॥ योन्तःशीतलतां यातो यो भावेषु न मज्जति ॥ व्यवहारी न संमूढः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७८ ॥ अप्यापत्सु दुरन्तासु कल्पान्तेषु महत्स्वपि ॥ तुच्छेहं न मनो यस्य स शान्त इति कथ्यते ॥ ७९ ॥ आकाशसदृशी यस्य पुंसः संव्यवहारिणः ॥ कलंकमेति न मतिः स शान्त इति कथ्यते ॥ ८० ॥

अर्थ—अमृतके प्रवाहके समान सुख देनेवाली प्रसन्नतायुक्त जिसकी दृष्टि सब प्राणियोंके ऊपर पडती है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७७ ॥ जिसका अन्तःकरण शीतल है, और जो संसारके विषयोंमें व्यवहार करताहुआभी उनमें अत्यन्त आसक्त नहीं होता, और न मूढ हो, उसको शान्त कहतेहै ॥ ७८ ॥ दीर्घकालकी बडी २ आपत्तियोंमेंभी मिथ्या और नश्वर देह आदिमें जिसके मनमें अहंबुद्धि नहीं है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७९ ॥ व्यवहार करतेहुयेभी जिस पुरुषकी बुद्धि आकाशकेसदृश विकाररहित और रागादि कलङ्कोंसे शून्य है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ८० ॥

तपस्विषु बहुज्ञेषु याजकेषु नृपेषु च ॥ बलवत्सु गुणाढ्येषु शमवानेव राजते ॥ ८१ ॥ शमसंसक्तमनसां महतां गुणशालिनाम् ॥ उदेति निर्वृतिश्चित्ताज्ज्योत्स्नेव सितरोचिषः ॥ ८२ ॥ सीमान्तो गुणपूगानां पौरुषैकान्तभूषणम् ॥ संकटेषु भयस्थाने शमः श्रीमान् विराजते ॥ ८३ ॥ शममसृतमहार्यमार्यगुप्तं परमवलंब्य परं पदं प्रयाताः ॥ रघुतनय यथा महानुभावाः क्रममनुपालय सिद्धये तमेव ॥८४॥ इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—संसारमें तपस्वियोंमें, पण्डितोंमें, यज्ञ करनेवालोंमें, राजाओंमें, बलवानोंमें, और बडे २ गुणियोंमें जो शान्तहै वही शोभायमान होताहै ॥८१॥ हे रामजी ! शममें आसक्त महान्‌गुणोंसे शोभायमान महात्माओंके चित्तमें शान्ति ऐसे उदय होतीहै जैसे चन्द्रमासे चन्द्रिका ॥ ८२ ॥ सब गुणसमूहोंकी अवधि सबपुरुषार्थोंका मुख्य भूषण, अनेक संपत्तियोंसे युक्त जो शम है, वह संकटोंमें और भयके स्थानोंमेंभी शोभितहोताहै ॥ ८३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यह शमरूपी सबसे उत्तम अमृत है, इसको दूसरे नहीं हरसकते, श्रेष्ठ पुरुषोंने इसकी बडी सावधानीसे रक्षा की है, और महात्माजन इसीका आश्रय लेके परमपदको प्राप्त हुयेहैं, पुरुषार्थ (आत्मज्ञान) की सिद्धिकेलिये आपभी उसी क्रमको पालनकीजिये ॥ ८४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

साधुसमागम, सत्‌शास्त्रोंका अवलोकन, और अन्तःकरणकी शुद्धिसे वर्द्धित, तथा शम और सन्तोषका हेतु जो विचार है, उसकी प्रशंसा इस १४ वें सर्गमें कीगईहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—शास्त्रावबोधामलया धिया परमपूतया ॥ कर्त्तव्यः कारणज्ञेन विचारोऽनिशमात्मनः ॥ १ ॥ विचारात्तीक्ष्णतामेत्य धीः पश्यति परं पदम् ॥ दीर्घसंसाररोगस्य विचारो हि महौषधम् ॥ २ ॥ आपद्वनमनंतेहापरिपल्लविताकृति ॥ विचारक्रकचच्छिन्नं नैव भूयः प्ररोहति ॥ ३ ॥ मोहेन बन्धुनाशेषु संकटेषु शमेषु च ॥ सर्वं व्याप्तं महा प्राज्ञ विचारो हि सतां गतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले, कि अर्थ अनर्थके संबंधका विचार, प्रमाण तात्पर्य्यका विचार, और आत्मत्वपरीक्षा, ये पांचप्रकारके विचार हैं, उनमेंसे विषयोंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति अनर्थका हेतु होतीहै, और शास्त्र तथा वैराग्यादिमें प्रवृत्ति परमपुरुषार्थका हेतु होतीहै, यह परीक्षा करना प्रथम विचार है. १ स्त्री पुत्र तथा देह आदि स्वभावसे बीजसे परिणामसे अशुद्ध मलमूत्रादिसहित अमंगलरूप हैं, और ब्रह्मलोकपर्य्यन्तका सुख अनित्य और दुःख मिलित है; यह परीक्षा

करना द्वितीय विचार है. २ ये दोनों वैराग्य और मोक्षकी इच्छाके कारण हैं, मोक्षकी इच्छाके अनन्तरभी क्या मोक्षका साधन कर्म है वा उपासना ? और दोनों ज्ञानसहितहैं वा नहीं ? अथवा ज्ञानही मोक्षका साधन है, यह परीक्षा करना तृतीय विचारहै. ३ और यदि ज्ञानहै, तो वह सांख्ययोग वैशेषिकादिशास्त्रोंमें जो कपिल गौतमादिने कहाहै वह है ? अथवा श्रुतिप्रतिपाद्य ? यदि श्रुतिका ज्ञान मोक्षका साधन है तो श्रुतियोंका तात्पर्य द्वैतमें है अथवा अद्वैतमें ? सविशेष आत्मामें हैं वा निर्विशेष ? इत्यादि परीक्षा करना चतुर्थ विचार है. ४ इसीको श्रवणभी कहतेहैं. अद्वैत श्रुतियोंका ब्रह्ममें तात्पर्य निश्चय होजानेपरभी वह आत्मामें यथार्थ सम्भव है कि नहीं ? इसप्रकार रत्नपरीक्षा न्यायसे अनुभव गुरु और सहपाठी आदिके संवादसे जीव ईश्वर और जगत्तत्वका शोधन जबतक निश्चय नहीं तबतक परीक्षा करना इसको पंचम विचार कहतेहैं. ५ इसलिये विषय, संशय, पूर्वपक्ष, आक्षेप, और सिद्धान्तके विभागोंका जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि शास्त्रजन्यबोधसहित निर्मल और पवित्रबुद्धिसे आत्मामें अहर्निश आत्माका विचार करे ॥ १ ॥ विचारसे बुद्धि तीव्र होकर परम पदको देखती है, क्योंकि संसाररूपी बडे भारी रोगका विचारही महान् औषध है ॥ २ ॥ अनेकप्रकारके रागद्वेषादि बडी आकृतिवाला यह आपत्तिरूप बन विचाररूपी काष्ठदार (कठफोरवा) नाम पक्षीसे काटाहुआ पुनः नहीं जमता ॥ ३ ॥ बन्धु नाश तथा अन्यभय और संकटके स्थान, सब अज्ञानसे व्याप्तहैं, इसलिये हे महाप्राज्ञ ! सज्जनोंका शरण विचारही है ॥ ४ ॥

न विचारं विना कश्चिदुपायोऽस्ति विपश्चिताम् ॥ विचारादशुभंत्यक्त्वा शुभमायाति धीः सताम् ॥५॥ बलं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिः क्रिया फलम् ॥ फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम् ॥ ६ ॥ युक्तायुक्त महादीपमभिवांछितसाधकम् ॥ स्फारं विचारमाश्रित्य संसारजलधिं तरेत् ॥ ७ ॥ आह्लनहृदयाम्भोजान् महामोहमतंगजान् ॥ विदारयति शुद्धात्मा विचारो नाम केसरी ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बुद्धिमानको विचारको छोडके दूसरा कोई उपाय नहीं है; विचारसे बुद्धि अशुभपदार्थको त्यागकर शुभको ग्रहण करती है ॥ ५ ॥ बल, बुद्धि, सामर्थ्य समयके अनुकूल स्फुरणा क्रियाओंका अनुष्ठान, और उनका फल ये सब बुद्धिमानोंके विचारसेही सिद्ध होतेहैं ॥ ६ ॥ उचित अनुचितके प्रकाश करनेमें महादीपके समान, वांछित अर्थका साधक जो महान् विचार है, उसका आश्रय लेके संसाररूपीसमुद्रके पार उतरना मनुष्यको आवश्यक है ॥ ७ ॥ हृदयके विवेकरूपी कमलोंको जिन्होंने छिन्न करदियाहै ऐसे महा अज्ञानरूपी हस्तियोंको शुद्धविचाररूपी सिंह नष्ट करदेताहै ॥ ८ ॥

मूढाः कालवशेनेह यद्गताः परमं पदम् ॥ तद्विचारप्रदीपस्य विजृम्भितमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ राज्यानि संपदः स्फारा भोगो मोक्षश्च शाश्वतः ॥ विचारकल्पवृक्षस्य फलान्येतानि राघव ॥ १० ॥ या विवेकविकासिन्यो मतयो महतामिह ॥ न ता विपदि मज्जन्ति तुम्बकानीव वारिणि ॥ ११ ॥ विचारोदयकारिण्या धिया व्यवहरन्ति ये ॥ फलानामत्युदाराणां भाजनं हि भवन्ति ते ॥ १२ ॥

अर्थ— जो लोक संसारके पार उतरनेके मार्गमें मूढ थे वे जो कालकी गतिसे परमपदको प्राप्त होगये वह केवल विचारकाही उत्तम फल है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! राज्य और बडी २ सम्पत्ति, भोग, और नित्य मोक्ष, ये सब विचाररूपी कल्पवृक्षके फल हैं ॥ १० ॥ जो महात्माओंकी बुद्धियां विचारसे विकसित होरही हैं वे विपत्तिमें ऐसे नहीं डूबतीं जसे जलमें तुंबियां ॥ ११ ॥ जो पुरुष विचारयुक्त बुद्धिसे कार्य करते हैं वे बडे २ श्रेष्ठ फलोंके पात्र है ॥ १२ ॥

मूर्खहृत्काननस्थानामाशाप्रथमरोधिनाम् ॥ अविचारकरंजानांमंजर्यो दुःखरीतयः ॥ १३ ॥ कज्जलक्षोदमलिना मदिरामदधर्मिणी ॥ अविचारमयी निद्रा यातु ते राघव क्षयम् ॥ १४ ॥ महापदतिदीर्घेषु सद्विचारपरो नरः ॥ न निमज्जति मोहेषु तेजोराशिस्तमःस्विव ॥ १५ ॥ मानसे सरसि स्वच्छे विचारकमलोत्करः ॥ नूनं विकसितो यस्य हिमवानिव भाति सः ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्खोंके हृदयरूपी वनमें जमनेवाली मोक्षकी इच्छाको प्रथमही रोकनेवाली, अविचाररूपी वृक्षोंकी दुःखरूपी लता विकसित होरही है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! कज्जलके चूर्णके समान मलिन मदिराके सदृश भ्रान्ति पतनादि कार्योंका कारण यह अविचाररूपी आपकी निद्रा, विचाररूपी जागरणसे नष्ट हो ॥ १४ ॥ महा आपत्ति सहित जो महा अज्ञान है उसमें सद्विचारवान् ऐसे नहीं डूबता जैसे अंधकारमें सूर्य ॥ १५ ॥ जिसके मनरूपी निर्मल मानस सरोवरमें विचाररूपी कमलका समूह विकसित हुआ है वह शीतलता उन्नति और स्थिरतादि गुणोंसे हिमालयके सदृश शोभायमान होता है ॥ १६ ॥

विचारविकला यस्य मतिर्मांद्यमुपेयुषः ॥ तस्योदेत्य शनिश्चन्द्रान्मुधा यक्षः शिशोरिव ॥ १७ ॥ दुःखखण्डकमस्थूलं विपन्नवलतामधुः ॥ राम दूरे परित्याज्यो निर्विवेको नराधमः ॥ १८ ॥ ये केचन दुरारम्भा दुराचारा दुराधयः ॥ अविचारेण ते भान्ति वेतालास्तमसा यथा ॥ १९ ॥ अविचारिणमे कान्तवनद्रुमसधर्मकम् ॥ अक्षमं साधुकार्येषु दूरे कुरु रघूद्वह ॥ २० ॥

अर्थ—जिसकी मूर्खतायुक्त बुद्धि विचारसे रहित है, उसके प्रकाश करनेके योग्य मनरूपी चन्द्रमासे भी वज्र ऐसे उदय होता है, जैसे बालककी मूर्खतासे वेताल प्रकट होता है ॥ १७ ॥ हे रामजी! जो विचाररहित अधम नर है वह दुःखरूपी बीजोंको धारण करनेके लिये अतिस्थूल पृथ्वीपर कुसूल (कोठिला) है और विपत्तिरूप नवीन लताओंके लिये वसन्तऋतु है, इसलिये उसको दूरसेही त्यागना योग्य है ॥ १८॥ अपनेको तथा दूसरेको दुःखदायक कर्म और शास्त्रसे निषिद्ध जो दुराचरण तथा अनेक मानसी पीडायें ये सब अविचारसेही ऐसे प्रकट होते हैं, जैसे अंधकारसे वेताल ॥ १९ ॥ हे रामजी! जो पुरुष विचाररहित है वह कंटक सहित वन वृक्षके समान है, इसीसे उत्तम पुरुषोंको सहायता देनेमें वा उत्तम पुरुषार्थ करनेमें असमर्थ है, उसको दूर करो ॥ २० ॥

विविक्तं हि मनो जन्तोराशा वै वश्यवर्जितम् ॥ परां निर्वृतिमभ्येति पूर्णचन्द्र इवात्मनि ॥ २१ ॥ विवेकितोदिता देहे सर्वं शीतलयत्यलम् ॥ अलंकरोति चात्यन्तं ज्योत्स्नेव भुवनं यथा ॥ २२ ॥ परमार्थपताका याधियो धवलचामरम् ॥ विचारो राजते जन्तोरजन्यामिव चन्द्रमाः ॥ २३ ॥ विचारचारवो जीवा भासयन्तो दिशो दश ॥ भान्ति भास्करवन्नूनं भूयो भवभयापहाः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसका मन विचार सहित हैं, तथा आशाकी पराधीनतासे वर्जित हैं, उसको पूर्ण चन्द्रमाके समान आत्मामें परमसुख प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ जब शरीरमें विचार उदय होता है वह संपूर्ण शरीरको ऐसे शीतल करता है जैसे घामसे पीडितको शीतल जल और सब शरीरको ऐसे शोभित करता है, जैसे चन्द्रमाकी चांदनी संपूर्ण जगत्को ॥ २२ ॥ मोक्षके अधिकारी पुरुषके ऊपर परम पुरुषार्थवाली बुद्धिरूप पताका तथा विचाररूपी चमर (राजाका चिन्ह) शोभित होता है जैसे रात्रिमें चन्द्रमा ॥ २३ ॥ विचारसे शोभायमान जीवन्मुक्त प्राणी दशोंदिशाको प्रकाश करते हुये और अनेक जवोंके संसारके भयरूपी अन्धकारको नाश करते हुये निःसन्देह सूर्यके समान प्रकाश करते हैं २४

बालस्य स्वमनोमोहकल्पितःप्राणहारकः ॥ रात्रौ नभसि वेतालो विचारेण विलीयते ॥ २५ ॥ सर्व एव जगद्भावा अविचारेण चारवः ॥ अविद्यमानसद्भावा विचारविशरारवः ॥ २६ ॥ पुंसो निजमनोमोहकल्पितोऽनल्पदुःखदः ॥ संसारचिरवेतालो विचारेण विलीयते ॥ २७ ॥ समं सुखं निराबाधमनन्तमनपाश्रयम् ॥ विद्धीमं केवलीभावं विचारोच्चतरोःफलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यह प्राणनाशक संसार अपने मनके अज्ञानसे ऐसे कल्पितहै, जैसे रात्रिमें बालकको बाहर न जानेकेलिये आकाशमें वेतालकी कल्पना होती है, और वह विचाररूपी सूर्य्यसेही नाशको प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ संपूर्णजगत्के पदार्थ विचार न होनेसेही उत्तम जान पडते हैं, विचारके उदय होतेही सब मिथ्या प्रतीत होनेलगते हैं ॥ २६ ॥ पुरुषने यह दुःखदायी संसाररूपी दीर्घकालका वेताल अपने मनके अज्ञानसेही कल्पना करलियाहै, वह केवल विचारसेही नष्टहोताहै ॥ २७ ॥ जगत्के विषमतारूप दोषसे वर्जित, स्वाधीन और निरतिशय सुख कैवल्य मुक्ति विचाररूपी बडेवृक्षकाही फल है ॥ २८ ॥

अचलस्थितितोदारा प्रकटाभोगतेजसा ॥ तेन निष्कामतोदेति शीततेवेन्दुनोदिता ॥ २९ ॥ स्वविचारमहौषध्या साधुश्चितनिषण्णया ॥ तयोत्तमत्वप्रदया नाभिवाञ्छति नोज्झति ॥ ३० ॥ तत्पदालम्बनं चेतः स्फारमाभासमागतम् ॥ नास्तमेति न चोदेति खमिवाततान्तरम् ॥ ३१ ॥ न ददाति न चादत्ते न चोन्नमति शाम्यति ॥ केवलं साक्षिवत्पश्यन् जगदाभोगि तिष्ठति ॥ ३२ ॥

अर्थ—विचारसे प्राप्त परमानन्दके सामर्थ्यसे जब चंचलताका हेतु अज्ञान नष्ट होजाताहै, तब अचलस्थितिवाली पूर्णानन्दरूप निष्कामता ऐसे उदय होती है; जैसे चंद्रमासे शीतलता ॥ २९ ॥ पूर्णानन्दकी अचलस्थितिरूप उत्तमताको देनेवाली अपने चित्तमें स्थित विचाररूप महौषधिसे साधुपुरुष अप्राप्तवस्तुको न तो चाहताहै और न प्राप्तको त्यागकरताहै, अर्थात् कृतकृत्य होजाताहै ॥ ३० ॥ विचारसे उत्पन्न ज्ञानयुक्त चित्त, जब परमपदका अवलम्बन करताहै तब वह चित्त भर्जितबीजकेसमान भासताहै, परन्तु उसमें अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती, अतएव आकाशकेसमान ब्रह्मभावको प्राप्त न वह अस्त होताहै और न रागादिवृत्तियोंकेसाथ उदय होताहै, इससे जीव-

नकी स्थिति और विक्षेपका अभाव दोनों सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि–वह जगत्के विषयोंको साक्षीकेसदृश उदासीन रूपसे देखताहुआ रागआदिके वशीभूत होके उनमें न मन देताहै, न परमार्थदृष्टिसे उनका उपभोग करताहै, न उद्धत होताहै, और न शान्त होताहै ॥ ३२ ॥

न च शाम्यति नाप्यन्तर्नापि बाह्येव तिष्ठति ॥ न च नैष्कर्म्यमादत्ते न च कर्मणि मज्जति ॥ ३३ ॥ उपेक्षते गतं वस्तु संप्राप्तमनुवर्त्तते ॥ न क्षुब्धो न च वाक्षुब्धो भाति पूर्ण इवार्णवः ॥ ३४ ॥ एवं पूर्णेन मनसा महात्मानो महाशयाः ॥ जीवन्मुक्ता जगत्यस्मिन् विहरन्तीह योगिनः ॥ ३५ ॥ उषित्वा सुचिरं कालं धीरास्ते यावदीप्सितम् ॥ ते तमन्ते परित्यज्य यान्ति केवलतां तताम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—न तो वह चित्त सुषुप्तिकेसमान उपाधिके शान्त होजानेसे शान्त होताहै, न स्वप्नकेसमान वासनामय अन्तःकरणमें लीन होताहै, और न जगत्में मूढजनोंकी अवस्थाके समान बाह्यपदार्थोंमें निमग्न होताहै, किन्तु उदासीनरूपसे स्थित रहताहै ॥३३॥ गतवस्तुकी उपेक्षा करताहै, अर्थात् उनकी प्राप्तिके लिये यत्न नहींकरता, और प्राप्तवस्तुसे अपना व्यवहार करताहै, न वह क्षोभको प्राप्त होता और न अक्षोभको किन्तु पूर्णसमुद्रकेसमान शोभायमान रहताहै ॥ ३४ ॥ इसप्रकार महाविचारवाले योगी महात्मा जन पूर्णमनसे जीवन्मुक्त होके इस संसारमें विहारकरते हैं ॥ ३५ ॥ वे धीर महात्मा जन अपनी इच्छापूर्वक दीर्घकालतक इस संसारमें निवास करके अन्तमें उपाधिके आभासको त्यागकर अनन्त कैवल्यपदको प्राप्तहोते हैं ॥ ३६ ॥

कोऽहं कस्य च संसार इत्यापद्यपि धीमता ॥ चिंतनीयं प्रयत्नेन सप्रतीकारमात्मना ॥ ३७ ॥ कार्यसंकटसन्देहं राजा जानाति राघव ॥ निष्फलं सफलं वापि विचारेणैव नान्यथा ॥ ३८ ॥ वेदवेदान्तसिद्धान्तस्थितयः स्थितिकारणम् ॥ निर्णीयन्ते विचारेण दीपेन च भुवोनिशि ॥ ३९ ॥ अनष्टमन्धकारेषु बहुतेजःस्वजिह्मितम् ॥ पश्यत्यपि व्यवहितं विचारश्चारुलोचनं ॥ ४० ॥

अर्थ—मैं कौन हूं? यह संसार कहांसे आया? ऐसा कुटुम्ब आदिमें आसक्तभी तथा आपत्तिमेंभी संसारके दुःखनाशक श्रवण आदि अनुष्ठानसहित सदा चिंतन करतेरहना ॥ ३७ ॥ हे राघव! अवश्य कर्तव्य कार्य्य संकटोंमें सन्धि, विग्रह, यान, द्वैधीभाव और समाश्रयादिको राजा विचारसेही जानताहै अन्यथा नहीं ॥ ३८ ॥ हे रामजी! वेद और वेदान्तकी स्थिति अर्थात् धर्म्मज्ञान और ब्रह्मका साक्षात्कार तथा जो परमपुरुषार्थका कारणहै, ये सब विचारसेही ऐसे निश्चित होते हैं जैसे रात्रिमें दीपसे पृथ्वीके पदार्थ ॥ ३९ ॥ यह साधारण नेत्र तो अन्धकारमें नष्टके समान होजाताहै, और सूर्यादिके अधिकतेजमें चकाचौंधीसे बन्ध होजाताहै, दूरके तथा व्यवहित (आड) के पदार्थोंको नहीं देखता परन्तु विचाररूपी उत्तम नेत्र ऐसा नहीं है, वह तो व्यवहितपदार्थोंकोभी देखताहै ॥ ४० ॥

विवेकान्धो हि जात्यन्धः शोच्यः सर्वस्य दुर्मतिः ॥ दिव्यचक्षुर्विवेकात्मा जयत्यखिलवस्तुषु ॥ ४१ ॥ परमात्ममयी मान्या महानन्दैकसाधिनी ॥ क्षणमेकं परित्याज्या न विचारचमत्कृतिः ॥ ४२ ॥ विचारचारुपुरुषो महतामपि रोचते ॥ परिपक्वचमत्कारं सहकारफलं यथा ॥४३॥ विचारकान्तमतयो नाऽनेकेषु पुनः पुनः ॥ लुठन्तिदुःखश्वभ्रेषु ज्ञाताध्वगतयो नराः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो पुरुष विचाररूपी नेत्रसे हीन है, उसको जन्मान्ध समझना चाहिये, और वह दुर्मति सबको शोचनीय है, और जिस विवेकात्माको विचाररूपी दिव्यचक्षु है, वह पुरुष संपूर्णपुरुषार्थको प्राप्त करताहै ॥ ४१ ॥ जिसमें सदा परमात्माहीका विचार हो इसीसे सब विचारोंसे अति प्रतिष्ठाके योग्य, और परमानन्दको सिद्ध करनेवाली विचारकी चमत्कृति (चमत्कार) को क्षणभरभी मनुष्यको नहीं त्यागना चाहिये, अर्थात् निरन्तर आत्माका चिन्तन करते रहना चाहिये ॥ ४२ ॥ विचारसे शोभायमान पुरुष महात्माओंकोभी ऐसे अच्छे लगते हैं, जैसे परिपाकसे चमत्कार जनक आम्रका फल ॥ ४३ ॥ विचारसे सुन्दर बुद्धिवाले पुरुष दुःखरूपी गढेमें वार २ ऐसे नहीं गिरते जैसे मार्गको जाननेवाले पुरुष ॥ ४४ ॥

न च रौति तथा रोगी नानर्थशतजर्जरः ॥ अविचारविनष्टात्मायथाज्ञः परिरोदिति ॥ ४५ ॥ वरं कर्दमभेकत्वं मलकीटकता वरम् ॥ वरमन्धगुहाहित्वं न नरस्याविचारिता ॥ ४६ ॥ सर्वानर्थनिजावासं सर्वसाधुतिरस्कृतम् ॥ सर्वदौःस्थित्यसीमान्तमविचारं परित्यजेत् ॥४७॥ नित्यं विचारयुक्तेन भवितव्यं महात्मना ॥ तथान्धकूपे पततां विचारो ह्यवलम्बनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनेक रोगोंसे पीडित, और विष तथा शस्त्र आदि अनर्थोंसे शिथिल शरीरवाला वैसा नहीं रोता जैसा अविचारसे नष्टात्मा अज्ञानी पुरुष अनेक जन्मोंकी परम्परामें सदा रोयाकरताहै ॥ ४५ ॥ कीचडोंमें मेंढक होना उत्तम है, मलका कीडा होना उत्तम है, और अन्धेरीगुफामें सर्प होनाभी उत्तम है, परन्तु मनुष्यकेलिये विचार न होना अच्छा नहीं ॥४६ ॥ संपूर्ण अनर्थोंके रहनेका मुख्य स्थान, सब महात्माओंसे तिरस्कृत, और सब दुर्दशाओंकी सीमा जो अविचार है उसे त्यागना चाहिये ॥ ४७ ॥ मनुष्यको उचित है कि सदा विचारयुक्त होके महात्मा बने, क्योंकि रागद्वेषादिरूप अंधकूपमें गिरनेवालोंको केवल विचारही अवलम्ब है ॥ ४८ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानमवष्टभ्य विचारतः ॥ संसारमोहजलधेस्तारयेत्स्वमनोमृगम् ॥ ४९ ॥ कोऽहं कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः ॥ न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते ॥ ५० ॥ अन्धान्धमोहसुघनं चिरं दुःखाय केवलम् ॥ कृतं शिलाया हृदयं दुर्मतेश्वाविचारिणः ॥ ५१ ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गदृशामिह हि राघव ॥ न विचारादृते तत्त्वं ज्ञायते साधु किंचन ॥ ५२ ॥

अर्थ—रागद्वेषादिके प्रवाहसे खिंचेहुयेभी अपने आत्माको स्वयं विचारसे स्थिर करके अपने मनरूपी चंचल मृगको संसारके अज्ञानरूपी समुद्रसे पार करे ॥ ४९ ॥ मैं कौन हूं ? क्या मैं शरीरादि हूं या उनसे विलक्षण हूं ? यह संसार क्या है ? और किसप्रकारसे अधिष्ठानरूप आत्मामें आया इसप्रकार श्रुति गुरु और अनुभव आदिसे परामर्शको विचार कहतेहैं ॥ ५० ॥ विचाररहित दुर्बुद्धिका हृदय अन्धेसेभी अन्धतर, अज्ञानसेभी अज्ञानतर, मानो वह केवल दुःख सहन करनेहीकेलिये पाषाणसे बनाहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! सत्यके ग्रहणकरनेकेलिये और असत्यके त्यागनेकेलिये बुद्धिमान्पुरुषोंको विचारसे उत्तम कोईभी पदार्थ इस संसारमें नहीं है ॥ ५२ ॥

विचाराज्ज्ञायते तत्त्वं तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि ॥ अतो मनसि शान्तत्वं सर्वदुःखपरिक्षयः ॥ ५३॥ सफलतां फलते भुवि कर्मणां प्रकटतां किल गच्छति उत्तमाम् ॥ स्फुटविचारदृशैव विचारिता शमवते भवते च विरोचताम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विचारनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—विचारसेही तत्व जानाजाता है, और तत्वज्ञानसेही आत्मामें स्थिति वा विश्रांति होति है, और इसीसे मनकी शान्ति और सब दुःखोंका नाश होता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन स्वच्छ विचारदृष्टिसेही लौकिक और वैदिककर्मोंकी सफलता होती है, और विचारसेही आत्मतत्वकी वक्ष्यमाण सप्तमभूमिका मनुष्यको प्राप्तहोती है, इसलिये समाधिके साधन शमसहित आपकीभी विचारमें प्रबल रुचि हो ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विचारनिरूपणंनाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

वैराग्यरूपी कल्पवृक्षकी शीतल और सुखदायक छायाके समान "सन्तोषनामक" मोक्षके तीसरे द्वारपालका वर्णन इस १५ वे सर्गमें कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सन्तोषो हि परं श्रेयः सन्तोषः सुखमुच्यते ॥ संतुष्टः परमभ्येति विश्राममरिसूदन ॥ १ ॥ संतोषैश्वर्यसुखिनां चिरविश्रान्तचेतसाम् ॥ साम्राज्यमपि शान्तानां जरत्तृणलवायते ॥ २ ॥ संतोषशालिनी बुद्धी राम संसारवृत्तिषु ॥ विषमास्वप्यनुद्विग्ना न कदाचन हीयते ॥ ३॥ संतोषामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः ॥ भोगश्रीरतुला तेषामेषां प्रतिविषायते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे अरिसूदन रामजी ! संतोषही मोक्ष और परमसुख है, जो सन्तुष्ट मनुष्य है वह सर्वथा दुःख विक्षेपसे रहित शान्तिको प्राप्तहोताहै ॥ १ ॥ संतोषरूपी ऐश्वर्यके प्रभावसे जो सुखी हैं और उसीकेद्वारा जिनका चित्त दीर्घकालतक आश्वस्त है, तथा संतोषसे जिनका आत्मा शान्त है उन महानुभावोंको त्रैलोक्यका साम्राज्यभी पुराने तृणकेसमान प्रतीतहोताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! सन्तोषसे शोभायमान जो बुद्धि है वह दैवेच्छासे दारिद्र्य और वियोगसे दुःखदायी संसारकी दशा होनेपरभी सुखसे रहित नहीं होती ॥ ३ ॥ सन्तोषरूपी अमृतके पानसे जो तृप्तहोगये हैं, उन शान्तपुरुषोंको अनन्तभोगकी लक्ष्मी विषकेसमान भानहोती है ॥ ४ ॥

न तथा सुखयन्त्येताः पीयूषरसवीचयः ॥ यथातिमधुरास्वादः सन्तोषो दोषनाशनः ॥ ५ ॥ अप्राप्तवांछामुत्सृज्य सम्प्राप्ते समतां गतः ॥ अदृष्टखेदाखेदो यः स सन्तुष्ट इहोच्यते ॥ ६ ॥ आत्मनाऽऽत्मनि सन्तोषं यावद्याति न मानसम् ॥ उद्भवन्त्यापदस्तावल्लता इव मनोबिलात् ॥ ७ ॥ सन्तोषशीतलं चेतः शुद्धविज्ञानदृष्टिभिः ॥ भृशं विकासमायाति सूर्यांशुभिरिवांबुजम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अमृतरसकी तरंगें ऐसी सुखदायी नहीं होसकतीं जैसा सब दीनता और आशादिदुःखोंका नाशक आनन्दमय आस्वादयुक्त संतोष सुखदायी होताहै ॥ ५ ॥ अप्राप्तवस्तुकी इच्छासे वर्जित और प्राप्तवस्तुके मिथ्यात्वसे उसमें हर्षविषाद शून्य और प्रसन्नता तथा शोकरहित पुरुषको इस शास्त्रमें सन्तुष्ट कहतेहैं ॥ ६ ॥ जबतक अपने आत्माहीमें मन सन्तुष्ट नहींहोता, तबतक मनरूपी बिलसे लताकेसमान आपत्तियां उत्पन्न हुआ करतीहैं ॥ ७ ॥ रागद्वेषरहित शुद्धज्ञानद्वारा संतोषसे शीतल चित्त अत्यन्त विकासको ऐसे प्राप्तहोताहै जैसे सूर्यके किरणोंसे कमल ॥ ८ ॥

आशा वै वश्यविवशे चित्ते संतोषवर्जिते ॥ म्लाने वक्त्रमिवाऽऽदर्शे न ज्ञानं प्रतिबिंबति ॥९॥ अज्ञानघनयामिन्या संकोचं न नरांबुजम् ॥ यात्यसावुदितो यस्य नित्यं संतोषभास्करः ॥ १० ॥ अकिंचनोऽप्यसौ जंतुः साम्राज्यसुखमश्नुते ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तं संतुष्टं यस्य मानसम् ॥ ११ ॥ नाभिवांछत्यसंप्राप्तं प्राप्तं भुंक्ते यथाक्रमम् ॥ यः सुसौम्यसमाचारः सन्तुष्ट इति कथ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—आशासे व्याकुल और संतोषसे रहित मलिनचित्तमें उपदेश ऐसे नहीं प्रतिबिंबित होता जैसे मलिनदर्पणमें मुख ॥ ९ ॥ जिस पुरुषरूपी कमलके विकसितकरनेकेलिये सन्तोषरूपी सूर्य उदितहुआहै, वह अज्ञानरूपी गाढअन्धकारयुक्त रात्रिमें संकुचित नहीं होता ॥१०॥ जिस प्राणीका चित्त शारीरिक और मानसिकपीडासे वर्जित और सन्तुष्ट है वह दरिद्री होनेपरभी साम्राज्यका सुख भोगताहै ॥ ११ ॥ जो अप्राप्तवस्तुकी इच्छा नहीं करता और प्राप्त सुखदुःखको क्रमसे भोगताहै और जिसके शुद्ध आचरण सबजगत्को आनन्ददायकहैं उसको संतुष्ट कहतेहैं॥१२॥

सन्तुष्टिपरतृप्तस्य महतः पूर्णचेतसः ॥ क्षीराब्धेरिव शुद्धस्य मुखे लक्ष्मीर्विराजते ॥१३॥ पूर्णतामलमाश्रित्य स्वात्मन्येवात्मना स्वयम् ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन तृष्णां सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १४ ॥ सन्तोषामृतपूर्णस्य शान्तशीतलया धिया ॥ स्वयं स्थैर्यं मनो याति शीतांशोरिव शाश्वतम् ॥ १५ ॥ सन्तोषपुष्टमनसं भृत्या इव महर्द्धयः ॥ राजानमुपतिष्ठन्ति किंकरत्वमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—संन्तोषमें परायण और पूर्णचित्त जो महात्मा पुरुष क्षीरसमुद्रकेसमान निर्मल अन्तःकरण है उसके मुखपर लक्ष्मी सदा शोभायमान रहतीहै ॥ १३ ॥ पुरुषार्थसे स्वयं अपने आत्मासे आत्मामेंही पूर्णताका भलीभांति अनुभव करके तृष्णाके सबस्थानोंको रोके ॥ १४ ॥ चन्द्रमाकेसमान सन्तोषरूपी अमृतसे पूर्ण मनुष्यका मन शान्त और शीतल बुद्धिसे नित्य स्थिरताको प्राप्तहोताहै ॥ १५ ॥ जिस प्राणीका मन संन्तोषसे पूर्ण है उसके निकट संपूर्ण सम्पत्तियां स्वयं ऐसे आतीहैं जैसे राजाके निकट सेवाकेलिये संपूर्ण सेवक ॥ १६ ॥

आत्मनैवात्मनि स्वस्थे सन्तुष्टे पुरुषे स्थिते ॥ प्रशाम्यन्त्याधयः सर्वे प्रावृषीवाशु पांसवः ॥ १७ ॥ नित्यं शीतलया राम कलंकपरिभिन्नया ॥ पुरुषः शुद्धया वृत्त्या भाति पूर्णतयेन्दुवत् ॥ १८ ॥ समतासुन्दरं वक्त्रं पुरुषस्यावलोकयन् ॥ तोषमेति यथा लोको न तथा धनसंचयैः ॥ १९ ॥ समतया मतया गुणशालिनां पुरुषराडिह यः समलंकृतः ॥ तममलं प्रणमन्ति नभश्वरा अपि महामुनयो रघुनन्दन ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सन्तोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—अपने आपही आत्मामें संतुष्ट होके जब पुरुष स्थित होताहै तब सम्पूर्ण मानसीपीडा शीघ्र ऐसे शान्त होजातीहै जैसे वर्षाकालमें धूलि ॥ १७ ॥ हे रामजी ! कलंकसे रहित संतोषयुक्त शुद्ध शीतलवृत्तिसे पूर्ण चन्द्रमाकेसमान मनुष्य शोभायमान होताहै ॥ १८ ॥ सर्वत्र सन्तोष होनेसे समतासे अतिसुंदर पुरुषके मुखको देखकर संसार जैसा प्रसन्न होताहै वैसा धनके संचयसे नहीं होता ॥ १९ ॥ इस संसारमें जो श्रेष्ठपुरुष महात्माओंको प्रिय जो सर्वत्र समानभाव उससे शोभितहै उसको आकाशगामि देवता तथा मुनिजनभी प्रणाम करतेहैं ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सन्तोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

चतुर्थ द्वारपाल सत्संग और चारोंमेंसे एककीभी सेवा पुरुषार्थफलको देती है, इस विषयका वर्णन, इस १६ वे सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच–विशेषेण महाबुद्धे संसारोत्तरणे नृणाम् ॥ सर्वत्रोपकरोतीह साधुः साधुसमागमः ॥ १ ॥ साधुसंगतरोर्जातं विवेककुसुमं सितम् ॥ रक्षन्ति ये महात्मानो भाजनं ते फलश्रियः ॥ २ ॥ शून्यमाकीर्णतामेति मृतिरप्युत्सवायते ॥ आपत्सम्पदिवाभाति विद्वज्जनसमागमे ॥ ३ ॥ हिममाप-त्सरोजिन्या मोहनीहारमारुतः ॥ जयत्येको जगत्यस्मिन् साधुः साधुसमागमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबुद्धे रामजी ! संसारके पार उतरनेमें उत्तम साधुसमागम मनुष्योंको सब अवस्थाओंमें विशेषकरके उपकारी होताहै ॥ १ ॥ जो महात्मा साधुसंगरूपीवृक्षसे उत्पन्न विवेकरूपी निर्मलपुष्पकी रक्षा करतेहैं वे मोक्षरूपी फलसंपत्तिके पूर्णपात्र होते हैं ॥ २ ॥ उत्तम विद्वान्‌जनके मिलनेसे स्वजनधनादिसे शून्य दुःखके स्थानभी संपत्ति आदिसे पूर्ण और मृत्युभी उत्सवके सदृश, और विपत्तिभी संपत्तिकेसमान प्रतीत हो-तीहै ॥ ३ ॥ आपत्तिरूप कमलिनीके लिये हिमकेसमान, और अज्ञानरूपीकुहरेको प्रबलवायुके सदृश, उत्तम साधुस-मागम संसारमें सबसे उत्कृष्ट है ॥ ४ ॥

परं विवर्द्धनं बुद्धेरज्ञानतरुशातनम् ॥ समुत्सारणमाधीनां विद्धि साधुसमागमम् ॥ ५ ॥ विवेकः परमो दीपो जायते साधुसंगमात् ॥ मनोहरोज्ज्वलो नूनमासेकादिव गुच्छकः ॥ ६ ॥ निरपायां निराबाधां निर्वृतिं नित्यपीवरीम् ॥ अनुत्तमां प्रयच्छन्ति साधुसंगविभूतयः ॥ ७ ॥ अपि कष्टतरां प्राप्तैर्दशां विवशतां गतैः ॥ मनागपि न सन्त्याज्या मानवैः साधुसंगतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आप साधुसमागमको विवेकज्ञानका वर्धक, अज्ञानरूपी वृक्षको काटनेवाला, और सम्पूर्ण मानसीपीडाओंको दूरकरनेवाला जानो ॥ ५ ॥ साधुमहात्माओंके संगसें परमविवेकरूपी दीपक ऐसे उत्पन्नहोताहै जैसे वाटिकाके सींचनेसे मनोहर और उज्ज्वल पुष्प तथा फलका गुच्छा ॥ ६ ॥ साधुसमागमकी विभूतियां विघ्न और नाशरहित, निरन्तर वर्द्धनशील अनन्त और सबसे उत्तमसुखको देतीहैं ॥ ७ ॥ अतिकष्टदायीदशाको प्राप्त और परा-धीनतामें विवश मनुष्योंकोभी उचितहै कि क्षणभरकेलियेभी साधुसंगति न छोडें ॥ ८ ॥

साधुसंगतयो लोके सन्मार्गस्य च दीपिकाः ॥ हार्दांधकारहारिण्यो भासो ज्ञानविवस्वतः ॥ ९ ॥ यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगंगया ॥ किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ ॥ १० ॥ नीरागाश्छिन्नसन्देहा गलितग्रन्थयोऽनघ ॥ साधवो यदि विद्यन्ते किं तपस्तीर्थसंग्रहैः ॥ ११ ॥ विश्रान्तमनसो धन्याः प्रयत्नेन परेण हि ॥ दरिद्रेणेव मणयः प्रेक्षणीया हि साधवः॥१२॥

अर्थ—साधुमहात्माओंकी संगति अज्ञानरूपीरात्रीको नष्टकरनेवाली सन्मार्गकी दीपिका है, और हृदयके अन्धकारको हरनेवाली ज्ञानरूपीसूर्यकी दीप्ति है ॥ ९ ॥ जिस प्राणीने ताप और मलिनताको नाशकरनेकेलिये शी-तल और निर्मल साधुसंगतिरूपीगंगामें स्नान कियाहै उसको दान, तीर्थ, तप और यज्ञसे क्या प्रयोजन है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! यदि संसारमें रागद्वेषरहित, सन्देहशून्य, और अन्तःकरणकी ग्रन्थियोंसे रहित साधुजन हैं, तो तप और तीर्थोंके संग्रहसे क्या प्रयोजन ॥ ११ ॥ जिनका चित्त परमात्माके स्वरूपमें विश्रांत है ऐसे धन्यवादके योग्य महात्मा साधुलोग जनोंको बडे परिश्रमसे इसप्रकार ढूंढने चाहियें जैसे निर्धनमनुष्योंको माणि ॥ १२ ॥

सत्समागमसौन्दर्यशालिनी धीमतां मतिः ॥ कमलेवाप्सरोवृन्दे सर्वदैव विराजते ॥ १३ ॥ तेनाम-लविचारस्य पदस्याग्रावचूलिता ॥ प्रथिता येन धन्येन न त्यक्ता साधुसंगतिः ॥ १४ ॥ विच्छिन्नग्रं-थयस्तज्ज्ञाः साधवः सर्वसंमताः ॥ सर्वोपायेन संसेव्यास्ते ह्युपाया भवांबुधौ ॥ १५ ॥ त एते न-रकाग्नीनां संशुष्कंधनतां गताः ॥ यैर्दृष्टा हेलया संतो नरकानलवारिदाः ॥ १६ ॥

अर्थ—साधुसमागमकी सुन्दरतासे शोभायमान महात्माओंकी बुद्धि सदा ऐसे शोभित होतीहैं जैसे अप्सरा ओंके समूहमें लक्ष्मी ॥ १३ ॥ जिस धन्यपुरुषने प्रसिद्ध साधुसंगतिको नहीं त्यागा, उसने निर्मलविचारसे प्राप्त ब्रह्मपदरूपी चूडामणिको मानो अपने शिरका भूषण बनायाहै ॥ १४ ॥ जिनकी हृदयकी ग्रंथियां छिन्न होगई हैं, और जिन्होंने परमात्माके स्वरूपको जान लियाहै, ऐसे सबके माननीय साधुमहात्माओंकी दानमान आदि सबउपायोंसे सेवा

करनीचाहिये, क्योंकि संसाररूपीसमुद्रसे पारउतरनेकेलिये येही उपाय है ॥ १५ ॥ नरकरूपी अग्निको शांत करनेमे मेघोंकेसमान साधुमहात्माओंका जिन पुरुषोंने अनादर कियाहै वे नरकअग्निके शुष्क इन्धन हैं अर्थात् वे नरकके अग्निमें अच्छीतरह जलायेजातेहैं ॥ १६ ॥

दारिद्र्यं मरणं दुःखमित्यादिविषयो भ्रमः ॥ संप्रशाम्यत्यशेषेण साधुसंगमभेषजैः ॥ १७॥ सन्तोषः साधुसंगश्च विचारोऽथ शमस्तथा ॥ एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम् ॥ १८ ॥ सन्तोषः परमो लाभः सत्संगः परमा गतिः ॥ विचारः परमं ज्ञानं शमो हि परमं सुखम् ॥ १९॥ चत्वार एते विमला उपाया भवभेदने ॥ यैरभ्यस्तास्त उत्तीर्णा मोहवारि भवार्णवात् ॥ २० ॥

अर्थ—दरिद्रता, मरण, और अनेकप्रकारका दुःख, इत्यादिविषयोंका जो सन्निपात रोग है वह साधुसमागम-रूपी औषधोंसे सर्वथा शांत होजाताहै ॥ १७ ॥ सन्तोष, साधुसंग, विचार और शम येही चारों संसाररूपीसमुद्रसे मनुष्योंको पारउतरनेकेलिये उत्तमउपायहै ॥ १८ ॥ संन्तोषही परमलाभ है, साधुसंगतिही परमगति है, विचारही सबसे उत्तम परमज्ञान है, और शमही सर्वोपरि सुख है ॥ १९ ॥ ये चारों निर्मल उपाय संसारके भेदनकरनेकेलिये जिनको अभ्यस्त हैं, वे अज्ञानरूपी जलमय इस संसारसमुद्रसे मानो पारही होगये ॥ २० ॥

एकस्मिन्नेव वै तेषामभ्यस्ते विमलोदये ॥ चत्वारोऽपि किलाभ्यस्ता भवन्ति सुधियां वर ॥ २१ ॥ एकोऽप्येकोऽपि सर्वेषामेषां प्रसवभूरिह ॥ सर्वसंसिद्धये तस्माद्यत्नेनैकं समाश्रयेत् ॥ २२॥ सत्समागमसन्तोषविचाराः सुविचारितम् ॥ प्रवर्तन्ते शमस्वच्छे वाहनानीव सागरे ॥ २३ ॥ विचारसन्तोषशमसत्समागमशालिनि ॥ प्रवर्तन्ते श्रियो जन्तौ कल्पवृक्षाश्रिते यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रामजी ! इन चारोंमें उत्तमतासे एककाभी अभ्यास करनेसे चारोंका अभ्यास अवश्य होजाताहै ॥ २१ ॥ इन चारोंमेंसें एक एक भी चारोंकी उत्पत्तिका स्थान है, इसलिये सबकी सिद्धिकेलिये एककाही यत्नसे आश्रय ले ॥२२॥ जब शमसे विक्षेपरूप तरंग नष्टहोजातेहैं, और अन्तःकरणरूपीसमुद्र स्वच्छ होजाताहै, और उसमें राग द्वेष आदि ग्राहोंका उपद्रव नहीं होता; तब साधुसमागम, सन्तोष और विचाररूपी महापोत(जहाज) निर्विघ्नतासे चलतेहैं ॥ २३ ॥ विचार, सन्तोष, शम, और सत्समागम, इन चारोंसे शोभायमान जो मनुष्य है; उसको ज्ञानकी तथा लोककी सम्पूर्ण सम्पत्तियां ऐसे प्राप्तहोतीहैं, जैसे कल्पवृक्षके आश्रित मनुष्यको लक्ष्मी ॥ २४ ॥

विचारशमसत्संगसन्तोषवति मानवे ॥ प्रवर्तन्ते प्रपूर्णेन्दौ सौन्दर्याद्या गुणा इव ॥२५॥ सत्संगसंतोषशमविचारवति सन्मतौ ॥ प्रवर्तन्ते मन्त्रिवरे राजनीव जयश्रियः ॥ २६ ॥ तस्मादेकतमं नित्यमेतेषां रघुनंदन ॥ पौरुषेण मनो जित्वा यत्नेनाभ्याहरेद्गुणम् ॥ २७॥ परं पौरुषमाश्रित्य जित्वा चित्तमतंगजम् ॥ यावदेको गुणो नान्तस्तावन्नास्त्युत्तमा गतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—विचार, शम, सन्तोष, और साधुसमागम, इन चारोंसे परिपूर्ण मनुष्यमें प्रसन्नता आदि सब गुण ऐसे प्राप्तहोतेहैं जैसे पूर्णचंद्रमामें सुन्दरता आदि ॥ २५ ॥ सत्संग, सन्तोष, शम, और विचारवाले सद्बुद्धियुक्त मनुष्यको सम्पूर्ण विजयलक्ष्मी ऐसे प्राप्त होतीहै जैसे उत्तम मंत्रीवाले राजाको सबविजयकी शोभा ॥ २६ ॥ हे रघुनन्दन ! इसलिये पुरुषार्थरूपी प्रबलयत्नसे मनको जीतकर इन चारोंमेंसे एक गुण तो अवश्य सर्वदा आत्मामें धारणकरनाचाहि- ॥ २७ ॥ परमपुरुषार्थका आश्रय लेके मनरूपी मतंगजको जीतकर जबतक इन चारोंमेंसे एकभी गुण आत्मामें नहीं प्राप्तहोता तबतक उत्तमगति कदापि नहींहोती ॥ २८ ॥

पौरुषेण प्रयत्नेन दन्तैर्दन्तान्विचूर्णयेत् ॥ यावन्नाभिनिविष्टं ते मनो राम गुणार्जने ॥ २९ ॥ देवो भवाथ यक्षो वा पुरुषः पादपोऽथ वा ॥ तावत्तव महाबाहो नोपायोऽस्तीह कश्चन ॥ ३० ॥ एकस्मिन्नेव फलदे गुणे बलमुपागते ॥ क्षीयन्ते सर्व एवाशु दोषा विवशचेतसः ॥ ३१ ॥ गुणे विवृद्धे वर्द्धन्ते गुणा दोषजयप्रदाः ॥ दोषे विवृद्धे वर्द्धन्ते दोषा गुणविनाशनाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अत्यन्त प्रबलपुरुषार्थका आश्रय लेके जबतक इन गुणोंको उपार्जन करनेमें चित्त नहीं लगता ॥ २९ ॥ तबतक हे रामजी! चाहें आप देवहों, अथवा यक्ष वा पुरुष हों वा कोई वृक्ष हों, परन्तु संसारसे पार उतरनेके लिये कोईभी उपाय नहींहै ॥ ३० ॥ इनमेंसे एकभी अभ्याससे फलदायक होताहै, और दृढतासे प्राप्तहोनेपर व्याकुलाचित्तके सम्पूर्ण दोष शीघ्रही नष्टकरदेताहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! गुणोंके बढनेपर दोषोंके जीतनेवाले सब गुण वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं और दोषोंके बढनेपर, गुणनाशक सबदोष बढतेहैं ॥ ३२ ॥

मनोमोहवने ह्यस्मिन् वेगिनी वासनासरित् ॥ शुभाशुभबृहत्कूला नित्यं वहति जन्तुषु ॥३३॥ सा हि स्वेन प्रयत्नेन यस्मिन्नेव निपात्यते ॥ कूले तेनैव वहति यथेच्छसि तथा कुरु ॥३४॥ पुरुषयत्नजवेन मनोवने शुभतटानुगतां क्रमशः कुरु ॥ वरमते निजभावमहानदीमहह तेन मनागपि नोह्यसे ॥३५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरणे सदाचारनिरूपणंनाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—मनके अज्ञानरूपी बनमें वासनारूप बडी प्रबलनदी, शुभ और अशुभरूपी दोतटोंकरके प्राणियोंपर सदा बहाकरतीहै ॥ ३३ ॥ वह वासनारूप नदी पुरुषार्थसे जिस तट (शुभ वा अशुभ) की ओर झुकाईजाती है उसीओर बहतीहै, अब चाहें आप इसे शुभतटकीओर झुकावें चाहें अशुभकी ओर ॥ ३४ ॥ हे श्रेष्ठबुद्धि रामजी ! पुरुषार्थके यत्नके वेगसे मनरूपीबनमें इस वासनारूपीनदीको क्रमसे शुभप्रवाहकीओर झुकाओ, ऐसा करनेसे किंचित्भी अशुभप्रवाह तुमको अपनी ओर न बहासकेगा ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सदाचारनिरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

पृथक् २ वर्णनीय अर्थोंसे तथा गुणोंसे भिन्न २ प्रकरणोंमें इस १७ वें सर्गमें इस ग्रन्थकी संख्याका विभाग वर्णन कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच-एवमन्तर्विवेको यः स महानिह राघव ॥ योग्यो ज्ञानगिरः श्रोतुं राजेव नयभारतीम् ॥ १ ॥ अवदातोऽवदातस्य विचारस्य महाशयः ॥ जडसङ्गोज्झितो योग्यः शरदिन्दोर्यथा नभः ॥ २ ॥ त्वमेतया खण्डितया गुणलक्ष्म्या समाश्रितः ॥ मनोमोहहरं वाक्यं वक्ष्यमाणमिदं शृणु ॥ ३ ॥ पुण्यकल्पद्रुमो यस्य फलभारानतः स्थितः ॥ मुक्तये जायते जन्तोस्तस्येदं श्रोतुमुद्यमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जिसके अन्तःकरणमें विचार, शम और सन्तोष आदि विवेककी सम्पत्ति प्राप्तहुई है वही ज्ञानोपदेश सुननेको अधिकारी है. जैसे नीतिशास्त्रका राजा ॥ १ ॥ मूर्खोंके संगसे पृथक् रहनेवाले तथा शुद्धविचारवाले मनुष्यका अन्तःकरण महान्‌आशययुक्त ऐसे निर्मलरहताहै, जैसे शरद्‌ऋतुके चन्द्रमाके प्रकाशसे मेघरहित आकाश ॥ २ ॥ हे रामजी ! उक्तगुणोंकी अखण्डितलक्ष्मीसे सम्पन्न आप मनके अज्ञानको नाशकरनेवाली वक्ष्यमाण मेरी वाणीको सुनिये ॥ ३ ॥ जिस पुरुषका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फलोंके भारसे झुकजाताहै. वही पुरुष मुक्तिकेलिये इस ग्रन्थको सुननेका उद्यम करताहै ॥ ४ ॥

पावनानामुदाराणां परबोधैकदायिनाम् ॥ वचसां भाजनं भूत्यै भव्यो भवति नाधमः ॥ ५ ॥ मोक्षोपायाभिधानेयं संहिता सारसंमिता ॥ त्रिंशद्वे च सहस्राणि ज्ञाता निर्वाणदायिनी ॥ ६ ॥ दीपे यथा विनिद्रस्य ज्वलिते सम्प्रवर्तते ॥ आलोकोऽनिच्छतोऽप्येवं निर्वाणमनया भवेत् ॥ ७ ॥ स्वयं ज्ञाता श्रुता वापि भ्रांतिशांत्यैकसौख्यदा ॥ आप्रेक्ष्य वर्णिता सद्यो यथा स्वर्गतरंगिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—परमपवित्र, उदार उत्तम अर्थसहित और परमज्ञानको देनेवाले बचनोंका पात्र मुक्तिकेलिये धर्मात्माही पुरुष होताहै, न कि विचारादिरहित अधम पापी मनुष्य ॥ ५ ॥ सारभूत अर्थोंसे पूर्ण, उपनिषद्‌के तुल्य तथा मोक्षदायक मोक्षोपाय नामवाली यह वाणी (यो० वा० ग्रन्थ) ३२००० बत्तीससहस्रश्लोकोंमें प्रसिद्ध कीगई है ॥ ६ ॥ जिसप्रकार दीपकसे निद्रारहित पुरुषकी इच्छाविनाभी प्रकाशहोताहै और उससे सबपदार्थ उसको देखपडते हैं इसीप्रकार इस संहिताके सुननेसे निर्वाण (मोक्षज्ञान) उत्पन्नहोताहै ॥ ७ ॥ उत्तमरितिसे विचारपूर्वक स्वयं ज्ञात वा दूसरोंके सम्मुख वर्णन कीहुई, अथवा दूसरेसे सुनीहुई, यह संहिता गंगाजीकेसमान शीघ्र पापोंको शान्त करती है और अनन्तसुखको देती है ॥ ८ ॥

यथा रज्ज्वामहिभ्रान्तिर्विनश्यत्यवलोकनात् ॥ तथैतत्प्रेक्षणाच्छान्तिमेति संसारदुःखितः ॥ ९ ॥ युक्तियुक्तार्थवाक्यानि कल्पितानि पृथक् पृथक् ॥ दृष्टान्तसारसूक्तानि चास्यां प्रकरणानि षट्

॥ १० ॥ वैराग्याख्यं प्रकरणं प्रथमं परिकीर्त्तितम् ॥ विरागो वर्द्धते येन सेकेनेव मरौ तरुः ॥ ११ ॥ (अनुबन्धेन सहितं दिष्टतत्त्वनिरूपणम् ॥) सार्द्धं सहस्रं ग्रन्थस्य यस्मिन् हृदि विचारिते ॥ प्रकाशाच्छुद्धतोदेति मणाविव सुमार्जिते ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार रज्जुके वास्तविकरूपके जाननेसे रज्जुमें सर्पकी भ्रांति शीघ्र मिटजाती है, इसीप्रकार ग्रन्थको विचारपूर्वक देखनेसे संसारका दुःख शान्तहोजाताहै ॥ ९ ॥ युक्तिसहित अर्थवाले वाक्यसहित तथा उत्तमदृष्टांतोंके आख्यानसहित ६ छ प्रकरण इस ग्रन्थमें हैं ॥ १० ॥ इस ग्रन्थका प्रथम प्रकरण "वैराग्य" नामक है, जिससे वैराग्यकी वृद्धि ऐसे होतीहै, जैसे जलके सींचनेसे मरुस्थलके वृक्षकी ॥ ११ ॥ इस १५०० श्लोकयुक्त प्रकरणके भलिभांति विचारनेसे विषयोंमें दोषपरिज्ञानद्वारा मलिनताकी निवृत्ति ऐसे होती है जैसे शुद्धकियेहुये मणिमें ॥ १२ ॥

मुमुक्षुव्यवहाराख्यं ततः प्रकरणं कृतम् ॥ सहस्रमात्रं ग्रन्थस्य युक्तिग्रन्थेन सुन्दरम् ॥ १३ ॥ स्वभावो हि मुमुक्षूणां नराणां यत्र वर्ण्यते ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणं दृष्टान्ताख्यायिकामयम् ॥ १४ ॥ सप्तग्रन्थसहस्राणि विज्ञानप्रतिपादकम् ॥ जागती द्रष्टृदृश्यश्रीरहंत्वमितिरूपिणी ॥ १५ ॥ अनुत्पन्नैवोत्थितेव यत्रेति परिवर्ण्यते ॥ यस्मिञ्छ्रुते जगदिदं श्रोतान्तर्बुध्यतेऽखिलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर मुमुक्षुव्यवहारनामक दूसरा प्रकरण १००० एकसहस्र युक्तिसहित उत्तमश्लोकोंकी संख्यासहित रचागयाहै ॥ १३ ॥ जिसमें मुमुक्षुमनुष्योंके स्वभावका वर्णन उत्तमतापूर्वक कियागयाहै, इसके अनन्तर दृष्टान्त और आख्यायिकाओंसे पूर्ण उत्पत्तिप्रकरण है॥१४॥इस प्रकरणमें ७०००सातसहस्र श्लोक ज्ञानप्रतिपादक हैं ' अहम् ' और ' त्वम् ' पदको निरूपण करनेवाली, द्रष्टा और दृश्यके भेदसे विचित्र यह जगत्की संपत्ति ॥१५॥ आकस्मिक मनके संकल्पसे उत्पन्नहुई जिसमें वर्णन कीगई है इसके सुननेसे श्रोताके अन्तःकरणमेंही संपूर्णजगत्की यथार्थ दशा जानपडती है ॥ १६ ॥

सास्मद्युष्मत्सविस्तारं सलोकाकाशपर्वतम् ॥ पिण्डग्रहविनिर्मुक्तं निर्भित्तिकमपर्वतम् ॥ १७ ॥ पृथ्व्यादिभूतरहितं संकल्प इव पत्तनम् ॥ स्वप्नोपलम्भभावाभं मनोराज्यवदाततम् ॥ १८ ॥ गन्धर्वनगरप्रख्यमर्थशून्योपलम्भनात् ॥ द्विचन्द्रविभ्रमाभासं मृगतृष्णाम्बुवर्त्तनम् ॥ १९ ॥ नौयाने लोलशैलाभं सत्यलाभविवर्जितम् ॥ चित्तभ्रमपिशाचाभं निर्बीजमपि भासुरम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रकरणमें ' त्वम् ' और ' अहम् ' पदके अर्थ ब्रह्माण्डोंके विस्तार प्रति ब्रह्माण्डलोकाकाश और पर्वत मूर्त्तिमान्द्रव्यसे रहित भेदरूपभित्तिसे शून्य, इसीसे पर्वतादि वर्जित ॥ १७ ॥ पृथ्वी आदि पंचभूतोंसे शून्य संकल्पनगरकेतुल्य स्वप्नमें प्राप्तपदार्थके सदृश भासमान, और मनोराज्यकेतुल्य व्याप्त यह जगत् वर्णनकियागयाहै ॥ १८ ॥ अर्थकी अप्राप्तिसे गन्धर्वनगरके दोचन्द्रके भ्रमके और मृगतृष्णाके जलके॥ १९ ॥ नौकाके गमनमें चंचलपर्वतके सदृश सत्यलाभसे वर्जित चित्तके भ्रमसे कल्पित और पिशाचके तुल्य मायारूप कारणके मिथ्या होनेसे और ब्रह्मके निर्विकारी होनेसे निर्बीज होनेपरभी प्रकाशमान् निरूपणकियागयाहै ॥ २० ॥

कथार्थप्रतिभासाभं व्योममुक्तावलीनिभम् ॥ कटकत्वं यथा हेम्नि तरंगत्वं यथाम्भसि ॥ २१ ॥ यथा नभसि नीलत्वमसदेवास्थितं सदा ॥ अभित्तिरंगरहितमुपलब्धिमनोहरम् ॥ २२ ॥ स्वप्ने वा व्योम्नि वा चित्रमकर्तृ चिरभासुरम् ॥ अवन्हिरेव वन्हित्वं धत्ते चित्रानलो यथा ॥ २३ ॥ दधात्येवं जगच्छब्दरूपार्थमसदात्मकम् ॥ तरंगोत्पलमालाभं दृष्टनृत्यमिवोत्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रवणकी आसक्तिमें कथार्थके समान भासमान आकाशकी मुक्तावलीके सदृश सुवर्णमें कटक और जलमें तरंगकेसमान अनिर्वचनीयरूप॥ २१ ॥ आकाशकी नीलिमाकेसमान असत्रूपसे सदा प्रतीयमान विना भित्ति और रंगके चित्रकेसमान पूर्वके अनुभवमात्रसे अतिमनोहर ॥ २२ ॥ स्वप्न अथवा आकाशमें जैसे विनाकारणके प्रकाशमान चित्र तथा चित्रलिखित अग्निकेसमान प्रकाशमान ॥ २३ ॥ यह जगत् अभावरूप होकरभी जगत्के शब्द और अर्थको धारणकरनेवाला है, तरंगोंमें कमलकी मालाके समान स्मरणसे प्रथमदृष्टनृत्यकेतुल्य मनसें उत्थित ॥ २४ ॥

चक्रचीत्कारपूर्णस्य जलराशिमिवोद्यतम् ॥ शीर्णपत्रं भ्रष्टनष्टं ग्रीष्मे वनमिवारसम् ॥ २५ ॥ मरणव्यग्रचित्ताभं शिलागृहगुहास्पदम् ॥ अन्धकारगुहैकैकनृत्तमुन्मत्तचेष्टितम् ॥ २६ ॥ प्रशान्ताज्ञाननीहारं विज्ञानशरदम्बरम् ॥ समुत्कीर्णमिव स्तम्भे चित्रं भित्ताविवोदितम् ॥ २७ ॥ पंकादिवाभिरचितं सचेतनमचेतनम् ॥ ततः स्थितिप्रकरणं चतुर्थं परिकल्पितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—उतान सोनेवाले चक्रवाकके शब्दसे पूर्ण आकाशके देखनेसे कल्पित जलराशिके समान तथा सूखेहुये पत्रसहित इसीसे छाया और फलकी संपत्तिरहित नष्ट भ्रष्ट ग्रीष्मऋतुके बनके समान ॥ २५ ॥ मृत्युके समयमें व्याकुलचित्तके सदृश, पर्वतोंकी गुफाओंके समान अन्धकारयुक्त और भयंकरगुफाओंमें उन्मत्तचेष्टासदृश एक २ जीवके नृत्यके समान ॥ २६ ॥ वास्तवमें शान्त है, अज्ञानरूपी नीहार (कुहर) जिसमें ऐसा विज्ञानरूपी शरद्ऋतुके निर्मल आकाशकेसमान खम्भेमें खुदीहुई मूर्तिआदिके समान अथवा भित्तिमें रचेहुये चित्रके समान ॥ २७॥ जैसे मृत्तिका आदिसे बनाहुआ पदार्थ वास्तवमें मृत्तिकास्वरूपही है इसीतरह ब्रह्ममें भ्रान्तिसे कल्पित जगत् वास्तवमें ब्रह्मस्वरूपही है यह ज्ञान इस प्रकरणके सुननेवालेको होजाताहै इसके अनन्तर स्थितिप्रकरणनामक चतुर्थप्रकरण है ॥ २८ ॥

त्रीणि ग्रन्थसहस्राणि व्याख्यानाख्यायिकामयम् ॥ इत्थं जगदहंभावरूपस्थितिमुपागतम् ॥ २९ ॥ दृष्टृदृश्यक्रमं प्रौढमित्यत्र परिकीर्त्तितम् ॥ दशदिङ्मण्डलाभोगभासुरोऽयं जगद्भ्रमः ॥ ३० ॥ इत्थमभ्यागतो वृद्धिमिति तत्रोच्यते चिरम् ॥ उपशान्तिप्रकरणं ततः पंचसहस्रकम् ॥ ३१ ॥ पंचमं पावनं प्रोक्तं युक्तिसन्ततिसुन्दरम् ॥ इदं जगदहं त्वं च स इति भ्रान्तिरुत्थिता ॥ ३२ ॥ इत्थं संशाम्यतीत्यस्मिन्कथ्यते श्लोकसंग्रहैः ॥ उपशान्तिप्रकरणे श्रुते शाम्यति संसृतिः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिसमें तीनहजार श्लोकोंमें ब्रह्म और जगत्के विषयमें व्याख्यान है और अनेक कथा है, इसप्रकार जगत्रूपसे तथा भोक्ता भोग्यरूप अहंभावसे स्थितिको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ ब्रह्मही द्रष्टादृश्यभावको स्वीकार करता है यह वर्णनकियागयाहै. दश दिशामंडलोंमें प्रकाशमान ब्रह्ममेंही इस जगत्का भ्रम है ॥ ३० ॥ इसप्रकारसे ब्रह्मही जगत्रूपसे वृद्धिको सनातनकालसे प्राप्तहुआहै, इस विषयका वर्णन स्थितिप्रकरणमें कियागयाहै, उसके अनन्तर पांच सहस्र श्लोकोंका उपशमप्रकरण है ॥ ३१ ॥ यह पंचम उपशमप्रकरण युक्तियोंके समूहसे अतिरमणीय है, यह जगत् अहं, त्वं और तद् यह भ्रम इसप्रकारसे हुआ, और इसप्रकारसे इस भ्रमकी शान्ति होती है, इत्यादि विषय इस प्रकरणमें कहेगये हैं, और इसको सुनकर यथोक्त साधन करनेसे जीवन्मुक्तिद्वारा क्लेश क्षीणहोनेसे दग्धबीजकेसदृश जगत्के भ्रम नष्टहोजातेहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

प्रभ्रष्टचित्रसेनेव किंचिल्लभ्योपलम्भना ॥ शतांशशिष्टा भवति संशान्तभ्रान्तरूपिणी ॥ ३४ ॥ अन्यसङ्कल्पचित्तस्था नगरश्रीरिवासती ॥ अलभ्यवस्तुपार्श्वस्थस्वप्नप्रयुद्धचिरारवा ॥ ३५ ॥ शान्तसङ्कल्पमत्ताभ्रभीषणाशनिशब्दवत् ॥ विस्मृतस्वप्नसङ्कल्पनिर्माणनगरोपमा ॥ ३६ ॥ भविष्यनगरोद्यानप्रसूवन्ध्याऽमलांगिका ॥ तस्या जिव्होच्यमानोग्रकथार्थानुभवोपमा ॥ ३७ ॥

अर्थ—तथा किंचित् आश्रययुक्त चित्रलिखित सेनाके समान छिन्नभिन्न शतांश शेष भलीभांति शान्त और भ्रान्तिरहित यह संसार होजाताहै ॥ ३४ ॥ संकल्पकरनेवाले पुरुषके निकट दूसरे पुरुषके स्वप्नमें धनकी प्राप्तिरहित युद्धमें दीर्घकालतक शब्दयुक्त दूसरेके संकल्पसे चित्तमें स्थित नगरकी शोभाके समान यह संसार, उत्तरभूमिकाके जीतनेसे मिथ्या प्रतीत होनेलगताहै ॥३५॥ सर्वथा निवृत्त, संकल्पसे कल्पित, मत्तगजके समान, अतिभयंकर मेघ और वज्रके शब्दके तुल्य, विस्मृत स्वप्नमें रचित नगरके समान, भविष्यत् नगरकी रमणीयवाटिकामें पुत्रवती और विमल अंगवाली वन्ध्याकी जिव्हासे वर्णित, और उसी वन्ध्याके उग्र वीरपुत्रोंकी कथाके तुल्य यह संसारभान होताहै३६।३७

अनुल्लिखितचित्रस्य चित्रव्याप्तेव भित्तिभूः ॥ परिविस्मर्यमाणार्थकल्पनानगरीनिभा ॥ ३८ ॥ सर्वर्त्तुमदनुत्पन्नवनस्पन्दाऽस्फुटाकृतिः ॥ भाविपुष्पवनाकारवसन्तरसरंजना ॥ ३९ ॥ अन्तर्लीनतरंगौघसौम्यवारिसरित्समा ॥ निर्वाणाख्यं प्रकरणं ततः षष्ठमुदाहृतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और बिनालिखेचित्रसे पूर्ण भित्तिके तथा कल्पितनगरकी शोभाके तुल्य ॥ ३८ ॥ सबऋतुके अनुत्पन्न बनकी अलक्ष्यआकृतिके भावी पुष्पबनके आकारसहित वसन्तके रसके रंगके ॥ ३९ ॥ तथा तरंगशून्य निश्चलजलके समान यह संसार इस प्रकरणके अनुभवसे प्रतीतहोताहै, इसके अनन्तर षष्ठ निर्वाणनाम प्रकरण कहागयाहै ॥ ४० ॥

शिष्टो ग्रन्थः परीमाणं तस्य ज्ञानमहार्थदः ॥ बुद्धे तस्मिन्भवेच्छ्रेयो निर्वाणं शान्तकल्पनम् ॥ ४१ ॥ अचेत्यचित्प्रकाशात्मा विज्ञानात्मा निरामयः ॥ परमाऽऽकाशकोशाच्छः शान्तसर्वभवभ्रमः ॥ ४२ ॥ निर्वापितजगद्यात्रः कृतकर्त्तव्यसुस्थितः ॥ समस्तजनतारम्भवज्रस्तम्भो नभोनिभः ॥४३॥ विनिगीर्णयथासंख्यजगज्जालातितृप्तिमान् ॥ आकाशीभूतनिःशेषरूपा लोकमनस्कृतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—शेष १४०००(चौदह सहस्र) श्लोक इसका परिमाणहै, इसका ज्ञान महान् अर्थदायक है, इसके ज्ञानसे मूलअविद्याके नष्टहोजानेसे कल्पनारहित मोक्षरूप कल्याण प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ इसप्रकरणका श्रोता विषयरहित प्रकाश तथा ज्ञानरूप, निरामय, हार्दाकाशके समान निर्मल और संपूर्ण संसारके भ्रमसे रहित होताहै ॥ ४२ ॥ तथा जगत्यात्राको समाप्तकरनेवाला, कृतकृत्य वज्रमणिके खम्भेके सदृश अविकाररूप होनेसे वस्तुके प्रतिबिम्बमात्रको ग्रहणकरनेवाला और सब जनसमूह तथा उनके आरम्भोंका आधार होजाताहै ॥ ४३ ॥ तथा अनेकसंख्यायुक्त जगत्के जालोंका अन्तःकरणमेंही भान होनेसे अत्यन्त तृप्त होजाताहै और बाह्येन्द्रियोंसेभी भोग उसके मनमें शून्याकार प्रतीतहोते हैं ॥ ४४ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वहेयादेयदृशोज्झितः ॥ सदेह इव निर्देहः स संसारोप्यसंसृतिः ॥ ४५ ॥ चिन्मयो घनपाषाणजठरापीवरोपमः ॥ चिदादित्यस्तपँल्लोकानन्धकारोपरोपमम् ॥ ४६ ॥ परप्रकाशरूपोऽपि परमान्ध्वमिवागतः ॥ रुद्धसंसृतिदुर्लीलः प्रक्षीणाशाविषूचिकः ॥ ४७ ॥ नष्टाहंकारवेतालो देहवानकलेवरः ॥ कस्मिंश्चिद्रोमकोट्यग्रे तस्येयमवतिष्ठते ॥ जगल्लक्ष्मीर्महामेरोः पुष्पे क्वचिदिवालिनी॥४८॥

अर्थ—कार्य्य, कारण, कर्तृत्वमें स्वीकार और परित्यागदृष्टिसे रहित, देहसहित होनेपरभी देहरहित, संसारसहित होनेपरभी संसाररहित वह पुरुष होजाताहै ॥ ४५ ॥ चित्रूप घनपाषाणके दीर्घ निश्छिद्र उदरके समान, चिदादित्यरूप अज्ञानकल्पित लोकोंको अपनी चिदाकारवृत्तिसे प्रदीप्त और आलोकसे प्रकाशकरताहुवाभी वास्तविकमें दृश्यरूप न होनेसे स्वयं अन्धकारोपम ॥ ४६ ॥ परमप्रकाश होनेपरभी अन्धताको प्राप्तके समान, संसारकी दुष्टलीलाओंका अवरोध करनेवाला और आशारूप विषूचिकासे वर्जित वह पुरुष होजाताहै ॥ ४७ ॥ अहंकाररूपवेतालसे रहित और शरीरवान् होनेपरभी अशरीर होजाताहै, उसके रोमके अग्रभागमें यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी लक्ष्मी ऐसे निवास करतीहै, जैसे महामेरुके बृहत् पुष्पके किसी देशमें भ्रमरी ॥ ४८ ॥

परमाणौ परमाणौ चिदाकाशः स्वकोटरे ॥ जगल्लक्ष्मीसहस्राणि धत्ते कृत्वाऽथ पश्यति ॥ ४९ ॥ विततता हृदयस्य महामतेर्हरिहराब्जजलक्षशतैरपि ॥ तुलनमेति न भुक्तिमतो यतः प्रविततताऽस्ति निरुत्तमवस्तुनः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ग्रंथसंख्यादिवर्णनंनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—अपने अन्तःकरणमें कल्पित आकाशके परमाणु२ में जगत्की अनंत लक्ष्मीको धारणकरताहै, और उनका निर्माण करके पुनः अपनेहीमें देखताहै ॥ ४९ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जीवन्मुक्त पुरुषका हृदय परमात्मस्वरूपही है, उसकी तुलना लक्षों हरिहर तथा ब्रह्मासेभी नहीं हो सक्ती, क्यों कि मुक्तपुरुषकी व्यापकता, अनन्तता, तथा आनन्दता पराकाष्ठाके आश्रयभूत ब्रह्मके तुल्य है ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ग्रन्थसंख्यादिवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठ उवाच—अस्यां वाचितमात्रायां प्रबोधःसम्प्रवर्त्तते ॥ बीजादिव सतो व्युप्तादवश्यं भावि सत्फलम् ॥ १ ॥ अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम् ॥ अन्यत्त्वार्षमपित्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥२॥ युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ॥ अन्यत्तृणमिवत्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥३॥ योऽस्मत्तातस्य कूपोऽयमिति कौपं पिबत्यपः ॥त्यक्त्वा गांगं पुरस्थं तं कोऽनुशास्त्यतिरागिणम्॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, जैसे शक्तियुक्त उत्तमबीजको योग्य देश काल और क्षेत्रमें बोनेसे फल अवश्य होता है इसीप्रकारसे इस ग्रन्थको विचारपूर्वक सुनने और पढनेमात्रसे ज्ञान अवश्य होताहै ॥ १ ॥ न्याययुक्तपदार्थको अं-

---

१" पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि " (इस परमात्माके एक अंशमें संपूर्ण जगत् है शेष अमृतरूप दैदीप्यमान इसका आधार है) यह श्रुति है.

गीकारकरनेवाले पुरुषको युक्ति वा न्याययुक्त सामान्यमनुष्यरचितभी शास्त्र ग्रहणकरना उचितहै, और युक्ति वा न्यायविरुद्ध वेदोक्तभी त्यागना चाहिये, क्योंकि मनुष्यको मुख्यकरके न्यायपरही चलना चाहिये ॥ २ ॥ युक्तियुक्त वचन बालककाभी ग्रहणकरना उचितहै, युक्तिविरुद्ध ब्रह्माका कथनभी तृणके समान त्यागने योग्य है ॥ ३ ॥ हमारे पिताका खुदाया हुआ यह कूप है ऐसा समुझके गंगाजलको त्यागके उस कूपका खाराजलभी जो पीता है उस मूर्खजनको कौन शिक्षा देसकताहै ॥ ४ ॥

यथोषसि प्रवृत्तायामालोकोऽवश्यमेष्यति ॥ अस्यां वाचितमात्रायां सुविवेकस्तथैष्यति ॥ ५ ॥ श्रुतायां प्राज्ञवदनाद्युत्ध्वान्तं स्वयमेव च ॥ शनैः शनैर्विचारेण बुद्धौ संस्कार आगते ॥ ६ ॥ पूर्वं तावदुदेत्यन्तर्भृशं संस्कृतवाक्यता ॥ शुद्धयुक्ता लतेवोच्चैर्या सभास्थानभूषणम् ॥ ७ ॥ परा नागरतोदेति महत्त्वगुणशालिनी ॥ सा यया स्नेहमायान्ति राजानो अमरा अपि ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार प्रातःकालके आरंभहोनेपर प्रकाश अवश्य होताहै, इसीप्रकार इस ग्रन्थके बाचनेमात्रसे उत्तम विवेक अवश्य प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ बुद्धिमान्पण्डितके मुखसे सुनके स्वयं उसके विचारनेसे धीरे २ बुद्धिमें संस्कार आनेपर ॥ ६ ॥ सबसे प्रथम उसके अन्तःकरणमें वाणीका उत्तम तथा शुद्धतायुक्त हरितलताकेसमान उच्चसंस्कार उदयहोताहै, जो कि सभाका शिरोभूषणहै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर महान्‌गुणोंसे शोभायमान बडी चतुरता उदयहोतीहै जिससे राजा तथा देवताभी प्रीति करनेलगते हैं ॥ ८ ॥

पूर्वापरज्ञः सर्वत्र नरो भवति बुद्धिमान् ॥ पदार्थानां यथा दीपहस्तो निशि सुलोचनः ॥ ९ ॥ लोभमोहादयो दोषास्तानवं यान्त्यलं शनैः ॥ धियो दिशः समासन्नशरदो मिहिका यथा ॥ १० ॥ केवलं समवेक्ष्यन्ते विवेकाध्यासनं धियः ॥ न किंचन फलं धत्ते स्वाभ्यासेन विना क्रिया ॥ ११ ॥ मनःप्रसादमायाति शरदीव महत्सरः ॥ परं साम्यमुपादत्ते निर्मन्दर इवार्णवः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थके सुननेसे मनुष्य बुद्धिमान् होके पूर्वापरकी बातोंको ऐसे जानने लगताहै, जैसे दीपक हस्तमें लिये उत्तमनेत्रवाला मनुष्य अन्धकारयुक्त रात्रिमें पदार्थोंको ॥ ९ ॥ बुद्धिके राग द्वेष लोभ मोहादि दोष धीरे २ ऐसे क्षीणहोजातेहैं, जैसे शरदृतुके निकट आनेपर दिशाओंका नीहार ॥ १० ॥ हे रामचन्द्रजी! आपकी बुद्धि केवल विवेकके अभ्यासमात्रकी अपेक्षा रखती है, और कुछ नहीं, क्योंकि बिना अपने अभ्यासके कोईभी क्रिया फल नहीं देती ॥ ११ ॥ और इस ग्रंथसे शरत्कालमें महान् तडागकेसमान मनको प्रसन्नता प्राप्तहोती है ' और मन्दराचलपर्वतके निकालनेपर समुद्रके तुल्य मनमें परम समता प्राप्तहोतीहै ॥ १२ ॥

निरस्तकालिमारत्नशिखेवास्ततमःपटा ॥ प्रतिज्वलत्यलं प्रज्ञा पदार्थप्रविभागिनी ॥ १३ ॥ दैन्यदारिद्र्यदोषाढ्या दृष्टयो दर्शितान्तराः ॥ न निकृन्तन्ति मर्माणि सन्नाहमिवेषवः ॥ १४ ॥ हृदयं नावलुम्पन्ति भीमाः संसृतिभीतयः ॥ पुरःस्थितमपि प्राज्ञं महोपलमिवेषवः ॥ १५ ॥ कथं स्यादादिता जन्मकर्मणां दैवपुंस्त्वयोः ॥ इत्यादिसंशयगणः शाम्यत्यह्नि यथा तमः ॥ १६ ॥

अर्थ—और मोहरूपीकज्जलसे शून्य रत्नके दीपकी शिखाके समान समस्त अन्धकारपटलको दूरकरतीहुई संपूर्ण पदार्थोंका विवेक करनेवाली इस ग्रन्थके ज्ञाताकी बुद्धि अत्यन्त प्रज्वलित होतीहै ॥ १३ ॥ और इसीसे दीनता और दरिद्रता आदिसे पूर्ण दृष्टि धनादिमें निःसारता ज्ञान होनेसे पुरुषको ऐसे नहीं छेदनकरसकती जैसे कवचयुक्त मनुष्यको बाण ॥१४॥ इस शास्त्रके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुषके हृदयको संसारके भयंकर भय ऐसे नहीं छेदनकरसकते जैसे महापाषाणको तीर ॥ १५ ॥ संसारमें जन्म प्रथम होनेसे पौरुष प्रधान है, वा कर्म प्रथम होनेसे दैव प्रधान है, इत्यादि संशयसमूह ऐसे नष्टहोजातेहैं जैसे दिनके आनेपर अन्धकार, क्योंकि इस ग्रन्थके सुननेसे दोनों (कर्म तथा जन्म) का मिथ्यात्वनिश्चय होजाताहै ॥ १६ ॥

सर्वदा सर्वभावेषु संशान्तिरुपजायते ॥ यामिन्यामिव शान्तायां प्रज्ञालोक उपागते ॥ १७ ॥ समुद्रस्येव गाम्भीर्यं धैर्यं मेरोरिव स्थितम् ॥ अन्तः शीतलता चेन्दोरिवोदेति विचारिणः ॥ १८ ॥ सा जीवन्मुक्तता तस्य शनैः परिणतिं गता ॥ शान्ताशेषविशेषस्य भवत्यविषयो गिराम् ॥ १९ ॥ सर्वार्थशीतला शुद्धा परमा लोकदास्यधीः ॥ परं प्रकाशमायाति ज्योत्स्नेव शारदैन्दवी ॥ २० ॥

१ यद्यपि श्रुतियोंको इस ग्रन्थसे श्रेष्ठता है तथापि उनमें गूढाभिप्राय और संक्षेप होनेके कारण वे साधारणपुरुषके योग्य नहीं अतः इसका आदरसे ग्रहण करनाचाहिये.

अर्थ—ज्ञानरूप प्रकाश प्राप्तहोनेपर सर्वदा सबपदार्थोंमें शान्ति ऐसे प्राप्तहोती है जैसे रात्रिके नष्टहोनेपर सूर्य- के प्रकाशसे तम ॥ १७ ॥ और हे रामचन्द्रजी ! इस ग्रन्थको विचारनेवाले पुरुषको समुद्रकेसमान गम्भीरता मेरुकेस- मान स्थिरता वा धीरता और चन्द्रमाकेसमान अन्तःकरणमें शीतलता प्राप्तहोती है ॥१८॥ इसप्रकार सम्पूर्ण भूमिका- ओंके क्रमसे सम्पूर्ण विशेषताके शांतहोनेपर उसको वह जीवन्मुक्ति प्राप्तहोती है, जो बाणीका विषय नहीं है ॥ १९ ॥ इस ग्रन्थको विचारनेवालेकी बुद्धि सबपदार्थोंमें शीतल तथा परमात्मदर्शनकारिणी होनेसे परमप्रकाशको ऐसे प्राप्तहो- तीहै जैसे शरत्कालमें चन्द्रमाकी चांदनी ॥ २० ॥

हृद्याकाशे विवेकार्के शमालोकिनि निर्मले ॥ अनर्थसार्थकर्तारो नोद्यन्ति किल केतवः ॥ २१ ॥ शा- म्यन्ति शुद्धिमायान्ति सौम्यास्तिष्ठन्ति सून्नते ॥ अचंचले जले तृष्णाः शरदीवाभ्रमालिकाः ॥ २२॥ यत्किचनकरी क्रूरा ग्राम्यता विनिवर्तते ॥ दीनानना पिशाचानां लीलेव दिवसागमे ॥ २३ ॥ धर्म- भित्तौ भृशं लग्नां धियं धैर्यधुरं गताम् ॥ आधयो न विधुन्वन्ति वाताश्चित्रलतामिव ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हे रामजी ! इस ग्रन्थके विचारनेसे पुरुषके हृदयाकाशमें शमरूपी प्रकाशयुक्त विवेकरूपी सूर्यके उदयहोनेपर अनेक अनर्थकारी काम, क्रोध, आदि धूमकेतुओंका उदय नहींहोता ॥ २१ ॥ शान्त तथा उच्चतम स्वात्म- पदमें स्थिति होनेसे तृष्णारहित पुरुष ऐसे शान्ति और शुद्धताको प्राप्तहोतेहैं जैसे शरत्कालमें मेघोंकी माला ॥ २२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! इस ग्रन्थके विचारनेसे दूसरोंसे वैर आदिका कारण अश्लील तथा परुषवचनादिरूप ग्रामीणता ऐसे नष्टहोजातीहै जैसे दिनके आनेपर दीनमुख करनेवाली पिशाचोंकी लीला ॥ २३ ॥ बुद्धिके धर्ममें एकरस होनेसे और धै- र्यकी पराकाष्ठामें प्राप्तहोनेसे उसको मानसीव्यथा ऐसे कम्पित नहीं करसकती जैसे चित्रलिखित लताको वायु ॥ २४ ॥

न पतत्यवटेऽज्ञस्तु विषयासंगरूपिणि ॥ कः किल ज्ञातसरणिः श्वभ्रं समनुधावति ॥ २५ ॥ सच्छा- स्त्रसाधुवृत्तानामविरोधिनि कर्मणि ॥ रमते धीर्यथा प्राप्ते साध्वीवान्तःपुराजिरे ॥ २६ ॥ जगतां को- टिलक्षेषु यावन्तः परमाणवः ॥ तेषामेकैकशोऽन्तःस्थान्सर्गान्पश्यत्यसंगधीः ॥२७॥ मोक्षोपायाव- बोधेन शुद्धान्तःकरणं जनम् ॥ न खेदयति भोगौघो न चानन्दयति क्वचित् ॥ २८ ॥

अर्थ—विषयासक्तियुक्त मोहरूपीगढेमें तत्ववेत्ता नहीं गिरता, क्योंकि मार्ग जाननेवाला कौन मनुष्य गढेकीओर दौडताहै ? ॥ २५ ॥ सत्शास्त्रके ज्ञानसे साधु आचरणवाले पुरुषोंकी बुद्धि शास्त्रके अनुकूल कर्मोंमें ऐसे रमण करतीहै जैसे अन्तःपुरमें पतिव्रता स्त्री ॥ २६ ॥ लक्षकोटि ब्रह्माण्डोंके जितने परमाणु हैं, उनमेंसे एक २ मेंभी ब्रह्मज्ञानी असंगबुद्धि होके सम्पूर्णब्रह्माण्डोंको देखताहै ॥ २७ ॥ मोक्षोपायरूप इस ग्रन्थके बोधसे शुद्धा- न्तःकरणवाले जनको भोगोंका समूह न कभी क्लेश देताहै, और न आनन्द ॥ २८ ॥

परमाणौ परमाणौ सर्गवर्गा निरर्गलाः ॥ ये पतन्त्युत्पतन्त्यम्बुवीचिवत्तान्स पश्यति ॥ २९ ॥ न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ कार्याण्येष प्रबुद्धोऽपि निष्प्रबुद्ध इव द्रुमः ॥ ३० ॥ दृश्यते लोकसामान्यो यथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ॥ इष्टानिष्टफलप्राप्तौ हृदयेनापराजितः ॥ ३१ ॥ बुद्ध्वेदमखिलं शास्त्रं वाचयित्वा विविच्यताम् ॥ अनुभूयत एवैतन्न तूक्तं वरशापवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थको विचारनेवाला पुरुष प्रत्येक परमाणु २ में असंकीर्ण अनेक सृष्टियोंके समूहोंके अविर्भाव और तिरोभावको जलमें तरंगोंके समान देखताहै ॥ २९ ॥ न तो वह अनिष्टवस्तुओंसे द्वेष करताहै, और न इष्टसे प्रीति करताहै, कार्य तथा फलादिके स्वरूपोंका ज्ञाता होनेपरभी अनभिज्ञ वृक्षके समान रहताहै ॥ ३० ॥ यथाप्राप्त वस्तुमें सन्तुष्ट, इष्ट और अनिष्टफलकी प्राप्तिमें हृदयसे एकरूप संसारमें सामान्यमनुष्योंके समानही देखपडताहै ॥ ३१ ॥ इस सम्पूर्णग्रन्थको पढके और जानके प्रत्येक श्लोकके तात्पर्यका विवेचन करनाचाहिये, यह केवल कथन- मात्र नहींहै, किंतु ब्रह्मादिके शाप वा आशीर्वादके समान अनुभूत होताहै ॥ ३२ ॥

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम् ॥ काव्यं रसमयं चारु दृष्टान्तैः प्रतिपादितम् ॥३३॥ बुध्यते स्वयमेवेदं किंचित्पदपदार्थवित् ॥ स्वयं यस्तु न वेत्तीदं श्रोतव्यं तेन पण्डितात् ॥ ३४॥ यस्मिञ्छ्रुते मते ज्ञाते तपोध्यानजपादिकम् ॥ मोक्षप्राप्तौ नरस्येह न किंचिदुपयुज्यते ॥ ३५ ॥ एतच्छास्त्रघना- भ्यासात्पौनःपुन्येन वीक्षणात् ॥ पाण्डित्यं स्यादपूर्वं हि चित्तसंस्कारपूर्वकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह शास्त्र उत्तमज्ञान देनेवाला तथा माधुर्य और उपमा आदि शब्द और अर्थालंकारसे भूषित उत्तम दृष्टान्तोंसे युक्त रसमय काव्य है ॥ ३३ ॥ अल्प पद पदार्थोंका ज्ञाताभी पुरुष इस शास्त्रको स्वयं जानसकताहै, जो

स्वयं नहीं जानसकता उसको ब्रह्मनिष्ठ पण्डितसे श्रवणकरनाचाहिये ॥ ३४ ॥ इस ग्रन्थके श्रवण, विचार, तथा बोध होनेपर मनुष्यके तप, ध्यान और जपादिक मोक्षप्राप्तिमें कुछ उपकार नहींकरते, क्यों कि इनके फलोंका इस ग्रन्थके श्रवणादिमेंही अन्तर्भाव है ॥ ३५ ॥ इस शास्त्रके दृढ अभ्याससे और बार २ अवलोकन करनेसे चित्तके उत्तम संस्कारके साथ अपूर्व पाण्डित्य उत्पन्नहोताहै ॥ ३६ ॥

अहं जगदिति प्रौढो दृष्टृदृश्यपिशाचकः ॥ पिशाचोऽर्कोदयेनेव स्वयं शाम्यत्ययत्नतः ॥ ३७ ॥ भ्रमो जगदहं चेति स्थित एवोपशाम्यति ॥ स्वप्नमोहः परिज्ञात इव नो भ्रमयत्यलम् ॥ ३८ ॥ यथा सङ्कल्पनगरे पुंसो हर्षविषादिता ॥ न बाधते तथैवास्मिन्परिज्ञाते जगद्भ्रमे ॥ ३९ ॥ चित्रसर्पः परिज्ञातो न सर्पभयदो यथा ॥ दृश्यसर्पः परिज्ञातस्तथा न सुखदुःखदः ॥ ४० ॥

अर्थ—"मैं तथा यह जगत्" यह द्रष्टा और दृश्यरूप पिशाच जो अविद्यारूप रात्रिमें प्रबल होरहाहै, वह ज्ञानरूपीसूर्यके उदयहोनेसे विनापरिश्रम आपसे आप शांत होजाताहै ॥ ३७ ॥ "अहम् और जगत्" यह भ्रम ऐसे शांत होजाताहै, जैसे स्वप्नका मोह ज्ञान होनेके अनन्तर दुःखदायी नहीं होता. इसीप्रकार जगत् मिथ्यारूपसे ज्ञात होनेपर पुनः भ्रम नहीं उत्पन्न करसकता ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार संकल्पके नगरमें हर्ष अथवा विषाद पुरुषको बाधा नहीं देते, इसीप्रकार इस जगत्भ्रमका यथार्थ ज्ञान होनेसे बाधा नहीं होती ॥ ३९ ॥ जैसे चित्रलिखित सर्प जानाहुआ सर्पका भय नहींदेता, इसीप्रकार जगत्रूपी सर्प जानाहुआ सुख वा दुःखका कारण नहींहोता ॥ ४० ॥

परिज्ञानेन सर्पत्वं चित्रसर्पस्य नश्यति ॥ यथा तथैव संसारः स्थित एवोपशाम्यति ॥ ४१ ॥ सुमनःपल्लवामर्दे किंचिद्व्यतिकरो भवेत् ॥ परमार्थपदप्राप्तौ न तु व्यतिकरोऽल्पकः ॥ ४२ ॥ गच्छत्यवयवः स्पन्दं सुमनःपत्रमर्दने ॥ इह धीमात्ररोधस्तु नांगावयवचालनम् ॥ ४३ ॥ सुखासनोपविष्टेन यथासम्भवमश्नता ॥ भोगजालं सदाचारविरुद्धेषु न तिष्ठता ॥ ४४ ॥ यथाक्षणं यथादेशं प्रविचारयता सुखम् ॥ यथासम्भवसत्संगमिदं शास्त्रमथेतरत् ॥ ४५ ॥ आसाद्यते महाज्ञानबोधः संसारशान्तिदः ॥ न भूयो जायते येन योनियन्त्रप्रपीडनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—यह सर्प चित्रमें लिखाहै, ऐसा ज्ञान होनेहीसे चित्रसर्पका सर्पत्व जैसे नष्ट होजाताहै, ऐसेही यह संसार यथार्थरूपसे जानाहुआ अधिष्ठानरूपसे परिशेष रहनेपर अपने रूपसे स्थितही शान्तहोजाताहै ॥ ४१ ॥ पुष्प अथवा पत्रोंके मर्दनमें तो कुछ परिश्रमभी होताहै, परन्तु ज्ञान प्राप्तहोनेके अनन्तर संसारके नाशपूर्वक परमपदकी प्राप्तिमें कुछभी परिश्रम नहींहोता ॥ ४२ ॥ पुष्प और पत्रोंके मर्दनमें अंग हिलानापडताहै, परन्तु ज्ञानकी प्राप्तिमें तो केवल वृत्तियोंका निरोध करनापडताहै, न कि अंगोंका संचालन ॥ ४३ ॥ सुखासनपर बैठकर यथासंभव भोगजालोंको भोगताहुआ देश और काल तथा यथासंभव सत्संगके अनुसार इस शास्त्रको वा उपनिषदादिको सुखपूर्वक विचारनेवाला और शास्त्रविरुद्धमार्गोंमें न चलनेवाला पुरुष संसारमें शान्तिदायक उस महाबोधको प्राप्तहोताहै, जिससे इस संसारमें पुनः योनियंत्रकी पीडा नहींहोती ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

एतावत्यपि येऽभीताः पापाभोगरसे स्थिताः ॥ स्वमातृविष्ठाक्रमयः कीर्तनीया न तेऽधमाः ॥ ४७ ॥ शृणु तावदिदानीं त्वं कथ्यमानमिदं मया ॥ राघव ज्ञानविस्तारं बुद्धिसारतरान्तरम् ॥ ४८ ॥ यथेदं श्रूयते शास्त्रं तामापातनिकां शृणु ॥ विचार्यते यथार्थोऽयं यथा च परिभाषया ॥ ४९ ॥ येनेहाननुभूतेऽर्थे दृष्टेनार्थेन बोधनम् ॥ बोधोपकारफलदं तं दृष्टान्तं विदुर्बुधाः ॥ ५० ॥ दृष्टान्तेन विना राम नापूर्वार्थोऽवबुध्यते ॥ यथा दीपं विना रात्रौ भाण्डोपस्करणं गृहे ॥ ५१ ॥ यैर्यैः काकुत्स्थ दृष्टान्तैस्त्वं मयेहावबोध्यसे ॥ सर्वे सकारणास्ते हि प्राप्यन्तु सदकारणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस जन्मकी पीडासेभी जो भय नहींकरते, अर्थात् जन्मपीडानिवारक इस शास्त्रका श्रवण आदि नहीं करते वे विषयरसभोगलम्पट पापी अपनी माताके विष्ठाके कृमि हैं, उनका नामभी नहींलेनाचाहिये क्यों कि वे आत्मघाती हैं ॥ ४७ ॥ हे रामचन्द्रजी ! आप इससमय मेरा कहाहुआ, बुद्धिग्राह्य सारतरपदार्थोंकी सीमा और ज्ञानके विस्तारकरनेवाले इस शास्त्रको श्रवणकीजिये ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार यह शास्त्र सुनाजाताहै, और जिस

---

१ प्रथम जो पौरुषकी प्रधानता वर्णन की है वह ज्ञानके प्रतिबंधक अविद्याजनित राग असम्भावनादि पुरुषके अपराधके निरासार्थ है, अविद्याके निवृत्तहोनेपर ज्ञान वा मोक्षप्राप्तिमें कुछभी परिश्रम नहीहै. २ पुष्पादिके मलनेमें तो कुछ अंग चलानापडता है, परन्तु यहां तो बुद्धिभी नहीं चलनेपाती शरीर चलाना कौन कहै !

परिभाषा और दृष्टान्तादिसे यथार्थरूपसे विचाराजाताहै, उसका उपाय सुनिये ॥ ४९ ॥ जिस समानधर्मवाले दृढ-अर्थसे अज्ञात वा अनुभूतपदार्थका बोध करायाजाताहै और वह बोधके उपकारी फलका देनेवालाहो, उसको पण्डितजन दृष्टांत कहतेहैं ॥ ५० ॥ हे रामचन्द्रजी ! दृष्टांतके विना अपूर्वपदार्थका ज्ञान ऐसे नहींहोता जैसे रात्रिमें दीपके विना गृहके भांड आदि पदार्थ नहीं देखपडते ॥ ५१ ॥ हे काकुत्स्थ रामजी ! जिन दृष्टान्तोंसे मैं आपको बोध करताहूं वे सब कारणसे उत्पन्नहुए कार्यरूप हैं, और कारणरहित सत् परमात्माको प्राप्तकरातेहैं ॥५२॥

उपमानोपमेयानां कार्यकारणतोदिता ॥ वर्जयित्वा परं ब्रह्म सर्वेषामेव विद्यते ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोपदेशे दृष्टान्तो यस्तवेह हि कथ्यते ॥ एकदेशसधर्मत्वं तत्रान्तः परिगृह्यते ॥ ५४ ॥ यो यो नामेह दृष्टान्तो ब्रह्मतत्त्वावबोधने ॥ दीयते स स बोद्धव्यः स्वप्नजातो जगद्गतः ॥ ५५ ॥ एवं सति निराकारे ब्रह्मण्याकारवान्कथम् ॥ दृष्टान्त इति नोद्यन्ति मूर्खवैकल्पिकोक्तयः ॥ ५६ ॥

अर्थ—परब्रह्मसे व्यतिरिक्त उपमान और उपमेय सबपदार्थोंका कार्य्यकारणधर्मोंसे सादृश्य है ॥ ५३ ॥ ब्रह्मके उपदेशमें जो तुमको मैं यहांपर दृष्टांत कहताहूं वहांपर एकदेशमें[3] सादृश्य ग्रहणकरके प्रस्तुतवस्तुका निर्णय किया जाताहै ॥ ५४ ॥ ब्रह्मतत्वका बोधकरानेकेलिये जो २ दृष्टांत यहांपर दियेजातेहैं उन सबको स्वप्नके पदार्थोंके समान जगत्के अन्तर्गत मिथ्याही जाननाचाहिये, क्योंकि सच्चिदानन्द ब्रह्मतत्व एकही है उसके सदृश द्वितीय अप्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ इसप्रकार अंगीकार करनेसे " निराकारब्रह्ममें साकार दृष्टांत कैसे होसताहै " इत्यादि विकल्पसे उत्पन्न मूर्खोंके कथन नहीं उठसकते ॥ ५६ ॥

अन्यासिद्धविरुद्धादिदृग्दृष्टान्तप्रदूषणैः ॥ स्वप्नोपमत्वाज्जगतः समुदेति न किंचन ॥ ५७ ॥ अवस्तु पूर्वापरयोर्वर्तमाने विचारितम् ॥ यथा जाग्रत्तथा स्वप्नः सिद्धमाबालमागतम् ॥ ५८ ॥ स्वप्नसंकल्पनाध्यानवरशापौषधादिभिः ॥ यथार्था इह दृष्टान्तास्तद्रूपत्वाज्जगत्स्थितेः ॥ ५९ ॥ मोक्षोपायकृता ग्रंथकारेणान्येऽपि ये कृताः ॥ ग्रन्थास्तेष्वियमेवैका व्यवस्था बोध्यबोधने ॥ ६० ॥

अर्थ—और अन्य असिद्ध, तथा विरुद्ध आदि दोषदर्शी नैय्यायिकोंके दृष्टान्तके दूषणोंसे कुछ नहीं बिगडता क्योंकि उनके दूषणभी जगत्के अन्तर्गत होनेसे स्वप्नके पदार्थके समान मिथ्या है ॥ ५७ ॥ जो अवस्तु है वह उत्पत्ति और विनाशके पूर्व और उत्तरकालमें जैसे अभावग्रस्त है वैसेही विचार करनेसे वर्तमानमेंभी मिथ्या है, इसलिये जाग्रत् और स्वप्नके पदार्थ समान हैं, और स्वप्नके पदार्थोंका मिथ्यात्व तो बालकोंमेंभी प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ जैसे स्वप्नके संकल्प, ध्यान, वर, शाप और औषध आदिसे कार्य्य (कदाचित्) सिद्धहोताहै, इसीप्रकार जाग्रत्में जगत्की स्थिति होनेसे यहां स्वप्नदृष्टान्त यथार्थ है ॥ ५९ ॥ श्री वाल्मीकिमुनिरचित यह मोक्षोपाय ग्रन्थ तथा अन्यग्रन्थ हैं, उनमें ब्रह्मतत्वके बोधन दृष्टान्तोंकी यही एक व्यवस्था है ॥ ६० ॥

स्वप्नाभत्वं च जगतः श्रुते शास्त्रेऽवबोध्यते ॥ शीघ्रं न पार्यते वक्तुं वाकिल क्रमवर्तिनी ॥ ६१ ॥ स्वप्नसंकल्पनाध्याननगराद्युपमं जगत् ॥ यतस्त एव दृष्टान्तास्तस्मात्संतीह नेतरे ॥ ६२ ॥ अकारणे कारणता यद्बोधायोपमीयते ॥ न तत्र सर्वसाधर्म्यं सम्भवत्युपमाश्रमैः ॥ ६३ ॥ उपमेयस्योपमानादेकांशेन सधर्मता ॥ अंगीकार्यावबोधाय धीमता निर्विवादिना ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह जगत् स्वप्नके तुल्य है, यह वार्ता शास्त्रके श्रवण करनेहीसे विदितहोती है, क्योंकि वाणी क्रमसे अपना कार्य करतीहै, इसलिये शीघ्र बोध कोई नहींकरासकता; इससे यह बात सिद्ध हुई कि शास्त्रश्रवणमें जिनको आलस्य है, उनको जगत्में सत्यका भ्रम होताहै ॥ ६१ ॥ स्वप्नके संकल्प ध्यान और नगरादिके तुल्य यह जगत् है, इसलिये वेही दृष्टान्त हैं और नहीं ॥ ६२ ॥ अपरिणामी परब्रह्ममें जो परिणामी सुवर्णकुंडल आदिकी उपमा दीजाती है कि

---

१ मिथ्याभूत मृत्तिका सुवर्णआदि उपादान कारण है, इत्यादि दृष्टान्तोंसे सद्ब्रह्मका बोध कराया जाताहै. २ जिसप्रकार विचारादिसे विवेकग्राहक ज्ञान उत्पन्नहोताहै यह कहाजाताहै इसप्रकार ज्ञानसे ब्रह्म उत्पन्नहोताहै यह नहीं कहसक्ते. ३ जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या है ऐसेही ब्रह्ममें जगत् मिथ्या है इस दृष्टांतसे यह न समझना चाहिये कि ब्रह्मकेसमान रज्जुभी सत्य है किन्तु भ्रम अंशमें दृष्टान्त है. ४ नैय्यायिकलोगोंका यह कथन है कि दृष्टान्त हेतु और व्याप्ति आदिके मिथ्या होनेसे व्याप्यत्वासिद्धि स्वरूपासिद्धि आदि तथा मिथ्याभूत हेतुओंसे सत्यत्वसाधनमें विरुद्धत्वादि हेत्वाभासप्रयोजक दोष आसकतेहैं. ५ ब्रह्म द्वैतसहित है। अथवा अद्वितीय। यदि द्वैतसहित है तो वेदान्तका अद्वैतसिद्धान्त गया और यदि ब्रह्म अद्वैत है तो गुरुशास्त्रादिके मिथ्या होनेसे ज्ञान नहीं होसकता, इत्यादि विकल्पजनित कथन है.

वहांपर उपमाप्रयुक्त अनेक परिश्रम करनेपरभी सर्वांशमें सादृश्य नहीं मिलसकता ॥ ६३ ॥ विवादरहित बुद्धिमान् पुरुषको बोधकेलिये उपमान और उपमेयका एक अंशमें साधर्म्य अवश्य अंगीकार करनाचाहिये ॥ ६४ ॥

अर्थावलोकने दीपादाभामात्राहते किल ॥ न स्थानतैलवर्त्यादि किंचिदप्युपयुज्यते ॥ ६५ ॥ एकदेशसमर्थत्वादुपमेयावबोधनम् ॥ उपमानं करोत्यंग दीपोऽर्थप्रभया यथा ॥ ६६॥ दृष्टांतस्यांशमात्रेण बोध्यबोधोदये सति ॥ उपादेयतया ग्राह्यो महावाक्यार्थनिश्चयः ॥६७॥ न कुतार्किकतामेत्य नाशनीया प्रबुद्धता ॥ अनुभूत्यपलापांतैरपवित्रैर्विकल्पितैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—संसारमेंभी "यह मणिदीपके समान है" इस दृष्टांतमें पदार्थोंके देखनेमें केवल प्रकाशमात्रमें सादृश्य है स्थान, बत्ती और तैल आदिका कुछभी उपयोग नहीं है ॥६५॥ एकअंशमें सादृश्य होनेसे उपमान उपमेयका बोध करादेताहै, जैसे "मणिर्दीप इव" (मणि दीपके समान है) इस दृष्टान्तमें उपमान दीप, प्रभा (प्रकाश) मात्रमें सादृश्य होनेसे उपमेय मणिका बोध करादेताहै ॥ ६६ ॥ दृष्टांतके अंशमात्रद्वारा बोध्यपदार्थके बोध होनेपर महावाक्योंका अर्थ उपादेयरूपसे ग्रहणकरनाचाहिये । स्वप्न आदिके दृष्टांतसे जगत्का मिथ्यात्व सिद्ध होनेपर और दृष्टान्तके अंशमात्रसे पदार्थके शोधनद्वारा लक्ष्यार्थके बोधका उदय होनेपर कार्यसहित अविद्याके उच्छेदार्थ अवश्य उपादेय होनेके कारण सब श्रुति और शास्त्रोंके महान्तात्पर्यका विषय जो "अहं ब्रह्मास्मि" महावाक्य है, उसका लक्ष्यार्थ अवश्य ग्रहणकरनाचाहिये ॥ ६७ ॥ शुद्ध अद्वैत सच्चिदानन्द आत्माही ब्रह्म है, ऐसे जाननेवाले विद्वान्के प्रत्यक्षको अपलाप करनेवाले और अपवित्र शूकर आदि जन्म देनेवाले, विकल्पोंसे अपनेको दुष्ट नैय्यायिक मानके परमपुरुषार्थको देनेवाली अभिज्ञताका नाश नहीं करनाचाहिये ॥ ६८ ॥

विचारणादनुभवकारिवैरिणोऽपि वाङ्मयं त्वनुगतमस्मदादिषु ॥ स्त्रियोक्तमप्यपरमार्थवैदिकं वचो वचःप्रलपनमेव नागमः ॥ ६९ ॥ अस्माकमस्ति मतिरंगतयेति सर्वशास्त्रैकवाक्यकरणं फलितं यतो यः ॥ प्रातीतिकार्थमपशास्त्रनिजांगपुष्टात्सम्वेदनादितरदस्ति ततः प्रमाणम् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दृष्टान्तनिरूपणं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—विना बिचाराकिये सांसारिकसुखोंकोही मुख्य माननेवाले चार्वाक आदिकोंकेही वचन प्रिय लगतेहैं, और संन्यासलक्षण मोक्षदायक धर्मप्रतिपादक महावाक्य आदि शास्त्रवचन वैरीके वचनके समान लगतेहैं, परन्तु विचार करनेसे नित्य आनन्द परमपुरुषार्थरूप मोक्षदायक होनेसे वैरीकाभी वचन प्रमाण माननाचाहिये. और जो मोक्षदायक न हो वो वचन परमप्रिया भार्याकाभी हो तोभी न माननाचाहिये ॥ ६९ ॥ हे प्रिय रामचन्द्रजी ! शास्त्र विरुद्ध केवल तर्कादिके ज्ञानकी अपेक्षासे हमको तत्वसाक्षात्कारलक्षण जीवन्मुक्तिरूप शुभप्रापक विधि अधिकप्रमाण है क्यों कि वह प्रत्यक्ष अनुभवके योग्य और सम्पूर्ण श्रुति तथा अध्यात्मशास्त्रका सिद्धांत है ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दृष्टांतनिरूपणं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

द्रष्टा और दृश्यआदिका साक्षीरूप जो ब्रह्मरूप तत्व है उसका शोधन, दृष्टांतके अर्थके प्रसंगसे इस १९ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ट उवाच—विशिष्टांशसमर्थत्वमुपमानेषु गृह्यते॥को भेदःसर्वसादृश्ये तूपमानोपमेययोः ॥१ दृष्टान्तबुध्दाविकात्मज्ञानशास्त्रार्थवेदनात् ॥ महावाक्यार्थसंसिध्दा शान्तिर्निर्वाणमुच्यते॥२॥ तस्माद्दृष्टान्तदार्ष्टान्तविकल्पोल्लसितैरलम् ॥ यया कयाचिद्युक्त्या तु महावाक्यार्थमाश्रयेत् ॥ ३ ॥ शांतिः श्रेयः परं विद्धि तत्प्राप्तौ यत्नवान्भव ॥ भोक्तव्यमोदनं प्राप्तं किन्तत्सिद्धौ विकल्पितैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, विशेषकरके कथन करनेको इष्ट अंशमें सर्वत्र उपमानोंमें साधर्म्यका ग्रहण कियाजाता है, नहीं तो गौके समान गवय (नील गाय) होताहै, इत्यादि उपमान उपमेयके उदाहरणोंमें यदि जात्यादि सर्वांशमें

१ अधिकगुणवालेको उपमान और न्यूनगुणवालेको उपमेय कहतेहैं ऐसा किसीका मत है, यथार्थमें जिसकी उपमा दीजाय वह उपमान और जिसको दीजाय वह उपमेय है, जैसे "चन्द्रवत् मुखम्" यहां चन्द्र उपमान और मुख उपमेय है.

साट्टश्यका ग्रहण कियाजाय तो उपमान और उपमेयमें भेदही क्या रहा? अर्थात् सम्पूर्ण अंशमें साट्टश्य माननेसे उपमान उपमेयभावका उच्छेदही होजायगा ॥ १ ॥ 'तत् और त्वम्'पदार्थोंके शोधनके उपयोगी उन २ दृष्टान्तोंकी बुद्धि होनेसे, एक अद्वितीयज्ञानस्वरूप जो आत्मतत्वही सब वेदान्तोंके तात्पर्यका विषय है, और वही शास्त्रका अर्थ है, उसके ज्ञानसे अखण्ड आत्माकारवृत्तिके अभ्युदय होनेसे अज्ञान तथा उसके कार्यकी शान्तिरूप निर्वाणही दृष्टान्तका फल है ॥ २ ॥ इसलिये क्या यह दृष्टान्त सर्वांशमें है वा एकांशमें है इत्यादि विकल्पजालोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है. जिस किसी कल्पितयुक्तिसे महावाक्यार्थके बोधका आश्रय लेनाचाहिये ॥ ३ ॥ शान्तिही परम कल्याण है उसीकी प्राप्तिमें यत्न कीजिये, भोजनके योग्य जब सिद्ध ओदन प्राप्तहोगया तो उसकी सिद्धिमें जो विकल्प हैं उनसे कुछभी प्रयोजन नहींरहा ॥ ४ ॥

अकारणैः कारणिभिर्बोधार्थमुपमीयते ॥ उपमानैस्तूपमेयैः सदृशैरेकदेशतः ॥ ५ ॥ स्थातव्यं नेह भोगेषु विवेकरहितात्मना ॥ उपलोदरसंजातपरिपीनान्धभेकवत् ॥ ६ ॥ दृष्टान्तैर्यत्नमाश्रित्य जेतव्यं परमं पदम् ॥ विचारणवता भाव्यं शान्तिशास्त्रार्थशालिना ॥ ७ ॥ शास्त्रोपदेशसौजन्यप्रज्ञातज्ज्ञसमागमैः ॥ अन्तरान्तरसम्पन्नधर्मार्थोपार्जनक्रियः ॥ ८ ॥ तावद्विचारयेत्प्राज्ञो यावद्विश्रान्तिमात्मनि ॥ संप्रयात्यपुनर्नाशां शान्तिं तुर्यपदाभिधाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—बालककी औषध पीनेमें प्रवृत्तिके कारण और शिखा बढनेके अकारण जैसे एक अंशमें सदृश अर्थात् एक अंशमें कारण और दूसरे अंशमें जो कारण नहीं ऐसे उपमान और उपमेयोंसे जैसे लोकमें इष्टसिद्धि होती है, इसीतरह यहांभी इष्टसाधनबोधकेलिये उपमा दीजातीहै ॥ ५ ॥ पाषाणके भीतर उत्पन्न मोटे तथा अन्धे मण्डूकके समान विवेकसे शून्य होके विषयभोगमें निमग्न नहीं रहनाचाहिये ॥ ६ ॥ पूर्वोक्तदृष्टान्तोंका आश्रय लेके परमपदको प्राप्तकरनाचाहिये, और विचारवान् शान्तियुक्त और महावाक्यार्थसे शोभित होनाचाहिये ॥ ७ ॥ शास्त्रोंके उपदेश, सुजनता, बुद्धि, शास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मज्ञानियोंके समागमसे पूर्व २ अन्तरंगसाधनोंसे संपन्न तथा प्रतिदिन वेदान्तका श्रवण और गुरुशुश्रूषादि धर्मोंके गुरुशुश्रूषादि उपयोगी धनोंके और शास्त्रतात्पर्यविषयीभूत अर्थोंके उपार्जनरूप कर्ममें तत्पर होके, बुद्धिमान् मनुष्य तबतक शास्त्रोंको विचारे जबतक पुनः नाश न होनेवाली चतुर्थपद नामवाली शान्ति आत्मामें न प्राप्तहो ॥ ८ ॥ ९ ॥

तुर्यविश्रान्तियुक्तस्य प्रतीपस्य भवार्णवात् ॥ जीवतोऽजीवतश्चैव गृहस्थस्य तथा यतेः ॥ १० ॥ न कृतेनाकृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः ॥ निर्मन्दर इवाम्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितम् ॥ ११ ॥ एकांशेनोपमानानामुपमेयसधर्मता ॥ बोद्धव्यं बोध्यबोधाय न स्थेयं बोधचंचुना ॥ १२ ॥

अर्थ—संसाररूपी सागरसे उत्तीर्ण चतुर्थपदमें विश्रान्तियुक्त जो मनुष्य है, चाहे वह इस संसारमें हो वा न हो गृहस्थ वा यति हो ॥ १० ॥ उसको कृत अथवा अकृत कर्मसे तथा श्रुति और स्मृतिके श्रवण मनन आदिसे कुछ प्रयोजन नहींहै, वह तो मन्दराचल रहित शान्तसमुद्रकेसमान अपने स्वरूपमें स्थित रहताहै ॥ ११ ॥ उपमानोंके एक अंशसे उपमेयोमें यहां साट्टश्य अभीष्ट है, और इसका बोध्य जो आत्मतत्व है उसको अवश्य जाननाचाहिये, और बोधचंचु (दूसरोंके खण्डनार्थ मुखमात्रमें ज्ञानसम्पन्न नकि हृदयप्रवेशी ज्ञानयुक्त) होके नहींरहनाचाहिये ॥ १२ ॥

ययाकयाचिद्युक्त्या तु बोद्धव्यं बोध्यमेव ते ॥ युक्तायुक्तं न पश्यन्ति व्याकुला बोधचंचवः ॥ १३ ॥ हृदये संविदाकाशे विश्रान्तेऽनुभवात्मनि ॥ वस्तुन्यनर्थं यः प्राह बोधचंचुः स उच्यते ॥ १४ ॥ अभिमानविकल्पांशैरज्ञो ज्ञप्तिं विकल्पयेत् ॥ बोधं मलिनयत्यन्तः स्वं खमब्द इवामलम् ॥ १५ ॥ सर्वप्रमाणसत्तानां पदमब्धिरपामिव ॥ प्रमाणमेकमेवेह प्रत्यक्षं तदतःशृणु ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसाकिसीयुक्तिसे बोध्यपदार्थ आत्मतत्वको अवश्य जाननाचाहिये, व्याकुलचित्त बोधचंचु (केवल खण्डनकेलिये ज्ञानसंपन्न) पुरुष योग्य अयोग्य कुछ नहीं देखते ॥ १३ ॥ हृदयाकाशमें विश्रांत अनुभवरूप आत्मवस्तुमें जो अनर्थ कथनकरताहै उसको बोधचंचु कहतेहैं ॥ १४ ॥ और जो अज्ञानी अभिमानप्रयुक्त विकल्पोंसे ज्ञानस्वरूप आत्मामें तथा उसके साधनोंमें विकल्प करताहुआ मेघ जैसे आकाशको इसतरह आत्मस्वरूपज्ञानको मलिन करताहै, वह द्वितीय बोधचंचु कहलाताहै ॥ १५ ॥ जैसे सम्पूर्णजलमात्रका आधार समुद्र है, ऐसेही सम्पूर्ण प्रमाणोंका श्रेष्ठ आधार एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, क्यों कि अनुमान आदि प्रमाण इसीका आश्रय लेके प्रवृत्तहोतेहैं, इसलिये प्रत्यक्षका मैं यथार्थ वर्णनकरताहूं आप सुनिये ॥ १६ ॥

सर्वाक्षसारमध्यक्षं वेदनं विदुरुत्तमाः ॥ नूनं तत्प्रतिपत्सिद्धं तत्प्रत्यक्षमुदाहृतम् ॥१७॥ अनुभूतेर्वेदनस्य प्रतिपत्तेर्यथाभिधम् ॥ प्रत्यक्षमिति नामेह कृतं जीवः स एव नः ॥ १८ ॥ स एव सम्वित्स पुमानहन्ताप्रत्ययात्मकः ॥ स ययोदेति सम्वित्त्या सा पदार्थ इति स्मृता ॥ १९ ॥ स संकल्पविकल्पाद्यैः कृतनानाक्रमभ्रमैः ॥ जगत्तया स्फुरत्यम्बुतरंगादि तया यथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सम्पूर्णप्रमाणोंमें इन्द्रियां सारभूत हैं इसीप्रकार सबइन्द्रियोंके अपरोक्षज्ञानको सबमें मुख्य कहतेहैं, और उस ज्ञान तथा उसके आधारभूत और विषयभूत त्रिपुटीप्रतीतिसे जो ज्ञान है वही प्रत्यक्ष है, जैसे "मैं घटको जानताहूं" ॥ १७ ॥ जो सब देहेन्द्रियादिकका अनुभवरूपसे प्रकाशक है, और वेद्य त्रिपुटीकाभी प्रकाशकहै और स्वयं ज्ञान तथा प्रकाशस्वरूपसाक्षी चिन्मात्रहै, उसीका व्यवहारदशामें प्रत्यक्ष यह नाम कियागयाहै, और वही साक्षी प्राणधारणके निमित्तसे जीव कहलाताहै ॥ १८ ॥ वही साक्षी वृत्तिरूप उपाधिके धारणकरनेसे संवित् (ज्ञान) कहाताहै, अहंताप्रत्ययका रूप होनेसे पुमान् (प्रमाता) कहाजाताहै, और वही साक्षी विषयाकारवृत्तिसे बाह्य आवरणभंगमें प्रकटहोताहै, तो पदार्थ (विषय) कहलाताहै, अर्थात् साक्षीही प्रमाता, प्रमाण, और प्रमेय, तीनों रूप धारणकरताहै ॥ १९ ॥ वही साक्षी सङ्कल्पविकल्पप्रधान अन्तःकरण नाम आदि हिरण्यगर्भादिरूप समष्टिसृष्टिरूपसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे जल तरंगरूपसे ॥ २० ॥

प्रागकारणमेवाशु सर्गादौ सर्गलीलया ॥ स्फुरित्वाकारणं भूतं प्रत्यक्षं स्वयमात्मनि ॥ २१ ॥ कारणं त्वविचारोत्थजीवस्याऽसदपि स्थितम् ॥ सदिवास्यां जगद्रूपं प्रकृतौ व्यक्तिमागतम् ॥२२॥ स्वयमेव विचारस्तु स्वत उत्थं स्वकं वपुः ॥ नाशयित्वा करोत्याशु प्रत्यक्षं परमं महत् ॥ २३ ॥ विचारवान्विचारोऽपि आत्मानमवगच्छति ॥ यदा तदा निरुल्लेखं परमेवावशिष्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—वही साक्षी प्रत्यक्ष सृष्टिकी आदिमें अकारणरूपही सृष्टिकी लीलासे स्फुरित होके सृष्टिरूपमें आपही अपना कारण होताहै ॥ २१ ॥ यद्यपि यथार्थरूपसे एकहीमें कार्यता और कारणता नहीं बनसकती तथापि साक्षी चेतनमें यह कारणता अविचारसे उत्पन्न है, और असत्रूप होनेपरभी जीवको सत्रूपसे स्थित है, और अविचारसंयुक्त इस प्रकृतिमें जगत्रूपभी व्यक्तदशामें प्राप्तहै, अर्थात् यह प्रपंच अध्यारोपितहै॥ २२ ॥ इसीप्रकार विचार (आत्मसाक्षात्कार रूप) अपनेसे उत्पन्न जगत्को अज्ञानके नाशसे नष्टकरके अपने आवरणरहित अपरिच्छिन्न परमपुरुषार्थरूपका उपकारक होताहै ॥ २३ ॥ जब विचारवान् आत्माका साक्षात्कार करताहै अर्थात् विचार आत्माकार होताहै, तब विचार नष्टहोके केवल परमप्रेमास्पद आत्ममात्र शेष रहताहै, उस दशाका वर्णन शब्दसे नहीं होसकता ॥ २४ ॥

मनस्यनीहिते शान्ते स्वबुद्धीन्द्रियकर्मभिः ॥ न हि कश्चित्कृतैरर्थो नाकृतैरप्यभावनात् ॥ २५ ॥ मनस्यनीहिते शान्ते न प्रवर्तन्त एव ते ॥ कर्मेन्द्रियाणि कर्मादावसंचारितयन्त्रवत् ॥ २६ ॥ मनोयन्त्रस्य चलने कारणं वेदनं विदुः ॥ प्रणालीदारुमेषस्य रज्जुरन्तर्गता यथा ॥ २७ ॥ रूपालोकमनस्कारपदार्थव्याकुलं जगत् ॥ विद्यते वेदनस्यान्तर्वातान्तः स्पन्दनं यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रपंचके बाधसे ज्ञानेंद्रियसहित मनके शांतहोनेपर, मिथ्यारूपसे निश्चित जगत्का पुनः सत्यरूपसे निश्चय न होनेके कारणसे कर्मोंके करने और न करनेसे कुछभी प्रयोजन नहींहै, अर्थात् उस प्राणीके प्रारब्धकर्मानुकूल जगत्में प्रवृत्ति होनेके कारणसे वह क्रियमाण और संचित कर्मफलोंका भोक्ता नहीं होता ॥ २५ ॥ मनके शांत होनेपर तुमारी कर्मेंद्रिय न चलायेहुए यंत्रके समान आपही कर्ममें नहीं प्रवृत्त होंगी ॥ २६ ॥ मनरूपीयंत्रके चलनेमें विषयोंकी स्फूर्ति ऐसे कारण है, जैसे काष्ठके दो मेंषोंके परस्पर शिरोंके भिडानेमें भीतर खेंचनेकी रस्सी कारण होतीहै ॥ २७ ॥ बाह्यइन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होना, और मनसे विषयोंका अनुसन्धान करना इन दोनोंप्रकारके विषयोंसे व्याप्त यह जगत् ज्ञानके अन्तर्गत ऐसे विद्यमान है जैसे वायुके अन्तर्गत गति, इससे प्रथम विषय सिद्ध हो ले तो मन सिद्धहो और इस वेदान्तके सिद्धान्तानुसार मनोमय विषय होनेसे प्रथम मन सिद्धहो ले तो विषय सिद्धहो, यह अन्योन्याश्रय दोष निवृत्तहुआ ॥ २८ ॥

सर्वात्मवेदनं शुद्धं यथोदेति तदात्मकम् ॥ भाति प्रसृतदिक्कालबाह्यान्तारूपदेहकम् ॥ २९ ॥ द्रष्टैव दृश्यता भासं स्वरूपं धारयन्स्थितः ॥ स्वं यथा यत्र यद्रूपं प्रतिभाति तथैव तत् ॥ ३० ॥ स सर्वात्मा यथा यत्र समुल्लासमुपागतः ॥ तिष्ठत्याशु तथा तत्र तद्रूप इव राजते ॥ ३१ ॥ सर्वात्मकतया द्रष्टुर्दृश्यत्वमिव युज्यते ॥ दृश्यत्वं द्रष्टृसद्भावे दृश्यतापि न वास्तवी ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब प्राणियोंके कर्मोंकी परिपाकव्यवस्थासे प्राणियोंके कर्म भोगकेलिये जैसे आविर्भूत होतेहैं, उन्हीका रूप धारणकरके उत्पन्नहुयेके समान विस्तृत देश काल आदि रूपसे बाह्य और आभ्यंतरपदार्थोंका वेष धारण करतेहैं ॥ २९ ॥ वही अंतिम विचार अपने देहादि दृश्यताभासको देखकर यही मेरा स्वरूप है ऐसा धारणकरताहुआ सर्वात्मा होनेपरभी जीवरूपसे स्थितहै, क्योंकि अपना जहांपर जैसा रूप है वहांपर वैसाही भान होताहै ॥ ३० ॥ वह सर्वात्मा जहां जिसरूपसे प्रकाशको प्राप्तहुआहै वहां शीघ्र उसी रूपके सदृश शोभितहोताहै ॥ ३१ ॥ सर्वात्म होनेके कारण द्रष्टा दृश्यकेसदृश प्रतीतहोताहै, परन्तु वह दृश्यत्व मिथ्या है, क्योंकि दृक्स्वरूप द्रष्टा यदि सर्वथा अपने रूपसे प्रच्युत होके दृश्यरूपमें प्राप्त हो तो द्रष्टारहित दृश्यपदार्थकी सिद्धिही नहीं होसकती, और यदि अपने स्वरूपसे अप्रच्युत होके दृश्यरूप होताहै, तो रज्जु जैसे अपने स्वरूपको न छोडती हुई सर्पकेसमान अज्ञानसे भासती है, ऐसेही इसकी दृश्यता मिथ्या है, वास्तविक नहीं ॥ ३२ ॥

अकारणकमेवातो ब्रह्मसिद्धमिदं स्थितम् ॥ प्रत्यक्षमेव निर्मात्र तस्यांशास्त्वनुमादयः ॥ ३३ ॥ स्वयत्नमात्रे यदुपासको यस्तद्दैवशब्दार्थमपास्य दूरे ॥ शूरेण साधो पदमुत्तमं तत्स्वपौरुषेणैव हि लभ्यतेऽन्तः ॥ ३४ ॥ विचारयाचार्यपरम्पराणां मतेन सत्येन सितेन तावत् ॥ यावद्विशुद्धं स्वयमेव बुद्ध्या ह्यनन्तरूपं परमभ्युपैषि ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे प्रमाणनिरूपणं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—इसलिये कार्यका मिथ्यात्व सिद्धहोनेसे उसकी अपेक्षा रखनेवाला कारणभी मिथ्या हुआ, अतः वास्तविक अकारणता सिद्ध हुई. इसप्रकार प्रत्यक्षतत्त्वके विचारमे अद्वय ब्रह्मही मुख्य प्रत्यक्षप्रमाण है, अनुमान आदि तो उसके अंश हैं, इसलिये सबप्रमाणोंका तत्त्व आत्माही है ॥ ३३ ॥ अपने पूर्वजन्मके कियेहुये पौरुषकोही दैव मानकर मनुष्य उसकाही उपासक बनजाताहै, उस दैवको दूर करके इन्द्रियोंके जीतनेमें शूर वीर पुरुष अपने पौरुषसेही उस परमपद आत्मतत्त्वको निजहृदयमेंही पाताहै ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! प्रमाणोंसें परिशोधित और सत्यपरमार्थनिष्ठ, आचार्य्योंकी परम्पराके सिद्धान्तसे तब तक विचारकरतेरहिये जबतक स्वयमेव बुद्धिसे देश, काल, और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य, अनन्तरूप परमपद आत्मतत्त्वका साक्षात्कार न करो ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे प्रमाणनिरूपणंनाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

प्रज्ञाबुद्धिका प्रकार, महापुरुषका लक्षण, और सदाचारके क्रम, ये परस्पर वृद्धिके हेतु होतेहैं, इस विषयका वर्णन इस २० वें सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—आर्यसंगमयुक्त्यादौ प्रज्ञां वृद्धिं नयेद्बलात् ॥ ततो महापुरुषतां महापुरुषलक्षणैः ॥ १ ॥ यो यो येन गुणेनेह पुरुषः प्रविराजते ॥ शिष्यते तं तमेवाशु तस्माद्बुद्धिं विवर्द्धयेत् ॥ २ ॥ महापुरुषता ह्येषा शमादिगुणशालिनी ॥ सम्यग् ज्ञानं विना राम सिद्धिमेति न कांचन ॥ ३ ॥ ज्ञानाच्छमादयो यान्ति वृद्धिं सत्पुरुषक्रमाः ॥ श्लाघनीयाः फलेनान्तर्वृष्टेरिव नवांकुराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, सबसे प्रथम श्रेष्ठ आर्यपुरुषोंका समागम, उपदेश, आचरण, और शिक्षा आदिकी युक्तियोंसे बुद्धिको बढावे, उसके अनन्तर आगे कहेहुये महापुरुषोंके लक्षणोंसे अपनेको महापुरुष बनावे ॥ १ ॥ यदि सम्पूर्णगुण एकपुरुषमें न संभवहो तो जो२ गुण जिस२ पुरुषमें अधिकतासे हो उस२ गुणको उस२ पुरुषसे सीखकर शेषगुणोंको अन्यपुरुषोंसे सीखकर शीघ्र अपनी बुद्धिको बढावे ॥ २ ॥ शम, दम, और प्रज्ञा आदि गुणोंसे शोभित होना महापुरुषताहै. परन्तु हे रामजी ! मनुष्य उत्तमज्ञानके विना किसी सिद्धिको नहीं प्राप्तहोता ॥ ३ ॥ ज्ञानसे शम, दम, आदि गुण और आत्मसाक्षात्कारसे प्रशंसाके योग्य महापुरुषोंके आचार ऐसे वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं, जैसे वृष्टिसे नूतन अंकुर ॥ ४ ॥

शमादिभ्यो गुणेभ्यश्च वर्द्धते ज्ञानमुत्तमम् ॥ अन्नात्मकेभ्यो यज्ञेभ्यः शालिवृष्टिरिवोत्तमा ॥५॥ गुणाः शमादयो ज्ञानाच्छमादिभ्यस्तथाज्ञता ॥ परस्परं विवर्द्धन्ते ते अब्जसरसी इव ॥ ६ ॥ ज्ञानं सत्पुरुषाचाराज्ज्ञानात्स पुरुषक्रमः ॥ परस्परं गतौ वृद्धिं ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ ७ ॥ शमप्रज्ञादिनिपुणपुरुषार्थक्रमेण च ॥ अभ्यसेत्पुरुषो धीमान् ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे अधिक अन्न घृतादिवाले यज्ञोंसे उत्तमधान्यकी वृद्धि होतीहै, इसीप्रकार शमादिगुणोंसे उत्तमज्ञान की वृद्धि होती है ॥५ ॥ ज्ञानसे शम, दम, आदि गुण, और शम, दम, आदि गुणोंसे ज्ञान, परस्पर ऐसे शोभा तथा वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं जैसे कमलोंसे तडाग और तडागसे कमल ॥ ६ ॥ इसीप्रकार सत्पुरुषोंके आचारसे ज्ञान, और ज्ञानसे सत्पुरुषोंके आचार, ये दोनों परस्पर वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं ॥ ७ ॥ शम, दम, आदि तथा बुद्धि और महापुरुषता आदिसे निपुण जो श्रवण मनन आदि पुरुषार्थ है, उसके क्रमसे बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान और सदाचारका अभ्यास करे ॥ ८ ॥

न यावत्सममभ्यस्तौ ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ एकोऽपि नैतयोस्तात पुरुषस्येह सिद्ध्यति ॥ ९ ॥ यथा कलमरक्षिण्या गीत्या वितततालया ॥ खगोत्सादेन सहितं गीतानन्दः प्रसाध्यते ॥ १० ॥ ज्ञानसत्पुरुषेहाभ्यामकर्त्री कर्तृरूपिणा ॥ तथा पुंसा निरिच्छेन सममासाद्यते पदम् ॥ ११ ॥ सदाचारक्रमः प्रोक्तो मयैवं रघुनन्दन ॥ तथोपदिश्यते सम्यगेवं ज्ञानक्रमोऽधुना ॥ १२ ॥

अर्थ—हे तात ! जबतक ज्ञान और सत्पुरुषोंके आचार एकसाथ अभ्यास नहींकिये जाते तबतक पुरुषको इन दोनोंमेंसे एककीभी सिद्धि नहीं प्राप्तहोती ॥ ९ ॥ जिसप्रकार पकेहुये धान्यकी रक्षाकरनेवाली स्त्रीको करतालकी ध्वनियुक्त गानके प्रसंगवश पक्षियोंके उडानेके साथ गीतका आनन्द सिद्धहोताहै, इसीप्रकार ज्ञानके विघ्नभूत जो राग मानादि हैं, उनके दूरकरनेकी इच्छासे रहित अतएव उस कार्यको न करनेवाले और ज्ञान तथा सत् पुरुषोंके आचारोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषको प्रसंगवशसे विघ्नोंके दूरकरनेके साथही परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे रघुनन्दन ! जिसप्रकार मैंने आपसे सदाचारकी रीति कही इसीप्रकार अब आगे ज्ञानकी रीतिभी आपसे कहताहूं ॥ १२ ॥

इदं यशस्यमायुष्यं पुरुषार्थफलप्रदम् ॥ तज्ज्ञादाप्ताच्च सच्छास्त्रं श्रोतव्यं किल धीमता ॥ १३ ॥ श्रुत्वा त्वं बुद्धिनैर्मल्याद्बलाद्यास्यसि तत्पदम् ॥ यथा कतकसंश्लेषात्प्रसादं कलुषं पयः ॥ १४ ॥ विदितवेद्यमिदं हि मनो मुनेर्विवशमेव हि याति परं पदम् ॥ यदवबुद्धमखण्डितमुत्तमं तदवबोधवशान्न जहाति हि ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वाल्मीकीये मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सदाचारनिरूपणंनाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

समाप्तमिदं द्वितीयं मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥ २ ॥

अर्थ—यह (यो० वा०) सत् शास्त्र यश, आयु, और पुरुषार्थफलका दायक प्रसिद्ध है, उसको बुद्धिमान् आप्त पण्डितसे श्रवण करै ॥ १३ ॥ हे रामचंद्रजी ! इसको श्रवण करके बुद्धिकी निर्मलतासे तुम बलात्कार परमपदको ऐसे प्राप्त होओगे, जैसे कतक औषधके संयोगसे मलिन जल स्वच्छताको ॥ १४ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्तसाधनकी सम्पत्तिसे मननशील पुरुषका वेद्यपदार्थको जाननेवाला मन इच्छा न करनेपरभी परमपदको प्राप्तहोताहै, और इतनाही नहीं किन्तु इस अन्तिमज्ञानसे अज्ञान और उसके कार्यके नष्टहोनेसे जो उत्तम अखंडित ज्ञानस्वरूप परमपद प्राप्तहुआहै उसको कदापि नहीं त्यागता ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वाल्मीकीये मोक्षोपाये वैश्यवंशावतंस जज्जपदारूढ रायबहादुरोपाधिधारी दिल्लीनिवासि श्रीबैजनाथमहाशयाज्ञया काशिकराजकीयपाठशाला प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रिशिष्याचार्योपाधिधारी द्विवेदोपनामक ठाकुरप्रसादशर्मविरचित भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

समाप्तमिदं मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥ श्रीः शुभमस्तु ॥

सर्व पुस्तकोंका मिलनेका पत्ता

पंडित श्रीधर शिवलालजी.

ज्ञानसागर छापाखाना.

बंबई.

श्रीहरिंवन्दे ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ तृतीयमुत्पत्तिप्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः । अथ उत्पत्तिप्रकरणम् ॥

वाग्भाभिर्ब्रह्मविद्ब्रह्मभातिस्वप्नइवात्मनि ॥ यदिदंतत्स्वशब्दोत्थैर्योयद्वेत्तिसवेत्तितत् ॥ १ ॥ न्याये नानेनलोकेस्मिन्सर्गेब्रह्मांबरेसति ॥ किमिदंकस्यकुत्रेतिचोद्यमूचेनिराकृतम् ॥ २ ॥ अहंतावद्यथा ज्ञानंयथावस्तुयथाक्रमम् ॥ यथास्वभावंतत्सर्ववच्मीदंश्रूयतांबुध ॥ ३ ॥ स्वप्नवत्पश्यतिजगच्चिन्नभो देहवित्स्वयम् ॥ स्वप्नसंसारदृष्टांतएवाहंत्वंसमन्वितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले अखण्ड आत्मतत्व प्रकाशक महावाक्योंसे आत्मतत्वको साक्षात्कार करनेवाला ब्रह्मवित् पारमार्थिक नित्यमुक्त अपने पूर्णस्वरूपसे प्रकाश करताहै, क्योंकि देह इन्द्रिय और आकाशादि दृश्यरूप जो बन्धहै वह प्रत्यगात्मभूत जो ब्रह्महै उसीमें स्वप्नकेसमान आविर्भूत होके कल्पनासे भान होता है और हम लोगोंमेंसे श्रवण मननादि सम्पत्तिसे सम्पन्न होके जो यथार्थ ब्रह्मतत्वको जानताहै वह जीवन्मुक्तिके फलको जानताहै ॥ १ ॥ संक्षेपसे देखाहुये और विस्तारसे वक्ष्यमाण, अध्यात्म पदार्थके अधिष्ठानकी सत्ताका पृथक् अभावरूप, अध्यारोप और-अपवाद न्यायसे ब्रह्ममें अध्यास्त इस सम्पूर्ण जगत् प्रपंचका अपवाद करनेपर और केवल ब्रह्माकाशमात्र शेष रहजाने पर "क्या" उत्पन्न होताहै और क्या नष्ट होताहै और पुनः क्या उत्पन्न होके बढताहै यह जो प्रश्न कियाथा सो स्वयं-निराकृत होगया, क्योंकि सब ब्रह्ममय होनेसे सत्का नाश और असत्की उत्पत्ति इस सिद्धान्तमें इष्ट नहीं है ॥ २ ॥ हे बुधरामचन्द्रजी! मैं प्रमाण और अनुभवसे यथाज्ञान, परीक्षासे यथावस्तु, साधनोंकी उपपत्ति निरूपणद्वारा यथाक्रम और श्रोताओंकी बुद्धिके अनुसार यथा स्वभाव, इस सबको कहताहूं आपसुनिये ॥ ३ ॥ जीवदशामें प्राप्त होके चिदाकाश (साक्षीचेतन) इस सम्पूर्ण जगत्को स्वप्नकेसमान अपने आत्मामें देखताहै, इसीप्रकार " अहम् " यह प्रत्य-

गात्माके साथ अभेदसे और "त्वम्" यह बाह्यपदार्थोंके साथ अभेदसे भासमानभी स्वप्नसंसारके दृष्टान्तसे दार्ष्टांतिकत्व रूपसे सम्बन्धहै अर्थात् मिथ्याहै ॥ ४ ॥

मुमुक्षुव्यवहारोक्तिमस्मात्प्रकरणात्परम् ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणंमयेदंपरिकथ्यते ॥ ५ ॥ बंधोयंदृश्यसद्भावादृश्याभावेनबंधनम् ॥ नसंभवतिदृश्यंतुयथेदंतच्छृणुक्रमात् ॥ ६ ॥ उत्पद्यतेयोजगतिसएवक्रिलवर्द्धते ॥ सएवमोक्षमाप्नोतिस्वर्गंवानरकंचवा ॥ ७ ॥ अतस्तेस्वावबोधार्थंत्तावत्कथयाम्यहम् ॥ उत्पत्तिःसंसृतावेतिपूर्वमेवहियोयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—अब मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणके अनन्तर यह उत्पत्तिप्रकरण आपसे मैं कहताहूं ॥ ५ ॥ यह बन्धन दृश्यकी सत्तासे है और दृश्यके अभावसे बन्धनका सम्भव नहीं है अब जिसप्रकार यह दृश्यहै वह क्रमसे श्रवण कीजिये जो जगत्में सत्यरूपसे उत्पन्न होताहै वही बढताहै और उसीको मोक्ष स्वर्ग वा नर्क प्राप्त होताहै और आत्मातो उत्पत्त्यादि स्वभाववालाही नहीं उसको तो अपने यथार्थ रूपके अज्ञानसेही उत्पत्ति आदिका भ्रमहै ॥ ७ ॥ इसलिये आत्मज्ञानार्थ तुमको मैं दृश्यका असंभव वक्ष्यमाण रीतिसे कहताहूं, यह उत्पति आदिके संबन्ध दृश्यसंसार कोटिमेंहै न कि आत्मकोटिमें, आत्मातो दृश्यकी उत्पत्ति आदिके पूर्व जिस अविकृतरूपसे रहताहै वैसाही उसके अनन्तरभी रहताहै उसमेंतो कुछभी भेद नहीं होता ॥ ८ ॥

इदंप्रकरणार्थंत्वंसंक्षेपाच्छृणुराघव ॥ ततःसंकथयिष्यामिविस्तरंतेयथेप्सितम् ॥ ९ ॥ यदिदंदृश्यते सर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ तत्सुषुप्ताविवस्वप्नःकल्पांतेप्रविनश्यति ॥ १० ॥ ततस्तिमितगंभीरंनतेजोनतमस्ततम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंसत्किंचिदवशिष्यते ॥ ११ ॥ ऋतमात्मापरंब्रह्मसत्यमित्यादिकाबुधैः ॥ कल्पिताव्यवहारार्थंतस्यसंज्ञामहात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह प्रकरणका अर्थ संक्षेपसे तुम इससर्गमें सुनो इसके अनन्तर तुमारी इच्छाके अनुसार विस्तारसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ यह सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत कल्पके अन्तमें ऐसे नाशको प्राप्तहोताहै जैसे सुषुप्ति (गाढी निद्रा) में स्वप्न ॥ १० ॥ उससमय अमूर्त होनेसे स्तिमित (अक्रिय) अपरिच्छेध होनेसे गम्भीर, अरूप होनेसे तेज रहित भावरूप होनेसे अन्धकारसे वर्जित, धर्मरहित होनेसे संज्ञा वा नामशून्य और अज्ञानसे आवृत होनेसे वा प्रपंचके संस्कारका आधार होनेसे अनभिव्यक्त जो कुछ सत्रूपहै वह शेष रहजाताहै ॥ ११ ॥ ऋत्, आत्मा, परब्रह्म और सत्य इत्यादि संज्ञा (नाम) उपदेश और उपदेशके व्यवहारकेलिये पण्डितोंने कल्पितकियाहै ॥ १२ ॥

सतथाभूतएवात्मास्वयमन्यइवोल्लसन् ॥ जीवतामुपयातीवभाविनाम्नाकदर्थिताम् ॥ १३ ॥ ततःस जीवशब्दार्थकलनाकुलतांगतः ॥ मनोभवतिभूतात्माममननान्मंथरीभवन् ॥ १४ ॥ मनःसंपद्यतेतेनमहतःपरमात्मनः ॥ सुस्थिरादस्थिराकारस्तरंगइववारिधेः ॥ १५ ॥ तत्स्वयंस्वैरमेवाशुसंकल्पयति नित्यशः ॥ तेनेत्थमिंद्रजालश्रीर्विततेयंवितन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वह आत्मा स्वयं अपने चित्स्वभावसे स्थित ही अज्ञानसे जड आकाशादि क्रमसे लिंग समष्टिआत्मा सृष्टिके अनन्तर उसमें प्रवेश करनेसे और उसके साथ अभिमान करनेसे जगत्के समान शोभायमान, जगत्के अन्तर्गत प्राणधारण उपाधिसे शरीरसिद्धिके अनन्तर दुष्टअर्थसे सम्पादित भावी जीवनामको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ उसके अनन्तर जीवशब्दका अर्थ जो क्रियाशक्ति प्रधान प्राण धारणहै उसके ग्रहणसे चंचलताको प्राप्तहुआ भौतिक आत्मा संकल्प विकल्पके मननसे तथा जडतासे मन्दभावको प्राप्तहुआ मनोभावको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ उस मनोभावसे उस अपने महत् और परमात्म भावको भूलकर आत्मा मनके धर्म संकल्प विकल्पादि धारण करताहै ऐसाही निश्चय करताहै और समुद्रके तरंगके समान निश्चल आकारको छोडकर चंचल आकारवाला होजाताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार समष्टि मनोभावको प्राप्त हिरण्यगर्भनाम ब्रह्म दूसरेकी प्रेरणाके विनाभी पूर्वकल्पकी वासनाके अनुरोधसे आपही विराट्रूप चतुर्दश भुवनोंको और अण्डज जरायुजादि चार प्रकारके प्राणियोंको शीघ्र संकल्प करताहै और उसके सत्यसंकल्पसे यह विस्तृत इन्द्रजालकी शोभा विस्तारको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

यथाकटकशब्दार्थःपृथक्त्वार्होनकांचनात् ॥ नहेमकटकात्तद्वज्जगच्छब्दार्थतापरे ॥ १७ ॥ ब्रह्मण्येवास्त्यनंतात्मयथास्थितमिदंजगत् ॥ नजगच्छब्दकार्थेस्ति हेम्नीवकटकात्मता ॥ १८ ॥ सतीवाप्यसतीतापनद्येवलहरीचला ॥ मनसेहेंद्रजालश्रीर्जागतीप्रवितन्यते ॥ १९ ॥ अविद्यासंसृतिर्बंधोमायामोहोमहत्तमः ॥ कल्पितानीतिनामानियस्याःसकलवेदिभिः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णके कटक (कडा) रूप सुवर्णसे कटक शब्दका अर्थ भिन्न नहीं होसकता, इसीप्रकार जगत् शब्दका अर्थभी परब्रह्मसे भिन्न नहीं होसकता ॥ १७ ॥ जैसे कटकरूपता सुवर्णके स्वभावके अन्तर्गतहै नकि कटक स्वभावके ऐसेही परिच्छेद भावसे शून्य यह जगत्शब्दार्थभी ब्रह्मस्वभावकेही अन्तर्गतहै नकिअन्तवान् जगत्शब्दार्थके अन्तर्गत॥१८॥ इन्द्रजालकी शोभाके समान मनसे कल्पित यह जगत्की शोभा असत् होनेपरभी मृगतृष्णामें कल्पित नदीके चंचलतरंगके समान सत्रूपसे विस्त्रित होरहहीहै ॥ १९ ॥ विद्यासे निवारणहोनेसे अविद्या, उपर नीचे और टेढे संसरणका हेतु होनेसे संसृति, परतन्त्रताका हेतु होनेसे बन्ध, मिथ्याहोनेसे माया, भ्रमका हेतु होनेसे मोह दुस्तर होनेसे महत् और आत्मस्वरूपका आवरक होनेसे तम इत्यादि उसके नाम सम्पूर्णवेत्ताओंने कल्पित कियाहै ॥२०

बंधस्यतावद्रूपंत्वंकथ्यमानमिदंशृणु ॥ ततःस्वरूपंमोक्षस्यज्ञास्यसींदुनिभानन ॥ २१ ॥ द्रष्टुर्दृश्यस्य सत्तांगबंधइत्यभिधीयते ॥ द्रष्टादृश्यबलाद्बद्धोदृश्याभावेविमुच्यते ॥ २२ ॥ जगत्त्वमहमित्यादिर्मिथ्यात्माद्दृश्यमुच्यते ॥ यावदेतत्संभवतितावन्मोक्षोनविद्यते ॥ २३ ॥ नेदंनेदमितिव्यर्थप्रलापैर्नोपशाम्यति ॥ संकल्पजनकैर्दृश्यव्याधिःप्रत्युतवर्द्धते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे चन्द्रके समान मुखवाले रामचन्द्रजी ! यह कहाहुआ बन्धका स्वरूप तुम जानो इसके अनन्तर मोक्षका स्वरूप जानोगे ॥ २१ ॥ हे प्रियरामचन्द्रजी ! द्रष्टाकी दृश्यरूपसे सत्ता मानलेनाही बन्धहै दृश्यके वशमें होनेसेही बद्धहै और दृश्यके मिथ्या ज्ञानसे मुक्त होजाताहै ॥ २२ ॥ यह जगत् त्वम्, अहम्, इत्यादि मिथ्या प्रतीतिका नाम दृश्यहै जबतक सत्यरूपसे इस प्रतीतिका सम्भवहै तबतक मोक्ष नहीं ॥ २३ ॥ जो जो दृश्य उपस्थितहो उन उनके यह नहीं यह नहीं है ऐसे व्यर्थ निषेधसे जगत्की शान्ति नहीं होती, किन्तु निषेधरूप संकल्पके जनक जो दूसरे दृश्य हैं उनसे यह दृश्यरूपी रोग बढताही जाताहै ॥ २४ ॥

नचतर्कभरक्षोदैर्नतीर्थनियमादिभिः ॥ सतोदृश्यस्यजगतोयस्मादेतिविचारकाः ॥ २५ ॥ जगद्दृश्यं तुयद्यस्तिनशाम्यत्येवकस्यचित् ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ २६ ॥ अचेत्यचित्स्वरूपात्मायत्रयत्रैवतिष्ठति ॥ द्रष्टातत्रास्यदृश्यश्रीःसमुदेत्यप्यणूदरे ॥ २७ ॥ तस्मादस्तिजगद्दृश्यंतत्प्रमृष्टमिदंमया ॥ त्यक्तंतपोध्यानजपैरितिकांजिकतृप्तिवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे विचारशीलजन ! तर्कोंके समूहोंसे अथवा तीर्थ और नियमादिसे दृश्यजगत्की सत्ताकी शान्ति नहीं होती किन्तु दृश्यजगत्की अधिकतासे ही तर्ककी अधिकता होनेसे और भी दृश्यव्याधि बढती है तात्पर्य यह कि अनादर करनेसे दृश्यका बाध नहीं होता किन्तु विचारसे ॥२५॥ और यदि दृश्यरूप जगत्की सत्ता स्वरूपसे सत्य मानी जाय तो उसकी शान्ति वा बाध किसीप्रकार नहीं हो सकता क्योंकि असत् पदार्थका भाव नहीं है और सत्का अभाव नहीं है ॥ २६ ॥ तप आदिसे चित्स्वरूप आत्मा जाननेके असमर्थहै अज्ञातस्वरूप द्रष्टा चाहै जहां कहीं अणुके उदरमेंभी निवास करे परन्तु वहांभी दृश्यकीश्री भलीभांति उदित होतीहै ॥ २७ ॥ इसलिये इस जगत् स्वस्थान जो अधिष्ठान सत्ताहै वहां इसका अपवाद मैंने किया और देशांतरकी प्राप्ति वा तप ध्यान जपादिसे सुरामदिराकी तृप्तिके समान त्यागदिया ॥ २८ ॥

यदिरामजगद्दृश्यमास्तितत्प्रतिबिंबति ॥ परमाणूदरेप्यस्मिंश्चिदादर्शेतथैवहि ॥ २९ ॥ यत्रतत्रस्थिते यद्वद्दर्पणेप्रतिबिंबति ॥ अद्र्यब्ध्युर्वीनदीवारिचिदादर्शेतथैवहि ॥ ३० ॥ ततस्तत्रपुनर्दुःखंजरामरण जन्मनी ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गःस्थूलसूक्ष्मचलाचलः ॥ ३१ ॥ इदंप्रमार्जितंदृश्यंमयाचात्राहमास्थितः ॥ एतदेवाक्षयंबीजंसमाधौसंसृतिस्मृतेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यदि जगत् दृश्यहै तो यह जैसे चेतनरूप आदर्श (दर्पण) में विपुल प्रदेशमें जगत् प्रतिबिम्बित होताहै ऐसेही संकुचित अणुके उदरमें व्याप्त जो आत्मा है उसमेंभी प्रतिबिम्बित होताहै ॥ २९ ॥ जैसे जहां जहां दर्पण स्थितहै वहां २ वस्तुका प्रतिबिम्ब पडताहै ऐसेही सर्वत्रव्यापक जो चित्रूपी आदर्श है उसमें पर्वत समुद्र पृथिवी नदी और जलादि प्रतिबिम्बित होताहै ॥ ३० ॥ उसके अनन्तर उसप्रतिबिम्बमें जन्म वृद्धावस्था मरण, अनेक दुःख, जाग्रत् अवस्थामें स्थूल और स्वप्नमें सूक्ष्म और सुषुप्तिमें बीजरूपसे भाव और स्थूलरूपसे अभाव इत्यादि अस्थिररूपसे यह संसार होता रहताहै ॥ ३१ ॥ सुषुप्तिके समान ज्ञान निरपेक्ष समाधिमेंभी जगत्का मार्जन यहांपर स्थित मैंने इसीप्रकार किया है (अर्थात् ज्ञानके विना समाधिमें दृश्यकी शांति बीजरूपसे नहीं

होती) संसारकी संस्काररूपसे स्मृतिही समाधिमें संसारका अक्षय बीजहै क्योंकि विस्मृत पदार्थका मार्जन नहीं होसकता और पदार्थोंकी स्मृति करनेसे समाधि भंग होजातीहै इसलिये बीजरूपसे संसार वहांभी रहताहै ॥ ३२ ॥

सतित्वस्मिन्कुतोदृश्येनिर्विकल्पसमाधिता ॥ समाधौचेतनत्वंतुतुर्यंचाप्युपपद्यते ॥ ३३ ॥ व्युत्थाने हिसमाधानात्सुषुप्तांतइवाखिलम् ॥ जगद्दुःखमिदंभातियथास्थितमखंडितम् ॥ ३४ ॥ प्राप्तंभवतिहे रामतत्किनामसमाधिभिः ॥ भूयोनर्थनिपातेहिक्षणसाम्येहिकिंसुखम् ॥ ३५ ॥ यदिवापिसमाधाने निर्विकल्पेस्थितिंव्रजेत् ॥ तदक्षयसुषुप्ताभंतन्मन्येतामलंपदम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—चित्सत्व निर्विकल्प समाधिके रहनेपरही चेतनता और तुर्य्यता (चतुर्थअवस्थाका रूप) का सम्भव होसकताहै और दृश्यके (स्थूलरूपसे) रहनेपर तो निर्विकल्प समाधिही नहींबनसकती ॥ ३३ ॥ समाधिके उत्थानमें सम्पूर्ण संसारका अनुसन्धान होनेसे, सुषुप्तिके अन्तके समान यह दुःखमय संसार अखण्डित रूपसे भान होनेलगताहै ॥ ३४ ॥ हे राम ! उत्थानमें पुनः अनर्थकी प्राप्ति होनेसे, क्षणभरके लिये जगत्की शान्तिमें सुख होनेसे निर्विकल्प वा सविकल्प समाधियोंसे क्या प्राप्त होताहै ! ॥ ३५ ॥ यदि निर्विकल्प समाधिमें कभी व्युत्थान न हो तो अक्षय सुखके सदृश सुषुप्तिकोही अमलपदकी प्राप्ति मानलेनीचाहिये ॥ ३६ ॥

प्राप्यतेसतिदृश्येऽस्मिन्नत्रकिंनामकेनचित् ॥ यत्रयत्रकिलायातिचित्ततास्यजगद्भ्रमः ॥ ३७ ॥ द्रष्टा थयदिपाषाणरूपतांभावयन्बलात् ॥ किलास्तेतत्तदंतेपिभूयोस्योदेतिदृश्यता ॥ ३८ ॥ नचपाषाण तातुल्यानिर्विकल्पसमाधयः ॥ केषांचित्स्थितिमायांतिसर्वैरित्यनुभूयते ॥ ३९ ॥ नचपाषाणतातु ल्यारूढियाताःसमाधयः ॥ भवंत्यग्रपदंशांतंचिद्रूपमजमक्षयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—इस मन लक्षण दृश्यके रहनेपर समाधिरूप यत्न करनेवाले पुरुषको क्या दृश्यकी प्राप्ति नहीं होती? जहां २ चित्त रहताहै वहां २ जगत्भ्रम अवश्य होताहै ॥ ३७ ॥ यदि आत्मतत्वको न जाननेवाला द्रष्टा समाधिमें आत्मभिन्न पाषाण आदिका ध्यान करै तो उसको समाधिके अन्तमेंभी पुनः वही दृश्यरूपसे उदय होताहै ॥ ३८ ॥ कदाचित् कहो कि दुःखरहित पाषाणभाव होनेसे जगत्कि शांति होजायगी सो नहीं, क्योंकि पाषाणके तुल्य निर्विकल्प समाधियां किसीके मतमें स्थिरताको नहींप्राप्तहोती, इस बातको सब समाधिनिष्ठ जन अनुभव करते हैं ॥ ३९ ॥ नित्य पाषाणतुल्यता अचेतन समाधियोंमें रूढि मानलेनेसेभी, सर्व संसार शान्तिमय चिद्रूप अग्रपद (मोक्ष) वे समाधि नहीं होसकतीं ॥ ४० ॥

तस्माद्यदीदंसद्दृश्यंतन्नशाम्येत्कदाचन ॥ शाम्येत्तपोजपध्यानैर्दृश्यमित्यज्ञकल्पना ॥ ४१ ॥ आलीन वल्लरीरूपंयथापद्माक्षकोटरे ॥ आस्तेकमलिनीबीजंतथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥ ४२ ॥ यथारसःपदार्थेषुय थातैलंतिलादिषु ॥ कुसुमेषुयथामोदस्तथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥ ४३ ॥ यत्रतत्रस्थितस्यापिकर्पूरादेः सुगं धिता ॥ यथोदेतितथादृश्यंचिद्धातोरुदरेजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये यदि यह दृश्य सत्यहै तो वह कदाचित्भी शान्त नहींहोसकता, क्योंकि तप, जप और ध्यान आदिसे दृश्यकी शान्ति होतीहै यह अज्ञानियोंकी कल्पनाहै ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार कमलके बीजमें भावी कमलिनी और लताका रूपहै इसीप्रकार अविद्यासहित द्रष्टामें दृश्यबुद्धिहै ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार पदार्थोंमें रस, तिलादिमें तैल, और पुष्पोंमें गन्धहै, उसीप्रकार द्रष्टामें दृश्यहै ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार कर्पूरआदि कहींभी हों परन्तु उनमें सुगन्ध रहताहै ऐसेही चिदात्मा चाहै जिस दशामें हो परन्तु उसके उदरमें जगत् रहताहै ॥ ४४ ॥

यथाचात्रतवस्वप्नः संकल्पश्चित्तराज्यधीः ॥ स्वानुभूत्यैवदृष्टांतस्तथात्रद्यस्तिदृश्यभूः ॥ ४५ ॥ त स्माच्चित्तविकल्पस्थपिशाचोबालकंयथा ॥ विनिहंत्येवमप्येतंद्रष्टारंदृश्यरूपिका ॥ ४६ ॥ यथांकुरोंत र्बीजस्यसंस्थितोदेशकालतः ॥करोतिभासुरंदेहंतनोत्येवंहिदृश्यधीः॥ ४७ ॥ द्रव्यस्यत्वद्यथेवचमत्कृतिर्य थासदोदितास्त्यस्तमितोज्झितोदरे ॥ द्रव्यस्यचिन्मात्रशरीरिणस्तथास्वभावभूतास्त्युदरेजगत्स्थितिः ४८

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणेवाल्मीकिये देवदूतोक्तेमोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे तुमारे मनके अन्तमेंही राज्यकी बुद्धि संकल्प और स्वप्न अपने अनुभवसेही देखेगयेहैं उसीप्रकार दृश्य जगत् है ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार पिशाच बालकको मारलेताहै इसीप्रकार चित्तविकल्पकी ये दृश्यरूप पिशाचिका द्रष्टा जो पुरुषहै उसको नष्टकरदेतीहैं ॥ ४६ ॥ जैसे बीजके भीतर स्थित अंकुर देशकाल पाके प्रकाशमान अपना

शरीर प्रकट करताहै वैसेही संस्काररूपसे द्रष्टामें स्थित दृश्य समय और काल पाके अपने स्वरूपका विस्तार करताहै ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार विचित्रतासे अप्रतर्क्यकार्य्यकी शक्तिरूप चमत्कृति बीज आदि द्रव्यके भीतर रहती है इसीप्रकार सच्चिदानन्द विग्रह आत्मशरीरके भीतर चिद् अचित् मिलित अतीत और अनागत जगत्सत्ता निवास करती है॥४८॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतुवर्णनं नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अज्ञानी भौतिकदेहात्माही मृत्युका भक्ष्यहै तत्त्ववित् नहीं आकाशज (आकाशसे उत्पन्न) के समान वह चिन्मात्र आत्मा है इस विषयका बर्णन इस द्वितीय सर्गमें कियाजाताहै.

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इदमाकाशजाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ उत्पत्त्याख्यंप्रकरणंयेनराघवबुध्यते ॥ १ ॥ अस्तिह्याकाशजोनामद्विजःपरमधार्मिकः ॥ ध्यानैकनिष्ठःसततंप्रजानांचहितेरतः ॥ २ ॥ सचिरंजीवतियदातदामृत्युरचिंतयत् ॥ सर्वाण्येवक्रमेणाहंभूतान्यद्मिकिलाक्षयः ॥ ३ ॥ एनमाकाशजंविप्रंनकस्माद्भक्षयाम्यहम् ॥ अत्रमेकुंठिताशक्तिः खड्गधाराइवोपले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामजी ! कर्णोंका भूषण इस आकाशजके आख्यानको आप सुनिये जिसके सुननेसे उत्पत्तिप्रकरणका बोध होताहै ॥ १ ॥ आकाशज नामवाला परम धार्मिक ध्यान (आत्मा) में तत्पर सब प्रजाओंके हितमें निरत (हिरण्यगर्भ) है ॥ २ ॥ उनके बहुत अधिक कालतक जीनेपर मृत्युने विचारा कि, मैं अक्षयरूप सब जीवोंको भक्षण करताहुं ॥ ३ ॥ इस आकाशज ब्राह्मणको क्यों नहीं भक्षण करता ? इसके विषयमें मेरी शक्ति ऐसी कुण्ठित हुई है जैसे पाषाणके ऊंपर तलवारकी धारा ॥ ४ ॥

इतिसंचिंत्यतंहंतुमगच्छत्तत्पुरंतदा ॥ त्यजंत्युद्यमसुद्युक्तानस्वकर्माणिकेचन ॥ ५ ॥ ततस्तत्सदनंयावन्मृत्युःप्रविशतिस्वयम् ॥ तावदेनंदहत्यग्निःकल्पांतज्वलनोपमः ॥ ६ ॥ अग्निज्वालामहामालांविदार्यांतर्गतोह्यसौ ॥ द्विजंदृष्ट्वासमादातुंहस्तैर्नैच्छत्प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ नचाशकत्पुरोदृष्टमपिहस्तशतैर्द्विजम् ॥ बलवानप्यवष्टब्धुंसंकल्पपुरुषंयथा ॥ ८ ॥ अथागत्ययमंमृत्युरपृच्छत्संशयच्छिदम् ॥ किमित्यहंनशक्नोमिभोक्तुमाकाशजंविभो ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसा विचार करके उसको मारनेकेलिये मेरुके मध्यमें प्रसिद्ध सत्यलोक नामवाले उनके नगरमें मृत्यु गया जिस नगरमें उद्यममें समर्थ कोईभी अपने कर्मोंका नहींत्यागता ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर मृत्यु जब उनके स्थानमें प्रवेश करने लगा उतनेहीमें कल्पांतके अग्निके समान अग्नि (समाधिके भंगके निरोधके लिये ऊंची भीतिके समान ब्रह्माजीसे संकल्पित अग्नि) इस मृत्युको जलानेलगा ॥ ६ ॥ अग्निज्वालाकी बडी भारी मालाको बिदीर्ण करके अग्नि स्थानके भीतर गया और ब्राह्मणको देखकरके प्रयत्नसे हांथसे पकडनाचाहा ॥ ७ ॥ उस ब्राह्मणके सम्मुख अग्नि न देखसका बलवान् होनेपरभी सैंकडों हाथोंसे संकल्पके पुरुषके समान उसको स्पर्श करनेको समर्थ नहुआ ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर संशयके छेदन करनेवाले जो यमहैं उनके निकट मृत्युने आके पूछा कि इस आकाशज ब्राह्मणको मैं क्योंनहीं भक्षण करसकता ॥ ९ ॥

यमउवाच ॥ ॥ मृत्योनकिंचिच्छक्तस्त्वमेकोमारयितुंबलात् ॥ मारणीयस्यकर्माणितत्कर्तृणीतिनेतरत्॥१०॥ तस्मादेतस्यविप्रस्यमारणीयस्ययत्नतः ॥ कर्माण्यन्विष्यतेषांत्वंसाहाय्येनैनमत्स्यसि॥११॥ ततःसमृत्युर्बभ्रामतत्कर्मान्वेषणादृतः ॥ मंडलानिदिगंतांश्चसरांसिसरितोदिशः ॥ १२ ॥ वनजंगलजालानिशैलानब्धितटानिच ॥ द्वीपांतराण्यरण्यानिनगराणिपुराणिच ॥ १३ ॥ ग्रामाण्यखिलराष्ट्राणिदेशांतर्गहनानिच ॥ एवंभूमंडलंभ्रांत्वानकुतश्चित्सकानिचित् ॥ १४ ॥ तान्याकाशजकर्माणिलब्धवान्मृत्युरुद्यतः ॥ वंध्यापुत्रमिवप्राज्ञःसंकल्पाद्रिमिवापरः ॥ १५ ॥ समपृच्छदथागत्ययमंसर्वार्थकोविदम् ॥ परायणंहिप्रभवःसंदेहेष्वनुजीविनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यमजी बोले हे मृत्यो ! तुम अकेले सहायरहित किसीके मारनेमें समर्थ नहीं हो मारण करने योग्य जो प्राणी हैं उसके कर्म मारण करनेमें समर्थ हैं, इसके सिवाय और कुछभी तुमारी अशक्तिका कारण नहीं है ॥ १० ॥ इ-

---

१ आकाशज से यहांपर लिंगसमष्टिआत्मा हिरण्यगर्भका ग्रहणहै आकाशरूप ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे आकाशज नामहै.

सलिये मारण करने योग्य इस ब्राह्मणके कर्मोंको यत्नसे तुम खोजो उन कर्म्मोंकी सहायतासे तुम इसका भक्षण करसकोगे॥११॥ इसके अनन्तर मृत्युने, सब मण्डलों (जिलो) दिगन्तोंमें, तडागोंमे, नदियोंमें, दिशाओंमें, वनजंगलोंके, समूहोंमें, पर्वतोंपर, समुद्रके तटोंपर, दूसरे द्वीपोंमे, अरण्योंमें, नगरोंमें,पुरोंमें, ग्रामोंमें, सम्पूर्ण राज्योंमें, तथा भयंकर अन्य देशोंमें उस ब्राह्मणके कर्मोंको अन्वेषण (खोज) करनेमें आदरयुक्त होके भ्रमण (किसदेश वा कालमें कैसे कर्म किया इस बातका ध्यान)किया।इसप्रकार उद्योगमें तत्पर मृत्यु सम्पूर्ण भूमण्डलमें भ्रमण किया परन्तु बन्ध्याके पुत्रको वा संकल्पके पर्वतको संकल्पकरनेवालेसे अन्य जैसे नहीं पाता ऐसेही आकाशज ब्राह्मणके कर्मोंको कहींभी नहीं पाता ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण अर्थोंके जाननेवाले जो यम हैं उनसे मृत्युने आके पूंछा, क्योंकि सन्देह होनेपर भृत्योंके शरणस्वामी (मालिक) ही होतेहैं ॥ १६ ॥

मृत्युरुवाच ॥ ॥ आकाशजस्यकर्माणिक्वस्थितानिवदप्रभो ॥ धर्मराजोथसंचिंत्यसुचिरंप्रोक्तवानिदम् ॥ १७ ॥ आकाशजस्यकर्माणिमृत्योसंतिनकानिचित् ॥ एषआकाशजोविप्रोजातःखादेवकेवलात् ॥ १८ ॥ आकाशादेवयोजातः सव्योमैवामलंभवेत् ॥ सहकारीणिनोसंतिनकर्माण्यस्यकानिचित् ॥१९॥ संबंधः प्राक्तनेनास्यनमनागपिकर्मणा ॥ अस्तिवंध्यासुतस्येवतथाऽजाताकृतेरिव ॥२०॥

अर्थ—मृत्युजी बोले हे प्रभो ! आकाशज ब्राह्मणके कर्म कहां पर है सो बताइये इसके अनन्तर धर्मराज दीर्घकालतक विचार करके यह बात बोले ॥ १७ ॥ हे मृत्यो ! इस आकाशज ब्राह्मणके (प्रारब्धाधिकारी फलोंके आरंभसेही विनाश होनेसे संचित कर्म्मोंका ज्ञानसे बाध होनेसे और आगामी कर्मोंके बीजके अभावसेही अभावहोनेसे) कोईभी कर्म नहीं है यह आकाशज केवल आकाश (ब्रह्म) सेही उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ जो केवल आकाशसे उत्पन्न होताहै वह आकाशकेही समान निर्मल होताहै, इसलिये इस आकाशज ब्राह्मणके राग अभिमान आदि वा मृत्युके मारनेके सहायक इस जन्मके कोईभी कर्म नहीं है ॥ १९ ॥ अनुत्पन्न आकारवाले वन्ध्यापुत्रके समान इस आकाशज ब्राह्मणका पूर्वजन्मके कर्मोंके साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं है ॥ २० ॥

कारणानामभावेनतस्मादाकाशमेवसः ॥ नैतस्यपूर्वकर्मास्तिनभसीवमहाद्रुमः ॥ २१ ॥ नैतदस्यावशंचित्तमभावात्पूर्वकर्मणाम् ॥ अद्यतावदनेनाद्यंनकिंचित्कर्मसंचितम् ॥ २२ ॥ एवमाकाशकोशात्माविशदाकाशरूपिणी ॥ स्वकारणेस्थितोनित्यःकारणानिनकानिचित् ॥ २३ ॥ प्राक्तनानिनसंत्यस्यकर्माण्यद्यकरोतिनो ॥ किंचिदप्येवमेषोत्रविज्ञानाकाशमात्रकः ॥ २४ ॥

अर्थ—कारणोंके अभावसे यह आकाशरूपही है जैसे आकाशमें महावृक्ष नहीं है ऐसेही इसके पूर्वकर्म नहीं है ॥२१॥ पूर्वजन्मके कर्मोंके अभावसे इस आकाशज ब्राह्मणका चित्त वासनाके वशीभूत नहीं है और इस जन्ममें मृत्युके भक्षण योग्य कोईभी कर्म इन्होंने संचित नहीं किया ॥ २२ ॥ इसप्रकार आकाशरूप यह आकाशज महान् आकाशरूप अपने कारणमें नित्य (ब्रह्म) रूपसे स्थितहै इसके अन्यकारण कोईभी नहीं हैं ॥ २३ ॥ पूर्वजन्मके इनके कर्म है नहीं और इस जन्ममें कुछ कर्म करते नहीं, इसलिये विज्ञानमात्र आकाशरूपही हैं ॥ २४ ॥

प्राणस्पंदोस्ययत्कर्मलक्ष्यतेचास्मदादिभिः ॥ दृश्यतेऽस्माभिरेवंतन्नत्वस्यास्त्यत्रकर्मधीः ॥ २५ ॥ संस्थिताभावयंतीवचिद्रूपैवपरात्पदात् ॥ भिन्नमाकारमात्मीयंचित्स्तंभेशालभंजिका ॥ २६ ॥ तथैव परमार्थात्सखात्मभूतःस्थितोद्विजः ॥ यथाद्रवत्वंपयसिशून्यत्वंचयथांबरे ॥ २७ ॥ स्पंदत्वंचयथा वायोस्तथैषपरमेपदे ॥ कर्माण्यद्यतनान्यस्यसंचितानिनसंतिहि ॥ २८ ॥

अर्थ—यह प्राणोंकी गति और क्रियाशक्ति इनकी जो लक्षित होतीहै वह हम लोगोंको अविद्यासे देख पडती है इनको उन प्राण आदिके व्यापारमें सत्यता बुद्धि नहीं है ॥ २५ ॥ चित्‌रूपी स्तम्भ (खम्भे) में चित्‌रूपिणी प्रतिमा अपने रूपको चित् विलक्षण भावना करतीहुई स्थित है, अर्थात् इनका रूप भावनामात्र है वास्तविक नहीं है ॥ २६ ॥ परमपद आत्मरूपसे उत्पन्न आत्मरूप यह आकाशज ब्राह्मण ऐसे स्थितहै जैसे दुग्धमें द्रवत्व अथवा आकाशमें शून्यताहै ॥ २७ ॥ जैसे वायुमें स्पन्द है, वैसेही परमपदमें यह आकाशज है, इस जन्मके और संचितकर्म इनके कुछभी नहीं है ॥ २८ ॥

नपूर्वाण्येषतेनेहनसंसारवशंगतः ॥ सहकारिकारणानामभावेयःप्रजायते ॥ २९ ॥ नासौस्वकारणाद्भिन्नोभवतीत्यनुभूयते ॥ कारणानामभावेनतस्मादेषस्वयंभवः ॥ ३० ॥ कर्तानपूर्वनाप्यद्यकथमाक्रम्यतेवद ॥ यदैषकल्पनांबुद्धयामृतिनाम्नींकरिष्यति ॥ ३१ ॥ पृथ्व्यादिमानयमहमितियस्यचनिश्चयः ॥ सपार्थिवोभवत्याशुग्रहीतुंसचशक्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—और न इनके पूर्वजन्मकेही कर्म हैं, इससे ये संसारके बशमें नहीं हैं सहकारी कारणोंके अभावसे जो उत्पन्न होताहै, वह अपने कारणसे भिन्न नहीं है यह वार्ता अनुभूत है इसलिये कारणोंके अभावसे ये स्वयंभू हैं ॥ २९॥ ॥३०॥ जब इन स्वयम्भूने न पूर्वजन्ममें कर्म किया और न इस जन्ममें तब कहो भला मृत्यु इनके ऊपर कैसे आक्रमण करे? जो जीव यह निश्चय करताहै कि पृथिवी आदिका संघात जो देहहै वहीमैं हैं, वह मूढ पार्थिवही होजाताहै और उसके विषयमें जब ब्रह्माजी बुद्धिसे मृत्युकी कल्पना करतेहैं तभी तुम (मृत्यु) उसको ग्रहण करसकतेहो॥३१॥३२॥

पृथ्व्यादिकलनाभावादेषविप्रोनरूपवान् ॥ दृढरज्ज्वेवगगनंग्रहीतुंनैवयुज्यते ॥ ३३ ॥ मृत्युरुवाच ॥ भगवन्जायतेशून्यात्कथंनामवदेतिमे ॥ पृथ्व्यादयःकथंसंतिनसंतिवदवाकथम् ॥ ३४ ॥ यम उवाच ॥ नकदाचनजातोसौनचनास्तिकदाचन ॥ द्विजःकेवलविज्ञानभामात्रंतत्तथास्थितः ॥ ३५ ॥ महाप्रलयसंपत्तौनकिंचिदवशिष्यते ॥ ब्रह्मास्तेशांतमजरमनंतात्मैवकेवलम् ॥ ३६ ॥ शून्यंनित्योदितंसूक्ष्मंनिरुपाधिपरंस्थितम् ॥ तदातदनुयेनास्यनिकटेद्रिनिभंमहः ॥ ३७ ॥ संविन्मात्रस्वभावत्वाद्देहोहमितिचेतति ॥ काकतालीयवद्भ्रांतमाकारंतेनपश्यति ॥ ३८ ॥

अर्थ—पृथिवी आदिकी भावनाके अभावसे यह ब्राह्मण रूपवान् नहींहै इसलिये जैसे दृढ रज्जुसे आकाशका ग्रहण नहीं हो सकता ऐसेही इसकाभी ग्रहण नहीं होसकता ॥ ३३ ॥ मृत्यु बोले हे भगवन् निर्विकार शून्यसे विकाररूपकी उत्पत्ति कैसे, और अजन्माका जन्म भी कैसे ? और पृथिवी आदि कैसे हैं और नहींभीहै ? यह विषय आप कहिये ॥ ३४ ॥ यमजी बोले यह द्विज केवल ज्ञानमात्रसे जैसा है वैसाही स्थितहै क्योंकि यह कभी उत्पन्न नहीं हुआ और इसकी सत्ताका अभावभी कदाचित् नहींहै तात्पर्य यह कि आकाशशब्दसे परमात्माका ग्रहणहै पृथिवी आदिकी असत्ता शून्य अभिप्रायसे नहीं कही किन्तु कार्यकी सत्ता कारणकी सत्तासे पृथक् नहीं और इसी प्रकार अजका जन्मभी विवर्तवादके अभिप्रायसे कहागयाहै न कि परिणामवादके अभिप्रायसे ॥ ३५ ॥ महाप्रलयके समयमें शांत, अजर, अनन्तात्म, शून्य, नित्यउदित, सूक्ष्म और उपाधिरहित केवल परब्रह्महो रहजाताहै इसके अनन्तर सृष्टिके आरंभ कालमें वासना और अदृष्टसे संचित जीवकी अविद्याके कारणसे और इस आत्माका ज्ञानमात्र, स्वभाव होनेसे इसके सम्मुख विषयरूपसे पर्वतके समान अनिवार्य विराट्रूप अथवा चतुर्मुखदेह "अहम्" इस अभिलाषाके योग्य और स्थूलसे जो रूप किंचित् स्फुरित होताहै उस समय हमलोग उसी अविद्याके कारणसे अकस्मात् स्वप्नके समान भ्रांत मिथ्या भूत आकार इस ब्रह्मको देखतेहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

स एषब्राह्मणस्तस्मिन्सर्गादावंबरोदरे ॥ निर्विकल्पश्चिदाकाशरूपमास्थायसंस्थितः ॥ ३९ ॥ नास्य देहोनकर्माणिनकर्तृत्वंनवासना ॥ एषशुद्धचिदाकाशोविज्ञानघनआततः ॥ ४० ॥ प्राक्तनंवासनाजालं किंचिदस्यनविद्यते ॥ केवलंव्योमरूपस्यभारूपस्येवतेजसः ॥ ४१ ॥ वेदनामात्रसंशांतावीदृशोपिन-दृश्यते ॥ तस्माद्यथाचिदाकाशस्तथातत्प्रतिपत्तयः ॥ ४२ ॥

अर्थ—उसी चतुर्मुख आकारसे सृष्टिकी आदिमें यह ब्राह्मण आकाशके उदरमें निर्विकल्प चिदाकाशरूपसे स्थितहै अर्थात् अन्यकी दृष्टिसे अध्यस्त देह आदिसे इनके निर्विकल्पता आदि व्यवहारकी क्षति नहीं है ॥ ३९ ॥ इनके शरीर, कर्म, कर्तृत्व और वासना ये कोईभी नहीं हैं, इसलिये ये शुद्ध चिदाकाश विज्ञानघन सर्वव्यापक हैं ॥४०॥ केवल आकाश, भाव और तेजरूप यह ब्रह्महै, इसका पूर्वजन्मका वासनाजाल कुछभी नहीं है ॥ ४१ ॥ बाह्यमुख चित्तकी प्रवृत्तिके शान्त होनेपर ऐसा प्रातिभासिक रूपभी यह नहीं देखपडता, इसलिये जैसा चिदाकाश है वैसाही अधिष्ठानतत्त्वके परिचयसे विषयका बाध होनेसे चित्प्रवृत्तियांभी चिदाकाशरूपसे रहती है ॥ ४२ ॥

कुतःकिलात्रपृथ्व्यादेःकीदृशःसंभवःकथम् ॥ एतदाक्रमणेमृत्योतस्मान्मायत्नवान्भव ॥ ४३ ॥ ग्रहीतुंयुज्यतेव्योमनकदाचनकेनचित् ॥ श्रुत्वैतद्विस्मितोमृत्युर्जगामनिजमंदिरम् ॥४४॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मैषकथितोदेवस्त्वयामेप्रपितामहः ॥ स्वयंभूरजएकात्माविज्ञानात्मेतिमेमतिः ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्मयारामब्रह्मैषकथितस्तव ॥ विवादमकरोन्मृत्युर्यमेनैतत्कृतेपुरा ॥ ४६ ॥

अर्थ—जहांपर चित्की प्रवृत्तियोंकाभी संभव नहीं हैं वहांपर पृथिवी आदिका संभव कैसा और किसप्रकार होसकताहै ? इसलिये हे मृत्यो ! तुम इस (आकाशज ब्राह्मण) के ऊपर आक्रमण करनेमें परिश्रम न करो ॥ ४३ ॥ क्योंकि आकाशको ग्रहण करनेको कभी कोई समर्थ नहीं होता, इस बातको सुनके आश्चर्यमे युक्त मृत्यु अपने स्था-

नको गया ॥ ४४ ॥ श्रीरामजी बोले आकाशज इस नामान्तरसे प्रपितामह स्वयंभु अज, एकात्मा और जीव समष्टिरूप इत्यादि नामवाले ब्रह्महीको आपने प्रतिपादन किया तथा जगत् मिथ्यात्वभी इस आकाशजके आख्यानसे आपने सिद्ध किया यह वार्ता इस आख्यानसे मेरी बुद्धिमें आतीहै ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामजी! मैनें इसप्रकार ब्रह्महीं आपसे कहा प्रथम सत्ययुगमें मृत्युनें यमसे यह संवाद कियाथा ॥ ४६ ॥

मन्वंतरेसर्वभक्षोयदामृत्युर्हरन्प्रजाः ॥ बलमेत्यब्जजाक्रांतावारंभमकरोत्स्वयम् ॥ ४७ ॥ तदेवधर्मराजेनयमेनाश्वनुशासितः ॥ यदेवक्रियतेनित्यंरतिस्तत्रैवजायते ॥ ४८ ॥ ब्रह्माकिलपराकाशवपुराक्रम्यतेकथं ॥ मनोमात्रंचसंकल्पःपृथ्व्यादिरहिताकृतिः ॥ ४९ ॥ यश्चिव्द्योमचमत्कारःकिलाकारानुभूर्तिमान् ॥ सच्चिव्द्योमैवनोतस्यकारणत्वंनकार्यता ॥ ५० ॥

अर्थ—मन्वन्तरके सन्धिकालमें सर्वभक्षी मृत्यु जब सब प्रजाओंका प्राण हरण कररहाथा, उससमय आकाशजके ऊपर आक्रमण करनेका स्वयं (कर्मादिकी सहायता विना) आरंभ किया ॥ ४७ ॥ जिस २ समय मृत्युने आकाशज ब्राह्मण (ब्रह्मा) के ऊपर आक्रमण किया, उस २ समय धर्मराज यमनें उसको शीघ्र शिक्षा (तुमारा पराक्रम इनके ऊपर नहीं चलसकता इस बातकी शिक्षा) दिया, और प्रत्येक सृष्टिमें मृत्यु इस कार्यको इसलिये करताहै कि जो कार्य्य जो नित्य किया करता है उसको उस कार्य्य करनेका व्यसन होजाता है ॥ ४८ ॥ पर आकाशरूप शरीरवाले ब्रह्माके ऊपर भला मृत्यु कैसे आक्रमण करसकताहै ? क्योंकि पृथिवी आदिकी आकृतिसे रहित मनके संकल्पमात्रसे इसका शरीरहै ॥ ४९ ॥ जो चिदाकाशका चमत्कार है और आकारका केवल अनुभवमात्रहै, वह तो सच्चित् आकाशमात्रहै वह कार्य्य कारण दोनोंसे रहितहै ॥ ५० ॥

आकाशस्फुरदाकारःसंकल्पपुरुषोयथा ॥ पृथ्व्यादिरहितोभातिस्वयंभूर्भासतेतथा ॥ ५१ ॥ निर्मलेव्योम्निमुक्तालीसंकल्पस्वप्नयोःपुरम् ॥ अपृथ्व्यादियथाभातिस्वयंभूर्भासतेतथा ॥ ५२ ॥ नदृश्यमस्तिनद्रष्टापरमात्मनिकेवले ॥ स्वयंचितातथाप्येषस्वयंभूरितिभासते ॥ ५३ ॥ संकल्पमात्रमेवैतन्मनोब्रह्मेतिकथ्यते ॥ संकल्पाकाशपुरुषोनास्यपृथ्व्यादिविद्यते ॥ ५४ ॥

अर्थ—आकाशमें जैसे संकल्पका पुरुष स्फुरितआकारवाला, अथवा नीचे मुखवाला इन्द्रनीलमणिके समान महाकटाह (कडाहा) के आकारवाला, पृथिवी आदिसे रहितभी आकाश भान होताहै वैसाही पृथिवी आदिसे रहित ब्रह्माका शरीरभी भासताहै ॥ ५१ ॥ संकल्प तथा स्वप्नमें निर्मल आकाशमें पृथिवी आदिके न रहनेपर मोतियोंकी पंक्ति जैसे भासती है, ऐसेही स्वयंभू भासते हैं ॥ ५२ ॥ केवल परमात्मामें न दृश्यहै न द्रष्टाहै, स्वयं चिन्मात्र होनेपरभी यह परमात्मा स्वयं ऐसा भासताहै ॥५३॥ ब्रह्मका संकल्पमात्र, और मनरूपही, ब्रह्मा कहाताहै, संकल्पसे आकाशमें जैसा पुरुष भासताहै वैसाही ब्रह्माहै, न कि पृथिवी आदिसे बने हैं ॥ ५४ ॥

यथाचित्रकृदंतःस्थानिर्देहाभातिपुत्रिका ॥ तैथवभासतेब्रह्माचिदाकाशाच्छरंजनम् ॥ ५५ ॥ चिव्द्योमकेवलमनंतमनादिमध्यंब्रह्मेतिभातिनिजचित्तवशात्स्वयंभूः ॥ आकारवानिवपुमानिववस्तुतस्तुवंध्यातनूजइवतस्यतुनास्तिदेहः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ-जैसे चित्रकारके अन्तःकरणमें देहरहित प्रतिमा संकलपसे भासती है वैसेही चिदाकाशका स्वच्छप्रतिबिम्बग्राहक मनही ब्रह्माके शरीराकारसे भासताहै ॥ ५५ ॥ आदि अन्त मध्यरहित चिदाकाशही अपने मनके संकल्पके वशसे आकारवानके सदृश ब्रह्मा स्वयंभू पुमान् इत्यादि नामसे भान होताहै, यथार्थ में वन्ध्यापुत्रके समान ब्रह्माके देह नहीं है ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे आद्यसृष्टिकर्तृवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

परमात्माका मनोमात्रही ब्रह्माहैं, और उसका संकल्पमय यह जगत्है, इसलिये यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मनोराज्यके सदृश असत्है इस विषयका वर्णन इस तृतीयसर्गमें कियाजाताहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ एवमेवमनःशुद्धंपृथ्व्यादिरहितंत्वया ॥ मनोब्रह्मेतिकथितंसत्यंपृथ्व्यादिवर्जितम्॥१॥ तदत्रप्राक्तनीब्रह्मन्स्मृतिःकस्मान्नकारणम् ॥ यथाममतवान्यस्यभूतानांचेतिमेवद ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पूर्वदेहोस्तियस्याद्यपूर्वकर्मसमन्वितः ॥ तस्यस्मृतिःसंभवतिकारणंसंसृतिस्थितेः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणःप्राक्तनंकर्मयदाकिंचिन्नविद्यते ॥ प्राक्तनीसंस्मृतिस्तस्यतदोदेतिकुतःकथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–पृथिवीआदि रहित शुद्धरूप ब्रह्मका मनही ब्रह्माहै यह वार्ता ऐसीही प्रसिद्धहै, और यदि पृथिवी आदिसे वर्जित सत्य मनही ब्रह्माहै यह आपने कहा, तो हे ब्रह्मन् ! मनवासना जालरूप होनेसे, जैसे मेरी आपकी तथा और प्राणियोंकी पूर्वजन्मकी स्मृति इस जन्मका कारणहै, ऐसेही ब्रह्माके इस शरीरमें पूर्वजन्मके शरीर त्यागकालकी स्मृति क्यों कारण नहीं ? यह वार्ता आप कृपाकरके कहिये ॥१॥२॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–पूर्वजन्मके कर्मोंसे संयुक्त पूर्वजन्मका शरीर (लिंग शरीर) जिसका इसजन्ममें है, उसीको संसारमें स्थितिकेलिये पूर्वजन्मकी स्मृति कारणहै ॥३॥ तत्वदृष्टिसे जब ब्रह्मका पूर्वजन्मका कर्म कुछ नहीं है सो उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति कैसे उदय होसकती है?॥४॥

तस्मादकारणंभातिवास्वचित्तैककारणम् ॥ स्वकारणादनन्यात्मास्वयंभूःस्वयमात्मवान् ॥ ५ ॥ आतिवाहिकएवासौदेहोस्त्यस्यस्वयंभुवः ॥ नत्वाधिभौतिकोरामदेहोऽजस्योपपद्यते ॥६॥ श्रीरामउवाच॥ आतिवाहिकएकोस्तिदेहोन्यस्त्वाधिभौतिकः ॥ सर्वासांभूतजातीनांब्रह्मणोस्त्येकएवकिम् ॥७॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ सर्वेषामेवदेहौद्वौभूतानांकारणात्मनाम् ॥ अजस्यकारणाभावादेकएवातिवाहिकः ॥८॥

अर्थ—इसलिये कारणरहित, अथवा केवल अपना (देहद्रष्टाका) चित्तवान् कारण ब्रह्माका शरीर भान होताहै, अतएव स्वयंभु अपने कारणसे अभिन्न आत्मावालेहैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ? स्वयंभु वा ब्रह्माका यह आतिवाहिक अर्थात् अर्चिर्धूमादि मार्गसे लोकान्तरमें प्राप्त करनेमें समर्थ हमलोगोंके लिंगशरीरके समान शरीरहै, आधिभौतिक (स्थूलभूतोंसे उत्पन्न) ब्रह्माका शरीर युक्त नहीं होसकता ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले, हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण प्राणीमात्रका एक आतिवाहिक (लिंग वा सूक्ष्म) शरीरहै, दूसरा आधिभौतिक (स्थूल) शरीरहै वा एक ब्रह्माहीकाहै?॥७॥ श्रीवसिष्ठ बोले, पंचीकृतभूत कारणसे उत्पन्न सम्पूर्ण प्राणियोंके आतिवाहिक तथा आधिभौतिक (सूक्ष्म तथा स्थूल) दोनों शरीरहैं, परन्तु ब्रह्माका कारण न होनेसे केवल एक आतिवाहिक (सूक्ष्म) ही शरीरहै ॥ ८ ॥

सर्वासांभूतजातीनामेकोजःकारणंपरम् ॥ अजस्यकारणंनास्तितेनासावेकदेहवान् ॥ ९ ॥ नास्त्येवभौतिकोदेहःप्रथमस्यप्रजापतेः ॥ आकाशात्माचभात्येषआतिवाहिकदेहवान् ॥ १० ॥ चित्तमात्रशरीरोसौनपृथ्व्यादिक्रमात्मकः ॥ आद्यःप्रजापतिर्व्योमवपुःप्रतनुतेप्रजाः ॥ ११ ॥ ताश्चचिव्द्योमरूपिण्योविनान्यैःकारणांतरैः ॥ यद्यतस्तत्तदेवेतिसर्वैरेवानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण जातिके प्राणियोंका परम कारण केवल एक अज (ब्रह्मा) ही है और अजका कारण कोईभी नहीं इसलिये इनके केवल एक (सूक्ष्म) शरीरहै ॥ ९ ॥ सबसे प्रथम प्रजापतिका भौतिक देह नहीं है केवल चिदाकाशरूप एक अतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरवाला यह ब्रह्मा प्रकाश कर रहाहै ॥ १० ॥ इनकी शरीरकी रचना केवल चित्त मात्रसे है न कि पृथिवी आदिसे सबसे आदिभूत आकाश शरीरवाले प्रजापति ब्रह्मा प्रजाका विस्तार करतेहै ॥ ११ ॥ वे सम्पूर्ण प्रजा ब्रह्माके संकल्पके अतिरिक्त कोई कारणांतर न होनेसे केवल चिदाकाशरूपही है क्योंकि जो जिस उपादान कारणसे उत्पन्न होता (जैसे सुवर्ण कटक कुण्डलादि) है वह उसका रूपही है इस विषयका अनुभव सबको है इस सम्पूर्ण ब्रह्मांडमात्रकी ब्रह्मरूपता सिद्ध हुई ॥ १२ ॥

निर्वाणमात्रंपुरुषःपरोबोधःसएवच ॥ चित्तमात्रंतदेवास्ते नायाति वसुधादिताम् ॥ १३ ॥ सर्वेषांभूतजातानांसंसारव्यवहारिणाम् ॥ प्रथमोसौप्रतिस्पंदश्चित्तदेहःस्वतोदयः ॥ १४ ॥ अस्मात्पूर्वात्प्रतिस्पंदादनन्यैतत्स्वरूपिणी ॥ इयंप्रविसृतासृष्टिःस्पंदसृष्टिरिवानिलात् ॥ १५ ॥ प्रतिभानाकृतेरस्मात्प्रतिभामात्ररूपधृक् ॥ विभात्येवमयंसर्गःसत्यानुभववास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्तमात्र उपाधिसे उत्पन्न, चित्तकी भ्रान्तिसे चित्तमात्र होनेपरभी यथार्थमें पुरुष, निर्वाणमात्र, केवल चिदाकाशरूप परम बोधस्वरूपही है, वह पृथिवी आदिके स्वरूपको कदापि नहीं प्राप्त होसकता ॥ १३ ॥ संसारमें

व्यवहार करनेवाले सब प्राणीमात्रका यह चित्तमात्र देहवाला, अहंभावका उदय प्रथम प्रतिस्पन्दहै ॥ १४ ॥ इस प्रथम प्रतिस्पन्द (उत्पत्ति वा गति) से उत्पन्न विस्तृत यह सृष्टि इस अपने उपादान कारणसे ऐसे अभिन्नरूपहै जैसे वायुके प्रतिस्पन्दसे उत्पन्न दूसरे वायुकी सृष्टि ॥ १५ ॥ इसप्रातिभासिक आकारवाले ब्रह्मासे उत्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् प्राति· भासिकरूप धारीही है, यथार्थमें सत्य बोधस्वरूपही है ॥ १६ ॥

दृष्टांतोत्रभवत्स्वप्नस्वप्नस्त्रीसुरतंयथा ॥ असदप्यर्थसंपत्यासत्यानुभवभासुरम् ॥१७॥ अपृथ्व्यादिमयोभातिव्योमाकृतिरदेहकः ॥ सदेहइवभूतेशःस्वात्मभूःपुरुषाकृतिः ॥ १८ ॥ संवित्संकल्परूपत्वान्नोदेतिसमुदेतिच ॥ स्वायत्तत्वात्स्वभावस्यनोदेतिनचशाम्यति ॥ १९ ॥ ब्रह्मासंकल्पपुरुषःपृथ्व्यादिरहिताकृतिः ॥ केवलंचित्तमात्रात्माकारणंत्रिजगत्स्थितेः ॥ २० ॥

अर्थ—इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे एकस्वप्नमें दुसरा स्वप्न उसमें स्त्रीका सुरत, उसमें स्थूलपदार्थकी सम्पत्ति न होनेसेभी व्यावहारिक प्रयोजन सिद्धिसे प्रकाशमान होताहै ऐसाही यह संसारहै ॥ १७ ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथिवी आदिसे शून्य, आकाशमात्र शरीरवाले देहरहितभी सबप्राणियोंकेस्वामी स्वात्मभूब्रह्मा देहसहित पुरुषके आकारके समान भासमान होरहेहै ॥१८॥ केवल ज्ञान और संकल्पमात्र होनेसे परमार्थदृष्टिसे इनका शरीर नहीं उदय होता और भ्रान्तिसे उदय होताहै जगत्की सत्ताके समान अविद्याके अधीन न होनेसे और अपने चित्मात्र स्वभावसे स्थित होनेसे न तो यह उदय होताहै और न शान्त होताहै ॥ १९ ॥ ब्रह्मा पृथिवी आदिके आकारसे रहित संकल्पके पुरुष केवल चित्तमात्र स्वरूपवाले तीनोंलोककी स्थितिके कारणहैं ॥ २० ॥

संकल्पएषकचतियथानामस्वयंभुवः ॥ व्योमात्मैषतथाभातिभवत्संकल्पशैलवत् ॥ २१ ॥ आतिवाहिकमेवांतर्विस्मृत्यादृढरूपया ॥ आधिभौतिकबोधेनमुधाभातिपिशाचवत् ॥ २२ ॥ इदंप्रथमतोयोगसंप्रबुद्धंमहाचितेः ॥ नोदेतिशुद्धसंवित्त्वादातिवाहिकविस्मृतिः ॥ २३ ॥ आधिभौतिकजातेन नास्योदेतिपिशाचिका ॥ असत्यामृगतृष्णेवमिथ्याजाड्यभ्रमप्रदा ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे प्राणियोंके कर्मोंके अनुरोधसे जिस २ प्रकारसे ब्रह्माका संकल्प विकसित होताहै वैसाही आकाशात्मा यह संसार आपके संकल्पके पर्वतके समान भासमान होताहै ॥ २१ ॥ स्वरूप तथा आतिवाहिक दृढरूप विस्मृतिसे, और आधिभौतिकके बोधसे मिथ्यापिशाचके तुल्य सबका स्थूलशरीर भान होरहाहै ॥ २२ ॥ और यह ब्रह्माका शरीर, महाचिति अर्थात् माया शबलित ब्रह्मकी प्रथमता अर्थात् संपूर्ण स्थूल प्रपंचकी अपेक्षासे कारणीभूत सूक्ष्मरूपताहै उस प्रथमरूपतामें सत्यसंकल्पसे वह अज्ञानके आच्छादनसे रहित वैसाही प्रत्यक्ष सम्पूर्ण बुद्धरूपहै क्योंकि शुद्धसंवित्होनेके कारण उसमें आतिवाहिककी विस्मृति नहीं उदय होती ॥ २३ ॥ आधिभौतिकके समूहसे असत्य मृगतृष्णाके समान मिथ्या जडता और भ्रम देनेवाली पिशाचिका इस ब्रह्माको नहीं उदय होती ॥ २४ ॥

मनोमात्रंयदाब्रह्मानपृथ्व्यादिमयात्मकः ॥ मनोमात्रमतोविश्वंयद्यज्जातंतदेवहि ॥२५॥ अजस्यसहकारीणिकारणानिनसंतियत् ॥ तजस्यापिनसंत्येवतानितस्मात्तुकानिचित् ॥ २६ ॥ कारणात्कार्यवैचित्र्यंतेननात्रास्तिकिंचन ॥ यादृशंकारणंशुद्धंकार्यंतादृगितिस्थितम् ॥ २७ ॥ कार्यकारणताह्यत्रनकिंचिदुपपद्यते ॥ यादृगेवपरंब्रह्मतादृगेवजगत्त्रयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—परमात्माका मनोमात्रही ब्रह्माहै पृथिवी आदिमयनहीं इसलिये ब्रह्माका संकलपमात्र होनेसे यह सम्पूर्ण विश्व मनोमात्रहै क्योंकि जो जिस उपादान कारणसे उत्पन्न होताहै वह वही (उपादानरूपही) है ॥२५॥ अज (ब्रह्मा) के कोई सहकारी कारण नहीं है इस कारणसे ब्रह्मासे उत्पन्न जगत्केभी कोई सहकारी कारण नहीं है इससे जगत् मनोमात्र मन ब्रह्मामात्र और ब्रह्मा अद्वैतब्रह्ममात्र है यह सिद्धहुआ ॥ २६ ॥ इस हेतुसे कारणसे कार्यकी विचित्रता यहांपर कुछभी नहीं है जैसा शुद्ध (ब्रह्मरूप) कारणहै वैसाही कार्य (ब्रह्मरूप जगत्) भी है यह सिद्धांतहै ॥ २७ ॥ यहांपर कार्यकारणता किंचित्भी उपपन्न (युक्त) नहीं होसकती जैसा शुद्धब्रह्महै वैसाही तीनों जगत्है ॥ २८ ॥

मनस्तामिवयातेनब्रह्मणातन्यतेजगत् ॥ अनन्यदात्मनःशुद्धाद्द्रवत्वमिववारिणः ॥ २९ ॥ मनसातन्यतेसर्वमसदेवेदमाततम् ॥ यथासंकल्पनगरंयथागंधर्वपत्तनम् ॥ ३० ॥ आधिभौतिकतानास्तिरज्ज्वामिवभुजंगता ॥ ब्रह्मादयःप्रबुद्धास्तुकथंतिष्ठंतितद्व्रते ॥ ३१ ॥ आतिवाहिकएवास्तिनप्रबुद्धमतेःकिल ॥ आधिभौतिकदेहस्यवाचोवात्रकुतःकथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्मके मनरूपमें प्राप्त ब्रह्मा जगत्का विस्तार करताहै इस हेतुसे जगत् ब्रह्मसे ऐसे अभिन्नरूपहै जैसे जलसे द्रवा ॥ २९ ॥ मनसे इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार होताहै इसलिये यह संकलपनगर वा गन्धर्व-

नगरके समान मिथ्याभूतही है ॥ ३०॥ जैसे रज्जुमें सर्प नहींहै ऐसेही तत्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें देह आदिमें आधिभौतिकता नहींहै और अधिष्ठान सत्ताके अतिरिक्त प्रबुद्ध ब्रह्मादिक भला उसमें कैसे रहसकतेहैं? ॥ ३१ ॥ ज्ञानीकी दृष्टिमें ब्रह्मके अतिरिक्त आतिबाहिक (सूक्ष्म) शरीरभी नहीं तो यहांपर आधिभौतिक शरीर होनेकी भला कौन कथाहै॥३२॥

मनोनाम्नोमनुष्यस्यविरिंच्याकारधारिणः ॥ मनोराज्यंजगदितिसत्यरूपमिवस्थितम् ॥ ३३ ॥ मनएवविरिंचित्वंतद्धिसंकल्पनात्मकम् ॥ स्ववपुःस्फारतांनीत्वामनसेदंवितन्यते ॥ ३४ ॥ विरिंचोमनसोरूपंविरिंचस्यमनोवपुः ॥ पृथ्व्यादिविद्यतेनात्रतेनपृथ्व्यादिकल्पितम् ॥ ३५ ॥ पद्माक्षेपद्मिनीवांतर्मनोत्स्त्यस्तिदृश्यता ॥ मनोदृश्यदृशौभिन्नेनकदाचनकेनचित् ॥ ३६ ॥

अर्थ—-मनुष्यका मनही ब्रह्माका आकार धारणकिये है इसलिये सत्यरूपसे यह जगत् मनोराज्यहीहै यह यथार्थहै ॥३३ ॥ मनही विरंचिरूप सबका स्रष्टाहै और वहभी संकल्परूप अपने शरीरको विशाल बनाके इस जगत्का मनसे विस्तार करताहै ॥३४॥ विरिंचि मनका रूपहै और विरिंचिका शरीर मनहै इसलिये इस मनमें पृथिवी आदि नहीं है इसी हेतुसे पृथिवी आदि सब आत्मामें कल्पितहैं ॥ ३५ ॥ पद्माक्षके भीतर जैसे पद्मिनी रहती है ऐसेही मनके-भीतर दृश्यसमूहहै मन और दृश्यकी साक्षिरूपता इन दोनोंको कभी किसीने भिन्नरूपसे विवेचन नहीं किया ॥ ३६॥

यथात्वत्रतवस्वप्नःसंकल्पश्चित्तराज्यधीः ॥ स्वानुभूत्यैवदृष्टांतस्तस्माद्भूयस्तिदृश्यभूः ॥ ३७ ॥तस्माच्चित्तविकल्पस्थपिशाचोबालकंयथा ॥ विनिहंत्येवमेषांतर्द्रष्टारंदृश्यरूपिका ॥ ३८ ॥ यथांकुरोंतर्बीजस्यसंस्थितोदेशकालतः ॥ करोतिभासुरंदेहंतनोत्येवंहिदृश्यधीः ॥ ३९ ॥ सत्येनशाम्यतिकदाचन दृश्यदुःखंदृश्येत्वशाम्यतिनबोद्धरिकेवलत्वम् ॥ दृश्येत्वसंभवतिबोद्धरिबोद्धृभावःशाम्येत्स्थितोपिहितद्स्यविमोक्षमाहुः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसप्रकार तुह्मारा स्वप्न और संकल्प तथा चित्तही राज्याकार बुद्धि है यह अपना अनुभवही यहांपर दृष्टांत है इस हेतुसे मनमें ही दृश्यपदार्थकी भूमिहै ॥ ३७ ॥ इस हेतुसे जैसे चित्तके विकल्पमें स्थित पिशाच बालकको मारलेताहै ऐसेही द्रष्टाकि मनमें स्थित दृश्यरूपिणी पिशाचिका उसको मारती है ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार बीजके भीतर संस्थित अंकुर देश और कालपाके प्रकाशमान अपने शरीरका विस्तार करताहै इसप्रकार द्रष्टाके चित्तमें स्थित दृश्य बद्धि देशकाल पाके अपना स्वरूप प्रकट करतीहै ॥ ३९ ॥ यदि वह दृश्य सत्य होतो दृश्यकादुःख कदाचित्भी शांत नहीं होसकता और दृश्यके शांत न होनेसे बोद्धामें केवलीभाव नहीं होसकता और दृश्यके मिथ्या सिद्ध होनेपर इस रूपसे दृश्यके स्थित रहनेपरभी बोद्धामें बोद्धृभाव शांत होजाताहै यही इस जीवकी मोक्षदशा कहातीहै ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतु वर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रथम उपदेशको श्रवणकरके सभाका उत्थान (विसर्ज्जन) आदि रात्रिका आगमन तथा प्रातःकाल पुनः सभामें सबका आगमन और चित्रस्वभाव इन विषयोंका वर्णन इस ४ चतुर्थ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ कथयत्येवमुद्दामवचनेमुनिनायके ॥ श्रोतुमेकरसेजातेजनेमौनमुपस्थिते ॥ १॥ शांतेषुकिंकिणीजालरवेषुस्पंदनंविना ॥ पंजरांतरहारीतशुकेष्वप्यस्तकेलिषु ॥ २ ॥ सुविस्मृतविलासासुस्थितासुललनास्वपि ॥ चित्रभित्ताविवन्यस्तेसमस्तेराजसद्मनि ॥ ३ ॥ मुहूर्तशेषमभवद्दिवसंमधुरातपम् ॥ व्यवहाराररविकरैःसहतानवमाययुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोलेमुनियोंमें श्रेष्ठवसिष्ठजीके इसप्रकार अत्यन्त प्रभावशाली वचन कहनेपर और मौनधारणकरके सब मनुष्योंके सुननेकेलिये एकाग्र होनेपर ॥ १ ॥ किंकिणीके समूहके शब्दोंके शांत होनेपर उस समय सभामें किंचिन्मात्रभी किसीका संचालन नहीं था पिंजरेमें स्थित हारित (पक्षीविशेष) और शुक आदिने अप-

नी २ क्रीडायें बन्दकरदिया ॥ २ ॥ उत्तम ललनागणभी अपने उत्तम विलासोंको भूलगई और सम्पूर्ण राजगृहोंमें स्थितमनुष्य भीतिमें लिखित चित्रकेसमान होगये ॥ ३ ॥ उस समय थोडी२ उष्णतासहित दोघडी दिन शेष रहगया सम्पूर्ण संसारके व्यवहार सूर्य भगवान्‌की किरणोंके साथ न्यूनताको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥

ववुरुत्फुल्लकमलप्रकरामोदमांसलाः ॥ वायवोमधुरस्पंदाःश्रवणार्थमिवागताः ॥ ५ ॥ श्रुतंचिंतयितुंभानुरिवाह्नोरचनाभ्रमम् ॥ तत्याजैकांतमगमच्छून्यमस्तगिरेस्तटम् ॥ ६ ॥ उतस्थुर्मिहिकारंभसमतावनभूमिषु ॥ विज्ञानश्रवणादंतःशीतलाःशांतताइव ॥ ७ ॥ बभूवुरल्पसंचाराजनादशसुदिक्ष्वपि ॥ सावधानतयाश्रोतुमिवसंत्यक्तचेष्टिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समय विकसित कमलके सुगन्धसे पुष्ट मन्दगतिवाले वायु ऐसे वहनेलगे मानो उस कथाके श्रवणकरनेकेलिये आयेहैं ॥ ५ ॥ सूर्य मानो सुने हुये अर्थको चिन्तन करनेकेलिये दिनकी रचनारूप भ्रमको त्यागकर अस्ताचलके जनशून्यतटपर चलेगये ॥ ६ ॥ तुषारोंके आरंभसे वनभूमियोंमें समता ऐसे प्राप्त हुई जैसे विज्ञानके श्रवणसे अन्तःकरणमें शीतलतायुक्त शांतता प्राप्त होतीहै ॥ ७ ॥ दशोंदिशाओंमें प्राणियोंका संचार न्यून (कम) होगया मानों सभोंनें सावधानतासे वसिष्ठजीकी कथा सुननेके अर्थ अन्य व्यापारोंको त्यागदियाहै ॥ ८ ॥

छायादीर्घत्वमाजग्मुर्वासिष्ठंवचनक्रमम् ॥ इवश्रोतुमशेषाणांवस्तूनांदीर्घकंधराः ॥ ९ ॥ प्रतीहारःपुरःप्रह्वोभूत्वाहवसुधाधिपम् ॥ देवस्नानद्विजार्चासुकालोऽव्यतिगतोभृशम् ॥ १० ॥ ततोवसिष्ठोभगवान संहृत्यमधुरांगिरम् ॥ अद्यतावन्महाराजश्रुतमेतावदस्तुवः ॥ ११ ॥ प्रातरन्यद्वदिष्यामिइत्युक्त्वा मौनवानभूत् ॥ इत्याकर्ण्यैवमस्तूक्त्वाभूपतिर्भूतिवृद्धये ॥ १२ ॥ पुष्पपाद्यार्घसन्मानदक्षिणादानपूजया ॥ सदेवर्षिमुनीन्विप्रान्पूजयामाससादरम् ॥ १३ ॥ अथोत्तस्थौसभासर्वासराजमुनिमंडला ॥ मंडलाकीर्णरत्नौघपरिवेषावृताननाः ॥ १४ ॥ परस्परांगसंघट्टरणत्केयूरकंकणा ॥ हारभाराहतस्वर्णपट्टाभोरुस्तनांतरा ॥१५॥ शेखरोत्संगविश्रांतप्रबुद्धमधुपस्वनैः ॥ सघुंघुमशिरोभारावदद्भिरिवमूर्द्धजैः १६

अर्थ—सम्पूर्ण वस्तुओंकी छाया ऐसी दीर्घताको प्राप्तहुई जैसे वसिष्ठजीके वचन सुननेके सम्पूर्ण मनुष्योंके दीर्घ कन्धरा ॥ ९ ॥ प्रतीहार (ड्योढीदार राज्याके सन्मुख आके नम्रतापूर्वकबोला कि हे राजन् ! स्नान तथा देव· ब्राह्मणकी पूजाका समय अधिक व्यतीत होगया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर वासिष्ठभगवान्‌ने अपनी मधुर वाणीको उपसंहार (प्रकरण परलाके समाप्त) करके राजासे बोले कि आपलोगोंके सुननेकेलिये आज इतनाही बहुतहै ॥ ११ ॥ प्रातःकाल होनेपर अन्यविषय कहेंगे ऐसा कहके मौन होगये इसको श्रवण करके राजाने कहा कि हे भगवन् ऐसाही हो इसके अनन्तर राजा दशरथजीने अपनी विभूतिकी वृद्धिके लिये वसिष्ठजीके सहित देव ऋषि मुनि तथा अन्य ब्राह्मणोंकी, पुष्प, पाद्य, अर्घ्य, सन्मान, दक्षिणा, दान, तथा अन्य प्रतिष्ठाकी वस्तुओंसे आदर सहित पूजा की ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके अननन्तर राजाओंके दियेहुये रत्नोंकी निस्पृहमुनियोंकी मण्डली उपेक्षा करनेसे मण्डलाकार व्याप्त रत्नोंके समूहोंकी प्रभाके मण्डलसे आच्छादित मुख जिसमें राजा और मुनियोंके समूहसे शोभित सम्पूर्णसभा उठ खडीहुई ॥ १४ ॥ सभाके मनुष्योंके अंगोंका परस्पर संघट्टन होनेसे केयूर (बिजायठ) और कंकणके शब्द होनेलगे, तथा हारोंके भारसे खींचेहुये जो सुवर्णजटित वस्त्र उनकी कान्तिसे सभाके मनुष्योंके वक्षस्थल प्रकाशमय प्रतीत होनेलगे ॥ १५ ॥ शिरोंके विस्तृत अग्रभागमें सुगन्धिके कारण विश्राम करनेवाले जाग्रत भ्रमर सहित केशोंसे मानों सम्पूर्णसभा अव्यक्त मधुरध्वनि कररही है ॥ १६ ॥

कांचनाभरणोद्योतकनकीकृतदिङ्मुखाः ॥ बुद्धिस्थमुनिवागर्थसंशांतेन्द्रियवृत्तयः ॥ १७ ॥ जग्मुर्नभश्चराव्योमभूचराभूमिमंडलम् ॥ चक्रुर्दिनसमाचारंसर्वेतेस्वेषुसद्मसु ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नंतरेश्यामा यामिनिसमदृश्यत ॥ जनसंघाद्विनिर्मुक्तागृहेबालांगनायथा ॥ १९ ॥ देशांतरंभासयितुंययौदिवसनायकः ॥ सर्वत्रालोककर्तृत्वमेवसत्पुरुषव्रतम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णके आभूषणोंके प्रकाशसे मानों सम्पूर्ण दिशाओंको सुवर्णमय करदियाहै. वसिष्ठमुनिके बचनका अर्थ बुद्धिमें धारण करनेसे सबजनोंकी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शान्त होगईहैं ॥ १७ ॥ आकाश बिहारी देवगन्धर्वआदि आकाशमें गये और पृथिवीनिवासी पृथिवीमण्डलपर गये और वे सब अपने २ स्थानोंमें दिनकी कथाके समाचार आपसमें कहतेसुनतेरहे ॥ १८ ॥ इतनेहीमें कृष्णवर्ण रात्रि ऐसे आके दृष्टिगोचर हुई जैसे जनसमूहसे विनिर्मुक्त बालां-

गना (यौवनमध्यस्था) अपने पतिके गृहमें ॥ १९ ॥ दिनके नायक सूर्य दूसरे द्वीपमें प्रकाशकरनेको गये, क्योंकि सत्पुरुषोंका यही धर्महै कि सर्वत्र प्रकाश करना ॥ २० ॥

उदभूदभितःसंध्यातारानिकरधारिणी ॥ उत्फुल्लकिंशुकवनावसंतश्रीरिवोदिता ॥ २१ ॥ चूतनीपकदंबाग्रग्रामचैत्यगृहोदरे ॥ निलिल्यिरेखगाश्चित्तेवदातावृत्तयोयथा ॥ २२ ॥ भानोर्भासाभूषितैर्मेघलेशैःकिंचित्किंचित्कुंकुमच्छाययेव ॥ पाश्चात्योद्रिःपीतवासाःसमेघैस्ताराहारःश्रीयुतःखंसमेतः॥२३॥ पूजामादायसंध्यायांप्रगतायांयथागतम् ॥ अंधकाराःसमुत्तस्थुर्वेतालावपुषायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—किंशुकके बनोंको विकसित करतीहुई वसन्तकी शोभाके समान उदयको प्राप्त ताराओंके समूहको धारण करनेवाली सन्ध्या चारोंओरसे प्रगटहुई ॥ २१ ॥ आम्र, अशोक, कदम्ब और ग्रामके निकट महावृक्षोंमें तथा गृहके घोंसलोंमें पक्षीगण ऐसे लीनहुये जैसे निर्मलचित्तकी वृत्तियाँ निद्रावृत वा समाधिस्थचिन्तमें ॥ २२ ॥ किंचित् किंचित् कुंकुमकी छायाके सदृश चित्रवर्ण सूर्य्यकी प्रभासे शोभायमान अल्पमेघोंसे पीतवस्त्रवाला, आकाशमें प्रविष्ट, (अतिऊँचा) तारारूपी हारोंको धारण करनेवाला, अस्ताचल, लक्ष्मीयुक्त विष्णुकी शोभाको प्राप्तहुआ ॥ २३ ॥ पूजा ग्रहणकरनेके अनन्तर सन्ध्यारूपदेवीके बिदाहोनेके पश्चात् उसके गण वेताल जैसे शरीरसे प्रकट होते हैं ऐसेही अन्धकार प्रकटहुये ॥ २४ ॥

अवश्यायकणास्पंदीहेलाविधुतपल्लवः ॥ कोमलःकुमुदाशंसीववावाशीतलोनिलः ॥ २५ ॥ परमांध्यमुपाजग्मुर्दिशोऽविस्फुटतारकाः ॥ लंबदीर्घतमःकेश्योविधवाइवयोषितः ॥ २६ ॥ आययौभुवनंतेजःक्षीरपूरेणपूरयन् ॥ रसायनमयाकारःशशिक्षीरार्णवोनभः ॥ २७ ॥ जग्मुस्तिमिरसंघाताःपलाय्यक्वाप्यदृश्यताम् ॥ श्रुतज्ञानगिरश्चित्तान्महीपानामिवाज्ञताः ॥ २८ ॥

अर्थ—तुषारके कणोंको प्राप्तकरनेकी लीलासे पत्रोंको कंपानेवाला, कुमुदकी कलियोंको विकाशकरनेवाला, शीतल, मन्द, सुगन्ध त्रिविधवायु बहनेलगी ॥ २५ ॥ दीर्घअन्धकाररूपी लम्बेकेशोंको धारण करनेवाली, तुषाररूपी वस्त्रसे आच्छादित होनेके कारणसे स्पष्टतारा (पक्षमें कनीनिका) युक्त दिशाये परमअन्धताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे पतिके अस्त होनेसे विधवास्त्री ॥ २६ ॥ तेजरूपी दुग्धके प्रवाहसे भुवनको पूर्णकरताहुआ तथा अमृतमय आकारवाला, चन्द्रमायुक्त क्षीरसमुद्र आकाशको प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ ज्ञानकी वाणी श्रवण करनेसे जैसे राजाओंके चित्तसे अज्ञता भागगई, ऐसेही अन्धकारोंके समूह भागकर न मालूम कहां लुप्तहोगये ॥ २८ ॥

ऋषयोभूमिपालाश्चमुनयोब्राह्मणास्तथा ॥ चेतसीवविचित्रार्थाःस्वास्पदेषुविशश्रमुः ॥ २९ ॥ यमकायोपमाश्यामायर्यौतिमिरमांसला ॥ आययौमिहिकास्फारातत्रतेषांपुषःशनैः ॥ ३० ॥ अंतर्धानमुपाजग्मुस्तारानभसिभासुराः ॥ प्रभातपवनेनेवहृताःकुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ दृश्यतामाजगामार्कःप्रभोन्मीलितलोचनः ॥ विवेकवृत्तिर्महतांमनसीवनवोदिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऋषि, राजालोग, मुनि तथा ब्राह्मण, अपने २ आश्रमोंमें ऐसे विश्राम करनेलगे, जैसे वसिष्ठजीके उपदेश कियेहुये अर्थ मनुष्योंके चित्तोंमें ॥ २९ ॥ अन्धकारसे पुष्ट, यमके समान शरीर धारण करनेवाली रात्रि व्यतीत होगई, और तुषारको विदीर्ण करतेहुये धीरे २ प्रातःकाल प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ प्रकाशमान तारागण ऐसे अन्तर्धान (लोप) को प्राप्त हुये जैसे प्रातःकालके पवनसे हरण कीहुई पुष्पोंकी वृष्टि ॥ ३१ ॥ अपने प्रकाशसे प्राणियोंके नेत्र खोलनेवाले सूर्य्यनारायण दृश्यताको ऐसे प्राप्त हुये, जैसे महात्माओंके मनमें नूतन विवेककी वृत्ति ॥ ३२ ॥

भानोर्भासाभूषितैर्मेघलेशैःकिंचित्किंचित्कुंकुमच्छाययेव ॥ पूर्वक्ष्माभृत्पीतवासास्समेघैस्ताराहारःश्रीयुतःखंसमेतः ॥ ३३ ॥ सभांपुनरुपाजग्मुर्नभश्चरमहीचराः ॥ हस्तनेनक्रमेणैवकृतप्रातस्तनक्रमाः ॥ ३४ ॥ पूर्ववत्संनिवेशेनविवेशसकलासभा ॥ बभूवास्पंदिताकारावातमुक्तेवपद्मिनी ॥ ३५ ॥ अथप्रसंगमासाद्यरामोमधुरयागिरा ॥ उवाचमुनिशार्दूलंवसिष्ठंवदतांवरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कुछ २ कुंकुमकी छायाके सदृश जो सूर्य्यकी दीप्तिसे भूषित मेघोंसे पीतवस्तु धारण कियेहुये आकाशमें प्रविष्ट तारारूपी हारोंसे शोभित उदयाचल लक्ष्मीयुक्त विष्णुकी शोभाको प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ गतदिनके अनुसार प्रातःकालकी स्नान आदि क्रियाको करके आकाश और पृथिवीके निवासी जन पुनः सभामें आके सुशोभित हुये ॥ ३४ ॥ पूर्वदिनके अनुसार सम्पूर्ण सभा बैठगई, और वायुसे विनिर्मुक्त पद्मयुत सदसी (तलाई) के सदृश

सब सभा चेष्टारहित होगई ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर प्रसंगके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी मधुरबाणीसे मुनियोंमें तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजीसे बोले ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्मनसोरूपंकीदृशंवदमेस्फुटम् ॥ यस्मात्तेनेयमखिलातन्यतेलोकमंजरी॥३७॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामास्यमनसोरूपंनकिंचिदपिदृश्यते ॥ नाममात्रादृतेव्योम्नोयथाशून्यजडाकृतेः ॥ ३८ ॥ नबाह्येनापिहृदयेसद्रूपंविद्यतेमनः ॥ सर्वत्रैवस्थितंचैतद्विद्धिरामयथानभः ॥ ३९ ॥ इदमस्मात्समुत्पन्नंमृगतृष्णांबुसन्निभम् ॥ रूपंतुक्षणसंकल्पाद्द्वितीयेंदुभ्रमोपमम् ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामचंद्रजी बोले हे भगवन् ! आप मुझसे यह बात स्पष्टरीतिसे कहिये कि इस मनका क्या रूपहै जिस (रूप) से वह (मन) इस सम्पूर्ण संसाररूपी लताका विस्तार करताहै ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामचन्द्रजी ! इस मनका नाममात्रके अतिरिक्त कुछभी रूप नहींदेखपडता, जैसे शून्य और जड आकारवाले आकाशका हे रामजी इस मनका बाहरभीतर कहींभी सत्यरूप नहीं है, परन्तु आकाशके समान सर्वत्र इसको व्याप्तजानो ॥३९ ॥ यहजगत् इसमनसे ऐसे उत्पन्नहै जैसे मृगतृष्णासे जल, इसका रूप क्षणके संकल्पसे दूसरे चन्द्रमाके समानहै ॥ ४० ॥

मध्येयदेतदर्थस्यप्रतिभानंप्रथांगतम् ॥ सतोवाप्यसतोवापितन्मनोविद्धिनेतरत् ॥ ४१ ॥ यदर्थप्रतिभानंतन्मनइत्यभिधीयते ॥ अन्यन्नकिंचिदप्यस्तिमनोनामकदाचन ॥ ४२ ॥ संकल्पनंमनोविद्धिसंकल्पात्तन्नभिद्यते ॥ यथाद्रवत्वात्सलिलंतथास्पंदोयथानिलात् ॥ ४३ ॥ यत्रसंकल्पनंतत्रतन्मनोंगतथास्थितम् ॥ संकल्पमनसीभिन्नेनकदाचनकेचन ॥ ४४ ॥

अर्थ—सत् वा असत् अर्थके मध्यमें सबजनोंकी बुद्धिमें प्रथाको प्राप्तहै यही मनका रूप समझो और कुछनहीं ॥ ४१ ॥ निराकार चेतनका जो पदार्थाकार प्रतिभान होताहै उसीको मन कहतेहैं इसके सिवाय कदाचित् मन कुछवस्तु नहींहै ॥ ४२ ॥ संकल्पमात्रही मनहै, संकल्पसे मन ऐसे भिन्न नहींहोसकता जैसे द्रवत्वसे जल अथवा वायुसे गति ॥ ४३ ॥ हे प्रियरामजी ! जहां संकल्पहै वहां उसी रूपसे मनभी स्थितहै संकल्प और मनको कभी किसीने भिन्न रूपसे अनुभव नहीं किया ॥ ४४ ॥

सत्यमस्त्वथवासत्यंपदार्थप्रतिभासनम् ॥ तावन्मात्रंमनोविद्धितद्ब्रह्मैवपितामहः ॥ ४५ ॥ आतिवाहिकदेहात्मामनइत्यभिधीयते ॥ आधिभौतिकबुद्धिंतुसआधत्तेचिरस्थितेः ॥ ४६ ॥ अविद्यासंसृतिश्चित्तंमनोबंधोमलस्तमः ॥ इतिपर्यायनामानिदृश्यस्यविदुरुत्तमाः ॥ ४७ ॥ नहिदृश्यादृतेकिंचिन्मनसोरूपमस्तिहि ॥ दृश्यंचोत्पन्नमेवैतन्नेतिवक्ष्याम्यहंपुनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सत्यहो अथवा असत्यहो जितना पदार्थोंका प्रतिभासहै उतनेको मनही जानो, और उस समष्टिरूप मनको ब्रह्मा वा पितामह जानो ॥ ४५ ॥ सूक्ष्मशरीरवाला मन कहाताहै, और उन्हीं सूक्ष्मोंकी चिरकालतक मिलितस्थितिसे स्थूलपृथिवी आदि बुद्धिको वही मन धारण करताहै ॥ ४६ ॥ महात्मालोग इस दृश्यके अविद्या, संसार, चित्त, मन, बन्ध, मल और तम इत्यादि पर्य्यायवाचकनाम कहतेहैं ॥ ४७ ॥ दृश्यसे पृथक् मनका कुछभी रूप नहीं है और दृश्य उत्पन्नही नहीं हुआ इस विषयको पुनः कहूंगा ॥ ४८ ॥

यथाकमलबीजांतःस्थिताकमलवल्लरी ॥ महाचित्परमाण्वंतस्तथादृश्यंजगत्स्थितम् ॥ ४९ ॥ प्रकाशस्ययथालोकोयथावातस्यचापलं ॥ यथाद्रवत्वंपयसिदृश्यत्वंद्रष्टरीदृशम् ॥ ५० ॥ अंगदत्वंयथाहेम्निमृगनद्यांयथाजलम् ॥ भित्तिर्यथास्वप्नपुरेतथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥५१॥ एवंद्रष्टरिदृश्यत्वमनन्यदिवयत्स्थितम् ॥ तदप्युन्मार्जयाम्याशुत्वच्चित्तादर्शतोमलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार कमलके बीजके भीतर कमलकी लताहै ऐसेही महाचेतनके परमाणुके भीतर यह सम्पूर्ण दृश्य स्थितहै ॥४९॥ जैसे प्रकाशमें आलोक, वायुमें चपलता और जलमें द्रवत्वहै, ऐसेही अविद्यासहित द्रष्टामें दृश्यहै॥५०॥ जैसे सुवर्णमें अंगद, मृगतृष्णामें जल और स्वप्नके नगरमें भित्ति (दीवाल) है, ऐसेही द्रष्टामें दृश्यबुद्धिहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार द्रष्टामें अभिन्नरूपके समान स्थित यह दृश्यहै, उसकोभी मैं आपके चित्तरूपी दर्प्पणसे मलके समान शीघ्र दूर करताहूं ॥ ५२ ॥

यद्द्रष्टुरस्याद्रष्टृत्वंदृश्याभावेभवेद्बलात् ॥ तद्विद्धिकेवलीभावंततएवासतःसतः ॥ ५३ ॥ तत्तामुपगते भावेरागद्वेषादिवासनाः ॥ शाम्यंत्यस्पंदितेवातेस्पंदनक्षुब्धतायथा ॥ ५४ ॥ असंभवतिसर्वस्मिन्दि-

(१) जो रूप मनका कहेंगे वही संसारकाभी होगा इससे सर्वथा संसार मिथ्या न सिद्धहोगा यह रामचन्द्रजीका गूढ आशयहै ॥

ग्भूम्याकाशरूपिणि ॥ प्रकाश्येयादृशंरूपंप्रकाशस्यामलंभवेत् ॥ ५५ ॥ त्रिजगत्त्वमहंचेतिदृश्येऽस-त्तामुपागते ॥ द्रष्टुःस्यात्केवलीभावस्तादृशोविमलात्मनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—द्रष्टाकी सत्तासे पृथक् दृश्यकी सत्ता दूर होनेसे अन्यकी सत्तासे अन्यकी सत्ताके अभावके कारण दृश्यके अभावसे चिन्मात्र द्रष्टामें जो अद्रष्टृत्व होताहै उसीसे असत् दृश्यके बाधसे चिन्मात्रसे जो आत्माकी स्थितिहै उसीको तुम केवलीभाव जानो ॥ ५३ ॥ चित्त जिससमय कैवल्यभाव (चिन्मात्ररूप) को प्राप्त होताहै उससमय राग द्वेषआदि सम्पूर्ण वासना ऐसे शान्त होजाती हैं जैसे वायुकी गति निवृत्त होनेपर बन वा जलाशयकी चंचलता ॥ ५४ ॥ प्रकाश्य जो दिशा, भूमि आकाशादि हैं उनके असंभव होनेपर प्रकाशका जैसा निर्म्मलरूपहै वैसाही रहताहै ॥ ५५ ॥ तीनोंलोक और अहम्भावरूप जो दृश्यहै उसका असत्व (मिथ्यात्व) होनेपर द्रष्टाका विमल जैसा रूप है वैसाही केवलीभाव प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

अनाप्ताखिलशैलादिप्रतिबिंबेहियादृशी ॥ स्याद्दर्पणेदर्पणताकेवलात्मस्वरूपिणी ॥ ५७ ॥ अहंत्वंज-गदित्यादौप्रशांतेदृश्यसंभ्रमे ॥ स्यात्तादृशीकेवलतास्थितेद्रष्टर्यवीक्षणे ॥ ५८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स-च्चेन्नशाम्यत्येवेदंनाभावोविद्यतेसतः ॥ असत्तांचनविद्मोस्मिन्दृश्येदोषप्रदायिनि ॥ ५९ ॥ तस्मात्क-थमियंशाम्येद्ब्रह्मन्दृश्यविषूचिका ॥ मनोभवभ्रमकरीदुःखसंततिदायिनी ॥ ६० ॥

अर्थ—पर्वत आदि प्रतिबिम्ब न रहनेसे दर्पणमें जैसी केवल दर्प्पणस्वरूपिणी दर्पणता रहती है इसीप्रकार अहम् त्वम्, जगत् इत्यादि दृश्यरूप संभ्रमके शान्त होनेपर वीक्षण (दर्शन) रहित द्रष्टामें केवल आत्मता शेष रहती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ श्रीरामजी बोले– हे भगवन् ! यदि दृश्य असत्य होतो आपका कहाहुआ केवलीभावहो परन्तु यह (असत्यता) अनुभवविरुद्ध है, यदि दृश्य सत्य है (जैसा प्रतीत होता है) तो यह शान्त नहीं होसकता, क्योंकि सत्पदार्थका अभाव नहीं होता, और दोष देनेवाले इस दृश्यमें असत्यरूपताका ज्ञान हमको नहीं होता ॥ ५९ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन् मनको भ्रम करनेवाली, और अनेक दुःखोंको देनेवाली, यह दृश्यरूप महामारी कैसे शान्तहो ॥६०॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यदृश्यपिशाचस्यशांत्यैमंत्रमिमंशृणु ॥ रामात्यंतमयंयेनमृतिमेष्यतिनं-क्ष्यति ॥ ६१ ॥ यदस्तितस्यनाशोस्तिनकदाचनराघव ॥ तस्मात्तन्नष्टमप्यंतर्बीजभूतंभवेद्धृदि ॥ ६२ ॥ स्मृतिबीजाच्चिदाकाशेपुनरुद्भूयदृश्यधीः ॥ लोकशैलांबराकारंदोषंवितनुतेऽतनुम् ॥ ६३ ॥ इत्यनिर्मो-क्षदोषःस्यान्नचतस्येहसंभवः ॥ यस्माद्देवर्षिमुनयोदृश्यंतेमुक्तिभाजनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले– हे रामजी इस दृश्य पिशाचकी शान्तिकेलिये यह मंत्र सुनिये, जिससे यह चेतनरूपसे अभिमत देहादि मरणदशाको प्राप्त होगा और अचेतन नष्ट होजायगा ॥ ६१ ॥ हे राघव ! जो वास्तविकमें सत् है उसका नाश कदाचित्भी नहीं होता, इसलिये यह जगत् यदि पूर्व २ स्थूल अवस्थासे सूक्ष्म अवस्थामें तिरोभाव भावरूपसे नष्टभी होजाय तोभी यह बीजरूपसे अन्तःकरणमें रहेगा ॥ ६२ ॥ अन्तःकरणमें जगत्के स्मृतिरूप बीजसे चिदाकाशमें पुनः दृश्यकी बुद्धि उत्पन्न होके लोक पर्वत और आकाश आदिके आकाररूप अपरिमित दोषका विस्तार करैगी, तो इसरीति सर्वथा मोक्षका अभावही होजायगा, और यह असंभवहै क्योंकि अनेक देवता, ऋषि, और मुनि जीवन्मुक्त देखपडते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

यदिस्याज्जगदादीदंतस्मान्मोक्षोनकस्यचित् ॥ बाह्यस्थमस्तुहृत्स्थंवादृश्यंनाशायकेवलम् ॥ ६५ ॥ तस्मादिमांप्रतिज्ञांत्वंशृणुरामातिभीषणाम् ॥ यामुत्तरेणग्रंथेननूनंत्वमवबुद्ध्यसे ॥ ६६ ॥ अयमाकाशभूतादिरूपोहंचेतिलक्षितः ॥ जगच्छब्दस्यनामार्थोननुनास्त्येवकश्चन ॥ ६७ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिद्दृश्यजातंपुरोगतम् ॥ परब्रह्मैवतत्सर्वमजरामरमव्ययम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—यदि यह जगत् आदि सत्य होतो किसीकाभी मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि बाह्यहो अथवा आभ्यन्तरहो दृश्यतो नाशकेही लियेहै ॥ ६५ ॥ इसलिये हे रामजी ! विषयरागी और आरंभ वादियोंको भय देनेवाली इस प्रतिज्ञाको आप सुनिये, जिसे (प्रतिज्ञा) को उत्तर ग्रन्थसे तुम निश्चयरूपसे जान जाओगे ॥ ६६ ॥ यह आकाशादि भूत "अहम् और त्वम्" आदिरूपसे लक्षित जगत् शब्दका नामार्थ है और कुछभी नहीं है ॥ ६७ ॥ जो कुछ यह दृश्यसमूह देख पडता है अथवा अनुभूत होता है यह सब अजर अमर और नाशरहित केवल परब्रह्मही है ॥ ६८ ॥

१ श्रीरामचंद्रजीका अभिप्राय परिणाम वादको अंगीकार करके प्रवृत्तहै ॥ २ बाह्यजगतको अविवेकसे अपने हृदयमें देखनेसे यह संसारहै और उसका अभिमान निवृत्त होनेसे बाह्यजगतकी विद्यमानतामें मोक्ष होताहै यह सांख्यसिद्धान्तभी असत्है ॥ ३ विवर्तवादही वसिष्ठजीको इष्टहै ब्रह्मही जगत्रूपसे हैं ॥

पूर्णेपूर्णप्रसरतिशांतेशांतंव्यवस्थितम् ॥ व्योमन्येवोदितंव्योमब्रह्मणिब्रह्मतिष्ठति ॥ ६९ ॥ नदृश्यमस्तिसद्रूपंनद्रष्टानचदर्शनम् ॥ नशून्यंनजडंनोचिच्छांतमेवेदमाततम् ॥ ७० ॥ श्रीरामउवाच ॥ वंध्यापुत्रेणपिष्टोद्रिःशशशृंगंप्रगायति ॥ प्रसार्यभुजसंपातंशिलानृत्यतितांडवम् ॥ ७१ ॥ स्रवंतिसिकतास्तैलंपठंत्युपलपुत्रिकाः ॥ गर्जंतिचित्रजलदाइतीवेदंवचःप्रभो ॥ ७२ ॥

अर्थ—पूर्णमेंही पूर्णका प्रचार है शान्त अवस्थात्रयमें शान्त आकाशादि द्वैतस्थित है, और घटादि उपाधिके त्यागसे आकाशमेंही आकाश स्थित है इसलिये ब्रह्ममेंही ब्रह्म स्थितहै तात्पर्य्य यह कि सर्वथा अविकृतरूपसे ब्रह्म-स्थितहै अध्यासकृत दोषसे उसका कुछभी संबन्ध नहीं है ॥ ६९ ॥ इसलिये सत्यरूपसे न दृश्य है न द्रष्टा है, न दर्शन है, न शून्य है, न जड है, और न चित् है, केवल शान्त आत्माही इस सर्व रूपसे व्याप्त होरहा है ॥ ७० ॥ श्रीरामजी बोले- हे भगवन् ! वन्ध्यापुत्रने बडे पर्वतको पीस डाला, खरगोशकी सींग बहुत उत्तम २ गीत गाती है, भुजाको फैलाके पाषाणमय पुतली ताण्डव नृत्य करती है ॥ ७१ ॥ बालूसे तेल निकलता है, पाषाणकी पुतलियां पढती हैं तथा चित्रके मेघ गर्जते हैं इत्यादि बचनके समान आपका कथनहै अर्थात् जैसे पूर्वोक्त बातें असंभवहैं, ऐसे सर्वथा जगत्का अभाव है यह आपका कथनभी असंभव है ॥ ७२ ॥

जरामरणदुःखादिशैलाकाशमयंजगत् ॥ नास्तीतिकिमिदंनामभवताप्रिमोच्यते ॥ ७३ ॥ यथेदंनस्थितंविश्वंनोत्पन्नंनचविद्यते ॥ ७३ ॥ तथाकथयमेब्रह्मन्थैनैतन्निश्चितंभवेत् ॥ ७४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नासमञ्जितवागस्मिशृणुराघवकथ्यते ॥ यथेदमसदाभातिवंध्यापुत्रइवारवी ॥ ७५ ॥ इदमादावनुत्पन्नंसर्गादौतेननास्त्यलम् ॥ इदंहिमनसोभातिस्वप्नादौपत्तनंयथा ॥ ७६ ॥

अर्थ--वृद्धाऽवस्था, मृत्यु, अनेकक्लेश, पर्वत, और आकाशादिमय यह जगत् हैही नहीं, यह वार्ता आप सब प्रामाणिकोंमें श्रेष्ठ होके मुझसे कैसे कहतेहैं? ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार यह संसार न स्थितहै, न उत्पन्न हुआ और न है, यह निश्चयहो वही उपदेश दीजिये॥७४॥श्रीवसिष्ठजी बोले- हे रामजी ! मैं असंगत बचन नहींबोलता, जैसे शब्द करनेवाले वन्ध्यापुत्रके समान असत्भी यह जगत् भानहोताहै वह सुनिये ॥ ७५ ॥ यह सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न नहींहुआ इसलिये सर्वथा यह नहीं है, स्वप्नादिमें जैसे नगरका भान होताहै, ऐसेही यह मनसे भान होताहै ॥ ७६ ॥

मनएवचसर्गादावनुत्पन्नमसद्वपुः ॥ तदेतच्छृणुवक्ष्यामियथैवमनुभूयते ॥ ७७ ॥ मनोदृश्यमयंदोषंतनोतीमंक्षयात्मकम् ॥ असदेवसदाकारंस्वप्नःस्वप्नांतरंयथा ॥ ७८ ॥ तत्स्वयंस्वैरमेवाशुसंकल्पयतिदेहकम् ॥ तेनेयमिंद्रजालश्रीर्विततेनवितन्यते ॥ ७९ ॥ स्फुरतिवल्गतिगच्छतियाचतेभ्रमतिमज्जतिसंहरतिस्वयम् ॥ अपरतामुपयात्यपिकेवलंचलतिचंचलशक्तितयामनः ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणार्थकल्पनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—और यह मनभी सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ, यहभी असत्शरीरवालाहै, यह विषय जैसे अनुभवमें आताहै वह मैं कहूंगा, आप श्रवण कीजिये ॥ ७७ ॥ यह असत् मनही नाशवान् दृश्यमय दोषका विस्तार ऐसे करताहै जैसे स्वप्न असत्ही सदाकार दूसरे स्वप्नका ॥ ७८ ॥ वही मन स्वयं अपनी इच्छासे देहादिका शीघ्र संकल्प करताहै, और चिरकालकी भावनासे विशालरूप यह जगत्मयी इस इन्द्रजालकी शोभाका विस्तार करताहै ॥७९॥ केवल यह मनही चंचलशक्ति धारण करनेका कारण जहां चलताहै वहांही स्फुरित होने लगताहै, और यह स्वयं जाताहै यांचा करताहै, भ्रमण करताहै, डूबताहै, और संहार करताहै, तथा संसारकी दशामें न्यूनता, और कैवल्यरूप मुक्ति-दशाकी उत्कर्षताकोभी यही प्राप्तहोताहै ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणार्थकल्पनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण संसारका मूल मनहै उस मनका मूल यहां कहाजाताहै और वही मनका और संसारकाभी तत्त्वहै इस विषयका वर्णन इस ५ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्मुनिशार्दूलकिमिवेहमनोभ्रमे ॥ विद्यतेकथमुत्पन्नंमनोमायामयंकुतः ॥ १ ॥ उत्पत्तिमादाविति मेसमासेनवदप्रभो ॥ प्रवक्ष्यसिततः शिष्टंवक्तव्यंवदतांवर ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तावसत्तांसमुपागते ॥ अशेषदृश्यसर्गादौशांतमेवावशिष्यते ॥ ३ ॥ आस्तेनस्तमितो-भास्वानजोदेवोनिरामयः ॥ सर्वदासर्वकृत्सर्वः परमात्मामहेश्वरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् हे मुनियोंमें शार्दूल ! इस मनके भ्रममें वास्तविक मूलकारण क्याहै ? और यह मन कैसे उत्पन्न हुआ तथा किसप्रकार यह मायामय है ? ॥ १ ॥ हे प्रभो सबका कारण जो मन है उसकी उत्पत्तिका कारण मुझसे कहिये हे वदताम्वर कहने वालोंमें श्रेष्ठ उसके अनन्तर शेषबात कहियेगा ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–महाप्रलयमें सम्पूर्ण पदार्थोंका सूक्ष्मीभाव होनेसे क्रियामें असमर्थ होनेपर, भावीदृश्यकी उत्पत्तिके पूर्व निर्विक्षेप शान्तरूपही शेष रहजाताहै ॥ ३ ॥ प्रकाशरूप अज निरामय सर्वदा सबका कर्ता सर्वरूप, परमात्मा, महेश्वर देवही अस्तमित (अविस्पष्ट) स्वभावसे शेष रहताहै ॥ ४ ॥

यतोवाचोनिवर्त्ततेयोमुक्तैरवगम्यते ॥ यस्यचात्मादिकाःसंज्ञाःकल्पितानस्वभावजाः ॥ ५ ॥ यः पुमान्सांख्यदृष्टीनांब्रह्मवेदांतवादिनाम् ॥ विज्ञानमात्रंविज्ञानविदामेकांतनिर्मलम् ॥ ६ ॥ यःशून्यवादिनांशून्योभासकोयोर्कतेजसाम् ॥ वक्तामंताऋतंभोक्ताद्रष्टाकर्त्तासदैवसः ॥ ७ ॥ सन्नप्यसद्योजगति योदेहस्थोपिदूरगः ॥ चित्प्रकाशोह्ययंयस्मादालोकइवभास्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस परमात्मामें वाणी नहीं प्राप्त होती, जो केवल मुक्तपुरुषोंको प्राप्त होताहै, जिसके आत्माआदि नाम कल्पितहैं न कि स्वाभाविक ॥ ५ ॥ सांख्यशास्त्रवाले जिसको पुरुष, वेदान्ती ब्रह्म, विज्ञानवादी निर्मल क्षणिक विज्ञान, और शून्यवादी जिसको शून्य कहतेहैं, और वही देव सब सूर्य्यादि तेजोंका प्रकाशक वक्ता, मन्ता, (ज्ञाता) सत्यरूप, भोक्ता, द्रष्टा और सबका कर्ता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ जो सत्‌रूप, होनेपरभी अविद्यासे आच्छादित होनेसे पामरोंकी दृष्टिसे असत्, अतएव शरीरमें स्थित रहनेपरभी दूरस्थहै क्योंकि यह आत्मा सूर्य्यके आलोकके सदृश चित्प्रकाशरूपहै ॥ ८ ॥

यस्माद्विष्णवादयोदेवाःसूर्यादिवमरीचयः ॥ यस्माज्जगंत्यनंतानिबुद्बुदाजलधेरिव ॥ ९ ॥ यंयांतिदृश्यवृंदानिपयांसीवमहार्णवम् ॥ यआत्मानंपदार्थंचप्रकाशयतिदीपवत् ॥ १० ॥ यआकाशेशरीरेच दृषत्स्वप्सुलतासुच ॥ पांसुष्वद्रिषुवातेषुपातालेषुचसंस्थितः ॥ ११ ॥ यःस्रावयतिसंरब्धंपुर्यष्टकमितस्ततः ॥ येनमूकीकृतामूढाः शिलाध्यानमिवास्थिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस परमात्मासे विष्णुआदिदेव ऐसेहैं जैसे सूर्य्यसे किरण, और जिससे अनन्तजगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्रसे बुद्बुद (बुल्लें) ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण दृश्योंके समूह जिसमें ऐसे जाके लीन होतेहैं जैसे समुद्रमें सबप्रकारके जल, और जो दीपके समान अपना तथा अन्यपदार्थोंकाभी प्रकाशक है ॥ १० ॥ जो परमात्मा आकाशमें, शरीरोंमें, पाषाणोंमें, जलोंमें, लताओंमें, धूलियोंमें, पर्वतोंमें, वायुमें और पातालादिलोकोंमें, अर्थात् सर्वत्र व्याप्तहोके स्थितहै ॥ ११ ॥ जो परमात्मा अपने व्यापारोंमें उद्युक्त, जो कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय भूत सूक्ष्म, पंचप्राण, अविद्या, काम, कर्म, और अन्तःकरणरूप पुर्य्यष्टकको अपनी चेतनताकी व्याप्तिसे कार्य्योंमें प्रवृत्त करताहै अर्थात् चेतनोंकाभी चेतनदाता यही ईश्वरहै, और इसी परमात्मासे मूक कियेहुये अचेतन शिलाआदि मानों ध्यानमें स्थितहैं ॥ १२ ॥

व्योमयेनकृतंशून्यंशैलायेनघनीकृताः ॥ आपोद्रुताःकृतायेनदीपोयस्यवशोरविः ॥ १३ ॥ प्रसरंतियतश्चित्राः संसारासारवृष्टयः ॥ अक्षयामृतसंपूर्णादंभोदादिववृष्टयः ॥ १४ ॥ आविर्भावतिरोभावमयास्त्रिभुवनोर्मयः ॥ स्फुरंत्यतितयेयस्मिन्मराविवमरीचयः ॥ १५ ॥ नाशरूपोविनाशात्मायोंतःस्थः सर्वजंतुषु ॥ गुप्तोयोप्यतिरिक्तोपिसर्वभावेषुसंस्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस परमात्माने आकाशको शून्य किया, पर्वतोंको सघनकिया, जलोंको द्रवीभूतकिया, और सब पदार्थोंके प्रकाशक सूर्य्य दीपकेसमान जिसके वशमें ॥ १३ ॥ जिस अक्षय और अमृतरूप परमात्मासे संसारआसा-

रकी वृष्टि ऐसे निकलती है जैसे अक्षयअमृतसे सम्पूर्ण मेघसे जलकी वृष्टि ॥ १४ ॥ अत्यन्त विस्तीर्णरूप जिस परमात्मामें आविर्भाव और तिरोभाव प्रधान त्रिभुवनरूपी तरंग ऐसे स्फुरित होतीहैं, जैसे मरुमें मरीचिके उदक ॥ १५ ॥ जो परमात्मा सबपदार्थोंमें प्रपंचरूपसे नाशरूप और अपने वास्तविक रूपसे अविनाशी, अतिसूक्ष्म होनेसे सब प्राणियोंके अन्तर्में गुप्त (छिपाहुआ) और अतिमहान् होनेसे सबसे पृथक् स्थितहै ॥ १६ ॥

प्रकृतिव्रततिर्व्योम्निजाताब्रह्मांडसत्फला ॥ चित्तमूलेंद्रियदलायेननृत्यतिवायुना ॥ १७ ॥ यश्चिन्मणिः प्रकचतिप्रतिदेहसमुद्गके ॥ यस्मिन्निंदौस्फुरंत्येताजगज्जालमरीचयः ॥ १८ ॥ प्रशांतेचिद्घनेयस्मिन् स्फुरंत्यमृतवर्षिणि ॥ धाराजलानिभूतानिसृष्टयस्तडितःस्फुटाः ॥ १९ ॥ चमत्कुर्वंतिवस्तूनियदालोकतयामिथः ॥ असज्जातमसद्येनयेनसत्सत्त्वमागतम् ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्माण्डरूपी सत्फलको उत्पन्न करनेवाली, चित्तरूपी मूल और इन्द्रियरूप दलवाली प्रकृतिरूप लता जिस परमात्मारूप वायुसे उत्पन्न कीहुई चिदाकाशमें नाचरहीहै ॥ १७ ॥ जो चेतनरूप मणि प्रत्येके देहरूप पेटारीमें प्रकाशकर रहाहै, और जिस चेतनरूप चन्द्रमाके खिलनेपर ये अनेकजगत्के समूहरूपी किरण खिलतेहैं ॥ १८ ॥ जिस अमृतवर्षी प्रशान्त चिद्घनमें, भूतरूपी धारा जल और सृष्टिरूप बिजुली प्रत्यक्ष स्फुरित होती है ॥१९॥ जिस परमात्माके प्रकाशसे सम्पूर्णपदार्थ परस्पर विचित्रकार्य्य करते हैं, और जिस परमात्माहीसे असत् असत्यताको और सत् पदार्थ सत्यताको प्राप्त हुआहै ॥ २० ॥

चलतीदमनिच्छस्यकायोयोयस्यसन्निधौ ॥ जडंपरमरक्तस्यशांतमात्मनितिष्ठतः॥२१॥ नियतिर्देशकालौचचलनंस्पंदनंक्रिया ॥ इतियेनगताःसत्तांसर्वसत्तातिगामिना ॥ २२ ॥ शुद्धसंविन्मयत्वाद्यःखंभवेव्योमचिंतया ॥ पदार्थचिंतयार्थत्वमिवतिष्ठत्यधिष्ठितः ॥ २३॥ कुर्वन्नपीहजगतांमहतामनंतवृंदंनकिंचनकरोतिनकाश्चनापि ॥ स्वात्मन्यनस्तमयसंविदिनिर्विकारेत्यक्तोदयस्थितिमतिस्थितएकएव॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणेवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—शान्तरूप आत्मामें स्थित, असंग और इच्छारहित जिस परमात्माकी सन्निधिसे प्रसिद्ध देव, मनुष्य और तिर्य्यक्योनियोंका शरीर, तथा अत्यन्तजड यह सम्पूर्ण दृश्य चलरहाहै ॥ २१ ॥ सृष्टिकालमें अवश्य सृष्टि होनी चाहिये और प्रलयकालमें प्रलय, इत्यादिरूप नियत (मर्यादा) और उसके अवच्छेदक देशकाल, उसकी प्राप्तिमें बीजादि अन्तर्गतकार्य्यके बीजकी वृद्धिसे चलन, बीजको भेदन करके अंकुरादिके निर्गमनसे स्पन्दन, और अनन्तर उससे काण्डशाखादि क्रमसे फलावसान व्यापाररूपक्रिया इत्यादि सब सत्तासे विलक्षण परमार्थसत्ता विशिष्ट परमात्मासेही सत्ताको प्राप्त हुयेहैं ॥२२॥ वही परमात्मा शुद्धसंवित्मय होनेके कारणसे आकाशका चिन्तन करनेसे आकाशहोजाताहै, और अन्यपदार्थकी चिन्तासे अन्यपदार्थ होजाताहै, और सबसे उत्कृष्ट वर्तमान रहताहै ॥ २३ ॥ यह परमात्मा अनेक बडे२ ब्रह्माण्डसमूहोंको तथा उनमें विचित्र लीलाओंको करताहुआभी वास्तविकमें कुछभी नहीं करता, क्योंकि निर्विकार, अनस्तमय, सजातीय विजातीय और स्वगतभेदशून्य स्वात्मसंवित्रूपमें वह एकही स्थितहै ॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

ज्ञानसेही आत्मवस्तुकी प्राप्ति होती है कर्मोंसे नहीं इसलिये ज्ञानकी प्राप्तिके उपायोंके लिये यत्न करना चाहिये इस विषयका तथा इसकी रीतिका वर्णन इस ६ वें सर्गमें कियागया है ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यदेवाधिदेवस्यपरस्यपरमात्मनः॥ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः ॥१॥ अत्रज्ञानमनुष्ठानंनत्वन्यदुपयुज्यते ॥ मृगतृष्णाजलभ्रांतिशांतौचेदंनिरूपितम् ॥ २ ॥ नह्येषदूरेनाभ्याशेनालभ्योविषमेनच ॥ स्वानंदाभासरूपोसौस्वदेहादेवलभ्यते ॥ ३ ॥ किंचिन्नोपकरोत्यत्रतपोदानव्रतादिकम् ॥ स्वभावमात्रेविश्रांतिमृतेनात्रास्तिसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हिरण्यगर्भादि देवोंका अथवा मन और इन्द्रियोंका साक्षीरूपसे प्रकाशक होनेसे अधिदेव इस परमात्माकी परासिद्धि अर्थात् प्राप्ति केवल ज्ञानसे होती है न कि कर्मके दुःखोंसे ॥ १ ॥ आत्माकी प्राप्तिकेलिये केवल ज्ञानके अनुष्ठानका उपयोगहै और किसीका नहीं, यह वार्ता (ज्ञानमात्रसे कार्य्यसिद्धि) मृगतृष्णाके जलकी भ्रान्तिकी निवृत्ति दृष्ट है ॥ २ ॥ यह आत्मा न दूरहै न निकटहै न अलभ्यहै, और न विषमप्रदेशमें है, क्योंकि दूर निकट, और अलभ्य यह व्यवहार अपनेसे अन्य वस्तुमें होताहै, आत्मा तो ऐसा नहीं है, यहतो अभ्याससे स्वानन्दरूप इसी शरीरसेही प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ तप, दान और व्रतादिक इस आत्माकी प्राप्तिमें कोईभी उपकार नहीं करते अपने स्वभावमात्रमें विश्रान्तिको छोडके इसमें कुछभी साधन नहीं है ॥ ४ ॥

साधुसंगमसच्छास्त्रपरतैवात्रकारणम् ॥साधनंबाधनंमोहजालस्ययदकृत्रिमम्॥५॥अयंसदेवइत्येवसंपरिज्ञानमात्रतः ॥ जंतोर्नजायतेदुःखंजीवन्मुक्तत्वमेतिच ॥६॥ श्रीरामउवाच ॥ संपरिज्ञातमात्रेणकिलानेनात्मनात्मना ॥ पुनर्दोषानबाधंतेमरणाद्याःकदाचन ॥ ७ ॥ देवदेवोमहानेषकुतोदूरादवाप्यते ॥ तपसाकेनतीव्रेणक्लेशेनकियताथवा ॥ ८ ॥

अर्थ—कर्मोंमें साधुसमागम और सत् वेदान्तादि शास्त्रोंमें तत्पर होनाही आत्माकी प्राप्तिमें कारणहै, और अकृत्रिम नित्य सिद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार होनाही सांसारिक मोहजालके बाधनमें साधनहै ॥ ५ ॥ यही वह देवहै जिसके संपरिज्ञानमात्रसे जीवको कदापि दुःख नहींहोता, और वह जीवन्मुक्त होजाताहै, अर्थात् ज्ञानही जीवन्मुक्ति तथा दुःखनिवृत्तिमें साधनहै अन्य नहीं ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! इस आत्माका आत्मामात्रसे संपरिज्ञान होनेसे मरणआदि क्लेश पुनः जीवको कदापि नहीं होते ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह महान् देवोंका देव कितने और कैसे शीघ्र तप अथवा क्लेशसे सन्निकटमेंही शीघ्र प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वपौरुषप्रयत्नेनविवेकेनविकासिना ॥ सदेवोज्ञायतेरामनतपःस्नानकर्मभिः॥९॥ रागद्वेषतमःक्रोधमदमात्सर्यवर्जनम् ॥ विनारामतपोदानंक्लेशएवनवास्तवम् ॥ १० ॥ रागाद्युपगतेचित्तेवंचयित्वापरंधनम् ॥ यदर्ज्यतेतस्यदानाद्यस्यार्थास्तस्यतत्फलम् ॥ ११ ॥ रागाद्युपहतेचित्तेव्रतादि क्रियतेचयत् ॥ तद्दंभःप्रोच्यतेतस्यफलमस्तिमनाङ्च ॥ १२ ॥

अर्थ—वेदान्तादि श्रवणरूप अपने पौरुषप्रयत्नसे, हे रामजी ! वह देव प्राप्तहोताहै, और तप स्नानादि कर्म्मोंसे नहीं ॥ ९ ॥ राग, द्वेष, अज्ञान, क्रोध, मद और मात्सर्य्य, इनके वर्जनके विना जो तप वा दान करनाहै वह केवल क्लेशही है वास्तवज्ञानका साधन नहीं है ॥ १० ॥ रागादि सहित चित्तमें ठगकर दूसरेका धन उपार्जन किया जाताहै उस धनके दानसे जिसका वह धनहै उसको फल होताहै न कि दाताको ॥ ११ ॥ राग आदिसे उपहत (नष्ट) चित्तसे जो व्रत आदि कियाजाताहै वह दम्भ (पाषण्ड) कहाताहै उसका कुछभी फल नहीं है ॥ १२ ॥

तस्मात्पुरुषयत्नेनमुख्यमौषधमाहरेत् ॥ सच्छास्त्रसज्जनासंगौसंसृतिव्याधिनाशिनौ ॥ १३ ॥ अत्रैकंपौरुषंयत्नंवर्जयित्वेतरागतिः ॥ सर्वदुःखक्षयप्राप्तौनकाचिदुपपद्यते ॥ १ ॥ शृणुतत्पौरुषंकीदृगात्मज्ञानस्यलब्धये ॥ येनशाम्यत्यशेषेणरागद्वेषविषूचिका ॥ १५ ॥ यथासंभवयावृत्त्यालोकशास्त्राविरुद्धया ॥ संतोषसंतुष्टमनाभोगगंधंपरित्यजेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये अपने पौरुषके यत्ननसे संसाररूपी व्याधिके नाश करनेवाले सत्शास्त्र और सज्जन समागमरूपी मुख्य औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥ इस पूर्वोक्त एक पौरुषरूपी यत्नको छोडके इस सर्व दुःखक्षयरूप आत्माकी प्राप्तिमें दूसरा कोईभी उपाय नहीं है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें कैसा पौरुष अपेक्षितहै सो सुनिये जिस पौरुषसे राग द्वेषादि महामारी सर्वथा शान्त होजाती है ॥ १५ ॥ लोक और शास्त्रसे अविरुद्ध यथासम्भव जीविकासे सन्तुष्ट मन यह पुरुष, भोगोंमें जो अभिनिवेशहै उसको त्यागे ॥ १६ ॥

यथासंभवमुद्योगादनुद्विग्नतयास्वया ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरतांप्रथमंश्रयेत् ॥ १७ ॥ यथाप्राप्तार्थ संतुष्टोयोगर्हितमुपेक्षते ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरःशीघ्रंसमुच्यते ॥ १८ ॥ विचारेणपरिज्ञातस्वभावस्यमहामतेः ॥ अनुकंप्याभवंत्येतेब्रह्मविष्ण्विन्द्रशंकराः ॥ १९ ॥ देशेयंसुजनप्रायालोकाःसाधुंप्रच-

---

(१) तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति (इस आत्माको वेदके पाठसे ब्राह्मणलोग जाननेकी इच्छा करते हैं) इस वाक्यसे यज्ञदानादिका निषेध जो है वह सामान्य तप आदि विषयकहै इस अभिप्रायसे रामजी कहतेहैं ॥

क्षते ॥ सविशिष्टःससाधुःस्यात्तंप्रयत्नेनसंश्रयेत् ॥ २० ॥ अध्यात्मविद्याविद्यानांप्रधानंतत्कथाश्रयम् ॥ शास्त्रंसच्छास्त्रमित्याहुर्मुच्यतेतद्विचारणात् ॥ २१ ॥ सच्छास्त्रसत्संगमजैर्विवेकैस्तथाविनश्यंतिबलादविद्याः ॥ यथाजलानांकतकानुषंगाद्यथाजनानांमतयोऽपियोगात् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मुमुक्षुप्रयत्नोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ— यह कार्य्य अशक्य है ऐसे उद्वेग अथवा निर्वेदको त्यागकर अपने हितकेलिये यथासम्भव उद्योगसे साधुसमागम और सत्शास्त्रकी तत्परताका सबसे प्रथम आश्रय ग्रहण करै ॥ १७ ॥ जो प्राणी यथाप्राप्त वस्तुसे सन्तुष्टहो और शास्त्रोंमें निन्दित वस्तुओंकी उपेक्षा करताहै तथा साधुसमागम और सत्शास्त्रमें तत्परहै, वह शीघ्र मुक्त होजाताहै ॥ १८ ॥ जिस महाबुद्धिमान् पुरुषने बिचारसे आत्मतत्वको जानलियाहै उसके आज्ञाकारी अथवा अनुकम्पनीय ये ब्रह्मा विष्णु इन्द्र और शिवादिदेवभी होजाते हैं ॥ १९ ॥ संसार श्रुतिस्मृतिप्रोक्त आचारमें निष्ठ सज्जन जन साधु कहाते हैं और वह ज्ञान वैराग्यादि गुणोंसे सहितभी हो वही साधुहै और यत्नपूर्वक उसका आश्रय लेना चाहिये ॥ २० ॥ आत्मज्ञानका प्रतिपादन करनेवाली जो विद्याहै उसको सब विद्याओंमें प्रधान अध्यात्मविद्या कहते हैं, आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके अनुकूल बिचाररूप कथाका आश्रय जो उपनिषत्, गीता, सूत्र,भाष्यादि ग्रन्थहैं उनको सच्छास्त्र कहतेहैं, और उनके बिचारनेसे मनुष्य मुक्त होजाताहै ॥ २१ ॥ जिसप्रकार निर्मली औषधिके संयोगसे जलका पङ्क और योगाभ्याससे बाह्यमति नष्ट होजाती है, इसीप्रकार सत्शास्त्र और साधुसमागमसे उत्पन्न विवेकसे बलात्कारसे सम्पूर्ण अविद्या नष्ट होजाती है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मुमुक्षुप्रयत्नोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

पूर्व कहा जो देव सो दूर नहीहै किंतु इस शरीरमेंही नित्य संस्थित चिन्मात्ररूपसे विश्रुतहैं इस विषयका वर्णन इस ७ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यएषदेवःकथितोयस्मिन्ज्ञातेविमुच्यते ॥ वदक्वासौस्थितोब्रह्मन्कथमेनमहंलभे ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यएषदेवः कथितोनैषदूरेवतिष्ठते ॥ शरीरेसंस्थितोनित्यंचिन्मात्रमितिविश्रुतः ॥ २ ॥ एषसर्वमिदंविश्वंनविश्वंचैषसर्वगः ॥ विद्यतेह्येषएवैकोनतुविश्वाभिधास्तिदृक् ॥ ३ ॥ चिन्मात्रमेषशशिभृच्चिन्मात्रंगरुडेश्वरः ॥ चिन्मात्रमेवतपनश्चिन्मात्रंकमलोद्भवः ॥ ४ ॥

अर्थ——श्रीरामजी बोले हे ब्रह्मन्! ब्रह्मादिदेवों कारणभूत देव जो आपने पूर्व कहाहै जिसके ज्ञानसे जीव मुक्त होजाताहै, वह किस उपाधिमें अनावरणसे अभिव्यक्त और किस तत्वमें है ? और उसको मैं कैसे प्राप्त करूं? सो उपाय कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले– हे रामजी ! जिस देवके विषयमें मैंने कहा यह कहीं दूरनहीं है किन्तु शरीरमेंही चिन्मात्ररूपसे प्रसिद्ध स्थितहै, शरीरस्थहृदय पुण्डरीकमें विशेषरूपसे उसकी अभिव्यक्ति होती है ॥ २ ॥ यह सम्पूर्ण संसार परमात्माही है, और यह सर्वव्यापी चेतनस्वरूपसे पृथक्भी है, वह परमात्मा केवल एक चेतनाकार है, वह दृक्चेतनशक्ति दृश्य विश्वाकार नहीं, सम्पूर्ण वस्तुओंका अधिष्ठान होनेसे सर्वगतत्व प्रतिपादन (कथन) के लिये उसको विश्वाकार कहागयाहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! ये शशिभूषण शिवजी चिन्मात्रही है सबके नियन्ता विष्णु चिन्मात्रही हैं, सूर्य्यभी चिन्मात्रही है और कमलोद्भव ब्रह्माजीभी चिन्मात्रहै, तात्पर्य्य यह कि कार्य्यात्मक विश्वकीही सत्ता परब्रह्मकी सत्ता अभिन्न नहीं है किन्तु जगत्कारण माया और उसके गुणोंके अभिमानी देवताओंकी सत्ताभी ब्रह्मसे अभिन्नरूपही है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ बालाअपिवदंत्येतद्यदिचेनतमात्रकम् ॥ जगदित्येवकैवात्रनामस्यादुपदेशता ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिन्मात्रंचेतनंविश्वमितियज्ज्ञातवानसि ॥ नकिंचिदेवविज्ञातंभवताभवनाशनम् ॥ ६ ॥ चेतनंरामसंसारोजीवएषपशुःस्मृतः ॥ एतस्मादेवनिर्यातिजरामरणभीतयः ॥ ७ ॥ पशुरज्ञोह्यमूर्तोपिदुःखस्यैवैषभाजनम् ॥ चेतनत्वाच्चेतनीयंमनोऽनर्थःस्वयंस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले– हे ब्रह्मन् ! इस बातको बालकभी कहतेहैं कि यह सम्पूर्णविश्व चेतनमात्र परब्रह्मका रूपही है तब उपदेशकी क्या आवश्यकताहै ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले– चिन्मात्र चेतन यह विश्वहै यह जो आपने जाना, इससे संसारकी नाशकरनेवाली वस्तु आपने कुछभी नहींजानी ॥ ६ ॥ हे रामजी ! चेतन यह संसारहै इसमें यह जीव पशुहै, इसीसे जरामरण आदि सब भय निकलेहैं ॥ ७ ॥ यह अज्ञानीपशु स्थूलदेहमात्र रहित होनेसेभी दुःख-काही भागीहै, क्योंकि "अशरीरं वावसन्तं नप्रियाप्रिये स्पृशतः" इस श्रुतिका अर्थ यहहै कि स्थूल, सूक्ष्म, और कारण तीनोंशरीरोंमें आत्मभ्रान्तिसे रहित; और भ्रान्तिशून्य जो प्राणी है उसको रागद्वेषप्रयुक्त सुखदुःख नहीं होता, इसविरुद्धज्ञानसे चेतनही मनरूप अनर्थ स्वयं होके स्थित रहताहै ॥ ८ ॥

चेत्यनिर्मुक्ततायास्यादचेत्योन्मुखताथवा ॥ अस्यसाभरिताबस्थातांज्ञात्वानानुशोचति ॥ ९ ॥ भिद्यतेहृदयग्रंथिश्छिद्यंतेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयंतेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ १० ॥ तस्यचेत्योन्मु-खत्वंतुचेत्यासंभवनंविना ॥ रोद्धुंनशक्यतेदृश्यंचेत्थंशाम्यतिवैकथम् ॥ ११ ॥ अचेत्यचित्स्वरूपंयत्त-स्यासंभवनंविना ॥ कस्वरूपोन्मुखत्वंहिकेवलंचेत्यरोधतः ॥ १२ ॥

अर्थ—चेत्य (विषय) से निर्मुक्त होना, अथवा अचेत्य विषयशून्य केवल आत्माकी ओर उन्मुख होना, यह इसकी ज्ञानावस्थाहै, इसको जानके पुनः शोक नहीं करता ॥ ९ ॥ पर कारणभी जिससे अधस्तात् रहताहै ऐसे शुद्ध आत्माके ज्ञानसे मूल अविद्याका नाश होनेसे अविद्याका कार्य्य अन्तःकरणके साथ तादात्म्याध्यास लक्षण हृदयकी ग्रन्थियां नष्ट होजातीहैं उनके नाश होनेसे तन्मूलक सम्पूर्ण संशयभी क्षीण होजातेहैं ॥१०॥ बिनाज्ञानके चेत्य (विषय) की ओर उन्मुखताका निरोध सर्वथा अशक्यहै तब भला दृश्यकी शान्ति कैसे होसकती है ? ॥ ११ ॥ अचेत्य चित्स्वरूप जो मोक्षहै वहभी पूर्वोक्त चेत्य असंभवरूप ज्ञानके विना कहां ! क्योंकि हठ समाधिसे चेत्यके निरोध-मात्रसे बिना दृश्यका बाधहुये केवल स्वरूपकी उन्मुखता (जो मोक्षमें आवश्यक) होतीही नहीं ॥ १२ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यस्मिन्जीवेहिविज्ञातेनविनश्यतिसंस्रुतिः ॥ व्योमरूपीपशुस्त्वज्ञःसब्रह्मन्कुत्रकी-दृशः ॥ १३ ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रैःसंसारार्णवतारकः ॥ दृश्यतेपरमात्मायःसब्रह्मन्वदकीदृशः १४ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदेतच्चेतनंजीवोविशीर्णोजन्मजंगले ॥ एतमात्मानमिच्छंतियेतेज्ञाःपंडिताअपि ॥ ॥ १५ ॥ जीवएवहिसंसारश्चेतनादुःखसंततिः ॥ अस्मिन्ज्ञातेनविज्ञातंकिंचिद्भवतिकुत्रचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् जिसे[3] जीवमात्र (अन्तःकरणादि सहित) के ज्ञानसे संसार नष्ट नहीं होता व आकाश (क-ल्पित) रूपवाला जीव कैसा और किस आधारपर है ? क्या संसारकोटिमें है वा उससे पृथक् ? ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! साधुसमागम और सत्शास्त्रोंसे जो परमात्मा संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला जानाजाताहै वहभी कैसाहै, तात्पर्य यह कि, यदि जीव संसारकोटिमें है तो उसका तारक कैसा हो सकता है, क्योंकि समुद्रकोही कोई समुद्रसे पार नहीं उतार सकता, इसलिये जीवको संसारी कहना यह असंगत प्रतीत होता है ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—यदि जी-वका वास्तविक स्वरूपहो और वही संसरणधर्मवाला और मुक्त हो तो यह आपका प्रश्नाक्षेप संगत हो, परन्तु यह बात नहीं है किन्तु "ब्रह्मवाइदमग्रआसीत्" इत्यादि वाक्योंसे ब्रह्मकोही अपने स्वरूपके अज्ञानसे संसार और उसके ज्ञा-नसे मुक्ति, इस आशयसे वसिष्ठजी कहतेहैं कि जन्म और शरीरादि संघातरूपी जंगलमें विशीर्ण जो यह चेतन जीवहै इसको ज्ञानी और पण्डितजन आत्मा अर्थात् ब्रह्म कहते हैं, अर्थात् ब्रह्मही विवर्तरूपसे जीवहै ॥ १५ ॥ यह जीवही संसार चेतना और दुःखकी संतति है इसके ज्ञानसे कहीं कुछ नहीं होता ॥ १६ ॥

ज्ञायतेपरमात्माचेद्रामदुःखस्यसंततिः ॥ क्षयमेतिविषावेशशांताविवविषूचिका ॥ १७ ॥ श्रीरामउ-वाच ॥ रूपंकथयमेब्रह्मन्यथावत्परमात्मनः ॥ यस्मिन्दृष्टेमनोमोहान्समग्रान्संतरिष्यति ॥ १८ ॥

---

(१) "चिन्मात्रम्" यहां कर्ता अर्थमें क्विप् प्रत्यय करके चित्शब्दसे मात्र च् प्रत्यय होनेसे चिन्मात्र यह शब्द बनाहै उसका अर्थ यह होताहै कि चेतनवाला इस अभिप्रायको लेके रामचन्द्रजी शंका करते है ॥ (२) " चिदेवं " चिन्मात्रम् ॥ यहां कर्तामें क्विप् नहीं हैं किन्तु भावमें ॥ (३) रामचन्द्रजीके प्रश्नका आशय यहहै कि " चेतनंरामससंारजाविएषपशुःस्मृतः " इस वाक्यसे जीवहीको संसारी कहाहै यह असंगतहै क्योंकि जीवका ब्रह्मरूप कहनेसे ब्रह्मभी संसारी होजायगा, और यदि जीवकी ब्रह्मरूपमें प्राप्ति नहीं होती तो उसकेसाधन ज्ञानशास्त्रादि सब व्यर्थ जायंगे, इसलिये जीवका स्वरूप कुछ विलक्षण कहना चाहिये। इसीप्रकार जीवका आधार ब्रह्महै या अन्य, यदि ब्रह्म होतो ज्ञानसे ब्रह्ममें अध्वस्त सम्पूर्ण द्वैतकेसाथ बाध होनेसे बाधात न्याय होगा, अन्य होनेसे अद्वैतकी हानिहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देशाद्देशांतरंदूरंप्राप्तायाःसंविदोवपुः ॥ निमिषेणैवयन्मध्येतद्रूपंपरमात्मनः ॥१९॥ अत्यंताभावएवास्तिसंसारस्ययथास्थितेः ॥ यस्मिन्बोधमहांभोधौतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यदि परमात्माका ज्ञान होतो सम्पूर्ण दुःखकी सन्तति ऐसे क्षय होजाती है जैसे विषकी शान्तिमें विषकी महामारी ॥१७॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझसे परमात्माका रूप कहिये, जिसके ज्ञानसे सम्पूर्ण मनके मोहोंसे यह जीव पार होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—एकनिमिषमें एक देशसे दूर देशान्तरमें प्राप्त जो संवित् (ज्ञान) की शरीर है उन दोनों (निकट और दूर देशों) के मध्यमें जो ज्ञानका रूपहै वही परमात्माका रूप-है, निर्विषयज्ञान अप्रसिद्धहै इसलिये निर्विषय अनावृत जो अपरोक्ष चिद्रूपहै वही परमात्माका रूपहै ऐसा कहनेसे अनुभवमें नहीं आसकता इसलिये शाखाके अग्रभागमें चन्द्रमा देखनेमें निःसृत अन्तःकरणसे अभिव्यक्त अपरोक्ष ज्ञान शाखादेशसे चन्द्रदेश तक एकनिमिषमें अनुस्यूतहै क्योंकि इसके बिना शाखा और चन्द्रमाका एककालमें ग्रहण नहीं होसकता इसलिये शाखादेश और चन्द्रदेशका ज्ञान सविषय होनेसेभी दोनोंदेशके मध्यमें जो निर्विषय चित्‌रूप ज्ञानहै वही परमात्माका रूपहै ॥ १९ ॥ जिस ज्ञानरूप महासमुद्रमें नाशआदि विकारके विनाही अपने स्वरूपसे मिथ्यात्वदशामें प्राप्त जो जगत् अत्यन्ताभावहै वही ज्ञानका रूप परमात्माका रूपहै ॥ २० ॥

द्रष्टृदृश्यक्रमोयत्रस्थितोप्यस्तमयंगतः ॥ यदनाकाशमाकाशंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २१ ॥ अशून्यमिव यच्छून्यंयस्मिन्शून्यंजगत्स्थितम् ॥ सर्गौघेसतियच्छून्यंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २२ ॥ यन्महाचिन्मय मपिबृहत्पाषाणवत्स्थितम् ॥ जडंवाजडमेवांतस्तद्रूपंपरमात्मनः ॥२३॥ सबाह्याभ्यंतरंयेनसर्वसंप्रा-प्यसंगमम् ॥ स्वरूपसत्तामाप्नोतितद्रूपंपरमात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानस्वरूपमें द्रष्टा और दृश्यका क्रम स्थित रहतेभी अस्तमय होगयाहै, और जो आकाशका बाध होनेपरभी स्वयम् अपरिच्छिन्न बिशाल आकाशरूपहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २१ ॥ जो जगत्‌के स्वभासे शून्य रहतेभी सब वस्तुके यथार्थस्वरूपसे पूर्ण होनेसे अणुमात्रसेभी अशून्यके सदृशहै और सृष्टियोंके समूह जिसके अज्ञानसे प्रतीत होते हैं, इसलिये सत्‌रूप होकरभी जो शून्यके सदृश भान होताहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २२ ॥ जो महाचिन्मय होनेपरभी अज्ञानियोंकी दृष्टिसे बृहत्पाषाण, अथवा अन्तरमें जडके समान जो स्थितहै वही परमात्माका रूपहै॥२३॥अधिभूत, अधिदैव, और अध्यात्म शब्दसे जो कथित है उसके सहित सम्पूर्ण जगत्‌के संगम अर्थात् अध्यास सम्बन्धी अभेदको प्राप्तहोके जो सत्‌असत् इस व्यवहार योग्यताको प्राप्त होताहै वही परमात्माका रूपहै॥२४॥

प्रकाशस्ययथालोकःशून्यत्वंनभसोयथा॥तथेदंसंस्थितंयत्रतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सद्रूपंपरमात्मेतिकथंनामहिबुद्ध्यते ॥ इयतोस्यजगन्नाम्नोदृश्यस्यासंभवःकथम् ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ भ्रमस्यजागृतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ अत्यंताभावसंबोधेयदिरूढिरलंभवेत् ॥ २७ ॥ तज्ज्ञातंब्रह्मणोरूपंभवेन्नान्येनकर्मणा ॥ दृश्यात्यंताभावतस्तुऋतेनान्याशुभागतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार प्रकाशका आलोक, आकाशकी शून्यता, आत्माहै, इसीप्रकार सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थितहै, अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका जो आत्माहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले- जो वस्तु प्रमाणोंसे जैसी निश्चित होती है वह उसीरूपसे सत् होती है नकि रूपान्तरसे, और ब्रह्म प्रमाणोंसे नहीं भानहोता, इसलिये सत्‌रूप परमात्मा कैसे जानाजाताहै? और अनेक प्रमाणसिद्ध इस विशालरूप जगत्‌नामवाले दृश्यका असम्भव कैसे है ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले- आकाशमें जैसे नीलवर्णकी भ्रान्तिहै ऐसेही इस जगत्‌सम्बन्धी उत्पन्न भ्रमका अन्य-न्ताभाव निश्चित होनेसे प्रतिबन्धकी निवृत्तिसे महावाक्योंसे ब्रह्मका बोध होताहै और प्रतिबन्धकी निवृत्ति ब्रह्ममें अ-ध्यस्तद्वैतके मिथ्यात्वज्ञानसे होती है, क्योंकि सर्पादिकी भ्रान्तिकेबाध हुये विना रज्जुके रूपका बोध नहीं होसकता ॥ २७ ॥ दृश्यके अत्यन्ताभावको छोड ब्रह्मका रूप किसी कर्मसे नहींही होता, क्योंकि दृश्यके अत्यन्ताभावके सिवाय कोईभी शुभगति नहीं है ॥ २८ ॥

अत्यंताभावसंपत्तौदृश्यस्यास्ययथास्थितेः ॥ शिष्यतेपरमार्थोसौबुद्ध्यतेजायतेततः ॥ २९ ॥ नविदः प्रतिबिंबोस्तिदृश्याभावादृतेक्वचित् ॥ क्वचिन्नाप्रतिबिंबेनकिलादर्शोवतिष्ठते ॥ ३० ॥ जगन्नाम्नोस्य दृश्यस्यस्वसत्तासंभवंविना ॥ बुद्ध्यतेपरमंतत्त्वंनकदाचनकेनचित् ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ इयतो दृश्यजातस्यब्रह्मांडस्यजगत्स्थितेः ॥ मुनेकथमसत्तास्तिक्कमेरुःसर्षपोदरे ॥ ३२ ॥

अर्थ—दृश्यके अत्यन्ताभाव होनेसे शेषब्रह्मका ज्ञान होताहै, और जिसका ज्ञान होताहै, वह जाननेवाला आत्माही होजाताहै ॥२९॥ दृश्यके अत्यन्ताभावके विना बुद्धिमें ब्रह्मके प्रतिबिम्बका अभाव कहीं नहींहोता, बुद्धिमें प्रतिबिम्बित ब्रह्म अपने आवरण करनेवाले अज्ञानको जलाताहुआ यथार्थरूपसे जानाजाताहै, अध्यस्तजगत्की सत्यतामें ब्रह्मका प्रतिबिम्ब नहींहोता क्योंकि विरोधी द्वैतग्रस्त बुद्धिमें अद्वैतके प्रबिबिम्बका उदय नहींहोता. और जैसे दर्पण विना प्रतिबिम्ब ग्रहण किये नहीं रहता ऐसेही बुद्धिभी विना प्रतिबिम्बके कदापि नहीं रहसकती ॥ ३० ॥ इस जगत्नामवाले दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयके बिना परमतत्व ब्रह्मको कभी किसीने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! इतने बिशाल परिमाणवाले इस जगत्नामक दृश्यकी सत्ताका अत्यन्तभाव कैसे ? भला कहीं सर्षप (सर्सों) के उदरमें सुमेरुपर्वत कभी रहसकताहै ॥ ३२ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दिनानिकतिचिद्रामयदितिष्ठस्यखिन्नधीः ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरमस्तदहंक्ष णात् ॥ ३३ ॥ प्रमार्जयामितेदृश्यंबोधेमृगजलंयथा ॥ दृश्याभावेद्रष्टृताचशाम्येद्बोधोवशिष्यते ॥ ३४ ॥ द्रष्टृत्वंसतिदृश्येस्मिन्दृश्यत्वंसत्यथेक्षके ॥ एकत्वंसतिद्वित्वेद्वित्वंचैकत्वयोजने ॥ ३५ ॥ एकाभा वेद्वयोरेवसिद्धिर्भवतिनात्रहि ॥ द्वित्वैक्यद्रष्टृदृश्यत्वक्षयेसदवशिष्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यदि कुछदिन सत्शास्त्र और साधुसमागमतत्पर अखिन्नचित्त मेरे सम्मुख स्थित रहोगे तो मैं क्षणभरमें तुमारे चित्तसे दृश्यको ऐसे मार्जन (साफ) करदूंगा जैसे ज्ञानसे मृगतृष्णाका जल और दृश्यके अभावसे द्रष्टृताभी शान्त होजाती है और उसके अनन्तर केवल बोधमात्र शेष रहताहै ॥ ३३ ॥ ॥३४॥ दृश्यकी सत्ता द्रष्टृत्व, द्रष्टासत्तासे दृश्यत्व, एकत्वसे द्वित्व, और द्वित्वआदिको प्रसिद्धिसे एकत्वभी कल्पितहै ॥ ३५ ॥ एकके अभाव होनेसे दोनोंकी सिद्धि नहीं होसकती, द्वित्व, एकत्व, द्रष्टृत्व और दृश्यत्वके क्षयहोनेपर केवल सत्मात्र शेष रहताहै ॥ ३६ ॥

अहंतादिजगदृश्यंसर्वंतेमार्जयाम्यहम् ॥ अत्यंताभावसंवित्त्यामनोमुकुरतोमलम् ॥ ३७ ॥ नासतो विद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ यत्तुनास्तिस्वभावेनकःक्लेशस्तस्यमार्जने ॥ ३८ ॥ जगदादावनुत्प न्नंयच्चेदंदृश्यतेततम् ॥ तत्स्वात्मन्येवविमलेब्रह्मचित्त्वात्स्ववृंहितम् ॥ ३९ ॥ जगन्नाम्नानचोत्पन्नंनचा स्तिनचदृश्यते ॥ हेम्नीवकटकादित्वंकिमेतन्मार्जनेश्रमः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमारे मनरूपी दर्पणसे अत्यन्ताभावके सम्पादनसे अहन्ताआदि जगत् दृश्यरूपी सम्पूर्ण मल मैं मार्जन करूंगा. असत् पदार्थकी सत्ता नहीं और सत्[1]पदार्थका कभी अभाव नहीं, जो जगत् स्वभावसेही नहीं है उसके मार्जनमें क्या क्लेशहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह प्रथम उत्पन्न नहीं हुआ, जो कुछ यह व्याप्त देखपडताहै वह विमल स्वात्माहीमें ब्रह्मकी चित्तासे वृद्धिको प्राप्तहै ॥३९॥ यह जगत् नामसे न उत्पन्न हुआ, न है, और न यथार्थ दृष्टिसे यह दिखताहै, क्योंकि सत्की उत्पत्ति व्यर्थ है, और असत्का असंभवहै, इसलिये सुवर्णमें कटक आदिके समान कल्पितहै उसके मार्जनमें क्या क्लेशहै ॥ ४० ॥

तथैतद्विस्तरेणाहंवक्ष्यामिबहुयुक्तिभिः ॥ अबाधितंयथातत्त्वंस्वयमेवानुभूयते ॥ ४१ ॥ आदावेवहि नोत्पन्नंयत्तस्येहास्तिताकुतः ॥ कुतोमरौजलसरिद्द्वितीयेंदोःकुतोग्रहः ॥ ४२ ॥ यथावंध्यासुतोनास्ति यथानास्तिमरौजलम् ॥ यथानास्तिनभोवृक्षस्तथानास्तिजगद्भ्रमः ॥ ४३ ॥ यदिदंदृश्यतेरामतद्ब्रह्मैव निरामयम् ॥ एतत्पुरस्ताद्वक्ष्यामियुक्तितोनगिरैवच ॥ ४४ ॥ यन्नामयुक्तिभिरिहप्रवदंतितज्ज्ञास्तन्ना वहेलनमयुक्तमुदारबुद्धे ॥ योयुक्तियुक्तमवमत्यविमूढबुद्धिःकष्टाग्रहोभवतितंविदुरज्ञमेव ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे
जगदादिदृश्यासत्ताप्रतिज्ञानाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—ब्रह्मतत्व अबाधित रूपसे जिसप्रकार स्वयम् अनुभूत होताहै वह प्रकार अनेक, युक्तियोंसे बिस्तार पूर्वक कहुंगा ॥ ४१ ॥ जो पदार्थ प्रथम नहीं उत्पन्न हुआ, उसकी अस्तिता वा ग्रहण यहां कैसे होसकताहै ? मरुस्थ-

---

(१) असत् पदार्थकी सत्ताको न बिकार न विवर्त और न स्वरूप कहसकते हैं और न विकार विवर्तस्वरूप यह तीनों मिलित कहसकतेहैं, क्योंकि ख (आकाश) का पुष्प इत्यादि तीनोंकाभी असंभवहै इससे अनिर्वचनीय सिद्धहुआ, इसके क्लेश करनेमें कुछभी क्लेश नहीं.

लमें जलकी नदी कहां ? और कहां दूसरे चन्द्रमाका ग्रहण ? ॥ ४२ ॥ जैसे वन्ध्याके पुत्र, मरुस्थलमें जल, और आकाशमें वृक्ष नहीं है वैसाही वास्तविकमें जगत्का भ्रमभी नहीं है ॥ ४३ ॥ हे राम ! जो जो कुछ यह देख पडताहै यह निरामय ब्रह्मरूपही है यह पीछे मैंने केवल वाणीसे किन्तु आख्यान आदि उपपत्तिरूप युक्तियोंसेभी कहुंगा ॥ ४४ ॥ हे उदार बुद्धे रामजी ! जिस विषयको पण्डित जन अनेक युक्तियोंसे सिद्ध करके कहते हैं उसमें अनादर करना अयुक्त है जो मूढबुद्धिप्राणी युक्तियुक्त वस्तुका अनादर करके युक्तिशून्य कष्टपदार्थमें आग्रह करता है उसकोही पण्डित अज्ञ कहतेहैं ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जगदादि दृश्यासत्ताप्रतिज्ञानाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त तत्वका ज्ञान सत्शास्त्रोंहीसे होताहै अन्यसे नहीं और सत्शास्त्रोंमेभी यह ग्रन्थसद्यः फलदायकहै इस विषयका वर्णन इस ८ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कथंतज्ज्ञायतेयुक्त्याकथमेतत्प्रसिध्यति ॥ न्यायानुभूतएतस्मिन्नज्ञेयमवशिष्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुकालमियंरूढामिथ्याज्ञानविषूचिका ॥ जगन्नाम्न्यविचाराख्याविना ज्ञानंनशाम्यति ॥ २ ॥ वदाम्याख्यायिकाराममयाइमाबोधसिद्धये ॥ ताश्चेच्छृणोषितत्साधोमुक्तएवासि बुद्धिमान् ॥ ३ ॥ नोचेदुद्वेगशीलत्वादर्द्धादुत्थायगच्छसि ॥ तत्तिर्यग्धर्मिणस्तेद्यनकिंचिदपिसेत्स्यति॥४

अर्थ—श्रीरामजी बोले- हे भगवन् ! किस युक्तिसे यह जाना जाताहै और कैसे यह प्रसिद्ध होताहै क्योंकि न्यायसे अनुभूत इस पदार्थमें कुछ ज्ञेय शेष नहीं रहता ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले- इस जगत्के नाममें अविचार नामवाली मिथ्या अज्ञानरूप विषूचिका (महामारी) बहुत दीर्घकालसे वृद्धिको प्राप्त होरही है, यह ज्ञानकेबिना नष्ट नहीं होती ॥२॥ हे रामजी ! बोध (ज्ञान) की सिद्धिकेलिये जिन युक्तिप्रधान आख्यायिकाओंको मैं कहूंगा, हे साधो ! यदि उनको सावधान चित्त होके सुनोंगे तो तुम अपनेको बुद्धिमान् और मुक्तही समझो ॥ ३ ॥ और यदि उद्विग्न स्वभाव होनेके कारण नहीं सुनोंगे किन्तु अधूरेहीमें उठके चलदोगे तो पशुआदिके धर्म (सत्शास्त्रादिके श्रवणकी अयोग्यता) वाले आपको कुछ नहीं सिद्ध होगा ॥ ४ ॥

योयमर्थंप्रार्थयतेतदर्थंयततेतथा ॥ सोवश्यंतदवाप्नोतिनचेच्छ्रांतोनिवर्तते ॥ ५ ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरोभवसिरामचेत् ॥ तद्दिनैरेवनोमासैःप्राप्नोषिपरमंपदम् ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मज्ञानप्रबोधायशास्त्रंशास्त्रविदांवर ॥ किंनामतत्प्रधानंस्याद्यस्मिन्ज्ञातेनशोच्यते ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आत्मज्ञानप्रधानानामिदमेवमहामते ॥ शास्त्राणांपरमंशास्त्रंमहारामायणंशुभम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो प्राणी जिस वस्तुकी प्रार्थना करताहै और उसकेलिये वैसाही उद्योगभी करताहै तो यदि वह शान्त होके उद्योगसे निवृत्त न होजाय तो अवश्य उस वस्तुको पाताहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यदि साधुसमागम और सत्शास्त्रमें तत्पर होतेहो तो महीनोंमें नहीं किन्तु दिनोंमें परमपदको पावोंगे ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले-हे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ट ! आत्मज्ञानके प्रबोधकेलिये प्रधानशास्त्र कौनहै ? जिसके जाननेसे प्राणी पुनः शोक नहींकरता ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे महामते रामजी ! आत्मज्ञानकेलिये प्रधानशास्त्रोंमें यही महारामायण सबसे परम उत्तमहै ॥ ८ ॥

इतिहासोत्तमादस्माच्छ्रुताद्बोधःप्रवर्तते ॥ सर्वेषामितिहासानामयंसारउदाहृतः ॥ ९ ॥ श्रुतेस्मिन्वाङ्मयेयस्माज्जीवन्मुक्तत्वमक्षयम् ॥ उदेतिस्वयमेवातइदमेवातिपावनम् ॥ १० ॥ स्थितमेवास्तमायातिजगद्दृश्यंविचारणात् ॥ यथास्वप्नेपरिज्ञातेस्वप्नादावेवभावना ॥ ११ ॥ यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित् ॥ इमंसमस्तविज्ञानशास्त्रकोशंविदुर्बुधाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस उत्तम इतिहासके श्रवण करनेसे ज्ञान अवश्य होताहै, क्योंकि सब इतिहासोंमें यह सार कहागयाहै ॥ ९ ॥ इस वाक्यसन्दर्भरूपग्रन्थको सावधानीसे सुननेपर अक्षय जीवन्मुक्तिता स्वयमेव उदय होतीहै ॥ १० ॥

यह जगत् ज्योंकात्योंही स्थित इसके विचारसे ऐसे अस्त होजाताहै जैसे स्वप्नके ज्ञानसे स्वप्नादिकी भावना ॥ ११ ॥ जो इस शास्त्रमें है वह अन्यमें नहींहै, और जो इसमें नहीं वह अन्यशास्त्रमें कहींनहीं, इसलिये पण्डितोंने इसको विज्ञानशास्त्रोंका कोश कहाहै ॥ १२ ॥

यइदंशृणुयान्नित्यंतस्योदारचमत्कृतेः ॥ बोधस्यापिपरंबोधंबुद्धिरेतिनसंशयः ॥ १३ ॥ यस्मैनेदंत्वरुचयेरोचतेदुष्कृतोदयात् ॥ विचारयतुयत्किंचित्सच्छास्त्रंज्ञानवाङ्मयम् ॥ १४ ॥ जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तुश्रुतेसमनुभूयते ॥ स्वयमेवयथापीतेनीरोगत्वंवरौषधे ॥ १५ ॥ श्रूयमाणेहिशास्त्रेस्मिन्श्रोतावेत्त्येतदात्मना ॥ यथावदिदमस्माभिर्नन्वूक्तंवरशापवत् ॥ १६ ॥ नश्यतिसंसृतिदुःखमिदंतेस्वात्मविचारणयाकथयैव ॥ नोधनदानतपःश्रुतवेदैस्तत्कथनोदितयत्नशतेन ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिरूपणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो इस ग्रन्थको नित्य श्रवण करताहै उस उदार चमत्कारवाले पुरुषको बुद्धि अन्यग्रन्थोंसे जो बोध होताहै उससेभी परमउत्तम बोधको प्राप्तहोती है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषको पापके उदयसे यह शास्त्र अच्छा न लगे वह दूसरा ज्ञान प्रतिपादकसच्छास्त्रका विचारकरै, इसमें हमको कुछ द्वेष नहीं है ॥ १४ ॥ इस ग्रन्थके सुननेसे स्वयमेव जीवन्मुक्तिका अनुभव ऐसे होताहै जैसे उत्तम औषधके पीनेसे निरोगिताका ॥ १५ ॥ इसके श्रवण करनेसे श्रोता जीवन्मुक्तिको अपने आत्मासे जाननेलगताहै यह हमने यथार्थ वर या शापके समान कहदी, अर्थात् शाप या वरदान जैसे लगताहै वैसाही इस ग्रन्थके सुननेको प्रभाव होताहै ॥ १६ ॥ हे रामजी ! स्वात्मविचाररूपी इस कथासे संसारका दुःख नष्टहोताहै और धन, दान, तप, वेदादिका श्रवण, पठन, पाठन, तथा सैकडों यज्ञोंसेनहीं ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिरूपणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जीवन्मुक्तिके लक्षण, जीवन्मुक्तकी सर्वात्मता, तथा जगत्के प्रलयमें शेष आत्माका स्वरूप इन विषयोंका वर्णन इस नवम ९ सर्गमें कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तच्चितास्तद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम् ॥ कथयंतश्चतन्नित्यंतुष्यंतिचरमंतिच ॥१॥ तेषांज्ञानैकनिष्ठानामात्मज्ञानविचारिणाम् ॥ साजीवन्मुक्ततोदेतिविदेहान्मुक्ततैवया ॥ २ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्विदेहमुक्तस्यजीवन्मुक्तस्यलक्षणम् ॥ ब्रूहियेनतथैवाहंयतेशास्त्रदृशाधिया ॥३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथास्थितमिदंयस्यव्यवहारवतोपिच ॥ अस्तंगतंस्थितंव्योमजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले— ब्रह्ममेंही जिनका चित्त और प्राण लगाहै जो परस्पर ब्रह्मकाही बोध न करतेहैं और ब्रह्मकेही कथनमें जो संतुष्ट होतेहैं, और ब्रह्ममेंही जो रमण करतेहैं ॥ १ ॥ ऐसे आत्मज्ञान विचारशील केवल ज्ञानमें निष्ठपुरुषोंको वह जीवन्मुक्तता उदय होती है जैसे विदेह मुक्तिमें ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले– हे ब्रह्मन् ! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तके लक्षण कहिये जिससे शास्त्ररूपी दृष्टिसे उत्पन्न बुद्धिसे मैंभी वैसाही होनेकेलिये प्रयत्न करूं ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले– शास्त्रके अनुकुल व्यवहार करनेवालेभी जिस पुरुषकी दृष्टिमें यथास्थित यह संसार परमार्थ दृष्टिसे मिथ्यारूप होनेसे अस्तगत आकाशवत् शून्यभान होताहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ४ ॥

बोधैकनिष्ठतांयातोजाग्रत्येवसुषुप्तवत् ॥ यआस्तेव्यवहर्तैवजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ५ ॥ नोदेतिनास्तमायातिसुखेदुःखेमुखप्रभा ॥ यथाप्राप्तस्थितंव्योमजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ६ ॥ योजागर्तिसुषुप्तस्थोयस्यजाग्रन्नविद्यते ॥ यस्यनिर्वासनोबोधःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ७ ॥ रागद्वेषभयादीनामनुरूपंचरन्नपि ॥ योंतर्व्योमवदच्छस्थःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जो पुरुष यथावत् व्यवहार करताहुआभी वास्तविकमें मैं कुछ नहीं करता ऐसा निश्चय रखताहै, और जाग्रत् दशामेंभी सुषुप्तकेसमान निर्विकार आत्मामें स्थित रहताहै वह जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ५ ॥ जिसके मुखकी दीप्ति सुखमें न उदय होती है और न दुःखमें अस्त होती है, तथा यथा प्राप्त वस्तुसे जो संतुष्ट रहताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ६ ॥ जो निर्विकार आत्मामें सुषुप्तकेसमान स्थित रहताहै और अविद्यारूप निद्राके नाशसे जो आत्मामें सर्वदा जागता रहताहै और देहेन्द्रिय आदिके बाध होनेसे इन्द्रियोंसे विषयोंकी प्राप्तिरूप जाग्रतअवस्था जिसको नहीं है, तथा वासनारहित जिसका बोधहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं जो राग, द्वेष, और भय आदिके अनुरूप (यथोचित) व्यवहार करताहुआभी, आकाशके सदृश निर्मल आत्मामें स्थितहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ८ ॥

यस्यनाहंकृतोभावोयस्यबुद्धिर्नलिप्यते ॥ कुर्वतोऽकुर्वतोवापिसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ९ ॥ यस्योन्मेष निमेषार्द्धाद्विदःप्रलयसंभवौ ॥ पश्येत्रिलोक्याःस्वसमःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १० ॥ यस्यनोद्विजते लोकोलोकान्नोद्विजतेचयः ॥ हर्षामर्षभयोन्मुक्तःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ११ ॥ शांतसंसारकलनःकला वानपिनिष्कलः ॥ यःसचित्तोपिनिश्चित्तःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसको अहंकार नहीं है तथा कार्य्य करतेहुये वा न करतेहुये जिसकी बुद्धि कर्तृत्व अकर्तृत्वरूपसे लिप्त- नहीं होती उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ९ ॥ जिस चिदात्माके अर्द्धआवरणके विघटन (कल्पित कटाक्षके खोलने) से तीनोंलोकका प्रलय, और जिसके आवरणसे तीनोंलोककी उत्पत्ति जो देखताहै, तथा अपने आत्मामें जो समहै उ- सको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १० ॥ जिससे संसारको कुछ भय न हो और जो संसारसे भय न करताहो, तथा जो हर्ष, क्रोध और भयके अभिमानसे रहितहो उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ११ ॥ संसारकी सत्यताबुद्धि जिसकी नष्टहोगई है, और जो अन्यकी दृष्टिमें शरीरधारी होतेहुयेभी स्वयं शरीरके अभिमानसे रहितहै, तथा चित्तसहित होनेपरभी य- थार्थमें निर्मनस्क (चित्तरहित) जो है उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १२ ॥

यःसमस्तार्थजातेषुव्यवहार्यपिशीतलः ॥ पदार्थेष्वपिपूर्णात्मासजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १३ ॥ जीवन्मु क्तपदंत्यक्त्वादेहेकालवशीकृते ॥ विशत्यदेहमुक्तत्वंपवनोस्पंदतामिव ॥ १४ ॥ विदेहमुक्तोनोदेति नास्तमेतिनशाम्यति ॥ नसन्नासन्नदूरस्थोनचाहंनचनेतरः ॥ १५ ॥ सूर्योभूत्वाप्रतपतिविष्णुःपाति जगत्त्रयम् ॥ रुद्रःसर्वान्संहरतिसर्गान्सृजतिपद्मजः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो सम्पूर्णपदार्थोंमें यथोचित व्यवहारी होनेपरभी शीतल अर्थात् रागादिके तापसे रहितहै, क्योंकि रा- गादिके विषयभूत जो पदार्थ हैं उनमेंभी पूर्णात्मा (उनकाभी आत्मा) है उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ १३ ॥ जीव- न्मुक्तिके पदको त्यागके प्रारब्धके क्षय होनेपर इस शरीरके कालके वश (नष्ट) होनेपर यह पुरुष विदेहमुक्तिमें ऐसे प्रवेश करताहै जैसे वायुगतिमें ॥ १४ ॥ विदेहमुक्त पुरुष न उदय न अस्त होताहै, न शान्त होताहै, न वह व्यक्त न अव्यक्तहै न "अहं" (हम) "नाहं" (हम नहीं,) और न अन्य, इत्यादि व्यवहार विदेहमुक्तमें नहींहोते ॥१५॥ वह सूर्य्यहोके तपताहै विष्णुहोके तीनोंलोकका पालन करताहै, रुद्रहोके सबका संहार करताहै, और ब्रह्माहोके सृष्टियोंकी रचना करताहै ॥ १६ ॥

खंभूत्वापवनस्कंधंधत्तेसर्षिसुरासुरम् ॥ कुलाचलगतोभूत्वालोकपालसुरास्पदः ॥ १७ ॥ भूमिर्भूत्वा बिभर्त्तीमांलोकस्थितिमखंडिताम् ॥ तृणगुल्मलताभूत्वाददातिफलसंततिम् ॥ १८ ॥ बिभ्रज्जलान लाकारंज्वलतिद्रवतिद्रुतम् ॥ चंद्रोमृतंप्रसवतिमृतंहालाहलंविषम् ॥ १९ ॥ तेजःप्रकटयत्याशास्तनो त्यांध्यंतमोभवत् ॥ शून्यंसव्द्योमतामेतिगिरिःसन्रोधयत्यलम् ॥ २० ॥

अर्थ—पवन स्कन्धसा आकाश होके ऋषिसहित देवता और दैत्योंको धारण करताहै, और सुमेरु होके लोकपालोंके पुरका स्थान होताहै ॥ १७ ॥ पृथिवी होके अखण्डित लोकमर्य्यादाको धारण करताहै, तृण, गुल्म, वृक्ष लतादि होके फलोंके समूहको देताहै ॥ १८ ॥ अग्नि और समुद्र आकार धारण करके शीघ्र जलताहै और द्रवता है चन्द्रमा होके अमृत उत्पन्न करताहै, और हालाहल विष होके मृत्यु करताहै ॥१९॥ तेज होके दिशाओंको प्रगट करताहै, अन्धकार होके अन्धता करताहै, शून्य होके आकाशस्वरूप होताहै और पर्वत होके भलीभाँति रोकताहै ॥२०॥

करोतिजंगमंचित्तःस्थावरंस्थावराकृतिः ॥ भूत्वार्णवोवलयतिभूस्त्रियंवलयोयथा ॥ २१ ॥ परमार्कवपु र्भूत्वाप्रकाशांतंविसारयन् ॥ त्रिजगत्त्रसरेण्वोघंशांतमेवावतिष्ठते ॥ २२ ॥ यत्किंचिदिदमाभातिभातं भानमुपैष्यति ॥ कालत्रयगतंदृश्यंतदसौसर्वमेवच ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमेवंवदब्रह्मन्भूय तेविषमाहिमे ॥ दृष्टिरेषाथदुष्प्राप्याद्दुराक्रम्येतिनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—स्फुट अन्तःकरणमें अभिव्यक्त चैतन्यसे जंगम बनाताहै, अस्फुटचेतन (जडाकृति) होके स्थावर बनाताहै और समुद्र होके पृथिवीरूप स्त्रीको कटक (कडा) पहिनाताहै ॥ २१ ॥ आवरणरहित चेतन होके अपने प्रकाशसे व्याप्त तीनोंलोकको त्रसरेणुओंके समूहको विस्तार करताहुआ स्वयं निर्विकार शान्तरूपही रहताहै ॥ २२ ॥ जो कुछ यह भान होताहै होगया वा होगा, वह तीनों कालगत सर्व दृश्य वही है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! यह (पूर्वोक्त विदेहमुक्ति) तो दुष्प्राप्यहै, कहिये यह कैसे होसकती है क्योंकि यह दृष्टि अति विषम है, और किसी प्रकार प्राप्तभी होजाय तौभी चित्तकी चंचलतासे यह दुरारोह जमनेमें कठीनहै, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुक्तिरेषोच्यतेरामब्रह्मैतत्समुदाहृतम् ॥ निर्वाणमेतत्कथितंशृणुतत्प्राप्यतेकथम् ॥ २५ ॥ यदिदंदृश्यतेदृश्यमहंत्वंतादिसंयुतम् ॥ सतोप्यस्यात्यनुत्पत्त्याबुद्ध्यैतदवाप्यते ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विदेहमुक्तास्त्रैलोक्यंसंपद्यंतेयदातदा ॥ मन्येतेसर्गतामेवगतावेद्यविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विद्यतेचेत्त्रिभुवनंतत्तांसंप्रयांतुते ॥ यत्रत्रैलोक्यशब्दार्थोनसंभवतिकश्चन॥२८॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह मैंने आपसे मुक्ति, ब्रह्म, और निर्वाणका स्वरूप कहाहै, यह कैसे प्राप्त होती है सो अब सुनिये ॥ २५ ॥ हे रामजी ! अहन्ता और स्वन्ताआदि संयुक्त जो कुछ यह दृश्यभान होताहै, यद्यपि यह सत्‌रूपके दृश भासताहै तथापि बन्ध्यापुत्रके समान उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसे ज्ञानसे यह प्राप्त होताहै ॥२६॥ श्रीरामजी बोले—हे वेद्य पदार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! विदेहमुक्त, प्राणी जब त्रैलोक्यदशाको प्राप्त होते हैं तो वे संसार भावकोही प्राप्त हुये ऐसा मैं मानताहूं ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठ बोले-यदि त्रिलोक कोई वस्तु होतो विदेह मुक्त संसार दशा-को प्राप्तहो, जब त्रिलोकशब्दका कुछ अर्थही नहीं ॥ २८ ॥

एतत्रिलोकतांयातंब्रह्मेत्युक्तार्थधीःकुतः ॥ तस्मान्नोसंभवत्येषाजगच्छब्दार्थकल्पना ॥ २९ ॥ अनन्यच्छांतमाभासमात्रमाकाशनिर्मलम् ॥ ब्रह्मैवजगदित्येतत्सर्वंसत्वावबोधतः ॥ ३० ॥ अहंहिहेमकटकेविचार्यापिनदृष्टवान् ॥ कटकत्वंकचिन्नामऋतेनिर्मलहाटकात् ॥ ३१ ॥ जलादृतेपयोवीचौनाहंपश्यामिकिंचन ॥ वीचित्वंतादृशंदृष्टंयत्रनास्त्येवतत्रहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—तो ब्रह्म त्रैलोक्यदशाको प्राप्तहुआ यह आपकी कही हुई बुद्धि कैसे होसकती है इसलिये जगत् शब्दके अर्थकी कल्पनाका सम्भव नहीं ॥ २९ ॥ अद्वय शान्त चिन्मात्र, आकाशके समान निर्मल ब्रह्मही सन्मात्रके बोधकसे यह सम्पूर्ण जगत्‌रूपहै ॥ ३० ॥ सुवर्णकेकडेमें निर्मलसुवर्णके सिवाय कटत्व (सोनेसे अलग कडाका धर्म) बिचारसेभी नहीं देखा ॥ ३१ ॥ जलके तरंगमें जलके सिवाय और कुछ नहीं मैं देखता, और जहां तरंग नहीं है वही भी जलको छोडके और कुछ नहीं ॥ ३२ ॥

स्पंदत्वंपवनादन्यन्नकदाचनकुत्रचित् ॥ स्पंदएवसदावायुर्जगत्तस्मान्नभिद्यते ॥ ३३ ॥ यथाशून्यत्वमाकाशेतापएवमरौजलं ॥ तेजएवसदालोकेब्रह्मैवत्रिजगत्तथा ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अत्यंताभावसंपत्त्याजगद्दृश्यस्यमुक्तता ॥ ययोदेतिमुनेयुक्त्यातांममोपदिशोत्तमाम् ॥ ३५ ॥ मिथःसंपन्नयोर्द्रष्टृदृश्ययोरेकसंख्ययोः ॥ द्वयाभावेस्थितियातेनिर्वाणमवशिष्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—वायुसे अतिरिक्त (अलग) वायुकी गति कहीं कुछ नहीं, और स्पन्द (वायुकी गति) जो है वह सदा वायुरूपही है, इसलिये ब्रह्मसे जगत्‌का कुछभी भेद नहीं (अर्थात् ब्रह्मरूपही है) ॥ ३३ ॥ जिसप्रकार शून्यता आकाशमें मरुस्थलमें उष्णताही जल और प्रकाश तेजरूपहै इसीप्रकार त्रैलोक्य ब्रह्मरूपही है ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले—हे मुने ! जगत्‌रूप दृश्यके बाधसे जिसप्रकार मुक्तिका उदय होताहै वह युक्ति मुझसे कहिये ॥ ३५ ॥ जगत्‌के बाधसे अवशिष्ट (बचेहुये) स्वप्रकाश आत्मभावको प्राप्त द्रष्टा और दृश्य जब एक संख्यायुक्त होजातेहैं, और दोनोंका अभाव जब स्थिर होजाताहै तब केवल निर्वाण (मोक्ष) अवशेष (बाकी) रहजाताहै ॥ ३६ ॥

दृश्यस्यजगतस्तस्मादत्यंतासंभवोयथा ॥ ब्रह्मैवेत्थंस्वभावस्थंबुद्ध्यतेवदमेतथा ॥ ३७ ॥ कथैतज्ज्ञायतेयुक्त्याकथमेतत्प्रसिद्ध्यति ॥ एतस्मिंस्तुमुनेसिद्धेनसाध्यमवशिष्यते ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुकालमियंरूढामिथ्याज्ञानविषूचिका ॥ नूनंविचारमंत्रेणनिर्मूलमुपशाम्यति ॥ ३९ ॥ नशक्यतेझटित्येषासमुत्सादयितुंक्षणात् ॥ समप्रपतनेह्यद्रौसमरोहावरोहणे ॥ ४० ॥

---

१ ब्रह्मको सर्वात्मरूपनिरूपण करनेसे ब्रह्मकी प्राप्ति संसारकीही प्राप्तिहुई इस अभिप्रायसे रामजी शंका करते हैं ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! इसलिये जिसप्रकार इस जगत्का अत्यन्त असम्भवहो, और यह जगत्का इस स्वभावस्थ ब्रह्मरूपही है यह बात जिसप्रकार जानीजाय वह कृपा करके कहिये ॥ ३७ ॥ यह वार्ता किस युक्तिसे जानीजाय और यह कैसे सिद्धहो, हे मुने ! इस बातके सिद्ध होनेसे कुछ साध्य अवशेष नहीं रहजाता ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठ बोले-हे रामजी ! यह मिथ्या अज्ञानरूपी विषूचिका (महामारी) बहुत चिरकालसे रूढहै यह ज्ञानरूपी मंत्रसे मूलसे शान्त होजाती है ॥ ३९ ॥ इसको शीघ्रही क्षणभरमें उखाडके नहीं फेकसकते, क्योंकि जिस पर्वतका उतार चढाव चारोंओरसे बराबरहै उस पर्वतपर चढेहुये मनुष्यको उतरने चढनेमें समय बराबर लगताहै ॥ ४० ॥

तस्मादभ्यासयोगेनयुक्त्यान्यायोपपत्तिभिः ॥ जगद्भ्रांतिर्यथाशाम्येत्तवेदंकथ्यतेशृणु ॥ ४१ ॥ वक्ष्याम्याख्यायिकांरामयामिमांबोधसिद्धये ॥ तांचेच्छृणोषितत्साधोमुक्तएवासिबोधवान् ॥ ४२ ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणंमयेदंतवकथ्यते ॥ यत्किलोत्पद्यतेरामतेनमुक्तेनभूयते ॥ ४३ ॥ इयमित्थंजगद्भ्रांतिर्भात्यजातैवखात्मिका ॥ इत्युत्पत्तिप्रकरणेकथ्यतेऽस्मिन्मयाधुना ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये अभ्यासके योगसे युक्तिसे और न्याययुक्त उपपत्तियों (युक्तियों) से जैसे जगत्की भ्रान्ति शान्तहोगी वह मैं आपसे कहताहुं आप सुनिये ॥ ४१ ॥ हे साधो रामजी ! यह जगत् प्रलयकी आख्यायिका बोधकी सिद्धिकेलिये मैं कहुंगा इसको यदि सावधान चित्तहोके आप सुनोगे तो अपनेको ज्ञानयुक्त मुक्तही समझो ॥ ४२ ॥ जगत् प्रलयकी आख्यायिकाके अनन्तर मैं उत्पत्तिक्रम कहूंगा, हे रामजी ! यहभी मैं कहूंगा कि जो उत्पन्न होताहै उस २ पदार्थसे आत्मा मुक्तस्थित रहताहै ॥ ४३ ॥ यह शून्य आकाशरूप जगत्की भ्रान्तिविना उत्पन्नहुई इसीप्रकार भान होती है, इस बातको अब मैं उत्पत्तिप्रकरणमें कहूंगा ॥ ४४ ॥

यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यंससुरासुरकिंनरम् ॥ ४५ ॥ तन्महाप्रलयेप्राप्तेरुद्रादिपरिणामिनि ॥ भवत्यसदृश्यात्मकापियातिविनश्यति ॥ ४६ ॥ ततस्तिमितगंभीरंनतेजोनतमस्ततम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंसत्किंचिदवशिष्यते ॥ ४७ ॥ नशून्यंनापिचाकारंनदृश्यंनचदर्शनम् ॥ नचभूतपदार्थौघोयदनंततयास्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—सब प्रकारसे परिपूर्ण सुर असुर और किन्नर सहित, स्थावर जंगमात्मक यह सम्पूर्ण जगत् जो कुछ देख पडताहै वह रुद्रआदिका तिरोभाव करनेवाले महाप्रलय प्राप्त होनेपर नष्ट होजाताहै असत् और अदृश्यात्मा न जाने कहां चलाजाताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसके अनन्तर स्तिमित (शान्त) गम्भीर, न तेज, न तम अनाख्य और अनभिव्यक्त (नाम तथा रूपसे वर्जित) जो सन्मात्र है वह अवशेष रहजाताहै ॥ ४७ ॥ जो अनन्तताके (चिन्मात्र) से स्थित है वह न शून्यहै न आकारवान् है, न दृश्य है, न दर्शन ॥ ४८ ॥

किमप्यव्यपदेशात्मपूर्णात्पूर्णतराकृति ॥ नसन्नासन्नसदसन्नभावोभवनंनच ॥ ४९ ॥ चिन्मात्रंचेत्यरहितमनंतमजरंशिवम् ॥ अनादिमध्यपर्यंतंयदनादिनिरामयम् ॥ ५० ॥ यस्मिन्जगत्प्रस्फुरतिदृष्टमौक्तिकहंसवत् ॥ यश्चेदंयश्चनैवेदंदेवःसदसदात्मकः ॥ ५१ ॥ अकर्णजिह्वानासात्वङ्नेत्रःसर्वत्रसर्वदा॥ शृणोत्यास्वादयतियोजिघ्रेत्स्पृशतिपश्यति ॥ ५२ ॥

अर्थ—कुछ अव्यय देश्यात्मा (जिसका निरूपण यह ऐसाहै इसरीतिसे न होसके) अर्थात् न सत् है न असत् है और न सत् असत् उभयरूप है और न भाव है न उत्पत्ति है ॥ ४९ ॥ जो चिन्मात्र विषयरहित, अनन्त, अजर शिव आदि अन्त मध्य रहितहै ॥ ५० ॥ मुक्ता (मोती) और हंसे २ रूपमें परिणत हंसके समान यह जगत् जिस स्वरूपमें स्फुरताहै जो सद् असदात्मक देव यद संसाररूप हैभी और नहींभी है॥५१॥ जो कर्ण, जिव्हा, नासिका, त्वक् और नेत्ररहित होनेपरभी सदा और सब स्थानोंमें सुनताहै, स्वाद लेताहै, सूंघताहै, स्पर्श करताहै और देखताहै ॥५२॥

सएवसदसद्रूपंयेनालोकेनलक्ष्यते ॥ सर्गचित्रमनाद्यंतंस्वरूपंचाप्यरंजनम् ॥ ५३ ॥ अर्द्धोन्मीलितदृश्यभ्रूमध्येतारकवज्जगत् ॥ व्योमात्मैवसदाभासंस्वरूपंयोभिपश्यति ॥ ५४ ॥ यस्यान्यदस्तिनविभोःकारणंशशशृंगवत् ॥ यस्येदंचजगत्कार्यंतरंगौघइवांभसः ॥ ५५ ॥ ज्वलतःसर्वतोजस्रंचित्तस्थानेषुतिष्ठतः ॥ यस्यचिन्मात्रदीपस्यभासाभातिजगत्त्रयम् ॥ ५६ ॥

---

१ नामरूप शून्यवस्तुकी अप्रसिद्धिरूप शंकाका उत्तर देतेहैं कि, वह शून्यादिरहित चिन्मात्र है । २ कहतेहैं कि मोती खानेवाले हंस कभी मोती और कभी हंसरूपमें परिणत होतेहैं यथार्थ तो यह प्रतीत होताहै कि उनका मल मोती होता होगा ॥

अर्थ—जिस आलोकसे (प्रकाशसे) यह सत् असत्‌रूप देखपडताहै वह चिदालोक (प्रकाश) भी वही है, और अज्ञानसे विचित्र सृष्टि, और अज्ञानकी निवृत्तिसे अनादि अनन्त स्वरूप प्राप्य रंजनभी वही है ॥ ५३ ॥ जैसे योगीजन खेचरीमुद्रामें अर्द्धउन्मीलित खुलेहुये नेत्रको भ्रू (भौंह) के मध्यमें दृष्टिको लगाके जगत्‌को देखतेहैं, ऐसेही सदा भासरूप स्वरूपको जो देखताहै वहभी वही है ॥ ५४ ॥ जिस व्यापकका शश (खर्गोश) के शृंग (सींग) के समान कोई दूसरा कारण नहीं है, और यह जगत् जिसका ऐसा कार्य्य है जैसे जलका तरंग ॥ ५५ ॥ सर्वस्थानमें सामान्य देदीप्यमान, और चित्त स्थानोंमें अनावृत्त होनेसे सर्वदा विशेष अभिव्यक्तिसे प्रकाशमान जिस चिन्मात्र दीपके प्रकाश तीनोंलोक दीप्तहो रहाहै ॥ ५६ ॥

यंविनाऽर्कादयोप्येतेप्रकाशास्तिमिरोपमाः ॥ सतियस्मिन्नप्रवर्त्ततेत्रिजगन्मृगतृष्णिकाः ॥ ५७ ॥ स स्पंदेसमुदेतीवनिःस्पंदांतर्गतेनच ॥ इयंयस्मिन्जगल्लक्ष्मीरलातइवचक्रता ॥ ५८ ॥ जगन्निर्माणविल यविलासोव्यापकोमहान् ॥ स्पंदास्पंदात्मकोयस्यस्वभावोनिर्मलोऽक्षयः ॥ ५९ ॥ स्पंदास्पंदमयीय स्यपवनस्येवसर्वगा ॥ सत्तानाम्नैवभिन्नेवव्यवहारान्नवस्तुतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जिस चित्प्रकाशरूप दृष्टिकेविना सूर्य्यादिभी अन्धकारके सदृशहैं, और जिस प्रकाशके होतेही त्रैलोक्यरूपी मृगतृष्णा प्रवृत्त होती है ॥ ५७ ॥ जिसके मनरूपसे स्पंद होनेसे इस जगत्‌की लक्ष्मीका उदय और शुद्धरूप होनेसे शस्त ऐसे होताहै जैसे अलात (जलतेहुये उल्मुक) के रात्रिमें घुमाने चक्राकारता और न घुमानेसे चक्राकारका अभाव होताहै ॥ ५८ ॥ जगत्‌की रचना और प्रलय जिसका स्पन्द[2] और अस्पन्दरूप एक विलासहै, और जिसका स्वभाव अर्थात् पारमार्थिकरूप व्यापक, महान् निर्मल और अक्षयहै ॥ ५९ ॥ स्पन्द (कुछ क्रियात्मक चलन) अस्पन्द (क्रियाका अभाव) मयी सब स्थानोंमें व्याप्त वायुके सदृश जिसकी व्यवहारसे नाममात्रके लिये भिन्नहै यथार्थमें नहीं ॥ ६० ॥

सर्वदैवप्रबुद्धोयः सुप्तोयःसर्वदैवच ॥ नसुप्तोनप्रबुद्धश्चयःसर्वत्रैवसर्वदा ॥ ६१ ॥ यदस्पंदंशिवंशां तंयत्स्पंदंत्रिजगत्स्थितिः ॥ स्पंदास्पंदविलासात्मायएकोभरिताकृतिः ॥ ६२ ॥ आमोदइवपुष्पेषुन नश्यतिविनाशिषु ॥ प्रत्यक्षस्थोप्यथाग्राह्यःशौक्ल्यंशुक्लपटेयथा ॥ ६३ ॥ मूकोपमोपियोऽमूकोमंतायो प्युपलोपमः ॥ योभोक्तानित्यतृप्तोपिकर्त्तायश्चाप्यकिंचनः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो सर्वदा और सब स्थानमें प्रबुद्ध (जागता) भी है और सुप्त (सोता) भी है, और सर्वदा सब जगह न सुप्तभी न प्रबुद्धहै ॥ ६१ ॥ जिसके स्पन्दका अभाव शिव और शान्तहै, और जिसका स्पन्दही त्रैलोक्यकी स्थितिहै, स्पन्द और अस्पन्दसे विलासात्मा वह एकही सबका धारण पोषण करनेवालाहै ॥ ६२ ॥ पुष्पोंमें सारभागके समान विनाशीपदार्थोंमें जो नष्ट नहींहोता, और सम्पूर्ण वस्तुओंके प्रत्यक्ष ज्ञानमें जो प्रसिद्धरूपसे स्थित होनेपरभी श्वेतवस्त्रमें श्वेतताके समान जो ग्रहण करनेके असमर्थ है ॥ ६३ ॥ जो मूक (रागादि इन्द्रियोंसे रहित) होनेपरभी सम्पूर्णवाणीकी प्रवृत्तिका निमित्त होनेसे अमूकहै, पाषाणके तुल्य होनेपरभी सबका जाननेवाला, नित्य तृप्त होनेपर सबका भोक्ता, और अकिंचन होनेपरभी सबका कर्ता है ॥ ६४ ॥

योऽनंगोपिसमस्तांगःसहस्रकरलोचनः ॥ नकिंचित्संस्थितेनापियेनव्याप्तमिदंजगत् ॥ ६५ ॥ निरिं द्रियबलस्यापियस्याशेषेंद्रियक्रियाः ॥ यस्यनिर्मननस्यैतामनोनिर्माणरीतयः ॥६६॥ यदनालोकनाद्भ्रां तिसंसारोरगभीतयः ॥ यस्मिन्दृष्टेपलायंतेसर्वाशाःसर्वभीतयः ॥ ६७ ॥ साक्षिणिस्फारआभासेध्रुवे दीपइवक्रियाः ॥ सतियस्मिन्प्रवर्त्तंतेचित्तेहाःस्पंदपूर्विकाः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो अनंग (अंगरहित) होनेपरभी समस्तांग अर्थात् सबके अंग उसीके अंगहैं हस्त नेत्र आदिसे शून्य होनेपरभी सहस्रों (हजारों) हस्त नेत्र जिसमें हैं, तथा किसीपर संस्थित न होनेसेभी जिसकरके यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्तहै ॥ ६५ ॥ इन्द्रियोंके बलसे शून्य होनेपरभी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी क्रिया उसीके प्रभावसे होती है, जो स्वयं विकार सम्बन्धी मनकी शक्तिसे वर्जित है परन्तु ये जगत्‌के रचनाकी प्रसिद्ध उसी की हैं ॥ ६६ ॥ जिसके दर्शनके बिना भ्रम तथा संसाररूपी सर्पके भय होते हैं, और जिसके दर्शन (ज्ञान) से सम्पूर्ण दुष्ट कामना और सब प्रकारके

(१) सर्वलयका आधार तत्‌पदार्थका निरूपणकरके अब त्वंपदार्थरूपसेभी उसी स्वरूपको दर्शानेकेलिये उपक्रम कियाजाताहै ॥

(२) स्पन्दशब्दका अर्थ व्याकरणकी रीतिसे किंचित् चलनहै परन्तु यहां शुद्धब्रह्ममें मनरूप धारणकरके जगत् रचनाकी स्फुरण वा इच्छासे तात्पर्य्यहै ॥

भय भागजाते हैं ॥ ६७ ॥ जैसे दीपके रहनेसे नाट्य आदि सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं ऐसेही अपरिच्छिन्न रूप प्रकाश साक्षीके रहनेपर स्फुरणपूर्वक सम्पूर्ण चित्तकी क्रिया होती हैं ॥ ६८ ॥

यस्माद्घटपटाकारपदार्थशतपंक्तयः ॥ तरंगगणकल्लोलवीचयोवारिधेरिव ॥६९॥ सएवान्यतयोदेतियत्पदार्थशतभ्रमैः ॥ कटकांगदकेयूरनूपुरैरिवकांचनम् ॥ ७० ॥ यस्त्वमेकोवभासात्मायोहमेतेजनाश्चये ॥ यश्चनत्वमबुद्धात्मानाहंनैतेजनाश्चयः ॥ ७१ ॥ अन्येवाप्यतिरिक्तेवसैवासेवचभंगुरा ॥ पयसीवतरंगालीयस्मात्स्फुरतिदृश्यभूः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जिस साक्षीरूप आत्मासे घटपट आदि आकारवाले पदार्थोंकी सैकडों पंक्ति ऐसी होती हैं जैसे तरंगगणोंके कल्लोलसहित लहर समुद्रसे ॥ ६९ ॥ वही चिदात्मा अन्य जड प्रपंचादि रूपसे प्रसिद्ध अनेक पदार्थोंके भ्रमरूपसे ऐसे प्रकट होताहै जैसे सुवर्णकटक अंगदकेयूर और नूपुरादि रूपसे सुवर्त्त ॥७०॥ जो जिस प्रकाशरूप आत्माका तुमने साक्षात्कार कियाहै वह तुम एकही हो और जो जिसको मैंने वा अन्य जनोंने साक्षात्कार कियाहै वह उनउनका आत्मा होके एकही है और[1] जो उससे विपरीत न तुम न हम और न ये अन्यजनहैं ॥ ७१ ॥ अनन्य होनेपरभी अन्यके समान, अपृथक् होनेसेभी पृथक्के समान, पूर्वसिद्ध होनेपरभी उत्पत्तिसे सिद्धके समान, यह दृश्यकी भूमि जिस आत्मासे ऐसे स्फुरती है जैसे जलमें तरंगोंकी पाँति ॥ ७२ ॥

यतःकालस्यकलनायतोदृश्यस्यदृश्यता ॥ मानसीकलनायेनयस्यभासाविभासनम् ॥ ७३ ॥ क्रियांरूपंरसंगंधंशब्दंस्पर्शंचचेतनं ॥ यद्वेत्सितदसौदेवोयेनवेत्सितदप्यसौ ॥ ७४ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानांमध्येयद्दर्शनंस्थितम् ॥ साधोतदवधानेनस्वात्मानमवबुद्ध्यसे ॥ ७५ ॥ अजमजरमनाद्यंशाश्वतंब्रह्मनित्यंशिवममलममोघंवंद्यमुच्चैरनिंद्यम् ॥ सकलकलनशून्यंकारणंकारणानामनुभवनमवेद्यंवेदनंविश्वमंतः ॥ ७६ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनंनाम नवमः सर्गः ॥९॥

अर्थ—जिस आत्मासे कालकी कलना अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि स्थिति, अपचयनाशादिरूप छ भाव बिकार, जिससे दृश्यकी सत्ता, और जिससे कलना अर्थात् इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति और परिहार विषयक मनोरथोंके विकल्प होते हैं, और जिसके प्रकाशसे यह सब कुछ प्रकाशताहै ॥ ७३ ॥ देह और कर्मेंद्रिय रूप उपाधिमें क्रिया ज्ञानेन्द्रियरूप उपाधिमेंरूप, रस गन्ध, स्पर्श, और शब्दको तथा प्रमाताचेतन जो स्वरूप होके जानतेहो और जिसके निमित्त जानतेहो, वहभी यही आत्माहै ॥ ७४ ॥ हे साधो ! द्रष्टा, दर्शन, और दृश्यके मध्यमें उपाधियोंसे पृथक् जो दर्शन स्थितहै उस अपने आत्माको एकाग्र मनसे जानोगे ॥ ७५ ॥ जो[2] जन्म और वृद्धावस्थासे वर्जित अनाद्य, नित्य, शिव, मलरहित, अमोघ सबके बन्दनाके योग्य, निन्दारहित सम्पूर्ण संबन्धसे शून्य सब कारणोंका कारण, अनुभवरूप, अवेद्य और विश्वके अन्तर्में व्याप्त ब्रह्महै वह साक्षीरूप तुमहो ॥ ७६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे परमकारणवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

पूर्वोक्त ब्रह्मके लक्षणमें विरोधकीसी सम्भावना करके, क्रमसे उसके परिहारसे तात्पर्य्यका वर्णन इस दशम सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौयदेतदवशिष्यते ॥ भवत्येतदनाकारंनामनास्त्यत्रसंशयः ॥ १ ॥ नशून्यंकथमेतत्स्यान्नप्रकाशःकथंभवेत् ॥ कथंवानतमोरूपंकथंवानैवभास्वरम् ॥ २ ॥ कथंवानैवचि

---

(१) जो शुद्ध आत्मदृष्टिसे सबका आत्मा होनेसे सबमें एकहै, और स्थूल दृष्टिसे सब इन्द्रियआदिसे विपरीत होनेसे किसीका रूप नहीं है ॥ (२) इसप्रकार तत् और त्वम् पदार्थको देखाके इस श्लोकमें वाक्यार्थ दिखलातेहैं "कारणोंका कारण" "कारणं कारणनाम्" इससे तत्पदार्थका बाच्यार्थ है, शून्यम् ॥ यह तत्पदार्थका लक्ष्यार्थ है "विश्वं वेदनं" यह तीनों अवस्थाके द्रष्टा त्वंपदका वाच्यार्थ है "अवेद्यं वेदनं" यह वेद्य तीनों अवस्थासे निर्मुक्त त्वंपदका लक्ष्यार्थ है ।

द्रूपंजीवोवानकथंभवेत् ॥ कथंनबुद्धितत्त्वंस्यात्कथंवानमनोभवेत् ॥ ३ ॥ कथंवानैवकिंचित्स्यात्कथं वासर्वमित्यपि ॥ अनयैववचोभंग्याममर्मोहइवोदितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! महाप्रलयमें यह जो शेष (बाकी) रहताहै, यह निराकार रहताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥१॥ (पूर्वमें जो ब्रह्मका रूप न तेजो न तमः इत्यादि विरुद्ध कहाहै उसको असंभवमानके रामजी प्रश्न करते हैं,) हे भगवन् ! जब सबका नाश होजाताहै तो यह शून्य क्यों नहीं ? इसी प्रकार तम वा प्रकाशके अभावमें शेष तम वा प्रकाश क्यों नहीं ? और प्रकाश्यके नष्ट होनेपर स्वमात्र प्रकाशसे भास्वरभी क्यों नहीं ? ॥ २ ॥ दृश्यसे भिन्न दर्शन प्रसिद्धहै इससे न दृश्य है न दर्शन है इस अभिप्रायसे रामजी पूंछतेहैं कि वह आत्मा चित्रूप क्यों नहीं ? और यदि दृश्य और दर्शनसे भिन्नहै तो जीव बुद्धितत्व अथवा मन क्यों नहीं होता ? ॥ ३ ॥ किसप्रकार वह कुछ नहीं है और कैसे सब कुछ है, आपके इसी बचनसे मुझे मोह उत्पन्न हुआहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विषमोयमतिप्रश्नोभवतासमुदाहृतः ॥ भेत्तास्म्यहंत्वयत्नेननैशंतमइवांशुमान् ॥ ५ ॥ महाकल्पांतसंपत्तौयत्तत्सदवशिष्यते ॥ तद्रामनयथाशून्यंतदिदंशृणुकथ्यते ॥ ६ ॥ अनुत्कीर्णायथास्तंभेसंस्थिताशालभंजिका ॥ तथाविश्वंस्थितंतत्रतेनशून्यंनतत्पदम् ॥ ७ ॥ अयमित्थंम हाभोगोजगदाख्योवभासते ॥ सत्योभवत्वसत्योवायत्रतत्त्वशून्यता ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–मेरे आशयको उल्लंघन करके आपने यह टेढाप्रश्न कियाहै मैं अपने अभिप्रायके प्रकाशसे तुमारे संशयको ऐसे छेदन करूंगा, जैसे रात्रिके अन्धकारको सूर्य्य ॥ ५ ॥ हे रामजी ! महाप्रलयमें जो कुछ यह सन्मात्र शेष रहजाता है वह जिसप्रकार शून्य नहीं है वह सुनिये मैं कहताहूं ॥ ६ ॥ विना खुदे हुये खम्भेमें जैसे प्रतिमा स्थित रहतीहै वैसे उत्पत्तिके पूर्वभी यह विश्व ब्रह्ममें स्थितहै इसलिये वह पद (ब्रह्मपद) शून्य नहीं है ॥ ७ ॥ महां भोगका रूप धारण कियेहुये यह जगत् नामसे प्रसिद्ध प्रपंच जिसमें व्यवहार दृष्टिसे सत्यहो अथवा परमार्थ दृष्टिसे असत्यहो, परन्तु जिस अधिष्ठानमें वह भासताहै यह शून्य नहीं क्योंकि शून्य व आरोपित पदार्थका अध्यास नहीं होसकता ॥ ८ ॥

यथानपुत्रिकाशून्यःस्तंभोनुत्कीर्णपुत्रिकः ॥ तथाभातंजगद्ब्रह्मतेनशून्यंनतत्पदम् ॥ ९ ॥ सौम्यांभसियथावीचिर्नचास्तिनचनास्तिच ॥ तथाजगद्ब्रह्मणीदंशून्याशून्यंपदंगतम् ॥ १० ॥ देशकालादिशांतत्वात्पुत्रिकारचनंद्रुमे ॥ संभवत्ययथाऽतोवैतेनानंतेविमुह्यते ॥ ११ ॥ तत्स्तंभपुत्रिकाद्येतत्परमार्थेजगत्स्थितेः ॥ एकदेशेनसदृशमुपमानंनसर्वथा ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे जिस स्तम्भमें प्रतिमा नहीं खुदी उस (प्रतिमा न खुदी) दशामेंभी वह स्तम्भ प्रतिमासे शून्य नहीं है इसीप्रकार उत्पत्तिसे पूर्वभी ब्रह्मपद जगत्‌से शून्य नहीं है क्योंकि महाप्रलयके पूर्व ब्रह्मही जगत्‌रूपसे भान हुआथा ॥ ९ ॥ हे सौम्य रामजी ! जैसे जलमें लीन (वायु न होनेसे जलरूपमें प्राप्त) तरंगको न यह कह सकतेहैं कि है और न यही कह सकतेहैं कि नहीं है क्योंकि अस्ति (है) दशामें वह जलसे कोई अपूर्व पदार्थ नहीं है और नास्ति (नहीं है) इस दशामेंभी न हो, तो उसमें भान कैसेहो इसलिये शून्य अशून्य दोनोंकल्पनाका अधिष्ठान वा अनिर्वचनीय है इसीप्रकार ब्रह्ममें यह जगत्‌भी शून्य अशून्यपदको प्राप्त है ॥ १० ॥ प्रतिमा रचनेके योग्य कर्ता कर्मके आधार देश और काल तथा करण उपकरण (हस्त टांकी आदि) सामग्री आदिसे सम्पन्न वृक्षमें प्रतिमा रचनेकी सम्भावना होतीहै इसवास्ते किसी बादीको मोह नहीं होता परन्तु देश काल वस्तु इन तीनों परिच्छेदसे शून्य अनन्त ब्रह्ममें पुर्वोक्त कोई सामग्री न होनेसे जगत्‌की रचनामें बादियोंको मोह प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इसलिये स्तम्भ (खम्भे) की प्रतिमा आदि परमार्थ ब्रह्ममें जगत्‌की स्थितिका एकदेशमें सदृशताको लेके दृष्टान्त है क्योंकि सर्वांशमें दृष्टान्त दार्ष्टान्त एक नहीं हो सकता, अर्थात् जैसे स्तम्भादिकी सत्तासे पृथक् प्रतिमा आदिकी सत्ता कुछ नहीं ऐसेही ब्रह्मकी सत्तासे पृथक् जगत् सत्ता नहीं है ॥ १२ ॥

नकदाचिदुदेतीदंपरस्मान्नचशाम्यति ॥ इत्थंस्थितंकेवलंसद्ब्रह्मस्वात्मनिसंस्थितम् ॥ १३ ॥ अशून्यापेक्षयाशून्यशब्दार्थपरिकल्पना ॥ अशून्यत्वात्संभवतःशून्यताशून्यतेकुतः ॥ १४ ॥ ब्रह्मण्ययंप्रकाशो हिनसंभवतिभूतजः ॥ सूर्यानलेंदुतारादिःकुतस्तत्रकिलाव्यये ॥ १५ ॥ महाभूतप्रकाशानामभावस्तमउच्यते ॥ महाभूताभावजंतुतेनात्रनतमःक्वचित् ॥ १६ ॥

---

१ जो वस्तु जहां नहींहै वह वहांसे अनेक उपायसेभी नहीं निकलती जैसे रेतसे तैल स्तम्भ (खम्भे) में खोदनेके पूर्व प्रतिमा और ब्रह्ममें उत्पत्तिके पूर्व यह जगत् रहताहै तभी उनमेंसे उत्पन्न होताहै ॥

अर्थ—यथार्थमें परब्रह्ममें न कभी यह उदयको प्राप्त होताहै और न शान्त होताहै किन्तु मायासे भान होताहै और सत् ब्रह्म केवल अपने आत्मामें ऐसाही स्थितहै ॥ १३ ॥ प्रतियोगी (जिसका अभाव कहा जाय) में अशून्यता मानके दूसरी वस्तुमें अशून्यकी अपेक्षासे शून्यशब्दके अर्थकी कल्पना कीजातीहै और कल्पित शून्यताकी अपेक्षासे अशून्यताकी कल्पना होतीहै इसलिये परस्परकी अपेक्षाकी कल्पनामें शून्यता और अशून्यताका संभव कहा ? ॥ १४ ॥ पृथिवी जल और तेज आदि भूतोंसे उत्पन्न प्रकाशका सम्भव ब्रह्ममें नहीं है क्योंकि नाशवान् सूर्य्य अग्नि चन्द्रमा और तारा आदिका प्रकाश अव्यय (नाशरहित) ब्रह्ममें कहां ? इसलिये उसको भास्वरभी नहीं कहसकते ॥ १५ ॥ सूर्य्यआदि महाभूतोंके प्रकाशके अभावका नाम तम है वह तम प्रकाशके विरोधीपर प्रकाश्य पृथिवी आदिमेंही रहताहै न की स्वप्रकाश ब्रह्ममें इसलिये वह तमभी नहीं है ॥ १६ ॥

स्वानुभूतिःप्रकाशोस्यकेवलंव्योमरूपिणः ॥ योंतरस्तिसतेनैवनत्वन्येनानुभूयते ॥ १७ ॥ मुक्तंतमःप्रकाशाभ्यामित्येतदजरंपदम् ॥ आकाशकोशमेवेदंविद्धिकोशंजगत्स्थितेः ॥ १८ ॥ बिल्वस्यबिल्वमध्यस्ययथाभेदोनकश्चन ॥ तथास्तिब्रह्मजगतोर्नमनागपिभिन्नता ॥ १९ ॥ सलिलांतर्यथावीचिर्मृदोंतर्घटकोयथा ॥ तथायत्रजगत्सत्तातत्कथंखात्मकंभवेत् ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशके सदृश व्यापक इस ब्रह्मका प्रकाश स्वानुभवरूपहै औरबु द्धिकाभी अनुभव करनेवाला अन्तरमें है वही अपने प्रकाशको आप अनुभव करताहै, वह प्रकाश दूसरेके अनुभवमें नहीं आता ॥ १७ ॥ यह अजर पद तम और प्रकाश (भौतिक) से विनिर्मुक्त है जगत्की स्थितिका कोशभूत इस ब्रह्मको आकाशके उदरके समान स्वच्छ पूर्वोक्त रीतिसे जानो ॥ १८ ॥ जैसे बिल्व (बेलफल) और बिल्वके मध्यके उदरसे कुछ भी भेद नहींहै ऐसेही ब्रह्म और जगत्का किंचित्भी भेद नहींहै ॥ १९ ॥ जैसे जलमें तरंग और मृत्तिकोंमें घटहै ऐसेही जिस ब्रह्ममें जगत्की सत्ताहै वह जगत् शून्य रूप क्यों न हो ॥ २० ॥

भूजलाद्युपमानश्रीःसाकारांतासमानसा ॥ ब्रह्मत्वाकाशविशदंतस्यांतस्थंतथैवतत् ॥ २१ ॥ तस्माद्यादृक्चिदाकाशमाकाशादपिनिर्मलम् ॥ तदंतस्थंतादृगेवजगच्छब्दार्थभागपि ॥ २२ ॥ मरीचैतर्यथा तैक्ष्ण्यमृतेभोक्तुर्नलक्ष्यते ॥ चिन्मात्रत्वंचिदाकाशेतथाचेत्यकलांविना ॥ २३ ॥ तस्माचिदप्यचिद्रूपं चेत्यरिक्तंतदात्मनि ॥ जगत्तातादृगेवेयंतावन्मात्रात्मतावशात् ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे जलमें पृथिवी और घट आदिमें जल रहताहै वह पृथिवी जल आदि अपने आधारका स्वरूप नहीं होता इस दृष्टांतकी शोभा यहां समान नहींहै क्योंकि पृथिवी आदि दृष्टांतोंकी अवधि साकार है और ब्रह्म तो आकार रहित आकाशवत् व्यापकहै वैसाही उसके भीतर जगत्भी है ॥ २१ ॥ इस लिये जैसे चिदाकाश इस भौतिक आकाशसेभी निर्मल है ऐसेही ब्रह्मके अन्तर्गत जगत् शब्दका अर्थभी है ॥ २२ ॥ जैसे मरिच (मिरच्या) में तीखापन भोक्ता विना नहीं होसकता ऐसेही चिदाकाशमें चिन्मात्रता (दर्शनता) दृश्यके सम्बन्धके विना नहीं है परन्तु जब दृश्य नहीं तब दर्शनकी योग्यता कहां ? ॥ २३ ॥ इसलिये दृश्यके सम्बंधके विना चित्रूप रहते भी अचित् रूप है क्योंकि चित् आदि शब्द गौणवृत्तिसे (कल्पित) है न कि मुख्य जैसे जगत्के लयसे, जगत्केलिये जो चित्ताहै उसकी निवृत्ति होतीहै ऐसेही जगत्केलिये चित्ता (चित्पना) भी उसकी (चित्ता) की निवृत्तिसे जगत्की जगत्ता (जगत्पन) भी निवृत्त होजातीहै ॥ २४ ॥

रूपालोकमनस्कारास्तन्मयाएवनेतरत् ॥ यथास्थितमतोविश्वंसुषुप्तंतुर्यमेववा ॥ २५ ॥ तेनयोगीसुषुप्तात्माव्यवहार्यपिशांतधीः ॥ आस्तेब्रह्मनिराभासंसर्वाभाससमुद्गकः ॥ २६ ॥ आकारिणियथासौम्येस्थितास्तोयेमहोर्मयः ॥ अनाकृतौतथाविश्वंस्थितंतत्सदृशंपरे ॥ २७ ॥ पूर्णात्पूर्णंप्रसरतियत्तत्पूर्णंनिराकृति ॥ ब्रह्मणोविश्वमाभातंतद्धिस्वार्थविचक्षितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—रूप, आलोक, और चित्तमें सुखपरता, ये सब ब्रह्ममय हैं और कुछ नहीं इसलिये यह यथास्थित विश्व सुषुप्त अथवा तुर्य्यि[1] रूप है ॥ २५ ॥ इस हेतुसे सुषुप्तात्मायोगी सब व्यवहारोंको करताहुआभी शांतबुद्धि है और ब्रह्मसंस्कार रहित होनेसे भी सम्पूर्ण संस्कारोंका कोशहै ॥ २६ ॥ हे सौम्य ! जैसे आकारवान् जलमें आकार सहितही महातरंग स्थित है इसी प्रकार निराकार परब्रह्ममें उसीके समान यह विश्व स्थितहै ॥२७॥ पूर्णब्रह्मसे उपा-

---

१ वक्ष्यमाण सात भूमिकाओंमें पंचम भूमिकातक प्राप्त योगियोंको सुषुप्त उत्तर दोनोंका तुर्य्यहै.

धिके भेदसे जीवदशाको जो प्राप्त होताहै वहभी पूर्ण है और साकार पूर्ण हो नहीं सकता इसलिये जो पूर्ण है वह निराकार है और पूर्ण ब्रह्मका विश्व और जो जीवरूपसे भानहै वह अपने स्वरूपके लाभकेलिये एकप्रकारकी चेष्टाहै॥२८॥

पूर्णात्पूर्णंप्रसरतिसंस्थितंपूर्णमेवतत् ॥ अतोविश्वमनुत्पन्नंयच्चोत्पन्नंतदेवतत् ॥ २९ ॥ चेत्यासंभवतस्तस्मिन्यदेकाजगदर्थता ॥ आस्वादकासंभवतोमरीचेकैवतीक्ष्णता ॥ ३० ॥ सत्येवेयमसत्येव चित्तचेत्यादितापरे ॥ तद्भावात्प्रतिबिंबस्यप्रतिबिंबार्हताकुतः ॥ ३१ ॥ परमाणोरपिपरंतदणीयोह्यणीयः॥ शुद्धंसूक्ष्मंपरंशांतंतदाकाशोदरादपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्णसे पूर्ण उत्पन्न होताहै और वह पूर्णरूपसेही स्थितहै, इसलिये यह विश्व उत्पन्न नहीं हुआ और जो उत्पन्न हुआहै वह पूर्णरूपही है ॥ २९ ॥ क्योंकि दृश्यके असंभवसे जगत् शब्दका अर्थ ब्रह्मके साथ एकरस होजाताहै क्योंकि स्वाद लेनेवालेके न रहनेपर मरिचमें तीक्ष्णता कहां ? ॥ ३० ॥ परब्रह्मके साथ जगत्का अभेद होनेसे उस (ब्रह्म) में चेत्य और चेत्यविषयआदि नानाकल्पना असत्यही है, परन्तु सत्यवत् भासतीहै, और इसप्रकार उपाधिके अभावसे प्रतिबिम्बरूप जीवभाव योग्यताभी नहीं है, इससे जीव क्यों नहीं यह शङ्काभी निरस्त हुई ॥ ३१ ॥ वह परमात्मा परमाणुसेभी पर, अणुसेभी अतिसूक्ष्म और आकाशके उदरसे अणु शुद्ध सूक्ष्म पर शान्तहै और इसके विपरीत जीव अणु और परिमाणुसहित पुण्य पापसे दूषित होनेसे अशुद्ध और विषयका भोक्ता प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नरूपत्वादतिविस्तृतम् ॥ तदनाद्यंतमाभासंभासनीयविवर्जितम् ॥ ३३ ॥ चिद्रूपमेवनोयत्रलभ्यतेतत्रजीवता ॥ कथंस्याच्चितताकारावासनानित्यरूपिणी ॥ ३४ ॥ चिद्रूपानुदयादेव तत्रनास्त्येवजीवता ॥ नबुद्धिताचित्ततावानेंद्रियत्वंनवासना ॥ ३५ ॥ एवमित्थंमहारंभपूर्णमन्यजरंपदम् ॥ अस्मदृष्ट्यास्थितंशांतंशून्यमाकाशतोधिकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और वह देशकालवस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेसे अति विस्तृत, अनादि, अनन्त, अत्यन्त प्रकाशरूप और भासनीय (परप्रकाश्य) से वर्जितहै ॥ ३३ ॥ विषयको प्रकाश करनेको जिसमें चित्रूपताही नहीं है उसमें कैसे जीवरूपता होसकती है और कैसे नित्य वासनारूप चित्तरूपता होसकती है ? ॥ ३४ ॥ चित्तरूपके उदय न होनेसे उसमें जीवरूपता न बुद्धि न चित्त न इन्द्रिय और न वासना है, इससे वह बुद्धि वा मन क्यों नहीं यह शंकाभी परास्तहुई ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार हम लोगनकी दृष्टिमें यह महान् आरम्भवाला अजरपद शान्त शून्य आकाशसेभी अधिक पूर्ण स्थितहै ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ परमार्थस्यकिंरूपंतस्यानंतचिदाकृतेः ॥ पुनरेतन्ममाचक्ष्वनिपुणंबोधवृद्धये ॥ ३७॥ ॥ श्रीवसिष्ठवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौसर्वकारणकारणम् ॥ शिष्यतेपरमंब्रह्मतदिदंवर्ण्यतेशृणु ॥३८॥ नाशयित्वास्वमात्मानंमनसोवृत्तिसंक्षये ॥ सद्रूपंयदनाख्येयंतद्रूपंतस्यवस्तुनः ॥ ३९ ॥ नास्तिदृश्यंजगद्द्रष्टादृश्याभावाद्विलीनवत् ॥ भातीतिभासनंयत्स्यात्तद्रूपंतस्यवस्तुनः ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! अनन्त चित्आकारहै जिसका उस परमार्थका क्या रूपहै इस बातको बोधकी वृद्धिकेलिये मुझसे पुनः कहिये ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! महाप्रलयमें जो सब कारणोंका कारण परब्रह्म शेष रहजाताहै उसका मैं वर्णन करताहूं आप सुनिये ॥ ३८ ॥ जैसे समाधिमें निरोधसे वृत्तियोंका नाश होनेपर मनके रूपकाभी नाश करके जो वर्णन करनेके अयोग्य स्वप्रकाश सत्रूप शेष रहजाताहै वही उस वस्तुकारूपहै ॥ ३९ ॥ इसप्रकार निर्विकल्प समाधिके आरम्भमें दृश्यके अभावसे जगत् वा दृश्यका द्रष्टा जो है वहभी विलीनके समान भान होताहै उस दशामें त्रिपुटी (द्रष्टा, दर्शन, दृश्य वा ध्याता, ध्यान ध्येय) का लय भासनप्रकाश जो साक्षीरूप है वही उस वस्तुका रूपहै ॥ ४० ॥

चितेर्जीवस्वभावायायदचेत्योन्मुखंवपुः ॥ चिन्मात्रंविमलंशांतंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४१ ॥ अंगलग्नेपिवातादौस्पर्शाद्यनुभवंविना ॥ जीवतश्चेतसोरूपंयत्तद्वैपरमात्मनः ॥ ४२ ॥ अस्वप्नयाअनंतायाअजडायामनःस्थितेः ॥ यद्रूपंचिरनिद्रायास्तत्तदानघशिष्यते ॥४३॥ यद्व्योम्नोहृदयंयद्वाशिलायाःपवनस्यच ॥ तस्याचेत्यस्यचिद्व्योम्नोस्तद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४४ ॥

---

(१) इसप्रकार समाधान करनेपर समाहित चित्तवालेको जैसे अपरोक्ष आत्माका अनुभव होताहै उस असाधारणरूपके जाननेकी इच्छासे रामचन्द्रजी पुनः प्रश्न करतेहैं ॥

अर्थ—समाधिके व्युत्थान कालके पूर्व भावी जीवस्वभाववाले चित्का विषयकी ओर उन्मुख न होनेका जो रूपहै वही चिन्मात्र विमल शान्त उस परमात्म वस्तुका रूपहै ॥ ४१॥ वायु आदिके शरीरमें लगनेपरभी स्पर्श आदिके अनुभवके विना अपरिच्छन्न ब्रह्माकार अपरोक्षवृत्ति होनेसे चित्तके जीवित रहनेपरभी दूध और जलके समान ब्रह्ममें एकरस होनेसे चित्तका अनादर करके जो अनुभवरूप प्रकाशहै वही परमात्माका रूपहै ॥ ४२ ॥ हे अनघ ! स्वप्न दर्शनसे वर्जित, मच्छर और खटमल आदिके विघ्नसे शून्य अनन्त चेतनरूप, मनके विश्रामका हेतु जो दीर्घकालकी सुषुप्ति है वही महाप्रलयमें शेष रहजाती है ॥ ४३ ॥ आकाशका हृदय जो शून्यता, वायुका हृदय जो बाहर भीतर पूर्णता, और पाषाणका हृदय जो घनताहै वही चेत्यरहित चिदाकाश परमात्माका रूपहै ॥ ४४ ॥

अचेत्यस्यामनस्कस्यजीवतोयास्वभावतः ॥ स्यात्स्थितिःसापराशांतासत्तातस्याद्यवस्तुनः ॥ ४५ ॥ चित्प्रकाशस्ययन्मध्यंप्रकाशस्यापिखस्यवा ॥ दर्शनस्यचयन्मध्यंतद्रूपंब्रह्मणोविदुः ॥ ४६ ॥ वेदनस्य प्रकाशस्यदृश्यस्यतमसस्तथा ॥ वेदनंयदनाद्यंतंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४७ ॥ यतोजगदुदेतीवनित्यानु दितरूप्यपि ॥ विभिन्नवदिवाभिन्नंतद्रूपंपरमार्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण चित्त और चेत्य (दृश्य) को जीवितदशामेंही परित्यागकर परमशान्तरूप चेतनकी स्वभावसे जो स्थिति होती है वही सब पदार्थोंका आदिभूत परमात्माकी सत्ता वा रूपहै॥४५॥द्रष्टापक्षमें अन्न मयान्तकोशमें आत्मा रूपसे व्यापक चित्प्रकाशका एक एक कोशके विवेकसे आनन्दमय कोशकाभी जो अन्तर होनेसे मध्यहै, दृश्यपक्षमें मूर्त प्रपंचका सारभूत सूर्य्यप्रकाशका अमूर्त प्रपंचमें सारभूत आकाश अथवा लिंगसमष्टिरूप अव्याकृत आकाशका अन्तर होनेसे मध्यहै और दर्शनपक्षमें चाक्षुष प्रत्यक्ष आदि वृत्तियोंका चेतनरूपसे स्फुरित होनेसे जो मध्यहै, अर्थात् क्रमसे आनन्द सत् और चित् रूपसे जो प्रसिद्धहै वही ब्रह्मका रूपहै ॥ ४६ ॥ बुद्धिकी वृत्तिका, पदार्थोंके स्फुरणका विषयका और अज्ञानका साक्षीरूप जो अनादि अनन्त (क्योंकि बुद्धि वृत्ति आदि सब आदि अन्तवाले हैं) जो ज्ञानह वही परमात्माका रूपहै ॥ ४७ ॥ जो आप स्वयं नित्य अनुदित रूपभी है परन्तु जिसरूपसे यह जगत् उदय होताहै, और जो अभिन्न होनेपरभी विभिन्नके समान भान होताहै वही परमात्माका रूपहै ॥ ४८ ॥

व्यवहारपरस्यापियत्पाषाणवदासनम् ॥ अव्योम्नएवव्योमत्वंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४९ ॥ वेद्यवेदनवेतृ त्वरूपत्रयमिदंपुरः ॥ यत्रोदेत्यस्तमायातितत्तत्परमदुर्लभम् ॥५०॥ वेद्यवेदनवेतृत्वंयत्रेदंप्रतिबिंबति ॥ अबुद्ध्यादौमहादर्शेतद्रूपंपरमंस्मृतम् ॥ ५१ ॥ मनःस्वप्नेंद्रियैर्मुक्तंयद्रूपंस्यान्महाचितेः ॥ जंगमेस्थावरे वापितत्सर्वांतेऽवशिष्यते ॥ ५२ ॥ स्थावराणांहियद्रूपंतच्चेद्बोधमयंभवेत् ॥ मनोबुद्ध्यादिनिर्मुक्तंतत्परे णोपमीयते ॥ ५३ ॥ ब्रह्मार्कविष्णुहरशक्रसदाशिवादिशांतौशिवंपरममेतदिहैकमास्ते ॥ सर्वोपधिव्य यवशादविकल्परूपंचैतन्यमात्रमयमुज्झितविश्वसंगम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते उत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये महाकल्पांतावशिष्टपरमभाववर्णनं नाम दशमःसर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—व्यवहार (मायिक) में तत्पर होनेपर भी जिसकी पाषाणके समान अचल स्थितिहै तथा छिद्र रहित होनेपर भी जो सब जगत्को अवकाश देनेसे आकाशरूपहै वही परमात्माका रूपहै ॥ ४९ ॥ ज्ञेय ज्ञान और ज्ञाता ये तीनों जहांसे प्रथम उदय होतेहैं और जिसमें जाके अस्त हो जातेहैं वह परम दुर्लभ परमात्माका रूपहै ॥५०॥ जिस बुद्धि आदि रहित महा दर्पणमें वेद्य वेदन वेत्तृता (ज्ञेय ज्ञान ज्ञातृता) प्रतिबिम्बित होतीहै वही सबसे उत्तम परमात्माका स्वरूप कहा गयाहै ॥ ५१ ॥ मन स्वप्न जाग्रत और इन्द्रियोंसे मुक्त जो सुषुप्त महा चितिका रूपहै स्थावर और जंगममें दृश्य प्रलय कालमें शेष रह जाताहै॥ ५२ ॥ स्थावरोंका जो अचल रूपहै वह यदि मन बुद्धि आदिसे रहित शून्यरूप बोधमय होता तो परमात्माके साथ उसकी उपमा दीजाती ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा, सूर्य्य, विष्णु, हर, इन्द्र, और सदाशिव आदिके शांत होनेपर, इस संसारमें सम्पूर्ण उपाधिके लय होनेसे अविकलपरूप चलन मात्र विश्व संज्ञासे वर्जित यह सबको अनुभवसिद्ध प्रत्यगात्मा एक यही परम शिव शेष रहजाताहै ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वाशिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे महाकल्पांतावशिष्ट परमभाववर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

---

१ यद्यपि समाधिके मध्यकालमें जो स्फुरितहोताहै वहभी आत्माका रूपहै परन्तु वह अतिसूक्ष्म होनेसे आरूढ होनेकी इच्छा-वालेको अभ्यास दशामें नहीं दिखता सकते. २ त्रिपुटीकी निमित्तभी ब्रह्म निवर्त रूपसे है न परिणाम रूपसे ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

जगत्की अधिष्ठान सत्‌रूपसे सत्ताका निवारण प्रलयमें भी नहीं करते और जगत्के रूपसे सृष्टिके समयमें भी जगत्की सत्ताका निवारण करतेहैं इस विषयका वर्णन इस ११ वें सर्गमें करतेहैं.

॥ श्रीरामउवाच ॥ इदंरूपमिदंदृश्यंजगन्नास्तीतिभासुरम् ॥ महाप्रलयसंप्राप्तौभोब्रह्मन्केवतिष्ठति॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुतआयातिकीदृग्वावंध्यापुत्रःक्वगच्छति ॥ क्वयातिकुतआयातिवदवाव्योमकाननम् ॥ २ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वंध्यापुत्रोव्योमवनंनैवास्तिनभविष्यति ॥ कीदृशीदृश्यतातस्यकीदृशीतस्यनास्तिता ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वंध्यापुत्रव्योमवनेयथानस्तःकदाचन ॥ जगदाद्यखिलंदृश्यंतथानास्तिकदाचन ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—महाप्रलयमें जगत्की सत्ता सामान्य जगत् आत्मक ब्रह्म मात्रसे परिशेष रहनेपर भी व्यवहाररूपसे जगत्की सत्ताकी निवृत्ति होनेसे ब्रह्मरूपसे रहती है और सृष्टिमेंतो प्रलयके विलक्षण सबको अनुभव है इसलिये स्वतंत्र सत्ता भी कहनी चाहिये और उस सत्तासे युक्त ब्रह्मसे निवृत्त जगत् अन्यत्र रहताहैं यह संभावनाहै क्योंकि सत्‌का अभाव नहीं होता तो जहांपर जगत् रहताहै उस परम स्थानका उपदेश कीजिये इस आशयसे रामजी पूंछतेहैं ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अनेकप्रकारका चौदह भुवन और उनमें देव, मनुष्य, असुर तिर्य्यग् (पशुपक्षी) आदि अनन्त विस्ताररूप जिसका ऐसा भासुररूप स्फुटतर दृश्य प्रत्यक्षादिसे दृढ किया यह जगत् जब नहीं है तब महाप्रलयमें किसके समान रहताहै ? ॥१॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-बन्ध्याका पुत्र अथवा आकाशका बन कहांसे आताहै ? कैसाहै, और कहो वह कहां जाताहै ? ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले—बन्ध्यापुत्र और आकाशका बन न है और न होगा, तथा उसमें प्रत्यक्ष योग्यताभी नहीं है, तो उसकी अस्तिता वा नास्तिता कैसे कह सकतेहो, क्योंकि पदार्थकी अस्ति जब अप्रसिद्धहै तो उसकी नास्तिताभी नहीं होसकती इसलिये दृष्टान्त दार्ष्टान्तमें विलक्षणताहै ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-जैसे बन्ध्यापुत्र आकाशके बन कभी नहीं है, इसी प्रकार जगत् आदि सम्पूर्ण दृश्यभी कदापि नहीं है ॥ ४ ॥

नचोत्पन्नंनचध्वंस्तियत्किलादौनविद्यते ॥ उत्पत्तिःकीदृशीतस्यनाशशब्दस्यकाकथा ॥ ५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वंध्यापुत्रनभोवृक्षकल्पनातावदस्तिहि ॥ सायथानाशजन्माढ्यातथैवेदंनकिंभवेत् ॥ ६ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तुल्यस्यातुलदुःस्थस्यभावकैःकिलतोलनम् ॥ निरन्वयायथैवोक्तिर्जगत्सत्तातथैवहि ॥ ७ ॥ यथासौवर्णकटकेदृश्यमानमिदंस्फुटं ॥ कटकत्वंतुनैवास्तिजगत्त्वंनतथापरे ॥ ८ ॥

अर्थ—जो आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ, और न जिसका नाश हुआहै, उसकी उत्पत्ति कैसी और उसके नाश शब्दकी क्या कथा ? ॥ ५ ॥ बन्ध्यापुत्र और आकाशके वृक्षकी कल्पनाहै, वह कल्पना जैसे उत्पत्ति और नाशवाली है, ऐसेही यह जगत् विकल्पप्रत्ययके समान क्यों नहीं ? क्योंकि अत्यन्त असत् (बन्ध्यापुत्रादि) उपमान नहीं हो सकते ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—विकल्पप्रत्ययको उपमानता होती है यदि वह जगत्के भीतर न होता, तो जगत्के भीतर होनेसे उसको उपमानताका असंभवहै इसलिये असत् जगत्का मेरा कहाहुआ (बन्ध्यापुत्रादि) दृष्टान्तही योग्यहै, इस अभिप्रायसे वसिष्ठजी कहते हैं कि तुल्य अर्थात् उपमेयके इष्ट दृश्यसे बहिर्भूत उपमानके अलाभसे उपमेय पक्षके पदार्थोंके साथ उपमानका कथन अनन्वय अलंकारका[1] जैसे कथनहै वैसेही जगत्की सत्ता अर्थात् बन्ध्यापुत्रके सदृशहै ॥ ७ ॥ जैसे सुवर्णके कडेमें सुवर्णसे पृथक् कडापन कुछ नहीं है, ऐसेही जगत्की सत्ता परब्रह्ममें है, अर्थात् ब्रह्मसे पृथक् नहीं है ॥ ८ ॥

आकाशेचयथानास्तिशून्यत्वंव्यतिरेकवत् ॥ जगत्त्वंब्रह्मणितथानास्त्येवाप्युपलब्धिमत् ॥ ९ ॥ कज्जलान्नयथाकार्ष्ण्यंशैत्यंचनयथाहिमात् ॥ पृथगेवंभवेद्बुद्धंजगन्नास्तिपरेपदे ॥ १० ॥ यथाशैत्यंनशशिनोनहिमाव्यतिरिच्यते ॥ ब्रह्मणोनतथासर्गोविद्यतेव्यतिरेकवान् ॥ ११ ॥ मरुनद्यांयथातोयंद्वितीयेंदौयथेंदुता ॥ नास्त्येवेहजगन्नामदृष्टमप्यमलात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें शून्यता भेदसे नहीं है, ऐसेही प्रत्यक्षसे दृश्यमान भी यह जगत् ब्रह्ममें वास्तविक पृथक् रूपसे नहीं है किन्तु ब्रह्मरूपही है ॥ ९ ॥ जैसे कज्जलसे कृष्णता, और हिमसे शीतता पृथक् नहीं है ऐसेही परमपदसे पृथक् जगत् कोई पदार्थ नहीं है ॥ १० ॥ जिसप्रकार चन्द्रमासे और हिमसे शीतता कोई अलग पदार्थ नहीं है इसीप्र-

(१) अनन्वय अलंकारका उदाहरण "गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः" आकाश आकाशके और समुद्र समुद्रके सदृशहै अर्थात् सागर और आकाशके सदृश कोई नहीं है, ऐसेही जगत्की दशाहै ।

कार यह सृष्टि ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ ११ ॥ जैसे मरुस्थलकी नदीमें जल और दूसरे चन्द्रमामें चन्द्रत्व नहीं है इसीप्रकार अमलब्रह्ममें प्रत्यक्ष जगत्भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ १२ ॥

आदावेवहियन्नास्तिकारणासंभवात्स्वयम् ॥ वर्तमानेपितन्नास्तिनाशःस्यात्तत्रकीदृशः ॥ १३ ॥ कासंभवद्भूतजाड्यंपृथ्व्यादेर्जडवस्तुनः ॥ कारणंभवितुंशक्तंछायायाश्चातपोयथा ॥ १४ ॥ कारणाभावतः कार्यनेदंतत्किंचनोदितम् ॥ यत्तत्कारणमेवास्तितदेवेत्थमवस्थितम् ॥ १५ ॥ अज्ञानमेवयद्भातिसंविदाभासमेवतत् ॥ यज्जगदृश्यतेस्वप्नेसंवित्कचनमेवतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—कारणके असंभवसे जो आदिमेंही नहीं है वह वर्तमानमें भी उसीप्रकार नहीं है तब उसका नाश किसप्रकार होसकताहै ? ॥ १३ ॥ जैसे छायाका कारण धाम (धूप) नहीं होसकता, इसीप्रकार पृथिवीआदि जडवस्तुका कारणभूतकी जडतासे रहित चेतनब्रह्म कहां होसकताहै ? क्योंकि कहींभी अपनेसे विरुद्ध स्वभावका परिणाम नहीं देखागया ॥ १४ ॥ परिणाम[1]की दृष्टिसे यह जगत् कुछभी उदयको नहीं प्राप्तहुआ और विवर्तकी दृष्टिसे यद्यपि विरुद्ध पदार्थके आरोपका संभव होताहै तथापि विवर्त अवस्थामें वह कारणही जगत्रूपसे स्थित है जगत्रूप कार्य्यकी पृथक् सत्ता नहीं है ॥ १५ ॥ जो अज्ञानही जगत् आकारमें परिणत (तबदील) होके भान होताहै इससे अज्ञानही जगत्का परिणामी कारण हुआ सो नहीं, किन्तु वह अज्ञान संवित् (ज्ञान) कोही जगत्रूपसे प्रकाशित करताहै, क्योंकि स्वप्नमें जो जगत् दिखाई देताहै वह संवित्काही विवर्त है ॥ १६ ॥

संवित्कचनमेवांतर्यथास्वप्नेजगद्भ्रमः ॥ सर्गादौब्रह्मणितथाजगत्कचनमाततम् ॥ १७ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचित्सदैवात्मनिसंस्थितम् ॥ नास्तमेतिनचोदेतिजगत्किंचित्कदाचन ॥ १८ ॥ यथाद्रवत्वंसलिलंस्पंदनंपवनोयथा ॥ यथाप्रकाशआभासोब्रह्मैवत्रिजगत्तथा ॥ १९ ॥ यथापुरमिवास्तंतर्विदेवस्वप्नसंविदः ॥ तथाजगदिवाभातिस्वात्मैवपरमात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें अन्तःकरणहीमें संवित्के विलाससे जगत्का भ्रम होताहै, इसीप्रकार सृष्टिकी आदिमें ब्रह्ममेंही यह जगत्का भ्रम व्याप्त है ॥ १७ ॥ जो कुछ यह जगत् देखपडताहै वह परमार्थ स्वभाववाले आत्मामें स्थितहै और यह कभी किंचित्भी उदय अस्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥ जैसे द्रवत्व और जलस्पन्दन और वायु, तथा प्रकाश और आभास एकही पदार्थ है, ऐसेही ब्रह्म और तीनोंलोक एकही पदार्थ हैं ॥ १९ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाले अन्तःकरणमें चेतन है वही नगर आदिका आकार धारण करके भान होने लगताहै इसीप्रकार परमात्मामें अपना आत्माही जगत्का आकार धारण करके भासने लगताहै ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथंब्रह्मन्सुघनप्रत्ययंवद ॥ इदंदृश्यविषंजातमसत्स्वप्नानुभूतिवत् ॥ २१ ॥ सतिदृश्येकिलद्रष्टासतिद्रष्टरिदृश्यता ॥ एकसत्त्वेद्वयोर्बंधोमुक्तिरेकक्षयेद्वयोः ॥ २२ ॥ अत्यंतासंभवोयावद्बुद्धोदृश्यस्यनक्षयः ॥ तावद्द्रष्टरिदृश्यत्वंनसंभवतिमोक्षधीः ॥ २३ ॥ दृश्यंचेत्संभवत्यादौ पश्चात्क्षयमुपालभेत ॥ तद्दृश्यस्मरणानर्थरूपोबंधोनशाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यदि यह दृश्यरूपी विष स्वप्नके अनुभवके समानअसत्है तो कल्पपर्यन्त विवाद रहित व्यवहारके योग्य दृढ विश्वासवाला कैसे होगया ? और स्वप्न नहीं, अर्थात् दृष्टान्त दार्ष्टान्तमें विषमता है ॥ २१ ॥ दृश्य रहते द्रष्टा अवश्य है, और द्रष्टाके रहते दृश्य अवश्य है एकके रहनेसे दोनोंको बन्धन, तथा एकक नाशसे दोनोंकी मुक्ति, वह एकका नाश अनुभवमें नहीं आता इससे मुक्ति होना असंभव है ॥ २२ ॥ जबतक दृश्यका अत्यन्त असंभवरूप नाश ज्ञात नहीं होता तबतक मोक्षका संभव नहीं ॥ २३ ॥ यदि यह दृश्य सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुआ हो तो पीछे नाशको प्राप्त होतोभी संस्कार रूपसे स्थित पुनः उत्पन्न होके बन्धनरूप अनर्थको करेगा और शान्त नहीं होगा ॥ २४ ॥

यत्रक्वचनसंस्थस्यस्वादर्शस्येवचिद्रतेः ॥ प्रतिबिंबोलगत्येवसर्वस्मृतिमयोह्यलम् ॥ २५ ॥ आदावेव हिनोत्पन्नंदृश्यंनास्त्येवचेत्स्वयम् ॥ द्रष्टुर्दृश्यस्वभावत्वात्तत्संभवतिमुक्तता ॥ २६ ॥ तस्मादसंभवन्मुक्तेर्ममप्रोत्सार्ययुक्तिभिः ॥ अत्यंतासंभवोयावत्कथयात्मविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असदेवसदाभातिजगत्सर्वात्मकंयथा ॥ शृणवहंकथयारामदीर्घयाकथयामिते ॥ २८ ॥

---

१ परिणाम उसको कहतेहैं एक पदार्थ बदलके दूसरा होजाय जैसे दूधका दहीं और विवर्त उसको कहतेहैं, जो पदार्थ वहां बनारहै और अज्ञानसे दूसरा मालूम होताहै ॥ जैसे सींबमें चांदी रस्सीमें सांप ॥

अर्थ—जिस किसीस्थानमें स्थित उत्तम आदर्श (दर्प्पण)के समान चित्‌रूपी दर्पणमें प्रतिबिम्ब अवश्य पडेगा क्योंकि संस्काररूपी सभी पदार्थ अपना कार्य करनेमें समर्थ है॥ २५॥ आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ तो यदि दृश्य अपने स्वभावसे नहींहै इसप्रकार द्रष्टा चेतनहीं दृश्य स्वभाव होनेसे मुक्तिका संभव है और जो उत्पन्न नहीं हुआ उसका अनुभव नहीं होता इसलिये द्रष्टाका स्वभावसे विनिर्मुक्ति नहीं हो सकती॥ २६॥ इसलिये हे भगवन्! मेरी मुक्ति की असंभवकी शंकाका समाधान युक्तियोंका विस्तार करके जबतक दृश्यका अत्यन्ताभाव बुद्धिमें आरूढ न हो तबतक दीजिये॥ २७॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह सर्वात्मक असत् होकेभी सत् जिसप्रकार भासता है सो मैं मण्डपोख्यान आदि दीर्घ कथासे कहताहूं आप सुनिये॥ २८॥

व्यवसायकथावाक्यैर्यावत्तत्रानुवर्णितम्॥ नविश्राम्यतितेतावद्धृदिपांसुर्यथाऽह्रदे॥ २९॥ अत्यंताभावमस्यास्त्वंजगत्सर्गभ्रमस्थितेः॥ बुद्धैकध्याननिष्ठात्माव्यवहारंकरिष्यसि॥ ३०॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचलाचलाः॥ दृशस्त्वांवेधयिष्यंतिनमहाद्रिमिवेषवः॥ ३१॥ सएषोस्त्येकएवात्मानद्वितीयास्तिकल्पना॥ जगत्त्रयथोत्पन्नंतत्तेवक्ष्यामिराघव॥३२॥तस्मादिमानिसकलानिविजृंभितानिसोपीदमंगसकलासकलंमहात्मा॥रूपावलोकनमनोमननप्रकाराकारास्पदंस्वयमुदेतिविलीयतेच॥३३॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थवर्णनं नाम एकादशः सर्गः॥ ११॥

अर्थ—आपको मैं तबतक समाधान करूंगा जबतक पूर्व महात्माओंके व्यवहार और उनके कथा वाक्योंसे उसमें वर्णन किया हुआ आपके हृदयमें ऐसे नहीं विश्राम पावेगा जैसे तडागमें धूलि॥ २९॥ उससे इस जगत्की सृष्टिको भ्रमकी स्थिति (दशा) का अत्यन्ताभाव जानकर एक आत्मतत्वमें ध्याननिष्ठभी होओगे और संसारके व्यवहारभी करोगे॥ ३०॥ भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, स्थूल, सूक्ष्म आदि विषयोंमें चल और अचल व्यवहारकी दृष्टियां राग आदि न होनेके कारणसे ऐसे नहीं वेधन करसकेंगी जैसे बडेभारी पर्वतको बाण॥ ३१॥ यह आत्मा एकही अद्वैत है इसमें द्वितीय (द्वैत) की कल्पना नहीं है, हे रामजी! द्वितीय कल्पना शून्य आत्मामेंभी जैसे यह जगत् उत्पन्न हुआ सो मैं तुमसे कहताहूं॥ ३२॥ हे प्रिय रामजी! उसी परमात्मासे ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आविर्भूत (प्रकट) होते हैं, और वही महात्मा बाह्य इन्द्रियोंसे समष्टिव्याष्टि रूप इस दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् तथा उनके रूपादिके आलोकन प्रकारको, और अन्तर इद्रियोंसे मनन प्रकारको धारण करके आपही उदय और लयको प्राप्त होताहै, अर्थात् आप एकरस रहतेभी भ्रान्तिसे उदय और लयभावसे ज्ञात होता है॥ ३३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थवर्णनं नामैकादशः सर्गः॥ ११॥

द्वादशः सर्गः॥ १२॥

सबके अपवाद (आत्मामें क्रमशः लय) से अत्यन्त असंभव कहनेकेलिये उसीके अनुकूल सृष्टि और अध्यारोपका वर्णन इस १२ वे सर्गमें करते हैं॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ एतस्मात्परमाच्छांतात्पदात्परमपावनात्॥ यथेदमुत्थितंविश्वंतच्छृणूत्तमया धिया॥ १॥ सुषुप्तंस्वप्नवद्भातिभातिब्रह्मैवसर्गवत्॥ सर्वात्मकंचतत्स्थानंतत्रतावत्क्रमंशृणु॥ २॥ तस्यानंतप्रकाशात्मरूपस्यानंतचिन्मणेः॥ सत्तामात्रात्मकंविश्वंयदजस्रंस्वभावतः॥ ३॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस परमशान्त और परम पावन (आत्म) पदसे जिसप्रकार यह विश्व प्रगट हुआहै उसको सावधान बुद्धिसे सुनिये॥ १॥ जिसप्रकार प्रत्येक पुरुषको सुषुप्त आत्माका रूपही स्वप्नके समान भासताहै इसीप्रकार ब्रह्मही सृष्टिरूपसे भान होताहै, उनमें एक पुरुषकी वासनाका कार्य होनेसे स्वप्न दृढ नहीं है और सम्पूर्ण प्राणीमात्रकी वासनाका कार्य होनेसे जाग्रत दृढ प्रयत्नवाला है, और जिसप्रकार सम्पूर्ण सुषुप्त समाष्टिके प्रलयका स्थान ब्रह्म है उस क्रमको सुनिये॥ २॥ उस अनन्त प्रकाश स्वरूपवाले अनन्त चिंतनरूप मणिके स्वभावसे सदा परमार्थरूप यह विश्व॥ ३॥

तदात्मनिस्वयंकिंचिच्चेत्यतामिवगच्छति ॥ अगृहीतात्मकंसंविदहंमर्शनपूर्वकम् ॥ ४ ॥ भावि नामार्थकलनैःकिंचिदूहितरूपकम् ॥ आकाशादणुशुद्धंचसर्वस्मिन्भातिबोधनम् ॥ ५ ॥ ततः सापरमासत्तासचेतश्चेतनोन्मुखी ॥ चिन्नामयोग्याभवतिकिंचिल्लभ्यतयातथा ॥ ६ ॥ घनसंवेदनाप श्चाद्भाविजीवादिनामिका ॥ संभवत्यात्तकलनायदोज्झतिपरंपदम् ॥ ७ ॥ सत्तैवभावनामात्रसारासं सरणोन्मुखी ॥ तदावस्तुस्वभावेनत्वनुत्तिष्ठतितामिमाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—संवित्से अध्यासरूप अहंकारके ग्रहण किये विनाही, आकाशसे अणु और सूक्ष्म जो बोध (ज्ञान) वह सम्पूर्ण रचना करनेके योग्य पदार्थोंके विषयमें भावी नामरूपके अनुसन्धानसे कुछ चेष्टारूप होके प्रथम आत्मामें चेत्यताके समान प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर वह परमसत्तामें ईक्षण (जगत्को मैं रचूं ऐसी इच्छा) रूप वृत्तिसहित चेतना अभिव्यक्त जो चैतन्य उसकी ओर उन्मुख होती हुई कुछ वाणीके व्यवहारकी योग्यता प्राप्त होनेसे चित् (सबको चेतानेवाले सर्वज्ञ ईश्वर) नामके योग्य होती है ॥ ६ ॥ अधिक कालकी अनुवृत्तिसे दृढ ई-क्षणसहित सूक्ष्म विषय और प्रपंचके स्वरूपको धारण करनेसे जिससमय वह चेतना अपरिच्छिन्न आत्मपदको त्यागती है उससमय भावीप्राणधारण उपाधिवाले जीव हिरण्यगर्भ आदि नामवाली होती है ॥ ७ ॥ उस समय ब्रह्मसत्ताही भावनामात्रसे संसारकी ओर उन्मुख जीव आदि नामधारण करनेवाली होती है, न कि विकारमात्रसे, और वस्तुके स्वभावसे उस सत्ताका अनुसरण करकेही जैसे रज्जुमें सर्प प्रतीत होताहै वैसेही अपनी परमार्थदशामें रहती हुई जीव आदि भावको प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

समनंतरमेवास्याःखसत्तोदेतिशून्यता ॥ शब्दादिगुणबीजंसाभविष्यदभिधार्थदा ॥ ९ ॥ अहंतोदे तितदनुसहवैकालसत्तया ॥ भविष्यदभिधार्थेनबीजंमुख्यजगत्स्थितेः ॥ १० ॥ तस्याः शक्तेः पराया स्तुस्वसंवेदनमात्रकम् ॥ एतज्जालमसद्रूपंसदिवोदेतिविस्फुरत् ॥ ११ ॥ एवंप्रायात्मिकासंविद्बीजंसं कल्पशाखिनः ॥ भवत्यहंकारकणस्ततःस्पंदतयामरुत् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस जीव सत्ताके अनन्तरही, सूर्य्यादि सृष्टिके अनन्तर भविष्यत् अर्थसहित आकाश नामको धारण करनेवाली, शब्दादि गुणोंका बीजभूत, अपनेसे पृथक् सब भूतोंके अवकाश देनेसे शून्यमय, आकाशकी सत्ता उदय होती है ॥ ९ ॥ उसके अनन्तर भविष्यत् नाम और अर्थसे मुख्य जगत् स्थितिका बीजभूत दो परार्द्ध आयुरूप का-लकी सत्ताके साथ अहन्ता (अहंकारकी सत्ता) उदय होती है ॥ १० ॥ यह आकाश अहंकार और कालकी सृष्टि हिरण्यगर्भसेही नहीं होती, किन्तु हिरण्यगर्भरूप उपाधिका उपहित जो परमात्मसत्ताहै उसीसे होती है क्योंकि सबका कारण वही है उस पराशक्ति (सत्ता) से अपने ज्ञान मात्रसे विस्मरण होता हुआ यह असत्रूप संसारका जाल सत्के समान होती है ॥ ११ ॥ आकाशके अहंकारसे आकाशमय रूपवाली, कार्य्यविषयके संक-ल्पका बिजभूत, अहंकारका कण अर्थात् एक देशके समान संवित् (ज्ञान) परिच्छिन्न स्पन्द (गति) शक्तिकी प्रधा-नतासे वायुरूपसे प्रकट होती है ॥ १२ ॥

चिदहंतावतीव्योमशब्दतन्मात्रभावनात् ॥ स्वतोघनीभूयशनैःखतन्मात्रंभवत्यलम् ॥ १३ ॥ भाविना मार्थरूपंतद्बीजंशब्दौघशाखिनः ॥ पदवाक्यप्रमाणाख्यंवेदवृंदंविकासितम् ॥ १४ ॥ तस्माद्दुदेष्यत्यखि लाजगच्छ्रीःपरमात्मनः ॥ शब्दौघनिर्मितार्थौघपरिणामविसारिणः ॥ १५ ॥ चिदेवंपरिवारासाजीव शब्देनकथ्यते ॥ भाविशब्दार्थजालेनबीजंरूपौघशाखिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशके अहंकाररूप उपाधिकी उपहित परमसत्ता आकाश तन्मात्रकी भावना मात्रसे अतिसूक्ष्म आकाशसे कुछ स्थूलभावको धारण करके आकाशसे आकाश तन्मात्रा पूर्ण रीतिसे धीरेधीरे होजाती है॥१३॥शब्दोंका समूहरूपी वृक्षोंका बीजभूतभावी नामार्थरूप वह शब्द तन्मात्र, विस्तारको प्राप्त कियाहुआ पदवाक्य प्रमाण नाम-वाला वेदोंका समूहहै ॥ १४ ॥ शब्दोंके समूहसे बनायेहुये अर्थोंके समूहोंके परिणामसे विस्तारको प्राप्त होनेवाले वेद-भावको प्राप्त उस परमात्मासे सम्पूर्ण जगत्की शोभा उत्पन्न होगी अर्थात् उसने " भूः " ॥ १५ ॥ इसप्रकार भावीशब्द और अर्थके जालसे मूर्ति आकारोंके समूह वृक्षका बीजभूत पूर्वोक्तवायु (प्राणरूप) अन्तःसार सहित चित् जीवशब्दसे कही जाती है, अर्थात् वायु उत्पत्तिके अनन्तर वायुरूप प्राणके धारण करनसे जीव सिद्ध होताहै ॥ १६ ॥

---

१ जीव और आकाश सत्ताके अनन्तर जीवको अभिमान होताहै ॥

चतुर्दशविधंभूतजालमावलितातरं ॥ जगज्जठरगर्त्तौघंप्रसरिष्यतिवैततः ॥ १७ ॥ असंप्राप्ताभिधाचारा चिज्जवात्प्रस्फुरद्वपुः ॥ सचिवस्पर्शतन्मात्रंभावनाद्भवतिक्षणात् ॥ १८ ॥ पवनस्कंधविस्तारंबीजंस्प र्शौघशाखिनः ।। सर्वभूतक्रियास्पंदस्तस्मात्संप्रसरिष्यति ।। १९ ।। तत्रैवचिद्विलासेनप्रकाशोनुभवा द्भवेत् ।। तेजस्तन्मात्रकतत्तुभविष्यदभिधार्थकम् ।। २० ।।

अर्थ—वायु व्यष्टि (प्रत्येक प्राणी) के प्राणभावसे सबके आध्यात्मिक क्रियाका हेतुहै इसबातको कहतेहैं, इसके अनन्तर चौदह १४ प्रकारके भुवनोंके भेदसे चौदह प्रकारके प्राणियोंके समूह युक्त वायुसे व्याप्त मध्यभाग ब्रह्माण्डोंके उदररूपी गर्तोंके समूहमें वायु (प्राण) बिचरेगा ॥ १७ ॥ वायुके अभिमानरूप उपाधिका उपहित वही चित् पूर्वकालमें संचारन पानेवाली भी वायुके अभिमानके वेगसे अधिक चंचल शरीरवाली स्पर्शतन्मात्राकी भावनासे स्पर्शतन्मात्रा क्षणभरमें होजाती है ॥ १८ ॥ उच्चांश ४९ प्रकारके पवनोंको शाखाओंके विस्तारवाला अनेक प्रकारके स्पर्शोंके समूहरूपी वृक्षका बीजभूत सम्पूर्ण प्राणियोंकी क्रियाका स्पन्द (संचल) उस स्पर्श-तन्मात्रासे प्रचलित होगा ॥ १९ ॥ उसी चेतनमें प्रकाशकी भावनासे प्रकाश होताहै और भविष्यत् नाम और अर्थको धारण करनेवाली तेज तन्मात्राहै ॥ २० ॥

तत्सूर्याग्निविजृंभादिबीजमालोकशाखिनः ।। तमस्माद्रूपविभेदेनसंसारःप्रसरिष्यति ।। २१ ।। भाव यंस्तनुतामेवरसस्कंधइवांभसः ।। स्वदनंतस्यसंवस्यरसतन्मात्रमुच्यते ॥ २२ ।। भाविवारिविला सात्मातद्बीजंरसशाखिनः अन्योन्यस्वदनेतस्मात्संसारःप्रसरिष्यति ।। २३ ।। भविष्यद्रूपसंकल्प नामासौकल्पनात्मकः ।। संकल्पात्मागुणैर्गंधतन्मात्रत्वंप्रपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—वह तेजतन्मात्र प्रकाशरूपी वृक्षका सूर्य्य अग्नि विद्युत् चन्द्रतारा आदिका बीजभूतहै, और उसीसे रू-पके भेदसे संसारका प्रसार होगा ॥ २१ ॥ वह तेजभावमें प्राप्त आत्मा जलके रसकणको वा उसकी परिच्छिन्न शरी-रकी भावना करता हुआ उसी दशाको प्राप्त होताहै, और जलरूप मूर्त द्रव्यका जिव्हासे मधुररस आस्वादन वह रस विशेषका सामान्य उपादान कारण होनेसे रसतन्मात्रा कहताहै ॥ २२ ॥ वही भावी समुद्रादिरूप जलके विलासरूप शरीरवाला रसरूप वृक्षका बीजहै, और उसी रससे, इन्द्रिय और विषयभावसे परस्परके आस्वादनमें राग आदिकी उत्पत्तिके बारम्बार विषयके उपार्जनकी प्रवृत्तिरूप संसारका प्रसार होगा ॥ २३ ॥ जलभावमें प्राप्त यह परमात्मा मैं पृ-थिवीहुं ऐसा संकल्परूप होता हुआ, भावी पृथिवीके नाम अर्थके संकल्पवाला होके गन्धके संकल्परूप अपने गुणोंसे अपनेको गन्ध तन्मात्र स्वरूप देखताहै ॥ २४ ॥

भाविभूगोलकत्वेनबीजमाकृतिशाखिनः ॥ सर्वाधारात्मनस्तस्मात्संसारःप्रसरिष्यति ॥ २५ ॥ चिता विभाव्यमानानितन्मात्राणिपरस्परम् ॥ स्वयंपरिणतान्यंतरंबुनीवनिरंतरम् ॥ २६ ॥ तथैतानिविमि श्राणिविविक्तानिपुनर्यथा ॥ नशुद्धान्युपलभ्यंतेसर्वनाशांतमेवहि ॥ २७ ॥ संवित्तिमात्ररूपाणिस्थि तानिगगनोदरे ॥ भवंतिवटजालानियथाबीजकणांतरे ॥ २८ ॥

अर्थ—ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध भावी भूगोल रूपसे आकाररूप वृक्षका वही (गन्धतन्मात्र भावमें प्राप्त) परमात्मा बीजहै और उसी सर्वाधाररूप परमात्मामें सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होगा ॥ २५ ॥ पूर्वोक्त अहंभावमें प्राप्त चेत-नसे प्रेरित सब भूतोंकी तन्मात्रा परस्पर ब्रह्माण्डके आकारसे निरन्तर स्वयं ऐसे परिणत होते रहतेहैं जैसे जलमें बुदबुदे ॥२६॥ कुछकालके लिये सब भूत ऐसे मिलजातेहैं कि जबतक सबका नाश नहो तबतक अलग शुद्धरूपसे नहीं प्राप्त होतेहैं ॥२७॥ ये सब ब्रह्माण्ड अव्याकृत आकाशमें ज्ञान मात्रसे ऐसे स्थितहैं जैसे वटके बीजके भीतर वटवृक्षका जाल॥२८

प्रसवंपरिपश्यंतिशतशाखंस्फुरंतिच ॥ परमाण्वंतरेभांतिक्षणात्कल्पीभवंतिच ॥ २९ ॥ विवर्त्तमेवधा वंतिनिर्विवर्त्तानिसंतिच ॥ चिद्वेधितानिसर्वाणिक्षणात्पिंडीभवंतिच ॥ ३० ॥ तन्मात्रगणमेतत्स्यात्सा संकल्पात्मिकाचितिः ॥ वेदनात्रसरेण्वाभमनाकारैवपश्यति ॥ ३१ ॥ बीजंजगत्सुतनुपंचकमात्रमेव बीजंपराव्यवहितस्थितिशक्तिराद्या ॥ बीजंतदेवभवतीतिसदानुभूतंचिन्मात्रमेवमजमाद्यमतोजगच्छ्रीः ३२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् यह कहो कि अति सूक्ष्म होनेसे अवकाशके अभावसे तन्मात्रोंमें स्थूल जगत्की स्थिति कैसे होती है सो यथार्थ में स्थितिनहीं किन्तु मायासे परमाणुके भीतरभी उत्पत्ति देखते है, अनेक शाखारूपमें स्फुरते हैं

क्षणका कल्प और कल्पके क्षण होके भान होने लगते हैं ॥ २९ ॥ विवर्तकी ओर दौडते हैं अर्थात् विवर्तसे स्थूल भावको प्राप्त होते हैं परन्तु यथार्थ विवर्त रहित अपने सूक्ष्म स्वरूपसेही रहते हैं, अविकार चेतन अनुविद्ध (संबंध) क्षणमेंही सब पिण्डाकार होजाते है, परिणाम पक्षमें तो कूष्माण्ड (कोहडे) की वृद्धिके सनान बिलम्ब होता है ॥३०॥ वह संकल्प मात्र चेतनही इन तन्मात्रोंका गण होजाताहै, अपने निजरूपसे निराकारभी ज्ञानमात्रसे त्रसरेणु आदिके समान देखताहै ॥ ३१ ॥ जगत्का बीज तन्मात्राहैं, और पंचतन्मात्राओंकी परमात्मासे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाली आदिमाया शक्तिहै जो कि जगत्की स्थितिका हेतुहै इस प्रकार अज, सबका आदि चिन्मात्र परमात्माही माया शक्तिके द्वारा सबका बीज सदा अनुभव किया गया है और इसीसे सब जगत् की शोभा है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

पूर्व सर्गमें सृष्टिके कथनसे ब्रह्मका मिथ्या जगत्रूप होना वर्णन किया और इस १३ वें सर्गमें उसकी जीवरूपता और देह आदिकी प्राप्तिका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमेब्रह्मणिस्फारेसमेरामसमस्थिते ॥ अनुत्पन्नन भस्तेजस्तमःसत्ताचिदात्मनि ॥१॥पूर्वंचेत्यत्वकलनंसतश्चेत्यांशचेतनात् ॥ उदेतिचित्तकलनंचितिशक्तित्वचेतनात् ॥ २ ॥ ततोजीवत्वकलनंचेत्यसंयोगचेतनात् ॥ ततोस्यमायाकलनंचेत्यैकपरतावशात् ॥ ३ ॥ ततोबुद्धित्वकलनमहंतापरिणामतः ॥ एतदेवमनस्तादिशब्दतन्मात्रकादिमत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सर्वत्र एकरस व्यापक परब्रह्मरूप सम अधिष्ठान रूपसे स्थित होनेकी दशामें अनुत्पन्न आकाश वायु तेज तम आदिकी कारणरूपसे सत्ता उसी चिदात्मामें रहती है ॥ १ ॥ सत्वस्तुके स्वभावके कारणसे चेत्य (विषय) अंशमें चेतनके होनेसे प्रथम उस चिदात्मामें विषयकी कल्पना होती है क्योंकि चेतयिता जीवभावसे चित्की सिद्धि विषय करण सिद्धिपूर्वक है, उसके अनन्तर चितिशक्तिके चेतन स्वभावसेही चित्तकी कल्पना होती है ॥ २ ॥ उसके अनन्तर चेत्यके संयोग चेतनके निमित्तसे जीवत्वकी कल्पना होतीहै, उसके अनन्तर इसको विषयमात्रमें अहंभाव होनेके कारणसे मायाका सम्बन्ध होताहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अहंकारकी वृद्धिसे बुद्धित्वकी कल्पना होती है, इसप्रकार धर्मके सिद्ध होनेपर वासनाके कारणसे आत्माके अन्तर्गत शब्द आदि विषय मात्राओंके मननसे उनके सहित यही मनरूप होजाताहै ॥ ४ ॥

उच्छूनादन्यतन्मात्रभावनाद्भूतरूपिणः ॥ अयमित्थंमहागुल्मोजगदादिर्विलोक्यते ॥ ५ ॥ झटित्येवंक्रमेणेतिस्वप्नेपुरमिवाकृतम् ॥ महाकाशमहाटव्यामुद्भूयोद्भूयनश्यति ॥ ६ ॥ जगत्करंजकुंजानांबीजमेतदवापजम् ॥ नापेक्षतेकिंचिदपिक्षितिवार्यनलादिकम् ॥ ७ ॥ एतच्चिदात्मकंपश्चात्किलोर्व्यादिकरिष्यति ॥ स्वंस्वप्नवित्पुरमिवचिन्मात्रात्मकमेवयत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वासनारूप शब्दतन्मात्राओंका अन्य स्पर्श आदि तन्मात्राओंके साथ मिलनेसे और उनके पंचीकृत भावसे वृद्धिको प्राप्त आध्यात्मिक महाभूतरूप स्थूलदेहदशामें प्राप्त मनसेही यह जगत् आदि वृक्ष देख पडताहै॥५॥इसी पूर्वोक्त क्रमसे स्वप्नमें विना इच्छाके नगरकी उत्पत्तिके समान महाकाशरूप महाबनमें शीघ्रही उत्पन्न हो होकर पुनः नष्ट होताहै ॥ ६ ॥ जगत्रूपी करंजा (करमचा वा कपित्थ) के जंगलोंका यह बीज बीनाबोयेही उत्पन्न हुआहै, यह पृथिवी जल और वायुआदि किसीकी अपेक्षा नहीं करता ॥ ७ ॥ यह चेतनरूप आत्माही अपने स्वरूपसे पृथिवी आदिको ऐसे बना लेगा जैसे स्वप्नका देखनेवाला अपनेमें (अपना अनुभूयमान) नगर, परन्तु यथार्थमें वह चेतनरूपही है ॥ ८ ॥

---

१ सुषुप्तिके समान प्रलयदशामें लयके कारणसे माया शबल ब्रह्मभावमें प्राप्त जीव उपाधियोंका फिर आविर्भावका क्रम हेतुसहित वसिष्ठजी कहते हैं ।

जगदाद्यंकुरंयत्रतत्रस्थमपिमुंचति ॥ जगतःपंचकंबीजंपंचकस्यचिदव्यया ॥ ९ ॥ यद्बीजंतत्फलंविद्धि तस्माद्ब्रह्ममयंजगत् ॥ एवमेषमहाकाशेसर्गादौपंचकोगणः ॥ १० ॥ चिच्छक्त्यास्वांगभूतात्माकल्पि तोस्तिनवास्तवः ॥ अनेनोच्छूनतामेत्ययदपीदंवितन्यते ॥ ११ ॥ तदप्याकाशरूपात्मकल्पनात्मनि सन्मयम् ॥ कचिन्नानाभतत्सिद्धंयदसिद्धेनसाध्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जो चिदात्मक (चेतनरूप) है वह चाहै जिस दशामेंहो परन्तु जगत् आदिके अंकुरको त्यागही देताहै जगत्के अंकुरके बीज पंचतन्मात्राहै और पंचतन्मात्राका बीज अविनाशी चेतनहै ॥९॥ जो बीज होताहै वही फल हो- ताहै इसकारण सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममयहै, इसप्रकार महाकाशमें यह पंचक (पंचतन्मात्र) सृष्टिके आदिमें चेतन शक्तिमें अपने अंकके समान कल्पित किया गयाहै, यद्यपि यह वृद्धिको प्राप्त होके इसस्थूल जगत्का विस्तार करताहै तथापि यह सत्य नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥ वह (स्थूल) भावको प्राप्तभी जगत् आकाशके रूपसे अपने कल्पनाके अधिष्ठान आत्मामें रहनेसे तन्मय है, क्योंकि जो असिद्धसे सिद्ध किया जाताहै वह कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १२ ॥

स्वरूपंयद्विकल्पात्मकथंतत्सत्यतामियात् ॥ अथचेत्पंचकंब्रह्मब्रह्मात्मकतयाधिया ॥ १३ ॥ तत्पंचकं विद्धिप्रौढोब्रह्मैवत्रिजगत्क्रमः ॥ यथास्फुरतिसर्गादावेषपंचकसंभवः ॥ १४ ॥ तथैवाद्येहभूतत्वेयाति कारणतास्वयम् ॥ एवंनजायतेकिंचिज्जगज्जातंनलक्ष्यते ॥ १५ ॥ स्वप्नसंकल्पपुरवदसत्सदनुभूयते ॥ ब्रह्माकाशपराकाशेजीवाकाशत्वमात्मनि ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसका स्वरूपही कल्पनामयहै वह सत्य कैसे होसकताहै ? यदि यह कहो कि पंचतन्मात्रा ब्रह्ममें अ- अध्यस्तहै इसयिले वह ब्रह्महै न कि उसका कार्य्य सो नहीं पंचस्थूल भूत जो पंचतन्मात्राओंका कार्य्य हैं वहभी ब्रह्मही है और वृद्धिको प्राप्त जो यह त्रिलोकहै उसकोभी ब्रह्मात्मक बुद्धिसे (उपादान कारण और कार्य्यका अभेद होनेसे) इसकोभी ब्रह्मही जानो, जैसे सृष्टिकी आदिमें यह पंचतन्मात्रा पूर्वकालमें ब्रह्मरूपसे स्फुरताहै वैसेही उत्तरकालमेंभी स्वयं कारणताको प्राप्त होके स्थूल भूत होजाताहै, इसप्रकार परमार्थमें यह जगत् कुछभी नहीं उत्पन्न होता, और न उस दशामें यह जगत् समूह लक्षित होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ब्रह्म आकाशरूप परमप्रकाशरूप पराकाश आ- त्मामें असत्रूप जीवाकाश, असत्स्वप्नके नगरके समान भान होताहै ॥ १६ ॥

इतिचित्यवदातात्माप्टथ्व्यादीनामसंभवात् ॥ इत्येषजीवःकथितोव्योम्निखात्माइवोदितः ॥ १७ ॥ जीवाकाशस्त्विमंदेहंयथाविंदतितच्छृणु जीवाकाशःस्वमेवासौतस्मिंस्तुपरमेश्वरे ॥ १८ ॥ अणुतेजः कणोस्मीतिस्वयंचेततिचिंतया ॥ यत्तदेवोच्छूनमिवभावयत्यात्मनांबरे ॥ १९ ॥ असदेवसदाकारंसं कल्पेंदुर्यथानसन् ॥ तमेवभावयन्द्रष्टृदृश्यरूपतयास्थितः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार यथार्थमें परिच्छिन्न उपाधिवाले पृथिवी आदिका असंभव होनेसे चेतनमें अपनेको शुद्धरूपही देखताहै, और आकाशमें गन्धर्व नगरके समान उदयको प्राप्त यह जीव अपना आत्माही कहागयाहै ॥ १७ ॥ इसप्रकार सामान्य अभिमानसे ब्रह्मको समष्टि जीवभाव कहके अब विशेष अभिमानसे व्यष्टि अभिमानसे देह पर्य्यन्त अभेद आ- रोपका क्रम वर्णन करतेहैं, हे रामजी यह जीवाकाश जिसप्रकार शरीरको पाताहै वह सुनो, उस परमेश्वरसे कल्पित समष्टि जीवाकाश विस्तृत स्वरूप होनेपरभी ॥ १८ ॥ मैं अल्पतर स्फुलिंगके समान तेजका कणहुं ऐसी चिन्तासे जैसे आत्माका अनुभव करताहै वैसेही आत्माकाशमें स्थूलभावको प्राप्त होताहै ॥१९ ॥ जैसे संकल्पका चन्द्रमा सत् नहीं हैं ऐसेही यह असत्ही यह सदाकार भान होताहै, और उसीकी भावना करता हुआ द्रष्टा और दृश्यरूपसें स्थितहै ॥२०॥

एकएवद्वितामेतिस्वप्नेस्वमृतिबोधवत ॥ किंचित्स्थौल्यमिवादत्तेततस्तारकतांविदन् ॥ २१ ॥ यथा भावितमात्रार्थभावितान्द्विश्वरूपतः ॥ सएवस्वात्मासततास्ययंसोहमितिस्वयम् ॥ २२ ॥ चित्तात्प्रत्य यमाधत्तेस्वप्नेस्वामिवपांथताम् ॥ तारकाकारमाकारंभाविदेहाभिधंतथा ॥ २३ ॥ भावयत्यतितद्भावं चित्तंचेत्यार्थतामिव ॥ परित्यज्यैवतद्ब्राह्मंततस्तारककोटरे ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वप्नमें अपने मरणके ज्ञानके समान एक अद्वितीय रहतेभी द्वैतभावको प्राप्त होताहै, उसके अनन्तर अ- णुतेजके फलाभावको त्यागकर ताराकी सदृशताको प्राप्त होताहुआ कुछ स्थूलताको धारण करताहै और यही इ- सका भूतमात्रासहित लिंगरूपहै ॥ २१ ॥ यथा प्राप्त मात्राओंके अर्थकी वासनासे और विश्वरूप होनेके कारणसे यह जीव ताराके सदृश ज्ञान होनेसे अर्थात् मैं स्वयं वहहूं ऐसा ज्ञान होनेसे वह ताराकारही अपना आत्मा हो- गया ॥ २२ ॥ पूर्वोक्त ताराकार (लिंगशरीराकार) और भावी स्थूलदेहका आकार वह आत्मा चित्तकी कल्पना

वशसेही धारण करताहै जैसे चित्तकी कल्पनासे स्वप्नमें अपनेको पान्थ (राही) देखताहै ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नमें उपाधिके अन्तर्गत कल्पित आकाशमें बाह्यभावको त्यागकरही चित्त विषयाकार होजाताहै इसीप्रकार स्थूलदेहाकारकी भावनासे स्थूलशरीरवाला होजाताहै ॥ २४ ॥

अंतर्भातिबहिष्ठेोपिपर्वतोमुकुरेयथा ॥ कूपसंस्थोयथादेहःसमुद्रकगतंवचः ॥ २५ ॥ स्वप्नसंकल्पयोः संविद्देत्येतज्जीवकोणके ॥ स्वरूपतारकांतस्थोजीवोयंचेततिस्वयम् ॥ २६ ॥ तदेतद्बुद्धिचित्तादिज्ञान सत्तादिरूपकम् ॥ जीवाकाशःस्वतस्तत्रतारकाकाशकोशगम् ॥ २७ ॥ प्रेक्षेहमितिभावेनद्रष्टुंप्रसरती वखे ॥ ततोरंध्रद्वयेनैवभाविबाह्याभिधंपुनः ॥ २८ ॥ येनपश्यतितन्नेत्रयुगंनाम्नाभविष्यति ॥ येनस्पृश तिसात्वित्वग्यच्छृणोतिश्रुतिस्तुसा ॥ २९ ॥

अर्थ—जैसे पर्वत बाहर रहतेभी दर्पणमें भीतर भान होताहै, और सब स्थानमें व्यवहार करनेमें समर्थ यह देह कूपके भीतर उतनेही देशमें व्यवहार करताहै, तथा जैसे दूरसे श्रवणके योग्यभी बचन सन्दूकके भी बाहर नहीं जासकता ॥ २५ ॥ अथवा जैसे स्वप्न वा संकल्पका ज्ञान दूसरे देहमें स्वप्नआदि व्यवहार देखताहै. इसीप्रकार पूर्वोक्त सूक्ष्म लिंग सदृश उपाधिमें अपना स्वरूप मानके लिंग शरीरमेंही वासनामय देहआदि व्यवहारका अनुभव करताहै ॥ २६ ॥ इस वासनामय देहआदि व्यवहार दृष्टिसे बुद्धि चित्तआदिका परिणाम होनेसे बुद्धिचित्तादिरूप और परमार्थ दृष्टिसे सत् चित् आनन्दरूपको अपने लिंगशरीरके अन्तर्गतही, मैं देखूं ऐसी वासनासे आकाशमें देखनेको चलताहै, उसके अनन्तर जिन दो छिद्रोंसे बाह्यपदार्थोंको देखताहै वे दो नेत्रके नामसे होंगे, जिससे स्पर्श करताहै वह त्वक् इन्द्रिय होगी, जिससे सुनताहै वह श्रोत्र (कर्ण) ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

येनजिघ्रतितत्घ्राणंसस्वमात्मनिपश्यति ॥ तत्तस्यस्वदनंपश्चाद्रसनाचोल्लसिष्यति ॥३०॥ स्पंदतेयत्स तद्वायुश्चेष्टाकर्मेंद्रियव्रजम् ॥ रूपालोकमनस्कारजातमित्यपिभावयन् ॥ ३१ ॥ आतिवाहिकदेहात्मा तिष्ठत्यंबरमंबरे ॥ एवमुच्छूनतांतस्मिन्भावयत्तेजसःकणे ॥ ३२ ॥ असत्यांसत्यसंकाशांब्रह्मास्तेजी वशब्दवत् ॥ इत्थंसजीवशब्दार्थःकलनाकुलतांगतः ॥३३॥ आतिवाहिकदेहात्माचितदेहांबराकृतिः॥ स्वकल्पनांतआकारमंडंसंस्थंप्रपश्यति ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिससे सूंघताहै वह घ्राण इन्द्रिय अपना करके अपने देखताहै, और जिससे स्वाद लेताहै वह रसना (जिव्हा) इन्द्रिय नामसे शोभित होगी ॥ ३० ॥ जिससे श्वासआदि क्रियाकी गति होती है वह प्राण आदिकी वृत्ति, चेष्टा और सब कर्म इन्द्रियोंका समूहहै, और रूप, प्रकाश, तथा मनके व्यापारोंका अध्यास करताहुआ ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सूक्ष्म शरीरवाला स्वयं आकाशरूप आकाशमें उसी तेजके कणमें वृद्धिकी भावना वा अध्यास करताहुआ ब्रह्मस्थितहै इसप्रकार असत्य परन्तु सत्यके समान कल्पनासे व्याकुलताको प्राप्त लिंगशरीरवाला चित्तरूपी शरीराम्बरही स्थूलतासे स्थूल शरीर आकार जीव शब्दके समान जीव शब्दका अर्थ, स्फुलिंग आदिसे लेके बाह्य विषय पर्य्यन्त अपनी कल्पनासे सिद्ध आकारवाले ब्रह्म और उसके निकट आवरण आदि व्यवस्था सहित ब्रह्माण्डको देखताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कश्चिज्जलगतंवेत्तिकश्चित्सम्राट्स्वरूपिणम् ॥ भाविब्रह्मांडकलनांपश्यत्यनुभवत्यपि ॥ ३५ ॥ आत्मगर्भगृहंचित्ताद्यथासंकल्पमात्मनः ॥ देशकालक्रियाद्रव्यकल्पनावेदनंसतत् ॥३६॥ भावयञ्छब्द निर्माताशब्दैर्बध्नातिकल्पितैः ॥ आतिवाहिकदेहोसावित्यसत्यजगद्भ्रमे ॥ ३७ ॥

अर्थ—कोई विष्णु जलके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड शरीरमें अहंभावके ज्ञानको, और कोई (ब्रह्मा) उसीको भीतर सम्राटरूपी चतुर्मुख देहमें अहंभावके ज्ञानको जानता है, इसप्रकार दो रूपसे आत्माही भावी ब्रह्माकी कल्पनाको देखताहै और अनुभवभी करताहै ॥ ३५ ॥ आत्मारूपसे इष्ट चित्तरूपी निमित्तसेही अपने संकल्पके अनुसार अपने निवास गर्भगृहको और देश काल क्रिया तथा द्रव्यकी कल्पनाके ज्ञानकी भावना करताहुआ, सूक्ष्म शरीरवाला और नाम तथा अर्थोंका बनानेवाला यह ईश्वर कल्पित नामोंसे उन २ अर्थोंको और अपने आत्माको इस असत्य जगत्के भ्रममें बांधता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

असत्यएवकचतिस्वप्नेस्वोड्डयनंयथा ॥ इत्यनुत्पन्नएवासौस्वयंभूःस्वयमुत्थितः ॥ ३८ ॥ आतिवाहिकदेहात्माप्रभुराद्यःप्रजापतिः ॥ एतस्मिन्नपिसंपन्नेब्रह्मांडाकारिणिभ्रमे ॥ ३९ ॥ नकिंचिदपिसंपन्नं नचजातंनदृश्यते ॥ तद्ब्रह्माकाशमाकाशमेवस्थितमनंतकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—स्वप्नमें आकाशके उडनेमें समान यह असत्यही भान होताहै, इसप्रकार उत्पत्ति रहित यह स्वयम्भू (ब्रह्मा) आपही प्रकट हुआहै ॥ ३८ ॥ सूक्ष्मशरीरधारी, यह प्रजापति सबका आदिप्रभु है ब्रह्माण्डआकारधारी इस भ्रमके पूर्ण होनेपरभी ॥ ३९ ॥ न कुछ पूर्ण हुआ, न उत्पन्न हुआ, और न परमार्थदृष्टिसे कुछ देख पडताहै वह आकाशरूप अनन्त ब्रह्माकाशही स्थितहै ॥ ४० ॥

संकल्पनगराकारमेतत्सदपिनैवसत् ॥ अनिर्मितमरागंचएतद्वैचित्रमुत्थितम् ॥ ४१ ॥ अकृतंचानुभूतंचनसत्यंसत्यवत्स्थितम् ॥ महाकल्पेविमुक्तत्वाद्ब्रह्मादीनामसंशयम् ॥ ४२ ॥ स्मृतिर्नप्राक्तनीकाचित्कारणंवास्वयंभुवः ॥ तेनयादृक्स्वयंभूःस्यात्तादृक्तज्जमिदंस्मृतम् ॥ ४३ ॥ अनाद्यनुभवस्त्वित्थंयोवास्त्यवनिकादिके ॥ स्वप्नानुभूतंपृथ्व्यादिप्रबोधेयादृशंभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—संकल्प नगरके समान यह वर्तमानभी असत्य है, किन्तु विनाबनाया रंग (रंगनेका पदार्थ) द्रव्यरहित चित्रके समान स्थितहै ॥ ४१ ॥ आन्तरिक प्रयत्नसे न कियागया और न अनुभूत है तथा न सत्य है, किन्तु सत्यके समान प्रकट भान होताहै, क्योंकि महाकल्पमें ब्रह्मा आदिभी सब निसन्देह मुक्त होजातेहैं इससे अदृष्ट संस्कारादिभी जीवोंकी अथवा जगत्की उत्पत्तिमें कारण नहीं है यह सिद्धहुआ ॥ ४२ ॥ ब्रह्माके मुक्त होनेके कारण पूर्वकल्पकी स्मृतिभी उनकी नहीं होसकती, इस हेतुसे जैसे स्वयंभू (ब्रह्मा) हैं वैसाही उससे उत्पन्न जगत्भी है ॥४३॥ जिसप्रकार स्वप्नआदिमें साक्षीसे वेद्य पृथिवी आदिका अनुभव जाग्रत होनेपर मिथ्या होजाताहै, इसीप्रकार पृथिवी आदिकी सृष्टिके विषयमें जो साक्षीसे वेद्य अनुभवहै वह मिथ्याहै, क्योंकि पदार्थके मिथ्या होनेसे उससे उत्पन्न संस्कारभी मिथ्याहै ॥ ४४ ॥

स्मृतःसव्योममात्रात्मासर्वदैवस्मृतंजगत् ॥ यत्रयत्रयथातोयेद्रवत्वंनामभिद्यते ॥ ४५ ॥ तत्रतत्रतथानान्यःसर्गोस्तिपरमात्मनि ॥ सृष्टिरेवमियंप्रौढासमएवत्वयंस्थितः ॥ ४६ ॥ भात्येवंनामब्रह्मांण्डव्योमात्मैवातिनिर्मलम् ॥ दृश्यमेवमिदंशांतंस्वात्मनिर्मितविभ्रमम् ॥ ४७ ॥ निराधारंनिराधेयमद्वैतंचैक्यवर्जितम् ॥ जगत्संविदिजातायामपिजातंनकिंचन ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसलिये स्मरणमें रहनेवाले अतीत (बीतेहुये) पदार्थके समान शून्य मात्र ब्रह्मा जैसे स्थितहैं वैसेही यह जगत्भी है, जैसे जिस २ देश और कालमें द्रवत्वका भेद नहीं होता ॥ ४५ ॥ इसीप्रकार जहां २ यह सृष्टिही परमात्मामेंहै वह उससे भिन्न नहीं है, यह सृष्टिही प्रौढ (वृद्धिको प्राप्त) भान होती है, और यह परमात्मा तो जगत्की विषमतासे शून्य एकरस स्थित है ॥ ४६ ॥ इस रीतिसे निर्मल आकाश (चिदाकाश) रूपभी यह ब्रह्माण्डके नामसे भान होताहै, इसीप्रकार शान्तरूप यह दृश्यभी आत्मासे निर्मित विलास मात्रहै ॥ ४७ ॥ आधार और आधेय रहित व्यवहारके अभावसे व्यावर्त्यके अभावके कारण एकत्व संख्यासेभी वर्जित अद्वैत सिद्धहै, और जगत्का भ्रम उत्पन्न होनेपरभी उसमें कुछभी परमार्थ दृष्टिसे उत्पन्न नहीं हुवा ॥ ४८ ॥

परमाकाशमाशून्यमच्छमेवव्यवस्थितम् ॥ सर्वसंसारतानास्तियदेवतदवस्थितम् ॥ ४९ ॥ नाधेयंतन्नाधारोनदृश्यंनचद्रष्टृता ॥ ब्रह्मांडंनास्तिनब्रह्मानचवैतंडिकाक्कचित् ॥ ५० ॥ नजगन्नापिजगतीशांतमेवाखिलंस्थितम् ॥ ब्रह्मैवकचतिस्वच्छमित्थमात्मात्मनात्मनि ॥ ५१ ॥ चित्त्वाद्द्रवत्वात्सलिलमिवावर्त्तयात्मनि ॥ असदेवेदमाभातिसदिवेहानुभूयते ॥ ५२॥ विनश्यत्यसदेवांतेस्वप्नेस्वमरणंयथा॥ अथवास्वस्वरूपत्वात्सदेवेदमनामयम् ॥ अखंडितमनाद्यंतंज्ञानमात्रांबरोदरम् ॥ ५३ ॥ आकाशएवपरमेप्रथमःप्रजेशोनित्यंस्वयंकचतिशून्यतयासमोयः ॥ सह्यातिवाहिकवपुर्नतुभूतरूपीपृथ्व्यादितेन नसदस्तियथानजातम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्ति प्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—चारों ओरसे शून्य (पदार्थोंके अभावसे) स्वच्छरूप परमाकाशही स्थितहै, सम्पूर्ण संसारका भाव जिसमें नहीं है वही स्थितहै ॥ ४९ ॥ उस परमात्मामें न आधेयहै न आधारहै न दृश्यहै, न द्रष्टाहै, न ब्रह्माण्ड, और स्थापनीय जगत्के अभावसे मोहमदान्ध वैताण्डिक वादीभी कहीं नहीं ॥ ५० ॥ न जगत् न यह जगती पृथिवी है सम्पूर्ण शान्तरूपसे स्थितहै, इसप्रकार ब्रह्मही अपने आत्मासे आत्मामें शोभित हो रहाहै ॥ ५१ ॥ चित् और आत्मामें ऐसे भेद नहीं है जैसे द्रवत्व और जलमें यह असत् भान होताहै और सत्के समान अनुभूत होताहै ॥ ५२ ॥

जैसे स्वप्नमें अपना मरण जाग्रत्में नष्ट होजाताहै ऐसेही अन्तमें यह अपने जगत् स्वरूपसे नष्ट होजाताहै अथवा अधिष्ठान दृष्टिसे यह अपना स्वरूप होनेसे कल्याण स्वरूप सत्रूपही अखण्डित अनादि आकाशकोभी अवकाश देनेवाला ज्ञानमात्रहै ॥ ५३ ॥ ब्रह्मस्वरूपमें प्रजाओंका ईश स्वयंभू रूपही है जो सम एक रस परमात्माहै वही ब्रह्मा आदिका रूप धारण करके प्रसिद्ध होताहै क्योंकि वह ब्रह्मा मनोमय शरीरवालाहै न कि पाञ्चभौतिक इसलिये ब्रह्माके संकल्प मात्र होनेसे पृथिवी आदि ऐसे सत् नहीं हैं, जैसे अनुत्पन्न शशशृंग (खरगोशकी सींग) ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्वयम्भूत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पूर्वोक्त जीवभावके वर्णनमें परिच्छेद (सीमारूप इयत्ताकरण) आदि संशयोंको युक्तिसे निराकरण (खण्डन) करके शेष (बाकी) ब्रह्मके साथ एकता इस १४ वें सर्गमें कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंजगदहंतादिदृश्यजातंनकिंचन ॥ अजातत्वाच्चनास्त्येवयच्चास्तिपरमेव तत् ॥ १ ॥ परमाकाशमेवादौजीवतांचेततिस्वयम् ॥ निःस्पंदांभोधिकुहरेसलिलंस्पंदतामिव ॥ २ ॥ आकाशरूपमजहदेवंवेत्तीवहद्यताम् ॥ स्वप्नसंकल्पशैलादाविवचिद्वृत्तिरांतरी ॥ ३ ॥ पृथ्व्यादिरहितोदेहोयोविराडात्मकोमहान् ॥ आतिवाहिकएवासौचिन्मात्राच्छनभोमयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसप्रकार जगत्के अहन्ता आदि दृश्य समूह कुछ नहीं है अनुत्पन्न होनेसे उसकी सत्ता कुछहैही नहीं, और जो कुछहै वह परमात्माही है ॥ १ ॥ सृष्टिकी आदिमें परम आकाश (परब्रह्म) ही स्वयंजीव भावका अनुभव ऐसे करताहै जैसे शान्त समुद्ररूपी गर्तमें जल स्पंदता (किंचित् संचलनभाव) को ॥ २ ॥ आकाशरूपको न त्याग करती हुई अनन्तरकी संकल्पात्मिका चित्की वृत्ति, वक्ष्यमाण विराट् उपाधि विषयमें प्रीति पात्रताका ऐसा अनुभव करती है जैसे स्वप्न और संकल्पके पर्वत आदिमें ॥ ३ ॥ पृथिवी आदिसे रहित जो महान् विराट् शरीरहै यह केवल मनोमय चिन्मात्र निर्मल आकाशमयहै ॥ ४ ॥

अक्षयःस्वप्नशैलाभःस्थिरस्वप्नपुरोपमः ॥ चित्रकृत्स्थिरचित्तस्थचित्रसैन्यसमाकृतिः ॥ ५ ॥ अनिखातमहास्तंभपुत्रिकौघसमोपमः ॥ ब्रह्माकाशेऽनिखातात्मास्तुस्तंभेशालभंजिका ॥ ६ ॥ आद्यःप्रजापतिःपूर्वस्वयंभूरितिविश्रुतः ॥ प्राक्तनानांस्वकार्याणामभावादप्यकारणः ॥ ७ ॥ महाप्रलयपर्यंतेष्वाद्यकालपितामहाः ॥ मुच्यंतेसर्वएवातःप्राक्तनंकर्मतेषुकिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—नाशरहित स्वप्नके पर्वतके समान चिरकाल रहनेवाले स्वप्नके नगरके समान, चित्रकारके निश्चल चित्तमें उसकी वासनामय चित्रगत सेनाके समान ॥ ५ ॥ महास्तम्भमें विनाखुदीहुई प्रतिमाओंके समूहोंके समान ब्रह्माकाशरूपी महा (उत्तम) स्तम्भमें विना खुदी हुई प्रतिमाके तुल्य यह विराट्रूपहै ॥६॥ आद्य प्रजापति, सबसे पूर्व स्वयंभू इस नामसे प्रसिद्ध जो ब्रह्माहैं वेभी पूर्वजन्मके अपने कर्मोंके अभावसे कारण रहितही है ॥ ७ ॥ महाप्रलय पर्य्यन्त आदिकालके जितने ब्रह्माहैं वे सब मुक्त होजातेहैं, इसीलिये पूर्वजन्मका कर्म उनमें क्या रहा ? ॥ ८ ॥

सोकुड्यएवकुड्यात्मादृश्यादृश्यःस्वयंस्थितः ॥ नचदृश्यंनचद्रष्टानस्रष्टासर्वमेवच ॥ ९ ॥ प्रतिशब्दपदार्थानांसर्वेषामेषएवसः ॥ तस्माडुदेतिजीवालीदीपालीदीपकादिव ॥१०॥ संकल्पएवसंकल्पात्क्लिक्ष्मादिवर्जितः ॥ आदिमादिवनिःशून्यःस्वप्नात्स्वप्नांतरंयथा ॥ ११ ॥ अस्मादेकप्रतिस्पंदाज्जीवाःसंतिप्रसरंतिये ॥ सहकारिकारणानामभावाच्चसएवते ॥ १२ ॥

अर्थ—वह (ब्रह्मा) कुड्य (भित्ति) रहित दर्पण आदिमें प्रतिबिम्ब कुड्यरूप, दृश्य होनेपरभी असत् होनेसे दर्शनके अयोग्यहै, स्वयं स्थितहै और उस निर्विकार चेतनमें द्रष्टा दृश्य दर्शन स्रष्टा सृष्टि सर्जन, भोक्ता भोग्य और भोग ये तीनों त्रिपुटी असम्भव होनेसे नहीं हैं ॥ ९ ॥ सबका निषेध होनेपरभी यह प्रत्यक् चेतन सम्पूर्ण मायिक शब्द और अर्थोंका आत्माही स्थितहै, जिस स्वरूपसे जीवोंकी पंक्ति ऐसे निकलती है जैसे दीपकसे दीपोंकी पंक्ति॥१०॥ आदिमें मिथ्यारूप हिरण्यगर्भसे अत्यन्त शून्यरूप जैसे विराट् उत्पन्न हुआहै अथवा जैसे एक स्वप्नसे दूसरा स्वप्न हो-

ताहै, ऐसेही संकल्परूप विराट्का कार्य्य होनेसे व्यष्टिशरीरभी पृथिवी आदिसे वर्जित निश्चय करके संकल्परूपही है॥११॥इस विराट्रूपसे असहाय गतिवाले जो जीव निकलते हैं वे सहकारी कारणके अभावसे विराट्रूपही हैं ॥१२॥

सहकारिकारणानामभावेकार्यकारणम् ॥ एकमेतदतोनान्यःपरस्मात्सर्गविभ्रमः ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवाद्यो विराडात्माविराडात्मैवसर्गता ॥ जीवाकाशःसएवेत्थंस्थितःपृथ्व्याद्यसद्यतः ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच॥ किंस्यात्परिमितोजीवोराशिराहोअनंतकः ॥ आहोस्विदस्त्यनंतात्माजीवपिंडोऽचलोपमः ॥ १५ ॥ धाराःपयोमुचइवशीकराइववारिधेः ॥ कणास्तप्तायसइवकस्मान्निर्यांतिजीवकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—सहकारी कारणोंके अभावसे यह कार्य्य कारण एकही है, इस कारणसे परमात्मासे पृथक् यह सृष्टिका विलास नहीं है ॥ १३ ॥ आदि विराट् आत्मा ब्रह्मरूपही है, और यह सृष्टि विराट्रूपही है इसलिये यह जीवाकाश विराट् (जो कि ब्रह्मरूपहै) रूपही है, क्योंकि पृथिवी आदि सब असत्है ॥ १४ ॥ व्यष्टि और समष्टि तथा उनका मूल एक होनेसे व्यष्टि और समष्टि असत्हैं, सो यदि उनका मूल सत्है तो व्यष्टि समष्टि असत् कैसे ? और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे सिद्ध होनेसे व्यष्टिका विभागही सत्य क्यों नहीं ? क्योंकि सेना समाज आदिमें समष्टिका नाश होनेपरभी व्यष्टि शेष रहती है इसलिये वह सत्यहै इस अभिप्रायसे रामचन्द्रजी शंका कहते हैं श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! क्या यह जीव परिमितहै अथवा अनन्त राशिरूपहै ? अथवा पर्वतके समान जीव पिण्ड अनन्तात्माहै ? अर्थात् व्यष्टिमात्रके सत्य माननेपर व्याष्टि जीवही एक बुद्धि परिमित होनेसे वा एक देशकी स्थितिसे परस्परके घर्षणसे सपिण्डरूपता होजायगी, अथवा कल्पित व्यष्टिरूप होजायगा॥१५॥ क्योंकि मेघसे वृष्टिकी धाराके समान समुद्रसे जल कणके समान, और तप्त लोहसे स्फूलिंग अग्नि कणके समान, इस परमात्मासे जीव निकलते हैं यह सम्भावना नहीं करसकते॥१६

इतिमेभगवन्ब्रूहिजीवजालविनिर्णयम् ॥ ज्ञातमेतन्मयाप्रायस्तदेवप्रकटीकुरु ॥१७॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ एकएवनजीवोस्तिराशीनांसंभवःकुतः ॥ शशशृंगंसमुड्डीयप्रयातीवह्वितेवचः ॥ १८ ॥ नजीवोस्तिन जीवानांराशयःसंतिराघव ॥ नचैकःपर्वतप्रख्योजीवपिंडोस्तिकश्चन ॥ १९ ॥ जीवशब्दार्थकलनाः समस्तकलनान्विताः ॥ नेहकाश्चनसंतीतिनिश्चयोस्तुतवाचलः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह जीवोंके जालका निश्चय मुझसे कहिये प्रायः मैंने इसको जानलियाहै, (विशेष जाननेकी इच्छासे आपसे प्रश्नहै) सो वही आप प्रकट कीजिये ॥१७॥ मुख्य प्रयोजन ब्रह्मकेसाथ एकत्व सिद्धिकेलिये एक अधिष्ठानवाली अनेककी कल्पनामें लाववहै, इसलिये समष्टि जीवकी कल्पना करके उसके उपहित व्यष्टिकी कल्पना मैंने कही, न कि व्यष्टि समष्टिमेंसे किसीकी सत्यताकेलिये अथवा जीवकी उत्पत्ति आदिप्रतिपादनके लिये इस हेतु तुमारी शंकाका अवसर नहीं इस आशयसे वसिष्ठजी कहतेहैं, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जब एकभी जीवनहीं तब उनकी राशिका सम्भव कहां ? शशका सींग उडके जाताहै इसकेही समान आपका बचनहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! न जीवहै न जीवोंकी राशिहै, और न पर्वतके समान कोई जीव पिण्डहै ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण कल्पनाओंकरके संयुक्त जीव शब्दार्थकी कोईभी कल्पना इस आत्मामें नहीं है यह अचल तुह्मारा निश्चय हो ॥ २० ॥

शुद्धचिन्मात्रममलंब्रह्मास्तीहहिसर्वगम् ॥ तद्यथासर्वशक्तित्वादिंदतेयाःस्वयंकलाः ॥ २१ ॥ चिन्मात्रानुक्रमेणैवसंप्रफुल्ललतामिव ॥ ननुमूर्तांममूर्त्तांवातामेवाशुप्रपश्यति ॥ २२ ॥ जीवोबुद्धिःक्रियास्पंदो मनोद्वित्वैक्यमित्यपि ॥ स्वसत्तांप्रकचंतींतांनियोजयतिवेदने ॥ २३ ॥ साऽबुद्धैवभवत्येवंभवेद्ब्रह्मैवबोधतः ॥ अबोधःप्रेक्षयायातिनाशंनतुप्रबुद्ध्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्मल, शुद्ध, चिन्मात्र, सर्वव्यापी ब्रह्महीहै, वही सर्व शक्तिमान होनेके कारण सम्पूर्ण कल्पना अर्थात् सब कार्य्योंमें कौशल स्वयं प्राप्त करताहै ॥ २१ ॥ उन २ संकल्प क्रमोंके अनुसारी चित्के आभावोंसे वे, प्रवेशके निमित्तसे उसी मूर्तिमान् और अमूर्तिमान् कौशलके प्रकट ऐसे देखताहै जैसे लता अपनेको प्रथम कलिसहित अनन्तर अच्छीतरह प्रफुल्ल देखती है ॥ २२ ॥ जीव, बुद्धि, क्रिया, स्वप्न (किंचित् चलन) मन द्वित्व और एकत्वभी तथा प्रकाश करती हुई उस निजरूप अपनी चेतन सत्ताकोभी वही ब्रह्म जानताहै॥२३॥ वह अपनी चेतन सत्ता जबतक नहीं जानीजाती तभीतक जीव आदिरूपसे भान होती और जाननेसे ब्रह्मरूपही होजाती है, और उसका अबोध (अज्ञान) आत्मज्ञानसे नाश होजाताहै और पुनः नहीं प्रबुद्ध होता अर्थात् फेर नहीं विदित होता ॥ २४ ॥

यथांधकारोदीपेनप्रेक्ष्यमाणःप्रणश्यति ॥ नचास्यज्ञायतेतत्त्वमबोधस्यैवमेवहि ॥ २५ ॥ एवंब्रह्मैव जीवात्मानिर्विभागोनिरंतरः ॥ सर्वशक्तिरनाद्यंतोमहाचित्साररूपवान् ॥ २६ ॥ सर्वानणुतयात्वस्य

नकचिद्भेदकल्पना ॥ विद्यतेयाहिकलनासातदेवानुभूतितः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवमेतत्कथं ब्रह्मन्नेकजीवेच्छयाखिलाः ॥ जगज्जीवानयुज्यंतेमहाजीवैकतावशात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे दीपकलेके देखनेसे अन्धकार नष्ट होजाताहै यह तत्त्व नहीं जानाजाता कि यह कहांगया, इसीप्रकार अज्ञानभी ज्ञानसे नष्ट होजाताहै, परन्तु कैसे और कहांगया यह तत्व नहीं ज्ञात होता ॥ २५ ॥ इसप्रकार जीवात्मा निरन्तर भेद रहित, सर्व शक्तिमान्, अनादि अनन्त महाचित् सारांश ब्रह्महीहै ॥ २६ ॥ सर्वत्र अपरिच्छिन्न रूप होनेसे कहीं भेद कल्पना नहीं हैं, जो कुछहै वहभी उसका अनुभव मात्रहै ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! समष्टि और व्यष्टि जीवोंका अभेद माननेसे महाजीवके साथ एकताके कारण एक जीवकी इच्छासे सम्पूर्ण जगत्के जीवयुक्त क्यों नहीं होजाते अर्थात् एक जीवकी जो इच्छाहो वही इच्छा सबकी क्यों नहीं होती ? ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाजीवात्मतद्ब्रह्मसर्वशक्तिमयात्मकम् ॥ स्थितंतथेच्छमेवेहनिर्विभागंनिरंतरम् ॥ २९ ॥ यदेवेच्छतितत्तस्यभवत्याशुमहात्मनः ॥ पूर्वंतेनेष्टमिच्छादिततोद्वित्वमुदेतियत् ॥ ३० ॥ पश्चाद्वित्वविभक्तानांस्वशक्तीनांप्रकल्पितः ॥ अनेनेत्थंहिभवतीत्येवंतेनक्रियाक्रमः ॥ ३१ ॥ तंविनानुदयेत्वासांप्रधानेच्छैवरोहति ॥ शक्त्याह्यजातयाब्राह्म्यानियमोयंप्रकल्पितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! निरन्तर व्यष्टिके विभागसे शून्य सर्वशक्तिमान् जिसप्रकार जगत्की व्यवस्था सिद्धहो वैसी इच्छावाला सदा सबमें सत्यसंकल्पवाला मैंहि हुं इस इच्छासहित महाजीवात्मक ब्रह्मही स्थितहै ॥ २९ ॥ वह महात्मा जो इच्छा करताहै वह वैसाही उसकेलिये शीघ्र होताहै, प्रथम उसने जैसा सत्यसंकल्प अथवा अन्यकी इच्छाका निरोध जैसा इष्टहै वैसाही व्यष्टि विभागका उदय होताहै ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर व्यष्टिसे विभाग किये हुये अपने कल्पित अंशभूत जीवोंके अर्थ इस क्रियासे यह (जैसे दण्डको चक्रपर भ्रमण करनेसे घट) कार्य्यहो, (न कि संकल्पमात्रसे) ऐसा नियम उसने कल्पित किया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उस क्रियाक्रमके विना कार्य्य न हो ऐसा नियम होनेपरभी कहीं२महात्माओंकी व्यष्टि शक्तिकी इच्छा जो क्रियाक्रमके बिना पूर्ण होजाती है वह यह इसका संकल्प सिद्धहो ऐसी प्रधानकी इच्छाहीसे होताहै यह नियम अजात ब्रह्मकी शक्तिसे कल्पित कियागयाहै ३२

यस्याजीवाभिधानायाःशक्त्यपेक्षाफलत्यसौ ॥ प्रधानशक्तिनियमानुष्ठानेनविनानतु ॥ ३३ ॥ प्रधानशक्तिनियमःसुप्रतिष्ठोभवेद्भवेत् ॥ तत्फलंशक्त्यधीनत्वान्नेहितानांकचिद्भवेत् ॥ ३४ ॥ एवंब्रह्ममहाजीवोविद्यतेंतादिवर्जितः ॥ जीवकोटिमहाकोटीभवत्यथनकिंचन ॥ ३५ ॥ चेत्यसंवेदनाज्जीवोभवत्यायातिसंसृतिम् ॥ तदसंवेदनाद्रूपंसमायातिसमंपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिस जीवकी शक्तिकी इच्छासे कार्य्यका फल होताहै वह प्रधान शक्तिके नियमके अनुष्ठान बिना नहीं होता ॥ ३३ ॥ प्रधान शक्तिका नियम यदि भलीभाँति फलसिद्धिके अनुकूल पालन कियाजाय तभी कार्य्यकी चेष्टाओंकाभी फल होताहै, क्योंकि क्रियाक्रमकी फलसिद्धिभी प्रधान शक्तिके संकल्पके आधी नहीहै ॥३४॥ इसप्रकार ब्रह्मही महाजीव समष्टि और व्यष्टि दोनों कोटि होताहै, और वह अन्त आदि दोनोंसे शून्यहै ॥३५॥ विषयकी भावनासे जीव होताहै और संसारको प्राप्त होताहै, और विषयभावना रहित होकर विषमता शून्य ब्रह्मरूप होजाताहै॥३६॥

एवंकनिष्ठजीवानांज्येष्ठजीवक्रमाक्रमैः ॥ समुदेत्यात्मजीवत्वंताम्राणामिवहेमता ॥ ३७ ॥ अत्रांतरेमहाकाशइत्थमेषगणोप्यसन् ॥ स्वात्मैवसदिवोदेतिचिच्चमत्करणात्मकः ॥ ३८ ॥ स्वयमेवचमत्कारोयःसमापद्यतेचितः ॥ भविष्यन्नामदेहादितदहंभावनंविदुः ॥ ३९ ॥ चितोयस्माच्चिदालेहस्तत्मयत्वादनंतकः ॥ सएषभुवनाभोगइतितस्यांप्रबिंबति ॥ ४० ॥

अर्थ—इस रीतिसे व्यष्टि जीवोंको उपासनासे समष्टिभाव प्राप्ति क्रमसे अथवा इसी जन्ममें साक्षात् ज्ञानसे ब्रह्मभाव प्राप्ति ऐसे होती है जैसे तामोंको रस और औषधिकेपाक क्रमसे अथवा क्रमरहित केवल स्पर्शमात्रसे सुवर्णभावकी प्राप्ति ॥ ३७ ॥ इसप्रकार प्रातःकाल इस महाकाशमें जीव जगत् आदि सम्पूर्ण यह गण असत्भी है परन्तु चित्के चमत्कार मात्रसे अपना आत्माही सत्के समान उदय होताहै ॥ ३८ ॥ चित् (चेतन) का चमत्कार जो स्वयं भविष्यत् नाम और देहादि भावको प्राप्त होताहै उसी अहंकारको भावना कहतेहैं ॥ ३९ ॥ चित्का चिदालेह अर्थात् जगत्के संस्कारसे संस्कृत मायाको सिद्धिसे जो उसकेसाथ एकरस होके अपने आत्माका जो स्वादहै वह चित्मय होनेसे अनन्तहै उस आत्मारूपी चित्में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आभोग स्फुरित होताहै ॥ ४० ॥

परिणामविकारादिशब्दैःसैवचिदव्यया ॥ तादृग्रूपादभेद्यापिस्वशक्त्यैवविबुध्यते ॥ ४१ ॥ अविच्छिन्नविलासात्मस्वतोयत्स्वदनंचितः ॥ चेत्यस्यचप्रकाशस्यजगदित्येवतत्स्थितम् ॥ ४२ ॥ आकाशादपिसूक्ष्मैषायाशक्तिर्विततांचितः ॥ सास्वभावतएवैतामहंतांपरिपश्यति ॥ ४३ ॥ आत्मन्यात्मात्मनैवास्यायत्प्रस्फुरतिवारिवत् ॥ जगदंतमहंताणुतदेषासंप्रपश्यति ॥ ४४ ॥

अर्थ—वह चित्से आस्वादित नाश रहितचित् यद्यपि यथार्थमें चित्रूपसे भिन्न करनेके अशक्यहै तथापि अपनी शक्तिहीसे परिणाम और विकार आदि शब्दोंसे पृथक्के समान भान होतीहै ॥ ४१ ॥ चित्का जो चित्के अधीन प्रकाशवाले चेत्य (विषय) का जो निरन्तर स्वाभाविक विलासरूप अभिन्नरूपसे आस्वाद लेनाहै उसीको भ्रांतिसे जगत्की स्थिति कहतेहैं ॥ ४२ ॥ आकाशसेभी सूक्ष्म जो चैतनकी शक्ति सर्वत्र व्याप्तहै वह अपने स्वभावसेही प्रथम अहंताको देखतीहै ॥ ४३ ॥ उससमय यह चेतन अपने आत्मामें आत्मासे आत्माहीरूप अहंताको अणुदशासे लेके जगत् पर्य्यन्त स्थूलभावमें ऐसे देखताहै जैसे जलमें बुदबुदे ॥ ४४ ॥

चमत्कारकरीचारुयच्चमत्कुरुतेचितिः ॥ स्वयंस्वात्मनितस्यैवजगन्नामकृतंततः ॥ ४५ ॥ चितश्चेत्यमहंकारःसैवराघवकल्पना ॥ तन्मात्रादिचिदेवातोद्वित्वेकत्वेक्वसंस्थिते ॥ ४६ ॥ जीवहेत्वादिसंत्यागेत्वंचाहंचेतिसंत्यज ॥ शेषःसदसतोर्मध्येभवत्यर्थात्मकोभवेत् ॥ ४७ ॥ चितायथादौकलितास्वसत्तासातथोदिता ॥ अभिन्नाद्दृश्यतेव्योम्नःसत्तासत्तेनविग्रहे ॥ ४८ ॥

अर्थ—चेतन अपने आत्मामें जो उत्तम चमत्कार आपही करताहै उसीका नाम जगत् रक्खागयाहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी! चेतनके आधीन अहंकारकी कल्पनाहै,और उसीके आधीन तन्मात्रासे लेके सब जगत्की कल्पनाहै इसलिये वह कल्पना करनेवाला चेतनही सत्यहै, और द्वित्व तथा एकत्व कहां स्थितहै ? ॥ ४६ ॥ जीवके निमित्त जो वासना आदिहैं उनके त्यागनेके अनन्तर जो सत्य और मिथ्या कल्पनाके मध्यमें अहन्ता और अहन्ताकोभी त्यागो, पश्चात् अनन्त सत्तामात्र वस्तु शेष रहजाताहै ॥ ४७ ॥ जैसे मेघके नष्ट होजानेपर आकाशकी निर्मल सत्ता यथावत् रहती है, ऐसेही ज्ञानसे दृश्यसे मिलीहुई कल्पित सत्ताका नाश होनेपर चेतनकी आदिमें जो सत्ता थी वह ज्योंका त्यों उदित रहती है इसलिये यह निश्चय करते हैं कि सत्तामात्र सत्यहै ॥ ४८ ॥

विश्वंखंजगदीहाख्यंखमस्तिविबुधालयः ॥ साकारश्चिच्चमत्काररूपत्वान्नान्यदस्तिहि ॥ ४९ ॥ योयद्विलासस्तस्मात्सनकदाचनभिद्यते ॥ अपिसावयवंतस्मात्कैवानवयवेकथा ॥ ५० ॥ चितेर्नित्यमचेत्यायानिर्नाम्न्याविततात्कृतेः ॥ यद्रूपंजगतोरूपंतत्तत्स्फुरणरूपिणः ॥ ५१ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोभूतानिगिरयोदिशः ॥ इतियायास्तुरचनाश्चितस्तत्त्वाज्जगत्स्थितेः ॥ ५२ ॥

अर्थ—चेतनका चमत्कार मात्र होनेसे मनकी चेष्टा मात्र जो जगत् है वह आकाररूपहै, और इंद्रियां तथा उनके अधिष्ठातृ देवताओंका जो साकार और स्थूलस्थान है वहभी शून्य मात्रही है और कुछ नहीं ॥ ४९ ॥ साकार जल आदिमेंभी यह बात देखी गई है कि जो जिसका कार्य्य है उससे वह कदापि भिन्न नहीं होसकता जैसे जलसे तरंग तब भला निराकार चेतनके कार्य्यमें भेदकी क्या कथा ? ॥ ५० ॥ सर्वव्यापक विषयरहित नाम शून्य नित्य शुद्ध चेतनका जो रूपहै । ५१ ॥ मन, बुद्धि, चित्त अहंकार पंचभूत पर्वत तथा दशोंदिशायें जगत्की स्थिति ये जो २ रचनायें हैं वे सब चितरूपही है ॥ ५२ ॥

चितेश्चित्त्वंजगद्विद्धिनाजगच्चित्त्वमस्तिहि ॥ अजगत्त्वादचिच्चित्स्याद्भानाद्भेदोजगत्कुतः ॥ ५३ ॥ चितेर्मरीचिबीजस्यनिजायांतश्चमत्कृतिः ॥ साचैषाजीवतन्मात्रमात्रंजगदितिस्थिता ॥ ५४ ॥ चित्तात्स्वशक्तिकचनंयदहंभावनंचितः ॥ जीवःस्पंदनकर्मात्माभविष्यदभिधोह्यसौ ॥ ५५ ॥ यच्चित्त्वेनकचनंस्वसंपाद्याभिधात्मकम् ॥ स्वविकारैर्व्यवच्छेद्यंभिद्यतेनोनविद्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—चित्का जो चित्ता धर्म उसीको जगत् जानो चित्ता (चित्का धर्म) जगत्से रहित नहीं है, यदि चित् जगत् रहितहो तो वह (चित्) अचित्भी होजाय, भान मात्रसे भेद है और जगत् चेतनसे भिन्न कहां ? ॥ ५३ ॥ मृगतृष्णा (भ्रम) का बीज (अधिष्ठान) रूप जो चिति (चेतन) है उसका अपनेही लिये जो अपनेमें चमत्कारहै वही जीव और उसके उपाधि भूत तन्मात्र जगत्रूपसे स्थित है ॥ ५४ ॥ चित्का जो चित्तसे अहंकार शक्तिका स्फूरण है वही प्राण क्रियावाला जीव शब्दका वाच्य होगा ॥ ५५ ॥ यद्यपि चित्का चित्विलास निजविकारभूत अहंकार आदिसें पृथक् करने योग्य और अपनेसे रचने योग्य जीव आदि नामसे है तथापि वह सब मिथ्या होनेसे न वह चेतनसे भिन्नहै और न यथार्थमें वहहै ॥ ५६ ॥

चित्स्पंदरूपिणोरस्तिनभेदःकर्तृकर्मणोः ॥ स्पंदमात्रंभवेत्कर्मसएवपुरुषःस्मृतः ॥ ५७ ॥ जीवश्चित्तपरिस्पंदःपुंसांचित्तंसएवच ॥ मनस्त्विंद्रियरूपंसत्सत्तांनानेवगच्छति ॥ ५८ ॥ शांताशेषविशेषंहिचित्प्रकाशच्छटाजगत् ॥ कार्यकारणकादित्वंतस्मादन्यन्नविद्यते ॥ ५९ ॥ अच्छेद्योहमदाह्योहमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोहमितिस्थितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—चित् और स्पन्दरूपी जो कर्ता और क्रिया हैं उनमें भेद नहीं, चित् प्रधान अहंकारका नाम कर्ता और स्पन्द प्रधान प्राणका नाम क्रिया और ये दोनों मिलके पुरुष वा जीव कहलाते है ॥ ५७ ॥ इसीप्रकार चित्तका परिस्पन्दही जीव वही चित्त, और जीवका उपाधि भूत मनही देश तथा चिन्होंके भेदसे इद्रियोंका रूपहोके नाना प्रकारकी सत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥ क्योंकि तुच्छ कार्य्य कारण स्वभाववाला जगत् पूर्वोक्त रीतिसे चित् प्रकाश की छटाहै, इसलिये सम्पूर्ण विशेषोंसे शान्त (रहित) प्रत्येक आत्मासे कुछ पृथक् नहीं है ॥ ५९ ॥ यह आत्मा शस्त्र आदिसे छेदन करनेको अग्निसे जलानेको, जलसे गीला करनेके और आतपसे शुखानेके योग्य नहीं किन्तु यह आत्मरूपमें नित्य सर्वव्यापक स्थाणुके समान अचलहूं यह सिद्धान्त है ॥ ६० ॥

विवदंतेतथाह्यन्नविवदंतोयथाभ्रमैः ॥ भ्रमयंतोवयंत्वेतेजाताविगतविभ्रमाः ॥ ६१ ॥ दृश्येमूर्तेज्ञसंरूढेविकारादिपृथग्भवेत् ॥ नामूर्तेतज्ज्ञकचितेचित्खेसदसदात्मनि ॥ ६२ ॥ चित्तरौचेत्यरसतःशक्तिःकालादिनामिकां ॥ तनोत्याकाशविषदांचिन्मधुश्रीःस्वमंजरीम् ॥ ६३ ॥ स्वयंविचित्रंस्फुरतिचिदंडकमनाहतम् ॥ स्वयंविलक्षणस्पंदंचिद्वायुरंडजात्मकः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस आत्माके विषयमें अपने २ भ्रमके अनुसार वादी लोक विवाद करैं तथा स्वयं भ्रममे पडे दूसरोंको भ्रममें डाले परन्तु हमलोग तो भ्रमसे शून्यहैं ॥ ६१ ॥ अज्ञानीकी दृष्टिमें जब साकार सत्यरूपसे आरूढ होताहै तब उसकी बुद्धिमें विकार आदि द्वैत पृथक् भासताहै परन्तु ज्ञानीकी दृष्टिमें जब निराकार सदसदात्मक जगत् अपने आत्माहीमें भासताहै तो द्वैतकी प्रतीति नहीं होती ॥ ६२ ॥ चित्रूपी वृक्षमें चेत्य विषयरूपी रसकी आसक्तिसे चित् (चेतन) रूपी वसन्तकी लक्ष्मी काल आदि नामवाली अपनी लताको अव्याकृत आकाश वा ऊर्ध्व देशमें विस्तार करताहै ॥ ६३ ॥ यह चेतन छिद्ररहित होकरभी आपही सबसे प्रथम आकाशकी कल्पनासे छिद्रसहित होनेसे ब्रह्मांडरूपसे स्फुरताहै उसके अनन्तर आपही यह चित् अण्डजात्मकरूपसे सूत्रात्मा वायुरूपसे स्फुरताहै॥६४॥

स्वयंविचित्रंकचनंचिद्वारिनिखातगं ॥ स्वयंविचित्रधातुत्वंश्रेष्ठांगमापिनिर्मितम् ॥ ६५ ॥ स्वविचित्ररसोल्लासाचिज्ज्योत्स्नासततोदिता ॥ स्वयंचिदेवप्रकटश्चिदालोकोमहात्मकः ॥६६॥ स्वयमस्तंगतेबाह्येस्वज्ञानाद्दिताचितिः ॥ स्वयंजडेषुजाड्येनपदंसौषुप्तमागता ॥ ६७ ॥ स्वयंस्पंदितयास्पंदिचित्त्वाचितिमहानभः ॥ चित्प्रकाशप्रकाशोहिजगदस्तिचनास्तिच ॥ ६८ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर वक्ष्यमाण तेजकी उत्पत्तिके पश्चात् विना तडाग आदिके ही स्वयं जलहोके स्फुरताहै. अनन्तर आपही यह चेतन उत्तम सुवर्ण आदि धातुसहित पृथिवी रूपसे स्फुरताहै और आपही यह चेतन श्रेष्ठ देवता असुर तथा मनुष्य आदिका शरीर भी बन जाताहै ॥ ६५ ॥ जगत्को तृप्त करनेवाले अनेक प्रकारके विचित्र पृथिवी आदिके रसोंके उल्लास सहित यह चित् चन्द्रमाकी चन्द्रिकारूपसे आपही उदितहो रहीहै और यह चित् स्वयं महान तेजः प्रकाशरूपसे भी प्रकटहो रही है ॥६६॥ अपनेही ज्ञानसे बाह्य पदार्थोंके अस्त होनेपर आपही यह पूर्णरूपसे स्थित रहती है और आपही यह चित् जडतासे स्थावर आदिकोंमें सुषुप्तिके स्थानको प्राप्तहुई है ॥ ६७ ॥ अपनेही अविचारसे स्पन्दस्वभाव प्राण आदि रूपकी कल्पनासे यह संसारीहै और अपनेही विचारसे प्रत्यक्ष चेतन रूप महान आकाशरूपही है चित् प्रकाशके प्रकाशरूपसे यह जगत् है और अपने रूपसे यह कुछ भी नहीं है ॥ ६८ ॥

चिदाकाशैकशून्यत्वंजगदस्तिचनास्तिच ॥ चिदालोकमहारूपंजगदस्तिचनास्तिच॥ ६९ ॥ चिन्मारुतपरिस्पंदोजगदस्तिचनास्तिच ॥ चिद्घनध्वांतकृष्णत्वंजगदस्तिचनास्तिच ॥ ७० ॥ चिदर्कालोकदिवसोजगदस्तिचनास्तिच ॥ चित्कजलरजस्तैलपरमाणुर्जगत्क्रमः ॥ ७१ ॥ चिदग्न्यौष्ण्यंजगल्लेखाजगच्चिच्छंखशुक्लता ॥ जगच्चिच्छैलजठरंचिज्जलद्रवताजगत् ॥ ७२ ॥

---

१ पाठके क्रमसे तेजकी उत्पत्ति पृथिवी चन्द्रमाकी उत्पत्तिके अनन्तर कहाहै परन्तु पाठ क्रमसे अर्थक्रमवली होताहै इसलिये वायुकी उत्पत्तिके बाद तेजकी उत्पत्ति समझना. २ इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है सर्वदा ब्रह्मकी सत्ताहीसे जगत्की सत्ताहै और अपनी सत्तासे कुछ नहीं.

अर्थ—चिदाकाशके समान शून्यप्राय होनेसे यह जगत् उसकी सत्तासे है और अपने रूपसे नहींहै चित् महा प्रकाश रूपके साथ एक होनेसे यह जगत् है और अपने रूपसे नहीं है ॥ ६९ ॥ चित्रूपी वायुके पारिस्पन्दरूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे कुछ नहीं है तथा चित्रूपी घन काला अन्धकाररूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे नहीं है ॥ ७० ॥ चित्रूपी सूर्य्यके प्रकाश सहित दिवसरूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे नहीं है और यह जगत् का क्रम ऐसा है जैसे तेलके जलनेपर कज्जल मात्र शेष रहताहै इसीप्रकार जगत्का बाध होनेसे शुद्ध चिन्मात्र शेष रह- जाताहै ॥ ७१ ॥ चित्रूपी अग्निकी उष्णताही जगत्की संज्ञाहै, शंख शुक्लता आदि जगत् चित्है जगत्में पर्वतकी कठिनता चित्रूपहै, जलमें द्रवतारूप जगत् चित्है ॥ ७२ ॥

जगच्चिदिक्षुमाधुर्यंचित्क्षीरस्निग्धताजगत् ॥ जगच्चिद्धिमशीतत्वंचिज्ज्वालाज्वलनंजगत् ॥ ७३ ॥ जगच्चित्सर्षपस्नेहोर्वीचिश्चित्सरितोजगत् ॥ जगच्चित्क्षौद्रमाधुर्यंजगच्चित्कनकांगदम् ॥ ७४ ॥ जगच्चित्पुष्पसौगंध्यंचिल्लताग्रफलंजगत् ॥ चित्सत्तैवजगत्सत्ताजगत्सत्तैवचिद्वपुः ॥ ७५ ॥ अत्रभेदविकारादिनखेमलमिवस्थितम् ॥ इतीदंसन्मयत्वेनसदसद्भुवनत्रयम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंमें मधुरता रूप जगत्है, दुग्धमें चिकनापनरूपी जगत् चित्है, तुषार (हिम) में शीततारूपी जगत् चित्है अग्निकी ज्वालाका ज्वलनरूपी जगत् चित्है ॥ ७३ ॥ सर्षप (सरसों) में तेलरूपी जगत् चित्है, नदी आदिमें तरंगरूपी जगत् चित्है, शहद् (मधु) में मधुरतारूप जगत्है, सुवर्ण अंगद आदि जगत् चित्है॥७४ पुष्पोंमें सुगन्धता रूप जगत् चित्है, और लता तथा फल आदि रूप जगत्भी चित् रूपही है, यहांतक की चित्की सत्ताही जगत्की सत्ताहै, और जगत्की सत्ताही चित्का शरीरहै अर्थात् चित्की सत्ताके आधीनहीं जगत्की सत्ताहै ॥ ७५ ॥ इस चित्रूप आत्मामें भेद विकार आदि भासते हुये भी ऐसे सत् नहीं है जैसे आकाशमें नीलता इसप्रकार असत्भी यह तीनों लोक परन्तु उक्तरीतिसे सन्मय होनेसे सत्है ॥ ७६ ॥

अविकल्पतदात्मत्वात्सत्तासत्तैकतैवच ॥ अवयवावयविताशब्दार्थैशशशृंगवत् ॥ ७७ ॥ अनुभूत्यपलापायकल्पितोयैर्धिगस्तुतान् ॥ नविद्यतेजगद्यत्रसाद्र्यब्ध्युर्वीनदीश्वरम् ॥ ७८ ॥ चिदेकत्वात्प्रसंगःस्यात्कस्तत्रेतरविभ्रमः ॥ शिलाहृदयपीनापिस्वाकाशेविशदैवचित् ॥ ७९ ॥ धत्तेंतरखिलंशांतंसन्निवेशंयथाशिला ॥ पदार्थनिकराकाशेत्वयमाकाशजोमलः ॥ ८० ॥

अर्थ—कल्पित सत्ता और निरूपित सत्ताके अधिष्ठानमें एकताहै अर्थात् भेद नहीं है इसलिये जगत्की सत्ता ब्रह्मसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं, निरवयव तथा सावयव शब्दार्थ तो शशशृंगके समान कल्पितहै इससे निराकारमें एकता कैसे यह मत परास्त हुआ ॥७७॥ जिस परमात्माके स्वरूपमें पर्वत समुद्र, पृथिवी, नदी तथा इन सबके स्वामी सहित यह जगत् नहीं हैं, और जिन्होंने अनुभवका अपलाप (मिथ्यापन) करनेके लिये कल्पना कियाहै उनको धिक्कार ॥ ७८ ॥ एकचित् मात्र होनेसे उसमें अवयव आदिका प्रसंग कहां ? पाषाणके समान स्थूल वा छिद्र रहित होनेपरभी अपने आकाशवत् स्वरूपमें चित् स्वच्छही है ॥ ७९ ॥ जैसे स्फटिककी शिलानगर आदिके प्रतिबिम्बको धारण करती है ऐसेही यह चित्भी मिथ्याभूत सम्पूर्ण प्रपंचको अपने स्वरूपके भीतर धारण करती है ॥ ८० ॥

सत्तासत्तात्मतात्वत्तामत्ताश्लेषानसंतिते ॥ पल्लवांतरलेखौघसन्निवेशवदाततम् ॥ ८१ ॥ अन्यानन्यात्मकमिदंधत्तेतश्चित्स्वभावतः ॥ समस्तकारणौघानांकारणादिपितामहः ॥ ८२ ॥ स्वभावतोकारणात्मचित्तंचिद्व्यनुभूतितः ॥ नचासत्त्वमचेत्यायाश्चितोवाचापिसिद्ध्यति ॥ ८३ ॥ यदस्तितदुदेतीतिदृष्टंबीजादिवांकुरः ॥ ८४ ॥ गगनइवसुशून्यभेदमस्तित्रिभुवनमंगमहाचितोंतरस्याः ॥ परमपदमयंसमस्तदृश्यंत्विदमितिनिश्चयवान्भवानुभूतेः ॥ ८५ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमितोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंका अधिष्ठान चिदाकाशमें उत्पन्न असंग स्वभाव भूताकाश भी यदि स्थूल कार्य्योंका संबन्ध नहीं तो चिदाकाशमें सत्ता असत्ता आदिका संबन्ध क्यों कर होसकताहै ? और चित् अपने स्वभावसे अन्य तथा अनन्यरूप जगत्को ऐसे धारण करती है, जैसे पत्र (पत्ता) नश और रेखा आदि अवयवोंको ॥ ८१ ॥ सम्पूर्ण कारणोंके आदि कारण ब्रह्माजी हैं ॥ ८२ ॥ और ब्रह्मा, (पितामह) चित्तके कार्य्य मनोर्थ सबन्धी

विकल्पोंके असत् होनेसे कारण रहित चित्तस्वरूपहैं इसलिये असत् है अतएव ब्रह्माका कार्य्य यह जगत्भी असत्है, और विषयरहित चित्की तो अनुभवसे सिद्धि होनेसे बचनसे उसकी असत्यता नहीं सिद्ध होसकती ॥ ८३ ॥ जैसा कारणहै वैसाही कार्य्य होताहै जैसे बीजसे अंकुर तात्पर्य्य यह कि जगत् अपने स्वरूपसे सत् नहीं है यदि होता तो ज्ञान आदि सहस्रों उपायोंसेभी उसका उच्छेद नहीं होता, जब चित्त समष्टिरूप हिरण्यगर्भही असत् है तो जगत् कब सत्य हो सकता है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! यदि दृश्यकी सत्तामें अधिक आग्रह है तो अनुभवसे यह निश्चय करो कि यह तीनोंलोक समस्तदृश्य आकाशके समान भेदशून्य परमपद रूपही है ॥ ८५ ॥ श्रीवसिष्ठजीमुनिके इतना कहनेपर वह दिन बीतगया, सूर्य्यभी सन्ध्यावन्दन आदि विधिके अर्थ अस्त होगये, सम्पूर्ण सभाभी परस्पर नमस्कार करके स्नान आदि कृत्यकेलिये बिदाहुई, और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यभगवान्की किरणोंके साथ पुनः आकें अपने स्थानपर प्राप्त हुई ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके समूहोंसे पूर्वोक्त पदार्थ निश्चय करातेहुये विस्तृत मण्डपाख्यानका आरम्भ मुनिवसिष्ठजी इस १५ वे सर्गमें करते हैं ॥

॥ तृतीयोदिवसः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगदाकाशमेवेदंयथाहिव्योम्निमौक्तिकम् ॥ विमलेभातिस्वात्मैवजगच्चिद्गगनंयथा ॥ १ ॥ अनुत्कीर्णैवभातीवत्रिजगच्छालभंजिका ॥ चित्स्तंभेनैवसोत्कीर्णानचोत्कर्त्तात्रविद्यते ॥ २ ॥ समुद्रेंतर्जलस्पंदाःस्वभावादच्युताअपि ॥ वीचिवेगाभवंतीवपरेदृश्यविदस्तथा ॥ ३ ॥ जालांतर्गतसूर्याभाजालाकाररजांस्यपि ॥ जगद्भानंप्रतिस्थूलान्यणुंप्रतियथाचलाः॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—यह जगत् चिदाकाशरूपही है, भेदरूपसे इसका भान ऐसे होता है जैसे निर्मल आकाशमें मोतियोंका समूह और जैसे यह जगत् चिदाकाशरूप है इस विषयमें दृष्टान्त सुनिये ॥ १ ॥ चित्रूपी स्तम्भ (खम्भे) में विना खुदीहुई यह त्रिलोकरूपी प्रतिमा खुदीहुईके समान भान होती है, निर्विकार असंग चेतनमें खोदनेका असम्भव होनेसे इसका खोदनेवाला कोई नहीं है ॥ २ ॥ जैसे स्वभावसे भिन्न न होनेपरभी समुद्रमें जलका संचलन और तरंगोंके वेग होते हैं ऐसेही परब्रह्ममें जगत्की प्रतीति होती है ॥ ३ ॥ अज्ञानियोंकी दृष्टिमें पर्वतके समान स्थूलरूपसे इस जगत्का भान होनेपरभी ज्ञानियोंकी दृष्टिमें जालके अन्तर्गत सूर्य्यके प्रकाशसे जालाका सूक्ष्म रज और मृगतृष्णाके जलसेभी अति तुच्छ है ॥ ४ ॥

जगद्भानंनभातीदंब्रह्मणोव्यतिरेकतः ॥ जालसूर्यांशुजालंतुव्यतिरेकानुभूतिदम् ॥ ५ ॥ अनुभूतान्यपीमानिजगंतिव्योमरूपिणि ॥ पृथ्व्यादीनिनसंत्येवस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ६ ॥ पिंडग्रहोजगत्यस्मिन्विज्ञानाकाशरूपिणि ॥ मरुनद्यांजलमिवनसंभवतिकुत्रचित् ॥ ७ ॥ जगत्यपिंडग्राहेस्मिन्संकल्पनगरोपमे ॥ मरौसरिदिवाभातिदृश्यताभ्रांतिरूपिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—जाल (छप्परोंके छिद्र) के अन्तर्गत मुसलाकार सुर्य्यके किरण तो सूर्य्यसे पृथक् भान होती हैं परन्तु यह जगत्का भान ब्रह्मसे पृथक् नहीं होता ॥ ५ ॥ स्वप्न और संकल्पके समान आकाशरूप ये पृथिवी आदि अनुभवमें आतेभी हैं परन्तु यथार्थमें सत्य नहीं हैं ॥ ६ ॥ मरुस्थलकी नदीमें जलके समान, ज्ञान और आकाशरूप इस जगत्में साकारताका स्वीकार कहींभी सम्भव नहीं है ॥ ७ ॥ संकल्पके नगरके समान आकाररहित इस जगत्में भ्रान्तिरूपवाली यह दृश्यता ऐसे भान होती है जैसे मरुस्थलमें नदी ॥ ८ ॥

स्वप्नाद्दृश्येवजगतांतुलादेशेनकेनच ॥ तुलिताकलनोन्मुक्तादृश्यश्रीव्योमिजृंभते ॥ ९ ॥ वर्जयित्वाज्ञविज्ञानंजगच्छब्दार्थभाजनम् ॥ जगद्ब्रह्मस्वशब्दानामर्थेनास्त्येवभिन्नता॥१०॥इदंत्वचेत्यचिन्मात्रंभानोर्भातंनभःप्रति ॥ तथासूक्ष्मंयथामेधंप्रतिसंकल्पवारिदः ॥ ११ ॥ यथास्वप्नपुरंस्वच्छजाग्रत्पुरवरंप्रति ॥ तथाजगदिदंस्वच्छंसांकल्पिकजगत्प्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक ब्रह्माण्डोंकी यह दृश्यकी शोभा साक्षी चेतनके किसी अंशमें स्वप्नके समान आरोपण करके सार असारका विवेक करनेवाले बुद्धिरूप कांटोंपर रखके यदि तोली जायतो स्वप्नवत् विकल्पोंसे रहित होकर चिदाकाशकेही समान शोभित होती है ॥ ९ ॥ अज्ञानियोंकीही दृष्टिमें जगत्का शब्दार्थ भिन्न प्रतीत होताहै यथार्थमें जगत् और ब्रह्म शब्दार्थमें भेद नहीं है ॥ १० ॥ तत्वज्ञानियोंको जगत्में साक्षी चेतनका भान ऐसे होताहै, जैसे शून्य आकाशमें सूर्य्यका प्रकाश और साक्षी चेतनमें जगत्का भान ऐसे होताहै जैसे वृष्टिजनक मल्लार नामक रागमें संकल्पका मेघ ॥ ११ ॥ जैसे जाग्रत् उत्तम नगरकी अपेक्षा स्वप्नका नगर स्वच्छहै ऐसेही स्वप्न और संकल्पके जगत्की अपेक्षा यह जाग्रत् जगत्प्रत्ययभी सूक्ष्म है ॥ १२ ॥

तस्मादचेत्यचिद्रूपंजगद्व्योमैवकेवलम् ॥ शून्योव्योमजगच्छब्दौपर्यायौविद्धिचिन्मयौ ॥ १३ ॥ तस्मान्नकिंचिदुत्पन्नंजगदादीहदृश्यकम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंयथास्थितमवस्थितम् ॥ १४ ॥ जगदेवंमहाकाशेचिदाकाशमभित्तिमत् ॥ तद्देशस्याणुमात्रस्यतुलायाश्चाप्रपूरकम् ॥ १५ ॥ आकाशरूपमेवाच्छंपिंडग्रहविवर्जितम् ॥ व्योम्निव्योममयंचित्रंसंकल्पपुरवत्स्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये आकाशरूप यह जगत् चित्रूपही है, और अर्थशून्य आकाश तथा जगत्शब्द पर्य्याय (एकार्थ) वाची है, इन दोनोंको तुम चिन्मय जानो ॥ १३ ॥ इसलिये यह जगत् आदि दृश्य कुछभी उत्पन्न नहींहुआ, नामरूप रहित जैसा (चित्रूप) है वैसाही स्थितहै ॥ १४ ॥ इस पूर्वोक्त रीतिसे मायाकाशमें यह जगत् आवरण रहित चिदाकाशही है, और चिदाकाशके अणुमात्र (अति अल्प) देशकोभी जब यह पूर्ण नहीं कर सकता तो ब्रह्मचेतन मात्रमें जगत् कैसे पूर्ण होसकताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार चिदाकाशरूप आकारसे वर्जित, आकाशमय चित्र यह जगत् स्वप्नके नगरके समान स्थितहै ॥ १६ ॥

अत्रेदंमंडपाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ निःसंदेहोयथैषोर्थश्चित्तेविश्रांतिमेष्यति ॥ १७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सद्बोधवृद्धयेब्रह्मन्समासेनवदाशुमे ॥ मंडपाख्यानमखिलंयेनबोधोविवर्द्धते ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अभूदस्मिन्महीपीठेकुलपद्मोविकाशवान् ॥ पद्मोनामनृपःश्रीमान्बहुपुत्रोविवेकवान् ॥ १९ ॥ मर्यादापालनांभोधिर्द्विषत्तिमिरभास्करः ॥ कांताकुमुदिनीचंद्रोदोषतृणहुताशनः ॥ २० ॥

अर्थ—इस विषयमें कर्णका भूषण इस मण्डपाख्यानको सुनिये जिससे कि आपके चित्तमें यह विषय निस्सन्देह बैठ जायगा ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन्! सत् बोधकी वृद्धिके लिये संक्षेपसे सम्पूर्ण मण्डपाख्यान शीघ्र मुझे कहिये जिससे ज्ञानकी वृद्धि होतीहै ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–प्रकाशवान्, लक्ष्मीवान् अनेक पुत्रोंकरके सहित, ज्ञानी, और अपने कुलमें कमलके समान पद्मनाम एक राजाथा ॥ १९ ॥ वह राजा, वर्णाश्रमकी तथा द्वीपोंकी मर्य्यादा पालन करनेमें समुद्रके समान, शत्रुरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये सूर्य्य, स्त्री रूपिणी कुमुदिनीके लिये चन्द्रिकायुक्तचन्द्र, दोषरूपी तृणको अग्नि ॥ २० ॥

मेरुर्विबुधवृंदानांयशश्चंद्रोभवार्णवे ॥ सरःसद्गुणहंसानांकमलामलभास्करः ॥ २१ ॥ संग्रामवीरुत्पवनोमनोमातंगकेसरी ॥ समस्तविद्यादयितःसर्वाश्चर्यगुणाकरः ॥ २२ ॥ सुरारिसागरक्षोभविलसन्मंदराचलः ॥ विलासपुष्पौघमधुःसौभाग्यकुसुमायुधः ॥ २३ ॥ लीलालतालास्यमरुत्साहसोत्साहकेशवः ॥ सौजन्यकैरवशशीदुर्लीलावल्लिकानलः ॥ २४ ॥

अर्थ—देवता तथा विद्वानोंके समूहोंके अर्थ सुमेरु, संसाररूपी समुद्रमें यशरूपी चन्द्रमा, सद्गुणरूपी हंसोंके लिये मानसरोवर, कमलोंके विमल सूर्य्य ॥ २१ ॥ संग्रामरूपी वृक्षोंको कंपानेके लिये प्रचण्ड पवन मनरूपी हांथीको मारनेके लिये सिंह, समस्त विद्यारूप अंगनाओंको प्रिय, सम्पूर्ण आश्चर्य्य गुणोंका समुद्र ॥ २२ ॥ देवताओंके शत्रु दैत्यदानवरूपी समुद्रके क्षोभमें शोभायमान मन्दराचलके समान विलासरूपी पुष्पोंके समूहके लिये वसन्तऋतु, सुन्दरतारूपी पुष्पोंका कामदेव ॥ २३ ॥ लीलारूपी लता तथा लास्य (गीतवाद्य नृत्य) के लिये उत्तम वायु, साहस (अन्यके असाध्य पृथिवी उद्धार आदि कार्य्योंका साधन) तथा उत्तम कार्य्योंमें उत्साह करनेके लिये कृष्णभगवान् सुजनतारूपी कुमुदो (रात्रिकमलों) के लिये चन्द्रमा, और दुष्टचेष्टा रूपिणी विषकी लताओंको जलानेके लिये अग्निरूप था ॥ २४ ॥

तस्यास्तिसुभगाभार्यालीलानामविलासिनी ॥ सर्वसौभाग्यवलिताकमलेवोऽदितावनौ ॥ २५ ॥ सर्वानुवृत्तिललितालीलामधुरभाषिणी ॥ सानंदमंदचलिताद्वितीयेंदूदयस्मिता ॥ २६ ॥ अलकालिमनोहा

रिवदनांभोजशालिनी ॥ सितांगीकर्णिकागौरीजंगमेवसरोजिनी ॥ २७ ॥ लताविलासकुंदौघभासिनी रसशालिनी ॥ प्रवालहस्तापुष्पाभामधुश्रीरिवदेहिनी ॥ २८ ॥ अवदाततनुःपुण्यास्पर्शनाल्हादकारिणी ॥ गंगेवगांगतादेहवतीहंसविलासिनी ॥ २९ ॥ तस्यभूतलपुष्पेषोःसकलाल्हाददायिनः ॥ परिचर्यांचिरंकर्तुमन्यारतिरिवोदिता ॥ ३० ॥ उद्विग्नेप्रोद्विग्नामुदितेमुदितासमाकुलाकुलिते ॥ प्रतिबिंबसमाकांतासंक्रुद्धेकेवलंभीता ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मंडपोपाख्याने राजवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण विलासवाली, उत्तम भाग्यवाली उसकी स्त्री "लीला" नामवाली थी, सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सहित पृथिवीपर वह लक्ष्मीके समान उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ वह लीला, पतिसेवादि रीतियोंसे वा सेवकादिके अनुकूल आचरणोंसे शोभायमान, मधुर बोलनेवाली; आनन्द सहित मन्द २ चलनेवाली, द्वितीय चन्द्रमाके समान मुसकुरानवाली ॥ २६ ॥ मनके हरण करनेवाले केशरूपी भ्रमरोंसे मुखरूपी कमलसे शोभायमान, निर्मल शरीरवाली, कमलकी कर्णिकाके समान गौरवर्ण, जंगम (चलनेवाली) कमलिनीके समान ॥ २७ ॥ लता सहित विलासरूपी कुन्दके पुष्पोंके समूहोंसे प्रकाशमान, शृंगार आदि रसोंसे शोभित, प्रवाल (मुंगे) के समान रक्तहस्तवाली; पुष्पोंके समान कान्तिवाली, शरीरधारी वसन्तकी शोभाके समान ॥ २८ ॥ स्वच्छदेहवाली पवित्ररूप स्पर्शमात्रसे आनन्द देनेवाली, गंगाके सदृश पृथिवीपर प्राप्त, शरीर धारण कियेहुये हंसीके समान विमलथी ॥ २९ ॥ वह लीला सबको आनन्द देनेवाले कामदेवके समान उस पद्मराजाकी दीर्घकालतक सेवा करनेके अर्थ मानों दूसरी रति उत्पन्न हुईथी ॥ ३० ॥ वह लीला उस राजाके घबडानेपर अत्यन्त घबडानेवाली, प्रसन्न होनेपर प्रसन्न चित्त, व्याकुल होनेपर अति व्याकुल और क्रोधी होनेपर केवल भयभीत, प्रतिबिम्बके समान प्रिया स्त्री थी ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मण्डपोपाख्याने राजवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

कामके भोगोंसे तृप्त न होनेसे परिणाममें बार२ दुःखको देवतालोगभी अन्यथा नहीं करसकते इस विषयका वर्णन इस १६ वें सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूतलाप्सरसासार्द्धमनन्यदयितापतिः ॥ अकृत्रिमप्रेमरसंसरेमेकांतयातया॥१॥ उद्यानवनगुल्मेषुतमालगहनेषुच ॥ पुष्पमंडपरम्येषुलतावलयसद्मसु ॥ २ ॥ पुष्पांतःपुरशय्यासुपुष्पसंभारवीथिषु ॥ वसंतोद्यानदोलासुक्रीडापुष्करणीषुच ॥ ३ ॥ चंदनद्रुमशैलेषुसंतानकतलेषुच ॥ कदंबनीपगेहेषुपारिभद्रोदरेषुच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–दूसरी स्त्रीका पति न होकर उससे राजाने पृथिवीकी अप्सराके समान केवल उस प्रिया धर्मपत्नी लीलाके साथ स्वाभाविक प्रेमरससे रमण किया ॥ १ ॥ तमालके वृक्षोंसे सघन बाटिका बन तथा लता प्रधान वृक्ष प्रदेशोंमें, पुष्पमण्डपसे रमणीय लतासे वलयाकार (गोल) स्थानोंमें ॥ २ ॥ पुष्पोंसे सजीहुई अन्तःपुरकी शय्याओंपर पुष्पोंके समूहोंसे ढकीहुई सडकोंपर वसन्तमें बाटिकाके हिंडोलाओंपर, क्रीडा करनेकेलिये पुष्करिणियोंमें ॥ ३ ॥ चन्दनके वृक्षोंसहित पर्वतोंपर, अपने प्रभाव वा इन्द्रकी कृपासे प्राप्त कलपवृक्षोंके तलोंमें कदम्ब और अशोक गृहोंमें नीमकी शीतल छायामें लीलाके साथ राजाने विहार किया ॥ ४ ॥

विकसत्कुंदमंदारमकरंदसुगंधिषु ॥ वसंतवनजालेषुकूजत्कोकिलपक्षिषु ॥ ५ ॥ नानारण्यतृणानांचस्थलेषुमृदुदीप्तिषु ॥ निर्झरेषुतरत्तारसीकरासारवर्षिषु ॥ ६ ॥ शैलानांमणिमाणिक्यशिलानांफलकेषुच ॥ देवर्षिमुनिगेहेषुदूरपुण्याश्रमेषुच ॥ ७ ॥ कुमुद्वतीफुल्लासुस्मेरासुनलिनीषुच ॥ वनस्थलीषु कृष्णासुफुल्लासुफीलनीषुच ॥ ८ ॥

१ इन श्लोकोंमें जो २ स्थान वा वृक्ष आदि लिखेहैं उन सबमें (रेमें) राजाने अपनी धर्मपत्नीके साथ रमण किया ॥

अर्थ—विकसित कुन्द और मन्दारके पुष्परसोंसे सुगन्ध सहित तथा कोकिल आदि पक्षी जिनमें कूजरहे हैं ऐसे वसन्त बनके कुंजोंमें ॥ ५ ॥ कोमल प्रकाशवाले नानाप्रकारके बन और तृणोंके निरंत जलके कणोंकी धारा युक्त झरनोंमें ॥ ६ ॥ मणि और माणिक्यकी शिलाये शोभित पर्वतोंपर, तथा मणि माणिक्य आदिकी शय्याओंपर देवता मुनि और ऋषियोंके स्थानोंमें, दूर २ के पवित्र आश्रमोंमें ॥७॥ रात्रिमें विकसित कुमुद सहित जलाशयोंमें, और दिनमें कमल संयुक्त जलाशयोंमें पुष्प तथा फलसहित हरी २ बन स्थलियोंमें राजाने उस पत्नीकेसाथ रमण किया ॥८॥

सुरतैःसुरतारुण्यैःसुंदरःसुंदरेहितैः ॥ ईहितैःपेशलान्योन्यघनप्रेमरसाधिकैः ॥ ९ ॥ प्रहेलिकाभिराख्यानैस्तथाचाक्षरमुष्टिभिः ॥ अष्टापदैर्बहुद्यूतैस्तथागूढचतुर्थकैः ॥ १० ॥ नाटिकाख्यायिकाभिश्च श्लोकैर्बिंदुमतिक्रमैः ॥ देशकालविभागैश्चनगरग्रामचेष्टितैः ॥ ११ ॥ स्रग्दाममालावलितैर्नानाभरण योजनैः ॥ लीलाविलोलचलनैर्विचित्ररसभोजनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—उत्तम विषयोंसे अभिलाषित देवताओंके सदृश सुरतोंसे सुन्दर उस राजाने (वक्ष्यमाण पदार्थोंसे अपनी पत्नीके साथ रमण किया) परस्परके कोमल और घन प्रेमरससे बढी हुई चेष्टाओंसे ॥ ९ ॥ लौकिक परिहासकी कथाओंसे, पुराणके आख्यानोंसे, तथा अक्षर मुष्टिपासा (चौपड) अष्टापद (शतरंज) तथा गूढ चतुर्थक आदि अनेक द्यूतक्रीडाओंसे ॥ १० ॥ नाटिका तथा आख्यायिकाओंसे गूढाशयवाले विद्वानोंको बुद्धिसे जानने योग्य श्लोक रचनाओंसे, देशकालके अनुसार नगर और ग्रामकी चेष्टाओंसे ॥ ११ ॥ नानाप्रकारकी मालाओं तथा आभूषणोंके धारणसे, लीलापूर्वक विचित्र गतिसे, और नानाप्रकारके विचित्र रस युक्तभोजनोंसे रमण किया ॥ १२ ॥

आर्द्रकुंकुमकर्पूरतांबूलीदलचर्वणैः ॥ फुल्लपुष्पलतागुंजादेहगोपनखव्रणैः ॥ १३ ॥ समालंभनलीलाभिर्मालाप्रहरणक्रमैः ॥ गृहेकुसुमदोलाभिरन्योन्यंदोलनक्रमैः ॥ १४ ॥ नौयानयुग्महस्त्यश्वदांतोष्ट्रादिगमागमैः ॥ जलकेलिविलासेनपरस्परसमुत्क्षणैः ॥ १५ ॥ नृत्यगीतकलालास्यताललतांडवमंडनैः ॥ संगीतकैःसंकथनैर्वीणामुरजवादनैः ॥ १६ ॥

अर्थ—आर्द्र कुंकुम और कर्पूर सहित ताम्बूलदलके चर्वणोंसे, विकसित पुष्पों और लता गुंजोंसे देहके छिपानेवाले नखके व्रणोंसे ॥१३॥ दोडके छूनेवाली लीलाओंसे, मालाके प्रहारोंसे परस्पर (एक दूसरोंको) झुलानेवाले गृहोंमें फूलोंके हिंडोलोंसे ॥ १४ ॥ जलमें नौकाओंसे, घोडे और हाथियोंके जोडोंको शिक्षा देनेसे और शिक्षित ऊंटोंके चक्रोंसे एक दूसरेके ऊपर पानी डालकर जलक्रीडासे ॥ १५ ॥ नृत्यगीतादि कलाओंसे तालपूर्वक ताण्डव नृत्य तथा आभूषणोंसे, संगीतसे, उत्तम कथाओंसे वीणा और मुरज (मृदंग) आदि वाद्योंसे ॥ १६ ॥

उद्यानेषुसरित्तीरवृक्षेषुवरवीथिषु ॥ अंतःपुरेषुहर्म्येषुफुल्लदोलावदोलनैः ॥ १७ ॥ सातथासुखसंवृद्धा तस्यप्रणयिनीप्रिया ॥ एकदाचिंतयामाससुभ्रूःसंकल्पशालिनी ॥ १८ ॥ प्राणेभ्योपिप्रियोभर्त्तामभैषजगतीपतिः ॥ यौवनोल्लासवान्श्रीमान्कथंस्यादजरामरः ॥ १९ ॥ भर्त्रानेनसहोत्तुंगस्तनीकुसुमसद्मसु ॥ कथंस्वैरंचिरंकांतारमेयुगशतान्यहम् ॥ २० ॥

अर्थ—वाटिकाओंमें, नदीतटके वृक्षोंके तरे, उत्तम भागोंमें अन्तःपुरोंमें, तथा ऊंची महलोंकी अँटारियोंपर और फूलोंके झूलनोंसे, अपनी धर्मपत्नीलीलाके साथ राजापद्मने क्रीडा किया ॥ १७ ॥ उसप्रकार सुखसे सम्पन्न प्रेम करनेवाली, उत्तम भोहवाली, संकल्पसे शोभित राजाकी उस प्रियाने एक समय यह चिन्ता की ॥ १८ ॥ कि यह राजा प्राणोंसेभी प्रिय मेरा पतिहै सो यौवनसे शोभायमान श्रीमान् और अजर अमर कैसे हो? ॥१९॥ इस अपने प्राणपतिके साथ ऊंचे स्तनवाली प्रिया मैं पुष्पोंसे सज्जित स्थानोंमें सैंकडो युग दीर्घकालतक अपनी इच्छापूर्वक कैसे रमण करूं ॥२०॥

तथायतेयत्नमतस्तपोजपयमेहितैः ॥ रजनीशमुखोराजायथास्यादजरामरः ॥ २१ ॥ ज्ञानवृद्धांस्तपोवृद्धान्विद्यावृद्धानहंद्विजान् ॥ पृच्छामितावन्मरणंकथंनस्यान्नृणामिति ॥ २२ ॥ इत्यानीयाथसंपूज्यद्विजान्पप्रच्छसानता ॥ अमरत्वंकथंविप्राभवेदितिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ विप्राऊचुः ॥ तपोजपयमैर्देविसमस्ताःसिद्धसिद्धयः ॥ संप्राप्यंतेऽमरत्वंतुनकदाचनलभ्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये तप जप और नियमके अनुष्ठानोंसे मैं ऐसा प्रयत्न करूं कि चन्द्रमाके समान मुखवाला यह राजा अजर अमर हो जाय ॥ २१ ॥ ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, तथा विद्यावृद्ध ब्राह्मणोंसे पूंछ कि मनुष्योंका मरण कैसे नहीं होता ऐसा बिचारा ॥ २२ ॥ ऐसा बिचार करके ब्राह्मणोंको बुलाके और उनका पूजन करके नम्र होके बार २ उनसे

यह पूछा कि अमर पदवी कैसे होसकती है ? ॥ २३ ॥ ब्राह्मण बोले—हे देवि ! तप, जप, और नियमोंके अनुष्ठानोंसे सिद्धोंको सम्पूर्ण सिद्धियां मिलती हैं, परन्तु अमरपद कभी नहीं मिलता ॥ २४ ॥

इत्याकर्ण्यद्विजमुखाच्चिंतयामाससापुनः ॥ इदंस्वप्रज्ञयैवाशुभीताप्रियवियोगतः ॥ २५ ॥ मरणंभर्त्तुरग्रेमेयदिदैवाद्भविष्यति ॥ तत्सर्वदुःखनिर्मुक्तासंस्थास्येसुखमात्मनि ॥ २६ ॥ अथवर्षसहस्रेणभर्त्ता दौचेन्मरिष्यति ॥ तत्करिष्येतथायेनजीवोगेहान्नयास्यति ॥ २७ ॥ तद्भ्रमद्भर्तृजीवेस्मिन्निजेशुद्धांतमंडपे ॥ भर्त्राविलोकितानित्यंनिवत्स्यामियथासुखम् ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्राह्मणोंके मुखसे ऐसा सुनकर, प्राणपतिके वियोगसे डरी हुई अपनी बुद्धिसेही शीघ्र पुनः उसने यह शोचा ॥२५॥ कि यदि दैवकी इच्छासे पतिके सम्मुख मेरा मरण होगा तो सब दुःखोंसे छूटके सुखसे आत्मामें स्थित रहूंगी॥२६॥और यदि सहस्र हजार वर्षमें प्रथम पतिकी मृत्यु होगी तो ऐसा प्रयत्न करूंगी कि इनका जीव गृहसे बाहर न जायगा ॥ २७ ॥ ऐसा होनेसे जिसमें पतिका जीव भ्रमणकर रहाहै ऐसे अपने शुद्ध अन्तःपुर मण्डपमें प्राणपतिसे नित्य देखी हुई सुखपूर्वक निवास करूंगी ॥ २८ ॥

अद्यैवारभ्यैतदर्थंदेवींज्ञप्तिंसरस्वतीम् ॥ जपोपवासनियमैरातोषंपूजयाम्यहम् ॥ २९ ॥ इतिनिश्चित्य सानाथमनुक्त्वैववरांगना ॥ यथाशास्त्रंचचारोग्रंतथानियममास्थिता ॥ ३० ॥ त्रिरात्रस्यत्रिरात्रस्यपर्यंतेकृतपारणा ॥ देवद्विजगुरुप्राज्ञविद्वत्पूजापरायणा ॥ ३१ ॥ स्नानदानतपोध्याननित्योद्युक्तशरीरिका ॥ सर्वास्तिक्यसदाचारकारिणीक्लेशहारिणी ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस कार्य्यकेलिये आजहीसे लेके चित्तरूप देवी सरस्वतीको जबतक प्रसन्न होंगी तबतक जप, उपवास, और नियमके अनुष्ठानोंसे पूजन करूंगी ॥२९॥ उस उत्तम अंगनाने ऐसा निश्चय करके अपने पतिसे बिना कहे शास्त्रके अनुसार नियमोंमें स्थित उग्र तप किया ॥ ३० ॥ तीन ३ रात्रिके अनन्तर पारण करती, देवता ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ, और विद्वानोंकी पूजामें सदा परायण रहती ॥ ३१ ॥ उसका शरीर स्नान दान, तप, और ध्यानमें सदा तत्पर रहता था, और सब शास्त्रोंमें आस्तिक्य बुद्धि करके सदाचारोंको करतीथी और दुःखियोंके क्लेशोंको हरण करती ॥ ३२ ॥

यथाकालंयथोद्योगंयथाशास्त्रंयथाक्रमम् ॥ तोषयामासभर्त्तारमपरिज्ञातसंस्थितिः ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रशतमेवंसाबालानियमशालिनी ॥ अनारतंतपोनिष्ठामतिष्ठत्कष्टचेष्टया ॥ ३४ ॥ त्रिरात्राणांशतेचाथपूजिताप्रतिमानिता ॥ तुष्टाभगवतीगौरीवागीशासमुवाचताम् ॥ ३५ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ निरंतरेणतपसा भर्तृभक्त्यतिशालिना ॥ परितुष्टास्मितेवत्सेगृहाणवरमीप्सितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—समयके अनुसार, अपनी शक्तिके अनुसार, शास्त्र और रीतिके अनुकूल अपने अभिप्रायको न प्रकट करके पतिको सन्तुष्ट करतीथी ॥ ३३ ॥ इसप्रकार निरन्तर तपमें निष्ट नियममें वर्तमान उस बालाने अत्यन्त दुःखसे शत (१००) त्रिरात्र व्रत किया ॥ ३४ ॥ सो १०० त्रिरात्रके अन्तमें बाह्योपचारोंसे पूजित और आन्तरिक प्रेमभावसे सम्मानित बागीशा भगवती गौरी प्रसन्न होकर उस लीलासे बोली ॥२५ ॥ सरस्वतीजी बोले-हे पुत्रि ! तुमारी निरन्तर तपस्यासे और पतिकी अति भक्तिसे मैं प्रसन्नहूं तुम अपना इष्ट (चाहाहुआ) बरदान मांगो ॥ ३६ ॥

राज्ञ्युवाच ॥ जयजन्मजराज्वालादाहदोषशशिप्रभे ॥ जयहार्दांधकारौघनिवारणरविप्रभे ॥ ३७ ॥ अंब मातर्जगन्मातस्त्रायस्वकृपणामिमाम् ॥ इदंवरद्वयंदेहियदहंप्रार्थयेशुभे ॥ ३८ ॥ एकंतावद्विदेहस्यभर्त्तुर्जीवोममांबिके ॥ अस्माद्बहिर्मायासीन्निजांतःपुरमंडपात् ॥ ३९ ॥ द्वितीयंत्वांमहादेविप्रार्थयेहंयदा यदा ॥ दर्शनायवरार्थायतदामेदेहिदर्शनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—राज्ञीजी बोले-हे जन्म और वृद्धाऽवस्थारूपी ज्वालाके दोषको नाश करनेकेलिये चन्द्रमाके समान कान्तिवाली भगवती ! आपकी जयहो, हे हृदयके अन्धकारके समूहको नाश करनेको सूर्य्यके समान तेजवाली भगवती आपकी जयहो ॥ ३७ ॥ हे अम्ब ! हे मातः ! मुझ दीनकी रक्षा कीजिये, हे कल्याणी ! इन दो बरोंको लिये मैं प्रार्थना करतीहुं कृपाकरकें दीजिये ॥ ३८ ॥ हे मेरी मातः ! उन दोनों वरदानोंमेंसे प्रथम यह है कि मेरे पतिके देहका जीव इस मेरे अन्तःपुर मण्डपसे बाहर न जाय ॥३९॥ और हे देवि ! वरदानकेलिये वा दर्शनकेलिये जब २ मैं आपसे प्रार्थना करूं तब २ आप मुझे दर्शन दीजिये ॥ ४० ॥

---

(१) " या स्त्री भर्त्राऽननुज्ञाता उपवासव्रतंचरेत्, आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमृच्छति " इस वाक्यके अनुसार यह शंका न करनी चाहिये कि पतिकी आज्ञा बिना उपवास क्यों करने लगी क्योंकि–प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा सदा भर्तृहितं चरेत्, व्रतोपवासनियमै रुपचारैश्च लौकिकैः ॥ इस वाक्यसे पतिहितके कार्य्यमें आज्ञाका आवश्यकता नहीं ॥

इत्याकर्ण्यजगन्मातातवास्त्वेवमितिस्वयम् ॥ उत्कांतर्द्धानमगमत्प्रोत्थायोर्मिरिवार्णवे ॥ ४१ ॥ अथ साराजमहिषीपरितुष्टेष्टदेवता ॥ श्रुतगीतेवहरिणीबभूवानंदधारिणी ॥ ४२ ॥ पक्षमासर्त्तुकटकेदिनारे वर्षदंडके ॥ क्षणनाभौस्पंदमयेकालचक्रेवहत्यथ ॥४३॥ अंतर्द्धिमाजगामास्याःपत्युस्तच्चेतनंतनौ ॥ संदृश्यमानमेवाशुशुष्कपत्ररसोयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—जगन्माताभगवतीने ऐसी प्रार्थनाको श्रवण करके बोली कि, तुमारे लिये ऐसाहीहो, ऐसा कहके जैसे समुद्रमें तरंग उठके अस्त होजाताहै वैसीही अंतर्धान होगई ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर इष्टदेवता सन्तुष्ट होनेसे वह राजमहिषी (राज्यमें अभिषेक की हुई पाठरानी) ऐसी प्रसन्न हुई जैसे गीतके श्रवण करनेसे हरिणी ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर पक्ष जिसके नेमि (चक्रका वह भाग जो पृथिवीसे छूजाताहै) कटक, मास जिसके मध्य कटक, ऋतु जिसके नाभि कटक, दिन जिसके अरा (धुरा) वर्ष जिसके दण्ड, और क्षण जिसके नाभि (मध्य छिद्र) हैं ऐसे सूर्य्यकी गतिमय कालचक्रके चलनेपर ॥ ४३ ॥ इस लीलाके पतिके शरीरमें जो प्रत्यक्ष चेतनताहै वह ऐसे लोप होगई जैसे सूखे पत्तेका रस ॥ ४४ ॥

रणखंडितदेहेस्मिनमृतेंतःपुरमंडपे ॥ निर्जलानलिनीवासौपरांम्लानिमुपाययौ ॥ ४५ ॥ विषोष्णश्वसनध्वस्तसकलाधरपल्लवा ॥ प्रापसामरणावस्थांसशल्येवमृगीयथा ॥४६॥ प्रापसातमसांधत्वंतस्मिन्मरणमागते ॥ दीपज्वालालवेक्षीणेसद्मश्रीरिवभूषिता ॥४७॥ कार्श्यमापक्षणेनासौबालाविरसतांगता ॥ यथास्रोतस्विनीस्रोतःक्षयेक्षारविधूसरा ॥ ४८ ॥ क्षिप्रमाक्रंजिनीक्षिप्रंमौनमूकावियोगिनी ॥ बभूवचक्रवाकीवमानिनीमरणोन्मुखी ॥ ४९ ॥ अथतामतिमात्रविव्हलांसकृपाकाशभवासरस्वती ॥ शफरींव्हदशोषविव्हलांप्रथमावृष्टिरिवान्वकंपत ॥ ५० ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मंडपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—रणमें खण्डित शरीर राजाके अन्तःपुरमें मरनेके अनन्तर यह लीला ऐसी मुर्झागई जैसे जलसे रहित कमलिनी ॥ ४५ ॥ विषके समान उष्णश्वास लेनेसे विवर्ण अधरपल्लव युक्त वह लीला मरणके समान अवस्थाको ऐसे प्राप्त हुई जैसे बाणसहित मृगी ॥ ४६ ॥ इस अपने पतिके मरनेपर अन्धकारसे शीघ्र ऐसी अन्धता दशाको प्राप्त हुई जैसे दीपकी ज्वालाके क्षीण (नष्ट) होनेपर पूर्वकालमें दीपसे अलंकृत गृहकी शोभा ॥ ४७ ॥ यह बाला विरसताको प्राप्त होके क्षणमेंही ऐसे कृशताको प्राप्त हुई जैसे प्रवाहके नष्ट होनेसे क्षारवर्णसे मलिन नदी ॥ ४८ ॥ क्षणमें चिग्घार मारके चिल्लाने लगी, और क्षणमेंही मौनधारण करके वह वियोगिनी मूक होजाती, इसप्रकार चक्रवाकीके समान विरहिनी वह मानिनी मरनेको तैय्यार हुई ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर अति व्याकुल उस बालाको देखकर आकाशवाणी सरस्वतीने ऐसी कृपा की जैसे तलावके सूखनेपर अति व्याकुल मछलीपर प्रथम वृष्टि ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मण्डपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

नवीन और प्राचीन सृष्टियोंकी मनोमात्र विलासतुल्यता अन्वय और व्यतिरेकसे इस १७वें सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ शवीभूतमिमंवत्सेभर्तारंपुष्पपुंजके ॥ अच्छाद्यस्थापयैनंत्वंपुनर्भर्त्तारमेष्यसि ॥ १ ॥ पुष्पाणिम्लानिमेष्यंतिनोनचैषविनंक्ष्यति ॥ भूयश्चतवभर्तृत्वमचिरेणकरिष्यति ॥ २ ॥ एतदीयश्चजीवोसावाकाशविशदस्तव ॥ ननिर्गमिष्यतिक्षिप्रमितोंतःपुरमंडपात् ॥ ३ ॥ षट्पदश्रेणिनयना समाकर्ण्येतिबंधुभिः ॥ सासमाश्वासितागत्यपयोभिरिवपद्मिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीसरस्वतीजी बोले-हे प्रिय पुत्रि! मृतक दशामें प्राप्त इस अपने पतिको तुम पुष्पकी राशिमें ढांकके रख और इस पतिको तुम फिर पाओगी ॥ १ ॥ न तो ये पुष्प मुरझांयगे और न यह मृतक शरीर नष्ट होगा किन्तु शीघ्र पुनः यह तुमारा भर्ता होगा ॥ २ ॥ और आकाशके समान विशाल यह इसका जीवभी शीघ्र इस अन्तःपुरसे बाहर

नहीं निकलेगा ॥ ३ ॥ जो बन्धुओंने आकाशवाणी (सरस्वती) के इस बचनको सुना तो आके उस भ्रमरके समान नेत्रवाली लीलाको ऐसे समाश्वासन (धैर्य्य) दिया जैसे जल कमलिनीको ॥ ४ ॥

पतिंसंस्थाप्यतत्रैवपुष्पपूरप्रगोपितम् ॥ किंचिदाश्वासितातिष्ठद्दरिद्रेवनिधानिनी ॥ ५॥ तस्मिन्नेवदिने सैषातस्मिञ्छुद्धांतमंडपे ॥ अर्द्धरात्रेपरिजनेसर्वस्मिन्निद्रयाहृते ॥ ६ ॥ ज्ञप्तिंभगवतींदेवींशुद्धध्यानम हाधिया ॥ दुःखादाव्हादयामाससोवाचसमुपेत्यताम् ॥ ७ ॥ किंस्मृतास्मित्वयावत्सेधत्सेकिमितिशो किताम् ॥ संसारभ्रांतयोभांतिमृगतृष्णांबुवन्मुधा ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पके समूहमें छिपाके पतिको रखके कुछ आश्वासित कीहुई उसी पतिके मृतक शरीरकी ओर मुख करके ऐसे बैठगई जैसे दरिद्रा धनकी ओर ॥ ५ ॥ उसी दिन उस अपने शुद्ध अन्तःपुर मण्डपमें आधी रातिके समय सम्पूर्ण सेवकजनोंके निद्राके वशीभूत होनेपर इसने ॥ ६ ॥ शुद्धध्यान सहित महाबुद्धिसे ज्ञानरूप देवी भगवतीको दुःखसे आवाहन किया, और भगवती उससे बोली ॥ ७ ॥ हे प्रिय पुत्री ! मुझे किसलिये स्मरण किया और अति शोकित तुम क्यों हो, ये सम्पूर्ण संसारकी भ्रान्ति मृगतृष्णाके जलके समान मिथ्याहै ॥ ८ ॥

॥ लीलोवाच ॥ कममावस्थितोभर्ताकिंकरोत्यथकीदृशः ॥ समीपंनयमांतस्यनैकाशक्नोमिजीवितुम् ॥ ९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ चित्ताकाशंचिदाकाशमाकाशंचतृतीयकम् ॥ द्वाभ्यांशून्यतरंविद्धिचिदाकाशं वरानने ॥ १० ॥ तच्चिदाकाशकोशात्मचिदाकाशैकभावनात् ॥ अविद्यमानमप्याशुदृश्यतेथानुभूयते ॥ ११ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौसंविदोमध्यमेवयत् ॥ निमिषेणचिदाकाशंतद्विद्धिवरवर्णिनि ॥ १२ ॥

अर्थ—लीलाजी बोले-हे देवि ! मेरा पति इससमय कहां है ? तथा किसरूपसे है ? और क्या करताहै मुझेभी उसीके समीप ले चलो, मैं अकेली नहीं जीसकती ॥ ९ ॥ श्रीदेवीजी बोली-हे श्रेष्ठ मुखवाली वासनामय चित्ताकाश शुद्ध चिदाकाश और यह व्यावहारिक तीसरा आकाशहै, दोनोंकी सन्धिमें दोनोंसे शून्य चिदाकाशको तुम जानो ॥१०॥ तुमने जो अपने पतिका स्थान पूंछा है सो यथार्थमें तो वह चिदाकाश कोशरूपही है इससे उससे पृथक् न रहता हुआभी चिदाके एकाग्र चिन्तनसे वह यहांही देख पडताहै और वहां जाके अनुभवमेंभी आताहै ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ वर्णवाली एक देशसे दूसरे देशमें (जैसे पृथिवीसे सूर्य्यमण्डलमें) जो ज्ञान एक निमिष (पल) में प्राप्त होताहै उनदोनों देशोंके मध्यमें जो ज्ञानहै उसको तुम चिदाकाश जानो, अर्थात् क्रमसे आनेवाले दोनोंके आभास सन्धिमें दोनोंसे शून्य चिदाकाश सरलतासे जानाजाताहै ॥ १२ ॥

तस्मिन्निरस्तनिःशेषसंकल्पास्थितिमेषिचेत् ॥ सर्वात्मकंपदंतत्त्वंत्वंतदाप्रेष्यसंशयम् ॥१३॥ अत्यंताभावसंपत्त्याजगतश्चेतदाप्यते ॥ नान्यथामद्वरेणाशुत्वंतुप्राप्स्यसिसुंदरि ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इत्युक्त्वासाययौदेवीदिव्यमात्मीयमास्पदम् ॥ लीलातुलीलयैवासीन्निर्विकल्पसमाधिभाक् ॥ १५ ॥ तत्तत्याजनिमेषेणसांतःकरणपंजरम् ॥ स्वदेहंखमिवोड्डीनामुक्तनीडाविहंगमी ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि उस चिदाकाशमें सम्पूर्ण संकल्पोंसे रहित होके स्थितिको पावो तो सर्वात्मक तत्त्वपदको अवश्य पाओगी, और उसकी प्राप्तिही उसरूपसे स्थित तुमारे पतिके समीप प्राप्तिहै क्योंकि उसी देशमें पतिलोककी कल्पनाहै ॥ १३ ॥ और हे सुन्दरि ! तत्वज्ञानसे अविद्याका नाश होनेसे जगत्के अत्यन्त अभावसे इस पदकी प्राप्ति होतीहै अन्यथा नहीं, और तुम तो मेरे वरदानके प्रभावसे शीघ्र पाओगी ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-इतना कहके वह देवी अपने दिव्य धामको चलीगई और लीला तो लीलाहीसे अर्थात् देवीके वरदानके प्रभावसे निर्विकल्प समाधिमें निमग्न होगई ॥ १५ ॥ स्थिरीकृत चित्तसे अभिमानको छोडके लोहके पिंजरेके समान दुर्भेद्य अन्तःकरण सहित स्थूल देहको त्यागदिया, और आकाशमें ऐसे उडी जैसे घोसला (खुन्थे) को छोडके पक्षिणी ॥ १६ ॥

ददर्शखस्थाभर्त्तारंतस्मिन्नेवालयांबरे ॥ संस्थितंपृथिवीपालमास्थानेबहुराजनि ॥ १७ ॥ सिंहासनेसमारूढंजयजीवेतिसंस्तुतम् ॥ प्रस्तुतंमंडलानीककार्यमाहर्तुमादृतम् ॥ १८ ॥ पताकामंजरीकीर्णराजधानीगृहस्थितम् ॥ पूर्वद्वारस्थितासंख्यमुनिविप्रर्षिमंडलम् ॥१९॥ दक्षिणद्वारगासंख्यराजराजेशमंडलम् ॥ पश्चिमद्वारगासंख्यललनालोकमंडलम् ॥ २० ॥

अर्थ—चिदाकाशमें स्थित होके उसी स्थानके आकाशमें अनेक राजाओंसे संयुक्त सभामण्डपमें अपनी वासना और कर्मके अनुसार प्रकट देह गृहादिकी सम्पत्तिसे संस्थित अपने पतिराजाको देखा ॥ १७ ॥ सिंहासनपर विरा-

१ ये सब राजाके विशेषणहैं ऐसे राजाको चिदाकाशमें रानीने देखा ॥

जमान आपकी जयहो आप चिरंजीवहो इत्यादि वाक्योंसे संस्तुत, राज्य तथा सेनाके उपस्थित कार्य्योंके करनेमें आदर युक्त ॥ १८ ॥ पताकाओंके मण्डलोंसे व्याप्त राजधानीके मुख्य गृहमें संस्थित, पूर्वद्वारपर असंख्य मुनि ब्राह्मण और ऋषियोंके समूह सहित ॥ १९ ॥ दक्षिणके द्वारपर राजराजेश्वरोंके समूहोंसे संयुक्त, पश्चिम द्वारपर असंख्य उत्तम स्त्रियोंसे संयुक्त अपने पतिको देखा ॥ २० ॥

उत्तरद्वारगासंख्यरथहस्त्यश्वसंकुलम् ॥ एकभृत्यविनिर्णीतदक्षिणापथविग्रहम् ॥ २१ ॥ कर्णाटनाथ रचितपूर्वदेशक्रियाक्रमम् ॥ सुराष्ट्राधिपनिर्णीतसर्वम्लेच्छोत्तरापथम् ॥ २२ ॥ मालदेशसमाक्रांतसर्व पाश्चात्यतंगणम् ॥ दक्षिणाब्धितटायातलंकादूतविनोदितम् ॥ २३ ॥ पूर्वाब्धितटमाहेंद्रसिद्धोक्तगग नापगम् ॥ उत्तराब्धितटायातदूतवर्णितगुह्यकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उत्तरके द्वारपर असंख्य रथ, हांथी, और घोडोंसे व्याप्त, एक सेवकके बचनसे दक्षिणदेशमें युद्धको निर्णय करनेवाले ॥ २१ ॥ जिसके लिये कर्णाटदेशके राजाने पूर्वदेशकी व्यवहार मर्य्यादाको रचित कियाहै और जिसके लिये गुजरातदेशके राजाने सम्पूर्ण म्लेच्छ और उत्तरदेशको जीतकर वशीभूत करलियाहै ॥ २२ ॥ मालदेशके राजाने सम्पूर्ण पश्चिमदेशके तंगणनामक देशोंके आक्रमण करलियाहै, और जिनके सम्मुख दक्षिणके समुद्रतटसे दूत आके लंकाके वृत्तान्तको निवेदन कियाहै ॥ २३ ॥ पूर्वके समुद्रतटसे आके महेन्द्रपर्वतके सिद्धतपस्वीने सहस्र मुख गंगाका विचित्र विस्तार वर्णन कियाहै, उत्तरसमुद्रके तटसे दूतने आके गुह्यकोंका वृत्तान्त निवेदन कियाहै ॥ २४ ॥

पश्चिमाब्धितटालोकवर्णितास्तमयक्रमम् ॥ असंख्यबद्धभूपालकलाकीर्णाखिलाजिरम् ॥२५ ॥ यज्ञवा टपठद्विप्रजिततुर्याग्रनिःस्वनम् ॥ बंदिकोलाहलोल्लासप्रतिश्रुद्वनकुंजरम् ॥ २६ ॥ गेयवाद्योत्थध्वानप्र ध्वनद्गगनांतरम् ॥ हयहस्तिरथाराजिरजोमेघघनांबरम् ॥ २७ ॥ पुष्पकर्पूरधूपाढ्यंगंधामोदितपर्वतम् ॥ सर्वमंडलसंभाररचितानिकशासनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पश्चिमसमुद्रतटको देखकर दूतने आके अस्ताचलकी रीतिको जिसके सम्मुख वर्णन कियाहै ऐसे तथा अनेक बन्धेहुये राजाओंसे जिसका सम्पूर्ण अंगण व्याप्त होरहाहै ॥ २५ ॥ जिसके यज्ञमार्गमें वेद पढनेवाले विप्रोंने श्रेष्ठबाद्यके शब्दको जीतलियाहै, बन्दियोंके कोलाहलके उल्लासके प्रतिध्वनिकारक बनबजहै जिसके ॥ २६ ॥ जानने योग्य वाद्योंसे निकलेहुये शब्दोंसे आकाशमध्य जिसका गुंज रहाहै, जिसके घोडे हांथी और रथकी पंक्तियोंसे निकली हुई धूलिरूपी मेघसे आकाश व्याप्त होरहाहै ॥ २७ ॥ पुष्प, कर्पूर और धूपसे पूर्ण जिसके पर्वतके समान प्रासाद (अटारी) सुगन्धसे व्याप्त होरहेहै सम्पूर्ण देशोंसे लाके उपायन (नजर) आदिसे गृहको पूर्ण करनेवाले भृत्योंने जिसके अनेक (शासन हुकम) रचेहैं ऐसे अपने पतिराजाको लीलाने देखा ॥ २८ ॥

यशःकर्पूरजलदसुशुभ्रांबरपर्वतम् ॥ रोदसीस्तंभभूतैकस्वप्रतापजितार्ककम् ॥ २९ ॥ आरंभमंथरो दारकार्यसंव्यग्रभूमिपम् ॥ नानानगरनिर्माणसोद्योगस्थपतीश्वरम् ॥ ३० ॥ पपाताथमहारंभासातांन रपतेःसभाम् ॥व्योमात्मिकाव्योममयींमिहिकेवांबराटवीम् ॥३१॥ भ्रमंतींतत्रतामग्रेददृशुस्तेनकेचन॥ संकल्पमात्ररचितांपुरुषाःकामिनीमिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—यशरूपी कर्पूरके समान मेघोंसे जिसने पर्वतोंको श्वेतवर्ण करदियाहै ऐसे आकाशमें पृथिवीके स्तम्भ (खंभे) के समान, अपने प्रतापसे सूर्य्यके तेजको जीतनेवाले ॥ २९ ॥ बडे २ उदार कार्य्योंमें करदेनेवाले राजाओंके संव्यग्र करनेवाले, नानाप्रकारके नगरोंको बनानेके लिये उद्योगी स्थपति (गृहबनानेवाले राजलोग) हैं जिसके ऐसे राजा अपने पतिको लीलाने देखा ॥ ३० ॥ वासनामयरूप होनेसे आकाशरूप राजाकी सभामें महान् कार्य्योंका आरम्भ करनेवाली स्वयं आकाशरूप लीलाने ऐसे प्रवेश किया जैसे आकाशमें नीहारकी पंक्ति ॥ ३१ ॥ उस सभामें भ्रमण करती हुई उसको किसीने ऐसे नहीं देखा जैसे संकल्पमात्रसे रचित कामिनीको पुरुष ॥ ३२ ॥

तथातेतांनददृशुःसंचरंतींपुरोगताम् ॥ अन्यसंकल्परचितामन्येननगरींयथा ॥ ३३ ॥ प्राक्तनानेवता न्सर्वान्स्वान्ददर्शसभागतान् ॥ भूभृतेवसुसंप्राप्तान्नगरान्नगरांतरम् ॥ ३४ ॥ तद्देशांस्तत्समाचारां स्तथातानेवबालकान् ॥ ताएवबालवनितास्तांस्तानेवचमंत्रिणः ॥ ३५ ॥ तानेवभूमिपालांश्चतांस्ताने वचपंडितान् ॥ तानेवनर्मसचिवानभृत्यांस्तानेवतादृशान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे दूसरेके संकल्पसे रची हुई नगरीको दूसरा नहीं देखता, ऐसेही सम्मुख भ्रमण करती हुईभी उसको लोगोंने नहीं देखा ॥ ३३ ॥ उस लीलाने राजाके साथ अपने पुराने सेवकोंको सभामें प्राप्त ऐसे देखा मानो राजाहीने उनको एक नगरसे दूसरे नगरमें प्राप्त कियाहै ॥ ३४ ॥ उन्हीं २ देशों और समाचारोंको, तथा उन्ही बालकोंको, उन्हीं

बालवनिताओंको, और उन्हीं २ मंत्रियोंको ॥ ३५ ॥ उन्हीं राजाओंको और उन्हीं २ पण्डितोंको उन्हीं हास्यके मंत्रियोंको वैसेही और उन्हीं सेवकोंकोभी लीलाने देखा ॥ ३६ ॥

अथान्यानप्यपूर्वांश्चपंडितान्सुहृदस्तथा ॥ व्यवहारांस्तथान्यांश्चपौरानन्यांस्तथैवच ॥ ३७ ॥ मध्याह्नकालेदिवसेघनदावाकुलादिशः ॥ अंतरिक्षंसचंद्रार्कसांभोदपवनध्वनि ॥३८॥ महीरुहनदीशैलपुरपत्तनमंडितम् ॥ नानानगरविन्यासजंगलग्रामसंकुलम् ॥ ३९ ॥ द्विरष्टवर्षभूपालंप्राक्तन्याजरसोज्झितम् ॥ प्राक्तनींजनतांसर्वांसमस्तान्ग्रामवासिनः ॥ ४० ॥

अर्थ—और इसके सिवाय अन्य अपूर्व पण्डित तथा मित्रोंको, और उसीप्रकार अन्य व्यवहारोंको तथा अन्य नगरके मनुष्योंकोभी देखा ॥ ३७ ॥ मध्यान्ह (दोपहर दिनके) समयमें सम्पूर्ण दिशाओंको सघन बनकी अग्निसे व्याप्त, और आकाशको सूर्य्य चन्द्रमा और मेघ तथा वायुके शब्दसहित ॥ ३८ ॥ वृक्ष, नदी, पर्वत, ग्राम और बडे नगरसे शोभित, नानाप्रकारके नगरोंकी रचना तथा जंगलोंसे व्याप्त स्थानको देखा ॥ ३९ ॥ पूर्वकी वृद्धाऽवस्थाको त्यागके सोलह १६ बर्षके राजाको, और पूर्वकालके सम्पूर्ण जनसमूहोंको और ग्रामनिवासियोंकोभी देखा ॥ ४० ॥

सातानालोक्यललनाचिंतापरवशाभवत् ॥ तस्मिन्नगरवास्तव्याःकिंतेसर्वेमृताइति ॥ ४१ ॥ पुनःप्रज्ञप्तिबोधेनप्राक्तनांतःपुरंगता ॥ क्षणेनचददर्शात्रसार्द्धरात्रेतथैवतान् ॥ ४२ ॥ अथसोत्थापयामासनिद्राक्रांतंसखीजनम् ॥ आहचातीवमेदुःखमास्थानंदीयतामिति ॥ ४३ ॥ भर्तुःसिंहासनस्यास्यपार्श्वेतिष्ठाम्यहंयदि ॥ पश्यामिसभ्यसंघातंतत्प्रजीवामिनान्यथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस ललनाने उन सबको देखके इस चिन्ताके परवश हुई कि क्या उस नगरके रहनेवाले सब मरगये? ॥ ४१ ॥ पुनः ज्ञानरूप भगवतीकी कृपासे ज्ञानसे समाधिके भंग होनेपर अपने पूर्व अन्तःपुरमें आई और एक क्षणमेंही आधीरातिके समय उन सबको वैसाही देखा ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उसने सब सखीजनोंको उठाया और यह बोली कि मुझे राजसभाके समीप बैठने दो क्योंकि मुझे अति दुःखहै ॥ ४३ ॥ यदि मैं पतिके इस सिंहासनके निकट स्थित रहूंगी और सब सभासदोंको देखती रहूंगी तभी जीऊंगी अन्यथा नहीं ॥ ४४ ॥

सराजपरिवारोथतयेत्युक्तेयथाक्रमम् ॥ आसीद्विनिद्रःसंव्यग्रःसर्वःसर्वस्वकर्मणि ॥ ४५ ॥ पौरान्सभ्यान्समानेतुंययुर्याष्टीकपंक्तयः ॥ व्यवहारंकलयितुमुर्व्यामर्ककराइव ॥ ४६ ॥ आस्थानभूमिंभृत्याश्चमार्जयामासुरादृताः ॥ प्रावृट्पयोदमलिनंखंशरद्वासराइव ॥ ४७ ॥ अंगणंप्रतिदीपौघास्तस्थुःपीततमोंभसः ॥ आश्चर्यदर्शनायेवसंप्राप्ताऋक्षपंक्तयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—उसके वैसा कहनेपर राजाके परिवारके सब लोग जगगये, और सब अपनेर उचित कार्य्योंमें लगगये ॥ ४५ ॥ ड्योढीदारलोग राज्यका कार्य करनेके अर्थ नगरनिवासी राज्यकर्म चारिओंको बुलानेके लिये ऐसे गये जैसे संसारका कार्य्य करानेके अर्थ सूर्य्यके किरण ॥ ४६ ॥ सभास्थानको भृत्योंने ऐसे स्वच्छ किया जैसे वर्षाके मेघसे मलिन आकाशको शरदऋतुके दिन ॥ ४७ ॥ अंगण (आंगन) में अन्धकाररूपी जलको पीनेवाले दीपोंकेसमूह पीतवर्ण ऐसे स्थित हुये जैसे आश्चर्य देखनेके लिये आके तारोंकी पंक्ति ॥ ४८ ॥

जनताःपूरयामासुःपौरराजिरभूमिकाः ॥ अब्धीन्प्रलयसंशुष्कान्पुरासर्गइवांभसा ॥ ४९ ॥ आजग्मुर्मंत्रिसामंताःस्वंस्वंस्थानमनिंदिताः ॥ त्रैलोक्येपुनरुत्पन्नेलोकपालायथादिशः ॥ ५० ॥ बभुराकीर्णकर्पूरसांद्रावश्यायशीतलाः ॥ उत्फुल्लकुसुमोद्दांतमांसलामोदितानिलाः ॥ ५१ ॥ पर्यंतेषुप्रतीहारास्तस्थुर्द्धवलवाससः ॥ ऋष्यमूकार्कतापार्त्तमेघमालाइवाद्रिषु ॥ ५२ ॥

अर्थ—मनुष्योंके समूहोंने सभाकी अंगण भूमिको ऐसे पूर्ण किया जैसे मनुष्योंकी सृष्टिके पूर्व प्रलयसे सूखेहुये समुद्रोंको जलके समूह ॥ ४९ ॥ निन्दारहित मन्त्री और करदेनेवाले राजालोग अपने २ स्थानपर आके ऐसे विराजमान हुये जैसे त्रैलोक्यके पुनः उत्पन्न होनेपर अपनी २ दिशाओंमें लोकपाल ॥ ५० ॥ चारों ओर व्याप्त कर्पूरके समान सघन हिमसे शीतल और खिले हुये पुष्पोंसे निस्तृत सुगन्धसे पुष्ट (शीतल मन्द और सुगन्ध) वायु बहने लगे ॥ ५१ ॥ सभाके निकट श्वेतवस्त्र धारण कियेहुये द्वारपाललोग ऐसे खडेहुये जैसे ऋष्यमूक (सुग्रीवके स्थान) के तापसे पीडित मेघमाला विन्ध्याचल आदि पर्वतोंपर ॥ ५२ ॥

प्रभापीततमःपुंजाःपेतुःपुष्पोत्कराभुवि ॥ चंडमारुतविध्वस्तास्तारकानिकराइव ॥ ५३ ॥ आस्थानंपूरयामासुर्महीपालानुयायिनः ॥ उत्फुल्लकमलोत्कीर्णहंसाइवसरोवरम् ॥ ५४ ॥ सिंहासनसमीपस्थे

(१) ऋष्यमूक पर्वत सुग्रीवके रहनेके स्थानका नामहै वहांपर पुत्र स्नेहसे सूर्य्यकी स्थिति अधिक रहतीथी ॥

हैमचित्रासनेनवे ॥ उपाविशदसौलीलालीलेवस्मरचेतसि ॥ ५५ ॥ ददर्शतान्नृपान्सर्वान्पूर्वानेवयथा स्थितान् ॥ गुरुनार्यान्सखीन्सभ्यान्सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ ५६ ॥ सकलमेवहिपूर्ववदेवसासमवलो क्यमुदंपरमांययौ ॥ नृपतिराष्ट्रजनंखलुजीवनाभ्युदितयाचबभौशशिवच्छ्रिया ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संदेहराष्ट्रवर्णनं नाम सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—प्रकाशसे अन्धकारकी राशिको नष्ट करनेवाले पुष्पोंके समूह ऐसे गिरनेलगे जैसे प्रलयके वायुसे विधस्त तारागणोंके समूह ॥ ५३ ॥ राजाओंके सेवकोने सभामण्डपको ऐसे पूर्ण किया जैसे विकासित कमलोंके समूहसे व्याप्त सरोवर (मानसरोवर तडाग) को हंस ॥ ५४ ॥ पतिके सिंहासनके समीप सुवर्णके नये और बिचित्र सिंहासनपर यह लीला ऐसे विराजमान हुई जैसे कामदेवके चित्तमें लीला (विलास या कौतुक) ॥ ५५ ॥ यथास्थित (ज्योंकेत्यों) प्रथमके राजाओंको श्रेष्ठ और भावके योग्य गुरु, मित्र, सभासद प्रीति करनेवाले सम्बन्धी और बान्धवोंके वहांपर देखा ॥ ५६ ॥ राजा तथा राज्यके सम्पूर्ण लोगोंको पूर्वकेही समान देखकर वह लीला परम प्रसन्न हुई, और सबके निश्चित जीवनकी शोभासे चन्द्रमाके समान प्रकाशित हुई ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे लीलोपाख्याने सन्देहराष्ट्र वर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

समाधिमें देखीहुई सृष्टि और पूर्वसृष्टि दोनों दृश्यरूप होनेसे मिथ्यात्वमें समानहीहै इसलिये केवल चिन्मात्रकी सदा स्थितिहै इस विषयका वर्णन इस १८ वे सर्गमें कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंविनोदयामीदंदुःखदंचितमित्यलम् ॥ बोधयित्वेंगितैर्भूपानास्थानादुत्थिताथ सा ॥ १ ॥ प्रविश्यांतःपुरंभर्तुःपार्श्वंतःपुरमंडपे ॥ विवेशपुष्पगुप्तस्यचिंतयामासचेतसा ॥ २ ॥ अहोविचित्रामायेयमेतेऽस्मत्पुरमानवाः ॥ बहिरंतरवद्देशेतत्रचेहचसंस्थिताः ॥ ३ ॥ तालीतमालहिंतालमालितागिरयोप्यमी ॥ यथातत्रतथेहापिबतमायेयमातता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार सभामण्डप आदिके दर्शनसे अपने दुःखदायी चित्तको भलीभांति प्रसन्न करूंगी ऐसी अभिप्रायसूचक चेष्टाओंसे राजाओंको जतलाकर वह लीला सभामें सिंहासनके समीपसे उठी ॥ १ ॥ अन्तःपुर मण्डपके समीप पतिके अन्तःपुरमें प्रवेश किया और पुष्पमें छिपाहुये पतिके निकट बैठके यह बात चित्तसे बिचारी ॥ २ ॥ अहो ! यह कैसी ईश्वरकी मायाहै कि ये मेरे नगरके निवासी लोग जैसे समाधिमें देखेगये वैसेही यहांभी स्थितहैं ॥ ३ ॥ ताली और तमाल आदि वृक्षोंसे शोभित ये पर्वत जैसे वहां थे वैसेही यहांभी हैं आश्चर्यकी बातहै यह ईश्वरकी माया कैसी व्याप्त होरही है ॥ ४ ॥

आदर्शान्तर्बहिश्चैवयथाशैलोनुभूयते ॥ बहिरंतश्चिदादर्शेतथासर्गोनुभूयते ॥ ५ ॥ तत्रभ्रांतिमयःसर्गःकःस्यात्कःपारमार्थिकः ॥ इतिपृच्छामिवागीशामभ्यर्च्योक्तमसंशयम् ॥ ६ ॥ इतिनिश्चित्यतांदेवींपूजयामाससातदा ॥ ददर्शचपुरःप्राप्तांकुमारीरूपधारिणीम् ॥ ७ ॥ भद्रासनगतांदेवीमुपविश्य पुरोगता ॥ परमार्थमहाशक्तिंलीलापृच्छत्तुविस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणके भीतर और बाहर पर्वत आदि देख पडतेहैं इसीप्रकार चित्‌रूपी दर्पणमेंभी बाहर तथा भीतर इस सृष्टिका अनुभव होताहै ॥ ५ ॥ इन दोनों (समाधिमें देखेहुए तथा बाहर देखेहुये) में से सत्य कौनहै ? इस संशयको असंशय करनेके लिये वागीशा भगवतीकी पूजा करके पूछूं ॥ ६ ॥ इसप्रकार निश्चय करके उससमय उसने देवीकी पूजाकी और कुमारीका रूप धारण किये उसको अपने सन्मुख प्राप्तही देखा ॥ ७ ॥ भद्रासनसे विराजमान परमार्थ सिद्ध करनेको महाशक्तिरूप देवीके सम्मुख जाके पृथिवीपर बैठके लीलाने पूंछा ॥ ८ ॥

लीलोवाच ॥ ॥ अनुकंप्यस्यनोदेविभजंत्युद्वेगमुत्तमाः ॥ त्वयैवंकिलसर्गादौस्थापितास्थितिरुत्तमा ॥ ९ ॥ तदिदंयत्पुरःप्रव्हापृच्छामिपरमेश्वरि ॥ तद्ब्रूहित्वत्कृतोनूनंसफलोमेस्त्वनुग्रहः ॥१०॥ अस्या

दर्शोजगन्नाम्नःखादप्यधिकनिर्मलः ॥ यस्ययोजनकोटीनांकोटयोवयवोमनाक् ॥ ११ ॥ निःसंधितव चोज्योतिर्घनोमृदुस्सुशीतलः ॥ अवेत्यचिदितिख्यातोनाम्नानिर्भित्तिरग्रतः ॥ १२ ॥

अर्थ—लीला बोले-हे देवि ! दयाके पात्र जो हम लोगहैं उनके सन्देहको आपके सदृश उत्तम महात्माजन नहीं भंजन करते हैं इसप्रकारकी मर्य्यादा सृष्टिकी आदिमें आपहीने स्थापित कीहै ॥ ९ ॥ इसलिये हे परमेश्वरि नम्र होके आपके सम्मुख यह जो मैं पूंछतीहूं उसको कृपा करके कहिये, यह आपका अनुग्रह मेरे ऊपर निश्चय रूपसे सफल हो ॥ १० ॥ इस जगत्का चिदाकाशरूपी दर्पण आकाशसेभी निर्मलहै, जिसका अवयव (भाग) करोडों योजनोंकी कोटियोंकी कोटिभी अल्पहीहै ॥ ११ ॥ सन्धिरहित अर्थात् अखण्डार्थ वचन प्रभाव सहित घन, अमूर्त होनेसे मृदु सम्पूर्णतापोंको शमन करनेसे शीतल, आवरण रहित सब व्यवहारोंमें प्रथम अग्रभागमें स्फुरण होनेवाली और विषयरहित चित् इसनामसे प्रसिद्ध यह (समाधिमें अनुभूत) ज्योतिरूप आदर्श (दर्पण) है ॥ १२ ॥

दिक्कालकलनाकाशप्रकाशनियातिक्रमाः ॥ यत्रेमेप्रतिबिंबतिपरांपरिणतिंगताः ॥ १३ ॥ त्रिजगत्प्रतिबिंबश्रीर्बहिरंतश्चसंस्थिता ॥ तत्रवैकृत्रिमाकास्यात्कासौवास्यादकृत्रिमा ॥ १४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अकृत्रिमत्वंसर्गस्यकीदृशंवदसुंदरि ॥ कीदृशंकृत्रिमत्वंस्याद्यथावत्कथयेतिमे ॥ १५ ॥ लीलोवाच ॥ यथाहमिहतिष्ठामित्वंचदेविस्थितांबिके ॥ असावकृत्रिमःसर्गइतिदेवेशिवेद्म्यहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस चित्रूपी आत्मआदर्शमें, देशकाल और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्य्योंकी उत्पत्ति, उत्पत्तिवालोंकी अवकाशसहित देशमें प्राप्ति नेत्र आदिसे प्रकाश, और प्रकाशितोंका अर्थ और क्रियाओंमें मर्य्यादा, ये सब देशकालसे विस्तीर्ण विकारकी विचित्र दशामें प्राप्त प्रतिबिम्बके समान स्फुरित होते हैं ॥ १३ ॥ इस चित्रूपी आदर्शमें तीनों जगत्के प्रतिबिम्बकी शोभा बाहर और भीतर स्थितहै उनमें कृत्रिम (बनावटी) कौनहै और अकृत्रिम (असली) कौनहै ? ॥ १४ ॥ श्रीदेवीजी बोले-हे सुन्दरि ! इस सृष्टिकी अकृत्रिमता कैसी ? और कृत्रिमता कैसी होती है इसको तुम ठीक २ कहो ॥ १५ ॥ लीला बोले—हे देवि ! हे देवेशि ! हे अम्बिके ! जिसमें मैं और आप वर्तमान हैं उस सृष्टिको मैं अकृत्रिम जानतीहुं ॥ १६ ॥

यत्राधुनासभर्त्तामेस्थितःसर्गःसकृत्रिमः ॥ अहंमन्येयतःशून्योदेशकालाद्यपूरकः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कृत्रिमोऽकृत्रिमात्सर्गान्नकदाचनजायते ॥ नहिकारणतःकार्यमुदेत्यसदृशंक्वचित् ॥ १८ ॥ लीलोवाच ॥ दृश्यतेकारणात्कार्यसुविलक्षणमंबिके ॥ अंब्वादातुमशक्तामृद्घटस्तज्जस्तदास्पदम् ॥ १९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ संपद्यतेहियत्कार्यंकारणैः सहकारिभिः ॥ मुख्यकारणवैचित्र्यंकिंचित्तत्रावलोक्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और जिस सृष्टी (समाधि दृष्टि) में मेरा पति इससमयमें है, उसको मैं कृत्रिम मानतीहुं, क्योंकि वह शून्यप्रायहै उसमें अतिअल्पभी देशकालका अवकाश नहीं है, अर्थात् प्रतिबिम्बके समान स्थितहै ॥ १७ ॥ श्रीदेवीजी बोली-अकृत्रिम सृष्टिसे कृत्रिम सृष्टि कभी नहीं होती क्योंकि कारण (उपादान कारण) से कार्य्य असदृश कदापि नहीं होता ॥ १८ ॥ लीला बोली—हे मातः ! कारणसे कार्य्य अति विलक्षण देखनेमें आताहै जैसे मृत्तिकाका पिण्ड जल ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है परन्तु मृत्तिकासे उत्पन्न घट (घडा) जल ग्रहण करनेमें समर्थ है ॥ १९ ॥ सरस्वतीजी बोली—कि जो कार्य्य सहकारी कारणोंकी सहायतासे कार्य्य सिद्ध होताहै वहांपर असाधारण (दण्डचक्रादि) से विचित्रता कार्य्यमें देख पडती है, अर्थात् उपादान कारणकी विचित्रता सेवा सहकारी निमित्त कारणकी विचित्रतासे मृत्तिका और घटमें विचित्रता रहो परन्तु सदृश उपादान कारणमें विचित्रता नहींहोती जैसे एक दीपसे उत्पन्न दूसरे दीपमें इसीप्रकार दोनों सृष्टिमेंभी विचित्रता नहीं है क्योंकि दोनोंका उपादान कारण सदृश है ॥ २० ॥

वदतद्भर्तृसर्गस्यकिंपृथ्व्यादिषुकारणम् ॥ तद्भूमंडलतोभूतिर्जातातत्रवरानने ॥ २१ ॥ गतंवेदितउड्डीयकुतःस्यादिहभूतलम् ॥ सहकारिणिकानीवकारणान्यत्रकारणे ॥ २२ ॥ कारणानामभावेपियोदेति सहकारिता ॥ तत्पूर्वकारणाद्यान्यत्सर्वेणेत्यनुभूयते ॥ २३ ॥ लीलोवाच ॥ स्मृतिः सादेविमद्भर्तुस्तथास्फारत्वमागता ॥ स्मृतिस्तत्कारणंवेद्मिसर्गोयमितिनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे वरानने (श्रेष्ठ मुखवाली) यह तुम बताओ कि तुमारे पतिकी सृष्टिके कारण पृथिवी आदिमेंसे क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं, और भौतिक पदार्थोंमेंभी जैसे इस भूमण्डलसे उत्पत्ति है ऐसेही उस भूमण्डलमेंभी समझो ॥ २१ ॥ यदि यह कहो कि यहांके पृथिवी आदि वहां (समाधि दशा) के पृथिवी आदिके कारणहैं सोभी नहीं क्योंकि यहांसे उठके वहांके आके वहांके भूमि आदि कारण होतो यहां भूतल कैसे रहसकताहै और बिना वहां गये कार्य्य

उत्पन्न नहीं करसकता, और इसके कारण होनेमें सहकारी कारणभी कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ और कारणोंके अभावमेंभी सहकारी कारणताकी जो कल्पना की जाती है, वह पूर्व कारण (माया काम तथा वासना) को छोडके और कुछ नहीं होसकता यह अनुभव सबको है ॥ २३ ॥ लीला बोली–हे देवि ! मेरे पतिकी स्मृति ऐसी दृढताको प्राप्त हुई कि वही इस समाधिकी सृष्टिका कारणहै ऐसा मुझे निश्चयहै ॥ २४ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ स्मृतिराकाशरूपाचयथातज्जस्तथैवते ॥ भर्तुःसर्गोनुभूतोऽपिसव्योमैवतथाबले॥२५॥ लीलोवाच ॥ स्मृत्याकाशमयः सर्गोयथाभर्तुर्ममोदितः ॥ तथैवेममहंमन्येससर्गोत्रनिदर्शनम् ॥ २६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमेतदसत्सर्गोभर्तुस्तेभातिभासुरः ॥ तथैवायमिहाभातिपश्याम्येतदहंसुते ॥ २७ ॥ लीलोवाच ॥ यथाऽस्त्युरमूर्त्तोस्मात्सर्गात्सर्गोभ्रमात्मकः ॥ जातस्तथाकथयमेजगद्भ्रमनिवृत्तये ॥ २८ ॥

अर्थ––श्रीदेवीजी बोली–संस्कारसे उत्पन्न ज्ञानको स्मृति (स्मरण) कहतेहैं और स्मृतिमें पदार्थोंका अभाव होनेसे वह शून्य आकाशरूपही है इसलिये स्मृतिसें उत्पन्न जो पदार्थ अर्थात् समाधिमें अनुभूत तुमारे पतिकी सृष्टि जैसे आकाशरूपहै इसीप्रकार संस्कारके कारणसे अनुभूत पूर्व सृष्टिभी वैसीहीहै ॥ २५ ॥ श्रीलीलाजी बोली–स्मृति रूप आकाशमय मेरे पतिकी सृष्टि जैसी है वैसीही मैं इस सृष्टिकोभी मानतीहूं ॥ २६ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे पुत्रि ! इसप्रकार सर्वथा मिथ्याभूत यह सृष्टि जिस आत्मामें है वह प्रकाशरूप आत्माही तुमारे पतिको उन२ सृष्टिरूपसे जैसे भान होताहै वैसाही यहांभी यही आत्मा इस सृष्टिरूपसे भान होरहाहै इसको मैं देखतीहूं ॥ २७ ॥ लीलाजी बोली–हे देवि जिसप्रकार इससृष्टिसे भ्रमात्मक हमारे पतिकी सृष्टि उत्पन्नहुई वह मुझसे जगत्की भ्रान्तिके नाशार्थ कहिये ॥२८

श्रीदेव्युवाच ॥ प्राक्स्मृतेर्भ्रांतिमात्रात्मासर्गोयमुदितोयथा ॥ स्वप्नभ्रमात्मकोभातितथेदंकथ्यतेशृणु ॥२९॥ अस्तिकचिच्चिदाकाशेकचित्संसारमंडपः॥ आकाशकाचदलवत्संस्थानाच्छादिताकृतिः॥३०॥ मेरुस्तंभस्थलोकेशपुरंध्रीशालभंजिकः ॥ चतुर्दशापवरकस्त्रिगर्त्तोभानुदीपकः ॥ ३१ ॥ कोणस्थभूत वल्मीकव्याप्तपर्वतलोष्टकः ॥ अनेकपुत्रजरठप्रजेशब्राह्मणास्पदम् ॥ ३२ ॥

अर्थ––श्रीदेवीजी बोली–संस्कारजन्य स्मृतिमात्रसे भ्रमरूप पूर्व सृष्टि जैसे उत्पन्न हुई है उसीप्रकार स्वप्नके भ्रमके समान यहभी भान होतीहै वह मैं आपसे कहतीहूं सुनो ॥२९॥ चिदाकाशके अज्ञानसे आवृत्त भागमें उसमेंभी स्रष्टाके अन्तःकरण भागमें, आकाशरूप कांचके दलके समान नील पदार्थसे आच्छादित शरीरवाला संसाररूपी मण्डपहै ॥३०॥मेरुरूपी स्तम्भपर स्थित लोकपाल और उनकी स्त्री जिस (मण्डप) में प्रतिमाके समान हैं चतुर्दश भुवन जिसमें अन्तर्गृहहैं, तीनों लोक जिसके गर्त (गढे) हैं सूर्य्य जिसके दीपक है ॥ ३१॥ कानोंमें स्थित दीमकके समान नगर आदिसे व्याप्त पर्वत और मृत खण्डहैं जिसमें अनेक पुत्रोंसे संयुक्त वृद्धब्रह्मारूपी ब्राह्मणके तुल्य वह मण्डपहै॥ ३२ ॥

जीवौघकोशकाराढ्योव्योमोर्ध्वतलकालिमा ॥ नभोनिवाससिद्धौघमशकाक्वितघुंघुमः ॥ ३३ ॥ पयोद गृहधूमोग्रजालावलितकोणकः ॥ वातमार्गमहावंशस्थितवैमानकीटकः ॥ ३४ ॥ सुरासुरादिदुर्बाललीलाकलकलाकुलः ॥ लोकांतरपुरग्रामभांडोपस्करनिर्भरः ॥ ३५ ॥ सरःस्रोतोब्धिसरसीजलोक्षितमहीतलः ॥ पातालभूतलस्वर्गभागभासुरकोटरः ॥ ३६ ॥ तत्रकस्मिंश्चिदेकस्मिन्कोणेष्वंबरकोटरे ॥ शैललोष्टतलेष्वेकोगिरिग्रामकगर्त्तकः ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नदीशैलवनोपगूढेसाग्निःसदारःसुतवानरोगः ॥ गोक्षीरवान्राजभयाद्विमुक्तःसर्वातिथिधर्मपरोद्विजोभूत् ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये लीलोपाख्याने सकलजगद्भ्रांतिप्रतिपादनंनामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—जीवोंके समूहरूपीकाश कृमिसे पूर्ण, उपरके स्थानमें आकाशरूप कृष्णतासहित, आकाश निवासी सिद्धोंके समूहरूपी मच्छरोंकी हानिकारक ध्वनि सहित ॥३३ ॥ मेघरूपी गृहके धूमकी भयंकर जालसे जिसका कोण व्याप्तहै, वायुमार्गरूपी महावंशमें स्थित विमानके कीटहै जिसमें ॥३४॥सुर और असुररूपी दुष्ट बालकोंकी लीलाके कलकल शब्दसे व्याप्त, लोकान्तररूपी पुर और ग्रामरूपी भाण्ड (वर्तन) की सामग्रीसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ तडाग, सोता, समुद्र, और तलाई आदिके जलसे जिसकी पृथिवी सींची गई हैं, पाताल, भूतल, और स्वर्गसे जिसका उदर प्रकाशमानहै ऐसा वह मण्डपरूपी संसारहै ॥ ३६ ॥ उस मण्डप शैल (पर्वत) और मृत्पिण्डके किसी एक कोनोंमें पर्वतसे व्याप्त एक छोटा ग्रामहै ॥ ३७ ॥ नदी, पर्वत और बनसे घिरे हुये उस ग्राममें, स्त्रीपुत्र सहित, अग्निहोत्रके करनेवाले

रोगरहित, अनेक दूध देनेवाली गो तथा अन्य पशुओंसे युक्त, राजाके भयसे रहित, सब वर्णाश्रमके अतिथिओंकी पूजा और पोषण करनेवाला एक ब्राह्मणथा ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने सकलजगद्भ्रान्ति प्रतिपादनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

पद्मकी इस सृष्टिका पूर्वजन्मके कथनसे राजाका दर्शन और राज्यकी इच्छाके दृढ संकल्पसे जन्मका वर्णन इस १९ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वित्तवेषवयःकर्मविद्याविभवचेष्टितैः ॥ वसिष्ठस्यैवसदृशोनतुवासिष्ठचेष्टितः ॥ १॥ वसिष्ठइतिनाम्नासौतस्याभूदिंदुसुंदरी ॥ नाम्नात्वरुंधतीभार्याभूमिव्योमन्यरुंधती ॥ २ ॥ वित्तवेषवयः कर्मविद्याविभवचेष्टितैः ॥ समैवसाप्यरुंधत्यानतुचेतनसत्तया ॥ ३ ॥ अकृत्रिमप्रेमरसाविलासालसगामिनी ॥ सास्यसंसारसर्वस्वमासीत्कुमुदहासिनी ॥ ४ ॥

अर्थ--श्रीदेवीजी बोली-धन, वेष, अवस्था, कर्म, विद्या, और ऐश्वर्य्यआदिकी चेष्टासे वह ब्राह्मण वसिष्ट सदृशहीथा परन्तु इक्ष्वाकुवंशकी पुरोहिताई और रामचन्द्रजीको उपदेश देने आदि कार्य्यमें वसिष्ठके सदृश न था ॥१॥ उस ब्राह्मणका नाम वसिष्ठथा, उसकी स्त्री चन्द्रमाके समान सुन्दरी स्वर्गकी अरुन्धतीके समान पृथिवीरूपी स्वर्गकी अरुन्धती नामवालीथी ॥ २ ॥ धनावेष अवस्था और विद्या ऐश्वर्य आदिकी चेष्टामें वहभी अरुन्धतीके समानथी परन्तु उसके जीवकी सत्ता अरुन्धतीके समान न थी, तात्पर्य्य यह कि प्रसिद्ध वसिष्ठ और अरुन्धती तत्त्वज्ञानीथे और ये वसिष्ट अरुन्धती भावी जन्ममें ज्ञानी होनेवालेथे इसलिये इस जन्ममें इनका जीव अज्ञानीथा ॥ ३ ॥ यह अरुन्धती पतिमें सहज प्रेम करनेवाली विलासवती मन्दगामिनी, और कुमुदके सदृश हासवाली अपने पतिकी संसारमें सर्बस्व धनरूपथी ॥ ४ ॥

सविप्रस्तस्यशैलस्यसानौसरलशाद्वले ॥ कदाचिदुपविष्टःसन्ददर्शाधोमहीपतिम् ॥ ५ ॥ समग्रपरिवारेणयांतमाखेटकेच्छया ॥ महतासैन्यघोषेणमेरोरिवबिभित्सया ॥ ६ ॥ चामरैःकीर्णं चंद्रांशुपताकाभिर्लतावनं ॥ कुर्वाणंखंसितच्छत्रमंडलैरूप्यकुट्टिमम् ॥७॥ अश्वपादोत्खनत्क्ष्माजरेणुपूरावृतांबरम् ॥ हास्तिकोत्तंभितकरवाताट्टालकगोपितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली-सम और हरित् तृणसे ढकी हैं भूमि जिसकी ऐसे उस पर्वतके शिखरपर किसी समय बैठा हुआ वह ब्राह्मण, समग्र परिवारके साथ और सेनाके बडे शब्दसे मानों सुमेरुको विदीर्ण करनेवाले अहेरकी इच्छासे जातेहुये नीचेकी भूमिपर एक राजाको देखा॥५॥६॥वह राजा चमर और पताकोंसे सत्तायुक्त बनको चन्द्रमाके किरणसे व्याप्त करनेवाला, श्वेत छत्रोंके समूहोंसे आकाश मण्डलको रूप (चान्दी) की अटारी बनानेवाला, ॥ ७ ॥ घोडोंकी टापोंसे पृथिवीकी रेणुसे आकाशमण्डलको पूर्ण करनेवाला, हाथिओंके समूहोंपर स्थित, सूर्य्यके किरण और वायुको रोकनेवाले, सोने चान्दी और मोतिओंसे बनेहुये आट्टालको (छतों) से रक्षित, ॥ ८ ॥

महाकलकलावर्तद्रवद्दिग्भूतमंडलम् ॥ कवत्कांचनमाणिक्यहारकेयूरमंडलम् ॥ ९ ॥ तमालोक्यमहीपालमिदंचिंतितवानसौ ॥ अहोनुरम्यानृपतासर्वसौभाग्यभासिता ॥ १० ॥ पदातिरथहस्त्यश्वपताकाच्छत्रचामरैः ॥ कदास्यांदशदिक्कुंजपूरकोहंमहीपतिः ॥ ११ ॥ कदामेवायवःकुंदमकरंदसुगंधयः ॥ पास्यंत्यंतःपरस्त्रीणांसुरतश्रमसीकरान् ॥ १२ ॥

अर्थ—महाकलकल शब्दोंसे आवर्तके समान दशोंदिशाके प्राणिओंको इधर उधर भगानेवाला, तथा हीरे और माणिक्य आदिसे जडेहुये सुवर्णके हार और बिजापठ आदि आभूषणोंसे प्रकाशमान था ॥ ९ ॥ उस राजाको देखके इस ब्राह्मणने यह चिन्तन किया कि, अहो ! सम्पूर्ण सौभाग्यसे शोभित यह राजपन कैसा रमणीय है ॥ १० ॥ पैदल, रथ, हांथी घोडे पताका, छत्र और चामरोंसे दशोंदिशाओंके कुंजोको पूर्ण करनेवाला राजा मैं कब होऊंगा ? ॥ ११ ॥ वह कौनसा समय आवेगा कि कुंदके मकरन्द (रस) से सुगन्धित शीतल मन्द वायु हमारी अन्तःपुरकी स्त्रीयोंके सुरतके श्रमके जलकणको पान करेंगे ॥ १२ ॥

कर्पूरेणपुरंध्रीणांपूर्णेनयशसादिशाम् ॥ इंदूदयावदातानिकदाकुर्यांमुखान्यहम् ॥ १३ ॥ इत्थंततःप्र भृत्येषविप्रःसंकल्पवानभूत् ॥ स्वधर्मनिरतोनित्यंयावज्जीवमतंद्रितः ॥ १४ ॥ हिमाशनिरिवांभोजंज र्जरीकर्तुमादृता ॥ जलेजर्जरितेवाथजराद्विजमुपाययौ ॥ १५ ॥ आसन्नमरणस्याथभार्याम्लानिमुपाययौ ॥ तस्यशाम्यतिपुष्पर्तौलतेवग्रीष्मभीतितः ॥ १६ ॥

अर्थ—कर्पूरयुक्त सुगन्धित चन्दनसे अन्तःपुरकी पुरन्ध्रियों (स्त्रियों) का और यशसे दशोदिशाओंका मुख चन्द्रमाके उदयके समान प्रकाशमान मैं कब करूंगा ॥ १३ ॥ इसीप्रकार उसीसमय सेलेके अपने धर्ममें तत्पर,आलस्य-रहित अपना जीवन नित्य संकल्प करतारहा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इस ब्राह्मणको शिथिल करनेको आदरयुक्त वृद्धा-वस्था ऐसे आके प्राप्त हुई जैसे जलमें कमलको शिथिल करनेके लिये हिमरूपी वज्र॥ १५ ॥इसके पश्चात् उस ब्राह्मणकी मृत्यु निकट आनेपर उसकी स्त्री ऐसे भ्रान्तिको प्राप्तहुई जैसे वसन्तऋतुके शान्त होनेपर ग्रीष्मके भयसे लता ॥ १६ ॥

मामथाराधितवतीसाततस्त्वमिवांगना ॥ अमरत्वंसुदुष्प्रापंबुद्ध्वेमंसावृणोद्वरम् ॥ १७ ॥ देविस्वमंडपा देवजीवोभर्तुर्मृतस्यमे ॥ मायासीदित्यतस्तस्याःसएवांगीकृतोमया ॥ १८ ॥ अथकालवशाद्विप्रःस पंचत्वमुपाययौ ॥ तस्मिन्नेवगृहाकाशेजीवाकाशतयास्थितः ॥ १९ ॥ संपन्नःप्राक्तनानल्पसंकल्प वशतःस्वयम् ॥ आकाशवपुरेवैषपतिःपरमशक्तिमान् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर तुमारे समान उस अंगनाने मेरी प्रार्थना की, और अमर पदवीको दुष्प्राप जानके उसने मुझसे यह वरदान मागा ॥ १७ ॥ कि हे देवि ! मरेहुये मेरे पतिका जीव मेरे अन्तःपुरसे बाहर न जाय उसके अनन्तर वही वरदान देना मैंने अंगीकार किया ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर कालवशसे उस ब्राह्मणकी मृत्यु हुई और अन्तःकर-णकी बासनासहित ब्रह्मजीवाकाश रूपसे उसी गृहाकाशमें स्थित रहा ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मके महान् अपने संकलपके का-रणसे आकाश शरीरवाला यही ब्राह्मण परम शक्ति (देवता और मनुष्यकी शक्तिवाला) राजा होगया ॥ २० ॥

प्रभावजितभूपीठःप्रतापाक्रांतविष्टपः ॥ कृपापालितपातालस्त्रिलोकविजयीनृपः ॥ २१ ॥ कल्पाग्निर रिवृक्षाणांस्त्रीणांमकरकेतनः ॥ मेरुर्विषयवायूनांसाध्वब्जानांदिवाकरः ॥ २२ ॥ आदर्शःसर्वशास्त्रा णामर्थिनांकल्पपादपः ॥ पादपीठंद्विजाग्र्याणांराकाधर्मामृतत्विषः ॥२३॥ स्वगृहाभ्यंतराकाशचित्ता काशमयात्मनि ॥ तस्मिन्द्विजेशवीभूतेभूताकाशशरीरिणि ॥ २४ ॥

अर्थ—वह राजा अपने प्रभावसे भूतलको जीतनेवाला, प्रतापसे त्रिविष्टप (स्वर्ग) पर आक्रमणकारी, कृपासे पाताल लोकका पालनकरता इसप्रकार त्रिलोकविजयी ॥ २१ ॥ शत्रुरूपी वृक्षोंका कलपाग्नि स्त्रियोंका कामदेव, विष-यरूपी वायुओंको मेरूके समान अकम्पनीय, साधुजनरूपी कमलोंका सूर्य्य ॥ २२ ॥ सब शास्त्रोंका दर्पण, याच-कोंके लिये कलपवृक्ष, श्रेष्ठ ब्राह्मणके चरणका सिंहासन, धर्मरूपी चन्द्रमाकी पूर्णिमा सी ॥ २३ ॥ चित्त संस्कारसहित ब्रह्माकाशमय आत्मामें भूताकाश शरीरधारी उस ब्राह्मणके उसी ग्रहके अन्तराकाशमें मृतक होनेपर ॥ २४ ॥

सातस्यब्राह्मणीभार्याशोकेनात्यंतकर्शिता ॥ शुष्केवमाषशिंबीकात्हृदयेनद्विधाभवत् ॥ २५ ॥ भर्त्रा सहशवीभूतादेहमुत्सृज्यदूरतः ॥ आतिवाहिकदेहेनभर्त्तारंसमुपाययौ ॥ २६ ॥ नदीनिखातमिवतंभ र्त्तारमनुसृत्यसा ॥ आजगामविशोकत्वंसावासंतीवमंजरी ॥ २७ ॥ तत्रास्यविप्रस्यगृहाणिसंतिभू स्थावरादीनिधनानिसंति ॥ अद्याष्टमंवासरमात्तमृत्योर्जीवोगिरिग्रामककंदरस्थः ॥ २८ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्यानेब्राह्मणमरणंनामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—उसकी वह ब्राह्मणीभार्या शोकसे अत्यन्त पीडित सूखीहुई उडदकी छीमीके समान हृदयसे दोटूक होगई ॥ २५ ॥ वह ब्राह्मणी पतिके साथ मृतक होके इस स्थूलशरीरको दूर त्यागकर सूक्ष्म शरीरसे अपने पतिके नि-कट गई ॥ २६ ॥ जैसे नदी नीची भूमिकी ओर जाती है वैसेही पतिका अनुसरण करके ऐसे शोकरहित होगई जैसे व-सन्तकी लता ॥ २७ ॥ उस गिरिनाम ग्राममें इस ब्राह्मणके अनेक ग्रह हैं और पृथिवी आदि स्थावर धनभी हैं तथा जीव उसी गिरिग्रामके गृहमण्डपमें है और उस ब्राह्मणकी मृत्युका आज आठवा दिनहै ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने ब्राह्मणमरणं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥ २० ॥

पूर्वजन्मका चरित सुननेसे लीला असंभावनासे भयभीत होगई उसको देवीने अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंसे बोधन कियाहै इस विषयका वर्णन इस वीशवे २० सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सतेभर्त्ताग्र्यसंपन्नोद्विजोभूपत्वमागतः ॥ यासावरुंधतीनामब्राह्मणीसात्वमंगने॥१॥ इहेमौकुरुतोराज्यंतौभवंतौसुदंपती ॥ चक्रवाकाविवनवौभुविजातौशिवाविव ॥ २ ॥ एषतेकथितः सर्वःप्राक्तनःसंसृतिक्रमः ॥ भ्रांतिमात्रकमाकाशमेवंजीवस्वरूपधृक् ॥ ३ ॥ भ्रमादस्माच्चिदाकाशे भ्रमोयंप्रतिबिंबितः ॥ असत्यएववासत्योभवतोर्भवभंगदः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली-हे अंगने वही ब्राह्मण राजा होके इससमय तुमारा पति हुआहै और जो उसकी ब्राह्मणी अरुन्धतीहै वह तुमहो ॥ १ ॥ चक्रवाक और चक्रवाकी नित्यनूतन प्रेम करनेवाले, पृथिवीपर पार्वती और महादेवके समान उत्पन्न तुम दोनों स्त्रीपुरुष होके यहांपर राज्य करतेहो ॥ २ ॥ इसप्रकार तुमारी पूर्वजन्मकी सृष्टिका क्रम कहा, इस रीतिसे ब्रह्माकाशही भ्रममात्रसे जीवका स्वरूप धारण करताहै, अर्थात् दोनों सृष्टिके समान पूर्वसृष्टिभी भ्रमसेहीहै ॥ ३ ॥ इस भ्रमसे चिदाकाशमें दूसरा भ्रम (ब्राह्मण ब्राह्मणीके जन्मसे राजा रानीका जन्मरूप) यह प्रतिबिम्बित हुआहै असत्य (निजरूपसे) अथवा सत्य (अधिष्ठान रूपसे) हो परन्तु तुम दोनोंके संसारको नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥

तस्माद्भ्रांतिमयःकःस्यात्कोवाभ्रांत्युज्झितोभवेत् ॥ सर्गोनिरर्गलानर्थबोधान्नान्योविजृंभते ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्याकर्ण्यचिरंचारुविस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ भूत्वोवाचवचोलीलालीलालसपदाक्षरम् ॥६॥ लीलोवाच ॥ देविभोस्त्वद्वचोमिथ्याकथंसंपन्नमीदृशम् ॥ क्वविप्रजीवःस्वगृहेकेमेवयमिहस्थिताः ॥७॥ तादृग्लोकांतरंसाभूस्तेशैलास्तादिशोदश ॥ कथंभांतिगृहस्यांतर्मद्भर्त्तायेष्ववस्थितः ॥८॥

अर्थ—इस कारणसे किससर्ग (सृष्टि) को भ्रान्तिमय कहैं और किसको भ्रान्तिरहित ! यह अपने रूपसे सर्वथा अनर्थमूल मिथ्याज्ञानरूपसे और कुछ नहीं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-इसको सुनकर चिरकालतक विस्मयसे विकसित नेत्रवाली होके वह लीला लीलासे मन्द २ बोली ॥ ६ ॥ हे देवि ! आपका बचन तो मिथ्या नहीं है परन्तु यह कैसे हुआ ! कहांतो अपने गृहमें ब्राह्मणका जीव ! और कहां ये सब हम लोग स्थितहैं ॥ ७ ॥ वैसा एक लोकान्तर ! वह पृथिवी ! वे पर्वत ! वे दशोदिशायें ! ये सब एक गृहके भीतर कैसे भान होतेहैं जिनमें कि मेरा पति स्थितहै ८

मत्तऐरावतोबद्धःसर्षपस्येवकोटरे ॥ मशकेनकृतंयुद्धंसिंहौघैरणुकोटरे ॥ ९ ॥ पद्माक्षेस्थापितोमेरुर्निगीर्णोभृंगसूनुना ॥ स्वप्नाब्दगर्जितंश्रुत्वाचित्रंनृत्यंतिबर्हिणः ॥ १० ॥ असमंजसमेवैतद्यथासर्वेश्वरेश्वरि ॥ तथागृहांतःपृथ्वीचशैलाश्चेत्यसमंजसम् ॥ ११ ॥ यथावदेतद्देवेशिकथयामलयाधिया ॥प्रसादानुगृहीतेहिनोद्विजंतेमहौजसः ॥ १२ ॥

अर्थ—सर्पपालक (मदारी) की पिटारीमें मत्त ऐरावत हाथी बांधागया, मच्छरने एक अणुके भीतर सिंहके समूहोंके साथ युद्ध किया ! ॥ ९ ॥ रुद्राक्षके भीतर सुमेरु पर्वतको भ्रमर निगल गया ! स्वप्नके मेघकी गर्जना सुनके मोर लोग विचित्र नृत्य करतेहैं ॥ १० ॥ हे सुरेश्वरि जैसे ये सब बात असंभव हैं ऐसेही एक गृहके भीतर पृथिवी और पर्वत आदि सब असंभवहैं ॥ ११ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार यह संभव हो वह अपनी निर्मल बुद्धिसे यथार्थ कहो क्योंकि कृपासे बद्ध महातेजस्वी जन घबराते नहीं ॥ १२ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नाहंमिथ्यावदामीदंयथावच्छृणुसुंदरि ॥ भेदनंनियतीनांहिक्रियतेनास्मदादिभिः ॥ १३ ॥ विभिद्यमानामन्येनस्थापयाम्यहमेवयाम् ॥ मर्यादांतांमयाभिन्नांकोऽपरःपालयिष्यति ॥१४॥ सग्रामद्विजजीवात्मातस्मिन्नेवस्वसद्मनि ॥ व्योम्न्येवेदंमहाराष्ट्रंव्योमात्मैवप्रपश्यति ॥ १५ ॥ प्राक्तनीसास्मृतिर्लुप्तायुवयोरुदितान्यथा ॥ स्वप्नेजाग्रत्स्मृतिर्यद्वदेतन्मरणमंगने ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली-हे सुन्दरि ! मैं मिथ्या नहीं बोलती, जिसप्रकार यह हो सकताहै वह यथावत् सुनों, क्योंकि हमलोग वेदके नियम (नानृतं वदेत्) को नहीं तोडती ॥ १३ ॥ अन्य लोगोंसे तोडीहुई मर्य्यादाको मैं स्थापित करतीहूं, यदि मैंही वेदके नियमको तोडूंगी तो दूसरा कौन उसे पालन करसकताहै ॥ १४ ॥ उस गिरिग्रामके ब्राह्मणका जीवात्मा अपने स्थानहीमें राजा होनेकी वासनाका उपहित चिदाकाश रूपसे आकाशमेंही इस सब महा-

राज्यको देखताहै ॥ १५ ॥ हे बाले! तुम दोनोंकी पूर्वजन्मकी स्मृति ऐसे नहीं उदय हुई है, जैसे स्वप्नमें जाग्रत्की स्मृति नहीं रहती इसप्रकार इस मरणकी दशा जानो ॥ १६ ॥

यथास्वप्नेत्रिभुवनंसंकल्पेत्रिजगद्यथा ॥ यथाकथार्थसंग्रामोमरुभूमौजलंयथा ॥ १७ ॥ तस्यब्राह्मणगेहस्यसशैलवनपत्तना ॥ इयमंतःस्थिताभूमिःसंकल्पादर्शयोरिव ॥१८॥ असत्यैवेयमाभातिसत्येवघनसर्गता ॥ तस्मात्सत्यावभासस्याचिव्द्योम्नःकोशकोटरे॥१९॥ असत्याद्यत्समुत्पन्नंस्मृत्यानामतदप्यसत् ॥ मृगतृष्णातरंगिण्यांतरंगोपिनसद्यतः ॥ २० ॥

अर्थ—जिस स्वप्न और संकल्पमें त्रिभुवनहै, कथाके अर्थमें जैसे संग्रामहै, मरु भूमिमें जैसे जलहै ॥ १७ ॥ इसीप्रकार संकल्प और दर्पणके समान उसब्राह्मणके गृहमें पर्वत, वन और नगर आदि सहित यह भूमि स्थितहै॥१८॥ इसलिये सत्यप्रकाशशील चिदाकाश कोशके भीतर यह अतिघन असत्य सृष्टि सत्यके समान भासती है ॥ १९ ॥ जो पूर्वअसत्य सृष्टिसे स्मृति (संस्कार) हुआहै वहभी असत्यही है, क्योंकि मृगतृष्णाकी नदीमें तरंगभी असत्यहीहै॥२०

इदंत्वदीयंसदनंतद्गेहाकाशकोशगम् ॥ विद्धिमांत्वांचसर्वंवतच्चिद्व्योमैवकेवलम् ॥ २१ ॥ स्वप्नसंभ्रमसंकल्पस्वानुभूतिपरंपराः ॥ प्रमाणान्यत्रमुख्यानिसंबोधायप्रदीपवत् ॥ २२ ॥ स्थितोब्राह्मणगेहांतर्द्विजजीवस्तदंबरे ॥ ससमुद्रवनापृथ्वीस्थिताब्जइवषट्पदः ॥ २३ ॥ तस्याःकस्मिंश्चिदेकस्मिन्पेलवेकोणकोटरे ॥ इदंपत्तनदेहादिकेशोंड्रकइवांबरे ॥ २४ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मणके गृहके कोशके अन्तर्गत इस अपने गृहको, मुझे, अपनेको तथा और सब पदार्थोंको केवल चिदाकाशरूपही जानो ॥ २१ ॥ स्वप्न, संभ्रम, संकल्प, और अपने अनुभवकी परंपरा, सम्पूर्ण प्रपंचके मिथ्यात्वके निश्चय तथा आत्मज्ञानके लिये प्रदीपके समान मुख्य प्रमाणहैं ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मणके गृहके भीतर ब्राह्मणजीव स्थितहै और उसी आकाशमें कमलके भीतर भ्रमरके तुल्यसमुद्र बन आदि सहित यह पृथिवीभी स्थितहै ॥२३॥ उस पृथिवीके किसी एक छोटे कोनेके भीतर यह सब नगर देहगृहादि ऐसेहैं जैसे निर्मलआकाशमें कुण्डलाकार केशका भ्रम ॥ २४ ॥

तस्मिन्नस्मिन्पुरेतन्वितदेवसदनंस्थितम् ॥ तस्मात्किंत्रसरेण्वंतर्जगद्वृंदमिवस्थितम् ॥२५॥ परमाणौपरमाणौसंतिवत्सेचिदात्मनि ॥ अंतरंतर्जगंतीतिकिंत्वेतन्नामशंक्यते ॥ २६ ॥ लीलोवाच ॥ अष्टमेदिवसेविप्रःसमृतःपरमेश्वरि ॥ गतोवर्षगणोस्माकंमातःकथमिदंभवेत् ॥ २७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देशदैर्घ्यंयथानास्तिकालदैर्घ्यंतथांगने ॥ नास्त्येवेतियथान्यायंकथ्यमानंमयाशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे तन्वि ! उस ब्राह्मणके स्थान और इस नगरके अन्तःकरणमें आरूढ होनेपरभी वह ब्राह्मणका स्थान ज्योंका त्यों (बिना टूटे फूटे) स्थितहै, इसलिये त्रसरेणुके भीतर जगत् समूह स्थितहै इसमें क्या आश्चर्य्य है ॥ २५ ॥ हे पुत्रि ! चिदात्मामें परमाणु परमाणुके अन्तर अन्तरमें अनेक ब्रह्माण्ड स्थितहै इसलिये अल्पअवकाशमें इतना देश कैसे रहसकताहै यह शंका क्या करतीहो ॥ २६ ॥ लीलाजी बोली—हे परमेश्वरि ! आज उस ब्राह्मणको मरे केवल आठ दिवस हुये और हमलोगोंको राज्य करते हुये वर्षोंका समूह बीत गया, भला यह कैसे होसकताहै ? ॥ २७ ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे अंगने जिसप्रकार देशमें दीर्घता नहीं है इसी प्रकार कालमेंभी दीर्घता नहीं है अर्थात् जैसे अल्प देशमें अधिक देश भान होताहै ऐसेही अल्पकालमें अधिक कालभी भान होताहै इनमें वास्तविक दीर्घता नहीं है, जैसे यह नहीं है वह मैं कहतीहुं तुम सुनो ॥२८॥

यथैतत्प्रतिभामात्रंजगत्सर्गावभासनम् ॥ तथैतत्प्रतिभामात्रंक्षणकल्पावभासनम् ॥ २९ ॥ क्षणकल्पंजगत्सर्वंत्वत्तामत्तात्मजन्मनां ॥ यथावत्प्रतिभासस्यवक्ष्येक्रममिमंशृणु ॥ ३० ॥ अनुभूयक्षणंजीवोमिथ्यामरणमूर्छनम् ॥ विस्मृत्यप्राक्तनंभावमन्यंपश्यतिसुव्रते ॥ ३१ ॥ तदेवोन्मेषमात्रेणव्योम्न्येवव्योमरूप्यपि ॥ आधेयोयमिहाधारेस्थितोहमितिचेतति ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार यह जगत्की सृष्टिका भान होना केवल प्रति भा (बुद्धि) मात्रहै ऐसेही क्षण और कल्पका भान होनाभी केवल प्रतिभा मात्रहै॥२९॥ क्षण और कल्पादिरूप जो यह सम्पूर्ण जगत्है वह त्वत्तामत्तारूप अध्यासके आधीन जिनको आत्मका भ्रमहै उन्हीको भासताहै, और इस (क्षण कल्पादि) के भान होनेका यथावत्क्रम मैं कहतीहुं सुनो ॥ ३० ॥ हे सुव्रते ! यह जीव मिथ्या मरणकी मूर्च्छनाका क्षणभर अनुभव करके और पूर्वजन्मके भावको भूलकर दूसरा भाव देखताहै ॥३१॥ आकाशके सदृश स्वयं आधार देह आदिसे रहित होनेपरभी, मैं अधिप इस दूसरे आधारके ऊपर रहताहुं ऐसा एक निमिष मात्रमें उसी भावको स्मरण करने लगताहै ॥ ३२ ॥

हस्तपादादिमान्देहोममायमितिपश्यति ॥ यदेवचेततिवपुस्तदेवेदंसपश्यति ॥ ३३ ॥ एतस्याहंपितुः पुत्रोवर्षाण्येतानिसंतिमे ॥ इमेमेबांधवारम्याममेदंरम्यमास्पदम् ॥ ३४ ॥ जातोहमभवंबालोवृद्धियातो हमीदृशः ॥ बांधवाश्वास्यमेसर्वेतथैवविचरंत्यमी ॥ ३५॥ चित्ताकाशघनैकत्वात्स्वेप्येऽन्येपिभवंतिते ॥ एवंनामोदितेप्यस्यचित्तेसंसारखंडके ॥ ३६ ॥

अर्थ—हस्त और पांद आदि सहित यह मेरा शरीरहै ऐसा देखताहै, जैसे शरीरका इसको संस्कारसे स्मरण होताहै वैसाही अनुभव करताहै ॥ ३३ ॥ अमुकका मैं पिताहुं और अमुकका पुत्रहुं, इतने वर्षका मैं हुं, ये सुन्दर मेरे बन्धुहैं और मेरा अति रमणीय स्थानहै ॥ ३४ ॥ प्रथम मैं उत्पन्न हुआ, पुनः बालक हुआ, इसप्रकार मैं वृद्धिको प्राप्त हुआ, और ये मेरे सब भाई वैसेही विचरते हैं ॥ ३५ ॥ संसारखण्ड चित्तके देहभावमें प्राप्त होनेपरभी, देहभावमें प्राप्त चित्त और आत्माकाशके दृढतर एकताके अध्याससे अन्यभी अपने होजाते हैं ॥ ३६ ॥

नकिंचिदप्यभ्युदितंस्थितंव्योमैवनिर्मलम् ॥ स्वप्नेद्रष्टरियद्वच्चित्तद्वद्दृश्येचिदेवसा ॥ ३७ ॥ सर्वगैक तयायस्मात्सास्वप्नेदृष्टदर्शना ॥ यथास्वप्नेतथोदेतिपरलोकदृगादिभिः ॥ ३८ ॥ परलोकेयथोदेतितथै वेहाभ्युदेतिसा ॥ तत्स्वप्नपरलोकेहलोकानामसतांसताम् ॥ ३९ ॥ नमनागपिभेदोस्तिवीचीनामिव वारिणि ॥ अतोजातमिदंविश्वमजातत्वादनाशिच ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ केवल निर्मल आकाशरूपही स्थितहै स्वप्नमें द्रष्टामें चित्की जो दशा है वही दशा जाग्रत्के दृश्यमेंभी चित् की है ॥ ३७ ॥ स्वप्नमें द्रष्टा और दृश्यभावसे कल्पित भेदवाले सब पदार्थोंमें व्याप्तचित् एकरस रहती है दृश्य और दर्शनका बाध होनेपरभी वह चित् एकही रूपसे दृष्टहै, इसलिये स्वप्नमें चित् जैसे उदय होती है वैसीही जाग्रत् और परलोक दृष्टि आदिमेंभी उसका रूपहै ॥ ३८ ॥ चेतनका रूप जैसा परलोकमें है वैसाही इस लोकमेंभी है, क्योंकि स्वप्न, परलोक, तथा इस लोकमें पदार्थ सब असत्हैं और भ्रान्तिसे सत् भासते हैं ॥ ३९ ॥ जलमें उत्पन्न तरंगोंसें और जलसे कुछभी भेद नहीं है. इसलिये भ्रान्तिसे उत्पन्नभी यह विश्व अधिष्ठानरूपसे अजात होनेके कारण यह अविनाशीभी है ॥ ४० ॥

स्वरूपत्वात्तुनास्त्येवयच्चभातिचिदेवसा ॥ तथैवचेत्यनिर्हीणापरमव्योमरूपिणी ॥ ४१ ॥ सचेत्यापि तथैवैषापरमव्योमरूपिणी ॥ तस्माच्चेत्यमतोनान्यद्वीचित्वादीववारितः ॥ ४२ ॥ वीचित्वंचरसेनास्ति शशशृंगवदेवहि ॥ सैवचेत्यमिवापन्नास्वभावादच्युताप्यलम् ॥ ४३ ॥ तस्मान्नास्त्येवदृश्योर्थः कुतोऽ तोद्रष्टृदृश्यधीः ॥ निमिषेणैवजीवस्यमृतिमोहादनंतरम् ॥४४॥ त्रिजगद्दृश्यसर्गश्रीःप्रतिभासुपगच्छति ॥ यथादेशंयथाकालंयथारंभंयथाक्रमम् ॥ ४५ ॥ यथोत्पादंयथामातृयथापितृयथौरसम् ॥ यथावयोयथा संविद्यथास्थानंयथेहितम् ॥ ४६ ॥ यथाबंधुयथाभृत्यंयथेहास्तमयोदयम् ॥ अजातएवजातोहमितिचे ततिचिद्वपुः ॥ ४७ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यमनोबुद्धींद्रियादिच ॥ झटित्येवमृतेरंतेवपुःपश्यतियौवने ॥ ४८ ॥

अर्थ—परमार्थमें आत्मरूप यह जगत् होनेसे अपने रूपसे नहीं है, और जो भान होताहै वह परम आकाशरूप विषयसे रहित अधिष्ठान चेतनही सम्पूर्ण प्रमाणोंसें भासताहै ॥ ४१ ॥ विषयसहितभी यह चित् निर्मल आकाशरूपही हैं क्योंकि आरोपित विषयसे अधिष्ठानकी कुछ हानि नहीं होती, इसलिये इस चित्से पृथक् तरंग कुछ नहीं ॥ ४२ ॥ रस तन्मात्रमें तरंग नहीं है क्योंकि जिव्हा इन्द्रियसे उसका स्वाद नहीं मिलता, नेत्रसें भानतो दूसरे भूतके सम्बन्धसे होताहै, इसलिये वह (जलका तरंग) शशशृंगके समानहै; इसीप्रकार अपने स्वभावसे अचलितभी चित् चेत्य (विषय) सहितके समान भासती है ॥ ४३ ॥ इसलिये दृश्यपदार्थ कुछभी नहीं हैं तो द्रष्टा और दृश्यकी बुद्धि कहांसे होसकती है, केवल अज्ञनसेही इस जीवके मृत्युके एक निमिषके अनन्तरही, देश, काल, आरंभ, क्रम उत्पत्ति, माता पिता, भाई, अवस्था, ज्ञान, स्थान, चेष्टा, बन्धु, भृत्य, और इस लोकमें सूर्य्योदय और सूर्य्यास्तके अनुसार, तीनों लोकके दृश्यके सर्ग (सृष्टि) की शोभा भान होने लगती है और अनुत्पन्नभी यह चित् मैं उत्पन्न हुईहों ऐसा स्मरण करने लगती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ मरनेके अनन्तरही राक्षसयोनिमें जन्म होनेसे शीघ्रही माताके समान अवस्था प्राप्त होनेसे युवा अवस्थामें देश, काल, क्रिया, द्रव्य, मन, बुद्धि इन्द्रियादि सहित शरीर देखने लगताहै ॥ ४८ ॥

एषामातापिताह्येषबालोभूवमहंत्विति ॥ नानुभूतोनुभूतोवायःस्यात्स्मृतिमयःक्रमः ॥ ४९ ॥ पश्चादुदे त्यसौतस्यपुष्पस्येवफलोदयः ॥ निमिषेणैवमेकल्पोगतइत्यनुभूयते ॥ ५० ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरि श्चंद्रेतथाह्यभूत् ॥ कांताविरहिणामेकंवासरंवत्सरायते ॥ ५१ ॥ मृतोजातोहमन्योमेपितेतिस्वप्नता

स्विव ॥ अभुक्तस्यैवभोगस्यभुक्तधीरुपजायते ॥ ५२ ॥ भुक्तेप्यभुक्तधीर्दृष्टमित्यलंकितवादिषु ॥ शून्यमाकीर्णतामेतितुल्यंव्यसनमुत्सवैः ॥ विप्रलंभोपिलाभश्वमदस्वप्नादिसंविदि ॥ ५३ ॥ तैक्ष्ण्यंयथामरिचबीजकणेस्थितंस्वंस्तंभेषुचारचितपुत्रकजालमंतः ॥ दृश्यंत्वनन्यदिदमेवमजेस्तिशांतंतस्यास्तिबंधनविमोक्षदृशःकुतःकाः ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमार्थप्रतिपादनंनाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—यह मेरी माताहै, यह मेरा पिता, मैं स्वयं बालक हुआ, इत्यादि अनुभूत वा अननुभूत जो स्मृतिका क्रमहै वह पश्चात् ऐसे उत्पन्न होताहै, जैसे पुष्पमें फल, और एक निमिषमेंही यह अनुभव करताहै कि मुझे कल्प बीत गया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राजा हरिश्चन्द्रको एक रात्रिमें १२ बारह वर्षका अनुभव हुआ, और बिरही जनोंको एक दिन भी वर्षके समान भान होताहै ॥ ५१ ॥ एक घडीके स्वप्न आदिमें मैं मरगया, और उत्पन्न हुआ, मेरा पिता अन्य है, जो विषय नहीं भोगा उसके विषयमें भी यह बुद्धि होती है कि मैंने इसको भोग लिया ॥ ५२ ॥ भुक्त पदार्थमें भी अभुक्त बुद्धि अज्ञानी जनोंमें देखीगई है, और इसी अज्ञानके प्रतापसे न केवल असत्का भान होताहै किन्तु सत्के विरूद्ध भी भान होताहै जैसे मद और स्वप्न आदिके ज्ञानमें शून्य स्थान जनसमाजसे व्याप्त होजाताहै, दुःख उत्सवके समान भान होने लगताहै, और अलाभभी लाभ प्रतीत होताहै ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार मरिचके बीजके कणमें तीक्ष्णता और स्तम्भमें प्रतिमाका समूह अभेदरूपसे स्थितहै, इसी प्रकार अज चिदात्मामें यह सम्पूर्ण विश्व शान्तरूपसे स्थित है, उसको बन्ध और मोक्षदृष्टि कैसी ? और कहांसे ? अर्थात् निमित्तादि न होनेसे यह सब असंभवहै ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषानुवादे परमार्थप्रतिपादनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

विचारसे स्थूल प्रपंच सूक्ष्म रूपहै, सूक्ष्म अविद्यारूपहै अविद्याभी चिन्मात्र है इस विषयको देवीने लीलाको २१ वे सर्गमें बोधन किया है ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रतिभांतिजगंत्याशुमृतिमोहादनंतरम् ॥ जीवस्योन्मीलनादक्ष्णोरूपाणीवाखिलान्यलम् ॥ १ ॥ दिक्कालकलनाकाशधर्मकर्ममयानिच ॥ परिस्फुरंत्यनंतानिकल्पांतस्थैर्यवंतिच ॥ २ ॥ नानुभूतंनयदृष्टंतन्मयाकृतमित्यपि ॥ तत्क्षणात्स्मृतितामेतिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ३ ॥ भ्रांतिरेवमनंतेयंचिद्व्योमव्योम्निभासुरा ॥ अपकुड्याजगन्नाम्नीनगरीकल्पनात्मिका ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली—मरणरूपी मोहके अनन्तरही जीवको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ऐसे भान होने लगते हैं जैसे नेत्रके खोलने मात्रसे सम्पूर्ण रूप ॥ १ ॥ देश, कालका सम्बन्ध, आकाश, धर्ममय स्वर्गादि, कर्ममय गृहादि और कल्पान्त पर्य्यन्त स्थायी पृथिवी आदि चारोंओरसे फुरने लगते हैं ॥ २ ॥ न तो जिस बातको अनुभव किया, और न जिसको देखा उसको मैंने किया, यह सब एक क्षणमें ऐसे स्मरणहो आताहै जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ३ ॥ आधार शून्य कल्पनामय नगरीके समान भासमान, यह जगत् नामवाली अनन्त भ्रान्ति मायाकाशमें होरही है ॥ ४ ॥

इदंजगदयंसर्गःस्मृतिरेवेतिजृंभते ॥ दूरकल्पक्षणाभ्यासविपर्यासैकरूपिणी ॥ ५ ॥ नानुभूतानुभूताचज्ञप्तिरित्थंद्विरूपिणी ॥ पूर्वकारणरिक्तैवचिद्रूपैवप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ नानुभूतेनुभूतत्वसंविदंतरुदेत्यपि ॥ स्वप्नभ्रमादावन्यस्मिन्पितरीवपितुःस्मृतिः ॥ ७ ॥ कदाचित्स्मृतितांत्यक्त्वाप्रतिभामात्रमेवसत् ॥ भातिप्रथमसर्गेषुरूपेणतदनुक्रमात् ॥ ८ ॥

अर्थ—सन्निहित देशकालमेंभी देशकालकी दूरीसे और निष्क्रियमें क्षण तथा उसका अभ्यास घडी मुहूर्त, दिन पक्ष, वर्ष कल्पादिरूप भ्रमका स्वरूप धारण करनेवाली जो स्मृतिका कारण वासना है वही इस जगत् और सृष्टिरूपसे अपने शरीरका विस्तार कररही है ॥५॥ अनुभूत और अननुभूत ये दो रूप ज्ञप्ति (ज्ञानके) हैं और पूर्व कारणसे

शून्य चित्‌रूपसेही सृष्टि करनेमें प्रवृत्त है ॥ ६ ॥ अननुभूत (अनुभव न कियेहुये) विषयमेंभी अनुभव किया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे वायुके भ्रम आदिसे दूसरेके पितामें अपने पिताकी स्मृति ॥ ७ ॥ कभी प्रजापतिकी पूर्व सृष्टि-योंमें स्मरणको त्यागकर अनुभवमात्रही विद्यमान रहता है और वही उसके क्रमसे स्मृतिरूपसे भासता है ॥ ८ ॥

दृश्यंत्रिभुवनादीदमनुभूतंस्मृतौस्थितम् ॥ केषांचित्तन्निकेषांचिन्नानुभूतंस्मृतौस्थितम् ॥ ९ ॥ प्रति भासतएवेदंकेषांचित्स्मरणंविना ॥ चिदणूनांप्रजेशत्वंकाकतालीयवद्यतः ॥ १० ॥ अत्यंतविस्मृतंवि श्वंमोक्षइत्यभिधीयते ॥ ईप्सितानीप्सितेतत्रनस्तःकाचनकस्यचित् ॥ ११ ॥ अत्यंताभावसंपत्तिंविना हंताजगत्स्थितेः ॥ अनुत्पादमयीह्येषानोदेत्येवविमुक्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सूक्ष्म शरीरवाली इसलिये यह संसार किसी २ की स्मृतिमें अनुभव कियाहुआ स्थित और किसी २ की स्मृतिमें बिना अनुभूतही स्थितहै ॥ ९ ॥ इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, किसी प्राणियोंको बिना स्मरणकेही भासता है, क्योंकि जीवोंको प्रजेशत्व (ब्रह्मापन) बिना अनुभूतही काकतालीयन्याय (अकस्मात् एकाएकी) से भासने लगताहै ॥ १० ॥ वासनाका पुंजरूप चित्तमय यह संसारहै इसलिये सर्वथा वासना रहित होके संसारकी विस्मृति होनाही मोक्षहै, क्योंकि वासना रहित मोक्षदशामें शरीर रहित चेतनको प्रिय अप्रिय कुछ नहीं रहताहै ॥ ११ ॥ अहन्ता और जगत्‌की स्थितिरूप जो अविद्याहै उसका सर्वथा बाध हुये बिना अनुत्पत्ति धर्मवाली यह मुक्तिकी दशा किसी प्रकार उदयको नहीं प्राप्त होती ॥ १२ ॥

रज्ज्वांसर्पभ्रमःसर्पशब्दार्थासंभवंस्थितम् ॥ अनुत्पादमयंत्यक्त्वाशांतोऽपिहिनशाम्यति ॥ १३ ॥ अर्द्ध शांतोनशांतोसौसमेत्यर्थतयापुनः ॥ उदेत्येकपिशाचांतेपिशाचोन्योह्यधीमतः ॥ १४ ॥ संसारश्चायमा भोगीपरमेवेतिनिश्चयः ॥ कारणाभावतोभातियदिहाभातमेवतत् ॥ १५ ॥ लीलोवाच ॥ ब्राह्मणब्रा ह्मणीरूपसर्गेकारणसंस्मृतिः ॥ कथमभ्युत्थितासास्यस्मरणीयमिदंविना ॥ १६ ॥

अर्थ—रज्जु (रस्सी) में जो सर्पका भ्रम है वह सर्पशब्दार्थका असम्भव (अभाव) रज्जुरूपसे स्थितहै, उस उत्पत्ति रहित रज्जुरूप अधिष्ठानके जाने विना शान्त होनेपरभी शान्त नहीं होता ॥ १३ ॥ योगादिसे अर्द्धशा-न्तभी यह जगत् समाधिके भंग दशामें पुनः ज्योंकात्यों भान होने लगताहै इसलिये ज्ञानके विना सर्वथा शान्त नहीं होता, क्योंकि मूढको एक पिशाच शान्त होनेपरभी दूसरा पिशाच उदय होजाताहै ॥ १४ ॥ इसलिये यह कृत्रिम वेष-धारी संसार परमात्मरूपही है, ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान निस्तारका हेतुहै, और जो अविद्याके बाधके अनन्तर संसार का भान होताहै वह नहीं भान होनेके बराबर है क्योंकि अविद्याकी निवृत्ति होनेसे पुनः आवरणकी शंका नहीं है ॥ १५ ॥ लीलाजी बोली–हे देवि ! ब्राह्मण और ब्राह्मणीरूप सर्ग (सृष्टि) में इस सर्गका कारण संस्कारहीहै, सो इस कालके अननुभूत स्मरण योग्य दृश्यके विना कैसे हुआ, क्योंकि इस समयके पदार्थ उस समयमें न रहनेसे उनके अनुभवके विना राजा होनेके संस्काररूप वासना उस कालमें नहीं होसकती ॥ १६ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ पितामहस्मृतिस्तत्रकारणंतस्यनस्मृतिः ॥ पूर्वंनसंभवत्येवमुक्तत्वात्पद्मजन्मनः ॥ १७ ॥ पूर्वंनसंभवत्येवस्मरणीयमितिस्वयम् ॥ पद्मजादित्वमायातिचैतन्यस्यतथास्थितेः ॥ १८ ॥ अभूवम हमित्यन्यःप्रजानाथःप्रजापतेः ॥ काकतालीयवत्कश्चिद्भवतिप्रतिभामयः ॥ १९ ॥ एवमभ्युदितेलोके नकिंचिन्नकदाचन ॥ क्वचिदभ्युदितंनामकेवलंचिन्नभःस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली–उस ब्राह्मण ब्राह्मणीके राजा रानी होनेमें ब्रह्माका संस्कार कारणहै न कि उस ब्राह्मणका संस्कार, और ब्रह्माकी सृष्टिमें ब्रह्माकाभी पूर्व संस्कार कारण नहीं है, क्योंकि पूर्वकल्पके अन्तमें ब्रह्मा मुक्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ स्मरण योग्य पदार्थके न होनेसे पूर्वमें स्मृतिभी नहीं होसकती, इसलिये यह चेतन आपही ब्रह्मादिरूप धारण करताहै. क्योंकि चेतनका यह (सृष्टिरचना) स्वभावहीहै ॥ १८ ॥ मैं दूसरा ब्रह्माथा, ऐसा ब्रह्माका अनुभववाला अकस्मात् कोई प्राणी होजाताहै ॥ १९ ॥ इसप्रकार अनुभव मात्र होनेसे इस सृष्टि तथा पूर्व सृष्टिका बाध होनेसे सं-सारमें न कुछ उत्पन्न हुआ न होगा केवल चिदाकाश मात्र स्थितहै ॥ २० ॥

द्विविधायाःस्मृतेरस्याःकारणंपरमंपदम् ॥ कार्यकारणभावोसावेकएवचिदंबरे ॥ २१ ॥ कार्यंचकारणं चैवकारणैःसहकारिभिः ॥ कार्यकारणयोरैक्यात्तदभावान्नशाम्यति ॥ २२ ॥ महाचिद्रूपमेवत्वंस्मरणं विद्धिवेदनम् ॥ कार्यकारणतातेनसशब्दोनचवास्तवः ॥ २३ ॥ एवंनकिंचिदुत्पन्नंदृश्यंचिज्जगदाद्यपि ॥ चिदाकाशेचिदाकाशंकेवलंस्वात्मनिस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके अनुभवजन्य संस्कारसे उत्पन्न, और अनादि अविद्या शक्तिरूप वासनासे वा हिरण्यगर्भसे उत्पन्न इन दोनों प्रकारकी स्मृतिका कारण केवल माया शबलित ब्रह्महै, क्योंकि यह कार्य्यकारण भाव इसी एक चिदाकाशमें है न कि शुद्धमें ॥ २१ ॥ पटरूप कार्य्य, तन्तुरूप कारण यह तुरी वेमादिरूप सहकारी कारणोंसे हो सकताहै, परन्तु जो उपकार नहीं करते वे सहकारी कारण नहीं होसकते, इसलिये ऐसे स्थलमें कार्य्य कारणका बाध होनेसे, और कार्य्य कारणकी एकतासे उस कल्पनाका अधिष्ठान तन्तु आदिके साथ एकताकी शान्ति नहीं होती अर्थात् भेद कारणके अभावसे एकताही है ॥ २२ ॥ हे रामजी! माया और उसके कार्य्यके आकारकी उपेक्षा करके दोनोंमें अनुगत तन्मात्र महाचिद्रूपही यह अनुभव तुम जानो, इस ज्ञानसे कार्य्य कारणता यह शब्द मात्र रहगयाहै वहभी इस विचारदृष्टिसे वास्तविक नहीं है ॥ २३ ॥ इसप्रकार यह जगत् आदि ब्रह्माण्ड कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ चिदाकाशमें चिदाकाशही केवल अपने आत्मामें स्थितहै ॥ २४ ॥

॥ लीलोवाच ॥ अहोनुपरमादृष्टिर्दर्शितादेविमेत्वया ॥ रूपश्रीर्जागतीप्रातःप्रभयेवेक्षणद्युतिः ॥ २५ ॥ इदानीमहमेतस्यांयावत्परिणतादृशि ॥ नाभ्यासेनविनातावद्भिन्द्धीदंदेविकौतुकम् ॥ २६ ॥ यत्रासौब्राह्मणोगेहेब्राह्मण्यासहितोऽभवत् ॥ तंसर्गंतंगिरिग्रामंनयमांतंविलोकये ॥ २७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अचेत्यचिद्रूपमयींपरमांपावनींदृशम् ॥ अवलंब्येममाकारमवमुच्यभवामला ॥ २८ ॥

अर्थ—लीलाजी बोली—अहो देवि! जैसे प्रातःकालके प्रकाशसे जगत्के रूपकी शोभा स्फुट प्रतीत होती है इसीप्रकार आपने यह जगत् उत्पत्तिके विषयमें यह परम दृष्टि देखलाया ॥ २५ ॥ हे मातः! जबतक अभ्याससे इस दृष्टिमें मैं दृढ नहीं होती तबतक मेरे इस कौतुकको छेदन कीजिये ॥ २६ ॥ जिस गृहमें वह ब्राह्मण ब्राह्मणीसहित रहताथा उस सृष्टि और उस गिरिग्रामके निकट मुझे ले चलिये कि मैं उनको देखूं ॥ २७ ॥ श्रीदेवी बोली—हे पुत्रि! विषयरहित चित्रूप परमपावनी दृष्टि (समाधिरूप) का अवलम्बन करके और इस शरीरके आकारको त्यागके अर्थात् विस्मरण करके निर्मल होजाओ ॥ २८ ॥

ततःप्राप्स्यस्यसंदेहंव्योमात्मानंनभःस्थितम् ॥ भूमिष्ठनरसंकल्पोगगनांतःपुरंयथा ॥ २९ ॥ एवंस्थिते तंपश्यावःसहसर्गमनर्गलम् ॥ अयंतद्दर्शनद्वारेदेहोहिपरमार्गलम् ॥ ३० ॥ ॥ लीलोवाच ॥ अमुनादेविदेहेनजगदन्यदवाप्यते ॥ नकस्मादत्रमेयुक्तिकथयानुग्रहाग्रहात् ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जगंतीमान्यमूर्त्तानिमूर्तिमंतिमुधाग्रहात् ॥ भवद्भिरवबुद्धानिहेमानीवोर्मिकाधिया ॥ ३२ ॥

अर्थ—तो चिदाकाश (मायाकाश) में स्थित उस सृष्टिको ऐसे पाओगी जैसे भूमिमे स्थित मनुष्यका संकल्प आकाशमें स्थित अन्तःपुरको ॥ २९ ॥ ऐसा करनेसे अर्थात् समाधिमें स्थित होनेसे उस सृष्टिको हम दोनों बिना अवरोधके देखेंगे, इस शरीरको उसके देखनेमें बडा भारी फाटक समझो ॥ ३० ॥ लीलाजी बोली—हे देवि! इस शरीरसे दूसरा जगत् क्यों नहीं प्राप्त होता इस विषयमें जो कुछ युक्ति हो सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके कहिये ॥ ३१ ॥ श्रीदेवी बोली—यथार्थमें ये सम्पूर्ण जगत् मायामात्र होनेसे मूर्तिरहित हैं और मिथ्या ज्ञानसे मूर्तिमान् ऐसे आप लोगोनें जानलिया है जैसे सुवर्णको अंगूठी आदि बुद्धिसे ॥ ३२ ॥

हेम्न्यूर्मिकारूपधरेप्यूर्मिकात्वंनविद्यते ॥ यथातथाजगद्रूपेजगन्नास्तिचब्रह्मणि ॥ ३३ ॥ जगदाकाशमेवेदंब्रह्मैवेहतदृश्यते ॥ दृश्यतेकाचिदप्यत्रधूलिरंबुनिधाविव ॥ ३४ ॥ अयंप्रपंचोमिथ्यैवसत्यंब्रह्माहमद्वयम् ॥ अत्रप्रमाणंवेदांतागुरवोऽनुभवस्तथा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मैवपश्यतिब्रह्मनाब्रह्मब्रह्मपश्यति ॥ सर्गादिनाम्नाप्रथितःस्वभावोऽस्यैवचेदृशः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे अंगूठीके रूप धारण कियेहुये सुवर्णमें सुवर्णसे पृथक् अंगूठीपन कोई वस्तु नहीं है ऐसेही जगत् रूपधारी ब्रह्ममें यथार्थमें जगत् कुछ पदार्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मही इस जगदाकाश रूपसे देखपडता है, इस ब्रह्ममें, भी माया ऐसे देखपडती है जैसे धूलिविरोधि समुद्रमें धूलि ॥ ३४ ॥ इस ब्रह्माण्डका जो कुछ यह प्रपंच है वह सब मिथ्या है केवल अद्वैत ब्रह्मही सत् है इस विषयमें मुख्य प्रमाण वेदान्त हैं और वेदान्तके तात्पर्यको अनुभव करनेके वास्ते गुरु महात्मालोग हैं और अन्तमें फलीभूत अपना अनुभव प्रमाण है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मही ब्रह्म (जगत्रूप धारी) को देखताहै, ब्रह्मसे अन्य ब्रह्मको नहीं देखता, ब्रह्मही सृष्टि आदिके नामसे प्रसिद्धहै ऐसा इस ब्रह्मका स्वभावहीहै ॥ ३६ ॥

नब्रह्मजगतामस्तिकार्यकारणतोदयः ॥ कारणानामभावेनसर्वेषांसहकारिणाम् ॥ ३७ ॥ यावदभ्यासयोगेननशांताभेदधीस्तव ॥ नूनंतावदतद्रूपानब्रह्मपरिपश्यसि ॥ ३८ ॥ तत्ररूढिमुपायातायइमेत्वस्म

दादयः ॥ अभ्यासाद्ब्रह्मसंपत्तेःपश्यामस्तेहितत्परम् ॥ ३९ ॥ संकल्पनगरस्यैवममाकाशमयंवपुः ॥ ब्रह्मैवचांतःपश्यामिदेहेनानेनतत्पदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें ब्रह्म अनेक जगतोंके कार्य्य कारणका उत्पत्तिस्थान नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण सहकारी कारणोंका अभावहै ॥ ३७ ॥ जबतक अभ्यास योगसे तुमारी भेदबुद्धि नहीं शान्त होती तबतक देहात्म बुद्धिके कारणसे तुम ब्रह्मको नहीं देख सकतीहो ॥ ३८ ॥ वहांपर अस्मदादिक जो दृढ निश्चयको प्राप्त हुये हैं वे सब हमलोग समाधिके अभ्याससे ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे उस परमस्वरूपको देखते हैं ॥ ३९ ॥ संकल्प नगरके समान यह मेरा देह शुद्ध चित्ताकाशरूपही है, और इस देहसे ब्रह्मपदकोंही देखतीहुं ॥ ४० ॥

विशुद्धज्ञानदेहार्हास्तथैतेपद्मजादयः ॥ ब्रह्मात्मजगदादीनामंशेसंस्थानमंगने ॥४१॥ तवाभ्यासंविना बालेनाकारोब्रह्मतांगतः ॥ स्थितःकलनरूपात्मातेनतन्नानुपश्यसि ॥ ४२ ॥ यत्रस्वसंकल्पपुरंस्वदेहेननलभ्यते ॥ तत्रान्यसंकल्पपुरंदेहोन्योलभतेकथम् ॥४३॥ तस्मादेनंपरित्यज्यदेहंचिव्द्योमरूपिणी ॥ तत्पश्यसितदेवाशुकुरुकार्यंविदांवरे ॥ ४४ ॥

अर्थ—और हे अंगने ! इसीप्रकार ब्रह्माआदि कभी विशुद्ध चित्तरूप होनेसे सदा ब्रह्मदर्शनके योग्यहैं, और वे ब्रह्मात्मक जगत् और उसके व्यवहारोंको ब्रह्मके किसी (काल्पनिक अंशमें देखते हैं ॥ ४१ ॥ और अभ्यासके विना तुमारा आकार ब्रह्मस्वरूपको नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु अन्तःकरणमें चिदाभासरूपसे स्थित है इसलिये पूर्वोक्त और गिरिग्रामको नहीं देखतीहो ॥ ४२ ॥ जहांपर अपने शरीरसे अपनेही संकल्पका नगर नहीं प्राप्त होता तहां भला दूसरेके संकल्पका नगर और दूसरा देह भला कैसे प्राप्त होसकताहै ? ॥४३॥ हे कार्य्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ पुत्रि ! तुम इस स्थूल शरीरको त्यागके चिदाकाशरूप होजाओ तो उस ब्रह्मको देखोगी, और शीघ्र उसी कार्य्यको करो ॥ ४४ ॥

संकल्पनगरंसत्यंयथासंकल्पितंप्रति ॥ सदेहंवाविदेहंवानेतरंप्रतिकिंचन ॥ ४५ ॥ आदिसर्गेजगद्भ्रांतिर्यथेयंस्थितिमागता ॥ तथातदाप्रभृत्येवंनियतिःप्रौढिमागता ॥ ४६ ॥ लीलोवाच ॥ त्वयोक्तंदेविगच्छावोब्राह्मणब्राह्मणीजगत् ॥ सहेतीदमिदंवच्मिकथंगंतव्यमंबहे ॥४७ ॥ इमंदेहमिहास्थाप्यशुद्धसत्त्वानुपातिना ॥ चेतसातंपरंयामिलोकंत्वंकथमेषितत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—देह साध्य हो वा विदेह संकल्पित भोगकेलिये जैसे संकल्पका नगर अर्थ क्रिया सिद्धिके लिये सत्य है और कार्यकेलिये नहीं वैसेही यहभी है ॥ ४५ ॥ आदि सृष्टिमें ब्रह्माके संकल्पसे जैसे यह जगत्की भ्रांति स्थिरताको प्राप्त हुई वैसाही उसी समयसे लेके अनादि नियतिरूप ईश्वरेच्छामय मायाशक्तिके वशसे दृढ होती गई ॥ ४६ ॥ लीलाजी बोली–हे देवि ! आपने यह कहाथा कि ब्राह्मण और ब्राह्मणी जिस जगत्में रहतेहैं वहां हम दोनों साथ चलेंगे, सो हे मातः ! मैं यह कहतीहूं कि कैसे चलना होगा ॥ ४७ ॥ मैं तो इस शरीरको छोडके शुद्धसत्व गुणके पीछे चलनेवाले चित्तसे उस परलोकको जाऊंगी परन्तु आप इस अपने देहसे कैसे चलोगी ? ॥ ४८ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ संकल्पव्योमवृक्षस्तेयथासन्नापिखात्मकः ॥ नकुड्यात्मानकुड्येनरोध्यतेनापिकुड्यहा ॥ ४९ ॥ शुद्धैकसत्वनिर्माणंचिद्रूपस्यैवतत्किल ॥ प्रतिभानमतस्तस्मात्परस्माद्भिद्यतेमनाक् ॥ ५० ॥ सोयमेतादृशोदेहोनैनंसंत्यज्ययाम्यहम् ॥ अनेनैवतमाप्नोमिदेशंगंधमिवानिलः ॥ ५१ ॥ यथाजलंजलेनाग्निरग्निनावायुनानिलः ॥ मिलत्येवमतोदेहोदेहैरन्यैर्मनोमयैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली–जैसे तुमारे संकल्पोंका वृक्ष संकल्पकी सत्तासे विद्यमान रहतेभी वास्तवमें वह शून्यरूपही है, न तो वह भित्तिके समान मूर्तिमानही है और भित्तिसे रुकभी नहीं सकता, और न भित्तिका भेदकहै ॥४९ ॥ अस्मदादिका शरीर जो केवल शुद्धसत्वगुणसे रचागयाहै वह केवल चिद्रूपकाही प्रतिभानहै, इस हेतुसे परब्रह्मसे उसका यत्किंचित् भेदहै ॥ ५० ॥ यह मेरा शरीर शुद्धसत्वगुणका अनुयायी विशुद्ध चित्तरूपहै, इसको त्यागके मैं नहीं जाती, इसी शरीरसे उस लोकको ऐसे प्राप्त होऊंगी जैसे वायु गन्धको ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार जल जलमें, वायु वायुमें और अग्नि अग्निमें मिलताहै, उसीप्रकार यह विशुद्ध चित्तमय देह दूसरे मनोमय देहोंसे मिलजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥५२

नहिपार्थिवतासंविदेत्यपार्थिवसंविदा ॥ एकत्वंकल्पनाशैलशैलयोःकाहतिर्मिथः ॥ ५३ ॥ आतिवाहिकएवायंत्वाहशैश्चित्तदेहकः ॥ आधिभौतिकताबुद्ध्याग्रहीतश्चिरभावनात् ॥ ५४ ॥ यथास्वप्नेयथा दीर्घकालध्यानेयथाभ्रमे ॥ यथाचसतिसंकल्पेयथागंधर्वपत्तने ॥ ५५ ॥ वासनातानवंनूनंयदातेस्थितिमेष्यति ॥ तदातिवाहिकोभावःपुरनेष्यतिदेहके ॥ ५६ ॥

अर्थ—पृथिवीका विकार तुमारी देहरूप संवित् पृथिवीके विकारसे भिन्न शुद्ध चित्तमय हमारी देहरूपसंवित्की एकताको ऐसे नहीं प्राप्त होती जैसें संकल्पका पर्वत और यथार्थ पृथिवीका विकाररूप पर्वत ॥ ५३ ॥ यद्यपि तुम लोगोंकीभी शरीर मनोमात्रही है तथापि तुमारे सदृश मनुष्योंने चिरकालकी भावनासें उसको आधिभौतिक बुद्धिसे ग्रहणकर रक्खाहै ॥ ५४ ॥ जैसें स्वप्नमें दीर्घकालके ध्यानमे, भ्रममें, संकल्पमें और गन्धर्व नगरमें वासनाकी सूक्ष्मता होतीहै ऐसीही सूक्ष्मवासना जब तुमारी स्थिर होगी तब पुनः सूक्ष्मभाव तुमारी शरीरमें उत्पन्न होगा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

॥ लीलोवाच ॥ आतिवाहिकदेहत्वप्रत्ययेघनतांगते ॥ तामवाप्नोत्ययंदेहोदशामाहोविनश्यति ॥ ५७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यदस्तिनामतत्रैवनाशानाशक्रमोभवेत् ॥ वस्तुतोयच्चनास्त्येवनाशःस्यात्तस्यकीदृशः ॥ ५८ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेनष्टेसत्यबोधवशात्तुते ॥ सर्पोननष्टउन्नष्टोवेत्येवंकैवसाकथा ॥ ५९ ॥ यथासत्यपरिज्ञानाद्रज्ज्वांसर्पोनदृश्यते ॥ तथातिवाहिकज्ञानाद्दृश्यतेनाधिभौतिकः ॥ ६० ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि! सूक्ष्मशरीरका भाव जब दृढ होजाताहै तब यह स्थूलदेहही उस सूक्ष्मदशाको प्राप्त होताहै अथवा यह नष्ट होजाताहै॥५७॥ श्रीदेवीजी बोली—जो पदार्थ है उसीमें नाश और अनाशका क्रम होताहै यथार्थमें जो पदार्थ हैहीनहीं उसका नाश किसप्रकार होसकताहै ॥ ५८ ॥ हे पुत्रि ! सत्य पदार्थके ज्ञानसे रज्जूमें जब सर्पका भ्रम नष्ट होजाताहै तब रज्जु (रस्सी) में सर्प नष्ट हुआ अथवा नहीं नष्ट हुआ जैसे यह कुछ नहीं कह सकते ऐसी इस शरीरकीभी कथा है अर्थात् तत्ववेत्ताका शरीर ज्ञानसे बाधित होनेसे दग्धपटके समान मानो नहीं है, पूर्ववासनामात्रसें पटके समान भासनेपरभी वासनाकी सूक्ष्मतासे सूक्ष्मभावही शेष रहजाताहै ॥ ५९ ॥ जैसे सत्यके परिज्ञानसे रज्जूमें सर्प नहीं देखपडता इसीप्रकार सूक्ष्मके ज्ञानसे भौतिक शरीर नहीं देखपडता ॥ ६० ॥

कल्पनाऽपिनिवर्तेतकाल्पितायदिकेनचित् ॥ साशिलासमपास्त्वैवयानेहास्तिकदाचन ॥ ६१ ॥ परंपरेपरापूर्णमिदंदेहादिकस्थितम् ॥ इतिसत्यंवयंभद्रेपश्यामोनाभिपश्यसि ॥ ६२ ॥ आदिसर्गेभवेच्चित्त्वंकल्पनाकल्पितंयदा ॥ तदाततःप्रभृत्येकसत्वंदृश्यमवेक्षते ॥ ६३ ॥ लीलोवाच ॥ एकस्मिन्नेवसंशांतेदिक्कालाद्यविभागिनि ॥ विद्यमानेपरेतत्त्वेकलनावसरःकुतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—कल्पना यदि किसीने कल्पित कियाहै तो वह अवश्य निवृत्त होगी, क्योंकि वह शिला अस्तही है जे इस संसारमें कभी नहीं है ॥ ६१ ॥ हे भद्रे ! परब्रह्मसे पूर्ण यह देहादि पंचकोश जो एक एक करके अन्तःप्रवेशसे स्थितहै वह अपनी महिमामें स्थित परब्रह्मही है ऐसा हमलोग बाधरहित सदा देखते है, और तुम दृढज्ञान न होनेसे नहीं देखतीहो ॥ ६२ ॥ आदि सृष्टि अर्थात् हिरण्यगर्भकी सृष्टिमें प्रथम चितचित्व धर्म उत्पन्न होताहै, और जब पंचीकरणकी कल्पनासे स्थूलरूपकी कल्पना की जातीहै तो उसी समयसे लेके एक अनुगत सत्व दृश्यके अनुरोधसे स्वयं दृश्यभूत अपनेको भ्रान्तिसे दृश्यरूप देखताहै ॥ ६३ ॥ लीला बोली—देश और कालके विभागसे शून्य परमशान्त परब्रह्म जब एकरूपसे (परिणाम रहित) विद्यमान रहताहै तो उसमे कल्पनाका अवसर कहां अर्थात् जैसे दूध जब दहीरूपमें प्राप्त होताहै तब उसकी दुग्धकी दशा नहीं रहती, ऐसेही ब्रह्म जब अपने स्वरूपसेही विद्यमानहै तब उसमें अन्य परिणाम नहीं होसकता ॥ ६४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कटकत्वंयथाहेम्नितरंगत्वंयथांभसि ॥ सत्यत्वंचयथास्वप्नसंकल्पनगरादिषु ॥ ६५ ॥ नास्त्येवसत्यनुभवेतथानास्त्येवब्रह्मणि ॥ कल्पनाव्यतिरिक्तात्मतत्स्वभावादनामयात् ॥ ६६ ॥ यथा नास्त्यंबरेपांसुःपरेनास्तितथाकला ॥ अकलाकलनंशांतमिदमेकमजंततम् ॥ ६७ ॥ यदिदंभासतेकिंचित्तत्तस्यैवनिरामयम् ॥ कचनंकाचकस्येवकांतस्यातिमणेरिव ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—जैसे सुवर्णमें कटकत्व, जलमें तरंगत्व, और स्वप्न संकल्प नगरादिमें सत्यत्व ॥ ६५॥ वास्तविक पदार्थका अनुभव होनेपर नहीं हैं, इसीप्रकार आत्माके अपरिणामी स्वभावका अनुभव करनेसे आत्मासे पृथक् कोई कल्पना उसमें नहीं है, अर्थात् सत्य विकार अंगीकार करनेसे तुमारा कहा दोष आसकताहै, न कि रज्जुमें सर्पके समान मिथ्याभूत विकारसे ॥ ६६ ॥ जैसे आकाशमें धूलि नहीं है, इसीप्रकार परब्रह्ममें कोई कल्पना नहीं है, यह (आत्मा) विषय शून्य, शान्त, अजन्मा, और एकही सर्वत्र व्याप्त होरहाहै ॥ ६७ ॥ जो कुछ वह भासताहै वह उसीका विशुद्ध प्रतिभास ऐसाहै, जैसे अतिशुद्ध मणीका काचके समान बिना विचारे प्रतिभास ॥ ६८ ॥

॥ लीलोवाच ॥ एतावंतंचिरंकालमेतेदेविवयंवद ॥ भ्रामिताःकेननामापिद्वैताद्वैतविकल्पनैः ॥ ६९ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अविचारेणतरलेभ्रांतासिचिरमाकुला ॥ अविचारःस्वभावोत्थःसविचाराद्विन

श्यति ॥ ७० ॥ अविचारोविचारेणनिमेषादेवनश्यति ॥ एषासत्तैवतेनांतरविद्यैषानविद्यते ॥ ७१ ॥ तस्मान्नैवाविचारोस्तिनाविद्यास्तिनबंधनम् ॥ नमोक्षोस्तिनिराबाधंशुद्धबोधमिदंजगत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि ! यदि ऐसाहै तो यह कृपा करके कहो कि इतने दीर्घकालतक द्वैत अद्वैतके विकल्पोंसे किसने हमलोगोंको भ्रम रक्खाहै ? ॥ ६९ ॥ देवी बोली—हे चंचल शीलवाली पुत्रि ! अविचाररूपी मोहसेही तुम व्याकुल होके भ्रान्तहो रहीहो, और वह अविचार स्वभावसे सिद्धहै और बिचारसे नष्ट होजाताहै ॥ ७० ॥ यह अविचार रूपी अविद्या बिचारसे एक निमिषमें नष्ट होती है, और अविद्याका जब बिचारसे बाध होताहै तो केवल ब्रह्मसत्ताही रहजाती है, इसलिये इसके स्वरूपके अन्तमें यह अविद्या कुछ पदार्थ नहीं है ॥ ७१ ॥ इसलिये यथार्थमें न अविचार न अविद्याहै, और न बन्धन है, और बन्धनके न होनेसे मोक्षभी कोई पदार्थ नहीं है किन्तु बाधारहित यह जगत् शुद्ध बोधमय है ॥ ७२ ॥

एतावंतंयदाकालंत्वयेतन्नविचारितम् ॥ तदानसंप्रबुद्धात्वंभ्रांतैवाभवआकुला ॥ ७३ ॥ अद्यप्रभृतिबुद्धासिविमुक्तासिविवेकिनी ॥ वासनातानवंबीजंपतितंतवचेतसि ॥ ७४ ॥ आदावेवहिनोत्पन्नंदृश्यंसंसारनामकम् ॥ यदातदाकथंतेनवास्यंतेवासनापिका ॥७५॥ अत्यंताभावसंपत्तौद्रष्टृदृश्यदृशांमनः ॥ एकध्यानेपरेरूढेनिर्विकल्पसमाधिनि ॥ ७६ ॥ वासनाक्षयबीजेस्मिन्किंचिदंकुरितेहृदि ॥ क्रमान्नोदयमेष्यंविरागद्वेषादिकादृशः ॥ ७७ ॥ संसारसंभवश्चायंनिर्मूलत्वमुपैष्यति ॥ निर्विकल्पसमाधानंप्रतिष्ठामलमेष्यति ॥ ७८ ॥ विगतकलनकालिमाकलंकागगनकलांतरनिर्मलांबनेन ॥ सकलकलनकार्यकारणांतःकतिपयकालवशाद्भविष्यसीति ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविश्रांत्युपदेशोनाम एकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—जब तुम इतने कालतक आत्माका विचार नहीं किया, इसलिये तुमको ज्ञान नहीं हुआ और व्याकुल भ्रान्तही रही ॥ ७३ ॥ और आजसे लेके ज्ञान और विवेकसे संयुक्त हुई, और मुक्त होगई क्योंकि ज्ञानसे द्वैत वासनाका बाध होनेसे तत्ववासना शेष रही यह वासनाकी सूक्ष्मतारूप मुक्तिका बीज तुमारे चित्तमें बोयागया ॥७४॥ जब दृश्यनाम संसार प्रथमही नहीं उत्पन्न हुआ तो भला वह सबको कैसे आच्छादित करसकताहै, और वासनाभी क्या पदार्थ है ? ॥ ७५ ॥ द्रष्टा, दृश्य और दर्शनका अत्यन्ताभाव होनेपर, और निर्विकल्प समाधिमें मनके एकाग्र ध्यानमें अधिरूढ होनेपर ॥ ७६ ॥ तथा हृदयमें इस बासना क्षयके किंचित् अंकुरित होनेपर क्रमसे रागद्वेषादिकी दृष्टि पुनः नहीं उत्पन्न होगी ॥ ७७ ॥ तब यह संसारका संभव निर्मूल होजायगा, और निर्विकल्प समाधि दृढ प्रतिष्टाको प्राप्त होगी ॥ ७८ ॥ इसप्रकार निर्विकल्प समाधिकी प्रतिष्ठासे, और मायाकाश तथा उसके कार्य्योंका अधिष्टानभूत निर्मल आत्माके आश्रयसे विकल्परूप कालिमा (कृष्णता) के नष्ट होनेसे कलंक रहित होके सम्पूर्ण प्राणियोंकी भ्रान्ति और उसके कार्य्यरूप नानाप्रकारकी वासना, तथा कारणभूत अविद्याका अन्तररूप जो मोक्ष है वह कुछकाल बीतनेपर तुमारी आपही होजायगी ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विश्रान्त्युपदेशोनाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

तुरीय (चतुर्थ) अवस्था और जीवन्मुक्तकी स्थिति तथा वासनाओंके सूक्ष्महोनेका उपाय और उसके अभ्यासका वर्णन इस २२ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यथास्वप्नपरिज्ञानात्स्वप्नदेहोनवास्तवः ॥ अनुभूतोप्ययंतद्वद्वासनातानवादसन् ॥ १ ॥ यथास्वप्नपरिज्ञानात्स्वप्नदेहःप्रशाम्यति ॥ वासनातानवात्तद्वज्जाग्रद्देहोपिशाम्यति ॥ २ ॥ स्वप्नसंकल्पदेहांतेदेहोयंचेत्यतेयथा ॥ तथाजाग्रद्भावनांतेउदेत्येवातिवाहिकः ॥ ३ ॥ स्वप्नेनिर्वासनाबीजेयथोदेतिसुषुप्तता ॥ जाग्रत्यवासनाबीजेतथोदेतिविमुक्तता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली-हे लीले ! जिसप्रकार स्वप्नका ज्ञान होनेपर स्वप्नका शरीर सत्य नहीं रहता इसीप्रकार वासनाके सूक्ष्म होनेपर अनुभूतभी यह संसार सत्य नहीं प्रतीत होता ॥१॥ जैसे स्वप्नके परिज्ञानसे स्वप्नका शरीर शान्त होजाताहै इसीप्रकार वासनाओंके सूक्ष्म होनेपर जाग्रत् देहभी शान्त होजाताहै ॥२॥ जैसे स्वप्न और संकल्पके शरीरके अन्त होनेसे यह शरीर चेतताहै, ऐसेही स्थूल देहमें अहंबुद्धि नष्ट होनेपर सूक्ष्म शरीरका उदय होताहै ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नके वासना बीजके अनुभूत होनेपर सुषुप्तिका उदय होताहै वैसेही जाग्रत् वासनाके सर्वथा शान्त होनेपर मुक्तिका उदय होताहै ॥ ४ ॥

येयंतुजीवन्मुक्तानांवासनासानवासना ॥ शुद्धसत्वाभिधानंतत्सत्तासामान्यमुच्यते ॥५॥ यासुप्तवासनानिद्रासासुषुप्तिरितिस्मृता ॥ यत्सुप्तवासनंजाग्रद्घनोसैमोहउच्यते ॥ ६ ॥ प्रक्षीणवासनानिद्रा तुर्यशब्देनकथ्यते ॥ जाग्रत्यपिभवत्येवविदितेपरमेपदे ॥ ७ ॥ प्रक्षीणवासनायेहजीवतांजीवनस्थितिः ॥ अमुक्तैरपरिज्ञातासाजीवन्मुक्ततोच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवन्मुक्तोंकी शरीर यात्राके निर्वाहार्थ जो वासनाहै वह वासना नहीं है किन्तु वह शुद्धसत्वकाही कथन है और दग्धपटके समान उसको सत्ता सामान्य कहतेहैं ॥५॥ जो वासनाओंका अनुद्भव होजानाहै उसको सुषुप्ति वा निद्रा कहतेहैं, और वासनाओंका अभिनव होजानेको मोह या मूर्च्छा कहतेहैं ॥६॥ वासनाके सर्वथा क्षीण होनेपर तुर्य्य (चतुर्थ) अवस्था प्राप्त होतीहै, और परमपदके जाननेसे जाग्रत् दशामेंभी प्राप्त होतीहै ॥७॥ वासनाओंके प्रक्षीण होनेपर जीवोंकी जो जीवनकी स्थितिहै उसको अमुक्तपुरुष नहीं जानते और उसी दशाको जीवन्मुक्ति कहतेहैं ॥ ८ ॥

शुद्धसत्वानुपतितंचेतःप्रतनुवासनम् ॥ आतिवाहिकतामेतिहिमंतापादिवांबुताम् ॥ ९ ॥ आतिवाहिकतांयातंबुद्धंचित्तांतरैर्मनः ॥ सर्गजन्मांतरगतैःसिद्धैर्मिलतिनेतरत् ॥ १० ॥ यदातेयमहंभावःस्वभ्यासाच्छांतिमेष्यति ॥ तदोदेष्यतितेस्फारदृश्यांताबोधतास्वयम् ॥ ११ ॥ आतिवाहिकताज्ञानंस्थितिमेष्यतिशाश्वतीम् ॥ यदातदाह्यसंकल्पाल्लोकान्द्रक्ष्यसिपावनान् ॥ १२ ॥

अर्थ—वासनाओंके शान्त होनेपर चित्तही शुद्धसत्वकी ओर गिरके सूक्ष्मदशाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे तापसे हिम (बर्फ) जल दशाको ॥९॥ जो मन समाधिके व्युत्थान कालमें सूक्ष्म दशाको प्राप्त होजाताहै वही जन्मान्तरगत दूसरे चित्तोंके साथ और देवयोग्य आदि दूसरे शरीरोंके साथ मिलताहै दूसरा नहीं ॥१०॥ जब अभ्यास करते २ देहमें जो अहंभावहै वह शान्त होगा तब दृश्यका अन्तरूप दृढबोध तुमको आपही उदय होगा ॥ ११ ॥ जब तुमारा सूक्ष्म शरीरका ज्ञान नित्य स्थितिको प्राप्त होगा, उससमय संकल्प दोषसे रहित पवित्र लोकोंको देखोगी ॥ १२ ॥

वासनातानवेतस्मात्कुरुयत्नमनिंदिते ॥ तस्मिन्प्रौढिमुपायातेजीवन्मुक्ताभविष्यसि ॥ १३ ॥ यावन्नपूरितस्त्वेषशीतलोबोधचंद्रमाः ॥ तावद्देहमवस्थाप्यलोकांतरमवेक्ष्यताम् ॥ १४ ॥ मांसदेहोमांसदेहे नैवसंश्लेषमेष्यति ॥ नतुचित्तशरीरेणव्यवहारेषुकर्मसु ॥ १५ ॥ यथानुभवमेवैतद्यथास्थितमुदाहृतम् ॥ आबालसिद्धसंसिद्धंननामवरशापवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये हे निन्दारहित लीले ! वासनाओंके सूक्ष्म होनेपर प्रयत्न करो, क्योंकि वासनाकी सूक्ष्मताके दृढ होनेपर तुम जीवन्मुक्त होजाओगी॥१३॥जबतक यह बोधरूपी चन्द्रमा पूर्ण नहो तबतक इस शरीरको यहां रखके दूसरे लोकोंको देखो ॥ १४ ॥ क्योंकि मांसका देह मांसकेही देहकेसाथ मिलेगा, न कि व्यवहार कर्म्मोंमें चित्त शरीरकेसाथ इसीलिये मेरे चित्त शरीरकेसाथ तुमारे मांसशरीरका गमन नहीं होसकता॥१५॥यह वार्ता नूतन बालकसे लेके पण्डितोंतक जैसे प्रसिद्धहै और अनुभव तथा शास्त्रमें जैसे स्थितहै वैसेही मैंने तुमसे कही नकि वर या शापके समान १६

अवबोधघनाभ्यासाद्देहस्यास्यैवजायते ॥ संसारवासनाकार्श्येनूनंचित्तशरीरता ॥ १७ ॥ उदेष्यंतीच सैवात्रकेनचिन्नोपलक्ष्यते ॥ केवलंतुजनैर्देहोम्रियमाणोवलोक्यते ॥ १८ ॥ देहस्त्वयंनम्रियतेनचजीवति किंचते ॥ केकिलस्वप्नसंकल्पभ्रांतौमरणजीविते ॥ १९ ॥ जीवितंमरणंचैवसंकल्पपुरुषेयथा ॥ असत्यमेवभात्येवंतस्मिन्पुत्रिशरीरके ॥ २० ॥

अर्थ—संसारकी वासनाके सूक्ष्म होनेपर और ज्ञानके दृढ अभ्यास होनेपर यही शरीर चित्तशरीरता (सूक्ष्म भाव) को प्राप्त होजाताहै ॥ १७ ॥ वह सूक्ष्मभाव जब जब उदय होताहै तो उसको कोई देखता नहीं मनुष्य केवल म्रियमाण शरीरकोही देखते हैं ॥१८॥ और यथार्थमें यह तुमारा शरीर न मरताहै न जीताहै, क्योंकि स्वप्नकी भ्रान्तिमें जीवन और मरण क्या? ॥१९॥ हे पुत्रि ! जैसे संकल्प पुरुषके जीवन मरण मिथ्या भासतेहैं ऐसेही उस शरीरमेंभी २०

॥ लीलोवाच ॥ तदेतदुपदिष्टंमेज्ञानंदेवित्वयामलम् ॥ यस्मिन्श्रुतिगतेशांतिमेतिदृश्यविषूचिका ॥२१ अत्रोपकुरुमेब्रूहिकोभ्यासःकीदृशोथवा ॥ सकथंपोषमायातिपुष्टेतस्मिंश्र्वकिंभवेत् ॥ २२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यद्येनक्रियतेकिंचिद्येनयेनयदायदा ॥ विनाभ्यासेनतन्नेहसिद्धिमेतिकदाचन ॥ २३ ॥ तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यंतत्प्रबोधनम् ॥ एतदेकपरत्वंचतदभ्यासंविदुर्बुधाः ॥ २४ ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि ! आपने मुझे यह निर्मल ज्ञानका उपदेश दिया, जिसके श्रवण करनेसे दृश्य रूप महामारी शान्त होजातीहै ॥ २१ ॥ अब मेरे ऊपर उपकार करके यह कहिये कि वह अभ्यास कौनसा और कैसा ह, वह कैसे पुष्ट होताहै और उसके पुष्ट होनेसे क्या होताहै ॥ २२ ॥ श्रीदेविजी बोली—जबर जो प्राणी जोर कार्य्य करताहै वह बिना अभ्यासके कभी सिद्धिको नहीं प्राप्त होता ॥२३॥ ब्रह्मकाही चिन्तन करना, उसीका परस्पर बोधन करना, और उसीमें एकत्वभावसे तत्पर रहना, इसीको पण्डितजन अभ्यास कहतेहैं ॥ २४ ॥

येविरक्तामहात्मानोभोगभावनतानवम् ॥ भावयंत्यभवायांतर्भव्याभुविजयंतिते ॥ २५ ॥ उदितोदार्यसौंदर्यवैराग्यरसरंजिता ॥ आनंदस्यंदिनीयेषांमतिस्तेभ्यासिनःपरे ॥ २६ ॥ अत्यंताभावसंपत्तौज्ञातृज्ञेयस्यवस्तुनः ॥ ॥ युक्त्याशास्त्रैर्यतंतेयेतेब्रह्माभ्यासिनःस्थिताः ॥ २७ ॥ सर्गादावेवनोत्पन्नंदृश्यंनास्त्येवतत्सदा ॥ इदंजगदहंचेतिबोधाभ्यासउदाहृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—जो बिरक्त महात्माजन विषयकी वासनाको सर्वथा अभाव होनेकेलिये अन्तःकरणमें सूक्ष्म करते हैं, वे मोक्षके पात्र संसारमें सबसे उत्तमहैं ॥ २५ ॥ जिन महात्माओंको सर्व पदार्थोंके त्यागसे वैराग्यरससे रंगीहुई आनन्दप्रवाह पूर्णसुन्दरता उत्पन्न होती है वेही उत्तम अभ्यासी कहातेहैं ॥ २६ ॥ प्रमेय और प्रमाणोंके तत्वोंको निश्चय करनेवाली युक्तिसे और अध्यात्मशास्त्रोंके द्वारा ज्ञातृज्ञेय वस्तुके अत्यन्ताभाव सम्पत्तिकेलिये जो प्रयत्न करते हैं वेही संसारमें ब्रह्माभ्यासी हैं ॥ २७ ॥ सृष्टिकी आदिमें न उत्पन्न हुआ और यह जगत् तथा हम सर्वदा विद्यमान नहीं रहेंगे, ऐसा जो बोध है उसको अभ्यास कहते हैं ॥ २८ ॥

दृश्यासंभवबोधेनरागद्वेषादितानवे ॥ रतिर्बलोदितायासौब्रह्माभ्यासउदाहृतः ॥ २९ ॥ दृश्यासंभवबोधेनविनाद्वेषादितानवम् ॥ तपइत्युच्यतेतस्मान्नज्ञानंतद्दुःखतत् ॥ ३० ॥ दृश्यासंभवबोधोहिज्ञानंज्ञेयंचकथ्यते ॥ तदभ्यासेननिर्वाणमित्यभ्यासोमहोदयः ॥ ३१ ॥ भवबहुलनिशानितांतनिद्रासततविवेकविबोधवारिसेकैः ॥ प्रगलतिहिमशीतलैरशेषाशरदिमहामिहिकेवचेतसीति ॥ ३२ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्र्वसहाजगाम ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे विज्ञानाभ्यासवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—दृश्यके असंभव ज्ञानसे रागद्वेषादिके सूक्ष्म होनेपर शास्त्रके मननसे उत्पन्न जो विद्या और वासनारूप बलसे उत्पन्न आत्मामें रति है उसको ब्रह्माभ्यास कहते हैं ॥ २९ ॥ और दृश्यके असम्भव ज्ञानके विना जो रागद्वेषादिकी सूक्ष्मताहै उसको तप कहतेहैं वह ज्ञान नहीं है किन्तु वृथा द्वेषादि निरोध दुःखका विस्तारकहै ॥३०॥ जिससे आत्माका साक्षात्कारपूर्वक दृश्यके असंभवका बोधहो उसीको ज्ञेयज्ञान कहते हैं और इसी अभ्याससे निर्वाण (मोक्ष) होताहै और यही अभ्यास महान् उदयका ज्ञान कारणहै ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण तापके नाशका हेतु होनेसे हिमके समान शीतल विवेक बोधरूपी निरन्तर जलके सेंचनसे संसाररूपी रात्रिमें अज्ञानरूपी महानिद्राहै वह ऐसे नष्ट होती है जैसे शरदृतुमें महानीहारके समूह ॥ ३२ ॥ श्रीवसिष्ठ महामुनिके इतना कहनेपर वह दिन समाप्त होगया, सूर्य्यभगवान् अस्ताचलको प्राप्त हुये सम्पूर्ण सभा सन्ध्या स्नानादि कृत्य करनेके लिये बिदा हुई और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथही पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे लीलोपाख्याने अभ्यासवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

गिरिग्रामके देखनेकी इच्छासे योगाभ्यास द्वारा स्थूल शरीरको त्यागकर महान् आकाशरूपी गृहमें सरस्वती और लीलाके गमनका वर्णन इस २३ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ चतुर्थदिनम् ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंकथनंकृत्वातस्यांनिशिवरांगने ॥ सुप्तेपरिजनेनूनमथांतःपुरमंडपे ॥ १ ॥ दृढाखिलार्गलद्वारगवाक्षेदक्षचेतसि ॥ पुष्पप्रकरनिष्ठ्यूतमांसलामोदमंथरे ॥ २ ॥ अम्लानमालावसनशवपार्श्वासनस्थिते ॥ सकलामलपूर्णेंदुवदनद्योतितास्पदे ॥ ३ ॥ समाधिस्थानकं गत्वातस्थतुर्निश्चलांगिके ॥ रत्नस्तंभादिवोत्कीर्णेचित्रेभित्ताविवार्पिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इतना कहके इसके अनन्तर रात्रिके उस रात्रिमें पुष्पोंके समूहसे उत्पन्न सुगन्धसे पूर्ण उस अन्तःपुरमें सम्पूर्ण चतुर भृत्योंके सोजानेपर, सब दरवाजे तथा खिडकियोंके दृढ कपाटोंके बन्ध होनेपर, जिसके पुष्पकी माला तथा वस्त्र भान नहीं हुये ऐसे शवके निकट स्थित, पूर्ण चन्द्रके समान सम्पूर्ण अकलंक मुखसे स्थानको प्रकाशित करनेवाली वे दोनों श्रेष्ठ अंगना (भगवती और लीला) निर्विकल्प समाधिमें जाके ऐसे निश्चल होके स्थित हुई, जैसे रत्नके स्तम्भ (खम्भे) में खुदी हुई वा भित्तिमें लिखित प्रतिमा ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

सर्वास्तत्यजतुश्चिताःसंकोचंसमुपागते ॥ दिवसांतइवाब्जिन्यौप्रसृतामोदलेखिके ॥ ५ ॥ बभूवतुर्भृशंशांतेशुद्धेस्पंदविवर्जिते ॥ गिरीशरदिनिर्वातइवभ्रष्टाभ्रमालिके ॥ ६ ॥ निर्विकल्पसमाधानाज्जहतुर्बाह्यसंविदम् ॥ यथाकल्पलतेकांतेपूर्वमृत्वंतरेरसम् ॥ ७ ॥ अहंजगदितिभ्रांतिदृश्यस्यादावनुद्भवः ॥ यदाताभ्यामवगतस्त्वत्यंताभावनात्मकः ॥ ८ ॥

अर्थ—चारों ओरसे सुगन्धि जिनके निकट फैल रही है ऐसी वे दोनों स्त्रियां वहां (समाधिमें) सम्पूर्ण चिन्ताओंके त्यागदिया, और सब इन्द्रियोंके निरोधसे ऐसे संकोचको प्राप्त हुई जैसे दिनके अन्तमें दो कमलिनी ॥ ५ ॥ शुद्ध और गतिरहित वे दोनों ऐसी महाशान्तिको प्राप्त हुई जैसे शरदऋतुमें निर्वात पर्वतपर गिरीहुई पर्वतकी श्रेणी ॥ ६ ॥ निर्विकल्प समाधिमें प्राप्त होनेसे बाह्य पदार्थोंके ज्ञानको ऐसे त्यागदिया जैसे वसन्तऋतुके आनेपर पूर्वकालके रसको रमणीय लता ॥ ७ ॥ हम और यह जगत् यह दृश्यकी अनुत्पत्तिरूप अत्यन्ताभाव जब निर्विकल्प समाधिमें उन्होंने जाना ॥ ८ ॥

तदादृश्यपिशाचोयमलमस्तंगतोद्वयोः ॥ असत्त्वादेवचास्माकंशशशृंगमिवानघ ॥ ९ ॥ आदावेवहियन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा ॥ भातंवाभातमेवातोमृगतृष्णांबुवज्जगत् ॥ १० ॥ स्वभावकेवलंशांतंस्त्रीद्वयंतद्बभूवह ॥ चंद्रार्कादिपदार्थौघैर्दूरमुक्तमिवांबरम् ॥ ११ ॥ तेनैवज्ञानदेहेनचचारज्ञप्तिदेवता ॥ मानुषीत्वितरेणाशुध्यानज्ञानानुरूपिणा ॥ १२ ॥

अर्थ—उस समय हे.पापरहित रामजी ? जैसे खरगोशकी सींग समान सर्वथा असत् होनेसे दृश्यका अत्यन्ताभाव सिद्ध है, ऐसेही उन दोनोंकाभी दृश्यरूप पिशाच सर्वथा शान्त होगया ॥ ९ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान यह जगत् भान होनेपरभी जो आदिमेंही नहीं है वह वर्तमानकालमेंभी उसी प्रकार नहीं है ॥ १० ॥ दृश्यके अभावमें केवल शान्त स्वभावरूप वे दोनों स्त्रियां होगई जैसे सृष्टिकी आदिमें वायुकी उत्पत्तिके पूर्व और प्रलय समयमें वायु प्रलयके अनन्तर सूर्य्य चन्द्रादिके न रहनेपर आकाश रहता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार ज्ञानरूप शरीरसे ज्ञानकी देवता सरस्वती, और मानुषी लीलाने शुद्ध ज्ञान ध्यानके अनुरूप दूसरे शरीरसे भ्रमण किया ॥ १२ ॥

गेहांतरेवप्रादेशमात्रमारुह्यसंविदा ॥ बभूवतुश्चिदाकाशरूपिण्यौव्योमगाकृती ॥ १३ ॥ अथतेललने लीलालोलेललितलोचने ॥ स्वभावाच्चेत्यसंवित्तेर्नभोदूरमितोगते ॥ १४ ॥ तत्रस्थेवाथचिद्वृत्त्यापुप्लुवातेनभस्थलम् ॥ कोटियोजनविस्तीर्णंदूराद्दूरतरांतरम् ॥ १५ ॥ दृश्यानुसंधाननिजस्वभावादाकाशदेहेअपितेमिथोत्र ॥ परस्पराकारविलोकनेनबभूवतुःस्नेहपरेवयस्ये ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञानदेहाकाशगमनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—पूर्व संस्कारके उद्भवसे उत्पन्न ज्ञानद्वारा उसी गृहके भीतर मण्डपाकाशमें, आकाशगामिनी आकारवाली दोनों चिदाकाशरूप होगई ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर सुन्दर नेत्रवाली वे दोनों रमणीय स्त्रियां विषयज्ञानके स्वभावसे अर्थात् विषयके अनुरूप व्यवहार कल्पनाके कारणसे दूर आकाश देशमें प्राप्तहुई ॥ १४ ॥ उसी मण्डपाकाशमें स्थित हम दोनों आकाशमें उडे ऐसी चित्प्रधान इस मानसी कल्पनासे करोडों योजन विस्तीर्ण वे दोनों आकाशमें उडती रहीं ॥ १५ ॥ यथार्थमें आकाश देहवालीभी, वे दोनों पूर्व संकलिपत दृश्यके अनुसन्धान सहित चित्तभावको प्राप्त आत्मस्वभावसे यहांपर एकदूसरेके आकारको देखनेसे अति प्रीतियुक्त सखी होगई ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञान देहाकाशगमनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अनन्त संसारके विचित्र विलाससे जिसका मध्यमभाग पूर्ण होरहाहै ऐसा आकाश मार्गमें गमन करनेवाली भगवती और लीलाका इस २४ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दूराद्दूरमभिप्लुत्यशनैरुच्चैःपदंगते ॥ हस्तंहस्तेसमालंब्ययांत्यौददृशतुर्नभः ॥१॥ एकार्णवमिवोच्छूनंगंभीरंनिर्मलांतरम् ॥ कोमलंकोमलमरुदासंगसुखभोगदम् ॥ २ ॥ आल्हादकमलंक्षौम्यंशून्यतांभोनिमज्जनात् ॥ अत्यंतशुद्धंगंभीरंप्रसन्नमपिसज्जनात् ॥ ३ ॥ शृंगस्थनिर्मलांभोदपीनोदरसुधालये ॥ विशश्रमतुराशासुपूर्णचंद्रोदरामले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-दूरसेभी दूर देशमें उडके धीरे २ उच्च देशमें प्राप्त होके एक दूसरेका हाथ पकडके जातीहुई उनदोनोंने आकाशको देखा ॥ १ ॥ समुद्रके समान अति गम्भीर और निर्मल है अन्तराल (मध्यदेश) सहित, अति कोमल, मन्दवायुके संगसे सुख तथा भोगको देनेवाला ॥ २ ॥ जगत्की शून्यतारूप ब्रह्मजलमें स्नानसे प्राणीरूप भ्रमरोंको अति आनन्ददायक अति गम्भीर सज्जनोंके चित्तसेभी अति प्रसन्न ॥ ३ ॥ आकाश देशमें, दिशाओंमें तथा मेरु आदिके शिखरोंपर स्थित और निर्मल मेघके स्थूल मध्यभागमें उन दोनोंने विश्राम किया ॥ ४ ॥

सिद्धगंधर्वमंदारमालामोदमनोहरे ॥ चंद्रमंडलनिष्क्रांतेरेमातेमधुरानिले ॥ ५ ॥ सस्नतुर्भूरिघर्मांतेतडिद्रक्ताब्जसंकुले ॥ सरसीवजलापूरमंथरेमेघमंडले ॥ ६ ॥ भूतलौघमहाशैलमृणालांकुरकोटिषु ॥ दिक्षु बभ्रमतुःस्वैरंभ्रमर्यौसरसीष्विव ॥ ७ ॥ धारागृहधियाधीरगंगानिर्झरधारिणि ॥ भ्रेमतुर्वातविक्षुब्धमेघमंडलमंडपे ॥ ८ ॥

अर्थ—कभी चन्द्रमण्डलसे निकलकर सिद्धगन्धर्वादिसे सेवित, मन्दार (देववृक्ष) की मालाओंसे अति मनोहर सुगन्ध और मन्दवायु मण्डलमें वे दोनों क्रीडा करने लगी ॥ ५ ॥ कभी २ सूर्य्यके तापसे बिजुलीके समान रक्तवर्ण निकलके जलप्रवाहसे पूर्ण मेघमण्डलमें ऐसे स्नान करतीथी जैसे कमल पूर्ण तडागमें ॥ ६ ॥ कमलोंके कोटिओं अंकुरोंके समान भूतलोंके समूहोंपर हिमालयके तथा कैलासादि महापर्वत जिनमें स्थितहै ऐसी दिशाओंमें अपनी इच्छापूर्वक ऐसे भ्रमण किया जैसे दो भ्रमरी तडागमें ॥ ७ ॥ जिसमें गंगाजीके स्रोतोंकी धारा गिररही है ऐसे वायुसे संचालित मेघमण्डलके मण्डपमें ऐसे भ्रमण करतीथी मानों फुहारे लगे स्थानमें ॥ ८ ॥

ततोमधुरगामिन्यौविश्राम्यंत्यौस्वशक्तितः ॥ शून्येददृशतुर्व्योममहारंभातिमंथरम् ॥ ९ ॥ अदृष्टपूर्वमन्योन्यंसर्वसंकटकोटरम् ॥ अपूर्यमाणमाशून्यंजगत्कोटिशतैरपि ॥ १० ॥ उपर्युपर्युपर्युच्चैरन्यैरन्यैर्वृतंपृथक् ॥ विचित्राभरणाकारैर्भूतलैःसुविमानकैः ॥ ११ ॥ परितःपूरितव्योम्नांमेर्वादिकुलभूभृताम् ॥ पद्मरागतटोद्योतैःकल्पज्वालोपमोदरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर विश्राम करती हुई और अपनी शक्तिके अनुसार मन्द २ गमन करती हुई, शून्यदेशमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचनासे व्याप्त आकाशमण्डलको दोनोंने देखा ॥ ९ ॥ वह (आकाश) देश यद्यपि भगवतीने देखाहै तथापि परस्परके साहचर्य्य (साथ) से अदृष्टपूर्व अनेक प्राणियोंके संकटका स्थान, तथा करोडों ब्रह्माण्डोंसे अपरिपूर्ण होनेसे शून्यके समान ॥ १० ॥ विचित्र भूषणयुक्त आकारवाले, तथा उत्तम विमान युक्त पृथक २

भूतलोंसे ऊपर २ स्थानोंमें व्याप्त ॥ ११ ॥ चारों आकाशमण्डलको पूर्ण करनेवाले मेरुआदि कुलपर्वतोंके पद्मराग मणिमय प्रकाशोंसे प्रलयकालके अग्निकी ज्वालाके समान मध्यभाग सहित आकाशको दोनोने देखा ॥ १२ ॥

मुक्ताशिखरमापूरैर्हिमवत्सानुसुंदरम् ॥ कांचनाद्रिस्थलार्चिर्भिः कांचनस्थलभासुरम् ॥ १३ ॥ महा मरकताभाभिः शाद्वलस्थलनीलिमम् ॥ द्रष्टृदृश्यक्षयासक्तजातध्वांतोस्थकालिमम् ॥ १४ ॥ पारिजात लतालोलविमानगणकेतनम् ॥ अतोमंजरिकाकारमिवैवैदूर्यभूतलम् ॥ १५ ॥ मनोवेगमहासिद्धजित वातगमागमम् ॥ विमानगृहदेवस्त्रीगेयवाद्यसघुंघुमम् ॥ १६ ॥

अर्थ–उन पर्वतों मुक्ता (मोती) मय शिखरोंके प्रकाशके समूहोंसे हिमालयके शिखरके समान सुन्दर सुवर्णके पर्वतोंकी भूमिकी दीप्तिओंसे सुमेरूके समान प्रकाशमान ॥ १३ ॥ कहीं महामूल्य हरित मणिमय पर्वतोंके शिखरोंके प्रकाशोंसे हरित घासमय नील भूमिके समान, और कहीं २ द्रष्टा और दृश्यके नाश होनेके कारण उत्पन्न हुये अन्धकारसे कृष्ण प्रदेशके समान ॥ १४ ॥ कहीं २ पारिजात लताके वनोंके ऊपर देवताओंके चंचल विमानोंके स्थानहैं जिनमें इसलिये वे बन दूरसे लताके समान भान होते हैं और निकटसे वैदूर्य्य मणिमय भूतलके समान प्रतीत होते हैं ॥ १५ ॥ किसी स्थानपर सिद्धोंके मनकी बेगके समान गमनागमनोंने वायुकी गतिकोभी जीतलियाहै तथा कहीं २ विमानरूपी ग्रहोंमें देवांगनाओंके गान और वाद्यसे घुंघुम ध्वनिसहितहै ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यवरभूतौघसंचाराविरलांतरम् ॥ अन्योन्यादृष्टसंचारसुरासुरकुलाकुलम् ॥ १७ ॥ पर्यंतस्थित कूश्मांडरक्षःपैशाचमंडलम् ॥ वातस्कंधमहावेगवहद्वैमानिकव्रजम् ॥ १८ ॥ वहद्विमानसीत्कारमुष्टि ग्राह्यघनध्वनि ॥ ग्रहर्क्षघनसंचारात्प्रचलद्वातयंत्रकम् ॥ १९ ॥ निकटातपदग्धाल्पसिद्धसिद्धोज्झिता स्पदम् ॥ अर्काश्वमुखवातास्तदग्धमुग्धविमानकम् ॥ २० ॥

अर्थ—त्रिलोकके श्रेष्ठ भूतोंके समूहसे संचारसे जिसका मध्यभाग पूर्ण है, और एक दूसरोंको न देखनेवाले ऐसे देवताओंके समूहोंके संचारसे परिपूर्ण ॥ १७ ॥ कहीं २ निकट देशमें वायुके महावेगके समान विमान समूहोंको धारण करवाला कूश्माण्ड राक्षस, और पिशाचोंका समूह विराजमानहै ॥१८॥ कहीं २ चलते हुये विमानोंके शब्दोंको दबाके मेघगर्जना सुनाई देती है, तथा कहीं २ ग्रह और नक्षत्रोंके अधिक संचारसे ज्योतिश्चक्र चल रहाहै ॥ १९ ॥ कहीं २ सूर्य्यके निकट देशमें आतपसे जलाये हुये कम तपस्यावाले सिद्ध नामवालोंकी देवताओंने छोडदियाहै, तथा कहीं सूर्य्य वा उनके घोडेके मुखकी वायुसे छोटे २ विमान जलादिये गये हैं ऐसे स्थलोंको देखा ॥ २० ॥

लोकपालाप्सरोवृंदसंचाराचारचंचलम् ॥ देव्यंतःपुरिकादग्धधूपधूमांबुदांबरम् ॥२१॥ स्वस्वर्गाहूतदे वस्त्रीस्वांगविभ्रष्टभूषणम् ॥ सामान्यसिद्धसंघोग्रतेजःपुंजतमोबलम् ॥ २२ ॥ बलवत्सिद्धसंघट्टगमा गमविघट्टितैः ॥ घनैःसांशुकपार्श्वस्थहिमवन्मेरुमंदरम् ॥ २३ ॥ काकोलूकैर्गृध्रभासैराशिभूतैश्चलैर्वृ तम् ॥ नृत्यद्भिर्डाकिनीसंघैस्तरंगैरिववारिधिम् ॥ २४ ॥

अर्थ—लोकपाल तथा अप्सराओंके समूहके पदकी गति तथा अन्य अंगोंको चालसे चंचल देविओंसे अन्तःपुरमें जला हुये धूपोंके धूमरूपी मेघोंसे पूर्ण ॥ २१ ॥ कहीं २ इन्द्र चन्द्रादिकोसे बुलाई हुई देवांगनाओंके मैं प्रथम पहुंचूं २ इस शीघ्रताके मारे शरीरोंके भूषण गिर गये हैं, इसी कारण उन देवांगना (अप्सरा) ओंको चाहनेवाले दूसरे सामान्य देवताओंके उग्र क्रोधरूपी तमसे नीलवर्णके समान स्थित ॥ २२ ॥ तथा कहीं २ बलवान् देवयोनि विशेष सिद्धोंके संघट युक्त गमनागमनके संमर्दनसे चूर्णित मेघोंने जाके मेरु मन्दर आदि पर्वतोंके शिखरोंके वस्त्र बन गये हैं ॥ २३ ॥ कहीं २ काक, उलूक, गीध आदि पक्षियोंके चंचल समूहोंसे तथा किसी २ स्थानपर नृत्य करते हुये डाकिनी पिशाचिनी आदिके समूहोंसे जैसे तरंगोंसे समुद्र ऐसे आकाशको देखा ॥ २४ ॥

प्रवृत्तैर्योगिनीसंघैःश्वकाकोष्ट्रखराननैः ॥ निरर्थयोजनशतंगत्वागच्छद्भिरावृतम् ॥ २५ ॥ लोकपालपु रोध्वांतधूमधूम्रभ्रमंदिरे ॥ सिद्धगंधर्वमिथुनप्रारब्धसुरतोत्सवम् ॥ २६ ॥ स्वर्गगीतस्तवोन्मत्तमदना क्रांतमार्गगम् ॥ अनारतवहद्धिष्ण्यचक्रलक्षितपक्षकम् ॥ २७॥ वातस्कंधनिखातांतर्वहत्त्रिपथगाजलम्॥ आश्चर्यालोकनव्यग्रसंचरत्रिदशार्भकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कहीं २ कुक्कुर उष्ट्र, और गर्दभके समान मुख धारण किये हुये अणिमादि सिद्धिवाले योगिनियोंके समूहोंने निरर्थक (क्योंकि अणिमादि सिद्धिसहित होनेसे उनको इष्ट पदार्थ अपने स्थानही पर लाभ होजाताहै) सेंकडो योजन जाके पुनः उनके आगमनसे पूर्ण ॥ २५ ॥ कहीं २ लोकपालोंके सामने अन्धकारमय स्थित धूमरूपी मन्दिरोंमें

सिद्ध और गन्धर्वोंके जोडोंने सुरतका उत्सव प्रारम्भ करदियाहै ॥ २६ ॥ कहीं २ स्वर्गके कामोद्दीपक गीत और स्तुतिसे आकाशमार्गगामी कामसे व्याकुल होगये हैं, और कहीं २ नक्षत्रोंके स्थानभूत ज्योतिश्चक्रके निरन्तर चलनेसे सूर्य्यादिकी गतिसे शुक्ल कृष्णादि पक्षोंका विभाग काल प्रतीत होताहै ॥ २७ ॥ और कहीं २ उसी ज्योतिश्चक्रमें वायुके भेद विशेषमें कल्पना कियेहुये नीच देशमें गंगाजीका जल वह रहाहै, और कहीं २ आश्चर्य्यमय पदार्थोंके देखनेमें व्यग्र देवताओंके बालक विचर रहे हैं ऐसे आकाशको देखा ॥ २८ ॥

सदेहसंचरद्वज्रचक्रशूलासिशक्तिमत् ॥ क्वचिन्निर्भित्तिभवनंगायन्नारदतुंबुरु ॥ २९ ॥ मेघमार्गमहामेघमहारंभाकुलंक्वचित् ॥ चित्रन्यस्तसमाकारमूकंकल्पांतवारिदम् ॥ ३० ॥ उत्पतत्कज्जलाद्रींद्रसुंदरांभोधरंक्वचित् ॥ क्वचित्कनकनिष्पंदकांततापांतवारिदम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्विद्राहताषाढ्यमृष्यमूकांबुदांशुकम् ॥ क्वचिन्निष्पवनांभोधिसंरंभशून्यताजलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कहीं मूर्ति धारण करके वज्र, चक्र, त्रिशूल, असि और शक्ति आदिके अधिष्ठाता देवता विचररहेहैं तथा कहीं २ विना भित्तिके स्थानमें नारद और तुम्बुरु ऋषि गान कररहेहैं ॥ २९ ॥ मेघ मार्गमें कोई २ स्थान पुष्कर आवर्त आदि महामेघोंकी प्रलय कालकी वृष्टिसे व्याप्त होरहाहै तथा कहीं २ चित्रमें लिखेहुयेके समान शब्द रहित मेघ स्थितहैं ॥ ३० ॥ कहीं कज्जलाद्रिसे सुन्दर मेघ उछल रहाहै, और कहीं सुवर्णके द्रवके समान ग्रीष्म तथा उसके अनन्तर वर्षादि ऋतु प्रवृत्त होरहेहैं ॥३१॥ कहीं ऋष्यमूक पर्वतपर पूर्वरामायणमें कहेहुयेके अनुसार वर्षा करनेवाले मेघ वस्त्रसहित और कहीं निश्चल समुद्रकाही कोपहै और कहीं शून्यताही जलरूपहै ऐसे आकाशरूप स्थानको देखा ॥३२॥

क्वचिद्वातनदीप्रौढविमानतृणपल्लवम् ॥ क्वचिच्चलदलिव्रातपृष्ठत्वक्कांतिनिर्मलम् ॥ ३३ ॥ क्वचिन्मेरुनदीकल्पवातधूलिविधूसरम् ॥ क्वचिद्विमानगीर्वाणप्रभाचित्रबलांगकम् ॥ ३४ ॥ क्वचिन्निरंबरोन्नृत्तमातृमंडलमालितम् ॥ क्वचिन्नित्यंनवक्षीबक्षुब्धयोगीश्वरीगणम् ॥ ३५ ॥ क्वचिच्छांतसमाधिस्थविश्रांतमुनिमालितम् ॥ समंदूरास्तसंरंभसाधुचित्तमनोहरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कहीं वायुके प्रवाहमें प्रबल विमान तृण तथा पत्तोंके समान उड रहेहैं, और कहीं चलायमान भ्रमरोंके समूहोंके पीछे त्वचाकी कान्तिके समान निर्मल होरहाहै ॥ ३३ ॥ कहीं पर्वत नदियोंके वर्णके समान वायु और धुलि प्रवाहके समान धूसर (मलिन) वर्ण, कहीं विमान और देवताओंकी प्रभासे चित्र शरीरवाला ॥ ३४ ॥ कहीं वस्त्र रहित मातृसंज्ञक देविओंके मण्डलके नृत्यसे शोभित कहीं नित्यनूतन योगीश्वरिओंका समूह सुरापानसे मदनोन्मत्त होरहाहै ॥ ३५ ॥ कहीं शान्त और समाधिस्थ विश्रान्त मुनियोंकी मालासे शोभित, और कहीं क्रोधादि शून्य महात्माओंके चित्तके समान मनोहर आकाशको देखा ॥ ३६ ॥

गायत्किन्नरगंधर्वसुरस्त्रीमंडलंक्वचित् ॥ क्वचित्स्तब्धपुरापूर्णंवहत्पुरवरंक्वचित् ॥ ३७ ॥ क्वचिद्रुद्रपुरापूर्णंक्वचिद्ब्रह्ममहापुरम् ॥ क्वचिन्मायाकृतपुरंक्वचिदागामिपत्तनम् ॥ ३८ ॥ क्वचिद्भ्रमच्चंद्रसरःक्वचित्स्तब्धमयंसरः ॥ क्वचित्सरत्सिद्धगणंक्वचिदिंदुकृतोदयम् ॥ ३९ ॥ क्वचित्सूर्योदयमयंक्वचिद्रात्रितमोमयम् ॥ क्वचित्संध्यांशुकपिलंक्वचिन्नीहारधूसरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कहीं किन्नर गन्धर्वादि देवताओंकी स्त्रियोंका समूह गान कररहा है, कहीं निश्चल नगरोंसे पूर्ण तथा कहीं त्रिपुरआदिके श्रेष्ठ नगरोंको धारण कररहाहै ॥ ३७ ॥ कहीं शिवजीके पुर (कैलासादि) से व्याप्त, कहीं ब्रह्मपुरसे पूर्ण, कहीं मायारचित नगरीसे शोभित, कहीं भविष्यत् नगरोंसे व्याप्त ॥ ३८ ॥ कहीं भ्रमण करते अमृत पूर्णचन्द्रमाके सदृश तडागयुक्त, और कहीं देवताओंकी शक्तिसे घनीभूत जलमय तडागसहित, कहीं सिद्ध देवताओंका गण भ्रमण कररहाहै, और कहीं चन्द्रमाके उदयसे सुशोभित ॥ ३९ ॥ कहीं सूर्य्योदयसे पूर्ण, कहीं रात्रिके महा अन्धकारसे व्याप्त, कहीं सन्ध्याकालके किरणसे किंचित् रक्त तथा पीतवर्ण, और कहीं तुषारके समान धूसरवर्ण आकाशको देखा ॥ ४० ॥

क्वचिद्धिमाभ्रधवलंक्वचिद्वर्षत्पयोधरम् ॥ क्वचित्स्थलइवाकाशएवविश्रांतलोकपम् ॥ ४१ ॥ ऊर्ध्वाधोगमनव्यग्रसुरासुरगणंक्वचित् ॥ पूर्वापरोत्तरयाम्यादिक्संचाराकुलंक्वचित् ॥ ४२ ॥ अपियोजनलक्षाणिक्वचिद्दुष्प्रापभूधरम् ॥ अविनाशितमःपूर्णंदृषद्गर्भोपमंक्वचित् ॥ ४३ ॥ अविनाशिबृहत्तेजःक्वचिदर्कानलोपमम् ॥ हिमानीजठराशीतंक्वचिच्चंद्रादिसद्मसु ॥ ४४ ॥

अर्थ—कहीं बर्फके समान श्वेत, कहीं मेघोंकी वर्षासे संयुक्त, कहीं पृथिवीके समान आकाशमेंही लोकपाल विश्राम कर रहेहैं ॥ ४१ ॥ कहीं नीचे ऊपर आनेजानेमें सुर और असुरोंका समूह व्यग्र है, और कहीं पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाओंके संचारसे व्याकुल है ॥ ४२ ॥ कहीं लोकालोक पर्वतके (चारोंओर) लाखों योजनतक पर्वतोंकी दुर्लभता है, और कहीं अविनाशी अन्धकारसे पूर्ण पाषाणोंसे उसका मध्यभाग पूर्ण होरहा है ॥ ४३ ॥ कहीं सूर्य्य और अग्निके समान अविनाशी महान् तेजसे पूर्ण है कहीं चन्द्रआदि लोकोंमें हिम (बर्फ) के समूहके मध्यभागके समान अति शीतलतायुक्त आकाशको दोनोंने देखा ॥ ४४ ॥

क्वचिद्दृत्पुरोवृत्तकल्पवृक्षलतावनम् ॥ क्वचिद्दैत्यहतोत्तुंगप्रपतद्देवपत्तनम् ॥ ४५ ॥ वैमानिकनिपातेन वन्हिलेखांकितंक्वचित् ॥ क्वचित्केतुशतोत्पातमिथःसंघट्टपट्टितम् ॥ ४६ ॥ क्वचिच्छुभग्रहगणग्रगृहीताग्र्यमंडलम् ॥ क्वचिद्रात्रितमोव्याप्तंक्वचिद्दिवसभास्वरम् ॥ ४७ ॥ क्वचिद्गर्जदंभोदंक्वचिन्मूकामलांबुदम् ॥ वातावकीर्णशुक्लाभ्रखंडपुष्पोत्तरंक्वचित् ॥ ४८ ॥

अर्थ—कहीं दैत्योंके भयसे देवताओंके अनुचर लोग कल्पवृक्ष, तथा लता बन आदिको लिये जा रहे हैं कहीं दैत्योंसे नष्ट कियेहुये बडे २ देवताओंके उच्च नगर गिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ कहीं २ देवताओंके विमानोंके गिरनेसे उनके तेजोंसे अग्निकी रेखासे चिन्हितके समान होगया है, कहीं सैकडों केतुओंके उत्पातोंसे परस्परके संघटसे वस्त्रके समान घनीभूत होगया है ॥ ४६ ॥ कहीं शुभग्रह गणोंसे ऊर्ध्वभाग घिराहै, कहीं रात्रिके अन्धकारसे अन्धकारमय तथा कहीं दिनके प्रकाशसे प्रकाशमान ॥ ४७ ॥ कहीं मेघोंकी गर्जनासे व्याप्त कहीं शब्दरहित निर्मल मेघसेयुक्त कहीं वायुसे छिन्नभिन्न किये मेघोंके श्वेत खण्डरूपी ताराओंसे व्याप्त गगन मंडलको देखा ॥ ४८ ॥

क्वचिदत्यंतनिःशून्यमवदातमनंतरम् ॥ आनंदमृदुशांताच्छंज्ञस्येवहृदयंततम् ॥ ४९ ॥ शुक्रवाहनभेकौघैःक्वचिद्गलरुतारवम् ॥ शून्यतावारिवलितंक्षेत्रमाकाशवासिनाम् ॥ ५० ॥ मयूरहेमचूडादिपक्षिभिःक्वचिदावृतम् ॥ विद्याधरीणांदेवीनांवाहनैर्विहितास्पदैः ॥ ५१ ॥ क्वचिदभ्रांतरोन्नृत्यद्गुहमायूरमंडलम् ॥ क्वचिदग्निशुकैःश्यामंशाद्वलानामिवस्थलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कहीं दृश्यपदार्थोंसे सर्वथा शून्य, अज्ञानरूपी मेघोंके विघ्नोंसे वर्जित तथा कहीं आनन्दता मृदुता और शान्ततासे ज्ञानी पुरुषके हृदयके समान व्याप्त ॥ ४९ ॥ कहीं आकाशचारी शुक्रादिके वाहनरूपी मण्डूकोंके गलके शब्दोंसे शब्दायमान, कहीं आकाश निवासिओंके क्षेत्र (खेत) के समान शून्यतामय जलसे पूर्ण ॥५०॥ कहीं विद्याधरी देविओंके वाहनोंसे सुवर्णमय चोटीवाले मोर आदि पक्षियोंसे व्याप्त ॥ ५१ ॥ कहीं मेघोंके मध्यमें स्कन्द और मयूरके मण्डलोंके नृत्यसे पूर्ण, कहीं अग्निके वाहन शुकोंसे घासोंके स्थलके समान हरित वर्ण आकाशको दोनोंने देखा ॥५२॥

क्वचित्प्रेतेशमहिषमहिम्नावामनांबुदम् ॥ क्वचिदश्वैस्तृणग्रामशंकाग्रस्तासितांबुदम् ॥ ५३ ॥ क्वचिद्देवपुरव्याप्तंक्वचिद्दैत्यपुरान्वितम् ॥ अन्योन्याप्राप्यनगरंनगरंध्रकरानिलम् ॥ ५४ ॥ क्वचित्कुलाचलाकारनृत्यद्भैरवभासुरम् ॥ क्वचित्सपक्षशैलेंद्रसमनृत्यद्विनायकम् ॥ ५५॥ क्वचिद्घर्घरवातौघपक्षप्रोड्डिनपर्वतम् ॥ क्वचिद्गंधर्वनगरसुरस्त्रीवृंदबंधुरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—कहीं यमके महिष (भैंसे) से कृष्णमेघसे संयुक्त, और कहीं अश्वोंकेद्वारा तृण राशियोंके भ्रमसे व्याप्त कृष्णमेघ सहित ॥ ५३ ॥ कहीं देवताओंके नगरों और कहीं दैत्योंके नगरोंसे पूर्ण, मध्य २ भागोंमें पर्वतोंमें छिद्र करनेमें समर्थ बलवान् वायुसे परस्पर प्राप्त होनेके अशक्य नगरोंसे व्याप्त ॥ ५४ ॥ कहीं महेन्द्रादि कुलपर्वतोंके आकारके समान भैरवोंके नृत्यसे प्रकाशमान, और कहीं पक्षसहित बडे पर्वतों सदृश आकारवाले विनायकोंके नृत्योंसे पूर्ण ॥ ५५ ॥ कहीं वायुके समूहके घर्घर शब्दके सदृश पक्षोंसे पर्वत पूर्ण कहीं गन्धर्वके नगरोंसे तथा देवताओंकी स्त्रियोंके समूहोंसे रमणीय आकाशको देखा ॥ ५६ ॥

क्वचिद्वहद्गिरिध्वस्तवृक्षलक्षोच्छ्रितांबुदम् ॥ क्वचिन्मायाकृताकाशनलिनीजलशीतलम् ॥ ५७ ॥ क्वचिदिंदुकराकृष्टिशीतलाल्हादमारुतम् ॥ क्वचित्तप्तानिलादग्धद्रुमपर्वतवारिदम् ॥५८॥ क्वचिदत्यंतसंशांतवातादेकांतनिर्ध्वनि ॥ क्वचित्पर्वततुल्याभ्रशिखाकूटशतोदयम् ॥५९॥ क्वचित्प्रावृड्भवोन्मत्तघनाभ्ररवघर्घरम् ॥ क्वचित्सुरासुरगणप्रवृत्तरणदुर्गमम् ॥ ६० ॥

अर्थ—कहीं उडतेहुये पर्वतोंनें लक्ष वृक्षोंसे ऊंचे छत्ररूपी मेघोंको चूर्ण करदियाहै, कहीं मायाकृत आकाशमें कमलिनीसंयुक्त शीतल जलसे पूर्ण ॥ ५७ ॥ कहीं चन्द्रमाके किरणोंसे आकर्षित (खिंचेहुये) आनन्ददायक शी-

तल वायुसे संयुक्त और कहीं संतप्त वायुसे वृक्षपर्वत और मेघतक भस्मकर दिये गयेहैं ॥ ५८ ॥ कहीं वायुके अत्यन्त शान्त होनेसे सर्वथा शब्दरहित और कहीं पर्वताकार मेघोंकी चोटियोंके सेकडों समूहोंके उदयसे संयुक्त ॥ ५९ ॥ कहीं वर्षाकालमें उत्पन्न उन्मत्तके तुल्य सघन मेघोंके घर्घर शब्द सहित और कहीं अतिदुर्गम और भयंकर सुरासुर संग्रामसे शोभित ॥ ६० ॥

क्वचिद्व्योमाब्जिनीहंसीस्वनाहूताब्जवाहनम् ॥ क्वचिन्मंदाकिनीतीरनलिनीलुंठकानिलम् ॥ ६१ ॥ स्व शरीरेणगंगादिसरितांसन्निधानतः ॥ प्रोड्डीनमत्स्यमकरकुलीरांबुजकूर्मकम् ॥ ६२ ॥ पातालगार्कज नितभूच्छायाकाकचोपलैः ॥ क्वचित्क्वचिन्मंडलेषुग्रस्तचंद्रार्कमंडलम् ॥ ६३ ॥ क्वचित्सर्गानिलाधूतमा याकुसुमकाननम् ॥ पतत्पुष्पहिमासारत्रस्तवैमानिकांगनम् ॥ ६४ ॥ उदुंबरोदरमशकक्रमभ्रमज्जगत्त्रयां तरगतभूतसंचयम् ॥ विलंघ्यतद्वरललनेखमुच्चकैर्महीतलंपुनरपिगंतुमुद्यते ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गगनवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—कहीं आकाशकी कमल मालासे संयुक्त लतापर विराजमान हंसीके शब्दसे शिवजीका आल्हान होर हाहै और आकाश गंगाके तटपर कमलिनीके सौगन्ध्य सहित वायु वह रहाहै ॥ ६१ ॥ कहीं गंगा आदि नदियोंकी समीपतासे देवताओंका शरीर धारण करके मत्स्य, मकर, कुलीर (केंकडा) कछुआ आदि उडरहेहैं ॥६२॥ कहीं २ जब सूर्य इस पृथ्वीके अधोभागमें होजातेहैं, अथवा चन्द्रमासे व्यवहित पश्चात् भागमें जब प्राप्त होजातेहैं तब चन्द्र और सूर्यमण्डलमें ग्रहण दिखाई पडरहाहै ॥६३॥ कहीं २ देवताओंकी मायासे रचित वायुद्वारा पुष्पोंकी बनवाटिकाये अत्यन्त कंपादीगई हैं जिनसे पुष्पोंके गिरनेसे देवताओंकी स्त्रिया भयभीत होरहीं हैं ॥ ६४ ॥ इसप्रकार उदुम्बर (गुलर) के भीतर मच्छरके समान तीन लोकके प्राणियोंके समूह जिसमें भ्रमणकररहेहैं ऐसे विशाल आकाशको दोनों श्रेष्ठ ललनाओं (भगवती लीलावती) ने उल्लंघन करके पुनः महीतलमें आनेको उद्यतहुई ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गगनवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

सातोंसमुद्र और द्वीपोंसे घिरा हुआ, और ब्रह्माण्डरूपी आवरणोंसे युक्त अपूर्व लोक उन दोनोंने देखा इस विषयका बर्णन इस २५ वें सर्गमें किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नभःस्थलाद्गिरिग्रामंगच्छंत्यौक्वचिद्देवते ॥ ज्ञप्तिचित्तस्थितंभूमितलंददृशतुः स्त्रियौ ॥ १ ॥ ब्रह्मांडनरहृत्पद्मंदिगष्टकदलंबृहत् ॥ गिरिकेसरसंबाधंस्वामोदभरसुंदरम् ॥ २ ॥ सरित्केसरिकानालमध्येवश्यायबिंदुकम् ॥ शर्वरीभ्रमरीभ्रांतंभूतौघमशकाकुलम् ॥ ३ ॥ अंतर्गुणगणाकीर्णसुरंध्रैःसुषिरैर्वृतम् ॥ उह्यमानपयःपूरैर्दिवसालोककांतिमत् ॥ ४ ॥

अर्थ—आकाशमण्डलसे गिरिग्रामको जाती हुई उन दोनों स्त्रियोंने ज्ञप्तिके चित्तमें स्थित कोई अपूर्व महीतल देखा ॥ १ ॥ वह महीतल ब्रह्माण्डरूपी पुरुषका हृदयस्थकमल अष्टदिशारूपी दलोंसे महान् पर्वतरूपी केसरोंसे व्याप्त उत्तम सुगन्धके समूहसे सुन्दर ॥ २ ॥ अनेक नदीरूपी केसरोंके अन्यशाखा व नालसहित मध्यभाग हिमकणरूपी पुष्परसवाला, रात्रिरूपी भ्रमरीसे भ्रान्तिजनक और प्राणियोंके समूहरूपी मशको (मच्छरों) से व्याप्त ॥ ३ ॥ नालके अन्तर्गत गुणों (सूतो) पक्षमें भोग्यवस्तुओंके गुणोंसे व्याप्त उत्तम पातालादि अपरिमित जलके समूहोंसहित छिद्रोंसेयुक्त और दिनके प्रकाशसे शोभायमान था ॥ ४ ॥

रसार्द्रेखेभ्रमद्वंसंरात्रिसंकोचभाजनम् ॥ पातालपंकनिर्मग्ननागनाथमृणालकम् ॥ ५ ॥ कदाचिदास्य दांभोधिकंपकंपितदिग्दलम् ॥ अधोनालगतानंतदैत्यदानवकंटकम् ॥ ६ ॥ असुरस्त्रैणवल्लर्यासंभोग सुकुमारया ॥ प्राप्यभूभृन्महाबीजहृदयंभूतबीजया ॥ ७ ॥ जंबूद्वीपइतिख्यातांविपुलांतत्रकर्णिकाम् ॥ सरित्केसरिकानालांनगरग्रामकेसराम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पोंके रसोंके वा शृंगारादि सब रसोंसे आर्द्र, आकाशमें सूर्य्यरूपी हंसके भ्रमणसहित, रात्रिरूपी संकोचसे सेवित पातालरूपी पंकमें निमग्न शेषभगवान्‌रूपी कमलदण्डसे शोभायमान ॥ ५ ॥ कभी२ पृथिवीका स्थान भूत जो महासमुद्र उसके कंपसे अष्टदिशारूपी दल कंपित होरहाहै, और नाल (पातालरूपी कमलदण्ड) के नीचेके भागमें दैत्य और दानवरूपी कण्टक सहित ॥ ६ ॥ तथा नालके नीचेके भागमें पातालके प्राणियोंके बीजरूपसें भोगमें सुकुमार असुरोंकी स्त्रियोंके समूहरूपी कमलकी दण्डीकी लतासे प्राप्त होनेसे योग्य महाबीजरूपी मेरु आदि पर्वतोंके जीवनभूत हृदयके समान (वह महीतल) था ॥ ७ ॥ उस महीतलरूपी कमलके ऊपर, नदीरूपी नालसहित, नगर ग्रामरूपी केसरोंसे संयुक्त ॥ ८ ॥

कुलशैलेश्वरोत्तुंगबीजसप्तकसुंदरीम् ॥ मध्यस्थोच्चमहामेरुबीजाक्रांतनभस्थलीम् ॥ ९ ॥ सरःप्रालेय कणिकांवनजंगलधूलिकाम् ॥ स्थलेष्वामंडलांतस्थजनजालालिमंडलाम् ॥ १० ॥ तांयोजनशताकारैः प्रतिराकंप्रबोधिभिः ॥ सागरैर्भ्रमरैर्व्याप्तांदिक्चतुष्टयशालिभिः ॥११॥ दिग्दलाष्टकविश्रांतससुरांभोधिषट्पदाम् ॥ भ्रातृभिर्नवभिर्भूपैर्नवधापरिकल्पिताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सातो ऊंचे कुल पर्वतरूपी बीजोंसे सुन्दर, मध्य मार्गमें महामेरुरूपी बीजसे आकाशमंडलको घेरनेवाली ॥ ९ ॥ तडागरूपी हिम बिन्दु सहित, तथा बन जंगलरूपी धूलिवाली, और जिसके सम्पूर्ण भागोंमें चारों ओरसे प्राणियोंके जालरूपी भ्रमरोंका मण्डल भ्रमण कर रहाहै ऐसी जम्बूद्वीप नामवाली कर्णिका दोनोंने देखा ॥ १० ॥ शतयोजन आकारवाले, प्रत्येक पूर्णिमाको उमडनेवाले चारों दिशाओंमें शोभायमान समुद्ररूपी भ्रमरोंसे व्याप्त ॥ ११ ॥ आठों दिक्पाल देवता और समुद्ररूपी भ्रमरोंसे युक्त भद्र अश्व केतुमाल आदि नव भ्राताओंसे नव प्रकारसे विभागोंमें विभक्त कर्णिकाको देखा ॥ १२ ॥

लक्षयोजनविस्तीर्णामाकीर्णांचरजोत्करैः ॥ नानाजनपदव्यूहस्थिरावश्यायसीकराम् ॥ १३ ॥ द्वीपात्तु द्विगुणंमानंलवणार्णवलेखया ॥ दधत्यावलितांबाह्येप्रकोष्ठमिवकंबुना ॥ १४ ॥ ततोपिद्विगुणंदेहंदधत्यावलयाकृतिम् ॥ जगद्भूतलताव्याप्तांशाकाख्यदीपलेखया ॥ १५ ॥ ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्याचवेष्टिताम् ॥ प्रत्यग्रक्षीरपूर्णाब्धिलेखयास्वादुशीतया ॥ १६ ॥

अर्थ—लाखयोजन विस्तारवाली धूलिसे व्याप्त, नानाप्रकारके जनपदके समूहोंसे स्थिर हिम कणवाली उस कर्णिका (जम्बुद्वीप नामक कर्णिका) देखा ॥ १३ ॥ उस द्वीपसे द्विगुण परिमाण वाले क्षारसमुद्रकी लेखा (रेखा) से ऐसे घिरी हुई जैसे शंखके कंकणसे हस्तकी कलाई ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण आकारको धारण करनेवाली, पद्मकी लताके समान शाक नामक द्वीपकी लेखासे घिरी हुईथी ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर इस शाक द्वीपसे दूने आकारको धारण करनेवाली शीतल स्वादयुक्त क्षीरसमुद्रकी रेखासे वह व्याप्त थी ॥ १६ ॥

ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्योपवेष्टिताम् ॥ नानाजनालंकृतयाकुशाख्यद्वीपलेखया ॥ १७ ॥ ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्याचवेष्टिताम् ॥ दध्यब्धिलेखयानित्यसंतर्पितसुरौघया ॥ १८ ॥ ततःक्रौंचाभिधद्वीपलेखयैवंप्रमाणया ॥ वेष्टितांखातरचयानवांनृपपुरीमिव ॥१९॥ ततोपिचघृतांभोधिलेखयैवंप्रमाणया ॥ ततोपिशाल्मलीद्वीपलेखयामलपूर्णया ॥ २० ॥ ततःसुरामहांभोधिलेखयापुष्पशुभ्रया ॥ शेषस्यदेहलतयाहरिमूर्त्तिमिवावृताम् ॥२१॥ ततोगोमेदकद्वीपलेखयैवंप्रमाणया ॥ इक्ष्वब्धिलेखयाप्येवंहिमवत्सानुशुद्धया ॥ २२ ॥ ततोपिपुष्करद्वीपलेखयाद्विगुणस्थया ॥ अंतेस्वादूदकांभोधिलेखयैवंप्रमाणया ॥२३

अर्थ—इसके अनन्तर इस (क्षीरसमुद्र) सेभी दूने आकारवाली, नानाप्रकारके जनपदोंसे शोभित कुशद्वीपकी रेखासे घिरी हुईथी ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर इस कुशद्वीपसेभी द्विगुण आकारको धारण करनेवाली और देवताओंके समूहोंको तृप्त करनेवाली दधिसमुद्रकी रेखासे घिरीथी ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् इस दधिसमुद्रसेभी दूने परिमाणवाली क्रौंच द्वीपरूपी परिखासे ऐसे घिरीथी जैसे राजाकी नूतन नगरी ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण घृतसमुद्रकी रेखासे घिरी हुई, और उसके अनन्तर इससेभी दूने आकारवाली निर्मल शाल्मलीद्वीपकी रेखासे वह कर्णिका घिरीथी ॥ २० ॥ इसके पश्चात् पुष्पके समान श्वेत सुरा (मदिरा) के महासमुद्रकी रेखासे ऐसे घिरीथी जैसे शेषकी शरीररूपी लतासे कृष्णभगवान्‌की मूर्ति ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण परिमाणवाले गोमेदक नाम मणि विशेष प्रधान प्लक्षद्वीपसे आवृत इसके पश्चात् हिमवान्‌के शिखरके समान शुद्ध पूर्वद्वीपसे द्विगुण प्रमाणवाली इक्षु (ईख) के समुद्रकी रेखासे आवृतथी ॥ २२ ॥ इसके आगे पूर्वसमुद्रसे दूने प्रमाणवाले पुष्करद्वीपकी

रेखासे घिरीथी, और उसके अनन्तर पूर्व द्वीपसे द्विगुण प्रमाणवाली अन्तमें जलके समुद्रकी रेखासे घिरी हुई जम्बूद्वीप नाम कर्णिकाको उन दोनोंने देखा ॥ २३ ॥

ततोदशगुणेनाथपातालतलगामिना ॥ निखातवलयेनोच्चैःश्वभ्रसंभाररूपिणा ॥ २४ ॥ पातालगामिमार्गेणवलितांभयदात्मना ॥ एतस्मात्खलुसर्वस्मात्ततोदशगुणोच्चया ॥ २५ ॥ आव्योमस्तुचतुर्दिक्षुश्वभ्रसंभारभीषया ॥ अर्द्धेम्लानतमोरूपलग्ननीलोत्पलस्रजा ॥ २६ ॥ नानामाणिक्यशिखरकल्हारकुमुदाब्जया ॥ लोकालोकाचलोत्तालविपुलोद्दाममालया ॥ २७ ॥ वलितांत्रिजगल्लक्ष्मीधम्मिल्लवलनामिव ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ २८ ॥ अज्ञातभूतसंचारनाम्नारण्येनमालिताम् ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ २९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर इस अन्तिम जल समुद्रसेभी १० दशगुण अधिक परिमाणवाले, पातालगामी गर्त (गढे) के समूहरूपी महाभयदायी पातालगामी मार्गवाले बडेभारी वलयाकार निम्न प्रदेशसे वह कालिका घिरी है, और इसके आगे इन सबसे दशगुण अधिक चारों ओर आकाश पर्यन्त ऊंची पूर्वकथित गर्त समूहसे भयंकर और सूर्यके दूसरे भागमें म्लानिको प्राप्त, नीलकमलकी माला सहित नानाप्रकारके माणीक्यके शिखरके तडागोंपर उत्पन्न कुमुदरूपी कमलकी मालावाली, लोकालोक पर्वत विशालतालरूपी सूत्रकी मालासे वह त्रिलोककी लक्ष्मीरूप कर्णिका ऐसे घिरीहै जैसे मालासे सघन केश, और इसके आगे इस सबसे दशगुण अधिक अज्ञात जीव संचार नाम जंगलसे घिरीहै इसके आगे इससेभी दशगुण अधिक आकाशके समान दशोदिशामें अपरिमित जलसे घिरीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

नभसैवचतुर्दिक्कंव्याप्तामतुलवारिणा ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३० ॥ मेर्वादिद्रावणोत्केनज्वालाजालेनमालिताम् ॥ एतस्मादथसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३१ ॥ मेर्वाद्यचलसंघातंनयतातृणपांसुवत् ॥ वहताद्रींद्रविस्फोटकारिणाजवहारिणा ॥ ३२ ॥ निःशून्यत्वादशब्देनमरुतापरितोवृतम् ॥ एतस्मादथसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३३ ॥ परितोवलितंव्योम्नानिःशून्येनैकरूपिणा ॥ अथयोजनकोटीनांशतेनघनरूपिणा ॥ व्याप्तंब्रह्मांडकुड्येनहैमेनापिद्विपर्वणा ॥ ३४ ॥ इतिजलधिमहाद्रिलोकपालत्रिदशपुरांबरभूतलैःपरीतम् ॥ जगदुदरमवेक्ष्यमानुषीद्रागभुविनिजमंदिरकोटरंददर्श ॥३५

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—और इसके आगे इससेभी दशगुण अधिक मेरुआदि पर्वतोंकी द्रवीभूत (जलमय) करनेमें अति अभिलाषी प्रलयकालकी ज्वालासे घिरीहै ॥३०॥३१॥ इसके आगे इससबसे दशगुण अधिक,मेरू आदि पर्वतोंकोभी तृणया धूलिके समान करनेवाले, बडे २ पर्वतोंको धारण करनेवाले, तथा अन्यभूतोंके वेगोंको हरनेवाले, शब्दरहित होनेसे शून्यके समान वायु ब्रह्माण्ड घिराहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इससे आगे इन पुर्वोक्त सबसे दशगुण अधिक शून्यरूप आकाशसे चारों ओर ब्रह्माण्ड घिराहै ॥ ३४ ॥ इसके आगे १०० सौ कोटि योजन परिमाणवाली, अति सघन सुवर्णकी दोहरी ब्रह्माण्डकी दीवालसे व्याप्तहै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार समुद्र, बडे २ महान् पर्वत लोकपाल तथा देवताओंके नगर और उत्तम २ भूमण्डलोंसे घिराहुआ जगत्का उदर (मध्यभाग) देखकर मानुषी लीलाने शीघ्रही पृथिवीपर अपने मन्दिरका आधारभूत गिरिग्रामके आकाशको देखा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे भूलोकवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अपने घरमें अपने मनुष्योंको तथा उनके विलापको देखकर उनके ऊपर लीलाका अनुग्रह तथा जगत्के तत्त्वका वर्णन इस २६ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितेवरवर्णिन्यौततोब्रह्मांडमंडलात् ॥ निर्गत्यान्यदनुप्राप्तेयत्रतद्ब्राह्मणास्पदम् ॥ १ ॥ ततोददृशतुःसत्रस्वमेवंसिद्धयोषितौ ॥ अदृश्येएवलोकस्यमंडपंब्राह्मणास्पदम् ॥ २ ॥ चिंता

विधुरदासीकंबाष्पक्लिन्नांगनामुखम् ॥ विध्वस्तप्रायवदनंशीर्णपर्णांबुजोपमम् ॥ ३ ॥ नष्टोत्सवपुरप्राय मगस्त्यात्तमिवार्णवम् ॥ ग्रीष्मदग्धमिवोद्यानंविद्युद्दग्धमिवद्रुमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसप्रकार वे दोनों श्रेष्ठ अंगना पद्म भूपालका आधार पूर्वोक्त ब्रह्माण्डमण्डलस निकलके दूसरे उस ब्रह्माण्डका स्थान था ॥ १ ॥ इसके अनन्तर लीला और भगवतीने सब लोकसे अदृश्य होके अपने उस गृहको तथा उस मण्डपमें प्राप्त हुई जहांपर जहां उस ब्राह्मणका स्थान था ॥ २ ॥ चिन्तासे व्याकुल दासी आदिको धारण करनेवाला, आसुओंकी धारासे स्त्रियोंका मुख जिसमें व्याप्त होरहा है, शुष्क पर्ण कमलके समान स्त्रियोंके मलीन मुखको धारण करनेवाला ॥ ३ ॥ उत्सवरहित नगरके सदृश, अगस्त्यऋषिसे ग्रस्तसमुद्रके समान, ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वाटिकाके सदृश, बिजुलीसे जलायेहुये वृक्षके समान उस गृहको देखा ॥ ४ ॥

वातच्छिन्नमिवांभोदंहिमदग्धमिवांबुजम् ॥ अल्पस्नेहदशंदीपमिवालोकनभेदनम् ॥५॥ आसन्नमृत्युक रुणाकुलवक्त्रकांतिसंशीर्णजीर्णतरुपर्णवनोपमानम् ॥ वृष्टिव्यपायपरिधूसरदेशरूक्षंजातंगृहेश्वरवियोग हतंगृहंतत् ॥६॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसानिर्मलज्ञानचिराभ्यासेनसुंदरी ॥ संपन्नासत्यसंकल्पासत्य कामाचदेववत् ॥७॥ चिंतयामासममेतेदेवींचेमांस्वबंधवः ॥ पश्यंतुतावत्सामान्यललनारूपधारणीम् ॥८

अर्थ—वायुसे छिन्नभिन्न कियेहुये मेघके सदृश, हिम (पाला) से दग्ध कमलके सदृश, देखनेमें दुःखदायी अल्प तैलवाले दीपकके समान ॥ ५ ॥ शोकसे नष्ट होगई है मुखकी शोभा सहित इसीसे निकट है मृत्यु जिसकी उसके सदृश, तथा शुष्क होगये हैं वृक्ष और पत्र जिसके ऐसे बनके समान, और वृष्टिके अभावसे मलिन तथा सूखे देशके सदृश वह गृह स्वामीके वियोगसे होगया था ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-इसके अनन्तर निर्मल ज्ञानके दीर्घकालके अभ्याससे वह लीला देवताके समान सत्यसंकल्प तथा सत्य कामवाली होगई ॥ ७ ॥ उसने अपने चित्तमें विचार किया कि ये मेरे बन्धुलोग मुझे तथा भगवतीजीको साधारण स्त्रीका रूप धारण किये हुये देखें ॥ ८ ॥

ततोगृहजनस्तत्रसददर्शांगनाद्वयम् ॥ लक्ष्मीगौर्योर्युगमिवसमुद्भासितमंदिरम् ॥ ९ ॥ आपादविविधाम्लानमालावलनसुंदरम् ॥ वसंतलक्ष्म्योर्युगलमिवामोदितकाननम् ॥ १० ॥ सर्वौषधिवनग्रामंपूरयंत्यौरसायनैः ॥ शीतलाल्हादसुखदंचंद्रद्वयमिवोदितम् ॥ ११ ॥ लंबालकलतालोललोचनालिविलोकनैः ॥ किरत्कुवलयोन्मिश्रमालतीकुसुमोत्करान् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस गृहके सम्पूर्ण लोग गृहको प्रकाश करनेवाली दो स्त्रियोंको ऐसे देखा जैसे लक्ष्मी और पार्वतीका जोडा ॥ ९ ॥ वह दोनों स्त्रियोंका युग (जोडा) शिरसे लेके पादपर्यन्त अनेक प्रकारकी नूतन पुष्पोंकी मालासे अति सुन्दर और बसन्तऋतुके शोभाके युग (जोडा) के सदृश वनको सुगन्धित करनेवाला ॥ १० ॥ अपने अमृतमय चन्द्रिकाके रससे सम्पूर्ण ओषधि, बन तथा ग्रामादिको पूर्ण करता हुआ, शीतलता आनन्द तथा सुखको देनेवाले दो चन्द्रमाके समान उदित ॥ ११ ॥ लटकते हुये लम्बे केशोंके निकट चंचल नेत्ररूपी भ्रमरोंसे नीलकमलसे मिश्रित मालती पुष्पोंकी वृष्टि करता हुआ दोनों स्त्रियोंका युग था ॥ १२ ॥

द्रुतहेमरसापूरसरित्सरणहारिणा ॥ देहप्रभाप्रवाहेणकनकीकृतकाननम् ॥ १३ ॥ सहजायावपुर्लक्ष्म्या लीलादोलाविलासिनः ॥ तेएतेचतरंगाढ्यानिजलावण्यवारिधेः ॥ १४ ॥ विलोलबाहुलतिकायुगेनारुणपाणिना ॥ किरन्नवनवंहैमंकल्पवृक्षलतावनम् ॥ १५ ॥ पदैरमृदिताम्लानपुष्पकोमलपल्लवैः ॥ स्थलाब्जदलमालाभैरस्पृशद्भूतलंपुनः ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रवीभूत सुवर्णके रसमय प्रवाहवाली नदीके वेगके समान मनको हरनेहारी शरीरकी दीप्तिसे बनको सुवर्णके समान करनेवाला ॥ १३ ॥ शरीरकी सहज (स्वभावसिद्ध) शोभारूपी लक्ष्मीके क्रीडार्थ बनाये हुये दोला (झूला) के ऊपर विलास करनेवाले अपने सौन्दर्य्यरूपी समुद्रकी श्रेष्ठ तरंगके समान प्रतीयमान ॥ १४ ॥ चंचल बाहुरूपी लता तथा रक्तवर्ण हस्तकमलके युग (जोडे) से नूतन२ सुवर्णमय कल्पलता बनको निर्माण करतेहुये ॥ १५ ॥ स्वच्छ, नूतन और कोमल पुष्प तथा पल्लवकेसमान, तथा स्थल कमलके सदृश चरणोंसे पुनः पृथ्वीतलको स्पर्श करनेवाला वह युग था ॥ १६ ॥

तालीतमालखंडानांशुष्काणांशुचिशोचिषाम् ॥ आलोकनामृतासेकैर्जनयद्बालपल्लवान् ॥ १७ ॥ नमोस्तुवनदेवीभ्यामित्युक्त्वाकुसुमांजलिम् ॥ तत्याजज्येष्ठशर्माथसार्द्धंगृहजनेनसः ॥ १८ ॥ पपात पादयोर्गेहेतयोर्वैकुसुमांजलिः ॥ प्रालेयसीकरासारःपद्मिन्याइवपद्मयोः ॥ १९ ॥ ज्येष्ठशर्मादयऊचुः ॥ जयतंवनदेव्यौनोदुःखनाशार्थमागते ॥ प्रायःपरपरित्राणमेवकर्मनिजंसताम् ॥ २० ॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतुके कारण पीतवर्ण तथा सूखेहुये तालीतमाल खण्डोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे नूतन पल्लव सहित करनेवाला (वह स्त्रियोंका जोडा) था ॥ १७ ॥ उनको देखकर ज्येष्ठशर्म्मा (मृत ब्राह्मणका पुत्र) सब गृहके लोगोंके साथ, तुम दोनों वन देवियोंको नमस्कारहै, ऐसा कहके उनके ऊपर पुष्पकी वृष्टि की ॥ १८ ॥ उन दोनोंके चरणोंके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि ऐसे गिरी जैसे कमलिनीके ऊपर हिमजलके कण ॥ १९ ॥ ज्येष्ठशर्म्मादि बोले–हे वनकी देवियो ! आपकी जयहो, आप लोग हमारे कल्याणके अर्थ यहां प्राप्त हुई हैं, क्योंकि दूसरोंकी रक्षा करना यही एक सज्जनोंका निजकार्य्य है ॥ २० ॥

इतितद्वचनांतेतेदेव्यावूचतुरादरात् ॥ अख्यातदुःखंयेनायंलक्ष्यतेदुःखितोजनः ॥ २१ ॥ ज्येष्ठशर्मादयस्तेतेदेव्यौप्रतियथाक्रमम् ॥ निजंतद्दुःखमाचख्युर्देपतिव्यसनात्मकम् ॥ २२ ॥ ज्येष्ठशर्मादयऊचुः ॥ देव्यावभवतांस्निग्धाविहब्राह्मणदंपती ॥ सर्वातिथीकुलकरौस्तंभभूतौद्विजस्थितेः ॥ २३ ॥ तावद्यगृहमुत्सृज्यसपुत्रपशुबांधवम् ॥ स्वर्गगतौनःपितरौतेनशून्यंजगत्त्रयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उनके वचनके अन्तमें वे दोनों देवी बडे आदरसे बोली कि तुम उस दुःखको कहो जिससे कि ये सब लोग दुःखी भान होतेहैं ॥ २१ ॥ ज्येष्ठशर्म्मा आदि उन दोनो देवियोंसे यथाक्रम अपने उस दुःखको कहा जो ब्राह्मण और ब्राह्मणीके मृत्युसे हुआथा ॥ २२ ॥ ज्येष्ठशर्मादि बोले–हे देवियो इस स्थानमें, सबका आतिथ्य (महमानी) करनेवाले, कुलको बढाने हारे, और ब्राह्मणोंकी मर्य्यादाके स्तम्भके सदृश ब्राह्मण और ब्राह्मण हुयेथे ॥ २३ ॥ वे हमारे मातापिता दोनों पुत्र, पशु गृह, और बन्धु आदिको छोडके आज स्वर्गको चलेगये इससे हमको तीनों लोक शून्य भान होताहै ॥ २४ ॥

पक्षिणोगृहमारुह्यविक्षिपंतःप्रतिक्षणम् ॥ देहंशून्येमृतंभक्त्याशोचंतिमधुरैःस्वरैः ॥ २५ ॥ गुहागुरुगुरारावप्रलापलपनाकुलः ॥ सरित्स्थूलाश्रुधाराभिःपरिरोदितिपर्वतः ॥ २६ ॥ निर्जराक्रंदकारिण्योमुक्तांबरपयोधराः ॥ तप्तनिःश्वासविध्वस्ताःपरंकाश्यमिताद्दिशः ॥ २७ ॥ क्षतविक्षतसर्वांगःकरुणाक्रंदकर्कशः ॥ उपवासरतोग्रामोदीनोमृतिपरःस्थितः ॥ २८ ॥

अर्थ—पूर्ण जन जगत्को पूर्णरूप देखताहै, विषयी विषयीमय, और दुखी दुःखमय अपने चित्तके समान देखताहै, इस न्यायके अनुसार कहतेहैं देखिये ये पक्षी लोग इस गृहके ऊपर चढके अपने शरीरको फडफडाते हुये मृत जीवकी भक्तिसे मधुरस्वरसे शोच रहे हैं ॥ २५ ॥ पर्वतकी गुहा ये गुरगुर शब्दोंसे व्याकुल होके विलाप कर रही हैं, तथा पर्वतभी नदीरूप स्थूल धाराओंसे रो रहेहैं ॥ २६ ॥ निरन्तर विलाप करनेवाली, आकाश वा वस्त्रको त्याग हुये, उष्णश्वास लेले नष्टके समान सम्पूर्ण दिशा अति कृशताको प्राप्त होगई हैं ॥ २७ ॥ भूमिपर बार २ गिरनेसे जिसके अंग ठोर २ से कटगये हैं ऐसे करुणासे रोदन करनेवाले, और उपवास करते २ मरणके अभिमुख सब ग्रामके लोग प्राप्त हैं ॥ २८ ॥

दिवसंप्रतिवृक्षाणामवश्यायाश्रुबिंदवः ॥ गुच्छलोचनकोशेभ्यस्तापोष्णानिपतंत्यधः ॥ २९ ॥ प्रशांतजनसंचारारथ्याक्षारविधूसरः ॥ विधवाविगतानंदासंशून्यहृदयास्थिता ॥ ३० ॥ कोकिलालिप्रलापिन्योवृष्टिबाष्पहतालताः ॥ उष्णोष्णश्वसनादेहंघ्नंतिपल्लवपाणिभिः ॥ ३१ ॥ आत्मानंशतधाकर्तुंवृहच्छ्वभ्रेशिलातले ॥ निर्झराःप्रपतंत्येतेतापतप्तशरीरकाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वृक्षोंसे पुष्पोंके गुच्छारूपी नेत्रोंसे शोकसे अति उष्ण कुहिरारूपी आसुओंकी बून्दे प्रतिदिन नीचे गिर रही हैं ॥ २९ ॥ देखिये मार्ग मनुष्योंके संचारसे रहित, धूलिसे मलिन विधवाके समान आनन्दसे वर्जित शून्यहृदयके समान स्थितहै ॥ ३० ॥ लतायें कोइल तथा भ्रमरोंके द्वारा विलाप करते हुये, वृष्टिरूप आसुओंसे नष्टके सदृश अति उष्णश्वास लेतीहुई पल्लवरूपी हाथोंसे अपनी शरीरोंको हनन कर रही हैं ॥ ३१ ॥ शोकरूपी अग्निसे सन्तप्त शरीर जलके स्रोतगर्त (गढे) में स्थित शिलाओंपर अपने शरीरोंको सैकडों प्रकारसे चूर्ण करनेके लिये गिर रहे हैं ॥ ३२ ॥

निःशंकयागतश्रीकामृकाविलुलिताशयाः ॥ अंधेनतमसापूर्णागृहागहनतांगताः ॥ ३३ ॥ उद्यानपुष्पखंडेभ्योरुदद्भ्योभ्रमरारवैः ॥ पूतिगंधोविनिर्यातिस्वामोदापरनामकः ॥ ३४ ॥ चैत्रद्रुमविलासिन्योविरसाःप्रतिवासरम् ॥ लताःकृशाविलीयंतेसंकुचद्गुच्छलोचनाः ॥ ३५ ॥ प्रक्षेप्तुमंबुधौदेहंप्रवृत्तागंतुमाकुलाः ॥ कुल्याःकलकलालोलंदोलयंत्यस्तनुंभुवि ॥ ३६ ॥

अर्थ—सर्वथा हर्षसे शून्य, सब प्रकारकी शोभासे वर्जित भीरसे व्याकुल, महान्धकारसे पूर्णगृह वनके समान होगयेहैं ॥ ३३ ॥ पुष्पोंकी वाटिका जो भ्रमरोंके शब्दसे रूदनकर रहीं हैं उनसेभी उत्तम सुगन्धके स्थानमें दुर्गन्ध निकल रहाहै ॥ ३४ ॥ कुबेरकी वाटिकाओंमें विलास करनेके समान स्वभावयुक्त लता प्रतिदिन विरस होतीहुई अपने गुच्छरूपी नेत्रोंको संकुचित करतीहुई कृश होके नष्ट होरहीहैं ॥ ३५ ॥ नदियोंने कलकल शब्द करके अपने देहोंको भूमिपर कंपातीहुई समुद्रमें अपने शरीरोंको फेकनेके लिये गमन करनेको आरम्भ करदियाहै ॥ ३६ ॥

अशंकमशकापातस्पंदमप्यतिचापलम् ॥ कलयंत्यःस्थितावाप्योनिस्पंदानंदमात्मनि ॥ ३७ ॥ गायत्किन्नरगंधर्वविद्याधरसुरांगनम् ॥ नूनमद्य भोजातमस्मत्तातात्भ्यलंकृतम् ॥ ३८ ॥ तद्देव्यौक्रियतांतावदस्माकंशोकनाशनम् ॥ महतांदर्शनंनामनकदाचननिष्फलम् ॥ ३९ ॥ इत्युक्तवंतंसापुत्रंमूर्ध्निपस्पर्शपाणिना ॥ पल्लवेनानतानम्रंमूलग्रंथिमिवाब्जिनी ॥ ४० ॥

अर्थ—पूर्वकालकी चपलताको न धारण करतीहुई वापीगण, इससमय मशकोंके पातसेभीःअशंकित समाधिमें मग्नके समान चेष्टा और गतिसे रहित स्थितहैं ॥ ३७ ॥ जिसमें किन्नर विद्याधर, गन्धर्व और देवताओंकी अंगना ये गान करकर रहींहै ऐसा आकाश (स्वर्ग) इससमय निश्चय करके हमारे माता पितासे शोभित किया गया है ॥ ३८ ॥ इसलिये हे देवियो इस हमारे शोकको नाश कीजिये, क्योंकि महात्माओंका दर्शन कदाचित् निष्फल नहीं होता ॥ ३९ ॥ इसप्रकार कहनेके अनन्तर उस लीलाने झुकके अपने पुत्रके मस्तकको अपने कोमल हस्तोंसे स्पर्श किया जैसे जलके अभाव दशामें नम्रीभूत कमलिनी अपनी मूल ग्रन्थिको ॥ ४० ॥

तस्याःस्पर्शेनतेनासौदुःखदौर्भाग्यसंकटम् ॥ जहौप्रावृड्घनासंगाद्ग्रीष्मतापमिवाचलः ॥ ४१ ॥ सर्वोगृहजनःसोथानयोर्देव्योर्विलोकनात् ॥ लक्ष्मीवान्दुःखनिर्मुक्तोबभूवामृतपोयथा ॥४२॥श्रीरामउवाच॥ तयास्यलीलयामात्रापुत्रस्यज्येष्ठशर्मणः ॥ कस्मान्नदर्शनंदत्तंमोहंतावन्निराकुरु ॥४३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बुद्धःपृथ्व्यादिबोधेनयेनपृथ्व्यादिसंघकः ॥ तस्यपिंडात्मतांधत्तेव्योमैवान्यस्यकेवलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस लीलाके उस स्पर्श (छूने) से उसने अपने दुःख और दौर्भाग्य संकटको ऐसे त्यागदिया जैसे वर्षाकालके मेघके संयोगसे ग्रीष्म ऋतुके सन्तापको पर्वत ॥ ४१ ॥ और सम्पूर्ण गृहके लोगभी उन दोंनो देवियोंको देखनेसे शोभायुक्त तथा दुःखोंसे ऐसे विनिर्मुक्त होगये जैसे अमृतका पीनेवाला ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! जब लीला ज्येष्ठशर्म्माकी पूर्वजन्मकी माताथी तो और सत्यसंकल्पभी होगईथी तो उसी माताकेही स्वरूपसे दर्शन अपने पूर्वजन्मके पुत्रको क्यों न दिया, यह मेरा मोह दूर कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—जिस अज्ञानीने मिथ्याभूत पृथिवी आदि तत्त्व तथा शरीरादि सत्य मान रक्खाहै उसके लिये चिदाकाशही पृथिवी शरीरादि रूपको धारण करताहै और अन्य ज्ञानीको पृथिवी आदिका हेतु भूत अज्ञानके न रहनेसे केवल ब्रह्मसत्ताही स्थितहै ऐसा भान होताहै, तात्पर्य्य यह कि लीलाको तत्वज्ञान होजानेसे पुत्रादि प्रपंचोंमें मिथ्यात्वका निश्चय होगया इसलिये पुत्रस्नेह न रहनेसे पूर्वशरीर धारण नहीं किया ॥ ४४ ॥

असदेवांगसदिवभातिपृथ्व्यादिवेदनात् ॥ यथाबालस्यवेतालोनाभातितदवेदनात् ॥ ४५ ॥ यथापृथ्व्यादिनाभातमपृथ्व्यादिभवेत्क्षणात् ॥ स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानात्तथाजाग्रत्यपिस्फुटम् ॥ ४६ ॥ पृथ्व्यादिखतयाबुद्धंखमित्येवानुभूयते ॥ तथाहिक्षुब्धधातूनांकुड्येषुखइवोद्यमः ॥ ४७ ॥ स्वप्नेनगरमूर्वीवाशून्यंखातंचबुद्ध्यते ॥ स्वप्नांगनाचकुरुतेशून्याप्यर्थक्रियांनृणाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! यह पृथिवी आदि असत् होनेपरभी सत्यज्ञान सत्यके समान ऐसे भासताहै जैसे बालकको बैताल और जिसको उसमें सत्यत्व बुद्धि नहीं है उसको नहीं भान होता ॥ ४५ ॥ जैसे स्वप्नमें जो पृथिवी आदि रूप भान होरहाहै वह स्वप्नके ज्ञानसे अपृथिवी आदिरूप होजाताहै ऐसे तत्वज्ञानसे जाग्रत् अवस्थामें यह प्रपंच मिथ्यारूप भासने लगताहै ॥ ४६ ॥ पृथिवी आदि यदि आकाशरूपसे ज्ञात हो तो आकाशरूपसेही वे भान होते हैं, जैसे पित्तादिके कोपसे विक्षिप्त चित्तवालोंको भित्तियोंमेंही आकाश बुद्धि होती है ॥ ४७ ॥ स्वप्नमें नगर अथवा पृथिवी शून्य वा खंदकके समान प्रतीत होती है और स्वप्नकी रची मनुष्योंकी पाद मर्दन पैर दाबना आदि क्रिया करती है ४८

खंपृथ्व्यादितयाबुद्धंपृथ्व्यादिभवतिक्षणात् ॥ मूर्छायांपरलोकोपिप्रत्यक्षमनुभूयते ॥ ४९ ॥ बालोव्योमैववेतालंम्रियमाणोंबरेवनम् ॥ केशोंड्रकंखमन्यस्तुखमन्योवेत्तिमौक्तिकम् ॥ ५० ॥ त्रस्तक्षीबार्द्धनि

द्राश्वनौयानाश्वसदैवखे ॥ वेतालवनवृक्षादिपश्यंत्यशुभवंतिच ॥ ५१ ॥ यथाभावितमेतेषांपदार्थानां मतोवपुः ॥ अभ्यासजनितंभातिनास्त्येकंपरमार्थतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—आकाशको यदि पृथिवी आदिके रूपसें जानो तो क्षणभरमें पृथिवी आदिका रूप होजाताहै, और मूर्च्छामें परलोक प्रत्यक्षके समान देख पडताहै ॥ ४९ ॥ बालकको आकाशही पिशाचरूप भासताहै, मरताहुआ पुरुष आकाशमें बन देखताहै, और कोई आकाशको केश मशकादिरूपसे देखताहै तथा किसीको आकाश मोतीरूपसे भ्रान्तिसे भान होताहै ॥५०॥ भयभीत, उन्मत्त, और अर्द्ध निद्रागस्त (अधजगे) सदा आकाशमें नौकायान, भूत बन और वृक्षादि देखतेहैं और उनसे भागते भी हैं ॥ ५१ ॥ इसलिये इन पदार्थोंमें अभ्याससे जैसी भावना होरही है वैसाही उनका शरीर भासताहै, क्योंकि यथार्थमें इनका कोई नियतरूप नहीं है ॥ ५२ ॥

लीलयातुयथावस्तुबुद्धापृथ्व्यादिनास्तिता ॥ आकाशमेवसंवित्त्याभातिभ्रांतितयोदितम् ॥५३॥ ब्रह्मात्मैकचिदाकाशमात्रबोधवतोमुनेः ॥ पुत्रमित्रकलत्राणिकथंकानिकदाकुतः ॥ ५४ ॥ दृश्यमादावनुत्पन्नंयच्चभात्यजमेवतत् ॥ सम्यग्ज्ञानवतामेवंरागद्वेषदृशौकुतः ॥ ५५ ॥ हस्तःशिरसियद्दत्तोलीलयाज्येष्ठशर्मणः ॥ तत्प्रभावस्थितारंभसंबोधायाश्चितेःफलम् ॥ ५६ ॥ बोधोहिचेततियथैवतथाशुभाति सूक्ष्मस्तुखादपितथातितरांविशुद्धः ॥ सर्वत्रराघवसएवपदार्थजालंस्वप्नेषुकल्पितपुरेष्वनुभूतमेतत् ॥५७

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—लीलाने तो पृथिवीआदि वस्तुओंकी नास्तिता जान लीहैं, क्योंकि ज्ञानदृष्टिसे सब चिदाकाशरूपही हैं, मिथ्या भ्रान्तिसे इनका स्वरूप उदय हुआ भासता है ॥ ५३ ॥ जिस मुनिको ब्रह्मरूप चिदाकाशमात्रका ज्ञान है उसको पुत्र, मित्र और स्त्री कौन, किस समय कहांसे और कैसे हुये ॥ ५४ ॥ यह दृश्य आदिमें उत्पन्नही नहीं हुआ और जो कुछ भान होता है वह अज (परमात्म) रूपही है, इसप्रकार ज्ञानवान् महात्माओंको भला राग द्वेष कहां ॥ ५५ ॥ और जो लीलाने ज्येष्ठशर्माके मस्तकके ऊपर हांथ रक्खा वह तो उसके पूर्व सुकृतसे भावी कल्याणके लिये सर्वव्यापी चेतनमें स्थित जो आरंभ और ज्ञान हैं उन्हींकी स्फुरणसे हुआ है ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! यह ज्ञानही पूर्वकी भावनाके अनुसार जिस रूपसे चिन्तन किया जाता वैसाही भासताहै यह बार्ता सर्वत्र स्वप्नमें तथा संकल्पके नगरादिमें पूर्ण रीतिसे अनुभूत है ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

पतिके दर्शनकी अभिलाषिणी पुनः विस्मयको लीला प्राप्त हुई और भगवतीने ज्ञान दिया तो स्मरणकरके अपने अनेक जन्मोंको कहा इस विषयका वर्णन इस २७ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मिन्गिरितटेग्रामेतस्यमंडपकोटरे ॥ अंतर्द्धिमाश्रययतुस्तत्रस्थेएवतेस्त्रियौ ॥ १ अस्माकंवनदेवीभ्यांप्रसादःकृतइत्यथ ॥ शांतदुःखेगृहजनेस्वव्यापारपरस्थिते ॥ २ ॥ मंडपाकाशसंलीनांलीलामाहसरस्वती ॥ व्योमरूपाव्योमरूपांस्मयात्तूष्णीमिवस्थिताम् ॥ ३ ॥ संकल्पस्वप्नयोर्यैयांयत्रसंकथनंमिथः ॥ यथेहार्थक्रियांधत्तेतयोःसासंकथातथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-उस गिरिग्राममें उसी मण्डपाकाशमें शीघ्रही वे दोनों स्त्रियां लोप होगईं ॥ १ ॥ इसके अनन्तर बनकी देवियोंने हमारे ऊपर कृपा किया ऐसा कहके दुःख शान्त गृहके लोग जब अपने २ व्यापारमें लगे ॥ २ ॥ तब मण्डपाकाशमें सबकी दृष्टिसे छिपी चिदाकाश रूप, आश्चर्य्यसे मौन होके स्थित लीलासे चिदाकाशरूप सरस्वती बोली ॥ ३ ॥ उषा और अनिरुद्धके समान जिनके एककालमेंही स्वप्न अथवा संकल्पमें परस्परका बार्तालाप उत्तरकालमें अर्थको सिद्ध करताहै इसीप्रकार यहांपर उन दोनोंकी कथा हुई ॥ ४ ॥

पृथ्व्यादिनाडीप्राणादिकृतेप्यभ्युदितातयोः ॥ सासंकथनसंवित्तिःस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ५ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ ज्ञेयंज्ञातमशेषेणदृष्टादृष्टार्थसंविदः ॥ ईदृशीयंब्रह्मसत्ताकिमन्यद्वदपृच्छसि ॥ ६ ॥

॥ लीलोवाच ॥ मृतस्यभर्तुर्जीवोसौयत्रराज्यंकरोतिमे ॥ तत्राहंकिंनतैर्दृष्टादृष्टास्मीहसुतेनकिम् ॥ ७ ॥ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ अभ्यासेनविनावत्सेतदातेद्वैतनिश्चयः ॥ नूनमस्तंगतोनाभूत्रिःशेषंवरवर्णिनि ॥ ८

अर्थ—आधिभौतिक पृथिवी आदि तथा अध्यात्मिक नाडीप्राण आदि सहित शरीरके बिना भी स्वप्न और संकल्पके समान उन दोनोंकी कथा प्रवृत्त हुई ॥ ५ ॥ प्रत्यक्ष और परोक्षार्थ ज्ञानका ज्ञेय सर्वथा तुमने जानलिया ऐसीही यह ब्रह्मकी सत्ताहै अब और क्या पूंछना चाहतीहो ? ॥ ६ ॥ लीलाजी बोली–मेरे मृतक पतिका जीव जहां राज्य करताहै वहांके लोगोंने मुझे क्यों नहीं देखा और यहां मेरे पुत्रने मुझे क्यों देखा ? ॥ ७ ॥ सरस्वतीजी बोली–हे उत्तम स्वरूपवाली पुत्री ! अभ्यासके बिना उससमय प्रपंचकी सत्यताका विश्वास सर्वथा नष्ट नहीं हुआ था इस लिये तुम सत्यसंकल्प न थी ॥ ८ ॥

अद्वैतंयोनयातोसौकथमद्वैतकर्मभिः ॥ युज्यतेतापसंस्थस्यच्छायांगानुभवःकुतः ॥ ९ ॥ लीलास्मीतिविनास्यासंतवनास्तंगतोभवत् ॥ यदाभावस्तदासत्यसंकल्पत्वमभून्नते ॥ १० ॥ अद्यासिसत्यसंकल्पासंपन्नातेनमांसुतः ॥ संपश्यत्वित्यभिमतंफलितंतवसुंदरि ॥ ११ ॥ इदानींतस्यभर्तुस्त्वंसमीपंयदिगच्छसि ॥ तत्तेनव्यवहारस्तेपूर्ववत्संप्रवर्त्तते ॥ १२ ॥

अर्थ–जबतक सत्यसंकल्पादि क्रियाओंसे सर्वथा अविद्याका उच्छेद नहीं किया तबतक अद्वैतको कैसे प्राप्तहो, जैसे जो पुरुष तापमें स्थितहै उसको छायाका गुण जो शीततांहै उसका अनुभव कहां ? ॥ ९ ॥ अभ्यासके न होनेसे मैं लीलाहूं यह दृढ संस्कार तुमारा उससमय अस्त नहीं हुआथा इसीकारण उससमय तुमारा दृढ संकल्पभी न था॥ १०॥ और हे सुन्दरि ! अब तुम सत्यसंकल्प होगईहो इसलिये पुत्र मुझे देखै यह तुमारा संकल्प फलीभूत हुआ ॥ ११॥ इस समय यदि तुम अपने पतिके निकट जाओगी तो तुमारा सब व्यवहार पूर्वके समान होगा ॥ १२ ॥

॥ लीलोवाच ॥ इहैवमंदिराकाशेपतिर्विप्रोममाभवत् ॥ इहैवसमृतोभूत्वासंपन्नोवसुधाधिपः ॥ १३ ॥ इहैवतस्यसंसारेतस्मिन्भूमंडलांतरे ॥ राजधानीपुरेतस्मिन्पुरंध्र्यस्मिव्यवस्थिता ॥ १४ ॥ इहैवांतःपुरेतस्मिन्समृतोममभूपतिः ॥ इहैवांतःपुराकाशेतस्मिन्नेवपुरेनृपः ॥ १५ ॥ संपन्नोवसुधापीठेनानाजनपदेश्वरः ॥ सर्वार्जवजवीभावइहैवैवंव्यवस्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—लीलाजी बोली–इसी मन्दिराकाशमें मेरा ब्राह्मण पति था, और इसी स्थानमें मृत्युको प्राप्त होके वह राजा हुआ ॥ १३ ॥ इसी स्थानमें कल्पना कियेहुये दूसरे भूमण्डलमें उसकी राजधानीके नगरमें मैं उसकी पटरानी होके स्थित रही ॥ १४ ॥ और इसी अन्तःपुरमें वह राजा पुनः मृत्युको प्राप्त हुआ तथा इसी मण्डपाकाशमें वह राजा ॥ १५ ॥ पृथिवीपर नाना देशका राजा हुआ, सब वस्तुओंका कपट रहित आधारभूत जो पारमार्थिक ब्रह्महै उसीमें यह मायिक चलनादि व्यवहार कल्पित किया गयाहै ॥ १६ ॥

अस्मिन्नेवगृहाकाशेसर्वाब्रह्मांडभूमयः ॥ स्थिताःसमुद्गकेमन्येयथांतःसर्षपोत्कराः ॥ १७ ॥ सदाऽदूरमहंमन्येतद्भर्तुर्ममभंडलम् ॥ क्वचित्पार्श्वेस्थितमिहयथापश्यामितत्कुरु ॥ १८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भूतलारुंधतिसुतेभर्त्तारस्तवसंप्रति ॥ त्रयोनामाथवाभूवन्बहवःशतसंमताः ॥ १९ ॥ नेदीयसांत्रयाणांतु द्विजस्तेभस्मतांगतः ॥ राजामाल्यांतरगतःसंस्थितोंतःपुरेशवः ॥ २० ॥

अर्थ—इसी गृहाकाशमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी भूमि ऐसे कल्पित होके स्थितहैं जैसे पेटारीमें सर्षपों (सरसों) का समूह ॥ १७ ॥ इसलिये मैं यह मानतीहुं कि मेरे पतिका मण्डलभी सदा निकटही है और वहभी कहीं समीपमेंही स्थित है, सो हे भगवती जैसे मैं उसे यहां देखूं वैसा उपाय करो ॥ १८ ॥ देवीजी बोली–हे अरुन्धति ! पुत्रि न केवल तुमारे अति समीपके तीन पतिही इस मण्डपाकाशमें स्थित हैं किन्तु अनेक अतीत अनागत भूतल तथा अनेक जन्म सम्बन्धी सैकडों पतिभी स्थित हैं, उन सबका देखना तो असम्भवहै सो निकटके तीनमेंसे तुम किसको देखना चाहती हो ? ॥ १९ ॥ उन समीपके तीन पतियोंमेंसे वह ब्राह्मणतो भस्म होगया, और राजाका मृतक शरीर पुष्पमालाओंमें स्थापित हैं ॥ २० ॥

संसारमंडलेह्यस्मिंस्तृतीयोवसुधाधिपः ॥ महासंसारजलधिपतितोभ्रममागतः ॥ २१ ॥ भोगकल्लोलकलनाविकलोमलचेतनः ॥ जाड्यजर्जरचिद्वृत्तिःसंसारांभोधिकच्छपः ॥ २२ ॥ चित्राणिराजकार्याणिकुर्वन्व्याकुलान्यपि ॥ सुप्तस्थितोजडतयानजागर्त्तिभवभ्रमे ॥ २३ ॥ ईश्वरोहमहंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ इत्यनर्थमहारज्ज्वावलितोवशतांगतः ॥ २४ ॥

अर्थ—और तीसरा राजा इस संसारमें संसाररूपी समुद्रमें प्रविष्ट होके भ्रमको प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ वह संसाररूपी समुद्रका कच्छप (कछुआ) भोगरूपी तरंगोंकी लीलासे विक्षिप्त होगया है इसीसे उसकी बुद्धिभी मलिन और चेतनकी वृत्तिभी जडतासे शिथिलसी होगई है ॥ २२ ॥ वह बडे विचित्र राज्यके कार्य्योंको करता हुआभी सुप्तके समान स्थित है, और जडतासे संसाररूपी भ्रममें जागता नहीं ॥ २३ ॥ मैं सबका स्वामी, विषयभोगी, सिद्ध, बलवान् तथा सुखीहुं इत्यादि विचार महारज्जु (रस्सी) से बद्ध होनेसे वे वश होगया है ॥ २४ ॥

तत्कस्यवद्भर्तुस्त्वांसमीपंवरवर्णिनि ॥ वात्यावनांतरंगंधलेखामिववनान्नये ॥ २५ ॥ अन्यएवहिसंसारःसोन्योब्रह्मांडमंडपः ॥ अन्याएवततावत्सेव्यवहारपरंपराः ॥ २६ ॥ संसारमंडलानीहतानिपार्श्वे स्थितान्यपि ॥ दूरंयोजनकोटीनांकोटयस्तेष्विहांतरम् ॥ २७ ॥ आकाशमात्रमेतेषामिदंपश्यवपुःपुनः॥ मेरुमंदरकोटीनांकोटयस्तेष्ववस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—सो हे उत्तम वर्णवाली ! अब तुम यह कहो कि तुमारे किस पतिके समीप मैं ऐसे पहुंचाऊं जैसे वायु एक बनसे दूसरे बनमें सुगन्धकी लेखाको ॥ २५ ॥ हे पुत्रि ! वह संसार तथा ब्रह्माण्डमण्डप दूसराही है, और वे व्यवहारकी परम्पराभी औरही प्रकारसे विस्तृत है ॥ २६ ॥ यद्यपि वे ब्रह्माण्डमंडल यथार्थमें निकटमें स्थितहैं तथापि व्यवहारदृष्टिसे करोडों योजन यहांसे दूर हैं ॥ २७ ॥ परमार्थदृष्टिसे इन सम्पूर्ण संसारमण्डलोंका शरीर इस मण्डपाकाशमात्रही है परन्तु पुनः व्यवहार दृष्टिसे देखो कि करोडों मन्दराचल पर्वत उनमें स्थित हैं ॥ २८ ॥

परमाणौपरमाणौसर्गवर्गानिरर्गलम् ॥ महाचितेःस्फुरंत्यर्करुचीवत्रसरेणवः ॥ २९ ॥ महारंभगुरूण्येवमपिब्रह्मांडकानिहि ॥ तुलयाधानकामात्रमपितानिभवंतिनो ॥ ३० ॥ नानारत्नामलोद्योतोवनवद्भातिखेयथा ॥ पृथ्व्यादिभूतरहिताजगच्चिद्भातिचिंतया ॥ ३१ ॥ कचतिज्ञप्तिरेवेदंजगदित्यादिनात्मनि॥ नतुपृथ्व्यादिसंपन्नंसर्गादावेवकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यकी किरणमें अनेक त्रसरेणु स्थितहै ऐसेही महाचेतनके परमाणु परमाणुमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि अवकाश सहित स्थितहै ॥ २९ ॥ इसप्रकार महारम्भवाले बडे द्वीप समुद्रादि महान् परिमाणवाले यद्यपि है तथापि चेतन दृष्टिसे वे वटके बीजके समानभी नहीं हैं ॥ ३० ॥ जैसे नानाप्रकारके रत्नोंका प्रकाश आकाशमें जलके समान भासताहै वैसेही यथार्थमें पृथिवी आदिके भेदसे शून्यभी चेतन अविद्याकी दृढ वासनासे जगतरूपसे भासताहै ॥ ३१ ॥ आत्मामें जगत् इत्यादि नामसे चेतनकाही प्रकाश होरहाहै, क्योंकि यथार्थमें सृष्टिकी आदिमें पृथिवी आदि कुछभी उत्पन्न नहीं हुये ॥ ३२ ॥

यथातरंगःसरसिभूत्वाभूत्वापुनर्भवेत् ॥ विचित्राकारकालांगदेशाज्ज्ञप्तावलंतथा ॥ ३३ ॥ लीलोवाच ॥ एवमेतज्जगन्मातर्मयास्मृतमिहाधुना ॥ ममेदंराजसंजन्मनतमोनचसात्विकम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मणस्त्ववतीर्णायाअष्टौजन्मशतानिमे ॥ नानायोनीन्यतीतानिपश्यामीवाधुनापुनः ॥ ३५ ॥ संसारमंडलेदेविकस्मिंश्चिद्भवंपुरा ॥ लोकांतराब्जभ्रमरीविद्याधरवरांगना ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे तडागमें तरंग अनेक उत्पन्नहो होकर नष्ट होजाते हैं और पुनः उत्पन्न होते हैं ऐसेही ज्ञानस्वरूप चेतनमें विचित्र आकारवाले काल तथा उसके अंग दिन रात्रि आदि काल, और ब्रह्माण्ड तथा भुवन आदि देश उत्पन्न हो २ कर नष्ट होते हैं तथा पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ ३३ ॥ लीलाजी बोली-हे जगत् मातः ! जैसा आप कहतीहो यह बात ऐसेही है इस समय मुझे यह स्मरण हुआहै कि यह मेरा जन्म राजसी न तमोगुणी है और न सत्वगुणी ॥ ३४ ॥ ब्रह्माकी यह सृष्टी जबसे उत्पन्न हुई तबसे मेरे आठ ८०० सो जन्म हुये, और वे नानाप्रकारके योनियोंमें मैने बिताये इस समय उनको मैं पुनः ज्योंका त्यों देखरहीहुं ॥ ३५॥ हे देवि ! पूर्वकालमें किसी संसार मण्डलमें विद्याधरके लोकरूपी कमलकी भ्रमरी विद्याधरकी श्रेष्ठ अंगना हुईथी ॥ ३६ ॥

दुर्वासनाकलुषितातत्तोहंमानुषीस्थिता ॥ संसारमंडलेन्यस्मिन्पन्नगेश्वरकामिनी ॥ ३७ ॥ कदंबकुंदजंबीरकरंजवनवासिनी ॥ पत्रांबरधराश्यामाशबर्यहमथाभवम् ॥ ३८ ॥ वनवासनयामुग्धासंपन्नाहमथोद्गता ॥ गुलुच्छनयनापत्रहस्तावनविलासिनी ॥ ३९ ॥ पुण्याश्रमलतासाहंमुनिसंगपवित्रिता ॥ वनाग्निदग्धातस्यैवकन्याभूवंमहामुनेः॥ ४० ॥

अर्थ—उसके अनन्तर दुष्ट वासनासे दूषित होके मैं मानुषी होगई, उसके अनन्तर मैं पन्नगेश्वरकी कामिनी हुई ॥३७॥ और उसके पश्चात् कदम्ब, कुन्द, जम्बीर (कागजी नींबू) तथा करंजके बनमें निवास करनेवाली पत्रोंका वस्त्र धारण करनेवाली श्यामवर्ण मैं शबरी (भिल्लकी स्त्री) हुई ॥ ३८ ॥ उसके अनन्तर बनबासकी वासनासे धर्म

मर्य्यादाके विवेकसे रहित होके मैं मुग्ध (मूर्ख) होगई, इसीसे पुष्पोंके गुच्छरूपी नेत्र धारण करनेवाली, और पत्र (पत्ते) रूपी हस्तवाली तथा बनमें विलास करनेवाली लताका जन्म मैंने धारण किया ॥ ३९ ॥ मैं पुण्यआश्रमकी लता होनेके कारण मुनिके संगसे पवित्र होगई अनन्तर बनकी अग्निसे भस्म होके उन्हीं मुनिकी मैं कन्या होगई॥४०॥

अश्नीत्वफलदातॄणांकर्मणांपरिणामतः ॥ राजाहमभवंश्रीमान्सुराष्ट्रेषुसमाःशतम् ॥ ४१ ॥ तालीनांतलकच्छेषुराजदुष्कृतदोषतः ॥ नकुलीनववर्षाणिकुष्ठनष्टांगिकाभवम् ॥४२॥ वर्षाण्यष्टौसुराष्ट्रेषुदेविगोत्वंकृतंमया ॥ मोहाद्दुर्जनदृष्टाज्ञबालगोपाललीलया ॥ ४३ ॥ विहंग्यावैरविन्यस्तावागुराविपिनावनौ ॥ क्लेशेनमहताच्छिन्नाअधमावासनाइव ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पुरुषरूप फल देनेवाले कर्मोंके परिणामसे सुराष्ट्रदेशमें मैं सैकडों वर्षपर्य्यन्त श्रीमान् राजा हुई ॥ ४१ ॥ तालियों (वृक्ष विशेष) की शीतल भूमि कच्छदेशमें दूसरेके धनोंको बलात्कारसे हरण आजि राजाके दोषसे नव वर्षपर्य्यन्त कुष्ठ तथा नष्ट शरीरवाली नकुली हुई ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उसी सराष्ट्र (गुजरात) देशमें दुष्ट तथा अज्ञगोपालके बालकोंकी दण्ड आदिकी ताडनाको अनुभव करती हुई आठ वर्षपर्य्यन्त गौ होके रही ॥ ४३ ॥ अनन्तर जिससमय मैंने पक्षीका जन्म पाया तब बनकी भूमिमें निष्कारण बैर करनेवाले व्याधोंने जाल फैलाके मुझे ऐसा छेदन किया जैसे अधम द्वैतकी वासनाको ॥ ४४ ॥

कर्णिकाक्रोडशय्यासुविश्रांतमलिनासह ॥ पद्मकुड्मलकोशेषुभुक्तकिंजल्कयारहः ॥ ४५ ॥ भ्रांतमुत्तुंगशृंगासुहरिण्याहारिनेत्रया ॥ वनस्थलीषुरम्यासुकिराताहतमर्मया ॥ ४६ ॥ दृष्टंनष्टासुदिक्ष्वब्धिकल्लोलैरुह्यमानया ॥ मत्स्यांबुकच्छपाच्छोडेमोघमाननताडनम् ॥ ४७ ॥ पीतंचर्मण्वतीतीरेगायंत्यामधुरस्वरम् ॥ पुलिंद्यासुरतांतेषुनालिकेररसासवम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर कमलकी रजसे पूर्ण कमल शय्याओंपर कमलिनीयोंके रसोंके एकान्तमें पान करती हुई भ्रमरी होके कुछ कालतक भ्रमरके साथ विलास किया ॥ ४५ ॥ मनोहर नेत्रोंके धारण करनेवाली हरिणीका जन्म पाके मैंने उच्च शिखरवाली अति रमणीय बनभूमियोंमें बिहार किया करतीथी किरातोंने मेरे हृदयको छेदन कर दिय ॥ ४६ ॥ अनन्तर मत्सी (मछली) का जन्म पाकर समुद्रकी तरंगोंसे बहती हुई भवरेह जलोंमें जब दिशा भ्रम होजाताथा उस समय कछुओंकी पृष्ठोंपर मल्लाहोंकी बसीका ताडन व्यर्थ देखा ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर पुलिन्दी (एक प्रकारकी चाण्डाली) का जन्म पाके चर्मण्वती नदीके किनारोंपर मधुरस्वरसे गान करती हुई सुरत (स्त्री पुरुषके सम्भोग) के अन्तमें नालिकेरका मद्यपान किया करतीथी ॥ ४८ ॥

सारसीसरसालिन्यासीत्कारमधुरस्वरम् ॥ सारसःसुरतैःस्वैरंसामंतश्चारुरंजितः ॥ ४९ ॥ तालीतमालकुंजेषुतरलाननेत्रया ॥ क्षीबप्रेक्षणविक्षोभैःकृतंकांतावलोकनम् ॥ ५० ॥ कनकस्यंदसंदोहसुंदरैरंगपंजरैः ॥ स्वर्गेप्सरोंबुजिन्याश्रुतोषिताःसुरषट्पदाः ॥ ५१ ॥ मणिकांचनमाणिक्यमुक्तानिकरभूतले ॥ कल्पद्रूमवनेमेरौयूनासहरतंकृतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे कमलिनीमें प्रेमसे अनुराग सहित रहतीहै इसीप्रकार सीत्कार शब्दयुक्त सुरतके मधुर स्वरसे गान करतीहुई अपने पति सारसको स्वेच्छा पूर्वक प्रसन्न किया ॥ ४९ ॥ ताली तथा तमाल आदिके कुंजोंमें चंचल नेत्रवाली मैं उन्मत्त कटाक्ष सहित दृष्टियोंसे अपने प्रिय वल्लभको देखा करतीथी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर अप्सराका जन्म पाके सुवर्णके द्रवके समान सुन्दर अंगोंसे स्वर्गकी अप्सरारूपी कमलिनीके भ्रमररूपी देवताओंको भलीभांति सन्तुष्ट किया ॥ ५१ ॥ और उसी जन्ममें सुमेरु पर्वतपर मणि सुवर्ण, माणीक्य तथा मुक्ता (मोतियों) के समूहसे पूर्णथी भूमि जिसकी ऐसे ल्कपवृक्षोंके वनमें युवा (जवान) देवताके साथ सुरतका अनुभव किया ॥ ५२ ॥

कल्लोलाकुलकच्छासुलसद्गुच्छलतासुच ॥ वेलावनगुहास्वब्धेश्चिरंकूर्मतयास्थितम् ॥ ५३ ॥ तरत्तारतरंगासुदोलनंसरसालिनाम् ॥ चलच्छदपटालीषुराजहंस्यंमयाकृतम् ॥ ५४ ॥ शाल्मलीदललोलानामांदोलनदरिद्रताम् ॥ मशकस्यमयालोक्यदीनंमशकयास्थितम् ॥ ५५ ॥ तरत्तारतरंगासुचंचद्वीच्यग्रचुंबनैः ॥ भ्रांतंशैलस्रवंतीषुजलवंजुललीलया ॥ ५६ ॥ गंधमादनमंदारमंदिरेमदनातुराः ॥ पातिताःपादयोःपूर्वंविद्याधरकुमारकाः ॥ ५७ ॥ कीर्णकर्पूरपूरेषुतल्पेषुव्यसनातुरा ॥ चिरंविलुलितास्मींदुबिंबेष्विवशशिप्रभा ॥ ५८ ॥ योनिष्वनेकविधदुःखशतान्वितासुभ्रांतंमयोन्नमनसन्नमनाकुलांग्या ॥ संसारदीर्घसरितश्चलयालहर्याद्दुर्वारवातहरिणीसरणक्रमेण ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाजन्मांतरवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर समुद्रकी तरंगोंसे व्याप्तथा तट जिनका तथा पुष्पोंके गुच्छे और लताओंसे युक्त समुद्रके किनारेकी गुफाओंमें बहुत कालतक कच्छपी (कछुई) होके निवास किया ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् चंचल तथा उच्च तरंगोंसे युक्त अपनी स्वच्छ सरसियोंमें अपने चलायमान पक्षरूपी स्वच्छ वस्त्रोंकी पंक्तियोंमें कमलिनीके भ्रमसे बैठने वाले भ्रमरोंके अन्दोलन (झुले) का साधन राजहंसीके पदकाभी अनुभव मैंने किया ॥ ५४ ॥ इसके पश्चात् इसी हंसीके जन्ममें हिलतेहुये शाल्मली वृक्षके हिलतेहुये दलपर बहुतसे मशकों (मच्छरों) के बीचमेंसे किसी गिरेहुये मशक (मच्छर) जो पुनः अपने स्थानमें प्रवेश करनेको असमर्थ था, उसकी आन्दोलन (झूलने) की दरिद्रताको देखके उसी संस्कारसे मैं मृत्युको प्राप्त हुई इसीदीन मशकी (मच्छरी) होके जन्मी ॥ ५५ ॥ बेतका जन्म धारण करके चंचल और ऊंचे तरंगोंसेयुक्त पर्वतकी नदियोंमें चलायमान तरंगोंके श्रेष्ठ चुंबनोंसे कुछ कालतक भ्रमण किया ॥ ५६ ॥ गन्धमादनपर्वतपर कल्पवृक्षयुक्त मन्दिरोंमें मदन (कामदेव) से व्याकुल विद्याधरोंके कुमार मेरे (विद्याधरी शरीरमें) चरणोंमें आके गिरते थे ॥ ५७ ॥ कर्पूरकी रेणुओंसे पूर्ण शय्याओंपर प्रियवियोगसे दीर्घकालतक ऐसे चंचलतासे चलायमानथी जैसे चन्द्रमाके बिम्बमें चन्द्रप्रभा ॥ ५८ ॥ हे देवि ! इसप्रकार सैकडों दुःखोंसे संयुक्त अनेक प्रकारकी योनियोंमें उच्च और नीच गतिसे व्याकुल चित्तवाली मैं संसाररूपी दीर्घ नदीकी चंचल लहरसे वायुके अनुसार चलनेवाले हरिणीके समान भ्रमण किया ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने जन्मान्तरवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

दृष्टप्रपंचके मिथ्यात्वसे चिदाकाशकी सत्यता तथा पर्वत और गिरिग्रामका वर्णन विस्तारसे इस २८ वें सर्गमें किया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ वज्रांगसाराद्ब्रह्मांडकुड्यान्निबिडमंडलात् ॥ कोटियोजनसंपुष्टात्कथंतेनिर्गतेबले ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ क्वब्रह्मांडंक्वतद्भित्तिःक्वात्रासौवज्रसारता ॥ किलावश्यंस्थितेदेव्यावंतःपुरवरांबरे ॥ २ ॥ तस्मिन्नेवगिरिग्रामेतस्मिन्नेवालयांबरे ॥ ब्राह्मणःसवसिष्ठाख्यआस्वादयतिराजताम् ॥ ३ ॥ तमेवमंडपाकाशकोणकंशून्यमात्रकम् ॥ चतुःसमुद्रपर्यंतंभूतलंसोनुभूतवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! वज्रसमान दृढ और करोडों योजन मोटी ब्रह्माण्डकी भित्तिसे वे दोनों अबला कैसे निकली ? अर्थात् स्वप्नमें मिथ्या भित्ति आदिसे रूकावट देखीगई है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! कहां ब्रह्माण्ड, कहां भित्ति, और कहां वज्रके समान दृढता, वे दोनों देवियांतो उसी अन्तःपुरके आकाशमें स्थितरहीं ॥ २ ॥ उसी गिरिग्राममें, तथा उसी गृहाकाशमें वह वसिष्ठ नाम ब्राह्मण विदूरथ होके राज्यका अनुभव करताहै ॥ ३ ॥ उसी शून्यमात्र मण्डपाकाशके एक कोनेका पत्ननामें राजाओंके उसने चतुःसमुद्रान्त भूतलका अनुशासन किया ॥ ४ ॥

आकाशात्मनिभूपीठंतस्मिंस्तद्राजपत्तनम् ॥ राजसद्मानुभवतिसचसाचाप्यरुंधती ॥ ५ ॥ लीलाभिधानासाजातातयाचज्ञप्तिरर्चिता ॥ ज्ञप्त्यासहसमुल्लंघ्यखमाश्चर्यमनोहरम् ॥ ६ ॥ प्रादेशमात्रेनभसिसातत्रैवगृहोदरे ॥ ब्रह्मांडांतरमासाद्यगिरिग्रामकमंदिरे ॥ ७ ॥ ब्रह्मांडात्परिनिर्गत्यस्वगृहेस्थितिमाययौ ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरंप्राप्ययथातल्पगतःपुमान् ॥ ८ ॥

अर्थ—उसी चिदाकाशमें वह भूमण्डल तथा उसीमें वह राज नगर और वह राजभवन उस राजा तथा अरुन्धतीको अनुभूत हुये हैं ॥ ५ ॥ और वह अरुन्धती लीला हुई जिसने ज्ञानकी देवता भगवतीकी आराधना की और भगवतीके साथ मनोहर तथा आश्चर्य्य जनक आकाशको उल्लंघन करके ॥ ६ ॥ प्रादिशमात्र उसी गृहके आकाशमें दूसरे ब्रह्माण्डमें प्राप्त हुई और वहांसे गिरिग्रामके मन्दिरमें पहुंची, और पुनः उस ब्रह्माण्डसे निकलके अपने गृहमें ऐसे प्राप्त हुई जैसे शय्या (पलंग) पर पडा हुआ पुरुष एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रतिभामात्रमेवैतत्सर्वमाकाशमात्रकम् ॥ नब्रह्मांडंनसंसारोनकुड्यादिनदूरता ॥ ९ ॥ स्वचित्तमेवकचतितयोस्तादृङ्मनोहरम् ॥ वासनामात्रसोल्लेखंकब्रह्मांडंकसंसृतिः ॥ १० ॥ निरावरणमेवेदंज्ञप्त्या

काशमनंतकम् ॥ किंचित्स्वचित्तेनोन्नीतंस्पंदयुक्तयेवमारुतः ॥ ११ ॥ त्वदाकाशमजंशांतंसर्वत्रैवाहि सर्वदा ॥ चित्त्वाज्जगदिवाभातिस्वयमेवात्मनात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण केवल भ्रान्तिमात्रहै, यथार्थमें केवल चिदाकाशही मात्रहै, न ब्रह्मांडहै न संसारहै, न भित्ति आदि हैं, और न दूरताहै ॥९॥ उन दोनोंकी वासनामात्रसे उनका मनोहर चित्तही उन उन पदार्थोंका रूप धारण करके व्यवहारमें प्रसिद्ध होरहाहै, और यथार्थमें कहां ब्रह्माण्ड और कहां संसार ॥ १० ॥ यथार्थमें यह आवरण रहितही है उन दोनोंमें अपने चित्तसे अनन्त चिदाकाशकोही ब्रह्माण्डरूपसे ऐसे कल्पित कियाथा जैसे किंचित् संचलसे आकाशको वायुरूपता ॥ ११ ॥ यह चिदाकाश सदा और सर्वत्र अजन्मा तथा शान्तरूपहै, और जिसने इस चेतनरूपको नहीं जाना उसकी दृष्टिमें यह आत्मा अपनेमें आपही जगत्के समान भासताहै ॥ १२ ॥

येनबुद्धंतुतस्यैतदाकाशादपिशून्यकम् ॥ नबुद्धंयेनतस्यैतद्वज्रसाराचलोपमम् ॥ १३ ॥ गृहएवयथास्व प्नेनगरंभातिभासुरम् ॥ तथैतदसदेवांतश्चिद्धातौभातिभास्वरम् ॥ १४ ॥ यथामरौजलंबुद्धंकटकत्वं चहेमनि ॥ असत्सदिवभातीदंतथादृश्यत्वमात्मनि ॥ १५ ॥ एवमाकथयंत्यौतेललनेललिताकृती ॥ गृहान्निर्ययतुर्बाह्यंचारुचंक्रमणक्रमैः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस महात्माने इस चेतनस्वरूपको जानलियाहै उसकी दृष्टिमें यह ब्रह्माण्ड आकाशसेभी शून्य भान होताहै और जिसने इसके स्वरूपको नहीं जाना उसके लिये वज्रसेभी दृढ पर्वतके समानहै ॥ १३ ॥ जैसे स्वप्नमें अपना गृहही अति प्रकाशमान नगरके समान भासताहै ऐसेही यह असत् जगत् चित् धातुमें प्रकाशमान भासताहै ॥ १४ ॥ जैसे मरुस्थलमें जलबुद्धि होती है तथा सुवर्णमें कटककी बुद्धिहै, ऐसेही आत्मामें यह असत् दृश्य प्रपंच भासताहै ॥ १५ ॥ इस प्रकार उत्तम रूपवाली वे दोनों स्त्रियां परस्पर वार्तालाप करती हुई उत्तम गतिसे उस गृहसे बाहर निकली ॥ १६ ॥

अदृश्येग्रामलोकेनप्रेक्षमाणेपुरोगिरिम् ॥ चुंबिताकाशकुहरंस्पृष्टादित्यस्यमंडलम् ॥१७॥ नानावर्णाखि लोत्फुल्लविचित्रवननिर्मलम् ॥ नानानिर्झरनिर्ह्रादकूजद्वनविहंगमम् ॥ १८ ॥ विचित्रमंजरीपुंजपिंजरां बुदमंडलम् ॥ स्वभ्रमच्छगुलुच्छाग्रविश्रांतखगसारसम् ॥ १९ ॥ सारवंजुलविस्तारगुप्ताखिलसरित्त टम् ॥ असमाप्तशिलाश्वभ्रलतावर्त्तनमारुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—उन दोनोंको कोई नहीं देख सकता था परन्तु वे दोनों अनेक उस पर्वतको जो आकाशके मध्यभागको चुम्बन करता तथा आदित्य मण्डलको स्पर्श करताथा उसको देखती जातीथी ॥ १७ ॥ नानाप्रकारके विकसित प्रफुल्लित विचित्र निर्मल बनवाला तथा अनेक प्रकारके झरने जिसमें झर रहेहैं, और अनेक प्रकारके बनके पक्षी जिसमें कूंज रहे हैं ऐसे ॥ १८ ॥ विचित्र लताओंके पुंज तथा पक्षियोंके स्थानवालों मेघमण्डलोंसे संयुक्त (अति ऊंचे) और उत्तम पुष्पोंके गुच्छोंके अग्रभागमें सारस आदि पक्षीगण जिसमें विश्राम कर रहे हैं ऐसे ॥ १९ ॥ बलवान् वेतोंके विस्तारसे गिरनेसे नदियोंके तटकी रक्षा करनेवाला, वृक्षोंमें भलीभांति न लपटेनेवाली गर्तमें उत्पन्न होनेवाली लताओंको कंपायमान करने हारे वायु संयुक्त ॥ २० ॥

पुष्पाग्रपिहिताकाशकोशकुड्यकवारिदम् ॥ पतद्दीर्घसरित्स्रोतःस्फुरन्मुक्ताकलापकम् ॥ २१ ॥ चलद्वृ क्षवनव्यूहवातवेल्लिसरित्तटम् ॥ नानावनाकुलोपांतच्छायासततशीतलम् ॥ २२ ॥ अथतेललनेतत्रत दाददृशतुःस्वयम् ॥ तंगिरिग्रामकंव्योम्नःस्वर्गखंडमिवच्युतम् ॥ २३ ॥ रटत्प्रणालीपटलंपूर्णपुष्करि णीगणम् ॥ द्विजैःकुचकुचैःकूजत्स्वलीलाश्वभ्रकच्छकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे ढके हुये शिखरके वृक्षोंसे आकाशकी भित्तिरूप मेघोंको आच्छादन करनेवाला, तथा बडी २ नदियोंसे झरनारूप मोतियोंका समूह जिसमें चमक रहाहै ॥ २१ ॥ चलाय वृक्षोंके समूह तथा लता संयुक्त नदियोंके तटसे सहित और नानाप्रकारके वृक्षोंसे पूर्ण इसीसे निरन्तर छायासे शीतल वह गिरिग्राम (वह पर्वत जहां उस ब्राह्मणका ग्राम था) था जिसको वे दोनों देखती जातीथी ॥ २२ ॥ उस पर्वतके देखनेके अनन्तर उससमय उन दोनों स्त्रियोंने उस ग्रामको (गिरिग्राम जहां ब्राह्मणका निवासथा) स्वयं ऐसा सुशोभित देखा जैसे आकाशसे च्युत (गिरा हुआ) स्वर्गका खण्ड (टूकडा) ॥ २३ ॥ (वह गिरिग्राम) अनेक घंटाओंके नादसे संयुक्त अनेक कमल सहित बाउलियोंसे पूर्ण पक्षियोंके कर्ण मनोहर शब्द सहित, क्रीडार्थ उत्तम जल प्रदेशोंसे शोभायमान ॥ २४ ॥

गच्छद्द्रोणंदहुंकारकरालाखिलकुंजकम् ॥ कुंजगुल्मकखंडाढ्यंसच्छायघनशाद्वलम् ॥ २५ ॥ दुष्प्रवेशा र्ककिरणंदृषन्निहारधूसरम् ॥ उदग्रमंजरीपुंजजटालंबिशिखांतरम् ॥ २६ ॥ शिलाकुहरवाःस्फालप्रोच्च

लन्मुक्तनिर्झरैः ॥ स्मारिताचलनिर्धूतक्षीरोदकजलश्रियम् ॥ २७ ॥ फलमाल्यमहाभारभासुरैरजिर द्रुमैः ॥ आनीयपुष्पसंभारंतिष्ठद्भिरिवसंकुलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जातीहुई गौओंके समूहके हुंकार शब्दसे भयंकर कुंजवाला बन कुंज तथा लताओंसे पूर्ण, उत्तम सघन छाया तथा हरित् घासोंसे पूर्ण ॥ २५ ॥ सूर्य्यकी किरणोंके प्रवेशसे वर्जित, पाषाणकी शिलाये तथा हिमसे धूसर वर्ण, बडी २ लताओंके पुंजोंसे जटाके समान लम्बी शिखा (चोटिओं) ओं करके सहित ॥ २६ ॥ शिलाओं (चटानों) के छिद्रोंसे मोतियोंके समान उछलतेहुये जल बिंदुसहित झरनोंसे मन्दराचलसे मथित क्षीरसमुद्रकी शोभाको स्मरण करानेवाला ॥ २७ ॥ फल और पुष्पोंके महाभारसे शोभायमान अंगनके वृक्षोंसे पूर्ण ऐसा शोभायमान मानों कहींसे वे पुष्पादिके समूहको लाके उसमें विराजमान हों ऐसा ॥ २८ ॥

तरत्तरंगझांकारकारिमारुतकंपितैः ॥ कीर्णपुष्पसमावृष्टंद्रुमैरर्पिरसाकुलैः ॥ २९ ॥ अशंकितशिलाकूटस्रवदम्बिइटंकृतैः ॥ किंचित्कृतरवंगुप्तैरशंकैःशंकितैःखगैः ॥ ३० ॥ उत्फलालहरीश्रांतसीकरास्वादनाकुलैः ॥ नद्यामुडुपरावर्त्तवृत्तिभिर्विहगैर्वृतम् ॥ ३१ ॥ उत्तालतालविश्रांतकाकालोकनशंकितैः ॥ बालैःप्रगोपितामिक्षाखंडंजीर्णस्वभुक्तकैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—उच्चतर झंकार शब्दसे पूर्ण, वायुसे कम्पित, रससे पूर्ण वृक्षोंसे (मनुष्योंसे क्या कहना) भी अर्थियोंके पुष्प फलादिक वृष्टि करनेवाला ॥ २९ ॥ शंकारहित पाषाणोंकी शिलाओंपरसे गिरतेहुये जलके बिन्दुओंके टंकार शब्दसे शंकाके अयोग्यभी पक्षीगण शंकायुक्त होके अपने २ घोसलों (खोथों) छिपेहुये जिसमें कुछ शब्द करतेहुये स्थितहैं ॥ ३० ॥ शीतल जलबिन्दुओंके आस्वाद शान्त चित्त, ऊंचे तरंगोंपर विश्राम करनेवाले, नदियोंमें नक्षत्रोंके समान परिवर्तनशील हंसनामक पक्षियोंसे पूर्ण ॥ ३१ ॥ ऊंचे तालादि वृक्षऊपर विश्राम करनेवाले काकआदि पक्षियोंसे शंकाग्रस्त बालकलोग अपने भुक्त शेष खोआआदि दूधके पदार्थोंको जिसमें सुरक्षित स्थानमें रक्खेहैं ॥ ३२ ॥

पुष्पशेखरसंभारवसनग्रामबालकम् ॥ खर्जूरनिंबजंबीरगहनोपांतशीतलम् ॥ ३३ ॥ क्षौमाग्रहस्तांबरयामंजरीपूर्णकर्णया ॥ क्षुत्क्षीणयाक्रांतरथ्यंग्रामकीटककांतया ॥ ३४ ॥ सरित्तरंगसंघट्टसंरावाश्रुतसंकथम् ॥ कर्मजाड्यघनत्रासवांछितैकांतसंस्थितम् ॥ ३५ ॥ दधिलिप्तास्यहस्तांसैःस्निग्धपुष्पलताधरैः ॥ नग्नैर्गोमयपंकांकैर्बालैराकुलचत्वरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पुष्पोंकी भांति २ की मालामें, तथा नानाप्रकारके आभूषणआदि पहिरेहुये ग्रामके बालक जिसमें भ्रमण कररहे हैं, खजूर, निंब, नीबू और नारंगी आदि वृक्षोंकी सघन छायासे जिसकी भूमि शीतल है ॥ ३३ ॥ हस्तमें अतसीका वस्त्र धारण किये हुये, लताओंसे कर्णोंमें (कानों) को गूथे हुये, क्षुधासे क्षीण (दुर्बल शरीर) नीच, दरिद्री, तथा आलसी आदिकी स्त्रियां जिसमें गलियोंमें भ्रमण कर रही हैं ॥ ३४ ॥ नदियोंके तरंगोंके शब्दसे मनुष्योंके वार्तालाप जिसमें नहीं सुन पडते, कर्म करनेमें जडताके कारण भयभीत होके मूर्ख और आलसी लोग जिसमें एकान्त देश-बैठे हैं ॥ ३५ ॥ हस्त, मुख, तथा स्कन्ध (कांधे) में दधि लपटे हुये, कोमल पुष्प और लताओंको धारण किये हुये, गोमय (गोबर) और कीचड शरीरमें लगा हुये नग्न बालकोंसे जिसकी अंगण (आंगन) भूमि व्याप्त होरही है ॥३६॥

तीरशाद्वलवल्लीनांदोलांदोलनकारिभिः ॥ तरंगैर्वाह्यमानस्थलेखिकांकितसैकतम् ॥ ३७ ॥ दधिक्षारघनामोदमत्तमंथरमक्षिकम् ॥ कामभुक्तार्थतोद्बाष्पजर्जरबलबालकम् ॥ ३८ ॥ गोमयासिक्तवलयकरनारीकृतकुधम् ॥ धम्मिल्लवलनाव्यग्रत्रस्तस्त्रीविहसज्जनम् ॥ ३९ ॥ दांतपुष्पच्छदोत्सन्नपतत्ककुदवायसम् ॥ गृहरथ्यागणद्वारकीर्णक्रूरकुरंटकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नदियोंके तटपर हरी घास तथा लताओंको दोला (झूला) के समान हिलावाने तरंगोंसे बहते हुये जलसे जिसकी बालुकामय भूमि अंकित होरही है ॥ ३७ ॥ दही और दूधकी अधिक देशगामी सुगन्धसे जिसकी मक्षिका (मक्खियां) उन्मत्त तथा आलस्य गतिवाली होगई हैं, इच्छापूर्वक भोजन करनेके अर्थ रोदन करते हुये निर्बल बालकोंसे पूर्ण ॥ ३८ ॥ नीच स्त्रियोंको हांथमें गोबर लगाके अपने केश सवारनेमें व्यग्र तथा त्रस्त देखके जिसमें मनुष्य लोग हंस रहे हैं ॥ ३९ ॥ जिसमें जितेन्द्रिय मुनि महात्मालोग पूजाके अक्षतादि भक्षण करनेवाले काक आदिकोंको पुष्प अथवा पत्रो (चोटन लगे इस भय) से उडानेवाले विद्यमानहैं, और जिसके गृह गलियां तथा द्वार कुरंटक नाम गुल्म (लता) से पूर्ण हैं ॥ ४० ॥

गृहपार्श्वस्थितश्वभ्रकुंजैःकुसुमितप्रभैः ॥ प्रत्यहंप्रातरागुल्फमाकीर्णकुसुमाजिरम् ॥४१॥ चरच्चमरसारंगजालजंगलखंडकम् ॥ गुंजानिकुंजसंजातशष्पसुप्तमृगार्भकम् ॥ ४२ ॥ एकांतसुप्तवत्सैककर्णस्पंदा

स्तमक्षिकं ॥ गोपोच्छिष्टीकृतदधिस्वत्स्रक्किस्पंदिमक्षिकं ॥४३॥ समस्तसद्मसंक्षीणमक्षिकाक्षिप्तमाक्षिकम् ॥ फुल्लाशोकद्रुमोद्यानकृतलाक्षिकमंदिरं ॥ ४४ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे शोभायमान ग्रहोंके समीप देशमें स्थित कुंजोंसे प्रातःकालके समय जिसकी अंगणभूमि पुष्पोंसे पौलीतक पूर्ण होजाती है ॥ ४१ ॥ जिसके समीपके जंगलमें चमर और सारंगादि पशु पक्षी हरित घासचर रहे हैं तथा जहांपर निकुंज और कुंजोंमें उत्पन्न कोमल हरी घासोंपर हरिणोंके बच्चे सो रहेहैं ॥ ४२ ॥ जिसमें एकान्त देशमें अपने कर्णोंसे मक्षिकाओं (मक्खियों) के संचारको उडाते हुये शयन कररहे हैं, और गोपोंके दहीसे उच्छिष्ट मुखोंपर माक्षिकाये जहांपर गूंज रही हैं ॥ ४३ ॥ जहां सम्पूर्ण ग्रहोमें मधुमक्षिओंको निकालकर मधु (शहद) का संचय किया गयाहै, तथा पुष्पोंसे विकसित अशोकादि वृक्षोंकी वाटिका जिसमें शोभित होरही है, और क्रीडा करनेके लिये लाक्षा (लाख) से रंगे हुये काष्ठोंके मन्दिर जिसमें बने हैं ॥ ४४ ॥

सीकरासारमरुतानित्यार्द्रविकचद्रुमं ॥ कदंबमुकुलप्रोतसमस्तच्छादनतृणम् ॥ ४५ ॥ प्रतिकृत्तलताफुल्लकेतकोत्करपांडुरम् ॥ वहत्प्रणालपटलीरणद्गुरुगुरारवम् ॥ ४६ ॥ वातायनगृहानिर्यत्सौधविश्रांतवारिदम् ॥ पूर्णपुष्करिणीपंक्तिपूर्णराजप्रथूत्तरम् ॥ ४७ ॥ नीरंध्रविटपिच्छायाशीतलामलशाद्वलं ॥ सर्वशष्पाग्रवार्बिंदुप्रतिबिंबिततारकं ॥ ४८ ॥

अर्थ—जलके बिन्दुओंकी झडी सहित वायुसे जिसमें वृक्ष सदा आर्द्र (गीले) और पुष्पोंसे सुशोभित होरहे हैं, और कदम्ब तथा मुकुल आदि वृक्षोंकी अधिकतासे जिसके समस्त तृण ढके हुये हैं ॥ ४५ ॥ हानिकारक लताओंके काट देनेसे जो केतकीके समूहोंसे दूसरे वर्ण होरहाहै, और नालोंके समूहोंके बेगसे बहनेके कारणसे जो घर घर शब्दसे पूर्ण होरहाहै ॥ ४६ ॥ और जिसमें झरोखोंके मार्गसे निकलके मेघमण्डल अटारियोंपर बिश्राम कररहा है, और जो जलसे पूर्ण बावलियोंकी पंक्तियोंसे पूर्ण चन्द्रमाके समान बिकसित कमलोंसे अतिही शोभित होरहाहै ॥ ४७ ॥ तथा हे रामजी ! सघन वृक्षोंकी छायासे जिसके घास अति शीतल तथा निर्मल होरहे हैं, और जिसके सम्पूर्ण घास आदि तृणोंके अग्रभागमें जलके इन्द्रियोंमें तारागणोंके प्रतिबिम्ब पडतेहैं ॥ ४८ ॥

अनारतपतत्फुल्लहिमवर्षसितालयं ॥ विचित्रमंजरीपुष्पपत्रसत्फलपादपं ॥ ४९ ॥ गृहकक्षांतरालीनभेघसुप्तचिरंटिकं ॥ सौधस्थमेघविद्युद्भिरनादेयप्रदीपकं ॥५०॥ कंदरानिलभांकारघनघुंघुममंडपं ॥ चरच्चकोरहारीतहरिणीहारिमंदिरं ॥ ५१ ॥ उन्निद्रकंदलोद्भ्रांतमांसलामोदमंथरैः ॥ मरुद्भिर्मंदमायातुमारब्धैर्लोलपल्लवम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—निरन्तर पुष्प तथा हिमकी वर्षासे जिसके सम्पूर्ण स्थान श्वेतवर्ण होरहेहैं तथा विचित्र लता, पुष्प, पत्र और उत्तम फलोंसे जिसके वृक्ष शोभित होरहेहैं ॥ ४९ ॥ और जिसमें ऊपर ग्रहोंमें मेघ विराजमानहैं और उनमें सुवासिनीगण शयनकर रहीहैं, और जहां अटारियोंपर मेघमें जो विद्युत (बिजुली) बार २ चमक रहीहै इससे दीपकी आवश्यकता नहींहै ॥ ५० ॥ और कन्दराओंके वायुकी झंकार ध्वनिसे जिसके मण्डप पूर्ण होरहेहैं, तथा चकोर हारित आदि पक्षी, तथा हरिणी आदि पशुओंके चलनेसे जिसके मन्दिर अति रमणीय होरहेहैं ॥ ५१ ॥ विकसित कन्दली लताके पुष्पोंसे निकले हुये सुगन्ध पूर्ण, मन्दशीतल वायु मानों आनेके अर्थ पत्तोंको हिलारहेहैं ॥ ५२ ॥

लावकालापलीलायामालीनललनागणं ॥ कोककोकिलकाकोलकोलाहलसमाकुलम् ॥ ५३ ॥ शालतालतमालाब्जनीलतत्फलमालिनम् ॥ वल्लीवलयविन्यासविलासवलितद्रुमम् ॥ ५४ ॥ आलोलपल्लवलतावलितायननामुत्फुल्लकंदलशिलींध्रसुगंधितानाम् ॥ तालीतमालदलतांडवमंडपानामाराममुल्लकुसुमद्रुमशीतलानाम् ॥ ५५ ॥ साराववारिचलनाकुलगोकुलानामानीलसस्यकुसुमस्थलशोभितानाम् ॥ तीरद्रुमप्रकरगुप्तसरिद्रयाणांनीरंध्रपुष्पितलताग्रवितानकानाम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जिसके शुकसारिका आदि पक्षियोंकी पढाने आदिकी क्रियामें ललनागण निमग्न होरहेहैं तथा कोक, कोकिल और काष्ठादिके कोलाहल शब्दसे व्याप्त ॥ ५३ ॥ शाल, ताल (ताड) तमाल और कमलसे तथा शालताल आदि फलोंकी मालाओंसे नील वर्ण होरहाहै, तथा लताओंकी कटक (कडे) के आकाकी रचनासे सम्पूर्ण वृक्ष जिसके वेष्टित (चारोंओरसे घिरे) हैं ऐसे उसग्रामको देखा ॥ ५४ ॥ चंचल पल्लव तथा कोमल लताओंसे जिसके मार्ग रुक रहेहैं, विकसित कन्दली लताओं शिलीन्ध्र आदि पुष्पोंसे अति सुगन्धित, ताली और तमाल आदिके दलोंसे जिसमें

(१) यहांसे लेके सम्पूर्ण श्लोकस्थ वक्य गिरिमन्दर अर्थात् गिरिग्रामवके विशेषणहैं अर्थात् उसीकी शोभा इन श्लोकोंमें वर्णन की गई है.

मण्डप बन रहे हैं, वाटिकाओंके विकसित पुष्प सहित वृक्षोंसे अति शीतल ॥ ५५ ॥ शब्द सहित जलके मार्गसे चलनेमें गौओंका समूह जिससे व्याकुल होरहाहै, अतिनील घास और पुष्प सहित भूमियोंसे अति शोभित, तटके वृक्षोंके समूहोंसे जिसके नदीका प्रवाह छिप रहाहै, तथा सघन पुष्प सहित लताओंसे जिसमें मण्डप बन रहेहैं ॥ ५६ ॥

उद्यानकुंदमकरंदसुगंधितानांगंधांधषट्पदकुलांतरितांबुजानाम् ॥ सौंदर्यतर्जितपुरंदरमंदिराणांराजीविराजिरजसारुणितांबराणाम् ॥५७॥ रंहोवहद्गिरिनदीरवघर्घराणांकुंदावदातजलदद्युतिभासुराणाम् ॥ सौधस्थितोल्लसितफुल्ललतालयानांलीलावलोलकलकंठविहंगमानाम् ॥ ५८ ॥ उल्लासिकौसुमदलास्तरणस्थयूनामापादमावलितमाल्यविलासिनीनाम् ॥ सर्वत्रसुंदरनवांकुरदंतुराणांशोभोल्लसद्वरलताकुलमार्गणानाम् ॥ ५९ ॥ संजातकोमललतोत्पलसंकुलानांतिष्ठत्पयोदपटसंवलितालयानाम् ॥ नीहारहारहरितस्थलविश्रुतानांसौधस्थमेघतडिदाकुलितांगनानाम् ॥ ६० ॥

अर्थ—वाटिकाओंमे कुन्द आदिके रसोंसे महा सुगन्धयुक्त, सुगन्धसे मदोन्मत्त भ्रमरोंसे जिसके कमलगण ढकरहेहैं, अपने मन्दिरोंकी सुन्दरतासे इन्द्रपुरके मन्दिरोंकोभी डरानेवाला, तथा उत्तम रक्तकमलकी धूलियोंसे आकाशमण्डलकोभी रक्तवर्ण करनेवाला ॥ ५७ ॥ वेगसे बहती हुई पर्वतकी नदियोंके घर घर शब्दसे युक्त, कुन्दके समान श्वेत मेघोंकी छबिसे प्रकाशमान, अटारियोंपर उत्तम पुष्पसहित लताओंसे स्थान जिसमें बनेहैं, तथा अनेक प्रकारके पक्षीगण जिसमें मनोहर शब्दकर रहेहैं ॥ ५८ ॥ नूतन सुगन्धित पुष्पोंसे जहांपर युवा पुरुषोंकी शय्या पूर्ण होरहीहै तथा जिसमें उत्तम स्त्रीगण पदसे लेके मस्तक पर्य्यंत पुष्पोंकी मालासे धारण कियेहुयेहैं सब स्थानोंमें सुन्दर और नूतन अंकूरोंसे अति शोभित, शोभायमान उत्तम लताओंसे जिसके शरस्तम्ब (खम्भे) ढक रहेहैं ॥ ५९ ॥ उत्तम कोमल लता तथा पुष्पोंसे पूर्ण, मेघमण्डलोंसे जिसके स्थान घिरेहैं, नीहारके विन्दुरूपी मोतियोंकी लतायुक्त हरित भूमियोंसे अति प्रसिद्ध तथा अंटारियोंपर स्थित मेघोंमें बिजुलीकी चमकसे जिसके ललनागण व्याकुल होरहेहैं ॥६०॥

नीलोत्पलोल्लसितसौरभसुंदराणांहुंकारहारिहरितोन्मुखगोकुलानाम् ॥ विश्रब्धमुग्धमृगसारगृहाजिराणामुन्नृत्यबर्हिघनसीकरनिर्झराणाम् ॥ ६१ ॥ सौगंध्यमत्तपवनाहतविक्लवानांवप्रौषधिज्वलनविस्मृतदीपकानाम् ॥ कोलाहलाकुलकुलायकुलाकुलानांकुल्याकुलाकलकलाश्रुतसंकथानाम् ॥ ६२ ॥ मुक्ताफलप्रकरसुंदरबिंदुपातशीताखिलद्रुमलतातृणपल्लवानाम् ॥ लक्ष्मीमनस्तमितपुष्पविकाशभाजांशक्नोतिकःकलयितुंगिरिमंदिराणाम् ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णनं नामाष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तम नील कमलोंकी सुगन्धसे अति रमणीय, और जिसमें अपने हुंकार शब्दसे मनको हरने हारी गौओंका समूह अव्याकुलता पूर्वक हरित तृणसहित भूमिको ओर जारहाहै जिसके गृहके अंगणों (आंगनों) में विश्वासी (पतुले) मृग तथा शुक सारिका आदि पक्षी विचर रहेहैं, और फुहारोंकी सघन झडीसे वृष्टिके भ्रमसे मोर लोग जिसमें नृत्यकर रहेहै ॥ ६१ ॥ सुगन्धिसे मत्तपवन जिसमें सबकी विकलता दूर करदीहै, तथा प्रकाश युक्त लताओंके कारणसे जहांपर कोलाहल शब्दसे पूर्ण होरहेहैं, और पर्वतोंपरसे जो झरने गिर रहेहैं उनके शब्दोंसे जहांपर मनुष्योंके शब्द नहीं सुनपडते ॥ ६२ ॥ मुक्ता (मोती) फलोंके समूहके समान जलबिन्दुओंके गिरनेसे जिसमें सम्पूर्ण वृक्ष, लता, तृण तथा पल्लव आदि शीतल होरहेहैं, और विकसित पुष्पोंसे जिसकी शोभा अधिक बढरहीहै ऐसे गिरिग्रामकी शोभाकी संख्या भला कौन करसकताहै ? ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे गिरिग्राम वर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

लीलाके पूर्व चरित्रोंके स्मरण तथा लोकोंके समूहसे शोभित आकाशमण्डलमें गमनका वर्णन इस २९ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तत्रतेपेततुर्देव्यौग्रामेंतःशीतलात्मनि ॥ भोगमोक्षश्रियौशांतेपुंसीवविदितात्मनि ॥१॥ कालेनैतावतालीलातेनाभ्यासेनसाभवत् ॥ शुद्धज्ञानैकदेहत्वात्त्रिकालामलदर्शिनी ॥ २ ॥

अथसस्मारसर्वास्ताःप्राक्तनीःसंसृतेर्गतीः॥ साऽस्वयंस्वरसेनैवप्राग्जन्ममरणादिकाः॥३॥ लीलोवाच॥ देविदेशमिमंदृष्ट्वात्वत्प्रसादात्स्मराम्यहम् ॥ इहतत्प्राक्तनंसर्वंचेष्टितंचेष्टितांतरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस शोभाके देखनेके पश्चात् शान्ति आदि साधनसम्पन्न वे दोनों देवियां उस ग्रामके भीतर ऐसे जाके गिरीं जैसे आत्मा जाननेवाले पुरुष और मोक्षकी श्री (शोभा) ॥१॥ हे रामजी ! वह लीला इतने समयमें अभ्यासके कारणसे शुद्धज्ञानशरीरवाली, तथा त्रिकाल विषयमें निर्मल दर्शनवाली होगई ॥२॥ इसके अनन्तर वह आपही बिना परिश्रम अपने पूर्वजन्मकी मरण आदि सम्पूर्ण गतिका स्मरण किया ॥ ३ ॥ लीलाजी बोली-हे देवि ! आपकी कृपासे इस देशको देखके अपने पूर्वजन्मकी सब चेष्टाको तथा जन्मान्तरकी परम्पराकी सम्पूर्ण चेष्टाओंकोभी स्मरण कर रहीहूं ॥ ४ ॥

इहाभूवमहंजीर्णाशिरालांगीकृशासिता ॥ ब्राह्मणीशुष्कदर्भाग्रभेदरूक्षकरोदरा ॥ ५ ॥ भर्तुःकुलकरी भार्यादोहमंथानशालिनी ॥ मातासकलपुत्राणामतिथीनांप्रियंकरी ॥ ६ ॥ देवद्विजसतांभक्तासिक्तांगी घृतगोरसैः ॥ भर्जनीचरुकुंभादिभांडोपस्करशोधिनी ॥ ७ ॥ नित्यमन्नलवक्षिककाचकंबुप्रकोष्ठका ॥ जामातृदुहितृभ्रातृपितृमातृप्रपूजनी ॥ ८ ॥

अर्थ—हे भगवती ! इसी स्थानमें, वृद्ध अति कृश, नाडीमात्र शेष शरीर सहित, शुष्क (सूखे) कुशोंके अग्रभागसे हथेली जिसकी छिदगईथी ऐसी ब्राह्मणी मैं थी ॥ ५ ॥ पुनः मैं अपने पतिके कुलको बढानेवाली, दहीकें मन्थन दण्डसे अति शोभायमान (छाछ वा मठा बोलनेसे) सम्पूर्ण अतिथियोंको माताके समान प्यार करनेवाली॥६॥ देव, ब्राह्मण तथा सज्जन महात्माओंकी बडी भक्त घृत गोरस आदिसे गौरवर्ण, भर्जनी (पाक बटलोही) चरु (यज्ञके पदार्थ पकाने स्थाली) घडा (कलश) आदि बर्तनोंको शुद्ध करनेहारी॥७॥नित्यही गृहमें कुछ अन्न रखनेवाली केवल एक काचकी चूडी कलाईमें धारण करनेहारी, जामाता(जमाई)कन्या, भ्राता, तथा माता पिताकी नित्य पूजा करनेवाली॥८॥

आदेहंसद्मभृत्यैवप्रक्षीणदिनयामिनी ॥ वाचंचिरंचिरमितिवादिन्यनिशमाकुला ॥ ९ ॥ काहंकइवसंसारइतिस्वप्नेप्यसंकथा ॥ जायाश्रोत्रियमूढस्यतादृशस्यैवदुर्द्धियः ॥ १० ॥ एकनिष्ठासमिच्छाकगोमयेंधनसंचये ॥ म्लानकंबलसंवीतशिरालकृशगात्रिका ॥ ११ ॥ तर्णकीकर्णजाहस्थकृमिनिष्कासनतत्परा ॥ गृहशाकायनासेकसत्वराहूतकर्परा ॥ १२ ॥

अर्थ—देहपातपर्य्यन्त सदा गृहके पोषण आदि कार्य्योंमें रात्रिदिन बितानेवाली, और पुत्र वहू, तथा भृत्य आदिकों तुमने स्नानमें बिलम्ब किया, तुमको भोजन करनेको बिलम्ब होरहा है इत्यादि शब्दोंके कहनेमें सदा व्यग्र ॥ ९ ॥ मैं कौन हूं, यह संसार क्याहै इत्यादि वार्ताको स्वप्नमेंभी न करनेवाली, क्योंकि मेरेही सदृश अविशुद्धमति गृहकार्य्यमें तत्पर केवल वैदिक यज्ञ आदि कर्म करनेवाले ब्राह्मणकी मैं स्त्री थी ॥ १० ॥ यज्ञादि कार्य्योंके लिये इन्धन शाक आदि एकत्र करनेमें सदा तत्पर, मलिन कम्बलसे शरीरको ढाकनेवाली अति कृश शरीरवाली ॥ ११ ॥ वत्सा (बछिया) के कर्णके कीडोंको हांथसे निकालनेमें सदा तत्पर, गृहमें शाककी क्यारियोंके सींचनेके अर्थ भृत्यादिके बुलानेमें सदा निमग्न ॥ १२ ॥

नीलनीरतरंगांततृणतर्पिततर्णिका ॥ प्रतिक्षणंगृहद्वारकृतलेपनवर्णका ॥ १३ ॥ नीत्यर्थंगृहभृत्यानामादीनकृतवाच्यता ॥ मर्यादानियमादब्धेर्वेलेवानिशमच्युता ॥ १४ ॥ जीर्णपर्णसवर्णैककर्णदोलाधिरूढया ॥ काष्ठताव्यजराभीतजीवद्दृत्येवचिह्निता ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वासंचरंतीसाशिखरिग्रामकोटरे ॥ संचरंत्याःसरस्वत्यादर्शयामाससस्मयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अति हरित जवके किनारेकी तृणोंको स्वयं लाके बालबछडोंको खिलानेवाली, प्रतिक्षण गृहके द्वारपर अद्भुत लेपन और चित्राम करनेहारी ॥ १३ ॥ भृत्यादिकोंको नीतिकी शिक्षा देनेहारीके दीनतापूर्वक किंचित् लोकनिन्दाकोभी सहनेवाली, तथा मर्य्यादा और नियम आदिके पालन करनेमें सदा ऐसे लगी रहतीथी जैसे समुद्रसे उसका तट ॥ १४ ॥ हे देवि ! इसप्रकार संसारी कार्य्य करते हुये जीर्ण (पुराने) पत्तेके समान वर्णवाले मेरे शरीरका दक्षिण कर्ण बधिरताको प्राप्त होगया, और वह शिर काँपनेके कारण दोला (झूला) रूपताको प्राप्त हुआ उसमें आरूढ, श्रवण आदि व्यवहार सिद्ध करनेवाली काष्ठकी यष्टिसे जीवनकी अन्तिम दशासे मैं चिन्हित होगई थी ॥ १५ ॥ हे रामजी ! इतना कहके वह गिरिग्राममें भ्रमण करती हुई अपने साथ विचरनेहारी सरस्वतीजी आश्चर्य्यके साथ आगे कही हुई बस्तुओंको दिखलाया ॥ १६ ॥

इयंमेपाटलाखंडमंडिता पुष्पवाटिका ॥ इयंमेपुष्पितोद्यानमंडपाशोकवाटिका ॥ १७ ॥ इयंपुष्करिणी तीरद्रुमाग्रंथिततर्णका ॥ इयंसाकर्णिकानाम्नीतर्णिकामुक्तपर्णिका ॥ १८ ॥ इयंसामेलसाकीर्णावराकी जलहारिका ॥ अद्याष्टमंदिनंबाष्पक्लिन्नाक्षीपरिरोदिति ॥ १९ ॥ इहदेविमयाभुक्तमिहोषितमिहस्थितं॥ इहसुप्तमिहापीतमिहदत्तमिहाहृतं ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! यह मेरी पाटलके वृक्षोंकी अखण्डित वाटिका है, और यह पुष्पके उद्यान मण्डप सहित अशोक वाटिका है ॥ १७ ॥ और यह मेरी पुष्करिणी (बाउली) है जिसके तटके वृक्षोंसे ढीली ग्रन्थियों छोटे बछडे आदि बंधे रहते हैं, और यह मेरी शमी वृक्षोंकी वाटिका है जिसने मेरे बियोगसे पत्तोंकोभी त्याग दिया है ॥ १८ ॥ यह मेरी दीन जलभरनेवाली दासी है जो शोकके कारण अति कृश और अपना कार्य्य करनेमें असमर्थ प्रतीत होरही है तथा आज आठवे दिनभी अश्रुओंसे पूर्ण नेत्र रोदन कररही है ॥ १९ ॥ हे देवि ! इस स्थानमें मैं भोजन करतीथी, यहां निवास करती, यहां स्थित रहती, यहां शयन करती, यहां जल पीती, यहां पदार्थोंको देती, और यहांपर फल-पुष्प आदि लाके रखती थी ॥ २० ॥

एषमेज्येष्ठशर्माख्यःपुत्रोरोदितिमंदिरे ॥ एषामेजंगलेधेनुर्दोग्ध्रीचरतिशाद्वलं ॥ २१ ॥ गृहेवसंतदाहायरूक्षक्षारविधूसरं ॥ स्वदेहमिवपंचाक्षंपश्येमंप्रघणंमम ॥ २२ ॥ तुंबीलताभिरुग्राभिःपुष्टाभिरिववेष्टितं ॥ महानसस्थानमिदंममदेहमिवापरम् ॥ २३ ॥ एतेरोदनताम्राक्षाबंधवोभुविबंधनम् ॥ अंगदार्पितरुद्राक्षाआहरंत्यनलेंधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह मेरा ज्येष्ठशर्म्मा नाम पुत्र मन्दिरमें रोदन करता है, और मेरी दुग्ध देनेवाली गौ जंगलमें हरित घास चररही है ॥ २१ ॥ और गृहमें बसन्तऋतुके आरंभमें होलीमें दाह करनेके अर्थ बनाहुआ रूखी भस्मसे मलिन वर्ण, पांच गवाक्ष (झरोखे) सहित मेरी दूसरी देहके समान यह मेरी बाहरकी बैठक देखिये ॥ २२ ॥ बडी २ तथा मोटी२ तुमियोंकी लतासे घिराहुआ, मेरे शरीरके समान यह मेरा रसोईका स्थान है ॥ २३ ॥ रोदन करनेसे रक्त-नेत्रवाले, पृथिवीमें बन्धनके तुल्य, ये मेरे बन्धु हैं, जो हाथोंमें रुद्राक्षकी बिजायट पहने हुये इन्धन लारहे हैं ॥ २४ ॥

अनारतंशिलाकच्छेगुच्छाच्छोटनकारिभिः ॥ तरंगैःस्थगिताकारंस्पृष्टतीरलतादलैः ॥२५॥ सीकराकीर्णपर्यंतशाद्वलस्थलसल्लतैः ॥ शिलाफलकास्फालफेनिलोत्पलसीकरैः ॥ २६ ॥ तुषारीकृतमध्यान्हदिवाकरकरोत्करैः ॥ फुल्लपुष्पोत्करासारप्रणादोत्कतटद्रुमैः ॥ २७ ॥ विद्रुमैरिवसंक्रांतफुल्लकिंशुककांतिभिः ॥ व्याप्तयापुष्पराशीनांसमुल्लासनकारिभिः ॥२८॥ उह्यमानफलापूरसुव्यग्रग्रामबालया ॥ महाकलकलावर्त्तमत्तयाग्रामकुल्यया ॥ २९ ॥ वेष्टितस्तरलास्फालजलधौततलोपलः ॥ घनपत्रतरुच्छन्नच्छायासततशीतलः ॥ ३० ॥ अयमालक्ष्यतेफुल्ललतावलनसुंदरः ॥ दलद्गुच्छकाच्छन्नगवाक्षोगृहमंडपः ॥३१॥ अत्रमेसंस्थितोभर्त्ताजीवाकाशतयाकृतिः ॥ चतुःसमुद्रपर्यंतमेखलायाभुवःपतिः ॥३२॥

अर्थ—निरन्तर शिलाप्रधान जलप्रदेशमें पुष्पोंके गुच्छोंको तोडनेहारे, तटके लतादलोंको स्पर्श करनेवाले॥२५॥ जलके कणोंसे निकटकी घास तथा लताओंको आर्द्र गीलो करने हारे, शिलाओंपर गिरनेसे फेन सहित कमलकी सुगन्ध सहित, तथा मध्यान्ह समयमेंभी सूर्य्यकी किरणोंको बर्फके समान शीतल करनेहारे तरंगोंसे, और विकसित पुष्पोंके समूहमें आनेवाले भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान तटके वृक्षोंसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तथा प्रतिबिम्बरूपसे अन्तःप्रविष्ट पलाशकी शोभासे विद्रुम (मूंगे) के सदृश अपनी पुष्पराशियोंको शोभित करनेवाले वृक्षोंसे घिरी हुई, तथा प्रवाहमें वहते हुये आम्रआदिके लोभ तथा वहनेके भयसे ग्रामके बालक जिसमें व्यग्र हैं ऐसी, और भवरेहयुक्त जलके महा-कोलाहलसे मत्तके सदृश ग्रामनदीसेभी घिरा हुआ और वेगयुक्त जलके गिरनेसे जिसकी नीचेकी शिलाये धुलगई हैं ऐसा सघन पत्रसहित वृक्षोंकी छायासे निरन्तर शीतल, विकसित लताओंके वेष्टनसे अतिरमणीय और गिरते हुये फल पुष्पोंके गुच्छोंसे जिसके झरोखे ढक गयेहैं ऐसा यह मेरा गृहमण्डप देख पडताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे देवि ! जीवाकाशरूपसे अक्रिय होनेपरभी मेरा पति इसी स्थानमें चारों समुद्र पर्य्यन्त मेखलावाली पृथिवीका स्वामी होके स्थित रहा ॥ ३२ ॥

आस्मृतंपूर्वमेतेनकिलासीदभिवांछितम् ॥ शीघ्रंस्यामेवराजेतितीव्रसंवेगधर्मिणा ॥ ३३ ॥ दिनैरष्टभिरेवासौतेनराज्यंसमृद्धिमत् ॥ चिरकालप्रत्ययदंप्राप्तवान्परमेश्वरि ॥ ३४ ॥ अत्रासौभर्त्तृजीवोमेस्थितोव्योम्निगृहेनृपः ॥ अदृश्यःखेयथावायुरामोदोवानिलेयथा ॥ ३५ ॥ इहैवांगुष्ठमात्रांतेतव्द्योम्न्येवपदंस्थितम् ॥ मद्भर्त्तृराज्यंसमवगतंयोजनकोटिभाक् ॥ ३६ ॥

अर्थ—उस मेरे दृढ अभ्यासवाले ब्राह्मण पतिने जातेहुये राजाको देखकर मैंभी शीघ्र ऐसाही राजा होऊं इस अपने अभिलषित पदार्थको स्मरण किया ॥३३॥ हे परमेश्वरि ! इसी कारणसे आठही दिनमें, अति ऐश्वर्य्य सहित अतिकाल स्थित रहनेका विश्वास करानेवाले राज्यको पाया ॥ ३४ ॥ इसी गृहाकाशमें मेरे पति नृपका जीव अदृश्यरूपसे ऐसे स्थितहै जैसे आकाशमें वायु अथवा वायुमें सुगन्ध ॥ ३५ ॥ परमार्थ वस्तु दृष्टिसे इसी आकाशमें अंगुष्ट मात्रमें स्थितहै, और भ्रान्तिसे कारोडों योजनपरहै ॥ ३६ ॥

आवांखमेवखस्थंचभर्तृराज्यंममेश्वरि ॥ पूर्णंसहस्रैःशैलानांमहामायेयमातता ॥ ३७ ॥ तद्देविभर्तृनगरंपुनर्गंतुंममेप्सितम् ॥ तदेहितत्रगच्छावःकिंदूरंव्यवसायिनाम् ॥३८॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रणतादेवींसाप्रविश्याशुमंडपं ॥ विहंगीवतयासाकंपुप्लुवेसिनिभंनभः ॥ ३९ ॥ भिन्नांजनचयप्रख्यंसौम्यैकार्णवसुंदरं ॥ नारायणांगसदृशंभृंगपृष्ठामलच्छवि ॥ ४० ॥

अर्थ—हम दोनो तथा मेरे पतिका राज्यभी चिदाकाशरूपही है तथापि हे परमेश्वरि ! यह सहस्रों पर्वतोंसे इस भांति पूर्ण है जैसे विस्तृत संसार माहामायासे ॥ ३७ ॥ हे देवि ! मेरी इच्छा पतिके नगरमें जानेकी पुनः है इसलिये आओ चलैं, क्योंकि उद्योगियोंके लिये कौनसी वस्तु दूरहै ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अति नम्र होके देवीसे वह इतना कहके खंडके समान आकाशमण्डलमें भगवतीके साथ ऐसी उडी जैसे पक्षी (पक्षिणी) ॥ ३९ ॥ मिश्रित अंजनके समूहके तुल्य शान्त समुद्रके सदृश रमणीय श्रीनारायणके अंगके समान श्यामवर्ण, भ्रमरके पीठके समान निर्मल शोभायुक्त, (आकाशदेशमें वे दोनों उडीं) ॥ ४० ॥

मेघमार्गमतिक्रम्यवातस्कंधावनिंतथा ॥ सौरमार्गमथाक्रम्यचंद्रमार्गमतीत्यच ॥ ४१ ॥ ध्रुवमार्गोत्तरं गत्वासाध्यानांमार्गमेत्यच ॥ सिद्धानांसमतीत्योर्वीमुल्लंघ्यस्वर्गमंडलं ॥ ४२ ॥ ब्रह्मलोकोत्तरंगत्वातुषितानांचमंडलम् ॥ गोलोकंशिवलोकंचपितृलोकमतीत्यच ॥ ४३ ॥ विदेहानांसदेहानांलोकानुत्तीर्य दूरगम् ॥ दूराद्दूरमथोगत्वाकिंचिद्बुद्धावभूवसा ॥ ४४ ॥

अर्थ—मेघ मार्गको अतिक्रमण करके वायुलोकमें प्राप्त हुई उसकोभी उल्लंघनके सूर्य्यलोकमें पहुंची, उसकोभी अतिक्रमण करके अनन्तर चन्द्रमार्गको अतिक्रमण किया ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार ध्रुवलोक, साध्यलोक और सिद्धोंके लोकोंको उल्लंघन करके स्वर्गलोकमें पहुंचकर उसेभी उल्लंघन किया ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मलोकमें जाके वैकुण्ठ (सन्तुष्ट जीवोंके) लोकमें प्राप्त हुई, इसके अनन्तर गोलोक शिवलोक और पितृलोककोभी अति क्रमण करके ॥ ४३ ॥ देह रहित तथा देह सहित प्राणियोंके लोकोंको पार किया, दूरसेभी दूर देशमें जाके फिर उसने कुछ बिचार किया ॥ ४४ ॥

पश्चादालोकयामाससमतीतंनभस्थलम् ॥ यावन्नकिंचिच्चंद्रार्कतारायालक्ष्यतेह्यधः ॥ ४५ ॥ तमस्तिमितगंभीरमाशाकुहरपूरकम् ॥ एकार्णवोदरप्रख्यंशिलोदरघनंस्थितम् ॥ ४६ ॥ लीलोवाच ॥ तद्देविभास्करादीनांक्वाधस्तेजोगतंवद ॥ शिलाजठरनिष्पंदंमुष्टिग्राह्यंतमःकुतः ॥ ४७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एतावतीमिमांव्योम्नःपदवीमागतासिभोः ॥ अर्कादीन्यपितेजांसियतोदृश्यंतएवनो ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अतिक्रमण किये हुये आकाशमण्डलका वहांतक विचार किया जहां सूर्य्य, चन्द्र और तारा आदिकी किंचिद्भी गति प्रतीत नहीं होती ॥ ४५ ॥ वह देश महागम्भीर अन्धकारसे ग्रस्त दशों दिशाओंके छिद्रोंका पूरक एक समुद्रके उदरके सदृश, तथा शिलाके उदरके तुल्य था ॥ ४६ ॥ लीला बोली–हे देवि ! वह सूर्य्य आदिका तेज नीचे कहां चलागया, और यह शिलाके उदरसे निकलनेवाला अति सघन होनेके कारण मुष्टिसे ग्रहण करनेके योग्य यह अन्धकार कहांसे आगया ? ॥ ४७ ॥ श्रीदेवी बोली–हे पुत्रि ! तुम आकाशकी उस बडी पदवीतक पहुंचगई हो कि जहांसे सूर्य्यादिका तेजभी नहीं देख पडता ॥ ४८ ॥

यथामहांधकूपाधःखद्योतोनावलोक्यते ॥ पृष्ठगेनतथेहातोनाधःसूर्योवलोक्यते ॥ ४९ ॥ लीलोवाच ॥ अहोनुपदवींदूरमावामेतामुपागते ॥ सूर्योप्यधोणुकणवन्नमनागपिलक्ष्यते ॥ ५० ॥ इतउत्तरमन्यास्यात्पदवीकानुकीदृशी ॥ कथंचमातरेतव्याकथ्यतामितिदेविमे ॥ ५१ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ इतउत्तरमग्रेतेब्रह्मांडपुटकर्परम् ॥ यस्यचंद्रादयोनामधूलिलेशाःसमुत्थिताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार अन्धकारमय कूपके नीचेका खद्योत (जुगनू वा पटवीजना) ऊपरके मनुष्यको नहीं देख पडता इसीप्रकार यहांसे सूर्य्य नहीं देख पडता ॥ ४९ ॥ लीलाजी बोली–हे देवि ! यह कैसा आश्चर्य है कि हमलोग

इतना दूर मार्ग आगई कि जहांसे सूर्य्यभी इतना नीचे रहगया कि परमाणुके सदृश कुछभी नहीं देख पडता ॥ ५० ॥ हे भगवति ! इसके आगे कौनसा और कैसा मार्गहै और हे मातः ! कैसे वहां जो सकतेहैं सो कहो ॥ ५१ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे पुत्रि! इसके आगे ब्रह्माण्ड सम्पुटका खप्परहै जिससे कि सूर्य्यचन्द्र आदिभी धूलिके कणके समान निकलेहैं ५२

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिप्रकथयंत्यौतेप्राप्तेब्रह्मांडकर्परम् ॥ भ्रमर्याविवशैलस्यकुड्यंनिबिडमंडपम् ॥ ५३ ॥ अक्लेशेनैवततेतस्मान्निर्गतेगगनादिव ॥ निश्चयस्थंहियद्वस्तुतद्वज्रगुरुनेतरत् ॥ ५४ ॥ निरावरणविज्ञा नासाददर्शततस्ततम् ॥ जलाद्यावरणंपारेब्रह्मांडस्यातिभासुरम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मांडाद्दशगुणतस्तोयंतत्र व्यवस्थितं ॥ आस्थितंवेष्टयित्वातुत्वगिवाक्षोटपृष्ठगा ॥ ५६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार वे दोनों परस्पर वार्तालाप करतीहुई ब्रह्माण्ड संपुटके खप्परमें ऐसे प्राप्तहुई जैसे दो भ्रमरी किसी पर्वतके छिद्र शून्य गर्भमें ॥ ५३ ॥ विना क्लेशही आकाशके तुल्य उसमें निकली, क्योंकि जिस वस्तुमें सत्यका निश्चय होताहै वही वज्रके सदृश भारी तथा कठोर प्रतीत होताहै, और उससे भिन्न मिथ्या बुद्धिसे बाधित रहताहै ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर उस लीलाने जिसका विज्ञान आवरणसे रहित होगयाहै ब्रह्माण्डके पार अति प्रकाशमान फैला हुआ जलादि आवरण देखा ॥ ५५ ॥ ब्रह्माण्डसेभी दशगुण अधिक परिमाण जल इसप्रकार वहां ब्रह्माण्ड खप्परको चारों ओरसे ऐसे घेरेहुये स्थितहै जैसे अखरोटके बीजको उसका छिलका॥५६

तस्माद्दशगुणोवह्निस्तस्माद्दशगुणोनिलः ॥ ततोदशगुणंव्योमततःपरममंबरम् ॥ ५७ ॥ तस्मिन्परमके व्योम्निमध्याद्यंतविकल्पनाः ॥ नकाश्चनसमुद्यंतिवंध्यापुत्रकथाइव ॥ ५८ ॥ केवलंविततंशांतंतदना दिगतभ्रमं ॥ आद्यंतमध्यरहितंमहत्यात्मनितिष्ठति ॥ ५९ ॥ आकल्पमुत्तमबलेनशिलापतेच्चेत्तस्मिन्ब लात्पतगराडपिचोत्पतेच्चेत् ॥ तद्योजननंलभतेविमलेंबरेंतर्माकल्पमेकजवगोप्यथमारुतोपि ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमाकाशवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस जलसेभी दशगुण अधिक अग्नि घेरे है, और उससेभी दशगुण अधिक वायु और उससेभी दशगुण अधिक आकाशहै और इसके अनन्तर शुद्ध चिदाकाशहै क्योंकि अविद्याके नष्ट होनेसे अव्याकृत आकाशही शेष रहताहै ॥५७ ॥ हे रामजी ! उस परम शुद्ध चिदाकाशमें कोईभी आदि अन्त मध्यकी विकल्पना (भेदका विचार) इसप्रकार नहीं उठती जैसे वन्ध्याके पुत्रकी कथा ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! वह व्यापक स्वरूप शान्त, अनादि, भ्रम रहित आदि अन्तमध्यशून्य, केवल अपनी आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! उस विमल शुद्ध चिदाकाशके ऊपर यदि महावेगसे कल्पतक शिला गिरै, वा नीचेसे पक्षिराज गरुडजी उडै, अथवा उनदोनोंको मध्यमें महावेगसे कल्पपर्य्यन्त वायु चलै, तबभी उनदोनोंको मेलतक नहीं होसकता और चारों ओरसे उसका अन्त लेना तो दूर रहा, अर्थात् वह सर्वथा अपरिच्छिन्नहै ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमाकाशवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

पूर्वदृष्ट ब्रह्माण्डोंके सदृश, और उनसे विचित्रभी अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड उस चिदाकाशमें लीलाने देखा, इस विषयका वर्णन इस ३० वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पृथिव्यप्तेजसांतत्रनभस्वन्नभसोरपि ॥ यथोत्तरंदशगुणानतीत्यावरणान्क्षणात् ॥ १ ॥ ददर्शपरमाकाशंतत्प्रमाणविवर्जितं ॥ तथाततंजगदिदंयथातत्रांडमात्रकं ॥ २ ॥ तादृशावरणा न्सर्गान्ब्रह्मांडेषुददर्शसा ॥ कोटिशःस्फुरितान्व्योम्नित्रसरेणूनिवातपे ॥ ३ ॥ महाकाशमहांभोधौम हाशून्यत्ववारिणि ॥ महाचिद्द्रवभावोत्थान्बुद्बुदानर्बुदप्रभान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाशके यथाक्रम उत्तरोत्तर दशगुण अधिक आवरणको उनदोनोंने क्षणभरमें पार किया ॥ १ ॥ उसपूर्वोक्त प्रमाण रहित परमाकाशमें जैसे यह वर्णन किया हुआ जगत् विस्तृत रूपसेहै इसीप्रकार अन्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मात्रको उसी चिदाकाशमें विस्तृत रूपसे लीलाने देखा

॥ २ ॥ पूर्वोक्त आवरण सहित अपने अधिष्ठान चेतनसे भासित कोटियों सृष्टियोंको उन ब्रह्माण्डोमेंसे लीलाने उस चिदाकाशमें ऐसे देखा जैसे धूपमें उडतेहुये त्रसरेणु ॥३॥ उस महाकाशरूपी महासमुद्रमें अविद्यारूपी जलमें महाचिदको स्फुरणके चिदाभावसे निकलेहुये असंख्य बुद्बुदके समान ब्रह्माण्डोंको देखा ॥ ४ ॥

कांश्चिदापततोधस्तात्कांश्चिच्चोपरिगच्छतः ॥ कांश्चित्तिर्यग्गतीनन्यान्स्थितांस्तध्यान्स्वसंविदा॥५॥ यत्रयत्रोदितासंविद्येषांयेषांयथायथा ॥ तत्रतत्रोदितंरूपंतेषांतेषांतथातथा ॥ ६ ॥ नेहैवतत्रनामोर्ध्वंना धोनचगमागमाः ॥ अन्यदेवपदंकिंचित्तस्माद्देहागमंहितत् ॥ ७ ॥ उत्पद्योत्पद्यतेतत्रस्वयंसंवित्स्वभा वतः ॥ स्वसंकल्पैःशमंयातिबालसंकल्पजालवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—उन उन ब्रह्माण्डोंके अभिमानी जीवोंके संविद् (ज्ञान) के अनुसार उनमेंसे किन्हींको ऊपरसे गिरते हुये, किन्हींके ऊपर जाते हुये, किन्हींको तिरछे जाते हुये, और किन्हींको स्थितिशील देखा ॥ ५ ॥ जहां २ पर जिन २ प्राणिओंकी जैसी २ संवित् उदयको प्राप्त हुईथी, वहां २ पर उन २ प्राणियोंके लिये वैसाही वैसा रूप होगया ॥ ६ ॥ यह वार्ता अनुभव करनेवालोंकी दृष्टिसे कहा, यथार्थमें तो इस चिदाकाशमें न ऊर्ध्वपन है और न नीचापन है, और न इस चिदाकाशमें ब्रह्माण्डका गमन आगमन है वह पद तो वाणी और मनसे अतीत, दिशा आदि सब द्वैतभावसे वर्जितहै इसलिये पूर्वोक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा उनके शरीरको प्राप्ति सब अज्ञानियोंकी दृष्टिसे कही गई है ॥ ७ ॥ वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि उस चिदाकाशमें अपने स्वभावसे अपने २ संकल्पके अनुसार उत्पन्न हो २ कर पुनः उसीमें शान्तिको ऐसे प्राप्त होजाते हैं जैसे बालकोंके संकलपजाल ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ किमधःस्यात्किमूर्ध्वंस्यात्किंतिर्यक्तत्रभासुरे ॥ इतिब्रूहिममब्रह्मन्निहैवयदिनस्थितं ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ससर्वावरणाएतेमहत्यंतविवर्जिते ॥ ब्रह्मांडाभांतिदुर्दृष्टेर्व्योम्निकेशोंड्रको यथा ॥ १० ॥ अस्वातंत्र्यात्प्रधावंतिपदार्थाःसर्वएवयत् ॥ ब्रह्मांडेपार्थिवोभागस्तदधस्तूर्ध्वमन्यथा ॥ ११ ॥ पिपीलिकानांमहतांव्योम्निवर्त्तुललोष्ठके ॥ दशदिक्कमधःपादाःपृष्ठमूर्ध्वमुदाहृतं ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! यदि अधिष्ठान चेतनमेंही ऊर्ध्व अधोभाव आदि नहीं है तो कल्पनासे निर्मित प्रकाशमान जगत्में ऊर्ध्व अधोभाग आदि व्यवहार कैसे होसकता है यह आप मुझे कृपा करके कहिये ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! उस अपरिमित चिदाकाशमें ये सम्पूर्ण आवरण सहित ब्रह्माण्ड अज्ञकी दृष्टि ऐसे भासते हैं जैसे आकाशमें नीलता ॥ १० ॥ जिसप्रकार कदम्बके केसरोंका आधारभूत जो कर्णिका है उसीकी अपेक्षा से ऊंचानीचापन माना जाताहै इसी प्रकार जहां यह पृथिवी है वह भाग नीचा समझा जाता है, और ये सब पदार्थ अस्वतन्त्रतासे इधर उधर भागरहें उनमें परस्पर आकर्षणशक्ति रहनेके कारण गिरते नहीं, और ऊपर फेकाहुआ ढेलाभी जो पृथिवीहीपर गिरताहै उसका कारणभी आकर्षणशक्ति है क्योंकि पृथिवी खींचती है ॥ ११ ॥ जैसे एक मिट्टीके गोलेमें चारोंओर चेटियां लपटी रहती हैं वहांपर जिधर उनका पैरहै वही नीचेकी दिशाहै और जिधर उनकी पीठहै वही ऊपर, यही दशा ब्रह्माण्डकी है, अर्थात् जिस ब्रह्माण्डके प्राणियोंका जिधर पैर वही नीचा और जहां उनका शिर है वही ऊपर ॥ १२ ॥

वृक्षवल्मीकजालेनकेषांचिद्वृदिभूतलं ॥ ससुरानरदैत्येनवेष्टितंव्योमनिर्मलं ॥ १३ ॥ संभूतंसद्यभूतेन सग्रामपुरपर्वतं ॥ इदंकल्पनभूतेनपकाक्षोटमिवत्वचा ॥ १४ ॥ यथाविंध्यवनाभोगेप्रस्फुरंतिकरेणवः ॥ तथातस्मिन्पराभोगेब्रह्मांडत्रसरेणवः ॥ १५ ॥ तस्मिन्सर्वततःसर्वंतत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ तच्चसर्वम योनित्यंतथातदणुकंप्रति ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! किसीको यह भासताहै कि यह भूतल वृक्ष वल्मीक जालसे घिराहै, और किसीके हृदयमें यह भासताहै कि आकाश, मनुष्य तथा भिन्न देवता, दैत्य, और किंपुरुषादिसे घिराहै ॥ १३ ॥ कितने ब्रह्माण्ड सद्यः कल्पनामय चार प्रकारके प्राणियोंके सहित और नगर, ग्राम, तथा पर्वत आदि सहित ऐसे उत्पन्न हुये हैं, जैसे अखरोटके फलके साथ उसका छिलका ॥ १४ ॥ जिसप्रकार विन्ध्याचलकी भूमिमें अनेक गज विचरते हैं ऐसेही उस अधिष्ठानरूप आत्मामें ब्रह्माण्डत्रसरेणु भ्रमण कर रहे हैं ॥ १५ ॥ उसमेंही सब कुछहै और उसीसे सब कुछहै, और वह सबको व्यापकरूपसे घेरेहै और सर्वमय वहीहै इसलिये वह किसीके प्रति अणुस्वरूप नहीं होसकता ॥ १६ ॥

शुद्धबोधमयेतस्मिन्परमालोकवारिधौ ॥ अजस्रमेत्यगच्छंतिब्रह्मांडाख्यास्तरंगकाः ॥ १७ ॥ अंतःशून्याःस्थिताःकेचित्संकल्पक्षयरात्रयः ॥ तरंगाइवतोयेब्धौप्रोद्यंतेशून्यतार्णवे ॥ १८ ॥ केषांचिदंतःक

ल्पांतःप्रवृत्तोघर्घरारवः ॥ नश्रुतोन्यैर्नवज्ञातःस्वभावेनरसाकुलैः ॥ १९ ॥ अन्येषांप्रथमारंभेशुद्धभूषु विजृंभते ॥ सर्गःसंसिक्तबीजानांकोशेंकुरकलायथा ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध बोधमय परम प्रकाशरूप उस परमात्मारूपी समुद्रमें अनेक ब्रह्माण्डरूपी तरंग सदा उदय अस्त हुआ करतेहैं ॥ १७ ॥ उनमेंसे कितने ब्रह्माण्ड अव्याकृतरूपसे चिदाकाशमें स्थितहैं, और पूर्वकल्पके सम्पूर्ण संकल्पोंकी बीजभूत लिंग उपाधिके क्षय पर्य्यन्त वे रहते हैं तथा उनकी सत्ता उसमें ऐसी है जैसी सुषुप्ति अज्ञानरूपसे पदार्थोंकी सत्ता, और अव्याकृत चिदाकाशरूपी समुद्रमें उनकी तर्कनाभी भांतीकी ऐसे हैं, जैसे जलसमुद्रमें तरंग ॥ १८ ॥ किन्हीं २ ब्रह्माण्डोंके अन्तरमें कल्पान्त पर्य्यन्त घर्घर शब्द होरहाहै जो कि स्वाभाविक अज्ञानसे दूसरोंने न सुना न जाना ॥ १९ ॥ और ब्रह्माण्डोंके प्रथम कल्पयुग आदिके आरंभमें, पूर्व उत्पन्न प्राणियोंसे दूषित न होनेके कारण शुद्ध भुवनोंमें सृष्टि ऐसे प्रवृत्त होरही है जैसे सिंचे हुये बीजोंके कोशमें शुद्धअंकुरकी कला ॥ २० ॥

महाप्रलयसंपत्तौसूर्यार्चिर्विद्युतोद्रयः ॥ प्रवृत्तागलितुंकेचित्तापेहिमकणाइव ॥२१॥ आकल्पंनिपतंत्येव केचिदप्राप्तभूमयः ॥ यावद्विशीर्यजायंतेतथासंविन्मयाःकिल ॥ २२ ॥ स्तंभाइवस्थिताःकेचित्केशोंडूकमिवांबरे ॥ वायोःस्पंदाइवाभांतितथाप्रोदितसंविदः ॥ २३ ॥ आचाराद्वेदशास्त्राणामाद्यएवान्यथोदिते ॥ आरंभेपितथान्येषामनित्यःसंस्थितःक्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—किन्हीं२ब्रह्माण्डके महाप्रलयका समय प्राप्त होगयाहै उसमें सब भुवनोंके नाशके अनन्तर सूर्य्य, विद्युत् तथा पर्वत आदि स्वयं ऐसे गलनेको प्रारम्भ हुये हैं जैसे घर्म (घाम) में हिमके कण ॥२१॥ कितने ब्रह्माण्ड कल्प पर्यन्त आधार देश न प्राप्त होनेसे सदा गिरतेही रहते रहते हैं, जबतक कि सर्वथा नष्ट होके वे पुनः न उत्पन्न हो, क्योंकि उनकी संवित्मयही हैं, इससे पूर्वमें जो पतनका असंभव कहाहै उस शंकाका अवसर नहीं है ॥ २२ ॥ कोई २ ब्रह्माण्ड आकाशमें स्तम्भके तुल्य निश्चलरूपसे स्थितहैं, और कोई २ स्पन्दमय वासनासे उत्पन्न होनेके कारण वायुकी गतिके समान प्रकाशित होरहे हैं ॥ २३ ॥ पूर्वकल्पके वेदशास्त्र संबन्धी कर्मज्ञानके अनुष्ठानरूप आचारसे ब्रह्मपदवीको प्राप्त ब्रह्माके प्रथमकल्पमेंही अन्य ब्रह्माकी अपेक्षा विलक्षणता वर्णन कियाहै तो उसके आजकी सृष्टियोंकी विलक्षणता पूर्ववत् रहो तथापि दूसरे ब्रह्माकी सृष्टिकी अपेक्षा तो इसका क्रम अनियतही स्थितहै ॥ २४ ॥

केचिद्ब्रह्मादिपुरुषाःकेचिद्विष्णवादिसर्गपाः ॥ केचिच्चान्यप्रजानाथाःकेचिन्निर्नाथजंतवः ॥ २५ ॥ केचिद्विचित्रसर्गेशाःकेचित्तिर्यङ्मयांतराः ॥ केचिदेकार्णवापूर्णाइतरेजनिवर्जिताः ॥ २६ ॥ केचिच्छिलांगनिष्पिंडाःकेचित्कृमिमयांतराः ॥ केचिद्देवमयाएवकेचिन्नरमयांतराः ॥ २७ ॥ केचिन्नित्यांधकाराढ्यास्तथाशीलितजंतवः ॥ केचिन्नित्यप्रकाशाढ्यास्तथाशीलितजंतवः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई २ ब्रह्माण्डके प्राणी अपना स्वामी ब्रह्माजीको मानते हैं, और कोई २ विष्णुको मानते हैं और कोई शिव, भैरव दूर्गा तथा विनायक आदिको मानते हैं, और कितने ऐसेभी हैं जो किसीकोभी अपना स्वामी नहीं मानते ॥ २५ ॥ किन्हीं २ सृष्टियोंके स्वामी विचित्रहैं, अर्थात् स्रष्टाओंकी विचित्रतासे सृष्टियोंकी विचित्रताकी कल्पना योग्यही है, कोई २ ब्रह्माण्ड तिर्य्यग् (पशुपक्षी आदि) जन्तुओंसे पूर्ण हैं, कोई समुद्रसे पूर्ण हैं, और कोई जन्मसेही रहितहैं ॥ २६ ॥ कोई पाषाणकी शिलाके सदृश सघन अंगवाले प्राणियोंके सहितहैं कोई कृमि (कीडे कोडे) मयहैं, कोई २ देवताओंसे पूर्ण हैं कोई मनुष्योंसे ॥ २७ ॥ कोई २ अन्धकारसे पूर्ण हैं, क्योंकि उनमें उल्लूकके सदृश अन्धकारमेंही व्यवहार करनेवाले प्राणी निवास करते हैं, और कोई २ प्रकाशमय हैं क्योंकि उनमें वैसेही व्यवहार करनेवाले जीव रहते हैं ॥ २८ ॥

केचिन्मशकसंपूर्णाउदुंबरफलश्रियः ॥ नित्यंशून्यांतराःकेचिच्छून्यस्पंदात्मजंतवः ॥ २९ ॥ सर्गेणतादृशेनान्येपूर्णायेंतद्धियामिह ॥ कल्पनामपिनायांतिव्योमपूर्णाचलोयथा ॥ ३० ॥ तादृगंबरमेतेषांमहाकाशांततंस्थितम् ॥ आजीवितंप्रगच्छद्भिर्विष्ण्वाद्यैर्यन्नमीयते ॥ ३१ ॥ प्रत्येकस्यांडगोलस्यस्थितःकटकरत्नवत् ॥ भूताकृष्टिकरोभावःपार्थिवःस्वस्वभावतः ॥ ३२ ॥ यःसर्वविभवोऽस्मत्कंधियांनविषयंततः ॥ तज्जगत्कथनेशक्तिर्नममास्तिमहामते ॥ ३३ ॥ भीमांधकारगहनेसुमहत्यरण्येनृत्यंत्यदर्शितपरस्परमेवमत्ताः ॥ यक्षायथाप्रविततेपरमांबरेंतरेवंस्फुरंतिसुबहूनिमहाजगंति ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विचित्रब्रह्मांडकोटिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—कोई २ उदुम्बर (गूलर) के फलके सदृश मशक समान प्राणियोंसे पूर्ण हैं, और कोई शून्यगतिवाले जीव सहित शून्य पूर्णहीहैं ॥ २९ ॥ अनेक ब्रह्माण्ड पूर्वोक्त सृष्टियोंसे पूर्ण रहतेभी योगियोंकी बुद्धिमें विकल्पज्ञान विषयताको ऐसे नहीं प्राप्त होते जैसे आकाशसे पूर्ण पर्वत ॥ ३० ॥ जैसा आकाश पूर्ण पर्वत है ऐसेही अशून्य स्वभाव आकाश है, और चिदाकाश तो इतना विस्तृत है कि विष्णु आदि अपने जीवन कालभर दौडते रहें तौभी यह इतना बडा है कि इसका परिमाण नहीं करसकते ॥ ३१ ॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डके चारोंओर भूतोंको आकर्षण करनेकी शक्तिरूप पार्थिव भाग इसप्रकार स्थित है जैसे कलाईके चारों ओर कटक (कडा) ॥ ३२ ॥ हे महामते रामजी ! हमलोगोंकी बुद्धिमें जगत् वर्णन करनेका विभव जो कुछ था वह सब विभव आपको दिखला चुके अब इसके आगे जगत् वर्णन करनेमें हमारी शक्ति नहीं है ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जैसे महा भयंकर गहन अन्धकारयुक्त जंगलमें अनन्त यक्षभूत आदिके गण उन्मत्त होके एक दूसरेके स्वरूपको न देखतेहुये नृत्य करतेहैं ऐसेही उस महा चिदाकाशके भीतर अनन्त ब्रह्माण्ड एक दूसरेके रूपको न देखतेहुये भ्रमण कर रहे हैं, अर्थात् परमेश्वरकी मायामें इतने अनन्त ब्रह्माण्ड रचनेकी शक्तिहै कि उनका वर्णन कोईभी नहीं करसकता ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विचित्रब्रह्माण्डकोटिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अन्तःपुरका देखना, तथा अन्य ब्रह्माण्डका दर्शन, और शूर बीर आदिके लक्षणोंसे सजीवभी सेनाका दर्शन इस ३१ वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमाकलयंत्यौतेनिर्गत्यजगतोनिजात् ॥ अंतःपुरंददृशतुर्झटित्येवविनिर्गते ॥ १ ॥ स्थितपुष्पभरापूर्णमहाराजमहाशवं ॥ शवपार्श्वोपविष्टांतश्चित्तलीलाशरीरकम् ॥ २ ॥ घनरात्रितयाल्पाल्पमहानिद्राजनाकुलम् ॥ धूपचंदनकर्पूरकुंकुमामोदमंथरम् ॥ ३ ॥ तमालोक्यापरंभर्त्तुःसंसारं गंतुमादृता ॥ पपातलीलासंकल्पदेहेनात्रैवतन्नभः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार वे दोनों देखतीहुई अपने जगत्से निकलके शीघ्र अन्तःपुरको देखा ॥ १ ॥ वह (अन्तःपुर) पुष्पोंके भारसे पूर्ण महाराजाके मृतक शरीरसे युक्त, और मृतक शरीरके निकट स्थित अन्तःसमाधिमें निमग्न लीलाके चित्तशरीर सहित ॥ २ ॥ शोकके कारण दीर्घरात्रि होनेसे महानिद्राग्रस्त मनुष्योंसे पूर्ण, और धूप, चन्दन कर्पूर, तथा कुंकुमके महा सुगन्धसे व्याप्त था ॥ ३ ॥ उस पतिके दूसरे संसारको देखकर लीला जानेको अति आदर युक्त हुई, और इसी पूर्वोक्त मण्डपाकाशमें संकल्पके शरीरसे गिरी ॥ ४ ॥

विवेशभर्त्तुःसंकल्पसंसारंकिंचिदाततम् ॥ संसारावरणंभित्त्वाभित्त्वाब्रह्मांडकर्परम् ॥ ५ ॥ प्रापसार्द्धंतया देव्यापुनरावरणान्वितम् ॥ ब्रह्मांडमंडपंस्फारंतंप्रविश्यतथाजवात् ॥ ६ ॥ ददर्शभर्त्तुःसंकल्पजगज्जंबालपल्वलम् ॥ सिंहीवशैलकुहरंतमोजलदपंकिलम् ॥ ७ ॥ देव्यौविविशतुस्तत्तेव्योमव्योमात्मिकेजगत् ॥ ब्रह्मांडेंतर्यथापक्वंमृदुबिल्वंपिपीलिके ॥ ८ ॥

अर्थ—और पतिके संकल्पमय संसार, जो कुछ विस्तारयुक्त था उसमें प्रवेश किया, और अनन्तर संसारके आवरणको तोड करके तथा ब्रह्माण्ड खप्परको विदारकरके ॥ ५ ॥ और उस देवीके साथ आवरणयुक्त, अति विस्तृत दूसरे ब्रह्माण्डमण्डपमें पहुंची, और बेगसे उसमें प्रवेश करके ॥ ६ ॥ पंकके समान स्थित पतिके संकलपमय जगत्को ऐसे देखा जैसे अन्धकार मेघके कारणसे पंकमय पर्वतके छिद्रको सिंही ॥ ७ ॥ वे दोनों आकाशमय देवियां ब्रह्माण्डके भीतर ऐसे प्रवेश किया जैसे कोमल और पके बिल्व (बेल) के फलमें दो चेटियां ॥ ८ ॥

तत्रलोकांतराण्यद्रीनंतरिक्षमतीत्यते ॥ प्रापतुर्भूतलंशैलमंडलांभोधिसंकुलम् ॥ ९ ॥ मेरुणालंकृतंजंबूद्वीपंनवदलोदरम् ॥ गत्वाथभारतेवर्षेलीलानाथस्यमंडलम् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरेतस्मिन्मंडलेमंडितावनौ ॥ चक्रेवस्कंदनंकश्चित्सामंतोद्रिक्तभूमिपः ॥ ११ ॥ तेनसंग्रामसंरंभेप्रेक्षार्थंसमुपागतैः ॥ त्रैलोक्यभूतैस्तद्व्योमबभूवात्यंतसंकटम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वहांपर अनेक अन्य लोकोंको, पर्वतोंको, तथा आकाशको पार करके ऐसे भूतलमें पहुची जो अनेक पर्वतोंके मण्डल तथा समुद्रोंसे व्याप्त था ॥ ९ ॥ वहांसे मेरुपर्वतसे शोभायमान, नवदल कमलके तुल्य नवखण्डोंसे युक्त जम्बूद्वीपमें प्राप्त होकर भारतवर्षमें लीलाके पतिका राज्यमण्डल देखा ॥ १० ॥ इसी बीचमें अपने सहायक राजाओंसे वृद्धिको प्राप्त किसी राजाने उस मण्डलके ऊपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥ उस राजा (सिंधुराज) के साथ संग्राम आरंभ होनेपर त्रैलोक्यके प्राणी देखनेको आये जिनसे आकाशमण्डल पूर्णहोगया ॥ १२ ॥

अशंकितागतेतत्तेदेव्यौददृशतुर्नभः ॥ नभश्चरगणाक्रांतमंबुदैरिवमालितम् ॥ १३ ॥ सिद्धचारणगंधर्वगणविद्याधरान्वितम् ॥ शूरग्रहणसंरब्धस्वर्गलोकाप्सरोवृतम् ॥ १४ ॥ रक्तमांसोन्मुखोनृत्तभूतरक्षःपिशाचकम् ॥ पुष्पवृष्टिभिरापूर्णहस्तविद्याधरांगनम् ॥ १५ ॥ वेतालयक्षकूश्मांडैर्द्वंद्वालोकनहादरैः ॥ आयुधापातरक्षार्थंगृहीताद्रितटैर्वृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अन्तर्धानादि (छिप जाने) की क्रियामें कुशल वे दोनों देवियां भय और शंकासे रहित होके वहां आकर आकाशको देखा, जो (आकाश) चारोओर प्राणियोंसें ऐसा घिरा है जैसे मेघोंकी मालासे ॥ १३ ॥ पुनः वह सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा विद्याधरोंके गणोंसे युक्त तथा शूरवीरोंके वरण करनेमें त्वरायुक्त स्वर्गकी अप्सराओंसे आच्छादित ॥ १४ ॥ रक्त और मांसके अभिलाषी भूत राक्षस तथा पिशाचोंके नृत्य सहित, तथा पुष्पोंकी वृष्टि करनेके अर्थ विद्याधरोंकी अंगनाओंका हस्त जिसमें पूर्ण होरहा है ऐसे ॥ १५ ॥ युद्धके देखनेमें अति आदरयुक्त शस्त्रोंके गिरनेके रक्षार्थ पर्वतोंका तट ग्रहण किये हुये वेताल यक्ष, तथा कूष्माण्ड आदिसे पूर्ण ॥ १६ ॥

अस्त्रमार्गनभोभागविद्रवद्भूतमंडलम् ॥ आहोपुरुषिकाक्षुब्धप्रेक्षकामोदनोद्भटम् ॥ १७ ॥ आसन्नभीमसंग्रामकिंवदंतीपरस्परम् ॥ लीलाहासविलासोत्कसुंदरीधृतचामरम् ॥ १८ ॥ धर्मप्रेक्ष्यप्रयुक्ताग्र्यमुनिस्वस्त्ययनस्तवम् ॥ संपन्नानेकलोकेशवनितावसरस्तवम् ॥ १९ ॥ स्वर्गार्हशूरानयनव्यग्रेंद्रभटभासुरं ॥ शूरार्थालंकृतोत्तुंगलोकपालाख्यवारणं ॥ २० ॥

अर्थ—अस्त्रोंका मार्गभूत जो समीपका आकाशदेश वहांपर भूतोंका मण्डल जिसमें इधर उधर दौड रहाहै, तथा मैं बडा पुरुषार्थी शूरवीरहुं, मैं बडा पुरुषार्थी शूरवीरहुं, इस अभिमानको त्वरा युक्त देखनेवालोंसे जहां वीरोंको आनन्द आरहाहै ॥ १७ ॥ यह बडा भयंकर युद्ध आके प्राप्त हुआ ऐसा परस्पर जहांपर मनुष्यलोग वार्तालाप कर रहे हैं, तथा लीला और हाँसविलासमें सुन्दरीगण जिसमें हस्तमें चमर धारण किये हुये भ्रमणकर रही हैं ॥ १८ ॥ धर्मकी अधिकताके कारण अन्य मनुष्योंके दर्शनके लियेभी दुर्लभ, तथा योगबलसे सबसे श्रेष्ठ मुनियों करके जहांपर स्वस्त्ययन मंगल पाठ और देवताओंकी स्तुति होरहीरहीहै, और अनेक गन्धर्व आदि लोकपालोंको जो उत्तम वनितायें हैं उनकी समयके योग्य स्तुति जहांपर होरही है अर्थात् अप्सरालोग अपने पूर्व प्रियोंको त्यागकर दूसरे नये प्रियोंके निकट न जाँय इसलिये वहांपर उनकी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ स्वर्गके योग्य जो शूरवीर उनके लानेमें तत्पर इन्द्रके दूतोंसे प्रकाशमान, और शूरवीरोंको लेजानेको उच्च ऐरावत आदि हस्ती जहांपर उपस्थित हैं ॥ २० ॥

आगच्छच्छूरसन्मानोन्मुखगंधर्वचारणं ॥ शूरोन्मुखामरस्त्रैणकटाक्षेक्षितसद्भटं ॥ २१ ॥ वीरदोर्दंडकाश्लेषलंपटस्त्रीगणाकरं ॥ शुक्लेनशूरयशसाचंद्रीकृतदिवाकरं ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवञ्छूरशब्देनकीदृशःप्रोच्यतेभटः ॥ स्वर्गालंकरणंकःस्यात्कोवाडिंभाहवोभवेत् ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शास्त्रोक्ताचारयुक्तस्यप्रभोरर्थेनयोरणे ॥ मृतोवाथजयीवास्यात्सशूरःशूरलोकभाक् ॥ २४ ॥

अर्थ—आते हुये शूरवीरोंके सत्कारके लिये जहांपर सिद्ध, चारण और गन्धर्व आदि तत्परहैं, शूरोंकी ओर अभिमुख देवताओंकी अंगनाओंका समूह प्रेमयुक्त कटाक्षोंसे जहां बीरभटोंको देख रहाहै ॥ २१ ॥ शूरवीरोंकी भुजाओंसे लपटनेके अर्थ जहांपर स्त्रियोंका मन अभिलाषी होरहाहै, और स्वच्छ श्वेतवर्ण वीरोंके यशसे सूर्य्यभी जहां चन्द्रमाके समान होगयाहै ऐसा आकाश था (जिसको उन दोनोंने देखा) ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! कैसा भट शूर शब्दसे कहा जाताहै और स्वर्गका भूषण कौन होसकता है, और बालयुद्ध किसको कहतेहैं ? ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शास्त्रोक्त आचारमें तत्पर स्वामीके लिये जो रणमें लडताहै चाहे वह मरजाय वा विजयी हो, उसीको शूर कहते हैं, और वही शूरोंके लोकोंका भागी होताहै ॥ २४ ॥

अन्यथाप्राणिकृत्तांगोरणेयोमृतिमाप्नुयात् ॥ डिंभाहवहतःप्रोक्तःसनरोनरकास्पदं ॥ २५ ॥ अयथाशास्त्रसंचारवृत्तेरर्थेनयुध्यते ॥ योनरस्तस्यसंग्रामेमृतस्यनिरयोक्षयः ॥ २६ ॥ यथासंभवशास्त्रार्थलोका

चारानुवृत्तिमान् ॥ युध्यतेतादृशश्चैवभक्तःशूरःसउच्यते ॥ २७ ॥ गोरर्थेब्राह्मणस्यार्थेमित्रस्यार्थेच सन्मते ॥ शरणागतयत्नेनसमृतःस्वर्गभूषणं ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके विरुद्ध जो प्राणियोंके शरीरको काटे वा रणमें मरजाय वह बालयुद्धमें मृत कहाजाताहै और वह मनुष्य नरकका भागी होताहै।।२५।।और जिस पुरुषका आचार शास्त्रके विरुद्धहै उसके अर्थ जो संग्राममें युद्ध करताहै वह मरनेपर नरकमें अवश्य जाताहै ॥ २६ ॥ जो पुरुष यथासम्भव शास्त्र तथा लोकके आचारमें तत्पर है, और शास्त्रके अनुसारही युद्ध करताहै वही स्वामिभक्त तथा शूर कहाताहै ॥ २७ ॥ गौके अर्थ, ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, सज्जनोंके अर्थ तथा शरणागतके लिये जो युद्धकरके मरताहै वह नर स्वर्गका आभूषण होताहै ॥ २८ ॥

परिपाल्यस्वदेशैकपालनेयःस्थितःसदा ॥ राजामृतास्तदर्थंयेतेवीरावीरलोकिनः ॥ २९ ॥ प्रजोपद्रव निष्ठस्यराज्ञोऽराज्ञोथवाप्रभोः ॥ अर्थेनयेमृतायुद्धेतेवैनिरयगामिनः ॥ ३० ॥ येहिराज्ञामराज्ञांवाप्यय थाशास्त्रकारिणां ॥ रणेम्रियंतेछिन्नांगास्तेवैनिरयगामिनः ॥ ३१ ॥ धर्म्यंयथातथायुद्धंयदिस्यात्तर्हिसं स्थितिः ॥ नाशयेयुरलंमत्ताःपरलोकभयोज्झिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अवश्य पालन करनेके योग्य जो अपना देशहै उसके पालन करनेमें जो सदा तत्पर राजाहै उसके लिये जो बीर मरतेहैं वेही बीरलोकगामी होतेहैं ॥ २९ ॥ जो प्रजाके उपद्रवमें सदा लगाहै ऐसा स्वामी चाहे राजा हो वा अन्यहो उसके लिये जो लडके मरतेहैं वे अवश्य नरकगामी होतेहैं ॥३०॥ जो शास्त्रके अनुसार नहीं चलते ऐसे स्वामी चाहे राजाहों वा और कोई हों उनके अर्थ जिनके शरीर रणमें काटे वे नरकगामी होतेहैं॥३१॥धर्मपूर्वक जो युद्ध किया जाताहै तभी स्वर्गलोकमें स्थिति होतीहै, यदि ऐसा न होतो परलोकके भयसे रहित दुष्ट मनुष्य दूसरोंका नाश करदें॥३२

यत्रयत्रहतःशूरःस्वर्गइत्यवशोक्तयः ॥ धर्मेयोद्धाभवेच्छूरइत्येवंशास्त्रनिश्चयः ॥ ३३ ॥ सदाचारवता मर्थेखड्गधारांसहंतिये ॥ तेशूराइतिकथ्यंतेशेषाडिंभाहवाहताः ॥ ३४ ॥ तेषामर्थेरणेव्योम्नितिष्ठंत्यु त्कंठिताशयाः ॥ शूरीभूतमहासत्वदयितोक्तिसुरांगनाः ॥ ३५ ॥ विद्याधरीमधुरमंथरगीतिगर्भमंदा रमाल्यवलनाकुलकामिनीकं॥ विश्रांतकांतसुरसिद्धविमानपंक्तिव्योमोत्सवोच्चरितशोभमिवोल्ललास॥३६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने युद्धप्रेक्षिकास्थितांबरवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जहां २ शूरवीर युद्धमें मारा जाताहै वह अवश्य स्वर्गमें जाताहै यह जो बार २ कहा जाताहै उसका अभिप्राय यह है कि योद्धा धर्मपूर्वक लडनेवाला हो यही शास्त्रका निश्चय है ॥ ३३ ॥ जो सदाचारमें निष्ठ स्वामियोंके अर्थ तलवारकी धारको सहन करतेहैं वेही शूरबीर कहलातेहैं शेष (बाकी) बालयुद्ध वा कपटयुद्धमें मृतक कहलातेहैं ॥ ३४ ॥ जो ऐसे धार्मिक वीर युद्धमें लडतेहैं उन्ही शूरभूत महान जीवोंको अपना प्रिय कहतीहुई देवांगना स्वर्गमें वही अभिलाषाके साथ उनके अर्थ सदा स्थित रहतीहै ॥ ३५ ॥ विद्याधरियोंके मनोहर गीतसे पूर्ण, शूरवीरोंके गलेमें पहिनानेके अर्थ अथवा अपने केशपाशोंमें गूंथनेके अर्थ मन्दार पुष्पोंकी मालाओंको लिये ललनागणोंसे व्याप्त, रमणीय सुरसिद्धोंकी श्रेणी जहांपर विश्रामकर रहीहै, और उत्सवके अर्थ ऊर्ध्वदेशमें जिसकी शोभा प्राप्त हुई है ऐसा वह आकाश (जिसमें युद्ध होरहाहै) शोभित हुआ ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे युद्धप्रेक्षिकस्थिताम्बरवर्णनं नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

संकल्पके विमान परस्थित युद्धकी इच्छा सहित तैय्यार दूसरे सैन्यका सरस्वती और लीलाका देखना इस ३२ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवीरवरोत्कंठनृत्यदप्सरसिस्थिता ॥ लीलावलोकयामासव्योम्निविद्यान्विता वनौ ॥१॥ स्वराष्ट्रमंडलेभर्तृपालितेबलमालिते ॥ कस्मिंश्चिद्विततारण्येद्वितीयाकाशभीषणे ॥ २ ॥ सेना द्वितयमाक्षुब्धंसौम्याब्धिद्वितयोपमम् ॥ महारंभघनंमत्तंस्थितंराजद्वयान्वितम् ॥ ३ ॥ युद्धसज्जंसुस न्नद्धमिद्धमग्निमिवाद्भुतम् ॥ पूर्वप्रहारसंपातप्रेक्षाक्षुब्धाखिलक्षितं ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर सरस्वती सहित जहांपर शूरवीरोंके बरनेके अर्थ अप्स-रागण नृत्य कर रहे हैं ऐसे आकाशमें स्थित लीलाने पृथिवीपर ॥ १ ॥ चतुरंगिणी सेनासे घिरा हुये अपने पतिसे पालित अपने राज्यमण्डलमें सिंह, वृश्चिक, राक्षस पिशाचि आदिका आधार होनेसे द्वितीय आकाशके समान भयंकर किसी विस्तारयुक्त बनमें संचलित समुद्रके समान दूसरे सैन्यको देखा ॥ २ ॥ वह सैन्य (जिसको दोनोंने देखा) महान् कार्य्योंके आरम्भसे अति सघन, दोनों राजाओंसे युक्त मत्तके समान स्थित ॥ ३ ॥ युद्ध करनेको सर्वथा सन्नद्ध, (तैय्यार) अग्निके समान अद्भुत देदीप्यमान, पूर्वकालका अस्त्रोंके प्रहार देखनेके अर्थ चंचलनेत्रोंसे लक्षित ॥ ४ ॥

उद्यतामलनिस्त्रिंशधारासारवहज्जनं ॥ कचत्परस्वधप्रासभिंदिपालर्ष्टिमुद्गरं ॥ ५ ॥ गरुत्मत्पक्षविक्षुब्धवनसंपातकंपितं ॥ उद्यद्दिनकरालोकचंचत्कनककंकटम् ॥ ६ ॥ परस्परमुखालोककोपप्रोद्दामितायुधम् ॥ अन्योन्यबद्धदृष्टित्वाच्चित्रंभित्ताविवार्पितम् ॥ ७ ॥ लेखामर्यादयादीर्घबद्धयास्थापितस्थिति ॥ अनिवार्यमहासैन्यझांकाराश्रुतसंकथम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण खड्गकी धारारूप जलधाराको धारण करनेवाले मनुष्यों करके सहित परशु तोप, बर्छी तथा गदा मुद्गर आदिकी शोभासे युक्त ॥ ५ ॥ गरुडजीके पक्षसे संचलित बनके सम्पातके समान कम्पित, उदयकालके सूर्य्यकी किरणके समान कवचोंके प्रकाशसे शोभित ॥ ६ ॥ एक दूसरेका मुख देखके कोपसे अस्त्र शस्त्रोंको उद्यत (तैय्यार) करनेवाले मनुष्यों करके सहित परस्पर (एक दूसरेसे लडनेवालेकी ओर) दृष्टि बांधनेसे भित्तिमें लिखित चित्रके समान अर्पित ॥ ७ ॥ सर्पादिके निवारणार्थ मर्य्यादारूप दीर्घ रेखासे अपनी स्थितिको सीमाके भीतर स्थापित रखनेवाले, निवारण करनेमें असमर्थ महा सेनाके झांकार शब्दसे जहांपर एक दूसरेकी वार्ताको नहीं श्रवण कर सकते ऐसे ॥ ८ ॥

पूर्वप्रहारस्मयतश्चिरंसंशांतदुंदुभि ॥ निबद्धयोधसंस्थाननिखिलानीकमंथरं ॥ ९ ॥ धनुर्द्वितयमात्रात्मशून्यमध्यैकसेतुना ॥ विभक्तंकल्पवातेनमत्तमेकार्णवंयथा ॥ १० ॥ कायेसंकटसंरंभचिंतापरवशेश्वरं ॥ विरटद्धेककंठत्वग्भंगुरातुरहृद्गुहं ॥ ११ ॥ प्राणसर्वस्वसंत्यागसोद्योगासंख्यसैनिकं ॥ कर्णाकृष्टशरौघोघत्यागोन्मुखधनुर्धरं ॥ १२ ॥

अर्थ—राजासे अज्ञात होके पूर्व प्रहार न हो इस कारणसे अधिक कालतक दुंदुभि बाजा जहांपर शान्त कर दिया गयाहै ऐसे और श्रेणीबद्ध योद्धाही जिसके अंगहैं ऐसी सेना सेवकरूप ॥ ९ ॥ दो धनुष प्रमाण मनुष्योंसे शून्य मध्यभागरूप सेतु (पुल) से ऐसे विभाग किया हुआ जैसे कल्पके वायुसे संचलित समुद्र ॥ १० ॥ संकटके वेगसे दोनों राजा शरीरमें चिन्तासे वशीभूत जहांपर होरहे हैं, भयके मारे रटते हुये मण्डलोंके कण्ठके चर्मके समान भीरु पुरुषोंके हृदयरूपी गुहा जहांपर कंप रही है ॥ ११ ॥ प्राण तथा सर्वस्व त्यागनेके अर्थ जहांपर असंख्य योद्धागण उद्योग सहित उपस्थितहैं और धनुर्धारी लोग बाणोंको छोडनेके अर्थ कर्णातक धनुषोंको जहांपर खींच रहे हैं ॥ १२ ॥

प्रहारपातसंप्रेक्षानिष्पंदासंख्यसैनिकं ॥ अन्योन्योत्कंठकाठिन्यभरभ्रुकुटिसंकटं ॥ १३ ॥ परस्परसुसंघट्टकटुटंकारकंकटं ॥ वीरयोधमुखादग्धभीरुप्रेप्सितकोटरं ॥ १४ ॥ मिथःसंस्थानकालोकमात्रासंदिग्धजीवितं ॥ समस्तांगरुहासक्तप्रांशुवृद्धेभमानवं ॥ १५ ॥ पूर्वप्रहारसंप्रेक्षाव्यग्रप्राणतयातया ॥ संशांतकल्लोलरवंनिद्रामुद्रपुरोपमं ॥ १६ ॥

अर्थ—और प्रहारोंका पात देखनेके अर्थ असंख्य सैनिक चेष्टारहित होगये हैं, तथा युद्धकी अभिलाषासे परस्पर क्रोध करके भ्रुकुटि (भौंह) के चढानेसे देखनेमें भयंकर ॥ १३ ॥ और परस्परके अभिघात (सम्मर्दन) से कवचों सेकडे टंकार शब्द जहांपर होरहेहैं तथा वीरयोद्धाओंकी क्रोधयुक्त मुखरूपी अग्निसे जलके समान भीरुलोग जहांपर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जानेके अभिलाषी होगये ॥ १४ ॥ और जहांपर परस्पर युद्धके दर्शन पर्य्यन्त सबका जीवन संशयग्रस्त होगयाहै भलीभांति रोमांच होनेके कारण ऊर्ध्व और तिरछी दिशाको हस्ती तथा मनुष्य वृद्धिको जहांपर प्राप्त होगये हैं ॥ १५ ॥ प्रथम कौन प्रहार करता है इसको देखनेके अर्थ चित्तव्यग्र होनेके कारण सम्पूर्ण कोलाहल जहां ऐसे शान्त होगया है जैसे निद्रामें प्राप्त कोई नगर ॥ १६ ॥

संशांतशंखसंघाततूर्यनिर्न्हाददुंदुभि ॥ भूतलाकाशसंलीनसर्वपांसुपयोधरम् ॥ १७ ॥ पलायनपरैःपश्चात्यक्तमंगुलमंडलम् ॥ विसारिमकरव्यूहमत्स्यसंख्याब्धिभासुरम् ॥ १८ ॥ पताकामंजरीपुंजविजिताकाशतारकं ॥ हास्तिकोत्तंभितकरकाननीकृतखांतरं ॥ १९ ॥ तरत्तरलभापूरसपक्षसकलायुधं ॥ भ्रमद्भ्रमितिशब्दैश्श्वासोत्थैर्ध्मातखांतरं ॥ २० ॥

अर्थ—तथा सम्पूर्ण शंखोंके समूह तुरही तथा नगारे आदिके शब्द जहांपर सर्वथा शान्त होगये हैं और जहांपर धूलि पृथिवीपर और मेघ आकाशमें लीन होगये हैं ॥ १७ ॥ और जहांपर भीरुजन लडनेवाले सेनाके आभूषणरूप शूरवीरोंके मण्डलोंको त्यागकर भागनेमें तत्पर होगये हैं, अतएव चारोंओरें फैलेहुये मकर और मत्स्योंका युद्ध जहां होरहा है ऐसे संक्षोभित समुद्रके समान प्रकाशमान ॥ १८ ॥ पताकारूपी लताओंने जहांपर आकाशके तारागणोंकीभी शोभाको जीत लिया है तथा हाथिवानोंके ऊपर किये हांथोंसे जंगलके समान मानों दूसरा आकाश देश बनगयाहै ॥ १९ ॥ चलतेहुये प्रकाशके पुंजसे जहांपर अस्त्रशस्त्र मानों पक्ष सहितके समान प्रतीत होते हैं, तथा नगाडोंके धमाधम शब्दोंसे और शंख आदिके शब्दोंसे जहांपर आकाशका मध्यभाग पूर्ण होगयाहै ॥ २० ॥

चक्रव्यूहकशक्रांतद्वृत्तसुरभासुरं ॥ गरुडव्यूहसंरंभविद्रवन्नागसंचयं ॥ २१ ॥ श्येनव्यूहविभिन्नाग्रसन्निवेशोत्तमध्वनि ॥ अन्योन्यास्फोटनिःशेषप्रपतद्भूरिवृंदकं ॥ २२ ॥ विविधव्यूहविन्यासवांतवीरवरारवं ॥ करप्रतोलनोल्लासमत्तमुद्गरमंडलं ॥ २३ ॥ कृष्णायुधांशुजलदश्यामीकृतदिवाकरं ॥ अनिलाधूतपल्यूलसूत्कृताभशरध्वनि ॥ २४ ॥

अर्थ—कहीं परचक्रव्यूह (युद्धके लियें सेनाकी रचना विशेष) बनानेमें तत्पर पुरुषोंसे दैत्योंके ऊपर आक्रमण करने देवताओंके सदृश प्रकाशमान और कहीं गरुड व्यूहकी रचनासे इधर उधर नागोंका समूह दौडरहा है ॥ २१ ॥ कहीं श्वेतव्यूहसे विभाग किये हुये दूसरे सैन्यके रचनामें जहांपर उत्तम ध्वनि होरही है कहीं परस्पर भुजाओंके संघर्षसे अनेक समूहके समूह गिररहे हैं ॥ २२ ॥ कहीं अनेकप्रकारकी व्यूह रचनासे अगाडी निकले हुये वीरोंका उत्तम शब्द होरहाहै, और कहीं हाथमें घुमानेके कारणसे मत्तके समान मुद्गरोंके समूह भ्रम रहे हैं ॥ २३ ॥ तथा कृष्णवर्ण अस्त्रशस्त्रोंके किरणोंसे उठे हुयेके समान मेघोंसे सूर्य्यभगवान् श्यामकर्ण कर दिये गये हैं कहीं सेनाके वेगसे उत्पन्न वायुसे कँपा हुये पल्यूल (नरकूट) आदि तृणोंसे सू २ शब्द होरहाहै ॥ २४ ॥

अनेककल्पकल्पाग्रसवृंदमिवसंस्थितं ॥ प्रलयानिलसंक्षुब्धमेकार्णवमिवोत्थितं ॥ २५ ॥ सद्यश्छिन्नमहामेरोःपक्षद्वयमिवस्फुरत् ॥ क्षुब्धमारुतनिर्द्धूतमिवकज्जलपर्वतं ॥ २६ ॥ पातालकुहरात्क्षुब्धमंधकारमिवोत्थितं ॥ लोकालोकमिवोन्मत्तनृत्यलोलसत्तटं ॥ महानरकसंघातंभित्त्वावनिमिवोत्थितं॥२७ आलोलकुंतमुसलासिपरस्वधांशुश्यामायमानदिवसातपवारिपूरैः ॥ एकार्णवंभुवनकोशमिवाचिरेण कर्तुंसमुद्यतमगाधमनंतपूरैः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आहवारंभणं नाम द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रलय करनेमें समर्थ ऐसे पुष्कर आवर्त आदि अनेक मेघोंके समूहके सदृश जिसके अग्रभागमें स्थितहैं और प्रलयकालके वायुसे संक्षोभित समुद्रके समान उत्थित ॥ २५ ॥ उसी कालमें कटे हुये महामेरुके दो पक्षके समान देदीप्यमान, तथा संचालित वायुसे कंपा हुये अंजन पर्वतके सदृश ॥ २६ ॥ और पातालके गर्तसे संक्षोभित अन्धकारके समान निकला हुआ, तथा उन्मत्त नृत्यसे चंचल और शोभायमानहैं तट जिसके ऐसे लोकालोक पर्वतके समान, और पृथिवीको भेदन करके महानरकके समूहके समान आविर्भूत ॥ २७ ॥ तथा चंचल बर्च्छी, मुशल, तलवार, और परशुके किरणोंसे श्यामके सदृश करनेवाले मेघोंसे अनेक भुवनोंको मानों अनन्त प्रवाहोंसे अगाध समुद्रके समान करनेको उद्यत ऐसे दो सैन्य (सेना) को देखा ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे आहवारंभवर्णनं नामद्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

इसके अनन्तर संकल्पके विमानमें बैठकर सरस्वती और लीलाने जो प्रवृत्त हुये युद्धको देखाहै उसका वर्णन इस ३३ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्युद्धमेतन्मेसमासेनमनाग्वद ॥ श्रुतिरालहाद्यतेश्रोतुर्यस्मादेताभिरुक्तिभिः ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतत्रैवतेदेव्यौसंग्राममंतमवेक्षितुं ॥ विमानेकल्पितेकांतेरुद्धेरुरुहतुःस्थिरे

॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रलीलेशःप्रतिपक्षतः ॥ तमुत्सोढुमशक्तःसन्मुखव्यतिकरेरणे ॥ ३ ॥ प्रलयार्ण वकल्लोलइवोत्पत्त्योद्धयेभटे ॥ जहौसानाविवशिलांभटस्योरसिमुद्गरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! इस युद्धको मुझे कुछ संक्षेपसे वर्णन कीजिये क्योंकि आपके इस कथनसे कर्णको सुख होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर वे दोनों उस संग्रामको देखनेके लिये कल्पित स्थिर विमानपर चढके बैठीं ॥ २ ॥ इसके अनन्तर जब दोनों सेनाओंका मुख मिलगया तो शत्रुकी सेनासे समुद्रके तरंगके सदृश एक बीर निकलके इधर जो निर्भय बीरथा उसके ऊपर प्रहार करनेको उद्यत हुआ, इसी अवसर मे लीलाका स्वामी उसको न सहता हुआ उसकी छातीमें एक मुद्गर ऐसा मारा जैसे पर्वतके शिखरकी शिला ॥३॥४॥

अथप्रवृत्तःप्रसभंप्रलयार्णवरंहसा ॥ सेनयोःशस्त्रसंपातःकिरन्ननलविद्युतः ॥ ५ ॥ तरत्तरलधाराग्ररेखांकितनभस्तलः ॥ ध्वनत्कणकणाशब्दमध्यलक्षितटांकृतिः ॥ ६ ॥ धीरहुंकारमिश्रोष्मघर्घरारवघस्मरः ॥ प्रवृत्तशरधाराग्रभास्करार्चिर्वितानकः ॥ ७ ॥ नदत्कंकटटंकारप्रोड्डीनकणपावकः ॥ परस्परा हतिच्छिन्नहेतिखंडखगांबरः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसराजाके अस्त्रचलानेके अनन्तरही अति त्वरासे अग्नि और विद्युत्की वृष्टिके समान प्रलयकालके समुद्रके वेगके सदृश शस्त्र अस्त्रकी वर्षा होनेलगी ॥ ५ ॥ चलते हुये चंचल शस्त्रोंकी धाराओंके अग्रभागकी रेखासे जिसमें आकाश मण्डल चिन्हित होगयाहै, तथा जिसके मध्यमें कणकणा शब्द और टंकार शब्द लक्षित होतेथे ऐसा ॥ ६ ॥ तथा धीरवीरोंके मिश्रित हुंकार शब्द जो वर्षाकालके मेघके शब्दकोभी जो तिरस्कार कररहाथा और शरधाराओंमें प्रतिबिम्बित सूर्य्यकी किरण जिसमें चांदनीका कार्य्य देरहीं हैं ॥ ७ ॥ शर और खड्ग आदिके प्रहारोंके बजते कवचों (बक्तरों) से अग्निके कण जिसमें निकल रहेहैं तथा परस्परके प्रहारसे खड्ग आदिके खण्ड (टुकडे) रूपी पक्षी जहांपर आकाशमें उड रहेहैं ॥ ८ ॥

वीरदोर्द्रुमसंचारवहद्वननभस्थलः ॥ कोदंडचक्रकेंकारद्रवद्वैमानिकांगनः ॥ ९ ॥ महाहलहलारावभृंगीकृतघनध्वनिः ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थइवैकघनतावशात् ॥ १० ॥ नाराचासारधाराग्रलूनशूरशिरस्करः ॥ परस्परांससंघट्टरणत्कंकटसंकटः ॥ ११ ॥ हुंकारहतहेत्युग्रसंघट्टकटुटांकृतः ॥ तरद्धारातरंगाभ्रदंतुराशेषदिङ्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा वीरोंकी भूजाओंके संचारसे आकाशमण्डलमें जहांपर बनकेबन उड रहेहैं; और जहांपर धनुषके टंकार शब्दसे विमानोंमें स्थित देवांगना लोग इधर उधर भ्रमण कररहीहैं ॥ ९ ॥ और जहांपर महाकोलाहल शब्दोंसे मेघोंके शब्द भृंगोंके शब्दके समान होके उन्हीं शब्दोंमें मिलजानेके कारण ऐसे नहीं सुन पडते जैसे निर्विकल्प समाधिमें स्थित पुरुष ईश्वरके साथ एकता होनेसे बाहरके शब्दोंका नहीं सुनता ॥ १० ॥ तथा बाणोंकी वृष्टिकी धारामें शूरबीरोंके मस्तक तथा हस्त जहांपर कटे हुये पडे हैं, और जहांपर परस्परके अंगोंके संमर्दनके कवचोंके शब्दका संकट होरहाहै ॥ ११ ॥ हे रामजी ! जहांपर हुंकार शब्दोंके साथ अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारसे कर्णोंके दुःखदायी टंकार शब्द निकल रहेहैं, और जहांपर खड्गोंकी धाराके तरंगरूपी मेघोंसे दिशाओंके मुख उन्नत दशाको प्राप्त होगयेहैं ॥ १२ ॥

हेतिसंघट्टविक्षोभमुष्टिग्राह्यझणज्झणः ॥ चिरमास्फोटकास्फोटलुठच्चटचटारवः ॥ १३ ॥ प्रवहत्खड्गसीत्कारज्वलत्कणसणध्वनिः ॥ सरच्छरभराध्वांतशरत्खरखरारवः ॥ १४ ॥ धगद्धगितिविच्छिन्नकंठोत्थप्राणलोहितः ॥ छिन्नबाहुशिरःखड्गखंडनिर्विवरांबरः ॥ १५ ॥ कंकटोत्थस्फुरद्वह्निसटास्पृष्टशिरोरुहः ॥ रणत्पतदसिव्रातमत्तपीनझणज्झणः ॥ १६ ॥

अर्थ—खड्गके प्रहारसे शत्रुकी सेनामें जो विक्षोभ उत्पन्न हुआ उससे शिर ग्रहण करनेके फैला हुये हस्तसे झणझणा शब्दही जहांपर मुष्टि ग्राह्यके (मुठीसे पकडनेके माफक) हो रहाहै ॥ १३ ॥ और शीघ्रतासे म्यानसे तलवार निकालनेमें सीत्कार शब्दके साथ सनसनाहट शब्द जहांपर हो रहाहै, और जहांपर चलते हुये बाणोंके समूहोंके मार्ग अन्तमें अर्थात् लक्ष्य देशमें शरशराहटके साथ खरखरशब्द होरहाहै ॥ १४ ॥ तथा कटे हुये कण्ठसे धक् धक् शब्दके साथ प्राण और रुधिर जहांपर निकल रहे हैं, तथा कटे हुये हस्त और मस्तकसे तथा खड्ग आदिके टुकडेसे जहांपर आकाश पूर्ण होगया है ॥ १५ ॥ कवचोंसे निकले हुये अग्निकी जटा सदृश देदीप्यमान ज्वालाओंने जहांपर केशतक ग्रहण करलियाहै, तथा झनझनाहट शब्दके साथ चलती हुई तलवारोंके समूहसे शूरबीरोंके शरीर युद्धके उत्साहसे स्थूलताको जहांपर प्राप्त होगये हैं ॥ १६ ॥

कुंतकुंठितमातंगतरंगोकुंगलोहितः ॥ दंतिदंतविनिष्पेषतारचीत्कारकर्कशः ॥ १७ ॥ महामुसलसंपातपिष्टकष्टोद्धुरस्वरः ॥ तरच्छूरशिरःपद्मप्रकाराच्छादितांबरः ॥ १८ ॥ व्योमन्यस्तभुजाहींद्रःपूर्णधूलिमयांबुदः ॥ छिन्नहेतिनरारब्धकेशाकेशिप्रतिक्रियः ॥ १९ ॥ नखानखिनिकृत्ताक्षिकर्णनासौष्ठकंधरः ॥ छिन्नायुधमहामल्लहेलोल्लालनलब्धभूः ॥ २० ॥

अर्थ—और जहां कुन्त (बर्च्छी आदि) शस्त्रोंसे वेधित हाथियोंके शरीरसे रुधिरकी बडी तरंगें बहरही हैं, और हाथियोंके दांतोंसे पिसे हुये प्राणिके ऊंचे चीत्कार (चिल्लाहट) शब्दसे जो स्थान भयंकर होरहाहै ॥ १७ ॥ तथा जिसमें महा मुशलोंके प्रहारसे अनेक मनुष्य पिसके चूर होगये, और कितनोंके कष्टसे स्वर (शब्द) निकलता है, और जहांपर उडते हुये वीरोंके शिररूपी कमलोंके समूहसे आकाश पूर्ण होगयाहै ॥ १८ ॥ तथा बीरोंकी भुजारूपी सर्प आकाशमें उड रहे हैं और धूलीमय मेघ जहां शोभित हैं तथा जिन बीरोंके अस्त्र शस्त्र टूटगये हैं वे परस्पर एक दूसरेके केशोंकें पकड २ के युद्धमें प्रवृत्त होरहे हैं ॥ १९ ॥ तथा परस्पर (एक दूसरेका) नखोंसे आख निकालते हैं और कान, नाक, ओष्ठ तथा कन्धेकोभी काट रहे हैं, तथा जिन शूरबीरोंका अस्त्र शस्त्र (हंथियार) टूटगयाहै वे लोग बाहुयुद्ध करके महा मल्लोंकाभी तिरस्कारके जहांपर जयभूमि प्राप्त कियाहै ॥ २० ॥

पतत्समदमातंगकंपितोर्वीलुठद्रयः ॥ रणद्रथरयोत्पन्नक्षरद्रक्तसरित्पथः ॥ २१ ॥ रजोरचितनीहारःकचत्प्रवहदायुधः ॥ एकीकृतघनक्षोभसैन्यसागरगर्जितः ॥ २२ ॥ मत्तहासविलासेनमृत्युनापरिचर्वितः ॥ गर्विताद्रींद्रनागेंद्रखर्विताभोदगर्जितः ॥ २३ ॥ वृक्षश्वभ्रतटीच्छन्नचक्रशक्त्यृष्टिमुद्गरः ॥ शरोर्णातंतुनीरंध्रघृष्टियोधाद्रिमेखलः ॥ २४ ॥

अर्थ—और मदोन्मत्त हांथियोंसे कंपाये हुये पृथिवीपर गिरके लोटनेवालोंका प्रवाह जहांपर चलरहा है, तथा जहांपर शब्द करते हुये रथोंके वेगसे रुधिरकी नदियोंके मार्ग बन गये हैं ॥ २१ ॥ और जहांपर धूलियोंका नीहार (कुहिरा) बनगया है, और जहांपर जाज्वल्यमान अस्त्रशस्त्र (हंथियार) चलरहे हैं तथा सम्पूर्ण संक्षुब्ध शब्द मिलकर ऐसा शब्द जहांपर होरहा है मानों समुद्रकी गर्जना ॥ २२ ॥ और मत्तोंके समान हांसबिलास करनेवाले मृत्युने जहां अनेक मनुष्योंके प्राण भक्षण करलिये हैं और जहांपर श्रेष्ठ हांथियोंने अपनी उचाई तथा गर्जनासे मेघोंकी उचाई तथा गर्जनाको तिरस्कार करदिया है ॥ २३ ॥ तथा प्राणियोंके बधार्थ फेंके हुये शर चक्र शक्ति ऋष्टि और मुद्गर आदि वृक्ष, गर्त और पर्वतोंसे अडजातेहैं और जहां शररूपी मकरियोंने छिद्ररहित पर्वतोंकी मेखला बनालियाहै॥२४॥

मेघविश्रांतविच्छिन्नपताकापटचामरः ॥ यंत्रपाषाणचक्रौघदूरविद्रुतखेचरः ॥ २५ ॥ मरणव्यग्रकृत्तांगयोधाक्रंदातिघर्घरः ॥ कुठाराघातसंघातविदलन्मस्तकव्रजः ॥ २६ ॥ दूरोड्डीनकचत्खड्गखंडतारकितांबरः ॥ शक्तिनिर्मुक्तशक्त्यौघविभिन्नेभावृतावनिः ॥ २७ ॥ सैन्यव्याकुलवेताललनोन्मुक्तमुद्गरः ॥ गगनोत्तंभितोत्तुंगशूरतोमरतोरणः ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा मेघोंमें विश्राम करनेवाले विद्युत् (बिजुली) आदिने जहांपर पताका आदिके वस्त्र और चमर आदिको छिन्नभिन्न करदिया है, तथा यंत्रसे फेंके हुये पाषाण और चक्रोंके समूहोंने आकाशगामी पक्षी आदिको दूर भगादिया है ॥ २५ ॥ तथा अंग जिनके कटगये हैं ऐसे मरणमें व्यग्र योद्धाओंकी विलापसे घर्घर शब्द जहां होरहाहै, और कुठारोंके प्रहारोंसे जहांपर मस्तकोंके समूह गिररहे हैं ॥ २६ ॥ और दूर उडे हुये खड्ग (तलवारों) के टुकडोंसे आकाश जहांपर तारागणोंसे अंकितके समान होगया है तथा बलपूर्वक शक्ति आदि शस्त्रोंके छोडनेसे छिन्न-भिन्न हस्तियोंसे जहांपर पृथिवी आच्छादित होगई है ॥ २७ ॥ सैन्यसे व्याकुल बेतालकी ललना जहांपर मुद्गरको छोडरहीं हैं, तथा जहां आकाश देशमें शूरवीरोंके ऊंचे स्थित तोमरही तोरणकी मालाके समान शोभित होरही हैं ॥२८॥

भुशुंडीभग्नखड्गौघखंडालीव्योमकुंतलः ॥ कुंतवेणुवनन्यस्ततापांबरकचच्छविः २९ ॥ खड्गवृष्टिप्रवृष्टिसंपुष्टराजपूजितसैनिकः ॥ शूलोत्तंभितसच्छूरग्रहणोद्यमिताप्सराः ॥ ३० ॥ गदाव्रुषारविगलत्स्फुरितांगदिङ्मुखः ॥ प्रासप्रसभसंपिष्टकष्टचेष्टतयोत्कटः ॥ ३१ ॥ चक्रक्रकचसंचारच्छिन्नाश्वनरवारणः॥ परशुव्रातसंपातपतत्समदवारणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—टूटेहुये बन्दूक और तलवारोंके खण्ड (टुकडे) जहांपर आकाशके केशरूप होरहेहैं और कुन्त (बर्छी) के समूहरूपी बालोंके बनमें दावाग्निके सदृश जहांपर कुन्तोंकी छबि होरहीहै ॥ २९ ॥ खड्ग आदिकी वृष्टिसे सन्तुष्ट राजाओं (स्वामियों) ने जहांपर लडनेवाले योद्धाओंका दान मान आदिद्वारा संस्कार कियाहै, तथा त्रिशूलोंसे छिदे-

हुये उत्तम शूरबीरोंको ग्रहण करनेके अर्थ अप्सरा लोक जहांपर उद्यम कररहीहैं ॥ ३० ॥ और गदारूपी तुषारोंसे जहां शूरबीरोंके शिर गल२ के गिररहेहै और कुन्तके प्रहारसों जो घायल मनुष्योंकी कष्टदायक चेष्टा होरहीहैं उससे अति भयंकर ॥ ३१ ॥ और चक्र आदिके प्रहारसे हांथि, घोडे और मनुष्य जहां छिन्नभिन्न होरहेहै, तथा परशु (फरसों) ओंके समूहके प्रहारसे मदोन्मत्त हांथीभी जहां गिररहेहैं ॥ ३२ ॥

लकुटोल्लोडनोड्डीनप्रोड्डामरचटद्भटः ॥ यंत्रपाषाणसंपातपिष्टकेतुरथद्रुमः ॥ ३३ ॥ करवालविलूनाग्रच्छत्रपंकजपांडुरः ॥ क्षेपणक्षोभसंक्षीणसैन्यक्षोभोप्यलक्षणः ॥३४॥ कबंधबंधसन्नेत्रपातसंपिष्टपार्श्वगः॥ सांकुशांकितसंख्यस्थवीरवारितवारणः ॥ ३५॥ परशुव्रातसंपातपतत्समदवारणः ॥ पाशापाशिविशेषज्ञवीरार्तिपरिदेवनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और बडी २ लाठियोंकी चोटसे ढाल आदिसे अपनेको बचातेहुये बडे २ बीर भटभी जहांपर उछल२ कर भाग रहेहैं और यंत्र (कल) से फेके हुये पाषाणोंके गिरनेसे जहांपर पताका, रथ और वृक्षआदिभी पिसगयेहैं॥३३॥ तथा तलवारोंसे कट गयेहैं अग्रभाग जिनके ऐसे छत्र और शिरके कमलोंसे पाण्डुवर्ण और शूरवीर लोग जहांपर सेनाके भयको किंचित्भी ध्यान न करके अस्त्रशस्त्र आदि फेक रहेहैं ॥ ३४ ॥ रथोंपरसे जीतेहुये मनुष्योंको उछलके पकडनेवाले बीरोंके बीचमेंही मस्तक कटनेसे कबन्ध (शिररहित शरीर) वाले मनुष्योंके बाधनेसे रथके स्वामियोंके गिर जानेसे रथोंके मार्ग छोडके चलनेसे समीपके मनुष्य जहांपर पिलगयेहैं और अंकुश सहित पीलवानेके अंकुशसे घायलभी शूरबीरोंने प्रहारोंसे हाथियोंकोभी जहांपर हटादियाहै ॥ ३५ ॥ और परशुओंके समूहोंसे जहांपर अनेक मदगलित हाथी गिरे पडेहैं और द्यूतविद्याके विशेष जाननेवाले बीरोंका जहांपर प्राणोंका द्यूत (जुआ) अधिक है ॥ ३६ ॥

क्षुरिकाकुक्षिनिर्भेदगलत्पद्मपतज्जनः ॥ त्रिशूलवलनोन्मत्तशूरसंकरनर्त्ततः ॥ ३७ ॥ धावद्धानुष्कसंपूर्णकुलकूजितकाकलिः ॥ भिंदिपालसटाटोपहुंकारारभटीनटः ॥ ३८ ॥ वज्रमुष्टिविनिष्पिष्टपिष्टसद्भटसंकटः ॥ श्येनवव्द्योमपदवींप्रोत्पतत्पट्टपट्टिशः ॥ ३९ ॥ अंकुशाकृष्टशूरेशरथेभहयकेतनः ॥ हलाहलिहतालूनहेलाकुलकुलाचलः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा छूरियोंसे पेटके फाडनेसे वीरोंके हृदय कमल जहांपर कटके गिररहे हैं, तथा अनेक शूरवीर जहां त्रिशूल चलाते हुये उन्मत्तके सदृश नृत्य कररहे हैं ॥ ३७ ॥ तथा दौडते हुये धनुषधारी मनुष्योंकी जहांपर मधुर ध्वनि रोरही है औ भिन्दिपाल नामक अस्त्रधारी वीरोंके केशोंको फटकारसे तथा अहंकार सहित नाद (गर्जना) से जहांपर भटलोग मानों नृसिंह वेषधारी नटके समान होरहे हैं ॥ ३८ ॥ और बीरोंकी वज्रके समान मुष्टि (मूकों) योंके प्रहारसे पिसे हुये उत्तम बीरोंसे पूर्ण तथा श्येन (बाज) नामक पक्षीके समान आकाशमें उडके बीरोंका पट्टिशनामक अस्त्र (हंथियार) जहांपर कार्य्य कररहाहै ॥ ३८ ॥ बडे २ शूरबीरोंके स्वामी, रथ, हांथी, घोडे और पताकायें जहांपर अंकुशोंसे खींचली गई हैं, तथा परस्पर हलोंके प्रहारसे कटे हुये बीरोंका तिरस्कार करके शत्रुओंमें पर्वतके समान निश्चल बीर जहां बिराजमान हैं ॥ ४० ॥

सुतालोत्तालकुद्दालनिखातवनभूतलः ॥ धनुर्द्विगुणमात्रास्तलूनलोकशिलावनिः ॥ ४१ ॥ क्रकचोभयपार्श्वेभच्छिन्नमत्तमतंगजः ॥ संग्रामोलूखलक्षुण्णलोकतंडुलमौसली ॥ ४२ ॥ अस्त्राभाशृंखलाजालबद्धसेनाविहंगमः ॥ लोलासिवीरनिस्त्रिंशनीतवादिगृहांगणः ॥ ४३ ॥ गणशोनीयमानाग्र्यश्वापदारावनिर्भरः ॥ नखांगुष्ठखनत्पुंखप्रेंखारणरणारवैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तालके समान ऊंचे पुरुषोंने जहांपर उत्तम कुदालोंसे बनकी पृथिवी खोद डाली है, तथा दो धनुषकी दूरीपर जहां शूरबीरोंने मनुष्योंको तथा पाषाणकी शिलाओंको फेकदियाहै ॥ ४१ ॥ तथा क्रकचके समान दोनों ओरके प्राणी जहां मत्त मतंगजके मर्दनसे छिन्नभिन्न होरहे हैं, तथा उस संग्रामभूमिरूपी उलूखल (ओखली) में मनुष्यरूपी धान (तण्डुल आदि) मुसलमय युद्धसे कुचले जाते हैं ॥ ४२ ॥ और हे रामजी ! जहांपर अस्त्रोंकी प्रभारूप जालमें अनेक योद्धारूप पक्षी बद्धहैं, और चंचल तलवार धारण करनेवाले बीरोंके विलक्षण खड्गसे जहांपर मनुष्यरूपी पक्षी मारके यमरूपी व्याधकें आंगनमें प्राप्त किये जाते हैं ॥ ४३ ॥ तथा हे रामजी ! युद्धमें गिर हुये बडे २ श्रेष्ठबीरोंको ले जानेवाले व्याघ्रवृक आदि जीव अपने बडे नखवाले अंगूठोंसे जो बीरोंके शरीरसे पंख सहित बाणोंको निकाल रहे हैं उनके शब्दसे पूर्ण ॥ ४४ ॥

मरिचैर्व्यंजनानीवरंजयन्सकलारवान् ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभाग्निमृतयोधेरितायुधः ॥ ४५ ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभाग्निदग्धयोधोज्झितायुधः ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभस्थतप्तांगारहतेक्षणः ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभस्थविषवारिदलज्जनः ॥ ४६ ॥ नाराचवर्षवरवारिदवीरपूरमत्ताभ्रसंभ्रमसनृत्तकबंधबर्हीं ॥ कल्पांतकालइववेगविवर्त्तमानमातंगशैलवलितोरणसंभ्रमोभूत् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सेनयोःप्रथमपातवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—तथा सेनामें फेके हुये कुम्भाग्नि (घडेमें भरके भूसीकी आग) से भरे हुये बीरोंका शब्द सम्पूर्ण शब्दोंमें मिलकर बीरोंको ऐसा रुचिकारक हुआ जैसे मिरचोंसे व्यंजन (भोजनके पदार्थ) ॥ ४५ ॥ तथा हे रामजी ! सेनामें फेके हुये कुम्भाग्निसे दग्धबीरोंने जहांपर अपने अस्त्रशस्त्र फेक दिये हैं, और कुम्भकी अग्निसेही बीरोंके नेत्र फूट गये हैं, और घडेमें फेके हुये विषके जलसे जहांपर अनेक मनुष्य मर रहे हैं ॥ ४६ ॥ और हे रामजी ! बाणोंकी वृष्टिरूपी उत्तम जल देनेवाले बीरोंके समूहरूपी मत्त मेघोंके बिलाससे कबन्ध (शिररहित शरीर) रूपी मोर जहांपर नाँच रहे हैं, और प्रलयके अन्तमें वायुके वेगसे भ्रमण करनेवाले मतंग (हस्ती) रूपी पर्वतोंसे वेष्टित यह रणका संभ्रम (वेग) हुआ ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सेनयोः प्रथमपातवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

युद्धके देखनेवालोंकेही मुखोंसे विचित्र अर्थोंसाहित युद्धका चमत्कार विशेष करके इस ३४वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथराज्ञांयुयुत्सूनांभटानांमंत्रिणामपि ॥ नभसःप्रेक्षकाणांचतत्रेमाःप्रोदगुर्गिरः चलत्पद्मसरइववहद्विहगमेवच ॥ नभःशूरशिरःकीर्णंभातितारकिताकृति ॥ २ ॥ पश्यरक्तपृषत्पूरसिंदूरारुणमारुतैः ॥ सांध्याइवविभांत्येतेमध्याह्नेंबुदमानवः ॥ ३ ॥ किमिदंभगवन्व्योमपलालभरितंस्थितम् ॥ नेदंपलालंवीराणामेतेशरभरांबुदाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर राजाओंके युद्धके अभिलाषी वीरोंके, मंत्रियोंके, तथा आकाशमें देखनेवालोंके ये बचन निकले ॥ १ ॥ वीरपुरुषोंके मस्तकोंसे व्याप्त इस आकाशकी ऐसी शोभा होरही है जैसे चलायमान कमल और बहते हुये पक्षियों करके तडागकी, अथवा तारागण सहित आकाशकी ॥ २ ॥ देखो ! रुधिरके कणोंके समूहोंसे, सिन्दूरसे रक्तवर्ण वायुके समान, ये मेघ, तथा सूर्य्यभगवान्के किरण ऐसे भान होते हैं मानों सन्ध्याकालकी ललाईसे रंगे हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! (कोई अपनेसे बडेको पूंछताहै) क्या यह आकाश पलालों (प्यालों) से पूर्ण है ? नहीं (दूसरा उत्तर देता है) ये पलाल नहीं है किन्तु बीरोंके बाणोंके समूहरूपी मेघहैं ॥ ४ ॥

यावंतोभुविसिच्यंतेरुधिरैरणरेणवः ॥ तावंत्यब्दसहस्राणिभटानामास्पदंदिवि ॥ ५ ॥ माभैष्टनैतेनिस्त्रिंशालीलोत्पलदलत्विषः ॥ अमीवीरावलोकिन्यालक्ष्म्यानयनविभ्रमाः ॥ ६ ॥ वीरालिंगनलोलानांनितंबेसुरयोषिताम् ॥ मेखलाःशिथिलीकर्त्तुंप्रवृत्तःकुसुमायुधः ॥ ७ ॥ लसद्भुजलतालोलारक्तपल्लवपाणयः ॥ मंजरीमत्तनयनामद्यामोदसुगंधयः ॥ ८ ॥ गायंत्योमधुरालापैर्नंदनोद्यानदेवताः ॥ तवागमनमाशंक्यप्रवृत्ताःपरिनर्तितुम् ॥ ९ ॥

अर्थ—वीरोंके रक्तसे जितने पृथिवी परमाणु सींचे जाते हैं उतनेही सहस्र (हजार) वर्षपर्य्यन्त स्वर्गमें वीरोंको निवास होता है ॥ ५ ॥ ये तलवार हैं ऐसा भय मत करो, किन्तु वीरोंको देखनेवाली स्वर्गकी लक्ष्मी (वा जयलक्ष्मी) के नील कमलके सदृश, ये नेत्रके विलास हैं ॥ ६ ॥ देखो ! (आकाशचारियोंका यह कथन है) वीरोंको आलिंगन करनेके वास्ते चंचल देवांगनाओंके कटि (कमर) स्थानमें जो मेखलाहै उसको शिथिल करनेमें कामदेव लग रहाहै ॥ ७ ॥ देखो! (एक वीरकी दूसरे वीरके प्रति उक्ति) उत्तम भुजारूपी लता तथा रक्त हस्तरूपी पल्लवसे शोभायमान, मुक्तालताके सदृश मत्तनेत्रवाली, मद्यके उत्तम सुगन्धसे सुगन्धित मधुर स्वरसे गान करतीहुई नन्दन (स्वर्गके वाटिका) की देवांगना लोग तुमारा आगमन जानके नृत्य करना आरंभ करदिया है ॥ ८ ॥ ९ ॥

प्रत्यनीकंभिनत्यंतःकुठारैःकठिनैरियम् ॥ सेनाग्राम्येववनितादयितंदृष्टिचेष्टितैः ॥ १० ॥ हापितुर्मम भल्लेनशिरोज्वलितकुंडलम् ॥ सूर्यस्यनिकटंनीतंकालेनेवाष्टमोग्रहः ॥ ११ ॥ आपादशृंखलाप्रोतभ्रमत्स्थूलोपलद्वयम् ॥ भ्रमयंश्चित्रदंडाख्यंचक्रमूर्ध्वभुजोजवात् ॥ १२ ॥ योधोयमइवाभातियाम्यादायातिदिक्तटात् ॥ सर्वतःसंहरन्सेनामेहियामोयथागतम् ॥ १३ ॥ सद्यश्छिन्नशिरःश्वभ्रमज्जत्कंककुलाकुलाः ॥ कबंधाःपरिनृत्यंतितालोत्तालारणांगणे ॥ १४ ॥ गीर्वाणगणगोष्ठीषुप्रवृत्ताःसंकथामिथः ॥ कदालोकांतरंधीराःकथंयास्यंतिकेकुतः ॥ १५ ॥ निगिरत्यागताःसेनाःस्रवंतीरिवसागरः ॥ समत्स्यमकरव्यूहाअहोनुविषमोभटः ॥ १६ ॥

अर्थ--देखो ! प्रत्येक योद्धाओंके अन्तःकरणको कठिन कुठारोंसे यह सेना ऐसे विदीर्ण कररही है जैसे नगरकी बनिता अपने कटाक्षोंसे प्रियको ॥ १० ॥ हा शोक ! (भीरुकी भीरुके प्रति उक्ति) प्रकाशमान कुण्डलसे शोभित मेरे पिताका मस्तकको भल्ल (भाला) ने सूर्य्यके निकट ऐसे पहुंचा दिया जैसे कालसे आठवां ग्रह॥११॥पादतक लटकतीहुई शृंखला (जंजीर) में गुंथेहुये दो महान पाषाणोंको, और दण्डनामक चक्रको भुजाके वेगसे घुमाता हुआ तथा चारों ओरसे सब सेनाका संहार कर्ता हुआ यमके सदृश यह योद्धा दक्षिण दिशासे आरहाहै सो इसलिये आओ जैसे आये वैसे चले चलै ॥ १२ ॥ १३ ॥ शीघ्रही कटेहुये जिनके कण्ठरूपी गढेमें काकोंके समूह निमग्न होरहेहैं ऐसे कबन्ध (शिररहित धड) युद्धके तालसे रणभूमिमें नाच रहेहै ॥ १४ ॥ देवताओंकी सभामें परस्पर यह कथा प्रवृत्त हुई कि धीरवीर लोकान्तरमें कब ? कैसे ? कौन ? और किस निमित्तसे जाते हैं ॥ १५ ॥ अहो ! कैसा भयंकर यह वीर है कि आती हुई सेनाओंको ऐसा भक्षण करताहै जैसे मत्स्य और मगरोंके समूहों सहित नदियोंको समुद्र ॥ १६ ॥

कटेषुकरिणांकीर्णाधारानाराचराजयः ॥ पतिताइवसंपूर्णाःशृंगसंघेषुवृष्टयः ॥ १७ ॥ हाकुंतेनशिरोनीतंममेत्येवंविवक्षतः ॥ शिरसाऽजीवमित्येवंखेखगेनेववाशितम् ॥ १८ ॥ यंत्रपाषाणवर्षेणयेषास्मान्परिषिंचति ॥ सेनानुशृंखलाजालवलनाक्रियतांबलात् ॥ १९ ॥ वलीपलितनिर्मुक्तंपूर्वभार्याप्सराःसती ॥ अंगीकरोतिभर्तारंपरिज्ञायरणेहतम् ॥ २० ॥

अर्थ—हांथियोंके गण्डस्थलपर बाणोंकी पंक्ति ऐसे शोभित होरही रही है जैसे पर्वतोंके शिखरोंपर सम्पूर्ण वृष्टि ॥ १७ ॥ हा ! कुन्तसे मेरा शिर काटा गया (किसी योद्धाकी उक्तिहै) ऐसा कहतेही हुये वह शिर उडके जब स्वर्गमें चढा तो उसने कहा कि मैं तो जीगया मरा नहीं ऐसा आकाशमें सभोंने पक्षीके कूजितके समान सुना ॥ १८ ॥ जो यह सेना यंत्र पाषाणकी वृष्टिसे हम लोगोंको सींच रही है उसको शृंखलाके जालसे बलपूर्वक बांध लेना चाहिये (यह वीरयोद्धाकी उक्तिहै) ॥ १९ ॥ पूर्व भार्य्या प्रथमही मरके अप्सरा होके स्थितहै, वह युद्धमें मरे हुये वृद्धासे रहित देवरूप अपने पतिको पहचानके अंगीकार करती है, (किसी देवकी उक्तिहै) ॥ २० ॥

आदिवंरचिताकाराःकुंतकाननकांतयः ॥ वीराणांस्वर्गमारोढुमिवसोपानपंक्तयः ॥ २१ ॥ कांतकांचनकांतांगेभवस्योरसिकामिनी ॥ दृष्टादेवपुरंध्रीयंभर्तुरन्वेषणान्विता ॥ २२ ॥ हाहतंसैन्यमस्माकंभटैरुद्धतमुष्टिभिः ॥ महाप्रलयकल्लोलैःसुरशैलस्थलंयथा ॥ २३ ॥ युध्यध्वमग्रतोमूढानयतार्द्धमृतान्नरान् ॥ निजान्पादप्रहारेणमैतान्दारयताधमाः ॥ २४ ॥

अर्थ—कुन्त (अस्त्र विशेष) आदि हंथियारोंकी पंक्ति स्वर्ग पर्य्यन्त ऐसी रची हुई है मानों वीरोंके स्वर्गमें जानेके अर्थ सीढियोंकी पंक्ति (पांति) ॥ २१ ॥ जो सुवर्णके समान उत्तम अंगवाली कामिनी अपने वीरपति गोदमें मरणको प्राप्त हुई है वह अब देवांगना होके युद्धमें मृत अपने पतिके अन्वेषण (खोजने) में तत्पर देख पडती है ॥ २२ ॥ हा ! (कातरकी उक्ति) बडे उद्धत मुष्टि (मूके) वाले वीरोंने हमारे सैन्यको ऐसे नष्ट किया जैसे महाप्रलयके तरंग सुमेरुपर्वतको ॥ २३ ॥ हे मूढो ! आगे बढके युद्ध करो और अपने अधमरे वीरोंको यहां लाओ इनको अपने पादोंके प्रहारोंसे मत कुचलों (किसी वीर सेनापतिकी उक्ति) ॥ २४ ॥

धम्मिल्लवलनाव्यग्रेघनोत्कंठेऽप्सरोगणे ॥ भटोदिव्यशरीरेणपार्श्वप्राप्तोनिरीक्ष्यताम् ॥ २५ ॥ फुल्लहेमारविंदासुच्छायाशीतजलानिलैः ॥ स्वर्गनद्यास्तटीष्वेनंदूरायातंविनोदय ॥ २६ ॥ विविधायुधसंघट्टखंडितोग्रास्थिकोटयः ॥ खेकवंत्यःकणत्कारैःप्रसृतास्तारकाइव ॥ २७ ॥ व्योम्निजीवनदीवाहेवहत्सायकवारिणि ॥ चक्रवर्त्तिनिगच्छंतिगिरयोप्यणुपंकताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—देखो ! बडी अभिलाषाके साथ अप्सरागण अपना केशसवारनेमें तत्पर होरही है, उनके निकट दिव्य स्वरूप होके यह वीर प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ जिनमे सुवर्णके कमल विकसित होरहे हैं ऐसे ह स्वर्ग नदी (स्वर्गगंगा) जीके

तटोंमें छायासे शीतल जल और सुगन्धित पवनोंसे दूरसे आये हुये इस वीरके चित्तको आनन्दित करो (अप्सराके सखीकी उक्ति) ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंके संघट्टसे कटी हुई असंख्य हड्डियां कडकडा शब्द करती हुई आकाशमें तारागणोंके समान फैली हैं ॥ २७ ॥ चक्ररूपी आवर्त (भ्रम) और बडे २ बाणरूपी जल जिसमें हैं ऐसे आकाशरूपी जीव नदीके प्रवाहमें पर्वतभी अणु होके पंकदशामें प्राप्त होरहेहैं ॥ २८ ॥

भ्रमद्भिर्ग्रहमार्गेषुशिरोभिर्वीरभूभृताम् ॥ आयुधांशुलतानाललग्नासिदलकंटकैः ॥ २९ ॥ केतुपट्टमृणालांगदलैर्लब्धशिलीमुखैः ॥ वहद्वातचलत्पद्मंनभःपद्मसरःकृतम् ॥ ३० ॥ मृतमातंगसंघातेगिराविवपिपीलिकाः ॥ भीरवःपरिहीयंतेस्त्रियःपुंवक्षसीवच ॥ ३१ ॥ अपूर्वोत्तमसौंदर्यकांतसंगमशंसिनः ॥ वांतिविद्याधरस्त्रीणामलकोल्लासिनोनिलाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ग्रहमार्गमें भ्रमण करते हुये वीर पर्वतोंके शिरोंसे शस्त्रोंकी किरणरूप कमल लताओंकी दण्डीमें संलग्न तलवाररूपी दल तथा कुन्त (बर्च्छी) और शूलादि कणकोंसे, तथा पताकाओंके वस्त्ररूप पत्ते और बाणरूपी भ्रमर जिनमें हैं ऐसे कमलोंसे, वहते हुये वायुसे चंचल कमल संयुक्त आकाश मानों पद्मका तडाग बन गयाहै ॥ २९ ॥३०॥ मृत हांथियोंके समूहमें भीरुजन ऐसे छिपते हैं जैसे पर्वतमें चेटियां, अथवा पुरुषके गोदमें स्त्रियां ॥ ३१ ॥ अपूर्व और उत्तम सुन्दरता सहित प्रियोंके समागमका सूचक, विद्याधरकी स्त्रियोंके अलकों (केशसमूहों) को शोभित करनेवाले वायु बहते हैं ॥ ३२ ॥

छत्रेषूड्डीयमानेषुस्थितेषुव्योम्निचंद्रता ॥ इंदुनेवयशोमूर्त्याकृताशुभ्रातपत्रता ॥ ३३ ॥ भटोमरणमूर्छांतेनिमेषेणामरंवपुः ॥ स्वकर्मशिल्पिरचितंप्राप्तःस्वप्नपुरंयथा ॥ ३४ ॥ शूलशक्त्यृष्टिचक्राणांवृष्टयोमुक्ततुष्टयः ॥ व्योमाब्धौमत्स्यमकरसंकुलावयवाःस्थिताः ॥ ३५ ॥ शरोत्कृत्तसितच्छत्रकलहंसैर्नभःस्थलम् ॥ भातिसंचितपूर्णेंदुबिंबलक्षैरिवावृतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आकाशमें जो छत्र (छाते) उडरहेहैं उनसे मानों चन्द्रमा उदय हुआहै, और मूर्तिमान् यशरूपी चन्द्रमासे मानों शुभ्र (सफेद) छत्र बनगयाहै ॥ ३३ ॥ वीरपुरुष मरणरूपी मूर्छाके अन्तमें अपने कर्मरूपी शिल्पी (कारीगरसे) रचे हुये एक निमिषमें देव शरीरको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे स्वप्नके नगरमें ॥ ३४ ॥ शूल, शक्ति, दोनों ओर धारकी तलवार तथा चक्रोंकी सन्तोषरहित वृष्टि, मत्स्य और मकर आदि रूपसे व्याप्त होके स्थिति हैं ॥ ३५ ॥ बाणोंसे कटेहुये श्वेत छत्ररूपी मधुरभाषी हंसोंसे आकाश ऐसा शोभित होता है मानों संचय किये हुये पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बोंसे ॥ ३६ ॥

क्रियतेगगनोड्डीनैश्चामरैश्चारुघर्घरैः ॥ वातावधूतसंरोधतरंगनिकरद्युतिः ॥ ३७ ॥ दृश्यंतेहेतिदलिताश्छत्रचामरकेतवः ॥ आकाशक्षेत्रविक्षिप्तायशःशालिलताइव ॥ ३८ ॥ वहद्भिर्व्योम्निसक्षेमपश्यनीताक्षयंशरैः ॥ शक्तिवृष्टिरुपायांतीसस्यश्रीःशलभैरिव ॥ ३९ ॥ एषाप्रसृतदोर्दंडभटखड्गच्छटात्कृतिः ॥ कठिनात्कंकटाज्जातामृत्योरेवोग्रहुंकृतिः ॥ ४० ॥

अर्थ—उत्तम घरहिट शब्द करनेवाले आकाशमें उडते हुये चामर (चँवर) वायुसे कँपाईगई है स्थिरता जिसकी ऐसे तरंगोंकी शोभाको कररहे हैं ॥ ३७ ॥ अस्त्रशस्त्रोंसे दलित छत्र, चमर और पताका ऐसे देख पडता हैं जैसे आकाशरूपी खेतमें फेकी हुई शोभायमान यशकी लता ॥ ३८ ॥ हे भद्रपुरुष ! देखो आकाशमें समीप आती हुई शक्तिकी वृष्टि चलते हुये बाणोंसे ऐसे नष्ट की गई जैसे निकट फलवाली धान्यकी शोभा शलभों (टिड्डियों) से ॥ ३९॥ देखो ! वीरपुरुषके फैलै हुये भुजदण्डसे कठिन कवचके आघातसे तलवारका चटचटाहट शब्द ऐसे हुआ है जैसे मृत्युका भयंकर हुंकार शब्द ॥ ४० ॥

हेतिकल्पानिलक्षुण्णादंतनिर्झरवारयः ॥ जनताक्षयकालेस्मिन्भग्नानागानगाइव ॥ ४१ ॥ सचक्रनाथसूताश्वंव्यूढंरक्तमहान्हदे ॥ हाहाभिभूतगतिकंचेष्टतेरथपत्तनम् ॥ ४२ ॥ करकंकटकुत्यंकखड्गसंघट्टटांकृतैः ॥ कालरात्र्याप्रनृत्यंत्यारणवीणेववाद्यते ॥ ४३ ॥ नरेभखरवाजिभ्योयेच्युतारक्तनिर्झराः ॥ पश्यतद्विंदुसिक्तेनवायुनारुणितादिशः ॥ ४४ ॥

अर्थ—खड्ग (तलवार) आदि शस्त्ररूपी प्रलयकालके वायुसे पिसेहुये, निकले हुये श्वेतदांतही जलके झरने हैं जिनके ऐसे हस्ती इस प्राणियोंके नाश कालमें इस प्रकार नष्ट हुये हैं जैसे पर्वत ॥ ४१ ॥ हा ! हा ! कैसे खेदकी बात

(१) वायुसे स्त्रियोंके केशोंका बिखरना प्रियसमागम सूचक शकुन समझा जाताहै ॥

है कि चक्र, स्वामी, सारथी, और घोडे सहित सनद्ध (तैय्यार) रथरूपी नगर चक्रकी गति रुक जानेसे, रक्तके महा ह्रदमें इधर उधर बहरहा है ॥ ४२ ॥ वीर और हांथियोंके कर, तथा कवचही तंत्रीके पद जिनमें हैं ऐसे तलवारोंके टंकार शब्दरूपी बाजेसे रणरूपी अंगणमें नाचती हुई कालरात्रिकी मानों बीणा बजरही है ॥ ४३ ॥ देखो मनुष्य, हांथी, खर, और घोडे आदिसे जो रुधिरके झरने निकले हैं उनसे सिंचे हुये वायुने दशोंदिशाओंको लालकर दिया है ॥ ४४ ॥

शस्त्रांशुजलदेव्योम्निकालीचिकुरमेचके ॥ शरकोरकभारस्रङ्मेघेविद्युदिवोदिता ॥ ४५ ॥ अनंतरक्तसंसक्तसत्रावनितलायुधैः॥ भुवनंभात्यभिज्वालमग्निलोकइवाकुलम् ॥ ४६ ॥ भुशुंडीशक्तिशूलासिमुसलप्रासवृष्टयः ॥ अन्योन्यच्छेदभेदाभ्यांकरप्रकरतोपतन् ॥ ४७ ॥ अक्षोभैकप्रहरणाद्यातुधान्योन्यचेष्टितम् ॥ संरंभावेक्षणप्रज्ञंरणंस्वप्नमिवस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—केशोंके समान श्यामवर्ण, शस्त्रोंके किरणरूपी मेघहैं जिसमें ऐसे आकाशमें, बाणरूपी कलियोंके समूहकी माला ऐसे शोभित होरही है जैसे मेघमें विद्युत् (बिजली) ॥ ४५ ॥ अनन्त रक्तोंसे पृथिवीतल जिन्होंने सिंचनकर दियाहै ऐसे अस्त्रशस्त्रोंसे व्याप्त भुवन ऐसा शोभित रहाहै जैसे अग्निका लोक ॥ ४६ ॥ भुशुंडी, शक्ति, शूल, असि (तलवार) मुसल, और भालाकी वृष्टियां, एक दूसरोंको छेदन भेदन करती हुई एकके हाथोंसे दूसरोंपर गिरीं ॥४७॥ चलनेमें असमर्थ अनेक वीरोंमेंसे एक अति शूरके प्रहारसे राक्षसोंके समान चेष्टायुक्त और क्रोधसे देखने योग्य योधाकी बुद्धिहै जिसमें ऐसे स्वप्नके समान सम्मुखमें स्थित रणको मैं देखताहुं, और स्वप्नपक्षमें विनाशके योग्य छेदन भेदनादि क्रिया रहित स्वाप्निक पदार्थोंमें केवल जागरण मात्रसे बाधसे बाध होनेसे यातुधानों (राक्षसों) की मायाके सदृश मिथ्यायुक्त और आवेशसे आत्मज्योति देखने योग्यहै जिसमें ऐसे स्वप्नको देखताहुं, (किसीकी उक्ति) ॥४८॥

अनन्यशब्दाविरतहताहतिरणज्झणैः ॥ गायतीवक्षतक्षोभमुदितोरणभैरवः ॥ ४९ ॥ अन्योन्यरणहेत्युग्रचूर्णपूर्णोरणार्णवः ॥ वालुकामयएवाभूच्छिन्नच्छत्रतरंगकः ॥ ५० ॥ सरभसरसवह्निसाहितूर्यप्रतिरवपूरितलोकपाललोकः ॥ रणगिरिरयमुग्रपक्षदक्षप्रतिस्रुतिवृत्तइवांबरेयुगांते ॥ ५१ ॥ हाहाधिक्प्रविकटकंकटाननोद्यत्प्रोड्डीनप्रकटतडिच्छटाप्रतप्ताः ॥ कैंकारस्फुरितगुणेरितारणंतोनाराचाःशिखरिशिलागणंवहंति ॥ ५२ ॥ छिन्नेच्छाच्छमितिनयावदंगभंगंकुर्वंतोज्वलदनलोज्ज्वलाःपृषत्काः ॥ तावद्रागद्रुतमितएहिमित्रयामोयामोथंप्रवहतिवासरश्चतुर्थः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणप्रेक्षकजनोक्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—परस्पर शस्त्रोंके प्रहारसे उत्पन्न झनझनाहट शब्दसे क्षोभरहित भैरव मानों प्रसन्न होके गाते हैं ॥४९॥ परस्पर युद्धसे चूर्ण हुये शस्त्रोंसे पूर्ण, और छिन्न भिन्न होगये हैं छत्ररूपी तरंग जिसमें ऐसा वह रणरूपी समुद्र वालुकामय होगया ॥ ५० ॥ वेगके साथ, मधुर और चारों ओर प्रसरणशील (फैलनेवाली) तुरीहियोंकी प्रतिध्वनिसे लोकपालोंके लोकोंको पूर्ण करनेवाला यह रणरूपी पर्वत युद्धमें कर्कश सेनारूपी पक्षोंकी समर्थ गतिसे युगके अन्तमें मानों आकाशमें उडना चाहताहै ॥ ५१ ॥ हा ! हा ! कैसे खेदका विषयहै कि (निष्फल बाणोंको देखके वीरोंकी उक्ति) ये हमारे बाण, कठिन कवचोंको विना तोडेही उनके (कवचों) के अभिघातसे उडती हुई बिजुलीकी छटाके सदृश ज्वालाओंसे अति संतप्त, और धनुषकी टंकारसे प्रेरित शब्द करते हुये पर्वतोंकी शिलाओंके लिये जाते हैं, धिक्कारहै, (कार्य्य न सिद्ध करनेसे बाणोंको धिक्कारहै) ॥ ५२ ॥ हे नष्टइच्छा और नष्टश्रमवाले पुरुष ! मेरे इस दोष रहित बचनको सुनो कि जबतक जलती हुई आगके समान ये बाण हमारे हस्त पाद आदिको छिन्न भिन्न नहीं करते तभीतक आओ भागके यहांसे चले चले क्योंकि यह चौथा प्रहरहै और यह यमराजका दिनभी आजका प्राणियोंके नाशार्थ प्रवृत्तहै ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणप्रेक्षकजनोक्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

समुद्र, बन, और कल्पान्त (प्रलय) तथा अन्य नानाप्रकारके रूपकोंसे चारों (हांथी, घोडा, रथ, पैदल-रूप) अंगोंके संग्रामका वर्णन विस्तारसे इस ३५ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथप्रोड्डयनोद्युक्ततुरंगमतरंगकः ॥ उत्तांडवइवोन्मत्तोबभूवसरणार्णवः ॥ १ ॥ छत्रडिंडीरविश्रांतसितेषुशफरोत्करः ॥ अश्वसैन्योल्लसल्लोलकल्लोलाकुलकोटरः ॥ २ ॥ नानायुधनदीनीतसैन्यावर्त्तविवृत्तिमान् ॥ मत्तहस्तिघटापीठचलाचलकुलाचलः ॥ ३ ॥ कचचक्रशतावर्त्तवृत्तिभ्रांतशिरस्तृणः ॥ धूलीजलधरापीतभ्रमत्खड्गप्रभाजलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके अनन्तर उडनेमें उद्यत तुरंगम (अश्व) रूपी तरंगहैं जिसमें ऐसा वह रणरूपी समुद्र ताण्डव नृत्यके समान प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥ पुनः छत्ररूप फेनोंके समूहोंमें श्वेतबाणरूपी शफर नामक मत्स्य जहांपर बिश्राम कररहे हैं, और घोडोंके सवारोंकी सेनारूपी चंचल और शोभायमान तरंगोंसे जिसका उदर पूर्ण है, ऐसा ॥ २ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारके शस्त्ररूपी नदियोंसे सेनारूप आवर्त (घूमते हुये जल) सहित, तथा मत्त हांथियोंके समूहोंसे मूल (जड) से मन्दरादिकको भी चलानेवाला ॥ ३ ॥ और शोभायमान सैकडों चक्र-रूप आवर्तमें मनुष्योंके शिररूपी तृण जहां फिरते हैं, तथा तलवारके प्रभारूप जलको धूलिके समूहरूपी मेघ जिसमें पान कर रहे हैं ॥ ४ ॥

मकरव्यूहविस्तारभग्नाभग्नभटौघनौ ॥ महागुड्गुडावर्त्तप्रतिश्रुद्घनकंदरः ॥ ५ ॥ मीनव्यूहविनिष्क्रांतशरबीजौघसर्षपः ॥ हेतिवीचीवराल्लूनपताकावीचिमण्डलः ॥ ६ ॥ शस्त्रवारिकृतांभोदसदृशावर्त्तकुण्डलः ॥ संरंभघनसंचारसेनातिमितिमिंगिलः ॥ ७ ॥ कृष्णायसपरीधानवलत्सेनांबुभीषणः॥ कबंधावर्त्तलेखांतर्बद्धसैन्यादिभूषणः ॥ ८ ॥

अर्थ—मकराकार सेनाकी रचनामें अनेक वीररूपी नौकाओंके समूह जिसमें टूटफूट गयेहैं, और रथादिके महा गडगडाहट रूप शब्दोंसे मेघोंकी कन्दरा (छिद्र) वा पर्वतोंकी गुहा जिसमें प्रतिध्वनि कर रहीहैं ॥ ५ ॥ और हे रामजी ! मृतमनुष्यरूपी मछलियोंसे शररूपी सर्षपके बीज जिसमें निकाले गयेहैं, और शस्त्ररूपी प्रबल तरंगों पताका रूपी अल्पतरंगोंका समूह जहां काटा गयाहै ॥ ६ ॥ शस्त्ररूपी जलसे बनेहुये मेघके सदृश चंचल कुण्डलही जिसके आवर्तहैं और क्रोधसे वेगसे चलनेवाली सेनाही जिसमें तिमिंगिल नामी महा मत्स्यहै ॥ ७ ॥ काले लोहेके सार (तत्व) से बनेहुये कवचसे वेष्टित (ढकीहुई) सेनारूपी जलसे भयंकर, कबन्ध (जल या शिररहित शरीर) रूपी आवर्तकी रेखाके मध्यमें सेनाके भक्षण करनेवालेही भूषणहैं जिसमें ॥ ८ ॥

शरसीकरनीहारसांधकारककुब्गणः ॥ निर्घोषाशोषिताषेषशब्दैकघनघुंघुमः ॥ ९ ॥ पतनोत्पतनव्यग्रशिरःशकलसीकरः ॥ आवर्त्तचक्रव्यूहेषुप्रभ्रमद्भटकाष्टकः ॥ १० ॥ कष्टटांकारकोदंडकुंडलोन्मथनोद्भटः ॥ अशंकमेवपातालादिवोद्यत्सैनिकोर्मिमान् ॥ ११ ॥ गमागमपरानंतपताकाच्छत्रफेनिलः ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानरथद्रुमः ॥ १२ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! बाणोंकी वृष्टिरूपी कुहिरेसे सम्पूर्ण दिशायें जिससे अन्धकार सहित होगई हैं और सेनादिके महान् शब्दोंसे अन्य मेघ आदि जिससे नहीं सुन पडते ॥ ९ ॥ तथा हे रामजी ! गिरते और उछलते शिर रूपी जलकी वृष्टि जहां होरही है और चक्रोंके समूहरूपी आवर्तमें वीररूपी काष्ठ जिसमें भ्रमण कर रहेहैं ॥१०॥ और हे रामजी ! कष्टदायक टंकार शब्दसहित धनुषरूपी सर्पोंसे छेदन करनेमें वीर जहां प्रवृत्त होरहेहैं और शंकारहित वीर गणही मानों पातालसे तरंगों जिसमें निकल रही हैं ॥ ११ ॥ जीती आतीहुई अनेक पताकायें और छत्रों (छातों) से फेन सहित, और बहतीहुई रक्तकी नदियोंके वेगसे रथरूपी वृक्ष जिसमें ॥ १२ ॥

गजप्रतिमसंपन्नमहारुधिरबुद्बुदः ॥ सैन्यप्रवाहविचलद्धयहस्तिजलेचरः ॥ १३॥ ससंग्रामोंबरग्रामइवाश्चर्यकरोनृणां ॥ अभूत्प्रलयभूकंपकंपिताचलचंचलः ॥ १४ ॥ तरत्तरंगविहगःपतत्करिघटातटः॥ त्रस्तभीरुमृगानीकस्फूर्जद्घुरुघुरारवः ॥ १५ ॥ सरच्छरालीशलभशतभंगुरसैनिकः ॥ तरत्तुरंगशरभःशरभारवनावनिः ॥ १६ ॥

अर्थ—हांथियोंके आकारके महान् रुधिरके बुलबुले जिसमेंहैं और सेनाके प्रवाहमें घोडे हांथी आदि जीव जिसमें जलचारी जन्तु बिचर रहेहैं ऐसा रणरूपी समुद्र था ॥ १३ ॥ हे रामजी ! पुनः वह संग्राम मनुष्योंको आ-श्चर्यकारी उत्तम नगरके सदृश ! तथा प्रलयके भूकम्पसे पर्वतोंको कम्पित करनेवाला ॥ १४ ॥ और चंचल तरंगही जि-

समें पक्षी हैं, और हांथियोंके समूहरूपी तट जिसके गिररहे हैं, और डरते हुये भीरु योद्धा जिसमें मृगके सदृशहैं, तथा बज्रके समान सेनाके शब्दसे घुरघुर शब्द सहित ॥ १५ ॥ चलती हुई बाणोंकी पंक्तियोंसे अनेक योद्धारूपी शलभ जिसमें नष्ट होगये हैं, और चंचल तुरंग (घोडे) ही जिसमें शरभ (मृगविशेष) हैं, और बाणोंके भार वाशरोंके धारण करनेवाले जहांपर बनकी भूमि हैं ॥ १६ ॥

चलद्विरेफनिर्ह्रादोरसत्तूर्यगुहागुरुः ॥ चिरात्ससैन्यजलदोल्लुठद्भटमृगाधिपः ॥ १७॥ प्रसरद्धूलिजलदोविगलत्सैन्यसानुमान् ॥ पतद्रथवराढ्यांगःप्रतपत्खड्गमंडलः ॥ १८ ॥ प्रोत्पतत्पदपुष्पौघःपताकाच्छत्रवारिदः ॥ वहद्रक्तनदीपूरपतत्साराववारणः ॥ १९ ॥ सोभूत्समरकल्पांतोजगत्कवलनाकुलः ॥ पर्यस्तसध्वजच्छत्रपताकारथपत्तनः ॥ २० ॥

अर्थ—और हे रामजी ! चंचल मनुष्यरूपी भ्रमर जिसमें शब्द कररहे हैं, और बाजते हुये युद्धके वाद्यरूपी गुहाओंसे महान्, और सेना सहित गज आदि जिसमें मेघ हैं, तथा जिसमें बीररूपी सिंह लोट रहे हैं ॥ १७ ॥ तथा हे रामजी ! अधिक फैलती हुई धूलि जिसमें मेघहैं, और सैन्यरूपी पर्वत जिसमें गिर रहे हैं, बडे २ महा रथियोंके अंग जहां कटकटके गिरते हैं, तथा खड्गरूपी मृगोंका मण्डल जहां धडाधड गिर रहाहै ॥ १८ ॥ तथा हे रामजी! चरणरूपी पुष्पोंके समूह जहां गिर रहे हैं पताका तथा छत्र (छाते) जिसमें मेघ हैं, और वहती हुई रक्तकी नदीके प्रवाहमें शब्द करते हुये बडे २ हांथी जिसमें गिर रहे हैं ॥ १९ ॥ ऐसा वह सम्पूर्ण जगत्का कवल करनेमें व्याकुल समररूपी कल्पका अन्तकरता हुआ, तथा फैली हुई ध्वजा, पताका, छत्र, और रथोंसे नगरके सदृश ॥ २० ॥

पतद्विमलहेत्योघभूरिभास्वरभास्करः ॥ कठिनप्राणसंतापतापिताखिलमानसः ॥ २१ ॥ कोदंडपुष्करावर्त्तशरधारानिरंतरः ॥ वहत्खड्गशिलालेखाविद्युद्वलयितांबरः ॥ २२ ॥ उच्छिन्नरक्तजलधिपतितेभकुलाचलः ॥ नभोविकीर्णनिपतद्युतारकणतारकः ॥ २३ ॥ चक्रकूल्यांबुदावर्त्तपूर्णव्योमशिरांबुदः ॥ अस्त्रकल्पाग्निनिर्दग्धसैन्यलोकांतरक्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेक विमल अस्त्र शस्त्रादिके गिरनेसे कठिन प्राणोंके सन्तापसे सबके मनको तपानेवाले प्रकाशमान सूर्य्यके सदृश ॥ २१ ॥ तथा धनुषरूपी पुष्करावर्त मेघसे जहांपर निरन्तर (लगातार) शरकी धारा गिर रही हैं, और पाषाणकी शिलाओंपर संस्कार किई हुई तलवारोंकी धारारूपी बिजुलियोंसे आकाशमण्डलको घेरनेवाला ॥२२॥ तथा हे रामजी ! हांथीरूप कुलाचल (मन्दर आदि पर्वत) जिसमें गिरें हैं ऐसे उमडे हुये रक्तके समुद्रके तुल्य, तथा आकाशमें फैले हुये एक दूसरेसे मिलके बडे २ रक्तके बिन्दु जिसमें तारागण हैं ॥ २३ ॥ तथा मेघोंके मण्डल भ्रमण करतीहुई आवर्त (भँवरेह) रूप चक्रोंकी पंक्तिरूप नदियोंसे आकाशकी नाडियां तथा मेघमण्डल जहां पूर्ण होगयाहै, और अस्त्ररूपी प्रलयाग्निसे जलीहुई सेना जहां दूसरे लोकमें जानेको उपस्थित (तैय्यार) है ॥ २४ ॥

हेतिवर्षाशनिच्छन्नभूतलामलभूधरः ॥ गजराजगिरिव्रातपातपिष्टजनव्रजः ॥ २५ ॥ शरधाराघनानीकमेघच्छन्नमहीनभाः ॥ महानीकार्णवक्षोभसंघट्टघटितार्द्रवः ॥ २६ ॥ व्याप्तउग्रानिलोद्धूतैर्जलव्यालैरिवाचलः ॥ अन्योन्यदलनव्यग्रैःशस्त्रोत्पातइवोत्थितैः ॥ २७ ॥ शूलासिचक्रशरशक्तिगदाभुशुंडीप्रासादयोविदलनेनमिथोध्वनंतः॥दीप्ताअधुर्दशदिशःशतशोभ्रमंतःकल्पांतवातपरिवृत्तपदार्थलीलाम्२८

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणवर्णनं नाम पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—और अस्त्रशस्त्रोंकी वृष्टिरूप वज्रसे जहांपर पृथिवी और विमल पर्वत ढंक गये हैं और जहांपर बडे २ गजराजरूपी पर्वतोंके गिरनेसे मनुष्योंके समूह पिस गये हैं ॥ २५ ॥ और शरधाराकी वृष्टि करनेवाले सघन सेनारूपी मेघमण्डल पृथिवी और आकाशको आच्छादन करनेवाला और बडी भारी सेनारूप समुद्रके संक्षोभसे जो परस्पर संघर्ष उत्पन्न हुआ है उससे वेगसहित ॥ २६ ॥ एक दूसरेको दलन करनेमें तत्पर शस्त्ररूपी भयंकर वायुसे कंपाये हुये जल सर्पोंसे समुद्रस्थ पर्वतके समान ऐसे व्याप्त है, जैसे शस्त्रके वर्षाके उत्पातमें तत्पर पुष्करावर्त मेघ ॥ २७ ॥ शूल, खड्ग, चक्र, शक्ति, शर, गदा, तोप, भाले आदि अस्त्रशस्त्र परस्परके दलन करनेसे दशोंदिशाओंमें सैकडों प्रकारसे भ्रमण तथा शब्द करतेहुये ऐसी लीला धारण की जैसी कल्पान्त वायुसे भ्रमण करतेहुये पर्वत वृक्ष नगर आदि पदार्थ॥२८

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणवर्णनं नाम पंचोत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

समान अस्त्रादिसे द्वन्द्वयुद्ध, तथा पूर्व आदि दिशाओंके स्वामियोंके साथ सहायकोंकाभी वर्णन इस ३६ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथशृंगोपमानेषुस्थितेषुशरराशिषु ॥ सर्वभीरुषुभग्नेषुविद्रुतेषुदिशोदश ॥ १॥ मातंगशवशैलेषुविश्रांतांबुदपंक्तिषु ॥ यक्षरक्षःपिशाचेषुक्रीडत्सुरुधिरार्णवे ॥ २ ॥ महतांधर्मनिष्ठानां शीलौजःसत्वशालिनाम् ॥ शुद्धानांकुलपद्मानांवीराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ३ ॥ द्वंद्वयुद्धानिजातानिमेघा नामिवगर्जताम् ॥ मिथोनिगरणोत्कानिमिलंत्यापगपूरवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसके अनन्तर जब पर्वतोंके शिखरके समान बाणोंके ढेर लगरहे थे और भीरुलोग कितने नष्ट होगये थे और कितनेही दशोदिशाओंमें भाग गयेथे ॥ १ ॥ और जब हांथियोंके मृतक शरीर सब पर्वतोंपर मेघोंकी पंक्तियोंके समूह विश्राम करने लगे, यक्ष राक्षस, और पिशाच आदि जिस समय रुधिरके समुद्रमें क्रीडा करने लगे ॥ २ ॥ धर्ममें निष्ठ, शील तेज और पराक्रमसे शोभायमान, शुद्ध निजकुलके कमल और युद्धसे कभी न लौटनेवाले तथा मेघोंके समान गर्जना करनेवाले वीरोंके एक दूसरेके ग्रास करनेकी अभिलाषा सहित द्वन्द्वयुद्ध होनेलगे, जिनमें शूरवीर ऐसी तेजीसे मिलेहैं जैसे नदियोंके प्रवाह ॥ ३ ॥ ४ ॥

पंजरःपंजरेणेवगजौघेनगजोच्चयः ॥ सवनःसवनेनाद्रिरद्रिणेवामिलद्दलात् ॥ ५ ॥ अश्वोघोमिलदश्वा श्वद्वंदेनारावरिंहसा ॥ तरंगौघेनघोषेणतरंगौघइवार्णवे ॥ ६ ॥ नरानीकंनरानीकःसमायुधमयोधयत् ॥ वेण्वोघमिववेण्वोघोमरुल्लोलोमरुद्दलम् ॥ ७ ॥ रथौघश्वरथौघेननिष्पिपेषाखिलंवपुः ॥ नगरंनगरेणे वदैवेनोड्डीनमासुरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः वे वीर ऐसे बलसे मिले जैसे सिंह सिंहके साथ, हांथियोंका समूह दूसरे हांथियोंके समूहके साथ, और वनसहित पर्वत दूसरे वनसहित पर्वतके साथ ॥ ५ ॥ पुनः वे वीर ऐसे भीडे जैसे घोडोंका समूह दूसरे वेगवान् शब्दकारी घोडेके समूहके साथ, और समुद्रमें शब्दकेसाथ तरंगोंका समूह तरंगोंके समूहके साथ ॥ ६ ॥ हे रामजी! पैदल मनुष्योंकी सेना दूसरी पैदल सेनाके साथ ऐसे लडी जैसे वायुके वेगसे चेतायमान वासोंका समूह दूसरे वैसेही वासोंके समूहके साथ ॥ ७ ॥ और हे रामजी! रथोंका समूह दूसरे रथोंके समूहसे ऐसा चूर २ किया जैसे देवोंका नगर असुरोंके नगरको चूर करके उडा लेजाय ॥ ८ ॥

सरच्छरमरासाररचितापूर्ववारिदम् ॥ युयुधेस्थगिताकाशाधनुर्धरपताकिनी ॥ ९ ॥ विषमायुधयुद्धे षुयोद्धारःपेलवाशयाः ॥ यदायुक्त्यापलायन्तेरणकल्पानलेतदा ॥ १० ॥ मिलिताश्चक्रिणश्चक्रैर्धनु र्धारैर्धनुर्धराः ॥ खड्गिभिःखड्गयोद्धारोभुशुंडोभिर्भुशुंडयः ॥ ११ ॥ मुसलैर्मुसलोदाराःकुंतिनःकुन्ति धारिभिः ॥ ऋष्ट्यायुधाऋष्टिधरैःप्रासिभिःप्रासपाणयः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! वीरोंने ऐसा युद्ध किया कि बाणोंके समूहकी वृष्टिसे एक अपूर्व नूतन मेघ बनगया, और धनुषधारी वीरोंकी सेनाने आकाशकोभी आच्छादित करलिया ॥ ९ ॥ उस भयंकर युद्धोंमें जब प्रलयकालके समान रणरूपी अग्नि भडकी तब भीरुचित्तवाले योद्धा युक्तिसे भागने लगे॥१०॥हे रामजी! चक्रधारी चक्रधारीयोंके साथ धनुर्धारी धनुर्धारियोंके, खड्गधारी खड्गधारियोंके, और बन्दुकधारी बन्दुकवालोंके साथ मिलके युद्ध करनेलगे॥११॥तथा-मुसलधारी मुसलधारियोंकेसाथ,बर्च्छीवाले बर्च्छीवालोंकेसाथ,तेगेवाले तेगेवालेके और भालेवाले भालेवालोंकेसाथ॥१२

समुद्गरामुद्गरिभिःसगदैर्विलसद्गदाः ॥ शाक्तीकैःशक्तियोद्धारःशूलैःशूलविशारदाः ॥ १३ ॥ प्रासास नविदःप्रासैःपरशूक्तापरस्वधैः ॥ लकुटोघैर्लकुटिनश्वोपलैरुपलायुधाः ॥ १४ ॥ पाशिभिःपाशधारि ण्यःशंकुभिःशंकुधारिणः ॥ क्षुरिकाभिस्तुक्षुरिकाभिंदिपालैश्चतद्धताः ॥ १५ ॥ वज्रमुष्टिधरावज्रैरंकुशै रंकुशोद्धताः ॥ हलैर्हलनिकाषन्नास्त्रिशूलैश्वत्रिशूलिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा मुद्गरधारी मुद्गरधारियोंके साथ, गदाधारी गदाधारियोंके, श क्तिसे युद्धकरनेवाले शक्तिवालोंके साथ, और शूलयुद्ध निपुणशूलधारियोंके साथ ॥ १३ ॥ कुन्त (बर्च्छी) से युद्ध करनेवाले कुन्तवालोंके, फरसेवाले फरसेवालोंके, लठ्ठबाज लठ्ठबाजोंके तथा पत्थरसे लडनेवाले पत्थरवालोंके साथ ॥ १४ ॥ तथा पाश (फांसी) धारी पाशधारियोंके शंकुधारी शंकु धारियोंके, छूरीबाज छूरीबाजोंके, और भिन्दिपाल (नालिकास्त्र) धारी

भिन्दिपाल पालवालों साथ ॥ १५ ॥ और वज्रमुष्टिधारी (मुष्टिमें लोहकी कीलवाले मल्ल) वज्रमुष्टिवालोंके, हलधारि हलधारियोंके, और त्रिशूलधारी त्रिशूलधारियोंके साथ ॥ १६ ॥

शृंखलाजालिनोजालैःशृंखलैरलिकोमलैः ॥ क्षुभिताःकल्पविक्षुब्धसागरोर्मिवघटाइव ॥ १७ ॥ क्षुब्धचक्रदलावर्त्तःशरसीकरमारुतः ॥ प्रभ्रमद्धेतिमकरोव्योमैकार्णवआबभौ ॥ १८ ॥ उत्फल्लायुधकल्लालेशिराकुलजलेचरः ॥ रोदोरंध्रसमुद्रोसौबभूवामरदुस्तरः ॥ १९ ॥ दिव्याष्टकजनानीकंपक्षद्वयतयातया अर्द्धेनार्द्धेनकुपितंभूपालाभ्यांतथास्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कवच विशेषधारि सवार कवचधारी सवारोंके साथ मिलके परस्पर ऐसे युद्ध करनेलगे जैसे प्रलयकालमें संक्षुब्ध समुद्रके तरंगोंके समूह ॥१७॥ हे रामजी ! भ्रमण करते हुये चक्र जिसमें आवर्त (भ्रमण करता हुआ जल) हैं, बाणोंकी वृष्टि जिसमें वायुहै और अनेकप्रकारसे भ्रमण करते हुये अस्त्र शस्त्र जिसमें रूपहैं ऐसा आकाशवत् विस्तृत समुद्रके समान वह संग्राम शोभित हुआ ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके विकसित अस्त्रशस्त्ररूपी तरंगोंकी नाडियोंसे जिसके जलचारी जीव व्याकुल होरहे हैं, और आकाश तथा पृथिवीका मध्यभाग समुद्रहै जहां ऐसा वह संग्राम जीवधारियोंके दुस्तर होगया ॥ १९ ॥ विद्या, बुद्धि, बल, शौर्य्य, अस्त्र, अश्व, और धनुष इन आठोंको अमोघरूपसे धारण करनेवाली, पूर्वोक्त रीतिसे द्वन्द्वरूपसे कोप करके मिली हुई, सिन्धुराज और विदूरथके अनुकूल आधे २ भागमें दोनों सेना स्थित हुई ॥ २० ॥

मध्यदेशादिसंख्यानेप्राग्दिग्भ्योभ्यागतानिमान् ॥ लीलानाथस्यपद्मस्यपक्षेजनपदाञ्छृणु ॥ २१ ॥ पूर्वस्यांकोसलाःकाशिमागधामिथिलोत्कलाः ॥ मेखलाः कर्करामुद्रास्तथासंग्रामशौंडकाः ॥ २२ ॥ मुख्याहिमारुद्रमुख्यास्ताम्रलिप्तास्तथैवच ॥ प्राग्ज्योतिषावाजिमुखाअंबष्ठाःपुरुषादकाः ॥ २३ ॥ वर्णकोष्ठाःसविश्वोत्राआममीनाशनास्तथा ॥ व्याघ्रवक्त्राःकिराताश्वसौवीराएकपादकाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अब मध्य देशादिकी गणनामें पूर्व आदि दिशासे लीलाके पद्मकी सहायता करनेको जो आयेथे उनके नाम सुनो ॥ २१ ॥ पूर्वदिशामें, कोशल, काशी, मगध, मिथिल, उत्कल, मेखल, कर्कर, मुद्र संग्राम शौण्डक, मुख्य, हिम, रुद्रमुख्य, ताम्रलिप्त, प्राग्ज्योतिष, वाजिमुख, अम्बष्ट, पुरुषादक, कर्णकोष्ट, विश्वोत्र, आममीनाशन (कच्ची मछली जहां खातेहैं) व्याघ्र वक्र, किरात, सौबीर, और एक पादक इन २४ देशोंसे सहायक आयेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

माल्यवान्नामशैलोत्रशिबिरांजनएवच ॥ वृषलध्वजपद्मान्यास्तथोदयकरोगिरिः ॥ २५ ॥ अथप्राग्दक्षिणायांतुइमेविंध्यादिवासिनः ॥ चेदयोवत्सदाशार्णाअंगवंगोपवंगकाः ॥ २६ ॥ कलिंगपुंड्रजठराविदर्भामेखलास्तथा॥ शबराननवर्णाश्वकर्णात्रिपुरपूरकाः ॥२७॥ कंटकस्थलनामानःपृथग्दीपककोमलाः कर्णांधाश्चौलिकाश्वैवतथाचार्मण्वताअपि ॥ २८ ॥ काककाहेमकुड्याश्वतथाश्मश्रुधराअपि ॥ बलिग्रीवमहाग्रीवाःकिष्किंधानालिकेरिणः ॥ २९ ॥ अथलीलापतेरस्यदक्षिणस्यामिमेनृपाः ॥ विंध्योथकुसुमापीडोमहेंद्रोदर्दुरस्तथा ॥ ३० ॥ मलयःसूर्यवांश्वैवगणाराज्यसमृद्धकाः ॥ अवंतीरितिविख्याता स्तथाशांबवतीतिच॥३१॥दशपूरकथाचक्रारेषिकातुरलच्छपाः ॥ वनवासोपगिरयस्तेभद्रगिरयस्तथा॥३२

अर्थ—तथा पूर्वसे, माल्यवान्, शिबि, आंजन, वृषल, ध्वज, पद्मान्य, और उदयगिरि, इन पर्वतोंपरसे सहायक आये थे ॥ २५ ॥ अब पूर्व और दक्षिण दिशाके बीच अर्थात् अग्निकोण किये हैं विन्ध्य आदिके रहनेवाले हैं, चेदि, वत्स, दाशार्ण, अंगवंग, उपवंग, कलिंग, पुण्ड्रज, जठर, बिदर्भ, मेखल, शबराननवर्ण, कर्णात्रिपुरपूरक, कंकटस्थल, पृथग्दीपक, कोमल, कर्णांध्र, चौलिक, चार्मण्वतकाकक, हेमकुड्यश्मश्रुधर, बलिग्रीव, बलिग्रीव, महाग्रीव किष्किन्ध, और नालिकेरी इनसे आयेथे॥२६॥२७॥२८॥२९॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर दक्षिण दिशामें लीलाके पतिके सहाये राजाथे, बिन्ध्य, कुसुमा पीड, औ दर्दुर॥३०॥मलय, सूर्य्यवान् औ राज्यसमृद्ध, इन पर्वतोंके निवासी, अम्बवती शांबवती ॥ ३१ ॥ दशपूरकथा, चक्रार, इषिका, आतुर, कच्छप, बनबास, उपगिरि और भद्रगिरि ॥ ३२ ॥

नागरादंडकाश्वैवगणराष्ट्रनृराष्ट्रकाः ॥ साह्यशैवार्ष्यमूकाश्वककाटावनबिलाः ॥ ३३ ॥ पंपानिवासिनश्वैवकैरकाःकर्कवीरकाः॥स्वेरिकायासिकाश्वैवधर्मपत्तनपंजिकाः ॥३४॥ काशिकास्तृष्णखल्लूलायादास्तेताम्रपर्णकाः ॥ गोनर्दाःकणकाश्वैवदीनपत्तननामकाः ॥ ३५ ॥ ताम्रीकादंभराकीर्णाःसहकारैणकास्तथा ॥ वैतुंडकास्तुंबवनालाजिनद्वीपकर्णिकाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—नागर, दण्डक, गणराष्ट्र, नृराष्ट्र, साह, शैव, ऋष्यमूक, कर्कोट, आवन, और बिंबिल ॥ ३३ ॥ पंपानिवासी, केरक, कर्कबार, स्वैरिक, पासिक, धर्मपत्तन पंजिक ॥ ३४ ॥ काशिक, तृष्ण, खल्लूल, याद, ताम्रपर्ण, गोनर्द, कणक, तथा दीनपत्तन नामवाले ॥ ३५ ॥ ताम्रीक, दम्भर आकीर्ण, सहकार, ऐणक, वैतुण्डक, तुम्बबनला जिन और द्वीपकर्णीक ॥ ३६ ॥

कर्णिकाभाश्वशिबयःकौंकणाश्चित्रकूटकाः ॥ कर्णाटमंटवटकामहाकटकिकास्तथा ॥ ३७ ॥ आंध्राश्वकोलगिरयश्चावंतिकविचेरिकाः ॥ चंडायत्तादेवनकाःक्रौंचावाहास्तथैवच ॥ ३८ ॥ शिलाक्षारोद्भोनंदमर्दनामलयाभिधाः ॥ तेचित्रकूटशिखरालंकाररक्षोगणाःस्मृताः ॥ ३९ ॥ अथप्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः ॥ सिंधुसौवीरशूद्राख्याअभीराद्रविडास्तथा ॥ ४० ॥

अर्थ—कर्णिकाभा, शिबि, कोंकण, चित्र, कूटक, कर्णाट, मंट, बटक, और महाकटकी, ॥ ३७ ॥ आन्ध्र, कोलगिरि, आवन्तिक, और बिचेरिक, चण्डायत्त, देवनक, और क्रौंचवाह, ॥ ३८ ॥ शिलाक्षारोद, भोनन्द, मर्दन, और मलय, ये चित्रकूटके शिखर, और लंकाके निवासी रक्षोंगण, ये सब दक्षिण दिशाके सहायकथे ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर दक्षिण और पश्चिमदिशाके मध्य(नैऋत्य कोण)से महाराज्य, सुराष्ट्र, सिन्धु, सौबीर, शूद्र, और द्रविड॥४०॥

कीकटाःसिद्धखंडाख्यास्तथाकालिरुहाअपि ॥ अत्रहेमगिरिःशैलस्तथारैवतकोगिरिः ॥ ४१ ॥ जयकच्छामयवरोयवनास्तत्रजंतवः ॥ बाह्लीकामार्गणावंताधूम्रास्तुंबकनामकाः ॥ ४२ ॥ तथालाजगणाश्चैवतथात्रगिरिवासिनः ॥ ततोऽब्धितोकनियुताएतेलीलापतेर्जनाः ॥ ४३ ॥ अथतत्प्रतिपक्षस्थानिमान् जनपदाञ्छृणु ॥ पश्चिमायांदिशिप्रौढाइमेतावन्महाद्रयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा कीकट, सिद्धखण्ड और कालिरुह, और इसदिशामें, हेमगिरि, रैवतकरिरि॥४१॥जयकच्छ, और मयबर ये ४ पर्वतहैं यहांके निवासी यवनहैं, बाल्हीमार्गणावन्त, धूम्र, और तुम्बक, ॥ ४२ ॥ तथा लाजगण, और यहांके पर्वतोंके निवासी, इसके अनन्तर समुद्रतटके और तोकनि देशके निवासी, हे रामजी ! ये सब पूर्वोक्त लीलाके पतिके पक्षकेथे ॥४३ ॥ अब हे रामजी ! लीलाके पतिके शत्रुके पक्षके जनपदों (देशोंका वहां राजा या मनुष्यों)को सुनो, पश्चिमदिशामें आगेलिखे बडे २ पर्वतहैं ॥ ४४ ॥

मणिमान्नामशैलेंद्रःकुरार्पणगिरिस्तथा ॥ वनोर्कद्दोमेघभवश्चक्रवानस्तपर्वतः ॥ ४५ ॥ जनाःपंचजनानामकाशब्रह्मचयांतकाः ॥ तथैवभारक्षतथापारकाःशांतिकास्तथा ॥ ४६ ॥ शैब्यारमरकायाच्छागुहुत्वानियमास्तथा ॥ हैहयाःसुह्मगायाश्चताजिकाह्णकास्तथा ॥ ४७ ॥ पार्श्वकतकयोःकर्कागिरिपर्णावमास्तथा ॥ संत्यक्तधर्ममर्यादास्तेवर्णाम्लेच्छजातयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—मणिमान्, शैलेन्द्र, कुरापर्ण गिरि, बन, अर्कद मेघ भव, चक्रवान और अस्ताचल॥ ४५ ॥ और हे रामजी ! काश तथा ब्राह्मणके समूहोंके अन्तक पंचजन नामक जन और इसीप्रकार भारक्षत, पारक, और शान्तिक ॥४६॥ शैब्य, आरमरकाय, अच्छू, अगुहुत्व, अनियम, हैहय, सुह्म, गाय, ताजिक, औव्हणक ॥ ४७ ॥ दक्षिण और उत्तर तक देशके निकटके कर्क, गिरिपर्ण, और वम, ये सवर्णधर्मकी मर्य्यादाको सर्व त्याग दिया है इसलिये ये म्लेच्छ कहाते हैं ॥ ४८ ॥

ततोजनपदाभूमिर्योजनानांशतद्वयम् ॥ ततोमहेंद्रशिखरीमुक्तामणिमयावनिः ॥ ४९ ॥ युतोमहीधरशतैरथाश्वोनामपर्वतः ॥ ततोमहार्णवोभीमः पारियात्रगिरिस्तटे ॥ ५० ॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागेदेशोगिरिमितिस्थितः ॥ तथावेणुपतिश्चैवततोनरपतिर्मही ॥५१॥ तथाफल्गुणकाश्चैवमांडव्यानेकनेत्रकाः ॥ पुरुकुंदाश्चपाराश्चभानुमंडलभावनाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसके अनन्तर २ दोसो योजन पर्य्यन्त पृथिवी जनपदसे शून्य है, और इसके अनन्तर महेन्द्रपर्वतके शिखर सहित मुक्ता तथा मणिमयी पृथिवी है ॥ ४९ ॥ इसके पश्चात् सैकडों पर्वतों सहित अश्वनाम पर्वत है, इसके अनन्तर भयंकर महासमुद्र है जिसके तटपर पारियात्र नाम पर्वत है ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पश्चिमदिशामें गिरिमिति, वेणुपति, और नरपतिदेश हैं जहां नित्य उत्सव हुआ करता है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर फल्गुणक, माण्डव्य, अनेक नेत्रक, पुरुकुन्द, पार, भानुमण्डल, तथा भावन, ॥ ५२ ॥

धन्मिलानलिनादीर्घादीर्घकेशांगबाहवः ॥ रंगाश्चस्तनिकाश्चान्यागुरुहाश्चलुहास्तथा ॥ ५३ ॥ ततः

क्षीराष्ट्रमतुलंगोवृषापत्यभोजनम् ॥ अथोत्तरस्यांहिमवान्क्रौंचोथमधुमान्गिरिः ॥ ५४ ॥ कैलासोवसुमान्मेरुस्तत्पादेषुजनाउभे ॥ मद्रवारेवयौधेयामालवाःशूरसेनिकाः ॥ ५५ ॥ राजन्याश्र्वतथाज्ञेयाअर्जुनातनयस्तथा ॥ त्रिगर्त्तएकपात्क्षुद्रामवलास्वस्तवासिनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वन्मिल, नलिन, और इसके पश्चात् दीर्घ केश और अंग हस्तपाद आदि सहित मनुष्य होनेसे दीर्घनाम देश है, तथा रंग, स्तनिक, गुरुह और लुह नामवाले हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर अतुल रची राष्ट्र नाम देश है, जहां गौ, बैल तथा सन्तानकोभी खा जाते हैं, और इसके अनन्तर उत्तरदिशामें हिमवान्, क्रौंच, और मधुमान् नाम पर्वत हैं ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर कैलाश, वसुमान्, और मेरुपर्वत हैं, जिनके दोनों किनारेपर देश हैं वहांपर मनुष्य रहते हैं, जैसे मद्र, वारेव, यौधेय, मालव, और शूरसेनिक, ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ये क्षत्रिय और देश हैं, राजन्य, अर्जुनातनय, त्रिगर्त, एकपाद् क्षुद्र आमवल और स्वस्तवासी ॥ ५६ ॥

अबलाःप्रखलाःशाकाःक्षेमधूर्त्तयएवच ॥ दशाधानागावसन्यदंडाहन्यसनास्तथा ॥ ५७ ॥ धानदाःसरकाश्र्चैववाटधानास्तथैवच ॥ अंतरद्वीपगांधारास्तथावंतिसुरास्तथा ॥ ५८ ॥ अथतक्षशिलानामततोबीलवगोधनी ॥ पुष्करावर्त्तदेशस्ययशोवतिमहीततः ॥ ५९ ॥ ततोनाभिमतिर्भूमिस्तिक्षाकालवरास्तथा ॥ काहकंनगरंचैवसुरभूतिपुरंतथा ॥ ६० ॥

अर्थ—अबल, प्रखर, शाक, क्षेम धूर्ति दशप्रकारके नागा, अवसनी अदण्ड, दिनमें न खानेवाले ॥ ५७ ॥ धानद, सरक तथा वाटधान, और अन्तरद्वीपके निवासी गान्धार, अवन्ति, और सुर, ॥ ५८ ॥ और इसके अनन्तर तक्षशिला, बीलव, गोधनी, इसके अनन्तर पुष्करावर्त देशकी यशोवती पृथिवी है ॥ ५९ ॥ और इसके अनन्तर नाभिमती भूमिहै, और उसके पश्चात् तिक्षा तथा कालवराभूमि है, और काहक तथा सुरभूतिपुर नामक नगर है ॥ ६० ॥

तथैवरतिकादर्शाअंतरादर्शएवच ॥ ततःपिंगलपांडव्यंयामुनेयातुधानकाः ॥ ६१ ॥ मानवानांगनाहेमतालाःस्वस्वमुखास्तथा ॥ हिमवान्वसुमान्क्रौंचकैलासावित्यगास्तथा॥६२॥ततोऽजनपदाभूमिरशीतिशतयोजना ॥ अथप्रागुत्तरस्यांतुक्रमाज्जनपदाञ्छृणु ॥ ६३ ॥ कालुताब्रह्मपुत्राश्र्वकुणिदाःखदिनास्तथा ॥ मालवारंध्रराज्याश्र्ववनाराष्ट्रास्तथैवच ॥ ६४ ॥ केडवस्ताःसिंहपुत्रस्तथावामनतांगताः ॥ सावाकचापलवहाःकामिरादरदास्तथा ॥ ६५ ॥ अभिसासदजावार्काःपलोलकुविकौतुकाः ॥ किरातायामुपाताश्र्वदीनाःस्वर्णमहीततः ॥ ६६ ॥ देवस्थलोपवनभूस्तदनूदितश्रीर्विश्वावसोस्तदनुमंदिरमुत्तमंच ॥ कैलासभूस्तदनुमंजुवनश्र्वशैलोविद्याधरामरविमानसमानभूमिः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जनपदवर्णनं नाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार रतिका दर्श, और अन्तरादर्श, और इसके अनन्तर पिंगल पाण्डव्य यामुनेय, और यातुधान ॥ ६१ ॥ और मनुष्य, नकिस्त्री, सुवर्ण, तालके वर्णके और उत्तम मुखवाले होतेहैं, हिमवान् वसुमान्, क्रौंच और कैलाश ये पर्वत हैं ॥ ६२ ॥ उसके अनन्तर ८० अस्सीसो योजन पृथिवी जनपदसे शून्यहै, और इसके अनन्तर हे रामजी ! वायव्य (पश्चिम और उत्तर) कोनकी दिशाके जनपदोंका नाम सुनिये ॥ ६३ ॥ कालुत, ब्रह्मपुत्र, कुणिद, खदिन, मालव, रन्ध्रराज्य, वन और राष्ट्र, केडवस्त, सिंहपुत्र और वामन देशको प्राप्त अर्थात् वामनोंका देश,सावाकच, चापलवह, कामिर और दरद ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अभिसासद, जाव, अर्क, पलोल, कुवि, और कौतुक, किरात, यामुपात और दीन और इसके अनन्तर सुवर्णकी पृथिवीहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर देवताओंका स्थानहै, और उसके अनन्तर अकथनीय शोभासहित उन (देवताओं) की उपवन (वाटिका) भूमिहै, इसके अनन्तर अति उत्तम उत्तम विश्वावसुका मन्दिरहै, इसके अनन्तर कैलास पर्वतहै, इसके पश्चात् अति रमणीय वनहै, इसके पश्चात् एक पर्वतहै, जोकि विद्याधर और अन्य देवताओंके विमानकी सदृश भूमिहै ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे जनपदवर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस ३७ वे सर्गमें मध्यदेशोंके नामसे वहांके मनुष्योंका वर्णन तथा उनके द्वन्द्व (एक दूसरेसे) युद्धका और उनके जयपराजयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रणेरभसनिर्लूननरवारणदारुणे ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितिवृंदानुपातिनि ॥ १ ॥ एते चान्येचबहवस्तत्रभस्मत्वमागताः ॥ प्रविशंतःप्रयत्नेनशलभाइवपावके ॥ २ ॥ अत्रान्येमध्यदेशीया जनानोदाहृतामया ॥ तानिमाञ्छृणुवक्ष्यामिपक्षौँल्लीलामहीभृतः ॥ ३ ॥ तद्देहिकाःशूरसेनागुडाअश्व घनायकाः ॥ उत्तमज्योतिभद्राणिमदमध्यमिकादयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–उस महा भयंकर संग्राममें जब मनुष्य झुंडके झुंड गिररहे थे, और अनेक मनुष्य तथा हस्ती आदि कट मरगये ॥ १ ॥ हे रामजी! उससमय ये पूर्वोक्त तथा अन्य जैसे अग्निमें शलभ (पांखी) बडे प्रयत्नसे गिरतेहैं ऐसेही गिरके सब भस्म होगये ॥ २ ॥ हे रामजी! मैंने मध्य देशके जनपद और वहांके मनुष्योंका वर्णन नहीं किया सो लीलाके राजाके पक्षवाले जो ये हैं उनको कहुंगा आप सुनिये ॥ ३ ॥ उस राजाके शरीरकेही सदृश शूरसेन, गुड, अश्वघ, नायक, उत्तम, ज्योतिभद्र और मदमध्यमिक आदि ॥ ४ ॥

साल्वकाकोद्यमालास्यादौर्ज्ञेयाःपिप्पलायनाः ॥ मांडव्याःपांडुनगराःसौग्रीवाद्यागुरुग्रहाः ॥ ५ ॥ पारियात्राःकुराष्ट्राश्चयामुनोदुंबराअपि ॥ राज्याह्वाउज्जिहानाश्चकालकोटिकमाथुराः ॥ ६ ॥ पांचालाधर्मारण्याश्चतथैवोत्तरदक्षिणाः ॥ पांचालकाःकुरुक्षेत्रास्तथासारस्वताजनाः ॥ ७ ॥ अवंतीस्यंदनश्रेणीकुंतिपांचनदेरितैः ॥ स्पंदमानाविद्रवंतीनिपपातमहाभृगौ ॥ ८ ॥

अर्थ—सालूक, कोद्यमालास्य, दौर्ज्ञेय, पिप्पलायन, माण्डव्य पाण्डुनगर, और सौग्रीव आदि गुरुग्रह॥ ५ ॥ पारियात्रकुराष्ट्र, यामुन, उदुम्बर, राज्याव्ह, उज्जिहान, कालकोटिक और माथुर ॥ ६ ॥ पांचाल, धर्मारण्य, और उत्तर दक्षिणके, पंजाबी कुरुक्षेत्री और सारस्वत, ये मनुष्य लीलाके पतिके पक्षके थे ॥ ७ ॥ अवन्ती (उज्जयिनी) वालोंकी रथोंकी पंक्ति, कुन्ति देशवाले तथा पांचनद देशवालोंके शस्त्रोंकी मारसे कम्पायमान होके भागती हुई जाके बडे भारी पर्वतपर गिरी ॥ ८ ॥

कोशवस्त्रावसानाश्चच्छिन्नावस्त्रवतीजनैः ॥ भूमौनिपतिताःसंतोमिलितामत्तवारणैः ॥ ९ ॥ शूरादाशपुराःशस्त्रनिकृत्तोदरकंधराः ॥ बाणक्षितिभिराक्रम्ययोजितायोजनेऽन्हदे ॥ १० ॥ दीर्णोदरविनिर्यातस्वांत्रतंत्रीनियंत्रिताः ॥ शांतिकाःशांतसंचाराःपिशाचैश्चर्वितानिशि ॥ ११ ॥ उद्वेगैर्भद्रगिरिभिःसंग्रामाध्वरदीक्षितैः ॥ क्षोणिगर्त्तेषुनिक्षिप्तामरगाःकमठाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार अन्य सेनाभी कोश वस्त्र आदिसे रहित होके मनुष्योंसे मरण अवस्थाको प्राप्त हुई, और दूसरे सेनाके योद्धागण मत्त हांथियोंसे मर्दित किये हुये पृथिवीपर गिर पडे ॥ ९ ॥ और दशपुरके शूरवीर जिनके उदर और कन्धे कटगये हैं, शस्त्रोंकी अधिकतासे पराजित होके भागते २ एक योजनपर न्हदमें जाके डूब गये ॥ १० ॥ अनेक शूरबीरके उर विदीर्ण होगये और अपने आंतोंके यंत्रमें निरुद्ध और गतिरहित शान्त होके पिशाचोंसे रात्रिमें चर्वितकर लिये गये ॥ ११ ॥ समररूपी दीक्षामें दीक्षित, अधिक वेग सहित भद्रगिरिवालोंने मरगोंको जलाशयोंमें ऐसे फेंक दिया जैसे कछुओंको ॥ १२ ॥

प्रद्रुताविद्रवद्रक्ताविद्रावितमहारयः ॥ दंडिकास्थानिलोद्भूताहैहयैर्हरिणाइव ॥ १३ ॥ दंतिदंतविनिर्भिन्नादरदादलितारयः ॥ नीतारक्तमहानद्याद्रुमाणांपल्लवाइव ॥ १४ ॥ नाराचैश्चर्विताश्चीनाजीर्णाजर्जरजीविताः ॥ जहुर्जलनिधौदेहान्भारभूतानिवस्थितान् ॥ १५ ॥ कर्णाटसुभटोड्डीनकुंताकलितकंधराः ॥ भग्नानलदशूराश्चतारकानिकराइव ॥ १६ ॥

अर्थ—जिन्होंने पूर्व कालमें अपने बडे २ शत्रुओंको भगादिया था ऐसे रक्तकी धारा बहाते हुये दण्डका नगरीवालोंको हैहय देशवालोंने ऐसे भगाया जैसे महा वेगवान् वायु हरिणोंको ॥ १३ ॥ जिन्होंने अपने शत्रुओंको दलन कर दिया था ऐसे दरद लोग हांथियोंके दांतोंसे विदीर्ण होके ऐसी दशाको प्राप्त हुये जैसे रक्तकी महानदीके वृक्षोंका नवीन पल्लव ॥ १४ ॥ बाणोंसे जीर्णदशाको प्राप्त जिनका जीवन जर्ज्जरीभूत होगयाहै ऐसे चीनदेशके निवासी समुद्रके तटपर अपने भारभूत शरीरोंको त्याग दिया ॥ १५ ॥ कर्णाटक देशके महान् वीरोंको उडते हुये भालोंसे जिनके कण्ठ कटगयेहैं ऐसे नलद देशके वीर कटके ऐसे गिरे जैसे तारागण ॥ १६ ॥

करींद्रमकरव्यूहरंहःसंहतहेतयः ॥ केशाकेशिकृतारंभाविनेदुर्दाशकाःशकाः ॥ १७ ॥ दशार्णाःपाशनिर्मुक्तशृंखलाजालभीरवः ॥ निलीनारक्तजंबालेवेतसास्तिमयोयथा ॥ १८ ॥ गुर्जरानीकनाशेनगुर्जरीकेशलुंचनम् ॥ विहितंतंगणोत्तुंगनासिशंकुशतैरणे ॥ १९ ॥ सिषिंचुःशस्त्रकर्णौघाद्विद्युभ्योनिगडागुहान् ॥ शरधारावनानीववीरहेतिप्रभांबुदाः ॥ २० ॥

अर्थ—वहां हाथियोंके मगररूपी समूहोंके वेगसे जिनके अस्त्र शस्त्र नष्ट होगयेहैं ऐसे दाशक और शक लोग परस्पर केश पकडके युद्ध करतेहुये बडे स्वरसे चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥ पाशदेशवालोंसे छोडेहुये शृंखला जालसे डरेहुये दाशार्ण लोग रक्तोंको कीचडमें ऐसे जा फंसे जैसे बेतोंके जडमें रहनेवाले तिमि नामक मत्स्य ॥ १८ ॥ तंगण लोग अपने पराक्रमसे गुर्जर (गुजरात) सेनाका नाश करके अपनी उछलतीहुई तलवारोंसे गुजराती स्त्रियोंके केश काटे और सैकडों मेख आदिसे उनके उपद्रव किये ॥ १९ ॥ कर्णोंके समान ऊपर शस्त्रोंको धारण करनेवाले वीरोंके समूहसे निकले हुये और शस्त्रोंकी प्रभारूपी बिजुलियोंसे मेघोंके सदृश चेष्टा करतेहुये निगडनामक वीर गुहोंको बाणोंकी धाराकी वृष्टिसे ऐसें सींचा जैसे मेघ अपने बिन्दुओंसे वनोंको ॥ २० ॥

भुशुंडोमंडलोद्योतश्यामार्कोत्पातभीरुषु ॥ आभीरेष्वरयःपेतुर्गोगणाहरितेष्विव ॥ २१ ॥ कांतकांचनकांतासीत्ताम्रसंग्रामवाहिनी ॥ भुक्तागौडभटेनांगनखकेशनिकर्षणैः ॥ २२ ॥ रणेनगनयासंख्यकवचक्रनिकृंतनैः ॥ तंगणाःकणशःकीर्णाःकंकगृध्रेषुभासकैः ॥ २३ ॥ लगुडालोडनोड्डीनंगौडंगुड्डगुडारवम् ॥ श्रुत्वागांधारगावोग्रेद्दुवुर्द्रविडाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—भुशुण्डियोंके समूहके प्रकाशोंसे सूर्य्यमण्डल श्याम होजानेकेउत्पातसे डरेहुये आभीर नामक योधोंके ऊपर शत्रुलोग टूटके ऐसे जापडे जैसे हरित तृणोंके ऊपर गौओंका समूह ॥ २१ ॥ हे रामजी ! ताम्र नाम यवनोंकी सेनारूपी नायिका जिसका शरीर उत्तम सुवर्णके समान चमक रहाथा, उसको गौडदेशरूपी वीरने नखक्षत तथा केश लुंचन (केश पकडके खींचने आदिसे) भोग किया ॥ २२ ॥ जो संग्राममें असंख्य पर्वतोंकाभी नष्ट करतेहैं ऐसे शब्द करतेहुये चक्रोंसे छेदन करनेवाले भासक देश निवासी लोग तंगणनिवासियोंको कण २ करके काक और गीधोंके सन्मुख डाल दिया ॥२३॥ लगुडों (लाठियों) के भ्रमणसे उडते हुये गौड भटके गुड २ अस्पष्ट शब्दको सुनके द्रविडके समान गान्धार (कन्धार) देशरूपी गौ भाग निकसी ॥ २४ ॥

आकाशगार्णवप्रख्योवहच्छककदंबकः ॥ अकरोत्पारसीकानांघननैशतमोभ्रमम् ॥ २५ ॥ मंदराहननोड्डीनस्वच्छक्षीरार्णवोदरे ॥ वनानीवायुधान्यासञ्छत्रुप्रालेयसानुनि ॥ २६ ॥ यदंबुदैरिवोड्डीनंशस्त्रवृंदैर्नभोंगणे ॥ तद्दूर्वीचिवलनैर्लीलैःप्लुतमिवार्णवे ॥ २७ ॥ शतचंद्रंसितच्छत्रैःशरैःशलभनिर्भरम् ॥ शक्तिभिःकिलनीरंध्रंदृष्टमाकाशकाननम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशमें प्राप्त समुद्रके तुल्य, नीलवस्त्रधारी महान् शकोंका समूह पारसीक देशवालोंको ऐसा भ्रम उत्पन्न किया मानों यह रात्रिका सघन अन्धकार है ॥ २५ ॥ इस कारण वहां युद्ध करनेवालोंके अस्त्रशस्त्र ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे स्वच्छ क्षीरसमुद्रमें मन्दराचलके आघात उसके बन, और दर्शकोंको ऐसे मालूम होने लगा जैसे हिमालयके शिखरपर हिमालयके बन ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जो शस्त्रोंके समूह मेघोंके समान आकाशमें उडे वे ऐसे भान होते थे, जैसे चंचल तरंगें अन्य तरंगोंसे मिलके समुद्रमें उछलके चलें ॥ २७ ॥ श्वेतछत्रोंसे सैकडों चन्द्रमा सहित और बाणरूपी शलभोंसे सर्वथा व्याप्त, तथा शक्तियोंसे छिद्र शून्य आकाश बनके सदृश देख पडने लगा ॥ २८ ॥

वीरासवसमाक्रंदकारिणःकैकयैःकृताः ॥ कंकैःकंककुलाक्रांतव्योमोद्धूलितमस्तकाः ॥ २९ ॥ किरातसैन्यकन्यानांकामंकलकलारवैः ॥ अंगैरनंगतांनीत्वामेरवैरिवगर्जितम् ॥ ३० ॥ काशैस्तद्देहकाःक्रांता अदृश्यैर्मायायाखगैः ॥ निर्द्धूतपक्षैःक्षुभितैःपवनैरिवपांसवः ॥ ३१ ॥ उन्मत्ताःसुविनिर्द्धूतास्त्यक्तहेतिरणांबराः ॥ नार्मदानर्मनिर्मोत्पनृत्तुर्जहसुर्जगुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—कैकयदेश निवासी अपने शत्रुओंको ऐसा करदिया कि वे वीर प्राणप्रयाण समयके सदृश चिग्घार करने लगे, और कंकदेश निवासी अपने शत्रुओंको ऐसा करदिया कि काकोंके समूहसे व्याप्त आकाशकी धूलिसे उनके मस्तक ढकगये ॥ २९ ॥ अंगदेश निवासियोंने, किरातोंकी सेनारूप कन्याओंके भयंकर गर्जनाके सदृश कलकल शब्दोंसे उनको निर्देहता (कन्यापक्षमें कामकी अधिकता) को प्राप्त किया ॥ ३० ॥ मायासे पक्षीका रूप धारण करके अतएव अदृश्य होके काशदेश निवासी (समुद्रके तटके मनुष्य विशेष) अपने तद्देहनाम शत्रुओंके ऊपर ऐसे आक्र-

मण किया, जैसे पक्षोंको कंपानेवाले संक्षुभित पवन धूलियोंपर ॥ ३१ ॥ भलीभांति शत्रुओंसे कंपाये हुये रणके आकाशमें शस्त्रोंको त्यागनेवाले नार्मदलोग युद्धसे उन्मत्त होके हास्यरचनापूर्वक नाचने, गाने, और हंसने लगे ॥ ३२ ॥

प्रक्कणत्किंकिणीजालंशक्तिवर्षमुपागतम् ॥ साल्वबाणानिलोद्धूतमगमत्पृषदाकृति ॥ ३३ ॥ शैब्यास्तुखंडिताःकौंतैर्भ्रमत्कुंतैर्विघट्टिताः ॥ शवीभूतादिवंनीतादृष्टाविद्याधराइव ॥ ३४ ॥ धराधरणधर्मिण्याधीरयाहीनसेनया ॥ लुंठिताःपांडुनगराश्चलनोल्लासमात्रतः ॥ ३५ ॥ तंदेहकाःपांचनदैर्दलितामत्तकाशिभिः ॥ कुंतदंतद्रुमोद्दामानगाइवमतंगजैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिसमें किंकणीके समूहके समान शब्द होरहे हैं ऐसी आई हुई शक्तिकी वृष्टि, साल्वलोगोंके बाणोंसे कम्पित होके नष्ट होगई ॥ ३३ ॥ अपने कुन्तों (भालों) को घुमाते हुये कुन्ति देशके मनुष्योंने शैब्योंके टुकडे २ कर डाले, और उनसे मर्दित मृतक होके आकाशमें प्राप्त किये हुये ऐसे देख पडनेलगे जैसे विद्याधर ॥ ३४ ॥ युद्ध भूमिको आक्रमण करनेवाली धीर अहीन देशके सेनाने अपनी गतिके विलास मात्रसे पाण्डनगरवालोंको लोटादिया ॥ ३५ ॥ कुन्त (भाला) हांथियोंके दांत और वृक्षोंके प्रहारमें अति निपुण तंदेहक लोग, युद्धमें पांच नदोंसे मर्दित किये हुये ऐसे शोभित हुये जैसे मत्त हांथियोंसे मर्दित वृक्ष ॥ ३६ ॥

ब्रह्मावत्सनकानीपैश्चक्रैःकृत्तागतामहीम् ॥ सहयाःक्रकचोत्कृत्तावृक्षाःकुसुमिताइव ॥ ३७ ॥ श्वेतकाकाननंलूनंकुठारैर्जठरैरितैः ॥ एतद्ददाहपार्श्वस्थोभद्रेशःशरवह्निना ॥ ३८ ॥ काष्ठयोधैर्निरालानंमग्नाजीर्णामतंगजाः ॥ लयमाजग्मुरायुद्धमिद्धेग्नाविधनंयथा ॥ ३९ ॥ मित्रगर्त्तास्त्रिगर्तात्ताभ्रमित्वोर्ध्वंतृणोपमम् ॥ विविशुर्व्यस्तमूर्द्धानःपातालांतंपलायितुम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अपने अश्व आदि सहित ब्रह्मा वत्सनक देशके निवासी नीप देशके निवासियोंके चक्रोंसे कटे हुये पृथिवीपर गिरके ऐसे शोभित हुये जैसे करांतीसे काटे हुये पुष्प सहित वृक्ष ॥ ३७ ॥ जठर देशके निवासियोंने श्वेत काक देश निवासियोंके अपने कुठारोंसे काट डाले, और निकटमें स्थित भद्रके स्वामीने शररूपी अग्निसे जठरोंकी सेनाभी भस्म करदी ॥ ३८ ॥ काष्ठ योध (देश विशेष) रूपी पंकमें बन्धनके विनाही जीर्ण (जर्जरीभूत) मत देश देशके निवासी फँसके युद्धके समाप्तितक ऐसे लय होगये जैसे प्रदीप्त अग्निमें इन्धन ॥ ३९ ॥ त्रिगर्तोंसे पकडेहुये मित्रगर्त लोग कुछकाल तृणके समान ऊपर भ्रमण करके भागनेके अर्थ पातालतक प्रवेश किया ॥ ४० ॥

मंदानिलचलांभोधिभासुरेमागधेबले ॥ निर्मग्नावनिलामंदाःपंकेजीर्णगजाइव ॥ ४१ ॥ चेद्यश्चेतनांजह्रुस्तंगणानांरणांगणे ॥ पुष्पाणांपथिशीर्णानांसौकुमार्यमिवातपाः ॥ ४२ ॥ कौसलाःपौरवारावमसहंतोंतकाइव ॥ तैरुन्मुक्तगदाप्रासशरशक्त्यतिवृष्टयः ॥ ४३ ॥ बभूवुर्भल्लकृत्तांगाविस्मयाविद्रुमद्रुमाः ॥ इवाद्रौविद्रवंत्यार्द्रसांद्रासृक्सूर्यमूर्त्तयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मन्द वायुसे चंचल समुद्रके समान प्रकाशमान मगधदेशकी सेनामें मन्द वलिनदेशनिवासी ऐसे आके फँसे जैसे वृद्ध हांथी कीचडमें ॥ ४१ ॥ तंगण लोगोंकी रणभूमिमें चेदि देशके निवासी अपनी चेतनताको ऐसे त्याग दिया जैसे मार्गमें गिरेहुये पुष्प घामके कारणसे अपनी सुकुमारता (कोमलता) को ॥ ४२ ॥ दूसरोंको कालके समान मारनेवाले कोसलदेशनिवासी पौरवोंकी गर्जनाका सहन न करसके यहांतक कि उन्हों (पौरवों) ने उनको गदा, कुन्त, बाण और शक्तियोंकी वृष्टियोंसे आच्छादित करदिया ॥ ४३ ॥ उनमेंसे जिनके शरीर भालोंसे कटेथे वे भी दूसरोंके पराक्रममें आश्चर्य बुद्धिसे रहितथे, इसी कारण गाढे रुधिरोंके शरीरोंमें लपेटेहुये प्रातःकालके सूर्य्यके समान मूर्ति धारी मूंगोंके वृक्षके समान मानों पर्वत पर चारों ओर दौड रहे हैं ॥ ४४ ॥

नाराचौघमहाहेतिमरुताताधूतमूर्त्तयः ॥ बभ्रमुर्भ्रमरानीकभासुराजलदाइव ॥ ४५ ॥ शरधाराधरामेघाःशरोर्णापूर्णमेषकाः ॥ शरपत्रावृतावृक्षाभ्रेमुस्तद्गर्जनागजाः ॥ ४६ ॥ वनराज्यजराजीर्णाःकंदाकस्थलजंतवः ॥ अत्रुटन्परमाकृष्टाःपेलवाइवतंतवः ॥ ४७ ॥ रथेषुध्वस्तचक्रेषुनिखातेऽमुत्रमूर्द्धसु ॥ निपेतुर्जनसंघातामेघाइववनाद्रिषु ॥ ४८ ॥

अर्थ—और कितने कोसलदेशनिवासी बाणोंके समूह तथा अन्य बडे २ शस्त्रोंसे कम्पित शरीर और भ्रमरोंकी सेनाके समान प्रकाशमान (शोभित) ऐसे भ्रमण करने लगे जैसे मेघ ॥ ४५ ॥ कोशल देशवालोंकी गर्जनासे उपलक्षित गज भ्रमण करते ऐसे शोभित हुये, जैसे शरधाराको धारण किये मेघ, शररूपी उर्णा (बाल) से पूर्ण मेष (भेष) और शररूपी पत्तोंसे आच्छादित वृक्ष ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! कन्दाकस्थलके मनुष्य हस्ती आदि प्राणी बनरा-

ज्यनामक वृद्धावस्थासे ऐसे निर्बल कर दिये गये कि केवल खींचने मात्रसे कोमल सूत्रके समान टूट गये ॥ ४७ ॥ खंदक या गढ़ोंमें अडनेसे रथोंकी पहिया आदि टूट जानेसे इन रथोंपर प्रहार करते हुये शत्रुओंके समूह ऐसे टूटे जैसे बन और पर्वतोंपर मेघ ॥ ४८ ॥

शालतालवनंप्राप्यजनतावलनंवनम् ॥ भुजावकर्त्तनंचासीद्दुत्तालंस्थाणुकाननम् ॥ ४९ ॥ ननर्द्दुर्नंदनोद्यानसुंदर्योमत्तयौवनाः ॥ वनोपवनदेशेषुमेरोर्वीरवराश्रिताः ॥ ५० ॥ तावत्तारारवंरेजेसैन्यकाननमुत्तमम् ॥ यावन्नपरपक्षेणप्राप्तंकल्पानलार्चिषा ॥ ५१ ॥ छिन्नाःपिशाचसंयुक्ताभूतापहृतहेतयः ॥ पातयित्वाययुःकर्णान्दशार्णास्तर्णकाइव ॥ ५२ ॥

अर्थ—शाल और ताल बनोंके समान दो प्राणी समूहोंका समागम (मेल) हुआ उनके भुजा और शिरके कटनेसे ऐसी शोभा हुई जैसे ऊंचे ताल (शालोंका ऊर्द्धभाग काटनेसे तालके समान रहगये) और स्थाणुओं (ठूंठों) (तालोंका शिर काटनेसे ठूंठही रहगये) के बनकी ॥ ४९ ॥ मेरुके बन, उपवन, तथा समीप देशोंमें श्रेष्ठवीरोंके आश्रित यौवनसे मत्त सुन्दरी लोग नन्दनके उद्यान (वाटिका) में प्रसन्नता शब्द करने लगीं ॥ ५० ॥ सैन्यरूपी उत्तम बन उच्चस्वर तभीतक शोभित हुआ जबतक शत्रुके पक्षसे प्रलयकी अग्नि नहीं लगी ॥ ५१ ॥ भूत पिशाच प्रधान हैं जिनमें ऐसे कामरूपधारी जनपदोंके साथ युद्ध करनेवाले दाशार्णोंका अस्त्रशस्त्र भूतोंने छीन इसीसे गौओंके बछडोंके समान कान गिराके चले गये ॥ ५२ ॥

जहुर्भग्नेश्वराःकांतितांजिगीषवनौजसा ॥ कासयःकमलानीवशुष्कस्रोतस्विनौजसा ॥ ५३ ॥ तुषाकामेखलैःकीर्णाःशरशक्त्यसिमुद्गरैः ॥ विद्रुतानरकैःक्षिप्ताःकटकच्छलनाअपि ॥ ५४ ॥ कौंतक्षेत्राःप्रस्थवासैस्थित्वायोधिभिरावृताः ॥ गुणाइवखलाक्रांतागताव्यक्तमशक्तताम् ॥ ५५ ॥ द्विपयोबाहुधानानां क्षणेनादायमस्तकम् ॥ भल्लैःपलाय्याशुगताविलूनकमलाइव ॥ ५६ ॥

अर्थ—तांजिगीषवन नाम जनपदनिवासीयोंके तेजको मारे कासि जनपद (देश) वाले अपनी शोभाको ऐसे त्यागदिया जैसे तडाग आदिके पूरक झरनोंके सुखानेवाले ग्रीष्मके तेजसे कमल ॥ ५३ ॥ तुषाकामेखल नाम जनपदोंने शर शक्ति तलवार और मुद्गरोंसे शत्रुओंको आच्छादित करदिआ और नरक जनपदोंसे पराजित होके कटकच्छलन जनपद निवासीभी भाग खडेहुये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! अपने स्थानहीपर स्थित होके युद्ध करनेवाले प्रस्थवास जनपदवालोंसे कौन्त क्षेत्र निवासी ऐसे पराजित हुये जैसे दुष्ट पुरुषोंसे आक्रान्त (घिरेहुये) गुण अशक्तताको प्राप्त होजाय ॥ ५५ ॥ द्विपि जनपदनिवासी बाहुधान जनपदनिवासियोंके मस्तकोंको भालोंसे क्षणभरमें काट और लेके ऐसे चल दिये जैसे कमलोंके छेदन करनेवाले पुरुष ॥ ५६ ॥

मिथःसारस्वतानीत्वाआदिनांतंकृताजयः ॥ पंडिताइववादेषुनोद्विग्नानपराजिताः ॥ ५७ ॥ खर्वगाःखदिताःक्षुद्रायातुधानैःपरावृताः ॥ तेजःपरममाजग्मुःशांताग्नयइवेंधनैः ॥ ५८ ॥ कियदाख्यायतएतज्जिह्वानिचयैःकिलालमाकुलितः ॥ वासुकिरपिवर्णयितुंनसमर्थोरणवरंराम ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जनपदवर्णनं नाम सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—सरस्वती तीरके निवासी परस्पर दिनभरभी युद्ध करकेभी न तो घबराहट और न पराजयको ऐसे प्राप्त हुये जैसे वाद करनेमें पण्डित लोग ॥५७॥ पराजितभी क्षुद्र खर्वग लोग, लंकानिवासी यातुधानोंसे लौटाहुये ऐसे परम तेजको धारण किया जैसे इन्धनोंसे शान्त अग्नि॥५८॥हे रामजी ! इस श्रेष्ठ रणके विषयमें कहांतक कहां जाय, क्योंकि दो सहस्र जिव्हाओंसे वासुकि शेषभी इसको वर्णन करनेको घबरताहै और वहभी पूर्णरीतिसे वर्णन नहीं कर सकता ५९

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्यानें जनपदवर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

दिनके अन्तमें दोनों सेनाओंका युद्ध निवृत्त होनेपर रणभूमि पिशाच आदिसे भयंकर तथा घृणाके योग्य होगई इस विषयका वर्णन इस ३८ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमत्याकुलेयुद्धेसास्फोटभयसंकुले ॥ आदित्येतमसावृद्धेचटत्कठिनकंकटे ॥ १ ॥ वहत्यंबूत्पतंतीषुपततीष्वश्मवृष्टिषु ॥ नदीषुक्षेपणाच्छासुवरकेष्वब्जपंक्तिषु ॥२॥ मिथःफला ग्रकाटोत्थवह्निसीकारिणीषुच ॥ आयांतीषुप्रयांतीषुदूरंशरनदीषुच ॥ ३ ॥ वहलूनशिरःपद्मचक्रावर्तै स्तरंगितैः ॥ खार्णवेपूरितेहेतिवृंदमंदाकिनीगणैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसप्रकार ताल ठोककर लडनेवाले विजयशाली वीरोंसे पराजित योद्धाओंके भयसे पूर्ण युद्धके व्याकुल होनेपर, अन्धकारके आगमनसे सूर्य्यका महान् आकार होनेपर, और चटाचट शब्द कठिन कवचोंसे रुधिररूपी जल वहनेपर और फेंकेहुये पाषाणरूपी बेनोलोंसे श्वेतवर्ण, और जिनमें पाषाणोंकी वृष्टि एकसेनासे ऊपरसे गिररहीथी, और दूसरीसे नीचेसे फेंकी जारहीथी शिररूप कमलोंसे संकोचको प्राप्त होतीहुई रुधिरकी नदियोंके बहनेपर ॥ १ ॥ २ ॥ शर तथा उनके फलोंके अग्रभागोंके परस्पर सम्मर्दनसे निकले अग्निके कणोंसे बिन्दुमय बाणोंकी नदियोंके दूरदेशसे आने जानेपर ॥ ३ ॥ बहते हुये शिर जिनमें कमल हैं, तथा चक्र जिनमें आवर्त (भ्रमणयुक्त जल) हैं ऐसे तरंगों सहित शस्त्रोंके समूहरूपी मन्दाकिनी (गंगा) के गणोंसे आकाशरूपी समुद्रके पूर्ण होनेपर ॥ ४ ॥

समीरणरणत्काणशस्त्रपूर्णघनैर्घनैः ॥ संदेहांतेषुसिद्धेषुकपिकच्छव्यथाप्रदैः ॥ ५ ॥ अष्टभागदशा शेषप्रतापमधुराकृति ॥ शस्त्रघातोजसावीरइवाहस्तनुतांययौ ॥ ६ ॥ श्रांताश्वेभाःप्रभग्नाश्चहेतिसं घातदीप्तयः ॥ दिवसेनसमंसेनायुमंदप्रतापताम् ॥७॥ अथसेनाधिनाथाभ्यांविचार्यसहमंत्रिभिः ॥ दूताःपरस्परंप्रत्तायुद्धंसंन्हियतामिति ॥ ८ ॥

अर्थ—वायुके समान शब्द करते हुये शस्त्रोंसे पूर्ण होनेसे वर्षारंभकी संभवानासे जलमय देशमें कपियोंको काम व्यथादायक सघन मेघोंसे सिद्धोंके प्रलयका सन्देह होनेपर ॥ ५ ॥ प्रतापका आठवां भाग शेष रह जानेसे सौम्य आकारवाला दिन ऐसा शोभित हुआ जैसे शस्त्रोंके प्रहारोंसे रक्तछवि सहित बीर ॥ ६ ॥ घोडे तथा हांथियां थक गये, और कितने नष्ट होगये, तथा शस्त्रोंके समूहोंकी दीप्ति दिनके साथही मन्द प्रतापको प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ अब इसके अनन्तर दोनों सेनाके स्वामियोंने मंत्रियोंसे विचार करके परस्पर दूत भेजा कि अब युद्ध बन्द करना चाहिये ॥ ८ ॥

तत्रश्रमवशान्मंदयंत्रशस्त्रपराक्रमैः ॥ रणसंहरणंकालेसर्वैरेवोररीकृतम् ॥ ९ ॥ ततोमहारथोत्तुंगके तुप्रांतकृतास्पदम् ॥ बलयोरारुरोहैकएकोयोधोध्रुवोयथा ॥ १० ॥ सोंशुकंभ्रामयामाससर्वदिङ्मं डलेसितम् ॥ श्यामेवदीर्घशुद्धांशुंयुद्धंसंन्हियतामिति ॥ ११ ॥ ततोदुंदुभयोनेदुःप्रतिध्वनितदिङ्मु खाः ॥ महाप्रलयसंशांतौपुष्करावर्त्तकाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—वहां थकावटके कारणसे यंत्र और शस्त्रोंके पराक्रम मन्द होजानेके कारणसे उससमय युद्धका बन्द होना सभीने स्वीकार करलिया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर दोनों सेनाओंके महारथोंके झंडाके खम्भे थे उनपर एक २ बीर ऐसे चढा जैसे ध्रुव ॥ १० ॥ उन दोनोंने अपने २ झण्डोंपरसे जैसे रात्रि दीर्घ और शुद्ध किरणवाले चन्द्रमाको घुमाती है ऐसेही श्वेतबस्तको इस अभिप्रायसे घुमाया कि अब युद्ध बन्द करो ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सब दिशाओंके मुखको प्रतिध्वनित करनेवाले नगारे ऐसे बजे जैसे महाप्रलयके शान्त होनेपर पुष्करावर्तक मेघ ॥ १२ ॥

शरादिहेतिसरितोविस्तीर्णेगगनेस्थिते ॥ प्रवृत्ताःसुखमागंतुंसरसःसरितोयथा ॥ १३ ॥ योधदोर्दु मसंचारस्तनुतामाययौशनैः ॥ भूकम्पांतेवनस्पंदइवाभ्रांतइवार्णवः ॥ १४ ॥ विनिर्गंतुंप्रवृत्तेरणाद थबलद्वयम् ॥ वारिपूरश्चतुर्दिक्षुप्रलयैकार्णवादिव ॥ १५ ॥ उत्क्षिप्तमंदरक्षीरसमुद्रवदनाकुलम् ॥ सैन्यंप्रशाम्यदावर्त्तशनैःसाम्यमुपाययौ ॥ १६ ॥

अर्थ—बिशाल आकाश देशमें बाण आदि अस्त्रोंकी नदियां प्रतिबन्ध रहित ऐसे गिरने लगीं जैसे मानस आदि सरोवरोंसे सरयू आदि नदियां ॥ १३ ॥ योद्धाओंके भुजारूपी वृक्षोंका संचार (गमनागमन) ऐसा न्यून होगया जैसे भूकम्पके अन्तके बनकी गति, अथवा शरदृऋतुके अन्तमें नदियां ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर रणभूमिसे दोनों सैन्य (सेना) जानेको ऐसे प्रवृत्त हुई जैसे प्रलयके अन्तमें चारों दिशाओंमें जलका प्रवाह ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् धीरे २ सेना ऐसे शान्तिको प्राप्त हुई जैसे मन्दराचलपर्वतके बाहर निकालनेपर क्षीरसमुद्र ॥ १६ ॥

क्रमेणासीन्मुहूर्तेनविकटोदरभीषणम् ॥ अगस्त्यपीतार्णववच्छून्यमेवरणांगणम् ॥१७॥ शमसंततिसं पूर्णंवहद्रक्तनदाकुलम् ॥ परिकूजनझंकारपूर्णझिल्लिवनोपमम् ॥ १८ ॥ वहद्रक्तसरिस्त्रोतस्तरंगारवघर्घ

रम् ॥ साक्रंदार्द्धमृताहूतसप्राणव्यग्रमानवम् ॥ १९ ॥ मृतार्द्धमृतदेहौघस्रुतासृक्प्लुतनिर्झरम् ॥ सजीवनरपृष्ठस्थशवस्पन्दनभ्रांतिदम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर क्रमसे मुहूर्तभरमेंही रणअंगण बिकट पूतनाके उदरके समान भयंकर और अगस्त्यऋषिके जल पीनेपर समुद्रके समान शून्य होगा ॥ १७ ॥ हे रामजी ! वह रणांगण, मुरदोंके समूहोंसे पूर्ण, रक्त बहते हुये नदोंसे व्याप्त, चारोंओर झंकार शब्द करते हुये शब्दसे पूर्ण होनेसे बनके सदृश ॥ १८ ॥ जिनमें रक्त बहरहे हैं ऐसे नदियोंके घर्घरशब्द संयुक्त, और अर्द्ध मृतकोंके विलापपूर्वक आव्हान प्राणसहित जहांपर व्यग्र होरहे हैं ॥ १९ ॥ मृत और अर्द्धमृत मनुष्योंके शरीरोंके समूहसे निकले हुये रुधिरसे जहां झरने चलरहे हैं, और जीव सहित मनुष्योंके पृष्ठोंपर स्थित मृतकोंके कारण जीवनकी भ्रांति देनेवाला ॥ २० ॥

करींद्रशवराश्यग्रविश्रांतांबुदखण्डकम् ॥ विशीर्णरथसंघातंवातच्छिन्नमहावनम् ॥ २१ ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानहयद्विपम् ॥ शरशक्त्यृष्टिमुसलगदाप्रासासिसंकुलम् ॥ २२ ॥ पर्याणावनसन्नाहकवचावृतभूतलम् ॥ केतुचामरपट्टौघगुप्तशवशरीरकम् ॥ २३ ॥ फणास्फुटकतूणीरकुंजकूजत्समीरणम् ॥ शवराशिपलालौघतल्पसुप्तपिशाचकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बडे मृतक हांथियोंकी राशिके अग्रभागमें जहां मेघ विश्राम कररहे हैं, टूटके रथोंके समूह जहांपर पडे हैं और उन्हींके वेगसे उत्पन्न वायुसे बडे वनभी कटके जहांपर गिरपडे हैं ॥ २१ ॥ बहती हुई रक्तकी नदीके वेगसे जहां हाथी और घोडे बह रहे हैं, और शक्ति, ऋष्टि (दोनों ओर धारवाली तरवार) मुसल, गदा,कुन्त, और खड्गसे व्याप्त ॥ २२ ॥ पर्य्याण (पालान) अंग रक्षक और कवचोंसे जहांपर पृथिवी ढंकी है, और चामर केतु तथा पताकाओंसे मृतक शरीर ढके हैं ॥ २३ ॥ सर्पोंके सदृश ऊंचे हैं अग्रभाग जिनके ऐसे छिद्रके हुये तूणीरोंमें जहांपर वायु इस प्रकार शब्द कर रहाहै जैसे बासोंके बनोंके धनोंमें मुरदोंकी राशियोंके समूहरूपी पलाल (पुआर) की शय्योंपर भूतपिशाच आदि जहां सो रहे हैं ॥ २४ ॥

मौलिहारांगदद्योतशक्रचापवनावृतम् ॥ श्वशृगालकराकृष्टसांद्रांत्रादीर्घरज्जुकम् ॥ २५ ॥ रक्तक्षेत्रक्वणत्किंचिच्छेषजीवनृदर्दुरम् ॥ रक्तकर्दमनिर्मग्नसजीवनरदर्दुरम् ॥ २६ ॥ वरांगकवचप्रख्यनिर्गताक्षिशतोच्चयम् ॥ वहद्भुजोरुकाष्ठौघघोररक्तसरिच्छतम् ॥ २७ ॥ साक्रंदबंधुवलितंमृतार्द्धमृतमानवम् ॥ शरायुधरथाश्वेभपर्याणासंवरांतरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—चूडामणि तथा अंगदोंके प्रकाशोंसे मानों इन्द्रधनुषके समूहोंसे व्याप्त तथा कुत्ते और शृगालोंके हांथोंसे जहांपर सघन और लम्बी आंतरूपी रज्जु (रस्सी) खींची जारही हैं ॥ २५ ॥ रक्तके क्षेत्र (खेत) में जहांपर जिनके हात उपर लिये गये हैं ऐसे पुरुष घर्घर शब्दोंसे कुजरहैं, और रक्तोंके कीचडमें कुछ जीवन सहित मनुष्यरूपी मेंडक फंसरहे हैं ॥ २६ ॥ हे रामजी ! चित्रकवचोंके सदृश निकले हुये जहां सैंकडों नेत्रोंके समूह पडे हैं, और जिनमें भुज तथा जंघारूपी काष्ठोंके समूह बहे जारहे हैं ऐसी सैंकडों भयंकर रक्तोंकी नदियां वह रही है ॥ २७ ॥ विलाप करते हुये बन्धुओंसे आच्छादित, अधमरे तथा सर्वथा मरे मनष्योंसे पूर्ण शर, तथा अन्य अस्त्रशस्त्र, रथ, और हांथी घोडोंके पर्य्याणों (पालानों) से जिसका मध्यभाग आच्छादित होगया है ॥ २८ ॥

नृत्यत्कबंधदोर्दंडमंडलानमितांबरम् ॥ मदमेदोवसागंधपीडार्द्रघ्राणकोटरम् ॥ २९ ॥ उत्तालवर्द्धमृतेभाश्वमार्यमाणाल्पजीवितम् ॥ वहद्रक्तनदीवीचिप्रहारहतदुंदुभि ॥ ३० ॥ उह्यमानमृतेभाश्वमकरासृक्सरिच्छतम् ॥ म्रियमाणनराणीकफूत्कृतासृक्प्रणालिकम् ॥ ३१ ॥ स्वल्पजीवशरापूर्णमुखदृक्क्रांतितस्वनम् ॥ पिंडभार्यावसागंधवातांतोत्पीठलोहितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—नाचते हुये कबन्धोंसे, और भुजदण्डोंके समूहोंसे जिसने आकाशको भी नीचा देखा दिया है, मद मेदा और चर्बीकी दुर्गन्धिकी पीडासे नासिकाके छिद्र जहां पूर्ण होरहेहैं ॥ २९ ॥ ऊपर ताल किये हुये मृतकहांथी घोडोंसे अल्प जीवन सहित मनुष्य जहां मारे जारहे हैं और बहती हुई रक्तोंकी नदियोंके तरंगोंके आघातसे जहां नगाडे बजरहेहैं ॥ ३० ॥ रक्तोंकी सैंकडों नदियोंमें मृतक हाथी घोडेरूपी मकर (मगर) आदि जहां बहरहेहैं, और मरतेहुये मनुष्योंके फूत्कारसे मुखोंसे रुधिरोंकी बडी २ नालियां जहां निकलरहीहैं ॥ ३१ ॥ बाणोंसे पूर्णहै मुख और नेत्र जिनके ऐसे अल्प जीवन सहित मनुष्य जहांपर बडे विलापसे तार बांधके रोरहे हैं, पिणु भार्य्या (बाईं ओर की कोखमें स्थित मांकी गांठ) की दुर्गन्ध सहित वायुके स्पर्श मात्रसे जहां रुधिर जम जाताहै ॥ ३२ ॥

उन्नासार्द्धमृतेभेंद्रकराक्रांतकबंधकम् ॥ निरधिष्ठितहस्त्यश्वपातितोच्चकबंधकम् ॥ ३३ ॥ रुदत्क्रंदत्प रिभ्रष्टशवक्षुब्धास्रगुद्धति ॥ मृतभर्तृगलेशस्त्रत्यक्तप्राणकुलांगनम् ॥ ३४ ॥ सेनोत्क्रांततत्क्षिप्रबहुपांथ परीक्षणम् ॥ शवहारकराकृष्टसप्राणानुचराकुलम् ॥ ३५ ॥ केशशैवालवक्त्राब्जचक्रावर्तनदीशतम् ॥ तरत्तुंगतरंगाढ्यवहद्रक्तमहानदम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऊंची नाकवाले अर्द्धमृत बडे २ हांथियोंने अपने सूण्डोंसे कबन्धों (शिररहित मनुष्यों) को जहां-पर पकडलिया है और सवारोंके मर जानेसे स्वतन्त्र हांथी और घोडोंने जहांपर ऊंचे २ कबन्धोंको गिरादियाहै ॥ ३३ ॥ रोते हुये अति करुणासे विलाप करतेहुये तथा गिरते हुये मृतक शरीरोंसे जहांपर रुधिर उछल रहाहै, मृत पतिओंके गलेमें आलिंगन करके दैवगतिसे शस्त्रोंके आघातसे प्राणरहित कुलांगना जहांपर व्याकुल हो रहीहैं ॥ ३४ ॥ संस्कार करने योग्य मनुष्योंको लेजानेके अर्थ आज्ञा दीहुई सेनासे निकले हुये भाले शीघ्र प्रवृत्त पथिकोंसे अपने मृतकोंकी परीक्षा जहांपर कीगईहै तथा अपने अभिलषित मृतकोंको खोजनेके अर्थ मृतकोंके लेजानेवाले मनुष्योंकी शीघ्रतासे हांथोंसे खींचे हुये दास बर्गोंसे व्याप्त ॥ ३५ ॥ केशरूपी शैवाल, मुखरूपी कमल, और चक्ररूपी आवर्त (भंवरेह) जिनमें हैं ऐसी सैंकडों नदियां जहां निकलरहीं है और तैरते हुये ऊंचे २ घोडोंरूपी तरंगोंसे पूर्ण रक्त महानद जहां वह रहेहैं ॥ ३६ ॥

अंगलग्नायुधोद्धारव्यग्रार्द्धमृतमानवम् ॥ विदेशमृतसाक्रंदहृतांगगजवाजिनम् ॥ ३७ ॥ प्राणांतस्मृत पुत्रेष्टमातृदेवपराभिधम् ॥ हाहाहीहीतिकथितमर्मच्छेदनवेदनम् ॥ ३८ ॥ म्रियमाणमथैर्जिष्ठद्विष्टप्रा रब्धसंचयम् ॥ दंतियुद्धासमर्थाग्रमृतदेहेष्टदैवतम् ॥ ३९ ॥ म्रियमाणमहावज्ञाशूराश्रितपलायनम् ॥ अशंकितास्रगावर्त्तभीमास्पदगमोत्सुकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अधमरे मनुष्योंके शरीरोंमें लगे अस्त्रशस्त्रोंके निकालनेमें जहां मनुष्य तत्पर होरहे हैं, और विदेशमें मरनेवालोंके आभूषण और घोडे हांथी आदि विलाप पूर्वक जहां दिये जारहे है ॥ ३७ ॥ और जहां प्राणके अन्तसमयमें किसीने अपने ज्येष्ठपुत्रको, किसीने माताको, किसीने इष्टदेवको, और किसीने परमात्माके नामको स्मरण कियाहै, और कितने मर्मच्छेदी पीडाकारी हाहा हीही शब्द जहां कह रहे हैं ॥ ३८ ॥ और कितने मनुष्य पराक्रम बिना किये मरते समय अपने बली प्रारब्ध कर्म्मोंकी निन्दा कर रहे हैं, और कितने हांथियोंके युद्धमें असमर्थ होनेसे, हांथियोंके आगे फेंकनेपर अपने मृतक समान देह (भयसे) से अपने इष्टदेवोंकी प्रार्थना (बचजाय इसलिये) की है ॥ ३९ ॥ और कितने कातर लोग मरनेवालेको पैरोंसे कुचलना रूप बडा अपराध करके भागने लगे इसी कारण रुधिरके भयानक भंवरेह जहां चल रहे हैं वहांभी शंका रहित होके भागनेहीमें प्रवृत्त हैं ॥ ४० ॥

मर्मच्छेदशराघातव्यथाविदितदुष्कृति ॥ कबंधबंधप्रारब्धवेतालवदनाक्रमम् ॥ ४१ ॥ उह्यमानध्वज च्छत्रचारुचामरपंकजं ॥ किरत्संध्यारुणांदिक्षुतेजस्कंरक्तपंकजम् ॥ ४२ ॥ रथचक्रधरावर्तरक्तार्णवमिवाष्टमम् ॥ पताकाफेनपुंजाढ्यंचारुचामरबुद्बुदम् ॥ ४३ ॥ विपर्यस्तरथंभूमिपंकमग्नपुरोपमम् ॥ उत्पातवातनिर्द्धूतद्रुमंवनमिवाततम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कितने मर्मको भेदन करनेवाली शस्त्रोंकी चोटकी पीडासे अपने पूर्वजन्मके पापोंको जहां स्मरण किया है, और जहां भागते हुये कबन्धों (शिररहितों) को बांधकर रुधिर पीनेको वेतालादिकोंने अपने मुखोंको प्रवृत्त कियाहै ॥४१॥ और रक्तन्हदोंमें ध्वजा, छत्र, और उत्तम चमररूपी श्वेतकमल जिनमें वह जाते हैं और उन्ही रक्तन्हदोंमें सन्ध्याके प्रतिबिम्ब पडनेसे तेज समूहरूप रक्तकमल मानों दिशाओंमें जहां बिखर रहे हैं ॥४२॥ पताकारूपी फेनसमूहोंसे व्याप्त और उत्तम चामररूपी जिसमें बुद्बुदहैं, रथरूपी पर्वतोंसे पूर्ण और चक्ररूपी आवर्तोंसे युक्त रक्तसे पूर्ण ऐसा आठवें समुद्रके समान शोभित हुआ ॥ ४३ ॥ उलट पुलट होगये हैं रथ जिसमें ऐसे पृथिवीके कीचडमें फँसे हुये नगरके सदृश, और उत्पातके वायुसे कंपागये हैं वृक्ष जिसके ऐसे बनसे व्याप्त ॥ ४४ ॥

कल्पदग्धजगत्प्रख्यंमुनिपीतार्णवोपमम् ॥ अतिवृष्टिहतंदेशमिवप्रोज्झितमानवम् ॥ ४५ ॥ कलापकुंतवलितंभुशुंडीमंडलाकुलम् ॥ मत्तनागशताकारशवतोमरमुद्गरम् ॥ ४६ ॥ शिलाशिखरसंजाततालजालमिवाततम् ॥ तरद्रक्तनदीतीरजातकुंतोन्नतद्रुमम् ॥ ४७ ॥ नागांसस्यूतहेत्योघवृक्षांशुकुसुमाकुलम् ॥ कंककृष्टांत्ररसनावृंदजालकितांबरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रलयके अग्निसे भस्मीभूत जगत्के समान, अगस्त्यमुनिने जिसका जल पीलियाहै ऐसे समुद्रके सदृश, अति वृष्टिसे नष्ट मनुष्यरहित देशके तुल्य ॥ ४५ ॥ भूषण, और कुन्तों (बर्छियों) से व्याप्त, भुशुंडियोंके समूहसे

पूर्ण, और सैंकडों हांथियोंके आकार मृतक शरीर, और सर्पोंके मुद्गर जहांपर विद्यमानहैं ॥ ४६ ॥ उस रक्तकी नदीके तटपर उत्पन्न कुन्तरूपी ऊंचे वृक्ष ऐसे भान होतेहैं, मानों शिलाके शिखरोंपर उत्पन्न तालवृक्षोंके समूहसे व्याप्तहै ॥४७॥ बडे २ हांथियोंके अंगोंमें विधेहुये शस्त्रोंके समूहरूपी वृक्षोंके किरणरूपी पुष्पोंसे पूर्ण, और काकोंसे खींचीहुई आंतरूपी रस्सियोंके समूहसे मानों आकाश जालोंसे छागयाहै ॥ ४८ ॥

अस्रक्सरित्तीरजातकुंतोन्नतवनद्रुमम् ॥ अस्रक्सरोवरोर्ध्वस्थपताकानलिनीगणम् ॥ ४९ ॥ रक्तकर्दमनिर्मग्ननराह्वतसुहृज्जनम् ॥ करींद्रकुणपापाततिर्यङ्मग्नजनेक्षितम् ॥ ५० ॥ हेतिलूनलतैर्वृक्षैःसंदिग्धार्द्धकबंधकम् ॥ अस्रङ्नदीवहद्धस्तिकटकर्पटनौगणम् ॥५१॥ रक्तस्रोतःस्फुरच्छुक्लवस्त्रडिंडीरपिंडकम् ॥ संचारनियतक्षिप्रभृत्यविच्छिन्नमानवम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—रुधिरकी नदीके तट मानों कुन्त (भाला या बर्च्छी) बडे वृक्षोंके वनसहित, और रुधिरके तडागमें ऊंची पताकारूपी कमलिनीयोंके गण सदृश ॥ ४९ ॥ और रक्तके कीचडमें फंसे हुये मनुष्य जहां अपने इष्टमित्रोंको बुलारहेहैं, और बडे २ मृतक हांथियोंसे कुछ निकलेहुये, अतएव कटि (कमर) आदि जिनके टूटगयेहैं, ऐसे मनुष्य जहां दीख रहेहैं ॥ ५० ॥ अस्त्र शस्त्रोंसे लता जिनकी कटगई हैं ऐसे वृक्षोंसे जहां अर्द्ध कबन्धोंका सन्देह होताहै, और रक्तकी नदीमें बहतेहुये हांथीके गण्डस्थल और उनके पालानके वस्त्ररूपी जहां नौकाओंके समूहहैं ॥ ५१ ॥ रक्तोंके झरनोंमें प्रकाशमान श्वेत वस्त्ररूपी जहां फेनके पिण्डहैं, और मृतकोंको लेजानेके अर्थ आज्ञा दिये शीघ्र कार्य्यकारी भृत्योंने जहांपर मनुष्योंको पृथक् करलियाहै ॥ ५२ ॥

इतश्चेतश्चनिपतत्कबंधनवदानवम् ॥ ऊर्ध्वस्थूलाक्षचक्रौघच्छिन्नसैन्यद्रवज्जनम् ॥ ५३ ॥ रक्तनिःस्वनभांकारफेत्काराद्धमृतारवम् ॥ शिलामुखललद्रक्तधाराधूतरजःखगम् ॥ ५४ ॥ सुतालोत्तालवेतालतलतांडवसंकटम् ॥पर्यस्तरथदार्वंतरर्द्धांतरितसद्भटम्॥५५॥ अंतस्थसजीवभटस्पंदिस्पंदनभीतिदम् ॥ रक्तकर्दमपूर्णास्यकिंचिज्जीवत्कृपाच्छवम् ॥ ५६॥

अर्थ—और कबन्धोंके ऊपर इधर उधरसे नये २ दानव जहांपर आके गिर पडतेहैं और ऊपर स्थित बडे मोटे अनेक छिद्रवाले चक्रोंसे कटे हुये सेनाके मनुष्य इधर उधर चलायमान हो रहे हैं ॥५३॥ रक्तके शब्दोंके साथ भांकाररूप अर्द्धमृत प्राणियोंके शब्द जहां हो रहेहैं, तथा शिलाओंके ऊपर बहती हुई रक्तकी धाराको पीनेके लिये काक आदि पक्षी अपने पंखोंसे धूलियोंके उडाके जहां जारहेहैं ॥ ५४ ॥ और सुन्दर ताल वृक्षोंके समान ऊंचे वेताल तालके साथ भयंकर ताण्डवनृत्य जहांपर प्रारम्भ करदियाहै, और उलटे रथोंके काष्ठोंमें आधी शरीरोंसे कुछ जीवन सहित वीर जहां विद्यमानहैं ॥५५॥ सेनाके मध्यमें किंचित् जीवन सहित वीरोंकी गतिसे भयदायक और रक्तके कीचडसे पूर्ण है मुख जिनका ऐसे किंचित् जीव सहित मृतक मनुष्योंके ऊपर जहां अन्तःकरणसे करुणा सहित मनुष्य देख रहेहैं॥५६॥

किंचिज्जीवनरोद्ग्रीवदुःखदृष्टश्ववायसं ॥ एकामिषोत्कक्रव्यादयुद्धकोलाहलाकुलम् ॥ एकामिषार्थयुद्धेहामृतक्रव्यादसंकुलम् ॥ ५७ ॥ विवृत्तासंख्याश्वद्विरदपुरुषाधीश्वररथप्रकृत्तोष्ट्रग्रीवाप्रसृतरुधिरोद्गारसुसरित् ॥ रणोद्यानंमृत्योस्तदभवदशुष्कायुधलतंसशैलंकल्पांतेजगदिवविपर्यस्तमखिलम् ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आहववर्णनं नाम अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—और हे रामजी! अल्प जीवन सहित मनुष्य गला उठाके दुःखसे कुत्ते तथा काकोंको देखतेहैं, और एक मांस खानेके अति अभिलाषी कच्ची मांस खानेवालोंके युद्धके कोलाहलसे पूर्ण इसीकारण एक मांसके अर्थी युद्धकी चेष्टासे मृत क्रव्यादों (कच्ची मांस खानेवालों) सेभी व्याप्त ॥५७॥ विशेष रीतिसे मरेहुये हांथी पुरुष और उनके स्वामी तथा रथोंपरसे और कटेहुये ऊंटोंके गलोंसे शोभायमान रक्तोंकी उत्तम नदियां जहां निकल रही हैं तथा रक्तोंके सिंचनसे अस्त्रशस्त्ररूपी लता जहां पल्लव सहित हरी होरहीं हैं और पर्वत सहित सम्पूर्ण जगत् जहां विपर्य्यभावको प्राप्त होगयाहै ऐसा वह रणक्षेत्र इसप्रकार शोभित हुआ जैसे मृत्युका उद्यान (वाटिका) ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने आहववर्णनं नाम अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

सूर्य्यका अस्त रक्षस् तथा वेतालादि व्याप्त सन्ध्या और रात्रिमें भयंकर तथा घृणाके योग्य रणस्थान इन विषयोंका वर्णन इस ३९ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवीरइवारक्तःकालेनास्तमितोरविः ॥ अस्त्रतेजःपरिम्लानप्रतापोऽब्धौसमुज्झितः ॥ १ ॥ रणरक्तरुचिर्व्योमदर्पणप्रतिबिंबिता ॥ जहौसूर्यशिरश्छेदेसंध्यालेखोदभूत्क्षणम् ॥ २ ॥ भूपातालनभोदिग्भ्यःप्रलयाब्धिजलौघवत् ॥ समाजग्मुस्तनत्तालावेतालावलयाइव ॥ ३ ॥ मृष्टध्वांतासिवलितेदिननागेंद्रमस्तके ॥ संध्यारागारुणंकीर्णतारानिकरमौक्तिकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर काल पाके बीरके समान रक्तवर्ण सूर्य्य ऐसे अस्त हुये मानों अस्त्रोंके तेजसे मन्द प्रताप होनेके कारण समुद्रमें गिरा दिये गये ॥ १ ॥ सूर्य्यरूपी अश्ववार (असवार) का शिर कटनेपर पूर्वकालमें आकाशरूपी दर्प्पणमें जो रक्तछवि प्रतिबिम्बित थी उसको आकाशसे त्यागकर और क्षणभरमेंही आके सन्ध्या प्राप्त होगई ॥ २ ॥ पृथिवी, पाताल, आकाश, तथा आठों दिशाओंसे करताली बजाते हुये वलयाकार झुंडके झुण्ड वेताल ऐसे प्राप्त हुये, जैसे प्रलयकालके जलका समूह ॥ ३ ॥ शाणपर तिखी कीहुई अन्धकाररूप तलवार दिनरूपी नागेन्द्र (बडे हाथी) का मस्तक कटनेपर, संध्याके राग (रक्त) से अरुण (लाल) वर्ण तारागणरूपी मोतियों (गजमोतियों) का समूह आकाशमें विखर गया ॥ ४ ॥

निःसत्वेषुतमोंधेषुरसनारसशालिषु ॥ संकोचमाययुःपद्मामृतानांहृदयेष्विव ॥ ५ ॥ मीलत्पक्षाःक्षणात्सुप्ताःकृच्छ्रप्रोच्छ्रितकंधराः ॥ कुलायेषुखगाआसञ्छवांगेष्विवहेतयः ॥ ६ ॥ आसन्नचंद्रसुभगालोकाःकुसुमपंक्तयः ॥ उल्लसद्धृदयाजातावीरपक्षेष्विवश्रियः ॥ ७ ॥ रक्तवारिमयीसायमंगगुप्तशिलीमुखा ॥ संकुचद्वक्त्रपद्माभूद्रणभूमिरिवाब्जिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—हंसादि रूप जन्तु वा प्राणोंसे रहित होनेपर अन्धकार वा मोहसे आन्ध्य होनेपर जलसे वा प्रेमसे शोभायमान तडागोंमें भ्रमरादिसे बाणोंसे शब्द करते हुये कमल ऐसे संकोचको प्राप्त हुये जैसे मृत वीरोंके हृदय ॥ ५ ॥ पक्ष जिनके मिल रहे हैं कठिनतासे जो अपनी कन्धरा उठानेके योग्यहैं ऐसे पक्षीगण अपने २ घोसलोंमें क्षणमें ऐसे सोगये जैसे मृतक प्राणियोंके शरीरमें अस्त्र शस्त्र ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके समीपस्थ होनेसे सुभग दर्शन क्रमदोंकी पंक्ति ऐसे शोभित हुई, जैसे वीर पक्षकी लक्ष्मी ॥ ७ ॥ रक्तरूपी जलसे पूर्ण, वीरोंके अंगोंमें बाणरूपी भ्रमर जिसमें छिपे हैं, और मुखरूपी कमल जहां संकुचित होरहे हैं, ऐसी वह रणभूमि इसप्रकार शोभित जैसे सन्ध्याकालमें कमलिनी ॥ ८ ॥

उपर्यभूद्व्योमसरस्ताराकुमुदमंडितम् ॥ अधस्त्वभूद्वारिसरःस्फुरत्कुमुदतारकम् ॥ ९ ॥ तमस्यपेतभीतानिभूतानिमिलितान्यलम् ॥ पर्यासीवविसेतूनिप्रसृतानिदिशंप्रति ॥ १० ॥ आसीद्रणांगणंगायद्वेतालकुलसंकुलम् ॥ कणत्कंकालकाकस्थकंककाकोलकेलिमत् ॥११॥ अथकाष्ठचिताज्वालसतारांबरभास्वरम् ॥ पचत्पचपचाशद्भिर्मेदोमांसमयानलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ऊपर तो आकाशरूपी सरोवर तारागणरूपी कुमदों (रात्रि कमलों) से शोभित हुआ, और नीचे भूतलका सरोवर कुमुदरूपी तारागणोंसे शोभित हुआ ॥ ९ ॥ जो पूर्वमें वियुक्तथे वे पीछे मिलनेसेभी अन्धकारमें आपसमें परिचय (मेल) न होनेसे भयभीत होके दिशाओंमें ऐसे फैल गये जैसे पुल टूटनेपर जल ॥ १० ॥ हे रामजी ! वह रणरूपी अंगण (आंगन) गाते हुये वेतालोंसे व्याप्त, तथा मृतक शरीरोंपर स्थित जो काक ग्रीध्र आदि पक्षी उनका क्रीडास्थान होगया ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर वीररूपी काष्ठोंकी चिताकी ज्वालासे प्रदीप्त वह रणांगण ऐसे शोभित हुआ जैसे तारासहित आकाश और पचपचा शब्दोंके साथ मेदा और मांसमय अग्निमें सब कुछ जहां पक रहाहै ॥ १२ ॥

सर्वांगास्थिस्फुटास्फोटस्फुटच्चितिचयोन्मुखम् ॥ वेताललललनारब्धजललीलातिरोहितम् ॥ १३ ॥ श्वकाकयक्षवेतालतालकोलाहलोल्बणम् ॥ गमागमेनभूतानांसमुड्डीनवनोपमम् ॥ १४ ॥ रक्तमांसवसामेदोहरणव्यग्रडाकिनि ॥ चर्वितास्रग्वसामांसस्रवत्स्रक्पिशाचकम् ॥ १५ ॥ मध्यमध्यचितालोकप्रकटास्रक्शवव्रजम् ॥ विरूपिकानीयमानस्वांसन्यस्तमहाशवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और सब अंगोंको हड्डियोंके आस्फोट शब्दोंसें चिताओं समूहही जहां वीरोंके सदृश प्रकाशमान होरहे हैं और वेतालोंकी स्त्रियां जहां क्रीडा आरम्भ करदियाहै और पुनः उसीमें लोप होगई हैं ॥ १३ ॥ कुत्ते, काक, यक्ष,

वेताल महान् कोलाहलोंसे अति भयंकर, और भूतप्रेतादिके गमनागमनसे उडते हुये बनके सदृश ॥ १४ ॥ रक्त, मांस, चर्बी, और मेदा आदि आदिके हरनेमें डाकिनी गण जहां व्याकुल होरहे हैं, और रुधिर सहित मांसके भक्षणसे रुधिर जिनसे बह रहेहैं ऐसे ओष्ठवाले पिशाच जहां विद्यमानहैं ॥ १५ ॥ और चिताओंके मध्य २ में प्रकट रुधिर बहाते हुये मृतकोंको पिशाच लोग जहां देख रहेहैं और जहांपर पूतना लोग अपने शरीरोंपर रखके बडे २ मुरदोंको लिये चली जारही हैं ॥ १६ ॥

उत्तांडवोग्रकुभांडमंडलोड्डामरोदरम् ॥ छमिच्छमितप्रलापांतंमेदोसृग्बाष्पसांबुदम् ॥ १७ ॥ वहद्रक्त नदीरंहोरूढभूचररूपिकम् ॥ वेतालकुलकंकालकर्षणाकुलकाकलम् ॥ १८ ॥ मृतेभोदरमंजूषासुप्तवे तालबालकम् ॥ विविक्तैकरणोद्देशपानक्रीडास्थराक्षसम् ॥ १९ ॥ मत्तवेतालकलहचितालातरणोज्ज्व लम् ॥ वहद्रक्तवसामिश्रगंधबंधुरमारुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—उद्धत ताण्डवनृत्यमें व्यग्र पिचण्डिल नामक पिशाचोंसे प्रचण्ड होरहाहै उदर (मध्यभाग) जिसका ऐसा, और छम २ शब्दके सदृश मृतकोंके मुखमें जहां ज्वालाके शब्द होरहे हैं, और मेदा तथा रुधिरके आर्द्र धूनोंसे मेघके सदृश ॥ १७ ॥ बहती हुई रक्तकी नदीके वेगमें भूचरीके समान पूतनाने जहां अपने पांव रोप दिये हैं, और वेतालोंके समूह मृतक शरीरोंके खींचनेमें अपने कुलके उचित हर्षके कल २ शब्द जहां कर रहे हैं ॥ १८ ॥ मृतक हांथियोंके उदर रूपी पेटारियोंमें जहां बेतालोंके बालक सो रहे हैं, और रणके एकान्त देशमें जहांपर राक्षसलोग अपनी पानक्रीडा आरंभकर दीहै ॥ १९ ॥ चिताओंके उन्मुक लेके जो मत्त वेताल कलहकर रहे हैं उससे अति प्रकाशमान, रक्त और चर्बीसे मिलकर गन्ध बहोनेसे वायुभी जहां वक्ररूप होरहाहै ॥ २० ॥

रूपिकापेटिकावांतारणद्रटरटारवम् ॥ अर्द्धपक्वशवास्वादलुब्धयक्षोल्लसत्कलि ॥ २१ ॥ तुंगवंगकलिं गांगतंगणांगलगत्खगम् ॥ तारापातोपमहसत्संमुखज्वालरूपिकम् ॥ २२ ॥ पतद्वेतालसोल्लासमध्य स्थासृग्विरूपिकम् ॥ पिशाचाकर्णिताभ्यर्णयोगिनीगणनायकम् ॥ २३ ॥ प्रसृतांत्रमहातंत्रीप्रायसंप न्नवादनम् ॥ पिशाचवासनोत्क्रांतपिशाचीभूतमानवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और पूतनाओंकी पेटारियोंमें वमनके कारणसे जहां रटरटा शब्द होरहेहैं, और अधपके मृतकोंका स्वाद लेनेमें लोभी यक्षोंका कलह जहां शोभायमानहैं ॥ २१ ॥ तुंग, वंग, कलिंग, अंग और तंगण आदि देशोंके मनुष्योंके शरीरोंमें निशाचररूपी पक्षी जहां लगरहेहैं संमुख ज्वाला कियेहुये तारागणोंके समान दांत लेके पूतना लोग जहां हंसरही है ॥ २२ ॥ रक्तकी चिकनाईसे वेताल लोग जहां गिररहे हैं, उनके बीचमें हँस्ती हुई पूतना लोग आके प्राप्त होगई हैं, और जहांपर पिशाचोंने अपने समीप आतेहुये योगिनियों गणके नायकोंको सुनाहै ॥ २३ ॥ चारों ओर फैलीहुई आंतोंसे जहांपर बडी भारी वीणाका बाजा सिद्ध होगयाहै और पिशाचोंकी वासनासे निकल हुये मनुष्यभी जहां पिशाचोंके तुल्य होगयेहैं ॥ २४ ॥

रूपिकालोकनापूर्वत्रासार्द्धमृतसद्भटम् ॥ क्वचिद्वेतालरक्षोभिरपरिपूर्णमद्गकम् ॥ २५ ॥ स्वरूपिका स्कंधपतच्छवत्रस्तनिशाचरम् ॥ नभःसंघट्टितापूर्वभूतपेटकसंकटम् ॥ २६ ॥ अतिप्रयत्नापहृतम्रिय माणनरामिषम् ॥ स्वभक्ष्यापेक्षपक्षेषु विक्षिप्तशवराशिमत् ॥ २७ ॥ शिवामुखानलशिखाखंडोत्थमिति रक्तगैः ॥ समुड्डीननवाशोकपुष्पगुच्छमिवाभितः ॥ २८ ॥ कबंधकंधराबंधव्यग्रवेतालबालकम् ॥ यक्ष रक्षःपिशाचादिकचदाकाशगोल्मुकम् ॥ २९ ॥ आकाशभूधरनिकुंजगुहांतरालडिंडिोपमंडिततमोंबुद पीठपूरम् ॥ व्यालोलभूतरभसाकुलकल्पवातव्याधूतलोककरकांडकपेटकल्पम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! पूतनाओंके देखनेसे अपूर्व त्रास उत्पन्न होनेसे उत्तम वीरभी जहां अर्द्ध मृतकके समान होगयेहैं और कहीं वेताल तथा रक्षोगणके उपद्रवसे मंगलोत्सव अपरिपूर्ण होगयाहै ॥ २५ ॥ कहां निज पूतनाओंके कन्धोंसे मुर्दोंके गिरते देखकर निशाचरभी भयभीत होगयेहैं, और कहीं आकाशमें विलक्षण भूतोंका निरन्तर संघट (जमाबडा) होरहाहै ॥ २६ ॥ कहीं बडे प्रयत्नसे मरते हुये मनुष्योंकेही मांसोंके लेजा रहेहैं और कहीं अपने भक्ष्यके पक्षोंमें फेंकेहुये मृतकों (मुर्दों) की राशि लगगई है ॥ २७ ॥ शृगालोंके मुखोंसे निकलीहुई ज्वालाओंसे निरन्तर मूर्छासे उठे रक्त पूर्ण मनुष्योंसे ऐसा भान होन होताहै मानों अशोक पुष्पोंके गुच्छे चारों ओर छागयेहैं ॥ २८ ॥ और जहांपर कबन्धों (शिररहित मनुष्यों) से कन्धोंपर क्रीडा करनेमें वेतालोंके बालक व्याकुल होरहेहैं और कहीं

भक्ष राक्षस और पिशाच आदिके आलात (जलती लकडीकी आग जो घूमानेसे चारों ओर जान पडतीहै) आकाशमें प्रकाशित होरहेहैं ॥ २९ ॥ और हे रामजी ! आकाश, पर्वत, तथा गुहाके अन्तरालोंमें सघन अन्धकाररूप मेघोंका समूह जहांपर विद्यमानहै ऐसा, तथा अति भयंकर भूतादिके वेगसे व्याकुल, प्रलयके पवनसे कंपाये हुये, और पाषाणोंकी वृष्टिसे पीडित प्राणी जहांपर विद्यमानहैं ऐसे ब्रह्माण्डोदरके सदृश वह रणरूपी अंगण होगया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

विदूरथ राजासे सोजानेपर सरस्वती और लीलाका उसके ग्रहमें प्रवेश और अति बाह्कि शरीरका तत्व इस ४० वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंनिशाचराचारचिरघोरेरणांगणे ॥ अहनीवजनाचारेस्थितेयामावरेहिते ॥१॥ हस्तहार्यतमःपिंडस्फुटकुड्येनिशागृहे ॥ लाभोच्छदोच्चलचतेभूतसंघेप्रवल्गति ॥ २ ॥ निःशब्देध्वांत संचारेनिद्रारुद्धककुब्गणे ॥ लीलापतिरुदारात्माकिंचित्खिन्नमनाइव ॥ ३ ॥ प्रातःकार्यंविचार्याशुमं त्रिभिर्मंत्रकोविदैः ॥ दीर्घचंद्रसमाकारेशयनेहिमशीतले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पूर्वोक्त रीतिसे निशाचरोंके आचारसे दीर्घकालतक भयंकर रणांगणमें दिनमें जनोंके उचित आचारके सदृश यमसंबन्धी दूतोंके और नीच पिशाचोंकी चेष्टा स्थित होनेपर ॥ १ ॥ हांथोंसे उठाने योग्य अन्धकारके पिण्डोंसे प्रत्यक्ष प्रकटहैं कुड्य आदि जिसमें ऐसा रात्रिरूप ग्रहमें भोजनके पदार्थोंके लाभसे वस्तु उठाके पाश्चादीनतादि जिससे निकल गयेहैं ऐसे भूतोंके समूहोंके क्रीडा करनेपर ॥ २ ॥ और नगरमें अन्धकारके संचारसे सर्वथा शब्द न होनेपर, और सब दिशाओंके प्राणियोंके निद्रामें ग्रस्त होनेपर, उदारात्मा लीलाका पति कुछ खिन्न चित्तके सदृश ॥ ३ ॥ मंत्र कुशल मंत्रियोंके साथ प्रातःकालके कृत्य विचारके चन्द्रमाके, उदरके समान शीतलहै कोटर जिसका ऐसे उत्तम ग्रहमें चन्द्रमाके सदृश आकारवाली, और शीतल शय्यापर कमलरूपी नेत्र मूंदकर शीघ्रही एक मुहूर्तके लिये निद्राके वशीभूत होगये ॥ ४ ॥ ५ ॥

चंद्रोदरनिभेचारुगृहेशिशिरकोटरे ॥ निद्रांमुहूर्त्तमगमन्मुद्रितेक्षणपुष्करः ॥ ५ ॥ अथतेललनेव्योम तत्परित्यज्यतद्गृहम् ॥ रंध्रैर्विविशतुर्वातलेखेऽब्जमुकुलंयथा ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कियन्मात्रमिदं स्थूलंशरीरंवाग्विदांवर ॥ रंध्रेणतंतुतनुनाकथमाश्वाविशत्प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आधिभौ तिकदेहोहमितियस्यमतिभ्रमः ॥ तस्यासावणुरंध्रेणगंतुंशक्नोतिनानघ ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर वे दोनों स्त्रियां उस आकाशको त्यागकर उस राजाके ग्रहमें छिद्र मार्गोंसे ऐसे प्रवेश किया जैसे कमलकी कलिमें वायुकी रेखा ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हे वाग्विदाम्बर चार हांथका दीर्घ यह स्थूल शरीरहै तो सूतके समान सूक्ष्म छिद्रसे कैसे शीघ्र प्रवेश किया सो कहिये ? ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पापरहित रामजी ! यह स्थूल शरीर मैंहूं ऐसा जिसकी बुद्धिमें भ्रमहै, उसका शरीर सूक्ष्म छिद्रसे कभी नहीं प्रवेश करसकता ॥ ८ ॥

रोधितोहमनेनेतिनमाम्यत्रेतियस्यधीः ॥ अनुभूतानुभवतीभवतीत्यनुभूयते ॥ ९ ॥ येनानुभूतंपूर्वा र्द्धगच्छामीतिसतत्क्रियः ॥ कथंभवतिपश्चार्द्धगमनोन्मुखचेतनः ॥ १० ॥ नहिवार्यूर्ध्वमायातिनाधो गच्छतिपावकः ॥ यायथैवप्रवृत्ताचित्सातथैवप्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥ छायायामुपविष्टस्यकुतस्तापानुभूतयः ॥ यस्यसंवेदनेन्योर्थःकेनचिन्नानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—क्योंकि, मैं इस स्थूल देहसे रोका गया, मेरा मनुष्यदेह इस सूक्ष्म छिद्रमें नहीं माता, ऐसा अनेक वार अनुभव किया हुआ आत्माको स्थूल देहरूपसेही अनुभव करताहै, इसलिये वह अपना न जानाही अनुभव करताहै ॥ ९ ॥ और हे रामजी ! जिसकी इस स्थूल शरीरमें आत्मबुद्धि नहीं है किन्तु सूक्ष्म शरीरमात्रमेंही निश्चय है, और पूर्वकालकी दृढवासनाकी समृद्धिसे, मैंतो अति सूक्ष्म छिद्रमेंभी प्रवेश करनेमें समर्थहुं ऐसा जिसने अनेक वार अनुभव किया है वह वैसे सूक्ष्म छिद्रमें गमन स्वभावमें उत्सुक चेतनशि पुरुषही है वह भला पीछे निरोधक्रिया सहित कैसे

होसकता है, क्योंकि पूर्व प्रकटित स्वभाव अन्यथा नहीं होसकता ॥ १० ॥ हे रामजी ! नतो इस चेतनके ऊपर वायु जासकताहै और न इसके नीचे अग्नि जासकताहै, जैसी इसकी शक्ति पूर्वमें आविर्भूत हुई है वैसी यह (चित्) प्रतिष्ठित रहती है ॥ ११ ॥ जिसको आत्माका साक्षात्कार होजाताहै उसको किसीप्रकार अन्य पदार्थका अनुभव (विपरीत अनुभव) नहीं होता क्योंकि जो छायामें रहताहै उसको तापका अनुभव नहीं होता ॥ १२ ॥

यथासंवित्तथाचित्तंसातथावस्थितिंगता ॥ परमेणप्रयत्नेननीयतेन्यदशांपुनः ॥ १३ ॥ सर्पैकप्रत्ययो रज्ज्वामसर्पप्रत्ययेबलात्॥ निवर्त्ततेन्यथात्वेषतिष्ठत्येवयथास्थितः॥१४॥यथासंवित्तथाचित्तंयथाचित्तं तथेहितम् ॥ बालंप्रत्यपिसंसिद्धमेतत्कोनानुभूतवान् ॥१५॥यःपुनःस्वप्नसंकल्पपुरुषःप्रतिमाकृतिः॥ आकाशमात्रकाकारःसकथंकेनरोध्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसी यह संवित् वैसाही चित्त होजाताहै और पुनः यह उसीके सदृश स्थित रहती है, और योगज्ञानका अभ्यास आदि बडे प्रयत्नसे दूसरी दशा (वास्तविक दशा) में प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ जैसे रज्जुमें जब सर्पका विश्वास होजाताहै तब असर्प निश्चय अर्थात् रज्जुका तत्त्व जाननेपर वह बलसे नष्ट होताहै, अन्यथा यह सर्पका विश्वास ज्योंका त्यों बन रहताहै ॥ १४ ॥ जैसी संवित् होती है वैसाही चित्त होताहै और जैसा चित्त होताहै वैसीही चेष्टा होती है, यह वार्ता बालकको भी सिद्ध और इसको किसने नहीं अनुभव किया ॥ १५ ॥ जो (सूक्ष्मशरीर) स्वप्न या संकल्प पुरुषके सदृश है और आकाशके सदृश जिसका आकार वह भला किससें और रूक सकताहै ॥ १६ ॥

चित्तमात्रंशरीरंतुसर्वस्यैवाहिसर्वतः ॥ विद्यतेवेदनाचैतत्कचिदेतीवहृद्गतात् ॥ १७ ॥ यथाभिमतमेवा स्यभवत्यस्तमयोदयम् ॥ आदिसर्गेस्वभावोत्थंपश्चाद्वैतैक्यकारणम् ॥ १८ ॥ चित्ताकाशंचिदाकाश माकाशंचतृतीयकम् ॥ विद्ध्येतत्त्रयमेकंत्वमविनाभावनावशात् ॥१९॥ एतच्चित्तशरीरत्वंविद्धिसर्वग तोदयम् ॥ यथासंवेदनेच्छत्वाद्यथासंवेदनोदयम् ॥ २० ॥

अर्थ—वास्तविकमें चित्तमात्रही सबका शरीर है, परन्तु यह वार्ताको कदाचित् हृदयमें ज्ञानसे विदित होता है ॥ १७ ॥ इस परमात्माकी चित्तवृत्तिके अनुसारही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और अस्त होते हैं आदि सृष्टि स्वाभाविक अज्ञानसे होती है, और पीछे स्थूलभूत भौतिक जगत्‌रूप द्वैत उन भूतोंके पंचीकरण निमित्तसे होताहै ॥ १८ ॥ चित्ताकाश, अव्यक्ताकाश, और शुद्ध चिदाकाशको इन तीनोंको एकही समझो क्योंकि अधिष्ठान सत्ताहीसे सबका स्फूरण होताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इस सूक्ष्म चित्त शरीरके सर्वत्र प्राप्तही समझो क्योंकि पूर्व संवेदन, अर्थात् पूर्व वासना और कर्मके अनुसारही पदार्थोंकी स्फूर्ति होती है, और यहभी संवेदन इच्छाके अनुकुलही होताहै इससे यह बात सिद्ध हुई कि स्थूल देहको बाह्य पदार्थोंके अनुसार निरोध होनेपरभी चित्त शरीरका संवेदनेच्छा मात्रानुसारी होनेसे निरोध नहीं होसकता ॥ २० ॥

वसतित्रसरेण्वंतर्ध्रियतेगगनोदरे ॥ लीयतेंकुरकोशेषुरसोभवतिपल्लवे ॥ २१ ॥ उल्लसत्यंबुवीचित्वेप्र नृत्यतिशिलोदरे ॥ प्रवर्षत्यंबुदोभूत्वाशिलीभूयावतिष्ठते ॥ २२ ॥ यथेच्छमंबरेयातिजठरेपिचभूभृता म् ॥ अनंतराकाशवपुर्धत्तेथपरमाणुताम् ॥२३॥ भवत्यद्रिर्धराधारोबद्धपीठोनभःशिराः ॥ देहस्यांतर्ब हिरपिदधद्वनतनूरुहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह चित्त शरीर वा चित् त्रसरेणुओंके भीतर निवास करताहै, आकाशके भीतर इसका धारण होताहै, अंकुरके भीतर लय होजाताहै, और पल्लवोंमें रसरूप होताहै ॥ २१ ॥ जलके तरंगोंमें शोभित होताहै, शिलाओंके भीतर क्रीडा करताहै, मेघ होके वृष्टि करताहै, और शिला होके एक स्थानमें स्थिन रहताहै ॥ २२ ॥ अपनी इच्छापूर्वक आकाशमें जाताहै, और पर्वतोंके उदरमेंभी चलाजाताहै, और अवकाशरहित परमाणुकाभी शरीर धारण करलेताहै ॥२३॥ दृढमूल, आकाशमें शिर किये, वनरूपी रोमोंको धारण करता हुआ और पृथिवीका धारण करनेवाला यह चेतन शरीरकेभीतरही पर्वतहोजाताहै, यह वार्ता शरीरके भीतर स्वप्नमें और वाहर इन्द्रजाल आदिमें प्रसिद्धहै॥२४॥

भवत्याकाशमाधत्तेकोटीःपद्मजसद्मनाम् ॥ अनन्याःस्वात्मनोंभोधिरावर्त्तरचनाइव ॥ २५ ॥ अनुद्वि ग्नप्रबोधोसौसर्गादौचित्तदेहकः ॥ आकाशात्मामहान्भूत्वावेत्तिप्रकृततांततः ॥ २६ ॥ असत्यमेववा रित्वंबुद्ध्वोदेतीवतत्तया ॥ वंध्यापुत्रोयमस्तीतियथास्वप्नेभ्रमोनरः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किंचि त्तमेतद्भवतिकिंवाभवंतिनोकथम् ॥ कथमेवनसद्रूपंनान्यद्भवतिवीक्षणात् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यही आकाश होके करोडों ब्रह्माण्डोंको अपने आत्मामें ऐसे धारण करताहै, जैसे समुद्र अपनेसे अभिन्न तरंगोंकी रचनाको ॥ २५ ॥ हे रामजी ! सृष्टिकी आदिमें इस चित्तशरीरका प्रबोध उद्विग्न नहीं होता

अर्थात् इसका ज्ञान कर्मके अनुसार होता है, और यह आकाशादि क्रमसे महान् ब्रह्माण्ड आत्मा होके प्रारब्ध कर्मानुसार प्रवृत्तिको जानता है अर्थात् उसीके अनुकूल इसमें स्फुरण होती है ॥ २६ ॥ जैसे मृगतृष्णामें जल असत्य हैं, और यह मनुष्य वन्ध्यापुत्र है ऐसा स्वप्नमें भ्रम उदय होता है, इसी प्रकार असत्यही इस जगत्की बुद्धि उदय होती है ॥ २७ ॥ रामजीकी शंकाका आशय यह है कि सूक्ष्मतम चित्तही जगत्का कारण है, वही अज्ञात होनेसे स्थूल होके परतंत्र होजाता है और ज्ञात होनेसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें अप्रतिहतगति और स्वतन्त्र होजाताहै उसमें श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! क्या हम लोगोंमेंसे प्रत्येकका चित्त पूर्वोक्त शक्ति (सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति) सहित होताहै वा नहीं ? यदि प्रथम पक्ष है तो प्रतिचित्त जगत् भिन्नरूपसे सत्यरूप क्यों नहीं ? और दूसरे पक्षमें तो चित्तसे अजन्य होनेसे चित्तसे अन्य सत्रूप क्यों नहीं, क्योंकि चित्तसे पृथक् रूपसेही सबको अनुभव होताहै, यदि ऐसा है तो ज्ञानसे चित्तका नाश होनेपरभी जगत्की अनुवृत्ति बनी रहेगी ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रत्येकमेवयच्चित्तंतदेवंरूपशक्तिकम् ॥ पृथक्प्रत्येकमुदितःप्रतिचित्तंजगद्भ्रमः ॥ २९ ॥ क्षणकल्पजगत्संघाःसमुद्यंतिगलंतिच ॥ निमेषात्कस्यचित्कल्पात्कस्यचिच्चक्रमंशृणु ॥ ३० ॥ मरणादिमयीमूर्च्छाप्रत्येकेनानुभूयते ॥ यैषातांविद्धिसुमतेमहाप्रलययामिनीम् ॥ ३१ ॥ तदंतेतनुतेसर्गंसर्वएवपृथक्पृथक् ॥ सहजस्वप्नसंकल्पान्संभ्रमाचलनृत्यवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले– आदि पक्षको स्वीकार करके वसिष्ठजी उत्तर देते हैं कि हे रामजी ! प्रत्येक (एक एकका पृथक् २) का जो चित्त है वही ऐसी शक्ति (जगत्रूप होनेकी शक्ति) वालाहै, पृथक् २ प्रतिचित्तको जगत्का भ्रम उदय हुआ है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! क्षणकल्प, और जगत्के समूह एक निमेषमेंही उत्पन्न होजातेहैं और नष्ट होजातेहैं और किसीकी दृष्टिसे कल्पभरमें उत्पन्न और नष्ट होतेहैं और किसीका यह क्रमहै सुनिये ॥ ३० ॥ हे सुमते रामजी ! जो यह मरण आदिमयी मूर्च्छाको प्रत्येक प्राणी अनुभव करताहै इसीको तुम महाप्रलयकी रात्रि समझो ॥ ३१ ॥ इसीके अन्तमें स्वाभाविक अविद्यासे उत्पन्न तीनों अवस्थाओंके संकल्पके अनुसार सबको अपनी २ सृष्टिका बिस्तार ऐसे भासने लगताहै जैसे चित्तके मोहसे अचल पर्वतका नृत्य ॥ ३२ ॥

महाप्रलयरात्र्यंतेचिरादात्ममनोवपुः ॥ यथेदंतनुतेतद्वत्प्रत्येकंमृत्यनंतरम् ॥ ३३ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मृतेरनंतरंसर्गोयथास्मृत्यानुभूयते ॥ चिरात्तथानुभवतिनातोविश्वमकारणम् ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महतिप्रलयेरामसर्वेहरिहरादयः ॥ विदेहमुक्ततांयांतिस्मृतेःकइवसंभवः ॥ ३५ ॥ अस्मदादिःप्रबुद्धात्माकिलावश्यंविमुच्यते ॥ कथंभवंतुनोमुक्ताविदेहाःपद्मजादयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे महाप्रलय रात्रिके अन्तमें परब्रह्मके समष्टि मनरूप हिरण्यगर्भ अपने सत्यसंकल्पसे दीर्घकालके पश्चात् सृष्टिको उत्पन्न करते हैं वैसेही प्रत्येक प्राणी अपनी मृत्युके अनन्तर सृष्टिको रचताहै ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! जैसे सम्पूर्ण व्यष्टि जीव अपनी मृत्युके अव्यवहित उत्तरकालमें अपनी स्मृतिसे रचित सृष्टिका अनुभव करताहै, इसीप्रकार समष्टि (हिरण्यगर्भ) भी महाप्रलयके अनन्तर चिरकालमें अपनी यथार्थ स्मृतिसे रचित प्रपंचका अनुभव करताहै, इससे हिरण्यगर्भकी स्मृतिमें आरूढ पूर्वजन्मके सत्यार्थही इस कल्पके विश्वके कारण सम्भव होसकते हैं, इस कारणसे यह विश्व कारण रहित नहीं है, अर्थात् ब्रह्मसे पृथक् सत्यकारण शून्य यह जगत् है ऐसा जो पूर्वमें कहाथा वह असंगत हुआ ॥३४॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! महाप्रलयमें जब हरिहर आदि विदेह मुक्त होजातेहैं तो भला स्मृतिका सम्भव कहां ? ॥ ३५ ॥ जब तत्वज्ञान होनेसे अस्मद आदि सब अवश्य मुक्त होतेहैं तब ब्रह्माआदि विदेह मुक्त क्यों न हो ? ॥ ३६ ॥

अन्येत्वमिवयेजीवास्तेषांमरणजन्मसु ॥ स्मृतिःकारणतामेतिमोक्षाभाववशादिह ॥ ३७ ॥ जीवोहिमृतिमूर्छांतेयदंतःप्रोन्मिषन्निव ॥ अनुन्मिषितएवास्तेतत्प्रधानमुदाहृतम् ॥ ३८ ॥ तद्व्योमप्रकृतिःप्रोक्तातदव्यक्तंजडाजडम् ॥ संस्मृतेरस्मृतेश्चैवक्रमएषभवोदये ॥ ३९ ॥ बोधोन्मुखत्वेहिमहत्तत्प्रबुद्धंयदाभवेत् ॥ तदातन्मात्रदिक्कालक्रियाभूताद्युदेतिखात् ॥ ४० ॥

अर्थ—और हे रामजी ! जो तुमारे सदृश जीव हैं उनके मरण और जन्म प्रयोजक सृष्टियोंमें जो स्मृति कारण है वह मोक्षके अभावसे पूर्वजन्मके मिथ्या पदार्थोंके अनुभवकी वासनासे अवश्य उत्पन्न है ॥ ३७ ॥ जीवको जो मरणरूपी मूर्च्छाके अन्तमें अन्तःकरणमें स्फुरण होती है और बाहर स्फुरण रहित रहता उसी दशाका नाम प्रधान अर्थात् मूलप्रकृति है ॥ ३८ ॥ उसीको आकाश प्रकृति, अव्यक्त, और चेतनका प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेसे जडाजडभी क-

होते हैं, और सृष्टि और प्रलयका क्रम अर्थात् संसारके आदि अन्तकी अवधि यही है ॥ ३९ ॥ और वही मूलप्रकृति स्फुरणकी ओर अभिमुख होनेसे महत्तत्व होजाती है, और अधिक प्रबुद्ध होनेसे महत्तत्व अहंकार होजाताहै, और उसी अहंकार अवस्थामें प्राप्त अव्यक्त आकाशसे तन्मात्रासे आदि लेके भूत भौतिकान्त, सृष्टि उत्पन्न होती है ॥४०॥

तदेवोच्छूनमाबुद्धं भवतींद्रियपंचकम् ॥ तदेवबुध्यतेदेहःस्वप्नोस्यातिवाहिकः ॥ ४१ ॥ चिरकालप्रत्ययतःकल्पनापरिपीवरः ॥ आधिभौतिकताबोधमाधत्तेचैषबालवत् ॥ ४२ ॥ ततोदिक्कालकलनास्तदाधारतयास्थिताः ॥ उद्यंत्यनुदिताएववायोःस्पंदक्रियाइव ॥ ४३ ॥ वृद्धिमित्यमयंयातोमुधैवभुवनभ्रमः ॥ स्वप्नांगनासंगसमस्त्वनुभूतोप्यसन्मयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—वही सूक्ष्मावस्था किंचित् वृद्धिको प्राप्त इन्द्रिय पंचक (पांचों इन्द्रिय) होजाताहै और वही आतिवाहिक देह स्वप्न और जागरअवस्थामें अनुभूत होताहै ॥ ४१ ॥ और वही दीर्घकालके विश्वाससे और संकल्पसे स्थूल होके भौतिक स्थूल देहके अहंभावको ऐसे धारण करताहै, जैसे बालक कालपाके स्थूलताको ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर स्थूल देहके आश्रित नेत्र आदिके आधीन स्थित उन २ देश और कालगत पदार्थोंकी कल्पनामें, यथार्थमें अनुदयको प्राप्त ऐसे उदयको प्राप्त होती हैं, जैसे वायुमें स्पन्द क्रिया ॥ ४३ ॥ इसप्रकार मिथ्याही वृद्धिको प्राप्त यह संसारका भ्रम अनुभव किया हुआ ऐसे असत्यरूप है जैसे स्वप्नकी स्त्रीका समागम ॥ ४४ ॥

यत्रैवम्रियतेजंतुःपश्यत्याशुतदेवसः ॥ तत्रैवभुवनाभोगमिममित्थमिवस्थितम् ॥ ४५ ॥ व्योमैवानुभवत्यच्छमहंजगदितिभ्रमम् ॥ व्योमरूपंव्योमरूपोजीवोजातइवात्मवान् ॥ ४६ ॥ सुरपत्तनशैलार्कतारानिकरसुंदरम् ॥ जरामरणवैक्लव्यव्याधिसंकटकोटरम् ॥ ४७ ॥ स्वभावाभावसंरंभस्थूलसूक्ष्मचराचरम् ॥ साब्ध्यद्र्युर्वीनदीशाहोरात्रिकल्पक्षणक्षयम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जहांपर यह प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै उसी स्थानपर वह शीघ्रही इसीप्रकार स्थित इस संसारका रूप देखताहै ॥ ४५ ॥ आकाशरूप यह जीव अनित्य देह आदिके निमित्त देहवान्के सदृश उत्पन्न हुआसा स्पष्ट रीतिसे यह मैं हुं यह जगत् है इत्यादि भ्रमका अनुभव करताहै ॥ ४६ ॥ पुनः इन्द्रआदि देवोंसे, अमरावती आदि नगरोंसे, मेरूआदि पर्वतोंसे, और तारागणोंके समूहोंसे रमणीय, वृद्धावस्था मरण, व्याकुलता, तथा अनेक व्याधियोंसे पूर्ण मर्त्यलोकादि छिद्रोंसहित ॥ ४७ ॥ और अपने अनुकूल पदार्थोंके सम्पादन करनेमें, और प्रतिकूल पदार्थोंके निवारण करनेमें सूक्ष्म तथा स्थूल चराचर प्राणी जहां लगे रहे हैं ऐसे समुद्र, पर्वत, पृथिवी, नदी, उनके स्वामी राजा आदि, दिन, रात्रि, कल्प, क्षण और प्रलय सहित ॥ ४८ ॥

अहंजातोमुनापित्राकिलात्रेत्याप्तनिश्चयम् ॥ इयंमाताधनमिदंममेत्युदितवासनम् ॥ ४९ ॥ सुकृतंदुष्कृतंचेदंममेतिकृतकल्पनम् ॥ बालोभूवमहंत्वद्ययुवेतिविलसद्धृदि ॥ ५० ॥ प्रत्येकमेवमुदितःसंसारवनखंडकः ॥ ताराकुसुमितोनीलमेघचंचलपल्लवः ॥ ५१ ॥ चरन्नरमृगानीकःसुरासुरविहंगमः ॥ आलोककौसुमरजाःश्यामागहनकुंजकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस पितासे मैं इस स्थानपर उत्पन्न हुआ, यह मेरी माताहै, यह मेरा धनहै, इसप्रकार उत्पन्न वासना सहित ॥ ४९ ॥ यह मेरा पुण्य है यह पाप है, ऐसी कल्पना सहित, प्रथम मैं बालक था, और अब युवा (जवान) होगया, इत्यादि रूपसे स्फूरते हुये भ्रमको अपने हृदयमें देखता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! प्रत्येकके चित्तमें यह संसाररूपी बनका खण्ड उदय हुआहै, तारागणरूपी इसमें पुष्प हैं, तथा मेघरूपी चंचल पत्र हैं ॥ ५१ ॥ मनुष्यरूपी मृगोंके समूह इसमें बनचर रहेहैं, सुर और असुररूपी इसमें पक्षी हैं, प्रकाश प्रधान दिनरूपी इसमें पुष्पोंकी धूलि हैं, और रात्रिरूप इसमें प्रवेश करनेमें भयंकर लताकुंज हैं ॥ ५२ ॥

अब्धिपुष्करिणीपूर्णोमेर्वाद्यचललोष्टकः ॥ चित्तपुष्करबीजांतर्निलीनानुभवांकुरः ॥ ५३ ॥ यत्रैषम्रियतेजीवस्तत्रैवंपश्यतिक्षणात् ॥ प्रत्येकमुदितेष्वेवंजगत्खंडेषुभूरिशः ॥ ५४ ॥ कोटयोब्रह्मरुद्रेंद्रमरुद्विष्णुविवस्वताम् ॥ गिर्यब्धिमंडलद्वीपलोकांतरदृशांगताः ॥ ५५ ॥ यातायास्यंतियांत्येताद्दृष्टयोनष्टरूपिणीः ॥ याब्रह्मण्युपबृंहाढ्यास्ताःकेगणयितुंक्षमाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—समुद्ररूपी पुष्करणियों (कमल सहित तलाईयों) से यह पूर्ण है, मेरु आदि अचल इसमें पाषाण हैं, चित्तरूपी पुष्करका बीज है, और संस्काररूपसे स्थित चित्तकी वृत्तियां जिसमें अंकुर हैं ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! यह जीव जहांपर मरताहै वहांही क्षणभरमें सब इसीप्रकार देखताहै, इसीप्रकार प्रत्येकको उदयको प्राप्त अनेक जगत्रूपी बनके खण्डोंमें ॥ ५४ ॥ करोडों ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, देवता, विष्णु, सूर्य्य, पर्वत, समुद्रोंके समूह द्वीप और लोकान्तर जो

अपने भीतर देखते हैं, गत होगये हैं ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार असत् ये ब्रह्माण्डकी सृष्टि अनेक उत्पन्न होगई अनेक होंगी, और होरही है, और जो आविर्भावरूपसे ब्रह्म अनेकरूपसे स्थितहै उनको भला कौन गणना करसकताहै

एवंकुड्यमयंविश्वंनास्त्येवमननादृते ॥ मननेचलमेवांतस्तदिदानींविचारय ॥ ५७ ॥ यदेवतच्चिदाकाशंतदेवमननंस्मृतम् ॥ यदेवचचिदाकाशंतदेवपरमंपदम् ॥ ५८ ॥ यदेवांबुसआवर्तोनत्वस्यावर्त्तवस्तु सन् ॥ द्रष्टैवास्तेदृश्यमिवदृश्यंनत्वस्तिवस्तुसत् ॥ ५९ ॥ चिद्व्योम्नोभूतनभसिकचनंयन्मणेरिव ॥ तज्जगद्भाविनानासत्तत्वंश्वभ्रमिवांबरे ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी! इसप्रकार भित्तिके सदृश स्थूल यह विश्व मनके संकल्पसे पृथक् कुछ नहीं है यद्यपि बाहर यह जगत् स्थिररूपही भासताहै, तथापि मनसे यथोचित विचार करनेसे चंचलरूपही अनुभूत होताहै, मनके भ्रमणसे भ्रमतासा, प्रसन्नसे प्रसन्नके सदृश, मलिन होनेसे मलिनके सदृश और मनोरथादिमें जो उत्पन्न होताहै वैसाही यहांभी प्रायः इसका आरोप होताहै, इसका तत्त्व अपने अनुभवसे विचारो ॥ ५७ ॥ और विचारसे वह मनभी चिदाकाश (साक्षी चेतन) रूपही है, और जो चिदाकाशहै वही परमपद पूर्णब्रह्म चिन्मात्रहै ॥ ५८ ॥ जो जलहै वही आवर्त (जलमें भ्रमि) है परन्तु आवर्त सत् नहीं है द्रष्टा जो है वही दृश्यहै परन्तु दृश्यरूपता सत् नहीं ॥ ५९ ॥ चिदाकाशकी, जो अनादि भूताकाशमें जीवभावसे स्फुरणहै वही नामरूपात्मक भावि नानास्वभाववाला जगत्शब्दसे कहा जाताहै, और यहभी इन्द्रजालका माणि वा गन्धर्वनगर आदि जैसे आकाशमें शोभित होतेहैं वैसाही है, वास्तवमें परमार्थ रूपही है ॥ ६० ॥

मद्बुद्धार्थोजगच्छब्दोविद्यतेपरमामृतम् ॥ त्वद्बुद्धार्थस्तुनास्त्येवत्वमहंशब्दकादपि ॥६१॥ तस्माल्लीलासरस्वत्यावाकाशवपुषौस्थिते ॥ सर्वगेपरमात्माच्छेसर्वत्राप्रतिघेऽनघे ॥ ६२ ॥ यत्रयत्रसदाव्योम्नि यथाकामंयथेप्सितम् ॥ उदयंकुरुतस्तेनतद्गेहेस्तिगतिस्तयोः ॥ ६३ ॥ सर्वत्रसंभवतिचिद्गगनंतदत्र सद्वेदनंवलनमामननंविसारि ॥ तच्चातिवाहिकमिहाहुरकुड्यमेवदेहंकथंकइवतंवदकिंरुणद्धि ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने समरसमनंतरसंस्मृत्यनुभववर्णनं नाम चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—मद्बुद्धार्थ जगत् शब्द अर्थात् अधिष्ठान सत्तामात्र जगत् शब्दका प्रयोग साक्षी चेतन मात्रहीं है, और त्वद्बुद्धार्थ अर्थात् आरोपित सत्ताक तो हैही नहीं, इसप्रकार "त्वम् अहम्" शब्दका कहनेवाला प्रमाताभी साक्षी चेतन स्वभावहीहै न कि तुमारा समझा हुआ जीवस्वभाव ॥६१॥ हे रामजी ! यह लीला और सरस्वती आकाश शरीरसे स्थितहैं और वे सर्वव्यापी पापशून्य, सर्वत्र प्रतिघात (रुकावट) रहित स्वच्छ परमात्मरूपही है ॥ ६२ ॥ और वे सदा आकाशमें जहां २ जैसी २ कामना (प्राप्त पदार्थकी भोगेच्छा) और इच्छा (अप्राप्तकी वाञ्छा) करतीहै वहां२ वैसाही पदार्थ प्रगट करलेती है, इसलिये सूक्ष्म मार्गसेभी विदूरथके भवनमें उनका प्रवेश हुआ ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! चिदाकाशका गमन कहींभी प्रतिरूध नहीं होता और चिदाकाश कल्पना होनेसे मानस पदार्थोंके निश्चय पर्य्यन्त बाह्यप्रसरणशील यथार्थ ज्ञान होजाताहै, और उसीको स्थूलता रहित सूक्ष्म शरीरभी कहतेहैं, इसलिये इसको किस निमित्तसे कैसे कौन रोक सकताहै ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने समरसमनन्तरसंस्मृत्यनुभववर्णनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राजाके गृहमें प्रविष्ट सरस्वती और लीलाका सोतोंसे उठेहुये राजा करके पूजन करना, राजाकी स्मृति, और सरस्वती करके राजाको आत्माका उपदेश करना, ये विषय इस ४१ वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तयोःप्रविष्टयोर्देव्योःपद्मसद्मबभूवतत् ॥ चंद्रद्वयोदयोद्योतधवलोदरसुंदरम् ॥१॥ कोमलामलसौगंध्यमृदुमंदारमारुतम् ॥ तत्प्रभावेननिद्राढ्नृपेतरनरांगनम् ॥ २ ॥ सौभाग्यनंदनोद्यानंविद्रुतव्याधिवेदनम् ॥ सवसंतंवनमिवफुल्लंप्रातरिवांबुजम् ॥ ३ ॥ तयोर्देहप्रभापूरैःशशिनिस्यंदशीतलैः ॥ आल्हादितोसौबुबुधेराजोक्षितइवामृतैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—राजाका गृहरूपी कमल उन दोनोंके प्रवेश करनेपर दो चन्द्रमाके उदयके प्रकाशसे धवल (श्वेत) होगयाहै, उदर जिसका ऐसा शोभित हुआ ॥ १ ॥ कोमल, मन्द, सुगन्ध वायु जहांपर बह रहेहैं और संकल्प मन्दार पुष्पमाला जहां विद्यमान हैं ऐसे राजाके गृहमें, उन दोनों देवियोंके प्रभावसे राजाको छोडके और सब सोगये ॥ २॥ कैसा है वह राजाका गृहांगण कि शोभासे नन्दनबनके सदृश, सम्पूर्ण व्याधि और पीडासे वर्जित, और ऐसा शोभायमान होरहाहै, जैसा प्रातःकाल कमल जिसमें विकसित होरहे हैं ऐसा बसन्तऋतु सहित बन ॥ ३ ॥ उन दोनों देवियोंके देहकी दीप्तिके प्रवाहसे प्रसन्न चित्त होके राजा ऐसे जाग्रत अवस्थाको प्राप्त हुआ जैसे चन्द्रमासे निकले हुये शीतल अमृतोंसे सींचा हुआ ॥ ४ ॥

आसनद्वयविश्रांतंसददर्शाप्सरोद्वयम् ॥ मेरुशृंगद्वयेचंद्रबिंबद्वयमिवोदितम् ॥ ५ ॥ निमेषमिवसंचिन्त्यसविस्मितमनानृपः ॥ उत्तस्थौशयनाच्छेषादिवचक्रगदाधरः ॥ ६ ॥ परिसंयमितालंबिमाल्यहाराधरांबरः ॥ पुष्पाहारइवोत्फुल्लंजग्राहकुसुमांजलिम् ॥ ७ ॥ उपधानप्रदेशस्थात्स्वयंपटलकोटरात् ॥ बद्धपद्मासनोभूमौभूत्वोवाचेदमानतः ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पसे सिद्ध दो आसनोंपर बिराजमान दिव्य अप्सराओंके सदृश दो स्त्रियोंके उसने ऐसे शोभायमान देखा मानों मेरुके शिखरपर उदित दो चन्द्रमाको ॥ ५ ॥ हे रामजी ! आश्चर्य सहित राजा अल्प कालतक अन्तःकरणमें विचारकरके शय्यासे ऐसे उठ खडा हुआ जैसे शेषशय्यासे चक्रगदाधर भगवान् ॥ ६ ॥ निद्राके कारणसे इधर उधर प्राप्त निर्मल हार तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाला राजा भृत्यके समान शिरहाने रक्खी हुई पुष्पकी पेटारीमेंसे पुष्पोंको लेके पुष्पांजलिको ग्रहण किया और पृथिवीपर पद्मासनसे बैठके नम्र होके यह वचन बोला ॥ ७ ॥ ८ ॥

जयतांजन्मदौस्थित्यदाहदोषशशिप्रभे ॥ देव्यौबाह्यांतरतमोविद्रावणरविप्रभे ॥ ९ ॥ तयोरुक्त्वेतित्याजपादयोःकुसुमांजलिम् ॥ तीरद्रुमोविकसितःपद्मिन्योःपद्मयोरिव ॥ १० ॥ लीलायैभूपजन्माथवक्तुंमंत्रिणमीश्वरी ॥ बोधयामासपार्श्वस्थंसंकल्पेनसरस्वती ॥ ११ ॥ प्रबुद्धोप्सरसौदृष्ट्वाप्रणम्यकुसुमांजलिम् ॥ तयोःपादेषुसंत्यज्यविवेशपुरतोनतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे जीवनके दुःखोंको नाश करनेहारी, त्रिविध तापोंके दोषोंको शान्त करनेहारी, चन्द्रमाके समान कान्तिधारी, बाह्य तथा अन्तरके अन्धकारको दूर करनेमें सूर्यके समान प्रकाशमान दोनों देवियों ! आपका जयहो॥९॥ ऐसा कह कहके राजाने उन दोनोंके चरणोंमें कुसुमांजलिको इसप्रकार त्यागा जैसे नदीके तटका पुष्पसहित वृक्ष पद्मोंकी पद्मिनियोंके ऊपर ॥ १० ॥ इसके अनन्तर राजाके जन्मोंके लीलासे कहनेके अर्थ समर्थ भगवतीने राजाके सोते हुये मंत्रीको अपने संकल्पसे जगाया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर वह मंत्री जगा और दो अप्सराके सदृश देवियोंको देखके पुष्पांजलि ग्रहण किया और दोनोंके चरणोंमें अर्प्पण करके नम्र होके सन्मुख बैठगया ॥ १२ ॥

उवाचदेवीहेराजन्कस्त्वंकस्यसुतःकदा ॥ इहजातइतिश्रुत्वासमंत्रीवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ देव्यौयुष्मत्प्रसादोयंभवत्योरपियत्पुरः ॥ वक्तुंशक्नोमितद्देव्यौश्रूयतांजन्ममत्प्रभोः ॥ १४ ॥ आसीदिक्ष्वाकुवंशोत्थोराजाराजीवलोचनः ॥ श्रीमान्कुंदरथोनामदोश्छायाच्छादितावनिः ॥ १५ ॥ तस्याभूदिंदुवदनःपुत्रोभद्ररथाभिधः ॥ तस्यविश्वरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोबृहद्रथः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर देवी बोली कि हे राजन् ! तुम किसके पुत्र हो और यहां कब उत्पन्न हुये, इस प्रश्नको सुनके मन्त्री यह वाक्य बोला ॥१३॥ हे देवियो ! यह आपकाही प्रभावहै कि मैं आपके सम्मुखभी बोलनेको समर्थहुं, अब आप दोनों देवी हमारे स्वामीके जन्मका वृत्तान्त सुनैं ॥ १४ ॥ हे देवियो ! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न कमलके सदृश नेत्रवाले, अपनी भुजाओंकी छायासे शत्रु तथा दारिद्र्य आदिकें नाश द्वारा पृथिवीको पालन करने हारे श्रीमान् राजा कुन्दरथ नाम उत्पन्न हुये ॥ १५ ॥ उनके चन्द्रमाके सदृश मुखवाले भद्ररथ नाम पुत्र हुये, भद्ररथके विश्वरथ और विश्वरथके बृहद्रथ नाम पुत्र हुये ॥ १६ ॥

तस्यसिंधुरथःपुत्रस्तस्यशैलरथःसुतः ॥ तस्यकामरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोमहारथः ॥ १७ ॥ तस्यविष्णुरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोनभोरथः ॥ अयमस्मत्प्रभुस्तस्यपुत्रःपूर्णामलाकृतिः ॥ १८ ॥ अमृतापूरितजनःक्षीरोदस्येवचंद्रमाः ॥ महद्भिःपुण्यसंभारैर्विदूरथइतिश्रुतः ॥ १९ ॥ जातोमातुःसुमित्रायागौर्यागुहइवापरः ॥ पितास्यदशवर्षस्यदत्त्वाराज्यंवनंगतः ॥ २० ॥

अर्थ—बृहद्रथके सिन्धुरथ सिन्धुरथके शैलरथ नाम पुत्र हुये शैलरथके कामरथ कामरथके महारथ ॥ १७ ॥ महारथके विष्णुरथ और विष्णुरथके नभोरथ नाम उत्पन्नहुये, विमल आकारवाले अपने स्नेह और माधुर्य्य आदि गुणोंसे

सब जनोंको तृप्त करनेहारे क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाके समान ये हमारे प्रभु, उन नभोरथके पुण्योंके समूहसे विदूरथ नामसे प्रसिद्ध उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ १९ ॥ ये सुमित्रा नाम्नी मातासे ऐसे उत्पन्न हुये जैसे गौरी (पार्वती) जीसे स्वामिकार्तिक दशवर्षकीही अवस्थामें इनके पिता नभोरथ इनको राज्य देके बनको चलेगये ॥ २० ॥

पालयत्येषभूपीठंततःप्रभृतिधर्मतः ॥ भवत्यावद्यसंप्राप्तेफलितेसुकृतद्रुमे ॥ २१ ॥ देव्यौदीर्घतपःक्लेशशतैर्दुष्प्रापदर्शने ॥ इत्ययंवसुधाधीशोविदूरथइतिश्रुतः ॥ २२ ॥ अद्ययुष्मत्प्रसादेनपरांपावनतांगतः॥ इत्युक्त्वासंस्थितेतूष्णींमंत्रिण्यवनिपेतथा ॥ २३ ॥ कृतांजलौनतमुखेबद्धपद्मासनेवनौ ॥ राजन्स्मरविवेकेनपूर्वजातीमितिस्वयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे देवियो! उसी समयसे ये धर्म्मपूर्वक पृथिवीका पालन करते हैं आज इनके पुण्यरूपी वृक्षके फलके समान आप दोनों यहां प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ हे देवियो! आपका दर्शन बडी दीर्घ सैकडों तपस्याओंसेभी दुष्प्राप है, इस प्रकार ये हमारे स्वामी संसारमें विदूरथ करके प्रसिद्ध हैं ॥ २२ ॥ आज आप दोनोंकी प्रसन्नतासे परम पवित्रताको प्राप्त हुये, इतना कहके राजा तथा मंत्रीके मौन स्थित होनेपर ॥२३॥ और इसके पश्चात् हांथ जोडके नम्र मुख होके पद्मासनसे राजाके पृथिवीपर बैठनेपर देवी बोली कि हे राजन्! स्वयं अपने विवेकसे अपनी पूर्व जातियोंको स्मरण कर॥२४

वदंतीमूर्ध्निपस्पर्शतंकरेणसरस्वती ॥ अथहार्दतमोमायापद्मस्यक्षयमाययौ ॥ २५ ॥ सुविकासंचहृदयंज्ञप्तिस्पर्शोदयेऽभवत् ॥ सस्मारपूर्ववृत्तांतमंतःस्फुरदिवास्थितं ॥ २६ ॥ त्यक्तदेहैकराज्यत्वंलीलाविलसितान्वितं ॥ ज्ञात्वाप्रज्ञप्तिवृत्तांतंलीलायास्तुविजृंभितं ॥ २७ ॥ आत्मोदंतंबभूवासावुह्यमानइवार्णवे॥ उवाचात्मनिसंसारेबतमायेयमातता ॥ २८ ॥

अर्थ—ऐसा कहती हुई सरस्वतीने अपने हस्तकमलसे राजाका मस्तक स्पर्श किया, इसके अनन्तरही पद्मराजाके हृदयाकाशका जो मायारूपी अन्धकार जीवरूपको आच्छादन करनेवालाथा वह सर्वथा क्षयको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ चित् भगवतीके स्पर्श करतेही राजाका हृदय अन्तःप्रकाशमय होगया, और अपने पूर्ववृत्तान्तोंके ऐसे स्मरण किया मानों वे सब अन्तःकरणमें सम्मुख स्थित हैं ॥ २६ ॥ शरीर तथा संसारके एक राजापनको लीलाके विलास सहित त्यागना, सरस्वतीका वृत्तान्त, और लीलाकी चेष्टाको जानकर अर्थात् सरस्वतीके प्रभावसे जो बात अनुभूत न थी उसकोभी राजा जानगया ॥ २७ ॥ अपने सम्पूर्ण वृत्तान्तको जानगया और राजा ऐसा होगया मानों समुद्रमें तरंगे लेरहाहै, और अपने मनमें कहने लगा कि अहो! संसारमें यह माया कैसी व्याप्त होरहीहै ॥ २८ ॥

परिज्ञाताप्रसादेनदेव्योरिहमयाधुना ॥ राजोवाच ॥ हेदेव्यौकिमिदंनामदिनमेकंमृतस्यमे ॥ २९ ॥ गतमयेहजातानिवयोवर्षाणिसप्ततिः ॥ स्मराम्यनेककार्याणिस्मरामिप्रपितामहम् ॥ ३० ॥ स्मरामिबाल्यंतारुण्यंमित्रंबंधुपरिच्छदम् ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ राजन्मृतिमहामोहमूर्छायाःसमनंतरम् ॥ ३१ ॥ तस्मिंल्लोकांतरेतीतेतस्मिन्नेवमुहूर्त्तके ॥ तस्मिन्नेवगृहेचास्मिन्नेवव्योम्न्यपिसद्मनि ॥ ३२ ॥ अयंतस्यगृहस्यांतर्व्योम्न्येवकिलस्थिते ॥ गिरिग्रामकविप्रस्यगृहेंतर्भूपमंडपः ॥ ३३ ॥ तस्यांतरेयमाभातिप्रत्येकंचजगद्गृहम् ॥ किलब्राह्मणगेहांतर्जीवस्तेमद्गृहास्थितः ॥ ३४ ॥ तत्रैवतस्यभूपीठंतस्मिंश्चकिलमंडपे ॥ तस्यैवचगृहस्यांतरिदंसंसारमंडलम् ॥ ३५ ॥ तत्रैवेदंतवगृहंस्थितमारंभमंथरम् ॥ तत्रैवचेतसितवानिर्मलाकाशनिर्मले ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसको मैंने ज्ञप्ति भगवतीकी कृपासे अब जाना, राजा बोला कि—हे देवियो! यह क्या वार्ता है कि मुझे मरे आज केवल एकही दिन बीताहै ॥ २९ ॥ और मेरी अवस्था यहां सत्तर ७० वर्षकी होगई और अनेक कार्य्योंको मैं स्मरण करता हुं, और अपने प्रपितामहकोभी स्मरण करताहुं ॥ ३० ॥ मैं अपनी बाल्यअवस्था, युवावस्था, मित्रोंको, बन्धुओंको और परिवारको स्मरण करताहुं, ज्ञप्तिजी बोली—राजन् मृत्युरूप महामूर्च्छाके समनन्तरही ॥ ३१ ॥ इसी तुमारे स्थानमें, उस स्थानके चिदाकाशमें, मायारूप आवरण नष्ट होनेपर, गिरिग्रामके ब्राह्मणके गृहके भीतर पद्मलोकान्तरमें उसी राजगृहमें उसमेंभी राजाके प्रधान गृहके अन्तराकाशमें यह ब्रह्माण्ड मण्डप निश्चय करके स्थित है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उसीके भीतर यह जगत्रूपी गृह प्रत्येकको भान होताहै, और उसी-ब्राह्मणके गृहाकाशमें यह तुमारा जीव मेरा भक्त होके उपासना करताहै ॥ ३४ ॥ और उसी मण्डपके भीतर तुमारा राज्यमण्डल है, तथा उसी गृहके भीतर यह पद्मराजाका संसार मण्डल है ॥ ३५ ॥ और वहांही अनेक पदार्थोंसे पूर्ण यह तुमारा राज्यभवनभी स्थित है और उसी मण्डपमें आकाशके सदृश निर्मल तुमारे चित्तमें ॥ ३६ ॥

प्रतिभासमागतमिदंव्यवहारभ्रमाततम् ॥ यथेदंनाममेजन्मतथेक्ष्वाकुकुलंमम ॥ ३७ ॥ एवंनामानएतेमेपुराभूवन्पितामहाः ॥ जातोहमभवंबालोदशवर्षस्यमेपिता ॥ ३८ ॥ परिव्राड्विपिनंयातइहराज्येभिषिच्यमाम् ॥ ततोदिग्विजयंकृत्वाकृत्वाराज्यमकंटकम् ॥ ३९ ॥ अमीभिर्मंत्रिभिःपौरैःपालयामिवसुंधराम् ॥ यज्ञक्रियाक्रमवतोधर्मेणपालयतःप्रजाः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह व्यवहारका भ्रम व्याप्त तुमारी बुद्धिमे भासताहै, जैसे यह मेरा नाम है यह इक्ष्वाकु मेरा कुल है ॥ ३७ ॥ इस प्रकारके नामधारी ये मेरे प्रपितामह पूर्वकालमें हुये थे, इस प्रकार मैं उत्पन्न हुआ, और बालक था, दशवर्षका जब मैं था तभी मेरे पिता ॥ ३८ ॥ मुझे इस राज्यमें अभिषेक करके आप संन्यासी होके बनको चले गये, इसके अनन्तर मैं दिग्विजय करके और राज्यको अकण्टक करके ॥ ३९ ॥ इन मंत्रियों तथा पुरनिवासियोंके साथ मैं पृथिवीका पालन करताहुं, और यज्ञ तथा क्रिया क्रमसहित धर्मपूर्वक मुझे प्रजापालन करते हुये ॥ ४० ॥

वयसःसमतीतानिममवर्षाणिसप्ततिः ॥ इदंपरबलंप्राप्तंममदारुणविग्रहः ॥ ४१ ॥ युद्धंकृत्वेदमायातोगृहमस्मिन्यथास्थितम् ॥ इमेदेव्यौगृहेप्राप्तेममैतेपूजयाम्यहम् ॥ ४२ ॥ पूजिताहिप्रयच्छंतिदेवताःस्वसमीहितम् ॥ ममेयमेतयोरेकाज्ञानंजातिस्मृतिप्रदम् ॥ ४३ ॥ इहदत्तवतीदेवीभाब्जस्येवविकासनम् ॥ इदानींकृतकृत्योस्मिजातोस्मिगतसंशयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मेरी अवस्थाके सत्तर ७० वर्ष बीतगये, और इस मेरी परम उत्तम सेनाने बडाभारी युद्ध किया ॥४१॥ युद्ध करके यह मैं आया और अपने गृहमें पूर्वके समान स्थित हुं, और ये दोनों देवियां मेरे गृहमें प्राप्त हुई और मैं इनकी पूजा करताहुं ॥ ४२ ॥ क्योंकि पूजा किये हुये देवता अपना चाहा हुआ फल देते हैं, इनमेंसे एकने मुझे जातिस्मरण करानेका ज्ञान दिया ॥ ४३ ॥ यहांपर देवीने मुझे ऐसी प्रभा (दीप्ति) दी, जैसे कमलको विकसित करनेवाली सूर्य्यकी प्रभा, इस समय मैं कृतकृत्य तथा संशय रहित होगया ॥ ४४ ॥

शाम्याभिपरिनिर्वामिसुखमासेचकेवलम् ॥ इतीयमाततभ्रांतिर्भवतोभूरिसंभ्रमा ॥ ४५ ॥ नानाचारविहाराढ्यासलोकांतरसंचरा ॥ यस्मिन्नेवमुहूर्त्तेत्वंमृतिमभ्यागतःपुरा ॥ ४६ ॥ तदैवप्रतिभैषातेस्वयमेवोदिताहृदि ॥ एकामावर्त्तचलनांत्यक्त्वादत्तेयथापराम् ॥ ४७ ॥ क्षिप्रमेवनदीवाहोवित्प्रवाहस्तथैवच ॥ आवर्त्तांतरसंमिश्रोयथावर्त्तःप्रवर्त्तते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस समय सम्पूर्ण दुःखोंके शमन होनेसे शान्तहुं, अत्यन्त सुखकी वृद्धिसे तृप्तहुं, केवल एक सुखरस मात्र होके स्थितहुं, इत्यादि अनेक भ्रान्ति आपके चित्तमें व्याप्त होरही हैं ॥ ४५ ॥ यह तुमारी भ्रान्ति, नानाप्रकारके आचार तथा बिहारसे पूर्ण तथा लोकान्तरमें संचरण (गमन) करनेवाले अस्मद् आदि सिद्धहैं, और पूर्वकालमें जिस मुहूर्तमें तुम मृत्युको प्राप्त हुये ॥ ४६ ॥ उसी समय तुमारे हृदयमें यह आपसे आप उदयको प्राप्त हुई जैसे नदीका प्रवाह एक आवर्तकी चलना (चाल) को त्यागके शीघ्र दूसरीको धारण करताहै ऐसेही चित्तका प्रवाहभी एक वृत्तिको त्यागके दूसरी ग्रहण करताहै, अथवा एक आवर्तसे मिलके जैसे दूसरा आवर्त प्रवृत्त होताहै ऐसी दशा चित्तकी है ॥४७॥४८॥

कदाचिदेवंसर्गश्रीर्मिश्रामिश्राचवर्द्धते ॥ तस्मिन्मृतिमुहूर्त्तेतेप्रतिभानमुपागतम् ॥ ४९ ॥ एतज्जालमसद्रूपंचिद्भानोःसमुपस्थितम् ॥ यथास्वप्नमुहूर्ततःसंवत्सरशतभ्रमः ॥ ५० ॥ यथासंकल्पनिर्माणेजीवनंमरणंपुनः ॥ यथागंधर्वनगरेकुड्यमंडनवेदनम् ॥ ५१ ॥ यथानौयानसंरंभेवृक्षपर्वतवेपनम् ॥ यथास्वधातुसंक्षोभेपूर्वपर्वतनर्त्तनम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! कदाचित् (जाग्रत् अवस्थामें) यह सृष्टिकी शोभा दूसरे जीवसे मिली हुई और कदाचित् (स्वप्नमें) अन्य जीवके सम्बन्धसे रहित वृद्धिको प्राप्त होती है, और हे राजन् ! यह असत्रूप जगत् उसी तुमारे मृत्युकालके मुहूर्तमें चित्रूपी सूर्य्य जो तुम हो उसकी प्रतिभामें उपस्थित ऐसे हुआ जैसे एक मुहूर्तके स्वप्नमें सैकडों वर्षोंका भ्रम ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जैसे संकल्पकी रचनामें जीवन मरण पुनः होते हैं, और जैसे गन्धर्व नगरमें चित्रादिका दर्शन होताहै ॥ ५१ ॥ जैसे नौकाके यानमें संभ्रम होनेसे वृक्ष पर्वत आदिका कम्पन भान होताहै, और अपने तथा वातपित्त आदि धातुओंके संक्षोभ होनेसे अपूर्व पर्वतका नाचना प्रतीत होताहै ॥ ५२ ॥

यथासमंजसंस्वप्नेस्वशिरःप्रविकर्त्तनम् ॥ मिथ्यैवैवमियंप्रौढाभ्रांतिराततरूपिणी ॥ ५३ ॥ वस्तुतस्तुनजातोसिनमृतोसिकदाचन ॥ शुद्धविज्ञानरूपस्त्वंशांतआत्मनितिष्ठसि ॥ ५४ ॥ पश्यसीवैतदखिलंनचपश्यसिकिंचन ॥ सर्वात्मकतयानित्यंप्रकचस्यात्मनात्मनि ॥ ५५ ॥ महामणिरिवोदारआलोकइवभास्वरः ॥ वस्तुतस्तुनभूपीठमिदंनचभवानयम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जैसे स्वप्नमें असंगत अपने शिरका कटना आदि भान होताहै उसीप्रकार मिथ्याही व्याप्तरूप यह भ्रान्ति बढगई है ॥ ५३ ॥ और हे राजन् ! यथार्थमें तो तुम न तो कभी उत्पन्न हुये और न मरे, किन्तु शुद्ध ज्ञान-रूप अपने आत्मामें आपही स्थित हो ॥ ५४ ॥ इस दृश्यको तुम देखनेसे प्रतीत होतेहो परन्तु यथार्थमें इसका रूप मिथ्या होनेसे तुम कुछ नहीं देखते, तुम सबका आत्मा होनेसे अपने आत्मामें आप प्रकाशमान हो ॥५५ ॥ हे राजन् ! तुम उदार महामणि वा सूर्य्यके समान प्रकाशमानहो और यथार्थमें तो न तो यह तुमारा राज्यहै और न यह तुमारा (विदूरथका) यह देहहै ॥ ५६ ॥

नचेमेगिरयोग्रामानचैतेनचवैवयम् ॥ गिरिग्रामकविप्रस्यमंडपाकाशकेकिल ॥ ५७ ॥ तल्लीलाभर्तृदाराढ्यंजगदाभातिभास्वरम् ॥ तत्रलीलाराजधानीमंडपामंडिताकृतिः ॥ ५८ ॥ भातितस्योदरेव्योम्नितदेवंविदितंजगत् ॥ तस्मिन्जगतिगेहेंतर्यस्मिन्वयमिहस्थिताः ॥ ५९ ॥ एवंतेषांमंडपानांव्योमाव्योमैवनिर्मलम् ॥ तथैवमंडपेष्वस्तिनमहीनचपत्तनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—और न ये पर्वत हैं न ये ग्राम हैं और न हमलोग हैं, देखिये छोटेसे गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें ॥ ५७ ॥ लीला उसके पति तथा अनेक स्त्रियोंसे पूर्ण यह प्रकाशमान जगत् भान होताहै, और उसीमें अनेक मण्डपोंसे भूषित लीलाकी राजधानीभी शोभित होरही है ॥ ५८ ॥ उसी गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें जिस गृहमें हम लोग सब स्थित हैं, और सम्पूर्ण विदित् जगत् भान हो रहाहै ॥५९॥ इन सब मण्डपोंका जो आकाश है वह यथार्थमें आ-काश शून्य केवल ब्रह्महीं है, इसीप्रकार इन मण्डपोंमें न पृथिवी है और न नगर हैं ॥ ६० ॥

नवनानिनशैलौघानमेघसरिदर्णवाः ॥ केवलंतत्रनिःशून्येविहरंतिगृहेजनाः ॥ ६१ ॥ नपश्यंतिजनानापिपार्थिवानचभूधराः ॥ विदूरथउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथंदेविममेहानुचराइमे ॥ ६२ ॥ संपन्नाआत्मनासंतितेकिमात्मनिनोथवा ॥ जगत्स्वप्नार्थवद्भातितस्यस्वप्ननरादयः ॥ ६३ ॥ कथमात्मनिसत्याःस्युर्नसत्यावेतिमेवद ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ राजन्विदितवेद्येषुशुद्धबोधैकरूपिषु ॥ ६४ ॥

अर्थ—न ये बन हैं, न पर्वतोंके समूह हैं न मेघ हैं, न नदियां हैं, और न समुद्र हैं अन्य पदार्थोंसे शून्य केवल चिन्मात्र पूर्ण ब्रह्ममें मिथ्या गृहमें मिथ्याभूत प्राणी विहारकर रहे हैं ॥६१॥ न ये मनुष्य देखते हैं, और न राजा न प-र्वत हैं, राजा बोला–हे देवि ऐसा है तो ये हमारे मृत्यलोग किसप्रकार सत्यहैं ? ॥६२॥ वे मेरे सदृश सत्स्वभाव आत्मामें जीवभावसे युक्त हैं कि नहीं, ये मेरेही स्वप्नमें स्वप्न पदार्थके सदृश ये मनुष्य आदि भान होते हैं ॥ ६३ ॥ किसप्रकार सत्य हैं और कैसे नहीं सो कहो, श्रीसरस्वतीजी बोली–हे राजन् ! वेद्य वस्तुको जाननेसे शुद्ध बोधरूप जीवोंमें ॥६४॥

नकिंचिदेतत्सद्रूपंचिद्व्योमात्मसुज्ञागतम् ॥ शुद्धबोधात्मनोभातिकृतोनामजगद्भ्रमः ॥ ६५ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेशांतेपुनःसर्पभ्रमःकुतः ॥ असद्भावेपरिज्ञातेकुतःसत्ताजगद्भ्रमे ॥ ६६ ॥ परिज्ञातेमृगजलेपुनर्जलमतिःकुतः ॥ स्वप्नकालेपरिज्ञातेस्वेस्वप्नमरणंकुतः ॥ स्वस्वप्नेस्वप्नमृतिभीरमृत्स्यैवजायते ॥ ६७ ॥ बुद्धस्यशुद्धस्यशरन्नभःश्रीःस्वच्छावदातातिततात्माशयस्य ॥ अहंजगच्चेतिकुशब्दकार्थोनवस्तुतःसोंगविवाचिकंतत् ॥ ६८ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ ६९ ॥ ॥ पंचमदिनम् ॥ ५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भ्रांतिविचारवर्णनं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—चिदाकाशमें यह जगत्का पदार्थ कुछभी सत्रूप नहीं, उनको यह जगत्का भ्रम शुद्ध बोधरूपी भान होताहै ॥ ६५ ॥ रज्जुमें सर्पभ्रम शान्त होनेपर पुनः सर्पभ्रम कहां, इसकी असत्यता जाननेपर जगत् भ्रममें सत्ता कहां ॥ ६६ ॥ मृगतृष्णाका भाव जानलेनेपर पुनः उसमें जलबुद्धि कैसी, स्वप्नकाल जानलेनेपर पुनः अपने स्वप्नमें अपना मरण कैसा ? अपने स्वप्नमें अपने मरणका भय उसीको होताहै जो मरा नहीं है ॥ ६७ ॥ हे प्रिय रामजी ! जो शुद्ध बोधरूप है जिसका अन्तःकरण परमात्माकी व्यापकतासे विस्तारको प्राप्त होगयाहै उसको अज्ञानरूपी मेघके नष्ट होनेपर जैसे आकाशकी शुद्ध शोभा भान होती है ऐसेही यह जगत्शोभाभी भान होती है, और अज्ञदृष्टिसे जो 'अहम्' तथा कुत्सितजगत् शब्द उसकी दृष्टिमें नहीं हैं, क्योंकि ये सब वाणीके विषयमात्र हैं, "वाचारम्भणं वि-कारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यादि श्रुतिः" (घटशराव आदि विकार केवल शब्दमात्रहैं मृत्तिकाही सत्य है)

॥ ६८ ॥ देवदूत कहता है राजन् ! श्रीवसिष्ठमुनिके इतना कहनेपर दिनका अन्त होगया और सूर्य्यअस्त होगये और सभाभी सायंकालकी सन्ध्यास्नान करनेको बिदाहुई, और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ परस्पर प्रणाम करके पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ६९ ॥ पंचमदिनं ॥ ५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने भ्रान्तिविचारवर्णनं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अज्ञानमें जगत् तथा स्वप्नकीभी सत्यता, और बरदान पर्य्यन्त शेष (बाकी) कथा इस ४२ वें सर्गमें निरूपण (वर्णन) कीगई हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यस्त्वबुद्धमतिर्मूढोरूढोनविततेपदे ॥ वज्रसारमिदंतस्यजगदस्त्यसदेवसत् ॥ १ ॥ यथाबालस्यवेतालोमृतिपर्यंतदुःखदः ॥ असदेवसदाकारंतथामूढमतेर्जगत् ॥ २ ॥ तापएव यथावारिमृगाणांभ्रमकारणम् ॥ असत्यमेवसत्याभंतथामूढमतेर्जगत् ॥ ३ ॥ यथास्वप्नमृतिर्जंतो रसत्यासत्यरूपिणी ॥ अर्थक्रियाकरीभातितथामूढधियांजगत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जिस मूढबुद्धिको परमात्माके व्यापकपदमें दृढबोध नहीं है, उसको यह जगत् बज्रके समान दृढ सत्य भान होताहै ॥ १ ॥ जिसप्रकार बालकको वेताल मरण पर्य्यंत दुःखदायी होताहै, ऐसेही मूढबुद्धिके लिये इस जगत्की दशा है ॥ २ ॥ जैसे मृगोंको तापहि मृगतृष्णामें जलके भ्रमका कारण है, ऐसेही असत्य जगत्का सत्यके समान भासनाही जगत्के भ्रमका कारण है ॥ ३ ॥ जैसे प्राणीकी असत्यही सत्यरूप अपने स्वप्नकी मृत्यु अर्थ क्रियाकारी भासती है ऐसेही मूढबुद्धियोंको जगत् ॥ ४ ॥

अव्युत्पन्नस्यकनकेकानकेकटकेयथा ॥ कटकज्ञप्तिरेवास्तिनमनागपिहेमधीः ॥ ५ ॥ तथाज्ञस्यपुरागा रनगनागेंद्रभासुरा ॥ इयंदृश्यदृगेवास्तिनत्वन्यापरमार्थदृक् ॥ ६ ॥ यथानभसिमुक्तालीपिच्छकेशोंड्र कादयः ॥ असत्याःसत्यतांयाताभात्येवंदृढदृशांजगत् ॥७॥ दीर्घस्वप्नमिदंविश्वंविद्धयहंतादिसंयुतम् ॥ अत्रान्येस्वप्नपुरुषायथासत्यास्तथाशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णसे बनेहुये कडेमें अज्ञानीको अनुगत सुवर्णबुद्धि कुछभी नहीं होती किन्तु कडाहै यही बुद्धि होती है ॥ ५ ॥ ऐसेही अज्ञानी पुरुषको पुर, स्थान, नगर, और बडे २ हस्ती आदिसे प्रकाशमान यह जगत् दृश्यकी शोभा दृश्यरूपसेही सत् है ऐसा भान होताहै, और अन्य परमार्थदृष्टि उनको नहीं भान होती ॥ ६ ॥ जैसे आकाशमें मोतियोंकी माला और मयूरपंख केश आदि असत्यरूपभी सत्यके समान होजातेहैं, ऐसेही मूढ दृष्टियोंके लिये यह असत्य जगत्भी सत्यवत् भान होताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह अहंकारादि सहित सम्पूर्ण विश्व एक प्रकारका दीर्घ (बडा) स्वप्न जानो इसमें अपनेसे पृथक् सत्यजन जो भासतेहैं वे स्वप्नमें दूसरे पुरुषादिके समान हैं उनकी विशेष व्यवस्था सुनो ॥ ८ ॥

अस्तिसर्वगतंशांतंपरमार्थघनंशुचि ॥ अचेत्यचिन्मात्रवपुःपरमाकाशमाततम् ॥ ९ ॥ तत्सर्वगंसर्व शक्तिसर्वंसर्वात्मकंस्वयम् ॥ यत्रयत्रयथोदेतितथास्तेतत्रतत्रवै ॥ १० ॥ तेनस्वप्नपुरेद्रष्टायान्वेत्तिपुर वासिनः ॥ नरांनातनराएवक्षणात्तस्यभवंतिते ॥ ११ ॥यद्द्रष्टुश्चित्स्वरूपंतत्स्वप्नाकाशांतरस्थितम् ॥ स्वप्नाकाशचित्ताभंहिनरानामेतिभावितम् ॥ १२ ॥

अर्थ - सर्वगत शान्तरूप, सर्वथा सत्य, पवित्र, विषयशून्य, चिन्मात्र शरीर व्यापक चिदाकाशही है ॥ ९ ॥ वह सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान् सर्वत्र सर्वरूप आपही है, मायासे जहां २ जैसे २ अर्थ क्रियाके योग्य आविर्भूत होताहै वहां २ वैसाही भासताहै ॥ १० ॥ इस रीतिसे जाग्रतमें शास्त्रीय यज्ञ आदि अर्थ क्रियाके योग्य रूपसे जहां आविर्भूत है वहां स्वप्न नहीं, यह अवान्तर भेद यद्यपि है तथापि सत्रूपतामें विशेषता नहीं है, इस आशयसे कहतेहैं कि स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नके नगरमें जनकपुरवासियोंको मनुष्य करके जानताहै वे क्षणभरके लिये उसको मनुष्यही हो-जातेहैं ॥ ११ ॥ यहांपर द्रष्टाका जो चेतन स्वरूप स्वप्नाकाशमें है वही स्वप्नाकाशके चित्तके सदृश भासमान मनुष्य होजाताहै अर्थात् आप वह सब पदार्थरूप होजाताहै ॥ १२ ॥

वेदितृत्वैक्यवशतोनरतेवावबुध्यते ॥ आत्मन्यतश्चिद्बलेनद्वयोरप्येतिसत्यता ॥१३॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नेपिस्वप्नपुरुषानसत्याःस्युर्मुनेयदि ॥ वदतत्कोभवेद्दोषोमायामात्रशरीरिणि ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्ननपुरवास्तव्यावस्तुतःसत्यरूपिणः ॥ प्रमाणमत्रशृणुमेप्रत्यक्षंनामनेतरत् ॥ १५ ॥ सर्गादावात्मभूर्भातिस्वप्नाभानुभवात्मकः ॥ तत्संकल्पकलंविश्वमेवंस्वप्नाभमेवतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जाननेवालेका जो सत्य स्वप्नप्रकाश अपरोक्ष चैतन्यरूप धर्म है उसके साथ जो अभेदका अध्यास है उसीसे मनुष्यता आदिका बोध होताहै, इसलिये आत्मामें चित्केही बलसे जाग्रत् और स्वप्नमें जो अध्यस्त पदार्थ है उनकी अथवा उनके धर्मोंकी सत्यता अधिष्ठान रूपसे सत्य है अर्थात् जाग्रत् या स्वप्नमें जो आत्मामें मनुष्यता बुद्धिमें और अध्यस्तकी सत्यता बुद्धिमें परस्परका अध्यासही कारण है ॥१३॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! यदि मायामात्र शरीरमें स्वप्नके पुरुष यदि स्वप्नकी दशामेंभी सत्य नहीं कहिये क्या दोष है अर्थात् जाग्रत्के पुरुष यदि अधिष्ठान रूपसे सत्य न माने जाय तो व्यवहारमें गडबड और कर्मकाण्ड बोधक शास्त्र अप्रमाण होजायगा और स्वप्नके सत्य माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है यदि ऐसा है तो हमारा जगत् स्वप्नके समान कैसे? ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! स्वप्नके पदार्थ ब्रह्मके समान सत्यरूप नहीं है इतनाही कहसकतेहैं न कि निराधिष्ठान होनेसे अधिष्ठान रूपसेभी सत्य नहीं है, इसमें सुनिये हमारे निकट प्रत्यक्ष प्रमाणहै और कुछ नहीं है, अर्थात् जो बन्ध्यापुत्रवत् सर्वथा असत् है उसका प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ १५ ॥ सृष्टिके आदिमें ब्रह्माजी स्वप्नके अनुभव सहितही प्रकाशतेहैं उनके संकल्पसे यह विश्व रचा गयाहै इसलिये यह स्पप्नके तुल्यही है अर्थात् यह विश्वभी ब्रह्माजीका स्वप्नही है ॥ १६ ॥

एवंविश्वमिदंस्वप्नस्तत्रसत्यंभवान्मम ॥ तथैवत्वंतथैवान्येस्वप्नेस्वप्नवरातृणाम् ॥ १७ ॥ स्वप्नेनगर वास्तव्याःसत्यानस्युरिमेयदि ॥ तदिहापितदाकारेनसत्यंमेमनागपि ॥ १८ ॥ यथाहंतवसत्यात्मा सत्यंसर्वंभवेन्मम ॥ स्वप्नोपलंभेसंसारेमिथःसिद्धैवमेदृशी ॥ १९ ॥ संसारेविपुलेस्वप्नेयथासत्य महंतव ॥ यथात्वमपिमेसत्यंसर्वंस्वप्नेष्वितिक्रमः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी! इस स्वप्नमय विश्वमें तुम मेरी दृष्टिमें सत्यहो क्योंकि अपनी सत्यताका अपलाप तुम आप नहीं करसकते, जैसे तुम सत्य हो ऐसेही तुमारी तथा मेरी दृष्टिमें अन्य लोगभी सत्य हैं, इसीप्रकार अपने २ अनुभवके अनुसार सब मनुष्योंकी स्वप्नकी सत्यना सिद्ध है ॥ १७ ॥ हे रामजी! स्वप्नके नगर और पुरके निवासी आदि यदि सत्य (अधिष्ठान रूपसे) सत्य नहीं तो इस जाग्रत्मेंभी मुझे उनके आकारमें कुछभी सत्यता बुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जैसे मैं तुमको सत्य भान होताहुं ऐसेही मेरी दृष्टिमें सब सत्य है, क्योंकि स्वप्न प्राप्त संसारमें परस्परकी सिद्धिके लिये ऐसाही ज्ञान है ॥ १९ ॥ हे रामजी! इस संसाररूपी दीर्घस्वप्नमें, जैसे मैं तुमको सत्य भान होताहुं ऐसाही तुम मुझे होतेहो, और सब स्वप्नोंमें यही रीति है ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नद्रष्टरिनिर्निद्रेतद्द्रष्टुःस्वप्नपत्तनम् ॥ सद्रूपत्वात्तथैवास्तेममेतिभगवन्मतिः ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतत्तथैवास्तेसत्यत्वात्स्वप्नपत्तनम् ॥ स्वप्नद्रष्टरिनिर्निद्रेप्याकाश विशदाकृति ॥ २२ ॥ एतदास्तामिदंतावद्यज्जाग्रदिवमन्यसे ॥ विद्धितत्स्वप्नमेवांतर्देशकालाद्यपूरकम् ॥ २३ ॥ एवंसर्वमिदंभातिनसत्यंसत्यवत्स्थितम् ॥ रंजयत्यपिमिथ्यैवस्वप्नस्त्रीसुरतोपमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले--हे भगवन्! आपके बचनसे मेरी बुद्धिमें स्वप्न और जाग्रत् तुल्य भान होनेलगा परन्तु स्वप्नके द्रष्टाके जागनेपर स्वप्नके नगर आदि सत्रूपसे क्यों नहीं स्थित रहते ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! ऐसाही है जैसा आप स्वप्न द्रष्टाके जागनेपरभी स्वप्नका नगर आदि अधिष्ठान रूपसे आकाशके समान विशाल आकृति धारण किये विद्यमान है ॥ २२ ॥ यदि यह कहो कि जाग्रत्के समान एक स्वप्नके पदार्थोंका दूसरे स्वप्नमें वा जाग्रत्की अनुवृत्ति होनी चाहिये सो नहीं क्योंकि जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रत् देश कालके पूरक नहीं है ऐसेही जिसको तुम जाग्रत् भान रहेहो वहभी तो स्वप्नके देश काल आदिका पूरक नहीं ॥ २३ ॥ हे रामजी! इसप्रकार यह जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सत्यके सदृश स्थित भान होताहै वह सत्य नहीं है, मिथ्याभी यह सबके चित्तको आकर्षण करताहै जैसें मिथ्याभी स्वप्नकी स्त्री सुरतके समान (जाग्रत् स्त्रीके सदृश) मनोरंजन करतीही है ॥ २४ ॥

सर्वत्रविद्यतेसर्वंदेहस्यांतर्बहिस्तथा ॥ यत्तुवेत्तियथासंवित्तत्तथास्वैवपश्यति ॥ २५ ॥ यत्कोशेवि द्यतेद्रव्यंतद्द्रष्ट्रालभ्यतेयथा ॥ तथास्तिसर्वंचिद्व्योम्निचेत्यतेतत्त्वनेनवै ॥ २६ ॥ अनन्तरमुवाचेदंदे

वीज्ञप्तिर्विदूरथम् ॥ कृत्वाबोधामृतासेकैर्विवेकांकुरसुन्दरम् ॥ २७ ॥ एतदेवमयाराजन्लीलार्थमुप वर्णितम् ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यावोदृष्टादृष्टांतदृष्टय: ॥ २८ ॥

अर्थ—और संवित् (ज्ञान) वह शरीरके बाहर भीतर सर्वत्र पूर्ण और सर्वात्मक वह मायाके प्रभावसे जहां जैसी स्फूरण करताहै वहां वैसाही आपही देखताहै ॥ २५ ॥ जैसे जो द्रव्यकोश (खजाने) में होताहै वह द्रष्टाको अ-वश्य प्राप्त है ऐसेही चिदाकाशमें सब कुछ है वह जैसी स्फुरणा करताहै वैसाही उसको भान होताहै॥२६॥हे रामजी ! इसके अनन्तर ज्ञप्ति देवीने ज्ञानरूपी अमृतके सिंचन करके विवेकरूपी अंकुरसे सुन्दर करके विदूरथसे यह बात कही ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यह बार्ता लीलाके लिये मैंने वर्णन कियाहै, तुमारे अभिलषित पदार्थकी सिद्धि हो हमलोग अब जाती हैं, क्योंकि गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपके भीतर लीलाने तुमारे ब्रह्माण्डकी कल्पना देखली ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिप्रोक्तेसरस्वत्यागिरामधुरवर्णया ॥ उवाचवचनंधीमान्भूमिपालोविदूरथ: ॥ २९॥ विदूरथउवाच ॥ ममापिदर्शनंदेविमोघंभवतिनार्थिनि ॥ महाफलप्रदायास्तुकथंतवभविष्यति ॥ ३० ॥ अहंदेहंसमुत्सृज्यलोकांतरमितोपरम् ॥ निजमायामिदेदेविस्वप्नात्स्वप्नान्तरंयथा ॥ ३१ ॥ पश्यादिशाशुमांमात:प्रपन्नंशरणागतम् ॥ भक्तेवहेलावरदेमहतांनविराजते ॥ ३२ ॥ यंप्रदेशमहंयामितमेवायात्वयंमम ॥ मंत्रीकुमारीचैवेयंबालेतिकुरुमेदयां ॥ ३३ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ आगच्छरा ज्यमुचितार्थविलासचारुप्राग्जन्ममंडलपतेकुरुनिर्विशंकं ॥ अस्माभिरर्थिजनकामनिराकृतिर्हिदृष्टान-काचनकदाचिदपीतिविद्धि ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यत्वनिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तम: सर्ग: ॥ ४२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–मधुर अक्षर सहित बाणीसे जब भगवतीने ऐसा कहा तब बुद्धिमान् (तुमारे अभिलषित पदार्थकी सिद्धिहो इसके आशयको जाननेवाला) राजा विदूरथ यह बचन बोला कि ॥ २९ ॥ हे देवि ! मुक्त मनुष्यकाभी दर्शन अर्थियोंके लिये निष्फल नहीं होता तो महाफलके देनेवाली जो आप हैं उनका कैसे निष्फल होगा ॥ ३० ॥ हे देवि ! मैं इस शरीरको त्यागके इस लोकसे परे अपने निज लोकको ऐसे आताहुं जैसे एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नको ॥ ३१ ॥ हे वरके देनेहारी भगवती मैं आपके शरणमें प्राप्तहुं मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो और शीघ्र आज्ञा दो क्योंकि महात्मालोग भक्तका निरादर नहीं करते ॥ ३२ ॥ हे देवि! यह दया मेरे ऊपर कीजिये जिस स्थानमें मैं आऊं उसी स्थानमें यह मेरा मंत्री और यह अविवाहित कन्याभी आवैं ॥ ३३ ॥ श्रीसरस्वतीजी बोली–हे राजन् ! आईये, लीलाके भाग्योंके योग्यपदार्थोंके विलासोंसे उत्तम, पूर्वजन्मके मण्डलके पतिका राज्य निश्शंक होके कीजिये हमलोगोंने अर्थीजनोंके कामनाका निराकरण कभी नहीं किया, और न कभी किसीने ऐसा करते (अर्थियोंकी का-मनाका निराकरण करते) हमको देखा, यह तुम निश्चय जानो ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यत्ववर्णनं नाम द्विचत्वारिंश: सर्ग: ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

राजाको अभीष्ट वरदानका देना अकस्मात् नगरका जलना, और जलते हुये पुरवासियोंकी चेष्टा इस ४३ वे सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ अस्मिन्रणवरेराजन्मर्तव्यंभवताधुना ॥ प्राप्तव्यंप्राक्तनंराज्यंसर्वंप्रत्यक्षमेव ते ॥ १ ॥ कुमार्यामंत्रिणाचैवत्वयाचप्राक्तनंपुरं ॥ आगंतव्यंशवीभूतंप्राप्तव्यंतच्छरीरकं ॥ २ ॥ आवां यावोयथायातंवातरूपेणचत्वया ॥ आगंतव्य:सदेशस्तुकुमार्यामंत्रिणापिच ॥ ३ ॥ अन्यैवगतिरश्वस्य गतिरन्याखरोष्ट्रयो: ॥ मदस्विन्नकपोलस्यगतिरन्यैवदंतिन: ॥ ४ ॥ प्रस्तुतेतिकथायावन्मिथोमधुरभा षिणो: ॥ तावत्प्रविश्यसंभ्रांतउवाचोर्ध्वस्थितोनर: ॥ ५ ॥ देवसायकचक्रासिगदापरिघवृष्टिमत् ॥ महत्परबलंप्राप्तमेकार्णवइवोद्धत: ॥ ६ ॥ कल्पकालानिलोद्भूतकुलाचलशिलोपमं ॥ गदाशक्तिभुशुंडी नांवृष्टिमुंचतितिष्ठिमत् ॥ ७ ॥ नगरेनगसंकाशेलग्नोग्निर्व्याप्तदिक्तट: ॥ दहंश्चटचटास्फोटै:पात यत्युत्तमांपुरीम् ॥ ८ ॥

अर्थ--श्रीसरस्वती बोली–हे राजन्! इस श्रेष्ठयुद्धमें तुम मृत्युको अवश्य प्राप्त होओगे, और तुमारा पूर्वजन्मका राज्यभी अवश्य तुमको मिलेगा, यह सब प्रत्यक्ष तुमको होगा ॥ १ ॥ कुमारी और मंत्री तथा तुम उसी अपने पूर्वजन्मके नगरमें आओगे, और तुमको तुमारा पूर्वजन्मका मृतक शरीर मिलेगा ॥ २ ॥ हम दोनों जिसप्रकार आई वैसेही जाती हैं, और वायुरूप सूक्ष्म शरीरसे तुम, तुमारी यह कुमारी पुत्री, और मंत्रीभी सब उसी देशको प्राप्त होओगे ॥ ३ ॥ हे राजन्! अश्वकी गति अन्यही है और उष्ट्र तथा खच्चरकीभी गति भिन्न है, और मदसे जिसके कपोल भीग रहे हैं उस हस्तीकीभी गति दूसरीही है, अर्थात् यह सूक्ष्म शरीरकी गति मण्डपाकाशमेंभी मनोरथकी गतिके सदृश दूरकेही समान होती है अश्व आदिकी गतिके सदृश पूर्व सिद्ध देशकी दीर्घता इसके लिये नहीं चाहिये ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ हे रामजी! जिससमय दोनोंमें इसप्रकार मधु कथा होरहीथी उसीसमय एक भयसे सम्भ्रान्त मनुष्य ऊपर खडा होके बोला ॥ ६ ॥ हे राजन्! बाण, चक्र, तलवार, गदा, और परिघकी वृष्टि सहित ऊमडे हुये बडे समुद्रके सदृश एक सेना प्राप्त हुई है, युद्धके उत्साहसे प्रसन्न वह सेना प्रलयकालके पवनके सदृश मेरु आदि कुलाचलोंकी शिलाओंकोभी कंपाये डालती है, और गदा शक्ति और भुशुंडी आदिकी वृष्टि कररही है ॥ ७ ॥ हे राजन्! पर्वतके समान इस नगरमें सब दिशाओंमें व्याप्त होके अग्नि लगगई हैं, और चटचटा शब्दोंके साथ जला रही है ॥ ८ ॥

कल्पांबुदघटातुल्याव्योम्निधूममहाद्रयः ॥ बलात्प्रोड्डयनंकर्तुंप्रवृत्तागरुडाइव ॥९॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ससंभ्रमंवदत्येवंपुरुषेपरुषारवः ॥ उदभूत्पूरयन्नाशाबहिःकोलाहलोमहान् ॥ १० ॥ बलादाकर्णकृष्टानांधनुषांशरवर्षिणाम् ॥ बृंहतामतिमत्तानांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ११ ॥ पुरेचटचटास्फोटैर्दहतां जातवेदसाम् ॥ पौराणांदग्धदाराणांमहाहलहलारवैः ॥ १२ ॥ तरतामग्निखंडानांटांकारःकथितोरवैः ॥ ज्वलितानांपरिस्पंदाद्धगद्धगितिचार्चिषाम् ॥ १३ ॥ अथवातायनाद्देव्यौमंत्रीराजाविदूरथः ॥ ददृशुः प्रोल्लसन्नादंमहानिशिमहापुरम् ॥ १४ ॥ प्रलयानलसंक्षुब्धपूर्णकार्णवरंहसा ॥ पूर्णपरबलेनोग्रहेतिमेघ तरंगिणा ॥ १५ ॥ कल्पांतवह्निविगलन्मेरुभूधरभासुरैः ॥ दह्यमानंमहाज्वालाज्वालैरंबरपूरकैः ॥१६॥

अर्थ—प्रलयकालके मेघके समूहके सदृश बडे २ धूमके पर्वत गरुडके समान बलसे उडनेको प्रवृत्त होरहे हैं ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार भयके साथ उस पुरुषके कहते हुये सब दिशाओंको पूर्ण करता हुआ कठोर शब्दोंसहित महान कोलाहल बाहरसे प्रगट हुआ ॥ १० ॥ बलसे कानतक खींचे हुये बाणकी वृष्टि करनेवाले धनुषोंके और बडे २ मदोन्मत्त वेगवान हाँथियोंके ॥ ११ ॥ चटचटा शब्दोंसे जलाते हुये अग्निकी कीरण निकली और जिनके स्त्री आदि जलगये थे ऐसे नगर निवासियोंसे इधर उधर उडते हुये अग्निके खण्डोंके और जलते हुये पदार्थोंकी गतिसे धग २ जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंके महा हलहला रवों (शब्दों) से महान् टांकर शब्द हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर दोनों देवियां मंत्री और राजा विदूरथने झरोंखेके मार्गसे देखा तो महारात्रिमें महान् नगर शब्दसे पूर्ण होरहाहै ॥ १४ ॥ भयंकर अस्त्रशस्त्ररूपी मेघ और तरंग सहित प्रलयकालके वायुसे संक्षुब्ध पूर्ण समुद्रके समान वेगवाली शत्रुकी सेनासे वह नगर पूर्णथा ॥ १५ ॥ प्रलयकालकी अग्निसे गलते हुये मेरुपर्वतके सदृश प्रकाशमान और आकाशको पूर्ण करनेवाली महाज्वालाओंकी शिखाओंसे वह नगर भस्मीभूत होरहाथा ॥ १६ ॥

मुष्टिग्राह्यमहामेघगर्जासंतर्जितोर्जितैः ॥ घोरैःकलकलारावैर्मांसलैर्दस्युजल्पितैः ॥ १७ ॥ पुष्करावर्त्तसंकाशधूम्राभ्रपिहितांबरम् ॥ प्रोड्डीनहेमाग्रनिभैर्ज्वालापुंजैर्निरंतरम् ॥ १८ ॥ तरद्वल्मुकखंडोग्रतारातरलितांबरम् ॥ अन्योन्यदेशसंप्राप्तप्रज्वलज्ज्वालनाचलम् ॥ १९ ॥ हतसैन्यपुरापातंद्रुतांगाराभ्रकोटरैः ॥ कर्कशाक्रंदनिर्दग्धलोकोग्रगर्जितम् ॥ २० ॥

अर्थ—दूसरोंके लूटनेमें तथा डरानेमें मेघोंकी गर्जनाके समान गर्जनाहै जिनकी ऐसे चोरोंके कल २ शब्द सहित तर्जनाओंसे वह नगर भयंकर होरहाहै ॥ १७ ॥ पुष्करावर्त (प्रलयकाल) धूमरूपी मेघोंसे आच्छादित आकाश जिसका ऐसा, और उडतेहुये सुवर्णके अग्रभागके सदृश ज्वालाओंके समूहोंसे नगर व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ जलते हुये चंचल काष्ठरूपी उत्पात सूचक रक्तताराओंसे आकाश जहांपर कल्पितसा होगयाहै, और एक देशकी ज्वालाका दूसरे देशमें परस्पर जानेसे गृहोंके समूहरूपी अग्निके पर्वत जहां जल रहेहैं ॥ १९ ॥ मारेहुयोंमेंसे बची सेनाओंके नगरमें जहां प्रवेश होरहाहै तथा चारोंओर फैलते हुये अंगाररूपी मेघोंके छिद्रोंसे उपलक्षित, कर्कश रोदन पूर्वक जले हुये मनुष्य समूहों करके और शत्रुओं करके उग्र गर्जना जहां होरही है ॥ २० ॥

कृशानुकणनाराचनिरंतरतरांबरम् ॥ बद्दहेतिशिलाजाललुठद्दग्धपुरोत्करम् ॥ २१ ॥ रणद्विरदसंघट्टकुट्टितोद्भटसद्भटम् ॥ विद्रवत्तस्करच्छेदमार्गकीर्णमहाधनम् ॥ २२ ॥ अंगारराशिनिपतन्नरनार्युग्ररोदन

म् ॥ स्फुटच्चटचटाशब्दप्रस्फुटत्स्फुटकाष्ठकम् ॥ २३ ॥ विपुलालातचक्रौघशतसूर्यनभस्तलं ॥ अंगार शिखिराकीर्णसमस्तवसुधातलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अग्निके कणोंसे तथा बाणोंसे आकाश जहां व्याप्त होरहाहै और शस्त्रोंसे तथा शिलाओंके समूहोंसे जलेहुये मनुष्य जहांपर नगर निवासियोंके समूह गिरे लोटरहे हैं ॥ २१ ॥ शब्द करते हुये हांथियोंके संघट्टसे उत्तम वीर जहां चूर्ण होरहे हैं और भागते हुये चोरोंके शिरोंके काटनेसे मार्गमें महा धन जहां बिखर रहाहै ॥ २२ ॥ अंगारोंकी राशियोंपर गिरते हुये नरनारियोंका जहां भयंकर रोदन होरहाहै और चटाशब्दोंके साथ जलते हुये काष्ठ जहां इधर उधर उडरहे हैं ॥२३॥ और जहां बडे २ आलात चक्रोंके समूहोंसे मानों आकाशतल सैकडों सूर्य्योंसे व्याप्त है और अंकारोंकी अग्नियोंसे मानो संपूर्ण भूमंडल जहां व्याप्त होरहा है ॥ २४ ॥

दग्धाग्निकाष्ठकंकाररणज्ज्वलनवेणवम् ॥ दग्धजंतुघनाक्रंदरुदत्सकलसैनिकम् ॥२५॥ पांसुशेषात्तराज श्रीवृद्धतृप्तहुताशनम् ॥ सकलग्रसनारंभसोद्योगाग्निमहाशनम् ॥ २६ ॥ यदृच्छात्कारडात्कारकठिनाग्निरटगृहम् ॥ अनंतजंतुभोज्यान्नवन्हिभुक्तेंधनस्पृहम् ॥२७॥ अथशुश्रावतत्रासौगिरोराजाविदूरथः ॥ योधानांदग्धदाराणांपश्यतामभिधावताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जलतेहुये अग्नि संयुक्त काष्ठोंके कडकडा शब्दोंके साथ शब्द करतेहुये वांसके काष्ठ जहां जल रहेहैं, और जलेहुये मनुष्योंके महान् आक्रन्दोंसे योद्धा लोग जहां रूदन कररहेहैं ॥ २५ ॥ राजाकी श्री केवल भस्म मात्र अवशेष रहजानेसे वृद्धिको प्राप्त तृप्त होगया अग्नि जहांपर, और सबका ग्रास करनेको महाभक्षक अग्नि जहां महान् उद्योग कररहाहै ॥ २६ ॥ अकस्मात् दैवकी इच्छासे चोरोंके सर्वस्वग्रहण और प्रहारसे, तथा दुर्निवार अग्निसे सब गृहोंके मनुष्य जहां चिल्लारहेहैं और अनन्त मनुष्योंके भोज्य पदार्थोंको तथा धान्यकी राशियोंको जब अग्निके जलादिया तब किन्हीं २ मनुष्योंको बचेहुये केवल काष्ठ मात्रमें अभिलाषा जहां लगरहीहै ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर, जिनके स्त्री आदि सब जलगयेहैं, और दूसरोंको देखतेहुये दौड रहेहैं ऐसे योद्धाओंके करूणाजनक ये शब्द वहांपर राजा विदूरथने सुने ॥ २८ ॥

हामत्तमरुदूर्ध्वस्थानंगारगृहपादपान् ॥ रणत्खरखरंनीरजालामातपपंथिनः ॥ २९ ॥ हादग्धदाराःप्रालेयशीतादेहेषुदंतिनाम् ॥ मग्नामनस्सुमहतामिवविज्ञानसूक्तयः ॥ ३० ॥ हातातहेतयोलग्नास्तरुणीकबरीतृणे ॥ ज्वलंतिशुष्कपर्णौघाइववीरानिलेरिताः ॥ ३१ ॥ आवर्त्तननदीदीर्घावहत्यूर्ध्वतरंगिणी ॥ पश्येयंधूमयमुनाव्योमगंगांप्रधावति ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे प्रिय सुहृद् ! अति खेदका विषय है कि बडे ऊंचे और रसकी अधिकतासे हरे इसीसे आतपको निवारण करनेवाले गृहके वृक्षोंको जडसे नष्ट करनेके वास्ते यह विपत्तीरूप वायु आया ॥ २९ ॥ हा पूर्वकालमें हिमसेभी अधिक शीतल स्त्रियां जलके मृतक हांथियोंके शरीरमें ऐसे गुप्त होरही हैं जैसे महात्माओंके मनमें ज्ञानाग्निसे स्थूल शरीर आदिको भस्म करनेवाली उत्तम उक्ति ॥ ३० ॥ हा ! हे तात ! स्त्रियोंके केशपाशरूपी तृणोंमें शस्त्राग्नि लगरही है, और वीर लोग तो इस शस्त्राग्निमें ऐसे जलरहेहैं जैसे वायुसे प्रेरित अग्निसे सूखे पत्रों (पत्तों) का समूह ॥ ३१ ॥ आवर्त सहित नदीके प्रवाहके सदृश दीर्घ और ऊपरकी ओर जानेवाले तरंगों सहित यह धूमरूपी यमुनानदी देखो आकाश गंगाकी ओर दौड रही है ॥ ३२ ॥

वहद्दुल्मुककाष्ठोर्ध्वगामिनीधूमनिम्नगा ॥ वैमानिकानंधयतिपश्याग्निकणबुद्बुदा ॥३३॥ अस्यामातापिताभ्राताजामातास्तनपाःसुते ॥ अस्मिन्सग्नेनिर्दग्धादग्धेवासत्सन्निधने ॥ ३४ ॥ हाहाहागच्छतेशीघ्रमेतदंगारमंदिरम् ॥ इतःप्रवृत्तंपतितुंसुमेरुःप्रलयेयथा ॥ ३५ ॥ अहोशरशिलाशक्तिकुंतप्रासासिहेतयः ॥ जालसंध्याभ्रपटलंविशंतिशलभाइव ॥ ३६ ॥

अर्थ—देखो जलते हुये काष्ठ जिसमें बह रहे हैं और अग्निके कणरूपी जिसमें बुदबुद (बुल्ले) हैं ऐसी यह धुमरूपी नदी विमानोंमें स्थित देवताओंको अन्धा कर रही है ॥ ३३ ॥ हे पुत्रि ! देखो इसके माता पिता भ्राता जमाता (जमाई) और दुग्ध (माताके स्तनका) पीनेवाले बालकभी इसी स्थानमें जलगये और यह उनके विरहरूपी अग्निमें वास्तविक अग्निके न रहनेपरभी जलीहीसी है ॥ ३४ ॥ हाः हाः हाः शीघ्र यहांसे निकलो ! ! ! यह अंगारके सदृश जलताहुआ तुमारा स्थान इधर ऐसा गिरना चाहताहै जैसे प्रलयकालमें मेरु ॥ ३५ ॥ अहो ! कैसे खेदका विषय है कि बाण, शिला, शक्ति, भाले, बर्च्छिया, तलवार, तथा अन्य अस्त्र शस्त्र सायंकालमें झरोखेमें मेघके सदृश रक्तवर्ण शलभोंके सदृश प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

हेतिप्रवाहाज्वलनंनभस्यंत्यांविशंत्यहो ॥ वडवानलमुज्ज्वालमर्णपूराइवार्णवात् ॥३७॥ धूमायांतिमहाभ्राणिज्वालाःशिखरिकोटिषु ॥ सरसान्यपिशुष्यंतिहृदयानीवरागिणाम् ॥ ३८ ॥ आलानत्वरुषेवैतादंतिभिर्वृक्षपंक्तयः ॥ स्फुरत्कटकटारावंपात्यंतेकृतचीत्कृतैः ॥ ३९ ॥ पुष्टपुष्पफलस्कंधागतश्रीकागृहद्रुमाः ॥ गतानिर्दग्धसर्वस्वागृहस्थाइवदीनताम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अहो ! भयसे आकाशमें उडनेकी इच्छा करनेवाली इस नगरीमें शस्त्रके प्रवाह इसकी अग्निमें ऐसे प्रवेश करतेहैं जैसे समुद्रसे जलके प्रवाहमें प्रदीप्त वडवानल अग्निमें ॥ ३७ ॥ बडे २ राजभवनोंके अग्रभागमें महामेघोंके सदृश धूम तथा अग्निकी ज्वाला निकल रही है जिनके कारण तडाग बउली तथा वाटिका आदि ऐसे जल गये, जैसे वैराग्यवान् पुरुषोंके हृदय (विषयरससहित चित्त) ॥ ३८ ॥ देखो ! चिग्घार शब्द करते हुये ये हांथी इन वृक्षोंकी पंक्तियोंको ऐसे उखाडके गिरा रहे हैं मानों बन्धनके घसे ॥ ३९ ॥ पुष्प, फल, और शाखाओंसे शून्य गृहके वृक्ष ऐसे शोभारहित होगये हैं जैसे सर्वस्व भस्म होजानेसे दीनदशाको प्राप्त गृहस्थ ॥ ४० ॥

मातापितृविनिर्मुक्ताबालकास्तिमिरावलीम् ॥ मग्नंतांगेषुरथ्यासुकुड्यपातेनहाहताः ॥ ४१ ॥ वातविद्राविताञ्स्यन्करिण्योरणमूर्धनि ॥ पतदंगारकागारभारिणःकटुकूजितम् ॥ ४२ ॥ हाकष्टमसिनिर्भिन्नेस्कंधेसन्नद्धदोल्मुके ॥ पतितोयंत्रपाषाणःपुरुषस्याशनिर्यथा ॥ ४३ ॥ गवाश्वमहिषेभोष्ट्रश्वशृगालैडकैरहो ॥ घोरैरणमिवारब्धंमार्गरोधकमाकुलैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हा हे प्रिय ! देखो मातापितासे विनिर्मुक्त ये बालक अन्धकारमें अपने लिये बाणसे व्याप्त गलियोंमें स्थान ढूंढते हुये भीत्ति (दीवाल) के गिरजानेसे दबकर मरगये ॥४१॥ भयंकर तथा कर्णकटु चिग्घार शब्द करतेहुये ये हांथियां अंगारके गिरनेसे वर्षा तथा घर्मसे रक्षाकरनेवाली छतसेभी भयभीत होगयेहैं ॥ ४२ ॥ हा कैसे खेदका विषयहै कि तलवारसे कटेहुये और जलतेथे काष्ठसहित वीर पुरुषके कन्धेपर यंत्रका पाषाण ऐसे गिरा जैसे बज्र ॥ ४३ ॥ देखो भयंकर और व्याकुल गौ, घोडे, हांथी, ऊंट, कुत्ते, शृगाल, और मेष आदि जानेवालोंके मार्ग रोकनेका युद्धसा आरम्भ करदिया है ॥ ४४ ॥

पटैःपटपटाशब्दजलजलालिमालितैः ॥ आक्रंदंत्यःस्त्रियोयांतिस्थलपद्माचिताइव ॥ ४५ ॥ स्त्रीणांज्वालालवाःपश्यलिहंत्यलकवल्लरीः ॥ कुर्वतोशोकपुष्पाभांकरभाइवपन्नगीः ॥ ४६ ॥ हाहाहरिणशावाक्षयाःपक्षलक्षणपक्ष्मसु ॥ कुमार्गेष्विवविश्रांतिमेतिकार्शानवीशिखा ॥ ४७ ॥ दह्यमानोपिनिर्यातिनकलत्रंविनानरः ॥ आहोबतदुरुच्छेदाःप्राणिनांस्नेहवागुराः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हा देखिये पट २ शब्द करतेहुये जलके बिन्दुरूपी भ्रमरोंसे व्याप्त परोंसे आच्छादित (अग्नि लगनेके भयसे गीला कपडा पहनेहुये) और महाविलाप करती हुई स्त्रियां ऐसे जातीहैं मानो हस्त, पाद, और मुखरूपी स्थल कमलोंसे आच्छादित होके गमन कररही है ॥ ४५ ॥ देखिये स्त्रियोंकी अलकरूपी लताओंको अग्निकी ज्वाला कैसे आस्वादन कररहीहैं, जैसे दैवेच्छासे अशोक पुष्पोंकी शोभा करनेवाली शाखोंमें लटकतीहुई सर्पिणीयोंको ऊंट ॥ ४६ ॥ हा हा ! अतिशोक मृगनेत्रोंके भ्रमरके पक्षकेसदृश (कृष्णवर्ण) नेत्रोंमें पक्ष्मों (बरोनियों) में अग्निकी ज्वाला ऐसे आके विश्राम करती है जैसे कोई कुमार्गमें ॥ ४७ ॥ जलता हुआभी पुरुष अपनी प्रिया पत्नीके विना बाहर नहीं निकलता, अहो ! प्राणियोंके स्नेहरूपी जालका टूटना अति कठिन है ॥ ४८ ॥

करीरभसनिर्लूनज्वलदंगारपादपः ॥ प्लुष्टपुष्करकःकोपान्मग्नःपुष्करदंसरः ॥ ४९ ॥ धूमोंबुदपदंप्राप्यविलोलांतस्तडिल्लतः ॥ ज्वलदंगारनाराचनिकरंधारिवर्षति ॥ ५० ॥ देवधूमस्फुरद्वह्निकणआवर्त्तवान्मान् ॥ स्थितआपीडवान्व्योम्निरत्नपूर्णइवार्णवः ॥ ५१ ॥ गौरमंबरमाभातिज्वालाशिखरतेजसा ॥ मृत्युनेवोत्सवेदत्तःकुंकुमाक्तकरंडकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—बलके वेगसे जलतेहुये अंगारसहित वृक्षको तोडनेवाला अतएव दग्धशुण्ड हस्ती कोपसे कमलप्रद (कमल देनेवाले) तडागमें पहुंचकर डूब गया ॥ ४९ ॥ धूम मेघोंको पद आकाश देशमें प्राप्त होकर चंचल अग्निकी ज्वालारूपी विद्युत् (बिजुली) को धारण करता हुआ अंगार और बाणोंसंग्रहकी वृष्टि कररहा है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! (किसीकेप्रति उक्ति) देदीप्यमान अग्निके कणरूप आवर्त सहित, और अग्निकी ज्वालारूप तरंगधारी यह धूम आकाशमें समुद्रके समान स्थित है ॥ ५१ ॥ ज्वालाके पर्वतोंके तेजसे अति पीतवर्ण आकाश ऐसे शोभित होरहाहै जैसे कुंकुमसे रंगकर दिशारूपी स्त्रियोंके दीहुई पेटारी ॥ ५२ ॥

अहोनुविषमंचेदंवर्त्ततेवृत्तवर्जितम् ॥ ध्रियंतेराजनार्योपिवैरिवीरैरुदायुधैः ॥ ५३ ॥ लोलस्त्रग्दामकुसुमैर्मार्गप्राकारकारकैः ॥ अर्द्धनिर्दग्धकबरीकीर्णवक्षस्थलस्तनाः ॥ ५४ ॥ आलोलांबरसंलक्ष्यनितंबजघनस्थलाः ॥ पतन्माणिक्यवलयवलितावनिमंडलाः ॥ ५५ ॥ छिन्नहारलताजालविकीर्णामलमौक्तिकाः ॥ दृष्टादृष्टस्तनश्रेणीपार्श्वोद्यत्कनकप्रभाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अहो कैसा विषम सन्मार्गसे वर्जित विपरीत यह समय वर्तरहाहै कि प्रचण्ड अस्त्रशस्त्र धारण किये हुये बीर राजाकी स्त्रियोंको पकडे लिये चले जातेहैं ॥ ५३ ॥ कैसी हैं वे राजस्त्रियां कि मार्गमें बिखरते हुये चंचल पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये हुये, और आधे जलते हुये तथा वक्षस्थलों (स्तनों) पर बिखरे केशोंको धारण किये हुये ५४ चंचल सूक्ष्म वस्त्रोंके भीतर जिनका नितम्ब (कमर) और जंघा दीख रही है तथा जिनके गिरते हुये माणिक (लाल) जडित कडोंसे पृथिवीतल आच्छादित होरहाहै ॥ ५५ ॥ तथा इनके टूटे हुये हाररूपी लताओंके समूहोंसे निर्मल मोतियां बिखर रही हैं, और जिनकी कुछ दृष्ट कुछ अदृष्ट स्तनकी पंक्तियोंके निकटसे सुवर्णकी दीप्ति निकल रही है॥५६

कुररीकर्कशाक्रंदमंदीकृतरणारवाः ॥ धाराबाहास्रुताराव भिन्नपार्श्वविचेतनाः ॥ ५७ ॥ रक्तकर्दमबाष्पांबुक्लिन्नग्रंथितवासस्तः ॥ भुजमूलार्पितभुजैर्नीयमानाबलान्नृभिः ॥ ५८ ॥ कइवास्मिन्परित्रातास्यादित्यादीनवीक्षितैः ॥ उत्पलालीववर्षद्भिःपरिरोदितसैनिकाः ॥ ५९ ॥ मृणालकोमलाच्छोरुमूलजालैःसुनिर्मलैः ॥ स्वच्छांबरतलालक्ष्यैराकाशनलिनीनिभाः ॥ ६० ॥ आलोलमाल्यवसनाभरणांगरागाबाष्पाकुलाततचलालकवल्लरीकाः॥आनंदमंदरनिरंतरमथ्यमानात्कामार्णवात्समुदिताइवराजलक्ष्म्यः६१

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे अग्निदग्धगृहादिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—और जिन्होंने मृगियोंके सदृश अपने कर्कश विलापोंसे समरके शब्दोंकोभी मन्द कर दियाहै तथा निरन्तर महारोदनोंसे जिनके हृदय फटगयेहैं, इसीसे चेतनरहित अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानसे शून्य होगई हैं ॥ ५७ ॥ रक्तके कीचड और आंसुओंसे भीगे हुये एक दूसरेके वस्त्रोंमें भागनेकी शंकासे गांठ लगाये हुये तथा पंखुरा पकडके मनुष्य बलात्कार (जबर्दस्ती) खींचे लिये जातेहैं ॥५८॥ हा! ऐसे भयंकर समयमें हमारी कौन रक्षा करै इत्यादि भाव सूचक दीन दृष्टियोंसे उन स्त्रियोंमें अपने योधाओंके जिन्होंने दयाके कारण ऐसे रोदन शील बनायाहै जैसे पाषाणकी पंक्तियोंकी वृष्टि ॥ ५९ ॥ स्वच्छ और सूक्ष्म बस्त्रोंके नीचे देखते हुये अति निर्मल कमलकी दण्डीके समान कोमल और स्वच्छ जंघा और भुजाओंके समूहोंसे आकाशकी कमलिनियोंके सदृश वे ललना भान होतीथी ॥ ६० ॥ तथा हे रामजी! चंचल माला वस्त्र आभूषण और अंगराग धारण किये हुये, और आंसुओंसे व्याप्त दीर्घ तथा चंचल अलक (केश) रूपी लताओंको धारण किये जाती हुई रानियां ऐसे शोभित होतीथी जैसे आनन्द (विषयसुखरूपी) मन्दराचलसे मथित कामरूपी समुद्रसे निकलती हुई राजलक्ष्मी ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे अग्निदग्धगृहादि वर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पटरानीको भयभीत देखके तथा अन्तःपुर (जनाने) का उपद्रव सुनके राजाका युद्धके लिये जाना और लीलाका तत्व इस ४४ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेराजमहिषीमत्तयौवना ॥ तद्विवेशगृहंलक्ष्मीरिवपंकजकोटरम् ॥ १ ॥ आलोलमाल्यवसनाभिन्नहारलताकुला ॥ अनुयातावयस्याभिर्दासीभिर्भयविह्वला ॥ २ ॥ चंद्राननावदातांगीश्वासोत्कंपिपयोधरा ॥ तारकाकारदशनास्थिताद्यौरिवरूपिणी ॥ ३ ॥ अथतस्यावयस्यैकाराजानंतंव्यजिज्ञपत् ॥ भूतसंग्रामसंरंभमभरेंद्रमिवाप्सराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसी अवसरमें यौवनमें मत्त पटरानी जहां लीला और देवीथी. उस राजाके गृहमें ऐसे प्रवेश किया जैसे कमलके भीतर लक्ष्मी ॥ १ ॥ कैसीहै वह पटरानी कि चंचल माला तथा वस्त्रको धारण किये हुये टूटे हुये हाररूपी लताओंसे व्याप्त अनेक दासियों सहित भयसे व्याकुलथी ॥ २ ॥ तथा चन्द्रवदनी

गौरांगी श्वासमात्रसे स्तनोंको कम्पायमान करनेवाली, ऐसी शोभित होरहीथी मानों ताराख़्पी दांतोंको धारण किये हुये साक्षात् स्वर्गभूमि ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उस पटरानीके एक सखीने राजासे ऐसे प्रार्थना की जैसे भूतोंके संग्रामसे संक्षुब्ध इन्द्रसे अप्सरा ॥ ४ ॥

देवदेवीसहास्माभिःपलाय्यांतःपुरांतरात् ॥ शरणंदेवमायातावातार्तेवलताद्रुमम् ॥ ५ ॥ राजन्दारा हृतास्तास्तेबलवद्भिरुदायुधैः ॥ ऊर्मिजालैर्महाब्धिनांतीरद्रुमलताइव ॥ ६ ॥ अंतःपुराधिपाःसर्वेपिष्टाः शत्रुभिरुद्धतैः ॥ अशंकिताभिपतितैर्वातैरिववरद्रुमाः ॥ ७ ॥ दूरेणाशंकमायातैःपरैर्नःपुरमाहृतम् ॥ रात्रौवर्षास्विवोद्घोषैःकमलानीववारिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! देवी (पटरानी) हमलोगोंके साथ अन्तःपुरसे भागके आपके शरणमें ऐसी प्राप्त हुई है जैसे वायुसे पीडित लता वृक्षके ॥ ५ ॥ हे महाराज ! आपकी स्त्रियोंको प्रचण्ड अस्त्रोंको धारण करनेहारे और बलवान् शत्रुके योद्धाओंने ऐसे हरलिया जैसे समुद्रोंके तरंगसमूह तटके वृक्ष लताओंको ॥ ६ ॥ और अन्तःपुरके रक्षकोंको अकस्मात् आक्रमण करनेवाले प्रचण्ड शत्रुओंने ऐसे पीस डाला जैसे प्रचण्डवायु तीरके वृक्षोंको ॥ ७ ॥ दूसरे शंका रहित शत्रुगण आके रात्रि हमारे नगरको ऐसे आक्रमण किया, जैसे वर्षाकालमें प्रचण्डशब्दोंके साथ जल कमलोंको ॥ ८ ॥

धूमंवर्षद्भिरुन्नादैर्लेलिहानोग्रहेतिभिः ॥ वह्निभिर्नःपुरंप्राप्तंपरयोधैश्चभूरिभिः ॥ ९ ॥ परिवारैर्विलासिन्योदेव्यआहृत्यमूर्द्धजैः ॥ आक्रंदंत्योबलान्नीताःकुरर्यइवधीवरैः ॥ १० ॥ इतिनोयेयमायाताशाखाप्रसरशालिनी ॥ आपत्तामलमुद्धर्तुंदेवस्यैवास्तिशक्तता ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्यावलोक्यासौदेव्यौयुद्धाययाम्यतः ॥ क्षम्यतांममभार्येयंयुष्मत्पादाब्जषट्पदी ॥ १२ ॥

अर्थ—धूमकी वृष्टि करते हुये, भयंकर उच्च नाद सहित लहलहाती हुई ज्वालावाले शस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेक प्रकारके अग्नि तथा शत्रुओंने आके हमारे नगरको घेरलिया ॥९॥ हे राजन् ! अतिरोदन करते हुये विलास करनेवाली देवियोंको शत्रुओंके योद्धाओंने चोटियां पकडके बलात्कार ऐसे पकडके लेगये जैसे हरिणियोंको व्याध ॥ १० ॥ इस प्रकार शाखा तथा पुष्पादिसे शोभायमान यह आपत्ति जो हमलोगोंके ऊपर आके पडी है उसको सर्वथा नष्ट करनेकी शक्ति महाजकोही है ॥ ११ ॥ इतना श्रवण करके और दोनों (लीला तथा सरस्वती) देवियोंकी ओर देखके बोला, हे देवियो ! अब मैं आपकी आज्ञा लेकर यहांसे युद्धके लिये जाताहुं, क्षमा कीजिये, यह मेरी स्त्री आपके चरणोंकी भ्रमरी है अर्थात् आप दोनों इसकी रक्षा करैं ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वानिर्ययौराजाकोपारुणितलोचनः ॥ मत्तेभनिर्भिन्नवनःकंदरादिवकेसरी ॥१३॥ लीलालीलांददर्शाथस्वाकारसदृशाकृतिम् ॥ प्रतिबिंबमिवायातामादर्शेचारुदर्शनाम् ॥ १४ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ किमिदंदेविहेब्रूहिकस्मादियमहंस्थिता ॥ यासाभवमहंपूर्वंकथंसेयमहंस्थिता ॥ १५ ॥ मंत्रिप्रभृतयःपौरायोधाःसबलवाहनाः ॥ सर्वएवतएवेमेस्थितास्तत्रतथैवते ॥ १६ ॥

अर्थ—इतना कहके कोपसे रक्तनेत्रवाला राजा अपने गृहसे ऐसे निकला जैसे मत्तहस्तीके मस्तकको तोडनेवाला सिंह अपनी कन्दरासे ॥ १३ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर लीलाने उत्तम दर्शनवाली अपने आकारके सदृश लीलाको ऐसे देखा जैसे दर्पणमें आये हुये अपने प्रतिबिम्बको ॥१४॥ प्रबुद्ध लीला बोली—हे देवि ! आप कृपा करके कहैं कि मैं यहां क्यों स्थितहुं जो मैंहुं वही यह कैसेहुई, और जो मैं वह इस रूपसे यहां कैसे स्थितहै अर्थात् मैं दूसरी हो नहीं सकती और अतीत (गत) अवस्थाकी स्थितिका असम्भव है ॥ १५ ॥ मंत्री आदिक नगरनिवासी सेना और वाहन सहित योद्धा लोग ये सब मंत्री आदि जैसे वहां हैं वैसाही यहांभी हैं ॥ १६ ॥

तत्रापीहचहेदेविसर्वेकथमवस्थिताः ॥ बहिरंतश्चमुकुरइवैतेकिंप्रचेतनाः ॥ १७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यथाज्ञप्तिरुदेत्यंतस्तथानुभवतिक्षणात् ॥ चितिश्चेत्यार्थतामेतिचित्तंचित्तार्थतामिव ॥ १८ ॥ यादृगर्थंजगद्रूपंतत्रैवोदेतितत्क्षणात् ॥ नदेशकालदीर्घत्वंनवैचित्र्यंपदार्थजम् ॥ १९ ॥ बाह्यमाभ्यंतरंभाति स्वप्नार्थोत्रनिदर्शनं ॥ यदंतःस्वप्नसंकल्पपुरंचकचनंचितेः ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! यहांभी और वहांभी ये कैसे दर्पणके बाहर और भीतरके समान स्थितहैं, क्या ये सब सचेतनहैं ॥ १७ ॥ श्रीदेवी बोली—हे लीले ! जैसी स्फुरण होतीहै वैसाही क्षणभरमें अनुभव करने लगताहै, जैसे स्वप्नादिमें मनही जाग्रत् पदार्थके आकार होजाताहै ऐसे हि चिति (चेतन) विषयका आकार धारण करलेती है ॥ १८ ॥ जिस आका-

रवाला पदार्थ जहां है उसी आकारका संस्काररूप जगत् वहांके चित्त और चेतनमें है भोग करानेवाले अदृष्टसे उद्बोधित मायासे मिलित चेतनकी शक्ति अघटित पदार्थकीभी घटना करनेमें समर्थ है इससे देशकालकी दीर्घता और पदार्थ तथा जनकी विचित्रताकी कोई आवश्यकता नहीं है अर्थात् अचिन्त्य चिति शक्तिकी महिमासे समान कर्मसे उद्बोधितोंका कहीं २ समान रूपसेही आविर्भाव होताहै ॥ १९ ॥ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे अभ्यन्तरकाभी यह जगत् बाह्यके समान भासताहै, इसमें स्वप्नके पदार्थ दृष्टान्त हैं जैसे स्वप्न चेतन आत्माही पदार्थाकार होजाताहै वैसाही यहांभी जानो और स्वप्न तथा संकल्पके नगरादि हैं, वह अन्तःस्थित चेतनकीही स्फुरणा है ॥ २० ॥

तदेतद्बाह्यनाम्नैवस्वभ्यासात्सत्स्फुटंस्थितं ॥ यादृग्भावोमृतोभर्त्तातवतस्मिंस्तदापुरे ॥ २१ ॥ तादृग्भावस्तमेवार्थंतत्रैवसमुपागतः ॥ अन्यएवहमेभूतास्तेभ्यस्तास्तादृशाअपि ॥ २२ ॥ सद्रूपाएवचैतस्यस्वप्नसंकल्पसैन्यवत् ॥ अविसंवादिसर्वार्थरूपंयदनुभूयते ॥ २३ ॥ तस्यतावद्वदकथंकीदृशीवापिसत्यता ॥ अथवोत्तरकालेतुभंगुरत्वादवस्तुतत् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये यह जो बाह्यनामसे प्रसिद्ध जगत् है वह अपने दीर्घकालके अभ्याससे व्यक्त होकर सत्के समान स्थित भासताहै जैसी वासना सहित तुमारा पति उस नगरमें मृत्युको प्राप्त हुआथा ॥ २१ ॥ इसलिये उसी वासना सहित उसी पदार्थको वहांही प्राप्त हुआ, और ये मंत्रीआदि यद्यपि उनके सदृश हैं तथापि ये उनसे अन्य हैं॥२२॥ और इस राजाकी चित्सत्तासे स्वप्न और संकल्पकी सेनाके सदृश ये सब सत्रूपही है, कदाचित् यह कहो कि स्वाप्निक पदार्थोंसे जाग्रतके पदार्थोंमें यही विलक्षणता है कि इसका पदार्थ सबको भ्रांति रहित साधारण है इससे यह जाग्रत् सत्य (अपने रूपसे सत्य) है सो नहीं क्योंकि इन्द्रजालादिमें विवादरहित सब पदार्थ सबको साधारण हैं॥२३॥ कहो जाग्रत् पदार्थोंकी कैसे और किस प्रकारसे सत्यता होसकती है यदि कहो कि उत्तरकाल (जाग्रत) में स्वप्नके पदार्थोंका बाध होनेसे वह असत् है सोभी नहीं क्योंकि नाश और बाध होनेमें कोई विशेष नहीं यह जाग्रत् पदार्थभी क्षणभंगुर हैं इसलिये दोनों समान हैं ॥ २४ ॥

ईदृक्चसर्वमेवेदंतत्रकानास्तिताधिका ॥ स्वप्नेजाग्रदसद्रूपास्वप्नोजाग्रत्यसन्मयः ॥ २५ ॥ मृतिर्जन्मन्यसद्रूपामृत्यांजन्माप्यसन्मयं ॥ विशरेद्विशरारुत्वादनुभूतेश्वराघव ॥ २६ ॥ एवंनसन्नासदिदंभ्रांतिमात्रंविभासते ॥ महाकल्पांतसंपत्तावप्यद्याथयुगेनघ ॥ २७ ॥ नकदाचनयन्नास्तितद्ब्रह्मैवास्तितज्जगत् ॥ तस्मिन्मध्येकचंतीमाभ्रांतयःसृष्टिनामिकाः ॥ २८ ॥

अर्थ—ये सब इसी प्रकारसे मिथ्या हैं जाग्रत्में कौनसी वार्ता अधिक है, स्वप्नमें जाग्रत जैसे असत् रूप है ऐसेही जाग्रत्में स्वप्नभी है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जन्ममें जैसे मृत्यु असत्यरूप है ऐसे मृत्युमें जन्मभी असत् है नाशमें अवयवोंके विशरण (नश्वर) शील होनेसे पदार्थका नाश होताहै और बाधसे अनुभवके बलसे इसप्रकार निमित्तके भेद होनेसेभी नाशमें कुछभी विलक्षणता नहीं है ॥ २६ ॥ हे अनघ रामजी ! इसप्रकार यह जगत् न सत् है न असत्, किन्तु भ्रान्तिमात्र केवल भासताहै, इस रीतिसे जो महाकल्पमें अब और आगामी युगोंमेंभी जो नहीं वह अपने स्वरूपसे नहीं है किन्तु अधिष्ठान ब्रह्ममात्रही है इसलिये वही वह जगत् है ॥ २७ ॥ जो कभी नहीं वह ब्रह्मही हैं उसीके स्वरूपमें ये सृष्टिनामसे भ्रांति स्फुरित होरही है ॥ २८ ॥

व्योम्निकेशोंड्रकानीवनकचंतीववस्तुतः ॥ यथातरंगाजलधौतथेमाःसृष्टयःपरे ॥ २९ ॥ उत्पत्त्योत्पत्त्यलीयंतेरजांसीवमहानिले ॥ तस्माद्भ्रांतिमयाभासेमिथ्यात्वमहमात्मनि ॥ ३० ॥ मृगतृष्णाजलचयेकैवास्थासर्गभस्मनि ॥ भ्रांतयश्चनतत्रान्यास्तास्तदेवपरंपदं ॥ ३१ ॥ घनेतमसियक्षाभास्तमएवनयक्षकः ॥ तस्माज्जन्ममृतिर्मोहोव्यामोहत्वमिदंततं ॥ ३२ ॥

अर्थ—आकाशमें जैसे केश पताकादि शोभतेहैं परन्तु पदार्थमें वे आकाशस्वरूपही हैं, और जैसे समुद्रमें तरंगहैं वैसेही परब्रह्ममें ये सृष्टियां हैं ॥२९॥ मिथ्या "त्वम् अहम्," इत्यादि विभागरूप भ्रान्तिमय आभासके अधिष्ठान भूत आत्मासे ये सृष्टि उत्पन्न हो २ कर ऐसे लयको प्राप्त होती है, जैसे धूलिके कण महावायुमें ॥ ३० ॥ मृगतृष्णाके जलमें और दग्ध प्रपंचमें क्या विश्वास है, इसलिये भ्रान्तिभी उस अधिष्ठानरूपसे पृथक् नहीं है, अतः वही परमपद है ॥ ३१ ॥ जैसे घन अन्धकारमें बालकको यक्षके समान भासताहै, पदार्थमें वह अन्धकारही है, ऐसेही जन्म और मृत्यु जो जगत् है वह अज्ञानकी आवरण और विक्षेप शक्ति है और वही इस जगत्रूपसे व्याप्त है ॥ ३२ ॥

सर्वंतत्समहाकल्पंशांतौयदवशिष्यते ॥ नातःसत्यमिदंदृश्यंनचासत्यंकदाचन ॥ ३३ ॥ द्वयमेवैतदथवाब्रह्मतत्रैवसंभवात् ॥ आकाशेपरमाण्वंतर्द्रव्यादेरणकेपिच ॥ ३४ ॥ जीवाणुर्यत्रतत्रेदंजगद्वेत्तिनिजंवपुः ॥ अग्निरौष्ण्यंयथावत्तिनिजभावक्रमोदितं ॥ ३५ ॥ पश्यतीदंतथैवात्मास्वात्मभूतंविशुद्धचित् ॥ यथासूर्योदयेगेहेभ्रमंतित्रसरेणवः ॥ ३६ ॥ तथेमेपरमाकाशेब्रह्मांडत्रसरेणवः ॥ यथावायौस्थितःस्पंदआमोदःशून्यमंबरे ॥ ३७ ॥ पिंडग्रहविनिर्मुक्तंतथाविश्वंस्थितंपरे ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचराचरः ॥ ३८ ॥ विवर्जितस्यावयवैर्भागाब्रह्मणईदृशाः ॥ साकारस्यावबोधायविज्ञेयाभवताधुना ॥३९॥ अनन्याः स्वात्मनस्तस्यतेनानवयवाइव ॥ यथास्थितमिदंविश्वंनिजभावक्रमोदितं ॥४०॥

अर्थ—महाकल्प अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे सर्व बाधरूप वैज्ञानिक प्रलयमें सबका बाध होताहै उसमें जो शेष रहजाताहै वही सत्यब्रह्म है इसलिये यह दृश्य जगत् अपने रूपसे न सत्य है न असत्य है किन्तु अनिर्वचनीय है ॥३३॥ यदि इसको सत्य असत्य उभयरूप कहो सो नहीं क्योंकि एक पदार्थका विरुद्धरूप नहीं होसकता इसलिये सत्य असत्य सत्यासत्य इन तीनों पक्षोंमें विरोध होनेसे अविरुद्ध अधिष्ठानरूप ब्रह्महींका संभव है और कल्पना मंत्र जगत् तो चिदाकाशमें द्रव्यादि परमाणुमेंभी होसकताहै ॥ ३४ ॥ यह जीवरूप अणु जहां जैसी स्फुरण करताहै वहां वहां वैसाही अध्याससे अपना रूप देखताहै जैसे निज वासनाके क्रमसे अग्निमें उष्णता ॥ ३५ ॥ अपने आत्माका जैसा अनुभव रहताहै वैसाही विशुद्ध चेतन इस जगत्को जानताहै और जैसे सूर्योदयके समयमें गृहके भीतर त्रसरेणु भ्रमण करतेहैं वैसेही चिदाकाशमें (ब्रह्ममें) ब्रह्माण्डरूप त्रसरेणु भ्रमण करतेहैं, और जैसे वायुमें गति वा गन्ध और आकाशमें शून्य है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार स्थूलतासे वर्जित यह जगत् परमात्मे है, और आविर्भाव, तिरोभाव, ग्रहण, त्याग, स्थूल और सूक्ष्म विशिष्ट सम्पूर्ण चराचर कल्पित है ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! अवयवोंसे रहित परमात्माके जो कल्पित भाग हैं, वे साकार जाग्रत्का बोध करानेके लिये हैं, और वे उससे भिन्न नहीं हैं अर्थात् निरवयव ब्रह्मके भागभी निरवयवके सदृशही है अर्थात् सावयवताके समान निरवयवभी मिथ्याही है वह केवल बोध करानेके है ॥ ३९ ॥ वे भाग आत्मासे अभिन्न स्वरूप हैं इसलिये उसके अवयवके समान हैं इसलिये यह विश्व निज वासनाके क्रमसे उदित जैसा है वैसाही स्थित है ॥ ४० ॥

रिक्तंनविश्वशब्दार्थैरनन्यद्ब्रह्मणिस्थितं ॥ नतत्सत्यंनचासत्यंरज्जुसर्पभ्रमोयथा ॥ ४१ ॥ मिथ्यानुभूतितःसत्यमसत्यंसत्परीक्षितं ॥ परमंकारणंचित्त्वाज्जीवत्वमितिचेत्यलं ॥ ४२ ॥ ततस्तथैवानुभवाज्जीवत्वंविंदतिस्फुटं ॥ सत्यंभवत्वसत्यंवाखेविभातमिदंजगत् ॥ ४३ ॥ रंजयत्येवजीवाणुःस्वेच्छाभिरनुभूतिभिः ॥ अनुभूयंतएवाशुकाश्चित्पूर्वानुभूतितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह जगत् विश्वके शब्दके अपूर्णरूप अर्थसे रिक्त (खाली) नहीं है क्योंकि ब्रह्ममें अभेदरूपसे स्थित है और ब्रह्म पूर्णरूप है, इसलिये वह अपने रूपसे न सत् न असत् है जैसे रज्जुमें सर्प ॥ ४१ ॥ क्योंकि भ्रान्ति ज्ञानसे जो वस्तु अनुभूत होती है वह सत्य नहीं होसकती, और वस्तु तत्वके परीक्षार्थ जो भ्रमका बाधक ज्ञान है वह सत्यका अपलापभी नहीं करताहै इसलिये असत्यभी नहीं है, अतः मायासे चित्रूपका आच्छादन होनेसे जीवत्व सर्वथा परमकारणरूप ब्रह्महीं है ॥४२॥ इसलिये चिरकालकी वासनेके दृढ अनुभवसे जैसी स्फुरण होती है वैसीही जीवत्वको स्पष्टरूपसे जानताहै, हे रामजी ! सत्यहो वा असत्य यह संसार जीवकी भोगेच्छारूप हेतुसे चिदाकाशमें भासताहै ॥ ४३ ॥ यह जीव अण्ड (सूक्ष्म) अपनी इच्छानुकूल वासनाओंसे रंजन करताहै, अपने अनुभवके अनुसार कितनी तुल्य कितनी अतुल्य ये सृष्टियां शीघ्र अनुभवमें आती हैं ॥ ४४ ॥

अपूर्वानुभवाःकाश्चित्समाश्चैवासमास्तथा ॥ क्वचित्कदाचित्ताएवक्वचिदर्धसमाअपि ॥ ४५ ॥ कंचित्यसत्याःसत्याभाजीवाकाशेनुभूतयः ॥ तत्कुलास्तत्समाचारास्तज्जन्मानस्तदीहिताः ॥ ४६ ॥ तएवमंत्रिणःपौराःप्रतिभानेभवंतिच ॥ तेचैवात्मन्यलंसत्यादेशकालेहितैःसमाः ॥ ४७ ॥ सर्वगात्मस्वरूपायाःप्रतिभायाइतिस्थितीः ॥ यथाराजात्मनिव्योम्निप्रतिभोदेतिसन्मयी ॥ ४८ ॥ तथातदग्रगोदेतिसत्येवप्रतिभांबरे ॥ त्वच्छीलात्वत्समाचारात्वत्कुलात्वद्वपुर्मयी ॥ ४९ ॥

अर्थ—कभी कोई अपूर्व अनुभव होतेहैं, और कभी समान, कभी असमान् और कभी पूर्वकालकी सम्पूर्ण वासनाओंका उदय न होनेसे वेही ज्यों कि त्यों अनुभूत होती हैं, और कभी आधी समान होती हैं ॥ ४५ ॥ असत्य ये अनुभव जीवाकाशमें सत्यके समान भासतेहैं, और पूर्ववासनाओंका सर्वथा आविर्भाव होनेसे वैसाही कुल, वैसाही

आचार वैसेही जन्म, और वैसीही चेष्टा ॥ ४६ ॥ वेही मंत्री वेही नगर तथा निवासी प्रतिभानमें आतेहैं, और वे अधिष्ठान स्वरूप परमार्थिक आत्मामें अभिन्नरूपसे हैं इसलिये सर्वथा सत्य हैं और अपने २ देशकाल तथा चेष्टा दृष्टिसे उसमें अध्यस्त होनेसे समान हैं ॥ ४७ ॥ सर्वव्यापी चेतन स्वरूप प्रतिभाका यही स्वभाव है, इससे राजाके आत्मामें जैसी सबके साधारण सत्य पदार्थ विषयिणी प्रतिमा उदय होतीहै, वैसी उससे पूर्वभाविनी सर्व साधारणके भोग करानेवाले अदृष्टके बशसे सत् शब्दके बशसे सत् शब्दके वाच्य अव्याकृत आकाशरूप ईश्वरमें सत्यसंकल्पके कारण उदय होतीही है, इस जीवकी पदार्थानुकूल होती है, और ईश्वरकी सृष्टि इच्छानुकूल होती है तो राजाकी इच्छानुसार सृष्टि कैसे यह दोषभी न आया क्योंकि राजाकी इच्छाके अनुसार ईश्वरकी इच्छाभी होगई इसीसे हे लीले ! तुमारे समान शील, आचार, कुल और शरीरवाली ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इतिलीलेयमाभातिप्रतिभाप्रतिबिंबजा ॥ सर्वगेसंविदादर्शेप्रतिभाप्रतिबिंबति ॥ ५० ॥ यादृशीयत्र सातत्रतथोदेतिनिरंतरं ॥ जीवाकाशस्ययांतस्थाप्रतिभाकुरुतेस्वयं ॥ साबहिश्चिदादर्शेप्रतिबिंबादियं स्थिता ॥५१॥ एषात्वमंबरमहंभुवनंधराचराजेतिसर्वमहमेवविभातमात्रं ॥ चिद्व्योमबिल्वजठरंविद्धि रंगविद्धित्वंतेनशांतममलास्वयथास्थितेह ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहरात्रियुद्धेजगद्ब्रह्मवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह लीला प्रतिभाके प्रतिबिम्बसे उत्पन्न भान होती है, क्योंकि सर्वव्यापी चेतनरूप दर्पणमें प्रतिमाका प्रतिबिम्ब पडताहै ॥ ५०॥ जीवाकाशकी जैसी प्रतिभा जहां होती है वैसाही निरन्तर वहां उदय होती हैं और उसीके अनुकूल अन्तर्यामी ईश्वरस्थ जो प्रतिमा है वह बाह्यदेशमें कार्य्य करती है इसलिये यह लीला चित्तरूप दर्पणमें प्रतिबिम्बसे स्थित है ॥५१॥ हे लीले ! यह आकाश, और उसके अन्तर्गत सब भुवन, और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण पृथिवी, तथा उसके अन्तर्गत तुम हम और राजा आदि सब चिन्मात्र स्वभावही है और मैं तो प्रत्यक् आत्मरूपहुं,औरभी तत्वज्ञानी ऐसेही हैं, ये सब चिदाकाशरूप विश्वके गर्भमें हैं ऐसाही हे लीले ! तुमभी जानों और विक्षेप रहित अपने शान्त स्वभावको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहरात्रियुद्धे जगद्ब्रह्मवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

दूसरी लीलाको वरदानका देना राजा पद्मकी प्राप्ति और जीवोंको अपने २ संकल्पके अनुसार फलका लाभ इत्यादि विषय इस ४५ वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ विदूरथस्तेभर्त्तेषतनुंत्यक्त्वारणांगणे ॥ तदेवांतःपुरंप्राप्यतादृगात्माभविष्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्यालीलासातत्पुरास्पदा ॥ पुरःप्रह्वास्थितोवाचवचनंविहितांजलिः ॥ २ ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ देवीभगवतीज्ञप्तिर्नित्यमेवार्चितामया ॥ स्वप्नेसंदर्शनं देविसाददातिनिशासुमे ॥ ३ ॥ सायादृश्येवदेवेशितादृश्येवत्वमंबिके ॥ तन्मेकृपणकारुण्याद्वरंदेहि वरानने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीसरस्वतीजी बोली—हे लीले ! यह तुमारा पति विदूरथ रणभूमिमें अपने शरीरको त्यागकर उसी अंतःपुरमें प्राप्त होके राजा पद्म होगा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भगवतीके इस बचनको सुनकर वह लीला जो भक्तिसे नम्र देवीके सन्मुख बैठीथी हाथ जोडके यह बचन बोली ॥ २ ॥ द्वितीय लीलाजी बोली—जिस देवी भगवतीकी मैं नित्यप्रति पूजा करतीहुं वह रात्रियोंमें प्रतिदिन मुझे स्वप्नमें दर्शन देती है ॥ ३ ॥ हे देवि ! जैसी वह है वैसीही आप हैं इसलिये हे अम्बिके ! वह आपही हैं, अतः हे वरानने ! मुझ दीनपर कृपा करके बरदान दीजिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वासातदाज्ञप्तिःस्मृत्वातद्भक्तिभावनं ॥ इदंप्रसन्नाप्रोवाचतांलीलांतत्पुरास्पदाम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अनन्ययाभावनयायावज्जीवमजीर्णया ॥ परितुष्टास्मितेवत्सेगृहाण

भिमतंवरम् ॥ ६ ॥ तद्देशलीलोवाच ॥ रणाहेहंपरित्यज्ययत्रतिष्ठतिमेपतिः ॥ अनेनैवशरीरेणतत्रस्या मेतदंगना ॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तुत्वयाविघ्नंपूजितास्मिसुतेचिरम् ॥ अनन्यभावयाभूरिपुष्प धूपसपर्यया ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार प्रार्थना की हुई भगवती उसकी भक्तिभावनाको स्मरण करके और प्रसन्न होकर उसके सन्मुख जो लीला स्थितथी उससे बचन बोली कि ॥ ५ ॥ हे वत्से ! तुमारी अनन्य नित्य नई जीवनभरकी भक्तिसे मैं प्रसन्नहुं जो तुमको इष्टहो वह वरदान मांगलो ॥ ६ ॥ उस देशकी लीला बोली–हे देवि ! मेरे पति रणमें शरीरको त्यागके जहां जाय वहांपर मैं इसी शरीरसे उनकी स्त्री होऊं ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे पुत्रि ! जैसा तुम चाहतीहो वैसाही हो क्योंकि बहुतकालपर्यंत अनन्य भावना तथा अनेक प्रकारकी पुष्प, धूप, आदि सामग्रीसे तुमने मेरी पूजा की है ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतद्देशलीलायांफुलायांतद्वरोदयात् ॥ पूर्वलीलाब्रवीद्देवींसंदेहफुलिताशयः ॥९ ॥ पूर्वलीलोवाच ॥ येसत्यकामाःसंत्येवंसंकल्पाब्रह्मरूपिणः ॥ त्वादृशाःसर्वमेवाशुतेषांसिद्ध्यत्यभीप्सितम् ॥ १० ॥ तत्तेनैवशरीरेणकिमर्थंनाहमीश्वरि ॥ लोकांतरमिदंनीतातंगिरिग्रामकंवद ॥ ११ ॥ ॥श्रीदेव्युवाच॥ नकिंचित्कस्यचिदहंकरोमिवरवर्णिनि ॥ सर्वंसंपादयत्याशुस्वयंजीवःस्वमीहितम् ॥१२

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर उस देशकी लीलाके बरदानके लाभसे कमलके समान विकसित होनेपर पूर्वलीला सन्देह (इस लीलाको स्थूलशरीरसेही पतिलोकमें प्राप्त किया और मुझे स्थूलशरीर त्याग कराकर इस सन्देह) से चंचल चित्तवाली देवीसे यह बात बोली ॥९॥ पूर्वलीलाजी बोली–हे देवि ! जो सत्यकाम, सत्यसंकल्प ब्रह्मरूप आपके सदृश हैं उनके अभिलषित हैं वेसे अवश्यही शीघ्र सिद्ध होतेहैं ॥ १०॥ तो हे ईश्वरि ! मैं उसी स्थूलशरीरसे लोकान्तर तथा गिरिग्राम आदिमें क्यों न प्राप्त की गई सो कहो ॥११॥ श्रीदेवीजी बोली– हे उत्तम वर्णवाली लीले मैं किसीका कुछभी नहीं करती, जीव आपही अपना चेष्टित शीघ्र अपनी शक्तिसे सम्पादन करलेताहै॥१२

अहंहितंरटेज्ञप्तिःसंविन्मात्राधिदेवता ॥ प्रत्येकमस्तिचिच्छक्तिर्जीवशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ जीवस्योदेतियाशक्तिर्यस्ययस्ययथायथा ॥ भातितत्फलदानित्यंतस्यतस्यतथातथा ॥ १४ ॥ मांसमाराधयंत्यास्तुजीवशक्तिस्तवोदिता ॥ तदाभवद्यदीहस्यांमुक्तास्मीतिचिरंतदा ॥ १५ ॥ तेनतेनप्रकारेणत्वंमया संप्रबोधिता ॥ तयायुक्तयामलंभावंनीतासिवरवर्णिनी ॥ १६ ॥

अर्थ—मैं तो केवल प्राणियोंके अभिलषित अर्थात् उनका भावी शुभ वरदानसे प्रकट करतीहुं, और फल उत्पन्न करनेमें प्रत्येक जीवकी पूर्वजन्मको काम कर्म वासनासहित चित्‌रूप जीव शक्तिरूपिणी, उन २ कार्य्योंकी बीजभूत मायासहित चित् शक्ति है ॥ १३ ॥ जिस २ जीवको जो शक्ति जैसे २ उदय होती है उस २ जीवको उसी २ प्रकारसे स्फुरित होती है ॥ १४ ॥ मुझे दीर्घ कालतक आराधन करते हुये तुमारी भावी कर्म फलोंको देनेवाली सूक्ष्म रूपसे स्थित गर्भकी कामना सहित चित्‌रूप जीव शक्ति उदय हुई कि मैं मुक्त होजाऊं ॥१५॥ इसलिये उन २ प्रकारसे मैंने तुमको प्रबोधन किया, और उससे तुम अज्ञान आवरणरहित आत्माकी स्थितिरूप निर्मल भावको प्राप्त हुई॥१६॥

अनयैवंभावनयाबोधितासिचिरंतदा ॥ तमेवार्थंप्राप्तवतीसदास्वचितिशक्तितः ॥ १७ ॥ यस्ययस्य थोदेतिस्वचित्प्रयतनंचिरम् ॥ फलंददातिकालेनतस्यतस्यतथातथा ॥ १८ ॥ तपोवादेवतावापिभूत्वा स्वैवचिदन्यथा ॥ फलंददात्यथस्वैरंनभःफलनिपातवत् ॥ १९ ॥ स्वसंविद्यतनादन्यन्नकिंचित्क्वचकदा चन ॥ फलंददातितेनाशुयथेच्छसितथाकुरु ॥ २० ॥ चिद्भावएवननुसर्गगतोंतरात्मायच्चेततिप्रयतते चतदैतितच्छ्रीः ॥ रम्यंह्यरम्यमथवेतिविचारयस्वयत्पावनंतदवबुद्ध्यतदंतरास्व ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सत्यकामसत्यसंकल्पास्थिता नाम पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—हे लीले ! मैं मुक्त होजाऊं, इस भावनाकरके युक्त तुम चिरकालतक स्थितथी, सो उसी अपने पूर्व चिन्तितसे भावित अर्थको अपनी चिति शक्तिको सदा प्राप्त हुईहो ॥ १७ ॥ जिस २ पुरुषका पुरुषार्थ चिरकालके अभ्याससे जैसा २ उदय होताहै उस २ को कालपाके उसी २ प्रकारके अवश्य फल होताहै ॥१८॥ अपनीही चित् तप वा देवतारूप होके अभिलषित मिथ्याभूत फलको देताहै ॥ १९ ॥ हे लीले ! अपने पुरुपार्थसे अन्य पदार्थकेभी किसीको फल नहीं देता इसलिये जैसा तुम फल चाहतीहो उसीके अनुकूल कर्म करो ॥ २० ॥ सबकी अन्तरात्मभूत जो चित्

सत्ता है वही सृष्टिके अन्तर्गत है इसलिये पूर्वकालमें विहित अथवा निषिद्धकर्म जैसा स्फुरित होताहै वा जैसा उत्पन्न किया जाताहै भविष्यत् कालमें उसी कर्मकी फलरूपाश्री प्राप्त होती है इसको तुम विचारो और विचारसे परम पवित्र पावन पदको जानके उसमेंही स्थित रहो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने सत्यकामसत्यसंकल्पास्थितावर्णनं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सैन्यसहित विदूरथका रणभूमिमें प्रवेश तथा युद्धारंभ वर्णन इस ४६ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

॥श्रीरामउवाच ॥ एवंसंकथयंतीषुतासुतस्मिन्गृहोदरे॥ विदूरथःकिमकरोन्निर्गत्यकुपितोगृहात् ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विदूरथःस्वसदनान्निर्गतःपरिवारितः ॥ परिवारेणमहताऋक्षौघेणेवचंद्रमाः ॥ २ ॥ सन्नद्धसर्वावयवोलग्नहारविभूषणः ॥ महाजयजयारावैःसुरेंद्रइवनिर्गतः ॥ ३ ॥ समादिशन्योधगणंशृण्वन्मंडलसंस्थितम् ॥ आलोकयन्यरिगणानारुरोहनृपोरथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! जब वे देवियां विदूरथके गृहमें बातचीत् करती बैठी थी उस समय कुपित राजा विदूरथ गृहसे निकलकर क्या कार्य्य किया? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! विदूरथ बडीभारी सेनासे घिरा हुआ अपने गृहसे ऐसा निकला जैसे ताराओंके समूह सहित चन्द्रमा ॥ २ ॥ राजा विदूरथ कवच तथा अस्त्र आदिसे तय्यार जिसके शरीरमें हार आदि आभूषण शोभित हैं जिस महाराज अपका जयहो ऐसे शब्दोंसे ऐसा निकला जैसे इन्द्र ॥३॥ वह विदूरथ योद्धाओंको उचित् आज्ञा देता हुआ और मंत्रियोंसे सेनाकी रचनाकी स्थितिको अथवा राज्यकी व्यवस्थाको सुनताहुआ और बीरोंको देखता हुआ रथपर चढा ॥ ४ ॥

कूटाकारसमाकारंमुक्तामाणिक्यमंडितम् ॥ पताकापंचभिर्व्याप्तंद्युविमानमिवोत्तमम् ॥ ५ ॥ चक्रभित्तिपरिप्रोतप्रकचत्कांचनांकुरम् ॥ मुक्ताजालरणत्कारचारुविक्रमकूबरम् ॥ ६ ॥ सुग्रीवैर्लक्षणोपेतैःप्रशस्तैःप्रचलैःकृशैः ॥ जवोड्डयनवेगेनप्रवहद्भिःसुरानिव ॥ ७ ॥ वायुंजवेनसहसाअसहद्भिर्गतिक्रमैः ॥ प्रोह्यद्भिरिवपश्चार्द्धमापिबद्भिरिवांबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह रथ मेरु आदिके शिखरके समान आकारवाला मोती और माणिक्यसे जडित, पांच पताकाओंसे व्याप्त ऐसा शोभित था मानों स्वर्गका विमान ॥ ५ ॥ चक्रोंमें तथा भित्तियोंमें सुवर्णके तुल्य शोभायमान कील जडरहे थे और उसका मोतियोंके समूह सहित दीर्घ और उत्तम जातिसे अग्रभाग शब्द कररहाथा ॥ ६ ॥ और उत्तम ग्रीवावाले अच्छे लक्षणोंसेयुक्त, उत्तम जातिसे उत्पन्न अति चपल शरीरके हलके उस रथके घोडे शीघ्रतासे उडके मानों आकाशमें देवताओंके लिये जाते थे ॥ ७ ॥ और अपने वेगसे वायुकोभी हसनेवाले पूर्वशरीरके गति क्रमसे पीछेके अर्द्ध भागको मानों धारण किये थे और उर्द्धगतिसे मानों आकाशकोभी पीना चाहते थे ॥ ८ ॥

योजितैरिवसंपूर्णैश्चंद्रैश्चामरदीप्तिभिः ॥ अश्वैरष्टभिराबद्धमाशापूरकहेषितैः ॥ ९ ॥ अथोदपतदुद्दामनागाभ्रवनिर्भरः ॥ शैलभित्तिप्रतिध्वानदारुणोदुंदुभिध्वनिः ॥ १० ॥ मत्तसैनिकनिर्मुक्तैर्व्याप्तंकलकलारवैः ॥ किंकिणीजालनिर्ध्वानैर्हेतिसंघट्टघट्टितैः ॥ ११ ॥ धनुश्चटचटाशब्दैःशरसीत्कारगायनैः ॥ परस्परांगनिष्पिष्टकवचौघझणज्झणैः ॥ १२ ॥

अर्थ—चामरोंके प्रकाशोंसे सम्पूर्ण कई चन्द्रोंसे युक्त हैं, और अपनी हिनहिनाहटसे सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाले ऐसे आठ घोडोंसे युक्त रथपर राजा सवार हुआ ॥ ९ ॥ हे रामजी! इसके अनन्तर उत्तम माला पहिने हुये हांथीरूप मेघोंके शब्दसे पूर्ण, पर्वतोंकी भित्तियोंकी प्रतिध्वनियोंसे भयंकर, और नगारोंके समान गम्भीर शब्द करनेवाला वह रथ अति वेगसे उडा ॥ १० ॥ मत्त योधाओंसे किये हुये कलकल शब्दोंसे पूर्ण, अस्त्रशस्त्रोंके संघट्टसे अति गम्भीर घंटियोंके समूहकी प्रतिध्वनियोंसे ॥ ११ ॥ धनुषोंके चटचटा शब्दोंसे बाणोंके सीत्काररूपी गीतोंसे परस्पर अंगोंके सम्मर्दनसे कवचों झनझनाहटसे ॥ १२ ॥

ज्वलदग्निटणत्कारैरार्त्तिमत्क्रंदनारवैः ॥ परस्परभटाह्वानैर्बंदिविक्षुब्धरोदनैः ॥ १३ ॥ शिलाघनीकृताशेषब्रह्मांडकुहरोध्वनिः ॥ हस्तग्राह्योभवद्भीमोदशाशाकुंजपूरकः ॥१४॥ अथोदपतदादित्यपथपीवरो

धकम् ॥ रजोनिभेनभूपीठमंबरोड्डयनोन्मुखम् ॥ १५ ॥ गर्भवासमिवापन्नंतेनासीतन्महापुरम् ॥ मूढत्वंयौवनेनेवघनतामाययौतमः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा जलती हुई अग्निके टंकार शब्दोंसे, दुःखोंसे परस्पर वीरोंके आव्हानोंसे और बन्दियोंके व्यंग बचनोंसे तथा युद्धसें पीडित कातर योद्धाओंके रोदनोंसे वह देश भयंकर होगया ॥ १३ ॥ तथा पाषाणोंका शिलाके समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पूर्ण करनेवाली और दशोंदिशाओंकी कुंजोंको पूर्ण करनेवाली वह भयंकर ध्वनि हस्तसे ग्रहण करनेके योग्य होगई (अर्थात् वह सम्पूर्ण देश शब्दसे पूर्ण होगया) ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर आकाशकी ओर उडनेको मुख करके अति स्थूल रूपसे आदित्य मार्गको रोकनेवाली धूलि भूमण्डलसे उठी ॥ १५ ॥ उस धूलिसे वह महानगर ऐसे पूर्ण होगया जैसे गर्भवासका स्थान और उससे अन्धकार ऐसी वृद्धिको प्राप्त हुआ जैसे युवा अवस्थासे अज्ञान ॥ १६ ॥

प्रययुःक्वापिदीपौघादिवसेनेवतारकाः ॥ आययुर्बलमालोलानैशभूतपरंपराः ॥ १७ ॥ ददृशुस्तन्महायुद्धंद्वेलीलेसाकुमारिका ॥ प्रस्फुटद्धृदयेनेवदेवीदत्तमहादृशौ ॥ १८ ॥ प्रशेमुरथहेतीषुप्रोद्यत्कटकटारवाः ॥ एकार्णवपयःपूरैर्वाडवाइववह्नयः ॥ १९ ॥ शनैःसेनांसमाकर्षन्नाज्ञायतबलांतरम् ॥ विवेशपक्षप्रोड्डीनोमेरुरेकमिवार्णवम् ॥ २० ॥

अर्थ—और दीपोंके समूह इसप्रकार न जानैं कहां चलेगये जैसे दिनसे तारागण, और रात्रिके भूतोंकी पंक्ति अतिबली होगई ॥ १७ ॥ दोनों लीलाने तथा राजाकी उस कन्याने देवीसे दीहुई दिव्यदृष्टिसे विदीर्ण हृदयके समान होके उस महा युद्धको देखा ॥ १८ ॥ हे रामजी ! विदूरथ राजाके जानेके अनन्तर सिन्धुदेशके निवासियोंके बाणोंके कटकटाहट शब्द ऐसे शान्त होगये जैसे प्रलयमें एक समुद्रके प्रवाहोंसे वडवानल (समुद्रकी अग्नि) ॥ १९ ॥ धीरे २ सेनाको खींचते हुये राजा विदूरथने अपनी सेना तथा शत्रुकी सेनाकी प्रबलता निर्बलता न जानकर पक्षसे उडते सुमेरुके सदृश समुद्रके समान उमडी हुई शत्रुकी सेनामें प्रवेश किया ॥ २० ॥

अथोदभूद्रणध्वानंचटच्चटदितिस्फुटं ॥ रचितांशुमयांभोदाश्चेरुःपरपरंपराः ॥ २१ ॥ ययुरंबरमाश्रित्यनानाहेतिविहंगमाः ॥ प्रसस्रुरलमात्तासुमलिनाःशस्त्रदीप्तयः ॥ २२ ॥ जज्वलुःशस्त्रसंघट्टज्वलनाउल्मुकाग्निवत् ॥ जगर्जुःशरधारौघान्वर्षंतोवीरवारिदाः ॥ २३ ॥ विविशुःक्रकचत्क्रूरावीरांगेषुचहेतयः ॥ पेतुःपटपटारावंहेतिनिष्पिष्टयोंबरे ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर धनुषकी डोरियोंका चटचटा शब्द स्पष्ट प्रकट हुआ, और अपने अस्त्रशस्त्रोंके किरणमय मेघोंके रचना करनेवाले शत्रुओंके वीर इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ २१ ॥ अनेक शस्त्ररूपी पक्षीगण आकाशका आश्रय लेके चलने लगे, दूसरोंके प्राणोंके हरणसे मलिन शस्त्रोंकी दीप्ति चारों ओर व्याप्त होगई ॥२२॥ शस्त्रोंके संघट्टसे उत्पन्न अग्नि जलतेहुये काष्ठके सदृश जलने लगा और वीररूपी मेघगण बाणोंकी धाराकी वृष्टि करतेहुये गर्जना करने लगे ॥ २३ ॥ और आरोंके समान कठोर शस्त्र वीरोंके अंगोंमें प्रवेश करनेलगे, और तरवारोंकी पटपटाहट आकाशमें उडने लगी ॥ २४ ॥

जग्मुःशमंतमांस्याशुशस्त्रकानलदीपकैः ॥ बभूवुरखिलासेनानवनाराचरोमशाः ॥ २५ ॥ उत्तस्थुर्यमयात्रायांकबंधनटपंक्तयः ॥ जगुरुच्चैरणोद्रेकंपिशाच्योरणदारिकाः ॥ २६ ॥ उदगुर्दंतसंघट्टटंकारादंतिनांबलात् ॥ ऊहुःक्षेपणपाषाणमहानद्योनभस्तले ॥ २७ ॥ पेतुःशवानिवातास्तसंशुष्कवनपर्णवत् ॥ निर्ययुर्लोहितानद्योरणाद्रेर्मृतिवर्षिणः ॥ २८ ॥

अर्थ—शस्त्ररूपी अग्निके दीपकोंसे अन्धकार शीघ्र शान्त होगये, और सम्पूर्ण सेना बाणरूपी नये रोमोंसे पूर्ण होगई ॥ २५ ॥ यमराजकी यात्राके उत्सवमें कबन्धरूपी नटोंकी पंक्ति जानेलगी, और पिशाचीरूप रणकी तरुणी संग्रामकी महिमा गान करने लगी ॥ २६ ॥ हांथियोंके दांतोंके संघट्टसे निकला हुआ टंकार शब्द आकाश देशको प्राप्त हुआ, और फेंके हुये पाषाणोंकी महानदियां आकाशतलमें प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ और मृतक शरीर पृथिवीपर ऐसे गिरने लगे जैसे वायुसे फेंकेहुये वृक्षोंसे सूखे पत्ते ॥ २८ ॥

प्रशेमुःपांसवोरक्तैस्तमांस्यायुधवह्निभिः ॥ युद्धैकध्यानतःशब्दाभयानिमृतिनिश्चयैः ॥ २९ ॥ अभवत्केवलंयुद्धमपशब्दमसंभ्रमम् ॥ अनाकुलांबुवाहाभंखड्गवीचिसटांकृतम् ॥ ३० ॥ खदखदरवसंवहच्छरौघंटकटकितारवसंपतद्भुशुंडि ॥ झणझणरवसंमिलन्महास्त्रंतिमितिमिवद्रणमासदुस्तरंतत् ॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथनिर्याणे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—रक्तोंकी धारासे सम्पूर्ण धूलि शान्त होगई शस्त्रोंकी अग्निसे अन्धकार शान्त होगया, केवल युद्धके ध्यानसे सबके वाणीके व्यापार शान्त होगये और मरणके निश्चयसे सबके भयभी शान्त होगये ॥ २९ ॥ खड्गरूप विद्युत्को तरंगोंसे टंकार शब्द सहित, वायुके क्षोभसे रहित वर्षते हुये मेघके सदृश, और वाणीके व्यापारसे शून्य केवल युद्धमात्र व्यापार होता था ॥ ३० ॥ हे रामजी ! खद २ शब्दोंके साथ बाणोंके समूहको धारण करनेवाला, कटकटाहट शब्दोंसे भुशुण्डियोंके सम्पात सहित, झण झण शब्दोंके साथ अनेक महान् अस्त्र जिसमें मिलरहे हैं और इनसे अतिरिक्त अनेक शस्त्रोंके तिमि तिमि शब्दोंके साथ भीरुओंके लिये वह संग्राम दुस्तर होगया ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विदूरथनिर्य्याणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

सिन्धुके जयका कारण सूर्य्योदयसे रणका क्रम, और दोनों राजाओंका दो रथोंपर मन्त्रास्त्रोंसे युद्ध इस ४७ वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्वर्त्तमानेतुघोरेसमरसंगमे ॥ लीलाद्वयमुवाचेदंज्ञप्तिंभगवतींपुनः ॥ १ ॥ ॥ लीलाद्वयमुवाच ॥ देविकस्मादकस्मान्नौभर्त्ताजयतिनोरणे ॥ वदत्वय्यपितुष्टायामस्मिन्विद्रुतवारणे ॥ २ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ चिरमाराधितानेनविदूरथनृपारिणा ॥ अहंपुत्रिजयार्थेननविदूरथभूभृता ॥ ३ ॥ तेनासावेवजयतिजीयतेचविदूरथः ॥ ज्ञप्तिरंतर्गतासंविदेतांमांयोयदायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार जब भयंकर युद्धका समागम होरहाथा तब दोनों लीलाओंने देवीभगवतीसे पुनः यह बात कही ॥ १ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि ! तुमारे प्रसन्न होनेपर इस रणमें जिसमें हस्ती आदिभी भगादिये हैं, ऐसा मेरा पति अकस्मात् क्यों नहीं जीतता सो कहो ? ॥ २ ॥ श्रीसरस्वती बोली—हे पुत्रि ! जय चाहनेवाले इस विदूरथके शत्रुने दीर्घकालतक मेरी आराधना की और विदूरथ राजाने इसलिये नहीं की ॥ ३ ॥ इसलिये वही जीतताहै और विदूरथराजा जीता जाताहै मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपहुं, मुझे जिस समय जो जैसे ॥ ४ ॥

प्रेरयत्याशुतत्तस्यतदासंपादयाम्यहम् ॥ योयथाप्रेरयतिमांतस्यतिष्ठामितत्फला ॥ ५ ॥ नस्वभावोन्यतांधत्तेवन्हेरौष्ण्यमिवैषमे ॥ अनेनमुक्तएवस्यामहमित्यस्मिभाविता ॥ ६ ॥ प्रतिभारूपिणीतेनबालेमुक्तोभविष्यति ॥ एतदीयःस्वयंशत्रुःसिंधुर्नाममहीपतिः ॥ ७ ॥ जयाम्यहंस्यांसंग्रामइत्यनेनास्मिपूजिता ॥ तस्माद्विदूरथोदेहंतत्प्राप्यसहभार्यया ॥ ८ ॥ त्वयानयाचकालेनबालेमुक्तोभविष्यति ॥ एतदीयःस्वयंशत्रुःसिंधुर्नाममहीपतिः ॥ ९ ॥ हत्वैनंवसुधापीठेजयीराज्यंकरिष्यति ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंदेव्यांवदंत्यांतुबलयोर्युध्यमानयोः ॥ १० ॥ रविर्द्रष्टुमिवाश्चर्यमाजगामोदयाचलम् ॥ चेलुस्तिमिरसंघाताबलानीवारिरूपिणः ॥ ११ ॥ अस्तमन्जीवसंघान्येसंध्यायांतारकाइव ॥ शनैःप्रकटतांजग्मुर्बिलाकाशाद्रिभूमयः ॥ १२ ॥

अर्थ—काम कर्म वासनाके बलसे फल देनेको अभिमुख करताहै उसके लिये उससमय वैसाही फल सिद्ध करतीहुं, और हे लीले ! यह फलभी विवर्तरूप होनेसे, जिस काम, कर्म, वासनासे जैसे फल देनेको अभिमुख की जातीहुं उसका फलरूप होके मैंही उपस्थित होतीहुं ॥ ५ ॥ हे लीले ! अग्निकी उष्णताके सदृश यह मेरा स्वभाव अन्यथा कभी नहीं होता, और इस विदूरथराजाने, मैं मुक्त होजाऊं ऐसीही भावनासे मेरी पूजा की ॥ ६ ॥ सो हे अप्रबुद्धलीले बाले ! (विदूरथके निकट रहनेवाली लीलाका संबोधन है) वही प्रतिमारूप होके इसको फल दूंगी और इससे यह राजा मुक्त होजायगा, और इसका शत्रु जो सिन्धुनाम राजा है ॥ ७ ॥ इसलिये मेरी पूजीकी कि मैं संग्राममें विजयी होऊं, इसलिये यह राजाविदूरथ उस पद्मके शरीरमें प्रवेश करके तुम दोनों लीलारूप अपनी धर्मभार्य्याओंके साथ मुक्त होगा और इसका शत्रु जो सिन्धुनाम राजा है ॥ ८ ॥ ९ ॥ वह इसको मारके विजयी होके पृथिवीतलपर राज्य करेगा, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जिस समय देवी ऐसा कह रहीथी और दोनों सेना ये युद्धकर रहीं थीं ॥ १० ॥ उस समय मानों युद्धका कौतुक देखनेके लिये सूर्य्यभगवान् उदयाचलपर प्राप्त हुये, और विदूरथराजाके शत्रुरूप अ-

न्धकाके समूह जो रात्रिमें तारागणके सदृश राक्षस पिशाच आदि जीव समूहोंकी रचनाकी थी, वे सब चल दिये, और धीरे २ बिल, आकाश और पर्वत, तथा भूमि प्रकट होगये ॥ ११ ॥ १२ ॥

भुवनंकज्जलांभोधेरिवोत्क्षिप्तमराजत ॥ पेतुःकनकनिःस्यंदसुंदरारविरश्मयः ॥ १३ ॥ शैलेषुवरवीरेषु रणेरक्तच्छटाइव ॥ अदृश्यतततोव्योमतथारणमहीतलम् ॥ १४ ॥ बाहुभिर्भ्रांतभुजगंप्रभाभिःकीर्णकांचनम् ॥ कुंडलैःकीर्णरत्नौघंशिरोभिर्दृष्टपंकजम् ॥ १५ ॥ आयुधैःखड्गनीरंध्रंशरैःशलभनिर्भरम् ॥ रक्ताभास्थिरसंध्याढ्यंसंखिद्धपुरुषंशवैः ॥ १६ ॥

अर्थ—भुवन कज्जलके समुद्रसे निकाले हुयेके समान शोभित हुआ, और कनककी धाराके समान सुन्दर सूर्य्यकी किरणों आके श्रेष्ठ वीररूपी पर्वतोंपर रण रक्तकी छटाके समान आके गिरी ॥ १३ ॥ और हे रामजी! रणके महीतल वीरोंकी भुजाओंसे घुमा हुये सर्पके सदृश, और और आकाश सूर्य्यकी किरणोंसे तथा दोनों (वीर और सूर्य्य) की प्रभाओंसे खुदे हुये सुवर्णके सदृश देख पडा, और गिरे हुये कुण्डलोंसे विखरेहुये रत्नके समूहके सदृश, और शिरोंसे कमलसहित तडागके सदृश शोभित हुआ ॥१४॥१५॥ तथा हे रामजी! अस्त्ररूपी खड्गजातिके मृगोंसे व्याप्त, शररूपी शलभों (पाखियों) से पूर्ण, रक्तोंकी कान्तियोंसे स्थिर सन्ध्याके सदृश, और मृतकोंसे सिद्ध पुरुषोंके सहित ॥ १६ ॥

हारैःसर्पनिर्मोकंकटैरिद्धंसुसंकुलम् ॥ लसल्लतंपताकाभिरुरुभिःकृततोरणम् ॥ १७ ॥ हस्तैःपादैःपल्लवितंशरैःशरवणोपमम् ॥ शस्त्रांशुशाद्वलश्यामंशस्त्रपूरैःसकैतकम् ॥ १८ ॥ कीर्णमायुधमालाभिरुन्मत्तमिवभैरवम् ॥ फुल्लाशोकवनाकारंशस्त्रसंघट्टवह्निभिः ॥१९॥ उद्घुंघुमहाशब्दैर्विद्रवत्सिद्धनायकैः ॥ सौवर्णनगराकारंबालार्ककचितायुधैः ॥ २० ॥

अर्थ—हारोंसे सर्पोंकी केचुरीसहित, कवचोंसे प्रदीप्त अग्निसे पूर्ण, पताकाओंसे शोभायमान लतासहित जंघाओंसे तोरणसहित ॥ १७ ॥ हस्तपादोंसे पल्लवित, शरोंसे शरके बनके समान, शस्त्रोंकी किरणों घासके सदृश श्याम, और शस्त्रोंके समूहोंसे केतकपुष्पसहित ॥ १८ ॥ शस्त्ररूपी मालाओंसे व्याप्त उन्मत्त भैरवके सदृश, और शस्त्रोंके संघट्टसे उत्पन्न अग्नियोंसे विकसित अशोकके सदृश॥१९॥ समुद्रके सदृश घुंघु महाशब्दोंसे और भागते हुये सिद्ध नायकों सहित, और प्रातःकालके सूर्य्यके सदृश चमकते हुये अस्त्रोंसे सौवर्ण (सोनेसे बने हुये) नगर सदृश आकारवाला॥२०॥

प्रासासिशक्तिचक्रर्ष्टिमुद्गरारणितांबरम् ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानशवोत्करम् ॥ २१ ॥ भुशुंडीशक्तिकुंतासित्रिशूलपाषाणसंकुलम् ॥ शूलशस्त्राहतिच्छिन्नकबंधपतनान्वितम् ॥ २२ ॥ कालतांडववेतालकुलारब्धहलारवम् ॥ शून्येरणांगणेदीप्तौपद्मसिंध्वोरथौचलौ ॥ २३ ॥ अदृश्येतांनभश्चिन्हौचंद्रसूर्यौदिवीवतौ ॥ चक्रशूलभुशुंड्यष्टिप्रासायुधसमाकुलौ ॥ २४ ॥

अर्थ—भाला, तलवार, शक्ति, चक्र, किरिचि (दोनो ओर धारकी तरवार) और मुद्गरोंसे सम्पूर्ण आकाशको शब्दसहित करनेवाला और बहती हुई रक्तकी नदीके वेगोंमें मृतकोंके समूहोंके बहानेवाला ॥ २१ ॥ तथा भुशुंडी, शक्ति, भाला, तलवार, त्रिशूल, और पाषाणोंसे व्याप्त, और शूल तथा अन्य शस्त्रअस्त्रोंके प्रहारोंसे कटे हुये कबन्धों सहित ॥ २२ ॥ तथा कालके ताण्डव नृत्य और वेतालके समूहोंसे जहांपर कोलाहल शब्दोंका आरंभ होरहाहै ऐसा वह रणका महीतल आकाश शोभित हुआ, और जब परस्पर दोनों सेनाओंके युद्धमें योधालोग क्षयको प्राप्त हुये तब शून्य रणके अंगणमें, राजा पद्म और सिन्धुके चंचल तथा दीप्यमान दोनों रथ॥२३॥आकाशके चिन्हरूप स्वर्गमें चन्द्रमाके समान देख पडे, और पुनः वे दोनों रथ, चक्र, शूल, भुशुण्डी, किर्चि, भाले, तथा अन्य अनेक अस्त्रोंसे व्याप्त ॥ २४ ॥

सहस्रेणसहस्रेणवीराणांपरिवारितौ ॥ विचरंतौयथाकामंमंडलैर्विततारवैः ॥ २५ ॥ सचीत्कारमहाचक्रपिष्टानेकमृतामृतौ॥ तरंतौरक्तसरितोमत्तवारणलीलया ॥ २६ ॥ केशशैवलसंपन्नेचक्रचक्रजलेंदुके ॥ वहच्चक्राहतिक्षोभपातिताकुलवारणौ ॥ २७ ॥ मणिमुक्ताझणत्काररणत्कूबरकारवौ ॥ वाताहतपताकाग्रपटत्पटपटारवौ ॥ २८ ॥

अर्थ—और वीरोंके सहस्र २ समूहोंसे वेष्टित शब्दों पूर्ण मण्डलोंसे अपनी इच्छापूर्वक विचरनेवाले ॥ २५ ॥ चिग्घार शब्दोंके साथ अनेक मृतक और जीवित मनुष्योंको चूर्ण करनेवाले, और केशरूपी शैवालोंसे युक्त, चक्ररूपी चक्रवाक पक्षी तथा चन्द्रमाके प्रतिविम्ब सहित, परस्परके आघातसे बनीहुई रक्तकी नदियोंमें मत्तहस्तीकी लीलासे तरतेहुये, और चलतेहुये, चक्रोंके प्रहारके क्षोभसे भयभीत हस्तियोंको गिरानेवाले ॥ २६ ॥ २७ ॥ मणि और मुक्ताओंके झनझनाहटके साथ रथ कूबरोंकी ध्वनि सहित, और वायुके आघातसे युक्त पताकाओंके पटपटा शब्दोंसहित॥२८

अनुयातौमहावीरैर्भूरिभिर्भीरुसैनिकैः ॥ धारावमद्भिः कुंतानांशराणधनुषामपि ॥२९॥ शक्तीनांप्रासशकूनांचक्राणांकचतांरणे ॥ तत्रतौक्षणमावृत्त्यमंडलेभूमिकुंडले ॥ ३० ॥ उभौव्यतिबभूवातेसंमुखावायुधावुभौ ॥ नाराचधारानिकरविक्षेपकरकध्वनौ ॥ ३१ ॥ अन्योन्यमभिगर्जंतौमताब्धिजलदाविव ॥ तयोःप्रहरतोर्बाणावसुधानरसिंहयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा मालाओंकी और धनुषके बाणोंकी शक्तियोंकी बर्छी तथा मेघोंकी और चमकते हुये चक्रोंकी धाराओंको वर्षानेवाले सेनाके महावीरोंसे और अनेक भीरु (डरपोक) योद्धाओंसेभी पीछा कियेहुये (वे दोनोंरथ) थे उस रणभूमिके कुण्डलके समान रथोंके परिवर्तनरूप मण्डलमें वे दोनोंरथ क्षणभर ठहरकर ॥ २९ ॥ ३० ॥ दोनों संग्राममें एक दूसरेके सम्मुख हुये, और बाणोंकी धाराके समूहोंसे, तथा प्रास, कुन्त (बर्छी भाला) आदि पाषाणकी वृष्टिके शब्द सहित समुद्र मेघोंके सदृश गर्जना करतेहुये एक दूसरेके ऊपर क्रमसे बाण आदिकी वृष्टि करनेलगे अर्थात् एक जबतक मेघके सदृश वृष्टि करताथा दूसरा उसको समुद्रके सदृश सहन करताथा, और हे रामजी ! जिस समय वे दोनों पृथिवीके नरसिंह बाण आदिका प्रहार कररहे थे, उससमय ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

पाषाणमुसलाकाराव्योमविस्तारिणोभवन् ॥ करवालमुखाःकेचिन्मुद्गराननकाःपरे ॥ ३३ ॥ शितचक्रमुखाःकेचित्केचित्परशुवक्रकाः ॥ केचिच्छक्तिमुखाःकेचित्केचिच्छूलशिलामुखाः ॥ त्रिशूलवदनाः केचित्स्थूलाइवमहाशिलाः ॥ ३४ ॥ प्रलयपवनपातिताःशिलौघाइवनिपतंतिशिलीमुखास्तदास्म ॥ प्रमिलितमभवत्तयोस्तदानींप्रलयविजृंभितसिंधुसंभ्रमेण ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथसिंधुसमागमो नाम सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—कोई बाण तो पाषाण और मुसलाकार होके आकाशमें वृद्धिको प्राप्त होतेथे, कोई तलवार मुखवाले होके तथा कोई २ मुद्गर मुखवाले, होके विस्तारको प्राप्त हुये ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! कोई तीक्ष्ण चक्रमुखवाले कोई २ फरसे के समान मुखवाले, कोई शक्ति मुखके, और कोई २ शूल और शिला मुखवाले कोई २ त्रिशूल वदन (मुख) वाले और कोई २ ऐसे स्थूल थे जैसे पाषाणकी महा शिला ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! उससमय बाण आदिके समूह ऐसे गिरते थे जैसे प्रलयकालके वायुसे गिराये मेरु आदि पर्वतोंके शिलाओंके समूह और उससमयमें उन दोनोंका मेल ऐसा हुआ जैसे प्रलयकालमें बढे हुये दो समुद्रोंके संक्षोभका ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विदूरथसिन्धुसमागमो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

विचित्र मायाको उत्पन्न करनेसे महा मन्त्रास्त्रोंसे विश्वको मोह करानेवाला राजा सिन्धु और विदूरथ (भावी पद्म) का समर इस ४८ वें सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्राप्यराजापुरःप्राप्तंसिंधुमुद्धुरकंधरम् ॥ मध्याह्नतपनांतेनकोपेनचिततोभवत् ॥१॥ धनुरास्फालयामासचिरारावितदिङ्मुखम् ॥ कल्पांतपवनास्फोटइवमेरुगिरेस्तटम् ॥ २ ॥ विससर्जोर्जितोराजाप्रलयार्कःकरानिव ॥ तूणीररजनीबद्धाःशिलीमुखपरंपराः ॥ ३ ॥ एकएवविनिर्यातिगुणात्तस्यशिलीमुखः ॥ सहस्रंभवतिव्योम्निगच्छन्पतति लक्षशः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ऊंची कन्धरा (कन्धा) वाले राजा सिन्धुको जिस समय अपने सन्मुख पाया उससमय ग्रीष्मऋतुके मध्यान्हकालके सूर्य्यके समान कोपसे पूर्ण होगया॥१॥और दीर्घकालतक दिशाओंको शब्द सहित करनेवाले अपने धनुषकी डोरीको चढाया जिससे कि ऐसा शब्द हुआ कि जैसा प्रलयकालके पवनसे सुमेरुके तटका ॥ २ ॥ उस महाबली राजाने रात्रिरूपी तूणीर (तीरोंके रखनेके पात्र) से बाणों (रात्री पक्षमें) की पंक्तियोंको ऐसे छोडा जैसे प्रलयकालमें सूर्य्य अपनी किरणोंको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! उस राजाकी धनुषकी डोरीसे निकलता तो एकही बाणथा, परन्तु आकाशमार्गमें जाते हुये सहस्र (हजार) होजाता था, और गिरते २ वही एक बाण लक्षरूप धारण कर लेता था ॥ ४ ॥

सिंधोरपितथैवासीच्छक्तिर्लाघवमेवच ॥ वरेणवरदस्यैवंविष्णोर्द्धानुष्कतातयोः ॥ ५ ॥ मुसलानामते बाणामुसलाकृतयोंबरम् ॥ छादयामासुरुन्नादाःकल्पांताशनयोयथा ॥ ६ ॥ रेजुःकनकनाराचराजयो व्योम्निसस्वनाः ॥ रसंत्यःकल्पवातार्त्ताःपतंत्यइवतारकाः ॥ ७ ॥ विदूरथाच्छरासाराअजस्रमभिनिर्युयुः ॥ अब्धेरिवपयःपूराःसूर्यादिवमरीचयः ॥ ८ ॥

अर्थ—और राजा सिन्धुकीभी ऐसीही शक्ति और हस्तलघुता (हांथकी सफाई) थी, और इसप्रकार धनुर्विद्यामें उनकी शक्ति तपसे प्रसन्न किये हुये बर देनेवाले विष्णुभगवान्‌के बरदानसे थी ॥ ५ ॥ जो बाण मुसलनामवाले थे वे मुसलाकार होके महाध्वनि करते हुये आकाशमें ऐसे छागये जैसे कल्पके अन्तमें महाशब्द करते हुये वज्र ॥ ६ ॥ सुवर्णसे रंगे हुये बाणोंकी पंक्तियां आकाशमें शब्द करते हुये ऐसी शोभित हुई जैसे प्रलयके पवनसे पीडित शब्द करते हुये आकाशसे गिरती हुई तारा ॥ ७ ॥ राजा विदूरथसे बाणोंकी धारा निरन्तर ऐसे जाती थी, जैसे समुद्रसे जलका प्रवाह और सूर्य्यकिरणें ॥ ८ ॥

प्रचंडपवनोद्धूतात्पुष्पाणीवमहातरोः ॥ अयःपिंडादिवोत्तप्तात्ताडितात्कणपंक्तयः ॥ ९ ॥ धारावर्षमुचइवसीकराइवनिर्झरात् ॥ तत्पुराग्निमहादाहात्स्फुलिंगाइवभासुराः ॥ १० ॥ तयोश्चटचटास्फोटश्रण्वत्कोदंडयोर्द्वयोः ॥ बलद्वयमभूत्प्रेक्षामूकंशांतइवांबुधिः ॥११॥ वहंतिस्मशरापूरागंगापूराइवांबरे ॥ सिंधोरभिमुखंयुद्धेघर्घराराववंरंहः ॥ १२ ॥

अर्थ—और प्रचण्ड पवनसे कंपाहुये महा वृक्षसे पुष्पोंके समान, घनसे ताडित तप्त लोहेके गोलेसे अग्नि कणके पंक्तियोंके सदृश ॥ ९ ॥ दृष्टियोंको बन्द करनेवाले मेघसे जलकी वृष्टिके समान, झरनोंसे जलके कणके समान और राजाके नगरमें अग्निके महादाहसे अग्निके स्फुलिंगों (कणों) के तुल्य प्रकाशमान बाण राजाविदूरथसे निकलते थे ॥१०॥उन दोनों राजाओंके धनुषके चटचटा शब्दोंको सुनती हुई दोनों सेना देखनेके लिये ऐसी मूक होगई जैसे शान्त समुद्र ॥ ११ ॥ राजा सिन्धुके अभिमुख, युद्धमें, घर्घर शब्द संयुक्त वेगवाले बाणोंके प्रवाह ऐसे जाते थे जैसे आकाशमें गंगाजीका प्रवाह ॥ १२ ॥

कचत्कनकनाराचशरवर्षाअनारतम् ॥ वहच्छवशवाशब्दंनिर्ययुर्धनुरंबुदात् ॥ १३ ॥ बाणमंदाकिनीपूरंव्रजंतंसिंधुपूरणे ॥ वातायनात्तमालोक्यलीलातत्पुरवासिनी ॥ १४ ॥ तेनबाणसमूहेनजयमाशंक्य भर्त्तरि ॥ उवाचवाक्यमानंदविकसन्मुखपंकजा ॥ १५ ॥ जयदेविजयत्येषनाथोस्माकंविलोकय ॥ किंचानेनशरौघेणमेरुरप्येतिचूर्णताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रकाशमान सुवर्णके बाणोंकी वर्षा शवशवा शब्दोंके साथ राजाके धनुषरूपी मेघसे निरन्तर निकलती थी ॥ १३ ॥ राजा सिन्धुरूपसमुद्रको पूर्ण करनेके अर्थ विदूरथके बाणरूपी मन्दाकिनी (गंगा) के प्रवाहको जाते हुये झरोखेके मार्गसे उस नगरकी निवासिनी लीला देखकर ॥ १४ ॥ उस बाणोंके समूहसे अपने पतिके विजयकी आशंका करके आनन्दसे विकसित मुखकमलवाली (लीला) यह बोली ॥ १५ ॥ हे जयके देनेहारी देवि ! देखो यह हमारा पति अब जीतताहै क्योंकि इस बाणोंके समूहोंसे सुमेरुभी चूर्ण होसकताहै ॥ १६ ॥

तस्यामेवंवदंत्यांतुघनस्नेहरवाकुलम् ॥ प्रेक्षणव्यग्रयोर्देव्योर्हसंत्योर्मानुषींहृदा ॥ १७ ॥ तच्छरार्णवमामत्तमपिबत्सिंधुवाडवः ॥ शरोष्मणाह्यगस्त्येनजन्हुर्मंदाकिनीमिव ॥ १८ ॥ बाणवर्षेणकणशस्तंसायकमहाघनम् ॥ छित्वातनुरजःकृत्वाचिक्षेपगगनार्णवे ॥ १९॥ यथादीपस्यशांतस्यनपरिज्ञायतेगतिः ॥ तस्यसायकसंघस्यनविज्ञातातथागतिः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब स्नेह पूर्णशब्दोंसे वह ऐसा कह रही थी और युद्धके देखनेमें निमग्न दोनों देवियां मानुषी अर्थात् अप्रबुद्ध देहात्मबुद्धिवाली लीलाको हृदयसे हंस रही थीं ॥ १७ ॥ उससमय उस मत्तशररूपी समुद्रको अगस्त्यरूपी अपने बाणकी उष्णतासे राजा सिन्धु ऐसे पीगया जैसे जन्हुऋषि मंदाकिनीको ॥ १८ ॥ राजासिन्धुने बाणोंकी वर्षासे उसके सायक (बाण) रूपी महामेघको धूलीके समान करके आकाशरूपी समुद्रमें फेक दिया ॥ १९ ॥ जैसे शान्तदीपकी गति नहीं विदित होती ऐसे उसके बाणोंकी समूहकी गति कुछभी नहीं प्रतीत हुई कि वे क्या हुये॥२०

तंछित्वासायकासारंशरांबुधरंघनम् ॥ व्योम्निप्रसारयामासरसाच्छवशतान्वितम् ॥ २१ ॥ विदूरथस्तमप्याशुव्यधमत्सायकोत्तमैः ॥ सामान्यजलदंमत्तंकल्पांतपवनोयथा ॥ २२ ॥ कृतप्रतिकृतैरेवंबाणवर्षैर्महीपती ॥ व्यर्थीकृतैरनयतांप्रहारम्रविचारणैः ॥ २३ ॥ अथादर्शमोहनास्त्रंसिंधुर्गंधर्वसौहृदात्॥ प्राप्तंतेनययुर्लोकाविनामोहंविदूरथात् ॥ २४ ॥

अर्थ—बाणोंकी धाराको छेदन करके सैकडो प्रकारके शब्दसे युक्त शरीररूपी जलधारी मेघको आकाशमें विस्तार किया ॥ २१ ॥ विदूरथनेभी उत्तम सायकोंसे उनका ऐसा प्रतीकार किया, जैसे सामान्य मेघका कल्पान्तका पवन ॥ २२ ॥ इसप्रकार दोनों राजाओंने बाणोंकी वृष्टियोंसे प्रहार और प्रतीकारसे एक दूसरेके प्रहारको व्यर्थ कर दिया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर राजा सिन्धुने गन्धर्वकी कि मित्रतासे जो मोहनास्त्र (सबको मूर्छित करनेवाला) पाया था, उसे चलाया, जिससे कि विदूरथको छोडके सब योद्धागण मोहित होगये ॥ २४ ॥

व्यस्तशस्त्रांबरामूकाविषण्णवदनेक्षणाः ॥ मृताइवाभवन्योधाश्चित्रन्यस्ताइवाथवा ॥ २५ ॥ यावद्विदूरथादन्यंमोहोनयतिमंदताम् ॥ तावद्विदूरथोराजाप्रबोधास्त्रमथाददे ॥ २६ ॥ ततःप्रबोधमापन्नाः प्रजाःप्रातरिवाब्जिनी ॥ विदूरथेभवत्सिंधुःक्रुद्धोर्कइवराक्षसे ॥ २७ ॥ नागास्त्रमाददेभीमंपाशबंधनखेदम् ॥ तेनाभवन्नभोव्याप्तंभोगिभिःपर्वतोपमैः ॥ २८ ॥

अर्थ—और योधालोगोंके शस्त्र तथा वस्त्रादि गिरगये तथा वे मूक और म्लानमुख, मृतक वा चित्रलिखितके सदृश होगये ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् जबतक विदूरथके सिवाय अन्य जनको मोह मन्दताको प्राप्त करै, इतनेहीमें राजा विदूरथने प्रबोधास्त्र (मूर्छा जगानेवाला) चलाया ॥२६॥ हे रामजी! उससे सम्पूर्ण प्रजा इसप्रकार प्रबुद्ध (चैतन्य) होगई जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यके किरणोंसे कमलिनी, इससे राजा सिन्धुने विदूरथके ऊपर ऐसा कुपित होके लाल होगया जैसे मन्देहाख्य नाम राक्षसपर सूर्य्य ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर सिन्धुने पाश (फासी) बन्धन और खेदको देनेवाला, भयंकर नागास्त्र धारण किया, उससे पर्वतके समान सर्पोंसे सम्पूर्ण आकाश व्याप्त होगया ॥ २८ ॥

सर्पैर्विलसिताभूमिर्मृणालैःसरसीयथा ॥ संपन्नागिरयःसर्वेकृष्णपन्नगकंबलाः ॥ २९ ॥ पदार्थाःसर्वएवेमेविषोष्मखिन्नतांययुः ॥ सपर्वतवनाभोगायर्यौविवशतांमही ॥ ३० ॥ पूतांगारसमाकीर्णविषवैषम्यशंसिनः ॥ ववूरूक्षोष्णनीहारवाताज्वलनरेणवः ॥ ३१ ॥ विदूरथेोथसौपर्णमाददेस्त्रंमहास्त्रवित् ॥ उदगुर्गरुडास्त्रेणसौपर्णाःपर्वताइव ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्वेतवर्ण सर्पोंसे पृथिवी ऐसी आच्छादित होगई जैसे कमलोंके दण्डोंसे तलाई, और सम्पूर्ण पर्वत कृष्ण (काले) सर्परूपी कम्बलसे आच्छादित होगये ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण पदार्थ विषकी उष्णतासे मुर्झा गये और पर्वत तथा वन करके सहित सम्पूर्ण पृथिवी विवश होगई ॥ ३० ॥ स्वच्छ अंगारोंसे व्याप्त विषकी भयंकरताको प्रकट करनेवाले वायु बर्फके समान शीत पदार्थोंको उष्ण और रूक्ष करते हुये अग्निके स्फुलिंग सदृश होगये ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् महान् (बडे २) अस्त्रोंको जाननेवाला राजाविदूरथ सौपर्णास्त्र (गरुडास्त्र) उठाया उस गरुडास्त्रसे सुपर्ण ऐसे निकले, जैसे पक्षसहित पर्वत ॥ ३२ ॥

कांचनीकृतसर्वाशाःसर्वाशापरिपूरकाः ॥ पक्षपर्वतसंरंभजनितप्रलयानिलाः ॥ ३३ ॥ घोणानिलजवाकृष्टश्वसद्भुजगमंडलाः ॥ महाघुरघुराराव पूरितांभोधिखंडकाः ॥ ३४ ॥ सस्तुपर्णघनोऽपात्तंसर्पौघंभूप्रपूरकं ॥ कृष्टशलशलायंतमगस्त्यइववारिधिम् ॥ ३५ ॥ सर्पकंबलनिर्मुक्तंभूमंडलमराजत ॥ चिरात्तमवनीरंध्रमिवनिर्वारिराशिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंको सुवर्णके समान करनेवाले, और सब दिशाओंके पूरक, पक्षसहित पर्वतोंके क्षोभसे प्रलयकालके पवनको उत्पन्न करनेवाले ॥ ३३ ॥ श्वासके वायुके वेगसे हांफते हुये, सर्पोंको खींचनेवाले और महा घुर घुर शब्दोंसे समुद्रकोभी पूर्ण करनेवाले वे सौपर्ण थे ॥ ३४ ॥ वह सुपर्णरूपी घन, पृथिवीको पूर्ण करनेवाले, और बडे वेगसे चलनेवाले उस सर्प समूहको ऐसे पीगया जैसे अगस्त्यऋषि समुद्रको ॥ ३५ ॥ सर्परूपी कम्बलसे मुक्त भूमण्डल ऐसे शोभित हुआ जैसे चिरकालसे जलकी राशिसे निर्गत वाराह भगवान्‌से उद्धार किया हुआ ॥ ३६ ॥

ततस्तद्गरुडानीकंकाप्यगच्छददृश्यताम् ॥ दीपौघइववातेनशरदेवाब्दमंडलम् ॥ ३७ ॥ वज्रभीत्येवपक्षौघपर्वतप्रकरःपुरः ॥ स्वप्नदृष्टंजगदिवसंकल्पपुरपूरवत् ॥ ३८ ॥ ततस्तमोस्त्रमसृजत्सिंधुरंधांधकारदम् ॥ तेनांधकारोववृधेकृष्णोभूजठरोपमः ॥ ३९ ॥ रोदोरंध्रेप्रविसृतएकार्णवइवाभवत् ॥ मत्स्याइवाभवन्सेनास्ताराश्चमणयोभवन् ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह गरुडकी सेना न जाने कहां ऐसे अदृश्यताको प्राप्त होगई जैसे प्रचण्ड पवनसे दीपोंका समूह वा शरत्कालसे मेघ मण्डल ॥ ३७ ॥ अथवा ऐसे अदृश्य होगया जैसे इन्द्रके वज्रके भयसे पक्षोंके समूहसहित मेरु आदि पर्वतोंका समूह, वा स्वप्नदृष्ट जगत् अथवा संकल्पके नगरोंका प्रवाह ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात्

सिन्धुने महान् अन्धकार करनेवाला तमोस्त्र छोडा, उस तमोऽस्त्रसे ऐसा अन्धकार बढा जैसे पृथिवीके गर्भका॥३९॥ वह अन्धकार आकाश और पृथिवीके मध्य भागमें ऐसे व्याप्त होगया जैसे प्रलयकालका एक समुद्र और सम्पूर्ण सेना उस अन्धकारमय समुद्रमें मत्स्यके समान, और तारागण मणिके सदृश होगये ॥ ४० ॥

अंधकारप्रवृत्तेनमषीपंकार्णवोपमम् ॥ कज्जलाचलसंभारोद्धूतकल्पानिलैरिव ॥ ४१ ॥ अंधकूपेनिपतिताइवासन्सकलाःप्रजाः ॥ कल्पांतइववसंशेमुर्व्यवहारादिशंप्रति ॥ ४२ ॥ विदूरथोथमार्तंडंदीपंब्रह्मांडमंडपे ॥ अस्त्रमंत्रविदांश्रेष्ठःसृष्टमंत्रोव्यचेष्टयत् ॥४३॥ अथोदिततमोंभोधिमर्कागस्त्योगभस्तिभिः॥ अपिबत्कृष्णमंभोदंशरत्कालइवामलः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस अन्धकारकी प्रवृत्तिसे सम्पूर्ण जगत् मषी (स्याही) के पंक (कीचड) के सदृश, तथा अंजनगिरिके रेणुके साथ प्रलयकालके वायुसे व्याप्त होगया ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण प्रजा ऐसी होगई मानों अन्ध कूपमें गिरगई, और कल्पके सदृश सम्पूर्ण दिशाओंके व्यवहार शान्त होगये ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा विदूरथ उस ब्रह्माण्डरूपी मण्डपमें विनाही मंत्रके सूर्यास्त्ररूपी दीपको छोडके सम्पूर्ण प्रजाओंको चेष्टित किया ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर उदयको प्राप्त अन्धकाररूपी कृष्ण (काले) समुद्रको अगस्तिरूपी मार्तण्डने अपनी किरणों ऐसे पानकर लिया, जैसे निर्मल शरत्काल कृष्ण मेघको ॥ ४४ ॥

अंधकारांबरोन्मुक्ताविरेजुरमलादिशः ॥ भूपतेःपुरतःकांताइवरम्यपयोधराः ॥ ४५ ॥ ययुःप्रकटतामंतरखिलावनराजयः ॥ लोभकज्जलजालेनमुक्ताइवसतांधियः ॥ ४६ ॥ अथकोपाकुलःसिंधूराक्षसास्त्रंमहाभयम् ॥ क्षणादुदीरयामासमंत्रोदीर्णशरात्मकम् ॥ ४७ ॥ उदगुर्भीषणादिग्भ्यःपरुषावनराक्षसाः ॥ पातालगजफूत्कारक्षुब्धाइवमहार्णवाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—अन्धकाररूपी कृष्णवस्त्रसे विनिर्मुक्त दिशायें ऐसी शोभितहुई, जैसे भूपतिके सम्मुख रमणीय पयोधर (स्तनको) धारण करनेवाली कान्ता ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण बनकी पंक्तियां प्रकट होके ऐसे शोभाको प्राप्त हुई जैसे लोभजालसे विनिर्मुक्त सज्जन पुरुषोंकी बुद्धि ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर कोपसे व्याप्त होके, राजा सिन्धुने महाभयंकर मंत्रोंसे शररूप धारण करनेवाले राक्षसास्त्रको एक क्षणभरमें धनुषपर चढाया ॥ ४७ ॥ उससे सम्पूर्ण दिशाओंसे भयंकर बनके कठोर राक्षस ऐसे निकले, जैसे पातालके दिग्गजाके फूत्कारसे संक्षुभित समुद्र उमडे ॥ ४८ ॥

कपिलोर्ध्वजटाधूम्राःस्फुटचटचटारवाः ॥ अग्नयोलेलिहानोग्रजिह्वाआर्द्रेधनाइव ॥ ४९ ॥ सावर्त्तवृत्तयोव्योम्निभीमचीत्कारटांकृताः ॥ अग्निदाहामहाधूमविलोलाइवसोल्मुकाः ॥ ५० ॥ दंष्ट्राबिसांकुराक्रांतमुखपंकाक्षदेहकाः ॥ उदितालोमजंबालाडुष्पल्वलतटाइव ॥ ५१ ॥ निगिरंतःप्रधावंतोगर्जंतःसर्जिताइव ॥ जटाजालतडित्पुंजाजलदाःसजलाइव ॥ ५२ ॥

अर्थ—कपिल और लम्बी ऊंची जटाओंसे धूम्रवर्ण, प्रकट चटचटा शब्द करनेवाले, और गीले इन्धन सहित काली, कराली, मनोजवा, और सुलोहिता आदि सप्तजिव्हाओंको लपलपाती हुई अग्निके सदृश ॥४९॥ सम्पूर्ण आकाशमण्डलमें भ्रमण करनेवाले, भयंकर चिग्घार और टंकार शब्द सहित, अग्निके सदृश दाह उत्पन्न करनेवाले, और महाधूम संयुक्त आलात चक्र (चारों ओर भ्रमण कराये जातेहुये जलते काष्ठ) के सदृश ॥ ५० ॥ दन्तरूपी कमल दण्ड सहित मुखोंसे, और मलिन चक्षुष आदि कर्दम तथा कमलबीजोंसे प्रसिद्ध देहवाले और रोमरूपी शैवालोंसे भ्रष्ट तलावके तटके सदृश ॥ ५१ ॥ और गर्जना करते दौडतेहुये, प्राणिको निगलनेवाले मानों इसी (प्राणियोंका भक्षणरूप) कार्य्य करनेके अर्थ रचेहुये, जटाजालरूपी बिजुलीके समूहोंको धारण करतेहुये सजल मेघोंके सदृश वे सब राक्षस निकले ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नंतरेतस्मिँल्लीलानाथोविदूरथः ॥ नारायणास्त्रंप्रददेदुष्टभूतनिवारणम् ॥ ५३ ॥ उदीर्यमाणएवास्मिन्मंत्रराजेस्त्रराजयः ॥ राक्षसानांप्रशेमुस्ताअंधकाराइवोदये ॥ ५४ ॥ प्रमुष्टराक्षसानीकमभवद्भूवनत्रयम् ॥ शरदीवगतांभोदंव्योमनिर्मलमाबभौ ॥ ५५ ॥ अथसिंधुर्मुमोचास्त्रमाग्नेयंज्वलितांबरम् ॥ जज्वलुःककुभस्तेनकल्पाग्निज्वलिताइव ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसी अवसरमें लीलाका पति राजा विदूरथ, सब भूत प्रेत राक्षस आदिको निवारण करनेवाले नारायणास्त्रको स्मरण करके धनुषपर चढाया ॥ ५३ ॥ उस मन्त्रराज (अस्त्रराज) के उठातेही सम्पूर्ण राक्षसोंके अस्त्रोंकी पंक्तियां ऐसे शान्त होगई जैसे सूर्य्यके उदयसे अन्धकार ॥ ५४ ॥ राक्षसोंकी सेनासे विनिर्मुक्त तीनों लोक

ऐसा शोभित हुआ, जैसे शरत्कालमें मेघसे रहित निर्मल आकाश ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर राजा सिन्धुने आकाशकोभी जलानेवाले आग्नेयास्त्रको धनुषपर सन्धान किया जिससे कि सम्पूर्ण दिशायें ऐसे जलने लगीं जैसे प्रलयकी अग्निसे ॥ ५६ ॥

धूमांबुदभराच्छन्नाबभूवुःसकलादिशः ॥ गगनेप्रोतपातालतिमिराकुलिताइव ॥ ५७ ॥ बभूवुर्ज्वलिताकारागिरयःकांचनाइव ॥ प्रफुल्लवननीरंध्रचंपकौघवनाइव ॥ ५८ ॥ ययुर्व्योमाद्रिदिक्कुंजाज्वालाजालजटालताम् ॥ कुंकुमेनोत्सवेमृत्योःसमालब्धाइवस्रजः ॥ ५९ ॥ ज्वलिताजनताचैकशंकिनीसानभःस्पृशा ॥ सहस्राकृतिनौवेगचलितेनेवसागरात् ॥ ६० ॥

अर्थ—धूमरूपी मेघोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशायें इसप्रकार आच्छादित होगईं जैसे आकाशमें व्याप्त पातालसे निकले हुये अन्धकारसे ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण पर्वत अग्निका आकार धारण करके ऐसे शोभित हुये जैसे सुवर्ण, अथवा विकसित प्रफुल्ल बनमें जैसे चम्पाओंका समूह ॥ ५८ ॥ और आकाश, पर्वत और सम्पूर्ण दिशाओंके कुंज ऐसे जटिल पीतवर्ण होगये जैसे मृत्युके उत्सवमें कुंकुमसे सींची हुई पुष्पोंकी माला ॥ ५९ ॥ तथा नौकाओंके सहस्र गुण वेगोंके आकारको धारण करके समुद्रसे निकले हुये वडवाग्निसे सम्पूर्ण प्रजा यह आशंका करती हुई कि सब जगत् एक अद्वितीय अग्निमय होना चाहताहै, जलने लगी ॥ ६० ॥

जित्वरिपुंपुनरसौयथाप्रहरतेतथा ॥ वारुणंविससर्जास्त्रंपूजयित्वाविदूरथः ॥ ६१ ॥ आययुःसलिलापूरास्तमःपूराइवाभितः ॥ अधस्तादूर्ध्वतोदिग्भ्योद्रवरूपाइवाद्रयः ॥ ६२ ॥ भागाइवशरव्योम्निवृतयानाइवांबुदाः ॥ महार्णवाइवोच्चस्थःकुलशैलशिलाइव ॥ ६३ ॥ तमालौघाइवोड्डीनाःसंधिताइवरात्रयः ॥ कज्जलौघाइवोद्भूतालोकालोकतटादिव ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राजाविदूरथ इस अभिप्रायसे कि यह हमारा आग्नेयास्त्रको जीतकर शत्रु सिन्धुके ऊपरभी प्रहार करेगा, पूजा करके वरुणास्त्रको अपने धनुषपर चढाया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर चारों ओरसे जलके प्रवाह ऐसे आके प्राप्त हुये, जैसे सम्पूर्ण दिशाओंसे अन्धकारोंके समूह और पुनः नीचेसे और ऊपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंसे गले हुये पर्वतोंके सदृश ॥६२ ॥ तथा बाणोंके मार्गोंके अवकाशमें आकाशके भागके समान विशालरूप, श्रेणी (पंक्ति) बद्ध मेघोंके सदृश, महासमुद्रके तुल्य अथाह और उच्च महाकुलपर्वतोंकी शिलाओंके सदृश॥६३॥ उडतेहुये तमालोंके समान, और मिलीहुई रात्रियोंके समान अथवा लोकालोक पर्वतके तटसे उत्पन्न कज्जलोंके समूहके समान॥६४

रसातलगुहाभोगाइवव्योमदिदृक्षवः ॥ महाघुरघुरारावरंहोबृंहितमूर्त्तयः ॥ ६५ ॥ तामग्निसंततिमत्तामाचचामांबुसंततिः ॥ भुवनव्यापिनीसंध्यामाशुकृष्णेवयामिनी ॥ ६६ ॥ तामग्निसंततिंपीत्वापूरयामासभूतलम् ॥ जलश्रीर्जडितंदेहंनिद्रेवव्यक्तिमेयुषी ॥ ६७ ॥ एवंविधानस्त्रमोहान्विदधुर्धन्वनेतरे ॥ मिथोमायामयानग्रेपश्यंत्यनुभवंतिच ॥ ६८ ॥

अर्थ—तथा आकाशको देखनेकी इच्छासे महाघुरघुर शब्दके वेगसे अपनी मूर्तिको बढा हुये पाताल गुहाओंके सदृश निकलके वे जलके प्रवाह निकले ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! वह जलका विस्तार (वरुणास्त्रसे उत्पन्न) उस अग्निके विस्तारको ऐसे शीघ्र आगमन करगया जैसे ब्रह्माण्डमें व्यापिनी सन्ध्याको कृष्णरात्रि ॥ ६६ ॥ वह जलकी धारा अग्निके विस्तारको पीकर भूमण्डलको ऐसे पूर्ण कर दिया जैसे जडीभूत देह व्यक्तिको प्राप्त निद्रा ॥ ६७ ॥ इस प्रकार प्रथमकृत अस्त्रोंकी मलिनताको शुद्ध करनेवाले, तथा उनके विरुद्ध और अस्त्रके वेत्ताओंने ऐसे अस्त्रोंको निर्माण करते रहे, और इस प्रकार मायामय अस्त्रोंसे शत्रुओंके नाशादिको भी अपने सम्मुख देखा करते थे ॥ ६८ ॥

हेतिभारवराःसिंधोश्चक्ररक्षास्ततोंभसा ॥ तृणानीवगताःप्रोह्यरथश्चास्याभवत्प्लुतः ॥ ६९ ॥ एतस्मिन्नंतरेसिंधुरस्त्रंसस्मारशोषणम् ॥ आपत्त्राणकरंदेवंददौचशररूपिणम् ॥ ७० ॥ शशामांबुमयीमायातेनयामेवभास्वता ॥ येमृतास्तेमृताएवबभूवुःशोषिताभुवः ॥ ७१ ॥ अथमूर्खरुषातुल्यस्तापःसंतापयन्प्रजाः ॥ जज्रंभेझर्झराकीर्णवनविस्तारकर्कशः ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस जलसे राजा सिन्धुके श्रेष्ठ योद्धागण जो सेनाकी रक्षा करतेथे सब तृणके समान बह गये, और इसका रथभी बहके जलमें डूबगया ॥ ६९ ॥ इसी अवसरमें राजा सिन्धुने शत्रुओंकी आपत्ति तथा अपनी रक्षा करनेवाला, शररूपी देव शोषणअस्त्रको स्मरण किया और उसको अपने धनुषपर सन्धान किया॥७०॥उस शोषण अस्त्रसे सम्पूर्ण वह जलमयी माया ऐसे शान्त होगई जैसे सूर्य्यभगवान्‌के उदयसे रात्रि जो मरे थे वे तो मरेही रहे

परन्तु पृथिवीका भाग सम्पूर्ण शुष्क होगया॥७१॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर मूर्खके क्रोधके समान सम्पूर्ण प्रजाओंको सन्ताप देतेहुये, और चारोंओर झर्झर शब्द करतेहुये सूखे पत्तोंके विस्तारसे अतिकर्कश सन्ताप वृद्धिको प्राप्त हुआ॥७२॥

कचत्कनकनिःस्यंदसुंदरांगच्छविर्दिशाम् ॥ आसीद्राजवरस्त्रीणामिवालेपोंगसंगतः ॥ ७३ ॥ तेनघर्ममयींमूर्च्छामाजग्मुस्तद्विरोधिनः ॥ ग्रीष्मदावानलोत्तप्तामृदवःपल्लवाइव ॥ ७४ ॥ विदूरथोरणोद्रेकेतावत्केंकारमाततम् ॥ कोदंडंकुंडलीकृत्यपर्जन्यास्त्रमथाददे ॥ ७५ ॥ उदगुःपंक्तयोऽब्दानांयामिन्यइव संचिताः ॥ तमालविपिनोड्डीनसंरंभादंबुमंथराः ॥ ७६ ॥ वामनावारिपूरेणगर्जनोद्दामसंचराः ॥ महिम्नामंथराशेषककुम्मंडलकुंडलाः ॥ ७७ ॥

अर्थ—सुवर्णकी धारके सदृश सुन्दरहै अंगछबि जिसकी ऐसा वह ताप दिशाओंके शरीरोंमें ऐसा शोभित हुआ जैसे श्रेष्ठ राजाओंकी स्त्रियोंके अंगोंमें अंगराग (शरीरमें लगानेका चूर्ण)॥७३॥उस तापसे जो घामको नहीं सह सकतेथे उनको घर्ममयी मूर्च्छाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे ग्रीष्मके दावानलसे कोमल पत्ते ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर राजाविदूरथने प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) के शब्दकी शोभासे पूर्ण कुण्डलके समान कानतक खींचे हुये अपने धनुषपर पर्जन्य (मेघ) अस्त्रको चढाया ॥ ७५ ॥ उस अस्त्रसे एकत्र किई हुई रात्रियोंके तुल्य, जलसे मन्द गमन, और इसी जलके प्रवाहसे झुके वामनके सदृश अति प्रचण्ड गर्जना करके भ्रमण करती हुई, चारों ओरके विस्तारसे सम्पूर्ण दिग्मण्डलके व्यापारको संकुचित करनेवाली, मेघोंकी पंक्तियां ऐसे निकली, जैसे आकाशमें उडते हुये तमालके बनके संक्षोभसे॥७६॥७७

ववुरावलितासारामेघडंबरभेदिनः ॥ कीर्णसीकरनीहारभारोदाराःसमीरणाः ॥ ७८ ॥ प्रपुस्फुरुःहुसौवर्णसर्पापत्सरणोपमाः ॥ विद्युतोदिविदैव्यस्त्रीकटाक्षवल्लनाइव ॥ ७९ ॥ जुघूर्णुर्गर्जनोच्छूनप्रतिश्रुद्घनकंदराः ॥ दिशश्चलितमातंगसिंहर्क्षरवघर्घराः ॥ ८० ॥ महामुसलधाराभिःपेतुरासारवृष्टयः ॥ कष्टटंकारकठिनाःकृतांतस्येवदृष्टयः ॥ ८१ ॥

अर्थ—उससमय जलकी धारासे पूर्ण मेघमण्डलको भेदन करनेवाले और जलके कणोंसे व्याप्त शीतकी अधिकतासे सुख देनेवाले, वायु बहनेलगे ॥ ७८ ॥ पूर्वोक्त सर्पोंकी आपत्तियोंसे पर्वतादिकोंके बाहर निकलनेके तुल्य बिजुली ऐसे चमकने लगी, जैसे स्वर्गमें देवांगनाओंके कटाक्ष ॥ ७८ ॥ गर्जनाओंसे बढीहुई प्रतिध्वनियोंसे घनीभूत कन्दराओंसे तथा हस्ती सिंह और भालू आदिके शब्दोंसे शब्दायमान् दिशायें, महाभयंकर शब्द करनेलगीं ॥८०॥ पाषाणोंकी ध्वनिसे कर्कश महामुसलकी धाराओंसे जलकी वृष्टिसे ऐसे गिरनेलगी जैसी कालकी दृष्टि ॥ ८१ ॥

उदभूत्प्रथमंबाष्पउष्णोनलनिभोभुवः ॥ पातालादभ्रवृंदानांयुद्धायेवात्तविभ्रमः ॥ ८२ ॥ ततोनिमेषमात्रेणप्रशेमुर्मृगतृष्णिकाः ॥ परबोधरसापूरैर्यथासंसारवासनाः ॥ ८३ ॥ आसीत्पंकांकमखिलंभूमंडलमसंचरम् ॥ पूरितःपूर्णधाराभिःसिंधुःसिंधुरिवांबुना ॥ ८४ ॥ वायव्यमस्त्रमसृजत्पूरिताकाशकोटरम् ॥ कल्पांतनृत्तसंमत्तरुद्रैरवभीषणम् ॥ ८५ ॥ ववुरशनिनिपातपीडितांगादलितशिलाशकलाःककुम्मुखेषु ॥ प्रलयसमयसूचकाभटानांकृतपटुटांकृतटंकिनःसमीराः ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आयुधवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सबसे प्रथम पृथिवीसे अग्निके समान उष्णबाष्प ऐसे तेजीसे निकला जैसे मेघोंकी समूहोंके साथ युद्ध करनेके अर्थ वीरता धारण करके तेज विशेष ॥ ८२ ॥ इसके अनन्तर मृगतृष्णाके कारणीभूत सम्पूर्ण आतप ऐसे शान्त होगये जैसे परमात्माका साक्षात्कार होनेसे निरतिशय आनन्दरसोंके प्रवाहोंसे जीवोंकी वासना ॥ ८३ ॥ और कीचडसे सम्पूर्ण भूमण्डल पूर्ण होके मनुष्योंके संचारसे रहित होगया, तथा राजा सिन्धुकी जलकी धाराओंसे ऐसा पूर्ण होगया, जैसे जलसे समुद्र ॥ ८४ ॥ अनन्तर सिन्धुने आकाशके अन्तरालोंको पूर्ण करनेहारे, तथा प्रलयकालमें नृत्य और गर्जना करतेहुये मत्त भैरवके सदृश भयंकर वायव्य अस्त्रको चलाया ॥८५॥ उसके वज्रके पातके तुल्य सबके अंगोंको पूर्ण करनेवाले तथा शिलाओंकोभी चूर्ण करनेवाले, प्रलयकालके सूचक, और प्रतिपक्षी योद्धाओंके शिला आदिके प्रहारोंकी टंकार ध्वनिके सदृश, वायु सम्पूर्ण दिशाओंके मुखोंमें बहनेलगे ॥८६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने आयुधवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पर्वतास्त्र, वज्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, और विशेष करके पिशाचोंके चरित संयुक्त पिशाचास्त्रका वर्णन इस ४९ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ववुर्वलितनीहाराविकीर्णवनपल्लवाः ॥ वायवोधूतवृक्षौघाःसलीलापीडपांसवः ॥१॥ पक्षिवद्भ्रांतवृक्षौघाःपतनोत्पातनोद्भटाः ॥ विकुट्टिताट्टालखंडाश्चाभ्रभित्तिविभेदिनः ॥ २ ॥ तेनातिभीमवातेनविदूरथरथोप्यथ ॥ उह्यमानोभवन्नद्यायथाजर्जरपल्लवः ॥ ३ ॥ विदूरथोथतत्याजपार्वतास्त्रंमहास्त्रवित् ॥ व्योमापिघनतोयेनसमादातुमिवोद्यतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! पश्चात् हिमसे पूर्ण, बनके पत्तोंको इधर उधर बिखरनेवाले, वृक्ष समूहोंको कंपानेवाले, मूर्तिमान प्राणियोंकी लीलासे अपने शिरोंपर धूलिरूप भूषण धारण किये हुये, पक्षियोंकी भांति वृक्ष समूहोंको भ्रमण करानेवाले, बडे २ राजभवनोंकी अट्टालिकाओं (अटारियों) कोभी गिरानेवाले, शूरवीरोंको नीचे ऊपर गिरानेमें समर्थ, और मेघरूपी भित्तियोंको भेदन करनेहारे पवन बहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ इसके अनन्तर उस भयंकर वायुसे उडाये हुये विदूरथके रथकीभी ऐसी दशा होगई जैसे नदीके प्रबल प्रवाहोंसे जीर्ण (सडे) पत्रकी ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर महाअस्त्रवेत्ता विदूरथनेभी पर्वतास्त्र छोडा, जो कि मेघके जलके साथही आकाशकोभी ग्रास करनेकोभी मानों उद्यत था ॥ ४ ॥

तेनशैलास्त्रवातेनविराट्प्राणसमीरणः ॥ शमंचैतन्यशांत्येवप्रययौवायुराततः ॥ ५ ॥ अंतरिक्षगतावृक्षपंक्तयःपतिताभुवि ॥ नानाजनशवव्यूहेकाकानामिवकोटयः ॥ ६॥ शेमुःसूत्कारडात्कारभांकारोत्कारकादिशाम् ॥ प्रलापाइवविध्वस्ताःपूर्ग्रामवनवीरुधाम् ॥ ७ ॥ गिरीनपश्यन्नभसःपततःपत्रवर्णवत् ॥ सिंधुःसिंधुरिवोत्पक्षान्मैनाकादीनितस्ततः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस पर्वत अस्त्रके आघातसे वह सर्वत्र व्याप्त वायु ऐसे शान्त होगया, जैसे तत्व (परमात्मा) के बोधसे माया चैतन्यकी शान्तिसे उसका कार्य्यभूत विराट् वायु अर्थात् सूत्रात्मा वायु शान्त होजाय ॥ ५ ॥ तथा उस वायुसे आकाशमें व्याप्त (अति ऊंची) वृक्षोंकी पंक्तियां पृथिवीपर ऐसे गिरनेलगी, जैसे नानाप्रकारके मृतकोंके समूहोंपर करोडों काकोंकी ॥ ६ ॥ और श्वासके शब्द, लुंठनके शब्दसे भयंकर शब्द, और वीरोंके उत्साहके शब्द सब शान्त होगये, तथा पुर, ग्राम बन और लतायें ऐसे नष्ट होगई, जैसे निरर्थक वर्णनके वाक्य ॥ ७ ॥ राजा सिन्धुने आकाशसे पर्वतोंको गिरते ऐसे देखा जैसे समुद्र पक्षसहित मैनाक आदिको अपनेमें गिरते देखे ॥ ८ ॥

वज्रास्त्रमसृजद्दीप्तंचेरुर्वज्रगणास्ततः ॥ पिबंतोद्रींद्रतिमिरमग्निर्दाहमिवाग्रयः ॥ ९ ॥ तेगिरीणांतथाक्षिप्ताःकोटितुंडावखंडनैः ॥ शिरांसिपातयामासुःफलानीवोल्बणानिलाः ॥ १० ॥ विदूरथोथवज्रास्त्रशांत्यैब्रह्मास्त्रमत्यगात् ॥ तते ब्रह्मास्त्रवज्रास्त्रेसमंप्रशममागते ॥ ११ ॥ श्यामाश्यामंपिशाचास्त्रमथसिंधुरचोदयत् ॥ तेनोदगुःपिशाचानांपंक्तयोत्यंतभीतिदाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सिन्धुने वज्रास्त्र छोडा इससे वज्रोंके समूह बडे २ पर्वतेन्द्ररूपी अन्धकारको पीते हुये ऐसे विचरने लगे जैसे इन्धनको भक्षण करते हुये अग्नि ॥ ९ ॥ इधर उधर फेके हुये वे वज्र अपने अग्रभागरूपी तुंडोंसे सम्पूर्ण पर्वतोंके शिखरोंको ऐसे काटके गिरा दिया जैसे फलोंको प्रचण्ड पवन ॥ १० ॥ इसके पश्चात् विदूरथने वज्रास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्र छोडा उसके अनन्तर ब्रह्मास्त्र और वज्रास्त्र दोनों एककालमेंही शान्त होगये ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् राजासिन्धुने रात्रिके समान कृष्ण (काला) वर्ण पिशाचास्त्रको फेका, जिससे कि अत्यन्त भय देनेवाली पिशाचोंकी पंक्तियांकी पंक्तियां निकली ॥ १२ ॥

संध्यायामथभीत्येवदिवसःश्यामतांययौ ॥ पिशाचाभुवनंजग्मुरंधकारभराइव ॥ १३ ॥ भस्मनस्तंभसदृशास्तालोत्तालविलासिनः ॥ दृश्यमानमहाकारामुष्टिग्राह्यानकिंचन ॥ १४ ॥ ऊर्ध्वकेशाःकृशांगाश्चकेचिच्छ्मश्रुलाअपि ॥ कृष्णांगामलिनांगाश्चग्राम्याइवनभश्चराः ॥ १५ ॥ सभयामूढदृष्टाश्चयत्किंचनकराश्चलाः ॥ दीनावजासिनःक्रूरादीनाग्राम्यजनाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—अनन्तर सन्ध्या समयके समान भयभीतके तुल्य दिन श्यामताको प्राप्त होगया, और अन्धकारके समूहके सदृश पिशाच सम्पूर्णलोकमें आके व्याप्त होगये ॥ १३ ॥ वे पिशाच दग्ध स्तम्भके समान, ऊंचे ताल वृक्षोंके सदृश शोभायमान और देखनेमें महान् आकारवाले परन्तु हस्तसे पकडो तो कुछ नहीं ॥ १४ ॥ कोई उनमें ऊर्ध्व केश

कृश देहके थे, और कोई २ दाढी रखाये थे, कोई कृष्णशरीर कोई मलिन शरीर कोई ग्रामीण जनोंके सदृश दरिद्र और कोई आकाश चारियोंके तुल्य थे ॥ १५ ॥ भय सहित अपवित्र तथा अपवित्रआचारवाले मनुष्योंको दृष्टिगत होते थे देखनेमें दीन, परन्तु वज्र और तलवारोंसेभी अति कठिन,और ग्रामीणोंके समान कितने दरिद्र देख पडतेथे १६

तरुकर्दमरथ्यांत:शून्यगेहगृहाश्चलाः ॥ लेलिहानाःप्रेतरूपाःकृष्णांगाश्चपलाइव ॥ १७ ॥ जगृहुस्ते तदामत्ताहतशिष्टमरेर्बलम् ॥ आसंस्तत्सैनिकास्तत्रभिन्नास्त्रक्षुब्धचेतनाः ॥ १८ ॥ त्यक्तायुधतनुत्रा णास्त्रस्तप्राणाःस्खलद्भमाः ॥ नेत्रैरंगैर्मुखैःपादैर्विकारभरकारिणः ॥ १९ ॥ त्यक्तकौपीनवसनानिमग्ना वसनोत्तराः ॥ विष्ठांमूत्रंचकुर्वंतःस्थिरमारब्धनर्त्तनाः ॥ २० ॥

अर्थ—वृक्ष, कीचड, गलियोंमें, तथा शून्य गृहोंमें अति चंचल, ओष्ठोंको चाटते हुये, प्रेतरूप कोई अतिही चपल थे ॥ १७ ॥ वे पिशाचगण मारनेसे बची हुई शत्रुकी सेनाको ग्रहण करलिया, और उनसे विदूरथके योद्धेलोग इधर उधर तितिर वितिर होगये, तथा मूर्छितभी होगये ॥ १८ ॥ और उनके अस्त्रशस्त्र तथा कवच आदि सब गिरगये, ऐसे होगये मानों भयसे प्राण निकले जाते हैं, नेत्रोंसे, अंगोंसे, मुखोंसे और पादोंसे ऐसे विकारसे पूर्ण होगये मानों भूतोंकी चेष्टासे ग्रसे हैं ॥ १९ ॥ अपने कौपीनादि वस्त्रोंकोभी त्याग दिया जिससे कि उनके नीचेके गुह्यशरीर देख पडने लगे, और विष्ठा मूत्र करते हुये प्रगटमें नाचने लगगये ॥ २० ॥

पिशाचराजीराजानंतस्ययावद्विदूरथम् ॥ समाक्रामतितावत्तांमायांसबुबुधेबुधः ॥ २१ ॥ पिशाचसं ग्रामकरींमायांवेत्तिसभूमिपः ॥ तयापिशाचसैन्यंतत्परसैन्येन्ययोजयत् ॥ २२ ॥ ततःस्वसैनिकाः स्वथाःपरयोधाःपिशाचिनः ॥ तस्याशुरूपिकास्त्रंचददावन्यदसौरुषा ॥ २३ ॥ उदगुर्भूतलाद्व्योम्नो रूपिकाऊर्ध्वमूर्द्धजाः ॥ निर्मग्नविकरालाक्ष्यश्चलच्छ्रोणिपयोधराः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक राजा सिन्धुकी वह पिशाचोंकी पंक्ति राजा विदूरथके ऊपर आक्रमण करे इतने-हीमें वह बुद्धिमान् उस मायाको जान गया ॥ २१ ॥ वह राजा विदूरथ शत्रुसे प्रेरित पिशाचोंको अपने वशमें करके शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करनेकी मायाको जानता था, उस मायाको शत्रुकी सेनामें पिशाचोंकी सेनाके साथ युक्त करदिया ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर दूसरेके साथ युद्ध करनेवाले अपने स्वस्थ सैनिक पिशाचोंको तथा उस पिशाचकी सेनाकाभी सहायक पूतनारूपी अस्त्रको क्रोधसे शीघ्रही इस राजाने छोडा ॥ २३ ॥ हे रामजी ! उसके अनन्तर ऊपर लट छिटकाये हुये, धुसी हुई विक्राल नेत्रवाली तथा जिनका नितम्ब (चूतड) और स्तन चलायमान होरहा है ऐसी पूतनायें भूतल तथा आकाशसे निकली ॥ २४ ॥

उद्भिन्नयौवनावृद्धाःपीवरांग्योथजर्जराः ॥ स्वरूपारूपजघनाद्गुर्नाभ्योविकसद्भगाः ॥ २५ ॥ नरस्त्राशि रोहस्ताःसंध्याभ्रारुणगात्रिकाः ॥ अर्द्धचर्वितमांसास्रक्स्रवत्स्रक्धाकुलाननाः ॥ २६ ॥ नानांगवलना नानानमनक्षमनसत्तमाः ॥ शिलाभुजगवक्त्रोरुकटिपार्श्वकरांगिकाः ॥ २७ ॥ नारीकृताभंकशवाहस्ता कृष्टांत्ररज्जवः ॥ श्वकाकोलूकवदनानिम्नवक्त्रहनूदराः ॥ २८ ॥

अर्थ—उनमेंसे कोई यौवनसे मत्त, कोई वृद्ध, कोई स्थूल शरीरवाली, कोई जर्ज्जर, कोई अति स्थूल, कोई अति दुर्बल जंघेवाली, किसीकी नाभी अति भयंकर, और किसीका भग अति शोभायमान ॥ २५ ॥ कोई मनुष्यका रक्तसहित शिर (कपाल) हस्तमें लिये और सन्ध्याके मेघके समान रक्त शरीरवाली, अर्द्धचर्वित मांससे रुधिर जिनसे बहरहाहै ऐसे ओष्ठोंसे व्याकुल मुखवाली ॥ २६ ॥ नानाप्रकारकी अंगचेष्टाओंसे युक्त, अति उद्धतोंकोभी नमन करनेमें समर्थ, शिलाओंसेभी कठिन, और सर्पोंसेभी वक्र मुख, जंघा, कटि, पार्श्व (बगल) तथा अन्य अंगोंको धारण करनेवाली ॥२७॥ मनुष्योंके मृतक बाकलके मुण्डोंकी माला धारण करनेवाली हस्तोंसे आंतोकी खींचतीहुई, कुत्ते, काक और उलूकोंके समान मुखवाली; तथा अति निम्न (गहरे) मुख, गाल और उदरवाली,पूतनायें॥२८

जगृहुस्तान्पिशाचांस्तादुर्बलान्द्वःशिशूनिव ॥ पिशाचरूपिकासैन्यंतदासीदेकतांगतम् ॥ २९ ॥ निर्म ग्ननर्त्तनोत्तानवदनांगविलोचनम् ॥ परस्पराक्रांतिकरंप्रधावच्चपरस्परम् ॥ ३० ॥ निष्कासितमहाजिह्वं नानामुखविकारदम् ॥ शरभाराढ्यमन्योन्यंह्रियमाणशवांगकम् ॥ ३१ ॥ रुधिरांभसिमज्जंतदुन्मज्जद्‌लसत्तनु ॥ लंबोदरंलंबभुजंलंबकर्णोष्ठनासिकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उन पिशाचोंको ऐसे जाके पकडलिया जैसे दुर्बल बालकोंको, और वह पिशाचों तथा पूतनाओंको सैन्य ऐसा घनीभूत हुआ कि एकताको प्राप्त होगया ॥ २९ ॥ हे रामजी ! कैसा है वह सैन्य कि क्रीडा रसमें अत्यन्त

मग्न होनेके कारण नृत्यमें जिसके मुख, अन्य अंग तथा नेत्र चढरहेहैं एक दूसरेके ऊपर आक्रमण करनेवाला, परस्पर लीलासे दौडतेहुये ॥ ३० ॥ नानाप्रकारका भय देनेवाला, महा जिव्हाको निकालेहुये, रुधिरके मण्डके समूहसे पूर्ण, और एक दूसरेकी प्रीतिके लिये मृतकोंके शरीर लाके देनेवाला ॥ ३१ ॥ रुधिररूपी जलमें, क्रीडार्थ डूबने और उतारनेवाला रक्तसे शोभायमान शरीर लम्बे उदर भुजा कर्ण और नासिकाको धारण करनेवाला ॥ ३२ ॥

रक्तमांसमहापंकेष्वन्योन्यंवेल्लनाभ्यसत् ॥ मंदरोद्धूतदुग्धाब्धिलसत्कलकलाकुलम् ॥ ३३ ॥ यथैव मायासंचारस्तेनतस्यकृतःपुरा ॥ तेनापितस्याशुतथाकृतोबुद्ध्वासलाघवात् ॥३४ ॥ वेतालास्त्रंततोद त्तेनोत्तस्थुःशवव्रजाः ॥ अमूर्द्धानःसमूर्द्धानोवेतालावेशवल्गिताः ॥ ३५ ॥ ततःपिशाचवेतालरूपिको ग्रकबंधवत् ॥ तद्बभूवबलंभीमसुर्वीनिगरणक्षमम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—रक्त और मांसके महा पंकोंमें एक दूसरेको बार २ आलिंगन करनेवाला और मथ्यराचलसे मध्यमान क्षीरसमुद्रके सदृश रमणीय कोलाहलसे पूर्णथा ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार राजा विदूरथ सिन्धुकी मायाका संचार कियाथा उसीप्रकार दूसरेनेभी उसे जान शीघ्रतासे प्रतिकार किया ॥३४॥ और उसकी सहायताके अर्थ वेताल अस्त्र छोडा उससे कोई शिररहित, कोई शिर सहित, और वेतालोंके आवेशसे (लगनेसे) संचालित मृतकोंके झुण्डके झुण्ड उठे ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर, पिशाच, वेताल और पूतनाओंके भयंकर कबन्धों (शिररहित धड) सहित वह महा भयंकरा सैन्य पृथिवीको निगल जानेके समर्थ होगया ॥ ३६ ॥

अथेतरोपि भूपालोमायांसंचार्यतांगुरो ॥ राक्षसास्त्रंससर्जाथत्रैलोक्यग्रहणोन्मुखम् ॥ ३७ ॥ उदगुःप र्वताकाराःसर्वतःस्थूलराक्षसाः ॥ देहमाश्रित्यनिष्क्रांताःपातालान्नरकाइव ॥३८॥ अथोदभूद्बलंभी मंससुरासुरभीतिदम् ॥ गर्जद्रक्षोमहानादवाद्यनृत्यत्कबंधकम् ॥ ३९ ॥ मेदोमांसोपदंशाढ्यंरुधिरास वसुंदरम् ॥ क्षीबकूश्मांडवेतालयक्षतांडवसुंदरम् ॥ ४० ॥ कूश्मांडकोत्तांडवदंडपादक्षुब्धास्रगुक्षित तरंगसिक्तैः ॥ संध्याभ्ररागोत्करकोटिकांतिभूतैरसृक्स्रोतसिदत्तसेतु ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने तृतीयास्त्रयुद्धं नाम एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राजा विदूरथनेभी, अस्त्रोंका पूर्व प्रयोग करनेसे उपदेशक गुरुके सदृश राजा सिन्धुके विषयमें मायाका संचार करके, तीनों लोककोभी ग्रास करनेमें उद्यत राक्षसास्त्रको छोडा ॥ ३७ ॥ उससे पर्वताकार स्थूल राक्षस ऐसे निकले, जैसे पातालसे देह धारण करके नरक ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर, गर्जते हुये राक्षसोंके महानादसे वाद्यसे और कबन्धोंके नृत्यसे वह सैन्य सुरअसुर सहित सम्पूर्ण लोकको भयदायक प्रकट हुआ ॥ ३९ ॥ मेदा (चर्बी) और मांसकी चटनीसे पूर्ण, रुधिरोंकी मदिरासे मनोहर, मदोन्मत्त, कूश्माण्ड (राक्षस विशेष) वेताल, और यक्षोंके ताण्डव नृत्यसे अति रमणीय ॥ ४० ॥ तथा कूश्माण्डोंके ताण्डव नृत्य और पादप्रहार क्रीडाओंसे संक्षुब्ध रुधिरकी तरंगोंसे सींचे हुये, और सन्ध्याकालके मेघोंके रागोंके समूहोंसे जिनका प्रान्त शोभायमान है ऐसे भूतोंसे रुधिरके प्रवाहमें पूल बांधनेवाला वह सैन्य (सेना) आविर्भूत हुआ ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने तृतीयास्त्रयुद्धं नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

दो वैष्णवास्त्रोंका युद्ध और दोनों विरथ होना, विदूरथकी मृत्यु तथा उसका गृहमें लाना इत्यादि विषयमें इस ५० वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तस्मिंस्तदावर्त्तमानेघोरेसमरविभ्रमे ॥ सर्वारिसैन्यनाशार्थमेकंस्वबलशांत ये ॥ १ ॥ सस्मारस्मृतिमानंतोमहोदाराधिधैर्यभृत् ॥ अस्त्रमस्त्रेश्वरंश्रीमद्वैष्णवंशंकरोपमम् ॥ २ ॥ अ थयोसौशरस्तेनवैष्णवास्त्राभिमंत्रितः ॥ मुक्तस्तस्यफलप्रांताद्गुल्मुकादिविनिर्ययौ ॥ ३ ॥ पंक्तयःस्फार चक्राणांशतार्ककृतदिक्तटाः ॥ गदानामभियांतोनांशतवंशीकृतांबराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जिससमय वह महाभयंकर युद्ध होरहाथा उससमय योग्य कार्य्यको शोचनेवालोंमें अति उदार स्मृतिमान् और अधिक धैर्य्यवान् श्रेष्ठ राजा सिन्धुने सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाके नाशार्थ और अपनी सेनाके रक्षार्थ, सब अस्त्रोंके स्वामी, और संहार करनेमें कालरुद्रके सदृश, श्रीमद् वैष्णवास्त्रको स्मरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर उस राजाने वैष्णवास्त्रसे अभिमंत्रित (मंत्र पढ़के) जो शर छोडा वह उस शल्यके अग्रभागसे ऐसे निकला जैसे उल्मुक (जलते हुये काष्ठ) से ॥३॥ उससे दिशाओंके तटोंको शत सूर्य्यके सदृश करनेवाली बिकट या बिशाल चक्रोंकी,आकाशको सैकडों वंशके करीलयुक्त करनेवाली चलतीहुई गदओंकी ॥४॥

वज्राणांशतधाराणांतृणराजीकृतांबराः ॥ पाट्टिशानांसपद्मानांदीनवृक्षीकृतांबराः ॥ ५ ॥ शराणांशितधाराणांपुष्पजालीकृतांबराः ॥ खड्गानांश्यामलांगानांपत्रराशीकृतांबराः ॥ ६ ॥ अथराजाद्वितीयोपिवैष्णवास्त्रस्यशांतये ॥ ददौवैष्णवमेवास्त्रंशत्रुनिष्ठावपूरकम् ॥ ७ ॥ ततोपिनिर्ययुर्नद्योहेतीनांहतहेतयः ॥ शरशक्तिगदाप्रासपट्टिशादिपयोमयाः ॥ ८ ॥

अर्थ—आकाशको तृणमय पंक्तियोंसे व्याप्त करनेवाले तीखे धारवाले वज्रोंकी कटे हुये वृक्षोंसे आकाशको व्याप्त करनेवाली पद्मके मुकुलाकार पट्टिशोंकी ॥ ५ ॥ आकाशको पुष्पजालमय करनेवाली तीखी धारवाले शरोंकी, और आकाशको पत्र राशियोंसे व्याप्त करनेवाली श्यामांग खड्गोंकी लडियोंकी लडियां निकलीं ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर राजा विदूरथनेभी उस वैष्णव अस्त्रकी शान्तिके लिये, शत्रुके पराक्रमकी मर्य्यादाका पूरक वैष्णवअस्त्रही छोडा ॥७॥ हे रामजी ! उस वैष्णवअस्त्रसेभी, पूर्व अस्त्रसे प्रेरित अस्त्रशस्त्र आदिको छिन्नभिन्न करनेवाली, और शर, शक्ति, गदा, भाला, तथा पट्टिशादिके पानीके सदृश अस्त्रोंकी नदियां निकलीं ॥ ८ ॥

शस्त्रास्त्रसरितांतासांव्योम्नियुद्धमवर्तत ॥ रोदोरंध्रक्षयकरंकुलशैलेंद्रदारणम् ॥ ९ ॥ शरपातितशूलासिखड्गकुट्टितपट्टिशम् ॥ मुसलप्रतनाप्रासशूलशातितशक्तिकम् ॥ १० ॥ शरांबुराशिमथनमत्तमुद्गरमंदरम् ॥ गदावदनतोयुक्तंदुर्वारास्त्रिनिभासिनि ॥ ११ ॥ रिष्टारिष्टप्रशमनभ्रमत्कुंतेंदुमंडलम् ॥ प्रासप्रसरसंरब्धप्रोद्यतांतकृतांतकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उन शस्त्रअस्त्रोंकी नदियोंका, पृथिवी और आकाशके मध्यभागको पूर्ण करनेवाला, मेरु आदि कुलपर्वतेन्द्रोंकोभी विदारण करनेमें समर्थ युद्ध आकाशमें आरम्भ हुआ ॥ ९ ॥ बाणोंसे गिराये हुये त्रिशूलोंसे पट्टिशादि जहां चूर्ण होगये हैं और मुसलोंके भलीभांति प्रपतन (पात) से तथा प्रास आदिसे शक्तियोंके जहां २ टुकडे २ होगये हैं ॥ १० ॥ शररूपी समुद्रको मथन करनेके मत्त मुद्गररूपी मन्दराचल है जिसमें, और गदाओंके मुख सदृश अग्र भागोंसे सम्मर्दित अनिवारणीय अस्त्रवाले योद्धाओंके प्रमाण और प्रभावके सदृश विलक्षण जातिकी तरवारें जहांपर हैं ॥ ११॥ शत्रु प्रेरित हिंसारूप अरिष्टके निवारण करनेके अर्थ, कुन्तरूपी चन्द्रमण्डल जिसमें भ्रमण कररहाहै और प्रासोंके प्रसारोंसे मानों प्राणियोंके प्राणनाशार्थ यमराज जहांपर कुपित होरहे हैं ॥ १२ ॥

चक्रावकुंठितोर्ध्वास्त्रंसर्वायुधक्षयंकरम् ॥ शब्दस्फुटद्विरिंचांडंघातभग्नकुलाचलम् ॥ १३ ॥ धारानिकृत्तशस्त्रौघमस्त्रयोर्युद्धमनयोः ॥ मदस्त्रवारणेनेववज्राविजरपर्वतम् ॥ १४ ॥ शंकुशंकितसूत्कारकाशिशूलशिलाशतम् ॥ भुशुंडीनिर्जितोद्दंडभिंदिपालोग्रमंडलम् ॥ १५ ॥ परशूलकराभैकपरशूलैकलंपितम् ॥ वहदुच्छिन्नचंचूद्दचारणंशत्रुवारणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चक्रसे अवकुण्ठित होगये हैं ऊपरके अस्त्र जिसमें सब अस्त्रोंका क्षय करनेवाला शब्दोंसे ब्रह्माण्डकोभी भेदन करनेवाला, और प्रयारोंसे कुलपर्वतोंकोभी भग्न करनेवाला ॥ १३ ॥ धाराओंसे अनेक शस्त्रोंके समूहको काटनेवाला, और जैसे मैंने (वसिष्ठजी कहते हैं) विश्वामित्रके अस्त्रको निवारण किया था उसीप्रकार एकदूसरेके कर्य्योंको रोकते हुये परस्पर युद्ध करनेवाले दोनों नारायणास्त्र सम्बन्धी वज्रोंसे अविजर हैं पर्वत जहांपर ॥ १४ ॥ कीलोंके समान निःश्वास शब्द करानेमें सिद्ध सैकडों शूल और शिलाओंकी जहां सम्भावना कीगई हैं और भुशुण्डियोंसे उदण्ड भिन्दिपालोंके भयंकर मण्डल जहांपर जीत लियेगये हैं ॥ १५ ॥ उत्तम त्रिशूलधारी जो महादेवजी हैं उनके श्रेष्ठ शूलके सदृश एक २ शूलोंसे एक दूसरेके एक २ शूलोंको जहांपर कुण्ठित करदिया कटेहुये चलते अस्त्रशस्त्रोंकी कुटिल गतिपूर्वक गमनागमन हो रहाथा ॥ १६ ॥

स्फुटच्चटचटास्फोटरुद्धत्रिपथगारयम् ॥ हेत्यस्त्रीचूर्णसंभारमहाधूमवितानकम् ॥ १७ ॥ अन्योन्यशस्त्रसंघट्टाद्भ्रमज्जालोल्लसत्तडित् ॥ शब्दस्फुटद्विरिंचांडंघातमग्नकुलाचलम् ॥ १८ ॥ धारानिकृत्तशस्त्रौघ

मस्त्रयोर्युध्यमानयोः ॥ मदस्त्रवारणेनैवकालोपायोचलात्मनः ॥ १९ ॥ अयंकिंयद्बलइतिसिंधोस्तिष्ठ तिहेलया ॥ विदूरथोस्त्रमाग्नेयंतत्याजाशनिशब्दवत् ॥ २० ॥

अर्थ—विकसित चटचटा शब्दोंसे गंगाजीकाभी वेग जहां रोक दिया गयाहै, और शस्त्रअस्त्रोंके चूर्णोंके समूहसे महाधूमकी चान्दनीसी जहांपर बनगई है॥१७॥परस्पर शस्त्रोंके सम्मर्दसे जालके सदृश शोभायमान विद्युत् जहां भ्रमण कर रही है, शब्दोंसे जहां ब्रह्माण्डका भेदन होरहाहै ॥ १८ ॥ धाराओंसे शस्त्रोंके समूह जहांपर काटे गये हैं, वहांपर विश्वामित्रके अस्त्रोंके निवारणार्थ मेरे अस्त्रके सदृश एक दूसरेके प्रहारको रोकते हुये दोनों नारायणास्त्र जिससमय युद्धकर रहेथे. उस समय युद्धमें राजा सिन्धु पर्वतके सदृश स्थिरथा ॥ १९ ॥ हे रामजी ! उस समय इस उपेक्षामें असावधान था कि यह विदूरथ मेरे सम्मुख क्या पराक्रमी है, इसी अवसरमें बज्र सदृशयुक्त आग्नेयास्त्रको राजा विदूरथने छोडा ॥ २० ॥

ज्वालयामाससरथंसिंधोःकक्षमिवारसम् ॥ एतस्मिन्नंतरेव्योम्निहेतिनिर्विवरोदरे ॥ २१ ॥ ससन्नाह इवप्रावृट्पयोदतटिनीवयः ॥ अस्त्रेराज्ञोःक्षणंकृत्वायुद्धंपरमदारुणम् ॥ २२ ॥ अन्योन्यंशममायातेस वीर्येसुभटाविव ॥ एतस्मिन्नंतरेसोग्नीरथंकृत्वातुभस्मसात् ॥ २३ ॥ प्रापदग्धवावनंसिंधुंमृगेंद्रमिवकं दरात् ॥ सिंधुरभ्यासतोभ्यस्त्रंवारुणास्त्रेणशामयन् ॥ २४ ॥

अर्थ—उसने राजा सिन्धुके रथको ऐसे जलादिया जैसे तृण समूहको अग्नि, इसी अवसरमें शस्त्रोंके कारण छिद्र आकाशमें ॥ २१ ॥ जो राजा उद्यत होके वृष्टिकालके सदृश, और दूसरो मेघोंसे बढी (उमडी) हुई नदीके सदृश बाणवृष्टि कर रहाथा उन दोनों (सिन्धु और विदूरथ) राजाओंके पूर्वोक्त दोनों नारायणास्त्र, क्षणभर अति दारुण युद्ध करके ॥ २२ ॥ परस्पर ऐसे शान्त होगये जैसें पराक्रमसहित दो उत्तम वीर इसी अवसरमें वह आग्नेयास्त्रकी अग्नि रथको सर्वथा भस्म करके ॥ २३ ॥ राजा सिन्धुके निकट ऐसे प्राप्त हुआ जैसे अग्नि बनको जलाके बनकी कन्दरासे निकले हुये सिंहके पास ॥ २४ ॥

रथंत्यक्त्वावनिंप्राप्यखड्गस्फोटकवानभूत् ॥ अक्ष्णोर्निमेषमात्रेणरथाश्वानांरिपोःखुरान् ॥ २५ ॥ लुला वकरवालेनमृणालानीवलाघवात् ॥ विदूरथोपिविरथोबभूवास्फोटकासिमान् ॥ २६ ॥ समायुधौस मोत्साहौचेरतुर्मंडलानितौ ॥ खड्गौक्रकचतांयातौमिथःप्रहरतोस्तयोः ॥ २७ ॥ दंतमालेयमस्येवबले चर्वयतःप्रजाः ॥ शक्तिमादायचिक्षेपखड्गंत्यक्त्वाविदूरथः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस समय राजा अपने रथको छोडके पृथिवीपर केवल ढाल तलवार लेके खडा होगया, और आखोंके पलक मात्रमें शत्रुके रथोंके घोडोंके खुरोंको ॥ २५ ॥ हस्तलघुतासे ऐसे तलवारसे काट डाला जैसे कमलकी दण्डियोंको और विदूरथभी अपने रथसे उतर करके केवल तलवार और ढालही लेके उपस्थित हुआ ॥२६॥ ये दोनों समान अस्त्र और समान उत्साहवान् मण्डलाकार पृथिवीपर भ्रमण करनेलगे और उनके परस्पर प्रहार करते हुये उनके खड्ग ऐसे कार्य्य करनेवाले थे जैसे आरे ॥ २७ ॥ जो सेनामें प्रजाओंका चर्वणकर रहाहै उसकी यह दन्तमालाहै ऐसा विचार करके राजा विदूरथने तरवारको त्यागकर शक्ति छोडी ॥ २८ ॥

सिंध्वंबुघर्घरारावोमहोत्पातइवाशनिः॥ अविच्छिन्नासमायातापतितासास्यवक्षसि ॥२९ ॥ अप्रियस्य यथाभर्त्तुरनिच्छंतीस्वकामिनी ॥ तेनशक्तिप्रहारेणनासौमरणमाप्तवान् ॥ ३० ॥ केवलंरुधिरव्रातंना गोजलमिवात्यजत् ॥ तद्देशलीलातंदृष्ट्वाभग्नंतमइवेंदुना ॥ ३१ ॥ सविकासघनानंदापूर्वलीलामुवाचह॥ देविपश्यनृसिंहेनहतोभर्त्रायमावयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—समुद्रके ऊपर समुद्रके समान महान् घर्घर शब्द, और वज्रके समान महान् उत्पातके सदृश, वह शक्ति सम्पूर्ण रूपसे राजा सिन्धुकी छातीपर गिरी ॥ २९ ॥ जिसप्रकार अप्रिय पतिकी इच्छा कामिनी नहीं करती इसीप्रकार उसने राजा सिन्धुको अपना लक्ष्य नहीं किया इसकारण वह राजा उस शक्तिके प्रहारसे मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ जैसे हस्ती मदजलको त्याग करताहै ऐसेही केवल रुधिरमात्रको त्यागा, जैसे चन्द्रमासे अन्धकार नष्ट होताहै ऐसे उसको देखकर ॥ ३१ ॥ विकास सहित बडे आनन्दसे पूर्ण होके पूर्वलीलासे यह बोली, हे देवि ! देखो मनुष्योंमें सिंहके समान हम दोनोंके पतिसे यह मारा गया ॥ ३२ ॥

शक्तिकोटिनखैर्दैत्यःसिंधुरुद्धुरकंधरः ॥ सरःस्थलस्थनागेंद्रकरफूत्कृतवारिवत् ॥ ३३ ॥ पिष्टोरसो स्यनिर्यातिरक्तंचुलचुलारवैः ॥ हाकष्टंरथमानीतंसिंधुरारोढुमुद्यतः ॥ ३४ ॥ सौवर्णमेरवंशृंगंपुष्करा

वर्त्तकोयथा ॥ पश्यदेविरथोस्यासौमुद्गरेणविचूर्णितः ॥ ३५ ॥ भ्रमत्पार्थनिपातेनसौवर्णनगरंयथा ॥ प्रवृत्तोरथमारोढुमानीतंपतिरेषमे ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे देवि ! इससमय यह ऊंची कन्धरावाला सिन्धु ऐसा हो रहाहै जैसे नृसिंह भगवान्‌के नखोंसे विदीर्ण हिरण्यकशिपु दैत्य, और तलावके मध्यमें स्थित नागेंद्रके शुण्डके फूंकसे जलके सदृश ॥ ३३ ॥ चिल्लू चिल्लू रक्तकी धार इसके चूर्णीभूत वक्षस्थल (छाती) से निकल रही है, हा कष्ट ! यह रथ प्राप्त किया गया इसके ऊपर सिंन्धु ऐसे चढनेको उद्यत हुआहै ॥ ३४ ॥ जैसे मेरुके शृंगपर पुष्करावर्त मेघ, देखो देवि ! इसका यह रथभी मुद्गरसे ऐसे चूर्ण होगयाहै ॥ ३५ ॥ जैसे भ्रमण करतेहुये अर्जुनके बाणोंके गिरनेसे सौवर्ण नगर, देखो यह रथ प्राप्त किया गया हमारे पतिभी इसपर चढनेको आरंभ किया ॥ ३६ ॥

कष्टंवज्रमिवेंद्रेणमुसलंसिंधुनेक्षितम् ॥ जवात्पतिः प्रयातोमेसैंधवंमुसलायुधम् ॥ ३७ ॥ वंचयित्वाविलासेनरथमारुह्यलाघवात् ॥ हाधिक्कष्टमसौसिंधुरार्यपुत्ररथंरयात् ॥ ३८ ॥ हरिश्चप्लमिवारूढंप्लवेनोर्ध्वमिवद्रुमम् ॥ क्रीडित्वापीडयामासशरवर्षैर्विदूरथम् ॥ ३९ ॥ छिन्नध्वजंछिन्नरथंछिन्नाश्वंछिन्नसारथिम् ॥ छिन्नकार्मुकवर्माणंभिन्नसर्वांगमाकुलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हा ! खेद ! सिन्धुने मुसलकी ओर ऐसा देखाहै जैसे इन्द्र वज्रको देखे हमारे पति वेगसे मुसल अस्त्रवाले सिन्धुको बचाके शीघ्रताके रथके ऊपर चढगये, हा कष्ट ! यह सिन्धुने वेगसे ॥ ३७ ॥ शैवाल आदिसे हरितवर्ण, छोटे तलावके सदृश, और ध्वजामें प्लवनाम पक्षीसे चिन्हित और वृक्षके सदृश स्थित ऊंचे रथपर आड मेरे पति विदूरथको क्रीडा करके शरकी वृष्टियोंसे पीडित करदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जिसका ध्वज, रथ, घोडे, सारथी, और धनुष सब कटगयेहैं ऐसे और सब अंग विदीर्ण होनेसे व्याकुल होरहेहैं ऐसे आर्य्यपुत्र मेरे पतिको ॥ ४० ॥

हृदिस्फोटशिलापट्टदृढेपीवरमूर्द्धनि ॥ भित्त्वावज्रसमैर्बाणैःपातयत्येषभूतले ॥ ४१ ॥ अथान्यंरथमानीतंकृच्छ्रेणप्राप्यचेतनाम् ॥ खड्गेनारोहतोस्यांसंछिन्नंभर्त्तुर्विलोकय ॥ ४२ ॥ पद्मरागगिरिद्योतमिवद्रस्त्रिग्विमुंचति ॥ हाहाधिक्कष्टमेतेनसिंधुनाखड्गधारया ॥ ४३ ॥ जंघयोर्मेपतिश्छिन्नःक्रकचेनेवपादपः॥ हाहाहतास्मिदग्धास्मिमृतास्म्युपहतास्मिच ॥ ४४ ॥

अर्थ—शिलापट्टके समान दृढ हृदयमें और स्थूल मस्तकमें वज्रसमान बाणोंसे भेदन करके, देखो यह (सिंधु) भूतलपर गिराताहै ॥ ४१ ॥ देखो अब दूसरे लाये हुये रथपर बडे कष्टसे चढते हुये हमारे पतिकी कंधाको तरवारसे इसने काटडाला ॥ ४२ ॥ इसी कारण इन हमारे पतिके शरीरसे रुधिर ऐसे अधिकता निकल रहाहै जैसे पद्मराग (माणिक्यके) पर्वतसे अरुण प्रभाकी धारा, हा ! हा !! धिक् कष्ट इस सिन्धुने तरवारकी धारसे ॥ ४३ ॥ हमारे पतिकी जंघाको ऐसे काटडाला जैसे आरेसे वृक्षको, हा ! हा !! मारी गई, हा ! जली !! हा! मरी! हा! पुनः मरी॥४४

मृणालेइवपत्युर्मेलूनेद्वेअपिजानुनी ॥ इत्युक्त्वासातदालोक्यभर्त्तुर्भावभयातुरा ॥४५॥ लतापरशुकृत्तेवमूर्छिताभुविसापतत् ॥ विदूरथोपिनिर्जानुःप्रहरन्नेवविद्विषि ॥४६॥ पपातस्यंदनस्याधश्छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ पतन्नेवैषसूतेनरथेनैवापवाहितः ॥ ४७ ॥ यदातदाहतितस्यकंठेऽद्रातिसिंधुरुद्धतः ॥ अर्द्धविच्छिन्नकंठोसावनुयातोथसिंधुना ॥ ४८ ॥ स्यंदनेनाविशत्सद्मपद्मंरविकरोयथा ॥ सरस्वत्याः प्रभावाद्यंतत्प्रवेष्टुमसौगृहम् ॥ नाशकन्मशकोमत्तोमहाज्वालोदरंयथा ॥ ४९ ॥ खड्गावकृत्तगलगत्तगलत्सवातरक्तच्छटाच्छुरितवस्त्रतनुत्रगात्रम् ॥ तत्याजतंभगवतीमभितोगृहांतःसूतःप्रवेश्यमृतितल्पतलेगतोरिः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथमरणवर्णनं नाम पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—कमलकी दण्डियोंके सदृश हमारे पतिकी दोनों घुंटनोंको इसने काटडाली, हे रामजी ! इतना कहके और इस कर्मको देखके भर्ता (पति) के विषयमें अधिक स्नेहके भयसे ॥ ४५ ॥ कुल्हाडीसे काटी हुई लताके समान मूर्छित होकर पृथिवीपर गिरपडी और विदूरथभी जानुरहित अपने शत्रुके ऊपर प्रहार करता हुआ ॥ ४६ ॥ जडसे कटे हुये वृक्षके समान रथसे नीचे गिरा, और गिरतेही समय सारथीने रथपर रखकर राजभवनकी ओर लेके चला ॥ ४७ ॥ जिससमय वह लेके चला उस मूर्छित दशामेंभी उद्धत (शास्त्र मर्य्यादाको उल्लंघन करनेवाले) राजा सिंधुने विदूरथके कण्ठमें एक तरवार मारी, और आधे कटेही हुये कण्ठसे गृहकी ओर सारथी राजाको लेके चला और वहां भी राजासिन्धु इसके पीछे २ चला ॥ ४८ ॥ रथसे राजा उस राजभवनमें ऐसे प्रवेश किया जैसे सूर्य्यके किरण कम-

लमें और सरस्वतीके प्रभावसे वह सिन्धु उस राजगृहमें ऐसे न प्रवेश करसका जैसे महाअग्निकी ज्वालाके भीतर मशक (मच्छर) ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! खड्ग (तलवार) से कटे हुये गलेके छिद्रसे निकलती हुई रक्तकी धाराओंसे सिक्तहैं वस्त्र, कवच और सब अंग जिसके ऐसे राजा विदूरथको सूत (सारथी) गृहमें लाके सरस्वतीके सम्मुख सुखसे मरण योग्य कोमल शय्यापर रखकर वहां छोड दिया, और प्रवेश करनेका सामर्थ्य न होनेसे शत्रु सिन्धु वहांहीसे लोट गया ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथ मरणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस राजाके वधके वृत्तान्तसे राज्यमें उपद्रव और सिन्धुके चले जानेपर पुनः राज्यमें शान्ति विस्तारसे इस ५१ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ हतोराजाहतोराजाप्रतिराजेनसंयुगे ॥ इतिशब्देसमुद्भूतेराष्ट्रमासीद्भयाकुलम् ॥ भांडोपस्करभाराढ्यंविद्रवच्छकटव्रजम् ॥ साक्रंदार्त्तकलत्राढ्यंद्रवन्नागरदुर्गमम् ॥ २ ॥ पलायमानसाक्रंदमार्गाहृतवधूगणम् ॥ अन्योन्यलुंठनव्यग्रलोकलग्नमहाभयम् ॥ ३ ॥ परराष्ट्रजनानीकतांडवोल्लाससारवम् ॥ निरधिष्ठितमातंगहयवीरपतज्जनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! शत्रुभूत राजा सिन्धुसे राजा विदूरथ मारागया यह शब्द जब चारोंओरसे निकला उससमय विदूरथका राज्य भयसे व्याकुल होगया॥१॥हे रामजी ! पुनः वह राज्य वर्तन तथा अन्य गृहकी सामग्रियोंसे पूर्ण इधरउधर दौडरहे हैं गाडियोंके समूह जिसमें, रोती आर्त हुई स्त्रियोंसे पूर्ण,तथा भागते हुये नगरनिवासियोंसे दुर्गम ॥ २ ॥ भागनेवाले मनुष्योंके महान् विलाप और रोदन सहित, मार्गमें जहांपर स्त्रियोंको लोग हरके लेजारहे हैं, एक दूसरेके लूटनेमें तत्पर मनुष्योंसे महाभयदायी ॥ ३ ॥ तथा शत्रुके राज्यके मनुष्योंसे सेनाके ताण्डव नृत्यके उत्साहसे शब्द सहित, हांथी तथा घोडोंपर चढे हुये वीर जहां आके झुण्डके झुण्ड गिररहे हैं ॥ ४ ॥

कपाटपाटनोड्डीनकोशांतरवघर्घरम् ॥ लुंठितासंख्यकौशेयप्रावृताभिभटोद्भटम् ॥ ५ ॥ क्षुरिकोत्पाटितान्त्रमृतराजगृहांगनम् ॥ राजांतःपुरविश्रांतचंडालश्वपचोत्करम् ॥ ६ ॥ गृहापहृतभोज्यान्नभोजनोन्मुखपामरम् ॥ सद्दमहारवीरौघपादाहतरुदच्छिशु ॥ ७ ॥ अपूर्वतरुणाक्रांतकेशांतःपुरिकांगनम् ॥ चोरहस्तच्युतानर्घ्यरत्नदंतुरमार्गगम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कवाडोंके तोडनेसे कोश (खजाने) के गृहोंसे निकले हुये शब्दसे घर्घर ध्वनि सहित, और रेशमके वस्त्र पहने हुये असंख्य कोशके रक्षक बडे २ वीर जहांपर लुटगये हैं ॥ ५ ॥ चोरोंसे छुरियों करके आर्द्र (गिली) आंत निकालनेसे राजभवनकी स्त्रियां जहांपर मरी हुई पडी हैं, और राजाके अन्तःपुरमें जहांपर चाण्डाल और भंगियोंका समूह विश्राम कररहाहै ॥ ६ ॥ राजाओंके योग्य राजभवनसे हरेहुये अन्नोंको नीच पामरजन जहां भोजन करना आरंभ करदियाहै, तथा वीरोंके समूहके पादप्रहारसे हार आदि आभूषण पहने हुये बालक जहांपर रोदन कररहेहैं ॥ ७ ॥ अपूर्व युवा (शत्रुकी सेनाके नव जवान) पुरुषोंने अन्तःपुरकी अंगनाओंका केश जहांपर पकडलियाहै और चोरोंके हस्तोंसे गिरे हुये अमूल्य रत्नोंसे मार्गगामी जहां निष्कासित दांतो श्वेतवर्ण जहांपर विदित होते हैं ॥ ८ ॥

हयेभरथसंघट्टव्यग्रसामंतमंडलम् ॥ अभिषेकोद्यमादेशंपरमंत्रिपुरःसरम् ॥ ९ ॥ राजधानीविनिर्माणसारंभस्थपतीश्वरम् ॥ कृतवातायनश्वभ्रनिपतद्राजवल्लभम् ॥ १० ॥ जयशब्दशतोद्घोषसिंधुराजन्यनिर्भरम् ॥ असंख्यनिजराजौघधृतसिंधुकृतास्थिति ॥ ११ ॥ ग्रामांतरसमाक्रांतविद्रवद्राजवल्लभम् ॥ मंडलांतरसंजातनगरग्रामलुंठनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—घोडे, हांथी, और रथ आदिके एकत्र करनेमें जहां राजा सिन्धुके सामन्त (छोटे २ कर देनेवाला राजा) तत्पर होरहे हैं, और सिन्धुके पुत्रके राज्याभिषेकके उद्यमकी आज्ञा देनेमें मन्त्री आदि जहांपर अग्रगामी होरहेहैं ॥ ९ ॥ राजधानीके निर्माण (बनाने) करनेमें श्रेष्ठ शिल्पी (कारीगर) जहांपर लगरहेहैं, और उन शिल्पीयोंसे बनाये हुये झरोंखोमेंसे नगरकी विलक्षण सुन्दरता देखनेके लिये सिन्धुराजकी अंगना जहांपर प्रवेश कररही हैं१०॥

॥ १० ॥ हे रामजी ! सैकडों जय शब्दोंसे प्रवेश कराये राजगद्दीमें अभिषिक्त सिन्धुके राजपुत्रके प्रभावकी अधिकता जहांपर होरही है और असंख्य अपने पक्षके राजाओंके समूहोंने जहांपर सिन्धुराजाकी स्थापित मर्य्यादाओंको जहांपर शिरपर धारण किया है ॥ ११ ॥ अन्य ग्रामोंमें छिपाई हुई राजांगनायें शत्रुसे विदित होजानेपर वहांसेभी जहां भागनेमें तत्पर होरही हैं, और राजधानीसे पृथक् दूसरे मण्डल (जिले) के ग्राम नगरोंमेंभी जहांपर लूट मार आरम्भ होगई है ॥ १२ ॥

अनंतचोरमोषार्थरुद्धमार्गगमागमम् ॥ महानुभाववैधुर्यसनीहारदिनातपम् ॥ १३ ॥ मृतबंधुजनाक्रंदैर्मृततूर्यरवैरपि ॥ हयेभरथशब्दैश्चपिंडग्राह्यघनध्वनि ॥ १४ ॥ सिंधुदेवोजयत्येकच्छत्रभूमंडलाधिपः ॥ इत्यनंतरमारेभेभेर्यःप्रतिपुरंतदा ॥ १५ ॥ राजधानींविवेशाथसिंधुरुद्धुरकंधरः ॥ प्रजाःस्रष्टुंयुगस्यांतेमनुर्जगदिवापरः ॥ १६ ॥

अर्थ—असंख्य चोरोंने लूटनेके अर्थ जहांपर मार्गोंमें आना जाना बन्दकर दियाहै, और महाऽनुभाव विदूरथके विरहसे जहांपर दिनका आतपभी ऐसा होगयाहै जैसे कुहिरा करके युक्त ॥ १३ ॥ मृतक बन्धुओंके शोकके रोदनसे, तथा मृत (मारू) बाजाके शब्दोंसे, और हांथी घोडे तथा रथादिके शब्दोंसेभी ऐसी घनीभूत पिण्डाकार गंभीर ध्वनि निकली कि जैसे हस्तसे ग्रहण करने योग्य ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर प्रत्येक नगरमें नगारोंका यह डंका बजना आरंभ होगया कि एक छत्रधारी सम्पूर्ण भूमण्डलके स्वामी राजासिन्धुदेवका जयहो जयहो ॥ १५ ॥ हे रामजी ! अपने पुत्रको राजगद्दीपर बैठा करके राजासिन्धु अपनी राजधानीमें प्रजा पालनार्थ ऐसे प्रवेश किया जैसे युगके अन्तमें मनु भगवान् दूसरे जगत्के पालनार्थ उसमें प्रवेश करें ॥ १६ ॥

प्रवृत्तादशदिग्भ्योथप्रवेष्टुंसैंधवंपुरम् ॥ कराःकरिहयाकारैरत्नपूराइवांबुधिम् ॥ १७ ॥ निबंधनानिचिह्नानिशासनानिदिशंप्रति ॥ क्षणान्निवेशयामासुर्मंडलंप्रतिमंत्रिणः ॥ १८ ॥ उदभूदचिरेणैवदेशेदेशेपुरेपुरे ॥ जीवितेमरणेमानेनियमोयमतोयथा ॥ १९ ॥ अथशेमुर्निमेषेणदेशोपप्लवविभ्रमाः ॥ प्रशांतोत्पातपवनाःपदार्थावृत्तयोयथा ॥ २० ॥ सौम्यतामाजगामाशुदेशोदशदिगन्वितः ॥ क्षीरोदःक्षुभितावर्तोद्रागिवोद्धृतमंदरः ॥ २१ ॥ ववुरलकचयान्विलोलयंतोमुखकमलालिकुलानिसैंधवीनाम् ॥ जललववलनाकुलाःसमीराअशिवगुणानिवसर्वतःक्षणेन ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिंधुराष्ट्रवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—हस्ती और घोडे आदिके आकारमें होकर दशों दिशाओंसे राजासिन्धुके नगरमें करोंका ऐसे आरम्भ हुआ जैसे समुद्रमें रत्नोंके समूहोंका ॥ १७ ॥ नियमोंकी मर्य्यादा, मुद्रादिक राजासिन्धुके नामके चिन्ह, तथा अन्य आज्ञायें सम्पूर्ण मण्डल (जिले) और दिशाओंमें श्रेष्ठ मंत्रियोंनें क्षण (अल्पकाल) भरमें स्थापित करदिया ॥१८॥ इसीप्रकारका नियम जीवन, मरण तथा मानादिमें अल्पकालमेंही देश २ तथा नगर २ में प्रकट होगया ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण देशका उपद्रव इसप्रकार शान्त होगया जैसे पवनके उत्पातके शान्त होजानेपर तृणादि पदार्थोंका भ्रमण ॥ २० ॥ अति शीघ्र दशोदिशा करके सहित ऐसी स्वस्थताको प्राप्त हुआ जैसे मन्दराचलके निकालनेसे तत्काल आवर्तोंसे संक्षुभित क्षीरसागर ॥ २१ ॥ हे रामजी ! सिन्धुराजाके देशकी स्त्रियोंके मुखकमलोंपर भ्रमरकी पंक्तियोंके सदृश केशसमूहोंको छिटकाते हुये, जलके कणोंके सम्बन्धसहित, और सब ओरसे दौर्गन्ध्य आदि दुष्ट गुणोंको नाश करते हुये त्रिविध गुणसहित पवन बहने लगे ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिन्धुराष्ट्र वर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

उस विदूरथ राजाका मरण संसारका मिथ्यात्व, और विदूरथके नगरकी लीलाकी वासना इस ५२ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेरामलीलेवाचसरस्वतीम् ॥ श्वासावशेषमालोक्यमृदंभर्त्तारमग्रगम् ॥ १ ॥ प्रवृत्तोदेहमुत्स्रष्टुंमद्भर्त्तायमिहांबिके ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ एवंरूपमहारंभेसंग्रामेराष्ट्रसंभ्रमे

॥ २ ॥ संपन्नेपिस्थितेप्युच्चैर्विचित्रारंभमंथरे ॥ नकिंचिदपिसंपन्नंराष्ट्रंनचमहीतलम् ॥ ३ ॥ नस्थितंक चनाप्येवंस्वप्नात्मकमिदंजगत् ॥ तस्यतन्मंडपस्यांतःशवस्यनिकटांबरे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अपने पतिको केवल श्वासमात्र शेष मूर्छित दशामें सम्मुख स्थित देख-कर इसी अवसर लीला सरस्वतीसे बोली ॥ १ ॥ हे अम्बिके ! मातः ! देखो यह मेरा पति अब देह त्यागनेमें प्रस्थि-तहैं अर्थात् मैं इससमय अति शोकाकुल हूं, इसको सुनके ज्ञप्तिभगवती बोली—कि इसप्रकार राज्यमें संक्षोभ करनेवाले और महान् आडम्बर युक्त इस संग्रामके ॥ २ ॥ विचित्र आरंभके साथ होनेपरभी और बहुत उच्चताके साथ दीर्घकालतक स्थित रहनेपरभी और महान् सभारोहके साथ नष्ट होजानेपरभी यथार्थमें कुछ नहीं हुआ, न तो यह राज्यही उत्पन्न और न जिसमें संग्राम हुआ वह भूतलही उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ और न यह (युद्ध आदि) कुछ स्थित रहा न नष्ट हुआ, यह केवल उस पद्मके शव (मृतक शरीर) के निकट उसी मण्डपाकाशमें स्वप्नके तुल्य यह जगत् है ॥ ४ ॥

इदंभूराष्ट्रमाभातिभर्तृजीवस्यतेनघे ॥ अंतःपुरगृहांतेतदिदंराष्ट्रान्वितोदरम् ॥ ५ ॥ वसिष्ठविप्रगेहेंत विंध्याद्रिग्रामकेस्थितम् ॥ वसिष्ठविप्रगेहेंतःशवगेहजगत्स्थितम् ॥ ६ ॥ शवगेहजगत्कुक्षाविदंगेहज गत्स्थितम् ॥ एवमेषमहारंभोजगत्रयमयोभ्रमः ॥ ७ ॥ त्वयामयानयानेनसंयुक्तःसार्णवावनिः ॥ गिरि ग्रामकदेहांतर्मध्येगगनकोशके ॥ ८ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण पृथिवी राज्यादि जिसके उदरमेंहैं, ऐसा तुमारे पति विदूरथका ब्रह्माण्ड सब राजा पद्मके मृतक शरीरके अन्तःपुरके मण्डपाकाशके निकट स्थितहैं ॥ ५ ॥ और राजा पद्मका सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विन्ध्याचलके गिरिग्रामक वसिष्ठनामक ब्राह्मणके गृहाकाशके भीतरहैं, और उसी वसिष्ठके मृतक शरीरके गृहमें सम्पूर्ण यह जगत् स्थितहै ॥ ६ ॥ मृतकके गृहरूपी जगत् कुक्षिमें यह सब ब्रह्माण्ड स्थितहै इसप्रकार यह महान् आरंभके साथ यह तीनों लोक केवल भ्रममात्रहैं ॥ ७ ॥ हे लीले ! तुम हम और इस पूर्वलीलाकरके सहित सम्पूर्ण जगत्का भ्रम उसे गिरिग्रामक ब्राह्मणके देहके मध्याकाशके कोशमें होरहाहै ॥ ८ ॥

स्वात्मैवकचतिव्यर्थोनकचत्येववाक्वचित् ॥ तत्पदंपरमंविद्धिनाशोत्पादविवर्जितम् ॥ ९ ॥ स्वयंक चितमाभातंशांतंपरमनामयम् ॥ किलमंडपगेहेंतःस्वस्वभावोदितात्मनि ॥ १० ॥ एवमारंभघनयोर पिमंडपयोस्तयोः ॥ उदरेशून्यमाकाशमेवास्तिनजगद्भ्रमः ॥ ११ ॥ भ्रमद्रष्टुरभावेहिकीदृशीभ्रमताभ्र मे ॥ नास्त्येवभ्रमसत्तातोयदस्तितदजंपदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह सर्वरूप होकर अपना आत्माही प्रकाश कररहाहै, और कहीं कुछ नहीं है सब व्यर्थ है, हे लीले ! उसी उत्पत्ति नाश रहित परम पवित्र पदको तूं जान ॥ ९ ॥ यह आत्मा स्वयंप्रकाश शान्त, परम अनामय है, वही उस ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें अपने चिन्मात्र स्वभावसे आपही प्रकाशित है, और कोई पदार्थान्तर नहीं है ॥ १० ॥ इसप्रकार आरंभमें सघनभी इन दोनों (वसिष्ठ ब्राह्मण तथा पद्म राजाके) मण्डपाकाशके भीतर यथार्थमें शून्यहीहै जगत्का भ्रम कुछ नहीं अर्थात् जब भूताकाशमेंही यथार्थमें जगत् नहीं तो शुद्धचिदाकाशमें कहां ॥ ११ ॥ भ्रमके द्र-ष्टाके अभावसे भ्रममें भ्रमता कहां, इसलिये भ्रमकी सत्ताही नहीं है जो कुछहै वह अज परमपद ब्रह्महीहै ॥ १२ ॥

भ्रमोदृश्यमसत्तस्यद्रष्टृदृश्यदशाकुतः ॥ द्रष्टृदृश्यक्रमाभावादद्वयंसहजंहितत् ॥ १३ ॥ तत्पदंपरमंवि द्धिनाशोत्पादविवर्जितम् ॥ स्वयंकचितमाभातंशांतमाद्यमनामयम् ॥ १४ ॥ किलमंडपगेहांतःस्वस्व भावोदितात्मनि ॥ विहरंतिजनास्तत्रस्वगेहेस्वव्यवस्थया ॥ १५ ॥ नजगत्तत्रनोसर्गःकश्चिदप्यनुभू यते ॥ तेनाहमजमाकाशंजगदित्येववर्त्तते ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रष्टाके व्यापारके फलके आधारको दृश्य कहते हैं, वह दृश्यत्व स्वात्मभूत चेतनमें नहीं बनसकता क्योंकि अपनेहीमें कर्तृ कर्मका विरोध होनेसे द्रष्टृत्व और दृश्यत्व नहीं बनसकता इसलिये यह दृश्यका भ्रम असत् है तब द्रष्टृत्व और दृश्यत्व व्यवहार उस चिदात्मामें कहां ? और द्रष्टा और दृश्यके क्रमका अभाव होनेसे वह चि-दात्मा सहज स्वभावसे अद्वैतही है ॥ १३ ॥ हे लीले ! उस परमपदको उत्पत्ति और नाशरहित जानो, और वह स्वयं प्रकाशमय शान्त और सबका आदि अनामयहै ॥ १४ ॥ उसी मण्डपके गृहाकाशमें निजस्वभावसे उदित स्वात्मामें अपने २ व्यवहारके योग्य विशाल देशकी व्यवस्थासे सब प्राणी विचरते हैं ॥ १५ ॥ चिदात्मासे पृथक् जगत् वा ज-गत्की सृष्टिको कोईभी तत्वज्ञानी अनुभव नहीं करता, इसलिये अनुभवरूप प्रत्यक्षप्रमाणसे अहंकारका साक्षीभूत जो चिदाकाश है, वह अज्ञानियोंकी दृष्टिमें जगद्रूपसे भास रहाहै ॥ १६ ॥

सर्वंशून्यात्मविज्ञानंमेर्वादिगिरिजालकम् ॥ नेदंकुड्यमयंकिंचिद्यथास्वप्नेमहापुरम् ॥ १७ ॥ देशेप्रादेशमात्रेपिगिरिजालमयान्यपि ॥ वज्रसाराणिखान्येवलक्षाणिजगतोविदुः ॥ १८ ॥ जगंतिसुबहून्येवसंभवंत्यणुकेपिच ॥ कदलीपल्लवानीवसन्निवेशेनभूरिशः ॥ १९ ॥ त्रिजगच्चिदणावंतरस्तिस्वप्नपुरंयथा ॥ तस्याप्यंतश्चिदणवस्तेष्वप्येकैकशोजगत् ॥ २० ॥

अर्थ—मेरु आदि पर्वतसमूह सब दृश्य शून्यात्मकज्ञान स्वरूपही हैं न कि जैसा कुड्य (भित्ति) आदि स्थूलरूपसे देखपडता है, क्योंकि वह अपने प्रवेशके अयोग्य अल्प देशमें स्वप्न पदार्थके तुल्य भासता है ॥ १७ ॥ कण्ठेस्वप्नःसमाविशेत् (कण्ठमें स्वाप्निक पदार्थ भान होते हैं) इस श्रुतिके अनुसार कण्ठसे लेके हृदयपर्य्यन्त प्रादेशमात्र (तर्जनीसे लेके विस्तृत अंगुष्ठ देश) मेंभी जो वज्रके सदृश दृढ पर्वत आदि लाखों जगत् भान होते हैं उनको ज्ञानी चैतन्य आत्मरूपही कहते हैं ॥ १८ ॥ अणुमात्र चेतनमेंभी अनेक जगत् ऐसे भान होते हैं जैसे अल्प स्थानमें अनेक केलेके पत्ते ॥ १९ ॥ यह तीनों लोक अण्डमात्र चेतनमें ऐसे हैं जैसे स्वप्नमें बडे २ नगर और उस अण्ड चेतनके भीतर अणुचित् है, और उनमेंभी प्रत्येकमें जगत् है ॥ २० ॥

तेषांयस्मिन्जगत्येषपद्मोराजाशवःस्थितः ॥ लीलातवसपत्नीयंप्राप्तापूर्वतराशुभे ॥ २१ ॥ यदैवमूर्छामायातालीलेयंपुरतस्तव ॥ तदैवभर्तुःपद्मस्यशवस्यनिकटेस्थिता ॥ २२ ॥ लीलोवाच ॥ कथमेषापुरा देविसंपन्नातत्रदेहिनी ॥ कथंचतत्सपत्नीकभावमाप्तवतीस्थिता ॥ २३ ॥ तेचास्यावदर्किरूपंपश्यंत्यथवदंतिकिम् ॥ तद्गेहवरवास्तव्याःसमासेनेतिमेवद ॥ २४ ॥

अर्थ—उन अनेक जगतोंमेंसे जिस जगत्में राजा पद्म मृतक शरीरसे स्थित है, वहांपर हे शुभे ! यह तुमारी सपत्नी लीला पूर्वही प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ जिससमय राजा पद्म मृत्युरूपी मूर्छामें ग्रस्त हुआ था उससमय पतिके सन्मुख मृतशरीरके निकट स्थितथी ॥ २२ ॥ लीला बोली—हे देवि ! यह लीला प्रथम (पूर्वकालमें) राजा पद्मकी पट्टरानी कैसे हुई और मैं इसकी सपत्नी होके कैसे स्थितहूं ॥ २३ ॥ और जो राजा तद्मके श्रेष्ठ गृहमें रहते हैं वे जन इस लीलाका कैसा रूप देखते हैं, और इसको क्या कहते हैं, वह सब संक्षेपसे कृपा करके कहिये ॥ २४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृणुसर्वंसमासेनयथादृष्टंवदामिते ॥ लीलेलीलास्ववृत्तांतमंतर्दृश्यदृईदशम् ॥ २५ ॥ पद्मस्तवसभर्तैषभ्रांतितावत्ततामिमाम् ॥ इयंजगन्मयीतस्मिन्नेवसद्मनिपश्यति ॥ २६ ॥ भ्रांतियुद्धमिदंयुद्धमेषाभ्रांतिर्जनोऽजनः ॥ भ्रांत्यैवास्तीहमरणमेषचैवंभ्रमात्मकः ॥ २७ ॥ भ्रमक्रमेणानेनैवलीलास्यदयितास्थिता ॥ त्वंचैषाचवरारोहेस्वप्नमात्रंवरांगने ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! सुनिये जैसा तुमने पूंछा वह सब संक्षेपसे कहतीहुं, यह तुमारा मरण और परलोकादिमें गमनागमनकी दुर्दशाका देखलानेवाला तथा निर्णयदायक है ॥ २५ ॥ यह जो नगरआदि रूपसे परिणत भ्रान्ति है इसे व्याप्तरूपसे यह तुमारा पति जो विदूरथरूपसे स्थित है उसी पद्मके मृतक शरीरके मण्डपाकाशमें देखरहा है ॥ २६ ॥ हे लीले ! यह जो तुमने युद्ध देखा है वह स्वप्नके युद्धके सदृश भ्रान्तिमात्र है, यह लीला जिसके विषयमें तुमने पूंछा वहभी भ्रान्तिमात्र है, और जो जन सम्पूर्ण देखपडते हैं, ये सबभी जन्म आदि विकारसे रहित हैं इसलोकमें यह मरणभी भ्रान्तिमात्र है, कहांतक कहैं यह सम्पूर्ण संसारही भ्रान्तिमात्र है ॥ २७ ॥ इसी भवके क्रमसे यह लीला इसराजाकी प्रिय पत्नी स्थित और हे उत्तम अंगवाली तुम और यह दोनों इस राजाकी स्वप्नमात्रकी अंगना हो ॥ २८ ॥

यथाभवत्यावेतस्यस्वप्नमात्रंवरांगने ॥ तथाभवत्योर्भर्तैषतथैवाहमपिस्वयम् ॥ २९ ॥ जगच्छोभेवेहशीयंदृश्यमेतदिहोच्यते ॥ एतदेवपरिज्ञातंदृश्यशब्दार्थमुज्झति ॥ ३० ॥ एवमेषात्वमेषाचसंपन्नैवमसौनृपः ॥ अहंचात्मनिसत्यत्वंगतासर्वतयात्मनः ॥ ३१ ॥ इमेवयमिहान्योन्यंसंपन्नाश्चोदिताइति ॥ इत्थंसर्वात्मकतयामहाचिद्घनसंस्थितेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तुम दोनों इसकी स्वप्नमात्रकी श्रेष्ठ स्त्रीहो इसी प्रकार यह तुमारा पतिभी केवल स्वप्नमात्रही है, और मैं स्वयं स्वप्नमात्रहुं ॥२९॥ हे लीले ! यह सम्पूर्ण जगत्की शोभा ऐसीही (भ्रान्तिमात्र) है, और सम्पूर्ण दृश्यभी केवल भ्रान्ति मात्रही कहागयाहै, वश यदि इतना जान लिया जाय तो दृश्य शब्दका अर्थ अर्थात् चेतनका दृश्य (चेतन कर्ता और जगत् दृश्य कर्ता) यह दृश्यशब्दका अर्थ त्याग देताहै, अर्थात् केवल ब्रह्मरूपका बोध होनेसे कर्तृकर्म व्यवहार यथार्थ नहीं प्रतीत होता ॥ ३० ॥ हे लीले ! इसीप्रकार यह संसारकी स्थिति केवल भ्रम मात्रहै,

और तुम यह लीला तथा यह राजा ये सब इसीप्रकार भ्रान्तिमात्रसे स्थितहैं और मैंभी ऐसीही हुं, केवल सर्वत्र परिपूर्ण आत्मरूपसे सब सत्यहैं ॥ ३१ ॥ ये सम्पूर्ण राजगण और ये सब हम एक दूसरेके उपकार्य्य उपकारक भाव (एकदूसरेको लाभ पहुंचानेके अर्थ) से प्रेरितहैं इसप्रकार सर्वात्मारूप महाचिद्घनकी स्थिति (मिथ्या कल्पना) में जैसे ये सब स्थितहैं ॥ ३२ ॥

एवमेषास्थिताराज्ञीहारिहासविलासिनी ॥ लीलाविलोलवदनानवयौवनशालिनी ॥ ३३ ॥ पेशलाचारमधुरामधुरोदारभाषिणी ॥ कोकिलास्वरसंकाशामदमन्मथमंथरा ॥ ३४ ॥ असितोत्पलपत्राक्षीवृत्तपीनपयोधरा ॥ कांताकांचनगौरांगीपक्वबिंबफलाधरा ॥ ३५ ॥ त्वत्संकल्पात्मकस्यैषायदाभर्त्तुर्मनःकला ॥ तदात्वत्सदृशाकारास्थितैषाचिच्चमत्कृतौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—वैसेही यह लीलारानीभी स्थितहै, जो कि अपने हास्यसे सबके मनोंको हरनेवाली लीलासे चंचल मुखवाली, नूतन यौवनसे अति शोभायमान ॥ ३३ ॥ सब कार्य्योंमें निपुण सदाचारसे प्रिय मधुर और सत्य भाषण करनेवाली, कोकिल सदृश मिष्ट कण्ठयुक्त, और युवाऽवस्थाके मदसे मन्दगति है ॥ ३४ ॥ तथा नीलकमलके पत्रके सदृश नेत्रधारिणी तथा दृढ आपसमें मिले हुये और स्थूल स्तनवाली, अति प्रिय कांचनके सदृश गौरांगी और पक्व बिम्बके फलके सदृश ओष्ठवाली है ॥ ३५ ॥ हे लीले! जिससमय तुमारे लिये आत्मामें संकल्प करनेवाले इस तुमारे पतिकी वासनाहुई कि तुमारे सदृश स्त्री मुझे मिले ऐसी इच्छा हुई उसीसमय तुमारे सदृश आकारवाली यह चेतनके चमत्कारमें आके उपस्थित होगई ॥ ३६ ॥

त्वद्भर्त्तुर्मरणेक्षिप्रंसमनंतरमेवहि ॥ त्वद्भर्त्रैषापुरोदृष्टात्वत्संकल्पात्मनामुना ॥ ३७ ॥ यदाधिभौतिकंभावंचेतोनुभवतिस्वयम् ॥ चेत्यंसन्मयमेवातआतिवाहिककल्पनम् ॥ ३८ ॥ यदाधिभौतिकंभावंचेतोवेत्तिनसन्मयम् ॥ आतिवाहिकसंकल्पस्तदासत्योपजायते ॥ ३९ ॥ अथोमरणसंवित्त्यापुनर्जन्ममयेभ्रमे ॥ त्वंहिसंविदितानेनत्वयाचगतएवसः ॥ ४० ॥

अर्थ—तुमारे पतिके मरण कालके अनन्तरही तुमारे सदृश स्त्रीके अर्थ संकल्प करनेवाले इस तुमारे पतिने अपने सन्मुख इस लीलाको देखा ॥ ३७ ॥ क्योंकि जिससमय अभ्यासकी दृढ वासनासे आधिभौतिक अर्थात् व्यावहारिक भावको चित्त अनुभव करताहै, उससमय उसी अनुभवसे आतिवाहिक कल्पना अर्थात् सूक्ष्मकल्पनात्मक चेत्यदृश्य परमार्थ सत्यमय होजाताहै, इससे वासनामयी लीलाको इसने सत्यरूपसे कैसे देखा यह शंका निवृत्त हुई ॥ ३८ ॥ और जिससमय विवेक ज्ञानके अभ्याससे आधिभौतिक अर्थात् ये सब व्यावहारिक पृथिवी जनादि वस्तुरूप भावको सत्यरूपसे नहीं जानता तब उसका आतिवाहिक सूक्ष्म संकल्प सत्य होजाताहै और वह प्रातिभासिकरूपसे निर्णीत होजाताहै ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् जब पद्मराजा मरा तब उससमय मरणके ज्ञानसे पुनः जब जन्मका भ्रम हुआ तब यह तुमारी वासनासहित मरके जन्म लिया, इसलिये तुमको पुनः इसने दूसरी लीलाके रूपसे पाया ॥ ४० ॥

इत्थंत्वांदृष्टवानेषदृष्टश्चैषत्वयेतिच ॥ त्वमप्यात्मनिसंपन्नासर्वगत्वाच्चिदात्मनः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मसर्वगतंयस्माद्यथायत्रयदोदितम् ॥ भवत्याशुतथातत्रस्वप्रशक्त्यैवपश्यति ॥ ४२ ॥ सर्वत्रसर्वशक्तित्वाद्यत्रयाशक्तिरुन्नयेत् ॥ आस्तेतत्रतथाभातितीव्रसंवेगहेतुतः ॥ ४३ ॥ मृतिमोहक्षणेनैवयदैतौदंपतीस्थितौ ॥ तदैवाभ्यामिदंबुद्धंप्रतिभासवशाद्धृदि ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसप्रकार इस राजाने अपनी वासनामय तुमको देखा और तुमने अपनी वासनामय इस राजाको देखा क्योंकि चित् सर्व वासनाओंमें व्याप्तहै, इसलिये तुमभी इसीमें उत्पन्न हुई जो चित् सर्व वासनामें अनुगतहै, वह सम्पूर्ण विवर्तका आकार धारण कर सकताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि ब्रह्म सर्वगतहै, इसलिये जहां जैसी वासना उदित होती है,वहां पर वैसाही होताहै, और विक्षेप शक्तिसे वैसाही अनुभव करताहै ॥ ४२ ॥ ब्रह्म सर्वत्र शक्तियुक्त होनेसे जैसे २ जिस२ भोजक अदृष्टके बलसे आविर्भाव कराताहै, वहां दृढ अभिनिवेश वासनाके कारण वैसाही स्थित होकर भान होताहै ॥ ४३ ॥ अपने २ मरणरूपी मूर्च्छाके क्षणमें ये दोनों स्त्री पुरुष जैसी २ वासनासहित स्थित थे उसी क्षणके उत्तरकालमें अर्थात् मरणोत्तर शीघ्र जन्म क्षणमेंही, इन दोनोंने पूर्व वासनाके उद्बुद्ध होनेके कारण इन सब वक्ष्यमाण बातोंका अनुभव अपने २ हृदयमें किया ॥ ४४ ॥

आवयोःपितरावेताविमेवैचापिमातरौ ॥ देशएषधनंचेदंकर्मेदंपूर्वमीदृशम् ॥ ४५ ॥ आवांविवाहिताविवमेवंनाम्निकतांगतौ ॥ एतयोःसापिजनतायातातत्रैवसत्यताम् ॥ ४६ ॥ तथैवात्रास्तिदृष्टांतःप्रत्यक्षं

स्वप्नवेदनम् ॥ इत्येवंभावयालीलेलीलयाहमथार्चिता ॥ ४७ ॥ नाहंस्यांविधवेत्येवंवरोदत्तोमयाप्य सौ ॥ इत्यर्थेनमृतापूर्वमेवेहखलुबालिका ॥ ४८ ॥

अर्थ—ये हमारे पिताहैं, और ये हमारी मातायें हैं, यह हमारा देश है, यह धनहै, हमनें पूर्वमें ऐसा कर्म किया था ॥ ४५ ॥ इस प्रकार हम दोनोंका विवाह हुआ, और ऐसे हम दोनों एक होगये, और वह कल्पनात्मक जनसमूह भी इन दोनोंके भोग कराने वाले अदृष्टके बलसे अर्थ क्रिया करनेमें सत्य होगये ॥ ४६ ॥ हे लीले ! उसी प्रकार यहां-पर स्वप्रकाशज्ञान प्रत्यक्ष दृष्टान्तहै, और पूर्वमें उस राजाको इसप्रकार यह प्राप्त हुई सो तुम सुनो हे लीले ! इसने इस वक्ष्यमाण अभिप्रायसे मेरी पूजा की थी ॥ ४७ ॥ कि हे देवि ! मैं विधवा नहीं होऊँ और मैंनेभी तथास्तु ऐसाही बर-दान दिया इस कारण पूर्व जब यह बालिका थी तभी मृत्युको प्राप्त होगई ॥ ४८ ॥

भवतांचेतनांशानामहंचेतनधर्मिणी ॥ कुलदेवीसदापूज्यास्वतएवकरोम्यहम् ॥ ४९ ॥ अथास्याजीव कोदेहात्प्राणमारुतरूपधृक् ॥ मनसाचलतांप्राप्तोमुखाग्रत्यक्तदेहकः ॥ ५० ॥ ततोमरणमूर्छांतेगृहे स्मिन्नेवचेतया ॥ बुद्धौभावितआकाशेदृष्टोजीवात्मनाततः ॥ ५१ ॥ संपन्नैवाहरिणनयनाचंद्रबिंबान नश्रीर्मानोन्नद्धादयितललिताकांतमाभोक्तुकामा ॥ पूर्वस्मृत्यासरभससुश्रीसंयुतामंडलांतःस्वप्नांते वाऽप्रकृतिविभवापद्मिनीचोदितेव ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणसमनंतरदेहप्रतिभावर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—तुम दोनोंके मेरे पूजा करने तथा मेरे प्रसन्न होनेका यह कारणहै कि तुम सबका जो व्यष्टि चेतनहै अर्थात् पृथक् जो चेतनका व्यवहारहै, उन सब चेतनोंकी हिरण्यगर्भ सम्बन्धी चेतनरूपसे समष्टि चेतनात्मिका तु-मारी कुलदेवी सदाँकी मैं पूज्यहुं, अतएव स्वयं सब करतीहूं ॥ ४९ ॥ और जब इसके शरीरसे अंगुष्ठ मात्र लिंग देहमें रहनेवाला इसका जीव निकलेकी इच्छा करके तेजयुक्त प्राणआत्माके साथ संकलिपत लोकमें पहुंचाताहै इस श्रुतिके अनुसार प्राणने वायुका रूप धारण किया, और जिस भावसहित प्राणी इस शरीरको त्यागताहै, इत्यादि श्रुति स्मृ-तिके प्रमाणसे भावी अर्थोंके संकल्प सहित मनसे उन २ पदार्थोंमें अधिक उत्कण्ठामें प्राप्त होके कण्ठ नेत्रादि देशोंमें प्राप्त होताहुआ नाडी मार्गसे शरीरको छोड दिया ॥ ५० ॥ हे लीले ! इसके अनन्तर मरणरूपी मूर्छाके पश्चात् इसी गृहमें ब्रह्माकाशमें वा भूताकाशमें बुद्धिमें संकलिपत सब भावीपदार्थ देखें ॥ ५१ ॥ इसप्रकार यह हरिणके सदृश नेत्र-वाली चन्द्रबिम्ब सदृश मुख शोभावती अपने प्रियके उपभोग योग्य और स्वयं प्रिय मनोहर पतिको भोग करनेकी कामनावाली, और पूर्व देहके स्मरणके कारण स्वप्नके अन्त वा मध्यके सदृश, अपनी प्रकृतिमें प्राप्त अतएव प्रसन्नताके कारण सूर्य्यके किरणोंसे विकसित पद्मके तुल्य, और कान्तिके वेगसहित मुखवाली राजा पद्मकी देह धारिणी गृहिणीहुई५२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने मरणसमनन्तर देहप्रभाप्राप्तिवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

लीलाका गतिमार्ग पतिकी प्राप्ति और जो ज्ञानयोगसे सिद्ध नहीं है उनकी आकाशमार्गमें अगति (गतिका अभाव) इत्यादि विषय इस ५३ वें सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथलब्धवरादेहेनानेनैवमहीपतिम् ॥ पतिमाप्तुंप्रयात्येषानभोमार्गेणविष्टपम्॥१ इतिसंचिंत्यसानंदमुद्दाममकरध्वजा ॥ पुप्लुवेपेलवाकारापक्षिणीवनभस्तले ॥ २ ॥ कुमारींतत्रसाप्रा पज्ञप्त्यैवप्रहितांहिताम् ॥ स्वसंकल्पमहादर्शात्पुरतोनिर्गतामिव ॥ ३ ॥ कुमार्युवाच ॥ दुहितास्मिस खिज्ञप्तेःस्वागतंतेऽस्तुसुंदरि ॥ प्रतीक्षमाणात्वामेवस्थितास्मीहनभःपथि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके अनन्तर बरदान प्राप्त होनेसे उत्तम शरीरवाली यह लीला इसी वासनामय शरीरसे अपने राजाको प्राप्त होनेके लिये आकाशमार्गसे वक्ष्यमाण अनेक लोकोंमें होके जा रहीथी ॥ १ ॥ मैं इस समय अपने पतिसे मिलूँगी इस बातको बिचार कर अति आनन्द सहित उद्धत कामदेव युक्त यह लीला प-क्षिणी (चिडिया) के सदृश आकाशमार्गसे उडी ॥ २ ॥ वहां आकाशमार्गमें उस कुमारीसे मिली जो कि ज्ञप्ति भग-

वतीसे भेजीहुई अपने संकल्परूपी दर्पणसे मानों प्रथमहीसे निकलगईथी ॥ ३ ॥ कुमारी बोली–हे सुन्दरि ! भगवतीकी सखी मैं आपकी कन्याहुं आइये तुमारा शुभागमन हुआ, मैं यहां आकाश मार्गमें तुमारी प्रतीक्षा करतीहुई स्थितहुं॥४॥

॥ लीलोवाच ॥ देविभर्त्तुःसमीपंमांनयनीरजलोचने ॥ महतांदर्शनंयस्मान्नकदाचननिष्फलम् ॥ ५ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एहितत्रैवगच्छावइत्युक्त्वासाकुमारिका॥ पुरस्तस्याःस्थिताव्योम्निमार्गदर्शनतत्परा ॥ ६ ॥ ततस्तदनुयातासाप्रापकोटरमंबरम् ॥ निर्मलंकरमालाग्रंयथालक्षणलेखिका ॥ ७ ॥ मेघमार्गमथोल्लंघ्यवातस्कंधांतरेगता ॥ सूर्यमार्गादभिगताताामार्गमतीत्यच ॥ ८ ॥

अर्थ--लीला बोली–हे देवता शरीर प्राप्त कमलके सदृश नेत्रवाली ! मुझे मेरे पति अपने पिताके समीप ले चल, क्योंकि बडोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वही कुमारी बोली कि आओ हम दोनों वहांही चले, ऐसा कहके आकाशमें उसको मार्ग दिखानेमें तत्पर उसके आगे स्थितहुई ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् उस कन्याके पीछे २ चलतीहुई ब्रह्माण्ड छिद्रमें पहुंची, वह ऐसा निर्मल था, जैसे प्राणियोंके भावी शुभाशुभ लक्षण सूचक हस्तके तलकी रेखा ॥ ७ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर मेघ मार्गको उल्लंघन करके वायुमार्गमें पहुंची, वहांसे सूर्य्यमार्गसे निकलकर तारागणोंके मार्गको अतिक्रमण करके ॥ ८ ॥

वाय्विंद्रसुरसिद्धानांलोकानुल्लंघ्यलाघवात् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानांप्रापब्रह्मांडखर्परम् ॥ ९ ॥ हिमशैत्यं यथांतस्थंकुंभेऽभिन्नेबहिर्भवेत् ॥ तथासंकल्पसिद्धासाब्रह्मांडान्निर्गताबहिः ॥ १० ॥ स्वचित्तमात्रदेहैषास्वसंकल्पस्वभावजम् ॥ अंतरेवानुभवतिकिलैवंनामविभ्रमम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मादिस्थानमाक्रम्यप्राप्यब्रह्मांडखर्परम् ॥ ततोब्रह्मांडपारस्थाजलाद्यावरणानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—वायु, इन्द्र, सुर और सिद्धोंके लोकोंको उल्लंघन करके तथा ब्रह्मा, विष्णु, और शिवजी लोकोंकोभी उल्लंघन करके ब्रह्माण्ड खप्परमें जापहुंची ॥ ९ ॥ जैसे हिमकी शीतलता छिद्र रहित घटमें उससे बाहर निकल जातीहै ऐसेही संकल्पसे सिद्ध वह ब्रह्माण्ड खप्परसे बाहर निकल गई ॥ १० ॥ हे रामजी ! यह गमन उसका पारमार्थिक नहीं था क्योंकि निजचिन्मात्र देहवाली वह अपने संकल्पके स्वभावसे यह सब गमनादि विभ्रम अपने आत्माहीमें निश्रय करके अनुभव करतीथी ॥ ११ ॥ ब्रह्मादिके स्थानोंको आक्रमण करके पुनः अन्य ब्रह्माण्ड खप्परमें पहुंची और उस ब्रह्माण्डके पार होके और जल आदिके आवरणोंको ॥ १२ ॥

समुल्लंघ्यपुरःप्रापमहाचिद्गगनांतरम् ॥अदृष्टपारपर्यंतमतिवेगेनधावता॥ सर्वतोगरुडेनापिकल्पकोटिशतैरपि ॥ १३ ॥ तत्रब्रह्मांडलक्षाणिसंत्यसंख्यानिभूरिशः ॥ तान्यन्योन्यमदृष्टानिफलानीवमहावने ॥ १४ ॥ तत्रैकस्मिन्पुरःसंस्थेविततावरणान्विते ॥ वेधयित्वाविवेशांतर्बदरंकृमिकोयथा ॥ १५ ॥ पुनर्ब्रह्मेंद्रविष्ण्वादिलोकानुल्लंघ्यभास्वरान् ॥ तन्महीमंडलंश्रीमत्प्रापतारापथादधः ॥ १६ ॥

अर्थ – समुल्लंघन करके मायाशबलित आकाशमें जाकर प्राप्त हुई जिसका पार अति बेगके साथ करोडों कल्पतक दौडते हुये गरुडजीभी नहीं देख सकतेथे ॥ १३ ॥ वहांपर लाखों असंख्य ब्रह्माण्ड महाबनमें फलके सदृशथे, जो कि एक दूसरेको कभी नहीं देखा ॥ १४ ॥ उनमेंसे एक जो अनेक आवरण करके युक्त सन्मुख स्थित था, उसको वेधन करके ऐसे प्रवेश किया जैसे बेरके फलमें क्रिमि (कीडा) ॥ १५ ॥ पुनः ब्रह्मा, इन्द्र और महेश विष्णु आदिके प्रकाशमान लोकोंको उल्लंघन करके तारागणोंके मार्गके नीचे शोभायुक्त उस महीमण्डलको प्राप्तहुई ॥ १६ ॥

तत्रतन्मंडलंप्राप्यतत्पुरंतच्चमंडपम् ॥ प्रविश्यपुष्पगुप्तस्यशवस्यनिकटेस्थिता ॥ १७ ॥ एतस्मिन्नंतरे साचनददर्शकुमारिकाम् ॥ मायामिवपरिज्ञातांक्वापियातांवरानना ॥ १८ ॥ मुखमालोक्यसातस्यस्वभर्त्तुःशवरूपिणः ॥ इदंबुद्धवतीसत्यंप्रतिभावशतःस्वतः ॥ १९ ॥ अयंसभर्त्तासंग्रामेनिहतोममासिंधुना ॥ वीरलोकानिमान्प्राप्यक्षणंशेतेयथासुखम् ॥ २० ॥

अर्थ—जहांपर उसके पतिका राज्यथा उस महीमण्डलके प्राप्त होके उसी मण्डप और उसी गृहमें पुष्पोंसे ढकेहुये अपने पतिके मृतक शरीरके समीप खडी होगई ॥१७॥ इससमयमें श्रेष्ठ मुखवाली उस लीलाने कन्याको नहीं देखा, वह तो मायाके सदृश न मालूम कहां चलीगईथी ॥ १८ ॥ वह लीला मृतक शरीरवाले अपने पतिके मुखको देखकर अपनेही तर्कसे वक्ष्यमाण बात जानली ॥ १९ ॥ कि ये मेरे पति संग्राममें राजा सिन्धुसे मारागये इन बीरलोकोंको प्राप्त होके क्षणभर सुखकी निद्रामें विश्राम कर रहेहैं ॥ २० ॥

अहंदेव्याःप्रसादेनसशरीरैवमीदृशम् ॥ इहप्राप्तवतीधन्यामत्समानास्तिकाचन ॥ २१ ॥ इतिसंचिंत्य

साहस्तेगृहीत्वाचारुचामरम् ॥ वीजयामासचंद्रेणद्यौरिवावनिमंडलम् ॥ २२ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ ते भृत्यास्ताश्ववैदास्यःसराजाचप्रबुद्धवान् ॥ वक्ष्यंतिवदतांदेविकिंकयैवकथंधिया ॥ २३ ॥

अर्थ—मैं भगवतीकी प्रसन्नतासे इसी शरीरसे अपने ऐसे पतिको यहांपर प्राप्त हुई धन्य हुं, मैं मेरे सदृश कोई अन्य स्त्री नहीं है ॥ २१ ॥ ऐसा विचार करके वह हस्तमें उत्तम चामर (चँवर) लेके ऐसे राजाके ऊपर वीजन करने लगी जैसे चन्द्रमासे पृथिवी मण्डलको आकाश ॥ २२ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली—कि हे देवि ! वे भृत्यगण वे दासीजन और वह चेतनाको प्राप्त राजा ये सब किस बुद्धिसे क्या कहैंगे, उस कथाको कहो अर्थात् यदि राजाका पूर्ववृत्तान्त विस्मरण होगया तो यह कौनहै और किसकी है इस शंकासे और यदि विस्मरण नहो तौभी लोक निन्दित होनेसे उसका ग्रहण नहीं होसकता इसका परिहार बतलाइये ।। २३ ।।

॥श्रीदेव्युवाच॥सराजासाचतेभृत्याःसर्वएवपरस्परम्॥चिदाकाशैकतावेशादावयोश्वप्रभावतः॥२४॥ महाचित्प्रतिभासत्वान्महानियतिनिश्चयात्॥अन्योन्यमेवपश्यंतिमिथःसंप्रतिबिंबितात्॥२५॥इयंमेस हजाभार्याममेयंसहजासखी ॥ ममेयंसहजाराज्ञीभृत्योयंसहजोमम ॥ २६ ॥ केवलंत्वमहंसाचयथात्र त्तमखंडितम् ॥ ज्ञास्यामहदमाश्चर्यंनतुकश्चिदपीतरः ॥ २७ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ अमुनैवशरीरेणकि मर्थंनगतापतिम् ॥ एषावरेणसंप्राप्तालीलाललितवादिनी ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली–हे प्रबुद्ध लीले ! वह राजा और वह लीला तथा वे सब भृत्यादि सब परस्पर अपनी २ बुद्धिमें प्रतिबिम्बके सदृश अन्तर्निर्विष्ट साक्षी चेतनकी एकताके बशसे हम दोनोंके प्रभावसे ब्रह्मचेतनके भोजक अदृष्टरूपसे विवर्तित होनेसे, और इसको ऐसाही होना चाहिये ऐसें ईश्वरके संकल्पके आश्रय होनेसे, एकमत होके देखतेहैं ।। २४ ।। २५ ।। यह मेरी वही सहज (सदाकी स्वभाविक) भार्य्या है यह मेरी सहज सखी यह मेरी सहज रानी और यह मेरा वही सहज भृत्यहै, इत्यादि रूपसे एकमत होके देखेंगे, इससे यह अपूर्व कोई स्त्री आगई ऐसी आशंका किसीको न होगी ।। २६ ।। इस आश्चर्य्यजनक वृत्तान्तको केवल तुम हम और वह विदूरथकी लीला पूर्ण रीतिसे जानेंगे और कोईभी नहीं ।। २७ ।। प्रबुद्ध लीलाबोली—हे देवि ! यह विदूरथकी लीला जो पतिके निकट प्राप्तहुई सो मनोहर भाषण करनेवाली आपके बरदानसे इसी स्थूल शरीरसे पतिके निकट क्यों न गई ।। २८ ।।

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अप्रबुद्धधियःसिद्धलोकान्पुण्यवशोदितान् ॥ नसमर्थाःस्वदेहेनप्राप्तुंछायाइवातपा न् ॥ २९ ॥ आदिसर्गेचनियतिःस्थापितेतिप्रबोधिभिः ॥ यथासत्यमलीकेननमिलत्येवकिंचन ॥ ३० ॥ यावद्वेतालसंकल्पोबालस्यकिलविद्यते ॥ निर्वेतालधियस्तावदुदयस्तस्यकःकथम् ॥ ३१ ॥ अविवेक ज्वरोष्णत्वंविद्यतेयावदात्मनि ॥ तावद्विवेकशीतांशुशैत्यंकुतउदेत्यलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली–हे लीले ! जो सूक्ष्म आत्माके ज्ञानसे हीन हैं वे पुण्यके बशसे आविर्भूत सिद्धोंके लोकोंमें ऐसे प्राप्त नहीं होसकते जैसे छाया आतपको ॥ २९ ॥ यह मर्य्यादा सृष्टिके आदिमें आत्मज्ञानी हिरण्यगर्भादिने स्थापित की है, क्योंकि जैसे सत्य मिथ्यासे किंचित्भी नहीं जासकते ॥ ३० ॥ जबतक बालकको वेतालका संकल्प बनाहै, तबतक उसको वेताल (भूतादि) आदि रहित बुद्धिका उदय कहांसे होसकताहै ॥ ३१ ॥ कदाचित् यह कहो कि तुमारे बरसे इसको सूक्ष्म आत्माका निश्चय क्यों न होगया सोभी नहीं, क्योंकि जबतक अविवेकरूपी ज्वरसे आत्मामें उष्णता बनी है, तबतक विवेकरूपी चन्द्रमाका उदय पूर्णरीतिसे कहां ॥ ३२ ॥

अहंपृथ्व्यादिदेहःखेगतिर्नास्तिममोत्तमा ॥ इतिनिश्चयवान्योंतःकथंस्यात्सोन्यनिश्चयः ॥ ३३ ॥ अ तोज्ञानविवेकेनपुण्येनाथवरेणच ॥ पुण्यदेहेनगच्छंतिपरंलोकमनेनतु ॥ ३४ ॥ शुष्कपर्णकिलांगारेए तदेवाशुदह्यते ॥ अयंदेहमहंदेहःप्राप्तएवविशीर्यते ॥ ३५ ॥ एतावदेवभवतिवरशापविजृंभितैः ॥ य थासंचित्यएवाहंतथास्मृतइतिस्मृतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पृथिवी आदिसे निर्मित स्थूल देह मैंहुं ऐसा जिसके अन्तःकरणमें निश्चयहै उसको भला अन्यप्रकार निश्चय (सूक्ष्म चेतन आत्मा मैंहुं) कैसे होसकताहै ॥ ३३ ॥ इस कारण ज्ञान विवेकसे पुण्यसे और बरदानसे तुमारे सदृश ऐसे पवित्र देहसे परलोकमें प्राणी जासकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ३४ ॥ जैसा सूखापत्ता जलती हुई अग्निमें पडतेही शीघ्र भस्म होजाताहै, ऐसेही सूक्ष्म शरीरवाला मैंहुं इतना ज्ञान होतेही स्थूल शरीर नष्ट होजाताहै ॥ ३५ ॥ और वरशापके प्रकाशोंसेभी इतनीही बात होती है, कि पूर्वकालकी वासना कर्मादिके अनुसार उदबुद्ध होनेसे बरशाप देनेवालेको स्मरण करादेते हैं जैसे चिरकाल चिन्तनीय अनुवाक आदि किसीको अल्प उदाहरणसे स्मृति होजाय, जैसे तुमने मुझे स्मरण कराया और ऐसी होगई ॥ ३६ ॥

यःसर्पप्रत्ययोरज्ज्वांसकथंसर्पकार्यकृत् ॥ आत्मन्येवहियोनास्तितस्यकाकार्थकारिता ॥ ३७ ॥ यस्त्वे तन्मृतइत्येवमिथ्यासमनुभूयते ॥ प्रागभ्यासस्यपुष्टस्यनमैतत्प्रविजृंभते ॥ ३८ ॥ स्वानुभूतेजगज्जा लेसुगमाःसंस्मृतिभ्रमाः ॥ नान्यसंकल्पितोनामसर्गाद्यभ्यासईदृशः ॥ ३९ ॥ अंतरनुभूयमानाःसंस्र तयोबाह्यभूतजालानाम् ॥ अविदितवेद्यदृशामपिदूरेपुंसामिवदर्वबिंबम् ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संस्मृतिविदितवेद्य नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है वह सर्पका कार्य्य कैसे कर सकती है ऐसेही जो स्थूल शरीर आत्मामें है ही नहीं वह उसका कार्य्य कैसे कर सकताहै अर्थात् जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्पप्रतीति नष्ट होती है ऐसेही सूक्ष्मके ज्ञानसे स्थूलकीभी होती है ॥ ३७ ॥ और अमुक मरा इत्यादि जो स्थूलदेहमें मिथ्या भ्रमका अनुभव होताहै, सो पूर्वकालसे बढे हुये दृढ अभ्यासके संस्कारसे होते हैं ॥ ३८ ॥ अपनेही अनुभूत जगत्जालमें संस्मृतियोंको भ्रम सुगमहै और हम लोगोंकी वासनाकी अपेक्षारहित अन्य वरदानादि देनेवाले हिरण्यगर्भादि ईश्वरने स्वतंत्रतासे सब कल्पना करालियाहै, यह वार्ता सत्य नहीं है ॥ ३९ ॥ हे लीले! अज्ञानी लोगोंकोभी जो अनिवार्य्य प्रपंचजालका अनुभव होरहाहै उनकोभी यह सब संसार अन्तर्मेंही है जैसे कि चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पुरुषोंको दूर अनुभूतभी वह जलादिके अन्तर्गतही है ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने संस्मृतिविदितवेद्य नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

सब पदार्थोंकी मर्य्यादा, मरणका क्रम, कर्म गुण आचारसे पदार्थोंका भोग, और आयुः परिमाण इस ५४ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ तस्माद्येवेद्यवेत्तारोयेवाधर्मपरांश्रिताः ॥ आतिवाहिकलोकांस्तेप्राप्नुवंतीहनेतरे ॥ १ ॥ आधिभौतिकदेहत्वंमिथ्याभ्रममयात्मकम् ॥ कथंसत्येस्थितियातिच्छायास्तेकथमातपे ॥ २ ॥ लीला विदितवेद्यानोपरमंधर्ममाश्रिताः ॥ केवलंतेनसाभर्तुःकल्पितंनगरंगता ॥ ३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ ए वमेषाप्रयातास्तुभर्त्तापश्यममांबिके ॥ प्रवृत्तःप्राणसंत्यागेकर्त्तव्यंकिमिहाधुना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि–हे लीले! इसलिये जो तत्वज्ञानी योगाभ्यासरूपी धर्ममें आश्रितहैं वेही लोग सूक्ष्मशरीरसे जाने योग्य परलोकोंमें जासकते है दूसरे नहीं ॥ १ ॥ और जब अधिक पुण्यादिके प्रभावसे आतिवाहिक हिरण्यगर्भादिका शरीर प्राप्त होजाताहै तो पुनः वह इस मिथ्या भ्रममय आधिभौतिक स्थूलदशाको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि यह मिथ्या सत्य कब होसकताहै, और तुमारी छाया घर्म (घाम) कब होसकती है ॥ २ ॥ और लीला तो न तत्वज्ञानिनीथी, और न योगाभ्यासमें आश्रित केवल (वरसे) अपने पतिके निकट पहुंचगई इससे पुनः उसको आधिभौतिक शरीर मिला ॥ ३ ॥ प्रबुद्धलीला बोली कि–यह लीला गई इसके विषयमें तो जो आपने कहा वह वैसाहीहो, परन्तु हे अम्बिके! यह मेरा पति तो प्रत्यक्ष प्राण त्याग करनेमें प्रवृत्तहै अब इसकी क्या उप पत्तिहै, अर्थात् जीवन मरण किसकारणसे होतेहैं, क्योंकि जगत् तो सर्वथा मिथ्याहै ॥ ४ ॥

भावाभावेषुभावानांकथंनियतिरागता ॥ कथंभूयोप्यनियतिर्मृतिजन्मादिसूचिता ॥ ५ ॥ कथंस्वभा वसंसिद्धिःकथंसत्तापदार्थगा ॥ कथमग्न्यादिषूष्णत्वंपृथ्व्यादौस्थिरताकथम् ॥ ६ ॥ हिमादिषुकथंशै त्यंकासत्ताकालखादिषु ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मदृशःकथम् ॥ ७ ॥ कथमत्यंतमुच्छ्रायंतृण गुल्मनरादिकम् ॥ वस्तुनायात्यनिष्टेपिस्थितेस्वोच्छ्रायकारणे ॥ ८ ॥

अर्थ—देहादि भावपदार्थोंकी जीवन सौख्य आदि भावपदार्थोंमें और दुःखदौर्भाग्य आदि अभावोंमें प्रथम नियति (मर्य्यादा) कैसे आई, और पुनः मरण जीवन आदिसे सूचित अनियति कैसे आई ॥ ५ ॥ यदि कहो अनियति (अनियम) ही है सो नहीं हैं, क्योंकि पदार्थोंमें स्वभावकी सिद्धि कैसे हुई और घट आदि पदार्थोंमें सत्ता कैसे हुई, अग्निमें उष्णता कैसे और पृथिवी आदिमें कठोरता कैसे आई॥ ६ ॥ हिम आदिमें शीतलता कैसे,

और काल आकाशादिकी किसप्रकारकी सत्ता है और सत्वरजतम आदि पदार्थोंका संग्रह और शुक्तिके भ्रान्तिमय रजतादिके त्याग और पृथिवी आदिमें स्थूल बुद्धिमें तथा मन इन्द्रिय आदिमें सूक्ष्म बुद्धि क्यों ॥ ७ ॥ मृत्तिका जल आदि ऊंच होनेके समान कारण स्थित रहनेपरभी तृण लता तथा मनुष्यादि पदार्थ शाल तालादिके तुल्य अति ऊंचे क्यों नहीं होते और इष्ट अनिष्ट सबमें अनियम माननेसे सबमें अनास्था क्यों नहीं होजाती ॥ ८ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौसर्वार्थास्तमयेसति ॥ अनंताकाशमाशांतंसद्ब्रह्मैवावतिष्ठते ॥ ९॥ तच्चिद्रूपतयातेजःकणोहमितिचेतति ॥ स्वप्नेसंविद्यथाहित्वमाकाशगमनादिच ॥ १० ॥ तेजःकणोसौ स्थूलत्वमात्मनात्मनिविंदति ॥ असत्यमेवसत्याभंब्रह्मांडंतदिदंस्मृतम् ॥ ११ ॥ तत्रांतर्ब्रह्मतद्वेत्तिब्र ह्मायमहमित्यथ ॥ मनोराज्यंसकुरुतेस्वात्मैवंतदिदंजगत् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—यदि जगत् सर्वथा एक सत्यमात्र स्वभाव होता वा सर्वथा मायामात्र होता तो तुमारी शंकाके अनुसार सर्वथा नियति वा अनियति ठीक थी, किन्तु यह जगत् तो (सत्यासत्यसम्मिलित स्वभाव है इसकारण भोजक अदृष्टके अनुसार चित्की विवर्त व्यवस्थासेही यह स्थित है, इस अभिप्रायसे देवी प्रथा चित्तके विवर्त क्रमको कहती है) कि महाप्रलयमें जब सर्वथा सब अस्त होजाता है उससमय केवल अनन्ताकाश शान्त केवल ब्रह्ममात्र अवशेष रहता है ॥ ९ ॥ वह ब्रह्मशुद्ध चित्‌रूपसे व्याप्त तेजःकण अर्थात् प्रकाशशील सूक्ष्मभूतरूपसे अपनेको अनुभव करता है, जैसे स्वप्नका ज्ञान सर्परूपता वा आकाशादि गमनको ॥ १० ॥ वह तेजःकण अर्थात् भूतसूक्ष्मदशामें प्राप्त आत्मा अपने आत्माहीमें अपनेसे भिन्न कल्पित जल आदिके आवरणमें कल्पनासे स्थूलताको प्राप्त होता है वही यह असत्य सत्यके सदृश भासमान यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड कहलाता है ॥ ११ ॥ उस ब्रह्माण्डके भीतर स्थित हिरण्यगर्भाख्य ब्रह्म अन्तर्मुख अंशरूपसे मैं ब्रह्महुं ऐसा अपनेको जानता है, और बाह्य अंशसे प्राणियोंके कर्मोंके अनुगुण अनेक सृष्टिके संकल्पसे मनोराज्य करता है, इसलिये यह जगत् ब्रह्मात्मकही है ॥ १२ ॥

तस्मिन्प्रथमतःसर्गेयायथायत्रसंविदः ॥ कचितास्तास्तथातत्रस्थिताअद्यापिनिश्चलाः ॥ १३ ॥ यद्य थास्फुरितंचित्तंतत्तथाह्यात्मचिद्भवेत् ॥ स्वयमेवानियमतस्तत्तस्यान्नेहकिंचन ॥ १४ ॥ नचनामनकिंचित्त्वंयुज्यतेविश्वरूपिणः ॥ त्यक्त्वासमस्तसंस्थानंहेमतिष्ठतिवैकथम् ॥ १५ ॥ सर्गादौस्वयमेवांत श्चिद्यथाकचितात्मनि ॥ हिमाग्न्यादितयाद्यापिसातथास्तेस्वसत्तया ॥ १६ ॥

अर्थ—उस प्रथम सर्गमें जो संविद् जिसप्रकार नियम अनियम रूपसे भासमाव हुई है, वेही निश्चलरूपसे अद्यपर्य्यन्त स्थित है ॥ १३ ॥ जो चित्त जिसप्रकार स्फुरित हुआ है आत्मचित्‌भी स्वयं उसीप्रकार विवर्तभावको प्राप्त होता है इस कारणसे कोईभी बात अनियमरूपसे नहीं होती ॥ १४ ॥ विश्वरूप जो परमात्मा है उसकी शून्यरूपता होना कदापि योग्य नहीं है क्योंकि कटक कुण्डल और रुचक पिण्डादि समस्त आकारोंका अधिष्ठान वही है ॥१५॥ सृष्टिकी आदिमें अपने आत्मामें चित् जिस हिम अग्नि आदि रूपसे प्रतिभासमान हुई, वह अपनी सत्तासे उसी रूपसे अबभी है ॥ १६ ॥

तस्मात्स्वसत्तासंत्यागःसतःकर्तुंनयुज्यते ॥ यदाचिद्द्वास्तेतेनेयंनियतिर्नविनश्यति ॥ १७ ॥ यद्यथा कचितंयत्रव्योमरूप्यपिपार्थिवम् ॥ सर्गादौतस्यचलितुमद्ययावन्नयुज्यते ॥ १८ ॥ यायथाचित्प्रकचिताप्रतिपक्षविदंविना ॥ नसाततःप्रचलतिवेदनाभ्यासतःस्वयम् ॥ १९ ॥ जगदादावनुत्पन्नंयच्चेदमनु भूयते ॥ तत्संविद्व्योमकचनंस्वप्नस्त्रीसुरतंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—इसकारण माया शबल ब्रह्मकी सत्ताका त्याग करना योग्य नहीं है जब चित्त उन २ पदार्थोंके रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होता है तो नियतिका नाश कदापि नहीं होसकता ॥ १७ ॥ यद्यपि वह चिदाकाश रूप है, तथापि जो जिस पृथिवी आदि रूपसे सृष्टिकी आदिमें स्फुरित हुआ है वह अद्यपर्य्यन्त चलायमान होनेके योग्य नहीं है॥१८॥ जीवन नियती मरण नियत करके व्यत्यास होता है इसलिये प्रतिपक्ष चित् अर्थात् जीवन मरणरूपसे और मरण जीवनरूपसे, क्योंकि इसका नियम यही है, इस नियतिको छोडके जो चित् जैसी प्रतिभासित हुई वह वासनाकी दृढतासे अद्यापि उसी प्रकार चली जाती है ॥ १९ ॥ हे लीले ! यह जो कुछ कहागया है यह सब भाविक दशाको अवलम्बन करके कहागया है, यथार्थमें तो सृष्टिके आदिमेंभी यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, और जो कुछ जगत्‌का यह अनुभव होता है वह केवल चिदाकाशकी स्फुरणमात्र है, जैसे स्वप्नकी स्त्रीका सुरत ॥ २० ॥

असत्यमेवसत्याभंप्रतिभानमिदंस्थितम् ॥ इतिस्वभावसंपत्तिरितिभूतानुभूतयः ॥ २१ ॥ सर्गादौ

यायथारूढासंवित्कचनसंततिः ॥ सायाप्यचलितान्येनस्थितानियतिरुच्यते ॥ २२ ॥ गृहीतव्योमसंवित्तिचिद्व्योमव्योमतांगतम् ॥ गृहीतकालतासंविच्चिन्नभःकालतांगतम् ॥ २३ ॥ गृहीतजलसंवित्तिचिद्व्योमवारिवत्स्थितम् ॥ स्वप्नेयथाहिपुरुषःपश्यत्यात्मनिवारिताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जो कुछ यह जगत् भासता है वह सब असत्यके समान भासरहा है और पूर्वोक्त रीतिसे जीवनमरणके अनुभवभी यथार्थमें असत्यही है सत्यवत् भासरहे हैं ऐसा निश्चय होनाही अपने स्वरूपकी प्राप्ति है ॥ २१ ॥ हे लीले! सृष्टिके आरंभसें चित्के प्रतिभासकी सन्तान्ति जैसे रूढ है वह इससमयभी उसी रूपसे अचलित है और वह पदार्थान्तर मिलकर स्थितहै, जैसे जन्म जीवन मरणसे मिलितहै स्वतंत्र नहीं है शीतता उष्णतासे विरोधरूपहीसे मिलितहैं और क्रियाकारक साध्य साधनभावसे, तथा सुख दुःख इत्यादि रूपसे जो स्थित है, उसीका नाम नियति है ॥ २२ ॥ हे लीले ! सृष्टिके आदिमें चिदाकाश आकाशके आकारका प्रतिभास ग्रहण करनेसे आकाश दशाको प्राप्त होगया, और कालके आकारका प्रतिभास ग्रहण करनेसे कालरूपको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और वह चिदाकाश जब जलाकार प्रतिभास ग्रहण किया तब जलके सदृश होके ऐसे स्थित होगया जैसे स्वप्नमें पुरुष अपनेको तडागादि रूपसे जलाकार देखताहै ॥ २४ ॥

स्वप्नचित्संविदाभातिभवत्येषायथास्थिता ॥ चिच्चमत्कारचातुर्यादसदेतत्समूहते ॥ २५ ॥ खत्वंजलत्वमुर्वीत्वमग्निवायुत्वमप्यसत् ॥ वेत्त्यंतःस्वप्नसंकल्पध्यानेष्विवचितिःस्वयम् ॥ २६ ॥ मरणानंतरंकर्मफलानुभवनक्रमम् ॥ सर्वसंदेहशांत्यर्थंमृतिश्रेयस्करंशृणु ॥ २७ ॥ रूढादिसर्गेनियतिर्यैकद्वित्रिचतुःशता ॥ पूर्वादिष्वायुषःपुंसांतस्यामेनियतिंशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—और स्वप्नमें चिदाकाश उन २ पदार्थोंका रूप धारण करके भासमान होनेपरभी यह अपने शुद्धस्वरूपसे कदापि प्रच्युत नहीं होता, और यह चित्की (मायाशबलितकी) चमत्कारकी चतुरतासे होताहै, कि असत्भी सत्के सदृश भासताहै ॥ २५ ॥ आकाशत्व, वायुत्व, अग्नित्व, जलत्व और पृथिवीत्व आदिरूप चेतन स्वयं अपने भीतर ऐसे देखताहै जैसे स्वप्नके ध्यानमें ॥ २६ ॥ हे लीले! अब मरणके अनन्तर कर्मोंके फलोंका अनुभवका जो क्रम मरण दशामें अति कल्याणकारी है उसे तुम अपने सब सन्देह शान्त्यर्थ श्रवण करो ॥ २७ ॥ जो आदिसृष्टिमें सत्युगादिमें पुरुषोंकी आयुका नियम कलियुगमें एकसो १०० वर्ष द्वापरमें २०० बर्ष स्थितहै उसके न्यून अधिक होनेका नियम मुझसे सुनो ॥ २८ ॥

देशकालक्रियाद्रव्यशुद्ध्यशुद्धीस्वकर्मणाम् ॥ न्यूनत्वेचाधिकत्वेचनृणांकारणमायुषः ॥ २९ ॥ स्वकर्मधर्मेह्रसतिह्रसत्यायुर्नृणामिह ॥ वृद्धेवृद्धिमुपायातिसममेवभवेत्समे ॥ ३० ॥ बालमृत्युप्रदैर्बालोयुवायौवनमृत्युदैः ॥ वृद्धमृत्युप्रदैर्वृद्धःकर्मभिर्मृतिमृच्छति ॥ ३१ ॥ योयथाशास्त्रमारब्धंस्वधर्ममनुतिष्ठति ॥ भाजनंभवतिश्रीमान्सयथाशास्त्रमायुषः ॥ ३२ ॥

अर्थ—देशकाल क्रिया और द्रव्योंकी शुद्धि अशुद्धि तथा अपने कर्मोंकी शुद्धि और अशुद्धि मनुष्योंकी आयुके न्यून अधिक होनेके कारणहैं अर्थात् इन सबकी अधिकता और अशुद्धतामें आयुषकी अधिकता और अशुद्धतामें न्यूनता होतीहै ॥ २९ ॥ अपने कर्म और धर्मकी हानिसे संसारमें मनुष्योंकी आयुष्की हानि और धर्मकर्मकी वृद्धि होनेसे आयुष्की वृद्धि होती है, और समान होनेसे जो जिस युगमें आयुष् नियतहै उसके समान होती है ॥ ३० ॥ बालकोंके मृत्युदायक कर्मोंके करनेसे बाल्य अवस्थामें, युवाके मृत्युदायक कर्मोंसे युवा अवस्थामें और वृद्धोंके मृत्युदायक कर्मोंसे वृद्ध अवस्थामें प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ जो प्राणि शास्त्रोक्त अपने धर्मका अनुष्ठान करताहै वह पुरुष श्रीमान् होताहै और शास्त्रोक्त प्रमाण आयुका भागी होताहै ॥ ३२ ॥

एवंकर्मानुसारेणजंतुरत्यांदशामितः ॥ भवंत्यंतंगतवतोहृद्मर्मच्छेदवेदनाः ॥ ३३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ मरणंमेसमासेनकथयेंदुसमानने ॥ किंसुखंमरणंकिंवादुःखंमृत्वाचकिंभवेत् ॥ ३४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ त्रिविधाःपुरुषाःसंतिदेहस्यांतेमुमूर्षवः ॥ मूर्खोथधारणाभ्यासीयुक्तिमान्पुरुषस्तथा ॥ ३५ ॥ अभ्यस्यधारणानिष्ठोदेहंत्यक्त्वायथासुखम् ॥ प्रयातिधारणाभ्यासीयुक्तियुक्तस्तथैवच ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे लीले ! इसप्रकार प्राणी अपने कर्मोंके अनुसार जब इस संसारमें अपनी आयुको समाप्त करके अन्त दशाको प्राप्त होताहै तो मर्मछेदन कारक पीडायें होती हैं ॥ ३३ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली—कि हे चन्द्रानने देवि ! मुझे संक्षेपसे मरणके विषयमें कहो मरणमें क्या सुख होताहै, और क्या दुःख होताहै, और मरणके अनन्तर क्या गति

होती है (अर्थात् मरणमें जो तुमने दुःख वर्णन कियाहै वह सबकी समान गति होतीहै वा योगियोंकी कुछ विलक्षण गति होतीहै) ॥ ३४ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे लीले ! इससंसारमें शरीरके अन्तमें मरनेवाले पुरुष तीन प्रकारकेहैं १ मूर्ख २ धारणा (प्राण और मनको नाभी हृदय और कण्ठ देश और भ्रूमध्यमें तथा ब्रह्मरन्ध्र पर्य्यन्तमें नियतक करके रोकनेके) अभ्यासी अर्थात् योगाभ्यासी और ३ युक्तिमान् अर्थात् अपने इच्छानुसार शरीरके त्यागके दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेमें अपने इष्ट लोकोंमें प्राप्तिके मार्गभूत नाडीद्वारा विशेष रीतिसे गमन निर्गमनमें कुशलताका अभ्यास करनेवाला योगी ॥ ३५ ॥ उनमेंसे धारणाभ्यासी क्रमसे युक्तियोंका अभ्यासकरके सुखसे इस शरीरको त्यागकर परलोकमें जाताहै, और युक्तियोंसे युक्त अर्थात् युक्तिमान् योगीभी इसी प्रकारसे सुखपूर्वक शरीरको त्यागकर परलोकमें गमन करताहै ॥ ३६ ॥

धारणायस्यनाभ्यासंप्राप्तानैवचयुक्तिमान् ॥ मूर्खःस्वमृतिकालेसौदुःखमेत्यवशाशयः ॥ ३७ ॥ वासनाविशवैवश्यंभावयन्विषयाशयः ॥ दीनतांपरमामेतिपरिलूनमिवांबुजम् ॥ ३८ ॥ अशास्त्रसंस्कृतमतिरसज्जनपरायणः ॥ मृतावनुभवत्यंतर्दाहमग्नाविवच्युतः ॥ ३९ ॥ यदाघर्घरकंठत्वंवैरूप्यंदृष्टिवर्णजम् ॥ ॥ गच्छत्येषोविवेकात्मातदाभवतिदीनधीः ॥ ४० ॥

अर्थ—और जिसको धारणाका अभ्यास नहीं और युक्तिमान्भी नहीं है वह विषयवशीभूतात्मा मूर्ख अपने मृत्युकालमें अनेक दुःखोंमें आकर ॥ ३७ ॥ और विषयासक्त होकर विषयकी विवशताका अनुभव कर्त्ता हुआ ऐसी दीनताको प्राप्त होताहै जैसे कटाहुआ कमल ॥ ३८ ॥ हे लीले ! जिसकी बुद्धि शास्त्रके संस्कारसे पवित्र नहीं है, या जो दुष्टोंके संगमें सदा परायण रहताहै वह अपने मरणकालमें ऐसे दुःखोंको अनुभव करताहै जैसे अग्निमें गिराहुआ पुरुषदाहको ॥ ३९ ॥ यह अविवेकी जिससमय कण्ठकी घर्घरदशा तथा वर्णकी कुरूपता दशाको प्राप्त होता है, उससमय दीनबुद्धि होजाताहै ॥ ४० ॥

परमांध्यमनालोकोदिवाप्युदितितारकः ॥ साभ्रदिग्मंडलाभोगोघनमेचकितांबरः ॥ ४१ ॥ मर्मव्यथाविच्छुरितःप्रभ्रमद्दृष्टिमंडलः ॥ आकाशीभूतवसुधोवसुधाभूतखांतरः ॥ ४२ ॥ परिवृत्तककुब्चक्रउह्यमानइवार्णवे ॥ नीयमानइवाकाशेघननिद्रोन्मुखाशयः ॥ ४३ ॥ अंधकूपइवापन्नःशिलांतरिवयोजितः स्वयंजडीभवद्वर्णोविनिकृत्तइवाशये ॥ ४४ ॥

अर्थ—और ऐसी अन्धताको प्राप्त होताहै कि जिसका कुछ पार नहीं है दिनमें इसको तारागणोंका उदय प्रतीत होताहै और प्रकाश रहित मेघसहित दिग्मण्डलका सम्पूर्ण विस्तार तथा आकाश इसको घनीभूत श्यामवर्ण देख पडताहै ॥ ४१ ॥ मर्मकी पीडाओंसे व्याप्त दृष्टिमण्डल जिसका भ्रमण कररहाहै जिसको पृथिवी आकाशके और आकाश पृथिवीके तुल्य प्रतीत होता है ॥ ४२ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंका चक्र उसको भ्रमण करता हुआ जानपडताहै, और स्वयं मानों समुद्रमें बह रहा है, तथा उसको ऐसा भान होता है मानो गाढ निद्राके वशीभूत है, और उसे कोई आकाशमें घसीटे लिये जाताहै ॥ ४३ ॥ अन्धकूपमें मानों गिरपडाहै, शिलाके तले मानों दबायागया है, अपने दुःखोंको दूसरोंसे कहना चाहताहै, तो बाणीकी जडतासे अक्षर स्वच्छ नहीं निकलते और हृदयमें मानों छिदगयाहै॥४४॥

पततीवनभोमार्गात्तृणावर्त्तइवार्पितः ॥ रथेइतइवारूढोहिमवद्गलनोन्मुखः ॥ ४५ ॥ व्याकुर्वन्निवसंसारंबांधवानस्पृशन्निव ॥ भ्रमितक्षेपणेनेवचातयंत्रइवास्थितः ॥ ४६ ॥ भ्रमितोवाभ्रमइवकृष्टोरसनयेववा ॥ भ्रमन्निवजलावर्त्तेशस्त्रयंत्रइवार्पितः ॥ ४७ ॥ प्रोह्यमानस्तृणमिववहत्पर्जन्यमारुते ॥ आरुह्य वारिपूरेणनिपतन्निवचार्णवे ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रबल आन्धीमें फेका हुआ मानोंआकाशमार्गसे गिररहा है, वेगयुक्त रथपर आरूढ हिमतुषारकी शिलाके समान गलनेमें तत्पर होरहाहै ॥ ४५ ॥ और संसारकी अनेक प्रकारकी बाधायें मानों अपनेको उदाहरण करके सब बन्धुओंको स्पर्श न करता हुआ समझा रहा है, तथा शिलायंत्र और वायुयंत्रमें मानों दबाया गयाहै ॥ ४६ ॥ और भ्रमियन्त्रमें मानों रस्सीसे बांधके कोई इसे खींच रहाहै, जलके भ्रमणमें मानों भ्रमण कर रहाहै, और मानों शस्त्रोंके यंत्रमें प्रविष्ट किया गयाहै ॥ ४७ ॥ और जल सहित वायुके झकोरोंमें तृणके समान मानों उडाया जाताहै, और जलके प्रवाहमें चढके मानों समुद्रमें गिरताहै ॥ ४८ ॥

अनंतगगनेश्वभ्रेचक्रावर्तेपतन्निव ॥ अब्धिरुर्वीविपर्यासदशामनुभवन्स्थितः ॥ ४९ ॥ पतन्निवानवरतंप्रोत्पतन्निवचाभितः ॥ सूत्काराकर्णनोद्भ्रांतपूर्णसर्वेंद्रियव्रणः ॥ ५० ॥ क्रमाच्छ्यामलतांयांतितस्य

सर्वाक्षसंविदः ॥ यथास्तंगच्छतिरवौमंदालोकतयादिशः ॥ ५१ ॥ पूर्वापरंनजानातिस्मृतिस्तानवमागता ॥ यथापाश्चात्यसंध्यांतेनष्टादृष्टिर्दिगष्टके ॥ ५२ ॥

अर्थ—अनन्त आकाशके छिद्रवाले चक्रावर्तमें मानों गिरा पडताहै, और पृथिवीकी विपरीत दशाको अनुभव करता हुआ स्थित समुद्रके सदृश चारोंओरसे गिरता तथा उछलता हुआ और अपने निःश्वासके शब्दोंको सुनके भ्रान्तके समान और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके घावोंसे पूर्ण ॥ ४९ ॥ ५० ॥ क्रमसे उसकी सम्पूर्ण इन्द्रियां और ज्ञान ऐसे मलिनताको प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य्यके अस्त होनेके समय मन्दप्रकाश सहित सम्पूर्ण दिशायें ॥ ५१ ॥ और स्मृतिकी सर्वथा दुर्बलतासे पूर्वापरको ऐसे नहीं जानता जैसे सायंकालकी सन्ध्याके अन्तमें आठों दिशाओंमें नष्ट दृष्टि ॥ ५२ ॥

मनःकल्पनसामर्थ्यंत्यजत्यस्यविमोहतः ॥ अविवेकेनतेनासौमहामोहेनिमज्जति ॥ ५३ ॥ यदैवामोहमादत्तेनादत्तेपवनस्तदा ॥ नत्वादत्तेयदाप्राणान्मोहमायात्यलंतदा ॥५४॥ अन्योन्यपुष्टतांयांतिमोहसंवेदनभ्रमैः ॥ जंतुःपाषाणतामेतिस्थितमित्यादिसर्गतः ॥ ५५ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ व्यथांविमोहंमूर्छांतंभ्रमंव्याधिमचेतनम् ॥ किमर्थमयमायातिदेहोह्यष्टांगवानपि ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे लीले! उस मृत्युकालमें अधिक अज्ञानके कारण इस मूर्खका मन कल्पना सामर्थ्यको त्यागताहै और उस अविवेकसे महामोह अर्थात् मूर्च्छामें डूबताहै ॥ ५३ ॥ जिससमय यह किंचित् मूर्च्छाको ग्रहण करताहै, उससमय प्राण वायु इसके अंगोंको नहीं स्तम्भन करता, और जब यह प्राण वायुकाभी संचार करनेमें असमर्थ होताहै, उससमय गाढी मूर्छा आके इसे ग्रास लेती है ॥ ५४ ॥ अपने स्वरूपको अज्ञान विषयकी वासनाका भ्रम अर्थात् अल्प पदार्थोंका अन्यप्रकारसे प्रति भास होना, ये तीनों परस्परकी सहायतासे पुष्टताको प्राप्त होजाते हैं, उससमय यह प्राणी पाषाणके सदृश जडताको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली—हे देवि! पीडा मूर्च्छा पर्य्यन्त अज्ञान, और चेतना रहित व्याधिको शिर हस्त, पाद, गुह्य, अंग (उपस्थ) और नाभी, इन अंगोंके विद्यमान रहनेपरभी यह जीव क्यों प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवंसंविहितंकर्मसर्गादौस्पंदसंविदा ॥ यदस्मिन्समयेदुःखंकालेनैतावतेदृशम् ॥ ५७ ॥ स्यान्मेइत्येवसंविश्यगुल्मवत्तत्स्वभावजम् ॥ वेत्तिचित्तविजृंभोत्थंनान्यदत्रास्तिकारणम् ॥ ५८ ॥ यदाव्यथावशान्नाड्यःस्वसंकोचविकासनैः ॥ गृण्हंतिमारुतोदेहेतदोज्झतिनिजांस्थितिम् ॥५९॥ प्रविष्टानविनिर्यातिगताःसंप्रविशंतिनो॥ यदावाताविनाडीत्वात्तदास्पंदात्स्मृतिर्भवेत्॥६०

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि—क्रिया शक्ति प्रधान ईश्वरने सृष्टिकी आदिमें वक्ष्यमाण रीतिसे कर्मोंका विधान कियाहै, कि जिसकाल अर्थात् बाल युवा और वृद्ध अवस्थामें इतना और इसप्रकार दुःख ॥ ५७ ॥ मुझसे अभिन्न जीवको होना चाहिये, इसप्रकार अपनेही संकल्पसे उत्पन्न और चित्तसे कल्पित वृक्ष लताके सदृश चित्तके परिणामसे जनित दुःखोंको जीवरूप उपाधिमें प्रवेश करके आपही अनुभव करताहै, इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है ॥ ५८ ॥ जिससमय नाडियां सन्तप्त पित्त आदिसे परिपूर्ण होनेसे अपने संकोच विकाशसे भोजन किये हुये अन्नपानादिके रसको विषमतासे ग्रहण करती हैं, उससमय भोजन किये हुये अन्नपानादिके रसको समीकरणरूप अपनी निज स्थितिको त्यागताहै ॥ ५९ ॥ हे लीले! जिससमय अन्तःप्रवेश किया हुआ वायु बाहर न जाय, और भीतरका वायु बाहर न निकले, उससमय नाडीके व्यापार शान्त होनेके कारण और नेत्र आदिकी चेष्टा बन्द होनेसे केवल अन्तःकरणमें कुछ स्मृतिमात्र रहती है, और इन्द्रियसंबन्धी कोईभी ज्ञान नहीं होता ॥ ६० ॥

नविशत्येववातोननिर्यातिपवनोयदा ॥ शरीरनाडीवैधुर्यान्मृतइत्युच्यतेतदा ॥ ६१ ॥ आगंतव्योमयानाशःकालेनैतावतेतिया ॥ पूर्वसंविदितासंविद्यातितच्चोदितामृतिं ॥ ६२ ॥ ईदृशेनमयेहेत्थंभाव्यमित्यादिसर्गजा ॥ संविद्बीजकलानाशंनकदाचनगच्छति ॥ ६३ ॥ संविदोवेदनंनामस्वभावोव्यतिरेकवान् ॥ तस्मात्स्वभावसंवित्तेर्नान्येमरणजन्मनी ॥ ६४ ॥

अथ—जिससमय प्राणवायु भीतर नहींथा वेश करता और अप्रान भीतरसे बाहर नहीं निकलता उससमय नाडीके अभावसे मनुष्य मृतक होगया ऐसा कहते हैं ॥ ६१ ॥ इतने कालमें मेरा नाश आके प्राप्त होगा, यह जो पूर्व जन्मकी संकल्पसहित नियतिसे प्रेरणा की हुई संवित् मरण दशाको प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ मुझे इसप्रकार होना चाहिये, इसप्रकार सत्यसंकल्प संवित्की बीज कलाभूत और उसके संस्कारसहित जो माया आदि सृष्टिसे चली आती है उसका कदाचित्भी नाश नहीं होता किन्तु मुक्तिके कालमेंही उसकी निवृत्ति होती है पूर्व नहीं ॥ ६३ ॥ अविद्यास-

हित जीवमें मरणरूप स्फुरणका अभाव कदापि नहीं होता क्योंकि यह उसमें स्वाभाविकहै, इसलिये संवित् स्वभावके स्फुरणसे पृथक् जन्ममरण और कुछभी पदार्थ नहीं है ॥ ६४ ॥

क्वचिदावृत्तिमत्सौम्यंक्वचिन्नद्यांजलंयथा ॥ क्वचित्सौम्यंक्वचिज्जीवधर्मैरंचेतनंतथा ॥ ६५ ॥ यथालतायाःपर्वाणिदीर्घायामध्यमध्यतः ॥ तथाचेतनसत्तायाजन्मानिमरणानिच ॥ ६६ ॥ नजायतेनम्रियते चेतनःपुरुषःक्वचित् ॥ स्वप्नसंभ्रमवद्भ्रांतमेतत्पश्यतिकेवलम् ॥ ६७ ॥ पुरुषश्चेतनामात्रंसकदाक्वेव नश्यति ॥ चेतनव्यतिरिक्तत्वेवदान्यत्किंपुमान्भवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे लीले! जिसप्रकार नदीका जल कहीं आवर्त (भँवरेह) संयुक्त रहताहै और कहीं शान्त रहताहै ऐसेही चेतनभी कहीं शान्त, और कहीं जीवके रागद्वेषादि धर्मसे कलुषित रहताहै॥६५॥ जैसे लम्बी दूर्वादि लताके मध्य२ में ग्रन्थी रहती है, इसीप्रकार चेतन सत्ताकी स्फुरणमें मध्य २ जीवन मरणभी जाने ॥ ६६ ॥ यह सब कथन अविद्याकी अपेक्षाहै, यथार्थमें तो यह चेतन पुरुष न कभी जन्मताहै, और न मरताहै, किन्तु केवल स्वप्नके सम्भ्रमके समान भ्रान्त होके यह सब देखताहै ॥ ६७ ॥ चेतना मात्र यह पुरुष कब और कैसे नष्ट होसकताहै, और चेतनसे अन्य देह प्राण इन्द्रिय मन चित्त बुद्धि अहंकार वा इन सबके अधिष्ठातृ देवता अथवा अविद्या इनमेंसे कहो क्या होसकता है, कुछ नहीं क्योंकि पुरुषके सम्पूर्ण व्यवहारोंका निर्वाह ज्ञानसे होताहै, वे सब व्यवहार इन जडोंसे नहीं होसकते, इसलिये चेतन मात्रही पुरुषहै, यह पक्ष सिद्धान्तहै ॥ ६८ ॥

कोव्ययावन्मृतंब्रूहिचेतनंकस्यकिंकथम् ॥ म्रियंतेदेहलक्षाणिचेतनंस्थितमक्षयम् ॥ ६९ ॥ अमरिष्यन्न वैचित्तमेकस्मिन्नवतन्मृते ॥ अभविष्यत्सर्वभावमृतिरेकमृताविह ॥ ७० ॥ वासनामात्रवैचित्र्यंयज्जीवोनुभवेत्स्वयम् ॥ तस्यैवजीवमरणेनामनीपरिकल्पिते ॥ ७१ ॥ एवंनकश्विन्म्रियतेजायतेनचकश्वन॥ वासनावर्त्तगर्तेषुजीवोलुठतिकेवलम् ॥ ७२ ॥ अत्यंतासंभवाद्देवदृश्यस्यासौचवासना ॥ नास्त्येवेति विचारेणदृढज्ञातैवनश्यति ॥ ७३ ॥ अनुदितमुदितंजगत्प्रबंधंभवभयतोभ्यसनैर्विलोक्यसम्यक् ॥ अलमनुदितवासनोहिजीवोभवतिविमुक्तइतीहसत्यवस्तु ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणविचारो नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—और चेतनका मरण कब किसने अनुभव कियाहै, क्योंकि साक्षीरहित मरण नहीं होसकता, इसलिये लक्षों शरीर मरतेहैं, उनका अनुभव कर्ता चेतन ज्यों का त्यों स्थितहै ॥ ६९ ॥ और एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (एकही चेतन सर्व शरीरोंमें गुप्तहै) (इत्यादि श्रुतियोंसे सब देहोंमें चेतन एकही है) भेदमें कुछ प्रमाण नहीं है तो उस एक चेतनके मरनेसे समष्टि चेतनका मरना क्यों न होगा और उसके मरनेसे निरुपादन जगत्सत्ताका असम्भव होनेसे सर्व भावमें मरणका दोष क्यों न आवेगा ॥ ७० ॥ यह चेतन जो स्वयं जीवनका अनुभव करताहै, वह केवल वासना मात्रकी विचित्रताकाही नाम जीवन मरण कल्पित किया गयाहै ॥ ७१ ॥ इसप्रकार न कोई मरताहै न जन्मताहै केवल वासनाके आवर्त (भँवरेह) युक्त गर्तोंमें यह जीव लुढकता फिरताहै ॥ ७२ ॥ इस दृश्यका सर्वथा असम्भव होनेसे विचार दृष्टिसे वासनाभी कोई पदार्थ नहीं है, केवल अभिमानके अधिकरणका नाश अवश्य होताहै ॥ ७३ ॥ संसारके भयसे वैराग्य आदि साधन सहित अधिकारी जीव गुरुद्वारा श्रवण मनन आदि अभ्यासोंसे भ्रान्तिसे उत्पन्न हुयें, इस जगत् प्रपंचको यथार्थमें सम्यग् दर्शनसे अनुत्पन्न (नहीं उत्पन्न) निश्चय करके देखके मूल अविद्याके नाशसे सर्वथा द्वैत वासनासे शून्य विमुक्त होजाताहै, और संसारमें वही विमुक्त आत्मस्वरूप सत्य वस्तुहै और कुछ नहीं ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणविचारवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

आदिसृष्टिसे जीवकी संसारगतिकी विचित्रता, तथा ईश्वरकीभी उसके कर्मोंके अनुसार गुणकी स्थिति, इस ५५ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ यथैवजंतुर्म्रियतेजायतेचयथापुनः ॥ तन्मेकथयदेवेशिपुनर्बोधविवृद्धये ॥ १ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नाडीप्रवाहेविधुरेयदावातविसंस्थितिम् ॥ जंतुःप्राप्नोतिहितदाशाम्यतीवास्यचेतना ॥ २ ॥ शुद्धंहिचेतनंनित्यंनोदेतिनचशाम्यति ॥ स्थावरेजंगमेव्योम्निशैलेग्नौपवनेस्थितम् ॥ ३ ॥ केवलं वातसंरोधाद्यदास्पंदःप्रशाम्यति ॥ मृतइत्युच्यतेदेहस्तदासौजडनामकः ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रबुद्ध लीला बोली–कि हे देवि ! जिसप्रकार प्राणी मरताहै और पुनः जन्मताहै इस कथनको पुनः वैराग्यादिकी अधिकतासे ज्ञानकी वृद्धिके लिये कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे लीले ! नाडीका प्रवाह नष्ट होनेसे जिससमय इस प्राणीको शरीरका वायु शान्त होजाताहै उससमय अन्तःकरण उपाधिके नष्ट होनेसे दूसरी चेतना शान्तके सदृश होजाती है॥ २ ॥ और यथार्थमें तो शुद्धचेतन न कभी उदय हो, न शान्त होता है, वह तो स्थावरजंगम, आकाश, पर्वत, अग्नि, और पवन आदिमें नित्य एकरस स्थित रहताहै ॥ ३ ॥ केवल वायुके निरोधसे जब इसकी चेष्टा शान्त होजाती है, तब यह जडनामक देह मृतक होगया ऐसा कहा जाता है ॥ ४ ॥

तस्मिन्देहेशवीभूतेवातेचानिलतांगते ॥ चेतनंवासनामुक्तंस्वात्मतत्त्वेवतिष्ठति ॥ ५ ॥ जीवइत्युच्यतेतस्यनामाणोर्वासनावतः ॥ तत्रैवास्तेसचशवागारेगगनकेतथा ॥ ६ ॥ तदासौप्रेतशब्देनप्रोच्यतेव्यवहारिभिः ॥ चेतनंवासनामिश्रमामोदानिलवत्स्थितम् ॥ ७ ॥ इदंदृश्यंपरित्यज्ययदास्तेदर्शनांतरे ॥ स्वस्वप्नइवसंकल्पइवनानाकृतिस्तदा ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब वह देह मृतक होगया, और प्राणवायु जाके महावायुमें मिलगया, तब वासनासे विनिर्मुक्त आत्मा अपने शुद्धरूपमें स्थित होता है॥ ५ ॥ कदाचित् यह कहो कि अपने स्वरूपमें स्थित होनेसे वह तो ब्रह्मही रहा जीव नहीं होसकता सो नहीं क्योंकि पुनर्जन्मकी बीजभूत वासना करके सहित और उपाधिभावसे कल्पित सूक्ष्म अणु उपहित चेतनका नाम जीव है, और वहभी उसी मृतक पुरुषके गृहाकाशमें स्थित है ॥ ६ ॥ और उसके पश्चात् व्यवहारी मनुष्य उसको प्रेत शब्दसे कहते हैं, और चेतन वासनामें ऐसे मिला है जैसे सूक्ष्म तर पुष्पके रजमें वायु सुगन्धसे मिला हुआ स्थित रहता है॥ ७ ॥ और इस पूर्व देहादि दृश्यको त्यागके दूसरे देहादिमें अन्य दर्शनमें जब स्थित रहता है, तब स्वप्नके समान नानाप्रकारके आकारोंको धारण करता है ॥ ८ ॥

तस्मिन्नेवप्रदेशेंतःपूर्ववत्स्मृतिमान्भवेत् ॥ तदैवमृतिमूर्च्छांतेपश्यत्यन्यशरीरकम् ॥ ९ ॥ आत्मन्यस्तिघटापुष्टमन्यस्यव्योमकेवलम् ॥ आकाशभूतलेसार्कंसाकाशशशिवासरम् ॥ १० ॥ भवंतिषड्विधाःप्रेतास्तेषांभेदमिमंशृणु ॥ सामान्यपापिनोमध्यपापिनःस्थूलपापिनः ॥ ११ ॥ सामान्यधर्मामध्यमधर्माचोत्तमधर्मवान् ॥ एतेषांकस्यचिद्भेदोद्वौत्रयोप्यथकस्यचित् ॥ १२ ॥

अर्थ—और उसी सूक्ष्म मरणके प्रदेशमें पूर्वजन्मके सदृश स्मरणशक्ति सहित होजाता है और उसी समय मरणरूपी मूर्छाके अन्तमें दूसरा शरीर देखता है ॥ ९ ॥ कदाचित् शंका करो कि उस सूक्ष्मतर मरण प्रदेशमें अन्य देहकी कल्पनाके सम्भव होनेपरभी दूर देश और विस्तारयुक्त देशकेसे उसमें आसकते हैं, सो मेघादिकी घटासे पुष्ट विशालरूप आकाश अथवा आकाश और भूतल दो वा आकाश चन्द्र और सूर्य्यादि सहित करोडों लक्ष (लाख) सहित ब्रह्माण्ड प्रवेश करे, तथापि आत्मामें सबका प्रवेश होसकता है, क्योंकि आत्मा अनन्त है, और मायामें अघटित घटना करनेका सामर्थ्य है ॥ १० ॥ हे लीले ! इस रीतिसे मरणके अनन्तर छ प्रकारके प्रेत होते हैं, उनके वक्ष्यमाण भेदको तुम सुनो कोई तो सामान्य (अल्प) पापी, १ कोई मध्यम पापी, २ और कोई महा पापी, ३ होते हैं॥ ११ ॥ कोई सामान्य धर्मवान्, ४ कोई मध्यम धर्मवान्, ५ और कोई उत्तम महा धर्मवान्, ६ होते हैं, ये छ प्रकारके प्रेत हुये, इनमेंसे किसीका एक विशेष भेद होता है, किसीके दो और किसीके तीन भेद होते हैं ॥ १२ ॥

कश्चिन्महापातकवान्वत्सरंस्मृतिमूर्छनम् ॥ विमूढोनुभवत्यंतःपाषाणहृदयोपमः ॥ १३ ॥ ततः कालेनसंबुद्धोवासनाजठरोदितम् ॥ अनुभूयचिरंकालंनारकंदुःखमक्षयम् ॥ १४ ॥ भुक्त्वायोनिशतान्युच्चैर्दुःखाद्दुःखांतरंगतः ॥ कदाचिच्छममायातिसंसारस्वप्नसंभ्रमः ॥ १५ ॥ अथवामृतिमोहांतेजडदुःखशताकुलाम् ॥ क्षणाद्वृक्षादितामेवहृत्स्थामनुभवंतिते ॥ १६ ॥

अर्थ—सबसे प्रथम तीसरे महा पापीकी दशा वर्णन करते हैं, जो महा पातकी होता है वह मरणकी स्मृति मूर्छाको पाषाणके सदृश जड हृदयमें वर्षपर्यंत अनुभव करता है ॥ १३ ॥ उसके अनन्तर मरणरूपी मूर्छासे जगाहुआ कर्मवासनाके उदरसे उत्पन्न अक्षय नरकके दुःखोंको चिरकालतक अनुभव करके ॥ १४ ॥ सैकडों नीच योनियोंमें बडेसे बडे दुःखोंका अनुभव करके, कभी स्वप्नके समान भ्रम संयुक्त इस संसारमें महापातकसे शान्तिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ अथवा वह महापापी मरणरूपी मूर्छाके अनन्तर क्षणभरमेंही अपने हृदयमें स्थित जडताके सैकडों दुःखोंसे पूर्ण वृक्षादि भावोंको अनुभव करते हैं ॥ १६ ॥

स्ववासनानुरूपाणिदुःखानिनरकेपुनः ॥ अनुभूयाथयोनीषुजायंतेभूतलेचिरात् ॥ १७ ॥ अथमध्यमपापोयोमृतिमोहादनंतरम् ॥ सशिलाजठरंजाड्यंकंचित्कालंप्रपश्यति ॥ १८ ॥ ततःप्रबुद्धःकालेनकेनचिद्वातदैववा ॥ तिर्यगादिक्रमैर्भुक्त्वायोनीःसंसारमेष्यति ॥ १९ ॥ मृतएवानुभवतिकश्चित्सामान्यपातकी ॥ स्ववासनानुसारेणदेहंसंपन्नमक्षतम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपनें कर्म वासनाके अनुसार नरकोंमें अनेक दुःखोंको चिरकालतक अनुभव करके पुनः पृथिवीपर निकृष्टयोनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥ अब इसके पश्चात् जो मध्यम पापी है वे पाषाणके गर्भके सदृश महा जडताका कुछ कालतक अनुभव करते हैं ॥ १८ ॥ उसके अनन्तर वह पापी कुछकालमें वा अन्यकी दृष्टिमें उसी समय उस मूर्च्छासे जागके तिर्य्यक् (पशु पक्षी) आदिके क्रमसे योनियोंको भोगकर अनन्तर संसारमें आवेगा ॥ १९ ॥ और कोई सामान्य (अल्प) पापी मरणके अनन्तरही अपनी वासनाके अनुसार दूसरे अखण्डित मनुष्यादि शरीरका अनुभव करताहै ॥ २० ॥

सस्वप्नइवसंकल्पइवचेततितादृशम् ॥ तस्मिन्नेवक्षणेतस्यस्मृतिरित्थमुदेतिच ॥ २१ ॥ येतूत्तममहापुण्यामृतिमोहादनंतरम् ॥ स्वर्गविद्याधरपुरंस्मृत्यास्वनुभवंतिते ॥ २२ ॥ ततोन्यकर्मसदृशंभुक्त्वान्यत्रफलंनिजम् ॥ जायंतेमानुषेलोकेसश्रीकेसज्जनास्पदे ॥ २३ ॥ येचमध्यमधर्माणोमृतिमोहादनंतरम् ॥ तेव्योमवायुवलिताःप्रयांत्योषधिपल्लवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वप्न वा संकल्पके समान वह उसी मरणकेही क्षणमें पूर्वोक्त शरीरादिका अनुभव करताहै, और पूर्वोक्त रीतिसे शरीर आदिकी उसको स्मृति होजाती है ॥ २१ ॥ और जो उत्तम महापुण्यवान् प्रेतहै वे मरण मूर्च्छाके अनन्तरही स्वर्ग विद्याधर आदिके नगरोंको अपनी स्मृतिसे अनुभव करते हैं ॥ २२ ॥ उस महापुण्यके फलको भोगके अनन्तर और जो कुछ पुण्य पापादिकहैं उनके अनुसार दूसरे इलावृत्त कि पुरुषादि वर्षोंमें कर्मोंके फलोंको भोगकर, लक्ष्मी और सज्जनोंका स्थान जो मनुष्यलोक हैं उसमें उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ और जो मध्यम धर्मात्मा हैं वे मरणरूपी मूर्च्छाके अनन्तर ओषधि और पल्लव प्रधान जो नन्दन चैत्र रथादि बन हैं उनमें किं पुरुष यक्षआदि शरीरसे उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

तत्रचारुफलंभुक्त्वाप्रविश्यहृदयंनृणाम् ॥ रेतसामधितिष्ठंतिगर्भंजातिक्रमोचिते ॥ २५ ॥ स्ववासनानुसारेणप्रेताएतांव्यवस्थितिम् ॥ मूर्छांतेनुभवंत्यंतःक्रमेणैवाक्रमेणच ॥२६॥ आदौमृतावयमितिबुद्ध्यंतेतदनुक्रमात् ॥ बंधुपिंडादिदानेनप्रोत्पन्नाइतिवेदिनः ॥ २७ ॥ ततोयमभटाएतेकालपाशान्विताइति ॥ नीयमानःप्रयाम्येभिःक्रमाद्यमपुरंत्विति ॥ २८ ॥

अर्थ—वहांपर उत्तम स्वर्गके फलको भोगकर वा पुष्टि आदिके द्वारा व्रीहि, यव, आदि अन्नोंमें प्रवेश करके अन्नरूप होके ब्राह्मण आदि मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके वीर्य्यरूपसे अपनी वासनाके अनुसार जातिकर्मके उचित स्त्रियोंके गर्भमें आके स्थित होते हैं ॥ २५ ॥ हे लीले ! इसप्रकार अपनी २ वासनाके अनुसार मरणरूपी मूर्च्छाके पश्चात् प्रेतप्राणी ऐसी व्यवस्थाको क्रमसे अनुभव करते हैं ॥ २६ ॥ अब विशेष रीतिसे मरणसे लेके उनका आरोप क्रम देखाते हैं प्रथम हम मरे पुनः दाहदशाह आदि क्रमसे बन्धुओंके पिण्डदान आदिसे उत्पन्न हुये, ऐसे ज्ञानवाले कोई होते हैं ॥ २७ ॥ उसके अनन्तर कालकी फांसी लिये यमराजके दूत हमको लेजाते हैं, और हम अवक्रमसे यमराजकी पुरीको चलते हैं ॥ २८ ॥

उद्यानानिविमानानिशोभनानिपुनःपुनः ॥ स्वकर्मभिरुपात्तानिदिव्यानीत्येवपुण्यवान् ॥ २९ ॥ हिमानीकंटकश्वभ्रशस्त्रपत्रवनानिच ॥ स्वकर्मदुष्कृतोत्थानिसंप्राप्तानीतिपापवान् ॥ ३० ॥ इयंमेसौम्यसंपातासरणिःशीतशाद्वला ॥ स्निग्धच्छायासवापीकापुरःसंस्थेतिमध्यमः ॥ ३१ ॥ अयंप्राप्तोयमपुरमहमेषसभूतपः ॥ अयंकर्मविचारोत्रकृतइत्यनुभूतिमान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और धर्म्मात्मा मनुष्य ऐसा बार २ अनुभव करताहै कि देखो ये हमारे कर्मोंसे उपार्जित (उत्पन्न किये) दिव्य स्वर्गके नन्द आदि वन तथा शोभायमान विमान हमको प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ और पापी ऐसा अनुभव करताहै कि देखो बर्फ, काटे, गढे, शस्त्र, सरी, सूप और कंटमय पत्तोंसे संयुक्त ये बन आदि हमारे पापकर्मोंसे हमको प्राप्त हुये हैं ॥ ३० ॥ और मध्यम पापवाला ऐसा अनुभव करताहै, कि यह पादोंसे सुखपूर्वक जानेके योग्य शीतल हरी घासोंसे संयुक्त, घनी ठंढी छायायुक्त और वापी सहित मार्ग हमको प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ यह मैं यमराजके पुरमें पहुंचगया, सब भूतोंकी रक्षा करनेवाले मेरे सन्मुख यही यमराज बैठे हैं, यहां यमराजकी सभामें यम और चित्रगुप्त आदिने मेरे कर्मोंका बिचार किया ॥ ३२ ॥

इतिप्रत्येकमभ्येतिपृथुःसंसारखंडकः ॥ यथासंस्थितनिःशेषपदार्थाचारभासुरः ॥ ३३ ॥ आकाशइव निःशून्येशून्यात्मैवविबोधवान् ॥ देशकालक्रियादैर्घ्यभासुरोपिनकिंचन ॥ ३४ ॥ इतोयमहमादिष्टः स्वकर्मफलभोजने ॥ गच्छाम्याशुशुभंस्वर्गमितोनरकमेवच ॥ ३५ ॥ यःस्वर्गोयंमयाभुक्तोभुक्तोयंनर कोथवा ॥ इमास्तायोनयोभुक्ताजायेहंसंसृतौपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसप्रकार जैसे प्रतीत होते हैं वैसे स्थितहैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके आचार और उनके अर्थोंकी क्रियायें उनसे प्रकाश शील यह विशाल संसार खंड प्रत्येक जीवोंको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ आकाशके सदृश आकार शून्य आत्मामें देश, काल, और क्रियाकी दीर्घतासे भासमानभी यह जगत् प्रपंच विचार दृष्टिसे कुछभी नहीं है, किन्तु आत्माही इनका स्वरूप धारण करके स्फुरणवान होताहै ॥ ३४ ॥ मैं अपने कर्मोंके फल भोगनेके लिये यमराजसे इस दिशाकी ओर आज्ञा दियागया, और अब मैं इस यमराजकी सभासे शुभस्वर्ग अथवा नगरक भोगनेके लिये शीघ्र जाताहुं ॥ ३५ ॥ इस स्वर्गका मैंने भोग किया, अथवा नरकको भोगा, और इन २ पशुपक्षी आदिकी योनियोंकोभी भोगा और अब पुनः मनुष्य संसारमें उत्पन्न होताहुं ॥ ३६ ॥

अयंशालिरहंजातःक्रमात्फलमहंस्थितः ॥ इत्युदर्कप्रबोधेनबुद्धयमानोभविष्यति ॥ ३७ ॥ संसुप्तकरण स्त्वेवंबीजतांयात्यसौनरे ॥ तद्बीजंयोनिगलितंगर्भोभवतिमातरि ॥ ३८ ॥ सगर्भोजायतेलोकेपूर्वक र्मानुसारतः ॥ भव्योभवत्यभव्योवाबालकोललिताकृतिः ॥ ३९ ॥ ततोनुभवतींद्वाभंयौवनंमदनोन्मु खम् ॥ ततोजरांपद्मसुखेहिमाशनिमिवच्युतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यह मैं शालि (चावलका वृक्ष) अमुक स्थानमें उत्पन्न हुआथा, और क्रमसे पुनः अमुक स्थानमें फलरूपसे स्थितथा, इत्यादि ज्ञान इसको भविष्यत्कालमें श्रुति स्मृति और पुराणआदिके बोधसे होताहै ॥ ३७ ॥ और वृक्षादि दशामें इसकी बाह्य इंन्द्रियां मूर्छित दशामें रहती हैं, इसलिये अपने वृक्षादि भावोंको यह अनुभव नहीं करता, किन्तु उस दशासे यह क्रमसे मनुष्यके शरीरमें भोजन किये हुये अन्नादिके द्वारा वीर्य्य होताहै, और वीर्य्य योनिमें गिरनेसे माताके उदरमें गर्भरूपसे स्थित होताहै ॥ ३८ ॥ हे लीले! वह गर्भ संसारमें अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार सुख, सौभाग्य, आरोग्य, और उत्तम आचरणसहित भव्य अथवा इनसे विरुद्ध अभव्य सुन्दर आकृतिवाला बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३९ ॥ उसके अनन्तर चन्द्रमाके सदृश घटने बढनेकी शक्ति, और कलंकसहित तथा कामचेष्टासे मादक शक्तिकी ओर झुके हुये अपने यौवनका अनुभव करताहै, उसके पश्चात् कमलके ऊपर बज्रपातके समान अपने मुखके ऊपर गिरी हुई वृद्धा अवस्थाका अनुभव करताहै ॥ ४० ॥

ततोपिव्याधिमरणंपुनर्मरणमूर्छनाम् ॥ पुनःस्वप्नवदायातंपिंडेर्देहपरिग्रहम् ॥ ४१ ॥ याम्यंयातिपुनर्लो कंपुनरेवभ्रमक्रमम् ॥ भूयोभूयोनुभवतिनानायोन्यंतरोदये ॥ ४२ ॥ इत्याजवंजवीभावमामोक्षमतिभा सुरम् ॥ भूयोभूयोनुभवतिव्योम्न्येवव्योमरूपवान् ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ आदिसर्गेयथादेविभ्र मएषप्रवर्त्तते ॥ तथाकथयमेभूयःप्रसादाद्बोधवृद्धये ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर अनेक व्याधि तथा पुनः मरणरूपी मूर्छाका अनुभव करताहै, और अनन्तर पुनः स्वप्नके सदृश पिण्डदान आदि पूर्वक शरीर धारणके आगमनका अनुभव करताहै ॥ ४१ ॥ और पुनः यमलोकमें जाताहै, और ऐसाही भ्रमके क्रमको अनेक बार नानाप्रकारकी योनियोंमें अनुभव करताहै ॥ ४२ ॥ इसप्रकार भासमान संसारके परिवर्तनसे जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक बार २ यह जीव स्वयं आकाशरूप आत्मामें अनुभव किया करताहै ॥ ४३ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली कि—हे देवि! आदि सृष्टिमें, परमात्मेंही यह जगत्का भ्रम प्रवृत्त होताहै, सो कृपा करके ज्ञानकी वृद्धिके अर्थ पुनः कहिये ॥ ४४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ परमार्थघनंशैलाःपरमार्थघनंद्रुमाः ॥ परमार्थघनंपृथ्वीपरमार्थघनंनभः ॥ ४५ ॥ स र्वात्मकत्वात्सयतोयथोदेतिचिदीश्वरः ॥ परमाकाशशुद्धात्मातत्रतत्रभवेत्तथा ॥ ४६ ॥ सर्गादौस्वप्न पुरुषन्यायेनादिप्रजापतिः ॥ यथास्फुटंप्रकचितस्तथाद्यापिस्थितास्थितिः ॥ ४७ ॥ प्रथमोसौप्रतिस्पं दःपदार्थानांहिबिंबकम् ॥ प्रतिबिंबितमेतस्माद्यत्तदद्यापिसंस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि–हे लीले ! ये पर्वत आदि सब परमार्थ घन (परमात्म) स्वरूपहैं, उसमें केवल विवर्त मात्रहै, ऐसेही परमार्थ घन ये वृक्ष पृथिवी और आकाशभी है ॥ ४५ ॥ परमाकाश शुद्धरूप ईश्वर सर्वात्मक होनेसे जहां जैसे २ जिस रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होताहै वहां २ वैसाही होजाताहै ॥ ४६ ॥ सृष्टिकी आदिमें वही ईश्वर स्वप्नके संकल्प करनेवाले पुरुषकी रीतिसे समष्टि जीवरूप आदि प्रजापति होके रचनीय पदार्थोंके संकल्प-रूपसे भूःभुवर आदि लोक विवर्तरूपसे जैसा स्फुरित होताहै वैसा प्रकाशरूपसे अद्यावधि स्थितहै ॥ ४७ ॥ यह ईश्वर जो अपने संकल्पसे विवर्तभावको प्राप्त हुआहै, यह प्रथम विवर्त सम्पूर्ण पदार्थोंका बिम्बरूपहै, इस बिम्बरूप प्रथम प्रजापतिसे जो कुछ प्रतिबिम्बित हुआहै, वह अद्यावधि वैसाही स्थितहै, इससे संकल्पजनित सत्ताको संकल्प करनेवालेसे पृथक् माननेसेभी प्रतिबिम्बके तुल्य मिथ्याही है ॥ ४८ ॥

यन्नामसुषिरंस्थानंदेहानांतद्गतोनिलः ॥ करोत्यंगपरिस्पंदंजीवतीत्युच्यतेततः ॥ ४९ ॥ सर्गादावेवमे वैषाजंगमेषुस्थितास्थितिः ॥ चेतनाअपिनिस्पंदास्तेनैतेपादपादयः ॥ ५० ॥ चिदाकाशोयमेवांशंकु रुतेचेतनोदितम् ॥ सएवसंविद्भवतिशेषंभवतिनैवतत् ॥ ५१ ॥ नरेषाधिपुरंप्राप्तंचेतत्यक्षिपुरंनयत् ॥ तत्तस्यानाक्षिचिज्जीवंनोजीवत्येवसर्गतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो देहोंमें छिद्र स्थानहैं, वहां प्राप्त चेतन वायुरूप होके सब अंगोंको चेष्टित करताहै, उसीसे प्राणी जीताहै ऐसा कहतेहैं ॥ ४९ ॥ सृष्टिकी आदिसेही जंगम पदार्थोंमें छिद्र होनेसे यह चेष्टा करनेकी मर्य्यादा स्थितहै और वृक्ष आदिमें चेतनता रहतेभी इसीकारणसे वे चेष्टा रहितहैं ॥ ५० ॥ वह चिदाकाश चेतन ईश्वर बुद्धिरूप उ-पाधिमें प्रतिबिम्बित होनेसे अंशके समान आविर्भूत औपाधिक जीवका विभाग करताहै, और वही बुद्धिमें उपहित अंशसहित चेतन होजाताहै, और शेष पदार्थ मेरा अध्यारोपित होनेसेभी बुद्धि उपाधि न होनेसेभी अचेतन होताहै ॥ ५१ ॥ वह बुद्धिमें उपहित रूपसे प्रविष्ट चिदाकाश बुद्धिके निमित्तसे मनुष्य आदिके शरीररूपी नगरमें प्राप्त होके अपनी उपाधिभूत बुद्धिको नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियोंके गोलकादि स्थानोंमें प्राप्त करता हुआ, चाक्षुष आदि बुद्धि वृत्ति-योंके द्वारा बाह्यरूप आदि पदार्थोंको साक्षात्कार करताहै, और नेत्र आदि स्वतः चेतनता नहीं है, क्योंकि उनका केवल चेतनमें अध्यास मात्रहै, उनमें बुद्धिरूप शुद्ध उपाधिन होनेसे चेतनता नहीं है, किन्तु केवल कार्य्य लेनेके अर्थ उनमें बुद्धिके उपहित चेतनकेद्वारा ज्ञानशक्ति आजातीहै, और रूपादिका विवेक करनेवाला तो बुद्धिमें उपहित चेतनही है, यह मर्य्यादा सृष्टिके क्रमसेहै, अन्यथा घटादिमेंभी जीवनका प्रसंग होजायगा ॥ ५२ ॥

तथाखंखंतथाभूमिर्भूमित्वेनाप्स्ववज्जलम् ॥ यद्यथाचेततिस्वैरंतद्देहस्येवतथावपुः ॥ ५३ ॥ इतिसर्वशरी रेणजंगमत्वेनजंगमम् ॥ स्थावरंस्थावरत्वेनसर्वात्माभावयन्स्थितः ॥ ५४ ॥ तस्माद्यज्जंगमंनामत त्स्वबोधनरूपवत् ॥ तेनबुद्धंततस्तद्दत्तदेवाद्यापिसंस्थितम् ॥ ५५ ॥ यद्वृक्षाभिधमाबुद्धंस्थावरत्वेन वैपुनः ॥ जडगद्यापिसंसिद्धंशिलातरुतृणादिच ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्यपदार्थोंकी सत्ताके बल उसके संकलपसे है, जैसे आकाश उसके संकलपसे अवकाश देनेवाला शू-न्यशक्ति सहित है, और पृथिवी सब पदार्थोंके धारण शक्ति सहित, और जल सब पदार्थोंके गिला करनेकी शक्ति सहित स्थितहै, इसीप्रकार जहां जिस पदार्थका अपनी इच्छासे संकल्प करताहै, वहां वैसाही शरीर धारण कर लेताहै ॥ ५३ ॥ इसप्रकार सर्व शरीरमय होनेसे जहां जंगमका संकल्प करता है वहां तत्काल जंगम और जहां स्थावरका तहां स्थावररूपसे विवर्तभावको प्राप्त होता हुआ वह प्रभु स्थितहै ॥ ५४ ॥ इस कारणसे जो जंगम रूपहैं, वह निजबोध रूप जैसा विवर्तभावको प्राप्त हुआ है वैसाही अद्यपर्य्यन्त स्थितहै ॥ ५५ ॥ और जो वृक्ष आदिरूपसे वह विवर्तभा-वमें स्फुरित हुआ है, वह स्थावर नामसे प्रसिद्ध है, और वह उसकी भावनासे सिद्ध जड शिला वृक्ष, और तृणादि रूपसे स्थित है ॥ ५६ ॥

नद्वजाड्यंपृथक्किंचिदस्तिनापिचचेतनम् ॥ नात्रभेदोस्तिसर्गादौसत्तासामान्यकेनच ॥ ५७ ॥ वृक्षाणा मुपलानांयानामांतःस्थाःस्वसंविदः ॥ बुद्ध्यादिविहितान्येवतानितेषामितिस्थितिः ॥ ५८ ॥ विदोंतः

स्थावरादेर्यास्तस्याबुद्धयास्तथास्थिते: ॥ अन्याभिधानास्थानार्थाःसंकेतैरपरैःस्थिता:॥ ५९ ॥ कृमिकीटपतंगानांयानामांतःसस्संविदः ॥ तान्येवतेषांबुद्धयादीन्यभिधार्थानिकानिचित् ॥ ६० ॥

अर्थ—यथार्थ दृष्टिमें जड और चेतन कोई पृथक् पदार्थ नहीं है, इस सम्पूर्ण पदार्थ समूहमें सृष्टि स्थिति और प्रलयके विषयमें सामान्य सत्तामें कोई भेद नहीं है, अर्थात् चेतन सत्ता सर्वत्र व्याप्त है ॥ ५७ ॥ कदाचित् कहो कि यदि सब कुछ चित् एकरसहै तो उसके विरुद्ध जड नामरूपका अनुभव सब पदार्थोंका क्यों होता है, सो इस प्रकार है कि वृक्षों या पर्वतोंका अन्तस्थ जो प्रत्यक् चेतनहै उसमें अध्यस्त जो बुद्धि है, उसीसे इन सबके नामरूप कल्पित हैं, यही उनकी रहस्य स्थिति है ॥ ५८ ॥ स्थावरादि पदार्थोंका जो प्रत्यक् साक्षी चेतन है, उसमें अध्यस्त बुद्धि, उसका उपहित चेतन जो है वही मैं स्थावरहुं इत्यादि व्यवस्थित रूपसे स्थित होनेसे जंगमोंसे अन्य नाम तथा अभिमानके विषयाभूत जो अर्थहैं, वे वृक्ष पर्वत इत्यादि अन्य २ शब्दके संकेतोंसे स्थितहैं ॥ ५९ ॥ इन्हीं जंगमोंमें कृमि (कीडे) कीट पतंग आदिका जो प्रत्यक् चेतनहैं, उसमें अध्यस्त बुद्धिने, उनके उन्हीं नाम और रूपसहित अर्थोंकी कल्पना करली है ॥ ६० ॥

यथोत्तराब्धिजनतादक्षिणाब्धिजनंस्थितम् ॥ नकिंचिदपिजानातिनिजसंवेदनादृते ॥ ६१ ॥ स्वसंज्ञानुभवेलीनास्तथास्थावरजंगमाः ॥ परस्परंयद्वासर्वेस्वसंकेतपरायणाः ॥ ६२ ॥ यथाशिलांतःसंस्थानांबहिष्ठानांचवेदनम् ॥ असज्जडंचभेकानांमिथोंतस्तस्थुषांतथा ॥ ६३ ॥ सर्वसर्वगतंचित्तंचिद्वयोम्न्यत्प्रचेतितम् ॥ सर्गादौचोपलंवायुःसइहाद्यापिसंस्थितः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिसप्रकार समुद्रके उत्तर तटपर स्थित जनसमूह दक्षिण तटपर स्थित मनुष्योंको अपने अनुभवसे व्यतिरिक्त कुछभी नहीं जानते ॥ ६१ ॥ इसीप्रकार स्थावर जंगम अपने प्रत्यक् साक्षी चेतनके अनुभवमें लीनहैं, अर्थात् अन्य बुद्धि कल्पित कुछ नहीं जानतेहैं, और मिलेहुये व्यवहारमें परस्परके संकेतकी आकांक्षा रखतेहैं ॥ ६२ ॥ जैसे शिलाके अन्तर और बाह्यदेशमें स्थित मण्डूकोंको, असत् और परस्पर संवेदन होताहै, ऐसेही स्थावरोंकाभी है ॥ ६३ ॥ जैसे यह दृष्टान्तहै ऐसे प्रलयकालमें सर्वात्मक सर्वगत समष्टिरूप चित्त मायाके अन्तर्गत होके उसमें लीन रहताहै, वह जगत्का सूक्ष्मरूपहै, उसको सबके प्रत्यक् साक्षिचेतन चिदाकाशमें सृष्टिकी आदिमें जिसको जिस-रूपसे अनुभव कियाहै जैसे वायुमें गति वह यहांभी अद्यपर्य्यन्त वैसाही स्थितहै ॥ ६४ ॥

चेतितंयत्तुसौषिर्यंतन्नभस्तत्रमारुतः ॥ स्पंदात्मेत्यादिसर्गेहाःपदार्थेष्विवचोपनम् ॥ ६५ ॥ चित्तंतुपरमार्थेनस्थावरेजंगमेस्थितम् ॥ चोपनान्यनिलैरेवभवंतिनभवंतिच ॥ ६६ ॥ एवंभ्रांतिमयेविश्वेपदार्थाःसंविदंशवः ॥ सर्गादिषुयथैवासंस्तथैवाद्यापिसंस्थिताः ॥ ६७ ॥ यथाविश्वपदार्थानांस्वभावस्यविजृंभितम् ॥ असत्यमेवसत्याभंतदेतत्कथितंतव ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो यह छिद्ररूपसे विवर्त हुआ वह आकाश होगया और उसमें सर्व क्रिया करनेकी शक्तिवाला वायु स्थितहै, और सब वस्तुओंके संचलका हेतुयों है, जैसे शुष्क तृणपत्र आदि पदार्थोंके संचालनका ॥ ६५ ॥ यद्यपि यह चित्त (सामान्य चित्त, सत्ता सहित चित्त) परमार्थ दृष्टिसे स्थावर जंगम सबमें एक रूपसे स्थित है परन्तु चेष्टायें प्राणआदि पवनोंसे जंगमोंमें होती हैं, और स्थावरमें नहीं ॥ ६६ ॥ हे लीले ! इसप्रकार इस भ्रान्तिमय जगत्में चेतनके किरणरूपसे सम्पूर्ण पदार्थ सृष्टिकी आदिमें जिस रूपसे स्फुरित थे, वैसेही अबभी स्थितहैं, इन सब पूर्वोक्त बातोंमें ईश्वरकी नियतिही कारण है ॥ ६७ ॥ हे लीले ! जिस प्रकार इस विश्वपदार्थोंका स्वभाव यथार्थमें असत्यही सत्यसमान वृद्धिको प्राप्त है वह मैंने तुमसे कह दिया ॥ ६८ ॥

अयमस्तंगतःप्रायःपश्यराजाविदूरथः ॥ मालाशवस्यपद्मस्यपत्युस्तेयातिहृद्गतम् ॥ ६९ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ केनमार्गेणदेवेशियात्येषशवमंडपम् ॥ एनमेवाशुपश्यंत्यावावांगच्छावउत्तमे ॥ ७० ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मनुष्यवासनांतस्थंमार्गमाश्रित्यगच्छति ॥ एषोहमपरंलोकंदूरंयामीतिचिन्मयः ७१ मार्गेणैवमनेनैवयावस्तेयेनसंमतम् ॥ परस्परेच्छाविच्छित्तिर्नहिसौहार्दबंधनी ॥७२॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इतिविहितकथागतक्रमायांपरमदृशिप्रसृतेविबोधभानौ ॥ नृपतिवरसुतामनस्युदारेविगलितचित्तजडोविदूरथोभूत् ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारमरणावस्थावर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब देखो यह राजा विदूरथ मृतक प्राय (मरनेके समीप) होगया और यह अब पुष्पोंकी मालामें जो तुमारे पति पद्मका मृतक शरीर है, उसके हृदयमें प्रवेश करनेको इच्छासे जाताहै॥६९॥ प्रबुद्धलीलाजी बोली कि–

हे देवताओंकी स्वामिनि देवि ! यह मेरे पतिका जीव किस मार्गसे शवमण्डपमें जाता है आओ इसको देखते हुये शीघ्र उसी मार्गसे चलें ॥ ७० ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे लीले ! यह विदूरथका जीव मनुष्य वासनाका अर्थात् पद्मके शरीरमें अहं वासनाके मार्गका आश्रय लेके यह चिन्मय विदूरथका जीव मैं यह दूसरे लोकमें जाताहुं ऐसी बुद्धिसे जाता है ॥ ७१ ॥ आओ इसी मार्गसे चले, जो तुमको इष्ट है, क्योंकि परस्पर इच्छाका विरोध करना यह मित्रताका हेतु नहीं होता ॥ ७२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! श्रेष्ठ राजाकी कन्या जो लीला है उसके विशुद्ध चित्तमें शुद्ध परमार्थ आत्मतत्व दृष्टि स्फुरित होनेसे सम्पूर्ण सन्तापकी शान्तिद्वारा विवेक (ज्ञान) रूपी सूर्य्यके उदय होनेपर राजा विदूरथ प्राज्ञ आत्मामें लीन होनेसे जड अर्थात् मरणार्थ मूर्छित दशामें प्राप्त होगया ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने संसारमरणावस्था वर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस ५६ वे सर्गमें उस राजाके जीवकी वासनासे यमपुरीमें गमन और लीला और भगवतीका उसके पीछे चलना और यमपुरमें उससे पूर्वही पहुंचना इत्यादि विषयका वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेराजापरिवृत्ताक्षितारकः ॥ बभूवैकतनुप्राणशेषःशुष्कसिताधरः॥१ जीर्णपर्णसवर्णाभःक्षीणपांडुमुखच्छविः ॥ भृंगध्वनितखच्छायश्वासकूजाविकूणितः ॥ २ ॥ महामरणमूर्छांधकूपेनिपतिताशयः ॥ अंतर्निलीननिःशेषनेत्रादींद्रियवृत्तिमान् ॥ ३ ॥ चित्रन्यस्तइवाकारमात्रदृश्योविचेतनः ॥ निःस्पंदसर्वावयवःसमुत्कीर्णइवोपले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इस अवसरमें राजाके नेत्रतारका (आंखकी पुतलियां) उलट गई, और ओष्ठ शुष्क होगये, केवल सूक्ष्म प्राण कुछ शरीरमें रहगये ॥ १ ॥ शरीरका रंग सूखे पत्तेके समान होगया, मुखकी छबि क्षीण तथा पीतवर्ण होगई, और भृंगकी ध्वनिके समान ऊर्ध्व श्वास घर्घर चलने लगे ॥ २ ॥ महामरणकी मूर्छाके अन्धकूपमें मानों गिरगया, और नेत्रआदि इन्द्रियोंकी वृत्तियां सब अन्तःकरणमें लीन होगई ॥ ३ ॥ चेतनारहित आकारके केवल चित्रमें लिखितके समान होगया, सम्पूर्ण शरीरके भाग ऐसे चेष्टारहित होगये जैसे पाषाणमें खुदी हुई मूर्तिके ॥ ४ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतनुदेशेनतंजहौ ॥ प्राणःविपत्तिवृक्षंस्वंपक्षीवांतरिक्षगः ॥ ५ ॥ तेतंददृशतुर्बालेदिव्यदृष्टीनभोगतम् ॥ जीवंप्राणमयींसंविद्रंधलेशमिवानिले ॥ ६ ॥ साजीवसंविद्गगनेवातेनमिलिता सती ॥ खेदूरंगंतुमारेभेवासनानुविधायिनी ॥ ७ ॥ तामेवानुससाराथस्त्रीद्वयंजीवसंविदम् ॥ भ्रमरीयुगलंवातलग्नांगंधकलामिव ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अब अधिक व्यर्थ है अल्प प्रदेशमेंही प्राणवायुने उस राजाके देहको ऐसे त्यागा जैसे अपने घोसलेके वृक्षपर बैठनेकी इच्छासे आकाशगामी पक्षी अपने पूर्वस्थानको ॥ ५ ॥ दिव्य दृष्टियुक्त उन दोनों ललनाओंने आकाशमें प्राप्त उस राजाके जीवको ऐसे देखा जैसे घ्राणइन्द्रिय जनित वृत्तियोंका उपहित चेतनवायुमें स्थित सूक्ष्म गन्धको ॥ ६ ॥ वह जीव चेतन आकाशमें सूक्ष्म प्राणसे मिलकर अपनी वासनाके अनुसार आकाशमें दूर देशमें जानेको आरम्भ किया ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् उन दोनों दिव्य स्त्रियोंने, उसी जीव चेतनका अनुसरण ऐसे (पीछा) किया जैसे दो भ्रमरियोंका जोडा वायुमें संलग्न सूक्ष्म गन्धकी कलाका ॥ ८ ॥

ततोमुहूर्त्तमात्रेणशांतेमरणमूर्छने ॥ अंबरेबुबुधेसंविद्गंधलेखेनवायुना ॥ ९ ॥ अपश्यत्पुरुषान्याम्यान्नीयमानंचतैर्वपुः ॥ बंधुपिंडप्रदानेनशरीरंजातमात्मनः ॥ १० ॥ प्रागेंकर्मफलोल्लासमतिदूरतरेस्थितम् ॥ वैवस्वतपुरंप्रापजंतुभिःपरिवेष्टितम् ॥ ११॥ प्राप्तंवैवस्वतपुरमादिदेशततोयमः ॥ अस्यकर्माण्यशुभाणिनैवसंतिकदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुहूर्तमात्रमें जब मरणकी मूर्छा शान्त होगई तब आकाशमें जीव संवित् (जीवचेतन) स्वप्नके सदृश ऐसे जाग्रत होगया जैसे गन्धमात्रा सहित वायुसे घ्राण संवित् ॥ ९ ॥ उस जीवने यमराजके दूतोंको

देखा, किये मेरे शरीरको लिये जाते हैं, तथा यहभी अनुभव किया कि बन्धुओंके पिण्डदान आदि क्रियाओंसे मेरा नूतन शरीर उत्पन्न होगया है ॥ १० ॥ अति दूर संवत्सरमें जानके दक्षिणमार्गमें स्थित अनेक कर्मोंके फलोंको प्रकट करनेवाला, और बहुतसे प्राणियोंसे घिरा हुआ जो यमराजका नगर है वहां राजाका जीव प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ जब यमराजके नगरको पहुंचा, तब यमराजने इसके कर्मोंका विचार करके कहा कि इसके अशुभ पापमय कर्म कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥

नित्यमेवावदातानांकर्तायंशुभकर्मणाम् ॥ भगवत्याःसरस्वत्यावरेणायंविवर्द्धितः ॥ १३ ॥ प्राक्तनोस्य शवीभूतोदेहोस्तिकुसुमांबरे ॥ प्रविशत्वेषतंगत्वात्यज्यतामितिचेतसा ॥ १४ ॥ ततस्त्यक्तोनभोमार्ग यंत्रोपलइवच्युतः ॥ अथजीवकलालीलाज्ञप्तिश्चेतित्रयंनभः ॥ १५ ॥ पुप्लुवेजीवलेखात्तुरूपिण्यौतेनप श्यति ॥ तामेवानुसरंत्यौतेसमुल्लंघ्यनभस्तलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यमराजने आज्ञा दिया कि यह सदा लोभादि दोषोंसे रहित शुभ कर्मोंका करनेवाला है, और भगवती सरस्वतीके बरदानसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥ इस मेरे कथनके अभिप्रायसे हे दूतलोग इस राजाके जीवको छोडदो और इसका पूर्वजन्मका मृतक देह पुष्पोंसे वेष्टित गृहाकाशमें है, वहां जाके यह प्रवेश करै, यहांपर लीला और सरस्वती अन्तर्धान होके, सब बातैं देखरहीं थीं ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर पाषाण फेकनेवाले यन्त्रसे पाषाणके तुल्य वह आकाशमार्गमें छोडागया, इसके अनन्तर राजाके जीवकी कला, लीला और सरस्वती, ये तीनों आकाशमार्गसे ॥ १५ ॥ उडे और लीला तथा भगवती यद्यपि रूपसहित ये परन्तु वह जीवकला उनकी नहीं देखतीथी, और वे दोनों उसको देखती हुई और उसीके पीछे गमन करती हुई आकाश तलका उल्लंघन करके ॥ १६ ॥

लोकांतराण्यतीत्याशुविनिर्गत्यजगद्गृहात् ॥ द्वितीयंजगदासाद्यःभूमंडलमुपेत्यच ॥ १७ ॥ तेद्वेसंकल्प रूपिण्यौसंगतेजीवलेखया ॥ पद्मराजपुरंप्राप्यलीलांतःपुरमंडपम् ॥ १८ ॥ क्षणाद्विविशतुःस्वैरंवातले खायथांबुजम् ॥ सूर्यभासोयथांभोजंसुरभिःपवनंयथा ॥ १९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्प्राप्तःकथमसौ शवस्यनिकटंगृहम् ॥ कथंतेनपरिज्ञातोमार्गोमृतशरीरिणा ॥ २० ॥

अर्थ—और अनेक लोकोंकाभी उल्लंघन करके, शीघ्रही उस ब्रह्माण्डसे निकलकर दूसरे ब्रह्माण्डमें पहुंची वहांसे भूमण्डलमें आकरके प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ वहां भूमण्डलमें आकर संकल्परूप वे दोनों जीवकलाके साथ पद्मराजाके नगरमें प्राप्त होकर लीलाके अन्तःपुरमें ॥ १८ ॥ अपनी इच्छापूर्वक क्षणभरमें ऐसे प्रवेश किया जैसे वायुकी कलाकमलमें, सूर्य्यकी दीप्ति मद्ममें, और सुगन्ध वायुमें ॥ १९ ॥ श्रीरामजी बोले कि—हे ब्रह्मन्! वह जीव राजा पद्मके मृतक शरीरके निकट कैसे प्राप्त हुआ और मृतक शरीरवाले, उस जीवने मार्ग कैसे जाना ॥ २० ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्यस्ववासनांतस्थशवस्यकिलराघव ॥ तत्सर्वंहृद्गतंकस्मान्नासौप्राप्नोतितद्गृहम् ॥ २१ ॥ भ्रांतिमात्रमसंख्येयंजगज्जीवकणोदरे ॥ वटधानातरुमिवस्थितंकोवानपश्यति ॥ २२ ॥ यथा जीवद्वपूर्बीजमंकुरंहृदिपश्यति ॥ स्वभावभूतंचिदणुस्त्रैलोक्यनिचयंतथा ॥ २३ ॥ नरोयथैकदेशस्थोदूर देशांतरस्थितम् ॥ संपश्यतिनिधानंस्वंमनसानारतंसदा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! उस जीवकी वासनामें राजा पद्मके शरीरमें अहंभाव स्थित था इसलिये मार्ग आदि उसके हृदयमें स्फुरित होरहाथा, तो भला वह उस गृहको क्यों न प्राप्तहो ॥ २१ ॥ हे रामजी! जीवकी उपाधिरूप सूक्ष्म अन्तःकरणमें ये भ्रान्तिमय असंख्यात जगत् ऐसे स्थितहैं जैसे वटके सूक्ष्म बीजमें महान् वृक्ष, तो भला उसको कौन जीव नहीं देखता ॥ २२ ॥ जिसप्रकार अखण्डित शरीर (तुष आदि जिसके न निकलेहों) वाला वटबीज अपनेमें जल मृत्तिकादि सब सामग्री प्राप्त होनेपर अंकुरका अनुभव करताहै, इसीप्रकार अपने स्वभावसे उत्पन्न त्रैलोक्य समूहको चिदाकाश देखताहै, अर्थात् ज्ञान वा अज्ञान इनमेंसे एकके व्यवधानसे सम्पूर्ण जगत् साक्षी भास्यहै (साक्षी चेतनसे प्रकाशित होताहै) ॥ २३ ॥ जैसे देशके किसी एक देशमें स्थित मनुष्य दूरदेशमें अभी अपने गडे हुये धनको मनसे निरन्तर सदा देखा करताहै ॥ २४ ॥

तथास्ववासनांतस्थमर्भोहंपरिपश्यति ॥ जीवोजातिशताक्रांतोविभ्रमेपरिगतोपिसन् ॥ २५ ॥ श्रीरामउ वाच ॥ भगवन्पिंडदानादिवासनारहिताकृतिः ॥ कीदृक्संपद्यतेजावःपिंडोयस्मैनदीयते ॥ २६ ॥ श्री वसिष्ठउवाच ॥ पिंडोथदीयतेमाअपिंडोदत्तोममेतिचेत् ॥ वासनाहृदिसंरूढातत्पिंडफलभाङ्नरः ॥ २७ ॥ यच्चित्तंतन्मयोजंतुर्भवतीत्यनुभूतयः ॥ सदेहेषुविदेहेषुनभवत्यन्यथाक्वचित् ॥ २८ ॥

अर्थ—उसीप्रकार यह जीव सैकडों जातिसे पूर्ण और भ्रममें प्राप्तभी हो परन्तु अपनी वासनाके अन्तः स्थित अभीष्ट पदार्थको भलीभांति देखताहै ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले—भगवन् जिसको पिण्डदान नहीं दिया जाता वह पिण्डकी वासनासे रहित जीव शरीर किसप्रकार पाताहै, क्योंकि प्रथम यह कहा कि विदूरथने बन्धुओंके पिण्डदानसे अपने शरीरको उत्पन्न देखा और पिण्डदान सबका होनहीं सकता ॥ २६ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पिण्ड दिया जाय वा नहीं परन्तु जिसके हृदयमें यह वासना दृढहै कि मुझे पिण्डदान दियागया वह मनुष्य पिण्डदानके बलका भागी अवश्य होगा ॥ २७ ॥ क्योंकि जैसा चित्तहै वैसाही प्राणी होताहै, ऐसा विद्वानोंका अनुभवहै चाहे देहरहितहों वा देहसहितहो परन्तु यह वार्ता अन्यथा कदाचित् नहीं होती ॥ २८ ॥

सपिंडोस्मीतिसंवित्त्यानिष्पिंडोपिसपिंडवान् ॥ निष्पिंडोस्मीतिसंवित्त्यासपिंडोपिनपिंडवान् ॥ २९ ॥ यथाभावनमेतेषांपदार्थानांहिसत्यता ॥ भावनाचपदार्थेभ्यःकारणेभ्यउदेतिहि ॥३०॥ यथावासनयाजंतोर्विषमप्यमृतायते ॥ असत्यःसत्यतामेतिपदार्थोभावनात्तथा ॥ ३१ ॥ कारणेनविनोदेतिनकदाचनकस्यचित् ॥ भावनाक्वापिनोइतिनिश्चयवान्भव ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं पिण्डसहितहुं ऐसे ज्ञानसे पिण्डरहितभी सपिण्ड होजाताहै और मैं पिण्डरहितहुं ऐसे विश्वासे पिंडसहितभी पिण्डरहित होजाताहै॥२९॥हे रामजी ! इन सब पदार्थोंकी सत्यता भावनाके अनुसारही है, परन्तु भावना पदार्थोंसे और कारणोंसे होतीहै, अर्थात् शास्त्रकृत विशेषता यहहै कि बन्धुओंके पिण्डदान देनेसे मृतक पुरुषको मुझे दान दिया गया यह भावना अवश्य उदय होतीहै, इसलिये दृढभावनाके अर्थ शास्त्रोक्त कार्य्य अवश्य करना चाहिये ॥ ३० ॥ जिसप्रकार वासनासे प्राणिको विषभी अमृतके तुल्य होजाताहै अर्थात् गरुडउपासकको गरुडमें अहंभावना करनेसे विषका प्रभाव नहीं होता, वैसे असत्य कण्टकादिसे विद्ध मनुष्यको यदि सर्पदंश (काटने) की भ्रान्ति होतीहैं तो उस पदार्थकी भावनासे मृत्युपर्य्यन्तकी भ्रान्ति होजातीहै, यही असत्यका सत्यवत् भासनाहै ॥ ३१ ॥ कारणके विना कोई कार्य्य कभी किसीको नहीं होता तो जगत् कारण जो भावनाहै वह यथार्थमें कुछ नहीं है, इसलिये सत्य कारणके विना कार्य्य समूह मिथ्याहै केवल शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्महीहै, हे रामजी ! तुम ऐसा निश्चय करो ॥ ३२ ॥

कारणेनविनाकार्यमामहाप्रलयंक्वचित् ॥ नदृष्टंनश्रुतंकिंचित्स्वयंत्वेकोदयादृते ॥ ३३ ॥ चिदेववासनासैवधत्तेस्वप्नइवार्थताम् ॥ कार्यकारणतांयातिसैवागत्यैवतिष्ठति ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ धर्मोनास्तिममेत्येवयःप्रेतोवासनान्वितः ॥ तस्यचेत्सुहृदाभूरिधर्मःकृत्वासमर्पितः ॥ ३५ ॥ तत्तदात्तस्किंधर्मोनष्टःस्याद्वतवानवा ॥ सत्यार्थावाप्यसत्यार्थाभावनाकिंबलाधिका ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि कदाचित् कहो कि कारणके विनाही जगत्कार्य्य है सो नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश ब्रह्मके सिवाय महाप्रलयसे लेके आजतक कोई कार्य्य कहीं न देखा न सुना ॥ ३३ ॥ इसप्रकार शुद्ध चिन्मात्रही भ्रान्तिसे वासनादि जगत् रूपसे भासताहै और वही चेतन जैसे स्वप्नमें पदार्थोंका आकार धारणकर लेताहै वैसेही स्वयं कार्य्यकारण भाव होके स्थित होताहै यह सिद्धान्तहै ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे भगवन् ! मेरे लिये पिण्डदान आदिको धर्म नहीं है, ऐसी वासना सहित जो प्रेत मेरे उसके लिये यदि उसके पुत्रादि सुहृत जनोंने धर्म जानके अधिक पिंडदानादि समर्प्पण किया ॥ ३५ ॥ तो वह धर्म प्रेतकी वासनाके अनुसार निष्फल होगा वा सुहृतकी वासनाके अनुसार फल होगा, इसमें सुहृदकी वासना तो धर्म होनेसे सत्यहै और प्रेतकी वासना तो असत्य प्रत्यक्षही है अब इनमें भोक्ता जो प्रेतहै उसकी वासना प्रबलहै वा सुहृदकी सत्यार्थ विषयिणी प्रबलहै यदि प्रेतकी वासना प्रबल मानों तो कृतपुण्य धर्मकी हानि और यदि सुहृदकी वासना प्रबलहै तो अर्थकी सत्यता हुई भावना कुछ नहीं ॥ ३६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यसंपत्त्योदेतिभावना ॥ यत्रैवाभ्युदितासास्यात्सद्वयोरधिकोजयी ॥ ३७ ॥ धर्मदातुःप्रवृत्ताचेद्वासनातत्तयाक्रमात् ॥ आपूर्यतेप्रेतमतिर्नचेत्प्रेतधियाशुभा ॥ ३८ ॥ एवंपरस्परजयाजयत्यत्रातिवीर्यवान् ॥ तस्माच्छुभेनयत्नेनशुभाभ्यासमुदाहरेत् ॥ ३९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ देशकालादिनाब्रह्मन्वासनासमुदेतिचेत् ॥ तन्महाकल्पसर्गादौदेशकालादयःकुतः ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शास्त्रोक्त देश कालादिमें विधिपूर्वक अनुष्ठानसे शास्त्रके अनुसार जो सुहृदकी वासनाहै वह शास्त्रके प्रमाणसे प्रबलहै, क्योंकि यथोक्त क्रिया द्रव्यादिकी सम्पत्तिसे वह उदय हुई है, और वह भावना जिसफलरूप विषयमें अभ्युदित हुई है, वही विषय दोनोंमें विजयी होकर होनाहै ॥ ३७ ॥ धर्म दान (पिण्डदानादि) करनेवालेकी जैसी वासना प्रवृत्त होती है, कि मैं अमुकका पुत्र, अमुकके लिये पिण्डादि देताहूं, तो शास्त्रके प्रमाण केवलसे प्रेतके अन्तःकरणमें सुहृदकी वासनाके क्रमसे ऐसी वासना उत्पन्न होतीहै कि मैं ऐसा

धर्मवानहुं, यदि वेदादिके द्वेषसे नास्तिकताके कारणसे प्रेतकी बुद्धिसे वह वासना दूषित नहो, क्योंकि वासना दूषित बुद्धिवाले प्रेतको पुत्रादि सुहृत् कृतधर्म आदिके फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३८ ॥ इसप्रकार परस्पर एक दूसरेके ऊपर बिजयी होनेसे जो अधिक बलवान् होताहै वही यहां जयपाताहै यह पूर्वमेंभी कह आयेहैं इसलिये प्रयत्नसे सदा शुभकार्य्यकाही बार २ अभ्यास करना अत्यावसकहैं ॥ ३९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! यदि देकशालादि सहकारी कारणोंसे वासनाका उदय होताहै तो महाकल्पमें " सदेव सौम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म " (हे सौम्य श्वेतको तो सृष्टिके प्रथम केवल एक अद्वितिय सत् परमात्माही था) इत्यादि श्रुतियोंसे देशकालादि सहकारी कारण कहां है उनके न होनेसे वासनाका अभाव और वासनाके अभावसे जगत्की उत्पत्तिका अभाव हुआ ॥ ४० ॥

कारणेसमुदेतीदंतैस्तदासहकारिभिः ॥ सहकारिकारणानामभावेवासनाकुतः ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्महाबाहोसत्यात्मन्नकदाचन ॥ महाप्रलयसर्गादौदेशकालौनकौचन ॥ ४२ ॥ सहकारिकारणानामभावेसतिदृश्यधीः ॥ नेयमस्तिनचोत्पन्नानचस्फुरतिकाचन ॥ ४३ ॥ दृश्यस्यासंभवादेवकिंचिद्यदृश्यतेत्विदम् ॥ तद्ब्रह्मैवस्वचिद्रूपंस्थितमित्थमनामयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—वासनादिरूप कार्य्योंका उदय सहकारी कारण देशकालादिके होनेसे होताहै, और सहकारी कारणोंके अभावसे वासना कहांसे होसकती है ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो रामजी ! जैसा तुम कहतेहो वैसाही हैं, महाप्रलयमें तथा सृष्टिकी आदिमें सबका पूर्वभूत परमार्थ सत्य आत्मस्वरूपमें देशकाल कुछभी नहीं हैं और यही वेदान्तोंका सिद्धान्त है "न निरोधोनचोत्पत्तिः" अर्थात् आदेशो नेति नेति (न संसारका नाश है और न उत्पत्ति है) अब तुमारे लिये यह उपदेश है कि जो कुछ यह दृश्यरूप है वह कुछ नहीं, किन्तु अन्तमें शेष केवल परमात्माही है इत्यादि श्रुति स्मृतिसे सबका तात्पर्य्य आत्मस्वरूपकेही बोध करानेमें है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! सहकारी कारणोंके अभावसे यह दृश्य बुद्धि जो हो रही है, यह यथार्थमें न है, न उत्पन्न हुई, और न तत्ववेत्ताओंकी दृष्टिसे वास्तविकमें स्फुरित होती है ॥ ४३ ॥ दृश्यके असम्भव होनेसे यह जो कुछ देख पडताहै, यह स्वयं चित्रूप अनामय ब्रह्मही इसी प्रकारसे स्थित है ॥ ४४ ॥

एतच्चाग्रेयुक्तिशतैःकथयिष्यामएवते ॥ एतदर्थप्रयत्नोयंवर्त्तमानकथांशृणु ॥४५॥ एवंददृशतुःप्राप्तेमंदिरंसुंदरोदरम् ॥ कीर्णपुष्पोपहारेणवसंतमिवशीतलम् ॥४६॥ प्रशांताचारसंरंभराजधान्यासमन्वितम् ॥ मंदारकुंदमाल्यादिशवंतत्रसमंस्थितम् ॥ ४७ ॥ मंदारकुंदस्रग्दामवृतांबरवृहच्छवम् ॥ शवशय्याशिरःस्थाग्र्यपूर्णकुंभादिमंगलम् ॥ ४८ ॥ अनिवृत्तगृहद्वारगवाक्षकठिनार्गलम् ॥ प्रशाम्यद्दीपकालोकश्यामलामलभित्तिकम् ॥ गृहैकदेशसंसुप्तमुखश्वासस्समीकृतम् ॥ ४९ ॥ संपूर्णचंद्रसकलोदयकांतिकांतसौंदर्यनिर्जितपुरंदरमंदिरर्द्धि ॥ वैरंचपद्ममुकुलांतरचारुशोभंनिःशब्दमंदमिवनिर्मलमिंदुकांतम् ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणशयनानंतरप्रेतव्यवस्थानामषट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—यह वार्ता तुमको आगे हम सैकडो युक्तियोंसे कहैंगे, इसी वार्ताके समझानेके लिये यह सब प्रयत्न है अब तुम वर्तमान कथाको श्रवण करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे राजा पद्मके नगरमें भगवती और लीला दोनों प्राप्त होके सुन्दर अन्तरालयुक्त, और पुष्पोंके उपहारसे आच्छादित वसन्तऋतुके समान शीतल, प्रशान्त तथा राजकार्य्यके उद्योगमें निमग्न राजधानीस्थ मनुष्योंसे सेवित, राजापद्मके मन्दिरको देखा, और मन्दार तथा कुन्दोंके माल्य आदिसे आच्छादित, वहां स्थित, राजा पद्मके मृतक शरीरकोभी देखा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ और जहांपर मन्दार तथा कुन्दआदिकी मालाओंसे और उत्तम वस्त्रोंसे, आच्छादित राजापद्मका महान् मृतक शरीर स्थित था और मृतक शरीरकी शय्याको शिरस्थानमें उत्तम पूर्ण कुम्भादि मंगल द्रव्य स्थित थे ॥४८॥ और जहांपर बडे २ दरवाजेके तथा झरोखोंके दृढ फाटक तथा छोटी केवाडे बन्द थी और जहां दीपकोंके प्रकाशके मलिन होनेसे स्वतः निर्मल भित्ति श्यामताको प्राप्त हो रही थीं और गृहके एक देशमें सुप्तमनुष्यके मुखश्वाससे वह गृह व्याप्तथा ॥ ४९ ॥ इसप्रकार सोलह कलासहित पूर्ण चन्द्रोदयकी शोभासे अतिरमणीय तथा सुन्दरतासे इन्द्रके मंदिरकी संपत्तिकोभी जीतनेवाला, और भीतरसे ब्रह्माजीके आलय श्रीभगवान्के नाभिकमलके गर्भके सदृश उत्तम शोभायुक्त, शब्द रहित और चन्द्रमाके समान सुन्दर तथा निर्मल राजा पद्मके मन्दिरको दोनोंने देखा ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने मरणशयनानन्तर प्रेतव्यवस्थावर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

लीलाका दूसरी लीलाको देखना, देहका मिथ्यात्व, और योगियोंके शरीरकी सूक्ष्मताका उदय इस ५७ वें सर्गमें वर्णितहैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोददृशतुस्तत्रशवशय्यैकपार्श्वगाम् ॥ लीलांविदूरथस्याग्रेमृतांतेप्रथमागताम् ॥ १ ॥ प्राग्वेषांप्राक्समाचारांप्राग्देहांप्राक्सवासनाम् ॥ प्राक्तनाकारसदृशींसर्वरूपांगसुंदरीम् ॥ २ ॥ प्राग्रूपावयवस्पंदांप्रागंबरपरिवृताम ॥ प्राग्भूषणभरच्छन्नांकेवलंतत्रसंस्थिताम् ॥ ३ ॥ गृहीतचामरांचारुवीजयंतींमहीपतिम् ॥ उद्यचंद्रामिवदिवंभूषयंतींमहीतलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्टजी बोले–हे रामजी ! वहांपर उन दोनोंने उस मृतककी शय्याके एक ओर विदूरथकी लीला जो प्रथम मरके पहिलेही यहां आगईथी उसको देखा ॥ १ ॥ हे रामजी ! उस लीलाके वेष, आचार, देह, तथा वासना और वस्त्र, पूर्व विदूरथकी लीलाहीके सदृशथे और पूर्वकेही समान आकारवालीभी थी, तथा सर्वांगसुन्दरी थी ॥ २ ॥ पूर्वके सदृश और अंगोंकीभी चेष्टाथी, पूर्वकालमें जो वस्तु थे वेही वस्त्रभी धारण किये हुयेथी, और पूर्वके आभूषणोंके समूहसे आच्छादितथी केवल इतनाही भेदथा कि प्रथम विदूरथके राजभवनमेंथी, और अब राजा पद्मके राजभवनमें स्थितथी ॥ ३ ॥ यह लीला हस्तमें चामर लिये हुयेथी, और महीतलको ऐसा शोमितकरही थी जैसे उदयकालका चन्द्रमा ॥ ४ ॥

मौनस्थांवामहस्तस्थवदनेंदुतयानताम् ॥ भूषणांशुलतापुष्पैःफुल्लामिववनस्थलीम् ॥ ५ ॥ कुर्वाणां वीक्षितैर्दिक्षुमालत्युत्पलवर्षणम् ॥ सृजंतीमात्मलावण्यादिंदूनिंदुनभोदितम् ॥ ६ ॥ नरपालात्मनोविष्णोर्लक्ष्मीमिवसमागताम् ॥ उदितांपुष्पसंभारादिवपुष्पाकरश्रियम् ॥ ७ ॥ भर्त्तुर्वदनकेन्यस्तदृष्टिमिष्टविचेष्टिताम् ॥ किंचित्प्रम्लानवदनांम्लानचंद्रांनिशामिव ॥ ८ ॥

अर्थ—मौन धारण किये हुयेथी, वामहस्तमें मुखरूपी चन्द्रको धारण करनेसे कुछ नम्रथी, अर्थात् वामहस्तपर कपोल (गाल) रखके बैठीथी, और भूषणोंकी प्रभाओंसे ऐसी शोभित होरहीथी जैसे पत्र, लता, तथा पुष्पादिसे विकसित वनस्थली ॥ ५ ॥ और दिशाओंमें अपने नेत्रकटाक्षोंसे मानों मालती तथा कमलोंके पुष्पकी वृष्टि कररहीथी और अपनी सुन्दरतासे आकाशमें क्षयसे खण्डित अनेक चन्द्रमाओंकी मानों रचनाकर रहीथी ॥ ६ ॥ यह लीला राजा पद्मको ऐसे प्राप्त हुई जैसे भगवान्‌को लक्ष्मीजी और ऐसी शोभित होरहीथी जैसे पुष्पोंके समूहसे साक्षात् वसन्तकी लक्ष्मी ॥ ७ ॥ जिसकी इष्टसे विचेष्टित दृष्टि प्राणप्रिय पतिके मुखकमलकी ओर लगरहीथी और जिसका मुख कुछ ऐसा मलिन होरहाथा जैसे मलिन चन्द्रयुक्त रात्रि ॥ ८ ॥

ताभ्यांसाललनादृष्टातयातेतुनलक्षिते ॥ यस्मात्तेसत्यसंकल्पेसानतावत्तथोदिता ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ तस्मिन्प्रदेशेसापूर्वलीलासंस्थाप्यदेहकम् ॥ ध्यानेनज्ञप्तिसहितागताभूदितिवर्णितम् ॥ १० ॥ किमिदानींसलीलायादेहस्तत्रनवर्णितः ॥ किंसंपन्नःक्वायातइतिमेकथयप्रभो ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कासौलीलाशरीरंतत्कुतस्तस्यास्तिसत्यता ॥ केवलाभ्रांतिरेवाभूज्जलबुद्धिर्मराविव ॥ १२ ॥

अर्थ—उन दोनोंने अर्थात् प्रबुद्धलीला और भगवतीने उसको देखा, परन्तु उसने उन दोनोंको नहीं देखा, क्योंकि वे दोनों सत्यसंकल्प थीं, और अभीतक सत्यसंकल्पसे आविर्भूत नहीं हुई थीं ॥ ९ ॥ रामजी बोले–हे भगवन् ! आपने प्रथमही यह वर्णन किया था कि पूर्वलीला (प्रबुद्धलीला जो भगवतीके साथ है) अपने शरीरको वहां स्थापन करके ध्यानरूपसे भगवतीके साथ गई थी ॥ १० ॥ सो उस लीलाके देहके विषयमें इससमय वर्णन क्यों न किया, सो हे प्रभो उसका देह क्या हुआ और वह कहांगया यह मुझसे कहो ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! वह लीलाका शरीर यथार्थ दृष्टिसे कहां था, और उसकी सत्यता कैसे होसकती है, वह तो केवल ऐसी भ्रान्ति थी जैसे मरुस्थलमें जलकी बुद्धि ॥ १२ ॥

आत्मैवेदंजगत्सर्वंकुतोदेहादिकल्पना ॥ ब्रह्मैवानंदरूपंसद्यत्पश्यसितदेवचित् ॥ १३ ॥ यथैवबोधे लीलासौपरिणाममिताक्रमात् ॥ परेतथैवतस्मात्तद्धिमवद्गलितंवपुः ॥ १४ ॥ आतिवाहिकदेहेनदृश्यं यदवलोकितम् ॥ भूम्यादिनामतस्यैवकृतंतच्चाधिभौतिकम् ॥ १५ ॥ वास्तवेनतुरूपेणभूम्याद्यात्माधिभौतिकः ॥ नशब्देनचार्थेनसत्यात्माशशशृंगवत् ॥ १६ ॥

अर्थ––हे रामजी ! यह सब कुछ आत्माही है, देहादिकी कल्पना इसमें कैसे सत्य होसकती है, जो कुछ

तुम देखतेहो यह सच्चिदानन्दरूप ब्रह्महीहै ॥ १३ ॥ जिसप्रकार लीला तत्त्वज्ञानमें परिपक्वताको प्राप्त होती गई उसी प्रकार परब्रह्ममें उसका शरीर हिम सदृश गलित होता गया ॥ १४ ॥ (हे रामजी ! कालपाके इस आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरको, मैं आधिभौतिक (स्थूल) शरीरहुं, यह भ्रम ऐसे हुआ है जैसे रज्जुमें सर्प) हे रामजी ! न केवल आधिक भौतिक शरीरकाही बाध होता है, किन्तु सूक्ष्म समष्टि मनोमात्रबुद्धिसे तत्त्वदृष्टिसे जो दृश्य मिथ्यारूपसे देखाजाता है, उसीको पूर्वकालमें भ्रान्तिसे भूमि आदि नामसे स्थापित किया है, और वही आधिभौतिक है ॥ १५ ॥ इसलिये हे रामजी ! वास्तविक रूपसे भूमि आदि जो अधिभौतिक पदार्थ है वें नतो शब्दसे और न अर्थसे सत्यरूप हैं किन्तु शश (खर्गोश) के शृंगके तुल्य सर्वथा मिथ्या हैं ॥ १६ ॥

पुंसोहरिणकोस्मीतिस्वप्नेयस्योदितामतिः ॥ सकिमन्विष्यतिमृगंस्वमृगत्वपरिक्षये ॥ १७ ॥ उदेत्य सत्यमेवाशुतथासत्यंविलीयते ॥ भ्रांतिर्भ्रमवतोरज्ज्वामपिसर्पभ्रमेगते ॥ १८ ॥ समस्तस्याप्रबुद्धस्य मनोजातस्यकस्यचित् ॥ बीजांवना मृषैवेयंमिथ्यारूढिमुपागता ॥ १९ ॥ स्वप्नोपलंभसर्गाख्यंससर्वो ह्यनुभवन्स्थितः ॥ चिरमावृत्तदेहात्माभूचक्रभ्रमणंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसको स्वप्नमें ऐसी बुद्धि हुई थी, कि मैं मृगहुं, और जाग्रत अवस्थामें, उसका मृगत्व नष्ट होगया, तब क्या वह मनुष्य अपने मृगत्व (मृगपनेको) ढूंढता है ॥ १७ ॥ जैसे असत्य पदार्थ भ्रमसे उदय होता है, और बोध होनेसे वह असत्य होनेसे शीघ्र लयभी होजाता है, वैसीही भ्रमवाले पुरुषको भ्रान्तिमय रज्जुका सर्प नष्ट होनेसे, पुनः उदयको नहीं प्राप्त होती ॥ १८ ॥ यह जो समष्टिरूप अज्ञमन है, इनमें प्रत्येकको इस स्थूल ब्रह्माण्डकी भ्रान्ति भिन्न है, और इनमेंसे किसी मनसमूहको बीज (कारण) के बिनाही यह मिथ्या भ्रान्ति अति दृढताको प्राप्त होगई है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण अज्ञप्राणी उत्पत्ति और नाशवान् देहमेंही आत्मबुद्धि रखनेसे स्वप्नमें प्राप्तके सदृश जगत्की सृष्टिको सत्यवत् चिरकालतक अनुभव करते ऐसे स्थित हैं जैसे बालक अपने भ्रमणके समय और कुछ कालपीछेभी पृथिवी कादिके भ्रमणको ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्लोकैःपुरस्थस्यगच्छतोयोनिनोनिजम् ॥ आतिवाहिकतांदेहःकीदृशोयंविलोक्यते ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहाद्देहांतरप्राप्तिःपूर्वदेहंविनासदा ॥ आतिवाहिकदेहेस्मिन्स्वप्नेष्विवविनश्वरी ॥२२॥ यथातपेहिमकणःशरद्व्योम्निसितोंबुदः ॥ दृश्यमानोप्यदृश्यत्वमित्येवंयोगिदेहकः ॥ २३ ॥ द्रागित्येवाथवाकश्चिद्योगिदेहोनलक्ष्यते ॥ योगिभिश्चपुरोवेगात्प्रोड्डीनइवखेखगः ॥२४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यदि योगियोंको आधिभौतिक शरीर नहीं होता तो सन्मुख स्थित अपने स्वरूपको जब प्राप्त होने लगताहै, या मरके सूक्ष्म शरीर धारण करताहै, तब उसका शरीर कैसे लोग देखते हैं, अर्थात् सूक्ष्म शरीर तो देख नहीं सकते और स्थूल उसको है नहीं तो क्या देखते हैं ॥ २१ ॥ श्रीवशिष्टजी बोले—हे रामजी ! योगियोंका मरण दो प्रकारकाहै, एक तो प्रारब्ध भोग क्षय करनेके अर्थ नानादेहकी कल्पनामें, और दूसरा प्रारब्ध कर्मके नाशसे विदेह कैवल्य होनेसे, प्रथममें पूर्व शेषता कुछ नहीं है, सो ऐसे है कि जैसें स्वप्नमें एक मृगादि देहसे दूसरे मनुष्यादि देहकी प्राप्ति, सूक्ष्म शरीरमेंही पूर्व देहके त्यागके विनाही होजाती है ॥ २२ ॥ और दूसरा इसप्रकारहै कि जैसे आतपमें हिमकण वा शरत्कालके आकाशमें श्याममेघ दृश्यमानभी अदृश्य होजाताहै, परन्तु कुछकाल शेष रहताहै, ऐसाही योगीका शरीरहै ॥ २३ ॥ और किन्ही २ योगियोंका शरीर, हमारा शरीर शीघ्र नष्टहो इस संकल्पसें शीघ्र लुप्त होनेके कारण अन्य योगियोंकोभी नहीं देख पडता, तो अन्यकी क्या कथा ॥ २४ ॥

स्ववासनाभ्रमेणैवकचित्केचित्कदाचन ॥ मृतोयमितिपश्यंतिकेचिद्योगिनमग्रगाः ॥ २५ ॥ भ्रांतिमात्रंतुदेहात्मातेषांतद्रुपशाम्यति ॥ सत्यबोधेनरज्जूनांसर्पबुद्धिरिवात्मनि ॥ २६ ॥ कोदेहःकस्यवासत्ता कस्यनाशःकथंकुतः ॥ स्थितंतदेवयदभूद्बोधःकेवलंगतः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आतिवाहिकता मेतिआधिभौतिकएवकिम् ॥ उतान्यइतिमेब्रूहियेनोह्यइवभोःप्रभो ॥ २८ ॥

अर्थ—वह उनका शरीर ऐसे अदृश्य होजाताहै जैसे आकाशमें सन्मुख उडता हुआ पक्षी इससे यह सिद्ध हुआ कि योगीजनोंका शरीर जो जीवनदशामें किसीको देख पडताहै, वह उन्हींके संकल्पसे, किये मनुष्य मुझे इसप्रकार देखें, यह उनके संकल्पके कारण होताहै, न कि आधिभौतिक शरीरका मरण देखते हैं, यद्यपि योगीकी दृष्टिमें वह शरीर सूक्ष्महीहै, और कोई २ धर्मात्मा अग्रगामी मोक्ष प्राप्त योगीको जीवनसहित देखते हैं, अतएव पूर्व विदेह मुक्त-शुकदेवजीका परिक्षित्की सभामें आना, और भागवतका उपदेश देना संगत होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! देहमात्रमें

जो भ्रमसे आत्मबुद्धि है सो उन योगियोंके आत्मामें सत्य परमात्माके बोधसे ऐसे शान्त होजाती है जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्पबुद्धि ॥ २६ ॥ हे रामजी ! विचारो तो, क्या तो वह देह है और किसकी सत्ता है, और किसका कैसे और कहांसे नाश होता है, जो परमार्थरूपसे स्थित था, वही ज्ञानसे रहगया, केवल अज्ञानका नाश मात्र हुआ ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! योगियोंका जो आधिभौतिक (यह स्थूल) शरीरहै, यही आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर होजाताहै, अथवा अन्य उत्पन्न होताहै, यदि प्रथम पक्षहै तो बाधित पदार्थका अन्य परिणाम होना, यह सर्व प्रमाणविरुद्ध है, और यदि दूसरा शरीर मिलता है तो ज्ञानके अनन्तर पुनः शरीर प्राप्तिसे ज्ञानसे मुक्तिफलकी हानि हुई. हे प्रभो ! इस संशयरूपी प्रवाह मैं कह रहाहुं, सो आप मुझे कृपा करके कहैं ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुशोह्युक्तमेतत्तेनगृह्णासिकिमुत्तम ॥ आतिवाहिकएवास्तिनास्त्येवेहाधिभौतिकः ॥२९॥ तस्यैवाभ्यासतोप्येतिसाधिभौतिकतामतिः ॥ यदाशाम्यतिसैवास्यतदापूर्वाप्रवर्त्तते ॥३०॥ तदागुरुत्वंकाठिन्यमितियश्चवमुधाग्रहः ॥ शाम्येत्स्वप्ननरस्येवबोद्धुर्बोधान्निरामयात् ॥ ३१ ॥ लघुतूलसमापत्तिस्ततःसमुपजायते ॥ स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानादिवदेहस्ययोगिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! यह विषय अनेकवार तुमसे कह आये, कि आधिभौतिक नहीं है आतिबाहिकही है, यहांपर स्थूलका परिणाम सूक्ष्म नहीं है, किन्तु भ्रान्ति सिद्ध स्थूलके बाधसे पूर्व सिद्ध अधिष्ठान सूक्ष्म शेष रहजाताहै, इसको तुम क्यों नहीं ग्रहण करते ॥ २९ ॥ उसीके अभ्याससे अर्थात् अनेक जन्मकी दृढ वासनासे आधिभौतिक बुद्धि उत्पन्न होती है, और जब तत्व साक्षात्कारसे वह शान्त होजाती है, तो पुनः पूर्वकी वही आतिवाहिक (सूक्ष्म) ता बुद्धि प्रवृत्त होजाती है ॥ ३० ॥ उससमय शरीरमें यह जो गुरुत्व (भारीपन) और काठिन्य (कडापन) आदि मिथ्या प्रतीति होरही है, वह ऐसे निवृत्त (शान्त) होजाती है जैसे बोधाके शुद्ध निरामय बोधसे स्वप्नके नगरकी गुरुता और कठिनता ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! उससमय योगीके शरीरमें लघुतूल समापत्ति (वह दशा जब शरीर रुईके समान उडने योग्य होजाताहै) ऐसे प्राप्त होती है जैसे स्वप्नमें स्वप्नके परिज्ञानसे ॥ ३२ ॥

स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानाद्यथादेहोलघुर्भवेत् ॥ तथाबोधादयंदेहःस्थूलवत्प्लुतिमान्भवेत् ॥ ३३ ॥ अनेकदिनसंकल्पदेहेपरिणतात्मनाम् ॥ अस्मिन्देहेशवेदग्धेतत्रैवास्थितिमीयुषाम् ॥ ३४ ॥ लघुदेहानुभवनमवश्यंभाविवैतथा ॥ प्रबोधातिशयादेतिजीवतामपियोगिनाम् ॥ ३५ ॥ उदितायांस्मृतौतत्रसंकल्पात्माहमित्यलम् ॥ यादृशःसभवद्देहस्तादृशोयंप्रबोधतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! स्वप्नमें स्वप्नके ज्ञानसे जैसे शरीर लघु होजाताहै इसी प्रकार बोधसे यह स्थूल शरीर आकाशमें उडने योग्य होजाता है ॥ ३३ ॥ अनेक दिनोंसे दृढ संकल्पसे स्थूल शरीरमें जिन अज्ञानियोंके आत्मबुद्धि हो रही है, उनकीभी इस स्थूल मृतक शरीरका दाहादि कारणसे नाश होनेपर उसी पूर्व सूक्ष्म शरीरमें स्थिति होतीहै, तो योगियोंका क्या कहना ॥ ३४ ॥ जैसे अज्ञानियोंकी स्थूल शरीरके नाश होनेपर सूक्ष्ममें स्थिति होती है इसी प्रकार बोधकी अधिकतासे स्थूलका बाध होनेपर जीवितभी योगियोंको सूक्ष्म शरीरका अनुभव अवश्य होता है ॥ ३५ ॥ स्वप्नमें मैं संकल्पात्माहुं, न कि स्थूलात्मा ऐसी स्मृति उदय होनेपर जैसा शरीरका सूक्ष्म भाव प्राप्त होता है वैसाही आत्माके बोधसे भी होताहै ॥ ३६

भ्रांतिरेवमियंभातिरज्ज्वामिवभुजंगता ॥ किंनष्टमस्यांनष्टायांजातायांकिंप्रजायते ॥ ३७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अनंतरंयेवास्तव्यालीलांपश्यंतितेयदि ॥ तत्सत्यसंकल्पतयाबुध्यंतेकिमतःप्रभो ॥ ३८ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंज्ञास्यंतितेराज्ञीस्थितेयमिहदुःखिता ॥ वयस्याकाचिदन्येयंकुतोप्यस्याउपागता ॥ ३९ ॥ संदेहःकइवात्रैषांपशवोह्यविवेकिनः ॥ यथादृष्टंविचेष्टंतेकुतएषांविचारणा ॥ ४० ॥

अर्थ—इस स्थूल शरीरमें अहंबुद्धि रज्जुमें सर्पके समान भ्रान्तिमात्रहै, उसके नष्ट होनेसे क्या नष्ट हुआ, और उत्पन्न होनेसे कौन शोच करताहै ॥३७॥ श्रीरामजी बोले–कि प्रभो ! पूर्वलीला और नूतन लीलाके राजा पद्मके गृहमें आजानेके अनन्तर पूर्वलीलाके सूक्ष्म शरीर तो देखनेमें आही नहीं सकता इसलिये लीलाके सत्यसंकल्पसे किये लोग मुझे देखैं तो उसको देखकर पद्मके गृहके निवासी क्या कहैंगे, क्या वही लीलाहै ऐसा कहैंगे, अथवा अपूर्व कोई देवताहै, ऐसे देखके ज्येष्ठ शर्मा आदिके समान विस्मित होजायंगे ॥ २८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वे लोग ऐसा समझेंगे कि यह वही रानी है दुःखित होके स्थितहै और दूसरी लीलाको ऐसा समझेंगे कि यह कोई इसकी

सखी यहां आई है ॥ ३९ ॥ और यह अपूर्व लीला सुचरित्रहै, वा दुष्टा पुंश्चली है सत्य वा असत्यहै, इत्यादि सन्देह इन अविवेकी पशुओंको कहां, क्योंकि ये पूर्वदृष्टपदार्थके अनुकूल व्यवहार करनेवालेहैं, इनको ऐसी विचारणा कहां४०

यथालोष्टोल्लुठद्वृक्षंवंचयित्वाशुगच्छति ॥ अज्ञानत्वेजपशवस्तथाह्यस्तिपुरादिकम् ॥४१॥ यथास्वप्नव पुर्बोधात्त्रजानेकेवगच्छति ॥ असत्यमेवतद्यस्मात्तथैवेहाधिभौतिकम् ॥ ४२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भग वन्स्वप्नशिखरीप्रबोधेकेवगच्छति ॥ इतिमेसंशयंछिंधिशरदभ्रमिवानिलः ॥ ४३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्नभ्रमेथसंकल्पेपदार्थाःपर्वतादयः ॥ संविदंतर्मिलंत्येतेस्पंदनान्यनिलेयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसप्रकार शूखी मिट्टीका ढेला बलसे फेका हुआ अपना उपघात करतेहुये वृक्षको प्राप्त होके यह बाणके समान न तो वृक्षके भीतर प्रवेश करताहै और न कीचडके सदृश उसमें लिपटताहै और न पाषाणके तुल्य उसमें घाव करके आप पुनः घावकरनेके समर्थ रहताहै, किन्तु शीघ्रही नाशको प्राप्त होजाताहै, इसीप्रकार ये ज्ञान रहित अजन्मा होते हुयेभी पशुके तुल्य अति कोमल बुद्धि होनेके कारण किसी पदार्थके भीतर प्रवेश करके विचार करनेमें सर्वथा असमर्थ है, इससे सिद्ध हुआ कि इनके विचार न होनेमें अज्ञानही कारणहै, और इनके शरीर काम कर्म और वासनादिभी इनके अनुरूप हैं ॥ ४१ ॥ जैसे जाग्रत् होनेके पश्चात् स्वप्नका शरीर न जाने कहां चला जाताहै, यही दशा ज्ञानोत्तर आधिभौतिक शरीरकीभी है, क्योंकि यहभी स्वप्नके तुल्य असत्है ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् जाग्रत् होनेपर स्वप्नका पर्वत कहां जाताहै इस मेरे संशयको ऐसे छेदन कीजिये जैसे शरत्कालके मेघको वायुके पटलको ॥४३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! स्वप्नके और संकल्प (मनोरथ) के पदार्थ अविद्याके उपहित चेतनके कार्य्य हैं, इसलिये ये उसीमें ऐसे लीन होजातेहैं, जैसे स्पन्द (वायुकी गति) वायुमें ॥ ४४ ॥

अस्पंदस्ययथावायोःसस्पंदोंतर्विशत्यलम् ॥ अनन्यात्मातथैवायंस्वप्नार्थःसंविदोमलम् ॥ ४५ ॥ स्व प्नाद्यर्थावभासेनसंविदेवस्फुरत्यलम् ॥ अस्फुरंतीतुतेनैवयांत्येकत्वंतदात्मिका ॥ ४६ ॥ संवित्स्वप्नार्थ योर्द्वित्वंनकदाचनलभ्यते ॥ यथाद्रवत्वपयसोर्यथावास्पंदवातयोः ॥ ४७ ॥ यस्तत्रस्यादिवाबोधस्तद ज्ञानमनुत्तमम् ॥ सैषासंसृतिरित्युक्तामिथ्याज्ञानात्मिकोदिता ॥ ४८॥

अर्थ—जैसे स्पन्द (गति) रहित वायुके स्पन्द उससे अभिन्नरूप होनेसे उसी स्पन्द रहित वायुमें मिलजा- तेहैं, इसीप्रकारके पदार्थ संवित् (चेतन) के आवर कमलरूप अज्ञानमें जो उनका उपादान कारणहै उसीमें प्रवेश करतेहैं ॥ ४५ ॥ इस रीतिसे अज्ञात संवित् जैसेहै वही वासना कर्मके वशसे कभी स्वप्न आदि पदार्थोंके आभास रू- पसे स्फुरित होने लगती है, और जब नहीं स्फुरित होती तो उसी अपने कारणमें एकरूप होजातीहै ॥ ४६ ॥ और विवेक होनेसे तो संवित् (चेतन) और स्वप्नके पदार्थोंमें कदाचित्भी भेद ऐसे नहीं प्रतीत होता जैसे द्रवत्व और अथवा वायु और उसकी गतिमें ॥ ४७ ॥ और जो इन दोनोंका (स्वप्नके पदार्थ और संवित् रूपका) पृथक् रूपसे जलमें भासनाहै, यही सबसे बढके अज्ञानहै और मिथ्यारूप आविर्भूत यही अज्ञान संसारहै ॥ ४८ ॥

सहकारिकारणानामभावेकिलकीदृशी ॥ संवित्स्वप्नपदार्थानांद्वितास्वप्नेनिरर्थिका ॥ ४९ ॥ यथास्वप्नस्त थाजाग्रदिदंनास्त्यत्रसंशयः ॥ स्वप्नेपुरमसद्भातिसर्गादौभात्यसज्जगत् ॥ ५० ॥ नचार्थोभवितुंशक्यः सत्यत्वेस्वप्नतोदितः ॥ संविदोनित्यसत्यत्वंस्वप्नार्थानामसत्यता ॥ ५१ ॥ झटित्येवयथाकाशंभवति स्वप्नपर्वतः ॥ क्रमेणवातथाबोधेखंभवत्याधिभौतिकम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे घटरूप कार्य्यमें चक्रचीवर आदि मृत्तिकाके सहकारी कारण होते हैं, ऐसे सहकारी कारणोंके अ- भावसे स्वप्नके पदार्थ और संवित्में स्वप्नअवस्थामें निरर्थक द्वैतता (भेदभाव) किसप्रकार होसकता है ॥ ४९ ॥ और हे रामजी ! जैसा स्वप्नका प्रपंच है ऐसाही जाग्रत् प्रपंचभी है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, जैसे स्वप्नके नगर आदिमें सहकारी कारण न होनेसे असत् हैं,इसी प्रकार सृष्टिका समष्टि अज्ञान वा अविद्या उपहित हिरण्यगर्भ चेतनको छोडके अन्य कुछभी नहीं है, इसलिये स्वप्नकेही सदृश यहभी असत् है ॥ ५० ॥ स्वप्नका जो संविद्भास्य पदार्थ है, वह सत्य कदाचित् नहीं होसकता, क्योंकि संविद्की सत्ताके कभी व्यभिचार न होनेसे वह नित्य सत्य है, और स्वप्नके पदार्थोंकी सत्ताका व्यभिचार होनेसे वे असत्य हैं ॥ ५१ ॥ जैसे जाग्रत् होनेसे शीघ्रही स्वप्नका पर्वत आकाश (शून्य) रूप होजाता है, ऐसेही ज्ञान उदय होनेसे क्रम (जिस क्रमसे ज्ञान होता है) से वा शीघ्र आधिभौतिक शरीरभी शून्यरूप होजाता है ॥ ५२ ॥

उड्डीनोयंमृतोवेतिपश्यंतिनिकटस्थिताः ॥ भ्रमातिवाहिकीभूतंस्वस्वभावहतायतः ॥ ५३ ॥ मिथ्याद

ष्टयएवेमाःसृष्टयोमोहदृष्टयः ॥ मायामात्रदृशोभ्रांतिःशून्याःस्वप्नानुभूतयः ॥ ५४ ॥ स्वप्नानुभूतयइमा मरणांतबोधेभ्रांत्येतरभ्रमदृशःस्फुटसर्गभासः ॥ भ्रांत्यातिवाहिकशरीरगताःसमस्तामिथ्योदितामृगनदीसरणक्रमेण ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्के मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नार्थस्यविचारो नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—और स्थूल शरीरका बाध होनेसे सूक्ष्म शरीरधारी तत्व ज्ञानीको यह योगी आकाशमें उडगया, जैसे शुकदेवजीका सूर्य्यमण्डलमें गमन, तथा अमुक तत्वज्ञानी योगी मरगया, जैसे दधीचि ऋषिका मरण इत्यादि रूपसे देखते हैं वे प्राणि अपने स्वाभाविक अज्ञानसे हिंसित मरे हुये प्राय होके देखते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि वे अपने २ अज्ञानसे कल्पित देहकोही देखते हैं न कि ज्ञानीके देहको ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! ये जो द्वैतकी दृष्टि हैं वे सब मिथ्या दृष्टि हैं, क्योंकि ये सब सृष्टि भ्रान्तिजन्य हैं जैसे इन्द्रजालकी मायाकी दृष्टि और स्वप्नके अनुभव अर्थशून्य भ्रान्तिमात्र प्रसिद्ध हैं ऐसेही ये द्वैतदृष्टिभी हैं ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! पूर्व पूर्वके पदार्थोंमें भेददर्शी पुरुषके दृढतर भेदके संस्कार उदय होनेसे मरणकालके पूर्व क्षणमें उत्पन्न भावीभोगके योग्य पदार्थोंके ज्ञानमें स्वप्नके अनुभवके सदृश सूक्ष्म शरीर मनोमात्र निष्टभी ये सम्पूर्ण सृष्टि मृगतृष्णाकी नदीके प्रवाहके सदृश मिथ्याही भ्रान्तिसे बाह्यके समान भासती है, यथार्थमें तो मनके बाहर नहीं है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे स्वप्नार्थविचारो नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

लीलाकी स्थितिका काल, और समाधिस्थ लीलाके शरीरका विनाश, लीलाका संभाषण, और राजाका पुनर्जीवन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५८ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेज्ञप्तिर्जीवंवैदूरथंपुनः ॥ संकल्पेनरुरोधाशुमनसःस्पंदनंयथा ॥ १ ॥ ॥ लीलोवाच ॥ वददेविकियान्कालोगतोस्यामिहमंदिरे ॥ समाधौमयिलीनायांमहीपालेशवेस्थिते ॥ २ ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ इहमासस्त्वतिक्रांतइहदास्याविमेतव ॥ रक्षार्थंवासगृहकेस्वपतोविहितेस्थिते ॥ ३ ॥ शृणुदेहस्यकिंवृत्तंतवेहवरवर्णिनि ॥ शरीरंतवपक्षेणतत्क्लिन्नंबाष्पतांगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्टजी बोले कि—हे रामजी ! इस अवसरमें ज्ञप्ति भगवतीने अपने संकलपसे विदूरथके अमूर्त जीवका निरोध ऐसे किया जैसे मूर्तिरहित मनकी गतिका ॥ १ ॥ लीला बोली कि—हे देवि ! इस पद्मकी सृष्टिमें इस मन्दिरमें रहते, तथा मुझे समाधिमें लीन हुये, और राजा पद्मके मृतक होनेमें कितना काल व्यतीत होगया, यह कृपा करके कहिये ॥२॥ ज्ञप्ति भगवती बोली—हे लीले ! इस सृष्टिमें तुमको एकमास होगया, और इस तुमारे निवास गृहमें तुमारे शरीरकी रक्षा करनेवाली दोनों दासियां शयन करती हैं ॥ ३ ॥ हे उत्तम वर्ण सहित लीले ! अन्यके अज्ञानसे कल्पित, अन्य अनुभवसिद्ध अपने उस आधिभौतिक शरीरका वृत्तान्त सुनो तुमारा देह एकपक्ष (१५ दिन) में प्राणके विरोधसे प्रदीप्त जठरअग्निसे तप्यमान होके आर्द्रधूम होगया ॥ ४ ॥

निर्जीवंपतितंभूमौसंशुष्कमिवपल्लवम् ॥ काष्ठकुड्योपमोजातःशवस्तुहिमशीतलः ॥ ५ ॥ ततोमंत्रिभिरागत्यमृतैवेयमितिस्वयम् ॥ क्लेदालोकाद्विनिर्णीयभूयोनिष्कासितंगृहात् ॥ ६ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेननीत्वाचंदनदारुभिः ॥ चितौसंक्षिप्यसघृतंसहसाभस्मसात्कृतम् ॥ ७ ॥ ततोराज्ञीमृतेत्युच्चैःकृत्वारोदनमाकुलम् ॥ परिवारस्तवाशेषंकृतवानौर्ध्वदेहिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अनन्तर निर्जीव होके सूखे पत्तेके सदृश हिमके तुल्य शीतल मृतक होगया ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर मन्त्रीलोग स्वयं आके पुनः उसको सडते देखके मृतक होगई, ऐसा निश्चय करके उसे बाहर निकाला ॥ ६ ॥ अब हे लीले ! अधिक कहना व्यर्थ है उसको लेजाके चन्दनकी लकडीका चिता बनाके घृतसे सिंचन करके शीघ्र भस्मकर दिया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर महाराणी मरगई, इसकारण महान् रोदन करके तुमारे परिवारके लोगोंने मृत्युके अनन्तर शेष पिण्डदानादि और्ध्वदेहिक क्रिया किया ॥ ८ ॥

इदानींत्वामिहालोक्यसशरीरामुपागताम् ॥ परलोकादागतेतिमहच्चित्रंभविष्यति ॥ ९ ॥ त्वंतुतेनशरीरेणसत्यसंकल्पतःसुते ॥ द्दश्यसेस्ववदातेनचित्रंतत्रतवोपरि ॥ १० ॥ यद्वासनात्वमभवोदेहंप्रतितदेवते ॥ रूपमभ्युदितंबालेतेनप्राक्सद्दशंतव ॥ ११ ॥ स्ववासनानुसारेणसर्वःसर्वंहिपश्यति ॥ द्दष्टांतोत्राविसंवादीबालवेतालदर्शनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय शरीरसहित तुमको पुनः इस स्थानपर आये हुयेको देखके परलोकसे पुनः आई ऐसा जानके बडाभारी आश्चर्य्य होगा ॥ ९॥ और हे पुत्रि! तुम तो अपने सत्यसंकल्पसे उसी अपने शुद्ध सूक्ष्म शरीरसे उनके दर्शनके अयोग्य रहतेभी देख पडोगी, यहभी महान् आश्चर्य होगा और इसके उपरान्त तुमाराभी दर्शन विषयमें चित्त होगा ॥ १० ॥ हे बाले! देहमें तुमारी जैसी वासनाथी वही आकार तुमाराहै, इसकारण पूर्वके सद्दश तुमारा रूप प्रकट हुआ, इससे यह शंका नहीं होसकती कि यह दिव्यशरीर पूर्व स्थूलशरीरके आकार क्यों हुआ ॥ ११ ॥ सब प्राणी अपनी वासनाके अनुकूल सबको देखताहै, इसमें विवादरहित द्दष्टान्त बालकोंका वेतालका देखपडनाहै ॥ १२ ॥

आतिवाहिकदेहासिसंपन्नासिद्धसुंदरी ॥ विस्मृतस्त्वेवदेहोसौप्राक्तनोनपवासनः ॥ १३ ॥ रूढातिवाहिकद्दशःप्रशाम्यत्याधिभौतिकः ॥ बुधस्यद्दश्यमानोपिशरन्मेघइवांबरे ॥ १४ ॥ रूढातिवाहिकोभावःसर्वोभवतिदेहकः ॥ निर्जलांभोदसद्दशोनिर्गंधकुसुमोपमः ॥ १५ ॥ सद्वासनस्यरूढायामातिवाहिकसंविदि ॥ देहोविस्मृतिमायातिगर्भसंस्थेवयौवने ॥ १६ ॥

अर्थ—हे लीले! अब तुम आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरधारिणी सिद्ध सुन्दरी, अर्थात् तत्त्वज्ञान परिनिष्ठित सुन्दरी होगई है । इसलिये राजाके सद्दश तुमको पूर्वशरीर नहीं प्राप्त हुआ, और पूर्वशरीर तुमको विस्मृत मात्र होगयाहै सर्वथा उसकी वासना नहीं गई, इसलिये सूक्ष्मशरीर दशामेंभी वही आकार भासताहै ॥ १३ ॥ जब तत्त्वज्ञानीकी आतिवाहिक द्दष्टि द्दढतर होजाती है, तब अन्यकी द्दष्टिसे द्दश्यमानभी उसका आधिभौतिक शरीर ऐसे शांत होजाताहै जैसे आकाशमें शरत्कालका मेघ ॥ १४ ॥ आतिवाहिक भाव (सूक्ष्म) शरीरमें अहंबुद्धि द्दढ होजानेसे सम्पूर्ण देह (स्थूलदेह) ऐसे होजाताहै जैसे जलरहित मेघ अथवा सुगन्धरहित पुष्प ॥ १५ ॥ हे लीले! वासनासहित प्राणीकी जब आतिवाहिक बुद्धि द्दढतर होजाती है, तब उसको स्थूलशरीर ऐसे विस्मृत होजाताहै जैसे युवाअवस्थामें गर्भकी दशा ॥ १६ ॥

एकत्रिंशेऽद्यदिवसेप्राप्तावयमिहांबरे ॥ प्रभातेमोहितेदास्यौमयैतेनिद्रयाधुना ॥ १७ ॥ तदेहियावल्लीलायैलीलेसंकल्पलीलया ॥ आत्मानंदर्शयावोस्यैव्यवहारःप्रवर्ततताम् ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आवांतावदिमेलीलापश्यत्वित्येवचिंतिते ॥ ज्ञप्त्यादेव्याततस्तत्रद्दश्येदीप्तेबभूवतुः ॥ १९ ॥ साविदूरथलीलाथसमाकुलविलोचना ॥ गृहमालोकयामासतत्तेजःपुंजभास्वरम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे लीले! आज एकतीसवां दिनहै जब कि हम लोग इस गृहाकाशमें प्राप्त हुई हैं, आज प्रातःकाल हमने इन दोनों दासियोंको निद्रासे मोहितकर दियाहै ॥ १७ ॥ आओ इस विदूरथकी लीलाको संकल्पके विलाससे अपने शरीरको दिखलावें, और व्यवहार प्रवृत्तहो ॥ १८ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस समयज्ञप्तिदेवीने यह चिंतन किया कि हम दोनोंको यह लीला देखै उसीसमय वे दोनों भगवती और लीला अति प्रकाशमान स्वरूपसे द्दश्य होगई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर आश्चर्ययुक्त नेत्रवाली वह विदूरथकी लीला अपने गृहको क्या देखती है कि तेजःपुंजसे अति प्रकाशमान होरहाहै ॥ २० ॥

चंद्रबिंबादिवोत्कीर्णंधौतंहेमद्रवैरिव ॥ ज्वालायाद्रवशीतायास्तत्प्रभाद्रवभित्तिमत् ॥ २१ ॥ गृहमालोक्यपुरतोलीलाज्ञप्तिंविलोक्यते ॥ उत्थायसंभ्रमवतीतयोःपादेषुसापतत् ॥ २२ ॥ मज्जयायागतेदेव्यौजयतांजीवनप्रदे ॥ इहपूर्वमहंप्राप्ताभवत्योर्मार्गशोधिनी ॥ २३ ॥ इत्युक्तवत्यांतस्यांतामानिन्योमत्तयौवनाः ॥ उपाविशन्विष्टरेषुलतामेरुशिरःस्विव ॥ २४ ॥

अर्थ—पुनः वह गृह द्रवीभूत शीतल दीप्तिसे ऐसा प्रतीत होताथा, मानों चन्द्रमाके बिम्बसे निकलाहै, और दोनोंकी अंगकी प्रभाके द्रवसे भित्तिआदि व्याप्त होनेके कारणसे ऐसा भान होताथा मानों द्रवीभूत (गलाये हुये) सुवर्णसे धुलाहै॥२१॥गृहको देखके लीला अपने सन्मुख क्या देखती है कि भगवती और पूर्व लीला दोनों उपस्थितहैं, वह उनको देखतेही आनंदसे पूर्ण होके शीघ्र उठकर उन दोनोंके चरणोंमें गिरी ॥ २२ ॥ लीलाजी बोली—कि हे जीवन देनेहारी दोनों देवियां! मेरे कल्याणकी उत्तमताके अर्थ आप दोनों यहां प्राप्त हुई हैं, मैं आप दोनोंकी दासी यहां प्रथमसे आगई

॥ २३ ॥ हे रामजी ! इतना उसके कहनेके पश्चात् वे तीनों मानके योग्य, और मत्त यौवन धारण करनेवाली, उत्तम सोनेकी चौकियोंपर (जो कि वहां वर्तमान थी) ऐसे विराजमान हुईं जैसे मेरुके शिखरोंपर लीन लता ॥ २४ ॥

॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ सुतेवदकथंप्राप्तात्वमिमंदेशमादितः ॥ किंवृत्तंतेत्वयादृष्टंकिमिवाध्वनिकुत्रवा ॥२५॥ ॥ विदूरथलीलोवाच ॥ देवितस्मिन्प्रदेशेखाजातमूर्छांतदाभवम् ॥ द्वितीयेंदोःकलेवाहंकल्पांतज्वालयाहता ॥ २६ ॥ नचेतितंमयाकिंचित्समंविषममेवच ॥ ततस्तरलपक्ष्मांतेविनिमील्यविलोचने॥२७॥ ततोमरणमूर्छांतेपश्यामिपरमेश्वरि ॥ यावदभ्युदितास्म्याशुप्लुताचगगनोदरे ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् ज्ञप्ति भगवती बोलीकि –हे पुत्रि ! तुम यहां किसप्रकार प्राप्त हुई, आदिसे आरंभ करके सब कहो मार्गमें कहां कैसा आश्चर्य्यका वृत्तान्त देखा, और तुमारे विषयमें क्या २ वृत्तान्त हुआ॥२५॥ विदूरथकी लीलाजी बोली–हे देवि ! उस विदूरथराजाके गृहमें द्वितीया तिथीकी चन्द्रकलाके समान मैं कल्पातकी ज्वालासे मारी हुईके सदृश उससमय मूर्छित होगई ॥ २६ ॥ उसके अनन्तर आखोंकी पुतलियां उलटनेपर दोनों नेत्रोंको मून्दकर मूर्छादशामें मुझेसम विषम (उत्तम निकृष्ट) का कुछभी ज्ञान नहीं था सब ज्ञानोंके अभाव अज्ञानमात्रकी साक्षिणी मैं थी ॥२७॥ हे परमेश्वरी ! उसके पीछे मरणमूर्छाके अनन्तर वासनासे कल्पित पूर्व देहके सदृश रूप धारण करके जब आविर्भूत हुई, इतनेहीमें चिदाकाशके भीतर इस भूताकाशमें उडती हुई अपनेको देखा ॥ २८ ॥

भूताकाशेनिलरथंसमारूढास्म्यहंततः ॥ आनीतागंधलेखेवतेनाहमिममालयम् ॥ २९ ॥ देविपश्यामिसदनंनायकेनाभ्यलंकृतम् ॥ दीप्तदीपंविविक्तंचमहार्हशयनान्वितम् ॥ ३० ॥ पतिमालोकयामीमंयावदेषविदूरथः ॥ शेतेकुसुमगुप्तांगोमधुःपुष्पवनेयथा ॥ ३१ ॥ अथसंग्रामसंरंभश्रमार्त्तोयंस्वपित्यलम्॥ इतिनिद्रामयासेयंदेवेश्वरिनवारिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—उसके पीछे हे देवि ! भूताकाशमें मैं वायुके रथपर समारूढ (सवार) हुई और उस रथने मुझे इस स्थानपर ऐसें प्राप्त किया जैसे गन्धकी लेखाको वायु ॥ २९ ॥ हे देवि ! यहां आके दीपकसे प्रकाशमान एकान्तमें बहुमूल्यशय्या करके संयुक्त, और मेरे स्वामीसे अलंकृत इसस्थानको देखा ॥ ३० ॥ ये मेरे पति विदूरथ पुष्पोंसे रक्षित शरीर पुष्पोंके बनमें वसन्तऋतुके समान जबतक शयन कररहे हैं तबतक इनकी प्रतीक्षा करती हुई इनको देख रहीहूं ॥ ३१ ॥ ये मेरे स्वामी संग्रामके परिश्रमसे पीडित होके पूर्णनिद्रामें शयन करते हैं, इसकारणसे इनकी निद्राको मैंने निवारण (भंग) नहीं किया ॥ ३२ ॥

अनंतरमिदंदेशंप्राप्तेदेव्याविमेत्विति ॥ यथानुभूतंकथितंमदनुग्रहकारिणि ॥ ३३ ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ हेहंसचारिगामिन्यौलीलेललितलोचने ॥ उत्थापयामोनृपतिंशवतल्पतलादिमम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वामुमुचेजीवमामोदमिवपद्मिनी ॥ ससमीरलताकारस्तत्रासानिकटंययौ ॥ ३५ ॥ घ्राणकोशंविवेशांतर्वंशरंध्रमिवानिलः ॥ स्ववासनाशतान्यंतर्दधदब्धिर्मणीनिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मेरे ऊपर अनुग्रह करनेहारी ! इसके पश्चात् आप दोनों इस स्थानपर प्राप्त हुई, यह जैसा मैंने अनुभव कियाथा आपके सन्मुख कहदिया ॥ ३३ ॥ ज्ञप्ति भगवतीजी बोली–हे हंसकी गतिको लज्जित करनेवाली तथा ललितनेत्र धारण करनेवाली दोनों लीले ! अब हम इस शय्यापरसे तुमारे पति इस राजा पद्मको उठाती(पुनः जीवनदान करती)हैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इतना कहके देवीने उस जीवको जिसको पूर्व संकल्पसे निरुद्ध (रोक) कर रक्खा ऐसे छोडा जैसे सुगन्धको कमलिनी और वह जीव वायुके सदृश अदृश्य होनेपरभी रागादि वासनासे पल्लव सहित लताकार होके राजाके नासिकाके निकट गया ॥ ३५ ॥ जैसे समुद्र अनेक रत्नोंको धारण करता है वैसेही अपनी सैंकडों वासनाओंको अन्तरमें धारण करता हुआ, वह जीव राजाके नासिकाके छिद्रमें ऐसे प्रवेश कर गया जैसे वायु बांसोंके छिद्रोंमें ॥ ३६ ॥

अंतस्थजीवंवदनंतस्यतत्कांतिमाययौ ॥ पद्मस्यावग्रहेपद्मंसुवृष्टइववारिणि ॥ ३७ ॥ क्रमादंगानिसर्वाणिसरसानिचकाशिरे ॥ तस्यपुष्पाकरइवलताजालानिभूभृतः ॥ ३८ ॥ अथाबभौकलापूर्णःसराकायामिवोडुराट् ॥ भासयन्भुवनंभूरिवदनेंदुमरीचिभिः ॥३९॥ स्फुरयामाससांगानिरसवंतिमृदूनिच ॥ कनकोज्ज्वलकांतीनिपल्लवानिवमाधवः ॥ ४० ॥

अर्थ—उस राजा पद्मका अन्तरमें जीव सहित मुख ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ जैसे वृष्टिके प्रतिबन्धसे लाल कमल उत्तम जलके वर्षणसे ॥ ३७ ॥ उस राजाके सरस (रस सहित) सम्पूर्ण अंग ऐसे प्रकाशित हुये जैसे बसन्त

ऋतुमें पर्वतके सम्पूर्ण लतासमूह ॥ ३८ ॥ वह राजा अपने मुखरूपी चन्द्रमाके किरणोंसे भूमण्डलको प्रकाश करते हुये ऐसा शोभित हुआ जैसे पूर्णिमाको सम्पूर्ण कलाओंसे पूर्णचन्द्रमा ॥ ३९ ॥ उस राजाने अपने रससहित और कोमल अंगोंको ऐसे संचालन किया जैसे बसन्तऋतु सुवर्णके समान दीप्तियुक्त कोमल पत्तोंको ॥ ४० ॥

उन्मीलयामासदृशौविमलालोलतारके ॥ हारिण्यौसुभगाभोगेचंद्रार्कौभवनंयथा ॥ ४१ ॥ उत्तस्थौप्रोल्लसत्कायोविंध्याद्रिर्वृद्धिमानिव ॥ उवाचकःस्थितइतिघनगंभीरनिःस्वनम् ॥ ४२ ॥ लीलाद्वयमथास्याग्रेप्रोवाचादिश्यतामिति ॥ सददर्शपुरोनम्रंलीलाद्वयमवस्थितम् ॥ ४३ ॥ समाचारंसमाकारंसमरूपंसमस्थिति ॥ समवाक्यंसमोद्योगंसमानंदंसमोदयं ॥ ४४ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! उस राजाने अपने विमल चंचल पुतलीयुक्त मनोहर और सौभाग्य सूचक लक्षणवाले दोनों नेत्रोंको ऐसे उद्घाटन किया जैसे जगदात्मा विराट् पुरुष अपने नेत्ररूप सूर्य्य चन्द्रमाको ॥ ४१ ॥ वृद्धिसहित विन्ध्यपर्वतके समान शोभायमान शरीरयुक्त राजा उठ बैठा, और मेघके समान गम्भीर शब्दोंसे बोला कि यहांपर कौन है ॥ ४२ ॥ उसके सन्मुख स्थित दोनों लीला बोली कि महाराज आज्ञा दीजिये, और उसराजाने दोनों लीलाको नम्रीभूत अपने सन्मुख स्थित देखा ॥ ४३ ॥ उन दोनोंका आचरण आकाररूप स्थिति वाणी उद्योग आनन्द और अभ्युदय समानहीं था ॥ ४४ ॥

कात्वंकेयंकुतश्चेयमित्याहसविलोकयन् ॥ तस्मैलीलाहहेदेवश्रूयतांयद्वदाम्यहम् ॥ ४५ ॥ महिलातव लीलाहंप्राक्तनीसहधर्मिणी ॥ वागर्थस्येवसंपृक्तास्थितासंश्लेषशालिनी ॥ ४६ ॥ इयंलीलाद्वितीयातेमहिलाहेलयामया ॥ उपार्जितात्त्वदर्थेनप्रतिबिंबमयीशुभा ॥ ४७ ॥ शिरोभागोपविष्टेयंपाहिहैममहासने ॥ एषासरस्वतीदेवत्रैलोक्यजननीशिवा ॥ ४८ ॥

अर्थ—उन दोनोंको देखता हुआ राजा बोला कि तुम कौनहो, और यह कहांसे आई इसको श्रवण करके पूर्वलीला बोली कि महाराज जो मैं कहतीहूं उसको श्रवण कीजिये ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! जैसे वाणी (शब्द) अर्थमें वाचक रूपसे मिली रहती है इसीप्रकार मैं आपकी पूर्वजन्मकी सहधर्मिणी लीलानाम्नी रानीहूं ॥ ४६ ॥ और इस दूसरी लीला आपकी रानीको मैंने अपनी लीलासे आपके उपभोगके लिये अपने शुभ प्रतिबिम्बमयी उपार्जित कियाहै ॥ ४७ ॥ यह आपके शिरोभागकी ओर सुवर्णके बडे आसनपर बैठीहै आप इसकी रक्षा कीजिये, और हे राजन् ! यह त्रैलोक्यकी माता सरस्वती देवी है ॥ ४८ ॥

अस्माकंपुण्यसंभारैरिहसाक्षादुपागता ॥ अनयेमेपराल्लोकादिहानीतेमहीपते ॥ ४९ ॥ इत्याकर्ण्यसमुत्थायराजाराजीवलोचनः ॥ लंबमाल्यांबरधरःपपातज्ञप्तिपादयोः ॥ ५० ॥ सरस्वतिनमस्तुभ्यंदेवि सर्वहितप्रदे ॥ प्रयच्छवरदेमेधांदीर्घमायुर्धनानिच ॥ ५१ ॥ इत्युक्तवंतंहस्तेनपस्पर्शज्ञप्तिदेवताम् ॥ सरस्वत्युवाच ॥ त्वंपुत्राभिमतार्थाढ्योभवेतिभवनान्वितः ॥ ५२ ॥ सर्वापदःसकलदुष्कृतदृष्टयश्चगच्छंतुवःशममनंतसुखानिसम्यक् ॥ आयांतुनित्यमुदिताजनताभवंतुराष्ट्रेस्थिराश्चविलसंतुसदैवलक्ष्म्यः ५३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे पद्मजीवनं नाम अष्टपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—हे महाराज ! हमलोगोंके पुण्य समूहसे यहां आके साक्षात् प्राप्त हुई है, और हे राजन् ! हम दोनोंको इन्होंने परलोकसे यहांपर प्राप्त किया है ॥ ४९ ॥ इतना श्रवण करके कमलके सदृश दीर्घनेत्रयुक्त, और लम्बी पुष्पोंकी माला धारण किये हुये, वह राजा उठकर देवी भगवतीके चरणोंमें गिरपडा ॥ ५० ॥ राजा बोला—कि हे सर्वजनको हितकारिणी सरस्वती आपको नमस्कार है, हे वरके देनेवाली देवि ! मुझे बुद्धि (ज्ञान) दीर्घ आयुः और अनेक प्रकारका धन दीजिये ॥ ५१ ॥ इतना राजाके कहनेपर देवी भगवतीने अपने हस्तसे उसे स्पर्श किया और सरस्वती बोली—कि हे पुत्र ! तुम इस लोकमें दीर्घ आयु, तथा इष्ट धनादिसे सम्पन्नतम होओ और परमार्थिक जो मेरा ज्ञान आत्मस्वरूपमें स्थिति है उस करकेभी युक्त होओ ॥५२॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण आपत्ति और सम्पूर्ण पापकी दृष्टि तुमारी नष्टहो, और सम्यक् प्रकारके अनन्त सुख तुमको प्राप्तहो, तथा तुमारे राज्यमें सम्पूर्ण प्रजाजनसमूह नित्य प्रसन्न रहैं, और तुमारे यहां अनेक प्रकारकी लक्ष्मी स्थिर होके नित्य विलास करैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने पद्मजीवनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

राजाके पुनर्जीवनके आनन्दसे उसके अन्तःपुरमें उत्सव और जीवन्मुक्तोंका चिरकालतक राज्य इस विषयका वर्णन इस ५९ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ सरस्वतीतथेत्युक्त्वातत्रैवांतर्धिमाययौ॥ प्रभातेपंकजैःसार्द्धंबुबुधेसकलोजनः॥१ आलिलिंगचतांलीलांलीलाचदयितंक्रमात् ॥ पुनःपुनर्महानंदान्मृतंप्रोज्जीवितंपुनः ॥ २ ॥ तदासीद्रा जसदनंमदमन्मथमंथरम् ॥ आनंदमत्तजनतंवाद्यगेयरवाकुलम् ॥ ३ ॥ जयमंगलपुण्याहघोषघुंघुम घर्घरम् ॥ तुष्टपुष्टजनापूर्णराजलोकवृतांगणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सरस्वती इतना कहके वहांही अन्तर्धान होगई और प्रातःकालमें कमलोंके साथही सम्पूर्ण मनुष्य जागगये ॥ १ ॥ राजाने उस लीलाको बार २ आलिंगन किया, और लीलानेभी राजाके पुनर्जीवनसे महान् आनन्दमें क्रमसे बार २ राजाको आलिंगन किया ॥ २ ॥ हे रामजी ! उससमय उसराजाके राजभवनमें मद और मन्मथ (कामदेव) के उत्सवसे आनन्द पूर्ण जनसमूह मदोन्मत्त होगये थे और स्थान वाद्य और गानसे पूर्ण होगया था ॥ ३ ॥ उस राजभवनका अंगण, जयमंगल, और स्वस्तिवाचन, पूर्वक वेदोंके घोषसे शब्दायमान और राजाके देखनेवाले मनुष्योंसे पूर्ण था ॥ ४ ॥

सिद्धविद्याधरोन्मुक्तपुष्पवर्षसहस्रभृत् ॥ ध्वनन्मृदंगमुरजकाहलाशंखदुंदुभि ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वीकृतबृहद्ध स्तहास्तिकस्तनितोत्कटम् ॥ उत्तालतांडवस्त्रैणपूर्णांगणलसत्ध्वनि ॥ ६ ॥ मिथःसंघट्टनिपतज्जनोपाय नदंतुरम् ॥ पुष्पशेखरसंभारमयसंसारसुंदरम् ॥ ७ ॥ विकीर्णापादितक्षौमंमंत्रिसामंतनागरैः ॥ स्थू लपद्ममयंव्योमरक्तैस्तांडविनीकरैः ॥ ८ ॥

अर्थ—जहांपर सहस्रों विद्याधर और सिद्धलोग पुष्पोंकी वृष्टि कररहे थे और मृदंग मुरज कर्णाल, शंख तथा दुन्दुभि नगाडेकी उत्तम ध्वनि होरहीथी ॥ ५ ॥ जहांपर बडे २ हांथियोंके समूह अपने शुंडोकों ऊपर उठाके ऊंचे स्वरसे ध्वनि कररहे थे, और ऊंचे तालोंसे स्त्रियोंके समूहके ताण्डव नृत्यगान तथा वाद्यकी शोभायमान उत्तम ध्वनिसे परिपूर्ण था ॥६॥ और परस्परके सम्मर्द पूर्वक गिरते हुये मनुष्योंके उत्तम हस्ती आदिके भेटसे दन्त सहित भान होता था और अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये मनुष्योंके संचारसे अति रमणीय था ॥ ७ ॥ मंत्रियोंने, छोटे २ कर देनेवाले राजाओंने तथा नगरनिवासियोंनें, पुष्प और मोतियोंके समूहोंसे मानों उसको सूक्ष्म वस्त्रोंसे चारोंओरसे आच्छादित करदिया था और आकाशमें नृत्य करनेवाली स्त्रियोंके अरुण हस्तोंसे ऐसा शोभायमान था जैसे बडे २ कमल सहित तडाग ॥ ८ ॥

मत्तस्त्रीकंधरावृत्तलीलांदोलितकुंडलम् ॥ प्रवृत्तपादसंपातप्रोल्लसत्पुष्पकर्दमम् ॥ ९ ॥ पट्टवासःशर न्मेघवितानकवितानकम् ॥ वरांगनामुखैर्नृत्यच्चंद्रलक्षगृहाजिरम् ॥ १० ॥ परलोकाद्रुपानीताराज्ञीसा पतिरेवच ॥ इतिनिर्वृत्तगाथाभिर्जगुर्देशांतरेजनाः ॥ ११ ॥ पद्मोभूमिपतिःश्रुत्वावृत्तांतंकथितंमनाक् ॥ चक्रेस्नानंसमानीतैश्चतुःसागरवारिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—जहांपर अति आनन्दमें उन्मत्त स्त्रियोंके ग्रीवाके परिवर्तनपूर्वक, विलासोंसे कुण्डल झूलरहे थे, और मनुष्योंके पदसंचारसे शोभायमान पुष्पोंका कीचड होरहाथा ॥ ९ ॥ जहांपर पटमण्डपोंसे शरत्कालके मेघके सदृश मण्डप शोभित होरहे थे और नृत्य करती हुई वेश्याओंके मुखोंसे ऐसा भान होता था कि मानों लक्षों चन्द्रमा नाचरहे हैं ॥ १० ॥ और देशदेशान्तरोंमें सब मनुष्यलोग इस बातकी गीत बनाके गान करने लगते थे कि परलोकसे पूर्व लीला और राजाको भगवतीने यहांपर लाके प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ मनुष्योंकी कथा संक्षेपसे श्रवण करके चारों समुद्रोंसे लायेहुये जलसे राजाने स्नान किया ॥ १२ ॥

ततोभिषिषिचुर्विप्रामंत्रिणोभूभुजश्चतम् ॥ लब्धोदयमनंतेहममरेंद्रमिवामराः ॥ १३ ॥ लीलालीलाच राजाचजीवन्मुक्तमहाधियः ॥ रेमिरेपूर्ववृत्तांतकथनैःसुरतैरिव ॥ १४ ॥ सरस्वत्याःप्रसादेनस्वपौरु षकृतेनतत् ॥ प्राप्तंलोकत्रयश्रेयःपद्मेनेतिमहीभुजा ॥ १५ ॥ सज्ज्ञप्तिज्ञानसंबुद्धोराजालीलाद्वयान्वितः॥ चक्रेवर्षायुतान्यष्टौतत्रराज्यमनिंदितः ॥ १६ ॥ जीवन्मुक्तास्तइत्येवंराज्यंवर्षायुताष्टकम् ॥ कृत्वाविदे हमुक्तत्वमासेदुःसिद्धसंविदः ॥ १७ ॥ यद्धृदयविशदंविदग्धमुग्धंसमुचितमात्महितंचपेशलंच ॥ त दखिलजनतोषदंस्वराज्यंचिरमनुपाल्यसुदंपतीविमुक्तौ ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने पद्मनिर्वाणं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मान्त्रियोंने तथा ब्राह्मणोंने उस राजाको पुनः इसप्रकार राज्याभिषेक किया जैसे नहुषके पश्चात् पुनः राज्यके मिलनेसे देवताओंने इन्द्रको ॥ १३ ॥ हे रामजी! पूर्व लीला, और विदूरथकी लीला तथा राजा ये तीनों जीवन्मुक्त और महाबुद्धियुक्त पूर्व वृत्तान्तोंके कथनसे ऐसे रमण करते थे जैसे सुरतोंसे देवगण ॥ १४ ॥ हे रामजी ! अपने पुरुषार्थसे उत्पादित सरस्वतीके प्रसादसे राजा पद्मने तीनों लोकोंमें उत्तम कल्याणको प्राप्त किया॥१५॥ दोनों लीला संयुक्त, उस निन्दारहित, राजा पद्मने सरस्वतीसे उपदिष्टज्ञानद्वारा भलीभांति आत्मतत्वको जानकर आठ अयुत (८० सहस्र) वर्षपर्य्यन्त राज्य किया ॥ १६ ॥ इसप्रकार वे सब जीवन्मुक्त आठ अयुत (अस्सी सहस्र) वर्ष राज्य करके सिद्ध ज्ञानसहित विदेह मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जो प्रजाओंके नित्य अभ्युदयसे दोषरहित तथा शास्त्रके अनुसार होनेसे विद्वानोंको अति मनोहरथा और अपनी कुल परम्पराके उचित् भोग यश और धर्मका हेतु होनेसे हितकारीथा तथा संपूर्ण प्राणियोंके मनोरंजनसे चतुरतायुक्त और सर्व मनुष्योंके सन्तोषदायक राज्यथा, उसका चिरकालतक पालन करके दोनों स्त्रीपुरुष विदेहमुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे पद्मनिर्वाणं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

आदिमें लीलाके आख्यानका प्रयोजन और काल आदिकी समता तथा विषमताका हेतु इस ६० वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ एतत्तेकथितंरामदृश्यदोषनिवृत्तये ॥ लीलोपाख्यानमनघंघनतांजगतस्त्यज ॥१॥ शांतेवदृश्यसत्तास्याःशमनंनोपयुज्यते ॥ सतोहिमार्जनक्लेशोनासतस्तुकदाचन ॥ २ ॥ ज्ञानेनाकाशरूपेणदृश्यंज्ञेयस्वरूपकम् ॥ इत्येकीभूतमालोक्यज्ञस्तिष्ठत्यंबरोपमः ॥ ३ ॥ पृथ्व्यादिरहितेनेदंचिद्भासैवस्वयंभुवा ॥ साधितंयदिसिद्धेनततःस्वात्मनिसाधितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्टजी बोले कि—हे रामजी ! यह पवित्र लीलाका उपाख्यान मैंने तुमको दृश्यके दोषकी निवृत्तिके लिये वर्णन कियाहै सो तुम जगत्की सत्यताको त्यागो ॥ १ ॥ हे रामजी ! यथार्थमें तो दृश्यका अभाव होनेसे इस जगत्की सत्ता शान्तही है, इसलिये इसका शान्त करना नहीं बन सकता, क्योंकि जो पदार्थ है उसका अपवाद होसकताहै, और जो पदार्थ है ही नहीं उसका अपवाद क्या होगा ॥ २ ॥ चिदाकाशरूप ज्ञानसे दृश्यज्ञेय आत्मस्वरूप होजाताहै इसप्रकार दृश्य तथा आत्माकी एकतारूप अखण्ड रससे तत्वज्ञानी शुद्ध आकाशरूप स्थित रहताहै ॥ ३ ॥ पृथिवी आदि भूतसेरहित प्रकाशरूप स्वयम्भू चेतन अपने आत्माहीमें रज्जुके समान सर्पके तुल्य दृश्यरूपमें विवर्त होनेसे हिमकी कठिनता और द्रवताके एक रसके तुल्य, जड दृश्यका चेतनरूप होनेमें कोई विरोध नहीं है ॥ ४ ॥

संविद्यथायायततेतथासैवव्यवस्थिता ॥ विसृष्टासृष्टिविन्नद्यांयावद्यत्नान्नरोधिता ॥ ५ ॥ चिदाकाशावभासोयंजगदित्यवबुद्ध्यते ॥ चिद्व्योम्न्येवात्मनिस्वच्छेपरमाणुकणंप्रति ॥ ६॥ एवमस्यामुधाभ्रांतेःकासत्ताकेववासना ॥ कावास्थाकाचनियतिःकावश्यंभावितोच्यताम् ॥ ७ ॥ सर्वंचैतद्यथादृष्टंस्थितमित्थमखंडितम् ॥ मायैवेयमनंतेयंनचमायास्तिकाचन ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिवेत्ता स्वयम्भू चेतनरूप महानदीके एक देशरूप जीव संवित् जैसी प्रवृत्तिके प्रवाहसे, जैसे कार्य्यकरण फलभावके लिये प्रयत्न करती है, वैसेही कार्य्यकरण फल भावसे उत्पन्न होके स्थितहै, वह प्रवृतिरूप प्रवाह जबतक विरुद्ध प्रयत्नसे रोका न जाय तबतक निवृत्त नहीं होताहै ॥ ५ ॥ यद्यपि चिदाकाशमें (स्वच्छ ब्रह्मरूप आत्मामें) चिदाकाशकाही मायिक प्रकाश जगत् शब्दसे कहा जाताहै, और इस रीतिसे जगत् ब्रह्मरचितहै, तथापि अपरिछिन्न ब्रह्म वैसा नहीं भासता, किन्तु बुद्धि आदि परिछिन्न उपाधिके वशसे अति परिछन्न जीवकोही जगत् भासताहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार इस मिथ्या भ्रान्तिकी क्या सत्ताहै, और क्या वासनाहै, क्या इसमें आस्थाहै, क्या नियति है और कौनसी अवश्य भवितव्यताहै ॥ ७ ॥ मायादृष्टिसे यह सब अखण्डित रूपसे जैसाहै वैसाही स्थितहै, क्योंकि यह माया अनन्तहै, और माया यथार्थमें कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुपरमादृष्टिर्दर्शिताभगवंस्त्वया ॥ दावाग्निदग्धकक्षाणांदाहशांतौकलेंदवी ॥ ९ ॥ अहोनुसुचिरेणाद्यज्ञातंज्ञातव्यमक्षतम् ॥ यथायथेदंयच्चेदंयादृग्ज्ञेयंयतोयदा ॥ १० ॥ शाम्यामीवद्विजश्रेष्ठनिर्वामीवविकल्पयन् ॥ एतदाख्यानमाश्चर्यंव्याख्यानंशास्त्रदृष्टिषु ॥ ११ ॥ इमंमेभगवन्ब्रूहिसंशयंसर्ववेकोविद ॥ तवपातुंनतृप्तोस्मिश्रोत्रपत्रैर्वचोमृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-अहो हे भगवन्! आपने सर्वोत्तम दृष्टि दिखलाया संसारतापसे सन्तप्त मनुष्योंके अर्थ यह दृष्टि शान्तिदायक चन्द्रकलाके समानहै ॥ ९ ॥ अहो आज अति दीर्घकालके अनंतर अखण्डित ज्ञातव्य जिसप्रकारका, जिस स्वरूपका जिस दृष्टान्तोंसे, जहांसे, और जिस समयसे था, वैसा जानलिया ॥ १० ॥ जगत् तत्वका विचार करता हुआ उपाधिकी शान्तिसे मैं शान्तके तुल्य होजाताहुं, और नित्य निर्वाणरूपकी प्राप्तिके सब दुःखोंसे मुक्त होकर विश्राम चाहताहुं हे भगवन्! यह वेदोंका व्याख्यानरूप और आश्चर्यदायक आख्यान आपने वर्णन कियाहै ॥ ११ ॥ हे सर्ववेत्तः भगवन्! मेरे इस सन्देहको कहिये मैं आपके वचनरूपी अमृतको कर्णरूपपात्रोंसे पान करनेसे तृप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

ससर्गत्रितयेकालोलीलाभर्तुर्हियोगतः ॥ सक्वचित्किमहोरात्रःक्वचित्किंमासमात्रकः ॥ १३ ॥ क्वचित्किंबहुवर्षाणिकस्यचित्किमुपेलवः ॥ कस्यचित्किमहादीर्घःकस्यचित्किंक्षणःस्थितः ॥ १४ ॥ इतिमे भगवन्ब्रूहित्वंयथावदनुग्रहात् ॥ सकृच्छ्रुतंनविश्रांतिमेतिलोष्टेयथाजलम् ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येनयेनयथायद्यद्यदासंवेद्यतेनघ ॥ तेनतेनतथातत्तत्तदासमनुभूयते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! लीलाके पतिके संयोगसे वशिष्ट पद्म और विदूरथकी सृष्टियोंमें जो कालहै, वह कहीं जैसे गिरिग्राममें आठ रात्रि दिन रूप और कहीं (पद्मकी सृष्टिमें) केवल मासमात्र, और विदूरथकी सृष्टिमें वहीं पूर्वोक्त काल अनेक वर्षात्मक क्यों हुआ ॥ १३ ॥ यह भेद तो ब्रह्माण्ड भेदसे हुआ और एकही ब्रह्माण्डमें यही एक काल किसीको अनेक वर्ष, किसीको दिनरूपसे अति कोमल, किसीकी अति दीर्घ, और किसीको वही क्षणरूप, होताहै जैसे वही काल मनुष्योंको वर्ष, देवताओंका दिन, और ब्रह्माका क्षण, यह क्यों होताहै ॥ १४ ॥ हे भगवन्! यह मेरे ऊपर अनुग्रह करके कहिये, यद्यपि 'देशदैर्घ्ययथानास्तिकालदैर्घ्यंतथैवहि' इत्यादि वाक्योंसे एक बार सुनाहै तथापि उससे विश्रान्ति ऐसे नहीं मिलती जैसे जलके एक बिन्दुसे मट्टीके डेलेमें गिलापना ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! यदि पदार्थकी सत्ताके अनुसार प्रतीति होती, तो यह विरोध संगत होता, परन्तु प्रतीतिके अनुसार अनिर्वचनीय सत्तामें प्रतिद्रष्टा पदार्थोंका भेद होनेसे जिस २ प्रकार जो २ पदार्थ जब २ संवेदन कियाहै वह २ उसीप्रकार उसी २ पदार्थको उसी २ समय अनुभव करताहै ॥ १६ ॥

अमृतत्वंविषंयातिसदैवामृतवेदनात् ॥ शत्रुर्मित्रत्वमायातिमित्रसंवित्तिवेदनात् ॥ १७ ॥ यथाभावितमेतेषांपदार्थानांनिजंवपुः ॥ तदेवहिचिराभ्यासान्नियतेर्वशमागतम् ॥ १८ ॥ कचनैकात्मिकैषाचिद्यथाकचतियादृशम् ॥ तथातथाशुभवतितत्स्वभावैककारणात् ॥ १९ ॥ निमेषेयदिकल्पौघसंविदंपरिविंदति ॥ निमेषएवतत्कल्पोभवत्यत्रनसंशयः ॥ २० ॥

अर्थ—सदा अमृतकी भावनासे विषभी अमृत होजाताहै, मित्रकी भावनासे शत्रुभी मित्र होजाताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! यह जगत् भावनाके अनुसारहै, वही भावना दीर्घकालके अभ्याससे अर्थ क्रियाकारिता रूप नियति (मर्यादा) होगई है ॥ १८ ॥ हे रामजी! स्फुरण संवित्के स्वभावसे यह स्फुरणरूप संवित् जहां जिसप्रकार जैसी भावना करती है वहां उसी २ प्रकारसे शीघ्र वैसाही वैसा होजाती है, इसलिये एकही संवित्में किसीको चेतनके संस्कारके अनुसार निमेषका आरोप हुआ और किसीको कल्पना ॥ १९ ॥ यदि एक निमेषमें संविद्में कल्पकी भावना होती है तब वह निमेषही कल्पके तुल्य होजाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २० ॥

कल्पेयदिनिमेषत्वंवेत्तिकल्पोप्यसौततः ॥ निमेषीभवतिक्षिप्रंतादृग्रूपात्मिकाहिचित् ॥ २१ ॥ दुःखितस्यनिशाकल्पःसुखितस्यैवचक्षणः ॥ क्षणःस्वप्नेभवेत्कल्पःकल्पश्चभवतिक्षणः ॥ २२ ॥ यथाचमृत्वा जातोहंतरुणोयौवनस्थितः ॥ यातोस्मियोजनशतंस्वप्नइत्यनुभूयते ॥ २३ ॥ रात्रिंद्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रोनुभूतवान् ॥ लवणोभुक्तवानायुरेकरात्र्यासमाःशतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और यदि कल्पमें निमेषकी भावना होती है तो वह कल्पही शीघ्र निमेष होजाताहै, क्योंकि संवित् चेतनका यही स्वभावहै ॥ २१ ॥ दुःखित प्राणीको रात्रि कल्पके सदृश होजाती है, और सुखीको वही क्षणके तुल्य

भान होती है, स्वप्नमें क्षण कल्प होजाताहै, और कल्प क्षण होजाताहै ॥ २२ ॥ जैसे मैं मरके पुनः उत्पन्न हुआ तरुण होके युवाअवस्थामें स्थितहुं, और सौयोजन गया स्वप्नमें ऐसा अनुभव होताहै, यही दशा इस संसारकी है ॥ २३ ॥ हे रामजी! राजा हरिश्चन्द्रने एक रात्रिमें बारह वर्षका अनुभव किया, और राजा लवणने एक रात्रिमें अपनी सौ (१००) वर्षकी आयुका अनुभव किया ॥ २४ ॥

यन्मुहूर्त्तःप्रजेशस्यसमनोर्जीवितंमुनेः ॥ जीवितंयद्विरिंचस्यतद्दिनंकिलचक्रिणः ॥ २५ ॥ विष्णोर्यज्जीवितंरामतद्वृषांकस्यवासरः ॥ ध्यानप्रक्षीणचित्तस्यनदिनानिनरात्रयः ॥२६॥ नपदार्थानचजगत्सत्यमात्मनियोगिनः ॥ मधुरंकटुतामेतिकटुभावेनचिंतितम् ॥२७॥ कटुचायातिमाधुर्यमधुरत्वेनचिंतितम् ॥ मित्रबुद्ध्याद्विषन्मित्रंरिपुबुद्ध्यारिपुःसुहृत् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो मनुष्यका जीवनहै, वह विचारशील प्रजाके स्वामी ब्रह्माजीका एक मुहूर्त है, और जो ब्रह्माजीका सम्पूर्ण जीवनहै, वह विष्णुजीका एक दिनहै ॥ २५ ॥ इसीप्रकार जो विष्णुका सम्पूर्ण जीवनहै वह महादेवजीका एक दिन मात्रहै, और जिनका निर्विकल्प समाधिसे चित्त क्षीण होगयाहै, उन योगिजनोंको न रात्रि हैं न दिन है ॥ २६ ॥ योगीके आत्मामें पदार्थ और जगत् कोईभी सत्य नहीं हैं, वैराग्य वासनासे चिन्तित मधुर पदार्थभी उनको अप्रिय होजाते हैं ॥ २७ ॥ मधुर वासनासे चिन्तित कटु पदार्थभी मधुर होजाता है, मित्रकी बुद्धिसे शत्रुभी मित्र होजाता है, और शत्रुभावसे चिन्तित मित्रभी शत्रु होजाता है ॥ २८ ॥

भवतीतिमहाबाहोयथासंवेदनंजगत् ॥ अनभ्यस्ताःपदार्थायेशास्त्रपाठजपादयः ॥ २९ ॥ तेषांसंवेदनाभ्यासान्नूनमभ्येतिसाम्यता ॥ नौयायिनांभ्रमार्त्तानांवेदनाद्भूर्विवर्त्तते ॥ ३० ॥ अवेदनाभ्रमार्त्तानामपिनैषांविवर्त्तते ॥ शून्यमाकीर्णतामेतिवेदनात्स्वप्नदृक्ष्विव ॥ ३१ ॥ वेदनात्पीतमानीलंशुक्लंवाप्यनुभूयते ॥ आपद्वद्उत्सवःखेदंकरोतिपरिमोहतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसलिये हे महाबाहो रामजी ! यह जगत् भावना (वासना) के अनुसार है, अनभ्यस्त पदार्थ जो शास्त्र पाठ जप व्रत उपवास आदि हैं ॥ २९ ॥ उनकी भावनाके अभ्याससे निश्चय स्वाधीनता अर्थात् विषमता त्यागके इच्छानुसार फलदायक होते हैं जैसे भ्रमसे पीडित नौकाके यात्रियोंको भ्रमकी वासनासे पृथिवी भ्रमण करती भान होती है ॥ ३० ॥ और तटके ऊपर रहनेवाले भ्रमकी वासनासे रहित प्राणियोंको यह पृथिवी भ्रमण (घूमती हुई) नहीं भान होती, स्वप्नकी दृष्टियोंके तुल्य भावनाके बलसे शून्य स्थान पदार्थोंसे व्याप्त भान होजाता है ॥ ३१ ॥ भावनाहीसे आकाश पीत, अति नील, तथा शुक्लरूपसेभी अनुभूत होता है, अज्ञानवश भावनाहीसे उत्सवभी विपत्तिके तुल्य दुःखकारक होजाता है, जैसे बालक कभी २ अपने उत्सवोंमेंभी रोते हुये देखपडते हैं ॥ ३२ ॥

कुड्येपिखइवाचारोदृष्टोनन्वविचारिणः ॥ असद्यक्षोविमूढानांप्राणानप्यपकर्षति ॥ ३३ ॥ वेदनात्स्वप्नवनिताजाग्रतीवरतिप्रदा ॥ यद्यथाभासमायातंतत्तथास्थिरतांगतम् ॥ ३४ ॥ असदेवनभश्चैवनभएव चिदात्मनि ॥ शतहस्तांबुदच्छायानटनृत्तमिवाततम् ॥ ३५ ॥ गमनेमानसंस्पंदंजगद्विद्धिनवस्तुतत् ॥ मिथ्याज्ञानपिशाचस्यस्पंददर्शनमाकृति ॥ ३६ ॥

अर्थ—अविचारी पुरुषको भित्तिमें आकाशकी भ्रान्ति देखी गई है और असत् यक्ष भूत आदि मूढोंके प्राणोंकोभी हर लेते हैं ॥ ३३ ॥ भावनाहीसे स्वप्नकी स्त्री जाग्रतकी स्त्रीके समान रतिके आनन्दको देती है, जो पदार्थ जैसी भावनासे स्फुरित हुआ है वह वैसाही स्थिर होगया है ॥ ३४ ॥ असत् अभावरूप आकाश निज कारण अध्यासकृत आकाशरूपही है, और वह अव्याकृत आकाश अपने अधिष्ठान चिदात्मामें सौहस्तके मेघकी छायाके सदृश कल्पित नटके नृत्यके समान इस जगतमें विचित्रतासे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इस जगतको आकाश समष्टि और व्यष्टि मनकी चेष्टामात्रही तुम जानो, और बालकको मिथ्या कल्पित पिशाचकी चेष्टाके दर्शनके समानही इसका आकार है ॥ ३६ ॥

मायामयकमेवेदमरोधकमभित्तिमत् ॥ इदंभास्वरमाभातंस्वप्नसंदर्शनंस्थितम् ॥ ३७ ॥ अपूर्वमेवासुप्तस्यनरस्येवोदितंविदुः ॥ अचेताचेततिस्तंभोयादृशंशालभंजिकाम् ॥ ३८ ॥ परमार्थमहास्तंभःसृष्टिंचेततितादृशम् ॥ यादृशोसेनरःपार्श्वेस्वप्नेप्रक्षुब्धोमहाभटैः ॥ ३९ ॥ तादृशोब्रह्मणःसर्गोबुद्धएवसुषुप्तवत् ॥ तृणगुल्मलतायुक्तःशिशिरांतेयथारसः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! वास्तवमें मूर्तिके अभावसे स्वयं दूसरेका अवरोध न करनेवाला, और आपभी भित्तिरहित दूसरेसे न रुकनेवाला भासमान स्वप्नके दर्शनके तुल्य मायामात्र यह संसार स्थित है ॥ ३७ ॥ तत्वदर्शी महात्माओंने जाग्रत् मनुष्यके लिये इस जगत्को स्वप्नदर्शनके तुल्य अपूर्वही उदित कहा है, और जिसप्रकार अचेतन अर्थात् स्वयं स्फुरणरूप व्यापार शून्य स्तम्भ अपनेमें प्रतिमाका विस्तार करता है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार परमार्थ महास्तम्भ अर्थात् सबका अधिष्ठानभूत चिदात्मा सृष्टिकी आदिमें सृष्टिको अपनेमें देखता है और जैसे मेरे निकट स्वप्नमें बडे २ वीरोंसे क्षोभित मनुष्य जाग्रत् रहतेभी सुषुप्तके तुल्य अज्ञानमात्रही होता है न कि यथार्थ ऐसेही ब्रह्माकी सृष्टिभी है॥३९॥४०॥

वासंतःसंस्थितोभूमौतथासर्गःपरेपदे ॥ यथाद्रवत्वंकनकेस्थितमंतरनुन्मिषत् ॥ ४१ ॥ तथास्थितः परेसर्गआत्मवर्गादणावणौ ॥ सन्निवेशोयथांगानामंगिनोनन्यआत्मनः ॥ ४२ ॥ जगदेवमनंगस्यस्वात्मनोब्रह्मणस्तथा ॥ यादृगेकनरःस्वप्नेयुद्धमन्यंनरंप्रति ॥ ४३ ॥ तादृशंसदसद्रूपंस्वात्मेदंव्योमगंजगत् ॥ महाकल्पांतसर्गादौचित्स्वभावमिदंजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और जैसे बसन्तऋतुमें पत्र, पुष्प आदि रूपसे होनेवाला रस पृथिवीरूप अधिष्ठानमें रहताहै ऐसेही परमपद परमात्माके स्वरूपमें पूर्वरूपसे यह सृष्टि रहती है और जैसे सुवर्णमें द्रवत्व अप्रकटरूपसे रहताहै और तेज निमित्त पाके प्रकट होजाताहै ऐसेही परमात्मामें यह जगत् अभिन्नरूपसे अण्ड २ में जीव संघोंके निमित्तसे जीवोंका भोग्य होके स्थितहै, और निमित्त पाके प्रकट होजायगा, और जिसप्रकार अंगोंकी स्थिति अंगी आत्मासे भिन्न नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ऐसेही अंगआत्मासे अभिन्नरूपी ब्रह्मसे भिन्न यह संसार नहीं है, जैसे एक मनुष्यके स्वप्नमें दूसरे मनुष्यके साथ जो युद्ध है, उसकालमें उस स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिमें सत्रूपहै, और दूसरेकी दृष्टिमें असत् ॥ ४३ ॥ इसी प्रकार अव्याकृत आकाशमें रहनेवाला यह जगत् मायाकी दृष्टिसे सत्रूप होतेहुये भी शुद्ध दृष्टिसे असत्रूपही है, क्योंकि महाकल्पके अन्तमें और सृष्टिकी आदिमें यह जगत् चिन्मात्र स्वभावही रहताहै ॥ ४४ ॥

कारणत्वंमिथःपश्चादसदेतिनवास्तवम् ॥ मुक्तेस्मिन्ब्रह्मणियदिब्रह्मान्यःस्मृतिजोभवेत् ॥ तत्स्मृतिज्ञप्तिजेसर्गेस्थितैवज्ञप्तिमात्रता ॥ ४५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ पौराणांमंत्रिमुख्यानांविदूरथकुलक्रमः ॥ समएवकथंतत्रसर्वेषांप्रतिभासितः ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चितःसमनुवर्त्ततेमुख्यायाःसर्वसंविदः ॥ यथाविपुलवात्यायाःसामान्यावातलेखिकाः ॥ ४७ ॥ परस्परानुसारेणतथारूपेणसंविदः ॥ कचितास्ताःप्रजापालप्रजावास्तव्यमंत्रिणः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और सर्व जगत्के आकारमें परिणत जो पूर्व २ ब्रह्मा उसमें जो अहंभावरूप कल्पनामयी उपासना उसके संस्कारसेही पश्चात् कारणताकी कल्पना मिथ्यारूपही आती है यथार्थमें नहीं, और इस ब्रह्माके मुक्त होनेपर उसी अहंभावके संस्कारसे उत्पन्न स्मृतिसे दूसरा ब्रह्मा उत्पन्न होताहै, और उस ब्रह्माकी स्मृति और ज्ञानसे जो सृष्टि उत्पन्न हुई तो उस सृष्टिको ज्ञानमात्रता सिद्ध हुई ॥ ४५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! नगरनिवासियोंको तथा मुख्य मंत्रियोंको और सबको विदूरथका कुलक्रम एकही प्रकार क्यों भान हुआ ? अर्थात् दूसरे ब्रह्माण्डके निवासियोंके तुल्य नगरनिवासियोंको प्रत्येकको वासना कर्मकी विचित्रतासे स्वप्नके समान जाग्रत्में भी विचित्रक्रमका भान क्यों न हुआ, समानरूपसे भान होनेमें क्या कारण है ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! समष्टि मुख्य चेतनका अनुवर्तन सब ऐसे करते हैं, जैसे महान् वायुका अनुवर्तन अल्पवायु ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार सबकी एकता सिद्ध करनेवाले अदृष्ट समूहसे राजा, प्रजा, नगरनिवासी, और मन्त्रीगण परस्पर फलोंका भोग करानेवाले मिले हुये अदृष्टके कारणसे स्फुरित हुये हैं ॥ ४८ ॥

एवंरूपात्कुलाज्जातोराजास्माकमयंत्वसौ ॥ कचिताइववास्तव्यविदोवैदूरथेपुरे ॥ ४९ ॥ कचनेचित्स्वभावस्यनचकारणमार्गणम् ॥ युक्तंमहामणेर्भासामिवान्यत्रस्वभावतः ॥ ५० ॥ अहमेवंकुलाचारेराजास्यामेवमित्यपि ॥ विदूरथविदोरन्तर्दुहितृप्रतिभायथा ॥ ५१ ॥ यावंतोजंतवोयस्मिन्येयेसर्गे यदायदा ॥ तेसर्वगत्वाचिद्धातोरन्योन्यादर्शतांगताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसप्रकारके कुलमेंसे हम लोगोंका यह राजा है, इत्यादिरूपसे विदूरथके नगरमें गृहमें जितने पदार्थ हैं, वे तथा उनके भोग करनेवाले सब प्राणी स्फुरित हुये हैं ॥ ४९ ॥ चित् स्वभावके इसप्रकार (राजा आदिरूपसे) स्फुरित होनेमें कुछ कारणका अन्वेषण (खोज) न करना चाहिये, क्योंकि जैसे महामणि चिन्तामणिके विचित्र पदा-

र्थोंको उत्पन्न करनेमें किसी दूसरे पदार्थकी कारणता नहीं है, किन्तु पदार्थोंकी चिन्ता करनेवाले प्राणियोंके मनोरथकी विचित्रताही हेतु है, वैसेही यहांभी समझो ॥ ५० ॥ जैसे चिन्तामणि मनोरथोंके अनुसारही पदार्थोंको उत्पन्न करताहै ऐसेही मैं इस कुलमें ऐसे आचारवाला राजा होऊं यह प्रतिभा विदूरथ जीवरूपी चिन्मणिसे उदित हुईथी ॥ ५१ ॥ जितने अनेक प्राणी जो २ जिस सृष्टिमें जब २ स्फुरित हुये हैं, वे सब चिन्मणिके सर्वव्यापी होनेके कारणसे एक दूसरेके प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेवाले दर्पणोंके सदृश होगयेथे ॥ ५२ ॥

तीव्रवेगवतीयास्यात्तत्रसंविदकंपिता ॥ सैवायातिपरंस्थैर्यमामोक्षंत्वेकरूपिणी ॥ ५३ ॥ बलवच्चिद्विलासानामनुवृत्त्यापरस्परम् ॥ स्वभावाःप्रतिबिंबंतिचिदादर्शेस्वभावतः ॥ ५४ ॥ तत्रातियत्नाज्जयति सत्याःसंविदआत्मसात् ॥ कुर्वंतिसरिदंभोधिगामिनीसरितोयथा ॥ ५५ ॥ येसमास्तत्रतेतावद्यतंते चित्स्वभावतः ॥ यावदेकोजयत्यत्रद्वितीयःसनिमज्जति ॥ ५६ ॥

अर्थ—इन सब उपाधि भेदसे भिन्न चेतनोंके मध्यमें जो चेतन तीव्र संवेग ब्रह्माकार वृत्ति सहित, विषय दोषोंसे अकम्पित मोक्ष पर्य्यन्त एकसा रहताहै वही सर्वोत्तम ब्रह्मभावसे स्थिर मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ चेतनरूप दर्पणमें तीव्र वासना सहित परस्पर चिद्विलासोंकी अनुवृत्तिसे नियतिके स्वभावद्वारा जीव चेतन प्रतिबिम्बित होके स्फुरित होते हैं अर्थात् जगत्के आकार वा ब्रह्माकारके जीव चेतनमें प्रतिबिम्ब पडनेमें चिद्विलासही कारण हैं ॥ ५४ ॥ हे रामजी ? जगत् आकार और ब्रह्माकार चिद्विलासोंमेंसे अति प्रयत्नवान् जो ब्रह्माकार सत्य चिद्विलास रूपवेग हैं वेही प्रबल होनेसे विजयी होकर जगदाकार चिद्विलासके वेगको आपनेमें इस प्रकार मिलाके स्वाधीन करलेते हैं, जैसे समुद्रगामिनी महानदी मार्गमें मिलनेवाली छोटी नदियोंको ॥ ५५ ॥ और जो ब्रह्माकार तथा जगदाकार चिद्विलास समान अधिकारवाले हैं, वे उस समयतक प्रयत्न करते रहते हैं जबतक ब्रह्माकार विजयीहोकर परम उत्कर्षदशाको प्राप्त होताहै, और जगदाकार उसमें लीन होजाता है, क्योंकि यह चित्का स्वभाव है ॥ ५६ ॥

जायमानेषुनश्यत्सुवर्त्तमानेषुभूरिशः ॥ एवंसर्गसहस्रेषुपरमाणुकणंप्रति ॥ ५७ ॥ नकिंचित्केनचिद्वयाप्तंनकिंचित्केनचित्स्थितम् ॥ चिदाकाशमिदंशांतमतःसर्वमभित्तिमत् ॥ ५८ ॥ अयमाभासतेस्वप्नोनिर्निद्रोदृष्टिवर्जितः ॥ अवश्यंभाविबोधस्तुस्वनुभूतोऽप्यसन्मयः ॥ ५९ ॥ पत्रपुष्पफलांशात्मायथैकःस्वास्थितोद्रुमः ॥ अनंतसर्वशक्त्यात्माह्येकएवतथाविभुः ॥ ६० ॥

अर्थ—इस प्रकार उपाधिसम्बन्धी भेदसे जीव समूहोंकी दृष्टिमें उत्पन्न होनेवाले नष्ट होनेवाले और वर्त्तमान उक्त प्रकारके सहस्रों सर्गों (सृष्टियों) मेंसे ॥ ५७ ॥ परमार्थ दृष्टिसे दौडतेहुये वा स्थित अथवा उदासीन किसी जीवकणने कुछनहीं पाया क्योंकि असत् (अनिर्वचनीय) वस्तुकी प्राप्ति और सत्की अप्राप्ति दोनों नहीं बनसकती इसलिये शान्त भित्ति शून्य चिदाकाशरूपही यह सब स्थित है ॥ ५८ ॥ यह सब निद्रारहित विवेक दृष्टिसे वर्जित स्वप्नही भासताहै, और जिसको अधिष्ठानात्मा साक्षी चेतनका साक्षात्काररूप बोध है उसकोतो पूर्वदशामें अनुभूतभी यह संसार असत्यके सदृश प्रतीत होता है ॥ ५९ ॥ जैसे पत्र पुष्प और फलादि अंशयुक्त वृक्ष एकही रूपसे स्थित है इसीप्रकार अनन्त सर्वशक्तिमान् तथा सर्व जगत्का आत्मा एकरूपही है ॥ ६० ॥

मातृमेयप्रमाणादिमायात्मकमजंपदम् ॥ बुद्धंविस्मृतिमायातिनकदाचनकस्यचित् ॥ ६१ ॥ शून्योदयास्तमयवस्तुतमःप्रकाशदिक्कालरूपमपिसदैकमनादिशुद्धम् ॥ आद्यंतमध्यरहितंस्थितमच्छमंबुसौम्यत्ववीचिवलनाढ्यमिवैकमेव ॥ ६२ ॥ अद्वैतमित्यादिजगत्स्वरूपाविशुद्धबोधैकविभाविभाति ॥ आकाशकोशेनिजशून्यतेवद्वैतैक्यसंकल्पविकल्पनाच्च ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे प्रयोजनवर्णनं नाम षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रमाता प्रमेय और प्रमाण आदिमायारूप यह अजपद जब जानलिया जाता है तब वह विस्मृतिका कारण अज्ञानके न होनेसे कभी किसीको विस्मृत नहीं होता किन्तु एक अद्वैतरूपसे भान होता है ॥६१॥ जिसमें जगत्के उदय और अस्त दोनों शून्यरूपहै, ऐसा अज्ञानका प्रकाशक आत्मा दिक् कालादिरूप होनेपरभी सदा अनादि आदिमध्य और अन्त रहित शुद्धरूप एक अद्वितीय ऐसे हैं जैसे निर्मल जलशान्ततासे परिपूर्ण तथा तरंगोंसे परिपूर्णहो परन्तु सब दशामें वह एक जलही है ॥६२॥ हे रामजी ! विशुद्ध केवल एक बोधमात्र स्वरूप ब्रह्मका प्रकाशही

द्वैतके साथ एकता प्रकाशक संकल्प विकल्परूप मन और उसकी मूलभूत अविद्या तथा तज्जनित कामकर्म वासनादिके वशसे अहम्, त्वम् तथा जगत्रूप होके ऐसे प्रकाशित होरहाहै जैसे आकाशके कोशमें उसकी शून्यताही तलकी मलिनता मोती तथा कटाह आदिरूपसे भासती है ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रयोजनवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

प्रयोजनकी प्रसिद्धिके अर्थ और वैराग्यके अर्थ संसारकी असारता तथा असत्यता इस ६१ वे सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥श्रीरामउवाच॥ अहंजगदितिभ्रांतिःपरस्मात्कारणंविना ॥ यथोदेतितथाब्रह्मन्भूयःकथयसाधुमे॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ समस्ताःसमतैवांताःसंविदोबुद्ध्यतेयतः ॥ सर्वथासर्वदासर्वसर्वात्मकमजस्त तः ॥ २ ॥ सर्वाहिशब्दार्थदृशोब्रह्मैवैताःपृथङ्नतत् ॥ सर्वार्थशब्दार्थकलारूपमासांनविद्यते ॥ ३ ॥ कटकत्वंपृथग्घेम्नस्तरंगत्वंपृथग्जलात् ॥ यथानसंभवत्येवंनजगत्पृथगीश्वरात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! परब्रह्म परमात्मासे अहंकारके विषय देहादिमें अहंभाव कारणके विनाभी अहम् इस जगत्की भ्रान्ति जिसप्रकार उदय होती है वह कल्पनाका क्रम पुनः उस रीतिसे कहिये, जिससे उत्तमतापूर्वक अनुभवमें आजाय ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! बोद्धा सब प्रकारकी भ्रान्ति अपने स्वरूप चैतन्यमेंही सदा अनुभव करता है, उससे बाहर कदापि कोई भ्रान्ति नहीं जानता इसलिये सर्व सर्वात्मकहै, इसीका नाम समता है और सर्व सर्वात्मक होनेसे विषमता दोष नहीं शेष रहता, और विषमताके अभावसे जन्मादि विकार नहीं होते, इसलिये सबकुछ परमात्माही है इसप्रकार जगत्की भ्रान्ति कारण बिनाही है ॥ २ ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण शब्दोंके और अर्थोंके जो बोध हैं, वे ब्रह्मस्वरूपही हैं, बोधचेतनका भेद विषयभेदसे होता है इसलिये घटज्ञान पटज्ञानादि सब ब्रह्मसे पृथक् नहीं है और सम्पूर्ण विषय तथा शब्दार्थ और उनके अंश जो पृथुबुध्नो (महान् मूल) दराकार घटादि हैं वे इन बोधोंके रूप नहीं हैं, क्योंकि चेतन जडाकारहो इसमें कोई युक्ति नहीं है, और जिस आकारका अनुभव होता है वह वृत्तिका आकार है ॥ ३ ॥ जैसे सुवर्णसे पृथक् कटक और जलसे पृथक् तरंग सम्भव नहीं होसकता, इसी प्रकार ईश्वरसे पृथक् जगत्की सत्ता नहीं होसकती ॥ ४ ॥

एषएवजगद्रूपंजगद्रूपंह्यनेश्वरे ॥ हेमैवकटकादित्वंकटकत्वंनहेमनि ॥ ५ ॥ यथावयविनोरूपमनेकाव यवात्मकम् ॥ तथानवयवायास्तुचितःसर्वात्मकंचयत् ॥ ६ ॥ यत्तुल्यकालमखिलंतन्मात्रावेदनंपरे ॥ अंतस्थंतदिदंभातिजगदित्यहमित्यपि ॥ ७ ॥ लेखौघानांयथाभेदसन्निवेशःशिलोदरे ॥ तथानन्यज्ज गदहंचेत्यंतश्चिद्घनेघनम् ॥ ८ ॥

अर्थ— यह परमात्मा जगत्रूप है परन्तु परमात्मामें जगत्रूपता ऐसे नहीं है जैसे सुवर्णही कटकादिरूप है परन्तु कटक आदिरूप सुवर्णमें नहीं होसकता ॥ ५ ॥ जिसप्रकार सम सत्तावाले अवयवीके सम सत्तावाले अवयोंसे एकही रूप होता है, ऐसेही अवयवशून्य चित्तकाभी सर्वात्मक रूप है कल्पित अवयवोंसेभी यथार्थमें ब्रह्म एक है ॥ ६ ॥ परब्रह्मके स्वरूपमें जो सब प्राणियोंका तुल्यकालमें ब्रह्ममात्र स्वरूपका अज्ञान है, वही यह जगत् है यह हम हैं, इत्यादि नानाप्रकारसे भान होता है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार स्फटिक शिलाके भेदरहित उदरमें बनकी श्रेणियोंका सन्निवेश अविरोधसे होता है, ऐसेही चिद्रूपी दर्प्पणमें अभिन्न जगत् और अहम्का सन्निवेश होता है ॥ ८ ॥

स्थितास्तरंगाःसलिलेयथांतरतरंगिते ॥ सृष्टिशब्दार्थरहितास्तथांतःसृष्टयःपरे ॥ ९ ॥ नसर्गेतिष्ठति परंसर्गस्तिष्ठतिनोपरे ॥ अवयवावयविवत्सत्तानवयवैस्तयोः ॥ १० ॥ चिद्रूपेणस्वसंवित्त्यास्वचिन्मा त्रंविभाव्यते ॥ स्वमेवरूपहृदयंवातेनस्पंदनंयथा ॥ ११ ॥ तत्कालमेषशब्दाणुश्चिच्चमत्काररूपधृक् ॥ चेत्यतेखमिवैवांतःसंकल्पइवचेतसा ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे तरंगशून्य स्थिर जलमें तरंग स्थित हैं इसी प्रकार परब्रह्मके भीतर शब्दार्थ रहित अनेक सृष्टि स्थित हैं ॥ ९ ॥ न तो यथार्थमें सृष्टिमें परब्रह्म रहता है, और न परब्रह्ममें सृष्टि रहती है किन्तु अवयव अवयवीकी अनवयवोंसे जैसे सत्ता है वैसेही सृष्टि और परब्रह्मकी हैं, क्योंकि अवयवोंमें अवयवी यदि रहै तो वह प्रत्येक अवयवमें

सम्पूर्ण रूपसे रहता है वा अवयवोंसे ? यदि प्रथम पक्ष है तो प्रत्येक अवयवमें रहनेसे नाना अवयवी होजांयगे, और गौके कर्ण देशमेंभी सम्पूर्ण गौका व्यवहार होनेसे दोहनादि कार्य्य होना चाहिये, और अवयवोंके पृथक् होनेसेभी जातिके तुल्य अवयवीका नाश होगा, और द्वितीय पक्षमें अनवस्थासे अनन्त अवयवोंसे मेरु और सर्षप (सरसों) की समानता होजायगी, इसी प्रकार अवयवभी अवयवीमें एक देशमें रहेंगे वा सम्पूर्ण अवयवीमें यदि प्रथम पक्षहै तो अनवस्था दोषहै, और द्वितीय पक्षमें एकही अवयव सम्पूर्ण अवयवीमें रहेगा, तो अन्य अवयवोंका समावेश न होगा, और अद्वय ब्रह्मका अवयव न होनेसे सब द्रव्य निरवयव होजांयगे इसलिये इनकी अनवयवोंसे अनिर्वचनीय सत्ताहै ऐसीही जगत् ब्रह्मकी है ॥ १० ॥ हे रामजी ! परमार्थ चित्रूप ब्रह्म अविद्या प्रतिबिम्बित ज्ञानसे दर्पणमें मुखके सदृश अपने चिन्मात्र प्रपंचका अज्ञानसे आपही कल्पना करके ऐसे अनुभव करताहै जैसे वायु अपनी गतिको ॥ ११ ॥ उसीसमय कारणमें लीन शब्दतन्मात्राचित् चमत्काररूप धारण करके ब्रह्म आकाशके तुल्य ऐसे स्फुरित होताहै जैसे चित्तसे संकल्प ॥ १२ ॥

तदेवानिलतांवेत्तिनिजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ अंतर्गतस्पर्शरसांपवनस्पंदतामिव ॥ १३ ॥ तदेवाभास तामेतिनिजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ कोशस्थितालोकलवांतेजःप्रकटतामिव ॥ १४ ॥ तदेवजलतांयाति निजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ अंतःस्थितास्वादलवांसलिलंद्रवतामिव ॥ १५ ॥ तदेवावनितांवेत्तिस्वचि त्तैकात्मतामयीम् ॥ अंतःस्थगंधतन्मात्रामुर्वीस्थैर्यकलामिव ॥ १६ ॥

अर्थ—वही आकाश भावको प्राप्त ब्रह्म निजसत्तारूप स्पर्शतन्मात्रायुक्त वायुरूपनाको अपने आत्मामें आपही ऐसे अनुभव करताहै जैसे स्थिर पवन काल पाके स्पन्द (गति) को ॥ १३ ॥ वह वायुभावको प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप तेजतन्मात्रायुक्त तेजरूपताको अपने आत्मामें आपही ऐसे अनुभव करताहै जैसे तेज प्रकाशताको ॥ १४ ॥ वह तेज दशामें प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप रसतन्मात्रसहित जलरूपताको अपने आत्मामें इसप्रकार अनुभव करताहै जैसे जल द्रवताको ॥ १५ ॥ और वही जलभावको प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप गन्धतन्मात्रासहित पृथिवीरूपताको ऐसे अनुभव करताहै जैसे पृथिवी स्थिरताकी कलाको ॥ १६ ॥

तुल्यकालनिमेषांशलक्षभागप्रतीतियत् ॥ निजंविदःप्रकचनंतत्सर्गौघपरंपरा ॥ १७ ॥ शुद्धंसकृत्प्रभा तांतर्दृश्यमध्यमनामयम् ॥ उदयास्तमयोन्मुक्तंब्रह्मतिष्ठत्यनिष्ठितम् ॥ १८ ॥ बुद्धंसदपवर्गतत्ससर्गम पिसत्समम् ॥ अबुद्धंसर्गरूपात्मविसर्गमपितत्सदा ॥ १९ ॥ चिद्ब्रह्मयद्यथायेनबुद्ध्यतेस्वात्मनात्म नि ॥ तत्तत्तथानुभवतिसर्वसर्वांगशक्तिमत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! चेतनके तुल्य कालमें निमेषके लक्षतम भागमेंभी प्रतीतिवाले स्फुरणमें करोडों कल्प वि· स्तारयुक्त सृष्टियोंके समूहोंकी परम्परा होजाती है, इससे यह सिद्ध हुआ कि चेतनके किंचित्स्फुरणमें चाहो निमेषां शके लक्षतमभागका आरोप करो, वा मायिक कोटि कल्पका आरोप करो, वस्तुतः कुछ विरोध नहीं, इससे जो दृष्टि सृष्टि वादके क्रम कल्पनाकी असिद्धिकी शंकाथी वह खण्डित हुई ॥ १७ ॥ जो वस्तु जड अशुद्ध देशकालसे परिच्छिन्न दोषसहित, सादिसान्त और कालमें स्थितहै, उसीका कालसे परिच्छेद होताहै औ ब्रह्म तो शुद्ध सदा प्रकाशरूप दृश्यके मध्य और प्रलयका अधिष्ठान उदय तथा अस्ततासे रहित, तथा निराधार है ॥ १८ ॥ दृश्यादि उसके अन्तर्गत होनेपरभी वह ब्रह्म परमार्थमें अपवर्गरूपहै, सृष्टिसहितभी विषमतारहितहै यद्यपि वह सर्वदा सृष्टि आदिसे शून्यहै तथापि अज्ञात होनेसे सृष्टिरूप भान होताहै ॥ १९ ॥ सर्वशक्तिमान् मायाकी शक्ति विशिष्ट ब्रह्म बोद्धाजन जैसा अनुभव करते हैं, वैसाही आकार मायासे धारण करताहै ॥ २० ॥

तत्सत्यंचिद्विलासत्वान्नित्यानुभवरूपतः ॥ तदसत्यंमनःषष्ठात्सर्वाख्यानिगतंयतः ॥ २१ ॥ यथैत त्स्फुरणंवायौतथासर्गःस्थितःपरे ॥ असत्कल्पेपिसत्कल्पःसत्येऽसत्यइवापिच ॥ २२ ॥ अन्यरूपाय थानन्यातेजस्यालोकतोदरे ॥ तथाब्रह्मणिविश्वश्रीःसत्यासत्यात्मिकाचिति ॥ २३ ॥ अनुत्कीर्णायथा पंकेपुत्रिकाचाथदारुणि ॥ यथावर्णामषीकल्केतथासर्गाःस्थिताःपरे ॥ २४ ॥

अर्थ—चिद्विलास, तथा नित्य अनुभवरूप होनेसे शास्त्रीय दृष्टिसे जगत्भी सत्य ब्रह्मरूपही है, और सम्पूर्ण नामोंको सर्वथा प्राप्त ब्रह्मभी बहिर्मुख नेत्रादि तथा छठामनकी दृष्टिसे असत्य जगत्रूपही है, क्योंकि वाग्आदि इन्द्रियोंके अगोचर ब्रह्मका इन्द्रिय गोचररूप सत्य नहीं होसकता ॥ २१ ॥ जैसे वायुमें संचलनके पूर्व संचल असत्के सदृश होनेपरभी संचल होनेपर वह सत्के तुल्यही है, और शान्तवायुमें गति न होनेसे वह असत्के तुल्य है,

इसी प्रकार सृष्टि असत्सदृश मूलाज्ञानमें अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्तासे सत्यके सदृशहै और अधिष्ठानके सत्य होनेपर भी असत्य मायारूप होनेसे असत्यके तुल्यभी है ॥ २२ ॥ जैसे तेज प्रकाशतासे भिन्नरूपसे असत्य और तेजरूपसे सत्य है ऐसेही विश्वकी शोभा ब्रह्ममें अभिन्नरूपसे सत्य और उससे पृथक्रूपसे असत्यहै, तात्पर्य्य यह कि चेतनमें अभिन्न और भिन्नरूपसे यह जगत् सत्यासत्य उभय प्रकार है ॥ २३ ॥ जैसे पंक अथवा काष्ठमें बिना खुदी प्रतिमा रहती है, और मषीके जलमें वर्ण रहते हैं, ऐसेही परब्रह्ममें अनेक सृष्टि स्थितहै ॥ २४ ॥

अनन्यान्येवकचतिब्रह्मतत्त्वमरुस्थले ॥ असत्यात्मनिसत्येवत्रिजगन्मृगतृष्णिका ॥ २५ ॥ ब्रह्मणा चिन्मयेनात्मास्सर्गात्मैवविभाव्यते ॥ नभाव्यतेचानन्यत्वाद्बीजेनांतरिवद्रुमः ॥२६॥ यथाक्षीरस्यमाधुर्यंतीक्ष्णत्वंमरिचस्यच ॥ द्रवत्वंपयसश्चैवस्पंदनंपवनस्यच ॥ २७ ॥ स्थितोनन्योयथान्यःसन्नास्ति तत्रतथात्मनि ॥ सर्गोनिर्गलचिद्रूपःपरमात्मात्मरूपभृत् ॥ २८ ॥ कचनंब्रह्मरत्नस्यजगदित्येवयत्स्थितम् ॥ तदकारणकंयस्मात्तेननव्यतिरिच्यते ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मासे अभिन्न ब्रह्मरूपी मरुस्थलमें असत्य त्रिजगत्रूपी मृगतृष्णा अभिन्नरूपसे स्फुरित होरही है ॥ २५ ॥ चिदाभासरूप जीवदशामें प्राप्त चिन्मय ब्रह्म आत्माको भ्रान्तिसे सृष्टिरूपही अनुभव करता है, और तत्वदृष्टिसे ब्रह्म आभिन्न होनेके कारणसे सृष्टिरूप ऐसे नहीं भान होता जैसे बीजसे अभिन्न उसके भीतर वृक्ष ॥ २६ ॥ जैसे दुग्धकी मधुरता मरिचकी तीक्ष्णता जलकी द्रवता और पवनकी स्पन्दता अभिन्नरूपसे स्थित सत् है, और भिन्नरूप देखनेसे कुछ नहीं है ऐसेही सृष्टि ब्रह्ममें लीन होनेसे शेष चिद्रूप परमात्मस्वरूपधारी है ब्रह्मरूपी रत्नका जो जगत्रूपसे स्फुरणहै वह ब्रह्मसे अभिन्न होनेसे कारण राहितहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

वासनाचित्तजीवादिवेदनंवेदनोदितम् ॥ नोदेत्यवेदनादेवयतनादेवपौरुषात् ॥ ३० ॥ नास्तमेतिनचोदेतिकचित्किंचित्कदाचन ॥ सर्वशांतमजंब्रह्मचिद्घनंसुशिलाघनम् ॥ ३१ ॥ पराणुंप्रतिसर्गौघाश्चित्ताद्भ्रांतिसहस्रशः ॥ तेष्वप्यणावणावंतःकैवात्रावासनाकथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और चित्त जीवादिकी वासनाका जो अनुभव है, वह मनसे उत्पन्न हुआ है, और ज्ञानयोगके दृढ अभ्यासरूपी पुरुषार्थसे मनका नाश होनेसे वह नहीं उदय होता ॥ ३० ॥ वह ज्ञानयोगकाभी किसी स्थानपर किंचिद् भी यथार्थमें न अस्त हो न उदयहो, वह सम्पूर्णरूपसे शान्त जन्मादि विकाररहित शिलाघनके सदृश चिद्घन ब्रह्ममात्रहै ॥ ३१ ॥ चित्तके रहनेसे भ्रान्तिसे एक परमाणुके भीतरभी सहस्रों सृष्टिके समूह प्रादुर्भूत होते हैं, और सृष्टियोंके अणुअणुमें सृष्टियोंके समूह हैं, तो इस चिदणुमें सृष्टियोंके निवासकी क्या कथा, अर्थात् यह सब प्रतीति मायासे है, यथार्थमें यह परमाणु सृष्टिकी स्थिति मिथ्याभूतहै ॥ ३२ ॥

यथाजलांतऊर्म्याद्यागुप्तागुप्ताश्चशक्तयः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताद्यास्तथाजीवेंतरास्थिताः ॥ ३३ ॥ जाताचेदरतिर्जंतोर्भोगान्प्रतिमनागपि ॥ तदसौतावतैवोच्चैःपदंप्राप्तइतिश्रुतिः ॥ ३४ ॥ यतोयतोविरज्येत ततस्ततोविमुच्यते ॥ अतोहमित्यसंविद्न्कएतिजन्मसंविदम् ॥ ३५ ॥ चितिंपरापरामजामरूपिकामनामिकाम् ॥ चराचराधराऽमर्यीविदंतियेजयंतिते ॥ ३६ ॥ परेचितिःस्वप्रकटाद्वितीयास्वावर्त्तलेखेवजलेद्रवांतः ॥ साहंतयेमानिजगंतिधत्तेनसंतिनासंतिपरात्मकानि ॥ ३७ ॥ अहंमयीपद्मजभावनाचित्संकल्पभेदाद्वितनोतिविश्वम् ॥ अंतर्मुखैवानुभवत्यनंतनिमेषकोट्यंशविधौयुगांतम् ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे जगत्स्वरूपवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जैसे जलमें तरंग आदिशक्ति गुप्त अगुप्त अनिर्वचनीय रूपसे स्थित है, ऐसेही जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्त आदिशक्ति जीवके भीतर अनिर्वचनीय रूपसे स्थित है ॥ ३३ ॥ यदि विषयभोगोंमें प्राणीका किंचित्भी वैराग्य उत्पन्न होतो 'पर्य्याप्तकामस्यकृतात्मनश्चइहैवसर्वेप्रविलीयंतिकामाः' (यह श्रुति कहतीहै कि) वह उच्च पदको प्राप्त होचुका ॥ ३४ ॥ स्मृतिभी कहती है कि जहां २ यह प्राणी विरक्त होता है वहां २ से मुक्त होजाता है 'निवर्त्तनाद्धिसर्वतोनवेत्तिदुःखमण्वपि' देहादिमें अहम् यह अभिमान न करनेवाला कौन प्राणी जन्ममरण आदिरूप भ्रांतिमें आसकता है ॥३५॥ हे रामजी ! जो प्राणी नामरूप जगत् कल्पना स्वरूप पराचिति अर्थात् ईश्वर चैतन्यको और चराचर देहादि निकृष्ट उपाधि धारिणी अपरा चिति अर्थात् जीवचैतन्यको जानते हैं उनका जन्म मरण पुनः नहीं होता ॥ ३६ ॥ परब्रह्ममें व्यष्टि जीवरूप प्रकट द्वितीय चिति ऐसी है जैसे जलके भीतर द्रवीभूत आवर्तकी रेखा, वही

चिति अहन्तारूपसे अनेक जगत् धारण करती है और यथार्थमें परब्रह्मात्मक ये जगत् अपने स्वरूपसे न सत्रूप हैं और न असत्रूप हैं किन्तु अनिर्वचनीय हैं ॥ ३७ ॥ और व्यष्टिके सदृश समष्टि ब्रह्माकी भावनारूप अहंमयी चित् अपने संकल्पोंके भेदसे विश्वका विस्तार करती है, और वह (पद्मज ब्रह्माकी भावनामयी समष्टि चित्) अन्तर्मुख होके अनन्त विष्णुभगवानके निमेषके कोट्यंशभूत तथा सब पदार्थोंके विधान करनेवाले कालमें ७२ बहत्तर सहस्र युग पर्य्यन्त अपनी आयुका भोग करती हैं, अहो कैसी आश्चर्यमयी मायाकी शक्ति है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगत्स्वरूपवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

आदिविश्वकी भ्रान्ति मात्रका उदय, और महानियतिकी शक्ति जीवन्मुक्ति आदिकी सिद्धिके लिये इस ६२ वें सर्ग प्रपञ्चरूपसे वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमाणुनिमेषाणांलक्षांशकलनास्वपि ॥ जगत्कल्पसहस्राणिसत्यानीवविभांत्यलम् ॥ १ ॥ तेष्वप्यंतस्तथैवांतःपरमाणुकणंप्रति ॥ भ्रांतिरेवमनंताहोइयमित्यवभासते ॥ २ ॥ वर्द्धतीमाःपराःसत्ताःशांताःसर्गपरंपराः ॥ सलिलद्रवतेवांतःस्फुटावर्त्तविवर्तिका ॥ ३ ॥ मिथ्यात्मिकैव सर्गश्रीर्भवतीहमहामरौ ॥ तीरद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पालीवतरंगिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्टजी बोले-हे रामजी ! परमाणुके लक्षतम (लाखवें) भागकी कल्पनामें सहस्रों ब्रह्माण्ड और निमेषके लक्षतम भागकी कल्पनामें सहस्रों कल्प दृश्यमान ब्रह्माण्डके सदृश यथार्थमें असत्यभी सत्यके तुल्य पूर्णतासे भान होते हैं ॥ १ ॥ इसीप्रकार उन ब्रह्माण्डोंके परमाणुमें और उन कल्पोंके निमेषके लक्षतम भागमेंभी सहस्रों ब्रह्माण्ड तथा सहस्रों कल्पकी संभावना होसकती है, इस रीतिसे अनवस्थित स्वभाव होनेसे यह केवल अनन्त आश्चर्य्यमयी भ्रान्तिही भासरही है ॥ २ ॥ वर्तमान आगामिनी तथा अतीत सृष्टियोंकी परम्परा प्रातिभासिकी सत्ताको ऐसे धारण करती है जैसे जलकी द्रवता अपने प्रकट आवर्तोंके (भवरेंह युक्त जलोंके) विवर्तोंको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह सृष्टियोंकी शोभा इस परब्रह्ममें पृथक्रूपसे ऐसे मिथ्याहै, जैसे महामरुस्थलमें तीरके वृक्षोंसे गिरे पुष्पोंकी पंक्तिसहित मृगतृष्णाकी नदी ॥ ४ ॥

स्वप्नेंद्रजालपुरवत्संकथेहापुरादिवत् ॥ संकल्पवदसत्यैवभातिसर्गानुभूतिभूः ॥५॥ श्रीरामउवाच ॥ एकात्मैकतयैवंहिजातेसम्यग्विचारणात् ॥ निर्विकल्पात्मविज्ञानेपरेज्ञानवतांवर ॥ ६ ॥ किमर्थमिह तिष्ठंतिदेहास्तत्त्वविदामपि ॥ दैवेनैवसमाक्रांतादैवमत्रचकिंभवेत् ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्तीह नियतिर्ब्राह्मीचिच्छक्तिःस्पंदरूपिणी ॥ अवश्यभवितव्यैकसत्तासकलकल्पगा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! स्वप्न और इन्द्रजालके नगरके तुल्य वा कथा और चेष्टाके नगर तथा पर्वतादिके तुल्य अथवा संकल्पके समान यह सृष्टियोंके अनुभवकी भूमि मिथ्याही प्रकाशित होरही है ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठभगवन् ! उक्त प्रकारसे भलीभांति विचारद्वारा एक अद्वितीय आत्मा ब्रह्मके साथ अभेद होनेसे सर्वोत्कृष्ट निर्विकल्प आत्म विज्ञान उत्पन्न होनेपर ॥ ६ ॥ तत्वज्ञानियोंको दैव क्या होसकता है क्योंकि श्रुतिमें ऐसा लिखा है कि " नतस्यदेवाश्चनाभूत्याईशत ॥ आत्माह्येषांसभवतीति ॥ तत्वज्ञानियोंके ऊपर देवता आदिका सामर्थ्य कुछ नहीं चलता वह उनकी आत्मा होजाता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! सब जगत्के नियत व्यवहारसे प्रकट रूपवती अवश्य भवितव्यता सम्पूर्ण कल्पोंमें व्याप्त एकसत्ता, ब्रह्मकी चित्शक्तिरूप नियति, इस संसारमें है अर्थात् प्राणियोंके अदृष्ट वस्तुकी शक्तिकी सहकारिणी ईश्वरके संकल्परूप महानियति (मर्य्यादा) केही वशसे सर्व व्यवहारोंकी व्यवस्थाके तुल्य विद्वानोंके शरीरकाभी धारण होता है ॥ ८ ॥

आदिसर्गेहिनियतिर्भाववैचित्र्यमक्षयम् ॥ अनेनेत्थंसदाभाव्यमितिसंपद्यतेपरम् ॥ ९ ॥ महासत्तेति कथितामहाचितिरितिस्मृता ॥ महाशक्तिरितिख्यातामहादृष्टिरितिस्थिता ॥ १० ॥ महाक्रियेतिगदितामहोद्भवइतिस्मृता ॥ महास्पंदइतिप्रोक्तामहात्मैकतयोदिता ॥ ११ ॥ तृणानीवजगंत्येवमितिदैत्याःसुराइति ॥ इतिनागाइतिनगाइत्याकल्पंकृतास्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आदिसृष्टिमें अग्नि आदिको उष्णता तथा ऊर्ध्वज्वलन आदि स्वभावसे युक्त सदा अवश्य होना चाहिये, इस प्रकार परब्रह्म स्वयं अपने संकल्पसे पदार्थोंकी विचित्रता सहित अक्षय नियतिरूप होजाताहै ॥ ९ ॥ वही नियति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी स्थिति, विस्तार, सामर्थ्य, विवेक रचना, जन्म और अर्थ क्रियाकारितादिकी हेतुतासे महासत्ता, महाचिति, महाशक्ति, महादृष्टि महाक्रिया, महाउद्भव, और महान् आत्माके साथ एकतासे प्रौढतासे उदित महास्पन्दगति इत्यादि नामोंसे कहीगई है ॥१०॥११॥ हे रामजी ! तृणोंके समान सब जगत्का परिवर्तन करती हुई दैत्य इसप्रकारके क्रूरहैं, देवता इसप्रकार शान्तहैं, नाग ऐसेहैं, पर्वत ऐसे जडहैं, इत्यादि रूपसे कल्पपर्य्यन्त वह नियति अपनी स्थिति किये हुये है ॥ १२ ॥

कदाचिद्ब्रह्मसत्तायाव्यभिचारोनुमीयते ॥ चित्रमाकाशकोशेचनान्यथानियतेःस्थितिः ॥ १३ ॥ विरिंच्याद्यात्मभिर्बुद्धैर्बोधायाविदितात्मनाम् ॥ ब्रह्मात्मैवसानियतिःसर्गोयमितिकथ्यते ॥ १४ ॥ अचलंचलवद्दृष्टंब्रह्मापूर्यव्यवस्थितः ॥ अनादिमध्यपर्यंतंसर्गोवृक्षइवांबरे ॥ १५ ॥ पाषाणोदरलेखौघन्यायेनात्मनितिष्ठता ॥ ब्रह्मणानियतिःसर्गोबुद्धोऽबोधवतेवखम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कदाचित् ब्रह्मसत्ताके व्यभिचारका अनुमान होसकता (यद्यपि असम्भव है) और आकाशमें चित्र लिखा जासकता है, परन्तु नियतिकी स्थितिका अन्यथा भाव नहीं होसकता ॥ १३ ॥ यह वार्ता अज्ञानियोंकी दृष्टिसे कही गई है, और वास्तविकमें ब्रह्मा आदि तत्वज्ञानियोंने उस नियति तथा सृष्टिको ब्रह्मरूपही कहा है ॥ १४ ॥ अचलभी ब्रह्म उपाधिसे चलायमानके समान देखागया है, और यह सृष्टि आदि, मध्य, और अन्त शून्य ब्रह्मको इसप्रकार आच्छादन करके स्थित है जैसे इन्द्रजालादि द्वारा आकाशमें वृक्ष ॥ १५ ॥ स्फटिक शिलामें प्रतिबिम्बित बनकी रेखाके समान मायाशबल ब्रह्ममें स्थित हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने सृष्टिको ऐसे देखा जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमे आकाशको ॥ १६ ॥

देहेयथांगिनोंगादिदृश्यतेचित्स्वभावतः ॥ ब्रह्मणापद्मजत्वेननियत्याद्यंगकंतथा ॥ १७ ॥ एषादैवमितिप्रोक्तासर्वसकलकालगम् ॥ पदार्थमलमाक्रम्यशुद्धाविदितिसंस्थिता ॥ १८ ॥ स्पंदितव्यंपदार्थेनभाव्यंवाभोक्तृतापदम् ॥ अनेनेत्थमनेनेत्थमवश्यमितिदैवधीः ॥ १९ ॥ एषैवपुरुषस्पंदस्तृणगुल्मादिचाखिलम् ॥ एषैवसर्वभूतादिजगत्कालक्रियादिवा ॥ २०

अर्थ—जैसे अंकीके शरीरमें हस्त पाद आदि अवयव देखेगये हैं उसी प्रकार चित्स्वभावसे पद्मसे उत्पन्न ब्रह्माने नियतिरूप आदि सृष्टिसमूहको अपना अवयवरूप देखा ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यही शुद्ध मोहरहित ईश्वरका संकल्प चैतन्य जोकि सर्वात्मक और सकल पदार्थ गामी है, दैव कहाता है और यही सम्पूर्ण पदार्थोंको आक्रमण करके स्थित है ॥ १८ ॥ अमुक पदार्थको इसप्रकार चेष्टा करनी चाहिये, अमुकको इसका इसप्रकार भोक्ता होना चाहिये, अमुकको अवश्य इसप्रकार होना चाहिये, और अमुकको ऐसा होना चाहिये, इसप्रकार दैवबुद्धिको नियति कहते हैं ॥ १९ ॥ यही पुरुषकी चेष्टा है, यही तृण और लता आदि सबकुछ है यह सब भूतोंकी आदि है अथवा यही जगत्-काल वा क्रियादिरूप है ॥ २० ॥

अनयापौरुषीसत्तासत्तास्याःपौरुषेणच ॥ लक्ष्यतेभुवनंयावद्द्वेएकात्मतयैवहि ॥ २१ ॥ नरेणपौरुषेणैवकार्येसत्तात्मकेऽभे ॥ ईदृश्येतेननियतिरेवंनियतिपौरुषे ॥२२॥ प्रष्टव्योहंत्वयारामदैवपौरुषनिर्णयः॥ मदुक्तंपौरुषंपाल्यंत्वयेतिनियतिःस्थिता ॥ २३ ॥ भोजयिष्यतिमांदैवमितिदैवपरायणः ॥ यस्तिष्ठत्यक्रियोमौनंनियतेरेषनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसी नियतिसे प्रत्येक पुरुषके अदृष्ट सम्बन्धिनी सत्ता अर्थात् फलोंको अवश्य भाव स्थिति लक्षित होती है, और प्राणियोंके अदृष्टरूपी पौरुषसे इस नियतिकी सत्ता जबतक त्रिलोककी स्थितिहै तबतक लक्षित होती है, अर्थात् प्राणीयोंका अदृष्ट और नियति परस्पर एक दूसरेके सहायकहै, और प्रलयदशामें प्राणियोंका अदृष्ट तथा नियतिकी सत्ता एकरूपसे रहती है ॥ २१ ॥ इन दोनोंकी सत्ता पुरुषार्थ प्रयत्नहीका कार्य्य है इसीक्रमसे निथति स्थिति है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अधिक कहांतक कहैं शिष्यभावसे तुमारा दैव, और पौरुषका निर्णय मुझसे पूंछना और मेरा कहा हुआ पौरुषका तुमारा पालन करना, इस रूपसेभी नियतिही स्थितहै ॥ २३ ॥ और यदि कोई प्राणी दैव मेरा पालन करेगा ऐसा दैवमें परायण निश्चय करके क्रिया रहितहो मौन होके बैठ जाताहै तो यहभी उसके अनुकूल पूर्वजन्मके कर्मोंसे उद्बोधित (जगाईहुई) नियतिके निश्चयसेही होताहै ॥ २४ ॥

नस्याद्बुद्धिर्नकर्माणिनविकारादिनाकृतिः ॥ केवलंत्वितथमाकल्पंस्थित्याभाव्यमितिस्थिता: ॥ २५ ॥ अवश्यंभवितव्येषात्विदमित्थमितिस्थितिः ॥ नशक्यतेलंघयितुमपिरुद्रादिबुद्धिभिः ॥ २६ ॥ पौरुषं नपरित्याज्यमेतामाश्रित्यधीमता ॥ पौरुषेणैनरूपेणनियतिर्हिनियामिका ॥ २७ ॥ अपौरुषंहिनियतिः पौरुषंसैवसर्गगा ॥ निष्फलाऽपौरुषाकारासफलापौरुषात्मिका ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि पूर्वजन्ममें पुरुषार्थ शून्यके चल अक्रिय रहे, तो प्राणियोंकी बुद्धि और उससे प्रेरित भौतिक विकार और विकाररूप गोआदि आकार कुछभी नहो इसप्रकार पुरुषकी क्रियामूलसे अर्थात् नियतिके बशसे सम्पूर्ण पदार्थ स्थित हैं ॥ २५ ॥ इस पदार्थ वा मनुष्यको अवश्य ऐसा होना चाहिये यह जो नियतिकी स्थितिहै इसको महादेवादि ईश्वरोंकी बुद्धिभी लंघन नहीं कर सकती ॥ २६ ॥ पौरुषका त्याग कदापि न करना चाहिये, इसी निश्चयका आश्रय करके बुद्धिमान् पुरुषको रहना चाहिये, क्योंकि पौरुषरूपसे नियति संस्कारका नियम करती है ॥ २७ ॥ पौरुषही पुरुषके प्रयत्नरूपसे अविवक्षा करनेसे केवल ईश्वरके सम्बन्ध कल्पना मात्रसे नियति कहलाती है सृष्टि गामिनी और वही सृष्टिरुपफल नियति सहित पुरूषके यत्नरूपसे विवक्षा करनेसे पौरुष शब्दसे कही जाती है और अपौरुषरूप नियति निष्फल होती है और पौरुषरूपसे सफल होती है क्योंकि पौरुषसेही सब सिद्ध होताहै ॥ २८ ॥

नियत्याभूकतामेत्यनिष्पौरुषतयाक्रियम् ॥ यस्तिष्ठतिप्राणमरुत्स्पंदस्तस्यक्वगच्छति ॥ २९ ॥ अथप्राणक्रियारोधमविकृत्वाविरामदम् ॥ यदितिष्ठतितत्साधुमुक्तएवकिमुच्यते ॥ ३० ॥ पौरुषैकात्मताश्रेयोमोक्षोत्यंतमकर्तृता ॥ आभ्यांतुसबलःपक्षोनिर्दुःखैवमहात्मनाम् ॥ ३१ ॥ नियतिर्ब्रह्मसत्ताभातस्यां चेत्परिणम्यते ॥ नूनंपरमशुद्धाख्यंतत्प्राप्तैवपरागतिः ॥ ३२ ॥ एतैर्नियत्यादिमहाविलासैर्ब्रह्मैवविस्फूर्जतिसर्वगात्म ॥ तृणादिवल्लीतरुगुल्मजालैःसत्तेवतोयस्यधरांतरस्था ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थनिरूपणं नाम द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—और जिनको अजगर वृत्ति धारण करनेसे तृप्ति आदि फलका लाभ देखा गयाहै उनको वह लाभभी अन्नादिको भोजन करके निगरण (निगलन) आदि पुरुषके यत्नसेही होताहै, और जो पुरुष नियतिसे तृप्ति आदि कार्य्य सिद्ध होंगे ऐसा निश्चय करके भाषण आदि व्यापारसे रहित, तथा भोजनादि व्यापाररूप पौरुषसे शून्य रहता है, वह तृप्त नहीं होता, और जो भूखाभी कुछकाल जीताहै, वहभी प्राणके संचलरूप पुरुषार्थसेही क्योंकि जीवपर्य्यंत प्राणवायुका संचलन कहा जाताहै ॥ २९ ॥ और यदि प्राणक्रियाके व्यापारको निरोध करके निर्विकल्प समाधिमें चित्तके विश्रामरूप प्राणके निरोधकाही अवलम्बन करके स्थित रहताहै तो वह यदि तत्ववेत्ताहै तो वह सम्पूर्ण पुरुषार्थकी अवधि मुक्तिरूपफलको प्राप्त होताहै, वहभी प्राणोंके निरोधरूप पौरुषसेही होताहै, इसलिये अपौरुषफल कुछ भी नहीं है ॥ ३० ॥ इसलिये शास्त्रीय पौरुषमें परायणता श्रेयका हेतु होनेसे साधनतारूपसे श्रेयहै, और सर्वथा कर्तृताका अभावरूप मोक्षफल होनेसे श्रेय (कल्याण) है इन दोनों साध्य साधनरूप श्रेयसे तत्वज्ञानियोंका पक्ष सबल है, अर्थात् कार्य्य सहित अविद्याके नाशमें समर्थ है इसलिये उनको नियति दुःख रहित है ॥ ३१ ॥ यह जो दुःख रहित नियति है, यही ब्रह्मकी सत्ताकी स्फुरणहै उसमें यदि यत्नसे स्थिर होजाता है तो ॥ साकाष्ठासापरागतिः ॥ इस श्रुतिप्रसिद्ध परम शुद्धाख्य मुक्तिपदको मानों प्राप्तही होगया ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! इन नियति आदि महान् अप्रहित विलासोंसे सर्वव्यापी आत्मा ब्रह्मही इसप्रकार स्फुरित होरहाहै, जैसे पृथिवीके अन्तर स्थित जलकी द्रवता सत्ताकुशकाशादि तृण तथा लता वृक्ष और गुल्मादि समूहोके भेदोंसे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दैवशब्दार्थनिरूपणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

मायाकी शक्तिके विलासोंसे जिसप्रकार सर्वरूप सर्वत्र ब्रह्मही स्फुरित होरहाहै, वह प्रकार इस ६३ वें सर्गमें वर्णन किया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदेतद्ब्रह्मतत्त्वंसर्वथासर्वदैवसर्वतएवसर्वशक्तिसर्वाकारंसर्वेश्वरंसर्वगंसर्वमेवेति ॥ १ ॥ एषत्वात्मासर्वशक्तित्वाचक्वचिच्चिच्छक्तिप्रकटयतिक्वचिच्छांतिंक्वचिज्जडशक्तिंक्वचिदुल्लासं

कचित्किंचिन्नकिंचित्प्रकटयति ॥ २ ॥ यत्रयदायदेवासौयथाभावयतितत्रतदातदेवासौप्रपश्यति ॥३॥ सर्वशक्तेर्हियायैवयथोदेतितथैवसा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! यह जो माया शबल ब्रह्मतत्त्वहै, वही सबप्रकार, सर्वदा, सर्वत्र सर्वशक्तिमान्, सर्वाकार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सब कुछहै ॥ १ ॥ यह आत्मा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण, कहीं अन्तःकरण उपाधिमें शान्तिको, कहीं तामस उपाधिमें जडशक्तिको, और कहीं राजस उपाधिमें रागलोभादिकी प्रवृत्तिसे उत्साह शक्तिको, प्रकट करताहै, और कहीं तीनोंगुणोंकी मिश्रित अनिर्वचनीय शक्तिको प्रकट करताहै, और सुषुप्ति तथा प्रलयमें कुछ नहीं प्रकट करता ॥२॥ जिसस्थानपर, जिससमयमें, जिसपदार्थकी भावना यह ब्रह्म करताहै, उसस्थानपर उसीपदार्थको अपने सत्यसंकल्पसे देखताहै ॥ ३ ॥ सर्वशक्तिसे जो २ शक्ति जिस २ प्रकारसे आविर्भूत होतीहै, उनकी स्थिति और विचित्रता, उसी २ प्रकारसे वही २ होतीहै ॥ ४ ॥

तदास्तिशक्तिर्नानारूपिणीसास्वभावतइमाःशक्तयोयमात्मेति ॥ ५ ॥ एवंविकल्पजालंव्यवहारार्थंधीमद्भिःपरिकल्पितंलोकेनत्वात्मनिविद्यतेभेदः ॥ ६ ॥ यथोर्मितरंगपयसांसागरेकटकांगदकेयूरैर्वाहेम्नः ॥ अवयवावयविनोःसंवित्काल्पनिकीद्वितानवास्तवी ॥ ७ ॥ यथायच्चेत्यतेहितथैवतन्नबाह्यतोनांतरतश्चैतत्समुदेतिहि ॥ ८ ॥

अर्थ—वह शक्ति नानारूप धारण करनेवाली है और ये सम्पूर्ण शक्तियां व्यवहार दृष्टिसे चित्स्वभावसे भिन्न हैं, और यथार्थमें सब कुछ यह आत्माही है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकारके विकल्प जालोंको लोकमें व्यवहारके लिये तत्वज्ञानियोंने कल्पित किया है, और यथार्थमें आत्मामें कुछभी भेद नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे समुद्रमें तरंग और जलका भेदहै, कटक (कडा) बिजापठ और बाजू आदिसे सुवर्णका भेदहै, अथवा अंग और अंगीका जैसा भेदहै, इसी प्रकार संसार और ब्रह्मसे कल्पककी बुद्धिसे कल्पित भेदहै, यथार्थ नहीं ॥ ७ ॥ क्योंकि जो रज्जुआदि जिस सर्प आदि प्रकारसे जीव जानता है, वह उसीप्रकारसे विवर्तित होताहै, और सर्प आदि रज्जुके बाहर या भीतरसे नहीं आविर्भूत होते, किन्तु अज्ञानसे ॥ ८ ॥

सर्वात्मत्वात्समाभासंकचित्किंचित्प्रपश्यति ॥ ९ ॥ सर्वाकारमयंब्रह्मैवेदंततंमिथ्याज्ञानवद्भिःशक्तिशक्तिमत्त्वेअवयवावयविरूपेकल्पितेनपारमार्थिके ॥ १० ॥ सद्वाभवत्वसद्वाचियत्संकल्पयत्यभिनिविशतितत्तत्पश्यतिसकलातत्सद्ब्रह्मैवचिद्भाति ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताविकारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

अर्थ—सर्व साधारण समान आभासवाला साक्षि चेतन सर्वात्मक होनेके कारणसे भ्रान्तिसें कहीं कुछ देखता है और कहीं कुछ ॥ ९ ॥ परमार्थ दृष्टिसे यह सब विस्तृत सर्वाकार ब्रह्मही है, और मिथ्या ज्ञानवाले न शक्ति शक्तिमान्, तथा अवयव अवयवीरूपसे ब्रह्म तथा संसारमें भेद कल्पित कियाहै, परन्तु पारमार्थिक यह भेद नहीं है ॥ १० ॥ इसप्रकार मिथ्या ज्ञानका उपहित चेतन शास्त्रके अनुकूल सत् और शास्त्रके प्रतिकूल असत् जो कुछ अपना कर्त्तव्य करके संकल्प करता है, उसीमें उद्युक्त होताहै, और उससे विहित वा निषिद्ध कर्म करके, भोगकालमें उसीको देखता है, और आदि सृष्टिके संकल्पसे आरम्भ करके भूतभौतिक देह भोग्यआदि पुरुषके भोगान्त सकल प्रपंचरूप ब्रह्म चित् वही प्रकाश कररही है, और कुछ नहीं ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताविकारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

भोग्य शक्तिकी विचित्रता आदिका आविर्भाव तथा भोक्ता जीवकी सम्पत्तिका क्रम इस ६४ वें सर्गमें प्रतिपादन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ योयंसर्वगतोदेवःपरमात्मामहेश्वरः ॥ स्वच्छःस्वानुभवानंदस्वरूपोंतादिवर्जितः ॥ १ ॥ एतस्मात्परमानंदाच्छुद्धचिन्मात्ररूपिणः ॥ जीवःसंजायतेपूर्वंसचित्तंचित्ततोजगत् ॥ २ ॥

॥श्रीरामउवाच॥ स्वानुभूतिप्रमाणेस्मिन्ब्रह्मणिब्रह्मबृंहिते ॥ कथंसत्तामवाप्नोतिजीवकोद्वैतवर्जिते ॥३॥ ॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ असदाभासमच्छात्मब्रह्मास्तीहप्रबृंहितम्॥ बृहच्चिद्भैरववपुरानंदाभिधमव्ययम् ॥४॥

अर्थ—श्रीवशिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! जो सर्वगत शुद्ध अपना अनुभव तथा आनन्द स्वरूप और अन्त आदि वर्जित परमात्मा महेश्वर यह देवहै ॥ १ ॥ इसी परमानन्द शुद्ध चिन्मात्ररूपसे "अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणि" इस श्रुतिसे कल्पित नामरूपमय जगत् सृष्टिके पूर्वजीवकी उपाधि लिंग समष्टिकी उत्पत्तिसे जीव उत्पन्न होताहै, उसीको उपाधिकी प्रधानतासे चित्त कहते हैं, और उसी चित्तसे जगत् उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! निरतिशय अपरिच्छेदरूप वृद्धिको प्राप्त निज अनुभव वेद्य स्वप्रकाश, अखण्ड अद्वितीय ब्रह्ममें सखण्ड सद्वितीय और अल्पजीव किसप्रकार सत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले-हे रामजी! जिसमें अद्वैत प्रत्ययोंके आभासका अभावहै ऐसा शुद्धात्मस्वरूप परमवृद्धिको प्राप्त महाचिद्रूप अज्ञानियोंके अर्थ भयंकर होनेसे भैरव शरीर, आनन्दरूप तथा नाशवर्जित ब्रह्महैं, इसमें सत्य, शुद्ध, निरवद्यरूप जीव सत्ताका संभव परमार्थ दृष्टिसे नही है, और अविद्यासहितमें तो उसकी सत्ताका विरोध नहीं है ॥ ४ ॥

तस्ययत्सममापूर्णशुद्धंसत्वमचिह्नितम् ॥ तद्विदामप्यनिर्देश्यंतच्छांतंपरमंपदम् ॥५॥ तस्यैवोदयदिवाशांतियत्स्वंसंविदात्मकम् ॥ स्वभावात्स्पंदनंतत्तुजीवशब्देनकथ्यते ॥ ६ ॥ तत्रेमाःपरमादर्शेचिद्व्योम्न्यनुभवात्मिकाः ॥ असंख्याःप्रतिबिंबंतिजगज्जालपरंपराः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणःस्फुरणंकिंचिद्यद्वातांबुधेरिव ॥ दीपस्येवाप्यवातस्यतंजीवंविद्धिराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—उसका जो सर्वत्रसमान सर्वथा परिपूर्ण, शुद्ध सत्वरूप चिन्हवर्जित स्वरूपहै तत्वज्ञानियोंकोभी 'इदमित्थम्, यह ऐसाहै इस रीतिसे दिखलानेके अयोग्य, शान्त और परमपदरूपहै उसमें जीव सत्ताका सम्भव नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी! मोक्ष पर्य्यन्त उत्पत्तिके बीजसत्ताके कारणसे उदय होते हुयेके समान जो संवित्‌रूपहै उसका उपाधिके स्वभावसे, चलन शक्तिरूप जो प्राणका धारणहै, उसीको जीव शब्दसे कहते हैं ॥ ६ ॥ उस परम महादर्पण चिदाकाशमें ये अनुभवरूप असंख्य जगत् समूहोंकी परंपरा प्रतिबिम्बित होती हैं ॥ ७ ॥ हे रावव ! जिसप्रकार वायुरहित समुद्रका अथवा दीपका किंचित् वायुसे स्फुरण होताहै ऐसेही ब्रह्मका किंचित् स्फुरण अर्थात् क्रिया शक्ति प्रधान प्राणभावहै, इसीको जीव कहते है ॥ ८ ॥

शांतत्वापगमेच्छस्यमनाक्संवेदनात्मकम् ॥ स्वाभाविकंयत्स्फुरणंचिद्व्योम्नःसोंगजीवकः ॥ ९ ॥ यथा वातस्यचलनंकृशानोरुष्णतायथा ॥ शीततावातुषारस्यतथाजीवत्वमात्मनः ॥ १० ॥ चिद्रूपस्यात्मतत्वस्यस्वाभाववशतःस्वयम् ॥ मनाक्संवेदनमिवयत्तज्जीवइतिस्मृतम् ॥ ११ ॥ तदेवघनसंवित्त्याया त्यहंतामनुक्रमात् ॥ वह्न्यणुःस्वेंधनाधिक्यात्स्वांप्रकाशकतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी! शुद्ध चिदाकाशरूप ब्रह्म शान्तत्व क्रिया अभावके तिरोहित होनेपर उपाधिके स्वभावसे किंचित् स्फुरणही जीवहै ॥ ९ ॥ जैसे वायुका संचलन, अग्निकी उष्णता, और तुषारकी शीतताहै, ऐसेही ब्रह्मकी जीवताहै ॥ १० ॥ चित्‌रूप आत्मतत्वका अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण जो ज्ञान स्वरूपका परिच्छेदके तुल्यरूपहै उसको जीव कहते हैं ॥ ११ ॥ वह चित्‌रूप वासनाकी दृढतासे क्रमसे अहंकार स्वभाव रुद्ररूपको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे अग्निकाकण घृत तैलादि अपने इन्धनकी अधिकतासे अपनी प्रकाशताको ॥ १२ ॥

यथास्वतारकामार्गेव्योम्नःस्फुरतिनीलिमा ॥ शून्यस्याप्यस्यजीवस्यतथाहंभावभावना ॥ १३ ॥ जीवोहंकृतिमादत्तेसंकल्पकलयेद्धया ॥ स्वयैतयाघनतयानीलिमानमिवांबरम् ॥ १४ ॥ अहंभावोहिदिक्कालव्यवच्छेदीकृताकृतिः ॥ स्वयंसंकल्पवशतोवातस्पंदइवस्फुरन् ॥ १५ ॥ संकल्पोन्मुखतांयातस्त्वहंकाराभिधःस्थितः ॥ चित्तंजीवोमनोमायाप्रकृतिश्चेतिनामभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे देखनेवालेको नेत्रके अविषयमें भूत आकाशमें नीलता स्फुरित होती है ऐसेही अहन्तासे शून्यभी आत्मामें अहंभावना होती है ॥ १३ ॥ पूर्व कालके संकल्पकी उद्बोधिन (जगाई हुई) अपनी कलासे जीव अहंकारको ऐसे धारण करता है जैसे अपनेमें अध्यस्त इस प्रत्यक्ष नील शिलाके समान आकाश नीलताको ॥ १४ ॥ यह अहंभाव आत्माका देश और कालसें व्यवच्छेदकारक है, तथा वायुकी गतिके समान स्फुरता हुआ अपने संकल्पके वशसे देह आदि आकारको धारण करता है ॥ १५ ॥ वही अहंकार संकल्पकी ओर उन्मुख होके अहंकाररूपसे रुद्र चित्तरूपसे विष्णु और जीवरूपसे ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध है, और मन माया तथा प्रकृति ये क्रिया प्रधान नाम हैं ॥ १६ ॥

तत्संकल्पात्मकंचेतोभूततन्मात्रकल्पनम् ॥ कुर्वंस्ततोव्रजत्येवसंकल्पाद्यातिपंचताम् ॥ १७ ॥ तन्मात्रपंचकाकारंचित्तंतेजःकणोभवेत् ॥ अजातजगतिव्योम्नितारकापेलवायथा ॥ १८ ॥ तेजःकणत्वमादत्तेचित्तंतन्मात्रकल्पनात् ॥ शनैःस्वस्मात्परिस्पंदाद्बीजमंकुरतामिव ॥ १९ ॥ असौतेजःकणोंडाख्यःकल्पनात्कश्चिदंडताम् ॥ प्रयात्यंतःस्फुरद्ब्रह्माजलमापिंडतामिव ॥ २० ॥

अर्थ—उनमेंसे संकल्पात्मक चित्तरूप ब्रह्मा संकल्पसे भूततन्मात्रकी कल्पना करता हुआ उस चेतनात्मक पूर्व अवस्थासे प्रच्युत होकर जड भूतपंचताको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ वही तन्मात्र पंचकाकार चित्त जगत् रहित चिदाकाशमें तेजःकण (सुवर्णका अण्ड) से होजाता है जैसे अल्प प्रकाशवाले आकाशमें तारेगण ॥ १८ ॥ चित्त पंचतन्मात्रकी कल्पनासे प्रकृतिरूप ऐसे होजाता है जैसे बीज धीरे २ अपने परिस्पन्द अंकुरभावको ॥ १९ ॥ जिसके गर्भमें ब्रह्मा स्फुरित होरहे हैं ऐसा यह अण्डनामक तेजःकण (प्रकृतिरूप) पूर्व कालकी उपासनासे विराट्में अहंभावकी कल्पनासे विराट् रूप ब्रह्माण्ड भावको ऐसे प्राप्त होता है जैसे जल जमनेसे पिण्डभावको ॥ २० ॥

कश्चिद्द्रागितिदेहादिकलनाद्यातिदेहताम् ॥ भ्रांतित्वंतदतद्रूपंगंधर्वैश्चवसत्पुरम् ॥ २१ ॥ कश्चित्स्थावरतामेतिकश्चिज्जंगमतामपि ॥ कश्चिद्यातिखचार्यादिरूपंसंकल्पतःस्वतः ॥ २२ ॥ सर्गादावादिजोदेहोजीवःसंकल्पसंभवः ॥ क्रमेणपदमासाद्यवैरिंचंकुरुतेजगत् ॥ २३ ॥ आत्मभूकलनात्मासोयत्संकल्पयतिक्षणात् ॥ तत्स्वभाववशादेवजातमेवप्रपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—और कोई पुण्यात्मा जो विराट्रूपका उपासक नहीं है वह दिव्य देहादिकी कल्पनासे शीघ्र देवादि शरीरको और उस अहंभाव शून्य देहमें अहंभावरूप भ्रमको प्राप्त होता है, तथा गन्धर्व और अन्य २ देवोंसे पालित अमरावती नगरीकोभी प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ और कोई पापी स्थावरताको, कोई जंगमताको, और कोई आकाशचारी पक्षी राक्षस पिशाचादिरूपको, और कोई जलचारी भावको, अपने २ कर्मजनित संकल्पसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ सृष्टिकी आदिमें प्रथम उत्पन्न सूक्ष्मदेह समष्टि सहित ब्रह्माका जीवक्रमसे ब्रह्माका पद पाके महान् ब्रह्माण्डके अन्तर्गत अनेक जगत् रचता है ॥ २३ ॥ यह अपने पूर्व सत्यसंकल्पसे उत्पन्न स्वयम्भू सत्यसंकल्पके कारण जो कुछ संकल्प करता है वह अपने स्वभावसे उसीको उत्पन्न देखता है ॥ २४ ॥

चित्स्वभावात्समायातंब्रह्मत्वंसर्वकारणम् ॥ संसृतौकारणंपश्चात्कर्मनिर्मायसंस्थितम् ॥ २५ ॥ चित्तंस्वभावात्स्फुरतिचितःफेनइवांभसः ॥ कर्मभिर्बध्यतेपश्चाड्डिंडीरमिवरज्जुभिः ॥ २६ ॥ संकल्पःकलनाबीजंतदात्मैवहिजीवकः ॥ कर्मपश्चात्तनोत्युच्चैरुत्थायाकर्मतःक्रमात् ॥ २७ ॥ क्रोडीकृतांकुरंपूर्वंजीवोधत्तेस्वजीवितम् ॥ पश्चान्नानात्वमायातिपत्रांकुरफलक्रमैः ॥ २८ ॥

अर्थ—नामक्रियारूप जगत्का चिदात्मा ब्रह्म चेतनस्वभावसे पृथक् स्फुरण रूपसे सब पदार्थोंका कारण है, और पश्चात् विकार संसृति अर्थात् विकाररूप संसारका कर्म निर्माण करके उसी कर्मके द्वारा कारणरूपसे स्थित है ॥ २५ ॥ चेतनका चित्तही जलफेनके समान स्फुरित होता है, और जैसे नौकाकी रज्जु (रस्सि) ओंसे केवल फेनका पिण्डही घातित होता है न कि जल इसी प्रकार शरीर सम्बन्धी कर्मोंसे चित्तकाही घात होता है न कि चिदात्माका ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण कलना (घटादि कार्य्योंकी रचना) ओंका मूलबीज संकल्प है और वही संकल्पात्मक जीव पश्चात् उठके कर्मरहित आत्माके सन्निधानसे कर्मका विस्तार करता है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जैसे बीजस्थ जीव सूक्ष्मरूपसे अपने गर्भमें अंकुरको धारण किये हुये अपना जीवन धारण करताहै, और पीछेसे अंकुर, पत्र, काण्ड, शाखा, पल्लव पुष्प और फलादि क्रमोंसे, नानारूप धारण करताहै ऐसेही हिरण्यगर्भका जीवभी प्रथम जगत्को अंकुररूपसे अपनेमें धारण करताहै, पश्चात् भूतभौतिक नानारूप धारण करताहै ॥ २८ ॥

अन्येस्वएवयेजीवाएवमेवाकृतिंगताः ॥ पूर्वोत्पन्नेजगतितेयांतिभूताश्रयांस्थितिम् ॥ २९ ॥ स्वकर्मभिस्ततोजन्ममृतिकारणतांगतैः ॥ प्रयांत्यूर्ध्वमधस्ताद्वाकर्मचित्स्पंदउच्यते ॥ ३० ॥ चित्स्पंदनंभवतिकर्मतदेवदैवंचित्तंतदेवभवतीहशुभाशुभादि ॥ तस्माज्जगंतिभुवनानिभवंतिपूर्वंभूत्वानिजांगकुसुमानितरोरिवाद्यात् ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बीजांकुरयोगनिर्णयो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार सब व्यष्टि (पृथक् २) जीवभी अपनेमें वासनारूपसे स्थित देह आदि आकारको प्राप्त हुये हैं, और समष्टिसे इतना विशेष है कि हिरण्यगर्भके संकल्पसे पूर्व उत्पन्न जगत्में, मातापिता आदि प्राणियोंके निमित्तसे देहादिके लाभरूप स्थितिको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर जन्ममरणकी कारणताको प्राप्त कर्मोंसे कभी नीची कभी ऊंची स्थितिको प्राप्त होता है, और चित्के स्पन्द (स्फुरण) कोही कर्म कहते हैं ॥ ३० ॥ हे रामजी ! चित्का जो स्पन्द है वही कर्म है, वही दैव है, वही चित्त है, और वही शुभाशुभ लक्षण आदि कर्मभी है, उस शुभाशुभ लक्षण कर्मके निमित्तसे अनेक जगत् अर्थात् भोग करनेवाले प्राणियोंके शरीर और उनके आधार तथा भोग्य भुवन पुनः २ ऐसे होते हैं जैसे वृक्षके निजअंग शाखापुष्पआदि होकर पुनः होते हैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे बीजांकुरनिर्णयो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

भोक्ताके मूलभूत भोग्य वर्ग मनके तत्त्वका विवेक करके केवल चिन्मात्रकी शेषता इस ६५ वें सर्गमें दिखलाई गईहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परस्मात्कारणादेवमनःप्रथममुत्थितम् ॥ मननात्मकमाभोगितत्स्थमेवस्थितिं गतम् ॥ १ ॥ भावाभावलसद्दोलंतेनायमवलोक्यते ॥ सर्गःसदसदाभासःपूर्वगंधइवेच्छया ॥ २ ॥ नकश्चिद्विद्यतेभेदोद्वैतैक्यकलनात्मकः ॥ ब्रह्मजीवमनोमायाकर्तृकर्मजगद्दृशाम् ॥ ३ ॥ अपारावारविस्तारसंवित्सलिलवल्गनैः ॥ चिदेकार्णवएवायंस्वयमात्माविजृंभते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! परम कारणभूत परब्रह्मसे मनन शक्तिमान् कृतिम वेषधारी मन प्रथम उत्पन्न हुआ, और वह मन यह ऐसा होना चाहिये; यह ऐसा न होना चाहिये; इत्यादि भावअभावरूप विषयोंसे शोभायनमान है और आत्मासे अभिन्नरूप वह मन सत् असत्रूपसे आभासमान, असत्भी इस सृष्टिको ऐसे देखताहै जैसे पूर्वानुभूत स्मर्य्यमाण गन्धको ॥ १ ॥ २ ॥ हे रामजी ! यथार्थमें ब्रह्मजीव, मन, माया, कर्त्ता, कर्म, और जगत्की दृष्टिका कुछ भेद नहीं है, केवल मनःकल्पित अद्वैतके कल्पनात्मक भेदहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! चित्रूपी एक मुख्य समुद्ररूपी आत्मास्वयं अपार है, वह पारावार रहित संवित् रूप जलके अपरिछिन्न प्रसारोंसे शोभित होरहा है ॥ ४ ॥

असत्यमस्थैर्यवशात्सत्यंसंप्रतिभासतः ॥ यथास्वप्नस्तथाचित्तंजगत्सदसदात्मकम् ॥ ५॥ नसन्नासन्नसंजातश्चेतसोजगतोभ्रमः ॥ अथधीसमवायानामिंद्रजालमिवोत्थितः ॥ ६ ॥ दीर्घःस्वप्नःस्थितिंयातःसंसाराख्योमनोबलात् ॥ असम्यग्दर्शनात्स्थाणाविवपुंस्प्रत्ययोमुधा ॥ ७ ॥ अनात्मालोकनाच्चित्तंचितत्वंनानुशोचति ॥ वेतालकल्पनाद्बालइवसंकल्पितेभये ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसा स्वप्नहै, वैसाही सद् असद् आत्मक चित्त और जगत् है जैसे स्वप्नमें चंचल विषय अंगका बाध होनेसे केवल द्रष्टा मात्र शेष रहजाता है ऐसेही चंचल और असत्य अंशका बाध होनेसे शान्तस्थिर और सत्य अंश आत्मा रहजाताहै ॥ ५ ॥ यह चित्त और जगत्का भ्रम न सत् है न असत् है और न उत्पन्न हुआ है तथापि सामाजिकबुद्धि समूहोंको इन्द्रजालकी मायाके सदृश अनिर्वचनीय रूपसे भ्रमके तुल्य प्रादुर्भूतहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! यह संसाररूपी महादीर्घ स्वप्न ऐसे स्थितिको प्राप्तहै जैसे भ्रमसे स्थाणु (वृक्षके ठंठ) में व्यर्थ पुरुषकी प्रतीति ॥ ७ ॥ आत्माके अज्ञानसे और अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि होनेके कारणसे चित्तदशाको प्राप्तभी चित्त स्वकृत अनर्थोंको ऐसे नहीं देखता जैसे भयके दृढ होनेपरभी बालक वेतालकल्पनाको ॥ ८ ॥

अनाख्यस्यस्वरूपस्यसर्वाशातिगतात्मनः ॥ चेत्योन्मुखतयाचित्तंचित्ताजीवत्वकल्पनम् ॥ ९ ॥ जीवत्वाद्प्यहंभावस्त्वहंभावाच्चचित्तता ॥ चित्तत्वादिंद्रियादित्वंततोदेहादिविभ्रमाः ॥ १० ॥ देहादिमोहतःस्वर्गनरकौमोक्षबंधने ॥ बीजांकुरवदारंभसंरूढेदेहकर्मणोः ॥११॥ द्वैतंयथानास्तिचिदात्मजीवयोस्तथैवभेदोऽस्तिनजीवचित्तयोः ॥ यथैवभेदोऽस्तिनजीवचित्तयोस्तथैवभेदोऽस्तिनदेहकर्मणोः ॥१२॥ कर्मैवदेहोननुदेहएवचित्तंतदेवाहमितीहजीवः ॥ सजीवएवेश्वरचित्सआत्मासर्वःशिवस्त्वेकपदोक्तमेतत् ॥१३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—नामरूपसे निरूपण करनेके अयोग्य, सम्पूर्ण आशाओंसे परे, आत्मस्वरूपके विषयकी ओर अभिमुख होनेसे चित्त बनताहै और चित्तसे जीवकी कल्पना होती है ॥ ९ ॥ और जीवत्त्वसे अहंभाव होताहै और अहंभावसे चित्तता होती है चित्तत्वसे इन्द्रियादिकी कल्पना होती है और उससे देह आदिका विभ्रम होताहै ॥ १० ॥ और देह आदिमें अहं मम (यह मैं यह मेरा) इत्यादि अज्ञान कल्पित अभिमानसे देह और कर्मका बीजांकुरके समान आरम्भ दृढ होनेपर स्वर्ग नरक तथा बन्धमोक्ष होते हैं ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह सम्पूर्ण अनर्थकी परम्परा जीव ब्रह्मके भेद भ्रमसे हैं उन दोनोंकी एकताके ज्ञानसे भ्रमका बाध होताहै उससे जगत् मात्रका बाध होजाताहै । सो जैसे जीव ब्रह्मका द्वैत (भेद) नहीं है ऐसेही जीव और चित्तकाभी भेद नहीं है और जैसे जीव चित्तका भेद नहीं है ऐसेही देह और कर्म्मकाभी भेद नहीं है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! जो कर्म है वही देहहै क्योंकि कर्मोंकेही अनुकूल देह उत्पन्न होताहै और देह जो है वही चित्तहै और चित्तही इस संसारमें जीवहै और वही जीव आत्मा परब्रह्म सर्वरूप कल्याणमयहै यह सब शास्त्रोंका रहस्य संक्षेपसे मैंने तुमसे कहदिया ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवविचारो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

द्वैतकी मनोमात्र विलासता इष्टके त्यागसे और सच्चिद् अंशके ज्ञानसे अज्ञानसहित तमका नाश इस ६६ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेकंपरंवस्तुरामनानात्वमेत्यलम् ॥ नानात्वमिवसंजातंदीपाद्दीपशतंयथा ॥ १ ॥ यथाभूतमसद्रूपमात्मानंयदिपश्यति ॥ विचार्यतेतस्तदनुभावहीनंनशोचति ॥ २ ॥ चित्तमात्रंनरस्तस्मिन्गतेशांतमिदंजगत् ॥ उपानद्गूढपादस्यननुचर्मास्तृतैवभूः ॥ ३ ॥ पत्रमात्रादृतेनान्यत्कदल्याविद्यतेयथा ॥ भ्रममात्रादृतेनान्यज्जगतोविद्यतेतथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! विषयकी ओर अभिमुख होनेसे परम वस्तु ब्रह्मही चित्त आदि रूप धारण करताहै इत्यादि पूर्वोक्त क्रमसे वही आत्मा उपाधिभेदसे नानारूप ऐसे धारण करताहै जैसे एक दीपसे सैकडों दीपमें ॥ १ ॥ हे रामजी ! यदि नामरूप तथा द्वैतके अभिनिवेशसे शून्य यथार्थ आत्माको जो अपने अन्तःकरणमें प्रथम विचार करके देखताहै तो पुनः वह शोक नहीं करता क्योंकि चित्तके आधीन विचार, और विचारद्वारा तत्व बोधसे मुक्ति होती है ॥ २ ॥ चित्तमात्रही यह मनुष्यहै, चित्तके शान्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् शान्तहै, क्योंकि जिसके चरण उपानद् (पनही) से रक्षितहैं, उसके लिये मानों सम्पूर्ण पृथिवी चर्म्मसे ढकी है ॥ ३ ॥ जैसे केलेमें पत्रको छोडके और कुछ नहीं है ऐसेही भ्रमके सिवाय जगत्का स्वरूप कुछ नहीं है ॥ ४ ॥

जायतेबालतामेतियौवनंवार्द्धकंततः ॥ मृतिंस्वर्गंचनरकंभ्रमाच्चेतोहिनृत्यति ॥ ५ ॥ विचित्रबुद्बुदोल्लासेस्वात्मनोऽव्यतिरेकिणि ॥ यथाम्बुराया:सामर्थ्यंतथाचित्तस्यसंसृतौ ॥ ६ ॥ यथाद्वित्वंशशांकादौपश्यत्यक्षिमलाविलम् ॥ चिच्चेतनकलाक्रांतातथैवपरमात्मनि ॥ ७ ॥ यथामदवशाद्भ्रांतान्क्षीबःपश्यतिपादपान् ॥ तथाचेतनविक्षुब्धान्संसारांश्चित्प्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह प्राणि उत्पन्न होता है बाल्यअवस्थाको प्राप्त होता है युवा होता है उसके पश्चात् वृद्ध हो जाता है अनन्तर मरता है और अपने कर्मके अनुसार स्वर्ग वा नरकमें जाता है ॥ ५ ॥ जैसे आकाशमें अनेक सहस्र बुद्बुद आकारके भ्रम उत्पन्न करनेमें मेघका सामर्थ्य है ऐसी आत्मासे भिन्न ब्रह्माण्ड उत्पन्न करनेमें चित्तका सामर्थ्य है ॥ ६ ॥ जैसे अन्धकारसे दूषित नेत्र चन्द्र आदिमें द्वित्वको देखता है इसीप्रकार भ्रान्तिजनक चित्तकी शक्तीसे वशीकृत चित् परमात्मामें जगत्को देखता है ॥ ७ ॥ जैसे मदिरासे मत्त मनुष्य मदके कारणसे वृक्षोंको घूमते हुये देखता है ऐसेही चित्तसे विक्षिप्त चेतन संसारोंको देखता है ॥ ८ ॥

यथालीलाभ्रमाद्बाला:कुंभकच्चक्रवज्जगत् ॥ भ्रांतंपश्यंतिचित्तात्तुविद्धिदृश्यंतथैवहि ॥ ९ ॥ यदाचिच्चेततिद्वित्वंतदद्वैतैक्यविभ्रमः ॥ यदानचेततिद्वैतंतदाद्वैतैक्ययोःक्षयः ॥ १० ॥ यच्चेत्यतेतदितरद्व्यतिरिक्तंचितोस्तिन ॥ किंचिन्नास्तीतिसंशांत्याचितःशाम्यतिचेतनम् ॥ ११ ॥ चिद्घनेनैकतामेत्ययदातिष्ठतिनिश्चलः ॥ शाम्यन्व्यवहरन्वापितदासंशांतउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे क्रीडार्थ भ्रमण करनेसे बालक सब जगत्‌को कुम्भकार (कुंभार) के चक्रके सदृश भ्रमण करते देखते हैं ऐसेही चित्तके वशसे प्राणी इस दृश्यको भ्रमण करते देखते हैं ॥ ९ ॥ जिससमय चित्तमें द्वैतकी स्फुरणा होती है तब चित् द्वैतका अनुभव करता है, और जब उसमें द्वैतकी स्फुरणा नहीं होती उससमय द्वैत और एकता दोनोंका नाश होजाता है ॥ १० ॥ जो कुछ चित्‌से पृथक् जडरूप विषयका अनुभव होता है वह यथार्थमें नहीं है, जब चित्‌से पृथक् कुछभी नहीं तो विषयके अभावसे इन्धन रहित अग्निके सदृश चित्त शान्त होजाता है ॥ ११ ॥ जिससमय यह प्राणी चिद्‌घन परब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त होकर निश्चल आत्मज्ञानमें स्थित रहता है उससमय चाहै समाधिमें लीन हो वा संसारी व्यवहार करताहो, वह शान्त कहता है ॥ १२ ॥

तन्वीचेतयतेचेत्थंघनाचिन्नांगचेतति ॥ अल्पक्षीबःक्षोभमेतिघनक्षीबोहिशाम्यति ॥१३॥ चिद्‌घनैकप्रपातस्यरूढस्यपरमेपदे ॥ नैरात्म्यशून्यवेद्याद्यैःपर्यायैःकथनंभवेत् ॥ १४॥ चिच्चेतनेनचेत्यत्वमेत्येवंपश्यतिभ्रमम् ॥ जातोजीवामिपश्यामिसंसरामीत्यसन्मयम् ॥ १५ ॥ स्वभावाद्व्यतिरिक्तंतुनचित्तस्यास्तिचेतनम् ॥ स्पंदाद्दतेयथावायोरंतःकिंनामचेत्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! अल्पज्ञ जीव चेतन विषयको अनुभव करता है, और घनचित् (सर्वथा चिद्रूपही) कुछभी अनुभव नहीं करता है, क्योंकि मदिरासे अल्प मतवाला क्रोध लोभको प्राप्त होता है और अधिक् मतवाला व्यापारशून्य होजाता है, अर्थात् चित् जो विषय सहित है वह केवल चित्त्व निमित्तक नहीं है किन्तु अविद्यासे विक्षिप्त चित्त्व निमित्तक है, और वह अविद्या ज्ञान समाधिकी दृढतासे चिद्‌घनके साथ एकतासे नष्ट होजाती है, और न ब्रह्मा विष्णु आदि ईश्वरोंकी सर्वज्ञता है वह मायिक है न कि यथार्थ ॥ १३ ॥ चिद्‌घनके साथ जिसकी एकता होगई है और परम पदमें दृढ हैं अर्थात् जिसको निर्विकल्प समाधि और आत्मसाक्षात्कार होगया है ऐसे प्राणीका स्वरूप (कल्पित स्वरूप) शून्यता और निर्विषयता इत्यादि शब्दोंसे कथन होता है ॥ १४ ॥ चित्तकेही निमित्तसे चेतन विषयकी ओर झुकके उसका अनुभव करता है और मैं उत्पन्न हुआहुं, जीताहुं, देखताहुं, और जगत्‌में अनेक प्रकारकी गतिमें भ्रमण करताहुं, इत्यादि असत्यरूप भ्रम देखता है ॥ १५ ॥ चित्तसे पृथक् चित्तका व्यापार ऐसे कुछ नहीं है जैसे स्पन्द वा गतिके सिवाय वायुमें और क्या पदार्थ है ॥ १६ ॥

चेत्यत्वंसंभवत्येवंकिंचिद्यच्चेत्यतेचिता ॥ रज्जुसर्पभ्रमाभासंतमविद्याभ्रमंविदुः ॥ १७ ॥ संविन्मात्रचिकित्स्येस्मिन्व्याधौसंसारनामनि ॥ चित्तमात्रपरिस्पंदेसंरंभोनचकिंचन ॥ १८ ॥ यदिसर्वंपरित्यज्यतिष्ठस्युत्क्रांतवासनः ॥ अमुनैवनिमेषेणतन्मुक्तोसिनसंशयः ॥ १९ ॥ यथारज्ज्वांभुजंगाभाविनश्यत्येववीक्षणात् ॥ संविन्मात्रविवर्तेननश्यत्येवहिसंसृतिः ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे जो कुछ चित् चेतताहै उसीका विषयरूप सम्भव होताहै, रज्जुके सर्पके तुल्य ब्रह्म (चित्) का चेत्य (विषय) रूपसे जो भासना है उसीका नाम अविद्या है ॥ १७ ॥ ज्ञानमात्रसे नाश करनेके योग्य इस संसार नामक रोगके नाश करनेमें कुछभी परिश्रम नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यदि सब त्यागके इसी समयसे चित्तकी वासनासे रहित होजाओ तो इसी क्षणसे निस्सन्देह तुम मुक्त होचुके ॥ १९ ॥ जैसे रज्जुके स्वरूपके जानतेही रज्जुमें सर्पकी भीति उसीसमय नष्ट होजाती है ऐसेही सम्वित् (ज्ञान) जब विषयकी ओरसे लोटकर अपनी ओर देखती है तो संसार नष्ट होजाता है ॥ २० ॥

यत्राभिलाषस्तन्नूनंसंत्यज्यस्थीयतेयदि ॥ प्राप्तएवांगतन्मोक्षःकिमेतावतिदुष्करम् ॥ २१ ॥ अपिप्राणांस्तृणमिवत्यजंतीहमहाशयाः ॥ यत्राभिलाषस्तन्मात्रत्यागेकृपणताकथम् ॥ २२ ॥ यत्राभिलाषस्तत्त्यक्त्वाचेतसानिरवग्रहम् ॥ प्राप्तंकर्मेंद्रियैर्गृह्णंस्त्यजन्नष्टंचतिष्ठभोः ॥ २३ ॥ यथाकरतलेबिल्वंयथावापर्वतःपुरः ॥ प्रत्यक्षमेवतस्यालमजरंवंपरमात्मनः ॥ २४ ॥ आत्मैवभातिजगदित्युदितस्तरंगैःकल्पांतएकइववारिधिरप्रमेयः ॥ ज्ञातःसएवहिददातिविमोक्षसिद्धिंत्वज्ञातएवमनसेचिरबंधनाय ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे संसृतिपरमयोगो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! जिस पदार्थकी अभिलाषाहो यदि उसको त्यागकर स्थित रहै तो यह समझना चाहिये कि उसको मोक्ष प्राप्त होगया, और इतने (इन्द्रिय निग्रहसे विषयोंके त्यागने) में क्या दुष्करताहै ॥ २१ ॥ हे रामजी ! महात्मा जनतो अपने प्राणोंकोभी तृणके समान त्याग देते हैं तो जिस पदार्थकी इच्छा है उसके त्यागनमें

कौनसी कृपणता (कादरता) है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! चित्तसे निसंग होके जिस पदार्थमें अभिलाषहो उसको त्याग-कर जो प्राप्त विषयहों उनको कर्मेन्द्रियोंसे आसक्ति रहित सेवन करते हुये इस संसारमें रहो ॥ २३ ॥ जिसप्रकार करतल (गदेली) पर बिल्व और सन्मुख पर्वत प्रत्यक्ष रहता है ऐसेही जो प्राणी इन्द्रियोंका रोकके अभिलषित पदार्थोंमें चित्तको नहीं जान देता उसको जन्मादि विक्रिया शून्य आत्माका अज ब्रह्मपद प्रत्यक्षही है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! प्रमाणशून्य आत्माही अज्ञानियोंकी दृष्टिमें जगत्‌रूपसे आविर्भूत होकर ऐसे भान होरहाहै जैसे कल्पके अन्तका समुद्र तरंग आदि भेदोंसे, और वही आत्मा यदि ज्ञानसे प्रकट होताहै, अर्थात् यथार्थ जानलिया जाताहै तो मोक्षरूप परम पुरुषार्थ सिद्धिको देताहै, और यदि नहीं जानाजाता तो सम्पूर्ण अनर्थोंके मूलभूत मनोभावके लिये और दीर्घकालके बन्धनके लिये होताहै ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे संसृतिपरमयोगो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

भोक्ता जीव है उसका स्वरूप व्यष्टिका प्रधानतासे इस ६७ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ मनस्त्वयोग्योजीवोयंकोभवेत्परमात्मनः ॥ कथंवास्मिन्समुत्पन्नःकोवायंवदमे पुनः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ समस्तशक्तिखचितंब्रह्मसर्वेश्वरंसदा ॥ ययैवशक्त्यास्फुरतिप्राप्तांता मेवपश्यति ॥ २ ॥ स्वयंयांवेत्तिसर्वात्माचिरंचेतनरूपिणीम् ॥ साप्रोक्ताजीवशब्देनसैवसंकल्पकारिणी ॥ ३ ॥ स्वभावात्कारणंद्वित्वंपूर्वसंकल्पचित्स्वयम् ॥ नानाकारणतांपश्चाद्यातिजन्ममृतिस्थितेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! मनको रचकर उससे अभिन्नका आत्मामें अध्यास होनेके कारण मनोभावके योग्य जीव परमात्मा संबन्धी क्या होसकताहै, क्या यह परमात्माका अंशहै वा कार्य्य, अथवा वही है, यदिही है तो उसमें कैसे उत्पन्न हुआ, क्या परिणामरूपसे जैसे दूधमें दही, अथवा विवर्त, जैसे रज्जुमें सर्प, यदि प्रथम परिणाम पक्षहै, तो अनित्यता होगी और अद्वितीय पक्ष मानों तो उसका बाध होगा, यदि उत्पत्ति नहीं मानोंगे तो भोक्ताकी असिद्धि होगी, क्योंकि ब्रह्म तो क्षुधादिसे रहित है, यदि अन्यमाना तौ कौन है उसका सजाती है वा विजातीय इत्यादि विकल्पोंमें कोईभी पक्ष ठीक नहीं है इस सन्देहके दूर करनेके लिये पुनः कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! अचिन्त्य और अनन्त सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न मायाशक्तियुक्त शबल परब्रह्म यथार्थमें आविर्भूत जगत् अभिन्नभी मायासे द्वितीयभावको प्राप्त अपने स्वरूपमें उपाधिके विकारोंको आरोपण करके अनन्त जीव तथा सर्वज्ञ ईश्वर भावसे सदा क्रीडा करनेको समर्थ है वह जिस शक्तिसे जहां स्फुरित होताहै वहां उसीको प्राप्तही देखताहै ॥ २ ॥ यह सर्वात्मा अनादि कालसे चेतनरूपिणी अर्थात् चित्त संस्कारके उपहित चित्‌रूप शक्तिको स्वयं अनुभव करताहै वही जीवशब्दसे कही जाती है और वही संकल्पका कारणभी है ॥ ३ ॥ आत्मामें जो स्वभाव सिद्ध द्वितीयत्वहै, वह उत्तर संसारकी मुख्य प्रवृत्तिका कारणहै, और पूर्वसंकल्पकी वासनासहित जो जीव चैतन्यहै वह पश्चात् जन्म मरण आदिकी स्थितिरूप नानाप्रकारकी विचित्रताका कारण होताहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेमुनिश्रेष्ठदेवंनामकिमुच्यते ॥ किमुच्यतेतथाकर्मकारणंचकिमुच्यते॥५॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्पंदास्पंदस्वभावंहिचिन्मात्रमिहविद्यते ॥ खेवातइवतत्स्पंदात्सोल्लासंशांतम न्यथा ॥६॥ चिरंचित्तंभावितंसत्स्पंदइत्युच्यतेबुधैः ॥ दृश्यत्वाभावितंचैतदस्पंदनामितिस्मृतम् ॥७॥ स्पंदात्स्फुरतिचित्सर्गोनिःस्पंदाद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ जीवकारणकर्माद्याचित्स्पंदस्याभिधास्मृता ॥८॥

अर्थ—श्रीराजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ भगवन् ! उक्त रीतिसे जीवका स्वरूप बुद्धिपर आरूढ होनेपर आपसे प्रश्न करताहुं कि दैव किसको कहते हैं, और कर्म क्या पदार्थ है, तथा कारण किसको कहते हैं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! स्पन्द स्वभाव अर्थात् रजोगुण प्रधान मायाका उपहित और अस्पन्द स्वभाव अर्थात् शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मही इस संसारमें है, और आकाशमें वायुके सदृश स्पन्द (स्फुरणा) से वह सृष्टिकी ओर अभिमुख होताहै और स्पन्दके अभावमें वह शान्तही स्थित रहताहै ॥ ६ ॥ और अपना स्वभाविक जो चित्त (चेतनपना) है वही यदि अपनी अविद्यासे कल्पित विषयाकार होताहै, उसी विषयाकार स्फुरणको स्पन्द कहते हैं, और दृश्यत्व रूपसे जो

कल्पित नहीं हैं वह स्पन्दरहित शुद्ध चेतन कहा गयाहै ॥ ७ ॥ स्पन्दके कारण चित्ही सृष्टिरूपसे स्फुरताहै, और स्पन्दकी शून्यतासे नित्य ब्रह्म कहाताहै, उनमेंसे प्राण स्पन्दकी विवक्षासे जीव अपने अन्तर्गत कार्य्योंकी आविर्भाव विवक्षासे कारण शरीर आदिकी चेष्टाकी विवक्षासे कर्म और वह सूक्ष्म दशामें चिरकाल स्थित होकर फलोंके आरम्भकी ओर झुकताहै उसको दैव कहते हैं अर्थात् चित्के स्पन्दकेही जीवकर्म और कारण आदि सब नामहैं ॥ ८ ॥

यएवानुभवात्मायंचित्स्पंदोस्तिसएवहि ॥ जीवकारणकर्माख्योबीजमेतद्धिसंसृतेः ॥ ९ ॥ कृतद्वित्व चिदाभासवशाद्देहमुपस्थितम् ॥ संकल्पाद्विविधार्थत्वंचित्स्पंदोयातिसृष्टिषु ॥ १० ॥ नानाकारगतां यातश्चित्स्पंदोमुच्यतेचिरात् ॥ कश्चिज्जन्मसहस्रेणकश्चिदेकेनजन्मना ॥ ११ ॥ स्वभावात्कारणाद्धि त्वंचित्समेत्याधिगच्छति ॥ स्वर्गापवर्गनरकबंधकारणतांशनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो अपना अनुभवरूप आत्माहै वही चित् स्पन्द (चेतनका स्फुरण) जीव, कर्म, कारण, आदि नामसे प्रसिद्धहै, और यही संसारका बीजहै ॥ ९ ॥ द्वित्वरूपसे कल्पित चिदाभासके बशसे उन २ प्राणियोंके कर्मके अनुसार पूर्वजन्ममें मरणकालमें बुद्धिमें उपस्थित जो देव, मनुष्य, तिर्य्यक्, आदि देहसे उस दशाको तथा पूर्वसंकल्पके अनुसारी उन देहोंके भोग्य पदार्थ समूहोंको चेतनही सृष्टियोंमें प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ यह जीव नानाप्रकारकी सहस्रों योनियोंके कारण भावको दीर्घ कालतक प्राप्त होके, कोई मन्द शास्त्र प्रवृत्ति जीव सहस्रों जन्ममें ज्ञानसे मुक्त होताहै, और कोई वैराग्यादि साधनोंसे अधिकारसहित एकही जन्ममें ज्ञानके पश्चात् मुक्त होताहै ॥ ११ ॥ और चेतन अपने स्वभावसेही जिस उपाधिसे सम्बद्धित होताहै उसी रूपसे ऐसे स्फुरित होने लगताहै जैसे प्रकाश नीलपटसे सम्बन्ध होनेसे नीलरूप रक्तपटसे रक्त, और पीतपटसे पीतरूप होजाताहै, और उसी स्वभावसे देह तथा जन्मके कारण अन्न रसमय होके और उनके द्वारा पिता आदिके शरीरोंके साथ एकता प्राप्त होके क्रमसे शुक्रशोणित आदिरूपमें परिणत होके धीरे २ स्वर्ग मोक्ष नरक तथा बन्ध आदिके कारणभूत शरीरदशाको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

हेम्नीवकटकादित्वंकाष्ठलोष्टसमस्थितौ ॥ देहेतिष्ठतिनानात्वंजडेभावविकारजम् ॥ १३ ॥ अजातमप्य सद्रूपंपश्यतीदंमनोभ्रमः ॥ जातःस्थितोमृतोस्मीतिभ्रमार्त्तःपत्तनंयथा ॥ १४ ॥ अहंममेत्यसद्रूपमेव चेतःप्रपश्यति ॥ अदृष्टपरमार्थत्वादाशाविवशसंस्थिति ॥ १५ ॥ मथुराधिपतेराज्ञोयथाश्वपचसंभ्रमः॥ आसीदेवंहिचित्तस्यस्फुरतीयंजगत्स्थितिः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे सुवर्णमें कटक आदिकी कल्पना रहती है ऐसेही काष्ठ लोष्टके समान जड शरीरमें जन्म स्थिति वृद्धि आदि षट्भाव विकारोंसे उत्पन्न नानात्वरूप भेद रहताहै, अर्थात् चेतनका भेद उपाधियोंके कारणहै यथार्थमें उपाधिभी सब पंचभूतोंके विकारहैं और पंचभूतभी उत्तर २ भूत पूर्व २ भूतोंके विकारहैं जो कि लयके क्रमसे सब जाके अन्तिम कारणमें लीन होजानेसे अखण्ड अद्वैत आत्मा शेष रहताहै ॥ १३ ॥ विना उत्पन्न हुयेभी मनके भ्रमसे असत्यरूपही यह देखताहै कि मैं उत्पन्न हुआ, स्थितहुं, मरणको प्राप्त हुआ, जैसे भ्रमण करता हुआ मनुष्य नगर आदिके भ्रमणको ॥ १४ ॥ परमार्थ रूपको न देखनेसे भोगोंकी आशामें विवश होके यह चित्त असत्यरूपही "अहम्" तथा "मम" (मैं और मेरा) इत्यादि रूपसे अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ मथुराके स्वामी राजा लवणको जिसप्रकार चाण्डालका भ्रम हुआथा ऐसेही चित्तमें यह जगत्की स्थितिहै ॥ १६ ॥

सर्वमेवमनोमात्रभ्रांत्युल्लासविजृंभणम् ॥ इदंजगत्तयारामप्रस्फुरत्यंबुभंगवत् ॥ १७ ॥ शिवात्प्राक्कार णात्पूर्वंचिच्चेत्यकलनोन्मुखी ॥ उदेतिसौम्याज्जलधेःपयःस्पंदोमनागिव ॥ १८ ॥ स्फुरणाज्जीववक्रत्व मेतिचित्तोर्मितांदधत् ॥ चिद्वारिब्रह्मजलधौकुरुतेसर्गबुद्बुदान् ॥ १९ ॥ स्वस्थःसौम्यसमस्यैतद्यत्सि हस्याविजृंभणम् ॥ ब्रह्मणःसंविदाभासस्तत्संचेत्यमिवस्वयम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सम्पूर्ण जो जगत्रूपसे स्फुरण होरहाहै वह सब मनकी भ्रान्तिके उल्लासका विकाश ऐसे है जैसे जलमें तरंगका विकाश ॥ १७ ॥ जैसे शान्त समुद्रसे किंचित् जलका संचलन होताहै ऐसेही सृष्टिके आदिकालमें कल्याणस्वरूप कारण ब्रह्मसे चेतन शक्ति विषयरूपकी ओर उन्मुख होके आविर्भूत होतीहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी समुद्रमें चेतनरूपी जल चित्तरूपी तरंगताको धारण करतेहुये जीवरूपी आवर्तको प्राप्त होताहै, और सृष्टिरूप बुद्बुदोंको रचताहै ॥ १९ ॥ हे सौम्य रामजी ! मायाके बन्धनको नष्ट करनेवाला सिंहके सदृश जो ब्रह्महै उसका जो अपने स्वरूपका किंचित् संचालनहै वही चिदाभास अर्थात् जीवके समान स्थितहैं, और वही विषयके सदृश स्वयं स्थितहै, उससे पृथक् विषय कुछ नहीं है ॥ २० ॥

चित्संवित्त्योच्यतेजीवःसंकल्पात्समनोभवेत् ॥ बुद्धिश्चित्तमहंकारोमायेत्याद्यभिधंततः ॥ २१ ॥ तन्मात्रकल्पनापूर्वंतनोतीदंजगन्मनः ॥ असत्यंसत्यसंकाशंगंधर्वनगरंयथा ॥ २२ ॥ यथाशून्येदृशःस्फारान्मुक्तावल्यादिदर्शनम् ॥ यथास्वप्नेभ्रमश्चैवतथाचित्तस्यसंसृतिः ॥ २३ ॥ शुद्धआत्मानित्यतृप्तइव शांतसमस्थितः ॥ अपश्यन्पश्यतीवेमंचित्ताख्यंस्वप्नविभ्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चेतनही ज्ञानका अभिव्यंजक अन्तःकरण उपाधिसे जीव संकल्पसे मन, अध्यवसायसे बुद्धि, स्मरणसे चित्त, तथा अभिमानसे अहंकार और विशेष शक्तिसे माया, श्वास प्रश्वाससे प्राण, बोलनेसे वाक्, देखनेसे नेत्र और सुननेसे श्रोत्र इत्यादि नामसे प्रसिद्धहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! चेतन मनोमात्रके संकल्पसे सृष्टिमें आदिमें इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करताहै और यह सत्यके तुल्य भासताहै, यथार्थमें गन्धर्वनगरके समान असत्यहै ॥ २२ ॥ जैसे शून्य आकाशमें दृष्टिके विस्तारसे मुक्तावलीका दर्शन होताहै, और स्वप्नमें भ्रम होताहै, ऐसेही चित्तको संसारका भ्रमहै ॥ २३ ॥ आत्मातो शुद्ध क्षुत् पीपासाआदि न होनेसे नित्य तृप्त शान्त और सर्वत्र समरूपसे स्थितहै, यथार्थमें न देखता हुआभी स्वप्नके भ्रमके समान इस चित्तको देखताहै ॥ २४ ॥

संसृतिर्जाग्रदित्युक्तंस्वप्नंविदुरहंकृतिम् ॥ चित्तंसुषुप्तभावःस्याच्चिन्मात्रंतुर्यमुच्यते ॥ २५ ॥ अत्यंतशुद्धेसन्मात्रेपरिणामनिरामयम् ॥ तुर्यातीतंपदंतत्स्यात्तत्स्थोभूयोनशोचति ॥ २६ ॥ तस्मिन्सर्वमुदेतीदं तस्मिन्नेवप्रलीयते ॥ नचेदंनचतत्रेदंदृष्टौमुक्तावलीयथा ॥ २७ ॥ अरोधकत्वात्खंहेतुर्यथावृक्षसमुन्नतेः॥ अकर्त्तापितथाकर्ताचेतनाब्धिर्जगत्स्थितेः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस चिदाभासको इन्द्रियोंके द्वारा जो बाह्य संसारका अनुभवहै उसको जाग्रत् कहते हैं अन्तःकरणमें अहंभावकी वासनासे संयुक्तको जो हृदयसे लेके कण्ठपर्य्यन्त संसारका अनुभवहै उसे स्वप्न कहते हैं स्मरणकी बीजभूत वासनामात्रसे जो हृदयमें स्थिति है उसको स्वप्न कहते हैं, और केवल चिन्मात्रकी स्थिति तुरीयपद कहा जाताहै ॥ २५ ॥ इसप्रकार प्रत्यक् आत्माका अत्यन्त शुद्ध ब्रह्ममात्रमें पारिणाम होनेसे निर्विघ्नतापूर्वक स्थिति जो है वही तुरीयातीत पदहै उसमें स्थित होनेसे यह जीव पुनः नहीं शोचता ॥ २६ ॥ उसीसे यह सम्पूर्ण दृश्य समूह उदय होताहै, और उसीमें लीनभी होताहै, और यथार्थमें ब्रह्ममें न तो जगत्का तादात्म्य (अभेद) है और न उसका ऐसे सम्बन्धहै जैसे दृष्टिमें मोतियोंकी पंक्तिका ॥ २७ ॥ चेतनरूपी समुद्र अकर्ता होतेहुये भी मायाकृत सृष्टिका निवारण न करनेसे उसका कर्त्ता इसप्रकार मानाजाताहै जैसे आकाश वृक्षकी वृद्धिका अवरोधक न होनेसे उसका हेतु समझा जाता है ॥ २८ ॥

सन्निधानाद्यथालौहःप्रतिबिंबस्यहेतुताम् ॥ यात्यादर्शस्तथैवायंचिन्मयोप्यर्थवेदने ॥ २९ ॥ बीजमंकुरपत्रादियुक्त्यायद्वत्फलंभवेत् ॥ चिन्मात्रंचित्तजीवादियुक्त्यातद्वन्मनोभवेत् ॥ ३० ॥ स्वतोबीजफलाविप्रुड्यथाबीजंपुनर्भवेत् ॥ तथाचिच्चेत्यचित्तादित्यक्त्वास्वस्थानतिष्ठति ॥ ३१ ॥ यद्यप्यबोधेबोधेवा बीजांतस्तरुबीजयोः ॥ इयान्भेदोस्तिनजगद्ब्रह्मणोरपिचित्तयोः ॥ ३२ ॥ तथापिव्यज्यतेबोधेसत्यात्मकमखंडितम् ॥ रूपश्रीरिवदीपेनचिन्मात्रालोकरूपियत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे समीपतासे लोहका दर्पण प्रतिबिम्बका हेतु होताहै ऐसेही चिन्मय दर्पणभी सन्निधानसे पदार्थ ज्ञानमें कारण है ॥ २९ ॥ जैसे बीजअंकुर पत्रादि होके क्रमसे फलरूप होताहै ऐसेही चिन्मात्रभी चित्त जीवादि क्रमसे मन, इन्द्रिय, तथा शरीर आदिरूप होताहै ॥ ३० ॥ जैसे मूर्छित दशामें प्राप्त जीव सहित वृष्टिका जलबिन्दु वृक्ष सस्यआदिमें प्रवेश करके पुनः बीजरूप होताहै, किन्तु उदासीन नहीं होता वैसेही जीवकी वासना सहित चेतनै प्रलयके अनन्तरभी विषय और चित्तआदिकी सृष्टिरूपसे पुनः प्रकट होताहै न कि त्यागसे स्वस्थ होजाताहै ॥ ३१ ॥ यद्यपि वृक्ष तथा बीजका ज्ञानहो वा न हो परन्तु सूक्ष्मरूपसे बीजके अन्तरमें स्थित जो वृक्ष और बीजहैं उनमें वृक्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट नहीं होती यह भेद प्रत्यक्ष दृश्यमानहै तथापि चित्तअवस्थामें प्राप्त जो जगत् और ब्रह्म है उनका यह संबन्ध नहीं है क्योंकि वृक्ष और बीजके ज्ञानसे तात्विक अखण्डितरूपका प्रकाश नहीं होता, और ब्रह्मके ज्ञानसे तो दीपसे रूपकी शोभाके समान चिन्मात्र अखण्ड आत्मप्रकाश होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

यद्यन्निखन्यतेभूमेर्यथातत्तन्नभोभवेत् ॥ यायाविचार्यतेविद्यातथासासापरंभवेत् ॥ ३४ ॥ स्फटिकांतःसन्निवेशःस्थाणुतावेदनाद्यथा ॥ शुद्धेनानापिनानेवतथाब्रह्मोदरेजगत् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मसर्वंजगद्वस्तुपिंडमेकमखंडितम् ॥ फलमत्रलतागुल्मपीठबीजमिवस्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे पृथिवीका जो २ भाग खना जाताहै वह २ आकाशरूप होजाताहै ऐसेही अविद्याजनित जिन पदार्थोंका विचार किया जाताहै, वे सब अधिष्ठान सत्तामात्र शेष रहजाते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे स्फटिक मणिके भीतर बन आदिका प्रवेश उसके अज्ञानसे कूटस्थताको प्राप्त होताहै ऐसेही ब्रह्मके स्वरूपमें एकतामयभी जगत् अधिष्ठान ब्रह्मके अज्ञानसे नानाप्रकारके समान भासताहै ॥ ३५ ॥ जो कुछ ब्रह्माण्डके अन्तर्गत वस्तुमात्र है उन सबका पिण्डभूत एक अखण्डित ब्रह्महै, और प्रतिबिम्बरूप फलपत्र लतादिक हैं उनकी आधारभूमि तथा उनके अन्तर्गत बीजरूपके सदृश ब्रह्म जगत्रूप होके स्थितहै ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोचित्रंजगदिदमसत्सदिवभासते ॥ अहोबृहदहोस्वस्थमहोस्फुटमहोतनु॥३७॥ ब्रह्मणिप्रतिभासात्मातन्मात्रगुणगोलकः ॥ अवश्याकणाभासोयथास्फुरतितच्छ्रुतम् ॥ ३८ ॥ यथा सौयातिवैपुल्यंयथाभवतिचात्मभूः॥ यथास्वभावसिद्धार्थांत्तथाकथयमेप्रभो ॥३९॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ अत्यंतासंभवद्रूपमनन्यत्स्वस्वभावतः ॥ अत्यंताननुभूतंसत्स्वानुभूतमिवाग्रतः ॥४० ॥ उल्लासफुल्लो फुल्लांगइतिबालहृदिस्फुटम् ॥ यथोदेतितथोदेतिपरेब्रह्मणिजीवता ॥ ४१ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि अहो यह जगत् अति विचित्र है यह असत्भी सत्के सदृश भासता है, अहो आश्चर्य यह कितना महान् है, और कैसा स्वस्थ प्रतीत होता है, अहो कैसा प्रत्यक्ष है ! ! अहो कैसा सूक्ष्मभी है ॥३७॥ यह जगत् ब्रह्ममें प्रतिभासरूप है, और तन्मात्रही इसके गुणका विस्तार है और कुहरेके कणके समान जैसे यह स्फुरता है वह मैनें आपसे सुना ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! जैसे आत्मवस्तुसे समष्टि व्यष्टि स्थूल देहभावको और जैसे आत्मभू व्यष्टि समष्टि स्थूलका अनुभव कर्ता हुआ विश्व तथा वैश्वानररूप धारण करता है वह मुझसे कृपा करके कहिये ॥३९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! यह जीवका रूप अत्यन्त असम्भव है, अपने चेतन स्वभावसे अभिन्न रूपभी है, अत्यन्त अननुभूतभी यह मानो साक्षात् अनुभूतही है, और जैसे वेताल प्रकाशित न होनेपरभी अज्ञानसे बालकके हृदयमें प्रकट होता है इसीप्रकार अज्ञानसे परब्रह्ममें जीवता उदय होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मानमेयात्मिकाशुद्धासत्यैवासत्यवत्स्थिता ॥ भिन्नेवचनभिन्नास्याद्ब्रह्मणोबृंहणात्मिका ॥ ४२ ॥ यथाब्रह्मभवत्याशुजीवःकलनजीवितः ॥ तथाजीवोभवत्याशुमनोमननवेदनात् ॥ ४३ ॥ चित्तंतन्मात्रमननंपश्यत्याशुस्वरूपवत् ॥ एषसद्योनिलवप्रख्यःस्फुरतिखांतरे ॥ ४४ ॥ अस्तनिमेषोनुभवत्यवश्यायकणोपमम् ॥ संवेदनात्मकंकालकलितंकांतमात्मनि ॥ ४५ ॥

अर्थ—यह जीवता स्वानुभव स्वरूप होनेसे मानमेयात्मक शुद्ध तथा सत्यही है, और असत्यके सदृश कल्पित रूपसे स्थित है, यह वर्द्धनशील ब्रह्मसे भिन्नके समान प्रतीत होती है, परन्तु भिन्न नहीं है ॥ ४२ ॥ जैसे अपने संकल्पसे ब्रह्म शीघ्र जीव होता है ऐसेही मननाकी वासनाके उद्भवसे जीव मन होजाता है ॥ ४३ ॥ वह शीघ्र अपने रूपको मनन रूप देखता है और अविच्छिन्न दृष्टिरूप (निरन्तर प्रकाशशील) वायुके समान अति सूक्ष्म यह तन्मात्रास्वरूप आत्म चिदाकाशके स्वतः प्रकाशमान होनेपर उसकी स्फूर्णासे सृष्टिकालके वशसे पंचीकरणद्वारा उत्पन्न सूर्य्यवत्प्रकाशमान ब्रह्माण्डको अपने आत्मामें देखताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अहंकिमितिशब्दार्थवेदनाभोगसंविदम् ॥ संविदंतत्वशब्दार्थंजीवःपश्यतिसार्थकम् ॥ ४६ ॥ तादृक्षवेदनात्सोथरसशब्दार्थवेदनम् ॥ भाविजिव्हार्थनाम्नैकदेशेनुभवतिक्षणात् ॥ ४७ ॥ तादृक्षवेदनात्तेजःशब्दार्थोन्मुखतांगतः ॥ भविष्यन्नेत्रनाम्नैकदेशेभवतिभासनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रथम वह चिदात्मा, मैं क्या तत्वरूप आत्माहुं अथवा मनुष्य आदिके आकारवानहुं, इस विशेष अनुभवको न रखनेवाले ज्ञानको और उसके पश्चात् गर्भमें पूर्व सहस्र जन्मकी स्मृतिसे पुरुषार्थ विचारके सहित जगत्के तत्वार्थ ज्ञानको अनुभव करता है अर्थात् प्रथम अहन्ताका अध्यास होता है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर शरीर पिण्डमें अहंभावके ज्ञानसे भावी रसना इन्द्रिय और उसके अर्थ रसके नामसे शरीरके एक देश मुखके बिलप्रदेशमें रसके शब्द तथा अर्थका क्षणभरमें यह आत्मा अनुभव करता है, अर्थात् इसमें जिव्हा इन्द्रियकी कल्पना होती है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार पिण्डमें स्पष्ट अभिमान होनेसे तेज शब्द तथा उसके अर्थको ओर उन्मुखताको प्राप्त होके भविष्यत् नेत्र इन्द्रियके नामसे अक्षिगोलकमें नेत्रका अध्यास होता है ॥ ४८ ॥

तादृक्षवेदनात्सोथघ्राणंतद्दृष्टिवेदनात् ॥ स्थितोयस्मिन्भवतीतितावद्दृश्यादितास्थिता ॥ ४९ ॥ एवंप्रायःसाजीवात्माकाकतालीयवच्छनैः ॥ विशिष्टसंनिवेशत्वंभावितंपश्यतिस्वतः ॥ ५० ॥ सतस्यस

न्निवेशस्यत्वसतोपिसतःसतः ॥ शब्दभावैकदेशत्वंश्रवणार्थेनविंदति ॥ ५१ ॥ स्पर्शभावैकदेशत्वंत्व क्शब्दार्थेनविंदति ॥ रसभावैकदेशत्वंरसनात्वेनविंदति ॥ ५२ ॥

अर्थ—और पिण्डमेंही अहंभावसे प्राण दृष्टिके ज्ञानसे नाशिका गोलकमें प्राण इन्द्रियका अभिमान होता है, इसी पूर्वोक्त रीतिसे जिस श्रोत्र आदि भावमें जबतक यह स्थित रहताहै उतने कालतक शब्द आदि दृश्यकी उपभोग शीलता इसकी स्थित रहती है ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार प्रायः यह जीवात्मा काकतालीय न्यायसे धीरे २ पूर्व जन्मकी वासनासे कल्पित शरीर इन्द्रिय आदि संघातकोभी स्वयं अपनेसे अभिन्न देखता है अर्थात् इसको संघातका अभिमान होता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! वह जीवात्मा उस संघातके एक देशको श्रवणरूप क्रियाके प्रयोजनसे शब्द ग्राहक श्रोत्ररूपसे देखताहै ॥ ५१ ॥ और स्पर्शनरूप क्रियाके प्रयोजनसे संघातके एक देशके शब्द ग्राहकत्वक्इन्द्रियरूपसे देखताहै, और रस ग्रहण करानेवाले संघातके एक देशको रसना इन्द्रिय करके जानताहै ॥ ५२ ॥

रूपभावैकदेशत्वंनेत्रार्थाकृतिपश्यति ॥ गंधभावैकदेशत्वंनासिकात्वेनपश्यति ॥ ५३ ॥ एवंभावमयैः सत्ताप्रकटीकरणक्षमम् ॥ भविष्यदिंद्रियाख्यंसरंध्रंपश्यतिदेहके ॥ ५४ ॥ इत्येवमादिजीवस्यराघवा यतनस्यच ॥ उदेतिप्रतिभासात्मादेहएवातिवाहिकः ॥ ५५ ॥ अनाख्येयंपरासत्तास्यातिवाहिकता मिव ॥ सागच्छत्यप्यगच्छंतीतादृक्सत्यात्मभावनात् ॥ ५६ ॥

अर्थ—रूप ग्रहण करानेवाले संघातके एक देशको नेत्र इन्द्रियरूपसे देखताहै, तथा गन्ध ग्राहक संघातके एक देश (नाशिकाछिद्र) को नाशिका इन्द्रिय करके देखताहै अर्थात् श्रोत्र आदि इन्द्रियोंसे जब शब्द आदिका अनुभवरूप भोग करताहै, तब इसके उन इन्द्रियोंके साथ आत्मारूपसे अभेदाध्यास होताहै ॥ ५३ ॥ इसप्रकार उक्त और अनुक्त इन्द्रियोंसे बाह्य पदार्थोंके प्रकट करनेमें समर्थ इन्द्ररूप परमात्माका साधक भावि इन्द्रिय नामक छिद्रको शरीर अपनेमें देखताहै ॥ ५४ ॥ हे राघव ! इसप्रकार समष्टि तथा व्यष्टिरूप जीवका प्रतिभास आत्मा सूक्ष्म शरीररूपसे उदय होताहै ॥५५॥ यह इसकी परा (अति उत्कृष्ट) सत्ता अकथनीय है, वह सत्ता ब्रह्मके अज्ञानसे अनेकप्रकारके सूक्ष्मदेह भावको धारण करती है, और ब्रह्ममें आत्मसाक्षात्काररूप भावनासे (ब्रह्मज्ञानसे) नष्ट होजाती है ॥ ५६ ॥

मातृमेयप्रमाणादियदाब्रह्मैववेदनात् ॥ तदातिवाहिकोक्तीनांकःप्रसंगस्तदेवतत् ॥ ५७ ॥ अन्यत्ववे दनादन्यःपरस्मादातिवाहिकः ॥ ब्रह्मत्ववेदनाद्ब्रह्मसासंवित्तिर्हिनान्यजा ॥ ५८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ असंभवादसंवित्तेर्ब्रह्मात्मैकतयाथवा ॥ कोमोक्षःकोविचारश्चेत्यलंभेदविकल्पनैः ॥ ५९ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सिद्धांतकालएवैषप्रश्नस्तेरामराजते ॥ अकालपुष्पमालाहिशोभनापिनशोभते ॥ ६० ॥

अर्थ—और जब ज्ञानसे प्रमाता प्रमेय और प्रमाणरूप ब्रह्महो सब होजाता है तब सूक्ष्म शरीरोंके कथनोंका क्या अवसर है, क्योंकि आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरभी तो ब्रह्मही है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! परब्रह्मसे भिन्न जाननेसे व्यवहार दृष्टिसे सूक्ष्मशरीर पृथक् प्रतीत होता है और वह ब्रह्मत्वरूप ज्ञान अन्यज्ञानोंके सदृश भ्रान्तिसे उत्पन्न नहीं है ॥ ५८ ॥ श्री रामजी बोले—हे भगवन् यदि ऐसा है तो चिद् एकरस ब्रह्ममें अज्ञानका असंभव होनेसे अथवा अज्ञानके अभावसे जीव ब्रह्ममें भेदका कल्पक न रहनेसे ब्रह्मके साथ जीवताकी स्वतःसिद्धिसे अपनेसे पृथक् मोक्षरूप फल तथा उसके प्राप्त करनेवाले विचारसे क्या अर्थ है अर्थात् उनसे क्या प्रयोजन है इसलिये ये सब भेदकी कल्पनायें निरर्थक हैं ॥ ५९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह तुमारा प्रश्न सिद्धान्त कालमेंही शोभा देता है, क्योंकि कुसमयकें पुष्पोंकी माला उत्तम होनेपर उत्पात आदिके भयसे शोभा नहीं देती ॥ ६० ॥

सार्थैवानर्थिकाऽकालमालाविलसितायथा ॥ तथैवाकालमिज्जंतौसर्वकालेहिशोभते ॥ ६१ ॥ प्रतिबंधा भ्यनुज्ञानांकालोदातेतिदृश्यते ॥ ननुसर्वपदार्थानांकालेनफलयोगतः ॥ ६२ ॥ एवमेवसजीवात्मास्व प्रात्मासमुपस्थितः ॥ पितामहत्वमुच्छूनंपश्यन्नात्मनिकालतः ॥ ६३ ॥ ॐमुच्चारणसंवित्तिवेदनाच्चप्र पश्यति ॥ यत्करोतिमनोराज्यंभवत्याशुसतन्मयः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे शोभायमानभी आकालके पुष्पोंकी माला उस समयके उपभोगसे सार्थकभी उत्पातजन्य अनर्थोंका कारण होनेसे मनुष्योंकी हर्षजनिका नहीं होती इसीप्रकार अपरिपाक दशासहित प्राणीमें किसी पदार्थका कथनभी निरर्थकही होताहै ॥ ६१ ॥ हेमन्त आदिकाल, शाली आदि (मार्गशीर्षमें उत्पन्न होनेवाले चावल) के अंकुरके उदयके प्रतिबन्धका और यव (जव) आदिके अंकुरकी अनुकूलताका दाता होताहै क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंका फलके साथ सबन्ध काल पाकेही होताहै ॥ ६२ ॥ इसीप्रकार स्वप्न समष्टिका उपहित जीवात्मा कालपाके उपासनाकी

परिपक्वतासे फलीभूत उपास्य भावसे समुपस्थित अपने स्वरूपमें वृद्धिको प्राप्त पितामहत्व (ब्रह्मापन) देखताहै ॥ ६३ ॥ ओ३म्कार इस शब्दका उच्चारण तथा इसके अर्थके ध्यानपूर्वक जो कुछ मनोराज्य वह ब्रह्मा करताहै वह शीघ्र तन्मय होजाताहै अर्थात् मनोराज्यके अनुसार पदार्थोंको प्रकट देखताहै ॥ ६४ ॥

इदमेवमसत्सर्वमिवव्योम्निततातमनि ॥ पर्वतोच्चाकृतिर्व्योमजगद्व्योम्निविजृंभते ॥ ६५ ॥ नेहप्रजायते किंचिन्नेहकिंचिद्विनश्यति ॥ जगद्गंधर्वनगररूपेणब्रह्मजृंभते ॥ ६६ ॥ यथैवपद्मजादीनांजीवानांसदसन्मयी ॥ सत्तातथैवसर्वेषामासरीसृपमासुरम् ॥ ६७ ॥ संवित्संभ्रमएवायमेवमभ्युत्थितोप्यसन् ॥ आब्रह्मकीटसंवित्तेःसम्यक्संवेदनात्क्षयः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें मलिनता आदिका अध्यास असत्है ऐसेही यह सम्पूर्ण जगत् असत्रूपही है क्योंकि वायु आदिके क्रमसे जगत्का आरोपभी आकाशमेंही विकल्पित होरहाहै ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! न तो यहां कुछ उत्पन्न होताहै और न नष्ट होताहै, किन्तु यह जगत् गन्धर्वनगरके रूपसे ब्रह्मही प्रकाश कर रहाहै, और यह सृष्टिकी उत्पत्तिका कथन प्रपंचके मिथ्याज्ञानके वास्तेहै न कि उसकी सत्यताके अर्थ ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्माआदि जीवोंकी सत्ता सत् असत्मयी, अर्थात् विचारके असमर्थ है अधो लोकमें कीट पतंग पर्य्यन्त जीवोंकी और ऊपरके लोकोंमें देव आदि जीवोंकीभी है ॥ ६७ ॥ यह सम्पूर्ण सम्यक् रीतिसे उदयको प्राप्तभी है, परन्तु सम्वित्का भ्रम मात्रही है क्योंकि इस आत्मरूप ब्रह्मज्ञानसे कीटसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्तका बाध होजाताहै ॥ ६८ ॥

यथासंपद्यतेब्रह्मकीटःसंपद्यतेतथा ॥ कीटस्तुरूढभूतौघवलनात्तुच्छकर्मकः ॥ ६९ ॥ यदेवजीवनंजीवेचेत्योन्मुखचिदात्मकम् ॥ तदेवपौरुषंतस्मिन्सारंकर्मतदेवच ॥ ७० ॥ ब्रह्मणःसुकृतात्पापात्कीटकस्यसमुत्थितेः ॥ चित्तन्मात्रात्मिकाभ्रांतिःप्रेक्षामात्रंभवेत्क्षयः ॥ ७१ ॥ मातृमानप्रमेयाणिनचिन्मात्रेतरद्यतः ॥ ततोद्वैतैक्यवादार्थःशशशृंगाब्जिनीसमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्योंकि जैसे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै ऐसेही अपने कर्मानुकूल एक कीटभी उत्पन्न होताहै किन्तु कीटके चित्तमें भौतिक मलिनता अधिक होनेके कारण वह नीचकर्मवाला कहाजाताहै ॥ ६९ ॥ जैसी उपाधिहै वैसाही जीवमें जीवता और विषयकी ओर चेतनता आदिहैं, और उसी जीवताके अनुसार वही फलदायक कर्म पौरुषहै और पौरुषही कर्म है, और जीवमें वही पौरुष सारहै ॥ ७० ॥ ब्रह्माके सर्वोत्तम पुण्यसे ब्रह्माका पद और कीटके सर्वोत्कृष्ट पापसे कीटत्व प्राप्त हुआ यद्यपि यह पुण्यपाप विचित्रताका हेतुहै, परन्तु चिन्मात्रके अज्ञानसे द्वैतकी भ्रान्ति और उसके ज्ञानसे द्वैतका क्षय इस अंशमें कुछ भेद नहीं है ॥ ७१ ॥ प्रमाता, प्रमाण, और प्रमेय, ये चिन्मात्रसे पृथक् नहीं है, इसलिये प्रमाणसे जबतक प्रमेयको जानताहै तबतक द्वैत और उसके अभावसे क्रमसे द्वैतकी एकता होती है, इस रीतिसे द्वैत और एकता स्वभाववाला ब्रह्मवस्तुहै, यह मतवाद (विशिष्टाद्वैत) शशशृंग तथा आकाश कमलिनीके तुल्य असत् है ॥ ७२ ॥

भावदार्ढ्यात्मकंमिथ्याब्रह्मानंदोविभाव्यते ॥ आत्मैवकोशकारेणलालादार्ढ्यात्मकंयथा ॥ ७३ ॥ मनसाब्रह्मणायद्यद्यथादृष्टंविभावितम् ॥ तत्तथादृश्यतेतज्ज्ञैःस्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ ७४ ॥ यथायदुदितंवस्तुतत्तत्तन्नविनाभवेत् ॥ निमेषमपिकल्पंवास्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ ७५ ॥ अलीकमिदमुत्पन्नमलीकंचविवर्द्धते ॥ अलीकमेवस्वदतेतथालीकंविलीयते ॥ ७६ ॥

अर्थ—ब्रह्म आनन्दात्मक आत्माही है, और बन्धन करनेवाला जगत्की दृढतारूप द्वैतहै, यह प्रतीति भ्रान्तिसे ऐसे होती है जैसे कोशकार कृमि (मकरी) अपने लाला (लार) की दृढताको बन्धनरूप अनुभव करती है ॥ ७३ ॥ सम्पूर्ण मनोंके समष्टिरूप ब्रह्माजीने प्राणियोंके कर्मानुसार जिस वस्तुकी जैसी रचनाकी रीति निश्चय करके जैसे कार्य्याकार्यका संकल्प किया वैसाही अन्य अन्य प्राणियोंको अनुभूत होताहै यह नियतिका स्वभाव है ॥ ७४ ॥ जो वस्तु जिस रीतिसे उदय हुआ है, चाहे वह निमेषहो वा कल्पहो अथवा और कुछहो, परन्तु वह उससे भिन्न नहीं होसकता, जैसे बटकेही बीजसे बटका अंकुर उत्पन्न होता है न कि कुटकके बीजसे, और बुद्बुद कुछ निमेषपर्य्यन्त, और ब्रह्माण्ड महाप्रलयपर्य्यन्त स्थित रहताहै यह नियतिका निश्चयहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्याही उत्पन्न हुआहै, और मिथ्याही बढताहै, और मिथ्याही भोग्य पदार्थ भोक्ताको रुचते हैं, और मिथ्याही यह नष्ट भी होताहै, इसलिये हम लोगोंकी अस्वतन्त्रता तथा नियतिके बलसे इसकी सत्यताकी भ्रान्ति नहीं करती ॥ ७६ ॥

शुद्धंसर्वगतंब्रह्मानंतमद्वितीयंदुःखबोधवशादशुद्धमिवासदिवानेकमिवासर्वगमिवावबुद्ध्यते ॥ ७७ ॥ जलमन्यत्तरंगोन्यइतिबालकुकल्पनयाभेदःकल्प्यतएवमवास्तवस्तस्माद्योयोयमाभातिभेदःसकेवल मतत्त्वविद्भिःपरिकल्पितोरज्ज्वांसर्पइवएवंभेदाभेदशक्त्योररिमित्रयोरिवब्रह्मण्येवसंभवेत् ॥ ७८ ॥ तेनात्मनाद्वितीयेनैवद्वित्वमिवाततंयथासलिलेनतरंगकल्पनयासुवर्णेनकटककल्पनयैवमितिअतस्तेन स्वयमेवात्मनात्मान्यइवचेत्यते ॥ ७९ ॥ अतःकलनाजातासैवस्फारतांप्राप्यमनःसंपन्नंतेनाहंभावः कल्पितोनिर्विकल्पप्रत्यक्षरूपमेतत्प्रथमंतन्मनस्तदहंभवतिक्षिप्रमहंशब्दार्थभावनात् ॥ ८० ॥ ततोम नोहंकाराभ्यांस्मृतिरनुसंहितातैस्त्रिभिस्तदनुभूततन्मात्राणिकल्पितानितन्मात्रेषुजीवेनचित्तात्मनास्व यंकाकतालीयवद्ब्रह्मोपादानादियान्सन्निवेशःकल्पितोदृश्यते ॥ ८१ ॥ एवंयदेवमनःकल्पयतितदे वपश्यति ॥ सद्वाभवत्वसद्वाचित्तंयत्कल्पयत्यभिनिविष्टम् ॥ तत्तत्पश्यतियास्यतिसदिवप्रतिभा समुपगतंसद्यः ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्म शुद्ध सर्वगत अनन्त और अद्वितीयहै और भ्रान्तिसे अशुद्ध अनेक तथा एक देशगत (परिच्छिन्न) के समान प्रतीत होताहै ॥ ७७ ॥ जैसे बालककी कल्पनासे जल तथा तरंग भिन्न २ हैं यह मिथ्या भेदहै ऐसेही ब्रह्मजगत्का भेदभी मिथ्याहै इसलिये यह भेदका भान रज्जुके सदृश अज्ञानियोंकी कल्पनाहै इसप्रकार शत्रु मित्रके समान विरुद्ध स्वभाववाला भेदाभेद शक्तियोंकी ब्रह्ममेंही संभवहै ॥ ७८ ॥ जैसे जलमें तरंग सुवर्णकटक आदिकी कल्पना हुई है ऐसे ब्रह्मस्वरूप आत्मामें द्वैतके सदृश इस जगत्के विस्तारकी कल्पनाहै अर्थात् वह आत्मा अपनेहीसे अपनेको अन्यके समान जानताहै ॥ ७९ ॥ इस ब्रह्मसे जो निर्विकल्प जगत्की स्फुरणाहुई, वही सविकल्पता प्राप्त होकर मनरूप होगई और उस मनसे अहंभावकी कल्पना हुई अर्थात् अहंशब्दार्थकी भावनासे वही मन अहंभावको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ उसके अनन्तर मन और अहंकारसे अनुभवके अनुसार स्मृति उत्पन्न कीगई उन तीनोंसे स्मृतिसे अनुभूत पंचभूतोंकी तन्मात्रायें रचीगईं और तन्मात्राओंसे ब्रह्मरूप उपादान कारणसे चित्तात्मक समष्टि जीवसे इतना ब्रह्माण्ड विस्तृत जगत्का सन्निवेश (अवयवस्थान) कल्पित किया हुआ देखपडताहै ॥ ८१ ॥ इसप्रकार मन जो कुछ कल्पना करताहै वही देखताहै, और चित्तका यह स्वभावहै कि चाहै सत् हो वा असत् हो परंतु दीर्घकालतक उस पदार्थकी भावनासे वृद्धिको प्राप्त हुआ जो २ कल्पना करताहै वह २ अवश्य देखताहै, और दर्शनसे सत्यके सदृश प्रतिभासको प्राप्त शीघ्रही उस पदार्थको व्यवहारके उपयोगीभी पावेगा ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस ६८ वे सर्गमें कर्कटी नाम राक्षसी तथा सब प्राणियोंको मारनेकी इच्छासे उसका उग्रतप विस्तारसे वर्णितहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ राक्षस्योक्तंमहाप्रश्नजालमावलिताखिलम् ॥ १ ॥ अस्तिकज्जलपंकाद्रेरिवोग्राशालभंजिका ॥ हिमाद्रेरुत्तरेपार्श्वेकर्कटीनामराक्षसी ॥ २ ॥ विषूचिकाभिधानाचनाम्नाप्यन्यायबाधिका ॥ विंध्याटवीवदेहेनशुष्काकार्श्यमुपागता ॥ ३ ॥ महाबलाग्निनयनारोदोरंध्रार्द्धपूरणी ॥ नीलांबरधराकृष्णादेहबद्धेवयामिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दियागया है जिसमें तत्वके विचारसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करनेवाला कर्कटी राक्षसीसे कहा हुआ महा प्रश्नजाल है ॥ १ ॥ हे रामजी ! कज्जलमय पंकके पर्वतसे रची हुई (कृष्णवर्ण) कर्कटी नाम राक्षसी हिमाचलके उत्तरपार्श्व (भाग) में थी ॥ २ ॥ उसका दूसरा नाम विषूचिकाभी है, वह अन्यायको बाधा करनेवाली, शरीरसे विन्ध्याटवीके सदृश, शुष्क होकर कृशताको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ जाज्वल्यमान अग्निके सदृश नेत्रवाली, आकाश तथा पृथिवीके आधे अन्तराल (छिद्र) को पूर्ण करनेहारी अति दीर्घ शरीर नीलवस्त्रको धारण करनेवाली और ऐसी कृष्णवर्ण थी मानो शरीरधारिणी अन्धकारमय रात्री ॥ ४ ॥

नीहारवसनच्छन्नामेदुराभ्रशिरःपटा ॥ लंबाभ्रबिंबोल्लसितानित्योत्थतिमिरोर्ध्वजा ॥ ५ ॥ स्थिरविद्यु ल्लतानेत्रातमालतरुजानुका ॥ वैदूर्यशूर्पाग्रनखीभस्मनीहारहासिनी ॥ ६ ॥ निर्मांसनरदेहौघपुष्पस्र ग्दामभूषिता ॥ सर्वांगोदात्तसंप्रोतशवमालाविराजिता ॥ ७ ॥ वेतालावेशविचलत्कालकंकालकुंडला॥ अर्कादानोत्कदीर्घाग्रभीमोग्रभुजमंडला ॥ ८ ॥

अर्थ--नीहार (कुहरा) रूपी वस्त्रसे आच्छादित श्यामवर्ण मेघरूपी उत्तरीयपट (चद्दर) को धारण किये हुये लम्बमान मेघोंके बिम्बके सदृश शोभायमान और नित्य निकले हुये अन्धकारके समान केशोंको धारण करनेहारी वह थी ॥ ५ ॥ स्थिर विद्युल्लताके समान नेत्रवाली, तमाल वृक्षके सदृश जंघा धारण किये हुये, मूंगेके वर्णके समान शूपके अग्रभागके सदृश नखवाली, और भस्म तथा कुहरेके वर्ण हास्य धारण करनेवाली वह थी ॥ ६ ॥ मांसरहित मनुष्योंकी देहरूपी पुष्पमालाओंसे भूषित, और सम्पूर्ण उत्तम अंगमें गूथी हुई मृतक देहकी मालाओंसे शोभित थी ॥ ७ ॥ वेतालोंके नृत्यके भावोंसे चलायमान कृष्णवर्णके कुण्डल धारिणी और मानों सूर्य्यको ग्रहण करनेके अर्थ उत्कण्ठित दीर्घ और भयंकर उग्र भुजाओंके मण्डलको धारण करनेवाली वह थी ॥ ८ ॥

तस्याविपुलकायत्वाद्दुर्लभत्वान्निजांधसः ॥ अतृप्तोर्णवलेखायाइवाभूज्जाठरोनलः ॥ ९ ॥ नकदाचन सातृप्तिमुपयातामहोदरी ॥ वडवानलजिह्वेवाचिंतयामासचैकदा ॥ १० ॥ जंबूद्वीपगतान्सर्वान्निगिरा मिजनान्यदि ॥ अनारतमनुश्वासजलराशिमिवार्णवः ॥ ११ ॥ मेघेनमृगतृष्णेवतन्मेक्षुदुपशाम्यति ॥ अविरुद्धैवसायुक्तिर्ययापदिहिजीव्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके शरीरके अति विशाल होनेके कारण इसीसे उसकी जाति (राक्षसी) के उचित अन्न दुर्लभ होनेसे उस राक्षसीकी जठराग्नि समुद्रकी लेखाके सदृश सदा अतृप्तही थी ॥ ९ ॥ वडवानलकी जिव्हाके समान वह महान् उदरवाली कदाचित्‌भी तृप्तिको नहीं प्राप्त होती थी, इसलिये एकसमय उसने चिन्ता की ॥ १० ॥ कि जैसे समुद्र जलकी राशिको निगलताहै ऐसेही जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण प्राणियोंको यदि निरन्तर प्रतिश्वास निगल जाऊं तो ॥ ११ ॥ मेघसे मृगतृष्णके सदृश मेरी क्षुधाकी शान्तिहो, और जिस युक्तिसे आपत्तिमें जीवन धारण होताहै वह शास्त्रके सम्मतही है ॥ १२ ॥

मंत्रौषधतपोदानदेवपूजादिरक्षितम् ॥ सममेवजनंसर्वंनिर्बाधंकःप्रबाधते ॥ १३ ॥ तपःकरोमिपरमम खिन्नेनैवचेतसा ॥ तपसैवमहोग्रेणयद्दुरापंतदाप्यते ॥ १४ ॥ इतिसंचिंत्यसासर्वजंतुजातजिघांसया॥ तपोर्थमथसस्मारपर्वतंभूतदुर्गमम् ॥ १५ ॥ आरुरोहचतच्छृंगंस्थिरविद्युद्विलोचना ॥ हस्तपादादिम देहाश्यामलेवाभ्रमंडली ॥ १६ ॥

अर्थ—मन्त्र, औषधि, तप, दान, और देवपूजादि रक्षित जनोंका भक्षण निर्बाध है इसकी बाधा कौन करता है ॥ १३ ॥ इसलियें खिन्नता रहित चित्तसे मैं उग्रतप करूं क्योंकि महान् उग्रतपश्चर्य्यासेही दुष्प्राप पदार्थ भी प्राप्त होता है ॥१४॥ हे रामजी ! ऐसा चिन्तन करके सम्पूर्ण प्राणिसमूहकी हिंसाकी इच्छासे तप करनेके अर्थ प्राणियोंके दुर्गम हिमाचलपर्वतको स्मरण किया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर स्थिर विद्युत्‌के समान नेत्रवाली, और हस्तपाद आदि देह सहित श्यामलवर्णकी मण्डलीके समान वह राक्षसी हिमालयके शिखरपर चढी ॥ १६ ॥

तत्रगत्वाथसास्नात्वातपःकर्तुंकृतस्थितिः ॥ अतिष्ठदेकपादेनचंद्रार्कास्पंदलोचना ॥ १७ ॥ क्रमेणदि वसाःपक्षास्तस्यामासर्तवोययुः ॥ शीतातपेषुलीनायाःकृतायाइवशैलतः ॥ १८ ॥ साबभूवाभ्रमाला याःसमासंस्तंभिताकृतिः ॥ कृष्णोर्ध्वगोर्ध्वकेशीचखमाहर्तुमिवोद्गता ॥ १९ ॥ आलोक्यतांपवनजर्ज रितांगकत्वक्चीरांगणाकृतिरणत्पवनावधूतैः ॥ ऊर्ध्वस्थमूर्द्धजतमःपटलैर्दधानांतारौघमौक्तिकमजः समुपाजगाम ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—वहां जाके तपस्या करनेकेलिये स्थिति करके चन्द्र सूर्य्यके सदृश प्रकाशमान और चेष्टारहित नेत्रवाली वह राक्षसी एकपादसे खडी हुई ॥ १७ ॥ पर्वतसे रची हुईके समान शीत और घर्म (घाम) में सदा लीन उस राक्षसीको तपस्या करते २ क्रमसे मास पक्ष तथा कई ऋतुभी बीतगये ॥१८॥ वह राक्षसी अपनी आकृतिको स्तम्भन करनेवाली मेघमालाके समान कृष्णवर्ण ऊर्ध्वकेशवाली ऊर्ध्वगामिनी ऐसी होगई मानों आकाशकोही आहार कर-

नेके अर्थ खडी हुई है ॥ १९ ॥ शीतोष्ण और धूलियोंसे रुखे पवनोंसे जर्जरीभूत कृश अंगोंके चर्मरूपी वस्त्रको धारण करनेवाली, और सेनाके आकारवाले पवनोंसे कंपाहुये ऊर्ध्व दिशामें स्थित, केशरूपी अन्धकार पटलों (तहों) से तारागणरूपी मोतियोंको धारण किये हुये उस राक्षसीको देखके वरदान देनेके वास्ते ब्रह्माजी उसके निकट आये॥२०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे
कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

कर्कटीको उसकी इच्छाके अनुसार वरदान तथा गुणियोंकी रक्षार्थ मन्त्र देके ब्रह्माजीका अपने लोकमें गमन इस ६९ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणतांपितामहआययौ॥दारुणंहितपःसिद्ध्यैविषाग्निरपिशीतलः॥१॥ मनसैवप्रणम्यैनंसातथैवस्थितासती ॥ कोवरःक्षुच्छमायालमितिचिंतान्विताभवत् ॥ २ ॥ आस्मृतं प्रार्थयिष्येहंवरमेकमिमंविभुम् ॥ अनायसीचायसीचस्यामहंजीवसूचिका ॥ ३ ॥ अस्योक्त्याद्विविधा सूचिर्भूत्वालक्ष्याविशाम्यहम् ॥ प्राणिनांसहसर्वेषांहृदयंसुरभिर्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इसके पश्चात् सहस्र वर्षके पीछे उसके निकट ब्रह्माजी आये, क्योंकि दारुण तप सिद्धिके लिये अवश्य होताहै, और उस उग्रतपकी सिद्धिमें विषसहित अग्निभी शीतल होजाताहै, तो अन्यकी क्या कथा इसलिये तपसे कुछभी असाध्य नहीं है ॥ १ ॥ वह कर्कटीराक्षसी मनसेही ब्रह्माजीको प्रणाम करके वैसाही स्थित होती हुई ऐसी चिन्तासे युक्त हुई कि क्षुधाकी शान्तिके लिये कौनसा वरदान समर्थ होगा ॥ २ ॥ आह! मैंने स्मरणकर लिया इस समर्थ ब्रह्मासे मैं इस वरदानके लिये प्रार्थना करूं कि रोगरूपी तथा लोहमयी जीव सहित सूचिका (विषूचिका अर्थात् हैजारोग) मैं होऊं ॥ ३ ॥ इस ब्रह्माके बरदानसे अनेकप्रकारकी सूचि होकर अदृश्य होके सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें ऐसे प्रवेश करूंगी जैसे नासिका इन्द्रियसे खीचा हुआ सौगन्ध्य ॥ ४ ॥

यथाभिमतमेतेनग्रसेयंसकलंजगत् ॥ क्रमेणक्षुद्विनाशायक्षुद्विनाशःपरंसुखम् ॥ ५ ॥ इतिसंचिंतयंतीं तामुवाचकमलालयः ॥ अन्यादृश्यास्तथादृष्ट्वास्तनिताभ्ररवोपमम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुत्रिकर्कटि केरक्षःकुलशैलाभ्रमालिके ॥ उत्तिष्ठत्वंतुतुष्टोस्मिगृह्णाणाभिमतंवरम् ॥ ७ ॥ कर्कट्युवाच ॥ भगवन् भूतभव्येशस्यामहंजीवसूचिका ॥ अनायसीचायसीचविधेऽर्पयसिचेद्वरं ॥ ८ ॥

अर्थ—इस वरदानके द्वारा अपनी क्षुधाकी शान्तिके लिये क्रमसे सम्पूर्ण जगत्का मैं ग्रास करजाऊंगी और क्षुधाकी शान्ति करना यही परम सुखहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार चिन्तन करतीहुई, उसको देखकर और शान्तिदान्ति (इन्द्रियोंका निग्रह) तथा दया आदि धर्मयुक्त तपस्वियोंसे विरुद्ध उसको अभिलाषा देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दसे ब्रह्माजी उससे बोले ॥ ६ ॥ हे राक्षसकुलरूपी पर्वतकी मेघमालिके! हे पुत्रि कर्कटी! तुम उठो मैं तुमसे प्रसन्नहुं, अपनी अभिलाषाके अनुसार वरदान ग्रहण करो ॥ ७ ॥ कर्कटी बोली कि–हे भगवन्! भूत तथा भविष्य-त्के स्वामिन्, यदि आप मुझे बर देते हो तो मैं अनायसी बिना लोहकी अर्थात् रोगरूप, तथा लोहकी जीव सहित सूचिका विषूचिका होऊं ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमस्त्वितितामुक्त्वापुनराहपितामहः ॥ सूचिकासोपसर्गात्वंभविष्यसिविषू चिका ॥ ९ ॥ सूक्ष्मयामाययासर्वलोकर्हिंसांकरिष्यसि ॥ दुर्भोजनादुरारंभामूर्खादुस्थितयश्चये ॥१०॥ दुर्देशवासिनोदुष्टास्तेषांहिंसांकरिष्यसि ॥ प्रविश्याहृदयंप्राणैःपद्मप्लीहादिबाधनात् ॥ ११ ॥ वातलेखा त्मिकाव्याधिर्भविष्यसिविषूचिका ॥ सगुणंविगुणंचैवजनमासादयिष्यसि ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! ऐसाही हो ऐसा कहके ब्रह्माजी पुनः उस राक्षसीसे बोले कि रोग सहित सूचिका तूं विषूचिका होवेगी ॥ ९ ॥ मनुष्योंसे दुर्लक्ष्य होके तू संसारकी हिंसा करैगी दुष्ट अर्थात् निषिद्ध अपक्व अकालमें और अधिक भोजन करनेवाले जो मनुष्यहैं, दूसरोंके अनिष्ट कार्य्यका आरम्भ करनेवाले मूर्ख और जिनकी स्थिति दुष्ट है ऐसे जो मनुष्यहैं ॥ १० ॥ तथा दुष्ट देशके रहनेवाले और जो दुष्टहैं उनकी प्राणद्वारा अपान देशसे लेके हृदय पर्य्यन्त प्रवेश करके हृदयके पद्मकी प्लीहाकी और उसके समीप मांस ग्रन्थिकी, बस्तिस्था-

नको, और नाडि आदिकी बाधा करनेसे तू हिंसा करेगी ॥ ११ ॥ वायुकी रेखा स्वरूप व्याधि तूं होगी और शास्त्र सदाचारनिष्ठ तथा शास्त्रीय गुण रहित जनकोभी तूं प्राप्त होगी ॥ १२ ॥

गुणान्वितचिकित्सार्थंमंत्रोयंतुमयोच्यते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हिमाद्रेरुत्तरेपार्श्वेकर्कटीनामराक्षसी ॥ १३ ॥ विषूचिकाभिधानासानाम्नाप्यन्यायबाधिका ॥ तस्यामंत्रः ॥ ॐह्रींह्रांरींरां विष्णुशक्तयेनमः ॥ ॐनमो भगवतिविष्णुशक्तिमेनां ॐ हरहरनयनयपचपचमथमथउत्सादयदूरेकुरुस्वाहाहिमवंतंगच्छजीवसः सःसःचंद्रमंडलगतोसिस्वाहा ॥ इतिमंत्रीमहामंत्रंन्यस्यवामकरोदरे ॥ १४ ॥ मार्जयेदातुरंकारंतेन हस्तेनसंयुतः॥हिमशैलाभिमुख्येनविद्रुतांतांविचिंतयेत् ॥ कर्कटींकर्कशाक्रंदांमंत्रमुद्गरमर्दिताम्॥१५॥ आतुरंचिंतयेच्चंद्रेरसायनह्रदिस्थितम् ॥ अजरामरणंयुक्तंमुक्तंसर्वाधिविभ्रमैः ॥ १६ ॥ साधकोहिशुचि र्भूत्वास्वाचांतःसुसमाहितः ॥ क्रमेणानेनसकलांप्रोच्छिनत्तिविषूचिकाम् ॥ १७ ॥ इतिगगनगतस्त्रि लोकनाथोगगनगसिद्धगृहीतसिद्धमंत्रः॥गतउपगतशक्रवंद्यमानोनिजपुरमक्षयमाययुज्वलश्रीः॥१८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने विषूचिकामंत्रकथनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—और गुणसंयुक्त मनुष्यकी चिकित्सा (रोगप्रतीकार) के अर्थ यह मंत्र मैं कहताहुं ब्रह्माजी बोले–हिमालयके उत्तर भागमें कर्कटी नाम राक्षसी है ॥ १३ ॥ विषूचिका उसका नामहै और नामसेभी अन्यायमुक्त मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको बाधा करती है उसका यह मंत्रहै ॥ ओं ह्रीं ह्रां रीं रां ॥ रूपपर ब्रह्मरूप विष्णुकी जो शक्तिहै उसको नमस्कारहै हे भगवति (अनेक ऐश्वर्ययुक्त परब्रह्मरूप जो तुमहो तिसको नमस्कारहै,) हे आदिशक्ति माये आपके आधीन जो रोगरूप तुमारा अंशभूत यह द्वितीय शक्तिहै उसको ओंकारवाच्यकारणमें शीघ्र उपसंहार करो २ इसको इसके स्थानपर प्राप्त करो २ पाक करके शीघ्र इसे कोमल करो २ दधिके समान इसका मन्थन करो २ इस स्थानसे इसे दूर करो, हे महाशक्तिके आधीन रोगरूप शक्ति, तुम अपने स्थान हिमालयपर जाओ, पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंसे ग्रसित रोगसे अभिभूत मृत्युसे आकृष्यमाण (खींचा हुआ) जीव तूं इस मन्त्रके प्रभावसे जीवनको धारण कर मृतकको पुनः जीवन सामर्थ्य देनेवाले, अमृतसे पूर्ण चन्द्रमण्डलमें मेरी भावनासे इससमय प्राप्तहों इसमंत्री लिखके वामहस्त जलमें रखके ॥ १४ ॥ उसहस्तसे संयुक्त रोगीको मार्जन करे, और कर्कश रोदन मंत्रको करनेवाली मंत्ररूपी मुद्गरसे मर्दित कर्कटीनाम राक्षसीको हिमालयके अभिमुख होके भागती हुई चिन्तन करे ॥ १५ ॥ और अमृतमय चन्द्रमें स्थित वृद्धावस्था तथा मृत्युरहित, और सब व्याधियोंके विभ्रमसे रहित रोगीको चिन्तन करे॥१६॥ मंत्रका साधक स्नान करके पवित्र होके उत्तमतासे आचमन करके एकाग्र चित्त होके इस पूर्वोक्त मंत्रके क्रमसे सम्पूर्ण विषूचिकाको दूर करसकताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी ! इतना कहके तीनों लोकके स्वामी ब्रह्माजी जब आकाशमें प्राप्त हुये, तो सिद्धोंने उनके इस सिद्ध मंत्रको ग्रहण किया और दूसरे कार्य्यके लिये आये हुये इन्द्र करके नमस्कार किये हुये दूसरोंसे नाश करनेके अयोग्य अक्षय सत्यसंकल्प सिद्ध, अनेकप्रकारकी मायासहित अपने सत्यलोकमें प्राप्त हुये ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वालमीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विषूचिकामंत्रकथनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

क्रमसे दो सूचिरूपकी प्राप्ति और सूचीका प्राणियोंके शरीरमें प्रवेश इस ७० वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथभूधरशृंगाभासामहाकृष्णराक्षसी ॥ कज्जलांबुदलेखेवतानवंगंतुमुद्यता ॥ १ ॥ बभूवाभ्रोपमाकारात्ततोविटपरूपिणी ॥ पुंस्प्रमाणात्ततोप्यासीदथाभूद्धस्तमात्रिका ॥ २ ॥ ततःप्रादेशमात्रासात्ततोप्यंगुलिरूपिणी ॥ ततोमाषशमीतुल्याततःसूचीबभूवह ॥ ३ ॥ ततःकौशेयसूचित्वंप द्मकेसरसुंदरी ॥ प्रापसाशिखराकारासंकल्पाद्रिरिवाणुताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इसके पश्चात् वह पर्वतके शिखरके समान भासमान महाकृष्ण राक्षसी कज्जलके मेघकी लेखाके सदृश क्रमसे सूक्ष्मताको प्राप्त होनेलगी ॥ १ ॥ प्रथम वह मेघके सदृश आकार हुई

अनन्तर वृक्षकी शाखाके समान होगई, इसके पीछे पुरुषके प्रमाणके तुल्य होगई और उससेभी लघु पुनः हस्त प्रमाण रहगई ॥ २ ॥ उसके पश्चात् एक बिलस्त मात्र प्रमाण रहगई, उसके अनन्तर अंगुलभर होगई, उस अंगुलसे उसके अनन्तर उडदकी छीमेकी आकारकी होगई, और इसके पश्चात् स्थूल सूची (सुई) मात्र शेष रहगई ॥ ३ ॥ इसके पीछे रेशमके वस्त्रको सीने योग्य पद्मके केसरके समान वह सुन्दरी सूचिरूपको प्राप्त हुई, इसप्रकार पर्वतके शिखरके समान आकारवाली वह कर्कटीराक्षसी संकल्पके पर्वतके सदृश अणुताको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

रराजसूचिकाकृष्णासूक्ष्मायसमनायसी ॥ पुर्यष्टकेनचलिताव्योमगाव्योमवासिनी ॥ ५ ॥ सूचीदृश्यत एवासौनत्वयोनामविद्यते ॥ संविद्भ्रमकुलेचैषास्वल्पसूचीवलक्ष्यते ॥ ६ ॥ रत्नसूत्रीवमसृणामनोमननसंयुता ॥ वैदूर्यरश्मिलेखेवभानुसंतानसुंदरी ॥ ७ ॥ कज्जलांभोदसंकल्कलतेवपवनाहता ॥ सूक्ष्मरंध्रेक्षणस्वच्छदृष्टज्योतिःकनीनिका ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह राक्षसी लौहमय कृष्णसूची होकर तथा जीव संयुक्त सूचिकाभी होकर, महाभूत, कर्मेंद्रिय ज्ञानन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, अविद्या, काम, और कर्म इनके संघातरूप पुरिअष्टक (आठपुरी) से चलित आकाशगामिनी, तथा आकाशवासिनी, अति शोभाको प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ वह राक्षसी केवल सूचीरूप अपनी भावनासे देख पडतीथी, परन्तु उसमें लोहेका नामभी न था संवित्के भ्रमोंके समूहके मध्यमें यह अल्प सूचीरूपसे लक्षित होनाभी एक प्रकारकी भ्रान्तिथी ॥ ६ ॥ सूर्य्यकी किरणोंके उसके भीतर प्रवेश करनेके सुन्दर रूपधारिणी रत्नकी सूचीके समान मननशील मनसे संयुक्त वैदूर्य्यमणिकी लेखाके समान लक्षित होतीथी ॥ ७ ॥ और सूर्य्यकी किरणोंका सम्बन्ध न होनेसे पवनसे उडाई हुई कज्जलके मेघके पिण्डकी लताके समान थी और उसके सूक्ष्म छिद्रमें प्रविष्ट नेत्रोंकी तारा ऐसीथी मानों स्पष्ट दो सूक्ष्म प्रकाश देख पडते हैं ॥ ८ ॥

सुमुखग्रहरूपेणश्लक्ष्णपुच्छशिखाणुना ॥ तदाविपुलयशांत्यर्थपरंमौनव्रतंगता ॥ ९ ॥ सुदूरादेवदृष्टत्वेखतन्मात्रत्वमागता ॥ दूरादेवमनोज्ञेनप्रोद्गिरंतीमुखेनखम् ॥ १० ॥ कुंचितेक्षणसंदृश्यादीर्घदीपांशुकोमला ॥ सद्यःस्नातसमुत्पन्नबालवालविलासिनी ॥ ११ ॥ तंतुर्बिसादिवोड्डीनाबह्यसंचारकौतुकात् ॥ ब्रह्मनाडिरिवोद्युक्ताबहीरंध्रसुसुंदरी ॥ १२ ॥

अर्थ—परमाणुके तुल्य सूक्ष्म तथा उत्तम पुच्छके अग्र भागसे और बरदानसे प्रसन्न मुखके कारण ग्रहण करने योग्यरूपसे उपलक्षित, वह राक्षसी उससमय अपने देहकी विशालताकी शान्तिसे मानों परम मौनव्रत धारण किया अर्थात् इसका तपोव्रत इसकी महत्ताकी शांतिकेही अर्थ था अर्थात् व्यर्थ था ॥ ९ ॥ और दूरसे देखनेसे प्रकाशमान नेत्रोंका सूक्ष्मतासे सन्धिन देखपडनेके कारण एक दीपके सदृश देख पडती थी, और सूचीरूपके न देखपडनेसे आकाशकेही तुल्य होगई, और प्रथम शरीरकी विशालता दशामें शरीरमेंही आकाश प्रविष्ट था, और सूक्ष्मता दशामें आकाशके बाहर स्थित होनेसे मानों दूरसेही अपने रमणीय मुखसे आकाशको उगल रही है ॥ १० ॥ दूर देशतक फैली हुई दीपशिखाके सदृश सूक्ष्म, इसीसे एकाग्रताके लिये संकुचित नेत्रोंसे देखनेके योग्य, और तत्कालके स्नानसे खडे हुये बालकोंके बालके समान विलास करनेवाली ॥ ११ ॥ बाह्यदेशमें संचारकी इच्छासे कमलसे निकले हुये सूतके समान ऐसे शोभितथी जैसे ब्रह्मरन्ध्र (छिद्र)से बाहर निकलके सूर्यमंडलकी ओर जानेके अर्थ उद्यत सुषुम्ना नाडी ॥ १२ ॥

नियतेंद्रियशक्तिःसाजीवेनैवबहिःस्थिता ॥ बौद्धतार्किकविज्ञानसंतानवदलक्षिता ॥ १३ ॥ शून्यसिद्धार्थसविकारंध्रानीलमथारवा ॥ अदृश्ययाजीवसूच्यासंततानुश्रितास्थिता ॥ १४ ॥ कलाकलनधर्मिण्या वासनामात्रसारया ॥ क्षीणदीपांशुसूत्रीवत्तीक्ष्णयानुपलभ्यया ॥ १५ ॥ ग्रासार्थंसूचितांयातासैवास्था नोपयुज्यते ॥ विचारितंतयानैतद्दहोमौर्ख्यविजृंभितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और नेत्रआदि इन्द्रियोंकी शक्ति उसकी अपने स्थानपर नियत थी, और लिंगशरीरसेही बाहर सूचीके आकारसे स्थित थी, तथा बौद्धोंके आलय विज्ञानके समान अपने आत्मामात्रका विषय होनेपरभी दूसरोंसे अलक्षित थी तथा नैय्यायिकोंके धारावाहिक ज्ञानके समान अन्य प्राणियोंसे अलक्षित थी ॥ १३ ॥ सर्वथा अलक्षित होनेसे शून्यवादी सिद्धार्थोंकी माताके समान आकाशकी नीलिमारूप, और शब्दरहित वह थी, यह तो लोहमय सूचिका रूपका वर्णन हुआ, और अदृश्यरूप जो जीव सहित सूची थी उस करके सदा अनुश्रित वह स्थित रहती थी ॥ १४ ॥ उन २ पदार्थाकार वृत्तियोंमें प्रतिफलित (प्रतिबिम्बित) चिदाभासोंकी कल्पनामय धर्म वली, वासनामयी, अदृश्य और तीक्ष्ण सूचीसे ऐसी थी जैसे नाश दशाको प्राप्त होते हुये दीपकी किरणरूप सूची, नेत्रसे अदृश्यभी रहते परन्तु स्पर्श करनेसे

दाहके कारणसे तीक्ष्णतायुक्त हो ॥ १५॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत्को ग्रास करनेके अर्थ उसने सूचीरूप धारण किया परन्तु उदर रहित सूचीदशा ग्रास करनेको उपयोगी नहीं होसकती, देखो ! मूर्खताका कैसा प्रताप है कि उसने यह न विचारा कि इस सूचीरूपसे मेरा क्या कार्य्य होगा ॥ १६ ॥

साग्रासंचिंतयामासनसूचीरूपतुच्छताम् ॥ चित्तमीहितमेवैकंपश्यंत्यास्तेनिरर्थकम् ॥ १७ ॥ अविचार्यैवसूचित्वंतयामूढधियास्थितम् ॥ नानर्थबुद्धेःस्फुरतिपूर्वापरविचारणा ॥ १८ ॥ स्वार्थक्रियोग्रसामर्थ्याद्यातिभावनयान्यताम् ॥ पदार्थोभिमतांशाद्योनिःश्वासेनेवदर्पणः ॥ १९ ॥ सूचीभावंप्रपन्नायास्त्यजंत्याःपीवरंवपुः ॥ महामरणमप्यस्याराक्षस्याःसुसुखंस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसने केवल जगत्का ग्रास करनेमात्रकी चिन्ताकी, और सूचीके रूपकी तुच्छतापर कुछभी विचार नहीं किया, एक केवल अभिलषित पदार्थमात्रको चिन्तन करनेवाली (न कि पूर्वापर हानिका विचार करनेवाली) का चित्त निरर्थक होगया ॥ १७ ॥ सूचीरूपका विचार न करके वह मूढबुद्धि स्थित थी, क्योंकि अनर्थ चिन्तन करनेवाली जिस प्राणीकी बुद्धि है उसको पूर्वपरका विचार कुछ नहीं रहता ॥ १८ ॥ अपने स्वार्थके लिये अभिलषित पदार्थमें दृढतर प्रयत्नके सामर्थ्यसे मनुष्यकी उत्तम बुद्धिभी ऐसे कलुषित होजाती है जैसे श्वाससे उपहत दर्पण ॥ १९ ॥ हे रामजी ! अपने स्थूल शरीरको त्याग करके सूचीभाव ग्रहण करनेवाली इस राक्षसीको यदि अपनी निजदशामें क्षुधासे इसका महामरणभी होजाता तो उसकेलिये अति सुख था ॥ २० ॥

एकवस्त्वतिरागाणामहोनुविषमागतिः ॥ देहोपितृणवत्यक्तोराक्षस्यानिजयेच्छया ॥ २१ ॥ एकवस्त्वतिगंधेनभ्रश्यंत्यन्याहिसंविदः ॥ राक्षस्याग्रासगंधेनदेहनाशोपिनेक्षितः ॥ २२ ॥ नाशोपिसुखयत्यज्ञमेकवस्त्वतिरागिणम् ॥ सूचीभूताविदेहापिपरितुष्टैवराक्षसी ॥ २३ ॥ अन्याबभूवलग्नासातथाजीवविषूचिका ॥ व्योमात्मिकानिराकाराव्योमवृत्तिशरीरका ॥ २४ ॥

अर्थ--अहो ! एकपदार्थमें अति रागकरनेवाले जीवोंकी गति अतिभयंकर होती है देखो ! इस प्रीतिसे इस कर्कटी राक्षसीने अपना देहभी तृणके समान निज इच्छासे त्याग दिया ॥ २१ ॥ एक वस्तुकी अतिलालसासे अन्य उत्तम ज्ञान सब नष्ट होजाते हैं देखो जगत्के ग्रासके लोभसे राक्षसीने अपनी शरीरके नाशकोभी न देखा ॥ २२ ॥ एक वस्तुके अति प्रेमी अज्ञानीको अपना नाशभी सुखदायी होता है, जैसे कर्कटी राक्षसी सूचीरूप होकर देह रहितभी थी परन्तु प्रसन्नहीथी ॥ २३ ॥ और दूसरी जो थी वह आकाशमयी निराकार लिंगशरीरवाली सब पदार्थों (जो उसके योग्य अशुचि हैं) में संलग्न जीव विषूचिका अर्थात् व्याधिरूप होगई ॥ २४ ॥

तेजस्तनुप्रवाहाभाप्राणतंतुमयात्मिका ॥ मूलसंवेदनाकाराचंद्रार्कांशुकसुंदरी ॥ २५ ॥ पृथगेवासिधाराभापरमाण्ववलीयसा ॥ कौसुमीगंधलेखेवकलाकलनरूपिणी ॥ २६ ॥ पापात्मिकामनोवृत्तिःसाहितस्यास्तथास्थिता ॥ परप्राणवशादेवपरमार्थपरायणा ॥ २७ ॥ एवमस्यास्तनुर्जातासूचीद्वयमयीहिसा ॥ नीहारांशुकवत्तन्वीकार्पासांशुसुपेलवा ॥ २८ ॥

अर्थ—और तेजके सूक्ष्म प्रकाशके सदृश शोभित प्राणोंमें तन्तुरूप मूलकी कुण्डलिनी शक्तिके आकारके सदृश और चन्द्रमा तथा सूर्य्यके अल्प किरणोंके समान सुन्दरी थी ॥ २५ ॥ और उस कर्कटी राक्षसीकी पापात्मिका अतएव तरवारके धाराके समान क्रूर मनोवृत्तिस्वरूप उस लोहके सूचीसे पृथक्ही थी, और वह पुष्पोंके गन्धकी लेखाके समान सूक्ष्मतासे प्राणियोंके देहोंमें प्रवेश करके हिंसारूप कला चातुरीके सम्पादनमें प्रकटरूप वाली, और अन्य प्राणियोंके प्राणोंके हरणसे अपने परममनोरथमें परायणथी ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार नीहार (कुहेर) के वस्त्रके समान सूक्ष्म और कपासके वस्त्रके सदृश कोमल दो प्रकारकी (एक लोहमयी दूसरी जीवसूची) सूचीमयी उसकी देह होगई ॥ २८ ॥

तनुद्वयेनतेनासौप्रविश्यहृदयंनृणाम् ॥ वेधयंतीततःक्रूराप्रबभ्रामदिशोदश ॥ २९ ॥ सर्वःस्वसंकल्पवशाल्लघुर्भवतिवागुरुः ॥ कर्कट्येवंवपुस्त्यक्त्वासूचीत्वमुररीकृतम् ॥ ३० ॥ तुच्छोप्यर्थोलसत्तृष्णानांगच्छतिप्रार्थनीयताम् ॥ सूचीवृत्तपिशाचीत्वंराक्षस्यातपसास्थितम् ॥ ३१ ॥ अपिपुण्यशरीराणांजातिबंधोनशाम्यति ॥ तनुसूचीपिशाचीत्वंराक्षस्यातपसार्जितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह राक्षसी उन दोनों शरीरोंसे मनुष्योंके हृदयोंमें प्रवेश करके सबको पीडा देती हुई वहांसे दशोदिशाओंमें भ्रमण करने लगी ॥ २९ ॥ हे रामजी ! सभी प्राणी अपने संकल्पके वशसे गुरु वा लघु

होजाता है, देखो कर्कटीने अपने महान् शरीरको त्यागके सूची रूप शरीरको अंगीकार किया ॥ ३० ॥ हे रामजी ! क्षुद्र जीव तुच्छ पदार्थके लियेभी प्रार्थना करते हैं, देखो सूचीके चरित्रशाली पिशाचिता राक्षसीके तपसे प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ तप आदि पवित्र शरीरवालोंकाभी अपने जातिके अनुसार वासनाका सम्बन्ध शान्त नहीं होता, जैसे कि कर्कटी राक्षसी अपनी जातिके अनुकूल अन्य जीवोंको पीडादानरूप सूक्ष्म सूचीरूप पिशाचिता अपनी तपस्यासे उपार्जित किया ॥ ३२ ॥

तस्यांदिगंतभ्रमणेप्रवृत्तायांमहानिलैः ॥ तत्रैवक्षाततनुःस्थूलागलिताशरदभ्रवत् ॥ ३३ ॥ कस्यचिद्दिव शांगस्यक्षीणस्यविपुलस्यच ॥ प्रविश्यांतर्वातसूचिर्भवत्यतिविषूचिका ॥ ३४ ॥ कस्यचित्तनुदेहस्य स्वस्थस्यसुधियोपिवा ॥ प्रविश्यजीवसूचित्वेभवत्यंतर्विषूचिका ॥ ३५ ॥ एवंकचित्तृप्यतिसाडुर्बुद्धि हृदयास्थिता ॥ क्वचिद्दुच्छेद्यतेपुण्यैर्मंत्रौषधितपःक्रमैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जब उस राक्षसीने दिगन्तोंमें भ्रमण करना आरम्भ किया तब उसकी वह पूर्व स्थूलशरीर शरद् ऋतुके मेघके समान महापवनोंसे वहांही गलगई ॥ ३३ ॥ अब वह किसी प्राणीके जो किसी कारणसे अस्वस्थ शरीर-वाला है, चाहे वह कृशांगहो वा स्थूलांगहो उसके भीतर प्रवेश करके वायुमें संलग्न लोहकी सूचीरूप जीव विषूचिका अर्थात् रोगरूप होजाती है ॥ ३४ ॥ और किसी सूक्ष्म और रोगरहित शरीरवाले चाहै वह सुबुद्धिभी हो उसके हृद-यमें जीव सूचीरूपसे प्रवेश करके दुर्बुद्धि होजाती है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कहीं तो वह दुर्बुद्धिके हृदयमें स्थित होके तृप्त होती है, और किसी पुरुषमें पवित्र मंत्र औषधि आदि द्वारा उसका निवारण किया जाता है ॥ ३६ ॥

आसीद्बहूनिवर्षाणिभ्रमणैकपरायणा ॥ देहद्वयेनगच्छंतीव्योम्निभूमितलेतथा ॥ ३७ ॥ रजस्तिरोहि ताभूमौहस्तेंगुलितिरोहिता ॥ प्रभातिरोहिताव्योम्निवस्त्रेसूत्रतिरोहिता ॥ ३८ ॥ अंतस्थस्नायुसरितिद्रु भंगेषांशुपांडुरे ॥ शुष्करेखासरित्खातेसूक्ष्मरेखाजरत्तृणे ॥ ३९ ॥ अर्थहीनेगतच्छायेशून्याउच्छ्वासका रिणी ॥ मक्षिकावातहरितेश्रीवृक्षपरिवर्जिते ॥ ४० ॥

अर्थ—इसप्रकार आकाशमें अथवा पृथिवी तलपर चलतेहुये भ्रमण मात्रमें परायण रहते उसको बहुत वर्ष बीत गये ॥ ३७ ॥ और वह पृथिवीपर धूलीके कणोंमें हाथोंमें अंगुलिमें आकाशमें तेजमें और वस्त्रोंके सूतमें तिरोहित अर्थात् छिपी रहती है ॥ ३८ ॥ तथा शरीरके भीतर नाडीरूप नदीमें व्यभिचार आदिसे घुसकर शरीरके अवयवों (भागों) में शूखेहुये हस्तपाद आदिकी रेखारूप नदी और गढोंमें और सूक्ष्म तथा रूखे रोमरूपी पुराने तृणोंमें छिपी रहती है ॥ ३९ ॥ तथा सौभाग्यलक्षण शून्य और कान्तिरहित मनुष्यमें शरीरके बाहरभी मक्षिका तथा रूखे दुर्गन्धि युक्त वायुसे दूषित हरीघास सहित स्थानोंमेंभी छिपी रहती है ॥ ४० ॥

स्थूलास्थिग्रंथिवलितेनित्यकंपस्फुरत्तमे ॥ अनात्मीयाच्छन्नीहारेऽशुद्धांशुककृतभ्रमे ॥ ४१ ॥ किणस्था ण्वंगविश्रांतमाक्षिकापिकवायसे ॥ रौक्षरूढस्वद्वातेविलोलांगुलिशाखिनी ॥ ४२ ॥ मालाभ्रलेखासंसा रेस्वांगुलिव्रणगर्त्तके ॥ स्कंदावश्यायपृषतिपदवल्मीकपर्वते ॥ ४३ ॥ कचत्याशुजलभ्रांतौनखाजगर कर्कशे ॥ कचित्कविसरद्भीतभीतयूककुपांथके ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्थूलपशु वा मनुष्योंके हड्डियोंके ग्रन्थि सहित स्थानोंमें महावायुसे अति कम्पायमान वृक्ष सहित दे-शोंमें अपनी इच्छाके विरुद्ध अपवित्र स्थानोंमें तथा अशुद्ध मलिन वस्त्र पहिनेहुये मनुष्योंके आनेजानेके स्थानोंमें नि-वास करतीहै ॥ ४१ ॥ वृक्षोंके कोटरोंमें, वा शाखा कटेहुये वृक्षोंमें जहां मधुकी मक्षिकायें और कोकिल काक आदि विश्राम करतेहैं, ऐसे स्थानोंमें और शीतादिकी अधिकतासे रूखा शब्द करनेवाला वायु, युक्त स्थानमें वह रहती है और सूखे वायुसे अंगुलिरूप शाखायें जिसकी मनुष्योंके आनेका निषेध करनेको हिलरहीहै ऐसे वृक्षसहित स्थानोंमें वह रहती है ॥ ४२ ॥ मालारूप होकर कुहिरोंके समूहके गिरनेके स्थानोंमें और जिनके अंगुलि आदि शरीरके भाग शडके गर्त (गढे) के तुल्य होगये हैं ऐसे मनुष्योंके निवास स्थानोंमें वह वसती है और जहांपर तुषारके बिन्दु टपक रहेहैंतथा अनेक पुरुषोंके पदोंसे अंकित देशोंमें दमिक आदिसे रचित ऊंचे स्थानोंमें वह रहतीहै ॥ ४३ ॥ तथा जहां स्थलमें जलकी भ्रान्ति प्रकाशमानहै जैसे मरु देशमें और नखहथियारवाले व्याघ्र भल्लुक तथा अजगर आदिसे कठिन तम जंगलमें अविज्ञात किसी स्थानमें होनेवाले अति भीरु तथा यूक (जूं) आदिसे निन्दित यात्री जिस स्थानमें एकट्ठे होतेहैं ऐसे स्थानोंमें सदा वह रहती है ॥ ४४ ॥

विरूपाशुष्कसंदष्टवीटिकापूतिपल्वले ॥ मध्यस्थलेखमार्गौघशीतश्वसनगोचरे ॥ ४५ ॥ ग्रस्तयूकान रौघास्रक्पूर्णस्रक्किनखास्यताम् ॥ दधतांगुष्ठपक्षेणकांतेसर्वत्रयायिनी ॥ ४६ ॥ नानाविरचनाचित्रपट पत्तनगामिनी ॥ गमागमपरिश्रांतातत्रात्यंतचिराध्वगा ॥ ४७ ॥ नगरानगरेव्यस्तसूत्रभांडैकभारिणी ॥ तप्तेकलेवरारण्येबलीवर्दापवर्त्तिनी ॥ ४८ ॥

अर्थ—कुरूप पिशाच आदिसे चर्वित शूखे ताम्बूलके बीडोंके समान पत्ते सहित दुर्गन्धि युक्त गढोंमें, नहर आदि जिसस्थानमें तथा जहांपर अनेक प्रकारके राही बटोही आके विश्रामके स्थानोंमें वह कर्कटी सूची छिपी रहतीहै ॥ ४५ ॥ यूकों (जूओं) के उदरोंमें स्थित मनुष्योंके रुधिरोंसे पूर्ण ओष्ठ प्रान्तधारी प्राणी पामर तथा नर आदि जो अपने नखोंकोही मुखरूपसे धारण करतेहैं ऐसे अंगुष्ट समूहोंसे पूर्ण देशोंमें तथा मनुष्य आदिसे शरीरोंमें और पूर्वोक्त भूमि आदि स्थानोंमें सर्वत्र वह जानेवालीथी ॥ ४६ ॥ और नानाप्रकार अश्व गज आदिसे विचित्र रचना युक्त नगरोंमें वह आया जाया करतीथी, और वहांपर दीर्घकालतक मार्गगामिनी, वह सदा आनेजानेसे थकित होगई॥४७॥ सूचीके स्वभावसे नगर २ तथा ग्राम २ में मार्गोंमें बिखरेहुये वस्त्रोंको, तथा मणि आदिको भरण करनेवाली, और ज्वर आदिसे सन्तप्त मनुष्योंके शरीररूपी जंगलमें बलीवर्दका कार्य्य करनेवाली अर्थात् जैसे हृष्टपुष्ट बैल खाई आदि उच्चस्थानोंको देखकर अपने सींगोंसे उनको विदार करही फिरताहै वैसाही वह मनुष्योंके शरीरको नष्ट करतीथी॥४८॥

गुप्तविश्रमणायैवमनाक्करपरिच्युता ॥ तंतुप्रोतामुखाकृष्टिःखिन्नाक्वापिविलीयते ॥ ४९ ॥ वेधनंकर्मसं श्लिष्टाकलितापिनसाकरोत् ॥ नहितीक्ष्णोबहिःकार्योनिजत्वंविजहातिचेत् ॥ ५० ॥ सायःसूचीमनः सूच्यावलितविजहारह ॥ दिक्ष्वाशेवशिलागुर्वीनावांगपलितासती ॥ ५१ ॥ विससारदिगंतेषुसांतः करणसत्तया ॥ तुषलेखेवपवनशक्त्याशसंसृतिरूपया ॥ ५२ ॥

अर्थ—और सूचीको कोई पुरुष सीनेके अर्थ ग्रहण करै और दीर्घ कालतक सीनेके पश्चात् यदि पटसूत्रमें खोस देतो खिन्न होजाती है, और थोडाभी उसके हस्तसे गिरी तो विश्रामके लिये कहीं छिप जाती है, यही दशा इसकीथी ॥४९॥ यद्यपि वह क्रूर स्वभाववालीथी तथापि अपने योग्य सीवन कर्ममें कौतुकसे संलग्न होती हुई, अन्यके वेध नहीं करतीथी, क्योंकि सूचि यदि अपना निज सीवनरूप स्वभाव नहीं प्रकट करती तो अपना क्रूर स्वभावभी बाहर नहीं प्रकट करसक्ती, क्योंकि वह क्रूरताभी उसका स्वभावही है ॥ ५० ॥ शरीरके वृद्ध होनेपरभी वह लोहकी सूची उस जीव सूचीके कारण सब दिशाओंमें ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे बडी भारी पाषाणकी शिला ॥ ५१ ॥ वह कर्कटी सूची अपने अन्तःकरणकी सत्तासे दिगन्तोंमें ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे तुष (भूसी) की लेखा भ्रमण शील वायुकी शक्तिसे ॥ ५२ ॥

मुखेनसूक्ष्मसूत्रांतंचरंतीवपरोंभितम् ॥ परपूरेघ्यमेनाशुजातेवहृदयान्विता ॥ ५३ ॥ परपूररसेनैवसू च्याहृत्सुविकासितम् ॥ अनारतपतत्सूक्ष्मसूत्रांतइवस्तंभिता ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णैरपिचिरक्षीणंपूर्यतेनि र्विचारणा ॥ दृष्टांतोत्रक्षणात्सूच्यापूरितोजर्जरःपटः ॥५५॥ सूत्रांशुनिर्गमेयोग्यंसूच्याहृदयमर्जितम् ॥ परपूरणयैवाशुतेजश्चकवितार्करुक् ॥ ५६ ॥

अर्थ—दूसरोंसे गुंथे हुये सूत्रों (सूतों) के सूक्ष्म अन्तभागको भक्षण करती हुई अतएव दूसरेसे प्रेरित उदर पूरणरूप उद्यमसे स्वस्थ हृदयसे संयुक्तके समान होगई ॥ ५३ ॥ क्योंकि सूची (कर्कटी राक्षसीरूपी) ने प्रथम अन्यके वधसे प्रेरित अपने उदर पूरणकी इच्छाहीसे तपसे क्लेशित अपने मनको प्रसन्न कियाथा, इसीकारणसे उसके मुखमें निरन्तर सूत्रप्रान्तके गिरनेपर अपना मनोरथ सिद्ध होनेसे निरुद्धके सदृश होजातीथी ॥ ५४ ॥ इसमें कुछभी सन्देह नहीं है कि दरिद्रताके कारणसे कृशता आदिसे पीडित जनको देखाके क्रूर स्वभाववालेभी उसको पाषाण करते हैं, इसमें यही दृष्टान्तहै कि फटे हुये जर्जर पटको सूची क्षणभरमेंही पूर्ण कर देती है ॥ ५५ ॥ और उस सूचीने अपना उदर इसलिये नहीं पूर्ण किया कि सूत्रके अग्रभागके प्रवेश करनेमें छिद्ररहित योग्यही अपना हृदय तपस्यासे अर्जित किया, और अभिज्ञतासे सूर्य्य कान्तिके समान अपना तेजभी उसने प्रकाशनार्थही प्राप्त कियाथा ॥ ५६ ॥

अकस्मात्तेनरूढेनक्षीणपूरणरूपिणी ॥ हृदयेराक्षसीसूचिःकर्मणातप्यतेचसा ॥ ५७ ॥ वेधंपूररयेणे वकरोतिस्वंप्रचारिता ॥ प्रकृतेननिजेनापिवेधायव्यवहारिता ॥ ५८ ॥ संचारयतिवस्त्रेषुसूत्रंचतुरवेध नात् ॥ आदीर्घवासनातंतुःशरीरेष्विवचेतनाम् ॥ ५९ ॥ संचार्यमाणवेधेनधावंतीवाक्षिपातने ॥ अद र्शितमुखाएवदुर्जनामर्मवेधिनः ॥ ६० ॥

अर्थ—अकस्मात् उस तपोरूप कर्मसे क्षीण उदरके प्रादुर्भाव उस सूचीरूप राक्षसीने पश्चात्ताप किया ॥ ५७ ॥ पश्चात्ताप करनेपरभी वह नदीके प्रवाहके वेगके सदृश निज राक्षसस्वभावसे और वर्तमान सूची स्वभावसेभी प्राणियोंके वेधनकेही आग्रहसे उसने प्रथम अपनेको नियुक्त कियाथा, इसीसे पीछे व्यवहारमें जब प्रवृत्त हुई तबभी वेधनरूप व्यापार करतीथी ॥ ५८ ॥ मरणकालमें प्राणियोंके कर्माऽनुसार प्रादुर्भूत अति दीर्घ वासनारूप तन्तु जैसे स्त्री आदिके शरीरोंमें चेतनाका संचार करताहै ऐसेही सूचीभी चतुर वेधनसे वस्त्रोंमें सूत्रोंका संचार करती है ॥ ५९ ॥ इसीकारण जब सूचीकार (दर्जी) वेधन द्वारा पटोंमें संचार करतेथे तब मुखको कपडेसे आच्छादन करके दौडतीथी,क्योंकि चोर पिशुन और कुटिल आदि दुर्जन पुरुष अपने मुखको न देखाते हुये मर्मवेधी जगत्में प्रसिद्धहैं६०॥

कंठवस्त्रदलप्रोतावेधाक्ष्णामुखमीक्षते ॥ कथमेताभिनद्मीतितीक्ष्णानामेतदीप्सितम् ॥ ६१ ॥ सममेव चकौशेयेक्षौमेचवसनेस्रुता ॥ जडःकइववानामगुणागुणमपेक्षते ॥ ६२ ॥ सादधानाततंसूत्रमंगुष्ठांगुलिपीडिता ॥ आंत्रतंतुमिवामांतमुद्गिरंतीनिरीक्षते ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णाप्यहृदयत्वेनसरसेष्वरसेष्ववित् ॥ सूत्रितापिपदार्थेषुविशत्यरसगामिनी ॥ ६४ ॥

अर्थ—और कभी कण्ठमें आसक्त उत्तरवस्त्र ओढनी चद्दर आदिमें खोस दी जाती है तो अपने छिद्ररूप नेत्रसे स्त्रियोंका मुख देखती है कि इनको मैं कैसे भेदन करूं क्योंकि मेरे समान तीक्ष्ण स्वभाववालोंको यह इष्ट है ॥ ६१ ॥ और वह कोमलता तथा चिक्कणतादि गुणयुक्त जो कौशेय (रेशमका) वस्त्र है उसमें तथा कठिनता और रूक्षतादि दोष सहित शाणव अतसीका वस्त्र है, उसमें दोनोंमें समान रूपसेही प्रविष्ट है क्योंकि ऐसा कौन जड है जो गुण और दोषका विचार करता है ॥ ६२ ॥ वह सूची सीनेवालीकी अंगुलीसे पीडित अपने मुखमें व्याप्त सूत्रको धारण किये हुये उस सूत्रको अपने भीतर न मानेके कारण ऐसे उगलती हुई देखती है जैसे प्राणियोंके आंत्र (अंतडी) को ॥ ६३ ॥ वह तीक्ष्ण स्वभाववाली सूत्रसे गुंथी हुई सरस तथा नीरस पदार्थोंमें हृदयके न होनेसे विशेष ज्ञानशून्य रहती है, इसीसे अपने सूची स्वभावके कारण रसके स्वादसेही नहीं प्रवेश करती है ॥ ६४ ॥

अगर्दतीमुखप्रोतासुतीक्ष्णापिचताविधीः ॥ सुवेधिताप्यहृद्याराजपुत्र्यविद्भुर्भगा ॥ ६५ ॥ विनापराधकारेणतीक्ष्णामरणमीहते ॥ वेदनाद्रोधितासूचीकर्मपाशेप्रलंबते ॥ ६६ ॥ शेतेकिंश्यामसैत्र्येवदूरेकरपरिच्युता ॥ स्वरूपसदृशंमित्रंकस्मैनामनरोचते ॥ ६७ ॥ मिश्रितामूढचित्तानांवृत्तिभिःप्राकृतेजने ॥ तिष्ठत्यात्मसमांकोहिसंगतिंत्यक्तुमिच्छति ॥ ६८ ॥

अर्थ—निष्ठुर भाषण आदि शब्द नहीं करती तौभी इसके मुखमें सूत्र भरा (ठूसा) रहता है, और भलीभांति वेधित होनेपरभी यह उदर छिद्रसे शून्यही है, इसी कारणसे यह भाग्यहीन पुत्रीके सदृश दुर्दशाग्रस्त है॥६५॥ और यह दुर्दशा इसकी योग्यही है क्योंकि यह अपने अपकारके बिनाही दूसरे प्राणियोंका मरण चाहती है इसी पापके कारणसे यह अपने बुद्धिके वशसे सूत्रसे रुकी हुई मानों अपने कर्मकी फांसीमें लटक रही है ॥ ६६ ॥ और दैववशसे कदाचित् सीनेवालेके हस्तसे गिरनेपर उसीके वा अन्यके गोदमें करस्पर्शके अयोग्य स्थानमें निन्दित श्यामवाले नीचेकी ओर झुके हुये रोमवालोंके साथ मानों मित्रताके कारणसे शयन करती है क्योंकि अपने स्वरूपके सदृश मित्र किसको नहीं अच्छा लगता ॥ ६७ ॥ इसी कारणसे वह मूढचित्तवालोंकी वृत्तियोंके साथ मिलकर रहती है क्योंकि पामर जनोंके समुदायमें अपने समान संगतिको त्याग करनेकी इच्छा कौन करता है ॥ ६८ ॥

भवत्ययस्कारवित्तौसंत्यज्यांतर्द्धिगामिनी ॥ भस्त्रावातैर्विचलितागगनादुत्पतोन्मुखी ॥ ६९ ॥ प्राणापानप्रवाहस्थहृत्पद्मांतरचारिणी ॥ दुःखशक्तिर्महाघोराजीवशक्तिरिवोदिता ॥ ७० ॥ समानवैपरीत्येनसमानसमगामिनी ॥ उदानविपरीतत्वादुदानसमगामिनी ॥ ७१ ॥ व्यानस्थाव्याधिजननीसर्वांगरसचारिणी ॥ हृत्कंठेशूलपवनेवैवर्ण्योन्मादकारिणी ॥ ७२ ॥

अर्थ—और कदाचित् लोहारोंके हस्तमें जब पडजातीहै तब गलाने वा तपानेके अर्थ जब अग्निपर रक्खा जातीहै उससमय भाथीके पवनोंसे चलायमान होनेपर उनको त्यागके अन्तर्धान दशाको प्राप्त होके आकाशकी ओर उडनेको अभिमुख होकर भागनेमें तत्पर होती है ॥ ६९ ॥ और इसके जीव सूचीरूपकी यह दशाहै कि प्राण और अपान वायुके प्रवाहोंमें स्थित होकर हृदय पद्मके द्वारा देहके भीतर संचार करतीहुई ऐसी प्रतीत होती है मानों महाभयंकर दुःख देनेवाली जीव सहित दुःखकी शक्तिही रूप धारण करके प्रकट हुई है ॥ ७० ॥ यद्यपि यह समान वायुके विपरीत है तथापि इसका स्वभाव समान वायुके साथ गमन करनेकाहै इसीप्रकार उदान वायुसे विरुद्ध व्यापार

करतीहुई उदान वायुकी सहगामिनी है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! यह दुष्टा जीव सूची व्यान वायुमें स्थित होके सम्पूर्ण देहमें संचार करती हुई अनेक रोगोंकी जननी (माता) होजाती है, और हृदयमें, कण्ठमें, तथा शूलरोग स्वरूप वायुमें प्रवेश करके शरीरकी विवर्णता (कुरूपता) तथा विक्षिप्तताको उत्पन्न करती है ॥ ७२ ॥

प्रायशोऽविकहस्तस्थासुप्तोर्णागंधकोटरे ॥ बालहस्तांगुलीतल्पवेधनैकविलासिनी ॥ ७३ ॥ पादप्रविष्टारुधिरपानोपार्जनविस्मिता ॥ तुष्यत्यतितरांगुच्छभोजनातुच्छभोजनैः ॥ ७४ ॥ शेतेकर्दमकोशस्था चिरकालमधोन्मुखी ॥ इच्छानुरूपमासाद्यकइवास्पदमुज्झति ॥ ७५ ॥ क्रौर्येणापहृतात्मानंदर्शयत्युपवेधनैः ॥ उत्सवादपिनीचानांकलहोपिसुखायते ॥ ७६ ॥

अर्थ—और लोह सूचीरूप यह जब कम्बल आदि सीनेके समय गडेरियोंके हस्तमें पड जाती है तो कभी किंचित् उनोंकेही कोटरमें सोजाती है, और कभी बालकके हस्त वा अंगुली आदिरूप अपनी शय्याके छेदनमेंही विलास करती है ॥ ७३ ॥ पादमें जब यह प्रवेश करती है तो रुधिरपानसे विस्मित होती है, और मालाओंके गूंथनें समयमें गुच्छोंके तुच्छ भोजनसेही सन्तुष्ट होजाती है ॥७४॥ और पुष्पोंके रजके कर्दम सहित मूलाधार कोशमें चिरकालतक स्थित होकर नीचेके ओर मुख किये शयन करती है क्योंकि अपनी इच्छा अनुसार स्थान पाके कौन छोडना चाहता है ॥ ७५ ॥ दूसरोंके प्राणके अपहरण पर्य्यन्त वेधनोंसे अति क्रूरता पूर्वक अपना कलंकित स्वरूप दर्शाती है, क्योंकि जो नीच दूसरोंको पीडा देनेमेंभी असमर्थ हैं उनको दूसरोंके साथ कलह करनेमेंही उत्सवसेभी अधिक सुख भान होता है, और यदि वे नीच दूसरोंके प्राण हरण करने पावे तो फिर उनके सुखकी क्या सीमा है ॥ ७६ ॥

कपर्दकार्थलाभेनकृपणोबहुमन्यते ॥ दुरुच्छेदाहिभूतानामहंकारचमत्कृतिः ॥ ७७ ॥ सूचिकायुगमलभ्येनमोहितेनात्मनानृणाम् ॥ मृतिमाशंकतेचिन्नास्वार्थेनोदेतिमूढता ॥ ७८ ॥ वस्त्रतंतुविभेदेनपरमारणमाशुमे ॥ इदंसंपद्यतइतिभवत्यंतर्हिनिर्मला ॥७९॥ स्थापितामलमादत्तेयथामृद्वर्षणंविना ॥ परापराधविरहाद्व्याधिस्तस्याःप्रवर्त्तते ॥ ८० ॥

अर्थ—अति अल्प रक्त कणकेही स्वादके लोभसे दूसरोंके मारनेमें यह प्रवृत्त होती है, क्योंकि कृपण जनक पर्दिका (कौडी) के अर्द्धभागके लाभकोभी बहुत कुछ समझता है और राक्षसादि कुलमें उत्पन्न प्राणियोंके अहंकारकी चमत्कृतिका नाश करना तो अति कठिन है ॥ ७७ ॥ लोहकी और जीवकी दो सूचीरूप अपने शरीरके लाभसे मोहित (गर्वित) होके वह सदा मनुष्योंके मरणकीही चेष्टा करती है, क्योंकि मूढ जनोंको अपने आवश्यक स्वार्थमें मूढता न उदय होतो इसमें आश्चर्य्यही है ॥ ७८ ॥ वस्त्रोंके शीघ्र भेदन रूप अभ्याससे दूसरोंका मारणरूप कार्य्य मेरा शीघ्र सिद्ध होता है इस कारणसे वह अपने चित्तमें प्रसन्न होती है ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! जैसे लोकमें प्रसिद्ध सूची यदि मट्टीसे मली न जाय और योंहि रक्खी है तो वह मलिन होजाती है ऐसेही यह जीवसूची यदि दूसरोंका मारणरूप अपराध न करे तो इसको रोग होजाता है ॥ ८० ॥

सूक्ष्मादृश्याचैवदात्रीक्षणाद्विस्मृतिमेतिसा ॥ तीक्ष्णभेदकरीक्रूरासूचीचेष्टेवदैविकी ॥ ८१ ॥ तंतुवेधनमात्रेणहतोन्यइतितोषिता ॥ दुर्जनोयेनतेनैवनाशितेनैतिहृष्टताम् ॥ ८२ ॥ पंकेमज्जतियातिस्वंविहरतिव्योमानिलैर्दिक्तटेशेतेपांसुषुभूतलेष्विववनेपट्टेगृहेऽतःपुरे ॥ हस्तेश्रोत्रसरोरुहेथमृद्वनिस्वेच्छोर्णिकाखंडकेरंध्रेकाष्ठमृदांचमातिहृदयेद्रव्यात्मशक्त्यैवसा ॥ ८३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्च सहाजगाम ॥ ८४ ॥ ॥ षष्ठंदिनम् ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूचिव्यवहारवर्णनं नाम सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—यह सूक्ष्म अदृश्यरूपसे दूसरोंके शरीरोंका खण्डन करती है और क्षणमें उसे विस्मृत होजाती है और पुनः क्रूर जीवसूची होके तीक्ष्णतासे ऐसा भेदन करती है जैसे उत्पातसे उत्पन्न दैवकी चेष्टा ॥८१॥ मर्मस्थानमें स्थित अनाच्छादनभूत सूत्रमात्रके छेदनरूप अपनी निपुणतासे यह समझती है कि दूसरा मारागया क्योंकि दुर्जन प्राणी जिस किसीके नाशमात्रसे प्रसन्नहो जाताहै ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! यह सूची गर्त (गढे) आदिके कीचडोंमें निमग्न होती है आकाश वायुके साथ दिशाओंके तटोंमें बिहार करती है, भूतलपर तथा बनोंमें धूलियोंमें ऐसे शयन करतीहै जैसे अन्तःपुरके गृहोंमें शय्याके कोमल बस्त्रोंपर, मनुष्योंके हस्तोंमें, श्रोत्ररूप कमलोंमें, तथा अपनी इच्छासे

भेडाके रोमकी राशियोंपर शयन करतीहै, तथा काष्ठ मृत्तिका और गृहकी भित्ति आदिके अल्प छिद्रमेंही ऐसे समा जाती है जैसे मणिमन्त्रआदि द्रव्योंकी शक्तिसे मायावी योगी अपनी इच्छासे चाहे जहां विहार करताहै वही दशा इस जीवसूचीकीभी है ॥ ८३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—श्रीवसिष्ठ मुनिके इतना कहनेपर दिनका अन्त होगया और सूर्य्य भगवान् अस्ताचलको गये और सभाभी सायंकालके सन्ध्या स्नानादि विधि करनेको बिदाहुई और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ नमस्कारपूर्वक पुनः सब सभा एकत्रित होगई ॥ ८४ ॥ षष्ठोदिवसः (षष्ठदिन)

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सूचीऽव्यवहारवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अपने पूर्व देहको स्मरण करतीहुई सूचीदशाको प्राप्त कर्कटी राक्षसीका पश्चात्ताप तथा विलाप विस्तारसे इस ७१ वे सर्गमें वर्णन किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथस।बहुकालेनकर्कटीनामराक्षसी ॥ सर्वेषांनरमांसानांनतृप्तिमुपाययौ ॥ १ ॥ पूर्वेणैवकिलाह्वासातृप्तारुधिरबिंदुना ॥ सूच्याःकिमिवमात्यंतस्तृष्णासूचीसुदुर्भरा ॥ २ ॥ चिंतयामासहाकष्टंकिमहंसूचितांगता ॥ सूक्ष्मास्मिहतशक्तिश्चअपिग्रासोनमातिच ॥ ३ ॥ क्वमेतानिविशालानिगतान्यंगानिदुर्धियः ॥ कालमेघविशालानिवनेशीर्णानिपर्णवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके पश्चात् बहुतकालतक वह कर्कटी राक्षसी सब प्रकारके मनुष्योंका मांस भोजन करनेपरभी तृप्तिको नहीं प्राप्त हुई ॥ १ ॥ वह तो पूर्वदिनसेही रुधिरके बिन्दुमात्रसे तृप्त होगईथी, क्योंकि सूचीके उदरमें क्या समा सकताहै परन्तु तृष्णारूप सूचीका तृप्त होना अति कठिनथा ॥ २ ॥ उसने अपने चित्तमें शोचा कि हाः बडे कष्टकी बातहै, मैं सूचीरूपको क्यों प्राप्तहुई, मैं अति सूक्ष्म और शक्तिहीन हुं मेरे भीतर एक ग्रासभी नहीं समासकता ॥ ३ ॥ हा ! मुझ दुर्बुद्धिके वे विशाल अंग कहां गये, कृष्ण मेघके समान विशाल वे सब बनमें गिरेहुये पत्तोंके समान नष्ट होगये ॥ ४ ॥

मय्यस्यांमंदभाग्यायांमनागपिनमातिहि ॥ स्वादुमांसरसग्रासोवसावासितआसयन् ॥ ५ ॥ पंकांतर्विनिमज्जामिपतामिधरणीतले ॥ हतास्मिजनपादैर्वैःशुक्रेणमलिनास्मिच ॥ ६ ॥ हाहताहमनाथाहमनाश्वासानिरास्पदा ॥ दुःखाद्दुःखेनिमज्जामिसंकटात्संकटेपिच ॥ ७ ॥ नसखीनचमेदासीनमेमातानमेपिता ॥ नमेबंधुर्नमेभृत्यानमेभ्रातानमेसुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—हा ! स्वादुमांसका सरस ग्रास मुखमें प्रवेश करता हुआ इस दशामें प्राप्त मुझ मन्दभागिनीमें कुछभी नहीं समाता ॥ ५ ॥ मैं किसीके चरणमें निमग्न होती हुं, और पृथिवी तलपर गिरतीहुं, हा ! मैं मनुष्योंके चरण समूहोंसे मारीगई हुं, और प्राणियोंके शुक्र (वीर्य्य) से मलिनभी होगईहुं ॥ ६ ॥ हा ! मैं मारीगई हा ! मैं सर्वथा अनाथहुं, मुझे धैर्य्यदाता कोई मित्र वा बन्धु नहीं है, मैं आश्रयस्थानसे रहितहुं दुःखसेभी अधिक दुःखमें मैं डूबरहीहुं, और प्राणसंकटसेभी मुझे अति संकटहैं ॥ ७ ॥ मेरे न कोई सखी है, न दासीहै, न माताहै, न पिताहै, न मेरे कोई बन्धुहै, न कोई सेवकहै, और न कोई भ्राता वा पुत्रहै ॥ ८ ॥

नमेदेहोनमेस्थानंनमेकश्चित्समाश्रयः ॥ नैकस्थानेसमावासोभ्राम्यामिवनपर्णवत् ॥ ९ ॥ आपदांधुरितिष्ठामिनिविष्टास्मिसुदारुणे ॥ अभावमपिवांछाभिसोपिसंपद्यतेनमे ॥ १० ॥ स्वकोदेहःपरित्यक्तोमूढचेतनयामया ॥ काचबुद्ध्याविमूढेनहस्तांचिंतामणिर्यथा ॥ ११ ॥ आपतद्भिमनोमोहंपूर्वमापत्प्रयच्छति ॥ पश्चादनर्थविस्ताररूपेणपरिजृंभते ॥ १२ ॥

अर्थ—न तो मेरे शरीरहै, न स्थानहै, और न कोई शरणका स्थानहै, और न कभी एक स्थानमें निवास है, किन्तु पवनके समान इधर उधर भ्रमती रहतीहुं ॥ ९ ॥ आपत्तिकी पराकाष्ठामें मैं इससमय स्थितहुं, और महासंकटमें प्रविष्टहुं, इससमय मैं अपना मरण चाहतीहुं, परन्तु चाहा हुआ वहभी नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥ मुझ मूढबुद्धिने अपना निज शरीर ऐसा त्याग दिया जैसे कोई मूढजन काचके अर्थ अपने हस्तसे चिन्तामणिको ॥ ११ ॥ जब मनमें अविवेक

वा अज्ञान प्राप्त होताहै तब सबसे प्रथम उसके मनमें दुर्बुद्धिता आती है और पीछे वही दुर्बुद्धियुक्त मन अनेक अनर्थोंके विस्तार धारण करताहै ॥ १२ ॥

धूमेषुपरितिष्ठामिमार्गेविलुलितास्मिच ॥ तृणेषुप्रेषितास्म्यंतर्हामेदुःखपरंपरा ॥ १३ ॥ परप्रेषकरीनित्यंपरसंचारचारिणी ॥ परंकार्पण्यमायाताजातापरवशास्म्यलम् ॥ १४ ॥ भ्रांतिंकरोमितुच्छेचसापिवेधनरूपिणी ॥ अहोममाल्पभाग्यायादौर्भाग्यमपिदुर्भगम् ॥ १५ ॥ उत्थितःस्फारवेतालःकुर्वत्याःशांतिमद्यमे ॥ सर्वनाशोवदातेनप्रवृत्तायाममोदितः ॥ १६ ॥

अर्थ—देखो कभी जब कोई मुझे सूत्रमें पो देताहै तो धूमके स्थानमें बंधीहुई धूमोंके ऊपर स्थित रहतीहुं कभी मार्गमें फेंकी हुई गधे ऊंट आदिके चरणोंसे मर्दित की जातीहुं, और कभी कोई नलिका आदि तृणोंमें डालकर मुझे अन्धकारयुक्त स्थानोंमें प्रविष्ट कर देता है, हा ! मेरे दुःखोंकी परम्परा (श्रेणी) देखो ॥ १३ ॥ मैं सदा दूसरेकी आज्ञाकारिणी रहतीहुं, और दूसरोंके चलानेसे चलतीहुं, हा ! मैं परम दीनताको प्राप्त होगई, हा ! मैंतो परवश होगई ॥ १४ ॥ हाः तुच्छ अन्तर्गत रुधिर आदिके आस्वादकी मैं अभिलाषा करतीहुं, और वह मेरी अभिलाषाभी केवल दूसरोंके छेदन वेधनरूप फल देती है न कि कुछ स्वाद, क्योंकि मैं उदर तथा जिव्हासे रहितहुं अहो मुझ मन्दभागिनीका दौर्भाग्यभी अति नष्ट है ॥ १५ ॥ वेतालकी शान्ति करते हुये महान् वेताल प्रगट होगया, यह लोकदृष्टान्त मेरेपर घटगया, देखो शुद्ध तपस्यासे मेरा सर्व नाश उपस्थित होगया ॥ १६ ॥

किंमंदयामयाताद्दक्संत्यक्तंतन्महावपुः ॥ यथानाशेनवाभाव्यंतथोदेत्यशुभामतिः ॥ १७ ॥ मामवांतरनिर्मग्नांसूक्ष्मांकीटतनोरपि ॥ उद्धरिष्यतिकोनामपांसुराशिभिरावृताम् ॥ १८ ॥ विविक्तमनसांबुद्धौकस्फुरंतिहताशयाः ॥ ग्राममार्गतृणानीवगिरिरूपरिवासिनाम् ॥ १९ ॥ स्थितायाअज्ञतांभोधौकमाभ्युदयोभवेत् ॥ अंधस्योदेतिप्राकाश्यंनखद्योतानुसेविनः ॥ २० ॥

अर्थ—मैं मन्दभागिनीने उस अपने विशाल शरीरको क्यों त्याग दिया अथवा जिसप्रकार अवश्य नाश होता है वैसीही अशुभ मति उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥ कदाचित् दैवगतिसे मैं मार्गमें गिरजाऊं, और धूलिमें डूब जाऊं, तो धूलिके राशिसे ढकी हुई सूक्ष्म कीटके सदृश शरीरवाली मुझे कौन वहांसे निकाल सकता है, क्योंकि ऐसी लोककी कहावत है ॥ नापूजयद्गणेशानंसूचीसृष्टौसविश्वसृट् ॥ नापसूत्रांततःसूचींनष्टांविन्दतिमानवः ॥ ब्रह्माजीने सूचीकी रचना समयमें गणेशजीकी पूजा नहीं की इसीलिये सूत्ररहित नष्ट सूची कोई मनुष्य नहीं पाता ॥ १८ ॥ कदाचित् कहो कि योगी महात्मा अपनी सूक्ष्मदर्शितासे तुझे पा जायगे सोभी नहीं क्योंकि एकान्तसेवी महात्माओंकी बुद्धिमें दुष्ट जीव कब आसकते हैं, जैसे ग्राम वा मार्गके तृणपर्वनके ऊपर रहनेवालोंके चित्तमें नहीं आते ॥ १९ ॥ मैं जो अज्ञताके समुद्रमें डूबी हुईहुं, उसका अभ्युदय कब होगा क्योंकि खद्योतसेवी अन्धेको प्रकाशताका उदय कहां ॥ २० ॥

अतःकियंतंनोजानेकालमापालितापदम् ॥ मयापच्छ्वभ्रगर्तेषुलुठितव्यंहतेहया ॥ २१ ॥ कदास्यामंजनमहाशैलपुत्रकरूपिणी ॥ द्यावापृथिव्योर्वैधुर्येस्तंभतामनुतिष्ठती ॥ २२ ॥ मेघमालासमभुजाचिरंविद्युत्पदेक्षणा ॥ नीहारजालवसनाप्रोच्चकेशमितांबरा ॥ २३ ॥ लंबोदरभ्रसंदर्शप्रनर्तितशिखंडिनी ॥ लंबलोलस्तनीश्यामादेहवातद्रवत्स्तनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये मैं नहीं जानती कि कितने कालतक विपत्तिसे बंधी हुई आपत्तियोंके गर्तों (गढों) में मुझे लुढकना पडेगा ॥ २१ ॥ हाः वह समय कब आवैगा कि, आकाश तथा पृथिवीके नाश समयमें प्राणियोंके संहारसे स्तम्भ (खम्भे) के स्थानमें कार्य्य देती हुई अंजनके महापर्वतके शिखराकाररूप धारण करूंगी ॥ २२ ॥ और मेघमालाके सदृश भुजावाली विद्युत्के समान चंचल नेत्रधारिणी नीहारके समूहरूपी वस्त्रवाली बडे ऊंचे लम्बे केशोंसे आकाशको भी नापनेवाली लंबमें होजाऊंगा ॥ २३ ॥ मान अपने उदररूपी मेघके देखानेसे मयूरोंको नचानेवाली, लंबे तथा चंचल स्तनको धारण करनेवाली, श्यामवर्ण, और श्वासके पवनसे स्तनोंके कंपानेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २४ ॥

हासभस्मच्छटाच्छन्नसूर्यमंडलरोधिनी ॥ कृतांतग्रसनोद्युक्तकृत्यैकाकृतिधारिणी ॥ २५ ॥ कृशानूल्लखलद्दृशासूर्यस्त्रग्दामहारिणी ॥ पर्वतात्पर्वतेशृंगेन्यस्यपादौविहारिणी ॥ २६ ॥ कदामेस्याद्गुरुश्वभ्राभास्फुरंतन्महोदरम् ॥ कदामेस्याच्छरन्मेघमेदुरानखरावली ॥ २७ ॥ कदामेस्यान्महारक्षोविद्रावणकरंस्मितम् ॥ स्वस्फिग्वाद्यैररण्यान्यांकदानृत्येयमुन्मदा ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा अपने उच्च हाससे जले हुये धूलिपटलोंसे आच्छादित सूर्य्यमण्डलकोभी रोकनेमें समर्थ और कालके समान सब प्राणिके ग्रासरूप एक मुख्य कृत्यसहित भयंकर आकार धारण करनेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २५ ॥

अग्निके समान देदीप्यमान उलूखल (ओखरी) के सदृश गहिरे नेत्रवाली, सूर्य्यकी मालाकी हारिणी, और एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर पाद स्थापन करके चारोंओर विहार करनेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २६ ॥ हाः मेरा वह बडे गढेके समान महान् प्रकाशशील उदर कब होगा, और मेरी वह शरत्कालके मेघके समान अति चिक्कणनखोंकी पंक्ति कब होगी ॥ २७ ॥ और मेरा वह बडे २ राक्षसोंके हृदयको विद्रावण करनेवाला मन्दस्मित (मुस्किरान) कब होगा, और नितम्बोंके बजानेसे महाअरण्यमें प्रसन्न होके मैं नृत्य कब करूंगी ॥ २८ ॥

वसासवमहाकुंभैर्मृतमांसास्थिसंचयैः ॥ कदाकरिष्येविरतंमेद्रुरोदरपूरणम् ॥ २९ ॥ कदापीतमहालोकरुधिराक्षीबतांगता ॥ भवेयंमुदिताहृष्टामुद्रितानिद्रयाततः ॥३०॥ मयैवकुतपोवह्नौतदग्धंभासुरंवपुः॥ भस्मत्वंकनकेनेवसूचित्वमुररीकृतम् ॥ ३१ ॥ क्वकिलांजनशैलाभंवपुर्भरितदिक्तटम् ॥ क्वप्राचिकाखुरसमंसूचित्वंतृणपेलवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ--चर्बीके मद्यसे भरे हुये बडे २ घडोंसे तथा मृतकोंके मांस और अस्थिके संचयोंसे निरन्तर अपने स्निग्ध उदरको पूर्ण कब करूंगी ॥ २९ ॥ बडे २ लोकोंके रुधिरपानसे मैं विक्षिप्त कब होऊंगी, और उस मदोन्मत्ततासे प्रसन्न तथा गर्वित होके निद्रायुक्त कब होजाऊंगी ॥ ३० ॥ मैंनेही उस दुःखदायी फल देनेवाले तपरूप अग्निमें अपने प्रकाशमान शरीरको भस्म करदिया जैसे सुवर्ण अपने स्वरूपको नष्ट करके भस्मरूप धारण करै ऐसी ही मैने स्वर्णसमान अपने रूपको नष्ट करके लोहमय सूचीरूपको कहां वह दिशाओंके तटोंको पूर्ण करनेवाला अंजनके पर्वतके समान मेरा शरीर! और कहां तृणके तुल्य कोमल और मकरीके पादाग्रके समान सूक्ष्म यह सूचीरूप ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

त्यजत्याशुमृदित्यज्ञःप्राप्यापिकनकांगदम् ॥ मयासूचित्वलाभेनसंत्यक्तंभासुरंवपुः ॥ ३३ ॥ हामहोदरविंध्याद्रिसनीहारगुहोपम ॥ अद्यनांतंकरोषित्वंकथंसिंहेनहस्तिनाम् ॥ ३४ ॥ हाभुजौभरनिर्भग्नशिखरौशशभृन्नखैः ॥ पुरोडाशधियाचंद्रंकथमद्यनबाधतः ॥ ३५ ॥ हावक्षःकाचवैधुर्यगिरींद्रतटसुंदर ॥ नाद्यसिंहादियौकंतद्धुतंरोमवनंतथा ॥ ३६ ॥

अर्थ--अज्ञानी जीव सुवर्णका अंगद बिजायठ पाकरभी यह मृत्तिकाहै ऐसा समझके इसप्रकार त्याग देताहै जैसे मैने सूचीरूपके लोभसे अपने उस प्रकाशमान विशाल शरीरको त्यागदिया ॥ ३३ ॥ हा! हे विन्ध्याचलकी नीहारसहित गुहाके तुल्य विशाल उदर आज तुम सिंहके समान वनोंमें हस्तियोंका अन्त क्यों नहीं करते ॥ ३४ ॥ हा! अपने भारसे पर्वतोंके शिखरोंको तोडनेमें विशाल दोनों भुज! आज तुम पुरोडाश (यज्ञमें देवभोज्य अन्न) की बुद्धिसे चन्द्रमाको बाधा क्यों नहीं पहुंचाते ॥ ३५ ॥ हा! काचमणियोंकें तूटनेपरभी सुमेरुके तटके समान मनोहर विशाल मेरे वक्षस्थल! आज तुम सिंहोंको भक्षण करनेके स्वभावसहित यूक (जूं) के समूहोंमें अपने रोमरूपी पवनमें क्यों नहीं धारण किया ॥ ३६ ॥

हानेत्रेकृष्णरजनीरजःशुष्केंधनैजने ॥ कस्मान्नमेभूषयतोदृग्ज्वालामालयादिशः ॥ ३७ ॥ हास्कंधबंधोनष्टोसिनिपिद्धोसिमहीतले ॥ कालेनविनिपिष्टोसिनिघृष्टोसिशिलातले ॥ ३८ ॥ हामुखेंदोतपसिकिंनाद्यत्वंममरश्मिभिः ॥ कल्पांतदावसंशांतचंद्रबिंबमनोहर ॥ ३९ ॥ हाहाहस्तौमहाकारौतावद्यक्वगतौमम ॥ संपन्नास्मिमहासूचिर्मक्षिकाखुरदोलिता ॥ ४० ॥ हाभगोग्रकरंजाढ्यसत्कंदश्वभ्रशोभन ॥ विंध्याद्रेरण्यविपुलनितंबामलबिंबक ॥ ४१ ॥ क्वाकारोंबरपूरकःक्वचनवंतुच्छात्मसूचीवपूरोदोरंध्रसमंक्वास्यकुहरंक्वेदंचसूचीमुखम् ॥ क्वग्रासोबहुमांसभारबहुलःक्वाल्पिबद्भुनाभोजनंसूक्ष्मास्म्येतदहोमयैवरचितंस्वात्मक्षयेनाटकम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचिकापरिदेवनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अर्थ--हा! कृष्णपक्षकी रात्रिके अन्धकाररूपी शुष्क इन्धनको जलानेवाले मेरे दोनों नेत्र! तुम अपने दर्शनरूपी ज्वालाकी मालाओंसे दिशाओंको क्यों नहीं भूषित करते ॥ ३७ ॥ हा! मेरे स्कन्धरूपी प्रियबन्धो मैने तुमारा त्याग करदिया! तुम पृथिवीतलपर नष्ट होगये, तुम काल पाके पर्वतोंकी शिलामें घिसके चूर्ण होगये ॥ ३८ ॥ हा! कल्पान्तकी दावाग्निसे दग्ध चन्द्रमाके बिम्बके समान मनोहर मेरे मुखरूप चन्द्र! आज तुम मेरे शरीरके किरणोंसे देदीप्यमान क्यों नहीं होते ॥ ३९ ॥ हा! हा हे मेरे महान् आकारवाले वे दोनों हस्त आज तुम कहां चलेगये हा!

मैं तो मक्षिकाके खुरसेभी संचालित महासूचीरूप होगई ॥ ४० ॥ हा ! उग्र करंज (गंजे) से पूर्ण विद्यमान कन्दके सदृश उत्तम गर्तसे शोभायमान हे मेरे भग, विन्ध्याचलके श्रेष्ठ तटके समान तथा निर्मल बिम्बफलके सदृश हे मेरे नितम्ब ! अब तुम कहां गये ॥ ४१ ॥ हा ! कहां वह आकाशको पूर्ण करनेवाला मेरे शरीरका आकार ! और कहां यह नूतन तुच्छ सूचीका निज शरीर ! कहां तो वह आकाशके अन्तरालको पूर्ण करनेवाला मुखका महान् गर्त ! और कहां यह सूचीका मुख ! हा ! कहां तो अनेक प्रकारके भारोंके विपुल आहार ! और कहां यह जलबिन्दुसे भोजन ! अहो मैं कैसे सूक्ष्म होगई हा ! यह मैंनेहीं अपने आत्माके नाशके लिये नाठकर चाहे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचिकापरिदेवनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस ७२ के सर्गमें उस कर्कटीराक्षसीका हिमालयपर पुनः उग्रतपका वर्णन तथा उससे विस्मयको प्राप्त इंद्रको उसके निश्चयकाभी वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सूचीसासंभवद्दाणीचिंतयित्वेत्यकंपनम् ॥ पुनस्तद्देहलाभायभवाम्याशुतपस्विनी ॥ १ ॥ इतिसंचिंत्यचित्तस्थंसंहृत्यजनमारणम् ॥ तदेवहिमवच्छृंगंजगामतपसेस्थितम् ॥ २ ॥ अपश्यदेवसूचित्वंसातन्मानसमात्मनि ॥ प्राणवातात्मिकाप्राणैःप्रविश्यहतमानसम् ॥ ३ ॥ अथात्मन्येवसूचित्वंपश्यत्येवमनोमयम् ॥ प्राणवातशरीरासौजगामहिमवच्छिरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके पश्चात् उस कर्कटीसूचीने एकाग्रचित्त और मौन होकर यह चिंतन किया कि पुनः उस अपने पूर्वदेहके लाभके अर्थ मैं तपस्विनी होऊं ॥ १ ॥ ऐसा विचार करके उसने हृदयमें स्थित मनुष्यके मारणके व्यापारका निरोध करके उसी पूर्वकी स्थितिके हिमाचलके शिखरपर तपके लिये गई ॥ २ ॥ प्रथम उसने अपने आत्मामें सूचीरूपको देखा और पुनः प्राणवायुरूप जीवसूचीने अपने उपाधिभूत प्राणोंसे मनसे कल्पित लोहमय सूचीमें प्रवेश करके ॥ ३ ॥ अनन्तर जीवसूची आत्मामें उस लोहमय सूचीरूपको देखती हुई क्रिया प्रधान प्राणवायुरूप शरीर होकर हिमवानके शिखरपर गई ॥ ४ ॥

दृढदावानलेतत्रसर्वभूतविवर्जिते ॥ महामहाशिलाभाभारूक्षेर्वाशुविधूसरे ॥ ५ ॥ तस्थावभ्युदितेवासौनिस्तृणेविपुलेस्थले ॥ मरावकस्मात्संजातशुष्कातृणशिखायथा ॥ ६ ॥ सुसूक्ष्मस्यैकपादस्यसार्द्धेनैवाश्रितोर्वरा ॥ स्वसंविदेकपादात्मतपःकर्तुंप्रचक्रमे ॥ ७ ॥ सूक्ष्मपादतलेनैषावसुधरेणुसंकटी ॥ निवार्यत्रिपदींकृत्स्नायत्नेनोर्ध्वमुखीस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दृढ दावानलसे संयुक्त सब प्राणियोंसे वर्जित बडीभारी इन्द्रनील शिलाके समान कान्तिवाले घर्म सहित वायुसे रुक्ष तथा धूलियोंसे धूसर (मलिन) वर्ण उस हिमालयके शिखरपर ॥ ५ ॥ ऐसे स्थित हुई जैसे तृण रहित विशाल मरुस्थलमें शूखी हुई तृणकी शिखा अकस्मात् पुनः उसी स्थानमें अंकुरित हो ॥ ६ ॥ उस सूचीके सूक्ष्म पादके अर्द्धभागके लेशसे पृथिवीका आश्रय लेके अपने आत्मासे कल्पित (क्योंकि दोपाद मनुष्यादिमेंही होते हैं) दो भागके मध्यमें आधे अग्रभागको छोडके आधे अग्रभागके लेशसे स्थित होके उसने तप करना आरम्भ किया ॥ ७ ॥ सूक्ष्म पादके तलसे वसुधा (पृथिवी) के रेणुकोभी संकट पहुंचाती हुई अर्थात् कठिणतासे स्पर्श करती हुई सन्मुखके जो दो भागहैं उनमें तथा जिस अंशसे स्थित है उस भागमें फैली हुई दृष्टिको सम्पूर्ण विषयोंसे यत्नसे रोकर ऊपर मुख करके खडी हुई ॥ ८ ॥

कृष्णत्वाद्धिंस्त्रतातैक्ष्ण्यव्याप्यास्यपवनाशनैः ॥ यत्नात्पदंनिबध्नंती रेण्वणूपलसंकटे ॥ ९ ॥ अरण्येक्षुभिताऽद्भुतशालोकार्थमुत्थिताम् ॥ पुच्छाकोटिस्थितांवातालोलामनुचकारसा ॥ १० ॥ मुखरंध्रविनिष्क्रांतातस्याभास्करदीधितिः ॥ सखीबभूवसूच्याभापश्चाद्भागैकरक्षिणी ॥ ११ ॥ क्षुद्रेपिस्वजनेभूतेप्येतिवत्सलतांजनः ॥ दीधित्यापिसखीवृत्तंसूच्यांश्रुचितयाभृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कृष्णवर्ण लोहके कारणसे राक्षसी हिंसक स्वभावसे अग्रभागकी तीक्ष्णतासे तथा सर्वांगव्यापी मुखसे वायुपानके कारणसे वह सूची धुलिपरमाणु तथा पाषाणके संकटमेंभी यत्नसे अपने पदको स्थिरतासे बांधती हुई वहां

पर स्थित रही ॥ ९ ॥ वनमें क्षुभित तथा पथिकको दूरसे देखनेके लिये उत्थित (उठी हुई) तथा अग्रभागतक तृणादिके अग्रभागमें स्थित और पथिकों (राहिओं) के व्यामोहके लिये वायुसेभी अकम्पायमान दृष्टिको उसने तृणजलौकाका अनुकरण किया ॥१०॥ उसके मुखके छिद्रसे निकली हुई सूर्य्यके किरणके सदृश सूचीके समान आकार धारण किये हुये तपस्याभी उसके पश्चाद्भागकी रक्षा करनेवाली सखीरूप होगई ॥ ११ ॥ क्षुद्रभी जब अपना मित्र होजाताहै तो प्राणीजन उसके ऊपर दया करते हैं देखो तपस्यानेभी सूचीके प्राणकी चिन्तासे उसके सखीका कार्य किया ॥१२॥

बभूवतस्याःस्वच्छायाद्वितीयातापसीसखी ॥ एवंसूचीवमलिनातयापश्चात्कृतेवसा ॥ १३ ॥ सूच्यात यासुनिर्गत्यसुपाताक्ष्यास्मकूणितैः ॥ पश्चात्सख्याभयासाधुरन्योन्याचारकेवलम् ॥ १४ ॥ सूच्यभिप्रेक्षितेयातामतिंद्रुमलतादयः ॥ महातपस्विनींसूचींदृष्ट्वानोत्कंठयंतिके ॥ १५ ॥ स्थिरबद्धपदामेनां स्वमनोवृत्तिमुत्थिताम् ॥ अनिलंभोजयांचक्रुर्मुखनिर्गतभांकृतैः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस सूचीकी छाया उसकी दूसरी सखी प्राप्त हुई इस सूचीके समान मलिन छायाको उसने अपने पश्चाद् भागकी रक्षिका मानों रचलिया ॥ १३ ॥ वह पीछेकी रक्षिका छाया सूची और सूर्य्यकी किरणरूपी सूची दोनोंने द्वारभूत लोहसूचीके छिद्रसे अच्छीतरह निकलके किरणके पातरूप नेत्रयुक्त छाया सूचीके साथ गूंथनेसे परस्पर एक दूसरेको दृढतासे स्थिरताकेलिये बलदानमें सहायता किया, यह उन्होंने उत्तम आचरण किया॥१४॥उस सूचीको देखके हिमालयके बनके वृक्ष तथा पक्षी आदिकोभी सद्बुद्धि हुई क्योंकि महा तपस्विभी सूचीको देखके कौन ऐसे हैं जिनको सत्कार्य्य करनेकी उत्कण्ठा न हो॥१५॥तपस्या करनेमें दृढ अपनी मनोवृत्तिके समान स्थिर पदको बद्ध किये उस तपस्विनी सूचीको देखके वृक्ष लता आदिने अपने पुष्पफलादिसे वा सीतवायु मुखके भांकृत शब्दोंसे भोजन कराथा॥१६॥

प्रसूतानिभविष्याणिगीर्वाणान्यानिवाचिरम् ॥ कौसुमानिरजांस्यस्याइत्यास्यंपर्यपूरयन् ॥ १७ ॥ ततो महेंद्रप्रहितंवातनुन्नामिषंरजः ॥ तयात्वभ्रत्वव्याजेननिगीर्णंमुखेविशत् ॥ १८ ॥ ननिगीर्णवतीतानिरजांसिदृढनिश्चयात् ॥ अंतःसारतयाकार्येलघवोप्याप्नुवंतिहि ॥ १९ ॥ नपिबत्यास्यसंस्थानितथापुष्परजांस्यपि ॥ विस्मयंपवनःप्रापक्ष्ुमेरून्मूलनाधिकम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो प्रथम उत्पन्न हुयेथे जो होनेवाले थे जो देवताओंके योग्यथे तथा जो देवताओंके योग्य न थे ऐसे पुष्पोंके रज (धूलि) इस तपस्विनी सूचीको देने चाहिये इस कारणसे वृक्ष लता आदिकोने उसके मुखको पूर्ण किया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर महेन्द्रसे भेजा हुआ विघ्नरूप मांसका रज वायुसे प्रेरित छिद्ररूपसे स्थित उसके मुखमें प्रवेश किया परन्तु उसने उसे नहीं निगला, ॥ १८ ॥ दृढनिश्चयसे इसने उन मांसके कणोंको नहीं निगला क्योंकि आत्मबल होनेसे तुच्छ जीवभी तपके विघ्नोंके निवारणरूप कार्य्यको प्राप्त करतेहैं ॥ १९ ॥ उसने मुखमें स्थित पुष्पोंके रजोंकोभी अब नहीं पीना स्वीकार किया इस कार्य्यसे पवनको महा मेरुके उखाडनेसेभी अधिक विस्मय प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

आशिरःपिहितापंकैःपूरितापिमहाजलैः ॥ विधूतापिबृहद्वातैर्दग्धापिवनवह्निभिः ॥ २१ ॥ भिन्नापिकरकापातैर्भ्रामितापितडिद्भ्रमैः ॥ उद्वेजितापिजलदैःक्षोभिताप्यतिगर्जितैः ॥ २२ ॥ अपिवर्षसहस्रैःसाचित्तस्थदृढनिश्चया ॥ पादाग्रंतुकुसुतेवनाकंपततपस्विनी ॥ २३ ॥ निवृत्तायाबहिस्पंदादेशकालेबहौगते ॥ विचारयंत्यास्तस्याःस्वमात्मासत्यंसुचेतनम् ॥ २४ ॥ ज्ञानालोकःसमुदभूत्सापरावरदर्शिनी ॥ बभूव निर्मलासूचिर्विसूचीपावनंपरम् ॥ २५ ॥

अर्थ—वह कर्कटी शिरतक कीचडोसे ढांक दीगई, महान् अगाध जलोंमें डुबाईभीगई, महान् भयंकर पवनोंसे कंपाईभी गई, और वनके अग्नियोंसे जलाईभी गई ॥ २१ ॥ पाषाणोंके सम्पातोंसे विदीर्णभी कीगई, विद्युत् (बिजुली) के भ्रमसे भ्रान्तभी कीगई मेघोंसे डराईभी गई, और अति गर्जनाओंसे क्षोभितभी कीगई ॥ २२ ॥ सहस्रों वर्ष इन बातोंके करनेसे दृढनिश्चयवाली, विष आदिकी मूर्च्छासे सो हुईके समान वह तपस्विनी सूची अणुमात्रभी अपने तपस्याके स्थानसे न डिगी ॥ २३ ॥ हे रामजी ! बाहरकी चेष्टासे निवृत्त होनेसे तथा अपने सत्यचेतन आत्माका विचार करतेहुये बहुत देशकाल बीतनेसे उसी सूचीका आत्माही ज्ञानप्रकाशरूप अर्थात् ज्ञान आत्माके साक्षात्कार वृत्तिसे प्रदीप्त बोधरूप होगया, जिससे कि वह बराबर (भूतभविष्यत् अथवा पूर्वापर) को देखनेवाली होगई वह अब निर्मल सूची विसूची परम पावन होगई ॥ २४ ॥ २५ ॥

जाताविदितवेद्यासास्वयमेवतयाधिया ॥ तपसादुष्कृतेक्षीणेसूचीस्वसुखसूचिनी ॥ २६ ॥ इतिवर्षसह स्राणिसाकरोद्दारुणंतपः ॥ सप्तसप्तमहालोकासंतापकरमुन्मुखी॥२७॥ तस्याःकल्पाग्निभीमेनतपसाहि महागिरिः ॥ बभूवतेनज्वलितोज्ज्वालेवततोजगत् ॥ २८ ॥ कस्येदंतपसाक्रांतंजगदित्यथवासवः ॥ नारदंपरिपप्रच्छसतस्याःकथयच्चतत् ॥ २९ ॥ सप्तवर्षसहस्राणिसूचीदीर्घतपस्विनी ॥ महाविज्ञानदेहा सैतेनेदंज्वलितंजगत् ॥ ३० ॥ नागाःश्वसंतिविचलंतिनगाःपतंतिवैमानिकाजलधिवारिधराःप्रयांति ॥ शोषंदिशोर्कसहितामलिनीभवंतिसूच्याःसुरेंद्रतपसाक्षयमाययेव ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःप्रभावो नाम द्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—तपस्यासे सम्पूर्ण पापके नष्ट होजानेसे वह सूची अपने सुखको सूचत करनेवाली उस बुद्धिसे जानने योग्य पदार्थको जान गई ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ऊपरकी ओर मुख कियेहुये सात सहस्र (हजार) वर्ष पर्य्यन्त सातों भूरादि महालोकोंको सन्ताप करके उग्रतप उसने किया ॥ २७ ॥ प्रलयके अग्निके समान भयंकर उसके उग्रतपसे वह महागिरि हिमालयभी प्रज्वलित होगया, और उससे सम्पूर्ण जगत् जलनेके समान होगया ॥२८॥ हे रामजी ! इन्द्रने नारदजीसे यह पूंछा कि हे भगवन् ! किसके तपसे यह सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त (ग्रस्त) है तब नारदजीने उनसे यह कहा ॥ २९ ॥ हे इन्द्रजी ! दीर्घ तपस्विनी सूचीके सात सहस्रवर्ष तप करते बीतगये अब वह विज्ञान शरीर धारिणी होगई उसीसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रदीप्त होगयाहै ॥३०॥ हे सुरेन्द्र ! उस सूचीकी उग्र तपस्यासे मयकी मायाके समान सब नाग (हस्ती वा पातालके शेष आदि नाग) श्वास ले रहेहैं सब पर्वत विचलित होगयेहैं देवतालोग अपने विमानोंसे गिरतेहैं समुद्र तथा मेघभी शुष्कताको प्राप्त होरहेहैं और सूर्य्यके सहित सम्पूर्ण दिशायेंभी मलिन होरही हैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःप्रभावो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

जीवसूचीके भोगका विस्तार और इन्द्रकी आज्ञासे वायुका उसकी तपका अन्वेषण (खोजना) इस ७३ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कर्कटीकदुवृत्तांतंसर्वमाकर्ण्यवासवः ॥ नारदंपरिपप्रच्छपुनर्जातकुतूहलः ॥ १॥ ॥ शक्रउवाच ॥ सूचीवृत्तिपिशाचत्वंतपसोपार्ज्यतत्तया ॥ कर्कट्याहिममर्कट्याकेभुक्ताविभवामुने ॥२॥ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ जीवसूच्याःपिशाचत्वंगतायाःशक्रकेवलम् ॥ आसीत्कार्ष्णायसीसूचीतस्याःस मवलंबनम् ॥ ३ ॥ तत्समालंबनंत्यक्त्वाव्योमवातरथस्थया ॥ प्राणमारुतमार्गेणतयादेहप्रविष्टया॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! कर्कटीके तपका अप्रिय सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनके कुतूहल उत्पन्न होनेसे इन्द्रने पुनः नारदऋषिसे पूंछा कि- ॥ १ ॥ हे नारदजी ! पिशाचिताके तुल्य अदृश्य जीव सूचीभावको तपसे प्राप्त होके हिमके सदृश जडतायुक्त बुद्धिवाली कर्कटी (मकरी) के समान तुच्छ भोगमें चपल कर्कटीने कौन २ से विभव संसारमें भोग किया ॥ २ ॥ श्रीनारदजी बोले-हे इन्द्र ! चंचल पिशाचित्व स्वभावको प्राप्त जीवसूचीका आश्रय अर्थात् अवलम्बन कृष्णवर्ण संयुक्त लोहमय सूचीथी ॥ ३ ॥ कभी २ उस लोहमय सूचीका आलम्बन त्यागक आकाशमें वायुरूपी रथपर आरूढ होके वह जीवसूची प्राणवायुके मार्गसे प्राणियोंके शरीरोंमें प्रवेश करके ॥ ४ ॥

सर्वेषामांत्रतंत्रीणांस्नायुमेदोवसासृजाम् ॥ रंध्रेणपक्षिणेवांतर्निलीनंमलिनात्मनाम् ॥ ५ ॥ यस्यांनाड्यां नभोवायुर्मातितत्तामुपेतया ॥ तत्रशूलंकृतंस्थूलन्यग्रोधाग्रइवोत्कटम् ॥ ६ ॥ तच्छरीरेंद्रियैस्तानितथा न्यानिबहूनिच ॥ भुक्तानिनरमांसानिभोजनान्युचितानिच ॥ ७ ॥ सुसंविवलितानल्पमालयामुग्धबा लया ॥ कांतवक्षःस्थलस्यूतस्पष्टपत्रकपोलया ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण पापी मलिनात्मा प्राणियोंके आन्तियोंके तांतोंके तथा नाडी, मेदा, चर्बी, और रुधिरोंके छिद्रमार्गसे प्रवेश करके प्राणियोंके शरीरोंमें ऐसे छिद्रके स्थित रहतीथी जैसे वृक्षके कोटरोंमें पक्षिणी ॥ ५ ॥ जिस नाडीमें

गोंके आश्रयभूत वायु प्रवेश करताहै उसका प्रवाहरूप होकर वहांपर शूलकी पीडा इसप्रकार करतीहुई ऐसे स्थित रहती है जैसे दक्षिणामूर्त्तिके वटकी नाडीके आगे शैवमतका स्थूल लोहमय उग्रशूल गडाहै ॥ ६ ॥ उन प्राणीके शरीर तथा इन्द्रियोंके द्वारा उनके योग्य भोजनोंके तथा अन्य अनेक प्रकारके मनुष्योंके मांसोंको उस जीवसूचीने भोग किये ॥ ७ ॥ प्रियके संयोगसे मर्दित अनेक बडी २ मालाधारिणी मुग्धबाला भावको प्राप्त होके तथा प्रियके वक्षस्थलमें संक्रामित पत्रयुक्त कपोलवाली उस जीवसूचीने कान्तके साथ शयनभी किया अर्थात् मुग्धबालाके सुखकोभी उसने अनुभव किया ॥ ८ ॥

विहृतंवीतशोकासुविहंग्यावनवीथिषु ॥ कल्पद्रुमौघपुष्पाग्र्यद्विगुणांभोजपंक्तिषु ॥ ९ ॥ पीतआमोदमं दारमकरंदकणासवः ॥ वनेष्वमरशैलानामलिन्यामलिलीलया ॥ १० ॥ चर्वितानिशवांगानिगृध्र्याऽऽ गर्तानिवृद्धया ॥ खड्गपृष्ठयेवसंग्रामेवीरांगानिजवेद्धया ॥ ११ ॥ सर्वांगकोशनाडीषुदिक्ष्विवानिललेख या ॥ उड्डीनमवडीनंचकाचौघव्योमवीथिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—और पक्षिणीके शरीरमें प्रवेश करके शोक रहित कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे भी श्रेष्ठ द्विगुण सुगन्धि देनेवाले कमलोंके बनकी पंक्तियोंमेंभी उसने बिहारपूर्वक गमन कियाहै ॥ ९ ॥ और भ्रमरीके शरीरमें प्रवेश करके भ्रमरके साथ लीला करती हुई देवताओंके पर्वतोंके कमल आदि सहित बनोंमें मन्दारके पुष्प रजके कणोंके मद्यको उसने पान किया है ॥ १० ॥ तथा गृध्री (गिधनी) के शरीरमें प्रविष्ट होकर वृद्ध गीधनीके स्वरूपसे मांसको ऐसे चर्वण किया जैसे संग्राममें वेगसे प्रदीप्त तरवारकी धारा वीरोंके अंगोंको ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण अंगोंके कोशकी नाडियोंमें तथा काचके समूहके समान नीलवर्ण आकाश मार्गोंमें वायुकी रेखाके समान नीचे ऊपर उडा करतीथी ॥ १२ ॥

विराडात्महृदिप्राणवातस्पंदाःस्फुरंतितु ॥ यथातथाप्रस्फुरितंप्रतिदेहगृहंतया ॥ १३ ॥ सर्वप्राणिशरी रेषुभांतिचिच्छक्तयस्तथा ॥ दीपप्रभाभासितयागृहिण्येवस्वसद्मसु ॥ १४ ॥ विहृतंरुधिरेष्वंतर्द्रवश क्त्येववारिषु ॥ अब्धिष्वावर्त्तवृत्त्येवजठरेषुविवल्गितम् ॥ १५ ॥ सुप्तंमेदःसुशुभ्रेषुशेषांगेष्विवशौरि णा ॥ स्वादितश्चांगगंधांतःपीतशक्त्यामृतंयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—विराट्रूप समष्टि (सम्पूर्ण) प्राणियोंके हृदयमें जैसे प्राणवायु स्वच्छन्द स्फुरते हैं ऐसेही यह सूची भी प्रत्येक प्राणीके शरीररूपी गृहमें स्वच्छन्द रमण किया करतीथी ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें जैसे प्राणवायु चेष्टा करते हुये स्फुरते हैं ऐसेही चेतन शक्तियांभी अन्तःकरणकी उपाधिके भेदसे भिन्न स्फुरती हैं अर्थात् उन्हीं चित् शक्तियोंकी प्रभासे प्रकाशित होके वह सर्वत्र ऐसे व्यवहार करतीथी जैसे दीपकी प्रभासे प्रकाशित गृहिणी अपने गृहोंमें ॥ १४ ॥ जैसे जलोंमें द्रवता शक्ति, समुद्रोंमें आवर्त युक्त तरंग शक्ति, और उदरों (कोखियों) में अनेक प्रकारकी गति विहार करती हैं इसी प्रकार उस उस जीवसूचीने अनेक प्रकारके रुधिरोंमें विहार किया ॥ १५ ॥ स्वच्छ कोमल मेदा (चर्बियों) पर उसने ऐसे शयन किया जैसे कृष्णभगवान् शेषनागके अंगोंपर, शरीरोंके अन्तर्गत रसका आस्वाद उसने ऐसे लिया जैसे पानकी शक्तिसे अमृतका ॥ १६ ॥

तरुगुल्मौषधादीनांहृद्यौजान्यनिलश्रिया ॥ परिभुक्तान्यशुक्लानिहिंसयोधीकृतानिच ॥ १७ ॥ अथोजी वमयीसूचीस्यामितिस्थावरेणसा ॥ संपन्नातापसीसूचीचेतनापावनीसिता ॥ १८ ॥ अदृश्ययातया चेहमारुतोग्रतुरंगया ॥ अयःसूच्यानिलतयावहंत्यादिक्ष्वरुद्धया ॥ १९ ॥ पीतंभुक्तंविलसितंदत्तंदापि तमाहृतम् ॥ नर्त्तितंगीतमुषितमनंतैःप्राणिदेहकैः ॥ २० ॥

अर्थ—वृक्ष लता आदिके आरोग्यदायक रसोंको वायुरूप होके उसने पान किया, और हिंसासे एकत्र किये हुये अशुद्ध रसोंकाभी भोग उसने किया ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् मैं जीवमयसूची होजाऊं इस प्रकार अटल तपस्याके प्रभावसे वह तापसी सूची अब परम पावन पापरहित होगई ॥ १८ ॥ अदृश्यरूप धारण करके वायुरूप उग्र तुरंगपर आरूढ लोहकी सूचीके आश्रयसे सब दिशाओंमें विना रोकावटके वायुके वेगसे चलती हुई उस जीवसूचीने ॥ १९ ॥ अनन्त प्राणियोंके देहद्वारा सब कुछ पान किया, भोगा, अनेक प्रकारके विलास किये, बहुत पदार्थोंको दिया, दिलाया, हरण किया प्रसन्नतासे नृत्य तथा गान किया, और दूसरोंके पदार्थको शोषणभी किया ॥ २० ॥

अदृश्ययाशरीरिण्यामनःपवनदेहया ॥ कृतमाकाशरूपिण्यानतदस्तिनयत्तया ॥ २१ ॥ मत्तयाशक्तया स्वादरसाचलितमेतया ॥ कालमालानमाश्रित्यकरिण्येवविवल्गितम् ॥ २२ ॥ कल्लोलबहुलाधूतदेह दृष्टनदीष्वलम् ॥ वेगैर्वैधुर्यकारिण्यामत्तयामकरायितम् ॥ २३ ॥ अशक्तयानिगिरितुंमेदोमांसंतथाहृ दि ॥ नूनंरुदितमर्थाढ्यवृद्धातुरधियायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—अदृश्य तथा आकाशमय शरीर धारण किये हुये समष्टि तथा व्यष्टिके मन और वायुरूप देह धारण करके सम्पूर्ण जगत्में ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है जिसको इस जीवसूचीने न किया है ॥ २१ ॥ यद्यपि वह समर्थ थी तथापि कुछ प्राणियोंके रक्तके आस्वादसे मत्तहोके प्राणियोंकी आयु और मर्य्यादारूप कालके बन्धनस्तम्भका आश्रय लेके हस्तिनीके समान देशमें भ्रमण करती रही ॥२२॥ प्राणियोंके देहोंको नाश करनेवाली मत्तरूप इस सूचीरूप हस्तिनीनें मकरके समान आचरण करके प्राणियोंके देहरूप प्रत्यक्ष नदियोंको इसने अपने कल्लोलसे कंपा दिये ॥२३॥ अब अधिकताके कारण मेदा और मांसको निगलनेमें अशक्त हुई, तब जैसे धनाढ्य प्राणी वृद्धता वा रोगके कारणसे विषयभोग तथा भोजन आदिमें असमर्थ होके रोदन करते हैं ऐसेही इसनेभी रोदनविलाप किया है ॥ २४ ॥

अजोष्ट्रमृगहस्त्यश्वसिंहव्याघ्रादिनर्तितम् ॥ नर्त्तक्येवचिरंरंगेवलयांगदमंगके ॥ २५ ॥ बहिरंतश्चवायूनामेकत्वमनुजातया ॥ गंधलेखिकयेवांतःस्थितंदुर्बलयातया ॥ २६ ॥ मंत्रौषधितपोदानदेवपूजादिभिर्हता ॥ बहिर्गिरिनदीतुंगतरंगवद्दुपद्रुता ॥ २७ ॥ दीपप्रभेवाविज्ञातगतिर्गत्याशुलायते ॥ अयःसूच्यांमातरीवतत्रनिर्वृत्तिमेतिसा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! जैसे नर्तकी अपने अंगके वलय (कडे) आदिको नचाती है ऐसेही इसनेभी अच्छी तरह पीडासे पीडित करके ऊंट मृग हांथी घोडे तथा सिंह आदिको रंगभूमिमें नचाया है ॥ २५ ॥ बाहरके वायु तथा अन्तर्गत प्राण पवनोंके साथ एकताको प्राप्त होके वायुकी गतिके परवश यह गन्धकी लेखाके समान स्थित है ॥ २६ ॥ मन्त्र, औषधि, तप, दान, तथा देवपूजादिसे मारी हुई यह पर्वतपर नदीके ऊंचे तरंगके समान खदेडी जाती थी॥२७॥ दीपकी प्रभाके समान अन्तर्द्धान शक्तिसे अविज्ञात गति यह शीघ्र आकर लोहकी सूचीमें लीन होजाती है, और वहांपर यह ऐसा विश्रामका सुख पाती है जैसे माताकी गोदमें ॥ २८ ॥

स्ववासनानुसारेणसर्वआस्पदमीहते ॥ सूचीत्वमेवराक्षस्यासूचित्वेनास्पदीकृतम् ॥ २९ ॥ सर्वाविहृत्यापिदिशःस्वमेवास्पदमापदि ॥ जीवसूचीलोहसूचीमिवायातिजडोजनः ॥ ३० ॥ एवंप्रयतमानासाविहरंतीदिशोदश ॥ मानसींतृप्तिमायातानशारीरींकदाचन ॥ ३१ ॥ सतिधर्मिणिधर्माहिसंभवंतीहनासति ॥ शरीरंविद्यतेयस्यतस्यतत्किलतृप्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब कोई अपनी वासनाके अनुसार आश्रयके लिये चेष्टा करता है, राक्षसीका सूचीके समान तीक्ष्ण स्वभाव होता है इसीलिये सूचीकोही अपना आश्रय बनाया ॥ २९ ॥ सब जडप्राणीभी सम्पूर्ण दिशाओंमें भ्रमण करके आपत्तिमें अपनेही स्थानपर ऐसे आता है जैसे जीवसूची लोहसूचीका आश्रय लिया ॥ ३० ॥ इसप्रकार प्रयत्न करती हुई और दशोंदिशाओंमें विहार करती हुई यह सूची मानसीतृप्तिको तो प्राप्त हुई परन्तु शारीरिक तृप्ति इसकी कभी नहीं हुई ॥ ३१ ॥ क्योंकि धर्मीप्राणीके होनेपर धर्मोंका होना सम्भव है और धर्मीके नहीं होनेपर नहीं, शरीर जिसके है तो उसका वह निश्चय तृप्त होगा ॥ ३२ ॥

अथतृप्तस्यदेहस्यस्मरणात्प्राक्तनस्यसा ॥ बभूवदुःखितस्वांतापूर्णोदरसुखार्थिनी ॥ ३३ ॥ ततःप्राक्तनदेहार्थंकरिष्येविपुलंतपः ॥ इतिसंचिंत्यतपसेदेशंनिर्णीयसात्मना ॥ ३४ ॥ विवेशाकाशगृध्रस्यहृद्यंतरुणस्यसा ॥ प्राणमारुतमार्गेणखंखगीवबिलेशया ॥ ३५ ॥ गृध्रःस्वामयसूचित्वंकश्चिदेतत्समाश्रितः ॥ नितांतप्रेरितःसूच्याकर्त्तुमनउपाददे ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने पूर्व तृप्त तथा विशाल शरीरको स्मरण करके पूर्ण तृप्त उदरसे उत्पन्न सुखको चाहनेवाले अपने अन्तःकरणमें अति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर अपने विशाल पूर्व देहकेलिये मैं उग्र तप करूंगी ऐसा चिन्तन करके और तपकेलिये अपने मनसे देशकाभी निर्णय करके ॥ ३४ ॥ आकाशगामी एक युवा गृध्रके हृदयमें प्राणवायुके मार्गसे ऐसे प्रवेश किया जैसे अपने घोसलेरूपी बिलमें शयनकी इच्छावाली पक्षी घोंसलेमें ॥ ३५ ॥ रोगरूप सूचीभावको प्राप्त कोई पूर्वोक्त गृध्र उस सूचीसे नितान्त प्रेरित होके सूचीके अभिलषित कार्य्य करनेको आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

सूचीमादायगृध्रोसौययौतांत्र्यतितंगिरिम् ॥ अंतःसूचिपिशाच्यंतेनुन्नोब्दइववायुना ॥ ३७ ॥ तत्राजनेमहारण्येस्थापयामासतामसौ ॥ सर्वसंकल्परहितेपदेयोगीवचेतनाम् ॥ ३८ ॥ एकेनैवाशुसातेनपादप्रांतेनसुस्थिता ॥ संप्रतिष्ठापितेवाद्रिमूर्ध्निगृध्रेणदेवता ॥३९॥ रजःकणगृहस्थाणुशिरस्येकेनसाणुना ॥ पादेनातिष्ठदुद्ग्रीवंशिखीवगिरिमूर्द्धनि ॥ ४० ॥

अर्थ—अपने अन्तर्गत सूचीकी पिशाचिता (पिशाचके समान उसके पीडा देनेके) निवृत्तिके समयमें वह गीध वायुसे प्रेरित मेघके समान उसी विचारित हिमालयपर्वतपर सूचीको लेके गया ॥ ३७ ॥ वहांपर जनशून्य उस महा जंगलमें उस सूचीको ऐसे स्थापन किया जैसे सर्व संकल्पसे वर्जित ब्रह्मपदमें योगी अपनी बुद्धिको ॥ ३८ ॥ उस गृध्र करके हिमालयपर्वतके शिखरपर स्थापित की हुई देवतारूप सूची होगई, और शीघ्रही अपने एक पादके अग्रभागसे खडी हुई ॥ ३९ ॥ धूलिके कणरूपी गृहके परमाणुके शिखरपर एक सूक्ष्म पादसे ऊपर गला उठाकर अग्निके सदृश पर्वतके शिखरपर खडी हुई ॥ ४० ॥

उत्थितांस्थापितांसूचींगृध्रेणजीवसूचिका ॥ दृष्ट्वाबहिर्विनिर्गंतुंखगदेहात्प्रचक्रमे ॥ ४१ ॥ खगदेहान्निर्जगामसूचीप्रोन्मुखचेतना ॥ पवनाद्गंधलेखेवघ्राणवातलवोन्मुखी ॥ ४२ ॥ जगामगृध्रःस्वंदेशंभारंत्यक्त्वेवभारिकः ॥ निवृत्तव्याधिरिवसबभूवांतरनाकुलः ॥ ४३ ॥ अतःसूचिस्तयाधारस्तपसेपरिकल्पिता ॥ दृढःसुसदृशोर्थानांविनियोगोहिराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस गृध्रसे स्थापित खडी की हुई लोहसूचीको देखके जीवसूचीनेभी पक्षीके शरीरसे बाहर निकलना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ बाहर निकलनेकी बुद्धि सहित जीवसूची गृध्रपक्षीके देहसे ऐसे निकली जैसे नासिका इन्द्रियकी ओर अभिमुख होकर पवनसे गन्धकी लेखा ॥ ४२ ॥ जैसे किसी पुरुषकी अन्तर्गत व्याधिके निवृत्त होजानेसे स्वस्थ होजाताहै ऐसेही वह गृध्र भारवाहीके सदृश उस सूचीको वहां छोडके शान्त होके अपने अभीष्ट देशको गया ॥ ४३ ॥ पदार्थोंमें अपनेही सदृश दृढ विनियोग (कार्योंका कर्तव्य) शोभाको प्राप्त होताहै इसलिये उस जीवसूचीने अपने तुल्य लोहसूचीके तपके लिये आधार निश्चित किया ॥ ४४ ॥

नह्यमूर्त्तस्यसिद्ध्यंतिविनाधारांकिलक्रियाः ॥ इत्याधारैकनिष्ठत्वमाश्रित्यासीत्तपःस्थिता ॥ ४५ ॥ जीवसूचीलोहसूचींपिशाचीशिंशपामिव ॥ सर्वतोवलयामासवात्येवामोदलेखिकाम् ॥ ४६ ॥ ततस्ततःप्रभृत्येषासूचीदीर्घतपस्विनी ॥ अरण्यान्यांस्थिताशक्रतत्रवर्षगणान्बहून् ॥ ४७ ॥ तस्यावरार्थयत्नंत्वंकुरु कर्तव्यकोविद ॥ चिरेणसंभृतंलोकमलंदग्धंहितत्तपः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो मूर्तिरहित हैं उनकी विना आधार कोईभी क्रिया नहीं सिद्ध होती, इसलिये एक आधारको आश्रय करके यह तपस्याके लिये स्थित हुई ॥ ४५ ॥ जीवसूचीने लोहसूचीको इसप्रकार व्याप्त किया जैसे पिशाची शिंशपाके वृक्षोंको अथवा महान् वायु गन्धकी लेखाको ॥ ४६ ॥ हे इन्द्रजी ! उसीसमयसे लेके वह दीर्घ तपस्या करनेवाली सूची उस महाजंगलमें अनेक वर्षोंके समूहके समूह तपस्या करनेमें स्थितरही ॥ ४७ ॥ हे सम्पूर्ण कार्य्योंको करनेमें चतुर इन्द्रजी ! उसको बरदान देनेको कोई उपाय शीघ्र करो, क्योंकि चिरकालका संचित उसका तप संसारकोभी भस्म करनेमें समर्थ है ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनारदतःश्रुत्वाशक्रःसूचीनिरीक्षणे ॥ मारुतंप्रेषयामासदशदिग्मंडलान्यथ ॥ ४९ ॥ जगामाथमरुत्संविदात्मनातामवेक्षितुम् ॥ अथामुच्यनभोमार्गंविचचारत्वरान्वितः ॥ ५० ॥ सातस्यसंवित्क्षिप्रार्धेनैवसर्वगतासती ॥ परमार्चिरिवाविघ्नंसहसैवददर्शह ॥ ५१ ॥ भूमेःसप्तसमुद्रांतेनिबद्धांविपुलस्थलीम् ॥ लोकालोकाद्रिरसनांततोमणिमयोपमम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार इन्द्रने नारदसे श्रवण करके सूचीको खोजनेके अर्थ दिशाओंके दशों मण्डलमें वायुको भेजा ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर वायुका दिव्यज्ञान उस सूचीको देखनेको गया, अर्थात् दिव्यदृष्टिसे जानेका मार्ग निश्चित किया, और आकाशमार्गको त्यागके शीघ्रतायुक्त पृथिवीपर विचरने लगा ॥ ५० ॥ वह पवनकी दिव्यसंवित् (ज्ञान) शीघ्रतायुक्त एक अंशसेही सम्पूर्ण जगत्को सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्योतिके सदृश प्रतिबन्धरहित होके व्याप्त करलिया, और शीघ्रही वक्ष्यमाण स्थानोंको देखलिया ॥ ५१ ॥ सातों समुद्र और पृथिवीके अन्तमें लोकालोक पर्वतोंकी रसीके समान, जन शून्य, अति विशाल सुवर्णमयी भूमि देखी उसके पश्चात् माणिमयके तुल्य॥५२॥

स्वादूदकाब्धिवलयंसकोटरककुब्गणम् ॥ पुष्करद्वीपवलयंतदंतर्गिरिमंडले ॥ ५३ ॥ मदिरांभोधिवलयंतजलेचरसंस्थितम् ॥ गोमेदद्वीपकटकंतन्मध्यविषयव्रजम् ॥ ५४ ॥ इक्षूदकाब्धिपरिखंशांतांगिरिगणांतरम् ॥ क्रौंचद्वीपोर्वरापीठंशांतंगतगिरिक्रमम् ॥ ५५ ॥ क्षीराब्धिमुक्तावलयंसमध्यगतनायकम् ॥ श्वेताख्यद्वीपवलयसंभूतप्रविभागकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—पर्वतकी सन्धियोंमें स्थित दिशाओंके गणसहित स्वादु जलके समुद्रके वलय (घेरे) सहित पुष्करद्वीपको देखा, और उसके अन्तर्गत पर्वतोंके मण्डलमें ॥ ५३ ॥ मदिराके समुद्रसे आवेष्टित गोमेद नामक द्वीपका

वृत्त है, जो देश जलचर जीवोंका आश्रय है अर्थात् वहांके निवासी जल तथा स्थलमेंभी गमनका सामर्थ्य रखते हैं ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर इक्षूदके समुद्र (ऊखके रसके समुद्र) की परिखासे घिरा हुआ, मध्य २ में अनेक पर्वत समूहोंसे युक्त, पर्वतोंके क्रमसे व्याप्त, उपद्रव रहित तथा पृथिवीके पीटके समान क्रौञ्चद्वीप है ५५ ॥ इसके अनन्तर क्षीर समुद्ररूपी मुक्ताके वलय (कडे) व्याप्त, मध्यदेशमें त्रैलोक्यके स्वामी विष्णुभगवान् करके सहित, और अवान्तर खण्ड देशोंके भेद सहित श्वेताख्यद्वीप (श्वेतद्वीप) है ॥ ५६ ॥

ततोघृतोदवलयस्वांतस्थपुरमंदिरम् ॥ कुशद्वीपव्रतिव्याप्तंसमहाशैलकोटरम् ॥ ५७ ॥ दध्यंभोराशिरशनासांतांबरपुरोदरम् ॥ शाकद्वीपेविरकारंसांतस्थविषयांतरम् ॥ ५८ ॥ क्षारांभोराशिपरिधिसांतस्थविषयांतरम् ॥ जंबूद्वीपेमहामेरुंकुलपर्वतसंकुलम् ॥ ५९ ॥ वातस्कंधेभ्यएवादौपतितानिलवेदना ॥ क्रमेणानेनपर्यंतेतेनैवप्रसृतोंजसा ॥ ६० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने भीतर अनेक नगर तथा स्थानोंको धारण किये हुये, तथा बडे २ पर्वत और उनके सन्धिमें स्थित देशोंसहित घृतके समुद्रसे आवेष्टित (घिरा हुआ) कुशद्वीप है ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर दधि समुद्रसे आवेष्टित, अवधि सहित देशमें प्राणियोंको धारण किये शाकद्वीप है ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर क्षार समुद्र है परिखा जिसकी और इसी (क्षार समुद्र) से अवधि संयुक्त कुल पर्वतोंसे व्याप्त तथा महामेरुसंयुक्त जम्बू द्वीप है ॥ ५९ ॥ आरम्भमें वायुकी दिव्य संवित् वायु स्कन्धके द्वाराही उतरी, और पूर्वोक्त द्वीप समुद्रोंमें इसी क्रमसे उतरी ॥ ६० ॥

वायुरालोकयन्नद्वाजंबूद्वीपंनिरीक्ष्यच ॥ तत्प्रापहिमवच्छृंगंयत्रसूचीतपस्विनी ॥ ६१ ॥ शृंगमूर्ध्निमहत्युग्रेसारण्यानीमवापताम् ॥ द्वितीयाकाशविततांवर्जितांप्राणिकर्मभिः ॥ ६२ ॥ असंजाततृणव्यूहांनिकटत्वाद्विवस्वतः ॥ रजोमयीमेवततांसंसाररचनामिव ॥ ६३ ॥ मृगतृष्णनदीसार्थपूरणीयाब्धितांगताम् ॥ शक्रकोदंडसंकाशमृगतृष्णासरिच्छताम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस प्रकार वायु सम्पूर्ण द्वीप समुद्रोंको प्रत्यक्ष देखते हुये, जम्बू द्वीपको देखकर हिमवानके उस शृंगपर प्राप्त हुई जहांपर वह तपस्विनी सूचीथी ॥ ६१ ॥ उस महान् भयंकर शिखरके ऊपर, दूसरे आकाशके समान व्याप्त, प्राणियोंके संचारसे रहित, अरण्यानी (बडेभारी जंगलकी स्थली) को प्राप्त हुआ ॥६२॥ पुनः वह अरण्यानी (अति विशाल वनस्थली) सूर्य्यके निकट होनेके कारण तृण आदिके समूहोंसे रहित, संसारकी रचनाके तुल्य, पांसुमयी (पक्षमें रजोगुण विकारमयी) ॥ ६३ ॥ मृगतृष्णाकी नदीयोंके समूहोंसे पूर्ण समुद्र दशाको प्राप्त इन्द्रके धनुषके समान सैकडों मृगतृष्णाकी नदियोंसे व्याप्त ॥ ६४ ॥

अमितानंतपर्यंतांलोकपालेक्षितैरपि ॥ केवलंपवनस्पंदप्रवहद्धूलिकुंडलाम् ॥ ६५ ॥ सूर्यांशुकुंकुमालिप्तांलग्नचंद्रांशुचंदनाम् ॥ विलासिनीमिवव्योम्नोवातसूत्कारपायिनीम् ॥ ६६ ॥ सप्तद्वीपसमुद्रमुद्रणसमुच्छन्नैकदेशाश्रयंभूपीठंपरितोविहृत्यपवनोदीर्घाध्वनाजर्जरः ॥ तांप्राप्योग्रगिरिस्थलीमलिवपुर्व्योमांगलग्नामिवव्याप्तानंतदिगंतपूरकबृहद्देहोविशश्रामसः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपोवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥

अर्थ—इन्द्र आदि लोकपालोंनेभी जिसका अन्त नहीं देखा, ऐसी केवल वायुकी गतिसे वहती हुई धूलिरूप कुण्डलको धारण किये हुये ॥ ६५ ॥ सूर्य्यको किरणरूपी कुंकुमसे व्याप्त चन्द्रमाके किरणरूपी चन्दनसे लिप्त, प्रियके आलिंगन सूचक ध्वनिको श्रवण करानेवाली, आकाश विहारिणी नायिका सदृश थी ॥६६॥ अनन्त दिशाओंके अन्तोंको पूर्ण रीतिसे व्याप्त होनेके कारण विशाल देहवाला वह पवन सातों द्वीप तथा समुद्रोंके व्याजसे ऊर्ध्व भागमें आच्छन्न भूपीठपर चारों ओर बिहार करके दीर्घ मार्ग चलनेके कारण अति श्रान्त होकर, भ्रमरके सदृश श्यामवर्ण अंगवाले आकाशमें संलग्न उस उग्र पर्वतके ऊपरकी भूमिको पाकर उसपर विश्राम किया ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सूचीतपोवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

उस तापसी सूचीको देखके वायुका इन्द्रके निकट जाना, ब्रह्माजीका वरके लिये प्रार्थना करना, तथा सूचीका ज्ञान इस ७४ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्यतत्रोर्ध्वशृंगस्यतस्यांभुविमहावनौ ॥ ददर्शमध्यमासूचींप्रोत्थितांसशिखामिव ॥ १ ॥ एकपादंतपस्यंतींशुष्यंतींशिरऊष्मणा ॥ सततानशनांशुष्कपिंडीभूतोदरत्वचम् ॥ २ ॥ सकृद्विकसितास्येनगृहीत्वेवातपानिलान् ॥ पश्चात्त्यजंतींहृदयेमेनमांतीत्यनारतम् ॥ ३ ॥ शुष्कांचंडांशुकिरणैर्जर्जरांवनवायुभिः ॥ अचलंतींनिजात्स्थानात्स्नापितामिंदुरश्मिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–उस ऊंचे शिखरकी महाबनवाली पृथिवीपर वायुने उस तापसी सूचीको ऐसे देखा मानों उस महाशिखरकी मध्यम शिखा उठी खडी है ॥ १ ॥ तथा एकपादसे तप कर रही है शिरके ऊपर अति आतप पडनेसे शुष्कताको प्राप्त होरही है और निरन्तर भोजनके न करनेसे मानों उसके उदरका चर्म शुष्क होके पिण्डीभूत होगया है ॥ २ ॥ एककालमेंही मानों सम्पूर्ण आतप तथा वायुको निगलके पश्चात् उनको निरन्तर इस अभिप्रायसे त्याग रही है कि ये मेरे हृदयमें नहीं समाते ॥ ३ ॥ प्रचण्ड सूर्य्यके किरणोंसे तथा बनके रूक्ष पवनोंसे अति शुष्क तथा जर्जरीभूत, तथापि चन्द्रमाके किरणोंसे स्नान कराई हुईके तुल्य अपने स्थानसे अटल थी ॥ ४ ॥

पूर्वरजोणुनैकेनसंविष्टच्छन्नमस्तकाम् ॥ कृतार्थत्वंकथयतींददतान्यस्यनास्पदम् ॥ ५ ॥ अरण्यान्येव दत्त्वार्थंचिरंजातशिखामिव ॥ मूर्ध्न्यर्थवस्थापितप्राणजटाजूटवल्लीमिव ॥ ६ ॥ तांप्रेक्ष्यपवनःसूचींविस्मयाकुलचेतनः ॥ प्रणम्यालोक्यसुचिरंभीतभीतइवागतः ॥ ७ ॥ महातपस्विनीसूचीकिमर्थंतप्यतेतपः॥ नेतिप्रष्टुंशशाकासौतत्तेजोराशिनिर्जितः ॥ ८ ॥

अर्थ—दूसरे धूलिके कणको आश्रय न देनेवाले ऐसे एक धूलिके कणसे जिसका मस्तक ढकनेसे अपनी कृतार्थता प्रकट कर रहे है ॥ ५ ॥ उस महावनस्थलीने मानों अपने वृक्षलता आदि सब विभव किसी दूसरे महावनको देकर और चिरकालकी तपश्चर्य्यासे मानों सूचीरूपसे शिखा उत्पन्न होके स्थित है, और अनन्तर योगकी परिपक्वतासे मानों शिरपर प्राणोंकी जटाजूटकी लता है ॥ ६ ॥ उस सूचीको देखके वायु विस्मयचित्त होगया, और उसे प्रणाम करके दीर्घ कालतक भयभीतके सदृश निकट आया ॥ ७ ॥ उसके तेजकी राशिसे पराजित पवन यह पूंछनेमें समर्थ न हुआ कि हे महातपस्विनी सूचिके तूं यह तप किस अर्थके लिये करती हो ॥ ८ ॥

भगवत्यामहासूच्याअहोचित्रंमहातपः ॥ इत्येवकेवलंध्यायन्मारुतोगगनंययौ ॥ ९ ॥ समुल्लंघ्याभ्रमार्गंतुवातस्कंधानतीत्यच ॥ सिद्धवृंदानधःकृत्वासूर्यमार्गमुपेत्यच ॥ १० ॥ ऊर्ध्वमेत्यविमानेभ्यःप्रापशक्रपुरांतरे ॥ सूचीदर्शनपुण्यंतमालिलिंगपुरंदरः ॥ ११ ॥ पृष्टश्चकथयामासदृष्टंसर्वमपेत्यसौ ॥ सह देवनिकायायशक्रायास्थानवासिने ॥ १२ ॥

अर्थ—अहो ! इस भगवती महा सूचीका तप अति विचित्रहै, केवल इतनाही ध्यान करता हुआ वायु आकाशको चलागया ॥ ९ ॥ मेघमार्ग तथा वायुपटलोंको उल्लंघन करके, और सिद्धोंके समूहोंको नीचे करके सूर्य्यमार्गमें प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ इसके अनन्तर विमानोंके ऊपर आके इन्द्रपुरमें प्राप्त हुआ, और सूचीके दर्शनसे पवित्रभूत उसे इन्द्रने अलिंगन किया ॥ ११ ॥ और पूंछनेपर स्वर्गनिवासी सम्पूर्ण देवसमूह सहित इन्द्रको उसने कह दिया किया मैंने सब कुछ देखा ॥ १२ ॥

॥ वायुरुवाच ॥ जंबूद्वीपेतिशैलेंद्रोहिमवान्नामसुन्नतः ॥ जामातायस्यभगवान्साक्षाच्छशिकलाधरः ॥ १३ तस्योत्तरेमहाशृंगपृष्ठेपरमरूपिणी ॥ स्थितातपस्विनीसूचीतपश्चरतिदारुणम् ॥ १४ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनवाताद्यशनशांतये ॥ ययास्वोदरसौषिर्यंपिंडीकृत्वानिवारितम् ॥ १५ ॥ शांतसंकोचसूक्ष्मार्थविकास्यास्यंरजोणुना ॥ तयाद्यस्थगितंशीतवाताशननिवृत्तये ॥ १६ ॥

अर्थ—वायुजी बोले–हे इन्द्रजी ! जम्बूद्वीपमें अति ऊंचा हिमवान् नाम बिशाल पर्वतहै, जिसके जामाता (जमाई) साक्षात् भगवान् महादेवजी हैं ॥ १३ ॥ उसके उत्तरभागमें महाशिखरके पृष्ठपर अति तेजस्विनी तपस्विनी सूची स्थित है और अति भयंकर तप करती है ॥ १४ ॥ हे इन्द्रजी ! इस विषयमें बहुत कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, वायु आदिकेभी भोजनकी शान्तिके लिये उसने अपने उदरके छिद्रको लोहसे घन बनाके निवारण (भोजनका) किया

॥ १५ ॥ और शीतवायुके केवल मुखमें ग्रसनमात्रकी निवृत्तिके लिये अपने संकोच रहित अति सूक्ष्म अल्प छिद्रवाले मुखको फैलाके धूलिके अणु (कण) से उसेभी ढाक दिया ॥ १६ ॥

तस्यास्तीव्रेणतपसातुहिनाकरमुत्सृजन् ॥ अग्न्याकारमयोगृह्णन्देवदुःसेव्यतांगतः ॥ १७ ॥ तदुत्तिष्ठा शुगच्छामःसर्वएवपितामहम् ॥ तद्वरार्थमनर्थायविद्धितत्सुमहत्तपः ॥ १८ ॥ इतिवातेरितःशक्रःसह देवगणेनसः ॥ जगामब्रह्मणोलोकंप्रार्थयामासतंविभुम् ॥ १९ ॥ सूच्यावरमहंदातुंगच्छामिहिमवच्छिरः ॥ ब्रह्मणेतिप्रतिज्ञातेशक्रःस्वर्गमुपाययौ ॥ २० ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! उसकी भयंकर तपस्याकी उग्रयतासे हिमवान् पर्वत अपनी स्वाभाविक हिमाकरताको त्यागता हुआ, और अग्निके आकार अयोरूपता (लोहरूपता) को ग्रहण करता हुआ इस समय दुःखसे व्यग्र होगयाहै ॥ १७ ॥ इसलिये आओ उसको बर दिलानेके अर्थ सब कोई मिलके ब्रह्माजीके पास चले, क्योंकि उसका उत्तम महान् तप संसारके अनर्थकेही लिये समझो ॥ १८ ॥ इसप्रकार वायुसे प्रेरित इन्द्रजी सम्पूर्ण देवगण सहित ब्रह्माजीके पास गये, और उन भगवानसे प्रार्थना की ॥ १९ ॥ मैं सूचीको वर देनेके अर्थ हिमवान्‌के शिखरपर जाताहुं जब ब्रह्माजीने ऐसी प्रतिज्ञाकी तब इन्द्र अपने स्वर्गलोकको चलेगये ॥ २० ॥

एतावताथकालेनसाबभूवातिपावनी ॥ सूचीनिजतपस्तापतापितामरमंदिरा ॥ २१ ॥ मुखरंध्रस्थितार्का शुदृशास्वच्छायैवसा ॥ विकासिन्याविवर्त्तिस्थाचोदितांतमवेक्षिता ॥ २२ ॥ कौशेयरूपयासूच्यामेरुःस्थैर्येणनिर्जितः ॥ मज्जनंनैतिवृत्त्यैवंमुक्तमाद्यंतयोर्दिने ॥ २३ ॥ मध्याह्नेतापभीत्येवविशंत्यामारुतांतरम् ॥ अन्यदागौरवाद्दृष्टादूरतःप्रेक्षमाणया ॥ २४ ॥

अर्थ—इतने समयमें अर्थात् सात सहस्र वर्ष कालमें वह अपनी तपस्यासे देवताओंके मन्दिरको तपानेवाली सूची अति पवित्र होगई ॥ २१ ॥ उस प्रकाशमान तपमें स्थित सूचीको देखनेवाली केवल मुखरूपी छिद्रमें स्थित सूर्य्यकी किरणरूपी दृष्टिवाली फैली हुई उसकी छाया उसके संकल्प रचित कालकी मर्य्यादा पर्य्यन्त थी अर्थात् निर्जन स्थानमें उसके तपकी साक्षिणी उसकी छायाही थी ॥ २२ ॥ रेशमके तुच्छ सूत्ररूपी सूचीसे पराजित मेरु लज्जाके कारणसें समुद्रमें तो नहीं डूबताहै इस अभिप्रायसे दिनके आदि तथा अन्तमें और रात्रिमें दीर्घताका अवलम्बन करके मेरुके देखनेके अर्थ सूचीको देखना छोड देतीथी ॥ २३ ॥ और मध्यान्हकालमें इसलिये देखना छोड देतीथी कि तापके भयसे सूचीके प्राणोंमें प्रवेश कर जातीथी, और इसके सिवाय अन्यकालमें दूरसेही प्रतिष्ठाके साथ उसे देखा करतीथी ॥ २४ ॥

सातामवेक्षतेक्षाराचापादंगेनिमज्जति ॥ संकटेविस्मरत्येवजनोगौरवसत्क्रियाम् ॥ २५ ॥ छायासूची तापसूचीयश्चात्मासतृतीयया ॥ त्रिकोणंतपसापूतंवाराणस्यासमंकृतम् ॥ २६ ॥ गतास्तेनत्रिकोणेन त्रिवर्णपरिखावता ॥ वायवःपांसवोयेपितेपरांमुक्तिमागताः ॥ २७ ॥ विदितपरमकारणाद्यजातास्वयमनुचेतनसंविदंविचार्य ॥ स्वममनकलनानुसारएकस्त्विहहिगुरुःपरमोनराघवान्यः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःपरिपाकवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—वह छाया तीक्ष्णतासे उसे देखा करतीथी और तापसे उसीके अंगमें लीन होजातीथी, क्योंकि संकटके समयमें प्रायः सभी प्रतिष्ठा करना भूल जाते हैं ॥ २५ ॥ छायासूची, तापसूची (जीवसूची) तथा लोहसूची ये तीनों आपसमें मिलनेसे तपसे पवित्र अपने अन्तराल देशको त्रिकोण असीवरण और गंगाके अन्तरालस्थ देश काशीके समान बनादिया ॥ २६ ॥ शुष्क अमूर्त सरस्वतीरूप लोहसूची श्यामवर्ण यमुना, तथा शुक्लवर्ण जीवसूची गंगा इन तीनों नदीरूप अवधिवाले त्रिकोणसे जो वायु अथवा धूलिभी निकल जातीथी वे भी परम मुक्तिको प्राप्त होगई ॥२७॥ हे राघव रामजी ! इससमय वह अपने साक्षी चेतन प्रत्यगात्माको स्वयं विचार करके परम कारण जो परब्रह्महै उसको जानगई क्योंकि अपनी युक्तियोंके विचारसे जो आत्माका परिचय (आत्मज्ञान) है उसका अनुसरण करना यही एक मुख्य गुरुहै, इसके अतिरिक्त मुख्य गुरु नहीं है क्योंकि वेदमें लिखाहै ॥ दृश्यतेत्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ (तत्वदर्शीलोग अपनी सूक्ष्मबुद्धिसे आत्माको देखते हैं) ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपःपाकवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

ब्रह्माजीके प्रसन्न होनेपरभी ज्ञान होनेके कारणसे सूचीका मौन होके बैठना तिसपरभी ब्रह्माजीके अपराद्धका-लसे उसके देहकी उत्पत्तिका वर्णन इस ७५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणतांपितामहआययौ ॥ वरंपुत्रिगृहाणेतिव्याजहारनभस्तलात् ॥१॥ सूचीकर्मेंद्रियाभावाज्जीवमात्रकलावती ॥ नकिंचिद्व्याजहारास्मैचिंतयामासकेवलम् ॥ २ ॥ पूर्णास्मि गतसंदेहाकिंवरेणकरोम्यहम् ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिसुखमासेचकेवलम् ॥ ३ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलं शांतासंदेहजालिका ॥ स्वविवेकोविकसितः किमन्येनप्रयोजनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्ञानके अनन्तर सहस्र वर्षके पश्चात् ब्रह्माजी उस सूचीके निकट आये, आकाशतलसे यह उच्चारण किया कि, हे पुत्रि ! तूं बरदान मांग ॥ १ ॥ वह सूची केवल जीवमात्रकी कला होनेसे और कर्मइन्द्रियोंका सर्वथा अभाव होनेसे ब्रह्माजीसे कुछ उत्तर नहीं दिया केवल यह चिन्तन किया ॥ २ ॥ कि मैं सन्देहरहित पूर्णहुं, वर लेके मैं क्या करूंगी, शान्तहुं तृप्तहुं, और केवल सुखसे बैठीहुं ॥ ३ ॥ जो कुछ जाननेके योग्य था वह मैंने सम्पूर्ण जान-लिया, और मेरे सन्देहजाल सब शान्त होगये, अब अपना विवेक विकासित होगया अब मुझे दूसरेसे क्या प्रयोजन॥४

यथास्थितेयमस्मीहसंतिष्ठेयंतथैवहि ॥ सत्यासत्यकलामेवत्यक्त्वाकिमितरेणमे॥५॥एतावंतमहंकाल मविवेकेनयोजिता ॥ स्वसंकल्पसमुत्थेनवेतालेनेवबालिका ॥ ६ ॥ इदानीमुपशांतोसौस्वविचारणया स्वयम् ॥ ईप्सितानीप्सितैरर्थैःकोभवेत्कलितैर्मम ॥७॥ इतिनिश्चययुक्तांतांसूचींकर्मेंद्रियोज्झिताम् ॥ तूष्णींस्थितांसनियतिःसपश्यन्भगवान्स्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे मैं स्थितहुं वैसीही, और वैसेही (चित्रूपसे) आगेभी स्थित रहूंगी, सत्यपरमार्थरूप मैं हुं, उस अपनी सत्यकलाको त्यागकर मिथ्या पदार्थोंसे मुझे क्या प्रयोजन ॥ ५ ॥ इतने कालतक मैं अपने अविवेकसे ऐसे युक्त थी जैसे अपने संकल्पसे उत्पन्न वेतालसे कोई बालिका ॥ ६ ॥ अब आत्माके विचारसे यह अविवेक स्वयं शान्त हो-गया, इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थोंके प्राप्त होनेसे मेरा क्या अर्थ सिद्ध होगया ॥ ७ ॥ इसप्रकार निश्चययुक्त, तथा कर्म इन्द्रियोंसे रहित मौनरूप स्थित उस सूचीको, नियति सहित (कर्मोंके फलोंको अवश्य देनेवाली ईश्वरके संकल्परूप नियति करके सहित) वे ब्रह्माजी देखते हुये स्थित रहे ॥ ८ ॥

ब्रह्मापुनरुवाचेदंवीतरागांप्रसन्नधीः ॥ वरंपुत्रिगृहाणत्वंकिंचित्कालंचभूतले ॥ ९ ॥ भोगान्भुक्त्वात तःपश्चाद्गमिष्यसिपरंपदम् ॥ अव्यावृत्तिस्वरूपायानियतेरेषनिश्चयः ॥ १० ॥ तपसानेनसंकल्पःसफ लोस्तुतवोत्तमे ॥ पीनाभवपुनःशैलेहिमकाननराक्षसी ॥ ११ ॥ ययापूर्वंवियुक्तासितन्वाजलदरूपया ॥ बीजांतर्वृक्षतापुत्रिबृहद्वृक्षतयायथा ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रसन्न चित्त ब्रह्माजी बीतराग उस सूचीसे पुनः बोले कि–हे पुत्रि ! वरदान ले, और कुछ कालतक इस भूतलपर ॥ ९ ॥ संसारके अनेक भोगोंको भोगकर पुनः परमपदको जाओगी, यह उस ईश्वरके संकल्परूप नियतिका निश्चय है जिसका परिवर्तन (लोढाना) हम लोगभी नहीं करसकते ॥ १० ॥ हे उत्तम सूचीके ! इस तुमारे तपसे तु-मारा संकल्प सफल हो, तुम पुनः अति महान् शरीरवाली पर्वतके ऊपर हिमके बनकी बडी राक्षसी होजाओ ॥ ११ ॥ जैसे बीजके भीतर महान् वृक्षरूपसे वृक्षता वियुक्त (उसीके भीतर लीन होनेसे पृथक्) रहती है ऐसेही जिस मेघरूप महान् शरीरसे तुम वियुक्त हो ॥ १२ ॥

योगमेष्यसिभूयस्त्वतन्वांतर्बीजरूपिणी ॥ तयैवरससेकेनलतयेवांकुरस्थितिः ॥ १३ ॥ बाधांविदितवे द्यत्वान्नचलोकेकरिष्यसि ॥ अंतःशुद्धास्पंदवतीशारदीवाभ्रमंडली ॥ १४ ॥ अश्रांतध्याननिरताकदा चिल्लीलयायदि ॥ भविष्यसिबहीरूपासर्वात्मध्यानरूपिणी ॥ १५ ॥ व्यवहारात्मकध्यानधारणाधार रूपिणी ॥ वातस्वभाववद्देहपरिस्पंदाद्विलासिनी ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनः अन्तर्बीजरूप तुम उसी अपने शरीरसे ऐसे युक्त होओगी, जैसे जलके सींचनेसे लतारूपसे युक्त अंकुरकी स्थिति होती है ॥ १३ ॥ अन्तःकरणमें शुद्धरूप होके वेद्य ब्रह्मके जाननेसे तुम उस शरीरसे लोकमें बाधा ऐसे नहीं करोगी, जैसे शरत्कालकी शुद्ध मेघोंकी मण्डली ॥ १४ ॥ हे पुत्रि ! तुम सदा निर्विकल्प ध्याननिरत रहोगी और कदाचित् कभी जब निर्विकल्प समाधिसे उठोगी तबभी सबका आत्मवत् ध्यानरूप रहोगी ॥ १५ ॥ और व्यवहार दृष्टिसे धारणा ध्यानका आधारभूत रहोगी, और वायुके स्वभावसे शरीरकी चेष्टासे विलास करनेवाली ॥१६

तदाविरोधिनीपुत्रिस्वकर्मस्पंदरोधिनी ॥ न्यायेनक्षुन्निवृत्त्यर्थं भूतबाधांकरिष्यसि ॥ १७ ॥ भविष्यसि न्यायवृत्तिर्लोकेत्वन्यायबाधिका ॥ जीवन्मुक्ततयादेहेस्वविवेकैकपालिका ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वागगनत लाज्जगामदेवःसूचीसाभवतुममेतिकिंविरोधः ॥ रागोवाब्जजवचनार्थवारणेस्मिन्नित्यंतःस्वतनुमयी मनाग्बभूव ॥ १९ ॥ प्रादेशःप्रथममभूत्ततोपिहस्तोव्यामश्चाप्यथविटपस्ततोभ्रमाला ॥ सोद्यत्स्वाव यवलताबभौनिमेषात्संकल्पद्रुमकणिकांकुरक्रमेण ॥ २० ॥ तद्गात्राण्यविकलशक्तिमंतिदेहादुद्भूतान्य थकरणेंद्रियाणिसम्यक् ॥ संकल्पद्रुमवनपुष्पवत्समंताद्बीजौघान्यलमभवंस्तिरोहितानि ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीशरीरलाभो नाम पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—हे पुत्रि ! उससमय तुम अपने राक्षसकुलके उचित अशास्त्रीय हिंसाका अवरोध करनेवाली विरोध करनेवाली होओगी, और न्यायसे अपनी क्षुधाकी निवृत्तिके अर्थ प्राणियोंकी बाधा करोगी ॥ १७ ॥ हे पुत्रि ! तुम लोकमें न्यायवृत्ति धारिणी होओगी, और जो अन्यायकारक जीव हैं उनकी बाधिका होओगी, तथा जीवन्मुक्त होनेके कारण शरीरमें केवल अपने विवेककी पालिका होओगी ॥ १८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्माजी आकाशतलसे ऐसा कहके चले गये, और उस सूचीने विचारा कि ऐसा (पूर्व शरीरका धारण) हो इसमें मेरा विरोध क्यों, और ब्रह्माजीके बचनको निवारण करनेमें मेरा रागभी क्यों, ऐसा चिन्तन करके वह अपने मनमें किंचित् पूर्वशरीराकार हुई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर प्रथम अंगुष्ठ मात्र होगई, अनन्तर हस्तमात्रकी, पश्चात् पुरुष प्रमाण हुई, इसके अनन्तर एक वृक्षके बराबर होगई, इसके पीछे मेघकी मालाके समान होगई, इसप्रकार वह सूची अपने संकल्पके वृक्षके बीजके अंकुर क्रमसे उदय होते हुये अपने अवयवरूप लतारूपिणी शोभित हुई ॥ २० ॥ उसके सम्पूर्ण अंग तथा पूर्णशक्ति सहित सब करण इन्द्रिय शरीरसे उत्तमतासे ऐसे आविर्भूत हुये, जैसे संकल्पसे बनवृक्ष पुष्प आदि चारोंओरसे प्रकट हो, अथवा पूर्वदशामें बीजमें समूह भूत छिपेहो और जल मृत्तिका आदिके संयोगसे पुनः भलीभांति आविर्भूत होजाय ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने सूचीशरीरलाभो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

पूर्वशरीरको पाके छ मासतक समाधिस्थ रही अनन्तर क्षुधित होके उठी तब वह कर्कटी राक्षसी वायुके बचनसे किरातके निकट गई इस विषयका वर्णन इस ७६ के सर्गमें है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाभवदसौसूचीकर्कटीराक्षसीपुनः ॥ सूक्ष्मैवस्थौल्यमायातामेघलेखेववार्षिकी ॥ १ ॥ निजमाकाशमासाद्यकिंचित्प्रमुदिताखती ॥ बृहद्राक्षसभावंतद्बोधात्कंचुकवज्जहौ ॥ २ ॥ तत्रैवध्यायतीतस्थौबद्धपद्मासनस्थितिः ॥ व्यालंब्यसंविदंशुद्धांसंस्थितागिरिकूटवत् ॥ ३ ॥ अथसा मासषट्केनध्यानाद्बोधमुपागता ॥ महाजलदनादेनप्रावृषीवशिखंडिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सम्पूर्ण अंगोंके आविर्भावके अनन्तर पुनः वह कर्कटी नाम राक्षसी सूक्ष्मरूपसे स्थूलताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे वर्षाकालमें मेघकी रेखा ॥ १ ॥ अपने ब्रह्माकाशको प्राप्त होनेसे किंचित् प्रसन्न होकर दीर्घकालसे आरूढ जो राक्षसस्वभावहै उसको ज्ञान होनेके कारणसे ऐसे त्यागदिया जैसे सर्प अपनी कांचुलीको ॥ २ ॥ प्रपंचरहित अपने शुद्ध ज्ञानका आलम्बन करके, आत्माका ध्यान करती हुई अचल पर्वतके समान पद्मासन बांधके वहांही स्थित रही ॥ ३ ॥ इसके पीछे छ मासके अनन्तर महामेघके शब्द निर्विकल्प समाधिसे जागृत् अवस्थाको ऐसे प्राप्त हुई जैसे वर्षाकालमें कामकी चेष्टासे मयूरी (मोरनी) ॥ ४ ॥

प्रबुद्धासाबहिर्वृत्तिर्बभूवक्षुत्परायणा ॥ यावद्देहंस्वभावोस्यदेहस्यननिवर्त्तते ॥ ५ ॥ अथसाकिंग्रसइतिचिंतयामासचिंतया ॥ भोक्तव्यःपरजीवश्चन्यायेननविनामया ॥ ६ ॥ यदार्यगर्हितंयद्वान्यायेननसमर्जितम् ॥ तस्माद्ग्रासाद्वरंमन्येमरणंदेहिनामिदम् ॥ ७ ॥ यदिदेहंत्यजामीदंतन्न्यायोपार्जितंविना ॥ नकिंचिदस्तिनिर्न्यायंभुक्तोयोंहिगरायते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब समाधिसे उठके वह बाह्यवृत्ति हुई तब क्षुधामें परायण होगई, क्योंकि जबतक यह शरीर है तबतक इसका स्वभाव नहीं जाता ॥ ५ ॥ इसके पीछे उसने यह चिन्तन किया कि मैं किसका ग्रास करूं और यह

भी विचारा कि न्यायके बिना अन्य जीव मुझे कदापि न खाना चाहिये ॥ ६ ॥ क्योंकि जो पूज्यमहान् पुरुषोंसे निन्दितहै, अथवा जो न्यायसे उपार्जित नहीं हैं उसके भोजनसे तो मैं मरना उत्तम समझती हुं ॥ ७ ॥ यदि न्यायसे उपार्जित अन्नके बिना मैं अपने इस शरीरको त्यागतीहुं तो इसमें कुछ अन्याय नहीं है क्योंकि अन्यायका जो अन्न भोजन किया जाताहै वह विष होजाताहै ॥ ८ ॥

यन्नलोकक्रमप्राप्तंतेनभुक्तेनकिंभवेत् ॥ नजीवितेननोमृत्यार्किंचित्कारणमस्तिमे ॥ ९ ॥ मनोमात्रमहं ह्यासंदेहादिभ्रमभूषणम् ॥ तच्छांतंस्वावबोधेनदेहादेहदृशौकुतः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंस्थितामौनवतीशुश्रावगगनाद्गिरम् ॥ रक्षःस्वरूपसंत्यागतुष्टेनोक्तांनभस्वता ॥ ११ ॥ गच्छकर्कटिमूढां स्त्वंज्ञानेनाश्वबोधय ॥ मूढोत्तारणमेवेहस्वभावोमहतामिति ॥ १२ ॥

अर्थ—जो लोक संमत क्रमसे नहीं प्राप्तहै उसके भोजनसे क्या होताहै, मुझे जीवनसे अथवा मरणसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ९ ॥ मैं (मेरा शरीर) केवल मनोरथ मात्रथा, सो देहादिमें अहंबुद्धिके भ्रमका भूषण अपने आत्माके ज्ञानसे शान्त होगया, अब मुझे जीवन मरणकी दृष्टि कहां ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले--इसप्रकार चिन्तन करते हुये मौन होकर स्थित रही, तब राक्षसके स्वभावके त्यागनेसे सन्तुष्ट वायुसे कही हुई आकाशतलसे इस वाणीको सुना ॥ ११ ॥ हे कर्कटि ! तूं मूढोंके निकट जा और अपने ज्ञानसे उनको बोध न कर क्योंकि मूढोंकी मूढताका हटाना यही तत्वज्ञानी महात्माओंका स्वभावहै ॥ १२ ॥

बोध्यमानोभवत्याप्रियोनबोधमुपैष्यति ॥ स्वनाशायैवजातोसौन्याय्योग्रासोभवेत्तव ॥ १३ ॥ श्रुत्वेत्यनुगृहीतास्मित्वयेत्युक्तवतीशनैः ॥ उत्तस्थौशैलशिखराक्रमादवरुरोहच ॥ १४ ॥ अधित्यकामतीत्याशुगत्वाचोपत्यकातटान् ॥ विवेशशैलपादस्थंकिरातजनमंडलम् ॥ १५ ॥ बह्वन्नपशुलोकौघद्रव्यशष्पौषधामिषम् ॥ अनंतमूलपानान्नमृगकीटखगादिकम् ॥ १६ ॥ प्रचलितवलितांजनाचलाभाहिमगिरिपादनिवेशितंसुदेशम् ॥ तदनुगतवतीनिशाचरीसानिशिसुघनांधतमिस्रमार्गभूमौ ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने अन्यायबाधिको नाम षट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

अर्थ—जिसको तूं ज्ञान देने लगेगी और वह ज्ञानको धारण नहीं करेगा तो समझ लेना कि वह अपने नाशके ही अर्थ उत्पन्न हुआ है और वह जीव तुमारा न्यायपूर्वक प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ यह सुनके धीरसे कहा कि तुमने मेरे ऊपर अनुग्रह किया, ऐसा कहके उठ खडी हुई और उस हिमालयके शिखरसे क्रमसे उतरी ॥ १४ ॥ शीघ्र पर्वके ऊपरकी भूमियोंको लंघन करके और नीचेके तटोंपर प्राप्त होके हिमालयके पाद (नीचे) स्थित जो किरातोंका राज्य मण्डल है वहां प्रवेश किया ॥ १५ ॥ हे रामजी ! वह जनपद बहुत अन्न, पशु जनसमूह, द्रव्य, घास, ओषध तथा मांस आदिसे पूर्णथा और अनेक प्रकारके कन्दमूल, पीनेके पदार्थ अन्न तथा मृग, कीट और पक्षी आदिसे युक्त था ॥ १६ ॥ इसप्रकार हिमाचलके नीचे बसा हुआ जो वह उत्तम देश है, और रात्रिमें जिसकी मार्गभूमि अति अन्धकारसे युक्त होगई ऐसे स्थानमें कज्जलसे लिप्त पर्वतके समान शोभायमान वह निशाचरी जाके प्राप्त हुई ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे अन्यायबाधको नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

रात्रिका वर्णन उसके पश्चात् राजा और मंत्रीका मिलना, पश्चात् उसकी परीक्षाके लिये विस्तारसे कर्कटीके प्रश्नकी इच्छा इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ७७ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रकिरातजनमंडले ॥ हस्तग्राह्यतमःपिंडबभूवासितयामिनी ॥ १ ॥ नीलमेघपटच्छन्नानिरिंदुगगनांतरा ॥ तमालवनखंपिंडामांसलोड्डीनकज्जला ॥ २ ॥ लताघनतयाग्रामकोटरैकांध्यमंथरा ॥ गृहचत्वरसंबाधेनगरेनवयौवना ॥ ३ ॥ चत्वरेषुतमःपिंडीप्रजिह्मीकृतदीपिका ॥ कुंचितच्छिद्रनिष्क्रांतादीपिकारोचिराजिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसी अवसरमें उस किरातके राज्यमें रात्री ऐसी कृष्ण होगई की जिसका अन्धकार हस्तसे ग्रहण करने योग्य होगया था ॥ १ ॥ पुनः वह रात्रि मेघोंके पटलोंसे आच्छन्न, अमृतके

लुटनेके भयसे मानो चन्द्रमाको जिसने दूसरे आकाशमें भगादियाहै, तमालके वनोंको एकत्र कररही है, अन्धकारसे पृष्ठ और सर्वत्र नेत्रके कज्जलकोभी श्याम करनेवाली ॥ २ ॥ पर्वत ग्रामोंमें लताओंकी घनतासे तारागणोंकाभी प्रकाश न जानेसे वृद्धा स्त्रीके समान मन्दगति, और स्थान तथा अंगनोंसे वनीभूत नगरोंमें दीपिकाओंके प्रकाशसे नवयौवना स्त्रीके समान चलती हुई ॥ ३ ॥ और अंगणोंके बाहर वायुके कारणसे दीपिकाओंके प्रकाशको वक्र (टेढा) करनेवाली, इसी कारण अन्धकारको पिण्डीभूत करनेवाली, और कुटित झरोखोंसे किंचित् निकले हुये प्रकाशोंसे शोभायमान ॥ ४ ॥

सुवयस्येवकर्कव्याःपरिनृत्यत्पिशाचिका ॥ मत्तवेतालकंकालकाष्ठमौनमिवास्थिता ॥ ५ ॥ सुषुप्तमृग भूतौघघननीहारहारिणी ॥ मंदमंदमरुत्स्पर्शलसत्प्रालेयसीकरा ॥ ६ ॥ सरःसुविवटद्वारिकाकभेकत रंगिका ॥ अंतःपुरेषुरमणरणन्नारीनराननां ॥ ७ ॥ जंगलेषुजगज्ज्वालाजटालज्वलनोज्ज्वला ॥ केदारे ष्वंबुसंसेकपृष्ठपाकमिलच्छला ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा नृत्य कर रहे हैं पिशाच जिसमें और मत्त वेताल और चर्ममांस शून्य प्रेतोंके समूहसे युक्त तथा काकके समान मौन स्थित वह रात्रि कर्कटीकी प्रियसखीके समान थी ॥ ५ ॥ तथा पुनः सो हुये मृग तथा अन्य प्राणियोंके समूहसे घनीभूत नीहारोंसे शोभित, और मन्द २ वायुके स्पर्शसे शोभायमान हैं हिमके बिन्दु जिसके ऐसी ॥ ६ ॥ तलाओंमें गढोंके द्वारोपर काक तथा मेंढकोंसे व्याप्त, और अन्तःपुरोंमें क्रीडामें स्त्री तथा पुरुषोंके मुख जिसमें शब्दायमान होरहेहैं ॥ ७ ॥ और जंगलोंमें प्रलयकालकी अग्निसे अतिजटायुक्त उज्वल और चावलके खेतोंमें जलसे सींचनेके कारण गीला हो जानेसे शाहीके पृष्ठपर पक खेतोंमें जहांपर शाहीके कांटे प्राप्त होतेहैं ऐसी ॥८॥

नभस्थलेक्षितस्पंदप्रविविक्तर्क्षचक्रिका ॥ वनेषुविसरद्वातपतत्पुष्पफलद्रुमा ॥ ९ ॥ श्वभ्रेषुकौशिकस्यां तर्वायसव्याहतारवा ॥ तस्कराक्रांतपर्यंतग्राम्याक्रंदनकर्कशा ॥ १० ॥ विपिनेविपिनामौनानगरेसुप्तना गरा ॥ वनेषुविसरद्वातानीडेष्वस्पंदपक्षिका ॥ ११ ॥ गुहासुसुप्तसिंहाढ्याकुंजेषुस्वपदेणका ॥ खेसा वश्यायनिकराविपिनेमौनचारिणी ॥ १२ ॥

अर्थ—और आकाशमें गतिके उत्पन्न हुये नेत्र तारागण जिसमें विभक्त होरहे हैं, और बनमें वायुके जलनेसे जिसमें पुष्प फल तथा वृक्षतक जिसमें गिर रहेहैं ॥ ९ ॥ और वृक्षोंके कोटरोंमें उल्लूके शब्द सुनके काकोंका शब्द जिसमें व्याहत (द्रव) होगयाहै, और चोरोंसे आक्रान्त होनेके निकट ग्रामीणोंके शब्दोंसे अति भयंकर ॥ १० ॥ बनमें बनके समान मौन नगरमें सो गये नागरिक लोग जिसमें ऐसे वनमें जिसमें वायु चलरहा है और घोसलोंमें पक्षी जिससमय चेष्टा राहित होगये हैं ॥ ११ ॥ कन्दराओंमें सोये हुये सिंहोंसे पूर्ण और कुंजोमें हिंसक जीवोंसे युक्त, आकाशमें नाशकारक हिमके समूहवाली, और जंगलोंमें मौन धारिणी ॥ १२ ॥

कज्जलांभोदमध्याभाकाचशैलोदरोपमा ॥ पंकपिंडांतरघनाखड्गच्छेद्यांध्यमांसला ॥ १३ ॥ प्रलयानिल विक्षुब्धकज्जलाचलचंचला ॥ एकार्णवमहापंकपर्वतोदरमेदुरा ॥ १४ ॥ अंगारकोटरघनासौषुप्तपदसुं दरी ॥ अज्ञाननिद्रानिबिडाभृंगपृष्ठच्छदच्छविः ॥ १५ ॥ तस्यांरजन्यांभीमायांकिरातजनमंडले ॥ मं त्रिणासहभूपालस्तस्मिन्नवसरेतदा ॥ १६ ॥ निर्जगामसुधीरात्मानगरात्सुप्तनागरात् ॥ अटवींविक्र मोनामविषमांवीरचर्यया ॥ १७ ॥

अर्थ—कज्जलके मेघके समान मध्यभागसे शोभित काचके पर्वतके सदृश उदरवाली, मृत्तिकाके पिण्डके मध्यके तुल्य घनीभूत, और तरवारसे छेदनके योग्य अन्धकारसे पुष्ट ॥ १३ ॥ प्रलयके वायुसे चूर्ण किये हुये कज्जलगिरिके समान चंचल, एक समुद्रके समान, अथवा पर्वतके उदरके सदृश अति चिक्कण ॥ १४ ॥ तथा जले हुये काष्ठके उदरके समान अति घन, गाढ, अज्ञानके तुल्य सुन्दरी, मूल अज्ञानके समान अति निबिड और भ्रमरके पृष्ठ वा परके समान कृष्ण छबिवाली वह रात्रिथी जिसमें वह कर्कटीराक्षसी किरातोंके राज्यमण्डलमें आई ॥१५॥ हे रामजी ! उस भयंकर रात्रिके अवसरमें किरातोंके राज्यमण्डलमें, बुद्धिमान् धीर, वीरोंके उचित चोर आदिके वधको करनेवाला विक्रमनामी किरातोंका राजा, जब नगरनिवासी सब सो गयेथे उससमय नगरसे उस भयंकर बनमें निकला॥१६॥१७

अटव्यांकर्कटीसातौचरंतौराजमंत्रिणौ ॥ अपश्यद्धृतधैर्याढ्यौवेतालालोकनोन्मुखौ ॥ १८ ॥ अथसाचिं तयामासलब्धोभक्ष्योह्यहोमया ॥ मूढावेतावनात्मज्ञौभारोदेहःकिलानयोः ॥ १९ ॥ इहामुत्रचनाशाय मूढोद्वःखायजीवति ॥ यत्नाद्विनाशनीयोसौनानर्थःपरिपाल्यते ॥ २० ॥

अर्थ—धैर्य्य तथा अस्त्रादिकों धारण किये हुये, और ग्रामके बाहर ग्रामदेवता वेतालोंके देखनेमें तत्पर, उसी बनमें विचरते हुये राजा और मन्त्रीको उस कर्कटीने देखा ॥ १८ ॥ उसने अपने मनमें चिन्तन किया कि अहो मैंने अपना भक्ष्य पाया, क्योंकि ये दोनों आत्मज्ञानरहित मूढ़ हैं, निश्चय करके इन दोनोंका देह अज्ञानके कारण भार भूतहै ॥ १९ ॥ इस लोकमें तथा परलोकमें मूढप्राणी नाशके अर्थ तथा दुःखहीके लिये जीताहै, इसलिये इन दोनोंका नाश यत्नसे करना चाहिये, क्योंकि अनर्थकारी प्राणीका पालन नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

अपश्यतःस्वमात्मानंमृतिर्मूढस्यजीवितम् ॥ मरणेनोदयोस्यास्तिपापासंपत्तिहेतुतः ॥ २१ ॥ आदिसर्गेचनियमःकृतःपंकजजन्मना ॥ हिंस्राणांभोजनायास्तुमूढात्मानात्मवानिति ॥ २२ ॥ तस्मादिमौमयेवाद्यभोक्तव्यौभोज्यतांगतौ ॥ अभव्यएवनिर्दोषंप्राप्तमर्थमुपेक्षते ॥ २३ ॥ कदाचित्ताविमौस्यातांगुणयुक्तौमहाशयौ ॥ तादृङ्नरविनाशोहिस्वभावान्मेनरोचते ॥ २४ ॥

अर्थ—जो मूढ अपने आत्माको नहीं जानता उसकी मृत्यु उसके जीवनसे उत्तम है मरनेसे इसकी पाप सम्पत्तिका उदय कारण सहित होगा ॥ २१ ॥ सृष्टिके आदिमेंही ब्रह्माजीने यह नियम किया है कि जो मूढ अज्ञानी हैं वे हिंसक जीवोंके भोज्य हों न कि आत्मज्ञानी ॥ २२ ॥ इसलिये ये दोनों मेरे भोज्य प्राप्त हुये हैं आजही इनको मुझे भोजन करना चाहिये क्योंकि वह अभागी प्राणी है जो दोषरहित प्राप्त भोजनको त्यागताहै ॥ २३ ॥ कदाचित् ये दोनों आत्मज्ञानरूपी गुणसेयुक्त महात्मा हों तो ऐसे मनुष्यका विनाश मुझे स्वभावसेही नहीं अच्छा लगता ॥२४॥

तदेतौसंपरीक्षेहंयदिताद्दग्गुणान्वितौ ॥ तद्भक्षंनकरोम्येतौनहिंस्यांगुणिनःक्वचित् ॥ २५ ॥ अकृत्रिमंसुखंकीर्तिमायुश्चैवाभिवांछता ॥ सर्वाभिमतदानेनपूजनीयागुणान्विताः ॥ २६ ॥ अपिनंक्ष्यामिदेहेननैवभोक्ष्येगुणान्वितम् ॥ सुखयंतिहिचेतांसिजीवितादपिसाधवः ॥ २७ ॥ अपिजीवितदानेनगुणिनंपरिपालयेत् ॥ गुणवत्संगमौषध्यामृत्युरप्येतिमित्रताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसलिये मैं इनकी परीक्षा करूं, यदि वैसे (आत्मज्ञान) गुणसे युक्त हैं तो इनका भोजन मैं कभी नहीं करूंगी, क्योंकि गुणियोंकी हिंसा मैं कदापि न करूंगी ॥ २५ ॥ क्योंकि जिसको अकृत्रिम सुखकी कीर्तिकी, और आयुकी वांछाहो उनको उचित है कि सम्पूर्ण इष्ट पदार्थोंको देके गुणियोंकी पूजा करै ॥ २६ ॥ मैं अपने शरीरसे चाहै नष्ट होजाऊं (क्योंकि आत्मा तो अविनाशी है) परन्तु गुणी पुरुषका भोजन कदापि न करूंगी, क्योंकि आत्मज्ञानी साधु महात्मा लोग जीवनसेभी अधिक सुखी चित्तोंको करते हैं ॥ २७ ॥ अपना जीवन देकेभी गुणी प्राणीको पालन करना चाहिये, क्योंकि गुणी पुरुषके समागमरूप औषधिसे मृत्युभी सुखदायी मित्रताके तुल्य होजाती है ॥२८

यत्राहमपिरक्षामिराक्षसीगुणशालिनम् ॥ तत्रान्यःकोनकुर्यात्तंहृदिहारमिवामलम् ॥ २९ ॥ उदारगुणयुक्तायेविहरंतीहदेहिनः ॥ धरातलेंदवःसंगाद्भृशंशीतलयंतिते ॥ ३० ॥ मृतिर्गुणितिरस्कारोजीवितंगुणिसंश्रयः ॥ फलंस्वर्गापवर्गादिजीवितादूणिसंश्रितात् ॥ ३१ ॥ तस्मादिमौपरीक्षेहंकयाचित्प्रश्नलीलया ॥ किमात्रज्ञानकावेतावितितामरसेक्षणौ ॥ ३२ ॥ आदौविचार्यसगुणागुणलेशयुक्तिपश्चात्स्वतोधिकतरंचगुणैर्यदिस्यात् ॥ कुर्यात्ततःसमुपपत्तिवशेनदंडंदंड्यस्ययुक्तिसहसंघनसंभवेन ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कटी राक्षसीविचारो नाम सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—अब मैं राक्षसी होके गुणसे शोभायमान पुरुषकी रक्षा करतीहुं, तो दूसरा ऐसा कौन है जो गुणी पुरुषको अपने हृदयका निर्मल हार न बनावै ॥ २९ ॥ उदार गुणसेयुक्त जो देहधारी संसारमें विचरते हैं वे इस पृथिवीके चन्द्रमा हैं और समागम करनेसे प्राणीयोंको अपने अमृतमय गुणोंसे अति शीतल करते हैं ॥ ३० ॥ गुणियोंका तिरस्कार करना यही मृत्यु है और उनका आश्रय लेना यही जीवन है, क्योंकि गुणियोंके समागमरूपी जीवनसे स्वर्ग और मोक्ष आदि फल सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिये किसी प्रश्नकी लीलासे मैं इनकी परीक्षा करूंगी, कि ये कमलके सदृश नेत्रवाले कितने गुणसे युक्त हैं ॥ ३२ ॥ प्रथम गुणके लेशसेभी इस बातको विचार करके कि यह गुणी है वा निर्गुणी, पीछे यदि अपनेसे अधिक गुणीका विचार करके, यदि गुणोंसे हीन हों तो उसको शास्त्रकी रीतिसे दण्ड दे, और यदि अधिक गुणोंका संभव हो तो दण्ड न करै ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कटीराक्षसीविचारो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

भयंकर भाषणसेभी भयरहित राजाको कर्कटीका दर्शन और मन्त्रीके वाक्यसे शान्त की हुई कर्कटीके प्रश्नोंका आरम्भ इस ७८ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसाराक्षसीरक्षःकुलकाननमंजरी ॥ तमस्येवाभ्रलेखेवगंभीरंविननादह ॥ १ ॥ नादांतेसमुवाचेदंहुंकारापरुषंवचः ॥ गर्जितानंतरंजातकरकाशनिशब्दवत् ॥ २ ॥ भोभोघोराटवीव्योमपदवीशशिभास्करौ ॥ मयामायातमःपीठशिलाकोटरकीटकौ ॥ ३ ॥ कौभवंतौमहाबुद्धीदुर्बुद्धीवासमागतौ ॥ मद्ग्रासपदमापन्नौक्षणान्मरणकोचितौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर ज्ञान होनेके कारण राक्षसोंके कुलरूपी वनकी लतारूपिणी उस कर्कटी राक्षसीने अन्धकारमें मेघकी लेखाके समान गम्भीर गर्जना की ॥ १ ॥ उस नादके अन्तमें हुंकारसे भयंकर परन्तु अर्थसे निष्ठुरताराहित ऐसे बचन बोली जैसे गर्जनाके अनन्तर पाषाणवृष्टियुक्त विद्युत्का शब्द ॥ २ ॥ हो हो इस भयंकर बनरूपी आकाशमार्गके चन्द्रमा और सूर्य्य, तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके आधारभूत महा अज्ञान पीठिकाके कोटरके केर्कीके समान ॥ ३ ॥ तुम दोनों महाबुद्धि (आत्मज्ञान) होनेपर दुर्बुद्धीयोंके समान कौन हो और यहां कैसे आयो अब तुम क्षणमेंही दुष्ट मरणके योग्य हो, और मेरे ग्रासभूत तुम आके प्राप्त हुये ॥ ४ ॥

॥ राजोवाच ॥ भोभोभूतककिंस्यास्त्वंक्वतिष्ठसिचदेहकम् ॥ दर्शयास्यास्तवगिरःकाबिभेत्यलिनीध्वनेः ॥ ५ ॥ सिंहवत्सर्ववेगेनपतंत्यर्थेकिलार्थिनः ॥ त्यजसंरंभमारंभंस्वसामर्थ्यंप्रदर्शय ॥ ६ ॥ किंप्रार्थयसिमेब्रूहिददामितवसुव्रत ॥ किंवासंरंभशब्दाभ्यांभीषयास्मान्बिभेषिकिम् ॥ ७ ॥ क्षिप्रमाकारशब्दाभ्यांमाययासन्मुखीभव ॥ नकिंचिद्दीर्घसूत्राणांसिद्ध्यत्यात्मक्षयादृते ॥ ८ ॥

अर्थ—राजाजी बोले-हे तुच्छ जीव ! तू कौन है ? और कहां रहता है ? अपना अल्प शरीर तो दिखला, इस भ्रमरीके ध्वनिके समान तेरे शब्दसे यहां कौन डरता है ॥ ५ ॥ जो तुच्छभी प्राणी किसी पदार्थके अभिलाषी होते हैं वे सिंहके समान सम्पूर्ण वेगसे अपने अभिलषित पदार्थपर गिरते हैं तुम अपना कोप तथा डरानेके उद्योगको त्यागो और अपना सामर्थ्य देखलाओ ॥ ६ ॥ हे सुव्रत (क्योंकि तुम आत्मज्ञानी प्रतीत होतेहो) अर्थात् उत्तम व्रत करनेवाले तुम क्या चाहतेहो कहो वह मैं देताहुं, क्योंकि हम लोगोंका तुमारे कोप और भयंकर शब्दोंसे क्या होगा, अथवा तुम स्वयंतो नहीं भयभीत हो ॥ ७ ॥ अपने आकार तथा भयकारी शब्दसे और दूसरोंके देखने योग्य शरीरकी कल्पना शक्ति शीघ्र सम्मुख होजाओ, क्योंकि विलम्ब करनेवालोंका अपने नाशके अतिरिक्त कोईभी कार्य्य सिद्ध नहीं होता ॥ ८ ॥

राज्ञेत्युक्तेरम्यमुक्तमितिसंचिंत्यसातयोः ॥ प्रकाशायाप्यधैर्यायननादचजहासच ॥ ९ ॥ ततोददृशतुस्तांतौशब्दपूरितदिग्गणाम् ॥ साट्टहासप्रभापिंडपूरप्रकटिताकृतिम् ॥ १० ॥ कल्पाभ्राशनिकाशेणघृष्टामद्रितटीमिव ॥ स्वनेत्रविद्युद्वलयबलाकोज्ज्वलितांबराम् ॥ ११ ॥ तिमिरैकार्णवौर्वाग्निज्वालाचिवलनामिव ॥ गर्जद्घनघटाटोपपीवरासितकंधराम् ॥ १२ ॥

अर्थ—राजाके इतना कहने पश्चात् उस राक्षसीने चिन्तन किया कि बहुत अछा किया, और अपने स्वरूपके प्रकाशके लिये तथा अपना धैर्य्य देखलानेके अर्थ गर्जनाभी की और हंसाभी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर शब्दसे जितने दिशाओंके गणोंको पूर्णकर दियाहै और अट्टहास (उच्चहास) से दांतोंके प्रभाके पिण्डके प्रवाहोंसे जिसने अपने आकारको प्रकट किया है ऐसी राक्षसीको उन दोनों राजा और मन्त्रीने देखा ॥ १० ॥ प्रलयकालके मेघसे गिरे हुये वज्रकी दगडसे घिसी हुई पर्वतकी तटीके तुल्य, अपने नेत्ररूपी दो बिजुलियोंसे तथा शंखके कटकरूपी बकपंक्तियोंसे आकाशको प्रकाशित करनेवाली ॥ ११ ॥ अन्धकाररूपी समुद्रके वडवानलकी ज्वालाकी लताके समान, मेघोंकी घटाटोप गर्जना सहित अति स्थूल और कृष्णवर्ण है कन्धरा जिसकी ऐसी ॥ १२ ॥

रणद्दशनसंरंभहाहाहतनिशाचराम् ॥ रोदसीकज्जलस्तंभालीलयोल्लसितांपुनः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वकेशाशिरालांगींकपिलाक्षींतमोमयीम् ॥ यक्षरक्षःपिशाचानामप्यनर्थभयप्रदाम् ॥ १४ ॥ देहरंध्रविशच्छ्वासवातभांकारभीषणाम् ॥ मुसलोलूखलालातहलशूर्पकशेखराम् ॥ १५ ॥ स्फुरंतीमिवकल्पांतेवैदूर्यशिखरस्थलीम् ॥ हासवद्दित्तविश्वेशांकालरात्रिमिवोदिताम् ॥ १६ ॥

इस कथनसे आपनेको आत्मज्ञान सहित सूचित किया ॥

अर्थ—शब्द करते हुये दांतोंके भयसे हाहाकार शब्दपूर्वक निशाचर, चोर, व्याघ्र तथा शृगाल आदिको मारनेवाली, आकाश तथा पृथिवीको मानों कज्जलसे बांध रही है और पुनः लीलासे शोभायमान ॥ १२ ॥ ऊर्ध्व केशवाली, नाडी संयुक्त शरीर सहित पिंगलवर्ण नेत्रधारिणी, अन्धकारमयी, और यक्ष राक्षस तथा पिशाच आदिको-भी अनर्थ और भय देनेवाली ॥ १४ ॥ देहके छिद्रोंमें प्रवेश करते हुये श्वास वायुके भांकार शब्दसे भयंकर तथा मुसल और उलूखलकी माला और टूटे हुये शूपकोंमें मस्तकमें धारण करनेवाली ॥१५॥ तथा कल्पके अन्तमें चूर्ण की हुई वैदूर्य्य (मूगे) मणीकी स्थलीके समान देदीप्यमान, और अपने हांससे संसारके बडे २ दानवोंको मर्दित करनेके लिये शिवदूतीके समान उदित ॥ १६ ॥

शरद्व्योमाटवींसाभ्रांकृतदेहामिवागताम् ॥ शरीरिणींमहाभ्राढ्यांयामिनींमिवमांसलाम् ॥ १७ ॥ शरीरसंनिवेशेनपंकपीठमिवोत्थिताम् ॥ तनुंचंद्रार्कयुद्धायतमसेवसमाश्रिताम् ॥ १८ ॥ इंद्रनीलमहाशुभ्रलंबाभ्रयुगलोपमौ ॥ उलूखलादिहारौघौदधानामसितौस्तनौ ॥ १९ ॥ लग्नामंगारकाष्ठेनसमानांचमहातनुम् ॥ द्रुमाभास्पंदसशिरलसद्भुजलतातनुम् ॥ २० ॥

अर्थ—मेघों करके सहित देह धारण किये हुये शरत्कालकी आकाशरूपी महाअरण्यानीके समान आविर्भूत, तथा महामेघोंसे पूर्ण अति पुष्ट, शरीर धारण किये हुये रात्रिके समान आविर्भूत ॥ १७ ॥ तथा शरीर धारण करके पृथिवीके पीठके समान उठी हुई, और मानों चन्द्रमा तथा सूर्य्यसे युद्ध करनेके अर्थ मानों राहुने शरीर धारण कियाहै ॥ १८ ॥ महाशुभ्र इन्द्रनील मणिके समान लम्बायमान दो मेघके तुल्य, और उलूखल आदिके हारोंके समूह सहित तथा कृष्णवर्ण स्तनोंको धारण किये हुये ॥ १९ ॥ जले हुये काष्ठके सदृश लांछनयुक्त महाशरीरवाली गति रहित तथा नाडीसहित दो वृक्षोंके समान शोभायमान भुजलताओंसे अति अधिक शरीरधारिणी ॥ २० ॥

तामवेक्ष्यमहावीरौतथैवाक्षुभितौस्थितौ ॥ नतदस्तिविमोहाययद्विविक्तस्यचेतसः ॥२१॥ मंत्र्युवाच ॥ महाराक्षसिसंरंभोमहात्माकिमयंतव ॥ लघवोह्यथवाकार्येलघावप्यतिसंभ्रमाः ॥ २२ ॥ त्यजसंरंभमारंभोनायंतवविराजते ॥ विषयेहिप्रवर्त्ततेधीमंतःस्वार्थसाधकाः ॥ २३ ॥ त्वादृशानांसहस्राणिमशकानामिवाबले ॥ अस्माकंधीरतावात्याव्यूढानितृणपर्णवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—उस राक्षसीको देखके वे दोनों महावीर जैसेथे वैसेही क्षोभरहित स्थितथे, क्योंकि सत्य और मिथ्याको विवेक करनेवाले चित्तसहित प्राणीको ऐसा कोई पदार्थ नहीं हैं जो मोह उत्पन्न करै ॥ २१ ॥ मन्त्रीजी बोले—हे महाराक्षसि! (यदि तुम महाजीव हो) यह तुमारा महान्कोप किसलिये है अथवा (यदि तुम लघुहो) जो लघु होते हैं, वे तुच्छ कार्य्यके अर्थभी महान्कोप धारण करते हैं, अर्थात् वाणी मात्रसे सुलभ आहारके लिये यह क्रोध और साहस आदि करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ यह अपना कोप तुम त्यागो क्योंकि ऐसा आरम्भ तुमारा शोभा नहीं देता, बुद्धिमान् लोग योग्य विषयमें अपने कार्य्यके साधक होते हैं, अर्थात् जो कार्य्य सामसे सिद्धहो उनके लिये दण्ड धारण नहीं करते ॥ २३ ॥ हे अबले! (बलशून्य स्त्रि) तुमारे समान मशकोंके सहस्रके सहस्र हम लोगोंके धैर्य्यरूपी वायुके समूहसे तृण और पत्रके समान उडादिये गये ॥ २४ ॥

संरंभद्वारमुत्सृज्यसमतास्वच्छयाधिया ॥ युक्त्याचव्यवहारिण्यास्वार्थःप्राज्ञेनसाध्यते ॥ २५ ॥ स्वेनैवव्यवहारेणकार्यंसिध्यतुवानवा ॥ महानियतिरित्येवभ्रमस्यावसरोहिकः ॥ २६ ॥ कथयाभिमतंकिंतेकिमर्थयसिचार्थिनी ॥ अर्थीस्वप्नेपिनास्माकमप्राप्तार्थःपुरोगतः ॥ २७ ॥ इत्युक्तासातदातेनचिंतयामासराक्षसी ॥ अहोनुविमलाचारंसत्वंपुरुषसिंहयोः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोपके द्वारको त्यागके समतायुक्त स्वच्छ बुद्धिसे, बुद्धिमानोंके व्यवहारके योग्य युक्तिसे बुद्धिमान् लोग अपना कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥ २५ ॥ कार्य्य सिद्धहो या नहो परन्तु सामसिद्ध जो उपायहै उसीका प्रयोग प्रथम करना उचितहै यह अनादिकालसे नियतिका निश्चय है और जब कार्य्यसिद्धि निश्चित है तब भ्रान्त पुरुषोंके योग्य व्यवहार करनेका क्या अवसर है ॥ २६ ॥ कहो तुमारा अभिमत क्या है तुम अभिलाषिणी किस पदार्थको चाहती हो, क्योंकि स्वप्नमें कोई अर्थी अपना अर्थ पाये बिना हम लोगोंके सम्मुखसे कभी नहीं गया ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उस मंत्रीसे इसप्रकार कही हुई राक्षसीने अपने मनमें चिन्तन किया कि अहो ! इन पुरुषसिंहोंका कैसा विमल आचार, धैर्य तथा बुद्धिबल है ॥ २८ ॥

नसामान्याविमौमन्येविचित्रेयंचमत्कृतिः ॥ वचोवक्त्रेक्षणेनैववदत्यंतर्विनिश्चयम् ॥ २९ ॥ वचोवक्त्रेक्षणद्वारैर्धीमतामाशयामिथः ॥ एकीभवंतिसरितांपयांसिवलनैरिव ॥ ३० ॥ आभ्यांप्रायःपरिज्ञातोममाभवोनयोर्मया ॥ नविनाश्यौमयाचेमौस्वयमेवाविनाशिनौ ॥ ३१॥ मन्येभवेतामात्मज्ञौनात्मज्ञानादृते मतिः ॥ प्रमृष्टसदसद्भावाद्भवत्यस्तभयामृतौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—ये दोनों कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं, यह चमत्कृति कुछ विचित्रही है इनके मुख तथा नेत्रके देखनेसे और इनके बचनसे यह सूचित होताहै कि इनके अन्तःकरणमें तत्त्वका निश्चय है ॥ २९ ॥ बाणीसे मुख तथा नेत्रके दर्शन द्वारा बुद्धिमानोंके अभिप्राय परस्पर ऐसे मिलके एक हो जाते हैं जैसे समागमोंसे नदियोंके जल ॥ ३० ॥ प्रायः इन दोनोंने मेरा और मैंने इनका अभिप्राय जान लिया, इसलिये इनका बिनाश मुझे नहीं करना चाहिये क्योंकि ये आत्मरूपसे स्वयं अविनाशी हैं ॥ ३१ ॥ मैं समझतीहुं कि ये दोनों आत्मज्ञानी हैं, क्योंकि नष्ट होगयाहै जीवन मरणका विश्वास जिससे ऐसे आत्मज्ञानके बिना प्राणी मरणके विषयमें भयरहित नहीं होते ॥ ३२ ॥

तदेतौपरिपृच्छामिकिंचित्संदेहमुत्थितम् ॥ प्राज्ञंप्राप्यनपृच्छंतियेकेचित्तेनराधमाः ॥ ३३ ॥ इतिसंचिंत्यपृच्छायैतन्वानावसरंततः ॥ अकालकल्पाभ्ररवंहासंसंयम्यसाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ कौभवंतौनरौधीरौकथ्यतामितिमेनघौ ॥ जायतेदर्शनादेवमैत्रीविशदचेतसाम् ॥ ३५ ॥ मंत्र्युवाच ॥ अयंराजाकिरातानामस्याहंमंत्रितांगतः ॥ उद्यतौरात्रिचर्यैणत्वादृग्जनविनिग्रहे ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसलिये कुछ सन्देह उत्पन्न हुआहै सो इनसे पूंछू, क्योंकि बुद्धिमान् पाके जो नहीं पूंछते वे मनुष्योंमें अधम हैं ॥ ३३ ॥ ऐसा बिचार करके पूंछनेके अर्थ, उस समय उस शरीर (शरीरकी दीर्घता) से कुछ अवसर न होनेके कारण, अकालमें कल्पान्त मेघके सदृश शब्दवाले अपने हाल रोककर वह राक्षसी बोली ॥ ३४ ॥ हे पापरहित धीर पुरुष ! तुम दोनों कौन हो ? क्योंकि उदार चित्तवालेंके दर्शनसेही मित्रता होजाती है ॥ ३५ ॥ मंत्रीजी बोले-हे राक्षसी यह तो किरातोंका राजा है और मैं इसका मंत्रीहुं, और रात्रिके भ्रमणसे तुमारे सदृश हिंसक जीवोंको दमन करनेके अर्थ उद्यत हैं ॥ ३६ ॥

राज्ञोरात्रिंदिवंधर्मोदुष्टभूतविनिग्रहः ॥ स्वधर्मत्यागिनोयेतुतेविनाशानलेंधनम् ॥ ३७ ॥ राक्षस्युवाच ॥ राजंस्त्वमसिदुर्मंत्राढुर्मंत्रीननृपोभवेत् ॥ सद्रूपस्यभवेन्मंत्रीराजासन्मंत्रिणोभवेत् ॥३८॥ राजाचादौविवेकेनयोजनीयःसुमंत्रिणा ॥ तेनार्थतामुपायातियथाराजातथाप्रजाः ॥ ३९ ॥ समस्तगुणजालानामध्यात्मज्ञानमुत्तमम् ॥ तद्विद्राजाभवेद्राजातद्विन्मंत्रीचमंत्रवित् ॥ ४० ॥

अर्थ—क्योंकि-राजाका यही धर्म है कि रात्रि दिन दुष्ट जीवोंके विनिग्रह (दमन करके दण्ड देने) में उद्यत रहे, और जो अपने धर्मको त्याग देते हैं वे विनाशरूप अग्निके इन्धन होते हैं ॥ ३७ ॥ राक्षसी बोले-हे राजन् ! मुझे ऐसा सम्भव होताहै कि तुमारा मन्त्री दुष्टहै और जिसका मन्त्री दुष्टहै वह राजा नहीं होसकता उत्तम राजाहीका मन्त्रीहो सकताहै, और जो उत्तम मन्त्री है उसीका राजा होताहै ॥ ३८ ॥ राजाको उचितहै कि विवेकसे प्रथम मन्त्रीसे युक्तहो उसी (उत्तम मंत्री) से यह श्रेष्ठताको प्राप्तहै, और जैसा राजा होताहै वैसीही उसकी प्रजा होती है अर्थात् श्रेष्ठ राजा होनेसे प्रजाभी श्रेष्ठ होगी और राजाके नष्ट होनेसे प्रजाभी नष्ठ होगी ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण गुणोंके समूहोंके आत्मज्ञान जोहै वही उत्तम है, उस आत्माको जाननेवाला उत्तम राजा होसकताहै, और उसी आत्माको जाननेसे मंत्रीभी रहस्य मंत्रको जान सकताहै ॥ ४० ॥

प्रभुत्वंसमदृष्टित्वंतत्स्याद्राजविद्यया ॥ तामेवयोनजानातिनासौमंत्रीनसोऽधिपः ॥ ४१ ॥ भवंतौतद्विदौसाधूयदितच्छ्रेयआप्नुथः ॥ नोचेदनर्थदौस्वस्याःप्रकृतेरद्म्यहंयुवाम् ॥ ४२ ॥ एकोपायेनमत्पार्श्वोद्दालकावृत्तरिष्यथः ॥ मत्प्रश्नपंजरंसारंचेद्विचारयथोधिया ॥४४॥ प्रश्नानिमान्कथयपार्थिववाचमंत्रिंस्तत्रार्थिनीभृशमहंपरिपूरयार्थम् ॥ अंगीकृतार्थमददत्कइवास्तिलोकेदोषेणसंक्षयकरेणनयुज्यतेयः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नामाष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—समदृष्टिके आधीन जो प्रभुता है वह आत्मज्ञानरूप राजविद्याके विना नहीं होसकती, उस राजविद्याहीको जो नहीं जानता न वह मंत्री मंत्री है और न वह राजा राजाहै ॥ ४१ ॥ यदि तुम दोनों उस राजविद्या (आ-

त्मज्ञान विद्या) को जानतेहो तो साधुहो और उसके कल्याणको पाओंगे, और नहीं जानते तो अनर्थकारी तुमहो और मैं अपनी प्रकृतिके अनुकूल तुमको खाजाउंगी ॥ ४२ ॥ यदि तुम मेरे प्रश्न जालको अपनी बुद्धिसे विचारोंगे तो इसी एक उपायसे उस प्रीतिके पात्र होओंगे जिसके बालक लोग मातापिताकी ओरसे होते हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन्! तथा हे मंत्रिन्! मेरे इन वक्ष्यमाण प्रश्नोंको कहिये मैं इन्हीके उत्तरकी अति अभिलाषिणी हुं उस अभिलाषाको पूर्ण कीजिये, तुमने मेरे अभिलाषके पूर्ण करनेके प्रतिज्ञा की है, और जो अंगीकृत अर्थको नहीं देता वह ऐसा कौन है जो नाशकारी दोषसे युक्त न हो ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अज्ञानियोंके लिये वज्रके समान और आत्मज्ञानियोंके हृदयके अतिप्रिय ऐसे ७२ प्रश्न कर्कटीने किये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाराक्षसीप्रश्नान्सावक्तुमुपचक्रमे ॥ उच्यतामितिराज्ञोक्तानिमान्शृणुराघव ॥ १ ॥ राक्षस्युवाच ॥ एकस्यानेकसंख्यस्यकस्याणोरंबुधेरिव ॥ अंतर्ब्रह्माण्डलक्षाणिलीयंतेबुद्बुदाइव ॥ २ ॥ किमाकाशमनाकाशंनकिंचित्किंचिदेवकिम् ॥ कोहमेवासिसंपन्नःकोभवानप्यहंस्थितः॥३ गच्छन्नगच्छतिचकःकोऽतिष्ठन्नपितिष्ठति ॥ कश्चेतनोपिपाषाणःकश्चिद्व्योम्निविचित्रकृत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जब राक्षसीने इतना कहा तब राजाने कहा कि अच्छा तुम अपने प्रश्नोंको कहो तब राक्षसीने उन प्रश्नोंका कहना आरम्भ किया सो तुम उनको सुनो ॥ १ ॥ राक्षसी बोले–यथार्थमें एक परन्तु उपाधि भेदसे अनेक समुद्रके समान वह कौन अणु है जिसके भीतर बुद्बुदके तुल्य लाखों ब्रह्माण्ड लीन होतेहैं ॥ २ ॥ शून्यता रहित कौन आकाश है ? कुछ नहीं और कुछ कौन वस्तु है ? मैं कौनहुं ? और तुमभी उत्पन्न होके अहंरूपसे कौन स्थित हो ? ॥ ३ ॥ चलताहुआभी कौन नहीं जाता ? और कौन गतिकी निवृत्ति न करनेपरभी स्थित है ? व कौन है जो चेतन होते हुयेभी पाषाणके समान घन है ? और चिदाकाशमें विशेष चित्र करनेवाला कौन है ? ॥ ४ ॥

वह्नितामजहच्चैवकश्चवह्निरदाहकः ॥ अवह्नेर्जायतेवह्निःकस्माद्राजन्निरंतरम् ॥ ५ ॥ अचंद्रार्काग्नितारोपिकोऽविनाशःप्रकाशकः ॥ अनेत्रलभ्यात्कस्माच्चप्रकाशःसंप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ लतागुल्मांकुरादीनांजात्यंधानांतथैवच ॥ अन्येषामप्यनक्षाणामालोकःकइवोत्तमः ॥ ७ ॥ जनकःकोंबरादीनांसत्तायाःकःस्वभावदः ॥ कोजगद्रत्नकोशःस्यात्कस्यकोशोमणेर्जगत् ॥ ८ ॥

अर्थ—अग्निकेरूपको न त्यागते हुयेभी वह कौन अग्नि है जो दाह नहीं उत्पन्न करता ? तथा हे राजन् ! जड कौन है जो अग्नि नहीं है परन्तु उससे अग्नि निरन्तर उत्पन्न होताहै ॥ ५ ॥ वह अविनाशी सबका प्रकाशक कौन है ? जो चन्द्र सूर्य्य अग्नि और तारागणोंसेभी भिन्न है वह कौन है ? जो नेत्रका विषय नहीं है परन्तु उससे प्रकाश निरंतर होताहै ? ॥ ६ ॥ लता गुल्म अंकुर आदिका तथा जन्मान्धोंका, और अन्यभी इन्द्रिय रहित जीवोंका उत्तम प्रकाशक कौन है ? ॥ ७ ॥ आकाशादिका उत्पन्न करनेवाला कौन है, और सबको सत्ता देनेवाला कौन है ? जगत्रूपी रत्नको कोश (खजाना) कौन है ? और किस माणिक कोशमें यह जगत है ? ॥ ८ ॥

कोणुस्तमःप्रकाशःस्यात्कोणुरस्तिचनास्तिच ॥ कोणुर्दूरेप्यदूरेचकोणुरेवमहागिरिः ॥ ९ ॥ निमेषएवकःकल्पःकःकल्पोपिनिमेषकः ॥ किंप्रत्यक्षमसद्रूपंकिंचेतनमचेतनम् ॥ १० ॥ कश्चवायुरवायुश्च कःशब्दोऽशब्दएवकः ॥ कःसर्वंनचकिंचिच्चकोहंनाहंचकिंभवेत् ॥ ११ ॥ किंप्रयत्नशतप्राप्यंलब्धंवापि बहुजन्मनि ॥ लब्धंनकिंचिद्भवतिकिंतुसर्वंनलभ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—वह कौन अणु है जो तमः प्रकाशस्वरूप है ? और वह कौन अणु है जो अस्तिरूप है और नास्ति (नहीं हैं) ऐसा प्रतीत होता है, वह कौन अणु है जो दूरभी है और समीपभी है ? तथा वह कौन अणु है जो महान पर्वतके तुल्य है ॥ ९ ॥ निमेषरूपही कल्प कौन है और कल्पभी निमेष कौन है ? कौन ऐसा है जो प्रत्यक्ष भासमा-

नभी तथापि मूढोंकी दृष्टिमें असत्के सदृश प्रतीत होता है ? और वह कौन है जो चेतन स्वरूपभी है तथापि मूर्खोंको अचेतनके तुल्य भासता है ? ॥ १० ॥ वह कौन है जो वायुरूप है और अवायुरूपभी है, और वह कौन है जो शब्द तथा अशब्दस्वरूपभी है ? और वह कौन है जो सब कुछ होते हुयेभी अकिंचित् है ? और अहंरूप तथा अनहरूप कौन है ? ॥ ११ ॥ अनेक जन्मोंमें आत्मस्वरूप होनेसे प्राप्त होनेपरभी सैकडों प्रयत्नोंसे प्राप्य कौन वस्तु है ? वह कौन पदार्थ जिसके लाभ होनेपर अपूर्व लाभ कुछ नहीं होता, किन्तु सम्पूर्णरूपसे लब्ध नहीं होता ॥ १२ ॥

स्वस्थेनजीवितेनोच्चैःकेनात्मैवापहारितः ॥ केनाणुनांतःक्रियतेमेरुस्त्रिभुवनंतृणम् ॥ १३ ॥ केनाप्यणुकमात्रेणपूरिताशतयोजनी ॥ कोणुरेवभवन्मातिनयोजनशतेष्वपि ॥ १४ ॥ केनालोकनमात्रेणजगद्बालःप्रनाट्यते ॥ कस्याणोरुदरेसंतिकिलावनिभृतांघटाः ॥ १५ ॥ अणुत्वमजहत्कोणुर्मेरोःस्थूलतराकृतिः ॥ बालाग्रशतभागात्माकोणुरुच्चैःशिलोच्चयः ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वस्थ और उच्च जीवनसे अपने आत्माहीको नाशके तुल्य किसने किया ? और वह कौन अणु है जो मेरुकोभी अपनेभीतर धारण करलेताहै और वह कौन है जो त्रिभुवनकोभी तृणके तुल्य बनाताहै ॥ १३ ॥ वह कौन है जो अनुरूप होनेपरभी सैकडों योजनोंको पूर्णकर रक्खाहै और वह कौन है जो अणुमात्र होते हुयेभी सैकडो योजनोंमेंभी नहीं समाता ? ॥ १४ ॥ किसके आलोकन मात्रसे जगत्रूपी बालक नाचने लगता है, वह कौन अणु है जिसके उदरमें पर्वतोंके समूहके समूह प्रविष्ट है ॥ १५ ॥ वह कौन है जो अपने अणु (सूक्ष्मरूप) को न त्यागते हुयेभी मेरुसेभी अधिकतर स्थूल आकारका है ? वह कौन अणु है जो बालके अग्रभागके तुल्यरूप होते हुयेभी महान पर्वतके तुल्य है ? ॥ १६ ॥

कोणुःप्रकाशतमसांदीपःप्रकटनप्रदः ॥ कस्याणोरुदरेसंतिसमग्रानुभवाणवः ॥ १७ ॥ कोणुरत्यंतनिःस्वादुरपिसंस्वदतेनिशम् ॥ केनसंत्यजतासर्वमणुनासर्वमाश्रितम् ॥ १८ ॥ केनात्माच्छादनाशक्तेनाणुनाच्छादितंजगत् ॥ जगल्लयेनकस्याणोःसद्भूतमपिजीवति ॥ १९ ॥ अजातावयवःकोणुःसहस्रकरलोचनः ॥ कोनिमेषोमहाकल्पःकल्पकोटिशतानिच ॥ २० ॥

अर्थ—वह कौन अणु है जो प्रकाश और अन्धकारकोभी प्रकट करता है ? और वह कौन अणुहै जिसके उदरमें सम्पूर्ण वृत्ति अवच्छिन (वृत्ति सहित) ज्ञानके लेश है ? ॥१७॥ वह कौन अणु है जिसका आस्वाद निरन्तर होताहै तथापि वह मधुर आदि रससे शून्य है ! वह कौन अणु है जो सम्पूर्ण वस्तुको त्यागे हुयेभी सबका आश्रय है ॥ १८ ॥ वह कौन अणु है जो अपने स्वरूपको आच्छादन करनेमें असमर्थ होकेभी जगत्को आच्छादन किये है ? वह कौन अणु है जिसकी सत्तासे प्रलयमें तिरोहितभी यह जगत् सत्रूप होके जीता है ? ॥ १९ ॥ वह कौन अणु है जिसके कोईभी अंग उत्पन्न नहीं हुये तथापि सहस्रों (हजारों) हस्त तथा नेत्र आदि वाला है ? और वह कौन निमेष है जो महाकल्प तथा सैकडों कल्पके समान है ? ॥ २० ॥

अणौजगंतितिष्ठंतिकस्मिन्बीजइवद्रुमः ॥ बीजानिनिष्कलांतानिस्फुटान्यनुदितान्यपि ॥२१॥ कल्पःकस्यनिमेषस्यबीजस्येवांतरस्थितः ॥ कःप्रयोजनकर्त्तृत्वमप्यनाश्रित्यकारकः॥२२॥दृश्यसंपत्तयेद्रष्टास्वात्मानंदृश्यतांनयन् ॥ दृश्यंपश्यन्नखमात्मानंकोहिपश्यत्यनेत्रवान् ॥ २३ ॥ अंतर्गलितदृश्यंचकआत्मानमखंडितम् ॥ दृश्यासंपत्तयेपश्यन्पुरोदृश्यंनपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—किस अणुमें अनुत्पन्नभी अनेक जगत् प्रलयमें ऐसे स्थित रहतेहैं जैसे बीजमें वृक्ष और सृष्टिके आरम्भमें अव्यक्त (अस्पष्ट) है बीज परम्पराकी अवधि जिनकी ऐसे बीज जो सृष्टिकालमें जगत्रूपसे विकसित होते हैं वे किसमें सदा उत्पत्ति रहित है ? ॥ २१ ॥ बीजके अन्तर्गत वृक्षके समान किस निमेषके भीतर कल्प स्थित है ? तथा कारककी प्रवृत्ति तथा कर्तृतासे रहित होकेभी सबका कर्ता कौन है ? ॥ २२ ॥ दृश्य (भोग्य पदार्थ) की सिद्धिके अर्थ अपने स्वरूपकोही दृश्यभावको प्राप्त करता हुआ द्रष्टा कौन है ? और बाह्य दृष्टिसे प्राप्त जगत्को देखता हुआ नेत्र रहित होकेभी अपने आत्माको कौन देखता है ? ॥ २३ ॥ दृश्यकी मिथ्यात्व सिद्धिके अर्थ अन्तःकरणमें दृश्य दृष्टिसे शून्य अखण्डित अपने आत्मस्वरूपको देखते हुयेभी सम्मुख स्थित दृश्य कौन नहीं देखता?॥२४

आत्मानंदर्शनंदृश्यंकोभासयतिदृश्यवत् ॥ कटकादीनिहेम्नेवविकीर्णकेनचत्रयम् ॥ २५ ॥ कस्मान्नकिंचित्पृथगूर्म्यादीवमहांभसः ॥ कस्येच्छयापृथक्चास्तिवीचितेवमहांभसः ॥ २६ ॥ दिक्कालाद्यनव

च्छिन्नादेकस्मादसतःसतः ॥ द्वैतमप्यपृथक्स्माद्द्रवतेवमहांभसः ॥ २७ आत्मानंदर्शनंदृश्यंसदसच्च जगत्त्रयम् ॥ कोंतर्बीजमिवांतस्थंस्थितःकृत्वात्रिकालगः ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने आत्मरूप द्रष्टाको, पदार्थाकार वृत्तिको, और दृश्यके तुल्य चक्षुष आदि इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष रूपसे कौन प्रकाश करताहै ? और सुवर्ण कटक आदिके तुल्य द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यको अपने आत्मामें विक्षेप शक्तिसे किसने प्रकट कियाहै ॥ २५ ॥ महान् समुद्रसे तरंग आदिके सदृश किससे यह प्रपंच किंचित् भी पृथक् नहीं है ? और महान् समुद्रसे तरंगताके तुल्य किसकी इच्छासे यह पृथक् तथा कहांपर है ? ॥ २६ ॥ महान् समुद्रसे द्रवताके तुल्य किस देशकाल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित सूक्ष्म, असत्के समान सत्रूपसे यह द्वैत होते हुये भी अपृथक् है ? ॥ २७ ॥ आत्मा (द्रष्टा) दर्शन, तथा दृश्य, और उद्भूत अवस्थायुक्त तथा तिरोहित अवस्थायुक्त तीनों लोकको बीजके समान अपने अपने अन्तर्गत करके कौन सर्वदा स्थित है ? ॥ २८ ॥

भूतंभवद्भविष्यच्चजगद्वृंदंबृहद्भ्रमम् ॥ नित्यंसमस्यकस्यांतर्बीजस्यांतरिवद्रुमः ॥ २९ ॥ बीजंद्रुमतयेवा शुद्रुमोबीजतयेवच ॥ स्वमेकमजहद्रूपमुदेत्यनुदितोपिकः ॥ ३० ॥ बिसतंतुर्महामेरुर्भोराजन्यदपेक्ष या ॥ तस्यकस्योदरेसंतिमेरुमंदरकोटयः ॥ ३१ ॥ केनेदमाततमनेकचिदेवविश्वंकिंसारएवमतिवल्ग सिहंसिपासि ॥ किंदर्शनेननभवस्यथवासदैवनूनंभवस्यमलदृग्वदनःस्वशांत्यै ॥ ३२ ॥

अर्थ—भूत, वर्तमान, और भविष्यत् यह जगत् समूह इस महान् भ्रमकेबीजके भीतर वृक्षके तुल्य किस समानके भीतर नित्य स्थित है ? ॥ २९ ॥ वह कौन है, जो अपने एकरूपको त्याग न करते हुये भी बीजको वृक्षरूप करके और वृक्षको बीजरूप करके स्वयं सदा अनुत्पन्नस्वरूप विकारात्मक जगत्रूपसे उत्पन्न होताहै ? ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वह कौन है जिसकी दृढताकी अपेक्षा महामेरुभी कमलके सूत्र तुल्यहै, और कौनहै जिसके उदरमें करोडों मन्दराचल हैं ? ॥ ३१ ॥ उपाधि भेदसे अनेक चेतन हैं जिसमें ऐसे इस विश्वको सृष्टिरूपसे किसने विस्तारित कियाहै ? तुम किसके बलसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें अतिशय करके प्रवृत्त होतेहो ? तथा दुष्ट जनोंका हनन और उत्तम प्रजाओंका पालन करतेहो ? और किसके दर्शनसे तुम अमल दृष्टि होके उससे भिन्न निश्चय करके नहींहो, उस वस्तुको हम लोगोंके शान्तिके अर्थ, तथा अपने मृत्युके मोक्षार्थ कहो ॥ ३२ ॥

एषोसैाप्रगलतुसंशयोममोच्चैश्चित्तश्रीसुखमिहिकामलानुलेपः ॥ यस्याग्रेनगलतिसंशयःसमूलोनैवा सौक्वचिदपिपंडितोक्तिमेति ॥ ३३ ॥ एवंमेयदिनविनेष्यथःक्रमोक्तंसंशांतंलघुतरमसंशयंसुबुद्धी ॥ तद्रक्षोजठरहुताशनेंधनत्वंनिर्विघ्नंझटितिगमिष्यथःक्षणेन ॥ ३४ ॥ पश्चात्तांजनपदमंडलींसमंताद्भाव त्कीमुरुजठराक्षणाद्ग्रसेहम् ॥ एवंतेभवतुसुराजतेतिमन्येमूर्खाणामतिरसएवसंक्षयाय ॥ ३५ ॥ इत्यु क्त्वाविपुलगभीरमेघनादप्रोल्लासप्रकटगिरानिशाचरीसा ॥ तूष्णीमप्यतिविकटाकृतिस्तदासीच्छुद्धां तःशरदमलाभ्रमंडलीव ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नो नामैकोनाशीतितमःसर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ - हे राजन् ! तुमारे उत्तरसे स्वात्माकार वृत्तिके विषयमें यह हमारा महान् संशय अमल चन्द्रमाके आवरणके सदृश नष्टहो, क्योंकि जिसके सम्मुख यह संशय नहीं नष्ट होता वह मूल अविद्यासहित जन कदापि पण्डितोंकी गणनामें नहीं आसकता ॥ ३३ ॥ इसप्रकार क्रमसे कहे हुये हमारे संशयको तुम दोनों उत्तम बुद्धिमान् शीघ्र शान्त नहीं करोगे तो शीघ्रही क्षणमेंही दोनों राक्षस जातिके उदराग्निके इन्धनता (भक्ष्यता) प्राप्त होओगे ॥ ३४ ॥ और तुमारे नाशके उत्तर महान् कुक्षिवाली मैं शीघ्रही तुमारे सम्पूर्ण राज्यका ग्रास कर जाऊंगी, इसलिये मैं चाहतीहुं कि मेरे प्रश्नोंके उत्तरदानसे तुमारेसहित सम्पूर्ण प्रजाकी सुराजता (तुमारे पालनसे प्रजाका कल्याण) हो, क्योंकि आत्मज्ञानरहित मूर्खोंकी अति भोग लम्पटता उनके नाशकेही लिये है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विशाल मेघके समान गम्भीर और उच्चवाणीसे वह निशाचरी कहके, भयंकररूप धारण करनेपरभी अन्तःशुद्ध शरत्कालकी मेघ मण्डलीके समान मौन होगई ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीप्रश्नो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

प्रथम मंत्रीने इस ८० के सर्गमें अनुक्रम तथा विपरीत क्रमसे सूक्ष्म युक्तियोंसे प्रश्नोंका समाधान कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महानिशिमहारण्येमहाराक्षसकन्यया ॥ इतिप्रोक्तेमहाप्रश्नेमहामंत्रीगिरंददौ ॥ १ ॥ मंत्र्युवाच ॥ शृणुतोयदसंकाशेप्रश्नमेतंभिनद्मिते ॥ अनुक्रमात्मकंमत्तंगजेंद्रमिवकेसरी ॥ २ ॥ भवत्यापरमात्मैषकथितःकमलेक्षणे ॥ अनयैववचोभंग्याप्रश्नविद्बोधयोग्यया ॥ ३ ॥ अनाख्यत्वादगम्यत्वान्मनःषष्ठेंद्रियस्थितेः ॥ चिन्मात्रमेवमात्माणुराकाशादपिसूक्ष्मकः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–महारात्रि, महाजंगलमें, महाराक्षसीके, इस महाप्रश्न करनेपर महामंत्री यह बाणी बोला ॥ १ ॥ मंत्री बोले-हे मेघके तुल्य शोभायमान राक्षसी ! तुमरे इस अनुक्रमात्मक प्रश्नको ऐसे भेदन करताहुं जैसे मत्त गजेंद्रको सिंह ॥ २ ॥ हे कमलके सदृश पिंगलवर्ण नेत्रवाली ! तुमने प्रश्नवेत्ताओंके बोधयोग्य इस अपनी बचनरूपी रचनासे परमात्माहीका कथन कियाहै ॥ ३ ॥ मनसहित छओंसें अकथनीय तथा अगम्य होनेके कारण चिन्मात्र जो आत्मा है वही अणुस्वरूप और आकाशसेभी सूक्ष्म है ॥ ४ ॥

चिदणोःपरमस्यांतःसदिवासदिवापिवा ॥ बीजेंतर्द्रुमसत्तेवस्फुरतीदंजगत्स्थितम् ॥ ५ ॥ सत्किंचिदनुभूतित्वात्सर्वात्मकतयास्वतः ॥ तदात्मकतयापूर्वभावाःसत्तांकिलागताः ॥ ६ ॥ आकाशंबाह्यशून्यत्वादनाकाशंतुचित्त्वतः ॥ अतींद्रियत्वान्नोकिंचित्सएवाणुरनंतकः ॥ ७ ॥ सर्वात्मकत्वाद्धुकेचतेन किंचिन्नकिंचन ॥ चिदणोःप्रतिभासास्स्यादेकस्यानेकतोदिता ॥ असत्येवयथाहेम्नःकटकादितथापरे ॥ ८ ॥

अर्थ—उसी परम चिदणुके भीतर सत्रूप अथवा असत्रूप यह जगत् ऐसे स्फुरताहै जैसे बीजके भीतर वृक्षकी सत्ता इससे किस अणु समुद्रके अन्तर्गत यह जगत् इस प्रश्नका उत्तर होगया ॥ ५ ॥ जो कुछ सत्रूप वस्तु है उन सबका अनुभवरूप होनेके कारण, और स्वयं सबका आत्मा होनेसे सृष्टिके आदिमें उसका रूप होनेहीसे सब पदार्थोंको सत्ता प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ आकाश और अनाकाश क्या है इसका उत्तर यह है कि वही चिदणु परमात्मा बाह्य वस्तुओंसे रहित (शून्य) होनेसे आकाश है और शुद्धचेतनरूप होनेसे आकाशसे भिन्नभी है और वही अनन्त चिदणु इन्द्रियोंका विषय न होनेसे किंचित् स्वरूपभी नहीं है ॥ ७ ॥ अपनाही स्वरूप सब कुछ होनेसे और साक्षात्कृत आत्मासे अपने स्वरूपमेंही सबको प्रवेश करने सब और कुछ नहीं है, इससे सब कुछ और कुछ नहीं इस प्रश्नका उत्तर होगया, और एकही अनेक संख्यायुक्त है,इस प्रश्नका उत्तर यह है कि एकही चेतन अणुकी जो प्रतिभा (प्रतिबिम्ब) है वही सुवर्णकटक आदिके तुल्य परमात्मस्वरूपमें अनेकतारूपसे आविर्भूत है वास्तवमें अनेकत्व नहीं है इसीसे कटक (कडे) आदि जैसे सुवर्णमें इस प्रश्नकाभी उत्तर होगया ॥ ८ ॥

एषोणुःपरमाकाशःसूक्ष्मत्वादप्यलक्षितः ॥ मनःषष्ठेंद्रियातीतःस्थितःसर्वात्मकोपिसन् ॥ ९ ॥ सर्वात्मकत्वौन्नवासौशून्योभवतिकर्हिचित् ॥ यदस्तिननतदस्तीतिवक्तामंताइतिस्मृतः ॥ १० ॥ कयाचिदपियुक्त्येहसतोसत्त्वंनयुज्यते ॥ सर्वात्मास्वात्मगुप्तेनकर्पूरेणेवदृश्यते ॥ ११ ॥ चिन्मात्राणुःसएवेह सर्वंकिंचिन्मनःस्थितम् ॥ नकिंचिदिंद्रियातीतरूपत्वादमलःस्थितः ॥ १२ ॥

अर्थ—और कौन अणुसम तथा प्रकाशरूप है इत्यादि प्रश्नोंमें जो पुनः पुनः अणु शब्दका प्रयोग है उनकाभी पूर्वोक्त अभिप्राय इसप्रकार है कि यही चिदणु परम आकाश सबका प्रकाशक है और सूक्ष्म होनेसे अलक्षित तथा सर्वरूप होनेपरभी मन सहित छः इन्द्रियोंके विषयसे परे हैं ॥ ९ ॥ और कौन अणु हैभी और नहीं है इस प्रश्नमें नहीं है यह अंश प्रमाणसे बाधित है क्योंकि जो सर्वात्मक है वह शून्यरूप कदापि नहीं होसकता, इसका यह कारण है कि "वह हैभी और नहीं है" ऐसा कहने और माननेसे पुरुष आत्माही रूपसे कहागयाहै और अपने आत्माका निषेध हो नहीं सकता ॥ १० ॥ क्योंकि किसी युक्तिसेभी सत् असत् नहीं होसकता, और यदि यह कहो कि है तो देख क्यों नहीं पडता तो अपनी सुगन्धतासे कर्पूरके सदृश सबमें व्याप्त सत्रूपसे वह अपना आत्मा अनुभूत होताहै ॥ ११ ॥ कौन सब कुछ है और कुछभी नहीं है इसका उत्तर यह है कि वही चिन्मात्र अणु मन और इन्द्रियोंकी वृत्तिसे नानारूपसे प्रतीत होनेसे किंचित् परिच्छिन्न मनरूपही सब कुछ है इसी कारणसे मन तथा इन्द्रियादिसे अपरिच्छिन्न स्वाभाविक रूपसे किसीका रूप नहीं है केवल शुद्ध निर्मल चेतनरूपसे स्थितहै ॥ १२ ॥

सएवचैकोनेकश्चसर्वसत्वात्मवेदनात् ॥ सएवेदंजगद्धत्तेजगत्कोशस्तथैवहि ॥ १३ ॥ इमाश्चित्तमहांभोधौत्रिजगल्लववीचयः ॥ प्रज्ञास्तस्मिन्कचंत्यप्सुद्रवत्वाचकताइव ॥ १४ ॥ चित्तेंद्रियाद्यलभ्यत्वात्सो

णुःशून्यस्वरूपवत् ॥ स्वसंवेदनलभ्यत्वादशून्यंव्योमरूप्यपि ॥ १५ ॥ सोऽहंभवानेवभवान्संपन्नोऽद्वैतवेदनात् ॥ सभवान्नभवेन्नाहंजातोबोधबृहद्वपुः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसीसे वही परमात्मा एक होनेपरभी उपाधि भेदसे अनेक रूपभी है, और वही सबको अपना स्वरूप अनुभव करनेसे सम्पूर्ण जगत्को धारण करताहै और जगत्रूपी रत्नोंका कोशहै, इससे जगत्रूपी रत्नोंका कोश कौन होसकताहै इसका उत्तर होगया ॥ १३ ॥ महान् समुद्रसे तरंगादिके तुल्य किससे पृथक् कुछ नहीं है इसका उत्तर यह है कि चित्रूपसे विकारी उसी चेतनरूप महासमुद्रमें ये जगत्रूपी तुच्छ तरंग चित्तके विकल्प मात्ररूप ऐसे स्फुरित होरहे हैं जैसे जलोंमें द्रवताके कारण चक्रता (भवँरह) ॥ १४ ॥ देशकालादिके परिच्छेदसे शून्य सत् असत् उभयरूप किससे यह द्वैत पृथक् नहीं है इत्यादि प्रश्नका उत्तर यह है कि चित्त तथा इन्द्रियादिसे अप्राप्य होनेसे वही अणु असत् शून्यके तुल्यहै और अपने अनुभवसे लभ्य होनेसे वह आकाशरूपीभी अशून्य है ॥ १५ ॥ तुम किससे सत्ताको प्राप्त हुये अर्थात् कौनहो इसका उत्तर यह है कि मैं अद्वैतका साक्षात्कार करनेसे वह आत्माही होता हुआ तुमारे स्वरूपसे मैंही हुं परन्तु यह कथन व्यवहार दृष्टिसे है, और परमार्थ दृष्टिसे वह आत्मा न तुमारा और न मेरा स्वरूप है किन्तु महान् बोधरूपसे वह प्रकट है ॥ १६ ॥

त्वंताहंतात्मकंसर्वंविनिगीर्यावबोधतः ॥ नत्वंनाहंनसर्वंचसर्वंवाभवतिस्वयम् ॥ १७ ॥ गच्छन्नगच्छत्येषोणुर्योजनौघगतोपिसन् ॥ संवित्त्यायोजनौघत्वंतस्याणोरंतरेस्थितम् ॥ १८ ॥ नगच्छत्येषयातोपिसंप्राप्तेपिचनागतः ॥ स्वसत्ताकाशकोशांतर्वासित्वाद्देशकालयोः ॥ १९ ॥ गम्यंयस्यशरीरस्थंकिलासौप्रयातिहि ॥ कुचकोटरगःपुत्रःकिमात्रान्यत्रवीक्ष्यते ॥ २० ॥

अर्थ—क्योंकि केवल बोधस्वरूप आत्मामें त्वत्ता, अहन्ता सबको निगलकरके न वह तुम न हम और सब कुच्छ वह स्वयं है ॥ १७ ॥ चलताहुआभी कौन नहीं चलता इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह चेतनरूप अणु योजनोंके समूहोमें आकाशके सदृश व्याप्त होकरभी चलताहुआभी नहीं चलता क्योंकि स्वप्नकी कल्पनाके तुल्य उस अणुके भीतर योजनोंका समूह स्थित है ॥ १८ ॥ कौन स्थितभी नहीं स्थित है इसका उत्तर यह है कि सर्वत्र जानेपरभी यह अणु कही नहीं जाता किन्तु स्थित है और सर्वत्र प्राप्तभी अपनी सत्तारूप चिदाकाशके कोशमें देश और कालको रखकर यह कहींसे आया नहीं ॥ १९ ॥ क्योंकि प्राप्त होनेके योग्य सम्पूर्ण स्थान जिसके शरीरके भीतर हैं वह कहां जासकताहै जैसे कुच कोटर (कांचुके भीतर) पुत्रको और स्थानमें कैसे ढूंढ सकतेहैं ॥ २० ॥

गम्योयस्यमहादेशोयावत्संभवमक्षयः ॥ अंतस्थःसर्वकर्त्तुर्हिसकथंकेवगच्छति ॥ २१ ॥ यथादेशांतरप्राप्तेकुंभेवक्त्रसमुद्रिते ॥ तदाकाशस्यगमनागमनेनतथात्मनः ॥ २२ ॥ चित्ततास्थाणुतास्वांतर्यदास्तोनुभवात्मिके ॥ चेतनस्यजडस्यैवतदासौद्वयमेवच ॥ २३ ॥ यदाचेतनपाषाणसत्तैकात्मैकचिद्वपुः ॥ तदाचेतनएवासौपाषाणइवराक्षसि ॥ २४ ॥

अर्थ—प्राप्त होनेके योग्य महान् देश जहांतक देशका सम्भव है वह सम्पूर्ण देश जिस सबके अन्तर्गत करनेवालेके भीतर है वह कैसे और कहां जासकताहै ॥ २१ ॥ जैसे मोहडा (मुख) बंधे हुये घडेके दूसरे देशमें ले जानेपरभी उस घटके भीतरके आकाशका गमन आगमन नहीं होता इसप्रकार आत्माकाभी नहीं होता ॥ २२ ॥ कौन चेतनभी पाषाणके तुल्य है इसका उत्तर यह है कि जब जड देहादि अभेद अध्यास होनेसे चेतनके है चित्तता (प्रकाश स्वभावता) और स्थाणुता दोनों अपने अपने अनुभव साक्षितासे हैं तो बिना बिचारे वही जड तथा चेतन दोनोंरूप होजाताहै ॥ २३ ॥ जब चेतनभी पाषाणके तुल्य घनरूप होता इसका आशय यह है कि जब चेतन तथा पाषाणकी सत्ता दोनों चेतनकी शरीर हैं तो हे राक्षसि ! यह चेतनही पाषाणके तुल्य घन समझ जाताहै ॥ २४ ॥

परमव्योम्न्यनाद्यंतेचिन्मात्रपरमात्मना ॥ विचित्रंत्रिजगच्चित्रंतेनेदमकृतंकृतम् ॥ २५ ॥ तत्संवित्त्यावह्निसत्तातेनात्यक्तानलाकृतिः ॥ सर्वगोप्यदहत्येवसजगद्द्रव्यपावकः ॥ २६ ॥ प्रज्वलद्भास्वराकारान्निर्मलाद्गगनादपि ॥ प्रज्वलच्चेतनैकात्मातस्मादग्निःसजायते ॥ २७ ॥ संवेदनाद्यदर्कादिप्रकाशस्यप्रकाशकः ॥ ननश्यत्यात्मभारूपोमहाकल्पांबुदैरपि ॥ २८ ॥

अर्थ—चिदाकाशमें विचित्र चित्र करनेवाला कौन है इसका उत्तर यह है कि अनादि अनन्त परम चिदाकाशमें चिन्मात्र परमात्माहीने तीनोंलोकरूप विचित्र चित्र कियाहै वह मिथ्या होनेसे अकृत (नहीं किये हुये) के तुल्यही है ॥ २५ ॥ अग्निस्वरूपको न त्याग करनेपर न जलानेवाला अग्नि कौन है इसका उत्तर यह है कि आ-

त्माकी सत्ताके आधीन अग्निकी सत्ता होनेसे और आत्माके सर्वगत होनेसे अग्निका स्वरूप न त्यागते हुयेभी वह सर्वव्यापी और जगत्रूपी द्रव्यको अग्निके समान प्रकाशक आत्मा किसीको नहीं जलाता ॥ २६ ॥ किस अग्निसे भिन्न स्वरूपसे अग्नि उत्पन्न होताहै इसका उत्तर यह है कि इसी देदीप्यमान प्रकाशवान् आकाशके तुल्य निर्मल चेतन आत्मासे प्रज्वलनशील अग्नि उत्पन्न होताहै ॥ २७ ॥ चन्द्रमा सूर्य्य तथा तारागणादिसे भिन्न अविनाश प्रकाश कौन है इसका उत्तर यह है कि यह आत्मा अनुभवरूप होनेके कारण चन्द्र सूर्य्यादि प्रकाशोंकाभी प्रकाशक है, और वह आत्मप्रकाश महा कल्परूप मेघोंसेभी नष्ट नहीं होता ॥ २८ ॥

अनेत्रलभ्योनुभवरूपोहृद्गृहदीपकः ॥ सर्वसत्ताप्रदोनंतःप्रकाशःपरमःस्मृतः ॥ २९ ॥ प्रवर्त्ततेस्मदा लोकोमनःषष्ठेंद्रियातिगात् ॥ येनांतरापिवस्तूनांदृष्टादृश्यचमत्कृतिः ॥ ३० ॥ लतागुल्मांकुरादीनाम नक्षाणांचपोषकः ॥ उत्सेधवेदनाकारःप्रकाशोनुभवात्मकः ॥ ३१ ॥ कालाकाशक्रियासत्ताजगत्तत्रा स्तिवेदने ॥ स्वामीकर्त्तापिताभोक्ताआत्मत्वाच्चनकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—किस नेत्रसे अप्राप्य प्रकाश प्रवृत्त होताहै इसका यह उत्तर है कि नेत्रआदिसे अलभ्य यही अनुभवरूप आत्मा हृदयरूपी गृहका दीपक है और यह अनन्त परम प्रकाश सब प्रकाशोंको सत्ता देनेवाला वेदशास्त्रोंमें कहा गयाहै ॥ २९ ॥ और मनसहित छओं इन्द्रियोंके अविषय इस स्वयं ज्योतिरूप आत्मासे सब प्रकाश उत्पन्न होताहै, जैसे महान् अन्धकारमें स्थितभी तुम कहांहो ऐसा पूंछनेपर अमुक नामवाला मैं यहांपर हुं ऐसा उत्तर देताहै, और इसीके कारणसे दीप आदिके प्रकाशके बिनाभी देह इन्द्रिय आदि पदार्थोंकी प्रत्यक्षता रूप चमत्कृति (चमत्कार) देखी गई है ॥ ३० ॥ इन्द्रियरहित लता गुल्मादिका पालक कौन इसका यह उत्तर है कि लता गुल्म अंकुर वृक्षोंके फलोंका साक्षीरूप परम प्रकाश अनुभवरूप आत्माही उनका पालक पोषक है ॥ ३१ ॥ आकाशादिकी उत्पत्ति करता कौन है इसका उत्तर यह है कि काल, आकाश तथा क्रिया और जगत्की सत्ता उसी अनुभवरूप आत्मामें है, और व्यवहारदृष्टिसे वही सबका स्वामी, कर्ता, पिता तथा भोक्ता है और परमार्थदृष्टिसे शुद्ध आत्मरूप होनेके कारण कुछभी नहीं है ॥ ३२ ॥

अणुत्वमजहत्सोणुर्जगद्रत्नसमुद्गकः ॥ मातृमानप्रमेयात्मजगन्नास्तीतिकेवले ॥ ३३ ॥ सएवसर्वजग तिसर्वत्रकचतिस्फुटम् ॥ यदाजगत्समुद्गेस्मिंस्तदासौपरमोमणिः ॥ ३४ ॥ दुर्बोधत्वात्तमःसोणुश्चि न्मात्रत्वात्प्रकाशदृक् ॥ सोस्तिसंवित्तिरूपत्वादक्षातीतस्तथानसन् ॥ ३५ ॥ दूरेसोनक्षलभ्यत्वाच्चि द्रूपत्वान्नदूरगः ॥ सर्वसंवेदनाच्छैलोह्यसावेवाणुरेवसन् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जगत्रूपी रत्नोंका कोश कौन होसकताहै इसका उत्तर कहतेहैं कि वही चेतनरूप अणु अपनी अणुताका त्याग न करते हुयेभी जगत्रूपी रत्नोंकी पेटारी है, किस मणिका कोश यह जगत् इसका उत्तर यह है कि प्रमाता प्रमाण और प्रमेयरूप यह जगत् उस शुद्धरूप आत्मामें कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥ किन्तु इस जगत्रूप पेटारीमें सर्वत्र आपही वह विकाशको प्राप्त होताहै तब परम उत्तम मणि कहा जाताहै ॥ ३४ ॥ कौन अणु तम और प्रकाशरूप होसकता है इसका उत्तर यह है कि अति दुःखसे जानने योग्य होनेसे वह अणु तम है और चिन्मात्र होनेके कारण प्रकाशरूपभी है, कौन अणु अस्ति तथा नास्तिरूप है इसका उत्तर सत्तारूप होनेसे वह है, और इन्द्रियोंका विषय नहोनेसे नहीं है ॥ ३५ ॥ कौन दूर और समीपभी है इसका उत्तर यह है कि वही चिदणु परमात्मा इन्द्रियोंसे लभ्य न होनेसे दूर है और चेतन आत्मारूप होनेसे निकटभी है, वह कौन है जो अणुरूपही महान् पर्वत है इसका उत्तर यह है कि इन्द्रिय आदिके बिनाभी सबको "अहम् अहम्" (मैं मैं) इस रूपसे सम्मुख स्थित पर्वतके तुल्य यही चिदात्मा प्रत्यक्षरूपसे अनुभूत होनेसे अणु (सूक्ष्म) होते हुयेभी महान् पर्वतरूप है ॥ ३६ ॥

तत्संवेदनमात्रंयत्तदिदंभासतेजगत् ॥ नसत्यमस्तिशैलादितेनाणावेवमेरुता ॥ ३७ ॥ निमेषप्रतिभा सोहिनिमेषइतिकथ्यते ॥ कल्पेतिप्रतिभासोहिकल्पशब्देनकथ्यते ॥ ३८ ॥ कल्पक्रियाविलासोहिनि मेषःप्रतिभासते ॥ बहुयोजनकोटिस्थंमनस्येवमहापुरम् ॥ ३९ ॥ निमेषजठरेकल्पसंभवःसमुदेति हि ॥ महानगरनिर्माणंमुकुरेंतरिवामले ॥ ४० ॥

अर्थ—इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ यह जगत् आत्मामें भासताहै वह केवल चित्तकी स्फुरणा मात्र है इसलिये पर्वत आदि सत्य नहीं हैं इसीकारण अणु स्वरूपमें मेरुकी सत्ता बन सकती है ॥ ३७ ॥ निमेषरूपही कल्पके समान कौन भासताहै कि निमेष मात्र प्रतिभासनेको निमेष कहतेहैं और कल्पमात्र प्रतिभासनेको कल्प

शब्दसे कहते हैं ॥ ३८ ॥ कल्पमें जितनी क्रिया (सूर्य्यकी पारिस्पंदरूप क्रिया जिससे कालका बोध होताहै) होती हैं उतनी क्रियाओंसे निमेषमेंही आत्मा ऐसा प्रतिभासताहै जैसे अनेक कोटि योजनमें स्थित महानगर जैसे मनमें भासताहै ॥ ३९ ॥ निमेषके भीतर कल्पका संभव ऐसे उदय होताहै जैसे निर्म्मल दर्पणमें महानगरकी रचना ॥ ४०॥

निमेषकल्पशैलादिपूरयोजनकोटयः ॥ यत्राणावेवविद्यंतेतत्रद्वैतैक्यतेकुतः ॥ ४१ ॥ कृतवान्प्रागिदमह मितिबुद्धावुदेतिहि ॥ क्षणात्सत्यमसत्यंचदृष्टांतःस्वप्नविभ्रमः ॥ ४२ ॥ दुःखेकालःसुदीर्घोहिसुखेलघु तरःसदा ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रस्यचोदिता ॥ ४३ ॥ निश्चयोयउदेत्यंतःसत्यात्मासत्यएवच ॥ हेम्नीवकटकादित्वंसएवचितिराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—निमेष, कल्प, और पर्वत आदि समूह जिस अति सूक्ष्म अणुमें मिथ्याका आलम्बन करके (क्योंकि सत्वरूपसे प्रवेश करनेमें विरोध है) समावेश करते हैं वहांपर द्वैतता और एकताका प्रवेश क्यों नहीं ? अर्थात् मिथ्यात्वसे द्वैत और एकताकाभी समावेश है ॥ ४१ ॥ अल्प कालमें अधिक काल कालके भान होनेमें क्षणमें व्यावहारिक अथवा प्रतिभासिक अधिक काल साध्य कार्य्य मैंने पूर्व समयमें किया, यह स्वप्नका विभ्रम जो बुद्धिमें उदय होताहै वही दृष्टान्त है ॥ ४२ ॥ दुःखमें अल्प कालभी अति दीर्घ और सुखमें अधिक कालभी अल्प भान होताहै जैसे राजा हरिश्चन्द्रजीको एकही रात्रि द्वादश (१२) वर्षकी होगई ॥ ४३ ॥ जैसे सुवर्णमें कटकादि भान होतेहैं ऐसेही चेतनमें सत्य वा असत्यरूप निश्चय होताहै वैसाही चेतनका प्रतिभास होताहै ॥ ४४ ॥

ननिमेषोस्तिनोकल्पोनादूरंनचदूरता ॥ चिदणुप्रतिभैवैवंस्थितान्यान्यान्यवस्तुवत् ॥ ४५ ॥ प्रकाश तमसोर्दूरादूरयोःक्षणकल्पयोः ॥ एकचिद्देहयोरेवनभेदोस्तिमनागपि ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षमक्षसारत्वाद प्रत्यक्षंततोतिगम् ॥ दृश्यत्वेनैषवोदेतिचेताद्रष्टैवसद्वपुः ॥ ४७ ॥ यावत्कटकसंवित्तिस्तावन्नास्तीवहे मता ॥ यावच्चदृश्यतापत्तिस्तावन्नास्तीवसाकला ॥ ४८ ॥

अर्थ—और परमार्थदृष्टिसे तो न निमेष है न कल्प है न दूरता और न समीपता है किन्तु चिदणुकी चित्तकी वृत्तिही अन्य वस्तुके तुल्य अन्य २ रूपसे स्थित हैं ॥ ४५ ॥ इसीप्रकार अधिष्ठान चेतनके अभेदसे विरुद्ध स्वभाव-वाले प्रकाश अन्धकार दूरता समीपता, एकचेतन तथा शरीरका किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ कौन प्रत्यक्ष और असत्रूप है इसका उत्तर यह है यही आत्मा सम्पूर्ण इन्द्रियोंका सार (बल देनेवाला) होनेसे प्रत्यक्ष है और इन्द्रि-योंका अविषय होनेसे अप्रत्यक्ष असत्रूप है, और यही सत्शरीरवाला चेतन द्रष्टाही दृश्यरूपसे उदय होताहै ॥४७॥ जैसे जबतक कटक बुद्धि तबतक सुवर्णता नहीं उदय होती, ऐसे ही जबतक दृश्यमें दृश्यरूपसे सत्यता बुद्धि है तबतक चित्के साथ एक रसतारूपी कला नहीं उदय होती अर्थात् दृश्यरूपसे बुद्धि परम पुरुषार्थ नहीं है ॥ ४८ ॥

कटकत्वेऽकृतेऽदृष्टेसुवर्णत्वमिवाततम् ॥ केवलंनिर्मलंशुद्धंब्रह्मैवपरिदृश्यते ॥ ४९ ॥ सर्वत्वादेवसद्रू पोदुर्लक्ष्यत्वादसद्वपुः ॥ चेतनश्चेतनात्मत्वाच्चेत्यासंभवतस्त्वचित् ॥ ५० ॥ चिच्चमत्कारमात्रात्मन्य स्मिंश्चित्प्रतिभात्मनि ॥ जगत्यनिलवृक्षाभेचिच्चेत्यकलनेकुतः ॥ ५१ ॥ यथातापस्यपीनस्यभासनंमृ गतृष्णिका ॥ एवंपीवरमद्वैतंतथाचिद्भासनंजगत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण कटकके न बनानेसे अथवा कटकरूपसे न देखनेसे सुवर्णत्वका भान होताहै ऐसेही दृश्यकी कल्पना न करनेसे अथवा कल्पितको भी दृश्यरूपसे न देखनेसे केवल शुद्ध तथा निर्म्मल ब्रह्महही व्याप्त देख पडताहै अर्थात् दृश्यको ब्रह्मरूपसे देखनेसे पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ सत् असत्रूप इस प्रश्नका उत्तर यह है कि, यह आत्मा सर्वरूप होनेसे सतरूप है और दुर्लक्ष्य होनेसे असतरूपसे भान होताहै कौन चेतन और अचेतनभी इसका उत्तर यह है कि यही आत्मा सर्वथा चेतन है, और उसमें विषयरूपका सम्भव न होनेसेभी उस रूपसे भान होनेके कारण तुमने उसको अचेतनभी कहाहै ॥ ५० ॥ क्योंकि चेतनके चमत्कार मात्र, चित् प्रतिभा (स्फुरणा) रूप तथा अग्निके सदृश रक्तवृक्ष (विद्युत्) के सदृश अति स्थिर इस जगत्में चैतन्यके आश्रयकी कल्पना कैसे होसकती है ॥ ५१ ॥ जैसे अधिक ताप (घाम) काही मृगतृष्णारूपसे भान होताहै ऐसेही विशाल अद्वैतहीका चित्रूपसे भासना यह जगत् है ॥ ५२ ॥

अर्कांशुभिःसूक्ष्मतरनिर्माणंयदनामयम् ॥ अस्तितानास्तितेतत्रकल्पादेस्विकैवधीः ॥ ५३ ॥ मायया शुकणांकेखेयथाकचतिकांचनम् ॥ तथाजगदिदंभातिचिच्चेत्यकलनेकुतः ॥ ५४ ॥ स्वप्नगंधर्वसंकल्प

नगरेकुड्यवेदनम् ॥ नसन्नासद्यथातद्वद्विद्धिदीर्घभ्रमंजगत् ॥ ५५ ॥ तथाचैवंविधन्यायभावनाभ्यास निर्मलात् ॥ चिदाकाशेननिर्यातियथाभूतार्थदर्शिनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यकी किरणोंके संयोगसे वक्ष्यमाण सूर्य्यकी रचना निर्विघ्नतासे होती है और उसमें अस्तिता नास्तिता कल्पित है ऐसेही ब्रह्ममें ब्राह्म (ब्रह्माजीके) कल्पादिरूप जगत्भी है असत्के उपमानकी असत्यता प्रत्यक्षही है ॥ ५३ ॥ ॥ जैसे अविद्यासे सूर्य्यके कणके लेशके संयोगसे आकाशमें सुवर्ण शोभित होताहै ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् भासताहै उसमें वास्तवरूपसे चित्‌चेत्यकी कल्पना कहां ॥ ५४ ॥ जैसे स्वप्न, गन्धर्व और संकल्पके नगरोंमें भित्तिका अनुभव न सत् और न असत्‌रूप होताहै ऐसेही इस जगत्कोभी महान् भ्रम जानो ॥ ५५ ॥ इससे यह अभिप्रायहै कि इसप्रकार मिथ्यात्वको कहनेवाली युक्तियोंका पुनः २ अभ्यास करनेसे पारमार्थिक ब्रह्मको देखनेवाले पुरुषके निर्मल मनसे अविद्याका नाश होनेसे चिदाकाशमें पुनः संसारका उदय नहीं होता ॥ ५६ ॥

नकुड्याकाशयोर्भेदोदृश्यसंवेदनादृते ॥ आब्रह्मजीवकलनायद्रूढंरूढमेवच ॥ ५७ ॥ प्रतिभासाच्चिदाकाशेसत्वशून्यंभवंतिताः ॥ प्रकचंतिह्यनिर्भाव्याःप्रभापिंडइवप्रभाः ॥ ५८ ॥ पृथक्कामतिभासस्यस्व चमत्कारयोगतः ॥ सर्वात्मिकाह्विप्रतिभापरावृक्षात्मबीजवत् ॥ ५९ ॥ बीजमंतस्थवृक्षत्वंनानानानाय थैकदृक् ॥ तथाऽसंख्यजगद्ब्रह्मशांतमाकाशकोशवत् ॥ ६० ॥ बीजस्यांतस्थवृक्षस्यव्योमद्वितास्थि तिर्यथा ॥ ब्रह्मणांतस्थजगतःसाक्षित्वाच्चित्स्थितिस्तथा ॥ ६१ ॥ शांतंसमस्तमजमेकमनादिमध्यंनेहास्तिकाचनकलाकलनाकथंचित् ॥ निर्द्वंद्वशांतमतिरेकमनेकमच्छमाभासरूपमजमेकविकासमास्ते॥६२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने प्रश्नभेदनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—दृश्यरूपसे अनुभवके सिवाय भित्ति और आकाशमें कुछभी भेद नहीं है, और यह भिन्नरूपसे वस्तुओंका अनुभव ब्रह्मापर्य्यन्त जीवोंका जैसा रूढ है वैसाही है ॥ ५७ ॥ यदि यह कहो कि भेद नहीं है तो भित्ति और आकाशादिका भेद कैसे ? तो इसका उत्तर यह है कि सत्यतासे शून्य चिदाकाशमें चित्के प्रतिभासे ये सब जगत् कल्पनायें ऐसे भान होती हैं जैसे प्रभा (सूर्य्य आदिकी दीप्ति) में अन्य कांचादिकी प्रभा ॥ ५८ ॥ भिन्नताके संस्कारसे सहकृतबुद्धिकी जो भिन्नता प्रकट करनेवाली शक्तिका जो आत्मप्रकाशरूप चमत्कारहै उसके योगसे द्वैतका भान होनेपरभी वह भिन्न नहीं है, क्योंकि वह परमोत्तम आत्मप्रकाश वृक्षात्मक बीजके तुल्य सर्वात्मक है ॥ ५९ ॥ वृक्षको बीजके समान जगत्को अन्तर्गत करके कौन स्थितहै इसका उत्तर यहहै कि जैसे एकरूप बीज भिन्न और अभिन्नरूप वृक्षाकारको अपने अन्तर्गत करके स्थित है ऐसेही शान्त आकाश कोशवत् ब्रह्मभी असंख्य जगत्को अपनेमें करके सबमें व्याप्त होके स्थितहै ॥ ६० ॥ जैसे अन्तर्गत वृक्ष है जिसके ऐसे बीजकी स्थिति अति सूक्ष्मताके कारण आकाश तुल्य है ऐसेही ब्रह्मके अन्तर्गत जगत्की भी आत्मासाक्षी होनेके कारण चित्‌रूपसे स्थिति अर्थात् चेतनमें कोई भेदक न होनेसे आकाशके सदृश है ॥ ६१ ॥ सम्पूर्णरूपसे शान्त, जन्मादि विकार शून्य, आदि अन्त तथा मध्यरहित, माया और उसके कार्य्यरूपी मलके निरास करनेसे द्वन्द्व बुद्धिवाले महात्माओंसे शोधन करनेयोग्य, एकतारूप गुणसेभी शून्य, निर्मल, एक अद्वैतरूपसेही बिना रुकावट सर्वत्र विकाश करनेवाला, तथा चिन्मात्र प्रतिभास ब्रह्म स्थितहै, इसमें यथार्थ रूपसे कोईभी कल्पनाकी कला नहीं है ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रश्नभेदनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस ८१ के सर्गमें विशेष जाननेवाले राजाने शेष (बाकी) प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देतेहुये उक्त प्रश्नोंमें कहीं २ अपनी युक्तियोंकोभी कहाहै ॥

॥ राक्षस्युवाच ॥ अहोनुपरमार्थोक्तिःपावनीतवमंत्रिणः ॥ राजाराजीवपत्राक्षइदानीमेषभाषताम्॥१॥ ॥ राजोवाच ॥ जागतप्रत्ययाभावोयस्याहुःप्रत्ययंपरम् ॥ सर्वसंकल्पसंन्यासश्चेतसायत्परिग्रहः ॥२॥ यत्संकोचविकासाभ्यांजगत्प्रलयसृष्टयः ॥ निष्ठावेदांतवाक्यानामथवाचामगोचरः ॥ ३ ॥ कोटिद्वयांतरालस्थंमध्येकोटिद्वयीमयम् ॥ यस्यचित्तमयीलीलाजगदेतच्चराचरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—राक्षसीजी बोली–हे मंत्रिन् ! अहो ! यह तुमारी परमार्थकी उक्ति अति पवित्रकारिणी है, अब यह कमलके पत्रके सदृश नेत्रवाला राजा भाषण करै ॥ १ ॥ राजाजी बोले–राजा उसके प्रश्नोंके अभिप्रायको जानकर मुख्य विषय चमत्कारतासे देखलाताहै कि राक्षसी, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा स्वप्न तीन अवस्थाके जगत् सम्बन्धी वृत्तियोंकी ज्ञानद्वारा निवृत्ति जिसको होती है उसीको परम प्रत्यय अर्थात् तुरीय अवस्थाका दर्शन कहतेहैं परन्तु यह सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यासरूप चेतनकी एकनिष्ठताके परिग्रहसे होताहै ॥ २ ॥ जिसके भाविक संकोच विकास जगत् उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होतेहैं वही वाणियोंका अगोचर है वही वेदान्त वाक्यों निष्ठा (प्रतिपाद्य) है ॥ ३॥ सत् असत् भान तथा अभान इन दोनों कोटियोंके मध्यमें स्थित अर्थात् अनिर्वचनीय, अतएव आदि और असत् पक्षसे ग्रस्त होनेपरभी मध्यमें देश तथा कालके परिच्छेदसे कहीं है और कहीं नहीं है एतत्रूप दो कोटिमय इसी सत् असत् तथा चित् जडकी सन्धिरूप हिरण्यगर्भरूप जिसके मनकी लीलामात्र यह चराचर जगत् है ॥ ४ ॥

यस्यविश्वात्मकत्वेपिखंड्यतेनैकपिंडता ॥ सन्मात्रंतत्त्वयाभद्रेकथ्यतेब्रह्मशाश्वतम् ॥ ५ ॥ एषोणुर्वेदनाद्वायुःस्वभ्रांतिर्दृगदृश्यत ॥अतोनकिंचिद्वाय्वादिकेवलंशुद्धचेतनम् ॥ ६ ॥ शब्दसंवेदनाच्छब्दःशब्दस्यभ्रांतिदर्शनम् ॥ ततोत्रशब्दशब्दार्थदृष्टेर्दूरतरंगतः ॥ ७ ॥ सोणुःसर्वनकिंचिच्चसोहंनाहंसएवच ॥ सर्वशक्त्यात्मनोस्यैवप्रतिभैकात्रकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण विश्वरूप होनेपरभी जिसकी एकरूपता कदापि खण्डित नहीं होती, उसी नित्य ब्रह्मको हे भद्रे! तुम पूंछती हो ॥ ५ ॥ जो तुमने पूंछाथा कि कौन अणु वायु और अवायुरूप है सो यही चिदणु जब अपने आत्मामें वायुरूपका अनुभव करताहै तब भ्रान्तिसे वायुरूप देख पडताहै, और यथार्थमें वायु आदि इसमें कोई नहीं किन्तु केवल शुद्ध चेतन ब्रह्मही है ॥ ६ ॥ इसीप्रकार शब्दरूपकी भावनासे भ्रान्तिसे शब्दरूपसे उसका दर्शन होताहै इसीसे शब्द तथा शब्दके अर्थकी दृष्टिसे वह दूर है॥७॥ और जो तुमने पूंछा कि कौन सब कुछ और कुछ नहीं है सो यही चेतन अणु अपनी मायासे सब कुछ है और शुद्धरूपसे कुछ नहीं है, और कौन "अहं" (मैं) तथा "नाहं" (मैं नहीं) इस रूपसे है इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु अहंकार रूपसे "सोहम्" (वह मैं हुं) और शुद्ध अपने रूपसे " नाहम् " (वह मैं नहीं) इस रूपसेभी है इसमें कारण सर्व शक्तिमान् उस ब्रह्मकी प्रकाशशक्ति है ॥ ८ ॥

आत्मायत्नशतप्राप्योलब्धेस्मिन्नचकिंचन ॥ लब्धंभवतितच्चैतत्परमंवानाकिंचन ॥९॥ तावज्जन्मवसंतेषुसंसृतिव्रततिश्चिरम् ॥ विकसत्युदितोयावन्नबोधोमूलकाषकृत् ॥ १० ॥ अणुनानेनरूपत्वंदृश्यतामिवगच्छता ॥ तापेनांबुधियेवेदंस्वस्थेनैवापहारितम् ॥ ११ ॥ अनेनसंविदणुनामेरुस्त्रिभुवनंतृणम् ॥ वमित्वाबहिरंतस्थंमायात्मकमवेक्ष्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और कौन सैकडों यत्नसे लभ्य है और लब्ध होनेपर कुछ नहीं इसका उत्तर यह है कि यही आत्मा सैकडों यत्नोंसे लभ्य होता है अर्थात् आत्मज्ञान अति कष्टसाध्य है और लाभ होनेसे अपना आत्मा होनेसे मानों कुछ नहीं है अर्थात् निष्फल प्रतीत होताहै, और जब लब्ध (आत्मरूपका ज्ञान) होजाताहै तो इससे उत्तम कोई यत्नही है इस अभिप्रायसे तुमने पूंछा है ॥ ९ ॥ और जबतक संसारके मूल अज्ञानका नाश नहीं सिद्ध हुआ तबतक इसका पूर्णरूप नहीं लब्ध होता और तभीतक अर्थात् जबतक आत्माका बोध विकसित नहीं होता तभीतक जन्मरूपी वसन्त ऋतुओंमें संसाररूपी लता चिरकालतक लहलहाती है ॥१०॥ और जो तुमने पूंछाथा किस स्वस्थ जीवनवालेने अपने आत्माको अपहरण करादिया इसका उत्तर यह है कि जब यह चेतन अणु साकार भावको प्राप्त होकर दृश्यस्वरूपके सदृश प्राप्त होता है तब दृश्यरूपमेंही निमग्न अज्ञानी प्राणी जल बुद्धिसे मरु देशके आतपके समान स्वस्थ जीवनसे अपने आत्माको गवा देता है ॥ ११ ॥ हे कर्कटि ! यही चेतन अणु मेरु पर्वतको अपने भीतर करताहै, और त्रिभुवनको तृण बनाताहै, और अपने अन्तस्थ जगत्कोही वमन करके बाह्य आकारको मायारूपसे देखताहै ॥ १२ ॥

चिदणोरंतरेयद्यदस्तितद्दृश्यतेबहिः ॥ संकल्पेष्टालिंगनादिदृष्टांतोत्रहिरागिणः ॥ १३ ॥ आदिसर्गेसर्वशक्तिश्चिद्यथैवोदितात्मना ॥ तथाद्यपश्यत्यखिलंसंकल्पेपर्वतःस्वतः ॥ १४ ॥ अभिजातस्ययस्यांतर्यद्यथाप्रतिभासते ॥ तत्तथापश्यतीवासौदृष्टांतोत्रशिशोर्मनः ॥ १५ ॥ परमाणुतयैवापिचिन्मात्रेणाणुनामुना ॥ परिसूक्ष्मतमेनैवविष्वग्विश्वंप्रपूरितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चेतन अणुके जो २ पदार्थ भीतर हैं वही २ बाहर देख पडताहै इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे कामीपुरुष अपने हृदयमें स्थित संकल्पकी स्त्री आदि बाहर आलिंगन करताहै ॥ १३ ॥ जैसे ईख वा बांस आदि प्रथम पर्व

(पोर) में जिसप्रकार शाखा आदि निकलते हैं उसीप्रकार द्वितीय आदिमेंभी होतेहैं ऐसेही आदि सृष्टिमें सर्वशक्तिमान् चेतन जिसप्रकार उदयको प्राप्त हुआहै वैसाही अपने संकल्पमें शीघ्र देखताहै ॥ १४ ॥ हिरण्यगर्भात्मक मनरूपसे प्रकट परमात्माके भीतर जो पदार्थ जिसरूपसे भासताहै, मानों वैसाही यह चेतन देखताहै इसमें दृष्टान्त बालकका मन है ॥ १५ ॥ और जो तुमने पूंछा था कि किस अणुमात्रने सैकडों योजन पूर्ण कर रक्खाहै इसका उत्तर यह है कि इसी चेतन अणुमात्रने देश, काल और वस्तुमात्रका अवधिरूप होके चारोंओरसे पूर्ण कर रक्खाहै ॥ १६ ॥

अणुरेवनमात्येषयोजनानांशतेष्वपि ॥ सर्वगत्वादनादित्वादरूपत्वादनाकृतिः ॥ १७ ॥ यथाधूर्त्तेनखिंगेनपुंसाबालःप्रतार्यते ॥ सुभ्रूविकारनयननिरीक्षणविचेष्टितैः ॥ १८ ॥ चिदालोकेनशुद्धेनसपर्वततृणंजगत् ॥ नाट्यतेविरतंतद्वद्विवृत्त्याभिनयंसदा ॥ १९ ॥ तेनैवानंतरूपत्वादणुनावाससायथा ॥ संविदातद्वद्बाह्येकृत्वामेर्वादिवेष्टितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कौन अणु सैकडों योजनमेंभी नहीं समाता इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु सर्वगामी होनेसे तथा अनादि होनेसे आकार रहितहै वही सैकडों योजनमेंभी नहीं समाता ॥ १७ ॥ जैसे कामी धूर्त पुरुष अपनी भौंह विकारोंसे तथा नेत्रके देखनेकी चेष्टाओंसे अज्ञ स्त्री जनोंको अपने वशमें करके जिधर चाहताहै उधर खींच लेजाता है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार शुद्ध चित् प्रकाशभी नाटक चेष्टा करके पर्वत आदि सहित सम्पूर्ण जगत्को तृणके समान नचाताहै ॥ १९ ॥ किस अणुके भीतर पर्वतोंके समूह हैं इसकाभी उत्तर यही है कि उसी चेतन अणु ज्ञान स्वरूपने सम्पूर्ण जगत्को बाल्यरूपसे देखाते हुयेभी अपने भीतर ऐसे वेष्टित कियेहैं जैसे वस्त्र मेरु आदि पर्वत पदार्थोंके चित्रको बाहर देखाके अपने भीतर वेष्टित कर लेताहै ॥ २० ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नरूपत्वान्मेरुतोबृहत् ॥ बालाग्रशतभागात्माप्येषसूक्ष्मःपरोणुकः ॥ २१ ॥ शुद्धसंवेदनाकाशरूपस्यपरमाणुना ॥ शोभतेनहिसाम्योक्तिर्मेरुसर्षपयोरिव ॥ २२ ॥ मायाकलापिनाणुत्वं निर्मायपरमात्मनि ॥ हेम्नावकटकत्वेननानात्रसमताभवेत् ॥ २३ ॥ प्रकटोनेनदीपेनप्रकाशोनुभवात्मना ॥ स्वसत्तानाशपूर्वोहिविनानेनभवेत्ततः ॥ २४ ॥

अर्थ—अणुरूपको न त्यागता हुआ मेरुसेभी अधिक स्थूल आकारवान कौन है इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यह चेतन आत्मा बालके अग्रभागके शतांशसेभी सूक्ष्म अणुरूप है तथापि देश काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित होनेसे मेरु पर्वतसेभी महान् है ॥ २१ ॥ और प्रायः सब स्थानमें जो तुम और मंत्रीने शुद्धज्ञान स्वरूप आत्माकी परमाणुके साथ समानता की है वह यथार्थ नहीं है क्योंकि आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहित है और मेरू तथा सर्षपके समान परमाणुके साथ इसकी समानता नहीं बनसकती ॥ २२ ॥ मायाकी कलासेभी इस परमात्मामें अणुता नहीं बनसकती, सुवर्णमें बनेहुये कटक आदिके सदृशभी इसमें समता नहीं होसकती क्योंकि मायासे जैसे मायासे महत्व इसमें कल्पित है वैसाही अणुत्वभी कल्पित है यही तात्पर्य्य " अणोरणीयान् महतोमहीयान् " (छोटेसेभी छोटा बडेसेभी बडा) इत्यादि श्रुतियोंकाभी है ॥ २३ ॥ और कौन अणु प्रकाश और अन्धकारकाभी दीपक है इसका उत्तर यह है कि इसी अनुभव स्वरूप दीपकसेही प्रकाश तथा अन्धकारकाभी प्रकाश प्रकट हुआहै, क्योंकि यदि इस अनुभवरूप आत्मदीपके विना प्रकाश वा अन्य अन्धकार आदि होतो अपनी सत्ताके नाशपूर्वक उसका अभावही होजाय ॥ २४ ॥

यदिसूर्यादिकंसर्वंजगदेकंजडंभवेत् ॥ ततःकिमात्मकंरूपंप्रकाशःस्यात्क्वाथकिम् ॥२५॥ शुद्धसन्मात्रचित्त्वंयत्स्वतःस्वात्मनिसंस्थितम् ॥ तदेतदणुनातेजोदृष्टंबहिरवस्थितम् ॥ २६ ॥ तेजांस्यर्केंदुवह्नीनांनभिन्नानितमोघनात् ॥ एतावानेवभेदोस्तियद्वर्णेशौक्ल्यकृष्णते ॥ २७ ॥ यादृक्कज्जलनीहारमेघनीहारयोर्भवेत् ॥ तादृक्प्रकाशतमसोर्भेदोनेतितयोःस्थितिः ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि सूर्य्यादि सम्पूर्ण जगत् केवल जड आत्मकही हो और उसका प्रकाशक अर्थात् अनुभव कर्ता कोईभी न हो तो उस प्रकाशका स्वरूप क्या कहां और कैसे हो ? अर्थात् अनुभव कर्ता आत्माके विना इनकी सत्ताही नहीं प्रतीत होसकती ॥ २५ ॥ इस शुद्धज्ञान स्वरूप चेतनने अपने स्वरूप तेज तथा अन्धकार आदिको अपने भीतर कल्पित करके स्थितहै, और उसी अणु चेतनने बाहर स्थित प्रकाश आदिको देखाहै ॥ २६ ॥ सूर्य्य चन्द्र और अग्नि आदिके तेज अपने कारण अज्ञानसे भिन्न नहीं है केवल इतनाही भेद है कि वर्ण प्रकाशका शुक्ल है अज्ञान वा अन्धकारका कृष्ण है और जडता अंशमें कुछभी नहीं है ॥ २७ ॥ जब कज्जल वर्ण नीहार

(जलसहित वायु) होजाताहै तो उसको मेघ कहतेहैं तो जैसा भेद नीहार और मेघमें है वैसाही भेद प्रकाश और अन्धकार में है यही इनकी स्थिति है ॥ २८ ॥

जडयोरुपलंभायचिदादित्यःकिलैतयोः ॥ यदातपतितेनैतेलब्धसत्तैकतांगते ॥ २९ ॥ तपत्येकश्चिदादित्योरात्रिंदिवमतंद्रितः ॥ अंतर्बहिःशिलाद्यंतरप्यनस्तमयोदयः ॥ ३० ॥ त्रिलोकीभातितेनेयंजीवस्यप्रथितात्मनः ॥ नानोपलंभभांडाढ्याकुटीकठिनकोटरा ॥ ३१ ॥ तमस्त्वंतमसोदेहमविनाशयतामुना ॥ तप्यतेभासयाभासासर्वमाभास्यतेतमः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो जडरूप प्रकाश और अन्धकारके साक्षात्कार करनेके लिये चेतनरूप सूर्य्य तप रहाहै उसीसे इन दोनोंकी प्राप्त सत्ता एक होगईहै ॥ २९ ॥ सूर्य्यादिका प्रकाश एकदेशी और आत्मप्रकाशके आधीन है परन्तु चेतनरूप सूर्य्य रात्रिदिन आलस्यरहित बाहर भीतर तथा पाषाणकी शिलाके भीतर सर्वदा तमके उदयके विना तप रहाहै ॥ ३० ॥ जिसको आत्माका साक्षात्कार होगया ऐसे जीवको नानाप्रकारके भोग और अन्य वर्तन आदि सामग्री पूर्ण कठिन कोटरवाली यह सम्पूर्ण त्रिलोकी उसी आत्माके प्रभावसे भान होती है ॥ ३१ ॥ अपने तत्वके प्रतिभाससे शून्य चेतन प्रकाश अन्धकारके शरीर भूत अन्धकारत्वको नाश न करते हुये अन्धकारको तपताहै अर्थात् कार्य्यरूपमें लाता और उसीसे सम्पूर्ण जगतरूप अन्धकार प्रकाशितहै ॥ ३२ ॥

पद्मोत्पलेयथार्केणतपताप्रकटीकृते ॥ प्रकाशतमसोःसत्तेचितेवंप्रकटीकृते ॥ ३३ ॥ अर्कःकुर्वन्नहोरात्रेदर्शयत्याकृतियथा ॥ चितिःसदसतीकृत्वादर्शयत्याकृतितथा ॥ ३४ ॥ चिदणोरंतरेसंतिसमग्रानुभवाणवः ॥ यथामधुरसस्यांतःपुष्पपत्रफलश्रियः ॥ ३५ ॥ उद्यंतिचिदणोरेतेसमग्रानुभवाणवः ॥ मधुमासरसाच्चित्राइवखंडपरंपराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे तपते हुये सूर्य्य पद्म और उत्पलको प्रकट कियाहै इसीप्रकार चेतनने प्रकाश और अन्धकारकी सत्ताको प्रकट कियाहै ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य्य रात्रिदिनको करते हुये उनके आकारको दर्शातेहैं ऐसेही चेतनभी सत् और असत् अर्थात् प्रकाशका आविर्भाव और तिरोभाव करके दोनोंके आकारको दर्शाताहै ॥ ३४ ॥ और जो तुमने पूंछाथा कि किस अणुके भीतर सम्पूर्ण अनुभव अणु हैं इसका उत्तर यह है कि जैसे वसन्तकी शोभामें अथवा मधुरसमें वा तत्कालके वृक्षके रसमेंही पुष्प पत्र और फलादिककी शोभा है ऐसेही चेतन अणुके उदरमेंही सम्पूर्ण अनुभवके लेश है ॥ ३५ ॥ जैसे मधुमासके रसमें विचित्र प्रकारके बनके सुन्दरताके क्रम होतेहैं ऐसेही इसी चेतन अणुके भीतर सम्पूर्ण अनुभवके लेश उत्पन्न होतेहैं ॥ ३६ ॥

परमात्माणुरत्यंतनिःस्वादुःसूक्ष्मतावशात् ॥ समग्रस्वादुसत्तैकजनकःस्वदतेस्वयम् ॥ ३७ ॥ योयोनामरसःकश्चित्समस्तोप्यप्स्ववस्थितः ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शेतंविनानास्त्यसौस्वतः ॥ ३८ ॥ त्यजतासंस्थितंसर्वंचिन्मात्रपरमाणुना ॥ त्यक्तंजगदसंवित्त्यासंवित्यासर्वमाश्रितम् ॥ ३९ ॥ अशक्तयास्वात्मगुप्तौसर्वमाच्छादितंजगत् ॥ चिताणुतामेवपरांसंप्रसार्थवितानवत् ॥ ४० ॥ ॥

अर्थ—कौन अणु अत्यन्त स्वादरहित है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा चेतन अणु सूक्ष्मताके कारणसे स्वाद रहित है, और यही सम्पूर्ण स्वादोंका जनक है क्योंकि स्वयं चेतन अनुभव रूपसे सदा इसका आस्वाद होताहै ॥ ३७ ॥ अनेक प्रकारके जलोंमें जो २ रस स्थितहै वह दर्पणके समान इसीका प्रतिबिम्ब है क्योंकि इस चेतनके बिना वह रस स्वयं कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ और कौन अणु सबको त्यागते हुयेभी सबका आश्रय है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा शुद्ध चेतनरूपसे सबको त्यागे हुये स्थितहै, अस्फुरण रूपसे तो सबको त्यागे है और स्फुरणरूपसे सब जगत्का आश्रय है ॥ ३९ ॥ कौन अणु अपने आच्छादन करनेमें असमर्थ होके भी सबको आच्छादित कर रक्खाहै इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु सर्वव्यापक होनेसे शुद्ध चेतनतासे अपना आच्छादन (परिच्छेद) करनेमें असमर्थ है, और अपनी परम चेतनताको मण्डपके समान फैलाके सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको आच्छादन (ढांक) कर रक्खाहै ॥ ४० ॥

आत्मगुप्तौनशक्नोतिपरमात्मांबराकृतिः ॥ मनागपिक्षणमपिगजोदूर्वावनेयथा ॥ ४१ ॥ तथाप्याक्रांतवान्विश्वंज्ञातोगोपायतिक्षणात् ॥ जगद्धानाकणंबालइवाह्योघनमायिता ॥ ४२ ॥ चिन्मात्रानुनयेनेदंजगत्सन्नपिजीवति ॥ वसंतरसबोधेनविचित्रेववनावली ॥ ४३ ॥ चित्तसत्तैवमखिलंस्वतोजगदिवोदितम् ॥ मधुमासरसोल्लासाच्चित्रोहिवनखंडकः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे हाथी दूबोंके बनमें अपना आच्छादन (ढांकना) कुछभी नहीं करसकता ऐसेही आकाशके तुल्य बिशाल आकार यह परमात्माभी अपना आच्छादन नहीं करसकता ॥ ४१ ॥ तथापि इसने सम्पूर्ण विश्वको आक्रान्त कर रक्खाहै और जैसे जाग्रत् बालक खेतोंमें धानकी रक्षा करताहै ऐसेही अपने चेतनरूपसे ज्ञात यह परमात्माभी विश्वकी रक्षा क्षणभरमें करताहै यह आश्चर्य्यकारिणी शक्ति इसकी मायाकी है अपना आच्छादन वा रक्षा न करसकै और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी करै ॥ ४२ ॥ प्रलयमें लीनभी यह जगत् किसकी सत्तासे पुनः जीताहै इसका उत्तर यह है कि जैसे वसन्तऋतुके बोधमात्रसे सम्पूर्ण चित्रविचित्र बनकी पंक्ति पुनः विकसित होती है ऐसेही चेतनके अवलम्ब मात्रसे प्रलयमें लीन संस्कारमात्रसे शेष यह जगत् जीता रहताहै ॥ ४३ ॥ जैसे मधुमासके रसके उल्लासमात्रसे विचित्र बन बनका खण्ड पुनः विकसित होजाताहै ऐसेही चेतनकी सत्ता (जो प्रलय तथा सृष्टिमें भी एकरूप है) हीसे यह जगत् आपसे आप उदयको प्राप्त होजाताहै ॥ ४४ ॥

सत्यंचिन्मयमेवेदंजगदित्येवविद्धयलम् ॥ वसंतरसमेवत्वंविद्धिपल्लवगुल्मकम् ॥ ४५ ॥ सर्वावयविसारत्वात्सहस्रकरलोचनः ॥ परमाणुरसावेवनित्यानवयवोदयः ॥ ४६ ॥ निमेषांशावबोधोहिचिदणोःप्रतिभासते ॥ यतःकल्पसहस्रौघःस्वप्नेवार्द्धकबाल्यवत् ॥ ४७ ॥ ततःसेपिनिमेषोणुःकल्पकोटिशतान्यलम् ॥ सर्वसत्ताविलासेनप्रतिभैकाविजृंभते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस सम्पूर्ण जगत्को सत्यरूपसे तुम चिन्मात्रही जानो जैसे वसन्त रसमात्रही पत्र लता आदिको जानो ॥ ४५ ॥ बिना कोई अंग उत्पन्न हुयेभी कौन अणु सहस्र हस्त (हांथ) और नेत्रवाला है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा चेतन अणु जिसके कदापि कोई अंग नहीं उत्पन्न हुये तथापि जरायुज अण्डज स्वेदज और उदभिज्ज जो चारप्रकार शरीरधारी प्राणी हैं उन सबका सार अर्थात् आत्मा होनेसे सहस्रों (हजारों) हस्त और नेत्रधारी है ॥ ४६ ॥ कौन निमेष महाकल्प और सैकडों कोटि कल्पभी है इसका उत्तर यह है कि इसी चेतन अणुके निमेषका अंशभी सहस्रों कल्पके समान भासताहै जैसे स्वप्नमें वृद्ध अवस्था और बाल्यअवस्था भासती है ॥ ४७ ॥ और उसी परमात्मासे वह निमेष अणुभी सैकडों कोटि कल्परूपसे भलीभांति भासने लगताहै क्योंकि सब चेतनकी सत्ताके विलाससे उसकी एक स्फुरणही कल्प आदिका स्वरूप धारण करके शोभित होती है ॥ ४८ ॥

अभुक्तवत्येवयथाभुक्तवानहमित्यलम् ॥ जायतेप्रत्ययस्तद्वन्निमेषेकल्पनिश्चयः ॥ ४९ ॥ अभुक्त्वाभुक्तवानस्मीत्येवंप्रत्ययशालिनः ॥ दृश्यंतेवासनाविष्टाःस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ५० ॥ जगंतिपरितिष्ठंतिपरमाणौचिदात्मनि ॥ प्रतिभासाःप्रवर्त्तंतेततएवहिजागताः ॥ ५१ ॥ यदस्तियत्रतत्तस्मात्समुदेतितदेवतत् ॥ आकाररिणिविकारादिदृष्टंनगगनेऽमले ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें भोजन न करनेपरभी अच्छीतरह भोजन करलिया यह निश्चय होताहै ऐसेही निमेषमें कल्पकाभी निश्चय होताहै ॥ ४९ ॥ भोजन न करनेपरभी भोजन करलिया इत्यादि वृत्तियां वासनासे पूर्ण देखपडती हैं, जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ५० ॥ जो पूंछा था कि किस अणुमें सम्पूर्ण जगत् ऐसे रहतेहैं जैसे बीजमें वृक्ष इसक उत्तर यह है कि इसी चेतनरूप परम अणुमें अनेक जगत् स्थित रहतेहैं, क्योंकि इसीसे सम्पूर्ण जगत् सम्बधी स्फुरणा यें होतीं हैं ॥ ५१ ॥ जो पदार्थ जहां है वहांहीसे वह उत्पन्न होताहै जैसे खम्भेमें चित्र इसलिये वह चित्र खम्भरूपही है जो जहां नहीं हैं वह वहां नहीं होता जैसे कारण रहित निर्मल आकाशमें कुछ नहीं उत्पन्न होता॥५२॥

चितिभूतानिभूतानिवर्त्तमानानिसंप्रति ॥ भविष्यंतिचभूतानिसंतिबीजेद्रुमाइव ॥ ५३ ॥ निमेषकल्पावेतेनतुषेणान्नकणाविव ॥ वलितावेषचेत्याभ्यामणुःस्वात्मांगकंश्रितः ॥ ५४ ॥ उदासीनवदासीनोनसंस्पृष्टोमनागपि ॥ एषभोक्तृत्वकर्तृत्वैःस्वात्मासर्वजगत्यपि ॥ ५५ ॥ जगत्सत्तोदितेयंहिशुद्धचित्परमाणुतः ॥ परमाणोश्चभोक्तृत्वकर्तृत्वेकेवलंस्थिते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे बीजमें वृक्ष रहतेहैं ऐसेही इसी चेतनमें भूत वर्तमान तथा भविष्यत् सम्पूर्ण जगत् तथा उसमें रहने प्राणीसमूह रहतेहैं ॥ ५३ ॥ जैसे तुष (भुसी) से चावल और उसके अवयव आच्छादित रहतेहैं ऐसेही इस चेतनसे निमेष तथा कल्प आच्छादित रहतेहैं, अर्थात् यह सबको वेष्टित कियेहै, इस अणुने विषयरूप निमेष और कल्पके अपने एक देशका आश्रय दे रक्खाहै ॥ ५४ ॥ यह चेतन यद्यपि सब जगत्का आत्मा है तथापि भोक्तृता तथा कर्तृतासे किंचित्भी स्पष्ट नहीं है किन्तु उदासीनके तुल्यस्थित है ॥ ५५ ॥ इसी शुद्ध चेतनसे

जगत्की सत्ता उदयको प्राप्त होतीहै, और इस चेतन अणुकी कर्तृता और भोक्तृताहै वह क्रियाके भोगके सम्ब-न्धके बिनाही मायासे इसमें स्थितहैं ॥ ५६ ॥

जगन्नकिंचित्क्रियतेसर्वदैवनकेनचित् ॥ विलीयतेचनोकिंचिन्मानुष्याद्दृश्यखंडनम् ॥ ५७ ॥ सर्वसम समाभासमिदमाकाशकोशकम् ॥ जगत्तयोपशब्दंचाविद्धयनाद्यंनिशाचारि ॥ ५८ ॥ चिदणुर्दृश्यसि द्ध्यर्थमांतरींचिचमत्कृतिम् ॥ बहीरूपतयाधत्तेस्वात्मनिपरिसंस्थितम् ॥ ५९ ॥ एतद्बहिष्ठमंतस्थ मस्तिशब्देनवस्तुनि ॥ उपदेशायसत्वानांचिद्रूपत्वाज्जगत्त्रये ॥ ६० ॥

अर्थ—सर्वदा इस जगत्को न तो कोई रचताहै और न लय करताहै, क्योंकि ये दोनों कल्पित हैं, और जो वेदान्त वाक्योंसे इसका खण्डन किया जाताहै वह मनुष्यकृत व्यवहार दृष्टिसे न कि परमार्थमें ॥ ५७ ॥ हे नि-शाचरि ! यह सम्पूर्ण जगत् समस्फुरणरूप केवल चिदाकाश कोशमात्र है और सम्पूर्ण जगत् जो अनुभूत होताहै उसको बाणीका विषय विकारमात्र अनादि कालसे तुम जानो ॥ ५८ ॥ कौन अणु नेत्ररहितभी अपने आत्माहीको दृश्यरूपसे देखताहै इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु दृश्यकी सिद्धिके अर्थ अपने आत्मामें स्थित अन्तर्गत जो मायासे व्याप्त चेतनकी चमत्कृति है उसीको बाह्य प्रपंचरूपसे धारण करताहै ॥ ५९ ॥ आत्माके अन्तस्थही जगत् बाहर है यह कथनभी तीनों लोकमें अधिकारी जीवोंके उपदेशके लिये शब्दमात्रमें है न कि वस्तुमें ॥ ६० ॥

द्रष्टाऽदृष्टपदंगच्छन्नात्मानंसंप्रपश्यति ॥ नेत्रदृश्याभिपातीवसदेवासद्विवस्थितम् ॥ ६१ ॥ नचगच्छ तिदृश्यत्वंद्रष्टाह्यसदवास्तवम् ॥ आत्मन्येवनयत्किंचित्तत्तामेतिकथंपरः ॥ ६२ ॥ दृगेवलोचनेसाच वासनांतंनिजंवपुः ॥ बहीरूपतयादृश्यंकृत्वाद्रष्टृतयोदिता ॥ ६३ ॥ नविनाद्रष्टृतामस्तिदृश्यसत्ताक थंचन ॥ पितृतेवविनापुत्रंद्वितेवैक्यपदंविना ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह द्रष्टारूप आत्मा नेत्रद्वारा अन्तःकरणसे बाह्य देशमें अदृष्ट विषयरूपता प्राप्त होता हुआ सदा विद्यमान आत्माहीको असत् घट आदिरूपसे प्रकाशित करताहै ॥ ६१ ॥ परमार्थ दृष्टिसे द्रष्टा (शुद्ध चेतन) दृश्य-रूपको नहीं प्राप्त होता क्योंकि जो वस्तु यथार्थमें आत्मामें नहीं हैं उस रूपताको वह कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ ६२ ॥ नित्य अपरोक्ष चेतन जो दृक्शक्ति है वही लोचनहै "क्योंकि नेत्रोंकाभी नेत्र वही है" (ऐसा श्रुतियोंमें कहाहै) वे कि नेत्र, और वही दृक्शक्ति आविर्भावसे लेके तिरोभाव पर्य्यन्त वासनान्त दृश्य रचके उसका द्रष्टा बाह्यरूपसे द्र-ष्टृता धारण करताहै ॥ ६३ ॥ द्रष्टाकी सत्ता विना दृश्यकी सत्ता किसीप्रकार नहीं बनसकती जैसे कि पिताके पुत्र अथवा एकता विना द्वैतता ॥ ६४ ॥

द्रष्टैवदृश्यतामेतिनद्रष्टृत्वंविनास्तितत् ॥ विनापित्रेवतनयोविनाभोक्त्रेवभोग्यता ॥ ६५ ॥ द्रष्टुर्दृश्यवि निर्माणेचित्त्वादस्त्येवशक्तता ॥ कनकस्यावदातस्यकटकादिकृताविव ॥ ६६ ॥ दृश्यस्यद्रष्टृनिर्माणेज डत्वान्नास्तिशक्तता ॥ कटकस्यतुहेमस्ययथाकनकनिर्मितौ ॥ ६७ ॥ चेतनाद्दृश्यनिर्माणंचित्करोत्यस देवसत् ॥ अकारणंमोहहेतुंहेमेवकटकभ्रमम् ॥ ६८ ॥

अर्थ – द्रष्टा जो दैवही दृश्यभावको प्राप्त होताहै क्योंकि द्रष्टाके बिना दृश्य कुछ नहीं है जैसे पिताके बिना पुत्र वा भोक्ताके बिना भोग्य ॥ ६५ ॥ जैसे शुद्ध सुवर्णकी कटक आदिके बनानेमें सामर्थ्य है ऐसाही चेतन होनेके कारण द्रष्टाका सामर्थ्य दृश्य बनानेमें है ॥ ६६ ॥ जैसे कटकका सामर्थ्य सुवर्ण बनानेमें नहीं है ऐसेही जड होनेके कारण दृश्यका सामर्थ्य द्रष्टा जिनानेका नहीं है ॥ ६७ ॥ जैसे सुवर्ण अपने अज्ञानताके कारणसे कटक आदिका भ्रम करताहै ऐसेही चेतन होनेसे चित्शक्ति समर्थ होनेसे दृश्यकी रचना करताहै ॥ ६८ ॥

कटकत्वावभासेहियथाहेम्नोनहेमता ॥ सत्येवप्रकचत्यैवंद्रष्टृदृश्यस्थितौवपुः ॥ ६९ ॥ द्रष्टाद्दृश्यतया तिष्ठन्द्रष्टृतामुपजीवति ॥ सत्यांकटकसंवित्तौहेमेकांचनतामिव ॥ ७० ॥ एकस्मिन्प्रतिभासेहिनस त्ताद्रष्टृदृश्ययोः ॥ पुंप्रत्ययप्रकचनेकपशुप्रत्ययोदयः॥७१॥दृश्यंपश्यन्स्वमात्मानंनद्रष्टासंप्रपश्यति ॥ द्रष्टुर्हिदृश्यतापत्तौसत्ताऽसत्तेवतिष्ठति ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसे कटककी स्फुरण दशामें सुवर्णताका स्फुरण नहीं होता, ऐसेही जिससमय द्रष्टा दृश्यरूपसे स्थित होताहै उस समय द्रष्टा अपने रूपसे सत्यके समान नहीं स्फुरण होता ॥ ६९ ॥ जैसे कटककी स्फुरण दशामेंभी उप-जीवक (कारज) पूर्व सिद्ध सुवर्णताही है ऐसे द्रष्टा जब दृश्यरूपसे स्थित होताहै उस समयभी कारण वही चेतन द्रष्टा उसका उपजीवक है ॥ ७० ॥ यदि यह कहो कि सुवर्णता और कटकता एक काल (यह कठा सुवर्ण है ऐसा)

में भासती हैं सो नहीं क्योंकि जब एक वस्तु प्रतिभास होताहै तब द्रष्टा और दृश्य दोनोंका प्रतिभास नहीं ऐसे होता जैसे दूर देशस्थ विषयमें यह पुरुष है अथवा पशु यहांपर जब पुरुषाकार वृत्ति होती हैं उससमय पशुका अनुसन्धान अर्थात् पश्वाकार वृत्ति नहीं होती और जब पशु भासताहै तब पुरुषाकार वृत्ति नहीं होती ॥७१॥ जब द्रष्टा चेतन दृश्यको देखने लगताहै उससमय अपने आत्माको नहीं देखता अर्थात् जब दृश्याकार वृत्ति होती है तब आत्माकार नहीं होती, क्योंकि द्रष्टा जब दृश्यरूपसे भासने लगताहै उससमय उसकी सत्ता रहती हुईभी असत्के तुल्य स्थित रहती है ॥७२॥

बोधाद्गलितदृश्यस्यद्रष्टुःसत्तैवभासते ॥ अबुद्धेकटकेस्वस्यहेम्नोऽकटकतायथा ॥ ७३ ॥ दृश्येसत्य स्तिवैद्रष्टाद्दृश्यंद्रष्टरिभासते ॥ द्वयेनचविनानैकंनैकमप्यस्तिचानयोः ॥ ७४॥ सर्वंयथावद्विज्ञायशुद्धसं विन्मयात्मना ॥ वाचामविषयंस्वच्छंकिंचिदेवावशिष्यते ॥ ७५ ॥ आत्मानंदर्शनंदृश्यंदीपेनेवावभासि तम् ॥ कृतंचसर्वमेतेनचिन्मात्रपरमाणुना ॥ ७६ ॥ मातृमानप्रमेयाख्यंबुधोनिगिरतित्रयम् ॥ हेमेवक टकादित्वमसन्मयमुपस्थितम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—जैसे जब कटकका भान नहीं होता उससमय सुवर्णमें कटकता नहीं रहती, ऐसेही जब ज्ञानसे दृश्यका भान नहीं होता तब केवल द्रष्टाहीकी सत्ता भान होती है ॥ ७३ ॥ दृश्यके होनेपर द्रष्टा और द्रष्टाके होने दृश्य भासताहै, और जब ज्ञानसे दृश्यकी सत्ता जिस पुरुषको नहीं भासती उसको द्रष्टादृश्य इन दोनोंमेसे एकभी नहीं भासता ॥ ७४ ॥ शुद्ध ज्ञानमय आत्मासे सब कुछ यथार्थ रूपसे जाननेपरभी वाणीका अविषय जो कुछ शुद्ध आत्मरूप है वह शेष रहजाताहै ॥ ७५ ॥ दीपके तुल्य भासित द्रष्टादृश्य और दर्शनको यह आत्मा प्रकाशित करताहै और इसी चेतनमात्र परमाणुसे प्रसिद्धिको प्राप्त द्रष्टा आदिको ज्ञानी पुरुष प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयकोभी अन्तर्भाव ऐसे करलेतेहैं जैसे सुवर्णमें असत्रूपसे उपस्थित कटक आदिको ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

यथानजलभूम्यादेःपृथक्किंचिन्मनागपि ॥ तथैतस्मात्स्वभावाणोर्नकिंचित्पृथगस्तिहि ॥ ७८ ॥ सर्व गानुभवात्मत्वात्सर्वानुभवरूपतः ॥ एकत्वानुभवन्यायेरूढेसर्वैकतास्यहि ॥७९॥ अस्येच्छयापृथङ् नास्तिवीचितेवमहांभसः ॥ इच्छानुरूपसंपत्तेर्भावितार्थैकताकिल ॥ ८० ॥

अर्थ—जैसे जल पृथिवी आदिसे भिन्न कोईभी दृश्य पदार्थ नहीं हैं ऐसेही उस स्वभाव सिद्ध चेतन अणुसे कोईभी पदार्थ पृथक् नहीं है ॥ ७८ ॥ सर्वव्यापी अनुभवरूप होनेसे और सबका अनुभवरूप होनेसे, एकत्वके अनुभवका न्याय जब दृढ होजाताहै तो सबके साथ इस चेतनकी एकता हुई है ॥ ७९ ॥ इसकी इच्छाके अनुसार फलकी प्राप्ति होनेसे इसीकी इच्छासे सिद्ध पदार्थकी एकताके कारण, समुद्रकी तरंगताके तुल्य इस परमात्माकी इच्छासे इससे पृथक् कुछ नहीं है ॥ ८० ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नःपरमात्मास्तिकेवलः ॥ सर्वात्मत्वात्ससर्वात्मसर्वानुभवतःस्वतः ॥ ८१ ॥ स न्नेषचेतनात्मत्वाद्दर्शनानवबोधतः ॥ द्वैतैक्येनात्रविद्येतेसर्वरूपेमहात्मनि ॥ ८२ ॥ यदिकश्चिद्द्वितीयः स्यात्तदैकस्यैकताभवेत् ॥ द्वैतैक्ययोर्मिथःसिद्धिरातपच्छाययोरिव ॥ ८३॥ यत्रनास्तिद्वितीयोहितत्रैक स्यैकताकथम् ॥ एकतायामसिद्धायांद्वयमेवनविद्यते ॥ ८४ ॥

अर्थ—और यही परमात्मा देश काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य है और वह सबका आत्मा होनेसे सब कुछ उससे अभिन्न है, और स्वयं तो वह सबका अनुभवरूप है न कि जड ॥ ८१ ॥ सब चेतनोंकाभी आत्मा होनेसे यह सत्रूप है और नेत्र आदि इन्द्रियोंसे इसका ज्ञान नहीं होता इसलिये श्रुतियोंमें इसे असत् कहाहै और इसी कारणसे इस सर्वरूप महात्मामें लौकिक सत्रूप जो द्वैतता और एकता है वह नहीं है ॥ ८२ ॥ यदि यह कहो कि द्वैतसापेक्ष होनेसे मिथ्या है परन्तु एकता तो सत्य है तो नहीं यदि कोई द्वितिय होतो एककी एकताहो क्योंकि आतप (घाम) और छायाके सदृश द्वैतता तथा एकताकी सिद्धिहै अर्थात् एककी सिद्धिके बिना दूसरेकी सिद्धि नहीं होती ॥ ८३ ॥ जहांपर द्वितीय कोई है ही नहीं वहांपर एककी एकता कैसे, और एकता जब असिद्ध हुई तब द्वैतता और एकता दोनों नहीं हैं ॥ ८४ ॥

एवंस्थितेतुयस्तिष्ठंस्तत्ताद्दक्तदिवास्तिहि ॥ तस्मान्नव्यतिरिक्तंतद्रूपंद्रवइवांभसः ॥ ८५ ॥ नानारंभवि भासंचसाम्येनाक्षुब्धरूपिणः ॥ बीजस्यांतस्तरुरिवब्रह्मणोंतःस्थितंजगत् ॥ ८६ ॥ द्वैतमप्यपृथक्तस्मा द्धेम्नःकटकतायथा ॥ सम्यक्बुद्धावबोधोहिद्वैतंतच्चनसन्मयम् ॥ ८७ ॥ यथाद्रवत्वंपयसःस्पंदनंमात रिश्वनः ॥ व्योम्नःशून्यत्वमेवंहिनपृथग्द्वैतमीश्वरात् ॥ ८८ ॥

अर्थ—इसप्रकार द्वैतता और एकतासे शून्य आत्मतत्व स्थित होनेपर जो द्वैतता और एकतावान्‌के सदृश स्थित भासताहै उससे द्वैतता और एकता ऐसे भिन्न नहीं है जैसे समुद्रसे द्रवता ॥ ८५ ॥ जैसे पृथिवी जलादिकी समतासे अविकारी बीजके भीतर वृक्ष स्थितहै ऐसेही सत्व रजस और तमोगुणकी समता पूर्व अवस्थासे अप्रच्युत (न गिरे हुये) ब्रह्मके भीतर नानाप्रकारके आरम्भ और स्फुरणवाला यह जगत् स्थितहै ॥ ८६ ॥ जैसे सुवर्णसे कटकता पृथक् नहीं है इसीप्रकार ब्रह्मसे यह द्वैत भान होता हुआभी पृथक् नहीं है और उत्तम रीतिसे तत्ववेत्ताका जो ज्ञान है वही द्वैत है और द्वैतरूपसे उस ज्ञानका भान होना सत्‌मय नहीं हे ॥ ८७ ॥ जैसे जलसे द्रवता, वायुसे गति, और आकाशसे शून्यता पृथक् नहीं है इसीप्रकार ईश्वरसे द्वैत भिन्न नहीं है ॥ ८८ ॥

द्वैताद्वैतोपलंभोहिदुःखायैवक्रियात्मने ॥ निपुणोनुपलंभोयस्त्वेतयोस्तत्परंविदुः ॥ ८९ ॥ मातृमानप्रमेयादिद्रष्टृदर्शनदृश्यता ॥ एतावज्जगदेतच्चपरमाणौचितिस्थितम् ॥ ९० ॥ अयंजगदणुर्नित्यमेतेनाणुसुमेरुणा ॥ स्पंदनंपवनेनेवस्वांगएवकृताकृतः ॥ ९१ ॥ अहोनुभीमामायेयमथवामायिनांपरा ॥ परमाण्वंतरेवास्तियत्रैलोक्यपरंपरा ॥ ९२ ॥

अर्थ—क्रियाकी प्रवृत्तिके लिये द्वैत और अद्वैतका जो अनुभव है सो केवल दुःखार्थही है कुशलतापूर्वक जो इन दोनोंके अनुभवका अभाव है उसीको उत्तम ज्ञान कहते हैं ॥ ८९ ॥ भूत भविष्यत् और वर्तमान जगत् किसमें है इसका उत्तर यह है कि शास्त्रीय भाषामें प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, और मितिभी, तथा लौकिक रीतिसे द्रष्टा, दर्शन और दृश्य यह जो त्रिपुटी है यही त्रिकालस्थ जगत् है वह सम्पूर्ण चेतन परमाणुमें स्थितहै ॥ ९० ॥ इस आत्मरूप सुमेरुने इस जगत्‌रूप अणुको सदा अपने अंगमेंही अनेक बार उत्पन्न तथा उपसंहार ऐसे कियाहै जैसे वायु अपनी गतिको ॥ ९१ ॥ अहो ! यह आत्म चिति (चेतन) माया शबलित होनेसे कैसी भयंकर माया है अथवा प्राणियोंको जितने व्यामोह करानेवाले है उन सबमें श्रेष्ठहैं क्योंकि एक परमाणुके भीतर अनेक त्रैलोक्योंकी श्रेणी रहती है ॥ ९२ ॥

अथासंभवमायित्वमेवैतत्सर्वदास्थितम् ॥ चिन्मात्रपरमाणुत्वमात्रमेवजगत्स्थितिः ॥ ९३ ॥ अंतर्गतजगज्जालोप्येषोणुःसाम्यमत्यजन् ॥ स्थितोंतस्थबृहद्वृक्षंबीजंभांडोदरेयथा ॥ ९४ ॥ बीजेंतर्वृक्षविस्तारःस्थितःसफलपल्लवः ॥ परयादृश्यतेदृष्ट्याजगच्चिदणूदरे ॥ ९५ ॥ सशाखाफलपुष्पंस्वमजहद्बीजकोटरे ॥ यथातरुःस्थितस्तद्वद्विकासिचिदणोर्जगत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—यदि " एकमेवाद्वितीयम् " इत्यादि श्रुतियोंसे यह आत्मा मायाकी असम्भव रूपतासेही स्थितहै तो इस जगत्‌की स्थितिभी केवल चिन्मात्र परमाणुरूपहै ॥ ९३ ॥ जैसे किसी बर्तनके भीतर बीज अपनेमें महान् वृक्षको धारण करके स्थितहै ऐसेही यह अणुके भीतर व्याप्तभी परमात्मा अनेक जगत्‌के समूहोंको अपने भीतर धारण किये है ॥ ९४ ॥ जैसे बीजके भीतर फल और पल्लवसहित वृक्षका विस्तार स्थितहै ऐसेही योगसे शुद्ध अथवा ब्रह्माकी दृष्टिसे चेतन अणुके भीतर अनेक जगत् देख पडतेहैं ॥९५॥ जिसप्रकार बीज कोटरके भीतर शाखा, फल, और पुष्प आदिको न त्याग करता हुआ वृक्ष स्थितहै ऐसेही यह प्रकाशमान जगत् चेतन अणुके भीतर स्थितहै ॥ ९६॥

संस्थितंद्वैतमद्वैतंबीजकोशइवद्रुमः ॥ जगच्चित्परमाण्वंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥९७॥ नद्वैतंनैवचाद्वैतंनचबीजंनचांकुरः ॥ नस्थूलंनचवासूक्ष्मंनाजातंजातमेवच ॥ ९८ ॥ नचास्तिनचनास्तीदंनसौम्यंक्षुभितंनच ॥ त्रिजगच्चिदणोरंतःखवाय्वपिनकिंचन ॥ ९९ ॥ नजगन्नाजगच्चास्तिविद्यतेचित्पराशुभा ॥ सर्वात्मिकायदायत्रसायथोदेतितत्तथा ॥ १०० ॥

अर्थ—बीज कोशके भीतर जैसे वृक्ष अभिन्नरूपसे स्थितहै ऐसेही चित् परमाणुके भीतर स्थित इस जगत् द्वैतको जो अद्वैतरूतसे देखताहै वही देखताहै अर्थात् वही तत्वज्ञानी है ॥ ९७ ॥ यथार्थमें न द्वैत है न अद्वैत है न बीज न अंकुर न स्थूल न सूक्ष्म, और न यह जगत् उत्पन्न और न अनुत्पन्न हुआहै ॥ ९८ ॥ यह तीनों जगत् चेतन अणुके भीतर न अस्तिस्वभाव है और न नास्तिस्वभाव है, न शान्त है न क्षुभित (अशान्त) है और आकाशवायु आदि कुछभी नहीं है ॥ ९९ ॥ न यह जगत् है न जगत्‌से भिन्न है किन्तु केवल कल्याणस्वरूप चेतन है वह चेतन पूर्वकी वासनाके अनुसार जब जैसी आविर्भूत होती है तब वैसीही स्फुरित होजाती है ॥ १०० ॥

उदेत्यनुदितोप्येषस्वयंवेदनजृंभितः ॥ परमात्माणुरेकात्मासमग्रात्मतयैवखे ॥ १०१ ॥ द्रुमोभूमौस्वबीजत्वमिवोदेत्यनुदेत्यपि ॥ परंतत्त्वंजगद्भंग्याजगत्तांस्वोदयेनच ॥ १०२ ॥ द्रुमोबीजतयैवाशुनसंत्य

त्कसमस्थितिः ॥ तिष्ठत्यपगतस्पंदस्त्यागात्यागपरोणुकः ॥ १०३ ॥ बिसतंतुर्महामेरुःपरमाणोरपेक्ष या ॥ दृश्यंकिलविशेत्तंतुरदृश्याक्षणापराणुता ॥ १०४ ॥

अर्थ—अपने ज्ञानमात्रसे सृष्टिकी स्फुरणासे वृद्धिको प्राप्तभी यह अपने स्वरूपसे अनुदितही रहताहै अर्थात् च्युत नहीं होता और प्रपंच रहित स्वरूपाकाशमें एकरूप होता हुआभी यह परमात्माअणु समग्ररूपसे है ॥ १०१ ॥ जैसे वृक्ष बीजोंको उत्पन्न करता हुआ अपने वृक्षस्वभावको न त्यागकर बीजत्वरूपसे उदय होताहै और उस बीज रूपसे पुनः पृथिवीपर प्राप्त होताहै इसीप्रकार परंतत्व ब्रह्मभी जगत्की रचनारूपसे उदयको प्राप्त होताहै और अपने उदयसे जगत् रूपता अर्थात् जन्म मरण आदि कल्पनाको प्राप्त होताहै ॥ १०२ ॥ केवल इतना विशेष है कि वृक्ष बीजरूपसेही अपनी समान स्थितिको त्यागकर विकारी नहीं है किन्तु वृक्ष और बीज दोनों रूपसे विकारी हैं और आत्मा तो त्याग और अत्याग दोनोंमें तत्पर है अर्थात् असंग अद्वितीय होनेसे सर्वत्यागपर है और सर्वमें व्याप्त सत्‌रूप होनेसे सर्व त्यागपर होकरभी सदा निर्विकार एकरूपसेही रहताहै ॥ १०३ ॥ जिसकी अपेक्षा कमलकी नालका सूत भी महामेरु है इसका उत्तर कहते हैं कि परमाणुकी अपेक्षा कमलकी नालका सूतभी स्थूल होनेसे महामेरु है क्योंकि नालकासूत दृष्टिगोचर होसकताहै और परमाणुता नेत्रसे अदृश्य है ॥ १०४ ॥

बिसतंतुर्महामेरुःपरमाणोःकिलात्मनः ॥ तस्यैवतद्घनाःस्वांतःस्थितामेर्वादिकोटयः ॥१०५॥ एकेन तेनमहतापरमाणुनाचव्याप्तंततंविरचितंजनितंकृतंच ॥ दृश्यंप्रपंचरचितंनभसेवविश्वंशून्यत्वमच्छम भितःपरिलब्धमेव ॥ १०६ ॥ द्वैतेनसुंदरतरंस्वमनुज्झितेनरूपंसुषुप्तसदृशेनयथावबोधात् ॥ ऐक्यंग तंस्थितिगमागममुक्तमेवमित्थंस्थितंतनुजगत्परमार्थपिंडः ॥ १०७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्क ट्युपाख्याने परमार्थपिंडीकरणं नामैकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—अब परमाणुकी अपेक्षा कमलकी नालका सूतभी महामेरु है और उसी ब्रह्म परमाणुके भीतर परमार्थ रूप अनेक मेरु और मन्दर कोटियां (करोडों) स्थित हैं ॥ १०५ ॥ किससे यह सम्पूर्ण व्याप्त है इसका उत्तर कहतेहैं कि एक महान् परमाणुसेही यह सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त, तत, विरचित, जनित, और कृत है, उसमें अपंचीकृत भूतरूपसे व्याप्त है, पचीकृत ब्रह्माण्ड भुवनरूपसे विरचित है उस ब्रह्माण्डमें देव, मनुष्य, असुर तथा तिर्यक् आदि भेदसे जनित (उत्पन्न) है, और उन देवादिके भोगके अर्थ उनके २ विषय भेदसे ऐसे कृत (किया) है जैसे आकाशसे गन्धर्वनगर नानाप्रकारकी विचित्र प्रपंच रचनासे रचितभी है परन्तु यथार्थमें वह आकाशके तुल्य चारोंओर स्वच्छ और शून्यरूपही उपलब्ध है, इससे किसकी सारता (बल पाके) तुम गर्जन और पालन आदि करतेहो इसका भी उत्तर विश्वके अन्तर्गत होनेसे सबमें वही ब्रह्मसार इस रीतिसे होगया ॥ १०६ ॥ किस दृष्टिसे तुमहो और किस दृष्टिसे नहीं हो इसका उत्तर यह है, जब कि यथार्थ आत्मरूपके ज्ञानसे तथा चेतन संभिन्न जड अविद्या मात्ररूप होनेसे सुषुप्तके तुल्य अपने द्वैत समयमेंभी चेतन सत्ताकी स्फूर्तिसे व्यवहारकी सिद्धिके लिये सच्चिदानन्द एकरूप होनेके कारण अतिसुन्दर अपने अधिष्ठान आत्मतत्व न त्यागनेसे द्वैतने स्थिति और गमागम अर्थात् सत्ता और क्रिया तथा उसकी निवृत्तियोंसे अपने त्यागे हुये ऐक्यको प्राप्त कियाहै तब यह क्षुद्र जगत् परमार्थ पिण्ड ब्रह्मही है इस रीतिसे मैं संसाररूप नहीं किन्तु अद्वैत ब्रह्मरूपही हुं ॥ १०७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने परमार्थपिण्डीकरणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस ८२ के सर्गमें प्रसन्न राक्षसीका राजा तथा मन्त्रीको वर सम्प्रदान करना, और समाधिसे उठी हुई राक्षसीको बध्यभोज्य पदार्थका देना इत्यादि विषयका वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिराजमुखाच्छ्रुत्वाकर्कटीवनमर्कटी ॥ अवबुद्धपदांतंस्वंजहौमत्सरचापलम् ॥ १ ॥ अंतःशीतलतामेत्यविश्रांतिमपतापताम् ॥ प्राप्ताप्रावृण्मयूरीवसज्योत्स्नेवकुमुद्वती ॥ २ ॥ तथा राजगिरातस्याआनंदउदभूद्भृशम् ॥ गर्भंतःखेबलाकायारवेणवपयोमुचः ॥ ३ ॥ राक्षस्युवाच ॥ अहो बतपवित्रेयंभवतोभातिशेमुषी ॥ अनस्तमितसारेणप्रबोधार्केणभासिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार वनकी मर्कटी (वानरी) उस कर्कटी नामक राक्षसीने राजाके मुखसे इन वचनोंको सुनकर ब्रह्मपदके बोधसे अन्त होगयाहै जिसका ऐसे अपने मत्सर (ठाह) और चपलताको त्यागदिया ॥ १ ॥ हे रामजी ! बाह्यदृष्टिके सन्तापसे रहित अन्तःकरणकी शीतलता पाकर वह ऐसी होगई जैसी वर्षाकालमें मयूरी (मोरनी) अथवा चन्द्रमाकी चन्द्रिका (चांदनी) सहित रात्रि ॥ २ ॥ राजाकी वाणी सुनकर उसके अन्तःकरणमें ऐसा अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हुआ जैसे आकाशमें मेघोंके शब्दोंको सुनकर बक (बकुला) की पंक्तियोंके गर्भधारणमें ॥ ३ ॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! अहो ! कैसे हर्षका अवसर है कि चन्द्रमण्डलसे निकली चन्द्रिकाके सदृश शीतल एक रस, सर्वदा उदित है तत्व जिसमें ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य्यसे प्रकाशित, और अति पवित्र तुम दोनोंकी बुद्धि शोभायमान होरही है ॥ ४ ॥

शीतासमरसाशुद्धाज्योत्स्नेवशशिमंडलात् ॥ विवेककणिकांश्रुत्वाभवतोहृदयादियम् ॥ ५ ॥ विवेकिनोजगत्पूज्याःसेव्यामन्ये भवादृशाः ॥ सत्संगात्सविकासास्मिचंद्रेणेवकुमुद्वती ॥ ६ ॥ सौरभंकुसुमासंगादेवसत्संगमाच्छुभम् ॥ वर्त्ततेह्यर्कसंपर्काद्विकासोंबुरुहामिव ॥ ७ ॥ महतामेवसंपर्कात्पुनर्दुःखंनबाधते ॥ कोहिदीपशिखाहस्तस्तमसापरिभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—और तुमारे हृदयसे निकली हुई ज्ञानामृतकी कणिका सुनकर मैं ऐसा मानती हुं कि तुमारे सदृश विवेकी पुरुष मोक्षार्थियोंसे सेवा करनेके योग्य तथा पूजनीय हैं, और आपके सत्संगसे मैं ऐसी प्रकाशित होगई हुं जैसे चन्द्रचन्द्रिकासे रात्रि ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जैसे पुष्पोंके समागम मात्रसे सुगन्ध और सूर्य्यके सम्बन्ध मात्रसे कमलोंका विकाश होताहै ऐसेही सज्जनोंके समागम मात्रसे कल्याण होताहै ॥ ७ ॥ महात्माओंके समागमसे विवेकसे नाशको प्राप्त दुःख पुनः पीडा नहीं करता, क्योंकि ऐसा कौन है कि जिसके हस्तमें दीपकी शिखा हो और वह अन्धकारसे पीडित हो ॥ ८ ॥

मयेमौजंगलप्राप्तौभवंतौभूमिभास्करौ ॥ पूजनीयावतःशीघ्रमीहितंकथ्यतांशुभम् ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ अस्मिन्जनपदेरक्षःकुलकाननमंजरि ॥ जनस्यबाधतेत्यंतंसदात्हृदयशूलनम् ॥ १० ॥ यतःसर्वैवजनतातप्ताहृढविषूचिका ॥ मंडलेननुतेनाहंनिर्गतोरात्रिचर्यया ॥ ११ ॥ शूलादिहृदयेनृणांनशाम्यतियदौषधैः ॥ ततोहंत्वद्विधप्रोक्तमंत्रार्थेनविनिर्गतः ॥ १२ ॥

अर्थ— मुझे इस बनमें तुम दोनों पृथिवीके सूर्य्य प्राप्त हुये, और वांछित पदार्थ देकर तुम दोनों मेरे पूजनीय हो इसलिये अपना मनोरथ शीघ्र कहो ॥ ९ ॥ राजा बोले–हे राक्षसके कुलकी लते ! इस बनमें सब मनुष्योंको हृदयका शूल (विषूचिका) अत्यन्त पीडा देती है ॥ १० ॥ इस राज्यमें सम्पूर्ण जनसमूह प्रबल विषूचिका (महाभारी) से अति सन्तप्त है इसीकारणसे रात्रिको भ्रमण निमित्त मैं निकला हुं॥ ११ ॥ मनुष्योंके हृदयमें जो शूल है वह औषधोंसे नहीं शान्त होता इसलिये आपके सदृश महात्माओंसे कहे हुये मंत्रके प्रयोजनसे मैं निकला हुं ॥ १२ ॥

त्वादृशस्यचलोकस्यमुग्धलोकाभिघातिनः ॥ निग्रहार्थंप्रवृत्तिर्मेसाचसंपत्तिमेत्यलम् ॥ १३ ॥ एतावदेवचशुभेत्वयांगीक्रियतांवचः ॥ भूयोभवत्याप्राणाहिहिंसनीयानकस्यचित् ॥ १४ ॥ राक्षस्युवाच ॥ बाढमेवंकरोम्यद्यप्रभृत्यवितथंप्रभो ॥ सत्यमेवनकिंचिद्धिहिंसनीयंमयाधुना ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ यद्येवंफुल्लपद्माक्षिपरदेहैकभोजने ॥ किंस्याच्छरीरवृत्त्यैतेस्थितायामत्समीहिते ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्ख (अज्ञ) जनोंके घातार्थ जो आपके सदृश जन हैं उनके निग्रह (वशीकरणार्थ) के लिये मेरी प्रवृत्ति है और वही प्रवृत्ति अब सिद्ध होगई अर्थात् तत्त्वज्ञानियोंका मनोरथ निष्फल नहीं होता ॥ १३ ॥ हे कल्याण स्वरूप राक्षसि ! इससमय तुम मेरा इतनाही बचन अंगीकार करो कि पुनः अब तुम किसी जीवके प्राणकी हिंसा न करो ॥१४॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! बहुत अच्छा आजसे लेके तुमारे बचनको सत्य करतीहुं, अब तुम यह सत्य जानों कि मैं किसीकी हिंसा न करूंगी ॥ १५ ॥ राजा बोले–हे विकसित कमलके सदृश नेत्रवाली तथा अन्यकी शरीरोंको भोजन करनेहारी, यदि तुम मुझे अभीष्ट अहिंसारूप व्यापारमें स्थित रहोगी तब तुमारी शरीरयात्रा कैसे होगी॥ १६ ॥

॥ राक्षस्युवाच ॥ षड्भिर्मासैर्गिरौराजन्प्रबुद्धायाःसमाधितः॥ जाताभोजनसंकल्पाद्भोजनेच्छेयमद्यमे ॥ १७ ॥ इदानींशिखरंगत्वातदेवध्याननिश्चला ॥ यावदिच्छंसुखेनासेसजीवाशालभंजिका ॥ १८ ॥ आमृतींधारणांबत्ध्वाधारयामिशरीरकम् ॥ यथेच्छमथकालेनत्यक्ष्यामीतिमतिर्मम ॥ १९ ॥ आशरीरपरित्यागमिदानींनमयानृप ॥ हिंसनीयाःपरप्राणास्तेनेदंमद्वचःशृणु ॥ २० ॥

अर्थ—राक्षसी बोली–हे राजन् ! छः माससे इस पर्वतपर समाधिसे मैं उठीहुं और भोजनके संकल्पसे आज मुझे भोजनकी इच्छा हुई ॥ १७ ॥ अब पुनः उसी शिखरपर जाके ध्यानमें निश्चल होके अपनी इच्छापर्य्यंत सुखसे जीव सहित काष्ठकी पुतलीके समान स्थित रहूंगी ॥ १८ ॥ अमृत स्वरूप भावनाको बांधकर शरीरको धारण करूंगी, इसके अनन्तर अपनी इच्छासे शरीरको त्यागूंगी ऐसी मेरी मति है ॥ १९ ॥ और हे राजन् ! जबतक शरीर न त्यागूंगी तबतक मैं दूसरोंके प्राणोंकी हिंसा नहीं करूंगी, इसलिये मेरे इस वचनको सुनिये ॥ २० ॥

हिमवान्नामशैलोस्तिशरचंद्रांशुनिर्मलः ॥ यउत्तराशाहृदयेस्पृष्टपूर्वापरार्णवः ॥ २१ ॥ तत्राहंनिवसाम्यग्रेहेमशृंगदरीगृहे ॥ आयसीमेघलेखेवकर्कटीनामराक्षसी ॥ २२ ॥ तपसोपार्जितोब्रह्माजनतामारणेच्छया ॥ विषूचिकाप्राणहरास्यांसूच्यात्मेतिभोमया ॥ २३ ॥ तस्मात्संप्राप्तवरयाबहून्वर्षगणान्मया ॥ भुक्ताविषूचिकात्वेनजनताजीवबाधनैः ॥ २४ ॥

अर्थ—शरत्कालके चन्द्रमाके निर्मल हिमवान्नाम पर्वत है जो कि उत्तर दिशाके मध्यमें पूर्व और पश्चिम समुद्रको स्पर्श करताहै॥२१॥ वहांपर उत्तम सुवर्ण कन्दरारूपी गृहमें लोहमय मेघकी लेखाके समान कर्कटी नाम राक्षसी मैं निवास करतीहुं ॥ २२ ॥ मनुष्योंके मारनेकी इच्छासे तपस्या करके मैं ब्रह्माजीको वशीभूत करलिया, और उनसे यह वरदान मांगा कि हे प्रभो ! मैं मनुष्योंके प्राण हरण करनेवाली विषूचिका होऊं ॥२३॥ उन महात्मासे वरदान पाके बहुत वर्षोंके समूह पर्य्यन्त प्राणियोंकी जीव बाधा करके जनसमूहोंको मैंने भक्षण किया ॥ २४ ॥

त्वयानगुणिनोहिंस्याइतिमेब्रह्मणाततः ॥ नियमार्थमहामंत्रस्तदायत्तास्मिसंस्थिता ॥ २५ ॥ सोयंप्रगृह्यतांतेनसर्वंहृदयशूलनम् ॥ शममेष्यतिलोकेस्मात्काकथामत्कृतेभ्रमे ॥ २६ ॥ वितत्तैवास्मिहिंसायांयत्पुराहिंसितंमया ॥ जनस्यहृदयंतेननाड्योवैधुर्यमागताः ॥ २७ ॥ हिंसित्वारक्तमांसानिसंत्यक्तायेमहाजनाः ॥ तेभ्योविधुरनाडीभ्योयेजातास्तेपिताहशाः ॥ २८ ॥

अर्थ—तुम गुणी पुरुषोंको नहीं मारना इसप्रकार मर्य्यादाके लिये ब्रह्माजीने मंत्र दिया इसलिये उस मंत्रके आधीन मैं स्थित हुं ॥ २५ ॥ इसलिये वह ब्रह्माजीका दिया हुआ मंत्र तुम ग्रहण करो उस मंत्रसे इस संसारमें सम्पूर्ण हृदयके शूल शान्त होजायगे और इस मेरे किये भ्रमपीडाकी क्या कथा है ॥ २६ ॥ हिंसा करनेमें मैं बहुत कालसे प्रवृत्तहुं और पूर्वकालमें जो मैंने प्राणियोंके हृदयकी हिंसाकी थी इससे प्राणियोंकी नाडियां दूषित होगई ॥ २७ ॥ और रक्तमांसका चूषण करके जिन महाजनोंको मैंने छोड दियाथा, उनसे जो उत्पन्न हुये हैं वेभी उन्हींके सदृश दूषित होगयेहैं ॥ २८ ॥

राजन्विषूचिकामंत्रःसोयंसंपन्नएवते ॥ नहिसत्ववतामस्तिदुःसाध्यमिहकिंचन ॥ २९ ॥ अतोदुर्नाडिकोशेषुशूलानांपरिशांतये ॥ मंत्रोयोब्रह्मणाप्रोक्तोराजन्शीघ्रंगृहाणतम् ॥ ३० ॥ आगच्छनिकटंनद्यागच्छाम स्तत्रभूमिप ॥ स्वाचांताभ्यांसंयताभ्यांभवद्भ्यांसुमतादद ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितस्यांतदारात्र्यांराक्षसीमंत्रिभूभृतः ॥ जग्मुस्तेसरितस्तीरंमिथःसंजातसौहृदाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सो हे राजन् ! यह विषूचिका मंत्र तुमको सिद्धरूपसे प्राप्त होगा क्योंकि धैर्य्यवान् महात्माओंको कोईभी पदार्थ दुःसाध्य नहीं है ॥ २९ ॥ इसलिये हे राजन् ! दुष्ट नाडियोंके भीतर जो शूल हैं उनकी शान्तिके लिये ब्रह्माजीसे कहा हुआ यह मंत्र शीघ्र ग्रहण करो ॥३० ॥ हे राजन् ! आओ हम लोग नदीके निकट चलें वहांपर अच्छी तरहसे सावधान और आचमन किये हुये तुम दोनोंको प्रसन्न होकर मैं मन्त्र सम्प्रदान करूं॥३१॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार उस रात्रिमें राक्षसी मंत्री और राजा तीनों परस्पर मित्रतामें बद्ध नदीके तटपर गये ॥ ३२ ॥

अन्वयव्यतिरेकेणराक्षस्याःसौहृदंतदा ॥ ज्ञात्वास्थितौतौस्वाचांतावुभावंतेनिवासिनौ ॥ ३३ ॥ तयाब्रह्मोपदिष्टोसौततस्ताभ्यांयथाक्रमम् ॥ स्नेहाद्विषूचिकामंत्रःप्रदत्तोजपसिद्धिदः ॥ ३४ ॥ ततःसंजातसौहार्दौतौविसृज्यनिशाचरी ॥ यदागंतुप्रवृत्तासौतदाराजाब्रवीद्वचः ॥३५॥ राजोवाच ॥ गुरुस्त्वंनौमहादेहेवयस्याचसुनिर्वृता ॥ निमंत्रयावहेयत्वाद्ग्रासायतवसुंदरि ॥ ३६ ॥

अर्थ—राक्षसीके अभिप्रायकी परीक्षाके चिन्हसे उसके मित्रभावको जानकर उत्तम रीतिसे आचमन कर शिष्य होके दोनों सम्मुख स्थित हुये ॥ ३३ ॥ उसके अनन्तर उस राक्षसीने स्नेहसे पूर्वप्रकरणमें ब्रह्माजीसे कहा हुआ और जपसे सिद्धि देनेवाला जो विषूचिकाका मंत्र है उसे यथाक्रम प्रथम राजाको पश्चात् मंत्रीको दिया ॥ ३४ ॥ इसके

अनन्तर वह निशाचरी उत्पन्न हुआहै मित्रभाव जिनको ऐसे राजा और मंत्रीको छोडकर जब जानेलगी उसीसमय राजा यह बचन बोला ॥ ३५ ॥ राजाजी बोले–हे महान् शरीर धारण करनेवाली ! तुम हम दोनोंकी गुरु और सखी (मित्र) भी अब होगईहो, इसलिये हे सुन्दरि ! तुमारे भोजनके अर्थ हम दोनोंने बता देतेहैं ॥ ३६ ॥

नचास्मत्प्रणयंप्रीताविलथीकर्तुमर्हसि ॥ सौहार्दंसुजनानांहिदर्शनादेववर्द्धते ॥ ३७ ॥ लघुसौभाग्य संयुक्तंकृत्वाकारंमनोरमम् ॥ आगच्छास्मद्गृहंभद्रेतत्रतिष्ठयथासुखम् ॥ ३८ ॥ राक्षस्युवाच ॥ मुग्ध स्त्रीरूपधारिण्यैदातुंशक्तोसिभोजनम् ॥ संतर्पयसिमांकेनराक्षसाकारधारिणीम् ॥ ३९ ॥ रक्षोन्नमेवसं तुष्ट्यैनसामान्यजनाशनम् ॥ पूर्वसिद्धस्वभावोयमादेहंननिवर्त्तते ॥ ४० ॥

अर्थ—सो हमारी यांचा आप निस्फल करने योग्य नहीं हो क्योंकि सुजन महात्माओंकी मित्रता केवल दर्शनमात्रसे बढती है ॥ ३७ ॥ इसलिये तुम छोटा तथा सुन्दर आभूषण आदिसे युक्त मनोरम आकार धारण करके हे भद्रे ! आओ सुखपूर्वक मेरे गृहमें निवास करो ॥ ३८ ॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करनेवाली मुझे मनुष्यके योग्य अन्नपान देनेको समर्थ हो परन्तु राक्षसका आकार धारण किये हुये मुझे किस वस्तुसे तृप्त करोगे ॥ ३९ ॥ मेरी तृप्तिके राक्षसका अन्न (नरमांस आदि) ही है न कि सामान्य मनुष्योंको भोजन क्योंकि मेरा यह पूर्वसिद्ध स्वभाव इस शरीरके अन्ततक निवृत्त नहीं होसकता ॥ ४० ॥

॥ राजोवाच॥ हेमस्रग्दामवलितादिनानिकतिचिद्गृहे ॥ ममस्त्रीरूपिणीतिष्ठयावादिच्छमानिंदिते॥४१॥ ततोदुष्कृतिनश्चौरान्वध्याञ्छतसहस्रशः ॥ मंडलेभ्यःसमानीदयदेतुभ्यंसुभोजनम् ॥ ४२ ॥ कांतारू पंपरित्यज्यगृहीत्वाराक्षसंवपुः ॥ आदायवध्याञ्छतशःपुरुषांस्तान्सुसंचितान् ॥ ४३ ॥ नयस्वहिम वच्छृंगंतत्र भुंक्ष्वयथासुखम् ॥ महाशनानामेकांतेभोजनंहिसुखायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले–हे निन्दारहित राक्षसि ! सुवर्णकी माला आदिसे शोभित स्त्रीका रूप धारण करके कुछ दिनतक मेरे गृहपर रहो ॥ ४१ ॥ तब मैं दुष्टकर्म्म करनेवाले बधके योग्य सैकडों, सहस्रों (हजारों) जो चोर आदि हैं उनको अपने मण्डलों (राज्यके परगनों) से लाके तुमको इच्छापूर्वक उत्तम भोजन दूंगा ॥ ४२ ॥ तब तुम स्त्रीका रूप परित्याग करके और राक्षसीका स्वरूप धारण करके उस संचय (एकट्ठे) किये सैकडों वध्यपुरुषोंको लेके ॥ ४३ ॥ उस हिमालयके शिखरपर लेजाओ, और वहां सुखसे उनका भोजन करो, क्योंकि अधिक भोजन करनेवालोंको भोजन एकान्तमेही सुखदायी होताहै ॥ ४४ ॥

तृप्तानिद्रांमनाकृत्वाभवभूयःसमाधिभाक् ॥ समाधिविरताभूयोप्यागत्यपुनरन्यदा ॥ ४५ ॥ नेष्य स्यन्यान्वध्यजनान्हिंसानैषांचधर्मतः ॥ स्वधर्मेणचहिंसैवमहाकरुणयासमा ॥ ४६ ॥ त्वंसमेष्यसि चावश्यंमांसमाधिविरागिणी ॥ असतामपिसंरूढंसौहार्दंननिवर्त्तते ॥ ४७ ॥ राक्षस्युवाच ॥ युक्तमु क्तंत्वयाराजन्करोम्येवमहंसखे ॥ सौहार्देनप्रवृत्तस्यकोवाक्यंनाभिनंदति ॥ ४८ ॥

अर्थ—भोजनसे तृप्त होकर किंचित् निद्रा करके पुनः समाधिमें तत्पर होओ, और समाधिसे उठकर पुनः अन्य समयमें यहां आके ॥ ४५ ॥ अन्य सहस्रों बधके योग्य प्राणियोंको लेजाओगी, और ऐसा करनेसे इन जीवोंकी हिंसा धर्मसे नहीं होती, क्योंकि अपने धर्मपूर्वक जो हिंसा है वह महादयाके समान है ॥ ४६ ॥ और तुम जब समाधिसे विरक्त होओगी तब मेरे निकट अवश्य आओगी, क्योंकि असत् जीवोंकीभी बढी हुई मित्रता निवृत्त नहीं होती ॥ ४७ ॥ राक्षसी बोली–हे मित्र राजन् ! तुमने योग्य कहा, मैं ऐसाही करूंगी, क्योंकि मित्रतासे प्रवृत्त पुरुषका वाक्य कौन नहीं प्रसन्न (पसन्द) करता ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इत्युक्त्वाराक्षसीतत्रसंपन्नासुविलासिनी॥ हारकेयूरकटकपट्टस्रग्दामधारिणी॥४९ राजन्नागच्छगच्छामइत्युक्त्वाभूपमंत्रिणौ ॥ अग्रेगंतुंप्रवृत्तौतौराज्ञावनुससारसा ॥ ५० ॥ अथतेपार्थि वगृहंप्राप्यतांरजनींमिथः ॥ कथयैकगृहेरम्येक्षपयामासुरादृताः ॥ ५१ ॥ प्रभातेतःपुरेतस्यैपुरंध्रीज नलीलया ॥ राक्षसीमंत्रिराजानौस्वव्यापारौबभूवतुः ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वह राक्षसी वहांपर ऐसा कहके हार, कुण्डल, कटक, पट्ट, और माला आदि धारण करके उत्तम स्त्री बनगई ॥ ४९ ॥ और बोली की आओ राजन् ! चलैं, इतना कहनेके अनन्तर राजा और मंत्री आगे २ चलनेमें प्रवृत्त हुये और वह राक्षसी उनके पीछे २ चली ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर वे तीनों राजभवनमें प्राप्त होके और एक रमणीय स्थानमें आदरसे परस्पर कथा वार्ता करते हुये उस रात्रिको बिताया ॥ ५१ ॥ प्रा-

त:काल होनेपर राक्षसी तो राजाके अन्तःपुरमें उत्तम स्त्रियोंकी लीलासे रहने लगी और राजा तथा मंत्री अपने व्यापार अर्थात् सज्जनोंके पालन और दुष्टोंके वधमें तत्पर हुये ॥ ५२ ॥

ततोदिवसषट्केनसंचितानिमहीभृता ॥ नृपःपरपुरेभ्योपिस्वमंडलगणात्तथा ॥ ५३ ॥ त्रीणिवध्यसहस्राणितानितस्यैतदाददौ ॥ साबभूवनिशाकालेसैवोग्राकृष्णराक्षसी ॥ ५४ ॥ तानिवध्यसहस्राणिजग्राहभुजमंडले ॥ धारानिकरजालानिमेघमालेवकोटरे ॥ ५५ ॥ ययौराजानमापृच्छयतदेवहिमवच्छिरः ॥ दरिद्रालब्धहेमेवग्रहेषूग्रशरीरिणी ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर छः दिनमें राजाने दूसरे नगरोंसे तथा अपने राज्यसे तीन सहस्र वध्य प्राणी एकत्रित किये ॥ ५३ ॥ और उस राजाने उन सब वध्यप्राणियोंको उसे दिया, और रात्रि समयमें वही कृष्णवर्ण राक्षसी होगई ॥ ५४ ॥ और उन तीन सहस्र वध्य प्राणियोंको अपने भुजमण्डलमें ऐसे ग्रहण किया जैसे मेघमाला अपने कोटरमें जलधारा समूहोंको ॥ ५५ ॥ ग्रहोंमें भयंकर देहवाली वह राक्षसी जैसे दरिद्रा सुवर्णके लाभसे प्रसन्न हो ऐसे प्रसन्न होके राजाकी आज्ञा मांगकर उसी हिमालयके शिखरपर गई ॥ ५६ ॥

तत्रतृप्ताभृशंभुक्त्वासुखंसुप्त्वादिनत्रयम् ॥ आसीत्प्रबोधसुस्वस्थासासमाधिमतिःपुनः ॥ ५७ ॥ पंचभिर्वाचतुर्भिर्वावर्षैःसासंप्रबुद्ध्यते ॥ ततोमंडलंयातितेनराजसभाजने ॥ ५८ ॥ तत्रविश्रंभगर्भाभिःकथाभिःकंचिदेवसा ॥ स्थित्वाकालंगृहीत्वातान्वध्यान्स्वास्पदमेत्यथ ॥ ५९ ॥ जीवन्मुक्ततयैवमेवविधिनेसाद्यापिरक्षोंगनातस्मिन्नेवगिरौस्थितावचलितध्यानैकतानाशया ॥ तस्मिन्राजनिशांतिमागतवतित्यक्त्वैषणेनात्मनातद्राष्ट्राधिपसौहृदैःस्वकवलानास्वादयंतीचिरम् ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीसौहार्दं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—वहांपर अच्छीतरहसे भोजन करके तृप्त होके तीन दिन तक शयन किया, अनन्तर उठके स्वस्थ चित्त होके समाधिकी ओर अपनी बुद्धि की ॥ ५७ ॥ पांच या चार वर्षमें वह समाधिसे उठती है और उसके अनन्तर राजाके प्रीति समागमकी इच्छा करके उसके वचनसे उसके राज्यमें जाती है ॥ ५८ ॥ तब वहांपर विश्वास युक्त कथावार्ताओंसे कुछकाल ठहरकर एकत्र किये हुये वध्य प्राणियोंके लेकर उसी अपने आश्रम हिमालयके शिखरपर जाती है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! अबभी वह राक्षसी पूर्वोक्त रीतिसे उसी पर्वतपर कभी समाधिसे विचलित होती है और कभी ध्यानमें तत्पर होती है और जब किरातोंका राजा मनसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी इच्छाको त्यागकर शान्त होताहै अर्थात् देह त्यागकर कैवल्यमुक्ति पाताहै तब उसके वंशके जो उस राज्यके स्वामी होते हैं उनके साथ मित्रता होनेसे वही अपने भोजनोंका आस्वाद लेती हुई चिरकालतक स्थितहै ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे राक्षसीसौहार्दं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

जब चिरकालसे समाधिसे उठती है तो किरातोंके राज्यमें कन्दरानाम देवी करके स्थापित कीजाती इस विषयका वर्णन इस ८३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ किरातमंडलेतस्मिन्येभवंतिमहीभृतः ॥ तैस्तैःसहपरांमैत्रींतस्याःसमभिजायते ॥ १ ॥ सर्वांस्तत्रमहोत्पातान्पिशाचादिभयान्यपि ॥ रोगांश्चयोगसंसिद्धानिवारयतिराक्षसी ॥ २ ॥ बहुवर्षगणेनैषाध्यानाद्विरतिमागता ॥ तत्रागत्यसमस्तांस्तान्वध्याञ्जंतून्सुसंचितान् ॥ ३ ॥ अद्यापितत्रयेवध्यास्तेतदर्थंमहीभुजा ॥ नीयंतेमित्रसन्मानेकोहिनाध्यवसायिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! उस किरातके राज्यमें जो जो राजा होते हैं उनके साथ उसकी परम मित्रता होजाती है ॥ १ ॥ वहां सब उत्पातोंको पिशाच आदिके भयोंको और रोगोंकोभी योगबलसे सिद्धताको प्राप्त वह राक्षसी निवारण करती है ॥ २ ॥ बहुत वर्षोंके समूहोंके अनन्तर जब वह समाधिसे उठती है तब वहां आके एकत्र किये वध्य जीवोंको लेजाती है ॥ ३ ॥ अबभी वहां जो वध्य प्राणी हैं उनको वहांका राजा उसे प्राप्त करता है क्योंकि ऐसा कौन है जो मित्रके सन्मान करनेमें उद्योगी नहो ॥ ४ ॥

तस्यांध्याननिषण्णायांकिरातजनमंडले ॥ अनायांत्यांचिरंकालंजनैर्दोषप्रशांतये ॥ ५ ॥ सादेवीकंदरा नाम्नीमंगलेतरनामिका ॥ संप्रतिष्ठापितामूर्त्यापुरेगगनकोटरे ॥ ६ ॥ ततःप्रभृतितत्रत्योयोयोभवति भूमिपः ॥ सकंदरांभगवतींप्रतिष्ठापयतिस्वयम् ॥ ७ ॥ यःकंदराप्रतिष्ठांचनकरोतिनृपाधमः ॥ तस्यो पतापनिचयाःप्रजानिघ्नंतियत्नतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जब वह ध्याननिष्ठ होती है और अधिक कालतक किरातोंके राज्यमें नहीं आती तो वहांके मनुष्य दोषोंकी शान्तिके अर्थ ॥ ५ ॥ उसे कंदरा (शिरको विदारण करनेवाली) दूसरा अमंगला नाम करके उसकी मूर्ति आकाश तक ऊंची अटारीपर स्थापित करते हैं ॥ ६ ॥ उसी कालसे जो जो राजा वहां होता हैं वह आपही कन्दरा देवीको स्थापित करता है ॥ ७ ॥ और यदि कोई राजाओंमें अधम, कंदरा देवीकी प्रतिष्ठा नहीं करता तो उत्पातोंके समूह उसकी प्रजाको यत्नसे नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥

तत्पूजनादवाप्नोतिजनस्तन्निखिलंफलम् ॥ स्ववासनावशोच्छूनमनर्थंयात्यपूजनात् ॥ ९ ॥ वध्यलोकोप हारेणसादेवीपरिपूज्यते ॥ प्रतिमासास्थितााद्यापिचित्रस्थाफलदायिनी ॥ १० ॥ सकलकोमलमंगल कारिणीकवलिताखिलवध्यमहाजना ॥ जयतिसात्रकिरातजनास्पदेपरमबोधवतीचिरदेवता ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने कंदरापूजनम् नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—और कन्दरा देवीकी पूजासे प्राणी उत्पात और रोगोंकी शान्ति आदि सम्पूर्ण फल पाता है और पूजा न करनेसे अपनी वासनासे आविर्भूत अनर्थको पाता है ॥ ९ ॥ वधके योग्य प्राणियोंके बलिप्रदानसे उस देवीकी पूजा होती है और उसकी प्रतिमा अबभी स्थित है और यदि चित्रमें लिखी जाय तो अन्य स्थानमें भी फलदायिनी होती है ॥१०॥ सम्पूर्ण जनोंको बालकवत् कोमल धान्य आदि ऐश्वर्योंको देनेवाली सब मंगल तथा सम्पत्तियोंकी करनेहारी वह कंदरा देवी चिरकालकी देवता अब भी किरातोंके राज्यमें विजय करती है ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने कंदरापूजनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

हिमालयकी राक्षसीका कर्कटी नाम था, उसका कारण उपदेशसे अर्थकी कल्पना और दृष्टान्तका उपयोग इस ८४ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेकथितंसर्वमयाख्यानमनिंदितम् ॥ कर्कट्याहिमराक्षस्यायथावदनुपूर्वशः ॥१॥ श्रीरामउवाच ॥ हिमवद्गह्वरेप्रोत्थासाकथंकृष्णराक्षसी ॥ बभूवकर्कटीनाम्नायथावद्वदमेप्रभो ॥२॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुलानिसंत्यनेकानिराक्षसानांस्वभावतः ॥ तानिशुक्लानिकृष्णानिहरितान्युज्ज्व लानिच ॥ ३ ॥ कर्कटप्राणिसादृश्यात्कर्कटोनामराक्षसः ॥ बभूवतज्जासाकृष्णाकर्कटीकर्कटाकृतिः ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह हिमालयनिवासिनी कर्कटी राक्षसीका अनिन्दित सम्पूर्ण आख्यान (वृत्तान्त) मैंने यथावत् क्रमसे तुमसे वर्णन किया ॥१॥ श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! हिमालयके भयंकर बनमें उत्पन्न वह कृष्णराक्षसी कर्कटी नामसे किस कारण प्रसिद्ध हुई यह मुझे यथार्थ रूपसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! राक्षसोंको स्वभावसे अनेक कुल हैं वे शुक्ल कृष्ण हरित और उज्ज्वल भी हैं ॥ ३ ॥ कर्कट अर्थात् केकडे प्राणीके सदृश एक कर्कट नाम राक्षस था उससे उत्पन्न वह कर्कटकी आकृति (बडा उदर और दीर्घ हस्त पाद आदि युक्त) वाली राक्षसी कर्कटी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ४ ॥

कर्कटीप्रश्नसंस्मृत्यामयैषाकथितातव ॥ अध्यात्मोक्तिप्रसंगेनविश्वरूपनिरूपणे ॥५॥ सम्पन्नमेवमेक स्मादसंपन्नमिवस्फुटम् ॥ इदंजगदनाद्यंतात्पदात्परमकारणात् ॥ ६ ॥ प्लाविन्योवीचयोवारिण्य न्यानन्याःस्थितायथा ॥ वर्तमानाअपिपरेसृष्टयःसंस्थितास्तथा ॥ ७ ॥ अज्वलन्नेवकाष्ठेषुवह्निरर्थक्रियां यथा ॥ करोतिमर्कटादीनांशीतापहरणादिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह अध्यात्मके कथनप्रसंगमें संसारकी उत्पत्तिके निरूपणमें कर्कटीके प्रश्नोंकी स्मृतिसे तुमसे कहा॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् एक आदिअन्तशून्य परम कारण परब्रह्मपदसे उत्पन्न हुआ, परन्तु यथार्थ दृष्टिसे देखो तो कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जैसे चलनेवाली तरंगें जलमें भिन्न और अभिन्न रूपसे हैं इसीप्रकार परब्रह्ममें

वर्तमान तथा भूत भविष्यत् सृष्टिभी है ॥ ७ ॥ जैसे अग्निकाष्ठोंमें न जलताहुआ ही वानर आदिकी दृष्टिसे उनकी शीतकी हरण आदि अर्थक्रियाको करता है ॥ ८ ॥

समंसौम्यत्वमजहदेवनित्योदयस्थिति ॥ तथाब्रह्मकरोतीदंनानाकर्त्तेवसजगत् ॥ ९ ॥ अप्यनागतप वायमेवंसर्गउपागतः ॥ भोःशालभंजिकासंविद्दारुण्येवमुधोदिता ॥ १० ॥ बीजेयथाऽनन्यदपिफला द्यन्यदिवोदितम् ॥ चितौतथानन्यदपिचेत्यमन्यदिवोदितम् ॥ ११ ॥ अच्छेदादेकसत्तायानभेदःफ लबीजयोः ॥ चिच्चेत्ययोश्चवार्यूर्म्योरिववस्तुनिकश्चन ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्म अपनी समता तथा सौम्यताको न त्याग करता हुआही कर्ताके समान होकर नानाप्रकारके जगत्को रचता है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह जगत् कहींसे विना आपेही ब्रह्ममें प्रकट होगया है देखो काष्ठमें प्रतिमाकी बुद्धि मिथ्याही उदय हुई है ॥ १० ॥ जैसे बीजमें फल आदि अन्यथा न होते हुये भी अन्य प्रकारसे भान होतेहैं ऐसेही यह जगत् ब्रह्मसे अभिन्न होते हुये भी अन्यके समान उदय होगयाहै ॥ ११ ॥ जैसे बीजसे लेके फलपर्य्यन्त एक द्रव्यसत्ता जो प्रविष्ट है उसका विच्छेद न होनेसे बीज और फलका भेद नहीं है और वायु तथा उसकी तरंगोंका जैसे भेद नहीं है ऐसी चित् और चेत्य (विषयरूप जगत्) का भी भेद ब्रह्मस्वरूपमें कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

अविचारात्कुतोभेदोनैतयोरुपपद्यते ॥ यतःकुतश्चिदुदितःसविचारेणनश्यति ॥ १३ ॥ भ्रांतिरेषायथाया तातथायातुरघूद्वह ॥ ज्ञास्यसेतत्प्रबुद्धस्त्वमेनांकेवलमुत्सृज ॥ १४ ॥ भ्रांतिग्रंथौवित्रुटितेमदुक्तिश्रव णात्ततः ॥ ज्ञानशब्दार्थभेदानांवस्तुज्ञास्यस्यलंस्वयम् ॥ १५ ॥ चित्तादियमनर्थश्रीस्तच्चसाचेतराच ते ॥ मदुक्तिश्रवणादेवशांतिमेष्यत्यसंशयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—किसी अविचारसे जो भेद भी न होता है वह युक्त नहीं है क्योंकि जो अनिर्वचनीय मायासे भेद भान होताहै वह विचारसे नष्ट होजाताहै ॥ १३ ॥ हे रघुकुलदीपक रामजी ! जैसे हेतुरहित यह भ्रान्ति आईहै ऐसेही यह चलीजाय तुम तो केवल इस भ्रान्तिको त्याग दो और जब ब्रह्मस्वरूपका तुमको बोध होजायगा तब इस बातको न जाओगे॥ १४ ॥ भ्रान्तिरूप ग्रन्थिके टूटनेपर मेरे कथनसे ज्ञान शब्द और अर्थ भेदोंका यद्यपि भान न होगा तथा श्रुति-योंका तात्पर्य्य विषयीभूत जो ब्रह्मवस्तु है उसको स्वयं जान जाओगे ॥ १५ ॥ चित्तसे उत्पन्न यह जो अनर्थकी श्री (शोभा) और दूसरी जो चित्तका कारण अविद्या है ये दोनों मेरी उक्तिके श्रवणसे निश्चय शान्त होजायगी ॥ १६ ॥

ब्रह्मणःसर्वमुत्पन्नंसर्वंब्रह्मैवमेतिच ॥ मद्गीर्भिःसंप्रबुद्धःसन्ज्ञास्यस्यलमनिंदितम् ॥ १७ ॥ श्रीरामउवा च ॥ तस्मादियमितिब्रह्मन्व्यतिरेकार्थपंचमी ॥ ननुकिंविद्धिदेवेशादभिन्नंसर्वमित्यपि ॥ १८ ॥ श्रीव सिष्ठउवाच ॥ उपदेशायशास्त्रेषुजातःशब्दोथवार्थजः ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यालक्षणपक्षवान् ॥ १९ ॥ भेदोदृश्यतएवायंव्यवहारान्नवास्तवः ॥ वेतालोबालकस्येवकार्यार्थपरिकल्पितः ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआहै और ब्रह्ममें आके लीन होजाताहै जब मेरी बाणियोंसे तुमको ब्रह्मका बोध होजायगा तब उत्तमतासे पूर्ण रीति यह सब जान जाओगे, अर्थात् जगत्की उत्पत्ति कहनेसे भी उसका विलय करके ब्रह्मज्ञान ही प्रयोजन है ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न हुआ इस आपके वाक्यसे और "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" (श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्य आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ) इत्यादि स्थलोंमें जो पंचमी है (इससे यह उत्पन्न हुआ) वह भेद बतलाती है तो क्या इन वाक्योंका यह भी तात्पर्य्य है कि सब ब्रह्मसे अभिन्न भी जानो, ऐसा माननेसे तो लक्ष्य अलक्ष्यके भेदका और उनके प्रतियोगी (जिस पदार्थका भेद वा अभाव कहा जाता है उसको प्रतियोगी कहतेहैं) आदिका अभाव होनेसे शब्दोंकी प्रवृत्ति नहीं होगी तो लक्षणसे लक्ष्य बोधव्यवहार असिद्ध होनेसे उपदेशकाही अभाव होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शास्त्रोंमें उपदेशके लिये तत्कालके भेदकी कल्पनासे शब्दोंकी प्रवृत्ति होती है अथवा लोकव्यवहारार्थ सिद्ध जो शब्द है वही प्रतियोगी अभाव संख्या लक्षण और पक्ष (जिसमें संदिग्ध पदार्थको अनुमान प्रमाणसे सिद्ध करते हैं उसे पक्ष कहते हैं) वाला होगा ॥ १९ ॥ जैसे कार्य्यके अर्थ बालकके वास्ते वेतालकी कल्पना होती है ऐसी ही व्यवहारसेही यह भेद देख पडता है यथार्थमें कुछ नहीं है ॥ २० ॥

द्वैतैक्यमपिनोयस्यांतथाभूतार्थसंस्थितौ ॥ अस्तितस्यामीदृशःस्यात्कुतःसंकल्पविप्लवः ॥ २१ ॥ का र्यकारणभावोहितथास्वस्वामिलक्षणम् ॥ हेतुश्चहेतुमांश्चैवावयवावयविक्रमः ॥ २२ ॥ व्यतिरेकाव्यति रेकौपरिणामादिविभ्रमः ॥ तथाभावविलासादिविद्याविद्येसुखासुखे ॥ २३ ॥ एवमादिमयीमिथ्यासं कल्पकलनामिता ॥ अज्ञानामवबोधार्थंनतुभेदोस्तिवस्तुनि ॥ २४ ॥

अर्थ—जहां स्वप्न और गन्धर्वनगर आदिकी रचनाकी स्थितिमें द्वैतता और एकता कुछ नहीं है वहां भी ऐसे लक्षण आदिकी कल्पना हो जाती है तो सत्य संकल्पोंके उपदेशोंके व्यवहारके संकल्प विकल्प कल्पनामें कौनसी आपत्ति है ॥ २१ ॥ यह कार्य्य कारण भावत्व स्वामी भाव लक्षण (हम हमारा आदि) हेतु और हेतुमान् अवयव और अवयवीका क्रम ॥ २२ ॥ भेद अभेद परिणाम आदिका विभ्रम (अमुक पदार्थका अमुकमें बदलना) तथा पदार्थोंके विलास आदि विद्या अविद्या और सुख दुःख ॥ २३ ॥ इत्यादि मिथ्यामय संकल्पोंकी कल्पना अज्ञानियोंके बोधके लिये कल्पित की गई है और वस्तुमें कुछभी भेद नहीं है ॥ २४ ॥

अविबोधादयंवादोज्ञातेद्वैतंनविद्यते ॥ ज्ञातेसंशांतकलनंमौनमेवावशिष्यते ॥ २५ ॥ सर्वमेकमनाद्यंतमविभागमखंडितम् ॥ इतिज्ञास्यसिसिद्धांतंकालेबोधमुपागतः ॥ २६ ॥ विवदंतेह्यसंबुद्धाःस्वविकल्पविजृंभितैः ॥ उपदेशादयंवादोज्ञातेद्वैतंनविद्यते ॥ २७ ॥ वाच्यवाचकसंबोधोविनाद्वैतंनसिद्ध्यति॥ नचद्वैतंसंभवतिमौनंवापादयत्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अज्ञानसे यह भेदवाद है और तत्व जाननेपर द्वैतवाद नहीं है तत्व जाननेपर तो कल्पनासे रहित केवल मौन अर्थात् शब्दराहित्यही शेष रहताहै ॥ २५ ॥ यह सम्पूर्ण एक आदि अन्तरहित विभाग शून्य तथा अखण्डित परमात्माहीहै इस सिद्धांतको जब काल पाके बोधको प्राप्त होओगे तब जानोंगे ॥ २६ ॥ अज्ञानी लोग अपनी २ कल्पनाओंके विकाशसे परस्पर विवाद करते हैं और यह सम्पूर्ण भेदवाद वेदान्तके उपदेशके पूर्वही है क्योंकि तत्व जाननेपर द्वैतकी स्फुरण रही नहीं जाती ॥ २७ ॥ और वाच्य वाचकका विवादका उपयोगी सम्बन्ध विना द्वैत नहीं सिद्ध हो सकता और द्वैतका संभव नहीं, इसलिये केवल मौनही सिद्ध होताहै ॥ २८ ॥

महावाक्यार्थनिष्ठांतांबुद्धिंकृत्वारघूद्वह ॥ वचोभेदमनादृत्ययदिदंवच्मितेशृणु ॥ २९ ॥ यतःकुतश्चिदुच्छ्रायंगंधर्वपुरवन्मनः ॥ भ्रांतिमात्रंतनोतीदंजगदाख्यंस्वजृंभणम् ॥ ३० ॥ यथाचेतस्तनोतीमांजगन्मायांतथानघ ॥ शृणुत्वंकथयामीदंदृष्टांतंदृष्टिवेदनम् ॥ ३१ ॥ यंश्रुत्वासर्वमेवेदंभ्रांतिमात्रमितिस्वयम् ॥ रामनिश्चयवान्भूत्वादूरेत्यक्ष्यसिवासनाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रघुकुल श्रेष्ठ रामजी ! " यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते " (जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होतेहैं) इत्यादि श्रुतियोंमें जो पंचमीसे भेदका भान होताहै उसे त्यागकर " अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि " इत्यादि महावाक्योंके लक्षणार्थ जो अखण्डित ब्रह्महै उसमें बुद्धिकी निष्ठा करके यह जो कुछ मैं कहताहुं उसे सुनो ॥ २९ ॥ अनिर्वचनीय मायासे गन्धर्व नगरके समान भ्रान्ति मात्र यह मन प्रकट होकर जगत् नामक अपने विकाशका, विस्तार करताहै ॥ ३० ॥ हे पापरहित रामजी ! जैसे यह चित्त इस जगत्की मायाका विस्तार करताहै वह दृष्टांत जो दृष्टिमात्रसे ही दार्ष्टान्त जनाताहै कहताहुं आप श्रवण कीजिये ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जिस दृष्टान्तको सुनकर यह निश्चय आपको होगा की यह सम्पूर्ण जगत् भ्रांति मात्रहै अनन्तर सब वासनाको दूरसेही त्याग देोगे ॥ ३२ ॥

मनोमनननिर्माणमात्रमेवजगत्रयम् ॥ सर्वमुत्सृज्ज्यशांतात्मास्वात्मन्येवनिवत्स्यसि ॥ ३३ ॥ महावाक्यार्थावधानस्थोमनोव्याधिचिकित्सते ॥ विवेकौषधलेशेनप्रयत्नंचकरिष्यसि ॥ ३४ ॥ एवंस्थितेजगद्रूपंचित्तमेवेहजृंभते ॥ नविद्यतेशरीरादिसिकतांतरतैलवत् ॥ ३५ ॥ चित्तमेवहिसंसारोरागादिक्लेशदूषितम् ॥ तदेवतैर्विनिर्मुक्तंभवांतइतिकथ्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनकी मननशक्ति मात्रसे रचेहुये सब तीनों लोकोंको त्यागकर शान्तचित्त होकर आत्माहीमें निवास करोगे ॥ ३३ ॥ मेरे वाक्यके अर्थमें सावधान होके मनरूपी व्याधिको शान्तकरनेके अर्थ विवेकरूपी औषधिके द्वारा प्रयत्नभी करोगे ॥ ३४ ॥ जब वक्ष्यमाण आख्यायिकाके द्वारा यह निश्चय होगया कि यह सम्पूर्ण जगत्रूप चित्तामात्रही विकसित होरहाहै तब वालुमें तैलके समान शरीर आदि कुछ नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! राग द्वेष आदि क्लेशोंसे दूषित चित्तही यह संसारहै और जब रागआदि छूट जाताहै उसी समय संसारका अन्त कहाजाताहै ॥ ३६ ॥

चित्तंसाध्यंपालनीयंविचार्यंकार्यमार्यवत् ॥ आहार्यंव्यवहार्यंचसंचार्यंधार्यमादरात् ॥ ३७ ॥ सर्वमभ्यंतरेचित्तंबिभर्त्तित्रिजगन्नभः ॥ अहमापूरमिवतद्यथाकालंविजृंभते ॥ ३८ ॥ योयंचित्तस्यचिद्भागःसैषासर्वार्थबीजता ॥ यश्चास्यजडभागश्चतज्जगत्सोंगसंभ्रमः ॥ ३९ ॥ अविद्यमानमेवेदमादिसर्गेधरादिकम् ॥ निराकृतिरजःस्वप्नंपश्यतीवनपश्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! आदरपूर्वक साध्य सिद्ध साधनोंमें असिद्ध पालनीय पूर्व सिद्ध विचार्य्य आर्यवत् कार्य्य देशान्तरसे आनेय क्रमविक्रमरूपसे व्यवहार्य अश्वत्थआदिरूप संचार्य्य और भूषण आदिरूपसे धार्य्यभी है ॥ ३७ ॥

सम्पूर्ण जगत्की कल्पनाका आकाशरूप जो यह चित्त है वह सम्पूर्ण दृश्यको अपने भीतर ही धारण करता है और यही चित्त कालपाके देह इन्द्रियादि जब व्यापारमें लगती है तब मैंही लगाहुं इसप्रकार अहंताकी धाराके समान शोभित होताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जो चित्तमें चित् भाग है वही दृष्टतारूप सब पदार्थोंका बीजभूत अहंता है और इसमें जो जडभागहै वही जगत्रूप दृश्य भ्रान्ति है ॥ ३९ ॥ आदि सृष्टिमें अविद्यमान इन पृथिवी आदिको आकार रहित ब्रह्मा स्वप्नके सदृश देखता भी है और कभी नहीं भी देखता ॥ ४० ॥

सर्गादिदीर्घसंवित्त्याशैलादिजडसंविदा ॥ सूक्ष्मंसूक्ष्मविदाचेतिदेहंशून्यंनवास्तवम् ॥ ४१ ॥ सर्वगे नात्मनाव्याप्तंस्वचेत्यात्मवपुर्मनः ॥ आततंसौम्यविमलंवारीवरवितेजसा ॥ ४२ ॥ चित्तबालोजग द्यक्षंमिथ्यापश्यत्यबोधतः ॥ बोधितोसौपरंरूपंस्वंपश्यतिनिरामयम् ॥ ४३ ॥ यथात्मादृश्यतामेतिद्वि त्वैक्यभ्रमदायिनीं ॥ शृणुतत्तेप्रवक्ष्यामिवक्ष्यमाणकथागमैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सृष्टि स्थिति प्रलय तीनों कोटिमें साधारण साक्षी संवित् (चेतन) से पर्वत आदि स्थूल विराट देहको जड अहंभावना रूप वैश्वानर संवित्से सृष्टि आदिको और सूक्ष्म संवित्से लिंग समष्टि सूत्रात्मक हिरण्यगर्भ देहको अर्थात् शून्य रूपही इन तीनों देहको ब्रह्मा देखता है न कि वास्तविक रूपसे ॥ ४१ ॥ सर्वव्यापी आत्मा विषयरूप अपने शरीर मनको ऐसे व्याप्त किया है जैसे निर्मल शान्त जलको सूर्यका तेज ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी बालक जगत् रूपी वेतालको अज्ञानसे मिथ्याही देखता है और ज्ञान होनेपर यही उत्तम विकाररहित अपना स्वरूप देखता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! जैसे द्वैतता और एकता रूप भ्रम देनेवाली दृश्यरूपताको आत्मा प्राप्त होता है वह वक्ष्यमाण कथा और आगमों (शास्त्रों) के द्वारा आपसे कहता हुं सुनिये ॥ ४४ ॥

यत्कथ्यतेहिहृदयंगमयोपमानयुक्त्यागिरामधुरयुक्तपदार्थयाच ॥ श्रोतुस्तदंगहृदयंपरितोविसारिव्या प्नोतितैलमिववारिणिवार्यशंकाम् ॥ ४५ ॥ त्यक्तोपमानममनोज्ञपदंदुरापंक्षुब्धंधराविधुरितंविनिगीर्ण वर्णम् ॥ श्रोतुर्नयातिहृदयंप्रविनाशमेतिवाक्यंकिलाज्यमिवभस्मनिहूयमानम् ॥ ४६ ॥ आख्यानकानि भुवियानिकथाश्चयायायद्यत्प्रमेयमुचितंपरिपेलवंवा ॥ दृष्टांतदृष्टिकथनेनतदेतिसाधोप्राकाश्यमाशु भुवनंसितरश्मिनेव ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो कुछ वाक्य मधुर पद और अर्थ सहित तथा मनोरंजन दृष्टान्तयुक्त वाणीसे कहाजाताहै वह शङ्काको दूर चारों ओरसे फलनेवाला वाक्य श्रोताके हृदयमें ऐसे व्याप्त होजाता है जैसे जलमें तैल ॥ ४५ ॥ और जो वाक्य दृष्टान्त उपन्यास आदिसे शून्य शास्त्रविरुद्ध कठोर पदवर्ण आदि सहित स्पष्ट वर्णन होनेसे स्वच्छतासे कर्णोंके ग्रहण करनेके अशक्य क्रोधादि कारणसे अपने स्थानसे चलित और ग्रस्ताक्षर (आधे कहेहुवे) सहित अर्थात् व्याकरण महाभाष्योक्त ग्रस्त, निरस्त तथा प्रविलम्बित आदि दोषसहित वाक्य है वह श्रोताओंके हृदयको अनुरंजन नहीं करता, किन्तु ऐसे निष्फल होके नाशको प्राप्त होता है जैसे भस्ममें हवन किया घृत ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारकी कथा संयुक्त बडी २ महाभारतादि कथारूप आख्यान छोटी कथासे बुद्धि मनोरंजक काव्य नाटक तथा अध्यात्मनिरूपक निबन्ध उपन्यास आदि और जो शब्द अर्थसे कोमल ग्रन्थादि प्रमेय हैं वे सब लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त तथा प्रमाण दृष्टियोंके कथनसेही संसारमें हृदयंगमतारूप प्रकाशको ऐसे प्राप्त हुये हैं जैसे सूर्यके किरण ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोङ्कुरकथनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

सृष्टि रचनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माजीका दश ब्रह्माण्डोंका दर्शन और उसमें एक रविकरके उसके तत्वका कथन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८५ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ पुरामेब्रह्मणाप्रोक्तंसर्वंतत्कथयानघ ॥ यदिदंतत्प्रवक्ष्यामित्वयिपृच्छतिरा घव ॥ १ ॥ पुरामयाहिभगवान्पृष्टःकमलसंभवः ॥ इमेकथमुपायांतिब्रह्मन्सर्गगणाइति ॥ २ ॥ तद्व पाश्रुत्यभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ पेदंवाख्यानसहितंमामुवाचबृहद्वचः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वंहिमनएवेदमित्थंस्फुरतिभूतिमत् ॥ जलंजलाशयस्फारैर्विचित्रैश्चक्रकैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे पापरहित रामजी! ब्रह्माजीने जो मुझे यह जगत्की मनोमात्रता कही है वह सम्पूर्ण उनसे कही हुई ऐन्दवके उपाख्यानरूप कथाद्वारा मैं आपके पूंछनेपर कहता हूं ॥ १ ॥ पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीसे मैंने पूंछाथा कि हे ब्रह्मन्! ये सृष्टियोंके गण कहांसे आते हैं ॥ २ ॥ उस मेरे प्रश्नको सुनके भगवान् ब्रह्मा लोकोंके पितामह कहूंगा ऐसी प्रातिज्ञा करके ऐन्दवाख्यान सहित महान् अर्थसहित वचन बोले ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे प्रिय पुत्र! यह सम्पूर्ण जगत्रूपसे ऐश्वर्य्यवान् मन ऐसे स्फुरित होता है जैसे जलाशयके विशाल और विचित्र आवर्तों (भवरहों) से जल ॥ ४ ॥

दिनादौसंप्रबुद्धस्यसंसारंस्रष्टुमिच्छतः ॥ पुराकल्पेहिकस्मिंश्चिच्छृणुकिंवृत्तमंगमे ॥ ५ ॥ कदाचिदखिलंसर्गसंत्दृत्यदिवसक्षये ॥ एकएवाहमेकाग्रःस्वस्थस्तामनयंनिशाम् ॥ ६ ॥ निशांतेसंप्रबुद्धात्मासंध्यांकृत्वायथाविधि ॥ प्रजास्रष्टुंदृशौस्फारेव्योम्नियोजितवानहम् ॥ ७ ॥ यावत्पश्यामिगगनंतमोभिर्नतेजसा ॥ व्याप्तमत्यंतविततंशून्यमंतविवर्जितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय! पूर्व किसी कल्पमें कल्पकी आदिमें जब मैं जागा और सृष्टि करनेकी इच्छा की उससमय मेरा जो कुछ वृत्तान्त हुआ उसे आप श्रवण कीजिये ॥ ५ ॥ किसी समय दिन (कल्प) के क्षयमें सम्पूर्ण जगत्का संहार करके एकाग्र और स्वस्थचित्त होके एक अद्वितीय मैं शान्तिपूर्वक उस रात्रि (कल्परात्रि) को बिताया ॥ ६ ॥ कल्पान्त रात्रिके अन्तमें जागकर यथाविधि संध्योपासन करके प्रजाओंके रचनेकी इच्छासे विशाल नेत्रोंको आकाशमें फैलाया ॥ ७ ॥ जब मैं दिव्यदृष्टिसे आकाशको देखता हूं तो वह अन्धकार तथा तेज दोनोंसे रहित है, और सर्वत्र अन्तविवर्जित शून्यरूपसे अत्यन्त व्याप्त हो रहाहै ॥ ८ ॥

सर्गसंकल्पयामीतिमतिंनिश्चित्यतन्मया ॥ समवेक्षितुमारब्धंशुद्धंसूक्ष्मेणचेतसा ॥ ९ ॥ अथाहंदृष्टवांस्तत्रमनसाविततेंबरे ॥ पृथक्स्थितान्महारंभान्सर्गान्स्थितिनिरर्गलान् ॥ १० ॥ तेषुमत्प्रतिबिंबाभाःपद्मकोशनिवासिनः ॥ राजहंसान्समारूढाःसंस्थितादशपद्मजाः ॥ ११ ॥ पृथक्स्थितेषुसर्गेषुतेषूद्यद्भूतपंक्तिषु ॥ जलजालेषुशुद्धेषुजगत्सुजलदायिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—सृष्टिका संकल्प करूं ऐसी बुद्धि निश्चय करके उस रचनीय पदार्थको सूक्ष्म चित्तसे शुद्धतापूर्वक देखनेका आरंभ किया ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् उस व्याप्त आकाशमें वहांके विष्णु आदिसे पालन आदि व्यवस्था सहित महान् आरंभ युक्त और प्रतिबन्धरहित पृथक् पृथक् सृष्टियोंको देखा ॥ १० ॥ और उन सृष्टियोंमें मेरे प्रतिबिम्बके सदृश कमलके कोशके निवासी, और राजहंसोंपर आरूढ दश ब्रह्मा स्थित हैं ॥ ११ ॥ जिनमें अण्डज आदि चार प्रकारकी जीवोंकी पंक्तियां उत्पन्न होरही है ऐसी पृथक् पृथक् सृष्टियां स्थित थी तथा जल देनेवाले शुद्ध मेघोंके समूह भी स्थित थे ॥ १२ ॥

प्रवहंतिमहानद्यःप्रध्वनंतियथाब्धयः ॥ प्रतपंत्युष्णरुचयःप्रस्फुरंत्यंबरेनिलाः ॥ १३ ॥ दिविक्रीडंतिविबुधाभुविक्रीडंतिमानवाः ॥ दानवाभोगिनश्चैवपातालेषुचसंस्थिताः ॥ १४ ॥ कालचक्रपरिप्रोतायद्भावाःसकलर्त्तवः ॥ यथाकालंफलापूर्णाभूषयंत्यभितोमहीम् ॥ १५ ॥ प्रौढचंशुभाशुभाचारस्मृतयःककुभंप्रति ॥ नरकस्वर्गफलदाःसर्वत्रसमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—बडी नदियां बहरही हैं और समुद्रके समान शब्द कररही हैं सूर्य तप रहे हैं तथा आकाशमें पवन चलरहे हैं ॥ १३ ॥ स्वर्गमें देवतालोग और पृथिवीपर मनुष्य क्रीडा कररहें हैं तथा पातालमें दानव तथा सर्पगण स्थित हैं ॥ १४ ॥ कालचक्रमें गूंथेहुये शीत आतप तथा वर्षादि अपने २ सदृश स्वभाववाले वसन्त आदि सब ऋतु अपने कालके फल आदिसे पूर्ण चारों ओरसे पृथिवीको शोभित कररहे हैं ॥ १५ ॥ शुभ अशुभ आचारोंके विभाग करनेवाला स्वर्ग तथा नरक फलदेनहारी स्मृतियां सब वर्णोंके मनुष्योंमें सब दिशाओंमें दृढताको प्राप्त होगई हैं ॥ १६ ॥

भोगमोक्षफलार्थिन्यःसमस्ताभूतजातयः ॥ स्वमीहितंयथाकालंप्रयतंतेयथाक्रमम् ॥ १७ ॥ सप्तलोकास्तथाद्वीपाःसमुद्रागिरयस्तथा ॥ अप्येष्यमाणाःकल्पांतंस्फुरंत्युरुतरारवम् ॥ १८ ॥ क्वचिध्वासित्वमायातंक्वचित्स्थिरतरंस्थितम् ॥ स्थितंसर्वत्रकुंजेषुतमस्तेजोलवावृतम् ॥ १९ ॥ नभोनीलोत्पलस्यांतर्भ्रमदभ्रमधुव्रतम् ॥ प्रस्फुरत्तारकाजालकेसरापूर्णतांगतम् ॥ २० ॥

अर्थ—भोग तथा मोक्ष अर्थकी अभिलाषिणी सब प्राणियोंकी जातियां, काल और सृष्टिके अनुकूल अपने २ अभीष्टके लिये प्रयत्न कररहे हैं ॥ १७ ॥ सातों लोक सातों द्वीप तथा समुद्र और पर्वत कालचक्रसे प्रलयकी ओर प्राप्त होनेवाले भी परन्तु अपने समयसे अधिक शब्दके साथ शोभित हो रहे हैं ॥ १८ ॥ अन्धकार कहीं (खुले स्था-

नमें) नाशको प्राप्त हो रहा है, और कहीं (पर्वतोंकी गुहाओंमें) अधिक स्थिरतासे स्थित है और कुंजोंमें आतपके छिद्रोंसे मानों स्नेहसे मिलके स्थितहै ॥ १९ ॥ आकाश रूपी नीलकमलके भीतर भ्रमण कररहे हैं भ्रमर जिसमें ऐसा तथा प्रकाशमान तारागणरूपीके केसरोंसे पूर्णताको प्राप्त सरोवरके तुल्य जगत् स्थितहै ॥ २० ॥

कल्पांतघननीहारोमेरुकुंजेषुसंस्थितः ॥ शाल्मलेरमलंतूलमष्ठिलाकोटरेष्विव ॥ २१ ॥ लोकालोकाद्रिरसनारणदर्णवघुंघुमा ॥ तमःखंडेन्द्रनीलाभानिजरत्नविराजिता ॥ २२ ॥ धानाधरसुधाभूतरवकाकलिघुंघुमा ॥ संस्थिताभुवनाभोगेस्वांतःपुरइवांगना ॥ २३ ॥ गौरांगपंक्तिर्मध्यस्थारजनीराजिरंजिता ॥ पद्मोत्पलस्त्रजइवलक्ष्यतेवत्सरश्रियः ॥ २४ ॥

अर्थ—मेरुके सदृश ऊंचे हिमालयके कुंजोंमें कल्पान्तका घनीभूत नीहार (तुषार वा बर्फ) ऐसे स्थित हैं जैसे सेमरके कोटरोंमें निर्मल (उज्ज्वल) सेमरका तूल (रुई) ॥ २१ ॥ लोकालोक पर्वतरूपी मेखलाको धारण करनेवाली, शब्दायमान समुद्ररूपी आभूषणकी ध्वनि सहित, अन्धकारोंके खण्डरूपी इन्द्रनीलमणिकी प्रभावाली और अपने अन्तर्गत रत्नोंसे शोभित ॥ २२ ॥ मनुष्योंके आस्वादके योग्य शाली (चावल) आदि धान्योंके बीजरूपी अधरामृत धारण करनेवाली, प्राणियोंके शब्दरूपी वाग्विलासवाली पृथिवीरूप श्रेष्ठ अंगना भुवनके भागमें अपने अन्तःपुरके समान स्थितहै ॥ २३ ॥ वर्षाकी लक्ष्मी (शोभा) रूपी स्त्रिके कण्ठमें धारण की हुई अन्धकार और प्रकाशरूप नील तथा श्वेत कमलोंसे रची हुई मालाके मध्यमें प्रविष्ट, इसीसे कमलके पराग(रेणु) के सदृश विद्युत् और नक्षत्रव्याप्त रात्रिके समूहरूपी हरिद्राके रंगसे रंजित और गौर अर्थात् कुच कण्ठ उदर वाली और नाभी आदि अंगोंकी पंक्तिके तुल्य आकाश (अन्तरिक्ष) देश शोभित हो रहाहै ॥ २४ ॥

बहुगर्त्तविभागस्थभूतालोकाःपृथक्पृथक् ॥ जातारुणाविलोक्यंतेदाडिमालीवकांतिकाः ॥ २५ ॥ त्रिप्रवाहात्रिपथगाकृतोर्ध्वाधोगमागमा ॥ जगद्यज्ञोपवीताभास्फुरतींदुकलामला ॥ २६ ॥ इतश्चेतश्चगच्छंतिशीर्यंतेप्रोद्भवंतिच ॥ दिग्लतासुतडित्पुष्पावातार्त्तामेघपल्लवाः ॥ २७ ॥ गंधर्वनगरोद्यानलतावितानमालिनी ॥ समुद्रभूमिनभसांपदवीप्रविराजते ॥ २८ ॥

अर्थ—अनेक भुवनके भागोंमें प्राणीरूप बीज जिनमें स्थित हैं तथा सूर्य्यके प्रकाश अरुण (लाल) वर्ण सहित अनेक ब्रह्माण्डोंके समूह दाडिम (अनार) के फलके समान जहांपर देख पड रहेहैं ॥ २५ ॥ तीन धारासहित तथा ऊपर नीचे गमनागमन गंगाजी, जगत्के यज्ञोपवीत (जनेऊ) के सदृश शोभायमान चन्द्रमाकी कलाके तुल्य प्रकाशित हो रही है ॥ २६ ॥ पवनसे पीडित, मेघरूपी पत्तोंसे संयुक्त विद्युत्रूपी पुष्प दिशारूपी लताओंमें इधर उधर जाते हैं विखरते हैं और उत्पन्न होतेहैं ॥ २७ ॥ परन्तु वह समुद्र पृथिवी आकाश आदिकी पदवी (मार्ग) ऐसी शोभित होरही है जैसे बितान (मण्डप वा चान्दनी) से शोभायमान गन्धर्वनगरकी उद्यानलता ॥ २८ ॥

लोकांतरेषुसंघेनदेवासुरनरोरगाः ॥ उडुंबरेषुमशकाइवघुंघुमिताःस्थिताः ॥ २९ ॥ युगकल्पक्षणलवकलाकाष्ठाकलंकितः ॥ कालोवहत्यकलितसर्वनाशप्रतीक्षकः ॥ ३० ॥ एवमालोक्यशुद्धेनपरेणस्वेनचेतसा ॥ भृशंविस्मयमापन्नःकिमेतत्कथमित्यलम् ॥ ३१ ॥ कथंमांसमयेनाक्ष्णायन्नपश्यामिकिंचन ॥ तन्मायाजालमतुलंपश्यामिमनसांबरे ॥ ३२ ॥

अर्थ—और ब्रह्माण्डके भीतर अन्य लोकोंमें देवता, असुर, नर और सर्पोंके समूहके समूह ऐसे स्थितहैं जैसे गूलरके फलोंमें शब्द करतेहुये मशक (मच्छर) ॥ २९ ॥ और लोकान्तरोंमें युग, कल्प, क्षण, निमेष, कला तथा काष्ठा आदिसे चिन्हित अचानक सब पदार्थोंके नाशकी वाट देखताहुआ चल रहाहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार शुद्ध तथा दिव्य अपने मनसे देखकर मैं अत्यन्त विस्मययुक्त हुआ कि यह क्याहै और कैसे होताहै ॥ ३१ ॥ यह कैसे और क्याहै कि जो मांसके नेत्र (प्रसिद्ध आंख) से कुछ नहीं देखपड़ता वह अतुल मायाजाल आकाश मनसे देखताहुं ॥ ३२ ॥

अथालोक्यचिरंकालंमनसैवाहमंबरात् ॥ अर्कंतस्माज्जगज्जालादेकमानीयपृष्टवान् ॥ ३३ ॥ आगच्छदेवदेवेशभोभास्करमहाद्युते ॥ स्वागतंतेस्त्वितिप्रोक्तोमयासौकथितोप्यथ ॥ ३४ ॥ कस्त्वंकथमिदंजातंजगदेवजगंतिच ॥ यदिजानासिभगवंस्तदेतत्कथयानघ ॥ ३५ ॥ इत्युक्तोमांसमालोक्यसंपरिज्ञातवानथ ॥ नमस्कृत्वाभ्युवाचेदमनिंद्यपदयागिरा ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर बहुत कालतक यह सब मनसे देखनेके पश्चात् भुवनके आकाशसे एक सूर्य्यको अपने सत्य संकल्पसे सम्मुख लाके पूंछा ॥ ३३ ॥ हे देवोंके ईश, महाप्रकाशयुक्त सूर्य्य! आईये आपका यह आगम शुभ हो-ऐसा मैंने सूर्य्यसे कहा और उससे वक्ष्यमाण (आगेका) प्रश्न भी किया ॥ ३४ ॥ तुम कौन हो और कैसे यह जगत्

तथा अन्यलोक उत्पन्न हुये, हे पापरहित भगवन्! यदि तुम जानते हो तो कहो ॥ ३५ ॥ जब मैंने सूर्य्यसे ऐसा कहा तो वह मुझे देखकर मेरा स्वरूप चीन्हा और नमस्कार करके प्रशंसनीय पदसंयुक्त बाणीसे यह बोला ॥ ३६ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ अस्यदृश्यप्रपंचस्यनित्यंकारणतामसि ॥ गतःकस्मान्नजानीषेकिमामीश्वरपृच्छसि ॥ ३७ ॥ अथमद्वाक्यसंदर्भेलीलाचेत्तवसर्वग ॥ अचिंतितांमदुत्पत्तिंतच्छृणुष्ववदाम्यहम् ॥ ३८ ॥ सदसदितिकलाभिराततंयत्सदसदबोधविमोहदायिनीभिः ॥ अविरतरचनाभिरीश्वरात्मन्प्रविलसतीह्मनोमहन्महात्मन् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्यानोपक्रमे ब्रह्मादित्यसमागमो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—भानुजी बोले–हे भगवन्! आप इस दृश्य प्रपंचके नित्य कारणताको प्राप्तहैं क्या आप इसे नहीं जानते और मुझसे आप क्यों पूछतेहैं? ॥ ३७ ॥ हे सर्वव्यापिन्! यदि मेरे वाक्यकी रचनाहीमें आपको सुननेका कौतुकहै तो अचिन्तित मेरी उत्पत्ति सुनिये मैं कहताहुं ॥ ३८ ॥ हे ईश्वरात्मन्! तथा महात्मन्! निरन्तर जगत्की रचना करनेवाली और तत्व अज्ञानसे सत् है वा असत् ऐसे अज्ञान देनेवाली, कहीं सत असत् देशकालसे परिच्छिन्न जगत्की सत्ता देखानेमें कुशल कलाओंसे जो चारोंओर विस्तृत होरहाहै वह सब मनही विलास कर रहाहै ऐसा आप जानो॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्यानोपक्रमे ब्रह्मादित्यसमागमो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

इस ८६ के सर्गमें भार्य्या करके सहित इन्दुनाम ब्राह्मणकी तपस्यासे ऐन्दवों (इन्दुके पुत्रों) की उत्पत्ति तथा उन पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठके उपदेशसे, उन सबकी ब्रह्माकार भावना करना इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीभानुरुवाच ॥ कल्पनाम्निमहादेवह्यस्तनेदिवसेतव ॥ तलेकैलासशैलस्यजंबूद्वीपैककोणके ॥ १ ॥ सुवर्णजटनाम्नायस्त्वत्पुत्रैर्जनितप्रजैः ॥ मंडलंकल्पितंश्रीमदनल्पसुखसुंदरम् ॥ २ ॥ तत्राभूदतिधर्मात्माब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ इंदुनामातिशांतात्माकश्यपस्यकुलोद्भवः ॥ ३ ॥ तस्मिंस्तदानिवसतोनित्यंस्वजनमंडले ॥ तस्यप्राणसमाभार्याकाचित्तस्यांमहात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभानुजी बोले–हे महादेव ब्रह्मन्! आपके गत दिवसमें जिसका दूसरा नाम कल्पहै उसमें कैलास पर्वतके नीचे जम्बूद्वीपके एक कोनेमें ॥ १ ॥ सुवर्णजट नामक एक स्थानहै वहांपर प्रजा उत्पन्न करनेवाले मरीचि आदि आपके पुत्रोंने अपने निवासार्थ लक्ष्मीयुक्त, और अधिक सुखोंसे रमणीय एक मण्डल रचाहै ॥ २ ॥ उस मण्डलमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, कश्यप कुलमें उत्पन्न और अति धर्मात्मा इन्दुनाम एक ब्राह्मण उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मण सदा अपने जनसमूहमें रहता था, और उसकी स्त्री उसे प्राणके समान प्रिया थी परन्तु उस महात्माके उस स्त्रीमें ॥ ४ ॥

नबभूवात्मजस्तस्यमरुभूमौतृणंयथा ॥ नव्यराजतसाभार्यातस्यनिष्फलपुष्पिता ॥ ५ ॥ ऋज्वीगौरीसुशुद्धापिशून्याशरलतायथा ॥ तौततोदंपतीखिन्नौपुत्रार्थंतपसेगिरेः ॥ ६ ॥ कैलासस्यांशमारूढौरूढाविवनवद्रुमौ ॥ भूतैरनावृतेशून्येतस्मिन्कैलासकुंजके ॥ ७ ॥ तेपतुस्तौतपोघोरंजलाहारौतरुस्थिती ॥ एकंपानीयचुलकंपीत्वादिवसपर्यये ॥ ८ ॥

अर्थ—मरुभूमिमें तृणके समान कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ इसकारण फलपुष्प रहित वह स्त्री शोभाको नहीं प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ वह स्त्री सुधी, गौरवर्णवाली, अति शुद्धवंशमें उत्पन्न भी परन्तु पुत्र विना काशके दण्डके सदृश शोभायुक्त न हुई इस कारण वे स्त्रीपुरुष उदास होके पुत्रके अर्थ तपस्या करनेको ॥ ६ ॥ कैलास पर्वतपर बढेहुये बनके वृक्षके समान चढे और प्राणियोंसे रहित और शून्य उस कैलासके कुंजमें ॥ ७ ॥ वृक्षके समान स्थिति धारण करनेवाले, कै दिनके अन्तमें केवल एक चिल्लू पानी पीके केवल अल्प जलाहारवाले वे स्त्रीपुरुष घोर तपस्या करने लगे॥८॥

निस्पंदमुत्थितौवार्क्षींवृत्तिमाश्रित्यसंस्थितौ ॥ तस्थतुस्तौतदातत्रतावत्कालंतरुव्रतौ ॥ ९ ॥ यावत्त्रेताद्वापरंचयुगेद्वेएवतेगते ॥ ततस्तुष्टोभवद्देवस्तयोःशशिकलाधरः ॥ १० ॥ दिनातपातापितयोरिंदुःकुमुदयोरिव ॥ आजगामतमुद्देशंयत्रतौविप्रदंपती ॥ ११ ॥ सलतापादपंदेशंपुष्पाकरइवेश्वरः ॥ दंपतीतौवृषारूढंसोमंसोमार्द्धशेखरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वृक्षकी वृत्तिको अवलम्बन करके चेष्टा रहित वहां खडे रहतेथे और वे वृक्षव्रतवाले ब्राह्मण ब्राह्मणी तब-

तक वहां स्थित रहे॥९॥जबतक त्रेता और द्वापर दोनों युग बीतगये, इसके अनन्तर चन्द्रकलाधारी भगवान् महादेवजी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १० ॥ दिनके तापसे तापित जैसे कुमुद और कुमुदिनीके निकट चन्द्रमा आताहै ऐसेही जहां वे स्त्रीपुरुष रहते थे वहां महादेवजी आये ॥ ११ ॥ और जैसे लता तथा वृक्षसहित देशमें वसन्तऋतु आता है ऐसे ईश्वर वहां आये और स्त्रीपुरुष वृष (बैल) पर चढे हुये पार्वती सहित तथा चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले महादेवजीको देखा ॥ १२ ॥

फुल्लाननौददृशतुः कुमुदेशशिनंयथा ॥ तौतंप्रणेमतुर्देवंतुषारामलमीश्वरम् ॥ १३ ॥ द्यावापृथिव्यावुदितंपरिपूर्णमिवोडुपम् ॥ तर्जयन्पवनाधूतनवव्रक्षाननस्वरम् ॥ १४ ॥ मृदूद्दामस्मितस्पंदिप्रोवाचाथवचः शिवः ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंविप्रगृहाणाशुतुष्टोस्मितववांछितम् ॥ १५ ॥ मधुमासरसाक्रांतव्रक्षवन्मुदितोभव ॥ विप्रउवाच ॥ भगवन्देवदेवेशदशपुत्रामहाधियः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे कुमुद और कुमुदिनी चन्द्रमाको ऐसे विकसित नेत्रवाले वे दोनों महादेवजीको देखा और तुषार (बर्फ) के समान निर्मल उस देवको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ पृथिवी और आकाशके मध्यमें उदयको प्राप्त तथा मलयके पवनसे किंचित् कंपाये पल्लवहैं जिनके ऐसे आम्र आदि वृक्षके मुखके समान मधुर कूंजनेवाले भ्रमर कोकिल आदिके स्वरोंको अपने वचनकी अधिक मधुरतासे डराते चन्द्रमाके समान उदित ॥ १४ ॥ श्री महादेवजी इसके अनन्तर सौंदर्य्यकी उत्तमतासे मन्दहास सहित किंचित् अधर संचालनपूर्वक यह वचन बोले-हे ब्राह्मण ! मैं तुमारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान जो तुमको अभीष्ट हो वह ग्रहण करो ॥ १५ ॥ और उस वरदानके पानेसे वसन्तऋतुके रससे पूर्ण वृक्षके सदृश आनन्दित होओ विप्रजी बोले-हे देवदेवेश भगवन् ! महाबुद्धिमान् दशपुत्र ॥ १६ ॥

भव्याभवंतुमेभूयःशोकोयेननबाधते ॥ भानुरुवाच ॥ अथैवमस्त्वितिप्रोच्यजगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥१७॥ व्योम्निवारिनिधिर्ह्रादंकृत्वेवोर्मिमहावपुः ॥ ततस्तौदंपतीहृष्टौशिवलब्धवरौगृहम् ॥ १८ ॥ गतौगीर्वाणसदृशौखमिवोमामहेश्वरौ ॥ तत्रासौब्राह्मणीगेहेबभूवोदारगर्भिणी ॥१९॥ बभौपूर्णोदराश्यामामेघलेखेववारिणा ॥ कालेथसुषुवेपुत्रान्प्रतिपच्चंद्रकोमलान् ॥ २० ॥

अर्थ—जो कल्याण गुण और उत्तम आचारसे शोभित हो मेरे उत्पन्न हो जिन पुत्रोंके लाभसे पुनः शोकबाधा न करे ॥ भानुजीबोले-इस ब्राह्मणके बचन सुननेके अनन्तर भगवान् महादेवजी ऐसाही हो ऐसा उच्च स्वरसे जैसे आकाशमें महा शरीरवाला समुद्र शब्द करै शब्द करके अन्तर्धान (लोप) होगये इसके अनन्तर शिवसे बरदान पानेसे प्रसन्न चित्त वे स्त्रीपुरुष अपने गृहके प्रति ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसे गये जैसे देवता आकाशमें अथवा मायासे शरीर धारण करके देवताओंके सदृश महादेव और पार्वतीजी जैसे सात्विक ब्रह्मआकाशमें जाय वहां गृहपर ब्राह्मणी उदार गर्भसे संयुक्त हुई ॥ १९ ॥ और दश मासमें पूर्ण उदर होनेसे श्यामवर्ण मेघकी लेखाके समान प्रकाशित हुई और अनन्तर प्रतिपदाके चन्द्रके समान दश पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥

दशबालांस्ततोमुग्धान्वसुधेवनवांकुरान् ॥ कृतब्राह्मणसंस्काराद्वृद्धिमीयुर्महौजसः ॥ २१ ॥ स्वल्पेनैवहिकालेनप्रावृषेवनवांबुदाः ॥ तेसप्तवर्षवयसोबभूवुर्ज्ञातवाङ्मयाः ॥२२ ॥ विरेजुस्तेजसातत्रनभसीवामलाग्रहाः ॥ अथकालेनमहतातेषांतौपितरौतदा ॥ २३ ॥ संजग्मतुस्तनुंत्यक्त्वास्वांगतिंगतिकोविदौ ॥ मातापितृभ्यांरहितादशतेब्राह्मणास्ततः ॥ २४ ॥

अर्थ—वे दश सुन्दर पुत्रोंको ऐसे उत्पन्न किये जैसे पृथिवी नूतन अङ्कुरको और जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, उपनयन और वेदाध्ययनादि ब्राह्मणोंके संस्कारसे संयुक्त वृद्धिको प्राप्त हुये ॥२१॥ वर्षाकालके नूतन मेघोंके समान वे बढे और सात वर्षकी अवस्थाहीमें सब शास्त्रोंके तत्वको जान गये ॥ २२ ॥ आकाशमें निर्मल ग्रहके समान वे शोभाको प्राप्त हुये इसके अनन्तर बहुत कालमें उनके माता पिता ॥ २३ ॥ अपनी शरीरको त्यागकर कैवल्य मुक्तिको गये क्यों कि वे उत्तम यागादिको जानते थे इसके पश्चात् माता पितासे रहित वे दशों ब्राह्मण ॥ २४ ॥

ययुःकैलासशिखरंगृहंसंत्यज्यखेदिनः ॥ तत्रसंचिंतयामासुरुद्विग्नास्तेविबांधवाः ॥ २५ ॥ किंस्यादिहपरंश्रेयऊचुश्चेदंपरस्परम् ॥ किमिहस्यात्समुचितंभ्रातरःकिमदुःखदम् ॥ २६ ॥ किंमहत्त्वंकिमैश्वर्यंकिमहाविभवंशुभम् ॥ किंतदेतज्जनैश्वर्यंसामंतोहिमहेश्वर ॥ २७ ॥ सामंतसंपत्तिंकनामराजानोहिमहेश्वराः ॥ कानामसंपद्भूपानांसम्राडिहमहेश्वरः ॥ २८ ॥

अर्थ—उदासीन चित्त होके अपने गृहको त्यागकर कैलास पर्वतके शिखरपर गये वहांपर बन्धु रहित उन लोगोंने चिन्तन किया वे परस्पर विचार करके बोले कि हे भाईयों ! सबसे उत्तम कल्याणकारी कौन पदार्थ है इस लोक

तथा परलोकमें सुखदायी ग्रहण करने योग्य क्या है और यदि इस लोकमें सुखका कारण न भी हो तो परलोकमें दुःखदायी न हो ऐसा क्या है ॥२५॥ २६॥ महत्व क्या है ऐश्वर्य क्या है महाविभव क्या है गृह और ग्रामके स्वामियोंसे क्या यह सामान्य मनुष्योंका ऐश्वर्य उत्तम है क्यों कि (मण्डल वा जिलेको स्वामी) महा ऐश्वर्यवान् हैं ॥ २७॥ सामन्तके अधिपतिकी क्या वस्तु है क्योंकि राजालोग जो देशके अधिपति हैं वे लोग महान् ईश्वर हैं और देशके अधिपतियोंकी सम्पत्ति क्या पदार्थ है क्योंकि उनसे अधिक महान् ऐश्वर्यवाला सम्राट अनेक देशोंका अधिपति महान् (बडा) ऐश्वर्यवान् है ॥ २८ ॥

किंनामतन्महेंद्रत्वंयन्मुहूर्तंप्रजापतेः ॥ विनश्यतिनयत्वल्पेकिंस्यात्तदिहशोभनम् ॥ २९ ॥ भाषमाणे ष्वथैतेषुज्येष्ठोभ्रातामहामतिः ॥ गंभीरवागुवाचेदंमृगयूथान्मृगोयथा ॥ ३० ॥ ऐश्वर्याणांहिसर्वेषामा कल्पंनविनाशियत् ॥ रोचतेभ्रातरस्तन्मेब्रह्मत्वमिहनेतरत् ॥ ३१ ॥ एतद्उक्तंतदखिलाद्विजपुत्रास्त उत्तमाः ॥ वचोभिरेंदवास्तत्रसाधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि कहो महेन्द्र महान् ऐश्वर्य्यवान्है सो भी नहीं क्यों कि महेन्द्रत्व भी कोई महत्वका पद नहींहै वह भी ब्रह्माजीके एक मुहूर्तमेंही नष्ट होजाताहै, इस लिये जो कल्पमें भी नष्ट न हो वह उत्तम पद इस लोकमें क्या है ॥ २९ ॥ जब वे इस प्रकार आपसमें कह रहेथे तब उनमेंसे महा बुद्धिमान् पूर्वजन्मके ब्रह्मपदके संस्कार सहित, ज्येष्ठ भ्राता गम्भीर वाणीसे यह बचन ऐसे बोला जैसे मृगके झुण्डसे मृगपति ॥ ३० ॥ हे भाईयों ! सम्पूर्ण ऐश्वर्य्योंमेंसे जोकल्पमें विनाशी नहींहै ऐसा ब्रह्मत्व अर्थात् ब्रह्माकाही पद मुझे अच्छा लगताहै और कुछ नहीं ॥ ३१ ॥ इस ज्येष्ठ भ्राताके कथनको वे सब उत्तम ब्राह्मणके पुत्र बहुत उत्तम २ ऐसा कहके प्रशंसा की ॥ ३२ ॥

ऊचुश्चेदंकथंतातसर्वदुःखोपमार्जनम् ॥ पद्मासनंजगत्पूज्यंविरिंचित्वमवाप्नुमः ॥ ३३ ॥ भ्रात्रातेनपुनः प्रोक्ताभ्रातरोभूरितेजसः ॥ मदुक्तंसर्वएवेमेभवंतःपालयंतुवै ॥ ३४ ॥ पद्मासनगतोभास्वान्ब्रह्माह मितितेजसा ॥ सृजामिसंहरामीतिध्यानमस्तुचिरायवः ॥ ३५ ॥ अग्रजेतेतिकथितेबाढंकृत्वातउत्तमाः ॥ ध्यानाधीनधियस्तस्थुःसहैवज्यायसारसात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और यह बोले कि हे प्रिय भ्राता! यह सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करने वाला, पद्मासन और जगत्पूज्य विरञ्चिका पद कैसे प्राप्त करें ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उनमें अधिक तेजस्वी भाईओंसे ज्येष्ठ भ्राता बोला कि आप लोग निश्चय करके दृढतापूर्वक जीवन पर्य्यन्त मेरे कथनको पालन करो ॥ ३४ ॥ पद्मासन पर विराजमान् प्रकाशमान् ब्रह्म हम हैं और अपने तेजसे इस ब्रह्माण्डको रचतेहैं तथा संहार भी करतेहैं ऐसा तुह्मारा ध्यान चिरकाल तक अर्थात् भ्रमरकीटन्यायसे जबतक ब्रह्मपद प्राप्ति नहों तबतक रहै ॥ ३५ ॥ जब ज्येष्ठ भाईने ऐसा कहा तब सब उत्तम भाईयोंने बहुत अच्छा ऐसा दृढतापूर्वक अंगीकार करके उस ज्येष्ठ भाईके साथही ध्याननिष्ठ बुद्धि होके स्थित होगये ॥ ३६ ॥

लिपिकर्मार्पिताकाराध्यानासक्तधियश्चते ॥ अन्तस्थेनैवमनसाचिंतयामासुराहताः ॥ ३७ ॥ अथउ त्फुल्लकमलकोशवक्रोन्नतासनः ॥ ब्रह्माहंजगतांस्रष्टाकर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥ ३८ ॥ यज्ञक्रियाकर्मवतः सांगोपांगामहर्षयः ॥ सरस्वत्याथगायत्र्यायुक्तावेदानराइमे ॥ ३९ ॥ लोकपालपराक्रांतःसंचरत्सि द्धमण्डलः ॥ अयमुद्दामसौभाग्यःस्वर्गःस्वरविभूषितः ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्रमें लिखितके समान ध्यानमें आसक्त वे सब ब्राह्मण बाह्यवृत्तियोंको बन्द करके आदरसे अन्तर्गत मनसे ब्रह्मपदकी भावनाका चिन्तन किया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर विकासित कमलका मुख हमारा आसनहै और जगतोंके स्रष्टा कर्ता भोक्ता तथा महान् ईश्वर हमीहैं ॥ ३८ ॥ यज्ञमूर्ति जो मैंहुं उसके याजक (यज्ञ कराने हारे) ये वसिष्ठ आदि महर्षि हैं शिक्षा व्याकरण आदि अंगोंसे, पुराण आदि उपांगोंसे, सहित तथा गायत्रीसे युक्त वेद और मूर्तिमान, मनुष्य ये सब मेरेही अन्तर्गतहैं ॥ ३९ ॥ लोकपालोंसे व्याप्त चलता हुआ यह सिद्धोंके मण्डल सहित और उत्तम शोभा युक्त स्वरसे विभूषित यह स्वर्ग मेरेही भीतरहै ॥ ४० ॥

पर्वतद्वीपजलधिकाननैःसमलंकृतम् ॥ इदंभूमंडलंचैवत्रिलोकीकर्णकुण्डलम् ॥ ४१ ॥ एतत्पातालकु हरंदैत्यदानवभोजितम् ॥ अमृतस्त्रीगणाकीर्णगृहंगगनकोटरम् ॥ ४२ ॥ अयमिंद्रोमहाबाहुःप्रजालं कृतदोत्तमः ॥ त्रैलोक्यनगरीमेकःपातिपावनयज्ञभुक् ॥ ४३ ॥ दीप्रजालवरत्नाभिरवष्टभ्याथदिग्ग णम् ॥ क्रमेणप्रतपंत्येतेभानवोभूरिभानवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पर्वत, द्वीप, समुद्र, और बनोंसे सुशोभित यह भूमण्डल ऐसा शोभायमान होरहाहै जैसे त्रिलोकीरूप स्त्रीके कर्णका कुण्डल ॥ ४१ ॥ दैत्य और दानवोंसे पूर्ण है उदर जिसका ऐसा यह पातालरूपी महानगर्त (गढ़ा)

तथा देवांगनाओंसे पूर्ण यह आकाशका कोटर गृहके समान कैसा शोभित होरहाहै ॥ ४२ ॥ यह महाबाहु प्रजाओंको शोभा देनेवाला इन्द्र एकही पवित्र यज्ञोंका भोगनेवाला त्रैलोक्यरूपी नगरीका पालन करताहै ॥ ४३ ॥ अति तेज किरणसहित ये द्वादश आदित्य (सूर्य्य) अति दीप्त अपनी किरणरूपी पाशों सब दिशाओंके गणोंको बांधकर क्रमसे बारहों मासोंमें तप रहे हैं ये सब मेरे भीतरहीहैं ॥ ४४ ॥

लोकपालाइमेलोकंरक्षंतिशुद्धवृत्तयः ॥ मर्यादाभिरतुच्छाभिर्गोपालागोगणंयथा ॥ ४५ ॥ उन्मज्जंति निमज्जंतिप्रस्फुरंतिपतंतिच ॥ तरंगाइवतोयानामिमाःप्रतिदिनंप्रजाः ॥ ४६ ॥ सृजामीममहंसर्गसंहरामितथाहृतः ॥ अयमात्मनितिष्ठामिशाम्याम्यभिभुवनेश्वरः ॥ ४७ ॥ अयंसंवत्सरोयातइदंपरिणतंयुगम् ॥ सृष्टेरयमसौकालःस्वयंसंहरणस्यच ॥ ४८ ॥

अर्थ-शुद्धवृत्तिवाले ये सब इन्द्रादि लोकपाल महान् मर्य्यादाओंसे अपने लोकोंको ऐसा पालन करते हैं जैसे गोपाल गौओंके समूहको ॥ ४५ ॥ जलके तरंगोंके समान प्रतिदिन ये सब प्रजा कभी आविर्भूत होते हैं कभी लोप होजाते हैं और कभी अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्योंसे शोभित होते हैं, और कभी दरिद्रता आदिके दोषोंसे गिरभी जाते हैं ॥ ४६ ॥ इस सम्पूर्ण सृष्टिको मैं रचता हूं और संहारभी करता हूं, और मैं सम्पूर्ण भुवनोंका ईश्वर अपने आत्मामें अर्थात् पारमार्थिक स्वरूपमें ज्योंकात्यों स्थित हूं और इसीसे उपरामको भी प्राप्त होता हूं ॥ ४७ ॥ यह सम्वत्सर (ब्रह्मारूप हमारा वर्ष) बीतगया, यह युगका परिवर्तन (तबदीलात) हुआ यह सृष्टिका काल है और यह संहारका कालभी आपही प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अयमेवगतःकल्पोब्राह्मीरात्रिरियंतता ॥ अयमात्मनितिष्ठामिपूर्णात्मापरमेश्वरः ॥ ४९ ॥ इतिभाविंतयाबुद्ध्यातेद्विजाअथऐंदवाः ॥ दशाद्रिवृत्तयस्तस्थुःसमुत्कीर्णाइवोपलात् ॥५०॥ अधिगतकमलासनक्रमास्तेपरिगलितेतरतुच्छवृत्तिजालाः॥सततमतितरांकुशासनस्थाश्चिरमितिपंकजकल्पनेविरेजुः॥५१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने ऐंदवसमाधानं नाम षडशीतितमःसर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ-यह कल्प भी बीतगया और यह ब्राह्मीरात्री भी व्याप्त होके आगई और मैं पूर्ण आत्मा परमेश्वर अपने परमार्थ स्वरूपमें स्थितहुं ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार पूजित बुद्धिसे वे इन्दुके पुत्र दशो ब्राह्मण, पर्वतके सदृश निश्चल वृत्ति वाले, पाषाणमें खुदीहुई प्रतिमाके समान ध्यानमें निष्ठ, स्थितहुये ॥ ५० ॥ हे ब्रह्मन्! कुशके आसनपर स्थित वे दश ब्राह्मण, कमलासनकी कल्पना करनेके पश्चात् नष्ट होगयाहै अन्य तुच्छभाव जिनका और प्राप्त कियाहै कमलासन क्रम (ब्रह्मपदवी) जिन्होंने ऐसे वे सब ब्राह्मण निरन्तर चिरकालतक अति शोभाको प्राप्तहुये ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्याने ऐन्दवसमाधानं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

मनसे ब्रह्मपदको प्राप्त उन ब्राह्मणोंके शरीरोंको मांसआहारी मृग पक्षियोंसे भक्षण करना और सर्ग (सृष्टि) के होने तथा उसके अभावमें उन्होंकी ऐसी स्थिति इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ भानुरुवाच ॥ पितामहक्रमेतस्मिंस्ततस्तेबहुभावनात् ॥ कर्मभिस्तैःसमाक्रांतमनस्कास्तस्थुरादृताः ॥ १ ॥ यावत्तेदेहकास्तेषांतापेनपवनैस्तथा ॥ कालेनशोषमभ्येत्यगलिताःशीर्णपर्णवत् ॥ २ ॥ जक्षुस्तांदेहकांस्तत्रक्रव्यादावनवासिनः ॥ इतश्चेतश्चलुठितान्सुफलानीवमर्कटाः ॥ ३ ॥ अथतेशांतबाह्यार्थाब्रह्मत्वेकृतभावनाः ॥ तस्थुश्चतुर्युगस्यांतेयावत्कल्पःक्षयंगतः ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—हे पितामह ! उस उपासनाके क्रमसे वर्तमान वे इन्दुके पुत्र भुवनप्राणी, और ग्रामादिके सृष्टि परिपालन तथा संहार आदि उन २ कर्मोंसे आपकेही सदृश अति आदरसे बहुत भावना करते हुये स्थित रहे॥१॥ वे ब्राह्मण उस ब्रह्मभावकी उपासनामें उसकालमेंभी स्थित थे जबके उनके कृशशरीर काल पाके, ताप और पवनसे शुष्क होकर पुराने पत्तोंके समान गिरगये ॥ २ ॥ और इधर उधर पडेहुये उन शरीरोंको बनके निवासी मांसाहारी जीव ऐसे खागये जैसे गिरे हुये उत्तम फलोंको बानर ॥ ३ ॥ शरीर पातके अनन्तर बाह्यवृत्तियोंसे सर्वथा रहित ब्रह्मपदकी प्राप्तिकी भावना किये चारों युगोंके अन्तमें जब कल्पका क्षय होगया तबतक स्थित रहे ॥ ४ ॥

क्षीयमाणेततःकल्पेतपत्यादित्यसंचये ॥ पुष्करावर्त्तकेषूच्चैर्वर्षस्तुकठिनारवम् ॥ ५ ॥ वहत्सुकल्पवातेषुस्थितएकमहार्णवे ॥ क्षीणेषुभूतवृंदेषुतेतथैवव्यवस्थिताः ॥६॥ ततोरात्रिक्रमपरेसर्वांसंहृत्यतांस्थितिम् ॥ स्थितेत्वय्यात्मनिविभोतत्तथैवव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ अद्यप्रबुद्धेभवतिस्रष्टुमिच्छतिसंसृतिम् ॥ सुखेनैवक्रमेणोच्चैस्तेतथैवव्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! कल्पके क्षय होनेपर सूर्य्योंके समूहके तपनेपर, आर प्रलयके मेघ पुष्कर आवर्तकोंके कठिन शब्दों पूर्वक प्रबलतासे वर्षनेपर ॥ ५ ॥ कल्पान्त पवनोंके चलनेपर केवल एक समुद्रके सर्वत्र स्थित होनेपर, और सम्पूर्ण भूत समूहोंके नष्ट होनेपर भी वे ब्राह्मण उसी प्रकार ध्यानमें स्थित थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर पूर्व सम्पूर्ण सृष्टिका संहार करके जब ब्राह्मी महारात्रिकी प्रतीक्षा करतेहुये आप स्थित थे, तब भी वैसाही स्थित थे ॥ ७ ॥ अब आप ब्राह्मी रात्रिसे उठके प्रजाकी सृष्टिकी इच्छा कीहै परन्तु वे दशों पुत्र उत्तम सुखपूर्वक उसी प्रकार स्थितहैं ॥८॥

तथैतेभगवन्ब्रह्मन्ब्रह्माणोब्राह्मणादश ॥ तएतेदशसंसारमनोव्योमनिसंस्थिताः ॥ ९ ॥ तेषामेकतमस्याहमयमाकाशमंदिरे ॥ भानुर्भुविविभोकालकलाकर्मणियोजितः ॥ १० ॥ एषतेकथितःसर्गोदिशानामब्जसंभव ॥ ब्रह्मणांसंभवोव्योम्नियथेच्छसितथाकुरु ॥ ११ ॥ विविधकल्पनयावलितांबरंयदिदमुत्तमजागतमुत्थितम् ॥ करणजालकमाहितमोहनंतदखिलंनिजचेतसिविभ्रमः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने दशजगद्वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ब्रह्मन्! इस प्रकार वे दशों ब्राह्मण ब्रह्मा होगये और ये दश ब्रह्माण्ड उनके मनरूपी आकाशमें स्थित हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! उन दशों संसारोंमेंसे एक संसारके काल कर्मका विभाग करनेके अर्थ सूर्य रूपसे आकाश मन्दिरमें यह मैं नियुक्त किया गया हुं ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार दशों ब्रह्माकी आकाशमें उत्पत्ति मैंने आपसे कही अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करो अर्थात् इन सृष्टियोंके होनेपर भी आपकी सृष्टिसे क्या विरोध है ॥ ११ ॥ हे सर्वश्रेष्ठ भगवन् ! क्यों कि अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे आकाशको आवेष्टित करनेवाला बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियोंके बन्धनजालके सदृश अतिसंगसे मोहदायक यह जो जगत् सम्बन्धी दृश्यकी प्रतीति आविर्भूत है यह केवल निज चित्तमें भ्रान्ति मात्र है न कि यथार्थ ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्याने दशजगद्वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस ८८ के सर्गमें दृढ सिद्ध जो ब्रह्माजी हैं उनके मनसे अनासक्तिसे सृष्टिकी सिद्धि तथा अन्य सृष्टियोंकी निवृत्तिका अभाव भी वर्णन किया गया है ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्रह्माणोब्राह्मणाभानुरित्युक्त्वाब्रह्मणोमम ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदांश्रेष्ठतूष्णीमेवबभूवसः ॥ १ ॥ ततउक्तंमयातस्यचिरंसंचिंत्यचेतसा ॥ भानोभानोवदाशुत्वंकिमन्यत्संसृजाम्यहम् ॥ २ ॥ एतानिदशविश्वानिकिलयत्रजगंतिवै ॥ तत्रान्यममसर्गेणकोर्थःकथयभास्कर ॥ ३ ॥ इत्युक्तोथमयाभानुःसंचिंत्यसुचिरंधिया ॥ इदमत्रवचोयुक्तमुवाचसमहामुने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीब्रह्माजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी ! वह सूर्य बोला कि हे ब्रह्मन् ! वे दश ब्रह्मा दश ब्राह्मण हैं और कोई नहीं ऐसा मेरे सन्मुख कहके मौन होगया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर मैंने मनसे दीर्घ कालतक विचार करके कहा कि हे भानो ! हे भानो ! अब मैं और सृष्टि क्या करूं ॥ २ ॥ हे भास्कर ! जहांपर ये दश ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं वहांपर अब मेरी सृष्टिसे क्या प्रयोजन है सो तुम शीघ्र कहो ॥ ३ ॥ हे महामुने ! ऐसा मेरे कहनेपर उस सूर्यने मनसे दीर्घ कालतक शोच कर मेरे प्रश्नके अनुसार यहांपर यह योग्य वचन कहा ॥ ४ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ निरीहस्यनिरिच्छस्यकोर्थःसर्गेणतेप्रभो ॥ विनोदमात्रमेवेदंसृष्टिस्तवजगत्पते ॥५॥ निष्कामादेवभवतःसर्गःसंपद्यतेप्रभो ॥ अर्कादिवजलादित्येप्रतिबिंबमिवाधियः ॥ ६ ॥ शरीरसन्निवेशस्यत्यागेरागेचतेयदा ॥ निष्कामोभगवन्भावोनाभिवांछतिनोज्झति ॥ ७ ॥ सृजसीदंतथादेवविनोदायैवभूतप ॥ पुनःसंहृत्यसंहृत्यदिनंदिनपतिर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! चेष्टा तथा इच्छा रहित जो आप हैं उनको सृष्टिसे क्या प्रयोजन है, हे जगत्पते ! यह सृष्टि

तो आपकी लीलामात्र है ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! मन तथा कामनासे रहित जो आप हैं उनसे यह सृष्टि ऐसे उत्पन्न होती है जैसे सूर्यसे जलके सूर्यका प्रतिबिम्ब ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! शरीररूपी प्रत्येक अंगोंकी रचना है उसके त्यागमें रागमें तथा स्त्रियोंके कृत्यमें अहंभावसे जो रंजनराग है उसमें आपका निष्काम भाव न कुछ चाहता है और न कुछ त्यागता है ॥ ७ ॥ हे संसारके सम्पूर्ण भूतोंको पालन करनहारे ! पुनः संहार करके जो इस जगत्को ऐसा रचते हो जैसे सूर्य दिनोंको, यह केवल आपके विनोद (लीला) मात्र है ॥ ८ ॥

तवनित्यमसंसक्तंविनोदायैवकेवलम् ॥ इदंकर्त्तव्यमेवेतिजगन्नतूद्यमेच्छया ॥ ९ ॥ सृष्टिंचेन्नकरोषि त्वंमहेशपरमात्मनः ॥ नित्यकर्मपरित्यागात्किमपूर्वमवाप्स्यसि ॥ १० ॥ यथाप्राप्तंहिकर्त्तव्यमसक्के नसदासता ॥ मुकुरेणाकलंकेनप्रतिबिंबक्रियायथा ॥ ११ ॥ तथैवकर्मकरणेकामनानास्तिधीमताम् ॥ तथैवकर्मसंत्यागेकामनानास्तिधीमताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह करनेके योग्यहै, इसप्रकार इस जगत्को नित्य आप आसक्तिरहित रचना कहते हो न कि स्वार्थके अभिलाषके उद्योगकी इच्छासे ॥ ९ ॥ हे महेश ! यदि आप सृष्टि नहीं करोगे तो आत्माके नित्य प्राप्त कर्मके परित्यागसे और अपूर्व क्या पदार्थ प्राप्त करोगे ? ॥ १० ॥ सत्पुरुषको उचित है कि नित्य प्राप्त कर्म्म सदा आसक्त मनसे ऐसे करै जैसे निर्मल दर्पण प्रतिबिम्बकी क्रिया को करताहै ॥ ११ ॥ आत्मज्ञानियोंको जैसे अप्राप्त कर्म करनेमें कोई कामना नहीं रहती ऐसेही उनको नित्य प्राप्त करनेमें भी कोई कामना नहीं रहती ॥ १२ ॥

अतःसुषुप्तोपमयाधियानिष्कामयातया ॥ सुषुप्तबुद्धसमयाकुरुकार्य्यंयथागतम् ॥ १३ ॥ सर्गैरथैंदुपुत्राणांतोषमेषिजगत्प्रभो ॥ तदेतेतोषयिष्यंतितंत्वांसर्गात्सुरेश्वर ॥ १४ ॥ चित्तनेत्रैर्भवानेतान्सर्गानन्यस्यनोदृशा ॥ अवश्यंचक्षुषासर्गस्रष्टमित्येववेत्तिकः ॥ १५ ॥ येनैवमनसासर्गोनिर्मितःपरमेश्वर ॥ स एवमांसनेत्रेणतंपश्यतिहिनेतरः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये यथार्थमें कुछ न करनेसे सुषुप्तके तुल्य और प्रतीतिसे करनेसे स्वप्नके सदृश निष्काम बुद्धिसे आप नित्य प्राप्तकर्म कीजिये ॥ १३ ॥ और हे प्रभो ! यदि इन्दुके पुत्र जो दश ब्रह्माहैं उनकी रचित सृष्टियोंसे ऐसे सन्तोषको प्राप्त होते हो पुत्र पौत्रादिकी संपत्तियोंके देखनेसे पिता पिताके समान हो तौभी ये इन्दुके पुत्र उस आपकी सृष्टि करनेके अनन्तर भी सन्तोष शील आपको सन्तुष्ट करैंगे ॥ १४ ॥ और हे भगवन् ! ये दूसरे रचित जो सृष्टिहैं इनको आप चित्तरूपी नेत्रसे ही देखते हो न कि मांसके नेत्रसे और जो उस सृष्टिका रचनेवालाहै वह अवश्य अपने नेत्रोंसे देखता और जानताहै कि मैंने सृष्टि की ॥ १५ ॥ हे परमेश्वर ! जिस मनसे सृष्टि रची जातीहै वही मन सहित प्राणी मांसके नेत्रसे सृष्टिको देखताहै दूसरा नहीं ॥ १६ ॥

नचैतान्दशसंसारान्दशनीरजसंभवान् ॥ कश्चिन्नाशयितुंशक्तश्चित्तदार्ढ्याच्चिरस्थितान् ॥ १७ ॥ कर्मेंद्रियैर्यत्क्रियतेतद्रोद्धुंकिलयुज्यते॥नमनोनिश्चयकृतंकश्चिद्रोधयितुंक्षमः ॥१८॥ योबद्धपदतांयातोजंतोर्मनसिनिश्चयः ॥ सतेनैवविनाब्रह्मन्नान्येनविनिवार्यते ॥ १९ ॥ बहुकालंयदभ्यस्तंमनसादृढनिश्चयम् ॥ शापेनापिनतस्यास्तिक्षयोनष्टेपिदेहके ॥ २० ॥ यद्बद्धपीठमभितोमनसिप्ररूढंतद्रूपमेवपुरुषोभवतीहनान्यत् ॥ तद्बोधनादितरमत्रकिलाभ्युपायंशैलौघसेकमिवनिष्फलमेवमन्ये ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने ऐंदवनिश्चयकथनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ऐंदवोपाख्यानंसंपूर्णम् ॥

अर्थ—और चित्तकी दृढ़तासे स्थित इन दशों संसारोंको और उनके कारणभूत दशों ब्रह्माको कोई भी नाश करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ कर्म इन्द्रियोंसे जो कार्य्य कियाजाताहै उसका निरोध हो भी सकताहै परन्तु मनके निश्चयसे किये हुये कार्य्यका नाश कोई भी नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो बात प्राणीके मनमें दृढमूल हो जाती है वह उस प्राणीके विना कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनसे किया दृढ निश्चय हुआहै बहुत कालतक अभ्यास कियागयाहै उसका क्षय शापसे भी देहके नाश होनेपर नहीं होता है ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कुछ मनमें चारों ओरसे दृढ निश्चय होगया है वहीरूप पुरुष होताहै और दूसरा नहीं इसलिये मूढोंको संसार नाशके लिये उसके बोधके सिवाय और उपाय पर्वतके समूहके सींचनेके तुल्य मैं निष्फल मानता हूं ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे ऐन्दवोपाख्याने ऐन्दवनिश्चयकथनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ऐन्दवोपाख्यानं संपूर्णम् ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अहल्याकी मनोवृत्तिकी कथासे इस ८९ सर्गमें दृढ मनकी अचलताका प्रकाश किया गयाहै ॥

॥ भानुरुवाच ॥ मनोहिजगतांकर्तृमनोहिपुरुषःपरः ॥ मनःकृतंकृतंलोकेनशरीरकृतंकृतम् ॥ १ ॥ सामान्यब्राह्मणाभूत्वामनोभावनयाकिल ॥ ऐंदवाब्रह्मतांयातामनसःपश्यशक्तताम् ॥ २ ॥ मनसाभाव्यमानोहिदेहतांयातिदेहकः ॥ देहभावनयाऽयुक्तोदेहधर्मैर्नबाध्यते ॥ ३ ॥ बाह्यदृष्टिर्हिनियतंसुखदुःखादिर्विंदति ॥ नांतर्मुखतयायोगीदेहेवेत्तिप्रियाप्रिये ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले–हे ब्रह्मन्! सब जगतोंका कर्ता मनही है और मनही परम पुरुष है संसारमें जो कुछ किया गयाहै वह मनसेही किया गया है न कि शरीरसे ॥ १ ॥ देखो मनकी शक्ति इन्दुके पुत्र सामान्य ब्राह्मण होके मनकी निश्चयपूर्वक भावनासे दशो ब्रह्मा होगये ॥ २ ॥ मनकी भावनासे देह होजाता है और मनसे देहकी भावनासे रहित (मैं देह नहीं हूं) जन्ममरण आदिसे पीडित नहीं होता ॥ ३ ॥ बाह्यदृष्टि अर्थात् शरीर आदिमें जिसकी आत्मदृष्टि है वही सुखदुःख आदिका अनुभव करता है और अन्तर्मुख अर्थात् चेतन आत्मामें आत्मदृष्टि योगीकी शरीरमें सुखदुःखका अनुभव नहीं करता ॥ ४ ॥

मनःकारणकंतस्माज्जगद्विविधविभ्रमम् ॥ इंद्रस्याहल्ययासार्द्धंवृत्तांतोत्रनिदर्शनम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच॥ काहल्याभगवन्भानोकोवात्रेंद्रस्तमोनुद ॥ ययोरुदंतश्रवणेपावनीदृष्टिरेतिहि ॥ ६ ॥ भानुरुवाच ॥ श्रूयतेहिपुरादेवमागधेषुमहीपतिः ॥ इंद्रद्युम्नइतिख्यातइंद्रद्युम्नइवापरः ॥ ७ ॥ तस्येंद्रबिंबप्रतिमाभार्याकमललोचना ॥ अहल्यानामतत्रासीच्छशांकस्येवरोहिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—इस लिये जगत् के जो अनेक प्रकारके भ्रम हैं उन सबका कारण केवल मनही है इन्द्रका अहल्याके साथ जो वृत्तान्त हुआ है वह इसमें दृष्टान्त है ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे भगवन्! हे अन्धकारके नाशक सूर्य्य! कौन अहल्याथी और वहां इन्द्र कौन था जिन दोनोंका वृत्तान्त श्रवण करनेपर पवित्र दृष्टि उदय होती है ॥ ६ ॥ भानुजी बोले–हे देव ब्रह्मन्! पूर्वकालमें मगध देशमें इन्द्रद्युम्न नामसे एक राजा हुआ जो कि पुराणोंमें प्रसिद्ध इन्द्रद्युम्नके सदृश था ऐसा सुना जाताहै ॥ ७ ॥ चन्द्रमाके प्रतिबिंबके समान कमलके सदृश नेत्रवाली अहल्या नामसे प्रसिद्ध उस राजाकी स्त्री ऐसी सुन्दर थी जैसे चन्द्रमाकी रोहिणी ॥ ८ ॥

तस्मिन्निवपुरेषिंगःषिंगप्रकरशेखरः ॥ इंद्रनामापरःकश्चिद्धीमान्विप्रकुमारकः ॥ ९ ॥ अहल्यापूर्वमिंद्रस्यबभूवेष्टेत्यहल्यया ॥ श्रुतंराजमहिष्याथकथाप्रस्तावतःक्वचित् ॥ १० ॥ आकर्ण्यैवमहल्यासाबभूवेंद्रानुरागिणी ॥ अहल्यांमांसनोकस्मात्सक्तोभ्येतीत्यथोत्सुका ॥ ११ ॥ मृणालभारकदलीपल्लवास्तरणेषुसा ॥ अतप्यतभृशंबालालतालूतावनेष्विव ॥ १२ ॥

अर्थ—उसी नगरमें व्यभिचारियोंमें शिरोमणि व्यभिचार क्रियामें अतिप्रवीण इन्द्रनामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण का कुमार रहताथा ॥ ९ ॥ पुराण आदिकी कथाओंमें इन्द्रद्युम्न राजाकी स्त्री अहल्याने यह कहीं सुनाथा कि गौतमकी पत्नी अहल्या इन्द्रकी प्रियाथी क्योंकि वह उसमें आसक्त हुआथा ॥ १० ॥ इसको सुनके वह रानी अहल्या इन्द्रनाम ब्राह्मणमें प्रति अनुरागिणी हुई और अति प्रेमवती होके यह कहने लगी की आसक्त होके इन्द्र (ब्राह्मण) मेरे निकट क्यों नहीं आता ॥ ११ ॥ कमलोंके भार तथा केलोंके पत्तोंके बिछोनोंपर वह सुन्दरांगी बाला ऐसे अतिसन्तप्त हुई जैसे बनमें काटी लता ॥ १२ ॥

खेदमापसमग्रासुतासुभूपविभूतिषु ॥ मत्सीनिदाघतप्तासुपरिलोलास्थलीष्विव ॥ १३ ॥ अयमिंद्रोयमिंद्रश्चेत्येवंजातप्रलापया ॥ लज्जापिहितयात्यक्ताविवश्यमनुयातया ॥ १४॥ इत्यार्तयाघनस्नेहमथतस्यावयस्यया ॥ उक्तंतयाप्रियेविघ्नमिंद्रमभ्यानयाम्यहम् ॥ १५ ॥ इच्छंतवानयामीतिश्रुत्वाविकसितेक्षणा ॥ पपातपादयोःसख्यानलिन्यानलिनीयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—वह रानी अहल्या राजाकी सम्पूर्ण विभूतियोंमें ऐसी दुःखित हुई जैसे उष्णकालमें अति संतप्त स्थलोंमें चंचल मछली ॥ १३ ॥ यह इन्द्र! यह इन्द्र! ऐसा प्रलाप सहित विवश होके उसने लज्जा भी त्याग दिया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उसकी सखी उसके अतिस्नेहको देखके अतिदुःखी हुई और उसको अतिभयंकर दशामें देखके बोली-कि हे प्रिये! मैं इन्द्रको निर्विघ्नतापूर्वक तुमारे निकट लाती हूं ॥ १५ ॥ तुमारे प्रियको लाती हूं ऐसा सुनके वह अहल्या विकसितनेत्र होगई और जैसे अति म्लान (मुर्झाई हुई) कमलिनी दूसरी कमलिनीके पाद (मूल) पर गिरे ऐसेही उसके चरणोंमें गिरी ॥ १६ ॥

ततःप्रयातेदिवसेसमायातेनिशागमे ॥ सावयस्यातमिंद्राख्यंययौद्विजकुमारकम् ॥ १७ ॥ बोधयित्वा यथायुक्तंसातमिंद्रमथांगना ॥ अहल्यानिकटंरात्र्यामानयामाससत्वरम् ॥ १८ ॥ ततःसातेनर्षिगेनस इंद्रेणरतिंययौ ॥ कस्मिंश्चित्सदनेगुप्तेबहुमाल्यविलेपना ॥१९॥ हारांगदमनोज्ञेनतरुणीतेनसातदा ॥ रतेनावर्जितावल्लीरसेनमधुनायथा ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दिन बीत जानेपर और रात्रिके आनेपर वह रानीकी सखी इन्द्र नामक उस ब्राह्मणके कुमारके निकट गई ॥ १७ ॥ यथायोग्य सब बात समुझाके वह अंगना उस रात्रिमें शीघ्र इन्द्र ब्राह्मणको अहल्याके समीप लाई ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर उस इन्द्र ब्राह्मण जारके साथ किसी गुप्तस्थानमें बहुतसी पुष्प आदिकी मालायें धारण कर और सुगन्धित द्रव्य अँतर आदि लगाकर उस रात्रिमें रमण किया ॥ १९ ॥ हार और अंगद आदिसे अतिशोभित उस ब्राह्मणकी सुरतके उचित क्रीडासे वह अहल्या उसके ऐसी वशीभूत होगई जैसे वसन्तऋतुके लता ॥ २० ॥

ततस्तदनुरक्तासापश्यंतीतन्मयंजगत् ॥ नसमस्तगुणाकीर्णंभर्त्तारंबह्वमन्यत ॥ २१ ॥ केनचित्त्वथ कालेनतस्याइंद्रानुरागिता ॥ सज्ञाताराजसिंहेनतन्मुखव्योमचंद्रिका ॥ २२ ॥ इंद्रंध्यायतिसायावत्ता वत्तस्याविराजते ॥ मुखंपूर्णेनचंद्रेणप्रबुद्धमिवकैरवम् ॥ २३ ॥ इंद्रोपिचतदासक्तसमस्तकरणाकुलः ॥ नतिष्ठतिक्षणमहोतयाविरहितःक्वचित् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उसी ब्राह्मणमें आसक्त अहल्या तन्मय जगत् देखती हुई समस्त गुणोंसे युक्त अपने पतिको कुछ नहीं समझती थी ॥ २१ ॥ कुछ कालके अनन्तर उसके मुखरूपी आकाशका चन्द्रमाकी चन्द्रिका (चांदनी) के समान प्रकाशका हेतु उसके अनुरागको राजसिंह इन्द्रद्युम्नने जानलिया ॥ २२ ॥ जबतक वह अहल्या रानी इन्द्रका ध्यान करती थी तबतक उसका मुख ऐसा शोभित होता था जैसे पूर्णचन्द्रसे विकसित कैरव (रात्रिकमल) ॥ २३ ॥ और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे व्याकुल इन्द्रभी उसमें आसक्त उसके वियोगमें क्षणभर भी कहीं नहीं रह सकता था ॥ २४ ॥

अथातिसुघनस्नेहनिरावरणचेष्टयोः ॥ तयोरनयवृत्तांतोराजाकर्णिकटुव्यथः ॥ २५ ॥ एवमन्योन्यमास क्तंभावमालक्ष्यभूपतिः ॥ चकारबहुभिर्दंडैःसद्वयोरथशासनम् ॥ २६ ॥ तावुभावपिसंत्यक्तौहेमंते सलिलाशये ॥ तुष्टौजहसतुस्तत्रनखेदंसमुपागतौ ॥ २७ ॥ अपृच्छततोराजाखिन्नौस्थोनदुर्मती ॥ तावूचतुर्महीपालंजलाशयसमुद्धृतौ ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अति दृढ प्रेमसे प्रकट होगई है चेष्टा जिनकी ऐसे उन दोनोंके दुःसह व्यथा देनेवाले अन्यायपूर्वक वृत्तान्तको राजाने सुना ॥ २५ ॥ राजाने दोनोंके परस्पर आसक्त भावको देखके अनन्तर अनेक प्रकारके दण्डोंसे उनको पीडा दी ॥ २६ ॥ वे दोनों भी जब शीतकालमें जलमें छोड़दिये गये तब भी सन्तुष्ट होके हँसे और कुछ भी खेदको नहीं प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ तब राजाने उन दोनोंसे पूंछा कि हे दुर्बुद्धियो ! क्या तुम दुःखी नहीं हो ? तब जलसे निकाले हुये वे दोनों राजासे बोले ॥ २८ ॥

संस्मृत्यावामिहान्योन्यमुखकांतिमनिंदिताम् ॥ आत्मानंनविजानीवोरूढभावंपरस्परम् ॥ २९ ॥ शा सनेषुचयत्संगोनिःशंकस्तेनहर्षितौ ॥ मुह्यावोनमहीपालस्वांगैरपिविकर्तितैः ॥ ३० ॥ ततोभ्राष्ट्रेपरि क्षिप्तावखिन्नावेवमेवतौ ॥ ऊचतुर्मुदितात्मानावन्योन्यस्मृतिहर्षितौ ॥ ३१ ॥ ग्रथितौगजपादेषुनखिन्ना वेवसंस्थितौ ॥ एवमेवोचतुर्भूपमन्योन्यस्मृतिहर्षितौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—कि हे राजन् ! हम दोनों एक दूसरेकी अनिन्दित मुखकी शोभाको स्मरण करके दृढ प्रेमसे अपने देहको भी नहीं जानते ॥ २९ ॥ क्योंकि हम दोनोंके मनका सम्बन्ध भेदकी शंका शून्यहै इसी कारण हे राजन् ! आपकी दी हुई पीड़ाओंमें भी हम हर्षित है न कि हमारे अंगोंके काटनेसे भी मोहमें प्राप्त ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों भ्राष्ट्र (भाड) में झोंक दियेगे परन्तु वहां भी दुःखी नहीं हुये और वहां भी इसीप्रकार एक दूसरेके ध्यानसे प्रसन्न चित्त अति हर्षित इसी प्रकार राजासे बोले ॥ ३१ ॥ हांथीके पैरमें दोनों बांध दियेगये तब भी दुःखरहित स्थित रहे और एक दूसरेकी स्मृतिसे हर्षित इसी प्रकार बोले ॥ ३२ ॥

कशाहतावखिन्नौतावेवमेवकिलोचतुः ॥ अन्यस्माच्छासनाद्राज्ञाकल्पिताच्चपुनःपुनः ॥ ३३ ॥ उद्धृता वूचतुःर्दृष्टौतमेवार्थंपुनःपुनः ॥ उवाचेंद्रोमहीपालंजगन्मेदयितामयम् ॥ ३४ ॥ नशातनानिदुःखानिबाधं

तेकिंचिदेवमे ॥ अस्याश्चैवजगद्राजन्सर्वमन्मयमेवच ॥ ३५ ॥ तेनान्यशासनाद्दुःखंकिंचिदेवनविद्य ते ॥ मनोमात्रमहंराजन्मनोहिपुरुषःस्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोडोंसे ताडित होनेपर दुःखी न हुये और पूर्वोक्त रीतिसे राजासे बोले, तथा और भी राजासे नियत किये हुये दण्डोंसे पीडित न हुये किन्तु प्रसन्न ही रहे नं कि दुःखी ॥ ३३ ॥ उस पीड़ासे निकाले हुये पूंछनेपर भी उसी बातको पुनः २ कहा और इन्द्रनामक ब्राह्मण राजासे बोला कि मुझे यह जगत् इस स्त्रीमय भान होताहै ॥३४॥ हे राजन् ! मुझे इस स्त्रीरूप और इसको मुझरूप सम्पूर्ण जगत् भान होताहै इसलिये आपसे प्रेरित दुःख मुझे और इसको कुछ भी बाधा नहीं देते ॥ ३५ ॥ दोनोंको एक दूसरेका रूप जगत्भान होनेसे अन्य की दी हुई पीड़ासे कुछ भी दुःख नहीं है, हे राजन् ! मैं मनोमात्र हुं और मन जो है वही पुरुष है ॥ ३६ ॥

प्रपंचमात्रमेवायंदेहोदृश्यतएवहि ॥ समकालप्रयुक्तेनसहस्रादंडराशिना ॥३७॥ वीरंमनो भेदयितुंमना गपिनशक्यते ॥ कानामताममहाराजकीदृश्यःकस्यशक्तयः ॥ ३८ ॥ याभिर्मनांसिभिद्यंतेदृष्टनिश्चयवंत्य पि ॥ वृद्धिमायातुवादेहोयातुवाविशरारुताम् ॥ ३९ ॥ भाविताथाभिपतितंमनस्तिष्ठतिपूर्ववत् ॥ इष्टेर्थे चिरमाविष्टंदधानंतत्स्थितंमनः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह जो शरीर दीखता है वह मनसे कल्पित प्रपंच मात्र है इसलिये अनेक दण्डोंकी राशि भी एक कालमें प्रयुक्त की जाय तो भी ॥ ३७ ॥ बीर इस मनका किंचित् भी भेदन करनेमें समर्थ नहीं है हे महाराज ! क्या नामवाली कैसी और किसकी वे शक्तियां है ॥ ३८ ॥ जिनसे अनुभूयमान यथार्थ रूप निश्चयवाले भी मन भेदन कर-नेमें समर्थ हैं यह शरीर वृद्धि को प्राप्त हो वा कण २ होके गलजाय परन्तु ॥३९॥ निश्चित पदार्थमें गिरा हुआ मन जैसा का वैसाही स्थित रहता है वांछित पदार्थ चिरकालतक लगा हुआ और उसी पदार्थका रूप होके उसमें स्थित मनको॥४०

भावाभावाःशरीरस्थानृपशक्तानबाधितुम् ॥ भावितंतीव्रवेगेनमनसायन्महीपते ॥४१॥ तदेवपश्यत्यच लंनशरीरविचेष्टितम् ॥ नकाश्चनक्रियाराजन्वरशापादिकाअपि ॥ ४२ ॥ तीव्रवेगेनसंपन्नंशक्ताश्चाल यितुंमनः ॥ तीव्रवेगेनसंयुक्तंपुरुषाह्यभिवांछितात् ॥४३ ॥ मनश्चालयितुंशक्तानमहाद्रिंमृगाइव ॥ ममे यमसितापांगीमनःकोशेप्रतिष्ठिता ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! शरीरमें स्थित भाव अथवा अभाव पदार्थ बाधा नहीं कर सकते और हे राजन् ! हे मन तीव्र ! संकल्पसे जो कुछ निश्चय करता है ॥ ४१ ॥ वही स्थिर रूपसे देखता है, और हे राजन्, कोई भी वर शाप आदि क्रिया तीव्र संवेगसे गिरे हुये मनको हटानेको समर्थ नहीं है तीव्र अभिलाषसे संयुक्त मनको इष्ट पदार्थसे हटा-नेको कोई भी पुरुष ऐसे समर्थ नहीं है जैसे बडे पर्वतको हरिण, और हे राजन् ! यह कृष्णकटाक्षवाली अहल्या मेरे मनरूपी कोशमें ऐसे प्रतिष्ठित है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

देवागारेमहोत्सेधेदेवीभगवतीयथा ॥ नदुःखमनुगच्छामिप्रिययाजीवरक्षया॥४५॥गिरिर्ग्रीष्मदशादाहं लग्नयेवाब्दमालया ॥ यत्रयत्रयथाराजंस्तिष्ठाम्यभिपताम्यिवा ॥ ४६ ॥ तत्रेष्टसंगमादन्यत्किंचिन्नानुभ वाम्यहम् ॥ अहल्यादयितानाम्नामनसेंद्राभिधंमनः ॥ ४७ ॥ संसक्तमिदमायातिनस्वभावाद्दृतेपरम् ॥ एककार्यनिविष्टंहिमनोधीरस्यभूपते ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे बडे ऊंचे देवस्थानमें भगवती देवी और जीवकी रक्षाभूत इस प्रियासे मैं ऐसे दुःखको अनुभव नहीं करसक्ता जैसे मेघोंकी मालाके संयोगसे ग्रीष्मकी दशाके दाहको पर्वत और हे राजन् ! जहां २ मैं स्थित होताहुं अथवा गिरता हुं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहां २ अपने प्रियाके समागमके सिवाय और कुछ नहीं अनुभव करता मनसेही अहल्या प्रियाहै और मनसेही इन्द्र नाम ब्राह्मण प्रिय है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार इन दोनोंके रूपसे दृढ संसक्त मन एक स्वभावसे दूसरे स्वभावको सैकडों यत्नोंसे भी प्राप्त होनेके अशक्य है और हे राजन् ! धीर पुरुषका चित्त जब एक विषयमें निमग्न है तब वह अन्य विषयमें ॥ ४८ ॥

नचाल्यतेमेरुरिववरशापबलैरपि ॥ देहोहिवरशापाभ्यामन्यत्वमिवगच्छति ॥ ननुधीरंमनोराजन्वि जिगीषुतयास्थितम् ॥ ४९ ॥ एतानिचात्रमनसांनचकारणानिराजन्शरीरशकलानितृथोत्थितानि ॥ चेतोहिकारणममीषुशरीरकेषुवारीवसर्ववनखंडलतारसेषु ॥ ५० ॥ आद्यंशरीरमिहविद्धिमनोमहात्म न्संकल्पितोजगतितेनशरीरसंघः॥आद्यंशरीरमधितिष्ठतियत्रयत्रतत्तद्रृशंफलतिनेतरदस्यपुंसः॥५१॥ मुख्यांकुरंसुभगविद्धिमनोहिपुंसोदेहास्ततःप्रविसृतास्तरुपल्लवाभाः ॥ नष्टेंकुरेपुनरुदेतिनपल्लवश्रीर्नें वांकुरःक्षयमुपैतिदलक्षयेषु ॥ ५२ ॥

अर्थ—बर और शापसे भी ऐसे नहीं चलायमान होता जैसे मेरु पर्वत, हे राजन्! यह शरीर जो है सो बर और शापसे अन्यरूप होजाती है परन्तु धीर जो मनहै वह सम्पूर्ण विक्षेपोंके जीतनेकी इच्छावान् होके स्थित रहताहै॥४९॥ हे राजन्! ये जो वृथा प्रकट हुये दृश्यमान् प्राणियोंके शरीर रूप खण्डहैं वे सब मनके कारण नहींहैं किन्तु इन सब शरीरोंमें कारणीभूत मन ऐसेहै जैसे सम्पूर्ण बनके खण्डोंमें और लतारसोंमें जल ॥५०॥ हे महात्मन्!आत्माके भोगका स्थान प्रथम मनरूपही शरीरहै और इसी मनसेंही संसारमें शरीरोंके समूह कल्पित किये गयेहैं,इसलिये आद्यशरीर अधिष्ठान भूत जहां २ "अहम्" इस अभिमानसे प्रगटहै वहां २ उसी अधिष्ठानसे उन २ शरीराकारसे इस पुरुषको फली भूत होताहै अन्य नहीं ॥ ५१ ॥ हे सुभगराजन्! पुरुषका मुख्य अंकुर तुम मनकोही जानो और उसी मनसे वृक्षके पल्लव के सदृश शरीरोंका विस्तार हुआहै और अंकुर नष्ट होनेपर पुनः पत्र आदिकी शोभा नहीं उदय होती परन्तु पत्रोंके नष्ट होनेसे अंकुर नहीं नष्ट होता ॥ ५२ ॥

देहेक्षतेविविधदेहगणंकरोतिस्वप्नावनाविबनवंनवमाशुचेतः ॥ चित्तेक्षतेतुनकरोतिहिंकिंचिदेवदेह स्ततःसमनुपालयचित्तरत्नम् ॥ ५३ ॥ दिशिदिशिहरिणाक्षीमेवपश्यामिराजन्प्रिययुवतिमनस्त्वान्नित्यमानंदितोस्मि ॥ तवपुरप्रकृतीनांयत्फलंदुःखदायिक्षणमथसुचिरंतत्तन्नपश्यामिकिंचित् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे इन्द्राहल्याख्याने कृत्रिमेंद्रवाक्यं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अर्थ—हे राजन्! शरीरके नष्ट होनेपर भी यह चित्त शीघ्रही स्वप्नके सदृश अनेक प्रकार देहके समूह रचताहै और चित्तके नष्ट होने पर देह कुछ भी नहीं इस लिये चित्तरूपी रत्नको परम पुरुषार्थमें लगानेसे रक्षा करो ॥ ५३ ॥ हे राजन्! सम्पूर्ण दिशाओंमें इसी हरिणके सदृश नेत्रवालीकोही देखताहूं और प्रिय युवतिरूप मन होनेसे नित्यही आनन्दित हूं, और तुम्हारे नगरनिवासी तथा प्रजाओंकी दृष्टिमें दुःखदायी जो कोड़ों और शस्त्रका आघात है और उनका फल जो दुःखहै उस क्षणभर अथवा अधिक कालतक कुछ भी नहीं देखता ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्राहल्याकृत्रिमवाक्यं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

भरत मुनिके शापसे उन दोनोंके देह नष्ट होनेपर भी उन दोनोंकी मनकी परस्पर तन्मयता नहीं नष्ट हुई इस विषयका वर्णन इस ९० सर्गमें कियाहै ॥

॥ भानुरुवाच ॥ अथेंद्रेणैवमुक्तोसौराजाराजविलोचनः ॥ मुनिंभरतनामानंपार्श्वसंस्थमुवाचह ॥ १ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञपश्यामिसुदुरात्मनः ॥ भृशमस्यमुखेस्फारंधाष्टर्यंमहारहारिणः॥ २ ॥ पापानुरूपमस्याशुशापंदेहिमहामुने ॥ यदवध्यवधात्पापंवध्यत्यागात्तदेवहि ॥ ३ ॥ इत्युक्तोराजसिंहेनभरतोमुनिसत्तमः ॥ यथावत्प्रविचार्याशुपापंतस्यदुरात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले–हे ब्रह्मन्! जब इन्द्र ब्राह्मण करके कमलके सदृश नेत्रवाला राजा इन्द्रद्युम्न ऐसा कहा- गया तब निकटमें स्थित भरत नाम मुनिसे बोला ॥ १ ॥ राजाजी बोले–हे भगवन्! हे सम्पूर्ण धर्मोंको जानने हारे! मेरी स्त्रीके हरनेवाले इस दुष्टके मुखमें बहुत धृष्टतायुक्त बचन देखताहूं॥ २ ॥ इसलिये हे महामुने! इसके पापके अनुसार शीघ्र शाप दीजिये क्योंकि जो मारनेके योग्य नहीं है उसके मारनेसे जो पाप होताहै वही पाप मारने योग्य मनुष्यके त्यागसे होताहै ॥ ३ ॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ भरतजी राजसिंहके ऐसा कहनेपर उस दुष्टके पापको शीघ्र यथावत् विचार करके ॥ ४ ॥

सहानयादुष्कृतिन्याभर्तृद्रोहाभिभूतया ॥ विनाशंत्रजदुर्बुद्धेइतिशापंविसृष्टवान् ॥ ५ ॥ ततस्तौराजभरतौप्रत्यूचतुरिदंवचः ॥ सुदुर्मतीयुवांयाभ्यांक्षपितंदुश्चरंतपः ॥ ६ ॥ अनेनशापदानेनाकिंचिद्भवति नावयोः ॥ देहेनष्टेननौकिंचिन्नश्यतिस्वांतरूपयोः ॥ ७ ॥ स्वांतंहिनहिकेनापिशक्यतेनाशितुंकचित् ॥ सूक्ष्मत्वाच्चिन्मयत्वाच्चदुर्लक्ष्यत्वाच्चविद्विनौ ॥ ८ ॥

अर्थ—यह शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे पतिके द्रोहसे पराजित इस पापिनीके साथ शीघ्र तुम नष्टताको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों राजा और भरत मुनिसे यह बात बोलें कि तुम दोनों अति दुर्बुद्धी हो जिन्होने अपना

दुश्चर तपस्या नष्ट किया शाप देके ॥६॥ क्यों कि इस शापके देनेसे हम दोनोंका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ देहके नष्ट होने परभी अन्तःकरण (मन) रूप हम लोगोंका कुछ भी नष्ट नहीं होता ॥ ७ ॥ तुम यह निश्चयसे जानो कि हम लोगोंका मन सूक्ष्म होनेसे, चिन्मय होनेसे और दूसरेके अलक्ष्य होनेसे किसीसे और कहींभी नाश करनेको समर्थ नहीं है ॥८॥

॥ भानुरुवाच ॥ सुघनस्नेहसंबद्धमनस्कावेवशापतः ॥ पतितौभूतलेवृक्षविच्युताविवपल्लवौ ॥ ९ ॥ अथव्यसनसंसक्तौमृगयोनिमुपागतौ ॥ ततोद्वावपिसंसक्तौभूयोजातौविहंगमौ ॥ १० ॥ अथास्माकंवि भोसर्गेमिथस्संबंधभावनौ ॥ तपःपरौमहापुण्यौजातौब्राह्मणदंपती ॥ ११ ॥ भारतोपितयोःशापःस समर्थोबभूवह ॥ शरीरमात्राक्रमणेनमनोनिग्रहेप्रभो ॥ १२ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—अति प्रेमसे मिलेहुये मनवाले वे दोनों शापके कारण पृथिवीपर ऐसे गिरे जैसे वृक्षसे गिरे हुये पत्ते ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दृढविषयके प्रेमसे बद्ध मृगकी योनि पाया, और इसके पश्चात् अति प्रेममें आसक्त पुनः पक्षिकी योनिमें उत्पन्न हुये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे प्रभो ! इस हमलोगोंकी सृष्टिमें परस्पर बद्धभावनावाले दोनों तपमें तत्पर ब्राह्मणस्त्रीपुरुष उत्पन्न हुयेहैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! देखो भरतमुनिका शापभी उन दोनोंके शरीरमात्र नष्ट करनेमें समर्थ हुआ, नाकि मनके निग्रह करनेमें ॥ १२ ॥

तावद्यापिहितेनैवमोहसंस्कारहेतुना ॥ यत्रयत्रप्रजायेतेभवतस्तत्रदंपती ॥ १३ ॥ अकृत्रिमप्रेमरसानु विद्धंस्नेहंतयोस्तंप्रतिवीक्ष्यकांतम् ॥ वृक्षाअपिप्रेमरसानुविद्धाःशृंगारचेष्टाकुलिताभवंति ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्राहल्यानुरागो नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—वे दोनों (इन्द्र ब्राह्मण और अहल्या रानी) मोहके संस्कारके कारणसे अब भी जहां २ उत्पन्न होते हैं वहां २ स्त्री पुरुष होते हैं ॥ १३ ॥ सहज प्रेमके रसमें और सुन्दर उन दोनोंके स्नेहको देखके वृक्ष भी प्रेमरसमें सने हुये शृंगारकी चेष्टासे व्याकुल होजाते हैं और दूसरोंकी भला क्या कथा है ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कृत्रिमेन्द्राहल्यानुरागो नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस ९१ के सर्गमें सूर्यको मनु करके पुत्रोंकी सृष्टियोंके ब्रह्माजीका जो संसारकी सृष्टि है उसकी मनोमात्र विलासताका वर्णन किया गया है ॥

॥ भानुरुवाच ॥ तेनैतद्वच्मिभगवन्यथाकालंमनोमुने ॥ अनिग्राह्यमभेद्यंचशापैरपिदुरासदैः ॥ १ ॥ ऐंदवानामतःसृष्टिक्रमाणाम्प्रविनाशनम् ॥ युज्यतेनचतद्ब्रह्मन्युक्तमेतन्महात्मनः ॥ २ ॥ किंतदस्तिज गत्यस्मिन्विविधेषुजगत्सुच ॥ तवापिनाथनाथस्ययद्दैन्यायमहात्मनः ॥ ३ ॥ मनोहिजगतांकर्तृमनोहि पुरुषःस्मृतः ॥ यन्मनोनिश्चयकृतंतद्द्रव्यौषधिदंडनैः ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—हे भगवन् ! हे मुने ! भरतका शाप मनके निग्रह करनेमें समर्थ नहीं हुआ इस लिये कालके अनुसार कहता हूं दुःसाध्य शापोंसे भी मनका निग्रह करना तथा भेदन करना अशक्य है ॥ १ ॥ इस कारण हे ब्रह्मन् ! इन्दुके पुत्रोंके सृष्टिक्रमोंका नाश करना युक्त नहीं है और न यह करना आप महात्माके योग्य है ॥२॥ और इस जगतमें तथा नानाप्रकारके अन्य ब्रह्मांडोंमें स्वामियोंके भी स्वामी महात्मा आपके दीनताके लियेहो ॥ ३ ॥ मनही अनेक ब्रह्माण्डोंका भी कर्ताहै और मनही पुरुषहै जो कुछ मनने निश्चय कर लियाहै वह किसी द्रव्य औषध वा दण्डोंसे ॥४॥

हंतुंनशक्यतेजंतोःप्रतिबिंबंमणेरिव ॥ तस्मादेतेत्रतिष्ठंतुभासुरैःसर्गसंभ्रमैः ॥ ५ ॥ त्वंसृष्टेहप्रजा स्तिष्ठबुद्धयाकाशोह्यनंतकः ॥ चित्ताकाशश्चिदाकाशआकाशश्चतृतीयकः ॥ ६ ॥ अनंतास्त्रयएवैतेचि दाकाशप्रकाशिताः ॥ एकंद्वौत्रीन्बहून्वापिकुरुसर्गान्जगत्पते ॥ ७ ॥ स्वेच्छयात्मनितिष्ठत्वंकिंगृही तंतवेंदवैः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथैंदवजगज्जालेभानुनैवमुदाहृते ॥ ८ ॥

अर्थ—किसी प्राणीसे हनन करनेको ऐसे योग्य नहीं है जैसे मणिका प्रतिबिम्ब (छाया) इस लिये ये इन्दुके पुत्र प्रकाशमान अपनी सृष्टियोंके विभ्रम (विकल्प) सहित स्थित रहैं ॥ ५ ॥ और तुम अपने चित्ताकाशमें प्रजाओंकी सृष्टि करके स्थित रहो क्योंकि चित्ताकाश अनन्तहै और चित्ताकाश, चिदाकाश, तथा यह सामान्य आकाश तीसराहै ॥ ६ ॥ चिदाकाशसे प्रकाशित ये तीनों आकाश अनन्तहैं इस लिये हे जगत्पते ! तुम एक दो तथा

अनेक सृष्टियोंकी रचना करो ॥ ७ ॥ इन्दुके पुत्रोंने तुमारा क्या लिया है तुम अपनी इच्छासे अपने आत्मामें स्थित रहो, ब्रह्माजी बोले—जब सूर्यने इस प्रकार इन्दुके पुत्रोंका जगत्जाल वर्णन किया इसके पश्चात् ॥ ८ ॥

मयासंचिंत्यसुचिरमिदमुक्तंमहामुने ॥ युक्तमुक्तंत्वयाभानोवितताहिकिलांबरम् ॥ ९ ॥ मनश्चविततं वापिचिदाकाशश्चविस्तृतः ॥ तद्यथाभिमतंसर्गंनित्यकर्मकरोम्यहम् ॥ १० ॥ कल्पयामिबहून्याशु भूतजालानिभास्कर ॥ तत्त्वमेवाशुभगवन्प्रथमोमेमनुर्भव ॥ ११ ॥ कुरुसर्गंयथाकामंमयासमभिचो दितः ॥ अथैतत्समहातेजाममवाक्यंप्रभाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे महामुने वसिष्ठ ! तब मैंने दीर्घकालतक अच्छी तरहसे विचार करके यह कहा कि हे सूर्य्य ! तुमने उचित कहा पूर्वोक्त चारों आकाश निश्चय करके अनन्त हैं ॥ ९ ॥ मन अर्थात् चित्ताकाश और मन सहित चिदाकाश दोनों विस्तृत विशाल रूपहैं अर्थात् सृष्टिके आधार चित्ताकाश और चिदाकाशही मुख्य करके हैं क्यों कि भूताकाश सृष्टिकोटिमें है और ब्रह्माकाश असंग है इस लिये अपनी इच्छाके अनुसार अपना नित्यकर्म सृष्टि करूं ॥ १० ॥ हे भास्कर ! मैं शीघ्र अनेक प्राणियोंके समूहोंकी कल्पना करता हूं. इसलिये हे भगवन् ! तुह्मी मेरे प्रथम स्वायम्भुव मनुहो ॥ ११ ॥ मुझसे प्रेरणा किये हुये अपनी इच्छाके अनुसार तुम सृष्टि करो इसके अनन्तर महातेजस्वी सूर्य्य मेरे इस वाक्यको ॥ १२ ॥

अंगीकृत्यद्विधात्मानंचकारतपतांवर ॥ एकेनप्राक्तनेनास्मिन्वपुषासूर्यतांगतः ॥ १३ ॥ व्योमाध्वगत यासर्गेततानदिवसावलिम् ॥ मन्मनुत्वंद्वितीयेनकृत्वास्ववपुषाक्षणात् ॥ १४ ॥ ससर्जसकलांसृष्टिंतां तामभिमतांमम॥१५॥एतत्तेकथितंसर्वंवसिष्ठमनसोमुने॥स्वरूपंसर्वकर्तृत्वंचशक्तत्वंचमहात्मनः॥१६॥

अर्थ—अंगीकार करके हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी ! अपने शरीरका दो भेद किया पूर्व शरीरसे इन्दुके पुत्रोंकी सृष्टिमें सूर्य्य पदको धारण किया ॥ १३ ॥ उस सृष्टिमें आकाशके मध्यमें प्राप्त होके दिवसोंकी पंक्तियोंकी रचना की और दूसरे शरीरसे मेरी दी हुई मनुपदवीको धारण किया॥१४ ॥और जो मुझे अभिमतथी उन २ सृष्टियोंकी रचनाकी ॥१५॥ हे वसिष्ठमुने ! यह सब कुछ तुमसे मैंने महात्मा मनकी सर्व कर्तृता और सर्व शक्तिता कहदी ॥ १६॥

प्रतिभासमुपायातियद्यदस्यहिचेतसः ॥ तत्तत्प्रकटतामेतिस्थैर्यंसफलतामपि ॥ १७॥ सामान्यब्राह्म णाभूत्वाप्रतिभासवशात्किल ॥ ऐंदवाब्रह्मतांयातामनसःपश्यशक्तताम् ॥ १८ ॥ यथाचैंदवजीवा स्तेचित्त्वाद्ब्रह्मतांगताः ॥ वयंतथैवचिद्भावाच्चित्तत्वाद्ब्रह्मतांगताः ॥ १९ ॥ चित्तंहिप्रतिभासात्मय चतत्प्रतिभासनम् ॥ तदिदंभातिदेहादिस्वांतंनान्यास्तिदेहदृक् ॥ २० ॥

अर्थ—जो २ इस चित्तको प्रति भासताहै वही वह प्रकटता, स्थिरता और भोग व्यवहारकी सफलतामें भी आता है ॥ १७ ॥ देखो इस मनका सामर्थ्य ! इन्दुके पुत्र सामान्य ब्राह्मण होके भी मनकी भावनाके वशसे ब्रह्मा पदवीको प्राप्त हुये ॥ १८ ॥ जैसे इन्दुके पुत्रोंके जीव चेतन चित्त दशाको प्राप्त हुये और चित्त दशाकी भावनासे हिरण्यगर्भ पदवीको प्राप्त हुये ऐसे ही हम लोगभी चेतन दशासे चित्तताको प्राप्त हुये और उससे हिरण्यगर्भ पदको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ चित्त (मन) जो प्रतिभासरूप है और जो चित्तका भासन है वही मन यह देहादि रूपसे भान होता है और मनसे पृथक् देह आदिकी प्रतीति कुछ नहीं है ॥ २० ॥

चित्तमात्मचमत्कारंतच्चतत्कुरुतेस्वतः ॥ यथावत्संभवंस्वात्मन्येवांतर्मरिचादिवत् ॥ २१ ॥ तदेत च्चित्तवद्भातमातिवाहिकनामकम् ॥ तदेवोदाहरंत्येवंदेहनाम्नाघनभ्रमम् ॥ २२ ॥ कथ्यतेजीवनाम्नैतच्चि त्तंप्रतनुवासनम् ॥ शांतदेहचमत्कारंजीवंविद्धिक्रमात्परम् ॥ २३ ॥ नाहंनचान्यदस्तीहचित्रंचित्तमिदं स्थितम् ॥ वसिष्ठैंदवसंविद्वदसत्सत्तामिवागतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—चित्त जो है वह अपने अनेक चमत्कार अर्थात् विविध कल्पना सहित है, वह चित्त स्वयं काम कर्मवासनाके अनुसार जब जैसा जिसके लिये सम्भव होता है उसके लिये उस समय उतनाही इस प्रकार होजाता है जैसे मरिच कटुरूपसे निम्ब तिक्त रूपसे और द्राक्षा (छोहारा) मधुररूपसे अपनेहीमें निज संस्कारसे परिणत होता है ॥ २१ ॥ इसी कारणसे चित्तके सदृश सूक्ष्मदेहको स्थूल भ्रान्ति युक्त होनेसे मैं देव हूं मैं मनुष्य हूं इत्यादि देह नामसे प्राणी कहतेहैं ॥ २२ ॥ सूक्ष्म वासना सहित यही चित्त जीव कहाजाता है और स्थूलताके भ्रमसे इसीको देहनामसे कहतेहैं, और कारण, सूक्ष्म, तथा स्थूल तीनों शरीरकी कल्पना शून्य जीवको तुम साक्षात् ब्रह्महीजानो ॥२३॥ हे वसिष्ठजी ! जैसे सूत्रोंसे वस्त्र अलग नहीं है ऐसेही हम तुम तथा और कुछ आश्चर्य्य युक्त चित्तसे पृथक् नहीं है और यह चित्तही इन्दुके पुत्रोंकी सम्विद्के समान असत्रूप होके भी सत्ताको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥

यथेंदवमनोब्रह्मातथैवायमहंस्थितः ॥ तत्कृतंचाहमेवेदंसंकल्पात्मैवभासते ॥ २५ ॥ कश्चिच्चित्तविलासोयंब्रह्माहमिहसंस्थितः ॥ स्वभावएवदेहादिविद्धिशून्यतगात्मखात् ॥ २६ ॥ शुद्धचित्परमार्थैकरूपिणीत्येवभावनात् ॥ जीवोभूयोमनोभूत्वावेत्तीत्थंदेहतांमुधा ॥ २७ ॥ सर्वमैंदवसंसारवदिदंभातिचिद्वपुः ॥ संपन्नसंप्रबोधात्मास्वप्नोदीर्घःस्वशक्तिजः ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इन्दुके पुत्रोंका मन ब्रह्माहै ऐसेही हमभी मनकी कल्पनासे ब्रह्मा होके स्थितहैं और उसी मनसे रचेहुये हम और मेरे चित्तकी कल्पनासे रचाहुआ यह सब सर्ग (सृष्टि) और अन्यभी संकल्परूपही भासता है ॥२५॥हे वसिष्ठजी ! कोई तो चित्तका बिलासमें ब्रह्माहूं इसरूपसे इस ब्रह्माण्डमें भासताहै और परमात्माही सम्पूर्ण प्रपंच शून्य चिदाकाशसे पृथक्के सदृश होके देह आदिरूपसे भासताहै ॥२६॥ शुद्ध चित्त परमार्थ रूपीहै और वही भावना-वश जीव तथा चित्त होके वृथा देहआदि रूपसे भासती है ॥ २७ ॥ जैसे अपने अज्ञानशक्तिसे उत्पन्न स्वप्न चिरकाल तक स्थिर होके जाग्रत्‌रूप भासता है ऐसेही परमात्माही इन्दुके संसारके सदृश सर्वात्मक होके भासताहै ॥ २८ ॥

द्विचंद्रविभ्रमाकारंतन्मात्राभासपूर्वकम् ॥ ऐंदवांबरवद्रूढंचित्तादेवाखिलंभवेत् ॥ २९ ॥ नसत्रासदहंरूपंसत्तासत्तेतदेवच ॥ उपलंभेनसद्रूपमसत्यंतद्विरोधतः ॥ ३० ॥ जडाजडंमनोविद्धिसंकल्पात्मवृहद्वपुः ॥ अजडंब्रह्मरूपत्वाज्जडंदृश्यात्मतावशात् ॥ ३१ ॥ दृश्यानुभवसत्यात्मनसद्भावेविलासितत् ॥ कटकत्वंयथाहेम्नितथाब्रह्मणिसंस्थितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—क्योंकि सूक्ष्मतर वासनामय शब्दतन्मात्राके अध्यासपूर्वक दो चन्द्रमाके भ्रमके समान तथा इन्दुके पुत्रोंके चित्ताकाशके तुल्य दृढताको प्राप्त चित्तसेही यह सम्पूर्ण प्रपंच उत्पन्न हुआहै ॥ २९ ॥ जो "अहम्" रूपसे भान होताहै वह सत् नहीं है क्योंकि सर्वत्र चित्तके कार्य्योंमें उसकी उपलब्धि नहीं होती और असत्‌रूपभी नहीं क्योंकि असत्‌की उपलब्धि नहीं होती और सत्ता सत्‌रूप होनेसे सत्‌ही है असत्ताभी सत्‌रूप होनेसे असत्‌ही है और अहं-रूप जो है वह एक स्वभाव न होनेसे अर्थात् सत् असत्‌से विलक्षण होनेसे मायिकहै ॥ ३० ॥ हे वसिष्ठजी ! संकल्पा-त्मक महान् शरीरवाले मनको तुम जड अजडरूप जानो ब्रह्मरूप होनेसे तो यह अजड अर्थात् चेतनरूपहै और दृश्य रूप होनेसे जडरूपहै ॥ ३१ ॥ वह मन दृश्यके अनुभव कालमें दृश्यके समान और ब्रह्मके अनुभव कालमें ब्रह्मसे पृथक् इसका विलास नहीं है जैसे कटक हस्तके आभूषण दृष्टिमें सुवर्णसे पृथक् भान होताहै और सुवर्णदृष्टिसे अपृथक्, ऐसेही यह मन ब्रह्ममें स्थितहै ॥ ३२ ॥

सर्वत्वाद्ब्रह्मणःसर्वंजडंचिन्मयमेवच ॥ अस्मदादिशिलांतात्मनजडंनचचेतनम् ॥ ३३ ॥ दार्वादिनामचित्त्वेननोपलंभस्यसंभवः ॥ उपलंभोहिसदृशसंबंधादेवजायते ॥ ३४ ॥ उपलब्धेऽजडंविद्धितेनेदंसर्वमेवहि ॥ उपलंभोहिसदृशसंबंधात्स्यात्समात्मनोः ॥ ३५ ॥ जडचेतनभावादिशब्दार्थश्रीर्नविद्यते ॥ अनिर्देश्यपदेपत्रलतादीवमहामरौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—ब्रह्म सर्वरूप होनेसे जड चेतन सब ब्रह्महीहै और हम लोगोंसे लेके पाषाण पर्यंत अर्थात् ब्रह्मादि स्थावरांत युक्ति दृष्टिसे विरुद्ध स्वभाव होनेपर भी यथार्थमें न जड न चेतन किन्तु अनिर्वचनीय मायिकहै ॥ ३३ ॥ यदि काष्ठ आदिको सर्वथा जड माना जाय तो इनकी उपलब्धि नहीं हो सकती क्योंकि उपलब्धि सदृश सम्बध अर्थात् प्रमाता चेतन और प्रमेय चेतनका वृत्तिद्वारा अभेद होनेसे प्रत्यक्ष होताहै इसी प्रकार प्रमाणांतर भी स-दृश अर्थात् चेतनकी चेतनके सम्बधसेही होताहै ॥ ३४ ॥ यदि उपलब्धि हो तो काष्ठ आदि चेतन हुये क्योंकि उपलब्धि सदृशसम्बन्धसे होतीहै ॥ ३५ ॥ जैसे महामरुस्थलमें पत्र और लता आदि नहींहै इसी प्रकार बाणीसे अतीत ब्रह्म पदमें जड चेतन पदार्थके शब्द और अर्थकी शोभा नहीं है ॥ ३६ ॥

चितोयच्चेत्यकलनंतन्मनस्त्वमुदाहृतम् ॥ चिद्भागोत्राजडोभागोजाड्यमत्रहिचेत्यता ॥ ३७ ॥ चिद्भागोत्रावबोधांशोजडंचेत्यंहिदृश्यते ॥ इतिजीवोजगद्भ्रांतिंपश्यन्गच्छतिलोलताम् ॥ ३८ ॥ चित्तस्थएवभावोसौशुद्धएवद्विधाकृतः ॥ अतःसर्वंजगत्सैवद्वैतलब्धंचसैवतत् ॥ ३९ ॥ स्वमेवान्यतयादृष्ट्वाचितिर्दृश्यतयावपुः ॥ निर्भागाप्येकभागाभंभ्रमतीवभ्रमातुरा ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्‌का जो विषयकी ओर स्फुरणहै उसीको मन कहते हैं और इस मनमें जो चिद्भाग है वह अजड है और इसमें जो विषय अंशहै वही जडताहै॥३७॥ मनमें जो ज्ञानका अंशहै वह चिद्भागहै और विषयरूप जो अनुभव होताहै वह जडभाग है इसप्रकार यह जीव जगत्‌की भ्रान्तिका अनुभव करताहुआ चंचलताको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ चित्तस्थ जो चित् स्वभावहै वही चित्त और जगत्‌रूपसे द्विधा भाग किया गयाहै इसलिये सम्पूर्ण जगत् चित्‌रूप

ही है और चित्के साथ अभेद होनेसे जो जगत् का अनुभवहै वह भी चित्रूपही है ॥ ३९ ॥ यह चित् आपही भेददृष्टिसे अन्यरूप धारण करती है विभागरहित होनेपर भी स्वगत विभागके तुल्यहै और भ्रमरहित होनेपर भी भ्रमसे पूर्ण भ्रमतीसी है ॥ ४० ॥

नभ्रांतिरस्तिभ्रमभाङ्नानैवेतीहानिश्चयः॥परिपूर्णार्णवप्रख्यावेतीत्थंसंस्थिताचितिः ॥४१॥ सर्वस्याज्जाड्यमप्यस्याश्चितिश्चित्त्वंचवेत्सितत् ॥ चिद्भागांशोवबोधस्यत्वहंताजडतोदयः ॥ ४२ ॥ अहंतादिपरेतत्त्वेमनागपिनविद्यते ॥ ऊर्म्यादीवपृथक्तोयेसंवित्सारंहितद्यतः ॥ ४३ ॥ अहंप्रत्ययसंदृश्यंचेत्यंविद्धिसमुत्थितम् ॥ मृगतृष्णांबिवांतस्थंनूनंविद्यतएवनो ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह सिद्धान्तहै कि यथार्थमें न तो भ्रान्ति है और न चेतन पुरुष भ्रमका भागीहै, पूर्ण समुद्रके सदृश अपनेहीमें चेतन यह जगत् आदिका अनुभव करताहै ॥ ४१ ॥ इस चितिको सर्वरूप होनेसे जडता भी चित्हीहै क्यों-कि जडस्वरूप माननेसे उसका भानही नहीं होगा, और उस जाड्य अंशमें चित्का भी अनुभव तुम करते हो ज्ञानका चित् अंश है उसीमें अहंता और जडताका उदय होताहै ॥ ४२ ॥ जैसे जलसे अलग तरंग आदि कुछ नहीं है इसी प्रकार यथार्थमें परपद परमात्मामें अहंता आदि कुछ भी नहीं है क्योंकि दृश्यमें सार चित्ही है अर्थात् वह चित्के साथ एकरसहै ॥ ४३ ॥ अहं प्रत्ययसे अनुभव करने योग्य जो विषयहै उसको तुम मृगतृष्णाके जलके समान निक-लाहुआ जानो यथार्थमें वह भीतर कुछ नहीं है ॥ ४४ ॥

अहंतापदमंतात्मपदंविद्धिनिरामयम् ॥ विदंविदुरहंतादिशैत्यमेवयथाहिमम् ॥४५॥चितैवचेत्यतेजाड्यंस्वप्नेस्वमरणोपमम् ॥ सर्वात्मत्वात्सर्वशक्तीः कुर्वतोनैतिसाम्यताम् ॥ ४६ ॥ मनःपदार्थादितयासर्वरूपंविजृंभते ॥ नानात्माचित्तदेहोयमाकाशविशदाकृतिः ॥ ४७ ॥ देहादिदेहप्रतिभारूपात्म्यंत्यजतासदा ॥ विचार्यप्रतिभासात्मा चित्तंचित्तेनवैस्वयम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—सर्व द्वैतके बाधका अवधिभूत जो आत्मवस्तु है वह अहन्ताका आश्रय नहीं है, चित्स्वभावहीको घनीभूत शैत्यको हिमके सदृश प्राणी अहन्ता आदि कहते हैं ॥ ४५ ॥ स्वप्नमें अपने मरणके समान चेतनही जडताका अनुभव करता है, और वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको प्रकट करता हुआ ज्ञानकी दृढता बिना समताको नहीं प्राप्त होता ॥ ४६ ॥ मन जो है वह सब पदार्थोंका आदि होनेसे सब रूपसे प्रकटहै, आकाशके सदृश विशाल आकारवान् नानाप्रकारका रूप धारण करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर है ॥ ४७ ॥ वैराग्य आदि गुण सम्पन्न अधिकारीको स्थूल देह आदि और स्थूललिंग (सूक्ष्म) तथा कारण तीनों शरीरके प्रतिभा रूपको त्यागकरके चित्तसेही चित्तको स्वयं प्रातिभासिक रूप विचारना चाहिये ॥ ४८ ॥

चित्तताम्रेशोधितेहिपरमार्थसुवर्णताम् ॥ गतेऽकृत्रिमआनंदःकिंदेहोपलखंडकैः ॥ ४९ ॥ यद्विद्यतेशोध्यतेतद्बोधःकेचखपादपाः ॥ देहाद्यविद्यासत्याचेद्युक्तएतांप्रतिग्रहः ॥ ५० ॥ असत्यविनिविष्टानांदेहवाचितयात्विह ॥ येनामोपदिशंत्यज्ञाःकिंचित्तेपुरुषैडकाः ॥ ५१ ॥ यथैतद्भावयेत्स्वांतंतथैवभवतिक्षणात् ॥ दृष्टांतोत्रैदवाहल्याकृत्रिमेंद्रादिनिश्चयाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—चित्तरूपी तामा शुद्ध होके परमार्थ रूपी सुवर्णताके प्राप्त होनेपर सहज नित्य निरतिशय आनन्दको प्राप्त होता है और देह आदि पाषाणोंके खण्डके शोधनसे क्या प्रयोजन है ॥ ४९ ॥ जो है उसीका शोधन किया जाता है और उसका ज्ञान सफल होता है और असत् कल्पित पदार्थका शोधन योग्य नहीं जैसे आकाशमें कल्पित वृक्षादि कौनसे शोधे जाते हैं? यदि देह आदि अविद्या सत्य होती तो इसके शोधनका आग्रह योग्यथा ॥ ५० ॥ असत्यमें नि-मग्न चार्वाक आदि जो देहकोही आत्मा कहते हैं वा मानते हैं उनमेंसे जो कोई प्रामाणिक वस्तुका उपदेश करते हैं वे पुरुष पशुही हैं ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार यह अन्तःकरण भावना करता है वैसाही क्षणभरमें होजाता है इसमें अहल्या और कृत्रिमइंद्रका निश्चय दृष्टान्त है ॥ ५२ ॥

यद्यद्यथास्फुरतिसुप्रतिभात्मचित्तंतत्तत्तथाभवतिदेहतयोदितात्मा ॥देहोयमस्तिननचाहमितिस्वरूपंविज्ञानमेकमवगम्यनिरिच्छमास्व ॥ ५३ ॥ देहोयमेषचकिलायमितिस्वभावाद्देहोयमेतदखिलंततएतिनाशम् ॥ यक्षादिकल्पनवशाद्भयमेतिबालोनिर्यक्षदेहगतएवकयापियुक्त्या ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जीवावतरणक्रमोपदेशो नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—यह चित्त जिस २ रूपसे स्फुरित होताहै देहादि रूपसे प्रकट होके वैसाही वैसा होजाता है यथार्थमें

यह देहभी नहीं है अहंरूपसे प्रसिद्ध अहंकार भी नहीं है इसलिये सदा एकरस विज्ञान स्वरूप आत्माको जानके इ-च्छारहित होके स्थित रहो ॥ ५३ ॥ यह मानुष्यादि देह और यह प्रत्यक्ष अनुभूत भोग्य प्रपञ्च यह सब कल्पना व-शसे आत्माही होजाता है और भोग्य आदि देहके नाशसे नष्ट भी होजाते हैं जैसे बालक यक्षकी देहसे सम्बन्ध रहित भी परन्तु जब किसीप्रकार उसे सन्देह होजाता है तो यक्ष आदिकी कल्पनाके वशसे वह भय आदिको प्राप्त होता है और कल्पनाके नाशसे वह भयादिभी सब नष्ट होजाते हैं ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवावतरणक्रमोपदेशो नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस ९२ के सर्गमें पुनः शंका करके मनकी शक्तिको अमोघ स्थापित करना, तथा पुरुषके यत्नकी दृढता होनेपर उस शक्तिका यथेष्ट कार्य्य करनेमें समर्थ होना वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तवान्स भगवान्मयाकमलसंभवः ॥ रघूद्वहपुनःपृष्टोवाक्यमाक्षिप्यभूतपः ॥ १ ॥ त्वयैवभगवन्प्रोक्ताःशापमंत्रादिशक्तयः ॥ अमोघाइतिताएवकथंमोघाःकृताःपुनः ॥ २ ॥ शापेनमंत्रवीर्येणमनोबुद्धींद्रियाण्यपि ॥ सर्वाण्येवविमूढानिदृष्टानिकिलजंतुषु ॥ ३ ॥ यथैतौपवनस्पंदौय थास्नेहतिलौयथा ॥ अभिन्नौतद्वदेवेतौमनोदेहौसएवतत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रघुकुलदीपक रामजी! जब भगवान् ब्रह्माजीने ऐसा कहा तब पूर्वोक्त वाक्य युक्ति-युक्त नहीं है ऐसी शङ्का करके पुनः मैंने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे भगवन्! आपहीने शाप तथा मंत्र आदि शक्तियोंको अमोघ वर्णन कियाहै और अब उन्हीको व्यर्थ कैसे कहतेहो अर्थात् यह आपके कथनमें पूर्वापर विरोध हुआ ॥ २ ॥ शापसे तथा मंत्रके प्रताप मन तथा ज्ञानेन्द्रिय भी विमूढ होजातीहैं यह निश्चयरूपसे प्राणियोंमें देखागयाहै, जैसे शापसे अज-गर दशामें प्राप्त नहुषके मनके मोहसे अपने वंशमें उत्पन्न भीमकोही काटने प्रवृत्ति, तथा शापसे राक्षस होनेपर धर्म्मा त्मा सौदासकी भी ब्रह्मवधादिमें प्रवृत्ति, ऐसेही अन्य भी दृष्टान्तहैं ॥ ३ ॥ जैसे पवन और उसकी गति तथा स्नेह और तिल, इसीप्रकार अग्नि और उष्णता अभिन्नहैं ऐसेही मन और शरीरभी पृथक् नहीं है इस लिये शरीर मनही है, अर्थात् यदि वरशापादि मनपर अपना प्रभाव नहीं करसकते तो देहके ऊपर भी उनका प्रभाव नहीं होसकता ॥४॥

अथनास्तीहवादेहःकेवलंचेतसैवसः ॥ मुधानुभूयतेस्वप्नमृगतृष्णाद्विचंद्रवत् ॥ ५ ॥ एकनाशेद्वयोरेव नाशोत्राभ्युपपद्यते ॥ अवश्यंभवितुंमनोनाशेदेहपरिक्षयः ॥ ६ ॥ मनःशापादिभिर्दोषैःकथंनाक्रम्यतेप्र भो ॥ कथमाक्रम्यतेवापित्रूहिमेपरमेश्वर ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतदस्तिजगत्कोशेशुभकर्मानुपातिना ॥ यत्पौरुषेणशुद्धेननसमासाद्यतेजनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि यह कहो कि देह कोई पदार्थ नहीं केवल चित्तकी भावनासे कहीं २ उसकी भावनासे मृगतृष्णा-के जल और दो चन्द्रमाके सदृश वह व्यर्थ भ्रान्तिसे भान होताहै ॥ ५ ॥ तौभी एकका नाश होनेपर दोनोंका नाश अवश्य होना योग्य है जैसे मन नाश होनेपर शरीरका नाश देखागयाहै ऐसेही देहके नाशसे मनका भी नाश होना चाहिये, इसप्रकार मनसे देहकी सत्ता न्यून नहीं है किन्तु समान सत्ताहै इसके विपरीत चक्षुष् आदि इन्द्रियोंका विषय न होनेसे भी प्रत्यक्षका विषय होनेसे स्वप्नादिके तुल्य देहकी मनकीही सत्ता न्यूनहै इस प्रकार रज्जुके नाश होनेसे सर्पके नाशके तुल्य शरीर नाश होनेपर मनकी स्थिति नहीं हो सकती ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! शापादि दोषोंसे मन क्यों नहीं निग्रहीत होता और शरीर कैसे निग्रहीत होता है इस विषयको हे परमेश्वर ! कहो ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे वसिष्ठ ! इस ब्रह्माण्डके कोशमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो शुद्ध पुरुषार्थसे प्राणियोंको न प्राप्त हो, अर्थात् वरशापादिके प्रबल होनेपर अभिलषित पदार्थ सिद्ध हो सकता है ॥ ८ ॥

आब्रह्मस्थावरांतंचसर्वदासर्वजातयः ॥ सर्वएवजगत्यस्मिन्द्विशरीराःशरीरिणः ॥ ९ ॥ एकंमनःश रीरंतुक्षिप्रकारिसदाचलम् ॥ अकिंचित्करमन्यत्तुशरीरंमांसनिर्मितम् ॥ १० ॥ तत्रमांसमयःकायः सर्वस्यैवचसंगतः ॥ सर्वैराक्रम्यतेशापैस्तथाविद्यादिसंचयैः ॥ ११ ॥ मूकप्रायोह्यशक्तोसौदीनःक्षणवि नश्वरः ॥ पद्मपत्रांबुचपलोदैवादिविवशस्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे लेके स्थावरान्त सम्पूर्ण जितनी जाति हैं वे उनमें संपूर्ण शरीर धारियोंकी इस जगत्‌में दो २ शरीर होतेहैं ॥ ९ ॥ एक शरीर तो शीघ्र कार्य्य करनेवाला, और सदा अचल मन है और दूसरा अकिंचित्कर मां-

ससे बनाहुआ यह देह है ॥ १० ॥ उन दोनोंमेंसे मांसमय जो शरीर है वह सबको प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त है और वह सब प्रकारके शापोंसे तथा कृत्या अभिचार आदि विद्या तथा शस्त्र विषादिके समूहोंसे आक्रमण किया जाता है ॥ ११ ॥ और यह मांसमय शरीर प्रायः मूक, असमर्थ, दीन, क्षणविनाशी, कमलके पत्तेपर जलके समान चंचल, और दैव तथा राजा आदिके कारण विवश स्थितिवाला है ॥ १२ ॥

मनोनामद्वितीयोयंकायःकायवतामिह ॥ सआयत्तोपिनायत्तोभूतानांभुवनत्रये ॥ १३ ॥ पौरुषंस्वमवष्ट भ्यधैर्यमालंब्यशाश्वतम् ॥ यदितिष्ठत्यगम्योसौदुःखानांतदनिंदितः ॥ १४ ॥ यथायथासौयततेमनोदे होहिदेहिनाम् ॥ तथातथासौभवतिस्वनिश्चयफलैकभाक् ॥ १५ ॥ सफलोमांसदेहस्यनकश्चित्पौ रुषक्रमः ॥ मनोदेहस्यसफलंसर्वमेवस्वचेष्टितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और दूसरा शरीर तीनों लोकमें सम्पूर्ण शरीर धारियोंको मन है वह स्वतंत्र भी और अस्वतन्त्र भी है ॥१३॥ यदि वह पुरुषार्थको ग्रहण करके और नित्य धैर्य्यका आलम्बन करके स्थित रहै तो दुःखके कारणोंसे अदूषित और दुःखोंसे अनाक्रमणीय वह मनरूप शरीर रहता है ॥ १४ ॥ प्राणियोंका मनरूपी यह शरीर जैसा २ प्रयत्न करता है वैसा २ अपने निश्चयके अनुसार फलका भागी होता है ॥ १५ ॥ मांसमय देहका कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं होता, और मनरूपी देहको चेष्टित सब कुछ सफल होता है ॥ १६ ॥

पवित्रमनुसंधानंचेतःस्मरतिसर्वदा ॥ निष्फलास्तत्रशापाद्याःशिलायामिवसायकाः ॥ १७ ॥ पतत्वंभ सिवन्हौवाकर्दमेवाशरीरकम् ॥ मनोयदनुसंधत्तेतदेवाप्रोतितत्क्षणात् ॥ १८ ॥ पुरुषातिशयःसर्वःसर्व भावोपमर्दने ॥ ददात्यविघ्नेनफलंमनोहिमनसोमुने ॥ १९ ॥ पौरुषेणबलेनांतश्चित्तंकृत्वाप्रियामयम् ॥ कृत्रिमेंद्रेणदुःखार्तिर्नदृष्टासामनागपि ॥ २० ॥

अर्थ—यदि यह मनरूपी देह सदा पवित्रकाही ध्यान और स्मरण करता है तो इसमें शाप आदि ऐसे निष्फल हैं जैसे पाषाणकी शिलामें बाण ॥ १७ ॥ यह मांसमय देह जलमें अग्निमें अथवा कर्दम (कीचड) में गिरै परन्तु मनरूपी शरीर जो कुछ अनुसन्धान करता है वह क्षणभरमेंही प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ हे मुने! शरीर आदि सब भाव उपमर्दित (कार्य्य करनेमें योग्यता रहित) होजानेपर भी पुरुषका अधिक प्रयत्न यदि सर्वथा सिद्ध होजाय तो विना विघ्न फल देता है और वह जो फल देता है वह मनही मनको फल देता है क्योंकि पौरुष भी मनरूपही है ॥१९॥ देखो पौरुष (मन) केवल अपने आत्मामें चित्तको प्रियामय करके कृत्रिम इन्द्रने वह दुःखकी पीडा किंचित् मात्र भी नहीं देखी ॥ २० ॥

पौरुषेणमनःकृत्वानीरागंविगतज्वरम् ॥ मांडव्येनजिताःक्लेशाःशूलप्रांतेपितिष्ठता ॥ २१ ॥ अंधकूप स्थितेनापिमानसैर्यज्ञसंचयैः ॥ ऋषिणादीर्घतपसासंप्राप्तंवैबुधंपदम् ॥ २२ ॥ इंदुपुत्रैर्नरैरेवपुरुषाध्य वसायतः ॥ ध्यानेनब्रह्मताप्राप्तासामयापिनखंड्यते ॥ २३ ॥ अन्येपिसावधानायेधीराःसुरमहर्षयः ॥ चि त्तात्स्वमनुसंधानंनत्यजंतिमनागपि ॥ २४ ॥

अर्थ—पौरुषसेही अपने मनको राग सन्ताप रहित करके माण्डव्य ऋषि शूलके अग्रभागमें स्थित रहते भी सम्पूर्ण क्लेशोंको जीत लिया ॥ २१ ॥ अन्धकूपमें स्थित भी दीर्घतपा[1] ऋषि मानस यज्ञसमूहोंके करनेसे इन्द्रपदवीको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ देखो इन्दु ब्राह्मणके पुत्र सामान्य मनुष्य होके भी पुरुषार्थसे मनके प्रतापसे ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त किया उसका खण्डन मैं भी नहीं कर सकता ॥ २३ ॥ अन्य भी जो सावधान धीर पुरुष देवता अथवा महर्षि लोग हैं वे चित्तसे अपनी उपासना वा ज्ञानका त्याग नहीं करते ॥ २४ ॥

आधयोव्याधयश्चैवशापाःपापदृशस्तथा ॥ नखण्डयंतितच्चित्तंपद्मघाताःशिलामिव ॥ २५ ॥ येचापि खण्डिताःकेचिच्छापाद्यैराधिसायकैः ॥ स्वविवेकाक्षमंतेषांमनोमन्येपिपौरुषम् ॥ २६ ॥ नकदाचन संसारेसावधानमनामनाक् ॥ स्वप्नेपिकश्चिद्दृश्येवादोषजालैःखिलीकृतः ॥ २७ ॥ मनसैवमनस्तस्मा त्पौरुषेणपुमानिह ॥ स्वकमेवस्वकेनैवयोजयेत्पावनेपथि ॥ २८ ॥

अर्थ—ध्येय पदार्थमें एकाग्र चित्तको मानस वा शारीरिक रोग, शाप, और पापदृष्टि राक्षस आदि भी ऐसे नहीं खण्डन कर सकते जैसे कमलके प्रहार शिलाको ॥ २५ ॥ और जो नहुष सौदास आदिक शापआदि बाणोंसे खण्डित हुये उनके चित्तको पुरुषार्थमें अदृढ और उपासना वा ज्ञानमें असमर्थ मैं मानता हूं ॥२६॥ और इस संसारमें जो साव-

(१) दीर्घतपा ऋषि यज्ञ करनेकी इच्छासे यज्ञकी सामग्री लेनेको निकल तब अन्धकूपमें गिरगये वहांपर मानसयज्ञ किया उनसे इन्द्र प्रसन्न होके कूपसे निकालकर अपने परमपद प्राप्त किया ॥

धान चित्त है वह स्वप्न अथवा जाग्रतमें भी दोषके समूहोंसे भी खण्डित नहीं होता ॥ २७ ॥ इसलिये मनुष्योंको उचित है कि पुरुषार्थसे अपनेही मनसे अपने मनको पवित्र मार्गमें लगावे ॥ २८ ॥

प्रतिभातंयदेवास्ययथाभूतंभवत्यलम् ॥ क्षणादेवमनःपीनंबालवेतालवन्मुने ॥ २९ ॥ प्रतिभासस्यानुपदंप्राक्तनींस्थितिमुज्झति ॥ कुलालकर्मानुपदंघटोमृत्पिण्डतामिव ॥ ३० ॥ प्रतिभासार्थतामेतिक्षण देवमनोमुने ॥ स्पंदमात्रात्मकंवारियथातुंगतरंगताम् ॥ ३१ ॥ अनुसंधानमात्रेणसूर्यबिंबेपियामिनीम् ॥ मनःपश्यत्यशुद्धाक्षश्चंद्रबिंबेद्वितामिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने ! किंचित् स्फुरित वस्तु यदि मनमें निरूढ होके स्थूलताको प्राप्त हुआ तो वह क्षणभरमेंही बालकके वेतालके सदृश सत्यके समान प्रत्यक्ष होजाता है ॥ २९ ॥ यदि यह कहो कि पूर्व मनुष्यादिकी भावनाकी दृढतासे इन्दुके पुत्रोंका मनुष्य रूपसे स्थित क्यों न हुई सो नहीं क्यों कि उत्तर कालमें दृढ वासनाकी प्रबलतासे प्रतिभास (दृढ भावना) के अनन्तर मन अपनी पूर्वस्थितिको ऐसे त्यागता है जैसे कुलालकी क्रियाके अनन्तर घट अपनी मृत्पिण्ड दशाको त्यागता है ॥ ३० ॥ कदाचित् कोई यह शङ्का करै कि पूर्व वासनाके नष्ट करनेमें उपासनादि क्षीण होगये तो अन्य कार्य्य करनेमें समर्थ कैसे होता है सो नहीं क्यों कि हे मुने ! जैसे गति शीतजल क्षणभरमें तरंग रूपताको प्राप्त होता है ऐसेही मन अपने अनुसन्धानके उत्तरही ध्येय पदार्थ रूप क्षणभरमें होजाता है ॥ ३१ ॥ तुमारे प्रलयकालमें ऐन्दवोंकी सृष्टि क्यों कर हुई यह शङ्का भी नहीं क्यों कि अनुसन्धान (दृढ भावना) मात्रसे यह मन सूर्य्यके बिंबमें रात्रिको ऐसे देखताहै जैसे अशुद्ध नेत्र (आंखके बीचमें अंगुली आदि लगाने) वाला दो चन्द्रमाको॥३२॥

यत्पश्यतितदेवाशुफलीभूतमिदंमनः ॥ सहहर्षविषादाभ्यांभुंक्तेतस्मात्तदेवतत् ॥ ३३ ॥ प्रतिभानुपदंचेतश्चंद्रेप्यग्निशिखाशतम् ॥ दृष्ट्वादाहमवाप्नोतिदग्धंचपरितप्यते ॥ ३४ ॥ प्रतिभानुपदंचेतःक्षारेपिहिरसायनम् ॥ दृष्ट्वापीत्वापरांतृप्तिंयातिवल्गतिनृत्यति ॥ ३५ ॥ प्रतिभानुपदंचेतोव्योमन्यपिमहावनम् ॥ दृष्ट्वालुनातिलूत्वाचपुनरारोपयत्यलम् ॥ ३६ ॥ इत्थंयदेवपरिकल्पयतींद्रजालंक्षिप्रंतदेवपरिपश्यतितातचेतः ॥ नासज्जगन्नचसदित्यवगम्यनूनंलूनांदृशंविविधभेदवतींजहीहि ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

अर्थ—यह मन जो कुछ भावनासे देखता है वैसाही शीघ्र फलीभूत होजाता है और उसीको हर्ष वा विषाद के साथ भोगता है इस लिये जो मन कर्ता है वही भोगताहै ॥ ३३ ॥ अनुसन्धानके अनुसार यह चित्त चन्द्रमामें सैंकडों अग्निकी ज्वालाको देखता है देखके दाहको प्राप्त होता है और दग्ध होके सन्तप्त भी होताहै ॥ ३४ ॥ अपने अनुसन्धानके अनुसार यह चित्त ऊपर भूमिमें रसायन वा जल पाताहै और उसको देखके पीके अत्यन्त तृप्तिको प्राप्त होता है गर्जताहै और नाचताहै ॥ ३५ ॥ यह चित्त अपनी भावनाके अनुसार आकाशमें भी महावनको देखताहै और देखके फलपुष्पादिको तोडता वा वृक्षादि काटताहै और पुनः लगाताहै॥ ३६॥ हे प्रिय ! इस प्रकार यह चित्त जो कुछ इन्द्रजाल कल्पित करता है वही शीघ्र देखता है, यह जगत् न सत्हैं न असत्है ऐसा निश्चय रूपसे जानके अनेक भेद सहित परिच्छिन्न दृष्टिको त्यागो ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

ब्रह्मसे मन उत्पन्न हुआ और उस मनसे तैजस हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न हुये, और उनसे मोहसे अहंकार और अहंकारसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ यह विषय इस ९३ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिमेभगवतापूर्वमुक्तंतदेतदद्यतुभ्यंकथितम् ॥ १ ॥ तस्मादनाख्यानाद्ब्रह्मणः सर्वतःसर्वमनाख्यानमुत्पद्यतेस्वयमेवतद्घनतांप्राप्यमनःसंपद्यते ॥ २ ॥ तन्मनस्तन्मात्रकल्पनपूर्वकसन्निवेशंभवतिततस्तैजसःपुरुषःसंपद्यतेसोयंब्रह्मेत्यात्मनिनामकृतवान् ॥ ३ ॥ तेनरामयोयंपरमेष्ठीतन्मनस्तत्त्वंविद्धि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भगवान् ब्रह्माजीने यह मुझसे पूर्वकालमें कहाथा सो आज तुमसे मैंने कह दिया ॥ १ ॥ हे रामजी ! अव्याकृत नामरूप परमात्मासे चारों ओरसे सब कुछ नामरूप सम्बन्धके अयो-

ग्य सर्व वलनात्मक प्रपंच निर्विकल्प ज्ञानसे प्रकाशित उत्पन्न होता है वह स्वयं काल पाके संकल्प विकल्प रूप मनन शक्तिके उद्भवसे घनताको प्राप्त होके मन होजाता है ॥ २ ॥ वह मन सूक्ष्म भूतोंकी कल्पना पूर्वक स्वप्न शरीरके तुल्य वासनामय पुरुषाकार अवयव संस्थितिवाला होजाता है और उससे तेजःप्रधान समष्टिलिंग (सूक्ष्म) शरीरका उपहित पुरुष होजाता है सो यह पुरुष ब्रह्मा है इस प्रकार आत्मामें नाम किया ॥३॥ हे राम ! इस कारण यह जो परमेष्ठी ब्रह्मा है वह मनरूप होनेसे सब जगत्का कर्ता है ऐसा तुम जानो ॥ ४ ॥

समनस्तत्त्वाकारोभगवान्ब्रह्मासंकल्पमयत्वाद्यदेवसंकल्पयतितदेवपश्यति ॥ ५ ॥ ततस्तेनेयमविद्यापरिकल्पिताअनात्मन्यात्माभिमानमयीतितेनब्रह्मणागिरितृणजलधिमयमिदंक्रमेणजगत्परिकल्पितम् ॥ ६ ॥ इत्थंक्रमेणब्रह्मतत्त्वादियमागतासृष्टिरन्यतएवागतेयमितिलक्ष्यते ॥ ७ ॥ तस्मात्सर्वपदार्थानांत्रैलोक्योदरवर्त्तिनाम् ॥ उत्पत्तिब्रह्मणोरामतरंगाणामिवार्णवात् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह मनको तत्वके आकारवाले भगवान् ब्रह्मा संकल्परूप होनेसे जो कुछ संकल्प करता है वही देखता है ॥ ५ ॥ सिद्ध संकल्प होनेके कारण उसने यह अनात्मामें आत्माभिमान करानेवाली अविद्या कल्पित किया, इसी अविद्याकी कल्पनासे ब्रह्माजीने पर्वत, तृण, समुद्र आदिमय यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार चित्तरूप ब्रह्मसे उत्पन्न भी यह सृष्टि नैय्यायिकादि यह समझते हैं कि अन्य जड प्रधान परमाणु आदिसे उत्पन्न हुई है ॥७॥ इनमें एकका अनेक कारण माननेसे परमाणु कारण वादयुक्त नहीं है कर्ताके विना जगत्की विचित्र रचना नहीं होसकती और असंग उदासीन पुरुष कर्ता नहीं बन सकता अतः प्रधान कारण वादयुक्त नहीं चेतन जडरूपसे परिणत नहीं होसकता इस लिये विज्ञान कारण वादयुक्त नहीं है और शून्यकी कारणता कहीं दृष्ट नहीं है अतएव शून्य कारण वादभी युक्तियुक्त नहीं है, सब पक्षोंमें दोष देखनेसे अन्यसे यह सृष्टि उत्पन्न नहीं है यह निश्चित होनेपर श्रुति प्रमाणसे तथा लाघवसे अनिर्वचनीय मायाशक्तिक ब्रह्मविवर्त वादही शेष रहा इस अभिप्रायसे उपसंहार करते हैं कि हे रामजी ! त्रैलोक्यके उदरमें जितने पदार्थ हैं उन सबकी उत्पत्ति उसी ब्रह्मसे ऐसे होती है जैसे समुद्रसे तरंगोंकी ॥ ८ ॥

यएवमनुत्पन्नेजगतियाब्रह्मणश्चिन्मनोरूपिणीसाहंकारेपरिकल्प्यब्रह्मब्रह्मतामेति ॥ ९ ॥ यास्त्वन्याश्चिच्छक्तयःसर्वशक्तेरभिन्नाएवकल्प्यंते ॥ १० ॥ जगतिस्फारतांनीतेपितामहरूपेणमनसासमुल्लसंति ॥ ११ ॥ एतेसहस्रशोपिपरिवर्त्तमानजीवाउच्यंते ॥ १२ ॥

अर्थ—जो उत्पत्तिका प्रकार ऐसाहै उसमें विवर्तवाद होनेके कारण अनुत्पन्न जगत्में जो ब्रह्मकी चित् मनोरूपिणी शक्ति है वह अहंकार समष्टि उपाधिमें ब्रह्म प्रविष्ट ऐसाहै ऐसी कल्पना करके हिरण्यगर्भ रूपको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ और जो व्यष्टि अहंकार उपाधिकी उपहित चिदाभास शक्ति हैं वे सब सर्वशक्तिमान् ब्रह्मसे अभिन्नरूप हैं ॥ १० ॥ यह जगत् जब स्थूलताको प्राप्त होताहै तो वे चिदाभास शक्तियां पितामह (ब्रह्मा) रूप समष्टि मनोभावसे प्रथम शोभित होती हैं ॥ ११ ॥ और ये सहस्रशः (अनन्त) विवर्त भावको प्राप्त जीव कहलाते हैं ॥ १२ ॥

तेभ्युत्थिताएवचिन्नभसोनभसितन्मात्रैरावलितागगनपवनांतर्वर्त्तिनश्चतुर्दशविधायेभूतजातमध्यतयाभ्यासेतिष्ठंतितस्याएवप्राणशक्तिद्वारेणप्रविश्यशरीरंस्थावरंजंगमंवापिबीजतांगच्छंति॥१३॥तदनुयोनितोजगतिजायंतेतदनुकाकतालीययोगेनोत्पन्नवासनाप्रवाहानुरूपकर्मफलभागिनोभवंति॥१४॥ततः कर्मरज्जुभिर्वासनावलिताभिर्बद्धशरीराभ्रमंतःप्रोत्पतंतिनिपतंतिच ॥१५॥ इच्छैवैताभूतजातयः॥१६॥

अर्थ—और वे जीव चिदाकाशसे निकलकर मायाकाशमें प्रपञ्चभूत मात्र उपाधियोंसे मिलित होते हुये आकाशस्थ पवनके गमनागमन भेदसे भिन्न जो वातस्कन्धहै उसके मध्यवर्ती जो चतुर्दश लोकहैं उन लोकोंमें जिस जातिके प्राणियोंके समूहके मध्यवर्त्ती होके जैसी वासना और कर्मके अभ्यासमें जो जीव स्थित रहते हैं वे जीव उसी प्राणि जातिके समूहमें प्राणशक्ति द्वारा स्थावर वा जंगम शरीरमें प्रवेश करके वीर्य्य औ रक्त आदिरूप बीजताको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ उसके पश्चात् योनिद्वारा इस जगत्में उत्पन्न होतेहैं, इसके पश्चात् काकतालीय न्यायके सम्बन्धसे उत्पन्न जो वासना प्रवाह उसके अनुसार अपने कर्मफलके भागी होते हैं ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् शुभ वा अशुभ वासनासे संयुक्त पुण्य अथवा पाप कर्मरूपी रज्जु (रस्सी) से बद्ध लिंग (सूक्ष्म) शरीरको धारण किये हुये कभी उत्तम लोकमें जाते हैं कभी उनसे गिरते हैं और कभी नरकमें जाते हैं ॥ १५ ॥ कर्म तथा वासनाका बीज कामराग ही है और कामनामय सब जीव हैं इस लिये सम्पूर्ण प्राणियोंकी जाति इच्छारूपही है और श्रुति भी कहती है " काममय एवायं पुरुषः " (यह पुरुष कामनामय है) ॥ १६ ॥

काश्चिज्जनसहस्रांताःपतंतिवनपर्णवत् ॥ कर्मवात्यापरिभ्रांतालुठंतिगिरिकुक्षिषु ॥१७॥ अप्रमेयभवाः काश्चिचित्सत्ताज्ञानमोहिताः ॥ चिरजाताभवंतीहबहुकल्पशतान्यपि ॥ १८ ॥ काश्चित्कतिपयातीता मनोरमभवांतराः ॥ विहरंतिजगत्यस्मिन्शुभकर्मपरायणाः ॥ १९ ॥ काश्चिद्विज्ञातविज्ञानाःपरमेवप दंगताः ॥ वातोद्भूताःपयोमध्यंसामुद्राइवबिंदवः ॥ २० ॥

अर्थ—कोई प्राणियोंकी जाति अर्थात् उन जातियोंके जीव सहस्रों जन्मतक जब तत्वज्ञान न हो तबतक वनके पत्तेके समान संसारमें गिरतेहैं और वासनाके अनुसार कर्मरूपी महावायुसे परिभ्रान्त (घुमायेहुये) वन पर्वतके उदरमें लोटते हैं जब किसी जन्ममें आत्मज्ञानहुआ तो मुक्त होतेहैं ॥ १७ ॥ और कोई २ जाति (प्राणि जाति) चित् सत्ताके अज्ञानसे मोहित अनन्त जन्मतक दीर्घ कालतक इस संसारमें सैकड़ों कल्पतक जन्ममरण धारण करके हुआ ही करतेहैं ॥ १८ ॥ और कोई २ प्राणिजाति कुछ अरमणीय (उष्ट्र) जन्मोंको बिताकर वर्तमान जन्ममें शुभ कर्ममें परायण होके इस जगत्में विहार करते हैं वे थोडेही जन्मोंमें मोक्षपदवीको प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ और कोई तो तत्वज्ञानको प्राप्त होके परम पदमें ऐसे प्राप्त हुये जैसे वायुसे उछाले हुये समुद्रके जलबिन्दु जलके बीचमें ॥ २० ॥

उत्पत्तिःसर्वजीवानामितीहब्रह्मणःपदात् ॥ आविर्भावतिरोभावभंगुराभवभाविनी ॥२१॥ वासना विषवैषम्यवैधुर्यज्वरधारिणी ॥ अनन्तसंकटानर्थकार्यसत्कारकारिणी ॥२२॥ नानादिग्देशकालांतशै लकंदरचारिणी ॥ रचितोत्तमवैचित्र्यविहितासंभ्रमासती ॥ २३ ॥ एषाजगज्जांगलजीर्णवल्लीसम्यक्स मालोककुठारकृत्ता ॥ वल्लीवविक्षुब्धमनःशरीराभूयोनसंरोहतिरामभद्र ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे उत्पत्तिदर्शनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार सब जीवोंकी उत्पत्ति ब्रह्मसेही होती है, और आविर्भाव तथा तिरोभावसे क्षणभंगुर अनेक प्रकारके जन्मोंसे शोभायमान ॥ २१ ॥ वासनारूपी विषकी विषमतासे व्याकुलता रूपी ज्वरको धारण करनेवाली अनन्त संकट और अनर्थके जो कार्य्य हैं उनके सत्कार करनेवाली ॥ २२ ॥ अनेक दिशा देश और कालमें तथा नानाप्रकारकी कन्दरा (गुफा) और पर्वतोंमें विचरनेवाली,और उत्तम रचनाकी विचित्रतासे विधान कियागयाहै सब ओरसे संभ्रम जिसका ऐसी ॥ २३ ॥ यह विक्षेपसे पूर्ण मनरूपी शरीरवाली संसाररूपी जंगलकी प्राचीन लता सम्यक् ज्ञानरूपी कुठारसे काटी हुई सामान्य लताके समान पुनः हे प्रियरामजी ! नहीं जामती ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पति-प्रकरणे उत्पत्तिदर्शनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

उपाधि तथा गुणकी विचित्रतासे कोई दीर्घ कालमें कोई अल्पकालमें मोक्ष जानेवाली १२ बारह प्रकारकी भिन्न २ जातियां इस ९४ के सर्गमें वर्णन कीगई हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उत्तमाधममध्यानांपदार्थानामितस्ततः ॥ उत्पत्तीनांविभागोयंशृणुवक्ष्यामि राघव ॥ १ ॥ इदंप्रथमतोत्पन्नोयोस्मिन्नेवहिजन्मनि ॥ इदंप्रथमतानाम्नीशुभाभ्याससमुद्भवा ॥ २ ॥ शुभलोकाश्रयासाचशुभकार्यानुबंधिनी ॥ साचेद्विचित्रसंसारवासनाव्यवहारिणी ॥ ३ ॥ भवैःकति पयैर्मोक्षमित्युक्तागुणपीवरी ॥ तादृक्फलप्रदानैककार्याकार्यानुमानदा ॥ ४ ॥ तेनरामससत्वेतिप्रोच्य तेसाकृतात्मभिः ॥ अथचेचित्रसंसारवासनाव्यवहारिणी ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—सात्विक राजस और तामस भेदसे उत्तम मध्यम और अधम जो जीवोंकी उपाधि रूप पदार्थ हैं उनकी इधर उधर भुवनों जो उत्पत्ति पूर्व सर्गमें कहा है उनका यह विभागहै उसको मैं कहूंगा आप सुनिये ॥ १ ॥ इदं प्रथमता १ गुणपीवरी २ ससत्वा ३ अधमसत्वा ४ अत्यन्ततामसी ५ राजसी ६ राजससात्विकी ७ राजसराजसी ८ राजसतामसी ९ राजसात्यन्ततामसी १० तामसी ११ तामससत्वा १२ तमोराजसी १३ अत्यन्ततामसी इन १४ भेदोंमें अन्त्य दो भेदोंका ५ तथा ९ में अन्तर्भाव है इसलिये १२ भेद शेष रहे उनमें प्रथम जीवजातिका भेद दिखलाते हैं जो जीव पूर्वकल्पमें अन्तके जन्म शमदम आदि सर्वगुण साधन सम्पन्न होनेपर भी श्रवण आदिके अलाभसे वा बलवान् विघ्न ज्ञान न उत्पन्न हुआ और इस कल्पमें प्रथम ही जन्ममें शमदमादि सम्पत्ति सहित प्रथम जन्ममें ही ज्ञान योग्य होगया उसकी वह जाति पूर्व कल्पके शुभ अभ्याससे उत्पन्न "इदं प्रथमता" कहलाती है

अर्थात् इस जन्ममें वह मुक्तिका भागी है ॥ २ ॥ वह जीवजाति यदि पूर्वजन्मके वैराग्यादि की मन्दतासे शुभ लोककी इच्छासे उपासनादि करनेवाली, शुभ कर्मसे मिलित विचित्र संसारकी वासनासे भोग व्यवहार करनेवाली ॥ ३ ॥ कुछ १० या ९ जन्मोंसे मोक्ष पदको प्राप्त करनेवाली है इसलिये "गुणपीवरी" (उत्तम गुणोंसे स्थूल) कहीगई है, और हे रामजी ! उन २ प्रकारके जो सुख तथा दुःखोंसे पुण्य पापका अनुमान करानेवालीहै और १०० जन्मसे सत्वगुणकी वृद्धिसे भागी होगी इसलिये उसको "ससत्वा" बुद्धिमानोंने कहाहै और वही यदि विचित्र संसारकी वासनासे व्यवहार करनेवाली हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

अत्यंतकलुषाजन्मसहस्रैर्ज्ञानभागिनी ॥ तादृक्फलप्रदानैकधर्माधर्मानुमानदा ॥ ६ ॥ असावधमसत्वेतितेनसाधुभिरुच्यते ॥ सैवसंख्यातिगानंतजन्मवृंदादनंतरम् ॥ ७ ॥ संदिग्धमोक्षायदितत्प्रोच्यतेत्यंततामसी ॥ अनद्यतनजन्मातुजातिस्तादृशकारिणी ॥ ८ ॥ योत्पत्तिर्मध्यमापुंसोरामद्वित्रिभवांतरा ॥ तादृक्कार्यात्तुसालोकेराजसीराजसत्तम ॥ ९ ॥

अर्थ—तथा अत्यन्त मलिन हो और सहस्रों जन्ममें ज्ञानकी भागिनी हो, और सुख दुःख रूप फलोंसे धर्म अधर्मका अनुमान कराने वाली हो ॥ ६ ॥ इस जातिको साधुलोग "अधमसत्वा" कहतेहैं और उसीप्रकार लक्षण सहित यदि अगणित अनन्त जन्मोंके समूहके पश्चात् भी अध्यात्मशास्त्रकी विमुखतासे ॥ ७ ॥ मोक्षपानेमें इस कल्पमें भी सन्देह हो तो यह "अत्यन्ततामसी" कही जाती है, और जो पूर्वकल्पकी वासनाके अनुसार वैसाही विचित्र कर्म करने वाली हो ॥ ८ ॥ और हे राजश्रेष्ठ प्रिय रामजी ! वह उत्पत्ति मध्यम हो तथा दो तीन जन्मोंमें मनुष्यादि रूप हो और वैसाही कार्य्योंसे सर्ग नरकादिकमें प्राप्त करने वाली हो तथा जिसके मोक्ष पानेमें सन्देह हो उसको लोकमें " राजसी " कहतेहैं ॥ ९ ॥

अविप्रकृष्टजन्मापिसोच्यतेकृतबुद्धिभिः ॥ साहितन्मृतिमात्रेणमोक्षयोग्यामुमुक्षुभिः ॥ १० ॥ तादृक्कार्यानुमानेनप्रोक्ताराजससात्विकी ॥ सैवचेदितरैरल्पैर्जन्मभिर्मोक्षभागिनी ॥ ११ ॥ तत्तादृशीहिसातज्ज्ञैःप्रोक्ताराजसराजसी ॥ सैवजन्मशतैर्मोक्षभागिनीचेच्चिरैषिणी ॥ १२ ॥ त्वदुक्तातादृगारंभासज्झी राजसतामसी ॥ सैवसंदिग्धमोक्षाचेत्सहस्रैरपिजन्मनाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—और रजोगुणके दुःखोंसे वैराग्यादिकी संपत्तिसे जिसका ज्ञानप्राप्ति होने योग्य जन्म समीपहै, तथा उसी जन्ममें मरण मात्रसे जो मोक्षके योग्य होजाती है उसको निश्चितबुद्धि मुमुक्षुओंने ॥ १० ॥ मोक्ष योग्य कार्य्यों के अनुमानसे " राजससात्विकी " कहाहै और वही यदि मनुष्यके अतिरिक्त यक्षगन्धर्वादिके थोडेही जन्मोंमें मोक्ष भागिनी हो ॥ ११ ॥ इस प्रकारकी जातिको उसके ज्ञाताओंने " राजसराजसी " कहा है और वही यदि सैंकडों जन्मोंसे चिरकालकी अभिलाषावाली मोक्ष भागिनी हो ॥ १२ ॥ और वैसेही (दीर्घकालमें मोक्षके योग्य) कार्य्योंको आरम्भ करने वाली हो उसको महात्माओंने " राजसतामसी " कहा है, और उसी जातिको यदि सहस्रों जन्मोंमें भी मोक्षका सन्देह हो ॥ १३ ॥

तदुक्तातादृशारंभाराजसात्यंततामसी ॥ भुक्तजन्मसहस्रातुयोत्पत्तिर्ब्रह्मणोनृणाम् ॥ १४ ॥ चिरमोक्षाहिकथितातामसीसामहर्षिभिः ॥ तज्जन्मनैवमोक्षस्यभागिनीचेत्तदुच्यते ॥ १५ ॥ तज्ज्ञैस्तामससत्वेतितादृशारंभशालिनी ॥ भवैःकतिपयैर्मोक्षभागिनीचेत्तदुच्यते ॥ १६ ॥ तमोराजसरूपेतितादृशैर्गुणबृंहितैः ॥ पूर्वजन्मसहस्राढ्यापुरोजन्मशतैरपि ॥ १७ ॥

अर्थ—और वैसेही कार्य्योंका आरंभ करै उस जातिको " राजसात्यन्ततामसी " कहते हैं और जो उत्पत्ति कल्पके आदिमें हिरण्यगर्भके आविर्भावको सहस्रों वार भोग चुकी है ॥ १४ ॥ और चिरकाल अर्थात् दूसरे कल्पमें मोक्ष होगी उसको महर्षियोंने " तामसी " कहा है और उसी जन्ममें यदि मोक्षकी भागिनी हो ॥ १५ ॥ और उसी तामस प्रथम जन्ममें मोक्षकी भागिनी तथा मोक्षके योग्य कार्य्योंके आरंभसे शोभायमान हो उसे उसके ज्ञाताओंने " तामससत्वा " कहा है तामस जन्ममें प्रल्हाद कर्कटी आदिको ज्ञानकी सिद्धि दृष्ट है और कुछ जन्मोंके अनन्तर यदि मोक्ष भागिनी हो ॥ १६ ॥ १७ ॥

मोक्षायोग्याततःप्रोक्तातज्ज्ञैस्तामसतामसी ॥ पूर्वंतुजन्मलक्षाढ्याजन्मलक्षैःपुरोपिचेत् ॥ १८ ॥ संदिग्धमोक्षातदसौप्रोच्यतेत्यंततामसी ॥ सर्वाएताःसमायांतिब्रह्मणोभूतजातयः ॥ १९ ॥ किंचित्प्रचलिताभोगात्पयोराशेरिवोर्मयः ॥ सर्वाएवविनिष्क्रांताब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २० ॥ स्वतेजःस्पंदिताभोगाद्दीपादिवमरीचयः ॥ सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोभूतपंक्तयः ॥ २१ ॥

अर्थ—तथा तमोगुण और रजोगुणके प्रधान गुणोंसे वर्द्धित न हो उसको "तमोराजसी" कहते हैं और पूर्व सहस्रों जन्मोंसे पूर्ण तथा आगामी सैकडों जन्मोंमें भी मोक्षके अयोग्य हो इस कारणसे उसको "तामसतामसी" कहते हैं और पूर्व लाखों जन्मसे पूर्ण तथा आगामी भी लाखों जन्मोंमें भी ॥ १८ ॥ मोक्ष पानेमें सन्देह हो उसको "अत्यन्ततामसी" कहते हैं ये सब प्राणियोंकी जाति उपाधिद्वारा ब्रह्मसेही उत्पन्न हुई हैं ॥ १९ ॥ किंचित् चलायमान वेगवाले समुद्रसे जैसे तरंग उत्पन्न होते हैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण जीवराशि उत्पन्न हुये हैं ॥ २० ॥ जैसे अपने तेजसे गतिशील शरीरवाले दीपसे किरण (प्रकाश) उत्पन्न होते हैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण भूतपङ्क्तियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

स्वमरीचिबलोद्भूताज्वलिताग्नेःकणाइव ॥ सर्वाएवोत्थितास्तस्माद्ब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २२ ॥ मंदारमंजरीरूपाश्चंद्रबिंबादिवांशवः ॥ सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोदृश्यदृष्टयः ॥ २३ ॥ यथाविटपिनश्चित्रास्तद्रूपाविटपश्रियः॥ सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोजीवपंक्तयः ॥२४॥ कटकांगदकेयूरयुक्तयःकनकादिव ॥ सर्वाएवोत्थितारामब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २५ ॥

अर्थ—जैसे प्रज्वलित अग्निसे उसीकी किरणके बलसे उसके स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं ऐसेही उस ब्रह्मसे जीवराशि आविर्भूत होती हैं ॥ २२ ॥ मन्दारकी लताके समान चन्द्रमाके बिम्बसे जैसे किरण उत्पन्न होती हैं ऐसेही सम्पूर्ण दृश्यकी पंक्ति ब्रह्मसे प्रकट हुई हैं ॥ २३ ॥ जैसे वृक्षसे चित्रविचित्र शाखाओंकी शोभा उत्पन्न होती है ऐसेही ब्रह्मसे सब जीवपंक्तियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्णसे कटक (कडा) केयूरादिके आकार उत्पन्न होते हैं ऐसेही हे रामजी ! ब्रह्मसे सम्पूर्ण जीवराशि उत्पन्न हुई हैं ॥ २५ ॥

निर्झरादमलोद्योतात्पयसामिवबिंदवः ॥ अजस्यैवाखिलारामभूतसंततिकल्पनाः ॥२६॥ आकाशस्यघटस्थालीरंध्राकाशादयोयथा ॥ सर्वाएवोत्थितालोककलनाब्रह्मणःपदात् ॥ २७ ॥ सीकरावर्त्तलहरीबिंदवःपयसोयथा ॥ सर्वाएवोत्थितारामब्रह्मणोदृश्यदृष्टयः ॥ २८ ॥ मृगतृष्णातरंगिण्योयथाभास्करतेजसः ॥ सर्वादृश्यदृशोद्रष्टुर्व्यतिरिक्तानरूपतः ॥ २९ ॥

अर्थ—निर्मल प्रकाशवाले झरनेसे जैसे जलके बिन्दु उत्पन्न होते हैं ऐसेही अजन्मा परमात्मासे सब प्राणियोंकी कल्पना हुई है ॥ २६ ॥ जैसे घट वा स्थाली (बटलोई) के छिद्रगत आकाश (घटाकाश वा स्थाली आकाशादि) सब महदाकाशसेही प्रकटहैं ऐसेही ब्रह्मसेही सब लोकोंकी कल्पना निकलीहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जैसे जलकण भँवरे, तरंग और बिन्दु सब जलसेही उत्पन्न होतीहैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण दृश्यकी प्रतीति हुई है ॥ २८ ॥ जैसे सूर्यके तेजसे मृगतृष्णाकी नदियां पृथक् नहीं हैं ऐसेही द्रष्टाके रूपसे दृश्यकी दृष्टि अलग नहीं है ॥ २९ ॥

शीतरश्मेरिवज्योत्स्नास्वालोकइवतेजसः ॥ एवमेताह्निभूतानांजातयोविविधाश्चयाः ॥ ३० ॥ यस्मादेवसमायांतितस्मिन्नेवविशंतिच ॥ काश्चिज्जन्मसहस्रांतेजातयश्चिरकालिकाः ॥ काश्चित्कतिपयातीतजन्मरूपाव्यवस्थिताः ॥ ३१ ॥ इत्थंजगत्सुविविधेषुविचित्ररूपास्तस्येच्छयाभगवतोव्यवहारवत्यः ॥ आयांतियांतिनिपतंतितथोत्पतंतिरूपश्रियःकणघटाइवपावकोत्थाः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मणःसर्वमुत्पद्यत इति कथनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जैसे चन्द्रमासे चन्द्रिका (चांदनी) तेजसे प्रकाश उत्पन्न होते हैं ऐसेही अनेक प्रकारकी प्राणियोंकी जाति ॥ ३० ॥ जिस परमात्मासे प्रकट होती हैं और उसीमें उपाधिके नाशद्वारा लीन होती हैं कोई जाति चिरकालमें सहस्रों जन्ममें लीन होती हैं और कोई कुछ बीतेहुये जन्मसे व्यवस्थित है इन पूर्वोक्त दृष्टान्तोंसे तथा इस उपसंहारसे यह तात्पर्य्य है कि जगत् तथा ब्रह्मसे अभेद है और उपाधिसे भेदप्रतीति मायासे है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार नाना प्रकारके ब्रह्माण्डोंमें चित्रविचित्र रूप व्यवहार करनेवाली तथा उपाधिरूपही शोभा है जिनकी ऐसी अनेक जविजातियां उसी परमात्माकी इच्छासे आती हैं जाती हैं, तथा नीचलोकोंमें स्वर्गादिसे गिरती है और नरकादिमें भी गिरती है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मणःसर्वमुत्पद्यत इति कथनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

अज्ञानी जनोंके बोधके लिये न कि यथार्थमें क्रिया तथा कर्ताकी साथ उत्पत्ति होती है इसका समर्थन इस ९५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अभिन्नौकर्मकर्तारौसममेवपरात्पदात् ॥ स्वयंप्रकटतांयातौपुष्पामोदौतरोरिव ॥ १ ॥ सर्वसंकल्पनामुक्तेजीवाब्रह्मणिनिर्मले ॥ स्फुरंतिविततेव्योम्निनीलिमेवाज्ञचक्षुषः ॥ २ ॥ अप्रबुद्धजनाचारोयत्रराघवदृश्यते ॥ तत्रब्रह्मणउत्पन्नाजीवाइत्युक्तयःस्थिताः ॥३॥ संप्रबुद्धजनाचारेवकुमेतन्नशोभनम् ॥ यद्ब्रह्मणइदंजातंनजातंचेतिराघव ॥ ४ ॥

अर्थ —श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! क्रिया और कर्ता दोनों एकरूपहैं और ये दोनों पर पदसे ऐसे प्रकट हुये जैसे वृक्षसे पुष्प और सुगन्ध साथ उत्पन्न हों ॥ १ ॥ सब कल्पनासे रहित निर्मल ब्रह्ममें जीव अज्ञ दृष्टिको ऐसे स्फुरित होते हैं जैसे आकाशमें नीलता ॥ २ ॥ हे राघव ! जहांपर अज्ञानी जीवोंका संचारहै वहांही ब्रह्मसे जीव उत्पन्न हुये यह कथन स्थित है ॥३॥ और जहां ज्ञानी जीव हैं वहां यह कथन नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्मसे यह जगत् उत्पन्न हुआ यह कथन नहींउत्पन्न इसके तुल्य है ॥ ४ ॥

काचिद्वाकलनायावन्ननीताराघवप्रथाम् ॥ उपदेश्योपदेशश्रीस्तावल्लोकेनशोभते ॥ ५ ॥ अतोभेददृशादीनामंगीकृत्योपदिश्यते ॥ ब्रह्मेदमेतेजीवावैवेतिवाचामयंक्रमः ॥ ६ ॥ इतिदृष्टोनिरासंगाद्ब्रह्मणोजायतेजगत् ॥ तज्जंतदेवतद्धेतुगतंद्वरवबोधतः ॥ ७ ॥ मेरुमंदरसंकाशाबह्वोजीवराशयः ॥उत्पत्त्योत्पत्त्यसंलीनास्तस्मिन्नेवपरेपदे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक कोई द्वैतकी कल्पना प्रथा (रीति) को न मानलीजाय तबतक उपदेश्य (उपदेश देने योग्य) और उपदेशकी श्री शोभित नहीं होती ॥ ५ ॥ इसकारण भेददृष्टिसे दीन (शोचनीय) द्वैतकी कल्पनाको अंगीकार करके यह ब्रह्म है ये इससे उत्पन्न जीव हैं यह वाणीका क्रम उपदेश किया जाता है ॥ ६ ॥ यह कल्पनाका क्रम लोकमें देखागयाहै और असंग अद्वितीय ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न होताहै यह माननेपर जो उससे उत्पन्नहै उसका उपादान कारण वही है तथा वह (जगत्) ब्रह्मरूपही है क्योंकि उत्पत्तिके पूर्व उपादानमें स्थित तद्रूपही है और आविर्भावदशामें भी भ्रान्तिसे पृथक् भासता है ॥ ७ ॥ मेरु तथा मन्दराचल पर्वतके समान अनन्त जीवोंकी उपाधियां उत्पन्न हो २ कर उसी परपद (ब्रह्म) में लीन होजाती हैं ॥ ८ ॥

अथानंताःस्फुरंत्येतेजायमानाःसहस्रशः ॥ नानाःककुब्निकुंजेषुपादपेष्विवपल्लवाः ॥ ९ ॥ जीवौघाश्चोद्भविष्यंतिमधाविवनवांकुराः ॥ तत्रैवलयमेष्यंतिग्रीष्मेमधुरसाइव ॥ १० ॥ तिष्ठंत्यजस्रंकालेषुतएवान्येचभूरिशः ॥ जायंतेचप्रलीयंतेपरस्मिन्जीवराशयः ॥११॥ पुष्पामोदाविवाभिन्नौपुमान्कर्मचराघव ॥ परमेशात्समायातेतत्रैवविशतःशनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—और अनन्त सहस्र इस समय उत्पन्न होते हुये ऐसे भासमान हैं जैसे नाना दिशाओंके कुंजोंके वृक्षोंके पत्ते ॥ ९ ॥ और अनेक जीवोंकी उपाधियां भविष्यत्में ऐसे उत्पन्न होंगी जैसे वसन्तऋतुमें नूतन अंकुर और उसीमें लीन भी इस प्रकार होंगी जैसे ग्रीष्म ऋतुमें मधुके रस ॥ १० ॥ इसी परब्रह्ममें अनेक जीवराशि तीनोंकालमें नित्य स्थित रहती हैं उत्पन्न होती हैं और लीन भी होती हैं ॥ ११ ॥ हे रामजी ! पुरुष तथा उसका कर्म (क्रिया) ऐसे अभिन्न (एकरूप) हैं जैसे पुष्प और सुगन्ध और परमात्माहीसे उत्पन्न हुये और क्रमसे उसीमें प्रवेश भी करते हैं॥१२॥

दृष्टमेतेजगत्यस्मिन्दैत्योरगनरामराः ॥ उद्भवंत्यभवाभावैःप्रस्फुरंतिपुनःपुनः ॥ १३ ॥ हेतुर्विहरणेतेषामात्मविस्मरणादृते ॥ नकश्चिल्लक्ष्यतेसाधोजन्मांतरफलप्रदः ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अविसंवादिनार्थेयद्यत्प्रामाणिकदृष्टिभिः ॥ वीतरागैर्विनिर्णीतंतच्छास्त्रमितिकथ्यते ॥ १५ ॥ महासत्त्वगुणोपेतायेधीराःसमदृष्टयः ॥ अनिर्देश्यकलोपेताःसाधवस्तउदाहृताः ॥ १६ ॥

अर्थ —और इस जगत्में यह देखागया है कि अनुत्पन्न भी दैत्य उरग मनुष्य तथा देवता साथही वासनाजनित भूतमात्र उपाधियोंसे उत्पन्न होते हैं तथा पुनः पुनः प्रातिभासमान भी होते हैं ॥ १३ ॥ हे साधो रामजी ! इनके विहारमें आत्मस्वरूपके विस्मरणताको छोडके और कुछभी कारण नहीं है और न इसके सिवाय कोई जन्मान्तरमें फलदाता है ॥ १४ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! अलौकिक धर्ममें तथा व्रतमें प्रमाण वेद हैं और वेदोंसे उत्पन्न ज्ञानवाले महात्माओंने तथा वीतराग मनु आदिने धर्माधर्म रूप पदार्थके विषय विवाद रहित वेदशास्त्रसे सिद्ध न्यायसमूहसे जो २ निर्णय करके स्मृति,पुराण, कल्प, सूत्र, तथा इतिहासादि लिखाहै उसको शास्त्र कहते हैं अर्थात् अलौकिक

अर्थमें श्रुतिस्मृत्यादि प्रमाण हैं ॥ १५ ॥ अति विशुद्ध सत्वगुणसे युक्त, धीर अर्थात् विषय तथा दुःखोंसे अकम्पनीय समदृष्टि, तथा अवर्णनीय आनन्द सहित ब्रह्माके साक्षात्कारकी कलासे जो संयुक्त हैं उनको साधु कहते हैं ॥ १६ ॥

दृयंहिदृष्टिर्बालानांसिद्धयेसर्वकर्मणाम् ॥ साधुवृत्तंतथाशास्त्रंसर्वंदैवानुवर्त्तते ॥ १७ ॥ साधुसंव्यव हारार्थंशास्त्रंयोनानुवर्त्तते ॥ बहिःकुर्वंतितंसर्वेसचदुःखेनिमज्जति ॥ १८ ॥ इहलोकेचवेदेचश्रुतिरित्थं सदाप्रभो ॥ यथाकर्मचकर्ताचपर्यायेणेहसंगतौ ॥ १९ ॥ कर्मणाक्रियतेकर्ताकर्त्राकर्मप्रणीयते ॥ बी जांकुरादिवन्यायोलोकवेदोक्तएवसः ॥ २० ॥

अर्थ–साधु (पूर्वोक्तलक्षण सहित सज्जन) महात्माओंका आचार तथा श्रुतिस्मृति रूप शास्त्र, यही दोनों अज्ञाततत्व जो प्राणीहैं उनके नेत्रहैं अर्थात् इन्हीके द्वारा धर्म तथा ब्रह्मतत्वको देखते हैं और इन्हीके अनुसार सब कार्य्य कियाजाताहै ॥ १७ ॥ स्वर्ग तथा मोक्षके उपयोगी जो साधुओंके व्यवहार हैं उनके लिये जो शास्त्रहैं उसके अनुकूल जो वहीं चलता उसको सब शिष्टलोग बहिष्कृत कर देतेहैं और वह प्राणी दुःखमें डूबताहै ॥ १८॥ हे प्रभो ! इस लोकमें तथा वेदमें यह निरूढ प्रवादहै अर्थात् इसको सुनते चलेआतेहैं कि कर्म और कर्ता पर्य्याय (कर्म) से होते हैं ॥ १९ ॥ कर्म (क्रिया) से कर्ता होताहै और कर्ता क्रियाको सिद्ध करताहै कर्म तथा उसका कर्ता इन दोनोंके लिये लोक तथा वेदोक्त वही प्रसिद्ध बीजांकुरके तुल्य प्रसिद्ध न्यायहै ॥ २० ॥

कर्मणोजायतेजंतुर्बीजादिवनवांकुरः ॥ जंतोःप्रजायतेकर्मपुनर्बीजमिवांकुरात् ॥ २१ ॥ ययावासनया जंतुर्नीयतेभवपंजरे ॥ तद्वासनानुरूपेणफलंसमनुभूयते ॥ २२ ॥ एवंस्थितेकथंनामजन्मबीजेनक र्मणा ॥ विनोत्पत्तिस्त्वयाप्रोक्ताभूतानांब्रह्मणःपदात् ॥ २३ ॥ पक्षेणानेनभगवन्भवताजन्मकर्मणोः ॥ तिरस्कृताजगज्जातासाविनाभावितैतयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—कर्मसे प्राणी ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे बीजसे नूतन अंकुर और प्राणीसे कर्म ऐसे होता है जैसे पुनः अंकुरसे बीज ॥ २१ ॥ जिस वासनासे संसाररूपी पंजर (पींजरे) में प्राणी डाला जाताहै उसी वासनाके अनुसार फल भी अनुभव करताहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार भूमिका रचके कर्ताकर्मकी साथ उत्पत्ति होती है इस पक्षमें रामचन्द्र-जी दोष दिखलातेहैं कि ऐसा जबहै तो जन्मके बीजरूप कर्मके विनाही आपने जीवोंकी उत्पत्ति है यह कैसे कहा? क्यों कि “ साधुकारी साधु भवति पापकारी पापो भवति, पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन कर्मणा जायते ” इत्यादि श्रुतिविरुद्धहै ॥ २३ ॥ कर्ता कर्म साथ उत्पन्न होतेहैं इस पक्षसे जन्म तथा कर्मकी परस्पर हेतु और फलरूप-ता जगत् अन्वयव्यतिरेकसे प्रसिद्धहै उसका आपने तिरस्कार किया ॥ २४ ॥

ब्रह्मण्यकारणेब्रह्मन्ब्रह्मादिषुफलेषुच ॥ कर्मणांफलमस्तीतिद्वयंलोकेप्रमार्जितम् ॥ २५ ॥ संजातेसं करेलोकेकर्मस्वफलदायिषु ॥ मात्स्यन्यायेविलसतिनाशएवावशिष्यते ॥ २६ ॥ किंतत्कृतंभवत्ये वभगवन्ब्रूहितत्त्वतः ॥ एवंमेसंशयंस्फारंछिंधिवेद्यविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साधुराघ वपृष्टोस्मित्वयाप्रश्नमिमंशुभम् ॥ शृणुवक्ष्यामितेयेनभृशंज्ञानोदयोभवेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! अपनेसे अतिरिक्त कारण शून्य मायाशबलित ब्रह्ममें आकाशसे लेके स्थूल देह पर्य्यन्त भोग का स्थान सृष्टिरूप फल है और ब्रह्मासे आदि लेके स्थूल सूक्ष्म उपाधिरूप उन फलोंमें भोग तथा भोगकी सामग्रीकी सृष्टिरूप फल है यह लोकमें प्रसिद्ध दोनों बात अपने धो दिया अर्थात् नष्ट किया ॥ २५ ॥ जब कर्म निष्फल हैं यह बात सिद्ध हुई इसीसे नरकादि का भय न रहनेसे लोकसंकर होनेपर और “ मत्स्यन्याय ” के विलास होनेपर अर्थात् बलवान् मत्स्य (मछलियां) छोटे निर्बल मत्स्योंके सदृश प्राणी एक दूसरेको खानेलगे तो सबका नाशही शेष रहा ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! वह किया हुआ कर्म फलदायक होताहै किम्वा नहीं होता इसको यथार्थ रूपसे कहिये और इस मेरे महान् संशयको छेदन कीजिये ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! आपने मुझसे बहुत अच्छा प्रश्न किया इसको तुम सुनो मैं कहूंगा जिससे बहुत ज्ञानका उदय होगा ॥ २८ ॥

मानसोयंसमुन्मेषःकलाकलनरूपतः ॥ एतत्तत्कर्मणांबीजंफलमस्यैवविद्यते ॥ २९ ॥ यदैवहिमन स्तत्त्वमुत्थितंब्रह्मणःपदात् ॥ तदैवकर्मजंतूनांजीवोदेहतयास्थितः ॥ ३० ॥ कुसुमाशययोर्भेदोनयथा भिन्नयोरिह ॥ तथैवकर्ममनसोर्भेदोनास्त्यविभिन्नयोः ॥ ३१ ॥ क्रियास्पंदोजगत्यस्मिन्कर्मेतिकथि तोबुधैः ॥ पूर्वंतस्यमनोदेहंकर्मातश्चित्तमेवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनसम्बन्धी जो क्रिया कुशलताके प्रति संधानरूपसे विकासहै अर्थात् जो क्रिया मनसे होतीहै यही प्रसिद्ध कर्मोंका बीज है और इसीका फल भी होताहै ॥ २९ ॥ हे रामजी ! जिस समय प्रथम सृष्टिमें

परब्रह्मसे मनरूप तत्व आविर्भूत हुआ उसीसमय उसरूप उपाधिसे आविर्भूत समष्टिव्यष्टि जीवोंके कर्म भी प्रकट हुये, और जीव पूर्वकल्पकी वासनाके अनुसार देहके अहंभावसे स्थित हैं ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जैसे एकरूप, पुष्प और उसके सुगन्धका भेद नहीं है ऐसेही अभिन्नरूप कर्म और मनका भी भेद नहीं है ॥ ३१ ॥ क्रियाकी स्फुरण है उसीको पण्डित लोग कर्म कहते हैं और उस कर्मका आश्रय संस्काररूपसे मनहै इसलिये कर्म जो है वह मनहीहै ॥ ३२ ॥

नसशैलोनतद्व्योमनसोऽब्धिश्वनविष्टपम् ॥ अस्तियत्रफलंनास्तिकृतानामात्मकर्मणाम् ॥ ३३ ॥ ऐहिकंप्राक्तनंवापिकर्मयद्रचितंस्फुरत् ॥ पौरुषोसौपरोयत्नोनकदाचननिष्फलः ॥ ३४ ॥ कृष्णतासंक्षयेय द्वत्क्षीयतेकज्जलंस्वयम् ॥ स्पंदात्मकर्मविगमेतद्वत्प्रक्षयितेमनः ॥ ३५ ॥ कर्मनाशेमनोनाशोमनोनाशो ह्यकर्मता ॥ मुक्तस्यैषभवत्येवनामुक्तस्यकदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ--हे रामजी ! न वह पर्वत है न वह आकाशहै न वह समुद्रहै और न वह स्वर्ग है जहांपर अपने किये हुये कर्मोंका फल न मिले ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! इस जन्ममें वा पूर्वजन्ममें सांगोपांग सावधानीसे कियाहुआ जो विराजमान् कर्म है वही पौरुष और सबसे उत्तम यत्नहै यह कदाचित् भी निष्फल नहीं होता तात्पर्य्य यह कि अविद्यासे उत्पन्न मनही क्रिया शक्तिमान् तथा चिदात्माकी उपाधि होनेसे कर्ता और भोक्ताभी है इससे कर्ता कर्म और आकाशादि प्रपंचकी साथ उत्पत्ति माननेसे भी कृतहान (कियेहुये कर्मका नाश) और अकृताभ्यागम (न किये हुयेका फल देना) शास्त्र प्रमाणताका बाध और मात्स्यन्यायादिकी प्रसक्ति आदि तुमारे कहे कोई भी दोष नहीं है ॥ ३४ ॥ जैसे कृष्णताका संक्षय होनेपर कज्जलका नाश स्वयं होजाताहै इसीप्रकार गतिशील कर्म नाश होनेपर तादृश मन आपही क्षीण होजाताहै ॥ ३५ ॥ कर्मका नाश होनाही मनका नाशहै और मनका नाश होनाही कर्मका अभावहै, और यह बात मुक्तज्ञानी पुरुषको होती है न कि अज्ञानी बद्धको ॥ ३६ ॥

वह्न्यौष्ण्ययोरिवसदाश्लिष्टयोश्चित्तकर्मणोः ॥ द्वयोरेकतराभावेद्वयमेवविलीयते ॥ ३७ ॥ चित्तंसदा स्पंदविलासमेत्यस्पंदैकरूपंननुकर्मविद्धि ॥ कर्माथचित्तंकिलधर्मकर्मपदंगतेरामपरस्परेण ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपुरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

अर्थ—अग्नि और उष्णताके समान सदा मिलेहुये जो चित्तकर्म हैं उन दोनोंमेंसे एकके अभावमें दोनोंका नाश होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! चित्त (मन) स्फुरणरूप विलासको प्राप्तहीके विहित और निषिद्ध कर्मको उत्पत्तिद्वारा पुण्यपापरूप धर्माधर्म रूपमें परिणमताहै और कर्म भी उसके फलभोगके अनुमार स्फुरण (गतिरूप) विलासको प्राप्त होके चित्तरूप होजाताहै इसलिये वे दोनों परस्पर एक दूसरेके कारण होके लोकमें धर्म तथा कर्म पद को प्राप्त होके इन दोनों शब्दोंसे व्यवहारमें आते हैं ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्मपुरुषयोरेकत्वकथनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

कर्मोंकी विचित्रतासे नानाप्रकारकी आकृतिहै जिसकी ऐसे मनके नाम, भेद तथा इसकी शुद्धिके लिये इसके तत्वका वर्णन इस ९६ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनोहिभावनामात्रंभावनास्पंदधर्मिणी ॥ क्रियातद्भावितारूपंफलंसर्वोनुधावति ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विस्तरेणममब्रह्मन्जडस्याप्यजडाकृतेः ॥ रूपमारूढसंकल्पंमनसोवक्तुमर्हसि ॥२॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यसर्वशक्तेर्महात्मनः॥संकल्पशक्तिरचितंयद्रूपंतन्मनो विद्धः ॥३॥ भावःसदसतोर्मध्येनृणांचलतियश्चयः ॥ कलनोन्मुखतांयातस्तद्रूपंमनसोविदुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह मन जो भावना मात्रहै और भावना स्पन्द (गति) धर्मवाली है और उसीसे विहित और निषिद्ध रूप क्रिया होती है और सूक्ष्मताके कारण अदृष्ट दशाको प्राप्त जो क्रिया है उसीसे जन्मान्तरादि भावितारूप फलको सब जन्तु अनुसरण करते हैं ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! जड और अजड आकार है जिसका ऐसे मनका संकल्पात्मक आरूढ जो रूपहै उसको आप विस्तारपूर्वक कहनेके योग्य हैं ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अनन्त सर्वशक्तिमान् और महात्मा मायाशबलित जो आत्मतत्त्व है उसका प्रथम

रचित संकल्प शक्तिवाला जो रूपहै उसको मन कहते हैं ॥ ३ ॥ स्थाणु वा पुरुष है मनुष्योंके इस प्रकारके विकल्पात्मक व्यवहारमें सत् और असत् दोनों कोटिके मध्यमें चलायमान, तथा दोनों कोटिके स्मृतिरूपको प्राप्त जो भाव है उसको मन कहते हैं ॥ ४ ॥

नाहंवेदावभासात्माकुर्वाणोस्मीतिनिश्चयः ॥ तस्मादेकांतकलनस्तद्रूपंमनसोविदुः ॥ ५ ॥ कल्पनात्मिकयाकर्मशक्त्याविरहितंमनः ॥ नसंभवतिलोकेस्मिन्गुणहीनोगुणीयथा ॥ ६ ॥ यथावन्ह्यौष्ण्ययोः सत्तानसंभवतिभिन्नयोः ॥ तथैवकर्ममनसोस्तथात्ममनसोरपि ॥ ७ ॥ स्वेनैवचित्तरूपेणकर्मणाफलधर्मिणा ॥ संकल्पैकशरीरेणनानाविस्तरशालिना ॥ ८ ॥

अर्थ—चित् रूपसे भासमान आत्मामें भी मैं नहीं जानता ऐसी प्रतीति जिसमें होती है और अकर्तामेंभी कर्ता व्यवहार जिसमें नियतरूपसे होताहै वही मनका रूपहै ॥ ५ ॥ गतिशलि कल्पनात्मिका जो कर्मशक्ति है उसके बिना लोकमें कभी मनका होना ऐसे संभव नहीं होता जैसे गुणहीन गुणीका ॥ ६ ॥ जैसे भिन्न रूपसे अग्नि और उष्णताकी सत्ताका संभव नहीं है ऐसेही कर्म और मन तथा जीव और मनकी भी भिन्नसत्ताका संभव नहीं है ॥ ७ ॥ फलधर्मी (साध्यवाला) संकल्पही शरीर जिसका और नाना प्रकारके विस्तारसे शोभायमान ॥ ८ ॥

इदंततमनेकात्ममायामयमकारणम् ॥ विश्वंविगतविन्यासंवासनाकल्पनाकुलम् ॥ ९ ॥ यायेनवासना यत्रसतवारोपितायथा ॥ सातेनफलसूस्तत्रतदेवप्राप्यतेतथा ॥ १० ॥ कर्मबीजंमनःस्पन्दःकथ्यतेथानुभूयते ॥ क्रियास्तुविविधास्तस्यशाखाश्चित्रफलास्तरोः ॥ ११ ॥ मनोयदनुसंधत्तेतत्कर्मेंद्रियवृत्तयः ॥ सर्वाःसम्पादयंत्येतास्तस्मात्कर्ममनःस्मृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसे अपनेही चित्तरूप कर्मसे मायामय, कारण शून्य, विविध प्रकारकी रचनासे युक्त और वासनाकी कल्पनासे पूर्ण यह विश्व व्याप्त है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जहां स्थितके समान (जैसे ऐन्दव भूमण्डलस्थ और सत्यलोकस्थ हम लोग) जिसने जैसी कल्पना कीहै वह कल्पना उसीरूपसे उसको फलदायिनी होती और उसीरूपसे वह फल उसको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ और उस वासनारूपी वृक्षका कर्म बीज है, मनकी गति शरीरहै, और चित्रविचित्र फल सहित जो अनेक क्रियां हैं वे शाखा शास्त्रोंमें कही जाती हैं और फलसे उनका अनुभवभी होताहै ॥ ११ ॥ मन जो कुछ अनुसन्धान करता है वही सब कर्मेन्द्रियां सिद्ध करती हैं इस लिये मन जो है वही कर्महै ॥ १२ ॥

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तंकर्माथकल्पना ॥ संसृतिर्वासनाविद्याप्रयत्नःस्मृतिरेवच ॥ १३ ॥ इंद्रियंप्रकृतिर्मायाक्रियाचेतीतराअपि ॥ चित्राःशब्दोक्तयोब्रह्मन्संसारभ्रमहेतवः ॥ १४ ॥ काकतालीययोगेनत्यक्तस्फारदृगाकृतेः ॥ चितेश्चेत्यानुपातिन्याःकृताःपर्यायवृत्तयः ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ परायाःसंविदोब्रह्मन्नेताःपर्यायवृत्तयः ॥ कल्प्यमानविचित्रार्थाःकथंरूढिमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—मन १ बुद्धि २ अहंकार ३ चित्त ४ कर्म ५ कल्पना ६ संसृति ७ वासना ८ विद्या ९ प्रयत्न १० और स्मृति ११ ॥ १३ ॥ इन्द्रिय १२ प्रकृति १३ माया १४ और क्रिया १५ ये पन्द्रह तथा अन्य संसारके भ्रमके कारण विचित्र शब्दोंकी उक्ति परब्रह्म ॥ १४ ॥ काकतालीय योगसे अर्थात् अकस्मात् आत्मस्वरूपके विस्मरणसे अपरिच्छिन्न चिदेकरस आकार है जिसका ऐसी तथा बाह्यविषयकी कल्पनाकी ओर उन्मुख चितिशक्तिके नामान्तर हैं ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! परसंवित् (शुद्धचेतन) के विचित्र कल्पनीय अर्थवाली ये पर्य्यायवृत्तियां (नामान्तर) कैसे रूढिको प्राप्त हुई अर्थात् मन आदि पन्द्रह नामोंका अवयवार्थ क्या है ? ॥ १६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ गतेवसकलंकत्वंकदाचित्कल्पनात्मकम् ॥ उन्मेषरूपिणीनानातदैवहिमनः स्थिताः ॥ १७ ॥ भावनामनुसंधानंयदानिश्चित्यसंस्थिता ॥ तदैषाप्रोच्यतेबुद्धिरियत्ताग्रहणक्षमा ॥ १८ ॥ यदामिथ्याभिमानेनसत्तांकल्पयतिस्वयम् ॥ अहंकाराभिमानेनप्रोच्यतेभवबन्धनी ॥ १९ ॥ इदंत्यक्त्वेदमायातिबालवत्पेलवायदा ॥ विचारंसंपरित्यज्यतदासाचित्तमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवासिष्ठजी बोले–हे रामजी ! परासंवित् (शुद्धचेतन) अविद्यासे कलङ्कितके समान होके कदाचित् स्फुरणरूप होके जब यह ऐसा है वा नहीं इस प्रकार विकल्प रूपसे नाना रूप होती तभी वह मनरूपसे स्थित होती है अर्थात् " मन " इस नामसे प्रसिद्ध होती है ॥ १७ ॥ और जब पदार्थोंके पूर्व वा उत्तर विकल्पको निश्चय करके स्थित होती है तथा यह पदार्थ ऐसाही है ऐसा विशेष रूपको ग्रहण करनेमें समर्थ होती है तब उसको बुद्धि कहते हैं ॥ १८ ॥ जब मिथ्याभूत देहमें आत्माके अभिमानसे स्वयं सत्ताकी कल्पना करती है तब अहंकारके निमित्तसे वह

संवित् अहंकार कहलाती है और वही सम्पूर्ण अनार्य्योंका बीज होनेसे संसारमें बंधनका हेतु होती है ॥ १९ ॥ और जब विचारको त्याग कर तथा एक विषयको छोडकर दूसरेको स्मरण करती है तब यह चित्त कहलाती है ॥ २० ॥

यदास्पंदैकधर्मत्वात्कर्त्तुर्याशून्यशंसिनी ॥ आधावतिस्पंदफलंतदाकर्मेत्युदाहृता ॥ २१ ॥ काकतालीययोगेनत्यक्त्वैकघननिश्चयम् ॥ यदेहितंकल्पयतिभावंतेनेहकल्पना ॥ २२ ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टंवाप्राग्दृष्टमितिनिश्चयैः ॥ यदैवेहांविधत्तेतस्तदास्मृतिरुदाहृता ॥ २३ ॥ यदापदार्थशक्तीनांसंभुक्तानामिवांबरे ॥ वसत्यस्तमितान्येहावासनेतितदोच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—वही संवित् स्पन्दरूप मुख्य धर्म होनेके कारणसे कर्ताका असत् स्पन्द कहलाती हुई स्पन्दके फल शरीर तथा उसके अवयव आदिको देशान्तरमें प्राप्त करनेको जो दौडती है उसको कर्म कहते हैं ॥ २१ ॥ और अकस्मात् अपने पूर्ण स्वरूपको त्याग कर वाञ्छित परिच्छिन्न भावकी जब कल्पना करती है तो वही संवित् कल्पना कहलाती है ॥ २२ ॥ तथा पूर्वदृष्ट, अदृष्ट अथवा प्राग्दृष्ट अपने निश्चयोंसे जब अन्तःकरणमें चेष्टा धारण करती है तब उसको संसृति कहते हैं ॥ २३ ॥ और जब भुक्त (ग्रस्त) के समान तिरोभूत पद अर्थ और उनकी शक्तियोंके स्वरूपसे आकाशके तुल्य शून्यरूप सूक्ष्म भावमें निवास करती है और गुप्त अन्य चेष्टा सहित भी होती है तब उसको वासना कहते हैं ॥ २४ ॥

अस्त्यात्मतत्त्वंविमलंद्वितीयादृष्टिरंकिता ॥ ज्ञाताह्यविद्यमानैवतदाविद्येतिकथ्यते ॥ २५ ॥ स्फुरत्यात्मविनाशायविस्मारयतितत्पदम् ॥ मिथ्याविकल्पजालेनतन्मलंपरिकल्प्यते ॥ २६ ॥ श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाविमृश्यच ॥ इंद्रमानंदयत्येषातेनेंद्रियमितिस्मृतम् ॥ २७ ॥ सर्वस्यदृश्यजालस्यपरमात्मन्यलक्षिते ॥ प्रकृतत्वेनभावानांलोकेप्रकृतिरुच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—निर्मल आत्मतत्व है और द्वैतदृष्टि अविद्यारूप कलङ्कसे उत्पन्न हुई है यथार्थमें प्रपञ्चकी प्रतीति भी (प्रतीति) तीनों कालमें भी सत्य नहीं है इस प्रकार ज्ञानरूप होनेसे वही संवित् विद्या कहलाती है ॥ २५ ॥ आत्माके अत्यन्त अदर्शनके लिये स्फुरती है और उस पदको विस्मरण कराती है अथवा मिथ्या विकल्प जालसे विविध विक्षेप करती है इस रीतिसे आवरणशक्तिकी प्रधानतासे मल और विक्षेप शक्तिकी प्रधानतासे विस्मृति कहाती है अथवा आत्माके अदर्शन (अज्ञान) के अर्थ नाशको स्फुरती है अर्थात् यत्न करती है इससे "प्रयत्न" और मिथ्या विकल्पजालसे विविध स्मरण कराती है इससे स्मृति कहलाती है ॥२६॥ यह मनदशाको प्राप्त संविद् सुनकर स्पर्श करके देखकर स्वाद लेकर सूंघ कर तथा विचार करके अर्थात् सब इन्द्रियोंके भोगोंसे कार्य्य करणके स्वामी जीवदशाको प्राप्त इन्द्र नाम परमेश्वरको तृप्त करती है इससे इन्द्रिय कहलाती है ॥ २७ ॥ सम्पूर्ण दृश्यजालको अलक्षित परमात्मामें उपादानसे अभिन्न कर्ता रूप प्रकृत (निमित्त) होनेसे प्रकृति कही जाती है ॥ २८ ॥

सदसत्तांनयत्याशुसत्तांवासत्त्वमंजसा ॥ सत्तासत्ताविकल्पोयंतेनमायेतिकथ्यते ॥ २९ ॥ दर्शनश्रवणस्पर्शरसनघ्राणकर्मभिः ॥ क्रियेतिकथ्यतेलोकेकार्यकारणतांगता ॥ ३० ॥ चितेश्चेत्यानुपातिन्यागतायाःसकलंकताम् ॥ प्रस्फुरद्रूपधर्मिण्याएताःपर्यायवृत्तयः ॥ ३१ ॥ चित्ततामुपयातायागतायाःप्रकृतंपदम् ॥ स्वैरेवसंकल्पशतैर्भृशंरूढिमुपागताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो शीघ्र सत् असत्ताको और असत् (देहादि) को प्रमासत्ताके विनाही सत्ताको प्राप्त करती है यह सत्ता असत्ताके विकल्पके कारणसे माया कहलाती है ॥२९॥ तथा दर्शन, श्रवण, स्पर्श, रसन और घ्राण आदि कर्मोंसे लोकमें कार्य्यकारण रूपको प्राप्त होनेसे क्रिया कहलातीहै ॥३०॥ हे रामजी ! चेत्य (विषय) की ओर उन्मुख अविद्यासे कलङ्कित दशाको प्राप्त और स्फुरणरूप धर्मवाली चितिके ये पर्याय वृत्ति (नामान्तर) हैं ॥ ३१ ॥ चित्त रूपताको प्राप्त इसीसे संसार पदको प्राप्त चितिके अपनेही सैकडों ये नामान्तर अत्यन्त रूढि (दृढता) को प्राप्त हुये हैं ॥३२॥

चेतनीयकलंकांकाज्जाड्यजालानुपातिनी ॥ संख्याविभागकलनास्वैवैकल्याकुलेवचित् ॥ ३३ ॥ जीवइत्युच्यतेलोकेमनइत्यपिकथ्यते ॥ चित्तमित्युच्यतेसैवबुद्धिरित्युच्यतेतथा ॥ ३४ ॥ नानासंकल्पकलिलंपर्यायनिचयंबुधाः ॥ वदंत्यस्याःकलंकिन्याश्च्युतायाःपरमात्मनः ॥ ३५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनःकिंस्याज्जडंब्रह्मंस्तथावापिचचेतनम् ॥ इत्येकोममतत्त्वज्ञनिश्चयोंतर्नजायते ॥ ३६ ॥

---

(१) मूलमें स्मृति व टीकामें संस्मृति पाठ प्रमादसे प्रतीत होताहै । (२) "विस्मृतिर्मलमवच" ऐसे पाठके अनुकूल यह अर्थ किया गया है अथवा " प्रयत्नःस्मृतिरेवच " ऐसा पाठ भी तब भी दो नामोंकी साथ व्याख्या की गई है ॥

अर्थ—चित्से चेतनीय अर्थात् मैं अज्ञहूं यह अनुभव योग्य कलङ्क अथवा विषयोंसे प्राप्त जो द्वैतवासना कलङ्क उसके सन्निधानसे पूर्णस्वरूपके विकल्पसे तथा अनेक संख्या विभागकी कल्पनासे आकुलके तुल्य होके देहादि जडताकी ओर अभिमुख यही चित् ॥ ३३ ॥ संसारमें जीव और मनभी कहलाती है चित्त तथा बुद्धि भी इसीको कहतेहैं ॥ ३४ ॥ परमात्मपदसे च्युत तथा अविद्याकलङ्कसे कलङ्कित इसी चिति (चेतन) के नाना संख्योंसे फलित (दर्शित) पर्य्याय (नामान्तर) के समूहको पण्डित लोग कहते हैं ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् तथा हे सब अनेक जाननेहारे यह मन जडरूप है अथवा चेतनरूपहै यह एक निश्चय मेरे अन्तःकरणमें नहीं होता ॥ ३६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनोहिनजडंरामनापिचेतनतांगतम् ॥ म्लानाऽजडातदादृष्टिर्मनइत्येवकथ्यते ॥ ३७ ॥ मध्येसदसतोरूपंप्रतिभूतंयदाविलम् ॥ जगतःकारणंनामतदेतच्चित्तमुच्यते ॥ ३८ ॥ शश्वत्तेनैकरूपेणनिश्चयेनविनास्थितिः ॥ येनसा चित्तमित्युक्तातस्माज्जातमिदंजगत् ॥ ३९ ॥ जडाजडदृशोर्मध्येदोलारूपंस्वकल्पनम् ॥ यच्चितोम्लानरूपिण्यास्तदेतन्मनउच्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! यह मन न तो जडहै और न चेतन क्योंकि चिद् अचित्,उभयरूप होनेसे एकतर (दोनोंमेंसे एक) नहीं होसकता, यथार्थमें " मन्वानोमनः " (मननशक्तिकी इच्छा करता हुआ वह आत्मा मनरूप हुआ) इस श्रुतिसे अजड़ा दृष्टि अर्थात् चित् संसार दशामें उपाधिकी मलिनतासे मन कहलातीहै ॥ ३७ ॥ जैसे मन चिदचित्से विलक्षण है ऐसेही सत् और असत्के मध्यमें अर्थात् सदसत्से विलक्षण, जगत्का कारण प्रत्येक प्राणी भेदसे भिन्न और अविद्यासे कलङ्कित जो रूपहै वही यह चित्तहै ॥ ३८ ॥ अथवा जिसके हेतुसे नित्य एक रूप जो आत्माहै उसके निश्चयके विना (आत्माके अज्ञानसे) जो स्थिति होती है इसीको चित्त कहतेहैं और उसी चित्तसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआहै ॥ ३९ ॥ अथवा मलिन उपाधिकी प्राप्ति चित्का जो जड और अजड दृष्टिके मध्यमें चञ्चलरूप स्वयंकल्पित है इसको मन कहते हैं ॥ ४० ॥

चिन्निस्पंदोहिमलिनःकलंकविकलांतरम् ॥ मनइत्युच्यतेरामनजडंनचचिन्मयम् ॥ ४१ ॥ तस्येमानि विचित्राणिनामानिकलितान्यलम् ॥ अहंकारमनोबुद्धिजीवाख्यानीतराण्यपि ॥ ४२ ॥ यथागच्छति शैलूषोरूपाण्यलंतथैवहि ॥ मनोनामान्यनेकानिधत्तकर्मांतरंव्रजेत् ॥ ४३ ॥ चित्राधिकारवशतोविचित्राविकृताभिधाः ॥ यथायातिनरःकर्मवशाद्यातितथामनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चित्तका जो बाह्य देशसे मलिन औपाधिक चंचल भावहै और साक्षी चेतनके आवरणके अभावसे कलङ्क शून्य जो रूपहै वही मनहै वह मन जडहै न चेतन किन्तु चित् जडसे विलक्षणहै ॥४१॥ उसी मनके अहंकार मन बुद्धि तथा जीव और अन्य भी विचित्र असंख्यात नाम हैं ॥ ४२ ॥ जैसे नट नाना प्रकारके वेषोंको क्रमसे भली भांति धारण करता है ऐसेही मनभी क्रियाके भेदोंको धारण करता हुआ अनेक नाम धारण करताहै॥४३॥ जैसे मनुष्य विचित्र अधिकारसे नाना नाम (अर्थात् पाकाधिकारसे पाचक पाठाधिकारसे पाठक और ग्रामके स्वामीके अधिकारसे नायक, ग्रामणी) का धारण करताहै ऐसेही मनभी कर्मभेदसे अनेक नाम धारण करताहै ॥ ४४ ॥

याएताःकथिताःसंज्ञामयाराघवचेतसः ॥ एताएवान्यथाप्रोक्तावादिभिःकल्पनाशतैः ॥ ४५ ॥ स्वभावाभिमतांबुद्धिमारोप्यमनसाकृताः ॥ मनोबुद्धींद्रियादीनांविचित्रानामरीतयः ॥ ४६ ॥ मनोहिजडमन्यस्यभिन्नमन्यस्यजीवतः ॥ तथाहंकृतिरन्यस्यबुद्धिरन्यस्यवादिनः ॥४७॥ अहंकारमनोबुद्धिदृष्टयः सृष्टिकल्पनाः ॥ एकरूपतयाप्रोक्तायामयारघुनंदन ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो मैंने ये चित्तकी संज्ञा कहीहै इन्हींको अनेक कल्पनाओंसे वादियोंने अन्य प्रकारसे कहा है ॥ ४५ ॥ अपने २ कुतर्कोंके अभिमत द्रव्यत्व अणुत्वादि बुद्धिको मनमें आरोप करके अपने मनसे मन बुद्धि तथा इन्द्रियोंके संज्ञा भेद उन्होंने विचित्र रीतिसे कियाहै ॥ ४६ ॥ मन जो है वह एक वादीके मतमें जडहै, दूसरेके मतसे जीवसे भिन्न है उसी प्रकार अहंकार और बुद्धि भी एकके मतमें कुछ और दूसरेके मतमें कुछहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! संकल्पादि वृत्तिके भेदसे सृष्टिके निमित्त जो अहंकार मन बुद्धि आदि दृष्टि अन्तःकरणकी एकतासे मैंने एक रूप कहाहै ॥ ४८ ॥

नैयायिकैरितरथातादृशैःपरिकल्पिताः ॥ अन्यथाकल्पिताःसांख्यैश्चार्वाकैरपिचान्यथा ॥ ४९ ॥ जैमिनीयैश्चार्हतैश्चबौद्धैर्वैशेषिकैस्तथा ॥ अन्यैरपिविचित्रैस्तैःपांचरात्रादिभिस्तथा ॥ ५० ॥ सर्वैरेवचगंतव्यंतैःपदंपारमार्थिकम् ॥ विचित्रंदेशकालोत्थैःपुरमेकमिवाध्वगैः ॥ ५१ ॥ अज्ञानात्परमार्थस्यविपरीतावबोधतः ॥ केवलंविवदंत्वेतेविकल्पेरारुरुक्षवः ॥ ५२ ॥

अर्थ—उन्हीको गौतमप्रणीत दर्शनके अनुमायी नैय्यायिक वैसेही अपने बुद्धिविकल्पोंसे अन्यथा कल्पित किया है जैसे अहंकार एक द्रव्य विशेष जीव विभु, मन अणु आत्माके साक्षात्कारमें करण, और बुद्धि आत्माका गुण त्रिक्षण पर्य्यन्त अवस्थायिनी है, ऐसे ही सांख्यमतावलंबी तथा चार्वाकोने भी अन्यथा २ कल्पित कियाहै जैसे सांख्यवाले बुद्धिको त्रिगुणात्मक प्रकृतिका साक्षात्कार्य्य महत्तत्व, और अहंकार महत्ततत्वका कार्य्य दूसरा तत्व, तथा मन एकादश इन्द्रियगणके अन्तर्गत षोडश विकारके अन्त:पाती कहते हैं, तथा चार्वाक कहते हैं कि बुद्धि शरीरके अन्तर्गत है और चैतन्य शरीरका गुणहै, अहंकाररूपी आत्मा है, उसीका पूर्वापर विचारनेवाला मन ॥ ४९ ॥ ऐसेही जैमिनी, जैन, बौद्ध वैशेषिक, तथा अन्य पञ्चरात्रादिकोंने भी विचित्र रीतिसे कल्पना कियाहै जैसे जैमिनीय मनको विभु द्रव्य और कोई २ अन्नमय बुद्धि जड बोधात्मक अहंकाररूप आत्माका चित् अंश कहते हैं जैन शरीर प्रमाण जीव, अस्तिकाय अहंकार उसकी विषयकी अभिलाषा मन और अर्थकी प्रथा (प्रख्याति) को बुद्धि कहतेहैं बौद्ध कहतेहैं कि क्षणिक आलय विज्ञान नामक बुद्धिकी धारा जो है वही आत्मा, अहंकार प्रवृत्ति विज्ञान नामक बाह्य अधिकार बुद्धि, उसीका परिणाम अतीत तथा उत्तर प्रत्यय मनहै; और वैशेषिक दर्शन वाले तो अहंकार तथा मनको नैय्यायिक समानही मानते हैं और बुद्धिको स्मृति प्रत्यक्ष अनुभाव, तर्क और विपर्य्यय इन पांचों विकल्पमेंसे पांच प्रकारकी मानते हैं, और अन्य पंचरात्रवाले वासुदेव नाम परमात्मासे संकर्षणनाम जीव और वही अहंकार और उससे प्रद्युम्न नाम मन और उससे अनिरुद्ध नाम बुद्धिमती हैं, आदि पदसे भोगि महेश्वर नकुलादि और २ रीतिसे मतहैं ॥ ५० ॥ उन सबको उसी पारमार्थिक (ब्रह्म) पदको इसप्रकार जाना होगा जैसे विचित्र देशकालमें निकले हुये मार्गगामियोंको एक नगरको, अर्थात् सबका अपनी २ बुद्धिके अनुसार उसी परमात्मतत्व निर्णयमें ही तात्पर्य्य है ॥ ५१ ॥ उसी परमपदपर आरूढ होनेकी इच्छावाले ये सब परमार्थ (ब्रह्मतत्व) के अज्ञानसे तथा विपरीत ज्ञान-के कारणसे केवल विवाद मात्र करते हैं ॥ ५२ ॥

स्वमार्गमभिशंसंतिवादिनश्चित्रयादृशा ॥ विचित्रदेशकालोत्थामार्गस्थंपथिकाइव ॥ ५३ ॥ तैर्मिथ्याराघवप्रोक्ताःकर्ममानसचेतसाम् ॥ स्वविकल्पार्पितैरर्थैःस्वाःस्वावैचित्र्ययुक्तयः ॥ ५४ ॥ यथैव पुरुषःस्नानदानादानादिकाःक्रियाः ॥ कुर्वंस्तत्कर्तृवैचित्र्यमेतितद्वदिदंमनः ॥ ५५ ॥ विचित्रकार्यवशतोनामभेदेनकर्तृता ॥ मनःसंप्रोच्यतेजीववासनाकर्मनामभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी! राजस, तामस, मलिन अर्द्धमलिन सत्वप्रधान मनुष्योंके विचित्र देशकालसे निकले हुये पथिक जैसे अपने २ मार्गकी प्रशंसा करते हैं ऐसेही नैय्यायिकादि वादीगण अपने २ मार्गकी प्रशंसा करते हैं ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! उन वादियोंने फलकी इच्छासे उसके साधनीभूत कर्ममें बद्ध सहित चित्तवालोंके व्यर्थ अपने कपोलकल्पित अर्थोंसे विचित्र उक्ति युक्ति मिथ्या उपनिषत् प्रमाणके विनाही कहाहै ॥ ५४ ॥ जैसे पुरुष स्नान दान आदि क्रियाओंको कर्ता हुआ उन २ कार्य्योंके कर्ताकी विचित्रताको प्राप्त होताहै ऐसेही मनभी है ॥ ५५ ॥ विचित्र कार्य्यके वशसे नामभूतसे कर्तता होती है इसी कारण मन जीव वासना तथा कर्मादि नामोंसे कहा जाताहै ॥ ५६ ॥

चित्तमेवेदमखिलंसर्वेणैवानुभूयते ॥ अचित्तोहिनरोलोकंपश्यन्नपिनपश्यति ॥ ५७ ॥ श्रुत्वास्पृष्ट्वाच दृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाशुभाशुभम् ॥ अंतर्हर्षविषादंचसमनस्कोहिविंदति ॥ ५८ ॥ आलोकइवरूपाणामर्थानांकारणंमनः ॥ बध्यतेबद्धचित्तोहिमुक्तचित्तोहिमुच्यते ॥ ५९ ॥ तज्जडानांपरंविद्धिजडंयेनोच्यतेमनः ॥ नचावगच्छतिजडंमनोयस्यहिचेतनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण प्राणी जो कुछ अनुभव करते हैं यह सब चित्तही है क्योंकि अचित्त मनुष्य देखता हुआ भी कुछ नहीं देखता ॥ ५७ ॥ मन सहित जो प्राणी हैं वही शुभ अशुभ सुनकर, स्पर्श करके, देखकर भोजन करके और सूंघकर अन्त:करणमें हर्ष अथवा विषादको पाताहै ॥ ५८ ॥ जैसे रूपके ग्रहणमें प्रकाश कारण है वैसेही सब पदार्थोंका कारण मनहै क्योंकि जो बद्ध चित्त है वही बांधा जाता है और मुक्तचित्त मुक्तिको पाताहै ॥ ५९ ॥ उसको जडोंका शिरोमणी समझो जो मनको जड कहता है और जिसका मन चेतन है उसको जड रूपका ज्ञान नहीं होता ॥ ६० ॥

नचेतनंनचजडंयदिदंप्रोत्थितंमनः ॥ विचित्रसुखदुःखेहंजगदभ्युदितंतदा ॥ ६१ ॥ एकरूपेहिमनसिसंसारःप्रविलीयते ॥ उपाविलंकारणंतैर्भ्रांत्याजगदुपस्थितम् ॥ ६२ ॥ अजडंहिमनोरामसंसारस्यनकार

णम् ॥ जडंचोपलधर्मापिसंसारस्यनकारणम् ॥ ६३ ॥ नचेतनंनचजडंतस्माज्जगतिराघव ॥ मनःकार णमर्थानांरूपाणामिवभासनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—विचित्र सुख तथा दुःखकी चेष्टाहै जिसमें ऐसा यह मन न तो जड है और न चेतन है यह जिस समय प्रकट हुआ उसी समय यह जगत् भी उसीके तुल्य आविर्भूत हुआ ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! जब एकरूप मन होता है अर्थात् भ्रान्त रूपताको त्याग के ब्रह्माकार होताहै तब यह संसार नष्ट होजाता है और जब मलिन जल के सदृश कलुषित होजाता है तो कारण होताहै और तब उन्हीं कलुषित समष्टिभूत मनसे यह जगत् प्रकट होता है॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जडता शून्य मन अशङ्क ब्रह्मरूप होनेसे संसारका कारण नहीं हो सकता और पाषाणके तुल्य जडभी कारण नहीं होसकता ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इस लिये न जड न चेतन यह मन पदार्थोंका ऐसे कारण है जैसे रूपोंके ग्रहण करनेमें प्रकाश ॥ ६४ ॥

चित्तादृतेन्यद्यदस्तितदचित्तस्यांकिंजगत् ॥ सर्वस्यभूतजातस्यसमग्रंप्रविलीयते ॥ ६५ ॥ नानाकर्म वशावेशान्मनोनानाभिधेयताम् ॥ एकंविचित्रतामेतिकालोनानायथर्तुभिः ॥ ६६ ॥ यदिनामानमस्का रमहंकारेंद्रियक्रियाः ॥ क्षोभयंतिशरीरंतत्स्यंतुजीवादयःपरे ॥ ६७ ॥ दर्शनेषुतुयेप्रोक्ताभेदामनसितर्क तः ॥ क्वचित्क्वचिद्वादकरैरपवादकरैःकिल ॥ ६८ ॥

अर्थ—चित्तसे विना जो कुछ जगत् है वह अचित्तके लिये कुछ भी नहींही है क्योंकि चित्तका लय होनेपर सब प्राणियोंके लिये समग्र जगत्का लय होजाता है ॥ ६५ ॥ जैसे एकही कालमें ऋतुओंके भेद नानारूप होजाते हैं ऐसे ही नानाकर्मके वेशके कारणसे एकही मन नानाप्रकारके नामोंको धारण करता है ॥ ६६ ॥ यदि मनके सम्बन्ध विना शरीरको अहंकार इन्द्रिय और क्रिया क्षोभित करें तो जीव आदि मनसे पृथक् होसकते हैं ॥ ६७ ॥ और कुतर्क करनेवाले वादियोंने दर्शनोंमें कहीं २ मन जीव तथा शरीर आदिमें भेद कहाहै निश्चय करके ॥ ६८ ॥

तेहिरामनबुध्यंतेविशिष्यंतेनचक्वचित् ॥ सर्वाहिशक्तयोदेवेविद्यंतेसर्वगायतः ॥६९॥ यदैवखलुशुद्धा यामनागपिहिसंविदः ॥ जडेवशक्तिरुदितातदावैचित्र्यमागतम् ॥ ७० ॥ ऊर्णनाभाद्यथातंतुर्जायतेचे तनाज्जडः ॥ नित्यप्रबुद्धात्पुरुषाद्ब्रह्मणःप्रकृतिस्तथा ॥७१॥ अविद्यावशतश्चित्तभावनाःस्थितिमाग ताः ॥ चितिपर्यायशब्दाहिभिन्नास्तेनेहवादिनाम् ॥ ७२॥ जीवोमनश्चबुद्धिरहंकृतिश्चेत्येवंप्रथामु पगतेयमनिर्मलाचित् ॥ सैवोच्यतेजगतिचेतनचित्तजीवसंज्ञागणेनकिलनास्तिविवादएषः ॥ ७३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मनःसंज्ञाविचारो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वे वादीलोग यथार्थ पदार्थ नहीं जानते और न व्यासादिकोंसे कहीं उनको शिक्षा दीगई है, और यह कुतर्क करनेकी शक्ति भी मनरूप देवमें ही है क्योंकि उसकी शक्ति सर्वत्र गामिनी है ॥ ६९ ॥ जिस समय शुद्ध चित्में किंचित् भी जडताके तुल्य कलुषित शक्ति उदित हुई उसी समय यह जगत्की विचित्रता प्राप्तहुई॥७०॥ जैसे चेतन ऊर्णनाभ (मकरी) से जड सूत उत्पन्न होता है ऐसेही नित्यज्ञानरूप ब्रह्मपुरुषसे मनरूप प्रकृति उत्पन्न हुई है ॥ ७१ ॥ अविद्यासे वादियोंको अपने २ चित्तकी भावनाही स्थिरताको प्राप्त हुई इसीसे उन्होंने चिति (चेतन) के पर्य्याय (नामान्तर) शब्दोंको चितिसे इस लोकको भिन्न माना है ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! यह निर्मल चित् (चेतन) जीव, मन बुद्धि अहंकार इन रूपोंसे ख्यातिको प्राप्तहुई है और वही इस संसारमें चेतन जीव चित्त इत्यादि संज्ञासमूहसे कही जाती है इसमें निश्चय करके कोई विवाद नहीं है॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनःसंज्ञाविचारो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

मनकी सर्वाकारतासे स्थिति, तथा विस्तारसे चित्ताकाश, चिदाकाश और भूताकाशका वर्णन इस ९७ के सर्गमें किया गया है ॥

॥श्रीरामउवाच॥ ब्रह्मन्मनसएवेदमंतश्चाडंबरंस्तृतम् ॥ यतस्तदेककर्मेतिवाक्यार्थादुपलभ्यते ॥ १ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दृढभावोपरक्तेनमनसैवोररीकृतम् ॥ मरुचंडातपेनेवभास्वरावरणंपुनः ॥ २ ॥

ब्रह्मात्मनिजगत्यस्मिन्मनएकाकृतिंगतम् ॥ क्वचिन्नरतयारूढंक्वचित्सुरतयोत्थितम् ॥ ३ ॥ क्वचिद्दै त्यतयोल्लासिक्वचिद्यक्षतयोदितम् ॥ क्वचिद्गंधर्वतांप्राप्तंक्वचित्किंनररूपिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! पूर्वोक्त रीतिसे आपके वाक्यार्थसे यह जो ब्रह्माण्ड पटहरूप आडम्बरहै सब मनसे ही आविर्भूत हुआहै इसलिये सब मनकाही कर्म है ऐसा मुझे ज्ञात होता है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जैसे प्रचण्ड मरुस्थलके आतपसे मृगतृष्णाका जल सूर्य्य प्रकाश (तेज) के आवरणका हेतु होताहै ऐसेही प्रकाशशील आत्माके आवरणका हेतु जो जडताहै उसको मननेही अंगीकार कियाहै अर्थात् मनके जडांशसे आत्माका तिरोभाव होके जगत् भान होताहै यह तुम जो मनको ही जगत्का कारण समझाहै सो सत्यहै ॥ २ ॥ ब्रह्मरूप इस जगत्में मन एक मुख्य जगत्की आकृतिको प्राप्त होके कहीं मनुष्यरूपसे रूढ हो रहा है और कहीं देवतारूपसे ॥ ३ ॥ कहीं दैत्यरूपसे शोभितहै, कहीं यक्षरूपसे उदित है, कहीं गन्धर्व रूपताको प्राप्तहै, और कहीं किन्नररूपताको ॥ ४ ॥

नानाचारनभोभागपुरपत्तनरूपया ॥ मन्येविततयाकृत्यामनएवविजृंभते ॥ ५ ॥ एवंस्थितेशरीरौघस्तृणकाष्ठलतोपमः ॥ तद्विचारणयाकोर्थोविचार्यमनएवनः ॥ ६ ॥ तेनेदंसर्वमाभोगिजगदित्याकुलंततम् ॥ मन्येतद्व्यतिरेकेणपरमात्मैवशिष्यते ॥ ७ ॥ आत्मासर्वपदातीतःसर्वगःसर्वसंश्रयः ॥ तत्प्रसादेनसंसारेमनोधावतिवल्गति ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मेरा यह सिद्धान्तहै कि नानाप्रकारके आचार आकाशका भाग तथा ग्राम नगर आदिरूप विस्तृत आकृतिसे यह मनही अपने स्वरूपको दिखला रहाहै ॥ ५ ॥ जब ऐसा सिद्धान्तहै तो तृण काष्ठ और लताके सदृश जो शरीरसमूहहै उसके बिचारनेसे हमारा क्या प्रयोजन है मन जो है वही हमारे विचारने योग्यहै ॥ ६ ॥ उसी मनसे यह सर्वाकार धारी जगत् पूर्ण है इसलिये मैं मानता हूं कि मनके शोधनसे कर्ता कर्मकारूप भली भांति जाननेसे परमात्मा ही शेष रहताहै ॥ ७ ॥ आत्मा सर्व दशासे अतीतहै सर्वव्यापी है और सबका आशय है उसीकी कृपासे मन संसारमें दौडताहैं और गर्जता है ॥ ८ ॥

मनोमन्येमनःकर्मतच्छरीरेषुकारणम् ॥ जायतेम्रियतेतद्धिनात्मनींदृग्विधागुणाः ॥ ९ ॥ मनएवविचारेणमन्येविलेष्यति ॥ मनोविलयमात्रेणततःश्रेयोभविष्यति ॥ १० ॥ मनोनाम्निपरिक्षीणेकर्मण्याहितसंभ्रमे ॥ मुक्तइत्युच्यतेजंतुःपुनर्नामनजायते ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भवताप्रोक्ताजातयस्त्रिविधानृणाम् ॥ प्रथमंकारणंतासांमनःसदसदात्मकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मैं ऐसा समझता हूं कि मनका कर्म मनही है और वही शरीरोंमें कारणहै वही उत्पन्न होताहै तथा मरताहै क्योंकि आत्मामें ऐसे जन्म मरण आदि गुण नहीं है ॥ ९ ॥ और यह भी मैं निश्चयसे मानताहूं कि विचारसे मनका लय होजाताहै और मनके तप मात्रसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ भ्रमको देनेवाले मन नाम कर्मके परिक्षीण होनेपर यह प्राणी मुक्त कहलाताहै और पुनः वह संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपने सात्विक राजस और तामस भेदसे तीन (द्वादश भेद इसीमें अन्तर्गतहैं) प्रकारकी जीवोंकी जाति कहीहै उन सबका मुख्य प्रथम कारण सदसदात्मक मन है ॥ १२ ॥

तत्कथंशुद्धाच्चिन्नाम्नस्तत्त्वाद्बुद्धिविवर्जितात् ॥ उत्थितंस्फारतांयातंजगच्चित्रकरंमनः ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आकाशाह्नित्रयोरामविद्धेविततांतराः ॥ चित्ताकाशश्चिदाकाशोभूतकाशस्तृतीयकः ॥ १४ ॥ एतेह्निसर्वसामान्याःसर्वत्रैवव्यवस्थिताः ॥ शुद्धचित्तत्वशक्त्यातुलब्धसत्तात्मतांगताः ॥ १५ ॥ स बाह्याभ्यंतरस्थोयःसत्तासत्तावबोधकः ॥ व्यापीसमस्तभूतानांचिदाकाशःसउच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वह मन बुद्धिशून्य शुद्ध चित् तत्त्वसे कैसे उत्पन्न हुआ और चित्रविचित्र जगत्का रचयिता वह मन विशालताको कैसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि सृष्टि बुद्धिपूर्वक होती है ॥ तन्मनः कुरुत आत्मन्वीस्यामिति ॥ यह श्रुति है ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! विशाल उदरवाले तीन आकाश हैं चित्ताकाश चिदाकाश और तीसरा भूताकाश ॥ १४ ॥ ये सब अपने कार्य्यमें साधारण हैं और सब अपने कार्य्यमें व्याप्त हैं और शुद्ध चित्तत्वकी शक्तिसे इनको सत्ता प्राप्त हुई है ॥ १५ ॥ बाह्य जगत् तथा बुद्धि आदिकी सत्ता और असत्ताका (आगम अपायका) जो साक्षी है और समस्त भूतोंमें जो व्यापक है उसको चिदाकाश कहते हैं ॥ १६ ॥

सर्वभूतहितःश्रेष्ठोयःकालकलनात्मकः ॥ येनेदमाततंसर्वंचित्ताकाशःसउच्यते ॥ १७ ॥ दशदिङ्मंडलाभोगैरव्युच्छिन्नवपुर्हियः ॥ भूतात्मासौयआकाशःपवनाब्दादिसंश्रयः ॥ १८ ॥ आकाशचित्ता

काशौद्वौचिदाकाशबलोद्भवौ ॥ चित्कारणंहिसर्वस्यकार्यौघस्यदिनंयथा ॥ १९ ॥ जडोस्मिनजडोस्मीतिनिश्चयोमलिनश्चितः ॥ यस्तदेवमनोविद्धितेनाकाशादिभाव्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और सब प्राणियोंके व्यवहारका हेतु होनेसे सबका हित सर्व कार्यकारणका नियन्ता होनेसे सर्वश्रेष्ठ और कालके विकल्पका जो रूप है जिससे यह सब संसार व्याप्त है उसको चित्ताकाश कहते हैं ॥ १७ ॥ दशोंदिग् मण्डलोंकी परिपूर्णतासे अपरिमित शरीर युक्त और जो वायु तथा मेघ वा सम्वत्सर रूप सूर्य्यादिका आश्रय है इसको भूताकाश कहते हैं ॥ १८ ॥ भूताकाश तथा चित्ताकाश ये दोनों चित् आकाशसे उत्पन्न हुये हैं क्योंकि चित् सबका ऐसे कारण है जैसे कार्य्य समूहोंका दिन ॥ १९ ॥ जड हूं और जड नहीं हूं ऐसा जो चित्का मलिन निश्चय है वह मन है और इसीसे आकाश आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥

अप्रबुद्धात्मविषयमाकाशत्रयकल्पनम् ॥ कल्प्यतेउपदेशार्थंप्रबुद्धविषयंनतु ॥ २१ ॥ एकमेवपरंब्रह्मसर्वंसर्वापूरकम् ॥ प्रबुद्धविषयंनित्यंकलाकलनवर्जितम् ॥ २२ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्वाक्यसंदर्भगर्भितैः ॥ उपदेश्यतएवाज्ञोनप्रबुद्धःकथंचन ॥ २३ ॥ यावद्रामाप्रबुद्धस्त्वमाकाशत्रयकल्पना ॥ तावदेवावबोधार्थंमयात्वमुपदिश्यसे ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इन तीनों आकाशकी कल्पना जिसने आत्मतत्वको नहीं जाना उसके उपदेशके अर्थ कीजाती है न कि ज्ञानीके अर्थ ॥ २१ ॥ एकही परब्रह्म सब कुछ और सबको पूर्ण करनेवाला है, और वह तीनों कालमें एकरस नित्य तथा कालकी कल्पनासे वर्जित है ॥ २२ ॥ वाक्य रचनासे संयुक्त द्वैत और अद्वैतके सम्यक् भेदसे अज्ञ प्राणियोंको उपदेश दिया जाता है न कि ज्ञानियोंको ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जबतक तुम अज्ञानी हो तभी तक यह तीनों आकाशकी कल्पना है और तभीतक तुमारे ज्ञानके लिये मैं उपदेश करता हूं ॥ २४ ॥

आकाशचित्ताकाशाद्याश्चिदाकाशकलंकितात् ॥ प्रसूता दावदहनाद्यथामरुमरीचयः ॥ २५ ॥ चिनोतिमलिनंरूपंचित्ततांसमुपागतम् ॥ त्रिजगंतींद्रजालानिरचयत्याकुलात्मकम् ॥ २६ ॥ चित्तत्वमस्यमलिनस्यचिदात्मकस्यतत्त्वस्यदृश्यतइदंननुबोधहीनैः ॥ शुक्तौयथारजततानतुबोधवद्भिर्मौर्ख्येणबंधइहबोधबलेनमोक्षः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमाहात्म्यं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अर्थ—जैसे दावाग्निके तुल्य मरुभूमिके प्रतपनसे मृगतृष्णाकी नदियां उत्पन्न होती हैं ऐसेही मायासे कलङ्कित चिदाकाशसे चित्ताकाश तथा भौतिक आकाश आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ हे रामजी ! यह मायाशबलित चेतन चित्तरूपताको प्राप्त मलिनरूपको संचय करता है और विविध कल्पनासे आकुल तीनों जगत्रूपी इन्द्रजालोंको रचता है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जैसे शुक्तिमें अज्ञान (शुक्तिके अज्ञान) से रजतता भासती है इस प्रकार ज्ञानहीन जो प्राणी हैं उन्होंको इस चेतनरूप तत्वका मलिन चित्तका अनुभव होता है इस लिये संसारमें अज्ञानता रूप मूर्खतासे बन्धन होता है और ज्ञानके बलसे मोक्ष होता है ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमाहात्म्यं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

इस ९८ के सर्गमें कथित अर्थके बोधके लिये चित्ताख्यानका तथा चित्तके तत्वको विचारसे चित्तका नाश, विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यतःकुतश्चिदुत्पन्नंचित्तंयत्किंचिदेवहि ॥ नित्यमात्मविमोक्षाययोजयेद्यत्नतोनघ ॥ १ ॥ संयोजितंपरेचित्तंशुद्धंनिर्वासनंभवेत् ॥ ततस्तुकल्पताशून्यमात्मतांयातिराघव ॥ २ ॥ चित्तायत्तमिदंसर्वंजगत्स्थिरचरात्मकम् ॥ चित्ताधीनावतोरामबंधमोक्षावपिस्फुटम् ॥ ३ ॥ अत्रार्थेकथ्यमानंमेचित्ताख्यानमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणायत्पुराप्रोक्तंशृणुरामातियत्नतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले--हे पापरहित रामजी ! कहींसे भी उत्पन्न इस आकस्मिक रूप चित्तको नित्यही अपने आत्माके मोक्षके लिये सावधानीसे लगावै ॥ १ ॥ हे रामजी ! ब्रह्म तत्वरूपपर आत्मामें युक्त अर्थात् समाधिरूपसे लगाहुआ चित्त वासनारहित होजाता है इसके अनन्तर कल्पनाशून्य होके आत्मरूपताको प्राप्त होताहै

॥ २ ॥ चर और अचर यह जगत् सब चित्तकेही आधीन है इसलिये हे राम! बन्ध और मोक्षभी चित्तकेही आधीन है यह वार्ता स्पष्ट है ॥ ३ ॥ हे रामजी! इस विषयमें सर्वोत्तम चित्ताख्यान जो मैं कहताहूं जिसको ब्रह्माजीने प्रथम मुझे कहाथा उसको तुम सावधानीसे सुनो ॥ ४ ॥

अस्तिरामाटवीस्फाराशून्याशांतातिभीषणा ॥ योजनानांशतंयस्यांलक्ष्यतेकणमात्रकम् ॥ ५ ॥ तस्यामेकोहिपुरुषःसहस्रकरलोचनः ॥ पर्याकुलमतिर्भीमःसंस्थितोविततात्कृतिः ॥ ६ ॥ ससहस्रेणबाहूनामादायपरिघान्बहून् ॥ प्रहरत्यात्मनःपृष्ठेस्वात्मनैवपलायते ॥ ७ ॥ दृढप्रहारैःप्रहरन्स्वयमेवात्मनात्मनि ॥ प्रविद्रवतिभीतात्मासयोजनशतान्यपि ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! अति विशाल, शून्य, शान्तिरहित और भयंकर एक अटवी (महा जंगल) है जिसमें सैकडों योजन कणके समान भान होताहै ॥ ५ ॥ उस महा अटवीमें सहस्रों हस्त और नेत्र सहित व्याकुलबुद्धि भयंकर और विशाल आकार वाला एक पुरुष स्थित है ॥ ६ ॥ वह सहस्रों (हजारों) भुजाओंसे बहुतसे परिघ लेके अपनी पीठपर आप मारता है और भागताहै ॥ ७ ॥ दृढ प्रहारोंसे अपने ऊपर आप प्रहार करता हुआ भयभीत होके सैकडों योजन भागता है ॥ ८ ॥

क्रंदन्पलायमानोसौगत्वादूरमितस्ततः ॥ श्रमवान्विवशाकारोविशीर्णचरणांगकः ॥ ९ ॥ पतितोवशएवाशुमहत्यंधांधकूपके ॥ कृष्णरात्रितमोभीमेनभोगंभीरकोटरे ॥ १० ॥ ततःकालेनबहुनासोंधकूपात्समुत्थितः ॥ पुनःप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनः ॥ ११ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वाकरंजवनगुल्मकम् ॥ प्रविष्टःकंटकव्याप्तंशलभःपावकंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—रोता और भागता हुआ यह इधर उधर दूर जाके भ्रमसे विवश आकार और छिन्न भिन्न अंग होके ॥ ९ ॥ कृष्णपक्षको रात्रिके समान अन्धकारसे भयंकर और आकाशके तुल्य गंभीर कोटर वाले अन्धकूपमें विवेक दृष्टिसे शून्य अवश होके गिर पडा ॥ १० ॥ इसके पश्चात् बहुत कालमें उस अन्धकूपसे निकला और पुनः अपने ऊपर आपही प्रहार करता हुआ भागताहै ॥ ११ ॥ पुनः दूरतर (अतिदूर) जाके कांटोंसे पूर्ण अति गहन लतागुल्म युक्त बनमें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे पांखी आगिमें ॥ १२ ॥

तस्मात्करंजगहनाद्विनिःसृत्यक्षणादिव ॥ पुनःप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनः ॥ १३ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वाशशांककरशीतलम् ॥ कदलीकाननंकांतंसंप्रविष्टोहसन्निव ॥ १४ ॥ कदलीखंडकात्तस्माद्विनिःसृत्यक्षणात्पुनः ॥ स्वयंप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनि ॥१५॥ पुनर्दूरतरंगत्वातमेवांधांधकूपकम् ॥ससंप्रविष्टस्त्वरयाविशीर्णावयवाकृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनः उस गहन लता बनसे क्षणभरके तुल्य निकलके अपने आप आघातोंसे अपने ऊपर प्रहार करता हुआ इधर उधर भागता है ॥ १३ ॥ पुनः अति दूर जाके चन्द्रमाके किरणके समान शीतल तथा रमणीय कदली (केला) के बनमें हंसते हुयेके समान प्रवेश किया ॥ १४ ॥ उस कदलीके बनसे पुनः क्षणभरके लिये निकलके और अपने ऊपर आप प्रहार करता हुआ इधर उधर भागने लगा ॥ १५ ॥ पुनः शीघ्रतासे अति दूर जाके सम्पूर्ण अंगोंके आकार जिसके टूट फूट गये हैं ऐसा अन्धा होके उसी अन्धकूपमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

अंधकूपात्समुत्थायप्रविष्टःकदलीवनम् ॥ कदलीकाननाच्छ्वभ्रंकरंजवनगुल्मकम् ॥ १७ ॥ करंजकानात्कूपंकूपाद्रंभावनांतरम् ॥ प्रविशन्प्रहरंश्चैवस्वयमात्मनिसंस्थितः ॥ १८ ॥ एवंरूपनिजाचारःसोवलोक्यचिरंमया ॥ अवष्टभ्यबलादेवमुहूर्तंरोधितःपथि ॥ १९ ॥ पृष्टःसकस्त्वंकिमिदंकेनार्थेनकरोषिवा ॥ किंनामाभिमतंतेत्रकिंमुधापरिमुह्यसि ॥ २० ॥

अर्थ—उस अन्धकूपसे निकलके पुनः कदलीके बनमें प्रविष्ट हुआ और उस कदलीके बनसे निकलके गढके समान गंभीर कांटोंसे पूर्ण अति गहन लताबनमें प्रवेश किया ॥ १७ ॥ इसीप्रकार करंज (कांटे सहित गहन लता गुल्म युक्त) के बनसे अन्धकूपमें और अन्धकूपसे कदलीके बनमें प्रवेश करता हुआ तथा अपने ऊपर आपही प्रहार करता हुआ स्थित है ॥ १८ ॥ इसप्रकारके आचारसे युक्त मैं उसे विवेकदृष्टिसे देखकर और योगबलसे एक मुहूर्त भरके अर्थ मार्गमें रोककर॥१९॥ उससे पूंछा कि तुम कौन हो और किस लिये यह अपने ऊपर प्रहार तथा अन्धकूपादिमें पतन आदि व्यापार क्यों करते हो और यहांपर तुमारा अभिलषित क्या है ? क्यों वृथा मोहको प्राप्त होते हो ? ॥२०॥

इतिपृष्टेनकथितंतेनमेरघुनंदन ॥ नाहंकश्चिन्नचैवेदंमुनेकिंचित्करोम्यहम् ॥ २१॥ त्वयाहमवभग्नोस्मित्वंमेशत्रुरहोबत ॥ त्वयादृष्टोस्मिनष्टोस्मिदुःखायचसुखायच ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वाविक्लवान्यंगान्यालो

कयस्वान्यतुष्टिमन्न् ॥ रुरोदार्तिरवंदीनोमेघोवर्षन्निवाटवीम् ॥ २३ ॥ क्षणमात्रेणतत्रासावुपसंहृत्यरोद नम् ॥ स्वान्यंगानिसमालोक्यजहासचननादच ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रघुनन्दन ! इसप्रकार मुझसे पूंछा हुआ उसने कहा कि हे मुने ! मैं कुछ नहीं हूं और न मैं यह कुछ करता हूं ॥ २१ तुमने मुझे तोड फोड डाला इसलिये खेद है कि तुम मेरे शत्रु हो तुमारे दृष्टिगोचर होनेमात्रसे मैं दुःख तथा सुख दोनोंके लिये नष्ट हुआ ॥ २२ ॥ ऐसा कहके और अपने व्याकुल अङ्गोंको देखकर वह असन्तुष्ट हुआ और अश्रुकी वर्षा करते हुये आतुर होके ऐसा रोने लगा जैसे उस अटवीको सींचता हुआ मेघ ॥ २३ ॥ क्षणमात्रमें उसने अपने रोदनको बन्द करके अपने अंगोंको देखा और देखकर वह हंसा और गर्जा भी ॥ २४ ॥

अथाट्टहासपर्यंतेसपुमान्पुरतोमम ॥ क्रमेणतानितत्याजस्वान्यंगानिसमंततः ॥ २५ ॥ प्रथमंपतितंतत स्यशिरःपरमदारुणम् ॥ ततस्तेबाहवःपश्चाद्वक्षस्तदनुचोदरम् ॥ २६ ॥ अथक्षणेनसपुमांस्तान्यंगा नियथाक्रमम् ॥ संत्यज्यनियतेःशक्त्याक्वापिगंतुमुपस्थितः ॥ २७ ॥ दृष्टवानहमेकांतेपुनरन्यंतथानर म् ॥ सोपिप्रहारान्परितःप्रयच्छन्स्वयमात्मनि ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मेरे सन्मुख उस अट्ट (महा) हासके अन्तमें क्रमसे चारों ओर उसने अपने उन अंगोंको त्याग दिया ॥ २५ ॥ प्रथम तो बडा भयंकर उसका शिर गिरा, उसके अनन्तर वे बाहु उसके पश्चात् छाती और उसके पश्चात् उदर ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर क्षणभरमेंही वह पुरुष अपने उन अंगोंको यथाक्रम ज्ञानसे अज्ञान तथा उसके कार्य्योंके बाधनरूप नियतिकी शक्तिसे त्यागकर पुनः कहीं जानेको उद्यतके समान हुआ[१] ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर एकान्तमें मैंने दूसरे पुरुषको देखा और वहभी अपने ऊपर आपही प्रहार २ कर रहाथा ॥ २८ ॥

बाहुभिःपीवराकारैःस्वयमेवपलायते ॥ कूपेपततिकूपात्तुसमुत्थायाभिधावति ॥ २९ ॥ पुनःपततिकुंडे तःपुनरार्त्तःपलायते ॥ पुनःप्रविशतिश्वभ्रक्षणंशिशिरकाननम् ॥ ३० ॥ कष्टंपुनःपुनस्तुष्टःपुनःप्रहर तिस्वयम् ॥ एवंप्रायनिजाचारश्चिरमालोक्यसस्मयम् ॥ ३१ ॥ समयासमवष्टभ्यपरिपृष्टस्तथैवहि ॥ तेनैवासौक्रमेणाथरुदित्वासंप्रहस्यच ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्थूल आकारवाली भुजाओंसे अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भागताथा और भागते हुये अन्धकूपमें गिरताहै और पुनः उसमेंसे निकलके पौढताहै ॥ २९ ॥ पुनः उसी अन्धकूपमें गिरताहै और दीन होके भागताहै और पुनः कण्टक युक्त लता गुल्मके बनमें प्रवेश करताहै और क्षणमात्रके लिये कदली बनमें प्रवेश करताहै ॥ ३० ॥ पुनः २ कष्ट पाताहै और पुनः सन्तुष्ट होताहै और पुनः आपही अपने ऊपर प्रहार करताहै इस प्रकार उसके आचारको आश्चर्यके साथ चिरकाल तक देखकर ॥ ३१ ॥ उसी प्रकार उसे रोककर मैंने प्रश्नोत्तरसे बोध कराया उसी प्रकार मैं वहभी रो और हंसकर ॥ ३२ ॥

अंगैर्विशीर्णतामेत्ययथावलमलक्ष्यताम्॥विचार्यनियतेःशक्तितोगंतुमुपस्थितः॥३३॥दृष्टवानहमेकांते पुनरन्यंतथानरम् ॥ प्रहरंस्तद्वदेवासौस्वयमेवपलायते ॥ ३४ ॥ पलायमानःपतितोमहत्यंधेधकूपके ॥ तत्राहंसुचिरंकालमवसंतत्प्रतीक्षकः ॥३५॥ यावत्ससुचिरेणापिकूपान्नाभ्युदितःशठः॥ अथाहमुत्थि तोगंतुंदृष्टवान्पुरुषंपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञान तथा उसके कार्य्यका बाधारूप ज्ञानकी शक्ति विचार करके अंगोंसे छिन्न भिन्न होके अदृश्यताको प्राप्त होके पुनः जानेको उद्यतके समान हुआ ॥ ३३ ॥ हेरामजी ! पुनः मैंने एकान्तमें दूसरे पुरुषको देखा यह भी उसी प्रकार अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भागताथा ॥ ३४ ॥ भागते हुये बडेभारी अन्धकूपमें गिरा वहांपर बहुत काल तक उसकी प्रतीक्षा करता हुआ मैंने निवास किया ॥ ३५ ॥ जब तक वह मूर्ख उस अन्धकूपसे न निकला तब तक मैंने प्रतीक्षा की, अनन्तर मैं जानेको उद्यत हुआ तो पुनः उस पुरुषको देखा ॥ ३६ ॥

तादृशंतादृशाकारंप्रपतंतंतथैवच ॥ अवष्टभ्यतथैवाशुतस्यप्रोक्तंपुनर्मया ॥ ३७ ॥ तथैवोत्पलपत्राक्षनासौतदवबुद्धवान् ॥ केवलंमामसौमूढोनैवजानासिकिंचन ॥ ३८ ॥ आःपापदुर्द्विजेत्युक्त्वास्वव्यापारपरोययौ ॥ अथतस्मिन्महारण्येतथाविहरतामया ॥ ३९ ॥ बहवस्तादृशादृष्टाःपुरुषादोषकारिणः ॥ मत्पृष्टाःकेचिदायांतिस्वप्नसंभ्रमवच्छमम् ॥ ४० ॥

---

[१] यथार्थमें ज्ञान होनेके बाद कोई गन्तव्य स्थान शेष नहीं रहता इस लिये जानेको उद्यतके समान हुआ यह कहने यह लक्षित किया बाधितका रूप पुनः नहीं होता.

अर्थ—उसी प्रकारका और उसी प्रकार अन्धकूपमें गिररहाथा तब मैंने उसी प्रकार उसे रोक कर पूछा ॥ ३७ ॥ हे कमलके सदृश नेत्रवाले रामजी ! उस मेरे प्रश्नको उसने नहीं समझा केवल यही उत्तर दिया कि हे मूर्ख तूं कुछ नहीं जानता ॥३८॥ और अहो ! पापी दुष्ट ब्राह्मण ! ऐसा कहके अपने व्यापारमें परायण होके चलागया, इस के अनन्तर उसी महा बनमें विहार (भ्रमण) करते हुये मैंने ॥ ३९ ॥ बहुतसे पाप करनेवाले पुरुषोंको देखा उनमें से कोई तो मेरे प्रश्नोत्तरसे बोधित होके स्वप्नतुल्य पूर्व शरीरके नाशरूप शान्तिको प्राप्त होतेथे ॥ ४० ॥

मदुक्तंनाभिनंदंतिकेचिच्छवतनुंयथा ॥ विनिपत्यांधकूपेभ्यःकेचित्तत्प्रोत्थिताःपुनः ॥४१ ॥ कदलीखंडकात्केचिच्चिरेणापिननिर्गताः ॥ केचिदंतर्हिताःस्फारकरंजवनगुल्मके ॥ ४२ ॥ नक्वचित्स्थितिमायांतिकेचिद्धर्मपरायणाः ॥ एवंविधासाविततारघूद्वहमहाटवी ॥ ४३ ॥ अद्यापिविद्यतेयस्यामित्थंतेपुरुषाःस्थिताः ॥ साचदृष्टात्वयारामत्वयेहव्यवहारिणी ॥ बाल्यात्तुबुद्धितत्त्वस्यनतांस्मरसिराघव ॥४४॥ साभीषणाविविधकंकटसंकटांगीघोराटवीघनतमोगहनापिलोके ॥ आगत्यनिर्वृतिमलब्धपरावबोधैरासेव्यतेकुसुमगुल्मकवाटिकेव ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानंनाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

अर्थ—और कोई मृतक शरीरके तुल्य मेरे कथनको नहीं प्रसन्न करतेथे कोई २ अन्धकूपमें गिरके पुनः उनसे निकलतेथे ॥ ४१ ॥ और कोई केले के बनसे दीर्घकालमें भी नहीं निकलतेथे, और कोई तो कंटकयुक्त महान लता-गुल्मके वनमेंही लुप्त रहतेथे ॥ ४२ ॥ और कोई काम्य धर्ममें परायण होके कहीं भी शान्तिरूप स्थिति नहीं पातेथे हे रघुकुलतिलक ! ऐसी वह महाटवी है ॥ ४३ ॥ और हे रामजी ! अब भी वह महाटवी (संसाररूप महा जंगल) है जिसमें उसी प्रकारके पुरुष स्थितहैं और सब व्यवहार वाली उस महाटवीको तुमने देखाहै परन्तु बुद्धितत्त्वकी कोमलतासे तुम उसे स्मरण नहीं करते ॥४४॥ हे रामजी ! अति भयंकर अनेक प्रकारके कण्टकोंसे पूर्णांग तथा निबिड अन्धकारसे गहन उस भवाटवीको मनुष्य जन्म पाकर भी अभाग्यवश ज्ञानके न पानेसे विषयी प्राणीलोग पुष्पोंकी वाटिकाके समान सेवन करती है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तोपाख्याने नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

रामचन्द्रजीके प्रश्नके व्याजसे पूर्वोक्त जो चित्ताख्यानहै उसका तात्पर्य्य क्रमसे तथा विपरीत क्रमसे इस ९९ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कासौमहाटवीब्रह्मन्कदादृष्टाकथंमया ॥ केचतेपुरुषास्तत्रकिंतत्कर्तुंकृतोद्यमाः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रघुनाथमहाबाहोशृणुवक्ष्यामितेखिलम् ॥ नसामहाटवीरामदूरेनैवचतेनराः ॥ २ ॥ येयंसंसारपदवीगंभीरापारकोटरा ॥ तांतांशून्यांविकाराढ्यांविद्धिराममहाटवीम् ॥ ३ ॥ विचारालोकलभ्येयंयदेकेनैववस्तुना ॥ पूर्णानान्येनसंयुक्ताकेवलेवतदेवसा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! वह महाटवी कहां है ? और किसप्रकार और कहां ? मैंने उसे कहां देखा और वे मनुष्य कौन हैं जो अपनेही देहोंपर तथा कूप और करंजादि बनमें प्रवेश करनेको उद्यम करतेथे ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रघुनाथ ! सुनो मैं तुमको सम्पूर्ण कहूंगा हे रामजी ! न तो वह महाटवी दूर है और न वे मनुष्य ॥ २ ॥ जो यह गम्भीर और अपार कोटर (उदर) सहित प्रसिद्ध यह संसार पदवी है इसीको शून्य तथा अनके विकारोंसे पूर्ण महाटवी तुम जानो ॥ ३ ॥ और जब विचाररूपी प्रकाशसे अद्वितीय आत्मतत्व पूर्ण और अन्य वस्तु युक्त नहीं भान होती अर्थात् परमार्थदृष्टिसे ब्रह्मरूपही भासती है तब यह केवल शून्यहीहै और जगत् दृष्टिसे अनेक विकारसे पूर्णही है ॥ ४ ॥

तत्रयेतेमहाकाराःपुरुषाःप्रभ्रमंतिहि ॥ मनांसितानिविद्धित्वंदुःखेनिपतितान्यलम् ॥ ५ ॥ द्रष्टायोयमहंतेषांसविवेकोमहामते ॥ विवेकेनमयातानिदृष्टान्यन्येननानघ ॥६॥ मयातान्येवबोध्यंतेविवेकेनमनांसिहि ॥ सततंसुप्रकाशेनकमलानीवभानुना ॥ ७ ॥ मत्प्रबोधंसमासाद्यमत्प्रसादान्महामते ॥ मनांसिकानिचित्तानिगतान्युपशमात्परम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस संसाररूपी महाटवीमें जो महान् आकारवाले पुरुष भ्रमण करतेहैं उनको तुम जानो वे दुःखरूपी गढेमें सब भ्रान्तिसे गिरे हैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! और यह जो मैं उनका द्रष्टाहूं यह विवेकहै क्योंकि विवेकसेही मैंने उनको देखेहैं ॥६॥ हे रामजी ! मैं विवेकसेही निरन्तर उन मनोंको ऐसे बोधित करताहूं जैसे उत्तम प्रकाशसे कमलोंको सूर्य खिलाताहै ॥ ७ ॥ हे महामते ! तत्त्वज्ञानको प्राप्त होके उसीके प्रतापसे कितने मन शांतिके द्वारा मोक्षको प्राप्त होगये ॥ ८ ॥

कानिचिन्नाभिनंदंतिमांविवेकंविमोहतः ॥ मत्तिरस्कारवशतःकूपेष्वेवपतंत्यधः ॥९॥ येतेंधकूपागहनानरकास्तेरघूद्वह ॥ कदलीकाननंयानिसंप्रविष्टानितानितु ॥ १० ॥ स्वर्गैकरसिकानित्वंमनांसिज्ञातुमर्हसि ॥ प्रविष्टान्यंधकूपांतर्निर्गतानिनयानितु ॥ ११ ॥ महापातकयुक्तानितानिचित्तानिराघव ॥ कदलीकाननस्थानिनिर्गतानिनयानितु ॥ १२ ॥

अर्थ—और कितने मन अज्ञानके कारण मुझ विवेकको नहीं चाहते और विवेकरूपी मेरे तिरस्कारसे अधम (अविवेकी) होके अन्धकूपमें गिरते हैं ॥९॥ और हे रघुकुलतिलक ! जो गहन अन्धकूप कहे गये हैं उनको तुम नरक जानो और जो लोग कदलीके बनमें प्रविष्ट हुयेहैं वे तो ॥ १० ॥ स्वर्ग मात्रके रसिक मनहैं ऐसा तुम जाननेके योग्य हो और जो अन्धकूपमें गिरेहैं और उसमेंसे नहीं निकले ॥ ११ ॥ उनको हे रामजी ! तुम महापातक युक्त चित्त जानो और जो कदलीके बनमें स्थितहैं और उनमेंसे जो नहीं निकले ॥ १२ ॥

पुण्यसंभारयुक्तानितानिचित्तानिराघव ॥ करंजवनयातानिनिर्गतानिनयानितु ॥ १३ ॥ तानिमानुष्यजातानिचित्तानिरघुनंदन ॥ कानिचित्संप्रबुद्धानितत्रमुक्तानिबंधनात् ॥ १४ ॥ कानिचिद्बहुरूपाणियोनेर्योनिविशंतिहि ॥ मनांसितानितिष्ठंतिनिपतंत्युत्पतंतिच ॥ १५ ॥ यत्तत्करंजगहनंतत्कलत्ररसंविदुः ॥ दुःखकंटकसंबाधंमानुष्यंविविधैषणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उन चित्तोंको हे राघव ! पुण्यसमूहोंसे युक्त हैं, ऐसा तुम जानो और जो करंज (कंटक युक्त) बनमें उत्पन्न हुये और उनसे नहीं निकले ॥ १३ ॥ वे चित्त हे रघुनन्दन ! मनुष्यरूपमें परिणतहैं और उनमेंसे कितने मनुष्य ज्ञानी होके संसारबन्धनसे मुक्त होगये ॥ १४ ॥ और कितने मन अनेकरूप होके एक योनिसे दूसरी योनिमें प्रवेश करतेहैं स्थित रहतेहैं नरकमें गिरतेहैं और स्वर्गमें भी जातेहैं ॥ १५ ॥ और जो करंजबन कहा गया है वह दुःखरूपी कंटकसे पूर्ण मनुष्यभावमें परिणत और विविध प्रकारकी इच्छा सहित कुटुम्बका स्नेहयुक्त चित्तहै ॥ १६ ॥

करंजगहनंयानिप्रविष्टानिमनांसितु ॥ मानुष्येतानिजातानितत्रैवरसिकानिच ॥ १७ ॥ कदलीकाननंयत्तच्छशांककरशीतलम् ॥ तन्मनोल्हादनकरंस्वर्गंविद्धिरघूद्वह ॥ १८ ॥ कानिचित्पुण्यभूतेनतपसाधारणात्मना ॥ धारयंतिशरीराणिसंस्थितान्युदितान्यपि ॥१९॥ यैरहंपुंभिरबुधैर्बुद्धिचित्ततिरस्कृतः॥ तैर्मनोभिरनात्मज्ञैःस्वविवेकस्तिरस्कृतः ॥ २० ॥

अर्थ—जो मन गहन करंजबनमें प्रविष्ट हुयेहैं वे मनुष्यरूपमें परिणत हुये और वहांही विषयरसमें परायण हो गये ॥१७॥ और हे रघुकुलश्रेष्ठ रामजी ! जो चन्द्रमाके किरणके समान शीतल कदलीका बन कहा गयाहै उसे मन को आनन्द करनेवाला स्वर्ग जानों ॥१८॥ और कोई मन शास्त्रविहित पुण्यके समूहरूप तपसे ध्येयपदार्थमें संलग्नहोनेसे अर्थात् उपासनाके कारणसे ग्रह सप्तर्षि और ध्रुव आदि शरीरोंको धारण करतेहैं और अन्यकी अपेक्षा तेज तथा भोगकी अधिकतासे तथा तत्त्वज्ञानसे अभ्युदयको प्राप्त होके चिरकालतक स्थितहैं ॥ १९ ॥ और हे रामजी ! जिन अज्ञपुरुषोंने बुद्धि वा चित्तोंसे मेरा तिरस्कार कियाहै उन आत्माको न जाननेवाले मनोंने अपने विवेकका तिरस्कार किया है ॥ २० ॥

त्वयादृष्टोविनष्टोस्मित्वंमेशत्रुरितिद्रुतम् ॥ यदुक्तंतद्धिचित्तेनगलतापरिदेवितम् ॥ २१ ॥ रुदितंयन्महाक्रंदंपुंसाबव्हाशुराघव ॥ तद्भोगजालंत्यजतामनसारोदनंकृतम् ॥२२॥ अर्द्धप्राप्तविवेकस्यनप्राप्तस्यामलम्पदम् ॥ चेतसस्त्यजतोभोगान्परितापोभृशंभवेत् ॥ २३ ॥ रुदतांगानिदृष्टानिकारुण्येनावबोधिना ॥ कष्टमेतानिसंत्यज्यकिंप्रयामीतिचेतसा ॥ २४॥

अर्थ—और जो यह कहा गया कि तुह्मारे देखनेसे मैं नष्ट हुआ, अहो खेदहै तुम हमारे शत्रु हो यह नष्ट होते हुये चित्तका विलापहै क्योंकि ज्ञान (विवेक) की दृष्टि पडतेही चित्त नष्ट होताहै ॥ २१ ॥ और हे राघव ! जो पुरुषनें बडे आर्तनादसे शीघ्र रोदन किया यह कहागयाहै वह भोगसमूहको त्यागते हुये मनने रोदन किया ॥ २२ ॥ क्योंकि जिस चित्तको अर्द्धज्ञान प्राप्त हुआहै और शुद्ध ब्रह्मपद नहीं प्राप्त हुआहै उसको भोगोंको त्यागते हुये अति संताप

होता है ॥ २३ ॥ और जो रोते हुये अपने अंगोंको देखा इसका यह तात्पर्य है कि कुछ विवेकवाले चित्तने स्त्रीपुत्रादिकी करुणासे देखा और कहा कि कष्ट है कि इनको त्यागकर मैं जाताहूं ॥ २४ ॥

अर्द्धप्राप्तविवेकस्यनप्राप्तस्यामलंपदम् ॥ चेतसस्त्यजतोंगानिपरितापोहिवर्द्धते ॥ २५ ॥ हसितंतुयदानंदिपुंसामदवबोधतः ॥ परिप्राप्तविवेकेनतुष्टंराम चेतसा ॥ २६ ॥ परिप्राप्तविवेकस्यत्यक्तसंसारसंस्थितेः ॥ चेतसस्त्यजतोरूपमानंदोहिविवर्द्धते ॥ २७ ॥ हसतांगीनदृष्टानिपुंसायान्युपहासतः ॥ तानिदृष्टानिमनसाविप्रलम्भपदानिह ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि जिस चित्तको अर्द्ध (आधा) विवेक प्राप्त है और अमल पद नहीं प्राप्त है उसको स्नेह लोभ आदि अंगोंको छोडते संताप अधिक बढ़ता है ॥ २५ ॥ और जो मेरे जाननेसे पुरुषने हँसा यह कहा गया है उसका अर्थ यह है कि, विवेककी प्राप्तिसे चित्त संतुष्ट हुआ ॥ २६ ॥ क्योंकि जिस चित्तने विवेक प्राप्त कर लिया है और संसारकी स्थितिको त्याग दिया है तथा अपने रूप (चित्तत्व) को भी त्याग रहा है उसका आनन्द बढ़ता जाताहै ॥ २७ ॥ और पुरुष अपने अंगोंको देखकर हँसा इसका अर्थ यह है कि चित्तने स्नेह लोभ आदिको अपने वंचन (ठगने) का निमित्त देखकर हँसा ॥ २८ ॥

मिथ्याविकल्परचितैर्विप्रलब्धमहोचिरम् ॥ इत्थंगान्युपहासेनदृष्टानिस्वानिचेतसा ॥ २९ ॥ मनःप्राप्तविवेकंहिविश्रांतंविततेपदे ॥ प्राक्तनादीनताधारंहसन्पश्यतिदूरतः ॥ ३० ॥ यदसौसमवष्टभ्यमयापृष्टःप्रयत्नतः ॥ तद्विवेकोबलाच्चित्तमादत्तइतिदर्शितम् ॥ ३१ ॥ यदंगानिविशिर्णानिगतान्यंतर्द्धिमग्रतः ॥ तच्चित्तेनविनार्थाशाशाम्यतीतिप्रदर्शितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कि अहो ! मिथ्या विकल्प जालोंसे रचित विषयोंसे मुझे बहुत कालतक ठगा इस प्रकार उपहाससे चित्तने स्नेह लोभ आदि अंगोंको देखा ॥ २९ ॥ क्योंकि जिस मनको विवेक प्राप्त है और व्यापकपद (परब्रह्ममें) जिसको विश्राम मिला है वह पूर्वकालकी महा दीनताके आधार जो विषय जालहैं उनको दूरसेही देखकर हँसता है ॥ ३० ॥ और जो मैंने इसे रोककर प्रयत्नसे पूँछा इसका अर्थ यह है कि विवेकके बलसे चित्तको ग्रहण किया यह दर्शित किया ॥ ३१ ॥ और जो अंग सब छिन्न भिन्न होगये और देखते २ लुप्त होगये यह कहा गया इसका तात्पर्य यह है कि चित्तके विना पदार्थोंकी आशा शान्त होजाती है यह दिखलाया ॥ ३२ ॥

सहस्रनेत्रहस्तत्वंयत्पुंसःपरिवर्णितम् ॥ तदनंताकृतित्वंहिचेतसःपरिदर्शितम् ॥ ३३ ॥ यदात्मनिप्रहारौघैःपुमान्प्रहरतिस्वयम् ॥ तत्तत्कुकल्पनाघातैःप्रहरत्यात्मनोमनः ॥ ३४ ॥ पलायतेयत्पुरुषःस्वात्मनःप्रहरन्स्वयम् ॥ स्ववासनाप्रहारेभ्यस्तन्मनःप्रपलायते ॥ ३५ ॥ स्वयंप्रहरतिस्वांतंस्वयमेवस्वयेच्छया ॥ पलायतेस्वयंचैवपश्याज्ञानविजृंभितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और जो पुरुषके सहस्र हस्त और नेत्र हैं यह वर्णन किया गया है उससे यह तात्पर्य दिखलाया कि मनकी अनन्त आकृति (आकार) हैं ॥ ३३ ॥ और जो यह वर्णन किया गया कि पुरुष प्रहारोंके समूहोंसे अपने ऊपर आप प्रहार करता है उसका अर्थ यह है कि मन दुष्ट कल्पनाओंसे अपने ऊपर आपहि प्रहार करता है ॥ ३४ ॥ और जो यह वर्णन किया है कि पुरुष अपने ऊपर आपही प्रहार करते हुये भागता है उसका अर्थ यह है कि मन अपनी वासनारूप प्रहारों (चोटों) से आपही भागता है ॥ ३५ ॥ देखो इस अज्ञानकी लीला ! यह मन अपनी इच्छासे आपही अपने ऊपर प्रहार करता है और आपही भागता है ॥ ३६ ॥

स्ववासनोपतप्तानिसर्वाण्येवमनांसिहि ॥ स्वयमेवपलायंतेगंतुंयुक्तानितत्पदम् ॥ ३७ ॥ यदिदंविततंदुःखंतत्तनोतिस्वयंमनः ॥ स्वयमेवातिखिन्नंतुपुनस्तस्मात्पलायते ॥ ३८ ॥ संकल्पवासनाजालैःस्वयमायातिबंधनम् ॥ मनोलालामयैर्जालैःकोशकारकृमिर्यथा ॥ ३९ ॥ यथानर्थमवाप्नोतितथाक्रीडतिचंचलम् ॥ भाविदुःखमपश्यन्स्वंदुर्लीलाभिरिवार्भकः ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मपद जाननेमें उद्युक्त और अपनी वासनाहीसे विक्षोभित सब मन आपही भागते हैं ॥ ३७ ॥ जो यह विस्तारको प्राप्त दुःख है इसका विस्तार मन स्वयं करता है और उस दुःखसे अतिखिन्न होके आपही भागता है ॥ ३८ ॥ जैसे अपने मुखसे लाला (लार) मय जालोंसे कोशकार कीडा आपही बन्धनमें आता है ऐसेही मन अपने संकल्प और वासनाके जालोंसे आप बन्धनमें आता है ॥ ३९ ॥ जैसे बालक भावी दुःखको न देखताहुआ चपलतासे क्रीडा करता है और अनर्थको पाता है यही दशा मनकी है ॥ ४० ॥

अपश्यन्काष्ठरंध्रस्थवृषणाक्रमणंयथा ॥ कीलोत्पाटीकपिर्दुःखमेतीदंहितथामनः ॥ ४१ ॥ चिरपालन याचैवचिरभावनयातथा ॥ अभ्यासात्तुच्छतामेत्यनभूयःपरिशोचति ॥४२॥ मनःप्रमादाद्वर्द्धंतेदुःखानि गिरिकूटवत् ॥ तद्वशादेवनश्यंतिसूर्यस्याग्रेहिमंयथा ॥ ४३ ॥ यावज्जीवमनिंद्ययाचरमतेशास्त्रार्थसंजा तयातुल्यंवासनयामनोहिमुनिवन्मौनेनरागादिषु ॥ पश्चात्पावनपावनंपदमजंतत्प्राप्यतच्छीतलंतत्सं स्थेननशोच्यतेपुनरलंपुंसामहापत्स्वपि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तोपाख्यानं नामैकोनशततमःसर्गः ॥ ९९ ॥ चित्तोपाख्यानं सम्पूर्णम् ॥

अर्थ—जैसे बढई (लोहार) लोग जंगलमें आधाकाष्ठ फाडके और उसमें कील लगाके दैवेच्छासे कहीं चलेजाँय और उसपर चपल वानर भावीदुःखको न देखकर उस काष्ठके छिद्रमें अपना वृषण लटकाके बैठजाँय और चंचलतासे कील उखाडनेसे दुःख पावे वैसेही यह मनभी पाता है ॥ ४१ ॥ चिरकालतक समाधिके पालन (करने) से तथा चिरकालतक आत्मभावनाके अभ्याससे यह मन तुच्छताको प्राप्तहोके पुनः शोच नहीं करता ॥ ४२ ॥ मनकेही प्रमाद (कुत्सित कर्म करने) से पर्वतोंके समूहके तुल्य दुःख बढते हैं, और मनके बश (एकाग्रता) से ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्यके सम्मुख हिम (पाता) ॥ ४३ ॥ यदि शास्त्रके अर्थसे उत्पन्न अनिन्दनीय वासनासे राग द्वेष आदि विषयोंमें समरस होके निरोधपूर्वक मुनिके समान मन रमण करै तो पश्चात् अतिपवित्र, जन्म आदि विकाररहित तथा अतिशीतल अर्थात् आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तापोंका नाशक ब्रह्मपद प्राप्तकरके और उसमें चिरकाल स्थित होके पुरुष बडी २ महान आपत्ति योंमें भी शोच नहीं करता ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तोपाख्यानं नामैकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥ चित्तोपाख्यानं संम्पूर्णम् ॥

शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

इस १०० के सर्गमें मनकी शक्ति ब्रह्मकी सर्व शक्तिता तथा अज्ञान मात्रसे अद्वैत ब्रह्ममें बन्धमोक्ष आदि कल्पना वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तमेतदुपायातंब्रह्मणःपरमात्पदात् ॥ अतन्मयंतन्मयंचतरंगःसागरादिव ॥ १ ॥ प्रबुद्धानांमनोरामब्रह्मैवेहहिनेतरत् ॥ जलसामान्यबुद्धीनामब्धेर्नान्यस्तरंगकः ॥ २ ॥ मनोग माप्रबुद्धानांसंसारभ्रमकारणम् ॥ अपश्यतोंबुसामान्यमन्यतांबुतरंगयोः ॥ ३ ॥ अप्रबुद्धदृशांपक्षेत त्प्रबोधायकेवलम् ॥ वाच्यवाचकसंबंधकृतोभेदःप्रकल्प्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! परमात्म पद ब्रह्मसे अतन्मय (ब्रह्मभूत अज्ञानका विकार) और तन्मय (शुद्ध ब्रह्मका विवर्तरूप) यह मन ऐसे उत्पन्न हुआ है जैसे समुद्रसे तरंग ॥ १ ॥ हे रामजी ! ज्ञानियोंकी दृष्टिमें मन ऐसे ब्रह्मही है अन्य कुछ नहीं जैसे जलकी सामान्य सत्ता जाननेवालोंकी बुद्धिमें समुद्रसे पृथक् तरंग नहीं है ॥ २ ॥ हे रामजी ! अज्ञानियोंकाही मन संसारके भ्रमका कारण है जैसे जो जलकी सामान्य सत्ताको नहीं देखते वेही जल और तरंगमें भेद मानते हैं ॥ ३ ॥ अज्ञानियोंके पक्षमें और केवल उन्हींके उपदेशके अर्थ वाच्यवाचक संबन्धसे भेदसे भेदकी कलपना की गई है ॥ ४ ॥

सर्वशक्तिपरंब्रह्मनित्यमापूर्णमव्ययम् ॥ नतदस्तिनतस्मिन्यद्विद्यतेविततात्मनि ॥ ५ ॥ सर्वशक्तिर्हि भगवान्यैवतस्मैहिरोचते ॥ शक्तितामेवविततांप्रकाशयतिसर्वगः ॥ ६ ॥ चिच्छक्तिर्ब्रह्मणोरामशरीरेष्व भिदृश्यते ॥ स्पंदशक्तिश्चवातेषुजडशक्तिस्तथोपले ॥ ७ ॥ द्रवशक्तिस्तथांभःसुतेजःशक्तिस्तथानले ॥ शून्यशक्तिस्तथाकाशेभावशक्तिर्भवस्थितौ ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सर्वशक्तिमान् नित्य सर्वत्र पूर्ण और अविनाशी वह परब्रह्म परमात्माहै, ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो उस व्यापक परमात्मामें नहीं ॥ ५ ॥ वह भगवान् सर्व शक्तिमान् और यह सर्वशक्तिमत्ता उसको रुचती है और वह सर्वगामी इसी विलसत सर्वशक्तिताको सर्वत्र कार्य्यरूपसे प्रकट करता है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! अण्डजादि चारों प्रकारके प्राणियोंके समूहोंमें ब्रह्मकी चेतनशक्ति देख पडती है गतिशक्ति वायुमें और जडशक्ति

पाषाणमें दीखती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार द्रवशक्ति जलमें तेजशक्ति वायुमें शून्य (अवकाश देनेकी) शक्ति आकाश-में तथा व्यवहारकी योग्यता रूप शक्ति संसारकी स्थितिमें देख पडती है ॥ ८ ॥

ब्रह्मणःसर्वशक्तिर्हिदृश्यतेदशदिग्गता ॥ नाशशक्तिर्विनाशेषुशोकश्क्तिश्चशोकिषु ॥ ९ ॥ आनन्दशक्तिर्मुदितेवीर्यशक्तिस्तथाभटे ॥ सर्गेषुसर्गशक्तिश्चकल्पांतेसर्वशक्तिता ॥ १० ॥ फलपुष्पलतापत्रशाखाविटपमूलवान् ॥ वृक्षबीजेयथावृक्षस्तथेदंब्रह्मणिस्थितम् ॥ ११ ॥ प्रतिभासवशादेवमध्यस्थंचित्तजाड्ययोः ॥ जीवेतराभिधंचित्तमंतर्ब्रह्मणिदृश्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्मकी सर्वशक्ति दशोंदिशाओंमें व्याप्त देख पडती है, कारणोंमें तिरोभावशक्ति तथा शोकसे उत्पन्न देहके उत्पन्न करनेकी शक्ति शोकयुक्त प्राणियोंमें है ॥ ९ ॥ प्रसन्नमें आनन्दशक्ति, शूरवीरमें पराक्रमशक्ति, सर्गोंमें सृष्टि रचनेकी शक्ति, तथा कल्पांतप्रलयमें सर्वशक्तिता देख पडती है क्योंकि सब कार्य्योंका बीज मूल यही है इसीसे संस्काररूपसे रहते हैं ॥ १० ॥ जैसे वृक्षके बीजमें फल, पुष्प, लता, पत्र, शाखा, विटप और मूल सहित वृक्ष रहता है ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् स्थित है ॥ ११ ॥ चित्त और जडताके मध्यमें स्थित और जिसका दूसरा नाम जीव है ऐसा यह चित्तप्रतिभास (साक्षी चेतन) के बलसे ब्रह्ममें स्थित है ॥ १२ ॥

नानातरुलतागुल्मजालपल्लवशालयः ॥ निर्विकल्पकचिन्मात्रंनानानिर्ज्ञातकल्पना ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदमहंतत्त्वंजगत्पश्याद्यराघव ॥ आत्मासर्वगोनामनित्योदितमहावपुः १४ ॥ यन्मनाङ्मननींशक्तिंधत्तेतन्मनउच्यते ॥ पिच्छभ्रांतिर्यथाव्योम्निपयस्यावर्त्तधीर्यथा ॥ १५ ॥ प्रतिभासकलामात्रंमनोजीवस्तथात्मनि ॥ यदेतन्मनसोरूपमुदितंमननात्मकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—नाना प्रकारके वृक्ष लता गुल्मसमूह पल्लव तथा धान्यादि यह सब दृश्य प्रपंच अज्ञात चिन्मात्रके विवर्त हैं. इस लिये शुद्ध चेतन रूपहीहै ॥ १३ ॥ हे रामजी ! तुम ऐसा देखो कि यह जगत् और अहम् इस रूपसे भासमान जो जीवतत्वहै वह प्रत्यक् चिद्रूप ब्रह्महीहै और वह चिद्रूप आत्मा सर्वव्यापी और नित्य महान् शरीरसे प्रकटहै ॥ १४ ॥ जो चेतन किंचित् मात्र मननशक्तिको धारण करताहै उसीको मन कहतेहैं और आकाशमें जैसे मोरके पच्छके तुल्य नीलताकी भ्रांति होतीहै, और जलमें आवर्त (भँवरहै) बुद्धि होतीहै ऐसेही प्रतिभासकी कलामात्र मन जीव आत्मामें है. जो यह मननरूप मनका स्वरूप आविर्भूतहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

ब्राह्मीशक्तिरसौतस्माद्ब्रह्मैवतदरिंदम ॥ इदंतदहमित्येवविभागःप्रतिभासजः ॥ १७ ॥ मनसोब्रह्मणोन्यच्चमोक्षेपरमकारणम् ॥ यच्चैतन्मनस्येवकिंचित्सदसदात्मकम् ॥१८॥ व्याशब्दितंसर्वशक्तेस्तांशक्तिंब्रह्मतांविदुः ॥ मनःसत्तात्मकंनामयथैतन्मनसिस्थितम् ॥ १९ ॥ यथर्त्तोःशक्तयस्तद्वज्जीवेहाब्रह्मणिस्थिताः ॥ व्याप्तसर्वर्त्तुकुसुमाक्ष्मादेशविधिभेदतः ॥ २० ॥

अर्थ--यह सब ब्रह्मकी शक्तिहै इसलिये हे शत्रुनाशक रामजी ! यह सब ब्रह्माण्ड ब्रह्मरूपहीहै और यह वह और मैं यह सब विभाग प्रतिभाससे उत्पन्न हुवाहै ॥१७॥ मन जीव और ब्रह्मके भेदमें जो २ परम कारण कामादि लोकमें कहाहै वह सब मनमें आविर्भाव तिरोभावसे सदसदात्मक सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी ब्रह्मताही कहीगईहै और कुछ नहीं और जैसे सत्तात्मक मन संसर्गाध्याससे मनमें स्थितहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ और जैसे ऋतु वसंत आदिकी शक्ति वृक्षमें रहती है ऐसेही जीवकी चेष्टा मनके धर्म ब्रह्ममें स्थित हैं जैसे सब ऋतुके पुष्पआदि व्याप्त भीपृथिवी परन्तु उन २ देशोंमें बीजके संस्कार आदिके भेदकी व्यवस्थासेही उत्पन्न करती है ॥ २० ॥

यथादधानिपुष्पाणितथाचित्तानिलोककृत् ॥ क्वचित्क्वचित्कदाचिद्धितस्मादायांतिशक्तयः ॥ २१ ॥ देशकालादिवैचित्र्यात्क्ष्मातलादिहशालयः ॥ नजातंप्रतिभासेनतेनैवान्येनपश्यति ॥२२॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यारूपादयश्चये ॥ मनःशब्दैःप्रकल्प्यंतेब्रह्मजान्ब्रह्मविद्धितान् ॥ २३ ॥ यथायथास्यमनसःप्रतिभासःप्रवर्तते ॥ तथातथैवभवतिदृष्टांतोत्रकिलैंदवाः ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्मा भी व्यवस्थासे चित्तशक्तियोंको धारण करता है उस परमात्मासे कहीं २ और कभी व्यवस्थित फलरूपसे शक्तियां इस प्रकार प्रकट होती हैं ॥ २१ ॥ जैसे देशकाल आदिकी विचित्रतासे पृथिवीतलसे धान्यकी शक्ति प्रकट होती है,यथार्थमें भी प्रातिभाससे जो उत्पन्न हुआ वह कुछ नहीं उत्पन्न हुआ क्योंकि प्रातिभासिक (मृगतृष्णाआदि) को कर्तताही नहीं सकती और न किसीको कोई किसीके द्वारा देखता है क्यों कि " यत्र-त्वस्याद्वैतमेवाभूत् तत्र केन पश्येत् " जहां केवल आत्मसत्ता है वहां कौन किसको किसके द्वारा देखता है ॥ २२ ॥ और जो प्रतियोगी (जिसका अभाव हो, वा विशेषण) व्यवच्छेद (एव शब्दसे जो अलग किया जाता है) संख्या

और रूपादि जो जगत्‌की विचित्रता हैं वे सब मनशब्दसे कल्पित हैं और ब्रह्मसेही विवर्तरूपसे उत्पन्न हैं इसलिये उनको ब्रह्महीं जानो ॥ २३ ॥ जिस २ प्रकार मनका प्रतिभास प्रवृत्त होताहै उसी २ प्रकार सब कुछ निश्चयरूपसे होता है इसमें दृष्टान्त इन्दुके पुत्र ऐन्दव हैं ॥ २४ ॥

स्वयमक्षुब्धविमलेयथास्पंदोमहांभसि ॥ संसारकारणंजीवस्तथायंपरमात्मनि ॥ २५ ॥ ज्ञस्यसर्वंचितंरामब्रह्मैवावर्ततेसदा ॥ कल्लोलोर्मितरंगौघैरब्धेर्जलमिवात्मनि ॥ २६ ॥ द्वितीयानास्तिसत्तैकानामरूपक्रियात्मिका ॥ परेनानातरंगेब्धौकल्पनेवजलेतरा ॥ २७ ॥ जायतेनश्यतितथायदिदंयातितिष्ठति ॥ तदिदंब्रह्मणिब्रह्मब्रह्मणाचविवर्त्तते ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे क्षोभरहित महाजलमें तरंगरूप गति है, ऐसे परमात्मामें संसारकी कल्पना कारण जीवरूप ब्रह्म है दूसरा नहीं ॥ २५ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीप्राणीको ब्रह्महीं सर्वत्र पूर्ण भान ऐसे होता है जैसे समुद्रका जल अपनेही रूपमें कल्लोल, ऊर्मि (छोटीलहर) और तरंगों (बडी लहरों) से पूर्ण रहता है ॥ २६ ॥ परब्रह्ममें नाम रूपविकार सहित दूसरी कोई सत्ता ऐसे नहीं जैसे नाना तरंगयुक्त समुद्रमें जलसे अन्य दूसरी सत्ता नहीं है ॥ २७ ॥ और जो यह उत्पन्न होता है नष्टही होता है जाता है तथा स्थित है इत्यादि विकार भान होते हैं यह सब ब्रह्ममें ब्रह्मही शुक्तिमें रजतके तुल्य अतात्विक रूपसे प्रतिभासता है ॥ २८ ॥

स्वात्मन्येवातपस्तीव्रोमृगतृष्णिकयायथा ॥ विचित्रेणविचित्रोपिप्रस्फुरत्यात्मनातथा ॥ २९ ॥ करणंकर्मकर्त्ताचजननंमरणंस्थितिः ॥ सर्वंब्रह्मैवनह्यस्तितद्विनाकल्पनेतरा ॥ ३० ॥ नलोभोस्तिनमोहोस्तिनतृष्णास्तिनरंजना ॥ कआत्मन्यात्मनोलोभस्तृष्णामोहोथवाकुतः ॥ ३१ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमात्मैवकलनाक्रमः ॥ हेमांगदतयेवायमात्मोदेतिमनस्तया ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तीव्र आतप (घाम) अपनेही स्वरूपमें मृगतृष्णाकी नदीरूपसे भासता है ऐसेही नाम रूपसे रहित भी आत्मा अपनेहीमें विचित्ररूपसे भासता है ॥ २९ ॥ करण कर्म और कर्ता, तथा जन्म मरण और स्थिति यह सब वही है क्योंकि उसके विना अन्य कोई कल्पना नहीं है ॥ ३० ॥ न लोभ है, न मोह है और न तृष्णा न आसक्ति है क्यों कि आत्माका आत्मामें क्या लोभ क्या मोह और कहांसे और क्या तृष्णा है॥ ३१ ॥ यह जगत् सब आत्माही है और जो कुछ कल्पनाका क्रम है वह सब आत्माही है और जैसे सुवर्ण अंगदरूप पाय सुवर्णसे प्रकट होताहै ऐसेही मनरूपसे आत्माही प्रकट है ॥ ३२ ॥

अबुद्धंयत्परंधामतच्चित्तंजीवउच्यते ॥ अपरिज्ञातएवाशुबंधुरयात्यबंधुताम् ॥ ३३ ॥ चिन्मयेनात्मनाज्ञेनस्वसंकल्पनयास्वयम् ॥ शून्यतागगनेनेवजीवताप्रकटीकृता ॥ ३४ ॥ आत्मैवानात्मवदिहजीवोजगतिराजते ॥ द्वींदुत्वमिवदुर्दृष्टेः सच्चासच्चसमुत्थितम् ॥ ३५ ॥ मोहार्थशब्दार्थदृशोरेतयोरत्यसंभवात् ॥ सत्यत्वादात्मनश्चैवक्वात्माबद्धःक्वमुच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञात जो परम धाम है वही चित्त तथा जीव कहलाता है, क्योंकि अज्ञात जो बंध है वही शीघ्र अबन्ध होजाता है ॥ ३३ ॥ जैसे अज्ञानका विषय अशून्य आकाश शून्यता प्रकट किया है ऐसे ही अज्ञात चिन्मय आत्मानेही अपने संकल्पसे जीवता प्रकट किया है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! यह जीव आत्मस्वरूप होके भी अनात्मभूत अहंकारादिके साथ अभेद होनेसे अहं प्रत्ययके विषयके तुल्य जगत्‌शोभित होरहाहै और यह दूषित दृष्टिको दो चन्द्रके समान द्वितीय रूपसे असत् और अपने पारमार्थिक रूपसे सत्‌स्वरूपसे आविर्भूत है ॥ ३५ ॥ हे रामजी! व्यामोहके निमित्त शब्द अर्थकी दृष्टियों अत्यन्त असंभव होनेसे और आत्मा सदा सत्व असंग रूप होनेसे यह आत्मा कहां बद्ध है और कहां मुक्त होता है? ॥ ३६ ॥

नित्यासंभवबंधस्यबद्धोस्मीतिकुकल्पना ॥ यस्यकल्पनिकस्तस्यमोक्षोमिथ्यानतत्त्वतः ॥ ३७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनोयंनिश्चयंयातितत्तद्भवतिनान्यथा ॥ तेनकाल्पनिकोनास्तिबंधःकथमिहप्रभो॥ ३८॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मिथ्याकाल्पनिकीवेयंमूर्खाणांबंधकल्पना ॥ मिथ्यैवाभ्युदितातेषामितरामोक्षकल्पना ॥ ३९ ॥ एवमज्ञानकादेवबंधमोक्षदृशोऽस्मृतेः ॥ वस्तुतस्तुनबंधोस्तिनमोक्षोस्तिमहामते ॥ ४० ॥

अर्थ—जिसको बन्धनका नित्य असंभव है उसको मैं बद्ध हूं यह कुकल्पनाहै,न मोक्षोस्ति जब जिसको बन्धन काल्पनिक है उसको मोक्ष भी मिथ्याही है न कि वास्तविक॥३७॥श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यह मन जैसा निश्चय करता है वैसाही होता है औरतरह नहीं इस मनकी कल्पनासे काल्पनिक भी बन्धनही है यह कैसे ? ॥ ३८ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले-हे रामजी!जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रतदशामें मिथ्या हैं ऐसे मूर्खोंकी जो बद्ध कल्पना है वह भी मिथ्या

है और ऐसेही उनके लिये मोक्षकी कल्पना भी मिथ्या है अभ्युदयको प्राप्त है ॥ ३९ ॥ हे महामते रामजी! पूर्वोक्त रीतिसे तुच्छ अनिर्वचनीय अज्ञानसेही बन्ध और मोक्ष दृष्टि इनके सत्य होनेमें स्मृति (न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता, न मोक्षेच्छु न मुक्त यह यथार्थहै) विरोधहै क्योंकि यथार्थमें बन्धहै न मोक्षहै ॥ ४० ॥

कल्पनायाअवस्तुत्वंसंप्रबुद्धमतिंप्रति ॥ रज्जुवद्वैरिवहेप्राज्ञतत्त्वबुद्धमतिंप्रति ॥ ४१ ॥ बंधमोक्षादिसंमोहोनप्राज्ञस्यास्तिकश्चन ॥ संमोहबंधमोक्षादिह्यज्ञस्यैवास्तिराघव ॥ ४२ ॥ आदौमनस्तदनुबंधविमोक्षदृष्टीपश्चात्प्रपंचरचनाभुवनाभिधाना ॥ इत्यादिकास्थितिरियंहिगताप्रतिष्ठामाख्यायिकासुभगबालजनोदितेव ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सापूर्वकंचित्तोत्पत्तिवर्णनं नाम शततमःसर्गः ॥ १०० ॥

अर्थ—हे प्राज्ञ रामजी! रज्जुके सर्पके समान कल्पना की जो अवस्तुता कही गईहै वह ज्ञानी प्रति जो पूर्वोक्त अनिर्वचनीयता कही गई है वह अज्ञानीके प्रति॥४१॥हेरामजी!बन्ध और मोक्षादिका जो व्यामोहहै वह तत्ववेत्ताको कुछ भी नहीं है क्योंकि बन्ध मोक्षादिकामोह अज्ञानी को ही है॥४२॥हे सुभग रामजी! प्रथम माया शबलित परमात्मा से मन उसके पश्चात् बन्ध और मोक्षकी दृष्टि और उसके पश्चात् भुवनोंकी रचना इत्यादिक स्थिति ऐसे प्रतिष्ठाको प्राप्तहुई है जैसे धात्री(धाई) की कही हुई बालकके प्रति वक्ष्यमाण आख्यायिका गाथा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तचिकित्सा पूर्वकं चित्तोत्पत्ति वर्णनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थशून्य भी परंतु संकल्पसे सैकड़ों विकल्प सहित बालककी आख्यायिका क्रमवाला दृष्टांत इस १०१ सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ किमुच्यतेमुनिश्रेष्ठबालकाख्यायिकाक्रमः ॥ क्रमेणकथयैतन्मेमनोवर्णनकारणम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ कोपिमुग्धमतिर्बालोधात्रींपृच्छतिराघव ॥ कांचिद्विनोदिनींधात्रिवर्णयाख्यायिकामिति ॥ २ ॥ साबालस्यविनोदायधात्रीतस्यमहामते ॥ आख्यायिकांकथयतिप्रसन्नमधुराक्षराम् ॥३॥ क्वचित्संतिमहात्मानोराजपुत्रास्त्रयःशुभाः॥ धार्मिकाःशौर्यमुदिताअत्यंतासत्तिपत्तने॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् बालककी आख्यायिका दृष्टान्त किसप्रकार लोकमें कहा जाता यह जो मनके वर्णनका कारण है उसे क्रमसे कहो ॥ १॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव!सत्यासत्यके विवेकसे शून्य बुद्धिवाले बालकने अपनी धाईसे पूंछा कि हे धात्रि !कोई मनोरंजक कथा कहो ॥२॥ हे महामते रामजी! वह धात्री उस बालकके विनोदके अर्थ कर्णोंको आनन्द दायक मधुर अक्षरवाली आख्यायिका कहती है ॥ ३ ॥ हे पुत्र! जिसके बडे विशाल शाखा नगर (महल्ले) शून्य थे ऐसे किसी अत्यन्त असत्(सर्वथा असत्) नाम नगरमें महात्मा सुन्दरशरीर धार्मिक वीरतासे प्रसन्न तीन राजकुमार ऐसे रहते थे ॥ ४॥

विस्तीर्णशून्यनगरेव्योम्निवजलतारकाः ॥ द्वौनजातौतथैकस्तुगर्भएवनसंस्थितः ॥ ५ ॥ अथात्युत्तमलाभार्थंकदाचित्समवायतः ॥ विबंधवःखिन्नमुखाःशोकोपहतचेतसः ॥ ६ ॥ तेतस्माच्छून्यनगरान्निर्गताविततानना: ॥ गगनादिवसंश्लिष्टाबुधशुक्रशनैश्वराः ॥ ७ ॥ शिरीषसुकुमारांगाःपृष्ठतोर्कणतापिताः ॥ मार्गेहनिगताग्रीष्मतापार्त्ताःपल्लवाइव ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें जलमय तारा, उन तीनों पुत्रोंमेंसे दो तो पैदाही नहीं हुये और एकतो माताके गर्भमेंही नहीं आया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर कभी दैवसे बन्धुओंके मरनेसे और दुर्भिक्षसे खिन्नमुख और शोचसे नष्ट चित्त होके परस्पर एकमत होके अपने अत्यन्त असत् नगरसे किसी उत्तम नगरके लाभार्थ निकले ॥ ६॥ हे पुत्र ! वे विशालमुखवाले तीनों राजपुत्र उस शून्यनगरसे ऐसे निकले जैसे आकाशसे मिले हुये बुध शुक्र और शनैश्चर ॥ ७ ॥ वे शिरीषके पुष्पके सदृश सुकुमार अंगवाले मार्गमें सूर्य्यके सन्तापसे ऐसे संतप्त हुये जैसे ग्रीष्मके तापसे कुह्मलायेहुये पत्ते ॥ ८॥

संतप्तमार्गसिकतादग्धपादसरोरुहाः ॥ हातातचेतिशोचंतोमृगायूथच्युताइव ॥ ९ ॥ दर्भाग्रभिन्नचरणास्तापखिन्नांगसंधयः ॥ उल्लंघ्यदूरमध्वानंधूलिधूसरमूर्त्तयः ॥ १०॥ मंजरीजालजटिलंफलपल्-

वमालितम् ॥ मृगपक्षिगणाधारंप्रापुर्मार्गेतरुत्रयम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्वृक्षत्रयेद्वृक्षौद्वौनजातौमनागपि ॥ बीजमेवतृतीयस्यस्वारोहस्यनविद्यते ॥ १२

अर्थ—मार्गके रेत आदिसे संतप्त होगयेहैं चरण जिनके ऐसे थे, हा! तात ऐसा कहके इस प्रकार शोचने लगे जैसे अपने झुंडसे बिछुडे हुये मृग ॥९॥ कुशके अग्रभागसे छिन्नभिन्न चरणवाले तापसे खिन्न शरीर धूलिसे धूसरवर्ण वे राजपुत्र बहुत दूर मार्गको उल्लंघन करके ॥ १० ॥ लतासमूहोंसे शोभायमान फल पत्रसे पूर्ण और नाना प्रकारके पक्षिगणोंके आधार तीन वृक्षको पाया ॥ ११ ॥ जिन तीनों वृक्षोंमेंसे दो तो कुछभी उत्पन्न नहीं हुएथे और तीसरेको सुखसे जाननेको बीज ही नथा ॥ १२ ॥

विश्रांतास्तेपरिश्रांतास्तत्रैकस्यतरोरधः ॥ पारिजाततलेस्वर्गेशक्रानिलयमाइव ॥ १३ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभुक्त्वापीत्वाचतद्रसम् ॥ कृत्वागुलुच्छकैर्मालांचिरंविश्रम्यतेययुः ॥ १४ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वा मध्याह्नेसमुपस्थिते ॥ सरित्त्रितयमासेदुस्तरंगतरलारवम् ॥ १५ ॥ तत्रैकापरिशुष्कैवमनागप्यंबुनद्वयोः ॥ विद्यतेसरितोर्दृष्टिरंधलोचनयोरिव ॥ १६ ॥

अर्थ—उनमेंसे एक वृक्षके नीचे ऐसे विश्राम किया जैसे स्वर्गमें कल्पवृक्षके नीचे इन्द्र अग्नि और यम ॥ १३॥ उस वृक्षके अमृततुल्य फलोंको खाकर तथा वैसाही उसके रसको पीकर तथा पुष्पके गुच्छोंकी माला पहिनकर और चिरकालतक विश्राम करके वहांसे चलेगये ॥१४॥ पुनः बहुत दूर जाके जब मध्यान्ह (दोपहर) हुआ तो तरंगोंसे चंचलतायुक्त शब्द करते हुई तीन नदियां मिलीं ॥ १५ ॥ उनमेंसे एकतो सर्व था शुष्क थी और शेष (बाकी) दोनोंमें अन्धेके नेत्रोंमें दृष्टिके तुल्य कुछभी जल नथा ॥ १६ ॥

परिशुष्कामृशंयासौतस्यांतेसस्नुरादृताः ॥ घर्मार्त्ताइवगंगायांब्रह्मविष्णुहराइव ॥ १७ ॥ चिरंकृत्वा जलक्रीडांपीत्वाक्षीरोपमंपयः ॥ जग्मुस्तेराजतनयाःप्रहृष्टमनसःस्वयम् ॥ १८ ॥ अथासेदुर्दिनस्यांते लंबमानेदिवाकरे ॥ भविष्यन्नवनिर्माणंनगरंनगसन्निभम् ॥ १९ ॥ पताकापद्मिनीव्याप्तंनीलाकाशजलाशयम् ॥ दूरश्रुतसमुल्लापगायन्नागरमण्डलम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो नदी सूखगईथी उसीमें घामसे पीडित वे तीनोंने प्रेमसे ऐसे स्नान किया जैसे गंगाजीमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव ॥१७॥ दीर्घकालतक जलक्रीडा करके और दुग्धके समान उसके जलको पीकर वे राजपुत्र स्वयं प्रसन्नचित्त हुये ॥ १८ ॥ और इसके पश्चात् जब दिनके अन्तमें सूर्य लंबमान हुये तो नूतन रचनावाले भविष्यत् (होनेवाले) नगरमें जो कि पर्वतके तुल्य ऊंचा था उसमें पहुँचे ॥ १९ ॥ पताका और कमलिनीसे पूर्ण नील आकाशके समान सुन्दर बाग शून्य तड़ाग थे जिसमें और नगरनिवासियोंके मण्डलका गान जहांपर सुन पडताथा ऐसे ऐसे नगरमें प्राप्त हुये ॥ २० ॥

ददृशुस्तत्ररम्याणित्रीणिसद्भवनानिते ॥ मणिकांचनगेहानिशृंगाणीवमहागिरेः ॥ २१ ॥ अनिर्मितेद्वेसदनेएकंनिर्भित्तितत्रवै ॥ अभित्तिमंदिरंचारुप्रविष्टास्तेनरास्त्रयः ॥ २२ ॥ संप्रविश्योपविश्याशुविहरन्तोवराननाः ॥ प्रापुःस्थालीत्रयंतत्रतप्तकांचनकल्पितम् ॥ २३ ॥ तत्रकर्परतांयातेद्वेएकाचूर्णतांगता ॥ जगृहुश्चूर्णरूपांतांस्थालींतेदीर्घबुद्धयः ॥ २४ ॥

अर्थ—और वहांपर सुमेरुके अंगके समान मणिजडित सुवर्णके गृह (कोठरी) सहित तीन उत्तम भवन देखा ॥ २१ ॥ उन तीनों स्थानोंमेंसे दो तो बनेही नथे और एक भित्तिशून्यथा, जो भित्तिरहित था उस उत्तम स्थानमें वे तीनों प्रविष्ट हुये ॥ २२ ॥ उसमें प्रवेश करके श्रेष्ठमुखवाले विहार करतेहुये ये तीनोंने सन्तप्त सुवर्णसे बनी हुई तीन स्थाली (बटलोही) पाया ॥ २३ ॥ उनमेंसे दो तो कपालरूप होगई और एक चूर २ होगईथी उन विशाल बुद्धियोंने जो स्थाली चूर २ हो गईथी उसीको ग्रहण किया ॥ २४ ॥

द्रोणैर्नवनवत्यातैस्तस्यांद्रोणेनचांधसः ॥ तत्रद्रोणशतंहीनंरंधितंबहुभोजिभिः ॥ २५ ॥ निमंत्रितास्त्रयस्तैस्तुब्राह्मणाराजसूनुभिः ॥ द्वौनिर्देहावथैकस्यमुखमेवनविद्यते ॥ २६ ॥ निर्मुखेनांधसस्तत्रभुक्तंद्रोणशतंसुत ॥ विप्रभुक्तावशेषंतुभुक्तमंधोनृपात्मजैः ॥ २७ ॥ त्रिभिस्तेराजपुत्राश्चपरांनिर्वृतिमागताः ॥ भविष्यन्नगरेतस्मिन्राजपुत्रास्त्रयोहिते ॥ सुखमद्यस्थिताःपुत्रमृगयाव्यवहारिणः २८ ॥

अर्थ—उसमें १०० सौ द्रोण (१० सेर अटकलमें) अन्नकी संख्या कम १०० सौ द्रोण चावलका भात अनेक व्यंजनके साथ बनाया॥२५॥उन राजपुत्रोंने तीन ब्राह्मणोंको नेवतरा किया उन ब्राह्मणोंमें से दोको शरीरही न था और एकको मुखही नथा ॥ २६ ॥ सो हे पुत्र! जिस ब्राह्मणको मुख न था उसने १०० द्रोण चावलका भात

खा गया और ब्राह्मणसे बचे हुये भातको उन तीनों राजपुत्रोंने खाया ॥ २७ ॥ भोजनके पश्चात् वे राजपुत्र अति तृप्त हुये और उस भविष्यत् नगरमें वे तीनो राजपुत्र मृगया (अहेर) करते हुये अब भी सुखी हैं ॥ २८ ॥

आख्यायिकैषाकथितामयारम्यातवानघ ॥ एतांहृदिकुरुप्राज्ञविदग्धस्त्वंभविष्यसि ॥ २९ ॥ धात्र्येतिकथितारामबालकाख्यायिकाशुभा ॥ तुष्टिंजगामबालश्चशुभाख्यायिकयाऽनया ॥३० ॥ एषाहिकथितारामचित्ताख्यानकथांप्रति ॥ बालकाख्यायिकातुभ्यंमयाकमललोचन ॥ ३१ ॥ इयंसंसाररचनास्थितिमेवमुपागता ॥ बालकाख्यायिकेवोग्रैःसंकल्पैर्दृढकल्पितैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पापरहित पुत्र ! यह सुन्दर आख्यायिका तुह्मारे अर्थ मैंने कहा इसको कण्ठकर लो तो तुम पण्डित होजाओगे ॥ २९ ॥ हे रामजी ! इस सुन्दर आख्यायिका (कथा व किस्सा) को धात्रीने बालकको कहा और वह बालकभी इस शुभ कथासे प्रसन्न हुआ ॥ ३० ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! चित्ताख्यानके अनन्तर जगत्का विकल्प मात्रही इस कथाका उदाहरणरूप यह बालकाख्यायिका मैंने तुमसे कही ॥ ३१ ॥ बालकाख्यायिके तुल्य यह संसारकी रचना उग्र (महान्) दृढतासे कल्पित संकल्पोंसे इस प्रकार दृढताको प्राप्त हुई है ॥ ३२ ॥

विकल्पजालकैवेयंप्रतिभासात्मिकानघ ॥ बंधमोक्षादिकलनारूपेणपरिजृंभते ॥ ३३ ॥ संकल्पमात्रादितरद्विद्यतेनेहकिंचन ॥ संकल्पवशतःकिंचिन्नकिंचित्किंचिदेववा ॥ ३४ ॥ द्यौःक्ष्मावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ संकल्पकचितंसर्वमेवंस्वप्नवदात्मनः ॥ ३५ ॥ राजपुत्रास्त्रयोनद्योभविष्यन्नगरे यथा ॥ यथासंकल्परचनातथेयंहिजगत्स्थितिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! प्रति भासरूप यह विकल्प जाति बन्धमोक्ष आदि कल्पना रूपसे विस्तृत होरहीहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जो कुछ यह भान होताहै वह संकल्पमात्रसे, पृथक् कुछ नहीं है और जो कुछ यह विकल्प समूह भासता है वह सब संकल्पकेही वशसे भान होता है और विकल्पमात्रसे जो कुछ भान हुआ है वह नहीं वा अनिर्वचनीयके तुल्य है ॥ ३४ ॥ अपने स्वप्नके तुल्य स्वर्ग पृथिवी वायु आकाश पर्वत नदियां और दिशा यह सब संकल्पकाही विस्तार है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! जैसे भविष्यत् नगरमें तीनों राजपुत्र नदियां तथा जैसे संकल्पकी रचना है वैसेही यह संसारकी स्थिति है ॥ ३६ ॥

संकल्पमात्रमभितःपरिस्फुरतिचंचलः ॥ पयोमात्रात्मकोंभोधिरंभसीवात्मनात्मनि ॥ ३७ ॥ संकल्पमात्रंप्रथममुत्थितंपरमात्मनः ॥ तदिदंस्फारतांयातंव्यापारैर्दिवसंयथा ॥ ३८ ॥ संकल्पजालकलनैवजगत्समग्रंसंकल्पमेवननुविद्धिविलासचेत्यम् ॥ संकल्पमात्रमलमुत्सृजनिर्विकल्पमाश्रित्यनिश्चयमवाप्नुहिरामशांतिम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिका नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थ—यह चारों ओर जो स्फुरता (भासता) है वह सब संकल्प मात्र ऐसे है जैसे जल मात्र चंचल समुद्र अपने जलमात्र रूपमें भासता है ॥ ३७ ॥ प्रथम परमात्मासे संकल्पमात्रही आविर्भूत हुआ पीछे यह जगत् रूप ऐसे विशालताको प्राप्त हुआ जैसे सूर्य्य और प्राणियोंके व्यापारोंसे दिवस ॥३८॥ हे रामजी! यह समग्र जगत्, संकल्पमात्रकी कल्पना है और मनके विलास राग आदि वृत्ति, और उनके विषय जो हैं उनको भी तुम संकल्प मात्रही जानो इसलिये निर्विकल्प समाधिका आश्रय लेके संकल्पमात्रको त्यागदो और निश्चयपूर्वक शान्तिको प्राप्त हो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे बालकाख्यायिका नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

इस १०२ के सर्गमें अहंकार और संकल्पके क्षयका उपाय, अनात्मवर्गका विवेक तथा परमात्माकी नित्यताका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वसंकल्पवशान्मूढोमोहमेतिनपण्डितः॥ अक्षयेक्षयसंकल्पान्मुह्यतेशिशुरेवहि ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कोसौसंकल्पितःकेनक्षयोब्रह्मविदांवर ॥ असतैवमहामोहंयेनादात्तस्सदै

वहि ॥२॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असताभूतसंघेनक्षयोहंकारनामधृक् ॥ वेतालःशिशुनेवेहमिथ्यैवपरिकल्पितः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्नेवसर्वस्मिन्स्थितेपरमवस्तुनि ॥ कुतःकोयमहंनामकथंनामकिलोदितः ॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अज्ञानी अपने संकल्पवशसे मोहको प्राप्त होता है न कि पण्डित, क्यों कि अक्षय परमात्मामें क्षय (नश्वरात्मा)के संकलपसे बालक (मूढ) ही मोहित होता है॥१॥ श्री रामजी बोले–हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह संकल्प किया हुआ क्षय (नश्वरात्मा) कौन है? और उसका संकल्प करनेवाला कौनहै जिससे असत् निमित्तोंके कारण यह आत्मा महामोह संसारभ्रमको ग्रहण किया, तात्पर्य यह कि नित्यआत्मा नश्वरात्माका संकल्प करता है वा नश्वरात्माही अपना संकल्प करता है यदि प्रथम पक्ष कहो सो नहीं क्यों कि नित्यके स्वभावसे विरुद्ध है और दूसरा पक्षभी युक्त नहीं क्यों कि अपनेको आपही संकल्पसे रचना इसमें आत्माश्रय दोष है और संकलिपत भी नश्वरात्मा जड है वा चेतन, यदि जड है तो चित् आत्माके साथ अभेद नहीं होसकता और यदि चेतन कहो तो चित् संकलपका विषय नहीं हो सकता ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–सिंहव्याघ्र आदि प्राणिसमूहोंमें अहंभाव वासनासे वासित अविद्या उपहित परमात्माने उन पदार्थोंके नामधारी जो क्षय (नश्वरात्माहै) उसको मिथ्या ऐसे परिकल्पित किया है जैसे बालक वेतालको ॥ ३ ॥ एक परमात्म वस्तुमें जब सब कुछ स्थित है तो कौन और कैसे अहंकारनामधारी प्रकट हो सकता है ॥ ४ ॥

वस्तुतोनास्त्यहंकारःपरमात्मन्यभेदिनि ॥ असम्यग्दर्शनान्मार्गीसरित्तीव्रातपेयथा ॥५॥ मनोमणिमहारंभःसंसारइतिलक्ष्यते ॥ आत्मनात्मानमाश्रित्यस्फुरत्यंतर्यथांभसा ॥ ६ ॥ असम्यग्दर्शनंतेनत्यजरामनिराश्रयम् ॥ साश्रयंसत्यमानंदिसम्यग्दर्शनमाश्रय ॥ ७ ॥ धियाविचारधर्मिण्यामोहसंरंभहीनया ॥ विचारयाधुनासत्यमसत्यंसंपरित्यज ॥ ८ ॥

अर्थ—यथार्थमें भेदशून्य परमात्मामें अहंकार कोई वस्तु नहीं है परन्तु भ्रान्तिसे ऐसे भासता है जैसे तीव्र आतप (घाम) में मार्गकी मृगतृष्णानदी ॥ ५ ॥ आत्मासे आत्माहीकाही आश्रय लेके मनरूपी चिन्तामणिका कार्य यह संसार ऐसे लक्षित होता है जैसे अपने आत्मामेंही तरंग रूपसे जल ॥ ६ ॥ इस लिये हे रामजी ! असत् विषयकी जो भ्रान्ति उसे त्यागो और सत्यार्थ विषयके सत्य आनन्दरूप जो सम्यक् दर्शन है उसका आश्रय सो ॥ ७ ॥ मोहके कार्य्यसे रहित विचार धर्मवाली बुद्धिसे अब तुम तत्वका विचार करो और असत् को त्यागो ॥ ८ ॥

अबद्धोबद्धइत्युक्त्वाकिंशोचसिमुधैवहि ॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यकिंकथंकेनबद्ध्यते ॥ ९ ॥ नानाऽनानावत्कलनात्वाविभिन्नमहात्मनि ॥ सर्वस्मिन्ब्रह्मतत्त्वेस्मिन्किंबद्धंकिंविमुच्यते ॥ १० ॥ अनार्त्तोप्यार्त्तिमान्भातिच्छिन्नेंगेकिंचताम्यति ॥ भेदाभेदविकारार्त्तिःकाचिन्नात्मानविद्यते ॥ ११ ॥ देहेनष्टेक्षतेक्षीणेकात्मनःक्षतिरागता ॥ भस्त्रायांपरिदग्धायांभस्त्रापूरोननश्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अबद्ध बद्ध हुआ ऐसा कहके (ज्ञानसे समुझके) व्यर्थ किसे शोचतेहो, अनन्त आत्मतत्त्वका कौन कैसे और किससे बद्ध होताहै ॥ ९ ॥ भेदाभेद भ्रान्ति इसी भेदशून्य परमात्मामें होती है इस सबके बाध होनेसे क्या बद्ध हुआ और क्या मुक्त होताहै ॥ १० ॥ यह आत्मा शरीररहित भी है तथा शरीरवानके तुल्य भासताहै तो देह छिन्नभिन्न होनेपर भी आत्माका क्या बिगडताहै क्योंकि भेदाभेद, विकारी शरीर है कोई भी आत्मामें नहीं है ॥ ११ ॥ देहके नष्ट होनेपर क्षत तथा क्षीण होनेपर आत्माकी क्या हानि हुई? भस्त्रा (माथि) के दग्ध होनेपर भी वायु नहीं नष्ट होता ॥ १२ ॥

देहःपततुवोदेतुकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ कोनष्टःप्रक्षतेपुष्पेआमोदोव्योमसंश्रयः ॥ १३ ॥ आपतंतुवपुःपद्मेसुखदुःखहिमश्रियः ॥ आकाशोड्डयनालीनांकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ १४ ॥ देहःपततुवोदंतुयातुवागगनांतरम् ॥ तद्विलक्षणरूपस्यकासौभवतिमेक्षतिः ॥ १५ ॥ यथापयोदमरुतोर्यथाषट्पदपद्मयोः ॥ तथाराघवसंबंधस्त्वच्छरीरत्वदात्मनोः ॥ १६ ॥

अर्थ—देह गिरै वा उठके खडी हो हमारी क्या हानि उपस्थित हुई पुष्पके नष्ट होनेपरभी आकाशके आश्रय सुगन्धका क्या बिगडा? ॥ १३ ॥ सुख तथा दुःखरूपी हिमकी शोभा शरीररूपी कमलपर पडै परन्तु आकाशमें उडनेवाले भ्रमररूप हम लोगोंका क्या बिगडा अथवा चन्द्रतारादिका क्या बिगडा ॥१४ ॥ हे रामजी ! यह शरीर गिरै वा उठै अथवा अन्य आकाशमें जाय परन्तु शरीरसे विलक्षण रूप जो मैं उसकी क्या क्षति (हानि) ? ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यदि आत्मा और देहका संबन्ध भी मानाजाय तो वह ऐसा है जैसे मेघ और वायुका तथा भ्रमर और कमलका ॥ १६ ॥

मनोरामशरीरंहिजगतःसकलस्यच ॥ आद्याशक्तिश्चिदध्यात्माननश्यतिकदाचन ॥ १७ ॥ योसावात्मा महाप्राज्ञननश्यतिनगच्छति ॥ ननश्यतिकदाचिच्चकिंमुधापरितप्यसे ॥ १८ ॥ विशीर्णेभ्रेयथावातःशुष्केब्जेषट्पदोयथा ॥ यात्यनंतपदंव्योमतथात्मादेहसंक्षये ॥ १९ ॥ संसारेस्मिन्विहरतोमनोपिहिननश्यति ॥ ज्ञानाग्निनाविनाजंतोरात्मनाशेतुकाकथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत् मात्रका शरीर (स्वरूप) यह मनही है और मनरूप जगत्की आदिशक्ति चिदात्मा तो मनसे भी ऊपर है जिसका कदापि नाश नहीं होता ॥ १७ ॥ हे महामते ! प्राज्ञ न तो नष्ट होताहै और न कहीं जाताहै जब आत्मा कभी नष्टही नहीं होता तो शरीर आदिके नाशसे व्यर्थ क्यों संतप्त होते हो ? ॥ १८ ॥ हे रामजी ! मेघके नष्ट होनेपर जैसे वायु और कमलके सूखनेपर जैसे भ्रमर आकाशमें जाताहै ऐसेही देहके नष्ट होनेपर आत्मा (मुक्त) ब्रह्मपदमें जाके प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इस संसारमें विहार करते हुये जीवका जब ज्ञानाग्निके बिना मन भी नहीं नष्ट होता तब आत्माके नाश होनेकी तो कथाही क्याहै ॥ २० ॥

यःकुंडबदरन्यायोयोघटाकाशयोःक्रमः ॥ स्थितिर्देहात्मनोःसैवसविनाशविनाशयोः ॥ २१ ॥ बदरं हस्तमायातियथास्फुटतिकुंडके ॥ आत्मागगनमायातितथाचलतिदेहके ॥ २२ ॥ कुंभेगच्छत्यकुंभत्वं कुंभाकाशोयथांबरे ॥ तिष्ठत्येवमयंक्षीणेदेहेदेहीनिरामयः ॥ २३ ॥ मनोदेहोहिजंतूनांदेशकालतिरोहितः ॥ मुहुर्मृतिपटाच्छन्नःशठेकिंपरिदेवना ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कुंडबदर न्याय (कुंडा फुटनेपर भी बेर नहीं नष्टहोती) तथा घट और आकाशका जो क्रम है. ऐसेही विनाशी देह और अविनाशी आत्माका संबन्धहै॥२१॥जैसे कुंडेके फूटने पर भी बदर (बेर) हाथमें आजाताहै ऐसेही शरीरके नष्ट होने पर भी जीवात्मा वासनाकाशमें आताहै ॥ २२ ॥ जैसे घटका नाश होनेपर भी घटाकाश महदाकाशमें पूर्ववत् ज्योंकात्यों स्थित रहता है ऐसेही इस शरीरके क्षीण होनेपर भी देही आत्मा चित्ताकाशमें ज्योंकात्यों स्थित रहता है ॥ २३ ॥ प्राणियोंको जो मनरूप देह है वह देश और कालमें मृत्युरूप पटमें आच्छन्न होके छिप जाताहै इस लिये इस वंचक (धोखा देनेवाले) मनके लिये क्या विलाप करना ॥ २४ ॥

देशकालतिरोधानेमूढोपिमरणेनरः ॥ किंबिभेतिमहाबाहोनेहपश्यतिकश्चन ॥ २५ ॥ अतस्त्वंवासनांराममिथ्यैवाहमितिस्थिताम् ॥ त्यजपक्षीश्वरोव्योमगमनोत्कइवांडकम् ॥ २६ ॥ एषाहिमानसीशक्तिरिष्टानिष्टनिबंधनी ॥ अनयैवसुधाभ्रांत्यास्वप्नवत्परिकल्पना ॥ २७ ॥ अविद्यैषाद्वंरंतैषादुःखयैषा विवर्द्धते ॥ अपरिज्ञायमानैषातनोतीदमसन्मयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—गृह आदि देशमें और अन्तिम श्वासकाल रूपी मरणमें आत्माका तिरोहित होनाही मरण मूर्ख भी दूसरोंका देखता है तो ऐसे मरणमें वह क्यों भय करता है और हे महाबाहो रामजी ! अपना आत्मनाशरूप मरण कोई भी इस संसारमें नहीं देखता ॥ २५ ॥ इस लिये हे रामजी ! इस वासनाको जो मिथ्याही प्रकट है उसको ऐसे त्यागो जैसे पक्षीका बालक समर्थ होनेपर आकाशमें जानेकी इच्छासे अपने शिथिल अण्डेको त्यागताहै ॥२६॥ हे रामजी ! यही मनकी शक्ति इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थोंमें राग द्वेषके द्वारा बन्धन करनेवाली है, स्वप्नके तुल्य भ्रांतिसे इसीने व्यर्थ सब कल्पना कर रक्खाहै ॥२७॥ यह अविद्याका विलास होनेसे अविद्यारूप दुःखसे नाश करने योग्य है और दुःखके लिये यह बढतीहै और यह अज्ञात रूप सम्पूर्ण इस असन्मय जगत्का विस्तार करतीहै ॥२८॥

एषातुच्छवदाकाशंतुषारमलिनंयथा ॥ परिपश्यतिविभ्रांतास्वरूपस्यस्वभावतः ॥ २९ ॥ असदेवेदमारंभमंथरंसदिवोत्थितम् ॥ कल्पितंजगदाभोगिदीर्घस्वप्नइवैतया ॥ ३० ॥ भावनामात्रएवास्याः स्वरूपंकर्तृतांगतम् ॥ जगन्नामाविलंचक्षुर्व्योम्निबिंबरुचामिव ॥ ३१ ॥ लयमस्याःस्वरूपंत्वंनयराम विचारणात् ॥ यथाहिमशिलायास्तुतपनाद्दिवसाधिपः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तुषारसे मलिन आकाश प्रतीत होता है ऐसेही यह भ्रान्त होके अपने स्वरूपकेही स्वभावसे तुच्छ मलिनरूपही देखतीहै ॥ २९ ॥ इसी मानसी शक्तिने दीर्घ स्वप्नके तुल्य जगत् रचनारूप इस असत्-कार्यके आडम्बरको सत्के समान कल्पित कर रक्खाहै ॥ ३० ॥ जैसे तिमिर आदि दोषसे दूषित नेत्र आकाशमें नीलता आदिका तथा सूर्य चन्द्र आदिका भावना मात्रसे कर्ता होताहै ऐसेही इस मानसी शक्तिका स्वरूप जगदाकारकी भावना मात्रसे कर्तृताको प्राप्तहै अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्य अपने घर्मसे पाषाण (हिम) की शिलाका लय (नाश) कर देतेहै ऐसेही तुम बिचारसे इसके स्वरूपका नाश करो ॥ ३२ ॥

हिमाभावार्थिनोर्कस्यस्वोदयेनेप्सितंयथा ॥ सिद्ध्यत्येवंविचारेणमनोनाशार्थिनोर्थितम् ॥ ३३ ॥ अविद्यासंप्रबुद्धाहिवितथानर्थदुर्गमा ॥ नानेंद्रजालकलनांशंबरोहेमवर्षति ॥ ३४ ॥ स्वविनाशक्रियांचैतांमनएवकरोत्यलम् ॥ मनोह्यात्मवधंनामनाटकंपरिनृत्यति ॥ ३५ ॥ आत्मानमीक्षतेचेतःस्वविनाशायकेवलम् ॥ नहिजानातिदुर्बुद्धिर्विनाशंप्रत्युपास्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हिमके रूपके अभाव चाहनेवाला का प्रयोजन सूर्यके उदय होनेसे सिद्ध होताहै ऐसेही मनके नाश चाहनेवालेका अभिलषित (मनका नाश) विचारसे अवश्य सिद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ जैसे शंबर नामक असुर नाना प्रकारका इन्द्रजालरूप आविद्यमान ही सुवर्ण वर्षताहै ऐसेही आत्मतत्वको न जानती हुई यह अविद्यारूपी मेघमाला जो कि अनेक अनर्थोंसे दुर्गम है नाना प्रकारके ब्रह्मांडरूपी इन्द्रजालकी वृष्टि करती है ॥ ३४ ॥ अपने नाशकी क्रिया यह मनही भलीभांति करताहै क्योंकि यह मन अपना संहाररूप नाटकका नृत्य करताहै ॥ ३५ ॥ यह चित्त अपने नाशके ही लिये आत्माका दर्शन करताहै और यह दुर्बुद्धि अपने प्राप्त हुये नाशको नहीं देखता ॥ ३६ ॥

स्वयंसंकल्पमात्रेणस्वविनाशद्दशामिदम् ॥ मनःसंसाधयत्याशुक्लेशोनात्रोपयुज्यते ॥ ३७ ॥ स्वसंकल्पविकल्पांशंविवेकोपहितंमनः ॥ संत्यज्यरूपमाभोगिकरोत्यात्मावबोधनम् ॥ ३८ ॥ महोदयोमनोनाशोमहोच्छेदस्यतूदयः ॥ मनोनाशेप्रयत्नंत्वंकुरुमामनसोजवे ॥ ३९ ॥ अविरलसुखदुःखवृक्षखंडेविषमकृतांतमहोरगेवनेस्मिन् ॥ प्रभुरिदमखिलेविवेकहीनंसुभगमनोमहदापदेकहेतुः ॥ ४० ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षये रविकरैश्चसहाजगाम ॥ ४१ ॥ ॥ दिवसः ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे उपदेशकरणं नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

अर्थ—मनके नाशका उपाय सोचनेवाले विवेकियोंका यह मनोनाशरूप प्रयोजन यह मन आपही संकल्पमात्रसे शीघ्र सिद्ध करताहै और इसमें कुछभी क्लेश नहीं होता ॥ ३७ ॥ विवेकसे संस्कार किया हुआ चित्त (विवेकी चित्त) अपनी पूर्वकी संकलपविकल्पकी आशाओंको त्यागकर आत्माकारवृत्तिसे ब्रह्माकार विस्तारयुक्त अर्थात् आत्मरूपही अपना रूप करताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! यह मनका नाशही परमपुरुषार्थ (मोक्ष) का उदयहै तथा इसीसे सम्पूर्ण दुःखोंका उच्छेद होताहै इसलिये तुम मनके नाशार्थ प्रयत्न करो न कि मनके व्यापारोंके अर्थ ॥ ३९ ॥ अति सघन सुखदुःखरूप वृक्षोंके खण्डसहित और भयंकर मृत्युरूप सर्पसंयुक्त इस संसाररूपी संपूर्ण बनमें स्वामी विवेकहीन मनही है और यही महा आपत्तिका हेतु है ॥ ४० ॥ इतना जब मुनिवसिष्ठ कहचुके तो दिनका अन्त होगया और सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुये तो सम्पूर्ण सभा सायंकालकी क्रिया करनेको स्नानार्थ गई, और रात्रि बीतनेपर सूर्यके किरणोंके साथ नमस्कारपूर्वक पुनः अपने २ स्थानपर एकत्रित हुई ॥ ४१ ॥ ॥ अष्टमो दिवसः ॥ ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे उपदेशकरणं नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

विवेकरहित मनकी जो २ अनर्थ करनेवाली यात्रा है वह सम्पूर्ण मुमुक्षुओंके विवेकके लिये उस १०३ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परस्माद्उत्थितंचेतस्तत्कल्लोलइवार्णवात् ॥ स्फारतामेत्यभुवनंतनोतीदमितस्ततः ॥ १ ॥ ह्रस्वंदीर्घंकरोत्याशुदीर्घंनयतिखर्वताम् ॥ स्वतांनयत्यन्यदलंस्वंतथैवान्यतामपि ॥ २ ॥ प्रादेशमात्रमप्येिद्वस्तुभावनयैवतत् ॥ स्वयंसंपन्नयेवाशुकरोत्यद्रींद्रभासुरम् ॥ ३ ॥ लब्धप्रतिष्ठंपरमात्पदादुल्लसितंमनः ॥ निमेषेणैवसंसारान्करोतिनकरोतिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—समुद्रसे उसके तरंगके तुल्य यह चित्त प्रकट हुआ है और विशाल रूपताको प्राप्त होकर अपने चारों ओर भुवनोंको विस्तार करताहै ॥ १ ॥ ह्रस्वको दीर्घ ओर दीर्घको ह्रस्व शीघ्रही करताहै अपने स्वरूपको अन्यका और अन्यको अपना अर्थात् आत्माको अनात्मा और अनात्माको आत्मा करलेताहै ॥ २ ॥

जो अदृष्टमात्रकी वस्तुको स्वयं सिद्ध भावनासे सुमेरुके समान प्रकाशमान करदेताहै ॥ ३ ॥ ब्रह्मसत्तासे लब्धप्रतिष्ठ विकासको प्राप्त यह मन एक निमिषमें अनेक संसारोंको रचता है और मिटाताभी है ॥ ४ ॥

यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थाणुचरिष्णुच ॥ सर्वसर्वप्रकाराढ्यंचित्तादेतदुपागतम् ॥ ५ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यशक्तिपर्याकुलीकृतम् ॥ भावाद्भावांतरंयातिलोलत्वान्नटवन्मनः ॥ ६ ॥ सदसत्तांनयत्याशुसत्तांवासन्नयत्यलम् ॥ तादृशान्येवचादत्तेसुखदुःखानिभावितम् ॥ ७ ॥ यदायंस्वयमादत्तेयथैवचंचलं मनः ॥ हस्तपादादिसंघातस्तदाप्रयततेतथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जो कुछ स्थावर जंगम सबप्रकारसे कर्ता यह जगत् देख पडताहै वह सब चित्तसेही आया है ॥ ५ ॥ देश, काल, क्रिया और द्रव्यकी शक्तिसे पूर्ण एकभावसे दूसरे भावको चंचलताके कारण नटके सदृश मनही प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ सत्को असत् और असत्को सत् शीघ्र प्राप्त करता है और अपनेकर्मोपार्जित वैसेही सुखदुःखको ग्रहण करताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह चंचल मन अपने कर्मसे प्राप्त किये हुये भोग्य पदार्थको जब जैसे और जिस कल्पनाप्रकारसे अनुकूल वा प्रतिकूलतासे ग्रहण करताहै उस समय हस्तपाद आदि वैसाही उसीके अनुसार व्यापार करते हैं ॥ ८ ॥

ततःसैवक्रियाचित्तसमाहितफलाफलम् ॥ क्षणात्प्रयच्छतिलताकालसिक्तेवतादृशम् ॥ ९ ॥ चित्रांक्रीडनकश्रेणींयथापंकाद्गृहेशिशुः ॥ करोत्येवंमनोरामविकल्पंकुरुतेजगत् ॥ १० ॥ मनःसर्वजनक्रीडानृजंबाललवेष्वतः ॥ किमेतद्धिपदार्थेषुरूढंजगतिकल्प्यते ॥ ११ ॥ करोत्यृतुकरःकालोयथारूपान्यथातरोः ॥ चित्तमेवंपदार्थानामेषामेवान्यतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर भोग्यपदार्थको प्राप्तकरनेवाली जो क्रिया है वह चित्तसे कल्पित जो सुखदुःख रूप फल उसको क्षणभरमें ऐसे देती है जैसे समयपर सींची हुई लता ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जैसे गीलीमृत्तिकाके पिण्डसे बालक अपने गृहमें खिलौनोंकी पंक्तियोंकी रचना करता है ऐसेही मनभी जगत्के विकल्पोंको करताहै ॥ १० ॥ इस कारणसे मनकी सर्वजनात्मोंकी क्रीडा उनमें जो मनुष्योंके देहादि रूप पंकलेश हैं उनमें जो रूप सत्यतासे कल्पित है वह क्याहै ? अर्थात् मिथ्या ॥ ११ ॥ जैसे वसन्तआदि ऋतुओंका विभाग करनेवाला काल वृक्षोंका रूप और प्रकारसे करताहै ऐसेही चित्त सब पदार्थोंको अन्यके तुल्य करदेताहै अर्थात् भेद दर्शादेता है ॥ १२ ॥

मनोरथेतथास्वप्नेसंकल्पकलनासुच ॥ गोष्पदंयोजनव्यूहःस्वासुलीलासुचेतसः ॥ १३ ॥ कल्पंक्षणीकरोत्यंतःक्षणंनयतिकल्पताम् ॥ मनस्तदायत्तमतोदेशकालक्रमंविदुः ॥ १४ ॥ तीव्रमंदत्वसंवेगाद्बहुत्वाल्पत्वभेदतः ॥ विलंबनेनचाचिरंनतुशक्तिमशक्तितः ॥ १५ ॥ व्यामोहसंभ्रमानर्थदेशकालगमागमाः ॥ चेतसःप्रभवंत्येतेपादपादिवपल्लवाः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चित्त मनोरथमें स्वप्नमें संकल्पकी कल्पनामें जैसे योजनके समूहकोभी गोष्पदके समान करताहै ऐसेही चित्तकी निजलीलाओंमें सर्वत्र समझो ॥ १३ ॥ यह मन क्षणको कल्प बनाता है और कल्पकोभी क्षण बनाताहै इस लिये सब विद्वान् देशकालके क्रमको मनकेही आधीन कहते हैं ॥ १४ ॥ रजोगुणकी अधिकतासे तीव्र और तमोगुणकी अधिकतासे मन्द संवेगके भेदद्वारा बहुत और अल्पत्वभेदसे उन २ वस्तुओंकी सृष्टिके अनुकूल उपासना आदिके विलम्बसे जो सृष्टिमें आशक्तितासे मनकी वास्तविक सर्व सर्ग (सृष्टि) की शक्तिको त्याग नहीं करसकते अर्थात् यदि किसी वस्तुकी रचनामें मनकी शक्ति नहीं चलती तो वह उपासना आदिकी न्यूनतासे विलम्बमात्र है उपासना आदिके पूर्ण होनेपर अवश्य शक्ति होगी ॥ १५ ॥ व्यामोह संभ्रम आदि अनर्थ तथा देशकाल आदिका गमनागमन चित्तसे ऐसे होते हैं जैसे वृक्षसे पत्ते ॥ १६ ॥

जलमेवयथांभोधिरौष्ण्यमेवयथाऽनलः ॥ तथाविविधसंरंभःसंसारश्चित्तमेववा ॥ १७ ॥ सकर्तृकर्मकरणंयदिदंचेत्यमागतम् ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्याढ्यंतत्सर्वंचित्तमेवच ॥ १८ ॥ चित्तंजगंतिभुवनानिवनांतराणिसंलक्ष्यतेस्वयमुपागतमात्मभेदैः ॥ केयूरमौलिकटकैश्चलसत्स्वरूपंत्यक्त्वैवकांचनधियेवजनेनहेम ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तमाहात्म्यं नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

अर्थ—जैसे जलमात्र समुद्र है और उष्णता मात्र अग्निहै वैसेही अनेकप्रकारके कार्य्य हैं जिसके ऐसा यह संसारके बल चित्तहीहै ॥ १७ ॥ दृष्टि दर्शन और दृश्यसे पूर्ण कर्ता कर्म और करण तथा भोक्ता भोग्य और भोग-

रूप अनर्थस्वरूप जो यह जगत् उत्पन्न हुआहै वह सब चित्तहीहै ॥ १८ ॥ जैसे सुवर्णकी परीक्षा करनेवाला जन विजायट, मुकुट, तकड़ा आदि आकारोंसे कल्पित और शोभायमान स्वरूपको त्यागकर केवल शुद्ध सुवर्णमात्रमें निष्ठबुद्धि होकर सुवर्ण देखता सकता है नकि कटक आदि बुद्धिसे ऐसेही विवेकी जनको ब्रह्माण्डके अन्तर्गत अनेक लोक और उन लोकोंके अन्तर्गत वन पर्वतादि तथा अन्य सब वस्तुरूपसे अपनी चित्तसे चित्त स्वयं प्रकट है न कि अवस्तु ऐसा निश्चित करताहै ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे
भाषाऽनुवादे चित्तमाहात्म्यं नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

इस १०४ के सर्गमें राजा लवणाख्यानके आदिमें देश तथा राजा और सभाकी स्थिति और उस सभामें इन्द्रजाल करनेवाले अश्व, घोडेको देखकर विस्मयपूर्वक स्थितिका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रतेशृणुवक्ष्यामिवृत्तांतमिममुत्तमम् ॥ जागतीहेंद्रजालश्रीश्चित्तायत्तायथा स्थिता ॥ १ ॥ अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेनानावनसमाकुलः ॥ उत्तरापांडवोनामस्फीतोजनपदोमहान् ॥ २ ॥ नीरंध्रघनगंभीरवनविश्रांततापसः ॥ विद्याधरीकृतलतादोलोपवनपत्तनः ॥ ३ ॥ वातोद्धूताब्जकिंजल्कपुंजपिंजरपर्वतः ॥ लसत्कुसुमसंभारवनमालावतंसकः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीबोले—हे रामजी ! इस विषयमें मैं तुमसे उत्तम आख्यान कहूँगा जिससे जैसे यह जगत्-सम्बन्धिनी इन्द्रजालकी शोभा चित्तकेही आधीन स्थित है यह ज्ञात होजायगा ॥ १ ॥ नाना प्रकारके वनोंसे पूर्ण स्वच्छ तथा महान् उत्तरापाण्डव नाम एक जनपद (राज्य) इस पृथिवीपर है ॥ २ ॥ पुनः कैसा वह है कि सघन और गंभीर जिसके बनमें तपस्वी लोग विश्राम कर रहे हैं विद्याधरी लोग जिसके उपवनकी लताओंमें झुला झुल रही हैं ऐसे जहांपर नगर है ॥ ३ ॥ तथा जो वायुसे कल्पित कमलकी धूलिसे रक्त और पीतवर्ण पर्वतोंसे युक्त और शोभायमान पुष्पसमूहोंसे रचित बनोंकी माला जिसका शिरोभूषण है ॥ ४ ॥

करंजमंजरीकुंजगुच्छपर्यंतजंगलः ॥ खर्जूरांतरितग्रामोघुंघुमध्वनितांबरः ॥ ५ ॥ एकपिंगशिलाश्रेणीशालिकेदारपिंगलः ॥ नीलकंठारवोद्दामवनजंगलमंडितः ॥ ६ ॥ सारसारवसंरंभरणत्कनककाननः ॥ तमालपाटलीनीलगिरिग्रामककुंडलः ॥ ७ ॥ विचित्रविहगव्यूहविरावकृतकाकलिः ॥ नदीपरिसरोन्निद्रपारिभद्रद्रुमारुणः ॥ ८ ॥

अर्थ—करंजकी लता तथा कुंज और पुष्पोंके गुच्छोंसहित जिसमें ग्रामोंके निकटतक बन है खजूरके वृक्षोंसे ग्राम जिसमें छिपे हैं और जिसकी घुंघुम शब्द आकाशतक व्याप्त है ॥ ५ ॥ उत्तम मणिविशेषकी पिंगलवर्णकी शिलाके सदृश पके हुये चावलोंके खेतोंसे पिंगल (ललाई तथा पीततायुक्त) वर्ण और नीलकण्ठोंके शब्दसहित उत्तम जंगलोंसे शोभित ॥ ६ ॥ सारसपक्षियोंके शब्दके वेगसे शब्दायमान सुवर्णके सदृश वनोंसे युक्त, तथा तमाल और पाटलवृक्षोंसे नील पर्वत या ग्रामोंके कुण्डलसे शोभित ॥ ७ ॥ तथा चित्रविचित्र पक्षियोंके समूहके शब्दसे जहां मधुरध्वनि हो रही है और नदियोंके तटोंपर विकसित नीमके वृक्षोंसे रक्तवर्ण ॥ ८ ॥

गायत्कलमकेदारदारिकाहृतमन्मथः ॥ पुष्पफलचलद्वातव्याधूतकुसुमांबुदः ॥ ९ ॥ दरीगृहविनिष्क्रांतसिद्धचारणबंदिकम् ॥ स्वर्गादिवसमानीयलावण्यमभिनिर्मितः ॥ १० ॥ गायत्किन्नरगंधर्वकदलीखंडमंडपः ॥ मंदानिलरवोद्भूतःपुष्पोपवनपांडुरः ॥ ११ ॥ तत्रास्तिलवणोनामराजापरमधार्मिकः ॥ हरिश्चंद्रकुलोद्भूतोभूमाविवदिवाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—गान करती हुई जडहन (वह धान जो एक जगहसे उखाडके दूसरे खेतमें विरलतासे पुनः लगाया जाता है) के खेतोंमें कन्याओंने जहां कामदेवके चित्तकोभी हरण कर लिया है तथा पुष्पों और फलोंमें शिथिल बन्धनोंको गिरानेके अर्थ चलते हुए पवन जहांपर पुष्परूपी मेघोंको कंपारहा है ॥ ९ ॥ कन्दरारूपी गृहोंसे सिद्ध, चारण तथा बन्दी जिसमें निकल रहे हैं ऐसी स्वर्गकी सुन्दरतासे स्वर्गसे लाके मानों किसीने उसे रचा है ॥ १० ॥ किन्नर और गन्धर्वगण जिसमें गान कररहे हैं, ऐसे कदली (केले) के मण्डप जहां विराजमान हैं, तथा मन्द

सुगन्ध और शीतल वायुसे उत्तमतासे स्थित और उपवनोंसे पाण्डुर (श्वेत और पीत वर्ण) वह उत्तरा पाण्डव नाम जनपद है ॥ ११ ॥ हरिश्चंद्रके कुलमें उत्पन्न अति धार्मिक लवण नाम राजा उस देशमें ऐसा है जैसे पृथिवीपर सूर्य ॥ १२ ॥

यद्यशःकुसुमोत्तंसपांडुरस्कंधमंडलाः ॥ तत्रशैलाविराजंतेहराःप्रोद्धूलिताइव ॥ १३ ॥ कृपाणशकलोत्कृत्तनिःशेषारातिमंडलः ॥ अरातिलोकःप्राप्नोतियदनुस्मरणाज्ज्वरम् ॥ १४ ॥ यस्योदारसमारंभमार्यलोकानुपालनम् ॥ चरितंसंस्मरिष्यंतिहरेरिवचिरंजिनाः ॥ १५ ॥ यस्याप्सरोभिरद्रींद्रमूर्द्धस्वमरसद्मसु ॥ विकासिपुलकोल्लासंगीयंतेगुणगीतयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसके यशरूपी पुष्पोंके शिरोभूषणसे पाण्डुरवर्ण (श्वेत पीत मिश्रित) होगया है, स्कन्धमण्डल जिनके ऐसे पर्वत इस प्रकार जहांपर शोभित हैं जैसे विभूति लगाये हुये महादेवजी ॥ १३ ॥ अपनी तीक्ष्ण तरवारसे खंड २ संपूर्ण शत्रुमण्डलको काटनेहारा और जिसके स्मरणमात्रसे शत्रुलोगोंको ज्वर प्राप्त होताहै, ऐसा वह राजा लवण था ॥ १४ ॥ जिसके उदार कार्य्योंकरिके संयुक्त और शिष्टलोगोंके रक्षक चरितको चिरकाल तक मनुष्य ऐसे स्मरण करेंगे जैसे विष्णुभगवान्‌के चरितको ॥ १५ ॥ जिसके गुणोंकी गीति सुमेरुपर्वतके शिखरों तथा देवताओंके स्थानोंमें अप्सरागण विकसित पुलक शरीरके उत्साहके साथ गान करती हैं ॥ १६ ॥

यस्यस्वःसुंदरीगीतालोकपालचिरश्रुताः ॥ विरिंचिहंसैर्वर्ण्यंतेस्वभ्यासाद्गुणगीतयः ॥ १७ ॥ स्वप्नेप्यविनसामान्यायस्योदारचमत्कृतिः ॥ रामदृष्टाश्रुतावापिदैन्यदोषमयीक्रिया ॥ १८ ॥ जिह्मतांयोनजानातिनदृष्टायेनधृष्णुता ॥ उदारतायेनधृताब्रह्मणेवाक्षमालिका ॥ १९ ॥ दिनाष्टभागमाकाशमागतेदिवसाधिपे ॥ सकदाचित्सभास्थानेसिंहासनगतोऽभवत् ॥ २० ॥

अर्थ—और जिसके गुणोंकी गीति स्वर्गकी अप्सराओंने गान किया और उसे इन्द्रादि लोकपालोंने सुना उसके ध्वनिका अनुकरण ब्रह्माके हंस अपने अभ्याससे करते हैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! अन्य राजाओंके साधारण जिसके उदार कार्योंकी चमत्कृति स्वप्नमें नथी, अर्थात् सबसे उत्तम कार्य्य सदा करताथा और जिसकी दीनता तथा अन्य दोषमयी क्रिया कभी न तो देखी गई और न सुनीगई ॥ १८ ॥ कुटिलताको जो कदापि जानताही नहीं तथा अविनय जिसने कभी देखाही नहीं और जो उदारताको इस प्रकार धारण करताथा जैसे अक्षमालाको ब्रह्माजी ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इत्यादि गुणयुक्त वह राजा, जब सूर्य्य दिनके अष्टमभागपर्य्यन्त आकाशमें आये अर्थात् ४ घडी दिन चढनेपर सभामें आकर सिंहासनपर विरामान हुआ ॥ २० ॥

सुखोपविष्टेतत्रास्मिन्राजनींदाविवांबरे ॥ प्रविशंतीषुसामंतसेनासुचससंभ्रमम् ॥ २१ ॥ गायंतीष्वथकांतासुसूपविष्टेषुराजसु ॥ मनोहरतिसाल्हादेवीणावंशकलारवे ॥ २२ ॥ चारुचामरहस्तासुसविलासासुराजनि ॥ देवासुरगुरुप्रख्येविश्रांतेमंत्रिमंडले ॥ २३ ॥ प्रस्तुतेषुप्रविष्टेषुराजकार्येषुमंत्रिभिः ॥ प्रोक्तासुदेशवार्त्तासुनिपुणैश्चारुमंत्रिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—आकाशमें चन्द्रमाके समान वह राजा सुखसे सिंहासनपर बैठा और जब कर देनेवाले छोटे२ राजा तथा सेना भयके साथ प्रवेशकर रहेथे ॥ २१ ॥ जब सब सामन्तराजा (करदायी) सुखपूर्वक बैठगये और ललनागण मधुर कण्ठसे गानकर रहीथीं तथा जब वीणा और बांसुरीके मधुर शब्द आनन्दके साथ सबके मनोहरण कर रहेथे ॥ २२ ॥ और जब उत्तम चामर (चँवर) हस्तमें लेके अंगनागण राजाके ऊपर व्यजन करतेथे, बृहस्पति तथा शुक्राचार्य्यके समान मन्त्रियोंका मण्डल विश्रामताके साथ बैठगये थे ॥ २३ ॥ और उस समयके उपयुक्त उपस्थित राजकार्य्य, मन्त्रीगण अपना २ राजासे पूंछ चुके और देशान्तर की वार्ता जब सुन्दर कुशल मंत्रीगण कहचुके थे ॥ २४ ॥

इतिहाससमयेपुण्येवाच्यमानेचपुस्तके ॥ पठत्सुचस्तुतीःपुण्याःपुरःप्रह्वेषुबंदिषु ॥ २५ ॥ सभांविवेशसाटोपःकश्चित्तामैंद्रजालिकः ॥ वर्षणाहितसंरंभोवसुधामिववारिदः ॥ २६ ॥ सननाममहीपालंशिखरोदारकंधरम् ॥ पादोपांतगतःकांतंशैलंफलतरुर्यथा ॥ २७ ॥ सच्छायस्योन्नतांसस्यफलिनःपुष्पभासिनः ॥ सविवेशपुरोराज्ञस्तरोरग्रेकपिर्यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—और इतिहासमय पवित्र पुराणग्रन्थ जिस समय सुनाये जारहे थे, तथा सम्मुख नम्र होके बन्दीगण जिस समय राजाकी पवित्र स्तुति पढ़रहे थे ॥ २५ ॥ उसी समय अपने वेष और आभूषण आदि आडम्बरोंसे सम्पन्न वर्षोंसे अपनी सामग्रीको सम्पादन करके एक ऐन्द्रजालिक (इन्द्रजाल करनेवाला) ने राजाकी सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे भावीवर्षासे विद्युत् आदि संरंभ धारण करनेवाला मेघ इस पृथिवीपर ॥ २६ ॥ उसने कीरटके कूट (पर्वत-

पक्षमें शृंग) से उदार है कण्ठ (पक्षे अधित्यका) जिसका ऐसे राजाके चरणके समीपमें जाके इस भांतिसे प्रणाम किया जैसे फलभारसे संयुक्त वृक्ष रमणीय पर्वतको ॥ २७ ॥ उत्तम छाया पक्षमें (आश्रय) संयुक्त उन्नत अंस (शाखाप्रदेश) पक्षमें (कन्धा) वाले फल और पुष्पोंसे प्रकाशमान वृक्षके संमुख जैसे कपि (चपल बानर) बैठता है ऐसेही राजाके सम्मुख वह बैठगया ॥ २८ ॥

चपलोलंपटोर्थानामामोदसुखमारुतम् ॥ उवाचोत्कंधरंभूपंसपद्ममिवषट्पदः ॥ २९ ॥ विलोकयविभो तावदेकामिहखरोलिकाम् ॥ पीठस्थएवसाश्चर्यांव्योम्निचंद्रइवावनिम् ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वापिच्छिकाते नभ्रामिताभ्रमदायिनी ॥ नानाविरचनाबीजंमायेवपरमात्मनः ॥ ३१ ॥ तांददर्शमहीपालस्तेजोरेणुवि राजिताम् ॥ शक्रःसुरविमानस्थःस्वकार्मुकलतामिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—वह ऊंची कन्धावाले राजासे ऐसे बोला जैसे चपल और पदार्थोंका लम्पट भ्रमर सुगन्धयुक्त और सुखदायक वायुसहित पद्मसे ॥ २९ ॥ कि हे प्रभो! आश्चर्यदायक एक मिथ्या कौतुकक्रीडा इसी सिंहासनपरही बैठके ऐसे देखिये जैसे आकाशमें चन्द्रमा पृथिवीको देखै ॥ ३० ॥ ऐसा कहके उसने भ्रम देनेवाली मोरके पंखकी एक मोर्छल घुमाई वह (मोर्छल) नानाप्रकारकी रचनाकी बीज इसप्रकार थी जैसे परमात्माकी माया ॥ ३१ ॥ नानाप्रकारके रमणीय तेज सहित रेणुओंसे शोभायमान उस मोर्छलको राजाने ऐसे देखा जैसे देवताओंके विमानों पर आरूढ़ इन्द्र अपने धनुषकी लताको ॥ ३२ ॥

सभांसैंधवसामंतोविवेशास्मिन्क्षणेतदा ॥ तारापरिकरापूर्णांव्योमवीथीमिवांबुदः ॥ ३३ ॥ तंचैवानु जगामाश्वःसौम्यःपरमवेगवान् ॥ देवलोकोन्मुखंतुष्टंशक्रमुच्चैःश्रवाइव ॥ ३४ ॥ सतमश्वमुपादायपा र्थिवंसमुवाचह ॥ सोच्चैःश्रवाइवक्षीरसागरोमरुतांपतिम् ॥ ३५ ॥ इदमुच्चैःश्रवःप्रख्यंहयरत्नंमहीपते ॥ जवोड्डयनशीलेनमूर्तिमानिवमारुतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी! इसी क्षणमें एक अश्वपालक (घोडोंका रक्षक) ने सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे तारागणरूपी परिकरों (सेवकों) से पूर्ण आकाशमार्गमें मेघ ॥ ३३ ॥ और अतिवेगवान् शान्त एक घोडा उसके पीछे २ ऐसे गया जैसे देवलोककी ओर मुख किये हुये और प्रसन्न इन्द्रके पीछे २ उच्चैःश्रवा (इन्द्रका अश्व) ॥ ३४ ॥ उस घोडेको लेके राजासे इस प्रकार बोला जैसे उच्चैःश्रवा तुरंगसहित क्षीरसमुद्र इन्द्रसे ॥ ३५ ॥ हे राजन्! यह उच्चैःश्रवाके तुल्य अश्वोंमें रत्न है और उडनेके स्वभाववाले वेगसे यह ऐसा है मानों मूर्तिमान् वायु ॥ ३६ ॥

अश्वोयमस्मत्प्रभुणाप्रभोसंप्रहितस्त्वयि ॥ राजतेहिपदार्थश्रीर्महतामर्पणाच्छुभा ॥ ३७ ॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तुप्रत्युवाचेंद्रजालिकः ॥ जलदस्तनितेशांतेचातकोम्बुधरंयथा ॥ ३८ ॥ सदश्वमेनमारुह्यभुवनं विहरप्रभो ॥ स्वप्रतापाहितानल्पशोभामुर्वीरविर्यथा ॥ ३९ ॥ अश्वमालोकयामासतेनोक्तइतिपार्थिवः ॥ निर्घातस्तनितंमेघंमयूरइवसूत्करः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रभो! हमारे स्वामीने इस अश्वको आपके निकट भेजाहै क्योंकि पदार्थोंकी उत्तम शोभा महात्माओंको समर्पण करनेहीसे होती है ॥ ३७ ॥ उस अश्वरक्षकके इतना कहनेपर वह ऐन्द्रजालिक इस रीतिसे बोला जैसे मेघकी गर्जना शान्त होनेपर चातक मेघसे ॥ ३८ ॥ हे प्रभो! इस उत्तम अश्वपर आरूढ होके लोकलोकान्तरोंमें ऐसे विहार करो जैसे अपने प्रतापसे अपरिमित शोभा दी हुई पृथिवीपर सूर्य्य भगवान् ॥ ३९ ॥ उसके इतना कहनेपर राजाने उस अश्वको ऐसे देखा जैसे पवनकी ताडनाजनित शब्द सहित मेघसे ऊपर गला उठाकर विशेष शब्दकारी मयूर (मोर) ॥ ४० ॥

अथानिमेषयादृष्ट्याराजाचित्रोपमाकृतिः ॥ बभूवालोकयन्नश्वं लिपिकर्मार्पितोमपः ॥ ४१ ॥ क्षण मालोक्यपीठस्थस्तस्थौसंस्थगितेक्षणः ॥ दृष्ट्याक्षुब्धःसमुद्रोद्रिमीनकैःकरवोयथा ॥ ४२ ॥ तस्थौमु हूर्तयुग्मंसध्यानासक्तइवात्मनि ॥ वीतरागोमुनिःक्षुब्धःपरानंदइवस्थितः ॥ ४३ ॥ बोधितःकेनचि न्नासौस्वप्रतापजितोर्जितः ॥ धियाकामप्ययंभूयश्चिंतांचिंतयतीतिच ॥ ४४ ॥

अर्थ—विचित्र उपमा देने योग्य आकार होगया है जिसका ऐसा राजा निमेष रहित दृष्टिसे उस अश्वको देखते हुयेही भित्तिमें लिखे हुये चित्रके समान होगया ॥ ४१ ॥ हे रामजी! क्षणभर उस अश्वको देखकर उसी सिंहासनपरही स्थित आच्छादित नेत्र होके ऐसे स्थित रहा जैसे जलसे शब्द करनेवाला समुद्र जल पीनेको उद्यत अगस्त्यऋषिको देखकर अति क्षुब्ध होके अपने अन्तर्गत पर्वत मीनोंसहित स्तंभित होजाय ॥ ४२ ॥ चार घडीतक आत्मामें ध्यानासक्तके तुल्य वह राजा ऐसे स्थित रहा जैसे बाह्यपदार्थकी दृष्टिसे अन्तःकरणमें चलायमान वीतराग बाह्यदृष्टिरहित

मुनि परमात्माके आनन्दमें ॥ ४३ ॥ बुद्धिसे कुछ अधिक चिन्तन करता है इसकारण अपने भुजबलके प्रतापसे बलवानोंके जीतनेवाले उसराजाको कोई बोधित न करसका ॥ ४४ ॥

बभूवुःकेवलंतत्रनिःस्पंदसितचामराः ॥ चामारिण्योदिशिशर्वर्यःस्तंभितेंदुकराइव ॥ ४५ ॥ विरेजुर्विस्मयापूर्णानिःस्पंदास्तेसभासदः ॥ निःस्पंदकिंजल्कदलाःपद्माःपंककृताइव ॥ ४६ ॥ प्रशशामसभास्थानेजनकोलाहलःशनैः ॥ प्रशांतप्रावृषिव्योमन्यंभोदमिवगर्जितम् ॥ ४७ ॥ संदेहसागरेमग्नाजग्मुश्चिंतांसुमंत्रिणः ॥ विषीदतिगदापाणावसुराजाविवामराः ॥ ४८ ॥ विततविस्मितजिह्मितयातयाजनतयाभयमोहविषण्णया ॥ स्तिमितचक्षुषिभूमिपतौस्थितेमुकुलिताब्जवनस्यधृताद्युतिः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने नृपव्यामोहोनाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वहांपर श्वेतचामर सर्वथा गतिरहित होगये और चमर चलानेवाला अंगनागण ऐसे होगया जैसे रात्रिमें स्तम्भित चन्द्रमाके किरण ॥४५॥ और विस्मयसे पूर्ण चेष्टारहित वे सभासद् कैसे शोभित हुये जैसे गतिरहित पुष्पकी रेणु होगई है जिनके ऐसे पंकमें मिले हुये कमल ॥ ४६ ॥ सभाके स्थानमें मनुष्योंका कोलाहल धीरे २ ऐसे शान्त होगया जैसे वर्षाके शान्त होनेपर आकाशमें मेघोंकी गर्जना ॥४७॥ सन्देहसमुद्रमें डूबेहुये सब उत्तम मन्त्रीगण ऐसे चिन्ताको प्राप्तहुये जैसे असुरोंके युद्धमें विष्णुके दुःखी होनेपर सब देवतागण ॥ ४८ ॥ नेत्र मूंदके राजाके स्थित होनेपर महान् विस्मयसे उत्साहहीन तथा भय और मोहसे खिन्न उस सभाके जनसमूहने ऐसे शोभा धारण की जैसे मुकुलित (कलीबन्द) कमलका वन ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने नृपव्यामोहो नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

मोहरहित,स्वस्थहृदय राजासे सभासदोंका मोह हेतुके प्रश्न और राजाके कथनका आरम्भ इस १०५ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुहूर्तद्वितयेनाथबोधमापमहीपतिः ॥ प्रावृषेण्यांबुनिर्मुक्तमंभोरुहमिवोत्तमम् ॥ १ ॥ आसनात्सांगदोत्तंसःप्रबुद्धोसावकंपयत् ॥ सवनाभोगशृंगाग्र्योभूकंपइवपर्वतः ॥ २ ॥ बभूवाथप्रबुद्धोसावासनोपरिकंपितः ॥ विक्षुब्धइवपातालवारणेशंकराचलः ॥ ३ ॥ पतंतंधारयामासुस्तंपुरोगानृपंभुजैः ॥ मेरुंप्रलयविक्षुब्धंकुलशैलास्तटैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके पश्चात् ४ घडीके पीछे राजा इसप्रकार बोधको प्राप्तहुआ जैसे वर्षाके मेघके विनिर्मुक्त होनेपर उत्तम कमल ॥ १ ॥ प्रबोधको प्राप्त होकर अंगद और शिरोभूषण सहित राजाने अपने शरीरको ऐसे कंपाया जैसे पूर्ण वन तथा शिखरोंसहित पर्वतको भूकम्प ॥ २ ॥ अनन्तर बोध (चेतनाऽवस्था) को प्राप्त वह राजा आसनपर ऐसे कम्पित हुआ जैसे पृथिवीको धारण करनेवाले दिग्गजके संचलित होनेपर कैलास पर्वत ॥ ३ ॥ सिंहासनपरसे गिरते हुये उस राजाको सुम्मुख जो स्थितथे उन्होंने ऐसे धारण किया जैसें प्रलय संचलित समेरुको अपने तटोंसे महेंद्रादि कुलपर्वत ॥ ४ ॥

पुरोगैर्धार्यमाणोसौपर्याकुलमतिर्नृपः ॥ वीचिविक्षोभितस्येंदोर्बभारवनमाःश्रियः ॥ ५ ॥ कोयंप्रदेशःकस्येयंसभेतिसनृपःशनैः ॥ दध्वानमज्जदंभोजकोशस्थइवषट्पदः ॥ ६ ॥ अथोवाचसभादेवकिमेतादितिसादरम् ॥ रणन्मधुकरीभानुंदृष्टराह्मिवाब्जिनी ॥ ७ ॥ अथैनंपरिपप्रच्छुःपुरोगामंत्रिणस्तथा ॥ प्रलयोल्लाससंत्रस्तंमार्कंडेयमिवामराः ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्मुखस्थित पुरुषोंका धार्य्यमाण (थाम्भा हुआ) यह राजा ऐसी शोभाको धारण किया जैसे चन्द्रोदयसे तरंगोंसे संचालित समुद्रके जलको ॥ ५ ॥ यह कौनसा स्थान है और किसकी यह सभा है ऐसा धीरेसे शब्द उस राजाने इस प्रकार किया जैसे कमलके कोशमें बन्द होते हुये भ्रमर ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर सभामें स्थित जन आदरसे राजासे इसप्रकार बोले कि हे देव ! यह क्या है जैसे भ्रमरी बोल रही है जिसमें ऐसी

कमलिनी, देखा है राहु जिसने ऐसे सूर्यको ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जैसे प्रलयके उमंगसे भयभीत मार्कंडेय ऋषिसे देवता लोगोंने पूछाथा ऐसेही इस राजासे सम्मुख स्थित सभासद तथा मंत्रियोंने पूछा ॥ ८ ॥

त्वयीत्थंसंस्थितेदेववयमत्यंतमाकुलाः ॥ अभेद्यमपिभिदंतिनिर्निमित्तंभ्रमामनः ॥९॥ आपातरमणीयेषुपर्यंतविरसेषुच ॥ भोगेष्विवविकल्पेषुकेषुतेलुलितंमनः ॥ १० ॥ सततोदारवृत्तासुकथासुपरिशीतलम् ॥ मनस्तेनिर्मलंकस्मात्संभ्रमेषुनिमज्जति ॥ ११ ॥ तुच्छालंबनमालूनविशीर्णलोकवृत्तिषु ॥ मनोमोहमुपादत्तेनमहत्त्वविजृंभितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कि हे देव ! (राजन्) आपकी ऐसी स्थिति होनेसे हम लोग अत्यन्त व्याकुल हैं और यह आश्चर्य है कि अभेद्य मनको भी भ्रान्तिकी प्रतीति विनाकारणही भेदन करती हैं ॥ ९ ॥ और हे भगवन् ! विना विचारे रमणीय परिणाममें फीके विकल्पमय किन भोगोंमें रागादिसे अन्य जनोंके तुल्य आपका मन किस निमित्तसे मोहित हुआहै ॥ १० ॥ निरन्तर उदार वृत्तान्तवाली विवेककी कथाओंके अभ्यास शीतल तथा निर्मल आपका मन भयकी बातोंमें किस कारण निमग्न होता (डूबता) है ॥ ११ ॥ क्योंकि तुच्छ विषयोंका आलम्बन करने हारा (इसीसे विषयके छिन्न होनेसे छिन्न और नष्ट होनेपर नष्टके सदृश) मन लोककी बातोंमें मोहको ग्रहण करताहै न कि विवकसे शुद्ध ॥ १२ ॥

सातत्येनहियैवास्यमनसोवृत्तिरुत्थिता ॥ शरीरमदमत्तासुतामेवैतद्विधावति ॥ १३ ॥ अतुच्छालंबनं धीरंप्रबुद्धंगुणहारिच ॥ तवापिहिमनश्छिन्नमालूनमिवलक्ष्यते ॥ १४ ॥ अनभ्यस्तविवेकंहिदेशकालवशानुगम् ॥ मंत्रौषधिवशंयातिमनोनोदारवृत्तिमत् ॥ १५ ॥ नित्यमात्तविवेकस्यकथमालूनशीर्णता ॥ धुनोतिविततंचेतोवात्येवविबुधाचलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—देहाभिमानसे मत्त अविवेककी दशाओंमें इस मनकी जो स्त्री पुत्रादि विषयक वृत्ति उठती है उसी ओर यह दौडताहै ॥ १३ ॥ महान् पदार्थका आश्रय करने वाला, धीर, विवेकी गुणोंसे दूसरोंके चित्तको हरने वाला आपकाभी मन छिन्नभान होता है यह आश्चर्य है ॥ १४ ॥ विवेकके अभ्याससे शून्य और देशकालके पीछे दौडने वाला जो मन है सो मंत्र औषधि (विषयादि) के वशमें हो जाता है नकि विवेकसे उदार वृत्तिसहित ॥ १५ ॥ नित्य ही जिसको विवेक प्राप्त है उसके चित्तको छिन्नता तथा शुष्कता क्योंकर होतीहो, और विषयाच्छिन्न वृत्ति उसे कैसे कंपाती है जैसे सुमेरुको महान वायु ॥ १६ ॥

इतिजातानुगीर्णस्यभूपतेःकांतिराननम् ॥ भूषयामासशीतांशुंमासांतइवपूर्णता ॥ १७ ॥ रराजराजासौम्यास्यमुन्मीलितविलोचनः ॥ गतेहिमर्त्तावुल्लासिपुष्पौघइवमाधवः ॥ १८ ॥ अथातिसंभ्रमाश्चर्याखिन्नास्मृतिमुखोबभौ ॥ आसन्नमृत्युरालोक्यराहुमिंदुरिवांबरे ॥ १९ ॥ ऐंद्रजालिकमालोक्यप्रोवाचाथहसन्निव ॥ बभ्रुंहिंसात्मकंदृष्ट्वासर्परूपीवतक्षकः ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रकार स्वजन समूहकी अनुकूलवाणीसे धैर्य्य दियेहुये राजाके मुखको शोभाने ऐसे भूषित किया जैसे पूर्णिमाकी पूर्णता चन्द्रमाको ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह राजा मुखकी शान्तता पूर्वक नेत्रको खोलकर ऐसे शोभित हुआ जैसे हिमऋतुके बीतनेपर विकसित पुष्पोंके समूहसहित बसन्तऋतु ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर भय और आश्चर्यसे जो खिन्नता प्राप्त हुई थी उसके स्मरण अर्थात् पूर्वापरवृत्तान्तके अनुसन्धानसे उपलक्षित है मुख जिसका ऐसा राजा उस ऐंद्रजालिकको देखकर ऐसे शोभित हुआ जैसे अस्त होनेके समीप चन्द्रमा आकाशमें राहुको देखकर॥१९॥ उस ऐन्द्रजालिकको देखकर हंसता हुआ राजा ऐसे बोला जैसे हिंसक नकुल (नेवले) को देखकर क्षुद्रसर्प वेषधारी तक्षक नागराज ॥ २० ॥

जाल्मजालजटालेनकिमेतद्भवताकृतम् ॥ येनास्पंदप्रसन्नोब्धिःक्षणादेत्यप्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ चित्रंचित्राहिदेवस्यपदार्थशतशक्तयः ॥ सुशक्तमपिमेचित्तंयाभिर्मोहेनिवेशितम् ॥ २२ ॥ क्ववयंलोकपर्यायकृतांतपदवेदिनः ॥ क्वमनोमोहदायिन्योविततःप्रकृतापदः ॥ २३ ॥ अप्यभ्यस्तमहाज्ञानंमनस्तिष्ठतिदेहके ॥ कदाचिन्मोहमादत्तेक्षणंमतिमतामपि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे अविवेककारिन् ! यह मायाजालसे तूने क्या किया ? जिससे शान्त भी समुद्र क्षणमेंही क्षोभताको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अहो ! मंत्रादि पदार्थगत परमात्मा की शक्ति, विचित्र है ! जिन्होंने अतिसमर्थ मेरे चित्त को आश्चर्य के साथ मोहमें प्रविष्ट किया ॥ २२ ॥ कहां तो हमलोग संसारके प्रसिद्ध व्यवहारोंके सिद्धान्त रहस्यको जाननेवाले !

और कहां ये मोहदायिनी अतिविशाल आपत्तियां ॥ २३ ॥ विवेकी भी मन कदाचित् देहके स्थित रहने परभी क्षणभरके लिये बडे २ बुद्धिमानोंकोभी स्वप्न इन्द्रजाल आदिमें मोह ग्रहणकरता है ॥ २४ ॥

इदमाश्चर्यमाख्यानंश्रूयतांरेसभासदः ॥ ममशांबरिकेणेहयन्मुहूर्तप्रदर्शितम् ॥ २५ ॥ दृष्टवानहमेतस्मिन्बह्वीःकार्यदशाश्चलाः॥ मुहूर्तंप्रार्थितोध्वस्तशक्रसृष्टिरिवाब्जजः ॥२६॥ इत्युक्त्वोन्मुखनेत्रेषुसभ्येषुसहसन्निव ॥ राजावर्णयितुंचित्रंवृत्तांतमुपचक्रमे ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ ॥ इहविविधपदार्थसंकुलायांन्हदनदपत्तनपर्वताकुलायाम्॥कुलशिखरिसमुद्रसंकरायांभुविविभवावलितोस्त्ययंप्रदेशः॥२८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने राजावबोधो नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

अर्थ—हे सभासदों, शम्बरासुरकी माया जानने वाले इस ऐन्द्रजालिकने मुहूर्तमात्रमें जो मुझे दिखलाया है उस आश्चर्यदायक आख्यानको आपलोग सुनिये ॥ २५ ॥ इस इन्द्रजालमें बहुतसी कार्योंकी चंचलदशा मैंने ऐसे देखा जैसे इन्द्रसे प्रार्थना किये हुये ब्रह्माजी उनकी सृष्टिको ध्वंसनकरके मुहूर्त मात्र में इन्द्रकी सृष्टिका कौतुक देखा ॥ २६ ॥ इतना कहनेपर जब सभासद लोग सुननेको दत्तचित्त हुये तब हंसते हुये उस राजाने विचित्र वृत्तान्त वर्णन करनेको आरम्भ किया ॥ २७ ॥ राजाजी बोले—नानापदार्थोंसे व्याप्त न्हद, नदी, नद, नगर तथा पर्वतादिसे परिपूर्ण तथा महेन्द्र आदि कुलपर्वतोंसे मिश्रित इस पृथिवीपर अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंसे पूर्ण यह हमारा देश है ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे राजाऽवबोधो नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस १०६ सर्गमें अश्वसे बनमें प्राप्त किया हुआ राजा चाण्डालकी कन्याके साथ प्रतिज्ञा होनेके कारण शबरके स्थानमें प्राप्त होके चाण्डालकन्याके साथ अपना विवाह वर्णन करता है ॥

॥ राजोवाच ॥ अस्तितावदयंदेशोनानावननदीयुतः ॥ वसुधामंडलस्यास्यसहोदरइवानुजः ॥ १ ॥ अस्मिंश्चायमहंराजापौराभिमतवृत्तिमान् ॥ इंद्रःस्वर्गइवास्यांतुसभायांमध्यसंस्थितः ॥ २ ॥ यावदभ्यागतोदूरात्कश्चिच्छांबरिकस्त्वयम् ॥ रसातलादभ्युदितोमायीमयइवस्वयम् ॥ ३ ॥ अनेनभ्रमिताद्येहपिच्छिकातेजसोर्जिता ॥ कल्पांतपवनाभ्रेणशक्रचापलतायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले—हे सभासदो! नानाप्रकारके बन और नदियोंसे युक्त इस पृथिवीमण्डलके सहोदर छोटे भ्राताके समान यह प्रसिद्ध हमारा देश है ॥ १ ॥ नगरनिवासी तथा प्रजागणोंके अनुकूल वृत्ति है जिसकी ऐसा मैं इस देशका राजा हूं और जैसे स्वर्गमें इन्द्र अपनी सुधर्मा सभामें है ऐसेहि मैं इस सभामें स्थित हूं ॥ २ ॥ इतनेहीमें रसातलसे मायावी मयनामा असुर जैसे स्वयं निकले ऐसेही दूर देशसे यह शाम्बरकी माया जाननेवाला एन्द्रजालिक आगया ॥ ३ ॥ इसने तेजसे बलवती मोरके पंखकी मोर्छल इस समय ऐसे घुमाई जैसे प्रलयकालके पवनसंयुक्त मेघने इन्द्रधनुषकी लताको ॥ ४ ॥

आलोक्यैतामहंलोलांमस्याश्वस्यपुरःस्थितः ॥ पृष्ठमारूढवानेकआत्मनाभ्रांतमानसः ॥ ५ ॥ ततोद्रिंप्रलयक्षुब्धंपुष्करावर्तकोयथा ॥ तथाचलंतंचलितःस्वश्वमारूढवानहम् ॥ ६ ॥ गंतुंप्रवृत्तोमृगयामेकोहमतिरंहसा ॥ उर्वरामिवनिर्भत्तुःकल्लोलःप्रलयांबुधेः ॥ ७ ॥ तेनानिलविलोलेनदूरंनीतोस्मिवाजिना ॥ भोगाभ्यासजडेनाज्ञोमुग्धस्यमनसायथा ॥ ८ ॥

अर्थ—इस चंचल मोर्छलको देखके इसके अश्वके सन्मुख स्थित मैं आत्मामें भ्रान्तचित्त होके एकाकी उस घोडेकी पीठपर आरूढ हुआ ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर उस उत्तम अश्वपर मैं चढा और प्रलयकालके उत्पातके वशसे चलायमान पर्वतपर पुष्करावर्तक मेघ जैसे चलै वैसेही मैं उस घोडेपर चला ॥ ६ ॥ अकेलाही अतिवेगसे मैं मृगयाके अर्थ ऐसे चला जैसे प्रलयके बढ़े हुये समुद्रके महान् तरंग सर्वस्वसे पूर्ण पृथिवीपर ॥ ७ ॥ वायुके समान वेगवान् उस घोडेपर ऐसे दूर प्राप्त कियागया जैसे बिना विचारि रमणीय विषयसमूहके भोगके अभ्याससे जड मन परमात्मासे दूर होजाता है ॥ ८ ॥

अकिंचनमनःशून्यंस्त्रीचित्तमिवनिर्भरम् ॥ ततःप्रलयनिर्दग्धजगदास्पदभीषणम् ॥ ९ ॥ निष्पक्षिक्षारनीहारंनिर्वृक्षमजलंमहत् ॥ संप्राप्तोहमपर्यंतमरण्यंश्रांतवाहनः ॥१०॥ तद्द्वितीयमिवाकाशंतथाष्टमामिवांबुधिम् ॥ पंचमंसागरमिवसंशुष्कंशून्यकोटरम् ॥ ११ ॥ ज्ञस्येवविततंचेतोमूर्खस्येवरुषाजवम् ॥ अदृष्टजनसंसर्गमजाततृणपल्लवम् ॥ १२ ॥

अर्थ--इसके पश्चात् वीतराग मुनियोंके मनके समान विषयरहित, स्त्रीके चित्तके तुल्य भयंकर प्रलयसे जलाये हुये ब्रह्माण्डके समान भीषण (भयदायक) ॥ ९ ॥ पक्षियोंसे वर्जित शीतसे अति दुःसह वृक्ष और जलशून्य महान् तथा अन्तरहित वनमें थकित होगयाहै वाहन जिसका ऐसा मैं प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ पुनः वह दूसरे आकाशके समान तथा स्वादु उदकवाले समुद्रसे परे पूर्व वर्णित पृथिवीकी परिखाकारगत रूप अष्टम समुद्रके तुल्य पश्चिमसागरके समान और शून्यकोटरके तुल्य अति शुष्क ॥ ११ ॥ और ब्रह्माकार ज्ञानीके चित्तके समान अपरिमित, मूर्खके क्रोधके तुल्य भयंकर मनुष्योंके सम्बन्धसे वर्जित तथा तृण और पल्लवकी उत्पत्तिसे रहित ॥ १२ ॥

अरण्यमिदमासाद्यमतिर्मेखेदमागता ॥ ललनेवैत्यदारिद्र्यंनिरन्नफलबांधवम् ॥ १३ ॥ कचन्मरुमरीच्यंबुपुरःप्लुतककुम्मुखम् ॥ आसूर्यास्तंदिनंतत्रप्रक्रांतंसीदतामया ॥ १४ ॥ तदरण्यंमयातीतमतिकृच्छ्रेणखेदिना ॥ विवेकिनेवसंसारोमध्यशून्यतताकृति ॥ १५ ॥ यदेतेनातिवाह्याहंप्राप्तवाञ्जंगलंक्रमात् ॥ अस्ताद्रिसानुंखिन्नाश्वःशून्यभ्रांत्येवभास्करः ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसे जंगलमें दुःख प्राप्तहुये पहुंचकर मेरी बुद्धि अति खेदको प्राप्त हुई तथा जैसे अन्न, फल तथा बान्धवसे रहित दारिद्र्यको पाकर कोई ललना स्थित हो ऐसेही मैं वहां स्थित रहा ॥१३॥ तथा शोभायमान मृगतृष्णाके जलोंमें चारोंओर डूबे हैं दिशाओंके मुख जहां ऐसे उस बनमें सूर्यास्त पर्यन्त मैं घूमता रहा ॥ १४ ॥ मध्यमें शून्यतासे विशाल है आकृति जिसकी ऐसे उस बनको खेदयुक्त अति क्लेशसे मैंने ऐसे पार किया जैसे विवेकी जन संसारको ॥ १५ ॥ जैसे आकाशके भ्रमणसे सूर्य अस्ताचलपर प्राप्त किये जाते हैं ऐसेही खिन्नाश्व मैं इस घोडेसे वाहित (ढोये हुये) होकर क्रमसे उस जंगलमें प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

जंबूकदंबप्रायेषुकलालापाःपतत्रिणः ॥ यत्रस्फुरंतिखंडेषुपांथानामिवबांधवाः ॥ १७ ॥ यत्रशष्पशिखाश्रेण्योदृश्यंतेविरलाःस्थले ॥ कदर्थलक्ष्म्याजिह्मस्यहृदीवानंदवृत्तयः ॥ १८ ॥ पूर्वादरण्यादरसात्तद्धिकिंचित्सुखावहम् ॥ अत्यंतदुःखान्मरणाद्वरंव्याधिर्हिजंतुषु ॥ १९ ॥ तत्रजंबीरखंडस्यतलंसंप्राप्तवानहम् ॥ मार्कंडेयइवागेंद्रमेकार्णवविहारतः ॥ २० ॥

अर्थ--जहांपर जामुनि और कदम्बके अधिक भोग्यके वृक्षोंपर मधुर भाषण करनेवाले पक्षीगण ऐसे भासतेथे जैसे मार्ग ग्रामियोंके बान्धव ॥१७॥ और जहांपर कोमल घासकी शिखाकी पंक्ति ऐसी विरल थी जैसे अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा कपटीके हृदयमें आनन्दकी वृत्तियां ॥ १८ ॥ पूर्वोक्त नीरस जंगलसे यह कुछ सुखदायक था क्योंकि अत्यन्त दुःखयुक्त मरणसे रोग होना प्राणियोंमें उत्तम समझा जाता है ॥ १९ ॥ वहांपर मैंने जम्बीर (कागजीनींबु) के वृक्षके नीचे मैं ऐसे प्राप्त हुआ जैसे महान् समुद्रमें विहार करते हुये मार्कण्डेय ऋषि विष्णुसंयुक्त वटके वृक्षको ॥ २० ॥

आलंबितामयातत्रस्कंधसंसर्गिणीलता ॥ नीलाजलदमालेवतापतप्तेनभूभृता ॥ २१ ॥ मयिप्रलंबमानेस्यांप्रवातःसतुरंगमः ॥ गंगावलंबिनिनरेयथादुष्कृतसंचयः ॥ २२ ॥ चिरंदीर्घाध्वगःखिन्नस्तत्रविश्रांतवाहनम् ॥ भानुरस्ताचलोत्संगेतलेकल्पतरोरिव ॥ २३ ॥ यावत्समस्तसंसारव्यवहारभरैःसमम् ॥ रविर्विश्रमणायेवनिविष्टोस्ताचलांगणे ॥ २४ ॥

अर्थ—उस वृक्षके नीचे मेरे कन्धेसे जिसका सम्बन्ध उसे अश्वके त्यागनेके अर्थ ऐसे आलम्बन किया जैसे सूर्य्यके तापसे संतप्त पर्वत, मेघकी मालाको ॥२१॥ जब मैं उस लताको अवलम्बन करके लटक रहाथा तो वह घोड़ा ऐसे चलागया जैसे मनुष्यके गंगाजीका आश्रय करनेपर सब पापोंके समूह ॥ २२ ॥ दीर्घ कालतक अधिक मार्ग चलनेसे थकित होकर अति खिन्न चिरकालतक उसके नीचे ऐसे विश्राम किया जैसे अस्ताचलके शिखरके ऊपर कल्पवृक्षके नीचे सूर्य्य ॥ २३ ॥ जबतक सूर्य्य भगवान् समस्त व्यवहार समूहके साथ मानों विश्राम करनेके अर्थ अस्ताचलके अंगणमें स्थित हुये ॥ २४ ॥

शनैःश्यामिकयाग्रस्तेसमस्तेभुवनोदरे ॥ रात्रिसंव्यवहारेषुसंप्रवृत्तेषुजंगले ॥ २५ ॥ अहंतरुव्रणेतस्मिन्पेलवेखंडकोटरे ॥ निलीनश्चिरलीनास्यःस्वनीडेविहगोयथा ॥ २६ ॥ विषदष्टविवेकस्यकीनाशस्यग

लत्स्मृतेः ॥ विक्रीतस्येवदीनस्यमग्नस्येवांधकूपके ॥ २७ ॥ तत्रकल्पसमारात्रिर्मोहमग्नस्यमेगता ॥ ए कार्णवोह्यमानस्यमार्कंडेयमुनेरिव ॥ २८ ॥

अर्थ—और धीरे २ रात्रिने समस्त भुवनोंके उदरको ग्रस्तलिया और जंगलमें रात्रिको सब प्रवृत्त हुये ॥२५॥ मैं कोमल वृक्षके पत्ते सहित खण्डित खोखलमें ऐसे छिपगया जैसे पक्षी अपने चोचको पक्षके नीचे छिपाके अपने घोसलेमें छिपजाय ॥ २६ ॥ सर्पके काटनेसे नष्ट विवेकके तुल्य मृत्युके वशीभूत स्मृतिशून्य बिके हुयेके समान दीन और अन्ध कूपमें निमग्नके सदृश ॥ २७ ॥ और मोहमें मग्न मेरी रात्रि वहांपर कल्पके समान इस प्रकार बीती जैसे महान् समुद्रमें बहनेहुये मार्कण्डेय मुनिकी ॥ २८ ॥

नस्नातवान्नार्चितवान्नतदाभुक्तवानहम् ॥ केवलंमेगतारात्रिःसापदांधुरितिष्ठतः ॥ २९ ॥ विनिद्रस्यविधैर्यस्यस्फुरतःसहपल्लवैः ॥ समंदुष्टातिदैर्घ्येणसाव्यतीयायशर्वरी ॥ ३० ॥ ततस्तिमिरलेखासुसहतारैंदुकैरवैः ॥ मयीवापाद्यमानासुम्लानतामलमानने ॥ ३१ ॥ शाम्यंतीषुचवेतालक्ष्वेडासुजवजंगले ॥ सहशीतार्तिमद्दंतपंक्तिटांकारसीत्कृतैः ॥ ३२ ॥ मामेवार्त्तिविनिर्मग्नंहसंतीमिवदृष्टवान् ॥ अहंपूर्वांदिशंप्राप्तमधुपानारुणामिव ॥ ३३ ॥

अर्थ—न तो स्नान किया न पूजन किया और न उस समय भोजन किया केवल आपत्तिग्रस्त मनुष्योंके अग्र भागमें स्थित मेरी रात्रि बीत गई ॥ २९ ॥ निद्रारहित धैर्य्य सहित और पत्तोंके साथ कांपते हुये अति दीर्घताके साथ वह दुष्टा रात्रि मेरी बीत गई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर तारागण चन्द्रमा और कुमुदोंके साथ अन्धकारकी लेखाओंके मुखपर भलीभांति मेरे समान म्लानता प्राप्त होनेपर ॥३१॥ और उस दीर्घ बनमें वेतालोंके सिंहनाद युक्त क्रीडाओंके शान्तहोनेपर दुःसह शीतकी पीड़ा सहित प्राणियोंके दन्तसंघट्टन और सीत्कार शब्दोंके साथ विपत्तिमें ग्रस्त मुझे हंसती हुईके तुल्य मधुपानकी क्रीड़ासे मानों अरुण (रक्त) वर्ण पूर्व दिशाको मैंने देखा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

क्षणादज्ञइवज्ञानंदरिद्रइवकांचनम् ॥ दृष्टवानहमर्कंखेवारणारोहणोन्मुखम् ॥ ३४ ॥ उत्थायास्तरणंवस्त्रंतत्तदास्फोटितंमया ॥ हस्तिचर्महरेणेवसंध्यानृत्यानुरागिणा ॥ ३५ ॥ प्रवृत्तस्तामहंस्फारांविहर्तुंजंगलस्थलीम् ॥ कालोजगत्कुटींकल्पदग्धभूतगणामिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनन्तर क्षणभरमेंही जैसे अज्ञानी ज्ञान, दरिद्र सुवर्णको देखताहै ऐसेही पूर्वदिशारूपी ऐरावत दिग्गजके ऊपर आरूढ सूर्य्य भगवानको मैंने देख ॥ ३४ ॥ उस समय उठके मैंने अपने ओठने बिछोन इस प्रकार फटकारा जैसे सन्ध्याकालके नृत्यके अनुरागी श्रीमहादेवजी हस्तीके चर्मको ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् उस वनस्थलीमें मैं ऐसे विहरना आरम्भ किया जैसे प्रलयसे दग्द होगयेहैं प्राणीगण जिसके ऐसी जगत्कुटीमें काल ॥ ३६ ॥

नकिंचिद्दृश्यतेतत्रभूतंजरठजंगले ॥ अभिजातोगुणलवोयथामूर्खशरीरके ॥ ३७ ॥ केवलंविगताशंकंखंडभ्रमणचंचलम् ॥ चीचीकूचीतिवचनाविहरंतिविहंगमाः ॥ ३८ ॥ अथाष्टभागमापन्नेव्योम्नोदिवसनायके ॥ शुष्कावश्यायलेशासुस्नातास्विवल्लतासुच ॥ ३९ ॥ दृष्टामयाप्रभ्रमतादारिकौदनधारिणी ॥ गृहीतामृतसत्कुंभादानवेनेवमाधवी ॥ ४० ॥

अर्थ—कोई भी प्राणी उस प्राचीन दीर्घ जंगलमें ऐसे नहीं देख पडताथा जैसे मूर्ख के शरिरमें कोई उत्तम गुण ॥ ३७ ॥ केवल शंकारहित फलरहित वनके खण्डमें भ्रमणसे वा जातिकी चपल चीची कूची शब्द करनेवाले पक्षीगण उस बनमें विहरतेथे ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् ४ चार घडी दिन चढनेपर और स्नान किये हुये तुल्यकी ओस शुष्क होजानेपर ॥ ३९ ॥ भ्रमण करते हुये मैंने हाथमें भात लिये हुये एक कन्याको ऐसे देखा जैसे स्त्रीवेषधारी हस्तमें अमृतका घट (घडा) लिये हुये विष्णुको दानव लोग ॥ ४० ॥

तरत्तारकनेत्रांतांश्यामामधवलांबराम् ॥ अहमभ्यागतस्तत्रशर्वरीमिवचंद्रमाः ॥ ४१ ॥ मह्यमोदनमाश्वेतद्बालेबलवदापदि ॥ देहिदीनार्त्तिहरणात्स्फारतांयांतिसंपदः ॥ ४२ ॥ क्षुदंतर्महतीयंमेबालेवृद्धिमुपेयुषी ॥ कृष्णसर्पाप्रसूतेवकोटरस्थाजरद्द्रुमे ॥ ४३ ॥ याच्ञयार्पितयामह्यमित्थंदत्तंनकिंचन ॥ यत्नप्रार्थनयालक्ष्म्यायथादुष्कृतिनेधनम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चंचल नेत्र श्याम वर्ण और मलिनवस्त्रको धारण किये हुये उस कन्याको मैं देखकर उसके निकट ऐसे गया जैसे रात्रिके निकट चन्द्रमा ॥ ४१ ॥ और उससे यह कहा कि—हे बाले ! इस बडी आपत्तिमें मुझे यह भात शीघ्र दे दे क्योंकि दीनोंके दुःख हरण करनेहीसे सम्पत्ति विशालताको प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ हे बाले ! मेरे

---

१ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ॥ लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १ ॥ इस वचनसे प्राणके नाश उपस्थित होनेपर इधर उधरका अन्न खानेसेभी मनुष्य पापी नहीं होता ॥

अन्तः यह क्षुधा ऐसे वृद्धिको प्राप्त है जैसे प्राचीन वृक्षके कोटरमें स्थित बच्चा दिये हुये काली सर्पिणी॥४३॥इसप्रकार याच्ञा करनेपर भी मुझे उसने कुछ न दिया जैसे यत्नसे प्रार्थना करनेपर भी पापीको लक्ष्मी धन नहीं देती ॥ ४४ ॥

केवलंचिरकालेनमयात्यंतानुगामिना ॥ खंडात्खंडंनिपततिच्छायाभूतेपुरःस्थिते ॥ ४५ ॥ तयोक्तंहारके यूरिंश्चंडालींविद्धिमामिति ॥ राक्षसीमिवसुक्रूरांपुरुषाश्वगजाशनाम् ॥ ४६ ॥ राजन्यार्चनमात्रेणमत्तो नाप्नोषिभोजनम् ॥ ग्राम्यादनभिजातेहात्सौजन्यमिवसुंदरम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तवत्यागच्छंत्याखेलयाच पदेपदे ॥ कुंजकेषुनिमज्जंत्यालीलावनतयोदितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—परन्तु चिरकालतक मैं उसका अनुगामी (पीछे चलनेवाला) बना रहा और एक बनके खण्डसे दूसरे बनके खण्डमें पीछे २ चलाही गया और छायाके तुल्य उसके सम्मुख स्थित होनेपर ॥ ४५ ॥ उस कन्याने कहा कि–हे हारकेयूरको धारण करने हारे ! मुझे आप चाण्डालकी कन्या जानो और मैं मनुष्य अश्व तथा गजके खाने-वाली अति क्रूर राक्षसीके समान हूं अर्थात् मेरा अन्न आपके भोजन करने योग्य नहीं है ॥ ४६ ॥ हे राजकुलोत्पन्न ! मेरे साथ गमन करने मात्रसे तुम भोजन ऐसे नहीं पासकते जैसे अपूर्ण अभिलाषग्रामीता उत्तम जनसे मैत्री ॥४७॥ ऐसा कहती हुई पश्चात् क्रीडापूर्वक चलती हुई तथा लताकुंजोंमें छिपती हुई लीलापूर्वक कटाक्ष आदि चेष्टाओंसे अपने अभिप्रायको प्रकट करती हुई नम्रहोके उसने कहा ॥ ४८ ॥

ददामिभोजनमिदंभर्त्ताभवसिचेन्मम ॥ लोकोनोपकरोत्यर्थैःसामान्यःस्निग्धतांविना ॥ ४९ ॥ वाह यत्यत्रमेदांतान्केदारेपुल्कसःपिता ॥ श्मशानइववेतालःक्षुधितोधूलिधूसरः ॥ ५० ॥ तस्येदमन्नंभव तिभर्तृत्वेदीयतेस्थिते ॥ प्राणैरपिहिसंपूज्यावल्लभाःपुरुषायतः ॥ ५१ ॥ अथोक्तासामयाभर्ताभवा मितवसुव्रते ॥ केनापदिविचार्यंतेवर्णधर्मकुलक्रमाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—कि हे महाराज ! यदि तुम मेरे पति हो तो यह भोजन मैं तुमको दूं क्योंकि मेरे सदृश सामान्य जन बड़े प्रयोजनोंके विना दूसरेको उपकार नहीं करता ॥ ४९ ॥ मेरा पिता चाण्डाल यहां खेतोंमें बैलोंको ऐसे जोत रहा है जैसे क्षुधित धूलिसे धूसर श्मशानभूमिमें वेताल ॥ ५० ॥ यह अन्न उसके लिये मैं लेजातीहूं परन्तु यदि मेरे पति हो तो मैं तुमको दे सकतीहूं क्योंकि प्रिय पुरुष (पति) स्त्रियोंको प्राणोंसे भी पूजनीय है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर मैंने उससे कहा कि हे सुव्रते मैं तेरा पति होताहूं क्योंकि आपत्तिमें वर्ण तथा कुलके धर्म कौन विचारते हैं ॥ ५२ ॥

ततस्तयौदनादर्द्धमह्यमेकंसमर्पितम् ॥ माधव्येवामृतादर्द्धमिंद्रायार्त्तिमहत्पुरा ॥ ५३ ॥ जंबूफलरसः पीतःसभुक्तःपक्कणौदनः ॥ विश्रांतंचमयातत्रमोहापहतचेतसा ॥ ५४ ॥ मांतत्रार्कमिवापूर्यसाप्रावृट् श्यामलागता ॥ हस्तेनसमुपादायप्राणंबहिरिवास्थितम् ॥ ५५ ॥ दुराकृतिंदुरारंभमाससादभयप्रदम् ॥ पितरंपीवराकारमवीचिमिवयातना ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस अन्नका आधाभाग मुझे इस प्रकार दिया जैसे स्त्रीवेषधारी विष्णुने अमृतका आधा इन्द्रको. और अति क्षुधाके दुःखसे मैंने उसेही बहुत माना ॥ ५३ ॥ अज्ञानसे नष्ट होगयाथा चित्त जिसका ऐसे मैंने वहां जामुनिके फलका रस पिया और उस सबरका अन्न खाया तथा वहां कुछ विश्राम भी किया ॥ ५४ ॥ सूर्यके सदृश मुझे वहां छिपाके वर्षाके तुल्य श्याम वर्ण वह इस प्रकार गई जैसे बाहर स्थित प्राणको हस्तमें लेके ॥ ५५ ॥ कुरूप कुत्सितकार्यकारी भयदायक और स्थूल शरीरवाले अपने पिताके निकट ऐसे वह प्राप्त हुई जैसे अवीचि नाम नरकमें यातना ॥ ५६ ॥

तयामदनुषंगिण्यास्वार्थस्तस्मैनिवेदितः ॥ मातंगायभ्रमर्येवनिःस्वनेनालिलग्नया ॥ ५७ ॥ अयंममभ वेद्भर्त्तातातहेतवरोचताम् ॥ सतस्याबाढमित्युक्त्वादिनांतेसमुपस्थिते ॥ ५८ ॥ मुमोचदांतावाबद्धौ कृतांतःकिंकराविव ॥ नीहाराभ्रकडारासुदिक्षुप्रोद्धूलितासुच ॥ वेतालबंधनात्तस्माद्दिनांतेचालितावयम् ॥ ५९ ॥ क्षणेनपक्कणंप्राप्ताःसंध्यायांदीर्घजंगलात् ॥ श्मशानादिववेतालाःश्मशानमितरन्महत् ॥ ६० ॥

अर्थ—मुझे आलिंगन हुये उसने चाण्डाल अपने पितासे अपना प्रयोजन (विवाहरूप) इस प्रकार निवेदन किया जैसे भ्रमरसे संलग्न मधुर शब्दसे भ्रमरी ॥ ५७ ॥ वह बोली कि–हे प्रियपिता ! यह पतिहो इस बातको आप प्रसन्न करैं, और उसके पिताने कहा कि बहुत अच्छा और जब दिनका अन्त उपस्थित हुआ ॥५८॥ तब अच्छीतरह-से बन्धे हुये दोनों बैलोंको ऐसे छोरा जैसे यमराज अपने किंकरोंको और मेघ तथा कुहिरा दिशाके पीली और धूलियुक्त होनेपर पिशाचोंके निवासस्थान उस बनसे हम तीनों चले ॥ ५९ ॥ और क्षणभरमें उस बडेजंगलसे सं-ध्याकालमें हमलोग शबरके स्थानपर ऐसे प्राप्त हुये जैसे वेताल (भूतगण) एक श्मशानसे दूसरे बडे श्मशानमें॥६०॥

विकर्तितविभागस्थकपिकुक्कुटवायसम् ॥ रक्तसिक्तोर्वराभागभ्रमन्मक्षिकागणम् ॥ ६१ ॥ शोषार्थंप्रसृताद्रीन्त्रतंत्रीजालपतत्खगम् ॥ निष्कुटस्थितजंबीरखंडलग्नखगध्वनि ॥ ६२ ॥ शुष्यद्गुरुवसापिंडपूर्णालिंदलसत्खगम् ॥ दृष्टिप्रसृतरक्ताक्तचर्मस्रवदसृग्लवम् ॥ ६३ ॥ बालहस्तस्थितक्रव्यपिंडकणितमक्षिकम् ॥ जर्जराधिष्ठचंडालतर्जितारटितार्भकम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—और काटकर पुनः छोटे २ भागको दिये गये हैं वानर मुर्गे और कौवे जिस स्थानपर, रक्तसे सींची हुई पृथिवीपर जहां मक्षिकाओंके समूह भ्रमण कर रहेहैं ॥ ६१ ॥ तथा सूखनेके लिये फैलाई हुई आर्द्र (गीली) आन्त और तांतपर पक्षीगण जहांपर गिरतेहैं तथा गृहके वाटिकामें स्थित नींबुके वृक्षपर पक्षीगण जहां शब्द कर रहेंहैं ॥ ६२ ॥ और सूखते हुये बडे चर्बियोंके पिण्डोंसे पूर्ण बाहरके द्वारपर पक्षीगण शोभायमान हो रहेहैं तथा आंखसे बहे हुये रक्तसे भीगे हुये चर्मसे रुधिरके बिन्दु जहां टपक रहेहैं ॥ ६३ ॥ तथा बालकोंके हस्तमें स्थित कच्चे मांसके पिण्डोंपर माक्षिका जहांपर भनभना रहींहैं तथा वृद्ध और श्रेष्ठ चांडाल जहांपर बकवाद करनेवाले बालकोंकी तर्जना कर रहेहैं ॥ ६४ ॥

तत्प्रविष्टावयंकीर्णशिरांत्रंभीमपक्कणम् ॥ मृतभूतंजगत्कल्पेकृतांतानुचराइव ॥ ६५ ॥ संभ्रमोपहितानल्पकदलीदलपीठके ॥ अहमास्थितवांस्तत्रनवेश्वशुरमंदिरे ॥ ६६ ॥ श्वश्रूवामेकेकराक्ष्यातुतेनास्रग्लवचक्षुषा ॥ जामातायमितिप्रोक्तंतयासदभिनंदितम् ॥ ६७ ॥ अथविश्रम्यचंडालभोजनान्यजिनासने ॥ संचितान्युपभुक्तानिदुष्कृतानीवभूरिशः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे सभासदो ! उस नाडी और आतोंसे पूर्ण चाण्डालके गृहमें हम लोग ऐसे प्रविष्टहुये जैसे जगत्के प्रलयमें जहां प्राणीगण मरगयेहैं ऐसे स्थानपर यमराजके किंकर ॥ ६५ ॥ उस नूतन श्वशुरके स्थानमें अति आदरसे लाये हुये केलेके आसनपर मैं बैठगया ॥ ६६ ॥ और टेपरी आंखवाली इसीसे नेत्रसे रुधिरके बिन्दुयुक्त आंखवाली मेरी श्वश्रू (सास) ने तो कहा कि यह मेरा जामाता (दामाद) है ऐसा कहके वह अति प्रसन्न हुई ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर कुछ विश्राम करके अजिन चर्मके आसन पर बैठके संचय किये हुये चाण्डालोंके योग्य भोजन मैंने ऐसे किया जैसे पापी पुरुष अनेक कर्मसे संचित किये हुये पापोंको ॥ ६८ ॥

अनंतदुःखबीजानिनमनोज्ञतराण्यपि ॥ तानिप्रणयवाक्यानिश्रुतान्यसुभगान्यलम् ॥ ६९ ॥ निरभ्रांबरनक्षत्रेकस्मिंश्चिद्दिवसेततः ॥ तैस्तैरारंभसंरंभैस्तैर्वस्तुविभवार्पणैः ॥ ७० ॥ दत्ताप्यनेनसामह्यंकुमारीभयदायिनी ॥ सुकृष्णाकृष्णवर्णेनदुष्कृतेनेवयातना ॥ ७१ ॥ सरभसममितोविनेदुरत्रप्रमृतमहामदिरासवाःश्वपाकाः ॥ हतपटुपटहाविलासवंतःस्वयमिवदुष्कृतराशयोमहांतः ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इंद्रजालोपाख्याने चांडालीविवाहो नाम षडुत्तरशततमःसर्गः ॥ १०६ ॥

अर्थ—और अनन्त दुःखोंके बीज, अप्रिय तथा कुत्सित प्रणयके वाक्योंको भी भली भांति सुना ॥ ६९ ॥ इसके अनन्तर किसी अच्छे नक्षत्रयुक्त दिनमें जिस दिनमें आकाशमें मेघ न थे उन २ चाण्डालोंके उचित मद्यमांस आदिके संचयके आरम्भके उद्योगोंसे तथा उन २ वस्तु और विभव आदिके समर्थताके साथ ॥ ७० ॥ उस भयदायिनी अति कृष्णवर्ण कन्याको उसके पिताने मुझे ऐसे दिया जैसे कृष्णवर्ण पाप नरककी यातना ॥ ७१ ॥ और इस विवाहके उत्सवमें मदिरापानसे महामत्त बडे २ नगारोंको बजाने वाले और नाच विलास करते हुये चाण्डाल लोक चारों ओर दौडते हुये वेगके साथ ऐसे शब्द करते थे जैसे मूर्तिधारी ब्रह्महत्यादिक महान पापोंकी राशि ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्रजालोपाख्याने चाण्डालीविवाहो नाम षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस १०७ के सर्गमें उस शबरालयमें ६० वर्ष पर्य्यन्त चिरकाल तक निवास करते हुये चाण्डालके योग्य कृत्यके साथ जो जीवन है उसका वर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनसोत्सवावर्जिताशयः ॥ तदाप्रभृतितत्राहंसंपन्नःपुष्टपुल्कसः ॥ १ ॥ सप्तरात्रोत्सवस्यांतेक्रमान्मासाष्टकेगते ॥ पुष्पितासास्यसंपन्नास्थितागर्भवतीततः ॥ २ ॥ प्रसूताद्दः

खदांकन्यांविपदुःखक्रियामिव ॥ साकन्यावव्टधेशीघ्रंमूर्खचिंतेवपीवरी ॥ ३ ॥ पुनःप्रसूतासावर्षैस्त्रिभिःपुत्रमशोभनम् ॥ अनर्थमिवदुर्बुद्धिराशापाशविधायकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले–अब यहां पर अधीक कहनेसे क्या प्रयोजन है विवाहके उत्सवके साथ वशीकृत चित्त मैं उसी समयसे लेके पक्का चाण्डाल बन गया ॥ १ ॥ सात रात्रीतक उत्सवके अन्तमें क्रमसे आठ मास बीत गये और यह मेरी स्त्री ऋतुमती हुयी और गर्भवती होके स्थित हुई ॥ २ ॥ और वह विपत्तिके दुःखकी क्रिया के तुल्य दुःखदायी कन्या जनी और वह कन्या शीघ्र ऐसे बढी जैसे मूर्ख जनकी स्थूल चिन्ता ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् तीन वर्ष बीतने पर अशोभन पुत्र ऐसे उत्पन्न किया जैसे अनर्थबुद्धिमनुष्य आशाकी फांसियोंका विधान करने वाले अनर्थ को ॥ ४ ॥

पुनःसुतांदुहितरंपुनरप्यर्भकंततः ॥ कलत्रवानहंजातोवनेजरठपुल्कसः ॥ ५ ॥ तयासहसमास्तत्रम याबव्हयोतिवाहिताः ॥ नारकेचिंतयासार्धंब्रह्मघ्नेनेवयातनाः ॥ ६ ॥ शीतवातातपक्लेशविवशेनवनांतरे ॥ चिरंविलुलितंवृद्धकच्छपेनेवपल्वले ॥ ७ ॥ कलत्रचिंताहतयाधियासंदह्यमानया ॥ दृष्टाःकष्टसमारंभादिशःप्रज्वलिताइव ॥ ८ ॥

अर्थ—और पुनःकन्या उत्पन्न हुई और उसके पश्चात् पुनःपुत्र उत्पन्न हुआ इस प्रकार बनमें मैं दुष्ट चाण्डाल कुटुम्बवान् होगया ॥ ५ ॥ जैसे ब्रह्मघ्न (ब्राह्मण मारनेवाला) नरकमें चिन्ताके साथ अनेक यातना भोगताहै ऐसेही उसके साथ मैंने बहुत वर्ष बिताये ॥ ६ ॥ बनके मध्यमें शीत वात और आतपके क्लेशसे विवश होकर चिरकाल तक ऐसे फिरता रहा जैसे वृद्ध कछुवा छोटे तालावमें ॥ ७ ॥ कुटुम्बके पालनकी चिन्तासे नष्ट अतएव सन्तप्यमान (जलती हुई) बुद्धिसे दुःखदायक कष्ट संयुक्त जलती हुई समान दशो दिशाओंको देखा ॥ ८ ॥

क्षौमानेकसमाक्षीणपटेचैंडकधारिणा ॥ काष्ठभारोवनेव्यूढोयोमूर्त्तमिवदुष्कृतम् ॥ ९ ॥ यौकाकीर्णजरत्क्लिन्नगंधिकौपीनवाससा ॥ आश्वस्यधवलीकानांतलेनीताघनाःसमाः ॥ १० ॥ कलत्रापूरणोत्केनजर्जरेणहिमानिलैः ॥ हेमंतेदर्दुरेणेवविलीनंवनकुक्षिषु ॥ ११ ॥ नानाकलहकल्लोलतापप्रसरविद्रुताः ॥ बाष्पव्याजेननिर्मुक्तानेत्राभ्यांरक्तबिंदवः ॥ १२ ॥

अर्थ—अतसी (अलसी) से निर्मित अनेक स्थानपर फटे हुये वस्त्रके ऊपर घासकी गेहुरी धारण करके बड़ा कष्ट दायक भार शिरपर धारण करताथा जो कि मूर्तिमान् पापके तुल्य था ॥ ९ ॥ यूकों (जूओं) के समूहसे व्याप्त और फटाहुआ दुर्गन्ध युक्त केवल कौपीन वस्त्रको धारण कियेहुये धवलीक नामकवृक्षोंके नीचे विश्राम करके बहुत वर्ष व्यतीत किये ॥ १० ॥ कुटुम्ब पालन चिन्तामें निमग्न और शीतकालके वायुसे जर्जर शीतऋतुमें बनोंके उदरोंमें ऐसे छिपारहता जैसे मेडक ॥ ११ ॥ नानाप्रकारके कलहके तरंगों के तापसे पिघले हुये रक्तके बिन्दु आंसुओंके बहानेसे बहाये ॥ १२ ॥

यामिन्योविपिनेक्लिन्नेवराहामिषभोजनाः ॥ शिलातलकुटीकोशेनीताजलदविक्लवाः ॥ १३ ॥ कालेक्षयंगतेरोहेकालाभ्रघनतांगते ॥ असौहार्देनबंधूनांकलहैश्चापिसंततैः ॥ १४ ॥ सर्वत्रजातशंकनकलाभिमुखगर्भकैः ॥ मयाकृपणचित्तेननीताःपरगृहेसमाः ॥ १५ ॥ चंडालीकलहोद्विग्नचंडचंडालतर्जनैः ॥ मुखंजर्जरतांयातमिंदुराहुरदैरव ॥ १६ ॥

अर्थ—पाषाणोंकी शिलाके तलोंमें कुटीरूपी गुप्तगृह थे जिनमें ऐसे भीगे बनमें सुअरोंका मांस भोजन करते हुये, मेघोंसे अति भयंकर रात्रियोंको बिताया ॥ १३ ॥ काले मेघोंसे सघनताको प्राप्त सम्पूर्ण बीजोंको उत्पत्तिके कारणभूत वर्षाकालके बीत जानेपर बन्धुओंके द्वेषसे तथा निरन्तर कलहके कारणसे ॥ १४ ॥ सब जगह शंका सहित और दीनचित्त मैंने तोतरी वाणी बोलनेवाले बालकोंके साथ दूसरे चाण्डालोंके गृहोंमें वर्षों बिताया ॥ १५ ॥ चाण्डालीके कलहों से उद्विग्न तथा प्रचण्ड चाण्डालोंके तर्जनोंसे मेरा मुख ऐसा जर्जर होगया जैसे राहुके दांतोंसे चन्द्रमा ॥ १६ ॥

चर्विताःखर्वितोष्ठेनद्वीपीपिशितपेशयः ॥ नारकात्हृतविक्रीतानारक्योरशनाइव ॥ १७ ॥ हिमवत्कंदरोद्गीर्णाश्चंडाहेमंतवीचयः ॥ शिशिरेशीकरासारतुषारनिचयाश्चिरम् ॥ १८ ॥ अंगेनिरंबरेसोढामृत्युमुक्ताइवेषवः ॥ जराजरठमूढेनमूलानिक्षीणभूरुहाम् ॥ १९ ॥ सुकृतानामिवैकेनसमुत्खातानिभूरिशः ॥ शरावकेष्वटव्यांचपललंपक्कमादरात् ॥ २० ॥

अर्थ—नीचे ओष्ठोंसे व्याघ्रादि मांसपिण्ड ऐसे चबाया जैसे नारकी प्राणियोंसे लाई हुई और उन्ही के हस्त में विक्रीत आंतको नारकी जीव ॥ १७ ॥ हिमालयसे निकली हुई दुःखदायी हेमन्तकी तरंगें और शिशिरऋतुमें जलकणोंकी बृष्टि तथा तुषारके समूह चिरकालतक ॥ १८ ॥ वस्त्ररहित शरीरपर ऐसे सहन किया जैसे मृत्युसे छोडे

हुये बाण वृद्धावस्था से जीर्ण इसीसे मूढ चित्त मैंने अनेक प्राचीन वृक्षोंकी जड ऐसे काटी जैसे सुकृतोंकी और जंगलमें शरावो (मृत्तिकाके पात्रों) में पके हुये मांसको आदरसे ॥ १९ ॥ २० ॥

अस्पृष्टेनजनैर्भुक्तंकुकलत्रवतामया ॥ गृहीततेजःक्षतयेबहुवक्त्रविकारिणा ॥ २१ ॥ मार्गाविकमिवात्मीयंविक्रीतंपण्यमन्यतः ॥ प्राण्यंगवपुषस्तस्यप्रोत्कृत्योत्कृत्यपेशलः ॥ २२ ॥ आयसंपरिविक्रीता विंध्यपक्कणभूमिषु ॥ जन्मान्तरसहस्रोत्थंस्वपापमिववृद्धये ॥ २३ ॥ अवकीर्णमसत्कीर्णचंडालाराम भूमिषु ॥ दृष्टःकुद्दालकोदृष्ट्यासंध्यास्नेहविमुक्तया ॥ २४ ॥ रौरवापतितेनेवतत्कालस्निग्धतांगतः ॥ विंध्यकंदरगुल्मानांबंधुत्वमिवगच्छता ॥ २५ ॥

अर्थ—जनोंके स्पर्शसे रहित दुष्टस्त्रीवाले मैंने भोजन किया मुखके अनेक विकारयुक्त मैंने उपार्जित तेजके नाशके लिये ॥ २१ ॥ मृग तथा भेडेको मांसको अपनेही मांसके तुल्य दूसरोंसे खरीदा और उस प्राणीयोंके अंगको काट २ उसके कोमल भागको ॥ २२ ॥ लोहेके पात्रमें रखवा संस्कार करके अधिक मूल्यके लाभार्थ ऐसे बेचा जैसे सहस्रों जन्मान्तरके पापोंके उसकी वृद्धिके अर्थ ॥ २३ ॥ और बिकनेसे बचे हुये अपवित्र मलमूत्रोंसे पूर्ण मांसको चाण्डालोंके गृहवाटिकाओंमें सूखनेके अर्थ फैलादिया, और नरक गिरेके तुल्य अर्थात् अत्यन्त दुर्दशा ग्रस्त और बिन्ध्याचल की कन्दराकी लता गुल्मोंके बन्धताको प्राप्त मैं कन्दमूल तथा मांस आदिके उपार्जनमें विघ्नभूत जो संध्याकाल उससे द्वेष करनेवाली दृष्टिसे कुद्दाल (कुदार कुठार वा पावडे) को पोषक होनेके कारणसे मित्र होके देखा, अर्थात् उस कुद्दालकसे कुटुम्बका पालन होताथा इससे मित्ररूपसे उसीके ऊपर दृष्टि पडगई थी ॥ २४ ॥ २५ ॥

पुलिंदवपुषायत्रयुक्तयोगैःसमर्पिताः ॥ तर्पितालगुडाघातजितकौलेयरंहसा ॥ २६ ॥ पुत्रदाराःकदन्नेनग्रामकांधोचितेनच ॥ धारासाररणत्पत्रशुष्कतालतलेनिशाः ॥ २७ ॥ नीतारणितदंतेनसार्द्धविपिनवानरैः ॥ रोमभिःकोटिमुद्रोद्यैःशीतेनाध्युषितस्यमे ॥ २८ ॥ वर्षासुमुक्ताकणवद्धृतावानलबिंदवः ॥ अजाजीमूतखंडार्थक्षुत्क्षुण्णक्षीणकुक्षिणा ॥ २९ ॥

अर्थ—जिस दुर्दशामें परम्परा सम्बन्धसे चाण्डालकी शरीररूपी दैवसे स्त्रीपुत्रादिकोने समर्पित (दिये हुये) यष्टिका प्रहारों से कुकुर आदिके उपद्रवोंको निवारण करके ग्रामीण जनके योग्य दुष्टअन्नसे पालन किया और जलकी धाराके वेगसे शब्दायमान पत्र थे जिनके ऐसे तालके वृक्षोंके नीचे अनेक रात्रियोंको ॥ २६ ॥ २७ ॥ बनके वानरोंके साथ बिताया और शतिके दुःखमें निवास सूचीके अग्रभागके तुल्य खडे रोमोंसे मोतीके कणके तुल्य वर्षाकालमें मेघके बिन्दुओंको धारण करताथा तथा क्षुधासे क्षीण मैंने मेघके खंडके समान तुच्छ मांसके टुकडेके लिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

कलत्रेणसह्राटव्यांकृतःकलहआकुलः ॥ वनेरणितदंतेनशीतकेकरचक्षुषा ॥ ३० ॥ मषीमलिनगात्रेण वेतालस्वजनायितम् ॥ सरित्तीरेषुमत्स्यार्थभ्रांतंबडिशधारिणा ॥ ३१ ॥ कल्पेजगत्सुनाशार्थकृतांतेनेव पाशिना ॥ पीतंबहूपवासेनसद्यःकृत्तमृगोरसः ॥ ३२ ॥ तत्कालकोष्णंरुधिरंमातुस्तनपयोयथा ॥ श्मशानसंस्थितान्मत्तोरक्तरक्तान्मलाशिनः ॥ ३३ ॥ विद्रुतावनवेतालाश्चंडिकाभिद्रुताइव ॥ वागुराविपिनेव्युप्ताबंधार्थमृगपक्षिणाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—बनमें व्याकुल होके कुटुम्बके साथ कलह करताथा और शीतसे तरंगपर नेत्रवाले बनमें दांत कटकाते हुये ॥ ३० ॥ और मषीके तुल्य मलीनशरीरसे वेतालके बन्धुके सदृश आचरण किया और नदियोंके तटपर मत्स्योंके अर्थ बड़िश (बंसी) धारण किये ऐसे भ्रमण किया ॥ ३१ ॥ जैसे अनेक संसारोंमें नाशार्थ प्रलयकालमें हस्तमें फांसी लियेहुये काल और बहुतकालके उपवासके अनन्तर उसी क्षणमें काटे हुये मृगके वक्षस्थलका रुधिर ऐसे पान किया ॥ ३२ ॥ जैसे उसी कालमें किंचित् उष्ण माताके स्तनका दुग्ध और स्मशान भूमिमें संस्थित रक्तसे रंजित और अपवित्र भोजन करनेवाले मुझसे बनके बेताल ऐसे भागते थे जैसे चण्डिकाके खदेरे हुये, और जंगलमें मृगपक्षियोंके बंधनके लिये जाल ऐसे फैलाया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

आशाइवविवृद्ध्यर्थपुत्रदारकलत्रजाः ॥ मयामायामयैर्लोकाःसूत्रजालमयैःखगाः ॥३५॥ जालैर्जर्जरतां नीतादिशश्चाशुकृतायुषा ॥ तत्रापिदत्तःप्रसरोमनसोदुष्कृतोदये ॥ ३६ ॥ आशाप्रसारितादूरंप्रावृषीव तरंगिणी ॥ करभ्याइवसर्पेणविद्रुतंदूरतोधिया ॥ ३७ ॥ दूरेत्यक्तादयादेहेभुजंगेनेवकंचुकम् ॥ क्रौर्यं सुखेनसंरंभशरवर्षिणिनादिच ॥ ३८ ॥ अंगीकृतंनिदाघांतेनभसेवासितांबुदः ॥ विकासिन्योक्षताः क्षारादूरंपरिहृताजनैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसे वृद्धिके अर्थ स्त्री पुत्र तथा कुटम्बसे उत्पन्न आशाको जैसे मायामय सब लोकहैं ऐसेही सुकृत शून्य अवस्थावाले मैंने सूत्रजालमय पक्षियोंका ॥३५॥ और जालोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको भी जर्जरताको प्राप्त करदिया, और उस उपायके कर्ममें भी दुष्कृतके उदय होनेपरही मनको अवसर दिया ॥३६ ॥ अपनी आशाको ऐसे दूरकै लाया जैसे वर्षाकालमें नदी और बुद्धिसे ऐसे दूर भागताथा जैसे भल्लुकी (भालू) से सर्प ॥ ३७ ॥ और जैसे सर्प अपनी केंचुली त्यागता है ऐसेही दूसरे प्राणियोंके देहमें दया सर्वथा त्याग दिया और बाण पक्षमें जलकी वर्षा करनेवाला तथा निष्ठुरभाषपक्षमें गर्जन शील क्रौर्य्य (कुरत्त) को ऐसे धारण किया जैसे निदाघते अन्तमें आकाश मेघको और उग्र गन्ध तथा दुःसह विकासिनी स्त्रियोंको वा लताओंको जिनके दूरसेही लोग छोडे थे उनको मैंने काटडाले॥३८॥३९॥

श्वभ्रेणेवकुमंजर्यश्चिरमूढामयापदः ॥ स्वकालकुलकोणासुनरकोद्दामभूमिषु ॥ ४० ॥ उप्तादुष्कृतबीजानांमुष्टयोमोहवृष्टयः ॥ वागुराभिर्मयाविंध्यकंदरस्थेननिर्दयम् ॥ ४१ ॥ भूतेष्विवकृतांतेनमृगेषुपरिवल्गितम् ॥ चामरीकंठकुडयेषुविश्रांतशिरसामया ॥ ४२ ॥ सुप्तमस्तविवेकेनशेषांगेष्विवशौरिणा ॥ विलोलचरणांबरयासरावोल्लासिधूम्रया ॥४३ ॥

अर्थ—और जैसे गढोंमें कुत्सित लतायें रहती हैं ऐसे चिरकालतक मैंने आपत्तियोंको धारण किया अपने नियत काल फल भोगना चाहिये ऐसा नियत कालही जिनकी क्षेत्रोंको विभाग करनेवाली मर्यादा है ऐसे नरककी उद्दण्ड भूमियोंमें ॥ ४० ॥ अज्ञानकी वृष्टिही जिनके फलोंके वर्द्धकथे ऐसे पापोंकी मुष्टि (मुट्ठी) मैंने वोया औविन्ध्याचलकी कन्दरामें स्थित मैंने जालोंको निर्दयता पूर्वक ॥ ४१ ॥ मृगोंके ऊपर ऐसी गर्जनाकी जैसे कल्पान्तमें प्राणियोंके ऊपर यम और मोरोंके कण्ठके झोंपडोंमें विश्राम करनेवाला शिर था जिसका ऐसा मैंने ॥ ४२ ॥ नष्ट विवेक होके ऐसे शयन किया जैसे शेषके अंगोंपर विष्णुऽभगवान और चंचल है चरण जिसमें ग्राह्यपक्षमें समीपके पर्वत आकाश पक्षियोंके ऐसे शब्दोंसे पक्षमें व्याघ्र आदि शब्दोंसे उत्साह युक्त धूम्र वर्ण रूप है जिसका ॥ ३४ ॥

ममतन्वासनीहारविंध्यकच्छगुहायितम् ॥ कृष्णदेहेनयौकाढ्यकंथास्कंधेमयाचिरम् ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मेसोढाचलद्भूतावराहेणयथोर्वरा ॥ बहुशोदंवनोत्थाग्निर्निर्दग्धप्राणिमंडलः ॥ ४५ ॥ कल्पाग्निभुक्तजगतःकालस्यानुगतिंगतः ॥ लोभिलिंगोयथारोगमनर्थानिबद्धग्रहः ॥ प्रसूतास्तत्रमेदारादुःखान्यथसुखान्यपि ॥ ४६॥ नृपालपुत्रकेनैकतनयेनतदामया ॥ नीतानीरंध्रदोषेणषष्टिःकल्पसमास्समाः॥४७॥ आकुष्टमुद्धुरतरंरुदितंविपत्सुभुक्तंकदन्नमुषितंहतपक्कणेषु ॥ कालांतरंबहुमयोपहतेनतत्रदुर्वासनानिगडबंधगतेनसभ्याः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुऽवादे उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्यानआपद्वर्णनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अर्थ—ऐसी मेरी शरीर विन्ध्यपर्वतकी गुहाके सदृश आचरण करतीथी और जुओंसे पूर्ण कन्या (कथरी) कृष्ण (काली) देहसे मैंने चिरकाल तक ग्रीष्म ऋतुमे ऐसे धारण करताथा ॥ ४४ ॥ जैसे वराह भगवान चलायमान प्राणियोंके साथ सर्व सस्य पूर्ण पृथिवीको और प्रलयकी अग्निसे जगत्भक्षी कालका अनुगामी मैंने वनमें प्रकटी भूत अग्निसे प्राणियोंके मण्डलोंको भस्मकर दिया और मैथुनका व्यसनी जैसे अनेक रोग उत्पन्न करता है तथा दुराग्रही अनर्थोंको ऐसेही मेरी स्त्रीने दुःख तथा सुख भय सन्तती उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ छिद्र तथा दोष रहित राजाके मुख्य पुत्र मैंने उस समय ६० बर्ष ६० कल्पके समान इस प्रकार बिताया ॥ ४७ ॥ हे सभ्यगण जो काल आपलोगोंने अनुभव किया है इसकी अपेक्षा अन्यकालमें उस शवरालय दुर्वासनाकी वेडीमें बंधेहुये मैंने क्रोध दूसरोंको गाली भी दिया विपत्तिमें रोदन भी किया कदन्न (कुत्सित अन्न) खाया और नष्ट शवरोंके स्थानमें निवास किया ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्रजालोपाख्याने राजापद् वर्णनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

---

(१) भालू अपने श्वासोंसे सर्पोंको उनके बिलसे खींचके खा जाती है ।

अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

इस १०८के सर्गमें चांडालके स्थानमें चिरकाल तक निवास करते हुये राजाको अनावृष्टि हुई और उससे उत्पन्न दुर्भिक्षके कारण देशकी दुर्दशाकावर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ अथगच्छतिकालेत्रजराजर्जरितायुषि ॥ तुषारपूर्णशष्पौघसमश्मश्रुभृतेमयि ॥१॥ कर्मवातापनुन्नेषुसरसेष्वरसेष्वपि ॥ पतत्सुवासरौघेषुशीर्णपर्णगणेष्विव ॥ २॥ आजाविवशरौघेषुसुखदुःखेष्वनारतम् ॥ कलहेष्वप्यकार्येषुचागच्छत्सुपतत्सुच ॥ ३ ॥ विकल्पकल्पनावर्तवर्त्तिनिर्द्विजगेजडे ॥ समुद्रइवकल्लोलभरेभ्रमितचेतसि ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले-इसके पश्चात् काल बीतने और वृद्धाऽवस्थासे मेरी अवस्थाके जर्जरित होनेपर और तुषारसे पूर्ण तृणसमूहके सदृश श्मश्रु (दाढ़ीमूछ) से मेरे आच्छादित होनेपर ॥ १ ॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित सुख और दुःखमय दिनोंके समुहोंके इस प्रकार गिरनेपर जैसे प्राचीन पत्तोंके समूह ॥ २ ॥ और युद्ध में जैसे बाणोंके समूह गिरते हैं ऐसेही सुख और दुःखोंके निरन्तर आनेपर तथा कलह अकार्य्य कार्य्योंके आने तथा गिरने पर ॥ ३ ॥ विकल्पोंकी कल्पनारूपी आवर्तमें स्थित पक्षीके तुल्य निरालम्बनमें चलनेहारे जड़ और तरंगोंसे पूर्ण समुद्रके तुल्य भ्रान्त चित्तयुक्त ॥ ४ ॥

चलच्चिंताचितंचक्रमारूढेभ्रांतआत्मनि ॥ प्रोह्यमानेतृणइवसावर्तकालसागरे ॥५॥ विंध्योर्वीवनकीटस्यग्रासैकशरणस्यमे ॥ द्विबाहोर्गर्दभस्यात्रक्षीणइत्थंसमागणे ॥ ६ ॥ विस्मृतेममभूपत्वेशवस्येवमहाजवे ॥ चांडालत्वेस्थिरीभूतेपक्षच्छिन्नइवाचले ॥ ७ ॥ संसारमिवकल्पांतोदावाग्निरिवकाननम् ॥ सागरोर्मिस्तटमिवशुष्कवृक्षमिवाशनिः ॥ ८ ॥

अर्थ—चलायमान चिन्तासे पूर्ण चक्रपरआरूढ भ्रांत आत्मा, और आवर्तके साथ तृण के तुल्य कालसागर में बहाहुये इस जीवको स्थित होनेपर ॥ ५ ॥ विन्ध्याचलकी पृथ्वी और बनके कीडेके समान, तथा भोजन मात्रका अवलम्बी, और दो बाहुधारी गर्द्दभके समान वर्तमान मुझे इसी प्रकार वर्षोंके समूह बीतगये ॥ ६ ॥ मृतक के महा वेगके तुल्य मेरे नृपत्व (राजापन) के भूल जानेपर और छिन्न पक्ष पर्वतके तुल्य चाण्डालत्व स्थिर होनेपर ॥ ७ ॥ संसारमें प्रलयके सदृश वनमें दावाग्निके समान समुद्रकी तरंग तटके ऊपर शुष्क (सूखे वृक्षपर बज्रके सदृश ॥८॥

अकांडेमरणोड्डीनंचंडचंडालमंडलम् ॥ निरन्नतृणपत्रांबुविंध्यकच्छंतदाययौ ॥ ९ ॥ नवर्षतिघनव्राते दृष्टनष्टेकचित्स्थिते ॥ पूतांगारकणोन्मिश्रगतौवहतिमारुते ॥ १० ॥ शीर्णमर्मरपर्णासदावाग्निवलितासुच ॥ वनस्थलीषुशून्यासुचिरप्रव्रजितास्विव ॥ ११ ॥ आकांडमभवद्भीममुद्दामदवपावकम् ॥ शोषिताशेषगहनंभस्मशेषतृणोपलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और कुसमयमें मरणसे परलोकके गमनके समान दुर्भिक्ष(काल) प्रचण्ड चण्डालोंका समूहथा जिसमें ऐसे, तथा अन्न तृण और जलसे, शून्य, विन्ध्याचलकी प्रांत भूमी पर उस समय आके प्राप्त हुवा ॥ ९ ॥ उस समय मेघके समूहके न वर्षनेपर अभी एक पदार्थ दृष्ट हुआ और पुनः नष्ट हुआ यह दशा कहीं २ स्थित होने और शुद्ध अंगारके कणोंसे मिश्रित (मिलेहुये) वायुके वहने पर ॥ १० ॥ प्राचीन शुष्क मर्मर पत्र युक्त दावाग्नि से आच्छादित और शून्य वनस्थलियोंके चिरकालकी प्रव्रजिताओं (पीत जटादिसे सन्यासनियोंके तुल्य होनेपर ॥११॥ अकाण्ड अर्थात् अनष शरमें प्रकट दुर्भिक्ष होगया, जो कि भयंकर अति प्रबल वनाग्नि सहित, सब गहन (जल सहित) स्थानोंको शोषण करनेवाला तृण और पाषाण जिसमें भस्मके तुल्य ॥ १२ ॥

पांसुधूसरसर्वांगंक्षुधिताशेषमानवम् ॥ निरन्नतृणपानीयंदेशाद्युद्दावमंडलम् ॥ १३ ॥ क्वचन्मरुमरीच्यंबुमज्जन्महिषमंडलम् ॥ वातोत्थसीकरव्यूहापरिवाहवनांबरम् ॥ १४ ॥ पानीयशब्दमात्रैकश्रवणोत्कनरव्रजम् ॥ आतपाततिसंशोषसीदत्सकलमानवम् ॥ १५ ॥ पत्रग्रसनसंरब्धक्षुधितोत्थितजीवितम् ॥ स्वांगचर्वणसंरंभलुठद्दशनमंडलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—धूलियोंसे मलिन होगये सबके अंग जिसमें ऐसा, सम्पूर्ण मनुष्य जिसमें क्षुधित हो रहे हैं, अन्न तृण तथा पानीय(पीनेके योग्य जलादि)से रहित और उत्तम जंगलके तुल्य जनपद अर्थात् देश होगयाहै जिसमें ऐसा॥१३॥ और मृग तृष्णानदीका जल जिसमें शोभायमान है और उसमें महिषों (भैसों) का समूह डूब (मर) रहा है और बनका अकाश वायुमें स्थित जलके कणोंको भी जिसमें यदि धारण कर सकता था ॥ १४ ॥ और जल (अर्थात् जल

है वा वर्षेगा) इस शब्द मात्रके श्रवण मात्रको उत्कण्ठित मनुष्य समूह जिसमें था तथा धर्मके अति विस्तारसे सम्पूर्ण पदार्थोंके सूखने दुःखीहैं सम्पूर्ण प्राणीगण जिसमें ॥ १५ ॥ पत्रोंके निगलनेके उद्योगसे क्षुधित प्राणियोंके जीवन जहांपर निकल गयेहै और अपनेही अंगोंके चर्वणके अभिलाषसे दंत समूह एक दुसरेको जिसमें काट रहे हैं ॥ १६ ॥

मांसशंकानिगीर्णोग्रखदिराग्निकणोत्करम् ॥ मंडकासारसंग्रस्तवनपाषाणखंडकम् ॥ १७ ॥ अन्योन्यभूतसंसक्तमातृपुत्रपितृव्रजम् ॥ गृध्रोदररटत्सारनिगीर्णवरसारिकम् ॥ १८ ॥ परस्परांगविच्छेदरक्तसिक्तधरातलम् ॥ हरिग्रसनसंरब्धमत्तक्षुधितवारणम् ॥ १९ ॥ दरीनिगरणैकैकासिंहभ्रमणभीषणम् ॥ अन्योन्यग्रसनोद्युक्तलोकमल्लकृतंवहत् ॥ २० ॥

अर्थ—और मांसकी आशंका निगल लिये हैं उग्र खदिर और अग्निके कणके समूह जहांपर, तथा स्नेह रहित पिशानके भ्रमसे साररहित बनके पाषाणखण्डभी जिसमें भक्षण करलिये गयेहैं ॥ १७ ॥ और माता तथा पुत्र आदिके समूह जहां परस्पर जीवोंपर लपट गयेहैं, तथा गृध्रके उदरके समान रटते हुये प्राणियोंसे जहां समग्र (खड़ी) श्रेष्ठ सारिका (पक्षिणी) निगल लीगई है ॥ १८ ॥ और परस्पर एक दूसरेके काटनेसे रक्तोंसे पृथिवी तल जहांपर सींच गया है, तथा सिंहोंको ग्रासकरनेका उद्योग जहांपर मत्त और क्षुधित हस्तिगण जहांपर कररहैं ॥ १९ ॥ और कन्दराओंमें अपनेही निगलनेकी आशंकासे एक २ सिंहके भ्रमणसे भयंकर, और परस्परके मारनेके अर्थ उद्युक्त लोगोंसे किये मल्लयुद्धको धारण करनेवाला ॥ २० ॥

निष्पत्रपादपोड्डीनप्रौढांगारमयानिलम् ॥ रक्तपानोत्कमार्जारलीढधातुतटावनि ॥ २१ ॥ ज्वालाघनघटाटोपसावर्त्तसवनानिलम् ॥ सर्वस्थलरसद्वन्हिपुंजपिंजरजंगलम् ॥ २२ ॥ दग्धाजगरकुंजोत्थधूममांसलगुल्मकम् ॥ मारुतावलितज्वालासंध्याभ्रवलितांबरम् ॥ २३ ॥ उद्दामरवमुद्भ्रांतभस्मनास्तंभमंडलम् ॥ साक्रंदनरदाराग्रदीनार्भककृतारवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा पत्ररहित वृक्षोंपर प्रबल अंगारमय वायु जहां बह रहाहै और रक्तपानके अर्थ उद्युक्त विलार गैरिक (गेरू) धातुमय तटको चाट रहा है ऐसी पृथिवी जहांपरहै ॥ २१ ॥ और सघन ज्वालाकी घटाके आटोपसे आवर्त (बवण्डर) सहित जहां बनका वायु हो रहाहै और सबस्थानोंमें प्रचंड शब्द करते हुये अग्नि पुंजसे पिंजरमय जंगल जहां होरहेहैं ॥ २२ ॥ और जहां जले हुये अजगरोंसे निकले हुये धूमसे लता गुच्छपुष्ट होरहेहैं और वायुसे आवेष्ठित (घिरीहुई) अग्नि ज्वालासे मानो सन्ध्याकालके मेघसे आकाश जहां आच्छादित हो रहा है ॥ २३ ॥ और प्रबल शब्दसहित भ्रमण करते हुये भस्मसे जहां छत्रमण्डल दंड शून्य होगये हैं और रोदन सहित स्त्री पुरुषोंके आगे दीन बालक जहां आर्तनादकर रहेहैं ॥ २४ ॥

संभ्रांतपुरुषव्यूहदंतकृत्तमहाशवम् ॥ मांसगंधजवग्रस्तरक्तारक्तनिजांगुलि ॥ २५ ॥ नीलपत्रलताशंकापीतधूमघनच्छवि ॥ भ्रमद्गृध्रनिगीर्णोग्रनभोभ्रांतोल्मुकामिषम् ॥ २६ ॥ इतरेतरभिन्नांगलोकविद्रवणाकुलम् ॥ ज्वलिताग्निटणत्कारविदीर्णहृदयोदरम् ॥ २७ ॥ गर्त्तमारुतझांकारभीमदावाग्निवल्गनम् ॥ भीताजगरफूत्कारपतदंगारपादपम् ॥ २८ ॥

अर्थ—भ्रमण करते हुये स्त्री पुरुषोंके समूहके दांतोंसे जहांपर बड़े २ मृतक जीव काटडाले गयेहैं और मांसके लेशमात्रकी ग्रसनेकी शीघ्रतासे निगली हुई अपनीही अंगुली चारों ओर जहांपर रक्तवर्ण होरही है ॥ २५ ॥ और पानीके पत्रोंकी आशंकासे धूम तथा मेघकी छबिको जहांपर लोग पीनेको उद्यत होरहेहैं तथा भ्रमण करते हुये गृध्रोंने आकाशमें टूटती हुलूक रूपी मांसको जहांपर निगललिया है ॥ २६ ॥ परस्पर छिन्नभिन्न अंग संसारके पलायनसे व्याकुल तथा जलती हुई अग्निके टंकार शब्दसे मनुष्योंके हृदय और उदर जहांपर विदीर्ण होगयेहैं ॥ २७ ॥ और प्रवेश करते हुये वायुके झंकार शब्दके सदृश भयंकर दावाग्नि जहां भडकरहीहै तथा भयभीत अजगरोंके फुफकारसे गिरते हुये अंगार सहित वृक्ष जहांपरहैं ॥ २८ ॥

सदकांडस्फुटद्देशंप्राप्यतच्छुष्ककोटरम् ॥ द्वादशार्काग्निदग्धस्यजगतोनुकृतिंययौ ॥ २९ ॥ ज्वलदनलजटालवृक्षखंडप्रसरमरुत्प्रसरावनुन्नलोकः ॥ ज्वलनतपनभास्करात्मजानांरमणगृहानुकृतिंजगामदेशः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये सूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इंद्रजालोपाख्याने अकांडवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

अर्थ—और शुष्क होगये हैं कीटर जिसमें ऐसे पूर्वोक्त आकाण्डके दुर्भिक्ष सहित देशमें प्राप्त होकर पूर्वकालमें रमणीय भी पदार्थ प्रलयकालमें १२ द्वादश सूर्य्यको अग्निसे निदग्ध जलाये हुये जगत्के सदृश होगया ॥ २९ ॥ और

हे सभ्य लोग जलती हुई अग्निसे जटा संयुक्त वृक्षोंके खण्डोंमें चलते हुये वायुके प्रसारसे पीड़ित लोक जहां पर है ऐसा वह बिन्ध्यके प्रान्तका देश अग्नि सूर्य्य और शनैश्चरके रमण स्थानकी तुल्यताको प्राप्त होगया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने अकाण्डदुर्भिक्षवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः १०९ ॥

इस १०९ के सर्गमें स्त्री सहित राजाका निकलना और वहां चाण्डालीसे उत्पन्न हुये पुत्रकी आपत्ति देखकर चितामें प्रवेश करनेकी इच्छा करना और उस समय प्रतिबुद्ध (सचेत) होनेसे सभासदोंके साथ संवाद करना वर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ तस्मिंस्तदावर्तमानेकष्टेविधिविपर्यये ॥ अकालोल्बणकल्पांतेनितांततापदायिनि ॥१॥ जनाःकेचननिष्क्रम्यसकलत्रसुहृज्जनाः ॥ गतादेशांतरंव्योम्नःशरदीवपयोधराः ॥ २ ॥ देहावयवसंक्षीनपुत्रदाराव्ग्यबंधवः ॥ शीर्णाःकेचनतत्रैवच्छिन्नाइववनेद्रुमाः ॥३॥ भुक्ताःकेचनचव्याघ्रैर्निर्गतास्स्वस्वमंदिरात् ॥ अजातपक्षकाःश्येनैःखगानीडोद्गताइव ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले—उस समय दैवके प्रतिकूल होनेपर अकाल भयंकर कल्पान्तके सदृश अत्यन्त ताप दायक उस आपत्तिके वर्तमान होनेपर ॥ १ ॥ कोई तो अपने कुटुम्ब और इष्ट मित्रके साथ निकलकर ऐसे देशान्तरको चलेगये जैसे शरद् ऋतुमें आकाशसे मेघ ॥२ ॥ पुत्र स्त्री और प्रिय बन्धु लोग देहके अवयवके समान त्याग करनेके असमर्थथे, और कोई तो वहांही ऐसे नष्ट होगये थे जैसे कटे हुये वृक्ष ॥ ३ ॥ और कितने तो अपने स्थानसे निकलके व्याघ्रादि हिंसक जीवोंसे ऐसे भक्षण करालिये गये थे जैसे जिनके पक्ष नहीं उत्पन्न हुये ऐसे पक्षी अपने खुंथोंसे निकले परबाजोंसे ॥ ४ ॥

प्रविष्टाःकेचिदनलंज्वलितंशलभाइव ॥ केचिच्छ्वभ्रेषुपतिताःशिलाःशैलच्युताइव ॥ ५ ॥ अहंतुतान्परित्यज्यश्वशुरादींस्वकंक्षतम् ॥ कलत्रमात्रमादायकृच्छ्राद्देशाद्विनिर्गतः ॥ ६ ॥ अनलानानिलांश्चैवभक्षकांस्तक्षकानपि ॥ वंचयित्वाभयान्मृत्योःसदारोहंविनिर्गतः ॥ ७ ॥ प्राप्यतद्देशपर्यंतंतत्रतालतरोस्तले ॥ अवरोप्यसुतान्स्कंधान्नानानर्थानिवोल्बणान् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोई तो जैसे पांखी दीपकमें गिरती हैं ऐसेही अग्निमें प्रवेश करगये और कितने पर्वत गिरी शिलाओंके तुल्य गढ़ोंमें गिरपडे ॥ ५ ॥ और मैं तो अपने श्वशुर आदिको वहां त्यागकर अपने साथ जाने योग्य कुटुम्ब मात्रको लेके उसक्लेशदायक देशसे निकला ॥ ६ ॥ अग्नि, वायु भक्षक व्याघ्र अदि तथा सर्पोंकी भी बचाकर मृत्युके भयसे कुटुम्ब सहित मैं बाहर निकला ॥ ७ ॥ भयंकर अनर्थोंके समान अपने पुत्रोंको कन्धेपर चढ़ाके उसदेशके प्रान्त (अन्तके समीप) प्राप्तहीके वहां एकताल वृक्षके नीचे ॥ ८ ॥

विश्रान्तोस्मिचिरंश्रान्तोरौरवादिवनिर्गतः ॥ दीर्घदावनिदाघार्तोग्रीष्मेपद्मइवाजलः ॥ ९ ॥ अथचाण्डालकन्यायांविश्रान्तायान्तरोस्तले ॥ सुप्तायांशीतलच्छायेद्वौसमालिंग्यदारकौ ॥ १० ॥ पृच्छकोनामतनयोममैकःपुरतःस्थितः ॥ अत्यन्तवल्लभोस्माकंकनीयान्मौग्ध्यवानिति ॥ ११ ॥ समामुवाचदीनात्माबाष्पपूर्णविलोचनः ॥ तातदेह्याशुमेमांसंपानंचरुधिरंक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थ—चिरकाल तक ऐसे विश्राम किया जैसे रौरव नरकसे निकला वा दीर्घ दावाग्निसे पीडित उष्णकालमें जलरहित सुखती हुई कमलिनी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर शीतल छायायुक्त उसवृक्षके नीचे चाण्डालकी कन्याके दो लडकीको विश्राम करके सो जाने पर ॥ १० ॥ पृच्छक नाम एक मेरा पुत्र जो सबसे छोटा और अति बालक होनेसे हमलोगोंके अति प्रियथा वह अश्रुसे पूर्णनेत्र दीनचित्त मेरेसे बोला कि हे प्रिय पिता ! मुझे भक्षणको मांस और पीनेको रक्त शीघ्र क्षणभरमें दीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

पुनःपुनर्वदन्नेवंसबालस्तनयोमम ॥ प्राणांतिकींदशांप्राप्तःसाक्रंदोहिपुनःक्षुधा ॥ १३ ॥ तस्योक्तंतुमयापुत्रमांसंनास्तीतिभूरिशः ॥ तथापिमांसंदेहीतिवदत्येवसदुर्मतिः ॥ १४ ॥ अथवात्सल्यमूढेनमयाद्यःखार्तिभारिणा ॥ तस्योक्तंपुत्रमन्मांसंपक्वंसंभुज्यतामिति ॥ १५ ॥ तदप्यंगीकृतंतेनदेहीतिवदतापुनः ॥ मन्मांसभक्षणंक्षीणवृत्तिनाश्लेषवृत्तिना ॥ १६ ॥

अर्थ—वह मेरा पुत्र बालक पुनः २ ऐसाही कहता हुआ प्राणान्तिक दशाको प्राप्त हुआ और पुनः क्षुधासे रोदन करने लगा ॥ १३ ॥ उसको कई वार मैंने कहा कि हे पुत्र ! मांस नहीं है तथापि वह दुर्बुद्धि यही कहता कि मांस दो ॥ १४ ॥ इसके पीछे पुत्रके मोहसे मूढ और दुःखके भारसे ग्रस्त मैंने उससे कहा कि हे पुत्र ! तुम पके हुये मेरे मांसको भोजन करो ॥ १५ ॥ भोजन न पानेसे अतिक्षुधित और मुझसे लपटे हुये मांस दो ऐसा कहते हुये उस बाल कने मेरे मांसका भक्षणभी अंगीकार किया ॥ १६ ॥

सर्वदुःखापनोदायस्नेहकारुण्यमोहिना ॥ तस्यतामार्तिमालोक्यमयादुःखातिभारिणा ॥ १७ ॥ सोढुंतामापदंतीव्रामशक्तेनहतात्मना ॥ मरणायातिमित्रायकृतोंतर्निश्चयोमया ॥ १८ ॥ तत्रकाष्ठानिसंचित्य चितांरचितवानहम् ॥ चिताचटचटास्फोटैःस्थितामदभिकांक्षिणी ॥ १९ ॥ तस्यान्तुयावदात्मानं चितायांनिक्षिपाम्यहम् ॥ चलितोस्मिजवात्तावदस्मात्सिंहासनान्नृपः ॥ २० ॥

अर्थ—स्नेह तथा करुणासे मोहित, दुःखके बोझसे पीडित उस बालककी बहुत पीडा देखकर उस तीव्र आपत्तिके सहनेको असमर्थ मैंने सब दुखोंको दूर करनेके लिये अति मित्र मरणकाही निश्चय किया ॥१७ ॥ १८ ॥ वहां पर इधर उधरसे लकडी बीनकर मैंने चिता बनाई, और वह चिता चटचटा शब्दोंके साथ मेरे प्राणकी अभिलाषिणी स्थित हुई ॥ १९ ॥ जबतक अपनी शरीरको उस चितामें फेकूं और इस सिंहासनसे बेगसे राजा (यथार्थमें) चला ॥ २० ॥

ततस्तूर्यनिनादेनजयशब्देनबोधितः ॥ इतिशाम्बरिकेणायंमोहउत्पादितोमम ॥ २१॥ अज्ञानेनेवजीवस्यदशाशतसमन्वितः ॥ इत्युक्तवतिराजेंद्रेलवणेभूरितेजसि ॥ २२ ॥ अंतर्द्धानंजगामाशुतत्रशाम्बरिकःक्षणात् ॥ अथेदमूचुस्तेसभ्याविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ २३ ॥ नायंशाम्बरिकोदेवयस्यनास्तिधनैषणा ॥ दैवीकाचनमायेयंसंसारस्थितिबोधिनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर तुरूही और जयके शब्दसे बोधित हुआ हे सभ्यगण! इस प्रकार इस साम्बरिक(बाजीगढ़) ने मुझे ऐसा मोह उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ जैसे सैकडों दशासे युक्त जीवको अज्ञान, अति तेजस्वी राजाओंकेइन्द्र के समान राजा लवणके इतना कहने पर ॥२२॥ वह शाम्बरिक (बाजीगढ़) शीघ्र क्षणमेंही अन्तर्द्धान (लोप) होगया, इसके अनन्तर विस्मयसे विकसित नेत्रवाले उन सभासदोंने राजासे यह कहा ॥ २३ ॥ कि हे देव (राजन्) जिसको धनकी इच्छा नहीं यह शाम्बरिक नहीं है किन्तु संसारकी स्थितिका बोध कराने वाली यह कोई दैवी माया है ॥२४॥

मनोविलासःसंसारइतियस्याम्प्रतीयते ॥ सर्वशक्तेरनंतस्यविलासोहिमनोजगत् ॥ २५ ॥ सर्वशक्तेर्विचित्राहिशक्तयःशतशोविंभोः ॥ यद्विवेकिमनोप्येषविमोहयतिमायया ॥ २६ ॥ विज्ञातलोकवृत्तान्तःकनामायंमहीपतिः ॥ कसामान्यमनोवृत्तियोग्योविपुलसंभ्रमः ॥ २७ ॥ नचशांबरिकेच्छेयंमायामनसिमोहिनी ॥ अर्थस्यसिद्धेचेहंतेनित्यंशांबरिकाःकिल ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस मायासे यह भान होताहै कि यह संसार मनका विलास है, क्योंकि सर्वशक्तिमान् विष्णुभगवान्का मनही यह जगत् है ॥ २५ ॥ सर्व शक्तिमान् परमात्माकी सैकड़ों विचित्र शक्तियां है क्योंकि यह अपनी मायासे विवेकियोंके मनको भी मोह लेता है ॥ २६ ॥ कहां तो लोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका जाननेवाला राजा ! और कहां साधारण मनुष्योंके मनकी वृत्तिके योग्य यह अनेक भ्रम ॥ २७ ॥ और शाम्बरिक (बाजीगढ़) लोगोंके चित्तमें ऐसा मोहनेकी इच्छा नहीं होसकती क्योंकि वेतो चित्त प्रसन्न करके नित्य धनकी सिद्धिकी चेष्टा करते हैं न कि ऐसेही भ्रान्तिसे ॥ २८ ॥

यत्नेनप्रार्थयंतेर्थंनांतर्धानंत्रजंतिभो ॥ इतिसंदेहवेलायांसंस्थिताछुलितावयम् ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सभायामवसंतस्यामहंरामतदाकिल ॥ तेनप्रत्यक्षतोदृष्टंमयैतन्नान्यतःश्रुतम् ॥ ३० ॥ इतिबहुकलनाविवर्द्धितांगंजयतिचिरंविततंमनोमहात्मन् ॥ शममुपगमितेपरस्वभावेपरमसुपैष्यासि पावनंपदंयत् ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने चंडालत्वव्यपगमो नाम नवाधिकशततमःसर्गः ॥ १०९ ॥

अर्थ—हे प्रभो वेतो बडी सावधानीसे धनके लिये प्रार्थना करते हैं न कि अन्तर्द्धान (लोप दशा) को प्राप्त होते हैं इनदोनों कारणोंसे हम लोग संदेह समुद्रके निर्णय रूपीतटपर स्थित हैं ॥२९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी !

पूर्वकालमें उस राजाकी सभामें मैं स्वयं स्थित था, इसलिये यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखाहै न कि दूसरोंसे सुना ॥३०॥ हे ब्रह्मात्मन् रामजी ! इस प्रकार अनेक प्रकारकी रचनाओंसे बर्द्धि शरीर, और फल पल्लव शाखादि वृक्षके तुल्य फैला हुआ यह मन सबसे उत्कृष्ट है और जो ज्ञान तथा विचार योगसे मन निर्वासनतारूपी शान्तिको प्राप्त होके साक्षात्परस्वभाव होनेपर भेदकल्परूपके बाधा होनेपर परमपावन पूर्ण आत्म पदको प्राप्त होओगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने चाण्डालत्व व्यपगमो नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तर शततमः सर्गः ॥ ११० ॥

मनकी विभूतियोंके वर्णन द्वारा मनके शान्त करनेका उपाय ब्रह्माके पुत्र श्रीवसिष्ठजी वर्णन करनेको यहां आरम्भ करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमात्कारणादादौचिच्चेत्यपदपातिनी ॥ कलनापदमासाद्यकलाकालिलतांगता ॥ १ ॥ असत्स्वेवविमोहेषुरामैवंप्रायवृत्तिषु ॥ घनेषुतुच्छतामेत्यचिरायपरिमूर्च्छति ॥ २ ॥ असदेवमनोवृत्तिर्म्लानाविस्तारयत्यलम् ॥ दुःखंदोषसहस्रेणवेतालानिवबालिका ॥ ३ ॥ सदेवहिमहादुःखमसत्तांनयतिक्षणात् ॥ निष्कलंकामनोवृत्तिरंधकारमिवार्करुक् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! चित्त सहित परमकारण जो अज्ञानहै उसी निमित्तसे विषयकी ओर यह चित्त अभिमुख हुई है, और उसी अर्थ यथा यह है ऐसे नामको प्राप्तहोके पदार्थोंके नानाप्रकारकी कला (विचित्रता) से कलुषता (मलिनता) को प्राप्तहुई ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार स्थितिवाले असत् मोहोंके क्रमसे घनीभूत होनेपर यह चित् (चेतन) अपने पूर्णरूपको विस्मरण करके तुच्छ मनोभावको प्राप्त होके अनादि कालसे जन्म मरणादि भूमोंसे मोहित होती है इस प्रकार तुच्छ मनोवृत्ति रूपसे स्थित वासनारूप सहस्रों दोषोंसे दूषित चित् असत् दुःखको इस प्रकार विस्तार करती है जैसे बालिका वेतालोंको ॥२॥ ३॥ वासनाके क्षय होनेसे निष्कलंक मनोवृत्ति सतचेतन रूपता प्राप्त होके क्षणमेंही महादुःखोंको ऐसी नष्टकर देती है जैसे सूर्य्यकी किरण अन्धकारको ॥ ४ ॥

नयत्यभ्याशतांदूरंदूरमभ्याशतांनयेत् ॥ मनोवल्गतिभूतेषुबालोबालखगेष्विव ॥ ५ ॥ अभयंभयमज्ञस्यचेतसोवासनावतः ॥ दूरतोमुग्धपांथस्यस्थाणुर्यातिपिशाचताम् ॥ ६ ॥ शत्रुत्वंशंकतेमित्रेकलंकमलिनंमनः ॥ मदाविष्टमतिर्जंतुर्भ्रमत्पश्यतिभूतलम् ॥ ७ ॥ पर्याकुलेहिमनसिशशिनोजायतेशनिः ॥ अमृतंविषभावेनभुक्तंयातिविषक्रियाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—दूरकी समीप और समीपको दूर करतीहै हे रामजी ! यह मन प्राणियोंमें ऐसे गर्जताहै जैसे बालक छोटे छोटे पक्षियोंके बीचमें ॥ ५ ॥ वासना सहित चित्तको अभयमें भय होता है जैसे अज्ञानी बटोहीका दूरसे स्थाण्ड (ठूंठ) पिशाच होजाता है ॥ ६ ॥ वासना कलंकसे दूषित (मलिन) यह मन मित्रमें शत्रुकी आशंका करता है जैसे मादक पदार्थसे जिसकी बुद्धि भ्रष्ट है वह संसारको घूमते हुये देखता है ॥ ७ ॥ मनके व्याकुल होनेपर चन्द्रमासे भी वज्रप्रहार होताहै और विषकी भावनासे अमृतका भोजन विषका कार्य्य करताहै ॥ ८ ॥

सुरपत्तननिर्माणमसत्सदिवपश्यति ॥ वासनावलितंचेतःस्वप्नवज्जाग्रदेवहि ॥९ ॥ मोहैककारणंजंतोर्मनसोवासनोल्बणा ॥ उत्खातव्याप्रयत्नेनमूलोच्छेदेनसैवच ॥ १० ॥ वासनावागुराकृष्टोमनोहरिणकोनृणाम् ॥ परांविवशतामेतिसंसारवनगुल्मके ॥ ११ ॥ येनच्छिन्नाविचारेणजीवस्यज्ञेयवासना ॥ निरभ्रस्येवसूर्यस्यतस्यालोकोविराजते ॥ १२ ॥

अर्थ—वासनासे आच्छादित चित्त असत् स्वप्नके गन्धर्व नगरादिकी रचनाको देखता है और जाग्रत स्वप्नके तुल्यहीहै ॥ ९ हे रामजी ! प्रवर्तप्रबल वासनाही प्राणीके मोहका मुख्य कारणहै इस लिये मूलका उच्छेद करके उसे उखाड़देना चाहिये ॥ १० ॥ संसाररूपी वनकी लता कुंजोंमें मनुष्योंका मनरूपीहरिण वासनारूपी जालसे खिंचा अति बिवशताको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ जिस जीवकी पदार्थोंकी वासना विचारसे छिन्न होगई है उसका ज्ञानरूपी प्रकाश मेघरहित सूर्य्यके प्रकाशके समान शोभित होताहै ॥ १२ ॥

अतस्त्वंमनएवेदंनरंविद्धिनदेहकम् ॥ जडोदेहोमनश्चात्रनजडंनाजडंविदुः ॥ १३ ॥ यत्कृतंमनसाताततत्कृतंविद्धिराघव ॥ यत्त्यक्तंमनसातावत्तत्त्यक्तंविद्धिचानघ ॥ १४ ॥ मनोमात्रंजगत्कृत्स्नंमनःपर्यंत

मण्डलम् ॥ मनव्योममनोभूमिर्मनोवायुर्मनोमहान् ॥ १५ ॥ मनोयदिपदार्थेतुतद्भावेननयोजयेत् ॥ ततःसूर्यादयोप्येतेनप्रकाशाःकदाचन ॥ १६ ॥

अर्थ—इस लिये हे रामजी ! तुम मनकोही मनुष्य समझो न कि तुच्छदेहको, देह तो जड़ है और इसमें जो मन है वह न जड़ न चेतन किन्तु जडचेतन से विलक्षण है ॥ १३ ॥ हे पापरहितरामजी ! जो कार्य्य मनसे किया गया उसीका तुम कियाहुआ समझो और जिसको मनने त्यागा उसीको त्यागा हुआ समझो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् मनहीहै, भूमण्डल मनही है आकाश मनही है पृथिवी मनही है और वायु मनहीहै तथा महान् मनही है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! मन यदि पदार्थोंमें उन २ (प्रकाशादि) रूपसे कल्पना न करे तो सूर्यादि कदाचित् भी प्रकाशरूपसे न भान हों, क्योंकि उल्लुक आदिको दिनमें नहीं दीखता ॥ १६ ॥

मनोमोहमुपादत्तेयस्यासौमूढउच्यते ॥ शरीरेमोहमापन्नेनशवोमूढउच्यते ॥ १७ ॥ मनःपश्यभवत्य क्षिशृण्वच्छ्रवणतांगतम् ॥ त्वग्भावंस्पर्शनादेतिघ्राणतामेतिजिघ्रणात् ॥ १८ ॥ रसनाद्रसतामेति विचित्रास्तत्रवृत्तिषु ॥ नाटकेनटवद्देहेमनएवानुवर्तते ॥ १९ ॥ लघुदीर्घकरोत्येवसत्येऽसत्तांप्रयच्छति ॥ कटुतांनयतिस्वादुरिपुंनयतिमित्रताम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिसका मन मोहको ग्रहण करताहै वही मूढ कहाता है, और शरीर जब मोह (अज्ञ) दशाको प्राप्त होताहै तो मृतक शरीरको कोई मूढ नहीं कहता ॥ १७ ॥ देखो देखता हुआ यह मन नेत्र, सुनता हुआ श्रवण, स्पर्शसे त्वक्, और सूंघने से घ्राण (नासिका) इन्द्रिय हो जाताहै ॥ १८ ॥ स्वाद लेनेसे रसना (जिह्वा) इन्द्रियको प्राप्त होता है क्यों कि उन २ वृत्तियोंमें मनकी शक्ति विचित्र है जैसे नाटकमें नट अनेक रूप धारण करता है ऐसेही देहमें मन सब इन्द्रियादिके रूपसे वर्तता है ॥ १९ ॥ यह मन लघुको दीर्घ, और सत्यको असत्य करताहै. कटुको मधुर और शत्रुको मित्र करदेता है ॥ २० ॥

यएवप्रतिभासोस्यचेतसोवृत्तिवर्तिनः ॥ ततस्तदेवप्रत्यक्षंतथात्रानुभवादिह ॥ २१ ॥ प्रतिभासवशा देवस्वप्राकुलितचेतसः ॥ हरिश्चंद्रस्यसंपन्नारात्रिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २२ ॥ चित्तानुभाववशतोमुहूर्त त्वेगतंयुगम् ॥ इंद्रद्युम्नस्यवैरिंच्यपुराभ्यंतरवर्तिनः ॥ २३ ॥ मनोज्ञयामनोवृत्त्यासुखतांयातिरौरव म् ॥ प्रातःप्राप्तव्यराज्यस्यसुबद्धस्येवबंधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वृत्तियोंमें वर्तमान चित्तका जैसा प्रतिभास होता है, उस प्रतिभाससे वैसाही प्रत्यक्ष होताहै और अनुभवसे भी वैसाही होता है ॥ २१ ॥ प्रतिभास (स्फुरण) हीके कारणसे स्वप्नमें व्याकुल चित्त राजा हरिश्चन्द्रको एक रात्रि द्वादश वर्षकी होगई ॥ २२ ॥ चित्तकेही प्रभावसे इन्द्रद्युम्न (दूसरा नाम रेवत) राजाको जो कि ब्रह्माके पुरके मध्यवर्ती थे उनको एक मुहूर्तमें युग बीतगया ॥ २३ ॥ परमात्माके स्मरणसे प्रिय मनकी वृत्तिसे रौरव नरकका भी दुःख सुख होजाता है जैसे प्रातःकालमें अवश्य राज्य मिलनेवालेको दृढ बन्धन भी सुखदायी होता है ॥ २४ ॥

जितेमनसिसर्वैवविजिताचेंद्रियावलिः ॥ शीर्यतेचयथातंतौदग्धेमौक्तिकमालिका ॥ २५ ॥ सर्वत्र स्थितयास्वच्छरूपयानिर्विकारया ॥ समयासूक्ष्मयानित्यंचिच्छत्त्यासाक्षिभूतया ॥ २६ ॥ सर्व भावानुगतयानचेत्यार्थविभिन्नया ॥ रामात्मसत्तयामूकमविदेहसमंजडम् ॥ २७ ॥ मनोंतश्चल तिव्यर्थमननैषणमुह्यया ॥ बहिर्गिरिसरिव्द्योमसमुद्रपुरलीलया ॥ २८ ॥

अर्थ—मनके जीतनेसे सम्पूर्ण इंद्रियोंकी पंक्ती ऐसे जीतली जाती है जैसे सूतके दग्ध होनेसे मोतियोंकी माला तितिर बितिर होजाती है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! अन्य पदार्थोंकी विपरीत कल्पना करनेका सामर्थ्य मनमेंहै इसको क्या वक्तव्य है किन्तु सर्वत्र समभावसे स्थित, स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म नित्य साक्षिरूप, सब पदार्थोमें अनुगत और विषयसे अभिन्न चिन्मात्र आत्म सत्ता वागादि इन्द्रियोंकी क्रियासे शून्य होनेसे मूकके तुल्य भी ब्रह्मको देहके साथ अभेद कल्पनासे देहके समान और जड बनाके यह मन अन्तःकरणमें तो इच्छा संकल्पादि रूप भ्रान्तिसे और बाहर पर्वत नदी आकाश और समुद्र तथा नगरादिकी शान्ति रूप लीलासे व्यर्थ भ्रमाताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

जाग्रचाभिमतंवस्तुनयत्यमृतमृष्टताम् ॥ अनीहितंचविषतांनयत्यमृतमप्यलम् ॥ २९ ॥ अमृष्टसर्वभावा नामलमात्मचमत्कृतिम् ॥ मनःस्वाभिमताकाररूपंसृजतिवस्तुषु ॥ ३० ॥ स्पंदेषुवायुतामेतिप्रकाशेषु प्रकाशताम् ॥ द्रवेषुद्रवतामेतिचिच्छक्तिस्फुरितंमनः ॥ ३१ ॥ पृथ्व्यांकठिनतामेतिशून्यतांशून्यदृष्टि षु ॥ सर्वत्रेच्छास्थितियातिचिच्छक्तिस्फुरितंमनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! विवेकसे जागता हुआ भी मन अस्वादु (स्वादरहित) और उच्छिष्ट स्त्रीके अधर आदि जो उसको इष्ट है उसे रागादिके कारणसे अमृतके तुल्य बनाता है और अमृतके तुल्य अनिष्ट वस्तुको विषके समान कर देता है ॥ २९ ॥ जिस मनने पूर्ण आत्मस्वरूपका साक्षात्कार नहीं किया वही अपने अभिमत आत्माके चमत्कार भूतरूप वस्तुओंमे रचता है न कि तत्वज्ञानियोका ॥ ३० ॥ चेतन शक्तिसे स्फुरणको प्राप्त यह मन गतिशील पदार्थोंमें वायु, प्रकाशशीलोमें प्रकाशता, द्रवीभूतों (जलादिकों) में द्रवताको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ और पृथिवीमें कठिनता, तथा नास्ति (नहींहै) इत्यादि रूपसे गृह्यमाण पदार्थों अर्थात् आकाशादिमें शून्यताको प्राप्त होताहै और चित्-शक्ति से स्फुरित यह मन सर्वत्र अपनी इच्छासे स्थितिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

शुक्लंकृष्णीकरोत्येवकृष्णंनयतिशुक्लताम् ॥ विनैवदेशकालाभ्यांशक्तिपश्यास्यचेतसः ॥ ३३ ॥ मनस्यन्यत्रसंसक्तेचर्वितस्यापिजिह्वया ॥ भोजनस्यापिमृष्टस्यनस्वादोस्यानुभूयते ॥ ३४ ॥ यच्चिद्दृष्टंतद्दृष्टंनदृष्टंतदलोकितम् ॥ अंधकारेयथारूपमिंद्रियंनिर्मितंतथा ॥ ३५ ॥ इंद्रियेणमनोदेहिमनसेंद्रियमुन्मनः ॥ इंद्रियाणिप्रसूतानिमनसोनेंद्रियान्मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस चित्तकी शक्तिको देखो ! देशकालके गुणके बिनाही अपनी भावना मात्रसे शुक्ल पदार्थको कृष्ण, और कृष्ण (काले) पदार्थको शुक्लकर देताहै ॥ ३३ ॥ मनके अन्य स्थानोंमें लगजानेसे जिव्हासे मिष्ट भोजनके चर्वित (भक्षण) करनेपर भी इसको स्वादका अनुभव नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! जो चित्तने देखा वही तो देखा गया और जो पदार्थ चित्तसे नहीं देखा गया सन्मुख स्थित भी मानो नहीं देखा गया अन्धकारमें नीलता वा छायासे विचित्ररूप जैसे रचलेताहै ऐसेही नेत्र आदि इन्द्रियांभी यह अपने आत्माही में रचलेताहै ॥ ३५ ॥ यद्यपि इन्द्रियोंसे दृष्ट (अनुभूत) पदार्थोंके आकार धारण करनेसे इन्द्रियोंकेही निमित्तसे मनसाकार है, और इन्द्रियांभी मनके आधीन पदार्थोंके ग्रहण करनेसे मनसेही साकार हैं यह समताहै तथापि मन इन्द्रियोंसे उत्कृष्टहै, क्योंकि इन्द्रियां मनके उत्पन्न हुईहैं न कि मन इन्द्रियोंसे ॥ ३६ ॥

अत्यंतभिन्नयोरैक्यंयेषांचित्तशरीरयोः ॥ ज्ञातज्ञेयामहात्मानोमनस्यास्तेसुपंडिताः ॥ ३७ ॥ कुसुमोल्लासिधम्मिल्लाहेलावलितलोचना ॥ काष्ठकुड्योपमांगेषुलग्नाप्यमनसोंगना ॥ ३८ ॥ मनस्यन्यत्रसंसक्तेवीतरागेणकानने ॥ क्रव्यादचर्वितोंकस्थःस्वकरोपिनलक्षितः ॥ ३९ ॥ सुखीकर्तुंदुःखानिदुःखीकर्तुंसुखानिच ॥ सुखेनैवाशुयुज्यंतेमनसोतिशयामुनेः ॥ ४० ॥

अर्थ—अत्यन्त भिन्न रूपसे भान होनेवाले जो यह चित्त और शरीर हैं इन दोनोंकी एकता जिनके आत्मामें है अर्थात् मूढ़ोंके समान जो मनको आत्माकी कोटिमें जो नहीं समझसे किन्तु शरीरके साथ इसको जो जड़ रूपसे देखते हैं वे ज्ञातज्ञेय (जानने योग्य) आत्म वस्तुको जानने हारे पण्डित महात्मा नमस्कार करने योग्य हैं ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! जो मनसे रहित अर्थात् वासनाके नष्ट होनेसे मनको जीतनेवाला जो महात्माहैं उसके शरीरमें, पुष्पोंसे शोभायमान केशवाली, और क्रीड़ा पूर्वक नेत्रके कटाक्षोंको चलाने वाली अंगना (उत्तम स्त्री) संलग्न होनेपर भी काष्ठ तथा-भित्तिके तुल्य कुछ विकार नहीं उत्पन्न कर सकती ॥ ३८ ॥ वीत राग नाम मुनिने बनमें मनके अन्यस्थान (आत्मध्यान) में संलग्न होनेपर अपने अंगमें स्थित हस्तको क्रव्याद (हिंसक) जीवके भक्षण करने पर भी कुछ नहीं जाना ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! अति दुःखोंको सुखी करनेके लिये और सुखों दुःखी करनेके लिये भी मुनिके मनके अभ्यासकी दृढतासे जो भावनाके अतिशय हैं वे विना परिश्रमकेही समर्थ होते हैं ॥ ४० ॥

मनस्यन्यत्रसंसक्तेकथ्यमानापियत्नतः ॥ लतापरशुकृत्तेवकथाविच्छिद्यतेबत ॥ ४१ ॥ मनस्यद्रितटारूढेगृहस्थेनापिजंतुना ॥ शुभ्राभ्रकंदरभ्रांतिदुःखंसमनुभूयते ॥ ४२ ॥ मनस्युल्लसितेस्वप्नेहृद्येवपुरपर्वताः ॥ आकाशइवविस्तीर्णेदृश्यंतेनिर्मिताःक्षमाः ॥ ४३ ॥ मनोविलुलितेस्वप्नेहृद्येवाद्रिपुरावलिम् ॥ तनोतिचलितांभोधिर्वीचीचयमिवात्मनि ॥ ४४ ॥

अर्थ—देखो के खेदकी बात है कि मनके और स्थानमें लगजानेसे अति यत्नसे कही हुई भी कथा ऐसे छिन्न (कट) जाती है जैसे कुठारसे काटी हुई लता ॥ ४१ ॥ गृहमें स्थित भी प्राणी यदि मन पर्वतके ऊपर लग जायतो स्वच्छ मेघ तथा कन्दरा आदिको भ्रान्तिके दुःखको स्वप्नमें अवश्य अनुभव करता है ॥ ४२ ॥ मनका उल्लास जब स्वप्नमें होताहै तब अपने २ कार्य्यमें समर्थ रचे हुये नगर पर्वतादि ऐसे देख पड़ते हैं जैसे विशाल आकाशमें ॥ ४३ ॥ स्वप्नाऽवस्थामें अपने स्वरूपसे आत्माके क्षोभित होनेपर यह मन हृदयमेंही पर्वत नगर आदिकी पंक्तियोंका ऐसे विस्तार करता है जैसे संचलित समुद्र अपनेही आत्मामे तरंगोंके समूहोंको ॥ ४४ ॥

अंतरब्धिजलाद्यद्वत्तरंगापीडवीचयः ॥ देहांतर्मनसस्तद्वत्स्वप्नाद्रिपुरराजयः ॥ ४५ ॥ अंकुरस्ययथाप त्रलतापुष्पफलश्रियः ॥ मनसोस्यतथाजाग्रत्स्वप्नविभ्रमभूमयः ॥ ४६ ॥ व्यतिरिक्तायथाहेम्नोनहेमव नितातथा ॥ जाग्रत्स्वप्नक्रियालक्ष्मीर्व्यतिरिक्तानचेतसः ॥ ४७ ॥ धाराकणोर्मिफेनश्रीर्यथासंलक्ष्यतेंभ सः ॥ तथाविचित्रविभवानानातेयंहिचेतसः ॥ ४८ ॥

अर्थ—समुद्रके जलके भीतर जैसे तरंगोंकी माला लहर आदि निकलती हैं ऐसेही देहके भीतर मनसेही स्वप्रा- दि अवस्थामें पर्वत नगर आदिकी श्रेणी निकलती हैं ॥ ४५ ॥ जैसे पत्र पुष्पलता और फलादिका शोभा अंकुरसेही है ऐसे जाग्रत् तथा स्वप्नादि भूमि (उत्पत्ति) इसी मनसे है ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्णसे बनी हुई स्त्री सुवर्णसे पृथक् नहीं है ऐसेही जाग्रत् और स्वप्नक्रियाकी शोभा चित्तसे भिन्न नहीं है ॥ ४७ ॥ जैसे धारा, कण, तरंग और फेनकी शोभा जलसेही देख पडती है ऐसेही यह विचित्रविभववाली नानाप्रकारकी विचित्रता इसी चित्तकी है ॥ ४८ ॥

स्वचित्तवृत्तिरेवेदजाग्रत्स्वप्नदृशोदितम् ॥ रसावेशाद्गुणादत्तेशैलूषइवभूमिकाम् ॥ ४९ ॥ चंडालत्वंहि लवणेप्रतिभासवशाद्यथा ॥ तथेदंजगदाभोगिमनोमननमात्रकम् ॥ ५० ॥ यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तेनतत् नाशुभूयते ॥ मनोमननर्निर्माणंयथेच्छसितथाकुरु ॥ ५१ ॥ नानापुरसरिच्छैलरूपतामेत्यदेहिनाम् ॥ तनोत्यंतःस्थमेवेदंजाग्रत्स्वप्नमयंमनः ॥ ५२ ॥

अर्थ—अपनेही चित्तकी वृत्ती जाग्रत् और स्वप्नकी दृष्टीसे (रूपसे) इस प्रकार आविर्भाव धारण करती है जैसे शृंगार आदि रसके आवेशसे पोषाककी विचित्रता धारण करताहै ॥४९॥ हे रामजी ! प्रति भासके कारण जैसे ल- वणराजामें चाण्डालत्व हुआ ऐसेही यह जगत्का विस्तार मनका स्फुरण मात्रहै ॥ ५० ॥ स्फुरणमात्र है रूप जिसका ऐसा यह मन जिस २ रूपसे भावना करता है उसी २ रूपसे शीघ्र होजाताहै. अब जैसी तुमारी इच्छा हो वैसा करों ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! यह मन प्राणियोंके अंतरमें स्थित नानाप्रकारके नगर नदी तथा पर्वतादिरूपको प्राप्त होकर जाग्रत् और स्वप्नमय इस जगत्का विस्तार करता है ॥ ५२ ॥

सुरत्वादैत्यतामेत्यनागत्वान्नगतामपि ॥ प्रतिभासवशाच्चित्तमापन्नंलवणोयथा ॥ ५३ ॥ नरत्वादेतिना रीत्वंपित्रत्वात्पुत्रतांगतः ॥ यथाक्षिप्रंप्रतिनरःस्वसंकल्पात्तथामनः ॥ ५४ ॥ संकल्पतःप्रम्रियतेसंक ल्पाज्जायतेपुनः ॥ मनश्चिरंतनाभ्यस्ताज्जीवतामेत्यनाकृति ॥ ५५ ॥ मनोमननसंमूढमूढवासनमात तम् ॥ संकल्पाद्योनिमायातिसुखदुःखेभयाभये ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रतिभासके कारण यह चित्त जैसे लवणराजासे चाण्डालत्वको प्राप्तहुआ ऐसेही देवतासे दैत्यताको हस्तीसे वा सर्पसे वृक्षताको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ जैसे मनुष्य स्त्रीसे पुरुषभावको और पितासे पुत्रत्वदशाको प्राप्त होताहै ऐसेही अपने संकल्पसेही मनभी इष्टरूप होजाताहै ॥ ५४ ॥ यह मन संकल्पसेही मरताहै और संकल्पसे ही पुनः उत्पन्न होताहै. और अपने चिरकालके अभ्याससे आकारशून्य होनेपरभी जीवाकार होजाताहै ॥५५ ॥ और यह सम्यक् मोहमयी वासनासहित सर्वत्र व्याप्त है. संकल्पसेही यह जन्मस्थानको प्राप्त होताहै, और उसीसे सुख दुःख तथा भय और अभयकोभी प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

सुखंदुःखंचमनसितिलेतैलमिवस्थितम् ॥ तद्देशकालवशतोघनंवातनुवाभवेत् ॥ ५७ ॥ तैलंतिलस्य चाक्रांत्यास्फुटतामेतिशाश्वतीम् ॥ चेतसोमननासंगाद्घनीभूतेसुखासुखे ॥५८॥ देशकालाभिधानेन रामसंकल्पएवहि ॥ कथ्यतेतद्वशाद्यस्माद्देशकालौस्थितिंगतौ ॥ ५९ ॥ प्रशाम्यत्युल्लसत्येतियातिनंद तिवल्गति ॥ मनःशरीरसंकल्पेफलितेनशरीरकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे तिलमें तैल स्थित है ऐसे ही सुख दुःख मनमें स्थितहै. चाहे वह उस देशकालके अनुसार घन हो वाँ सूक्ष्म हो ॥ ५७ ॥ जैसे तिलके पीडनेसे तैल अपनी नित्य स्फुटतादशाको प्राप्त होताहै ऐसेही चित्तके भीतरही घनी- भूत सुखदुःख मनकी स्फुरणसे प्रकट होतेहैं ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! देशकालके नामसे चित्तका संकल्पही कहा जाता है. क्यों कि उसीके वशसे देश और काल स्थितिको प्राप्तहुयेहैं ॥५९॥ मनरूपी शरीरके संकल्पसेही यह स्थूल शरीर शान्त होता है, शोभित होताहै, मनुष्यको स्थानान्तरमें लेजाता है, और प्रसन्न होता है; तथा गर्जताहै॥६०॥

नानास्फारसमुल्लासैःस्वसंकल्पोपकल्पितैः ॥ मनोवल्गतिदेहेस्मिन्साध्वीवांतःपुराजिरे ॥ ६१ ॥ चा पलेप्रसरस्तस्माद्दंतयेननदीयते ॥ मनोविलयमादत्तेतस्यालानइवद्विपः ॥६२॥ नस्पंदतेमनोयस्यशश्व स्तंभइवोत्तमः ॥ सद्वस्तुतोसौपुरुषःशिष्टाःकर्दमकीटकाः ॥ ६३ ॥ यस्याचपलतांयातंमनएकत्रसंस्थि तम् ॥ अनुत्तमपदेनासौध्यानेनानुगतोनघ ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपने संकल्पोंसे कल्पित नानाप्रकारके विशाल उत्साहोंसे यह मन इस शरीरमें ऐसा गर्जताहै जैसे अंन्तःपुरके अंगणमें साध्वी (सती) स्त्री ॥६१॥ इसलिये हे रामजी ! जो प्राणी अपने अन्तःकरणमें विषके अनुसन्धान (खोजने) रूपी चपलताको जो मनको अवसर नहीं देते उनका मन ऐसे लयको प्राप्त होताहै जैसे अपने बन्धनमें हस्ती ॥६२॥ जैसे स्तम्भनास्त्रसे शत्रु चेष्टा नहीं करता, इसी प्रकार विचारसे स्तम्भित जिसका उत्तम मन विषयकी ओर चेष्टा नहीं करताहै वही यथार्थमें उत्तमपुरुष हैं. शेष (बाकी) कर्दम (कीचड) के कीट हैं ॥६३॥ हे रामजी ! एकाग्र स्थित जिसका मन स्थिरताको प्राप्त होगयाहै वह प्राणी ध्यानसे सबसे उत्तम ब्रह्मपदमें प्राप्त होचुका ॥६४॥

संयमान्मनसःशांतिमेतिसंसारविभ्रमः ॥ मंदरेऽस्पंदतांयातेयथाक्षीरमहार्णवः ॥६५॥ मानस्योवृत्तयो यायाभोगसंकल्पविभ्रमैः ॥ संसारविषवृक्षस्यताएवांकुरयोनयः ॥ ६६ ॥ चित्तंचलत्कुवलयंवलयंतएते मूढामहाजडजवेमदमोहमंदाः ॥ आवर्तवर्तिनिविलूनविशीर्णचिंताचक्रभ्रमेपुरुषदुर्भ्रमगाःपतंति ॥६७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे
चित्तवर्णनंनामदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११० ॥

अर्थ—जैसे मन्दराचलके स्थिर होनेपर क्षीरसागर शान्त होगयाथा ऐसेही मनके संयमसे संसारका भ्रम शान्त होताहै ॥ ६५ ॥ भोग (विषय) के संकल्पके विभ्रमोंसे जो जो मनकी वृत्तियां हैं वेही संसाररूपी विषवृक्षकी अंकुर योनि (उत्पत्तिस्थान)हैं ॥६६॥ हे रामजी ! कामक्रोधादि मदके मोहसे मन्द ये पुरुषरूपी दुष्टभ्रमर संसाररूपी कुत्सितनदीके प्रवाहमें चंचल चित्तरूपी कमलको आच्छादन करके भ्रमणकरते हुये महाजड़तारूप जलके आवर्तरूप वेगमें प्रबल अन्य अनेक चिन्ताओंकी निष्फलतासे छिन्न, और देहके साथ नष्ट चिन्तारूपी चक्रभ्रमके सदृश आवर्त (भंवरेह) में निरन्तर गिरतेहैं ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे
भाषानुवादे चित्तवर्णनं नोम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

इस १११ के सर्गमें यत्नसे अभिमत (इष्ट) वस्तुका तथा अहंता और ममताका त्याग, चित्तके जीतनेका उपाय और चित्तकी एकाग्रताकाभी वर्णन कियागयाहै ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ अस्यचित्तमहाव्याधेश्चिकित्सायामहौषधम् ॥ स्वायत्तंशृणुवक्ष्यामिसाधुसुस्वादुनिश्चितम् ॥ १ ॥ स्वेनैवपौरुषेणाशुस्वसंवेदनरूपिणा ॥ यत्नेनचित्तवेतालस्त्यक्त्वेष्टंवस्तुजीयते ॥ २ ॥ त्यजन्नभिमतंवस्तुयस्तिष्ठतिनिरामयः ॥ जितमेवमनस्तेनकुदंतइवदंतिना ॥ ३ ॥ स्वसंवेदनयत्नेनपाल्यतेचित्तबालकः ॥ अवस्तुतोवस्तुनिचयोज्यतेबोध्यतेपिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस चित्तरूपी महाव्याधिके निवारणार्थ अपने आधीन अवश्य पुरुषार्थ साधक, स्वादयुक्त और परीक्षित जो महौषध है उसको सुनिये मैं आपसे कहूँगा ॥ १ ॥ अपने आत्माका साक्षात्कार रूप जो पौरुषहै उससे यत्नसे अभिलाषित वस्तुको त्यागकर चित्तरूपी वेताल शीघ्र जीतलिया जाताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष राग द्वेषादि चित्तके रोगोंसे इष्टवस्तुको त्यागताहुआ स्थित रहता है उसने मनको ऐसे जीतलिया जैसे दन्तवाले हस्तिसे दन्तरहित हस्ती ॥ ३ ॥ आत्मसाक्षात्काररूप यत्नसे चित्तरूपी बालककी इष्टस्थानोंमें जैसी रक्षा होतीहै और अवस्तु जो संसारी पदार्थ हैं उनसे हटाके आत्मरूपवस्तुमें लगाया जाताहै और ज्ञानयुक्तभी किया जाता है ॥ ४ ॥

शास्त्रसत्संगधीरेणचिंतातप्तमतापिना ॥ छिंधित्वमायासेनायोमनसेवमनोमुने ॥ ५ ॥ अयत्नेनयथा बालइतश्चेतश्चयोज्यते ॥ भावस्तथैवचेतोंतःकिमिवात्रास्तिदुष्करम् ॥ ६ ॥ सत्कर्मणिसमाक्रांतमुदकोंदयदायिनि ॥ स्वपौरुषेणैवमनश्चेतनेननियोजयेत् ॥ ७ ॥ स्वायत्तमेकांतहितंस्वेप्सितत्यागवेदनम् ॥ यस्यदुष्करतांयातंधिक्तंपुरुषकीटकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मननशील रामजी ! चिन्तारूपी अग्निमें सन्तप्त मनरूपी लोहेको चिन्ताके संतापसे रहित शान्त शास्त्र तथा सत्संगसे धीर (ठंढे) मनरूपी लोहसेही तुम छेदन करो ॥ ५ ॥ जैसे लालना और ताडनादि उपायोंसे बालक

इधरसे उधर विना परिश्रम लगायाजाता है ऐसेही चित्तभी एकस्थानसे दूसरे स्थानमें लगसकता है. इसमें दुष्कर बात कौनसी है ॥ ६ ॥ भविष्यत्कालमें उत्तमफलदायक समाधिरूप सत्कर्ममें लगे हुये मनको चिदात्माके साथ एक करना चाहिये ॥ ७ ॥ अपने आधीन सर्वथा हित जो अभिलषित बाह्यविषयोंमें वैराग्य वृत्ति है वह जिसको दुष्कर है उस पुरुषरूपी कीट (कीडे) को धिक्कार है ॥ ८ ॥

अरम्यंरम्यरूपेणभावयित्वास्वसंविदा ॥ मल्लेनेवशिशुश्चित्तमयत्नेनैवजीयते ॥ ९ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेन चित्तमाश्वेवजीयते ॥ अचित्तेनाप्रयत्नेनपदंब्रह्मणिदीयते ॥ १० ॥ स्वायत्तंचसुसाध्यंचस्वचित्ता क्रान्तिमात्रकम् ॥ शक्नुवन्तिनयेकर्तुंधिक्तान्पुरुषजंबुकान् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषैकसाध्येनस्वेप्सिततया गरूविणा ॥ मनःप्रशममात्रेणविनानास्तिशुभागतिः ॥ १२ ॥

अर्थ—अरमणीय जो विषयसमूह है उसको स्वात्माके साक्षात्कारसे परम रम्य ब्रह्मरूपसे भावना करके विना परिश्रम चित्तको ऐसे जीत लो जैसे मल्लसे बालक ॥ ९ ॥ आत्मसाक्षात्काररूप पौरुषप्रयत्नसे चित्त शीघ्रही जीत लिया जाता है और चित्तरहित अर्थात् जितचित्त परिश्रमके विनाही ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ अपने आधीन अतिसुगमतासे साध्य जो चित्तके निग्रहमात्र है उसकोभी जो जन नहीं करसकते हैं उन पुरुषशृगालोंको धिक्कार है ॥ ११ ॥ अपने पौरुषमात्रसे साध्य जो अभिलषित बाह्यविषयोंका त्यागरूपी मनका प्रशमनमात्र है उसके विना मोक्षरूप शुभगति दुष्कर है ॥ १२ ॥

मनोमारणमात्रेणसाध्येनस्वात्मसंविदा ॥ निःसपत्नमनाद्यंतमनिंगनामिहोच्यताम् ॥ १३ ॥ ईप्सिता वेदनाख्यात्तुमनःप्रशमनादृते ॥ गुरूपदेशशास्त्रार्थमंत्राद्यायुक्तयस्तृणम् ॥ १४ ॥ सर्वसर्वगतंशांतम्ब्र ह्मसम्पद्यतेतदा ॥ असंकल्पनशस्त्रेणच्छिन्नंचित्तंगतंयदा ॥ १५ ॥ स्वसंवेदनसाध्येस्मिन्संकल्पान र्थशासने ॥ शांतायामत्रवपुषिपुंसःकैवकदर्थना ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मसाक्षात्कारसे साध्य मनके मारणमात्रसे कामादि शत्रुसे वर्जित आदि अन्तरहित जो स्वाराज्य-सुख है उसकी इसी जीवन्मुक्त देहमें प्रतिज्ञा करो अर्थात् सम्पादन करो ॥१३॥ बाह्यविषयोंके अनवभासमान अथवा अभिलषित मोक्षसुखके साधनरूप मनके प्रशमनके विना गुरुका उपदेश शास्त्रोंके अर्थोंके विचार तथा मंत्र आदि युक्तियां तृणके तुल्य हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी ! संकल्पोंके अभावरूपी शस्त्रसे चित्तरूपी वृक्ष जब समूल कटा तब सर्वरूप सर्वव्यापी शान्त ब्रह्मरूप जीवको प्राप्तहोताहै ॥ १५ ॥ आत्मसाक्षात्कारसे साध्य संकल्परूपी अनर्थोंका निग्रह होनेपर शान्ति आदि साधनयुक्त जीवन्मुक्तिके प्राप्त करनेमें इस अधिकारी मनुष्यशरीरमें क्या क्लेश है ॥ १६ ॥

नूनंदैवमनादृत्यमूढसंकल्पकल्पितम् ॥ पुरुषार्थेनसंवित्यानयचित्तमचित्तताम् ॥ १७ ॥ तांमहा पदवीमेतांकामप्यधिगतंचिरम् ॥ चित्तंचिद्भक्षितंकृत्वाचित्तादपिपरोभव ॥ १८ ॥ भवभावनयायु क्तोयुक्तःपरमयाधिया ॥ धारयात्मानमव्यग्रोग्रस्तचित्तंततःपरम् ॥ १९ ॥ परंपौरुषमाश्रित्यनीत्वाचि त्तमचित्तताम् ॥ तांमहापदवींमेहियत्रनाशोनविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी मूढोंके संकल्पसे कल्पित दैवको निश्चयरूपसे निरादर करके आत्मसाक्षात्काररूप पुरुषार्थसे चित्तको अचित्त बनाओ ॥ १७ ॥ वह प्रसिद्ध महापदवी ब्रह्मरूपताको चित्तको चिरकालतक प्राप्तकरके अन्तमे साक्षात्कारवृत्तिसे आविर्भूत चेतनसे मनसहित अविद्याके बाधद्वारा चित्तको चिद्भक्षित करके चित्तसे परे-पूर्णचेतनरूप होजाओ ॥ १८ ॥ ऐसा करनेमें प्रथम चिन्मात्रभावनासे युक्तहो और अनन्तर उसके स्थिरतार्थ अति परम सावधानबुद्धिसे युक्तहोओ, और उसके पश्चात् स्वस्थ होकर चित्तको ग्रसनेवाले चित्तसेभी परे परमात्माको धारण करो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! आत्मसाक्षात्काररूप परम पौरुषका आश्रय करके चित्तको अचित्ततादशाको प्राप्त करके उस प्रसिद्ध ब्रह्मरूप महापदवीको प्राप्त होओ जहांपर नाश कदापि नहीं है ॥ २० ॥

संवेदनविपर्यासरूपिणीधीरिवाचला ॥ जेतुमाशुमनोरामपौरुषेणैवशक्यते ॥ २१ ॥ अनुद्वेगःश्रियो मूलमनुद्वेगात्प्रवर्तते ॥ जंतोर्मनोजयोयेनत्रिलोकीविजयस्तृणम् ॥ २२ ॥ नशस्त्रदलनोत्पातपातायस्यां मनागपि ॥ स्वभावमात्रव्यावृत्तौतस्यांकैवकदर्थना ॥ २३ ॥ अपिस्ववेदनाक्रान्तौनशक्तायेनराधमाः ॥ कथंव्यवहरिष्यन्तिव्यवहारदशासुते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी! जैसे पश्चिमदिशामें पूर्वकी भ्रान्तीरूप दिग्मोहमें स्थिरभी प्राची (पूर्व दिशाकी) बुद्धिके स्थिरतारूप पुरुषके प्रयत्नसे जीत शकतेहैं ऐसेही पौरुषसे मनभी जीतनेके शक्य है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! राज्यादि

लक्ष्मीका मूल अनुद्वेग (घबराहटका न होना) ही है. और अनुद्वेगसेही मनका जयभी होताहै. जिसमनके जीतनेपर त्रिलोकीकाभी जय करना तृण है ॥ २२ ॥ राज्यसुखमें युद्ध करनेमें शस्त्रोंका दलनरूप दुःख, और स्वर्गसुखमें मरके ऊर्ध्वगमनरूप उत्पात् पुनः वहांसे पतनका क्लेश है. परन्तु जिसमें शस्त्रदलन, उत्पात तथा पातादि किंचित्भी नहीं है उस स्वभावमात्रकी व्यावृत्ति (चित्तको विषयोंसे हटाके आत्मामें लगाने) में कौनसा क्लेश है ॥ २३ ॥ अपने मनमात्रके आक्रमणमे (जितने) जो अधम मनुष्य समर्थ नहींहैं वे संसारकी दशामेंभी कैसे व्यवहार करेंगे ? ॥२४॥

पुमान्मृतोस्मिजातोस्मिजीवामीतिकुदृष्टयः ॥ चेतसोवृत्तयोभांतिचपलस्यासदुत्थिताः ॥२५॥ नकश्चनेहम्रियतेजायतेनचकश्चन ॥ स्वयंवेत्तिमृतंस्वस्यलोकमन्यंस्वकंमनः ॥ २६ ॥ इतोयातिपरंलोकंस्फुरत्यन्यतयामनः ॥ तत्तस्यैत्येतदामोक्षमतोमृतिभयंकुतः ॥ २७ ॥ इहलोकेनविचरत्विहलोकेपरत्र च ॥ चित्तमामोक्षमास्तेस्यरूपमन्यन्नविद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—पुरुष हुं, मरगया, उत्पन्न हुआ, जीताहुं, इत्यादि जो कुदृष्टियां हैं वे विषयमें चंचल चित्तकी वृत्तियां असत्यरूपसेंही आविर्भूत होके भान हो रही हैं ॥ २५ ॥ नतो यहां कोई मरता है और न कोई जन्मता है क्योंकि यह मन अपना मरण तथा अपना अन्यलोकभी आपही जानताहै ॥ २६ ॥ यह मन यहांसे परलोक जाताहै और अन्यरूपसे भासता है यह वार्ता जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक मनकी कल्पनासे होती रहती है. इसलिये मरणका भय कहां है ? ॥ २७ ॥ इस लोक और परलोकका रूप धारणकरके परलोकमें विचरे तथापि मोक्षपर्य्यन्त यह सब चित्तहीहै. क्योंकि चित्तके सिवाय इस संसारका और कुछभी रूप नहींहै ॥ २८ ॥

मृतेभ्रातरिभृत्यादौक्लेशआक्रियतेऽनृतः ॥ तत्स्वचित्तंस्वचैतन्यव्यावृत्तात्मेतिमेमतिः ॥ २९ ॥ सतिपथ्येततेशुभ्रेचित्तोपशमनादृते ॥ तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चभूयोभूयोविचारितम् ॥ ३० ॥ यावन्नास्तिकिलोपायश्चित्तोपशमनादृते ॥ ऋतेतथ्येनतेशुभ्रेबोधेहृद्युदितेसति ॥ ३१ ॥ मनोविलयमात्रेणविश्रान्तिरुपजायते ॥ व्यायतेहृदयाकाशेचितिचिच्चक्रधारया ॥ ३२ ॥

अर्थ—भ्राता, पिता, तथा भृत्यादिके मरने पर जो मिथ्या शोक कियाजाता है वह निर्विकार शुद्धचेतनसे पृथक्रूप अपना चित्तही है ॥ २९ ॥ अन्यकी अपेक्षा रहित, सत्तावान्, सर्वहित, मायाकी मलिनतासे शून्य, और सब प्रमाणोंका शिरोभूत श्रुति (वेद) से बोधित परमात्माके स्वरूपमें चित्तके उपशम (लय) के विना मुक्तिका कोई दूसरा उपाय नहीं है. इस वार्ताको स्वर्गलोक तथा पाताललोक तथा द्वीप द्वीपांतरके तत्त्वज्ञानियोंने बार२विचार किया है॥३०॥ यह निश्चित है कि चित्तकी शान्तिपूर्वक केवल चेतनमात्र जबतक शेष (बाकी) न रह जाय तबवक मुक्तिके लिये अन्य कोईभी उपाय नहीं है और सत्य तीनों कालमें अबाध्य, व्यापक अज्ञानकी मलिनतासे व अति बोध (आत्माका साक्षात्कार) हृदयमें होनेपर ॥ ३१ ॥ मनके विलयमात्रसे शान्ति उत्पन्न होती है. अतिविस्तीर्ण हृदयाकाशरूप ब्रह्म चेतनमें अन्तिमवृत्तिसे देदीप्यमान चिद्रूप चक्रकी धारासे ॥ ३२ ॥

मनोमारयनिःशंकंत्वांप्रबध्नंतिनाधयः ॥ यदिरम्यमरम्यत्वेत्वयासंविदितंविदा ॥ ३३ ॥ छिन्नान्येवतदंगानिचित्तस्येतिमतिर्मम ॥ अयंसोहमिदंतन्मएतावन्मात्रकंमनः ॥ ३४ ॥ तदभावनमात्रेणदात्रेणेवविलूयते ॥ छिन्नाभ्रमण्डलंव्योमयथाशरदिधूयते ॥३५॥ वातेनाकल्पनेनैवंतथातद्धूयतेमनः ॥ भवंतियत्रशस्त्राग्निपवनास्तत्रभीर्भवेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तुम मनको मारो तब तुमको मानसी व्यथा कुछ नहीं सतावेंगी, जो स्त्री पुत्र आदि विना विचारे रमणीय भान होते हैं. यदि तुमने उनमें दोषानुसन्धानसे अरमणीयता जानलिया तो ॥ ३३ ॥ चित्तके अंग सब छिन्न होगये यह मेरा सिद्धान्त है. और दृश्यमान सब प्रपंच वह चिंतामातासे उत्पन्न देह अहम् अर्थात् मन बुद्धि आदिका समूह, इदम् अर्थात् देहसम्बन्धी गृहक्षेत्र आदि और पिता आदिका उत्पन्न किया जो मेरा धनादि यह जो भ्रम है यही इतना मनके सब अंग है ॥ ३४ ॥ इनकी भावना न करनेमात्रसे सब ऐसें छिन्न होजाते हैं जैसे शरत्कालमें आकाशका मेघ ॥ ३५ ॥ वायुसे नष्ट होजाता है ऐसेही कल्पना न करनेसे मन सर्वथा धुल जाताहै. और जहां शस्त्र अग्नि आदिके द्वारा नाश करना होताहै (शत्रु आदिका) वहां भयभी होताहै ॥ ३६ ॥

स्वायत्तेमृदुनिस्वच्छेकिमसंकल्पनेभयम् ॥ इदंश्रेयइदंनेतिसिद्धमाबालमक्षतम् ॥ ३७ ॥ बालंपुत्रमिवोदारेमनःश्रेयसियोजयेत् ॥ अक्षयंचानघंचेतःसिंहंसंस्तुतिबृंहणम् ॥ घ्नंतियतेजयंतीहनिर्वाणपददायिनः ॥ ३८ ॥ भीमाःसंभ्रमदायिन्यःसंकल्पकदनादिमाः ॥ विपदःसंप्रसूयंतेमृगतृष्णामराविव ॥ ॥ ३९ ॥ कल्पांतपवनावांतुयांतुचैकत्वमर्णवाः ॥ तपन्तुद्वादशादित्यानास्तिनिर्मनसःक्षतिः ॥ ४० ॥

अर्थ—और स्वाधीन अनायास (विना परिश्रम) साध्य स्वच्छ जो कल्पनाका अभाव है उसमें क्या भय है और यह कल्याणहै यह नहीं इस बातको तो बालक पर्य्यन्त जानते हैं ॥ ३७ ॥ बालकके समान निर्बल मनको उदार कल्याणके मार्गमें युक्त करना योग्य है क्यों कि युवा सिंहके समान मन क्षय करनेके अयोग्य है, जो महात्मा जन ऐसे मनको मारतेहैं वे सबसे उत्तमहैं और अन्यलोगोंकोभी वे मोक्ष देनेमें समर्थहैं ॥ ३८ ॥ संकल्परूपी क्लेश से भंयकर अनेक संभ्रमको देने वाली विपत्ति इसप्रकार उत्पन्न होती है जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां ॥ ३९ ॥ चाहैं कल्पान्तके पवन वहैं, सब समुद्र उमठके एक हो जांय, और बारहों सूर्य तपे, परन्तु मनके मारनेवाले अमनस्क प्राणीकी कुछभी हानि नहिं है ॥ ४० ॥

मनोबीजात्समुद्यंतिसुखदुःखेशुभाशुभे ॥ संसारखण्डकाएतेलोकसप्तकपल्लवाः ॥ ४१ ॥ असंकल्पनमात्रैकसाध्येसकलसिद्धिदे ॥ असंकल्पनसाम्राज्येतिष्ठावष्टब्धतत्पदः ॥ ४२ ॥ प्रयच्छत्युत्तमानंदंक्षीयमाणंमनःक्रमात् ॥ काष्ठक्षीणांगकांगारोयथांगारक्षयार्थिनः ॥ ४३ ॥ अपित्रह्मकुटीलक्षंमनसश्चेत्समीहितम् ॥ तदणोरंतरेव्यक्तंविभक्तंपरिदृश्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनरूपी बीजसेही सुखदुःखरूप शुभ अशुभ और इन सातोंलोकरूपी पल्लवसंयुक्त संसाररूप बनके खण्ड उत्पन्न होतेहैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! केवल असंकल्पसे साध्य संकल्पसिद्धियोंका दाता जो संकल्पकी शून्यतारूप साम्राज्य है उसमें परम आत्मपदरूपी सिंहासनका अवलम्बन करके स्थित होंओ ॥ ४२ ॥ क्रमसें क्षिण होताहुआ यह मन अनिर्वाच्य उत्तम सुखको ऐसे देता है जैसे तापकी शान्तिके सुख चाहनेवाले और अंगोंकी रक्षा चाहनेवाले मनुष्यको क्षीयमाण (भस्मीभूत) काष्ठका अंगार ॥ ४३ ॥ लाखो ब्रह्माण्डरूपी कुटी यदि मनको अभलाषित हों तो वेभी परमाणु चेतनके भीतरही स्पष्ट पृथक् २ देखपडतेहैं ॥ ४४ ॥

संकल्पमात्रविभवेनकृतात्यनर्थंसंकल्पमात्रविभवेनसुसाधितार्थम् ॥ संतोषमात्रविभवेनमनोविजित्यनित्योदितेनजयमेहिनिरीप्सितेन ॥ ४५ ॥ परमपावनयाविमनस्तयासमतयामतयात्मविदामपि ॥ शमितयामितयांतरहंतयायदवशिष्टमजंपदमस्तुतत् ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १११ ॥

अर्थ—संकल्पमात्रकी विभुति अनेक ब्रह्माण्डोंको सिद्ध करनेवाला संकल्पमात्रही जन्म मरण आदिरूप अनेक अनर्थोंका उत्पादक मनको निरन्तर अभ्यस्त नित्य उदित सन्तोषमात्र विभवसे जीत करके सबके ऊपर विजय प्राप्त करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! आत्मवेत्ताओंकेभी संमत परम पावन निर्मनस्क तथा विषमतारहित वृत्ति शान्त जो अपरिमित अहन्ताके भीतर अवशिष्ट (बाकी) जन्मादिविकार शून्य परम पद तुमको प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

चिन्मात्रकी वासनाके अभ्याससे तथा उसकी एकताके दृढ निश्चयसे चित्तके नाशका उपाय और वासनाका त्याग इस ११२ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यस्मिंस्तस्मिन्पदार्थेहियेनतेनयथातथा ॥ तीव्रसंवेगसंपन्नंमनःपश्यतिवांछितम् ॥ १ ॥ जायतेम्रियतेचैषामनसस्तीव्रवेगिता ॥ सौम्यांबुबुद्बुदालीवनिर्निमित्तास्वभावतः ॥ २ ॥ शीततातुहिनस्येवकज्जलस्येवकृष्णता ॥ लोलतामनसोरूपंतीव्रातीव्रैकरूपिणी ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमस्यातिलोलस्यवेगोवेगैककारणम् ॥ चलतामनसोब्रह्मन्बलतोविनिवार्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जिस पदार्थमें जिस अभिलषित निमित्तसे जैसी प्रबलतासे तीव्र वेग संयुक्त मन होताहै उस पदार्थमें उसी निमित्तसे वैसाही अपना वांछित देखता है ॥ १ ॥ हे सौम्य रामजी ! जैसे जलमें बुद्बुदोंकी पंक्ति बिना निमित्त स्वभावसेही उत्पन्न होतीहैं और नष्ट होतीहैं ऐसेही मनकी यह तीव्रवेगिता उत्पन्न होती है और मरतीभी है॥२॥ जैसे तुषार (पाला) का गुण शीतता तथा कज्जलकी कृष्णता है ऐसेही तीव्र और

योगवासिष्ठ प्रारम्भः ।

Translation =
HBL - III. 7413.
by Vihāri Lāla Mitra

See Catalogus Catalogorum p. 478.

1960
56
1904

अर्थ—और स्वाधीन अनायास (विना परिश्रम) साध्य स्वच्छ जो कल्पनाका अभाव है उसमें क्या भय है और यह कल्याणहै यह नहीं इस बातको तो बालक पर्य्यन्त जानते हैं ।। ३७ ।। बालकके समान निर्बल मनको उदार कल्याणके मार्गमें युक्त करना योग्य है क्यों कि युवा सिंहके समान मन क्षय करनेके अयोग्य है, जो महात्मा जन ऐसे मनको मारतेहैं वे सबसे उत्तमहैं और अन्यलोगोंकोभी वे मोक्ष देनेमें समर्थहैं ।। ३८ ।। संकल्परूपी क्लेश से भंयकर अनेक संभ्रमको देने वाली विपत्ति इसप्रकार उत्पन्न होती है जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां ।। ३९ ।। चाहैं कल्पान्तके पवन वहैं, सब समुद्र उमठके एक हो जांय, और बारहों सूर्य तपे, परन्तु मनके मारनेवाले अमनस्क प्राणीकी कुछभी हानि नहिं है ।। ४० ।।

मनोबीजात्समुद्यंतिसुखदुःखेशुभाशुभे ।। संसारखण्डकाएतेलोकसप्तकपल्लवाः ।। ४१ ।। असंकल्पनमात्रैकसाध्येसकलसिद्धिदे ।। असंकल्पनसाम्राज्येतिष्ठावष्टब्धतत्पदः ।। ४२ ।। प्रयच्छत्युत्तमानंदंक्षीयमाणंमनःक्रमात् ।। काष्ठक्षीणांगकांगारोयथांगारक्षयार्थिनः ।। ४३ ।। अपिब्रह्मकुटीलक्षंमनसश्चेत्समीहितम् ।। तदणोरंतरेव्यक्तंविभक्तंपरिदृश्यते ।। ४४ ।।

अर्थ—हे रामजी ! मनरूपी बीजसेही सुखदुःखरूप शुभ अशुभ और इन सातोंलोकरूपी पल्लवसंयुक्त संसाररूप बनके खण्ड उत्पन्न होतेहैं ।। ४१ ।। हे रामजी ! केवल असंकल्पसे साध्य संकल्पसिद्धियोंका दाता जो संकल्पकी शून्यतारूप साम्राज्य है उसमें परम आत्मपदरूपी सिंहासनका अवलम्बन करके स्थित होंओ ।। ४२ ।। क्रमसें क्षिण होताहुआ यह मन अनिर्वाच्य उत्तम सुखको ऐसे देता है जैसे तापकी शान्तिके सुख चाहनेवाले और अंगोंकी रक्षा चाहनेवाले मनुष्यको क्षीयमाण (भस्मीभूत) काष्ठका अंगार ।। ४३ ।। लाखो ब्रह्माण्डरूपी कुटी यदि मनको अभलाषित हों तो वेभी परमाणु चेतनके भीतरही स्पष्ट पृथक् २ देखपडतेहैं ।। ४४ ।।

संकल्पमात्रविभवेनकृतात्यनर्थंसंकल्पमात्रविभवेनसुसाधितार्थम् ।। संतोषमात्रविभवेनमनोविजित्यनित्योदितेनजयमेहिनिरीप्सितेन ।। ४५ ।। परमपावनयाविमनस्तयासमतयामतयात्मविदामपि ।। शमितयामितयांतरहंतयायदवशिष्टमजंपदमस्तुतत् ।। ४६ ।।

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमःसर्गः ।। १११ ।।

अर्थ—संकल्पमात्रकी विभुति अनेक ब्रह्माण्डोंको सिद्ध करनेवाला संकल्पमात्रही जन्म मरण आदिरूप अनेक अनर्थोंका उत्पादक मनको निरन्तर अभ्यस्त नित्य उदित सन्तोषमात्र विभवसे जीत करके सबके ऊपर विजय प्राप्त करो ।। ४५ ।। हे रामजी ! आत्मवेत्ताओंकेभी संमत परम पावन निर्मनस्क तथा विषमतारहित वृत्ति शान्त जो अपरिमित अहन्ताके भीतर अवशिष्ट (बाकी) जन्मादिविकार शून्य परम पद तुमको प्राप्त हो ।। ४६ ।।

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ।। १११ ।।

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ।। ११२ ।।

चिन्मात्रकी वासनाके अभ्याससे तथा उसकी एकताके दृढ निश्चयसे चित्तके नाशका उपाय और वासनाका त्याग इस ११२ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ।।

।। श्रीवसिष्ठउवाच ।। यस्मिंस्तस्मिन्पदार्थेहियेनतेनयथातथा ।। तीव्रसंवेगसंपन्नंमनःपश्यतिवांछितम् ।। १ ।। जायतेम्रियतेचैषामनसस्तीव्रवेगिता ।। सौम्यांबुबुद्बुदालीवनिर्निमित्तास्वभावतः ।। २ ।। शीततातुहिनस्येवकज्जलस्येवकृष्णता ।। लोलतामनसोरूपंतीव्रातीव्रैकरूपिणी ।। ३ ।। श्रीरामउवाच ।। कथमस्यातिलोलस्यवेगोवेगैककारणम् ।। चलतामनसोब्रह्मन्बलतोविनिवार्यते ।। ४ ।।

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिस पदार्थमें जिस अभिलषित निमित्तसे जैसी प्रबलतासे तीव्र वेग संयुक्त मन होताहै उस पदार्थमें उसी निमित्तसे वैसाही अपना वांछित देखता है ।। १ ।। हे सौम्य रामजी ! जैसे जलमें बुद्बुदोंकी पंक्ति बिना निमित्त स्वभावसेही उत्पन्न होतीहैं और नष्ट होतीहैं ऐसेही मनकी यह तीव्रवेगिता उत्पन्न होती है और मरतीभी है।।२।। जैसे तुषार (पाला) का गुण शीतता तथा कज्जलकी कृष्णता है ऐसेही तीव्र और

तीव्रमात्र शरीरधारिणी चंचलता मनका रूप है॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! अति चंचल जो यह मन है उसका वेग जो सम्पूर्ण तीव्रवेगोंका मुख्य कारण है वह बलसेभी कैसे निवारण किया जाय॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नेहचंचलताहीनंमनःक्वचनदृश्यते ॥ चंचलत्वंमनोधर्मोवह्नेर्धर्मोयथोष्णता ॥ ॥५ ॥ यैषाहिचंचलास्पंदशक्तिश्चित्तत्वसंस्थिता ॥ तांविद्धिमानसींशक्तिंजगदाडंबरात्मिकाम् ॥ ६॥ स्पंदास्पंदाहतेवायोर्यथासत्तैवनोह्यते ॥ तथाचचित्तसत्तास्तिचंचलस्पन्दनादृते ॥ ७ ॥ यत्तुचंचलताहीनंतन्मनोमृतमुच्यते ॥ तदेवचतपःशास्त्रसिद्धांतोमोक्षउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इस ब्रह्माण्डमें चंचलतासे शून्य मन कहींभी नहीं देख पडता. चञ्चलता मनका ऐसा धर्म है जैसे अग्निकी उष्णता॥ ५ ॥ जगत्का कारण मायापाशवलित चैतन्यरूप चित्तत्वमें स्थित जो चञ्चल क्रियाशक्ति है उसीको जगत्के आडम्बररूपवाली मानसी शक्ति तुम जानों॥ ६ ॥ जैसे स्पन्द (गतिशीलता) और उसके अभाव शान्तरूपताको छोडके वायुकी कोई सत्ताभी नहीं है इसीप्रकार चंचल स्पन्दनके सिवाय चित्तकी कोई सत्ताही नहीं है॥ ७ ॥ और जो चंचलतासे हीन है वह मन मृतक कहलाता है॥ ८ ॥

मनोविलयमात्रेणदुःखशांतिरवाप्यते ॥ मनोमननमात्रेणदुःखंपरमवाप्यते ॥ ९ ॥ दुःखमुत्पादयत्युच्चैरुत्थितश्चित्तराक्षसः ॥ सुखायानंतभोगायतंप्रयत्नेनपातय ॥ १० ॥ तस्यचंचलतायैषात्वविद्याराम सोच्यते ॥ वासनापदनाम्नींतांविचारेणविनाशय ॥ ११ ॥ अविद्ययावासनयातयांतश्चित्तसत्तया ॥ विलीनयात्यागवशात्परंश्रेयोधिगम्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! मनके विलयमात्रसे दुःखकी शान्ति प्राप्तहोतीहै और मनके स्फुरणमात्रसे परमदुःख प्राप्त होता है॥ ९॥ प्रबलतासे उठा हुआ यह चित्तरूपी राक्षस बडा दुःख उत्पन्न करता है. सुखके लिये और देशकाल तथा वस्तुसे अपरिछिन्न अनन्त मोक्ष भोगनेके लिये उस मनको तुम गिराओ॥ १० ॥ वासनाका पद (स्थान) है नाम जिसका ऐसी जो मनकी चंचलता है उसीको अविद्या कहते हैं. उसका नाश तुम विचारसे करो॥ ११ ॥ अन्तर्गत है चित्तकी सत्ता जिसके ऐसी जो वासनारूप अविद्या है उसकी विलीनता (लय) के द्वारा बाह्यविषयोंके त्यागके बलसे मोक्षरूप जो परम कल्याण है वह प्राप्त होता है॥ १२ ॥

यत्तत्सदसतोर्मध्यंयन्मध्यंचित्त्वजाड्ययोः ॥ तन्मनःप्रोच्यतेरामद्वयोर्दोलायिताकृति ॥ १३ ॥ जाड्यानुसंधानहतंजाड्यात्मकतयेद्धया ॥ चेतोजडत्वमायातिदृढाभ्यासवशेनहि ॥ १४ ॥ विवेकैकानुसंधानाच्चिदंशात्मतयामनः ॥ चिदेकतामुपायातिदृढाभ्यासवशादिह ॥ १५ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनयस्मिन्नेवपदेमनः ॥ पात्यतेतत्पदंप्राप्य भवत्यभ्यासतोहितत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! सत् असत्का मेल और जडता तथा चेतनताका मध्य रूप है उसीको मन कहते हैं. और उसकी स्थिति दोनों (सत् असत् तथा चित् और जड) ओर लटकरही है॥ १३ ॥ देदीप्यमान जडतासे और दृढ अभ्याससे जडताके अनुसन्धानसे दूषित चित्त जडताको प्राप्त होता है॥ १४ ॥ देदीप्यमान् चिद्रूपतासे और विवेकके अनुसन्धानसे तथा चिदंशके दृढ अभ्याससे मन चित्तके साथ एकरूपताको प्राप्त होताहै॥ १५ ॥ स्वाभाविक विवेकवाला शास्त्रीय पौरुषरूप प्रयत्नसे जिस स्थानमें यह चित्त गिराया जाता है उस स्थानको प्राप्तहीके और अभ्यासके बलसे उसीका रूप होजाता है॥ १६ ॥

पुनःपौरुषमाश्रित्यचित्तमाक्रम्यचेतसा॥ विशोकंपदमाश्रित्यनिराशंकःस्थिरोभव ॥ १७ ॥ भवभावनयामग्नंमनसैवनचेन्मनः ॥ बलादुत्तार्यतेरामतदुपायोस्तिनेतरः॥ १८ ॥ मनएवसमर्थंवोमनसोदृढनिग्रहे ॥ अराजकःसमर्थःस्याद्राज्ञोराघवनिग्रहे ॥ १९ ॥ तृष्णाग्राहगृहीतानांसंसारार्णवरंहसि ॥ आवर्त्तैरुह्यमानानांदूरेस्वंमनएवनौः ॥ २० ॥

अर्थ—पुनः पौरुषका आलम्ब करके और चित्तसेही चित्तको आक्रमण (जीत) करके शोकरहित आत्मपदका आश्रय करके शंकारहित तुम स्थिर होजाओ॥१७॥ हे रामजी! तुम मनके नाश करनेकी भावनामें निमग्न होओ. और यदि मनको मनसे बलसे (विषयोंसे) नहीं उतारोगे तो इसके(मनके उतारनेके) सिवाय मोक्षका कोई उपाय नहीं॥ १८ ॥ हे रामजी! तुमारा मनही मन दमन करनेमें समर्थ है, क्योंकि राजासे भिन्न राजाके जीतनेमें कौन समर्थ होसकता है॥ १९ ॥ संसाररूपी समुद्रके वेगमें तृष्णारूपी ग्राहसे गृहीत और विषयरूपी आवर्तोंसे दूर बहाहुये प्राणियोंको यह मनही नौका है॥ २० ॥

मनसैवमनश्छित्त्वापाशंपरमबंधनम् ॥ उन्मोचितोनयेनात्मानासावन्येनमोक्ष्यते ॥ २१ ॥ यायोदेतिमनोनाम्नीवासनावासितांतरा ॥ तांतांपरिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्याक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ भोगौघवासनांत्यक्त्वात्यजत्वंभेदवासनाम् ॥ भावाभावौततस्त्यक्त्वानिर्विकल्पःसुखीभव ॥ २३ ॥ अभावनंभावनायास्त्वेतावान्वासनाक्षयः ॥ एषएवमनोनाशस्त्वविद्यानाशउच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—मनसेही परम बन्धनयुक्त फांसीरूप मनका छेदनकरके जिसने अपने आत्माको तपाय नहीं छुडाया वह आत्मा दूसरेसे नहीं छूटता ॥ २१ ॥ विषयोंसे गुंथी हुई मननामवाली बाह्यपदार्थोंके अनुसन्धानवाली जो २ वासना उदयहों उन २ को विषयके अनुसन्धानसे बुद्धिमान मनुष्य त्याग दे. क्योंकि उष्णताकी शान्तिसे जैसे अग्नि शान्त होजाताहै ऐसेंही वासनाके क्षयसे अविद्याकाभी क्षय होजाताहै ॥ २२ ॥ प्रथम भोगोंके समूहकी वासनाको त्यागो. उसके पश्चात् भेदवासनाको और अनन्तर चित्त और विषयोंकोभी त्यागके विकल्परहित होके सुखी होजाओ ॥ २३ ॥ तत्वसाक्षात्काररूप जो भावना है उससे पूर्णानन्दके आच्छादक अविद्यारूप आवरणको त्यागना इतनाही वासनाका क्षय है. यही मनका नाश अविद्यानाशभी कहलाता है ॥ २४ ॥

यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तत्रासंवेदनंपरम् ॥ असंवित्तिस्तुनिर्वाणंदुःखसंवेदनाद्भवेत् ॥ २५ ॥ स्वेनैवतत्प्रयत्नेनपुंसःसंवेद्यतेक्षणात् ॥ भावस्याभावनंभूत्यैतत्तस्मान्नित्यमाहरेत् ॥ २६ ॥ रागादयोयेमनसीप्सितास्तेबुध्वेहतांस्तांस्त्वमवस्तुभूतान् ॥ त्यक्त्वातदास्यांकुरमस्तबीजंमाहर्षशोकंसमुपैहितृप्तः ॥ २७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मुखरवेणोपदेशांशकथनंनामद्वादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११२ ॥

अर्थ—अथवा साक्षी चित्तकेद्वारा जिस२ पदार्थका अनुभव करताहै वहां२ अनुभवका होनाही मनका सर्वोत्तम नाशहै, और वही पदार्थोंके अनुभवका अभाव निर्वाण (मोक्ष) है. और विषयार्थ पदार्थोंका अनुभवहीसे दुःखरूप है ॥२५॥ और वह वेध पदार्थोंके अनुभवका अभाव पुरुषके निज प्रयत्न लक्षणभरमेंही होताहै इसलिये उस प्रयत्नका अभ्यास नित्यकरे ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जो २ विषय तथा उनके प्राप्त करनेके उपाय तुमारे मनमें स्थित हैं उन सबको मिथ्या जानकर और वे विषय आदि बीजके मुखसे निकलतेहुये अंकुरके समान जिसकेहैं ऐसे अस्तबीज मनकोभी अज्ञानवासना बीजोंके साथ त्यागकर नित्य तृप्त होजा और विषयजनित हर्षशोकको कभी न प्राप्त होओ ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मुखरवेणोपदेशांशकथनंनाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

इस ११३ के सर्गमें सब दुर्वासनाओंका नाशक, विविध विचारोंसे युक्त और द्वैतकी मिथ्यात्वबुद्धिसे दृढ जो तत्वज्ञान है उसका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ एषाहिवासनानित्यमसत्यैवयदुत्थिता ॥ द्विचंद्रभ्रांतिवत्तेनत्यक्तुंराघवयुज्यते ॥ १ ॥ अविद्याविद्यमानेवनष्टप्रज्ञेषुविद्यते ॥ नाम्नैवांगीकृताभावात्सम्यक्प्रज्ञेषुसाकुतः ॥ २ ॥ माभवाज्ञोभवप्राज्ञःसम्यग्रामविचारय ॥ नास्त्येवेंदुर्द्वितीयःखेभ्रांत्यासंलक्ष्यतेमुधा ॥ ३ ॥ नात्रतत्त्वादृते किंचिद्विद्यतेवस्त्ववस्तुच ॥ ऊर्मिमालिनिविस्तीर्णेवारिपूरादृतेयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–रामजी ! दो चन्द्रकी भ्रान्तिके समान यह वासना असत्यही प्रकटहै इसलिये यह त्यागने योग्यहै ॥ १ ॥ असत्भी॰ यह अविद्याविवेकविज्ञानशून्य प्राणियोंकेलिये मानो विद्यमानहैहै, और विवेकियोंकी दृष्टिमें परमार्थरूपसे न होनेके कारण वन्ध्यापुत्रके समान नाममात्रकेलिये अंगीकार कीगईहै, इसलिये वह कहां है ॥ २ ॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानी न होओ किन्तु सम्यक् विचार करो और तत्वज्ञानी बनो, क्योंकि आकाशमें दूसरा चन्द्र नहीं है, वह केवल भ्रान्तिसे प्रतीत होताहै ॥ ३ ॥ इस संसारमें तत्वब्रह्मके सिवाय भाव अभाव कुछभी नहीं है. जैसे तरंगमालायुक्त विशालसमुद्रमें जलके समूहके सिवाय कुछ नहींहै ॥ ४ ॥

स्वविकल्पादृतेनैतान्भावाभावानसन्मयान् ॥ नित्येसितेततेशुद्धेमासमारोपयात्मनि ॥ ५ ॥ नासिकर्ताकिमेताश्चक्रियाश्चममतातव ॥ एकस्मिन्विद्यमानेहिकिंकेनक्रियतेकथम् ॥ ६ ॥ मावाकर्ताभवप्राज्ञकिमकर्तृतयेहिते ॥ साध्यंसाध्यमुपादेयंतस्मात्स्वस्थोभवानघ ॥ ७ ॥ कर्तासंस्त्वमसक्तत्वाद्भावाभावेरघूद्वह ॥ असक्तत्वादकर्तापिकर्तृवत्स्पंदनंकुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! भाव अभावयुक्त जो असन्मय पदार्थ हैं वे अपने संकल्पसे पृथक् कुछ नहीं है. इन पदार्थोंको नित्य मायाके बन्धनसे वर्जित व्यापक और शुद्ध आत्मस्वरूपमें मत आरोपण करो ॥ ५ ॥ तुम कर्ता नहीं हो तब इन क्रियाओंमें तुमारी ममता क्यों ? क्योंकि जब एक अद्वितीयपरमात्माही विद्यमान है तो किससे किसप्रकार क्या किया जासकताहै ॥ ६ ॥ अथवा हे प्राज्ञ रामजी तुम अकर्तृत्वके अभिमानीभी मत होओ, क्योंकि अकर्तृताके अभिमानमें उपादेय (ग्राह्य) और अपने प्रयत्नसे साध्य फल क्याहै अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी अभिमानके न होनेसे तुम कर्ता होनेपरभी सक्त न होनेके कारण तुम अकर्ता हो. और इसीप्रकार अकर्ता होतेहुयेभी उस अकर्तृतामें अभिमान तथा सक्त नहोनेसे कर्ताभी हो, तब निष्क्रिय आत्मदर्शी तुमको अकर्ताके समान देहकी क्रियासे आत्मक्रियाकी भ्रमरूप कर्तृता कहां ॥ ८ ॥

सत्यंस्याच्चेदुपादेयंमिथ्यास्याद्धेयमेवचेत् ॥ उपादेयैकसक्तत्वाद्युक्तासक्तिर्हिकर्मणि ॥ ९ ॥ यत्रेंद्रजालमखिलंमायामयमवस्तुकम् ॥ तत्रकास्थाकथंनामहेयोपादेयदृष्टयः ॥ १० ॥ संसारबीजकणिकाथैषाविद्यारघूद्वह ॥ एषाह्यविद्यमानैवसतीवस्फारतांगता ॥ ११ ॥ येयमाभोगिनिःसारासंसारारंभचक्रिका ॥ विज्ञेयावासनैषासाचेतसोमोहदायिनी ॥ १२ ॥

अर्थ—यदि कर्तृता सत्य होती तो उपादेय होती और असत्य होती तो त्याज्य होती, क्यों कि क्रियाके फलकी मुख्य (सत्य) उपादेयतामें प्रसक्ति होनेसे कर्ममें आसक्ति युक्त है, और फलके मिथ्यात्वमें नहीं ॥ ९ ॥ और जहांपर सब कुछ इन्द्रजाल मायामय वस्तुशून्य है वहांपर क्या आस्था है ? और हेय उपादेय (त्याज्यग्राह्य) दृष्टिभी कैसे होसकती है ॥ १० ॥ हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! यह संसारके बीजकी कणिका अविद्या अविद्यमानभी है परन्तु विद्यमानके तुल्य विशालरूपताको प्राप्त है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह कृत्रिमवेषधारिणी सारशून्यसंसारके आरम्भ करनेवाली चक्रिका (छोटी चाक) है. इसको मोह देनेवाली चित्तकी वासना जानो ॥ १२ ॥

चारुवंशलतेवांतःशून्यानिस्सारकोटरा ॥ सरित्तरंगमालेवनव्युच्छिन्नापिनश्वरी ॥ १३ ॥ गृह्यमाणापिहस्तेनग्रहीतुंनैवयुज्यते ॥ मृद्व्यप्यत्यंततीक्ष्णाग्रानिर्झरोर्मिरिवोत्थिता ॥ १४ ॥ दृश्यतेप्रकराभासासदर्थेनोपयुज्यते ॥ तरंगिण्यतरंगाभास्वाकारपरिनिष्ठिता ॥ १५ ॥ क्वचिद्वक्राःक्वचित्स्पष्टादीर्घाःखर्वाःस्थिराश्चलाः ॥ यत्प्रसादोद्भवास्तस्माव्यतिरेकमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सुन्दर बांसकी लताके समान अन्तमें शून्य निःसार कोटरवाली नदीके तरंगोंकी मालाके समान विशेषकर उच्छिन्न (कटी हुई) भी नाशवती नहीं है ॥ १३ ॥ हस्तसे ग्रहण कीहुईभी ग्रहण करने योग्य नहीं है. यह झरनेके तरंगके समान कोमलभी तटके वृक्षोंको (पक्षमें संसारासक्त जीवोंको) छेदन करनेसे अतितीक्ष्ण अग्रभाग संयुक्त है ॥ १४ ॥ कार्य्य करनेमें समर्थ कारणसमूहसहित यद्यपि यह भासती है तथापि सत्पुरुषार्थमें इसका कुछभी उपयोग नहीं है. ऐसी सत्यतरंगशून्य प्रतीतिमात्र शोभायमान आकारमें समाप्त मृगतृष्णाकी नदीके तुल्य यह देख पडती है ॥ १५ ॥ कहीं वक्र (टेढी) कहीं स्वच्छ, कहीं दीर्घ, कहीं लघु (छोटी) कहीं स्थिर और कहीं चञ्चल यह भासती है. जिसके प्रतापसे आविर्भूत (उत्पन्न) ये सब पदार्थ परस्पर भेदभावको प्राप्त हुयेहैं ॥ १६ ॥

अंतःशून्यापिसर्वत्रदृश्यतेसारसुंदरी ॥ नक्वचित्संस्थितापीहसर्वत्रैवोपलक्ष्यते ॥ १७ ॥ जडैवचिन्मयीवासावन्यस्पंदोपजीविना ॥ निमेषमप्यतिष्ठंतीस्थैर्याशंकांप्रयच्छति ॥ १८ ॥ ज्वालावच्छुद्धवर्णापिमषीमलिनकोटरा ॥ वल्गत्यन्यप्रसादेनदीयतेतदवेक्षणात् ॥ १९ ॥ आलोकेविमलेम्लानातमस्यपिविराजते ॥ मृगतृष्णेवशुष्काभानानावर्णविलासिनी ॥ २० ॥

अर्थ—यह भीतरसे शून्यभी परन्तु सर्वत्र सारविशिष्ट सुन्दर देखपडतीहै. और कहीं स्थित न होनेपर सर्वत्र देखपडतीहै ॥ १७ ॥ जडभी यह चेतनमयी मनकी चंचलताको जिताती है. और एक निमेषभी कहीं न ठहरनेपर स्थिरताकी आशङ्का देती है ॥ १८ ॥ अग्निज्वालाकेसमान सत्वगुणसे शुद्धवर्ण होनेपरभी तमोगुणसे मषीके समान मलिनवर्ण और परमात्माकेही प्रतापसे यह गर्जतीहै. और उसीके साक्षात्कारसे खण्डितभी होजाती है ॥ १९ ॥ आत्माके प्रकाशमेंभी म्लान और अज्ञानान्धकारमेंभी शोभित होती है. और नानाप्रकारके वर्णोंसे विलासिनी शुष्कही शोभायमान मृगतृष्णाकी नदीके समान यह है ॥ २० ॥

वक्राविषमयीतन्वीमृद्वीसंकटकर्कशा ॥ ललनाचंचलालुब्धातृष्णाकृष्णेवभोगिनी ॥ २१ ॥ स्वयंदीपशिखेवाशुक्षीयतेस्नेहसंक्षये ॥ सिंदूरधूलिलेखेवविनारागंविराजते ॥ २२ ॥ क्षणप्रकाशातरलाकृतसंस्था

जडाशया ॥ मुग्धानांत्रासजननीवक्राविद्युदिवोदिता ॥२३॥ यत्नाद्गृहीत्वादहतिभूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥ लभ्यतेपिहिनान्विष्टाविद्युद्वदतिभंगुरा ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा वक्र, विषपूर्ण, अतिसूक्ष्म, कोमल, संकटका हेतु होनेसे ककर्श चंचल तथा लुब्ध स्त्रीके समान तथा कालीसर्पिणीकेतुल्य तृष्णारूप यह वासना है ॥ २१ ॥ स्नेहपक्षमें रागके नाश होनेपर दीपकी शिखाके समान आपही शीघ्र नष्ट होजाती है ओर स्नेह (राग) के विनाभी सिंदूरकी धूलिकी रेखाके समान शोभित होती है. ॥ २२ ॥ क्षणभरके प्रकाशमें चंचल जडके आशयमें स्थिति करनेवाली मूर्खोंकी त्रासदायिनी भयंकर विद्युत्के समान यह प्रकट हुई है ॥ २३ ॥ और यत्नसे पकडके यह जलाती है और उत्पन्न हो २ कर पुन: लीन होजाती है यह अति क्षणभंगुर विद्युत्के समान खोजनेपरभी नहीं मिलती ॥ २४ ॥

अप्रार्थितैवोपनतारमणीयाप्यनर्थदा ॥ अकालपुष्पमालेवश्रेयसेनाभिनंदिता ॥ २५ ॥ अत्यंतविस्मृतैवातिसुखायभ्रमदायिनी ॥ दुःस्वप्नकलनेवेयमनर्थायैवतर्किता ॥ २६ ॥ प्रतिभासवशादेषात्रिजगंतिमहांतिच ॥ मुहूर्त्तमात्रेणोत्पाद्यधत्तेग्रासीकरोतिच ॥ २७ ॥ मुहूर्त्तोवत्सरश्रेणीलवणस्यानयाकृता ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रस्यनिर्मिता ॥ २८ ॥

अर्थ—और बिना चाहे यह आके प्राप्त होती है रमणीय होनेपरभी अनर्थदायिनी इसीसे कुसमयके पुष्पोंकी मालाके समान कल्याणके अर्थ यह नहीं अभिलाषित है ॥ २५ ॥ अत्यन्त विस्मृत होनेपरभी यह अति सुखकेलिये भ्रमदायिनी है. और दुष्टस्वप्नकी कल्पनाके समान यह अनर्थकेही लिये वारंवार निश्चित कीगईहै ॥ २६ ॥ प्रतिभास (कल्पना) केही वशसे बडे २ तीनों लोकोंको यह मुहूर्तमात्रमेंही उत्पन्न करके धारण करती है, और पुन: ग्रासकरनाती है ॥ २७ ॥ राजा लवणकेलिये एक मुहूर्तको वर्षोंकी पंक्ति इसने किया और राजा हरिश्चन्द्रके लिये एक रात्रिके १२ वर्ष इसीने बनाया ॥ २८ ॥

वियोगिनामथान्येषांकांताविभवशालिनाम् ॥ रात्रिर्वत्सरवद्दीर्घाभवेत्तस्याःप्रसादतः ॥ २९ ॥ सुखितस्याल्पतामेतिदुःखितस्यैतिदीर्घताम् ॥ कालोयस्याःप्रसादेनविपर्यासैकशालिनाम् ॥ ३० ॥ अस्याःस्वसत्तामात्रेणकर्तृतैतासुवृत्तिषु ॥ दीपस्यालोककार्याणांयथातद्वन्नवस्तुतः ॥ ३१ ॥ सनितंबस्तनीचित्रेनस्त्रीस्त्रीधर्मिणीयथा ॥ तथैवाकारचिंतेयंकर्तुयोग्यानकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसीके प्रतापसे वियोगियोंको तथा अन्य स्त्री ऐश्वर्य्य आदिसे शोभायमान पुरुषोंको एक रात्रि वर्षके समान दीर्घ हो जाती है ॥ २९ ॥ भ्रमशील पुरुषोंकी दृष्टिमें जिसके प्रतापसे कालभी सुखीके लिये अलपताको और दु:खोंकेलिये दीर्घताको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जैसे प्रकाशके काय्योंमें दीपको कर्तृता है ऐसेही चेतनसत्ताकी सन्निधिमात्रसे इस अविद्याकी कर्तृता इन वृत्तियोंमें है ॥ ३१ ॥ जैसे नितम्ब और स्तन आदि चिन्होंको धारण करनेवाली चित्रगत स्त्री गृहके कार्य्य करनेमें समर्थ स्त्रीधर्मवाली स्त्री नहीं है ऐसेही पूर्वकालमें अनुभूत पदार्थोंमें वासनारूप यह अविद्या कुछ कार्य्य (परमार्थिक) करने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

मनोराज्यमिवाकारभासुरासत्यवर्जिता ॥ सहस्रशतशाखापिनाकिंचित्परमार्थतः ॥ ३३ ॥ अरण्ये मृगतृष्णेवमिथ्यैवाडंबरान्विताः ॥ विडंबयतितान्मुग्धमृगानेवनमानुषान् ॥ ३४ ॥ फेनमालेवसंजातध्वास्ताविच्छेदवर्जिता ॥ जडेवचंचलाकारागृह्यमाणानकिंचन ॥ ३५ ॥ अटत्युद्दामराकाराराजःप्रसरधूसरा ॥ बलात्कल्पांतवात्येवस्वाक्रांतभुवनांतरा ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनोराज्यके आकारके समान प्रकाशमान सत्यसे वर्जित सहस्रों और सैकडों शाखासहित होनेपर भी परमार्थमें कुछभी नहीं ॥ ३३ ॥ मिथ्या आडम्बरोंके सहित बनमें मृगतृष्णाके तुल्य मृगके समान मूर्खजनोंको मोहित करतीहै न कि विवेकीपुरुषोंको ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! फेनकी मालाके समान यह उत्पन्न होतेही नाशशील है और प्रवाहरूपसे नित्यहै, तथा जड़नीहारपटलीके समान, चंचल आकारवाली यह ग्रहण करनेमें कुछभी नहींहै ॥ ३५ ॥ भयंकर आकारवाली रज (धूलि पक्षमें रजोगुण) के प्रसरसे धूसरवर्ण, और अपने बलसे सब भुवनोंके मध्यको आक्रमण करनेवाली यह अविद्या सर्वत्र भ्रमणकररही है ॥ ३६ ॥

धूमालीवांगसंलग्नादाहखेदप्रदायिनी ॥ गर्भीकृतरसाक्रम्यजगंतिपरिवर्तते ॥ ३७ ॥ धाराजलधरस्येवसुदीर्घाजलनिर्मिता ॥ असारसंसारदृढारज्जुस्तृणगणैरिव ॥ ३८ ॥ तरंगोत्पलमालेवकल्पनामात्रवर्णिता ॥ मृणालीवबहुच्छिद्रापंकप्रौढाजलात्मिका ॥ ३९ ॥ जनेनदृश्यतेवृद्धितत्पराचवर्द्धते ॥ विषास्वादइवापातमधुरांतेसुदारुणा ॥ ४० ॥

अर्थ—धूलिकी पंक्तिके समान अंगमें लगनेसे दाह तथा दुःखको देनेहारी और अपने गर्भमें परमात्मरूप रसको धारण किये हुये सब जगत्को आक्रमण किये भ्रमणकर रही है ॥ ३७ ॥ यह जलसे निर्मित अति दीर्घमेघकी धाराके समान है. तथा असार जो संसरणशील संसार है उससे ऐसी दृढ़ होरही है जैसे तृण समूहोंसे रज्जू ॥३८॥ तरंग वा कमलकी मालाके समान इसको कवियोंने कल्पनामात्रसे वर्णन किया है अनेकछिद्रमय और जल (७) मयपंकमें उत्पन्न कमलोंके सूतोंके समान यह है ॥३९॥ प्राणी इसको वृद्धिमें तत्पर देखते हैं परन्तु यह बढती नहीं. विषसहित मोदक (लड्डू)के स्वादके तुल्य बिना बिचारे मधुर परन्तु अन्तमें अतिदारुण यह है ॥ ४० ॥

नष्टादीपशिखेवैषानजानेक्वगच्छते ॥ मिहिकेवाग्रदृष्टापिगृह्यमाणानकिंचन ॥ ४१ ॥ पांसुमुष्टिरिवाकीर्णप्रेक्षितापारमाणवी ॥ आकाशनीलिमेवैषानिर्निमित्तैवदृश्यते ॥ ४२ ॥ द्विचंद्रमोहवज्जाता स्वप्नवद्विहितभ्रमा ॥ यथानौयायिनःस्थाणुस्पंदस्तद्वदिहोत्थिता ॥ ४३ ॥ अनयोपहतेचित्तेदीर्घकालमिवाकुलैः ॥ जनैराकल्प्यतेदीर्घसंसारस्वप्नविभ्रमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—नष्ट होनेसे दीपकी शिखाके सदृश न जाने यह कहांचलीजातीहै और नीहार (कुहरा) वा धूमके पटलके समान अग्रभागमें दृश्यमानभी यह ग्रहणकरनेपर कुछ नहीं ॥ ४१ ॥ जैसे धूलिकी मुष्टि फेंककर देखो तो वह परमाणुमय कुछ नहीं है और आकाशकी नीलताके समान बिना निमित्तही यह देख पडती है ॥ ४२ ॥ स्वप्नके तुल्य भ्रम करनेवाली दो चन्द्रके अज्ञानके तुल्य यह उत्पन्न हुई है, जैसे नौकासे चलनेवालेको ठूंठ तथा वृक्षादिमें गमनक्रिया प्रतीत होतीहै ऐसेही यह अविद्याभी प्रकटहै ॥ ४३ ॥ इससे जब चित्त दूषित होजाताहै तब दीर्घकालतक मनुष्य दीर्घ संसाररूपी स्वप्नका भ्रम कल्पित करता है ॥ ४४ ॥

अनयोपहतेस्वस्मिंश्चित्ताश्चेतसिविभ्रमाः ॥ उत्पद्यंतेविनश्यंतितरंगास्तोयधेरिव ॥ ४५ ॥ मनोज्ञमपिसत्यंचदृश्यतेसदसत्तया ॥ अमनोज्ञमसत्यंचदृश्यतेसत्तयाप्यसत् ॥ ४६ ॥ पदार्थरथमारूढा भावनैषा बलान्विता ॥ आक्रामतिमनःक्षिप्रंविहंगंवागुरायथा ॥ ४७ ॥ करुणास्पंदमानाक्षीस्रवत्क्षीरलवस्तनी ॥ भवत्युल्लसितानंदजननीगृहिणीयथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस अविद्यासे स्वात्माके दूषित होने पर अर्थात् आवरणसे असत्के समान होनेपर चित्तमें नानाप्रकारके भ्रम ऐसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं जैसे समुद्रमें तरङ्ग ॥ ४५ ॥ इस अविद्यासे सत्य और रमणीयभी ब्रह्म असत्‌रूपसे, तथा अमनोज्ञ असत्‌भी जगत् सत् और रमणीयरूपसे देखपडता है ॥ ४६ ॥ विषयरूपी रथपर आरूढ यह वासनारूप अविद्या मनको मोहित करके ऐसे बांधतीहै जैसे जाल पक्षीको ॥ ४७ ॥ करुणासे चलायमान नेत्रवाली, तथा वहते दुग्धके सहित स्तनवाली स्त्री वा मातारूप धारण करके यही अविद्या उल्लसित आनन्दवाली होती है ॥ ४८ ॥

विषीकरोतिनिःस्यंदसंतर्पितजगत्त्रयम् ॥ सुधार्द्रार्द्रमपिक्षिप्रंप्रवृद्धंबिंबमैंदवम् ॥ ४९ ॥ उन्मत्तरववेतालनर्तनारंभसंभ्रमम् ॥ स्थाणवस्संप्रयच्छंतिमूकाअप्येतयांधया ॥ ५० ॥ संध्यादिषुचकालेषु लोष्टपाषाणभित्तयः ॥ अस्याःप्रसादाद्दृश्यंतेसर्पाजगरदृष्टिभिः ॥ ५१ ॥ एकोपिद्वितयोदेतियथाद्विशशिदर्शने ॥ दूरमभ्याशतांयातिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—चंद्रिकादिरूपमें परिणत अमृतके प्रवाहोंसे तीनों लोककी तृप्त करने वाले अमृतसे आर्द्र (गीले) और प्रवृद्ध चन्द्रमाके बिम्बकोभी यही अविद्या विषरूप कर देती है ॥ ४९ ॥ वागादि इन्द्रियोंके व्यापारसे शून्य सब को अन्धा करने वाली यह अविद्या स्थाणु (ठंढी) ओंकोभी उन्मत्त शब्द सहित वेतालोंके नृत्यका संभ्रम देती है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! इसी अविद्याके प्रतापसे संध्या आदि कालोंमें लोष्ट (मृत्तिका) तथा पाषाण आदिकी भित्ति (भींत वा दीवालें) सर्प वा अजगरकी भ्रान्तिसे देखपड़ती हैं ॥ ५१ ॥ जैसे दो चन्द्रके दर्शनमें एकभी दो रूपसे उदय होताहै. दूरभी समीपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ५२ ॥

आदीर्घक्षणतामेतिकालस्येष्टायथानिशा ॥ क्षणोवर्षमिवाभातिकांताविरहिणामिव ॥ ५३ ॥ नतदस्तीहयन्नामनकरोतीयमुद्धता ॥ अस्यास्त्वकिंचनायास्तुशक्ततांपश्यराघव ॥ ५४ ॥ संरोधयेत्प्रयत्नेनसंविदेवाशुसंविदम् ॥ सरित्स्रोतोनिरोधेनशुष्यत्येषामनोनदी ॥ ५५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अविद्यमानयैवेदं पेलवांग्यासुतुच्छया ॥ मिथ्याभावनयानाममचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और अति दीर्घकालभी क्षणताको इसप्रकार प्राप्त होताहै जैसे संहारक रुद्रकालको इष्ट प्रलयकी रात्रि,

और क्षणभी वर्षके समान ऐसे भान होताहै जैसे स्त्रीके विरही जनोंको ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! अकिंचन अपनी सत्तामें दरिद्र इस अविद्याके सामर्थ्यको तो देखो इस ब्रह्माण्डमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको यह उद्धत होके न करसके ॥ ५४ ॥ बुद्धिमानको योग्य है कि विवेकबुद्धिसे विषयकी बुद्धिकी प्रयत्नसे रोके और जैसे प्रवाहके रोधन (रोकने) से जैसे नदी सूखजाती है ऐसेही विषयबुद्धिके निरोधसे यह मनरूपा नदी शुष्कहोजाती है ॥ ५५ ॥ श्रीरामजी बोले– हे भगवन् ! असती कोमलांगी अति तुच्छ (अवस्तु) और मिथ्याभावनारूप इस अविधाने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५६ ॥

अरूपयानिराकृत्याचारुचेतनहीनया ॥ असत्येवाप्यनश्यंत्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५७ ॥ आलोकेन विनश्यंत्यास्फुरंत्यातमसोंतरे ॥ कौशिकेक्षणधर्मिण्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५८ ॥ कुकर्मैकांतकारिण्यानसहंत्याविलोकनम् ॥ देहमप्यविजानंत्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५९ ॥ सुदीनाचारधर्मिण्यानित्यंप्राकृतकांतया ॥ अनारतास्तंगतयाचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६० ॥

अर्थ—तथा रूप और आकारसे शून्य रमणीय चेतनतासे हीन और मृगतृष्णाकी नदीके समान असत् होनेपरभी शुष्कतारहित इस अविद्याने जगतको अन्धा करदिया यह आश्चर्य है ॥ ५७ ॥ प्रकाशमें (ज्ञानरूपी प्रकाशमें) नाश होनवाली और अन्धकार (अज्ञानान्धकार) में स्फुरने (चमकने) वाली उलूकके नेत्रके सदृश इसने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५८ ॥ क्रियाशक्तिमात्रका आश्रय करनेसे सर्वदा कुकर्मकारिणी प्रकाशको नसहनेवाली, तथा ज्ञानशक्तिसे शून्य होनेसे अपने शरीरकोंभी न जाननेवाली इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५९ ॥ अतिदीन (शोचनीय) आचार तथा धर्मवाली, मूढजनोंको रमणीय पक्षमें साधारणजनोंकी भार्य्या और निरन्तर असतीरूप इस अविद्यानें जगत्को अन्धा कर दिया यह चित्र (आश्चर्य) है ॥ ६० ॥

अनंतदुःखाकुलयासदैवमृतयानया ॥ संबोधहीनयायत्रचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६१ ॥ कामकोपघनांगिन्यातमःप्रसरवक्रया ॥ अचिरेणाशरीरिण्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६२ ॥ स्वात्मांधरूपास्पदयाजडयाजाड्यजीर्णया ॥ दुःखदीर्घप्रलापिन्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६३ ॥ पुरुषासंगसंगिन्यारागिण्याक्रिययानया ॥ विद्रवंत्याविवक्षासुचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥ ६४ ॥

अर्थ—अहो ! आश्चर्य ! जहांपर अनन्त दुःखोंसे व्याप्त सदा मृतकेतुल्य और ज्ञानशून्य इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया ॥ ६१ ॥ काम और कोपसे सघन अंकवाली तमके प्रसारसे भयंकररूप और ज्ञानोदयसे वा वधसे शीघ्रही शरीररहित इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ६२ ॥ और आत्माके विषयमे मूढजनोंके हृदयमें निवासशील जडरूप तथा जडतासे जीर्ण और दुःखोंसे दीर्घ प्रलय करनेवाली निशाचरीके तुल्य इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ६३ ॥ चेतनरूप पुरुषके साथएकताके अध्याससे पुरुषकी संगीनी, नानाप्रकारके विचित्र विषयकी कल्पनारूप क्रियासे पुरुषके भोगार्थ पुरुषमें अनुरागिणी और आत्मतत्वविचारोंमें भागनेवाली स्त्रीरूप इस अविद्याने पुरुषको अन्धा कर दिया ॥ ६४ ॥

पुरुषस्यनयाशक्तासोढुमीक्षितमप्यलम् ॥ तयास्त्रियावरणयाचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥ ६५ ॥ नयस्याश्चेतनैवास्तियाप्यनष्टैवनश्यति ॥ तयास्त्रियापरुषयाचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥६६॥ अनंतदुष्प्रसरविलासकारिणीक्षयोदयोन्मुखसुखदुःखभागिनी ॥ इयंप्रभोविगलतिकेनवासमामनोगुहानिलयनिबद्धवासना॥६७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अविद्यावर्णनंनामत्रयोदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११३ ॥

अर्थ—पुरुषके साक्षात्कारको (देखनेको) असमर्थ ऐसी आवरण (आत्मदर्शनका आच्छादन) करनेवाली इस अविद्यारूप स्त्रीने पुरुषको अन्धा करदिया यह आश्चर्य्य है ॥ ६५ ॥ जिसकी चेतनाशक्ति सर्वथा नहीं है और जो नष्ट होनेपरभी नाशको प्राप्त होतीहै (कर्कश) उस अविद्यारूप स्त्रीने पुरुषको अन्धा कर दिया यह आश्चर्य्य है ॥६६॥हे प्रभो! अनन्त दुष्ट भ्रमोसे विलासकारिणी क्षय तथा उदयकी ओर उन्मुख मरण और जन्मादिके सुखदुःखोंको प्राप्तकरनेवाली विषम और मनरूपी गुहाके स्थानमे निबद्ध वासनारूप यह अविद्या किस उपायसे नष्ट हो ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये षूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अविद्यावर्णनंनामत्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४ ॥

इस ११४ के सर्गमें अविद्याके नाशका उपाय आत्माका दर्शन विशुद्ध आत्माका स्वरूप और असंकल्पसे वासनाका क्षय वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अविद्याविभवप्रोत्थंनिबिडंपुरुषस्यहि ॥ महदांध्यमिदंब्रह्मन्कथंनामविनश्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथातुषारकणिकाभास्करालोकनात्क्षणात् ॥ नश्यत्येवमविद्येयंराघवात्मावलोकनात् ॥ २ ॥ तावत्संसारभृगुषुस्वात्मनासहदेहिनम् ॥ आंदोलयतिनीरंध्रदुःखकंटकशालिषु ॥ ३ ॥ अविद्यायावदस्यास्तुनोत्पन्नाक्षयकारिणी ॥ स्वयमात्मावलोकेच्छामोहसंक्षयदायिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! अविद्याके विभवसे गुंथा हुआ अतिसघन आवरणरूप जो यह पुरुषका महत् आन्ध्य (अन्धता) है वह कैसे नष्ट हो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जैसे तुषारकी कणिका सूर्य्यके प्रकाशसे क्षणभरमें नष्ट होजाती है ऐसेही आत्माके अवलोकनसे यह अविद्याभी तत्काल नष्ट होती है ॥ २ ॥ छिद्ररहित (सघन) दुःखरूप कण्टकोंसे शोभायमान संसाररूपी पर्वतके शिखरोंपर आत्माके साथ इस देहीको यह अविद्या तभीतक झुलाती है ॥ ३ ॥ जबतक इसके क्षयकी कारिणी और मोहकी नाशिनी आत्मदर्शनकी इच्छा नहीं उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥

अस्याःपरंप्रपश्यंत्याःस्वात्मनाशःप्रजायते ॥ आतपानुभवार्थिन्याश्छायायाइवराघव ॥ ५ ॥ दृष्टेसर्वगतेबोधेस्वयमेवविलीयते ॥ सर्वाशाभ्युदितेछायाद्वादशार्कगणेयथा ॥ ६ ॥ इच्छामात्रमविद्येहतन्नाशोमोक्षउच्यते ॥ सचासंकल्पमात्रेणसिद्धोभवतिराघव ॥ ७ ॥ मनागपिमनोव्योम्निवासनारजनीक्षये ॥ कालिमातनुतामेतिचिदादित्यमहोदयात् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमात्माका दर्शन करतेही इसके शरीरका नाश ऐसे होजाता है जैसे आतप (घाम) का अनुभव चाहनेवाली छायाका ॥ ५ ॥ सर्वव्यापी बोधके दृष्ट (हृदयमें आरूढ) होतेही यह इसप्रकार नष्ट होतीहै जैसे सम्पूर्ण दिशाओंमें द्वादश (बारह) आदित्यके गणके उदय होतेही छायाका ॥ ६ ॥ इच्छा (विषयेच्छा) मात्रही अविद्या है उसका नाशही मोक्ष कहा जाता है. और हे रामजी ! वह मोक्ष असंकल्पमात्रसे सिद्ध होता है ॥ ७ ॥ चेतनरूपी सूर्य्यके महोदयसे कामवासनारूपी रात्रिके नाश होनेपर मनरूपी आकाशमें किंचित्भी कालिमा अर्थात् अविद्याका आवरण हो वह नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥

यथोदितेदिनकरेक्कापियातितमस्विनी ॥ तथाविवेकेभ्युदितेक्काप्यविद्याविलीयते ॥ ९ ॥ दृढवासनयाबंधोघनतामेतिचेतसः ॥ बलाद्वेतालसंकल्पःसंध्याकालेयथाशिशोः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यंसाविद्याक्षीयतेचसा ॥ आत्मभावनयाब्रह्मन्नात्मासौकीदृशःस्मृतः ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेत्यानुपातरहितंसामान्येनचसर्वगम् ॥ यच्चित्तत्त्वमनाख्येयंसआत्मापरमेश्वरः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे रात्रि न जाने कहां जाती है ऐसेही विवेकके उदय होनेसे न जाने अविद्या कहां लीन होजाती है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जैसे सन्ध्याकालमें बालकके हृदयमें बेताल (भूतादि) का संकल्प बलात्कारसे उदय होता है ऐसेही कामकी दृढ वासनासे चित्तका बंधनभी दृढीभूत होजाता है ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जो कुछ यह दृश्य प्रपंचहै वह तो अविद्याहै. और वह आत्मदर्शनसे क्षीण होजाताहै तो वह आत्मा कैसा कहागयाहै ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—विषयकी प्राप्तिसे वर्जित, और अविद्याकी शक्ति विक्षेप और आवरणसे शून्य सर्वव्यापी और अकथनीय (वाणीका अविषय) जो चित्तत्व है वही आत्मा परमेश्वर है ॥ १२ ॥

आब्रम्हास्तंबपर्यंततृणादियदिदंजगत् ॥ तत्सर्वंसर्वदात्मैवनाविद्याविद्यतेनच ॥ १३ ॥ सर्वंचखल्विदंब्रह्मनित्यंचिद्घनमक्षतम् ॥ कल्पनान्यामनोनाम्नीविद्यतेनहिकचान ॥ १४॥ नजायतेनम्रियतेकिंचिदत्रजगत्त्रये ॥ नचभावविकाराणांसत्ताक्कचनविद्यते ॥ १५॥ केवलंकेवलाभासंसर्वसामान्यमक्षतम् ॥ चेत्यानुपातरहितंचिन्मात्रमिहविद्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्मासे लेके तृणपर्य्यन्त तृणादि यह जगत्है वह सब सर्वदा आत्माही है. और अविद्या तो है ही नहीं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! यह सम्पूर्ण चिद्घन, अक्षत नित्य ब्रह्महीहै, और अन्य मनोनाभिका कल्पना है वह सब कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ इस तीनो संसारमें न तो कुछ उत्पन्न होताहै और न कोई मरताहै और पदार्थ विवाकारोंकी तो सत्ताही कहीं नहीं ॥ १५ ॥ केवल अद्वितीय, स्वप्रकाश, सर्व अनुगत, सत्रूप, अक्षत, और विषयकी प्राप्तिसे वर्जित चेतनमात्रही इस ब्रह्माण्डमें है ॥ १६ ॥

तस्मिन्नित्येततेशुद्धेचिन्मात्रेनिरुपद्रवे ॥ शांतेसमसमाभोगेनिर्विकारोदितात्मनि ॥ १७ ॥ येषास्वभावातिगतंस्वयंसंकल्प्य धावति ॥ चिच्चेत्यंस्वयमाम्लानासाम्लानातन्मनःस्मृतम् ॥ १८ ॥ एतस्मात्सर्वगाद्देवात्सर्वशक्तेर्महात्मनः ॥ विभागकलनाशक्तिर्लहरीवोत्थितांभसः ॥ १९ ॥ एकस्मिन्विततेशांतेयानाकिंचनविद्यते ॥ संकल्पमात्रेणगतासासिद्धिंपरमात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—उस नित्य, व्यापक, शुद्ध, चिन्मात्र, उपद्रवशून्य, शान्त, विशाल, सर्वत्र एक रूप और निर्विकार आत्मामें ॥ १७ ॥ आम्लान अर्थात् आवरणसहित जो यह चित् है वही चित् स्वभावसे विरुद्ध जड़ता और परिच्छेदादि स्वभाववाले विषयका संकल्प करके उसी ओर दौड़ती है वह म्लान विक्षेपशक्ति प्रसिद्ध मनहै ॥ १८ ॥ इसी सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् महान् मनरूपी देवसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी विभागकल्पनाशक्ति ऐसे आविर्भूतहै जैसे समुद्रसे तरंग ॥ १९ ॥ एक, अद्वितीय, व्यापक और शान्त परमात्मामें जो अविद्या कुछभी नहींहै वह उसके संकल्पमात्रसे सिद्धिको प्राप्त हुई है ॥ २० ॥

अतःसंकल्पसिद्धेयंसंकल्पेनैवनश्यति ॥ येनैवजातातेनैवाह्निज्वालेववायुना ॥ २१ ॥ पौरुषोद्योगसिद्धेनभोगाशारूपतांगता ॥ असंकल्पनमात्रेणसाविद्याप्रविलीयते ॥२२॥ नाहंब्रह्मेतिसंकल्पात्सुदृढाद्बध्यतेमनः ॥ सर्वंब्रह्मेतिसंकल्पात्सुदृढान्मुच्यतेमनः ॥ २३ ॥ संकल्पःपरमोबन्धस्त्वसंकल्पोविमुक्तता ॥ संकल्पंसंविजित्यातर्यथेच्छसितथाकुरु ॥ २४ ॥

अर्थ—इस लिये यह संकल्पसे सिद्धहै. और संकल्पहीसे नष्ट होतीहै. क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होती है वह उसीसे नष्टभी होतीहै. जैसी अग्निकी ज्वाला वायुसे उत्पन्न होतीहै और वायुसेही लीन होती है ॥ २१॥ विषयभोगकी आशासे रूप धारण कियेहुये यह अविद्या निदिध्यासनकी परिपाकतारूप पौरुषके उद्योगसे सिद्ध आत्मसाक्षात्कारसे प्रतिष्ठित केवल असंकल्पमात्रसे लीनताको प्राप्त होतीहै ॥ २२ ॥ मैं ब्रह्मनहीं हुं इस सुदृढसंकल्पसे मन बन्धमें प्राप्त होताहै, और सब कुछ स्वात्मब्रह्महीहै इस सुदृढसंकल्पसे मन मुक्त होताहै ॥ २३ ॥ विषयका संकल्पही परम बन्धनहै, और असंकल्पही मुक्तता (मुक्ति) है. हे रामजी ! मैं ब्रह्म नहींहूं इस संकल्पको सब कुछ ब्रह्मही इस विरोधी संकल्पजनित ज्ञानसे जीतकर जैसी इच्छाहो वैसा करो ॥ २४ ॥

दृढानयांबरेत्रास्तिनलिनीहेमपंकजा ॥ लोलवैदूर्यमधुपासुगंधितदिगंतरा ॥ २५ ॥ उद्दंडैःप्रकटाभोगैर्मृणालभुजमंडलैः ॥ विहसंतीप्रकाशस्यशशिनोरश्मिमण्डलम् ॥ २६ ॥ विकल्पजालिकेवेत्थमसत्येवापिसत्समा ॥ मनःस्वार्थविलासार्थंयथाबालेनकल्प्यते ॥ २७ ॥ तथैवेयमविद्येहभवबंधनबंधनी ॥ चपलानसुखायैवबालेनकलितादृढा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस चिदाकाशमें जो नहीं है ऐसी यह सुवर्णके पंकमें उत्पन्न चंचल वैदूर्य (मूंगेके वर्ण भ्रमरवाली दशों दिशाओंके मध्यको सुगन्धित करनेहारी बडे उद्दण्ड प्रकट शरीरवाले मृणाल (कमलदण्ड) रूपी भुजाके समूहोंसे आत्मप्रकाशरूपी चन्द्रमाके किरणमण्डलको हंसती हुई नलिनीके समान विकल्पजालिका यथार्थमें असत् है परन्तु सत्के समान जैसे बालक अपने मनोरथके विलासकेलिये कल्पित करता है ऐसे मुर्ख जन इस संसारमें बन्धनकारिणी चपल अविद्याको सुखके अर्थ नहीं किन्तु अनन्तदुःखोंकेअर्थ दृढरूपसे कल्पित किया है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

कृशोतिदुःखीबद्धोहंहस्तपादादिमानहम् ॥ इतिभावानुरूपेणव्यवहारेणबध्यते ॥ २९ ॥ नाहंदुःखीनमेदेहोबंधःकस्यात्मनःस्थितः ॥ इतिभावानुरूपेणव्यवहारेणमुच्यते ॥ ३० ॥ नाहंमांसंनचास्थीतिदेहादन्यःपरोह्ययम् ॥ इतिनिश्चयवानंतःक्षीणाविद्यइहोच्यते ॥ ३१ ॥ प्रोत्तुंगसुरशैलाग्रवैदूर्यशिखरप्रभा ॥ अथवार्काशुद्धभेदातिमिरश्रीःस्थितोपरि ॥ ३२ ॥ कल्प्यतेह्नियथाव्योम्नःकालिमेतिस्वभावतः ॥ पुंसाधरणिसंस्थेनस्वसंकल्पनयेद्धया ॥ ३३ ॥

अर्थ—दुर्बल अतिदुःखी बद्ध और हस्तपाद आदि अवयवसहित मैं हूं इसप्रकार अभिमानके अनुरूप व्यवहारसे प्राणी बन्धनमें आता है ॥ २९ ॥ न मैं दुःखी हूं न मेरे देहहै और बन्ध किस आत्माको स्थित होसकता है ऐसे भावके अनुसार व्यवहारसे प्राणी मुक्त होते हैं ॥ ३० ॥ न मैं मांस हूं न हड्डिया हुं. किन्तु देहसे भिन्न और बुद्धि आदिसे परे चिद्रूप मैं हूं, इस निश्चयवाला प्राणी इस संसारमें क्षीणाविद्य (अविद्यारहित) कहलाता है ॥ ३१ ॥ जैसे पृथिवीपर स्थित मनुष्य आकाशकी नीलताके विषयमें यह कल्पना (योगभाष्यकारके मतसे) क-

रता है कि अतिउच्च मेरुपर्वतपरके नीलमणी शिखरकी प्रभा फैली हुई है. अथवा (ज्योतिषीओंके मतसे) दूर होनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे हटनेके अयोग्य पूर्वप्रसंगमें वर्णनकिये ब्रह्माण्डखर्परके अन्धकारकी कान्ति यह अकाशकी नीलता स्वभावसे ऊपर स्थितहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कल्पितवमविद्येयमनात्मन्यात्मभावना ॥ पुरुषेणाप्रबुद्धेननप्रबुद्धेनराघव ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मेरुनीलमणिच्छायानेयंतापितमःप्रभा ॥ तदेतत्किकृतंब्रह्मन्नीलत्वंनभसोवद ॥ ३५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ननामर्नीलताव्योम्नःशून्यस्यगुणवस्थिता ॥ अन्यरत्नप्रभाभावान्नवाप्येषाचमेरवी ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऐसेही हेरामजी ! अज्ञानी पुरुषसे अनात्मदेहादिमें आत्मभावनारूप यह अविद्याकलिपत है ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! यह आकाशकी नीलता नतो नीलमणि शिखरकी प्रभाहै और अन्धकारकी कान्तिहै क्योंकि प्रथमपक्षमें शिखर पद्मरागादिकके भीहैं इससे रक्तताकीभी संभवनाहै. और द्वितीयपक्षमें ब्रह्माण्डके दोनों खर्पर सुवर्णमय (तदणुम भवद्धैमम्) वर्णकिये गयेहैं. और ऊपर सत्यलोकादि भास्वरतरहैं, तब कहिये यह आकाशकी नीलता किसकीहै ? ॥ ३५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले--हेरामजी ! यह नीलता शून्य आकाशके गुणके समान नहीं है और अन्यपद्म रागादीकी प्रभाके अभावसे यह मेरूके शिखरकी प्रभानहीं है ॥ ३६ ॥

तेजोमयत्वादंडस्यस्फारत्वादिवतेजसः॥प्राकाश्यादंडपारस्यतमसोनात्रसंभवः॥३७॥केवलंशून्यतैवैषाबव्हीसुभगलक्ष्यते ॥ वयस्येवानुरूपायाअविद्याया असन्मयी ॥ ३८ ॥ स्वदृष्टिक्षयसंपत्तावक्ष्णोरेवोदितंतमः ॥ वस्तुस्वभावात्तद्व्योम्नःकाष्ण्र्यमित्यवलोक्यते ॥ ३९ ॥ एतद्बुध्यायथाव्योम्निदृश्यमानोपिकालिमा ॥ न कालिमेतिबुद्धिःस्यादविद्यातिमिरंतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—और ब्रह्माण्डके तेजोमय (तदण्डमभवद्धैमंसहस्रांशुसमप्रभम्) होनेसे तथा सूर्य्यके तेजकी विशालतासे ब्रह्माण्डके अन्तर्वर्ती आकाशके प्रकाशसें व्याप्त होनेके कारण अन्धकारकी प्रभाकाभी इस नीलताको कारणतामें संभव नहीं है. अर्थात् तुमने जो दोनो पक्षका खण्डन किया वह यथार्थ है ॥ ३७ ॥ हे सुभग रामजी ! यह केवल विशाल शून्यताही हे जो अविद्याकेसमान असन्मयी अविद्याकी सखीके समान देख पडती है ॥ ३८ ॥ जहांपर नेत्रोंकी दर्शन शक्तिका कुण्ठीभाव होताहै वहांपर अन्धकाररूप जो अदर्शन उत्पन्न होताहै वही वस्तुके स्वभावसे आकाशकी नीलताकेसमान दृष्टिगत होरही है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! इस दृष्टान्तको जानकर जैसे आकाशकी निलता देखपडतीहुईभी आकाशकी नहीं है ऐसी बुद्धि होतीहै ऐसेही अविद्याअन्धकार कोभी जानों॥४०॥

असंकल्पोह्यविद्यायानिग्रहःकथितोबुधैः ॥ यथागगनपद्मिन्याःसभातिसुकरःस्वयम् ॥ ४१ ॥ भ्रमस्यजागतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनःस्मरणंमन्येसाधोविस्मरणंवरम् ॥ ४२ ॥ नष्टोहमितिसंकल्पाद्यथादुःखेननश्यति ॥ प्रबुद्धोस्मीतिसंकल्पाजनोह्येतियथासुखम् ॥ ४३ ॥ तथासंमूढसंकल्पान्मूढतामेतिवैमनः ॥ प्रबोधोदारसंकल्पात्प्रबोधायानुधावति ॥ ४४ ॥

अर्थ—आकाशकी कमलिनीके तुल्य संकलपका अभावही अविद्याके जीतनेका उपाय पण्डितोंने कहाहै. और वह संकलपका अभाव स्वयं सुखसाध्य है ॥ ४१ ॥ हे साधो रामजी ! आकाशके वर्णके समान इस जगत् सम्बन्धी भ्रमका ऐसा विस्मरण हो कि जिसका पुनः स्मरण न हो यहि श्रेष्ठहै ॥ ४२ ॥ जैसें स्वप्नमें नष्ट हुआ ऐसे संकलपसे दुःखसे नष्ट होताहै, और मैं जागताहुं ऐसे संकलपसें स्वप्नसे जनित दुःखका नाशरूप सुख प्राप्त करताहै ॥ ४३ ॥ ऐसेही मूढसंकलपसे यह मन मूढताको प्राप्त होताहै, और ज्ञानरूप उदारसंकलपसे ब्रह्मके साथ एकरसतारूपी ज्ञानकीओर दौडताहै ॥ ४४ ॥

क्षणात्संस्मरणादेषाह्यविद्योदेतिशाश्वती ॥ यस्माद्विस्मरणादंतःपरिणश्यतिनश्वरी ॥ ४५ ॥ भावनी सर्वभावानांसर्वभूतविमोहिनी ॥ मारिणीस्वात्मनोनाशेस्वात्मद्वैविनाशिनी ॥ ४६ ॥ मनोयदनुसंधत्तेतत्सर्वेन्द्रियवृत्तयः ॥ क्षणात्संपादयंत्येताराजाज्ञामिवमंत्रिणः ॥ ४७ ॥ तस्मान्मनोनृसंधानंभावेषुन करोतियः ॥ अंतश्चेतनयत्नेनसशांतिमधिगच्छति ॥ ४८ ॥

अर्थ—मैं अज्ञ हुं. इस क्षणिकसंकलपसे अनादि अविद्याका उदय होताहै, और संकलपवासनाके मूलोच्छेदनसे नित्य नष्ट यह शीघ्रही नष्ट होती है ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! सब पदार्थोंकी उत्पादिका और सब प्राणियोंकी मोहिनी यह अविद्या आत्माके अदर्शनमें गुरुतर और अपने अपरिच्छिन्नस्वरूपकी प्राप्तिमें नाशशीला है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! मन जिस वस्तुका अनुसन्धान करताहै उसको सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्ति ऐसे सिद्ध करती है जैसे राजाकी आ-

ज्ञाको मंत्रीगण ॥ ४७ ॥ इसका रणसे अन्तःकरणमें ब्रह्माहंभावनारूप यत्नसे जो पदार्थोंमें मनको नहीं लगाता वही शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

यदादावेवनास्तीदंतदद्यापिनविद्यते ॥ यदिदंभातितद्ब्रह्मशांतमेकमनिंदितम् ॥ ४९॥ मननीयमतोनान्यत्कदाकस्यकथंकुतः ॥ निर्विकारमनाद्यंतमास्यतामपयंत्रणम् ॥ ५० ॥ परंपौरुषमाश्रित्ययत्नात्परमयाधिया ॥ भोगाशाभावनांचित्तात्समूलामलमुद्धरेत् ॥५१॥ यद्वदेतिपरोमोहोजरामरणकारणम्॥ आशापाशशतोल्लासिवासनातद्विजृंभते ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो यह जगत् आरम्भमेंही नहीं है तो वह अबभी नहीं है, जो कुछ यह जगत्रूपसे भान हो रहा है वह सब शान्त अनिन्दित एक अद्वितीय ब्रह्मही है ॥ ४९ ॥ इस ब्रह्मसे अन्य मननकरनेयोग्य कभी किसीको कहीं कोई नहीं है, इसलिये पूर्णरूपसे अनादि अनन्त निर्विकारस्थित रहो ॥ ५० ॥ शास्त्रादिसे परिष्कृत उत्तमबुद्धिसे परम पौरुषका आश्रयले के विषयभोगकी आशारूप भावनाको मूलसहित चित्तसे निकालदेना चाहिये ॥ ५१ ॥ सैकडों आशाकी फांसीसे शोभित वृद्धावस्था तथा मरणादिविकारोंका कारण आत्माका अज्ञानरूप जो महामोह उदय होता है वह वासनाही अपना स्वरूप देखातीहै ॥ ५२ ॥

ममपुत्राममधनमयंसोहमिदंमम ॥ इतीयमिंद्रजालेनवासनैवविवल्गति ॥ ५३ ॥ शून्यएवशरीरेस्मिन्विलोलोजलवातवत् ॥ अनन्ययावासनयात्वहंभावाहिरर्पितः ॥ ५४ ॥ परमार्थेनतत्त्वज्ञममाहमिदमित्यलम् ॥ आत्मतत्त्वादृतेसत्यंनकदाचनकिंचन ॥ ५५ खाद्रियुर्विनदिश्रेण्योदृष्टिसृष्ट्यापुनःपुनः ॥ सैवान्येवविचित्रेयमविद्यापरिवर्तते ॥ ५६ ॥

अर्थ—मेरे पुत्र, मेरा धन, यह शरीर,वह गृहादि, यह मेरा गृहादिसम्बन्धी क्षेत्रादि, इत्यादि इन्द्रजालसे वासनाही गर्ज रही है ॥ ५३ ॥ जैसे वायुसे जलमें तरंग रूपी सर्प कल्पित होता है ऐसेही शून्य इस शरीरमें केवल वासनासे अहंभावरूप सर्प कल्पित किया गयाहै ॥ ५४ ॥ हे तत्वज्ञ रामजी ! परमार्थमें मम और अहम् यह कुछभी नहीं है क्योंकि आत्मतत्वसे भिन्न कभी कुछभी सत्य नहीं है ॥ ५५ ॥ आकाश, पर्वत, पृथिवी और नदी आदिकी पंक्ति की सत्ता दृष्टिसम कालही है और वही अविद्या अन्यके समान विचित्र २ रूप धारण करके पुनः २ भ्रमण करती है॥५६॥

उदेत्यज्ञानमात्रेणनश्यतिज्ञानमात्रतः ॥ सन्मात्रेपरिविच्छेद्यारज्ज्वामिवभुजंगधीः ॥ ५७ ॥ खाद्र्युर्वीनदीसेयंयाऽविद्याज्ञस्यराघव ॥ नविद्याज्ञस्यतद्ब्रह्मस्वमहिम्नाव्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥ रज्जुसर्पविकल्पौद्वावज्ञेनैवोपकल्पितौ ॥ ज्ञेनत्वेकैवनिर्णीताब्रह्मदृष्टिरकृत्रिमा ॥ ५९॥ माभवाज्ञोभवप्राज्ञोजहिसंसारवासनाम् ॥ अनात्मन्यात्मभावेनकिमज्ञइवरोदिषि ॥ ६० ॥

अर्थ—देशकाल और वस्तुसे परिच्छिन्न यह अविद्या अज्ञानमात्रसे उदय होतीहै और ज्ञानमात्रसे ऐसे नष्ट होती है जैसे रज्जुमें सर्पकी बुद्धि ॥ ५७ ॥ हे राघव ! आकाश, पर्वत, पृथीवी, और नदी आदि यह अविद्या अज्ञानीको उदय होती है और ज्ञानीको तो अविद्या है ही नहीहै उसको तो अपनी महिमासे ब्रह्मही सबरूपसे प्रतिष्ठित है ॥ ५८ ॥ व्यावहारिक और प्रातिभासिक दशारूप रज्जु और सर्प ये दोनों विकल्प अज्ञानीनेही कल्पित किये हैं और ज्ञानीके लिये तो एक परमार्थिक अकृत्रिम दृष्टि सर्वत्र निर्णीतहै ॥५९॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानी मतहो किन्तु ज्ञानीबनो, अनात्मा देहादिमें आत्मभावना करके अज्ञानीके समान तुम क्यों रोते हो ॥ ६० ॥

कस्तवायंजडोमूकोदेहोभवतिराघव ॥ यदर्थेसुखदुःखाभ्यामवशःपरिभूयसे ॥ ६१ ॥ यथाहिकाष्ठजतुनोर्यथाबदरकुंडयोः॥श्लिष्टयोरपिनैकत्वंदेहदेहवतोस्तथा॥६२॥भस्त्रादाहेयथादाहोनभस्त्रांतरवर्त्तिनः॥ पवनस्यतथादेहनाशेनात्माननश्यति ॥ ६३ ॥ दुःखितोहंसुखाढ्योहमितिभ्रांतिरघूद्वह ॥ मृगतृष्णोपमांबुद्ध्वात्यजसत्यंसमाश्रय ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जड़ मूकशरीर तुमारा क्या है जिसकेलिये तुम अवशहोके सुख और दुःखसे पराजित होते हो ॥६१॥ जैसे काष्ठ और लोहका तथा बदर(बेर)और कुण्ड(कूड़े)की मिले हुये रहनेंपरभी एकतानहीं होती ऐसेही शरीर और आत्माकीभी एकता नहीं होसकती ॥ ६२ ॥ भाथाके दाह होनेपरभी भाथाके भीतर जो पवन है उसका दाह जैसे नहीं होता ऐसेही शरीरके नष्ट होनेपरभी आत्माका नाश नहीं होता ॥ ६३ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! मैं दुःखीहुं, अथवा विषयसुखसे पूर्ण हुं इस भ्रान्तिको मृगतृष्णाके समान जानकर त्यागदो और सत्यका आश्रय लो ॥ ६४ ॥

अहोनुचित्रंयत्सत्यंब्रह्मतद्विस्मृतंनृणाम् ॥ यदसत्यमविद्याख्यंतन्नूनंस्मृतिमागतम् ॥ ६५ ॥ प्रसरं त्वमविद्यायामाप्रयच्छरघूद्वह ॥ अनयोपहितेचित्तेदुष्पारेहकदर्थना ॥ ६६ ॥ मिथ्यैवानर्थकारिण्यामनो मननर्पानया ॥ अनयादुःखदायिन्यामहामोहफलांतया ॥ ६७ ॥ चंद्रबिंबेसुधार्द्रेपिकृत्वारौरवकल्प नम् ॥ नारकंदाहसंशोषदुःखंसमनुभूयते ॥ ६८ ॥

अर्थ—अहो ? कैसा आश्चर्य्य है ! जो सत्यब्रह्म है वह तो मनुष्योंको भूलगया और जो असत्य अविद्या है वह निश्चयरूपसे स्मरणमें आगई ॥ ६५ ॥ हेरामजी ! तुम आत्मविस्मरणरूप अविद्याको स्थान मतदो, क्योंकि इससे चित्तके दूषित होनेपर यह क्लेश दुष्पारहै ॥ ६६ ॥ मिथ्यारूप अनेक अनर्थकारिणी, स्फुरणासे स्थूल, दुःखदायिनी, और अन्तमें महा अज्ञानरूप फल देने हारा यह अविद्याही सुधा (अमृत) से आर्द्र (गीले) चन्द्राबिम्बमें भी रौरवनरककी कल्पना करके नरकके दाह और संशोष आदि दुःखका अनुभव कराती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

जलकल्लोलकल्हारपुष्पसाकरवीचिषु ॥ सरस्सुमृगतृष्णाढ्यंमरुत्त्वंपरिदृश्यते ॥ ६९ ॥ नभोनगरनिर्माणपातोत्पातनसंभ्रमाः ॥ स्वप्नादिष्वनुभूयंतेविचित्राःसुखदुःखदाः ॥ ७० ॥ संसारवासनाश्वेतोय दिनामनपूरयेत् ॥ तज्जाग्रत्स्वप्नसंरंभाःकिनयेयुरिहापदम् ॥ ७१ ॥ दृश्यतेरौरवावीचिनरकानर्थशासना ॥ मिथ्याज्ञानेगतेवृद्धिंस्वप्नोपवनभूमिषु ॥ ७२ ॥

अर्थ—और इसीकेही कारण जलके कल्लोल और कमलके पुष्पसंयुक्त कणमय तरंगोंसहित तड़ागोंमें भी मृगतृष्णासे पूर्ण मरुदेश देख पड़ता है ॥ ६९ ॥ इसीसे आकाशमें नगरकी रचना, नरकादिमे पतन, और स्वर्गआदिका चढ़ना इत्यादि चित्रविचित्र सुखदुःखदायी संभ्रम स्वप्नमेंभी अनुभूत होतेहैं ॥ ७० ॥ यदि यह अविद्या संसारकी वासनाओंसे चित्तको न भरदे तोजाग्रत् और स्वप्नके संभ्रम आत्माको क्या आपत्ति देसकतेहैं अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७१ ॥ मिथ्या अज्ञानके बढजानेसे स्वप्नादिमें उपवन (वाटिका) की भूमियोंमेंभी रौरव अवीचि आदि अनर्थकी यातना देखपडती हैं ॥ ७२ ॥

अनयावेधितंचेतोबिसतंतावपिक्षणात् ॥ पश्यत्यखिलसंसारसागरानर्थविभ्रमम् ॥ ७३ ॥ अनयोपहते चित्तेराज्यएवहिसंस्थिताः ॥ तास्ताद्दश्योजनायांतियानयोग्याःश्वपाकिनः ॥ ७४ ॥ तस्माद्रामपरित्यज्यवासनांभवबंधनीम् ॥ सर्वरागमयींतिष्ठनीरागःस्फटिकोयथा ॥ ७५ ॥ तिष्ठतस्तवकार्येषुमास्तुरागेषुरंजना ॥ स्फटिकस्येवचित्राणिप्रतिबिंबानिगृह्णतः ॥ ७६ ॥

अर्थ—इस अविद्यासे बोधित चित्त कमलके सूतमेंभी क्षणमेंही सम्पूर्ण संसारसागरके अनर्थोंको देखताहै ॥ ७३ ॥ इससे चित्तके दुषित होनेपर राज्यपरही स्थित जन उन २ प्रकारोंकी यातना भोगतेहैं जो चाण्डालोंकेभी योग्य नहीं है ॥ ७४ ॥ इसलिये हेरामजी ! संसारमें बन्धनकारिणी और सर्वरागमयी अविद्यारूप वासनाको छोडके स्फटिकके तुल्य रागरहित होके स्थितहो ॥ ७५ ॥ जैसे चित्रविचित्र प्रतिबिंबोंको ग्रहणकरतेहुयेभी स्फटिककी उनमें आसक्ति नहीं होती ऐसेही व्यवहार करतेहुयेभी तुमारी रागादिविषयोंसें आसक्ति नहो ॥ ७६ ॥

विदितकौतुकसंघसमिद्धयायदिकरोषिसदैवसुशीलया ॥ वरधियागतप्राकृतिकक्रियस्तदसिकेनसहानुपमीयसे ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुऽवादे व्यथाकथितदोषपरिहारोपदेशोनामचतुर्दशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११४ ॥

अर्थ—निरतिशय आनन्दरूप परमकौतुक ब्रह्मको जिन्होंने जानलिया है ऐसे ब्रह्मवेत्ताओंके समाजमे वार २ विचारसे दृढ़तर ब्रह्माहंभावनाके निश्चयसे प्रदीप्त इसीसे सर्वत्र समदर्शन आदिसे सुशील आसक्तिरहित उत्तमबुद्धिसे यदि सदा व्यवहार करते हो तो अविद्याजनित जन्ममरणादि विकारशून्य नित्यमुक्तही तुम हो. और इस दशामें किस हरिहर वा ब्रह्माके साथ तुमारी उपमा नहीं होसकती ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे यथाकथितदोषपरिहारो नाम चतुर्दशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

रामचन्द्रजीको ज्ञान प्राप्त होनेसे आश्चर्य, मायाका स्वरूप और उसके नाशकी स्थिति और रामजीके प्रश्नसे राजा लवणको आपत्तिका कारण इस ११५ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ एवमुक्तोभगवतावसिष्ठेनमहात्मना ॥ रामःकमलपत्राक्षउन्मीलितइवाबभौ ॥ १ ॥ विकासितांतःकरणःशोभामलमुपाययौ ॥ आश्वस्तस्तमसिक्षीणेपद्मोऽर्कालोकनादिव ॥ २ ॥ बोधविस्मयसंजातसौम्यस्मितसिताननः ॥ दंतरश्मिसुधाधौतामिमांवाचमुवाचह ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुचित्रंपद्मोत्थैर्बद्धास्तंतुभिरद्रयः ॥ अविद्यमानायाविद्यातयासर्ववशीकृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकजी बोले–इसप्रकार भगवान् महात्मा वसिष्ठजीसे कहेहुये कमलके दलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजी कमलके सदृश विकसित होके शोभाको प्राप्त हुये ॥१॥ वसिष्ठके समाधानसे सन्तोषित और विकसित अन्तःकरणवाले रामजी ऐसी निर्मल शोभाको प्राप्त हुये जैसे अन्धकारके क्षीण होनेपर सूर्य्यके प्रकाशसे कमल ॥२॥ बोधजनित विस्मयसे सौम्य स्मित (मुसकिरान) उत्पन्न होनेसे गौरवर्ण मुखसे शोभित रामजी दांतोकी किरणरूपी अमृतसे धौत (धुली हुई) इस वाणीको बोले ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले--अहो ! आश्चर्य्य है ! कि कमलसे निकले हुये सत्रों (सूतों) से पर्वत बंधेहैं कि, अत्यन्त असती जो अविद्याहै उसने सबको वश करलिया ॥ ४ ॥

इदंतद्वज्रतांयातंतृणमात्रंजगत्त्रये ॥ अविद्ययापियन्नामासदेवसदिवस्थितम् ॥ ५ ॥ अस्याःसंसारमायायानद्यास्त्रिभुवनांगणे ॥ रूपंमदवबोधार्थंकथयानुग्रहात्पुनः ॥ ६ ॥ अन्योयत्संशयोयंमेमहात्मन्हदिवर्त्तते ॥ लवणोसौमहाभागःकिंनामापदमाप्तवान् ॥ ७ ॥ संश्लिष्टयोराहतयोर्द्वयोर्वादेहदेहिनोः ॥ ब्रह्मन्कइवसंसारीशुभाशुभफलैकभाक् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो तृण मात्र है वह तीनों लोकमें वज्र होगया कि अविद्याहीसे असत् भी सत्के समान आविर्भूत है ॥ ५ ॥ त्रिभुवनरूपी अंगणमें संसारकी माया रूपी नदीका स्वरूप अनुभव करके मेरे ज्ञानकी दृढ़ताके लिये पुनः वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ हे महात्मन् ! एक संशय और मेरे हृदयमें यह है कि महा भाग राजा लवणको किस निमित्तसे आपत्ति हुई ॥ ७ ॥ और लाह तथा काष्टके तुल्य मिलेहुये तथा मल्ल मेढोंके तुल्य ए दूसरेके धकादेनेवाले शरीर आत्मामेंसे शुभ अशुभ कर्म फलोंका भोक्ता मुख्य करके कौन है ॥ ८ ॥

लवणस्यतथादत्वातामापदमनुत्तमाम् ॥ किंगतश्चंचलारंभःकश्चासावैंद्रजालिकः ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ काष्ठकुड्योपमोदेहोनाकिंचनइहानघ ॥ स्वप्नालोकइवानेनचेतसापरिकल्प्यते ॥ १० ॥ चेतस्तुजीवतांयातंचिच्छक्तिपरिभूषितम् ॥ विद्यात्संसारसंरंभंकपिपोतकचंचलम् ॥ ११ ॥ देहीहिकर्मभाग्योहिनानाकारशरीरधृक् ॥ अहंकारमनोजीवनामभिःपरिकल्प्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और राजा लवणको उस महा आपत्तिको देकर वह चचल कार्योंका आरम्भ करनेवाला ऐन्द्रजालिक कौनथा और कहांगया ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पाप रहित रामजी ! काष्ट और कुड्य (भित्ति) आदिके समान यह देह कुछ नहींहै स्वप्नके प्रकाशके तुल्य चित्तने इसे कल्पित कियाहै ॥१०॥ और चित्शक्तिसे परिभुषित अर्थात् चिदाभासके अभिन्नताको प्राप्त, संसारमें भोक्ताका अभिमानी और वानरयुक्त नौकाके सदृश चंचल यह चित्तही जीवताको प्राप्त हुआ ऐसा जानना चाहिये देही कर्म फलोंका भागी अहंकार मन और जीव इत्यादि नामोंसे नाना शरीर धारण करनेसे कल्पित है ॥ ११ ॥ १२ ॥

तस्येमान्यप्रबुद्धस्यनप्रबुद्धस्यराघव ॥ सुखदुःखान्यनंतानिशरीरस्यनकानिचित् ॥ १३ ॥ अप्रबुद्धंमनोनानासंज्ञाकल्पितकल्पनम् ॥ वृत्तीरनुपतच्चित्राविचित्राकृतितांगतम् ॥१४॥ अप्रबुद्धंमनोयावन्निद्रितंतावदेवहि ॥ संभ्रमंपश्यतिस्वप्नेनप्रबुद्धंकदाचन ॥१५॥ अज्ञाननिद्राक्षुभितोजीवोयावन्नबोधितः ॥ तावत्पश्यतिदुर्भेदंसंसारारंभविभ्रमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस अज्ञानी चित्तको न कि ज्ञानीको ये अनन्त सुख दुःख होतेहैं न कि शरीरको ॥ १३ ॥ नानाप्रकारकी संज्ञाओंसे कल्पित कल्पना करनेवाला अज्ञानी मन चित्र विचित्र वृत्तियोंमें गिरता हुआ विचित्र आकारको प्राप्त हुआ है ॥१४॥ जब तक यह मन अप्रबुद्ध (अज्ञानी) है तभीतक निद्रित होके स्वप्नमें अनेक भ्रम देखता है और प्रबुद्ध मन कदापि नहीं ॥ १५ ॥ अज्ञान रूप निद्रासे क्षुभित यह जीव जबतक बोधित नहीं किया जाता तभी तक संसारके आरंभके अनेक भ्रमसे पूर्ण दुष्टभेदको देखता है ॥ १६ ॥

संप्रबुद्धस्यमनसस्तमःसर्वविलीयते ॥ कमलस्ययथाहार्ददिनालोकविकासिनः ॥ १७ ॥ चित्ताविद्यामनोजीववासनेतिकृतात्मभिः ॥ कर्मात्मेतिचयःप्रोक्तःसदेहीदुःखकोविदः ॥ १८ ॥ जडोदेहोनदुःखार्हेदुःखीदेह्यविचारतः ॥ अविचारोघनाज्ञानादज्ञानंदुःखकारणम् ॥ १९ ॥ शुभाशुभानांधर्माणांजीवोविषयतांगतः ॥ अविवेकैकदोषेणकोशेनेवहिकीटकः ॥ २० ॥

अर्थ—सम्प्रबुद्ध मनका हृदयस्थ सम्पूर्ण अन्धकार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे दिनके प्रकाशसे विकसित कमलका ॥ १७ ॥ चित्त, अविद्या मन जीव, वासना, और कर्मात्मा इत्यादि नामोंसे जो तत्व वेत्ताओं करके कहा गया है वही जीवात्मा विषय सम्बन्धी सुख दुःखका भोक्ता है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! जड़ यह देह दुःखके योग्य नहीं है किन्तु अविचारसे आत्मा दुःखी है घन (अधिक) अज्ञानसे अविचार होता है और अज्ञानही दुःखका कारण है ॥१९॥ केवल अविवेक मात्र दोषसे शुभ और अशुभ धर्मोंका विषय जीव इस प्रकार होगया है जैसे रेशमके कोशके कारण रेशमका कीड़ा ॥ २० ॥

अविवेकामयोन्नद्धंमनोविविधवृत्तिमत् ॥ नानाकाराविहारेणपरिभ्रमतिचक्रवत् ॥ २१ ॥ उदेतिगैतिहंत्यत्तियातिवल्गतिनिंदति ॥ मनएवशरीरेस्मिन्नशरीरंकदाचन ॥ २२ ॥ यथागृहपतिर्गेहेविविधंहिविचेष्टते ॥ नगृहंतुजडंरामतथादेहेहिजीवकः ॥ २३ ॥ सर्वेषुसुखदुःखेषुसर्वासुकलनासुच ॥ मनःकर्तृमनोभोक्तृमानसंविद्धिमानवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अविवेक रूपी रोगसे बंन्धा हुआ और अनेक वृत्ति सहित यह मन नाना प्रकारके आकारके विहारसे चक्रके तुल्य भ्रमण करताहै ॥ २१ ॥ इस शरीरमें मनही, न कि शरीर उदय होताहै, रोताहै, मारताहै, खाताहै, जाता है, गर्जताहै, और निंदा करताहै ॥ २२ ॥ जैसे गृहमें गृहका स्वामी विविध प्रकारकी चेष्टा करताहै, न कि जड गृह ऐसे ही हे रामजी ! इस शरीरमें जीव ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण सुख और दुःखोंमें तथा सम्पूर्ण कल्पनाओंमें मनही कर्ता और मनही भोक्ताहै किंबहुना मनुष्यकोही तुम मानस जानो ॥ २४ ॥

अत्रतेशृणुवक्ष्यामिवृत्तांतमिममुत्तमम् ॥ लवणोसौयथायातश्चंडालत्वंमनोभ्रमात् ॥ २५ ॥ मनःकर्मफलंभुंक्तेशुभंवाशुभमेववा ॥ यथैतद्बुद्ध्यसेनूनंतथाकर्णयराघव ॥२६ ॥ हरिश्चंद्रकुलोत्थेनलवणेनपुरानघ ॥ एकांतेनोपविष्टेनचिंतितंमनसाचिरम् ॥२७ ॥ पितामहोमेसुमाहात्राजसूयस्ययाजकः ॥ अहंतस्यकुलेजातस्तंयजेमनसामखम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे राजा लवण मनके भ्रमसे चाण्डालताको प्राप्त हुआ इस विषयके उत्तम वृत्तान्त तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ २५ ॥ शुभ हो वा अशुभ हो कर्मके फलका मनही भोक्ताहै जिस रीतिसे यह जानोगे उस दृष्टान्तको हे रामजी ! सुनों ॥२६॥ हे पापरहित रामजी ! पूर्वकालमें राजा हरिश्चन्द्रके कुलमें उत्पन्न राजा लवणने बैठेहुये एक बात को मनसे चिरकालतक चिन्तन किया ॥ २७ ॥ कि अति महान मेरा पितामहाराजसूययज्ञका याजक था मैं उसके कुलमें उत्पन्न उस यज्ञको मन (बाह्य सामग्रीके अभावसे वा राजादिककी पीडाका निमित्त होनेसे मंत्री आदिका असम्मतिसे) सेही करूं ॥ २८ ॥

इतिसंचिंत्यमनसाकृत्वासंभारमादृतः ॥ राजसूयस्यदीक्षायांप्रविवेशमहीपतिः ॥ २९ ॥ ऋत्विजश्चाह्वयामासपूजयामाससन्मुनीन् ॥ देवानामंत्रयामासज्वालयामासवावकम् ॥ ३० ॥ यथेच्छंयजमानस्यमनसोपवनांतरे ॥ ययौसंवत्सरःसाग्रोदेवर्षिद्विजपूजया ॥ ३१ ॥ भूतेभ्योद्विजपूर्वेभ्योदत्वासर्वस्वदक्षिणाम् ॥ विबुद्धयतदिनस्यांतेस्वएवोपवनेनृपः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसा चिन्तन करके आदर संयुक्त मनसे सब सामग्रीको एकत्र करके वह राजा राजसूय यज्ञकी दीक्षा में प्रविष्ट हुआ ॥ २९ ॥ ऋत्विजोंको बुलाया उत्तम मुनियोंकी पूजाकी देवताओंका आमन्त्रण किया और हविष द्वारा अग्निको प्रज्वलित किया ॥ ३० ॥ वाटिका के मध्यमें मनसे अपनी इच्छा पूर्वक यज्ञ करते हुये देवर्षि तथा द्विजोंकी पूजासे समग्र वर्ष बीत गया ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण आदि प्राणियोंको सर्वस्व दक्षिणा देके अपने बाटिकामें उस राजाने बाह्य दृष्टि प्राप्त किया अर्थात् मानसी यज्ञसे जाग्रत हुआ ॥ ३२ ॥

एवंसलवणोराजाराजसूयमवाप्तवान् ॥ मनसैवहितुष्टेनयुक्तंतस्यफलेनच ॥ ३३ ॥ अतश्चित्तंनरंविद्धिभोक्तारंसुखदुःखयोः ॥ तन्मनःपावनोपायेसत्येयोजयराघव ॥ ३४ ॥ पूर्णेदेशेसुसंपूर्णःपुमान्नष्टेविनश्यति ॥ देहोहमितियेषांतुनिश्चयस्तैरलंबुधाः ॥ ३५ ॥ उच्चैर्विवेकवतिचेतसिसंप्रबुद्धेदुःखान्यलंविगलितानिविविक्तबुद्धेः भास्वत्करप्रकटितेनुपद्मखंडेसंकोचजाड्यतिमिराणिचिरंक्षतानि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे सुखदुःखभोक्तृत्वोपदेशोनामपंचदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११५ ॥

अर्थ—इस प्रकार उस राजाने राजसूय यज्ञको सन्तुष्ट मनसेही प्राप्त किया तो उस यज्ञका फल भी उसी

को प्राप्त होना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस लिये सुख और दुःख का भोक्ता चित्तकोही तुम नर जानो और उस मनको विचारसे निरोधादिसे शोधन करके सत्य उपायमें हे रामजी! युक्त करो मनही क्रिया शक्तिकी प्रधानतासे कर्ता करण और क्रिया है और वही क्रिया सुख दुःखादि रूपसे परिणत उसका फल है और मनही चिदाभासकी व्याप्तिसे चित्तशक्ति की प्रधानतासे भोक्ता और भोगभी है इस से कर्ता भोक्ता का प्रवाह ही माया रूप नदीका स्वरूप है यह प्रथम प्रश्नका उत्तर भी होगया ॥ ३४ ॥ हे बुधसम्यगण ! यह मनरूप पुरुष देशकाल और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य स्वात्माकार को देनेवाले आलम्बनमें प्रतिष्ठित होनेसे परिपूर्ण होजाताहै और नित्य नश्वर परिक्षिन्न देहादि देशका आलम्बन करनेसे नष्ट होजाताहै इस लिये हम देह हैं यह नश्वर अहंभावका जिनको निश्चयहै उनसे इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३५ ॥ शास्त्र तथा आचार्य द्वारा सम्यग विचार से सार असारका (दृढ) विवेकवान् मैं नश्वर देहादि नहीं किन्तु पूर्णानंद स्वप्रकाशैक रूप ब्रह्म हूं इस प्रकार सम्यक् प्रबुद्ध चित्तमें होनेपर ब्रह्मीभूत बाधित बुद्धि बृत्ति अधिकारीके सम्पूर्ण दुःख स्वयं नष्ट होजाताहै अथार्त् पुनः कदापि नहीं होते क्योंकि कमलोंके खण्डमे सूर्य्यके किरणोंके प्रकाशित होनेपर कोश दलका संकोच तुषारकी म्लानता और कोशके अन्तर तथा बाह्य देशका अन्धकार सब चिरकालके लिये नष्ट होजाते हैं ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे
सुखदुःख भोक्तृत्व कथनंनाम पञ्चदशोत्तर शततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

चतुर्थ प्रश्नके समाधानमें पूर्व वर्णित अर्थके दृष्टान्तसे योगकी भूमिकाओंका अवतरण इस ११६ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ राजसूयफलंप्राप्तंलवणेनकिलप्रभो ॥ प्रमाणंकिमिवात्रस्यात्कल्पनाजालशम्बरे ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदाशांबरिकःकालेसंप्राप्तोलावर्णीसभाम् ॥ तदाहमवसंतत्रतत्प्रत्यक्षेण दृष्टवान् ॥ २ ॥ अहंसभ्यैस्ततस्तत्रगतेशांबरिकर्मणि ॥ किमेतदितियत्नेनपृष्टश्चलवणेनच ॥ ३ ॥ चिंतयित्वामयादृष्टातत्रतत्कथितंततः ॥ शृणुतत्तेप्रवक्ष्यामिरामशांबरिकेहितम् ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हेप्रभो ! राजा लवणने चाण्डाल भाव आदि कल्पना रूप ऐंद्रजालिकसे देखाहुये जालमें राजसूय यज्ञका फल पाया इसमें क्या प्रमाण है ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिसकालमें शाम्बरिक वा ऐन्द्रजालिक (बाजीगढ़) राजा लवणकी सभामें प्रविष्ट हुआ उस समय मैं वहांथा और प्रत्यक्ष रीतिसे मैंने सब देखा ॥ २ ॥ जब ऐन्द्रजालिक कर्म समाप्त हुआ और वह इन्द्रजालका कर्ताभी चलागया तब सब सभासदोंने तथा राजा लवणने भी बड़े यत्नके साथ मुझसे पूंछा कि यह क्या है ॥ ३ ॥ तबमैं चिन्तन करके योग बलसे देखा उसके पश्चात् उनसे सब कहाभी सो हे रामजी ! उस शाम्बरिकका अभिप्राय तुमसे कहताहूं तुम सुनो ॥ ४ ॥

राजसूयस्यकर्तारोयेहितेद्वादशाब्दिकम् ॥ आपद्दुःखंप्राप्नुवंतिनानाकारव्यथामयम् ॥ ५ ॥ अतःशक्रेणगगनाद्दुःखायलवणस्यसः ॥ प्रहितोदेवदूतोहिरामशांबरिकाकृतिः ॥ ६ ॥ राजसूयक्रियाकर्तुस्तस्य दत्वामहापदम् ॥ अगच्छत्सनभोमार्गंसुरसिद्धनिषेवितम् ॥ ७ ॥ तस्मात्प्रत्यक्षमेवैतद्रामनात्रसंदेहोस्तिमनोहिविलक्षणानांक्रियायांकर्तृभोक्तृचतदेवनिघृष्यसंशोध्यचित्तरत्नमिहहिमकणमिवातपेन विलीनतांविवेकेननीत्वापरंश्रेयःप्राप्स्यसि चित्तमेवसकलभूताडंबरकारिणीमविद्यांविद्धिसा विचित्रकेंद्रजालवशादिदमुत्पादयति अविद्याचित्तजीवबुद्धिशब्दानांभेदोनास्तिवृक्षतरुशब्दयोरिव ॥ इतिज्ञात्वाचित्तमेवाविकल्पनंकुरु अभ्युदितेचित्तवैमल्यार्कविंबेसकलंकविकल्पोत्थदोषतिमिरापहरणं नतदस्तिराघवयन्नदृश्यतेयन्नात्मीक्रियतेयन्नपरित्यज्यतेयन्नम्रियतेयन्नात्मीयंयन्नपरकीयंसर्वंसर्वदासर्वोभवतीतिपरमार्थः ॥ ८ ॥

अर्थ—राजसूय यज्ञके कर्ता नानाप्रकारकी व्यथा मय आपत्तिका दुःख १२ वर्ष पर्य्यन्त पातेहैं ॥ ५ ॥ इस लिये हे रामजी! इन्द्रने राजा लवणको दुःखदेनेके अर्थ आकाशसे ऐन्द्रजालिक रूपमें दूत भेजा था ॥ ६ ॥ वह दूत राज सूययज्ञके कर्ता, राजा लवणको महा आपत्ति अर्थात् ६० वर्षकी (शारीरिक यज्ञकी अपेक्षा मानसिकका पंच गुण अधिक सुखदुःख होताहै इससे १२ का पांच गुण ६० वर्ष) की देके देवता तथा सिद्धोंसे सेवित आकाश मार्गसे

चला गया ॥ ७ ॥ इसलिये हे रामजी! यह प्रत्यक्षही है इसमें कुछ सन्देह नहीं है, मनही विलक्षण क्रियाओंका कर्ता और भोक्ता है उसी चित्त रूपी रत्नको हठयोगसे घर्षण करके ओर राजयोगसे शोधन करके तथा निर्विकल्प समाधिसे ऐसे विलीनताको प्राप्त करके जैसे आतपसे हिमकणिका, तब तत्व साक्षात्कार रूप विवेकसे मोक्ष रूप कल्याणको प्राप्त होओगे इस चित्तकोही तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी आडम्बर कारिणी अविद्या जानो, वही अविद्या विचित्र इन्द्रजाल केवश इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती है, और वृक्ष और तरु शब्दोंके समान अविद्या, चित्त जीव और बुद्धि आदि शब्दोंका भेद नहीं है, ऐसा जानकर चित्तकोही कल्पना रहित करो ? क्योंकि जब चित्तकी विमलता रूप सूर्य्यका प्रतिबिम्ब उदय होगा तब सम्पूर्ण अन्धकारका नाश होजायगा कदाचित् यह कहोकि अपने चित्तके लयसे वा अपनी अविद्याके नाशसे अपनी अविद्याके कार्य्यकीही निवृत्ति होगी न कि सबके अदृष्टसे उत्पन्न अविद्याके कार्य्यकी क्योंकि उनका कारण अपना चित्त आदि नहीं हैं क्योंकि सभी सबके अदृष्टका कार्य्य और सबका सब पदार्थ उपभोग्यभीहै इसलिये हे रामजी ! ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सर्वात्मको स्वात्म दर्शनसे न देखपड़े जो सब आत्मीय न होजाय, जो परित्यक्त नहो, और जो मारित न हो और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो आत्मीय और परकीयँ न हो, सब सर्वदा सर्व रूपहीताहै यह परमार्थ है ॥ ८ ॥

भावराशिस्तथाबोधःसर्वयात्येकपिंडताम् ॥ विचित्रमृद्भांडगणोयथाऽपकोजलेस्थितः ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंमनःपरिक्षयेसकलसुखदुःखानामंतःप्राप्यतइतिभवताप्रोक्तंतत्कथंमहात्मंश्चपलवृत्तिरूपस्यास्यमनसोसत्ताभवति ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रघुकुलेंदोशृणुमनःप्रशमनेयुक्तियां ज्ञात्वास्वस्वाचारदूरेमनःसंधिरयमेष्यसि ॥ ११ ॥ इहहितावद्ब्रह्मणःसर्वभूतानांत्रिविधोत्पत्तिरितितत्पूर्वोक्तम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब यह दृश्य प्रपंच, और उस सम्पूर्ण दृश्यका विचित्र ज्ञान तथा उन उपहित जो सब जीव ये सब एक पिण्डता अर्थात् ब्रह्मैकरूपता ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे जलमें चित्रविचित्र मृत्तिकाके वर्तनोंका समूह ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—पूर्वोक्त रीतिसे मनका नाश होनेसे सम्पूर्ण सुख और दुःखोंका अन्त प्राप्त होता है यह आपने कहा तो चंचल वृत्ति इस मनकी ब्रह्म सत्ता कैसे होती है ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुकुल चन्द्र-रामजी ! मनके प्रश्ननमें युक्ति सुनो जिसको जानके बाह्यदेशमें प्रचारवाली इन्द्रियोंकी वृत्तिके संचारसे दूरवर्ती ब्रह्ममें मनके सन्धानसे लय (मनका) प्राप्त करोगे ॥ ११ ॥ इस ब्रह्माण्डमें सात्विक राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारकी सृष्टि सब भूतोंकी ब्रह्मसे होती है यह पूर्व प्रसंगमें कहा है सो स्मरण करो ॥ १२ ॥

तत्रेदंप्रथमयामनःकल्पनयादेहीतिसाब्रह्मरूपिणीसंकल्पमयीभूत्वायदेवसंकल्पयतितदेवपश्यतिते नेदंभुवनाडंबरंकल्प्यते ॥ १३ ॥ तत्रजननमरणसुखदुःखमोहादिकंसंसरणंकल्पयंतीकल्पानुरचना बहुनाममंथरंस्थित्वास्वयंविलीयतेहिमकणिकेवातपगता ॥ १४ ॥ कालोदितःसंकल्पवशात्पुनरन्य तयाजायतेसापुनर्विलीयतेपुनरप्युदेतिसैवेत्तिभूयोभूयोनुसंसरंतीस्वयमूपशाम्यति ॥ १५ ॥ इत्थमनंताब्रह्मकोटयोऽस्मिन्ब्रह्मांडेऽन्येषुचसमतीताभविष्यंतीतिसंतिचेतराअनंतायासांसंख्यापिनविद्यते १६

अर्थ—उसमें आदि हिरण्यगर्भरूप मनः कल्पनासे मैं चतुर्मुखाकार देहवान हूं यह ब्रह्मा रूप धारिणी संकल्पमयी होके सत्यसंकल्पसे जो कुछ संकल्प करता है अर्थात् अपनेको चतुर्मुख देखता है, और वही चतुर्मुख ब्रह्मा इस भुवनोंके आडम्बरकी कल्पना करता है ॥ १३ ॥ उसी अपने समष्टि मनमें अस्मदादिके जन्ममरण सुख दुःख रूप संसरणशील संसारको कल्पती हुई और चतुर्भुज सहस्रप्रमाण कल्परूप अपने दिनोंमें, उन २ दिनों और ब्रह्माण्डोंके अनुकूल रचित देवता असुर और मनुष्यादिके बहुत नामोंसे गुरुतर (अधिकता) कालपूर्वक स्थित होके शेषशायी विष्णुभगवान्में स्वयं ऐसे लीन होजातीहै जैसे आतप (घाम) प्राप्त हिमकणिका अपने कारणीभूत तेजमें लीन होती है, इसी समष्टिरूप मनकी लीनतासे अस्मदादिके मनकी लीनताभी गतार्थ है ॥ १४ ॥ और पुनः सृष्टिकालमें भगवान्के नाभीकमलसे प्रगट होके पुनः कल्पान्तर वा सर्गान्तरकी कल्पनाकी इच्छासे वही पूर्वकालकी कल्पना उत्पन्न होती है अर्थात् चतुर्मुखरूप धारण करके सब संसारकी रचना करतीहै और पुनः लय होतीहै इसी प्रकार वार२ संसारकी कल्पना करती द्विपरार्द्धके अन्तमें अधिकार समाप्त होनेपर समूल आपही शान्त होजाती है ॥ १५ ॥ इस प्रकार इस ब्रह्माण्डमें तथा अन्य ब्रह्माण्डोंमें अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि होगई होंगी, और हैं; और ब्रह्माण्डके अन्तर्गत एक २ परमाणुमेंभी अनन्त ब्रह्माण्ड कोटिहैं जिनकी संख्याभी नहीं ॥ १६ ॥

एवमस्यांतादृशिवर्त्तमानायामीश्वरादागत्यजीवोयथाजीव्यतेविमुच्यतेतत्छृणु ॥ १७ ॥ ब्रह्मणोमनः शक्तिरभ्युदितापुरःस्थिताकाशशक्तिमवलंब्यतत्रस्थपवनतानुपातिनीघनसंकल्पत्वंगच्छति ॥ १८ ॥ ततःपुरःप्राप्तभूततन्मात्रपंचकतामेत्यांतःकरणतांनीत्वासात्वसूक्ष्माप्रकृतिर्भूत्वागगनपवनतेजोरूप तासंकल्पात्प्रलेयरूपतामुपेत्यशाल्योषधिविशंतीप्राणिनांगर्भतांचगच्छति ॥ १९ ॥ जायतेतस्मात्त तःपुरुषःसंपद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट परमात्मामें वर्तमान इस समष्टि मनकी कल्पनामें व्यष्टि जीव जैसे जीता है और मुक्त होता है वह सुनो ॥ १७ ॥ प्रलयकालमें उपाधियोंके विलय होनेसे अव्याकृतमें लीन जीवोंके संस्कार मात्रसे शेष मनकी शक्ति, प्रथम अव्याकृतसे शब्द तन्मात्रा रूप आकाश शक्तिके आविर्भाव होनेपर, सम्मुख स्थित प्रथम उत्पन्न उसी आकाश शक्ति स्पर्श तन्मात्राके उत्पन्न होनेपर उसमें स्थित जो पवनता उसका अनुसरण करती हुई किंचित् चलन योग्यता रूपहोके धन संकल्पको प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ उसके पश्चात् सम्मुख स्थित रूप रस और गन्ध तन्मात्राकी उत्पत्तिके क्रमसे अपञ्चीकृत पंचभूत रूपहोके पश्चात् मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार स्वरूप अन्तःकरण दशाको प्राप्त होके वही पूर्वोक्त मनकी शक्ति वृद्धिको प्राप्त होके पंचीकृत स्थूल पंचभूतकी प्रकृति होतीहुई, पंचीकृत आकाश वायु, तेज, जल; पृथिवी; रूपताके संकल्पसे क्रमसे हिम कुहिरा और वृष्टि आदि जल रूपताको प्राप्त होके, धान; गोधूम आदि औषधि (सस्य) में प्रवेश करती हुई अन्न रूपताको पहुंचतीहै; और पुरुषोंसे भुक्तहोके वीर्य्य होके स्त्रीकी योनिमें स्थित होके कलल बुद्बुद आदि क्रमसे प्राणियोंकी गर्भ दशाको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ और उस गर्भसे उत्पत्ति होती है; और उसी जन्मके कदाचित् अधिक सुकृत होनेसे कर्म तथा ज्ञानका अधिकारी पुरुष उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

तेनपुरुषेणजातमात्रेणैवबाल्यात्प्रभृतिविद्याग्रहणंकर्त्तव्यंगुरवोनुगंतव्याः ॥ २१ ॥ ततःक्रमात्पुंसस्त वेवचमत्कृतिर्जायते ॥ २२ ॥ स्वच्छदृशाचित्तवृत्तेःपुरुषस्यहेयोपादेयविचारउत्पद्यते ॥ २३ ॥ तादृ ग्विवेकवतिसंकलिताभिमानेपुंसिस्थितेविमलसत्वमयाग्र्यजातौ॥ सप्तात्मिकावतरतिक्रमशःशिवाय चेतःप्रकाशनकरीननुयोगभूमिः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे साधकजन्मावतारोनामषोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

अर्थ—उस पुरुषको उचितहै कि उत्पन्न होनेके पश्चात् बाल्याऽवस्थासे लेके विद्या ग्रहण करै; और तत्व वेत्ता गुरुओंके शरणमें जाय ॥ २१ ॥ उससे क्रमसे विवेक वैराग्य आदि साधन सम्पत्ति रूप चमत्कृति तुमारे सदृश होती है ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् चित्तकी वृत्तिकी शुद्ध दृष्टिसे पुरुषको अनर्थ भूत संसार त्याज्य है और मोक्ष ग्राह्य है ऐसा विचार उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ अनन्तर इस प्रकार विवेक संयुक्त; तथा विमल सत्व मय ब्राह्मण आदि जातिके अभिमानको स्वीकार करनेवाले अधिकारी पुरुषके स्थित होनेपर मोक्ष रूप कल्याणके अर्थ, ज्ञान द्वारा चित्तको प्रकाशित करनेवाली वक्ष्यमाण सप्त प्रकारकी योग भूमि क्रमसे उतरती है ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे साधक जन्माऽवतारोनाम षोड्शाधिक शततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

ज्ञानकी भूमिकाओंके उपोद्घातसे अथवा प्रसंगसे अज्ञानकी भी सप्त (सात) भुमिकाओंका वर्णन इस ११७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कीदृश्योभगवन्योगभूमिकाःसप्तसिद्धिदाः ॥ समासेनेतिमेब्रूहिसर्वतत्त्वविदांवर ॥ १ ॥ श्रीवासिष्ठउवाच ॥ अज्ञानभूःसप्तपदाज्ञभूःसप्तपदैवहि ॥ पदांतराण्यसंख्यानिभवंत्यन्यान्य थैतयोः ॥ २ ॥ स्वयत्नसाधकरसान्महासत्ताभरोन्नतेः ॥ एतेप्रतिपदंबद्धमूलेसंफलतःफलम् ॥ ३ ॥ तत्रसप्तप्रकारांत्वमज्ञानस्यभुवंशृणु ॥ ततःसप्तप्रकारांत्वंश्रोष्यस्यज्ञानभूमिकाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री रामजी बोले–हे भगवन् हे सर्व तत्व ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रभो ! सिद्धि को देनेहारी ज्ञानकी सप्त भूमिका कौन है यह मुझे संग्रह करके कहिये ॥ १ ॥ श्री वसिष्टजी बोले--हे रामजी ! अज्ञान की भूमिका के सप्त

पदहैं और ज्ञानकी भूमिका के भी सप्त (सात) ही पदहैं, और अन्य अवान्तर पद (भेद) इन दोनो भूमिकाओंके असंख्यातहैं ॥ २ ॥ स्वाभाविक प्रवृत्ति रूप पुरुषका प्रयत्न और विषय भोगमें रागकी दृढता रूप रसका अतिशय दोनों आज्ञानकी भूमिका की स्थितिमें असाधारण हेतुहैं, और शास्त्रीय साधन चतुष्टय सहित श्रवण मननादि प्रयत्न तथा मोक्षेच्छा रूप रसका आवेश ज्ञानकी भूमिका की प्रतिष्ठा (स्थिति) में असाधारण हेतुहै, और अधिष्ठान ब्रह्म-सत्ताके उत्कर्षके आधीन जो आत्म सत्ताका लाभ है वह दोनोंमें साधारण हेतुहै, इन हेतुओंसे ये दोनो भूमिका पद२ में बद्ध मूल होके अपने २ योग्य संसार की स्थिति दुःख तथा उससे मुक्ति रूप निरतिशय आनन्दकी प्राप्ति रूप फल देती है, और जैसे नीचेके भुवनोंकी सप्त भूमि उत्तर २ अधिक दुःखमयहैं, और ऊपरके भुवनो की सप्त भूमि ऊत्तर आधिक सत्व ज्ञानमयहैं ऐसेही इनको भी जानो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इन दोनों भूमिकाओंमें प्रथम तुम अज्ञान की सात प्रकार की भूमिका सुनो अनन्तर ज्ञानकी सात भूमिका सुनोगे ॥ ४ ॥

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्भ्रंशोऽहंत्ववेदनम् ॥ एतत्संक्षेपतःप्रोक्तंतज्ज्ञत्वाज्ञत्वलक्षणम् ॥ ५ ॥ शुद्धस न्मात्रसंवित्तेःस्वरूपान्नचलंतिये ॥ रागद्वेषोदयाभावात्तेषांनाज्ञत्वसंभवः ॥ ६ ॥ यत्स्वरूपपरिभ्रंशा च्चेत्यार्थेचितिमज्जनम् ॥ एतस्मादपरोमोहोनभूतोनभविष्यति ॥ ७ ॥ अर्थादर्थांतरंचित्तेयातिमध्येहि यास्थितिः ॥ निरस्तमननायासौस्वरूपस्थितिरुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थिति रूप मुक्ति है और उस स्वरूपसे च्युत होके बाह्य विषय शरीर आदिमें अहंकार के अनुभवसे दुःख यही संक्षेपसे ज्ञान और अज्ञान भूमिकाओंके लक्षण है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! शुद्ध सन्मात्र ज्ञान स्वरूपसे जो चलायमान नहीं होते उनके राग द्वेषके उदय के अभावसे अज्ञानी होनेका सम्भव नहीं है ॥६॥ और जो स्वरूपसे च्युत होके विषय मात्र पदार्थमें चेतनका मग्न होनाहै इससे बढके महा अज्ञान न हुआ और न होगा ॥ ७ ॥ एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें चित्तके जानेपर मध्यम जो मननसे रहित अर्थात् पूर्व विषयसे प्रच्युत होके विषयान्तरके अनुभवसे पूर्व शुद्ध चेतनकी जो स्थिति है इसको स्वरूपावस्थिति कहतेहैं ॥ ८ ॥

संशांतसर्वसंकल्पायाशिलांतरिवस्थितिः ॥ जाड्यनिद्राविनिर्मुक्तासास्वरूपस्थितिःस्मृता ॥ ९ ॥ अ हंतांशेक्षतेशांतेभेदेनिःस्पंदतांगते ॥ अजडायाप्रकचतितत्स्वरूपमितिस्थितम् ॥ १० ॥ तत्रारोपित मज्ञानंतस्यभूमीरिमाःशृणु ॥ बीजजाग्रत्तथाजाग्रन्महाजाग्रत्तथैवच ॥ ११ ॥ जाग्रत्स्वप्नस्तथास्वप्नः स्वप्नजाग्रत्सुषुप्तकम् ॥ इतिसप्तविधोमोहःपुनरेवपरस्परम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण संकल्पोंसे वर्जित जडता (मूर्छा आदिकी जडता) तथा निद्रासे शून्य पाषाणके अन्तके सदृश जो चेतनकी स्थिति है उसको स्वरूपावस्थिति कहते हैं ॥ ९ ॥ तथा देहादिमें अहन्ता अंशके नष्ट होनेपर और चेष्टारहित भेदके शान्त होजानेपर जो चेतन रूपसे विकसित होता है उसीको स्वरूप कहते हैं ॥ १० ॥ उसी साक्षी चेतनमें अनादि कालसे अध्यस्त जो अज्ञान है उसकी इन भूमिकाओंको तुम सुनो, बीज जाग्रत् १ जाग्रत् २ महाजाग्रत् ३ ॥ ११ ॥ जाग्रत्स्वप्न ४ स्वप्न ५ स्वप्नजाग्रत् ६ और सुषुप्ति ७ यह सात प्रकारका अज्ञान है पुनः यह परस्पर ॥ १२ ॥

श्लिष्टोभवत्यनेकाख्यःशृणुलक्षणमस्यच ॥ प्रथमेचेतनंयत्स्यादनाख्यंनिर्मलंचितः ॥ १३ ॥ भविष्य च्चितजीवादिनामशब्दार्थभाजनम् ॥ बीजरूपंस्थितंजाग्रद्वीजजाग्रत्तदुच्यते ॥ १४ ॥ एषाज्ञप्तेर्नवाव स्थात्वंजाग्रत्संस्थितिंशृणु ॥ नवप्रसूतस्यपराद्यंचाहमिदंमम ॥ १५ ॥ इतियःप्रत्ययःस्वस्थस्तजाग्र त्प्रागभावनात् ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिजन्मांतरोदितः ॥ १६ ॥

मिलकर अनेक प्रकारकी होजाती है, अब तुम इसका लक्षण सुनो, सृष्टिके वा जाग्रत् अवस्थाके आदिमें माया शबलित चेतनसे, प्राणधारण आदि क्रियाओंसे भविष्य चित्त जीवादि शब्द अर्थोंका भागी और वक्ष्यमाण जाग्रत्का वीज जो प्रथम चेतन अर्थात् चिदाभास संवलितरूपहै उसीको वीज जाग्रत् कहतेहैं अर्थात् जाग्रत् अवस्थाके और सुषुप्तिके अन्तमें जो अज्ञानोपहित चेतनकी अवस्थाहै वही वीज जाग्रत है ॥ १३ ॥ १४ ॥ यह ज्ञप्तिकी नूतन अवस्थाहै अब तुम जाग्रत् संसारको सुनो, नूतन प्रसूत वीज जाग्रतके आगे यह स्थूल देह मै हूं और यह भोग्य समूह मेरा ॥ १५ ॥ इत्यादि जो प्रतीतिहै उसको जाग्रत् कहतेहैं क्योंकि उसमें पूर्वकालकी भावना नहींहै और यह शरीर वह शरीर सम्बन्धी गृहादि मैं यह वह धनादि मेरा, इत्यादि जाग्रत् प्रत्ययके जन्मके अनन्तर उदयको प्राप्त अथवा पूर्व जन्मके सजातीय संस्कारसे दृढरूपसे उदित ॥ १६ ॥

पविरःप्रत्ययःप्रोक्तोमहाजाग्रदितिस्फुरन् ॥ अरूढमथवारूढंसर्वथातन्मयात्मकम् ॥ १७ ॥ यज्जाग्रतोमनोराज्यंजाग्रत्स्वप्नःसउच्यते ॥ द्विचंद्रशुक्तिकारूप्यमृगतृष्णादिभेदतः ॥१८ ॥ अभ्यासात्प्राप्यजाग्रत्वंस्वप्नोनेकविधोभवेत् ॥ अल्पकालंमयादृष्टमेवंनोसत्यमित्यपि ॥ १९ ॥ निद्राकालानुभूतेर्थेनिद्रांतेप्रत्ययोहियः ॥ सस्वप्नःकथितस्तस्यमहाजाग्रत्स्थितेर्हृदि ॥ २० ॥

अर्थ—इसीसे अभ्यासके कारण स्थूल जैसे ब्राह्मणादि जन्मकी तुल्यतामें भी किसीको ब्राह्मणके योग्य कार्योंमें अधिक आग्रह और निपुणताकी अधिकता देख पडती हैं अर्थात् ऐहिक वा पूर्व जन्मके दृढ़ अभ्याससे स्थूल जो जाग्रत् प्रत्यय स्फुरित हो रहाहै उसीको महाजाग्रत् कहते हैं ॥ और अनभ्याससे अथवा अदृढ़ अभ्याससे जैसे राजा लवणका सर्वथा तन्मय होजाना ॥ १७ ॥ ऐसा जो जाग्रत्का मनो राज्यहै उसको जाग्रत् स्वप्न कहते हैं, दो चन्द्रका दर्शन, शुक्तिकारूप्य और मृगतृष्णा आदि सब इसी जाग्रत् स्वप्न अवस्था (भूमिका) के भेदहैं ॥१८॥ अभ्याससे जाग्रत् दशाको प्राप्त होजाताहै स्वप्न अनेक प्रकारका होताहै इसलिये यह जाग्रत् स्वप्न कहा गयाहै, अल्पकाल पर्य्यन्त मैंने देखा जो सत्य भी नहीं है ॥ १९ ॥ ऐसा जो निद्राके मध्यमें वा निद्राके अन्तमें निद्राकालमें अनुभूत अर्थमें प्रत्यय होताहै उसको स्वप्न कहते हैं, वह अज्ञ पुरुषके महाजाग्रत्के अन्तर्गत स्थूल शरीरके कण्ठसे लेके हृदय पर्य्यन्त नाडी प्रदेशमें होता है ॥ २० ॥

चिरसंदर्शनाभावादप्रफुल्लबृहद्वपुः ॥ स्वप्नोजाग्रत्तयारूढोमहाजाग्रत्पदंगतः ॥ २१ ॥ अक्षतेवाक्षतेदेहेस्वप्नजाग्रन्मतंहितत् ॥ षडवस्थापरित्यागेजडाजीवस्ययास्थितिः ॥ २२ ॥ भविष्यदुःखबोधाढ्यासौषुप्तीसोच्यतेगतिः ॥ एतेतस्यामवस्थायांतृणलोष्टशिलादयः ॥ २३ ॥ पदार्थाःसंस्थिताःसर्वेपरमाणुप्रमाणिनः ॥ सप्तावस्थाइतिप्रोक्तामयाऽज्ञानस्यराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—चिरकालदर्शन (जाग्रत्)के अभावसे अविकासित महान् शरीरवाला दृढ़ अभिमानसे वा चिरकालतक स्थायित्वकी कल्पनासे जाग्रत्के रूपसे वृद्धिको प्राप्त (जैसे हरिश्चन्द्रका द्वादश वर्षात्मक) महा जाग्रत्के पदको प्राप्त जो स्वप्न है उसको स्वप्न जाग्रत् कहते हैं यह शरीरके नष्ट और अनष्ट होनेपर भी होता है और पूर्वोक्त छहों अवस्थाको प्राप्त होके जीवकी जड़ रूपसे जो स्थिति है ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह भविष्य दुःखकी वासनाको बोध करानेवाली वासनासे पूर्ण सौषुप्ति सातवीं (सुषुप्ति) कहलातीहै, इस अवस्थामें तृणालोष्ट शिला आदि ये सम्पूर्ण ॥ २३॥ परमाणुके प्रमाणके समान पदार्थ स्थित रहते हैं हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त अवस्था मैंने वर्णनकी ॥ २४ ॥

एकैकाशतशाखात्रनानाविभवरूपिणी ॥ जाग्रत्स्वप्नश्चिरंरूढोजाग्रतावेवगच्छति ॥ २५ ॥ नानापदार्थभेदेनसविकासंविजृंभते ॥ अस्यामप्युदरेसंतिमहाजाग्रद्दशादशः ॥ २६ ॥ तासामप्यंतरेलोकोमोहान्मोहांतरंव्रजेत् ॥ अंतःपातिजलावर्त्तइवधावतिनौर्भ्रमम् ॥ २७ ॥ काश्चित्संसृतयोदीर्घस्वप्नजाग्रत्तयास्थिताः ॥ काश्चित्पुनःस्वप्नजाग्रज्जाग्रत्स्वप्नास्तथेतराः ॥ २८ ॥ अज्ञानभूमिरितिसप्तपदामयोक्तानानाविकारजगदंतरभेदहीना ॥ अस्याःसमुत्तरसिचारुविचारणाभिर्दृष्टप्रबोधविमलेस्स्वयमात्मनीति ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनंनाम सप्तदशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११७ ॥

अर्थ—नाना प्रकारके विभव और रूपवाली यह एक २ अनन्त शाखा मय होतीहै और चिरकालतक रूढ़ जाग्रत् स्वप्न जाग्रत् अवस्थाहीमें समाप्त होताहै ॥ २५ ॥ नाना पदार्थोंके भेदसे यह विकास सहित रूप धारण करती है, इस जाग्रत् दशाको प्राप्त जाग्रत् स्वप्न दशाके उदरमें महा जाग्रत् अनन्त प्रत्यय हैं ॥ २६ ॥ इन महा जाग्रत् दशा आदिके उदरमें भी जीव एक मोह (भ्रम) से दूसरे मोहको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे नदीके जलके अन्तर्गत आवर्तमें वर्तमान नौका एक भ्रमसे दूसरेमें प्राप्त हो ॥ २७ ॥ संसृति (संसार) दीर्घ कालतक स्वप्न जाग्रत् रूपसे स्थित हैं, और कोई पुनः स्वप्न जाग्रत्में स्वप्न जाग्रत् रूपसे स्थित हैं. और अन्य जाग्रत् स्वप्न रूपसे स्थित हैं ॥ २८ ॥ नाना प्रकारके अवांत्तर भेदोंसे हीन (निंदनीय) अर्थात् अवश्य त्याज्य यह आज्ञानकी सात प्रकारकी भूमि मैंने आपसे वर्णनकी उत्तम विचारोंसे ज्ञानसे निर्मल आत्मस्वरूपके दृष्ट होनेपर इस आज्ञान भूमिसे तुम स्वयं निकसेही हो ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्तेमोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अज्ञानभूमिकावर्णनंनामसप्तदशाधिक शततमःसर्गः॥ ११७ ॥

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

अपने लक्षणोंसें रूढ लक्षणों (यौगिक और रूढ दोनों लक्षणों) से मोक्षान्त सात प्रकार की ज्ञानकी भूमिका इस ११८ के सर्गमें भली भांति वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इमांसप्तपदांज्ञानभूमिमाकर्णयानघ ॥ नानयाज्ञातयाभूयोमोहपंकेनिमज्जसि ॥ १ ॥ वदंतिबहुभेदेनवादिनोयोगभूमिकाः ॥ ममत्वभिमतानूनमिमाएवशुभप्रदाः ॥ २ ॥ अवबोधंविदुर्ज्ञानंतदिदंसप्तभूमिकम् ॥ मुक्तिस्तुज्ञेयमित्युक्तंभूतिकासप्तकात्परम् ॥ ३ ॥ सत्यावबोधोमोक्षश्चैवेतिपर्यायनामनी ॥ सत्यावबोधोजीवोयंनेहभूयःप्ररोहति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्टजी बोले–हे पाप रहित रामजी ! अब तुम इस सात प्रकारकी ज्ञान भूमिका को श्रवण करो, इसके जाननेसे तुम पुनः अज्ञानरूपी पंकमें निमग्न नहीं होओगे ॥ १ ॥ वादी लोग बहुत भेदसे योगकी भूमिकाओंको कहते हैं परन्तु मेरे (वेदान्त सिद्धान्तमें) येही सिद्धिप्रद इष्टहैं ॥ २ ॥ अखण्ड स्वात्माकार वृत्तिमें आरूढ ब्रह्महीआज्ञानका निवर्त्तक होनेसे सप्त भूमिकारूप ज्ञानहै और सातो भूमिकासे परे मुक्तिज्ञेयहै ॥ ३ ॥ सत्य परमात्माका बोध और मोक्ष ये दोनो पर्य्याय वाचक नामहैं और जिस जीवको सत्यका ज्ञान होताहै वह पुनः इस संसार में नहीं आता ॥ ४ ॥

ज्ञानभूमिःशुभेच्छाख्याप्रथमासमुदाहृता ॥ विचारणाद्वितीयातुतृतीयातनुमानसा ॥ ५ ॥ सत्वापत्तिश्चतुर्थीस्यात्ततोसंसक्तिनामिका ॥ पदार्थाभावनीषष्ठीसप्तमीतुर्यगास्मृता ॥ ६ ॥ आसामंतेस्थितामुक्तिस्तस्यांभूयोनशोच्यते ॥ एतासांभूमिकानांत्वमिदंनिर्वचनंशृणु ॥ ७ ॥ स्थितःकिंमूढएवास्मिप्रेक्ष्येहंशास्त्रसज्जनैः ॥ वैराग्यपूर्वमिच्छतिशुभेच्छेत्युच्यतेबुधैः ॥ ८ ॥

अर्थ—शुभेच्छा १ अत्मज्ञान की प्रथम भूमिका कही गई है दूसरी विचारणा २ तीसरी तनुमानसा ॥ ५ ॥ चौथी सत्वापत्ति ४ पांचवी असंसक्ति ५ छठवी पदार्था भावनी ६ और सातवी तुर्य्यागा ७ कहीगई है ॥ ६ ॥ इन भूमिकाओंके अन्तमें मुक्ति स्थितहै जिसमें प्राप्तहोके प्राणी पुन: शोच नहीं करता, और इन भूमिकाओंका तुम लक्षण सुनो ॥ ७ ॥ मै मूढ़ क्यों बैठा हूं शास्त्र अर्थात् विचारित वेदान्त वाक्योंके साथ तथा सज्जन गुरुओंके साथ मेरा दर्शन (समागम) हो ऐसी जो वैराग्य पूर्वक इच्छाहै उसको पण्डित लोग शुभेक्षा कहते हैं ॥ ८ ॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् ॥ सदाचारप्रवृत्तिर्याप्रोच्यतेसातिचारणा ॥ ९ ॥ विचारणाशुभेच्छाभ्यामिंद्रियार्थेष्वसक्तता ॥ यात्रसातनुताभावात्प्रोच्यतेतनुमानसा ॥ १० ॥ भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेथेविरतेर्वशात् ॥ सत्यात्मनिस्थितिःशुद्धेसत्त्वापतिरुदाहृता ॥ ११ ॥ दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसंगफलेनच ॥ रूढसत्वचमत्कारात्प्रोक्तासंसक्तिनामिका ॥ १२ ॥

अर्थ—शास्त्र और सज्जनोंके सम्पर्कसे बैराग्य और अभ्यास पूर्वक जो सदाचार (श्रवण मननरूप) में प्रवृत्ति है उसको विचारणा कहते हैं ॥ ९ ॥ और विचारणा और शुभच्छासे जो इन्द्रियके विषय शब्द स्पर्शादिमें असक्तता है वह निदिध्यासनके कारण तनुमानसा कहीजाती है ॥ १० ॥ तीनों पूर्वोक्त भूमिकाओंके अभ्यासने बाह्यार्थसे चित्तमें चित्तकी वृत्तिकी विरामताके स्थैर्य्यके वशसे माया और उसके कार्य्य रूप अवस्थात्रयसे शोधित शुद्ध चेतनमात्रमें जो स्थिति है उसको सत्वापत्ति कहते हैं यह मन सत्व परमात्मरूपमें आपन्नहै इसलिये सत्वापत्ति अवन्र्थ संज्ञा है इस भूमिकामें स्थित प्राणी ब्रह्मवित् कहाताहै ॥ ११ ॥ चारो अवस्थाके अभ्याससे तथा बाह्याभ्यन्तर विषय-और उनके संस्कारोंके स्पर्शसे शून्य असंग रूप समाधिकी परिपाकता लक्षण फलके द्वारा वृद्धिको प्राप्त निरति शयानन्दरूप ब्रह्मात्म भाव साक्षात्कारसे जो दशा होती है वह असंसक्ति कहाती है क्योंकि इसमें अविद्या और उसके कार्य्योंकी संसक्ति नहीं होती ॥ १२ ॥

भूमिकापंचकाभ्यासात्स्वात्मारामतयादृढम् ॥ आभ्यंतराणांबाह्यानांपदार्थानामभावनात् ॥ १३ ॥ परप्रयुक्तेनचिरंप्रयत्ननार्थभावनात् ॥ पदार्थाभावनानाम्नीषष्ठीसंजायतेगतिः॥१४॥भूमिषट्कचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलंभतः ॥ यत्स्वभावैकनिष्ठत्वंसाज्ञेयातुर्यगागतिः ॥ १५ ॥ एषाहिजीवन्मुक्तेषुतुर्यविस्थेहविद्यते ॥ विदेहमुक्तिविषयस्तुर्यातितमतःपरम् ॥ १६ ॥

---

(१) आत्म साक्षात्कारकी उत्कृष्ट इच्छासे जो श्रवण मननमें प्रवृत्तिहै उसीको शुभेच्छा कहते हैं ।

(२) इस भूमिकामें स्थित ज्ञानी पुरुष ब्रह्म विद्वर कहा जाताहै

अर्थ—पांचों भूमिकाओंके अभ्याससे दृढ स्वात्मारामतासे, और बाह्य तथा अभ्यन्तर पदार्थोंकी अभावनासे ॥ १३ ॥ तथा देह यात्रामात्रकी सिद्धिके लिये अन्यकृत चिरकालके प्रयत्नसे पदार्थोंकी भावनासे जो अवस्था होतीहै वह छठी पदार्था भावनीनाम कहातीहै क्योंकि इसमें रागादिसे पदार्थोंकी भावना नहीं होती इस भूमिकामें स्थित ज्ञानी ब्रह्मविद् बरीयान् कहलाताहै ॥ १४ ॥ यही भूमिकाके चिरकालतक अभ्याससे और भेदकी अप्राप्तिसे जो केवल स्वभावमात्रमें निष्ठताहै उसकी सातवी तुर्य्यगा अर्थात् जाग्रतादि तीनों अवस्थासे निर्मुक्त केवल शिव अद्वैत तुर्य्य (चतुर्थ) ब्रह्मविद् वरिष्ठोमें जानेवाली कहलाती है ॥१५॥ हे रामजी ! यह तुर्य्यावस्था केवल जीवन्मुक्त पुरुषोंमेंहीहै और इसके अनन्तर विदेह मुक्तिका विषय तुर्य्यातीतपद इससे परेहै ॥ १६ ॥

येहिराममहाभागाःसप्तमींभूमिकांगताः ॥ आत्मारामामहात्मानस्तेमहत्पदमागताः ॥१७॥ जीवन्मुक्तानसज्जंतिसुखदुःखरसस्थितौ ॥ प्रकृतेनार्थकार्याणिकिंचित्कुर्वंतिवानवा ॥ १८ ॥ पार्श्वस्थबोधिताः संतःसर्वाचारक्रमागतम् ॥ आचारमाचरंत्येवसुप्रबुद्धवदक्षतम् ॥ १९ ॥ आत्मारामतयातांस्तुसुखयंतिनकाश्चन ॥ जगत्क्रियाःसुसंसुप्तान्रूपालोकाःस्त्रियोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो महाभाग इससप्तम भूमिकामें प्राप्त हुयेहैं वे महात्मा लोग आत्माराम (केवल अपने आत्मामें रमण करनेवाले) कहलातेहैं और वे ब्रह्मरूप महत् पदको प्राप्त होचुके ॥ १७ ॥ जो जीवन्मुक्त महात्मा गणहैं वे सुखदुःखरूप रसकी स्थितिमें निमग्न नहीं होते केवल देहयात्रामात्र अर्थके कार्य्य छठी सातवी भूमिकामें करतेभी और नहींभी करते ॥ १८ ॥ और निकटस्थ जनोंसे बोधित अपने वर्णाश्रमकी परम्परासे प्राप्त आचारको सम्पूर्ण रीतिसे आसंग रहित अवश्य करतेहैं ॥१९॥ हे रामजी! आत्मारामताके कारण उन जीवन्मुक्त पुरुषोंको जगत्की कोईभी क्रिया ऐसे नहीं सुखी करसकती जैसे सौन्दर्य आदिकी अधिकतासे शोभित स्त्रियां गाढी निद्रामें स्थित पुरुषोंको॥२०॥

भूमिकासप्तकंचैतद्धीमतामेवगोचरः ॥ नपशुस्थावरादीनांनचम्लेच्छादिचेतसाम् ॥ २१ ॥ प्राप्ताज्ञानदशामेतांपशुम्लेच्छादयोपिये ॥ सदेहावाप्यदेहावातेमुक्तानात्रसंशयः ॥ २२ ॥ ज्ञप्तिर्हिग्रंथिविच्छेदस्तस्मिन्सतिहिमुक्तता ॥ मृगतृष्णांबुबुद्ध्यादिशांतिमात्रात्मकस्त्वसौ ॥ २३ ॥ येतुमोहात्समुत्तीर्णानप्राप्ताःपावनंपदम् ॥ आस्थिताभूमिकास्वासुस्वात्मलाभपरायणाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ये सातों भूमिका केवल बुद्धिमान् पुरुषोंकेही विषयहैं न कि पशु स्थावर और म्लेच्छादि तुल्य देहमें जिनकी आत्मबुद्धि है ऐसे मनुष्योंके ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस ज्ञानदशामें जो प्राप्त है चाहे वे पशु म्लेच्छादि भी हों जैसे हनुमान प्रल्हाद आदि देह सहित हों वा अदेह हों वे भी मुक्त है इसमें कुछ संदेह नहीं हैं ॥२२॥ विषय और अज्ञान रूप ग्रन्थियोंका विच्छेदही ज्ञान है उसके होनेपर मुक्ति करतलमें स्थित है और वह पुरुष मृगतृष्णामें जल बुद्धि सुक्तिमें रूप्य बुद्धि जिसकी शान्त हो गई है उसके तुल्य ज्ञानीमात्र है अर्थात् उसको संसारी पदार्थ मृगतृष्णादिके तुल्य मिथ्या भासते हैं ॥ २३ ॥ जो पुरुष मोहसे तो पार होगये हैं और परमपावन निरतिशय पूर्णानन्दरूप विदेह कैवल्यको नही प्राप्त हुये हैं वे अपनी २ भूमिकाओंमें स्थित आत्म लाभमें परायणहैं ॥ २४ ॥

सर्वभूमिगताःकेचित्केचिद्द्वित्रैकभूमिकाः ॥ भूमिषट्कगताःकेचित्केचित्सप्तैकभूमिकाः ॥ २५ ॥ भूमित्रयगताःकेचित्केचिदंत्यांभुवंगताः ॥ भूचतुष्टयगाःकेचित्केचिद्भूमिद्वयेस्थिताः ॥ २६ ॥ भूम्यंशभाजनाःकेचित्केचित्सार्द्धत्रिभूमिकाः ॥ केचित्सार्द्धचतुर्भूगाःसार्धषड्भूमिकाःपरे ॥ २७ ॥ विवेकिनोनरालोकेचरंतइतिभूमिषु ॥ ग्रहायतनतापस्यदृशावेशेषुसंस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई योगी गण तो सब भूमिकाओंमें एकही जन्मसे प्राप्त होतेहैं कोई द्वो या तीन भूमिकातक पहुंचतेहैं कोई छः भूमिकातक पहुंचते हैं और कोई प्रथमसेही जैसे सनकादि सप्तम (तुर्य्यगा) भूमिकामें प्राप्त होजातेहैं ॥ २५॥ कोई तीसरी भूमिकातक पहुंचतेहैं कोई अन्तिम(सप्तम) भूमिकामें प्राप्त होगयेहैं कोई चार भूमिकातक प्राप्तहुये और कोई दोही भूमिकामें स्थितहैं ॥२६॥ कोई आधी वा चौथाई भूमिकाके भागीहैं कोई साढेतीन भागतक पहुंचेहैं कोई भूमिकाके साढेचार भागतक पहुंचेहैं और दूसरे साढे छः भागतक पहुंचेहैं ॥२७॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुषहै वे इन भूमिकाओंमें बिचरते हुये भूमात्माको आत्मदृष्टिसे ग्रहण करनेवाले बाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय और उनके विषय तथा उनके आधारभूत शरीरकृत आध्यात्मिकादि तापके बाधरूप आत्माके अन्तःप्रवेशनरूप उद्योगमे लगेहैं ॥ २८ ॥

(१) यद्यपि द्वितीय से आदिलेके चतुर्थ भूमिका पर्य्यन्त में ज्ञानके उदयसे मोहसे पार होगये तथापि प्रबल प्रारब्धके भोगसे विशेषसे निरतिशय पूर्णानन्द नहीं पाया ॥

तेहिधीराःसुराजानोदशास्वासुजयंतिये ॥ तृणायतेत्रदिग्दंतिवटाभटपराजयः ॥ २९ ॥ येतासुभूमिषु जयंतिहियेमहांतोवंद्यास्तएवहिजितेंद्रियशत्रवस्ते ॥ संम्राड्विराडपिचयत्रतृणायतेवैतस्मात्परंजगतिते समवाप्नुवंति ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्तेमोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणेभाषानुऽवादे ज्ञानभूमिकोपदेशोनामाष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८ ॥

अर्थ—हे रामजी! जो धीर पुरुष इस भूमिकाओंमें प्राप्त होके मनरूप शत्रुको जीततेहैं वेही सर्वोत्कृष्ट उत्तम राजा हैं और इस आत्मप्राप्तिरूप साम्राज्यमें दिशाओंके हस्तियोंका समूह और सम्पूर्ण शत्रु वीरोंका पराजय और उससे प्राप्त सातों द्वीपका राज्य सब तृणके तुल्यहैं ॥२९॥ हे रामजी ! जो इन सातों भूमिकाओंमें प्राप्त हैं वे महात्मागण वन्दनीय हैं क्योंकि उन्होंने अपने इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतलियाहै, और जिस सप्तम भूमिकामें सम्पूर्ण भूमण्डलका राजा तथा ब्रह्माजीभी तृणके समान हैं क्योंकि देवताओंके आनन्दकी परमावधि जो ब्रह्माका आनन्द है उससेभी परे विदेह कैवल्य सुखको इसी लोकमें वे प्राप्त करतेहैं ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे ज्ञानभूमिकोपदेशोनामाष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८॥

एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

मायिकरूपका निराशकर सन्मात्रके एकात्वका दर्शन और भूमिकाओंमें स्थिर करनेके लिये युक्ति इस ११९ के सर्गमें वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ऊर्मिकासंविदाहेमयथाविस्मृत्यहेमताम् ॥ विरौतिनाहंहेमेतितथात्माहंतया नया ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ऊर्मिकासंविदुदयःकथंहेम्नोयथामुने ॥ अहंताचात्मनइतियथावद्ब्रूहिमे प्रभो ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सतएवागमापायौप्रष्टव्यौनासतःसता ॥ अहंत्वमूर्मिकात्वंचसती तुनकदाचन ॥३॥ हेमहेम्यूर्मिकांचत्वंगृहाणेत्युदितोयदि ॥ यद्दीयतेसोर्मिकेणतत्तदस्तिनसंशयः॥४॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले-हे रामजी! जैसे सुवर्ण अपने स्वरूपमें कल्पित अंगुलियक (अंगूठी) बुद्धिसे अपनी सुवर्णताको भूलकर रोदन करै कि मैं सुवर्ण नहीं हूं इसी प्रकार इस अहन्तासे आत्मा अपना स्वरूप भूल कर रो रहाहै ॥१॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! सुवर्णमें जैसे अंगुलियक बुद्धि होती है और आत्मामें जैसे अहन्ता बुद्धि होती है वह युक्ति मुझें यथावत् कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! जो पदार्थ सत्है उसीकी उत्पत्ति तथा नाश पूछना चाहिये न कि असत्के आत्मामें अहन्ता और सुवर्णमें अंगुलियत्व यह कभी सत् नहीं है ॥ ३ ॥ सुवर्ण वा सुवर्णकी अंगूठी तुमलो ऐसा क्रैय (खरीद) करनेवालेसे मध्यस्थ पुरुषके कहनेपर वेचनेवाला जो पदार्थ (सुवर्ण) बहुमूल्यसे देताहै वही सत्यहै इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तत्प्रभोकिंस्यादूर्मिकात्वंतुकीदृशम् ॥ अनयैवार्थनिश्चित्याज्ज्ञास्यामिब्रह्मणोवपुः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रूपंराघवनीरूपमसतश्चेन्निरूप्यते ॥ तद्वंध्यातनयाकारगुणांस्त्वंसमुदाहर ॥ ६ ॥ ऊर्मिकात्वंमुधाभ्रांतिर्माययैषासत्स्वरूपिणी ॥ रूपंतदेतदेवास्याःप्रेक्षितायन्नदृश्यते ॥ ७ ॥ मृगतृष्णांभसिद्वींदावहंतारूपकादिषु ॥ एतावदेरूपंयत्प्रेक्ष्यमाणंनलभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—रामजी बोले-हे प्रभो! यदि ऐसा है तो अंगुलियकत्व कैसा और क्या है इसी अर्थके निश्चयसे मैं ब्रह्मका शरीर जानूंगा ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! यदि असत् पदार्थके रूपका निरूपण किया जाताहै तो तुम वन्ध्याके पुत्रका आकार और गुणका निरूपण तुम करो ॥ ६ ॥ हे रामजी ! सुवर्णमें जो ऊर्मिकात्व (अंगुठीपन) की कल्पना है यह मिथ्या भान्ति है ऐसेही संसारकी कल्पना करनेवाली यह माया मिथ्या भान्ति है यह असत् स्वरूपिणी है इसका रूप यही है कि यदि विचारपूर्वक देखाजाय तो कुछ नहीं देखपडती ॥ ७ ॥ मृगतृष्णाके जलमें, दो चन्द्रके दर्शनमें, और शुद्ध आत्माके आरोपका (आरोपणा) दि में यही इसका रूप है कि विचारपूर्वक देखो तो यह नहीं देख पडती ॥ ८ ॥

यःशुक्तौरजताकारंप्रेक्षतेरजतस्यसः ॥ नसंप्राप्नोत्यणुमपिकणंक्षणमपिक्वचित्॥९॥अपर्यालोकनेनैवस दिवासद्भिराजते ॥ यथाशुक्तौरजतताजलंमरुमरीचिषु ॥ १० ॥ यत्रास्तितत्रस्यनास्तित्वंप्रेक्ष्यमाणंप्रका

शते ॥ अप्रेक्ष्यमाणंस्फुरतिमृगतृष्णास्विवांबुधिः ॥ ११ ॥ असदेवचसत्कार्यकरंभवतिचस्थिरम् ॥ बालनांमरणायैववेतालभ्रांतिसंभ्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—जो शुक्तिमें रजताकार देख पडताहै वह कहीं क्षणभरके लिये भी कणमात्र भी नहीं प्राप्त होता ॥ ९ ॥ असत् यह सब मायाजाल जो विनाविचारे सत्के समान शोभित होरहाहै वह ऐसे है जैसे शुक्तिमें और मृगतृष्णामें जल ॥ १० ॥ जो पदार्थ नहीं है उसकी नास्तिता देखनेपर प्रकाशती है और नास्ति जो नहीं देख पडती वह रजत रूपसे ऐसे स्फुरती है जैसे मृगतृष्णामें जलकी बुद्धि ॥ ११ ॥ असत् भी स्थिरतापूर्वक कार्य्यकारी होताहै जैसे बालकोंके मरनेके लिये वेतालकी भ्रान्तिका संभ्रम ॥ १२ ॥

हेमतांवर्जयित्वैकांविद्यतेहेम्निनेतरत् ॥ ऊर्मिकाकटकादित्वंतैलादिसिकतास्विव ॥ १३ ॥ नेहास्ति सत्यंनोमिथ्यायद्यथाप्रतिभाव्यते ॥ तत्तथर्थक्रियाकारिबालयक्षविकारवत् ॥ १४ ॥ सद्वाभवत्वसद्वा पिसुरूढंहृदयेहियत् ॥ तत्तदर्थक्रियाकारिविषस्येवामृतक्रिया ॥ १५ ॥ परमैषैवसाविद्यामयैषासंसृ तिर्ह्यसौ ॥ असतोनिष्प्रतिष्ठस्ययदहंत्वस्यभावनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सुवर्णमें सुवर्णको छोड अन्य अंगुलियक कटक आदि ऐसे नहीं है जैसे रेत आदिमें तैल आदि ॥ १३ ॥ इस संसारमें न सत्य और न मिथ्याकी अर्थक्रिया कारिताका नियम है किन्तु जो पदार्थ अधिष्ठान सत्तामें जिसप्रकार आरोपित है उसका प्रतिभासही उसर अर्थक्रियाका कारक है जैसे बालकके लिये यक्षका विकार ॥ १४ ॥ चाहे सत् हो वा असत् परन्तु जो पदार्थ जिस भांति हृदयमें रूढ है वह वैसाही अर्थ क्रियाका हेतु है जैसे अमृतकी क्रिया विषसे ॥ १५ ॥ यही परम अविद्या माया और संसार है जो प्रतिष्ठा रहित असत् है उसमें अहन्ताकी भावना ॥ १६ ॥

हेम्न्यस्तिनोर्मिकादित्वमहंताद्यस्तिनात्मनि ॥ अहंताभाववस्त्वेवंस्वच्छेशांतेसितेपरे ॥ १७ ॥ नसनातनताकाचिन्नचकाचिद्विरिंचिता ॥ नचब्रह्मांडताकाचिन्नचकाचित्सुतादिता ॥ १८ ॥ नलोकां तरताकाचिन्नचस्वर्गादिताक्वचित् ॥ नमेरुतानासुरतानमनस्त्वंनदेहता ॥ १९ ॥ नमहाभूतताकाचि न्नचकारणताकाचित् ॥ नचत्रिकालकलनानभावाभाववस्तुता ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णमें अंगुलियकादि कुछ नहीं है ऐसेही आत्मामें अहन्तादि नहीं है क्योंकि स्वच्छ शान्त और निर्मल परब्रह्ममें अहन्ता असत् है न कि यथार्थमें ॥ १७ ॥ हे रामजी ! सनातनता अर्थात् सर्व कालका सम्बन्ध कुछ नहीं क्योंकि अतीत कालमें वह सनातनता कहांहै? ब्रह्माण्ड भी कोई वस्तु नहीं है और ब्रह्माकी पुत्रता अर्थात् प्रजा-पतिता भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! न अन्य लोकता, तथा स्वर्गादिता भी कोई पदार्थ नहीं है सु-मेरुता कोई वस्तु नहीं है न असुरता न मन सत्व और न देहता कुछ है ॥ १९ ॥ न महाभूतता कोई वस्तु है न कार-णता कुछ पदार्थ है त्रिकालकी कल्पना भी कुछ नहीं है और वस्तुगत भावाभावता भी कुछ नहीं है ॥ २० ॥

त्वत्ताहंतात्मतातत्तासत्तासत्तानकाचन ॥ नक्वचिद्भेदकलनानभावोनचरंजना ॥ २१ ॥ सर्वंशांतंनि रालंबंजगत्त्वंशाश्वतंशिवम् ॥ अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ॥ २२ ॥ नसन्नासन्नमध्यांतंनस र्वंसर्वमेवच ॥ मनोवचोभिरग्राह्यंशून्याच्छून्यंसुखात्सुखम् ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अवबुद्धंसमं ब्रह्मसर्वमेवमयाधुना ॥ तथापिभूयःकथयसर्गःकिमिवलोक्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! त्वत्ता, अहन्ता, आत्मतातत्तासत्ता और असत्ता भी कुछ नहीं है भेदकी कल्पना कुछ नहीं और राग तथा उसका कार्य्य आसक्ति भी कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस सर्व जगत्का पारमार्थिक रूप शान्त अधिष्ठान सत्तामात्र नित्य, शिव, अनामय आभास वर्जित् तथा नाम और कारण शून्य ॥ २२ ॥ उत्पत्ति तथा नाशके विकारसे रहित आदि अन्त और मध्य वर्जित कुछ नहीं और सब कुछ मन और वाणीका अविषय शून्य आकाशसे भी शून्य (विशालरूप) और ब्रह्माण्डान्तर्गत सब सुखोंसे सुखरूप ब्रह्म है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! सर्वत्र समरूप परब्रह्मको मैंने अब जानलिया तथापि कृपा करके यह कहिये कि ज्ञानसे अज्ञानके नष्ट हो-नेपर तन्मूलक अज्ञानका भी बाध होनेपर पुनः यह सृष्टि क्योंकर देख पडती है ॥ २४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परेशांतेपरंनामस्थितमित्थमिदंतया ॥ नेहसर्गोनसर्गाख्याकाचिदस्तिकदा चन ॥ २५ ॥ महार्णवांभसीवांबुसंस्थितापरमेश्वरे ॥ जलंद्रवत्वात्स्पंदीवनिस्पंदंपरमंपदम् ॥ २६ ॥ भाःस्वात्मनिवकचतिनकचत्येवतत्पदम् ॥ भासांतस्त्वंहिकचनंपदंत्वकचनंविदुः ॥ २७ ॥ अधऊर्ध्वं वर्जयित्वायथाब्धेरुदरेपयः ॥ स्फुरत्येवंपरेचित्त्वादिदंनानेवतत्परम् ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! परब्रह्म अपने स्वभावहीमें स्थित है वह उससे च्युत नहीं है इसप्रकार यह सृष्टि और उसकी आख्या (नाम) कदाचित् कोई भी इदन्ता रूपसे नहीं स्थित है किन्तु ब्रह्मस्वभावहीसे॥२५॥ जैसे जलस्वरूप महा समुद्रमें जल स्थित है ऐसेही सृष्टिकी आख्या परमात्मामें स्थित है इतना भेद है कि जल द्रवशील होनेसे गतिशील है और परमपद निस्पन्द अचल है ॥ २६ ॥ सूर्य्यादिकी दीप्ति स्वात्मामें प्रकाशित होरही है परन्तु परमपद नहीं प्रकाशता (सूर्य्यादिके सदृश) क्योंकि प्रकाश न सूर्य्यादिका स्वभाव है और वह पदतो भौत्तिक प्रकारसे रहितहै ॥ २७ ॥ जैसे ऊपर नीचेके सिवाय समुद्रके उदरमें जलही जल है ऐसेही परब्रह्मके स्वरूपमें नाना प्रकारके समान यह जगत् स्फुरित होताहै परन्तु यथार्थमें यह वही परब्रह्म है ॥ २८ ॥

इषद्विदःस्वयंचित्त्वाच्चेत्यतामिवगच्छति ॥ बुध्यतेसर्गइत्येवसमास्थास्यतिशाश्वतम् ॥ २९ ॥ सर्गस्त्वपरमार्थस्यसंज्ञेत्येवंविनिश्चयः ॥ नानास्तिनायमत्यंतमंबरस्ययथांबरम् ॥ ३० ॥ चित्तात्सर्गसमाप्तिरचित्तात्सर्गसंक्षयः ॥ परेपरमसंशांतेहेम्निवकटकभ्रमः ॥ ३१ ॥ सन्नेवसर्गोसत्यत्वमेतिचित्तशमोदये ॥ असत्सत्तामवाप्नोतिस्वतःसंवेदनोदये ॥ ३२ ॥

अर्थ—और जिसका बोध परिपक्व नहीं है उसको यह विषयके समान भान होता और सृष्टि ऐसा बोध भी होता है और बोधकी परिपक्वता दशामें वही सर्ग (सृष्टि) नित्य ब्रह्मतत्त्वरूपसे प्रतिष्ठित होगा ॥ २९ ॥ क्योंकि अज्ञानीसे दृष्ट यह नानाप्रकारका जगत् यथार्थमें सर्वथा नहींहै जैसे आकाशका दूसरा आकाश नहीं है इसी प्रकार परमार्थका दूसरा परमार्थ नहीं है तो सृष्टि यह परब्रह्मकी संज्ञा है यह निश्चय है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! चित्तकीही सत्तासे सृष्टिकी सम्यक् प्रकारकी प्राप्ति होती है और चित्तके सर्वथा परम शान्त ब्रह्ममें लय होनेसे सृष्टिका भी लय ऐसे होताहै जैसे सुवर्णमें कटकका ॥३१॥ चित्तकी शमताके उदय होनेपर परब्रह्मही सर्ग (सृष्टि) है और वही सत्यताको प्राप्त होताहै अर्थात् अधिष्ठान सत्तारूप भासताहै और चित्तके स्वतः उदय होनेपर असत् सत्ताको प्राप्त होताहै॥३२॥

संवेदनमहंतावत्सर्गसंभ्रमसंभ्रमः ॥ असंवेदनमाशांतंपरंविद्धिनतज्जडम् ॥ ३३ ॥ नानेवसर्गोनानायंज्ञस्यैकात्मशिवात्मकः ॥ पुंस्त्वकर्मक्रियासेनामृन्मयीशिल्पिनांयथा ॥ ३४ ॥ इदंपूर्णमनारंभमनंतमनघोदरम् ॥ पूर्णेपूर्णपरापूरैःपूर्णमेवावतिष्ठते ॥ ३५ ॥ यदयंलक्ष्यतेसर्गस्तद्ब्रह्मब्रह्मणिस्थितम् ॥ नभोनभसिविश्रांतंशांतंशांतेशिवेशिवम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अभिमान युक्त जो चिन्हहै वही सृष्टिसे भ्रमणकी भ्रान्त है और चित्तके शान्त होनेपर उस सृष्टिको तुम परब्रह्म स्वरूपही जानो न कि जड ॥ ३३ ॥ और ज्ञानीके भी समाधिके व्युत्थान दशामें नाना प्रकारके भेद रहित भी यह सर्ग नाना प्रकारके समान ऐसे भासतेहैं जैसे शिल्पियोंकी चतुरतासे रची मृत्तिकाकी सेना यथार्थमें मृत्तिका होती हुई भी सेनाके तुल्य भासतीहै ॥ ३४ ॥ ज्ञानियोंकी परमार्थ दृष्टिमें यह जगत् उत्पत्ति नाश रहित और अन्यके विकार दोषसे रहित उदर (मध्य) है जिसका ऐसा यह भान होताहै क्योंकि पूर्ण परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण परमात्मामे पूर्ण है, इसलिये पूर्ण परमात्माही अवशिष्टहै अणुमात्र भी अपूर्ण नहीं है ॥ ३५ ॥ और यह जगत् जो भान होताहै वह ब्रह्महीं ब्रह्ममें स्थित है जैसे आकाशमें आकाश विश्रान्त है ऐसेही शिवरूप परमात्मामें शिवरूप यह जगत्शान्त है ॥ ३६ ॥

मुकुरप्रतिबिंबस्थेनगरेनवयोजने ॥ यथादूरमदूरंचतथेशेतदतत्क्रमः ॥ ३७ ॥ असदभ्युदितंविश्वंसदप्यभ्युदितंसदा ॥ प्रतिभासात्सदाभासमवस्तुत्वादसन्मयम् ॥ ३८ ॥ आदर्शनगराकारेमृगतृष्णांबुभास्वरे ॥ द्विचंद्रविभ्रमाभासेसर्गेस्मिन्कैवसत्यता ॥ ३९ ॥ मायाचूर्णपरिक्षेपाद्यथाव्योम्निपुरभ्रमः ॥ तथासंविदिसंसारःसारोसारश्चभासते ॥ ४० ॥ यावद्विचारदहनेनसमूलदाहंदग्धानजर्जरलतेवबलादविद्या ॥ शाखाप्रतानगहनानिबहूनितावन्नानाविधानिसुखदुःखवनानिसूते ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे हेमोर्म्युपदेशोनामैकोनविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ ११९ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणके प्रतिबिम्बमें स्थित नौ ९ योजनके नगरमें दूरता और अदूरता दोनो है ऐसेही ब्रह्ममें दूरता और अदूरताका क्रम (परिपाटी) है ॥ ३७ ॥ अज्ञानियोंकी दृष्टिमें असत् जगत् उदयको प्राप्त है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो सदा सत् ब्रह्मही जगत्‌रूपसे उदित है क्योंकि अभेद प्रतिभाससे यह सदा भास है और भेद दृष्टिसे अवस्तु होनेसे असन्मय है ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! दर्पणके नगरके आकारके तुल्य मृगतृष्णाके जलके समान भा-

स्वर और दो चन्द्रके भ्रमके सदृश भासमान भला इस सृष्टिकी किस प्रकारकी सत्यता है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! जैसे ऐन्द्रजालिकोंके माया चूर्णके फेंकनेपर आकाशमें नगरकी भ्रान्ति होती है ऐसेही चेतन स्वरूपमें यह जगत् (संसार) सारभी और असार भी है अर्थात् अधिष्ठान रूपसे सत् और भिन्न रूपसे असत् है ॥ ४० ॥ हे रामजी ! जबतक विचाररूपी अग्निसे यह वासना सहित अविद्या रूपा जर्जर लता मूल सहित नहीं जलादीजाती तबतक शाखाओंकी वृद्धिसे अति गहन सुख दुःख रूपी अनेक बनोंको उत्पन्न करतीहै ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे हेमोर्म्युपदेशोनामैकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥११९ ॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

राजा लवणका पुनः विन्ध्याचल पर्वतपर जाके पूर्वदृष्ट शबरालयका देखना स्वप्नके संवादका वर्णन इस १२०के सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ हेमोर्मिकादिवन्मिथ्याकथितायाःक्षयोन्मुखम् ॥ त्वंमहत्त्वमविद्यायाःशृणुराघव कीदृशम् ॥ १ ॥ लवणोसौमहीपालस्तथादृष्ट्वातदाभ्रमम् ॥ द्वितीयेदिवसेगंतुंप्रवृत्तस्तांमहाटवीम् ॥ २ ॥ यत्रदृष्टंमयादुःखमरण्यानींस्मरामिताम् ॥ चित्तादर्शगतांविंध्यात्कदाचिल्लभ्यतेहिसा ॥ ३ ॥ इतिनिश्चित्यसचिवैःप्रययौदक्षिणापथम् ॥ पुनर्दिग्विजयायेवप्राप्यविंध्यमहीधरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सुवर्णमें अंगुलियकके समान मिथ्या इसप्रकारसे कहीहुई इस अविद्याका क्षयोन्मुख (क्षयकी ओर झुका हुआ) महत्व कैसा है सो तुम सुनो ॥१ ॥ यह पूर्वोक्त राजा लवण उस प्रकारके भ्रमको देख दूसरेही दिन उस महाजंगलमें जानेको प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ जहांपर महा दुःख मैंने देखाथा उस चित्तरूपी आदर्शमें प्राप्त महाअरण्यानी (महाजंगल)को मैं स्मरण करताहूं कदाचित् विन्ध्या पर्वतपर जानेसे मिल जाय ॥३॥ऐसा निश्चय करके दक्षिण मार्गमें मानों पुनः दिग्विजय करनेको गया और वहां विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर॥४॥

पूर्वदक्षिणपाश्चात्यमहार्णवतटस्थलीम् ॥ बभ्रामकौतुकात्सर्वांव्योमवीथीमिवोष्णगुः ॥ ५ ॥ अथैकस्मिन्प्रदेशेतांचितामिवपुरोगताम् ॥ ददर्शोग्रामरण्यानींपरलोकमहीमिव ॥ ६ ॥ सतत्रविहरंस्तांस्तां वृत्तांतान्सकलानथ ॥ दृष्टवान्पृष्टवांश्चैवज्ञातवांश्चविसिस्मिये ॥ ७ ॥ तान्परिज्ञातवांश्चासीद्व्याधान्पुल्कसजान्पुनः ॥ विस्मयाकुलयाबुद्ध्याभूयोबभ्रामसंभ्रमी ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्व दक्षिण, और पश्चिमकी महासमुद्रकी सब तटस्थलीमें कौतुकसे ऐसे भ्रमण किया जैसे आकाश मार्गमें सूर्य्य ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर एक स्थानमें चिन्ताके समान सन्मुख स्थित उस महाभयंकर अरण्यानीको ऐसे देखा जैसे परलोककी पृथिवीको ॥ ६ ॥ वह राजा वहांपर विचरते हुये वहांके उन २ पूर्वकालके अनुभूत सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको देखा पूंछा और जानकर आश्चर्यितभी हुआ ॥ ७ ॥ वह कौतुकी राजा उन सब चाण्डालोंको पुनः पहिचाना और विस्मयसे व्याकुल बुद्धिसे पुनः भ्रमण करनेलगा ॥ ८ ॥

अथप्राप्यमहाटव्यांपर्यंतेधूमधूसरे ॥ तमेवग्रामकंयस्मिन्सोभवत्पुष्टपुल्कसः ॥ ९ ॥ तत्रापश्यज्जनांस्तांस्तांस्ताः स्त्रियस्ताःकुटीरकाः ॥ नानाकारान्जनाधारांस्तांस्तांश्चवसुधातटान् ॥ १० ॥ तांश्चाकांडपरिभ्रष्टांस्तान्वृक्षांस्तांस्त्वनुव्रजान् ॥ तांस्तथैवसमुद्देशांस्तान्व्याधानेकलान्सुतान् ॥ ११ ॥ अन्यासुवृद्धासुसबाष्पनेत्रास्वार्त्तार्त्तियुक्तासुचवर्णयंती ॥ अकालकांतारविशीर्णबंधुदुःखान्यसंख्यानिसखीषुवृद्धा ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस महा जंगलके अन्तमें जो कि धूमधूलि आदिसे मलिनवर्ण होरहाथा वहांपर उसी ग्रामको देखा जहांपर राजा पक्का चाण्डाल होगयाथा ॥ ९ ॥ वहांपर उन पूर्व अनुभूत मनुष्योंको स्त्रियोंको झोपड़ोंको तथा नानाप्रकारके आकारधारी मनुष्योंको आधारभूत पृथिवीके तटोंकोभी देखा ॥ १० ॥ उन आकस्मिक दुर्भिक्षमें गिरेहुये वृक्षोंको तथा अपने अनुयायिओंको उसी प्रकार उन स्थानों और बन्धुवर्जित व्याधोंको तथा पुत्रोंको देखा ॥ ११ ॥ और अन्धवृद्धाओंके साथ अश्रु पूर्ण नेत्रवाली, वृद्धा इस राजाकी श्वश्रु (सास) अपनी २ विपत्तियुक्त अपनी सखियोंमें कुसमय अकालमें जंगलके दुःखसे छिन्नभिन्न जो बन्धुगण होगयेहैं उनके असंख्य दुःखोंके वर्णन करती हुई ॥ १२ ॥

वृद्धाप्रवृद्धोज्ज्वलनेत्रबाष्पाकष्टंबताशुष्ककुचाकृशांगी ॥ अवग्रहोग्राशनिदग्धदेशेतत्रार्तनादापरिरो दितीदम् ॥ १३ ॥ हापुत्रिपुत्रावृतसर्वगात्रेदिनत्रयाभोजनजर्जरांगी ॥ कृत्वासिनावर्मणिजीर्णदेहाः कथंकमुक्ताभवतासवस्ते ॥ १४ ॥ तालीदलालंबनमंबुदाद्रौदंतांतरस्थारुणसत्फलस्य ॥ स्मरामिगुंजाफलदामभर्तुःपुरस्थमुद्दामरहासिनस्ते ॥ १५ ॥ कदंबजंबीरलवंगगुंजाकुंजातरंतस्तुचरत्तरक्षोः॥ पश्यामिपुत्रस्यकदानुभूयोभयंकराण्युद्ध्यतिवल्गितानि ॥ १६ ॥

अर्थ—अन्य वृद्धाओंकी अपेक्षा अधिक बढगये हैं उज्वल नेत्र बाष्प (अश्रु) जिसके ऐसी, हा! खेद! शुष्क कुचको धारण किये हुये, अवृष्टिरूप भयंकर वज्रसे जले हुयेके समान उस देशमें आर्तनादसे ऐसी रोदन करती थी ॥ १३ ॥ हा पुत्रि! पुत्रोंसे सम्पूर्ण शरीर जिसका आच्छादितहै और तीन दिनके भोजनके अभावसे कृश शरीर वाली, तथा भोजनके न मिलनेसे जीर्ण है जिसका ऐसे प्राणसे भी प्रिय तुमारे पुत्रोंको अपने कोशमें तलवारके समान प्रवेश करके स्थित राजाने कैसे और कहांपर तुमको त्यागा ॥ १४ ॥ मेघके समान ऊंचे तालवृक्षपर फलको लेकर उतरते समय दोनों हांथोंके फंद जानेसे दांतोंसे धारण कियाहै पक्का उत्तम फल जिसने ऐसे तथा उस समयके उपस्थित वेषसे हनुमानको भी जीतनेवाले और उत्तम गुंजा (घुंघची) को धारण किये तुमारे पति (राजा) का उसी समय दैवयोगसे गिरनेसे दूसरे समीपस्थ तालकी शाखाका अवलम्बन रूप साहस मैं स्मरण करती हूं॥ १५ ॥ और कदम्ब जम्बीर लवंग और गुंजाके मध्यमें विचरते हुये तरक्षु (व्याघ्र जाति विशेष) के वधके लिये पुत्रसे भी प्रिय जामाता रूप पुत्रकी उड़के भयंकर गर्जनाओंको पुनः कब सुनूंगी ॥ १६ ॥

नतानिकामस्यविलासिनीहमुखेपिशोभालसितानिसंति ॥ तमालनीलेचिबुकैकदेशेस्तुतस्यचान्यास्य गतामिषस्य ॥ १७ ॥ हृतापनीतासहतेनभर्त्रायमेनयस्यायमुनासमाना ॥ तमालवल्लीसहपुष्पगुच्छा समीरणेनेववनेवरेण ॥ १८ ॥ हापुत्रिगुंजाफलदामहारेसमुन्नताभोगपयोधरांगी ॥ वातोल्लसत्कज्जल लोलवर्णपर्णाबरेबादरजंबुदंते ॥ १९ ॥ हाराजपुत्रेंदुसमानकांतसंत्यज्यशुद्धांतविलासिनीस्ताः ॥ रतिंप्रयातोसिममात्मजायांनसापितेसुस्थिरतामुपेता ॥ २० ॥

अर्थ—और कदाचित् मद्यपानादिके समयमें अपनी प्रिया (मेरी कन्या) के मुखसे प्राप्त (प्रेममें) मांस भोजी मेरे पुत्र (जामाता) के तमालके तुल्य श्मश्रुओं (दाढी) से नील कपोलके एक देशमें जो सोभाके विलास हैं वे कामदेवके विलासी सम्पूर्ण मुखमें भी नहीं है ॥ १७ ॥ उस उत्तम भर्ताके साथ यमुनाके साथ समान वर्णवाली मेरी पुत्रीको यम (काल) ऐसे लेगया जैसे पुष्प गुच्छाके साथ तमालकी लताको बनमें बलवान् वायु ॥ १८ ॥ गुंजा फलके मालाओंको धारण करनेहारी उच्च और विशाल स्तनयुक्त शरीरवाली, वायुसे शोभायमान कज्जलके तुल्य चंचल वर्णवाली पत्ररूपी चीन (मेही) वस्त्र धारण किये हुये तथा बेरके बीज वा जामुनके सदृश दन्तधारण करनेहारी पुत्रि हा ! ॥१९॥ हा राज पुत्र ! हा चन्द्रमाके समान सुन्दर मेरे जामात ! आप उन शुद्ध अन्तःपुरकी विलाशिनियोंको त्यागकर मेरी कन्या (चाण्डाली) के साथ रतिको प्राप्त हुये. वह भी तुमारी सुस्थिरताको नहीं प्राप्त हुई ॥ २० ॥

संसारनद्याःसुतरंगभंगैःक्रियाविलासैर्विहितोपहासैः ॥ किंनामतच्छंनकृतंनृपेशोयद्योजितःपुष्कस कन्यकायाम् ॥ २१ ॥ सात्रस्तसारंगसमाननेत्रासदृप्तशार्दूलसमानवीर्यः ॥ उभौगतावेकपदेननाश माशासहार्थेनयथामहेहा ॥ २२ ॥ मृतेश्वराश्वस्तनिजात्मजास्मिदुर्देशयातास्मिचदुर्गतास्मि ॥ दुर्जातिजातास्मिमहापदेस्मिसाक्षाद्भयंभोस्मिमहापदस्मि ॥ २३ ॥ नीचावमानप्रभवस्यमन्योःक्षुधाप्रसन्न स्यकलत्रकस्य ॥ शोकस्यवृत्तावनिवार्यवृत्तेर्नार्यस्म्यनेकायतनंविनाथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हास्यके योग्य तरंगोंके समान क्षणभंगुर संसार नदीके क्रिया विलासों (कर्मके परिपाकों)से चाण्डालकी कन्यामें युक्त राजाने कौनसा निन्द्यकर्म नहीं किया ॥ २१ ॥ भयभीत हरिणके समान नेत्रवाली वह मेरी कन्या और सिंहके सदृश पराक्रमी मेरा वह जामाता दोनोंही एक क्षणमें ऐसे नष्ट हुये जैसे धनके साथ महती (बड़ीभारी) अभिलाषा ॥ २२ ॥ हा भगवन् ! मैं इस समय पतिसे रहित, तथा पुत्रीसे रहितहूं अति दुष्ट देशमें उत्पन्न हूं दुर्दशासे ग्रस्त हूं दुष्ट जातिमें उत्पन्न हूं,अतिभयंकर स्थानमें पतित हूं,किंबहुना हे सखियो! अब में साक्षात भयरूपही हूं और आपत्ति रूपही हूं॥ २३ ॥ नाथ रहित मैं, नीचोंसे अपमानकी उत्पत्तिके स्थान कोपका तथा क्षुधासे प्राप्त पोष्य वर्गके आहारके अर्थ अनिवारणीय शोक इत्यादि अनेक आपत्तियोंका स्थान मैं स्त्रीरूप विधातासे बनाई गई हूं॥ २४ ॥

दैवोपतप्तस्यविबांधवस्यमूढस्यरूढस्यमहाधिभूमौ ॥ यत्प्राणनंयन्मरणंमहापद्यस्यात्मनिर्जीवितमुत्त मंतत् ॥ २५ ॥ जनैर्विहीनस्यकुदेशवृत्तेर्दुःखान्यनंतानिसमुल्लसंति ॥ सहस्रशाखारससंकुलानितृणा निवर्षास्विपर्वतस्य ॥ २६ ॥ एवंलपंतींस्वकलत्रवृद्धांदासीभिराश्वस्यनृपःस्त्रियंताम्पप्रच्छकिंवृत्तमिहै वकाचकातेसुताकश्चसुतस्तवेति ॥ २७ ॥ उवाचसाबाष्पविलोचनाथग्रामस्त्वयंपुष्कसघोषनामा ॥ इहाभवत्पुष्कसकःपतिर्मेबभूवतस्येंदुसमासुतैका ॥ २८ ॥

अर्थ—दैवसे मारेहुये बन्धु शून्य मूढ तथा महा मानसी व्यथामें उत्पन्न मेरे सदृश जीवका जैसा जीवन जैसा मरताहै और जैसी आपत्तिहै उससे तो जीव रहित पाषाण आदि भी उत्तम है ॥ २५ ॥ मनुष्योंसे हीन और दुष्ट देशमें उत्पन्न प्राणीके अनन्त दुःख आके ऐसे उल्हासको प्राप्त होतेहैं जैसे वर्षाकालमें पर्वतमें सहस्रो शाखाओंके रससे व्याप्त तृण ॥ २६ ॥ इसप्रकार विलाप करती हुई अपनी स्त्रीकी माता उस वृद्धा स्त्रीको राजा दासियोंसे धैर्य्य दिलाके पूंछा कि तुमारा यह क्या वृतान्त है और तुम कौन हो और तुह्मारी पुत्री कौन है और वह तुह्मारा पुत्र कौन है ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर वह अश्रुसे पूर्ण नेत्रवाली स्त्री बोली कि हे राजन् ! इस ग्रामका नाम है पुष्कसघोष है इसमें पुष्कस नामा मेरा पति उत्पन्न हुआ था और उसके चन्द्रमाके समान शोभायमान एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥

सादैवयोगात्पतिमिंदुतुल्यमिहागतंदैववशेनभूपम् ॥ अयंविशीर्णमधुकुंभमापवनेवराकीकरभीयथैका ॥ २९ ॥ सातेनसार्द्धंसुचिरंसुखानिभुक्त्वाप्रसूतातनयाःसुतांश्च ॥ वृद्धिंगताकाननकोटरेस्मिंस्तुंबी लतापादपसंश्रितेव ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चंडालीशोचनंनामविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२० ॥

अर्थ—वह कन्या दैवयोगसे यहां आये हुये चन्द्रमाके समान सुन्दर एक राजाको अपना पति इसप्रकार पाया जैसे खुले मुख मधुके घटको बनमें दीन गर्द्दभी वा उटानी ॥ २९ ॥ उस कन्याने उस राजाके साथ चिरकालतक सुखभोग करके कन्या तथा पुत्रोंको भी उत्पन्न किया और इस बनमें ऐसे वृद्धिको प्राप्त हुये जैसे वृक्षके आश्रयसे तुंबीकी लता ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चाण्डालीशोचनंनामविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

नामैकीशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२१ ॥

उस चाण्डालीके मुखसे उस वृत्तान्तको सुनके विस्मित राजा लवण के गृहमें आनेपर वसिष्ठजीके कथनसे उसका निर्णय राजा लवणके अर्थ तथा रामचन्द्रजीके अर्थ भी इस १२१ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ चंडाल्युवाच ॥ केनचित्त्वथकालेनग्रामकेस्मिन्जनेश्वर ॥ अवृष्टिदुःखमभवद्भीषणंभग्नमानवम् ॥१॥ महतानेनदुःखेनसर्वेतेग्रामकाजनाः ॥ विनिर्गत्यगतादूरंसर्वेपंचत्वमागताः ॥ २ ॥ तेनेमादुःखभागि न्यःशून्यावयमिहप्रभो ॥ सौम्यशोचामसद्बाष्पमाचांतेक्षणधारया ॥ ३ ॥ इत्याकर्ण्यांगनावक्त्राद्रा जाविस्मयमागतः ॥ मंत्रिणांमुखमालोक्यचित्रार्पितइवाभवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—चाण्डाली बोली–हे राजन् ! कुछ कालके बीतनेपर इस ग्राममें वृष्टिके न होनेसे, अतिभयंकर और मनुष्योंको नष्ट करनेवाला दुर्भिक्षका दुःख हुआ ॥ १ ॥ इस बड़े भारी दुःखसे इस ग्रामके निवासी सब निकलके दूर चलेगये और मृत्युको प्राप्तहुये ॥ २ ॥ उस दुर्भिक्ष तथा बन्धुओंके मरणसे हे प्रभो ! हम सब अभागिनी शून्य हैं और बहती हुई असुओंकी धारासे शोचती हैं ॥ ३ ॥ उस स्त्रीके मुखसे इस बातको सुनके राजा विस्मयको प्राप्त हुआ और मंत्रियोंके मुखको देखकर चित्र लिखितकें समान होगया ॥ ४ ॥

भूयोविचारयामासतदाश्चर्यमनुत्तमम् ॥ भूयोभूयोथपप्रच्छबभूवाश्चर्यवानिति ॥ ५ ॥ तेषांसमुचितै र्दानसन्मानैर्दुःखसंक्षयम् ॥ कृत्वाकरुणयाविष्टोदृष्टलोकपरावरः ॥ ६ ॥ स्थित्वातत्रचिरंकालंविमृ श्यनियतेर्गतीः ॥ आजगामगृहंपौरैर्वंदितःप्रविवेशह ॥ ७ ॥ प्रातस्तत्रसभास्थानेमामपृच्छदसौनृ पः ॥ कथमेवंमुनेस्वप्नःप्रत्यक्षमितिविस्मितः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस अपूर्व आश्चर्य्यको पुनः विचारा और बार २ पूंछा और आश्चर्य्यवान् हुआ ॥ ५ ॥ इसलोक और परलोकको देखनेवाला करूणापूर्ण राजाने समुचित दान और सन्मानोंसे उन चाण्डालोंके दुःखका नाश करके ॥ ६ ॥ और वहां चिरकालतक निवास करके तथा दैवकी गतिको विचार करके अपने गृहपर आया और नगर निवासियोंसे वन्दित प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ हे रामजी ! प्रातःकाल यह राजा सभास्थानमें विस्मित होके पूंछा कि हे मुने ! यह स्वप्न प्रत्यक्ष मैंने कैसे देखा ॥ ८ ॥

यथावस्तुतयातस्यततउक्तःसताद्दशः ॥ संशयोत्हृदयान्नुन्नोवातेनेवांबुदोदिवः ॥ ९ ॥ इत्येवंराघवाविद्यामहतीभ्रमदायिनी ॥ असत्सत्तांनयत्याशुसच्चासत्तांनयत्यलम् ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमेवं वदब्रह्मन्स्वप्नःसत्यत्वमागतः ॥ भ्रोमोदारईवैषोर्थोनमेगलतिचेतसि ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वमेतदविद्यायांसंभवत्येवराघव ॥ घटेषुपटताद्दष्टास्वप्नसंभ्रमितादिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—मैंने उस प्रकारके प्रश्नको यथार्थ रीतिसे समाधान दिया और राजाके हृदयसे संशयको इसप्रकार दूर किया जैसे वायु अन्तरिक्षसे मेघको ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार यह अविद्या बडी भ्रम देनेवालीहै यह अति शीघ्र असत्को सत् और सत्को असत् पूर्ण रीतिसे कर देती है ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! कृपा करके यह कहिये यह स्वप्न सत्यता (जाग्रत् कालमें अनुभव योग्यता) को कैसे प्राप्त हुआ ? बडे भारी भ्रमके समान यह अर्थ मेरे चितमें नहीं समाता यह संशय है ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अविद्यामें यह सब कुछ सम्भव है स्वप्न तथा संभ्रम आदिमें घटमें पठता देख पडी है ॥ १२ ॥

दूरंनिकटवद्भातिमुकुरंतरिवाचलः ॥ चिरंशीघ्रत्वमायातिपुनःश्रेष्ठेवयामिनी ॥ १३ ॥ असंभवच्चभवतिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ असच्चसदिवाभातिस्वप्नेष्विवनभोगतिः ॥ १४ ॥ सुस्थितंसुष्टुचलतिभ्रमेभूपरिवर्त्तवत् ॥ अचलंचलतामेतिमदविक्षुब्धचित्तवत् ॥ १५ ॥ वासनावलितंचेतोयद्यथाभावयत्यलम् ॥ तत्तथानुभवत्याशुनतदस्तिनवाप्यसत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दर्पणमें पर्वतके समान दूर भी निकटके समान भान होताहै और पुनः सुखकी निद्राकी रात्रिके तुल्य चिरकाल शीघ्रताको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ स्वप्नमें अपने मरणके तुल्य असंभव भी इस अविद्यामें होता है, और स्वप्नमें आकाशकी गतिके समान असत् भी सत्के तुल्य भान होताहै ॥ १४ ॥ भ्रमण करनेपर पृथिवीके परिवर्तन (घूमने) के सदृश जो सर्वथा अचलहै वह भली भांति चलताहै और मदसे विक्षुब्ध चित्तके दृश्यके समान अचल भी चंचलताको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ वासनासे आच्छादित चित्त जिस पदार्थको जैसे पूर्ण रीतिसे भावना करताहै वैसाही उसको शीघ्र अनुभव करताहै चाहे वह सत् हो वा असत् हो ॥ १६ ॥

यदैवाभ्युदिताविद्यात्वहंत्वादिमयीमुधा ॥ तदैवानादिमध्यांताभ्रमस्यानंततोदिता ॥ १७ ॥ प्रतिभासवशादेवसर्वोविपरिवर्त्तते ॥ क्षणःकल्पत्वमायातिकल्पश्चभवतिक्षणः ॥ १८ ॥ विपर्यस्तमतिर्जंतुःपश्यत्यात्मानमेडकम् ॥ बिभर्तिसिंहतामेडोवासनावशतःस्वयम् ॥ १९ ॥ विषमभ्रमदाविद्यामोहाहंतादयःसमाः ॥ सर्वेचित्तविपर्यासफलसंपत्तिहेतवः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह अहन्ता आदिमयी अविद्या जिसी समय उदयको प्राप्त हुई उसी समय अनादि मध्यान्त भ्रमकी अनन्तता भी उदयको प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ सब पदार्थोंका विपरिणाम प्रतिभासकेही कारण होताहै, इसीसे क्षण कल्पताको और कल्पक्षणताको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! विपरीत मति प्राणी अपनेको मेष देखता और इसी प्रतिभासके वशसे मेष सिंहताको स्वयं धारण करताहै ॥ १९ ॥ भयंकर भयको देनेवाली अविद्या मोह और अहन्ता ये सब समान है और सब चित्तकी विपरीतता रूपफलको सम्पत्तिके हेतु हैं ॥ २० ॥

काकतालीयवच्चेतोवासनावशतःस्वतः ॥ संवदंतिमहारंभाव्यवहाराःपरस्परम् ॥ २१ ॥ वृत्तंप्राक्पक्कणेराज्ञःकस्यचिल्लवणस्ययत् ॥ प्रतिभातंतदेतस्यसद्वासद्वामनोगतम् ॥ २२ ॥ विस्मरत्यपिविस्तीर्णांकृतांचेतःक्रियांयथा ॥ तथाकृतामप्यकृतामितिस्मरतिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ तथानभुक्तवानस्मिभुक्तवानितिचेतासि ॥ स्वप्नेदेशांतरगमेप्राकृतोप्यवबुद्धयते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! काकतालीय न्यायके सदृश चित्तकी वासनाके वशसे स्वयं महान् आरंभवाले व्यवहार परस्पर संवाद करतेहैं अर्थात् एक दूसरेके स्थानमें होजातेहैं ॥ २१ ॥ राजा लवणके मनमें शबरालयका चाण्डाली विवाहादि किसीका वृतान्त भान हुआथा ॥ २२ ॥ जैसे बडी भारी क्रियाको करके भी भूल जाताहै ऐसे विनाकी

हुई तथा कीहुई क्रियाका स्मरण भी करताहै ॥ २३ ॥ उसी प्रकार भोजन करनेपर मैंने भोजन नहीं किया ऐसा स्वप्नमें वा देशान्तर गमनमें प्राकृत प्राणी भी समझताहै ॥ २४ ॥

विंध्यपुष्कसलुग्रामेव्यवहारोयमीदृशः ॥ प्रतिभासागतस्तस्यस्वप्नेपूर्वकथायथा ॥ २५ ॥ अथवाल वणेनाशुदृष्टोयःस्वप्नविभ्रमः ॥ सएवसंविदंप्राप्तोविंध्यपुष्कसचेतसि ॥ २६ ॥ लावणीप्रतिभारूढा विंध्यपुष्कसचेतसि ॥ विंध्यपुष्कससंविद्वारूढापार्थिवचेतसि ॥ २७ ॥ यथाबहूनांसदृशंवचनंनाम मानसम् ॥ तथास्वप्नेपिभवतिकालोदेशःक्रियापिच ॥ २८ ॥

अर्थ—विन्ध्यपर्वतके ग्राममें ऐसा व्यवहार होताहै यह राजाको ऐसे प्रतिभान हुआथा जैसे स्वप्नमें पूर्वकी कथा ॥ २५ ॥ अथवा लवण राजानें जो कुछ स्वप्नका भ्रम देखाथा वही विन्ध्यपर्वतके चाण्डालके चित्तमें स्फुरित हुआथा ॥ २६ ॥ लवणकी प्रतिभा विन्ध्याचलके चाण्डालके हृदयमें रूढहुईथी वा विन्ध्यपर्वतके चाण्डालकी प्रतिभा राजाके हृदयमें रूढहुईथी ॥ २७ ॥ जैसे समस्याकी पूर्ति आदिमें बहुत कवियोंके मानसबचन समान होतेहैं ऐसेही स्वप्नमें भी देशकाल और क्रियाभी समान होतीहैं ॥ २८ ॥

व्यवहारगतेस्तस्याःसत्तास्तिप्रतिभासतः ॥ सत्तासर्वपदार्थानांनान्यासंवेदनादृते ॥ २९ ॥ सवेदने तराभातिवीचिर्वाजलसंगतिः ॥ भूतभव्यभविष्यस्थातरुबीजेतरुर्यथा ॥ ३० ॥ तस्याःसत्त्वमसत्त्वं चनसन्नासदितिस्थितम् ॥ सत्सदेवीहसंवित्तेरसंवित्तेरसन्मयम् ॥ ३१ ॥ नाविद्याविद्यतेकिंचित्तै लादिसिकतास्विव ॥ हेम्नःकिंकटकादन्यत्पदंस्याद्धेमतांविना ॥ ३२ ॥

अर्थ—व्यवहार दशाकी सत्ताभी चेतनके प्रतिभासकेही कारण होती है क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंकी सत्ता अधिष्ठान चित् सत्ताकी स्फुरणाहीसे होती है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! अधिष्ठान चेतनकी स्फुरण सत्ताही भूत वर्तमान तथा भविष्य प्रपंचमें व्याप्त होके उससे भिन्न ऐसे भासतीहै जैसे जलमें तरंग वा बीजमें वृक्ष ॥ ३० ॥ अधिष्ठान सत्तासे पृथक् जो पदार्थोंकी सत्ता भासतीहै वह सत् असत् दोनों पदार्थमें नहीं है क्योंकि श्रुतिमें यह स्थित है कि "नासदासीन्नोसदासीत्" (न यह जगत् सत् और न असत् था) सत् दृष्टिसे सत् और पृथक् दृष्टिसे असन्मय है ॥ ३१ ॥ यथार्थमें अविद्या कुछभी नहीं है जैसे रेतादिमें तैल आदि क्योंकि कटकगत जो सुवर्ण है उसकी सुवर्णताको छोड और क्या वस्तु होसकती है ॥ ३२ ॥

अविद्ययात्मतत्त्वस्यसंबंधोनोपपद्यते ॥ संबंधःसदृशानांचयःस्फुटःस्वानुभूतितः ॥ ३३ ॥ जतुका ष्ठादिसंबंधोयःसमासमयोगतः ॥ नान्योन्यानुभवायासौतदेकस्पंदमात्रकम् ॥ ३४ ॥ परमार्थमयंस र्वंयथातेनोपलादयः ॥ चितासमभिचेत्यंतेसंबंधवशतःसमाः ॥ ३५ ॥ यदाचिन्मात्रसन्मात्रमयाःसर्वे जगद्गताः ॥ भावास्तदाविभांत्येतेमिथःस्वानुभवस्थितेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि अविद्या चेतनके सम्बन्धसे वस्तु सत्ता कहो सोभी नहीं क्योंकि अविद्या तथा आत्मतत्वका सम्बन्ध नहीं होसकता, क्योंकि अपने अनुभवसे यह प्रसिद्ध है कि सम्बन्ध सदृशोंकाही होताहै ॥ ३३ ॥ और लाख तथा काष्टका सम्बन्ध तुल्य और अतुल्य (असदृशों) के योगसे होताहै यह परस्पर उदाहरणके योग्य नहीं है, क्योंकि वे दोनों (द्रवशील लाख और अद्रवकाष्ट) एक अविद्यामात्रके बिलास हैं इसलिये दोनों समान हैं ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार ये सब पदार्थ परमार्थ चेतनमय हैं इसीसे सदृश सम्बन्ध चित्से सब प्रकाशित होतेहैं ॥३५॥ और जब सत् और चिन्मात्र जगत्के पदार्थ है तबभी अपनी स्वप्रकाशताहीके बलसे सब प्रकाशित होतेहैं न कि अन्य चेतनसे क्योंकि दीपको प्रकाशित करनेको अन्य दीपकी अपेक्षा नहीं है ॥ ३६ ॥

नसंभवतिसंबंधोविषमाणांनिरंतरः ॥ नपरस्परसंबंधाद्विनानुभवनंमिथः ॥ ३७ ॥ सदृशेसंदृशवस्तु क्षणाद्गत्वैकतामलम् ॥ रूपमास्फारयत्येकमेकत्वादेवनान्यथा ॥ ३८ ॥ चिच्चेत्यमिलिताद्दृश्यरूपयो देतिचेतनः ॥ नचचिज्जडयोरैक्यंवैलक्षण्यात्क्वचिद्भवेत ॥ ३९ ॥ चिज्जडौचित्रएकत्रनतौसंमिलतः क्वचित् ॥ चिन्मयत्वाच्चिदालंभश्चिदालंभेनवेदनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—असदृशोंका निरन्तर सम्बन्ध कदाचित् नहीं होता और परस्पर सम्बन्धके बिना परस्पर अनुभव भी नहीं होता ॥ ३७ ॥ सदृश परमात्मस्वरूपमें सदृश जगत् वस्तु क्षणमें सर्वथा एकताको प्राप्त होके एकताहीके कारण अपना रूप विस्तृत करताहै अन्यथा नहीं ॥ ३८ ॥ और जो मूढोंकी दृष्टिमें चित् चेतन चेत्य (विषय) और चेतयिता अर्थात् दर्शन दृश्य और द्रष्टा इस त्रिपुटी रूपसे उदय होताहै वह चित् और जडके अभेद स-

म्बन्धसे नहीं कहसकते और केवल जडके सम्बन्धसेभी नहीं कहसकते क्योंकि जड जडके साथ मिलेगा तो अधिक जड होजायगा, और चित् तथा जडकी एकता तो विलक्षणतासे होही नहीं सकती ॥ ३९ ॥ और त्रिपुटी रूप पटीके चित्रमें चित् जड दोनों भेद सम्बन्धसेभी कहीं नहीं मिलसकते, और सब चिन्मयोंका चित्के संबन्ध होनेसे केवल चेतनकी उपलब्धी होनेसे दृश्यका भान नहीं होसकता ॥ ४० ॥

दारुपाषाणभेदानांनतुह्येतेचिदात्मकाः ॥ पदार्थोहिपदार्थेनपरिणाम्यनुभूयते ॥ ४१ ॥ जिह्वयैवरस्वादःसजातीयामलोदयः ॥ ऐक्यंचविद्धिसंबंधंनास्त्यसावसमानयोः ॥ ४२ ॥ जडचेतनयोस्तेननोपलादिजडंमतम् ॥ चिदेवोपलकुड्यादिरूपिणीतिमिताचिता ॥ ४३ ॥ एकीभावंगताद्रष्टृदृश्यादिकुरुतेभ्रमम् ॥ काष्ठोपलाद्यशेषंहिपरमार्थमयंयतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—और दारू (काष्ट) और पाषाण आदि जो भिन्न पदार्थ गृहादिकी रचनामें युक्त प्रतीत होतेहैं ये चिदात्मक नहीं हैं क्योंकि सब एक मायाके विलास मात्र पदार्थ दूसरे पदार्थरूपी परिणामी अनुभूत होतेहैं और चेतन परिणामी नहीं है ॥ ४१ ॥ और जिव्हासे जो भिन्न (जिव्हासे) पदार्थोंके रसके आस्वाद होताहै वह निर्मल सजातीय पदार्थोंकाही प्रसिद्ध उदय है क्यों कदाचित् सदृश पदार्थोंकाही ऐक्य सम्बन्ध तुम जानो न कि असदृश चड चेतन पदार्थोंका ॥ ४२ ॥ इसलिये पाषाण आदि जड नहीं हैं किन्तु चेतनही पाषाण भित्ति आदि रूप धारण कर्ता है इसलिये सत् चेतनही ॥ ४३ ॥ एकीभावको प्राप्त द्रष्टा तथा दृश्य आदिका भ्रम करताहै क्योंकि काष्ट पाषाण आदि सम्पूर्ण परमार्थ चेतनमयहै ॥ ४४ ॥

तदात्मनातत्संबंधंदृश्यत्वेनोपलभ्यते ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यमनंतमिवयत्नतः ॥ ४५ ॥ विश्वंसन्मात्रमेवैतद्विद्धितत्त्वविदांवर ॥ असत्तात्यागनिष्ठेनविश्वंलक्षशतभ्रमैः ॥ ४६ ॥ पूरितंचिच्चमत्कारोनच किंचनपूरितम् ॥ संकल्पनागरानृणांमिथःस्पंदंतिनोयथा ॥ ४७ ॥ नदेशकालरोधाद्यतथासर्गेष्विति स्थितिः ॥ भेदबोधेहिसर्गत्वमहंत्वादिभ्रमोदयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और जिदात्मकरूपसे चिदात्मककाही सम्बन्ध कल्पित दृश्यरूपसे उपलब्ध होताहै, अर्थात् काष्ट पाषाणादिका कल्पित नकि वास्तव चित्रूपसे क्योंकि अनन्त ब्रह्म सब प्रकारसे परिपूर्ण सर्व रूपके समान भान होताहै ॥ ४५ ॥ इसलिये हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! तुम सम्पूर्ण विश्वको सन्मात्रही जानो, और मिथ्यात्वके ग्रहणरूप चित् चमत्कारसे लाखों सैकडों भ्रमोंसे विश्व पूर्ण है ॥ ४६ ॥ और वह चित् चमत्कार यथार्थसे किसीसे पूरित नहीं है, और मनुष्योंके संकल्पके नगरनिवासी देशकालके अवरोधके लिये जैसे परस्पर चेष्टा नहीं करते॥४७॥यही व्यवस्था तुम जानो, और भेदकेही ज्ञानसे इस सृष्टि तथा अहन्ता आदि भ्रमका उदय होताहै॥४८॥

हेमसंवित्परित्यागेकटकादिभ्रमोयथा ॥ कटकादिभ्रमोहेम्निदेशाद्देशंभवाद्भवम् ॥ ४९ ॥ दृग्दर्शनपरित्यागेनाविद्यास्तिपृथक्सदा ॥ कटकादिमहाभेदमेकंहेमयथामलम् ॥ ५० ॥ बोधैकत्वादयंसर्गस्तदेवासन्नयत्यलम् ॥ सेनामृत्संविदाचित्रामृन्मात्रमिवमृन्मयी ॥ ५१ ॥ जलमेकंतरंगादिदार्वेकंशालभंजिका ॥ मृन्मात्रमेकंकुंभादिब्रह्मैकंत्रिजगद्भ्रमः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णके ज्ञानके त्यागमें कटक आदिका भ्रम होताहै, क्योंकि कटकादिके भ्रमको सुवर्णकेही देशसे देश और उसीकी उत्पत्तिसे उसकी उत्पत्तिकी सत्ता प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ दृग्दर्शन शक्तिकी सत्ताके परित्यागसे अविद्याकी पृथक् सत्ता ऐसे कहीं नहीं है जैसे कटक आदि महाभेद एक निर्म्मल सुवर्णको छोडके कहीं नहीं है ॥ ५० ॥ बोध व्यक्तिकी एकतासेही यह सम सत्स्वरूप विश्व असत् वा असत् विश्वको सत्स्वरूपके साथ एकरसताको प्राप्त करताहै जैसे चित्रगत मृत्तिकाकी सेना चित्रविचित्र रूपसे भान होनेपरभी बिचार दृष्टिसे मृत्तिकामयी है ऐसेही यह जगत् परम तत्वमय है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! तरंग आदि सब जल हैं और काष्टकी पुत्तलिकादि सब एक काष्टहैं तथा घट आदि सब मृन्मात्र हैं, इसी प्रकार तीनों जगत्का भ्रम ब्रह्ममात्र हैं ॥ ५२ ॥

संबंधेदृश्यदृष्टीनांमध्येद्रष्टुर्हियद्वपुः ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितंतदिदंपरम् ॥ ५३ ॥ देशाद्देशंगतेचित्ते मध्येयच्चेतसोवपुः ॥ अजाड्यसंविन्मननंतन्मयोभवसर्वदा ॥ ५४ ॥ अजाग्रत्स्वप्ननिद्रस्ययत्तेरूपंसनातनम् ॥ अचेतनंचाजडंचतन्मयोभवसर्वदा ॥ ५५ ॥ जडतांवर्ज्जयित्वैकांशिलायाहृदयंहितत् ॥ अक्षुब्धोवाथवाक्षुब्धस्तन्मयोभवसर्वदा ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दृश्य दृष्टियोंके सम्बन्धमें दृष्टा दर्शन तथा दृश्यादिसे वर्जित जो द्रष्टाका शुद्धरूप है वही सब त्रिपुटीमें व्याप्त परब्रह्म है ॥ ५३ ॥ चित्तके एक देशसे दूसरे देशमें जानेपर मध्यमें जो जडताकी स्फुरणासे

रहित चित्तका जो स्वरूप (शुद्ध चेतन) तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५४ ॥ जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित तथा चित्तकी वृत्तिही शून्य शुद्ध चिन्मात्र तुमारा रूप है तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५५ ॥ एक जडताको छोडके चिद्-घनमात्र तुमारा स्वरूप है चाहो समाधिस्थ हो वा व्यवहार करतेहो तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५६ ॥

कस्यचित्किंचनापीहनोदेतिनविलीयते ॥ अक्षुब्धोवाथवाक्षुब्धःस्वस्थस्तिष्ठयथासुखम् ॥ ५७ ॥ नाभिवांछतिनोद्वेष्टिदेहेकिंचित्कचित्पुमान् ॥ स्वस्थस्तिष्ठनिराशंकंदेहवृत्तिषुमापत ॥ ५८॥ भविष्यद्ग्रामकग्राम्यकार्यव्यवसितोयथा ॥ चित्तवृत्तिषुमातिष्ठतथासत्यात्मतांगतः ॥ ५९ ॥ यथादेशांतरनरो यथाकाष्ठंयथोपलः ॥ तथैवपश्यचित्तंत्वमचित्तैवयदात्मना ॥ ६० ॥

अर्थ—इस संसारमें किसीका कुछ नहीं लीन (नष्ट) होताहै इसलिये तुम समाधिस्थ हो वा व्यवहार करते हो स्वस्थ तथा सुख स्थित रहो ॥ ५७ ॥ आत्मा शरीरमें न कुछ चाहताहै और न उससे द्वेष करताहै इसलिये तुम आशंकासे शून्य स्वस्थ स्थित रहो और नश्वर (देह) आदिकी वृत्तियोंमें मतागिरो ॥५८॥ जैसे भविष्य (होनेवाले) ग्रामके व्यवहारमें आसक्ति रहितहो इसीप्रकार सत्य आत्मस्वरूपमें निष्ट वर्तमानकालकी चित्तकी वृत्तियोंमें रहो अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टि देखो ॥ ५९ ॥ जैसे देशान्तरमें प्राप्त मनुष्य असत्के तुल्य है, अथवा जैसे काष्ट वा पाषाण चेतन रहित है ऐसेही तुम चित्तकोभी देखो, क्योंकि आत्मस्वरूपसे विवेक करके देखनेसे अचित्तताही विद्वानोंके अनुभव सिद्धहै ॥ ६० ॥

यथादृषदिनास्त्यंबुयथांभस्यनलस्तथा ॥ स्वात्मन्येवास्तिनोचित्तंपरमात्मनितत्कुतः ॥ ६१ ॥ प्रेक्ष्यमाणंनयत्किंचित्तेनयत्क्रियतेक्वचित् ॥ कृतंभवतितन्नेतितत्त्वंचित्तातिगोभवेत् ॥ ६२ ॥ अत्यंतानात्मभूतस्ययश्चितस्यानुवर्त्तते ॥ पर्यंतवासिनःकस्मान्नम्लेच्छस्यानुवर्तते ॥ ६३ ॥ निरंतरमनादृत्यत्वमाराचितपुष्कसम् ॥ स्वस्थमास्वनिराशंकंपंकेनेवकृतोजडः ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे पाषाणमें जल नहीं है और जलमें अग्नि नहीं है ऐसेही जब जीवात्मामेंही चित्त नहीं तो परमात्मामें कहांसे होसकताहै ॥ ६१ ॥ यदि विचारदृष्टिसे देखियेतो चित्त कुछभी नहीं है तो उस चित्तसे किया हुवाभी कार्य्य अकृतके तुल्यहै, इसलिये तुम चित्तसे परे होओ ॥ ६२ ॥ अत्यन्त अनात्म भूत चित्तकी वृत्तिका अनुवर्तन जो करतेहै तो अन्य प्रत्यन्त देशवासी म्लेच्छोंका अनुकरण क्यों नहीं करते क्योंकि नेत्यापुमानं मृत्युमन्ववायानीति “ मरके पापी म्लेच्छादिका जन्म हमारा नहो ” इस श्रुतिसे म्लेच्छादिका अनुकरण वा जन्म निषिद्ध है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! निरन्तर चित्तरूपी चाण्डालका दूरसेही निरादर करके मृतिकासे निर्मित प्रतिमाके समान अचल आशंका रहित स्वस्थ स्थित रहो ॥ ६४ ॥

चित्तंनास्त्येवमेभूतंभूतमेवाथवेत्तिवा ॥ भवनिश्चयवान्भूत्वाशिलापुरुषनिश्चलः ॥ ६५ ॥ प्रेक्षायामस्तिनोचित्तंतद्विहीनोसितत्त्वतः ॥ सकिमर्थमनर्थेनतद्व्यर्थेनकदर्थ्यसे ॥ ६६ ॥ असताचित्तयक्षेणयेमुधास्ववशेकृताः ॥ तेषांपेलवबुद्धीनांचंद्रादशनिरुत्थितः ॥ ६७॥ चित्तंदूरेपरित्यज्ययोसिसोसिस्थिरोभव ॥ भवभावनयामुक्तोयुक्त्यापरमयान्वितः ॥ ६८ ॥ असतोयेनुवर्त्ततेचेतसोसत्यरूपिणः ॥ व्योममारणकर्मैकनीतकालान्धिगस्तुतान् ॥ ६९ ॥ व्यपगलितमनामहानुभावोभवभवपारगतोभवामलात्मा ॥ सुचिरमपिविचारितंनलब्धंमलममलात्मनिमानसात्मकिंचित् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनंनामैकविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यथार्थमें चित्त नहीं है अथवा मिथ्याभूतही यह देखताहै इसलिये तुम निश्चय करके शिलापुरुषके समान निश्चल रहो ॥ ६५ ॥ आत्मदृष्टिसे वा चित्तदृष्टिसे चित्त नहीं है यथार्थमें तुम चित्त रहितहो इसलिये तुम अनर्थदायी ऐसे व्यर्थ चित्तके साथ क्यों दुःखी होतेहैं ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! असत् चित्त यक्षसे जो व्यर्थ बशमें करालिये गयेहैं उन सुकुमार बुद्धियोंके लिये चन्द्रमासेभी बज्र निकलाहै ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! इसलिये चित्तको दूरसेही परित्याग करके तुम जो हो सोही हो और वैसेही स्थिर रहो, इसलिये तुम मननरूपी उत्तम युक्तिसे तथा ध्यानसे युक्त रहो ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! असत्य चित्तकी जो अनुवृत्ति करतेहैं उन आकाशके मारनेमें तत्पर मूर्खोंको धिक्कार है ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! प्रथम महानुभाव अर्थात् तत्वबोधमें कुशल होके अपगलितमन

होओ, और उसके अनन्तर तत्वबोधसे अमलात्मा होके संसारसे पार होजाओ हे रामजी! मैंने चित्ततत्वके लाभार्थ बहुत बिचारा परन्तु अमलात्मामें मानसरूपी मल कहीं कुछ नहीं पाया इसलिये मेरे वाक्यसेभी तुम स्थिर होओ७०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्ताभाव प्रतिपादनं नामैकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

इस १२२ के सर्गमें ज्ञानभूमिकाओंके उदयका क्रम और उससे रामचन्द्रजीका शोक मोहादिके निराशसे ज्ञानका उदय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रथमंजातमात्रेणपुंसाकिंचिद्विकसितबुद्धिनैवंसत्संगमपरेणभवितव्यम् ॥ १ ॥ अनवरतप्रवाहपतितोयमविद्यानदीनिवहःशास्त्रसज्जनसंपर्कादृतेनतरितुंशक्यते ॥ २ ॥ तेनविवेकतः पुरुषस्यहेयोपादेयविचारउदजायते ॥३॥ तदासौशुभेच्छाभिधांविवेकभुवमापतितोभवति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! प्रथम पुरुषको उत्पन्न होनेके अनन्तर किंचित् बुद्धिका विकास होनेपर सत्संगमें तत्पर होना चाहिये ॥ १ ॥ निरन्तर प्रवाहरूपसे गिरता हुआ यह अविद्यारूपी नदीका समूह शास्त्र और सज्जनके समागमके बिना पार होनेके अयोग्य है ॥ २ ॥ और शास्त्र और सज्जनके समागमसे त्याज्य और ग्राह्य वस्तुका बिचार उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ तब यह पुरुष शुभेच्छानाम भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

ततोविवेकवशतोविचारणायाम् ॥ ५ ॥ सम्यग्ज्ञानेनासम्यग्वासनांत्यजतःसंसारभावनातोमनस्तनुतामेति ॥ ६ ॥ तेनतनुमानसानामविवेकभूमिमवतीर्णोभवति ॥ ७ ॥ यदैवयोगिनःसम्यग्ज्ञानोदयस्तदैवसत्त्वापत्तिः ॥ ८ ॥

अर्थ—उससे विवेक द्वारा विचारणा नाम भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ सम्यक् ज्ञानसे नीच वासनाको त्याग करते हुये पुरुषकी भावनासे मनकी तनुता (सूक्ष्मता) होती है ॥ ६ ॥ उस मनकी सूक्ष्मतासे तनुमानसानाम विवेक भूमिमें पुरुष उतरताहै ॥ ७ ॥ जिस समय योगीको सम्यक् ज्ञानका उदय होताहै उसी समय सत्वापति नाम चतुर्थ भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

तद्वशाद्वासनातनुतांगतायदातदैवासावसंसक्तइत्युच्यतेकर्मफलेननबद्ध्यतइति ॥ ९ ॥ अथतानववशादसत्येभावनातानवमभ्यस्यति ॥ १० ॥ यावन्नकुर्वन्नपिव्यवहरन्नप्यसत्येषुसंसारवस्तुषुस्थितोपिस्वात्मन्यवक्षीणमनस्त्वादभ्यासवशाद्बाह्यंवस्तुकुर्वन्नपिनपश्यतिनालंबनेनसेवतेनाभिध्यायतितनुवासनत्वाचकेवलंमूढःसुप्तप्रबुद्धइवकर्त्तव्यंकरोति ॥ ११ ॥ तनुभावितमनस्कस्तेनयोगभूमिकांभावनामधिरूढः ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके वशसे जब वासना सूक्ष्मताको प्राप्त होती है उससमय योगी असंसक्त कहलाता अर्थात् असंसक्ति नाम भूमिकामें प्राप्त होनेसे वह कर्मोंके फलोंके बन्धनमें नहीं आता ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वासनाकी सूक्ष्मताके वशसे असत्य बाह्य पदार्थोंमें सूक्ष्मताका अभ्यास करताहै अर्थात् अन्तर्मुख वृत्तिसे ब्रह्ममें अहंभावका अभ्यास और बाह्य पदार्थकी विस्मृति होती है ॥ १० ॥ उस समय अभ्यास करताहै जबतक समाधिस्थभी संसारका व्यवहार करता हुआभी, और असत्य संसारके पदार्थ स्त्रीपुत्रादिमें स्थितभी, आत्मामें मनकी क्षीणताके वशसे तथा ब्रह्माहंभावके अभ्याससे बाह्य स्नान भोजनादि क्रियाओंको कर्ता हुआभी उस व्यवहारको यथार्थ रूपसे नहीं देखता और उन व्यवहारोंको रुचिसे नहीं करता, और उनका स्मरण नहीं करता, वासनाके न्यून होनेसे केवल बालकके समान अथवा शयनके उत्तर कालमें जो दशा तत्काल पुरुषकी होती है उसके समान दूसरोंकी प्रेरणासे स्नानभोजनादि कर्तव्य कर्म करताहै ॥ ११ ॥ उस समय सूक्ष्म ब्रह्मकेसाथ चित्ताको एकरस करनेवाला योगी पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त होनेसे पदार्थाभावनी नाम छठी भूमिकामें आरूढ होताहै ॥ १२ ॥

इत्यंतर्लीनचित्तःकतिचित्संवत्सरानभ्यस्यसर्वथैवकुर्वन्नपिबाह्यपदार्थान्भावनांत्यजतितुर्यात्माभवति ततोजीवन्मुक्तइत्युच्यते ॥ १३ ॥ नाभिनंदतिसंप्राप्तंनाप्राप्तमभिशोचति ॥ केवलंविगताशंकंसंप्राप्तम

नुवर्तते ॥ १४ ॥ त्वयापिराघवज्ञातंज्ञातव्यमखिलांतरम् ॥ ननुतेसर्वकार्येभ्योवासनातनुतांगता॥१५ शरीरातीतवृत्तिस्त्वंशरीरस्थोऽथवाभव ॥ मागाःशोकंचहर्षत्वंत्वमात्माविगतामयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस उक्त रीतिसे बाह्य पदार्थोंकी भावनान करनेसे ब्रह्ममें अन्तर्लीन चित्त होके कुछ वर्षपर्य्यन्त अभ्यास करके अन्यकी इच्छासे बाह्य स्नानभोजनादि क्रियाओंको करता हुआभी सर्वथा उनकी भावनाको त्याग देताहै उस समय तुर्य्यात्मा स्वयं होजाताहै, और उसी समय वह योगी जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ १३ ॥ उस समय तुर्य्यगानाम सप्तभूमिकामें प्राप्त योगी, अभिलषित पदार्थके प्राप्त होनेसे न तो प्रसन्न होताहै, और उसकी अप्राप्तिसे शोचभी नहीं करता, किन्तु प्रारब्ध कर्मके अनुसार जो कुछ मिलजाताहै उसीका अनुवर्तन शंका रहित होके करताहै ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुमनेभी अत्यन्त चित्तकी शुद्धतासे अपने विचारसेही समस्त ज्ञात (अर्थात् प्रत्यक् चेतन) को जानलिया क्योंकि सम्पूर्ण संसारी कार्य्योंसे तुमारी बुद्धि सूक्ष्म होगई है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! तुम सदा समाधिस्थ हो वा लोकके संग्रहार्थ व्यवहार करो परन्तु सर्व उपद्रव रहित चिदात्मारूप तुम हर्ष और शोकको न प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

त्वय्यात्मनिसितेस्वच्छेसर्वगेसर्वदोदिते ॥ कुतोदुःखसुखेरामकुतोमरणजन्मनी ॥ १७ ॥ अबंधुरपि कस्मात्त्वंबंधुदुःखानिशोचसि ॥ अद्वितीयेस्थितेह्यस्मिन्बांधवाःकइवात्मनि ॥ १८ ॥ दृश्यतेकेवले देहेपरमाणुचयःपरम् ॥ देशकालान्यतापत्तेर्नात्मोदेतिनलीयते ॥ १९ ॥ अविनाशोपिकस्मात्त्वंविन ङ्क्ष्यामीतिशोचसि ॥ अमृत्युवसतौस्वच्छेविनाशःकइवात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—स्वयं प्रकाशमान, निर्मल सर्वव्यापी, और सर्वदा उदयको प्राप्त आत्मस्वरूप तुममें यह दुःख तथा वैषयिक सुख कहां? और कहां जीवन और मरण ॥ १७ ॥ यदि यह कहो कि ज्ञानसे निज जन्म मरणादिके दुःखोंके अभाव होनेपरभी बन्धुसंगका शोकादि कैसे जीताजाय सो भी नहीं क्योंकि शुद्धात्मा बन्धुरहितभी होके तुम बन्धुओंके दुःखोंको क्यों शोचतेहो, क्योंकि अद्वितीय इस परमात्माके बान्धव कैसे ? ॥ १८ ॥ बन्धुके देह और आत्मा दोनों शोचके अयोग्य हैं, क्योंकि देह तो पृथ्वी आदि भूतोंके परमाणु समूहरूप देख पडताहै क्योंकि वह देशकालके भेदसे अन्य स्वरूपमें परिवर्तित होजाताहै और आत्माका तो न उदय होताहै न लय होताहै ॥ १९ ॥ अविनाशीभी होकर मैं नष्ट होऊंगा ऐसा शोच तुम क्यों करतेहो, क्योंकि मृत्युके निवास शून्य आत्मामें विनाश कैसा ? ॥ २० ॥

घटेकपालतांयातेघटाकाशोननश्यति ॥ यथातथाशरीरेस्मिन्नष्टेपिनविनश्यति ॥ २१ ॥ मृगतृष्णातरं गिण्यांक्षीणायामातपोयथा ॥ ननश्यतितथादेहेनष्टेनात्माविनश्यति ॥ २२ ॥ वांछैवोदेतितेकस्माद्भ्रां तिरंतर्निरर्थिका ॥ अद्वितीयोद्वितीयंकियद्वस्त्वात्माभिवांछतु ॥ २३ ॥ श्राव्यंस्पृश्यंतथादृश्यंरस्यंघ्रेयं चराघव ॥ नकिंचिदस्तिजगतिव्यतिरिक्तंयदात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे घटके दो टुकडे होजानेपरभी घटाकाश नष्ट नहीं होता इसी प्रकार इस शरीरके नष्ट होनेपरभी आत्मा नष्ट नहीं होता ॥ २१ ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके नष्ट होनेपरभी आतप (घाम) नष्ट नहीं होता इसी प्रकार देहके नष्ट होनेपरभी आत्मा नष्ट नहीं होता ॥ २२ ॥ हे रामजी ! निरर्थक भ्रान्तिरूप पदार्थोंकी अभिलाषाही तुमारेमें क्यों उत्पन्न होतीहै क्योंकि जब सर्व वस्तुरूप आत्माही है तब द्वितीय वस्तु कौन है जिसके लिये आत्मा अभिलाषा करै ॥ २३ ॥ हे राघव ! श्रवण, स्पर्शन, दर्शन रसन (आस्वादन,) तथा घ्राण करनेके योग्य कोईभी वस्तु इस जगत्में आत्मासे पृथक् नहीं है ॥ २४ ॥

सर्वशक्ताविमास्तस्मिन्नात्मन्येवाखिलाःस्थिताः ॥ शक्तयोविततेव्यक्तेआकाशइवशून्यता ॥ २५ ॥ चित्ताद्राघवरूढेयंत्रिलोकीललनोदिता ॥ त्रिविधेनक्रमेणेहजन्मनाजनितभ्रमा ॥ २६ ॥ मनःप्रशमनेसि द्धेवासनाक्षयनामनि ॥ कर्मक्षयाभिधानैवमायेयंप्रविनश्यति ॥ २७ ॥ संसारोग्रारघट्टेस्मिन्नारूढायंत्रवा हिनी ॥ रज्जुस्तांवासनामेतांछिंधिराघवयत्नतः ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि सर्वशक्तिमान्, व्यापक और प्रसिद्ध उस परमात्मामें ये श्रवणादि सम्पूर्ण शक्ति ऐसे स्थित है जैसे आकाशमें शून्यता ॥ २५ ॥ हे रामजी ! सात्विक राजस और तामस इस तीन प्रकारके जन्मसे भ्रम उत्पन्न करानेवाली यह पूर्वोक्त त्रिलोकीरूप ललना (स्त्री) चित्तसेही उत्पन्न हुई है ॥ २६ ॥ वासनाका क्षय दूसरा नाम है जिसका ऐसे मनके प्रशमन (शान्ति) सिद्ध होनेपर कर्मके निवास स्थान नामवाली यह माया स्वयं नष्ट होजाती है ॥ २७ ॥ संसाररूपी आरघट्ट (आटापीसनेके यंत्र) के अधोभागकी शिलाके मध्य शंकु (मेष) में बन्धी हुई इसीसे उस पेषणयंत्रको अर्थात् चक्कीको चलानेमें यह वासनारूपा रज्जु (रस्सी) है इसका छेदन आप यत्नसे करो२८

अपरिज्ञायमानैषामहामोहप्रदायिनी ॥ परिज्ञातात्वनंताख्यासुखदाब्रह्मदायिनी ॥ २९ ॥ आगताब्रह्मणोभुक्त्वासंसारमिहलीलया ॥ पुनर्ब्रह्मैवसंस्मृत्यब्रह्मण्येवविलीयते ॥ ३० ॥ शिवाद्राघवनीरूपादप्रमेयान्निरामयात् ॥ सर्वभूतानिजातानिप्रकाशाइवतेजसः ॥३१॥ रेखावृंदंयथापर्णेवीचिजालंयथाजले ॥ कटकादियथाहेम्नितथोष्णादियथानले ॥ ३२ ॥ तदेतद्भावनारूपेतथेदंभुवनत्रयम् ॥ तस्मिन्नेवस्थितंजातंतस्मादेवतदेवच ॥ ३३ ॥

अर्थ—न जानी हुई यह वासनारूप माया महामोहकी दात्री और जानी हुई तो अनन्त सुखदा और ब्रह्मस्वरूपदायिनी है ॥ २९ ॥ ब्रह्मसे आई हुई उसकी यह लीला है यह ब्रह्मविद्या संसारको निगलकर ब्रह्मको स्मरणकरके अन्तमें ब्रह्ममेंही पुनः लीन होजातीहै ॥ ३० ॥ हे रामजी ! कल्याणमयरूप रहित अप्रमेय तथा निरामय ब्रह्मसे सम्पूर्ण प्राणीगण ऐसे उत्पन्न हुये हैं जैसे तेजसे प्रकाश ॥ ३१ ॥ जैसे पत्रमें रेखा समूह (शिरा वा नाडीका जाल) है जलमें जैसे तरंग जाल, सुवर्णमें जैसे कटकादि और अग्निमें उष्णतादि हैं ऐसे ध्यानरूप इस परात्मामें यह तीनो भुवन है उसी परमात्मामें यह जगत् स्थित हैं, और उसीसे उत्पन्न हुआहै इस कारण यह जगत् वही है ॥ ३२ ॥३३॥

सएवसर्वभूतानामात्माब्रह्मेतिकथ्यते ॥ तस्मिन्ज्ञातेजगज्ज्ञातंसज्ञाताभुवनत्रये ॥ ३४ ॥ शास्त्रसंव्यवहारार्थतस्यास्यविततांकृतेः ॥ चिद्ब्रह्मात्मेतिनामानिकल्पितानिकृतात्मभिः ॥ ३५॥ विषयेंद्रियसंयोगेहर्षामर्षविवर्जिता ॥ सैषाशुद्धानुभूतिर्हिसोयमात्माचिदव्ययः ॥ ३६ ॥

अर्थ—वही सब प्राणीयोंका आत्मा ब्रह्म कहलाताहै उसीके जाननेसे यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञात होजाताहै, और त्रिभुवनमें ज्ञाता वही है ॥ ३४ ॥ शास्त्रीय तथा लौकिक व्यवहारके लिये उस विस्तृत आकारवाले परमात्माके चित्, ब्रह्म और आत्मा इत्यादि नाम तत्वज्ञानियोंने कल्पित किये हैं ॥ ३५ ॥ प्रिय तथा अप्रिय इन्द्रियके विषयोंसे दैवेच्छासे संयोग होनेपरभी जो यह पूर्वोक्तरूप जीवन्मुक्तोंकी अनुभूतिही प्रसिद्ध अविनाशी चित्आत्मा है न कि संसार स्वभाव ॥ ३६ ॥

आकाशातितराच्छाच्छइदंतस्मिंश्चिदात्मनि ॥ स्वाभोगएवहिजगत्पृथग्वत्प्रतिबिंबति ॥ ३७ ॥ बुद्धिस्तद्व्यतिरेकेणलोभमोहादयोहितान् ॥ पात्यसद्व्यतिरेकेणतेचतस्मिंस्तदेवते ॥ ३८ ॥ अदेहस्यैवतेरामनिर्विकल्पचिदाकृतेः ॥ लज्जाभयविषादेभ्यःकुतोमोहःसमुत्थितः ॥ ३९ ॥ अदेहोदेहजैरेभिर्लज्जादिभिरसन्मयैः ॥ किंमूर्खइवदुर्बुद्धिर्विकल्पैर्विभूयसे ॥ ४० ॥

अर्थ—आकाशसेभी अति निर्मल उस चिदात्माके स्वरूपके भीतरही यह जगत् अन्धके समान प्रतिबिम्बित होताहै और प्रतिबिम्बित उस जगत्का शुद्धसाक्षी मात्रसे प्रियाप्रियके विभाग पूर्वक विवेक नहीं होसकता इसलिये उन दोनों (साक्षी चित्) तथा जगत् पृथक् मध्यमें बुद्धि (वा अन्त करता) प्रतिबिंबित होती है वही लोभ मोहादि विषयोंमें प्राप्त होती है और वे बुद्धि प्रेरित लोभ मोहादि अविद्यमानही परस्परके भेदसे उसी चिदात्मामें प्रतिबिंबित है इसलिये नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! देश शून्य निर्विकल्प चिदाकार तुमको लज्जा भय और विषादादिसे मोह कहांसे उपस्थित हुवा ? ॥ ३९ ॥ देह रहित तुम असन्मय देहसे उत्पन्न इस लज्जादिकोंसे दुर्बुद्धि मूर्खके समान क्यों भ्रमोंसें दुःखी होते हैं ॥ ४० ॥

अखंडचितिरूपस्यदेहेखंडनमागते ॥ असम्यग्दर्शिनोप्यस्तिननाशःकिमुसन्मतेः ॥ ४१ ॥ आपतेदर्कमार्गेपिननिरुद्धगमागमम् ॥ चित्तंनामसविज्ञेयःपुरुषोनशरीरकम् ॥ ४२ ॥ शरीरेसत्यसतिवापुमानेवजगत्त्रये ॥ ज्ञोप्यज्ञोपिस्थितोरामनष्टेदेहेननश्यति ॥ ४३ ॥ यानीमानिविचित्राणिदुःखानिपरिपश्यसि ॥ तानिदेहस्यसर्वाणिनाग्राह्यस्यचिदात्मनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—देहके खण्डित होनेसे अखण्ड चित्रूपका खण्डन नहीं होता, जब शरीरके नाशसे असम्यक्दर्शी आत्माकाभी नाश नहीं होता तो सम्यक्दर्शीका नाश कब होगा ॥ ४१ ॥ स्वतंत्र होनेसे जिसका गमनागमन कहीं निरूद्ध नहीं है ऐसा चित्त आलम्बन शून्य सूर्य्यके मार्गमें जासकताहै वही पुरुष संसारी आत्मा है न कि देह ॥४२॥ शरीर रहै वा न रहै वह आत्मा तीनो लोकमें, ज्ञानी हो वा अज्ञानी हो वह तो ज्योंका त्यों स्थित रहताहै, और देहके नष्ट होनेसे नष्ट नहीं होता ॥ ४३ ॥ जो यह विचित्र सुख दुःख देखतेहो ये सब शरीरकोही होतेहैं न कि अग्राह्य चिदात्माको ॥ ४४ ॥

मनोमार्गादतीतत्वाद्यासौशून्यमिवस्थिता ॥ चित्कथंनामदुःखैर्वासुखैर्वापरिगृह्यते ॥ ४५ ॥ स्वास्प दात्मानमेवासौविनष्टाद्देहपंजरात् ॥ अभ्यस्तांवासनांयातःषट्पदःखमिवांबुजात् ॥ ४६ ॥ असच्चेदा त्मतत्त्वंतदस्मिंस्तेदेहपंजरे ॥ नष्टेकिंनामनष्टंस्याद्रामकेनानुशोचसि ॥ ४७ ॥ सत्यंभावयतेनत्वंमामो हमनुभावय ॥ निरिच्छस्यात्मनोनेच्छाकाचिदप्यनघाकृतेः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनके मार्गसेभी परे जो चित् शून्यके समान अर्थात् आकाशवत् व्याप्त है कहो वह दुःख वा वैषयिक सुखोंसे कैसे ग्रहण की जासकती है ॥ ४५ ॥ यह चेतन जन्मजन्मान्तरकी अभ्यस्त वासनाको प्राप्तभी परन्तु इस देहरूपी पिंजरीसे निकलके अपनी प्रतिष्ठा भूत परमात्मस्वरूपमेंही प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ यदि जीव प्रति-बिंब है तो उपाधिसे पृथक् उसकी सत्ता नहीं होसकती और उपाधिके नाशसे नाशभी होगा सो यदि आत्मतत्व जीव असत् है तोभी उस देहरूपी पंजरके नष्ट होनेपर तुमारा क्या नष्ट हुआ क्योंकि तुम जीव नहीं हो इसलिये तुम क्यों शोच करते है ॥ ४७ ॥ इसलिये हे रामजी ! जीव और उसकी उपाधिके परित्यागसे सत्यस्वरूप ब्रह्मकीही भावना करो, और मोह भ्रान्तिको प्राप्त नश्वर देहादिमें आत्मभावना मतकरो और इच्छारहित शुद्ध आकारवाले परमा-त्माको कोई इच्छा नहीं होसकती ॥ ४८ ॥

साक्षिभूतेसमेस्वच्छेनिर्विकल्पेचिदात्मनि ॥ निरिच्छंप्रतिबिंबंतिजगंतिमुकुरेयथा ॥ ४९॥ साक्षिभूते समेस्वच्छेनिर्विकल्पेचिदात्मनि ॥ स्वयंजगंतिदृश्यंतेसन्मणाविवरश्मयः ॥ ५० ॥ अनिच्छमपिसं बंधोयथादर्पणबिंबयोः ॥ तथैवेहात्मजगतोर्भेदाभेदौव्यवस्थितौ ॥ ५१ ॥ सूर्यसन्निधिमात्रेणयथोदेति जगत्क्रिया ॥ चित्सत्तामात्रकेणेदंजगन्निष्पद्यतेतथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—सबका साक्षीभूत, सर्वत्र समान निर्मलरूप, और निर्विकल्प चिदात्मामें बिना इच्छाही सब ब्रह्माण्ड ऐसे प्रतिबिंबित होतेहैं जैसे दर्पणमें अन्य पदार्थ ॥ ४९ ॥ और साक्षीभूत, समरूप तथा विकल्प शून्य चिदात्मामें सब जगत् ऐसे देख पडते हैं जैसे सच्चेमणिमें किरण ॥ ५० ॥ हे रामजी ! जैसे बिना इच्छाही दर्पण और बिम्बका सम्बन्ध है ऐसेही यहांपर आत्मा और जगत्का भेदाभेद सम्बन्ध व्यवस्थित है अर्थात् भानमात्रसे भिन्न और यथार्थमें अभिन्न है ॥ ५१ ॥ जैसे सूर्य्यकी समीपतामात्रसे जगत्की क्रिया होती है ऐसेही चित्की सत्तामात्रसे यह जगत् उत्पन्न होताहै ॥ ५२ ॥

पिंडग्रहोनिवृत्तोस्याएवंरामजगत्स्थितेः ॥ आकाशमेषासंपन्नाभवतामपिचेतसि ॥ ५३ ॥ सत्तामात्रेण दीपस्ययथालोकःस्वभावतः ॥ चित्तत्त्वस्यस्वभावात्तुतथेयंजागतीस्थितिः ॥ ५४ ॥ पूर्वंमनःसमुदि तंपरमात्मतत्त्वात्तेनाततंजगदिदंस्वविकल्पजालैः ॥ शून्येनशून्यमपितेनयथांबरेणनीलत्वमुल्लसित चारुतराभिधानम् ॥५५॥ संकल्पसंक्षयवशाद्गलितेतुचित्तेसंसारमोहमिहिकागलिताभवंति ॥ स्वच्छं विभातिशरदीवखमागतायांचिन्मात्रमेकमजमाद्यमनंतमंतः ॥ ५६ ॥ कर्मात्मकंप्रथममेवमनोभ्युदे तिसंकल्पतःकमलजप्रकृतीस्तदेत्य॥ नानाभिधंजगदिदंहिमुधातनोतिवेतालदेहकलनामिवमुग्धबालः ॥ ५७ ॥ असन्मयंसदिवपुरोविलक्ष्यतेपुनर्भवत्यथपरिसीयतेपुनः ॥ स्वयंमनश्चिवितिचितसंस्फुरद्वपु र्महार्णवेजलवलयावलीयथा ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे स्वरूपनिरूपणंनामद्वाविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२२ ॥ उत्पत्तिप्रकरणंसंपूर्णम्॥

अर्थ—हे रामजी ! इस जगत्की स्थितिका मूर्तिमान आकार इस प्रकार निवृत्त हुआ तो इसकी आकाश (शुद्धचित्) रूपता आपलोगोंके चित्तमेंभी आरूढ होगई ॥ ५३ ॥ जैसे दीपकी सत्तामात्रसे स्वभावसेही प्रकाश प्रवृत्त होताहै, ऐसेही चित् तत्वके स्वभावमात्रसे इस जगत्की स्थिति है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! जैसे शून्यरूप आकाशने शून्यही परन्तु सब जनोंसे अनुभूत सुन्दर शोभायमान आकर और नामवाले नीचे मुख किये हुये स्निग्ध नीलमणिके सदृश नीलत्व आकाशके गुणको रचाहै इसीरीतिसे परमात्मतत्वसे पूर्वकालमें मन उत्पन्न और उसने अपने विकल्प जालोंसे इस जगत् आडम्बरको रचाहै ॥ ५५ ॥ संकल्पके वशसे चित्तके नष्ट होनेसे संसारके मोहरूपी तुषार आपही नष्ट होजाताहै और उससमय अजन्मा अनादि तथा अनंत निर्मल चिन्मात्र परमात्मा अन्तः-करणमें ऐसे भासताहै जैसे शरदऋतुके आनेपर स्वच्छ आकाश ॥ ५६ ॥ प्रथम सब प्राणीयोंके समष्टि कर्मरूप तथा समष्टि क्रियाशक्ति प्रधान मन आविर्भावको प्राप्त होताहै उसके पश्चात् ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मनुआदि स्रष्टा

शरीरको ग्रहण करके नानाप्रकारके नामसहित इस मिथ्या जगत्का ऐसे विस्तार करतेहैं जैसे मूर्ख बालक वेतालादिके शरीरकी कल्पनाको ॥ ५७ ॥ इसलिये समस्त व्यष्टि समष्टि भेद कलिपत यह जगत् मनोमात्र है और मन असत् अज्ञानका कार्य्य है इसलिये वहभी असत् है इससे अधिष्ठान साक्षीकी सत्ताको स्फूर्तिके बलसे असत् जगत्का स्फुरणाही इसकी उत्पत्ति है इस रीति जगत्के जन्म स्थिति आदिका विवर्त उपादान कर्ता ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है इस हेतुसे प्रपंच रहित सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्मही परमार्थ भूत जगत्रूपसे लक्षित होताहै यह सब श्रुतियोंका सिद्धान्त है इस आशयसे कहतेहैं कि असत् जो अज्ञान है तन्मय अर्थात् असक्त अज्ञानका परिणामभूत जो मन है वह स्वयं अपने अधिष्ठानभूत चैतन्यमें वृद्धिसे जाज्वल्यमान जगत् शरीर होके सत्के सदृश अपने सम्मुख साक्षी चेतनसे ऐसे देखा जाताहै जैसे पूर्ण महासमुद्रमें उसकी सत्तामात्रसे सिद्ध अपरिमित जलके वलयाकार तरंगोंकी पंक्ति इससे बाणीका विषय दृश्यमात्र मिथ्या होनेसे सच्चिदानन्द प्रत्यक् चेतन पूर्णब्रह्मही अविकृतरूपसे सदा है यह सिद्ध है ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां बाल्मीकीये मोक्षोपाये, काशिकराजकीय संस्कृतपाठशाला प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रि शिष्याचार्य्योपाधिधारि प्रयागमण्डलान्तर्गत हरिपुरनामकग्रामनिवासि द्विवेदोपनामक पूज्यपादनचंईप्रसादात्मज द्विवेदोपनामक ठाकुरप्रसाद विरचित भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे स्वरूपनिरूपणं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

॥ समाप्तमिदमुत्पत्तिप्रकरणम् ॥

॥ उत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥

ॐ

श्रीहरिंवन्दे।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ चतुर्थं स्थितिप्रकरणं प्रारभ्यते.

अनुवादकर्तृ मंगलाचरणम्।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं। स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम्॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै। भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय॥ १॥

गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे॥ २॥

प्रथमः सर्गः॥ १॥

उत्पद्ययस्मात्स्थितमेवयस्मिन्नानाप्रकारोल्लसितंहिदृश्यम्।
तंज्ञप्तिमात्रंपुरुषंप्रपद्येयथातरङ्गोऽब्धिमभिन्नरूपः॥ १॥

श्रीगणेशायनमः॥ अथोत्पत्तिप्रकरणादनंतरमिदंशृणु॥ स्थितिप्रकरणंरामज्ञातंनिर्वाणकारियत्॥१॥ एवंतावदिदंविद्धिदृश्यंजगदितिस्थितम्॥ अहंचेत्याद्यनाकारंभ्रांतिमात्रमसन्मयम्॥ २॥ अकर्तृक मरंगंचगगनेचित्रमुत्थितम्॥ अद्रष्टृकंचानुभवमनिद्रंस्वप्रदर्शनम्॥ ३॥ भविष्यत्पुरनिर्माणंचित्तसं स्थमिवोदितम्॥ मर्कटानलतापांतमसदेवार्थसाधकम्॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! अब तुम उत्पत्ति प्रकरणके अनंतर स्थिति प्रकरण सुनो जो कि ज्ञात होनेसे मोक्षकारी है॥ १॥ इस रीतिसे उत्पत्ति प्रकरणमें कथित न्याय और युक्तिद्वारा अहम् तथा विषय आदि जो सम्पूर्ण दृश्य जगत् है यह सब आकार शून्य, भ्रांतिमात्र और असन्मय स्थित है ऐसा तुम जानो॥ २॥ हे रामजी! प्रसिद्ध चित्रसे विलक्षण यह जगत्रूपी चित्रकर्ता शून्य अर्थात् हेतु, करण और उपकरण सम्पन्न लेखक रहित तथा रंग रहित आकाशमें ऐसे आविर्भूत है जैसे द्रष्टा शून्य और निद्रा वर्जित अनुभवरूप स्वप्नका दर्शन॥ ३॥ पुनः यह भविष्य नगरके निर्माणरूप चित्तमें स्थितके समान उदित, और मर्कटोंसे कल्पित घुंघुची तथा गेरू आदिके संचयरूप अग्निके समान असत् होकेभी अर्थ साधक है॥ ४॥

ब्रह्मण्यनन्यदन्याभमंब्वावर्त्तवदास्थितम्॥ सद्रूपमपिनिःशून्यंतेजःसौरमिवांबरे॥ ५॥ रत्नाभापुं जमिवखेदृश्यमानमभित्तिमत्॥ गंधर्वाणांपुरमिवदृश्यंनित्यमभित्तिमत्॥ ६॥ मृगतृष्णांब्विवासत्यं सत्यवत्प्रत्ययप्रदम्॥ संकल्पपुरवत्प्रौढमनुभूतमसन्मयम्॥ ७॥ कथार्थप्रतिभानात्मनकचित्स्थ तमस्थितम्॥ निःसारमप्यतीवांतःसारंस्वप्नाचलोपमम्॥ ८॥

अर्थ—ब्रह्मसे अभिन्न होनेपरभी अन्यके तुल्य भासमान अतएव जलके आवर्तके सदृश स्थित सत्परमात्म-रूप होके यह (जगत् चित्र) ऐसे सर्वथा शून्यरूप है जैसे आकाशमें सूर्यका प्रकाश॥ ५॥ और रत्नोंके किरणोंके

(१) वानर लोग घुंघुची गेरू आदि लाल पदार्थको अग्नि कल्पना करके शीतका निवारण करते हैं यह ऐतिह्य प्रमाणसे प्रसिद्ध है.

पुंजके समान तथा आधार रहित गंधर्व नगरके समान यह दृश्य आकाशमें नित्य दृश्यमान है ॥ ६ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान असत्य होकेभी सत्यके तुल्य विश्वासप्रद, संकल्पके नगरके सदृश अति विस्तृत, और असन्मयरूपसे अनुभूत ॥ ७ ॥ और कवियोंसे कल्पित कथाके नगर तथा पर्वतादिकी रचनाके सदृश, प्रतिभान (बुद्धिकी कल्पनामात्र) स्वरूप, और किसी देश वा कालमें स्थित न होनेसे असत्रूप, तथा सार रहित होनेपरभी अतिदृढ स्वप्नके पर्वतके तुल्य है ॥ ८ ॥

भूताकाशमिवाकारभासुरंशून्यमात्रकम् ॥ शरदभ्रमिवाग्रस्थमलमक्षयमक्षतम् ॥ ९ ॥ वर्णोव्योमम लस्येवदृश्यमानमवस्तुकम् ॥ स्वप्नांगनारताकारमर्थनिष्ठमनर्थकम् ॥ १० ॥ चित्रोद्यानमिवोत्फुल्लमर संसरसाकृति ॥ प्रकाशमपिनिस्तेजश्चित्रार्कानलवत्स्थितम् ॥ ११ ॥ अनुभूतंमनोराज्यमिवासत्यम वास्तवम् ॥ चित्रपद्माकरइवसारसौगंध्यवर्जितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शून्यमात्र होकेभी नीचे मुख किये हुये इंद्रनील मणिके सदृश जो भूताकाशके आकारके तुल्य प्रकाशमान और शरत्कालके मेघके तुल्य ऊपर स्थित घामके निवारणमें समर्थ, तथा ज्ञानके विना निरन्तर क्षय करनेके अयोग्य है ॥ ९ ॥ और आकाशकी नीलताके सदृश अवस्तु होनेपरभी दृश्यमान, स्वप्नकी स्त्रीके रतके समान निरर्थक होनेपरभी संभोगरूप क्रियाका कारक यह जगत् है ॥ १० ॥ तथा चित्रगत वाटिकाके सदृश नीरस होनेपरभी सरसाकार और विकसित, और प्रकाशरूप होनेपरभी चित्रगत सूर्य्य तथा अग्निके तुल्य तेज रहित स्थित है ॥ ११ ॥ तथा अनुभूत मनोराज्यके समान असत्य और अवस्तु और चित्रमें अर्पित कमलके समान पराग तथा सौगन्ध्यसे वर्जित है ॥ १२ ॥

शून्येप्रकचितंनानावर्णमाकारितात्मकम् ॥ अपिंडग्रहमाशून्यमिंद्रचापमिवोत्थितम् ॥ १३ ॥ पराम र्शेनशुष्यद्भिर्भूतपेलवपल्लवैः ॥ कृतंजडमसारात्मकदलीस्तंभभासुरम् ॥ १४ ॥ स्फुरितेक्षणदृष्टांधका रचक्रकवर्त्तनम् ॥ अत्यंतमभवद्रूपमपिप्रत्यक्षवत्स्थितम् ॥१५॥ वार्बुद्बुदमिवाभोगिशून्यमंतःस्फुर द्वपुः ॥ रसात्मकंचाप्यरसमविच्छिन्नक्षयोदयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कल्पनामय शून्यमें विकसित नानाप्रकारके वर्णके सदृश, और मूर्तिमान् आकारसे रहित, सर्वथा इन्द्रके धनुषके सदृश यह जगत्रूप चित्र प्रकट है ॥ १३ ॥ और परमात्माके किंचित् विचारसे कंपित शूखते हुये भूतरूपी कोमलपल्लवोंसे जडीभूत केलेके वृक्षके समान भासमान यह जगत्रूपी चित्र है ॥ १४ ॥ तथा स्फुरितेक्षण (नेत्रज्योतिका अवरोधक) नाम नेत्रके रोगके सदृश अन्धकारमें भ्रमणरूप व्यवहार करनेवाला, तथा अत्यन्त असम्भवरूप होनेपरभी प्रत्यक्षके समान स्थित यह जगत् है ॥ १५ ॥ तथा जलके बुद्बुदके समान कल्पित आकारवान्, अन्तरमें शून्य होनेपरभी जाज्वल्यमान शरीर बिना बिचारे रमणीय स्वरूप होनेपरभी परिणाममें कटु, और निरन्तर जन्ममरण संयुक्त यह जगत्रूप चित्र है ॥ १६ ॥

नीहारइवविस्तारिगृहीतंसन्नकिंचन ॥ जडशून्यास्पदंशून्यंकेषांचित्परमाणुवत् ॥ १७ ॥ किंचिद्भूतम योस्मीतिस्थितंशून्यमभूतकम् ॥ गृह्यमाणोप्यसद्रूपोनिशाचरइवास्थितम् ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ महाकल्पक्षयेदृश्यमास्तेबीजइवांकुरः ॥ परेभूयउदेत्येतत्तत्तएवेतिकिंवद ॥ १९ ॥ एवंबोधाःकिमज्ञाः स्युरुतज्ञाइतिचस्फुटम् ॥ यथावद्भगवन्ब्रूहिसर्वसंशयशान्तये ॥ २० ॥

अर्थ—तथा नीहार (कुहिरा) के समान विस्तारी होनेपरभी ग्रहण करनेपर यह जगत् चित्र कुछ नहीं रहता, और सांख्यके मतमें केवल जडात्मक, वेदांतियोंके मतमें अविद्यारूप माध्यमिकोंके मतमें शून्यमात्र क्षणिक होनेसे काल कृत परमाणुओंसे रचित योगाचार्योंके मतमें दैशिक और कालिकपरमाणुओंसे रचित कणाद और गौतमके मतमें अनियत स्वभाव (अनेकांत) और परमाणुसे रचित यह जगत्रूप चित्र है, तथा अनेकांत बादी आर्हतमतानुयायी जैनियोंके मतमें यह जगत् अनेकांत है, इत्यादि अनेक रूपसे यह जगत् कल्पित है ॥ १७ ॥ और बाह्य जगत्में उक्तन्याय आध्यात्मिकमेंभी है जैसे किंचित् भूतमय मैं हुं, इसप्रकार भौतिक धर्मरहित शून्यही यह जीव स्थित है, और ग्रह्यमाण होनेपरभी असत्रूप निशाचरके समान आविर्भूत है ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! महाप्रलयमें यह दृश्यपरमात्मामें ऐसे रहताहै जैसे बीजमें अंकुर और उसीसे पुनः उत्पन्न होताहै इस बातको " सदेवसौम्येदमग्रआसीत् " (यह जगत् प्रथम सत्परमात्मामेंही था) इत्यादि सत्कार्य्य बादिनी श्रुति तथा उनके व्याख्या कर्ता व्यास कपिलादिने जो कहाहै उसकी संगति कैसे होगी सो कृपा करके कहिये ॥ १९ ॥ और महाप्रलयमें यह जगत् अपनी सत्तासे

कारणमें रहताहै, इसप्रकार जिनको ज्ञान है वे ज्ञानी हैं, वा अज्ञानी है? हे भगवन्! इस बातको स्पष्ट यथावत् कृपा करके सर्व संशयकी शांतिकेलिये कहिये ॥ २० ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदंबीजेंकुरइवदृश्यमास्तेमहाशये ॥ ब्रूतेयएवमज्ञत्वमेतत्तस्यास्तिशैशवम् २१ शृण्वेतत्किमसंबंधंकथमेतदवास्तवम् ॥ विपरीतोबोधएषवक्तुःश्रोतुश्चमोहकृत् ॥ २२ ॥ बीजेकिलांकुरइवजगदास्तइतीहया ॥ बुद्धिःसासत्प्रलापार्थमूढाश्शृणुकथंकिल ॥ २३ ॥ बीजंभवेत्स्वयंदृश्यंचित्तादींद्रियगोचरम् ॥ यवधानादिधान्यानियुक्तःपत्रांकुरोद्भवः ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! महाप्रलयमें यह दृश्य जगत् सत्य अपने स्वरूपसे परमात्मामें बीजमें अंकुरके समान रहताहै यह जो कहाताहै यह उसका अज्ञत्व और बाल्य (लडकपन) है ॥ २१ ॥ हे रामजी! यह वक्ष्यमाण युक्ति समूह तुम सुनो, उत्पत्तिके पूर्व कारणमें कार्य रहताहै यह कहनेवालेसे पूंछना चाहिये कि क्या कार्य्य कारणमें सत्ता सामान्य रूपसे रहताहै वा बीजादि सत्तासे अथवा अंकुरादिकी सत्तासे प्रथम पक्षमें अंकुरादिका संबंध किससे नहीं है अर्थात् सामान्य सत्ता सर्व वस्तुकी साधारण है इसलिये उत्पद्यमान अंकुरादिके संबंधका प्रसंग सर्वत्र होजायगा, यदि इस पक्षको अंगीकार करोगे तो इस अंकुरादिके क्षेत्र (खेत) में अंकुरित बीजमें जो देखा वह यथार्थ वस्तु है और कुसीलस्थ (कोठिलाके) बीजमें वा पाषाणखंडमें वह अवस्तु कैसे? और द्वितीय पक्षमेंभी बीज सत्ताका अंकुरादिके तथा घटपटादिके संबंधमें कुछ विशेषता नहीं कही जा सकती, तो ऐसी संबंधरहित वस्तु क्या है जो बीजमें नहीं? अर्थात् व्रीहि (धान) आदिके बीजमें सब जगत्का प्रसंग होजायगा, यदि इसकोभी अंगीकार करोगे तो अंकुरित बीज अंकुरादि वास्तव और घटपटादि अवास्तव (मिथ्या) यह कैसे? और तृतीय पक्षमेंभी अंकुरकी स्वरूप सत्तासे अंकुरके तथा घटपटादिके संबंधमें कुछ विलक्षणता नहीं कही जा सकती तो इससे सर्वत्र अंकुरका प्रसंग होजायगा, इष्टापत्ति मानो तो बीजादिमें अंकुरादि वास्तव हैं अन्यत्र नहीं यह कैसे? और साधारण सत्तासे असाधारण अंकुरादि हैं, कार्य सत्तासे कारण और कारण सत्तासे कार्य है इन तीनों पक्षोंमें कथन असंगत है, इसलिये यह बोध (अपने रूपसे कार्य कारणमें है) विपरीत है तथा वक्ता श्रोता दोनोंको मोहकारी है ॥ २२ ॥ हे रामजी! बीजमें अंकुरके सदृश प्रलयमें यह जगत् सत्परमात्मामें रहताहै इस इच्छासे सत्कार्यके प्रलयार्थ अर्थात् प्रलयमें जगत् सत्ताके दृष्टांतार्थ जो बुद्धि है वह निश्चयरूपसे कैसे भ्रांति रूप है सो तुम सुनो ॥ २३ ॥ सतुष (भूसीसहित) यव (जव) धान आदि धान्य बीज स्वयं चित्त आदि इंद्रियोंका गोचर है, और उसमें अन्वय व्यतिरेकसे अंकुरादिके प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे, सावय तथा परिणामी स्वभावतासे तथा अंकुरके विजातीय भेद निर्वाहक जातिके रचना विशेष होनेसे बीजभाव होसकताहै ॥ २४ ॥

मनःषष्ठेंद्रियातीतंयत्स्यादतितरामणु ॥ बीजंतद्भवितुंशक्तंस्वयंभूर्जगतांकथम् ॥ २५ ॥ आकाशादपि सूक्ष्मस्यपरस्यपरमात्मनः ॥ सर्वाख्यानुपलंभस्यकीदृशीबीजताकथम् ॥ २६ ॥ तत्सूक्ष्ममसदाभासमसदेवह्यतादृशम् ॥ कीदृशीबीजतातत्रबीजाभावेकुतोंकुरः ॥ २७ ॥ गगनांगादपिस्वच्छेशून्येतत्र परेपदे ॥ कथंसंतिजगन्मेरुसमुद्रगगनादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—मनसहित छओं इन्द्रियोंसे अतीत, और अतिसूक्ष्म स्वयंभू परमात्मा सब ब्रह्मांडोंका बीज कैसे होसकताहै ॥ २५ ॥ जो परमात्मा आकाशसेभी सूक्ष्म और सम्पूर्ण बाणीके विषय नामादिसे रहित हो उसकी बीजता भला किसप्रकार होसकतीहै? ॥ २६ ॥ जो परमात्मा सदा एकरस सत्स्वरूप है वह अतिसूक्ष्म होनेसे अज्ञानियोंकी दृष्टिमें असत्के तुल्य भासताहै उसमें बीजता किसप्रकार होसकती है, और बीजताके अभावमें अंकुर कहां? ॥२७॥ हे रामजी! आकाशके समान निर्मल और अज्ञानियोंकी दृष्टिसे शून्यके समान उस परमपदमें, जगत् तथा उसके अन्तर्गत सुमेरु, समुद्र और आकाशादि कैसे आसकतेहैं? ॥ २८ ॥

नकिंचिद्यत्कथंकिंचित्तत्रास्तेवस्तुवस्तुनि ॥ अस्तिचेत्तत्कथंतत्रविद्यमानंनदृश्यते ॥ २९ ॥ नकिंचिदात्मना किंचित्मथमेतिकुतोथवा ॥ शून्यरूपाद्घटाकाशाज्जातोद्रिःक्कुतःकदा ॥३०॥ प्रतिपक्षेकथं किंचिदास्तेच्छायातपेयथा ॥ कथमास्तेतमोभानौकथमास्तेहिमोऽनले ॥ ३१ ॥ मेरुरास्तेकथमणौ कुतःकिंचिदनाकृतौ ॥ तदतद्रूपयोरैक्यंक्कच्छायातपयोरिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिसके दृश्य कोईभी अंग नहीं है उस वस्तुमें यह ब्रह्माण्डरूप वस्तु कैसे रहसकताहै, और यदि कहो कि रहताहै तो उसमें विद्यमान रूपसे क्यों नहीं देख पडता? ॥ २९ ॥ यदि कोईभी स्थूल पदार्थ रूपसे नहीं है तो

उसमें कोई पदार्थ कैसे और कहांसे आया, क्योंकि शून्य घटाकाशसे पर्वत कहांपर किसप्रकार और कब उत्पन्न हुआ? ॥ ३० ॥ चित्सत्ता जडसत्ताकी विरोधिनी होनेसेभी आत्मचेतनमें कुछ नहीं रह सकता, क्योंकि आतपमें छाया कैसे रहसकती है और सूर्यमें अन्धकार तथा अग्निमें बर्फ कैसे रहसकताहै ? ॥ ३१ ॥ भला आकार शून्य परमात्मामें मेरू कैसे रहसकताहै, यदि यह कहा जाय कि भेदरूपसे जगत् ब्रह्ममें नहीं है परन्तु एकतारूपसे रहनेमें तो कोई बाधा नहीं सो भी नहीं क्योंकि छाया और आतपके सदृश चित्रूप आत्मा और जडरूप जगत्की एकता कैसी ॥ ३२ ॥

साकारवटधानादावंकुराःसंतियुक्तिमत् ॥ नाकारेतन्महाकारंजगदस्तीत्ययुक्तिकम् ॥ ३३ ॥ देशांतरे यचनरांतरेचबुद्धयादिसर्वेंद्रियशक्तिदृश्यम् ॥ नास्त्येवतत्तद्विधबुद्धिबोधेनकिंचिदित्येवतदुच्यतेच ३४ कार्यस्यतत्कारणांप्रयातंवक्तीतियस्तस्यविमूढबोधः ॥ कैर्नामतत्कार्यमुदेतितस्मात्स्वैःकारणाद्यैःसह कारिरूपैः ॥ ३५ ॥ दुर्बुद्धिभिःकारणकार्यभावसंकल्पितंदूरतरेण्युदस्य ॥ तदेवतत्सत्यमनादिमध्यं जगत्तदेतत्स्थितमित्यवेहि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे जन्यजनिनिराकरणं नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—आकर सहित वटकी धाना आदिमें अंकुर हैं यह बात युक्तिसहित है, और निराकार परमात्मामें महान् आकारवाला जगत् है यह बात युक्ति विरुद्ध है ॥ ३३ ॥ और सांख्य आदि कल्पित (प्रलयमें अपने स्वरूपसे जगत् सत्ता रहती है) यह सिद्धांत लौकिक प्रमाणबलसे है वा " सदेवसौम्येदमग्रआसीत् " इत्यादि श्रुतिबलसे सो दोनों नहीं क्यों बुद्धि आदि सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्तिसे दृश्य अर्थात् अनुभवयोग्य जो घटपट आदि पदार्थ हैं वे अपने देशकालरूप अधिकरणसे अन्य देशकाल अधिकरणमें होतो साक्षात् वह पुरुष दुष्टहो वा अन्यहो परंतु वे पदार्थ प्रत्यक्ष अनुमानादि बुद्धि वृत्तिके बोधसे भान नहीं होते अर्थात् दृश्यके अदर्शनसे वह पदार्थ असत्केही तुल्यहै, ऐसा लौकिक प्रमाणमें कुशल जन कहतेहै ॥ ३४ ॥ और द्वितीय पक्षमें " सदेवसौम्येदमग्रआसीत् " इत्यादि श्रुतियोंमें कार्य कारणकी दो सत्ताओंका भान नहीं होता " एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म " (केवल एकही अद्वितीय ब्रह्म है) इत्यादि श्रुतियोंसे "सदेवसौम्येदमग्रआसीत्" इत्यादिकी एक वाक्यता है अर्थात् वह एकही है, यहांपर यह विचारना चाहिये कि सत् जो कार्य है सत्व कारणताको प्राप्त हुआ है यह श्रुति कहती है, अथवा कारणही सत् है उसीका सत्व कार्यरूपमें आरोपित है, अथवा सत् परमात्माही सत् है उसीकी सत्ता कार्य कारणरूपमें आरोपित है, सो यदि इन तीन पक्षोंमें सांख्यका बोध प्रथम पक्षके अनुसारी है तो यह उनका बोध भ्रान्तिरूपही है क्योंकि " वाचारम्भणंविकारोनामधेयम् " (जो कार्य मृत्तिकादिसे घटपटादिरूप है वह केवल वाणी मात्रका विषय है) इत्यादि श्रुतियोंसे कार्यका मिथ्यात्व दर्शाया है और कारणके मिथ्यात्वसे अपने सिद्धान्तका व्याघात होताहै इस लिये कारण गुणके मिथ्यात्वसे किन २ सहकारी कारणोंसे कार्य उत्पन्न हो और कारणके असत् होनेसे कार्य उत्पन्न हो ही नहीं सकता इसीलिये द्वितीय (सत् कारण कार्यरूपतामें प्राप्त होताहै) पक्षभी सत्य नहीं क्योंकि कार्यके असत् होनेपर कार्य निरूपिता कारणता होती है इस रीतिसे कारणताकाभी निरूपण नहीं होसकता इसलिये तृतीय पक्ष (सत्में कार्य कारणताका आरोप) श्रुति संमत है ॥ ३५ ॥ इसलिये हे रामजी ! दुर्बुद्धियोंसे कल्पित जो कार्य कारणभाव है अथवा उपादान उपादेय भाव है उसको उन्हीके सहकारी कारणादि भेदोंसे निरासकरके अर्थात् मिथ्यात्वरूप समझकर दूसरेसेही त्यागकर जो शेष आदि मध्यान्त रहित सन्मात्र परमात्मा है वही जगत्रूपसे स्थित है ऐसाही तुम समझो ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे जन्यजनिनिराकरणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितियः सर्गः ॥ २ ॥

तर्कोंसे स्वरूपके भेदद्वारा जगत्की निरास स्थितिका (खण्डन) करके शेष पूर्णानन्द परमात्माकी स्थितिका वर्णन इस द्वितीय सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैतदभ्युपगमेवच्मिवेद्यविदांवर ॥ समस्तकलनातीतेमहाचिद्व्योम्निनिर्मले॥१॥ जगदाद्यंकुरस्तत्रयद्यस्तितदसौतदा ॥ कैरिवोदेतिकथयकारणैःसहकारिभिः ॥ २ ॥ सहकारिकारणानामभावेत्वंकुरोद्गतिः ॥ वंध्याकन्येवदृष्टेहनकदाचनकेनचित् ॥ ३ ॥ सहकारिकारणानामभावेयद्यवोदितम् ॥ मूलकारणमेवांगतत्स्वभावस्थितिंगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ--श्रीवसिष्ठजी बोले-हे जानने योग्य पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! इसके पश्चात् प्रलयमें ईश्वरसे पृथक् इस जगत् सत्ताका स्वीकार करनेमें दोषोंको कहताहुं सो यदि जगत् नहीं है तो सृष्टिभी नहीं है क्योंकि उत्पत्तिक्रिया कर्तासे साध्य है और सत्ब्रह्मही यदि कर्ता है तो वही उत्पन्न होताहै और उत्पद्यमानको छोडके दूसरा कर्ता नहीं है, और कूटस्थ ब्रह्मकी उत्पत्ति आदिकी संभावना नहीं इसलिये उत्पत्ति आदिकी सिद्धिकेलिये महाप्रलयमें जगत्की सत्ताभी माननी चाहिये सो यदि समस्त कल्पनाओंसे रहित निर्मल महा चिदाकाशमें ॥ १ ॥ कर्ताकी सत्ताकी कल्पना की जाय तो किन सहकारी कारण, अर्थात् करण, उपकरण तथा अधिकरण आदिसे यह कर्तापन सिद्ध होसकताहै, यदि यह कहो, कि सहकारी कारणके बिना केवल कर्त्तामात्रसे उत्पत्तिक्रिया नहीं सिद्ध होसकती ॥ २ ॥ और सहकारी कारणोंके अभावसे अंकुरसे उत्पत्ति ऐसी है जैसे वन्ध्यासे कन्याकी उत्पत्ति सो किसने और कब देखी ? ॥ ३ ॥ इसलिये सहकारी कारणोंके अभावसे जो आविर्भूत है वह रज्जुके सर्प्पके समान मूलकारणही जगत्रूप स्वभावसें स्थित है ॥ ४ ॥

सर्गादौसर्गरूपेणब्रह्मैवात्मनितिष्ठति ॥ यथास्थितमनाकारंक्कजन्यजनकक्रमः ॥ ५ ॥ अथपृथ्व्यादयोन्येवाकेचिदत्रोपकुर्वते ॥ सहकारिकारणत्वंतत्पूर्वंचात्रदूषणम् ॥ ६ ॥ तस्मात्पदेजगच्छांतमास्ते तत्सहकारिभिः ॥ चित्तात्प्रसरतीत्युक्तिर्बालस्यनविपश्चितः ॥ ७ ॥ तस्माद्रामजगन्नासीन्नचास्तिन भविष्यति ॥ चेतनाकाशमेवाशुकचतीत्थमिवात्मनि ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मही जगतोंकी सृष्टिरूपसे अपने आत्मामें स्थित रहताहै, वह परमात्मा आकारशून्य अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित है यहांपर जन्य और जनकका क्रम कहाहै ? ॥ ५ ॥ यदि यह कहो कि प्रलयमें जगत्सत्ताके स्वीकार करनेसे सहकारी कारण जगत्के अंतर्गत पृथिवी आदिकी उत्पत्ति हो तो सहकारी कारण हो, और सहकारी कारणके बिना उत्पत्ति नहीं होसकती इसलिये यह अन्योन्याश्रय (एककी सिद्धिमें परस्पर दूसरेकी अपेक्षा) दोष है ॥ ६ ॥ इससे प्रलयमें प्रकृति सहित परमात्मामें सहकारी कारण सहित जगत् तिरोहित (छिपा) रहताहै यह कथन बालककेही चित्तसे होसकता न कि बुद्धिमानके ॥ ७ ॥ हे रामजी! इसलिये यह जगत् न सत्यरूप था न है और न होगा, किन्तु शुद्धचिदाकाशही शीघ्र अपने स्वरूपमें इस प्रकार जगत्रूपसे विकसित होताहै ॥ ८ ॥

अत्यंताभावएवास्यजगतोविद्यतेयदा ॥ तदाब्रह्मेदमखिलमितितद्रामनान्यथा ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रध्वंसनान्योन्याभावैर्यदुपशाम्यति ॥ नशाम्यत्येवतच्चित्तेशाम्यत्येवतुदृश्यते ॥ १० ॥ अत्यंताभावएवास्यभावैर्यदुपशाम्यति ॥ नशाम्यत्येवसच्चित्तेकशाम्यत्येवदृश्यता ॥ ११ ॥ अत्यंताभावएवातोजगद्दृश्यस्य सर्वथा ॥ वर्जयित्वेतरायुक्तिर्नास्त्येवानर्थसंक्षये ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब इस जगत्का सर्वथा अत्यंताभावही है तब यह सम्पूर्ण ब्रह्मही है और कुछ नहीं ॥ ९ ॥ और जो श्रुति प्रतिपाद्य बोधसे पूर्वजगत् संबंधी घटपटादि मुद्गरादिके प्रहारादिसे अन्योन्याभावसे शान्त होतेहैं वह पदार्थोंका उपरम केवल इतनाही है कि इस समय नहीं वा इस रूपसे नहींहै तो नेत्र आदिसे नहीं देखपडता परन्तु चित्तसे वह शान्त नहीं होताहै ॥ १० ॥ इसलिये काम कर्म वासनादि बीजोंके साथ जो दृश्य शांत होताहै वही शान्त होना यथार्थ है, और चित्तके रहनेपर जो शान्त होताहै वह कुछ नहीं है क्योंकि ज्ञानके विना दृश्यताकी शान्ति कहां ? अर्थात् दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इसलिये मूल अज्ञानसहित मनको सर्वथा नाशके विना दृश्यरूप अनर्थ संक्षयरूप मोक्षके लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ १२ ॥

चिदाकाशस्यबोधोयंजगद्वार्तीतियत्स्थितम् ॥ अयंसोहमिदंनाहंलोकेचित्रकथायथा ॥ १३ ॥ इदमन्व्यादिपृथ्व्यादितथेदंवत्सरादिच ॥ अयंकल्पःक्षणश्चायमिमेमरणजन्मनी ॥ १४ ॥ अयंकल्पांतसंरंभोमहाकल्पांतएषसः ॥ अयंससर्गप्रारंभोभाव्यभावक्रमस्त्वसौ ॥ १५ ॥ लक्ष्माणीमानिकल्पानामिमाब्रह्मांडकोटयः ॥ एतेचेमेपरिगताइमेभूयउपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये जगत्के तत्वरूप आत्म साक्षात्कारसे जो चिदाकाश मात्रका बोध अर्थात् यह सब चिन्मात्र ब्रह्महीहै अणुमात्रभी अचित् रूप नहीं है ऐसा ज्ञान जब परिपक्व होताहै तब यह देवदत्त आदि नाम शरीर वह माता पितासे जन्य मैं, और यह अन्यके शरीर गृहादि इत्यादि पामरोंका व्यवहाररूप जगत्की स्थिति ऐसी होजाती है जैसे चित्रकी कथा ॥ १३ ॥ यह सब पर्वत आदि पृथिवी आदि तथा वर्षादि, और कल्प तथा क्षण, और ये जन्ममरण ॥ १४ ॥ यह नित्य कल्प तथा महा कल्पान्तका उद्योग, यह दृश्यमान तथा वह श्रुति प्रसिद्ध सृष्टिका आरंभ तथा सृज्यमान आकाशादिका सृष्टिका क्रम ॥ १५ ॥ कल्पोंके ये लक्षण, तथा करोडों ब्रह्माण्ड, और ये वर्तमानभूत तथा पुनः आनेवाले सर्ग (सृष्टि) ॥ १६ ॥

इमानिधिष्ण्यजालानिदेशकालकलाइमाः ॥ महाचित्परमाकाशमनावृतमनंतकम् ॥ १७ ॥ यथापूर्वं स्थितंशांतमित्येवंकचतिस्वयम् ॥ परमाणुसहस्रांशुभासएतामहाचितेः ॥ १८ ॥ स्वयमंतश्चमत्कारोयःसमुद्गीर्यतेचिता ॥ तत्सर्गभानंभातीदमरूपंनतुभित्तिमत् ॥ १९ ॥ नोद्यंतिनचनश्यंतिनायांति नचयांतिच ॥ महाशिलासुलेखानांसन्निवेशाइवाचलाः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा देवता और मनुष्योंके रहनेके स्थान चतुर्दश भुवनोंके समूह, तथा सातों द्वीपरूप देश और सत्युगादिकालोंकी कल्पना ये सब चित्रकी कथाके न्यायसे वर्णित हैं पदार्थरूपसे आवरण शून्य है और अनन्त परमात्माकाशमें जो महाचित्रूप है, वही पूर्वमें जैसे स्थितथा वैसाही स्फुरित होरहाहै, और ये सब महाचेतनके चिदाभास इसप्रकार हैं जैसे गवाक्ष (झरोंखे) के अन्तर्गत छिद्रके परमाणुओंमें परिच्छिन्न सूर्यकी दीप्ति ॥ १७ ॥ १८ ॥ और मनसे क्षुब्धवित् अपने अंतर्गत जगत्रूप चित्का चमत्कार वमन कर्ती है वही यह रूपरहित सृष्टिका भान है न कि साकार भित्तिवाले चित्रके समान ॥ १९ ॥ जैसे स्फटिककी महाशिलाओंमें नेत्रके दोषसे रेखाओंके अचल स्थान हैं ऐसेही उस आत्मरूपमें ये ब्रह्माण्ड न उत्पन्न हुये न नष्ट होतेहैं, न आतेहैं; न जातेहैं ॥ २० ॥

इमेसर्गाःप्रस्फुरंतिस्वात्मनात्मनिनिर्मले ॥ नभसीवनभोभागानिराकारानिराकृतौ ॥ २१ ॥ द्रवत्वानीवतोयस्यस्पंदाइवसदागतौ ॥ आवर्त्ताइवचांभोधेर्गुणिनोवायथागुणाः ॥ २२ ॥ विज्ञानघनमेवैकमिदमेवमवस्थितम् ॥ सोदयास्तमयारंभमनंतंशांतमाततम् ॥ २३ ॥ सहकार्यादिहेतूनामभावेशून्यतोजगत् ॥ स्वयंभूर्जायतेचेतिकिलोन्मत्तकफूत्कृतम् ॥ २४ ॥ प्रशांतसर्वार्थकलाकलंकोनिरस्तनिःशेषविकल्पतल्पः ॥ चिरायविद्रावितदीर्घनिद्रोभवाभयोभूषितभूःप्रबुद्धः ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे स्थितिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—निर्मल आत्मामें आत्मरूपसे ये सर्ग ऐसे स्फुरित हो रहे हैं जैसे निराकार आकाशमें निराकार आकाशके भाग ॥ २१ ॥ और जैसे जलमें द्रवत्व वायुमें गति समुद्रमें आवर्त और गुणीमें गुण हैं ऐसेही परमात्मामें यह जगत् है ॥ २२ ॥ उदयसे अस्तमय आरंभमय इस जगत्रूपसे विज्ञानघन एकरस शान्त अनन्त ब्रह्मही विस्तृत है ॥ २३ ॥ इसप्रकार सहकारी हेतुओंके अभावसे शून्यके समान प्रकृतिसे यह स्वयंभू (आत्मरूप) जगत् उत्पन्न होताहै यह सांख्यादिका कथन उन्मत्त चेष्टाके सदृश है ॥२४॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण कल्पनारूपी कलंकोंसे शान्त और पदार्थरूप स्वप्न हेतुभूत संपूर्ण विकल्परूप शय्याओंको त्यागकर तथा चिरकालकेलिये अविद्यारूपी गाढी दीर्घ निद्राको भगाकर निर्भय होके ज्ञानसे जाग्रत तुम ब्रह्मवेत्ताओंकी सभारूप पृथिवीको शोभित करनेवाले स्थित होओ ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे स्थितिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

परमात्माका विवर्तरूप इस जगत्की स्थितिका स्थापन करके पुनः ज्ञानदृष्टिसे उसका अपवाद और अज्ञानीकी दृष्टिसे जगत्की अनन्तता इस ३ के सर्गमें वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ महाकल्पांतसर्गादौप्रथमोसौप्रजापतिः ॥ स्मृत्यात्माजायतेमन्येस्मृत्यात्मैवततो जगत् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयसर्गादावेवमेतद्रघूद्वह ॥ स्मृत्यात्मैवभवत्यादौप्रथमोसौ

प्रजापतिः ॥ २ ॥ तत्संकल्पात्मकजगत्स्मृत्यात्मैवमिदंततः ॥ भातिसंकल्पनगरंस्थितंपूर्वप्रजापतेः ॥ ३ ॥ स्मृतिर्नसंभवत्येवसर्गादौपरमात्मनः ॥ जन्माभावात्कथंकुत्रनभसीवमहाद्रुमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! महाकल्पके अन्तमें और सृष्टिकी आदिमें प्रथम प्रजापति स्मरण रूपही उत्पन्न होते हैं, और उनकी स्मृति वा मनोराज्य रूप यह जगत् उनसे उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! महाप्रलयके अन्तमें तथा सृष्टिके आदिमें जैसा तुम कहतेहो वैसा यह प्रथम प्रजापति स्मरणरूपही उत्पन्न होतेहैं ॥ २ ॥ और उसी पूर्व प्रजापतिकी स्मृति वा संकल्परूप यह जगत् ऐसे भान होताहै जैसे गन्धर्वनगर ॥ ३ ॥ सो आपके अभिप्रायसे स्मृतिमें संस्कार रूपसे जगत् सत्ता रहतीहै सो मृत्तिकादिके तुल्य अचेतन प्रधानकी स्मृति नहीं होसकती और आकाशमें महा वृक्षकेसमान जन्मादि विकारके अभावसे परमात्मामें स्मृति कहां४

॥ श्रीरामउवाच ॥ नसंभवतिकिंब्रह्मन्सर्गादौप्राक्तनीस्मृतिः ॥ महाप्रलयसंमोहैर्नश्यतिप्राक्स्मृतिः कथम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येमहाप्रलयेप्राज्ञाःसर्वेब्रह्मादयःपुरा ॥ किलनिर्वाणमायातास्तेव श्यंब्रह्मतांगताः ॥ ६ ॥ प्राक्तनःकःस्मृतेःकर्त्तातस्मात्कथयसुव्रत ॥ स्मृतिर्निर्मूलतांयातास्मर्त्तुर्मुक्तत यायतः ॥ ७ ॥ अतःस्मर्तुरभावेनस्मृतिर्वोदेतिकिंकथम्॥ अवश्यंहिमहाकल्पेसर्वेमोक्षैकभागिनः ८

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! जैसे प्रतिदिन सुषुप्ति है; ऐसेही प्रलयभी है तो सुषुप्तिसे उठनेके पश्चात् जैसे पूर्वकी स्मृति रहती है ऐसेही सृष्टिके आदिमें प्रजापतिकी स्मृतिका सम्भव क्यों नहीं और महाप्रलयके प्रबलमोहसे पूर्वकल्पके संस्कार जनित स्मृति कैसे नष्ट होती है ? ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! महाप्रलयमें पूर्वकालमें आविर्भूत ब्रह्माजी ज्ञानी हैं वे सब मोक्षको प्राप्त होगये; इसलिये वे अवश्य ब्रह्मरूप होगये ॥ ६ ॥ हे सुव्रत ! इसलिये पूर्वकालका उत्पन्न स्मृतिका कर्ता कौन है कहो ? क्योंकि कर्ताके मुक्त होनेसे स्मृति निर्मूल होगई ॥ ७ ॥ इसलिये स्मृतिके कर्ता रूप स्मरण कर्ताके अभावसे क्या और किस रीतिसे स्मृति उत्पन्नहो ? क्योंकि महाकल्पमें अवश्य सब मोक्षके भागी हैं ॥ ८ ॥

नानुभूतेनुभूतेचस्वतश्चिद्व्योम्नियास्मृतिः ॥ साजगद्भूरितिप्रौढाद्दश्यासास्त्येवचित्प्रभा ॥ ९ ॥ भाति संवित्प्रभैवेयमनाद्यंतावभासिनी ॥ यत्तदेतज्जगदितिस्वयंभूरितिचस्थितम् ॥ १० ॥ अनादिकालसं सिद्धंयद्धानंब्रह्मणोनिजम् ॥ सआतिवाहिकोदेहोविराजोजगदाकृतिः ॥ ११ ॥ परमाणाविदंभातित्रि जगत्सवनाभ्रखम् ॥ देशकालक्रियाद्रव्यदिनरात्रिक्रमान्वितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और अनुभूत अथवा अननुभूत चिदाकाशमें स्मृतिको जगत्की उत्पत्तिकी भूमि जो तुमने शंका की वह (प्रबल) चित्की प्रभा है और सत् है; यह सत् कार्यवादिनी श्रुतियोंका तात्पर्य है ॥ ९ ॥ अनादि अनन्त आकाश शील यह चेतनकी प्रभाही भान होती है; और जो जगत् है सो स्वयंभू परमात्माही इस रूपसे स्थित है ॥ १० ॥ अनादि कालसे सिद्ध ब्रह्मके निजस्वरूपका भान है वही ब्रह्माण्डकी शरीरका उपादान कारण जगदाकार सूक्ष्म शरीर है और वह परमात्माही है ॥ ११ ॥ और देशकाल क्रिया द्रव्य तथा रात्रि दिनके क्रमसे संयुक्त तथा बन मेघ और आकाशादिसे युक्त यह त्रिलोक एक परमाणुमें भान होताहै ॥ १२ ॥

परमाणुःप्रविततस्तस्यास्तेताद्दगेवच ॥ भातिभासुरताकारिताद्दग्गिरिकुलंपुनः ॥ १३ ॥ तत्रापिताद्द गाकारमेवप्रत्यनुसंततम् ॥ दृश्यमाभातिभारूपमेतदंगनवास्तवम् ॥ १४ ॥ इत्यस्त्यंतोनसद्दृष्टेरसद् ष्टेश्चवाक्कचित् ॥ अस्यास्त्वभ्युदितंबुद्धंनाबुद्धंप्रतिवानघ ॥ १५ ॥ बुद्धंप्रतीदंब्रह्मैवकेवलंशांतमव्य यम् ॥ अबुद्धंप्रतिबुद्धयैतद्भासुरंभुवनान्वितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और उस पूर्व परमाणुके अंतर्गत दूसरा विस्तृत परमाणु है और वह पूर्व परमाणुके सदृश है और उस परमाणुमें वैसाही मेघ बन आकाशादि सहित यह त्रिलोक भान होताहै ॥ १३ ॥ और उस परमाणुमेंभी उसीप्रकार परमाणु है और उसमेंभी पूर्व कथिताऽनुसार यह त्रिजगत् भान होताहै ऐसेही अव्यवस्थारूपसे निरंतर गुंथा हुआ यह दृश्यभान होताहै; परन्तु हे प्रिय यह वास्तव नहीं है ॥ १४ ॥ हे पापरहित रामजी ! इसप्रकार परम अभ्युदयको प्राप्त ज्ञानीके प्रति इस सत्दृष्टिका अन्त नहीं है और अज्ञके प्रति असत्दृष्टिकाभी अन्त नहीं है ॥ १५ ॥ ज्ञा-

(१) रामचन्द्रजीका गूढ आशय यहहै कि प्रकृतिमें अपनी सत्तामें तिरोहित होके मनरूप प्रजापतिसे उत्पन्न होतेहैं तो उस मनरूप प्रजापतिमें संस्काररूपसे विद्यमान जगत् उत्पन्न होताहै इसमें क्या विरोधहै ॥

नीके प्रति तो यह संपूर्ण प्रपंच अविनाशी शान्त केवल ब्रह्मही है और अज्ञानीकी बुद्धिमें यह चतुर्दश भुवनसहित प्रकाशमान प्रपंच है ॥ १६ ॥

यथेदंभासुरंभातिजगदंडकजृंभितम् ॥ यथाकोटिसहस्राणिभांत्यन्यान्यप्यणावणौ ॥ १७ ॥ यथास्तंभेपुत्रिकांतस्तस्याःस्वांगेषुपुत्रिका ॥ तस्याश्चपुत्रिकास्त्यंगेतथात्रैलोक्यपुत्रिका ॥ १८ ॥ नाभिन्नानापिसंख्येयायथाद्रौपरमाणुकाः ॥ तथाब्रह्मबृहन्मेरौत्रैलोक्यपरमाणवः ॥ १९ ॥ सूर्यांशुषुसंख्यातुंशक्यंतेलघवोणवः ॥ उत्पद्यंतेचिदादित्येत्रैलोक्यपरमाणवः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे वृद्धिको प्राप्त यह ब्रह्माण्ड भान होताहै ऐसेही अन्य सहस्रों (हजारों) कोटि ब्रह्माण्ड एक २ अणुमें भान होते हैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जैसे खंभेके अन्तर्गत प्रतिमा बनती है और उस प्रतिमाके अंगोंमें प्रतिमा, पुनः उसके अंगोंमेंभी प्रतिमा है; ऐसेही जगत्के परमाणु २ में त्रैलोक्यरूपी प्रतिमा है ॥ १८ ॥ जैसे पर्वतमें न उस पर्वतसे भिन्न और न संख्या करनेके योग्य अनंत परमाणु है ऐसेही ब्रह्मरूप महान् सुमेरुमें अनेक त्रैलोक्यरूप परमाणु हैं ॥ १९ ॥ यदि सूर्य्यादिके किरणोंमें जो लघु परमाणु है उनकी संख्या हो सके तौभी चेतनरूप सूर्यमें जो त्रैलोक्यरूप परमाणु उत्पन्न होते हैं उनकी संख्या नहीं होसकती; अर्थात् दोनोंकी संख्या असंभव है ॥ २० ॥

यथाणवोवहंत्यर्कदीप्तिष्वप्सुरजःसुच ॥ तथावहंचिदृव्योम्नित्रैलोक्यपरमाणवः ॥ २१ ॥ शून्यानुभवमात्रात्मभूताकाशमिदंयथा ॥ सर्गानुभवमात्रात्मचिदाकाशमिदंतथा ॥२२॥ सर्गस्तुसर्गशब्दार्थतयाबुद्धोनयत्यधः ॥ सब्रह्मशब्दार्थतयाबुद्धःश्रेयोभवत्यलम् ॥ २३ ॥ विज्ञानात्माशासिताविश्वबीजंब्रह्मैवालंस्वंचिदाकाशमात्रम् ॥ यस्माज्जातंयत्तदेवेतिविद्याद्वेद्यंस्वांतर्बोधसंबोधमात्रम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे जगदानंत्यवर्णनं नाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे सूर्यके किरणोंमें; जलमें, और धूलियोंमें अनेक अणु भ्रमण करते हैं ऐसेही चिदाकाशमें त्रैलोक्यरूप अनेक परमाणु भ्रमण किया करते हैं ॥ २१ ॥ जैसे शून्य निराकार भूत आकाशका उसके विरुद्ध नील रूपवान् अनुभव शून्य स्वरूपही है ऐसेही सृष्टिरूपसे अनुभव मात्र गम्य यह चिदाकाशभी है ॥ २२ ॥ यह सर्ग (सृष्टि) सर्गशब्द तथा उसके अर्थरूपसे ज्ञात होनेसे नरकादि अधोलोकमें प्राप्त करताहै और वही ब्रह्म शब्दार्थरूपसे ज्ञात (जाना हुआ) मोक्षरूप कल्याणकारी होताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जीवनामक प्रत्यगात्मा और संसारका कारण तथा शासनकर्ता ईश्वर ये दोनो परमार्थदृष्टिसे शोधन करनेपर परिपूर्ण प्रत्यक् एकरस चिन्मात्र ब्रह्मही है क्योंकि बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों उपाधि भेदकरूप ब्रह्मसे उत्पन्न श्रुतिमें कहेगयेहैं; इसलिये जो जिसमें उत्पन्न हुआ वह वहीहै और सम्पूर्ण वेद्यपदार्थ अपने अन्तःकरणके बोध होनेपर शुद्ध चिन्मात्र बोधरूपहीहैं॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगदानंत्यवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस ४ के सर्गमें जगत्की स्थितिका मूलकारण इंद्रियसहित मन दर्शाया गयाहै और मनके नाशसे दृश्य दर्शनकी असंभवतासे जगत् शून्यरूपताभी वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इंद्रियग्रामसंग्रामसेतुनाभवसागरः ॥ तीर्यतेनेतरेणेहकेचिन्नामकर्मणा ॥ १॥ शास्त्रसत्संगमाभ्यासात्सविवेकोजितेंद्रियः ॥ अत्यंताभावमेतस्यदृश्यस्याप्यवगच्छति ॥ २ ॥ एतत्तेकथितंसर्वस्वरूपंरूपिणांवर ॥ संसारसागरश्रेण्योयथायांतिप्रयातिच ॥ ३ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनमनःकर्मद्रुमाकुरः ॥ तस्मिंश्छिन्नेजगच्छाखीछिन्नःकर्मतनुर्भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इन्द्रियके समूहके जयरूपी सेतु (पुल) से यह महान् भवसागर पार होसकताहै और अन्य किसी कर्मसे नहीं ॥ १ ॥ सो शास्त्र और सज्जनोंके समागमसे यह प्राणी विवेकी औ जितेन्द्रिय होताहै, और जितेन्द्रिय पुरुषही इस दृश्यके अत्यंताभावको समझताहै ॥ २ ॥ हे सब सुंदर प्राणियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! यह सम्पूर्ण स्वरूप (इन्द्रियका जय संसारके उच्छेदका हेतु और इन्द्रियकी वशता संसारमें

पतनका हेतु) तुमसे मैंने कहदिया जिससे संसाररूपी सागरकी अनेक पंक्ति नष्ट होती हैं तथा प्राप्तभी होती हैं॥३॥ अब अधिक कथनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, यह मनही कर्मरूप वृक्षका अंकुर है इसके कटनेपर भोक्ताके भोग्य तथा भोगाकारमें परिणत विहित निषिद्ध कर्मरूपी शरीरवाला जगत्‌रूपी वृक्ष आपही कटजाताहै ॥ ४ ॥

मनःसर्वमिदंरामतस्मिन्नंतश्चिकित्सिते ॥ चिकित्सितोवैसकलोजगज्जालामयोभवेत् ॥ ५॥ तदेतज्जायतेलोकेमनोमननमाकुलम् ॥ मनसोऽव्यतिरेकेणदेहःक्ककिलदृश्यते ॥ ६ ॥ दृश्यात्यंतासंभवेनकृतेनान्येनहेतुना ॥ मनःपिशाचःप्रशमंयातिकल्पशतैरपि ॥ ७ ॥ एतत्रसंभवत्येवमनोव्याधिचिकित्सिते॥ दृश्यात्यंतासंभवात्मपरमौषधमुत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह मनही सब कुछ है इसकी चिकित्सा (दमन) से संपूर्ण जगतोंके समूहरूपी रोगकी चिकित्सासे शांति होजाती है ॥ ५ ॥ और यह जो देह है वह मनकी देहाकार स्फुरणसेही स्वप्नके समान क्रिया करनेसे समर्थ होताहै; और मनसे पृथक् यह देह (कार्य करनेमें समर्थ) कहां देख पडताहै ॥ ६ ॥ और ज्ञानद्वारा दृश्यके अत्यन्ताभावके बिना अन्य किसी हेतुसे यह मनरूपी पिशाच शान्तताको कभी नहीं प्राप्त होता ॥ ७ ॥ और इस मनरूपी रोगके चिकित्सार्थ दृश्यका बादही परमोत्तम औषध संभव है अन्य नहीं ॥ ८ ॥

मनोमोहमुपादत्तेम्रियतेजायतेमनः ॥ तत्त्वचिंताप्रसादेनबद्धयतेमुच्यतेपुनः ॥ ९ ॥ स्फुरतीदंजगत्सर्वंचित्तेमननमूर्च्छिते ॥ शून्यमेवांबरेस्फारेगंधर्वाणांपुरंयथा ॥ १० ॥ मनसीदंजगत्कृत्स्नंस्फारंस्फुरतिचास्तिच ॥ पुष्पगुच्छइवामोदस्तत्स्थंतस्मादिवेतरत् ॥११॥ यथातिलकणेतैलंगुणोगुणिनिवायथा ॥ यथाधर्मिणिवाधर्मस्तथेदंचित्तकेजगत् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह मनही देहादिमें आत्मभावादि मोह उत्पन्न करताहै; वही मरताहै; यही पुनः उत्पन्न होताहै; इसी मनकी चिन्ताके प्रतापसे जीव बंधनमें आताहै; और यही जब आत्माके ज्ञानकी ओर झुकताहै तब वह मुक्तभी होजाताहै ॥ ९ ॥ और संकल्पादि चित्तके प्रबल होनेसे उसी चित्तमें यह सम्पूर्ण जगत् ऐसे स्फुरित होताहै जैसे शून्य विशाल आकाशमें गंधर्वोंका नगर ॥ १० ॥ और मनमें यह संपूर्ण जगत् उससे पृथक्‌के समान ऐसे स्फुरता है और रहताहै जैसे पुष्पके गुच्छेमें स्थित सुगन्ध उससे भिन्नरूपसे भानहो ॥ ११ ॥ जैसे तिलके कणमें तैल; वा गुणिमें गुण; अथवा धर्मीमें धर्म है ऐसेही इस दुष्ट चित्तमें यह जगत् है ॥ १२ ॥

रश्मिजालंयथासूर्येयथालोकस्तुतेजसि ॥ यथौष्ण्यंचित्रभानौचमनसीदंतथाजगत् ॥ १३ ॥ शैत्यंयथैवहुहिनेयथानभसिशून्यता ॥ यथाचंचलतावायौमनसीदंतथाजगत् ॥ १४ ॥ मनोजगज्जगदखिलंतथामनःपरस्परंत्वविरहितेसदैवहि ॥ तयोर्द्वयोमनसिनिरंतरंक्षितेक्षितंजगन्नहुजगतिक्षितेमनः ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये संवादे मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे स्थित्यंकुरकलनंनाम चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्यमें जैसे किरणोंका समूह; जैसे तेजमें प्रकाश; और जैसे अग्निमें उष्णता है ऐसेही मनमें यह जगत् है ॥ १३ ॥ और जैसे तुषार (बर्फ) में शीतता; आकाशमें शून्यता; और वायुमें चंचलता है ऐसेही मनमें यह जगत् है ॥ १४ ॥ जैसे यह मनही सम्पूर्ण जगत् है ऐसेही संपूर्ण जगत्‌भी मन है तथापि इन दोनोंमेंसे मनका सर्वथा नाश होनेपर यह संपूर्ण आपही नष्ट होजाताहै; और जगत्‌के नष्ट होनेसे मन नहीं नष्ट होता ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे स्थित्यंकुरकलनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

महर्षि भृगुके समाधिस्थ होनेपर पर्वतपर क्रीडा करते हुये शुक्राचार्यको अप्सराके दर्शनसे मोह उत्पन्न होना और उससे उनका अप्सरामें तन्मयभाव उत्पन्न होना इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञपूर्वापरविदांवर ॥ अयंमनसिसंसारःस्फारःकथमिवस्थितः ॥१॥ यथायंमनसिस्फारःसंसारःस्फुरतिस्फुरन् ॥ दृष्टांतदृष्टयास्फुटयातथाकथयमेनघ ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथैंदवानांविप्राणांजगंत्यवपुषामपि ॥ स्थितानिजातदार्ढ्यानिमनसीदंतथास्थितम् ॥ ३ ॥ लवणस्ययथाराज्ञश्चेंद्रजालाकुलाकृतेः ॥ चंडालत्वमनुप्राप्तंतथेदंमनसिस्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! हे सर्व धर्मोंके ज्ञातः! हे पूर्वापरके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! यह विशाल संसार मनमें कैसे स्थित है ॥ १ ॥ हे पापरहित भगवन्! जैसे यह महान् संसार मनमें स्फुरता हुआ बाह्यदेशमेंभी प्रत्यक्ष भासता है वह रीति स्पष्ट दृष्टान्त दर्शाके मुझे कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिस प्रकार समाधिमें स्थित होनेपर स्थूलशरीर शून्यभी इन्दुके दशोंपुत्रोंके मनमें अनेक जगत् दृढताको प्राप्त स्थित है वैसेही मनमें यह जगत्भी स्थित है ॥ ३ ॥ और इंद्रजालसे व्याकुल चित्तवाले राजा लवणको जैसे चाण्डालत्व प्राप्त हुआ ऐसेही मनमें यह जगत् स्थित है ॥ ४ ॥

भार्गवस्यचिरंकालंस्वर्गभोगबुभुक्षया ॥ यथाभोगाधिनाथत्वंसंसारित्वंबभूवच ॥ ५ ॥ भोगेश्वरत्वंचतथातथेदंमनसिस्थितम् ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भृगुपुत्रस्यस्वर्गभोगबुभुक्षया ॥ ६ ॥ कथंभोगाधिनाथत्वंसंसारित्वंबभूवच ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामपुरावृत्तंसंवादंभृगुकालयोः ॥ ७ ॥ सानौमंदरशैलस्यतमालविटपाकुले ॥ पुरामंदरशैलस्यसानौकुसुमसंकुले ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे भृगुके पुत्र शुक्राचार्यको चिरकालतक स्वर्गके सुखभोगकी इच्छासे अप्सराके प्राप्त होनेकी इच्छा; तथा उसकेलिये संसारी होके स्वर्गमें गमन तथा जन्मान्तरकी प्राप्ति हुई ॥ ५ ॥ और उनका स्वर्गमें अप्सराका भोग हुआ इसी प्रकार मनमें यह जगत् स्थित है श्रीरामजी बोले हे भगवन्! भृगुके पुत्र शुक्राचार्यको स्वर्ग भोगनेकी इच्छासे ॥ ६ ॥ अप्सरा प्राप्त करनेकी इच्छा तथा संसारीपन कैसे हुआ; श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! भृगु और कालका संवाद यह प्राचीनवृत्तांत तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ तमालके वृक्षोंसे पूर्ण, और नाना भांतिके पुष्पोंसे आच्छादित मन्दराचलके किसी शिखरपर पूर्वकालमें ॥ ८ ॥

अतप्यततपोघोरंकस्मिंश्चिद्भगवान्भृगुः ॥ तमुपास्तेस्मतेजस्वीबालःपुत्रोमहामतिः ॥ ९ ॥ शुक्रःसकलचंद्राभःप्रकाशइवभासुरः ॥ भृगुर्वनवरेतस्मिन्समाधावेवसंस्थितः ॥ १० ॥ सर्वकालंसमुत्कीर्णोवनोपलतलादिव ॥ शुक्रःकुसुमशय्यासुकलधौताजिरेषुच ॥ ११ ॥ मंदारोद्दामदोलासुबालोरमणलीलया ॥ विद्याविद्यादृशोर्मध्येशुक्रोप्राप्तमहापदः ॥ १२ ॥

अर्थ—भृगुऋषिने घोर तप किया, उनकी उपासना बालक, तेजस्वी और महामतिमान् ॥ ९ ॥ पूर्णचंद्रमाके समान शोभायमान, और प्रकाशके सदृश प्रकाशमान पुत्र शुक्राचार्य करतेथे, और उस श्रेष्ठ बनमें भृगुसमाधिहीमें ऐसे स्थित थे ॥ १० ॥ जैसे बनके शिलातलसे टाकीसे निकाले हुये, अर्थात् अचल होके तप करतेथे; और शुक्राचार्य कुशमोंकी शय्याओंपर तथा सुवर्ण और रूप्यकी वेदिकाओंमें ॥ ११ ॥ और मन्दराचलके बृक्षोंके उत्तम झूलनोंपर रमणकी लीलासे क्रीडा कररहेथे; और उससमय शुक्राचार्य आत्मविद्या तथा सांसारिक अज्ञानरूप जगत्की सत्यार्थता इन दोनोंके मध्यमें महान् पद प्राप्त कियाथा ॥ १२ ॥

त्रिशंकुरिवरोदोंतरवर्तततदाकुलः ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थेसकदाचित्पितर्यथ ॥ १३ ॥ अव्यग्रोभवदेकांतेजितारिरिवभूमिपः ॥ ददर्शाप्सरसंतत्रगच्छंतींनभसःपथा ॥ १४ ॥ क्षीरोदमथ्यलुलितांलक्ष्मीमिवजनार्दनः ॥ मंदारमालावलितांमंदानिलचलालकाम् ॥ १५ ॥ हारझांकारिगमनांसुगंधितनभोनिलाम् ॥ लावण्यपादपलतांमदघूर्णितलोचनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उस समय विद्या और अविद्याके मध्यमें शुक्र ऐसे वर्तमान थे जैसे आकाश और पृथिवीके मध्यमें विश्वामित्रसे रचित स्वर्गमें त्रिशंकु इसके पश्चात् पिताके कभी निर्विकल्प समाधिमें स्थित होनेपर ॥ १३ ॥ भृगुके पुत्र शुक्राचार्य एकांतमें ऐसे स्वस्थ चित्त हुये जैसे शत्रुओंके जीतनेसे राजा; उससमय आकाशमार्गसे जाती हुई एक अप्सराको भृगुने ऐसे देखा ॥ १४ ॥ जैसे क्षीरोदसमुद्रके मध्यसे मथनसे निकली हुई चंचल लक्ष्मीको विष्णु पुनः मन्दार (कल्पवृक्ष) की मालाओंसे आच्छादित शरीरवाली; मंदपवनसे चंचल केशयुक्त ॥ १५ ॥ हारसे झंकार शब्दके साथ गमनकारिणी अपनी शरीरसे आकाशके पवनकोभी सुगन्धित करनेवाली; सुन्दरतारूपी वृक्षकी लताके सदृश; मदसे घूर्णित नेत्रवाली ॥ १६ ॥

अमृतीकृततद्देशांदेहेंदूदयदीप्तिभिः ॥ कांतामालोक्यतस्याभूदुल्लसत्तरलंमनः ॥ १७ ॥ दृष्टनिर्मलपूर्णेंदुवपुरंबुनिधेरिव ॥ साप्यालोक्यशुक्रमुखंतथापरवशाह्यभूत् ॥ १८ ॥ मनसिजेषुपराहतमाशयंसपरिबोध्यमनस्तदनूशना ॥ विगलितेतरवृत्तितयात्मनासचवधूमयएवबभूवह ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवस्खलनं नाम पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—तथा देहरूपी चन्द्रमासे उत्पन्न किरणोंसे उस देशको अमृतमय करनेवाली उस रमणीय अप्सराको देखकर शुक्राचार्यका मन ऐसा क्षुभित हुआ ॥ १७ ॥ जैसे पूर्णचन्द्रमाको देखके समुद्रका शरीर; और वह अप्सरा भी शुक्राचार्यके मुखको देखकर उन्हीके समान परवश होगई ॥ १८ ॥ उस अप्सराको देखनेके पश्चात् कामके बाणोंसे अतिजर्जरीभूत अपने चित्तको शुक्राचार्य यथाशक्ति विवेकादिसे बाह्य शरीरादि व्यापारोंसे अप्सराके पीछे २ धावनादि व्यापारोंको रोककर; अन्यवृत्तियोंसे रहित होके मनसे केवल उस अप्सरामय होगये ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवस्खलनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस ६ के सर्गमें शुक्रका मनसे स्वर्गमें गमन और वहांपर इन्द्रके सन्मानसे उसके समीपमें उपवेशन (बैठने) का वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतांमनसाध्यायंस्तत्रैवामीलितेक्षणः ॥ आरब्धवान्मनोराज्यमिदमेकःकिलोशना ॥ १ ॥ एषाहिललनाव्योम्निसहस्रनयनालये ॥ संप्राप्तोयमहंस्वर्गमालोलसुरसुंदरम् ॥ २ ॥ इमेतेमृदुमंदारकुसुमोत्तंससुंदराः ॥ द्रवत्कनकनिष्यंदविलासिवपुषःसुराः ॥ ३ ॥ इमास्तालोचनोल्लासदृष्टनीलाब्जदृष्टयः ॥ मुग्धहासविलासिन्यःकांताहरिणदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके अनन्तर शुक्राचार्य नेत्र मून्दकर उसी अप्सराको मनसे ध्यान करते हुये यह वक्ष्यमाण मनोराज्य अन्यवृत्तियोंके त्यागपूर्वक आरम्भ किया ॥ १ ॥ यह स्वर्गकी ललना आकाशमार्गसे इन्द्रके स्थानपर जाती है और इसीके पीछे २ चलता हुआ मैं चञ्चल देवताओंसे सुन्दर स्वर्गमें प्राप्तहूं ॥ २ ॥ यही पुराणादिमें प्रसिद्ध पुष्पोंके शिरोभूषणसे सुन्दर और द्रवीभूत सुवर्णके समान शोभित शरीरवाले देवतागणहैं॥३॥ नेत्रोंके उल्लाससे प्रत्यक्षरूपसे नीलकमलके सदृश दृष्टिधारिणी तथा मनोहर हाससे विलास करनेवाली तथा हरिणके समान नेत्रवाली येही देवांगना हैं ॥ ४ ॥

इमेतेकौसुमोद्योताअन्योन्यप्रतिबिंबिताः ॥ विश्वरूपोपमाकारामरुतोमत्तकाशिनः ॥ ५ ॥ ऐरावणकटामोदविरक्तमधुपःश्रुताः ॥ इमास्ताःकाकलीगीतागीर्वाणगणगीतयः ॥ ६ ॥ इयंसाकनकांभोजचलद्वैरिंचसारसा ॥ मंदाकिनीतटोद्यानविश्रांतसुरनायका ॥ ७ ॥ एतेतेयमचंद्रेंद्रसूर्यानलजलानिलाः ॥ लोकपालास्तनुद्योतकीर्णदीप्तानलार्चिषः ॥ ८ ॥

अर्थ—पारिजात आदिसे रचित मालाओंसे प्रकाशमान; और परस्पर प्रतिबिंबित होनेसे विष्णुके सदृश आकारवाले; मत्तके तुल्य शोभित यही वे देवता हैं ॥ ५ ॥ ऐरावतके गंडस्थलके सुगन्धसे विरक्त भ्रमरोंसे श्रुत, कर्णको मधुर देवताओंके यही वे गीत हैं ॥ ६ ॥ चंचल कमलोंमें भ्रमणकारी ब्रह्माके हंस और सारससे शोभित तथा तटकी बाटिकाओंमें विश्रामकारी इन्द्रसहित यह वही मन्दाकिनी आकाशगंगाहै ॥७॥ और अपने शरीरकी कान्तिसे प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाको विस्तृत करनेवाले यम, चन्द्र, इन्द्र, सूर्य, अग्नि; जल, और पवन आदि ये वेही लोकपाल हैं ॥८॥

अयंसरणवृत्तांतहेतिकंडूयिताननः ॥ ऐरावणोरणेदंतप्रोतदैत्येंद्रमंडलः ॥९॥ इमेतेभूतलस्थानाद्व्योम्नितारकतांगताः ॥ वैमानिकाश्ववरचारुचामीकरमयातपाः ॥ १० ॥ मेरूपलतलास्फालसीकराकीर्णदेवताः ॥ एतास्ताःकीर्णमंदारागंगासलिलवीचयः ॥ ११ ॥ एताःप्रसृतमंदारमंजरीपुंजपिंजराः ॥ दोलालोलाप्सरःश्रेण्यःशक्रोपवनवीथयः ॥ १२ ॥

अर्थ—युद्धके वृत्तान्तोंमें घर्षित मुखसे शोभित, तथा दांतोंमें दैत्येन्द्रोंके समूहको नाथेहुये यही वह ऐरावत इन्द्रका हस्ती है ॥ ९ ॥ चलायमान उत्तम सुवर्णके सदृश देहवाले विमानोंकी कान्ति धारण करनेवाले; और भूतलसे आकाशमें तारागणोंकी शोभाको प्राप्त येही वे बिमानोंपर चलनेवाले देवता हैं ॥ १० ॥ मेरूकी शिलापरसे उछले हुये जलकणोंसे देवताको सींचनेवाली तथा कल्पवृक्षोंको सिंचन करनेवाली यही वे आकाशगंगाके जलकी तरंगे है ॥ ११ ॥ मन्दारवृक्षोंकी लताओंके समूहोंके पिंजर जिनमें फैले हैं तथा झूलोंमें चंचल अप्सराओंकी श्रेणी (झुण्ड) जिनमें वर्तमान हैं ऐसी इन्द्रके ऊपवनकी ये गलियां हैं ॥ १२ ॥

इमेतेकुंदमंदारमकरंदसुगंधयः ॥ चंद्रांशुनिकराकाराःपारिजातसमीरणाः ॥ १३ ॥ पुष्पकेसरनीहार पटवासरणोत्सुकैः ॥ लतांगनागणैर्व्याप्तमिदंतन्नंदनंवनम् ॥ १४ ॥ कांतगीतरवानंदप्रनर्त्तितसुरांगनौ ॥ इमौत्तौवल्लकीस्निग्धस्वरौनारदतुंबुरू ॥ १५ ॥ इमेतेपुण्यकर्त्तारोभूरिभूषणभूषिताः ॥ व्योमन्युड्डीयमानेषुविमानेषुचसंस्थिताः ॥ १६ ॥

अर्थ – कुन्द तथा मन्दार (कल्पवृक्ष) के परागकी सुगन्धसहित और चन्द्रकिरणके समूहके सदृश शैत्य-मान्धादियुक्त रचनावाले ये पारिजात (कल्पवृक्ष) के वायु हैं ॥ १३ ॥ पुष्प केशर और तुषारकी धुलियोंके कणोंसे वस्त्रोंको सुगंधित करनेवाले परागोंसे पवन संचारकेलिये परस्पर ताडनरूप रणमें आसक्त लता तथा अंगना गणोंसे व्याप्त यह वही इन्द्रका नन्दनबन है ॥ १४ ॥ सुन्दर गीतके शब्दसे आनन्दित देवांगनाओंको नचानेवाले वल्लकी (वीणा) के समान मधुरस्वरवाले यही वे नारद और तुंबुरू गंधर्व वा ऋषि हैं ॥ १५ ॥ आकाशमें उडनेवाले विमानोंमें स्थित अनेक भूषणोंसे भूषित, यही वे अधिक पुण्यके कर्ता देवगण हैं ॥ १६ ॥

मदमन्मथमत्तांग्यइमास्ताःसुरयोषितः ॥ देवेश्वरंनिषेवंतेवनंवनलताइव ॥ १७ ॥ इंद्राश्मजालकुसुमाश्रितामणिगुलुच्छकाः ॥ कल्पवृक्षाइमेपक्कफलस्तबकदंतुराः ॥ १८ ॥ इहतावदिमंशक्रमहमासन संस्थितम् ॥ द्वितीयमिवत्रैलोक्यस्रष्टारमभिवादये ॥ १९ ॥ इतिसंचिंत्यशुक्रेणमनसैवशचीपतिः ॥ तेनाभिवादितस्तत्रद्वितीयइवखेभृगुः ॥ २० ॥

अर्थ—मदके सहित कामदेवसे मत्त शरीरवाली यही वे देवांगनाइन्द्रको ऐसे शोभित कर रही हैं जैसे बनको बनकी लता ॥ १७ ॥ नीलमणिके समूहरूप पुष्पवाले चिन्तामणिरूपी गुच्छा संयुक्त, और पक्कफलरूपी स्तबकसे उन्नत यही वे कल्पवृक्ष हैं ॥ १८ ॥ यहां स्वर्गमें प्राप्त होके आसनपर स्थित दूसरे ब्रह्माके समान इंद्रको मैं प्रणाम करताहुं ॥ १९ ॥ इसप्रकार चिन्तन करके शुक्रने मनसेही इन्द्रको ऐसे प्रणाम किया मानो आकाशमें स्थित द्वितीय भृगु (अपने पिता) को ॥ २० ॥

अथसादरमुत्थायशुक्रःशक्रेणपूजितः ॥ गृहीतहस्तआनीयसमीपमुपवेशितः ॥ २१ ॥ धन्यस्त्वदागमेनाथस्वर्गोयंशुक्रशोभते ॥ उष्यतांचिरमेवेहशक्रइत्थमुवाचतम् ॥ २२ ॥ अथतत्रोपविश्यासौभार्गवःशोभिताननः ॥ श्रियंजहारशशिनःसकलस्यामलस्यच ॥ २३ ॥ सकलसुरगणाभिवंदितोसौभृगुतनयःशतमन्युपार्श्वसंस्थः ॥ चिरतरमतुलामवापहृष्टिंनरपतिसत्तमलालनंबभूव ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवमनोराज्यं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् आदरपूर्वक उठके इन्द्रने शुक्राचार्यकी पूजाकी और हस्तग्रहण करके अपने आसनके समीप बैठाया ॥ २१ ॥ हे शुक्रजी ! आपके इस आगमनसे स्वर्ग धन्य है और यह इससमय शोभित होरहाहै, आप चिरकालतक यहां निवास कीजिये, ऐसा इन्द्रने शुक्रसे कहा ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् शोभित मुख शुक्राचार्य इन्द्रके समीप बैठके कलंक रहित सम्पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको जीतलिया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर सब देवगणोंसे वन्दित, इन्द्रके निकट स्थित भृगुके पुत्र शुक्रजी चिरकालतक अनुपम प्रसन्नताको प्राप्त हुये, और इन्द्रके पुत्रका जैसा लालन (प्यार) होताहै वैसाही लालन कियागया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवमनोराज्यं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस ७ के सर्गमें पूर्वदृष्ट अपनी कांता अप्सराको स्वर्गमें पुनः शुक्राचार्यका देखना और परस्परके अनुरागसे संगमभी वर्णित कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिशुक्रःपुरंप्राप्यवैबुधंस्वेनतेजसा ॥ विसस्मारनिजंभावंप्राक्तनव्यसनंविना ॥ १ ॥ मुहूर्तमिवविश्रम्यतस्यपार्श्वेशचीपतेः ॥ स्वर्गंविहर्तुमुत्तस्थौस्वर्गाभिपरिमोदितः ॥ २ ॥ स्वःश्रियंससमालोक्यलोललोचनवांछिताम् ॥ स्त्रैणंद्रष्टुंजगामासौनलिनीमिवसारसः ॥ ३ ॥ तत्रतांमृगशावाक्षींकांतामध्यगतामसौ ॥ ददर्शविपिनांतस्थांभृगुश्चूतलतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इस प्रकार शुक्राचार्य अपने पुण्यके प्रभावसे देवताओंके नगर (स्वर्ग) में प्राप्त हुये, और वहांपर विना मरण दुःखकेही अपने पूर्वभावको विस्मृत होगये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् दोघडी इन्द्रके निकट विश्रामकरके वहांके अधिक सुखसे हर्षित स्वर्गमें विहार करनेकी इच्छासे उठ खडे हुये ॥ २ ॥ चंचल स्त्रीजनोंको इष्ट स्वर्गकी शोभा वा अपनी सुन्दरताको देखके स्वर्गकी अप्सराओंके समूहको देखनेको ऐसे गये जैसे नलिनीके देखनेके अर्थ सारसपक्षी ॥ ३ ॥ वहांपर शुक्राचार्यने, उसी पूर्व दृष्ट मृगके सदृश लोचनवाली स्त्रियोंके मध्यमें प्राप्त अपनी प्रिया अप्सराको ऐसे देखा जैसे जंगलके मध्यमें प्राप्त आम्रकी लताको ॥ ४ ॥

सापितंभार्गवंरामदृष्ट्वापरवशाभवत् ॥ तामालोक्यलसल्लोलविलासवलिताकृतिम् ॥ ५ ॥ आसीद्वि लीयमानांगोज्योत्स्नामिंदुमणिर्यथा ॥ विलीयमानसर्वांगस्तामवैक्षतकामिनीम् ॥ ६ ॥ चंद्रकांतइवज्यो त्स्नांशीतलांखेविलासिनीम् ॥ तेनावलकितासापितत्परायणतांगता ॥ ७ ॥ निशांतेचक्रवाकेनकांतेव परिकूजिता ॥ रसाद्विकसितानूनमन्योन्यमनुरक्तयोः ॥ ८ ॥ प्रातरर्कनलिन्योर्याशोभासैवतयोरभूत् ॥ संकल्पितार्थदायित्वाद्देशस्याभूच्चतेनसा ॥ ९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह अप्सराभी शुक्रको देखके परवश होगई और शोभायमान चंचल विलाससे पूर्ण शरीरवाली उस अप्सराको देखके ॥ ५ ॥ ऐसे द्रवीभूत (प्रश्वेदयुक्त) शरीरवाले शुक्र होगये जैसे चंद्रकी चंद्रिकाको देख चंद्रकान्त मणि, और सर्वांग प्रस्वेद (पसीना) युक्त उस कामिनीको शुक्रने ऐसे देखा ॥ ६ ॥ जैसे आकाशमें विलास करनेवाली शीतल चंद्रकी चंद्रिका (चांदनी) को चंद्रकांत मणि और शुक्रसे दृष्ट वह अंगनाभी ऐसी उनमें परायण हुई ॥ ७ ॥ जैसे रात्रिके अंतमें चक्रवाकसे दृष्ट रात्रिके वियोगसे रोदन किये हुये चक्रवाकी, और प्रेमकी अधिकतासे प्रबल शोभायुक्त होगई, जैसे प्रातःकालमें सूर्य और कमलिनीकी होती है और उस देश (नंदन) के संकल्पित पदार्थके दाता होनेके कारण वह ऐसी होगई ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वांगंविवशीकृत्यकामायैवसमर्पिता ॥ पेतुःस्मरशरास्तस्यामृद्वष्वंगेषुभूरिशः ॥ १० ॥ पलाशेष्विव वपत्रिन्याधाराइवपयोमुचः ॥ साबभूवस्मरोद्भूतालोलालिवलयाकुला ॥ ११ ॥ मदंवाताभिनुन्नायाम जर्व्याःसहधर्मिणी ॥ नीलनीरजनेत्रांतांहंससारसगामिनीम् ॥ १२ ॥ मदनःक्षोभयामासगजःकम लिनीमिव ॥ अथतांतादृशींदृष्ट्वाशुक्रःसंकल्पितार्थभाक् ॥ १३ ॥

अर्थ—कि सर्वांग विवश करके कामदेवकेही आधीन होगई, और उसके कोमल शरीरमें अनेक कामदेवके बाण ऐसे गिरे ॥ १० ॥ जैसे कमलिनीके पत्तोंपर मेघकी धारा, इससे वह अप्सरा कामदेवसे कम्पित और चंचल भ्रमरोंके वेष्टनसे व्याकुल ॥ ११ ॥ मन्द वायुसे पीडित लताके सदृश होगई; हे रामजी ! नलिकमलके सदृश कटाक्ष धारिणी; तथा हंस और सारसके सदृश गामिनी; उस भामिनीको कामदेवने ऐसे क्षोभित किया जैसे कमलिनीको गज; इसके पश्चात् संकल्पित अर्थके भागी शुक्राचार्य उस अप्सराको उस प्रकारकी देखके ॥ १२ ॥ १३ ॥

तमःसंकल्पयामाससंहारइवभूतभुक् ॥ त्रिविष्टपस्यदेशोसौबभूवतिमिराकुलः ॥ १४ ॥ भूलोकस्यांधतम सालोकालोकतटोयथा ॥ लज्जाधकारतीक्ष्णांशौतस्मिंस्तिमिरमंडले ॥ १५ ॥ प्रतिष्ठामागतेतस्यमिथुन स्येवमंडले ॥ तेषुसर्वेषुभूतेषुगतेष्वभिमतांदिशम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे महादेवजी संहारका संकल्प करतेहैं ऐसेही अंधकारका संकल्प किया, और उससे स्वर्गका एक भाग वह नंदनप्रदेश अंधकारसे ऐसा पूर्ण होगया ॥ १४ ॥ जैसे भूलोकके गाढ अंधकारसे लोकालोक पर्वतका तट लज्जारूपी अन्धकारके नाशक उस तिमिर समूहके ॥ १५ ॥ उस स्त्रीपुरुषके मिथुन सदृश स्थिरताके प्राप्त होनेपर और उस स्थानसे उन सब प्राणियोंके अपनी २ अभिमत दिशाओंमें इसप्रकार जानेपर ॥ १६ ॥

तस्मात्प्रदेशाद्भूलोकेदिनांतेविहगेष्विव ॥ सादीर्घचंचलापांगीप्रवृद्धमदनव्यथा ॥ १७ ॥ आजगामभृ गोःपुत्रंमयूरीवारिदंयथा ॥ धवलागारमध्यस्थेपर्यंकेपरिकल्पिते ॥ १८ ॥ विवेशभार्गवस्तत्रक्षीरोदइ वमाधवः ॥ साकरावबलंव्यास्यविवेशावनतानना ॥ १९ ॥ रराजचसुरेभस्यहृदिलग्नेवपद्मिनी ॥ उवा चचेदंमधुरंरसस्नेहाक्तयागिरा ॥ २० ॥ वचोमधुरमानंदविलासवलिताक्षरम् ॥ पश्यामलेंदुवदनमंडली कृतकार्मुकः ॥ २१ ॥ अबलामनुबध्नातिमामेषकिलनांगकः ॥ पाहिमामबलांनाथदीनांत्वच्छरणा मिह ॥ २२ ॥ कृपणाश्वासनंसाधोविद्धिसच्चारितव्रतम् ॥ स्नेहदृष्टिमजानद्भिर्मूढैरेवमहामते ॥ २३ ॥ प्रणयाअवगण्यंतेनरसज्ञैःकदाचन ॥ अशंकितोपसंपन्नःप्रणयोन्योन्यरक्तयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे भूलोकमें दिनके अंतमें पक्षीगण उत्कण्ठित होतेहैं ऐसे उस समय अति वृद्धिको प्राप्त हुई कामकी व्यथासे पीडित वह दीर्घ और चंचल कटाक्षवाली अप्सरा ॥ १७ ॥ भृगुके पुत्र शुक्रके निकट ऐसे आके प्राप्त हुई जैसे मयूरी मेघके निकट, और श्वेत मंदिरके मध्यमें कल्पित पर्य्यंक (शय्या) पर ॥ १८ ॥ शुक्राचार्यने इसप्रकार प्रवेश किया जैसे क्षीरसमुद्रमें माधव (विष्णुभगवान्) और वह अप्सरा शुक्राचार्यके दोनों हस्तोंको अवलम्बन (पकड) करके नीचे मुख किये हुई बैठगई ॥ १९ ॥ और ऐसे शोभित हुई जैसे ऐरावतके हृदयमें संलग्न पद्मिनी, और प्रेमरस तथा स्नेहसे सनी हुई वाणीसे मधुर और आनंदके बिलाससे संवृत्त अक्षर संयुक्त इस बचनको बोली कि हे निर्मल चंद्रके सदृश मुखवाले देखो धनुषका मंडल किये हुये ॥ २० ॥ २१ ॥ यह कामदेव मुझ अबलाको पीडा दे रहाहै, सो हे नाथ ! आपकी शरणमें प्राप्त मुझ अबलाकी रक्षा करो ॥२२॥ हे साधो ! मेरे सदृश दीनोंको शांति देना इसीको तुम सच्चरितोंका व्रत जानों और हे महामते ! जो मूढ लोग स्नेह दृष्टिको नहीं जानते ॥ २३ ॥ वेही ऐसे अधिक प्रेमका बहुमान नहीं करते न कि रसज्ञ लोग, और परस्पर अनुरक्त स्त्री पुरुषका शंकारहित जो स्नेह है ॥ २४ ॥

अधःकरोतिनिष्यंदंचंद्रमाल्हादनंप्रिय ॥ नतथासुखयत्येषाचेतस्त्रिभुवनेशिता ॥ २५ ॥ यथापरस्परानंदःस्नेहःप्रथमरक्तयोः ॥ त्वत्पादस्पर्शनेनेयंसमाश्वस्तास्मिमानद ॥ २६ ॥ चंद्रपादपरामृष्टायथानिशिकुमुद्वती ॥ संस्पर्शामृतपानेनतवजीवामिसुंदर ॥ २७ ॥ चंद्रांशुरसपानेनचकोरीचपलायथा ॥ मामिमांचरणालीनांभ्रमरीकरपल्लवैः ॥ २८ ॥ आलिंग्यामृतसंपूर्णेस्वपद्महृदयेकुरु ॥ इत्युक्तापुष्पमृद्वंगीसातस्यपतितारेसि ॥ व्याघूर्णितालिनयनासुतरोरिवमंजरी ॥ २९ ॥ तौदंपतीतत्रविलासकांतीविवेशतुस्तासुवनस्थलीषु ॥ किंजल्कगौरानिलघूर्णितासुरक्तौद्विरेफाविवपद्मिनीषु ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने नवसंगमोनाम सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—वह हे प्रिय देवताओंके जिलानेवाले अमृतश्रावी आल्हादकारी चंद्रमाकोभी नीचे कर देताहै अर्थात् जीवप्रदादि गुणसहित सहस्र चंद्रसेभी अधिक यह अनुरक्त स्त्रीपुरुषका स्नेह होताहै, और त्रिभुवन स्वामित्ता चित्तको वैसा सुखी नहीं करती, जैसा कि प्रथमसे अनुरक्त स्त्रीपुरुषका आनन्ददायक स्नेह, हे मानके देनेहारे आपके चरणके स्पर्शसे यह मैं ऐसे शान्तहुं ॥ २५ ॥ २६ ॥ जैसे चन्द्रके किरणके स्पर्शसे रात्रिमें कुमुदिनी हे सुन्दर ! आपके स्पर्शरूपी अमृतके पानसे मैं ऐसे जीती हुं ॥ २७ ॥ जैसे चपलचकोरी चंद्रके रसपानसे, हे प्रभो ! चरणमें लीन मुझ भ्रमरीको अपने करपल्लवोंसे ॥ २८ ॥ आलिंगन करके स्नेह तथा दयासे पूर्ण चित्तमें कीजिये ऐसा कहके पुष्पके सदृश कोमलांगी वह अप्सरा शुक्राचार्यके वक्षस्थलपर ऐसे गिरपडी जैसे भ्रमररूपी नेत्रोंसे विघूर्ण करनेवाली कल्पवृक्षकी लता ॥ २९ ॥ उसके पश्चात् उन स्त्रीपुरुषोंने केसर और उनकी धूलियोंके पीतवायुसे कम्पित उन वनस्थलियोंमें प्रवेश करके ऐसे भोग किया जैसे पूर्वोक्त गुणसहित कमलिनियोंमें भ्रमरभ्रमरी॥३०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने नवसंगमो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

विविधप्रकारके स्वर्गके भोगके अन्तमें गिरे हुये शुक्रके वासनाके योगसे अनेक जन्म तथा तपस्याका वर्णन इस ८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिचित्तविलासेनचिरमुत्प्रेक्षितैःप्रियैः ॥ प्रणयैर्भार्गवस्यासीत्तुष्टयेसुसमागमः ॥१॥ मंदारमालाकलयाविबुधासवमत्तया ॥ तदातेनतयासार्द्धंद्वितीयेनामलेंदुना ॥२॥ विहृतंमत्तहंसासुहेमपंकजिनीषुच ॥ तटीष्वमरवाहिन्याःसहचारणकिंनरैः ॥ ३ ॥ पीतमिंदुदलस्यंदेदैवैःसहरसायनम् ॥ पारिजातलताजालनिलयेषुविलासिना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार चित्तके विलाससे चिरकालसे कल्पित प्रेमोंसे शुक्राचार्यकी प्रसन्नताके लिये वह समागम हुआ ॥ १ ॥ मन्दारकी मालाको सर्व शरीरमें धारण किये हुई, तथा अमृत

वा देव भोग्यमद विशेषसे मत्त उस कालमें उस अप्सराके साथ द्वितीय चन्द्रमाके समान शुक्राचार्यने ॥ २ ॥ विहार किया तथा जिनमें मत्त हंस और सारस विराजमान थे और सुवर्णके कमल जिनमें खिल रहेथे ऐसी मन्दाकिनीकी तटस्थलियोंमें चारण और किन्नरोंके साथ उस अप्सराको लेके बिहार किया ॥ ३ ॥ और चन्द्रमाकी कलासे निकले हुये रसायनको पारिजातकी लता समूहके कुंजोंमें देवताओंके साथ विलासी शुक्रने पान किया ॥ ४ ॥

चारुचैत्ररथोद्यानलतालोलासुदोलया ॥ चिरंविलसितंव्यग्रैःसहविद्याधरीगणैः ॥ ५ ॥ नंदनोपवनाभोगोमंदरेणेववारिधिः ॥ भृशमालोड्यतांनीतःप्रथमैःसहशांभवैः ॥ ६ ॥ बालहेमलताजालजटालासुनदीषुच ॥ भ्रांतमुन्मत्तनागेनमेरवीष्वब्जिनीष्विव ॥ ७ ॥ कैलासवनकुंजेषुतयासहविलासिना ॥ हरेंदुधवलारात्र्यःक्षपिताःगणगीतिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—और रमणीय नन्दनबनकी बाटिकाओंकी लतासे चंचल दोला (झूला) से व्यग्र विद्याधरी गणोंके साथ चिरकालतक क्रीडा किया ॥ ५ ॥ और महादेवजीके प्रमथसंज्ञक अनुचरोंके साथ नन्दनबनके पूर्णस्थानको बार २ ऐसे आलोडन (परिभ्रमण) किया जैसे मन्दराचल समुद्रको ॥ ६ ॥ तथा सुवर्णके समान लताके समूहसे जटासंयुक्त मेरुपर्वतकी नदियोंमें ऐसे भ्रमण किया जैसे मत्तहस्ती कमलिनियोंमें ॥ ७ ॥ और कैलास बनके कुंजोंमें बिलासी शुक्रने उस अप्सराके साथ विद्याधरीगणकी गीतोंमें महादेवके चूडामणिसे धवलकी हुई कृष्णपक्षकी रात्रियोंको व्यतीत किया ॥ ८ ॥

गंधमादनशैलस्यविश्रम्योपरिसानुषु ॥ सातेनकनकांभोजैरापादमभिमंडिता ॥ ९ ॥ लोकालोकतटांतेषुविचित्राश्चर्यहारिषु ॥ क्रीडितंकृतहासेनरामतेनतयासह ॥ १० ॥ मंदरांतरकच्छेषुसार्द्धंहरिणशावकैः ॥ अवसत्ससमाःषष्टिकल्पितामरमंदिरे ॥ ११ ॥ क्षीरार्णवतटीष्वस्यवनितासहचारिणः ॥ क्षीणंकृतयुगादर्द्धंश्वेतद्वीपजनैःसह ॥ १२ ॥

अर्थ—गंधमादन पर्वतके शिखरोंपर विश्राम करके सुवर्णके कमलोंसे उस अप्सराको चरणसे लेके शिर पर्य्यन्त शुक्राचार्यजी शोभित करतेथे ॥ ९ ॥ हे रामजी ! विचित्र आश्चर्योंसे चित्तको हरण करनेवाले लोकालोक पर्वतके प्रान्तोंमें उस अप्सराके साथ शुक्राचार्यने क्रीडा की ॥ १० ॥ मन्दराचलके अन्तर्गत सजल देशोंमें हरिण किशोरोंके साथ कल्पित देवमन्दिरमें ६० साठि बर्ष पर्य्यन्त शुक्राचार्यने निवास किया ॥ ११ ॥ वनिता (अप्सरा) के साथ क्षीरसागरकी तटियोंमें बिचरते हुये शुक्रको श्वेतद्वीप निवासियोंके साथ सत्युगका आधा बीतगया ॥ १२ ॥

गंधर्वनगरोद्यानलीलाविरचनैरसौ ॥ स्रष्टानंतजगत्स्रष्टेःकालस्यानुकारितगतः ॥ १३ ॥ अथावसदसौशुक्रःपुरंदरपुरेपुनः ॥ सुखंचतुर्युगान्यष्टौहरिणेक्षणयासह ॥ १४ ॥ पुण्यक्षयानुसंधानात्ततश्चावनिमंडले ॥ तथैवसहमानीन्यापपातोपहताकृतिः ॥ १५ ॥ पराहृतसमस्तांगोहृतस्यंदनमंदनः ॥ चिंतापरवशोध्वतःसमितीवहतोभटः ॥ १६ ॥

अर्थ—गंधर्व नगर तथा उद्यानों (वाटिकाओं) की रचना विशेषसे यह शुक्राचार्य मनोरथ मात्रसे सब जगतकी सृष्टिके स्रष्टा होके कालकी सदृशताको प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् उस हरिणके तुल्य नेत्रवाली अप्सराके साथ आठ चतुर्युगी पर्यन्त पुनः इन्द्रपुरमें शुक्राचार्यने निवास किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर पुण्यके क्षयके अनुसन्धानसे अधःपतनके प्रति संधानके भयसे दिव्य शरीरके गलित होनेसे शुक्राचार्य उसी मानिनी अप्सराके साथ भूमण्डलपर गिरे ॥ १५ ॥ छिन्नभिन्न अंगसहित तथा देवताओंने विमान और बस्त्र आभूषण आदिका साधन नन्दनबनभी हरलियाथा इसकारण शुक्राचार्य चिंतामें परवश होके ऐसे गिरे जैसे संग्राममें मारा हुआ शूर ॥ १६ ॥

पतितस्यावनौतस्यचिंतयासहदीर्घया ॥ शरीरंशतधाजातंशिलापातीवनिर्जरः ॥ १७ ॥ संशीर्णयोर्देहकयोश्चित्तकेव्यसनाविले ॥ विचेरतुस्तयोर्व्योम्निनिर्नीडौविहगौयथा ॥ १८ ॥ तत्रापिविविशतुश्चांद्रंतेचिचेरश्मिजालकम् ॥ प्रालेयतामुपेत्याशुशालितामथजग्मतुः ॥ १९ ॥ शालींस्तान्भुक्तवान्पक्वान्दशार्णेषुद्विजोत्तमः ॥ सशुक्रःशुक्रतामेत्यतद्भार्यातनयोभवत् ॥ २० ॥

अर्थ—दीर्घ चिंताके साथ पृथिवीपर गिरे हुये शुक्राचार्यका शरीर ऐसे सौ टुकडा होगया जैसे पाषाणकी शिलापर गिरा हुआ झरना ॥ १७ ॥ छिन्नभिन्न शरीरवाले दोनों (अप्सरा शुक्र) के दुःख पूर्ण चित्त अर्थात् दोनोंके सूक्ष्म शरीर आकाशमें ऐसे विचरतेथे जैसे नीड (खुंथा) रहित दो पक्षी ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् आकाशमें वे दोनों लिंगशरीर चंद्रमाके किरण समूहमें प्रवेश किया और उसमेंसे हिमजालताको प्राप्त होके धान (चावल) के वृक्षमें

गये ॥ १९ ॥ अनंतर दशार्ण नामक देशोंमें एक उत्तम ब्राह्मणने पके हुये उन चावलोंको भोजन किया, और उससे शुक्राचार्य वीर्यरूपताको प्राप्त होके उस ब्राह्मणकी स्त्रीके पुत्र हुये ॥ २० ॥

ततोमुनीनांसंसर्गात्तपस्युग्रेऽथवस्थितः ॥ अवसन्मेरुगहनेमन्वंतरमनिंदितः ॥ २१ ॥ तत्रतस्यसमुत्पन्नोमृग्याःपुत्रोनराकृतिः ॥ तत्स्नेहेनपरंमोहंपुनरप्याययौक्षणात् ॥२२॥ पुत्रस्यास्यधनंमेस्तुगुणाश्चायुश्चशाश्वतम् ॥ इत्यनारतचिंताभिर्जहौसत्यामवस्थितम् ॥ २३ ॥ धर्मचिंतापरिभ्रंशात्पुत्रार्थंभोगचिंतया ॥ क्षीणायुषंतमहरन्मृत्युःसर्पइवानिलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुनियोंके संसर्गसे मेरूके गहन प्रदेश इलावृत्तादि वर्षमें निद्रारहित शुक्राचार्य एक मन्वन्तर पर्यन्त निवास किया ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् वहांपर शापसे मृगीरूपमें प्राप्त उसी अप्सराके मनुष्यके समान आकारवान् पुत्र शुक्राचार्यको उत्पन्न हुआ उसके स्नेहसे पुनःभी क्षणभरमेंही मोहको प्राप्त होगये ॥ २२ ॥ इस मेरे पुत्रको धन हो, गुण हो, और निरंतर आयु हो, इत्यादि सदा कालकी चिंतासे शुक्राचार्यने वेदादिके प्रमाणसे नियमित सत्य तप दानादि अपनी स्थितिको त्याग दिया ॥ २३ ॥ धर्म चिंताके पतनसे तथा पुत्रार्थ भोगकी चिंतासे क्षीणायुष शुक्रको मृत्यु ऐसे निगलगया जैसे सर्प वायुको ॥ २४ ॥

भोगैकचिंतयासार्द्धंसमुत्क्रांतचेतनः ॥ प्राप्यमद्रेशपुत्रत्वमासीन्मद्रमहीपतिः ॥ २५ ॥ मद्रदेशेचिरंकृत्वाराज्यमुत्सन्नशात्रवम् ॥ जरामभ्याजगामाब्जहिमाशनिरिवांबुजम् ॥ २६ ॥ मद्रराजतनुंचारुंतपोवासनयासह ॥ तत्याजतेनजातोसौतपस्वीतापसात्मजः ॥ २७ ॥ समंगायामहानद्यास्तटमासाद्यतापसः ॥ तपस्तेपेमहाबुद्धिःसरागविगतज्वरः ॥ २८ ॥ विविधजन्मदशांविविधाशयःसमनुभूयशरीरपरंपराः ॥ सुखमतिष्ठदसौभृगुनंदनोवरनदीसुतटेदृढवृक्षवत् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने शुक्रविविधजन्मानुभवो नामाष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—भोगकी चिंताके साथ लिंग शरीरके निकलनेसे मद्रदेशके राजाके पुत्र होके मद्रदेशके राजा होगये ॥ २५ ॥ शत्रुओंको उखाडके चिरकालतक मद्रदेशका राज्य करके वृद्धावस्थाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे हिमरूप वज्र कमलताको ॥ २६ ॥ मद्रदेशके राजाकी उत्तम शरीरको वानप्रस्थ आश्रमके योग्य तपकी वासना सहित शरीरको त्यागा इससे तपस्वीके पुत्र तथा स्वयं तपस्वी हुये ॥ २७ ॥ हे रामजी ! रागादि सन्ताप रहित महाबुद्धि तपस्वी शुक्राचार्य समंगानाम महानदीके तटपर प्राप्त होके तप किया ॥ २८ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्त भृगनन्दन शुक्राचार्य विविध प्रकारकी वासनायुक्त होके उनके अनुसार अनेक जन्मदशाको प्राप्त होके शरीरकी परंपरा (पंक्तियोंको अनुभव करके समंगानाम श्रेष्ट नदीके उत्तम तटपर दृढ वृक्षके समान सुख (ब्रह्मानन्दरूप) पूर्वक स्थितहुये ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मिकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने विविधजन्माऽनुभावो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें भृगके समीपमें वर्तमान मृतकके तुल्य शुक्राचार्यके शरीरका गिरना और उसकी शुष्कताका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ इतिचिंतयतस्तस्यशुक्रस्यपितुरग्रतः ॥ जगामातितरांकालोबहुसंवत्सरात्मकः॥१॥ अथकालेनमहतापवनातपजर्जरः ॥ कायस्तस्यपपातोर्व्यांछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ २ ॥ मनस्तुचंचलाभोगंतासुतासुदशासुच ॥ बभ्रामातिविचित्रासुवनराजिष्विवैणकः ॥ ३ ॥ भ्रांतमुद्भ्रांतमभितश्चक्रार्पितमिवाकुलम् ॥ मनस्तस्यविशश्रामसमंगासरितस्तटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पिता भृगुके अग्रभागमें इस पूर्वोक्त रीतिसे चिन्ता करते हुये शुक्राचार्यको अनेक वर्षरूप बहुतकाल बीतगया ॥ १ ॥ इसके पश्चात् महान्‌काल बीतनेपर पवन तथा आतप (घाम) से जर्जरीभूत शुक्रका शरीर पृथ्वीपर ऐसे गिरा जैसे मूलके कटनेपर वृक्ष ॥ २ ॥ और चंचल विस्तारवाला मनने तो उन २ विचित्र अनेक दशाओंमें ऐसे भ्रमण किया जैसे बनकी पंक्तियोंमें हरिण ॥ ३ ॥ वह शुक्रका मन भोगोंकी कल्पनासे

चक्रमें स्थापितके तुल्य व्याकुल होके भ्रमण किया, और जन्ममरणादिकी कल्पनासे उद्भ्रमण (उर्ध्वअधोलोदिकामें गमन) भी किया, तथा अन्तमें समंगानदीके तटपर विश्राम किया ॥ ४ ॥

अनंतवृत्तांतघनांपेलवांसुदृढामपि ॥ तांसंसृतिदशांशुक्रोविदेहोनुभवन्स्थितः ॥ ५ ॥ मंदराचलसानुस्थासातनुस्तस्यधीमतः ॥ तापप्रसरसंशुष्काचर्मशेषाबभूवह ॥ ६ ॥ शरीररंध्रप्रवहद्वातसोत्काररूपया ॥ चेष्टादुःखक्षयानंदात्काककल्येवप्रगायति ॥ ७ ॥ मनोवराकमवटेलुठितंभवभूमिषु ॥ हसतीवोतेशुभ्राभासितयादंतमालया ॥ ८ ॥

अर्थ—अनन्त वृत्तान्तोंसे घनीभूत, मनकी कल्पनामात्र होनेसे तुच्छ और सत्यताकी भ्रांतिरूप पूर्वदेहके विस्मरणसे अति दृढ उस संसारकी दशाको पूर्वदेहसे निरपेक्ष होके शुक्राचार्य अनुभव करते हुये स्थितथे ॥ ५ ॥ मन्दराचल पर्वतके शिखरपर स्थित, बुद्धिमान् शुक्राचार्यकी वह शरीर तापसे सूखकर केवल चर्ममात्र शेष रहगई ॥ ६ ॥ शरीरके छिद्रोंमें बहते हुये वायुके सोत्कार (सीसी) शब्दरूप मधुरध्वनिसे मानो अभिमान दुःखके क्षयजनित आनंदसे गा रही है कि देहकी यह दशा होती है ॥ ७ ॥ पुनः वह शरीर श्वेतमेघके समान स्वच्छ दांतोंकी मालासे इस बातको हंसरही है कि दीन मनसंसारकी भूमियोंमें जलशून्य तडागोंमें लोट रहाहै ॥ ८ ॥

दर्शयंतीजगच्छून्यंवपुरक्ष्णोरकृत्रिमम् ॥ मुखारण्यजरत्कूपरूपयागर्त्तशोभया ॥ ९ ॥ तापोपतप्तासंसिक्तावर्षांजलभरेणसा ॥ प्रागनुस्मरणोल्लासमिवबाष्पंविमुंचति ॥ १० ॥ चंद्रानिलविलासेनलुलितावनभूमिषु ॥ धारानिकरपातेनविलुनाजलदागमे ॥११॥ प्रावृड्निर्झररूपेणप्लुतागिरिनदीतटे ॥ पांशुनापवनोत्थेतद्दुष्कृतेनेवरूषिता ॥ १२ ॥

अर्थ—और मुखके मंडल जंगलमें प्राचीन कूपोंके समरूप नासिका, नेत्र, और मुखांदिकें गढोंकी शोभासे स्वाभाविक शून्य जगत्की असत्रूपताको मानो विवेकियोंके नेत्रको प्रत्यक्ष दर्शारही है ॥ ९ ॥ और प्रथम तापसे संतप्त पश्चात् वर्षाके जलके समूहसे सींची हुई वह शुक्रकी शरीर अपने बंधुरूप पूर्वशरीरोंके स्मरणसे दुःख वा आनन्दसे उल्लासयुक्त आंसुओंको मानो त्यागरही है ॥ १० ॥ चंद्रमा और वायुके विलाससे अर्थात् चंद्रकिरणयुक्त शीतलवायुसे बनभूमियोंमें लुढकती फिरती थी; और बर्षा आनेपर धाराके समूहके गिरनेसे गिली होजातीथी॥ ११॥ प्रावृट् (श्रावण और भाद्रपद) में गेरू आदि धातुओंसे रंगी हुई पर्वतकी नदीके तटपर वायु प्रेरित धूलिसहित ऐसे बहतीथी जैसे पापसे दूषित ॥ १२ ॥

शुष्ककाष्ठवदालोलावातेषुकृतखाकृतिः ॥ तारमारुतसीत्कारेवनेतपइवास्थिता ॥ १३ ॥ वक्राशुष्कांत्रतंत्रीचभूतभांकारकारिणी ॥ अरण्यलक्ष्मीर्बाल्येवशून्याचर्ममयादरी ॥ १४ ॥ रागद्वेषविहीनत्वात्तस्यपुण्याश्रमस्यतु ॥ महातपस्वाच्चभृगोर्नभुक्तामृगपक्षिभिः ॥ १५ ॥ यमनियमकृशीकृतांगयष्टिश्वरतितपःस्मभृगूद्वहस्यचेतः ॥ तनुरथपवनापनीतरक्ताचिरमलुठन्महतीषुसाशिलासु ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवमःसर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—पवनके झकोर चलनेपर खट् खट् शब्द करती हुई शुष्क काष्ठके समान प्रतीत होतीथी, और निरन्तर वायुके सीत्कार (सीसी) शब्दयुक्त बनमें मानो तप करनेको स्थित है ॥ १३ ॥ वक्र (टेढे) और शुष्क आंतरूप वीणाको धारण किये हुई; प्राणियोंको भयजनक शब्द करनेवाली, शून्य और चर्ममात्र शरीरवाली मानो बनकी लक्ष्मीको अलक्ष्मी आदरार्थ चेष्टा कररही है ॥ १४ ॥ ऐसीभी उस शुक्राचार्यकी शरीरको भृगुके पुण्य आश्रमके रागद्वेषसे रहित होनेके कारण, तथा उनके महातपसे मृग और पक्षियोंने भक्षण नहीं किया ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यम तथा नियमसे अपने कल्पित शरीरांतरको कृश करनेवाले भृगुके पुत्रका मन तो समंगा नदीके तटपर तपकर रहाहै और वह पूर्वशरीर, जिसका रक्त वायु आदिसे शुष्क होगया था बडी २ पाषाण शिलाओंपर दीर्घकालतक लुठक रहीहै ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरबर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इस १० के सर्गमें पुत्रकी शरीर देखनेसे भृगुका कोप, तथा आत्मविद्यासे कालसे कालके प्रतिबोधनका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणदिव्येनपरमेश्वरः ॥ भृगुःपरमसंबोधाद्विरराससमाधितः ॥ १ ॥ नापश्यदग्रेतनयंविनयावनताननम् ॥ सामंतंगुणसेनायाःपुण्यंमूर्त्तमिवस्थितम् ॥ २ ॥ अपश्यत्केवलं कायकंकालंपुरतोमहत् ॥ देहयुक्तमिवाभाग्यंदारिद्र्यमिवमूर्त्तिमत् ॥ ३ ॥ तापशुष्कवपुःकृत्तिरंध्र स्फुरिततित्तिरि ॥ संशुष्कांत्रोदरगुहाछायाविश्रांतदर्दुरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके पश्चात् देवताओंके सहस्र (हजार) वर्ष बीतनेपर भगवान् भृगु परमात्माको बोध करानेवाली निर्विकल्प समाधिसे जागे ॥ १ ॥ तब बिनयसे नम्रीभूत मुखवाले और सम्पूर्ण गुणरूपी सेनाके अधिष्ठाता अर्थात् सब गुणोंमें प्रवीण सम्मुख खडे हुये अपने पुत्रको न देखा ॥ २ ॥ केवल सम्मुख स्थित मृतक शरीरको ऐसे देखा जैसे देहधारी अभाग्य वा मूर्तिमान् दारिद्र्यको ॥ ३ ॥ पुनः तापसे सुखी हुई शरीरके चर्मके छिद्रोंमें तित्तिरपक्षी अपने घोसले बनाके उड रहे थे और वहांपर शूखी आन्तसहित उदररूपी गुहाकी छायामें मण्डूक (मेडक) विश्राम कर रहे थे ॥ ४ ॥

नेत्रगर्त्तकसंसक्तप्रसूतनवकीटकम् ॥ पर्शुकापंजरप्रोतकोशकारकृमिव्रजम् ॥ ५ ॥ प्राक्तनीमुपभोगेहा मिष्टानिष्टफलप्रदाम् ॥ धाराधौतांत्रयावद्धसंशुष्कास्थिमालया ॥ ६ ॥ शिरोवटेनशुभ्रेणमसृणेनेंदुव र्चसा ॥ विडंबयच्चकर्पूराप्लुतलिंगशिरःश्रियम् ॥ ७ ॥ ऋज्व्यासंशुष्कशिरयास्वास्थिमात्रावशेषया ॥ ग्रीवयात्मानुसृतयादीर्घीकुर्वदिवाकृतिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जहांपर नेत्ररूपी गढेमें रहनेवाले नूतन कीडे उत्पात्तिकी परंपरासे वृद्धिको प्राप्त होगये थे और दोनों पांजरकी हड्डियोंमें मकरीके जालाके समूह जिसमें गुंथे थे ॥ ५ ॥ और जलकी धाराओंसे धूलियुक्त आंतैं सहित शुष्क अस्थि (हड्डियों) की मालासे इष्ट तथा अनिष्ट फलको देनेवाली पूर्वकालकी वासनाकी सदृशताको वह शरीर प्राप्त होरहीथी, अर्थात् नानाप्रकारके सन्धिके बन्धनयुक्त वह हड्डीकी माला नहीं किन्तु वासनाओंकी माला भान होती ॥ ६ ॥ और चर्मके हटजानेसे चन्द्रनाके समान प्रकाशमान, चिक्कण, और श्वेत शिररूपी घटसे उस शरीरने कर्पूरसे स्नान कराये हुये महादेवजीके लिंगकी शोभाका अनुकरण किया था ॥ ७ ॥ सीधी, शुष्क शिररहित, केवल अस्थिमात्र, तथा बासनामें फसे हुये आत्माका अनुसरण करनेवाली ग्रीवासे मानों अपने आकारको बढा रहीहै ॥८॥

मृणालपांडुरयाधारावभृतमांसया ॥ नासाग्रास्थिकयावक्त्रकृतसीमाकृतिंदधत् ॥ ९ ॥ दीर्घकंधरया नूनमुन्नतीकृतवक्त्रया ॥ प्रेक्षमाणमिवप्राणानुत्क्रांतानंबरोदरे ॥ १० ॥ जंघोरुजानुदोर्दंडैर्द्विगुणांदी र्घतांगतैः ॥ प्रतिष्ठानमिवाशांतंदीर्घाध्वश्रमभीतितः ॥ ११ ॥ उदरेणातिरिक्तेनचर्मशेषेणशोषिणा ॥ प्रदर्शयदिवाज्ञस्यहृदयस्यातिशून्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कमलकी दण्डीके सदृश श्वेत और जलकी धारासे विशीर्ण मांसयुक्त नासिकाकी अस्थिसे मानो मुखमंडलके मध्यभागको निश्चय करनेके लिये शंकुके तुल्य (खुंट वा मेख) गडी हुई आकृतिको धारण किये हुये है ॥ ९ ॥ और ऊंचे मुखवाली दीर्घ कन्दरासे मानो आकाशके उदरमें इस बातको वह मृतकशरीर देख रहाथा कि प्राण निकलके कहां गये ॥ १० ॥ और द्विगुण दीर्घताको प्राप्त दो जंघा; ऊरू (टांग) जानु (घुंठने) और भुजमण्डल इन आठ अंगोंसे दीर्घ परलोकरूपी मार्गके भयसे मानो आठो दिशाओंके अंततक भागना चाहता था ॥११॥ और सबसे विलक्षण चर्ममात्र शेष शुष्क उदरसे मानो अज्ञानीके हृदयकी अति शून्यताको दर्शा रहाथा॥१२

प्रेक्ष्यतच्छुष्ककंकालमालानंदुःखदंतिनः ॥ पूर्वापरपरामर्शमकुर्वन्भृगुरुत्थितः ॥ १३ ॥ आलोकस मकालेनहिप्रतिभानंततोभृगोः ॥ चिरमुत्क्रांतजीवःकिंमत्पुत्रायमितिक्षणात् ॥ १४ ॥ अचिंतयएवा वार्य्यभविष्यंतनयंततः ॥ कालंप्रतिबभूवाशुकोपःपरमदारुणः ॥ १५ ॥ अकालएवमत्पुत्रोनीतःकि मितिकोपितः ॥ कालायशापमुत्स्रष्टुंभगवानुपचक्रमे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दुःखरूपी हस्तीके बंधनस्थान उस मृतक शरीरको देखके पूर्वापरका विचार न करके भृगु उठ खडे हुये ॥ १३ ॥ और शरीरके देखनेकेही समयमें भृगुके चित्तमें क्षणमेंही यह शंका हुई कि क्या मेरे पुत्रके

प्राण निकले बहुत समय होगया ? ॥ १४ ॥ मृतक पुत्रको देखके और अवश्य भावी अर्थको न चिंतन करते हुये भृगुके चित्तमें कालके ऊपर शीघ्र परम दारूण कोप हुआ ॥ १५ ॥ कि विना समय मेरे पुत्रको क्यों लेगया इसप्रकार कोपित होकर भगवान् कालको शाप देनेके लिये उद्यत हुये ॥ १६ ॥

अथाकलितरूपोसौकालःकवलितप्रजः ॥ आधिभौतिकमास्थायवपुर्मुनिमुपाययौ ॥ १७ ॥ खड्गपाशधरःश्रीमान्कुंडलीकवचान्वितः ॥ षड्भुजःषण्मुखोबह्वावृतःकिंकरसेनयाः ॥ १८ ॥ यच्छरीरसमुत्थेनज्वालाजालेनवल्गता ॥ फुल्लकिंशुकवृक्षस्यबभाराद्रेःश्रियंनभः ॥ १९ ॥ यत्करस्थत्रिशूलाग्रनिःसृतैरग्निमंडलैः ॥ विरेजुरुदिताशाःकानकैरिवकुंडलैः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनंतर संपूर्ण प्रजाओंका ग्रास करनेवाला रूप रहितभी काल भौतिकरूप धारण करके भृगु मुनिके समीपमें आया ॥ १७ ॥ वह काल तलवार (तरवार) और फांसीको धारण किये हुये; शोभायुक्त, कुण्डल तथा कवच सहित; द्वादश मासरूपी छ भुजाओंसे युक्त; छ ऋतुरूपी मुखसे शोभित, और दिनरूपी बडीभारी सेनासे सेवित था ॥ १८ ॥ और उसके शरीरसे निकली हुई प्रबल ज्वालाके समूहसे विकसित किंशुक (टेसू) के वृक्ष सहित पर्वतकी शोभाको उस समय आकाशने धारण किया था ॥ १९ ॥ और जिसके हस्तमें स्थित त्रिशूलके अग्रभागसे निकले हुये अग्नि समूहोंसे संपूर्ण दिशा ऐसी शोभित हुई जैसे सुवर्णमय कुण्डलसे ॥ २० ॥

यत्परश्वसनापास्तशिखरामेदिनीभृतः ॥ दोलामिवसमारूढाश्चेलुःपेतुश्चघूर्णिताः ॥ २१ ॥ यत्खड्गमंडलोद्योतैःश्याममंबिंबंविवस्वतः ॥ कल्पदग्धजगद्धूमपर्याकुलमिवाबभौ ॥२२॥ सउपेत्यमहाबाहोकुपितंतंमहामुनिम् ॥ कल्पक्षुब्धाब्धिगंभीरंसांत्वपूर्वमुवाचह ॥ २३ ॥ विज्ञातलोकस्थितयोमुनेदृष्टपरावराः ॥ हेतुनापिनमुह्यंतिकिंनुहेतुंविनोत्तमाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और उसके प्रबलश्वासके वायुसे ध्वस्त शिखर कितने पर्वत दोला (झूला) में आरूढके समान चलायमान होगये और कितने घूर्णित (चक्र) में आके गिरपडे ॥ २१ ॥ जिसके तरवारके प्रकाशसे सूर्यका श्याम बिम्ब प्रलयकालमें जले हुये जगत्के धूमसे व्याकुलके समान शोभित हुआ ॥ २२ ॥ हे महाबाहो रामजी ! ऐसा वह काल कुपित महामुनिके निकट आके प्रलयकालमें संक्षुब्ध समुद्रके समान गंभीर वाणीसे शांतिपूर्वक यह बोला ॥ २३ ॥ कि लोककी स्थितिके ज्ञाता तथा पर अवर अर्थात् इस लोक और परलोकके द्रष्टा महात्मा मुनिजन दूसरोंके अपराधादि निमित्तसेभी नहीं मोहित होते न कि विना अपराधादि कारणसे ॥ २४ ॥

त्वमनंततपाविप्रोवयंनियतिपालकाः ॥ तेनसंपूज्यसेपूज्यःसाधोनेतरथेच्छया ॥ २५ ॥ मातपःक्षपयाबुद्धेकल्पकालमहानलैः ॥ योनदग्धोस्मिमेतस्यकिंत्वंशापेनधक्ष्यसि ॥ २६ ॥ संसारावलयोग्रस्तानिगीर्णारुद्रकोटयः ॥ भुक्तानिविष्णुवृंदानिकनशक्तावयंमुने ॥ २७ ॥ भोक्तारोहिवयंब्रह्मन्भोजनंयुष्मदादयः ॥ स्वयंनियतिरेषाहिनावयोरेतदीहितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—तुम अनंत तप करनेवाले ब्राह्मण हो; और हम लोग नियति (मर्यादा) के पालक हैं, इसी कारण तुम हमलोगोंसे पूजित हो, न कि अन्य शापादिके भयसे ॥ २५ ॥ हे व्यर्थ बुद्धे मुने ! अपनी तपस्याको व्यर्थ नष्ट न करो, क्योंकि जब मैं प्रलयकालके महान् अग्निके समूहोंसेभी न जला तो मेरी ऐसी कौनसी वस्तु है जिसको तुम जलाओगे ॥ २६ ॥ मैंने अनेक संसारकी पंक्तियोंको भोजन करलिया, और करोडो रुद्रको निगलगया, और विष्णुभगवान्के समूहके समूह भोजन करलिया, हे मुने ! ऐसा कौन पदार्थ है जहां हमारी शक्ति नहीं है ? ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! हम भोक्ता हैं और तुमसे आदि लेके सब संसार हमारा भोजन है यह स्वभाविकी मर्यादा है न कि हम लोगोंकी इच्छा द्वेषादि अन्य निमितसे यह होताहै ॥ २८ ॥

स्वयमूर्ध्वंप्रयात्यग्निःस्वयंयांतिपयांस्यधः ॥ भोक्तारंभोजनंयातिसृष्टिंचाप्यंतकःस्वयम् ॥ २९ ॥ इदमित्थंमुनेरूपंममेहपरमात्मनः ॥ स्वात्मनिस्वयमेवात्मास्वतएवविजृंभते ॥ ३० ॥ नेहकर्तानभोक्तास्तिदृष्ट्यानष्टकलंकया ॥ बहवश्चेहकर्त्तारोदृष्ट्याऽनष्टकलंकया ॥ ३१ ॥ कर्तृताकर्तृतेब्रह्मन्केवलंपरिकल्पिते ॥ असम्यग्दर्शनेनैवनसम्यग्दर्शनस्यते॥ ३२ ॥ पुष्पाणितरुखंडेषुभूतानिभुवनेषुच ॥ स्वयमायांतियांतीहकल्पतेहेतुनामभिः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अग्नि अपने स्वभावहीसे उपर जाताहै, जल स्वभावहीसे नीचेको और बहताहै, भोजन भोक्ताके निकट प्राप्त होताहै, और विनाशकालभी सृष्टिके निकट स्वयं प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ हे मुने ! इसप्रकार मूर्तामूर्त जगत् परमात्माका रूप मेरा भोज्य कल्पित कियागयाहै क्योंकि वह परमात्मा अपने आत्मामें आपही जगत्रूपसे

विकसित होताहै ॥ ३० ॥ मायारूप कलंकसे शून्य दृष्टिसे न तो कोई कर्ता है; और न भोक्ता है, और कर्ममें कुशल पुरुषोंकी दृष्टिमें बहुतसे कर्ता और बहुतसे भोक्ता हैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! कर्तृता और अकर्तृत्व दोनो कल्पित है और यह कल्पना असम्यक् द्रष्टाकी की हुई है न कि सम्यक् द्रष्टाकी जैसे आप और जैसा वृक्षोंके खंडोंमें पुष्प आतेहैं और जातेहैं ऐसेही भुवनोंमें प्राणी आतेहैं और प्राणियोंका कर्मही अपनेही प्रेरित निमित्तकी विचित्रतासे कार्य करनेमें समर्थ होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अंबिबितस्यचंद्रस्यचलनेकर्तृकर्तृते ॥ नसत्येनानृतेयद्वत्तद्वत्कालस्यसृष्टिषु ॥ ३४ ॥ मनोमिथ्या भ्रमाभोगेकर्तृताकर्तृतामयीम् ॥ करोतिकलनांरज्वांभ्रांतेक्षणइवाहिताम् ॥ ३५ ॥ तेनमागामुनेको पमापदामीदृशःक्रमः ॥ यद्यथातत्तथैवाशुसत्यमालोकयाकुलः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे जलमें प्रतिबिंबित चन्द्रमाका चलन न सत्य है और न असत्य है ऐसेही काल भगवान्‌की सृष्टिमें कर्तृता और अकर्तृता परमार्थमें अभाव होनेसे सत्य नहीं हैं; और व्यवहार दृष्टिसे असत्यभी नहीं हैं॥३४॥ हे भगवन् ! यह मन मिथ्या भ्रमके आवेशमें आके कर्तृता और अकर्तृतामयी अहितकारक कल्पना ऐसे करता है जैसे भ्रांत दृष्टि पुरुष रज्जुमें सर्प की ॥ ३५ ॥ इसलिये हे मुने ! व्याकुल होके अपराधके बिनाही कोप न कीजिये क्योंकि ऐसा करना यह आपत्तिका क्रम है, और जो वार्ता सत्य है उसको उसी रीतिसे शीघ्र सत्य विचार कीजिये ॥ ३६ ॥

नवयंप्रतिभार्थेहानाभिमानवशीकृताः ॥ स्वतोहितातवशगाःकेवलंनियतौस्थिताः ॥ ३७ ॥ प्रकृतव्य वहारेहानियतीर्नियतेर्वशात् ॥ प्राज्ञाःसमभिवर्ततेनाभिमानमहातमः ॥ ३८ ॥ कर्त्तव्यमेवनियतंकेव लंकार्यकोविदैः ॥ सुषुप्तिवृत्तिमाश्रित्यकदाचित्त्वंननाशय ॥ ३९ ॥ कसाज्ञानमयीदृष्टिःक्वमहत्त्वंक धीरता ॥ मार्गेसर्वप्रसिद्धेपिकिमंधइवमुह्यसि ॥ ४० ॥

अर्थ—हे पूज्य मुने ! हम लोगोंकी इच्छा भ्रांति कल्पित पूजा प्रतिष्ठा आदिके लिये नहीं हैं, और न अभिमानके वशमें हैं, क्योंकि हम लोग केवल नियतिमें स्थित स्वतः बशमें हैं, अर्थात् आपके निकट आगमनभी कोपके भयसे नहीं है किंतु तपस्वी महात्माओंका मान करना चाहिये इसलिये है ॥३७॥ हे भगवन् ! जगत्‌की मर्यादाका पालक जो ईश्वर है उसकी इच्छारूप जो महानियति है उसके वशमें बुद्धिमान् लोग अवांतर (मध्यवर्ती) व्यवहारोंकी इच्छारूप नियतिको अनुसरण करते हैं, न कि महाअभिमानग्रस्त तमोगुण जन (अर्थात् प्रकृतिके अनुकूल प्रवृत्ति तुमारे पुत्रके बध करनेमें हुई है, और शाप देनेमें तुमारी तमोगुणके वशसे हुई है) ॥३८॥ कार्यमें चतुर जन नियतिके अनुकूल अवश्य कर्तव्य कार्य करतेहैं, सो अपने २ उचित मर्यादाका पालन करना जो सबका धर्म उसको आप तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय करके नाश मत करो ॥ ३९ ॥ कहां तो वह ज्ञानमयी दृष्टि ! और कहां वह महत्व ! और कहां वह धीरता चली गई, ! आप इस सब बुद्धिमानोंमें प्रसिद्ध मार्गमें अंधेके समान क्यों मोहित हो रहेहो ? ॥४०॥

स्वकर्मफलपाकोत्थामविचार्यदशांमुने ॥ किंमूर्खइवसर्वज्ञमुधामांशप्तुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ देहिनामि हसर्वेषांशरीरंद्विविधंमुने ॥ किंनजानासितंदेहमेकमन्यन्मनोभिधम् ॥ ४२ ॥ तत्रदेहोजडोत्यर्थमावि नाशपरायणः ॥ मनस्तुच्छंचनियतंकदर्थीक्रियतेतव ॥ ४३ ॥ चतुरेणयथासाधोरथःसारथिनोह्यते ॥ कर्वताकिंचनस्नेहाद्देहोयंमनसातथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे सर्वज्ञ मुने ! अपने कर्म फलोंकी परिपक्वतासे प्रकट दशाको न विचार करके आप मूर्खके समान मुझे व्यर्थ शाप देना क्यों चाहतेहैं ॥ ४१ ॥ हे मुने ! क्या आप इस बातको नहीं जानते कि संपूर्ण प्राणियोंका शरीर दो प्रकार है एक तो यह प्रसिद्ध स्थूल देह है और दूसरा मन नामक है ॥ ४२ ॥ उन दोनोंमेंसे देह तो सर्वथा जड और थोडे निमित्तसेभी नाशमेंही परायण है, और प्रातिभासिक मन जो है वह मोक्ष पर्यंत स्थायी है सो आप क्रोधादिसे उसे क्यों पीडित करतेहो ॥ ४३ ॥ हे साधो ! जैसे चतुर सारथी रथको ले जाताहै ऐसेही अभिमानसे वाणीके अविषय कुछ व्यापार करता हुआ यह मन शरीरको चाहै जहां ले जाताहै ॥ ४४ ॥

असत्संकल्पःक्रियतेसच्छरीरंविनाश्यते ॥ क्षणेनमनसापंकपुरुषःशिशुनायथा ॥ ४५ ॥ चित्तमेवेह पुरुषस्तत्कृतंकृतमुच्यते ॥ तद्बद्धंकलनाहेतोःकलनास्तंविमुच्यते ॥ ४६ ॥ अयंदेहइवात्रस्थमिदमंग मिदंशिरः ॥ इदंस्फारविकारंतन्मनएवाभिधीयते ॥४७॥ मनोहिजीवाज्जीवाख्यंनिश्चयैकतयानुधीः ॥ अहंकारोभिमंतृत्वान्नानातास्वयमेवहि ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे बालक एक क्षणमें मृत्तिकाके खिलौनेको जब चाहताहै तब एकको बिगाडके दूसरा बना लेताहै

ऐसेही यह मनभी जो अविद्यमान शरीर है उसका संकल्प करताहै और पूर्व शरीरको नष्ट करताहै ॥ ४९ ॥ इस संसारमें चित्तही पुरुष है और उसीका किया कहलाताहै और वह मन असत्के संकल्परूपी कल्पनासे बद्ध होताहै और कल्पना रहित वह मुक्त कहलाताहै ॥ ४६ ॥ यहांपर स्थित यह देह, यह अमुक अंग यह शिर इत्यादि बडे विकारका कथन मनही करताहै ॥ ४७ ॥ मनही एक जीवसे दूसरे जीवको प्राप्त होताहै और जो मनसे संकल्पित पदार्थ है उसीके अनुकूल बुद्धि होती है, और अभिमन्ता (अभिमान करनेवाले) मैंही करताहुं इसप्रकार नानारूप यह मनही धारण करताहै ॥ ४८ ॥

देहवासनयाचेतस्त्वन्यानिस्वानिचेच्छया ॥ पार्थिवानिशरीराणिह्यसंतिपरिपश्यति ॥ ४९ ॥ आलोकयतिचेत्सत्यंतदासत्यमयींमनः ॥ शरीरभावनांत्यक्त्वापरामायातिनिर्वृतिम् ॥ ५० ॥ तन्मनस्तवपुत्रस्यसमाधौत्वयिसंस्थिते ॥ स्वमनोरथमार्गेणदूराद्दूरतरंगतम् ॥ ५१ ॥ इममौशनसंत्यक्त्वादेहंमंदरकंदरे ॥ प्रयातोवैबुधंसद्मनीडोड्डीनःखगोयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह चित्त देहकी बासनासे अपनेसे अन्यपृथ्वी रचित अविद्यमान अन्यदेह इच्छाके अनुसार देखताहै ॥ ४९ ॥ और यही मन यदि सत्यको देखताहै तब असत्य देहमयी भावनाको त्यागकर परमशान्तिको प्राप्त होताहै, अर्थात् मनकी देहादि कल्पना आत्मसाक्षात्कार पर्यन्तही है नकि इसके आगे ॥ ५० ॥ और वह आपके पुत्रका मन जब आप समाधिमें स्थित हुये तब अपने मनोरथके मार्गसे दूरसेभी दूर चलागया ॥ ५१ ॥ इस स्थूल शुक्राचार्यकी शरीरको मन्दराचलकी कन्दरामें त्यागके वह मनरूपी शरीर देवताओंके निवासस्थान स्वर्गमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे उडके पक्षी ॥ ५२ ॥

तत्रमंदरकुंजेषुपारिजाततलेषुच ॥ नंदनोद्यानखंडेषुलोकपालपुरेषुच ॥ ५३ ॥ मुनेचतुर्युगान्यष्टौविश्वाचींदेवसुंदरीम् ॥ असेवतमहातेजाःषट्पदःपद्मिनीमिव ॥ ५४ ॥ तीव्रसंवेगसंपन्नस्वसंकल्पोपकल्पिते ॥ अथपुण्यक्षयेजातेनीहारइवशार्वरे ॥ ५५ ॥ प्रम्लानकुसुमोत्तंसःखिन्नांगावयवोल्लसः ॥ सपपाततयासार्द्धंकालपक्वंफलंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—वहांपर मन्दरपर्वतकी कुंजोंमें, पारिजात नामक देव वृक्षोंके तलोंमें, नन्दन नामक इन्द्रके वाटिकाके खण्डोंमें, और लोकपालोंके नगरोंमें ॥ ५३ ॥ हे मुने ! महातेजस्वी शुक्राचार्यने उस विश्वाची नाम्नी अप्सराके साथ आठ चतुर्युगीपर्यन्त ऐसे बिहार किया जैसे भ्रमर कमलिनीके साथ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर तीव्र वासनाके संकल्पसे रचित पुण्यका क्षय ऐसे उपस्थित हुआ जैसे दिनके बीतनेपर रात्रि सम्बन्धी अन्धकार ॥ ५५ ॥ अच्छी तरह म्लानिको प्राप्त कुसुमके आभूषण सहित तथा सम्पूर्ण शोभायमान शरीरके खिन्न अवयव हस्तपादयुक्त शुक्राचार्य उस विश्वाची अप्सराके साथ ऐसे गिरे जैसे वृक्षसे पका फल ॥ ५६ ॥

वैबुधंतत्परित्यज्यनभस्येवशरीरकम् ॥ भूताकाशमथासाद्यवसुधायांव्यजायत ॥ ५७ ॥ आसीद्विप्रोदशार्णेषुकोसलेषुमहीपतिः ॥ धीवरोथमहाटव्यांहंसस्त्रिपथगातटे ॥ ५८ ॥ सूर्यवंशेनृपःपौंड्रःसौरशाल्वेषुदेशिकः ॥ कल्पंविद्याधरःश्रीमान्धीमानथमुनेःसुतः ॥ ५९ ॥ मद्रेष्वथमहीपालस्ततस्तापसबालकः ॥ वासुदेवइतिख्यातःसमंगायास्तटेस्थितः ॥ ६० ॥

अर्थ—उस देवताओंके शरीरको तो उसी स्वर्गके आकाशमें त्यागकर और इस भूताकाशमें प्राप्त होकर पृथ्वीपर जन्म धारण किया ॥ ५७ ॥ प्रथम दशार्णदेशमें ब्राह्मण हुये, कोशलदेशमें राजा हुये; अनन्तर महाबनमें धीवर हुये, और उसके पीछे गंगाजीके तटपर हंसहुये ॥ ५८ ॥ हे मुने ! इसके पश्चात् सूर्यवंशमें उत्पन्न होकर पुण्ड्रदेशके राजा हुये, और इसके पश्चात् शाल्वदेशमें मंत्रके बडे उपासक तथा दूसरोंके उपदेश देनेवाले हुये, और इसी मंत्रके प्रभावसे बुद्धिमान् आपके पुत्र कल्पपर्यन्त विद्याधर हुये ॥ ५९ ॥ और इसके पश्चात् मद्रदेशके राजा हुये और इनके अनन्तर एक तपस्वीके बालक वासुदेवनामसे प्रसिद्ध हुये जो कि समंगानदीके तटपर स्थितहैं ॥ ६० ॥

अन्यास्वपिविचित्रासुवासनावशतःस्वयम् ॥ विषमास्वेवपुत्रस्तेचचारांतरयोनिषु ॥ ६१ ॥ अभूद्विंध्यनगेभूयःकिरातःकैकटेषुच ॥ सौवीरेष्वथसामंतस्त्रिगर्त्तेषुचगर्दभः ॥ ६२ ॥ वंशगुल्मःकिरातेषुहरिणश्चीनजंगले ॥ सरीसृपस्तालवृक्षेतमालेवनकुक्कुटः ॥६३॥ अयंसपुत्रोभवतोभूत्वामंत्रविदांवरः ॥ प्रजजापपुराविद्यांविद्याधरपुरप्रदाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—और इन कहे हुये के सिवाय अन्य २ भयंकर योनियोंमेभी वासनाके बशसे स्वयं तुमारे पुत्रने भ्रमण

किया ॥ ६१ ॥ विंध्या चलमें तथा कैकट देशमें किरात हुये; सौवीर देशमें मण्डलके अधिपति हुये और उस राज जन्ममें पापके कारणसे त्रिगर्त देशमें गर्दभ हुये ॥ ६२ ॥ किरात देशमें वंश (वास) की लता हुये चीनके जंगलमें हरिण हुये तालके वृक्षोंमें सांप हुये; और तमालके बनोंमें कुक्कुट (मुर्गा) हुये; ॥ ६३ ॥ और यही आपके पुत्र मंत्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होकर पूर्वकालमें विद्याधरके नगरको देनेहारी विद्याका जप किया ॥ ६४ ॥

तेनासावभवद्ब्रह्मन्व्योम्निविद्याधरोमहान् ॥ हारकुंडलकेयूरलीलानिचयलालकः ॥६५॥ नायिकान लिनीभानुःपुष्पचापइवापरः ॥ विद्याधरीणांदयितोगंधर्वपुरभूषणः ॥ ६६ ॥ सकल्पावधिमासाद्यद्वा दशादित्यधामनि ॥ जगामभस्मशेषत्वंशलभःपावकेयथा ॥ ६७ ॥ जगन्निर्माणरहितेस्फारेनभसि सातत: ॥ वासनातस्यबभ्रामनिर्नीडाविहगीयथा ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! उस विद्याके प्रतापसे हार तथा कुण्डल आदिकी लीलाके समूहोंसे स्त्रियों (विद्याधरियों) को विलास करानेवाले महान् विद्याधर हुये ॥ ६५ ॥ हे मुने ! यह आपके पुत्र दूसरे कामदेवके समान अति सुंदर स्त्रीरूप कमलिनियोंके सूर्य विद्याधरियोंके अति प्रिय विद्याधर पुरके भूषण होगये ॥ ६६ ॥ वहां विद्याधरोंके नगरोंमें जब एक कल्प निवास करते होगया तब कल्पके अंतमें द्वादश १२ सूर्यके तपनेपर अग्निमें जैसे पांखी जलताहै ऐसेही भस्म होगये ॥ ६७ ॥ उस समय जगत्की रचनासे शून्य विशाल आकाशमें शुक्रकी वासना ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे घोसला रहित पक्षिणी ॥ ६८ ॥

अथकालेनसंजातेविचित्रारंभकारिणि ॥ संसाररचनारंभेब्राह्मेरात्रिविपर्यये ॥ ६९ ॥ सामुनेवासना तस्यवातव्याचलितासती ॥ कृतेब्राह्मणतामेत्यजातोद्यवसुधातले ॥ ७० ॥ वासुदेवाभिधानोसौमुने विप्रकुमारकः ॥ जातोमतिमतांमध्येसमधीताखिलश्रुतिः ॥ ७१ ॥ कल्पंविद्याधरोभूत्वानद्यास्त्वथम हामुने ॥ तपश्चरतितेपुत्रःसमंगयास्तटेस्थितः ॥ ७२ ॥ विविधविषयवासनानुवृत्त्याखदिरकरंजकरा लकोटरासु ॥ जगतिजठरयोनिषुप्रयातोगहनतरासुचकाननस्थलीषु ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने कालवचनं नाम दशमःसर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—इसके अनंतर काल बीतनेपर अनेक विचित्र आरंभमयी संसारकी रचनाको आरम्भ करनेवाले ब्राह्मीका रात्रिका जब अंत होगया ॥ ६९ ॥ तब हे मुने ! वही आपके पुत्रकी बासना वायुसे प्रेरितके तुल्य चलायमान होकर इस समय सत् युगमें ब्राह्मरूप धारण करके पृथिवीपर उत्पन्न हुई ॥ ७० ॥ हे मुने ! यह आपके पुत्र बुद्धिमानोंके मध्यमें श्रेष्ठ संपूर्ण वेदोंको पढनेवाले वासुदेव नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण पुत्र हुये है ॥ ७१ ॥ हे महामुने ! कल्प पर्यन्त विद्याधर होके अब समंगा नदीके तटपर स्थित तुमारा पुत्र तप करताहै ॥ ७२ ॥ हे मुने ! अनेक प्रकारकी विषयकी वासनाकी अनुवृत्तिसे खदिर तथा करंजके कांटोंसे भयंकर पर्वतोंके कोटरोंके समान गर्भको भिन्न २ निवासस्थानोंमें तुमारे पुत्र उत्पन्न हुये और अतिभयंकर वनोंकी स्थलियोंमें वृक्ष तथा लताआदि रूपसेभी उत्पन्न हुये ॥७३॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने कालवचनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

भृगुकी भोगकी दशासे अपने पुत्रका पूर्व वृत्तांत भलीभांति देखनेसे कालके संवादसे मनकी क्रीडामात्र जगत्की स्थिति इस ११ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ कालउवाच ॥ अथोद्दामतरंगौघभांकाररणितानिले ॥ तीरएवतरंगिण्यास्तपस्तपतितेसुतः ॥ १ ॥ जटावानक्षवलयीजितसर्वेंद्रियभ्रमः ॥ तत्रवर्षशतान्यष्टौसंस्थितस्तपसिस्थिरे ॥ २ ॥ यदीच्छसिमु नेद्रष्टुंतंस्वप्नाभंमनोभ्रमम् ॥ तत्समुन्मील्यविज्ञाननेत्रमाशुविलोकय ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्यु क्तेजगदीशेनकालेनसमदृष्टिना ॥ मुनिःसंचिंतयामासज्ञानाक्षणातनयेहितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला–हे मुने! इस समय शोभायमान तरंगसमूहोंकी गंभीर ध्वनिसे शब्दायमान वायुयुक्त समंगानदीके तटपर तुमारा पुत्र तप करताहै ॥ १ ॥ जटाको धारण किये, रुद्राक्षकी माला पहिने हुये, और संपूर्ण इन्द्रियोंके भ्रमको जीतकर उस स्थानपर अचल तपमें स्थित हुये ८ आठसौ वर्ष होगये ॥ २ ॥ हे मुने! यदि पुत्रका चरित्ररूप जो पुत्रके मनका विलास है उसे देखना चाहते हो तो योगरूपी विज्ञान नेत्रको खोलके देखो ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जगत्के स्वामी समदृष्टि कालके इसप्रकार कहनेपर भृगुमुनिने ज्ञानके नेत्रसे अपने पुत्रका चरित्र चिंतन किया ॥ ४ ॥

ददर्शचमुहूर्त्तेनप्रतिभानवशादसौ ॥ पुत्रोदंतमशेषेणबुद्धिदर्पणबिंबितम् ॥ ५ ॥ पुनर्मंदरसानुस्थां स्वस्थांकालाग्रसंस्थिताम् ॥ समंगायास्तटादेत्यविवेशस्वतनुंभृगुः ॥ ६ ॥ विस्मयस्मेरयादृष्ट्याकालमालोक्यकांतया ॥ वीतरागमुवाचेदंवीतरागोमुनिर्वचः ॥ ७ ॥ भगवन्भूतभव्येशबालावयमनुज्ज्वलाः ॥ त्वादृशामेवधीर्देवत्रिकालामलदर्शनी ॥ ८ ॥

अर्थ—ध्यानके प्रभावसे योगके धर्मसे विशुद्ध बुद्धिरूपी दर्पणमें प्रतिबिंबित प्रत्यक्षके समान पुत्रका सम्पूर्ण चरित्र मुहूर्तमात्रमें देखलिया ॥ ५ ॥ पुत्रके वृत्तांतको देखनेके पश्चात् समंगानदीके तटसे आके (अर्थात् योगदृष्टिसे मानो सर्वत्र जाके देखा और समंगानदीपर्यन्तके वृत्तान्तको देखके पुनः आके) पुनः मन्दरके शिखरपर कालके सन्मुख स्थित अपनी स्वस्थ शरीरमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् पुत्रके स्नेहसेरहित भृगु विस्मयसे मुसकिरानसहित रमणीय दृष्टिसे बीतराग कालको देखके यह बचन बोले ॥ ७ ॥ कि हे भूत वर्तमान और भविष्यत्के स्वामी! हम लोग मलिन चित्त हैं तथा अज्ञानसे बालक हैं; आपके सदृश महात्माओंकोही दृष्टि तीनों कालके वृत्तान्तको निर्मलतासे देखती है ॥ ८ ॥

नानाकारविकाराढ्यसत्येवासत्यरूपिणी ॥ विभ्रमंजनयत्येषाधीरस्यापिजगत्स्थितिः ॥ ९ ॥ त्वमेव देवजानासित्सदभ्यंतरवर्तियत् ॥ रूपमस्यामनोवृत्तेरिंद्रजालविधायकम् ॥ १० ॥ मत्पुत्रस्यास्यभगवन्मृत्युःकिलनविद्यते ॥ तेनेमंमृतमालोक्यजातःसंभ्रमवानहम् ॥ ११ ॥ अक्षीणाजीवितंपुत्रंकालोमेनीतवानिति ॥ नियतेर्वशतोदेवतुच्छापीच्छाममोदिता ॥ १२ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके विकारोंसे पूर्ण, असत्यरूप तथा सत्यके समान भासमान् यह जगत्की स्थिति धीर पुरुषकोभी भ्रम उत्पन्न करती है ॥ ९ ॥ हे कालरूप देव! आपके भीतर जो कुछ वर्तमान है उसको आपही जानतेहैं, इस मनकी वृत्तिका जो रूप है वह इन्द्रजालके सदृश मायाके व्यामोहकी रचना करनेवालाहै॥१०॥ हे भगवन्! इस मेरे पुत्रका कल्पपर्यन्त मृत्यु नहींथा इसलिये इसको मृतक देखके मुझे भ्रम उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ जिसका जीवन क्षीण नहीं हुआ ऐसे मेरे पुत्रको काल लेगया, हे देव! नियतिके बशसे तुच्छभी यह मेरी इच्छा उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥

ननुविज्ञातसंसारगतयोवयमापदाम् ॥ संपदांचैवगच्छामोहर्षामर्षवशंविभो ॥ १३ ॥ अयुक्तकारिणिक्रोधःप्रसादोयुक्तकारिणि ॥ कर्त्तव्यइतिरूढेयंसंसारेभगवन्स्थितिः ॥ १४ ॥ इदंकार्यमिदंनेति यावत्कार्यजगद्भ्रमः ॥ तस्यैतत्संपरित्यागोहेयएवजगद्गुरो ॥ १५ ॥ केवलंतावकींचितामनालोक्यय दावयम् ॥ भगवन्भवतेक्रुद्धायाताः स्मस्तेनबाध्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे विभो! देखो यह कैसा आश्चर्य है कि हम लोग संसारकी गतिको जाननेवाले हैं, तथापि आपत्ति और संपत्तियोंके कारण शोक तथा हर्षके बशमें प्राप्त होजातेहैं ॥ १३ ॥ हे भगवन्! अयोग्यकारीके ऊपर क्रोध करना और योग्यकारीके ऊपर प्रसन्न होना यह नियति (मर्य्यादा) संसारमें दृढतापूर्वक स्थितहै ॥ १४ ॥ यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य है इसप्रकार इष्ट तथा अनिष्टके साधनोंमें सत्यताकी भ्रांति है, तबतक यह नियति (अयोग्यकारीमें क्रोध और योग्यकारीमें प्रसन्नता) दृढ है और हे जगत्गुरो! काल इस समय उस भ्रमके तत्वके बोधसे त, उसका त्यागनाही योग्य है, अर्थात् मेरा क्रोध अनुचित है॥ १५ ॥केवल नियतिका पालनरूप जो तुमारा अभिप्राय है, उसको न विचार करके जो तुमारे उपर हमने क्रोध किया इससे हम तुमारी दण्ड योग्यताको प्राप्त हुये हैं ॥ १६ ॥

त्वयेदानीमहंदेवस्मारितस्तनयेहितम् ॥ समंगायास्तटेतेनदृष्टोयंतनयोमया ॥ १७ ॥ मनोजगतिभूतानांहिशरीरेत्रसर्वगम् ॥ मनएवशरीरंहियेनेदंभाव्यतेजगत् ॥ १८ ॥ कालउवाच ॥ सम्यगुक्तंत्वयाब्रह्मन्शरीरंमनएवच ॥ करोतिदेहंसंकल्पात्कुंभकारोघटंयथा ॥ १९ ॥ करोत्यकृतमाकारंकृतंनाशयतिक्षणात् ॥ संकल्पेनमनोमोहाद्बालोवेतालकंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रभो ! इससमय तुमने मेरे पुत्रका चरित्र स्मरण कराया इससे मैंने समंगानदीके तटपर अपने पुत्रको देखा ॥ १७ ॥ मनही इस जगत्‌में प्राणियोंके दो शरीर उत्पन्न करताहै और वह सर्वत्र जानेवाला मनही मुख्य शरीरहै, और उसी मनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न किया जाताहै ॥ १८ ॥ काल बोला—हे ब्रह्मन् ! आपने सत्य कहा यह मनही मुख्य शरीर है यह अपने संकल्पसे भौतिक शरीरको ऐसे रचताहै जैसे कुंभकार घटको ॥ १९ ॥ यह मन अपने संकल्पसे जो आकार नहीं है उसको बना देताहै और बने हुयेको क्षणभरमें ऐसे बिगाड देताहै जैसे मोहसे बालक बेतालको बनाता और बिगाडताहै ॥ २० ॥

तथाचसंभ्रमस्वप्नमिथ्याज्ञानादिभासुरा: ॥ गंधर्वनगराकारादृष्टामन:सिशक्तय: ॥ २१ ॥ स्थूलदृष्टिदशांत्वेतामवलंब्यमहामुने ॥ पुंसोमन:शरीरंचकायौद्वावितिकथ्यते ॥ २२ ॥ मनोमननिर्माणमात्रमेतज्जगत्त्रयम् ॥ नसन्नासदिवस्फारमुदितंनेतरन्मुने ॥ २३ ॥ चित्तदेहांगलतयाभेदवासनयेद्धया ॥ द्विचंद्रत्वमिवाज्ञानान्नानातेयंसमुत्थिता ॥ २४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार संभ्रम, स्वप्न, और मिथ्या ज्ञानके समान भासमान और गन्धर्व नगरके समान आकारवाली, असत्‌की रचना शक्ति मनमें प्रसिद्धरूपसे देखी गई है ॥ २१ ॥ हे महामुने ! स्थूल दृष्टिका अवलबन करके यह कहा जाताहै कि पुरुषके दो शरीर हैं एक मन और दूसरा यह प्रत्यक्ष दृश्यमान भौतिक ॥ २२ ॥ और सूक्ष्मदृष्टिसे तो स्फुरणमात्र रूपधारी यह मन है इसीकी रचना मात्र यह तीनों जगत् है, हे मुने ! सत् और असत्‌से विलक्षण यह बिशाल मनही उदयको प्राप्त है और कुछ नहीं॥ २३ ॥ चित्तरूपी देहकी अवयव भूत लताके समान बर्द्धमान जो भेदकी वासना है उसीसे नानाप्रकारके जगत्‌के भेद अविर्भूत हैं॥ २४ ॥

भेदवासनयापश्यत्पदार्थनिचयंमन: ॥ भिन्नंपश्यतिसर्वत्रघटावटपटादिकम् ॥ २५ ॥ कृशोहिदु:खी मूढोहमेताश्चान्याश्चभावना: ॥ भावयत्स्वविकल्पोत्थांयातिसंसारितांमन: ॥ २६ ॥ मननंकृत्रिमं रूपंममैतन्नयतोस्म्यहम् ॥ इतितस्यागत:शांतंचेतोब्रह्मसनातनम् ॥ २७ ॥ यथाप्रविततांभोधौद्रुतां नैकतरंगिणि ॥ शाम्यत्स्पंदतयानेककल्लोलावलिशालिनि ॥ २८ ॥ वार्यात्मनिसमेस्वस्छेशुद्धेस्वाद्व निशीतले ॥ अविनाशिनिविस्तीर्णेमहामहिमनिस्फुटे ॥ २९ ॥

अर्थ—यह मन भेदकी वासनासे पदार्थ समूहोंको देखता हुआ भिन्न २ सर्वत्र घट, आवर्त, और पटआदि देखताहै ॥ २५ ॥ मैं कृश हुं, दुःखीहुं, मूढ हुं; इत्यादि तथा अन्य अपने विकल्पसे उठी हुई भावनाओंके करता हुआ यह मन संसारिता (जीवता) को प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ मनका जो स्फुरण रूपहै वह कृत्रिम (बनावटी) है वह मेरा रूप नहीं है क्योंकि मैं वह नहीं हुं इसप्रकार मनके त्यागसे यह चित्त सनातन शान्त ब्रह्मही है ॥२७॥ जिसप्रकार नानातरंगयुक्त तथा अनेक तरंगके विलाससे शोभायमान, और शान्त स्पन्द (गति) रूपसे स्थित, समान शुद्धरूप, स्वछ स्वाद जलमय, अविनाशी (कल्पतक) विस्तीर्ण अपनी महिमामें स्थित प्रसिद्ध महासमुद्रमें॥२८॥२९॥

ह्रस्वस्तरंग:स्वंरूपंभावयन्स्वस्वभावत: ॥ ह्रस्वोस्मीतिविकल्पेनकरोतिस्वेनभावनाम् ॥ ३० ॥ दीर्घस्तरंग:स्वंरूपंभावयन्स्वस्वभावत: ॥ दीर्घोस्मीतिविकल्पेनकरोतिस्वेनभावनाम् ॥ ३१ ॥ ह्रस्वश्चैवपरिभ्रष्टरूपोस्मीतितलातलम् ॥ भावयन्भूतलंयातितादृग्भावनयास्वया ॥ ३२ ॥

अर्थ—ह्रस्व (छोटा) तरंग अपने स्वभावसे निजरूपकी भावना करता हुआ अपनेही विकल्पसे यह भावना करताहै कि मैं ह्रस्व (छोटा) हुं ॥ ३० ॥ और दीर्घ (बडा) तरंग अपने स्वभावसे निजरूपकी भावना करता हुआ अपने विकल्पसे यह भावना करताहै कि मैं दीर्घ (बडा) हुं ॥ ३१ ॥ और ह्रस्व तथा परिभ्रष्टरूप मैं हुं इसप्रकार पतनके भयसे पातकी भावना करता हुआ उसी प्रकारकी भावनासे भूतल अर्थात् तीर भूमिको लक्ष्य करके जाताहै ॥ ३२ ॥

उत्पन्नश्चपलादूर्ध्वमुत्थितोस्मीतिभाविवित: ॥ सरश्मिरत्नजालस्तुशोभतेदीप्तयाश्रिया ॥ ३३ ॥ तुषारकरबिंबस्थ:शीतलोस्मीतिबिंबति ॥ सततचलदावाग्निप्रतिबिंबोज्वलद्वपु: ॥ ३४ ॥ बिभेतिबतदग्धोस्मीत्यात्तमौनश्चकंपते ॥ प्रतिबिंबितवेलाद्रितटपक्षवनद्रुम: ॥ ३५ ॥ महदारंभसंरंभसंयुक्तोस्मीतिराजते ॥ विशल्लोलानिलात्यंतध्वस्तलोलशरीरक: ॥ ३६ ॥

अर्थ—और पल (अल्पकाल) केही उपरान्त पुन: उत्पन्न आविर्भूत होके मैं भोगके योग्य जन्म पाया ऐसा अभिमान करता हुआ देवसे पर्वतके तुल्य बडा और सूर्यकी किरणसहित रत्नसमूहके समान देदीप्यमान शोभासे

शोभित होताहै ॥ ३३ ॥ और चन्द्रमाके बिम्बमें उपाधिरूपसे स्थित होके मैं शीतल हुं ऐसा अभिमान करताहै, और तटमें स्थित दावाग्निके प्रतिबिम्बसहित जाज्वल्यमान शरीरवाला ॥ ३४ ॥ मैं जलगया इसप्रकार भय ग्रहण करताहै और मौन धारण करके कांपताहै और पुनः दोनों तटोंके पर्वतोंके प्रतिबिंबित होनेसे पक्ष तुल्य बनके वृक्षके समान होके फलादिके आडंबरसे महान् राज्यकी प्राप्ति संयुक्त मैं हुं इसप्रकार शोभित (हर्षित) होताहै और पुनः पवनके प्रवेशसे अति चंचल शरीर इसके विध्वंस होजातेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

खंडशःपरियातोस्मीत्यात्तक्रंदइवार्णवी ॥ नचोर्मयस्तेजलधेर्व्यतिरिक्ताःपयोभरात् ॥ ३७ ॥ नचैकंरूपमेतषांकिंचित्सन्नाप्यसन्मयम् ॥ नचैतेहस्वदैर्घ्याद्यागुणास्तेषुनतेषुते ॥ ३८ ॥ नार्णवःसंस्थितास्त्वब्धौनतत्त्वनसंस्थिताः ॥ केवलंस्वस्वभावस्थसंकल्पविकलीकृताः ॥ ३९ ॥ नष्टानष्टाःपुनर्जाताजाताजाताःपुनःपुनः ॥ परस्परपरामर्शान्नान्यतामुपयांत्यलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और मैं खण्ड २ (टुकडे २) हो गया इसप्रकार शब्द करता हुआमानो रोदन ग्रहण (आरम्भ) किया, यथार्थमें ये तरंग जल समूहरूप समुद्रसे पृथक् नहीं है ॥ ३७ ॥ इनका सत् वा असन्मय कोई मुख्य रूप नहीं है, और उन तरंगोंमें ह्रस्वता वा दीर्घता आदि कोई गुण नहीं है, और न उन गुणोंमें तरंग हैं॥३८॥ और समुद्रमें तरंग नहीं है यह बातभी नहीं है; क्योंकि अधिष्ठानरूपसे हैही, और विवर्तरूपसे प्रतियोगी (जिस तरंगादिका अभाव समुद्रमें कहा जाय) के अभावसे अभावही अप्रसिद्ध है किन्तु अपने स्वभावमें स्थित संकल्पसे परिच्छेदके भेदसे विकल्पित हैं ॥ ३९ ॥ कभी नष्ट कभी अनष्ट और उत्पन्न और पुनः नष्ट, इसी प्रकार पुनः पुनः नष्ट और उत्पन्न परस्परके मेलसे वे तरंग समुद्रसे भिन्न नहीं होसकते ॥ ४० ॥

एकरूपांबुसामान्यमयाएवनिरामयाः ॥ तथैवास्मिन्प्रविततेसिततेशुद्धेनिरामये ॥ ४१ ॥ ब्रह्ममात्रैकवपुषिब्रह्मणिस्फाररूपिणि ॥ सर्वशक्तावनाद्यंतेपृथग्वदपृथक्कृताः ॥ ४२ ॥ संस्थिताःशक्तयश्चित्राविचित्राचारचंचलाः ॥ नानाशक्तिर्हिनानात्वमतिस्वेवपुषिस्थितिम् ॥ ४३ ॥ बृंहितंब्रह्मणिब्रह्मपयसीवोर्मिमंडलम् ॥ स्त्रीपुमान्व्यंगरूपेणब्रह्मैवपरिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे सब तरंग निर्विघ्न सर्वथा एकरूप जलमय सदा स्थित है ऐसेही इस व्यापक नित्य शुद्ध निरामय ॥ ४१ ॥ चिन्मात्र शरीरधारी विशाल (महान्) अनादि अनन्त तथा सर्व शक्तिमान् ब्रह्मसे अभिन्न भिन्नके समान भासमान ॥ ४२ ॥ चित्रविचित्र आचारसे चंचल विचित्र जगत्रूप शक्तियां (अनेक जगत्) स्थित हैं; क्योंकि नानाशक्तिमान् वह परमात्मा अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित नानारूपताको प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ जलमें तरंग समूहके सदृश ब्रह्ममें ब्रह्मही वृद्धिको प्राप्तहै स्त्रीपुरुष तथा नपुंसकरूपसे ब्रह्मही विवर्तभाव (सींपमें चान्दीरूप) को प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

कल्पनान्याजगन्नाम्नीनासीदस्तिभविष्यति ॥ ब्रह्मणोजगतोभेदोमनागपिनविद्यते ॥ ४५ ॥ संपूर्णंखल्विदंब्रह्मजगद्ब्रह्मैवकेवलम् ॥ इतिभावययत्नेनह्यन्यत्सर्वंपरित्यज ॥ ४६ ॥ नानारूपिण्येकरूपाविरूप्यशतकारिणी ॥ नियतिर्नियताकारापदार्थमधितिष्ठति ॥ ४७ ॥ जडाजडमुपादत्तेचित्तमायातिचिन्मये ॥ वासनारूपिणीशक्तिःस्वस्वरूपास्थितात्मनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जगत् नामकी कोई कल्पना न थी और न है न होगी, क्योंकि जगत् और ब्रह्ममें किंचित्‌भी भेद नहीं है ॥ ४५ ॥ यह ब्रह्म निश्चयरूपसे पूर्ण है और संपूर्ण जगत् केवल ब्रह्मही है, ऐसी भावना हे रामजी! तुम प्रयत्नसे करो और संपूर्ण आडम्बर त्याग दो ॥ ४६ ॥ नानारूपं होनेपरभी एक रूप, और असंख्य तथा विरुद्ध रूप होनेपरभी सदा सर्वत्र नियत (एक) आकारवाली नियति सत्ता संपूर्ण पदार्थोंका अधिष्ठानरूप स्थितहै ॥ ४७ ॥ चित्तके चिदाभासरूपता प्राप्त होनेपर उन २ उपाधियोंमें व्याप्त अहंकारको आत्मरूपतासे और उनसे भिन्न सन्मात्रको अनात्मरूप मानता हुआ यह चित्त अनाध्यात्मिक जड और आध्यात्मिक अजड (चेतन) भेदको ग्रहण करताहै, और यह चित्तकी भेद वासनारूप शक्ति आत्मकी निजरूपताहीसे स्थितहै, अर्थात् चित्तकृत जड चेतनके विकल्पसे आत्माकी एक रूपतामें कोई हानी नहीं है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मैवानघतेनेस्फाराकारंविजृंभते ॥ नानारूपैःप्रतिस्पंदैःपरिपूर्णइवार्णवः ॥ ४९ ॥ नानातांस्वयमादत्तेनानाकारविहारतः ॥ आत्मैवात्मन्यात्मनैवसमुद्रांभइवांभसि ॥ ५० ॥ व्यतिरिक्तानपयसोवीचिव्रावीचयोयथा ॥ व्यतिरिक्तानविश्वेशात्समग्राःकल्पनास्तथा ॥ ५१ ॥ शाखापुष्पलतापत्रफलकोरकयुक्तयः ॥ यथैकस्मिंस्तथाबीजेसर्वदासर्वशक्तिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसकारण हे पापरहित रामजी ! जैसे नानाप्रकारके तरंगोंके गति भेदोंसे परिपूर्ण समुद्र शोभित होताहै ऐसेही विशाल जगदाकारसे ब्रह्मही विकसित हो रहाहै ॥ ४९ ॥ नानाप्रकारके आकारके विहारसे आत्माही आत्मामें आत्माहीसे नानाप्रकारके भेदको स्वयम् ऐसे ग्रहण करताहै जैसे समुद्रका जल अपनेही जलमें अपनेही जलसे तरंगादि भेदको ॥ ५० ॥ जैसे चित्र विचित्र तरंग जलसे पृथक् नहीं है इसीप्रकार विश्वके स्वामी परमात्मासे सम्पूर्ण जगत्की कल्पना पृथक् नहीं है ॥ ५१ ॥ जैसे एक बीजमें शाखा, पुष्प, लता, पत्र, फल, और कालिका (कली) आदिकी सब युक्तियां हैं, ऐसेही परमात्मामें सदा सर्व शक्तियां हैं ॥ ५२ ॥

विचित्रवर्णतायद्वदृश्यतेकठिनातपे ॥ विचित्रशक्तितातद्वद्देवेशेसदसन्मयी ॥ ५३ ॥ विचित्ररूपोदेतीयमविचित्रात्स्थितिःशिवात् ॥ एकवर्णात्पयोवाहाच्छक्रचापलतायथा ॥ ५४ ॥ अजडाज्जडतोदेतिजाड्यभावनहेतुका ॥ ऊर्णनाभाद्यथातंतुर्यथापुंसःसुषुप्तता ॥ ५५ ॥ अचितश्चेतसःशक्तिस्वबंधायेच्छयाशिवः ॥ तनोतितांतवंकोशंकोशकारक्रमिर्यथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे कठोर आतपमें विचित्र वर्ण देखते पडते हैं ऐसेही सब देवोंके स्वामी परमात्मामें सदसन्मयी विचित्र शक्ति देख पडती हैं ॥ ५३ ॥ अविचित्र एक रस कल्याणरूप परमात्मासे विचित्र यह जगत्की स्थिति ऐसे उदय होती है जैसे एक वर्ण मेघसे चित्रविचित्र वर्ण संयुक्त इन्द्रके धनुष्की लता ॥ ५४ ॥ चेतन परमात्मासे जडताकी भावना करनेवाली जडता इसप्रकार उत्पन्न होती है जैसे मकरीसे सूत वा पुरुषके स्वप्नसे रथादि ॥ ५५ ॥ आत्मा अपने बंधनके लिये चित्तकी शक्तिको अर्थात् वासनाकी विचित्रताको ऐसे विस्तार करता है जैसे मकरी नाम क्रमि अपने कोशजालको ॥ ५६ ॥

स्वेच्छयात्मात्मनोब्रह्मन्भावयित्वैषविस्मृतिम् ॥ करोतिकठिनंबंधंकोशकारक्रमिर्यथा ॥५७॥ स्वेच्छयात्मात्मनोब्रह्मन्भावयित्वास्वकंवपुः ॥ संसारान्मोक्षमाप्नोतिस्वालानादिववारणः ॥ ५८ ॥ यथैवभावयत्यात्मासततंभवतिस्वयम् ॥ तथैवापूर्यतेशक्त्याशीघ्रमेवमहानपि ॥ ५९ ॥ भाविताशक्तिरात्मानमात्मतांनयतिक्षणात् ॥ अनंतमखिलंप्रावृड्मिहिकामहतीयथा ॥ ६० ॥ याशक्तिरुदिताशीघ्रंयातितन्मयतामजः ॥ यएवतुस्थितिंयातस्तन्मयोभवतिद्रुमः ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! यह आत्मा अपनी इच्छासे आपही अपने स्वरूपकी विस्मृतिकी भावना करके अपनेलिये ऐसे कठिन बन्धन करताहै जैसे कोशकार क्रमि ॥ ५७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आत्मा अपनी इच्छासे अपने आत्माका साक्षात्कार करके संसारसे ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है जैसे हस्ती अपने अपने बन्धनसे ॥ ५८ ॥ यह आत्मा जैसी भावना करताहै वैसाही निरन्तर होता है, और महान्भी यह शीघ्र चित्तकी शक्तिसे वैसाही पूर्ण होजाता है॥५९॥ चिरकालकी भावनासे दृढ भूत वासना क्षणभरमे आत्माको अपने स्वरूपमें अपने तुल्य ऐसे प्राप्त करती है जैसे अनंत आकाशको प्रावृट्की बडीभारी मिहिका (कुहिरा) जैसी वासना उत्पन्न होती है आत्मा शीघ्र तन्मय ऐसे होजाताहै जैसे वर्तमान ऋतुके तन्मय वृक्ष ॥ ६० ॥ ६१ ॥

नमोक्षोमोक्षईशस्यनबंधोबंधआमनः ॥ बंधमोक्षदृशौलोकेनजानेप्रोत्थितेकुतः ॥ ६२ ॥ नास्तिबंधोनमोक्षोस्तितन्मयस्त्विवलक्ष्यते ॥ ग्रस्तंनित्यमनित्येनमायामयमहोजगत् ॥ ६३ ॥ यदैवचित्तंकलितंकिलानेनाकलात्मना ॥ कोशकारवदात्मायमनेनावलितस्तदा ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिसको मोक्ष कहते हैं वह मोक्ष आत्माके अर्थ नहीं, और जो बंध है वहभी आत्माको नहीं है, क्योंकि बंध और मोक्षदृष्टि संसारमें न जाने कहांसे निकली हैं अर्थात् यथार्थमें नहीं हैं ॥ ६२ ॥ यथार्थमें न बंध है न मोक्ष है किंतु बंधमोक्षरूप विकारवान्के सदृश यह आत्मा भान होताहै, अहो कैसा मायामय यह जगत् है कि आत्माके नित्य पूर्ण आत्मस्वरूपको अनित्य भोक्ता भोग्यादिक बासनाध्यासने ग्रसलिया अर्थात् तिरोहित कररक्खा है ॥ ६३ ॥ इस निर्मल आत्माने जिससमय चित्तका संकल्प किया उसीसमय यह आत्मा ऐसे बंधनमें इस चित्तकेद्वारा आगया जैसे मकरी निज रचित जालसे ॥ ६४ ॥

अन्योन्यरूपास्त्वत्यंतंविकल्पितशरीरकाः ॥ मनःशक्तयएतस्मादिमानिर्यांतिकोटयः ॥ ६५ ॥ तज्जास्तत्स्थाःपृथग्भूताःसमुद्रादिववीचयः ॥ तज्जास्तत्स्थाःपृथक्स्थाश्वचंद्रादिवमरीचयः ॥ ६६ ॥ अस्मिन्स्पंदमयेस्फारेपरमात्ममहांबुधौ ॥ चिज्जलेविततामोगेचिन्मात्ररसमालिनि ॥ ६७ ॥ काश्वित्स्थिराब्रह्मविष्णूकाश्विद्रुद्रत्वमागताः ॥ काश्वित्पुरुषतांप्राप्ताःकाश्विद्देवत्वमागताः ॥ ६८ ॥ क्रमिकीटपतंगाहिगोमशाजगरादिकाः ॥ काश्वितत्तस्मिन्महांबोधौस्फुरंत्येतेंबुबिंदुवत् ॥ ६९ ॥

अर्थ—परस्पर मिलित, और अत्यन्त विकल्पयुक्त शरीरवाले करोडों मनकी शक्ति इस परमात्मासे निकलती हैं ॥ ६५ ॥ उसीसे उत्पन्न और उसीसे स्थित ऐसे पृथक् स्थित हैं जैसे चन्द्रमासे किरण ॥ ६६ ॥ चित्तरूप जलसंयुक्त व्यापक आकारवाले, चेतनमात्र रसकी मालासहित स्पन्दमय और विशाल इस आत्मरूपी महान् समुद्रमें ॥ ६७ ॥ कोई ब्रह्मा विष्णुरूपी तरंग स्थिर हैं और उसीप्रकार स्थिर रुद्रभावको प्राप्त हुये हैं, कोई पुरुष (मनुष्य) भावको प्राप्त हुये हैं, और कोई देवभावको प्राप्त हुये हैं ॥ ६८ ॥ ये सब तरंग अपने स्वभावसे कल्पित स्फुरित होरहे हैं, इनमेंसे कोई तो यम, महेन्द्र, सूर्य अग्नि और कुबेर आदि रूपसे स्फुरित होते हैं ॥ १ ॥ कोई तो परस्पर मारते हैं कोई उपकार करते हैं, हंसते हैं और कोई चपल इच्छायुक्त स्थित रहते हैं; इनमेंसे कोई तरंग किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, तथा देवरूपसे स्फुरित हैं ॥ २ ॥ कोई उग्र तरंग गर्जना करके ऊपर जाते हैं कोई नीचे जाते हैं, और कोई कुछ कालतक स्थिर आकारवाले हैं जैसे ब्रह्माआदि और कोई उस महान् समुद्रमें; कृमि, कीट, पतंग, सर्प मशक (मच्छर) गौ और अजगर आदिरूपसे जलके बिन्दुके समान स्फुरते हैं ॥ ६९ ॥

काश्चिच्चलानरमृगगृध्रजंबुलकादिकाः ॥ स्फुरंतिगिरिकुंजेषुवेलावनतटेष्विव ॥७०॥ सुदीर्घजीविताः काश्चित्काश्चिदत्यल्पजीविताः ॥ अतुच्छकलनाःकाश्चित्काश्चित्तुच्छशरीरकाः ॥ ७१ ॥ संसारस्वप्नसंरंभेकाश्चित्स्थैर्येणभाविताः ॥ सुविकल्पहताःकाश्चिच्छंकंतेसुस्थिरंजगत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—और कोई २ अस्थिररूप जैसे मनुष्य, मृग, गृध्र तथा शृगाल आदि पर्वतोंके कुंजोंमें ऐसे स्फुरते हैं जैसे नदीके किनारेके बनोंमें चंचल लता आदि ॥ ७० ॥ किसीका जीवन अति दीर्घकालतक है और किसीका अति अल्प है किसीकी शरीरकी रचना अति महती (बडीभारी) है और किसीकी अति तुच्छ है ॥ ७१ ॥ संसाररूपी स्वप्नके कार्यमें कोई तो चिरकालतक स्थिरतासे कल्पित हैं और कोई दृढ विकल्पोंसे मोहित होके यह संभावना करते हैं कि यह जगत् अति स्थिर है ॥ ७२ ॥

अल्पाल्पभावनाःकाश्चिद्दैन्यदोषवशीकृताः ॥ कृशोऽतिदुःखीमूढोहमितिदुःखैर्वशीकृताः ॥ ७३ ॥ काश्चित्स्थावरतांयाताःकाश्चिद्देवत्वमागताः ॥ काश्चित्पुरुषतांप्राप्ताःकाश्चिदर्णवतांगताः ॥ ७४ ॥ काश्चित्स्थिताजगतिकल्पशतान्यनल्पाःकाश्चिद्व्रजंतिपरमंपदमिंदुशुद्धाः ॥ ब्रह्मार्णवात्समुदितालहरीविलोलाश्चित्संविदोहिमननापरनामवत्यः ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने संसारप्रवृत्तिदर्शनं नामैकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—और कोई तो तुच्छसे तुच्छ भावनावाले दीनताके दोषमें वशीभूत हैं जैसे मैं कृशहूं, मैं अति दुःखीहूं, और मैं अति मूढहूं इत्यादि दुःखोंसे वशीभूत हैं ॥ ७३ ॥ कोई तो इस आत्मारूपी समुद्रकी लहरी स्थावरता (वृक्षादि रूपता) को प्राप्त हुई और कोई देवभावको प्राप्त हुई, कोई मनुष्य देहताको प्राप्त हुई और कोई सुषुप्ति तथा प्रलयके तुल्य अप्रकट वासनारूपी मोहरूप समुद्रताको प्राप्त हुई हैं ॥ ७४ ॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्मरूप समुद्रसे आविर्भूत जो ये लहरी हैं जिनका दूसरा नाम स्फुरणरूप मन हैं ये चंचल उपाधिकृत संवित्के भेद हैं, इनमेंसे कोई तो इस जगत्में सैकडो कल्पतक स्थिरताको प्राप्त होते हैं और कोई चन्द्रमाके सदृश ज्ञानरूपी अमृतसे शुद्ध होके परमपद मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने संसारप्रवृत्तिदर्शनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

तरंग समुद्रके दृष्टांतसे जो आत्मामें बिकारता प्राप्त है उसका निषेध करते हुये मोहसे उत्पन्न विचित्रताकी विवर्तता इस १२ वे सर्गमें वर्णन करते है ॥

॥ कालउवाच ॥ सुरासुरनराकाराइमायाःसंविदोमुने ॥ ब्रह्मार्णवादभिन्नास्ताःसत्यमेतन्मृषेतरत् ॥ १ ॥ मिथ्याभावनयाब्रह्मन्स्वविकल्पकलंकिताः ॥ नब्रह्मवयमित्यंतर्निश्चयेनह्यधोगताः ॥ २ ॥ ब्रह्मणोव्यतिरिक्तत्वंब्रह्मार्णवगताअपि ॥ भावयंत्योविमुह्यंतिभीमासुभवभूमिषु ॥ ३ ॥ याएताःसंविदोब्राह्मयोमननैककलंकिताः ॥ एतत्तत्कर्मणांबीजमप्यकमैवविद्विताः ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला—हे मुने ! सुर असुर तथा नर आकारवाली ये जो उपाधिसे भिन्न संवित् हैं वे ब्रह्मरूपी समुद्रसे अभिन्न हैं यही सत्यहै और सब मिथ्याहै ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! अनात्मामें मिथ्या आत्मभ्रान्तिरूप अपने विकल्पसे दूषित होके जीवोंको जो यह निश्चय है कि हम ब्रह्म नहीं है इसीसे ये अधोगतिको प्राप्त हुये हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मसमुद्रमें अभिन्नरूपताको प्राप्त होकेभी जो ब्रह्मसे भिन्न परिछिन्नरूपताकी संभावना करते हैं; इसीकारण भयंकर संसारकी भूमियोंमें मोहित होते है ॥ ३ ॥ हे भगवन् देहमें पुनः २ आत्मभावसे कलंकित ये जो संवितहै वेही पुण्य पापकी प्रवृत्तियोंका बीजभूतहै; परन्तु उनके ऐसा होनेपरभी यथार्थमें उनको तुम निष्क्रिय ब्रह्महीं जानो ॥ ४ ॥

संकल्परूपयैवांतर्मुनेकलनयैतया ॥ कर्मजालकरंजानांबीजमुष्ट्याकरालया ॥ ५ ॥ इमाजगतिविस्तीर्णाःशरीरोपलपंक्तयः ॥ तिष्ठंतिपरिवल्गंतिरुदंतिचहसंतिच ॥ ६ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंस्पंदनैःपवनो यथा ॥ उल्लसंतिनिलीयंतेम्लायंतिविहसंतिच ॥ ७ ॥ ताएताःकाश्चिदत्यच्छायथाहरिहरादयः ॥ काश्चिदल्पविमोहस्थायथोरगनरामराः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! कर्मसमूहरूपी काटोंके बीजकी भयंकर मुष्टिरूप संकल्परूप चित्तकी कल्पनासे ॥ ५ ॥ शरीररूपी ये पाषाणकी पंक्ति विस्तारसे फेकी हुई जगत्में स्थित हैं, गर्जती हैं, रोती हैं और हंसती हैं ॥ ६ ॥ जैसे ब्रह्मासे लेके स्तंबपर्यन्त पवन अपने गतिके भेदोंसे व्याप्त है ऐसेही संकल्पसे कल्पित ये संवित् उल्लासको प्राप्त होती हैं, तथा तिरोहित (लुप्त) भी होजाती हैं ॥ ७ ॥ इनमेंसे कोई ज्ञानकी पराकाष्ठाको पहुंचनेसे अति स्वच्छ हैं, जैसे विष्णु और महादेव आदि; और कोई ज्ञानके अधिकारी मात्र होनेसे अल्पमोहमें स्थित हैं जैसे उरग; नर और देवता आदि ॥ ८ ॥

काश्चिदत्यंतमोहस्थायथातरुतृणादयः ॥ काश्चिदज्ञानसंमूढाःकृमिकीटत्वमागताः ॥ ९ ॥ काश्चित्तृणवद्वहंतेदूरेब्रह्ममहोदधेः ॥ अप्राप्तभूमिकाएतायथोरगनगादयः ॥ १० ॥ सत्वमात्रंसमालोक्यकाश्चिदेवमुपागताः ॥ जाताजातानिखन्यंतेकृतांतजरठाखुना ॥ ११ ॥ काश्चिदंतरमासाद्यब्रह्मतत्त्वमहांबुधेः ॥ गतास्ततांसमंकायैर्हरिब्रह्महरादिकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई महा अज्ञानमें स्थित हैं जैसे वृक्ष तथा तृण आदि; और कोई अज्ञानसे संमूढ हैं जैसे कोई कृमि वा कीट आदि दशाको प्राप्त हुये हैं ॥ ९ ॥ कोई २ शास्त्र विरूद्ध प्रवृत्तियोंसे ब्रह्मरूपसमुद्रसे अर्थात् मुक्तिसे तृणके समान दूर फेंकि दिये जाते हैं और ये मोक्षकी भूमिमें नहीं प्राप्त होते जैसे सर्प तथा पर्वत आदि ॥ १० ॥ कोई २ संसारके श्रमके विश्रामका हेतुभूत योग्य भूमिकाको प्राप्त होके देवदशाको प्राप्त और शास्त्रसे सुनके उसके अभिमुख होके भी दुष्ट प्रारब्धरूपी वृद्ध मूषकसे पीडित होते हैं ॥ ११ ॥ कोई किंचित् भेदक विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त होके अपने शरीरोंके साथ ब्रह्मरूपी महासमुद्र रूपताको अर्थात् जीवन्मुक्तताको प्राप्त होगये जैसे ब्रह्मा, और महादेव आदि ॥१२॥

अल्पमोहात्मिकाःकाश्चित्तमेवब्रह्मवारिधिम् ॥ अदृष्टपारभूम्यौघमवलंब्यव्यवस्थिताः ॥१३॥ काश्चिद्भोक्तव्यजन्मौघभुक्तजन्मौघकोटयः ॥ वंध्याःप्रकाशतामस्यःसंस्थिताभूतजातयः ॥१४॥ काश्चिदूर्ध्वादधोयांतियथाहस्थान्महत्फलम् ॥ ऊर्ध्वादूर्ध्वतरंकाश्चिदधस्तात्काश्चिदप्यधः॥१५॥बहुसुखदुःखकराकराक्षयेयंपरमपदास्मरणात्समागतेह॥परमपदावगमात्प्रयातिनाशंविहगपतिस्मरणाद्विषव्यथेव ॥१६॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने संसारोत्पत्तिविस्तारवर्णनं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई अल्पज्ञानवाले अदृष्ट पारभूमि पूर्णतायुक्त उस ब्रह्मरूपी समुद्रको समाधिसे अवलम्बन करके स्थित हैं ॥ १३ ॥ और कोई २ प्राणियोंकी जातिभोग करनेको करोडों जन्मोंके समूहको भोग करलिया तथापि मोक्षरूप फल न पानेसे बन्ध्य हैं और मोक्षके अधिकारी मनुष्य देहरूप प्रकाश मिलनेपरभी वे तामसी अर्थात् अन्धकारमेंही स्थित हैं ॥ १४ ॥ कोई २ उत्तम जन्मसे नीच जन्मको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे हाथमेंसे महान् फल नीचे गिरजाय, और कोई २ ऊपरसेभी ऊपर जाते हैं अर्थात् उत्तमसेभी और उत्तम होते हैं, और कोई नीचेसेभी और नीचे जाते हैं जैसे पशुसे कीटताको ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! बहुत सुख तथा दुःखोंको देनेवाले जन्मोंकी खानिरूप जो यह जीवताहै वह परमपद अपने आत्मस्वरूपके विस्मरणसे प्राप्त हुई है और उसी आत्मस्वरूप परमपदके बोधसे जीवता ऐसे नष्ट होजाती है जैसे गरूडके स्मरणसे विषकी व्यथा ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने संसारोत्पत्ति विस्तार वर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

मनकी शक्तियोंको वर्णन करनेके पश्चात् भृगु और कालका शुक्रके समीप जानेके अर्थ उत्थानका वर्णन इस १३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ कालउवाच ॥ एतासांभूतजातीनामूर्मीणामिवसागरात् ॥ विविधानांविचित्राणांलतानामिवमाधवे ॥ १ ॥ भव्याजितमनोमोहाद्दृष्टलोकपरावराः ॥ जीवन्मुक्ताभ्रमंतीहयक्षगंधर्वकिंनराः ॥ २ ॥ अन्येतुकाष्ठकुड्याभामूढाःस्थावरजंगमाः ॥ अपरेक्षीणमोहास्तेकिंतेषांप्रविचार्यते ॥ ३ ॥ लोकेप्रबुध्यमानानांभूतानामात्मसिद्धये ॥ विहरंतीहशास्त्राणिकल्पितान्युदितात्मभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला–हे ब्रह्मन् ! सागरसे प्रगट तरंगोंके समान वा बसन्तऋतुमें उत्पन्न लताओंके तुल्य परमात्मासे आविर्भूत चित्रविचित्र अनेक प्रकार प्राणियोंकी जातिमेंसे ॥ १ ॥ जिन्होंने मनके मोहको जीतलियाहै और इस लोक तथा परलोकके तत्वको देखलियाहै वेही भव्य अर्थात् कृतार्थ हैं और वेही यक्ष गंधर्व किन्नर तथा मनुष्य जीवन्मुक्त होके संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ २ ॥ और इनसे अतिरिक्त अन्य जो प्राणी हैं वे काष्ठ वा कुड्य (भित्ति) के तुल्य मूढहैं और वे स्थावर वा जंगम भावको प्राप्त होते हैं, और जो तत्वज्ञानी हैं जिनका मोह क्षीण होगयाहै उनके लिये शास्त्रके विचारकी क्या अवश्यकताहै, किंतु जो साधनचतुष्टयसंपन्नहैं और अज्ञानी हैं उन्हीके लिये शास्त्रहैं ॥ ३ ॥ जो संसारमें आत्मज्ञानके लिये जाग्रतहैं उन्हींके अर्थ ज्ञानी महात्माओंसे कहे हुये शास्त्र गर्जना कर रहे हैं, अर्थात् मोह शून्य महात्माओंके देह धारणका यही प्रयोजनहै कि शास्त्र रचके ज्ञानद्वारा अज्ञानियोंका उद्धार करें ॥ ४ ॥

संप्रबुद्धाशयायेतुदुष्कृतानांपरिक्षये ॥ तेषांशास्त्रविचारेषुनिर्मलाधीःप्रवर्त्तते ॥ ५ ॥ विलीयतेमनोमोहःसच्छास्त्रप्रविचारणात् ॥ नभोविहरणाद्भानोःशार्वरंतिमिरंयथा ॥ ६ ॥ अक्षीयमाणंहिमनोमोहायैवनसिद्धये ॥ नीहारइवसंछाद्यवेतालइववल्गति ॥ ७ ॥ सर्वेषामेवदेहानांसुखदुःखार्थभाजनम् ॥ शरीरंमनएवेहनतुमांसमयंमुने ॥ ८ ॥

अर्थ—पापोंके नाश होजानेसे जिनका अंतःकरण शुद्ध होगयाहै उन्ही सज्जनोंकी निर्मल बुद्धि शास्त्रके विचार में प्रवृत्त होतीहै ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! सत् शास्त्रके विचारसे मनका मोह ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे आकाशमें सूर्य भगवान्के विहारसे रात्रिका अंधकार ॥ ६ ॥ और जो मनका मोह नष्ट नहीं होता वह अज्ञानके लियेहै न कि सिद्धिके लिये; और मोह आकाशको कुहिरा जैसे आच्छादन करताहै वैसाही अंतःकरणको आच्छादन (ढाप) करके नृत्य करताहै ॥ ७ ॥ हे मुने देहके साथ आत्माका अध्यास करनेवाले सब प्राणियोंका मनरूपी शरीरही सुख तथा दुःखका भागी है न कि यह मांसमय शरीर ॥ ८ ॥

योयंमांसास्थिसंघातोदृश्यतेपांचभौतिकः ॥ मनोविकल्पनंविद्धिनदेहःपरमार्थतः ॥ ९ ॥ मनःशरीरेणतवपुत्रोयंकृतवान्मुने ॥ तदेवप्राप्तवानाशुवयंनात्रापराधिनः ॥ १० ॥ स्वयावासनयालोकोयद्यत्कर्मकरोतियः ॥ सतथैवतदाप्नोतिनेतरस्येहकर्तृता ॥ ११ ॥ स्वानुसंहितमंतर्यन्मनोवासनयास्वया ॥ कोनामभुवनेशोस्तितत्कर्तृंयस्यशक्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—और जो यह मांस और हड्डीका समूह पंचभूतोंसे रचा हुआ शरीर देख पडताहै इसको आप मनकाही विकल्प जानो; क्योंकि यह पांच भौतिक देह यथार्थमें नहीं है ॥ ९ ॥ हे मुने मनरूपी शरीरसे जो कुछ आपके पुत्रने कियाहै वही शीघ्र उसने पाया इसमें हम लोगोंका कुछभी अपराध नहीं है ॥ १० ॥ अपनी वासनासे युक्त होके प्राणी जो २ कर्म करताहै वैसाही वैसा फल वह पाताहै इसमें अन्यकी कर्तता नहीं है ॥ ११ ॥ मन अपनी वासनासे युक्त अनुसंधान मात्रसे क्षणभरमें जो कर लेताहै उसको भुवनका स्वामीभी होके चिरकालमेंभी कौन कर सकताहै ॥ १२ ॥

येसर्गानरकाभोगायाजन्ममरणैषणाः स्वमनोमननेनेदंसनिष्पंदोपिदुःखदः ॥ १३ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनशब्दसंग्रहकारिणा ॥ उत्तिष्ठभगवन्यामोयत्रतेतनयःस्थितः ॥ १४ ॥ संवेचित्तशरीरेणभुक्त्वाशुक्रःक्षणादिव ॥ अथैंदुरश्मिसंघट्टात्समंगातापसःस्थितः ॥ १५ ॥ तत्प्राणपवनश्चित्तान्मुक्तइदंशुवत्फलम् ॥ अवश्यायतयाभूत्वावीर्यतेनांतरास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो सृष्टि, नरकके विस्तार और जो जन्ममरण आदिकी इच्छाहै; यह सब मनके स्फुरणसे है, और मनका किंचित्भी संचलन दुःखदायी है ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! बहुत शब्दजाल रचके आपको श्रवण करानेसे क्या

प्रयोजन आओ उठो जहां आपका पुत्र है वहां चलें ॥ १४ ॥ मनरूपी शरीरसे शुक्राचार्यने सब स्वर्ग आदि क्षणभरमें भोगके और वहांसे गिरके चन्द्रमाके किरणके संबंधसे औषधि आदिके द्वारा गर्भमें जन्म धारण करके तपस्वी होके समंगा नदीके तटपर स्थितहैं ॥ १५ ॥ शुक्राचार्यके प्राण वायुने चेतन शक्तिसे संमूर्छित होके चंद्रमाके संपर्कसे कुहिराके द्वारा धान्य आदिमें प्रवेश करके और वह अन्नभुक्तरूप होनेसे पुरुषका वीर्य होके जन्म धारण कियाहै॥१६॥

इत्युक्त्वाभगवान्कालोहसन्निवजगद्गतिम् ॥ हस्ताद्धस्तेनजग्राहभृगुमिंदुमिवांशुमान् ॥ १७ ॥ अहो नुचित्रानियतेर्व्यवस्थेतिवदञ्छनैः ॥ भगवान्भृगुरुतस्थावुदयाद्रेर्यथारविः ॥ १८ ॥ तेजोनिधीहसमंगसमुत्थितौतौभातस्तदांबरतलेसतमालजाले ॥ तुल्योदयाविवनभस्यमलेविहर्तुमभ्युत्थितौसजलदौसकलेंदुसूर्यौ ॥ १९ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भृगुसमाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—भगवान् काल इतना कहके जगत्की गतिको हंसते हुयेके समान भृगुमुनिके हस्तको अपने हस्तसे ऐसे ग्रहण किया जैसे चन्द्रमाको सूर्य ॥ १७ ॥ अहो ! दैव वा कर्मकी व्यवस्था कैसी विचित्रहै ऐसा धीरेसे कहते हुये भगवान् भृगु अपने आसनसे ऐसे उठे जैसे उदयाचलसे सूर्य ॥ १८ ॥ हे प्रियरामजी ! तेजके निधान भृगु और काल दोनो तमालके सहित मन्दराचलपरसे उठे उस समय वे दोनों ऐसे शोभित हुये जैसे साथ उदय होनेवाले पूर्ण चंद्रमा और सूर्य मेघसहित निर्मल आकाशमें विहार करनेको शोभित हों ॥ १९ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले-इतना मुनि वसिष्ठके कहनेपर दिनका अंत होगया सूर्यभगवान् सायंकाल करनेको अस्ताचलमें गये, और संपूर्ण सभाभी संध्याके स्नानादि कृत्य करनेके लिये बिदा हुई, और रात्रि बीतनेपर सूर्यके किरणोंके साथ; परस्पर नमस्कार पूर्वक आके प्राप्त हुई ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भृगुसमाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अष्ठमोदिवसः ।

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

भृगु और कालका शुक्राचार्यके निकट गमन, शुक्रको समाधिसे बोधन (जाग्रत) करना, तथा शुक्रकी अपने पूर्व शरीरके निकट आनेकी इच्छा इत्यादि विषयोंका वर्णन १४ के सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथकालभृगूदेवौमंदराचलकंदरात् ॥ गंतुंप्रवृत्तावनौसमंगासरितस्तटम् ॥ १ ॥ तौशैलादवरोहंतौदृष्टवंतौमहाद्युती ॥ नवहेमलताजालकुंजसुप्तनभश्वरान् ॥ २ ॥ वल्लीवलयदोलाभिः क्रीडतोगगनांगणे ॥ हरिणीमुग्धमुग्धाक्षिप्रेक्षितस्मारितोत्पलान् ॥ सिद्धानध्यासितोत्तुंगशिलाशकलविष्टरान् ॥ धृताकारानिवोत्साहान्हेलादृष्टजगत्त्रयान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसके पश्चात् काल और भृगु दोनो देव पृथिवीपर उतरके समंगा नदीके तटपर जानेको प्रवृत्त हुये ॥ १ ॥ महातेजस्वी वे दोनों पर्वतसे उतरते समय नूतन सुवर्णसे रचित लता जालके समूहोंके तुल्य सोतेहुये देवता तथा पक्षियोंको देखा ॥ २ ॥ वे देवता लोग लता रचित दोला (झूला) ओंसे आकाशके अंगमें क्रीडाकर रहे थे, और हरिणियोंके समान मुग्ध मुग्ध कटाक्षोंसे जो अप्सरागण देख रहीथीं उनसे कमलके दलोंको स्मरण कराते थे ॥ ३ ॥ ऊंचे शिलाके खण्डोके आसनपर स्थित और अवज्ञासे तीनों लोकको देखनेवाले मूर्तिमान् उत्साहके सदृश सिद्धोंकोभी देखा ॥ ४ ॥

कृताजस्रपतत्पुष्पधारासारनिमज्जनान् ॥ तालोत्तालकृतोद्धस्तवस्तान्हस्तिघटापतीन् ॥ ५ ॥ मदावलेपनिद्रालून्मदान्मूर्त्ताहिवस्थितान् ॥ पुष्पकेसररक्तांगपवनारुणवालधीन् ॥ ६ ॥ चंचलांश्चमरांश्चारून्भूभृन्मंडलचामरान् ॥ कृताजस्रपतत्पुष्पधारासारनिमज्जनान् ॥ ७ ॥ किन्नरान्भ्रमखर्जूरान् शाखासरलतांगतान् ॥ परस्परफलाघातक्ष्वेडवर्जितकीचकान् ॥ ८ ॥ धातुपाटलदुर्वक्रान्मर्कटान्नटनोत्कटान् ॥ लतावितानसंछन्नसानूपवनमंदिरान् ॥ ९ ॥

अर्थ—जिनमें निरन्तर पुष्पोंकी धारा गिरती थी ऐसे जलके प्रवाहमें स्नान किये हुये, तथा ताल वृक्षके समान शुण्डादण्ड (सूँड) धारी हांथियोंके यूथपोंकोभी देखा ॥ ५ ॥ मदसे निद्रायुक्त, पुष्पोंके केसरोंसे रंगे हुये लाल पुच्छ युक्त मूर्तिमान् मदके सदृश वे हांथियोंके यूथप (श्रेष्ठ हांथी) स्थित थे ॥ ६ ॥ चंचल तथा सुंदर मंदराचलके चामरके समान चमर नाम मृगोंको देखा, और निरंतर जिसमें पुष्पोंकी धारा गिररही थी ऐसे प्रवाहमें स्नान कियेहुये किन्नरोंकोभी देखा ॥ ७ ॥ और शाखा पर्यन्त सीधे खडे उत्तम खर्जूर (खजूर) के वृक्षोंको देखा, और खर्जूके फलोंके परस्पर ताडनरूप क्रीडाओंसे नीचेके बांसके वृक्षोंकोभी फल सहित करनेवाले तथा गेरूके समान लाल तथा कुरूप मुख संयुक्त और नाचने कूदनेमें चतुर बानरोंको देखा, और लताओंसे आच्छादित शिखर, उपबन; तथा मन्दिरोंको देखा ॥ ८ ॥ ९ ॥

सिद्धानमरनारीभिर्मंदारकुसुमाहतान् ॥ धातुपाटलनिर्द्वारपयोदपटसंवृतान् ॥ १० ॥ तटानजनसंसर्गान्बौद्धान्प्रव्रजितानिव ॥ सरितःकुंदमंदारपिनद्धलहरीघटाः ॥ सागरोत्कतयेवात्तमधुमासप्रसाधनाः ॥ ११ ॥ पुष्पभारपिनद्धांगान्वृक्षान्पवनकंपितान् ॥ क्षीबानिवमधुप्राप्तौघूर्णान्मधुकरेक्षणान् ॥१२॥

अर्थ—रतिके समयको जनानेके अर्थ अप्सराओंकरके पुष्पोंसे ताडित इसीसे गेरूके समान अरूण तथा छिद्ररहित मेघरूपीपटसे आवृत (ढके हुये) सिद्धनामक देवोंको देखा ॥ १० ॥ बौद्धमतके सन्यासीके तुल्य मनुष्योंके संचारसे बर्जित तटोंकोभी देखा कुन्द तथा मन्दार आदि पुष्पोंसे जिनके तरंग समूह गूथे थे, और समुद्ररूपी प्रियके अर्थ चैत्रमासमें उत्पन्न पुष्प फलादिरूप आभूषण धारण किये हुई नदियोंकोभी देखा ॥ ११ ॥ पुष्पोंके भारसे गुंफित; पवनसे कम्पित भ्रमररूपी नेत्रधारी, और बसंतऋतुके प्राप्त होनेसे घूरते हुये मदोन्मत्तके समान वृक्षोंको देखा ॥१२॥

शैलराजश्रियंस्फीतांपश्यंतौताविनस्ततः ॥ प्राप्तवंतौवसुमतींपुरपत्तनमंडिताम् ॥ १३ ॥ क्षणादवापतुस्तत्रपुष्पलोलतरंगिणीम् ॥ समंगांसरितंसाधूसर्वपुष्पमयोमिव ॥ १४ ॥ ददर्शाथतटेतस्मिन्कस्मिंश्चित्तनयंभृगुः ॥ देहांतरपरावृत्तं भावमन्यमुपागतम् ॥ १५ ॥ शांतंद्रियंसमाधिस्थमचंचलमनोमृगम् ॥ सुचिरादिवविश्रांतंसुचिरश्रमशांतये ॥ १६ ॥

अर्थ—वे दोनोंपर्वत राजकी निर्मल शोभाको इधर उधर देखते हुये ग्रामनगर आदिसे शोभित पृथिवीपर प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ वेदोनों महात्मा (काल भृगु) पुष्पोंसे चंचल तरंगवाली मानो समर्थ पुष्पमयी होरहीहै ऐसी संमगाके समीप क्षणभरमेंही प्राप्त हुये ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् भृगुने किसी वृक्षके नीचे अपने पुत्रको देखा जो कि दूसरी शरीर धारण करनेसे शुक्राचार्यसे विलक्षणभावको प्राप्त होगयेथे ॥ १५ ॥ उनकी संपूर्ण इन्द्रियां शांतथीं, समाधिमें स्थित होनेसे मनरूपी मृग चंचलतासे शून्य था तथा संसारके अनादि कालके परिश्रमकी शांतिके लिये मानो चिरकालके लिये विश्राम कररहे थे ॥ १६ ॥

चिंतयंतमिवानंताश्चिरभुक्ताचिरोज्झिताः ॥ संसारसागरगतीहर्षशोकनिरंतराः ॥ १७ ॥ नूनंनिश्चलतांयातमतिभ्रमितचक्रवत् ॥ अनंतजगदावर्त्तविवर्त्तातिशयादिव ॥ १८ ॥ एकांतसंस्थितंकांतंकांत्यैकाकिनमाश्रितम् ॥ उपशांतेहसंभग्नचित्तसंभ्रमसंगमम् ॥ १९ ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थंविरतंद्वंद्ववृत्तितः ॥ हसंतमखिलांलोकगतिंशीतलयाधिया ॥ २० ॥

अर्थ—और चिरकाल भोगी हुई तथा शीघ्र त्यागी हुई निरन्तर हर्ष वा शोकरूप संसारकी गतिको शोच रहेथे ॥ १७ ॥ अनन्त जगत्के आवर्तोंके विवर्तकी अधिकतासे वैराग्यके कारण अति भ्रमण करते हुये चक्रके समान निश्चयरूपसे निश्चलताको प्राप्त थे ॥ १८ ॥ एकांतमें स्थित अतिसुन्दर एकाकी शोभारूप प्रियासे सेवित शांत होनेसे चित्तके नाश होनेसे चित्तके संभ्रमरूपी समागमसे शून्यथे ॥ १९ ॥ चित्तकी वृत्तियोंके निरासरो निर्विकल्प समाधिमें स्थित, अतिशीतल बुद्धिसे सम्पूर्णलोककी गतिको हंसते हुये के समान विराजमान थे ॥ २० ॥

विगताखिलवृत्तांतंविगताशेषभोक्तृतम् ॥ निरस्तकल्पनाजालमालंबितमहापदम् ॥ २१ ॥ अनंतविश्रांतिततपदेविश्रांतमात्मनि ॥ प्रतिबिंबमगृह्णंतंसितंमणिमिवास्थितम् ॥ २२ ॥ हेयोपादेयसंकल्पविकल्पास्यांसमुज्झितम् ॥ संप्रबुद्धमतिंवीरंददर्शतनयंभृगुः ॥ २३ ॥ तमालोक्यभृगोःपुत्रंकालोभृगुमुवाचह ॥ वाक्यमब्धिध्वनिनिभंतवपुत्रस्त्वसाविति ॥ २४ ॥

अर्थ—सब लोकके वृत्तांतसे अभिज्ञ सब भोक्तृताके और संपूर्ण कल्पनाओंके समूहके विध्वस्त होनेसे महापद (ब्रह्म) का आलम्बन किये हुये स्थित थे ॥ २१ ॥ और अनन्त विश्रामयुक्त तथा व्यापक आत्मामें विश्राम

करते हुये, और प्रतिबिंब ग्रहण करते हुये स्वच्छ स्फटिकमणिके समान स्थितथे ॥२२॥ हे रामजी! हेय (त्याज्य) तथा उपादेय (ग्राह्य) के संकल्पके विकल्पोंसे शून्य,ज्ञानयुक्त अति धीर अपने जन्मांतरके पुत्रको भृगुने देखा ॥२३॥ उस भृगुके पुत्रको देखके समुद्रके समान गंभीर शब्दसे काल भृगुसे बोला—कि यही आपका पुत्र है ॥ २४ ॥

विबुध्यतामितिगिरासमाधेर्विरराममसः ॥ भार्गवोंभोदघोषेणशनैरिवशिखंडभृत् ॥ २५ ॥ उन्मीलयने त्रेसोपश्यदंतेकालभृगूप्रभू ॥ समोदयाविवायातौदेवौशशिदिवाकरौ ॥ २६ ॥ कदंबलतिकापीठादथो त्थायननामतौ ॥ समौसमागतौकांतौविप्रौहरिहराविव ॥ २७ ॥ मिथःकृतसमाचाराःशिलायांसमु पाविशन् ॥ मेरुपृष्ठेजगत्पूज्याब्रह्मविष्णुहराइव ॥ २८ ॥

अर्थ—उठो ऐसी बाणीसे शुक्राचार्य समाधिसे ऐसे उठ बैठे जैसे सोता हुआ मयूर मेघके धीर शब्दसे॥२५॥ समाधिसे जाग्रत नेत्र खोलके उन्होंने अपने समीप काल और भृगुको स्वामीके सदृश ऐसे देखा जैसे साथ उदय होनेवाले चन्द्रमा और सूर्य्य प्राप्त हों ॥ २६ ॥ इसके अनंतर शुक्र कदंबकी लताके आसनसे उठके उन दोनोंको ऐसे प्रणाम किया जैसे समानरूप, अति सुंदर ब्राह्मण वेषधारी आये हुये हरि तथा हरको ॥ २७ ॥ परस्पर सत्कार करके वे तीनों एक पाषाणकी शिलापर ऐसे बैठगये जैसे मेरुके पृष्ठपर जगत्पूज्य ब्रह्मा विष्णु और महेश ॥ २८ ॥

अथशांतजपोरामससमंगातटोद्विजः ॥ तावुवाचवचःशांतममृतस्यंदसुंदरम् ॥ २९ ॥ भवतोर्दर्शने नाहमद्यनिर्वृतिमागतः ॥ सममागतयोर्लोकेशीतलोष्णरुचोरिव ॥ ३० ॥ योनशास्त्रेणतपसानज्ञानना पिविद्यया ॥ विनष्टोमेमनोमोहःक्षीणोसौदर्शनेनवाम् ॥ ३१ ॥ नतथासुखयंत्यंतर्निर्मलामृतवृष्टयः ॥ यथाप्रहर्षयंत्येतामहतामेवदृष्टयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पीछे समंगा तटका वह शुक्ररूपी ब्राह्मण अपनी समाधि समाप्त करके अमृत झरते हुयेके समान सुंदर बचन उन दोनोंसे बोला ॥ २९ ॥ हे महात्माओं! आप दोनोंके दर्शनसे आज मैं ऐसी शांतिको प्राप्त हुआ जैसे लोकमें एक संग आये चंद्रमा और सूर्यके दर्शनसे ॥ ३० ॥ जो मोहनशास्त्रसे, न तपसे, और न विद्यासे क्षीण (नष्ट) हुआ था वह आज आप दोनोंके दर्शनमात्रसे नष्ट होगया ॥ ३१ ॥ निर्मल अमृतकी वृष्टि उस प्रकार सुख नहीं देती जैसे कि यह आपके सदृश महात्माओंकी दृष्टि ॥ ३२ ॥

चरणाभ्यामिमंदेशंभवंतौभूरितेजसौ ॥ कौपवित्रितवंतौनःशशांकार्काविवांबरम् ॥ ३३ ॥ इत्युक्तवंतं प्रोवाचभृगुर्जन्मांतरात्मजम् ॥ स्मरात्मानंप्रबुद्धोसिनाज्ञोसीतिरघूद्वह ॥ ३४ ॥ प्रबोधितोसौभृगुणा जन्मांतरदशांनिजाम् ॥ मुहूर्त्तमात्रंसस्मारध्यानोन्मीलितलोचनः ॥ ३५ ॥ अथासौविस्मयात्स्मरसु खोमुदितमानसः ॥ वितर्कमंथरंवाचमुवाचवदतांवरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य और चंद्रमा अपनी किरणोंसे आकाशको पवित्र करते हैं ऐसेही अति तेजस्वी आप दोनों महात्मा अपने चरणोंसे पवित्र किया सो आप कौन हैं ॥ ३३ ॥ हे रघुपते रामजी इसप्रकार शुक्रके कहनेपर भृगु अपने अन्य जन्मके पुत्र (शुक्र) से बोले कि तुम अपनेको स्मरण करो क्योंकि अब तुम ज्ञानी हो अज्ञानी नहीं हो ॥ ३४ ॥ इसप्रकार भृगुसे बोधित शुक्राचार्यने ध्यानसे दिव्य दृष्टिहोके दोघडीतक अपनी अन्य जन्मोंकी दशाको स्मरण किया ॥ ३५ ॥ इसके अनंतर अर्थात् अपनी पूर्व जन्मोंकी दशाके स्मरणके पश्चात् आश्चर्यके देखनेसे किंचित् हास्ययुक्त मुख; प्रसन्नचित्त; और कहनेवालोंमें श्रेष्ठ शुक्रजी वितर्कसे मन्द २ वाणी बोले ॥ ३६ ॥

जयत्यविदितारंभानियतिःपरमात्मनः ॥ यद्वशादिदमाभोगिजगच्चक्रंप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ ममानंतान्यती तानिजन्मान्यविदितान्यपि ॥ दशाफलान्यनंतानिकल्पांतकलितादिव ॥ ३८ ॥ दृष्टाःकठिनसंरंभावि भवोप्यर्जनभ्रमाः ॥ विहृतंवीतशोकासुचिरंमेरुस्थलीषुच ॥ ३९ ॥ पीतमामोदिमंदारकेसरारुणितं पयः ॥ मंदाकिन्याःसकलाह्लारंतटीष्वमरभूभृतः ॥ ४० ॥

अर्थ—कि जिसके आरंभ जाने नहीं जाते ऐसी यह कर्मके फलोंकी व्यवस्थाका कारणभूत परमात्माकी माया शक्ति (नियति) सबसे प्रबल है इसके बशमें होके यह विस्तार युक्त जगत्का चक्र घूमता है ॥ ३७ ॥ जैसे प्रलयसे युक्त वृष्टि; वायु; तथा अग्निके कारणसे दुःख मोहादि अविदित रहते हैं ऐसेही मरण मोह तथा मूर्छादि दुर्दशाके फल सहित अनंत अज्ञात हमारे जन्म वीतगये ॥ ३८ ॥ कठिन क्रोधसे पूर्ण राजाओंको; तथा उनके द्रव्यके उपार्जनके भ्रमकोभी देखा; अर्थात् राजाओंके शरीरकोभी धारण किया; और देवस्वरूप धारण करके चिरकालतक सुमेरूपर्वतकी उत्तम २ स्थलियोंमेंभी भ्रमण किया ॥ ३९ ॥ और देवताओंके पर्वतपर सुगंधिसहित; मन्दार (कल्पवृक्ष) के केसरोंसे अरुण (लाल) वर्ण तथा कमलयुक्त गंगाजीका जलभी पान किया ॥ ४० ॥

भ्रांतमंदरकुंजेषुफुल्लहेमलतालिषु ॥ मेरोःकल्पतरुच्छायापुष्पसुंदरसानुषु ॥ ४१ ॥ नतदस्तिनयद्दृष्टंनतदस्तिनयत्कृतम् ॥ नतदस्तिनयद्दृष्टमिष्टानिष्टासुवृत्तिषु ॥ ४२ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमधुनादृष्टंद्रष्टव्यमक्षतम् ॥ विश्रांतोथचिरंश्रांतोगतोमेंसकलोभ्रमः ॥ ४३ ॥ उत्तिष्ठतातगच्छामःपश्यामोमंदरस्थिताम् ॥ तांतनुंतावदाशुष्कांशुष्कांवनलतामिव ॥ ४४ ॥ नसमीहितमस्तीहनासमीहितमस्तिमे ॥ नियतेरचनांद्रष्टुंकेवलंविहराम्यहम् ॥ ४५ ॥ यदतिसुभगमार्यसेवितंतत्स्थिरमनुयामियदेकभावबुद्ध्या ॥ तदलमभिमतामतिर्ममास्तुप्रकृतमिमंव्यवहारमाचरामि ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवजन्मांतरस्मरणवर्णनं नाम चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—तथा कल्पवृक्षकी छाया संयुक्त पुष्पोंसे सुंदर शिखरोंपर और सुवर्णकी लतायें जिनमें लहलहा रही हैं ऐसे मन्दराचलके कुंजोंमेंभी भ्रमण किया ॥ ४१ ॥ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजनहै संसारमें ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जिसको हमने नहीं देखा; और ऐसा कुछ नहीं है जिसको हमने नहीं किया, तथा इष्ट और अनिष्ट दशाओंमें ऐसा कुछ नहीं है कि जिसको हमने न देखाहो ॥ ४२ ॥ अब परमात्मस्वरूपके ज्ञानसे जो कुछ जानने योग्य पदार्थथा उसको मैंने जानलिया; और जो कुछ देखने योग्यथा उसे सम्पूर्ण रूपसे देखभी लिया तथा चिरकालसे संसारकी वासनाके परिश्रमसे अब मुझे विश्राम मिलाहै और अब मेरा संपूर्ण भ्रम नष्ट होगया ॥ ४३ ॥ सो हे तात! उठो चलैं और मंदराचलपर स्थित बनकी लताके समान शूखी हुई उस अपनी शरीरको देखैं ॥ ४४ ॥ इस संसारमें अभिलाषित तथा अनभिलषित कुछभी पदार्थ नहीं है केवल परमात्माकी शक्तिकी रचना देखनेके अर्थ मैं बिचरता हुं ॥ ४५ ॥ क्योंकि मैं एक परमात्माभावके दृढ निश्चयसे जो अन्य जीवन्मुक्त आर्य पुरुषोंसे सेवित तथा अति शुभदायक स्थिर आत्मपदहै उसीका अनुसरण करूंगा इसलिये आपको तथा मुझे अभिमत जो पूर्वदेहमें जीवन वृत्ति है उसे होने दो, उससे कोई हमारी हानि नहीं है; हम तो केवल प्रारब्ध कर्मसे शेष व्यवहारके लिये यह करतेहैं हमारी अब पूर्वके समान अप्सरा आदिमें आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि दृढ तत्वज्ञानसे बासनाका बाध होगयाहै ॥ ४६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मान्तर वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस १५ के सर्गमें उस अपनी पूर्व शरीरको देखके शुक्रका विलाप करना; और उसके निमित्तके विशेष कथनसे स्वभावकाभी उपदेश किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विचारयंतस्तत्त्वज्ञाइतिनेजागतीर्गतीः ॥ समंगायास्तटात्तस्मात्प्रचेलुश्चंचलासवः ॥१॥ क्रमादाकाशमाक्रम्यनिर्गत्यांबुदकोटरात् ॥ संप्रापुःसिद्धमार्गेणक्षणान्मंदरकंदरम् ॥२॥ अधित्यकायांतस्याद्रेरार्द्रपर्णावकुंठिताम् ॥ ददर्शभार्गवःशुष्कांपूर्वजन्मोद्भवांतनुम् ॥ ३ ॥ उवाचेदंचहेताततन्वीतनुरियंहिसा ॥ यात्वयासुखसंभोगैःपुरासमभिलालिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिनमें प्राण वायुके संचारसे चलनमात्रकी क्रिया होरहीथी ऐसे वे तीनों (भृगु, काल, तथा शुक्र) तत्वज्ञानी जगत्की विचित्र गतिका बिचार करते हुये समंगाके तटसे चले ॥ १ ॥ क्रमसे आकाशका उल्लंघन करके मेघोंके कोटरोंसे निकलके सिद्धमार्गसे होकर क्षणभरमें मन्दराचलकी कन्दरामें प्राप्त हुये ॥ २ ॥ उस पर्वतकी ऊपरकी भूमिपर गीले पत्तोंसे लपेटी हुई और शुष्क अपनी पूर्वजन्मकी शरीरको देखा ॥ ३ ॥ और यह बोले–कि हे प्रियपितः! जिसको अनेक सुख संभोगसे पूर्वकालमें आपने प्यार किया था यही वह कृश शरीर है ॥ ४ ॥

इयंसामत्तनुर्यस्याःकर्पूरागुरुचंदनैः ॥ अंगमंगीकृतस्नेहाधात्रीचिरमलेपयत् ॥ ५ ॥ इयंसामत्तनुर्यस्यामंदारकुसुमोत्करैः ॥ रचिताशीतलाशय्यामेरूपवनभूमिषु ॥ ६ ॥ इयंसामत्तनुर्मत्तदेवस्त्रीगणलालिता ॥ सरीसृपमुखक्षुण्णापश्यशेतेधरातले ॥ ७ ॥ चंदनोद्यानखंडेषुममतन्वाययानया ॥ चिरंविलसितंसेयंशुष्ककंकालतांगता ॥ ८ ॥

अर्थ—यही वह मेरी शरीरहै जिसको कपूर अगरु तथा चन्दन आदिसे स्नेहयुक्त (धाई) चिरकालतक लेप किया करतीथी ॥ ५ ॥ यह वही मेरी शरीरहै कि जिसके लिये मेरूके उपवनकी भूमियोंमें मन्दारके पुष्पके समूहोंसे शीतल शय्या रची जाती थी ॥ ६ ॥ वही यह मेरी शरीरहै जो कि मत्त देवांगनाओंके समूहसे प्यारकी जातीथी और अब वृश्चिक (बीछू) सर्प आदिसे छिद्रकी हुई पृथिवीपर शो रही है ॥ ७ ॥ जो मेरी शरीर चिरकालतक चन्दनके बाटिकाओंके खण्डोंमें क्रीडा करनेसे शोभित हुईथी वही अब शुष्क मृतक दशाको प्राप्त हुई है ॥ ८ ॥

सुरांगनांगसंसर्गाद्तुंगानंगभंगया ॥ चेतोवृत्त्यारहितयातन्वायममशुष्यते ॥ ९ ॥ तेषुतेषुविलासेषु तासुतासुदशासुच ॥ तथातद्भावनाबंधःकथंस्वस्थोसिदेहक ॥ १० ॥ हातनोशवनामासितापसंशोषमागता ॥ कंकालतांप्रयातासिमांभीषयसिहृभंगे ॥ ११ ॥ देहेनाहंविलासेषुयेनैवमुदितोभवम् ॥ कंकालतामुपगतात्तस्मादेवबिभेम्यहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—देवांगनाओंके सम्बन्धसे बडे २ कामके तरंगयुक्त चित्तकी वृत्तिसे शून्य यह मेरी शरीर इससमय शुष्क होरही है ॥ ९ ॥ हे देह ! उन २ विचित्र विलासोंमें तथा उन २ विचित्र बाल्य, यौवन आदि दशाओंमें पूर्वकालमें अनुभूत उन २ सौन्दर्य्य अलंकार, गीत, हास्य और रतिके विलास आदिकी भावनामें बद्ध होके अब स्वस्थ क्यों सोते हो ? ॥ १० ॥ हा ! भाग्यरहित देह !! अब तुम मृतक नामवाली हो, तापसे शुष्कदशाको प्राप्त हुई हो, और मृतक अवस्थाको प्राप्त होके मुझे डरातीहो ॥ ११ ॥ जिस देहसे विलासोंमें मैं प्रसन्न होता था उसी मृतक दशा प्राप्त शरीरसे अब मैं डरताहुं ॥ १२ ॥

ताराजालसमाकारोयत्रहारोभवत्पुरा ॥ ममोरसिनिलीयंतेतत्रपश्यपिपीलिका ॥ १३ ॥ द्रवत्कांचनकांतेनलोभंनीतावरांगनाः ॥ येनमद्वपुषातेनपश्यकंकालतोह्यते ॥ १४ ॥ पश्यमेविततास्येनतापसंशुष्ककृत्तिना ॥ मत्कंकालकुवक्रेणवित्रास्यंतेवनेमृगाः ॥ १५ ॥ पश्यामिसंशुष्कतयाशवोदरदरीमम ॥ प्रकाशार्कांशुजालेनविवेकेनेवशोभते ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस मेरे वक्षस्थल (छाती) पर तारागणके समूहोंके सन्मान आकारवाला हार लटकताथा उसीपर अब देखो चेंटियां चलरही हैं ॥ १३ ॥ द्रवीभूत सुवर्णके समान शोभायमान जिस मेरे शरीरने देवांगनाओंको कामके भोगकी इच्छासे लोभित करलिया था, देखो पिताजी ! वही मेरा शरीर अब मृतकदशाको धारण करता है ॥ १४ ॥ देखो विस्तृत मुखरूप बिलसहित, तापसे शुष्क चर्मवाले मेरे मृतक कुरूप शरीरसे बनमें मृगभी भयभीत होतेहैं ॥ १५ ॥ अपने मृतक शरीरके उदरकी कन्दराको मैं देखताहुं कि शुष्कतासे प्रकाशसहित सूर्यके किरणसमूहसे ऐसे शोभित होताहै जैसे विवेकसे जीवित शरीर ॥ १६ ॥

मत्तनुःपरिशुष्केयंस्थितोत्तानाचलोपले ॥ वैराग्यंनयतीवात्मतुच्छत्वेनांतरंसताम् ॥ १७ ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगंधलोभाद्विमुक्तया ॥ निर्विकल्पसमाध्येवतदेतच्छुष्यतेगिरौ ॥ १८ ॥ मुक्ताचितापिशाचेन नूनंसुखमिवास्थिता ॥ तनुर्दैवतभंगेभ्योनबिभेतिमनागपि ॥ १९ ॥ संशांतेचित्तवेतालेयामानंदकलांतनुः ॥ यातितामपिराज्येनजागतेननगच्छति ॥ २० ॥

अर्थ—हे पिताजी ! पर्वतकी शिलापर उतान पडी हुई शुष्क यह मेरी शरीर अपनी तुच्छता तथा कुरूपताके दिखलानेसे मानो वैराग्यका उपदेश कर रही है ॥ १७ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा रसके लोभसे रहित, निर्विकल्प समाधि सहित यह मेरा शरीर मानो परम तप करताहै ॥ १८ ॥ चित्तरूपी पिशाचसे मुक्त होके यह मेरा शरीर निश्चय करके मानो सुखसे स्थितहै और दैवसे प्राप्तकी हुई विपत्तियोंसे इसको कुछभी भय नहीं है ॥ १९ ॥ चित्तरूपी वेतालके शान्त होजानेसे जिस आनन्दकलाको यह अनुभव कर रही है वह आनन्दकी कला संसारभरके राज्यसेभी नहीं प्राप्त होती ॥ २० ॥

पश्यविश्रांतसंदेहंविगताशेषकौतुकम् ॥ निरस्तकलनाजालंसुखंशेतेकथंवने ॥ २१ ॥ चित्तमर्कटसंरंभसंक्षुब्धकायपादपः ॥ तथावेगेनचलतियथामूलान्निकृंतति ॥ २२ ॥ चित्तानर्थविमुक्तोद्यरोगजाभ्रहरिविग्रहम् ॥ नाद्यपश्यतिमेदेहःपरानंदइवस्थितः ॥ २३ ॥ सर्वाशाज्वरसंमोहमिहिकाशरदागमम् ॥ अचित्तत्वंविनानान्यच्छ्रेयःपश्यामिजंतुषु ॥ २४ ॥

अर्थ—देखो सब संदेह इसके नष्ट होगयेहैं तथा संपूर्ण कौतुकसे शून्य, और सब कलपनाके जालसे रहित यह देह किसप्रकार सुखसे बनमें शयन कर रहाहै ॥ २१ ॥ चित्तरूपी चोरसे कामादिकी चपलतासे संक्षोभित यह

शरीररूपी वृक्ष ऐसे वेगसे चलताहै कि विवेकादि रहित स्थावर आदि योनियोंमें जीवको फेंक देताहै ॥ २२ ॥ इस समय चित्तरूपी अनेक अनर्थोंसे रहित यह मेरा शरीर इस पर्वतपर हस्ती तथा सिंह आदिके युद्धको नहीं देखताहै, मानो ब्रह्मानन्दमें स्थितहै ॥ २३ ॥ संपूर्ण आशाके ज्वरोंका कारणभूत जो अज्ञानहै उस अज्ञानरूपी मेघके बीजके लिये शरदृतुके समान अमनीभाव (मनके नाश) के विना और कुछ प्राणियोंमें कल्याणके लिये मैं नहीं देखता२४

तएवसुखसंभोगसीमांतंसमुपागताः ॥ महाधियाशांतधियोयेयाताविमनस्कताम् ॥ २५ ॥ सर्वदुःख दशामुक्तांसंस्थितांविगतज्वराम् ॥ दिष्ट्यापश्याम्यमननांवनेतनुमिमामहम् ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ भार्गवेणतदाकिल ॥ सुबहून्युपभुक्तानिशरीराणिपुनःपुनः ॥ २७ ॥ भृगुणोत्पादिते कायेतत्तस्मिंस्तस्यकिंपुनः ॥ महानतिशयोजातःपरिदेवनमेववा ॥ २८ ॥

अर्थ—वेही शांतबुद्धि महाबुद्धिमान् महात्माजन सुख तथा संभोगकी पराकाष्ठाको प्राप्त होगयेहैं जो मनकी शून्यता दशाको प्राप्तहो गयेहैं ॥ २५ ॥ यह बडे भाग्योदयका समयहै कि सब दुःखोंकी दशासे शून्य, सन्तापरहित, तथा मनसे वर्जित, इस अपनी शरीरको मैं देख रहाहुं ॥ २६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! हे सर्व धर्मज्ञ उससमय शुक्राचार्यने अनेक शरीरोंका उपभोग पुनः २ कियाथा ॥ २७ ॥ परंतु भृगुसेही उत्पन्न किये हुये शरीरमें पुनः क्यों उनका महान् स्नेह हुआ अथवा उसीके लिये विलाप क्यों किया ? ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शुक्रस्यकलनारामयासौजीवदशांगता ॥ कर्मात्मिकासमुत्पन्नाभृगोर्भार्गवरूपिणी ॥ २९ ॥ साहीदंप्रथमत्वेनसमुपत्यपरात्पदात् ॥ भूताकाशपदंप्राप्यवातव्यावलितासती॥३०॥ प्राणापानप्रवाहेणप्रविश्यहृदयंभृगोः ॥ क्रमेणवीर्यतामेत्यसंपन्नौशनसीतनुः ॥ ३१ ॥ विहितब्राह्मसंस्कारातत्रसापितुरग्रगा ॥ कालेनमहताप्राप्ताशुष्ककंकालरूपताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पूर्वकालमें शरीरसे वियोग समयमें शुक्रकी जो कल्पना जीवदशाको प्राप्त हुई वह भृगुसे उत्पन्न किये हुये ग्रहादिके अधिकार प्राप्तिके योग्य देहाकार पूर्वकल्पमेंथी ॥ २९ ॥ यही देहाकार कल्पना प्रलयमें शेष माया शबलित परमात्मासे इस कल्पके प्रथम शरीर भावसे भूताकाशकी समताको प्राप्त होती हुई ॥ ३० ॥ प्राण क्रियाके विशेषसे अन्तका ग्रास करनेवाले अपानवायुके प्रवाहसे भृगुके हृदयमे प्रवेश करके क्रमसे वीर्यदशाको प्राप्त होके माताके गर्भमें जाके यह शुक्राचार्यकी शरीर सिद्ध हुई ॥ ३१ ॥ उस शरीरको पिताके सम्मुख ब्राह्मणके संस्कार किये गये और महान्काल पाके अब मृतक दशामें प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥

इदंप्रथममायातायदासौब्रह्मणस्तनुः ॥ अतस्तांप्रतिशुक्रेणतदातत्परिदेवितम् ॥ ३३ ॥ वीतरागोप्य निच्छोपिसमंगाविप्ररूपवान् ॥ सशुशोचतनुंशुक्रःस्वभावोह्येषदेहजः ॥ ३४ ॥ ज्ञस्याज्ञस्ययावद्देह मयंक्रमः ॥ लोकवद्व्यवहारोयंसक्त्यासक्त्याथवासदा ॥३५॥ येपरिज्ञातगतयोयेचाज्ञाःपशुधर्मिणः ॥ लोकसंव्यवहारेषुतेस्थितालोकजालवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—माया शबलित परमात्मासे प्रथमही कल्पमें यह शरीर भृगुऋषिके द्वारा प्राप्त हुईथी, इसलिये शुक्रका उससमय उसके लिये विलाप तथा उसमे स्नेह अधिकथा ॥ ३३ ॥ यद्यपि वीतराग तथा इच्छारहित समंगाके विप्ररूपधारी शुक्रजी थे तथापि उस शरीरके लिये शोच किया क्योंकि शरीरका यह स्भावही है ॥ ३४ ॥ ज्ञानीहो वा अज्ञानीहो परन्तु जबतक इस देहका क्रमहै तबतक लोकका व्यवहार इसीप्रकार होताहै केवल भक्ति और असक्ति मात्रकी विशेषताहै ॥ ३५ ॥ जो ज्ञानी संसारकी गतिको जानतेहैं और जो पशुधर्मी अज्ञानी हैं वे अन्य लोक जालके सदृश लोकके व्यवहारोमें समानरूपसे स्थितहैं ॥ ३६ ॥

व्यवहारेयथैवाज्ञस्तथैवाखिलपंडितः ॥ वासनामात्रभेदोत्रकारणंबंधमोक्षदम् ॥ ३७ ॥ यावच्छरीरं तावद्धिदुःखेदुःखसुखेसुखम् ॥ असंसक्तधियोधीरादर्शयंत्यप्रबुद्धवत् ॥ ३८ ॥ सुखेषुसुखितानित्यंदुःखितादुःखवृत्तिषु ॥ महात्मानोहिदृश्यंतेदृश्यएवाप्रबुद्धवत् ॥ ३९ ॥ सूर्यस्यप्रतिबिंबानिक्षुभ्यंतिनपुनःस्थिरम् ॥ चलाचलतयातज्ज्ञोलोकवृत्तिषुतिष्ठति ॥ ४० ॥

अर्थ—व्यवहारमें जैसे अज्ञानी वैसेही सबका वेत्ता पण्डित ज्ञानीभी है, केवल वासना मात्रका भेदहै और वही बंध मोक्षका कारणभी है ॥ ३७ ॥ जबतक यह शरीरहै तबतक दुःखसुखके कारणमें सुखकी आसक्ति रहित बुद्धिवाले धीर महात्मा अज्ञानियोंके सदृशही देखतेहै ॥ ३८ ॥ सबकी वृत्तियोंमें नित्य सुखी और दुःखकी वृत्तियोंमें नित्य दुःखी संसारमें अज्ञानीके समान महात्मा लोग देख पडतेहैं ॥ ३९ ॥ जैसे जलोंमें सूर्यके प्रतिबिम्बही

वायु आदिसे संक्षुभित होतेहैं न कि आकाशस्थ बिम्ब इसी प्रकार लोकके व्यवहारोंमें ज्ञानी बाह्य वृत्तियोंसे चलायमान और नित्य कूटस्थ वृत्तिसे अचल स्थित रहताहै ॥ ४० ॥

अवस्थितइवस्वस्थःप्रतिबिंबेषुभास्करः ॥ संत्यक्तलोककर्मापिबुद्धएवाप्रबुद्धधीः ॥ ४१ ॥ मुक्तबुद्धींद्रियोमुक्तोबद्धकर्मेंद्रियोपिहि ॥ बद्धबुद्धींद्रियोबद्धोमुक्तकर्मेंद्रियोपिहि ॥ ४२ ॥ सुखदुःखदृशोलोके बंधमोक्षदृशस्तथा ॥ हेतुर्बुद्धींद्रियाण्येवतेजांसीवप्रकाशने ॥ ४३ ॥ बहिर्लोकोचिताचारस्त्वंतराचार वर्जितः ॥ समोह्यतीवातिष्ठत्वंसंशांतसकलैषणः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे प्रतिबिम्बोंमे स्थित सूर्य यथार्थ स्वस्थभी परन्तु अस्वस्थ चंचलभान होता है ऐसेही लोक व्यवहारोंको त्यागेहुयेभी ज्ञानी ऊपरसे अज्ञानीके तुल्य संसारमें अज्ञबुद्धिके समान निमग्न भान होताहै ॥ ४१ ॥ इसलिये जो प्राणी ज्ञानेंद्रियोंकी आसक्तिरहित संसारके कार्योंको करताहै उसकी कर्म इन्द्रियोंके बद्ध रहनेसेही वह मुक्तहै और जिसकी ज्ञानेन्द्रियां आसक्तहैं वह कर्म इन्द्रियोंके मुक्त होनेपरभी बद्धहै ॥ ४२ ॥ संसारमें सुखदुःखकी दृष्टियोंके तथा बन्धमोक्ष दृष्टियोंके ज्ञानेंद्रिय ऐसे हेतुहैं जैसे प्रकाश होनेमे तेज ॥ ४३ ॥ इसकारण बाहरसे लोकके उचित आचार धारण करते हुये और भीतर उन आचारोंसे वर्जित अर्थात् कूटस्थ आत्मामें दृढ निश्चय किये हुये सब विषमता दोषसे रहित संपूर्ण इच्छाओंसे शून्य तुम स्थित रहो ॥ ४४ ॥

सर्वैषणाविमुक्तेनस्वात्मनात्मनितिष्ठता ॥ कुरुकर्माणिकार्याणिनूनंदेहस्यसंस्थितिः ॥ ४५ ॥ आधिव्याधिमहावर्त्तगर्तसंसारवर्त्मनि ॥ ममतोग्रांधकूपेस्मिन्मापतातापदायिनि ॥ ४६ ॥ नत्वंभावेषनो भावास्त्वयितामरसेक्षण ॥ शुद्धबुद्धस्वभावस्त्वमात्मांतःसुस्थिरोभव ॥ ४७ ॥ त्वंब्रह्मह्यमलंशुद्धंत्वं सर्वात्माचसर्वकृत् ॥ सर्वंशांतमजंविश्वंभावयन्वैसुखीभव ॥ ४८ ॥ व्यपगतममतामहांधकारःपदममलंविगतैषणसमेत्य ॥ प्रभवसियदिचेतसोमहात्मंस्तदतिधियेमहतेनमस्ते ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवपरिदेवनप्रसंगेनोपदेशकरणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—संपूर्ण फलके आसंगसे रहित अपने आत्मामें आत्मासे स्थित सब कर्तव्यकर्मोंको तुम करो; क्योंकि कर्तव्यकर्मोंका करना यह देहका निश्चय करके स्वभाव है ॥ ४५ ॥ आधि, व्याधि (शारिरीक तथा मानसिक दुःख) तथा जन्ममरणरूपी महान् गर्तयुक्त संसारके मार्गमें ममतारूपी भयंकर अन्धकूपमें तुम मत गिरो ॥ ४६ ॥ हे कमलके सदृश नेत्रधारिन् रामजी ! देहादिके धर्मोंमें तुम नहींहो और न देहादिके धर्म तुममेंहैं किन्तु तुम नित्य शुद्धबुद्ध स्वभाव आत्माहो इसलिये अंतर्वृत्तिसे उसीमें स्थित रहो ॥ ४७ ॥ तुम निर्मल, शुद्ध, सर्वात्मा, और सर्वकर्ता ब्रह्महो, इसकारण सर्वशांत अजन्मा विश्वरूप परमात्माही है ऐसी भावना करते हुये सुखी रहो ॥ ४८ ॥ हे महात्मन् रामजी ! सब अभिलाषाओंका निवर्तक, अविद्यादि दोष शून्य निर्मल आत्मपदको प्राप्त होकर ममतारूपी महान्धकारसे वर्जित तुम यदि चित्त बध करनेमें समर्थहोतो अनंत बुद्धि पूर्ण परमार्थरूप महान् ब्रह्मस्वरूप तुमको नमस्कारहै, अर्थात् ऐसा होनेसे हम लोगोंकेभी तुम वन्दनीयहो ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवपरिदेवनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

कालके वचनसे कालके जानेपर शुक्रका अपने पूर्व देहमें प्रवेश करना, तथा दैत्योंकी गुरुताका अंगीकार करना और उनकी जीवन्मुक्तिका वर्णन इस १६ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाक्षिप्यवचस्तस्यतनयस्यतथाभृगोः ॥ उवाचभगवान्कालोवचोगंभीरनिःस्वनः ॥ १ ॥ कालउवाच ॥ समंगातापसीमेतातनुंसंत्यज्यभार्गव ॥प्रविशेमांतनुंसाधोनगरीमिवपार्थिवः ॥ २ ॥ कालेपूर्वंजयातन्वातपःकृत्वातयापुनः ॥ गुरुत्वमसुरेंद्राणांकर्त्तव्यंभवतानघ ॥३॥ महाकल्पांतआयातेभवताभार्गवीतनुः ॥ अपुनर्ग्रहणायैषात्याज्याम्लानपुष्पवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जिससमय शुक्राचार्य अपने शरीरको संबोधन करके विलाप कररहे थे उससमय उनके बचनकी अयोग्यता दर्शाके उसे काटके मेघके समान गंभीर बचन काल बोला—कि ॥ १ ॥ हे साधो शुक्रजी ! अब समंगानदीके तटकी तापसी शरीरको त्यागकर इस भृगुसे उत्पन्न शरीरमें ऐसे प्रवेश करो जैसे एक नगरीसे दूसरी नगरीमें राजा ॥२॥ ग्रहके अधिकारके उद्बोधककालमें इस अपने शरीरसे प्रथम तप करके पुनः हे पापरहित शुक्रजी ! आपको दैत्योंकी गुरुता अवश्य करनी पडेगी ॥३॥ और जब महाकल्पका अन्त प्राप्त होगा तब पुनः सर्वथा शरीर न ग्रहण करनेके अर्थ इस शुक्राचार्यकी शरीरको ऐसे त्याग देना जैसे म्लान पुष्पकी मालाको॥४॥

जीवन्मुक्तपदंप्राप्तस्तन्वाप्राक्तनरूपया ॥ महासुरेंद्रगुरुतांकुर्वंस्तिष्ठमहामते ॥ ५ ॥ कल्याणमस्तुवां यामोवयंत्वभिमतांदिशम् ॥ नकिंचिदप्रियंचित्तंयस्यनाभिमतंभवत् ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वामुंचतोर्बाष्पंत योःसोंतरधीयत ॥ तप्तांग्योरिरोदस्योःसमंशुभिरंशुमान् ॥ ७ ॥ गतेतस्मिन्भगवतिकृतांतेभवित व्यताम् ॥ विचार्यभार्गवोभेद्यांनियतेर्नियतांगतिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महामते ! जीवन्मुक्त पदको प्राप्तहोकर पूर्वकल्पमें उपार्जित प्रारब्ध कर्मरूप इस शरीरसे महाअसुरेन्द्र (बलि हिरण्यकशिपु आदि) की गुरुता करतेहुये तुम स्थित रहो ॥ ५ ॥ तुम दोनोंका कल्याण हो हम तो अपने अभिमत (परम प्रेमास्पद आत्मस्थान) दिशाको जाते हैं क्योंकि जिसको अभिलषित नहीं है वह चित्त यदि विचार दृष्टिसे देखा जाय तो कुछ नहीं ॥ ६ ॥ इतना कहके काल जब वे दोनों अधिक स्नेहसे अश्रुको त्यागकर रहेथे तभी उनको त्यागके ऐसे अन्तर्धान होगया जैसे पृथिवी और आकाशके तप्त शरीर (रक्तवर्ण) रहनेहीपर सूर्य अपने किरणोंहीके साथ अस्त होजाताहै ॥ ७ ॥ उस भगवान् कालके जानेपर अवश्य भावी कर्मकी गति तथा ईश्वरकी इच्छाकी अनिवार्य्यताको विचार करके ॥ ८ ॥

कालकारणसंशुष्कांभाविपुष्पशुभोदयाम् ॥ विवेशतांतनुंबालांसुलतामिवमाधवः ॥ ९ ॥ साब्राह्मणी तनुर्भूमौविवर्णवदनांगिका ॥ पपातकंपितातूर्णंछिन्नमूलालतायथा ॥ १० ॥ तस्यांप्रविष्टजीवायांपुत्र तन्वांमहामुनिः ॥ चकाराप्यायनंमंत्रैःसकमंडलुवारिभिः ॥ ११ ॥ सर्वानाड्यस्ततस्तन्वास्तस्याःपूर्णा विरेजिरे ॥ सरितःप्रावृषीवांबुपूरपूरितकोटराः ॥ १२ ॥

अर्थ—शुक्रने अधिक हेमन्त आदि कालके निमित्तसे शुष्क तथा भावी शुभरूप पुष्पको देनेहारी अपनी शरीरमें ऐसे प्रवेश किया जैसे बाललतामें बसन्तऋतु ॥ ९ ॥ वह वासुदेव नामक समंगाके तटकी शरीर विवर्ण तथा कंपित होके शीघ्र ऐसे गिरी जैसे मूलसे काटी हुई लता ॥ १० ॥ उस पुत्रकी शरीरमें जीवके प्रवेश करनेपर महामुनि भृगुने कमण्डलुके जलकेसाथ मंत्रोंसे उस शरीरको सिंचन किया ॥ ११ ॥ उस जलसहित मंत्रोंके अभिषेकके पश्चात् उस शरीरकी संपूर्ण नाडी ऐसे क्षोभित हुई जैसे जलके प्रवाहसे पूर्ण कोटरवाली नदी बर्षा कालमें॥१२॥

नलिनीप्रावृषीवासौमधाविवनवालता ॥ यदापूर्णातदातस्याःप्रांताःपल्लविताबभुः ॥ १३ ॥ अथशुक्रः समुतस्थौवहत्प्राणसमीरणः ॥ रसमारुतसंयोगादापूर्णइववारिदः ॥ १४ ॥ पुरोभिवादयामासपित रंपावनाकृतिम् ॥ प्रथमोल्लासितोमेघःस्तनितेनेवपर्वतम् ॥ १५ ॥ पिताथप्राक्तनींतन्वाआलिलिंगाकृ तिततः ॥ स्नेहार्द्रवृत्तिर्जलदश्चिरार्द्राद्रितटीमिव ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस समय यह शरीर बर्षाऋतुमें कमलिनी और बसन्तऋतुमें नूतन लता पूर्ण रीतिसे विकसित होती है वैसेही पूर्ण हुई तब उसके अंगुली नख और केश आदि पल्लवके समान शोभित हुये ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर जिसका प्राणरूपी पवन शरीरमें वह रहाहै ऐसे शुक्राचार्य इसप्रकार उठके खडे हुये जैसे जल और संमुख पवनके संयोगसे समुद्र खडाहो ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् नाम गोत्र कीर्तनपूर्वक शुक्राचार्यजीने पवित्र आकारवाले अपने पिताको ऐसे अभिवादन किया जैसे प्रथम उल्लास सहित मेघ अपनी गर्जनासे पर्वतको ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् पिताने पूर्वके समान सौंदर्य्य अलंकार यौवन आदि शोभा युक्त शरीरके आकारको स्नेहसे आर्द्र होके ऐसे आलिंगन किया जैसे मेघ चिरकालके अनन्तर पर्वतकी तटीको ॥ १६ ॥

भृगुर्ददर्शसस्नेहंप्राक्तनींतानवींतनुम् ॥ मत्तोजातेयमित्यास्थांहसन्नपिमहामतिः ॥ १७ ॥ मत्पुत्रोय मितिस्नेहोभृगुमप्यहरत्तदा ॥ परमात्मीयतादेहेयावदाकृतिभाविनी ॥ १८ ॥ बभूवतुःपितापुत्रौताव थान्योन्यशोभितौ ॥ निशावसानमुदितावर्कपद्माकराविव ॥ १९ ॥ चिरसंगमसंबद्धाविवचक्राह्वदंप ती ॥ घनागमनसस्नेहौमयूरजलदाविव ॥ २० ॥

अर्थ—भृगुने पूर्वकालकी शुक्रकी शरीरको प्रीतिपूर्वक देखा और मुझसे यह उत्पन्न हुई ऐसी आस्था महामति भृगुने हंसते हुये (तत्वदृष्टिसे यह उचित नहीं है इसलिये हंसे) धारण की ॥ १७ ॥ मेरा यह पुत्र है यह स्नेह उससमय भृगुके चित्तकोभी हरलिया क्योंकि जबतक यह शरीरहै तबतक प्रारब्धकी प्रबलतासे शरीरमें सर्वसे बढके ममता होती है यह शरीरका धर्म है ॥ १८ ॥ जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्य तथा पद्मका बन विकसित होता है ऐसाही वे पितापुत्र परस्पर शोभित हुये ॥ १९ ॥ जैसे चिरकालके वियोगसे चक्रवाक स्त्रीपुरुष स्नेहबद्ध होते हैं वा मेघके आगमनसे मोर तथा मेघ स्नेहसहित होते हैं ऐसेही वे पितापुत्र होगये ॥ २० ॥

चिरकालदृढोत्कंठौतुल्ययोग्यतयातया ॥ स्थित्वातत्रमुहूर्त्तंतावथोत्थायमहामती ॥ २१ ॥ समंगातटे जदेहंतंभस्मसात्तत्रचक्रतुः ॥ कोहिनामजगज्जातमाचारंनानुतिष्ठति ॥ २२ ॥ एवंतौकाननेतस्मिन्पावनेभृगुभार्गवौ ॥ संस्थितौतापसौदीप्तौदिवीवशशिभास्करौ ॥ २३ ॥ चेरतुर्ज्ञातविज्ञेयौजीवन्मुक्तौजगद्गुरू ॥ देशकालदशौघेषुसुसमौसुस्थिरौततः ॥ २४ ॥ अथासुरगुरुत्वंसशुक्रःकालेनलब्धवान् ॥ भृगुरप्यात्मनोयोग्येपदेतिष्ठदनामये ॥ २५ ॥ शुक्रोसौप्रथममितिक्रमेणजातस्तस्मात्सत्परमपदाद्धदारकीर्तिः ॥ स्वेनाशुस्मृतिपदविभ्रमेणपश्चादन्येषुप्रविलुलितोदशांतरेषु ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने शुक्रस्यपुनर्जीवनं नाम षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—चिरकालके वियोगसे समागमकी दृढ इच्छावाले वे दोनों जगत्प्रसिद्ध पूर्व वर्णित तुल्य आनन्दके प्रवाहकी योग्यतासे मुहूर्तपर्यंत जडके समान स्थित रहे इसके पश्चात् दोनों महाबुद्धिमान् उठे ॥ २१ ॥ और समंगातटके वासुदेवनामक ब्राह्मणकी शरीरको भस्म करदिया क्योंकि ऐसा कौन सज्जन प्राणी है जो अपने कुलक्रमागत सदाचारको नहीं करता ॥ २२ ॥ इसप्रकार उस मन्दराचलके बनमें वे दोनों भृगु और भार्गव (शुक्र) तप करते हुये प्रकाशमान ऐसे स्थित रहे जैसे आकाशमें चंद्रमा और सूर्य ॥ २३ ॥ जानने योग्य पदार्थ (ब्रह्म) को जाननेवाले जीवन्मुक्त जगत्के गुरू और देशकालकी शुभाशुभ आदि दशाओंके समूहोंमें हर्षविषादकी विषमता दोषरहित दोनों महात्मा भ्रमण करतेथे; क्योंकि आत्मस्वरूपमें अच्छीतरह स्थिरथे ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर कालपाके शुक्राचार्यजीको असुरोंकी गुरूता तथा ग्रहका अधिकार प्राप्त हुआ, और भृगुभी अपने योग्य निरामय प्रजापतिके अधिकारमें स्थित हुये ॥ २५ ॥ शुक्राचार्य प्रथम परमपद परमात्मासे भृगुकेद्वारा उदार कीर्ति उत्पन्न हुये अनन्तर पुनः २ स्मरणमें आरूढ अप्सराके निमित्त मनोराज्यके विभ्रमसे अन्य २ दशाओंमेंभी भ्रमण करते रहे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने शुक्रस्य पुनर्जीवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस १७ के सर्गमें शुद्ध चित्तोंकी सत्यसंकल्पता और वासना तथा अदृष्टकी तुल्यतामें परस्पर मेल इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भृगुपुत्रस्यप्रतिभासानुभूतितः ॥ यथैषासफलाजातातथान्यस्यनकिंभवेत् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इयंप्रथमसुत्पन्नासातनुर्ब्रह्मणःपदात् ॥ शुद्धाजातिर्भार्गवस्यनान्यजन्मकलंकिता ॥ २ ॥ सर्वैषणानांसंशांतौशुद्धचित्तस्ययास्थितिः ॥ तत्सत्यमुच्यतेसैषाविमलाचिद्उदाहृता ॥ ३ ॥ मनोनिर्मलसत्वात्मयद्भावयतियादृशम् ॥ तत्तथाशुभवत्येवयथावर्त्तोभवेत्पयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! भृगुके पुत्रके मनोरथकी प्रतिभासे स्वर्गादि सुख सफल हुआ वह प्रतिभा अन्यकी सफल क्यों नहीं होती ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-शुक्राचार्यजीका शरीर पूर्वकल्पके सम्पूर्ण दोषोंके अन्तिम जन्ममें कम उपासनासे क्षय होजानेसे ब्रह्मपदसे प्रथम शुद्ध ब्राह्मण जातिसे कलंकरहित उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण एषणाओंके शान्त होनेसे शुद्ध चित्तकी जो स्थिति है वही विमल चिति सत्यात्मभाव (सत्यसंकल्प) कही गई है ॥ ३ ॥ निर्मल तथा सत्यात्मा चित्त जैसी भावना करताहै वैसाही शीघ्र ऐसे होती है जैसे आवर्त जलरूप ॥ ४ ॥

यथाभृगुसुतस्यैषविभ्रमःसोत्थितःस्वयम् ॥ प्रत्येकमप्येवमेवदृष्टांतोत्रभृगोःसुतः ॥ ५ ॥ बीजस्थांकुरपत्रादिस्वंचमत्कुरुतेयथा ॥ सर्वेषांभूतसंघानांभ्रमखंडास्तथैवहि ॥ ६ ॥ यादेहंदृश्यतेविश्वमेवमेवाखिलंजगत् ॥ प्रत्येकमुदितंमिथ्यामिथ्यैवास्तमुपैतिच ॥ ७ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिजगत्किंचनकस्यचित् ॥ भ्रांतिमात्रमिदंमायामुग्धेवपरिजृंभते ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार भृगुके चित्तमें विभ्रम स्वयं उत्पन्न हुआ ऐसेही प्रत्येक जीवके चित्तमें उत्पन्न हुआहै, इसमें दृष्टान्त यही भृगुका पुत्रहै ॥ ५ ॥ बीजमें स्थित अंकुर पत्र आदि जैसे अपने स्वरूपका चमत्कार करताहै ऐसेही सब प्राणियोंके समूहोंके भ्रांतिकृत द्वैत विभागभी है ॥ ६ ॥ जो यह सम्पूर्ण जगत् हम लोगोंको देख पडाता है यह प्रत्येक जीवके चित्तमें मिथ्याही उदित हुआहै और मिथ्या अस्त होजाताहै ॥ ७ ॥ परन्तु यथार्थमें यह जगत् न उदय होता है और न अस्त होताहै किन्तु भ्रान्तिमात्र यह सब मिथ्या माया उन्मत्त स्त्रीके समान अपना रूप दर्शाती है ॥ ८ ॥

यथास्वंप्रतिभासस्थःस्वयंसंसारखंडकः ॥ तथातेषांसहस्राणिमिथ्यादृष्टानिसंतिहि ॥ ९ ॥ स्वप्नसंकल्पनगरव्यवहाराःपरस्परम् ॥ पृथग्यथानदृश्यंतेतथैतेसंसृतिभ्रमाः ॥ १० ॥ एवंनगरवृंदानिनभस्संकल्परूपिणि ॥ संतितानिनदृश्यंतेमिथ्याज्ञानदृशंविना ॥ ११ ॥ पिशाचयक्षरक्षांसिसंत्येवंरूपकाणिह ॥ संकल्पमात्रदेहानिसुखदुःखमयानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे हम लोगोंके अनुभवमें प्रत्यक्ष रीतिसे यह संसारखण्ड स्थितहै ऐसेही अन्य जीवोंकोभी सहस्रों मिथ्या संसारखण्ड देख पडते हैं ॥ ९ ॥ और स्वप्न तथा संकल्प नगरके व्यवहार जैसे एकके दूसरेको नहीं देख पडते हैं ऐसे ये संसारके भ्रमभी एकके देखे हुये दूसरेको नहीं देख पडते ॥ १० ॥ संकल्परूप आकाशमें जगत्रूप नगरके अनेक समूह इसी प्रकार हैं परन्तु उनका मिथ्यात्वभाव ज्ञानदृष्टिके बिना नहीं देख पडता ॥ ११ ॥ इसी प्रकार संकल्पमात्र शरीरवाले सुखदुःखमय पिशाच यक्ष तथा राक्षस आदिभी हैं ॥ १२ ॥

एवमेववयंचेमेसंपन्नारघुनंदन ॥ स्वसंकल्पात्मकाकारामिथ्यासत्यत्वभाविनः ॥ १३ ॥ एवंरूपैवहि परेविद्यतेसर्गसंततिः ॥ नवास्तवीवस्तुताहिसंस्थितैवमवस्तुनि ॥ १४ ॥ प्रत्येकमुदितंविश्वमेवमेवसुधैवहि ॥ वनगुल्मकरूपेणवसंतैकरसोयथा ॥ १५ ॥ प्रथमोयंस्वसंकल्पःप्रथामभ्यागतोयथा॥ तथातिपरमार्थेनदृष्टेनेत्थंविभाव्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रघुनंदन ! शुक्रके समान संकल्पमात्र आकारवाले मिथ्या सत्यत्वभावी हम सबभी उत्पन्न हुये हैं ॥ १३ ॥ व्यष्टिसे परे हिरण्यगर्भ परमात्मामेंभी ऐसेही जगत्की सृष्टिकी परंपराहै क्योंकि अवस्तुमें वास्तविक बस्तुता नहीं स्थित रहती॥१४॥प्रत्येक चित्तमें मिथ्या यह विश्व ऐसे स्थितहै जैसे बन लता आदिरूपसे एकरस बसन्त ॥१५॥ प्रथमका संकल्पही इस जगत्रूप प्रथाको जैसे प्राप्त हुआहै वह तत्वज्ञानसे निश्चितरूपसे जाना जाताहै॥१६॥

प्रत्येकमुदितंचित्तंस्वस्वभावोदरस्थितम् ॥ इदमित्थंसमारंभंजगत्पश्यन्विनश्यति ॥१७॥ प्रतिभासवशादस्तिनास्तिवस्त्ववलोकननात् ॥ दीर्घस्वप्नोजगज्जालमालानंचित्तदंतिनः ॥ १८ ॥ चित्सत्तैवजगत्सत्ताजगत्सत्तैवचित्तकम् ॥ एकाभावाद्द्वयोर्नाशःसचसत्यविचारणात् ॥ १९ ॥ शुद्धस्यप्रतिभासोहिसत्योभवतिचेतसः ॥ प्रमार्जनादिवमणेर्मलिनस्येहयुक्तितः ॥ २० ॥

अर्थ—अनादि कालके अज्ञानके उदरमें स्थित चित्तही यह अनेक आरम्भ युक्त जगत्है ऐसे विचारसे चित्त आपही नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥ प्रतिभास कालमेंही जगत्की सत्ताहै और ब्रह्मवस्तुके देखनेसे कुछ नहीं है, दीर्घ स्वप्न यह जगत्जाल चित्तरूप हस्तीका बन्धनहै ॥ १८ ॥ चित्तकी सत्ताही जगत् और जगत्की सत्ताही चित्तहै, इन चित्त और जगत् दोनोंमेंसे एकके अभावसे दोनोंका नाश होताहै और वह सत्यके विचारसे होताहै ॥१९॥ जैसे मलिन मणिके शुद्ध करनेसे प्रकाश तथा विष हरण आदि क्रिया होती हैं ऐसेही शुद्ध चित्तका प्रतिभास सत्य होताहै ॥ २० ॥

चिरमेकदृढाभ्यासाच्छुद्धिर्भवतिचेतसः ॥ अनाक्रांतस्यसंकल्पैःप्रतिभोदेतिचेतसः ॥ २१ ॥ सुवर्णंनस्थितिंयातिमलवत्यंशुकेयथा ॥ एकादृष्टिःस्थितिंयातिनम्लानेचित्तकेतथा ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ प्रतिभासात्मनिजगत्यस्मिन्कालक्रियाक्रमाः ॥ सोदयास्तमयाजाताःकथंशुक्रस्यचेतसः ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यादृग्जगदिदंदृष्टंशुक्रेणपितृशासनात ॥ तादृक्तस्यस्थितंचित्तेमयूरांडेमयूरवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—और चिरकालतक एकाग्रताके दृढ अभ्याससे चित्तकी शुद्धि होती है, और जब अनेक प्रकारके संकल्पोंसे दूषित नहीं रहता तो उसमें प्रतिभास उदय होताहै ॥ २१ ॥ जैसे मलिन वस्त्रमें शोभायमान रंजक

(रंगनेका) द्रव्य स्थित नहीं होता ऐसेही मलिन चित्तमें अद्वैत आत्मज्ञान नहीं स्थित रहता ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! शुक्रके चित्तके कल्पनात्मक जगत्में उदय और अस्तमय ये कालक्रियाके क्रम कैसे उदय हुये, क्योंकि प्रतिभास कालमें तो उदय और अस्तमय ग्रहण हो नहीं सकता, और अप्रतिभास कालमें उनका अनुभव असिद्ध है इसलिये उनकी वासना नहीं होसकती, और वासनाकी असिद्धिसे क्रमभी असिद्ध हुआ ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–शुक्रचार्यने पितासे उत्पन्न नेत्र आदि इन्द्रियोंसे पिताके वाक्य और श्रुति स्मृतिसे जैसी उत्पाति तथा नाश आदि विशिष्ट जगत् निश्चय किया था वैसाही लौकिक और पारलौकिक जगत् संस्काररूपसे उनके चित्तमें ऐसे स्थितथा जैसे मोरके अण्डे मोरमें ॥ २४ ॥

स्वभावकोशस्थमिदंतदेतेनक्रमोदितम् ॥ बीजेनांकुरपत्रादिलतापुष्पफलंयथा ॥ २५ ॥ जीवोयद्वासनाबद्धस्तदेवांतःप्रपश्यति ॥ स्वरूपंचात्रदृष्टांतोदीर्घस्वप्नस्त्विदंजगत् ॥ २६ ॥ प्रत्येकमुदितोरामन्नंसंसृतिखंडकः ॥ रात्रौसैन्यनरस्वप्नजालवत्स्वात्मनिस्फुटः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एषसंसृतिखंडोत्थोमिथस्समिलतिस्वयम् ॥ नोवामिलतितन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २८ ॥

अर्थ—चेतन अधिष्ठित जीवकी अविद्यामें स्थित यह जगत्के कालक्रियादिका क्रम पिता और शास्त्र निमित्तसे ऐसे उदितहै जैसे बीजके निमित्तसे अंकुर पत्र लता और पुष्प फलादि ॥ २५ ॥ जीव जैसी वासनासे बद्धहै वैसाही अपने भीतर देखताहै इसमें दृष्टान्त स्वप्नमें आत्मासे कल्पित अपना शरीरहै, और संसारभी दीर्घ स्वप्नही है ॥ २६ ॥ हे रामजी! यह संसार खण्ड (अविद्या कृत द्वैत विभाग) प्रत्येक जीवके लिये ऐसे उदितहै जैसे सेनाके मनुष्य दिनमें सेनाकी वासनासे युक्त होनेसे रात्रिके स्वप्नमें प्रत्येक सेनाका जीव अपनी कल्पित सेना देखता हुआभी उनकी एकता मानताहै ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! यह संसार खण्ड जो आविर्भूतहै परस्पर मिलताहै या नहीं इसको मुझे आप यथावत् कहनेके योग्यहैं, क्योंकि यदि नहीं मिलता तो एकका संसार दूसरा नहीं देख सकता तो शिष्योंके उद्धारके लिये गुरुओंकी प्रवृत्ति, और शास्त्रकी रचना यह दोनों स्वप्नके उपकारके सदृश शिष्यको नहीं प्राप्त होगी तो शिष्यके मोक्षका अभाव हुआ इसीप्रकार गुरूके गुरूसे उपदेश न मिलनेसे उसकेभी मोक्षका अभाव हुआ ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मलिनंहिमनोवीर्यंनमिथःश्लेषमर्हति ॥ अयोऽयसिचसंतप्तेशुद्धेतप्तंविलीयते ॥ २९॥ चित्ततत्त्वानिशुद्धानिसंमिलंतिपरस्परम् ॥ एकरूपाणितोयानियांत्यैक्यंनाविलानिहि ॥ ३० ॥ शुद्धिर्हिचित्तस्यविवासनत्वमभूतसंवेदनमेकरूपम् ॥ तस्याशुशुद्धयाभवतिप्रबुद्धस्तन्मात्रयुक्त्यापरसंगमेति ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठे महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमेलनंनाम सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! मलिन मन शुद्धमें मिलनेकी योग्यता शक्तिसे हीनहै इसलिये वह नहीं मिल सकता क्योंकि शुद्ध तपे हुये लोहमें शुद्ध तपाही हुआ लोहा मिल सकताहै ॥ २९ ॥ शुद्ध जो चित्त तत्वहै वे परस्पर मिलतेहैं, क्योंकि एकरूप जल मिलके एक होजाते हैं न कि मलिन और शुद्ध ॥ ३० और सर्वथा वासनाका क्षय; और भूत प्रपंचोंसे वर्जित एकरूपताका ज्ञानही चित्तकी परमशुद्धि है; और चित्तकी चिन्मात्र परिशेषतारूप शुद्धिके लाभसे परम कैवल्य मोक्ष यह जीव शीघ्रही प्राप्तहै ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मिकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोराज्यसंमेलनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

मलिन मनोंका मलिन मनोंके साथ अवस्था विशेषके शोधनसे मेल होताहै और शुद्ध चित्तकी चिन्मात्र शेषता तथा मोक्षकी प्राप्ति ज्ञानीको होती है यह विषय इस १८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वसंसृतिखंडेषुभूतबीजकलात्मनः ॥ तन्मात्रप्रतिभासस्यप्रतिभासेनभिन्नता ॥ १ ॥ प्रवृत्तिर्वानिवृत्तिर्वातन्मात्रावृत्तिपूर्वकम् ॥ सर्वस्यजीवजातस्यसुषुप्तत्वादनंतरम् ॥ २ ॥ प्रवृत्ति

भाजोयेजीवास्तेतन्मात्रप्रदर्शिनः ॥ तन्मात्रैकतयासर्गान्मिथःपश्यंतिकल्पितान् ॥ ३ ॥ तन्मात्रैक्य प्रणालेनचित्रास्सर्गजलाशयाः ॥ परस्परंसंमिलंतिघनतांयांतिचाभितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! सब जीवोंके अपने २ कल्पित संसारखण्डोंमें स्थूल और सूक्ष्मकी जो लिंग (कारण) शरीरकी और उन्मुखता (झुकना) है तदात्मक (तद्रूप) कारण प्रपंचकी प्रति जीवकेलिये जो भिन्नता वर्णन की गई है वह तन्मात्र प्रतिभाससे है अर्थात् स्वप्रकाश चिदेक रस जो आत्मा है उसके प्रतिभाससे प्रति नियत आकारकी कल्पनासे है न कि वस्तुतः ॥ १ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण प्राणिसमूहकी सुषुप्तिके अव्यवहितक्षणके उत्तर अनादि द्वैतव्यवहारकेलिये जो प्रवृत्ति है और स्वप्न वा जागरणदशामें जो वन नदी आदिमें प्रवृत्ति वा निवृत्ति है वह एकरस चेतनकी सर्वत्र व्याप्तिसे है ॥ २ ॥ हे रामजी ! प्रवृत्तिमें व्यवहार करनेवाले जितने जीव हैं वे सब केवल चेतनमात्र ज्योतिसे घटपट आदि पदार्थोंका अनुभव करसकतेहैं और साक्षी चिन्मात्रकी उपाधिके मेलनसे वा ब्रह्मकी एकताकी दृढतासे एक दूसरेसे कल्पित सृष्टियोंको देखतेहैं ॥ ३ ॥ उक्तरीतिसे चिन्मात्रकी एकतारूप प्रणालीसे चित्रविचित्र सृष्टिरूप जलाशय परस्पर मिलतेहैं और चारोंओरसे घनताको प्राप्त होतेहैं॥४॥

केचित्पृथक्स्थितिगताःपृथगेवलयंगताः ॥ केचिन्मिथःसंमिलिताजगद्गुंजास्थिताक्षता ॥ ५ ॥ जगद्गुंजासहस्राणियत्रासंख्यान्यणावणौ ॥ अपरस्परलग्नानिकाननंब्रह्मनामतत् ॥ ६ ॥ मिथःसंमिलनेनैताघनतांसमुपागताः ॥ यद्यद्यत्रयथारूढंतत्तत्पश्यतिनेतरत् ॥ ७ ॥ वर्त्तमानंमनोराज्यंनैष्फल्यंसमुपागता ॥ साकृत्तिर्मनसोज्ञेयातस्यजीवपरंपरा ॥ ८ ॥

अर्थ—कोई तो सृष्टिरूप गुंजा परस्परके मिलके बिनाही पृथक् स्थित रहके पृथक्ही लयको प्राप्त हुई और कोई परस्पर मिलके नाशरहित स्थित हैं ॥ ५ ॥ जिसके अणु २ में संसाररूपी सहस्रों गुंजा परस्पर मेलनके बिना स्थित हैं वह माया शबलित ब्रह्मनाम बन है ॥ ६ ॥ ये जगत्रूपी गुंजा परस्पर मिलनेसे सब साधारणके व्यवहारकी योग्यताको प्राप्त हुई हैं इसमें जितने प्राणियोंकेलिये भोगके अनुकूल जैसा कर्म जहांपर आरूढ है वह प्राणी उतनाही देखताहै उससे अधिक नहीं ॥ ७ ॥ एक मनका दूसरे मनमें वर्तमान मनोराज्यकेप्रति दर्शन और भोग आदिकी असमर्थतारूप जो निष्फलता है वह मनके भेदमें कारण है और जीवोंकी परंपरा (जीवभेद) भी होती हैं ॥ ८ ॥

परस्परंसंमिलतांसर्गाणांरूढभाविनाम् ॥ देहसत्ताभृशंरूढादेहाभावस्तुविस्मृतिः ॥ ९ ॥ देहत्वपरिरूढत्वाच्चिद्धेम्नाविस्मृतात्मना ॥ मिथ्यानुभूताऽविद्यातुशुद्धाकटकतामिता ॥ १० ॥ यथाशुद्धःप्राणमरुत्परप्राणादिवेदनात् ॥ वेत्तिवेद्यंमनोराज्यंतथासर्गांतराश्रयम् ॥ ११ ॥ सर्वेषांजीवराशीनामात्मावस्थात्रयंश्रितः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यमत्रदेहोनकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसीप्रकार भिन्न मनोराज्यरूप सृष्टियोंके कर्म वासनादिकी समानतामें एक कालमें फलकी उन्मुखतासे मिलनेपर व्याष्टि तथा समष्टि स्थूल देहकी सत्ताभी निरूढ हैं और उस सत्ताकी विस्मृतिसे देहका अभावभी स्वाभाविक है ॥ ९ ॥ और देहमें आत्मभावकी दृढतासे स्वाभाविक अपनी आत्मस्थितिको भूलकर चित्रूप सुवर्णने अपनी सुवर्णता (शुद्धात्मता) की विस्मृतिपूर्वक शुद्ध कटकताके सदृश संसाररूप मिथ्या अविद्याका अनुभव कियाहै ॥१०॥ जैसे हठयोगके दृढ अभ्याससे शुद्ध प्राणवायु दूसरेके शरीरमें प्रवेश करके उसके प्राणदेहादिको अपने बशमें करके शब्द आदि वेद्यपदार्थोंको जानताहै ऐसेही शुद्धमनभी दूसरी सृष्टिके आश्रयभूत मनोराज्यको जानताहै ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण जीवसमूहोंके जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्ति तीनों अवस्थाका आश्रय आत्माही है इसमें देह कारण नहीं है, क्योंकि जाग्रत्की कल्पना बिना देहकी असिद्धि होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आ पडेगा ॥ १२ ॥

एवमात्मनिजीवत्वेसत्यवस्थात्रयात्मनि ॥ नचांभसोववीचित्वमस्मिन्कचतिदेहता ॥ १३ ॥ चित्कलापदमासाद्यसुषुप्तांतपदस्थितम् ॥ बुद्धोनिवर्त्ततेजीवोमूढःसर्गेप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ द्वयोरेकस्वरूपैव स्वसौहार्दनिदर्शनात् ॥ अज्ञःसुषुप्तोऽसंबुद्धोजीवःकश्चित्ससर्गभाक् ॥१५॥ सर्वगत्वाच्चितःकश्चित्परसर्गेणनीयते ॥ सर्गेसर्गेपृथग्रूपंसंतिसर्गांतराण्यपि ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार जीवात्माही अवस्थात्रयरूप होनेसे देह इससे भिन्न इसरीतिसे नहीं है जैसे जलसें तरंग ॥ १३ ॥ इसप्रकार तत्वज्ञानी सुषुप्तिके अवसानभूत तुरीयपद स्थित चित् चैतन्यैकरस आत्मस्वभावको ज्ञानसे प्राप्त होकर जीवभावसे निवृत्त होताहै, और अज्ञानी तो अपनी कल्पनासे देह आदि आकारमय कल्पनारूप जगत्की सृष्टिमें प्रवृत्त होताहै ॥ १४ ॥ ज्ञानी तथा अज्ञानीकी सुषुप्ति निरतिशय आनन्दरूप मोक्षका दृष्टान्त होनेसे समानहै

परन्तु ज्ञानवर्जित अज्ञ सुषुप्ति सहित कोई जीव सृष्टिका भागी है यह विशेषताहै ॥ १५ ॥ चित्के सर्वव्यापिनी होनेसे कोई जीव दूसरेकी सृष्टिमें प्रविष्ट कियाजाताहै, और एक २ सर्गमें पृथक् २ रूपसे अनेक सृष्टि हैं ॥ १६ ॥

तेष्वप्यंतस्थसर्गौघाःकदलीदलपीठवत् ॥ सर्वसर्गांतरादूरंपत्त्रपीवरवृत्तिमत् ॥ १७ ॥ स्वभावशीतलंब्रह्मकदलीदलमंडपः ॥ कदल्यामन्यतानास्तियथापत्त्रशतेष्वपि ॥ १८ ॥ ब्रह्मतत्त्वेन्यतानास्तितथासर्गशतेष्वपि ॥ बीजमेवरसात्फुलंभूत्वाबीजंपुनर्भवेत् ॥ १९ ॥ तथाब्रह्ममनोभूत्वाबोधाद्ब्रह्मपरंभवेत् ॥ रसकारणकंबीजंफलभावेनजृंभते ॥ २० ॥

अर्थ—और उनके भीतरभी केलेके खम्भेके भीतर केलेके पत्रके समान सृष्टियोंके समूह हैं; और सब सृष्टियोंके बाह्य तथा आभ्यन्तर देशके निकटमें वर्तमान; और बाहर फैले हुये पत्तोंके समान अतिविशालरूप ब्रह्म तो अपने स्वभावसेही शीतल केलेके मण्डपके समान है, और जैसे सैकडों पत्र होनेसेभी केलेमें भेद नहीं है ॥१७॥१८॥ ऐसे सैकडों सृष्टियोंमेंभी ब्रह्मतत्वमें भेद नहीं है, और बीज जैसे जलके सम्बन्धसे विकसित वृक्ष होके पुनः उस वृक्षके विस्तारमय फल आदिके द्वारा अपने पूर्वकालके बीजभावसे प्रकट है ॥ १९ ॥ ऐसेही ब्रह्मभी काम कर्म आदि रूप जलके सबन्धसे मनरूप होके जन्ममरण आदिकी कल्पनासे अधिकारी देह प्राप्त होनेपर, श्रवण मनन आदिके क्रमसे ज्ञानप्राप्ति द्वारा पुनः अपने पूर्व सिद्ध ब्रह्मस्वभावको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

ब्रह्मकारणकोजीवोजगद्रूपेणजृंभते ॥ रसस्यकारणंकिंस्यादितिवक्तुंनयुज्यते ॥ २१ ॥ ब्रह्मणःकारणंकिंस्यादितिवक्तुंनयुज्यते ॥ स्वभावेनिर्विशेषत्वात्परोवक्तुंनयुज्यते ॥ २२ ॥ नाकारणेकारणादिपरेवस्त्वादिकारणे ॥ विचारणीयःसारोहिकिमसारविचारणैः ॥ २३ ॥ बीजंजहद्बीजवपुःफलीभूतंविलोक्यते ॥ ब्रह्माजहन्निजवपुःफलंबीजेचसंस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्मके निमित्तसे जीवही जगत्रूपसे शोभित होताहै, और जैसे मूलका कारण क्याहै यह नहीं कह सकते क्योंकि "मूले मूलाभावादमूलं मूलम्" मूलका मूल न होनेसे मूल कारणसे वर्जितहैं, अर्थात् मूलका मूल नहीं है, कदाचित् यह कहो कि पत्र, शाखा, वृक्ष, पुष्प और फल आदिकी सरसता देखनेसे जैसे वृक्षादि स्वभाव रसहै ऐसे जगत्का कारण ब्रह्मभी जगत् धर्मक स्वभाव विशेषही होगा तो ब्रह्मकी कारणता सिद्ध करना स्वभाव कारणताही सिद्ध हुई, सो नहीं क्योंकि ब्रह्मके निर्विशेष निराकार अद्वैतरूप होनेसे कारणकी कार्यके साथ उत्पत्तिरूप असाधारण धर्मरूपतासे संबंध नहीं है ॥ २१ ॥ २२ ॥ निर्विकार अद्वितीय असंग आदि हेतुसे यथार्थमें अकारण और सब प्रपंचके आरोपित आदिके कारण ब्रह्ममें कारण निमित्त आदिकी संभावनाभी नहीं, क्योंकि यह ब्रह्मके स्वभावसे विरुद्धहै, इसलिये अकारण विवर्तरूप जगत् मिथ्याही है इसकारण असार जडता दुःखमय आदि जगत् वा उसके कारणोंके विचारसे क्या प्रयोजन है, किंतु सारभूत ब्रह्मका विचार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और बीज अपनी बीजाकारताको त्याग करताही हुआ लोकमें अंकुर आदि रूपसे फलीभूत देख पडताहै, और ब्रह्म जो अपने स्वरूपको न त्यागता हुआ जगत्रूप फल स्वरूपसे देख पडताहै वह तो बीज तथा अंकुरमें एकरूपतासे है ॥ २४ ॥

बीजस्याकृतिमत्सर्वंतेनानाकृतिमत्पदम् ॥ नयुज्यतेसमीकर्तुंतस्मान्नास्त्युपमाशिवे ॥ २५ ॥ स्वमेवजायतेस्वाभंनचतज्जायतेन्यदृक् ॥ अतोनजातंनाजातंविद्धिब्रह्मनभोजगत् ॥ २६ ॥ दृश्यंपश्यन्स्वमात्मानंनद्रष्टासंप्रपश्यति ॥ प्रपंचाक्रांतसंवित्तेःकस्योदेतिनिजास्थितिः ॥ २७ ॥ मृगतृष्णाजलभ्रांतौसत्यांकैवविदग्धता ॥ विदग्धतायांसत्यांतुकैवासौमृगतृष्णिका ॥ २८ ॥

अर्थ--बीज जो है उसका सब कुछ आकारवान् है इसलिये आकाररहित ब्रह्मपदकी समता बीजके साथ नहींहोसकती इस निमित्तसे ब्रह्ममें यथार्थमें किसीकी उपमा नहीं है ॥ २५ ॥ यह अपने समान आपही होताहै अन्यके तुल्य यह नहींहोता, इसलिये चिदाकाशमें इस जगत्को न जात और न अजात समझो ॥ २६ ॥ दृश्यको देखता हुआ द्रष्टा अपने स्वरूपको नहीं देखता क्योंकि प्रपंचसे ज्ञानके आक्रांत होनेपर अपने स्वरूपकी स्थिति किसकी उदय हो सकती है ॥ २७ ॥ जब मृगतृष्णामें जलका भ्रम हुआ तब पण्डिताई कहां रहगई, और जब पण्डिताई तब भ्रम कहां? ॥ २८ ॥

आकाशविशदोद्रष्टासर्वांगोपिनपश्यति ॥ नेत्रंनिजमिवात्मानंदृशीभूतमहोभ्रमः ॥ २९ ॥ आकाशविशदोद्रष्टासर्वांगोपिनपश्यति ॥ तेषांनिजमिवात्मानंदृशीभूतमिवाभ्रमः ॥ ३० ॥ आकाशविशदंब्रह्मयते

नापिनलभ्यते ॥ दृश्येदृश्यतयादृष्टेत्वस्यलाभःसुदूरतः ॥ ३१ ॥ तादृग्भावस्वरूपेणविनायत्रनदृश्य ते ॥ तत्रापिदूरोदस्तैवद्रष्टुःसूक्ष्मस्यदृश्यता ॥ ३२ ॥

अर्थ—आकाशके समान विशाल स्वरूपभी द्रष्टा सर्वगत सर्वावभासक होनेपरभी तत्वरूपसे अपनेको ऐसे नहीं देखता जैसे नेत्र अपने रूपको नहीं देखता; अहो ! भ्रमकी प्रबलता कैसी है ॥ २९ ॥ और आकाशके समान सर्वव्यापक द्रष्टा अपने परमार्थके स्वरूपके तुल्य अन्यके पारमार्थिक रूपको ऐसे नहीं देखता जैसे भ्रमरहित मुक्त पुरुष दृश्यदशामें प्राप्त द्वैतको नहीं देखता ॥ ३० ॥ आकाशके सदृश सर्वत्र प्राप्तभी ब्रह्म परन्तु यत्नसेभी नहीं देखपडता क्योंकि दृश्यको दृश्यरूपसे देखनेसे ब्रह्मस्वरूपका लाभ अति दूर है ॥ ३१ ॥ और जहां घट आदि विषय देशमें वृत्तिमें अवच्छिन्न द्रष्टा विषयरूप हुये बिना घटादिका प्रकाश नहीं होता वहांभी द्रष्टाकी दर्शन योग्यता दूरही है, क्योंकि वृत्तिको विषयरूपसे पृथक् करके सूक्ष्मतासे केवल परमात्माके स्वरूपका निश्चय दुर्लभ है ॥३२॥

दृश्यंचदृश्यतेतेनद्रष्टारमनदृश्यते ॥ द्रष्टैवसंभवत्येकोनतुदृश्यमिहास्तिहि ॥ ३३ ॥ द्रष्टासर्वात्मकोदृश्येस्थितश्चेत्क्वैवद्रष्टृता ॥ सर्वशक्तिमताराज्ञायद्यत्संपद्यतेयथा ॥ ३४ ॥ तत्तथानुभवत्याशुसएवोदेतितत्तथा ॥ यथामधुरसोल्लासःखंडोभवतिभासुरः ॥ ३५ ॥ रसतामजहच्चैवफलपुष्पलतोन्नतः ॥ चिदुल्लासस्तथाजीवोभूयोभवतिदेहकः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दृश्य तो देखपडताहै परन्तु द्रष्टा नहीं देख पडता, क्योंकि यथार्थमें द्रष्टाहीका संभव है और दृश्य तो कुछ हैही नहीं ॥ ३३ ॥ और सर्वरूप होनेसे जब द्रष्टा दृश्यरूपसे स्थित है तब अपने स्वरूपभूत दृश्यमें अपनी क्रियाका विरोध होनेसे द्रष्टता कहां ! यदि यह कहो कि सर्वशक्तिमान् राजाके तुल्य दृश्य निर्माण करके उसका द्रष्टा यह बनेगा तो अन्यकी अपेक्षासे रहित जैसा रूप यह होताहै ॥ ३४ ॥ वैसाही वैसा अनुभव करताहै और शीघ्र वही उस रूपसे उदयभी होताहै जैसे मधु रसका उल्लास भासुर खंडरूप होता है और अपनी रसरूपताको न त्यागते हुये फल पुष्प लता आदि रूपसे उन्नत होताहै ऐसेही चित्का उल्लास जीवभी देहादिरूप होजाताहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चिन्मात्रतांतामजहदेवदर्शनदृङ्मयम् ॥ अंतःस्वानुभवश्चैवजगत्स्वप्नंप्रपश्यति ॥३७॥ अहंतादिरसेभौमेखंडकत्वमिवात्मनि ॥ नानाखंडंसहस्रैघैरद्वितीयैर्निजात्मनः ॥ ३८ ॥ यथोदेतिरसोभौमश्चित्तथोदेत्यसंभ्रमम् ॥ चिद्रसोल्लासवृक्षाणांकचतामात्मनात्मनि ॥ ३९ ॥ दृश्यशाखाशताढ्यानामिहनांतोऽवगम्यते ॥ खंडःप्रत्येकमेवायंयथारसचमत्कृतिम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और यह अपनी चित्‌रूपताको न त्यागता हुआ दर्शन तथा दृक्‌रूप होजाताहै और अपने स्वरूपके भीतर जगत्‌रूप स्वप्नको देखताहै ॥ ३७ ॥ पृथिवीमें उत्पन्न लवणादि रसमें खण्डके समान आत्मामें अहन्ता आदि हैं जैसे अपनेसे अभिन्न सहस्रों खण्डोमें पृथिवीका उदय होताहै ऐसेही चित्‌भी अनेक रूपसे उदयको प्राप्त होताहै और चित्‌रसके उल्लाससे सैकडों दृश्यकी शाखासे पूर्ण ब्रह्मांडरूपी वृक्षोंका अन्त इस संसारमें नहीं है और यह वर्तमान ब्रह्मांडरूप बन खण्ड अपने रसके चमत्कारको ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

स्वादयत्येवमेषाचित्पृथक्पश्यतिसंस्थितिम् ॥ यायोदेतियथायस्याजीवशक्तेःस्वसंसृतिः ॥ ४१ ॥ तांतांतथैतिसास्वात्मचिद्रूपभुवनस्थितिम् ॥ जीविसंसृतयःकाश्चित्प्रमिलंतिपरस्परम् ॥ ४२ ॥ स्वयंविहृत्यसंसारेशाम्यंतिचिरकालतः ॥ सूक्ष्मयापरयदृष्ट्यात्वंपश्यज्ञानचेतसा ॥ ४३ ॥ जगज्ज्वालसहस्राणिपरमाण्वंतरेष्वपि ॥ चित्तेनभसिपाषाणेज्वलायामनिलेजले ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे अनुभव करताहै यह चित् वैसाही उस चमत्कारको देखती है जिस २ जीवशक्तिको जैसा २ संसार उदय होताहै वैसा २ अपना आत्मा चित्‌रूप ब्रह्माण्डमें स्थित अनुभव करताहै, और समान आकार वासनाके उद्भवमें कोई संसार परस्पर मिलजातेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और चिरकालतक विहार करके स्वयं शान्त होजातेहैं और हे रामजी ! तुम परम सूक्ष्मदृष्टिसे तथा ज्ञानरूप चित्तसे अन्यके सहस्रों संसारको देखो॥४३॥चित्तमें आकाशमें पाषाणमें ज्वालामें, वायुमें तथा जंगलमें संपूर्ण परमाणु २ के भीतर सहस्रों(हजारों) जगत्‌के समूह हैं॥४४॥

संतिसंसारलक्षाणितिलेतैलमिवाखिले ॥ सिद्धिमेतियदाचेतस्तदाजीवोभवेच्चितिः ॥ ४५ ॥ शुद्धाचसासर्वगतातेनतन्मेलनंमिथः ॥ सर्वेषांपद्मजादीनांस्वसत्ताभ्रमरूपकः ॥ ४६ ॥ जगद्दीर्घमहास्वप्नःसोयमंतःसमुत्थितः ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरंयांतिकाश्चिद्भूतपरंपराः ॥ ४७ ॥ तेनोपलंभःकुड्यादावसौदृढतरःस्थितः ॥ यद्यत्रचिद्भावयतितत्तत्राशुभवत्यलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे सम्पूर्ण तिलमें तेल है ऐसेही चित्तमें आकाशादि लक्षों संसारहैं और जब चित्तकी सिद्धि होतीहै तब वही चेतन होजाताहै ॥ ४५ ॥ और शुद्ध सर्वव्यापी चित्का परस्पर मेल होताहै और सब ब्रह्माआदिकी सत्तासे कल्पित भ्रमरूप यह जगत् है ॥ ४६ ॥ इसलिये यह संसाररूपी महा दीर्घ स्वप्न प्रगट है, और कोई २ जीव परंपरा एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें प्राप्त होती हैं ॥ ४७ ॥ इस स्वप्नके परंपरा भ्रमणसे भित्तिआदिमें इसकी प्राप्ति होतीहै और बासनाकी दृढतासे यह दृढतररूपसे स्थितहै, वासनाके अनुसार चित् जहां जैसी भावना करती है वहां वैसाही अनुभव करलेतीहै ॥ ४८ ॥

तयास्वप्नेपियद्दृष्टंतत्कालेसत्यमेवतत् ॥ चिदणोरंतरेसंतिसमस्तानुभवाणवः ॥ ४९ ॥ परमाणुजगत्यंतर्मन्येचित्परमाणवः ॥ लीनमाकाशमाकाशेद्वैतैक्यभ्रममुत्सज ॥ ५० ॥ देशकालक्रियाद्रव्यैःस्वैरेवाणुभिरेवचित् ॥ अणूननुभवत्यंतरितराणिनसंभवात् ॥ ५१ ॥ स्वयंसर्गस्यकचितःस्वप्नेचिदणुखंडकः ॥ ब्रह्मादेःकीटनिष्ठस्यदेहदृष्टयानुभावितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—उस चित्ने स्वप्नमेंभी जैसा अनुभव कियाहै उस कालमें वह सत्यही है और समस्त सूक्ष्मरूप जगदाकार वासनामय चित् अणुके भीतर ऐसे हैं जैसे बीजके भीतर पत्र, लता, पुष्प, तथा फलादि ॥ ४९ ॥ चित् परमाणु (जीव) जगत्के परमाणुमें प्रविष्ट हैं और चित् परमाणुमें जगत् प्रविष्ट है, इस चित् और जगत्के संपूर्णरूपतासे परस्पर प्रवेशको मैं आश्चर्य मानताहुं अथवा यह कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि चिदाकाशही चिदाकाशमें लीनहै और इसी चिदाकाशको जगत्के भ्रमसे सभोंने ग्रहणकर रक्खाहै इसलिये हे रामजी ! तुम द्वैतता तथा एकताके भ्रमको त्यागो ॥ ५० ॥ देश, काल; और क्रियारूप चिदंशरूप अणुओंसे अपने आत्मभूत अणुओंको अन्यके समान देखताहै क्योंकि अन्यका संभव नहीं है ॥ ५१ ॥ ब्रह्मासे लेके कीट पर्यन्तको साधारण उन २ अन्तकरणकी उपाधि बशसे चिदणुका खण्ड (जीव) प्रलयकालमें अस्फुटभी सृष्टिकाल स्वप्नकें समान देहदृष्टिसे अनुभूत किया गयाहै॥५२॥

कचितंकिंचिदेवेहवस्तुतस्तुनकिंचन ॥ स्वयंसत्यंस्वादयंतेद्वैतंचित्परमाणवः ॥ ५३ ॥ स्वयंप्रकचातिस्फारदेहश्चिदणुखंडकः ॥ नेत्रादिकुसुमद्वारैःसंविदामोदमुद्गिरन् ॥ ५४ ॥ संपश्यतितरांकश्चिद्बहीरूपेणचिद्घटः ॥ सर्वगत्वादनाशित्वाद्दृश्यबीजस्यवैचितेः ॥ ५५ ॥ अंतरेवाखिलंकश्चित्पश्यत्यविमलंजगत् ॥ तत्रातिकालकलनादुन्मज्जतिनिमज्जति ॥ ५६ ॥

अर्थ—अनिर्वचनीय रूपसे यह जगत् स्फुरित है और यथार्थ रूपसे कुछभी स्फुरित नहीं है और जैसे कोई भ्रान्त पुरुष अपने स्कंधेपर आप चढना चाहै ऐसेही चित् परमाणु अर्थात् जीव स्वयं सत्य आत्मा द्वैत मानते हुयेभी भ्रांतिसे उसी द्वैतका अनुभव करतेहैं ॥ ५३ ॥ अन्तःकरणरूप उपाधिसे चेतनरूप अणु खण्ड नेत्र आदि पुष्पोंके द्वारा ज्ञानरूप सुगंधको उगिलता हुआ स्वयं विशाल देहरूपसे स्फुरताहै ॥ ५४ ॥ दृश्यके बीजभूत चित्ति सर्व व्यापी तथा अविनाशी होनेसे कोई व्यष्टिरूप जीव घटके सदृश स्थूलदेहके परिच्छेदसे बाह्य देश तथा कालसे घट ऐसा देखताहै ॥ ५५ ॥ और कोई समष्टि ब्रह्माण्डात्मक जीव संपूर्ण कलंकित जगत्को अपने भीतरही देखता है, और उसमें दीर्घ कालसे अभेदके अभिमानसे उसीमें कभी डूबताहै और कभी निकलताहै ॥ ५६ ॥

स्वप्नात्स्वप्नांतरंतत्रतथापश्यन्पुनःपुनः ॥ मिथ्यावटेषुलुठतिशिलेवशिखरच्युता ॥ ५७ ॥ केचित्संमिलिताःकेचिदात्मन्येवाभ्रमेस्थिताः ॥ भग्नाःस्वसंवित्प्रसरेस्फुरंतोदेहखंडकाः ॥ ५८ ॥ स्वयमंतःप्रपश्यंतियेजगज्जीवविभ्रमम् ॥ तैस्तैःकैश्चित्ततंदृश्यमसत्स्वप्नवदाश्रितम् ॥ ५९ ॥ सर्वात्मत्वात्स्वभावस्यतद्दृश्यंसत्यमात्मनि ॥ सर्वगंविद्यतेयत्रतत्रसर्वमुदेतिहि ॥ ६० ॥

अर्थ—उस स्वप्नरूप जगत्में स्वप्नान्तरको देखता हुआ मिथ्याभूत गर्तोंमें ऐसे लुढकता फिरताहै, जैसे पर्वतसे गिरी हुई पाषाणकी शिला ॥ ५७ ॥ अपने ज्ञानके विस्तारमें स्फुरित होते हुये कोई देहके खण्ड तो परस्पर मिलितहैं, कोई भ्रमरहित आत्मामें स्थित रहतेहैं, और कोई निमग्न रहतेहैं ॥ ५८ ॥ जो जीव जगत् और जीवके विभ्रमको अपने भीतरही देखतेहैं उन किसी २ जीवोंने इस व्याप्त दृश्यको असत् स्वप्नके आश्रित निश्चय कियाहै ॥ ५९ ॥ चित् स्वभावके सर्वरूप होनेसे वह दृश्य आत्मामें अधिष्ठान आत्मरूपसे सत्यही है, और जहां सर्वव्यापी आत्मा है वहां सब कुछ विवर्त रूपसे उदय होताहै ॥ ६० ॥

जीवांतःप्रतिभासस्यसर्वस्यपुनरंतरे ॥ जीवखंडउदेत्युच्चैस्तस्यांतरितरोपिच ॥ ६१ ॥ जीवांतर्जायते जीवस्तस्यांतरपिजीवकः ॥ सर्वत्ररंभादलवज्जीवोजीवांतरेवहि ॥ ६२ ॥ दृश्यबुद्धिपरावृत्तौसममेतद

नंतरम् ॥ हेम्नीवकटकादित्वंशरीरान्नातंविनश्यति ॥ ६३ ॥ विचारोयस्यनोदेतिकोहंकिमिदमित्यलम् ॥ तस्यांतर्नविमुक्तोसौदीर्घोजीवज्वरभ्रमः ॥ ६४ ॥

अर्थ—और संपूर्ण जीवरूप प्रतिभासके भीतर पुनः जीव खण्ड उदय होताहै और उस जीवके भीतर पुनः जीवान्तरभी उदयको प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ जीवके भीतर जीव और उसके भीतरभी अन्य जीवहै अधिक कथनसे क्या प्रयोजन सर्वत्र केलेके दलमें पत्रके समान जीवके भीतर जीवहै, अर्थात् प्रपंचसहित जीवके भीतर जीव सत्तामें कारण वहांकी अविद्यासहित चेतनहै ॥ ६२ ॥ दृश्य पदार्थसे बुद्धिके हटनेसे और प्रत्यक् चेतनमें अभिमुख होनेपर एक कालमेंही बाह्य तथा आभ्यन्तरसे ज्ञात यह संसार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे सुवर्णमें कटकता ॥ ६३ ॥ मैं कौन हुं और यह संसार क्याहै यह विचार जिसको नहीं उदय होता उसके भीतरसे दीर्घ कालका जीवके ज्वरका भ्रम नहीं निवृत्त होताहै ॥ ६४ ॥

विचारःसफलस्तस्यविज्ञेयोयस्यसन्मतेः ॥ दिनानुदिनमायातितानवंभोगगृध्नुता ॥ ६५ ॥ यथादेहोपयुक्तंहिकरोत्यारोग्यमौषधम् ॥ तथेंद्रियजयेभ्यस्तेविवेकःफलितोभवेत् ॥ ६६ ॥ विवेकोस्तिवचस्येव चित्रेग्निरिवभास्वरः ॥ यस्यतेनपरित्यक्तादुःखायैवाविवेकिता ॥ ६७ ॥ यथास्पर्शेनपवनःसत्तामायातिनोगिरा ॥ तथेच्छातानवेनैवविवेकोस्यविबुध्यते ॥ ६८ ॥ चित्रामृतंनामृतमेवविद्धिचित्रानलंनानलमेवविद्धि ॥ चित्रांगनानूनमनंगनेतिवाचाविवेकस्त्वविवेकएव ॥ ६९ ॥ पूर्वंविवेकेनतनुत्वमेतिरागोथवैरंचसमूलमेव ॥ पश्चात्परिक्षीयतएवयत्नःसपावनोयत्रविवेकितास्ति ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवनखंडकावतारोनामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस सत्वबुद्धि पुरुषकी भोगकी लालसा प्रतिदिन न्यून होती जाती है उसीका विचार सफल जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ जैसे शरीरमें उपभोग किया हुआ औषध आरोग्य आरोग्य करताहै ऐसेही इन्द्रियोंके जपका अभ्यास करनेपर विवेक फलीभूत होताहै ॥ ६६ ॥ चित्रगत प्रकाशमान अग्निके समान जिसका विवेक केवल वचनमात्रमें है न कि मनमें उसनें केवल दुःखदायिनी जो अविवेकताहै उसको नहीं त्यागा ॥ ६७ ॥ जैसे पवनकी सत्ता बचनसे नहीं किन्तु स्पर्शसेही प्रतीति होती है ऐसेही इच्छाकी सूक्ष्मतासेही इस पुरुषका विवेक जाना जाताहै ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! चित्रके अमृतको तुम अमृत न जानो, और चित्रके अग्निको अग्नि न जानो तथा जैसे चित्रकी स्त्री स्त्री नहीं है ऐसेही बचनमात्रका विवेक विवक नहीं किन्तु अविवेकही है ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! प्रथम विवेकसे राग सूक्ष्म होताहै अनन्तर वैरभी मूलसहित नष्ट होजाताहै, और ज्ञानके उदयसे इष्टप्राप्ति और अनिष्टके परिहारकी प्रवृत्तिरूप यत्नभी क्रमसे नष्ट होजाताहै इसलिये जहां विवक है वह प्राणी धन्य और परम पावन है ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवखण्डकाऽवतारो नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

उपासनाके अनुसार फलकी प्राप्ति, बोधसे सत्य आत्मरूपसे स्थिति, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके स्थिति तथा तुरीय (चतुर्थ) पदकी स्थितिभी इस १९ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवबीजंपरंब्रह्मसर्वत्रखमिवस्थितम् ॥ तेनजीवोदरजगत्यपिजीवोस्त्यनेकधा ॥ १ ॥ चिद्घनैकघनात्मत्वाज्जीवांतर्जीवजातयः ॥ कदलीदलवत्संतिकीटाइवधरोदरे ॥ २ ॥ योयोनामयथाग्रीष्मेकल्कस्वेदाद्भवेत्कृमिः ॥ यद्यदृश्यंशुद्धचित्स्वंतज्जीवोभवतिस्वतः ॥ ३ ॥ यथायथायतंतेतेजीवकाःस्वात्मसिद्धये ॥ तथातथाभवंत्याशुविचित्रोपासनक्रमैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जीवका बीजभूत ब्रह्महै यह सर्वत्र आकाशके तुल्य स्थितहै इस कारणसे जीवके उदरमें जो जगत्‌है उसमेंभी अनेक प्रकारके जगत् हैं ॥ १ ॥ केलेके दलके समान जीव चिद्घनरूप होनेसे जीवके भीतर कीट (कीडे) ॥ २ ॥ जैसे ग्रीष्मकालमें शरीरके भीतर मल वा प्रस्वेद (पसीने) के कारण जो २ कृमि होताहै वह २ शरीरके भीतरही होताहै ऐसे बाह्य वा आभ्यन्तर जो २ दृश्यरूप शुद्धचित् धारण

करती है उस २ का भोक्ता जीव उसी २ स्थानपर होजाताहै ॥ ३ ॥ चित्रविचित्र उपासनाके क्रमसे जीव स्वात्म सिद्धिके लिये जैसे २ प्रयत्न करतेहैं वैसाही वैसा शीघ्र होजाताहै ॥ ४ ॥

देवान्देवयजोयांतियक्षायक्षान्व्रजंतिहि ॥ ब्रह्मब्रह्मयजोयांतियदतुच्छंतदाश्रयेत् ॥ ५ ॥ समुक्तोभृगुपुत्रोहिंनिर्मलत्वात्स्वसंविदः ॥ बद्धःप्रथमदृष्टेनदृश्येनाशुस्वभावतः ॥ ६ ॥ भुविजातापरिम्लानाबालायत्प्रथमंपुरः ॥ संवित्प्राप्नोतितद्रूपाभवत्यन्यानकाचन ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नदशाभेदंभगवन्वक्तुमर्हसि ॥ कथंचजाग्रज्जाग्रत्स्यात्स्वप्नोजाग्रद्भ्रमःकथम् ॥ ८ ॥

अर्थ—देवताओंके पूजक देवताको प्राप्त होतेहैं, यक्षोंके पूजक यक्षोंके निकट जातेहैं हिरण्यगर्भ ब्रह्मके उपासक शुद्धब्रह्ममें लीन होतेहैं इसलिये जो महान् हैं उसीका आश्रय लेना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने ज्ञानकी निर्मलतासे भृगुका पुत्र मुक्त होगया, और प्रथम अप्सरारूप दृश्यके देखनेसे चित्तके स्वभावसे बद्ध होगयाथा ॥ ६ ॥ इस संसारके व्यसन तापादि केलेसे कोमल संवित् जबतक म्लानिको नहीं प्राप्त हुई उसके प्रथम जिस रूपमें प्राप्त होती है उससे अन्यरूप कभी नहीं होती ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! जाग्रत् तथा स्वप्न दशाके भेद आप कहनेके योग्यहैं जाग्रत् सत्य तथा व्यवहारका हेतु कैसे होताहै; और स्वप्न जाग्रत् आकारवाला भ्रम कैसे है ? ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्थिरप्रत्यययुक्तंयत्तज्जाग्रदितिकथ्यते ॥ अस्थिरप्रत्ययंयत्स्यात्तत्स्वप्नःसमुदाहृतः ॥ ९ ॥ जाग्रत्त्वेक्षणदृष्टःस्यात्स्वप्नःकालांतरेस्थितः ॥ तज्जाग्रत्स्वप्नतामेतिस्वप्नोजाग्रत्त्वमृच्छति ॥ १० ॥ जाग्रत्स्वप्नदशाभेदोनस्थिरास्थिरतेविना ॥ समःसदैवसर्वत्रसमस्तोनुभवोनयोः ॥ ११ ॥ स्वप्नोपिस्वप्नसमयेस्थैर्याज्जाग्रत्त्वमृच्छति ॥ अस्थैर्याज्जाग्रदेवास्तेस्वप्नस्तादृशबोधतः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—जो स्थिर प्रत्ययसे युक्तहै वह जाग्रत् है और जो स्थिर प्रत्यय युक्त नहीं है वह स्वप्न कहा गया है ॥ ९ ॥ और स्वप्नभी यदि कालातरमें स्थित हो और जगत्के लक्षणसे देखा जाय तो वह जाग्रतहो जाताहै और जाग्रत्भी यदि स्थिर नहो तो वह स्वप्नताको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ स्थिरता तथा अस्थिरताके सिवाय जाग्रत् और स्वप्नदशामें कुछ भेद नहीं है, इन दोनो अवस्थाओंका समस्त अनुभव सर्वत्र समानही है केवल स्थिरता अस्थिरताका भेद है ॥ ११ ॥ स्वप्नभी स्वप्नके समय स्थिरतासे जाग्रत् होजाताहै और अस्थिरतासे जाग्रत्भी स्वप्नके सदृश ज्ञानसे स्वप्न होताहै ॥ १२ ॥

स्वप्नोपिजाग्रद्बुद्ध्यंशोजाग्रत्त्वमनुगच्छति ॥ स्वप्नतास्वप्नबुद्ध्यातुयथासंवेदनंस्थिरम् ॥ १३ ॥ यत्तुयावत्स्थिरंबुद्धंतत्तावज्जाग्रदुच्यते ॥ क्षणभंगात्तुतत्स्वप्नोयथाभवतितच्छृणु ॥ १४ ॥ जीवधातुःशरीरेंतर्विद्यतेयेनजीव्यते ॥ तेजोवीर्यंजीवधातुरित्याद्यभिधमंगयत् ॥ १५ ॥ व्यवहारीयदाकायोमनसाकर्मणागिरा ॥ भवेत्तदामरुन्नुन्नोजीवधातुःप्रसर्पति ॥ १६ ॥

अर्थ—जाग्रत् बुद्धिग्राह्य स्थिरता अंशका स्वप्नभी जाग्रत् दशाको प्राप्त होताहै जैसे राजा हरिश्चन्द्रका ॥ १३ ॥ वर्षोंका स्वप्न जाग्रत् होगया, जैसे जाग्रत्का ज्ञान स्थिरहै ऐसेही वहभी है परन्तु उसमें स्वप्नता व्यवहारतो स्वप्नबुद्धिसे है जो पदार्थ जबतक स्थिरतासे ज्ञात होताहै वह तबतक जाग्रत् कहा जाताहै और क्षणभंगुर होनेसे जाग्रत्भी जैसे स्वप्न होजाताहै वह सुनो ॥ १४ ॥ इस शरीरके भीतर जो जीव चेतनहै, जिससे इसमें जीवित व्यवहार होताहै उसका साधक (जीवनका साधक) तेज, वीर्य्य, जीव तथा चित् इत्यादि नामसे जो प्रसिद्ध है वही सब जीवनमें कारण है ॥ १५ ॥ जिस समय यह शरीर मन कर्म तथा बचनसे व्यवहार करनेवाला होताहै उस समय प्राण वायु प्रेरित जीव चेतन तडागासे नाली आदिके द्वारा जलके समान हृदयसे निकलके बाह्य देशमें संचरित होताहै ॥ १६ ॥

तस्मिन्प्रसर्पत्यंगेषुसर्वासंविदुदेतिहि ॥ दृष्टत्वात्प्रैतिचित्ताख्यमंतर्लीनजगद्भ्रमम् ॥ १७ ॥ ईक्षणादिषुरंध्रेषुप्रसरंतीबहिर्मयम् ॥ नानाकारविकाराढ्यंरूपमात्मनिपश्यति ॥ १८ ॥ स्थिरत्वात्तत्तथैवाथजाग्रदित्यवगम्यते ॥ जाग्रत्क्रमइतिप्रोक्तःसुषुप्तादिक्रमंशृणु ॥ १९ ॥ मनसाकर्मणावाचायदाक्षुभ्यतिनोवपुः ॥ शांतात्मातिष्ठतिस्वस्थोजीवधातुस्तदात्वसौ ॥ २० ॥

अर्थ—उस जीव चेतनके अन्तर्गत नाडियोंमें संचरित होनेपर सब संवित् उदयको प्राप्त होतीहै और दृष्ट होनेसे अन्तरमें लीन जगत्के भ्रमसहित चित्त दशाको प्राप्त होती है अर्थात् स्वप्न देखती है ॥ १७ ॥ नेत्रआदि छिद्रोंके द्वारा बाहर फैलती हुई जीव संवित् नानाप्रकारके विकारोंसे पूर्णरूप अपने आत्माहीमें देखती है ॥१८॥ स्थिर होनेसे

वह उसीप्रकार जाग्रत् कहा जाताहै इसप्रकार जाग्रत्का क्रम तुमसे कहदिया अब तुम सुषुप्ति आदिके क्रमको सुनो ॥१९॥ मन कर्म बाणीसे जब शरीर क्षुभित नहीं होता और जब यह जीव चेतन शान्तात्मा स्वस्थ स्थित रहताहै ॥२०॥

समतामागतैर्वातैःक्षोभ्यतेनहृदंबरे ॥ निर्वातसदनेदीपोयथालोकैककारकः ॥२१॥ ततःसर्वासुनाडीषु संवित्क्षुभ्यतितेननो ॥ नचेक्षणादीन्यायातिरंध्राण्यायातिनोबहिः ॥ २२ ॥ जीवोंतरेवस्फुरतितैलसंवित्यथातिले ॥ शीतसंविद्धिमइवस्नेहसंविद्यथाघृते ॥ २३ ॥ जीवाकाराकलाकाचिच्चित्तिःस्वच्छतयात्मनि ॥ दशामायातिसौषुप्तिंसौम्यवातांविचेतनाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—समताको प्राप्त प्राणवायुसे हृदयाकाशमें जीव चेतन क्षुभित नहीं होता, किंतु निर्वातस्थानमें स्थित दीपके सदृश केवल प्रकाशमात्र कार्यका करनेवाला रहता है ॥ २१ ॥ ऐसा होनेसे अंगकी सब नाडियोंमें जीवका प्रसार नहीं होता और इससे संवित्भी क्षोभको नहीं प्राप्त होती और न वह नेत्र आदि छिद्रोंके बाहर भीतर आती जाती है ॥ २२ ॥ जैसे तिलमें तैल संवित्, हिममें शीत संवित् घृतमें स्नेह संवित् है ऐसेही जीवके भीतर जीव संवित् स्फुरती है ॥ २३ ॥ और पूर्वोक्त जीवाकार जो कोई जीव चित्है वह उपाधिके लयसे स्वच्छताके कारण ब्रह्मात्मामें सौम्य प्राण सहित पृथक् चेतनसे शून्य सुषुप्ति दशाको प्राप्त होती है ॥ २४ ॥

ज्ञात्वत्वचित्युपरतेसाम्यंव्यवहरन्नपि ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुसंबुद्धस्तुर्यवान्मृतः ॥ २५ ॥ सुषुप्तेसौम्यतांयातैःप्राणैःसंचाल्यतेयदा ॥ सजीवधातुःसासंवित्तश्चित्ततयोदिता ॥ २६ ॥ स्वांतःसंस्थजगज्जालंभावाभावैःक्रमभ्रमैः ॥ पश्यतिस्वांतरेवाशुस्फारंबीजइवद्रुमम् ॥ २७ ॥ जीवधातुर्यदावातैः किंचित्संक्षुभ्यतेभृशम् ॥ ततोस्म्यहंसुप्तइतिपश्यत्यात्मनिखेगतिम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जब चित्त सब व्यवहारोंसे उपरम दशाको प्राप्त होताहै उससमय शास्त्रसे समताको जानकर, विचार और एकाग्रतारूप अपने प्रयत्नोंसे ब्रह्मके साक्षात्कारको प्राप्त करके योगीपुरुष जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति नामसे प्रसिद्ध पूर्वोक्त भूमिकाके भेदोंमें व्यवहार करताहो वा समाधिनिष्ठहो परन्तु बोधकी दृढतासे सदा वह तुरीय अवस्था-वाला कहा जाताहै ॥ २५ ॥ सुषुप्तिदशामें सौम्यताको प्राप्त प्राणोंसे उपलक्षित जीव चेतन जब प्राणोंसे संचालित होताहै उससमय वह संवित् भोजक अदृष्टकी परिपाकतासे चित्तरूपसे उदित होताहै ॥ २६ ॥ उससमय जैसे योगी बीजमें स्थित विस्तारयुक्त वृक्षको अपनी योगशक्तिसे पृथक् करके देखताहै ऐसेही भाव अभावरूप क्रमिक भ्रमोंसे जगत्के समूहको अपने अन्तःकरणमें शीघ्र देखताहै ॥ २७ ॥ और जब प्राणवायुके द्वारा जीवचेतन किं-चित् संक्षुभित होताहै तब मैं हुं ऐसा अनुभव करताहै और जब अधिक संक्षुब्ध होताहै तब आकाशमें गमनका अनुभव करताहै ॥ २८ ॥

यदांभसाप्लाव्यतेसौतदावार्यादिसंभ्रमम् ॥ अंतरेवानुभवतिस्वमोदंकुसुमंयथा ॥ २९ ॥ यदापित्तादिनाक्रांतस्तदाग्रीष्मादिसंभ्रमम् ॥ अंतरेवानुभवतिस्फारंबहिरिवाखिलम् ॥ ३० ॥ रक्तापूर्णोरक्तवर्णान्देशकालान्बहिर्यथा ॥ पश्यत्यनुभवात्मत्वात्तत्रैवचनिमज्जति ॥ ३१ ॥ सेवतेवासनांयांतांसोंतः पश्यतिनिद्रितः ॥ पवनक्षोभितोरंध्रैर्बहिरक्षादिभिर्यथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—और जब नाडीके अंतर्गत श्लेष्मके जलसे पूर्ण होताहै तब जल आदिके संभ्रमको अपने २ अन्तः-करणमेंही ऐसे अनुभव करताहै जैसे पुष्प अपने भीतर सुगन्धको ॥ २९ ॥ और जब जीव चेतन पित्त आदिसे आ-क्रांत होताहै तब ग्रीष्म आदिके संपूर्ण संभ्रमको अपने अन्तःकरणमेंही बाह्यके समान अनुभव करताहै ॥ ३० ॥ और रक्तसे पूर्ण होनेपर बाह्यके समान रक्तवर्ण गैरिक आदि देश और कालको देखताहै और अनुभव स्वरूप होनेसे निमग्न होजाताहै ॥ ३१ ॥ जैसे प्राणवायुसे क्षोभित नेत्रादिके छिद्रोंके बाह्य पदार्थोंको देखताहै ऐसेही जिस वासनाकी सेवा करताहै निद्रामें उसीको देखताहै ॥ ३२ ॥

अनाक्रांतेंद्रियच्छिद्रोयतःक्षुब्धोंतरेवसः ॥ संविदानुभवत्याशुसस्वप्नइतिकथ्यते ॥३३॥ समाक्रांतेंद्रियच्छिद्रोयःक्षुब्धोवायुनायदा ॥ परिपश्यतितज्जाग्रदित्याहुर्मुनिसत्तमाः ॥३४॥ इतिविदितवतात्वयाधुनांतःप्रथितमहामतिनेहसत्यताख्या ॥ असतिजगतिनैवभावनीयामृतिहतिसंहतिदोषभावनीया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुरीयस्वरूपविचारो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—नेत्र आदि इन्द्रियोंके छिद्रोंके आक्रमण किये विना अन्तःकरणमें क्षुब्ध होकर जो पदार्थोंको संवित्

अनुभव करती है उसको स्वप्न कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जो प्राणी प्राणवायुसे क्षुब्ध होकरके बाह्य शब्द आदि विषयोंको देखताहै उस दर्शनको श्रेष्ठ मुनि जाग्रत् कहतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ज्ञानवान् महामति तुम हम असत्य जगत्में सत्यता बुद्धि कदापि नहीं करना, क्योंकि जो दृष्टि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और दैविक निमित्तोंसे मरणरूपहैं और उसके कारण और दोष उन सबको अवश्य देनेवालाहैं ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ततुरीयस्वरूपविचारो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

जो सत्यात्माका अवलम्बन नहीं करता उसके मनकीही भ्रांति यह विश्वहै और चित्तके सत्य आत्माके अवलंबन करनेसे यह विश्वभी आत्माही है इस विषयका वर्णन इस २० के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेकथितंसर्वमनोरूपनिरूपणम् ॥ मयाराघवनान्येनकेनचिनामहेतुना॥१॥ दृढनिश्चयवच्चेतोयद्भावयतिभूरिशः ॥ तत्तांयात्यनलाश्लेषादयःपिंडोग्नितामिव ॥ २ ॥ भावाभावग्रहो त्सर्गदृशश्चेतनकल्पिताः ॥ नासत्यानापिसत्यास्तामनश्चापलकारिताः ॥ ३ ॥ मनोमोहेतुकर्तृ स्यात्कारणंचजगत्स्थितेः ॥ विश्वरूपतयैवेदंतनोतिमलिनंमनः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह जो जाग्रत् आदिके स्वरूपका वर्णन तुमसे मैंने कियाहै यह केवल मनके यथार्थ स्वरूप बोध होनेके लिये कहाहै अन्य किसी प्रयोजनसे नहीं कहा ॥ १ ॥ दृढ निश्चयवाला चित्त जिस पदार्थकी अधिक भावना करताहै उसीका रूप ऐसेहो जाताहै जैसे अग्निके संबंधसे लोहका गोला अग्निरूपताको ॥ २ ॥ ऋ ॥ भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, इत्यादि दृष्टि सब चेतनसे कल्पितहैं वे दृष्टि सत्यरूपभी नहीं हैं और न असत्यरूपहै किंतु मनकी चपलतासे अनिर्वचनीय रूपहैं ॥ ३ ॥ व्यष्टिरूपसे भ्रांतिका कर्ता और समष्टिरूपसे जगत्की स्थितिका कारणभी है विश्वके कारणभूत् अविद्या कलंकित यह मन इस जगत्का विस्तार करताहै ॥ ४ ॥

मनोहिपुरुषोनामतंनियोज्यशुभेपथि ॥ तज्जयैकांतसाध्याहिसर्वाजगतिभूतयः ॥ ५ ॥ पुरुषश्चेच्छ रीरंस्यात्कथंशुक्रोमहामतिः ॥ अगमद्विविधाकारंजन्मांतरशतभ्रमम् ॥ ६ ॥ अतश्चित्तंहिपुरुषःशरी रंचेत्यमेवहि ॥ यन्मयंचभवत्येतत्तदवाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥ यदतुच्छमनायासमनुपाधिगतभ्रमम् ॥ यत्नात्तदनुसंधानंकुरुतत्तामवाप्स्यसि ॥ ८ ॥ अभिपततिमनःस्थितंशरीरंनतुवपुराचरितंमनःप्रयाति॥ अभिपततुतवात्रतेनसत्यंसुभगमनःप्रजहात्वसत्यमन्यत् ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनोरूपवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—मनही पुरुषहै उसको शुभमार्गमें लगाना उचितहै क्योंकि मनके जयसे सम्पूर्ण जगत्की विभूति सर्वथा साध्यहै ॥ ५ ॥ यदि शरीर पुरूष होता तो महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य विविध आकारवाले सैकडों जन्मके भ्रमको कैसे प्राप्त होते ॥ ६ ॥ इसलिये मनही पुरूषहै और शरीर भित्ति आदिके तुल्य सर्वथा विषयरूपहै जिस आकारमय यह मन होताहै उसको निश्चयरूपसे प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जो महान्है, और अपना स्वरूप होनेसे अन्यत्र गमनके परिश्रम बिना साध्यहै तथा उपाधि तथा भ्रमसे शून्यहै उसीका ध्यान तुम करो और तद्रूपता तुमको प्राप्त होगी ॥ ८ ॥ जहां २ मन स्थितहै वहां २ शरीर अवश्य जाताहै परन्तु जिस देशमें शरीरहै वहां नियमपूर्वक सर्वदा मन नहीं जाता इसलिये हे शुभगरामजी ! जो सत्य आत्मवस्तुहै उसीकी प्राप्तिमें तुमारा मन लगे और असत्य देह इन्द्रिय आदि भ्रमोंको त्यागे ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोनिरूपणं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः॥ २१॥

कल्पना करनेवालेके अभावसे विशुद्ध ब्रह्ममें मनकी सिद्धि नहीं होसकती; और अविद्यासे अविशुद्धमें मनकी सिद्धि होनेसे नानाप्रकारके मतका विकल्प हुआ इस विषयका वर्णन इस २१ के सर्गमें किया गयाहै॥

श्रीरामउवाच॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसंशयोयोमहानयम्॥ हृदिव्यावर्त्ततेलोलःकल्लोलइवसागरे॥ १॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नेततेनित्येनिरामये॥ म्लानासंविन्मनोनाम्नीकुतःकेयमुपस्थिता॥ २॥ यस्माद न्यन्ननामास्तिनभूतंनभविष्यति॥ कुतःकीदृक्कथंतत्रकलंकस्तस्यविद्यते॥ ३॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ साधुरामत्वयाप्रोक्तंजातातेमोक्षभागिनी॥ मतिरुत्तमनिष्यंदानंदनस्येवमंजरी॥ ४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! हे सर्वधर्मज्ञ! मेरे हृदयमें एक महान् संशय ऐसे चंचलतासे वर्तमानहै जैसे समुद्रमें तरंग॥ १॥ वह यह है कि देशकाल आदिसे अनवच्छिन्न; व्यापक निरामय ब्रह्ममें विषय आकारसे कलुषित यह मन नामकी संवित् किसकारणसे और किसस्वरूपसे आके उपस्थित हुई है॥ २॥ क्योंकि उस ब्रह्ममें अविद्यादि कलंक तीनोंकालमें नहीं तब उसमें किसकारणसे और किसप्रकारका मनहै?॥ ३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! तुमने बहुत अच्छा कहा तुमारी बुद्धि अब मोक्षकी भागिनी ऐसी होगई है जैसे उत्तम प्रवाहवाली नन्दनवनकी लता॥ ४॥

पूर्वापरविचारार्थतत्परेयंमतिस्तव॥ संप्राप्स्यसिपदंप्रोच्चैर्यत्प्राप्तंशंकरादिभिः॥ ५॥ प्रश्नस्यास्यतु हेरामनकालस्तवसंप्रति॥ सिद्धांतःकथ्यतेयत्रतत्रायंप्रश्नउच्यते॥ ६॥ सिद्धांतकालेभवताप्रष्टव्यो हमिदंपरम्॥ करामलकवत्तेनसिद्धांतस्तेभविष्यति॥ ७॥ सिद्धांतकालेप्रश्नोक्तिरेषातवविराजते॥ प्रावृषीवर्हिकेकोक्तिर्युक्ताशरदिहंसगीः॥ ८॥

अर्थ—पूर्वापरके विचारमें यह तुमारी बुद्धि तत्परहै इससे उस उच्चपदको तुम पाओगे जो शंकर आदिने पा-याहै॥ ५॥ परन्तु इस तुमारे प्रश्नका इससमय काल नहीं है जहां (निर्वाण प्रकरणमें) सिद्धान्त कहेंगे वहांही यह तुमारा प्रश्न कहा जायगा॥ ६॥ सिद्धान्तकाल अर्थात् शुद्धआत्माके अनुभव कालमें यह तुम मुझसे पूंछना, उसस-मय हस्तगत आमलकके समान सिद्धान्त पदार्थ तुमको होजायगा, इससमय तो यही पूंछना चाहिये कि अनुभव वि-रूद्ध आत्माकी शुद्धि कैसे है और अनुभव विरूद्ध शुद्धको अंगीकार करके उसमें मलिनता कैसे आई यह प्रश्न नहीं करना चाहिये॥ ७॥ सिद्धान्तकालमेंही यह तुमारी प्रश्नोक्ति ऐसे शोभित होती है जैसे वर्षाकालमें मयूरकी और शरद्ऋतुमें हंसकी बाणी॥ ८॥

सहजोनीलिमाव्योम्निशोभतेप्रावृषःक्षये॥ प्रावृषित्वतनूदग्रपयोदपटलोत्थितः॥ ९॥ अयंप्रकृतआर ब्धोमनोनिर्णयउत्तमः॥ यद्वशाज्जनताजन्मतदाकर्णयसुव्रत॥ १०॥ एवंप्रकृतिरूपेयंमनोमननधर्मि णी॥ कर्मेतिरामनिर्णीतंसर्वैरेवमुमुक्षुभिः॥ ११॥ शृणुदर्शनभेदेनतन्नामामिमताकृतिम्॥ वाग्मि नांवदतांयातंचित्राभिःशास्त्रदृष्टिभिः॥ १२॥

अर्थ—आकाशकी सहज नीलता वर्षाकालके अंतमेंही शोभित होती है और वर्षाकालमें तो विशाल मेघके पटलका उदय शोभता है॥ ९॥ हे सुव्रत हे रामजी! यह जो प्रकृत उत्तम मनका निर्णय आरम्भ किया है जिस म-नके कारण सब जनसमूहका जन्म होताहै उसको तुम सुनो॥ १०॥ इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे अज्ञके अनुभव-सेभी मलिनताके सिद्ध होनेसे उसके उपहित चित्तको प्रकृति कहतेहैं मनन धर्मिणी होनेसे मन कहतेहैं और क-र्मेन्द्रियके व्यापारोंके करनेसे मुमुक्षुओंने कर्मभी इसीको निर्णित किया है बडे २ वावदूक वादियोंकी चित्रविचित्र शास्त्रदृष्टियोंसे दर्शन भेदसे उसके अनेक नाम तथा आकारको सुनो॥ ११॥ १२॥

यंयंभावमुपादत्तेमनोमननचंचलम्॥ तत्तामेतिघनामोदमंतस्थःपवनोयथा॥ १३॥ ततस्तमेवनिर्णी यतमेवचविकल्पयन्॥ अंतःस्थयारंजनयारंजयन्स्वामहंकृतिम्॥ १४॥ तन्निश्चयमुपादायतत्रैवरस मृच्छति॥ यन्मयत्वंशरीरेतुततोबुद्धींद्रियेषुच॥ १५॥ यन्मयंहिमनोरामदेहस्तदनुतद्वशः॥ तत्ता मायातिगंधांतःपवनोगंधतामिव॥ १६॥

अर्थ—जिस २ वासनासे जैसे भावको मननशक्तिसे चंचल यह मन ग्रहण करताहै उसका रूप ऐसे होजाताहै जैसे सौगन्ध्य वा दौर्गन्ध्यमें स्थितपवन॥ १३॥ इसी कारणसे अपनी २ वासनासे कल्पित सिद्धान्तकी युक्तियोंसे निर्णय करके, उसीकी कल्पना करते हुये अपने अन्तःकरणमें स्थित जो अपने कल्पित अर्थमें राग है उससे

अपने अहंकारको उसीका रूप बताते हुये ॥ १४ ॥ वैसाही निश्चय करके उसी भावनाके अनुसार रसके आस्वादन चमत्कारको वह प्राप्त होताहै जैसा आकार शरीरमें होताहै वैसाही बुद्धि इन्द्रियोंमें होताहै ॥ १५ ॥ हे राम! यन्मय यह मन होताहै उसके पश्चात् उसके वशमें रहनेवाला शरीरभी वैसाही ऐसे होजाताहै जैसे गन्धके अन्तवर्ती पवन गन्धरूपताको ॥ १६ ॥

बुद्धींद्रियेषुवल्गत्सुकर्मेंद्रियगणस्ततः ॥ स्फुरतिस्वतएवोर्वीरजोलोलइवानिले ॥ १७ ॥ कर्मेंद्रियगणे क्षुब्धेस्वशक्तिंप्रणयत्यलम् ॥ कर्मनिष्पद्यतेस्फारंपांसुजालमिवानिले ॥ १८ ॥ एवंहिमनसःकर्मकर्म बीजंमनःस्मृतम् ॥ अभिन्नैवतयोःसत्ताथथाकुसुमगंधयोः ॥ १९ ॥ यादृशंभावमादत्तेदृढाभ्यासवशा न्मनः ॥ तथास्पंदाख्यकर्माख्यप्रथाशाखाविमुंचति ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानेन्द्रियोंके अपने विषयमें आविर्भूत होनेपर कर्मेन्द्रियोंका गण स्वतः ऐसे स्फुरताहै जैसे रज (धूलि) से चंचल पवनमें धूलिरूपा पृथिवी ॥ १७ ॥ कर्मेन्द्रियगणके संक्षुब्ध होनेपर और अपनी क्रियाशक्तिके प्रकट करनेपर विशाल कर्म ऐसे सिद्ध होताहै जैसे वायुमें धूलिका समूह ॥ १८ ॥ इसप्रकार मनका बीज कर्म है और कर्मका बीज मन कहागयाहै मन और कर्म इन दोनोंकी सत्ता ऐसे अभिन्न है जैसे पुष्प और उसके सुगन्धकी ॥ १९ ॥ दृढ वासनाके अभ्यासके वशसे मन जैसा भाव ग्रहण करताहै वैसाही स्पन्द नाम तथा कर्म नामकी शाखा प्रकट होती है ॥ २० ॥

तथाक्रियांतत्फलतांनिष्पादयतिचादरात् ॥ ततस्तमेवचास्वादमनुभूयाशुबद्ध्यते ॥ २१ ॥ यंयंभाव मुपादत्तेतंतंवस्त्विततिविंदति ॥ तत्तच्छ्रेयोन्यन्नास्तीतिनिश्चयोस्यचजायते ॥ २२ ॥ धर्मार्थकाम मोक्षार्थंप्रयत्नंतेसदैवहि ॥ मनांसिदृढभिन्नानिप्रतिपत्त्यास्वयैवच ॥ २३ ॥ मनोवैकापिलानांतुप्रतिप त्तिनिजामलम् ॥ उररीकृत्यनिर्णीयकल्पिताःशास्त्रदृष्टयः ॥ २४ ॥

अर्थ—और यही मन क्रिया तथा उसके फलको आधारसे सिद्ध करताहै और उसके अनन्तर उस कर्मफलका आस्वाद् लेताहै और उसके पश्चात् शीघ्र बन्धनमें आजाताहै ॥ २१ ॥ जिस २ भावको ग्रहण करताहै वह वस्तुहै ऐसा अपने मनमें जानताहै, और वही २ कल्याणकारी है और नहीं है ऐसा निश्चय इसके हृदयमें उत्पन्न होताहै ॥ २२ ॥ अपनी २ वासनासे दृढतासे भिन्न अपने २ निश्चयसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके लिये सदा प्रयत्न करतेहैं ॥ २३ ॥ इन वादियोंमेंसे कपिलमतके अनुयायी विवेकी होनेसे असंग चिन्मात्र "त्वम्" पदार्थ (जीव वा पुरूष) को अपने निश्चयसे निर्मल जानतेहैं; और तत्पदार्थ विषयके श्रुतिका अवलम्बन करनेसे व्यामोहके कारण; अपनी बुद्धिसे सुख दुःख मोहात्मक तथा जडजगत्का उपादान कारण वैसाही सुख दुःख मोहात्मक जड तथा गुणात्मक प्रधान होना चाहिये ऐसा अंगीकार करके, और पुनः २ उसीका आस्वादन करके वही तत्वहै ऐसा निश्चय करके उसी प्रकार शास्त्रकी दृष्टि कल्पितहैं ॥ २४ ॥

मोक्षेतुनान्यथाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रतिबिंबंतिस्थिताःस्वनियमभ्रमैः ॥ २५ ॥ वेदां तवादिनोबुद्ध्याब्रह्मेदमितिरूढया ॥ मुक्तिःशमदमोपेतानिर्णीयपरिकल्पिता ॥ २६ ॥ मुक्तौतुनान्य थाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रविवृण्वंतिस्वैरेवनियमभ्रमैः ॥ २७ ॥ विज्ञानवादिनोबुद्ध्या स्फुरत्स्वभ्रमपूरया ॥ मुक्तिःशमदमोपेतानिर्णीयपरिकल्पिता ॥ २८ ॥

अर्थ—निज कथित उपायके बिना मोक्षकी प्राप्ति किसीको नहीं होती ऐसा निश्चय किये हुये अपने कल्पित नियमोंके भ्रमसे और भ्रममें स्थित अन्य उपायोंसे निवृत्त होके ग्रन्थ रचना आदिके द्वारा अपने सिद्धान्तको प्रकाश करते हुये अन्य लोगोंकी बुद्धियोंमें उसे प्रतिबिम्बित करतेहैं ॥ २५ ॥ और श्रुतिप्रमाणसे अध्यारोप अपवाद न्यायसे वेदान्तवादी कहतेहैं यह सब जगत् ब्रह्महीहै उससे भिन्न अणुमात्रभी नहीं है इस रूढतासे शमदमादि द्वारा सबसे उत्तम मुक्ति निर्णय करके कल्पित की गई है ॥ २६ ॥ और इसके विरुद्ध मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ऐसे दृढ चित्तवाले वेदान्तवादी अपने नियमके भ्रमोंसे अपने सिद्धान्तको ग्रन्थ आदि रचना द्वारा दूसरोंपर प्रकट करतेहैं ॥ २७ ॥ और विज्ञानवादी स्फुरते हुये भ्रमके प्रवाहरूप बुद्धिसे यह निर्णय करके कल्पित कियाहै कि शमदमसे मुक्ति प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥

मुक्तौतुनान्यथाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रविवृण्वंतिस्वैरेवनियमभ्रमैः ॥ २९ ॥ आर्हताभि रन्यैश्वस्वयाभिमतयेच्छया ॥ चित्राश्चित्रसमाचारैःकल्पिताःशास्त्रदृष्टयः ॥ ३० ॥ निर्निमित्तोत्थ

सौम्यांबुबुद्बुदौघैरिवोत्थितैः ॥ स्वनिश्चितैरीतिप्रौढानानाकाराहिरीतयः ॥ ३१ ॥ सर्वासामेवचैता सांरीतीनामेवमाकरः ॥ मनोनाममहाबाहोमणीनामिवसागरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके विरुद्ध मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा निश्चय करके अपने नियमोंके भ्रमोंसे अपने सिद्धान्तको ग्रंथ आदिकी रचनाद्वारा प्रकाश करतेहैं ॥ २९ ॥ और आर्हत (जैन) आदि तथा अन्यवादी गणने अपनी अभिमत इच्छासे तथा चित्रविचित्र विवसन (दिगंबरता) और भिक्षाचर्या आदि आचारोंसे शास्त्रदृष्टियोंकी कल्पना की है ॥ ३० ॥ जैसे बिना निमित्त शांत जलमें बुद्बुदोंके समूह निकलतेहैं ऐसेही अकारण अविर्भूत अपने २ निश्चयसे ये नानाप्रकारकी शास्त्रकी रीतियां और हुई हैं ॥ ३१ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इन सब रीतियोंका मन ऐसे आकर (खानि) है जैसे सब मणियोंका समुद्र ॥ ३२ ॥

ननिंबेक्षूकटुस्वादूशीतोष्णौनेंदुपावकौ ॥ यद्यथापरमाभ्यस्तमुपलब्धंतथैवतत् ॥ ३३ ॥ यस्त्वकृत्रिम आनंदस्तदर्थप्रयतैर्नरैः ॥ मनस्तन्मयतांनेयंयेनासौसमवाप्यते ॥ ३४ ॥ दृश्यंसंपरिडिंभस्वंतुच्छंपरिहरन्मनः ॥ तज्जाभ्यांसुखदुःखाभ्यांनावश्यंपरिकृष्यते ॥ ३५ ॥ अपवित्रमसद्रूपंमोहनंभयकारणम् ॥ दृश्यमाभासमाभोगिबंधंमाभावयानघ ॥ ३६ ॥

अर्थ—न तो निम्ब कटु है और न इक्षु (ईख) स्वाद है, ऐसेही न चंद्रमा शीत है न अग्नि उष्ण है किंतु भोग करानेवाले अदृष्टके फलकी उत्पत्तिपर्यन्त (चिरकालसे) जिसने जिस पदार्थमें जैसा अभ्यास कियाहै उसको वैसाही वह प्राप्त हुआहै इसी कारणसे चंद्रमण्डलमें तथा सूर्य और अग्नि आदिके मण्डलोंमें निवास करनेवाले देवताओंको शीत उष्ण आदिकी पीडा नहीं होती ॥ ३३ ॥ जो निरतिशय ब्रह्मानंद है उसकेलिये प्रयत्न करनेवाले मनुष्योंके चाहिये कि मनको ब्रह्ममय करें जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ अच्छी रीतिसे बालकके समान स्नेह करनेवाला अपना मन तुच्छ दृश्य पदार्थको त्यागता हुआ दृश्यजनित सुख तथा दुःखसे आकर्षित नहीं होता ॥ ३५ ॥ हे पापरहित रामजी ! अपवित्र, असत्रूप, अज्ञानदायक, भयका हेतु, बिना विचारे विशालरूप और बंधकारक इस दृश्यकी भावना तुम मत करो ॥ ३६ ॥

मायैषासाह्यविद्यैषाभावनैषाभयावहा ॥ संविदस्तन्मयत्वंयत्तत्कर्मेतिविदुर्बुधाः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वादृश्यैकतानत्वंविद्धित्वंमोहनंमनः ॥ प्रमार्जयैवतन्मिथ्यामहामलिनकर्दमम् ॥ ३८ ॥ दृश्यतन्मयतायैषा स्वभावस्थानुभूयते ॥ संसारमदिरासेयमविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ ३९ ॥ अनयोपहतोलोकःकल्याणंनाधिगच्छति ॥ भास्वरंतापनालोकंपटलांधेक्षणोयथा ॥ ४० ॥

अर्थ—संवित् (ज्ञान) का जो दृश्यमय होनाहै उसीको पूर्वोक्त रीतिसे बंधनकारक कर्म बुद्धिमान् जन कहतेहैं और वही माया तथा अविद्या है और यही भयदायिनी भावनाहै ॥ ३७ ॥ मनको केवल दृश्यमय देखके तुम यह जानो यही मोहित (अज्ञानी) करनेवाला है, इसलिये महा मलिन कर्दमरूप इस मिथ्या मनको शुद्ध करो ॥ ३८ ॥ स्वभावमें स्थित जो दृश्यमें तन्मयता अनुभूत होती है यही संसाररूपी मदिरा है और इस दृश्यरूपताको पण्डितजन अविद्या कहतेहैं ॥ ३९ ॥ इससे मारा हुआ संसार कल्याणको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे मेघपटलसे नेत्रान्ध सूर्यके प्रकाशमान प्रकाशको नहीं देखता ॥ ४० ॥

स्वयमुत्पद्यतेसाचसंकल्पाद्व्योमवृक्षवत् ॥ असंकल्पनमात्रेणभानायांमहामते ॥ ४१ ॥ क्षीणायांस्वरसादेवविमर्शेनविलासिना ॥ असंसंगःपदार्थेषुसर्वेषुस्थिरतांगतः ॥ ४२ ॥ सत्यदृष्टौप्रपन्नायामसत्येक्षयमागते ॥ निर्विकल्पचिदच्छात्मासआत्मासमवाप्यते ॥ ४३ ॥ नसत्तायस्यनासत्तानसुखंनापिदुःखिता ॥ केवलेकेवलीभावोयस्यांतरुपलभ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह अविद्या संकल्प मात्रसे आकाशके वृक्षके तुल्य आपही उत्पन्न होती है, और हे महामते ! असंकल्प मात्रसे भावनाके ॥ ४१ ॥ क्षीण होनेपर अपने स्वभावसेही समाधिकी दृढतासे श्रवण मननरूप विचारसे संपूर्ण पदार्थोंमें संगका अभाव स्थिर होजाताहै ॥ ४२ ॥ सत्य दृष्टि प्राप्त होनेपर तथा असत्यका क्षय होनेपर स्वच्छ स्वभाव परमार्थ तथा सत्यरूप आत्मा प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ जिस परमात्मामें व्यक्तता वा अव्यक्तता नहीं है तथा जिसमे विषयजनित सुख दुःखभी नहीं है किंतु केवल शुद्ध स्वभाव रूप अंतर्मेही प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

अभव्ययाभावनयानांचित्तेंद्रियदृष्टिभिः ॥ आत्मनोनन्यभूताभिरप्रियैःपरिवर्जितः ॥ ४५ ॥ वासनाभिरनंताभिर्व्योमेवघनराजिभिः ॥ संदिग्धायांयथारज्ज्वांसर्पतत्त्वंतथैवहि ॥ ४६ ॥ चिदाकाशात्मनाबं

धस्त्वबंधेनैवकल्पितः ॥ कल्पितंकल्पितंवस्तुप्रतिकल्पनयान्यथा ॥ ४७ ॥ तदेवान्यत्वमादत्तेखमहोरात्रयोरिव ॥ यदतुच्छमनायासमनुपाधिगतभ्रमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनर्थके हेतुभूत देह इन्द्रिय आदिमें अहंभावनासे वह आत्मा प्राप्त नहीं होता, और आत्माका शरीर आदिके साथ जो अभेदका अभ्यासहै उससे वर्जित ॥ ४५ ॥ तथा मेघराशियोंसे आकाशके समान अनन्त वासनाओंसे जो वर्जितहै उसको वह सत्यरूप आत्मा प्राप्त होताहै जैसे रज्जुमें सन्देह होनेसे सर्पका भान होताहै ॥ ४६ ॥ ऐसेही कल्पित २ वस्तुको अन्यथा कल्पना करनेसे बन्धरहित चिदाकाशने अपने आत्मामेंही बन्धकी कल्पना की है ॥ ४७ ॥ जैसे रात्रि तथा दिनमें आकाश अन्य २ रूप धारण करताहै ऐसेही वह आत्मा भिन्न २ रूप धारण करताहै जो महान् स्वभाव सिद्ध, उपाधि और भ्रमसे रहित ॥ ४८ ॥

तत्तत्कल्पनयातीतंतत्सुखायैवकल्पते ॥ शून्यएवकुसूलेतुसिंहोस्तीतिभयंयथा ॥ ४९ ॥ शून्यएवशरीरेतबंद्धोस्मीतिभयंतथा ॥ शून्यएवकुसूलेतुप्रेक्ष्यसिंहोनलभ्यते ॥ ५० ॥ तथासंसारबंधार्थःप्रेक्षितोसौनलभ्यते ॥ इदंजगदयंचाहमितिसंभ्रांतमुत्थितम् ॥ ५१ ॥ बालानांमध्यमेकालेछायावैतालिकीयथा ॥ कल्पनावशतोजंतोर्भावाभावशुभाशुभाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—तथा उन २ कल्पनाओंसे अतीतहै वह आत्मा केवल सुखकेही लिये होताहै, जैसे शून्य कुसूल (ईट आदिसे बने हुवे अन्न रखनेके स्थान) में सिंहहै ऐसा भय होताहै ॥ ४९ ॥ ऐसेही शून्य इस शरीरमें यह भय होताहै कि मैं बद्ध हुं, और शून्य कुसूलमें जैसे फिरके देखनेसे सिंह नहीं मिलता ऐसेही देखा हुआ आत्मा संसारके बंधनके लिये नहीं होता यह जगत् और यह शरीर आदि संघात संभ्रम ऐसेही प्रकटहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जैसे वृक्षके मूल आदि स्थानोंकी गाढी छायामें बालकोंको वेतालकी छायाकी भ्रांति होती है, और कल्पनाहीके बशसे प्राणीको विभव, और दरिद्रता, तथा उनके अनुरूप शुभ अशुभ ॥ ५२ ॥

क्षणादसत्तामायांतिसत्तामपिपुनःक्षणात् ॥ मातैवगृहिणीभावगृहीताकंठलंबिनी ॥५३॥ करोतिगृहिणीकार्यंसुरतानंददासती ॥ कांतैवमातृभावेनगृहीताकंठलंबिनी ॥ ५४ ॥ नूनंविस्मारयत्येवमन्मथंमातृभावनात् ॥ भावानुसारिफलदंपदार्थौघमवेक्ष्यच ॥ ५५ ॥ नज्ञेनेहपदार्थेषुरूपमेकमुदीर्यते ॥ दृढभावनयाचेतोयद्यथाभावयत्यलम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—क्षणमेंही सत्ताको प्राप्त होते है और पुनः क्षणमें असत्ताको प्राप्त होते है स्त्रीभावसे गृहीत कण्ठमें लग्न माताही ॥ ५३ ॥ सुरतका आनन्द देती हुई स्त्रीका कार्य्य करती है, और स्त्रीही माताके भावसे गृहीत कण्ठमें लग्न ॥ ५४ ॥ मातृभावनासे निश्चय करके कामके विकारको विस्मृत करादेती है, इसलिये भावनाके अनुसार पदार्थोंके समूह फलको देते हैं ऐसा निश्चय करके ॥ ५५ ॥ ज्ञानीपुरूष पदार्थोंमें एकरूप नहीं देखता, और दृढभावनासे चित्त जैसा २ निश्चय करताहै ॥ ५६ ॥

तत्तत्फलंतदाकारंतावत्कालंप्रपश्यति ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयन्मृषा ॥ ५७ ॥ यद्यथायेननिर्णीतंतत्तथातेनलक्ष्यते ॥ भाविताकाशमातंगंव्योमहस्तितयामनः ॥ ५८ ॥ व्योमकाननमातंगींव्योमस्थामनुधावति ॥ तस्मात्संकल्पमेवत्वंसर्वभावमयात्मकम् ॥ ५९ ॥ त्यजरामसुषुप्तस्थःस्वात्मनैवभवात्मनः ॥ मणिर्हिप्रतिबिंबानांप्रतिषेधक्रियांप्रति ॥ ६० ॥

अर्थ—उन २ फलोंको और उन आकारोंको तबतक देखताहै, ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो संसारमें सत्य न हो और जो मिथ्या न हो ॥ ५७ ॥ जिसने जिस प्रकारका निर्णय कियाहै उससे उसी प्रकार यह जगत्का पदार्थ अनुभूत होताहै, जिस मनने आकाशको हस्तीभावसे कल्पित कियाहै वह कामातुर होके ॥ ५८ ॥ आकाशबन चारिणी अपने संकल्पसे कल्पित हस्थिनीके पीछे दौडताहै इसलिये हे रामजी ! सम्पूर्ण संकल्पमय पदार्थको तुम ॥ ५९ ॥ सुषुप्तपदमें स्थित होके त्यागो और अपने पारमार्थिक अद्वैतानन्दरूपसे स्थित होओ, और यदि इच्छारहित मणिके सदृश प्रतिबिम्बि तुममें प्रवेश करै तो कोई हानि नहीं क्योंकि प्रतिबिंबोंके निषेधके प्रति मणि ॥ ६० ॥

नशक्तोजडभावेननतुरामभवादृशः ॥ यदात्मनिजगद्रामतवेहप्रतिबिंबति ॥ ६१ ॥ तदवस्त्वितिनिर्णीयमातेनागच्छरंजनम् ॥ तदेवसत्यमितिवाप्यभिन्नंपरमात्मनः ॥ ६२ ॥ मत्वांतस्त्वमनाद्यंतंभावयात्मानमात्मना ॥ चेतसिप्रतिबिंबंतियेभावास्तवराघव ॥ रंजयंत्वन्यसक्तत्वान्मातेत्वांस्फटिकंयथा

॥ ६३ ॥ स्फटिकमननंयथाविशंतिप्रकटतयानचरंजनाविचित्रा ॥ इहहिविमननंतथाविशंतुप्रकटतया भुवनैषणाभवंतम् ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्के मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—जड होनेके कारण चेतनरूप तुमारे सदृश समर्थ नहीं, और हे रामजी ! जो जगत् तुममें प्रतिबिम्बित होताहै ॥ ६१ ॥ वह मिथ्याहै ऐसा निश्चय करके तुम उसका रूप मतहो, अथवा परमात्मासे अभिन्न वह परमार्थ रूप ब्रह्महीहै ॥ ६२ ॥ ऐसा अन्तःकरणमें निश्चय करके अनादि अनन्त आत्मस्वरूपको आत्मासे निश्चय करो, और हे रामजी ! जो जगत्के पदार्थ तुमारे चित्तमें प्रतिबिंबित होते हैं वे अन्य देहादि निष्ठ होनेसे तुमको रागयुक्त न करें ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! प्रतिबिंबित पदार्थोंके विचित्र रंग रागसे रहित स्फटिकमें जैसे प्रकटरूपसे प्रवेश करतेहैं परन्तु यथार्थमें उनके रागकी विचित्रता उसमें कुछ नहीं है ऐसेही द्वैतपदार्थोंकी रागादि वासनासे शून्य तुमारे स्वरूपमें प्रारब्ध कर्मके भोगके उचित जगत्के व्यवहारकी इच्छा प्रकटरूपसे प्रवेश करै परन्तु उसकी विशेषता तुममें कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विज्ञानवादो नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस २२ के सर्गमें प्रबल ज्ञानवान्के सब दोषोंका नाश; मनकी प्रसन्नता और विशुद्ध आत्माका दर्शन वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जंतोःकृतविचारस्यविगलद्वृत्तिचेतसः ॥ मननंत्यजतोज्ञात्वाकिंचित्परिणतात्मनः ॥ १ ॥ दृश्यंसंत्यजतोहेयमुपादेयमुपेयुषः ॥ द्रष्टारंपश्यतोदृश्यमद्रष्टारमपश्यतः ॥ २ ॥ जागर्तव्येपरेतत्त्वेजागरूकस्वजीवतः ॥ सुप्तस्यघनसंमोहमयेसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥ पर्यंतात्यंतवैराग्यात्सरसेष्वरसेष्वपि ॥ भोगेष्वाभोगरम्येषुविरक्तस्यनिराशिषः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! समाधिके अभ्याससे बाह्य तथा आभ्यन्तरीय जगत्के मननको मिथ्या जानकर त्याग करनेसे और किंचित् विशुद्धरूपसे परिणत तथा वृत्ति शून्य विचारवान् जीवका आत्मस्वभाव प्रसन्न होताहै[1] ॥ १ ॥ पुनः अज्ञान भूमिका भेदरूप दृश्यको त्यागनेसे ज्ञानभूमिकामें प्राप्त; प्रमाताकोभी साक्षी चेतनसे वेद्य देखनेसे और भासक चेतनसे भिन्न किसी वस्तुको न देखनेसे स्वभाव प्रसन्न होताहै ॥ २ ॥ और जागने योग्य ब्रह्मतत्वके विषयमें आत्मरूप जागरूक होनेसे और घनीभूत मोहमय संसारके मार्गमें सोनेसे आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके सुखपर्यन्तमें वैराग्य होनेसे क्रमसे मुक्तिरूप रसवाले तथा उस रससे रहित भोगकालमें रमणीय भोगोंमेंभी इच्छा रहित होनेसे आत्मा प्रसन्न होताहै प्राणीका ॥ ४ ॥

व्रजत्यात्माम्भसैकत्वंजीर्णजाड्येनभस्यलम् ॥ गलत्यपगतासंगेहिमापूरइवातपे ॥ ५ ॥ तरंगितासुकल्लोलजललोलांतरासुच ॥ शाम्यंतीष्वथतृष्णासुनद्रीष्विवघनात्यये ॥ ६ ॥ संसारवासनाजालेखगजालइवाखुना ॥ त्रोटितेहृदयग्रंथौश्लथेवैराग्यरंहसा ॥ ७ ॥ कातकंफलमासाद्ययथावारिप्रसीदति ॥ तथाविज्ञानवशतःस्वभावःसंप्रसीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मरूप जलकेसाथ एकत्व प्राप्त होनेपर; अनादिकालसे अज्ञानाकाशके गलित होनेपर और घर्म (घाम) में हिमके समूहके सदृश विषय संगके गलित होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ५ ॥ तथा मनोरथरूप तरंगोंसे वृद्धिको प्राप्त गजके कल्लोलोंके समान चलायमान अभ्यंतरकी तृष्णाओंके वर्षाकालके अन्तमें नदियोंके समान शांत होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ६ ॥ मूषकसे दांतेके द्वारा पक्षीके जालके सदृश संसाररूपी वासना

---

(१) स्वभाव प्रसन्न होताहै इत्यादि पदोंका संबंध ८ वे श्लोकसे हुआहै।

जालके टूटनेपर, और वैराग्यरूपी वेगसे हृदयकी ग्रन्थिके ढीली होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ७ ॥ कतककी धूलिसे जैसे जल स्वच्छ होताहै ऐसेही ज्ञानके कारणसे मन प्रसन्न होताहै ॥ ८ ॥

नीरागंनिरुपासंगंनिर्द्वंद्वंनिरुपाश्रयम् ॥ विनिर्यातिमनोमोहाद्विहगःपंजरादिव ॥ ९ ॥ शांतेसंदेहदौरात्म्येगतकौतुकविभ्रमम् ॥ परिपूर्णांतरंचेतःपूर्णेंदुरिवराजते ॥ १० ॥ जनितोत्तमसौंदर्यादूरादस्तमयोन्नता ॥ समतोदेतिसर्वत्रशांतेवातइवार्णवे ॥ ११ ॥ अंधकारमयीमूकाजाड्यजर्जरितांतरा ॥ तनुत्वमेतिसंसारवासनेवोदयेक्षपा ॥ १२ ॥

अर्थ—कामसे रहित विषयके गुणोंके अनुसंधानसे शून्य भार्या आदि जनसमूहोंसे वर्जित, तथा बार २ भोगके लाभकी भूमिसे रहित मन अज्ञानसे ऐसे निकल जाताहै जैसे पंजरसे पक्षी ॥ ९ ॥ सन्देहरूपी दुष्टात्माके शांत होनेपर कौतुक तथा भ्रमसे रहित तथा अंतसे परिपूर्ण चित्त पूर्ण चंद्रमाके समान शोभित होताहै ॥ १० ॥ उत्तम सुन्दरताको उत्पन्न करनेहारी अवनतिसे दूर और उन्नतिरूप समदृष्टिता ऐसे उदय होती है जैसे वायुके शांत होनेपर समुद्रमें शांतता ॥ ११ ॥ सर्वथा अज्ञानरूप अन्धकारमय जडतासे अन्तःकरणको जर्जरीभूत करनेवाली वासना ऐसे शांत होती है जैसे सूर्यके उदयसे रात्रि ॥ १२ ॥

दृष्टचिद्भास्करप्रज्ञापद्मिनीपुण्यपल्लवा ॥ विकसत्यमलोद्योताप्रातर्द्यौरिवरूपिणी ॥ १३ ॥ प्रज्ञाहृदयहारिण्योभुवनाह्लादनक्षमाः ॥ सत्वलब्धाःप्रवर्द्धंतेसकलेंदोरिवांशवः ॥ १४ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन ज्ञातज्ञेयोमहामतिः ॥ नोदेतिनैवयात्यस्तमभूताकाशकोशवत् ॥ १५ ॥ विचारणापरिज्ञातस्वभावस्योदितात्मनः ॥ अनुकंप्याभवंतीहब्रह्मविष्ण्वद्रशंकराः ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्तरूपी सूर्यको देखनेवाली, गुरू सेवा तथा श्रवण मनन समाधि अभ्यास रूप पुण्यवाली विवेकरूपा पद्मिनी हृदयरूपी तडागमें ऐसे विकसित होती है जैसे प्रातःकाल सूर्यके प्रकाशसे निर्मल आकाश ॥ १३ ॥ मनोहर, संसारको प्रसन्न करनेहारी सत्वगुणकी वृद्धिसे प्राप्त बुद्धि ऐसे बढती हैं जैसे संपूर्ण चंद्रमाके किरण ॥ १४ ॥ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ज्ञात ज्ञेय (ब्रह्मवेत्ता) महाबुद्धिमान् प्राणी न तो उदय और न अस्त ऐसे होताहै जैसे वायु आदि भूतरहित आकाशकोश ॥ १५ ॥ विचारसे जिसका निज आत्मस्वरूप आविर्भूत हुआहै उसके अनुकंपनीय ब्रह्मा विष्णु इन्द्र औ शंकर आदिभी हैं क्योंकि सृष्टि तथा अधिकार आदिमें क्लेशही है ॥ १६ ॥

प्रकटाकारमप्यंतर्निरहंकारचेतसम् ॥ नाप्नुवंतिविकल्पास्तंमृगतृष्णामिवैणकाः ॥ १७ ॥ तरंगवदिमे लोकाःप्रयांत्यायांतिचेतसः ॥ क्रोडीकुर्वंतिचाज्ञंतेनज्ञंमरणजन्मनी ॥ १८ ॥ आविर्भावतिरोभावौसंसारोनेतरक्रमः ॥ इतिताभ्यांसमालोकोरमतेसनिबध्यते ॥ १९ ॥ नजायतेनम्रियतेकुंभेकुंभनभोयथा ॥ भूषितेदूषितेवापिदेहेतद्वदिहात्मवान् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रकटरूपसे आकारवान् होनेपरभी जिसका चित्त अहंकारसे रहितहै उसको सांसारिक विकल्प ऐसे नहीं प्राप्त होते जैसे मृगतृष्णाके जलपानको मृग ॥ १७ ॥ अपने चित्तकी वासनाके वशसे ये सब लोग उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं और जन्ममरण अज्ञानीको वशमें करलेते हैं और ज्ञानीको नहीं ॥ १८ ॥ आविर्भाव और तिरोभावरूप संसार अज्ञानी जीवमें होताहै न कि ज्ञानीको इसमें तत्वज्ञानी मायाकृत व्याघ्रादि कौतुकके सदृश उसमें रमण करताहै और अज्ञानी उसमें बन्ध जाताहै ॥ १९ ॥ जैसे घटके नष्ट वा उत्पन्न होनेसे घटाकाश न उत्पन्न होताहै और न नष्ट होताहै ऐसेही शरीरके भूषित वा दूषित होनेपर आत्मा न नष्ट होताहै और न उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

विवेकउदितेशीतेमिथ्याभ्रममरूदिता ॥ क्षीयतेवासनासाग्रेमृगतृष्णामराविव ॥ २१ ॥ कोहंकथमिदंचेतियावन्नप्रविचारितम् ॥ संसाराडंबरंतावदंधकारोपमंस्थितम् ॥ २२ ॥ मिथ्याभ्रमभरोद्भूतंशरीरपदमापदाम् ॥ आत्मभावनयानेदंयःपश्यतिसपश्यति ॥ २३ ॥ देशकालवशोत्थानिनममेतिगतभ्रमम् ॥ शरीरेसुखदुःखानियःपश्यतिसपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! शीतल विवेकके उदय होनेसे मिथ्या भ्रमरूपी मरुस्थलमें उदित वासना ऐसे क्षय होजाती हैं जैसे सम्मुख उदयको प्राप्त चंद्रमासहित सायंकालमें मरुस्थलकी मृगतृष्णा ॥ २१ ॥ मैं कौनहुं और यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ यह बात जबतक नहीं विचारी गई तबतक अंधकारके सदृश यह मिथ्या संसारका आडम्बर प्राप्तहै ॥ २२ ॥ मिथ्या भ्रमके समूहरूपसे आविर्भूत, और सब आपत्तियोंका स्थान इस संसारको जो आत्मभावनासे सर्वथा निःसार देखताहै अर्थात् बाधित देखताहै वही देखताहै ॥ २३ ॥ देश और कालके बशसे उत्पन्न

आधिदैविक तथा आध्यात्मिक आदि सब दुःख शरीरको हैं न कि पूर्णानन्द आत्मस्वरूप मुझको ऐसा जो भ्रम-रहित देखताहै वही देखताहै ॥ २४ ॥

अपारपर्यंतनभोदिकालादिक्रियान्वितम् ॥ अहमेवेतिसर्वत्रयःपश्यतिसपश्यति ॥ २५ ॥ बालाग्रल क्षभागात्तुकोटिशःपरिकल्पितात् ॥ अहंसूक्ष्मइतिव्यापीयःपश्यतिसपश्यति ॥ २६ ॥ आत्मानमितर च्चैवद्दृश्यानित्याविभिन्नया ॥ सर्वंचिज्ज्योतिरेवेतियःपश्यतिसपश्यति ॥ २७ ॥ सर्वशक्तिरनंतात्मा सर्वभावांतरस्थितः ॥ अद्वितीयश्चिदित्यंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—अपार दिक्काल आदि सहित और परिच्छिन्न प्रमाणवाली उत्पत्ति तथा चलन आदि क्रियासहित सं-सारमें सर्वत्र मैंही पूर्ण हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ २५ ॥ जो सर्वत्रव्यापी होके यह देखताहै कि कोटिप्र-कारसे कल्पित बालके अग्रके लाखवें भागसेभी मैं सूक्ष्म हुं वही देखताहै ॥ २६ ॥ जीवात्मा तथा उससे भिन्न यह संपूर्ण जगत् चित् ज्योतिमात्र है ऐसे जगत्को जो प्राणी उस परमात्मासे अभिन्न दृष्टिसे देखताहै वही देखताहै॥२७॥ सर्व शक्तिमान् और अनन्त, तथा अद्वितीय चिदात्माही सब पदार्थोंमें स्थित है ऐसा जो देखताहै वही देखताहै २८

आधिव्याधिभयोद्विग्नोजरामरणजन्मवान् ॥ देहोहमितियःप्राज्ञोनपश्यतिसपश्यति ॥ २९ ॥ तिर्यगू र्ध्वमधस्ताच्चव्यापकोमहिमामम ॥ द्वितीयोनममास्तीतियःपश्यतिसपश्यति ॥ ३० ॥ मयिसर्वमिदं प्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ चित्तंतुनाहमेवेतियःपश्यतिसपश्यति ॥ ३१ ॥ नाहंनचान्यदस्तीतिब्रह्मैवा स्तिनिरामयम् ॥ इत्थंसदसतोर्मध्येयःपश्यतिसपश्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—आधि, व्याधि, तथा भयसे उद्विग्न, तथा जन्ममरणवान् यह देह मैं नहीं हुं ऐसा जो बुद्धिमान् देखताहै वही देखताहै ॥ २९ ॥ तिरछा ऊपर और नीचे व्यापक मेरा महिमा है और मेरा द्वितीय कोई नहीं है ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३० ॥ जैसे सूत्रमें मणिके समूह गूंथे रहते हैं ऐसेही मेरेमें यह सब संसार गूंथा है और अन्तःकरण तो मैं नहीं हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३१ ॥ अहंकार तथा यह सब दृश्य कुछ नहीं है किंतु निरामय ब्रह्मही सब कुछ है इसप्रकार भूत भविष्यत् वर्तमान अथवा व्यक्त और अव्यक्तके मध्यमें स्थित जो अ-पना स्वरूप देखताहै वही देखताहै ॥ ३२ ॥

यन्नामकिंचित्त्रैलोक्यंसएवावयवोमम ॥ तरंगोब्धाविवेत्यंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ३३ ॥ शोच्यापा ल्यामयैवेयंस्वसेयंमेकनीयसी ॥ त्रिलोकीपेलवेत्युच्चैर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ३४ ॥ आत्मतापरतेत्व त्तामत्तेयस्यमहात्मनः ॥ भवाद्दृपरतेनूनंसपश्यतिसुलोचनः ॥ ३५ ॥ चेत्यानुपातरहितंचिद्भैरवमयं वपुः ॥ आपूरितजगज्जालंयःपश्यतिसपश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह त्रैलोक्य नामसे जो प्रसिद्ध है वह मेरा अवयव ऐसे है जैसे समुद्रमें तरंग ऐसा जो अपने अन्तः-करणमें देखताहै वही देखताहै ॥ ३३ ॥ चेतनके बिना केवल अपनी सत्तासे मृतकके तुल्य होनेसे शोचनीय, और अपनी (चेतनकी) सत्ताकी स्फूर्तिसे पालन की हुई; और दृष्टिमात्रसेभी पीडित होनेसे अति कोमल मेरी छोटी भगिनीके सदृश यह त्रिलोकी है ऐसा जो महान् विचारसे देखताहै वही देखताहै ॥ ३४ ॥ जिस महात्माके विचारमें सांसारिक देहादिसे निवृत्त त्वत्ता मत्ता केवल आत्मपरक हैं वही उत्तम नेत्रवाला देखताहै ॥ ३५ ॥ वि-षयके संबंधसे रहित, तथा अपनी सत्ताके प्रकाशसे जगत् जालको व्याप्त करनेवाले चित् भैरवमय शरीरयुक्त इस आत्माको जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३६ ॥

सुखंदुःखंभवोभावोविवेककलनाश्रयाः ॥ अहमेवेतिवानूनंपश्यन्नपिनहीयते ॥ ३७ ॥ स्वात्मसत्ता परापूर्णेजगत्यंशेनवर्त्तिना ॥ किंमेहेयंकिमादेयमितिपश्यन्सुहृद्वनरः ॥ ३८ ॥ अप्रतर्क्यमनाभासंस न्मात्रमिदमित्यलम् ॥ हेयोपादेयकलनायस्यक्षीणासवैपुमान् ॥ ३९ ॥ यआकाशवदेकात्मासर्वभाव गतोपिसन् ॥ नभावरंजनामेतिसमहात्मामहेश्वरः ॥ ४० ॥ तमःप्रकाशकलनामुक्तःकालात्मतांगतः ॥ यःसौम्यःसुसमःस्वस्थस्तंनौमिपदमागतम् ॥ ४१ ॥ यस्योदयास्तमयसंकलनाकलासुचित्रासुचा रुविभवासुजगद्दतासु ॥ वृत्तिःसदैवसकलैकमतेरनंतातस्मैनमःपरमबोधवतेशिवाय ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे अनुत्तमपदविश्रांतिवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—सुख; दुःख गुरू; देवता तथा शास्त्र आदिमें श्रद्धा; और उसमें नित्यानित्य विवेक और उससे श्रवण मनन आदि क्रमसे आत्मपरिचयके भेद ये सब मैं हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३७ ॥ निरतिशय घनानन्द

पूर्ण; और आनन्दके लवसे तर्पित इस जगत्में एक देशवर्त्ती ऐहिक तथा पारलौकिक भोग्यवस्तु मुझे क्या दुःखहै जो त्याज्यहो और क्या उस पदार्थसे मुझे सुखहै जो ग्राह्यहो ऐसा देखता हुआ पुरूष भ्रान्तिरहित दृष्टिहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! तर्कसे अगम्य; विक्षेपरहित; और सन्मात्र यह जगत्है इसप्रकार सम्यक् ज्ञान होनेसे जिसकी त्याज्य और ग्राह्यकी कल्पना क्षीण होगई है वही पुरूषहै ॥ ३९ ॥ जो आकाशके सदृश एकात्माहै और सम्पूर्णभाव पदार्थमें व्याप्त होनेपरभी उन २ पदार्थोंका रूप नहीं होता वा उनमें अनुरक्त नहीं होता वही महात्मा निरतिशय आनन्दके उपभोग करनेमें समर्थ (महेश्वर) है ॥ ४० ॥ जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिसे विनिर्मुक्त, मृत्युकाभी प्रीतिपात्र, सौम्य; सर्वत्र समान और तुरीयाऽवस्थामें प्रतिष्ठित जो प्राप्त पदहै उसको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ४१ ॥ जिसकी यह बुद्धि है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें एकही ब्रह्महै, और विचित्र तथा रमणीय विभववाली जगत्की सृष्टि स्थिति तथा प्रलयरूप कल्पनामें जिसकी ब्रह्माकार वृत्ति अनन्तहै उस परम ज्ञानवान् जीवन्मुक्त शरीरधारी साक्षात् शिवको हमारा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमपद विश्रान्तिवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

ज्ञानीके लिये शरीररूपी नगरीका राज्य और आसक्तिरहित उत्तम भोगोंसे मनका जय तथा उससे सुखका उदय इस २३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यउत्तमपदालंबीचक्रभ्रमवदास्थितः ॥ शरीरनगरीराज्यंकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ १॥ तस्येयंभोगमोक्षार्थंतज्ज्ञस्योपवनोपमा ॥ सुखायैवनदुःखायस्वशरीरमहापुरी ॥२॥ श्रीरामउवाच ॥ नगरीत्वंशरीरस्यकथंनाममहामुने ॥ एतांचाधिवसन्योगीकथंराजसुखैकभाक् ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रम्येयंदेहनगरीरामसर्वगुणान्विता ॥ ज्ञस्यानंतविलासाढ्यास्वालोकार्कप्रकाशिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जो ब्रह्मपदका अलंबन करताहै, और घटकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनके निवृत्त होनेपर कुंभकारके चक्रके भ्रमके समान प्रारब्धके क्षय पर्यंत देह धारणके अनुकूल व्यवहार करनेवालाहै वह जीवन्मुक्त प्राणी शरीररूपी नगरीका राज्य करता हुआभी पापसे नहीं लिप्त होता ॥ १ ॥ उस तत्वज्ञानीके लिये यह वाटिकाके तुल्य शरीररूपी महापुरी भोग और मोक्ष दोनोंके लिये है, और केवल सुखके लिये है न कि दुःखके अर्थ ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले–हे महामुने ! शरीरका नगरी नाम कैसे है और इसमें निवास करता हुआ योगी राज्यके केवल सुखमात्रका भागी कैसे होताहै ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह देहरूपनगरी अतिरमणीय सब गुणोंसेयुक्त; ज्ञानीके लिये अनन्त विलासोंसे पूर्ण तथा आत्मदर्शनरूप सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशितहै ॥ ४ ॥

नेत्रवातायनोद्योतप्रकाशभुवनांतरा ॥ करप्रतोलीविस्तारप्राप्तपादोपजांगला ॥ ५ ॥ रोमराजीलतागुल्मात्वचाजालकमालिता ॥ गुल्फांगुल्यांप्रविश्रांतजंघोरुस्तंभमंडला ॥ ६ ॥ रेखाविभक्तपादाग्रशिलाप्रथमनिर्मिता ॥ चर्ममर्मशिराशाखासंधिसीमामनोरमा ॥७॥ उरूरुततनुभागाग्रनिर्मितोपस्थनिम्नगा॥ कचत्केशावलीकाचदलप्रस्थवनावृता ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः नेत्ररूपी वातायन (झरोंखे) में इन्द्रियरूप दीपकोंसे प्रकाशयुक्त भुवनके अन्तरालसहितहैं तथा हस्तरूप मार्गके विस्तारसे जंगलके पदार्थकी प्राप्तिसे यह शरीररूप नगरी शोभितहै ॥ ५ ॥ तथा रोमके समूहरूपी लतायुक्त चर्ममें स्थित नाड़ियोंके समूहसे शोभित, और पादोंकी अंगुलीमें विश्रान्त जंघा तथा ऊरू (टांग) रूपी स्तम्भ मण्डली युक्त यह नगरी है ॥ ६ ॥ इस नगरीमें रेखाओंसे विभक्त पादके नीचेकी कठिन त्वचाही स्तंभके मूलकी आधार शिला निर्मित की गई हैं और बाह्य (बाहरके) चर्मकी अन्तर्गत मर्मरूपी सीमासे मध्यमें नाड़ियोंकी शाखाओंके प्ररोहरूप सीमासे और हड्डियोंमें संधिरूप सीमासे यह नगरी मनोरमहै ॥ ७ ॥ इसमें दोनों जंघाओंके तथा मध्य शरीरके संधिभागके अग्रभागमें रची हुई उपस्थि इंद्रिय (गुदा वा शिश्न) मध्य नदी है, और शोभायमान केशकी पंक्तिरूप कांचके समान नीलदल पाषाणसे तथा श्मश्रु (दाढी वा मोछा) वा कांखके रोमरूपी बनोंसे यह ढकी हुई है ॥ ८ ॥

भ्रूललाटोष्ठसच्छायवदनोद्यानशोभिता ॥ दृष्टिपातोत्पलाकीर्णकपोलविपुलस्थली ॥ ९ ॥ वक्षःस्थल सरःस्यूतकुचपंकजकोरका ॥ घनरोमावलीछन्नस्कंधक्रीडाशिलोच्चया ॥ १० ॥ उदरश्वभ्रनिक्षिप्तस्वा रब्धाभक्ष्यतत्परा ॥ दीर्घकंठबिलोद्गीर्णवातसंरंभशब्दिता ॥ ११ ॥ हृदयापणनिर्णीतयथाप्राप्तार्थभूषि ता ॥ अनारतनवद्वारप्रवहत्प्राणनागरा ॥ १२ ॥

अर्थ—नील पत्रके समान दोनों भौंहसे, गौर वर्ण, नूतन कमलके सदृश ललाटसे और पुष्पोंके सदृश दोनों ओष्ठोंसे और उत्तम शोभावान् मुखरूपी केलोंके बनसे शोभित दृष्टिपातरूप कमलसे व्याप्त, तथा कपोलरूपी विशाल स्थलीयुक्त शरीरमें जो अति रमणीयहै॥९॥वक्षस्थलरूप तडागमें गूंथे हुये कुचरूपी कमलकी कलियोंसे युक्त और घनीभूत रोमावलीसे आच्छादित दोनों कन्धेरूप क्रीडा पर्वतसे शोभितहै ॥१०॥ उदररूपी गर्त (गढे) में फेंके हुये अपने प्रारब्धके अनुरूप अन्नरूप धनसहित और अनिषिद्ध विषय भोगको विस्तार करनेवाले जिव्हा, कर्ण आदि रूप उत्तम झरोखोंसे विषयरूप नगरनिवासी इस नगरीमें प्रविष्टहैं और दीर्घ कण्ठरूपी बिलसे निकलते हुये प्राणवायुके द्वारा कण्ठरूप कपाटके उद्घाटनसे यह नगरी शब्दित होरही है ॥ ११ ॥ और हृदयरूप आपण (बाजारमें) स्थित विचाररूपी रत्नोंके परीक्षकजनोंने निर्णय करके नेत्र आदि इंद्रियोंके द्वारा जो शब्द आदि पदार्थोंको ग्रहण कियाहै उनसे यह नगरी भूषितहै और नौ (९) इन्द्रियरूपी द्वारोंसे आते जाते हुये प्राणरूपी नगरनिवासी इसमें विराजमानहैं १२

आस्यस्फारवदादृष्टदंतास्थिशकलाकुला ॥ मुखास्पदाभ्रमज्जिह्वाचंडीचर्वितभोजना ॥ १३ ॥ रोमशष्प तरच्छन्नाकर्णकोटरकूपका ॥ स्फिक्शृंखलास्थितोपांतपृष्ठविस्तीर्णजंगला ॥ १४ ॥ गुदोत्थानारघट्टां तप्रद्रुतानंतकर्दमा ॥ चित्तोद्यानमहीवल्गदात्मचिंतावरांगना ॥ १५ ॥ धीवरत्राद्दृढाबद्धचपलेंद्रियम र्कटा ॥ वदनोद्यानहसनपुष्पोद्गममनोरमा ॥ १६ ॥

अर्थ—मुखमें द्वारपर गजदन्त रचनाके तुल्य किंचित् दृष्टदन्तकी अस्थि (हड्डी) के खण्डोंसे पूर्ण है और इसमें मुखनिवासिनी जिव्हारूप चण्डीने अनेक प्रकारके भोजनोंको चर्वित कियाहै ॥ १३ ॥ जहां रोमरूपी दीर्घ तृणोंसे कर्णका कोटररूपी कूप ढका है और पृष्ठके अगल बगलकी अस्थिसे पृष्ठपर्यन्त विस्तीर्ण जंगलसे मनोहर है ॥ १४ ॥ जहां मल तथा मूत्र स्थानसे निःसृत मलमूत्ररूपी कीचड दूरसेही बहरहा है और जहां चित्तरूप उद्यान (वाटिका) की भूमिमें गर्जती हुई आत्मचिन्तारूपा श्रेष्ठ अंगना क्रीडा कररही है ॥१५॥ और बुद्धिरूप चर्मकी रज्जुसे चपल इन्द्रियरूप मर्कट दृढतासे बंधेहैं, और मुखरूपी बाटिकामें उत्पन्न हास्यरूपी पुष्पोंसे यह नगरी मनोहरहै ॥१६॥

स्वशरीरमनोज्ञस्यसर्वसौभाग्यसुंदरी ॥ सुखायैवनदुःखायपरमायहितायच ॥ १७ ॥ अज्ञस्येयमनंता नांदुःखानांकोशमालिका ॥ ज्ञस्यत्वियमनंतानांसुखानांकोशमालिका ॥ १८ ॥ किंचिदस्यांप्रनष्टायांज्ञ स्यनष्टमरिंदम ॥ स्थितायांसंस्थितंसर्वंतेनेयंज्ञसुखावहा ॥ १९ ॥ यदेनांज्ञस्समारुह्यसंसारेविहरत्य लम् ॥ अशेषभोगमोक्षार्थंतेनेयंज्ञरथःस्मृतः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा अपने शरीर और मनको जाननेवाले तत्वज्ञानीकेलिये यह शरीररूप नगरी संपूर्ण सौभाग्ययुक्त और सुन्दरी परम सुखके तथा परम हित (मोक्ष) के अर्थ है न कि दुःखकेलिये ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह शरीररूप नगरी अज्ञानीको अनंत दुःखोंकी कोशमालिका है और ज्ञानियोंकेलिये अनन्त सुखोंकी कोशमाला है ॥१८॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! इस शरीररूप नगरीके नष्ट होनेपर किंचित् तुच्छ वस्तु नाशको प्राप्त होताहै न कि सत्य और स्थित रहनेपर भोग तथा मोक्ष सब कुछ स्थित है इसलिये ज्ञानीको यह सुखदायिनी है ॥ १९ ॥ और ज्ञानीपुरुष इसपर चढके संसारमें भलीभांति विहार करताहै, इस हेतुसे यह शरीररूप नगरी ज्ञानीके रथके तुल्यहै॥२०॥

शब्दरूपरसस्पर्शगंधबंधुश्रियोयतः ॥ अनयैवहिलभ्यंतेतेनेयंज्ञस्यलाभदा ॥ २१ ॥ सुखदुःखक्रियाजा लंयदेषोद्वहतिस्वयम् ॥ तदेषारामसर्वज्ञसर्ववस्तुभरक्षमा ॥ २२ ॥ तस्यांशरीरपुर्यांहिराज्यंकुर्वन्गत ज्वरः ॥ ज्ञस्तिष्ठतिगतव्यग्रःस्वपुर्यामिववासवः ॥ २३ ॥ नक्षिपत्यवटाटोपेमनोमत्ततुरंगमम् ॥ नलो भद्दुर्द्रुमादायप्रज्ञापुत्रींप्रयच्छति ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विषय, बंधु और भोग मोक्षकीश्री इसी शरीरसेही प्राप्त होतीहैं इसलिये ज्ञानीको यह शरीररूप नगरी लाभदायकहै ॥ २१ ॥ सुखदुःखरूप क्रिया समूहोंको यह शरीररूप नगरी स्वयं धारण करतीहै इसलिये हे रामजी ! यह ज्ञानीके अर्थभोग मोक्षके उपयोगी वस्तुओंके संग्रह करनेमें समर्थ है ॥ २२ ॥ संताप रहित तथा स्वस्थ ज्ञानी पुरुष इस शरीररूपी नगरीमें राज्य करते हुये ऐसे स्थितहै जैसे अपनी

नगरीमें इंद्र ॥ २३ ॥ ज्ञानी पुरुषका जो मनरूप मत्त हस्ती योनिरूप गढेमें नहीं गिरता और न वह लोभरूप विष-वृक्षको शुल्क (मूल्य) लेके विवेकवती बुद्धिरूप कन्याको मोह तथा अधर्म आदि दुष्कुलीनोंको देताहै ॥ २४ ॥

अज्ञानपरराष्ट्रंचनरंध्रंत्वस्यपश्यति ॥ संसारारिभयस्यांतर्मूलान्येवनिकृंतति ॥ २५ ॥ तृष्णासारपरावर्त्तेकामसंभोगदुर्गहे ॥ ननिमज्जतिपर्यस्तःसुखदुःखप्रदेवने ॥ २६ ॥ करोत्यविरतंस्नानंबहिरंतरवीक्षणात् ॥ सरित्संगमतीर्थेषुमनोरथगतःक्रमात् ॥ २७ ॥ सकलाक्षजनाऽदृश्यसुखप्रेक्षापरांमुखः ॥ ध्याननाम्निसुखंनित्यंतिष्ठत्यंतःपुरांतरे ॥ ॥ २८ ॥

अर्थ—और अज्ञानरूप जो अन्यके राज्यहैं वे इस ज्ञानीके छिद्रको नहीं देखते और संसाररूप शत्रुके भयके मूल स्नेहादिको यह काट डालताहै ॥ २५ ॥ और कामके संभोगरूप दुष्टग्राह तथा सुखदुःखरूप विलापके साधन सहित तृष्णारूप नदीके महान् भंवरेहमें वह मग्न नहीं होता ॥ २६ ॥ और ज्ञानी पुरुष बाह्य तथा आभ्यंतर पर-मात्माके दर्शनसे आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक नदीके संगमरूप तीर्थोंमें नित्यही स्नान करताहै ॥ २७ ॥ संपूर्ण इन्द्रियरूप जनोंसे बिना विचारे रमणिय विषयोंमें ज्ञानी पुरुष पराङ्मुख रहताहै और ध्यान नाम अन्तःपुरमें नित्य सुखपूर्वक स्थित रहताहै ॥ २८ ॥

सुखावहैषानगरीनित्यंवैविदितात्मनः ॥ भोगमोक्षप्रदाचैषाशक्रस्येवामरावती ॥ २९ ॥ स्थितयासंस्थितंसर्वंकिंचिन्नष्टंननष्टया ॥ ययापुर्यामहीयस्यासाकथंनसुखावहा ॥ ३० ॥ विनष्टेदेहनगरेज्ञस्यनष्टंनकिंचन ॥ आक्रांतकुंभाकाशस्यखस्यकुंभक्षयेयथा ॥ ३१ ॥ विद्यमानंघटंवायुःकिंचित्स्पृशतिनास्थितम् ॥ यथातथैवदेहीस्वांशरीरनगरीमिमाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मतत्वको जाननेवालेको यह शरीररूप नगरी नित्य सुख देनेवाली है और भोग तथा मोक्षप्रद इसप्रकार है जैसे इन्द्रको अमरावतीनगरी ॥ २९ ॥ जिस शरीररूप महानगरीके स्थित रहनेपर सब कुछ स्थित है और नष्ट होनेपर कुछभी नहीं नष्ट हुआ वह भला क्यों कर न सुखदायक हो ॥ ३० ॥ इस शरीररूप न-गरके नष्ट होनेपर ज्ञानीका कुछ ऐसे नहीं नष्ट होता जैसे घटके नष्ट होनेपर घटाकाशको आक्रान्त (अपने अन्तर्गत) करनेवाले महदाकाशका ॥ ३१ ॥ जो घटकी विद्यमानतादशामेंभी कुछ नहीं स्पर्श करता वह उसके न रहनेपर क्या स्पर्श करेगा यह वार्ता जैसे है ऐसेही शरीररूपा नगरीके विषयमें जीवात्माकी है अर्थात् जब यह शरीर विद्य-मान रहतेही कुछ नहीं करसकती तो अभावमें क्या करसकती है ॥ ३२ ॥

अत्रस्थःपुरुषोभोगानात्मासर्वगतोपिसन् ॥ विश्वकल्पकृतान्भुक्त्वापुंसामधिगतार्थभाक् ॥ ३३ ॥ कुर्वन्नपिनकुर्वाणःसमस्तार्थक्रियोन्मुखः ॥ कदाचित्प्रकृतान्सर्वान्कार्यार्थाननुतिष्ठति ॥ ३४ ॥ कदाचिल्लीलयालोलंविमानमधिरोहति ॥ अनाहतगतिःकांतंविहर्तुममलंमनः ॥ ३५ ॥ तत्रस्थोलोकसुंदर्यासततंशीतलांगया ॥ रमतेरामयामैत्र्यानित्यंहृदयसंस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सर्वत्र प्राप्तभी आत्मा इस शरीररूप नगरीमें स्थित होके संसारमें कल्पित संपूर्ण भोगोंको भोगके पूर्वकालमें साक्षात्कृत पूर्णानन्द आत्मस्वरूप जो परमपुरूषार्थ मोक्षहै उसका भागी होताहै ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण अर्थ क्रियाकी और झुके कदाचित् प्रारब्ध कर्मके अनुकूल प्राप्त कर्तव्य अर्थोंको करताहै इसलिये व्यवहार दृष्टिसे सब कुछ करता हुआभी कुछ नहीं करता ॥ ३४ ॥ सर्वत्र गतिशील यह आत्मा कभी भोगके कौतुक सहित इसका विनोद करनेके वास्ते हृदय कमलरूप विमानपर लीलासे आरूढ होताहै ॥ ३५ ॥ उस विमानपर चढके संसारमें अति सुन्दर; निरन्तर शीतल अंगवाली मैत्रीरूप प्रियाके साथ रमण करताहै ॥ ३६ ॥

द्वेकांतेतिष्ठतःसम्यक्पार्श्वयोःसत्यतैकते ॥ इंदोरिवविशाखेद्वेसमाह्लादितचेतसौ ॥ ३७ ॥ क्षपितानखिलाँल्लोकान्दुःखक्रकचदारितान् ॥ वल्लीवनस्थान्नभसःपृष्ठादर्कइवेक्षते ॥ ३८ ॥ चिरंपूरितसर्वाशःसर्वसंपत्तिसुंदरः ॥ अपुनःखंडनायेंदुःपूर्णोगइवराजते ॥ ३९ ॥ सेव्यमानोपिभोगौघोनखेदायास्यजायते ॥ कालकूटःकिलेशस्यकंठेप्रत्युतराजते ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्ञानीपुरूषके दोनोंभागमें सत्यता तथा एकता रूप दो प्रिया ऐसे स्थित रहती हैं जैसे चन्द्रमाके समीप चित्तको प्रसन्न करनेवाली विशाखाकी दो तारा ॥ ३७ ॥ जैसे आकाशमें स्थित सूर्यभगवान् लताओंसे वे-ष्टितबनको देखते हैं ऐसेही ज्ञानी पुरूष क्षयको प्राप्त, तथा दुःखरूपी केकडेसे विदीर्ण (दुःखग्रस्त) सम्पूर्ण लोकोंको देखताहै ॥ ३८ ॥ चिरकालतक सम्पूर्ण दिशाओं वा कामनाओंका पूर्ण करनेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सुन्दर पूर्ण-

चन्द्रमाके समान पुनः खण्डित न होनेके लिये शोभित होताहै ॥३९॥ जैसे कालकूट (विष) श्रीशंकर भगवान्के कण्ठमें दूषित होनेके विपरीत शोभित होताहै ऐसेही सेवितभी भोगसमूह खेदके विरूद्ध आनन्दके लिये होताहै ॥ ४० ॥

परिज्ञातोपभुक्तोहिभोगोभवतितुष्टये ॥ विज्ञायसेवितोमैत्रीमेतिचोरोनशत्रुताम् ॥ ४१ ॥ नरनारीनदीघानांविरहेदूरगामिनाम् ॥ ज्ञेनयात्रेवसुभगाभोगश्रीरवलोक्यते ॥ ४२ ॥ अशंकितोपसंप्राप्ताग्रामयात्रायथाध्वगैः ॥ प्रेक्ष्यंतेतद्वदेवज्ञैर्व्यवहारमयाःक्रियाः ॥ ४३ ॥ अयत्नोपनतेष्यक्षिपदार्थेषुयथापुनः ॥ नीरागमेवपततितद्वत्कार्येषुधीरधीः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मिथ्यारूपसे परिज्ञात भोगा हुआ भोग सन्तोषके लिये ऐसा होताहै जैसे ज्ञात चोर मित्रताके अर्थ होताहै न कि शत्रुताके लिये ॥ ४१ ॥ ज्ञानीपुरूष भोग करने योग्य स्त्री पुत्र धनादिकी शोभा ऐसे देखताहै जैसे विरहमें दूरगामी स्त्री पुरूष नट आदिकी यात्राको ॥ ४२ ॥ जैसे पांथ (मार्गगामी) जन अकस्मात् प्राप्त ग्रामके समूहोंको देखतेहैं ऐसेही ज्ञानीपुरूष व्यवहारमय सम्पूर्ण क्रियाओंको देखताहै ॥ ४३ ॥ जैसे बिना प्रयत्नसे रचित पर्वत; बन तथा बावली आदि पदार्थोंमें और उनमें स्थित वृक्ष लता कमल आदिमें छेदन भेदन तथा हरण आदिमें दुःखके अभावसे रागरहित दृष्टि पडती हैं ऐसेही ज्ञानीपुरूषकी दृष्टि ममता न होनेसे कार्योंमें पडती हैं ॥ ४४ ॥

इंद्रियाणांनहरतिप्राप्तमर्थंकदाचन ॥ नाददातितथाप्राप्तंसंपूर्णोज्ञोवतिष्ठति ॥ ४५ ॥ अप्राप्तचिंताःसंप्राप्तसमुपेक्षाश्चसन्मतिम् ॥ नकंपयंतितरलाःपिच्छाघाताइवाचलम् ॥ ४६ ॥ संशांतसर्वसंदेहोगलिताखिलकौतुकः ॥ संक्षीणकल्पनादेहोज्ञःसम्राडिवराजते ॥ ४७ ॥ आत्मन्येवनमात्यंतःस्वात्मनात्मनिजृंभते ॥ संपूर्णोपारपर्यंतःक्षीरार्णवइवार्णवेः ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रारब्ध कर्मके अनुकूल प्राप्त विषयोंमें इन्द्रियोंको भोग करनेको ज्ञानीपुरूष नहीं रोकता और अप्राप्त पदार्थको यत्नपूर्वक नहीं ग्रहण करता किन्तु पूर्णरूपसे स्थित रहताहै ॥ ४५ ॥ अप्राप्तपदार्थोंकी चिन्ता और प्राप्तकी उपेक्षा पश्चात् ज्ञानीको ऐसे नहीं कम्पित करती जैसे मोरके पंखके आघात पर्वतको ॥ ४६ ॥ स्थूल सूक्ष्मादि सब शरीरोंके कारणीभूत अज्ञानके नाशसे संपूर्ण सन्देहरहित; भोगोंमें मिथ्यात्वके देखनेसे सर्व कौतुक शून्य और स्थूल तथा सूक्ष्म देहकी कल्पना रहित ज्ञानीपुरूष ऐसे शोभित होताहै जैसे राजसूय यज्ञके फलको पाकर चक्रवर्ती राजा ॥ ४७ ॥ राजाका दृष्टांत अज्ञानियोंके अर्थ है और यथार्थमें तो ज्ञानीपुरूष पूर्णस्वरूप अपने आत्मासे आत्माहीमें ऐसे शोभित होताहै जैसे अपार संपूर्ण क्षीरसमुद्र अपने आत्मासे आत्मामें ॥ ४८ ॥

भोगेच्छाकृपणान्जंतून्दीनान्दीनेंद्रियाणिच ॥ अनुन्मत्तमनाःशांतोहसत्युन्मत्तकानिव ॥४९॥ इच्छतोन्योज्झितांजायांयथैवान्येनहस्यते ॥ इंद्रियस्येच्छतोभोगंतद्वज्ज्ञेनविहस्यते ॥ ५० ॥ त्यजत्स्वात्मसुखंसौम्यंमनोविषयविद्रुतम् ॥ अंकुशेनेवनागेंद्रंविचारेणवशनयेत् ॥ ५१ ॥ भोगेषुप्रसरोयस्यामनोवृत्तेश्चदीयते ॥ साप्यादावेवहंतव्याविषस्येवांकुरोद्गतिः ॥ ५२ ॥

अर्थ—भोगोंकी इच्छासे कृपण दीनजनोंको तथा भोगलोलुप इन्द्रियोंको सावधान चित्त ज्ञानीपुरूष ऐसे हंसताहै जैसे अन्य साधारण जन उन्मत्त जनोंको ॥ ४९ ॥ ज्ञानीपुरूष त्यागेहुये भोगको इच्छा करनेवाली इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको ऐसे हंसताहै जैसे अन्यसे त्यागीस्त्रीको चाहनेवाले पुरूषको ॥ ५० ॥ आत्मसुखको त्यागते हुये शांतमनको विषयकी ओर भागते हुये इसको बिचारसे ऐसे रोकना चाहिये जैसे अंकुशसे मत्तहस्तीको ॥ ५१ ॥ जिस भोगकी तृष्णासे मनकी वृत्तिको अवसर दिया जाताहै उसेभी आरम्भमेंही ऐसे मारना चाहिये जैसे विषके अंकुरकी गतिको ॥ ५२ ॥

ताडितस्यहियःपश्चात्सन्मानःसोप्यनंतकः ॥ शालेर्ग्रीष्माभितप्तस्यकुसेकोप्यमृतायते ॥ ५३ ॥ अनार्तेनहिसन्मानोबहुमानोनबुध्यते ॥ पूर्णानांसरितांप्रावृट्पूरःस्वल्पोनराजते ॥ ५४ ॥ पूर्णस्तुप्राकृतोप्यन्यत्पुनरप्यभिवांछते ॥ जगत्पूरणयोग्यांबुर्गृह्णात्येवार्णवोजलम् ॥ ५५ ॥ मनसोभिगृहीतस्ययापश्चाद्भोगमंडना ॥ तामेवालब्धविस्तारांक्लिष्टत्वाद्बहुमन्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—चिरकालसे निगृहीत मनका किंचित्भी संमान ऐसे अनंतताको प्राप्त होताहै जैसे ग्रीष्मऋतुसे संतप्त-धानको किंचित् सिंचनभी अमृतके तुल्य होताहै ॥ ५३ ॥ सुखी पुरुषको अधिक सन्मानभी किंचित् ऐसे नहीं भान होता जैसे पूर्ण नदियोंको वर्षाका अल्प प्रवाह ॥ ५४ ॥ और पूर्ण तो अन्य साधारणको ऐसे चाहताहै जैसे अपने जल-से जगत्को पूर्ण करनेवाला समुद्र अन्य नदी आदिके जलको ग्रहण करही लेताहै ॥ ५५ ॥ निगृहीत मन पीछेसे अल्पविषयकी भिक्षाके पूर्वकी अपेक्षासे ऐसे अधिक मानताहै ॥ ५६ ॥

बंधमुक्तोमहीपालोग्रासमात्रेणतुष्यति ॥ परैरबद्धोनाक्रांतोनराज्यंबहुमन्यते ॥ ५७ ॥ हस्तंहस्तेनसं पीड्यदंतैर्दंतान्विचूर्ण्यच ॥ अंगान्यंगैरिवाक्रम्यजयेचेंद्रियशात्रवान् ॥ ५८ ॥ जेतुमन्यंकृतोत्साहैःपु रुषैरिहपंडितैः ॥ पूर्वंहृदयशत्रुत्वाज्जेतव्यानींद्रियाण्यलम् ॥ ५९ ॥ एतावतिधरणितलेसुभगास्तेसाधु चेतनाःपुरुषाः ॥ पुरुषकलासुचगण्यानजितायेचेतसास्वेन ॥ ६० ॥ हृदयबिलेकृतकुंडलकलनाविव शोमनोमहाभुजगः ॥ यस्योपशांतिमागतमलमुदितंतंसुनिर्मलंवंदे ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे शरीरनगरविभूतियोगोनाम त्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसे बंधनसे छुटा हुआ राजा भोजनमात्रसे सन्तुष्ट होताहै और शत्रुओंके आक्रमणसेरहित राज्य-कोभी अधिक नहीं मानताहै ॥ ५७ ॥ हांथसे हांथको पीडन करके, दांतोंकी दांतोंसे पीसके तथा अंगोंसे अंगोंको आक्रमण करके जैसे शत्रुओंका विजय किया जाताहै ऐसेही सब प्रयत्नोंसे इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतना चाहिये ॥ ५८ ॥ इस संसारमें जीतनेके अभिमानी उत्साहयुक्त पण्डित जनोंको हृदयके शत्रु होनेसे प्रथम इन्द्रियोंको भली-भांति जीतना चाहिये ॥ ५९ ॥ इस संपूर्ण पृथिवीतलमें वे चित्तको जीतनेवाले भाग्यवान् सावधान चित्त, और अपने बंधनसे मुक्त होनेके कारण कुशलतामें गणनीय पुरुषहैं, जो अपने चित्तसे नहीं जीते जाते ॥ ६० ॥ हे रामजी ! हृदय-रूपी बिलमें कुंडलीकी कल्पना करनेसे परबश मनरूपी महासर्प जिसका सर्वथा नाशको प्राप्त होगयाहै उस अपने स्व-रूपके साक्षात्कार करनेसे प्रकट निर्मलरूप तत्ववेत्ता महामुनिको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे शरीरनगरविभूतियोगोनाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस २४ के सर्गमें इन्द्रियोंकी प्रबलता, उनके जयका उपाय, तथा उससे प्रसन्नता और ज्ञानके द्वारा वास-नाका क्षय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महानरकसाम्राज्येमत्तदुष्कृतवारणाः ॥ आशाशरशलाकाढ्यादुर्जयाइंद्रियारयः ॥ १ ॥ स्वाश्रयंप्रथमंदेहंकृतघ्नानाशयंतिये ॥ तेकुकार्यमहाकोशादुर्जयाःस्वेंद्रियारयः ॥ २ ॥ कलेवरा लयंप्राप्यविषयामिषगृध्नुकाः ॥ अक्षगृध्राविवल्गंतिकार्याकार्योग्रपक्षिणः ॥ ३ ॥ विवेकतंतुजालेनगृ हीतायेनतेशठाः ॥ तस्यांगानिनलुंपंतिपाशानागबलंयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-तपन, अवीचि, महारौरव, संघातकालसूत्र, महानरकोंके साम्राज्यमें अभिषिक्त, पापरूपी मत्त गजेन्द्रोंसहित, और तृष्णारूपी बाणकी शलाकाओंसे पूर्ण, इंद्रियरूपी शत्रु दुर्जयहै ॥१॥ जो कृतघ्न प्रथम अपने आश्रयभूत देहकोही नाश करते हैं वे पापरूपी धनका संचय करनेवाले अपने इन्द्रियरूप शत्रु दुर्जयहैं ॥ २ ॥ विषयरूपी मांसके लोभी, और कर्तव्य तथा अकर्तव्यरूपी भयंकर पक्षवाले इंद्रियरूपी गृध्र (गीध) शरीररूपी अपने नीड (खुंथे) में प्राप्त होकर गर्जते हैं ॥ ३ ॥ विवेकरूपी सूत्रके जालसे जिस पुरुषने उनको ग्रहण कर लियाहै उस पुरुषके शान्ति आदि अंगोंको वे इसप्रकार नहीं छेदन करते जैसे पाश गजसमूहको ॥ ४ ॥

आपातरमणीयेषुरमतेविषयेषुयः ॥ विवेकधनवानस्मिन्कुकलेवरपत्तने ॥ ५ ॥ इंद्रियारिभिरंतस्थैरव शोनाभिभूयते ॥ नतथासुखिताभूपामृन्मयोग्रपुरीजुषः ॥६॥ यथास्वाधीनमनसःस्वशरीरपुरीश्वराः॥ आक्रांतेंद्रियभृत्यस्यसुगृहीतमनोरिपोः ॥ ७ ॥ वसंतइवमंजर्योवर्द्धंतेशुद्धबुद्धयः ॥ प्रक्षीणचित्तदर्प स्यनिगृहीतेंद्रियद्विषः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस शरीररूपी निंदित नगरमें विवेकरूपी धनसहित जो पुरुष आपात रमणीय विषयोंमें रमण नहीं करताहै ॥ ५ ॥ वह पुरुष अन्तमें स्थित इन्द्रियरूप शत्रुओंसे अवश होके पराजित नहीं होता, और मृत्तिकासे रचित भयंकर नगरके सेवन करनेवाले राजे वैसे सुखी नहीं होते ॥ ६ ॥ जैसे स्वाधीन चित्तवाले अपनी शरीररूपी नगरीके स्वामी ॥ ७ ॥ इन्द्रियरूपी सेवकोंको आक्रमण करनेवाले तथा मनरूपी शत्रुको निग्रह करनेवाले पुरुषकी शुद्धबुद्धि ऐसे बढती हैं जैसे वसन्तऋतुकी लता "जिसका चित्तरूपी गर्व क्षीण होगया" और इंद्रियरूपी शत्रुओंको निग्रह करलियाहै उसकी ॥ ८ ॥

पद्मिन्यइवहेमंतेक्षीयंतेभोगवासनाः ॥ तावन्निशीथवेतालावल्गंतिहृदिवासनाः ॥ ९ ॥ एकतत्त्वदृढा भ्यासाद्यावन्नविजितंमनः ॥ भृत्योऽभिमतकर्तृत्वान्मंत्रीसत्कार्यकारणात् ॥ १० ॥ सामंतश्चेंद्रियाक्रां तेर्मनोमन्येविवेकिनः ॥ लालनात्स्निग्धललनापालनात्पावनःपिता ॥ ११ ॥ सुहृदुत्तमविश्वासान्मनो मन्येमनीषिणाम् ॥ स्वालोकितःशास्त्रदृशाबुद्ध्यांतःस्वानुभावितः ॥ १२ ॥ प्रयच्छतिपरांसिद्धिंत्य क्त्वात्मानंमनःपिता ॥ सुदृष्टःसुपरामृष्टःसुदृढःसुप्रबोधितः ॥ १३ ॥

अर्थ—भोगोंकी वासना ऐसे नष्ट हो जाती हैं जैसे शीत ऋतुमें कमलिनी अज्ञानरूप अर्द्ध रात्रिके अन्धकारमें हृदयकी वासनारूपी पिशाचिका तभीतक गर्जना करती हैं ॥ ९ ॥ जबतक एक ब्रह्मतत्वके अभ्याससे मन नहीं जीता जाता विवेकी पुरुषका यह मन अभीष्ट कार्य करनेसे सेवक, सत्कार्य करनेसे मंत्री ॥ १० ॥ इन्द्रियरूप शत्रुओंके उपर चढाई करनेसे सामन्त (कर दाता छोटा राजा) प्यार करनेसे स्नेह करनेवाली स्त्री, और पालन करनेसे पवित्र पिताहै ॥ ११ ॥ इस रीतिसे विश्वासके कारण विवेकियोंका उत्तम सुहृदहै ऐसा मैं मानताहुं, और शास्त्रोंमें दर्शित देवता दृष्टिसे अनुल्लंघनीय शासन तथा चेतन मात्र रूपसे भलीभांति दृष्ट और स्नेह तथा विवेक बुद्धिसे पूजित यह मनरूपी पिता अपने शरीर (मनरूपता) को त्यागकर अपनेसे अर्जित तत्वज्ञानरूप सिद्धिको देताहै और शास्त्रोक्त परीक्षा वा सौभाग्यसे खानिमें दृष्ट, आचार्य तथा सपाठी (साथ पढनेवाले) आदिकी सहायतासे अनुभव पर्यन्त विचारित, निदिध्यासन रूप घनके आघातसे अति दृढ और तत्वके साक्षात्कारसे सुप्रबोधित ॥ १२ ॥ १३ ॥

सुगुणेयोजितोभातिहृदिहृद्योमनोमणिः ॥ जन्मवृक्षकुठाराणितथोदर्कोदयानिच ॥ १४ ॥ दिशत्येवं मनोमं त्रीकर्माणिशुभकर्मणि ॥ एवंमनोमणिंरामबहुपंककलंकितम् ॥ १५ ॥ विवेकवारिणासिद्ध्यैप्र क्षाल्यालोकवान्भव ॥ भवभूमिषुभीमासुविवेकविकलोवसन् ॥ १६ ॥

अर्थ—और पंचम आदि भूमिका रूप गुणमें गुंफित अति रमणीय यह मनरूप मणि शोभित होताहै इसके अनन्तर अर्थदायक जन्मरूपी वृक्षोंके छेदक तथा भविष्यत्में निरतिशय आनंददायक साधन चतुष्टयकी संपत्तिसे आदि लेके तत्व साक्षात्कार पर्यन्त कर्मोंको यह मनरूप मंत्री कराताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार बहुत पंकसे कलंकित इस मनरूप मणिको विवेकरूपी जलसे धोकर मोक्ष सिद्धिके लिये प्रकाशयुक्त होओ ॥ १६ ॥

मापतोत्पातपूर्णासुविवशःप्राकृतोयथा ॥ संसारमायामुदितामनर्थशतसंकुलाम् ॥१७॥ मामहामोहमि हिकामिमांत्वमवधीरय ॥ विवेकंपरमाश्रित्यबुद्ध्यासत्यमवेक्ष्यच ॥ १८ ॥ इंद्रियारीनलंजित्वातीर्णो भवभवार्णवात् ॥ असत्येवशरीरेस्मिन्सुखदुःखेष्वसत्सुच ॥ १९ ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभवतु राघव ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंयास्यसिविशोकताम् ॥ २० ॥ अयमहमितिनिश्चयोवृथायस्तमलमपा स्यमहामतेस्वबुद्ध्या ॥ यदितरदवलंब्यतत्पदंत्वंव्रजपिबभुंक्ष्यनबध्यसेमनस्कः ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनसःसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—और अति भयंकर उत्पातसे पूर्ण संसारकी भूमियोंमें विवेकरहित निवास करते हुये विवश होके मूर्ख जनके समान मत गिरो ॥ १७ ॥ सैकडों अनर्थोंसे पूर्ण उदयको प्राप्त जो यह संसारकी माया है इसको महारोगके समान तुम उपेक्षा मत करो ॥१८॥ और उत्तम विवेकका आश्रय लेके, तथा बुद्धिसे सत्यका निरीक्षण करके, इन्द्रियरूप शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे जीतकर संसारसागरसे पार होजाओ ॥ १९ ॥ इस शरीर इन्द्रिय आदिके तथा सुख दुःख आदिके असत्य होनेसे इनके जीतनेसे क्या फल है इसप्रकार दाम[1] व्याल कटक न्याय तुमको मतहो किन्तु विवेकके अभ्याससे भीमभास दृढन्यायसे तुम शोकरहितताको प्राप्त होओगे ॥ २० ॥ तथा हे रामजी ! यह दृश्यभूत देह मैं हुं इस मिथ्या निश्चयको भलीभांति त्यागकर मिथ्यासे भिन्नवस्तुरूप आत्मतत्त्वका आश्रय लेके तुम जाओ आओ तथा अमना होके भोजनआदि व्यापार करते हुयेभी बन्धनमें नहीं प्राप्त होओगे, किंतु मुक्तही हो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनसःसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

---

(१) इसका निरूपण आगे २५ के सर्गमें किया जायगा.

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

शम्बरके सेनापतियोंका देवताओंसे विनाश, तथा दाम व्यालकी उत्पत्ति और उनसे जयकी आशाका वर्णन इस २५ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मिन्विहरतोलोकेलोकारामस्यधीमतः ॥ श्रेयसेतिष्ठतोयत्नमुत्तमार्थाभिधायिनः ॥ १ ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभवतुराघव ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंविशोकोभवेतिच ॥ २॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभूदित्युदाहृतम् ॥ ब्रह्मन्किमेतद्भवताभवतापापहारिणा ॥ ३ ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंविशोकोभवेतिच ॥ प्रभोकिमुक्तंभवताभवतापापहारिणा ॥ ४॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इस संसारमें विहार करते हुये तथा जनोंके विश्रामस्थान, शम, दम आदि पदार्थोंका प्रकाशक; और मोक्षकेलिये यत्नमें स्थित तुमको दाम व्याल कट न्यायसे अनर्थ प्राप्ति नहीं किंतु भीमभास दृढन्यायकी स्थितिसे तुम शोकरहित होजाओ यह वार्ता तुमसे कह आये हैं ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! संसारके तापको हरनेवाले आपने पूर्व प्रसंगमें यह कहा कि तुमको दाम व्याल कट न्याय नहो, सो यह न्याय क्या है ? ॥ ३ ॥ और हे प्रभो ! हे संसाररूपी संतापके हारक आपने यहभी कहा है कि भीमभास दृढन्यायकी स्थितिसे तुम शोकरहित होजाओगे सो यहभी क्या कहा ॥ ४ ॥

उदारयैतयाशुद्धंसंप्रबोधयमांगिरा ॥ घनस्तापापहारिण्याप्रावृषीवकलापिनम् ॥ ५ ॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दामव्यालकटन्यायंभीमभासदृढस्थितिम् ॥ शृणुराघवतच्छ्रुत्वायदिष्टंतत्समाचर ॥ ६ ॥ आसीत्पातालकुहरेसर्वाश्चर्यमनोरमे ॥ शंबरोनामदैत्येंद्रोमायामणिमहार्णवः ॥ ७ ॥ आकाशनगरोद्यानरचितासुरमंदिरः ॥ कृत्रिमोत्तमचंद्रार्कभूषितात्मीयमंडलः ॥ ८ ॥

अर्थ—सो हे भगवन् ! हे उदारचित्त ! इस दोनों कथाके वर्णन द्वारा संता पहारिणी बाणीसे ऐसे प्रबोधन कीजिये जैसे वर्षाकालमें मेघमयूरको ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! दाम व्याल कट न्याय, और भीमभास दृढ स्थितिको तुम सुनो और जो इष्ट हो सो करो ॥ ६ ॥ संपूर्ण आश्चर्योंसे मनोरम पातालरूपी गर्तमें मायारूपी मणियोंके महासमुद्रके समान शंबर नाम दैत्योंका राजा था ॥ ७ ॥ और आकाशमें कल्पित नगर तथा उद्यानोंमें असुरोंका मंदिर रचनेवाला, तथा कृत्रिम चन्द्रसूर्यसे आत्मीय वर्गोंको शोभित करनेवाला वह था ॥ ८ ॥

शिलाशकलसंभूतपद्माद्यैरमराचलः ॥ अनंतविभवारंभपरिपूरितदानवः ॥ ९ ॥ गृहरत्नांगनागेयजितामरवधूध्वनिः ॥ चंद्रबिंबकलापूर्णक्रीडोपवनपादपः ॥ १० ॥ फुल्लनीलोत्पलव्यूहकरालरमणालयः ॥ रत्नहंसध्वनाहूतहेमांबुरुहसारमः ॥ ११ ॥ हेमपादपशाखाग्रकृतांभोरुहकुड्मलः ॥ करंजजालप्रपतन्मंदारकुसुमाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—पाषाणकी शिलाओंके समान सुलभ पद्मरागादि मणियोंसे निधि वा सुमेरूके समान, और अनन्त ऐश्वर्योंसे दानवोंको परिपूर्ण करनेवालाथा ॥ ९ ॥ गृहमें रत्नभूत स्त्रियोंके गानसे अप्सराओंकी ध्वनिको जीतनेवाला और चन्द्रबिंबकी कलासे पूर्ण क्रीडारूपी उपबन बाटिका वृक्ष उसके पूर्णथे ॥ १० ॥ विकसित कमलोंकी रचनासे उसका रमण गृहकामीजनोंको भयंकरथा तथा रत्नोंके हंसोंकी ध्वनिसे सुवर्णके कमलसे सारस पक्षियोंका आव्हान करनेवाला था ॥ ११ ॥ सुवर्णके वृक्षोंके अग्रभागमें कमलकी कलिकाकी रचना करनेवाला तथा उसके करंज वृक्षोंके जालमें मन्दारवृक्षोंका समूह गिर रहाथा ॥ १२ ॥

तर्कुयंत्रमयानंतदैत्यनिर्जितवासवः ॥ हिमशीतानलज्वालानिर्मितोद्यानमंडपः ॥ १३ ॥ सर्वत्रकुसुमोद्यानाजितानंदननंदनः ॥ मायासर्वहृतव्यालमलयाचलचंदनः ॥ १४ ॥ हेमश्रीलोकलावण्यनिर्जितांतःपुरांगनः ॥ नानाकुसुमसंभारजानुदघ्नगृहांगणः ॥ १५ ॥ क्रीडार्थमृन्मयेशानजितचक्रगदाधरः ॥ अजस्रोड्डीनरत्नोघताराढ्यखपुरांतरः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कर्त्तनीनामक यंत्र (कतन्नी) के मान दैत्योंसे इन्द्रकोभी जीतनेवाला, और हिमके समान शीतल अग्निकी ज्वालाओंसे उद्यानमण्डपका रचनेवाला वह था ॥ १३ ॥ तथा सब स्थानोंमें कुसुमोंके उद्यानोंसे इन्द्रके नन्दनबनको जीतनेवाला, तथा अपनी मायासे सर्पोंके साथ मलयाचलके चन्दनभी हरताथा ॥ १४ ॥ तथा उसके अन्तःपुरकी अंगना अपने अंगोंसे सुवर्णकी शोभा और संसारकी सुन्दरताको जीतनेवाली थी, तथा जिसके

गृहके अंगणमें नानाप्रकारके पुष्पोंके समूह घूटने भरपूर्ण है ॥१५॥ क्रीडार्थ रचित मृत्तिकाके महादेवसे चक्रधर विष्णु भगवान्कोभी जीतताथा तथा निरंतर उडनेवाले रत्नोंके समूहोंसे उसका आकाश वा नगरांतर तारागणोंसे पूर्णथा ॥१६

निशीथाखिलपातालशतचंद्रनभस्तलः ॥ स्वशालभंजिकालोकगीतगीतिरणोत्कटः ॥ १७ ॥ मायैरावणनागेंद्रविद्रुतामरबारणः ॥ त्रैलोक्यविभवोत्कर्षपूरितांतःपुरांतरः ॥ १८ ॥ सर्वसंपत्तिसुभगःसर्वैश्वर्यनमस्कृतः ॥ समस्तदैत्यसामंतवंदितोग्रानुशासनः ॥ १९ ॥ महाभुजवनच्छायाविश्रांतासुरमंडलः ॥ सर्वबुद्धिगणाधाररत्नमंडलमंडितः ॥ २० ॥

अर्थ—और अमावश्यासे आदिलेके अर्धरात्रिमें उसका आकाशतल सैकडों चंद्रमासे युक्त था, और निजरचित प्रतिमाके पूजाके दर्शक गण उसके रणके उत्कट प्रबन्धको गान करते थे ॥ १७ ॥ और वह मायारचित ऐरावत गजेंद्रोंसे इन्द्रके हस्तीको भगाता था तथा तीनों लोकोंके ऐश्वर्य्योंमें रत्नभूत स्त्री, हस्ती और अश्व आदिसे उसका अन्तःपुर परिपूर्ण था ॥ १८ ॥ सब प्रकारकी संपत्तियोंसे शुभग; संपूर्ण ऐश्वर्योंसे वह नमस्कृत था तथा उसका उग्र शासन समस्त सामन्तो (छोटे करदायी राजों) से वन्दनीयथा ॥ १९ ॥ तथा उसकी महाभुज बनकी छायामें असुरमण्डल विश्रान्तथे; तथा सब बुद्धिगणोंका आधार और रत्नोंके समूहसे शोभित वह शंबर नाम दैत्यथा ॥२०॥

तस्योत्सादितदेवस्यकठिनोड्डामराकृतेः ॥ बभूवविपुलंसैन्यमासुरंसुरनाशनं ॥ २१ ॥ तस्मिन्मायाबलेसुप्तेदेशांतरगतेतथा ॥ तत्सैन्यंतरसाजघ्नुश्छिद्रंप्राप्यकिलामराः ॥ २२ ॥ अथशंबरदैत्येनमुंडिक्रोधद्रुमादयः ॥ रक्षार्थमथसामंताःस्वसेनासुनियोजिताः ॥ २३ ॥ तानप्यंतरमासाद्यजघ्नुर्देवाभयानकाः ॥ व्योमांतरगताःश्येनाःकलविंकानिवाकुलान् ॥ २४ ॥

अर्थ—देवताओंको उखाडनेवाले; तथा भयंकर आकारवाले उस दैत्यकी देवताओंका नाश करनेवाली बडी सेनाथी ॥ २१ ॥ मायासे बली उस दैत्यके शयन करने तथा देशान्तर जानेपर छिद्र पाकर देवतालोग उसकी सेनाको क्रोधसे मारते थे ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर शम्बर दैत्यने मुण्डिक्रोध, द्रुम आदि सेनापतियोंको अपनी सेनाओंमें रक्षाके लिये नियुक्त किया ॥ २३ ॥ उनकोभी भयंकर देवतालोग अवसर पाके ऐसे मारतेथे जैसे आकाशके अन्तर्गत बटेर पक्षियोंको श्येन (बाज) ॥ २४ ॥

सेनापतीन्पुनश्चान्यांश्चकारासुरसत्तमः ॥ चपलानुद्भटारावांस्तरंगानिवसागरः ॥ २५ ॥ देवास्तानपितस्याशुजघ्नुस्तेनसकोपवान् ॥ जगामामरनाशायपरिपूर्णंत्रिविष्टपम् ॥ २६ ॥ तस्मात्तन्मायया भीताःसुरास्तेंतर्द्धिमाययुः ॥ मेरुकाननकुंजेषुमृगागौरीहरेरिव ॥ २७॥ क्रंदत्क्षुद्रामरगणंबाष्पक्लिन्नाप्सरोमुखम् ॥ शून्यंददर्शसस्वर्गंकल्पक्षीणजगत्समम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उस अवसरमें उत्तम शम्बरने अन्य चपल वीर सेनापतियोंको ऐसे उत्पन्न किया जैसे तरंगोंको समुद्र ॥ २५ ॥ देवतालोग उसके उन सेनापतियोंकोभी मारडाला; इस कारणसे उसने शीघ्र देवताओंसे पूर्ण स्वर्गके तथा देवताओंके नाशके लिये कोप किया ॥ २६ ॥ उससे भयभीत होके देवता ऐसे लोप होगये जैसे सुमेरू पर्वतके बनके कुंजोंमें पार्वतीके वाहन सिंहसे भयभीत मृग लोग ॥ २७ ॥ जहां क्षुद्र देवतागण रोदन कररहेथे और अप्सराओंका मुख जहां अश्रुसे पूर्णथा इसप्रकार स्वर्गको उसने ऐसे शून्य देखा जैसे प्रलयसे क्षीण जगत्को ॥ २८ ॥

विहरन्कुपितस्तत्रलब्धमाहृत्यसुंदरम् ॥ लोकपालपुरींदग्ध्वाजगामात्मीयमालयम् ॥ २९ ॥ एवंदृढतरीभूतेद्वेषेदानवदेवयोः ॥ देवाःस्वर्गंपरित्यज्यदिक्षुजग्मुरदर्शनम् ॥ ३० ॥ अथशंबरदैत्येनयेयेसेनाधिनायकाः ॥ क्रियंतेयत्नतस्तांस्तुजघ्नुर्यत्नपराःसुराः ॥ ३१ ॥ यावदुद्वेगमायातःशंबरःकोपवान्भृशम् ॥ तार्णोग्निमात्रमनलइवजज्वालसोच्छ्वसन् ॥ ३२ ॥

अर्थ—वहांपर विचारता हुआ कुपित होके, प्राप्त सुन्दर वस्तुओंको लेके, और इन्द्रकी नगरीको जलाके अपने स्थानको चलागया ॥ २९॥ इसप्रकार देवता और दानवोंके वैर अधिक प्रबल होनेपर देवतालोग स्वर्गको त्यागकर अंतर्धान होगये ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इसके अनंतर शंबर दैत्य जिन २ सेनापतियोंको रचा उन २ को प्रयत्नमें तत्पर देवताओंने मारडाला ॥ ३१ ॥ तबतक क्षुभित होके शंबरने अति कोप किया, और तृणकी अग्निके समान श्वास लेताहुआ जलने लगा ॥ ३२ ॥

त्रैलोक्यमपिचान्विष्यन्नदेवाँल्लब्धवानथ ॥ परेणापिप्रयत्नेननिधानमिवदुष्कृतिः ॥ ३३ ॥ ससर्जमाययाघोरानसुरांस्त्रीन्महाबलान् ॥ बलरक्षार्थमुदितान्कालान्मूर्त्तिमिवस्थितान् ॥ ३४ ॥ निर्वृत्तामायया

भीमाबलपादपवाहिनः ॥ उदगुस्तेमहामायाःपक्षक्षुब्धाइवाद्रयः ॥ ३५ ॥ दामोव्यालःकटश्चेतिनाम भिःपरिलांछिताः ॥ यथाप्राप्तैककर्त्तारश्चेतनामात्रधर्मिणः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनंतर तीनों लोकमेंभी खोजा परन्तु देवताओंको ऐसे नहीं पाया जैसे अति प्रयत्नसे खोजने परभी पापी द्रव्यके कोशको ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् प्रसन्न चित्त मूर्तिमान् कालके सदृश महाबली और भयंकर तीन असुरोंको सेनाको क्षयकेलिये उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ मायासे रचित, भयंकर बलके समान वृक्षके बाहक (ले जानेवाले) और महामायावी वे ऐसे प्रकट हुये जैसे पक्षसे क्षुभित पर्वत ॥ ३५ ॥ दाम (शत्रुओंका दमन कर्ता) व्याल (सर्पके समान वेष्टित करनेहारा) कट (शत्रुओंके शस्त्रोंसे निजजनोंकी रक्षा करनेवाला) इन अन्वर्थ नामोंसे चिन्हित, यथा प्राप्त कार्योंको करनेहारे, और चेतनामात्र धर्मी वे दैत्य थे ॥ ३६ ॥

अभावात्कर्मणांतेचप्राक्तनानचवासनाः ॥ निर्विकल्पकचिन्मात्रपरिस्पंदैकधर्मकाः ॥ ३७ ॥ कर्मजीवकलांतन्वींमसारांचमनोभिदाम् ॥ अपुष्टांकृत्रिमामंतश्चोदयोदयमागताः ॥ ३८ ॥ तेह्यंधपारंपर्येण काकतालीयवद्धटाः ॥ प्रकृतामनुवर्त्ततेक्रियामुज्झितवासनाः ॥ ३९ ॥ अर्द्धसुप्तायथाबालाःस्वांगैरिंगंतिकेवलम् ॥ वासनात्माभिमानाभ्यांहीनास्तेतद्वदेवहि ॥ ४० ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके कर्मोंके अभावसे उनकी बासना नथी किंतु शंका पलायन आदिसे शून्य निर्विकल्प चिन्मात्र सन्निधानसे देहके परिस्पंद तन्मात्र धर्मीथे ॥ ३७ ॥ तथा कर्मजीव शम्बरासुरकी कुशलतारूप अल्प परिणामवाली; भोगकी सारतासे शून्य, कर्मबासनाकी पुष्टिसेरहित और मायारचित सृष्टिके संकल्पकी वृत्तिको ग्रहण करके अन्तर्यामी चेतनके निमित्तसे वे दाम व्याल आदि उदयको प्राप्त हुये थे ॥ ३८ ॥ वासनासे रचित वे तीनों वीर अन्धपरम्परासे काकतालीय न्यायके समान उप स्थित क्रियाका अनुसरण करते थे ॥ ३९ ॥ जैसे आधे सोते हुये बालक अपने अंगोंसे चेष्टा करते हैं ऐसेही वे तीनों वीर वासना तथा आत्माभिमानसे वर्जित थे ॥ ४० ॥

नाभिपातंनचापातंनविदुस्तेपलायनम् ॥ नजीवितंनमरणंनरणंनजयाजयौ ॥ ४१ ॥ केवलंसैनिकानग्रे दृष्टानाहननोद्यतान् ॥ अभिजग्मुःपरानाजौप्रहारदलिताद्रयः ॥ ४२ ॥ शंबरश्चिंतयामासपरितुष्टमनाः परम् ॥ विजेष्यतेहिमेसेनामायासुरसुरक्षिता ॥ ४३ ॥ अतिबलासुरदोर्द्रुमपालितामममचमूःस्थिरताम लभेष्यति ॥ अमरवारणदंतविघट्टनेष्वमरपर्वतहेमशिलायथा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोत्पत्ति वर्णनं नाम पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—न तो वे युद्धकालमें अभिमुखतासे शत्रुओंका पतन जानते थे; न विश्वस्त शत्रुओंमें पतन जानते थे, न भागना जानते थे, और न जीवन, मरण, संग्राम तथा जय पराजय जानते थे ॥ ४१ ॥ किंतु अपने प्रहारसे पर्वतोंकोभी दलित करनेवाले वे वीर युद्धमें मारनेको उद्यत शत्रुके योद्धाओंको आगे देखके सन्मुख जाते थे ॥ ४२ ॥ सन्तुष्ट चित्त शम्बरदैत्यने अपने चित्तमें चिंतन किया कि मायारचित इन असुरोंसे रक्षित मेरी सेना अवश्य जीतेगी ॥ ४३ ॥ अति बलसंयुक्त, और असुरोंके भुजरूपी वृक्षोंकी छायामें पालित मेरी सेना शत्रुओंके प्रहारमें ऐसे स्थिरताको प्राप्त होगी जैसे दिग्गजोंके दांतोंके विघट्टनमें मेरुपर्वतकी हिमकी शिला ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षडविंशः सर्गः ॥ २६ ॥

रसातलसे निकले हुये दाम व्याल आदिके साथ देवताओंका बड़ी वीरताका संग्राम इस २६ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिर्णयिदैत्येंद्रोदामव्यालकटान्विताम् ॥ सेनांसंप्रेषयामासभूतलंदेवनाशिनीम् ॥ १ ॥ दैत्याःसागरकुंजेभ्यःकंदरेभ्यश्चसायुधाः ॥ उदगुर्भीमनिर्हादाःसपक्षगिरिलीलया ॥ २ ॥ रोदसीकोटरंहस्तप्रहारहतभास्करम् ॥ दानवाःपूरयामासुर्दामव्यालकटैर्विताः ॥ ३ ॥ अथोत्तस्थुर्निकुंजेभ्यःकंदरेभ्यःसुराचलात् ॥ प्रलयांतइवाक्षुब्धाभीमाःस्वर्वासिनांगणाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—दैत्योंका इन्द्र शंबरासुर इसप्रकार निश्चय करके दाम व्याल और कटके साथ देवताओंका नाश करनेहारी सेनाको भूतलपर भेजा ॥ १ ॥ भयंकर शब्द करनेवाले तथा अस्त्र शस्त्रधारी दैत्यगण समुद्रके कुंजोंसे तथा कन्दराओंसे पक्षधारी पर्वतके समान निकले ॥ २ ॥ हांथोंके प्रहारोंसे तेजहीन सूर्यधारी आकाश और पृथिवीके अन्तरको दाम व्याल तथा कटसे वर्द्धित दानवोंने पूर्ण करदिया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् निकुंजोंसे कन्दरोंसे, तथा सुमेरूपर्वतसे, प्रलयकालमें क्षुब्धके सदृश, और भयंकर देवताओंके गण युद्धके लिये निकले ॥ ४ ॥

देवासुरपताकिन्योस्तद्युद्धमभवत्तयोः ॥ अकालोल्बणकल्पांतभीषणंभुवनांतरे ॥ ५ ॥ पेतुःप्रलयपर्यस्तचंद्रार्काइवदीप्तयः ॥ शिरांसिकुंडलोद्योततेजःपीततमांस्यथ ॥ ६ ॥ जुघूर्णुर्भटनिर्मुक्तसिंहनादविराविताः ॥ प्रलयानिलसंपूरैःस्फुटहासाइवाद्रयः ॥ ७ ॥ रेणुःशैलशिलातुल्यहेतिघातास्तभित्तयः ॥ कुलाचलतटाभीरुविश्रांतहरिमंडलाः ॥ ८ ॥

अर्थ—देवता तथा असुरोंकी उन दोनों सेनाओंका युद्ध भुवनके मध्यमें दुःसह प्रलयके समान भयंकर हुआ ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् कुंडलके प्रकाशसे अति शोभायमान शिर ऐसे कबन्धसे गिरने लगे जैसे प्रलयमें फेके हुये दीप्तिमान् चन्द्रमा तथा सूर्य ॥ ६ ॥ वीरोंसे किये सिंहनादसे शब्दित और प्रलयकालके वायुके महाप्रवाहोंसे स्पष्ट हासयुक्त पर्वत भ्रमण करने लगे ॥ ७ ॥ पर्वतकी शिलाके समान शस्त्र तथा अस्त्रोंके आघातसे टूटी हुई भित्ति तथा भयभीत सिंहसहित हिमालय आदि पर्वतके तट शब्द करने लगे ॥ ८ ॥

चेरुःपरस्पराघातहतहेतिसमुत्थिताः ॥ लोलानलकणाःकल्पविशीर्णाइवतारकाः ॥९॥ विलेसूरक्तमांसौघपूर्णेकार्णवतीरगाः ॥ कल्पतालवदुत्तालावेतालास्तालताडिताः ॥ १० ॥ प्रस्फुरद्रुधिरासारशांतपांसुपयोधरे ॥ व्योम्निहेतिहतक्षुण्णामौलिकुंडलकोटयः ॥ ११ ॥ बभूवुर्भास्कराकारैःकल्पभूरुहधारिभिः ॥ प्रहारदलिताद्रींद्रैर्दैत्यैर्निर्विवरादिशः ॥ १२ ॥

अर्थ—परस्परके शस्त्र तथा अस्त्रोंके आघातसे निकले हुये अग्निके कण ऐसे भ्रमण करने लगे जैसे प्रलयकालमें टूटे हुये तारे ॥ ९ ॥ प्रलयकालके उत्पातरूप तालवृक्षके समान ऊंचे वेतालोंसे फेके हुये रक्त तथा मांसके समूहसे पूर्ण महान् समुद्रके तीरनिवासी जन विलास करने लगे ॥ १० ॥ बहते हुये रुधिरकी धारासे धूलिरहित आकाशमें अस्त्र तथा शस्त्रोंके आघातसे घर्षित मुकुट तथा कुण्डलके अग्रभाग ऐसे शोभित हुये जैसे सूर्य ॥ ११ ॥ सूर्यके समान आकारवाले कल्पवृक्षको धारण किये और प्रहारोंसे बडे २ पर्वतोंको दलन करनेवाले दैत्योंसे संपूर्ण दिशा पूर्ण होगई ॥ १२ ॥

जग्मुर्ज्वलदसिप्रांतवातपातितभित्तयः ॥ कणप्रकरतांशैलाःकल्पाग्निदलिताइव ॥ १३ ॥ देवास्तेचसमाजग्मुरश्वमेधैधिताइव ॥ असुरानस्त्रविभ्रष्टान्जलदानिववायवः ॥ १४ ॥ जगृहुस्तानथाक्रम्यजरठाखूनिवौतवः ॥ तेपितान्जगृहुर्मत्तान्वृक्षारूढानिवद्रुमान् ॥ १५ ॥ दोर्वृक्षविलसद्धेतिकुसुमाःशस्त्रपल्लवाः ॥ रेजुःसुरासुराःफुल्लावनलोलाइवद्रुमाः ॥ १६ ॥

अर्थ—जाज्वल्यमान कृपाणके अग्रभागसे निकले हुये महावायुसे पतित भित्ति सहित पर्वत ऐसे चूर्ण समूहताको प्राप्त हुये जैसे प्रलयकी अग्निसे ॥ १३ ॥ अश्वमेध यज्ञसे वर्द्धितके समान देवतागण भग्न अस्त्रधारी असुरोंके निकट ऐसे गये जैसे वेगके समीप वायु ॥ १४ ॥ और आक्रमण करके उन असुरोंको ऐसे ग्रहण करलिया जैसे वृद्ध मूषकको मार्जार और असुर उन देवताओंका ऐसे ग्रहण किया जैसे वृक्षोंपर चढे हुये मत्त जीवोंको भल्लूक ॥ १५ ॥ भुजरूपी वृक्षोंमें अस्त्ररूप पुष्प और शस्त्ररूपी पल्लव सहित विकसित बनके चंचल वृक्षके समान वे सुर और असुर शोभित हुये ॥ १६ ॥

अन्योन्यंपूरयामासुःशस्त्रपूरैर्दिशोदश ॥ वनानिकुसुमव्रातैःसुमेराविवमारुतः ॥ १७ ॥ घोरंसमभवद्युद्धंदेवदानवसेनयोः ॥ रोदोरंध्रोदुंबरांतर्महामशकसंचयो ॥ १८ ॥ अथोदपतदुत्तालैर्लोकपालेभमंडलैः ॥ कल्पाभ्रस्फूर्जिताकारोदारुणःसमरारवः ॥ १९ ॥ पिंडग्रहेणनभसिभूभागमिवकुट्टिमम् ॥ मुष्टिग्राह्योमहामेघमंथरोदरपीवरः ॥ २० ॥

अर्थ—उन दोनोंने परस्पर शस्त्रोंके प्रवाहोंसे दशों दिशाओंको ऐसे पूर्ण किया जैसे सुमेरू पर्वतपर वायु कुसुमके समूहोंसे वनोंको ॥ १७ ॥ आकाश और पृथिवीके मध्य छिद्ररूप गूलरके अन्तःप्रदेशमें स्थित मशक समूहोंके तुल्य देवता और दानवोंका वह भयंकर युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे तालके सदृश ऊंचे लोकपालोंके हस्ति-

मण्डलोंका प्रलयकालकी गर्जनाके समान भयंकर समरका शब्द निकला ॥ १९ ॥ वह समरका शब्द अधिक घनीभावसे मानो आकाशमें कुट्टिम पृथिवीका भाग बना रहाथा और कहीं तो मुष्टिसे ग्रहण करने योग्य, और कहीं मेघोंके जलभारसे गम्भीर उदरके समान भान होताथा ॥ २० ॥

रथसंपातसंपिष्टशस्त्रशैलरटन्नटः ॥ त्रुटद्धृदयनिःसत्वकर्कशाक्रंदघर्घरः ॥ २१ ॥ प्रलयप्रत्ययोल्लासिकल्पांतारावबृंहणः ॥ द्वादशादित्यसंघट्टद्रवत्कांचनपर्वतः ॥ २२ ॥ ब्रह्मांडकुंडसंघट्टात्पराव्रत्याचनिर्गतः ॥ महास्रोतःपयःपूरःसत्वाहतइवाकरः ॥ २३ ॥ चंचत्सपक्षशैलेंद्रपक्षपातचलद्ध्वनिः ॥ कठिनापूरणोद्भूतस्फुटच्छैलेंद्रकंदरः ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा रथोंके संपातसे चूर्ण शास्त्रोंसे पर्वतोंपर रटते हुये नटके समान ताललयका अनुसरण करताथा और विदीर्ण हृदय तथा धैर्यरहित पुरुषोंके कर्कशरोदनसे घर्घर भान होताथा ॥ २१ ॥ और प्रलयके कारणीभूत अग्नि वायु आदिसे उल्लासको प्राप्त होनेवाले ब्राह्म दिवसके अन्तमें प्रसिद्ध प्रलय शब्दकाभी वर्द्धक, और द्वादश आदित्योंके मेलनसे द्रवीभूत कांचन पर्वतके शब्दके समान विदित होताथा ॥ २२ ॥ और ब्रह्माण्ड कुण्डके संघट्टको पाकर और उससे लोटकर तथा अपनेस्थानसेभी चलित प्राणियोंसे ताडित जीवोंका आश्रयभूत महाप्रवाहके जलकी ध्वनिके समान जान पडताथा ॥ २३ ॥ और जहांपर चलते हुये पक्षसहित पर्वतोंके वायुके सदृश चलायमान ध्वनि होरहीथी, और जहां कर्णको कटु वायुके भयंकर शब्दोंसे पर्वतोंकी कंदरा टूट रहींथी ॥ २४ ॥

मंदरोद्भूतदुग्धाब्धिसंक्षोभसदृशांगकः ॥ रतिश्रुद्घुंघुमास्फोटघटितद्वीपजंतुभूः ॥२५॥ सेनयोःक्षुब्धयोरासीद्युद्धमुद्धतदानवम् ॥ निष्पिष्टनगरग्रामगिरिकाननमानवम् ॥ २६ ॥ महाहेतिशतच्छिन्नदानवाचलपूर्णदिक् ॥ अन्योन्याहतहेत्यादिचूर्णपूर्णांबरोदरम् ॥ २७ ॥ भुशुंडीमंडलास्फोटस्फुटन्मेरुशिरःशतम् ॥ शरमारुतनिर्लूनदैत्यदेवमुखांबुजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और अमृतके अर्थ मन्थन समयमें मंदराचलसे कंपित क्षीरसागरकी ध्वनिके समान स्वरूपधारी; उसी स्थानपर अमृत उत्पन्न होनेसे उसमें प्रीतिके कारण सुननेवाले देवताओंके हर्षकी अधिकतामें भुजाओंके अस्फालन शब्दोंसे सप्त द्वीपरूप जन्तुओंके निवासिको पूर्ण करनेवाला वह समरका शब्द निकला ॥ २५ ॥ उन दोनों क्रुद्ध सेनाओंका भयंकर युद्ध हुआ, उस युद्धमें दानव उद्धतथे, और वहांपर नगर, ग्राम पर्वत तथा मनुष्य कुच ले जातेथे ॥ २६ ॥ और महाशस्त्रोंसे सैकडों छिन्नभिन्न दानवोंके अचल शब्दसे दिशा पूर्णथीं, और जहां परस्पर प्रहारित शस्त्र आदिसे उत्पन्न धूलिके चूर्णसे आकाशका उदर पूर्ण होरहाथा ॥ २७ ॥ और जहां भुशुंडीके समूहोंके शब्दोंसे सैकडों मेरूके शिखर टूट रहेथे, और जहां वायुकेतुल्य बाणोंके वेगसे देवता और दैत्योंके मुखरूपी कमल कट रहेथे ॥ २८ ॥

चक्रावर्त्तशतभ्रांतदेवदैत्यजरत्तृणम् ॥ सेनाप्रहारकल्लोलवलनावलितांबरम् ॥ २९ ॥ हेत्युग्रवातनिष्पिष्टपतद्वैमानिकव्रजम् ॥ अस्त्रोदिताब्धिवार्योघप्लावितव्योमपत्तनम् ॥ ३० ॥ वहन्महास्त्रपातासिशूलशक्तिनदीशतम् ॥ शैलपक्षोद्भटास्फोटलुब्धब्रह्मांडमंडपम् ॥ ३१ ॥ दैत्यपार्ष्णिप्रहारौघपतल्लोकेशपत्तनम् ॥ नारीहलहलारावरणत्कंकणमंदिरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा चक्ररूपी आवर्तमें सैकडों देवता तथा दैत्यरूपी प्राचीन तृण भ्रमण कर रहेथे और जहां सेनाके प्रहाररूपी तरंगके वेष्टनसे आकाशभी वेष्टित होरहाथा ॥ २९ ॥ तथा जहां शस्त्ररूपी उग्र वायुसे मर्दित होकर विमान चारी देवताओंका समूह गिररहाथा और जहां वरूण आदि अस्त्रोंसे उत्पन्न समुद्रके जलप्रवाहोंसे आकाशमें इन्द्रकी अमरावती आदि नगरीभी वह रहीथी ॥ ३० ॥ तथा महाअस्त्रोंके संपातसे खड्ग, त्रिशूल, और शक्ति आदिकी सैकडों नदियां बह रहीथी, और जहां पर्वतोंके पार्श्व (बगल) में वीरोंके उद्धत भुजा आदिके शब्दोंसे ब्रह्माण्डरूपी मण्डप कंपायमान हो रहाथा ॥ ३१ ॥ और जहांपर दैत्योंकी पार्ष्णि (एडी) के प्रहारोंके समूहोंसे इन्द्र आदिकेभी नगर गिरतेथे, तथा जहां स्त्रियोंके हलहला शब्दोंसे शब्दायमान कंकणयुक्त मंदिर होरहेथे ॥ ३२ ॥

लुठद्दैत्यबलोद्भूतमत्तास्त्रौघजलान्वितम् ॥ रक्तधौतनरौघोग्रमुक्तनादद्रवज्जनम् ॥ ३३ ॥ लोकपानीकपांभोजच्छन्नाच्छन्नयमान्वितम् ॥ पुनःसुरासुरैर्घातैर्दृष्टसैन्यकुलाकुलम् ॥ ३४ ॥ सपक्षपर्वताकारदानवाद्रिगमागमैः ॥ वहच्छवशवाशब्दभूरिभांकारभीषणम् ॥ ३५ ॥ आयुधाग्रविभिन्नोग्रदैत्यपर्वतनिर्झरैः ॥ रक्तैररुणिताशेषवसुधार्णवपर्वतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा लूटतेहुये दैत्योंके सैन्यसे कम्पित मत्त जनोंके अस्त्र समूहरूपी जलसे संयुक्त तथा जहां रक्तसे धौत (धुलेहुये) मनुष्योंके समूहसे उत्पन्न भयंकर शब्दसे मनुष्यलोग भागरहेथे ॥ ३३ ॥ तथा इन्द्रादि सेनाओंके

नायकरूपी कमलोंमें भ्रमरके समान कभी प्राण हरनेके अर्थ गुप्त; और कभी युद्धके अर्थ प्रकट यमराज सहित सुर तथा असुरोंके सैन्यकुलसे वह युद्धस्थान व्याप्त था ॥ ३४ ॥ पक्षसहित पर्वताकार दानवरूपी पर्वतोंके गमन तथा आगमनसे शवशव (मृतक मृतक) शब्दोंसे भयंकरथा ॥ ३५ ॥ जहांपर शस्त्रोंके अग्रभागोंसे छिन्न दैत्यरूपी पर्वतके झरनोंके रक्तोंसे सम्पूर्ण पृथिवी, समुद्र; तथा पर्वत लाल होरहेथे ॥ ३६ ॥

उत्सन्नराष्ट्रनगरविपिनग्रामगह्वरम् ॥ धृतासंख्यासुरेभाश्वमनुष्यशवपर्वतम् ॥ ३७ ॥ सुतालोत्तालनाराचराजिरोचितवारणम् ॥ मुष्टिप्रहारपिष्टांसमत्तैरावणवारणम् ॥ ३८ ॥ कल्पाभ्रपटलासारधारादलितपर्वतम् ॥ महाशनिविनिष्पेषपिष्टोड्डीनकुलाचलम् ॥ ३९ ॥ कुपिताग्निज्वलज्ज्वालाज्वालज्वलितदानवम् ॥ एकांजलिपुटानीतसमुद्रोत्सादितानलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नष्ट हुये राज्य, नगर जंगल तथा बनसे भयंकर और असंख्य असुर, हस्ती, अश्व, मृग और मृतक जीवोंको धारण करनेहारे मेरूआदि पर्वत विद्यमान थे ॥३७॥ उत्तम तालवृक्षके तुल्य ऊंचे बाणोंकी पंक्तियोंसे शोभित अनेक हस्ती संयुक्त, तथा मुष्टिप्रहारोंसे चूर्ण स्कंधयुक्त मत्त ऐरावत हाथीभी भागतेथे ॥ ३८ ॥ और जहांपर प्रलयकालके मेघके पटलकी वृष्टिकी धारासे पर्वतभी दलित होगयेथे तथा जहांपर महावज्रपातसे चूर्ण मलयादिपर्वतभी उड रहेथे ॥ ३९ ॥ तथा जहांपर कुपित अग्निकी जाज्वल्यमान ज्वालाके समूहसे दानवगण जल रहेथे, और जहांपर एक अंजलिसे लाये हुये समुद्रसे अग्निभी नष्ट करदिया गयाथा ॥ ४० ॥

चंडदैत्यातिसंभारशिलीकृतमहाज्वलम् ॥ वनव्यूहेंधनाग्न्यर्चिर्द्रावितांबुशिलोच्चयम् ॥ ४१ ॥ अस्त्रनिर्मितदुर्वारतमःकल्पांतरात्रिकम् ॥ मायासूर्यगणोद्योतैःपीताततनुतमःपटम् ॥ ४२ ॥ मायाग्निवर्षनिष्पीतकलाभ्रघनवर्षणम् ॥ ससीत्काराग्निवमनशस्त्रसंघट्टवर्षणम् ॥ ४३ ॥ वज्रवर्षास्त्रनिर्द्धूतशैलवर्षास्त्रसंभ्रमम् ॥ निद्राबोधास्त्रयुद्धाढ्यंसंघर्षावग्रहाश्रयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा जहां प्रचंड दैत्योंके समूहसे महान् अग्नि पाषाण शिलाके समान शीतल होरहाथा, तथा बनके समूहसे प्रेरित अग्निकी दीप्तिसे पर्वतभी जलके समान करदिये गयेथे ॥ ४१ ॥ अस्त्रसे रचित अनिवारणीय अन्धकारसे प्रलयकी रात्रिके समान, तथा मायारचित सूर्योंके गणके प्रकाशोंसे विस्तृत अन्धकाररूप पट पीतवर्ण होगयाथा ॥ ४२ ॥ जहां मायासे रचित अग्निकी वर्षाने मायासे प्रेरित घन वर्षाको सर्वथा पी लियाथा, तथा जहां सीत्कार शब्द और अग्निके बमनसहित शस्त्रके संघट्टसे वृष्टि होरहीथी ॥ ४३ ॥ तथा जहांपर बज्रकी वर्षारूपी अस्त्रोंसे कंपायमान पर्वतकी वृष्टिरूप अस्त्रोंका संभ्रम होरहाथा, निद्रा और जाग्रत् अवस्था जनक अस्त्रोंके युद्धसे पूर्ण, और शत्रुके पराजय रूप वृष्टिके प्रतिबन्धका आश्रयस्थान वहथा ॥ ४४ ॥

वहत्क्रकचवृक्षास्त्रंजलाग्न्यस्मरणांधितम् ॥ ब्रह्मास्त्रयुद्धविषमंतमस्तेजोस्त्रसारितम् ॥ ४५ ॥ अस्त्रोद्दीर्णायुधानीकनीरंध्रसकलांबरम् ॥ शिलावर्षास्त्रदलितंवह्निवर्षास्त्रभासुरम् ॥ ४६ ॥ पताकास्पृष्टशशिकैश्चक्रचीत्कारगर्जितैः ॥ सुहृत्तैनरथैर्लंघितोदयास्तमयाचलम् ॥ ४७ ॥ वज्रप्रहाराविरतम्रियमाणमहासुरम् ॥ शुक्रामरमहाविद्याजीवमानमहासुरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जहां क्रकचके वृक्षरूपी अस्त्र बह रहेथे, और जल तथा अग्निके व्यामोहसे अन्धकार युक्त, और जहांपर ब्रह्मास्त्र युद्धसे भयंकर तथा तम और तेज दोनों परस्पर उत्साहित होतेथे ॥ ४५ ॥ जहां आसुर तथा पैशाच आदि अस्त्रोंसे और तोमर मुसल तथा मुद्गर आदि आयुध समूहोंसे छिद्र रहित संपूर्ण आकाश होगयाथा, और शिला वृष्टिरूपी अस्त्रसे दलित तथा अग्निकी वर्षारूपी अस्त्रसे प्रकाशमान था ॥ ४६ ॥ पताकाओंसे चंद्रमाको स्पर्श करनेहारे चक्रोंके चीत्कारकी गर्जना सहित रथोंने उदयाचल और अस्ताचलकोभी लंघन करलियाथा ॥ ४७ ॥ और जहांपर वज्रके प्रहारसे निरन्तर महा असुर मररहेथे, और शुक्राचार्यकी संजीविनीनाम महाविद्यासे महा असुर जहां जीवितभी होरहेथे ॥ ४८ ॥

विद्रवद्देवसंघातंजयप्रोद्दामरामरम् ॥ शुभग्रहमहाकेतुमालिकानामितस्ततः ॥ ४९ ॥ उत्पातमंगलौघानांबुद्बुदेरुद्धरकंधरम् ॥ साद्रिखोर्वीसमुद्रद्युजगद्रुधिरवारिधि ॥ ५० ॥ फुल्लैककिंशुकवनंकुर्वद्दुर्वारवैरतः ॥ पर्वतप्रतिमासंख्यशवपूर्णमहार्णवम् ॥ ५१ ॥ समग्रतरुशाखाग्रलंबलोलमहाशवम् ॥ दीप्यमानैःस्ववातार्त्तैःपक्षपुष्पैर्लसत्फलैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—कहीं तो देवताओंका समूह भाग रहाथा और कहीं देवताओंको विजयका डंका बज रहाथा, और

कहीं महा केतु मालिकाओंके तथा शुभग्रहोंके दर्शनके लिये इधर उधर लोगोंके कण्ठ उठ रहेथे ॥ ४९ ॥ और कहीं उत्पातोंके वा मंगलके समूहोंके दर्शनार्थ कण्ठ लोगोंके उठ रहेथे, तथा जहांपर पर्वत आकाश, पृथिवी समुद्र और अंतरिक्षके सहित यह जगत् रुधिरका समूह हो रहाथा ॥ ५० ॥ तथा दुर्वार वैरसे जगत् विकसित किंशुकके बनसे पूर्ण रक्त पर्वतके तुल्य, असंख्य मृतक जीवोंसे पूर्ण महा समुद्र समान भासताथा ॥ ५१ ॥ संपूर्ण वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभागमें महा मृतक लटक रहेथे, और सूर्यकी किरणोंके प्रतिबिंबरूप अभ्रवोंसे शोभायमानथा और जहांपर अपने वेग जनित वायुसे चंचल पक्षरूप पुष्पसे शोभायमान लोहके भागरूप पल्लवाले ॥ ५२ ॥

तालोत्तालैःशरव्रातवनैर्व्याप्तनभस्थलम् ॥ पर्वतप्रतिमासंख्यकबंधशतबाहुभिः ॥ ५३ ॥ नृत्यद्भिःपातितांभोदविमानसुरतारकम् ॥ शरशक्तिगदाप्रासपट्टिशप्रोतपर्वतम् ॥ ५४ ॥ लोकसप्तकविभ्रष्टकुड्य खंडचितांबरम् ॥ अनारतरसन्मत्तकल्पाभ्रदृढदुंदुभि ॥ ५५ ॥ एवंशब्दशतोन्नादपातालतलवारणम्॥ विनायककराकृष्टदीर्घदानवपर्वतम् ॥ ५६ ॥ एकदिक्करनिष्पंदसिद्धसाध्यमरुद्गणम् ॥ पलायमानगंधर्वकिन्नरामरचारणम् ॥ ५७ ॥ ववुरशनिनिपातखंडितांगादलितशिलाशकलाःककुब्मुखेषु ॥ प्रलयसमयसूचकाःसुराणांसुरतरुघर्घरघस्मराःसमीराः ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्राम वर्णनं नाम षडविंशःसर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—तथा तालके समान ऊंचे बाणके समूहरूपी बनोंसे आकाशमंडल व्याप्त होगयाथा, और जहां पर्वतके समान असंख्य कबंध (शिर रहित धड) की नाचती हुई भुजाओंने मेघ, विमान, देवता और तारागण गिरा दियेथे जहां बाण, शक्ति, गदा, बर्छी और पट्टिशके अग्रभागमें निरन्तर प्राणी गूंथेथे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तथा जहां सातोंलोकोंसे गिरे स्थानादिसे आकाश व्याप्तथा और निरंतर मत्तके सदृश प्रलयकालके मेघके समान प्रबल दुंदुभी बज रहाथा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार जहां सैकडों शब्दोंसे दिग्गज गर्जना कर रहेथे और जहांपर विनायकके हांथसे बडे २ दानवरूपी पर्वत खींचे जातेथे ॥ ५६ ॥ और असुरोंके भयसे दैवेच्छासे भागते समय एकदिशामें मिलित सिद्ध-साध्य आदि देवताओंके गणभी चेष्टा रहित हो रहेथे, और जहां गंधर्व, किन्नर देवता और चारण भाग रहेथे ऐसा भयानक वह युद्ध हुआ ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! इस समय बज्र (बिजुली) के पतनसे प्राणीयोंके अंगोंके तथा पर्वतोंको काटनेवाले देवताओंके प्रलयके सूचक और कल्पवृक्षोंमें रहनेवाले कोकिल आदि शब्दोंके नाशक पवन संपूर्ण दिशाओंमें बहने लगे ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकट संग्रामवर्णनं नाम षाड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस २७ के सर्गमें देवताओंका पराजय और शरणागत देवताओंको ब्रह्माजीने वासनाके समूहरूप दैत्यके वधका उपाय बतलायाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मिंस्तदावर्त्तमानेघोरेसमरसंभ्रमे ॥ देवासुरशरीरेषुगर्त्तेष्वभ्रोदरेष्विव ॥ १ ॥ वहत्स्वसृक्प्रवाहेषुगंगापूरेष्विवांबरात् ॥ दाम्निवेष्टितदेवौघकृतक्ष्वेडाघनारवे ॥ २ ॥ व्यालेनिजकराकृष्टिपिष्टसर्वसुरालये ॥ कटेकठिनसंरंभसंगरक्षपितामरे ॥ ३ ॥ ऐरावतेक्षीणरवेपलाबनपरायणे ॥ प्रवृद्धेदानवानीकेमध्याह्नइवभास्करे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जिस समय वह भयंकर युद्ध वर्तमानथा और देवथा असुरोंके मेघके उदरके समान शरीरके घावोंमें ॥ १ ॥ रूधिरकी धारायें ऐसी बह रहीथी जैसे आकाशसे गंगाजीके प्रवाह, और दाम नामक दैत्य जब देवताओंके समूहको वेष्टित करके सिंहके समान गर्जताथा ॥ २ ॥ और व्याल अपने हस्तसे संपूर्ण देवताओंके स्थानोंको चूर्ण करताथा; तथा कठिन संग्राममें कट नाम दानव देवताओंका नाश करताथा ॥ ३ ॥ तथा जब क्षीण बल होके ऐरावत हाथी भागताथा और जब मध्यान्ह कालके सूर्यके सदृश दानवोंकी सेना बढतीथा ॥४॥

पतितांगव्यथार्त्तानिप्रस्रवद्रुधिराणिच ॥ पयांसीवावसेतूनिदेवसैन्यानिदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ दामव्यालकटास्तानिचिरमंतर्हितानिच ॥ अनुजग्मुर्लसन्नादमिंधनानीवपावकाः ॥ ६ ॥ अन्विष्टानपियत्नेननालभं

तासुराःसुरान् ॥ घनजालवनोड्डीनान्सिंहाहरिणकानिव ॥ ७ ॥ अलब्धेष्वमरौघेषुदामव्यालकटास्त दा ॥ जग्मुःपातालकोशस्थंप्रभुंप्रमुदिताशयाः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समय गिरे हुये अंगोंकी व्यथासे पीडित तथा रुधिरलिप्त देह देवताओंकी सेना ऐसे भगी जैसे पुलके टूटनेपर जल ॥ ५ ॥ सिंहके समान नाद करते हुये दाम व्याल और कट चिरकालतक अंतर्हित (छिपे हुये) भी देवताके पीछे ऐसे चले जैसे इन्धनके पीछे अग्नि ॥ ६ ॥ प्रयत्नसे खोजनेपरभी असुरोंने देवताओंको ऐसे नहीं पाया जैसे घनीभूत जाल संयुक्त बनसे उडे हुये हरिणोंको सिंह ॥ ७ ॥ जब देवताओंका गण न मिला उस समय प्रसन्न चित्त दाम व्याल और कट पातालके कोशमें स्थित अपने प्रभु शंबरके समीप गये ॥ ८ ॥

अथदेवाविषण्णास्तेक्षणमाश्वास्यवैययुः ॥ जयोपायायविजिताब्रह्माणममितौजसम् ॥ ९ ॥ तेषामा विरभूद्ब्रह्मारक्तरक्ताननश्रियाम् ॥ सायंरक्तीकृतांबूनामब्धीनामिवचंद्रमाः ॥१०॥ प्रणम्यतेसुरास्तस्मा अनर्थंशंबरेहितम् ॥ सम्यक्प्रकथयामासुर्दामव्यालकटक्रमम् ॥११॥ तदाकर्ण्याखिलंब्रह्माविचार्यस विचारवित् ॥ उवाचेदंसुरानीकमाश्वासनकरंवचः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् देवतालोग अति उदासीन चित्त क्षणभर स्वस्थ होके शम्बरदैत्यके जीतनेके उपायके-लिये अपरिमित तेजस्वी ब्रह्माजीके निकटगये ॥९॥ रुधिरोंसे रक्त मुखकी शोभायुक्त उन देवताओंके मध्यमें ब्रह्माजी ऐसे प्रकट हुये जैसे सायंकालमें रक्तवर्ण जलसहित समुद्रके मध्यमें चंद्रमा ॥१०॥ वे सब देवतागण ब्रह्माजीको प्रणाम करके दाम व्याल और कटकी उत्पत्तिरूप शम्बरकी चेष्टारूप अनर्थको भलीभांति कथन किया ॥ ११ ॥ उस संपूर्ण वृत्तांतको सुनके विचारमें कुशल ब्रह्माजी विचार करके देवताओंकी सेनाओंको धैर्य देके इस बचनको बोले कि॥१२॥

॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ शतवर्षसहस्रांतेशंबरेणहरेःकरात् ॥ मर्त्तव्यंसमरेशस्यतत्कालंसंप्रतीक्षताम् ॥ १३ ॥ दामव्यालकटानेतानद्यत्वमरसत्तमाः ॥ योधयंतःपलायध्वंमायायुद्धेनदानवान् ॥ १४ ॥ युद्धाभ्यास वशादेषांमुकुराणामिवाशये ॥ अहंकारचमत्कारःप्रतिबिंबमुपैष्यति ॥ १५ ॥ गृहीतवासनास्त्वेतेदा मव्यालकटासुराः ॥ सुजेयावोभविष्यंतिलग्नजालाःखगाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—हे देवगण ! शत (सौ) सहस्र (हजार) वर्षके अनंतर समरके स्वामी श्रीविष्णुजीके हस्तसे श-म्बरासुर अवश्य मरेगा सो उसकी तबतक तुमको अवश्य प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ १३ ॥ इसकारण हे देवताओंमें श्रेष्ठ इससमय तो तुम लोग कपट युद्धसे दाम व्याल तथा कट नाम दानवोंको युद्ध कराते हुये भागो ॥ १४ ॥ युद्धके अभ्यासके कारण इन लोगोंके अंतःकरणमें अहंकारके चमत्कारके प्रतिबिंब ऐसे उदय होगा जैसे दर्पणमें मुख आदिका ॥ १५ ॥ हे देवगण ! वासनासहित ये दाम व्याल और कट सहजमें जीतने योग्य ऐसे होजायगे जैसे जालमें फसे हुये पक्षी ॥ १६ ॥

अद्यत्ववासनाह्येतेसुखदुःखविवर्जिताः ॥ धैर्येणारीन्विनिघ्नंतोदेवाइर्जयतांगताः ॥ १७ ॥ वासनातंतु बद्धायेआशापाशवशीकृताः ॥ वश्यतांयांतितेलोकेरज्जुबद्धाःखगाइव ॥ १८ ॥ येभिन्नवासनाधीरा सर्वत्रासक्तबुद्धयः ॥ नहृष्यंतिनकुप्यंतिदुर्जयास्तेमहाधियः ॥ १९ ॥ यस्यांतर्वासनारज्ज्वाग्रंथिबंधः शरीरिणः ॥ महानपिबहुज्ञोपिसबालेनापिजीयते ॥ २० ॥

अर्थ—और हे! देवगण इस समय तो ये बासनासे शून्य सुखदुःख वर्जित हैं, और धीरतासे अपने शत्रुओंको नष्ट करते हुये तुमको जीतनेको अयोग्य होगये हैं ॥ १७ ॥ जो लोग बासनाके सूत्रसे बंधेहैं तथा आशाकी फांसीके बशमें हैं वे इस संसारमें ऐसे बशमें प्राप्त होतेहैं जैसे रज्जुसे बंधेहुये पक्षी ॥ १८ ॥ और जिन महात्माओंकी वा-सना छिन्नहै और जिनकी बुद्धि सर्वत्र संसक्त नहीं है; और जो न कभी प्रसन्न होतेहैं और न कोप करतेहैं उन महाबुद्धियोंका जीतना अति कठिनहै ॥ १९ ॥ जिस शरीरधारीका अन्तःकरण वासनाकी रस्सीसे बंधाहै वह चाहे महान् क्यों न हो और बहु ज्ञाता क्यों न हो परन्तु वह एक बालकसेभी जीता जा सकताहै ॥ २० ॥

अयंसोहममेदंतदित्याकाल्पितकल्पनः ॥ आपदांपात्रतामेतिपयसामिवसागरः ॥ २१ ॥ इयन्मात्रपरि च्छिन्नोयेनात्माभव्यभावितः ॥ ससर्वज्ञोपिसर्वत्रपरांकृपणतांगतः ॥ २२ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्ययेनेय त्ताप्रकल्पिता ॥ आत्मनस्तस्यतेनात्मास्वात्मनैवावशीकृतः ॥ २३ ॥ आत्मनोव्यतिरिक्तंयत्किंचिद स्तिजगत्त्रये ॥ यत्रोपादेयभावेनबद्धाभवतुवासना ॥ २४ ॥

अर्थ—यह शरीरादि, वह इन्द्रियादि मैं हुं; वह धन पुत्रआदि मेरा है इत्यादिक कल्पना करनेवाला प्राणी

सम्पूर्ण आपत्तियोंका पात्र ऐसे होताहै जैसे अनेक प्रकारके जलका समुद्र ॥ २१ ॥ सर्वव्यापी सर्वज्ञ आत्माकाभी परिछिन्न इस शरीरआदिके साथ जिसको अभेदबुद्धि है वही जीवन मरणरूप परम कृपणताको प्राप्त हुआहै ॥ २२ ॥ अनन्त और अप्रमेय आत्माकी जिसने इयत्ता (इतनाही शरीरमात्र है) कल्पित कियाहै उसने अपने आत्माको आपही अवश कियाहै ॥ २३ ॥ यदि आत्मासे पृथक् वस्तु कोई तीनों लोकमें हो तो वहां उपादेयभावसे वासनाका बद्ध होना युक्त हो ॥ २४ ॥

आस्थामात्रंमनंतानांदुःखानामाकरंविदुः ॥ अनास्थामात्रमभितःसुखानामाकरंविदुः ॥ २५ ॥ दामव्यालकटायावदनास्थाभवसंस्थितौ ॥ तावन्नामजेयावोमशकानामिवानलाः ॥ २६ ॥ अंतर्वासनयाजंतु दीनतामनुयातया ॥ जितोभवत्यन्यथातुमशकोप्यमराचलः ॥ २७ ॥ विद्यतेवासनायत्रतत्रसायाति पीनताम् ॥ गुणोगुणिनिहिद्वित्वंसतोदृष्टंहिनासतः ॥ २८ ॥

अर्थ—असद् वस्तुमें सत्रूपसे आस्थाही अनंत दुःखोंकी खानि कही जाती है, और असद् वस्तुमें अनास्थाही (अविश्वासही) सुखोंकी खानि गई है ॥ २५ ॥ दाम व्याल और कटको जबतक संसारकी स्थितिमें आस्था नहीं है तबतक वे तुमारे जीतनेको ऐसे असमर्थ हैं जैसे अग्निको जीतनेमें मशक ॥ २६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें यह बासनाहै कि देहादिके नाशसे आत्माका नाश होताहै वही जीव जीवन मरणरूप दीनताको प्राप्त होता है और वही दूसरेसे जीता जाता है इसके बिना एक मशक (मच्छर) भी सुमेरूके समान है ॥ २७ ॥ जहांपर जो बासनाहै वहां वह स्थूलताको प्राप्त होती है क्योंकि धर्मीके रहनेहीसे पीनता (स्थूलता) नामक गुण होताहै, क्योंकि विद्यमान द्रव्यहीमें द्वित्व दृष्ट है न कि असत्में ॥ २८ ॥

अयंसोहंममेदंचेत्यवमंतःसवासनम् ॥ यथादामादयःशक्रभावयंतितथाकुरु ॥ २९ ॥ यायाजनस्य विपदोभावाभावदशाश्चयाः ॥ तृष्णाकरंजवल्यास्तामंजर्यःकटुकोमलाः ॥ ३० ॥ वासनातंतुबद्धोयो लोकोविपरिवर्त्तते ॥ साप्रवृद्धातिदुःखायसुखायोच्छेदमागता ॥ ३१ ॥ धीरोप्यतिबहुज्ञोपिकुलजोपिमहानपि ॥ तृष्णयाबध्यतेजंतुःसिंहःशृंखलयायथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! ये दाम, व्याल और कटके अन्तःकरणमें यह वासना जैसे हो कि यह प्रसिद्ध देहादि हम हैं ऐसी उपाय करो ॥ २९ ॥ इस जीवकी जो २ विपत्ति हैं और भाव अभावकी जो दशा हैं वे सब तृष्णारूपी कंटकके वृक्षकी कटु और कोमलताहैं ॥ ३० ॥ वासनाके तन्तुसे जो लोक बंधाहै उसीको विपरीत ज्ञान होता है और वही वासना बढी हुई अति दुःखकेलिये होती है; और उच्छिन्न होनेसे अति सुखकेलिये होती है ॥ ३१ ॥ यह प्राणी धीरभी हो, बहु ज्ञाताभी हो, कुलीनभी और महान्‌भी हो, परन्तु तृष्णासे ऐसे बंधनमें आ जाताहै जैसे सिंह शृंखला (जंजीर) से ॥ ३२ ॥

देहपादपसंस्थस्यहृदयालयगामिनः ॥ तृष्णाचित्तखगस्येयंवागुरापरिकल्पिता ॥ ३३ ॥ दीनोवासनयालोकःकृतांतेनापकृष्यते ॥ रज्ज्वेवबालेनखगोविवशोभृशमुच्छ्वसन् ॥ ३४ ॥ अलमायुधभारेणसंगरभ्रमणेनच ॥ वासनायाविपर्यासंयुक्त्यायत्नाद्रिपोःकुरु ॥ ३५ ॥ अंतराक्षुभितेधैर्येरिपोरमरनायक ॥ नशास्त्राणिनचास्त्राणिनशास्त्राणिजयंतिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—देहरूपी वृक्षपर स्थित और हृदय कमलरूपी अपने घोसले (खोंथे) में जानेवाले इस जीवरूपी पक्षीके अर्थ तृष्णारूपी जाल कल्पित की गई है ॥ ३३ ॥ तृष्णारूपी रज्जुसे बंधा हुआ यह जीव ऐसे खींचा जाताहै जैसे सूतसे बंधा हुआ विवश श्वास लेताहुआ पक्षी एक बालकसे ॥ ३४ ॥ हे इन्द्रजी ! इस समय अस्त्रशस्त्रका भार तथा युद्धमें भ्रमण करना व्यर्थ है किंतु शत्रुके हृदयमें बासनाका विपर्यय अर्थात् अभिमानकी वृद्धि उत्पन्न करो ॥३५॥ जिस शत्रुका अन्तःकरण क्षुभित नहीं है उसको न शस्त्र न अस्त्र और न शुक्राचार्य आदिके नीति शास्त्र जीतसकतेहैं॥३६॥

दामव्यालकटास्त्वेतेयुद्धाभ्यासवशेनच ॥ अहंकारमयींमत्तास्तेग्रहीष्यंतिवासनाम् ॥ ३७ ॥ यदाते त्यक्तपुरुषाःशंबरेणविनिर्मिताः ॥ वासनामाश्रयिष्यंतितदायास्यंतिजेयताम् ॥ ३८ ॥ तत्तावद्युक्तियुद्धेनतान्प्रबोधयतामराः ॥ यावदभ्यासवशतोभविष्यंतिस्ववासनाः ॥ ३९ ॥ ततोवश्याभविष्यंतिभवतांबद्धवासनाः ॥ तृष्णाऽप्रोताशयालोकेनचकेचनपेलवाः ॥ ४० ॥ समविषममिदंजगत्समग्रंसमुपनतंस्थिरतांस्ववासनांतः ॥ चलचललहरीभरोयथाब्धावतइहसैवचिकित्स्यतांप्रयाता ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे पितामहवाक्यं नाम सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—दाम व्याल और कट युद्धके अभ्यासके बशसे मत्त होके संकल्पसे अहंकारमयी बासनाको ग्रहण करेंगे ॥ ३७ ॥ जिससमय शंबरसे रचित दामादि अति अज्ञानी होजायगे और बासनाका आश्रय करेंगे उससमय पराजयताको प्राप्त होंगे ॥ ३८ ॥ इसलिये हे देवगण! तबतक युक्तिपूर्वक युद्धसे इन दाम व्याल आदिको व्यवहारमें नियुक्त करो जबतक कि ये अभ्यासके बशसे बासनासहित न होजाय ॥३९ ॥ इसके अनंतर बासनासे बद्ध होनेपर आपके बश होजायगे और जो बासनासे गुंथे नहीं हैं वे कोईभी कोमल नहीं हैं ॥ ४० ॥ जैसे अत्यंत चंचल तरंगोंका समूह समुद्रमें जलरूपसेही है, ऐसेही अपनी वासनाके भीतर प्रवाहरूपसे नित्यताको प्राप्त सम तथा बिषमरूप यह जगत् बासनारूपही है, इसलिये उसीकी चिकित्सा (उपाय) करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे पितामहवाक्यं नाम सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

आष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस २८ के सर्गमें विश्राम किये हुये देवता तथा दैत्योंका युद्ध विस्तारपूर्वक चिरकालतक अर्थात् बासनाके उदय पर्यन्त वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देवांस्तत्रैवांतर्द्धिमाययौ ॥ वेलावनितटेशब्दंकृत्वेवांबुतरंगकः ॥ १॥ सुरास्त्वाकर्ण्यतद्वाक्यंजग्मुःस्वाभिमतांदिशम्॥ कमलामोदमादायवनमालामिवानिलाः॥ २॥ दिनानिकतिचित्स्वेषुकांतेषुस्थिरकांतिषु ॥ द्विरेफाइवपद्मेषुमंदिरेषुविशश्रमुः ॥ ३ ॥ कंचित्कालंसमासाद्यस्वात्मोदयकरंशुभम्॥ चक्रुर्दुंदुभिनिर्घोषंप्रलयाभ्ररवोपमम्॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके पीछे भगवान् ब्रह्माजी उसी स्थानमें ऐसे अन्तर्धान होगये जैसे समुद्रके तटपर समुद्रका तरंग शब्द करके लुप्त होजाय ॥ १ ॥ देवता लोग ब्रह्माके उस बचनको श्रवण करके अपने अभिमत दिशाको ऐसे चले गये जैसे कमलके सुगंधको ग्रहण करके बनमालाकी ओर वायु ॥ २ ॥ रमणीय तथा स्थिर शोभायुक्त अपने मन्दिरोंमें कुछ कालतक ऐसे विश्राम किया जैसे कमलोंमें भ्रमर ॥ ३ ॥ अपना उदयकारी कोई शुभकाल पाके देवोंने प्रलयके मेघके समान दुंदुभीका शब्द किया ॥ ४ ॥

अथदैत्यैर्महाव्योम्नितैःपातालतलेस्थितैः ॥ कालक्षेपकरंघोरंपुनर्युद्धमवर्त्तत ॥ ५॥ ववुरसिशरशक्तिमुद्गरौघामुसलगदापरशूग्रचक्रशंखाः॥अशनिगिरिशिलाहुताशवृक्षाअहिगरुडादिमुखानिचायुधानि॥६ मायाकृतायुधमहांबुघनप्रवाहाक्षिप्रावहाप्रतिदिशंकिलनिर्जगाम ॥ पाषाणपर्वतमहीरुहलक्षवृक्षक्षुब्धांबुपूरघनघोषवतीनदीद्राक् ॥ ७ ॥ मध्यप्रवाहवहदुल्मुकशूलशैलप्रासासिकुंतशरतोमरमुद्गरौघा ॥ गंगोपमांबुवलितामरमंदिरेणसर्वासुदिक्ष्वशनिवर्षनिकर्षणेन ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पातालमें स्थित दैत्योंके साथ देवताओंका महाभयंकर युद्ध अन्तरिक्षमें आरम्भ हुआ ॥ ५ ॥ खड्ग, बाण, शक्ति, मुद्गरोंके समूह, मुसल, गदा, परसु, उग्र चक्र, और शंखाकार अस्त्र वज्र पर्वत शिला अग्निके समान वृक्ष सर्प और गरूडके समान मुखवाले अस्त्र शस्त्र चलने लगे ॥ ६ ॥ मायारचित अस्त्र तथा शस्त्ररूपी महाजलके घनप्रवाहसहित और इसकारणसे शीघ्र हस्तोंको जयके लिये प्राप्त करनेवाली और पाषाण पर्वत सामान्य वृक्ष तथा वृक्षोंसे जलके प्रवाहके क्षुभित होनेसे अति शब्द करनेवाली वह शस्त्र अस्त्ररूपी नदी प्रति दिशाओंमें चलने लगी ॥ ७ ॥ जलसेही देवताओंके मेरूआदि स्थानोंको आच्छादित करनेवाली वज्रआदिकी वर्षासे तटके छेदनसे मेरूके पृष्ठपर बहती हुई गंगाके सदृश तथा मध्यप्रवाहमें वहते हुये उल्मुक; शूल; पर्वत बर्छी खड्ग कुंत बाण तोमर और मुद्गरोंके समूह सहित वह नदी थी ॥ ८ ॥

पृथ्व्यादिदारुणशरीरमपिप्रहारदानग्रहागहनराशिशरीरकेव ॥ मायोपशाम्यतिसुरासुरसिद्धसन्नामायाकृतिःपुनरुदेतिनचैवसैव ॥ ९ ॥ शैलोपमायुधविघट्टितभूधराणिरक्तांबुपूरपरिपूर्णवानि ॥ देवासुरेंद्रशवशैलविरूढकुंततालीवनानिककुभांवदनानिचासन्॥ १० ॥ उद्गीर्णकुंतशरशक्तिगदासिचक्रहेलानिगीर्णसुरदानवमुक्तशैला ॥ काषोलसत्कचदंतनखाग्रमालाजीवान्वितापतदायससिंहसृष्टिः ॥ ११ ॥ उज्ज्वाललोचनविषज्वलनातपौघदिग्दाहदर्शितयुगांतदिनेशसेना ॥ उड्डीयमानपरिदीर्घमहामहीध्रमग्नाब्धिवह्निविषधरावलिरुल्ललास ॥ १२ ॥

अर्थ—वह रणनदी पृथ्वीआदि पंचभूतके तुल्य मायामयीथी; अर्थात् जैसे यह पृथिवी भ्रमण पतन और रोधनरूप कार्य करतीथी और जलमें डूबते अग्निसे जलते वायुसे उडते और महागर्ताकाशमें प्राणी जैसे गिरतेहैं ऐसी वह मायाथी और अतिकठिन राक्षस पिशाच आदिकी शरीरमयीथी और शत्रुओंके ऊपर प्रहार करने तथा अपने ऊपर ग्रहण करनेवाली तथा अन्यसे जीतनेके अयोग्य योधा पूर्ण वह सेनाथी ऐसीभी वह देवताओंकी असुर और दैत्योंसे शान्त होजातीथी और पुनः उसीके सदृश मायाकार उत्पन्न होतीथी परन्तु यह वार्ता नहीं ज्ञात होतीथी कि वह वही है वा अन्यहै ॥ ९ ॥ पर्वतके सदृश अस्त्रोंसे पर्वतोंकोभी चूर्ण करनेवाले रक्तरूपी जलसे समुद्रोंकोभी पूर्ण करनेवाले देव तथा असुरेन्द्रोंके शरीरोंपर गडे हुये कुन्तो (भालों) की पंक्तिरूप ताली बनसे सम्पूर्ण दिशाओंके मुख होगये ॥ १० ॥ जिसमें निकले हुये भाले बाण शक्ति गदा खड्ग तथा चक्रोंसे देवता तथा दानवलोग पर्वत अपने ऊपर सहन करतेथे और दूसरोंके ऊपर छोडतेथे तथा छेदनसे शोभायमान आरोंके दांतरूप नखके अग्रभागकी मालाधारिणी तथा दूसरोंके जीव ग्रहण करनेसे जीव संयुक्त लोहमय अस्त्ररूपी सिंहोंकी सृष्टि गिरी ॥ ११ ॥ नेत्रोंके विषकी ज्वालाओंसे उत्पन्न आतपके समूहोंसे दिशाओंके दाहद्वारा एक कालमेंही प्रलयके समान १२ सूर्योंकी सेनाको दर्शानेवाली विषधरों (सर्पों) की पंक्ति ऐसी शोभित हुई जैसे चारोंओरसे उडते हुये बडे २ महान् पर्वतोंसे व्याप्त समुद्र ॥ १२ ॥

उन्नादवज्रमकरोत्करकर्कशांतःक्षुब्धाब्धिवीचिवलयैर्वलिताचलेन्द्रैः ॥ आसीज्जगत्सकलमेवसुसंकटां गमावृत्तिभिर्विविधहेतिनदीप्रवाहैः ॥ १३ ॥ शैलास्त्रगरुडाचलचालितोच्चनागंमहासुरगणांगणमंतरिक्षम् ॥ आसीत्क्षणंजलधिभिःक्षणमग्निपूरैःपूर्णंक्षणंदिनकरैःक्षणमंधकारैः ॥१४॥ गरुडगुडगुडाकुलांतरिक्षप्रविसृतहेतिहुताशपर्वतौघैः ॥ जगदभवदसह्यकल्पकालेज्वलितसुरालयभूतलांतरालम् ॥१५॥ उदपतन्नसुरावसुधातलाद्गगनमद्रितटादिवपक्षिणः ॥ अतिबलादपतन्विबुधाभुविप्रलयचालितशैलशिलाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—मेरुकोभी आच्छादित करनेवाले अनेक प्रकारके अस्त्ररूपी नदीके प्रवाहोंसे उग्र शब्द करनेवाले, रत्न तथा मकर आदिसे कर्कश और अन्तरमें क्षुब्ध समुद्रके तरंगोंसे संपूर्ण जगत् पीडित होगया ॥ १३ ॥ पर्वतोंके समान अस्त्रशस्त्रोंसे, मायारचित गरूडोंसे, तथा बलसे उखाडके फेंके हुये पर्वतोंसे संचालित पूर्व वर्णित सर्पसहित बडे २ देवता तथा दैत्योंका युद्धका अंगणरूप भूत अन्तरिक्षभी क्षणभरके लिये समुद्रोंसे पूर्ण होजाताथा कभी क्षणभरके लिये अग्निके समूहोंसे कभी सूर्योंसे और कभी क्षणभरके वास्ते अन्धकारोंसे पूर्ण होताथा ॥ १४ ॥ गरूडास्त्रसे उत्पन्न गुडगुडा शब्दसे व्याप्त अन्तरिक्षमें विस्तृत शस्त्ररूपी अग्निके पर्वत समूहोंसे असह्य प्रलयकालके समान जाज्वल्यमान देवताओंके स्थान और भूतलके अन्तरालसहित जगत् पुनः होगया ॥ १५ ॥ इससमय वसुधाके तलेसे असुर लोग ऊपर ऐसे उडे जैसे पर्वतके तटसे पक्षी और आकाशमार्गसे देवतालोग पृथिवीपर ऐसे गिरे जैसे प्रलयसे संचालित पर्वतोंकी शिला ॥ १६ ॥

शरीररूढोन्नतहेतिवृक्षवनावलीलग्नमहाग्निदाहाः ॥ सुरासुराःप्रापुरथांबरांतःकल्पानिलांदोलितशैलशोभाम् ॥ १७॥ सुरासुराद्रींद्रशरीरमुक्तैरक्तप्रवाहैरभितोभ्रमद्भिः ॥ बभारपूर्णपरितोंबरोद्रेःसंध्याकरैर्घक्षतमंगगंगाम् ॥ १८ ॥ गिरिवर्षणमंबुवर्षणंविविधोग्रायुधवर्षणंतथा ॥ विषमाशनिवर्षणंचतेसममन्योन्यमथाग्निवर्षणम् ॥ १९ ॥ अनयन्नयमार्गकोविदादलिताशेषगिरींद्रभित्तयः ॥ ससृजुश्वसमंततः करिकुंभेष्विवपुण्यवर्षणम् ॥ २० ॥

अर्थ—शरीरोंमें चुभे हुये बडे शस्त्ररूपी वृक्षोंके बनकी पंक्तियोंमें महान् अग्निके दाहसहित देवता तथा दैत्यलोग ऐसे शोभित हुये जैसे प्रलयकालके पवनसे भ्रमणशील जलते हुये पर्वत ॥ १७ ॥ हे प्रियरामजी ! सुर असुररूपी पर्वतेन्द्रोंकी शरीरोंसे मुक्त चारोओर भ्रमण करते हुये रक्तप्रवाहोंसे पूर्ण सुमेरूके चारोओरका आकाशरूप नायकने सन्ध्यारूपी नायिकाके नखक्षतकी शोभाको धारण किया ॥ १८ ॥ वे देवता तथा असुरगण कभी पर्वतकी कभी जलकी कभी नानाप्रकारके उग्र शस्त्र अस्त्रोंकी और कभी भयंकर वज्रकी वृष्टि साथही एक दूसरेके ऊपरकी ॥ १९ ॥ नीतिमार्गमें प्रवीण तथा मेरूकी भित्तिकोभी दलन करनेवाले सुर असुर उत्सवके समय जैसे कुंकुम चंदन आदिसे पूर्ण पिचकारीकी वृष्टि हांथियोंके गण्डस्थलपर करतेहैं ऐसेही परस्पर शस्त्र अस्त्रकी वृष्टिकी ॥ २० ॥

देवासुराःसमरसंभ्रममाकुलास्तेअन्योन्यमंगदलनाकुलहेतिहस्ताः ॥ नागेंद्रडिंभपृतनापृथुपीठपेषैःकीर्णश्रियोनभसिबभ्रमुराक्षिपंतः ॥ २१ ॥ छिन्नैःशिरःकरभुजोरुभरैर्भ्रमद्भिराकाशकाष्ठशलभैरशिवैस्तदानीम् ॥ आसीज्जगज्जठरमभ्रभरैरिवोग्रैराभास्करस्थगितदिक्तटशैलजालम् ॥ २२ ॥ रटद्भटास्फोटकटिस्फुटद्भिःसमीरितैर्हेतिकलासितौघैः ॥ परस्पराघातहतैःपतद्भिर्जगामशीर्णादलशोधरित्री ॥२३॥ अन्योन्यमायुधशिलाचलवृक्षवर्षैर्मेरुप्रमाणकठिनांगनिघर्षणैश्च ॥ आसीद्रणंचटचटास्फुटदंतरिक्षंकल्पक्षयांतमिवभीमभरोग्रनादैः ॥ २४ ॥

अर्थ—परस्पर अंगमर्दनमें व्यग्रहस्त, तथा युद्धके उत्साहको न त्यागते हुये सुर असुर ऐरावतों तथा अन्य हस्तियोंके समूहकी पीठके सदृश विशाल पृष्ठोंपर गुरूतर शरीरोंके भारसे पीडाजनक आरोहणोंसे शोभाको विस्तृत करते हुये आकाशमें भ्रमण करतेथे ॥ २१ ॥ आकाश तथा दिशाओंके शलभके तुल्य भ्रमण करते हुये छिन्न शिर, कर, भुजा और जंघाके अशुभ समूहोंसे सूर्य पर्यन्त आच्छादित संपूर्ण दिशा और पर्वतसहित जगत्का ऐसे गर्भ पूर्ण होगया जैसे मेघोंके समूहोंसे ॥ २२ ॥ भलीभांतिसे प्रेरित आक्रंदन करते हुये वीरोंके अस्फालन (स्फूर्ति) से कटि देशमें टूटते हुये तथा परस्परके आघातसे गिरते हुये शस्त्रोंसे, और यंत्र फेकनेकी कुशलतासे शिला पर्वत आदिके समूहोंसे विशीर्ण पृथिवी खण्ड २ होगई ॥ २३ ॥ परस्पर अस्त्र, शिला, पर्वत तथा वृक्षोंकी वर्षासे, तथा मेरूके समान कठिन अंगोंके संघट्टनसे उत्पन्न भयंकर शब्दोंसे चटचटा शब्द पूर्ण वह रणकल्पके अन्तके सदृश होगया ॥ २४ ॥

मत्तानिलक्षुब्धजलानलार्कदलद्वयंदीर्घसुरासुरौघम् ॥ ब्रह्मांडमाखंडितकुड्यकोणमकालकल्पांतकरालमासीत् ॥ २५ ॥ भ्रांतैर्भृशंभरितदिक्तटमद्रिकूटैरात्मप्रमाणघनहेतिहतैरणद्भिः ॥ कूजद्भिरार्तिभिरिवोग्रगुहोचवातैःक्रंदद्भिरापतितसिंहरवैरदभ्रैः ॥ २६ ॥ मायानदीजलधियोधघनाग्निदाहैर्वृक्षैःसुरासुरशवैरचलैःशिलोच्चैः ॥ भ्रांतैःशरासिशितशक्तिगदास्त्रशस्त्रैर्वाताबकीर्णवनपर्णवदंतरंतः ॥ २७ ॥ अद्रींद्रपक्षपरिमाणगमाक्षमोक्तदुर्वारहस्तिबलदारुणदेहकैर्द्राक् ॥ आसीत्पतद्भटशरीरगिरींद्रवातविभ्रष्टदेवपुरपूर्णजलार्णवौघम् ॥ २८ ॥ घनघुंघुमपूरितांतरिक्षाक्षतजक्षालितभूधराधराच ॥ रुधिरह्रदवृत्तिवर्त्तिनीवाभुवनाभोगगुहातदाकुलाभूत् ॥ २९ ॥ अनंतदृक्प्रसृतविकारकारिणीक्षयोदयोन्मुखसुखदुःखशंसिनी ॥ रणक्रियासुरसुरघट्टसंकटातदाभवत्खलुसदृशीहसंसृतेः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटपुनर्युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—जहां प्रचंड पवनसे संक्षुब्ध जल अग्नि अधोदेशमें और सूर्य ऊर्ध्व (ऊपर) देशमेंथे ऐसे दो दल संयुक्त, तथा बडे २ मायाके विभवोंसे सुर असुर दोनोंके समूहथे और जिसके प्रांत (इधर उधर) के स्थान विदीर्ण होगयेथे ऐसा वह ब्रह्मांड अकालमें प्रवृत्त कल्पांतके सदृश भयंकर होगया ॥ २५ ॥ अपने सदृश प्रमाणवाले घन शस्त्रोंसे ताडित होनेसे भ्रमणशील, शब्द करते हुये, और भयंकर गुफाओंके प्रबल पवनोंसे कूजते हुयेके समान, और आये हुये उच्च सिंहके शब्दोंसे रोदन करते पर्वत समूहोंसे पूर्ण दिशाओंके तट उस रणमें होगये ॥ २६ ॥ मायासे रचित नदी, समुद्र, वीर, मेघ तथा अग्निके दाह; वृक्ष, सुर, तथा असुरोंके मृतक शरीर, पर्वत तथा बडी २ शिलायें, और वायुसे गिराये हुये भीतर भ्रमण करते हुये शर, खड्ग, तीक्ष्ण शक्ति, गदा अस्त्र और शस्त्रादिसे जगत् पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ मेरूके सदृश प्रमाणवाले; इसीसे मनुष्यके संचारको निरोध करनेहारे पूर्वोक्त दुर्निवार हस्तियोंके समूहके मृतक शरीरोंसे; तथा गिरते हुये वीरोंके शरीरोंसे पर्वतेंद्रोंसे तथा पवनसे गिराये देवनगरोंसे पूर्ण समुद्रके तुल्य वह रणक्षेत्र होगया ॥ २८ ॥ घनीभूत घुंघुम शब्दोंसे आकाशको पूर्ण करनेवाली तथा रूधिरसे पर्वत और उनके नीचेकी पृथिवी पाताल आदिको प्रक्षालित करने (धोने) वाली और रूधिर आहारी राक्षस पिशाचादिके सदृश व्यवहारशील ब्रह्माण्डके उदरकी गुफा व्याकुल होगई ॥ २९ ॥ अनन्त दृष्टिसहित इन्द्रादिकोभी विस्तृत भयका विकार करनेवाली आत्मचेतनमें जगत्रूप विकारकारिणी और क्षयके अभिमुख प्राणियोंको दुःख तथा उदयके उन्मुखको सुख देनेवाली तथा सुर असुरके परस्पर समागमसे दुस्तर वह रणकी क्रिया उससमय अविद्या आदि संसारके सदृश होगई ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकट पुनर्युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशः सर्ग. ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंप्रायाकुलारंभैरसुरैरसुहारिभिः ॥ सहसाहतसंरब्धैरारब्धःसुमहान्रणः ॥ १ ॥ माययाथविवादेनसंधिनाविग्रहेणच ॥ पलायनेनधैर्येणच्छन्नगोपायनेनच ॥ २ ॥ कार्पण्येनास्त्रयुद्धेन स्वांतर्द्धानैश्वभूरिशः ॥ धृतःससंगरोदेवैस्त्रिंशद्वर्षाणिपंचकम् ॥ वर्षाणिदिवसान्मासान्दशाष्टौसप्तपंचच ॥ वर्षाणिपेतुर्वृक्षाग्निहेत्येकाशनिभूभृताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार आकुल आरंभ करनेवाले तथा प्राणहारी, और सहसा युद्ध करनेमें तत्पर दैत्योंने महान् युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥ और देवता लोगोंने कभी मायारचित विवादसे कदाचित् दानादि उपायरूप सन्धिसे कभी विग्रहसे कभी पलायमानतासे कभी धैर्यसे और कभी गुप्तरीतिसे स्थित होके अपने जनकी रक्षासे ॥ २ ॥ और कभी शरणागतिकी यांचासे शस्त्र अस्त्रादिके युद्धसे और अनेकबार अन्तर्धान (लोप) होनेसे संग्राम धारण किया, उसमें प्रथम संग्राम तीस (३०) वर्षतक धारण किया, द्वितीय संग्राम ५ पांच वर्ष आठ ८ मास १० दिन धारण किया, और तृतीय १२ दिन धारण किया, और इतने कालमें दोनों सेनाओंसे, वृक्ष अग्नि अस्त्र शस्त्र मुख्य वज्र तथा पर्वतोंकी वृष्टि गिरी ॥ ३ ॥ ४ ॥

एतावतातुकालेनदृढाभ्यासादहंकृतेः ॥ दामादयोहमित्यास्थांजगृहुर्ग्रस्तचेतसः ॥ ५ ॥ नैकट्यातिशयाद्यद्वद्दर्पणंबिंबवद्भवेत् ॥ अभ्यासातिशयात्तद्वत्तेसाहंकारतांगताः ॥ ६ ॥ यद्वद्दूरगतंवस्तुनादर्शेप्रतिबिंबति ॥ पदार्थवासनातद्वदनभ्यासान्नजायते ॥ ७ ॥ यदादामादयोजाताअहंकारात्मवासनाः ॥ तदामेजीवितंमेर्थइतिदैन्यमुपागताः ॥ ८ ॥

अर्थ—इतनेही कालमें अहंकारके दृढ अभ्याससे बासनासे ग्रस्त होनेके कारण दाम व्यालादिकोंने अहंभावको ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अति निकटतासे जैसे दर्पण बिंबके तुल्य होजाताहै ऐसेही अभ्यासकी अधिकतासे वे सब अहंकारसहित होगये ॥ ६ ॥ जैसे दूर देशमें स्थित बस्तु दर्पणमें प्रतिबिंबित नहीं होती, ऐसेही बिना अभ्यासके पदार्थकी बासना नहीं होती ॥ ७ ॥ जब अहंकारमेंही आत्मबुद्धि दामादिकी हुई, उसी समयसे हमारा जीवन हमारा हो और उसके अर्थ धन हमको इसप्रकार दीनताको दामादि दानव प्राप्त हुये ॥ ८ ॥

भववासनयाग्रस्तामोहवासनयाततः ॥ आशापाशनिबद्धास्तेततःकृपणतांगताः ॥ ९ ॥ मुग्धेवह्यनहंकारैर्ममत्वमुपकल्पितम् ॥ रज्ज्वांभुजंगत्वमिवदामव्यालकटैस्ततः ॥ १० ॥ आपादमस्तकोदेहःकथंमेभवतुस्थिरः ॥ ममेतितृष्णाकृपणादीनतांतेसमाययुः ॥ ११ ॥ स्थिरोभवतुमेदेहःसुखायास्तुधनंमम ॥ इतिबद्धधियांतेषांधैर्यमंतर्द्धिमाययौ ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रथम "तव" अर्थात् विहित तथा निषिद्ध प्रवृत्तिकी बासनासे, और इसके अनन्तर हमार देह नीरोग दृढ तथा भोगके समर्थ हो ऐसी मोहकी बासनासे ग्रस्त हुये; अनंतर आशाके पाशमें बद्ध हुये, उसके अनंतर दीनताको प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ मुग्धा स्त्रीके समान अहंकार रहित दाम व्याल और कटने ममताकी ऐसी कल्पनाकी जैसे रज्जुमें सर्प ॥ १० ॥ पादसे लेके मस्तक पर्यन्त हमारा देह कैसे स्थिर हो ऐसी तृष्णासे वे दीनताको प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ हमारा शरीर स्थिर रहै और धन हमारे सुखके लिये हो इसप्रकार बद्ध चित्त दाम व्यालादिका धैर्य्य लोप होगया ॥ १२ ॥

सवासनत्वाद्वपुषामल्पसत्वात्सुरद्विषाम् ॥ यातुप्रहारपरतामार्जितेवाशुसाभजत् ॥ १३ ॥ कथंसुराजगत्यस्मिन्भवामइतिचिंतया ॥ विवशादीनतांजग्मुःपद्माइवनिरंभसः ॥ १४ ॥ तेषांयोषान्नपानेनस्वाहंकृतिमतांरतिः ॥ बभूवभावभावस्थाभीषणाभवभाजिनी ॥ १५ ॥ अथतस्मिन्रणेभीत्यासापेक्षत्वमुपाययुः ॥ मत्तेभघनसंरब्धेवनेहरिणकाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—बासनासहित होनेके कारण देवताओंके शत्रु दानवोंकी शरीरोंके बल न्यून होनेसे पूर्णकालमें जो प्रहार करनेमें तत्परता प्रसिद्धथी वह नष्टके समान कार्य करनेमें शीघ्र असमर्थ होगई ॥ १३ ॥ इस संसारमें अमर कैसे हों इस चिंतासे बिवश होकर ऐसी दीनताको प्राप्त हुये जैसे जल बिना कमल ॥ १४ ॥ भलीभांति अहंकारको धारण करनेवाले उन दाम व्यालादिकी स्त्री तथा अन्नपानादिके सेवनसे विषयोंकी भावनामें स्थित भयंकर संसारको प्राप्त करानेवाली प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस रणमें मत्त हस्तियोंके साथ कुपित होनेपर भयसे सापेक्षताको ऐसे प्राप्त हुये जैसे बनमें हरिण ॥ १६ ॥

मरिष्यामोमरिष्यामइतिचिंताहताशयाः ॥ मंदंमंदंकिलभ्रेमुःकुपितैरावणेरणे ॥ शरीरैकार्थिनांतेषांभीतानांमरणादपि ॥ अल्पसत्वतयामूर्धिकृतमेवपरैःपदम् ॥ १८ ॥ अथप्रम्लानसत्वास्तेहंतुमग्रगतंभटम् ॥ नशेकुरिंधनेक्षीणेहविर्दग्धुमिवाग्नयः ॥ १९ ॥ विबुधानांप्रहरतांमशकत्वमुपागताः ॥ क्षतविक्षतसंघातास्तस्थुःसामान्यसद्भटाः ॥ २० ॥

अर्थ—मरैंगे मरैंगे ऐसी चिंतासे हतोत्साह होके ऐरावत हांथीके रणमें कुपित होनेपर वे निश्चयरूपसे मन्द २ भ्रमण करनेलगे ॥ १७ ॥ केवल शरीरमात्रके अर्थी और मरणसे भयभीत उन दामादिके न्यून बल होनेसे उनके शिरपर शत्रुओंने अपने पद स्थित किये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर पराक्रमके क्षीण होनेसे वे लोग सन्मुख स्थित एक बीरकोभी मारनेमें ऐसे असमर्थ हुये जैसे इन्धनके क्षीण होनेपर हविषके जलानेमें अग्नि ॥ १९ ॥ प्रहार करनेवाले देवताओंके सम्मुख वे मच्छरके तुल्य होगये, और इधर उधर शरीरके घायल होनेसे सामान्य उत्तम बीरके सदृश स्थित रहे ॥ २० ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनमरणाद्भीतचेतसः ॥ दैत्यादेवेषुवल्गत्सुदुद्रुवुःसमराजिरात् ॥ २१ ॥ तेषुद्रवत्सुभीतेषुसर्वतोदानवादिषु ॥ दामव्यालकटाख्येषुविख्यातेषुसुरालये ॥ २२ ॥ तद्दैत्यसैन्यंन्यपतद्दिदुतंखादितस्ततः ॥ कल्पांतपवनोद्धूतंताराजालमिवाभितः ॥ २३ ॥ अमराचलकुंजेषुशिखराणांशिखासुच ॥ तटेषुवारिराशीनांपयोदपटलेषुच ॥ २४ ॥

अर्थ—अधिक कथनसे क्या प्रयोजन मृत्युसे भीत चित्त दैत्य लोग देवताओंके गर्जनेपर समरांगणसे भाग गये ॥ २१ ॥ स्वर्गमें प्रसिद्ध दाम व्याल और कटनामक दैत्यके और अन्य दानवादिकोंके भयभीत होके भागनेपर ॥ २२ ॥ आकाशसे इधर उधरसे वह दैत्योंकी सेना ऐसे गिरी जैसे प्रलयके पवनसे कंपित तारागण चारों ओरसे गिरैं ॥ २३ ॥ सुमेरूपर्वतके कुंजोंमें, पर्वतोंकी चोटियोंपर, समुद्रोंके तटोंपर, मेघोंके पटलोंमें ॥ २४ ॥

सागरावर्त्तगर्त्तेषुश्वभ्रेषूद्यत्सरित्सुच ॥ जंगलेषुदिगंतेषुज्वलत्सुविपिनेषुच ॥ २५ ॥ तद्बाणोच्छिन्नदेशेषुग्रामेषुनगरेषुच ॥ अटवीषूग्रपक्षासुमरुभूमिदवाग्निषु ॥ २६ ॥ लोकालोकाचलांतेषुपर्वतेषुह्रदेषुच ॥ आंध्रद्रविडकाश्मीरपारसीकपुरेषुच ॥ २७ ॥ नानांभोधितरंगासुगंगाजलघटासुच ॥ द्वीपांतरेषुजालेषुजंबुखंडलतासुच ॥ २८ ॥

अर्थ—समुद्रके भवरेंहसहित जलोंमें छिद्रोंमें बढती हुई नदियोंमें, जंगलोंमें, दिगंतोंमें, जलते हुये बनोंमें दानवलोग गिरनेलगे ॥ २५ ॥ देवताओंके बाणोंसे नष्ट देशोंमें ग्रामोंमें, नगरोंमें, सिंहादिके निवासस्थान अरण्योंमें, तथा मेरू भूमिकी दवाग्नियोंमें देवताओंके शत्रु गिरे ॥ २६ ॥ लोकालोक पर्वतके अन्तोंमें, सामान्य पर्वतोंपर न्हदोंमें, आंध्र द्रविड काश्मीर तथा पारसीक आदि देशके नगरोंमें ॥ २७ ॥ नानादेशमें स्थित समुद्र बाहिनी गंगाके प्रवाहोंमें मत्स्य बंधनके लिये प्रसारित जालयुक्त द्वीपांतरोंमें और जम्बूखण्ड नामक देशकी लताओंमेंभी ॥ २८ ॥

सर्वतःपर्वताकाराःपतितास्तेसुरारयः ॥ विस्फोटितांगचरणाविभिन्नकरबाहवः ॥ २९ ॥ शाखालग्नांत्रतंत्रीकामुक्तरक्तभरच्छटाः ॥ व्यस्तशेखरमूर्द्धानोनिष्क्रांताःकुपितेक्षणाः ॥ ३० ॥ सायुधाबलमायेषुच्छिन्नकंकटहेतयः ॥ दूरापातविपर्यस्तपतन्नानायुधांशुकाः ॥ ३१ ॥ कंठलंबिशिरस्त्राणचटत्कारोग्रभीतयः ॥ शिखाशतशिलाप्रोतादेहभागविलंबिनः ॥ ३२ ॥ शाल्मल्युग्रद्दढापातकटत्कंटकसंकटाः ॥ सुशिलाफलकास्फालशतधाशीर्णमस्तकाः ॥ ३३ ॥ सर्वएवसकलायुधशस्त्रपातमात्रसमनंतरमेव ॥ दिक्षुनाशमगमन्नसुरेंद्राःपांसवोंबुदनिधौपयसीव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने असुरपरिभ्रंशो नामैकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—चारोंओरसे पर्वताकार देवताओंके शत्रु गिरे, और उन दानवोंके त्रुटित अंग होनेसे पाद तथा हस्त बांह छिन्नभिन्न होगये ॥ २९ ॥ और वृक्षकी शाखाओंमें उनकी आंतीरूप तांत लपट गई शिरोभूषण और केश इधर उधर बिखर गये, और उससमय वे निकले हुये कुपित नेत्रधारी भान होते थे ॥ ३० ॥ शस्त्र अस्त्रसहित सेना माया तथा बाणोंसे उनके बाणादि शस्त्र छिन्न भिन्न करदिये गये, और दूर देशसे गिरनेसे नानाप्रकारके शस्त्रास्त्र तथा बस्त्रादि विपर्ययसे गिर गये ॥ ३१ ॥ और कण्ठमें लग्न शिरस्त्राणोंके चटत्कार शब्दोंसे उग्रभयसहित अग्रभागमें सैकडों

शिखाओंसे शिलाओंमें गूंथनेके कारण देहमात्रसे लटक रहेथे ॥ ३२ ॥ शाल्मली वृक्षोंपर दृढपात होनेसे कांटोंके टूटनेसे संकट ग्रस्त होगयेथे, और बडी २ शिलाओंके गिरनेसे उनके मस्तकोंके सैकडों टुकडे होगयेथे ऐसे दैत्यलोग पूर्वोक्त स्थानोंमें गिरे ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण शस्त्र अस्त्रके गिरनेके अनन्तर दिशाओंमें सब असुरेन्द्र ऐसे लोपको प्राप्त हुये जैसे वर्षाऋतुके जलमें धूलि ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्याने असुरपरिभ्रंशोनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस ३०के सर्गमें पातालमें यमराजसे जलाये हुये दामादिकी काश्मीरदेशमें मत्स्य जन्मपर्यन्त जन्म परंपरा वर्णनकी गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितुष्टेषुदेवेषुदानवेषुहतेषुच ॥ दामव्यालकटादीनांबभूवुर्भयविह्वलाः ॥ १ ॥ जज्वालकुपितःक्वेतिकल्पांताग्निरिवज्वलन् ॥ शंबरःशमितानीकोदामव्यालकटान्प्रति ॥ २ ॥ शंबरस्य भयाद्गत्वापातालमथसप्तमम् ॥ दामव्यालकटारतस्थुस्त्यक्त्वाथनिजमंडलम् ॥ ३ ॥ यमस्यकिंकरा यत्रयेकालत्रासनक्षमाः ॥ कुतूहलेनतिष्ठंतिनरकार्णवपालकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार दानवोंके नष्ट होनेपर और देवताओंके संतुष्ट होनेपर दाम, व्याल, तथा कट भयसे विह्वल तथा दुःखी होगये ॥ १ ॥ इसके अनन्तर संपूर्ण सेना जिसकी नष्ट होगई है ऐसा शंबरासुर प्रलयके अग्निके समान दामादि दानवोंसे जलता हुआ, और वे कहां हैं ऐसा पूंछता हुआ क्रोधसे जलने लगा ॥ २ ॥ इसके पश्चात् शंबरासुरके भयसे दाम व्याल और कट अपने मंडल (सेनादि) को त्यागकर सप्तम पातालमें जाके रहने लगे ॥ ३ ॥ जहांपर मृत्युके तुल्य त्रास करनेमें समर्थ, तथा नरकरूपी समुद्रके पालक यमराजके किंकर कौतुकसे निवास करते हैं ॥ ४ ॥

तेतेषामथयातानांदत्वाभयमभीरवः ॥ चिंताइवघनाकाराःकुमारीश्चददुःक्रमात् ॥ ५ ॥ तैःसार्द्धंनी तवंतस्तेतत्रदामादयोवधिम् ॥ दशवर्षसहस्रांतमात्तानंतकुवासनाः ॥ ६ ॥ इयंमेकामिनीकन्याममेयं प्रभुतेतिच ॥ दुरूढस्नेहबंधानांकालस्तेषांव्यवर्त्तत ॥ ७ ॥ धर्मराजोथसंदेशंकदाचित्समुपाययौ ॥ महानरककार्याणांविचारार्थंयदृच्छया ॥ ८ ॥

अर्थ—भयशून्य वे यमराजके किंकर शरणमें प्राप्त दाम व्याल तथा कटको अभयदान देके घनाकार मूर्तिमान् चिंताके समान अपनी कन्याओंको क्रमसे तीनोंको दिया ॥ ५ ॥ वहांपर वे दामादि दानव अनन्त दुष्ट वासनाओंको ग्रहण करके उनके साथ दशसहस्र वर्षपर्यन्त अपनी आयुको बिताया ॥ ६ ॥ यह मेरी अति सुंदरी कामिनी है, यह कन्या है; और यह प्रभुता है इत्यादि दुरूढ बंधनमें प्राप्त उनका काल बीतने लगा ॥ ७ ॥ उसके पश्चात् कभी महानरक कार्योंके विचारकेलिये अपनी इच्छासे उसी देशमें धर्मराज आये ॥ ८ ॥

अपरिज्ञातमेनंतेधर्मराजंत्रयोसुराः ॥ नप्रणेमुर्विनाशायसामान्यमिवकिंकरम् ॥ ९ ॥ अथवैवस्वतेनैते ज्वलितासुग्रभूमिषु ॥ विहितभ्रूपरिस्पंदमात्रेणैवनिवेशिताः ॥ १० ॥ तत्रतेकरुणाक्रंदाःससुहृद्दारबंध वः ॥ प्रदग्धाःपर्णविटपावृक्षाइववनानिलैः ॥ ११ ॥ स्वयावासनयाजातास्तयैवक्रूरयापुनः ॥ बंधक र्मकराकाराःकिराताराजकिंकराः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् छत्रचामरादि चिन्ह न होनेसे सामान्य किंकरके सदृश धर्मराजको अपने नाशार्थ प्रणाम नहीं किया ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् यमराजने शतयोजनपर्यन्त जलती हुई महारौरवादि नरक भूमियोंमें उनको अपने भृकुटीकी चेष्टा (इशारे) मात्रसे डलवा दिया ॥ १० ॥ वहांपर वे सुहृत् स्त्री तथा बंधुसहित करुणनाद करते हुये पत्तेमात्र शेष वृक्षके समान बनके वायुसे क्षणमेंही जलादिये गये ॥ ११ ॥ पुनः वे दामादि यमराजके किंकरोंके सहवाससे उसी अपनी क्रूरवासनाके कारण बधबंधनके कर्मोंके करनेवाले राजाके सेवक किरातयोनिमें उत्पन्न हुये॥ १२

तज्जन्माथपरित्यज्यजाताःश्वभ्रेषुवायसाः ॥ तदंतेगृध्रतांयातास्ततोपिशुकतांगताः ॥ १३ ॥ सूकरत्वं त्रिगर्त्तेषुमेषत्वंपर्वतेषुच ॥ मगधेष्वथकीटत्वंबभुस्तेचकुबुद्धयः ॥ १४ ॥ अनुभूयेतरामन्यांश्चित्रांयो निपरंपराम् ॥ अद्यमत्स्याःस्थितारामकाश्मीरारण्यपल्वले ॥ १५ ॥ दावाग्निक्वथिताल्पाल्पपंककल्पांबु

पायिनः ॥ नम्रियंतेनजीवंतिजरज्जंबालजर्जराः ॥ १६ ॥ विचित्रयोनिसंरंभमनुभूयपुनःपुनः ॥ भूत्वा भूत्वापुनर्नष्टास्तरंगाजलधाविव ॥ १७ ॥ भवजलधिगतास्तेवासनातंतुनुन्नास्तृणमिवचिरमूढादेहरूपैस्तरंगैः ॥ उपशमसुपयातारामनाद्याप्यनंतंपरिकलयमहत्त्वंदारुणंवासनायाः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतरचित्रवर्णनंनामत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उस जन्मको त्यागकर गर्तोंमें काकका जन्म धारण किया, इसके पश्चात् ग्रिध्रताको प्राप्त हुये, अनंतर शुकयोनिमें प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ इसके पीछे त्रिगर्तदेशमें शूकर हुये, पीछे पर्वतोंमें मेष हुये, इसके अनंतर मगधदेशमें उन कुबुद्धियोंने कीटकताको धारण किया ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् अन्य विचित्र योनियोंकी परंपराको भलीभांति अनुभव करके हे रामजी ! इससमय काश्मीर देशके छोटे तलावमें मत्स्यताको प्राप्त हैं ॥ १५ ॥ दावाग्निसे जले हुये कीचडके समान जलको पीनेवाले जीर्ण पंकमें शिथिल देह वे न मरते हैं न जीते हैं ॥ १६ ॥ विचित्र योनियोंके समूहोंको पुनः २ अनुभव करते हुये हो २ कर पुनः ऐसे नष्ट होते हैं जैसे समुद्रमें तरंग ॥ १७ ॥ हे रामजी ! संसाररूपी तरंगमें प्राप्त, वासनारूपी सूत्रसे प्रेरित, देहरूप तरंगोंसे चिरकालतक वहां अद्यपर्यन्त वे शान्तिको नहीं प्राप्त हुये, इस दृष्टान्तसे तुम वासनाका दारूण महत्त्व (महान् अनर्थ) देखो ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाम व्याल कट जन्मांतरचित्रवर्णनं नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अहंकारके अभिमानसे अर्थका नाश अनर्थकी प्राप्ति, और दाम व्यालादिका सत्व असत्वका निराकरण इस ३१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अतःप्रबोधायतववच्मिराममहामते ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेस्त्वितिलीलया ॥ १ ॥ अविवेकानुसंधानाच्चित्तमापदमीदृशीम् ॥ अनंतभवदुःखायपरिगृह्णातिहेलया ॥२॥ क्कशंबरविध्वंसिशंबरानीकनाथता ॥ क्वतापतप्तजंबालजालजर्जरमीनता ॥ ३ ॥ क्वधैर्यममरानीकविद्रावणकरंमहत् ॥ क्वकिरातमहीपालक्षुद्रकिंकररूपता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! महामते इसलिये तुमारे बोधकेलिये मैं कहता हुं कि इस लीलासे दाम व्याल कटका न्याय तुमको न हो ॥ १ ॥ हे रामजी ! अविवेकके अनुसंधानसे इस प्रकारकी आपत्तिको यह चित्त अनन्त संसारके दुःख भोगनेकेलिये ग्रहण करताहै ॥ २ ॥ देखो ! कहां तो देवताओंकोभी नाश करनेवाली शंबरासुरकी सेनाकी स्वामिता और कहां तापसे संतप्त शैवालके जालमें जर्जरीभूत मीनता ॥ ३ ॥ कहां तो देवताओंकी सेनाकोभी भगानेवाला महान् धैर्य्य ! और कहां किरातोंके राजाकी क्षुद्र दासता ॥ ४ ॥

क्वनामनिरहंकारचित्सत्वोदारधीरता ॥ क्वमिथ्यावासनावेशादहंकारकुकल्पना ॥ ५ ॥ शाखाप्रतानगहनासंसारविषमंजरी ॥ अहंकारांकुरादेवसमुदेतीयमातता ॥ ६ ॥ अहंकारमतोराममार्जयांतःप्रयत्नतः ॥ अहंनकिंचिदेवेतिभावयित्वासुखीभव ॥ ७ अहंकारांबुदच्छन्नंपरमार्थेंदुमंडलम् ॥ रसायनमयंशीतमदृश्यत्वमुपागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कहां तो अहंकार शून्य चित्सत्वकी उदार धीरता ! और कहां मिथ्या वासनाके आवेशसे दुष्ट अहंकारकी कल्पना ॥ ५ ॥ शाखाके विस्तारोंसे गहन यह संसाररूपी विषकी लता अहंकाररूपी अंकुरसेही व्याप्त होके उदय होती है ॥ ६ ॥ इसलिये हे रामजी ! अहंकारको प्रयत्नसे हृदयसे धोडालो, और दृश्य जडको "इदंता" की योग्यतासे अहंकारकी अयोग्यताहै और अहंकारादि सबके साक्षीचेतनमेंभी अहंकारकी अघटना होनेसे, तथा दृक् और दृश्यसे भिन्न मिथ्या होनेसे अहंकारका स्थान कुछ नहीं है, ऐसी भावना करके सुखी होजाओ ॥ ७ ॥ यह परमार्थरूपी चंद्रमंडल आनंदमय शीतल अर्थात् तीनों तापसे शून्य अहंकाररूपी मेघसे आच्छादित होके अदृश्यभावको प्राप्त होगयाहै ॥ ८ ॥

अहंकारपिशाचार्त्तादामव्यालकटास्त्रयः ॥ गतास्सत्तामसंतोपिमायामाहात्म्यदानवाः ॥ ९ ॥ काश्मीरेषुमहारण्यसरसीवनपल्वले ॥ अद्यमत्स्याःस्थितारामशैवाललवलालसाः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ तेह्यसंतःकथंसत्तांसंपन्नाइतिमेवद ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्महाबाहोनासत्संभवतिक्वचित् ॥ कदाचित्किंचिदप्येवबृहत्संपद्यतेतनु॥१२॥

अर्थ—दाम, व्याल, और कट ये तीनों अहंकाररूपी पिशाचसे पीड़ित होके असत् होते हुयेभी मायाके माहात्म्यसे दानवरूपसे सत्ताको प्राप्त हुयेहैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! काश्मीरदेशके छोटे तलावके गढेमें इस समय शैवालके लेशमें लालची मत्स्यरूपसे स्थितहैं ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! असत् पदार्थका भाव और सत्का अभाव नहीं है तो असत्रूप दामादि सत्ताको कैसे प्राप्त हुये यह मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे माहाबाहो रामजी ! यह बात ऐसीही है असत्का सत् कहीं संभव नहीं है किन्तु सूक्ष्म बृहत्रूपसे अविर्भूत होताहै और बृहत्का तिरोभावही उसका नाश कहा जाताहै ॥ १२ ॥

किमसत्संस्थितंब्रूहिकिंतत्सद्वाथसंस्थितम् ॥ सम्यङ्दर्शनेनैवकरिष्येतवबोधनम् ॥ १३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ संतएवस्थिताःसंतोब्रह्मन्वयमिमेकिल ॥ दामादयस्त्वसंतोपिवक्षिसंतःस्थिताइति ॥ १४ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथादामादयोरामस्थितामायामयाइति ॥ असत्याएवसत्याभामृगतृष्णांबुपूरवत् ॥ १५ ॥ तथैवेमेवयमपिससुरासुरदानवाः ॥ असत्याएववल्गामोयामआयामएवच ॥ १६ ॥

अर्थ—कहो तो भला ! कौन असत् सत् और सत्असत्रूपसे स्थितहैं इस विषयमें भलीभांति दृष्टान्तद्वारा तुमारा बोध मैं कराऊंगा ॥ १३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हम लोगोंकी सत्ता तो प्रत्यक्ष सिद्धहै, और मायामात्र होनेसे दामादिकी असत्ता तो आपही कहचुके हो तो पुनः उनकी सत्ता यह विरुद्ध कहनेमें आपका क्या अभिप्रायहै ॥ १४ ॥ श्रीवशिष्टजी बोले–जैसे मायामय दामादिक असत्यही मृगतृष्णाके जलके समान सत्यरूपसे भान होतेहैं ॥ १५ ॥ ऐसेही सुर, असुर तथा दानवआदिके सहित हमलोगभी असत्यही होके गर्जते, जाते, और आतेहैं ॥१६

अलीकमेवत्वद्भावोमद्भावोलीकमेवच ॥ अनुभूतोप्यसद्रूपःस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ १७ ॥ मृतोबंधुर्यथा स्वप्नेप्यनुभूतोप्यसन्मयः ॥ मृतोयमितिचेज्ज्ञप्तिर्भवेदेवमिदंजगत् ॥ १८ ॥ एषातिमूढविषयउक्तिरेव नराजते ॥ अभ्यासेनविनोदेतिनानुभूतेरपह्नवः ॥ १९ ॥ निश्चयोंतःप्ररूढोयःसंपन्नोभ्यसनंविना ॥ नाशमायातिलोकेस्मिन्नकदाचनकस्यचित् ॥ २० ॥

अर्थ—रामकी शरीरकी सत्ता, तथा वसिष्ठकी शरीरकी सत्ता, यह त्वद्भाव और मद्भाव मिथ्याही है, यद्यपि यह अनुभूतहै तथापि स्वप्नमें अपने मरणके तुल्य असत्रूपही है ॥ १७ ॥ जैसे स्वप्नमें मराहुआभी अपना बन्धु अनुभूत होनेपरभी असत्है ऐसेही यह प्राणी मरगया यह ज्ञान होना उचितहै क्योंकि ऐसाही स्वप्न वा मायामात्र यह जगत्है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! जिसको जगत्की सत्यताका पूर्ण निश्चयहै उस अतिमूढ पुरुषके विषयमें जगत्की असत्यताका कथन शोभित नहीं होता, क्योंकि परमार्थ तत्वके विचारके अभ्यासके विना जगत्की सत्यताके अनुभवका बाध नहीं होता ॥ १९ ॥ इस प्रकार जगत्की सत्यताका निश्चय दृढ होगयाहै उसका नाश शास्त्रार्थ तत्वके बिचार बिना कदाचित् किसीकाभी नाश नहीं होता ॥ २० ॥

इदंजगदसद्ब्रह्मसत्यमित्येववक्तियः ॥ तमुन्मत्तमिवोन्मत्तोविमूढोपिहसत्यलम् ॥ २१ ॥ अक्षीबक्षीबयोरैक्यंक्वकिलेहाज्ञतज्ज्ञयोः ॥ अंधप्रकाशयोर्बोधेस्याच्छायातपयोरिव ॥ २२ ॥ यत्नेनाप्यनुभूतोर्थःसत्येकर्त्तुमपह्नवम् ॥ अज्ञोंतश्चनशक्नोतिशवमाक्रमणंयथा ॥ २३ ॥ ब्रह्मसर्वंजगदितिवक्तुंनाज्ञस्ययुज्यते ॥ तपोविद्यानुभवेसतदेवानुभूतवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस कारण अनधिकारी जो यह कहताहै कि यह जगत् असत्यहै और ब्रह्म सत्यहै उस उन्मत्तके सदृश पुरुषको मत्त अज्ञानी पुरुषभी भलीभांति हंसताहै ॥ २१ ॥ जैसे मद्यपानसे मत्त पुरुष और न पीनेवाले सावधान पुरुषकी एकता नहीं होती, वा अंधकार व प्रकाश अथवा छाया और आतपकी एकता कहां दृष्टहै ऐसेही ज्ञानी और अज्ञानीकी सहवास होनेपरभी एकता नहीं होती ॥ २२ ॥ हे रामजी ! बडे प्रयत्नसे बोध न किया हुआभी अज्ञानी पुरुष बाहर भीतर मनबुद्धिआदि रूपसे अनुभव किये हुये द्वैतका बाध सत्यसाक्षी स्वरूपमें ऐसे नहीं करसकता जैसे मृतशरीर अपने चरणोंसे गमन ॥ २३ ॥ यह जगत् संपूर्ण ब्रह्मही है यह कथनभी अज्ञके प्रतियुक्त नहीं है, क्योंकि तप विद्यादिके अभावमें उसने जगत्की सत्यताहीका अनुभव कियाहै ॥ २४ ॥

अबुद्धविषयेह्येषारामवाक्प्रविराजते ॥ बुद्धस्यास्मीतिरूपेणकिलनास्त्येवकिंचन ॥ २५ ॥ ब्रह्मैवेदंपरं शांतमित्येवानुभवन्सुधीः ॥ अपह्नवःस्वानुभूतेःकर्तुंतस्यकयुज्यते ॥ २६ ॥ परस्माद्व्यतिरेकेणनाह मात्मनिकिंचन ॥ हेमनिवोर्मिकादित्वंनमय्यस्तिविशिष्टता ॥ २७ ॥ भूतलाव्यतिरेकेणमूढेनात्मनिकिं चन ॥ ऊर्म्यादिबुद्धौहेमेवज्ञेनास्तिपरमार्थता ॥ २८ ॥

अर्थ—इसलिये जो किंचित् जानताहै उसीके प्रति जगत् मिथ्याहै वा संपूर्ण जगत् ब्रह्मही है यह कथन शोभित होताहै और ज्ञानीके प्रति "अस्मि" इसप्रकार अहंकारके परामर्शीरूपसे जगत् कुछ नहीं है यह कथनभी युक्त नहीं है ॥ २५ ॥ ज्ञानी पुरुष ऐसा अनुभव करता हुआ कि यह सब शांत परब्रह्मही है तो उसके अनुभवका बाध कहां करनेको युक्तहै ॥ २६ ॥ परमात्मासे पृथक मैं आत्मामें कुछभी नहीं हुं क्योंकि जैसे सुवर्णमें अंगुलियता (अंगूठीपन) प्रतीति मात्रहै ऐसीही मुझ साक्षीरूपमें अहंकारकी विशिष्टताभी नहीं होती ॥ २७ ॥ जैसे ज्ञानीकी दृष्टिमें तरंगादि बुद्धिमें सुवर्णके समान जगत्में सत्यता बुद्धि नहीं है इसीप्रकार मूढकी दृष्टिमें परमार्थता (ब्रह्मकी सत्ता) काभी अत्यंताभावहै ॥ २८ ॥

मिथ्याहंतामयोमूढःसत्यैकात्ममयस्सुधीः ॥ युज्यतेनक्वचिन्नामस्वभावापह्नवोनयोः ॥ २९ ॥ योयन्म यस्तस्यतस्मिन्युज्यतेपह्नवःकथम् ॥ पुरुषस्यघटोस्मीतिवाक्यमुन्मत्तमेवहि ॥ ३० ॥ तस्मान्नेमेवयं सत्यानचदामादयःक्वचित् ॥ असत्यास्तेवयंचेमेनास्तिनःखलुसंभवः ॥ ३१ ॥ सत्यंसंवेदनंशुद्धंबो धाकाशंनिरंजनम् ॥ सत्यंसर्वगतंशांतमस्त्यनस्तमयोदयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अज्ञानी मिथ्या अहंकारमयहै और ज्ञानी सत्य एकात्ममयहै, इन दोनोंके स्वभावका अपलाप कभी कहीं हो सकता ॥ २९ ॥ जो वस्तु यन्मयहै उसका अपलाप उसीमें कैसे होसकताहै ॥ ३० ॥ हे राम ! इस हेतुसे वसिष्ठ रामादि देहसे प्रत्यक्ष रूपसे प्रसिद्धभी हम लोग शास्त्र दृष्टिसे सत्य नहीं हैं, और विद्वान्के अनुभव दृष्टिसेभी असत्यहैं और युक्तिसेभी हम लोगोंका संभव नहीं है ॥ ३१ ॥ इस वही बोधाकाश निरंजन ज्ञान स्वरूप शास्त्र दृष्टिसे सत्यहै और वही सर्वव्यापी विद्वानोंके अनुभवसेभी सत्यहै, और युक्ति दृष्टिसेभी वह अस्तमय और उदयमयहै ॥३२॥

सर्वंशांतंचनिःशून्यंनकिंचिदिवसंस्थितम् ॥ तत्रव्योम्निविभांतीमानिजाभासोंगसृष्टयः ॥ ३३ ॥ यथा तैमिरिकाक्षस्यसहजाएवदृष्टयः ॥ केशोंड्रकादिवद्भांतितथेमास्तत्रसृष्टयः ॥ ३४ ॥ सआत्मानंयथावे त्तितथानुभवतिक्षणात् ॥ चिदाकाशस्ततोसत्यमपिसत्यंतदीक्षणात् ॥ ३५ ॥ नसत्यमस्तिनासत्य मितितस्माजगत्त्रये ॥ यद्यथावेत्तिचिद्रूपंतत्तथोदेत्यसंशयम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! यह सब जगत् शान्त शून्यतारहित और न किंचित् अर्थात् सन्मात्र पूर्णभावसे स्थितहै, और उसी चिदाकाशमें अन्यथा प्रथावाली ये सब सृष्टि भान होती हैं ॥ ३३ ॥ जैसे तिमिर युक्त नेत्रसहित पुरुषकी सहजही दृष्टि केशोंड्रकादि समान भान होती हैं ऐसेही ये सृष्टिभी उस परमात्मामें भासती हैं ॥ ३४ ॥ वह सत्यात्मा जैसे आत्माका अनुभव करताहै वैसाही वह चिदाकाश क्षणभरमें होजाताहै इसलिये उसके ईक्षणसे अर्थात् सत्यात्मकी दृष्टि बलसे असत्यके समान क्षणमें हो जाताहै ॥ ३५ ॥ इसलिये तीनों लोकमें न कुछ सत्यहै और न असत्यहै किंतु चिद्रूप जिसको जैसा अनुभव करताहै वह निश्चय वैसाही उदय होताहै ॥ ३६ ॥

यथादामादयस्तद्वदेवमभ्युदितावयम् ॥ सत्यासत्याःकिमत्रांगतान्प्रत्यपिविकल्पना ॥ ३७ ॥ अस्या नंतस्यचिद्व्योम्नःसर्वगस्यनिराकृतेः ॥ चिद्रुदेतियथायांतस्तथासातत्रभात्यलम् ॥ ३८ ॥ यत्रदामादि रूपेणसंवित्प्रकचितास्वयम् ॥ तथासातत्रसंपन्नातथाकारानुभूतितः ॥ ३९ ॥ अस्मदादिस्वरूपेण संविद्यत्रोदितास्वयम् ॥ तथासैतत्रसंपन्नातथाकारानुभूतितः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! इसलिये जैसे दामादि चिदाकाशमें प्रकटहैं ऐसेही हमलोगभी हैं इसमें सत्य असत्य क्या, और उन्हींके प्रति यह सत्यासत्यकी विकल्पना क्यों ॥ ३७ ॥ इस निराकार सर्वव्यापी अनन्त चिदाकाशके अन्तमें जो चित् जिस आकारसे उदय होती है वहां उसी प्रकारसे अच्छीतरह भान होती है ॥ ३८ ॥ जहांपर वह चित् दाम आदि आकाररूपसे स्वयं स्फुरित हुई वहां उसी आकारके अनुभव होनेसे वैसीही आविर्भूत होगई ॥ ३९ ॥ और जहां अस्मद् आदिके रूपसे स्फुरित हुई वहां उसी आकारसे अनुभव होनेसे वैसीही संपन्न होगई ॥ ४० ॥

स्वस्वप्नप्रतिभासस्यजगदित्यभिदाकृता ॥ चिद्व्योम्नोव्योमवपुषस्तापस्येवमृगांबुता ॥ ४१ ॥ यत्रप्रबु द्धंचिद्व्योमतत्रदृश्याभिधाकृता ॥ यत्रसुप्तंतुतेनैवतत्रमोक्षाभिधाकृता ॥ ४२ ॥ नचतत्क्वचिदासुतंनप्र

बुद्धं कदाचन ॥ चिद्व्योमकेवलंदृश्यंजगदित्यवगम्यताम् ॥ ४३ ॥ निर्वाणमेवसर्गश्रीःसर्गश्रीरेवनिर्वृ तिः ॥ नानयोःशब्दयोरर्थभेदःपर्याययोरिव ॥ ४४ ॥

अर्थ—निराकार चिदाकाशने अपने स्वप्नके प्रतिभासका जगत् नाम ऐसे रक्खाहै, जैसे मरूस्थलके सूर्यके किरणका मृगतृष्णाकी जलता ॥ ४१ ॥ जहां बाह्य पदार्थकी उपलब्धिरूपसे चिदाकाश जागरूकहै वहां दृश्यनाम उसका स्थापित किया, और जहां बाह्यपदार्थकी उपलब्धिसे रहितहै वहां मोक्ष यह नाम उसी चित्ने स्थापित किया है ॥ ४२ ॥ यथार्थमें वह चिदाकाश न कहीं सुप्तहै, न प्रबुद्ध, किन्तु यह सम्पूर्ण दृश्य चिदाकाशरूपही है ॥ ४३ ॥ जब यह दृश्य केवल चिदाकाशमात्रही है, सृष्टिकी शोभा मोक्षरूपही है और मोक्षकी श्री भी मोक्षरूपही है पर्याय शब्दके तुल्य इन दोनों शब्दोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं है ॥ ४४ ॥

परमार्थोजगदितिरूपंवेत्तिस्वयंस्वकम् ॥ यथातैमिरिकंचक्षुःकेशोंड्रकमिवेक्षते ॥ ४५ ॥ नतत्केशोंड्रकंकिंचित्साहिदृष्टिस्तथास्थिता ॥ नेदंदृश्यमिदंकिंचिदित्थंचिद्व्योमसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ सर्वत्रसर्वमिदमस्तियथानुभूतंनोकिंचनक्वचिदिहास्तिनचानुभूतम् ॥ शांतंसदेकमिदमाततमित्थमास्तेसंत्यक्तशोकभयभेदमतस्त्वमास्व ॥ ४७ ॥ शिलोदराकारघनंप्रशांतंमहाचितेरूपमिदंस्वमच्छम् ॥ नैवास्तिनास्तीतिदृशौक्वचित्तुयच्चास्तितत्साधुतदेवभाति ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे सदसन्निराकरणंनामैकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अविद्या उपहित आत्मा अपने परमार्थ स्वरूपकोही जगत् इसप्रकार जानताहै जैसे तिमिरसहित नेत्रवाला केशोंड्रकको देखताहै ॥ ४५ ॥ यथार्थमें वह केशोण्ड्रक कुछ नहीं है क्योंकि वह दृष्टिही उस रूपसे स्थित है यह दृश्य प्रपंच तथा यह शरीरादि कुछ नहीं है किन्तु चिदाकाशही इस रूपसे स्थितहै ॥ ४६ ॥ अध्यारोप दृष्टिसे सर्वव्यापी चिदाकाशमें सबका संभव होनेसे सर्वत्र सब कुछ है, और अपवाद दृष्टिसे कहीं कुछ नहीं है, इन दोनों प्रकारमें शान्त भेद शून्य एक पूर्णरूपहै, इसलिये शोक और भयको त्यागकर तुम पूर्णरूप होजाओ ॥ ४७ ॥ स्फटिक शिलाके उदराकार घन प्रशान्त अतिस्वच्छ महाचेतनरूपहै और नदी गिरि बनादिके प्रतिबिम्बके सदृशहै, नहीं है इत्यादि दृष्टि तो कहीं है ही नहीं और प्रतीति जो कहीं है वह चेतनका रूपही वैसा भासताहै ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सदसन्निराकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

दामादि मत्स्य तथा सारसादिके जन्मकी प्राप्तिसे राजाके स्थानमें वियुक्त हुये और मशकआदि शरीरमें ज्ञानकी प्राप्तिसे मुक्तिको प्राप्त हुये इत्यादि विषय इस ३२ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ सतामप्यसतामेवबालयक्षपिशाचवत् ॥ दामव्यालकटादीनांदुःखस्यांतःकथंभवेत् ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दामव्यालकुटुंबैस्तैस्तदैवयमकिंकरैः ॥ प्रार्थितेनयमेनोक्तमिदंशृणुरघूद्वह ॥ २ ॥ यदावियोगमेष्यंतिश्रोष्यंतिचनिजांकथाम् ॥ दामादयस्तदामुक्ताभविष्यंतीत्यसंशयम् ॥ ३ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्ववृत्तांतमिमंकुत्रकदाकथयतेकथम् ॥ श्रोष्यंतिभगवंस्तेवावर्णयेदंयथाक्रमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे वसिष्ठजी! बालकको यक्ष पिशाचके तुल्य अज्ञोंकी दृष्टिमें सत् परन्तु यथार्थमें असत् दाम व्याल और कटादिके दुःखका अन्त कब होगा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी! दाम व्यालादिके कुटुम्बभूत यमके किंकरोंसे प्रार्थना किये हुये यमराजने उसी समय यह कहा ॥ २ ॥ कि जब ये दाम व्यालादि पृथक् होंगे और अपनी कथा सुनेंगे उस समय निःसंदेह मुक्त होंगे ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! यह वृत्तान्त किस किस समय कैसे कहनेवालेसे वे सुनेंगे सो यथाक्रम कहिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काश्मीरेषुमहापद्मसरसीतीरपल्वले ॥ भूयोभूयोनुभूयैवमत्स्ययोनिपरंपराम्॥५॥ आलोलिताशयालोलाःकालेनलयमागताः ॥ तत्रैवपद्मसरसितेभविष्यंतिसारसाः ॥ ६ ॥ तत्रकह्लारमालासुसरोजपटलीषुच ॥ शैवालवरवल्लीषुतरंगवलनासुच ॥ ७ ॥ चलत्कुसुमदोलासुनीलोत्पललतासुच ॥ सीकरौघाभ्रलेखासुशीतलावर्त्तवर्तिषु ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! काश्मीरदेशकी सरसी (कमलकी तलाई) के छोटे गढ़ेमें बार २ मत्स्ययोनिकी परंपराका अनुभव करके॥ ५॥ ग्रीष्मऋतुमें जब इनका अल्प तलाव महिष सूकरआदिने मथित किया उस समय ये तीनों नष्टताको प्राप्त हुये और उस पद्मके तड़ागमें सारस होंगे॥ ६॥ वहां श्वेत कमलोंकी मालाओंमें, कमलोंकी पटलीमें शैवालोंकी श्रेष्ठ लताओंमें, और तरंगोंकी लीलाओंमें॥ ७॥ चंचल पुष्पोंकी दोला (झूला) सहित नील कमलकी लताओंमें, और शीतल आवर्त सहित तथा जलकणोंके समूह सहित मेघमण्डलकी लेखाओंमें॥ ८॥

सारसाःसरसंभोगान्भुक्त्वाभुवनभूषणाः॥ विहृत्यसुचिरंकालमलमागतशुद्धयः॥ ९॥ तेवियुक्ता भविष्यंतिमुक्तयेलब्धबुद्धयः॥ रजस्सत्वतमांसीवभेदंप्राप्ययदृच्छया॥ १०॥ काश्मीरमंडलस्यांतर्नगरंनगशोभितम्॥ नाम्नाधिष्ठानमित्येवश्रीमत्तस्यभविष्यति॥ ११॥ प्रद्युम्नशिखरंनामतस्यमध्येभविष्यति॥ शृंगंलघुसरोजस्यकोशचक्रमिवोदरे॥ १२॥

अर्थ—संसारके भूषण वे सारस सरस भोगोंको भोगके तथा चिरकालतक विहार करके शुद्धताको प्राप्त होंगे॥ ९॥ अनन्तर बिचार बुद्धिकी प्राप्तिसे मुक्तिके अर्थ ऐसे पृथक् २ होंगे जैसे विवेक दृष्टिसे विचारे हुये रजोगुण तमोगुण और सत्वगुण भिन्नताको प्राप्त होतेहैं॥ १०॥ हे रामजी! काश्मीर मण्डलके अन्तर्गत वृक्ष तथा पर्वतोंसे शोभित तथा सब लक्ष्मी संपन्न अधिष्ठान नामक उसका नगर होगा॥ ११॥ उस नगरके मध्यमें प्रद्युम्न नाम शिखर होगा, जिसका शृंग लंघनके योग्य होगा और उसके उदरमें कमलकी कर्णिकाके समान होगा॥ १२॥

तस्यमूर्ध्निगिरेर्गेहंकश्चिद्राजाभविष्यति॥ अभ्रंकषमहाशालंशृंगेशृंगमिवापरम्॥ १३॥ गृहस्येशानकोणेस्तिशिरोभित्तिव्रणोदरे॥ तस्यानिशमविश्रांतवाताधूततृणांतिके॥ १४॥ आलयेदानवोव्यालःकलविंकोभविष्यति॥ प्रथमाल्पश्रुतशास्त्रइवार्थरहितारवः॥ १५॥ तस्मिन्नेवतदाकालेतत्रराजाभविष्यति॥ श्रीयशस्करदेवाख्यःशक्रःस्वर्गइवापरः॥ १६॥

अर्थ—उस शिखरके शिरपर सब गृहोंका राजा, बडी २ शालायुक्त पर्वतके शृंगपर दूसरे शृंगके समान अर्थात् अति उच्च सब गृहोंमें श्रेष्ठ गृह वहां है॥ १३॥ उस गृहके ईशान कोणमें भित्तिके ऊपर एक फटी हुई शिलाके मध्य संधिस्थानमें एक नीड (खोंथा) है उसके निकट निरन्तर वायुसे सदा कंपित निकटस्थ तृणयुक्त॥ १४॥ नीड (खोंथे) में अल्प शास्त्रज्ञ ब्राह्मणके समान निरर्थक शब्द करनेवाला व्यालनाम दानव चटक होगा॥ १५॥ उसी नगरमें उस समय श्रीयशस्करदेवनामक स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके समान राजा होगा॥ १६॥

दानवोदामनामात्रमशकस्तस्यसद्मनि॥ भविष्यतिबृहत्स्तंभपृष्ठच्छिद्रेमृदुध्वनिः॥ १७॥ अधिष्ठानाभिधेतस्मिन्नेवांतर्नगरेतदा॥ रत्नावलीविहाराख्योविहारोपिभविष्यति॥ १८॥ तस्मिंस्तद्भूमिपामात्योनरसिंहइतिश्रुतः॥ करामलकवद्दृष्टबंधमोक्षोनिवत्स्यति॥ १९॥ भविष्यतिगृहेतस्यक्रीडनःक्रकरःखगः॥ कटोमायासुरोनामकृतराजतपंजरः॥ २०॥

अर्थ—उस राजाके गृहके बडे खंभेके पीछेके छिद्रमें, दामनामक दानव कोमल शब्द करनेवाला मशक (मच्छर) होगा॥ १७॥ और उससमय उसी अधिष्ठान नाम नगरके भीतर रत्नावलीका विहार नामक एक विहार (क्रीडास्थान) होगा॥ १८॥ उस नगरमें बंध तथा मोक्षको हस्तामलकके सदृश देखनेवाला नरसिंह नाम प्रसिद्ध उसी राजाका मंत्री निवास करेगा॥ १९॥ उसी मंत्रीके गृहमें कटनाम मायाका असुर चांदीके पिंजरेमें उसी मंत्रीकी क्रीडाका साधन सारिका नाम पक्षी होगा॥ २०॥

सनृसिंहोनृपामात्यश्लोकैर्विरचितामिमाम्॥ दामव्यालकटादीनांकथयिष्यतिसत्कथाम्॥ २१॥ सकटःक्रकरःश्रुत्वातत्कथासंस्मृतात्मभूः॥ शांतमित्थंमहाशांतंपरंनिर्वाणमेष्यति॥ २२॥ प्रद्युम्नशिखरप्रांतवास्तव्यःकलविंककः॥ तत्राणैश्चकथांश्रुत्वापरंनिर्वाणमेष्यति॥ २३॥ राजमंदिरदार्वंतर्व्रणवास्तव्यतांगतः॥ मशकोपिप्रसंगेनश्रुत्वाशांतिमुपैष्यति॥ २४॥

अर्थ—वह नृसिंह नाम राजाका मंत्री श्लोकोंमें रचित दाम व्यालकी इस उत्तम कथाको कहेगा॥ २१॥ वह क्रकर (सारिका) उस अपनी कथाको सुनके शंबरासुरसे कल्पित जीवरूपको बाध करके जिसमें इसप्रकार मूलसेही शांत है संसारका रूप ऐसे मोक्षको प्राप्त होगा॥ २२॥ राजमंदिरके खंभेका निवासी वह मच्छरभी उस कथाको सुनकर मोक्षरूप शांतिको प्राप्त होगा॥ २३॥ प्रद्युम्नके शिखरके निकटका निवासी वह चटकभी वहांके निवासियोंसे उस कथाको सुनके परम निर्वाणको प्राप्त होगा॥ २४॥

प्रद्युम्नशृंगाच्चटकोमशकोराजमंदिरात् ॥ विहारात्क्रकरश्चेतिमोक्षमेष्यंतिराघव ॥ २५ ॥ एषतेकथितःसर्वोदामव्यालकथाक्रमः ॥ मायैवमेवसंसारशून्यैवात्यंतभासुरा ॥ २६ ॥ भ्रमयत्यपरिज्ञान्मृगतृष्णांबुधीरिव ॥ महतोपिपदादेवंनानाज्ञानवशादधः ॥ २७ ॥ पतंतिमोहितामूढादामव्यालकटाइव ॥ क्वभ्रूक्षेपविनिष्पिष्टमेरुमंदरसद्मता ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राघव ! प्रद्युम्न शृंगसे वह चटक राजमन्दिरसे मशक और रत्नावली विहारसे क्रकर (सारिका) ये तीनों मोक्षका प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥ हे रामजी ! यह दाम व्यालकी कथाका संपूर्ण क्रम आपसे कह दिया, यह सब इसीप्रकार संसार शून्य प्रति भासमान सब मायाही है ॥ २६ ॥ यह अज्ञानसे ऐसे भ्रमाती है जैसे मृगतृष्णाके जलकी बुद्धि, और अन्य पदोंकी अपेक्षा महान् पदोंसेभी नानाप्रकारके अज्ञानके वशसे नीचेकी ओर गिराती है ॥ २७ ॥ अज्ञानी मूढजन दाम व्याल और कटके समान गिरते हैं, कहां तो भ्रू (भौं) के इसारेमात्रसे मेरू तथा मन्दरके स्थानकोभी चूर्ण करना ॥ २८ ॥

क्वराजगृहदार्वंतर्व्रणेमशकरूपता ॥ क्वचपेटभुजामात्रपातिताकेंन्दुबिंबता ॥ २९ ॥ क्वप्रद्युम्नगिरेर्गेहेभित्तिव्रणविहंगता ॥ क्वपुष्पलीलयालोलकरतोलितमेरुता ॥ ३० ॥ क्वाशृंगेनृसिंहस्यगृहेक्रकरपोतता॥ चिदाकाशोहमित्येवरजसारंजितप्रभः ॥ ३१ ॥ स्वरूपमत्यजन्नेवविरूपमपिबुद्ध्यते ॥ स्वयैववासनाभ्रांत्यासत्ययेवाप्यसत्यया ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कहां राजाके गृहके खंभेके छिद्रमें मशकरूपता ! और कहां तो चपेटा मात्रसे सूर्य तथा चंद्रमंडलका गिराना ॥ २९ ॥ और कहां प्रद्युम्न गिरिके शृंगके गृहके भित्तिके छिद्रमें पक्षिरूपता ! कहां तो पुष्पकी लीलामें (पुष्पके समान) हस्तसे मेरूका तोलना ॥ ३० ॥ और कहां तो शिखर नृसिंहके गृहमें सारिकाका शिशु (बच्चा) बनना ! रजोगुणसे रंजित प्रभावान् यह चिदाकाश "अहम्" इसप्रकार अहंकारका आश्रय होके॥३१॥ अपनी प्रकाशरूपताको न त्यागते हुये अहंकार प्राण इन्द्रियादि रूपकोभी अनुभव करताहै ॥ ३२ ॥

मृगतृष्णांबुबुद्ध्येवयातिजंतुरिवांतरम् ॥ तरंतितेभवांभोधिंस्वप्रवाहधियैवये ॥ ३३ ॥ शास्त्रेणासदितंदृश्यमितिनिर्वाणसंस्थिताः ॥ नानादुःखविकाराणिशुष्कतर्कमतानिये ॥ ३४ ॥ यांतिश्वभ्रंजलानीवस्वलाभंनाशयंतिते ॥ स्वानुभूतिप्रसिद्धेनमार्गेणागमगामिना ॥ ३५ ॥ नविनाशोभवत्यंगगच्छतांपरमांगतिम् ॥ इदंमेस्यादिदंमेस्यादितिबुद्धेर्महामते ॥ ३६ ॥ स्वेनदौर्भाग्यदैन्येननभस्माप्युपतिष्ठते ॥ वेत्तिनित्यमुदारात्मात्रैलोक्यमपियस्तृणम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—असत्भी मृगतृष्णाके जल बुद्धिके सदृश सत्यके समान भासमान अपनीही भ्रान्तिरूप वासनासे यह चिद्रूपसे भेदताको प्राप्त होताहै, जो लोग प्रत्यक् साक्षी चेतनकी ओर अभिमुख बुद्धिसे संसारसागरसे पार होजातेहैं उन लोगोंके अर्थ "तत्वमसि" इत्यादि महावाक्यरूप शास्त्रसे दृश्यको मार्जित करके निर्वाण स्थितहै, और जो शुष्कतर्क है वे नानाप्रकारके दुःखमय विकारयुक्त कहे गयेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और जो केवल तर्क शास्त्रका अवलम्बन करतेहैं वे अपने परमपुरूषार्थरूप आत्मलाभका नाश करतेहैं, और अपने अनुभवसे प्रसिद्ध श्रुतिके अनुसारी मार्गसे ॥ ३५ ॥ परमगतिको जानेवालोंका बिनाश नहीं होता, हे महामते रामजी ! यह मुझेहो इस बुद्धिवाले पुरूषके अपनेही दौर्भाग्यजनित दीनतासे नष्ट पुरूषार्थका भस्मभी नहीं प्राप्त होताहै, और जो उदारात्मा त्रैलोक्यकोभी तृणसमान जानताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

तंत्यजंत्यापदस्सर्वाःसर्पाइवजरत्त्वचम् ॥ परिस्फुरतियस्यातर्नित्यंसत्वचमत्कृतिः ॥३८॥ ब्राह्ममंडमिवाखंडंलोकेशाःपालयंतितम् ॥ अप्यापदिदुरंतायांनैवगंतव्यमक्रमे ॥ ३९ ॥ राहुरप्यक्रमेणैवंपिबन्नप्यमृतंमृतः ॥ सच्छास्त्रसाधुसंपर्कमर्कमुग्रप्रकाशदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उस महात्माको सम्पूर्ण आपत्ति ऐसे त्याग देती है जैसे सर्प अपनी त्वक् (केंचुर) को और जिसके अन्तःकरणमें नित्यही सत्वगुणका चमत्कार स्फुरताहै ॥ ३८ ॥ अपने आधारभूत ब्रह्माण्डके सदृश लोकेश इन्द्रादि भी उसका पालन करतेहैं, इसलिये महान् घोर आपत्तिमेंभी असन्मार्गमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३९ ॥ असन्मार्गमें जानेसे राहु अमृतपान करते हुयेभी मरगया, और सत्मार्ग तो उपनिषद् तथा उनके बढानेवाले और उनके अर्थमें निष्ठसाधु और इन दोनों (सत्शास्त्र तथा साधु) का सेवनहै उस सूर्य, और निर्दयतासे संसारका संहार करनेमें उग्र शिवपरमात्माके प्रकाशका हेतुहै ॥ ४० ॥

येश्रयंतेनतेयांतिमोहांध्यस्यपुनर्वशम् ॥ अवश्यावश्यतांयांतियांतिसर्वापदःक्षयम् ॥ ४१ ॥ अक्षयंभवतिश्रेयःकृतंयेनगुणैर्यशः ॥ येषांगुणेष्वसंतोषोरागोयेषांश्रुतंप्रति ॥ ४२ ॥ सत्यव्यसनिनोयेचतेनराः पशवोपरे ॥ यशश्चंद्रिकयायेषांभासितंजंतुहृत्सरः ॥ ४३ ॥ तेषांक्षीरसमुद्राणांनूनंमूर्तौस्थितोहरिः ॥ भुक्तंभोक्तव्यमखिलंदृष्टाद्रष्टव्यदृष्टयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसका सेवन जो करतेहैं वे मोहरूप अन्धकारके बशमें पुनः नहीं आते उनके जो अवश्यहैं वेभी बशमें होजातेहैं, और सम्पूर्ण आपत्ति नाशको प्राप्त होती हैं ॥ ४१ ॥ जिसने शमदमादि गुणोंसे अपना यश कियाहै अर्थात् सज्जनोंमें जो अग्रणी है उसका अक्षय कल्याणहो जिसको पूर्वोक्त गुणोंमें असन्तोषहै, और जिसको अध्यात्मकशास्त्रके श्रवणमें प्रीतिहै, और जो सत्यके व्यसनी हैं, वेही मनुष्य हैं, और इनसे भिन्न पशुहैं, और जिनके यशरूपी चन्द्रिकासे प्राणियोंके हृदयरूपी सरोवर आल्हादित होगयेहैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उन क्षीरसमुद्रोंकी मूर्तिमें साक्षात् विष्णुभगवान् स्थितहैं, और उन्होंने सम्पूर्ण भोक्तव्य भोग लिया, और सम्पूर्ण द्रष्टव्य पदार्थोंको देखभी लिया ॥४४॥

किमन्यद्भवभंगायभूयोभोगेषुलुब्धता ॥ यथाक्रमंयथाशास्त्रंयथाचारंयथास्थिति ॥ ४५ ॥ स्थीयतांमुच्यतामंतर्भोगजालमवास्तवम् ॥ संस्तवःक्रियतांकीर्त्यागुणैर्गगनगामिभिः ॥ ४६ ॥ त्रायेतेमृत्युतो ह्येतेनकदाचनभोगकाः ॥ गायंतिसिद्धसुंदर्योयेषामिंदुसितंयशः ॥ ४७ ॥ गीतिभिर्गगनाभोगैस्तेजीवंतिमृताःपरे ॥ परमंपौरुषंयत्नमास्थायादायसूद्यमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—भाविजन्मोंकी परंपरामें अपने आत्माके नाशार्थ पुनः संसारके भोगोंमें लुब्धता क्या युक्तहै, अर्थात् सर्वथा अयुक्तहै, इसलिये अपने २ अधिकारके अनुरूप, शास्त्रके अनुकूल, पूर्वाचार्योंसे प्रवर्तित आचारके अनुकूल तथा जिस भूमिकामें जितने समयतक स्थिति चाहिये उसके अनुकूल ॥ ४५ ॥ सबको स्थित होना चाहिये, और मिथ्या भोगजालको अन्तःकरणसे त्यागना चाहिये, और स्वर्गपर्यन्त प्रख्यात उत्तमगुणोंसे, कीर्तिसे, सज्जनोंके मुखोंसे अपनी स्तुति करानी चाहिये ॥ ४६ ॥ ये संसारी तुच्छ भोग मृत्युसे कभी नहीं बचाते, जिन प्राणियोंका चन्द्रमाके समान सित यश देवताओंकी सुन्दरी गान कराती हैं ॥ ४७ ॥ आकाशके तुल्य सब देशकालमें व्याप्त गीतोंसे जिनका यश देवाङ्गना गाती हैं वेही जीतेहैं, शेष मृतकाऽवस्थाको प्राप्त होगये इसलिये परमपौरूष यत्नको तथा तदुद्यमका अवलम्बन करके ॥ ४८ ॥

यथाशास्त्रमनुद्वेगमाचरन्कोनसिद्धिभाक् ॥ यथाशास्त्रंविहरतात्वराकार्यानसिद्धिषु ॥४९॥ चिरकालपरिपक्वासिद्धिःपुष्टफलाभवेत ॥ वीतशोकभयामासमगर्वमपयंत्रणम् ॥ ५० ॥ व्यवहारोयथाशास्त्रं क्रियतांमाविनश्यताम् ॥ जीवोजीर्णांधकूपेषुभवेष्वंतमिवागतः ॥५१॥ भवतांभूरिसंगानामधूनेंद्रियदामतः ॥ इतःप्रभृतिमाभूयोगम्यतामधमादधः ॥ ५२ ॥

अर्थ—शास्त्रके अनुसार उद्वेगसे रहित होके आचरण करताहुआ कौन पुरूष सिद्धिका भागी नहीं होसकता ॥ ४९ ॥ चिरकालसे परिपाकता जो सिद्धिको प्राप्त होताहै उसका फल पुष्ट होताहै, इसलिये शोक भय, शान्तता गर्व तथा शीघ्रताको त्यागकर ॥ ५० ॥ शास्त्रके अनुसार व्यवहार करो और नष्ट न होओ, जीव विषय सेवासे संसाररूपी अन्धकूपमें नष्ट न होओ ॥ ५१ ॥ अनेक पदार्थोंका सङ्गी आपका जीव इन्द्रियरूप रज्जुसे इससमय मानो मृत्युके बशमें प्राप्तहै इसलिये संसाररूपी प्राचीन अन्धकूपमें मत नष्टहो, अब इससमयसे लेके अधमसेभी अधम अर्थात् सर्वथा नीचताको मत प्राप्त होओ ॥ ५२ ॥

इदंविचार्यतांशास्त्रमस्त्रमापन्निवारणम् ॥ रणेशितशरश्रेणिशतनिर्लूनवारणे ॥ ५३ ॥ जीवमुद्राचकिंपंकेभोगगंधोनिरस्यताम् ॥ किमर्थमात्रयाकार्यमार्याःशास्त्रमवेक्ष्यताम् ॥ ५४ ॥ इदंबिंबमिदंबिंबमितिसत्यंविचार्यताम् ॥ धियापरप्रेरणयायातमापशवोयथा ॥ ५५ ॥ दौर्भाग्यदायिनीदीनाशुभहीनाविचारणा ॥ घनदीर्घमहानिद्रात्यज्यतांसंप्रबुध्यताम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण बाणोंकी पंक्तियोंमें जहां हस्ती लोगभी छिन्नाभिन्न होगये हैं ऐसे रणमें प्राप्त महा मृत्युआदि भयका निवारक शस्त्रके तुल्य तथा अजर अमर नित्य निरतिशय आनंदका दर्शक यह शास्त्र नित्य विचारो ॥ ५३ ॥ ग्रीष्मऋतुकी उष्णतासे दुर्गन्धियुक्त तडागके कर्दमकें सदृश इस संसारमें जीवन अति तुच्छ है, इसलिये भोगकी आशाको हृदयसे दूर करना चाहिये, अनर्थदायी भोगके अर्थ द्रव्यके लेशसे क्या प्रयोजन है, इसलिये हे श्रेष्ठ पुरुषों ! मोक्षदायक शास्त्रका अवलोकन करो ॥ ५४ ॥ विषयाकार वृत्तिमें फलित चिदाभासोंका अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य बिम्ब है और अंतःकरणोपहित चिदाभासका शुद्ध ब्रह्मचैतन्य बिंब है, प्रतिबिम्ब तथा उनकी उपाधि दोनों

मिथ्या है, अभिन्न बिंबमात्र सत्य है ऐसा विचार करना चाहिये; आर्हत आदि परप्रेरित बुद्धिसे पशुताको मत प्राप्त होओ ॥ ५५ ॥ और दौर्भाग्य देनेवाली दीन धनादि संबंधी जो विचारणा है वह घनीभूत दीर्घ महा निद्रा है उसे शीघ्र त्यागो और मोक्षकेलिये जाग्रत होओ ॥ ५६ ॥

सुप्तंमास्थीयतांवृद्धकच्छपेनेवपल्वले ॥ उत्थानमंगीक्रियतांजरामरणशांतये ॥ ५७ ॥ अनर्थायार्थसंपत्तिर्भोगौघोभवरोगदः ॥ आपदस्संपदःसर्वाःसर्वत्रानादरोजयः ॥ ५८ ॥ लोकतंत्रानुसारेणविचाराद्व्यवहारिणाम् ॥ शास्त्राचारानुसारेणकर्मणासत्फलायच ॥ ५९ ॥ आचारचारुचरितस्यविविक्तवृत्तेःसंसारसौख्यफलदुःखदशास्त्रगृध्रोः ॥ आयुर्यशांसिचगुणाश्वसहैवलक्ष्म्याफुल्लंतिमाधवलताइव सत्फलाय ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने सदाचारनिरूपणं नाम द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—छोटे तडागमें वृद्ध कच्छपके समान शयन न करो किंतु जरामरणकी शान्तिकेलिये उठो ॥ ५७ ॥ अर्थकी संपत्ति अनर्थकेलिये है, भोगोंका समूह संसारमें रोगदायक है, संपूर्ण संपत्ति आपत्तिरूप हैं; और सर्वत्र अनादर जयरूप है ॥ ५८ ॥ लोक वृत्तांतके अविरोधी विचारसे व्यवहार करनेवालेंके शास्त्र तथा शिष्टाचारके अनुसार कर्मसे सत्फलके अर्थ सावधान होके उठना चाहिये ॥ ५९ ॥ पूर्वाचार्यप्रणीत आचारसे उत्तम चरितवाले, विवेक बुद्धिसहित तथा संसारके सौख्य केवल दुःखदायी हैं, अतः शास्त्रमात्रमें अभिलाषी पुरूषके आयु, यश, और गुण लक्ष्मी साथ सत्फल देनेकेलिये ऐसे विकसित होते हैं जैसे बसन्तऋतुमें लता ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाम व्याल कटोपाख्याने सदाचारनिरूपणं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ के सर्गमें, शुभ उद्योग, सत्‌शास्त्र तथा साधुओंकी प्रभुता, अहंकारसे बन्ध और उसके त्यागसे मुक्ति इन विषयोंका विस्तारसे वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वातिशयसाफल्यात्सर्वसर्वत्रसर्वदा ॥ संभवत्येवतस्मात्त्वंशुभोद्योगंनसंत्यज ॥ १ ॥ मित्रस्वजनबंधूनांनंदिनानंददायिना ॥ सरस्तीरशानमासाद्यमृत्युरप्युपनिर्जितः ॥ २ ॥ सर्वोत्कर्षेणसंपन्नादेवाअपिविमर्दिताः ॥ दानवैर्दीनवार्थाढ्यैर्गजैःपद्माकराइव ॥ ३ ॥ मरुत्तनृपतेर्यज्ञे संवर्त्तेनमहर्षिणा ॥ ब्रह्मणेवापरःसर्गोभावितःससुरासुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–संपूर्ण उत्तम साधनोंकी अधिकताओंका नियमपूर्वक सफल होनेसे लौकिक कृषि सेवादि साधनोंमें शास्त्रीय मोक्षादिमें, और शुभ उद्योगादिमें सर्वत्र अपने अनुकूल फल अवश्य संभव है, इसलिये हे रामजी ! मोक्षफलके अर्थ तुमभी शुभ उद्योगको न त्यागो ॥ १ ॥ मित्र स्वजन, और बंधुओंको आनन्ददायी नन्दीने शुभ उद्योगसे तडागके तटपर श्रीमहादेवजीके चरणोंमें प्राप्त होके असाध्य मृत्युकोभी जीतलिया ॥ २ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे संपन्नभी देवतालोग, सेना तथा ऐश्वर्योंसे पूर्ण बलि आदि दानव लोगोंसे ऐसे मर्दित कियेगये जैसे गजोंसे कमलोंकि खानि ॥ ३ ॥ मरुत्तराजाके यज्ञमें संवर्तनाम महर्षिने ब्रह्माके सदृश सुर तथा असुरोंकी दूसरी सृष्टि इसी शुभ उद्योगसे रची ॥ ४ ॥

महातिशययुक्तेनविश्वामित्रेणविप्रता ॥ भूयोभूयःप्रयुक्तेनदुष्प्रापातपसार्जिता ॥ ५ ॥ पिष्टसेकांबुदुष्पापंरसायनवदश्नता ॥ दुर्भगेनेदृशेनाप्तःक्षीरोदउपमन्युना ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यमल्लांस्तृणवदश्नन्विष्णवब्जजादिकान् ॥ भक्त्यातिशयदार्ढ्येनकालःश्वेतेनकालितः ॥ ७ ॥ प्रणयेनयमंजित्वाकृत्वावचनसंगमम् ॥ ॥ परलोकादुपानीतःसावित्र्यासत्यवान्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः २ प्रेरित महा उद्योगसे युक्त विश्वामित्रजीने अपनी तपस्यासे दुष्प्रापभी ब्राह्मणता उपार्जित की ॥ ५ ॥ जो उपमन्यु पिशान मिलाहुआ सोभी अलभ्य जल अमृतके सदृश पान करता था उस ऐसे अभागेने

(१) शिलादनामा मुनि सर्वज्ञ पुत्रकी इच्छासे महादेवजीको प्रसन्न किया चिरकालकी तपस्यासे प्रसन्न शंकरजी बोले कि मुझसे भिन्न कोई सर्वज्ञ नहीं ॥

शुभ उद्योगसे क्षीर (दुग्ध) का समुद्र पाया ॥ ६ ॥ जो काल त्रैलोक्यके वीरोंको तथा ब्रह्मा विष्णु आदिको तृणके समान भक्षण करताहै उसीको भक्तिकी अति दृढतासे श्वेतनामा मुनिने जीतलिया ॥ ७ ॥ सावित्री नामिका राजकन्याने प्रणयसे यमराजको जीतकर और सौ (१००) पुत्र सत्यवान् मेरे पतिसे उत्पन्न हों यही वर मुझे चाहिये अन्य नहीं इस बचनकी प्रतिज्ञा कराकर परलोकसे अपने सत्यवान् पतिको लौटालिया ॥ ८ ॥

नसोऽस्त्यतिशयोलोकेयस्यास्तिनफलंस्फुटम् ॥ भवितव्यंविचार्यातः सर्वातिशयशालिना ॥ ९ ॥ आत्मज्ञानमशेषाणांसुखदुःखदशादृशाम् ॥ मूलकाषकरंतस्माद्धाव्यंतत्रातिशायिना ॥१०॥ नाशायापद्गतार्थिन्याद्दष्टयाद्दश्यादिद्दष्टयः ॥ दुःखाद्दतेनिराबाधंसुखंकिंचिदवाप्यते ॥ ११ ॥ अशमःपरमंब्रह्मशमश्चपरमंपदम् ॥ यद्यप्येवंतथाप्येनंप्रथमंविद्धिशंकरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शास्त्रीय शुभ उद्योगकी ऐसी कोई अधिकता नहीं है जिसका फल स्पष्ट न हो, इसलिये सबसे श्रेष्ठ मोक्षप्रायक उद्योगसहित तुमको होना चाहिये ॥ ९ ॥ जन्म मरण, सुख, तथा दुःख आदि संपूर्ण भ्रान्तिमय दृष्टियोंका आत्मज्ञानही मूलसे उच्छेद करनेवाला है, इसलिये उसी विषयका उद्योग करना उचितहै ॥ १० ॥ क्षुधा, तृष्णा तथा कामादि आपत्तियोंको ग्रहण करनेवाली दृष्टिके नाशकेलिये प्रथम उसकी विरोधिनी (विषयदोषदर्शिनी) दृष्टिका अन्वेषण करना चाहिये, क्योंकि वैराग्य अभ्यासादि दुःखके बिना निराबाध महान् सच्चिदानंद सुख क्या प्राप्त होसकता है अर्थात् कदापि नहीं प्राप्त होता ॥ ११ ॥ शमतासे पूर्ण चिदात्मा ब्रह्मही परब्रह्म है तथा शमभीकरणसहित संसारके अनर्थकी निवृत्तिरूप परमपुरुषार्थ होताही है, यद्यपि ये दोनो सम प्राप्त हुये तथापि इस प्रथमको शंकर (ब्रह्मानंदजनक) तुम जानो ॥ १२ ॥

अभिमानंपरित्यज्यशममाश्रित्यशाश्वतम् ॥ विचार्यप्रज्ञयार्यत्वंकुर्यात्सज्जनसेवनम् ॥ १३ ॥ नतपांसिनतीर्थानिनशास्त्राणिजयंतिच ॥ संसारसागरोत्तारेसज्जनासेवनंविना ॥ १४ ॥ लोभमोहरुषांयस्यतनुतानुदिनंभवेत् ॥ यथाशास्त्रंविहरतिस्वस्वकर्मसुसज्जनः ॥ १५ ॥ अथात्मविद्वषांसंगात्तस्यसाधोःप्रवर्त्तते ॥ अत्यंताभावएवास्ययथाद्दश्यस्यद्दश्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राम ! अभिमानको त्यागकर और नित्य शमका अवलंबन करके, तथा अविचालित मोक्षके योग्य श्रेष्ठ जन्मादिता अपनी विचार करके सज्जनोंका सेवन करना चाहिये ॥ १३ ॥ संसाररूपी सागरके उतारनेमें न तप न तीर्थ और न शास्त्र सज्जनकी सेवाके सिवाय विजयी होसकते हैं ॥१४॥ जिसकी लोभ मोह और क्रोध इनकी सूक्ष्मता प्रतिदिन होती है और अपने २ कर्ममें शास्त्रके अनुकूल विहार करताहै वही सज्जनहै ॥१५॥ इसके अनन्तर सज्जनोंका सङ्ग करते २ आत्मवेत्ताओंके संगसे उस साधुको यह जो दृश्य देख पडताहै इसका अत्यंताभाव होजाताहै ॥१६

दृश्यात्यंताभावतस्तुपरमेवावशिष्यत ॥ अन्याभाववशादाशुजीवस्तत्रैवलीयते ॥ १७ ॥ नचोत्पन्नंनचैवासीद्दृश्यंनचभविष्यति ॥ वर्त्तमानेपिनैवास्तिपरमेवास्त्यवेधितम् ॥ १८ ॥ एवंयुक्तिसहस्रेणदर्शितंदृश्यतेपिच ॥ सर्वैरेवानुभूतंचदर्शयिष्यामिचाधुना ॥ १९ ॥ तथेदममलंशांतंत्रिजगत्संविदंबरम् ॥ इदंतत्त्वमतत्त्वादिकुतोत्रस्यात्कथंचवा ॥ २० ॥

अर्थ—और दृश्यके अत्यन्ताभावसे परमात्माका स्वभावही शेष रहजाताहै, अन्य पदार्थके अभावके कारण जीव शीघ्र उसीमें लीन होजाताहै ॥ १७ ॥ यथार्थमें यह दृश्य न उत्पन्न हुआ और न होगा, जो न हुआ न होगा वह वर्तमानमेंभी नहीं, इसलिये बिना किसी क्लेशके परब्रह्मही शेष रहजाताहै ॥ १८ ॥ यह उत्पत्यादिका अभाव, उत्पत्ति प्रकरणमें सहस्रों युक्तियोंसे दिखलाया और दिखलातेहैं, और जिस प्रकार सब विद्वानोंने अनुभव कियाहै उसी प्रकार यह त्रिलोक संबंधी संविदन्वर अब मैं दर्शाऊंगा ॥ १९ ॥ यह त्रिजगत् संविदन्वर (त्रिलोक संबंधी चिदाकाश) शांत, अमलतत्व अर्थात् परमार्थरूपही है, और अतत्त्व मायाजनित आकाशादि कहांसे और कैसे होसकताहै, सत्से वा असत् अथवा मायासे, इनमें आदि दो पक्ष अविकारी होनेसे युक्त नहीं, और मायासे उत्पत्ति माननेसे मिथ्यात्व होजायगा, इसलिये इसकी उत्पत्ति नहीं हुई ॥ २० ॥

चिच्चमत्कुरुतेचारुचंचलाचंचलात्मनि ॥ यत्तथैवतदेवेदंजगदित्यवबुध्यते ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यभूयोनुभवश्चिदादित्यांशुमंडलम् ॥ कोवास्वांशुमतोभेदोनिर्विकल्पःसकथ्यताम् ॥ २२ ॥ स्वाभावतोस्याश्चिद्दृष्टेर्येउन्मेषनिमेषणे ॥ जगद्रूपानुभूतेस्तावेतावस्तमयोदयौ ॥ २३ ॥ अहमर्थोऽपरिज्ञातःपरमार्थांबरेमलम् ॥ परिज्ञातोहमर्थस्तुपरत्मामांबरंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये कल्पित चंचलता विशिष्ट आत्मामें प्रतिबिंबित चित् चमत्कार करती है अर्थात् जगत्भावसे कल्पना करती है, जो वह चित् कल्पना करती है वही उसको जगत्भावसे अनुभव करती है ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यमें जितना अधिक अनुभवहै वह सब चिद्रूपी सूर्यका किरणसमूहहै, किरण समूह और किरणवान्‌का क्या भेदहै ? कुछ नहीं इसलिये विकल्पोंके मिथ्यात्व होनेसे त्रैलोक्यके अनुभवकोभी निर्विकल्पही कहो ॥ २२ ॥ इस सविकल्प चित्-वृत्तिके जो उन्मेष और निमेषहै वेही जगत्के अनुभवके उदय और अस्तमयहै ॥ २३ ॥ परमार्थ चिदाकाशमें अपरिज्ञात अहमर्थ, अर्थात् अज्ञात अहंकारमूल (अविद्या) है और परिज्ञात वही अहंकार चिदाकाशरूपही होजाताहै २४

अहंभावःपरिज्ञातोनाहंभावोभवत्यलम् ॥ एकतामंबुनेवांबुयातिचिन्नभसात्मना ॥ २५ ॥ अहमादिजगद्दृश्यंकिलनास्त्येववस्तुतः ॥ अवश्यमेवतत्तस्माच्छिष्यतेहंविचारतः ॥ २६ ॥ बाध्यतेचामलधियामपिशाचेपिशाचधीः ॥ शिशूनांतावदाध्वांतःकरणानांविचारणा ॥ २७ ॥ चिज्ज्योत्स्नायावदेवांतरहंकारघनावृता ॥ विकासयतिनोतावत्परमार्थकुमुद्वतीम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपसे परिज्ञात अहंकार किसी प्रकारसे नहीं रहसकता, ज्ञात होनेसे जैसे जलके साथ जल एक होजाताहै ऐसेही चिदाकाशके साथ उसकी एकता होजाती है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! अहंभावसे आदिलेके यथार्थमें यह सम्पूर्ण दृश्य कुछ नहीं है, इसलिये अहंकारके विचारसे अवश्य वही चिदाकाश शेष रहजाताहै ॥ २६ ॥ पिशाच न होनेपर पिशाचकी बुद्धि निर्मल ज्ञानियोंकी बाधित होती है, और किंचित् मार्गमें प्रवृत्त बालकोंके लिये पिशाच नहीं है ऐसा सैकडोंबार उपदेश देनेपरभी उनको संशय उत्पन्न होताहै न कि बाध ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जबतक प्रौढबुद्धियोंकीभी चित्‌चंद्रिका अहंकाररूपी मेघसे आच्छादितहै तबतक परमार्थरूप चंद्रिकाका प्रकाश नहीं होता२८

प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदेस्वार्थेस्वयंविना ॥ नरकस्वर्गमोक्षादितृष्णायाःकल्पनैवका ॥ २९ ॥ हृदियावदहंभावोवारिदःप्रविजृंभते ॥ तावद्विकासमायातितृष्णाकुटजमंजरी ॥ ३० ॥ आक्रम्यचेतनांनित्यमहंकारांबुदेस्थिते ॥ जाड्यमेवस्थितिंयातिनप्रकाशःकदाचन ॥ ३१ ॥ असन्नयमहंकारःस्वयंमिथ्याप्रकल्पितः ॥ दुःखायैवनहर्षायबालसंभ्रमयक्षवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस स्वार्थपदमें अहंकारके निकलनेसे उस अहंकारके बिना नरक स्वर्ग तथा मोक्षादिकी कल्पनाही क्या वस्तुहै ॥ २९ ॥ हृदयमें जबतक अहंकाररूपी मेघ दौडताहै तबतक तृष्णारूपी कुटजकी लता विकाशको प्राप्त होती है ॥ ३० ॥ चेतनाको आक्रमण करके अहंकाररूपी मेघके स्थिति रहनेपर जाड्य (अज्ञानान्धकार) ही स्थितिको प्राप्त होताहै न कि प्रकाश ॥ ३१ ॥ असत्‌भी यह अहंकार स्वयं मिथ्या दुःखके लिये न कि सुखके लिये ऐसे कल्पितहै जैसे बालकके भ्रमसे पिशाच ॥ ३२ ॥

मुधैवकल्पितोमोहमहंभावःप्रयच्छति ॥ अनंतसंसारकरंदामादिष्विवदुर्मतौ ॥ ३३ ॥ अयंसोहमितिस्फारान्मोहादन्यतरत्तमः ॥ अनर्थभूतंसंसारेनभूतंनभविष्यति ॥ ३४ ॥ यत्किंचिदिदमायातिसुखदुःखमलंभवे ॥ तदहंकारचक्रस्यप्रविकारोविजृंभते ॥ ३५ ॥ अहंकारांकुरःकृष्टोहृदयेनावरोपितः ॥ सहस्रशाखंदुश्छेदंतस्यसंसृतिनाशनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—मिथ्याही कल्पित यह अहंभाव,अनंतसंसारके जनक भ्रमको ऐसे देताहै जैसे अभिमान दूषितांतःकरणमें रज्जुआदिमें सर्पआदिकी बुद्धि ॥ ३३ ॥ यह शरीर, वह इंद्रियादि मैंहुं इत्यादि महामोहोंसे अन्य अनर्थरूप संसारमें न कुछ हुआ और न होगा ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जो कुछ सुख वा दुःख आके प्राप्त होताहै वह अहंकाररूपी चक्रकाही मुख्य परिणाम विकसित होरहाहै ॥ ३५ ॥ जिस पुरुषने अहंकाररूप दुष्टवृक्षके अंकुरको परिष्कृत मनरूप हलसे खींचकर फेंक दियाहै उसके आत्मारूपी क्षेत्रमें संसारका नाशक ज्ञानरूपी सस्य सहस्र शाखारूपसे बढके फल देताहै

अहंभावांकुरोजन्मवृक्षाणामक्षयात्मनाम् ॥ ममेदमितिविस्तीर्णास्तेषांशाखाःसहस्रशः ॥ ३७ ॥ करटापातविस्फोटाभांत्यर्थावासनादयः ॥ विचार्यचारुरववत्तरंगवरपंक्तिवत् ॥ ३८ ॥ अहंभावनयाभातित्वमहंभाववर्जितः ॥ संसारचक्रवहनमात्मनःपरिरोधया ॥ ३९ ॥ अहंभावतमोयावज्जन्मारण्येविजृंभते ॥ तावदेताविवल्गतिचिंतामत्ताःपिशाचिकाः ॥ ४० ॥

---

(१) जगत्‌को अनुभव करनेवाली चित् सविकल्पाहै और ब्रह्म निर्विकल्पहै अतः चित्‌का भेद होगा सो विकल्प मिथ्या होनेसे सब निर्विकल्पही है ॥

अर्थ—हे रामजी ! अहंकाररूपी अंकुरसे जिन अक्षय वृक्षोंका जन्महै उन्हीकी मम (मेरा) इदम् (यह) इत्यादि विस्तीर्ण सहस्रशः शाखाहैं ॥ ३७ ॥ विचारणीय उत्तम स्फोटन शब्दयुक्त परिपक्क शाल्मली फलादिके तुल्य वा तरंगकी श्रेष्ठ पंक्तियोंके सदृश काकोंके किंचित् पतनसेभी विशीर्ण होनेवाले ये बासनादि पदार्थ हैं अर्थात् अति तुच्छहैं ॥ ३८ ॥ तुम आत्मस्वरूप यथार्थ अहंभावसे वर्जित हो, परन्तु आत्माको तिरोधान करनेवाली जो अहंभावनाहै उससे स्वयं संसारचक्रमें भ्रमण करते हुयेके समान भान होतोहो ॥ ३९ ॥ जन्मरूपी जंगलमें अहंकाररूपी अन्धकार जबतक विकसितहै तभीतक मत्त चिन्तारूप पिशाचिका गर्जती है ॥ ४० ॥

अहंकारपिशाचेनगृहीतोयोनराधमः ॥ नशास्त्राणिनमंत्राश्र्वतस्याभावस्यसिद्धये ॥ ४१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ केनोपायेनभगवन्नहंकारोनवर्द्धते ॥ तत्वंकथयमेब्रह्मन्संसारभयशांतये ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ चिन्मात्रदर्पणाकारेनिर्मलेस्वात्मनिस्थिते ॥ इतिभावानुसंधानादहंकारोनवर्द्धते ॥ ४३ ॥ मिथ्येयमिंद्रजालश्रीःकिंमेस्नेहविरागयोः ॥ इत्यंतरानुसंधानादहंकारोनजायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—अहंकाररूपी पिशाचसे जो अधम प्राणी गृहीतहैं उसको अहंकाररूपी पिशाचकी निवृत्तिके लिये शास्त्र वा मंत्र कोई समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! किस उपायसे अहंकारकी वृद्धि नहीं होती; उसको संसारके भयकी शान्तिके लिये कहिये ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! चिन्मात्र निर्मल दर्पणाकार अपने आत्माके स्थित होनेपर उसी शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वभावका सदा स्मरण करनेसे अहंकारकी वृद्धि नहीं होती ॥ ४३ ॥ यह दृश्यरूप इन्द्रजालकी श्री मिथ्याहै मुझे राग द्वेषसे क्या प्रयोजन ऐसा मनमें नित्य अनुसंधान करनेसे अहंकार नहीं बढताहै ॥ ४४ ॥

नाहमात्मनिनोयस्यदृश्यश्रियइतिस्वयम् ॥ शांतेनव्यवहारेणनाहंकारःप्रवर्द्धते ॥ ४५ ॥ अहंहिजगदित्यंतर्हेयादेयदृशोःक्षये ॥ समतायांप्रपन्नायांनाहंभावःप्रवर्द्धते ॥४६॥ अहंचिज्जगदित्यंतर्हेयादेयदृशोः क्षये ॥ समतायांप्रपन्नायांनाहंभावःप्रवर्द्धते ॥ ४७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमाकृतिरहंकारःकथंसंत्यज्य तेप्रभो ॥ सशरीरोऽशरीरश्र्वत्यक्तेतस्मिंश्र्वकिंभवेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मामें अहंकार नहीं है और दृश्यकी श्रीभी नहीं है, इसप्रकार शांत व्यवहारसे जो स्थितहै उसका अहंकार नहीं बढता ॥ ४५ ॥ मैं द्रष्टा, चिद्दर्शन, और जगत् दृश्य इस त्रिपुटीके प्रत्ययमें शत्रु भूतत्याज्य और मित्र भूतग्राह्य इन दृष्टियोंके नाश होनेपर और समताके प्रसन्न होनेपर अहंभाव नहीं बढता ॥४६॥ अहम् चित् और जगत् इन प्रतीतियोंमें अन्तःकरणसे हेय उपादेय दृष्टिके क्षय होनेपर अहंकार नहीं बढता ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! अहंकारका क्या आकारहै जाग्रत, स्वाप्निक, मनोरथिक, वा देह मात्रमें, अहंभाव रूप अहंकार, तथा देहसे भिन्न बुद्धि मात्र उपाधिके अहंकारका क्या स्वरूपहै और यह सब प्रकारका अहंकार कैसे त्यागा जाताहै और उसके त्यागनेसे क्या होताहै ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ त्रिविधोराघवास्तीहत्वहंकारोजगत्रये ॥ द्वौश्रेष्ठावितरस्त्याज्यःशृणुत्वंकथयामिते ॥ ४९ ॥ अहंसर्वमिदंविश्वंपरमात्माहमच्युतः ॥ नान्यदस्तीतिपरमाविज्ञेयासाह्यहंकृतिः॥५०॥ मोक्षायैषानबंधायजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ सर्वस्माद्व्यतिरिक्तोहंवालाग्रशतकल्पितः ॥ ५१ ॥ इतियासंविदेषासौद्वितीयाहंकृतिःशुभा ॥ मोक्षायैषानबंधायजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस तीनों लोकमें तीन प्रकारका अंकारहै उनमेंसे दो श्रेष्ठहैं और तीसरा त्याज्यहै सुनों मैं तुमसे कहताहुं ॥ ४९ ॥ कार्यरूप यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड तथा कारणरूप परमात्मा अच्युत मैंही हुं मुझसे अन्य जगत्में कुछ नहीं है यह जो अहंकृति है उसीको परमोत्तम जानना चाहिये ॥ ५० ॥ यह अहंकार मोक्षके लिये है न कि बंधके और जीवन्मुक्तको होताहै, और मैं सबसे पृथक् शतधा परिकल्पित जो बालका अग्रभागहै उससेभी सूक्ष्म, अर्थात् शोधनसे निरवयव अति सूक्ष्महुं ॥ ५१ ॥ यह जो संवित्है वह दूसरी शुभ अहंकृति है यहभी मोक्षके अर्थ है न कि बंधके लिये और जीवन्मुक्तको होती है ॥ ५२ ॥

अहंकाराभिधायासाकल्प्यतेनतुवास्तवी ॥ पाणिपादादिमात्रोयमहमित्येषनिश्र्वयः ॥ ५३ ॥ अहंकारस्तृतीयोसौलौकिकस्तुच्छएवसः ॥ वर्ज्यएवदुरात्मासौशत्रुरेवपरःस्मृतः ॥ ५४ ॥ अनेनाभिहतोजंतुर्न भूयःपरिरोहति ॥ रिपुणानेनबलिनाविविधाधिप्रदायिना ॥ ५५ ॥ कष्टीकृतमतिर्लोकःसंकटेष्वेवमज्जति ॥ अनयाद्दुरहंकृत्यभावात्संसक्तयाचिरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जो सप्तम भूमिकास्थहैं उनको जीवनके लिये पूर्वोक्त दोनों अहंकृतिभी कल्पना मात्रहै न कि वास्तवी, और हस्तपादादि मात्र देहमें जो अहंनिश्चयहै ॥ ५३ ॥ वह तृतीय लौकिक तुच्छ अहंकारहै, यह दुष्ट वर्जनीयहै क्योंकि यह परमशत्रु कहागयाहै ॥ ५४ ॥ इस अनेक आपत्तिदायक बलवान् शत्रुसे मारा हुआ प्राणी पुनः खडा नहीं होता ॥ ५५ ॥ स्वभावसेही अनादि कालसे संसक्त इस देहाहंभावरूप अहंकृतिसे दुर्वासना आदिमें प्रवृत्तिसे पीडित बुद्धि सदा अनेकप्रकारके संकटोंमेंही डूबताहै ॥ ५६ ॥

शिष्टाहंकारवाञ्जंतुर्भगवान्यातिमुक्तताम् ॥ लोकाहंकारवद्दोषवपुरस्मिन्निरूपणः ॥५७॥ नदेहोस्मीतिनिर्णीयविवर्जनंमहतांमतम् ॥ प्रथमंद्वावहंकाराबंगीकृत्यांत्यलौकिकौ ॥ ५८ ॥ प्रथमंद्वावहंकाराबंगीकृत्यांत्यलौकिकौ ॥ तृतीयाहंकृतिस्त्याज्यालौकिकीदुःखदायिनी ॥ ५९ ॥ अनयादुरहंकृत्यादामव्यालकटाःकिल ॥ तांदशांसमनुप्राप्तायाकथास्वपिखेददा ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्ध पूर्वोक्त दो अहंकारसहित, और देहाहंभावरूप लौकिक अहंकारवाले दोषोंको छेदन करता हुआ, इस सर्वात्माहंभावरूप अहंकार लोक प्रसिद्ध देहाहंभावकोही कथन करता हुआभी वह भगवान् देहाहंकारसे मुक्तताको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ अन्तिम देहाहंकारके समान प्रथम दो अहंकारोंको दृढ करके, मैं देह नहीं हुं यह विचारसेभी निर्णय करके, उस अहंकारकोभी त्याग देना यह पूर्व महात्माओंकीभी संमति है ॥ ५८ ॥ और प्रथम दो अहंकारोंको लौकिक देहात्मभावके सदृश अंगीकार करके तृतीय देहाहंकृति जो अति दुःखदायिनी है उसे त्यागना चाहिये ॥ ५९ ॥ इस दुष्ट अहंकारसे दाम व्याल और कटकी जो दशा हुई है वह कहनेसेभी खेद होताहै ॥ ६० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ तृतीयांलौकिकीमेतांत्यक्त्वाचित्तादहंकृतिम् ॥ किंभावःपुरुषोब्रह्मन्प्राप्नुयादात्मनोहितम् ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एषातावत्परित्याज्यात्यक्त्वैतांदुःखदायिनीम् ॥ यथायथापुमांस्तिष्ठेत्परमेतितथातथा ॥ ६२ ॥ अहंकारदृशावेतेपूर्वोक्तेभावयन्यदि ॥ तिष्ठेदुपैतिपरमंतत्पदंपुरुषोनघ ॥६३॥ अथतेअपिसंत्यज्यसर्वाहंकृतिवर्जितः ॥ संतिष्ठेततथात्युच्चैःपदमेत्याधिरोहति ॥ ६४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—तृतीय लौकिक देहाहंकारको त्यागकर पुरुष किसप्रकार स्थित रहकर अपना हित प्राप्त करताहै ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस दुःखदायिनी तृतीय अहंकृतिको त्यागकर जिस २ प्रकार अर्थात् सर्वाहंभाव शुद्धाहंभाव तथा गुरू शुश्रूषादिसे सप्तम भूमिकादि भेदोंमें जैसे २ स्थित रहनेको पुरूष समर्थ होताहै उसी २ प्रकारसे स्वरूप सुखकी अभिव्यक्तिकी अधिकताके लाभसे परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ६२ ॥ हे पापरहित रामजी ! यदि पूर्वोक्त प्रथम दोनों अहंकारकी दृष्टिकी भावना करता हुआ पुरूष स्थित रहै तो वह उस परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ इसके पश्चात् उन दोनों शुभ अहंकारोंकोभी त्यागकर सब अहंकारोंसे रहित होकर स्थित रहै तो उस अति उच्च पदपर आरोहण करताहै ॥ ६४ ॥

सर्वदासर्वयत्नेनलौकिकीदुरहंकृतिः ॥ परमानंदबोधायवर्जनीयानयाधिया ॥ ६५ ॥ शरीरास्थामयापुण्यदुरहंकारवर्जनम् ॥ अत्यंतपरमंश्रेयएतदेवपरंपदम् ॥ ६६ ॥ भावादहंकृतिंत्यक्त्वास्थूलामेतांहिलौकिकीम् ॥ तिष्ठन्व्यवहरन्वापिननरःप्रपतत्यधः ॥ ६७ ॥ संशांताहंकृतेर्जंतोर्भोगारोगामहामते ॥ नस्वदंतेसुतृप्तस्ययथाप्रतिविषारसाः ॥ ६८ ॥

अर्थ—सर्वदा सर्वप्रकारसे देहा हंभावरूप जो दुष्ट अहंकृति है उसको इसी पूर्वोक्त बुद्धिसे परमानन्द परब्रह्मके बोधके लिये अवश्य वर्जित करना चाहिये ॥ ६५ ॥ शरीरमें स्थित रोग तथा पापरूप जो देहाहंभावरूप दुष्ट अहंकारहै उसका वर्जन अत्यन्त परमश्रेयहै और यही परमपदहै ॥ ६६ ॥ बिचारद्वारा स्थूल इस लौकिक अहंकारको त्यागकर मनुष्य स्थित रहते वा व्यवहार करते हुयेभी अधोदेशमें नहीं पतित होता ॥ ६७ ॥ हे महामते ! जिस प्राणीका अहंकार शांत होगयाहै उस सर्वथा तृप्त पुरूषको रोगरूपी भोग ऐसे नहीं अच्छे लगते जैसे विष मिले हुये रस ॥ ६८ ॥

भोगेष्वस्वदमानेषुपुंसःश्रेयःपुरोगतम् ॥ क्षीणेंधकारेकिंनाममनसोन्यत्प्रवतर्त्तते ॥ ६९ ॥ अहंकारानुसंधानवर्जनादेवराघव ॥ पौरुषेणप्रयत्नाच्चतीर्यतेभवसागरः ॥ ७० ॥ नाहंनतेनममकिंचिदपीतिमत्वासर्वंचमेसकलमप्यहमेवचेति ॥ लब्धास्पदंमनसिसंविदमेवमीड्यांनीत्वास्थितिंपरमुपैतिपदंमहात्मा ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानेऽहंकारविचारोनाम त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जब पुरुषको भोगोंमें स्वाद नहीं लगता तब यही समझना कि मोक्षरूप कल्याणकी लक्ष्मी उसके आगे स्थितहै, क्योंकि मनका अंधकार अहंकारके क्षीण होनेपर पुनः अन्यप्रतिबंधक क्याहै ॥ ६९ ॥ हे राघव ! अहंकारके अनुसन्धानके बर्जनसे, धैर्य्य तथा शास्त्र श्रवणादि पुरूषार्थ द्वारा यह संसाररूपी समुद्र पार किया जाताहै ॥ ७० ॥ प्रथम सम्पूर्ण विश्व मैंही हुं और इससे सब कुछ मेराही है ऐसा मानकर, अनन्तर देहादिक मैं नहींहुं और देहोंके संबंधी धन पुत्रादिभी मेरे नहीं हैं ऐसा समझके सम्पूर्ण प्रतिबन्धकका नाश होनेसे मनकी स्थितिपूर्वक पूर्वोक्त शुद्ध आत्मसम्विद्को प्राप्त करके और क्रमसे सप्तमभूमिकामें स्थित होके स्वयं अपरिच्छिन्न महान् आत्मा होके यह प्राणी विदेह कैवल्यको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्यानेऽहंकार विचारोनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

भीम, भास तथा दृढ नाम दानवोंसे छेदन किये हुये देवोंसे प्रार्थना किये हुये विष्णुने शंबरासुरका हनन किया और वे भीमादि वासना मुक्त हुये यह विषय इस ३४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रतेशृणुवक्ष्यामिदामादिषुगतेष्वत ॥ यद्वृत्तंशंबरस्यैवनगरेनगसंनिभे ॥ १ ॥ तथागगनविभ्रष्टेसमस्तेध्वस्तसंस्थितौ ॥ विनष्टेशंबरानीकेशरदीवाब्दमंडले ॥ २ ॥ देवनिर्जितसैन्योसौनीत्वाकतिपयाःसमाः ॥ पुनर्देववधोद्युक्तश्चिंतयामासदानवः ॥ ३ ॥ दामादयस्तुरचितायेमयामायासुराः ॥ मौर्ख्यात्तैर्भाविताद्युद्धेमिथ्यैवदुरहंकृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–दामादिके नष्ट होनेपर शंबरासुरका संपत्तिमें मेरूके सदृश जो वृत्तान्त नगरमें हुआ वह पूर्वोक्त विषय मैं तुमसे कहुंगा सुनो ॥ १ ॥ उसप्रकार आकाशसे सब दैत्योंके गिरनेपर, और समस्त मर्यादाके नष्ट होनेपर, और शरद्ऋतुमें मेघ मंडलके समान शंबरासुरकी सेनाके नष्ट होनेपर ॥ २ ॥ जब देवताओंसे सब सेना जीत लीगई तब कुछ वर्षोंको बिताकर पुनः शंबरदानव देवताओंके बधका उपाय चिंतन किया ॥ ३ ॥ कि दामादि असुरोंको मायासे मैंने रचा परंतु उन लोगोंने अपनी मूर्खतासे युद्धमें मिथ्याही दुष्ट अहंकारकी कल्पना की॥४

इदानींसंसृजाम्यन्यान्दानवान्माययोदितान् ॥ तानप्यध्यात्मशास्त्रज्ञान्सविवेकान्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ ततस्तत्त्वपरिज्ञानान्मिथ्याभावनयोज्झिताः ॥ नाहंकारंप्रयास्यंतिविजेष्यंतिचतान्सुरान् ॥ ६ ॥ इतिसंचिंत्यदैत्येंद्रस्तादृशान्दानवान्धिया ॥ माययोत्पादयामासबुद्बुदानीववारिधिः ॥ ७ ॥ सर्वज्ञावेद्यवेत्तारोवीतरागागतैनसः ॥ यथाप्राप्तैककर्त्तारोभावितात्मानउत्तमाः ॥ ८ ॥

अर्थ—सो अब पुनः मैं अन्य दानवोंको मायासे रचूं और उनको अध्यात्म शास्त्रोंके वेत्ता और विवेकीभी करूं ॥ ५ ॥ तब वे तत्वके ज्ञानसे, मिथ्या भावनासे रहित अहंकारको नहीं प्राप्त होंगे और देवताओंको जीत लेगे ॥ ६ ॥ इतना विचार करके उस दैत्येंद्रने अपनी बुद्धिद्वारा मायासे दानवोंको ऐसे रचा जैसे समुद्र बुद्बुदोंको ॥ ७ ॥ वे दानव एक ब्रह्मके ज्ञानसे सर्वज्ञ, वेद्यके जाननेवाले, वीतराग, पापरहित, यथा प्राप्त वस्तुके कर्ता, शुद्ध बुद्धि, और उत्तम जनथे ॥ ८ ॥

भीमोभासोदृढइतिनामभिःपरिलांछिताः ॥ जगत्तृणमिवाशेषंपश्यंतःपावनाशयाः ॥ ९ ॥ तेदैत्याभुवनंप्राप्यच्छादयामासुरंबरम् ॥ गर्जंतोहेतितडितःप्रावृषीवपयोधराः ॥ १० ॥ अयुध्यंतसमंदेवैरपिवर्षगणान्बहून् ॥ विवेकवशतोजग्मुर्नाहंकारंकदाचन ॥ ११ ॥ तेषांयावद्दुदेत्यंतर्ममेदमितिवासना ॥ तावत्कोयमहंचेतिविचाराद्यात्यसत्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और भीम, भास, तथा दृढ इत्यादि नामोंसे युक्त, पवित्र अन्तःकरण और संपूर्ण जगत्को तृणके समान देखतेथे, उन दैत्योंने भूमंडलमें प्राप्त होके ऐसे आकाशको घेरलिया जैसे बर्षाकालमें मेघ, और अस्त्रशस्त्रसे विद्युत्के समान गर्जना कर रहेथे ॥ ९ ॥ १० ॥ और देवताओंके साथ बहुत वर्षगणोंतक युद्ध किया और विवेकके बशसे अहंकारको नहीं प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ उनके अन्तःकरणमें जबतक मम (मेरा) इदम् (यह) इत्यादि बासना उदय होती है तबतक यह संसार क्याहै, हम क्याहैं, इस विचारसे वह असत्यताको प्राप्त होजाताथी॥१२॥

असच्छरीरंविबुधाःकोसावहमितिस्थितिः ॥ विचारादित्थमेतेषांप्रोद्गुर्नभयादयः ॥ १३ ॥ असच्छरीरंनास्तीदंचिच्छुद्धैवात्मनिस्थिता ॥ अहंनामनचान्योस्तिनिश्चित्यैवासुरायुः ॥ १४ ॥ ततस्तैर्निरहंकारैर्जरामरणनिर्भयैः ॥ प्राप्तार्थकारिभिर्धीरैर्वर्त्तमानानुसारिभिः ॥ १५ ॥ असक्तबुद्धिभिर्नित्यंहतान्यैरप्यहंतृभिः ॥ वासनाजालनिर्मुक्तैःकृतकार्यैरकर्तृभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—शरीर असत्है और देवतालोगभी असत्हैं, यह संसार क्याहै और हम क्याहैं ऐसी (मिथ्या) इसकी स्थितिहै ऐसे विचारसे उनके हृदयमें भयआदि नहीं उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ शरीर असत् शुद्धचित् अपने आत्मामें स्थितहै न हम, और न अन्य कोई है ऐसा निश्चय करके वे असुर युद्ध करनेको गये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर अहंकारसे वर्जित, वृद्धाऽवस्था तथा मृत्युके भयसे शून्य, प्राप्त कार्योंके कर्ता, धीर, वर्तमानकालके अनुसारी ॥ १५ ॥ नित्य असक्तबुद्धि, और अन्य जनोंके मारनेसेभी अभिमानके अभावसे अहन्ता, बासनाजालसे विनिर्मुक्त, और कृतकार्य होनेपरभी अकर्ता थे ॥ १६ ॥

प्रभोःकार्यमिदंकार्यमितिसंगरतत्परैः ॥ वीतरागैर्गतद्वेषैःसर्वदासमदृष्टिभिः ॥ १७ ॥ सादेवीदानवैः सेनाभीमभासदृढादिभिः ॥ हताभुक्ताहताप्लुष्टास्वान्नश्रीरिवभोक्तृभिः ॥ १८ ॥ भीमभासदृढक्षुण्णा जातागीर्वाणवाहिनी ॥ परिद्रुद्रावबेगेनगंगेवहिमवच्युता ॥ १९ ॥ सासुरानीकिनीदेवंक्षीरोदार्णवशायिनम् ॥ जगामशरणंशैलंवातार्त्तेवाब्दमालिका ॥ २० ॥

अर्थ—प्रभुका कार्य है इसलिये मर्यादा पालनकेवास्ते इसे करना चाहिये, इस हेतुसे संग्राममें तत्पर, वीतराग, द्वेषरहित और सर्वदा समदृष्टि भीम, भास और दृढादि दानवोंसे देवताओंकी सेना मारी गई, हरी गई, जलाई, और भोक्ताओंसे अपने अन्नके समान भोगीभी गई ॥ १७ ॥ १८ ॥ भीम भास, और दृढ़से मर्दित देवताओंकी सेना ऐसे वेगसे भगी जैसे हिमालयपर्वतसे गिरी हुई गंगाजी ॥ १९ ॥ वह देवताओंकी सेना क्षीरसागरशायी विष्णु भगवान्‌के शरणमें ऐसे गई जैसे वायुसे पीडित मेघमाला पर्वतके शरणमें ॥ २० ॥

हरिराश्वासयामासतांभीतांदेववाहिनीम् ॥ भुजंगाभिद्रुतामेकांरमणीमिवनायकः ॥ २१ ॥ अथक्षीरोदकुहरेतावत्सासुरवाहिनी ॥ उवासयावद्भगवांस्तन्निरासार्थमुद्ययौ ॥ २२ ॥ बभूवदारुणंयुद्धंशौरिशंबरयोस्ततः ॥ अकालइवकल्पांतेसमुड्डीनकुलाचलम् ॥ २३ ॥ शशामसमरेतस्मिन्दैत्यःसबलवाहनः ॥ नारायणहतोयातःशंबरोवैष्णवींपुरीम् ॥ २४ ॥

अर्थ—विष्णुभगवान् भयभीत उस देव सेनाको ऐसे धैर्य दिया जैसे व्यभिचारी पुरुषोंसे घेरी हुई अपनी प्रियाको उसका पति ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर क्षीरसमुद्रके समीप श्वेतद्वीपमें देवताओंकी सेना उस कालतक निवास करती थी जबतक विष्णुभगवान् उसके बधके लिये नहीं गये ॥ २२ ॥ जैसे अकालप्रलयमें महेन्द्रादि कुलपर्वत उड़ें ऐसेही उसके पश्चात् विष्णु और शंबरासुरका युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ सेना और बाहनके साथ वह दैत्य शांत होगया और नारायणसे हत वह दैत्य विष्णुपुरीको गया ॥ २४ ॥

भीमभासदृढास्तेतुतस्मिन्विषमसंगरे ॥ विष्णुनैवशमंनीताःपवनेनेवदीपिकाः ॥ २५ ॥ तेहिनिर्वासनाएवयदाशांतिमुपागताः ॥ नतदैषांगतिर्ज्ञातादीपानामिवशाम्यताम् ॥ २६ ॥ तस्माद्वासनयाबद्धंमुक्तंनिर्वासनंमनः ॥ रामनिर्वासनीभावमाहरस्वविवेकतः ॥ २७ ॥ सम्यगालोकनात्सत्याद्वासनाप्रविलीयते ॥ वासनाविलयेचेतःशममायातिदीपवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—और उस विषम संग्राममें भीम, भास और दृढ़नाम दैत्योंको विष्णुभगवान्‌नें ऐसे विदेह कैवल्यको प्राप्त किया जैसे पवन दीपकको ॥ २५ ॥ वासना रहित जब वे दानव शांतिको प्राप्त हुये उससमय उनकी गति ऐसे नहीं मिली जैसे शांत होते हुये दीपकोंकी ॥ २६ ॥ इसलिये हे रामजी ! बासनायुक्त मन बद्धहै और बासनारहित मुक्तहै, इसलिये बासनाका अभाव अवश्य सम्पादन करो ॥ २७ ॥ सत्यका भलीभांति विचार करनेपर बासनाका लय होजाताहै और बासनाके लय होनेसे दीपके समान चित्त शांत होजाताहै ॥ २८ ॥

नसत्यंकिंचिदेवेहसद्भावोभावयत्यलम् ॥ नास्त्येवभावनातस्मादित्येतत्सम्यगीक्षणम् ॥ २९ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वंकःकिंभावयतुकवा ॥ भावनानामनास्त्येवतदेतत्सम्यगीक्षणम् ॥ ३० ॥ वासनाचित्तनामानौशब्दावर्थसमन्वितौ ॥ सत्यावलोकनाद्यत्रविलीनौतत्परंपदम् ॥ ३१ ॥ वासनावलितंचित्तमिहस्थीतमुपागतम् ॥ तदेवतद्विनिर्मुक्तंविमुक्तमितिकथ्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्ण चिदात्मा जो इस दृश्यकी कल्पना करताहै वह किंचित्भी सत्य नहीं है इसलिये दृश्याकार भा-

वना भावनाभी नहीं है किंतु चिन्मात्रपरिशेष परमात्माका दर्शनही सम्यक् दर्शन है ॥ २९ ॥ यह संपूर्ण जगत् आत्माही है तो कौन कहां किसकी भावना करै, पूर्वोक्त त्रिपुटी तथा उसकी भावना (संस्कार) यह सत्य नहीं है, यह सम्यक् दर्शन है ॥ ३० ॥ अर्थ सहित वासना और चित्त ये दोनों शब्द सत्यके विचारसे जहां लीन होजातेहैं वही परमपद है ॥ ३१ ॥ वासना ग्रस्त चित्त इस जगत्में स्थितिको प्राप्त हुआहै, और वासनारहित वह जीवन्मुक्त कहा जाताहै ॥ ३२ ॥

नानाघटपटाकारैश्चेतःस्थितिमुपागतम् ॥ तदेवाशुशमंनेयंमिथ्यायक्षइवोत्थितः ॥ ३३ ॥ दामव्याल कटाकारैश्चेतःपरिणतंयथा ॥ भीमभासदृढन्यायोराघवास्त्वचलस्तव ॥ ३४ ॥ दामव्यालकटन्यायो मातेभवतुराघव ॥ एतद्रामपुराप्रोक्तंपित्राकमलजेनमे ॥३५॥ भवतेयन्मयाप्रोक्तंशिष्यायात्यन्तधीमते॥ दामव्यालकटन्यायस्तस्मान्मातेस्तुराघव ॥ भीमभासदृढन्यायोनित्यमस्तुतवानघ ॥ ३६ ॥ अविरल सुखदुःखसंकटेयंभवपदवीभवतापनोपयता॥व्यवहरणवतोविभूतियातौसततमसक्तयैवनश्यतीति३७॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—नाना घटपटादि आकारोंसे चित्त जगत्में स्थितिको प्राप्त है, उसीको बालकके मिथ्या वेतालके समान शीघ्र शांत करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! दाम व्याल तथा कटके आकारके सदृश देहात्मभावमें परिणत जो चित्तहै वह तुमारा चित्त भीम भास तथा दृढके सदृश आत्माकारमें परिणत अचलहो ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! मेरे पिता ब्रह्माजीने सर्व कालमें मुक्तकंठ होके कहाथा कि दाम व्याल कटकान्याय तुमको नहो ॥ ३५ ॥ जो बात कि अत्यंत बुद्धिमान् शिष्य तुमारे लिये मैंने कहाथा कि हे राघव ! दाम व्याल कटन्याय (देहात्मभाव) तुमको नहो और भीम भास दृढ न्याय तुमको नित्यहो ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! इस उक्त भीम भास दृढन्यायसे व्यवहार करते हुये तथा सर्वत्र असक्त बुद्धिसे बोधकी परिपाकतारूप ऐश्वर्यकी तुमको प्राप्ति होनेपर अतिसुख दुःखसे पूर्ण और जन्मोंकी परंपरामें त्रिबिध ताप तथा भोगके लिये प्राप्त यह संसारकी पदवी मूलसे उच्छिन्न होती है अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्यान समाप्तिर्नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस ३५ के सर्गमें शमताका उपाय, भोगकी इच्छाका त्याग और सत्समागमसे विवेक आत्मबोधकी दृढता और समाधिका योग वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जयंतितेमहाशूराःसाधवोयैर्विनिर्जितम् ॥ अविद्यामेदुरोल्लासैःस्वमनोविषयोन्मुखम् ॥ १ ॥ संसारस्यास्यदुःखस्यसर्वोपद्रवदायिनः ॥ उपायएकएवास्तिमनसःस्वस्यनिग्रहः॥२॥ श्रूयतांज्ञानसर्वस्वंश्रुत्वाचैवावधार्यताम् ॥ भोगेच्छामात्रकोबंधस्तत्त्यागोमोक्षउच्यते ॥ ३ ॥ किमन्यैः शास्त्रसंदर्भैःक्रियतामिदमेवतु ॥ यद्यत्स्वादिहतत्सर्वंदृश्यतांविषवह्निवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! वे महाशूर साधुमहात्मा सबसे उत्तम हैं जिन्होंने अविद्याके कारण अति उत्साहसे विषयकी ओर झुके हुये मनको जीतलियाहै ॥ १ ॥ अतिदुःखसहित सम्पूर्ण उपद्रवदायक इस संसारके शान्तिके लिये अपने मनका निग्रह करनाही मुख्य उपायहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! ज्ञानका सर्वस्व सुनो और सुनके उसे धारण करो कि भोगोंकी इच्छाही मात्र तो बंधहै और उसका त्यागही मोक्षहै ॥ ३ ॥ बहुत अन्यशास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन एक यहीबात करो कि जो२इससंसारमें स्वादयुक्त वस्तु प्रतीतहो उसको विष तथा अग्निके समान देखो४

विषमाविषयाभोगाःप्रविचार्यपुनःपुनः ॥ उपरिष्टात्परित्यज्यसेव्यमानाःसुखावहाः ॥ ५ ॥ दोषान्प्रसवतिस्फारान्वासनावलितामतिः ॥ कीर्णकंटकबीजाभूःकंटकप्रसरंयथा ॥ ६ ॥ अलग्नवासनाजालामतिःप्रसरवर्जिता ॥ अदृष्टरागद्वेषायाशममेतिशनैःपरम् ॥ ७ ॥ शुभाशुभानसद्ग्लानीन्प्रसूतेसुगुणान्सदा ॥ फलदानंकुरान्कालेश्रेष्ठबीजवतीवभूः ॥ ८ ॥

अर्थ—विषय भोगोंको पुनः २ भयंकर विचार करके उपरसे त्यागपूर्वक सेवित ये विषय सुखदायी होतेहैं ॥ ५ ॥ वासना ग्रस्त बुद्धि, रागादि बडे २ दोषोंको ऐसे उत्पन्न करती है जैसे कंटकके बीजसे बोई हुई पृथिवी का-

टोंकी उत्पत्तिको ॥ ६ ॥ और जो बुद्धि बासनाजालमें ग्रस्त नहीं है वह धीरे २ परमशमताको प्राप्तहै ॥ ७ ॥ और शुभमति दुःखरहित शांति आदि शुभ गुणयुक्त ज्ञान समाधिरूप शुभ मोक्षदायक फलको ऐसे उत्पन्न करती है जैसे कालपाके शाली आदि श्रेष्ठ बीजवाली पृथिवी ॥ ८ ॥

शुभभावानुसंधानात्प्रसन्नेमनसिस्थिते ॥ शनैःशनैःप्रशांतेचमिथ्याज्ञानघनांबुदे ॥ ९ ॥ वृद्धिंयातेच सौजन्येयक्षेशुक्लइवोडुपे ॥ विवेकेप्रसृतेपुण्येनभसीवार्कतेजसि ॥ १० ॥ धृतावंतर्विवृद्धायांमुक्तायामि वकीचके ॥ स्थितावंतःकृतार्थायांमधाविवनिशाकरे ॥ ११ ॥ फलितेशीतलच्छायेसत्संगसफलद्रुमे ॥ स्रवत्यानंदसुरसेसमाधिसरलद्रुमे ॥ १२ ॥

अर्थ—शुभभावके अनुसन्धानसे, प्रसन्न मनके स्थित होनेपर, और धीरे २ मिथ्या अज्ञानरूपी सघन मेघके शांत होनेपर ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जब शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान सुजनता बढती है और आकाशमें सूर्यके तेजके सदृश विवेक फैलताहै ॥ १० ॥ बांसमें मोतीके सदृश हृदयमें आत्मलाभसे धैर्य बढताहै बसन्तऋतुमें चन्द्रमाके समान परमात्माके ज्ञानके लाभसे कृतार्थता स्थित होती है ॥ ११ ॥ गुरू आदि सज्जन संगरूपी शीतल छायायुक्त सफल वृक्ष फलित होताहै और समाधिरूपी सरल वृक्षमें सच्चिदानन्दरूपी उत्तम रस झरताहै ॥ १२ ॥

मनोभवतिनिर्द्वंद्वंनिष्कामंनिरुपद्रवम् ॥ प्रशांतचापलानर्थशोकमोहभयामयम् ॥ १३ ॥ क्षीणशास्त्रार्थ संदेहंविगताशेषकौतुकम् ॥ निरस्तकल्पनाजालंमोहमुक्तमलेपकम् ॥ १४ ॥ निरीहंनिरुपाक्रोशंनिरपे क्षंनिराधिकम् ॥ स्वंशांतशोकनीहारमसक्तंग्रंथिवर्जितम् ॥१५॥ संदेहोग्रसुतंसाग्रंसतृष्णादारपंजरम्॥ नाशयित्वास्वमात्मानंसाधयत्यर्थमैश्वरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सब यह मन निर्द्वन्द्व, निष्काम, निरूपद्रव, प्रशान्त, तथा चपलतारूप अनर्थ, शोक मोह भय और रोगरहित होजाताहै ॥ १३ ॥ और शास्त्रार्थके सन्देहसे शून्य, विषयकी विचित्रताके दर्शनकी इच्छासे बर्जित; कल्पना जाल तथा मोहसे मुक्त और निर्लिप्त ॥ १४ ॥ प्रवृत्तिरहित, निन्दासे पृथक्, प्रवृत्तिकी इच्छासेभी वर्जित मानसी चिंतासे शून्य, शोकरूपी नीहार (कुहिरा) से स्वच्छ, विषयमें सक्तता तथा आसंगरूप ग्रंथिसे वर्जित यह मन होजाताहै ॥ १५ ॥ और अनेक वादियोंसे कहे हुये नानामतके सन्देहरूपी दुष्ट पुत्रयुक्त शाखारूप नानामनोरथसहित, तथा तृष्णारूपी स्त्री और स्थूलशरीररूपी पंजरसहित अपने आत्मा मनस्वरूपको नाश करके यह मन निज ईश्वर प्रत्यग् आत्मा संबंधी जीवन्मुक्तिरूप अर्थको सिद्ध करताहै ॥ १६ ॥

आत्मपीवरताहेतून्विकल्पांश्वायमुज्झति ॥ संस्मृत्यप्रभुतामेषुजहातितृणवत्तनुम् ॥ १७ ॥ मनसो भ्युदयोनाशोमनोनाशोमहोदयः ॥ ज्ञमनोनाशमभ्येतिमनोऽज्ञस्यविवर्द्धते ॥ १८ ॥ मनोमात्रंजगच्चक्रं मनःपर्वतमंडलम् ॥ मनोव्योममनोदेवोमनोमित्रंमनोरिपुः ॥ १९ ॥ विकल्पकलुषायास्याचित्तत्त्व स्यात्मविस्मृतिः ॥ मनइत्युच्यतेसेयंवासनाभवभागिनी ॥ २० ॥

अर्थ—अपनी मनकी पुष्टताके हेतु शत्रु मित्र साधु तथा असाधु विकल्पोंको प्रथम इनकी उत्पत्तिके सदृश निग्रहमेंभी अपना सामर्थ्य देखके त्याग देताहै, और पश्चात् तृणके समान अपने रूपको त्याग देताहै ॥ १७ ॥ विषयादिमें मनका अभ्युदय है नाश है और मनका नाशही प्रत्यगात्मा लाभरूप महान् उदय है यदि कहो कि देहाहंभावकाही त्याग करना उचित है ब्रह्मज्ञानसे क्या प्रयोजन सो नहीं क्योंकि ब्रह्मज्ञानीका मन तो नाशको प्राप्त होता है और अज्ञानीका मन बढताहै ॥ १८ ॥ यह जगत्चक्र मनोमात्रही है, पर्वतसमूहभी मनही है, आकाश मनही है, देव मनही है, शत्रु और मित्रभी मनही है ॥ १९ ॥ विकल्पोंसे मलिन चित्तत्वकी विस्मृतिही मन है और संसारको प्राप्त करनेवाली इसको बासनाभी कहते हैं ॥ २० ॥

चेत्यानुपातकलितचिन्मात्रेतिष्ठताभिधम् ॥ मनाग्विकल्पकलुषंचित्तत्त्वंजीवउच्यते ॥ २१ ॥ चेत्यप्र पतितंरूढसज्ञमज्ञत्वमागतम् ॥ तदेवाधिकनिःसारंकल्प्यतेंतर्मनस्तया ॥२२॥ नात्मासंसारिपुरुषोन शरीरंनशोणितम् ॥ जडंसर्वंशरीरादिदेहीखवदलेपकः ॥ २३ ॥ शरीरेकणशःकृत्तेनास्त्यन्यद्रुधिरादि कात् ॥ निर्भिन्नेकदलीस्तंभेनास्त्यन्यत्पल्लवादृते ॥ २४ ॥

अर्थ—मनमें विषयका जो बासनाद्वारा प्रवेश है उससे परिच्छिन्न चिन्मात्रमें स्थितिकी व्यवहारकी योग्यता सहित और विकल्पोंसे किंचित् मलिन चित्तत्व (ब्रह्म) हीको जीव कहतेहैं ॥ २१ ॥ विषयमें पतित और उसीमें चिरकालके अभ्याससे रूढ आत्मत्वके अभिमानसे स्वरूपकी विस्मरणरूप अज्ञता प्राप्त जीव सहस्त्रों विकल्पोंसे बार२ मोहित होनेसे सारभूत आत्मसुखकी हानिसे अधिक निस्सार जब होताहै तब जीवका उपकरण मनरूपसे कल्पित

होताहै ॥ २२ ॥ शुद्धआत्मा जीव स्वभाव नहीं है और न वह शरीर वा रुधिररूप है; क्योंकि सब शरीर आदि जड तथा परिछिन्नहैं और आत्मा आकाश सदृश निर्लिप्त है ॥ २३ ॥ जैसे केलाके छेदन करनेसे उसके त्वक् पल्लवकेसिवाय और कुछ नहीं है ऐसेही शरीरके कण २ काटनेपरभी रुधिर आदिसे पृथक् कुछ नहीं है ॥ २४ ॥

मनोजीवोनरंविद्धितदेवाकारमागतम् ॥ आत्मानात्मानमादत्तेस्वविकल्पात्मकल्पितम् ॥२५॥ स्वविकल्पान्नरस्तत्रप्रसार्यरचयत्यलम् ॥ जालमात्मनिबंधायकोशकारकृमिर्यथा ॥ २६ ॥ इमंदेहभ्रमंत्यक्त्वा देशकालांतरेपुनः ॥ शरीरत्वमथादत्तेपल्लवत्वमिवांकरः ॥ २७ ॥ यादृग्वासनमेतत्स्यान्मनस्तादृक् प्रजायते ॥ जातंस्वपितियच्चितंतत्स्वप्नेनिशितिष्ठति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम मनकोही जीव वा मनुष्य समझो वही आकारताको प्राप्त है, वही अपने विकल्पसे कल्पित अपने आत्माको आपही ग्रहण करताहै ॥ २५ ॥ इस जगत्में जीव अपने वासनाओंके विकल्पोंको विस्तृत करके अपने बंधकेलिये जालको ऐसे रचताहै जैसे कोशकार (मकरी) कृमि ॥ २६ ॥ इस भ्रममय शरीरको त्यागकर पुनः वही मन अन्य देशकालमें शरीरांतरको ऐसे धारण करताहै जैसे अंकुर पल्लवरूपताको ॥ २७ ॥ जिसप्रकार वासनामय यह मन रहताहै वैसाही यह शरीर उत्पन्न होताहै, जिसप्रकारका चित्त स्वप्नमें शयन करताहै वैसाही रात्रिमें स्वप्न देखताहै ॥ २८ ॥

अम्लंमधुरसासिक्तंमधुरंमधुरंजितम् ॥ बीजंप्रतिविषाकल्कसिक्तंचकटुजायते ॥ २९ ॥ शुभवासनयाचेतोमहत्याजायतेमहत ॥ भवतींद्रमनोराज्यइंद्रतास्वप्नभाङ्नरः ॥ ३० ॥ क्षुद्रवासनयाचेतःक्षुद्रताम विपेलवाम् ॥ पिशाचविभ्रमात्स्वप्नेपिशाचान्निशिपश्यति ॥ ३१ ॥ सरसिस्फारनैर्मल्येकालुष्यंयातिन स्थितिम् ॥ तथैवस्फारकालुष्येप्रसादोयातिनस्थितिम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आम्लका बीज मधुररसमें सींचा हुआ और मधुर रससे रंजित फल कालमेंभी मधुरही होताहै, और बीजविषेली धतुर वा करंजकी लता रससे सींचा हुआ कटु होताहै ॥ २९ ॥ विशाल (महती) शुभ बासनासेयुक्त चित्तभी ऐसे महान् होजाताहै जैसे मनोराज्य वा स्वप्नमें मनुष्य इन्द्रताका भागी होताहै ॥ ३० ॥ क्षुद्र वासनायुक्त चित्त नीचताहीको ऐसे देखताहै, जैसे रात्रिमें पिशाचोंकी बासनायुक्त स्वप्नमें पिशाचोंको ॥ ३१ ॥ जैसे तडागमें अधिक निर्मलता होनेसे मालिनता नहीं स्थित रहसकती, ऐसेही अधिक मलिनतामें प्रसन्नता (स्वच्छता) भी स्थितिको नहीं प्राप्त होती ॥ ३२ ॥

मनस्फिारकालुष्येतद्रूपंजायतेफलम् ॥ तथैवस्फारनैर्मल्येतद्रूपंजायतेफलम् ॥३३॥ त्यजत्युदारांनग तिंक्षीणोप्यानिशमुत्तमः ॥ उद्योगवानविरतंपूरणाशामिवोडुपः ॥३४॥ नेहबंधोनमोक्षोस्तिनाबंधोस्तिन बंधता ॥ मिथ्योत्थितैवमायेयमिंद्रजाललतायथा ॥ ३५ ॥ गंधर्वनगराकारामृगतृष्णाइवोत्थिता ॥ द्विचंद्रविभ्रमाभासाद्वैतैकत्वविवर्जिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे मनके अति मलिन होनेपर उसके अनुरूप फलभी होताहै ऐसेही मनके अधिक निर्मल होनेपर फलभी वैसाही अति निर्मल होताहै ॥ ३३ ॥ निर्मल चित्तवाला पुरुष दरिद्रतादि दोषोंसे ग्रसित होनेपरभी शांति, समाधानादि चित्तकी प्रसन्नतारूप उदारगतिको ऐसे नहीं छोडता जैसे क्षीणभी उद्योगी चन्द्रमा निरंतर अपनी पूर्णताकी आशाको ॥ ३४ ॥ यथार्थमें यहां न तो बन्ध है न मोक्ष है, और न बन्धका तथा बन्धता अभाव है, किंतु इन्द्रजालकी लताके समान यह माया मिथ्या आविर्भूत है ॥ ३५ ॥ यह मायाभी गंधर्वनगराकार, मृगतृष्णाके समान, तथा दो चन्द्रके आभासके तुल्य आविर्भूत है, और द्वित्व तथा एकत्वसे वर्जित ॥ ३६ ॥

सर्वैवब्रह्मसत्तेयमित्येषापरमार्थता ॥ परिस्फुरतिनिःसारःसंसारोयमसन्मयः ॥ ३७ ॥ नानंतोहंवराकोहमितिदुर्निश्चयोदितः ॥ अनंतोस्मीश्वरोस्मीतिनिश्चयेनविलीयते ॥ ३८ ॥ सर्वगेस्वात्मनिस्वच्छे एषोहमितिभावना ॥ एतत्तद्बंधनंलोकेस्वविकल्पोपकल्पितम् ॥ ३९॥ बंधमोक्षदशाहीनाद्वित्वैकत्ववि वर्जिता ॥ सर्वैवब्रह्मसत्तेयमित्येषापरमार्थता ॥ ४० ॥

अर्थ—यह सबकुछ ब्रह्मसत्ता हो परमार्थता है और यह असन्मय संसारसार रहित स्फुरित होरहाहै ॥ ३७॥ मैं अनंत नहीं हुं किंतु क्षुद्र हुं यह दुष्ट निश्चयसे उत्पन्न विकल्प, मैं अनंत हुं ईश्वर हुं ऐसे निश्चयसे नष्ट होजाताहै ॥ ३८ ॥ सर्वव्यापी स्वच्छ अपने आत्मस्वरूपमें यह देहमात्र मैं हुं ऐसा जो निश्चय है वही अपने विकल्पसे कल्पित संसारमें बंधन है ॥ ३९ ॥ बंधमोक्षकी दशासेरहित, द्वित्व और एकत्वसे वर्जित यह सब ब्रह्मसत्ताही है यही परमार्थता है ॥ ४० ॥

नैर्मल्यप्राप्तमरणमसक्तंसर्वदृष्टिषु ॥ अमनस्त्वमिहापन्नंब्रह्मपश्यतिनान्यथा ॥ ४१ ॥ मनोनिर्मलतां यातंशुभसंतानवारिभिः ॥ ब्राह्मींदृष्टिमुपादत्तेरागंशुक्लपटोयथा ॥ ४२ ॥ सर्वमेवममात्मेतिसर्वभाव नयानघ ॥ हेयादेयबलेक्षीणेबंधमोक्षोविमुच्यताम् ॥ ४३ ॥ शुद्धस्यमनसःकायशास्त्रवैराग्यबुद्धिभिः॥ अभिजातोपलस्येवजगत्तस्येतिविद्युतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—निर्मलतासे विनाश प्राप्त और सर्व दृष्टियोंमें असक्त, जो अमनी भावको प्राप्त मन है वही इस अधिकारी शरीरमें ब्रह्मको देखताहै अन्यथा नहीं ॥ ४१ ॥ समाधिके अभ्याससे जनितधर्मकी वृद्धिरूप जलसे निर्मलताको प्राप्त जो मन है वह ब्रह्मसम्बन्धी दृष्टिको ऐसे ग्रहण कराताहै जैसे श्वेतवस्त्र रंजकद्रव्यके वर्णको ॥४२॥ हे पापरहित रामजी ! सब मेरा आत्माही है इस सर्वमयी भावनासे हेय और उपादेयके प्रवाहके क्षीण होनेपर बंध और मोक्षकोभी त्यागदो ॥ ४३ ॥ अनाधिकारी और अधिकारी शरीरके अभिमानसे शरीरद्वारा शास्त्र श्रवणके अभिमानसे शास्त्रद्वारा और वैराग्य तथा आत्मबोधकेद्वारा स्फटिकमणिके सदृश शुद्ध मनका जो विविधप्रकारका प्रतिभास है वही संसार है ॥ ४४ ॥

पदार्थेनैकतामेत्यमनसोनैकतानता ॥ असत्यज्ञानदृष्टिंतांविद्धिक्षणविनाशिनीम् ॥ ४५ ॥ सबाह्याभ्यं तरंत्यक्त्वासर्वादृश्यदृशंयदा ॥ मनस्तिष्ठतितल्लीनंसंप्राप्तंतत्पदंतदा ॥ ४६ ॥ दृश्यदृष्टिःस्फुटायेयंसा ह्यवश्यमसन्मयी ॥ तन्मयत्वंचमनसःस्वरूपंविद्धिनेतरत् ॥ ४७ ॥ आद्यंतयोर्विनाशित्वान्मध्येपित दसन्मयम् ॥ अज्ञातमनसस्तेनदुःखिताहस्तसंस्थिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—जब पदार्थोंकेसाथ मन एकरूपताको प्राप्त होताहै तो आत्माकेसाथ एकरूप नहीं हो सकता, और असत्य ज्ञानमयी दृष्टिको क्षणमेंही विनाशिनी समझो ॥ ४५ ॥ जिस समय संपूर्ण बाह्य और आभ्यंतर दृश्य दृष्टियोंको त्यागकर मन लीनदशामें स्थित रहताहै उस समय वह परमपदको मानो प्राप्तहो चुका ॥ ४६ ॥ यह जो प्रत्यक्ष दृश्य दृष्टिहै वह असन्मयी और मनका दृश्यमय होनाही मनकारूप तुम जानो और अन्यनहीं॥४७॥जो आदि और अन्तमें असत्है वह मध्यमेंभी असत्है इसलिये असत्रूपसे जिनसे मनको न जाना मानो दुःख रूपता उसके हस्तमें स्थितहै४८

आत्मैवेदंजगदितिविनाभावेनदुःखदा ॥ दृश्यश्रीरन्यथात्वेषाभोगमोक्षप्रदायिनी ॥४९॥ जलमन्यत्तरं गोन्यइतिनानातयाऽज्ञता ॥ जलमेवतरंगोयमित्येकत्वात्किलज्ञता ॥ ५० ॥ दुःखमायात्यसदितिहेयो पादेयरूपियत् ॥ तदभावेनतुज्ञानादानंत्यमवशिष्यते ॥ ५१ ॥ संकल्पकल्पितत्वाच्चमनोरूपमसन्म यम् ॥ असन्मयविनाशेतुकःशोकोवदराघव ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह संपूर्ण जगत् आत्मरूपही है इस विचारके बिना यह दृश्यकी शोभा दुःखदायिनी है और सब आत्मरूपही है इस ज्ञानसे भोग मोक्षकी देनेहारीहै॥४९॥जल अन्यहै और तरंग अन्यहै यह नानाता जो है वही अज्ञताहै, और जलतरंग एकहैं यह बोधज्ञानिताहै ॥ ५० ॥ हेय और उपादेयरूपी जो अविद्यमानरूपहै इसी हेतुसे जन्म मरणादिरूप दुःख प्राप्त होताहै और उसके अभावमें तो आत्मरूपकी अनन्तताही शेष रहजाती है ॥५१ ॥ हे रामजी ! संकल्पसे कल्पित होनेसे मनकारूप असत्है और असत्के नाशसे कहो क्या शोकहै ? ॥ ५२ ॥

अवत्सलोयथाबंधुररागद्वेषयाधिया ॥ दृश्यतेपश्यतद्वत्त्वंतत्त्वंपंजरमात्मनः ॥ ५३ ॥ अवत्सलाद्यथा बंधोःसुखदुःखैर्नलिप्यते ॥ तत्त्वेनसंपरिज्ञानात्तथातत्त्वचयात्मनः ॥ ५४ ॥ तदनादिशिवंज्ञानंयन्मध्यं द्रष्टृदृश्ययोः ॥ तस्मिन्सत्येमनःशांतंपांसुर्वायुक्षयेयथा ॥ ५५ ॥ उपशांतेमनोवायौदेहपांसुःप्रशाम्य ति ॥ पुनःसंसारनगरेननीहारःप्रवर्त्तते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे स्नेह रहित बंधु राग द्वेषरहित दृष्टिसे देखा जाताहै ऐसेही तुम अपने स्थूलादि देहको पंचभूतरूप मानो ॥ ५३ ॥ स्नेह रहित (उदासीन) बंधुसे जैसे सुखदुःखका संबंध नहीं रहता ऐसेही यथार्थ रूपसे ज्ञात पंचभूत राशिमात्र इस देहपंजरसेभी नहीं होता ॥ ५४ ॥ जो द्रष्टा और दृश्यका मध्यदृक् रूपहै वही अनादि अनन्त शिवरूप निरतिशय आनंद आत्मज्ञानका स्वरूपहै, और उसी सत्य अधिष्ठानमें मन ऐसे शान्त होताहै जैसे वायुकी शांतिमें धूलिकी शांति ॥ ५५ ॥ मनरूपी वायुके शांत होनेपर शरीररूप धूली शांत होजाताहै और पुनः नगरके सदृश संसारके अधिष्ठानमें अविद्याके तुल्य आवरणशील नीहार (तुषार) नहीं प्रवृत्त होता ॥ ५६ ॥

वासनाग्राहविक्षीणेसंस्थितोरामसमागते ॥ जाड्येजनितहृत्कंपेपंकेशोषमुपागते ॥ ५७ ॥ शुष्केतृष्णाव टेशांतेमंदेहृदयकानने ॥ क्षीणेष्वक्षकदंबेषुमिथ्याज्ञानघनेक्षते ॥ ५८ ॥ क्षीयतेमोहमिहिकाप्रभातइव

शर्वरी ॥ क्वापिगच्छतितज्जाड्यंविषंमंत्रहतंयथा ॥ ५९ ॥ देहाद्रौनभयक्षुद्राःसरितःप्रसरंत्यलम् ॥ नोल्ल संतिलसत्पक्षाःसंकल्पोग्रकलापिनः ॥ ६० ॥

अर्थ—वासनारूपी बर्षाके नाश होनेपर, स्वरूप स्थितिमें मनके बिहार प्राप्त होनेपर, उत्पन्न है हृदयमें भय जिससे होताहै ऐसी मूढ़तारूपी पंकके सर्वथा सूख जानेपर ॥ ५७ ॥ तृष्णारूपी वटके शांत होनेपर हृदयरूपी बनमें रागादिरूपी लताओंके बिरल होनेपर इन्द्रियरूपी कदंबके वृक्षोंके क्षीण फल होनेपर और मिथ्या अज्ञानरूपी मेघके नष्ट होनेपर ॥ ५९ ॥ मोहरूपी कुहरा ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे प्रातःकाल होनेपर रात्रि, और वह जड़ता न जाने कहां इसप्रकार चली जाती है जैसे मंत्रसे मारा हुआ विष ॥ ५८ ॥ देहरूपी पर्वतपर क्षुद्र नदियां नहीं वहतीं और शोभायमान पक्षधारी संकल्परूपी उग्र मयूर (मोर) किंचित् भी शोभित नहीं होते ॥ ६० ॥

परांनिर्मलतामेतिसंविदाकाशगोचरः ॥ राजतेतितरामच्छोजीवादित्योमहोदयः ॥ ६१ ॥ घनमोहभरोन्मुक्ताविविक्तत्वंपरंगताः ॥ समयेह्यतिशोभंतेधौताआशामहादिशः ॥ ६२ ॥ भृशंमाभातिविमलामुदिताकाशमंजरी ॥ शीतलीकृतदिक्चक्राशरद्व्योम्नीवचंद्रिका ॥ ६३ ॥ सर्वसंपत्प्रकाशेनपरमानंददायिना ॥ भृशंसफलतामेतिसुविविक्ताविवेकभूः ॥ ६४ ॥

अर्थ—तथा आत्मस्वरूपरूपी आकाशमें प्रत्यक्ष स्फुरता हुआ जीवरूपी महान् उदयवाला सूर्य अति निर्मलताको प्राप्त होकर स्वच्छ स्वरूपसे प्रकाशित होताहै ॥ ६१ ॥ अति मोहके समूहसे मुक्त और विवेक दशाको प्राप्त तथा तमोगुण रजोगुणके दोषसे रहित आकाशरूपी महा दिशा समाधि आदि कालमें तथा सूर्य चंद्रोदय कालमें सर्वथा शोभित होती हैं ॥ ६२ ॥ और चित्तरूपी आकाशकी लता सर्वथा ऐसे विमलताको प्राप्त होती है जैसे शरद् ऋतुमें संपूर्ण दिग्मण्डलोंकी शीतल करनेवाली चंद्र चंद्रिका ॥ ६३ ॥ संपूर्ण विषयानंद लेशरूपी संपत्तिको प्रकाश करनेवाला तथा परमानंद दायक आत्मज्ञानरूपी फलसे अत्यंत पवित्र विवेकरूपी पृथ्वी अति सफलताको प्राप्त होती है ॥ ६४ ॥

सपर्वतवनाभोगंपरमालोकसुंदरम् ॥ अच्छाच्छंशीतलच्छायंजायतेभुवनांतरम् ॥ ६५ ॥ विस्तारितं कुसुमतांस्फारितंस्फटिकाकृतिम् ॥ उपैतिहृत्सरःस्वच्छंनीरजोंबुजकोशकम् ॥ ६६ ॥ हृत्पद्मकोशान्मलिनःस्वाहंकारमधुव्रतः ॥ अपुनर्दर्शनायैवचंचलःक्वापिगच्छति ॥ ६७ ॥ भवत्यपगताक्षेपःसर्वगः सर्वनायकः ॥ निर्वासनःशांतमनाःस्वदेहनगरेश्वरः ॥ ६८ ॥ विचारणासमधिगतात्मदीपकोमनस्यलंपरिगलितेवधीरधीः ॥ विलोकयन्क्षयभयनीरसागतीर्गतज्वरोविलसतिदेहपत्तने ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनंनामपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—पर्वत वनके विस्तारसहित, आत्मप्रकाशयुक्त, सूर्यचंद्रके प्रकाशसे अति रमणीय सर्वथा स्वच्छ और शीतल छाया करके युक्त, संपूर्ण ब्रह्मांडका अंतराल होजाताहै ॥६५॥ उत्तम बुद्धिता रूप अनेक प्रकारके पुष्पोंको विस्तार करनेवाला और विशाल स्फटिक मणिके सदृश आकारवान् हृदयरूपी सरोवर स्वच्छ और रजोगुणरूपी रजसे रहित दशाको प्राप्त होताहै ॥ ६६ ॥ हृदयरूपी कमलके कोशसे मलिन और चंचल अपना अहंकाररूपी भ्रमर पुनः दर्शन देनेके लिये न जाने कहां चला जाताहै ॥ ६७ ॥ इस दशामें संकोच रहित सर्वव्यापी सबका नायक बासना शून्य शांतचित्त आत्मा अपने देहरूपी नगरका स्वामी होकर शोभित होताहै ॥ ६८ ॥ विचारसे आत्मरूपी प्रदीप जिसको प्राप्त हुआहै ऐसा शरीरका स्वामी आत्मा अपने संपूर्ण दोषोंको मर्दन करके धीरता युक्त संसारमें जन्म और मरण कालोंमें ऐहिक तथा पारलौकिक नीरस दशाओंको देखता हुआ अपने देहरूपी नगरमें त्रिविध संतापोंसे रहित होके विलास करताहै ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपशमवर्णनंनाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस ३६ के सर्गमें स्वयं स्थित और सबसे पृथक् चित्की सत्ता कही गई है, तथा चेतनकीही स्थितिसे सब पदार्थोंकीभी स्थितिहै न कि पृथक् यहभी कहा गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यथेदृशंस्थितंविश्वंविश्वातीतेचिदात्मनि ॥ तन्मेकथयहेब्रह्मन् पुनर्बोधविवृद्धये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथोर्मयोऽनभिव्यक्ताभाविनःपयसिस्थिताः ॥ नस्थिताश्चात्मनोन्यत्वा चितत्वेसृष्टयस्तथा ॥ २ ॥ यथासर्वगतःसौक्ष्म्यादाकाशोनोपलक्ष्यते ॥ तथानिरंशश्चिद्भावःसर्वगोपिनलक्ष्यते॥३॥सुस्थितेवास्थितेवांतःप्रतिभास्तिमणौयथा ॥ नसत्यभूतानासत्यातथेयंसृष्टिरात्मनि ॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! जिसप्रकार पूर्वकथित रीतिसे यह संसार विश्वातीत चिदात्मामें स्थित रहताहै वह ज्ञानकी वृद्धिके लिये मुझे पुनः कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—जिसप्रकार होनेवाली तरंगे अभिन्नरूपसे समुद्रमें स्थितहैं और उससे भिन्नरूपसे कुछभी नहीं है, इसी प्रकार चित्तत्वमें यह सब सृष्टिहै ॥ २ ॥ जैसे आकाश सर्वव्यापी होनेपरभी सूक्ष्मताके कारण प्रतीत नहीं होता ऐसेही अतिसूक्ष्म आत्मा सर्वव्यापी होनेपरभी लक्षित नहीं होता ॥ ३ ॥ जैसे निरावरण देशमें वा आवरणरहित देशमें स्थित स्फटिकादि मणिमें सदसत्से अनिर्वचनीय बिंब पडताहै, ऐसेही आत्मामें यह सृष्टिहै ॥ ४ ॥

स्वाधारैरंबुदैःस्वस्थैर्नस्पृष्टंगगनंयथा ॥ चित्स्थैःसर्गैश्चिदाधारैर्नस्पृष्टाचित्परातथा ॥ ५ ॥ जलाधिष्ठिततत्तेजोयथांगप्रतिबिंबति ॥ तथापुर्यष्टकेष्वेवचिद्विदेहेषुलक्ष्यते ॥ ६ ॥ सर्वसंकल्परहितासर्वसंज्ञाविवर्जिता ॥ सैषाचिदविनाशात्मातच्चेत्यादिकृताभिधा ॥ ७ ॥ आकाशशतभागाच्छाज्ञेषुनिष्कलरूपिणी ॥ सकलाकलसंसारस्वरूपैकात्म्यदर्शिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे अपने आधारभूत और अपनेमें स्थित मेघोंसे आकाश स्पृष्ट नहीं होता ऐसेही चेतनके आधार और चेतनमें स्थित सृष्टियोंसे पराचित् स्पृष्ट नहीं होती ॥ ५ ॥ जैसे जलमें संयुक्त सूर्यकी किरण प्रत्यक्षरूपसे नहीं भान होती किंतु प्रतिबिंबरूपसे ऐसेही शरीरोंमें आत्माभी प्रतिबिंबरूपसे भान होताहै ॥ ६ ॥ यह चिदात्मा संपूर्ण संकल्प तथा संज्ञाओंसे वर्जित और बिनाशरहित है और जीव तथा विषयादिक संज्ञा इसीसे रचित हैं ॥ ७ ॥ और आकाशसेभी शतगुण स्वच्छ और निष्कलरूप तथा कलासहित होनेपरभी कलारहित, संसारमें अभिन्नरूपसे इस आत्माको विद्वान्‌जन देखतेहै ॥ ८ ॥

तरंगादिमयीस्फारानानातासलिलार्णवे ॥ तस्मान्नव्यतिरेकेणयथाभावविकारिणी ॥ ९ ॥ त्वत्तामत्तामयीस्फारानानातेयंचिदर्णवे ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणतथानैवप्रकाशते ॥ १० ॥ चिच्चिनोतिचितंचेत्यंतेनेदंस्थितमात्मनि ॥ अज्ञेज्ञेत्वन्यदायातमन्यदस्तीतिकल्पना ॥११॥ अज्ञेष्वसत्स्वभावोग्रसंसारगणगर्भिणी ॥ ज्ञेषुप्रकाशरूपैवसकलैकात्मिकासती ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें तरंगादिरूपकी बडी विशाल अनेकताहै और उस जलसे पृथक् कोईभी भावविकार उसमें नहीं स्थितहैं ॥ ९ ॥ इसीप्रकार चेतनरूपी समुद्रमें त्वत्ता और मत्तारूपी बडी विशाल अनेकताहै और चेतनसे भिन्न इस संसारमें कुछभी नहीं प्रकाशता ॥ १० ॥ और चेतन यदि किसी विषयको अनुभव करताहै तो वह अपनेही स्वरूपका अनुभव करताहै इसलिये चेतन अपने आत्मस्वरूपहीमें स्थितहै ऐसा विद्वानोंका अनुभवहै और अज्ञानियोंकी ऐसी कल्पनाहै कि आत्मासे पृथक् यह सब जगत् प्राप्तहै ॥ ११ ॥ अज्ञानियोंके विचारमें यह चित् असत् स्वभाववाले संसार करके सहित है और ज्ञानियोंके विचारमें यह केवल सर्वथा प्रकाशरूपहै ॥ १२ ॥

अनुभूतिवशान्नित्यमर्कादीनांप्रकाशिनी ॥ स्वादिनीसर्वभूतानांभाविनीभवभोगिनाम् ॥ १३ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनोत्तिष्ठतिनतिष्ठति ॥ नचायातिनवायातिनचेहनचनेहचित् ॥ १४ ॥ सैषाचिदमलाकारास्वयमात्मनिसंस्थिता ॥ राघवेत्थंप्रपंचेनजगन्नाम्नाविजृंभते ॥ १५ ॥ तेजःपुंजैर्यथातेजःपयःपूरैर्यथापयः ॥ परिस्फुरतिसंस्पंदैस्तथाचित्सर्गविभ्रमैः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चित् अपने अनुभवहीसे सूर्यचंद्रादिककी प्रकाशिकाहै और सब भूतोंके संहार तथा जीवोंके जन्मादिके निमित्तभी है॥१३॥यह चिद् न कभी अस्त होती है, न उदय होती है, न उठती है, न बैठती है,न आतीहै, न जाती है, और न इस स्थानमें न उस स्थानमेंहै, किंतु सर्वत्र एकरूपसे स्थितहै ॥ १४ ॥ हे रामचंद्रजी ! यह विमल आकार चित् अपनेही स्वरूपमें आपस्थितहै और रज्जुमें सर्पके समान जगत् नाम प्रपंच रूपसे विवर्त भावको प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ जैसे तेजके समूहोंके तेज और जलके प्रवाहोंसे जल स्फुरित होताहै ऐसेही सृष्टियोंके विलासोंसे यह चिद्धी स्फुरित होरही है ॥ १६ ॥

तत्स्वभावेनचिन्नाम्नासर्वगेनोदितात्मना ॥ प्रकाशेनाप्रकाशेननिरंशेनांशधारिणा ॥ १७ ॥ स्वयंस्वकलनाभोगादनंतंपदमुज्झता ॥ अहमस्मीतिभावेनगच्छताज्ञपदंशनैः ॥ १८ ॥ नानातायांप्ररूढायाम

स्यांसंस्तिपूर्वकम् ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गपदेस्थितिमुपागते ॥ १९ ॥ पुर्यष्टकस्पंदशतैःकरोतिनकरोतिच ॥ उत्सेधमेतिभूकोशकोटरस्थोंकुरोत्करः ॥ २० ॥

अर्थ—अविद्याके कारण, सृष्टि रचनेके स्वभाव सहित, सर्वव्यापी, उदय स्वरूप, यथार्थमें प्रकाशमय और व्यवहार दृष्टिसे अप्रकाशमय, यथार्थमें अंशरहित और व्यवहार दृष्टिसे अंशसहित ॥ १७ ॥ स्वयं अविद्यामें प्रतिबिंबित कृत्रिम वेषसे अनंतपदको त्यागतेहुये यह चिदात्मा अहमस्मि (मैंहूं) इस भावसे धीरे २ जीवताको प्राप्त होताहै ॥१८॥ और इस जीव तथा पदार्थोंकी अनेकता दृढ होनेपर संसारकी कल्पना पूर्वक यहहै, यह नहीं है इसप्रकार इष्ट और अनिष्टके ग्रहण और त्यागके स्थानरूप देहात्मभावके प्राप्त होनेपर शरीरकी विहित और निषिद्ध सैकडों चेष्टाओंके द्वारा जगत्‌को यही चिदात्मा अपना भोग्य बनाताहै और यथार्थमें नहींभी बनाताहै और पृथ्वीरूपी कोशके कोटरमें स्थित होकर यह जगत्‌के अंकुर रूपसे उन्नतिको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

व्योमसौषिर्यमादत्तेसर्वमूर्त्यविरोधियत् ॥ स्पंदैकधर्मवान्वातोरसरूपतयाजलम् ॥ २१ ॥ दृढोर्वीप्रकटंतेजःस्थितिमंतिजगंतिच ॥ प्रतिबंधाभ्यनुज्ञासुकालःकलनयास्थितः ॥ २२ ॥ पुष्पेषुगंधतांयाति शनैःसंचितकेसरम् ॥ मृत्कोटररसोल्लासःस्थाणुतामेतिभूतले ॥ २३ ॥ मूलस्थाःफलमायांतिपेलवारसलेशकाः ॥ सन्निवेशंव्रजंत्येतरेखाःपल्लवपालिषु ॥ २४ ॥

अर्थ—यही चिद् संपूर्ण मूर्त द्रव्योंका अविरोधी आकाशरूपको ग्रहण करताहै क्योंकि ऐसा न होतो जगत्‌रूपी अंकुर अवकाशके न होनेसे वृद्धिको न प्राप्त हो, और गति धर्मवाले वायुरूपसे तथा रसरूपतासे जलरूप होके जगत्‌रूपी अंकुरका उपकार करताहै ॥ २१ ॥ और दृढताके संपादनसे पृथ्वीरूपसे, रूपके संप्रदानसे तेजरूपसे, जगत्‌रूपी अंकुरका उपकारी होताहै और अनेक प्रकारके स्थिति शील लोक लोकांतरके द्वारा जगत्‌रूपी अंकुरका उपकारी होताहै तथा हेमंतवसंतादि कालकी कल्पनासे यव गोधूमादि धान्यके प्रतिविरोधी तृणादिके प्रतिबंधक तथा यव गोधूमादिकी उत्पत्तिके द्वारा उपकार करताहुआ स्थितहै ॥ २२ ॥ यही चिद केसरोंका संचय करता हुआ पुष्पोंमें गंधभावको प्राप्त होताहै, तथा मृत्तिकाके कोटरमें रस उल्लासरूप होकर पृथ्वीपर स्थाणुरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ मूलमें स्थित होकर कोमलपत्र शाखादिरूप होकर फलभावको प्राप्त होताहै, और पत्तोंके अवयवोंमें प्रविष्ट होकर उनके नाडीभावको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

नवतामनुगृह्णातिशक्रबाणासनेनच ॥ योयोभवत्यविरतंसंस्थानेनवनेनच ॥ २५ ॥ वसंतमुपतिष्ठंति पुष्पपल्लवराशयः ॥ निदाघविधिमायांतिदैवदाहविभूतयः ॥ २६ ॥ प्रावृट्समयमीहंतेनीलाजलदराशयः ॥ शरदंचानुधावंतिसमग्राःफलराशयः ॥ २७ ॥ हेमंतेहिमहासिन्योभवंतिककुभोदश ॥ नयंत्युपलतामंबुशिशिरेशीतलानिलाः ॥ २८ ॥

अर्थ—इन्द्रके चापके सदृश वृक्षकी नूतनता दशाको ग्रहण करताहै, जो जो निरंतर नूतन अवयव उत्पन्न होते हैं उन २ रूपोंसे जगदंकुरका उपकारी होताहै ॥ २५ ॥ बसंतऋतुमें पुष्प और पल्लवके समूह उपस्थित होते हैं और उष्णऋतुमें सूर्यके तेजकी विभूति उपस्थित होती हैं ॥ २६ ॥ वर्षाऋतुमें नीलमेघके समूहके समूह चारोंओर चेष्टा करतेहैं, और शरद्‌ऋतुमें संपूर्ण फलकी राशि आकारको प्राप्त होती हैं ॥ २७ ॥ हेमंतऋतुमें दशोंदिशा हिमसे हंसती हैं, और शिशिरऋतुमें शीतल वायु जलकोभी पाषाणरूप प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

नजहातिस्वमर्यादांकालोयुगमयीमिमाम् ॥ तरंगिणीतरंगौघलीलयायांतिसृष्टयः ॥ २९ ॥ नियतिःस्थितिमायातिस्थैर्यचातुर्यकारिणी ॥ तिष्ठत्याप्रलयंधीराधराधरणधर्मिणी ॥ ३० ॥ चतुर्दशविधानीह भूतानिभुवनांतरे ॥ नानाचारविहाराणिनानाविरचनानिच ॥ ३१ ॥ पुनःपुनर्विलीयंतेजायंतेचपुनःपुनः ॥ धारापरंपरायातिविनावारीवबुद्बुदाः ॥ ३२ ॥ आयातियातिपरितिष्ठतिलीलयातिस्वार्थानुपार्जयतिधावतिजन्मनाशैः ॥ उन्मत्तवद्विहितभावनमाहितेहामुग्धाकृतांतविवशाजनतावराकी ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे चिदादित्यस्वरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और कालवर्ष युगादिमयी, अपनी मर्य्यादाको नहीं त्यागता, और सृष्टिके समूह ऐसे चलेजातेहैं जैसे नदियोंके तरंगोंके समूह ॥ २९ ॥ स्थिरतारूप चतुरताको करनेवाली सब ब्रह्मांडोंकी मर्य्यादा स्थितिको प्राप्त होती है, और सबको धारण करनेवाली यह पृथ्वी प्रलयपर्यन्त स्थित रहती है ॥ ३० ॥ चौदह भुवनोंके अंतरालमें नानाप्रकारके आचार विचारवाले तथा नानाप्रकारके वेश और भाषावाले चौदह प्रकारके प्राणियोंको जाति ॥ ३१ ॥

पुनः पुनः उत्पत्ति तथा लयको प्राप्त होती हैं. हे रामजी ! यह सब पूर्वोक्त पदार्थोंके रूपसे यह चिद्ही विलासकर रही है और प्राणियोंके जन्म मरणका प्रवाह तत्वज्ञानसे ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे बिना जलके बुदबुदे ॥ ३२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यह दीनजनता (जनकासमूह) पूर्वजन्मकें संकल्प और बासनाके रागसे अनेक प्रकारकी कामनाओंको धारण कियेहुये इसीसे अपने स्वरूपके विचारमें अनभिज्ञ होनेसे मुग्ध होकर उन्मत्तके समान इस लोकमें जन्मकेद्वारा आकर प्राप्त होती है, और परलोकमें जाती है चारोंओर स्थावर आदि जन्मसे स्थित रहती है, भोगके कौतुकसे ऐहिक तथा पारलौकिक भोगके उपायभूत धनधर्मादि अपने पुरुषार्थोंको उपार्जन करती है और जन्म तथा नाशादिद्वारा इसी प्रकार संसारमें परिभ्रमण कियाकरती है ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चिदादित्यस्वरूप वर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

आत्माका अनात्मभाव अविद्याके कामना तथा कर्मोंसे होताहै, और निष्काम कर्म तथा ज्ञानसे आत्मस्वरूपकी स्थिति होती है इस विषयका वर्णन इस ३७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंस्थिरतराकाराःसंसारावलयोभितः ॥ स्वभावाद्ब्रह्मणःसर्वाःपुनरायांति यांतिच ॥ १ ॥ स्वतःसर्वमिदंजातमन्योन्यंहेतुतांगतम् ॥ अन्योन्यमभिनश्यत्तत्स्वतएवविलीयते ॥ २ ॥ स्वतोस्पंदोपिनिष्पंदोयथागाधजलोदरे ॥ तथैवेयमसत्सच्चचिदेवपरिदृश्यते ॥ ३ ॥ व्योमन्येवनिराकारेनिदाघात्सरितोयथा ॥ लक्ष्यंतेतद्वदेवैमाश्चित्तत्त्वेसृष्टिदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीबसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसप्रकार स्थिरतर आकारवाली संपूर्ण ब्रह्मांड़की पंक्ति चारों ओरसे ब्रह्मके स्वभावहीसे पुनः २ आती और जातीहैं ॥ १ ॥ परस्पर कारणभावको प्राप्त यह सब जगत् अपने अधिष्ठान चेतनहीमें उत्पन्न हुआहै, और उसी अपने अधिष्ठान चेतनमे लयकोभी प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ जैसे अथाह जलके भीतर जलकी गति रहतेभी गतिका भान नहीं होता इसीप्रकार असद् और सद्रूपसे यह चेतनही देख पडताहै परंतु भान नहीं होता ॥ ३ ॥ जैसे उष्णताके कारण निराकार आकाशमें मृगतृष्णाकी नदियां भान होतीहैं ऐसेही चित्तत्वमें यह सब सृष्टिहैं ॥ ४ ॥

यथामदवशादात्मासोन्यवत्प्रतिभासते ॥ तथैवचित्वाच्चिद्धातुःसएवासइवस्थितः ॥ ५ ॥ नचेदंस सदन्नेदंतत्स्थातत्स्थतयाचितः ॥ नातिरिक्तातिरिक्ताचकटकादिषुहेमता ॥ ६ ॥ येनशब्दंरसंरूपंगंधंजानासिराघव ॥ सोयमात्मापरंब्रह्मसर्वमापूर्वसंस्थितः ॥ ७ ॥ नानैकत्वादतीतात्तुसर्वगादमलात्मनः ॥ द्वितीयाकलनानास्तिकाचिन्नेतरथाक्वचित् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार मदके कारण अपना आत्माही अनात्माके समान घूर्णमानआदिरूपसे भासताहै ऐसेही चेतनसार चिदात्माही अचित्के समान स्थितहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् न सत्है और न असत्है, न उसमें स्थितहै, न उससे पृथक्है, किंतु अनिर्वचनीयहै, जैसे कटक आदिमें सुवर्णता न उससे भिन्नहै न उससे अभिन्नहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जिसके द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधको तुम जानतेहो वही आत्मा सबको व्याप्त होकर स्थितहै ॥ ७ ॥ सर्वव्यापी और निर्मल आत्माहीसे अनेकता और एकता अविद्यासे भान होती हैं यथार्थमें इस परमात्मामें दूसरी कोई कल्पना नहीं है ॥ ८ ॥

रामभावनादन्यस्यभावाभावाःशुभाशुभाः ॥ सृष्टयःपरिकल्प्यंतऽनात्मन्येवाथवात्मनि ॥ ९ ॥ यस्मादात्मनोव्यतिरिक्तेवस्तुनिसिद्धेसतितत्रेच्छाप्रवर्त्तते ॥ यत्रस्वामनोव्यतिरिक्तंनकिंचिदपिसंभवति ॥ तत्रात्माकिमिववांछन्किमनुस्मरन्धावतुकिमुपैतु ॥ १० ॥ अतइदमीहितमिदमनीहितमित्यात्मानंन स्पृशंतिविकल्पाःअतोनिरिच्छतायामात्मानकिंचिदपिकरोतिकर्तृकरणकर्मणामेकत्वात् ॥ नकंचित्ति ष्ठत्याधाराधेययोरेकत्वात् ॥ नचनिरिच्छत्यात्मनोनैष्कर्म्यमभिमतम् ॥ द्वितीयायाःकल्पनायाअभावात् ॥ ११ ॥ नेतराजानासिरामत्वमियंब्रह्मसंस्थितिः ॥ सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तःकर्त्ताभवगतज्वरः ॥ १२ ॥ अन्यच्चराघवपुनः ॥ पुनःकृत्वाकृत्वाबहुविधमिदंकर्मतरसात्वयाप्राप्यंकिंतद्वदयइचितं भूतकरणात् ॥ अकर्तृत्वेवास्थाभवतुतवचाप्यागमवतोभवस्वस्थःस्वच्छःस्तिमितइवनिर्वातजलधिः ॥ १३ ॥ गत्वा

सुदूरमपियत्नवताजवेननासाद्यतेयेनसुपूर्णतेति ॥ मत्वेतिमात्रजपदार्थगणान्धियात्वंनत्वंत्वमेवपरमार्थतयाचिदात्मा ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनं नाम सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! क्योंकि अन्य वस्तुओंका सद्भाव और असद्भाव और शुभ तथा अशुभ सृष्टियां अविद्वान्की दृष्टिमें अनात्मामें कल्पितहैं और विद्वान्की दृष्टिमें आत्माहीमें कल्पितहैं ॥ ९ ॥ क्योंकि आत्मासे पृथक् पदार्थ जब सिद्धहो तब उसमें इच्छा होसकती है और जब आत्मासे पृथक् किसी वस्तुका संभवही नहीं है तो आत्मा कीस पदार्थकी इच्छा करता हुआ किसको स्मरण करता हुआ किस पदार्थकी सृष्टिके लिये किस फलके अर्थ प्रवृत्तहो, अर्थात् यह सब सृष्टि आदि इसी आत्मामें अविद्यासे कल्पितहै ॥ १० ॥ इसलिये यह हित वा अनहित (इष्ट वा अनिष्ट) इत्यादि बिकल्प आत्माको नहीं स्पर्श करते इसलिये इच्छाके अभावमें कर्ता करण और क्रियाओंके एकत्व होनेसे आत्मा कुछ नहीं करता, आधार और आधेयके एक होनेसे वह किसीपर स्थित नहीं है और द्वीतीय कल्पनाके अभाव होनेसे इच्छा रहित आत्मामें निष्कर्मताभी अभिमत नहीं है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इन पूर्वोक्त प्रकारोंसे भिन्न दूसरी कोई सफलताकी कल्पना नहीं है यही ब्रह्मकी स्थिति है, यदि तुम उक्त प्रकारसे भिन्न कोई कल्पना जानतेहो तो तुम संपूर्ण द्वंद्व और संतापोंसे विमुक्त होकरभी कर्ता बनो, इसको हम नहीं निवारण करते ॥१२॥ हे रामजी ! औरभी इससंसारमें पुनः२ तुम कर्तृताका अभिमान करके अनेक क्रियाओंको बेगसे करके भौतिक समूहसे भिन्न तुमने क्या उचित फल प्राप्त किया सो कहो, और इसलिये कर्तृताके अभिमानके अभावमें शास्त्र वेदोंके वेत्ता जो तुमहो उनका विश्वासहो, और तुम वायु रहित समुद्रके समान स्वस्थ स्वच्छ और गंभीरहो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! वह साधन जिससे अपारिच्छिन्न सुख प्राप्त होनेसे पूर्ण कामताकी प्राप्तिहो, बडे यत्न और बेगके साथ दिशाओंके अंतमें भ्रमण करनेसेभी नहीं प्राप्त होता इसलिये तुम अपनी बुद्धिसे बाह्य पदार्थ समूहोंकी ओर नजाओ, किंतु संपूर्ण प्रपंचोंसे रहित परमार्थदृष्टिसे पूर्ण सुखरूप चिदात्मा तुम्हीहो ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपशम वर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

असंग परमात्माको न जाननेवालेको मनके संगसे कर्तृता होतीहै और ज्ञानिके लिये कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान न होनेसे बंध नहीं होता यह विषय इस ३८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंस्थितेतुतज्ज्ञानांयदेतत्कर्तृत्वंदृश्यतेसुखदुःखादिषुयोगादिषुवातदसत्रतुमूर्खाणाम् ॥ १ ॥ यतःकर्तृत्वंनामकिमुच्यतेयोह्यंतरस्थायामनोवृत्तेर्निश्चयउपादेयताप्रत्ययोवासनाभिधानस्तत्कर्तृत्वशब्देनोच्यते ॥ २ ॥ चेष्टावशात्ताद्दक्फलभोक्तृत्वंवासनानुरूपंस्पंदतेपुरुषःस्पंदानुरूपंफलमनुभवतिफलभोक्तृत्वंनामकर्तृत्वादितिसिद्धांतः ॥ ३ ॥ तथाच ॥ कुर्वतोकुर्वतोवापिस्वर्गेपिनरकेपिवा ॥ याद्दग्वासनमेतत्स्यान्मनस्तदनुभूयते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ऐसा नियत होनेसे ज्ञानियोंके सुख दुःख भोगके फल साधनीभूत कर्मोंको और समाधिके अभ्यासके परिपाककी भूमिकाओंमें जो कर्तृता देख पडतीहै वह असत्है परन्तु मूर्खोंकी नहीं ॥ १ ॥ क्योंकि कर्तृता वही कही जाती जिसके अंतःकरणमें स्थित मनकी वृत्तिसे निश्चय होताहै और उसमें उपादेयता बुद्धि होती है और उसको बासनाभी कहतेहैं ॥२ ॥ चेष्टाके वशसे वैसाही फलोंका भोग होताहै और बासनाके अनुसारही पुरुषकी चेष्टा होतीहै और चेष्टाकेही अनुसार फलकोभी अनुभव करताहै इसलिये फलकी भोक्तृताकाही नाम कर्तृताहै यह सिद्धान्तहै ॥ ३ ॥ इसलिये स्थूल इन्द्रियोंसे कर्म करै वा न करै परन्तु जैसी बासना पुरुषकी होती है वैसाही सुखदुःख स्वर्ग वा नरकमें मन अनुभव करताहै ॥ ४ ॥

तस्मादज्ञाततत्त्वानांपुंसांकुर्वतामकुर्वतांचकर्तृतानतुज्ञाततत्त्वानामवासनत्वात् ॥ ५ ॥ ज्ञाततत्त्वोहिशिथिलीभूतवासनःकुर्वन्नपिफलंनानुसंदधाति ॥ अथचस्पंदनमात्रंकेवलंकरोत्यसक्तबुद्धिस्संप्राप्तम

विफलमात्मैवेदंसर्वमेवकर्मफलमनुभवत्यकुर्वन्नपिकरोतिमग्नमनाः ॥ ६ ॥ मनोयत्करोतितत्कृतंभव तियन्नकरोतितन्नकृतंभवतिअतोमनएवकर्तृनदेहः ॥ ७ ॥ चित्तादेवायंसंसारआगतश्चित्तमयएवचित्त मात्रंचित्तएवस्थितइतिविज्ञातम् ॥ विषयश्वसर्वमुपशांतमभूद्वासनैवेतिज्ञएवास्तीति ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको कर्म करैं वा न करैं परंतु कर्तृता उनकी निश्चितहै परंतु बासनाके अभावसे तत्वज्ञानियोंको कर्तृता नहीं है ॥ ५ ॥ क्योंकि तत्वज्ञाता पुरुषकी बासना शिथिल होजाती हैं इसलिये कर्म करता-हुआ भी फलका अनुसंधान नहीं करता और असक्त वृद्धि होकर शरीरिका चेष्टामात्र करताहै, प्राप्त फलोंको यह संपूर्ण आत्माही है ऐसा अनुभव करताहै और कर्मोंको करताहुआ भी उनमें मग्न चित्त नहीं होता ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जो कुछ मनसे करताहै वही किया जाताहै और जो मनसे नही किया जाता वह नहीं किया जाता इसलिये मनही कर्ता है देह नहीं ॥ ७ ॥ यह संपूर्ण संसार चित्तसेही आयाहै, इसलिये चित्त मात्र और चित्तमेंही स्थितहै यह बात पूर्व प्रसंगमें पूर्ण रीतिसे विचारितहै, संपूर्ण तथा उनकी वृत्ति यह सब शांत होकर बासनारूप होजातेहैं और उस समयमें उनका उपहित जीव चेतनही रहताहै ॥ ८ ॥

आत्मविदांहितन्मनःपरमुपशममागतंमृगतृष्णाजलमिववर्षतिजलदेहिमकणइवचंडातपेविलीनंतुर्यद शामुपागतंस्थितम् ॥ ९ ॥ नानंदंननिरानंदंनचलंनाचलंस्थिरम् ॥ नसन्नासन्नचैतेषांमध्यंज्ञानिमनो विदुः ॥ १० ॥ नवासनामयेस्पंदरसेगजइवपल्वलेमज्जतितज्ज्ञोमूर्खमनोभोगभूमिमिवपश्यतिनसत्त त्वम् ॥ ११ ॥ तथाचायमत्रापरोदृष्टांतः ॥ अकुर्वन्नपिश्वभ्रपतनंशय्यासनगतोपिश्वभ्रपातवासनावा सितेचेतसिश्वभ्रपतनदुःखमनुभवति ॥ अपरस्त्वकुर्वन्नपिश्वभ्रपतनंपरमसुपशममुपगतवतिमनसिश य्यासनसुखमनुभवतिएवमनयोःशय्यासनश्वभ्रपतनयोरेकः ॥ श्वभ्रपतनस्याकर्तापिकर्तासंपन्नोद्वितीयश्चश्वभ्रपतनस्यकर्त्ताप्यकर्तासंपन्नश्चित्तावशात्तस्मायच्चितंतन्मयोभवतिपुरुषइतिसिद्धांत ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मवेत्ताओंका मन मेघके बरसनेपर मृगतृष्णाके जलके समान परमशांतिको प्राप्त होकर, प्रचण्ड आतपमें हिमकणके समान लीन होकर तथा तुर्यदशामें प्राप्त होकर ब्रह्मरूपसे स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीपुरूषका मन विषयानन्दके सुखमें विश्रान्त नहीं होता, और न वह आत्मानन्दसे शून्यहै, न वह चंचलहै, न वह पाषाणादिके सदृश जडावस्थामें स्थिरहै, और न वह सत्‌है और न असत्‌है, और न पूर्वोक्त आनन्द निरानन्द चल अचल तथा सत् असत्‌का मध्य अर्थात् संधिरूपहै किंतु वह सुखस्वरूप आत्माही है ॥ १० ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका मन, बासनामय चेष्टाके रसमें तडागके कीचडमें, गजके समान नहीं डूबता और मूर्खका मन विषयभोगकी भूमिहीको देखताहै न कि सदात्मतत्वको ॥ ११ ॥ इसमें यह दूसराभी दृष्टान्तहै कि जिसके चित्तमें गर्तमें गिरनेकी बासनाहै वह शय्यापर स्थितभी स्वप्नादिमें गर्तमें गिरके दुःखको अनुभव करताहै, और दूसरा मनके शान्त होनेपर गर्त (गढे) में गिरता हुआभी शय्याके सुखका अनुभव करताहै इसप्रकार इन दोनोंमेंसे एक गर्तमें न गिरनेपरभी उसका कर्ता और दूसरा गर्तमें गिरनेपरभी उसका अकर्ता है, इसलिये जैसा चित्त रहताहै वैसाही पुरूष होताहै यह सिद्धान्तहै ॥ १२ ॥

तेनतत्रकर्तुरकर्तुवानित्यमसंसक्तंभवतुचेतोनहिकिंचिदस्त्यात्मतत्त्वव्यतिरिक्तंयत्रसंसक्तिर्भाव्यतेय त्किंचिदिदंजगद्गतंतत्सर्वंशुद्धचित्तत्वादाभासमवेहि ॥ १३ ॥ एवंचास्यज्ञातज्ञेयस्यपुंसोनापमात्मासु खदुःखानांनगम्यइतिनिश्चयेजातेनात्मव्यतिरिक्ताआधाराधेयदृष्टयोविद्यंतइतिनिश्चयेजातेकर्त्ताभोक्ता सर्वपदार्थव्यतिरिक्तोवालाग्रसहस्रभागोहमितिनिश्चयेजातेयत्किंचिदिदंतत्सर्वमहमेवेतिवानिश्चयेजा तेसर्वसत्वावभासकःसर्वगस्तिष्ठाम्येवाहमिति निश्चयेजातेनाहंसुखदुःखानांगम्यइतिविगतज्वरतया चित्तवृत्तिर्लीलयैवतिष्ठतेव्यवहारेषु ॥ १४ ॥ तज्ज्ञस्यसंकटेचमुदितेचकेवलंज्योत्स्नेवभुवनभावमलंक रोतियेनचित्तादृतेतुज्ञःकुर्वन्नप्यकर्त्तासंपन्नोमनसोलेपकत्वान्नासौपादपाण्यादिविक्षेपस्ययत्नकृतस्यापि कर्मणःफलमनुभवति ॥ १५ ॥ एवंमनःसर्वकर्मणांसर्वेहितानांसर्वभावानांसर्वलोकानांसर्वगती नांबीजंतस्मिन्परिहृतेसर्वकर्माणिपरिहृतानिभवंतिसर्वदुःखानिक्षीयंतेसर्वकर्माणिलयमुपयांतिमा नसे नापिकर्मणायत्कृतेनापिज्ञोनाक्रम्यतेनविवशीक्रियतेनरंजनामुपैत्यव्यतिरिक्तात् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसलिये तुम कर्मको करो वा न करो परन्तु तुह्मारा चित्त उनमें निमग्न न हो, क्योंकि इस जगत्‌में आत्मतत्वके सिवाय कोईभी पदार्थ सत्य नहीं है, जिसमें कि तुह्मारे मनकी आसक्ति संभव हो, जो कुछ यह जगत् और जगत्‌के अन्तर्गत पदार्थ हैं उस सबको शुद्ध चित्‌तत्वका आभासमात्रही तुम जानो ॥ १३ ॥ इसप्रकार

ज्ञात ज्ञेय पुरुषका आत्मा सुख दुःखादिका स्थान नहीं होता ऐसा निश्चय होनेपर आत्मासे पृथक् आधार आधेय दृष्टि नहीं है, यह निश्चय होताहै और इसके अनन्तर कर्ता भोक्ता सम्पूर्ण पदार्थोंसे पृथक् बालके अग्रके सहस्रभागसे भी अतिसूक्ष्म आकाशवत् सर्वव्यापी हमारा स्वरूपहै, इसके अनन्तर जो कुछ यह सम्पूर्ण जगत्है वह मैंही हुं ऐसा निश्चय होताहै, इसके पश्चात् सम्पूर्ण भूतोंका प्रकाशक सर्वव्यापी मैं हुं ऐसा निश्चय होताहै इसके पश्चात् मैं सुख दुःखका स्थान नहीं हुं इसप्रकार चिंतारहित वृत्तिसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें लीलाहीसे प्रारब्ध कर्मभोग करनेके लिये स्थित रहताहै ॥ १४ ॥ ज्ञानीका मन संकटमेंभी चन्द्रमाकी ज्योत्स्णाके समान संसारको शोभित करताहै, क्योंकि चित्तसे पृथक् सुखदुःख कुछ नहीं है इसलिये मनकी बासनासे लिप्त न होनेसे ज्ञानी कर्ता हुआभी अकर्ता है, यह ज्ञानी हस्तपादादिके संचालनादि कर्मके फलकोभी नहीं अनुभव करता ॥ १५ ॥ इसप्रकार सब कर्मोंका सब चेष्टाओंका सब भावोंका सब लोकोंका और संपूर्ण गतियोंका बीजहै, उस मनके त्यागनेपर सब कर्म आपही त्यक्त होजातेहैं सम्पूर्ण दुःख क्षीण होजातेहैं और पुण्य पापमय सब कर्म लयको प्राप्त होते हैं, ज्ञानीपुरुष आत्मासे पृथक् सम्पूर्ण वस्तुओंका अभाव जाननेसे मानसिक शारीरिक और बाचनिक कर्मोंसेभी आक्रांत होकर बशीभूत नहीं होता १६

यथाबालोमनसानगरस्यनिर्माणंनिर्मृष्टंकुर्वन्नगरनिर्माणंमनःकृतमकृतमिवलीलयानुभवति ॥ नोपादेयतयासुखदुःखमकृत्रिममितिपश्यतिनगरनिर्मथनंचमःनःकृतंकृतमितिपश्यतीतिदुःखमपिलीलयानुभवन्नपिनदुःखमितिपश्यतिएवमसौपरमार्थतःकुर्वन्नपिनलिप्यतएवेति ॥ १७ ॥ सर्वभावेषुहेयोपादेयताभ्यांजगतिकिंकारणंदुःखस्यनचोपादेयेकिंचिदपिसंभवतियदविनाशंव्यतिरिक्तंचात्मनस्तस्मादयमात्माऽकर्त्ताऽभोक्ताऽतत्त्वतोयदेतत्कर्त्तृत्वंचस्वध्यारोप्यते ॥ १८ ॥ आवश्यकंतत्सम्यग्दर्शनमोहान्नवस्तुतइतियथाभूतवस्तुविचारणात्कर्तृत्वभोक्तृत्वेनस्तः ॥ इंद्रियेंद्रियार्थद्वेषाभिलाषादिकादृष्टयस्तदृष्टीनांदृश्यतेनातदृष्टीनाम् ॥ १९ ॥ मोक्षोऽस्तिनसंसारेस्वसंसक्तमनसामिहासंसक्तमनसांत्वेतत्सर्वमेवास्ति ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसप्रकार बालक मनसे नगरकी रचना और उसका शृंगार करता हुआभी यह नगरकी रचना मनसे कृतहै इसलिये अकृतके समानहै, इसलिये लीलासे अनुभव करताहै, और उपादेय बुद्धिसे स्वाभाविक सुखदुःख नहीं देखता और नगरके नाशकोभी लीलाहीसे देखताहै, इसीप्रकार यह आत्मा करता हुआभी परमार्थ दृष्टिसे कुछ नहीं करता इसलिये लीलासे दुःखको अनुभव करता हुआभी यह दुःख नहीं है ऐसा देखताहै ॥ १७ ॥ इस जगत्में हेय और उपादेय बुद्धिसे व्यवहारमें आतेहुये सब पदार्थोंमें दुःखका कारण क्या है हेय दुःखका कारण नहीं होसकता क्योंकि उपादानसे दुःख होताहै हेय वस्तुके उपादानके अभावसेही दुःख न होगा, यदि उपादेय पदार्थ दुःखका हेतु कहो सो वहभी नहीं बन सकता क्योंकि आत्मासे पृथक् वस्तु कोई अविनाशी नहीं है, जो उपादेयहो इसलिये यह आत्मा अकर्ता और अभोक्ताहै और अविद्यासे जो इसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अनुभव होताहै वह अध्यारोपसे है ॥ १८ ॥ शरीरके निर्वाहके लिये जो आवश्यक कर्म हैं उसको जीव नहीं त्याग सकता परन्तु वह आवश्यक कर्मभी सम्यग्दर्शनके मोहसे हैं न कि यथार्थमें सत्य पदार्थके विचारनेसे तो शुद्धमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका सम्भव नहीं है और यह जो प्रतीति होती है वह इन्द्रियों करके इन्द्रियोंके अर्थोंमें रागद्वेषादिककी अभिलाषा और उनके निमित्त पुण्यपापादि अदृष्टोंसे जिनकी बुद्धि विवशहै उन्हीकी दृष्टिमें है न कि आत्मज्ञानियोंकी ॥ १९ ॥ जिनका मन संसारमें आसक्त नहीं है किन्तु आत्माके विचारहीमें निमग्नहै उनके लिये मोक्ष कुछ पदार्थ नहीं है यह सब बन्धमोक्षादि व्यवस्था संसारमें आसक्त अज्ञानियोंके अर्थ है ॥ २० ॥

यथास्थितंज्ञस्यकेवलमात्मतत्त्वमेवोल्लसतितद्द्वित्वैकत्ववादिसिद्धेद्वित्वैकत्वेकरोतिसत्वासत्वेकरोतिशक्तिजालादभिन्नांसर्वशक्तितांचदर्शयतितस्य ॥ २१ ॥ नबंधोऽस्तिनमोक्षोऽस्तिनाबंधोऽस्तिनबंधनम् ॥ अप्रबोधादिदंदुःखंप्रबोधात्प्रविलीयते ॥ २२ ॥ संकल्पिताजगतिमोक्षमतिर्मुधैवसंकल्पिताजगतिबंधमतिर्मुधैव ॥ संत्यज्यसर्वमनहंकृतिरात्मनिष्ठोधीरोधियाव्यवहरन्भुविरामतिष्ठ ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—ज्ञानीकेलिये तो शुद्धात्मतत्व केवल अपने रूपसे शोभित होरहाहै और उसके जीवन व्यवहारकी सिद्धिकेलिये अन्यवादीको प्रसिद्ध द्वित्व एकत्वादिकी व्यवस्था तथा सत्व असत्व आत्माही करताहै और अपने शक्तिसमूहसे अभिन्न आत्मतत्वकी सर्वशक्तिताभी दर्शाताहै ॥ २१ ॥ यथार्थमें न बंध है न मोक्ष है और न बंधका

कारण है अज्ञानसे यह दुःख होताहै और ज्ञानसे सब नष्ट होजाताहै ॥ २२ ॥ इस संसारमें मोक्ष तथा बंध बुद्धि मिथ्याही कल्पित है इसलिये हे रामचन्द्रजी ! सब त्यागकरके धीर होकर अहंकारको त्यागकर बुद्धिसे संसारके कार्य करते हुये पृथ्वीपर स्थित रहो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपाशम वर्णनं नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस ३९ के सर्गमें ब्रह्मकी सर्व शक्तिता रामके व्यामोहका विस्तार और उनके ज्ञानकेलिये वसिष्ठके विचारादि वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्नेवंस्थितेपरेब्रह्मण्येवविद्यमानेकुतएवाभित्तिचित्ररूपायाःसृष्टेरागमइति कथयमहात्मन् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठवाच ॥ राजपुत्रब्रह्मतत्त्वमेवेदमावर्त्ततेयस्मात्सर्वशक्तितत्तस्मात्सर्वाःशक्तयोब्रह्मणिदृश्यंते ॥ २ ॥ सत्वमसत्वंद्वित्वमेकत्वमाद्यत्वमनेकत्वमाद्यत्वमंतत्वमिति ॥ ३ ॥ तच्चनान्यत्यथाजलराशेर्जलाशयउल्लासप्रफुल्लासेननानाकारतांदर्शयन्प्रकटतांगच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपके कथित रीतिसे बंध मोक्षादिकके असंभव होनेसे और केवल परब्रह्मही सत्य होनेसे भितिरहित चित्रके समान इस सृष्टिका आगमन कहांसे होताहै यह मुझे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे राजपुत्र ! ब्रह्मही इस सब जगत्‌रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होताहै क्योंकि ब्रह्म सर्व शक्तिमान् है, इसलिये कार्योंसे संपूर्ण शक्तियोंका अनुमान ब्रह्महीमें होताहै ॥ २ ॥ जो सर्वशक्तिमान् है उसमें सत्व असत्व द्वित्व एकत्व अनेकत्व आदित्व और अन्तत्वादि विरोधी धर्मकी कल्पना होसकती है न कि असमर्थमें ॥ ३ ॥ वह सत्वादि अन्य नहीं है किंतु जैसे समुद्रका सलिलसमूह चंद्रमाके उदयके उल्लाससे नानाप्रकारता दर्शाता हुआ प्रकट होताहै॥४

तथाचिद्घनश्चित्तंचित्त्वाच्चसर्वाःशक्तीःकर्ममयीर्वासनामयीर्मनोमयीश्चिनोतिदर्शयतिबिभर्त्तिजनयति क्षिपत्ततिचेति ॥ ५ ॥ सर्वेषामेवजीवानांसर्वासामभितोदृशाम् ॥ समग्राणांपदार्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मणो निशम् ॥ ६ ॥ लोकात्परादुपायांतितस्मिंश्चित्त्वाद्विशंत्यलम् ॥ तन्मयाएवसततंतरंगाइवसागरे ॥७॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवंस्तवातिगहनेयंवचनव्यक्तिर्नखल्वद्यवाक्यार्थमवगच्छामि ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीप्रकार चिदात्मा पहले चित्त उपहित जीवरूप होताहै और चित्तसेही सम्पूर्ण कर्ममयी वासनामयी मनोमयी शक्तियोंको संचय करताहै, सञ्चित शक्तियोंको फलरूपसे दर्शाताहै, उपभोगसे उनको धारण करताहै, और पुनः तिरोभावसें उनका नाशभी करदेताहै ॥ ५ ॥ संपूर्ण जीवोंकी सब प्रकारकी दृष्टियोंकी और सम्पूर्ण पदार्थोंकी उत्पत्ति निरंतर ब्रह्मसेही होती है ॥६॥ उसी परमात्मासे सबकुछ आताहै और उसीमें सब लीनभी होताहै, और वर्तमानसमयमें निरंतर तन्मयभी ऐसे है जैसे समुद्रमें तरंग ॥७॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यह आपकी वाक्यकी रचना अति गहनहै यह आपका कथन ऐसे है जैसे अग्निमें शीतता जलमें दहनशक्ति विरुद्ध है ऐसेही चेतनमें जाड्यशक्ति, अदृश्यमें दृश्यता, नित्यमें अनित्यता यह कैसे होसकताहै इस आपके वाक्यका मैं तात्पर्य नहीं समझता ॥८॥

क्वकिलातीतमनःषष्ठेंद्रियवृत्तिब्रह्मतत्त्वंक्वभंगुरेयंतज्जापदार्थश्रीरितिवचनरचनायदिचायमारंभोब्रह्मण आपतितस्तदनेनतत्सदृशेनैवभवितव्यम् ॥ ९ ॥ योयस्माज्जायतेसतत्सदृशएवभवति ॥ १० ॥ यथा दीपाद्दीपःपुरुषात्पुरुषःसस्यात्सस्यम् ॥११॥ यतोनिर्विकाराद्यदागतंनिर्विकारेणैवानेनभवितव्यम्॥१२॥

अर्थ—कहां तो मन और इन्द्रियसे परे परब्रह्म और कहां यह क्षणभंगुर उससे उत्पन्न पदार्थोंकी शोभा यदि यह जगत्‌के नामरूपकी उत्पत्ति ब्रह्मसेही हुई है तो ब्रह्मके सदृश होना चाहिये ॥ ९ ॥ लोकमें जो जिससे उत्पन्न होताहै वह उसके सदृश होताहै ॥ १० ॥ जैसे दीपकसे दीपक पुरुषसे पुरुष और गोधूमादि धान्यसे गोधूमादि धान्य ॥ ११ ॥ यदि निर्विकार ब्रह्मसे यह जगत् उत्पन्न हुआहै तो निर्विकार इसकोभी होना चाहिये ॥ १२ ॥

अथैतद्व्यतिरिक्तंचिदात्मनस्तन्निष्कलंकस्यपरमेश्वरस्ययेयंकलंकापत्तिरित्याकर्ण्यभगवान्ब्रह्मर्षिरुवाच ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदंस्थितंनाममलमस्तीहनानघ ॥ तरंगौघगणैरंभःसिंधौस्फुरतिनीरजः ॥ १४ ॥ द्वितीयाकल्पनैवेहनरघूद्वहविद्यते ॥ ब्रह्ममात्राद्दतेवह्नावौष्ण्यमात्राद्दतेयथा ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ निर्दुःखंब्रह्मनिर्द्वंद्वंतज्जंदुःखमयंजगत् ॥ अस्पष्टार्थमिदंब्रह्मन्नवेद्मिवचनंतव ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि यह जगत् आत्मासे भिन्न विकारी है तो परब्रह्मको जगत्भाव होना यह आपने परमेश्वरकेलिये कलंकापत्तिका कथन किया ऐसे रामचन्द्रजी वाक्यको सुनकर भगवान् ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी बोले ॥ १३ ॥ हे पापरहित रामजी ! यह सम्पूर्ण ब्रह्मरूपसे ऐसे स्फुरताहै, जैसे तरंगके समूहोंसे समुद्रमें जल इसमें किंचित्भी मल इसप्रकार नहीं है जैसे समुद्रमें धूलि ॥ १४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! जैसे अग्निमें उष्णताको छोडके कुछभी नहीं है ऐसेही इस संसारमें ब्रह्मसे भिन्न दूसरी कल्पना नहीं है ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! ब्रह्म तो दुःखरहित तथा निर्द्वन्द्व है उससे उत्पन्न यह जगत् दुःखमय कैसे हुआ इस आपके बचनका अर्थ स्पष्ट नहीं है और इस बचनको मैं नहीं समझता ॥ १६ ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तेतत्ररामेणचिंतयामासचेतसा ॥ वसिष्ठोमुनिशार्दूलोराघवस्योपदेशने ॥ १७ ॥ परंविकासमायातानास्यतावदियंमतिः ॥ किंचिन्निर्मलतांप्राप्ताप्रोह्यतेचेहवस्तुनि ॥१८॥ योऽव्युत्पन्नमनास्तस्यज्ञाततज्ज्ञेयस्यधीमतः ॥ मोक्षोपायगिरांपारंप्रयातस्यविवेकतः ॥ १९ ॥ नकश्चित्कस्यचिद्दोषोनास्तिविद्यात्मनिह्यलम् ॥ यावन्नोक्तंनविश्रांतिंतावदेत्येषराघवः ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–रामके ऐसा कहनेपर मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी रामचन्द्रजीको उपदेश देनेकेलिये उपाय मनमें चिंतन किया ॥ १७ ॥ रामचन्द्रकी बुद्धि परम प्रकाशताको तो नहीं प्राप्त हुई है किंचिन्निर्मलताको प्राप्त हुई है और आत्मवस्तुमें अब प्राप्त की जाती है ॥ १८ ॥ यो पुरुष व्युत्पन्न चित्तवालाहै अर्थात् जगत्के जाड्यभावको त्यागकर चिद् एकरस आत्मतत्वके देखनेमें समर्थ है उस ज्ञातज्ञेय बुद्धिमान् और विवेकसे मोक्षके उपायभूत वाणियोंके पार प्राप्त हुये पुरुषकी ॥ १९ ॥ दृष्टिमें आत्मवस्तुके साथ जगत्के विरूद्ध रूपका कुछभी दोष नहीं है इसलिये जबतक हम लोग अच्छी तरहसे उपदेश न देंगे यह रामचन्द्रजी विश्रांतिको नहीं प्राप्त होंगे॥२०॥

अर्द्धव्युत्पन्नबुद्धेस्तुनैतद्वक्तुंहिशोभते ॥ दृश्यानयाभोगदृशाभावयन्नेषनश्यति ॥२१॥ परांदृष्टिंप्रयातस्यभोगेच्छानाभिजायते ॥ सर्वंब्रह्मेतिसिद्धांतःकालेनामास्ययुज्यते ॥ २२ ॥ आदौशमदमप्रायैर्गुणैः शिष्यंविशोधयेत् ॥ पश्चात्सर्वमिदंब्रह्मशुद्धस्त्वमितिबोधयेत् ॥ २३ ॥ अज्ञस्यार्द्धप्रबुद्धस्यसर्वंब्रह्मेतियोवदेत् ॥ महानरकजालेषुसतेनविनियोजितः ॥ २४ ॥

अर्थ—परन्तु अर्द्ध व्युत्पन्न बुद्धिवालेकेलिये यह सब ब्रह्मही है ऐसा कथन शोभा नहीं देता क्योंकि वह पुरुष दृश्यप्रपंचको प्राप्त करनेवाली भोगकी दृष्टिसे दृश्यकीही भावना करता हुआ तत्वज्ञानसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥ जिसको उत्तम दृष्टि प्राप्त हुई है उसको विषयभोगकी इच्छा नहीं होती और काल पाकरके यह सब ब्रह्महै यह सिद्धांतभी उसकी दृष्टिमें आ जाताहै ॥ २२ ॥ अर्द्ध व्युत्पन्न वा अव्युत्पन्न शिष्यको प्रथम शम दम आदि गुणोंसे शुद्ध करना चाहिये, और पश्चात् यह सब ब्रह्मही है ऐसा बोधन करना चाहिये, और इसके पश्चात् तुम वही शुद्धब्रह्म हो ऐसा बोधन करनं चाहिये ॥ २३ ॥ जो अर्द्ध प्रबुद्ध अज्ञानी है उसको यह बोधन करताहै कि यह सब ब्रह्मही है, वह मानो उस शिष्यके द्वारा महानरक जालमें नियुक्त कियागया ॥ २४ ॥

प्रबुद्धबुद्धेःप्रक्षीणभोगेच्छस्यनिराशिषः ॥ नास्त्यविद्यामलमितियुक्तंवक्तुंमहात्मनः ॥ २५ ॥ अपरीक्ष्यचयःशिष्यंप्रशास्त्यतिविमूढधीः ॥ सएवनरकंयातियावदाभूतसंप्लवम् ॥ २६ ॥ इतिसंचिंत्यभगवानज्ञानतिमिरापहः ॥ तमुवाचमुनिश्रेष्ठोवसिष्ठोभूमिभास्करः ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कलंककलनाब्रह्मण्यस्तिनास्तीतिवानघ ॥ सिद्धांतकालेवक्तव्यंस्वयंज्ञास्यसिराघव ॥ २८ ॥

अर्थ—और जो प्रबुद्ध बुद्धिहै जिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होगई है और जो अपने लिये कोईभी आसीर्वाद नहीं चाहता, तथा जिसको अविद्यामल नहीं है उस माहात्माके लिये यह सब ब्रह्मही है ऐसा कथन युक्तहै ॥२५॥ जो अतिमूढ बुद्धि शिष्यकी परीक्षा न करके ज्ञान देताहै वह जबतक संसारका प्रलय नहीं होता तबतक नरकमें निवास करताहै ॥ २६ ॥ ऐसा विचार करके अज्ञानरूपी अंधकारके नाशक, मुनियोंमें श्रेष्ठ, पृथिवीके सूर्य भगवान् वसिष्ठजी रामचंद्रजीसे बोले ॥ २७ ॥ हे पापरहित रामजी ! कलंककी कल्पना जगत्में है वा नहींहै बार्ता सिद्धांत कालमें वक्तव्यहै और उस समयमें इसको तुम स्वयं जान जाओगे ॥ २८॥

ब्रह्मसर्वशक्तिसर्वव्यापिसर्वगतंसर्वोहमेवेति ॥२९॥ यथेंद्रजालिनःपश्यसिचित्रामायया क्रियाजनयंतः सदसत्तांनयंत्यसच्चसत्तांनयंतितथैवात्माअमायामयोपिमायामयइवपरंमऐंद्रजालिकोघटंपटंकरोतिपटं चघटंकरोतिउपलेलतांजनयतिमेरौकनकतटेनंदनवनमिवलतायामुपलमुत्पादयतिकल्पपादपेषुरत्नस्त

बकमिवव्योम्निकाननमध्यारोपयति ॥ ३० ॥ गंधर्वउद्यानमिवतस्मिन्जगतिभविष्यतिगगनेकल्पनया नगरतांजनयतिनष्टच्छायांजनमिवव्योमधरातलंनयतीति ॥ ३१ ॥ गंधर्वनगरराजगृहेविपुलांगनाजन मिवभूतलेव्योमानिवेशयति ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वगत, और सब पदार्थोंमें दर्शनके योग्यहै ॥ २९ ॥ देखो जैसे इन्द्रजालिक लोग मायासे अनेक क्रियाओंको उत्पन्न करते हुये सत्को असत् करतेहैं और असत्को सत् करतेहैं ऐसेही मायारहित होनेपरभी आत्मामयके समान महान् ऐंद्रजालिक होके घटको पट और पटको घट बनाताहै और सुवर्णके तटवाले मेरूपर नंदन तथा कल्पवृक्षोंमें रत्नोंके गुच्छोंके तुल्य पाषाणके ऊपर लता और लताके ऊपर पाषाण उत्पन्न करताहै और आकाशमें वनका अध्यारोप करताहै ऐसी अपूर्व आत्माकी शक्तिहै ॥ ३० ॥ उसी स्थानमें गंधर्व उद्यानके सदृश भविष्यत्के आकाशमें कल्पनासे नगरको रचताहै, और आकाशकी नील कज्जलताको नष्ट करके पृथिवीतल निर्माण करताहै ॥ ३१ ॥ तथा गंधर्वनगर और राजगृहमें अनेक ललना गणके समान भूतलमें आकाशको स्थापित करताहै ॥ ३२ ॥

रक्तकुट्टिमेष्वाकाशप्रतिबिंबमिवकिंचिदस्तिजगतिभविष्यतिवाबभूव ॥ ३३ ॥ यदीश्वरोव्यक्तरूपोविचित्रतामुपेत्यनिदर्शयति ॥ ३४ ॥ सर्वमेवसर्वथासर्वत्रयथासंभवत्येकमेवेहवस्त्वियतइतितस्माद्धर्षामर्षविस्मयानांकवावसरोराम ॥ ३५ ॥ समतयैवसततंधृतिमतास्थातव्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—रक्तवर्ण छद सहित पद्मराग मणियोंके प्रासादोंमें आकाशका रक्त प्रतिबिंब स्वतः असत् होनेपरभी अधिष्ठानकी रक्ततासे जैसे सत्है ऐसेही इस जगत्में जो कुछहै होगा, और हुआ वह सब स्वतः असत् होनेपरभी ब्रह्मकी सत्तासे सत् ॥ ३३ ॥ क्योंकि ईश्वर अव्यक्तरूप होनेपरभी विचित्र रूपसे अपने आत्माको दर्शाताहै ॥ ३४ ॥ इसप्रकार एकही आत्मवस्तु सर्वथा सर्वत्र सब कुछ होसकताहै इसलिये हे रामजी! यहांपर हर्ष, विस्मय तथा आमर्षका अवसर कहांहै ॥ ३५ ॥ धैर्य्यवान्को निरन्तर समता रूपसे स्थित रहना चाहिये ॥ ३६ ॥

विस्मयस्मयसम्मोहहर्षामर्षविकारिताम् ॥ समतावलितस्तज्ज्ञोनकदाचनगच्छति ॥ ३७ ॥ अपर्यवसानेदेशकालवतिचित्राहिजगतियुक्तयोदृश्यंते ॥ ३८ ॥ एताश्चयुक्तीर्नामासावात्मायत्नेनरचनांकरोतिनचोत्पन्नांतिरस्करोतिसागरइववीचीः ॥ ३९॥ किंतर्हिक्षीरइवघृतंघटइवमृदिपटइवतंतुषुवटइवधानायामात्मन्येवस्थिताःशक्तयःप्रकटतामागताव्यवह्रियंतेविरचितमेवतरंगवत् ॥ ४० ॥

अर्थ—समतासे वेष्टित ज्ञानी पुरूष विस्मय, गर्व, संमोह, हर्ष, आमर्ष, और विकारिताको कदापि नहीं प्राप्त होता ॥ ३७ ॥ समताकी अनंततासे देशकालके अवकाश विशिष्ट आत्मामें विचित्र दृश्य रचनाकी शक्ति देखपड़ती हैं ॥ ३८ ॥ इन सब युक्तियोंसे यह आत्मा यत्नसे फलावस्था सहित रचना करताहै और उत्पन्न रचनाको सागर तरंगके समान तिरस्कार नहीं करता ॥ ३९ ॥ जैसे दुग्धसे घृत, मृत्तिकामें घट, सूत्रोंमें पट तथा सूक्ष्म वटबीजमें वटका वृक्ष स्थितहै ऐसेही आत्मामें सब शक्ति स्थितहैं और प्रकट होकर व्यवहारमें आती हैं, परन्तु यथार्थमें जलसे तरंगके समान ब्रह्मसे पृथक् जगत्की रचना नहीं है ॥ ४० ॥

नात्रकश्चित्कर्त्तानभोक्तानविनाशमेति ॥ ४१ ॥ केवलमात्मतत्त्वेसाक्षिणिनिरामयेसमतयात्मनिनित्यमसंक्षुब्धेतिष्ठतिसत्येवंसंपद्यते ॥ ४२ ॥ सतिदीपइवालोकःसत्यर्कइववासरः ॥ सतिपुष्पइवामोदः स्वतःसंपद्यतेजगत् ॥ ४३ ॥ आभासमात्रमेवेदंपरिदृश्यतएवच ॥ स्पंदःसमीरणस्येवनसन्नासदवस्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस जगत्में न कोई कर्ता है न भोक्ताहै और न विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ केवल साक्षी निरामय समतासे नित्य असंक्षुब्ध रूपसे स्थित आत्मतत्वमें इसप्रकार सब कुछ होताहै॥४२॥जैसे दीपके रहनेपर प्रकाश सूर्यके रहनेपर दिन और पुष्पके रहनेपर उसकी सुगन्ध होती है ऐसेही अधिष्ठान चेतनसे यह जगत् स्वयं उत्पन्न होताहै ॥४३ हे रामजी ! जो कुछ यह देख पडताहै वायुके स्पन्दके समान ब्रह्मका आभासमात्रहै, यह न सद्है न असद् है ॥४४॥

निर्दोषवदेवजागतीनांदृष्टीनांपरमार्थतोभगवान्स्थितोविनष्टानांपुनःकर्त्ताकृतानांवानाशयितासकेवलं कदाचित्प्रकटाःकदाचिदल्पप्रकटाःकदाचिदप्रकटास्तारकाइवकुसुमराशयः ॥ ४५ ॥ नश्यतीहहित द्वस्तुनात्मभूतंयदात्मनः ॥ कथंनश्यतितद्वस्तुस्वात्मभूतंयदात्मनः ॥४६॥ जायतेनैवतद्वस्तुनात्मभूतंयदात्मनः ॥ जायतेचैवतद्वस्तुस्वात्मभूतंयदात्मनः॥४७॥कथंतज्जायतेतस्मात्स्वात्मभूतंयदात्मनः॥४८॥

अर्थ—इसप्रकार जगत्‌की दृष्टियोंसे अपनी सन्निधिमात्रसे उत्पन्न जगत्‌के दोषोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता किन्तु परमार्थ दृष्टिसे वह भगवान् स्थितहै और विनष्टोंका कर्ता और किये हुओंका नाशक वही चिदात्माहै उसी चिदात्मामें आकाशमें तारागणके समान वाटिकामें पुष्पसमूहके समान यह जगत्‌की शक्ति कभी प्रकट होती हैं कभी अल्प प्रकट होती है कभी अप्रकट होती हैं ॥ ४५ ॥ जो वस्तु आत्माका स्वरूप नहीं है वही नष्ट होती है और जो आत्माका स्वरूपहै वह कैसे नष्ट होसकती है ॥ ४६ ॥ जो वस्तु आत्माका स्वरूप नहीं है वह उत्पन्नभी नहीं होती वह वस्तु उत्पन्न होती है जो आत्माका स्वरूपहै जो वस्तु आत्माका स्वरूपभूतहै वह उससे कैसे उत्पन्न होसकतीहै ॥४८॥

तस्मात्सम्यग्ज्ञानवशाद्ब्रह्मणःसर्वपदार्थानामागमः ॥ ४९ ॥ अवतीर्णानांचतेषामवतरणसमकालमे वाविद्योदेतितत्त्वज्ञानं दृढतामेतितदनुशतसहस्रस्कंधोविचित्रशुभाशुभफलभरफलितोभूरिशाखः स्फारतामेतिसंसारद्रुमः ॥ ५० ॥ आशामंजरिताकृतिविफलितदुःखादिभिर्दारुणैर्भोगैःपल्लवितंजरा कुसुमितंतृष्णालताभासुरम् ॥ संसाराभिधवृक्षमात्मनिगडंछित्त्वाविवेकासिनामुक्तस्त्वंविहरेहवारण पतिःस्तंभादिवोन्मोचितः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे सर्वैकत्वप्रतिपादनं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—इसलिये सम्यग् ज्ञानके कारण ब्रह्मसेही संपूर्ण पदार्थोंका आगमन होताहै ॥ ४९ ॥ पदार्थोंके उत्पत्तिके समकालहीमें अविद्याका उदय होताहै और वह अविद्या दृढताको प्राप्त होती है उसके अनन्तर सैकडों बल्कि सहस्रों स्कन्धयुक्त होजाताहै और चित्रविचित्र शुभ अशुभ फलके भारसे पूर्ण अनेक शाखावाला यह वृक्ष विशालताको प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ आशाओंसे लता संयुक्त आकारवाला, अनेक प्रकारके दारुण सुखदःखोंसे फल संयुक्त, भोगोंसे पल्लवित वृद्धावस्थासे पुष्पित, और तृष्णारूपी लतासे प्रकाशशील, इस संसाररूपी वृक्षको जो कि आत्माका बंधन स्थानहै इसको विवेकरूपी खड्गसे छेदन करके इससे मुक्त होकर स्तंभसे मुक्त हाथियोंके पतिके समान इस संसारमें तुम विहार करो ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सर्वैकत्वप्रतिपादनं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस ४० के सर्गमें उपाधियोंके कारण जीवके भेदोंकी उत्पत्ति तथा उन जीवोंका तथा उपाधियोंका ब्रह्मभाव विस्तारसे वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ उत्पत्तिःकथमेतेषांजीवानांब्रह्मणःपदात् ॥ कियतीकीदृशीचेतिविस्तरेणवद प्रभो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उत्पद्यंतेयथाचित्राब्रह्मणोभूतजातयः ॥ यथानाशंप्रयांत्येतायथामु क्ताभवंतिहि ॥ ॥ २ ॥ यथाचपरिवर्द्धंतेतिष्ठंत्यंतर्हितायथा ॥ संक्षेपेणमहाबाहोशृणुवक्ष्यामितेनघ॥३॥ ब्राह्मीचिच्छक्तिरमलाकल्पयंतीयदृच्छया ॥ सर्वशक्तिःस्वयंचेत्यंभवत्याकलनात्मकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! ब्रह्मपदसे जीवोंकी उत्पत्ति कैसे कितनी और किसप्रकार होती है यह विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जैसे ब्रह्मसे चित्रविचित्र प्राणियोंकी जाति उत्पन्न होती हैं और जैसे नाशको प्राप्त होती हैं तथा जैसे मुक्त होतीं हैं ॥ २ ॥ और जिसप्रकार बढ़तीं हैं और स्थित रहती हैं वह हे पापरहित महाबाहो मैं संक्षेपसे कहूंगा तुम सुनो ॥ ३ ॥ सर्व शक्तिमती निर्मल ब्रह्मसंबंधी चित् शक्ति प्रथम स्वयंभूके देहादिके आकारमें किंचित् स्फूरणरूप विषयाकारको संकल्पसे धारण करते है ॥ ४ ॥

कलनाद्घनतामेत्ययत्किंचिदिवसास्वयम् ॥ संकल्पयतिपश्चात्तत्तत्तामेतिमनःपदम् ॥ ५ ॥ मनस्सं कल्पमात्रेणगंधर्वपुरवत्क्षणात् ॥ तनोतीदमसदृश्यंब्राह्मींस्थितिमिवत्यजत् ॥ ६ ॥ चित्स्वरूपंपरिक चच्छून्यमेवावतिष्ठते ॥ यत्तदृश्यंस्थितंतत्स्यादृश्यमाकाशमेवतत् ॥७॥ कृत्वापद्मजसंकल्परूपंपश्य तिपद्मजम् ॥ ततोजगत्कल्पयतिसप्रजापतिपूर्वकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस संकल्पसे वही चिद्‌घनताको प्राप्त होती है उसके पश्चात् उसी घनताको मन तथा जीव उपाधि-

रूपसे संकल्प करती है ॥ ५ ॥ मनके संकल्पमात्रसे गंधर्वनगरके समान क्षणभरमें अपनी ब्राह्मी दृगूरूपताको त्याग करते हुयेके समान इस असद् दृश्यका विस्तार करती है ॥ ६ ॥ चारों ओरसे प्रकाशमानही चित्स्वरूप परंतु आभ्यंतर दृष्टिसे शून्यकेही समान स्थितहै, और यह जो दृश्य स्थितहै वह अपनेही रूपसे स्थितहै और सब जनोंकी दृष्टिमें प्रसिद्ध आकाशही है ॥ ७ ॥ वही चिद्ब्रह्माका संकल्प करके अपनेको ब्रह्मारूप देखती है, उसके अनन्तर दशों प्रजापतियोंसहित जगत्की कल्पना करती है ॥ ८ ॥

चतुर्दशविधानंतभूतजातसघुंघुमा ॥ सृष्टिरेवमियंरामचित्तनिर्मितिमागता ॥ ९ ॥ चित्तमात्रमयीशून्याव्योममात्रशरीरिका ॥ संकल्पमात्रनगरीभ्रांतिमात्रात्मिकासती ॥ १० ॥ इहकाश्चिन्महामोहाभूतानांजातयःस्थिताः ॥ काश्चिदभ्युदितज्ञानाःकाश्चिन्मध्येस्खलंतिहि ॥ ११ ॥ भुविसंबध्यमानानायांत्येनामुपदेश्यताम् ॥ सर्वासांभूतजातीनांयाएतानरजातयः ॥ १२ ॥

अर्थ—चौदह भुवनोंमें अनन्त प्राणियोंकी जातिरूप यह सृष्टि हे रामजी ! चित्तसेही रचनाको प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ यह सृष्टि चित्तमात्र आकाशके तुल्य शून्य शरीरवाली, संकल्पकी नगरीके समान, भ्रांतिमात्र कल्पितहै ॥ १० ॥ इस ब्रह्माण्डमें कोई प्राणियोंकी जाति महामोहवाली हैं और कुछ ज्ञानवाली हैं और कोई विघ्नोंके कारण बीचमेंही गिर जाती हैं ॥ ११ ॥ संसारमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी जातिमें पृथिवीमें जिनका संबन्धहै उनमेंसे भरतखंडमें स्थित जो मनुष्यकी जातिहैं वेही वैराग्यादिके कारण उपदेशके योग्यहै ॥ १२ ॥

बह्वाधयोदुःखमयामोहद्वेषभयातुराः ॥ तासांसम्यक्प्रवक्ष्यामितावद्राजससात्विकीः ॥ १३ ॥ यत्तदत्यमृतंब्रह्मसर्वव्यापिनिरामयम् ॥ चिदाभासमनंताख्यमनादिविगतभ्रमम् ॥ १४ ॥ निस्पंदवपुषस्तस्यस्पंदःसत्तैकदेशतः ॥ घनतामेतिसौम्येऽब्धौचलताचलतामिव ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्यएकदेशःकउच्यते ॥ कथंविकारितावास्यात्कथंवाद्वयविक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—उन जातियोंमेंसे कितने मानसी चिंताग्रस्त दुःखमय मोह राग द्वेष तथा भयसे आतुर रहती हैं, इनमेंसे राजस और सात्विक जातियोंको ४२ के सर्गमें मैं भलीभांति निरूपण करूंगा ॥ १३ ॥ और जो अमृत सर्वव्यापी निरामय चिदाभास भ्रमरहित अनादि तथा अनन्त ब्रह्महै उसकोभी उसी स्थलमें कहूंगा ॥ १४ ॥ स्पन्दरहित शरीरवाले उस परमात्माका स्पन्द (चेष्टा विशेष) निश्चल समुद्रमें चंचल तरंगोंकी चंचलताके समान सत्ताके एक देशसे जैसे जीवभावसे घनताको प्राप्त होताहै वहभी उसी स्थलपर वर्णन करूंगा ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! अनन्त आत्मतत्वका एक देश कौन और कैसे होताहै; और उसकी विकारिता कैसे होती है और अद्वितीय आत्मामें स्पन्द (गति) कैसे ? ॥ १६ ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ तेनजातंततोजातमितीयंरचनागिराम् ॥शास्त्रसंव्यवहारार्थंनरामपरमार्थतः॥१७॥ विकारितावयवितादिक्सत्तादेशतादयः ॥ क्रमानसंभवंतीशेदृश्यमानोदयाअपि ॥ १८ ॥ तंविनाकल्पनैवान्यानास्तिनापिभविष्यति ॥ कुतस्त्यौक्रमशब्दार्थावुक्तयोव्यवहारजाः ॥ १९ ॥ यायेहकलनायोर्थोयःशब्दोयोगिरांगणः ॥ तज्जत्वात्तन्मयत्वाच्चतत्तत्पदमिवेष्यते ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—उस परमात्माके द्वारा वा उससे उत्पन्न हुआ यह बाणियोंकी रचना शास्त्रके व्यवहारके लिये है न कि परमार्थसे ॥ १७ ॥ विकारिता, अवयविता, दिक्सत्ता, और एक देशता आदि क्रम प्रत्यक्ष रूपसे दृश्यमानभी परमात्मामें सम्भव नहीं है ॥ १८ ॥ उस चित् प्रकाशके विना अन्य कल्पना न है और न होगी तो क्रम शब्द तथा उसका अर्थ (कार्य कारण) कहां, और व्यवहारसे उत्पन्न उक्तिभी कहांसे होसकती हैं ॥१९॥ इस जगत्में जो कुछ कल्पनाहै जो अर्थ तथा शब्दहैं और जो वाक्यके गणहैं, ये सब उससे उत्पन्न होनेसे तन्मय होनेसे सद्वस्तु रूपही हैं ॥ २० ॥

तज्जःसएवभवतिवह्नेर्वह्निरिवोत्थितः ॥ जन्योयंजनकश्चायमित्युक्ताभेदकल्पना ॥२१॥ अयमस्मात्समुत्पन्नइतीयंयाजगत्स्थितिः ॥ आधिक्यंतत्क्रियाशक्तौजन्यंजनकमेववा ॥ २२ ॥ इदमन्यदिदंचान्यदितिशब्दार्थविक्लवः ॥ उक्तावेवनदेवेस्तिप्रमितौभिन्नतायतः ॥ २३ ॥ तज्जयैवमनःशक्त्यास्वतस्संज्ञाप्रवर्त्तते ॥ दृढभावनयातस्मादिष्टोर्थःप्रतिपद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अग्निसे उत्पन्न अग्निही होताहै ऐसेही परमात्मासे उत्पन्न परमात्मरूपही है, यह जन्य और जनक है इसप्रकार भेदकी कल्पना मिथ्याही कही गई है ॥ २१ ॥ यह द्वीप वा लोक इससे उत्पन्न हुआ यह जो जगत्की

स्थितिहै, वह मायाकी शक्तिसे जैसे एक दीपसे दूसरे दीपकी रचना होती है ऐसेही आत्माकी क्रियाशक्तिमें जो अधिकताहै वही जन्यजनक द्विधारूपसे भासती है ॥ २२ ॥ यह अन्यहै यह अन्यहै यह जो शब्द अर्थके व्यवहारका क्रमहैं वह बाणीमात्रमें है न कि परमात्मामें, क्योंकि परिच्छेद होनेसे भिन्नता होती है ॥ २३ ॥ ब्रह्मसे उत्पन्न मनकी शक्तिद्वारा स्वभावसेही नामका विभाग प्रवृत्त होताहै और मनकीही दृढभावनासे जगत्का व्यवहार होताहै ॥ २४ ॥

अग्नेःशिखायाएकस्याद्वितीयाजनकेतिया ॥ उक्तिवैचित्र्यमेवैतन्नोक्त्यर्थेत्रास्तिसत्यता ॥ २५ ॥ नजन्यजनकाद्यास्ताःसंभवंत्युक्तयःपरे ॥ एकमेवह्यनंतत्वात्किकथंजनयिष्यति ॥ २६ ॥ उक्तेरेवस्वभावोयमुक्तेरुक्तिरनंतरम् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्याद्यर्थेनयुज्यते ॥ २७ ॥ ऊर्मिजालमिवांभोधौपरेयःपरिदृश्यते ॥ शब्दोर्थकलनाकारस्तद्ब्रह्मैवविदुर्बुधाः ॥ २८ ॥

अर्थ—अग्निकी एक शिखाकी दूसरी शिखा जनक होती है यह कथनकी विचित्रताहै इसमें कुछ सत्यता नहीं है ॥ २५ ॥ परमात्मामें जन्य और जनकादि कथनका सम्भव नहीं है क्योंकि एकही परमात्मा कैसे और किसको उत्पन्न करेगा ॥ २६ ॥ यह उक्तिका स्वभावहै कि एक उक्तिके अनन्तर दूसरी उक्ति उसकी विरोधी भिन्न और द्वित्वादि संख्यायुक्त होती है ॥ २७ ॥ जैसे समुद्रमें तरंगसमूह देखपडताहै ऐसेही शब्द अर्थकी कल्पनाका आकारहै इसको पण्डितजन ब्रह्मही कहते हैं ॥ २८ ॥

ब्रह्मचिद्ब्रह्मचमनोब्रह्मविज्ञानवस्तुच ॥ ब्रह्मार्थोब्रह्मशब्दश्चब्रह्मचिद्ब्रह्मधातवः ॥ २९ ॥ ब्रह्मसर्वमिदंविश्वंविश्वातीतंचतत्पदम् ॥ वस्तुतस्तुजगन्नास्तिसर्वंब्रह्मैवकेवलम् ॥ ३० ॥ अयमन्योयमन्योयंभागइत्यंबरात्मनि ॥ मिथ्याज्ञानविकल्पोक्तिर्वाचिसत्यार्थतात्रका ॥ ३१ ॥ वह्नेःशिखेवजातेयंशिखेतिमनसोभिधा ॥ चापलोत्थविकल्पश्रीर्वस्तुतःस्यान्नसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रत्यगात्मा ब्रह्मही है, मन और बुद्धिके भेद ब्रह्मही हैं शब्द और अर्थ ब्रह्मही हैं, ईश्वर व साक्षी चेतनब्रह्मही है तथा सबमें तत्वबस्तु ब्रह्मही है ॥ २९ ॥ यह सब विश्व ब्रह्मरूपही है और ब्रह्मपद विश्वसे परेभी हैं क्योंकि यथार्थमें जगत् कुछ नहीं है सब केवल ब्रह्मही है ॥ ३० ॥ यह अन्यहै यह अन्यहै यह विभाग आकाशरूप परमात्मामें नहीं है, यह मिथ्या ज्ञानकी विकल्पोक्ति वाणी मात्रमें हैं इसमें सत्यार्थता कहां ॥ ३१ ॥ अग्निकी शिखासे दूसरी अग्निकी शिखा उत्पन्न हुई इसीप्रकार ब्रह्मसे मनकी संज्ञाहै और मनकी चपलतासे उत्पन्न विकल्पकी श्री नित्य सिद्ध कूटस्थ ब्रह्ममें सिद्ध नहीं हो सक्ती ॥ ३२ ॥

असत्यैवविकल्पोक्तिःसत्यभावोविकल्पते ॥ तमोपहतदृष्टित्वाद्द्विचंद्रज्ञानदोषवत् ॥ ३३ ॥ सर्वस्मात्सर्वगात्तस्मादनंताद्ब्रह्मणःपदात् ॥ नान्यत्किंचित्संभवतितदुत्थंयत्तदेवतत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मतत्त्वंविनानेहकिंचिदेवोपपद्यते ॥ सर्वंचखल्विदंब्रह्मेत्येषैवपरमार्थता ॥ ३५ ॥ एवंप्रायश्चहेप्राज्ञसिद्धांतस्तेभविष्यति ॥ तत्रैवोदाहरिष्यामःसिद्धांतार्थोक्तिपंजरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह विकल्पकी उक्ति असत्यही है और भ्रांत दृष्टिसे दो चंद्रके ज्ञानके दोषके समान सत्यस्वरूप ब्रह्ममें विकल्प कियाजाताहै ॥ ३३ ॥ सर्व रूपसर्वव्यापी उस अनंत ब्रह्मपदसे अन्य किसीका संभव नहीं और जो कुछ उससे आविर्भूत होताहै वह ब्रह्मरूपहीहै ॥ ३४ ॥ ब्रह्मतत्वके विना कुछभी उत्पन्न नहीं होसकता यह सब ब्रह्महीहै यही कथन यथार्थहै हे प्राज्ञ रामजी ! इत्यादि सिद्धांत तुमारी बुद्धिमें पीछेसे स्थित होगा और यह सिद्धान्तार्थकी उक्तिका पंजर हम निर्वाण प्रकरणमें निरूपण करेंगे ॥ ३५ ॥ इस परमार्थतामें अविद्यादिकका संचार सर्वथा नहीं है इन संपूर्ण अर्थोंको उन २ अज्ञानोंके नष्ट होनेपर तुम भलीभांति जानोंगे ॥ ३६ ॥

इहाविद्यादिकाःकेचिद्दिव्यंतेनेतरक्रमाः ॥ ज्ञास्यस्यलमशेषार्थांस्तत्तदज्ञानसंक्षये ॥ ३७ ॥ अवस्तुसंक्षयेवस्तुयथावस्तुप्रसीदति ॥ यथाचदृश्यतेदृश्यंजगन्नैशतमःक्षये ॥ ३८ ॥ यदिदमखिलमाततंकुदृष्ट्यातदुपशमेतवरामनिर्मलाभे ॥ अवितथपदनिर्मलेभविष्यत्यवितथमेवनसंशयोत्रकश्चित् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे ब्रह्मैवेदंसर्वजगदितिप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—वस्तुकी मलिनताके नष्ट होजानेपर जैसे वस्तुका यथावत्रूप प्रगट होताहै और जैसे रात्रिके अंधकारके नाश होजानेपर यह दृश्य जगत् देख पडताहै ऐसेही अज्ञान नाश होनेसे ब्रह्मपद भान होताहै ॥ ३८ ॥ अज्ञान

दुषित दृष्टिसे यह जो विशाल जगत् भान होताहै उसके शांत होनेपर हे रामजी ! दर्पणके समान निर्मल सत्य परमपदमें तुह्मारी बुद्धि निश्चय करके स्थित होगी ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मैवेदंजगदितिप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

कल्पनादि विशेषोंका मायामूलहै और वह माया अनिर्वचनीय प्रतिकार करनेके योग्य अविचिंत्य और मृषाहै इत्यादि विषयका वर्णन इस ४१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ क्षीरोदकुक्षितुल्याभिःशीतलामलदीप्तिभिः ॥ तवोक्तिभिर्विचित्राभिर्गंभीराभिरिवाभितः ॥ १ ॥ क्षणमांध्यमिवाप्नोमिक्षणंयामिप्रकाशताम् ॥ शांतातपलवःप्रावृड्लोलाभ्रइववासरः ॥ २ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्यसर्वस्यैकस्यभास्वतः ॥ अनस्तमितसारस्यकलनाकथमागता ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथाभूतार्थवाक्यार्थाःसर्वाएवममोक्तयः ॥ नासमर्थाविरूपार्थाःपूर्वापरविरोधदाः॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! शीतल और निर्मल प्रकाश युक्त चंद्रमाके तुल्य विचित्र और चारों ओरसे गंभीर अर्थवाली आपकी युक्तियोंसे ॥ १ ॥ क्षणभरके लिये तो अन्धताको क्षणभरके लिये प्रकाशताको मैं ऐसे प्राप्त होताहुं जैसे वर्षाकालमें चंचल मेघ और शांत आतपयुक्त दिन ॥ २ ॥ हे प्रभो अनंत अप्रमेय पूर्ण सदा प्रकाशमान एकरस और उदित परमार्थ स्वरूप परमात्मामें विकारकी कल्पना कैसे आई ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! मेरी संपूर्ण उक्ति सत्यार्थ हैं उनमेंसे कोईभी आकांक्षा व योग्यता रहित नहींहैं और न उनमेंसे कोई महा वाक्यके संबंधसे रहित हैं और न उनमें पूर्वापर विरोधहै ॥ ४ ॥

ज्ञानदृष्टौप्रसन्नायांप्रबोधेविततोदये ॥ यथावज्ज्ञास्यसिस्वस्थोमद्वाग्दृष्टिबलाबलम् ॥ ५ ॥ उपदेश्योपदेशार्थशास्त्रार्थप्रतिपत्तये ॥ शब्दार्थवाक्यरचनाभ्रमोमातन्मयोभव ॥ ६ ॥ यदापुराज्ञास्यसितत्सत्यमत्यंतनिर्मलम् ॥ वाच्यवाचकशब्दार्थभेदंत्यक्ष्यसिवैतदा ॥ ७ ॥ भेदकृद्वाक्प्रपंचोयमुपदेश्येषुकल्पितः ॥ उपदेश्योपदेशार्थशास्त्रार्थप्रतिपत्तये ॥ ८ ॥

अर्थ—ज्ञानकी दृष्टि प्रसन्न होनेपर और ज्ञानके अच्छीतरहसे उदय होनेपर स्वस्थ चित्त होकर तुम मेरे वचनोंका बलाबल दूसरेके बचनोंकी दृष्टिके अपेक्षा यथावत् जानोगे ॥ ५ ॥ असत्य शब्दार्थ सहित वाक्योंकी रचनाका भ्रमभी सत्य अर्थके ज्ञानमें हेतु होताहै जैसे स्वप्नादि, इसलिये उपदेश वस्तुके उपदेशार्थ यह वाग्जालका प्रपंचहै तुम मिथ्या भ्रममय मतहो ॥ ६ ॥ जब तुम अत्यंत निर्मल सत्यपदको आगे जानजाओगे तब तुम वाच्यवाचक शब्द अर्थके भेदोंको त्यागदोगे ॥ ७ ॥ उपदेश्य और उपदेशार्थ सत्य शास्त्रार्थके बोधकेलिये यह भेदकारक वाणीका प्रपंच उपदेश करने योग्य अज्ञ पुरुषोंकेलिये कल्पित कियाहै ॥ ८ ॥

शब्दार्थवाक्प्रपंचोयमुपदेशेषुकल्पितः ॥ सदाज्ञेषुनतज्ज्ञेषुविद्यतेपारमार्थिकः ॥ ९ ॥ कलनामलमोहादिकिंचिन्नात्मनिविद्यते ॥ नीरागंब्रह्मपरमंतदेवेदंजगत्स्थितम् ॥ १० ॥ एतद्विचित्ररूपाभिर्युक्तिभिर्बहुशःपुनः ॥ विस्तरेणैववक्तव्यंसिद्धांतावसरेनघ ॥ ११ ॥ वाक्प्रपंचंविनात्वेतदज्ञानमतुलंतमः ॥ भेत्तुमन्योन्यमुदितंयत्नंकर्तुंनशक्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा अज्ञ पुरुषोंकेलिये उपदेशमें शब्दार्थ वाणीका प्रपंच यह कल्पित किया गयाहै ॥ ९ ॥ चित्की विषयकी ओर उन्मुखता, पूर्व संस्कार तथा कर्म और मोहादि आत्मामें कुछ नहींहै, परंतु ब्रह्मराग रहित है और उसी रूपसे यह जगत्भी स्थित है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! यह वार्ता विचित्र रूपसे अनेक युक्तियोंसे सिद्धांतके समय कहूंगा ॥ ११ ॥ साधन अज्ञान और मूल अज्ञानरूपी तम परस्परकी सहायतासे सहस्रों शाखा रूपसे उदित हैं उसको भेदन करनेकेलिये वाक् प्रपंचके शिवाय कोईभी यत्न नहीं करसकते ॥ १२ ॥

अविद्ययैवोत्तमयास्वात्मनाशोद्यमेच्छया ॥ विद्यासाप्रार्थ्यतेरामसर्वदोषापहारिणी ॥ १३ ॥ शाम्यतिह्यस्त्रमस्त्रेणमलेनक्षाल्यतेमलः ॥ शमंविषंविषेणैतिरिपुणाहन्यतेरिपुः ॥ १४ ॥ ईदृशीराममायेयंयास्वनाशेनहर्षदा ॥ नलक्ष्यतेस्वभावोस्याःप्रेक्ष्यमाणैवनश्यति ॥ १५ ॥ विवेकमाच्छादयतिजगंतिजनयत्यलम् ॥ नचविज्ञायतेकैषापश्याश्र्वर्यमिदंजगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अनेक जन्मोंके सुकृतोंसे संचित शुद्ध अंतःकरणकार रूपसे परिणत अपने नाशार्थ उद्यत उत्तम अविद्याद्वारा (उपदेशादिवाक् प्रपंचद्वारा) सर्व दोषनाशिनी विद्याकी प्रार्थनाकी जातीहै ॥१३॥ अस्त्रकी शांती अस्त्रसे होतीहै क्षाररूपमलसे मलका शोधन होताहै विषकी शांति बिषसे होती है और शत्रुका नाश शत्रुसे होताहै, ऐसे अविद्यासे अविद्या नष्ट होतीहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यह माया ऐसीहै कि अपने नाशसे आनंद देतीहै और इसका स्वभाव लक्षित नहीं होता, परंतु दृष्टिपथमें आतेही नष्ट होजातीहै ॥ १५ ॥ यह माया विवेकको आच्छादन करती है और अनेक जगत्को उत्पन्न करतीहै परंतु यह नहीं जानाजाता कि यह कौनहै, देखो कैसा असंभावित आश्चर्यमय यह जगत् इसीका कार्य है ॥ १६ ॥

अप्रेक्ष्यमाणास्फुरतिप्रेक्षितातुविनश्यति ॥ मायेयमपरिज्ञायमानरूपैववल्गति ॥ १७ ॥ अहोनुखलु चित्रेयंमायासंसारबंधनी ॥ असत्येवातिसत्येवस्वज्ञानंविहितंतया ॥ १८ ॥ अत्यभिन्नपदेतस्मिस्त न्वानाभेदमाततम् ॥ संसारमायायेनासौतेनासौपुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ नास्त्येषापरमार्थेनत्वेवंभावन येद्धया ॥ ज्ञोभूत्वाज्ञेयसंप्राप्तोज्ञास्यस्यस्यास्त्वमाशयम् ॥ २० ॥

अर्थ—अदृष्ट होनेसे यह स्फुरती है और दृष्ट होनेसे तो नष्ट होजाती है यह माया अपरिज्ञातरूपही गर्जती है ॥ १७ ॥ अहो ! यह विचित्र संसारके बंधनको देनेवाली कैसी अपूर्व मायाहै और असत्यही सत्यके समान भासती है देखो इसने कैसा ज्ञान रचाहै ॥ १८ ॥ यह अक्षर माया अति अभिन्न परमपद आत्मामें नश्वर विशाल भेदको विस्तार करती है, इसीसे यह आत्माक्षर अक्षररूप जो पुरुष उससे अतीत पुरुषोत्तमरूपहै ॥ १९ ॥ परमार्थरूपसे यह नहीं है और आचार्य, वेद, तर्क, और अपने अनुभवसे प्रदीप्त भावनासे ज्ञानी होकर तुम ज्ञेय आत्मस्वरूपको जानोंगे और तब मेरे बचनके आशयकोभी समझोगे ॥ २० ॥

यावत्तुनप्रबुद्धस्त्वंतावन्मद्वचसैवते ॥ निश्चयोभवतूद्रामोनास्त्यविद्येतिनिश्चलः ॥ २१ ॥ यदिदंदृश्यतांयातंमानसंमननंमहत् ॥ असन्मात्रमिदंयस्मान्मनोमात्रविजृंभितम् ॥ २२ ॥ सत्तद्रह्मेतिय स्यांतर्निश्चयःसोपिमोक्षभाक् ॥ चलाचलाकृतिर्यायादृष्टिराबद्धभावना ॥ २३ ॥ सासमग्रजगद्भूतख गबंधनवागुरा ॥ यःस्वप्नभूमिवद्भ्रांतमसत्सद्वैकनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—जबतक तुमको बोध नहीं है तबतक हमारे बचनहीसे तुमको यह निश्चय होकि अविद्या नहींहै ॥२१॥ जो यह मन संबंधी मनका विशाल मननरूप दृश्यभावको प्राप्त हुआ है यह सब असन्मात्र है, क्योंकि यह सब मनका विलासमात्रहै ॥ २२ ॥ जिसके अंतःकरणमें यह निश्चय है कि यह जगत् मायामय मिथ्या है वहभी मोक्षका भागी है और चलअचल आकृतिवाली वध्यभावना सहित जो २ दृष्ट है ॥ २३ ॥ वह २ संपूर्ण जगत्के प्राणीरूप पक्षियोंके बंधनके अर्थजाल है और जो प्राणी अतीत अनागत और वर्तमान जगत्के विषयमें असत् वा सद्रूपसे एक दृढनिश्चय करके ॥ २४ ॥

जगत्पश्यत्यसक्तात्मानसदुःखेनिमज्जति ॥ यस्यैतास्वस्वरूपासुभावनास्वात्मभावना ॥ २५ ॥ अस्व रूपस्यतस्यापिसाह्यविद्यैवविद्यते ॥ विकारितादयोदोषानकेचनमहात्मनि ॥ २६ ॥ परमात्मनिविद्यं तेपयसीवेहपांसवः ॥ भावनाशब्दशब्दार्थरंजनेथंजगद्गता ॥ २७ ॥ व्यवहारार्थमुत्पन्नाव्यतिरिक्ताच नात्मनः ॥ अनेनव्यवहारेणविनैताःशास्त्रदृष्टयः ॥ २८ ॥

अर्थ—असक्तदृष्टिसे जगत्को देखताहै वह दुःखोंमें नहीं निमग्न होता जिस पुरुषको देह इन्द्रियादिकमें अहंभावना है ॥ २५ ॥ वही पुरुष अपने एकरूपको न जाननेसे अविद्यावान्है और वही दुःखोंमें डूबताहै विकारतादिक दोष परमपदमें ऐसे नहीं है ॥ २६ ॥ जैसे समुद्रमें रज और नाम और रूपमें जो चित्की भावनाहै वह स्फटिक मणिके सदृश तत्कालिक रागके सदृश है ॥ २७ ॥ और यह रंजना व्यवहारकेलिये उत्पन्नहै और आत्मासे पृथक् नहीं है इस व्यवहारके बिना शास्त्रकी दृष्टि ॥ २८ ॥

संस्थितिंनाधिगच्छंतिपटाइववितंतवः ॥ उह्यमानोह्यविद्यायामात्मानेहोपलक्ष्यते ॥ २९ ॥ आत्मज्ञा नादृतेतच्चशास्त्रार्थात्समवाप्यते ॥ अविद्यासरितःपारमात्मलाभादृतेकिल ॥३० ॥ रामनासाद्यतेतद्धि पदमक्षयमुच्यते ॥ यतःकुतश्चिज्जातेयमविद्यामलदायिनी ॥ ३१ ॥ नूनंस्थितिमुपायातासमासाद्यप दंस्थिता ॥ कुतोजातेयमितितेराममास्तुविचारणा ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसे संस्थितिको नहीं प्राप्त होती जैसे बिना सूत्रके पट, अविद्यामें बहता हुआ आत्मा इस संसारमें

आत्मज्ञानके बिना अनुभूत नहीं होता ॥ २९ ॥ और आत्मज्ञानका अनुभव शास्त्रके अर्थोंसे प्राप्त होताहै हे रामजी ! अविद्यारूपनदीके पार आत्मलाभके बिना नहीं प्राप्त होसकता ॥ ३० ॥ वही आत्मलाभ अक्षयपद कहा जाताहै यह अविद्या जहां कहींसे प्राप्त हुई हो परन्तु अविद्यारूपी मलको देनेवाली है ॥ ३१ ॥ और यह हृदयरूपी स्थानको प्राप्त होकर स्थितिको प्राप्त हुई है हे रामजी ! यह अविद्या कहांसे उत्पन्न हुई है यह विचार तुमको मत हो ॥ ३२ ॥

इमांकथमहंहन्मीत्येषातेऽस्तुविचारणा ॥ अस्तंगतायांक्षीणायामस्यांज्ञास्यसिराघव ॥ ३३ ॥ यतए षायथाचैषायथानश्यत्यखंडितम् ॥ वस्तुतःकिलनास्त्येषाविभात्येषानवेक्षिता ॥ ३४ ॥ असतोभ्रांततां सत्यरूपांजानातुकःकुतः ॥ जातेयंप्रौढिमापन्नादोषयैवाततात्कृतिः ॥ ३५ ॥ बलात्प्रणाशयत्वेनांपरि ज्ञास्यसिवैततः ॥ अपिशूराअतिप्राज्ञास्तेनसंतिजगत्रये ॥ ३६ ॥

अर्थ—किंतु इसको मैं कैसे मारूं यही विचार तुमको हो इसके तत्त्वको इसके अस्त तथा क्षीण होनेपर तुम जानोगे ॥३३॥ जहांसे यह आई और जैसी यह है और जैसे यह नष्ट होती है यह पूर्ण रीतिसे तुमको भान होजावेगा, यथार्थमें यह नहीं है बिना देखेही यह प्रकाशित होरही है ॥ ३४ ॥ असत् पदार्थकी भ्रांतिता वा उसकी सत्यरूपता कौन कहांसे जानसकताहै, यह उत्पन्न होकर विशाल आकारवाली प्रौढताको दोषकेहीलिये प्राप्त हुई है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसको बलसे नष्ट करो तब इसको जानोगे बडे २ बुद्धिमान्भी शूरवीर तीनोंलोकमें ऐसे नहीं है ॥३६॥

अविद्ययायेपुरुषाननामविवशीकृताः ॥ तदस्यारोगशीलायायत्नंकुरुविनाशने ॥ ३७ ॥ यथैषाजन्मदुः खेषुनभूयस्त्वांनियोक्ष्यति ॥ सर्वापदामेकसखीमज्ञानतरुमंजरीम् ॥ अनर्थसार्थजननीमविद्यामलमु द्धर ॥३८॥ भयविषादद्दुराधिविपत्प्रदांहृदयमोहमहापटलांकुराम् ॥ भृशमपास्यकुदृष्टिमिमांबलाद्भवभ वार्णवपारमुपागतः ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विद्याकथनं नामैकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो अविद्याके वशीभूत न हुये हों इसलिये रोगरूप इस अविद्याके नाश करनेमें यत्न करो ॥ ३७ ॥ जिसमें कि तुमको पुनः यह जन्मके दुःखमें न डाले, यह अविद्या सम्पूर्ण आपत्तियोंकी मुख्य सखी, अज्ञानरूपी वृक्षकी लता, और अनर्थरूपी समूहकी माताहै इसलिये इस अविद्यारूपी मलसे अपना उद्धार करो ॥ ३८ ॥ भय-विषाद दुष्ट मानसी चिंतायें तथा विपत्तियोंको देनेहारी, और हृदयके मोहका महापटलका अंकुर, यह कुदृष्टिरूप जो अविद्याहै इसको भलीभांति दूर करके संसाररूपी समुद्रके पार प्राप्त हो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे अविद्याकथनं नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अनंत शक्ति महा चित्‌की क्रमसे वासनाकी घनता, और जीवरूप होनेका क्रम विस्तारसे निरूपण इस ४२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुपितस्यासतोप्यस्यप्रेक्षामात्रविनाशिनः ॥ अविद्याविततव्याधेरौषधंशृणुरा घव ॥ १ ॥ यांतांकथयितुंजातिंरामराजससात्विकीम् ॥ मनोवीर्यविचारार्थंप्रस्तुतोस्मीहतांशृणु ॥२॥ यत्तदप्यमृतंब्रह्मसर्वव्यापिनिरामयम् ॥ चिदाभासमनंताख्यमनादिविगतभ्रमम् ॥ ३ ॥ चित्स्पंदव पुषस्तस्यस्पंदस्तस्माच्चिदेवहि ॥ प्रदेशाद्घनतामेतिसौम्योब्धिश्चलनादिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राघव ! दृष्टिपातमात्र (विचारमात्र) से विनाशी, और असत् होनेसेभी कुपित होके अनेक अनर्थजनक इस विशाल अविद्यारूप रोगका औषध सुनिये ॥ १ ॥ हे रामजी ! ४० के सर्गमें जो राजस और सात्विक जातिके वर्णनकी प्रतिज्ञा की थी सो मनके पराक्रमके निरूपण करनेकेलिये मैं सन्नद्धहुं आप सुनिये ॥ २ ॥ जो अमृत, सर्वव्यापी, निरामय, अनादि, अनंत और भ्रमशून्य, चिद्ब्रह्महै ॥ ३ ॥ उस चेतनमात्र शरीरवाले ब्रह्मका स्पंद (चलनात्मक क्रियाविशेष) चिद्रूपही है वह औपाधिक एकदेशसे दूसरे देशमें ऐसे दौडताहै जैसे शांत समुद्र तरंगादिरूपसे ॥ ४ ॥

अंतरब्धेर्जलंयद्वत्स्पंदास्पंदवदीहते ॥ सर्वशक्तिस्तथैकत्रगच्छतिस्पंदशक्तिताम् ॥ ५ ॥ आत्मन्येवा त्मनाव्योम्नियाथासरतिमारुतः ॥ तथेहात्मात्मशक्त्यैवस्वात्मन्येवैतिलोलताम् ॥ ६ ॥ स्वशिखास्पंद शक्त्यैवदीपःसौम्योयथोन्नतम् ॥ एतितद्वदसावात्मातत्स्वेवपुषिवल्गति ॥ ७ ॥ जलांतरंबुधिर्यद्वल्लस द्वारविचंचलः ॥ सर्वशक्तिर्वपुष्येवतथास्पंदविलासवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रादिमें जल किसी एक देश (बहिर्भाग स्पन्दसहित) में अन्यत्र स्पन्दरहित चेष्टा करताहै ऐसेही सर्वशक्तिमान् ब्रह्मभी एक देशमें (कल्पित) स्पन्द (क्रिया) शक्तिताको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ जैसे आका-शमें वायु अपने आत्मासे अपने आत्माहीमें गमन करताहै इसीप्रकार स्वतः कूटस्थभी आत्मा इस संसारमें अपनेही स्वरूपमें अध्याससे चंचलताको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ जैसे वायु आदिके विक्षेपसे शून्यभी दीप अपनी शिखाको श-क्तिसेही ऊर्ध्वदेशको प्राप्त होताहै ऐसेही अपनी शक्तिसे अपनेही रूपमें आत्मा जगत् जीवादिरूपसे प्रकाश करताहै ॥ ७ ॥ जैसे शरद् वा आतप आदिके संबंधसे शोभित जल प्रदेशमें जलके भीतरही समुद्र चंचलके सदृश भान होताहै ऐसेही सर्वशक्तिमान् आत्मा अपने स्वरूपके कल्पित एक देशमें क्रियाशक्तिके विलाससे संयुक्त होताहै ॥ ८ ॥

यथोल्लसतिभाश्चक्रैःकचन्कनकसागरः ॥ तथात्मनिपरिस्पंदैःस्फुरत्यक्षैश्चिदर्णवः ॥ ९ ॥ लक्ष्यते मौक्तिकस्पंदोयथाव्योम्निदृशोऽदृशि ॥ तथाभातिलसद्रूपाचिच्छक्तिश्चिन्महांबरे ॥ १० ॥ किंचित्क्षु भितरूपासाचिच्छक्तिश्चिन्महार्णवे ॥ तन्मयीचित्स्फुरत्यच्छातत्रैवोर्मिरिवार्णवे ॥ ११ ॥ आत्मनोऽ व्यतिरिक्तैवव्यतिरिक्तेवतिष्ठति ॥ आलोकश्रीरिवालोककोटरेयत्ततांगता ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे शरद् आतप आदिके दीप्तिसमूहोंसे देदीप्यमान द्रवीभूत सुवर्णके सदृश सागर स्फुरित होताहै ऐसेही इन्द्रियोंके प्रकाशोंसे चिद्रूप समुद्र स्फुरित होताहै ॥ ९ ॥ जैसे अतीन्द्रिय आकाशमें मोतियोंका समूह दृ-ष्टिगत होताहै ऐसेही अतीन्द्रिय चिदाकाशमें शोभायमान चित्शक्ति स्फुरित होती है ॥ १० ॥ जब चिद्रूप महा समुद्रमें वह चित्शक्ति किंचित् क्षुभित होती है तब स्वच्छ चिद्वी तन्मय होके उसीमे ऐसे स्फुरित होती है जैसे समुद्रमें तरंग ॥ ११ ॥ इन्द्रिय संबंधिनी चित्शक्ति आत्म चित्शक्तिसे भिन्न नहीं है परन्तु भिन्नके समान स्थितहै, और उपाधिकृत परवशताको ऐसे प्राप्तहै जैसे सूची पाशादिके कल्पित आलोक(प्रकाश)के छिद्रमें आलोककी शोभा १२

क्षणंस्फुरतिसादेवीसर्वशक्तितयातया ॥ चेततिस्वांस्वयंशक्तिकलेंदोःशीततामिव ॥ १३ ॥ उदितैषा प्रकाशाख्याचिच्छक्तिःपरमात्मनः ॥ देशकालक्रियाशक्तीर्वयस्याःसंप्रकर्षति ॥ १४ ॥ स्वस्वभावंवि दित्वैवमनाद्यंतपदेस्थिता ॥ रूपंपरिमितेवासौभावयत्यविभाविता ॥ १५ ॥ यदेवंभावितंरूपंतयापर मसत्तया ॥ तदैवैनामनुगतानामसंख्यादिकादृशः ॥ १६ ॥

अर्थ—वह चित् शक्तिरूप देवी उस अपनी सर्वशक्तिताके कारणसे क्षण (काल) रूपसे स्फुरित होती है, और इस अपनी कालिक शक्तिको स्वयं ऐसे द्योतित करती है जैसे चंद्रमाकी कला शीतताको ॥ १३ ॥ यह परमा-त्माकी प्रकाश नामिका चित्शक्ति उदयको प्राप्त होके देशकाल आदि क्रिया शक्तिरूप अपनी सखियोंको खींच लेती है ॥ १४ ॥ यह चित्शक्ति अपने स्वभावको जानकर आदि अंतशून्य परमात्मपदमें स्थितहै और अविचारित पूर्वोक्त कल्पितरूपको भ्रांतिसे अपना स्वभाव मानकर मैं परिच्छिन्नहुं ऐसी अपने आत्माकी दृढभावना करतीहै॥१५॥ जिससमय उस परमसत्ताने पूर्वोक्त परिच्छिन्न अपना रूप निश्चित किया उसीसमय नाम संख्या तथा प्राण इंद्रि-यादि इसमें अनुगत होती हैं ॥ १६ ॥

चिदेवैतदवस्त्वेवव्यतिरिक्तातथात्मनः ॥ अनंतातद्वतैवाशुलहरीवमहार्णवात् ॥ १७ ॥ यथाकटकके यूरैर्भेदोहेम्नोविलक्षणः ॥ तथात्मनश्चितोरूपंभावयंत्यास्वमांशिकम् ॥ १८ ॥ यथादीपेनदीपानांजा तानामात्मनांतथा ॥ देशकालकलामात्रभेदःस्वाभविकश्चितेः ॥ १९ ॥ देशकालपरिस्पंदशक्तिसंदी पिताथचित् ॥ संकल्पमनुधावंतीप्रयातिकलनापदम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे चित्में कल्पित सम्पूर्ण पदार्थ परमार्थ चेतन मात्रही है, क्योंकि सद्रूप आत्मासे पृथक् अवस्तुहै, और अनंत संपूर्ण कल्पना उसके स्वरूपमें ऐसे अनुगतहैं जैसे समुद्रमें तरंग ॥ १७ ॥ जैसे कटक, केयूर आदिके साथ सुवर्णका भेदविलक्षणहै ऐसेही आत्मासे पृथक् भावना करनेवाली चित्के अंशकी कल्पनाके आधीन सम्पूर्ण जगत्है ॥ १८ ॥ जैसे एक दीपसे प्रज्वलित अनेक दीपोंका बत्ती आदि उपाधि देशसे देश, और उसके कालसे काल, तथा अवयवोंसे भेदहै न कि दीप तथा अग्निके स्वरूपसे ऐसेही देशकालकी उपाधिके

स्वभाव मात्रसे चित्का भेदहै न कि वास्तविक ॥ १९ ॥ देश और कालकी परिस्पंद शक्तिसे संदीप्त चित् सङ्कल्पोंकी ओर दौडती हुई दूषित रूपको प्राप्त होती है ॥ २० ॥

विकल्पकलिताकारंदेशकालक्रियास्पदम् ॥ चितोरूपंमहाबाहोक्षेत्रज्ञइतिकथ्यते ॥ २१ ॥ क्षेत्रंशरीर मित्याहुस्तदसौवेत्त्यखंडितम् ॥ सबाह्यभ्यंतरंतेनक्षेत्रज्ञइतिकथ्यते ॥ २२ ॥ वासनांकलयन्सोपिया त्यहंकारतांपुनः ॥ अहंकारोपिनिर्णेताकलंकोबुद्धिरुच्यते ॥२३॥ बुद्धिःसंकल्पकलिताप्रयातिमनसःप दम् ॥ मनोघनविकल्पंतुगच्छतींद्रियतांशनैः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो रामजी ! देशकाल तथा क्रियाका स्थान और विकल्पसे दूषित आकर जो चित्का रूपहै उसीको क्षेत्रज्ञ कहतेहैं ॥ २१ ॥ इस शरीरको क्षेत्र कहतेहैं और वह बाह्य और आभ्यंतर इस शरीरको संपूर्ण रूपसे जानताहै, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहा जाताहै ॥ २२ ॥ वह जीव अर्थात् क्षेत्रज्ञ बासनाकी कल्पना करता हुआ पुनः अहंकार रूपताको प्राप्त होताहै और अहंकारभी पदार्थोंका निश्चय करनेसे और कल्पांतरका हेतु होनेसे बुद्धि शब्दसे कहा जाताहै ॥ २३ ॥ संकल्पसे दूषित बुद्धि मनरूपताको प्राप्त होती है और घनीभूत विकल्पसे मन धीरे २ इंद्रियरूप-ताको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

पाणिपादमयंदेहमिंद्रियाणिविदुर्बुधाः ॥ देहोसौज्ञायतेलोकेसूयतेपिचजीवति ॥ २५ ॥ एवंजीवोहिसं कल्पवासनारज्जुवेष्टितः ॥ दुःखजालपरीतात्माक्रमादायातिचित्तताम् ॥ २६ ॥ क्रमेणपाकवशतःफ लमेतियथान्यताम् ॥ अवस्थयैवनाकृत्याजीवोमलवशात्तथा ॥ २७ ॥ जीवोहंकारतांप्राप्तस्त्वहंकारश्च बुद्धिताम् ॥ संकल्पजालकलितांमनस्तांबुद्धिरागता ॥ २८ ॥

अर्थ—हस्त पादादिमय इस शरीररूपको इंद्रियां प्राप्त होती है, और यह देह संसारमें प्रत्यक्ष रूपसे विदित होताहै, उत्पन्न होताहै, और जीवन धारण करताहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार संकल्प तथा बासनाकी रस्सीसे बंधा हुआ तथा दुःखके जालोंसे व्याप्त यह जीव क्रमसे बाह्य और आभ्यंतर पदार्थ जाननेको समर्थ होताहै ॥ २६ ॥ जैसे बदरी (बेर) आदिका फल, रूप, रस आदिकी अवस्था मात्रके परिणामसे क्रमसे पाकके हेतुसे विलक्षणताको प्राप्त होताहै न कि बदरत्वादि जातिसे ऐसेही क्षेत्रज्ञ जीव आत्माभी अविद्यामलके परिणामके बशसे विलक्षणताको प्राप्त होताहै न कि अपरिणामी चित् स्वभावसे ॥ २७ ॥ इस प्रकार जीव अहंकार दशाको प्राप्त होताहै और अहंकार बुद्धिताको और बुद्धि संकल्पजालसे दूषित मनदशाको प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

मनोहिसंकल्पमयंसंस्थाग्रहणतत्परम् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छिन्नप्राप्तिसत्यैरपीहितैः ॥ २९ ॥ इच्छाद्याः शक्तयश्चेतोगावोवृषमिवोन्मदम् ॥ अनुधावंतिदोषायसरितःसागरंयथा ॥ ३० ॥ इतिशक्तिमयंचेतो घनाहंकारतांगतम् ॥ कोशकारक्रिमिरिवस्वच्छयायातिबंधनम् ॥३१॥ स्वसंकल्पानुसंधानात्पाशैरिव नयन्वपुः ॥ कष्टमस्मिन्स्वयंबंधमेत्यात्मापरितप्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—और मन सफल तथा विफल मनोरथोंसे संकल्पमय स्त्रीपुत्रादि शरीराकारके ग्रहणमें तत्पर होकर परिच्छिन्न और तुच्छ विषयमें आसक्त होताहै ॥ २९ ॥ चित्तकी इच्छा आदिक शक्ति विषयकी ओर दोषकेलिये ऐसी दौडती हैं जैसे मदोन्मत्त वृषकी ओर गौ, तथा समुद्रकी ओर नदियां ॥ ३० ॥ इसप्रकार नानाभांतिकी शक्ति-योंसे युक्त और घनीभूत अहंकारसे वृद्धिको प्राप्त यह चित्त अपनीही इच्छासे बंधनमें ऐसे प्राप्त होताहै जैसे कोशकार कृमि ॥ ३१ ॥ जैसे मत्स्यादिक बडिश आदि फांसियोंसे अपने शरीरको मृत्युको देते हुये स्वयं बंधनमें प्राप्त होतेहैं ऐसेही यह मनभी अपने संकल्पके अनुसंधानसे स्वयं बंधनमें आकर दुःखी होताहै यह कैसी खेदकी बातहै ॥३२ ॥

बद्धमस्मीतिकलयद्विद्यात्स्वंजहच्छनैः ॥ अविद्यांजनयत्यंतर्जगज्जंगलराक्षसीम् ॥ ३३ ॥ स्वसंकल्पि तन्मात्रज्वालाभ्यंतरवर्त्तिच ॥ परांविवशतामेतिशृंखलाबद्धसिंहवत् ॥ ३४ ॥ विचित्रकार्यकर्तृत्वमा हरद्वासनावशात् ॥ स्वेच्छामात्रानुरचितादशाश्चानुपतत्तथा ॥ ३५॥ क्वचिन्मनःक्वचिद्बुद्धिःक्वचि ज्ज्ञानंक्वचित्क्रियाः ॥ क्वचिदेतदहंकारःक्वचित्पुर्यष्टकंस्मृतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह चेतन अपने परमार्थिक शुद्ध रूपको धीरे २ त्यागताहुआ और मैं बद्धहुं ऐसी भावना करता हुआ जगत्रूपी जंगलकी राक्षसीरूप जन्ममरणादि अविद्याको अपने अन्तःकरणमें उत्पन्न करताहै ॥ ३३ ॥ अपने संकल्पसे रचित शब्दादि विषयरूपी अग्निकी ज्वालाके आभ्यंतर वर्तमान तथा अविद्यायुक्त यह मन महा अव्यवस्थाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे शृंखला (जंजीर) में बंधाहुआ सिंह ॥ ३४ ॥ इसीप्रकार नानाप्रकारके विहित और निषिद्ध

कार्योंकी कर्तृताको धीरे २ संपादन करता हुआ और अपनी इच्छा मात्रसे कल्पित अनेक प्रकारकी योनि तथा नरकादिकी दुर्दशाओंमें गिरताहुआ अव्यवस्थाको प्राप्त होताहै कभी तो यह मनन शक्तिमें मनरूपताको, कभी बुद्धिरूपताको कभी ज्ञानरूपताको, कहीं क्रिया रूपताको, कहीं अहंकाररूपता, और कहीं शरीररूपताको प्राप्त होताहै॥३६॥

क्वचित्प्रकृतिरित्युक्तंक्वचिन्मायेतिकल्पितम् ॥ क्वचिन्मलमितिप्रोक्तंक्वचित्कर्मेतिसंस्थितम् ॥ ३७ ॥ क्वचिद्बंधमितिख्यातंक्वचिच्चित्तमितिस्फुटम् ॥ प्रोक्तंक्वचिदविद्येतिक्वचिदिच्छेतिसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ तदेतदाबद्धमिहचित्तंराघवदुःखितम् ॥ तृष्णाशोकसमाविष्टंरागायतनमाततम् ॥ ३९ ॥ जरामरणमोहांतर्भवभावनयाहतम् ॥ ईहितानीहितैर्ग्रस्तमविद्यारागरंजितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कहीं २ प्रकृतिरूपसे यह कहा गयाहै और कहीं मायारूपसे कल्पितहै और कहीं मलरूपसे कहा गया है, और कहीं कर्म्मरूपसे स्थितहै ॥ ३७ ॥ कहीं बंधरूपसे कहागयाहै, कहीं प्रत्यक्ष चित्तरूपसे, कहीं अविद्यारूपसे और कहीं इच्छारूपसे स्थितहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चारों ओरसे बंधा हुआ तृष्णा और शोकसे पूर्ण रागका विशालस्थान इस संसारमें यह चित्तही है ॥ ३९ ॥ वृद्धावस्था, मरण, मूर्छा और जन्ममरणादिककी भावनासे नष्ट और इष्ट तथा अनिष्ट विषयोंसे ग्रस्त, और अविद्याके रागसे रंजित ॥ ४० ॥

इच्छासंक्षुभिताकारंकर्मवृक्षवनांकुरम् ॥ सुविस्मृतोत्पत्तिपदंकल्पितानर्थकल्पितम् ॥ ४१ ॥ कोशकारवदाबद्धंशोकाकारपदंगतम् ॥ तन्मात्रवृंदावयवमनंतनरकातपम् ॥ ४२ ॥ स्वदृश्यमविशेषेंद्रसमभारभयावहम् ॥ जरामरणशाखाढ्यंसंसारविषदुर्द्रुमम् ॥ ४३ ॥ इमंसंसारमखिलमाशापाशविधायकम् ॥ दधदंतःफलैर्हीनंवटधानावटंयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—इच्छासे संक्षोभित आकारवाला कर्मरूपी वृक्षके बनोंका अंकुर अच्छी तरहसे अपने उत्पत्तिस्थान परमात्मपदको भूलनेवाला और अनेक अनर्थोंकी कल्पना करनेवाला यह मनहै ॥ ४१ ॥ तथा कोशकार कृमि (रेशमी कीडे) के समान चारों ओरसे बंधा हुआ शोकाकार स्थानमें प्राप्त शोकरूप और अनन्त नरकोंके आतपसे संयुक्त ॥ ४२ ॥ और अपने दृश्यरूपकोभी जो कि आत्मासे भिन्नहै उसका विवेक न होनेसे सुमेरूके समान गौरवके भारसे भयका प्रापक और वृद्धाऽवस्था तथा मरणकी शाखासे पूर्ण संसाररूपी विषका दुष्ट वृक्ष यह चित्तहै ॥४३ हे रामजी ! आशारूपी पास (फांसी) के रचनेवाले, तथा पुरूषार्थरूपी फलसे हीन इस संसारको चित्त ऐसे धारण करताहै जैसे बटबीज बटके वृक्षको ॥ ४४ ॥

चितानलशिखादग्धंकोपाजगरचर्वितम् ॥ कामाब्धिकल्लोलहतंविस्मृतात्मपितामहम् ॥ ४५ ॥ मृगंयूथादिवभ्रष्टंशोकोपहतचेतनम् ॥ ॥ पतंगकमिवज्वालादग्धंविषयपावके ॥ ४६ ॥ छिन्नमूलमिवांभोजं परमांम्लानिमागतम् ॥ छिन्नांगमात्मनःस्थानाद्विशेषासंगदुःस्थितम् ॥ ४७ ॥ विषयादिषुमध्यस्थंचित्ररूपेशुशत्रुषु ॥ दशास्वेतास्वनंतासुलुठितंसंकटास्विति ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चिंतारूपी अग्निकी शिखासे दग्ध, कोपरूपी अजगरसे चर्बित, कामरूपी समुद्रके तरंगोंसे हत, तथा आत्मस्वरूपी अपने पितामहरूप मूलकारणको विस्मृत करनेवाले इस मनका उद्धार करो ॥ ४५ ॥ और यूथ भ्रष्ट, मृगके समान; शोकसे नष्ट, विषयरूपी अग्निमें विषयाग्निकी ज्वालासे दग्ध ॥ ४६ ॥ मूलसे छिन्न कमलके सदृश परम ग्लानिको प्राप्त, मृत्युसे अपने निवाससे पृथक् होनेसे उन २ देहोंके अभिमानके वियोगसे छिन्नांग, इसी हेतुसे उन २ देहोंमें विशेष आसक्तिसे दुःखमें स्थित इस मनका उद्धार करो ॥ ४७ ॥ और अपना बध करनेमें उद्यत विषय तथा इंद्रिय आदि विचित्र शत्रुओंके विश्वासमें आके उनके मध्यमें स्थित, और इसप्रकार पूर्वोक्त दुःखमयी अनन्त दशाओंमें लुठित (लोटते हुये) इस मनका उद्धार करो ॥ ४८ ॥

दुःखेनिपतितंघोरेविहंगःसागरेयथा ॥ स्वबंधास्थंजगज्जालेशून्येगंधर्वपत्तने ॥ ४९ ॥ उह्यमानमनास्थाब्धौमनोविषयविद्रुतम् ॥ उद्धरामरसंकाशमातंगमिवकर्दमात् ॥ ५० ॥ बलीवर्दवदामग्नंमनोसदनपल्वले ॥ आलूनशीर्णावयवंबलाद्रामसमुद्धर ॥ ५१ ॥ शुभाशुभप्रसरपराहताकृतौज्वलज्जरामरणविषादमूर्च्छिते ॥ व्यथेहयस्यमनसिभोनजायतेनराकृतिर्जगतिसरामराक्षसः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवावतरणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—तथा समुद्रमें पक्षीके सदृश घोर दुःखमें पतित, और जगत्‌जालरूपी शून्य गंधर्व नगरमें अपने बंधके

हेतु तथा बंधनके साधन देहादिमें अधिक स्नेह करनेवाले इस मनका उद्धार करो ॥ ४९ ॥ तथा तत्वज्ञान और उसके साधनादिमें अनादररूपी समुद्रमें वहते हुये और विषयमें निमग्न इस मनका हे देवतुल्य रामजी ! ऐसे उद्धार करो जैसे कीचडसे हस्तीका ॥ ५० ॥ हे रामजी ! कामरूपी महापंकमय अल्प तडागमें निमग्न, तथा छिन्न और विशीर्ण शरीरवाले इस मनको बलसे निकालो ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! कामनायुक्त शुभ तथा निषिद्ध अशुभ कर्मोंके प्रचारसे मलिन आकारवाले, तथा प्रज्वलित वृद्धाऽवस्था, मरण, और विषाद (शोकादि) से मूर्छित इस जगत्‌के विषयमें जिसके चित्तमें पीडा नहीं होती वह प्राणी राक्षसहै ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवावतरणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

विस्तारसे जीवोंकी कर्मोंकी गतियोंका तथा विवेककी दुर्लभता तथा किसी २ की मुक्तिका वर्णन इस ४३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंजीवाश्चितोभावाभवभावनयोहिताः ॥ ब्रह्मणःकल्पिताकारालक्षशोप्यथ कोटिशः ॥ १ ॥ असंख्याताःपुराजाताजायंतेचापिवाद्यभोः ॥ उत्पतिष्यंतिचैवांबुकणौघाइवनिर्झरा त् ॥ २ ॥ स्ववासनादशावेशादाशाविवशतांगताः ॥ दशास्वतिविचित्रासुस्वयंनिगडिताशयाः ॥ ३॥ अनारतंप्रतिदिशंदेशेदेशेजलेस्थले ॥ जायंतेवाम्रियंतेवाबुद्बुदाइववारिणि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार चेतनकी उपाधिसे विभक्त विभावरूप, संसारकी बासनाके प्रवाहित ये लक्ष वा कोटि अथवा अनंत जीव, कल्पित आकारवाले ब्रह्माजीसे ॥ १ ॥ ऐसे उत्पन्न हुये, असंख्यात अबभी उत्पन्न होरहेहैं तथा उत्पन्न होंगे जैसे झरनेसे जलके कण ॥ २ ॥ और अपनी वासनाकी दशाके आवेशसे विवशतामें प्राप्त तथा इन सुखदुःखमयी विचित्र दशाओंमें बद्ध अन्तःकरणवाले ये जीव ॥ ३ ॥ निरन्तर प्रत्येक दिशाओंमें देश २ में जलमें तथा स्थलमें क्रमसें ऐसे उत्पन्न होते और मरते हैं जैसे जलमें बुद्‌बुदा ॥ ४ ॥

केचित्प्रथमजन्मानःकेचिजन्मशताधिकाः ॥ केचिद्वाजन्मसंख्याकाःकेचिद्द्वित्रिभवांतराः ॥५॥ भवि ष्यज्जातयःकेचित्केचिद्भूतभवोद्भवाः ॥ वर्त्तमानभवाःकेचित्केचित्स्वभवतांगताः ॥ ६ ॥ केचित्कल्प सहस्राणिजायमानाःपुनःपुनः ॥ एकामेवास्थितायोनिंकेचिद्योन्यतरंश्रिताः ॥ ७ ॥ केचिन्महादुःख सहाःकेचिदल्पोदयाःस्थितः ॥ केचिदत्यंतमुदिताःकेचिदर्कादिबोदिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—कोई तो इस कल्पभरमें एकही जन्म प्राप्त हुये, कोई शत (सौ) सेभी अधिक, किसी २ के जन्मकी संख्याही नहींहै, और कोई दो वा तीन जन्म पाचुके ॥ ५ ॥ और कितने ऐसे हैं जो इस कल्पमें अभीतक उत्पन्नही नहीं हुये, और किसी २ (जीवन्मुक्तों) का संसारमें उत्पन्न होना व्यतीत होगया, और कितने कैवल्य मुक्तिको प्राप्त होगये ॥ ६ ॥ कोई २ सहस्रों जन्मतक पुनः २ उत्पन्न होते हुये एकप्रकारके देह जातिमेंही स्थितहैं, और कोई अन्य योनियोंमें प्राप्त हुयेहैं ॥ ७ ॥ कोई महादुःख सहन करनेवाले (नरक निवासी) प्राणीहैं, कोई अल्पसुखवाले मनुष्यरूपसेहैं, कोई देवादि अति प्रसन्नहैं और कोई सत्यलोकगामीहैं ॥ ८ ॥

केचित्किनरगंधर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ केचिदर्केंद्रवरुणास्त्र्यक्षाधोक्षजपद्मजाः ॥ ९ ॥ केचित्कूश्मांड वेतालयक्षरक्षःपिशाचकाः ॥ केचिद्ब्राह्मणभूपालवैश्यशूद्रगणाःस्थिताः ॥ १० ॥ केचिच्छ्वपचचांडा लकिरातावेशपुष्कसाः ॥ केचित्तृणौषधीकेचित्फलमूलपतंगकाः ॥ ११ ॥ केचिच्चित्रलतागुल्मतृणो पलदृशोभिताः ॥ केचित्कदंबजंबीरशालतालतमालकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई किन्नर, गंधर्व, विद्याधर तथा महोरगरूपसे स्थितहै, और कोई सूर्य, इन्द्र वरूण, तथा महादेव, विष्णु और ब्रह्मारूपसे हैं ॥ ९ ॥ कोई कूष्मांड (देवयोनि विशेष) वेताल, यक्ष, रक्षस् तथा पिशाचादि रूपसे स्थितहैं, और कोई जीव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र समूहरूपसे स्थितहैं ॥ १० ॥ कोई स्वपच चाण्डाल, किरातयोनिमें प्रविष्ट पुष्कस (चाण्डाल विशेष) रूपसे स्थितहैं, कोई तृण तथा औषधिरूपसे तथा कोई फलमूलके मध्यमें स्थित बीजके अंतर्गत जीवरूपसे, और कोई पतंगरूपसे स्थितहैं ॥११॥ कोई चित्र विचित्रलता, गुल्म तृण और पर्वत आदिके अधिष्ठातृ देवरूपसे स्थितहैं, और कोई कदम्ब, जंबीर (कागदी निम्बू) शाल, तथा तमालरूपसे स्थितहैं १२

केचिद्विभवसंसारमंत्रिसामंतभूमिपाः ॥ केचिच्चीरांबराच्छन्नामुनिमौनमुपस्थिताः ॥ १३ ॥ केचिद्भुजंगगोनासकृमिकीटपिपीलिकाः ॥ केचिन्मृगेंद्रमहिषमृगाजचमरैणकाः ॥ १४ ॥ केचित्सारसचक्राह्वाबलाकाबककोकिलाः ॥ केचित्कमलकह्लारकुमुदोत्पलतांगताः ॥ १५ ॥ केचित्कलभमातंगवराहवृषगर्दभाः ॥ केचिद्विरेफमशकाःपुत्तिकादंशवंशजाः ॥ १६ ॥

अर्थ—कोई जीव विभवोंसे भ्रमण करनेसे मंत्री, सामन्त (करदायी छोटे २ राजा) तथा राजारूपसे स्थितहैं, और कोई वल्कल धारण करके मुनियोंके मौन व्रतको प्राप्त हुयेहैं ॥ १३ ॥ कोई सर्प अजगर, कृमि, कीट तथा पिपीलिका रूपहैं, और कोई मृग, सिंह, महिष, अज, चमर (हरिण विशेष) और मेषरूपसे स्थितहैं ॥ १४ ॥ कोई सारस, चक्रवाक, बलाका, वक तथा कोकिलरूपहैं, और कोई कमल रक्तकमल, कुमुद (रात्रिकमल) तथा नील कमलताको प्राप्त हुयेहैं ॥ १५ ॥ और कोई हस्तिके शिशु, मातंग (बडे हांथी) शूकर, वृष तथा गर्दभरूपहैं, और कोई भ्रमर, मच्छर, पांखी तथा काटनेवाले कीडोंकी जातिमें स्थितहैं ॥ १६ ॥

केचिदापद्बलाक्रांताःकेचित्संपदमागताः ॥ केचित्स्थिताःस्वर्गपुरेकेन्निचरकमास्थिताः ॥१७॥ ऋक्षचक्रगताःकेचिद्वृक्षरंध्रगताःपरे ॥ वातभूताःस्थिताःकेचित्केचिद्व्योमपदेस्थिताः ॥ १८ ॥ सूर्यांशुषुस्थिताःकेचित्केचिदिंद्वंशुषुस्थिताः ॥ केचित्तृणलतागुल्मरसस्वादुष्ववस्थिताः ॥ १९ ॥ जीवन्मुक्ताभ्रमंतीहकेचित्कल्याणभाजनाः ॥ चिरमुक्ताःस्थिताःकेचिन्नूनंपरिणताःपरे ॥ २० ॥

अर्थ—और कोई तो आपत्तिके बलसे आक्रांतहैं, कोई संपत्तियोंमें प्राप्त हुये हैं, कोई स्वर्गपुरमें स्थितहैं तथा कोई नरकमेंही स्थितहैं ॥ १७ ॥ कोई तारागण चक्रको प्राप्तहैं, कोई २ वृक्षोंके छिद्रोंमें प्राप्तहैं, कोई गतिशील पवनके अधिकारमें, तथा कोई आकाशके अधिकारमें स्थितहैं, ॥ १८ ॥ कोई सूर्यभगवान्के किरणोंमें रसके आदानके अधिकारमें तथा कोई चन्द्रकिरणोंमें स्थित होके ओषधियोंके वृद्धिरूप अधिकारमें स्थितहैं, और कोई तृण, लता तथा गुल्मादिका रस जहां स्वादुहैं ऐसे पशुओंके योग्य विषय लंपटतामें तत्परहैं ॥ १९ ॥ कोई कल्याणके भागी जीवन्मुक्त होके इस संसारमें भ्रमण करते हैं, और कोई चिरकालसे मुक्त जीवन्मुक्तताको भोगके विदेह कैवल्यको प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥

केचिच्चिरेणकालेनभविष्यन्मुक्तयःशिवाः ॥ केचिद्विषंतिविद्वावाःकेवलीभावमात्मनः ॥ २१ ॥ केचिद्विशालाःककुभःकेचिन्नद्योमहारयाः ॥ केचित्स्त्रियःकांतदृशःकेचित्षंडनपुंसकाः ॥ २२ ॥ केचित्प्रबुद्धमतयःकेचिज्जडतराशयाः ॥ केचिज्ज्ञानोपदेष्टारःकेचिदात्तसमादयः ॥ २३ ॥ जीवाःस्ववासनावेशविवशाशयतांगताः ॥ एतास्वेतास्ववस्थासुसंस्थिताबद्धभावनाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और किन्ही २ कल्याणरूप प्राणियोंकी भविष्यत्में चिरकालमें मुक्ति होगी और कोई भोग लंपट प्राणी आत्माकी विदेह मुक्तिहीसे द्वेष करते है ॥ २१ ॥ और कोई विशालदिशा तथा महावेगवती नदियोंके अधिष्ठातृ देवतारूपसे स्थितहैं, और कोई उत्तम स्त्रीरूपसे कोई पुरुषरूपसे और कोई नपुंसकरूपसे स्थितहैं ॥ २२ ॥ कोई तो प्रबुद्धमतिवाले हैं, और कोई अति जड अंतःकरण सहितहैं, कोई ज्ञानके उपदेशकहैं और किसीने समाधि ग्रहण करलियाहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! अपनी २ वासनाके संस्कारसे विवशताको प्राप्त तथा अविद्यासे बद्ध भावनावाले संपूर्ण जीव इन पूर्वोक्त तथा अनुक्त संपूर्ण दशाओंमें स्थितहैं ॥ २४ ॥

विहरंतिजगत्केचिन्निपतंत्युत्पतंतिच ॥ कंदुकाइवहस्तेनमृत्युनाविरतंहताः ॥ २५ ॥ आशापाशशताबद्धावासनाभावधारिणः ॥ कायात्कायमुपायांतिवृक्षाद्वृक्षमिवांडजाः ॥ २६ ॥ अनंतानंतसंकल्पकल्पनोत्पादमायया ॥ इंद्रजालंवितन्वानाजगन्मयमिदंमहत् ॥ २७ ॥ तावद्भ्रमंतिसंसारेवारिण्यावर्त्तराशयाः ॥ यावन्मूढानपश्यंतिस्वमात्मानमनिंदितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई तो पृथिवीपर विहार करते हैं, कोई २ नरकमें गिरते हैं, कोई स्वर्गपर चढते हैं, और कोई मृत्युसे ताडित एक शरीरसे दूसरी शरीरमें ऐसे लुढकते फिरते हैं जैसे हस्तसे ताडित कंदुक एक देशसे दुसरे देशमें लुढकताहै ॥ २५ ॥ सैकडों आकाशरूपी पाशों (फांसियों) से चारोंओरसे बद्ध, और वासनारूप भावी देहादिको धारण करते हुये जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें ऐसे जाते हैं जैसे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर पक्षी ॥ २६ ॥ और अनंत विषयोंमें अनंत संकल्पोंकी मूलकारण माया (अविद्या) के द्वारा इन्द्रजालमय इस विशाल संसारका विस्तार करते हुये सम्पूर्ण जीव ॥ २७ ॥ तबतक इस संसारमें जलमें आवर्तके समूहके समान मूढ होके भ्रमण करते हैं जबतक कि अपने अनंदित आत्माको नहीं देखते ॥ २८ ॥

दृष्ट्वात्मानमसत्त्यक्त्वासत्यामासाद्यसंविदम् ॥ कालेनपदमागत्यजायंतेनेहतेपुनः ॥ २९ ॥ भुक्त्वा जन्मसहस्राणिभूयःसंसारसंकटे ॥ पतंतिकेचिद्बुधाःसंप्राप्यापिविवेकिताम् ॥ ३० ॥ केचिच्छक्तत्व मप्युच्चैःप्राप्यतुच्छतयाधिया ॥ पुनस्तिर्यक्त्वमायांतितिर्यक्त्वान्नरकानपि ॥ ३१ ॥ केचिन्महाधियः संतउत्पद्यब्रह्मणःपदात् ॥ तदेवजन्मनैकेनतत्रैवाशुविशंत्यलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आत्माको देखकर असत्का परित्याग करके और सत्यज्ञानको पाकर भूमिकाकी दृढताके क्रमसे आत्मपदमें आकर पुनः इस संसारमें वे जीव नहीं उत्पन्न होते ॥ २९ ॥ कोई २ जीव विवेकताको प्राप्त होकरभी विषयकी लंपटतासे सहस्रों जन्मका भोग करके पुनः संसार संकटमें गिरते हैं ॥ ३० ॥ और कोई २ उत्तम जन्म देश काल सज्जनोंका समागम तथा उच्च देव गंधर्व ब्राह्मणादि सम्पत्तिको पाकरभी तुच्छ विषयकी लंपटतासे पुनः तिर्यग् आदि योनियोंमें आते हैं, और उससे नरकमेंभी जातेहैं ॥ ३१ ॥ कोई २ महाबुद्धिमान् ब्रह्मासे उत्पन्न होकर उसी कल्पमें और उसी जन्ममें शीघ्र ब्रह्मनामक मोक्षपदमें प्रवेश करतेहैं ॥ ३२ ॥

ब्रह्मांडेष्वितरेष्वन्येतेष्वन्येजीवराशयः ॥ प्रयांतिपद्मोद्भवतामन्येचहरतामपि ॥ ३३ ॥ अन्येप्रयाति तिर्यक्त्वमन्येचसुरतामपि ॥ अन्येपिनागतांरामयथैवेहतथैवहि ॥ ३४ ॥ यथेदंहिजगत्स्फारंतथान्या निजगंत्यपि ॥ विद्यंतेसमतीतानिभविष्यंतिचभूरिशः ॥ ३५ ॥ अन्येनान्येनचित्रेणक्रमेणान्येनहेतुना॥ विचित्राःसृष्टयस्तेषामापतंतिपतंतिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने उत्पत्तिस्थान ब्रह्मांडोंमें तथा अन्य ब्रह्माण्डोंमें (जैसे इन्दुके पुत्रोंसे रचित) जीवसमूह कोई तो ब्रह्मा होतेहैं कोई महादेव होतेहैं और कोई विष्णु होतेहैं ॥ ३३ ॥ और दूसरे पशु पक्षी आदि रूपको प्राप्त होतेहैं और कोई देवत्वपदवीको प्राप्त होतेहैं और कोई सर्प वा गजरूपको धारण करतेहैं हे रामजी ! जैसे इस ब्रह्मांडमें जीवोंकी उत्पत्तिदशाहै वैसेही अन्य ब्रह्माण्डोंमेंभी हैं ॥ ३४ ॥ जैसे यह जगत् विशालहै ऐसेही अन्य अनेक ब्रह्मांण्ड विशालहैं, और बहुतसे होगये तथा भविष्यत्में होंगेभी ॥ ३५ ॥ अन्य २ विचित्र क्रम तथा हेतुसे चित्रविचित्र सृष्टि उन जीवोंकेलिये आविर्भूत होती हैं और तिरोभूतभी होती हैं ॥ ३६ ॥

कश्चिद्गंधर्वतांयातिकश्चिद्गच्छतियक्षताम् ॥ कश्चित्प्रयातिसुरतांकश्चिदायातिदैत्यताम् ॥ ३७ ॥ येनैव व्यवहारेणब्रह्मांडेस्मिंजनाःस्थिताः ॥ तेनैवान्येषुतिष्ठंतिसन्निवेशाविलक्षणाः ॥ ३८ ॥ स्वस्वभाववशा वेशादन्योन्यपरिघट्टनैः ॥ सृष्टयःपरिवर्त्तंतेतरंगिण्याइवोर्मयः ॥ ३९ ॥ आविर्भावतिरोभावैरुन्मज्जन निमज्जनैः ॥ सृष्टयःपरिवर्त्तंतेतरंगिण्याइवोर्मयः ॥ ४० ॥

अर्थ—कोई जीव गंधर्वताको कोई यक्षताको कोई देवत्वको और कोई दैत्यताको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! जिस मनुष्यादि योग्य व्यवहारसे इस ब्रह्माण्डमें प्राणिगण स्थितहैं ऐसे अन्य ब्रह्माण्डोंमेंभी है, परन्तु अन्य द्वीपोंके प्राणियोंके समान कुछ २ शरीरकी रचनासे विलक्षणहैं ॥ ३८ ॥ अपने २ स्वभावके वशके आवेशसे और एक विषयमें परस्परकी ईर्षासे और परस्परके संघट्टनसे उसी चिद्रूपसे सृष्टियां ऐसे होती हैं जैसे नदीसे तरंग ॥ ३९ ॥ सृष्टिके आविर्भाव तथा तिरोभाव और ऊर्ध्वगमन तथा अधःपतनोंसे सृष्टियां ऐसे परिवर्तित होती हैं जैसे नदीसे तरंग ॥ ४० ॥

निर्यांत्यविरतंतस्मात्परस्माज्जीवराशयः ॥ अनिर्देश्याःस्वसंवेद्यास्तत्रैवाशुस्फुरंतिच ॥ ४१ ॥ दीपादि वालोकदृशःसूर्यादिवमरीचयः ॥ कणास्तप्तायसइवस्फुलिंगाइवपावकात् ॥ ४२ ॥ कालादिवर्त्तवश्चि त्राआमोदाःकुसुमादिव ॥ शीतलाइववर्षाणुपूराद‍्ब्धेरिवोर्मयः ॥ ४३ ॥ उत्पत्योत्पत्यकालेनभुक्त्वादे हपरंपराम् ॥ स्वतएवपदेयांतिनिलयंजीवराशयः ॥ ४४ ॥ अविरतमियमाततातथोच्चैर्भवतिविनश्यति वर्धतेमुधैव ॥ त्रिभुवनरचनादिमोहमायापरमपदेलहरीववारिराशौ ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवनिचयस्थानोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—उस परमपदसे गुणोंके आधीन अन्तःकरणादि उपाधिसे निरंतर अनिर्देश्य और स्वसंवेद्य जीवराशि निकलती हैं और उसीके स्वरूपमें प्रत्यक्ष व्यवहारभी करती हैं ॥ ४१ ॥ दीपसे प्रकाशके समान, सूर्यसे किरणके सदृश, तपे हुये लोहेसे कणके समान, और अग्निसे चिनगारीके सदृश ॥ ४२ ॥ कालसे चित्रविचित्र ऋतुके समान और पुष्पसे विचित्र सुगंधके समान और वृष्टिके समूहसे तुषारके सदृश तथा समुद्रसे तरंगके समान ॥ ४३ ॥ स-

म्पूर्ण जीवराशि काल पाकरके उत्पन्न हो होकरके और देहकी परम्पराओंको अर्थात् अनेक देहोंको भोग करके प्रलयदशामें स्वयं बीजभूत शांतिपदमें लीन होजाती हैं ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! यह त्रिभुवनकी रचनाकी भ्रांतिरूप माया आत्मरूप परमपदमें मिथ्याही सृष्टिरूपसे विस्तृत होकर बाढती है, उन्नतिको प्राप्त होती है, परिणत होती है तथा समुद्रसें तरंगके समान नष्टभी होजाती है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवनिचयस्थानोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस ४४ के सर्गमें मुक्ति और प्रलयकी समता होनेपरभी मुक्तिकी विशेषता तथा ब्रह्माके शरीर धारणका क्रम वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ क्रमेणानेनयेनाप्ताजीवेनस्थितिरात्मनः ॥ सकथंभगवन्देहंसमाधत्तेस्थिपंजरम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तंरामकिंनावबुध्यसे ॥ पूर्वापरविचारार्हाशेमुषीकगतातव ॥ २ ॥ यदिदंहिशरीरादिजगत्स्थावरजंगमम् ॥ आभासमात्रमेवैतदसत्स्वप्नमिवोत्थितम् ॥ ३ ॥ दीर्घस्वप्नोह्ययंराममिथ्यैवानघदृश्यते ॥ द्विचंद्रविभ्रमाकारंभ्रमांतर्भ्रांतशैलवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! प्रलयमें जीव स्वयं परमपदमें प्राप्त होते हैं इस आपके कथित क्रमसे जिस जीवने आत्मपदमें स्थिति प्राप्त करलियाहै वह कैसे पुनः अस्थियों (हड्डियों) के पंजररूप इस देहको धारण करताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस बातका उत्तर मैं प्रथमही कहचुकाहुं इसको तुम क्यों नहीं समझते पूर्वापरके विचारके योग्य बुद्धि तुह्मारी इससमय कहां चलीगई ॥ २ ॥ यह जो शरीरादिक स्थावर जङ्गमात्मक जगत्है वह असत् स्वप्नके समान आभासमात्रही आविर्भूतहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! और चिरकालस्थायी ये ब्रह्माण्ड और भुवनादिक दीर्घ स्वप्नके समान मिथ्याही देख पडतेहैं और दो चन्द्रमाके भ्रमके आकारके समान अथवा भ्रमके अन्तर्गत भ्रमणशील पर्वतके समान इसका आकारहै ॥ ४ ॥

प्रशांताज्ञाननिद्रस्तुनूनंगलितभावनः ॥ प्रबुद्धचेतास्संसारस्वप्नंपश्यन्नपश्यति ॥ ५ ॥ स्वभावकल्पितोरामजीवानांसर्वदैवहि ॥ आमोक्षपदसंप्राप्तिसंसारोस्त्यात्मनोंतरे ॥ ६ ॥ जीवस्यतरलःकायआवर्त्तःपयसोयथा ॥ यथाबीजेंकुरःस्फारःपल्लवःस्वांकुरेयथा ॥ ७ ॥ पल्लवेचयथापुष्पंपुष्पकोशेफलंयथा॥ यतःसंकल्पनारूपोदेहोस्तिमनसोंतरे ॥ ८ ॥

अर्थ—और जिसकी अज्ञानरूपी निद्रा प्रशान्त होगई है और निश्चय करके जिसकी संसारकी वासना गलित होगई है वह ज्ञानीपुरूष संसाररूप स्वप्नको देखता हुआभी परमार्थ दृष्टिसे नहीं देखता ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जीवोंके स्वभावसे कल्पित, यह संसार मोक्षकी प्राप्तिपर्यन्त सदा आत्माके अन्तर्गतही है ॥ ६ ॥ जैसे जलके अन्तर्में भंवरेहहै, बीजके भीतर अंकुर और अंकुरके भीतर विशाल पल्लवहै ऐसेही जीवके भीतर यह चंचल शरीरहै ॥ ७ ॥ क्योंकि पल्लवके भीतर पुष्पहै और पुष्पकोशमें जैसे फलहै ऐसेही कल्पनारूप यह देह मनके भीतरहै ॥ ८ ॥

बहुरूपतयारामयतोस्त्येकतमःस्फुटः ॥ सएवाप्रतिभासोस्यमनसःकिलजायते ॥ ९ ॥ सएवाशुभदत्येतन्मृत्पिंडोघटकोपमः ॥ आदिसर्गेपुराकायःप्रतिभासोस्यचोत्तमः ॥ १० ॥ यस्मादेषविभुर्ब्रह्मापद्मकोशगृहस्थितः ॥ तत्संकल्पक्रमेणैवततःस्थितिमुपागता ॥ ११ ॥ इयंसृष्टिरपर्यंतामायेवघनमायया ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ जीवोमनःपदंप्राप्यवैरिंचंपदमागतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मन अनेकरूप होनेके कारण बासनारूपसे अनेक देह उसमें स्थितहैं, उनमें कर्मोंकी परिपक्वतासे जो शरीर प्रत्यक्षरूपसे अभिव्यक्त होताहै वही प्रतिभास इसको कालपाके होताहै न कि सब का ॥ ९ ॥ जैसे मृत्पिंड घटाकार होताहै ऐसेही उत्तम कर्मोंके परिपाकसे आदि सृष्टिमें इसको उत्तम शरीररूपसेही प्रतिभास होताहै ॥ १० ॥ क्योंकि सर्व कार्योंमें समर्थ ब्रह्मा जो पद्मकोशके भीतर स्थितहैं उनके संकल्पमात्रसे और उन्हीसे घनीभूत अविद्यासे मायाके समान यह अपार सृष्टि स्थितिको प्राप्त हुई है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यह जीव चेतन मनपदको प्राप्त होकर वैरिंच ब्रह्मपदको प्राप्त हुआहै ॥ १२ ॥

यथाब्रह्मंस्तथासर्वंविस्तरेणवदाशुभे ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ब्राह्मेशृणुमहाबाहोशरीरग्रहणेक्रमम् ॥ १३ ॥ निदर्शनेनतेनैवजागतींज्ञास्यसिस्थितिम् ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमात्मतत्त्वंस्वशक्तितः ॥ १४ ॥ लीलयैवयदादत्तेदिक्कालकलितंवपुः ॥ तदेवजीवपर्यायंवासनावेशतत्परम् ॥ १५ ॥ मनःसंपद्यतेलोलंकलनाकलनोन्मुखम् ॥ कलयंतीमनःशक्तिरादौभावयतिक्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जैसे मनकी ब्रह्माारूपमें प्राप्ति हुई है वह शीघ्र मुझे विस्तारसे वर्णन कीजिये श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रामजी ! ब्रह्माके शरीर ग्रहण करनेमें जो क्रमहै उसे क्रमसे श्रवण कीजिये ॥ १३ ॥ इसी दृष्टान्तसे जगत्की स्थितिकोभी जानोगे, देशकालादिसे अनवच्छिन्न आत्मतत्व अपनी शक्तिसे ॥ १४ ॥ लीलामात्रसे जो देश तथा कालसे दूषित परिच्छिन्न शरीर धारण करताहै उसीसमय वासनाके आवेशमें जीवपर्याय ॥ १५ ॥ कलना तथा अकलनाकी ओर उन्मुख चंचल मनरूप होजाताहै, और पूर्वसृष्टिमें आकाशादि क्रमसे प्रकट जो ब्रह्मा उसमें अहंग्रहकी उपासनासे संस्कृत और उसीप्रकार अव्याकृत जो मनहै उसीको मनकी शक्ति कहते हैं, वही मनरूपी शक्ति उसी क्रमसे अपने आविर्भावकी कल्पना करती हुई सृष्टिकी आदिमें क्षणभरमेंही ॥ १६ ॥

आकाशभावनामच्छांशब्दबीजरसोन्मुखीम् ॥ ततस्तांघनतांयातंघनस्पंदक्रमान्मनः ॥ १७ ॥ भावयत्यनिलस्पंदंस्पर्शबीजरसोन्मुखम् ॥ ताभ्यामाकाशवाताभ्यामदृष्टाभ्यांमनोदृशा ॥ १८ ॥ शब्दस्पर्शस्वरूपाभ्यांसंघाताज्जन्यतेनलः ॥ मनस्तद्घनतांप्राप्यततोभावयतिक्षणात् ॥ १९ ॥ प्राकाश्यममलालोकमालोकस्तेनवर्द्धते ॥ मनस्तावद्गुणगतंरसतन्मात्रवेदनम् ॥ २० ॥

अर्थ—शब्दोंका बीजभूत शब्द तन्मात्रा तथा श्रोत्रइन्द्रियकी ओर उन्मुख स्वच्छरूप आकाशकी भावना करताहै, उसके अनंतर घनीभूत स्पन्द क्रमसे घनताको प्राप्त मन ॥ १७ ॥ स्पर्शोंका बीज स्पर्श तन्मात्र तथा त्वगिंद्रियकी ओर उन्मुख किंचिच्चलनात्मक वायुकी भावना करताहै, और मनोव छिन्न चेतनस्वरूप जीवसे अदृष्ट आकाश और वायु ॥१८॥ जो कि शब्द तथा स्पर्शरूपहैं, उनसे वृद्धिको प्राप्त संघातसे अग्नि उत्पन्न होताहै, और मन इन तीनों रूपमें परिणत होनेसे घनताको प्राप्त होके क्षणमेंही ॥ १९ ॥ प्रकाशयुक्त निर्मल आलोककी भावना करताहै, और उससे प्रकाश बढताहै, और अनंतर आकाश वायु तथा तेजके गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त मनरसोंका बीजभूत रस तन्मात्र तथा रसना इन्द्रियकी भावना करताहै ॥ २० ॥

क्षणार्द्धेनत्वपाशैत्यंजलसंवित्ततोभवेत् ॥ ततस्तादृग्गुणगतंमनोभावयतिक्षणात् ॥ २१ ॥ स्वरूपंगंधवत्स्थूलंयेनोदेष्यतिमेदिनी ॥ अथेत्थंभूततन्मात्रवेष्टितंतनुतांजहत् ॥ २२ ॥ वपुर्वह्निकणाकारंस्फुरितंव्योम्निपश्यति ॥ अहंकारकलायुक्तंबुद्धिबीजसमन्वितम् ॥ २३ ॥ तत्पुर्यष्टकमित्युक्तंभूतहृत्पद्मषट्पदम् ॥ तस्मिंस्तुतीव्रसंवेगाद्भावयद्भास्वरंवपुः ॥ २४ ॥

अर्थ—और आधे क्षणमें रस तन्मात्र दशाको प्राप्त होके जल इस प्रतीतिके योग्य होताहै, और उससे पश्चात् आकाशादि चारोंभूतके गुणके संघातको प्राप्त होके मन क्षणभरमें गंध तन्मात्रकी भावना करताहै ॥ २१ ॥ जिससे रस तन्मात्र गंध गणयुक्त अपने स्थूलस्वरूपको उत्पन्न करती है इसके अनन्तर तन्मात्रसे वेष्टित यह पंचभूत अपनी सूक्ष्मदशाको त्यागता हुआ ॥ २२ ॥ अग्निके कणके आकार, अहंकारकी कलासेयुक्त और बुद्धिके बीज करके सहित स्फुरित शरीरको आकाशमें देखताहै ॥ २३ ॥ उसको पुर्यष्टक (कर्मेंद्रियगण १ ज्ञानेन्द्रियगण २ पंचभूतगण ३ पंचप्राणगण ४ मनोगण ५ अविद्यागण ६ कामगण ७ और कर्मोंकागण ८) कहते हैं जो कि भूतोंके हृदयरूपी कमलके भ्रमरके तुल्यहै, उस पुर्यष्टकमें तीव्र संवेग (बासना) से भास्वर शरीरकी भावना करता हुआ मन ॥ २४ ॥

स्थूलतामेतिपाकेनमनोबिल्वफलंयथा ॥ मूषास्थद्रुतहेमाभंस्फुरितंविमलांबरे ॥ २५ ॥ सन्निवेशमुपादत्तेततेजःस्वस्वभावतः ॥ तस्मिन्स्वसन्निवेशेचतेजःपुंजमयेपुनः ॥ २६ ॥ भजतेभावनांस्फारांनिश्रितामाततांबराम् ॥ ऊर्ध्वंशिरःपीठमयीमधःपादमयींतथा ॥ २७ ॥ पार्श्वयोर्हस्तसंस्थातांमध्येचोदरधर्मिणीम् ॥ प्रकटावयवोबालोज्वालामालामलाकृतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—कर्मोंकी विपाकतासे बिल्वफलके सदृश स्थूलताको प्राप्त होताहै, और सांचेमें स्थित द्रवीभूत सुवर्णके तुल्य, बाह्य देशमें स्थूल भास्वर अंतर्में सूक्ष्म भास्वर, और स्थूल देहसे वेष्टित ॥ २५ ॥ जो विशेष रचनासे युक्त शरीरहै उसके पुर्यष्टकरूप लिंग शरीरहै अपने स्वभावसेही ग्रहण करताहै, और पुनः तेजःपुंजमय अपने उस सन्निवेश (विशेष रचनायुक्त शरीर) में ॥ २६ ॥ आकाशमें व्याप्त अति विशाल, ऊपर शिर तथा पीठमयी, नीचे

पादमयी ॥ २७ ॥ दोनों पार्श्व भागमें हस्त सहित, और मध्यमें उदरयुक्त शरीरकी भावना करताहै और अंगुली आदिकी सिद्धिसे प्रगट शरीरवाला तथा ज्वालाकी मालासे व्याप्त निर्मल आकारवाला ॥ २८ ॥

मनोरथवशोपात्तवपुस्तिष्ठत्यसावथ ॥ एवंस्ववासनावेशात्कलितांगोमनोमुनिः ॥ २९ ॥ नयत्युपचयंदेहंस्वस्वभावमृतुर्यथा ॥ कालेनस्फुटतामेतिभवत्यमलविग्रहः ॥ ३० ॥ बुद्धिसत्वबलोत्साहविज्ञानैश्वर्यसंस्थितः ॥ सएवभगवान्ब्रह्मासर्वलोकपितामहः ॥ ३१ ॥ द्रवत्कनकसंकाशःपरमाकाशसंभवः ॥ यथासौपरमाकाशेतिष्ठत्यपररूपवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनोरथके बशसे शरीरको ग्रहण किये हुये यह ब्रह्मा स्थित रहताहै, इसप्रकार अपनी बासनाके आवेशसे कल्पित शरीरवान् तथा उपासनादिसे मुनिशील यह मनहै ॥ २९ ॥ कालपाके अपने शरीरकी वृद्धिसे यह ब्रह्मापदवीको मन ऐसे प्राप्त करताहै जैसे ऋतु और कालपाकेही प्रत्यक्षरूप यह निर्मल शरीर होताहै ॥ ३० ॥ और सर्व लोकका पितामह वही भगवान् ब्रह्मा बुद्धि, व्यवसाय, बल, उत्साह विज्ञान और ऐश्वर्य करके युक्त संस्थित रहताहै ॥ ३१ ॥ द्रवीभूत सुवर्णके समान तेजस्वी ब्रह्मा चिदाकाशसे संभूत परब्रह्ममें जैसे सत्तासे उपर रूप धारण करके रहताहै उसीप्रकार सत्तासे ॥ ३२ ॥

जनयत्यात्मनोमोहमात्मस्थंचित्तलीलया ॥ कदाचित्केवलंव्योमपरमंपारवर्जितम् ॥ ३३ ॥ अनादिमध्यपर्यंतंकदाचिदमलंपयः ॥ कदाचित्कल्पकालाग्निज्वालाभास्वरमंडकम् ॥ ३४ ॥ कदाचित्काननंकार्ष्ण्यकालंकमलकुड्मलम् ॥ अन्यान्यन्यान्यनेकानिप्रतिजन्मावधिःप्रभुः ॥ ३५ ॥ कल्पयन्पालयत्येषनानारूपाणिहेलया ॥ तत्रेदंप्रथमत्वेनयदेषब्रह्मणःपदात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञानरूपही पंचीकृत आकाशादि जो आत्मामें स्थितहैं लीलामात्रसे उत्पन्न करताहै, कभी तो यह अपार आदि अंतशून्य केवल आकाशको उत्पन्न करताहै ॥ ३३ ॥ कभी निर्मल जल उत्पन्न करताहै और कभी (दाह कालमें) प्रलयाग्निकी ज्वालासे प्रकाशमय मण्डल उत्पन्न करताहै ॥ ३४ ॥ कभी पृथ्वीकी सृष्टिके अनन्तर कृष्णवर्णयुक्त संपूर्ण पृथिवीको रचताहै और कभी पद्मकल्पमें विष्णुसे उत्पन्न कृष्णवर्ण कमलकलिकाको रचताहै और अन्य२ भुवन पृथिवी मनुष्यादिरूप अनेक स्थानोंको अपने जन्मकी अवधि पर्यंत यह प्रभु ॥ ३५ ॥ कल्पना करता हुआ विष्णु आदि नानारूप धारण करके आपही पालन करताहै, उनमेंसे यह शरीर संकल्पमें ब्रह्मपदसे उत्पन्न हुई ३६

अवतीर्णस्तदाज्ञानात्तथैवसुखमस्मृतम् ॥ गर्भनिद्राव्यपगमेवपुःपश्यतिभास्वरम् ॥ ३७ ॥ प्राणापानप्रवाहाढ्यंद्रव्यैरिवविनिर्मितम् ॥ रोमकोटिभिराकीर्णंद्वात्रिंशद्दशनान्वितम् ॥ ३८ ॥ त्रिस्थूणंपंचदैवत्यमधश्चरणलांछितम् ॥ पंचभागंनवद्वारंत्वग्लेपमसृणांगकम् ॥ ३९ ॥ युक्तमंगुलिविंशत्यानखविंशतिलांछितम् ॥ द्विबाहुंद्विस्तनंद्वयक्षंवहक्षिभुजमेवच ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मास्वरूपसे उत्पन्न होकर उस विष्णुकी कुक्षिमें अज्ञानावृत होकर प्राक्तन कालके संस्कारोंको विस्मृत करानेवाली सुषुप्ति दशामें प्राप्त हुआ और गर्भकी निद्राके अंतमें प्रकाशमय अपने शरीरको देखताहै ॥ ३७ ॥ वह शरीर प्राण और अपानके प्रवाहोंसे पूर्ण मानों पंचभूतोंके स्वच्छ भागोंसे रचित करोडों रोमकी श्रेणियोंसे व्याप्त शोभायमान बत्तीस (३२) दांतोंसेयुक्त ॥ ३८ ॥ दोनों जंघा तथा प्रस्थकी अस्थिरूप तीन खंभोंके ऊपर आश्रित पंचप्राणरूपी देवताओंसेयुक्त नीचे चरणोंसे चिन्हित हस्त, पाद, शिर, वक्षस्थल, तथा कुक्षि, (कोख) इन पांचोंभागोंमें विभक्त नव (९) इन्द्रियद्वाररूपीयुक्त त्वचाके लेपसे चिकन ॥ ३९ ॥ वीस (२०) अंगुली तथा वीस नखसे शोभित, दो भुजा तथा दो स्तनों करके सहित तीन नेत्रोंसे शोभित और कभी इच्छासे अनेक नेत्र तथा भुजा संयुक्त४०

नीडंचित्तविहंगस्यनीडंमन्मथभोगिनः ॥ तृष्णापिशाच्यानिलयंजीवकेसरिकंदरम् ॥ ४१ ॥ अभिमानगजालानंमानसांभोजशोभितम् ॥ अथालोच्यवपुर्ब्रह्माकांतमात्मीयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ चिंतयामास भगवांस्त्रिकालामलदर्शनः ॥ अस्मिन्नाकाशकुहरेततेमधुपलांछिते ॥ ४३ ॥ अदृष्टपारपर्यंतेप्रथमंकिमभूदिति ॥ इतिचिंतितवान्ब्रह्मासद्योजातोमलात्मदृक् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चित्तरूपी पक्षीका घोंसला, और मन्मथरूपी सर्पका निवासस्थान तृष्णारूपी पिशाचीका गृह जीवरूपी सिंहकी कंदरा ॥ ४१ ॥ अभिमानरूप हस्तीका बन्धन स्थान, और मनरूपी कमलसे शोभित तथा अति रमणिय और उत्तम अपने शरीरको देखकर ॥ ४२ ॥ त्रिकालमें अमलदर्शी भगवान् ब्रह्माने अपने मनमें विचार किया कि भ्रमरसदृश श्यामवर्ण करके चिन्हित इस अपार आकाशमें मैं पहले क्या रचूं जब भगवान् ब्रह्माने ऐसी चिंता की तो उसी समयमें भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालके देखनेमें समर्थ हुये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अपश्यत्सर्गवृंदानिसमतीतान्यनेकशः ॥ अथसस्मारसकलान्सर्वान्धर्मगणान्क्रमात् ॥४५॥ वसंतः कुसुमानीववेदानादायसंस्तुतान् ॥ लीलयाकल्पयामासचित्रसंकल्पजाःप्रजाः ॥ ४६ ॥ नानाचारस माचारंगंधर्वनगरेयथा ॥ तासांस्वर्गार्थधर्मकामार्थसिद्धये ॥ ४७ ॥ अनंतानिविचित्राणिशास्त्राणिस मकल्पयत् ॥ दृष्टिरेवमियंरामसर्गेस्मिन्स्थितिमागता ॥ विरिंचिरूपान्मनसःपुष्पलक्ष्मीर्मधोरिव ॥ ४८ ॥ विविधविरचनैःक्रियाविलासैःकमलजरूपधरेणचेतसैव ॥ रघुसुतपरिकल्पनेननीतास्थिति मतुलांजगतीहसर्गलक्ष्मीः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे संसारावतरणप्रतिपादनोपदेशो नाम चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर बीते हुये अनेक सृष्टियोंके समूह उन्होंने देखा उसके कारण चिंतन करनेके पश्चात् उन प्राणियोंके संपूर्ण धर्म तथा अधर्मोंको क्रमसे स्मरण किया ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् बसंतऋतु जैसे पुष्प ग्रहणपूर्वक वृक्षोंमें फलादिकी रचना करताहै ऐसेही वेदोंको ग्रहण करके अर्थात् वेदोक्त क्रमसे लीलाकी कल्पना मात्रसे चित्र-विचित्र संकल्पोंसे प्रजाओंको उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ उन प्रजाओंके स्वर्ग तथा मोक्ष धर्म तथा कामकी सिद्धिके लिये नानाप्रकारके आचार और समाचारको ऐसे रचा जैसे गन्धर्व नगरमें ॥ ४७ ॥ अनंत चित्रविचित्र शास्त्रोंकोभी रचा हे रामजी ! वह दृश्यमान सृष्टिकी शोभा ब्रह्मापदवीको प्राप्त जो मनहै उसीसे स्थितिको ऐसे प्राप्त हुई है जैसे वसंतसे पुष्पकी शोभा ॥ ४८ ॥ हे रघुसुत ! विविधप्रकारकी रचना तथा क्रियाके विलासोंसे ब्रह्मारूप रूपधारी चित्तनेही इस सृष्टिकी अनुपम शोभाको इस जगत्में कल्पित कियाहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे संसारावतरणप्रतिपादनोपदेशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

मनोरथादिमें दृष्टि होनेसे मनका कार्य कभी सत् नहीं है, इसलिये जगत्का रूप असत्है और सत् जो है वही सद्है इस विषयका वर्णन इस ४५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगत्संपन्नमेवेदंसंपन्नंकिंचिदेवन ॥ शून्यमेवचभामात्रंमनोविलसितंस्थितम् ॥ १ ॥ नदेशकालावेतेनब्रह्मांडेनावृतौस्थितौ ॥ मनागपिमहारूपवताप्याकाशरूपिणा ॥ २ ॥ एतत्सं कल्पमात्रात्मस्वप्नदृष्टपुरोपमम् ॥ यत्रैवतत्रतच्छून्यंकेवलंव्योमसंस्थितम् ॥ ३ ॥ अभित्तिरागरचन मपिदृष्टमसन्मयम् ॥ अकृतंकृतमेवैतद्व्योम्निचित्रंविचित्रकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह जगत् सिद्धरूपही है, इसमें रचित कुछभी नहीं है, यह सब मनका विलास प्रतिभास मात्रहै प्रतिभाससे पृथक् यह शून्यही है ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्माण्डसे देशकाल व्याप्त नहीं है क्योंकि अतीत अनागत कोटियों ब्रह्माण्डकी स्फुरण प्रतिभासके अन्तर्गत होती हैं, और कहांतकहै इस परम-महत्व परिमाणयुक्त आकाशनेभी किंचित् देशकालको नहीं व्याप्त किया ॥ २ ॥ यह जगत् स्वप्नमें दृष्ट नगरके समान संकल्पमात्रही, जिस देशकालमें चित्में यह जगत् प्रतिभासताहै, वहां उसका अधिष्ठान चित्ही है, और जगत् केवल शून्य आकाशकेही समान स्थितहै ॥ ३ ॥ गंधर्वनगरके चित्रके समान भित्ति तथा रागकी रचनासे शून्यहै, दृष्ट होनेपरभी असत्, कृत होनेपरभी यथार्थमें अकृत, तथा आकाशमें विचित्रचित्रके सदृशहै ॥ ४ ॥

मनसाकल्पितंसर्वंदेहादिभुवनत्रयम् ॥ संस्मृतौकारणंचैतच्चक्षुरालोकनेयथा ॥ ५ ॥ आभासमात्रंहि जगद्घटावटपटभ्रमैः ॥ आवर्त्ततेनसद्रूपात्पृथक्कुड्यादयःस्थिताः ॥ ६ ॥ मनसेदंशरीरंहिवासनार्थंप्र कल्पितम् ॥ कृमिकोशप्रकारेणस्वात्मकोशइवस्वयम् ॥७॥ नतदस्तिचयन्नामचेतःसंकल्पमंबरम् ॥ नकरोतिनचाप्नोतिदुर्गमप्यतिदुष्करम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह शरीर आदि तीनोंलोक मनसेही कल्पितहै और दर्शनमें नेत्रके समान यह केवल स्मरणका निमित्त मात्रहै न कि अपने कालमें इसकी अर्थरूपता सिद्धहै ॥ ५ घट, पट तथा कुड्यादि भ्रमोंसे अभासमात्रही यह जगत्है, क्योंकि सत्से पृथक् घट पट कुड्य आदि कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ मनने अपने निवासार्थ शरीरको कल्पना ऐसे की है जैसे कोषकार कृमि अपने लिये आपही कोश ॥ ७ ॥ ऐसा कोई दुष्कर वा दुर्गम कुछभी नहीं है कि अर्थ शून्यको संकल्परूप मन न रचै वा उसको प्राप्त न करै ॥ ८ ॥

सर्वशक्तिधरेदेवेकानामननुशक्नय: ॥ नसंभवंत्यश्रियंतेयाभिरंतर्मनोगुहा: ॥ ९ ॥ सत्तासत्तेपदार्थानांसर्वेषांसर्वदैवहि ॥ महाबाहोसंभवत:सर्वशक्तौविभौसति ॥ १० ॥ पश्यभावनयाप्राप्तंमनसैवात्मजंवपु: ॥ तस्मात्तत्कलनांरामसर्वशक्तियुतांविदु: ॥ ११ ॥ स्वसंकल्पकृता:सर्वेदेवासुरनरादय: ॥ स्वसंकल्पोपशमनेशाम्यंत्यस्नेहदीपवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसे शक्तियोंका सम्भव जगदीश्वरमें नहीं है जो मनरूपी गुहाका आश्रय न करें ॥ ९ ॥ देखो ! अपनीही शरीरको ! भावनासेही मनसे इसको प्राप्त कियाहै इसलिये पंडितजन मनकी कल्पनाको सर्वशक्ति संयुक्त कहते हैं ॥ १० ॥ देव, असुर तथा मनुष्यादि मनके संकल्पमात्रसे रचे गये हैं, और मनके संकलपके शान्त होनेपर तैलरहित दीपकके समान आपही शान्त होजातेहैं ॥ १२ ॥

आकाशसदृशंसर्वंकलानामात्रजृंभितम् ॥ जगत्पश्यमहाबुद्धेसुदीर्घस्वप्नमुत्थितम् ॥ १३ ॥ नजायतेनम्रियतेइहकिंचित्कदाचन ॥ परमार्थेनसुमतेमिथ्यासर्वंतुविद्यते ॥ १४ ॥ नवृद्धिमेतिनोह्रासंयन्नकिंचित्कदाचन ॥ किंवातनुभवेत्तत्रकस्यकानामखंडना ॥ १५ ॥ भूमभूतंस्वकायोत्थमपश्यन्निपुणंदृशा ॥ राघवामहतास्वांत:किमज्ञइवमुह्यसि ॥ १६ ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे रामजी ! दीर्घ स्वप्नके समान प्रादुर्भूत इस संपूर्ण जगत्को देखो ! तथा आकाशके सदृश कल्पना मात्र तथा मनका विलास मात्र इसे जानो ॥ १३ ॥ हे सुमते रामजी ! परमार्थसे इस जगत्में न कुछ उत्पन्न हो और न मरे, किंतु यह सब मिथ्याही है ॥ १४ ॥ जो पदार्थ न कभी बुद्धिको प्राप्त हो न ह्रास (न्यूनता) को वह भला कैसे सूक्ष्म होसकताहै, और उसका खण्डनभी कैसे होसकताहै ॥ १५ ॥ हे राघव ! शरीरसे पृथक् अपरिच्छिन्न महान् आत्माको न देखते हुये, अपरिच्छिन्न आत्माके दर्शनसे अज्ञानीके तुल्य अपने अन्त:करणमें क्यों मोहित होते हो ॥ १६ ॥

मृगतृष्णायथातापान्मनसोनिश्चयात्तथा ॥ असंतइवदृश्यंतेसर्वेब्रह्मादयोप्यमी ॥ १७ ॥ द्विचंद्रविभ्रमप्रख्यामनोरथवदुत्थिता: ॥ मिथ्याज्ञानघना:सर्वेजगत्याकारराशय: ॥ १८ ॥ यथानौयायिनोमिथ्यास्थाणुस्पंदमतिस्तथा ॥ असत्यैवोत्थितानित्यमाकाराणांपरंपरा ॥ १९ ॥ इंद्रजालमिदंविद्धिमायारचितपंजरम् ॥ मनोमननिर्माणंनसन्नासदिवस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे मरूस्थलके आतप (घाम) से मनके निश्चयके कारण मृगतृष्णाकी नदियां देखपडती हैं ऐसेही ये सब ब्रह्मादिकहैं ॥ १७ ॥ दो चन्द्रके भ्रमके समान, मनोरथसे आविर्भूतके सदृश, मिथ्या अज्ञान घनरूप सम्पूर्ण आकारसमूह इस जगत्में दृष्टिगत होरहा हैं ॥ १८ ॥ जैसे नौकाके यात्रीको मिथ्याही ठूंठ वृक्षादिकी गति प्रतीत होती है ऐसेही पदार्थोंके आकारकी पंक्ति मिथ्याही आविर्भूतहैं ॥ १९ ॥ मायासे रचित शरीरवाले इन्द्रजालमय इस सम्पूर्ण जगत्को तुम जानो, यह सब मनकी रचनामात्र सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयरूपसे स्थितहै ॥ २० ॥

ब्रह्मैवेदंजगत्सर्वमन्यतायास्तत:कुत: ॥ प्रसंग:कीदृश:कोसौकवासापरितिष्ठति ॥ २१ ॥ अयंगिरिरयंस्थाणुरित्याडंबरविभ्रम: ॥ मनसोभावनादार्ढ्यादसन्सन्निवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ प्रपंचपतनारंभप्रमत्तस्यइदंजगत् ॥ सकामतृष्णामननंत्यक्त्वान्यद्रामभावय ॥२३॥ यथास्वप्नोमहारंभोभ्रांतिरेवनवस्तुत:॥ दीर्घस्वप्नंतथैवेदंविद्धिचित्तोपपादितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह सब ब्रह्ममात्रही है इसमें भिन्नताका प्रसंग कैसे और कहां ? और भिन्नता (भेद) कौन और कहां रहताहै ? ॥ २१ ॥ यह पर्वत, यह स्थाणु (ठूंठ) इत्यादि आडंबरका विभ्रम असत्रूपही मनकी भावनाकी दृढतासे सत्के समान लक्षित होताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! विचारहीन पुरुषको कामनासहित तृष्णाका मननरूप यह जगत्प्रपंच स्वर्गनरक तिर्यक् आदि जन्मका आरंभक होताहै इसलिये तुम निष्प्रपंच आत्माकी भावना करो॥२३॥ जैसे स्वप्नका महान् आरंभ भ्रांतिमात्रहै न कि यथार्थ, ऐसेही चित्तसे रचित इसजगत्को दीर्घ स्वप्नही जानो ॥२४॥

दृश्यमानमहाभोगंगृह्यमाणमवस्तुकम् ॥ कोशमाशाभुजंगानांसंसाराडंबरंत्यज ॥ २५ ॥ असदेतदितिज्ञात्वामात्रभावंनिवेशय ॥ अनुधावतिनप्राज्ञोविज्ञायमृगतृष्णिकाम् ॥ २६ ॥ स्वसंकल्पात्स्वरूपाद्यांमनोरथमयींश्रियम् ॥ योनुगच्छतिमूढात्माइ:खस्यैवसभाजनम् ॥ २७ ॥ वस्तुन्यसतिलोकोयंयाउकाममवस्तुनि ॥ यस्तुवस्तुपरित्यज्ययात्यवस्तुसनश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! देखनेमें विशालरूप महाभोगका स्थान, ग्रहण करनेमें, आशारूपी सर्पोंका कोश इस संसारको तुम त्यागो ॥ २५ ॥ हे रामजी ! असत् ऐसा जानकर इस संसारमें तुम अपना राग (प्रेम) न करो, क्योंकि

बुद्धिमान् पुरुष मृगतृष्णाको जानके उसके पीछे नहीं दोडता ॥२६॥ अपने संकल्पसे स्वरूपमात्रसे पूर्ण, और मनोरथ मायालक्ष्मीके पीछे जो मूढात्मा दौडताहै वह केवल दुःखकाही भागी है ॥ २७ ॥ वस्तु (आत्मरूप) के न रहनेपर भलेही संसार अवस्तु (असत् संसार) की ओर जावै, परन्तु जो वस्तुको त्यागके जाताहै वह परम पुरुषार्थसे नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

मनोव्यामोहएवेदंरज्ज्वामहिभयंयथा ॥ भावनामात्रवैचित्र्याच्चिरमावर्त्ततेजगत् ॥२९॥ असदभ्युदितेभावेर्जलांतश्चंद्रवच्चलैः ॥ वंच्यतेबालएवेहनतत्त्वज्ञोभवादृशः ॥ ३० ॥ यइमंगुणसंघातंभावयन्सुखमीहते ॥ प्रमार्ष्टिसजडोजाड्यंवह्निभावनयास्वया ॥ ३१ ॥ असदेवेदमाभोगिदृश्यतेजलपंजरम् ॥ मनोमननिर्माणंहृदयेनगरंयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—रज्जु (रस्सी) में सर्पके भयके समान यह जगत् मनका व्यामोह मात्रहै, और भावनाकी विचित्रता मात्रसे यह जगत् चिरकाल तक रहताहै ॥ २९ ॥ जलमें चंचल अनेक चंद्रमाके तुल्य असत् पदार्थोंसे बालक (अज्ञानी) ही ठगा जाताहै नकि तुह्मारे सदृश तत्वज्ञानी पुरुष ॥३०॥ जो पुरुष शब्दादि संघात देहादिको अहं (मैं) भावना करताहुआ सुख चाहताहै वह जड प्राणी मानो मनोरथसे कल्पित अग्निसे अपनी शीत दूर करताहै ॥ ३१ ॥ यह विशाल जड भूतोंका संघात देहादि असत् रूपही ऐसे देख पडताहै जैसे मनके मननशक्तिकी रचनासे हृदयमें नगर ॥ ३२ ॥

इदंचित्तेच्छयोदेतिलीयतेतदनिच्छया ॥ मिथ्यैवंदृश्यतेस्फीतंगंधर्वनगरंयथा ॥ ३३ ॥ रामनष्टेजगत्यस्मिन्नकिंचिदपिनश्यति ॥ युक्तेपिचजगत्यस्मिन्नकिंचिदपियुज्यते ॥ ३४ ॥ मनःप्रकल्पितेभग्नेहृदिविस्तीर्णपत्तने ॥ वृद्धिंचोपगतेब्रूहिकिंवृद्धंकस्यकिंक्षतम् ॥३५॥ क्रीडार्थेनयथोदेतिबालानांहृदिवर्त्तनम् ॥ मनसातद्वदेवेदमुदेत्यविरतंजगत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह जगत् चित्तकी इच्छाहीसे उदय होताहै और उसकी इच्छा न होनेसे लीन (नष्ट) होजाताहै, और गंधर्व नगर वा मनोरथ रचित नगरके समान मिथ्याही विशाल स्वच्छ रूप देख पडताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! इस जगत्के नष्ट होनेपर कुछ नहीं नष्ट होता और इसके बढनेपर कुछ बढता नहीं ॥ ३४ ॥ मनसे कल्पित हृदयमें विशाल नगरके नष्ट होनेपर तथा उसके बुद्धिको प्राप्त होनेपर कहो क्या बढा और किसका क्या नष्ट हुआ ॥ ३५ ॥ जैसे क्रीडाके अर्थ बालकोंकी प्रतिमा (मृत्तिका रचित प्रतिमा वा खेलौना) वा पशु आदिसे व्यवहार होताहै ऐसेही मनसे निरंतर यह जगत् उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

नकिंचित्कस्यचिन्नष्टमिंद्रजालजलेयथा ॥ भ्रष्टेनष्टतथैवास्मिन्संसारेवितथोत्थिते ॥ ३७ ॥ यदसत्तदसत्स्याच्चेन्नकिंकस्यकिलक्षतम् ॥ ततोहर्षविषादानांसंसारेनामनास्पदम् ॥ ३८ ॥ असदेवयदत्यंतंतस्मात्किंनामनश्यति ॥ नाशाभावेहिदुःखस्यकःप्रसंगोमहामते ॥ ३९ ॥ सदेववायदत्यंतंतस्यकिंनामनश्यति ॥ ब्रह्मैवेदंजगत्सर्वंसुखदुःखेकिमुत्थिते ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे इन्द्रजालके जलके नष्ट होनेपर किसीका कुछभी नष्ट नहीं होता ऐसेही मिथ्या आविर्भूत इस संसारके नष्ट भ्रष्ट होनेपर किसीका कुछ नहीं होता ॥ ३७ ॥ जो असत् है वह यदि असत् होजाय तो किसका क्या बिगडा ! इसलिये इस संसारमें हर्ष शोकका क्या अवसरहै ॥ ३८ ॥ जो सर्वथा असत् है उससे क्या नष्ट होताहै, और हे महामते ! नाशके अभावमें दुःखका क्या प्रसंग ? ॥ ३९ ॥ अथवा जो सर्वथा सत् उसकाभी क्या नष्ट हो सकताहै ? जब ब्रह्मही यह जगत्है तो सुखदुःख किस निमित्तसे उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥

असद्वापियदत्यंतंवृद्धिःस्यात्तस्यकीदृशी ॥ वृद्धेरभावेहर्षस्यकःप्रसंगोमहामते ॥ ४१ ॥ सर्वत्रासत्यभूतेस्मिन्प्रपंचैकांतकारिणि ॥ संसारेकिमुपादेयंप्राज्ञोभिवांछतु ॥ ४२ ॥ सर्वत्रसत्यभूतेस्मिन्ब्रह्मतत्त्वमयेपिच ॥ किंस्यात्त्रिभुवनेहेयंप्राज्ञाःपरिहरंतुयत् ॥ ४३ ॥ असत्सद्वाजगद्यस्यतेनासौसुखदुःखयोः ॥ अगम्यएवमूर्खस्तुतद्विनाशेनदुःखितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अथवा जो सर्वथा असत्है उसकी वृद्धिभी कैसी होगी ! और वृद्धिही नहीं तब हे महामते रामजी ! हर्षका क्या प्रसंगहै ॥ ४१ ॥ सर्वथा असत्य और निरंतर जन्म मरणादि प्रपंचोंको करनेवाले इस संसारमें कौन वस्तु ग्राह्यहै जिसकी इच्छा बुद्धिमान् पुरुष करै ॥ ४२ ॥ और सर्वथा सत्यभूत और ब्रह्मतत्वमय इस त्रिभुवनमें कौन वस्तु त्याज्य है जिसको बुद्धिमान् लोग त्यागें ॥ ४३ ॥ जिसके मतमें अपने स्वरूपसे असत् और ब्रह्मरूपसे

सत् यह जगत्है वह पुरूष सुखदुःखका पात्र नहीं है और मूर्ख जो जगत्के स्वरूपसे इसमें सत्य विश्वास करताहै वह इसके नाशसे दुःखी होताहै ॥ ४४ ॥

आदावंतेचयन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा ॥ योभिवांछत्यसद्रामतस्यासत्तैवदृश्यते ॥ ४५ ॥ आदावंतेच यत्सत्यंवर्त्तमानेसदेवतत् ॥ यस्यसर्वंसदेवस्यात्तस्यसत्तैवदृश्यते ॥ ४६ ॥ असत्यभूतंतोयांतश्चंद्र व्योमतलादिकम् ॥ बालाएवाभिवांछंतिमनोमोहायनोत्तमाः ॥ ४७ ॥ बालोहिविततार्थकारैर्वस्तुरिक्तैः प्रयोजनैः ॥ संतोषमेत्यनंतायदुःखायनसुखायतु ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो वस्तु आदि अंतमें नहीं है वह वर्तमानमेंभी वैसेही है, हे रामजी ! जो असत्की इच्छा करताहै उसको असत्ताही सर्वत्र देख पडती है ॥ ४५ ॥ जो वस्तु आदि और अंतमें सत्यहै वह वर्तमानमेंभी सद्रूपही है, जिसके मतमें संपूर्ण जगत् सद्ब्रह्ममयहै उसको सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ताही देख पडतीहै ॥ ४६ ॥ जलके भीतर असत्य चंद्रमंडल तथा आकाश तलादिककी आकांछाबालकही करतेहैं न कि मनके मोहकेलिये महात्माजन ॥ ४७ ॥ अर्थ शून्य और सुखाभासमात्र विशाल वस्तुओंसे बालक (मूर्ख) ही अनंत दुःखकेलिये संतोषको प्राप्त होताहै न कि सुखकेलिये ॥ ४८ ॥

तस्मान्मात्वंभवोबालोरामराजीवलोचन ॥ अविनाशमिहालोक्यनित्यमाश्रयसुस्थिरम् ॥ ४९ ॥ असदिदमखिलंमयासमेतंत्विति विगणय्यविषादितास्तुमाते ॥ सदिदमिहसकलंमयासमेतंत्वितिचविलोक्यविषादितामास्तुमाते ॥ ५० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनाय विधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थयोगोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ नवमोदिवसः ९

अर्थ—इस कारण हे कमलनेत्र रामजी ! तुम बालक (अज्ञानी) न हो किंतु अविनाशी आत्माका दर्शन करके नित्य उसी अचल पदका आश्रय करो ॥ ४९ ॥ मायासे मूढ जनोंसे आत्मरूपसे कल्पित अहंकार समेत इस संपूर्ण जगत्को असद्रूप जानकरके इसमें राग बुद्धि तुमको न हो और अज्ञान रहित अपने स्वरूप सहित इस संपूर्ण जगत्को सत्य ब्रह्मरूप जानकरभी इसमें तुमको राग न हो॥५०॥ श्रीवाल्मीकजी बोले–वसिष्ठ मुनिके इतना कहनेपर सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुये और संपूर्ण सभा सन्ध्या वंदन करनेकेलिये अपने २ स्थानपर चलीगई और रात्रिके नाश होनेपर सूर्यकी किरणोंके साथ पुनः आकारके प्राप्त हुई ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे यथाभूतार्थयोगोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ नवमोदिवसः ॥ ९ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

संसारमें विहार करते हुयेभी जिन गुणोंसे ज्ञानी पुरुष संसारमें नहीं डूबता और जो गुण जीवन् मुक्तोंमें विद्यमानहै उसका वर्णन इस ४६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रम्येधनेषुदारादौशोकस्यावसरोहिकः ॥ इंद्रजालेक्षणादृष्टेनष्टेकापरिदेवना ॥१॥ गंधर्वनगरस्यार्थेदूषितेभूषितेतथा ॥ अविद्यांशेसुतादौवाकःक्रमःसुखदुःखयोः ॥ २ ॥ रम्येधनेथदारादौहर्षस्यावसरोहिकः ॥ वृद्धायांमृगतृष्णायांकिमानंदोजलार्थिनाम् ॥ ३ ॥ धनदारेषुवृद्धेषुदुःखंयुक्तंनतुष्टयः ॥ वृद्धायांमोहमायायांकःसमाश्वासवानिह ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! रमणीय धन स्त्री पुत्रादिकोंके नाश होनेपर शोकका क्या अवसरहै क्योंकि एक क्षणकेलिये दृष्ट इन्द्रजालके नष्ट होनेपर विलापका क्या अवसरहै ॥ १ ॥ गंधर्व नगरके पदार्थोंके दूषित व भूषित होनेपर और अविद्याके अंश स्त्री पुत्रादिकोंके दूषित व भूषित होनेपर सुखदुःखका क्या प्रसंगहै ॥२॥ धन तथा स्त्री पुत्रादिकोंके रमणीय होनेपर हर्षका कौन अवसरहै क्योंकि मृगतृष्णाकी नदीके बढनेपर जलार्थी पुरुषोंको कौनसा अधिक सुख होताहै ॥ ३ ॥ स्त्री पुत्रादिके बढनेपर दुःख वा संतोष दोनोंयुक्त नहींहैं क्योंकि मोह मायाके बढनेपर कौन पुरुष सुखी होसकता ॥ ४ ॥

यैरेवजायतेरागोमूर्खस्याधिकतागतैः ॥ तैरेवभोगैःप्राज्ञस्यविरागउपजायते ॥ ५ ॥ नष्टेधनेथदारादौहर्ष स्यावसरोहिकः ॥ पारावलोकिनस्त्वेतैर्विरागंयांतिसाधवः ॥ ६ ॥ अतोराघवतत्त्वज्ञोव्यवहारेषुसंस्र तेः ॥ नष्टंनष्टमुपेक्षस्वप्राप्तंप्राप्तमुपाहर ॥ ७ ॥ अनागतानांभोगानामवांछनमकृत्रिमम् ॥ आगतानांच संभोगइतिपंडितलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिन भोगोंके अधिक होनेपर मूर्खजनको राग उत्पन्न होताहै उन्ही भोगोंसे ज्ञानीपुरूषको वैराग्य उत्पन्न होताहै ॥ ५ ॥ धन अथवा स्त्री आदिके नष्ट होनेपर हर्षका कौनसा अवसरहै क्योंकि नश्वरता तथा नरक हेतुतादि परिणाम देखनेवाले साधु महात्मा इन स्त्रीपुत्रादिकोंसे विरक्त होजातेहैं ॥ ६ ॥ इसलिये हे रामजी ! संसारके व्यवहारोंमें तत्वज्ञ होकर नष्ट पदार्थोंकी उपेक्षा करो और प्राप्त २ का सेवन करो ॥ ७ ॥ अप्राप्त भोगोंकी इच्छाका स्वाभाविक अभाव और प्राप्त भोगोंका संभोग करना यह पंडितका लक्षणहै ॥ ८ ॥

संसारसंभ्रमेह्यस्मिंश्छन्नात्मन्याततायिनि ॥ तथाविहरसंबुद्धोयथानायासिमूढताम् ॥ ९ ॥ संसारा डंबरस्यास्यप्रपंचरहितेक्रमे ॥ सम्यग्ज्ञानानुपश्यंतियेहतास्तेकुबुद्धयः ॥ १० ॥ ययाकयाचियुक्त्यै वदृश्यादस्यगतारतिः ॥ परिमज्जतितस्यास्थानकचिद्विमलामतिः ॥ ११ ॥ यस्यासदिदमित्यास्था निवृत्तासर्ववस्तुषु ॥ क्रोडीकरोतिसर्वज्ञंनाविद्यातमवास्तवी ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारमें भ्रम करानेवाले प्रच्छन्न होकर मारनेके लिये तत्पर आतताई स्वरूप इस कामके विषयमें ज्ञानके विषयमें सावधान होकर ऐसे व्यवहार करो जिसप्रकार मूढताको न प्राप्तहो ॥ ९ ॥ प्रपंचरहित ब्रह्म-पदमें उत्तम ज्ञानवान् पुरुषभी जो इस संसारके आडंबरकी वंचनाको आलस्यसे नहीं देखते वे कुबुद्धि अपने प्रमा-दसेही मारेगये ॥ १० ॥ जिस पुरूषकी जिस किसी युक्तिसे इस दृश्य संसारसे प्रीति निवृत्त होगई उसकी परमार्थमें प्रविष्ट विमलबुद्धि मोहरूपी समुद्रमें नहीं बूडती ॥ ११ ॥ जिस पुरूषकी बुद्धि सम्पूर्ण जगत्को असत्य जानकर सं-पूर्ण वस्तुओंसे निवृत्त होगई है उस सर्वज्ञ पुरूषको मिथ्या अविद्या अपने वशमें नहीं करती ॥ १२ ॥

अहंजगच्चैकमिदंसर्वमेवेतियस्यधीः ॥ आस्थानास्थेपरित्यज्यसंस्थितासनमज्जति ॥१३॥ शुद्धंसदस तोर्मध्यंपदंबुद्ध्यावलंब्यच ॥ सबाह्याभ्यंतरंदृश्यंमागृहाणविमुंचमा ॥ १४ ॥ अत्यंतविरतःस्वस्थःस र्वावासविवर्जितः ॥ व्योमवत्तिष्ठनीरागोरामकार्यपरोविसन् ॥ १५ ॥ यस्यनेच्छानवानिच्छाज्ञस्यकर्म णितिष्ठतः ॥ नतस्यलिप्यतेप्रज्ञापद्मपत्रमिवांबुभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस पुरूषकी बुद्धि ऐसी है कि यह संपूर्ण जगत् और मैं एक ब्रह्मरूपही है उसकी बुद्धि आस्था अनास्थाको परित्याग करके स्थित रहती है और वह प्राज्ञ समुद्रमें नहीं डूबता ॥ १३ ॥ व्यक्त और अव्यक्तमें व्यक्तमें अनुगत शुद्ध ब्रह्मपदको जानकर और उसी प्रत्यगात्मरूपको अवलंबन करके बाह्य और आभ्यन्तर सहित इस जगत्को न तो ग्रहण करो न त्यागो ॥ १४ ॥ सर्वथा विरक्त, संतोषी, स्थानके अभिमानसे रहित, आकाशके सदृश रागरहित, इस संसारमें कार्य करते हुयेभी तुम स्थित रहो ॥ १५ ॥ जिसको इच्छा वा इच्छाका अभाव नहीं है ऐसे तत्वज्ञानीके कर्ममें स्थित पुरूषकी बुद्धि इस संसारमें ऐसे नहीं लिप्त होती जैसे जलसे कमलका पत्र ॥ १६ ॥

दर्शनस्पर्शनादीनिमाकरोतुकरोतुच ॥ तवेंद्रियमनोगौणंत्वमनिच्छोभवात्मवान् ॥ १७ ॥ ममेदमित्य सद्भूतमिंद्रियार्थेभवन्मनः ॥ मानिमज्जत्वमग्नःसन्माकरोतुकरोतुवा ॥१८॥ यदातेनेंद्रियार्थश्रीःस्वदते हृदिराघव ॥ तदाविज्ञातविज्ञानःसमुत्तीर्णभवार्णवः ॥ १९ ॥ आस्वादितेंद्रियार्थस्यसतनोरतनोरपि ॥ अनिच्छतोपिसंपन्नामुक्तिरर्थवशात्तव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारमें आशक्तिरहित इंद्रियसहित तुह्मारा मन दर्शन स्पर्शनादि व्यापार करै वा न करै परन्तु तुम आत्मनिष्ठ और भीतरसे इच्छारहित होजाओ ॥ १७ ॥ यह मेराहै इसे असद् जानकरके इंद्रियके अर्थ शब्द स्पर्शादिमें अभिमुख होता हुआ तुह्मारा मन निमग्न न हो और मग्नतारहित इंद्रियोंके व्यापारोंको करै वा न करै ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जब इंद्रियके अर्थ शब्दस्पर्शादिकी शोभा तुह्मारे हृदयमें नहीं रूचैगी तब तुम ज्ञान तथा विज्ञान संपन्न होकर संसार समुद्रके पार होजावोंगे ॥ १९ ॥ जब इस लोकके और परलोकके इन्द्रियोंके विषय सर्वथा तुह्मारी अरुचिके विषय होजावेंगे तब तुम संसारका व्यवहार करते रहो वा समाधिनिष्ठहो परंतु इच्छा न करनेपरभी मुक्ति तुमको बिना प्रयासही प्राप्त होगी ॥ २० ॥

उच्चैःपदायपरयाप्रज्ञयावासनागणात् ॥ पुष्पाद्गंधमिवोदारंचेतोरामपृथक्कुरु ॥ २१ ॥ संसारांबुनिधावस्मिन्वासनांबुपरिप्लुते ॥ येप्रज्ञानावमारूढास्तेतीर्णाबुडिताःपरे ॥ २२ ॥ क्षुरधाराप्रमितयाधियापरम

धीरया ॥ प्रविचार्यात्मनस्तत्त्वंततःस्वपदमाविश ॥ २३ ॥ यथातत्त्वविदःप्राज्ञाज्ञानबृंहितचेतसः ॥ विहरंतितथारामविहर्तव्यंनमूढवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उच्चपदपर प्राप्त होनेकेलिये परम उत्कृष्ट बुद्धिसे अपने ज्ञानवैराग्यसे उत्कृष्ट चित्तको वासनाके समूहसे ऐसे पृथक् करो जैसे पुष्पसे गंधको ॥ २१ ॥ वासनारूपी जलसे पूर्ण इस संसाररूपी समुद्रमें वेही पार उतरे हैं जो बुद्धिरूप नौकापर आरूढ हुये हैं और शेष सम्पूर्ण बूडगये ॥ २२ ॥ हे रामजी ! विवेकवैराग्यादिसे क्षुरकीधाराके समान तीक्ष्ण परमधीर बुद्धिसे अपने आत्मतत्वको विचारकर अनंतर उस अपने परमपदमें प्रवेश करो ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जैसे ज्ञानसे वर्द्धित चित्तवाले, बुद्धिमान् तथा तत्ववेत्ता महात्माजन इस संसारमें विहरते हैं ऐसेही विहरना चाहिये, न कि मूढोंके तुल्य ॥ २४ ॥

जीवन्मुक्तामहात्मानोनित्यतृप्तामहाधियः ॥ आचारैरनुगंतव्यानभोगकृपणाःशठाः ॥ २५ ॥ नत्यजंतिनवांछंतिव्यवहारंजगद्गतम् ॥ सर्वमेवानुवर्त्ततेपारावारविदोजनः ॥ २६ ॥ प्रभावस्याभिमानस्यगुणानांयशसःश्रियः ॥ नकचित्कृपणालोकेमहांतस्तत्त्वदर्शिनः ॥२७॥ सुशून्येपिनखिद्यंतेदेवोद्यानेन संगिनः ॥ नियतिंचनमुंचंतिमहांतोभास्कराइव ॥ २८ ॥

अर्थ—जो नित्य तृप्त महाबुद्धिमान् जीवन्मुक्त महात्मागणहैं उन्हींके आचरणोंका अनुगामी होना चाहिये न कि अपने तथा अन्यके वंचक शठोंका ॥ २५ ॥ ब्रह्म तथा जगत्के तत्वोंको जाननेवाले महात्माजन जगत्के व्यवहारोंको न त्यागते हैं और न उसकी इच्छा करते हैं, किंतु यथा प्राप्त सबका अनुवर्तन करते हैं ॥ २६ ॥ तत्वदर्शी महात्माजन विद्या तपस्याकी उत्कर्षतारूप प्रभाव, अभिमान, प्रवीणता, कुलशीलादि गुण, कीर्ति तथा संपत्तिके कृपण कभी नहीं देखेगये, क्योंकि इनमें पुरुषार्थता दृष्टि नहीं रखते ॥ २७ ॥ पूर्वोक्त महात्माजन सर्व नाशसेभी खिन्न नहीं होते और इन्द्रके उद्यान नंदनबनमेंभी आसक्त नहीं होते और सूर्यके तुल्य अपनी शास्त्रसिद्ध मर्यादाको कभी नहीं त्यागते ॥ २८ ॥

विगतेच्छायथाप्राप्तव्यवहारानुवर्त्तिनः ॥ विचरंतिसमुन्नद्धाःस्वस्थादेहरथेस्थिताः ॥ २९ ॥ त्वमपिप्राप्तवान्रामविवेकमिममाततम् ॥ प्रज्ञाबलेनचानेनज्ञानेस्वस्थोसिसुंदर ॥ ३० ॥ स्पष्टांदृष्टिमवष्टभ्यनिर्मानोगतमत्सरः ॥ विहरास्मिन्भुवःपीठेपरांसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥ स्वस्थःसर्वेहितत्यागीदूरालोकनवांछनः ॥ परांशीतलतामंतरादायविहरानघ ॥ ३२ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्थंगिराविमलयाविमलाशयस्यरामोमुनेःसपदिमृष्टइवावभासे ॥ ज्ञानामृतेनमधुरेणविराजितांतःपूर्णःशशांकइवशीतलतांजगाम ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवन्मुक्तस्थितगुणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—इच्छाशून्य, यथा प्राप्त व्यवहारके अनुसार वर्तनेवाले, विज्ञानरूप सारथीसे संयुक्त, स्वस्थ होके देहरूपी रथपर स्थित इस संसारमें विचरतेहैं ॥ २९ ॥ हे रामजी ! तुमकोभी यह विशाल विज्ञान प्राप्त हुआहै, हे सुंदर रामजी ! इस बुद्धिबलसे तुम ज्ञानमें स्वस्थ हो ॥३०॥ प्रत्यक्ष आत्मदृष्टिका अवलंबन करके मान तथा मात्सर्य शून्य होके इस पृथिवीतलपर विहार करो तो परम सिद्धिको प्राप्त होओगे ॥ ३१ ॥ हे पापरहित रामजी ! स्वस्थ सब चेष्टाओंके त्यागी, विषय कौतुकोंके दर्शनकी इच्छासे रहित होके, और अंतःकरणमें परम शांतिरूप शीतलताको ग्रहण करके इस संसारमें विहार करो ॥ ३२ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—इसप्रकार निर्मल अंतःकरणवाले मुनि वसिष्ठकी विमलवाणीसे शोधितके समान रामचन्द्रजी शीघ्र भासित होगये, तथा अति मधुर ज्ञानामृतसे दीपित अंतःकरण पूर्णचन्द्रमाके सदृश अति शीतलताको प्राप्त हुये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवन्मुक्तस्थितिगुणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अतीत, भावी, तथा वर्तमान ब्रह्मा तथा ब्रह्माण्डोंकी अनेक कोटि, तथा नियम, और अनियत क्रमवाले देवतादि इस ४७ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्ववेदांगपारग ॥ आश्वस्तइवतिष्ठामिशुद्धाभिर्भवदुक्तिभिः॥१॥ उदाराणिविविक्तानिपेशलान्युदितानिच ॥ श्रोतुंतृप्तिंनगच्छामिवचांसिवदतस्तव ॥ २ ॥ जात्याराजससात्विक्याःकथनावसरांतरे ॥ उत्पत्तिर्भवताप्रोक्ताशास्त्रैःकमलजन्मनः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहूनिब्रह्मलक्षाणिशंकरेंद्रशतानिच ॥ नारायणसहस्राणिसमतीतानिराघव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! हे वेदवेदांग पारग ! आपके विमल बचनोंसे मैं इस समय सर्वथा स्वस्थके समान स्थितहुं ॥ १ ॥ उत्तम अर्थयुक्त वर्णपद और वाक्योंके प्रकरण भेदोंसे व्यक्त विचित्र कथाओंकी युक्तियोंके संदर्भसे निपुण, तथा आत्मतत्व और हृदयकमलके प्रकाशक होनेसे सूर्यादिके समान निःसृत आपके बचनोंको सुननेको मैं तृप्त नहीं होता ॥ २ ॥ हे भगवन् ! राजस तथा सात्विक जीवजातिके प्रसंगसे ब्रह्माकी उत्पत्ति नानाप्रकारके सृष्टिप्रतिपादक वेदपुराणादि प्रमाणोंसे कहाथा उसको स्पष्ट रीतिसे वर्णन कीजिये॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघवजी ! अनेक लक्ष ब्रह्मा, सैकडों शंकर तथा इन्द्र, और सहस्रों नारायण बीतगये ॥४॥

अन्येषुचविचित्रेषुब्रह्मांडेषुचभूरिशः ॥ नानाचारविहाराणिविहरंतिसहस्रशः ॥ ५ ॥ तुल्यकालमनंतेषुकालांतरभवेषुच ॥ जगत्सुप्रोद्भविष्यंतिबहून्यन्यानिभूरिशः ॥ ६ ॥ तेषामब्जोद्भवादीनांब्रह्मांडेषु दिवौकसाम् ॥ उत्पत्तयोमहाबाहोविचित्राभ्युत्थिताइव ॥ ७ ॥ कदाचित्सृष्टयःशार्व्यःकदाचित्पद्मजोद्भवाः ॥ कदाचिदपिवैष्णव्यःकदाचिन्मुनिनिर्मिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—और अन्य नानाप्रकारके ब्रह्माण्डोंमें तथा इसमें नानाप्रकार आचार विहारवाले देव दैत्यादि शरीर विहार करतेहैं ॥ ५ ॥ एकसमयमें तथा अन्यसमयमें होनेवाले अनेक ब्रह्माण्डोंमें अनेक बार अनेक देवतादि उत्पन्न होंगे ॥६॥ हे महाबाहो ! उन ब्रह्मादि कृत ब्रह्माण्डोंमें देवतादिकी उत्पत्ति मानो विचित्र इन्द्रजालसे आविर्भूत हुई है ॥७॥ कदाचित् सृष्टि महादेवजीसे होती हैं कभी ब्रह्मासे, कभी विष्णुसे और कभी मुनिरचित होती हैं ॥८॥

कदाचित्पद्मजोब्रह्माकदाचित्सलिलोद्भवः ॥ अंडोद्भवःकदाचित्तुकदाचिज्जायतेंबरात् ॥ ९ ॥ कस्मिंश्चिदंडेत्र्यक्षोर्कःकस्मिंश्चिदपिवासवः ॥ कस्मिंश्चित्पुंडरीकाक्षःकस्मिंश्चित्त्र्यक्षएवहि ॥ १० ॥ कस्यांचिद्भूरभूत्सृष्टौनीरंध्रतरुसंकटा ॥ कस्यांचिन्नरनीरंध्राकस्यांचिद्भूधरावृता ॥ ११ ॥ भूरभून्मृन्मयीकाचित्काचिदासीद्दृषन्मयी ॥ आसीद्धेममयीकाचित्काचित्ताम्रमयीतथा ॥ १२ ॥

अर्थ—और ब्रह्मा कभी कमलसे, कभी जलसे, कभी अण्डसे और कभी आकाशसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ किसी ब्रह्मांडमें महादेव, किसीमें सूर्य, किसीमें इन्द्र, किसीमें विष्णु और किसीमें महादेवही महादेवताओंके अधिकारमें हैं ॥ १० ॥ कभी किसी सृष्टिमें प्रथम वृक्षोंसे व्याप्त यह पृथिवीथी, कभी मनुष्योंसे; कभी तो पर्वतोंसे व्याप्त थी ॥११॥ कोई पृथिवी मृत्तिकामयी थी कभी कोई पाषाणमयी, कोई सुवर्णमयी, और कोई ताम्रमयीथी॥१२॥

इहैवकानिचित्राणिजगंत्यन्यान्यथान्यथा ॥ अन्यान्येकैकलोकानिनिर्महांस्यपिकानिचित् ॥ १३ ॥ अनंतानिजगंत्यस्मिन्ब्रह्मतत्त्वमहांबरे ॥ अंभोधिवीचिजलवन्निमज्जंत्युद्भवंतिच ॥ १४ ॥ यथातरंगाजलधौमृगतृष्णामरौयथा ॥ कुसुमानियथाचूतेतथाविश्वश्रियःपरे ॥ १५ ॥ भानोर्गणयितुंशक्यारश्मिषुत्रसरेणवः ॥ आलोलवपुषोब्रह्मतत्त्वेनजगतांगणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसी ब्रह्मांडमें कितने आश्चर्यमय जगत्हैं, और अन्य २ ब्रह्मांडभी बहुत आश्चर्यमय हैं, और किसीमें एक सूर्यका प्रकाशहै और कितनेमें इस ब्रह्मरूपी महाआकाशमें अनंत ब्रह्माण्ड ऐसे उत्पन्न और लीन होतेहैं जैसे समुद्रमें तरंगके जल ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे समुद्रमें तरंग; मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां, तथा आम्रके वृक्षमें पुष्पहैं इसी प्रकार परमात्मामें संसारकी शोभा है ॥ १५ ॥ सूर्यकी किरणोंमें जो त्रसरेणु उडतेहैं उनकी गंणना होसकती हैं परन्तु ब्रह्मतत्वमें जो चंचल जगत्के समूह हैं उनकी गणना नहीं होसकती ॥ १६ ॥

यथामशकजालानिवर्षादिष्वाकुलानितु ॥ उत्पत्योत्पत्यनश्यंतितथेमालोकसृष्टयः ॥ १७ ॥ नचविज्ञायतेकस्मात्कालात्प्रभृतिचागताः ॥ नित्यागमापायपराएताःसर्गपरंपराः ॥ १८ ॥ अनादिमत्योविरतंप्रस्फुरंतितरंगवत् ॥ पूर्वात्पूर्वंकिलाभूवंस्ततःपूर्वतरंयथा ॥ १९ ॥ भूत्वाभूत्वाप्रलीयंतेससुरासुरमानवाः ॥ सरित्तरंगभंग्यैवसमस्ताभूतजातयः ॥ २० ॥

अर्थ—जिसप्रकार वर्षादि ऋतुओंमें मशकादिके समूह उत्पन्न हो होकर नष्ट होजातेहैं यही दशा इन सृष्टियोंकी है यह नहीं विदित होता कि निरंतर आविर्भाव और तिरोभावमें तत्पर यह सृष्टियोंमेंकी पंक्ति किस कालसे

होती चली आती हैं अर्थात् प्रवाह रूपसे अनादि हैं ॥ १८ ॥ आदि अंतरहित यह सृष्टि निरंतर तरंगके समान स्फुरित होती है जो पूर्व सृष्टि है उससे भी पहले सृष्टिथी और उनसे भी पहले थी ॥ १९ ॥ सुर असुर तथा मनुष्य सहित संपूर्ण प्राणियोंकी जाति उत्पन्न हो होकर ऐसे नष्ट होजाती हैं जैसे नदीमें तरंग ॥ २० ॥

यथेदमंडं वैरिंचंतथाब्रह्मांडपंक्तयः ॥ याःसहस्राःपरिक्षीणानाडिकावत्सरेष्विव ॥ २१ ॥ अन्याःसंप्रतिविद्यंतेवर्त्तमानशरीरकाः ॥ प्रांतेब्रह्मपुरस्यास्यविततेब्रह्मणःपदे ॥ २२ ॥ ब्रह्मण्यन्याभविष्यंतिब्राह्म्योब्रह्मपुरश्रियः ॥ पुनस्ताश्चविनंक्ष्यंतिभूत्वाभूत्वायथागिरः ॥ २३ ॥ ब्रह्मण्यन्याभविष्यंत्यःस्थिताःसर्गपरंपराः ॥ घटाइवमृदोराशावंकुरेपल्लवाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे यह ब्रह्माका हमारा ब्रह्माण्डहै ऐसे सहस्रों ब्रह्मांडकी पंक्ति ऐसे नष्ट होगई हैं जैसे संवत्सरोंमें घटिका ॥ २१ ॥ अन्यभी ब्रह्मांडकी पंक्ति जो कि इससमयमें वर्तमानहैं वे सब इसी ब्रह्मपुर नामक अतिव्याप्त हृदय पुंडरीकमें स्थित जो ब्रह्मपदहै उसीमें स्थितहैं ॥२२॥ और ब्रह्ममें अन्यभी ब्रह्मासे रचित ब्रह्मांडकी पंक्ति जो कि ब्रह्मपुरकी शोभारूपहैं उत्पन्न होंगी और पुनः वे हो होकर ऐसे नष्ट होंगी जैसे आकाशमें शब्द॥२३॥और जैसे मृत्तिकाकी राशिमें घट स्थितहैं और अंकुरमें पल्लव स्थितहैं ऐसेही ब्रह्ममें होनेवाली अन्य सृष्टियोंकी परंपरा स्थितहैं॥२४॥

यावद्ब्रह्मचिदाकाशेतथात्रिभुवनश्रियः ॥ स्फाराकारविकाराढ्याःप्रेक्ष्यमाणानकिंचन ॥ २५ ॥ उन्मज्जंत्योनिमज्जंत्योनसत्यानाप्यसच्छ्रियः ॥ जडारंभावितन्वंत्यस्ताएवखलताइव ॥ २६ ॥ तरंगसमधर्मिण्योदृष्टनष्टशरीरकाः ॥ सर्वासांसृष्टिराशीनांचित्राकारविचेष्टिताः ॥ २७ ॥ चित्राकारविकाराश्चचित्ररूपाहिसृष्टयः ॥ व्यतिरिक्तानसर्वेषांसमस्ताःसृष्टिदृष्टयः ॥२८॥ तत्त्वज्ञविषयेरामसलिलादिववृष्टयः॥ आयांतिसृष्टयोदेवाज्जलदादिववृष्टयः ॥ २९ ॥

अर्थ—महान् आकारोंसे पूर्ण ये त्रिभुवनकी शोभा चिदाकाशमें तभीतक देख पडती है जबतक कि तत्वज्ञानसे इनका बाध नहीं होता ॥ २५ ॥ यह ब्रह्मांड अनिर्वचनीय मूर्खोंसे अध्यस्त विशालरूप ब्रह्मांडकी शोभा आविर्भाव तिरोभावको प्राप्त होती हुई ऐसी है जैसे आकाशकी लता ॥ २६ ॥ तरंगके समान क्षणभंगुर शरीरवाली संपूर्ण सृष्टियोंकी ये राशि चित्रविचित्र आकार तथा चित्रविचित्र प्राणियोंकी चेष्टाओंसे युक्तहैं ॥२७॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी चित्रविचित्र आकार विकार तथा चित्रविचित्र रूपवाली संपूर्ण सृष्टिकी दृष्टि ज्ञानी पुरूषके लिये परमात्मासे ऐसे नहीं भिन्नहैं जैसे जलसे वृष्टि और मूर्खकी दृष्टिमें परमात्मासे ऐसे आती हैं जैसे मेघसे वृष्टि ॥ २९ ॥

व्यतिरिक्तानसर्वेषांसमस्ताःसृष्टिदृष्टयः ॥ व्यतिरिक्ताद्रवांभोधिस्वाद्वीलाःशाल्मलेरिव ॥ ३० ॥ इहसृष्टिषुपुष्टासुनिकृष्टासुचराघव ॥ परमान्नभसोजातास्तन्मात्रमलमालिका ॥ ३१ ॥ कदाचित्प्रथमंव्योमप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्माव्योमजोसौप्रजापतिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और यथार्थमें तो ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनोंके लिये सृष्टिकी दृष्टि ब्रह्मसे पृथक् नहीं है जैसे शालमली वृक्षकी नाडी और पत्र आदि उस वृक्षसे ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्माण्डमें स्थूल भूतोंसे रचित देहादिकोंमें तथा सूक्ष्म भूतोंसे रचित इन्द्रियादिकोंके विषयमें संपूर्ण जगत्के पदार्थ जो कि अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न हुयेहैं वे सब भूत सूक्ष्म सूत्रमें ग्रथितमालाके समानहैं ॥ ३१॥ कदाचित् सबसे प्रथम आकाश स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होताहै उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये यह प्रजापति आकाशज कहलाताहै ॥ ३२ ॥

कदाचित्प्रथमंवायुःप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मावायुजोसौप्रजापतिः ॥ ३३ ॥ कदाचित्प्रथमंतेजःप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेकर्त्तातैजसोसौप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ कदाचित्प्रथमंवारिप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मावारिजोसौप्रजापतिः ॥ ३५ ॥ कदाचित्प्रथमंपृथ्वीस्फारतामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मापार्थिवोसौप्रजापतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कदाचित् वायु स्थूल भावसे स्थितिको प्राप्त होताहै और उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये यह ब्रह्मा वायुज (वायुसे उत्पन्न) कहलाताहै ॥ ३३ ॥ कदाचित् सबसे प्रथम तेज स्थिति भावको प्राप्त होताहै और उससे जगत्कर्ता ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उसका नाम तैजसहै॥३४॥ कदाचित् सबसे प्रथम जल स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होताहै और उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये इस प्रजापतिका नाम वारिजहै ॥ ३५ ॥ कदाचित् यह विशाल पृथ्वी स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होतीहै उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उस प्रजापतिका नाम पार्थिवहै॥३६॥

इदंचत्वारिसंपीड्यपंचमंवर्द्धतेयदा ॥ तदातज्जातंएवैषकुरुतेजागतींक्रियाम् ॥ ३७ ॥ कदाचिदप्सुवायौवासुरफारेवापितेजसि ॥ स्वयंसंपद्यतेकस्मात्पुमान्प्रकृतिभावितः ॥ ३८ ॥ तस्याथशब्दोवदना

त्कदाचिज्जायतेपदात् ॥ कदाचिदंशात्पृष्ठाद्वाकदाचिल्लोचनात्करात् ॥ ३९ ॥ कदाचित्पुरुषस्यास्य नाभौपद्मंप्रजायते ॥ तस्मिन्संवर्द्धितेब्रह्मापद्मजोसौप्रकीर्त्तितः ॥ ४० ॥

अर्थ—इन पांचों भूतोंके दो दो भाग करना और प्रत्येकके एक एक भागके चार चार भाग करना हरएकका जो आधा बडाभागहै उसमें चारों भूतोंके चतुर्थांश चतुर्थांश मिलाकर जो पांचवां बडाभाग और सबसे अधिक होजाताहै उस समय उससे उत्पन्न हुआ ब्रह्मा कहा जाताहै वा उत्तर कालकी जगत्की क्रियाको करताहै ॥ ३७ ॥ कदाचित् अधिक भागयुक्त जल वायु वा तेजमें उस भूतकी उपाधि सहित अपने पूर्वकालकी उपासनासे जो पुरुष उत्पन्न होताहै वह आप्य तैजस इत्यादि आकारसे अकस्मात् सिद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ उस समय कभी उसके मुखसे कदाचित् पदसे कदाचित् अग्र भागसे कदाचित् पृष्ठभागसे कदाचित् नेत्र वा हस्तसे शब्द तथा नामरूप उत्पन्न होतेहैं ॥ ३९ ॥ कदाचित् इस नारायणनाम पुरुषकी नाभिमें कमल उत्पन्न होताहै और उसमें ब्रह्मा उत्पन्न होकर बैठतेहैं इसलिये उसका नाम पद्मज कहा गयाहै ॥ ४० ॥

मायेयंस्वप्नवद्भ्रांतिर्मिथ्यारचितचक्रिका ॥ मनोराज्यमिवालोलसलिलावर्त्तसुंदरी ॥ ४१ ॥ किमिवास्यांवदन्नसौकथंसंभवतीहते ॥ क्वचिद्बालमनोराज्यमिदंपर्यनुयुज्यते ॥ ४२ ॥ कदाचिदंबरेशुद्धेमनस्तत्त्वानुरंजनात् ॥ सौवर्णब्रह्मगर्भचस्वयमंडंप्रवर्त्तते ॥ ४३ ॥ कदाचिदेवेपुरुषोवीर्यंसृजतिवारिणि ॥ तस्मात्प्रजायतेपद्मंब्रह्मांडमथवामहत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—विद्यमान उसी पुरुषसे उसी पुरुषकी उत्पत्ति कैसे हुई यह शंका न करना क्योंकि यह स्वप्नकी भ्रांतिके समान मिथ्या चक्रके रचनेवाली चंचलजलमें आवर्तके समान सुंदरी मनोराज्यके समान मायाहै ॥ ४१ ॥ यदि इस मायामें आश्चर्य जनक उत्पत्ति नहीं होसकती तो असंग अद्वितीय परमात्मामें द्वीतीय जगत्की उत्पत्ति कैसे होसकती है, इसलिये पुरुषकी नाभिकमलसे पुरुषका उत्पन्न होना इसमें आशंका करना बालकके मनोराज्यके सदृशहै ॥ ४२ ॥ कदाचित् शुद्ध आकाशमें मनकी शक्तिसे सुवर्णका अण्ड निर्मित होताहै और उससे ब्रह्माकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ४३ ॥ कभी परमपुरुष जलमें वीर्य डालताहै और उससे पृथ्वीकमल वा महान् ब्रह्माण्ड उत्पन्न होताहै ॥ ४४ ॥

तस्मात्प्रजायतेब्रह्माकदाचिद्भास्करोप्यसौ ॥ कदाचिद्वरुणोब्रह्माकदाचिद्वायुरंडजः ॥ ४५ ॥ एवमंतविहीनासुविचित्रास्विहसृष्टिषु ॥ विचित्रोत्पत्तयोरामब्रह्मणोविविधागताः ॥ ४६ ॥ निदर्शनार्थंसृष्टेस्तुमयैकस्यप्रजापतेः ॥ भवतेकथितोत्पत्तिर्नतत्रनियमःक्वचित् ॥ ४७ ॥ मनोविजृंभणमिदंसंसारइतिसंमतम् ॥ संबोधनायभवतःसृष्टिक्रमउदाहृतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उसका नाम पद्मजहै और कदाचित् पूर्वकल्पमें सूर्य और इस कल्पमें ब्रह्मा होताहै और कदाचित् पूर्वकल्पमें वरुण और वायुके अधिकारमें स्थित इस कल्पमें ब्रह्मा होतेहैं, हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्ममें अविद्यमान यह नानाप्रकारकी विचित्र ब्रह्माकी उत्पत्ति कही और उसमें कोई कहीं नियम नहीं हैं एक ब्रह्माकी उत्पत्तिसे तुम अन्य ब्रह्माकी उत्पत्ति जानलेना ॥ ४७ ॥ यह संसार केवल मनका विलासमात्रहै, ऐसा सिद्धांतहै उसी बातको भलीभांति तुमको बोध करानेके अर्थ यह सृष्टिका क्रम तुमसे कहाहै ॥ ४८ ॥

सात्विकीप्रभृतयोयाश्र्वजातयश्चेत्थमागताः ॥ इतितेकथनायैषसृष्टिक्रमउदाहृतः ॥ ४९ ॥ पुनःसृष्टिःपुनर्नाशःपुनर्दुःखंपुनःसुखम् ॥ पुनरज्ञःपुनस्तज्ज्ञोबंधमोक्षदृशःपुनः ॥ ५० ॥ पुनःसृष्टिकरावीतवीतस्नेहदृशःपुनः ॥ दीपाइवकृतालोकाःप्रशाम्यंत्युद्भवंतिच ॥ ५१ ॥ देहोत्पत्तौविनाशेचदीपानांब्रह्मणामपि ॥ कालेनाधिकतांत्यक्त्वानाशेभेदोनकश्चन ॥ ५२ ॥

अर्थ—और सात्विकी आदि जो जीवकी जाति है वेभी इसीप्रकार मनकी कल्पनामात्रसे आगई हैं और इसीके समझानेके अर्थ सृष्टिका क्रम तुमसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ जबतक समूल इस मनका नाश नहीं होता तब तक पुनः सृष्टि पुनः उसका नाश पुनः २ सुख तथा दुःख और पुनः २ अज्ञ मूर्ख तथा बंधमोक्ष दृष्टि हुआ करती है ॥ ५० ॥ और पुनः २ सृष्टिकर्ता तथा अतीत वर्तमान तथा आगामी प्रियवस्तुओंमें स्नेहकी दृष्टियां ऐसे शांत तथा उत्पन्न होती हैं जैसे दीपसे प्रकाश ॥ ५१ ॥ दीपोंकी चंपककलिकाकार और ब्रह्माका विशाल चतुर्मुखादि आकारकी देहोंकी उत्पत्ति तथा नाशके विषयमें कालकी अधिकताको छोडके अन्य कुछभी भेद नहीं है अर्थात् दीपोंकी शरीरोंका शीघ्र नाश होताहै और ब्रह्माकी शरीरोंका द्विपरार्द्धके अन्तमें केवल यही भेदहै ॥ ५२ ॥

पुनःकृतंपुनस्त्रेतापुनःसद्वापरःकलिः ॥ पुनरावर्त्ततेसर्वंचक्रावर्त्ततयाजगत् ॥ ५३ ॥ पुनर्मन्वंतरारंभाः पुनःकल्पपरंपराः ॥ पुनःपुनःकार्यदशाःप्रातःप्रातरहोयथा ॥ ५४ ॥ लोकालोककलाकालकलनाक

लितांतरम् ॥ पुनःपुनरिदंसर्वंनकिंचनपुनःपुनः ॥ ५५ ॥ अनाहतेप्रतप्तेयःपिंडेनलकणाइव ॥ इमे भावाःस्थितानित्यंचिदाकाशेस्मभावतः ॥ ५६ ॥

अर्थ—सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये पुनः २ होते हैं और चक्र आवर्तके समान यह जगत् आता जाता रहताहै ॥ ५३ ॥ मन्वन्तरोंका आरंभ तथा कल्पोंकी परंपरा ये पुनः २ होते हैं और कार्यकी दशा पुनः २ ऐसे होतीहैं जैसे दिन और प्रातःकाल ॥ ५४ ॥ रात्रिदिन तथा कला (३० काष्टात्मक मुहूर्तका द्वादशभाग क्षणका तीसवां भागात्मक) आदिसे घटित प्राणियोंकी आयुरूप कालकी कल्पनासे परिच्छिन्न सब पदार्थसहित यह संपूर्ण जगत् पुनः २ आता जाता रहताहै ॥ ५५ ॥ जैसे लोहशीलादिके आघातसे वर्जित तप्तलोहके पिंडमें अग्निके कण रहतेहैं ऐसेही चिदाकाशमें संपूर्ण पदार्थ अपने स्वभावहीसे स्थितहै ॥ ५६ ॥

कदाचिदनभिव्यक्तंकदाचिद्व्यक्तिमागतम् ॥ इदमस्तिपरेतत्त्वेसर्वंवृक्षइवार्त्तवम् ॥ ५७ ॥ चित्स्पंदएवसर्वात्मासर्वदैवेदृशाकृतिः ॥ यदस्माज्जायतेसर्गोद्विंदुत्वमिवलोचनात् ॥ ५८ ॥ चितःसर्वाःसमायांतिसंतताःसृष्टिदृष्टयः ॥ तत्स्थाएवाप्यतत्स्थाभाश्चंद्रादिवमरीचयः ॥ ५९ ॥ नकदाचनसंसारःकिलायंरामसत्सदा ॥ सर्वशक्तावसंसारशक्तिताविद्यतेयतः ॥ ६० ॥

अर्थ—कदाचित् अप्रकट कदाचित् प्रकटरूपमें प्राप्त यह संपूर्ण जगत् परमात्मामें ऐसे रहताहै जैसे ऋतुके पुष्पफलादि वृक्षमें ॥ ५७ ॥ सर्वात्मक जो चित्का विवर्त है उसका चित्रूपही आकारहै और उससे जो जगत्की सृष्टि उत्पन्न होती है यह नेत्रके दोषसे दो चन्द्रके समानहै ॥ ५८ ॥ चित्सेही संपूर्ण सृष्टिकी दृष्टि निरंतर आविर्भूत होती हैं और उसमें स्थितभी उससे पृथक् ऐसे भान होती है जैसे चन्द्रमासे उसकी किरण ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! यह संसार कदाचित् सत्य नहीं है क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मामें सदा असंग अद्वितीय स्वभावताहै ॥ ६० ॥

नचैवेदंकदाचित्तुसाधोजगदनीदृशम् ॥ सर्वशक्तौहिसंसारशक्तिताविद्यतेयतः ॥ ६१ ॥ महाकल्पावधिःकालेनसंसारितयेद्धया ॥ नभविष्यतिसंसारइदानीमितियुज्यते ॥ ६२ ॥ ज्ञदृष्ट्यासर्वमेवेदंब्रह्मैवेतिमहामते ॥ नास्तिसंसारइत्येतदुपपद्यतएवच ॥ ६३ ॥ अज्ञदृष्ट्यात्वविच्छिन्नसंसारत्वादनारतम् ॥ नित्यासंसारमायेयंमिथ्यापीहोपपद्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—तथा हे साधो रामजी ! इसप्रकार स्वभावसे भिन्न यह जगत् कदाचित् नहींहै क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मामें जगत्के बीजकी मर्यादारूप शक्तिहै ॥ ६१ ॥ अधिष्ठान चेतनसे प्रदीप्त संसारी तथा कालसे उपलक्षित यह संसार वैज्ञानिक मोक्षनाम प्रलयतक होगा, आगे नहीं होगा यह व्यवहार इस समय युक्तहै ॥ ६२ ॥ ज्ञानिके दृष्टिमें यह सब जगत् ब्रह्महीहै इसलिये हे महामते यह संसार नहीं है यहभी युक्तहै ॥ ६३ ॥ और अज्ञानीको दृष्टिमेंतो प्रवाहरूपसे निरंतर यह संसार होताहै इस हेतुसे मिथ्या होनेपरभी संसारकी माया नित्यहै ॥ ६४ ॥

पुनःपुनःश्वभावित्वान्नकदाचिदनीदृशम् ॥ जगदित्येतदित्युक्तंनमृषारघुनंदन ॥ ६५ ॥ अनारतपतद्रूपादिशोदृष्टाविनश्वराः ॥ विनाशीदंजगत्सर्वमितिर्किनोपपद्यते ॥ ६६ ॥ सर्वत्रोदितचंद्रार्कादिशोदृष्टाःस्थिराचलाः ॥ अविनाशिजगत्सर्वमित्यप्यवितथोपमम् ॥ ६७ ॥ नतदस्तिनयत्तस्मिन्नेकस्मिन्विततात्मनि ॥ संकल्पकलनाजालमनाख्येनोपपद्यते ॥ ६८ ॥

अर्थ—पुनः २ होनेके कारण यह जगत् इसप्रकारके स्वभावसे भिन्न नहींहै हे रामजी ! इस मीमांसकके सिद्धांतसे यह जगत् सत्यहै (प्रवाहरूपसे) यह कथनभी मिथ्या नहींहै ॥ ६५ ॥ निरंतर पतनशील (क्षणविध्वंसी) नश्वररूप संपूर्ण विद्युत् आदि पदार्थ दृष्टहैं इसलिये यह जगत् विनाशी है और इसीरीतिसे अज्ञ दृष्टियोंकी विचित्रतासे अपनी २ प्रक्रियाके निर्वाहार्थ बौद्ध आदि कल्पित क्षणिक परमाणु आदि व्यवहारभी क्या उनकी दृष्टिसे युक्त नहींहै ॥ ६६ ॥ सर्वत्र उदयको प्राप्त चंद्र सूर्यके स्वच्छ प्रकाश करके युक्त दिशाओंमें भूमि पर्वत आदि स्थिरके देखनेसे सदा अपनी सत्तासे यह जगत् सत्य है इत्यादि सांख्य आदिकी कल्पनाभी युक्त होसकतीहै ॥ ६८ ॥

पुनःपुनरिदंसर्वंपुनर्मरणजन्मनी ॥ पुनःसुखंपुनर्दुःखंपुनःकरणकर्मणी ॥ ६९ ॥ पुनराशाःपुनर्व्योम पुनरंभोधयोद्रयः ॥ अभ्युदेतिपुनःसृष्टिःखवदर्कप्रभायथा ॥ ७० ॥ पुनर्दैत्याःपुनर्देवाःपुनर्लोकांतरक्रमाः ॥ पुनःस्वर्गापवर्गेहाःपुनरिंद्रःपुनःशशी ॥ ७१ ॥ पुनर्नारायणोदेवःपुनर्दनुसुतादयः ॥ पुनराशाचलचारुचंद्रार्कवरुणानिलाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—इसरीतिसे यह सब जगत् पुनः २ हुआ करताहै, जन्म, मरण, सुखदुःख और करण कर्मादि कारकभी पुनः २ हुआ करतेहैं ॥ ६९ ॥ जैसे आकाशसे सूर्यकी प्रभा पुनः उदय होतीहै ऐसेही संपूर्ण आशा, आकाश स-

मुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण सृष्टि पुनः उदय होती हैं ॥ ७० ॥ देवता, दैत्य, तथा लोकांतरकी रचना पुनः २ होतीहै, स्वर्ग मोक्षकी चेष्टायें तथा इन्द्र चंद्रमा आदिभी पुनः २ होतेहैं ॥ ७१ ॥ नारायण भगवान् पुनः २ होतेहैं, दनुके पुत्र दानव आदिभी पुनःहोतेहैं, और दिशाओंमें चंचल तथा रमणीय सूर्य, चंद्र, वरूण और वायु आदि होतेहैं ॥ ७२ ॥

सुमेरुकर्णिकाकांतासह्यकेसरशालिनी ॥ पूर्णास्फीतोदरोदेतिरोदसीनलिनीपुनः ॥ ७३ ॥ व्योमकाननमाक्रम्यवल्गत्यंशुनखात्करैः ॥ तमःकरिघटाभेत्तुंपुनर्भास्करकेसरी ॥ ७४ ॥ पुनरिंदुश्चलत्स्वच्छमंजरीसुंदरैःकरैः ॥ करोत्यमृतमाह्लाददिग्वधूमुखमंडनम् ॥ ७५ ॥ पुनःस्वर्गतरोःपुण्यक्षयवातसमीरिताः ॥ पततीहविनुन्नांगाःपुण्यकृत्पुष्पराशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ—सह्यनाम पर्वतरूपी केसरसे शोभायमान सुमेरूरूपी सुंदरकली संयुक्त, और प्राणियोंके पुण्यरूप सुगंध और भोगरूपी मकरन्दों सहित, तथा विशालकुक्षि सहित आकाश पृथिवीरूपी कमलिनी पुनः २ उदय होतीहै ॥ ७३ ॥ आकाशरूपी जंगलमें आक्रमण करके किरणरूपी नखके समूहोंसे अंधकाररूपी हांथियोंके समूहको भेदन करनेकेंलिये सूर्यरूपी सिंह पुनः २ उदय होताहै ॥ ७४ ॥ चंचल और स्वच्छ लताके समान सुंदर किरणरूपी हांथोंसे चंद्रमा दिशारूपी स्त्रीके मुखका आभूषण और सर्व प्राणियोंको सुख कारक अमृतको पुनः २ बढाताहै ॥ ७५ ॥ स्वर्गरूपी वृक्षसे पुण्यके नाशरूपी वायुसे प्रेरित स्वर्ग निवासीरूपी पुष्पकी राशि छिन्न भिन्न अङ्ग होकर इस संसारमें पुनः २ गिरतेहैं ॥ ७६ ॥

पुनःकार्यक्रियापक्षैःसंसारारंभनामकम् ॥ किंचित्पटपटंकृत्वायातिकालकपिंजलः ॥ ७७ ॥ पुनरिंद्रालिकेयातेसज्जमास्थायकेवलम् ॥ आयात्यपरवैंद्रषट्पदःस्वर्गपंकजम् ॥ ७८ ॥ पुनःकालंकृतापूतंकलुषीकुरुतेकलिः ॥ सचक्रिणमिवांभोधिंप्रवृद्धोवकरानिलः ॥ ७९ ॥ पुनःकालकुलालेनकृतभूतशरावकम् ॥ चक्रमावर्त्यतेवेगादजस्रंकल्पनामकम् ॥ ८० ॥

अर्थ—कार्य तथा क्रियारूपी पक्षोंसे संयुक्त सृष्टिकालरूपी कपिंजलपक्षी संसारके आरंभ नामक किंचित् पटपट शब्द करके पुनः २ आता जाताहै ॥ ७७ ॥ पूर्वकालके इन्द्ररूपी क्षुद्र भ्रमरके अपने अधिकारसे चले जानेपर नवीन मन्वन्तर तथा अधिकारी देवतागणोंसे सुसज्जित ऐरावतादिके ऊपर चढके दूसरा इन्द्ररूपी भ्रमर स्वर्गरूपी कमलपर पुनः आकर बैठताहै ॥ ७८ ॥ सत्युगसे सर्वथा पवित्र कालको कलियुग आकरके पुनः ऐसे अपवित्र करताहै जैसे शयन करते हुये विष्णुभगवान् सहित समुद्रको बढाहुआ प्रलयका वायु ॥ ७९ ॥ जिस कालरूपी कुलाल (कुह्मार) से रचित प्राणीरूप सरावसहित ऐसा कल्प नाम चक्र निरंतर अतिवेगसे पुनः २ भ्रमण करने लगताहै ८०

पुनर्नीरसतामेतिजगदस्तशुभस्थिति ॥ अभ्यासीभूतसंकल्पंतंशुष्कमिवकाननम् ॥ ८१ ॥ पुनरर्कगणेष्वग्निदग्धानंतकलेवरम् ॥ सर्वभूतास्थिसंपूर्णंजगदेतिश्मशानताम् ॥ ८२ ॥ पुनःकुलाचलाकारपुष्करावर्त्तवर्षणैः ॥ नृत्यद्रुद्रवद्बृहत्फेनांयात्येकार्णवतांजगत् ॥ ८३ ॥ पुनःसंशांतवाय्वंबुरिक्तंसकलवस्तुभिः ॥ तदपूर्वमिवाकाशंजगदायातिशून्यताम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—इस जगत्में जिसका जिस विषयमें पूर्वकालका अभ्यासहै उसके अनुकूल संकल्प तथा शुभस्थितिसे शून्य यह जगत् शुष्कवनके समान धर्मरूपी रससे पुनः हीनताको प्राप्त होताहै ॥ ८१ ॥ पुनः सूर्यके समूहोंमें अग्नि प्राणियोंके अनंत शरीरोंके भस्मकारी तथा संपूर्ण प्राणियोंकी अस्थियों (हड्डियों) से पूर्ण यह जगत् स्मशानताको प्राप्त होताहै ॥ ८२ ॥ मय आदि कुलाचल पर्वतोंके आकारके समान पुष्कर आवर्तक नामक वृष्टियोंकी धाराओंसे नृत्य करते हुये संहारकारक रूद्ररूपी महान् फेनसहित एक समुद्रताको यह जगत् पुनः प्राप्त होजाताहै ॥ ८३ ॥ शांत वायु और जलसमेत तथा संपूर्ण वस्तुओंसे शून्य यह जगत् अपूर्व आकाशके समान पुनः शून्यताको प्राप्त होताहै॥८४॥

पुनःकतिपयाभुक्त्वासमाःसमरसाशयः ॥ जीवितंजीर्णयातन्वापुनःस्वात्मनिलीयते ॥ ८५ ॥ पुनरन्येनकालेनतथैवजगतांगणान् ॥ मनस्तनोतिवैशून्येगंधर्वनगरंयथा ॥ ८६ ॥ पुनःसर्गसमारंभःप्रलयेसर्वसंभवः ॥ सर्वंपुनरिदंरामचक्रवत्परिवर्त्तते ॥ ८७ ॥ किमेतस्मिन्महामायाडंबरेदीर्घशंबरे ॥ रामसत्यमसत्यंवानिर्णेयंयदिहोच्यते ॥ ८८ ॥ दाशूराख्यायिकेवेयंरामसंसारचक्रिका ॥ कल्पनारचिताकारावस्तुशून्यानवस्तुतः ॥ ८९ ॥ अविरलमिदमाततंविकल्पैरसद्वृतितैरपितैर्द्विचंद्रकल्पैः ॥ विरचितमसतानुपन्नसत्यंजगदिहतेनविमूढताकिमुत्था ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जगद्वासनिर्णययोगोपदेशोनाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—समानरूप अन्तःकरणयुक्त यह कुछ काल वर्षपर्यन्त अपने जीवनका भोग करके अपने जीर्णशरीरसे पुनः अपने स्वरूपमें लीन होजाताहै ॥ ८५ ॥ यह मन पुनः दूसरे कालसे उसी प्रकार जगत्के समूहोंके ऐसे विस्तार करताहै जैसे शून्यस्थानमें गन्धर्वनगरको ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! प्रलय होनेके अनंतर पुनः सृष्टिका समारंभ होताहै और पुनः सब पदार्थोंका संभव होने लगताहै और पुनः यह संपूर्ण जगत् चक्रके समान भ्रमण करने लगताहै ॥ ८७॥ हे रामजी ! दीर्घ भ्रमरूपी इस महामायाके आडंबरमें कौनसी सत्य वा असत्य वस्तुहै जो निर्णय करनेके योग्य कही जाय अर्थात् कुछ नहीं ॥ ८८ ॥ हे राम ! कल्पनासे रचित आकारमय और वस्तुसे शून्य इस संसाररूपी चक्रिका (चाक) दासुरकी आख्यायिकाके तुल्यहै यथार्थमें यह कुछ नहीं है ॥ ८९ ॥ अज्ञानसे आविर्भूत नेत्र दोषसे दो चन्द्रमाके सदृश विकल्पोंसे यह जगत् निरंतर व्याप्तहै और अविद्यमान कर्तासे रचा हुआ यह अधिष्ठान ब्रह्मसे भिन्न नहीं है इसलिये अपने स्वरूपसे यह सत्य नहीं है इसके सत्यकी यह मूर्खता किस निमित्तसे तुमको हुई ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगद्भासनिर्णययोगोपदेशोनाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

भोगादिके लोभकी निंदा दासुरकी उत्पत्ति और प्रसन्न अग्निसें उसको बरकी प्राप्ति पर्यन्त वर्णन इस ४८ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ क्रियाविशेषबहुलाभोगैश्वर्यहताशयः ॥ नापेक्षंतेयदासत्यंनपश्यंतिशठास्तदा ॥ १ ॥ येतुपारंगताबुद्धेरिंद्रियैर्नवशीकृताः ॥ तएनांजागतींमायांपश्यंतिकरबिल्ववत् ॥ २ ॥ तुच्छां तांजागतींमायांदृष्ट्वाजीवोविचारवान् ॥ अहंकारमयींमायांत्यजत्यहिरिवत्वचम् ॥ ३ ॥ असक्ततांततो भ्येत्यपुनारामनजायते ॥ क्षेत्रेष्वपिचिरंतिष्ठन्बीजंदग्धमिवाग्निना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–क्रियाकी विशेषतासे व्याप्त और भोग तथा ऐश्वर्यसे नष्ट बुद्धि प्राणी जब सत्य परमात्माकी ओर चित्तको नहीं लगाते तो वे शठ अपने तथा अन्यके आत्माके वंचकहैं ॥ १ ॥ जो बुद्धिके पार होगये हैं और इन्द्रियोंके बशमें नहीं हैं वे इस जगत्की मायाको तथा सत्यको हस्तमें स्थित बिल्वके समान देखतेहैं ॥ २ ॥ विचारवान जीव जो हैं वे तुच्छ और अहंकारमयी जगत्की मायाको देखकर उसको ऐसे त्याग देतेहैं जैसे सर्प अपनी त्वचाको ॥ ३ ॥ उसके अनंतर जब वह प्राणी जगत्में आसक्त नहीं होता तो वह संसार क्षेत्रोंमें विचरते हुयेभी अग्निसे दग्ध बीजके समान पुनः नही उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

आधिव्याधिपरीतायप्रातर्वाद्यविनाशिने ॥ प्रयतंतेशरीरायहितमज्ञास्तुनात्मने ॥ ५ ॥ त्वमप्यज्ञवदज्ञ स्यशरीरस्यसमीहितम् ॥ मासंपादयदुःखायभवात्मैकपरायणः ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ दाशूरा ख्यायिकेवेयंसुखसंसारचक्रिका ॥ कल्पनारचिताकारावस्तुशून्येतिकिंप्रभो ॥७॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगन्मायास्वरूपस्यवर्णनाव्यपदेशतः ॥ दाशूराख्यायिकांरामवर्ण्यमानांमयाशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ—शारीरिक तथा मानसी पीडासे पूर्ण आज वा कल नाश होनेवाली शरीरके हितके लिये अज्ञानी पुरूष यत्न करतेहैं न कि आत्माके लिये ॥ ५ ॥ इसलिये हे रामजी ! अज्ञके समान अज्ञानी प्राणीके शरीरके अभीष्ट जो पदार्थ है उसकोही दुःखके लिये मत उपार्जन करो किंतु केवल आत्मपरायणहो ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! विषयसुखके अर्थ कल्पित आकारवाली बस्तु शून्य यह संसार चक्रिका दासुरकी आख्यायिकाके सदृशहै यह आपने जो कहाथा वह कैसी है सो वर्णनकीजिये ॥७॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जगत्की मायाके स्वरूपके वर्णनके व्याजसे इस दासुरकी आख्यायिकाको जो मैं वर्णन करताहुं तुम सुनो ८ ॥

अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेविचित्रकुसुमद्रुमः ॥ मागधोनामविख्यातःश्रीमान्जनपदोमहान् ॥ ९ ॥ कदं बवनविस्ताररलीलावलितजंगलः ॥ विचित्रविहगव्यूहसर्वाश्चर्यमनोहरः ॥ १० ॥ सस्यसंकटसीमां तःपुरोपवनमंडितः ॥ कमलोत्पलकह्लारपूर्णसर्वसरित्तटः ॥ ११ ॥ उद्यानदोलाविलसल्ललनागेयघुं घुमः ॥ निशोपभुक्तकुसुमनीरंध्रविशिखावनिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! इस पृथिवी तलपर विचित्र पुष्प और वृक्षसहित धनवान् मागध नामसे प्रसिद्ध महान् जनपदहै ॥ ९ ॥ पुनः कदंबके बनके विस्तारसे क्रीडाके लिये वेष्टित जङ्गलयुक्त विचित्र पक्षियोंके समूहसे

संपूर्ण आश्चर्योंसे मनोहर वह जनपदहै ॥ १० ॥ उत्तम धान्यसे उसके सीमाकी भूमि सघनथी, और उसके अन्तःपुर उपबनोंसे शोभित थे तथा श्वेत नील और रक्त कमलोंसे संपूर्ण नदीके तटोंको परिपूर्ण करनेवाला वहथा ॥ ११ ॥ वाटिकाओंमें झूलापर विलास करती हुई स्त्रियोंके गानसे शब्दायमान और रात्रिमें उपभुक्त कामदेवके बाणके समान पुष्पोंसे उसकी पृथ्वी पूर्णथी ऐसा वह मगधदेशथा ॥ १२ ॥

तत्रैकस्मिन्गिरितटेकर्णिकारसमाकुले ॥ कदलीखंडनीरंध्रनीपगुल्मविराजिते ॥ १३ ॥ पुष्पौघस्फूर्जदनिलेकेसरारुणधूलिनि ॥ कारंडवकृतारावेरसत्सरससारसे ॥ १४ ॥ तस्मिन्नगवरेपुण्येविचित्रविहगद्रुमे ॥ कश्चित्परमधर्मात्मामुनिरासीन्महातपाः ॥ १५ ॥ दाशूरनामामहतातपोयोगेनसंयुतः ॥ कदंबपृष्ठवास्तव्योवीतरागोमहामतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस जनपदमें कर्णिकार वृक्षोंसे पूर्ण कदलीके वृक्ष सघन कदंब तथा अन्य गुल्मादिसे शोभित ॥१३॥ पुष्पोंमें प्रवाहद्वारा शब्द करते हुये वायु सहित, तथा पुष्पकी केसरोंसे रक्त धूलसहित कारंड और अन्य पक्षियोंके शब्दसे युक्त, अनुराग सहित सारस पक्षियोंके शब्द सहित एक पर्वत था ॥ १४ ॥ चित्रविचित्रपक्षी तथा वृक्षोंसे सँहित, और अति पवित्र उस पर्वतपर कोई पूर्ण धर्मात्मा महातपस्वी ऋषि रहाथा ॥ १५ ॥ महा तपसे संयुक्त, कदंबके ऊपर रहनेवाला, बीतराग महामुनि वह दाशूर नामक था ॥ १६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ असौतपस्वीभगवन्विपिनेकेनहेतुना ॥ कथंचाप्यवसत्पृष्ठेकदंबस्यमहातरोः ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शरलोमेतिविख्यातःपितातस्यबभूवह ॥ रामापरइवब्रह्मातस्मिन्नेवावसद्गिरौ ॥ १८ ॥ तस्याभवेकपुत्रोभूत्कचोदेवगुरोरिव ॥ तेनसार्द्धंसपुत्रेणनीतवाञ्जीवितंवने ॥१९॥ अथासौशरलोमात्रभुक्त्वायुगगणंययौ ॥ त्यक्तदेहःसुरागारंमुक्तनीडःखगोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! यह तपस्वी महा कदंबवृक्षके ऊपर किस कारणसे रहाथा ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शरलोमा नामसे प्रसिद्ध तपस्वी उसका पिता था वह दूसरे ब्रह्माके समान उस पर्वतपर रहताथा ॥ १८ ॥ उस शरलोमाके एकही यह दाशूर नाम पुत्र बृहस्पतिके पुत्र कचके सदृश था, उस पुत्रके साथ उस बनमे उसने अपना जीवन बिताया ॥ १९ ॥ यह शरलोमा वर्षके समूहोंको भोगकर शरीरको त्यागकर स्वर्गमें ऐसे गया जैसे अपने घोसले (खुंथे) से छोडा हुआ पक्षी आकाशमें ॥ २० ॥

एकएववनेतस्मिन्दाशूरःप्ररुरोदह ॥ दशापनीतपितृकःकरुणंकुररोयथा ॥ २१ ॥ मातापितृवियोगेन शोकसंतापिताशयः ॥ म्लानिमभ्याययौनूनंहेमंतइवपंकजम् ॥ २२ ॥ बालोसावतिदीनात्मावनदेवतयावने ॥ इत्थमाश्वासितोरामतदाऽदृश्यशरीरया ॥ २३ ॥ ऋषिपुत्रमहाप्राज्ञकिमज्ञइवरोदिषि ॥ संसारस्यनकस्मात्त्वंस्वरूपंवेत्सिचंचलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अन्तिमदशामें गृहादिसे उसका पिता जब स्वर्गमें गया तब वह दाशूर एकाकी उस बनमें कुरर पक्षीके सदृश करुणासे रोदन करने लगा ॥ २१ ॥ माता (पिताके मरनेके पश्चात् सती माता) पिताके वियोगसे शोकसे संतापित अन्तःकरणवाला वह निश्चय करके ऐसी म्लानिको प्राप्त हुआ जैसे हेमंतऋतुमें कमल ॥ २२ ॥ हे रामजी ! यह दीनाचित्त बालकहै इस कारणसे अदृश्य शरीरवाली उस बनकी देवताने इसप्रकार धैर्य्य दिया ॥ २३ ॥ हे महाप्राज्ञ ऋषिपुत्र ! तुम अज्ञानीके सदृश क्यों रोते हो, इस संसारके चंचलस्वरूपको तुम क्यों नहीं जानते ॥ २४ ॥

सर्वदैवेदृशीसाधोसंसारेसंसृतिश्चला ॥ जायतेजीव्यतेपश्चादवश्यंचविनश्यति ॥ २५ ॥ यत्किंचिदृश्यदृशिब्रह्मादिकमिदंमुने ॥ गंतव्यस्तेनसर्वेणविनाशोनात्रसंशयः ॥ २६ ॥ तदर्थंमाकृथाव्यर्थंविषादंमरणेपितुः ॥ अवश्यभाव्यस्तमयोजातस्याहर्पतेरिव ॥ २७ ॥ अशरीरामितिश्रुत्वागिरमारक्तलोचनः ॥ धैर्यमासादयामासशिखंडीस्तनितादिव ॥ २८ ॥

अर्थ—हे साधो ! सदा इस संसारमें यह जीवादि सृष्टि चंचलही उत्पन्न होती है, जीती है और पश्चात् पुनः अवश्य नष्ट होती है ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस व्यवहारदृष्टिमें जो जो प्रसिद्ध ब्रह्मादिकहैं वेभी सब नाशको अवश्य प्राप्त होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ इसलिये अपने पिताके मरणके विषयमें तुम वृथा शोक न करो, क्योंकि सूर्यके समान जो उदयको प्राप्त हुआ है उसका अस्त अवश्य होगा ॥ २७ ॥ रक्तनेत्रवाला वह दाशूर ब्राह्मण इस शरीररहित वाणीको सुनके धैर्यको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मेघके शब्दसे मोर ॥ २८ ॥

उत्थायावश्यकंकृत्वापाश्चात्यंपितुरादरात् ॥ चकारतपसेबुद्धिंदृढामुत्तमसिद्धये ॥ २९ ॥ ब्राह्मेणकर्मणातस्यविपिनेचरतस्तपः ॥ अनंतसंकल्पमयंश्रोत्रियत्वंबभूवह ॥ ३० ॥ अज्ञातज्ञेयबुद्धेस्तुश्रोत्रिय

स्यतयातया ॥ नविशश्रामचेतोस्यपवित्रेपिधरातले ॥ ३१ ॥ केवलंसर्वमेवेदमविशुद्धंधरातलम् ॥ अशुद्धमिवपश्यन्सनरेमेकचिदेवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उठके और पिताके मरणके अनंतर आवश्यक कृत्य दाहादिको करके तप करनेके लिये बुद्धिकी ॥ २९ ॥ ब्राह्मणके कर्मसे उस ब्राह्मणको तप करते हुये शुद्धि अविशुद्धि आदि अनंत संकल्पमय श्रोत्रियत्व अर्थात् वेदोंका अध्ययन तथा उसके अर्थमें परायणता प्राप्त हुई ॥३०॥ अवश्य ज्ञेय ब्रह्मके जाननेवाले दाशूर नाम श्रोत्रियका चित्त उन २ शुद्धि अविशुद्धि आदि कल्पनासे पवित्र पृथिवी तलपरभी विश्रामको नहीं प्राप्त हुआ ॥३१॥ यह धरातल संपूर्ण शुद्धही है तथापि उस सबको उसने अशुद्धही देखता हुआ कहींभी रमण नकिया ॥३२॥

अथसंकल्पयामासस्वसंकल्पनयैवसः ॥ वृक्षाग्रमेवसंशुद्धंस्थितिस्तत्रोचितामम ॥ ३३ ॥ तदिदानींतपस्तप्स्येतवसायेनशाखिषु ॥ खगवत्स्थितिमाप्नोमिशाखासुचदलेषुच ॥ ३४ ॥ इतिसंचिंत्यसंज्वाल्यहुताशमतिभास्वरम् ॥ जुहावतस्मिन्प्रोत्कृत्यमांसंस्वस्कंधभित्तितः ॥ ३५ ॥ अथगीर्वाणवृंदस्यसमग्रागलभित्तयः ॥ मन्मुखत्वेनमायांतुविप्रमांसेनभस्मताम् ॥ ३६ ॥ इतिसंचिंत्यभगवान्सप्तार्चिस्तस्यदेवता ॥ पुरोबभूवदीप्तांशुर्दीप्तांशुर्वाक्पतेरिव ॥ ३७ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उसने अपनीही कल्पनासे यह संकल्प किया कि वृक्षका अग्रभागही शुद्धहै इसलिये वहांही मेरी स्थिति योग्यहै ॥ ३३ ॥ इसकारण मैं अब तप करूं जिससेकि वृक्षोंपर उनकी शाखायें (डालियों) तथा पत्तोंपरभी पक्षीके सदृश स्थिति पाऊं ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् तप करनेसे शीघ्र सिद्ध न देखनेसे अग्निको प्रज्वालित करके अपने कन्धेरूप भित्तिसे मांस काटके होम करनेका आरंभ किया ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् संपूर्ण देवताओंका कंठप्रदेश मेरे शरीररूपी मुखद्वारा (" अग्नि मुखावै देवाः " इतिश्रुतेः) ब्राह्मणका मांस भोजन भस्मताको न प्राप्त हो, ऐसा विचार करके अग्निभगवान् उस अग्निकी अधिष्ठात् देव सूर्यके समान शरीर धारण करके उस दाशूर ब्राह्मणके संमुख ऐसे उपस्थित हुआ जैसे बृहस्पतिके संमुख साक्षात् सूर्य ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

उवाचवचनंधीरंकुमाराभिमतंवरम् ॥ गृहाणस्थापितंसाधोकोशाकाशान्मणियथा ॥ ३८ ॥ इत्युक्तवंतमनलमर्घपुष्पेणशोभिना ॥ संपूज्यस्तुतिवादेनप्राहविप्रकुमारकः ॥ ३९ ॥ भगवन्भूतपूर्णायाभुवःपावनमंडलम् ॥ नाप्नोमितेनवृक्षाणामुपरिस्थितिरस्तुमे ॥ ४० ॥

अर्थ—और उस ब्राह्मणसे धीर बचन बोला कि—हे साधो ब्राह्मण कुमार अपने ! अभिमत (इष्ट) वरदान आकाश कोशमें स्थापित मणिके समान ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ अ ॥ ऐसे कहनेवाले अग्निको अर्घ पुष्प आदिसे शोभायमान स्तुतिवाद (स्तोत्र) से पूजा करके ब्राह्मणका बालक बोला ॥ ३९ ॥ कि हे भगवन् ! प्राणियोंसे पूर्ण इस पृथिवीका मण्डल शुद्ध नहीं पाता इसलिये मेरी स्थिति वृक्षोंपर हो ॥ ४० ॥

इत्युक्तेमुनिपुत्रेनसर्वदेवमुखंशिखी ॥ एवमस्तुतवेत्युक्त्वाजगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्नंतर्हितेदेवेक्षणात्सांध्यइवांबुजे ॥ पूर्णकामःकुमारोसौपूर्णेंदुरिवचाबभौ ॥ ४२ ॥ अधिगताभिमताननमंडलद्युतिभरेणजहासस्वदृष्टिमान् ॥ शशिनमाप्तकलाकुलमंबुजंविकसितंचसितस्मितशोभिना ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरवरप्रदानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—ऐसा शरलोमा मुनिके पुत्र दाशूरके कहनेपर सब देवोंके मुखरुप अग्निने कहा कि तुमारे लिये ऐसाही हो, ऐसा कहके अग्नि भगवान् लोप होगये ॥ ४१ ॥ संध्याकालके कमलके समान उस अग्निके क्षणभरमेंही लोप होनेपर, पूर्ण काम वह ब्राह्मणकुमार पूर्ण चन्द्रके सदृश शोभित (प्रदीप्त) हुआ ॥ ४२ ॥ इष्टमनोरथकी प्राप्तिसे अति मुसकिराणके शोभित मुखसे द्वीप्ति समूहसे अति प्रसन्न वह दाशूर ब्राह्मण किरणोंसे पूर्ण चंद्र तथा विकसित कमलकोभी हंसने लगा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने दाशूरवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

इस ४९ के सर्गमें उत्प्रेक्षा आदि अलंकारोंसे, शाखा, पल्लव, फल, पुष्पसमूह तथा पक्षियोंसे मनोहर कदंब वृक्षका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथकाननमध्यस्थंचुंबितांबुदमंडलम् ॥ मध्याह्नखिन्नसूर्याश्वसेवितस्कंधमंडलम् ॥ १ ॥ वितानमिवदिक्कुक्षिदीर्घविटपबाहुभिः ॥ आलोकयंतंककुभोविकासिकुसुमेक्षणैः ॥ २ ॥ वाताववधूलितानल्पभ्रमद्भ्रमरकुंतलम् ॥ प्रमार्जयंतमाशानांमुखंपल्लवपाणिभिः ॥ ३ ॥ कच्छैरुरुगुड्डच्छाच्छमंजरीपुंजकंजरैः ॥ आस्यैरिवसतांबूलैर्हसंतंवनमालिकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् मध्यबनमें स्थित, मेघमंडलको चुम्बन करनेवाला, तथा मध्यान्हमें विथकित सूर्यके अश्वोंसे स्कंधमण्डलसे सेवित वह कदंब वृक्ष था ॥ १ ॥ बडी २ शाखारूप भुजाओंसे दीर्घ चांदनीके समान करते हुये तथा विकसित पुष्परूपी नेत्रोंसे दिशाओंको इस अभिप्रायसे मानो देखताथा कि कोई स्थल मेरी शाखारूप चान्दनीसे अनावृत तो नहीं है ॥ २ ॥ वायुसे धूलिरहित अधिक भ्रमररूपी केशसहित और पल्लवरूपी हस्तोंसे आशारूपी स्त्रियोंके मुखको मार्जन (पोंछते) करते हुये स्थित था ॥ ३ ॥ हिमजलको छेदन करनेवाले पल्लव प्रदेशोंसे, तथा स्वच्छ और अधिक केसरसहित दंतोंकी पंक्तिकेसमान स्थित लता पुंजोंसे ताम्बूलसहित मुखोंसे मानो हंसरहाथा॥४॥

लताविलसितोल्लासैःपुष्पकेसरधूलिभिः ॥ आबद्धमंडलाभोगंपूर्णेंदुमिवदीप्तिभिः ॥ ५ ॥ संकटंविटपावल्याकुंजकूजच्चकोरया ॥ छन्नयासिद्धवीथ्येवजगद्दच्चतयाश्रितम् ॥ ६ ॥ स्कंधपीठोपविष्टानांलंबमानैःकलापिनाम् ॥ कलापैःशोभितंव्योमसेंद्रचापैरिवांबुदैः ॥ ७ ॥ मग्नोन्मग्नैःप्रतिस्कंधमाश्रितैश्चमैरैस्सितैः ॥ पूर्णमुहुर्दृष्टनष्टैःसंवत्सरमिवेंदुभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—लताकी अधिक शोभासे, और शोभायमान पुष्पके केसरोंमें प्रविष्ट धूलियोंसे ऐसा मण्डलाकार वेश रचेथे जैसे अपनी दीप्तियोंसे पूर्णचन्द्रमा ॥ ५ ॥ जहां लताओंसे ढके हुये प्रदेशोंमें चकोर गुंजरहेथे ऐसी शाखाओंकी पंक्तियोंसे घनीभूत होनेसे ग्रह नक्षत्रतारा विमानादिसे आच्छन्न सिद्धमार्गसे ऊर्ध्वभावसे आश्रित ब्रह्मांडके समान स्थितथा ॥ ६ ॥ तथा शाखादेशमें स्थित मयूरोंके दीर्घ पंखोंसे ऐसा शोभित था जैसे इन्द्रके धनुषसहित मेघोंसे आकाश ॥ ७ ॥ कोई बाह्यदेशमें स्थित कोई अन्तरदेशमें स्थित क्षण २ में दृष्ट और अदृष्ट शाखा भागमें स्थित श्वेतचमर नामक मृगोंसे ऐसा पूर्ण था जैसे चन्द्रमाओंसे बर्ष ॥ ८ ॥

कपिंजलकुलालापैःकलकोकिलकूजितैः ॥ जीवंजीवविरावैश्चप्रयागंतमिवोच्छ्रितैः ॥ ९ ॥ कादंबककदंबैश्चकुलायकृतकेलिभिः ॥ स्वर्गकोटरविश्रांतैःसिद्धैर्जगदिवावृतम् ॥ १० ॥ प्रवालचलहस्ताभिरलिनेत्राभिराश्रितम् ॥ अप्सरोभिरिवस्वर्गंमंजरीभिरितस्ततः ॥ ११ ॥ सेंद्रचापविलासेनकुसुदोत्करेणुना ॥ मंजरीपिंजराश्यामंविद्युत्वंतमिवांबुदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कपिंजल नाम पक्षियोंके समूहके आलापसे मधुर मानो कोकिलाओंके कूजित और चकोरोंके उच्च शब्दोंसे गान करते हुये स्थित था ॥ ९ ॥ अपने खुथोंमें क्रीडा करनेवाले कलहंस तथा कदंब नाम पक्षियोंसे इसप्रकार आच्छादित था जैसे स्वर्गरूपी कोटरमें विश्राम करनेवाले सिद्धोंसे ब्रह्माण्ड ॥ १० ॥ कोमल चंचल पत्ररूप हस्तधारिणी और भ्रमररूपी नेत्रसहित लतारूपी बनिताओंसे इसप्रकार सेवित था जैसे अप्सराओंसे स्वर्ग ॥ ११ ॥ इन्द्रके चापके सदृश शोभायमान कुमुद् नीलकमल तथा रक्तकमलके रेणुओं (परागों) से उपलक्षित और लताके पत्रोंसे विद्युत्सहित मेघके सदृश श्यामवर्ण वह वृक्ष था ॥ १२ ॥

सहस्रभुजशाखाढ्यंपूरिताकाशकोटरम् ॥ विश्वरूपमिवोन्नृत्तंश्चंद्रार्ककृतकुंडलम् ॥ १३ ॥ तलेनिषण्णनागेंद्रंव्योम्नितारागणाकुलम् ॥ लतापुष्पमयंमध्येखमंडलमिवापरम् ॥ १४ ॥ पितामहमिवाशेषशैलकाननशालिनम् ॥ फलपल्लवपुष्पाणांकोशमेकमिवावनौ ॥ १५ ॥ दधानंकलिकाजालंस्थगितंपुष्पधूलिभिः ॥ कच्छेष्वर्ककरच्छन्नताराजालमिवांबरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सहस्रों भुजारूपी शाखाओंसे पूर्ण आकाशरूपी कोटरको व्याप्त करनेवाला, तथा चंद्रमा और सूर्यरूपी कुण्डलको धारणकिये नृत्य करते हुये विष्णुके समान अपनेको दर्शानेवाला भान होताथा ॥ १३ ॥ उसके तलभागमें सर्प वा हस्ति स्थित था ऊर्ध्वभागमें आकाशमें तारागणोंसे व्याप्तलता और पुष्पमय मध्यमें ब्रह्माण्डके उदर आकाशके समान स्थितथा ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण पर्वतके बनसे शोभायमान होनेसे सब वृक्षोंके पितामहके सदृश पृथिवीपर फल और पुष्पोंके प्रधान कोषके तुल्य वह ज्ञात होताथा ॥ १५ ॥ पत्रोंके देशोंमें पुष्पकी धूलियोंसे आच्छादित कलीके समूहको धारण करनेवाले और पत्रके छिद्रोंके देशोंमें सूर्यकी किरणोंसे आच्छादित होनेसे ऐसे शोभितथा जैसे तारागणसे आकाश ॥ १६ ॥

विलोलविहगैःस्कंधैःकुलायकुलसंकुलैः ॥ वलितंभूतलंलोकेपूर्णैर्जनपदैरिव ॥ १७ ॥ मंजरीसुपताका ढ्यलतामंडलमंडिताम् ॥ पुष्पमंकोलधवलंपुष्पप्रकरपूरितम् ॥ १८ ॥ कूजच्चकोरभ्रमरशुककोकिलसारिकम् ॥ घनस्तबकसंछन्नकुहरोग्रगवाक्षकम् ॥ १९ ॥ संचरत्पक्षिबहुलंजनमंथरकोटरम् ॥ सर्वासां वनदेवीनामंतःपुरमिवोत्तमम् ॥ २० ॥

अर्थ—घोंसलोंके समूहोंसे पूर्ण चंचलपक्षियों करके युक्त शाखाओंसे ऐसे आच्छादितथा जैसे पूर्ण देशोंसे संसारमें पृथिवी मण्डल ॥ १७ ॥ लतारूपी उत्तम पताकाओंसे पूर्ण तथा उत्तम लतारूपी मण्डलोंसे शोभित पुष्परूपी गृहके लेपन चूर्णोंसे पूर्ण और पुष्पके समूहोंसे पूर्ण कूजते हुये चकोर, भ्रमर, शुक, कोकिला, और सारिका, पक्षी संयुक्त, घन पुष्पोंके गुच्छोंसे कोटररूपी दीर्घ गवाक्षों (झरोखों) से पूर्णथा ॥ १९ ॥ उडते हुये पक्षियोंसे पूर्ण छायाको सेवन करनेवाले प्राणियों करके अधोभागमें आश्रित अतएव सम्पूर्ण बनदेवियोंके उत्तम अन्तःपुरके समान भान होताथा ॥ २० ॥

कूजद्भृंगतरंगौघैःपुष्पकेसरराजिभिः ॥ राजमानंपतंतीभिःसरिद्भिरिवपर्वतम् ॥ २१ ॥ भ्रमद्भिःपुष्पपत्रौघैर्मंदवातविलासिभिः ॥ वर्द्धमानैर्वृतस्कंधंशुभ्राभ्रैरिवभूधरम् ॥ २२ ॥ मातंगकटघृष्टेनजानुस्तब्धेनपीठिना ॥ आभोगिनाबद्धपदंतरुणेवमहाचलम् ॥ २३ ॥ विचित्रवर्णपक्षाणांस्कंधकोटरचारिणाम् ॥ वृतंखगानांवृंदेनभूतानामिवशार्ङ्गिणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जहां भृंगोंके समूह कूज रहेथे ऐसे पुष्पके केसरकी श्रेणियोंसे ऐसे शोभायमान था जैसे गिरती हुई नदियोंसे पर्वत ॥ २१ ॥ मन्दवायुसे शोभायमान और नित्य बर्द्धनशील भ्रमण करते हुये पत्र और पुष्पोंके समूहोंसे उसका शाखा प्रदेश ऐसे आच्छादित था जैसे स्वच्छ मेघोंसे पर्वत ॥ २२ ॥ हांथियोंके गण्डस्थलसे घिसे हुये जंघाके समान दृढ पीठके समान विस्तृत और विशाल मूलदेशसे ऐसे बद्धस्थानथा जैसे आसन्नभूमिमें जमेंहुये वृक्ष समूहोंसे महापर्वत ॥ २३ ॥ विचित्र वर्ण और पक्षों करके संयुक्त और शाखा तथा कोटर प्रदेशोंमें चरनेवाले पक्षियोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे पार्षदोंके समूहोंसे श्रीकृष्णभगवान् ॥ २४ ॥

स्तबकांगुलिजालेनलोलेनाभिनयक्रियाम् ॥ दिशंतमिववल्लीनांप्रनृत्तानांवनानिलैः ॥ २५ ॥ कश्चिदेव निवासोमेनार्थिनामितितुष्टितः ॥ नृत्यंतमिवबाह्वाढ्यलतावलयवल्गनैः ॥ २६ ॥ लताकांतैककांतत्वाच्छृंगाररसनिर्भरम् ॥ काकल्येवप्रगायंतंमत्तलिनिजनिःस्वनैः ॥ २७ ॥ आदरोन्मुक्तकुसुमंसिद्धानां व्योमचारिणाम् ॥ स्वागतानीवकुर्वाणंकोकिलालिकुलारवैः ॥ २८ ॥

अर्थ—चंचलपुष्पके गुच्छारूपी अंगुलिओंके समूहसे बनके पवनद्वारा नाचती हुई लतारूपी अङ्गनाओंको मानोभाव व्यंजक चेष्टाओंको उपदेश कर रहाथा ॥२५॥ कोई सा मेरा भाग (जैसे मूलप्रदेश) अर्थियोंका निवासस्थान न हुआ और संपूर्ण अङ्ग मेरा प्राणियोंके निवाससे सफल हुआ इस हेतुसे प्रसन्न होके शाखारूप भुजाओंसे पूर्ण लतारूपी वेष्टनसे नृत्य करते हुयेके समान ज्ञात होताथा ॥ २६ ॥ अनेक लताओंका एक प्रिय होनेसे शृंगार रससे पूर्ण मत्त भ्रमरके शब्दोंसे मधुरध्वनिसे गाते हुयेके समान जानपडताथा आकाशविहारी सिद्धोंके लिये आदरसे पुष्पोंको छोडनेवाला इसीसे कोकिल और भ्रमरके समूहके शब्दोंसे उनके स्वागत करते हुयेके सदृश ज्ञात होताथा॥२७॥२८॥

लतापुष्पफलोल्लासंप्रांतपंचमहीरुहाम् ॥ विहसंतमिवाच्छाभिःपुष्पकुड्मलदीप्तिभिः ॥ २९ ॥ पारिजातमिवाजेतुमूर्ध्वगैःखगमंडलैः ॥ व्योमांतराभिधावंतमलमुद्धतकंधरम् ॥ ३० ॥ मध्यभागस्फुरद्भृंगैःस्तबकैर्घनपंक्तिभिः ॥ सहस्राक्षत्वमतुलैर्जेतुमिंद्रमिवोद्यतम् ॥ ३१ ॥ क्वचित्कुसुमगुच्छाच्छफणामणिगणावृतम् ॥ पातालादुत्थितंशेषमिवव्योमदिदृक्षया ॥ ३२ ॥ रसजोद्भूलिताकारंद्वितीयमिवशंकरम् ॥ छाययाफलशालिन्यासमस्तजनशंकरम् ॥ ३३ ॥ निबिडदलनिवहभिन्नकोशैःकुसुमलतानवमंडपैरुपेतम् ॥ पुरमिवगगनेकदंबवृक्षंखगकुलनागरसंकुलंददर्श ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरकदंबवर्णनं नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—लतापुष्प और फलोंके उल्लाससे युक्त होनेसे स्वच्छ पुष्पोंकी कलीरूपी दांतोंसे समयस्थ वट, उदुंबर, पीपल, आम्र और पलास नामक पांच वृक्षोंको हंसते हुयेके सदृश स्थितथा ॥२९॥ तथा गलेको उठाकर ऊर्ध्वगमनशील पक्षियोंके मंडलोंसे पारिजात नाम वृक्षके जीतनेकेलिये स्वर्गमें दौडते हुये के सदृश जानपडताथा ॥ ३० ॥ उसके मध्यभागमें भ्रमर स्फुरित होरहेथे और सघन पंक्तिवाले पुष्पके गुच्छोंसे असंख्य नेत्रताको प्राप्त होकर मानो

इन्द्रके जीतनेकेलिये उद्यतथा ॥ ३१ ॥ कुसुमके गुच्छारूप स्वच्छ मणिगणोंसे आच्छादित आकाशके देखनेकेलिये पातालदेशमें निकलकर शेषनागके सदृश स्थित, पुष्पसे धूलि संयुक्त आकार होनेके कारण दूसरे शंकरके सदृश मानो स्थितथा, और फलसे शोभायमान छायासे समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत शंकर अर्थात् महादेवके सदृश, घनीभूत दलोंमें विकसित कलियोंसे और नूतन लताके मण्डपोंसे संयुक्त पक्षियोंके समूहरूपी नगरनिवासियोंसे व्याप्त और आकाशमें रचित नगरके समान उस कदंबके वृक्षको उस दाशूर ब्राह्मणने देखा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने दाशूर कदंब वर्णनं नामैकोन पंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

उस कदंबके अग्रभागमें स्थित दाशूरने जो दिशारूप बनिताओंको देखाहै उनको गुणोंके विस्तारोंसे इस ५० के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तमथासौतथाबुद्धिःफलपल्लवशालिनम् ॥ आनंदमंथरमनाःपुष्परूपाचलोपमम् ॥ १ ॥ कदंबंरोदसीस्तंभमारुरोहवनस्थितम् ॥ एकार्णवगतंशौरिर्वटवृक्षमिवोन्नतम् ॥ २ ॥ तत्रासौव्योमलग्नायाःशाखायाःप्रांतपल्लवे ॥ विवेशविगताशंकमेकाग्रंतपआस्थितः ॥ ३ ॥ अथोपविश्यमृदुनिनवपल्लवविष्टरे ॥ क्षणमालोकितास्तेनदिशःकौतुकचंचलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! फल तथा पुष्पोंसे शोभायमान श्वेत पुष्पोंसे रूपाचल पर्वतके सदृश, और आकाश तथा पृथिवीके स्तंभके तुल्य बनमें स्थित उस कदंबके वृक्षपर उसप्रकार भूमिकी अपवित्रता बुद्धिसे युक्त, तथा बरप्राप्तिसे आनंदयुक्त मन यह ब्राह्मण ऐसे आरूढ हुआ जैसे प्रलयके महासमुद्रमें बटके वृक्षपर विष्णुभगवान् ॥ १ ॥ २ ॥ उस कदंबके वृक्षमें आकाशमें संलग्न (बहुत ऊंची) एक शाखाके समीपके पत्रमें इस ब्राह्मणने प्रवेश किया, और अपवित्रताकी शंकारहित एकाग्रहोके तप करनेमें स्थित हुआ ॥३ ॥ इसके पश्चात् कोमल तथा नूतन पल्लवरूप आसनपर बैठके कौतुकसे चंचल दृष्टिपातपूर्वक एक क्षणभर दिशाओंको उसने देखा ॥ ४ ॥

सरिदेकावलीरम्याःशैलेंद्रस्तनकुड्मलाः ॥ निर्मलाकाशकबरालोलनीलांबुदालकाः ॥ ५ ॥ नीलपल्लववसनाःपुष्पपूरावतंसिकाः ॥ गृहीतसागरापूर्णकलशाःपुरुभूषणाः ॥ ६ ॥ धृतप्रफुल्लपद्मिन्यःसुगंधिमुखमारुताः ॥ नीलघुंघुमकाकल्योनिर्झरारावनूपुराः ॥७॥ द्युमूर्द्धानोमहीपादावनालीरोमराजयः॥ जंगलोरुनितंबिन्यश्चंद्रार्ककृतकुंडलाः ॥ ८ ॥

अर्थ—नदीरूप मुक्ताहारोंसे रमणीय, पर्वतेन्द्ररूप स्तनकलिका धारिणी, निर्मल आकाशरूप केशपास संयुक्त तथा नील मेघरूप अलकधारिणी दिशारूप वनिताको उस ब्राह्मणने देखा ॥ ५ ॥ और नीलपल्लवरूपी वस्त्रसहित, पुष्पोंके समूहरूप शिरोभूषणसे शोभित, समुद्ररूपी पूर्ण कलश ग्रहण किये हुये, और अधिक आभूषणोंसे शोभायमान वे दिशा थीं ॥ ६ ॥ तथा विकसित कमलधारिणी, सुगंधयुक्त मुख वायुसहित, नीलवर्णके पक्षी आदिसे मधुरध्वनि करनेवाली, तथा झरनोंके शब्दरूपी नूपुर धारण करनेवाली थी ॥ ७ ॥ स्वर्गरूपी मस्तक संयुक्त, पृथिवीरूपी चरण सहित, बनकी पंक्तिरूप रोमपांक्तियोंसे शोभित, जंगलरूपी महा नितंबधारिणी, तथा चन्द्रसूर्यरूपी कुण्डलवाली सब दिशा थीं ॥ ८ ॥

शालिसंसारकेदाराश्चंदनस्थालिकान्विताः ॥ शिखरोरसिजालग्नहिमशुभ्रांबुदांशुकाः ॥ ९ ॥ महार्णवपयःपूरनवमंडनदर्पणाः ॥ ऋक्षौघघर्मपुलकाभुवनांतःपुरांतराः ॥ १० ॥ आर्त्तवस्तनधारिण्योलग्नसूर्यांशुकुंकुमाः ॥ विचित्रकुसुमोपेताश्चंद्रांशुसितचंदनाः ॥ ११ ॥ गगनगतलतादलोपविष्टःप्रस्तवनावनिवारिवाहवेषाः ॥ त्रिभुवनवनितादददर्शदृष्टःकुसुमनिरंतरमंडितादशाशाः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरदिग्वलोकनं नाम पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—शालि (धान) के कंपोंसे चंचल केदार (क्यारी) सहित, और शिखररूपी स्तनोंमें संलग्न श्वेत मेघ अंशुक (वस्त्र) से शोभित थीं ॥ ९ ॥ यह समुद्रके जलके प्रवाहही उनके नूतन आभूषणोंके दर्शनार्थ दर्पण थे तथा तारागणरूपी घर्मबिन्दुके पुलक सहित, और त्रिभुवनरूप अन्तःपुर धारिणी सब दिशा थीं ॥ १० ॥ और

उन २ ऋतुओंमें उत्पन्न पुष्पपत्रादिरूप कंचुकी (कांचुली) धारण किये हुये, चित्राविचित्र पुष्पसहित, और चन्द्रमाके किरणरूप श्वेत चन्दनधारिणी ॥ ११ ॥ तथा विशाल बन, पृथिवी और मेघरूपी कृत्रिम आकार धारण किये, और त्रिलोकीकी बनिता (भोग्य होनेसे स्त्रीरूप) रूप दशोंदिशाओंको आकाशमें प्राप्त शाखाके ऊपर स्थित, और अति प्रसन्न उस ब्राह्मणने देखा ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरदिग्वलोकनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस ५१ के सर्गमें दाशूरके मनोमय यज्ञोंसे आत्मका बोध, बनदेवीमें पुत्रकी उत्पत्ति, तथा उस पुत्रको ज्ञानका संप्रदान इत्यादि विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ततःप्रभृतितत्रासौप्रसिद्धस्तापसाश्रमे ॥ कदंबदाशूरइतिशूरस्तपसिदारुणे ॥ १ ॥ तस्मिँल्लतादलेस्थित्वाविलोक्यककुभःक्षणात् ॥ दृढपद्मासनंबद्धादिग्भ्यःप्रत्याहृतात्मना ॥ २ ॥ अज्ञातपरमार्थेनक्रियामात्रेचतिष्ठता ॥ फलकार्पण्ययुक्तेनमनसासोकरोन्मखम् ॥ ३ ॥ नभोगतलतापत्रसंस्थितेनांतरात्मना ॥ सर्वाःस्वमनसातेनकृतायज्ञक्रियाःक्रमात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–उसी समयसे लेके यह ब्राह्मण उस तापस आश्रममें दारुण तपमें तत्पर कदम्बनिवासी दाशूरकरके प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस कदम्बलताके दलपर बैठके एक क्षण दिशाओंको देखके दिशाओंसे चित्तको निवृत्त (हटा) करके पद्मासन बांधकर ॥ २ ॥ परमार्थ ज्ञानसे रहित केवल कर्मकाण्डमें तत्पर स्वर्गादि प्राप्तिरूप कृपण फलसंयुक्त उस ब्राह्मणने मनसे यज्ञ किया ॥ ३ ॥ आकाशमें प्राप्त सत्ताके पत्रपर स्थित उसने अपने अन्तर्गत मनसेही अग्निका आधान (अग्निहोत्र) से आदि लेके अश्वमेधपर्यन्त सम्पूर्ण क्रियाओंको क्रमसे किया॥४॥

तत्रासौदशवर्षाणिमनसैवायजत्सुरान् ॥ गवाश्वनरमेधाद्यैर्यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥५॥ कालेनामलतांयातेविततेतस्यचेतसि ॥ बलादवततारांतर्ज्ञानमात्मप्रसादजम् ॥ ६ ॥ ततोविशीर्णावरणोविगलद्वासनामलः ॥ सददर्शैकदातस्यांलतायामग्रतःस्थिताम् ॥७॥ बनदेवींविशालाक्षीमालोककुसुमांबराम् ॥ कामिनींकांतवदनांमदघूर्णितलोचनाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस वृक्षपर अधिक दक्षिणासंयुक्त गौ, अश्व नरमेधारियज्ञोंसे देवताओंका यज्ञ दश (१०) वर्षपर्यन्त मनसेही किया ॥ ५ ॥ कालपाके रागद्वेषादि रहित जब इसका विशाल चित्त होगया, तब प्रतिबंधकके क्षय होनेपर पूर्वजन्मके श्रवणआदि संस्कारोंके बलसे आत्माकी प्रसन्नतासे ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अनन्तर ज्ञानसे अज्ञानरूपी आवरण उसका छिन्न भिन्न होगया और बासनारूपी मलभी उसका गलित होगया अनन्तर उस ब्राह्मण मुनिने एक समय लताके अग्रभागमें स्थित ॥ ७ ॥ तथा विशाल नेत्रवाली, प्रकाशयुक्त पुष्पमय वस्त्रधारण किये कामनी (कामनासहित) और मदसे घूर्णित नेत्रवाली एक बनदेवीको देखा ॥ ८ ॥

नीलोत्पलामोदवतीमतीवसुमनोहराम् ॥ तामुवाचानवद्यांगींसमुनिर्विनताननाम् ॥ ९ ॥ कोकिलाकुसुमापूरनतांवनलतामिव ॥ कात्वमुत्पलपत्राक्षिकांतिविक्षोभितस्मरा ॥ १० ॥ वयस्यामिवपुष्पाढ्यांलतांकिमिवतिष्ठसि ॥ इत्युक्तेमृगशावाक्षीगौरपीनपयोधरा ॥ ११ ॥ मुनिमाहमनोहारिमुग्धाक्षरमिदंवचः ॥ यानियानिदुरापाणिवांछितानिमहीतले ॥ १२ ॥

अर्थ—अनंतर नीलकमलके सुगंधयुक्त अतिमनोहर अनिंद्यशरीर, भक्तिप्रणाम तथा लज्जादिसे नम्रमुखी ॥ ९ ॥ कोकिल तथा पुष्पके भारसे नत बनलताके समान उस बनदेवीसे वह ब्राह्मणमुनि बोला कि–हे कमलपत्रनयने ! अपनी शोभासे कामदेवकोभी विक्षोभित करनेवाली तुम कौन हो ? ॥ १० ॥ निजसखीके तुल्य इस लतापर क्यों बैठी हो ? ऐसा ब्राह्मणके कहनेपर मृगके शावकके समान नेत्रधारिणी गौरवर्ण संयुक्त स्थूल स्तन धारिणी ॥ ११ ॥ वह बनदेवी उस मुनिसे मनोहर तथा मुग्धाक्षर सहित यह बचन बोली कि इस पृथिवीतलपर जो २ दुष्प्राप्य (दुःखसे प्राप्त होने योग्य) मनोरथ अर्थात् वांछित पदार्थ है ॥ १२ ॥

प्राप्यंतेतानितान्याशुमहतामेवयांचया ॥ अहमस्मिँल्लताकीर्णेत्वत्कदंबाभ्यलंकृते ॥ १३ ॥ लताली

लालयाब्रह्मन्विपिनेवनदेवता ॥ यश्चैत्रसितपक्षस्यत्रयोदश्यांस्मरोत्सवे ॥ १४ ॥ बभूववनदेवीनांस माजोनंदनेवने ॥ तत्राहमगमंनाथत्रैक्यललनासदः ॥ १५ ॥ तत्रदृष्टामयासर्वावयस्यामदनोत्सवे ॥ अपुत्रयापुत्रयुतास्तेनाहंदुःखिताभृशम् ॥ १६ ॥

अर्थ—वे वे सब महात्माओंकी यांचाहीसे शीघ्र प्राप्त होतेहैं मैं आपके कदंबसे शोभित लतासे व्याप्त इस ॥ १३ ॥ बनमें बनकी देवता होकर लताकी कुंजमें रहतीहूं जो चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके कामके उत्सवमें ॥ १४ ॥ नन्दनबनमें बनदेवियोंका समाज हुआथा हे स्वामिन् ! उस त्रिलोकके ललनाओंकी समाजमें मैं गईथी ॥ १५ ॥ उस कामदेवके उत्सवमें पुत्रसहित अपनी सब सखियोंको देखा तथा अपनेको पुत्ररहित मैंने देखा इसलिये मैं अत्यन्त दुःखीहूं ॥ १६ ॥

त्वयिसर्वार्थसार्थस्यबृहत्कल्पतरौस्थिते ॥ अनाथेवकथंनाथकिलशोचाम्यपुत्रिका ॥ १७ ॥ देहिमेभ गवन्पुत्रनोचेद्देहमिहाग्नये ॥ प्रकरोम्याहुतिंपुत्रदुःखदाहोपशांतये ॥ १८ ॥ तामित्युक्तवतींतन्वींविह स्यमुनिपुंगवः ॥ प्राहहस्तगतंपुष्पंतस्यैदत्त्वादयान्वितः ॥ १९ ॥ गच्छतन्वंगिमासेनपूजार्हमलिलो चनम् ॥ प्रसोष्यसेसुतंकांतंप्रसूनमिवसल्लता ॥ २० ॥

अर्थ—संपूर्ण पुरूषार्थोंके समूहके महान् कल्पवृक्षरूप आपके विद्यमान रहते हे स्वामिन् ! अनाथके समान पुत्ररहित होकर मैं कैसे शोच करूं ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! मुझे पुत्र दीजिये यदि आप पुत्र न देवेंगे तो पुत्रके न होनेके दुःखरूपी दाहको शांत करनेके लिये मैं अपने शरीरको अग्निमें हवन करदूंगी ॥ १८ ॥ उस तन्वङ्गीके इतना कह-नेपर मुनियोंमें श्रेष्ठदाशूरमुनि दयायुक्त होकर (न कि धैर्यसे च्युत) अपने हस्तमें स्थित पुष्पको उसको देकर और हंसकर उससे बोले ॥ १९ ॥ हे सूक्ष्मांगी ! तुम जाओ मासभरमें कमलके सदृश नेत्रयुक्त जगत्पूज्य सुन्दर पुत्रको ऐसे उत्पन्न करोगी जैसे सत् लता पुष्पको ॥ २० ॥

किंत्वसौमरणावेशयायिन्यानस्त्वयासुतः ॥ याचितःकृच्छ्रंसंप्राप्यज्ञातातेनभविष्यति ॥ २१ ॥ इत्यु क्त्वासमुनिस्तन्वींप्रसन्नमुखमंडलाम् ॥ परिचर्याकरोमीतिप्रार्थनोत्कांव्यसर्जयत् ॥ २२ ॥ साजगा मात्मसदनंसोतिष्ठत्स्वात्मनासह ॥ अवहत्क्रमशःकालऋतुसंवत्सरांकितः ॥२३॥ अथदीर्घेणकाले नसैवोत्पलविलोचना ॥ द्वादशाब्दमुपादायसुतंमुनिमुपाययौ ॥ २४ ॥

अर्थ—किंतु मरणके संकटमें आत्मघात करनेके संकल्पमें प्राप्त होकर यह पुत्र तुमने मुझसे मागाहै इसलिये यह आत्मज्ञानी होगा ॥ २१ ॥ ऐसा कह करके प्रसन्न मुखवाली उस तन्वंगी (जो कि इस प्रार्थनामें उत्कंठित थी) को बिदा किया ॥ २२ ॥ वह अपने स्थानमें आई और एकाकिनी उठी और ऋतु संवत्सर आदि कालोंको बिताया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर दीर्घ कालसे वह कमलनेत्रा १२ वर्षका अपना पुत्र लेकर मुनिके निकट आई ॥ २४ ॥

साप्रणम्योपविश्याग्रेमुनिमिंदुसमाननम् ॥ उवाचकलयावाचाचूतद्रुममिवालिनी ॥ २५ ॥ अयंसभ गवन्भव्यःकुमारःपुत्रआवयोः ॥ कृतोमयासमग्राणांकलानांकिलकोविदः ॥ २६ ॥ प्रभाकेवलमेते नज्ञानंनाधिगतंशुभम् ॥ येनसंसारचक्रेस्मिन्नपुनःपरिपीड्यते ॥ २७ ॥ ज्ञानंत्वमेवास्यविभोकृपयोप दिशाधुना ॥ कोहिनामकुलेजातंपुत्रंमौर्ख्येणयोजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—वह चंद्रमाके सदृश मुखवाले मुनिको प्रणाम करके और उनके संमुख बैठकर मधुर वाणीसे ऐसे बोली जैसे भ्रमरी आम्रके वृक्षसे ॥२५॥ हे भगवन् ! यह वही हम दोनोंका पुत्रहै मैंने इसको वेदादि सर्व विद्याओंका वेत्ता बनायाहै ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! केवल इसने शुभ आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया जिससे कि पुनः इस संसार चक्रमें प्राणी नहीं पीडित होता ॥२७॥ हे विभो ! अब आपही कृपाकरके इसको ज्ञानका उपदेश करो क्योंकि ऐसा कौनहै जो अपने कुलमें उत्पन्न पुत्रके आत्माके अज्ञानतारूपी मूर्खतामें नियुक्त करै ॥ २८ ॥

एवंवदंतींसमुनिःसच्छिष्यमबलेसुतम् ॥ इहैवस्थापयैनंत्वमित्युक्त्वातांव्यसर्जयत् ॥ २९ ॥ तस्यां गतायांसपितुरंतेवासितयातया ॥ अतिष्ठत्संयतोधीमानर्कस्येवारुणःपुरः ॥ ३० ॥ कदर्थःप्राप्यविज्ञा नंततश्चित्राभिरुक्तिभिः ॥ चिरकालमसौतत्रमुनिःपुत्रमबोधयत् ॥ ३१ ॥ आख्यायिकाख्यानशतैर्दृ ष्टांतैर्दृष्टिकल्पितैः ॥ तथेतिहासवृत्तांतैर्वेदवेदांतनिश्चयैः ॥ ३२ ॥ अनुद्वेगितयानित्यंविस्तरेणकथा क्रमैः ॥ अनुभूतिमुपारूढैरूढिमेतियथामयि ॥ ३३ ॥ अनुभववशतोरसातिरिक्तैरलमुचितार्थवचोग णैर्महात्मा ॥ जलदइवशिखंडिनंपुरःस्थंतनयमबोधयदंबरेमहर्षिः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने दाशूरसुतानुबोधनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—ऐसा कहनेके पश्चात् मुनि बोले कि हे अबले ! इस उत्तम शिष्य पुत्रको यहांही रखदो ऐसा कहकरके उसको वहांसे बिदाकिया ॥ २९ ॥ उस माताके चलेजानेपर वह बुद्धिमान्पुत्र गुरुकी शुश्रूषामें तत्पर अपने पिताके निकट ऐसे रहनेलगा जैसे सूर्य्यके संमुख गरूडके बडेभाई अरूण ॥ ३० ॥ उसके अनंतर बडे क्लेशसे ज्ञानको प्राप्त करनेवाले उसके पिताने चित्र विचित्र युक्तियोंसे पुत्रको चिरकालतक बोधन किया ॥ ३१ ॥ सैकडों आख्यायिका और आख्यानोंसे सम्यग्दर्शनके अर्थ कल्पित दृष्टांतोंसे महाभारतादिमें प्रसिद्ध इतिहासोंसे और वेदवेदांतके सिद्धांतोंसे ॥ ३२ ॥ उद्वेग न करनेकेलिये नित्य अनुभवमें प्राप्त यह मेरापुत्र प्रत्यगात्मामें दृढताको प्राप्तहो, ऐसे कथाके क्रमोंसे विस्तारपूर्वक उस पुत्रको बोधन किया ॥३३॥ आत्मज्ञानरूप चमत्कारसे सब रसोंसे अधिक स्वादिष्ट उचित अर्थयुक्त बचनके समूहोंसे उस महात्मा महर्षिने संमुख स्थित पुत्रको ऐसे बोधन किया जैसे संमुख स्थित मयूरको मेघ ॥३४॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने दाशूरसुतानुबोधनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

संकल्पसे रचेहुये विश्वको मिथ्या कहनेकी इच्छासे खोत्थ अर्थात् अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न राजाके चरितका वर्णन इस ५२ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ कदाचिदथमार्गेणतेनकैलासवासिनीम् ॥ अहंस्नातुमदृश्यात्माव्योमवीथीगतोगमम् ॥ १ ॥ निर्गत्यनभसःसप्तमुनिमंडलकोटरात् ॥ रात्रौप्राप्तोस्मिसुमतेदाशूरतरुमुन्नतम् ॥ २ ॥ यावच्छृणोमिविटपकुहरात्काननेवचः ॥ कुड्मलांभोजलग्नस्यषट्पदस्येवनिःस्वनम् ॥ ३ ॥ शृणुपुत्रमहाबुद्धेवस्तुतोस्यसमामिमाम् ॥ वर्णयामिमहाश्चर्यामेकामाख्यायिकांतव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–वह ब्राह्मण अपने पुत्रसे बोला कि–हे पुत्र ! कदाचित् इसी दाशूरमार्गसे आकाशमार्ग होकर अदृश्य होकर कैलाशवासिनी मन्दाकिनी गंगाजीमें स्नान करनेको मैं गयाथा ॥ १ ॥ सप्तर्षियोंका मण्डल जिसके एक देशमें है ऐसे स्वर्गलोकके आकाशसे मैं निकलकर हे सुमते पुत्र ! रात्रिके समयमें इसी अपने ऊंचे वृक्षमें प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ इतनेहीमें इसी वृक्षके गर्भसे वनमें एक ऐसे शब्दको सुनताहूं जैसे कमलकी कलिकामें निमग्न भ्रमरिका ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धे पुत्र ! एक महा आश्चर्यजनक आख्यायिका जो कि यथार्थमें इस संसारके तुल्यहै मैं तुमसे वर्णन करताहूं उसको तुम सुनो ॥ ४ ॥

अस्तिराजामहावीर्योविख्यातोभुवनत्रये ॥ नाम्नाखोत्थइतिश्रीमाञ्जगदाक्रमणक्षमः ॥ ५ ॥ अस्यानुशासनंसर्वेभुवनेष्वपिनायकाः ॥ शिरोभिर्धारयंत्युच्चैश्चूडामणिमिवार्थिनः ॥ ६ ॥ यःसाहसैकरसिकोनानाश्चर्यविहारवान् ॥ केनचित्त्रिषुलोकेषुनमहात्मावशीकृतः ॥ ७ ॥ यस्यारंभसहस्राणिसुखदुःखप्रदान्यलम् ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेकल्लोलाजलधेरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—एक महापराक्रमी राजा तीनोंलोकमें प्रसिद्ध, श्रीमान्, जगत्के आक्रमण करनेमें समर्थ खोत्थ (अव्याकृत आकाशज) नामसे प्रसिद्धहै ॥ ५ ॥ इस राजाकी आज्ञाको संपूर्ण भुवनोंमें नायक जो ब्रह्मा इन्द्रादिकहै वेभी अपने ऊंचे शिरोंपर ऐसे धारण करतेहैं जैसे धनीलोग चूडामणिको॥६॥ वह राजा साहसमें अति रसिक, नानाप्रकारके आश्चर्यजनक बातोंमें बिहार करनेवालाहै, वह महात्मा तीनोंलोकमें किसीसे वशीभूत नहीं किया गया ॥ ७ ॥ उसके सहस्रों आरंभ सुखदुःख देनेवाले हैं, उनकी गणना समुद्रके तरंगके समान कोई नहीं करसकता ॥८॥

यस्यवीर्यंसुवीर्यस्यनशस्त्रैर्नचपावकैः ॥ केनचिद्भुवनेक्रांतमाकाशमिवमुष्टिना ॥ ९ ॥ यदीयांविततारंभांलीलानिर्माणभासुराम् ॥ नमनागनुवर्त्ततेशक्रोपेंद्रहराअपि ॥ १० ॥ त्रयस्तस्यमहाबाहोदेहाविहरणक्षमाः ॥ जगदाक्रम्यतिष्ठंतिह्युत्तमाधममध्यमाः ॥ ११ ॥ व्योम्न्येवातिविततेजातोसौत्रिशरीरकः॥ तत्रैवचस्थितिंयातःशब्दपातश्चपक्षिवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस उत्तम पराक्रमीके पराक्रमको न शस्त्रोंसे न अग्निसे किसी पुरूषने त्रिभुवनमें ऐसे नहीं पराजित किया जैसे आकाशको मुष्टिसे (मूठीसे) ॥ ९ ॥ उसकी विशाल आरंभ करनेवाली स्वप्न मनोरथादिककी रचनासे प्रकाशशील लीलाको इन्द्र विष्णु और महादेवभी किंचित् अनुवर्तन नहीं करसकते ॥ १० ॥ हे महाबाहो ! संपूर्ण व्य-

वहारके क्रीडा करनेमें समर्थ उत्तम मध्यम अधम तीन शरीर उसकी जगत्को आक्रमण करके स्थितहैं ॥ ११ ॥ अत्यन्त विशाल अव्याकृत आकाशमें तीन शरीरधारी यह उत्पन्न हुआहै, और वहांही पक्षीके समान स्थितिकोभी प्राप्त हुआहै, और यह तुच्छ विषयोंमें आसक्त विधिनिषेध शब्दोंका अनुगामी होकर सदा भ्रमण करताहै ॥ १२ ॥

तत्रैवापारगगनेनगरंतेननिर्मितम् ॥ चतुर्दशमहारथ्यंविभागत्रयभूषितम् ॥ १३ ॥ वनोपवनमालाढ्यं क्रीडाशिखरिसुंदरम् ॥ मुक्तालताविगलितवापीसप्तकभूषितम् ॥ १४ ॥ शीतलोष्णात्मकाक्षीणदीपद्वयविराजितम् ॥ ऊर्ध्वाधोगतिरूपेणवणिङ्मार्गेणसंकुलम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्नेवातिविपुलेपत्तनेतेनभूभृता ॥ संसारिणोविरचितामुग्धापवरकागणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसी अपार अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माण्ड नामक नगर उसने रचा, जो कि चतुर्दश भुवन तथा चतुर्दश विद्यारूप महामार्गयुक्तहै, और त्रिलोक तथा वेदत्रयीसे शोभितहै ॥ १३ ॥ नंदन आदि बन उपबनोंसे पूर्ण, मेरुआदि क्रीडा शिखरियों (पर्वतों) से रमणीय, तथा मुक्तारूपी लताओंसे वेष्टित सात (७) समुद्ररूपी वापीसे शोभितहै ॥ १४ ॥ शीतल तथा उष्ण चन्द्रसूर्यरूपी दीर्घ तथा अक्षय दो दपोंसे विराजित और शास्त्रीय कर्मोंसे ऊर्ध्वगति तथा अशास्त्रीयकर्मोंसे अधोगतिरूप वणिक् (व्यापारी) के मार्गसे शोभितहै ॥ १५ ॥ उसी अति विशाल नगरमें उस राजाने जंगम अतिमूढ आत्माकाशके परिच्छेदक देव मनुष्यादि गणोंको रचा ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वकेचिदधःकेचित्केचिन्मध्येनियोजिताः ॥ केचिच्चिरेणनश्यंतःकेचिच्छीघ्रविनाशिनः ॥ १७ ॥ असितच्छादनच्छन्नानवद्वारविभूषिताः ॥ अनारतवहद्वाताबहुवातायनान्विताः ॥ १८ ॥ दीपपंचकसालोकास्त्रिस्थूणाःशुक्लदारवः ॥ मसृणालेपमृदवःप्रतोलीभुजसंकुलाः ॥ १९ ॥ माययारचितास्तेन राज्ञातेषुमहात्मना ॥ रक्षितारोमहायक्षानित्यमालोकभीरवः ॥ २० ॥

अर्थ—कोई ऊपर कोई नीचे तथा कोई प्राणी मध्यभागमें नियुक्त कियेगये, और, कोई उनमें चिरकालमें तथा कोई शीघ्रकालमें विनाशी रचे गये ॥ १७ ॥ कोई कृष्ण केशरूपी तृणसे आच्छादित, नव इन्द्रियरूपी द्वारसे विभूषित थे तथा निरन्तर बहते हुये पवनरूप बातायन (झरोंखों) से युक्त थे ॥ १८ ॥ पंचज्ञानेंद्रियरूपी दीपोंसे प्रकाशयुक्त, दोजंघे तथा पृष्टकी अस्थि (हड्डी) रूपी खंभे सहित, चिक्कण चर्मरूपी मृत्तिकाके लेपसे मृदु (कोमल) और भुजारूपी मार्गोंसे पूर्ण वे सब थे ॥ १९ ॥ और उस महात्माराजाने उन आत्माकाशके आच्छादकों (रक्षकों) को जो आत्मज्ञानरूपी प्रकाशसे नित्य भयभीत थे अहंकाररूपी यक्षोंको मायासे रचा ॥ २० ॥

अथापवरकौघेषुचलत्सुसमहीपतिः ॥ करोतिविविधांक्रीडांनीडेष्विवविहंगमः ॥ २१ ॥ त्रिशरीरशतेष्वंतस्तैर्यक्षैःसहपुत्रक ॥ लीलावशमुषित्वाशुपुनर्निर्गम्यगच्छति ॥ २२ ॥ तस्येच्छाजायतेवत्सकदाचिच्चलचेतसः ॥ पुरंभविष्यन्निर्माणंकिंचियामीतिनिश्चला ॥ २३ ॥ भूताविष्टइवावेगात्ततउत्थायधावति ॥ पुरंतदप्यथाप्नोतिगंधर्वैरिवनिर्मितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर आत्माके आच्छादकोंके व्यवहारमें प्रवृत्त होनेपर वह संकल्पसे उत्पन्न जीवरूपी राजा विविधप्रकारके क्रीडा ऐसे करताहै जैसे अपने घोसलेमें पक्षी ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! तीन प्रकार (स्थूल सूक्ष्म कारण) की सैकडों शरीरोंमें यक्षों (अहंकारों) के साथ लीलाओंसे अवश्यकतापूर्वक निवास करके यह जीवरूपी पक्षी पुनः निकल करके चलाजाताहै ॥ २२ ॥ उस चंचल चित्तको कदाचित् भोगकालपर्यन्त स्थिर यह इच्छा होती है कि भविष्यत् अर्थात् अविद्यमान स्वप्नादि नगरमें मैं जाऊं ॥ २३ ॥ भूतसे आविष्टके समान निद्रादिके आवेशसे उठकर अर्थात् जाग्रत् सुषुप्तिके अभिमानको त्यागकर दौडताहै और उस (स्वप्न) नगरको जो गंधर्वोंसे रचित नगरके समानहै प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

तस्येच्छाजायतेपुत्रकदाचिच्चलचेतसः ॥ विनाशंसंप्रयामीतितेनाशुसविनश्यति ॥ २५ ॥ पुनरुत्पद्यतेपूर्णस्वात्मनोर्मिरिवांभसः ॥ व्यवहारंतनोत्युच्चैःपुनरारंभमंथरम् ॥ २६ ॥ स्वयैवव्यवहृत्याथकदाचित्परिभूयते ॥ किंकरोस्म्यहमज्ञोस्मिदुःखितोस्मीतिशोचति ॥ २७ ॥ मुदमेत्यकदाचिच्चस्वयमायातिदीनताम् ॥ प्रावृड्वर्षकल्लोल्लासपूरादिवनदीरयः ॥ २८ ॥ जयतिगच्छतिवल्गतिजृंभतेस्फुरतिभातिनभातिचभासुरः ॥ सुतमहामहिमासमहीपतिःपतिरपामिववातरयाकुलः ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने खोत्थविभववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! पुनः उस चंचल चित्तवालेको इच्छा होती ह कि पुनः मैं विनाश अर्थात् संकल्पोंकी लयास्था सुषुप्तिको प्राप्त होऊं और उसीसे वह शीघ्र नाशको अर्थात् कारण अविद्यामें जिसमें कर्मोंके बीज संस्कार शेषमात्र रहतेहैं बिनोलेके समान लीन होजाताहै (गाढी निद्रा सुषुप्तिको प्राप्त होताहै) ॥ २५ ॥ और पुनः समुद्रसे तरंगके समान शीघ्रही अपने स्वभावसे उत्पन्न होताहै अर्थात् सुषुप्तिसे जाग्रत् या स्वप्नदशाको प्राप्त होताहै और पुनः आरंभ तथा उसके फलसंयुक्त बडे २ व्यवहारोंका विस्तार करताहै ॥ २६ ॥ और कदाचित् अपनेहीसे पराजित होताहै और मैं अज्ञ हूं, किंकर हूं दुःखी हूं इत्यादि प्रकारसे शोचताहै ॥ २७ ॥ और कभी पूर्वकालके अनुभूत सुखको उल्लंघन वा स्मरण करके स्वयं दीनताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वर्षाकालके कलाके उल्लासके प्रवाहसे नदीका बेग ॥२८॥ हे पुत्र ! वह माहात्माराजा वायुके वेगसे संक्षुब्ध समुद्रके समान पराजय करनेका सामर्थ्य रहते जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थामें शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करनेको जाताह, जितताहै सम्पत्तिको पाकर प्रसन्न होताहै अच्छीतरह चलताहै, और शोभित होताहै और अन्तर्गत आत्मज्योतिसे प्रकाशशील रहतेभी व्यवहारदृष्टिसे कुछ नहीं शोभित होता ॥२९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने खोत्थविभववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

खोत्थ (आकाशज) आख्यानका तात्पर्य और पूर्वोक्त अर्थमें दृष्टान्तभूत संकल्परचित विश्वका वर्णन इस ५३ के सर्गमें विस्तारसे किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथापृच्छत्सुतस्तत्रजंबूद्वीपेमहानिशि ॥ कदंबाग्रावचूडस्थंपितरंपावनाशयम् ॥१॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ कोसौखोत्थइतिख्यातोभूपस्तातोत्तमाकृतिः ॥ कथितंचकिमेतन्मेत्वयेतिब्रूहित त्वतः ॥ २ ॥ क्वभविष्यतिनिर्माणंवर्त्तमानेकगम्यता ॥ उभयार्थविरुद्धत्वान्मन्मोहायवचस्तव ॥ ३ ॥ ॥ दाशूरउवाच ॥ शृणुपुत्रयथाभूतमेतत्तेकथयाम्यहम् ॥ येनसंसारचक्रस्यतत्त्वमस्यावबुध्यसे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके अनन्तर उस जंबूद्वीपकी महारात्रिमें कदंबके अग्रभागमें शिरोभूषणके समान स्थित और पवित्र अन्तःकरणवाले अपने पितासे पुत्रने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे तात ! यह खोत्थ (आकाशज) नामसे प्रसिद्ध उत्तम आकारवान् राजा कौनहै और यह परोक्षरूपसे आपने मुझसे क्या कहा वह यथार्थरूपसे कहो ॥ २ ॥ कहां तो भविष्यत्में नगरकी रचना और कहां वर्तमानमें उसकी प्राप्ति ? क्योंकि भविष्यत् और वर्तमानका एककालमें विरोध होनेसे यह आपका बचन मेरे व्यामोहके लिये है ॥ ३ ॥ दाशूर बोला–हे पुत्र ! तुम सुनो इसको मैं यथार्थरूपसे कहताहूं जिससे कि इस संसारचक्रकातत्व तुम जानजाओगे ॥ ४ ॥

असदप्युत्थितारंभमवस्तुमयमाततम् ॥ संसारसंस्थानमिदमेवमाकथितंमया ॥५॥ परमात्रभसोजा तःसंकल्पःखोत्थउच्यते ॥ जायतेस्वयमेवासौस्वयमेवविलीयते ॥ ६ ॥ तत्स्वरूपमिदंसर्वंजगदाभो गिविद्यते ॥ जायतेतत्रजातेतुतस्मिन्नष्टेविनश्यति ॥ ७ ॥ ब्रह्मविष्णिंवद्ररुद्राद्यांस्तस्यैवावयवान्विद्धः ॥ विटपानिवृक्षस्यशृंगाणीवमहीभृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस संसारकी रचना असत्य अज्ञानसे प्रगट और परमार्थ सत्ता शून्य मायामयहै, इसीके बोध करानेके लिये मैंने तुमसे परोक्षरीतिसे वर्णन कियाहै ॥ ५ ॥ अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न जो संकल्पमय मनहै उसीको खोत्थ (आकाशज) कहते हैं, यह अपनेही संकलपजनित वासनासे उत्पन्न होताहै और वासनाकी निवृत्तिकी दृढतासे आपही नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ उसी संकल्पमय मनकास्वरूप (परिणाम) यह संपूर्ण विशाल जगत्है उसीके उत्पन्न होनेपर यह उत्पन्न और नष्ट होनेपर नष्ट होताहै ॥ ७ ॥ और ब्रह्मा विष्णु इंद्र और रूद्रादि ये सब उसी संकल्पमय मनके इसप्रकार अवयव हैं जैसे वृक्षकी शाखायें वा पर्वतके शिखर ॥ ८ ॥

शून्येव्योमनितेनेदंनिर्मितंत्रिजगत्पुरम् ॥ प्रतिभासानुसंधानमात्रेणैत्यविरिंचिनाम् ॥ ९ ॥ यत्रेमेवित तालोकालोककोशाश्चतुर्दश ॥ वनोपवनमाताश्चयत्रोद्यानपरंपरा: ॥१०॥ क्रीडाशिखरिणोयत्रसह्यमंद रमेरवः ॥ शीतोष्णदीप्तीचंद्रार्कौदीपौयत्रानलाकृती ॥ ११ ॥ सूर्यांशुकचदालोलतरंगोत्तुंगमौक्तिकाः॥ वहंतिसरितोयत्रसन्मुक्तावलयश्चलाः ॥ १२ ॥

अर्थ—तीनोंकालमें जगत्की सत्ता शून्य ब्रह्ममें अधिष्ठान चेतनके अनुग्रहमात्रसे ब्रह्मापदवीको प्राप्त होकर

तीनोंलोकरूपी नगरको संकल्पमय मनहीने रचाहै ॥ ९ ॥ जिस नगरमें सूर्यादिकके प्रकाशसे प्रकाशित यह चौदह भुवनरूपी विशाल कोषहैं और बन उपबनकी मालायें जहांपर बाटिकाओंकी पंक्तिहैं ॥ १० ॥ जहांपर सह्य, मन्दर मेरुआदि कुलाचल क्रीडाके शिखरहैं और जहांपर शीत उष्ण प्रकाशवाले और अग्निके समान आकारवान् चन्द्र सूर्यरूपी दो दीपकहैं ॥ ११ ॥ तथा जहांपर सूर्यके किरणोंसे शोभायमान चंचल और ऊंचे तरंगरूपी मोतियोंके स-मूहसे पूर्ण नदियां बह रही है ॥ १२ ॥

इक्षुक्षीरादिसलिलामणिरत्नबिसांकुराः ॥ और्वानलांबुजायत्रवाप्यःसप्तमहार्णवाः ॥ १३ ॥ अधउर्व्या तथोर्ध्वंखेपुण्यापुण्यधनश्रियः ॥ नरामरकिराटानांयत्रांतःक्रयविक्रयौ ॥ १४ ॥ तस्मिन्नेवजगत्यस्मि न्पुरेसंकल्पभूभृता ॥ क्रीडार्थमात्मनश्चित्रादेहापवरकाःकृताः ॥ १५ ॥ केचिद्गीर्वाणनामानऊर्ध्वएव नियोजिताः ॥ नरनागादयःकेचिदधएवनियोजिताः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसमें इक्षु औ क्षीर आदिके रसरूपी जलहैं मणि और रत्नरूपी जहांपर कमलके दंडके अंकुरहैं बडवानलरूपी जहां कमलहै ऐसी सातों समुद्ररुपी वापी शोभित हो रही हैं ॥ १३ ॥ जहांपर नीचे पृथ्वीपर और ऊर्ध्व आकाशमें पुण्य और पापरूपी धनकी शोभायुक्त देवता मनुष्य और किरातादि क्रय और विक्रय कर रहेहैं ॥ १४ ॥ उसी इसजगद्रूपी नगरमें संकलपमय मनरूपी राजाने अपने क्रीडाके लिये चित्रविचित्र अहंकाररूपी देहके रक्षक रचेहैं ॥ १५ ॥ उनमेंसे किसीका नाम देवताहै जोकि ऊर्ध्व देशमें स्थापित कियेगयेहैं, और कोई मनुष्य नागादिक अधोदेशमेंही स्थापित किये गयेहैं ॥ १६ ॥

वातयंत्रप्रवाहेणचलंतोमांसमृन्मयाः ॥ सितास्थिदारवश्चित्रास्त्वग्लेपमसृणामलाः ॥ १७ ॥ केचि च्चिरेणनश्यंतिकेचिच्छीघ्रविनाशिनः ॥ केचित्केशोलपोल्लासरचिताच्छादनश्रियः ॥ १८ ॥ कर्णाक्षि नासाप्रमुखैर्द्वारैर्नवभिरन्विताः ॥ अनारतवहत्प्राणपवनेनोष्णशीतलाः ॥ १९ ॥ कर्णनासास्यतालवा दिवातायनगणान्विताः ॥ भुजाद्यंगप्रतोलीकाःपंचेंद्रियकुदीपकाः ॥ २० ॥

अर्थ—प्राणोंके प्रवाहसे मांसरूपी मृत्तिकाके विकार श्वेत हड्डीरूपी काष्ठयुक्त, और चित्रविचित्र तैल तथा उबटनोंसे अति चिक्कण, और अति निर्मल यह संसारी प्राणी हैं ॥ १७ ॥ कोई तो इनमें चिरकालसे नष्ट होते हैं, कोई शीघ्र, और किसीसे केशरूपी तृणोंके उल्लाससे आच्छादनकी शोभा रचीगई है ॥ १८ ॥ कर्ण नेत्र और नासिकारूपी नौ दरवाजोंसे संयुक्त और निरंतर चलते हुये प्राण और अपानसे उष्ण तथा शीतल ये सब प्राणी हैं ॥ १९ ॥ तथा कर्ण नेत्र मुख और ताल्वादि झरोखोंके समूह सहित और भुजाआदि अंगरूपी मार्गयुक्त, तथा पांचों इंद्रियरूपी निन्दनीय दीपकसे प्रकाशित ॥ २० ॥

माययारचितास्तेषुसंकल्पेनमहामते ॥ अहंकारमहायक्षाःपरमालोकभीरवः ॥ २१ ॥ देहापवरकेष्वं तर्महाहंकारयक्षकैः ॥ सहसंक्रीडतेत्यर्थंससदैवासद्रुत्थितैः ॥ २२ ॥ यथाकुसूलेमार्जारोभस्त्रायांभुज गोयथा ॥ मुक्ताफलंयथावेणावहंकारस्तथातनौ ॥ २३ ॥ क्षणमभ्युदयंयांतिक्षणंशाम्यंतिदीपवत् ॥ देहगेहेषुसंकल्पतरंगाःसागरेष्विव ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा मायासे रचित ये सब प्राणीरूप महा नगरी हैं, हे महामते ! उन प्राणियोंमें इस संकलपमय मनने अहंकाररूपी महायक्ष रचेहैं, जोकि आत्मज्ञानरूपी प्रकाशसे अत्यंत भयभीत हैं ॥ २१ ॥ देहके रक्षा करनेवालोंमें अज्ञानसे आविर्भूत महा अहंकाररूपी यक्षोंके साथ वह राजा सदा क्रीडा करताहै ॥ २२ ॥ जैसे तुषकी अग्निमें मार्जार, भस्त्रामें सर्प, और बांसमें मुक्ताका फल है, ऐसाही इस शरीरमें अहंकार है ॥ २३ ॥ क्षणमेंही तो यह अभ्युदयको प्राप्त होताहै और क्षणमेंही ऐसे नाशको प्राप्त होताहै जैसे दीपक, शरीररूपी गृहोंमें संकलपमय तरंग ऐसे उठते हैं जैसे समुद्रोंमें ॥ २४ ॥

भविष्यन्नवनिर्माणंसव्याप्नोतितदापुरम् ॥ यदासंकल्पितंवस्तुक्षणादेवप्रपश्यति ॥ २५ ॥ असंकल्प नमात्रेणस्वेनैवाशुविनश्यति ॥ श्रेयसेपरमायस्यनाशत्वेनहसंभवः ॥ २६ ॥ स्वयंसंकल्पनामात्रंजाय तेबालयक्षवत् ॥ अनंतायात्मदुःखायनानंदायकदाचन ॥ २७ ॥ इदंस्फारंजगद्दुःखंप्रतनोत्यात्मसत्तया॥ असत्तयानाशयतिघनमांध्यंयथातमः ॥ २८ ॥

अर्थ—और यह संकलपमय मन भविष्यत् नूतन रचनावाले नगरमें (स्वप्नमें) उसी समय प्राप्त होताहै जब यह निज संकलिपत वस्तुको क्षणभरमें देखताहै ॥ २५ ॥ और संकलपके अभाव मात्रसे जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें

अत्यंत परिश्रम करके अर्थात् भ्रमण प्रयुक्त मायामें प्राप्त होकर अथवा नानाप्रकारकी योनियों भ्रमण करके सुषुप्ति वा समाधिमें आकर नाशको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ जैसे बालकके संकल्पसे शीघ्र पिशाचादि उत्पन्न होतेहैं ऐसेही यह अपनी कल्पनामात्रसे अनंत दुःखके लिये उत्पन्न होताहै न कि कदाचित् आनंदके अर्थ ॥ २७ ॥ यह संकल्पमय मन-रूपी राजा अपनीही सत्तासे इस विशाल जगत् रूपी दुःखको विस्तारित करताहै और अपनी सत्ताकी अभावसे ऐसे नाश करताहै जैसे घनीभूत अंधकारको सूर्य ॥ २८ ॥

स्वयैवदुःखदायिन्याचेष्टयापरिरोदिति ॥ काष्ठावष्टब्धवृषणःकीलोत्पाटीकपिर्यथा ॥ २९ ॥ संकल्पितानंदलवस्तिष्ठत्युद्धरकंधरम् ॥ अकस्मात्प्रच्युतमधुबिंदुभुक्खरोयथा ॥३०॥ क्षणंविरतिमायातिरतिमेतिक्षणंस्वयम् ॥ क्षणंविकारमायातिसंकल्पेनैवबालवत् ॥ ३१ ॥ एनंसकलभावेभ्यःकृत्वानिर्मूलमादरात् ॥ मतिरंतःपदंयातियथापुत्रतथाकुरु ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे दो काष्ठोंके भीतर जिसके वृषण (अण्डकोश) लटकरहे हैं उन काष्ठोंके मध्यमें स्थापित कील्के उखाडनेवाला बांदर दुःख पाताहै ऐसेही अपनी दुःखदायी चेष्टासे यह रोताहै ॥ २९ ॥ जैसे किसी पातसे चुयेहुये मधुके बिंदुको चाटनेसे गर्दभ आनंदित होताहै ऐसे अपने संकल्पित विषयके आनंदलेशके भोगनेसे यह अपनी कन्धा उठाकर आनंद होकर स्थित रहताहै ॥ ३० ॥ क्षणमेंही तो यह वैराग्यको प्राप्त होताहै और क्षणहीमें आसक्तिको, और बालकके संकल्पके समान क्षणहीमें पुनः विकार भावको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ हे पुत्र ! इस संकल्पमय मनको सम्पूर्ण बाह्यवस्तुओंसे हटाकर और समाधिके अभ्याससे आत्मज्ञानद्वारा आदरसे इसको निर्मूल करके तुम्हारा अंतःकरण ब्रह्मपदका अवलंबन करके जैसे विश्रामको प्राप्त हो वैसाही प्रयत्न करो ॥ ३२ ॥

त्रयस्तस्यामतेदेहाअधमोत्तममध्यमाः ॥ तमःसत्वरजःसंज्ञाःकारणंजगतःस्थितेः ॥ ३३ ॥ तमोरूपोहिसंकल्पोनित्यंप्राकृतचेष्टया ॥ परांकृपणतामेत्यप्रयातिकृमिकीटताम् ॥ ३४ ॥ सत्वरूपोहिसंकल्पोधर्मज्ञानपरायणः ॥ अदूरकेवलीभावंस्वाराज्यमधितिष्ठति ॥ ३५ ॥ रजोरूपोहिसंकल्पोलोकसंव्यवहारवान् ॥ परितिष्ठतिसंसारेपुत्रदारानुरंजितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! इस संकल्पमय मनके उत्तम मध्यम और अधम सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण संज्ञासहित तथा जगत्की स्थितिके कारणभूत तीन शरीर हैं ॥ ३३ ॥ प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक चेष्टासे नित्यही तमोरूप संकल्प होताहै जिससे कि यह प्राणी परम कृपणता (जो नरकोंमें प्रसिद्धहै) में प्राप्त होकर कृमि कीट और स्थावरादि योनियोंको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ और सत्वरूपी संकल्पसे यह प्राणी धर्म और ज्ञानमें परायण होताहै और उससे समीपमें केवलीभाव (मोक्ष) पददायक ब्रह्मादि देवपदवीको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ और रजोगुणरूपी संकल्प मनुष्यजन्मके योग्य व्यवहारी होताहै उससे पुत्ररत्नादिक करके अनुमोदित इस संसारमें यह प्राणी स्थित रहताहै ॥३६

त्रिविधंतुपरित्यज्यरूपमेतन्महामते ॥ संकल्पःपरमायातिपदमात्मपरिक्षये ॥ ३७ ॥ सर्वादृष्टीःपरित्यज्यनियम्यमनसामनः ॥ सबाह्याभ्यंतरार्थस्यसंकल्पस्यक्षयंकुरु ॥ ३८ ॥ यदिवर्षसहस्राणितपश्चरसिदारुणम् ॥ यदिवाविलयात्मानंशिलायांचूर्णयस्यलम् ॥ ३९ ॥ यदिवाग्निंप्रविशसिवडवाग्निमथापिवा ॥ यदिवापतसिश्वभ्रेखड्गधाराजवेतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—हे महामते ! सत्व रज तमोरूप इन तीनों गुणोंको त्यागकर अपने स्वरूपके नाश होनेपर यह संकल्पमय मन मोक्षपदवीको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण बाह्यदृष्टियोंको त्यागकर और मनको अपने मनहीसे रोककर और बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थविषयक संकल्पोंका तुम नाश करो ॥ ३८ ॥ यदि तुम सहस्रों वर्ष भयंकर तप करो अथवा इस नश्वर अपनी देहको पाषाणकी शिलापर चूर २ कर डालो ॥ ३९ ॥ अथवा यदि सामान्य अग्नि वा वडवा अग्निमें प्रवेश करो अथवा बडेभारी गर्तमें वा खड्गकी धारापर गिरो ॥ ४० ॥

हरोयद्युपदेष्टातेहरिःकमलजोपिवा ॥ अत्यंतकरुणाक्रांतोलोकनाथोथवायतिः ॥ ४१ ॥ पातालस्थस्यभूस्थस्यस्वर्गस्थस्यापितत्व ॥ नान्यःकश्चिदुपायोस्तिसंकल्पोपशमादृते ॥ ४२ ॥ अनाबाधेविकारेचसुखेपरमपावने ॥ संकल्पोपशमेयत्नंपौरुषेणपरंकुरु ॥ ४३ ॥ संकल्पतंतावखिलाभावाःप्रोताःकिलानघ ॥ छिन्नेतंतौनजानेतेकयांतिविशारारवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—महादेव विष्णु अथवा ब्रह्मा तुह्मारे उपदेश करनेवालेहों अथवा अत्यन्त करूणासे पूर्ण दुर्वासा दत्तात्रेय वा बुद्ध तुह्मारे उपदेश करनेवालेहो ॥ ४१॥ और तुम स्वयं पाताल पृथिवी वा स्वर्गपर स्थित रहो परन्तु संकल्पके ना-

शके सिवाय तुमारे मोक्षकेलिये कोईभी उपाय नहींहै ॥ ४२ ॥ सर्वथा बाधा और विकार रहित परम पवित्र सुखमय संकल्पके नाशकेलिये श्रवण मनन निदिध्यासरूप परम पुरूषार्थ करो ॥ ४३ ॥ हे पापरहित पुत्र ! संकल्परूप सूत्रहीमें संपूर्ण पदार्थ गुथेहैं उस संकल्परूप सूत्रके छिन्न होनेपर वे क्षणभंगुर पदार्थ न जाने कहां चले जातेहैं ॥ ४४ ॥

असत्सत्सदसत्सर्वसंकल्पादेवनान्यतः ॥ संकल्पंसदसच्चैवमिहसत्यंकिमुच्यताम् ॥ ४५ ॥ संकल्प्यतेयथायद्यतत्तथाभवतिक्षणात् ॥ माकिंचिदपितत्त्वज्ञसंकल्पयकदाचन ॥ ४६ ॥ निःसंकल्पोयथाप्राप्तव्यवहारपरोभव ॥ चिदचेत्योन्मुखत्वंहियातिसंकल्पसंक्षये ॥ ४७ ॥ उत्थायसत्वरूपेणयोन्यासत्यमयात्मकम् ॥ नतजगद्दुःखमिदंव्यर्थंसदृशमात्मनः ॥ ४८ ॥ तेनदुःखायमहतेकिंमृतेनतवानघ ॥ यद्दुःखायतत्प्राज्ञाःसंश्रयंतीहनेतरम् ॥ ४९ ॥ अधिगतपरमार्थतामुपेत्यप्रसभमपास्यविकल्पजालमुच्चैः ॥ अधिगमयपदंतदद्वितीयंविततसुखायसुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने संसारनगरविकल्पयोगविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—सत् असत्मय संपूर्ण विकल्प संकल्पहीसे उत्पन्न होतेहैं अन्यसे नहीं और संकल्प सदा असत्है ऐसा विकल्प जब नहीं करसकते तो इन विकल्पोंसे ब्रह्मका स्पर्श कैसे होसकताहै क्योंकि जब कार्योंका अपने संगी कारणोंमेंभी कुण्ठीभावहै तब असंग परब्रह्मतक वह कैसे पहुंच सकतेहैं ॥ ४५ ॥ यह संकल्पमय मन जैसा २ संकल्प करताहै वैसाही वैसा क्षणभरमें होजाताहै इसलिये हे तत्वज्ञ पुत्र ! तुम कदाचिद्भी कुछ संकल्प न करो ॥४६॥ संकल्प रहित जैसा व्यवहार प्राप्तहो उसीमें तुम तत्पर रहो और संकल्पके नाश होनेपर यह चिदात्मा विषयसे पराङ्मुख होताहै ॥ ४७ ॥ केवल सत्यस्वभावरूप ब्रह्ममयआत्मा असत्य मायाके वशीभूत होकर देवता मनुष्य और तिर्यगादि चौराशी लक्ष योनि द्वारा उन २ भिन्न २ प्राणी रूपसे जन्म लेकर व्यर्थही इस जगद्रूपी दुःखका अनुभव करताहै परन्तु यह इस शुद्धात्माके योग्य नहींहै ॥ ४८ ॥ इसलिये हे पापरहित पुत्र ! नानाप्रकारकी योनियोंमें जन्मके कारण केवल दु.खहीकेलिये पुनः २ मरणोंसे तुमको क्या फलहै क्योंकि बुद्धिमान् लोग दुःखरहित आत्माका आश्रय करतेहैं अन्यका नहीं ॥ ४९ ॥ इसलिये तुम तत्वज्ञानताको प्राप्त होकर और सर्वथा विकल्प जालको बलसे दूरकरके जो अद्वितीय मोक्षपदहै उसको समाधिनिष्ठ होकर निरतिशय आनंदकेलिये अपने प्रयत्नसे सिद्धकरो ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने संसारनगरविकल्पयोगविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

जैसे संकल्पकी उत्पत्तिरूप, और जिस उपायसे उसका नाश होताहै इन सबका वर्णन इस ५४ के सर्गमें करतेहैं॥

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कीदृशस्तातसंकल्पःकथमुत्पद्यतेप्रभो ॥ कथंचवृद्धिमाप्नोतिकथंचैषविनश्यति ॥ १ ॥ दाशूरउवाच ॥ ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्यसत्तासामान्यरूपिणः॥चितश्चेत्योन्मुखत्वंयतत्सकल्पांकुरंविद्धि ॥ २ ॥ लेशतःप्राप्तसत्ताकःसएवघनतांशनैः ॥ यातिचित्तखमापूर्यदृढजाड्यायमेघवत् ॥ ३ ॥ भावयंतीचितिश्चेत्यंव्यतिरिक्तमिवात्मनः ॥ संकल्पतामुपायातिबीजमंकुरतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—पुत्र बोला– हे तात ! संकल्प कैसा होताहै और हे प्रभो ! कैसे वह उत्पन्न होताहै, कैसे उसकी वृद्धि होतीहै और कैसे यह नष्ट होताहै ॥ १ ॥ दाशूर बोला—हे पुत्र ! अनंत सत्ता सामान्य स्वरूप आत्मतत्वरूप चित्का विषयकी ओर उन्मुख होनेको संकलपका अंकुर कहतेहैं ॥ २ ॥ वह लेशमात्रभी सत्ताको पाकर चित्ताकाशको चारो ओरसे व्याप्त करके अधिष्ठान चित्के चित् स्वभावताके तिरोधानता पूर्वक दृढ जडताकेलिये अर्थात् जड प्रपंचके आकारकी संपत्तिकेलिये धीरे २ मेघके समान घनीभावको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ यह चिति शक्ति अपनेसे पृथक् विषयरूपकी भावना करती हुई संकलपताको इसप्रकार प्राप्त होतीहै जैसे बीज अंकुरताको ॥ ४ ॥

संकल्पेनहिसंकल्पःस्वयमेवप्रजायते ॥ वर्द्धतेस्वयमेवाशुदुःखायनसुखायतु ॥ ५ ॥ संकल्पमात्रंहिजगज्जलमात्रंयथार्णवः ॥ ऋतेसंकल्पमन्यातेनास्तिसंसारदुःखिता ॥ ६ ॥ काकतालीययोगेनसंजातोस्तिमुधैवहि ॥ मृगतृष्णाद्विचंद्रत्वमिवासत्यंचवर्द्धते ॥ ७ ॥ निगीर्णमातुलिंगस्यकनकप्रत्ययोयथा ॥ स्वयमभ्येत्यसत्योंतःसंकल्पस्तेतथाहृदि ॥ ८ ॥

अर्थ—एक संकल्पसे अन्य संकल्प आपही उत्पन्न होताहै और आपही दुःखके लिये न कि सुखके अर्थ शीघ्र ही बढताहै ॥ ५ ॥ जैसे जलमात्रही समुद्रहै ऐसेही संकल्पमात्रही यह जगत् है तुमारे संकल्पके सिवाय संसारमें दुःख अन्य कोईभी नहीं है ॥ ६ ॥ काकतालीय न्यायसे यह संकल्पमय मन मिथ्याही विवर्तवादका आश्रय लेकर उत्पन्न हुआहै और मृगतृष्णा तथा दोचंद्रकी भ्रांतिके समान यह असत्यही वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जिस पुरुषने इन्दारूनका फल भक्षण करलियाहै उसके अंतःकरणमें श्वेत पदार्थमें पीत पदार्थकी भ्रांति जैसे स्वयं आकर सत्यके तुल्य भासती है ऐसेही तुमारे हृदयमें यह संकल्पहै ॥ ८ ॥

असत्यमेवजातस्त्वमसत्यमपिवर्तसे ॥ अस्मिन्ज्ञातेचविज्ञानेह्यसत्यंसंविलीयते ॥ ९ ॥ असौसोहमिमेभावाःसुखदुःखमथाम ॥ व्यर्थमेवेतिनानास्थायेनांतःपरितप्यसे ॥ १० ॥ असन्नेवास्यजातोसि कुतोजन्मविलासतः ॥ व्यर्थमेवावमूढोसिसिसंकल्पवशतःस्वतः ॥ ११ ॥ मासंकल्पयसंकल्पंभावंभावयमास्थितौ ॥ एतावतैवभावेनभव्योभवतिभूतये ॥ १२ ॥

अर्थ—असत्यही तुम उत्पन्न हुये हो और असत्यही विद्यमानहो, हमारे इस उपदेशमय शास्त्रके जाननेपर असत्यका लय होजायगा ॥ ९ ॥ यह जो वेदांतोंमें प्रसिद्ध पूर्णात्माहै उससे पृथक् अहं और मम इत्यादि सुखदुःखमय जन्मादि पदार्थ मिथ्याही हैं यह अविश्वास जिस अज्ञानके हेतुसे तुमको है इसीसे तुम अन्तःकरणमें दुःखी होते हो ॥ १० ॥ इस जन्मादिके संबंधी तुम कदाचित्भी न होकर भ्रांतिसे जन्मादिके संबंधी बनेहो क्योंकि यथार्थमें विलासमात्रसे आत्माका जन्म कहां ! व्यर्थही तुम अपने संकल्पके वशमें होकर स्वयं मूढके समान होरहे हो ॥ ११ ॥ पूर्वकालमें अनुभूत सुखदुःखादि पदार्थको तुम वर्तमान स्थितिमें स्मरण न करो, किंतु केवल आत्मा मात्रकी भावना करो, इसी भावनाके करनेसे आत्मसिद्धिरूप विभूतिकेलिये यह जीव भव्य होजाताहै ॥ १२ ॥

संकल्पनाशायत्नेननभयान्यनुगच्छति ॥ भावनाभावमात्रेणसंकल्पःक्षीयतेस्वयम् ॥ ॥ १३ ॥ सुमनःपल्लवामर्देकिंचिद्दयतिकरोभवेत् ॥ सुसाध्योभावमात्रेणनतुसंकल्पनाशने ॥ १४ ॥ पुष्पाक्रांतौकरस्पंदयत्नःपुत्रोपयुज्यते ॥ तदप्युपकरोत्यस्मिन्नसंकल्पपरिक्षये ॥ १५ ॥ संकल्पोयेनहंतव्यस्तेनभावविपर्ययात् ॥ अप्यर्द्धेननिमेषेणलीलयैवनिहन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—संकल्पके नाशकेलिये यत्न करनेसे प्राणी जन्ममरणादि भयको नहीं प्राप्त होता और भावनाके अभावमात्रसे यह संकल्प स्वयं क्षीण होजाताहै ॥ १३ ॥ पुष्पोंके दलोंके मर्दन करनेमें तो कुछ सुखसाध्य परिश्रम होताहै परन्तु अभावनामात्रसे साध्य संकल्पके नाशमें तो वहभी नहीं होता ॥ १४ ॥ पुष्पके दलोंके आक्रमण करनेमें किंचित् हस्तकी चेष्टामात्र यत्नका उपयोग होताहै, परन्तु हे पुत्र ! संकल्पके नाश करनेमें तो वहभी परिश्रम नहीं होता ॥ १५ ॥ जिस पुरुषको संकल्पका नाश करनाहै उसको केवल भावनाके विस्मरणमात्रसे आधेही पलकमें लीलामात्रसे उस संकल्पका नाश होताहै ॥ १६ ॥

भावमात्रोपसंपन्नेस्वात्मनिस्थितिमागते ॥ साध्यतेयदसाध्यंतत्कस्यस्यात्किमिवांगते ॥ १७ ॥ संकल्पेनैवसंकल्पंमनसास्वमनोमुने ॥ छित्त्वास्वात्मनितिष्ठत्वंकिमेतावतिदुष्करम् ॥ १८ ॥ उपशांतेहिसंकल्पेउपशांतमिदंभवेत् ॥ संसारदुःखमखिलंमूलादपिमहामते ॥ १९ ॥ संकल्पोहिमनोजीवश्चित्तंबुद्धिःसवासना ॥ नाम्नैवान्यत्वमेतेषांनार्थेनार्थविदांवर ॥ २० ॥

अर्थ—निरन्तर आत्माकी पूर्णानंदस्वरूपताके चिंतनमात्र प्राप्त होनेपर, और आत्मामें आत्माकी स्थिति प्राप्त होनेपर जो असाध्य वस्तुहै वहभी सिद्ध होजाती है. हे प्रिय पुत्र ! आत्माका अन्यसे अपहरण होनेसे वह आत्मा किसका होसकताहै, और आत्मा नष्ट होता हुआ किस रूपसे होगा अर्थात् आत्माका अपहरण और नाशका साक्षी कोई नहीं होसकता इसलिये न आत्मा किसीसे हरा जासकताहै और न उसका नाश होताहै ॥१७॥ हे मुने ! अपने मनहीसे असंकल्परूपके संकल्पसे मनसेही मनको छेदन करके तुम अपने आत्मामें स्थितहो और इतना कार्य करनेमें अर्थात् संकल्प न करनेमें तुमको क्या दुष्करताहै ॥ १८ ॥ संकल्पके शान्त होनेहीसे यह संपूर्ण जगत् शांत होजाताहै, हे महामते ! संकल्पके अभावसे इस संपूर्ण संसारका दुःख मूलहीसे नष्ट होजाताहै ॥ १९ ॥ हे अर्थवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह संकल्पही मन, जीव, चित्त और वासनासहित बुद्धिरूपहै इन सबका भेद नाममात्रसे है न कि अर्थसे ॥ २० ॥

संकल्पनादृतेनेहकिंचिदेवास्तिकुत्रचित् ॥ तमेवहृदयाच्छिधिकिमेतत्परिशोचसि ॥ २१ ॥ यथैवेदं नभःशून्यंजगच्छून्यंतथैवहि ॥ असन्मयविकल्पोत्थेउभेएतेततेयतः ॥ २२ ॥ असिद्धंसर्वमेवैतदसिद्धेनैवसाधितम् ॥ संकल्पेनजगद्यस्माद्भावनाक्कावतिष्ठताम् ॥ २३ ॥ भावनाक्षयतःसिद्धिस्ततःप्राप्यं नशिष्यते ॥ तस्मादसदिदंसर्वविज्ञेयंहेलयेद्धया ॥ २४ ॥

अर्थ—संकल्पसे पृथक् इस संसारमें कहीं कुछभी नहीं है, उसीको तुम अपने हृदयसे छिन्न करो यह शोच क्यों करते हो ॥ २१ ॥ जैसे यह आकाश शून्यहै ऐसेही यह जगत् शून्यहै, अर्थात् मरूभूमिके मृगतृष्णाके नाश होनेपरभी मरूभूमि शून्यात्मक नहीं होती जैसे यह दृष्टांतहै ऐसेही जगत् जीवादिका बाध होनेपरभी दृग्रूप आत्मा शून्यरूप नहीं होता, क्योंकि मृगतृष्णा (मरीचिका) और जगत् ये दोनों असत्यमय विकल्पसे आविर्भूत और आरोपसे विस्तृतहैं ॥२२॥ स्वयं असिद्ध (मिथ्याभूत) संकल्पने असिद्ध इस संपूर्ण जगत्को सिद्ध कियाहै, इसलिये बाधितपदार्थको पुनः सिद्ध करनेको भावना कहां स्थित रहसकती है ॥ २३ ॥ जगत्में सत्य आस्था (विश्वास) के असत्य होनेपर वासना किसमें रहसकती है भावनाके क्षय होनेसे सिद्धि प्राप्त होती है इसलिये अभ्याससे दृढीकृत दृश्यके अनादरसे यह सम्पूर्ण जगत् असत्यहै ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

तनुभावनयातेनसुखदुःखैर्नलिप्यते ॥ अवस्त्वितिचनिर्णीयस्नेहास्थानप्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ आस्थाक्षयेन जायेतेहर्षामर्षौभवाभवौ ॥ तस्मादसदिदंसर्वंसुखदुःखादिविभ्रमैः ॥ २६ ॥ मनोजीवःस्फुरत्युच्चैर्मानसंनगरंजगत् ॥ भविष्यद्वर्त्तमानंचभूतंचपरिवर्त्तयन् ॥ २७ ॥ वासनावलितंलोकेस्फुरच्छक्तिमनः स्थितम् ॥ करोतिस्वाशयेनेमांव्यवस्थांमलिनश्चलः ॥ २८ ॥

अर्थ—दृश्यके अनादरसे देहादिमें आत्माकी भावना न करनेसे पूर्वोक्त सुखदुःखोंमें प्राणी लिप्त नहीं होता और शरीर, संबंधी, तथा मित्रादि मिथ्याहैं ऐसा निश्चय करनेसे उनमें स्नेहकी आस्था नहीं प्रवृत्त होती ॥ २५ ॥ आस्थाके क्षय होनेसे हर्ष, आमर्ष, जन्म मरणादि नहीं होते इस कारण सुखदुःखादि विभ्रमोंसे यह सब असत्है ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥ २६ ॥ मनही चित्का प्रतिबिंब जीवरूप होके जगत्रूपी भूत भविष्यत् तथा वर्तमान मानस नगरको परिवर्तन करता हुआ रचता हुआ तथा विनाश करता हुआ स्फुरित होताहै ॥ २७ ॥ क्योंकि इस जीवका यह मनही विषयके संबंधसे बासनाओंसे आच्छादित, और अधिष्ठान चित्के संबंधसे स्फुरण शक्ति सहित स्थितहै इसलिये मलिन तथा चंचल होके कामसे प्रेरित यह जगत्की रचना आदि व्यवस्था करताहै ॥ २८ ॥

आत्मनःसदृशींलीलांजीवोहृद्वनमर्कटः ॥ दीर्घमाकारमादायनिमेषाद्यातिह्रस्वताम् ॥ २९ ॥ ग्रहीतुंच नशक्यंतेसंकल्पजलवीचयः ॥ मनाग्दृष्टाविवर्द्धंतेहसंतिसपरिच्छदाः ॥ ३० ॥ तृणमात्रेणदीप्यंतेसंकल्पावह्निशेषवत् ॥ जगत्यप्रकटाकाराःप्रदीप्ताःक्षणभंगुराः ॥ ३१ ॥ भ्रमदाजडसंस्थानाःसंकल्पास्तडिदग्नयः ॥ यदेवासन्मयंपुत्रतदेवाशुचिकित्सितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हृदयरूपी बनका मर्कट यह जीव अपने (कर्म) के सदृश लीला करताहै दीर्घ आकार ग्रहण करके शीघ्रही ह्रस्वताको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ संकल्परूप जलकी तरंगें यद्यपि ग्रहण करनेके योग्य नहीं है तथापि किंचित्भी विषय दर्शनसे उद्बोधित वृद्धिको प्राप्त होती हैं और विषयके विस्मरण मात्रसे परिवार सहित नष्ट होजाती हैं ॥ ३० ॥ तृणके सदृश थोडे विषयसेभी अग्निके कणके समान संकल्प प्रदीप्त होजातेहैं इस जगत्में अप्रकट आकारवाली प्रदीप्त क्षणभंगुर ॥ ३१ ॥ क्षणस्थायी जडमें स्थित शील संकल्परूप विद्युत्की अग्नि हैं हे पुत्र ! इस संसारमें जो असत्यहै वह शीघ्र दमन करनेके योग्यहै ॥ ३२ ॥

शक्यतेनात्रसंदेहोनासत्सद्भवतिक्वचित् ॥ संस्थितोयदिसंकल्पोदुश्चिकित्स्यःस्वतोभवेत् ॥ ३३ ॥ किंत्वसद्भूतएवैषसुचिकित्स्यस्तदाभवेत् ॥ अकृत्रिमंचेत्संसारमलमंगारकाष्ण्र्यवत् ॥ ३४ ॥ तदेतत्क्षालनेसाधोकःप्रवर्त्ततदुर्मतिः ॥ किंत्वेतत्तंडुलेष्वेवतुषकंचुकवत्स्थितम् ॥ ३५ ॥ यतस्ततःप्रयत्नेनपौरुषेणविनश्यति ॥ अकृत्रिममपिप्राप्तंभृशंपुत्रतथापुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसमें कोई संदेह नहीं है, असत् सत् कदाचित् नहीं होसकता; यदि संकल्प सत्यरूपसे स्थित होता तो वह दमन करनेमें स्वयं दुस्साध्य होता ॥ ३३ ॥ परन्तु यह संकल्प असत्है इसलिये इसका दमन सुसाध्यहै यदि यह संसाररूपी मल सत्य होता तो अंगारकी कालिमाके सदृश होता ॥ ३४ ॥ तो इस दशामें इसके प्रक्षालन करनेमें हे साधो ! कौनसा दुर्बुद्धि प्रवृत्त होता, परन्तु यह तो चावलकी भूसीके समान स्थितहै, इसलिये उससे

पृथक् करनेके योग्यहै ॥ ३५ ॥ हे पुत्र! यह अनिर्वचनीय अनादि कालसे सिद्धहै, इसलिये ज्ञानरूप परमार्थसे सर्वथा नष्ट होताहै ॥ ३६ ॥

सुखोच्छेद्यतयाज्ञस्यसंसारमलतातातम् ॥ तंडुलस्ययथाचर्मयथाताम्रस्यकालिमा ॥ ३७ ॥ नश्यति क्रियया पुत्रपुरुषस्यतथामलम् ॥ नश्यत्येवनसंदेहस्तस्माद्युद्यमवान्भव ॥ ३८ ॥ असत्कल्पैर्विकल्पै र्यत्संसारोनजितोसुधा ॥ स्तोकेनाशुलयंयातिकासद्वस्तुचिरंस्थितम् ॥ ॥ ३९ ॥ असत्यामेतिसंसारः स्वव्यवस्थांविचारतः ॥ दीपालोकादिवांधस्यद्वींदुत्वंस्वीक्षितादिव ॥ ४० ॥ नासौतवनचास्यत्वंभ्रां तिंपुत्रपरित्यज ॥ असत्येसत्यवद्दृष्टेभावनामास्महीदृशः ॥ ४१ ॥ ममगुरुविभवोज्ज्वलाविलासाइ तितवमास्तुवृथैवविभ्रमोंतः ॥ त्वमपिचवितताश्र्वतेविलासाविलसतिसर्वमिदंतदात्मतत्त्वम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने संकल्पचिकित्सा नाम चतुष्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरूषके लिये अति विस्तीर्ण संसारका मल सुखसे उच्छेदन करनेके योग्यहै, क्योंकि जैसे चावलकी भूसी और ताम्रके पात्र आदिकी कालिमा ॥ ३७ ॥ क्रियासे नष्ट होती है, ऐसेही हे पुत्र! यह संसाररूपी मलभी ज्ञानकी भूमिकाके अभ्यासरूपी पुरुषके प्रयत्नसे नष्ट होताहै इसमें कुछ संदेह नहीं है इसलिये तुमभी उद्यमवान् हो ॥ ३८ ॥ असत्यके सदृश विकल्पोंसे इस संसारको जो तुमने इतने कालतक नहीं जीता यह उपायके अपरिज्ञानसे प्रमाद हुआ, यह तो असंकल्परूप प्रयत्नसे शीघ्रही लयको प्राप्त होताहै, क्योंकि असद्वस्तु चिरकाल तक कहीं स्थित रहाहै! ॥ ३९ ॥ इस संसारकी व्यवस्थाके विचारसेही यह असत्यताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे दीपकसे अंधकारमें स्थित पुरूषकी अंधता वा अच्छीतरह देखनेसे दोचन्द्रमाका भ्रम ॥ ४० ॥ हे पुत्र! न यह संसार तुमाराहै और न तुम इसके हो, इसकी भ्रांति तुम त्यागो, क्योंकि असत्यको सत्यके समान देखनेपर इस असत्यशील संसारकी चिंता तुमको युक्त नहीं है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र! मैं संसारी हूं और मेरे बडे २ विभवसे दीव्यमान यह भोगके विलास नित्यहैं ऐसा भ्रम तुमारे अन्तःकरणमें नहो क्योंकि तुम और तुमारे ये भोगके विलास भान होरहेहैं इन सब रूपसे वह आत्मतत्त्वही विलास कर रहाहै ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरपाख्याने संकल्पचिकित्सानाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

दाशूरमुनिसे पूजित वसिष्ठऋषिकी परस्पर कथा और कदंबकी शोभाका दर्शन तथा प्रातःकालमें गमन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यतदातत्रराात्रावालपनंद्वयोः ॥ अहंरघुकुलाकाशशशांकरघुनंदन ॥ १ ॥ पतितःखात्कदंबाग्रेपत्रपुष्पफलाकुले ॥ तूर्णीनिवृष्टमुक्तात्माशृंगाग्रइवतोयदः ॥ २ ॥ अपश्यं तत्रदाशूरंशूरमिंद्रियनिग्रहे ॥ परेणतपसायुक्तंतेजसेवहुताशनम् ॥ ३ ॥ तेजोभिर्देहनिष्क्रांतैःकांचनी कृतभूतलम् ॥ तापयंतंप्रदेशंतंभुवनंभास्करोयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुकुलके आकाशरूपी चन्द्र रामजी! इसप्रकार रात्रिमें उन दोनोंका वार्तालाप सुनकर ॥ १ ॥ पत्र पुष्प और फलसे पूर्ण उस कदंबके अग्रभागमें आकाशसे आकर मैं ऐसे गिरा जैसे शब्दरहित वृष्टिरूपसे अपनेको अधोदेशमें उतारनेवाला मेघ शिखरके अग्रभागपर ॥ २ ॥ वहांपर इन्द्रियोंके जीतनेमें शूरवीर बडीभारी तपस्यासे युक्त तेजसे अग्निके समान ॥ ३ ॥ शरीरसे निकले हुये तेजोंसे भूतलको सुवर्णके समान करनेवाले और उस प्रदेशको सूर्यके समान तपाते हुये दाशूरमुनिको मैंने देखा ॥ ४ ॥

मामथालोक्यसंप्राप्तंदाशूरोर्घसपर्यया ॥ वितीर्णविष्टरंपत्रपूजयापर्यपूजयत् ॥ ५ ॥ ततःपूर्वकथास्ते नसहदाशूरभास्वता ॥ कृतास्तनयसंबोधाःसंसारोत्तरणक्षमाः ॥ ६ ॥ दृष्टवांस्तमहंवृक्षंकोरकोत्तर कोटरम् ॥ दाशूरस्येच्छयासर्वैरयतंद्रिर्मृगव्रजैः ॥ ७ ॥ सेव्यमानंवनमिवलतामंडलमंडितम् ॥ स्मिते नविस्फुटमिवश्वसनस्फुरितच्छदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर प्राप्त हुये मुझे दाशूर ब्राह्मणने देखकर आसन अर्घपाद्यादि देकर मेरी बडीभारी पूजा की ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर तेजस्वी उस दाशूर ब्राह्मणके साथ उसके पुत्रको संबोधन करके संसारके पार उतारनेमें समर्थ पूर्वकालकी कथाओंको मैंनेभी की ॥ ६ ॥ और जिसके आभ्यंतर प्रदेश कलियोंसे पूरित होरहेथे ऐसे उस कदम्बके वृक्षकोभी मैंने देखा और दाशूरमुनिकी इच्छासे व्याकुलता शून्य सम्पूर्ण मृगोंके समूहोंसे ॥ ७ ॥ ऐसे सेवित था जैसे लतामण्डपोंसे बनवायुसे स्फुरित पल्लव होनेके कारण स्मित (किंचित् हांस) से विकसित था॥८॥

लताकोटिगतैर्भ्रांतैश्चामरैरिंदुसुंदरैः ॥ शुभ्राभ्रखंडनिकरैः शरन्नभइवावृतम् ॥ ९ ॥ प्रालेयकणपद्धत्या मुक्तावल्याभ्यलंकृतम् ॥ सर्वावयवमेवाच्छपुष्पपूरैःप्रपूरितम् ॥ १० ॥ स्वरेणुचंदनालेपैःसमालब्ध मखंडितम् ॥ स्वच्छदाभोगविपुलरक्तांबरपरिच्छदम् ॥११॥ विवाहायेववेषेणपुष्पभारातिभारिणा ॥ लतांगनानुषक्तेननागरेणकृतोपमम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शाखाके अग्रभागमें प्राप्त भ्रमण करते हुये चन्द्रमाके समान अति सुन्दर चमरके पुच्छोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे शरद्कालमें श्वेत मेघके समूहोंसे आकाश ॥ ९ ॥ हिमके कणोंकी पंक्तिसे ऐसे शोभित था जैसे मुक्ताओंकी पंक्तियोंसे, और सम्पूर्ण देशमें स्वच्छ पुष्पोंके समूहोंसे पूर्ण वह कदम्बवृक्ष था ॥ १० ॥ अपने रेणुरूपी चन्दनके आलेपसे सर्वत्र लिप्त तथा अपने पल्लवके विस्तारोंसे विशाल रक्तवर्णके वस्त्रसे शोभित था ॥ ११ ॥ इसी कारणसे पुष्पके भारसे आक्रान्त नगरनिवासियोंसे कल्पित मानो विवाहार्थ वेषधारी लतारूपी अंगनासे सेवित होरहा था ॥ १२ ॥

मुनिबद्धोटजाकारलतामंडपमंडितम् ॥ मंजरीभिःपताकाभिर्युक्तंपुरमहोत्सवे ॥ १३ ॥ मृगकंडूयन ध्वस्तपुष्पधूलिविधूसरम् ॥ प्रोत्सारितोपांतवनंवृषमल्लमिवोत्थितम् ॥ १४ ॥ बर्हिभिःकुसुमोद्धांतपरा गपरिपाटलैः ॥ निक्षेपक्षिप्तसंध्याभ्रबालवालमिवाचलैः ॥ १५ ॥ प्रवालारुणहस्तेनकुसुमस्मितशो भिना ॥ मधुनाघूर्णमानेनप्रांतेनपुलकत्विषा ॥ १६ ॥

अर्थ—मुनियोंसे निर्मित उटज (झोपडे) के आकर लतामंडपसे शोभित और महोत्सवमें नगरके समान बडी २ लतारूपी पताकाओंसेयुक्त था ॥ १३ ॥ मृगोंके घर्षणसे ध्वस्त पुष्पोंकी धूलिसे धूसर और समीपके बनको हटानेवाले श्रेष्ठ वृष (बयल) के समान स्थित था ॥ १४ ॥ और पुष्पोंसे निकले हुये परागों (धूलियों) से श्वेत रक्तवर्ण जहां मयूरोंने अपने केश इसप्रकार स्थापित किये थे जैसे पर्वत अपने न्यास (थाती) भूत सन्ध्याकालके मेघरूपी बालोंको, ऐसे वृक्षको मैंने देखा ॥ १५ ॥ नूतन पल्लवरूपी रक्तयुक्त, पुष्परूपी किंचित् हास्यसे शोभायमान मदसे घूरते हुयेकेतुल्य और केसरोंकी पूर्णतासे पुलकित शोभायुक्त ॥ १६ ॥

नीरंध्रपुष्पपूर्णेनघूर्णितेनवनानिलैः ॥ निद्रालुकुड्मलदृशास्तबकस्तनधारिणा ॥ १७ ॥ पुष्पजालरजः पुंजकुंकुमारुणवाससा ॥ लतावितानविलयवातायननिषंगिणा ॥ १८ ॥ नीलपुष्पलतादोलालीलाला स्यविलासिना ॥ आपादमस्तकप्रांतंसर्वतोनिर्मितालयम् ॥ १९ ॥ वृंदेनवनदेवीनांकोकिलालापशा लिना ॥ संदिग्धमंजरीजालमलिनेत्रेणभासिना ॥ २० ॥

अर्थ—निरन्तर पुष्पोंसे पूर्ण, बनके बायुसे घूर्णित, निद्रावान् कलीरूप दृष्टिसहित, लतायुक्त गुच्छारूप स्तनोंको धारण किये हुये, तथा पल्लवरूपी हाथोंसे स्पर्श करते हुये वृक्षको मैंने देखा ॥ १७ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे उत्पन्न पराग (धूलि) पुंजरूपी कुंकुमयुक्त रक्तवस्त्रधारी, लताओंसे रचित वितान (मण्डप) रूप गृहोंके झरोखोंमें अनुरक्त उस वृक्षको देखा ॥ १८ ॥ नील चिक्कण तथा हरितपत्रवाली पुष्पयुक्त लताओंके झूलोंमें कौतुकसे आंदोलन (झुलाने) विषयमें विलासी पुरुषरूप, तथा कोकिलोंके आलापसे शोभित देवियोंके वृंदसे सेवित, तथा अपने देहसे पादसे लेके मस्तकपर्य्यन्त सम्पूर्ण अंगको सब पक्षी आदिका आश्रयभूत उस वृक्षको मैंने देखा ॥ १९ ॥ और भ्रमरोंके सदृश कृष्णवर्ण नेत्रवाली बनदेवियोंके समूहसे संदिग्ध लताके सदृश, अर्थात् बनदेवियोंके नेत्र तथा भ्रमर संयुक्त लताजालके भ्रमदायक ॥ २० ॥

अवश्यायोपशमितरतिखेदैर्मदालसैः ॥ पुष्पधूलिसमालब्धैराश्लिष्टैर्निबिडंमिथः ॥ २१ ॥ पुष्पांतरांतः पुरगैःकिमपिप्रणयोचितम् ॥ ध्वनद्भिरभितःस्वच्छमत्तालियुगलैर्वृतम् ॥ २२ ॥ काननोपांतनगरीगुंघुमाकर्णनेच्छया ॥ क्षणमुत्कर्णमाशांतचारुवर्णटांकृतैः ॥ २३ ॥ क्षणंदलाग्रविश्रांतमुग्धमुग्धशिर स्तया ॥ पश्यद्भिरिदंशुकवज्जालामर्णवमेखलाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हिमके कणोंसे रतिके खेदको शान्तिकारक, तथा मदसे आलसी, पुष्पोंकी धूलियोंसे लिप्त, तथा

परस्पर सघनतासे आलिंगित उस वृक्षको देखा ॥ २१ ॥ पुष्पोंके गर्भरूपी अन्तःपुरगामी, प्रेमके अनुकूल कुछ शंका करते हुये स्वच्छ तथा मदोन्मत्त भ्रमरोंके जोडोंसे आवृत्त कदंबवृक्षको देखा ॥ २२ ॥ और दिशाओंके प्रदेशोंमें निवेदक पुरुषके स्थानीभूत नीलवर्ण मक्षिकाओंके मधुर शब्दोंसे बनके समीप देशरूपी अपनी नगरीके मृगपक्षी आदिके शब्दके सुननेकी इच्छासे क्षणभर मानो कर्णोंके ऊंचे करके स्थित उस वृक्षको देखा ॥ २३ ॥ और पत्रोंके अग्रभागमें विश्रान्त अति दर्शनीय शिरोंसे चन्द्रमाके किरणरूपी वस्त्रोंसे आच्छादित तथा सातसमुद्ररूप मेखलायुक्त भूमिको रात्रिके बीतनेकी प्रतीक्षासे देखते हुये उस कदंबको मैंने देखा ॥ २४ ॥

वनस्थलीनांतनयैर्नयैर्मूर्तिमिवास्थितैः ॥ शुभैःपत्रपुटेष्वंतर्मृगैःसारतलांतरम् ॥ २५ ॥ नीडष्वसत्सु विश्वस्तसुप्तमात्रकपक्षिणम् ॥ पाकच्युतफलोपांतभूतकंचुकमंडली ॥ २६ ॥ संदिग्धमूकभ्रमरंगुच्छै पूजाक्षसूत्रकैः ॥ श्यामलीकृतपर्यतंनीडैःपल्लवमंडितैः ॥ २७ ॥ सुगंधिताशेषवनंपुष्पमेघीकृतांबरम् ॥ धूलीकदंबशबलफलौघवल्लितंतले ॥ २८ ॥

अर्थ—बनदेवियोंके पुत्रके सदृश, तथा मुनिके प्रभावसे मूर्तिमान् विनयके सदृश स्थित वृक्षको देखा, और पत्तोंके अन्तमें लीन उत्तम मृगोंसे जिसके भूतलका अधोभाग वा शाखादि अवयव शोभितथा ॥ २५ ॥ और जहां मुनिके प्रभावसे अपने खुंथोंमें श्वास लेते हुये पक्षीगण शयन कररहेथे और पककर गिरेहुये भ्रमर संयुक्त फलोंके समीपमें स्थित मृगआदि प्राणियोंसे छिलके सदृश चारोंओर व्याप्त उस वृक्षको देखा ॥ २६ ॥ जहांपर भक्षण तथा मर्दनादिकी शंकासे सन्देहयुक्त और भयसे भ्रमर मूकथे तथा पूजाकालके जपमें अक्षसूत्रके समान लम्बमान लताओंके गुच्छोंसे संपूर्ण बनको सुगंधित करनेहारे तथा पत्रोंसे शोभित नीडों (खुंथों) से श्यामवर्ण भूमियुक्त उस वृक्षको मैंने देखा ॥ २७ ॥ और पुष्पोंके समूहसे आकाशको मेघमय करनेवाले और मूलदेशमें धूलिके समूहोंसे नानावर्णके फलोंके समूहोंसे व्याप्त उस कदम्ब वृक्षको मैंने देखा ॥ २८ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेननकिंचिदपिविद्यते ॥ पत्रंयत्रतरैयत्रनोष्यतेवानयुज्यते ॥ २९ ॥ पत्रेपत्रेमृगाःसुप्ता विश्रांताश्चपदेपदे ॥ कच्छेकच्छेखगालीनास्तस्यभूरुहभूपतेः ॥ ३० ॥ एवंगुणविशिष्टंतंसमालोकय तोमम ॥ महोत्सवेनसदृशीसाबभूवतमस्विनी ॥ ३१ ॥ ततःकथाभीरम्याभिःसतस्यतनयोमया ॥ विज्ञानालोकरम्याभिर्नीतोबोधंपरंपुनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन उस वृक्षमें ऐसा पत्रभी नहीं था जहां प्राणीलोग निवास न करैं वा उपभोग (कार्य) में न लावैं ॥ २९ ॥ उस वृक्षके अधोभागमें गिरेहुये पत्ते २ में मृग शयन करतेथे, पद २ में विश्राम करतेथे, और उस वृक्षराजके पत्रोंके प्रत्येक अधोदेशमें सर्वत्र लीन थे ॥ ३० ॥ इसप्रकारके गुणसहित उस वृक्षको दिव्यदृष्टिसे देखते हुये मेरी वह रात्रि महोत्सवके सदृश हुई ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् विज्ञानके प्रकाशसे अतिरमणीय मनोहर कथाओंसे उस दाशूरके पुत्रको पुनः मैंने परमबोधको प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

आवयोस्तत्रचित्राभिःकथाभिरितरेतरम् ॥ शर्वरीसाव्यतीयायमुहूर्तइवकांतयोः ॥ ३३ ॥ प्रातःप्रत नुतांयातेपुष्पर्द्धिघनजालके ॥ स्वर्गंगनांगभोगाभेतारकानिकरेशनैः ॥ ३४ ॥ आकदंबनभोभागमुप यातंसुतान्वितम् ॥ अहंविसृज्यदाशूरंततोमरनदींगतः ॥ ३५ ॥ तत्राभिमतमासाद्यस्थानमेत्यनभ स्तलम् ॥ प्रविश्यखंमुनीनांचमध्यंस्वस्थइवस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ— हम दोनोंके परस्पर विचित्र कथाओंसे वह रात्रि समागममेंयुक्त स्त्री पुरुषके मुहूर्तके समान बीतगई ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर प्रातःकालमें अप्सराओंके अङ्गोंके भोगके सदृश शोभायुक्त, और पुष्पोंकी वृद्धिके समूहके समान तारागणके धीरे २ सूक्ष्म होनेपर ॥ ३४ ॥ कदंबके आकाशभागपर्यन्त पुत्रसहित आये हुये (पहुंचानेको आये हुये) दाशूरको गृहके प्रतिलोटाके मैं आकाशकी देवगंगाजीको ओर चलागया ॥ ३५ ॥ वहांपर इष्टस्थानको पाकर आकाशतलमें प्राप्त होके और आकाशमें प्रवेश करके मुनियोंके मध्यमें स्वस्थ होके स्थित हुआ ॥ ३६ ॥

दाशूराख्यायिकैषातेकथितारघुनंदन ॥ जगतःप्रतिबिंबाभासत्याकाराप्यसन्मयी ॥ ३७ ॥ दाशूरा ख्यायिकेवेयमित्येतत्कथितंमया ॥ तुभ्यंराघवबोधायजगद्रूपनिरूपणे ॥ ३८ ॥ तस्मादवास्तवींत्य क्त्वावास्तवीमपिरंजनाम् ॥ दाशूरसिद्धांतदृशासदोदारोभवात्मवान् ॥ ३९ ॥ तस्माद्विकल्पंमलमा त्मनस्त्वंनिर्द्धूयपश्यामलमात्मतत्त्वम् ॥ आसादयिष्यस्यचिरात्पदंतद्भविष्यसीज्योभुवनेषुयेन ॥४०॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने वसिष्ठदाशूरमेलनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

दाशूरोपाख्यानंसमाप्तम् ॥

अर्थ—हे रघुनन्दन ! यह दाशूरकी आख्यायिका जो जगत्के प्रतिबिंबके समान असत्यमयी होनेपरभी सत्याकार भान होती है मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥ हे राघव ! यह जगत्के स्वरूपके निरूपणके प्रसंगमें दाशूरकी आख्यायिकाके सदृश तुमारे बोधके लिये मैंने कथन किया ॥ ३८ ॥ इसलिये वास्तविक (यथार्थ) वा अवास्तविक रंजना अहं मम इत्यादि अध्यासको त्यागकर दाशूरसे कथित सिद्धांत दृष्टिसे सदा उदार तथा आत्मनिष्ठ होओ ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! विकल्पमय मनके हेतु अज्ञानरूपी मलको धोकर निर्मल आत्मतत्व देखो तब शीघ्रही मोक्षपदवीको प्राप्त होओगे जिससे कि चतुर्दशभुवनोंमें तुम पूज्य होजाओगे ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने वसिष्ठदाशूरमेलनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
दाशूरोपाख्यानं संपूर्णम् ॥

षट्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५६ ॥

जड दृश्यकी सत्ता तथा असत्ता, और चित्की कर्तृता तथा अकर्तृताका विचार करके दृश्यमें जो अहं मम इत्यादि अभेदाध्यासहै उसका सर्वथा निवारण इस ५६ के सर्गमें करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ नास्तीदमितिनिर्णीयसर्वतस्त्यजरंजनाम् ॥ यन्नास्तितत्प्रतिकिलकेवास्थेहविचारिणाम् ॥ १ ॥ दृश्यमानमथेदंचेदस्तिसत्तामुपागतम् ॥ तिष्ठस्वात्मनिबद्धासित्वंकिमत्रकिलात्मताम् ॥ २ ॥ अथचेदस्तिनास्तीदमितिनिश्चयवानसि ॥ तथाविभावनासंगःकथंयुक्तश्चलाचले ॥ ३ ॥ नेदमस्तिजगद्रामतवनास्तिमहामते ॥ केवलंस्वच्छमेवेत्थमाततंमितमीदृशम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—यह जड जगत् नहीं है ऐसा निर्णय करके, अहं मम इत्यादि अभेद अध्यासरूप विश्वासको त्यागो, क्योंकि जो नहीं है उसमें विवेकियोंकी आस्था क्या ॥ १ ॥ यदि यह देहादि दृश्य जगत् आत्मासे पृथक् निरपेक्ष पृथक् सत्ताको प्राप्त हुआहै तो तुमभी उससे निरपेक्ष होकरके असंग और उदासीन चिद्रूप अपने आत्मामें स्थितरहो, क्योंकि आत्मासे निरपेक्ष देहादिमें अध्याससे तुम आत्मताको क्यों बांधतेहो ॥ २ ॥ और यदि यह जगत् सदसत्है ऐसा निश्चय तुमकोहै तो भी सदसत्रूपसे अनियत स्वभाववाले देहादि जगत्में तुमारी भावनायुक्त नहीं है ॥ ३ ॥ और हे महामते रामजी ! यदि यह जगत् नहीं है ऐसा तुमारा सिद्धांतहै तब तो तुमारा बंध इसमें हैही नहीं, केवल निर्मल आत्मतत्व व्यापक सर्वथा विस्तीर्ण और सर्व प्रमाण सिद्धहै ॥ ४ ॥

नेदंकर्तृकृतंकिंचिन्नवाकर्तृकृतक्रमम् ॥ स्वयमाभासतेचेदंकर्त्रकर्तृपदंगतम् ॥ ५ ॥ अकर्तृकंजगज्जालंभवत्वथसकर्तृकम् ॥ मात्वमेतेनशबलंभावयन्नास्वचेतसि ॥ ६ ॥ सर्वेंद्रियविहीनात्माकर्त्तेवसजडोपमः ॥ अकर्तृचतदामन्येकाकतालीयवज्जगत् ॥ ७ ॥ काकतालीययोगेनजातंयत्किंचिदेवतत् ॥ तस्मिन्मानुसंधानंबालोबध्नातिनेतरः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह जगत् कर्ताका किया हुआ नहीं है और न इसमें कर्त्ताका किया हुआ कोई क्रमहै यह कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त स्वयं भासमान होरहाहै ॥ ५ ॥ यह जगत्का जाल कर्तासहितहो, वा अकर्तासहित हो, परन्तु तुम परस्परके अभेदाध्याससे देहादिमें आत्मभावको देखते हुये बुद्धिरूप उपाधिसे परिछिन्न देहादिमें न स्थितहो ॥ ६ ॥ यदि संपूर्ण इन्द्रियों करके शून्य जडके समान अपनी सत्तामात्रसे जगत्के कर्ताके समान भान होताहै तोभी यह जगत् काकतालीय न्यायसे कर्तारहितही है ऐसा मैं मानताहूं ॥ ७ ॥ क्योंकि काकतालीय न्यायसे जो उत्पन्न हुआहै वह मानो नहीं उत्पन्न हुआहै, क्योंकि अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय पदार्थमें पुनः २ अनुसंधान बालकही करताहै न कि विवेकी ॥ ८ ॥

नकदाचिदिदंशांतंजगद्रामनचक्षयि ॥ अजस्रंदृश्यमानत्वाद्भावित्वाच्चपुनःपुनः ॥ ९ ॥ नकदाचिदिदंचास्तिजगद्रामनचक्षयि ॥ अजस्रंक्षीयमाणत्वान्नास्तित्वाच्चानुमानतः ॥ १० ॥ सर्वेंद्रियपदातीतोयदाकर्त्तेहविज्वरः ॥ कुर्वाणःसर्वदाखेदंनकदाचनगच्छति ॥ ११ ॥ तेनेयंनियतिःप्रौढाभावाभावदशामयी ॥ ईदृश्येवस्थिरादीर्घामिथ्योत्थापिचदृश्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जगत् न तो सर्वथा अत्यंताभावरूपहै और न प्रध्वंसाभाव प्रयुक्त शून्य स्वभाववानहै, क्योंकि यह प्रवाहरूपसे दृश्यमान और पुनः २ उत्पत्ति सहितहै ॥९॥ और हे रामजी ! न यह जगत् नित्य सत्ता

स्वभाववान्है और न क्षणिक सत्ता स्वभाववान्है, क्योंकि यह नित्य परिणामके भेदसे क्षीयमाणहै और अनुमान्से अ-सत् स्वभाववालाभी है ॥ १० ॥ यदि संपूर्ण इन्द्रियोंसे अतीत त्रिविध ताप रहित इसका कर्त्ताहै तो भी सर्वदा जग-त्के कार्यको करतेहुयेभी खेदको नहीं प्राप्तहोता, क्योंकि आत्माकी संनिधि मात्रसे जगद्रूप कार्य्य होताहै ॥ ११ ॥ इस कारणसे यह प्रौढ जगत्की मर्यादा सदसत् अर्थात् अनिर्वचनीय दशामयी है सर्वदा ऐसेही स्थित और दीर्घाकार-वाली और मिथ्या आविर्भूत देखपडती है ॥ १२ ॥

अपर्यंतस्यकालस्यकश्चिदंशःशरच्छतम् ॥ तावन्मात्रमहाश्चर्यःकिमर्थस्रोनुधावति ॥ १३ ॥ स्थिरा श्चेजगतांभावास्तत्त्वादास्थानशोभते ॥ कथमन्योन्यसंश्लेषोजडचेतनयोःकिल ॥ १४ ॥ अस्थिताश्चे जगद्भावास्तदाप्यास्थानशोभते ॥ पयःफेनास्थिरस्यांतेदुःखमेषाददातिते ॥ १५ ॥ आस्थाबंधोमहा बाहोजगद्भावत्वमात्मनः ॥ नस्थिरास्थिरयोःफेनशैलयोरिवराजते ॥ १६ ॥

अर्थ—मनुष्य देहका जीवन पर्यंत सौ वर्षकाल अपरंपार कालका किंचित् अंशमात्रहै उतना कालमात्रभी म-नुष्य देहमें आत्मताके अभिमानमें महान् आश्चर्य्यहै कि संपूर्ण इन्द्रियोंके पदसे अतीत आत्मा क्यों इस ओर दौड-ताहै ॥ १३ ॥ यदि कर्ता रहित इस जगत्के संपूर्ण देहादि पदार्थ सत्हैं तो स्थिर होनेसेभी इसमें आस्था शोभा नहीं देती, क्योंकि असंग चेतन और जड पदार्थका परस्पर संयोग कैसे हो सकताहै ॥ १४ ॥ और यदि इस जगत्के पदार्थ चंचलहै तोभी इसमें आस्था शोभा नहीं देती, क्योंकि जलके फेनके समान चंचल इस देहादि जगत्के नाश होनेपर यह आस्था तुमको दुःखही देवेगी ॥ १५ ॥ हे महाबाहो रामजी ! देहादि जगत् जोकि जन्म नाशादि संयुक्तहै उसमें आत्माकी भावना करना अर्थात् आत्माको जगत् स्वभाव मानना यह आस्था बंध स्थिर और चंचल स्वभाववाले आत्मा और जगत्का ऐसे नहीं शोभित होता जैसे फेन और पर्वतका ॥ १६ ॥

सर्वकर्त्ताप्यकर्त्तैवकरोत्यात्मानकिंचन ॥ तिष्ठत्येवमुदासीनआलोकंप्रतिदीपवत् ॥ १७ ॥ कुर्वन्नकिंचि त्कुरुतेदिवाकार्यमिवांशुमान् ॥ गच्छन्नगच्छतिस्वस्थोस्वास्पदस्थोरविर्यथा ॥ १८ ॥ यतःकुतश्चिदे वेदंसंपन्नमिवलक्ष्यते ॥ अरुणातीरवद्वारिपूरावर्त्तवदाततम् ॥ १९ ॥ इतिचेद्भवतारामनैपुण्येनावधा रितम् ॥ प्रमाणपरिशुद्धेनचेतसाचविचारितम् ॥ २० ॥

अर्थ—सबका कर्ता होते हुयेभी अकर्ताके समानहै, क्योंकि वह कुछ नहीं करताहै क्योंकि आत्मा उदासीन ऐसे स्थित रहताहै जैसे प्रकाशके प्रति दीप ॥१७॥ जैसे सूर्य्य सब प्राणियोंके दिनके कार्य करते हुयेभी कुछ नहीं क-रता ऐसेही आत्माभीहै, और अपनी प्रतिष्ठामें स्थित स्वस्थ सूर्यके समान चलते हुयेभी आत्मा नहीं चलता ॥ १८॥ यह जगत् अनिर्वचनीय रूपसे अपने स्वभावहीसे ऐसे लक्षित होताहै जैसे अरूणा नदीका तीर स्वभावसेही शिला आ-दिसे विषमहै, और जलका प्रवाहभी अधोगमनशीलहै, और इन दोनोंके सन्निधानसे उत्पन्न आवर्त (भंवरेह) आक-स्मिक सिद्धहै अर्थात् जड और चेतनके संयोग मात्रसे यह जगत् अकस्मादुत्पन्नहै इसमें कर्ताका भार किसीके ऊपर नहीं है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! यदि इस बातको अर्थात् यह जगत् आत्माके सन्निधानमात्रसे उत्पन्न होताहै इसको तुमने कुशलतासे निश्चय करलियाहै और प्रमाणसे परे शुद्ध चित्तसे विचारभी लियाहै ॥ २० ॥

तथापिभावनांसाधोपदार्थंप्रतिनार्हसि ॥ आलातचक्रेस्वप्नेचभ्रमेवाकेवभावना ॥ २१ ॥ अकस्मादा गतोजंतुःसौहार्दस्यनभाजनम् ॥ भ्रमोद्भूतंजगज्जालमास्थायास्तन्नभाजनम् ॥ २२ ॥ औष्ण्येंदौशीत लेभानौमृगतृष्णाजलेतथा ॥ यथानभावस्यास्थामेवंभावयमास्थितौ ॥ २३ ॥ संकल्पपुरुषस्वप्नजन द्वींदुत्वविभ्रमम् ॥ यथापश्यसिपश्यत्वंभावजातमिदंतथा ॥ २४ ॥

अर्थ—तोभी हे साधो रामजी ! देहादि पदार्थोंके प्रति आत्मभावना तुमको करनी योग्य नहीं है क्योंकि आलातके चक्र (लकडीमें आग लगाकर जिसको मनुष्य अपने चारो ओरसे घुमाता है) स्वप्न और भ्रम इनमें भावना कैसी ॥ २१ ॥ जैसे जो प्राणी अकस्मात् एक दिनके लिये आगयाहै वह मित्रताका पात्र नहीं होसकता; इसी प्रकार भ्रमसे उत्पन्न यह जगत् समूहभी आस्थाका पात्र नहीं होसकता ॥ २२ ॥ जैसे चन्द्रमामें उष्णताकी सूर्यमें शीतलताकी और मृगतृष्णामें जलकी भावना नहीं करते हो ऐसेही इस जगत्की स्थितिमेंभी भावना न करो ॥ २३ ॥ संकल्प और स्वप्नका पुरूष और दो चन्द्रमाके भ्रमको जैसे तुम देखते हो ऐसेही इस जगत्के समूह पदार्थको देखो ॥ २४ ॥

अंतरास्थांपरित्यज्यभावश्रीभावनामयीम् ॥ योसिसोसिजगत्यस्मिँल्लीलयाविहरानघ ॥ २५ ॥ अक

तृत्वपदंपीत्वापीत्वेच्छामपिकुर्वतः ॥ सर्वभावांतरस्थस्यसर्वातीतस्यचात्मनः ॥ २६ ॥ इयंसन्निधिमात्रेणनियतिःपरिजृंभते ॥ दीपसन्निधिमात्रेणनिरिच्छैवप्रकाशते ॥ २७ ॥ अभ्रसन्निधिमात्रेणकुटजानियथास्वयम् ॥ आत्मसन्निधिमात्रेणत्रिजगंतितथास्वयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—स्त्री आदिकी सुन्दरताकी चिंतासे पूर्ण जो संसारकी शोभाहै उसमें आस्थाको छोडकर जो कुछ तुमारारूपहो उस रूपसे इस जगत्में हे पाप रहित रामजी ! लीलासे विहार करो ॥ २५ ॥ सब पदार्थोंके आभ्यंतरमें स्थित तथा सबसे अतीत आत्माकी कर्तृता अकर्तृता तथा उसकी इच्छाकोभी निगरणकरके शेष जो कुछ तुमारा रूपहै उससे लीलापूर्वक जगत्में बिहार करो, और उदासीन रूपसे इच्छा रहित व्यवहार करते हुये तुमारे सन्निधि मात्रसे नियति जगत्के व्यवहार रूपसे प्रख्यात होतीहै ॥ २६ ॥ यह जगत्की नियति आत्माकी सन्निधिमात्रसे अपने स्वरूपको ऐसे विकसित करती है जैसे दीपककी सन्निधिमात्रसे प्रभा इच्छाके बिनाही प्रकाश करती है ॥ २७ ॥ मेघकी सन्निधि (समीपता) मात्रसे जैसे कुटजके पुष्प स्वयं विकसित होतेहैं ऐसेही आत्माकी सन्निधिमात्रसे तीनों लोक स्वयं उत्पन्न होतेहैं ॥ २८ ॥

सर्वेच्छारहितेभानौयथाव्योमनितिष्ठति ॥ जायतेव्यवहारश्चसतिदेवेतथाक्रिया ॥ २९ ॥ निरिच्छेसंस्थितेरत्नेयथालोकःप्रवर्तते ॥ सत्तामात्रेणदेवेतुतथैवायंजगद्गणः ॥ ३० ॥ अतःस्वात्मनिकर्तृत्वमकर्तृत्वंचसंस्थितम् ॥ निरिच्छत्वादकर्त्तासौकर्त्तासन्निधिमात्रतः ॥ ३१ ॥ सर्वेंद्रियाद्यतीतत्वात्कर्त्ताभोक्तानसन्मयः ॥ इंद्रियांतर्गतत्वात्तुकर्त्ताभोक्तासएवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे संपूर्ण इच्छासे शून्य सूर्यके आकाशमें स्थित रहने मात्रसे जगत्का व्यवहार होताहै ऐसेही परमात्माकी सत्तामात्रसे जगत्की क्रिया होती है ॥ २९ ॥ इच्छारहित रत्न (मणिआदि) के स्थित रहनेसे जैसे जगत्में प्रकाश प्रवृत्त होताहै ऐसेही परमात्माकी सत्तामात्रसे जगत्के समूह उत्पन्न होतेहैं इस हेतुसे आत्मामें कर्तृत्व अकर्तृत्व दोनों स्थितहैं, इच्छारहित होनेसे यह अकर्ताहै, और सन्निधिमात्रसे कर्ताभी है ॥ ३१ ॥ संपूर्ण इन्द्रियोंका विषय न होनेसे सत्य परमात्मा कर्ता भोक्ता नहीं है और सत्तामात्रसे इन्द्रियोंके अंतर्गत होनेसे कर्ता भोक्ताभी वही है ॥३२॥

द्वेएवात्मनिविद्येतेकर्तृताकर्तृतानघ ॥ ययैवपश्यसिश्रेयस्तामाश्रित्यस्थिरोभव ॥ ३३ ॥ सर्वस्थोहमकर्त्तेतिदृढभावनयानया ॥ प्रवाहपतितंकार्यंकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ३४ ॥ यातिनीरसतांजंतुरप्रवृत्तेश्चचेतसः ॥ यस्याहंकिंचिदेवेहनकरोमीतिनिश्चयः ॥ ३५ ॥ भोगौघकामवांस्तत्रकःकरोतुजहातुवा ॥ तस्मान्नित्यमकर्त्ताहमितिभावनयेद्धया ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! इसप्रकारसे आत्मामें कर्तृता अकर्तृता दोनों हैं इनमेंसे जैसे तुम अपना कल्याण देखते हो उसीका आश्रय लेके स्थिर रहो ॥ ३३ ॥ चेतनमात्रसे सबमें स्थित मैं अकर्ता हुं इस दृढभावनासे प्रवाह पतित (यथा प्राप्त) व्यवहार करते हुयेभी प्राणि कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ जिसको यह निश्चय है कि शुद्धरूपसे मैं कुछ नहीं करता, वह चित्तकी अप्रवृत्तिसे वैराग्यको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ भोगोंके समूहकी इच्छावान् कौन प्राणी तो करे और कौन त्यागे इसकारणसे मैं नित्य अकरताहुं इस दृढभावनासे ॥ ३६ ॥

परमामृतनाम्नीसासमतैवावशिष्यते ॥ अथसर्वंकरोमीतिमहाकर्तृतयातया ॥ ३७ ॥ यदीच्छसिस्थितिरामतत्तामप्युत्तमांविदुः ॥ अहोयन्नकरोमीमंसमग्रंजागतंभ्रमम् ॥ ३८ ॥ रागद्वेषक्रमस्तत्रकुतोन्यस्यात्यसंभवात् ॥ यदन्येनशरीरंतुदग्धमन्येनलालितम् ॥ ३९ ॥ सोऽस्मदारंभएवातःकःखेदोल्लासयोःक्रमः ॥ मत्सुखासुखविस्तारेजगज्जालक्षयोदये ॥ ४० ॥

अर्थ—परमोत्तम अमृतनामवाली समताही शेष रहजाती है, अथवा मैं सब कुछ करताहुं यह कर्तृता पक्षहै, तो उस महा कर्तृतासे ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! यदि अपनी स्थिति चाहते हो तो वहभी उत्तम कही गई है, क्योंकि जो यह शुद्धरूप मैं सम्पूर्ण जगत्के भ्रमको नहीं करता तो ॥ ३८ ॥ तो राग द्वेषका प्रसंग मुझमें कहां ? क्योंकि मेरेसे अन्यका तो असंभवहै, और कर्तृतापक्षमेंभी जो शरीर अन्यसे भस्म कियागया और अन्यसे ललित (प्यार) कियागया ॥ ३९ ॥ वह (पूर्वजन्म तथा इस जन्मका शरीर) हमाराही कियाहुआहै तो इसमें दुःख तथा हर्षका क्या अवसरहै, क्योंकि हमारे सुखदुःखके विस्तारमय इस जगत्जालके क्षय तथा उदयमें ॥ ४० ॥

अहंकर्त्तेतिमत्वांतःकःखेदोल्लासयोःक्रमः ॥ खेदोल्लासविलासेषुस्वात्मकर्तृतयैतया ॥ ४१ ॥ स्वयमेवलयंयातेसमतैवावशिष्यते ॥ समतासर्वभूतेषुयासौसत्यापरास्थितिः ॥ ४२ ॥ तस्यामवस्थितंचित्तं

नभूयोजन्मभाङ्ग्नाक् ॥ अथवासर्वकर्त्तृत्वमकर्त्तृत्वंचराघव ॥४३॥ सर्वंत्यक्त्वामनःपीत्वायोसिसो सिस्थिरोभव ॥ अयंसोहमयंनाहंकरोमीदमिदंतन ॥ ४४ ॥

अर्थ—मैंही कर्ताहुं ऐसा मानकर स्थितपुरुषको दुःख तथा हर्षका क्या प्रसंगहै, और आत्माकी समष्टिरूप कर्तृतासे सुखदुःखके बिलासोंके ॥४१॥ स्वयं लय होने पर केवल समताही शेषरहजाती है और जो सब भूतोंमें समताहै वह सर्वोत्तम सत्य स्थिति है ॥ ४२ ॥ उस समतामें स्थितपुरुष पुनः कदापि जन्मका भागी नहीं होता, अथवा हे राघव ! सर्व कर्तृता वा अकर्तृता जो है ॥ ४३ ॥ उन सबको त्यागकर और मनकोभी निगलकर जिस (शुद्ध) रूपसे तुम हो उसीसे स्थिर रहो, और इस देहमें प्रसिद्ध यह मैं तथा सब देहात्मक सृष्टिरूपमें यह देहइन्द्रियां मैं नहीं हूं इसलिये मैं कुछ नहीं कर्ता इससे आत्माके परिच्छेद तथा कर्तृता आदिके निषेधसे शोधित त्वं पदार्थमात्रमें स्थिति होनेसे तत्पदार्थके शोधनरूप वाक्यार्थके अलाभसे अपूर्णता होनेसे ॥ ४४ ॥

इतिभावानुसंधानमयीदृष्टिर्नतुष्टये ॥ साकालसूत्रपदवीसामहावीचिवागुरा ॥ ४५ ॥ सासिपत्रवनश्रेणीयादेहोहमितिस्थितिः ॥ सात्याज्यासर्वयत्नेनसर्वनाशेप्युपस्थिते ॥ ४६ ॥ स्प्रष्टव्यासानभव्येनसश्वमांसेवपुष्कसी ॥ तयासुदूरोज्झितयादृष्टैपटललेखया ॥ ४७ ॥ उदेतिपरमादृष्टिर्ज्योत्स्नेवविगताबुदा ॥ ययाभ्युदितयारामतीर्यतेभवसागरः ॥ ४८ ॥ कर्तानास्मिनचाहमस्मिसइतिज्ञात्वैवमंतःस्फुटं कर्त्ताचास्मिसमग्रमस्मितदितिज्ञात्वाथवानिश्चयम् ॥ कोप्येवास्मिनकिंचिदेवमितिवानिर्णीयसर्वोत्तमेतिष्ठत्वंस्वपदेस्थितःपदविदोयत्रोत्तमाःसाधवः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कर्तृत्वविचारयोगोपदेशकरणं नाम षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पदार्थोंके स्मरणमयी दृष्टि सन्तोषकेलिये नहीं है, और यह कथन देहात्मबुद्धिके अभावकेलिये और वही महाकाल (नरक विशेष) की पदवी, वही अवीचिकी जाल ॥ ४५ ॥ और असि (तलवार) के पत्रहैं जिनमें ऐसे बनोंकी पंक्ति है जो कि देहमें अहंभाव (आत्मत्वका अभिमान) की स्थिति है, यह स्थिति अपना सर्व नाश उपस्थित होनेपरभी सर्वथा त्यागना चाहिये ॥ ४६ ॥ देहमें अहंभावकी स्थितिको कुत्तेके मांससहित चाण्डालीके समान भव्यपुरूषको कभी स्पर्शभी न करना चाहिये, क्योंकि अपने अधिष्ठान चेतन विशुद्ध आत्मदृष्टिमें परदेके समान देहात्मादृष्टिके दूरहीसे त्यागनेपर ॥ ४७ ॥ सर्वोत्तम आत्मदृष्टि, मेघरहित चन्द्रचन्द्रिकाके समान उदय होती है हे रामजी ! जिस दृष्टिके उदय होनेपर यह प्राणी संसारसागरसे पार होजाताहै ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! कर्ता तथा कर्तृताका प्रयोजक प्रसिद्ध देहादि मैं नहीं हुं ऐसा स्पष्टरीतिसे जानकर अथवा सबका कर्ता तथा समष्टिरूप संपूर्ण ब्रह्माण्डभी मैंही हूं वा यह प्रसिद्ध जड दृश्यरूप मैं कुछभी नहीं हूं किंतु लोकमें प्रसिद्ध परिछिन्न परिमाण सुखदुःखसे विलक्षण पूर्णानन्द चित्स्वरूप मैंहूं ऐसा निर्णय करके जहांपर विवेकी उत्तमसाधु ब्रह्मवेत्ता प्राप्तहैं उसी ब्रह्मपदमें तुम स्थित होओ ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्तृत्वविचारयोगो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

रामके प्रश्नोंका अनवसर और बासनाके बर्जनका प्रसंग और एक उपायसे सिद्ध उनकी प्रसंशा इत्यादि विषय इस ५७ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ सत्यमेतत्त्वयाब्रह्मन्यदुक्तंसूक्तिसुंदरम् ॥ अकर्त्तैवहिकर्त्तात्माभोक्ताभोक्तैवभूतकृत् ॥ १ ॥ सर्वेश्वरःसर्वगश्चचिन्मात्रममलंपदम् ॥ स्थानंभुविवपुर्देवःसर्वभूतांतरस्थितः ॥ २ ॥ हृदयंगमतांप्राप्तमिदानींब्रह्ममेविभो ॥ त्वदुक्तिभिर्यथांभोदधाराभिर्भूभृदव्यथः ॥ ३ ॥ औदासीन्याद निच्छत्वान्नभुंक्तेनकरोतिच ॥ समग्रालोककारित्वाद्भुंक्तेदेवःकरोतिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! आपने यह उत्तम उक्तियोंसे रमणीय जो कुछ कहाहै वह सत्यहै सब प्राणियोंका कर्ता वह परमात्मा कर्ता होते हुयेभी अकर्ता और भोक्ता रहतेभी अभोक्ताहै ॥ १ ॥ सबका ईश्वर, सर्व व्यापी, चिन्मात्र वह निर्मल पदहै, जैसे चार प्रकारके प्राणी पृथिवीपर रहते हैं ऐसेही सब प्राणियोंके अन्तरमें स्थित

वही देव सबका स्थानहै ॥ २ ॥ हे प्रभो ! इससमय ब्रह्म मेरे हृदयमें प्राप्त हुआहै, अर्थात् भासताहै इससमय जैसे वर्षाकी धारासे ग्रीष्मऋतुसे संतप्त पर्वत व्यथारहित होजाताहै, ऐसेही आपकी उक्तियोंसे मैंभी व्यथारहित होगयाहूं ॥ ३ ॥ वह देव परमात्मा उदासीन और इच्छारहित होनेसे न कुछ भोक्ताहै न कर्ता है और सत्तामात्रसे सब लोगोंका रचयिता होनेसे कर्ताभी है भोक्ताभी है ॥ ४ ॥

किंत्वयंभगवन्स्फारःसंशयोमेहृदिस्थितः ॥ तंत्वंछिंधिगिराब्रह्मन्दीधित्यैंदुर्यथातमः ॥ ५ ॥ इदंसत्तदिदंवासदयंसोहमिदंनतु ॥ अयमेकोद्वितीयोयमित्यादिकलनामयम् ॥ ६ ॥ एकस्मिनविद्यतेध्वातेनीहारइवभास्करे ॥ इदंप्रथममेवाच्छेकथमात्मनिसंस्थितम् ॥ ७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ सिद्धांतकालएवास्यसंप्रश्नस्योत्तरंस्थिरम् ॥ कथयिष्यामितेरामयेनज्ञास्यसितत्त्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—परंतु हे भगवन् ! यह महान् संशय जो मेरे हृदयमें स्थितहै उसको अपनी बाणीसे आप ऐसा छेदन कीजिये जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अंधकारको ॥ ५ ॥ यह जगत् सत्है अथवा असत्है इस आपके कथनानुसार वह प्रसिद्ध समष्टिरूप जगत् मैं हुं और व्यष्टि देहमात्र नहीं हुं अथवा यह संपूर्ण प्रपंच समष्टि दृष्टिसे एकहै और व्यष्टिदृष्टिसे अनेकहै इत्यादि अनियत अनेक कल्पनामय यह जगत् ॥ ६ ॥ एक अद्वितीय नियतस्वभाववाले और स्वयं प्रकाशरूप होनेसे सर्वथा मोहांधकाररहित निर्मल परमात्मामें सूर्यमें अंधकारके समान कैसे रहसकताहै, यदि आप यह कहैं कि प्रथम माया शबलित ब्रह्मके उदरमें यह जगत् स्थित रहा और अब प्रकट रीतिसे है तो प्रथमभी उस अद्वितीय परमात्मामें यह कैसे स्थितथा, यह कृपा करके कहिये ॥७॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालमें अर्थात् निर्वाण प्रकरणके उत्तरार्द्धमें निश्चयरूपसे मैं तुमसे कहूंगा, जिससे कि तुम यथार्थ रीतिसे जान जाओगे ॥ ८ ॥

मोक्षोपायस्यसिद्धांतमसंप्राप्यनराघव ॥ श्रोतुंप्रश्नोत्तराण्येतान्यलंयोग्योभविष्यसि ॥ ९ ॥ कांतागीतगिरांरामतरुणोभाजनंयथा ॥ प्रश्नानामुत्तमोक्तीनांपुण्यकृद्राजनंतथा ॥ १० ॥ वृथाभवतिबालेषुयथारागमयीकथा ॥ निरर्थकाल्पबोधेषुतथोदारोदयाकथा ॥ ११ ॥ कस्मिंश्चिदेवसमयेकिंचित्पुंसोविराजते ॥ फलमाभातिवृक्षस्यशरद्येवनमाधवे ॥ १२ ॥

अर्थ—मोक्षके उपदेशके सिद्धांत (अखंडाकार आत्मबोध) को न प्राप्त होकर हे रामजी ! इन प्रश्नोंके उत्तर पूर्णरीतिसे सुननेके योग्य न होगे ॥ ९ ॥ जैसे तरूण पुरूष युवती स्त्रियोंके गीत और बाणीका पात्र होताहै ऐसेही सिद्धांतकालके ऐसे प्रश्नोंका और उनके उत्तरोंका पात्र आत्मज्ञानी पुरूष होताहै ॥ १० ॥ जैसे बालकोंमें विषय रागमयी कथा व्यर्थ होतीहै, ऐसेही अल्पबोधवाले पुरूषोंमें मोक्ष देनेवाली कथाभी निरर्थकहै ॥ ११ ॥ किसी समयमें किसी पुरूषकी कोई बात शोभित होती है, जैसे नारंगी और नींबू आदिके फल वृक्षमें शरदऋतुमेंही शोभित होतेहैं न कि बसंतऋतुमें ॥ १२ ॥

उपदेशगिरोवृद्धेरंजनानिर्मलेपटे ॥ लगंत्युदारविज्ञानकथाचाधिगतात्मनि ॥ १३ ॥ प्रश्नस्यास्योत्तरंपूर्वंलेशतःकथितंमया ॥ नविस्तरेणतेनैतन्नज्ञातंभवतास्फुटम् ॥ १४ ॥ यदित्वमात्मानात्मानमधिगच्छसितंस्वयम् ॥ एतत्प्रश्नोत्तरंसाधुजानास्यत्रनसंशयः ॥ १५ ॥ मयासिद्धांतकालेतुप्राप्तबोधेत्वयिस्थिते ॥ वक्तव्योविस्तरेणैवसाधोप्रश्नोत्तरक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—वैराग्यके उपदेश विवेकी पुरूषमें और निर्मल वस्त्रमें रंग जैसे लगताहै ऐसेही आत्मज्ञानी पुरूषमें आत्मज्ञानकी कथा लगती है ॥ १३ ॥ इस तुमारे प्रश्नका किंचित् उत्तर मैंने भार्गवोपाख्यानमें कहाहै, अनधिकारी होनेके कारण विस्तारसे नहीं कहा इसीसे तुमने स्पष्टरीतिसे नहीं जाना ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यदि तुम अपने आत्माको आपही जानजाओगे अर्थात् अखण्ड आत्माका बोध होजावेगा तो मेरे कथनके बिनाही इस प्रश्नका उत्तर पूर्णरीतिसे जानजाओगे इसमें सन्देह नहीं है ॥१५॥ हे साधो ! सिद्धांतकालमें जब तुमको बोध प्राप्त होगा तब इस प्रश्नके उत्तरका प्रसंग विस्तारसे कहूंगा ॥ १६ ॥

जानात्यात्मानमात्मैवकृतआत्मात्मनैवहि ॥ आत्मैवसंप्रसन्नःसन्नात्मानंप्रतिपद्यते ॥ १७ ॥ तदेतत्कथितंरामकत्रंकर्तृविचारणम् ॥ अज्ञातत्वात्तुतामेतामक्षीणवासनोभवेत् ॥ १८ ॥ बद्धोहिवासनाबद्धोमोक्षःस्याद्वासनाक्षयः ॥ वासनास्त्वंपरित्यज्यमोक्षार्थित्वमपित्यज ॥ १९ ॥ तामसीर्वासनाःपूर्वंत्यक्त्वाविषयवासिताः ॥ मैत्र्यादिभावनानाम्नींगृहाणामलवासनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे अप्रसन्नता दशामें आत्मासे किये हुये कार्यको आत्माही जानताहै ऐसेही आत्मबोधसे प्रसन्न आत्मा अपने वास्तविक पूर्ण आत्माको जानजाताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह कर्तृता और अकर्तृताका विचार अखण्ड ब्रह्मके बोध करानेके लियेही मैंने तुमसे कहाहै परन्तु तुमने अखण्ड आत्मताको नहीं जाना इससे भान होताहै कि तुमारी बासना अभी क्षीण नहीं हुई ॥ १८ ॥ क्योंकि जो बासनासे बद्धहैं वही बद्धहै, और बासनाका क्षयहै वही मोक्षहै इसलिये तुम बासनाओंको त्यागकर मोक्षार्थताकोभी त्यागो ॥ १९ ॥ प्रथम विषयसे पूर्ण तामसी और राजसी बासनाओंको त्यागकर मैत्री करूणादि नामवाली निर्मल बासनाको ग्रहणकरो ॥ २० ॥

तामप्यंतःपरित्यज्यताभिर्व्यवहरन्नपि ॥ अंतःशांतसमस्तेहोभवचिन्मात्रवासनः ॥ २१ ॥ तामप्यथ परित्यज्यमनोबुद्धिसमन्विताम् ॥ शेषेस्थिरसमाधानोयेनत्यजसितत्त्यज ॥ २२ ॥ चिन्मयःकलना कालप्रकाशतिमिरादिकम् ॥ वासनांवासितारंचप्राणस्पंदनपूर्वकम् ॥ २३ ॥ समूलमपिसंत्यक्त्वा व्योमसौम्यप्रशांतधीः ॥ यस्त्वंभवसिसद्बुद्धेसभवानस्तुसत्कृतः ॥ २४ ॥

अर्थ—उन मैत्री आदिकोंसे व्यवहार करते हुये उस निर्मल वासनाको त्यागकर और अंतःकरणमें समस्त इच्छाओंसे रहित होकर सम्यग् ज्ञानसमाधिके अभ्याससे चिन्मात्र वासनासहित होओ ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् मनबुद्धिसहित उस बासनाकोभी त्यागकर शेष आत्मस्वरूपमें स्थिर समाधान होकर जिससे द्वैतकी कल्पनाका मूलस्तम्भभूत अहंकारसे पूर्वोक्त सब कुछ त्यागते हो उसकोभी त्यागो ॥ २२ ॥ प्राणकी गतिपूर्वक कल्पनाकालसे प्रकाशित अज्ञानांधकारादिक बासना और विषय और उनके द्वारभूत इन्द्रियादिककोभी ॥ २३ ॥ मूलसे उखाडकर आकाशके समान निर्मल बुद्धिसहित केवल चिन्मय सबसे पूजित जो कुछ तुमारा रूपहै उसी रूपसे हे सुमते ! तुम स्थित रहो ॥ २४ ॥

हृदयात्संपरित्यज्यसर्वमेवमहामतिः ॥ यस्तिष्ठतिगतव्यग्रःसमुक्तःपरमेश्वरः ॥ २५ ॥ समाधिमथक र्माणिमाकरोतुकरोतुवा ॥ हृदयेनास्तसर्वास्थोमुक्तएवोत्तमाशयः ॥ २६ ॥ नैष्कर्म्येणनतस्यार्थोनित स्यार्थोस्तिकर्मभिः ॥ नसमाधानजप्याभ्यांयस्यनिर्वासनंमनः ॥ २७ ॥ विचारितमलंशास्त्रंचिरमुद्ग्रा हितंमिथः ॥ संत्यक्तवासनान्मौनादृतेनास्त्युत्तमंपदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो महामति ! हृदयसे सब बासनादिकको त्यागकर चिंतारहित स्थित रहताहै वही मुक्त और परमेश्वरहै ॥ २५ ॥ जिसने हृदयसे सम्पूर्ण आस्थाओंको त्याग दियाहै वह शुद्धांन्तःकरणवाला पुरुष समाधि करै वा सांसारिक व्यवहार करै परन्तु मुक्तही है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जिसका मन वासनारहित है उसको निष्कर्मतासे वा कर्मोंसे अथवा समाधि वा जपसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २७ ॥ चिरकालतक पूर्ण रीतिसे शास्त्रोंको विचारलिया और परस्पर दूसरेको उस पुरुषने ग्रहण कराया तोभी वासनाके त्यागके बिना मोक्षपदकी प्राप्ति नहीं है ॥ २८ ॥

दृष्टंद्रष्टव्यमखिलंभ्रांत्वाभ्रांत्वादिशोदश ॥ जनाःकतिपयाएवयथावस्त्ववलोकिनः ॥ २९ ॥ यद्यदा लोक्यतेकिंचित्कश्चिद्यत्तन्नविद्यते ॥ ईप्सितानीप्सितादन्यन्नतत्रयततेजनः ॥ ३० ॥ येकेचनसमा रंभायेजनस्यक्रियाक्रमः ॥ तेसर्वेदेहमात्रार्थमात्मार्थेनतुकिंचन ॥ ३१ ॥ पातालेब्रह्मलोकेचस्वर्गेच वसुधातले ॥ व्योम्निकतिपयाएवदृश्यंतेदृष्टदृष्टयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मैंने भ्रमण करके देखनेके योग्य सम्पूर्ण वस्तु देखलिया, परन्तु यथार्थ वस्तुके जाननेवाले गिने हुये थोडेही पुरुष हैं ॥ २९ ॥ जो कुछ इस संसारमें देखपडताहै वह इष्ट तथा अनिष्टसे भिन्न नहीं है, और इन्हीकेलिये सब जीव प्रयत्न करते हैं, इनसे भिन्न जो आत्मतत्वहै उसकेलिये कोईभी जन प्रयत्न नहीं करता ॥ ३० ॥ जो कुछ लौकिकगृह आदि कार्योंका आरंभहै और जो वैदिक क्रियाक्रम हैं वे सब अनात्मभूत देहकेंहीलिये हैं न कि आत्माके अर्थ ॥ ३१ ॥ पाताल, ब्रह्मलोक, स्वर्ग, पृथिवी और आकाशमेंभी चित् एकरस ब्रह्मके देखनेवाले कोई विरलेही जन हैं ॥ ३२ ॥

इदंहेयमुपादेयमिदमित्यसद्गुत्थितौ ॥ निश्चयौगलितौयस्यज्ञस्यासावतिदुर्लभः ॥ ३३ ॥ करोतुभुवनेरा ज्यंविशत्वंभोदमंबुवा ॥ नात्मलाभादृतेजंतुर्विश्रांतिमधिगच्छति ॥ ३४ ॥ येमहामतयःसंतःशूराश्चें द्रियशत्रुषु ॥ जन्मज्वरविनाशायतउपास्यामहाधियः ॥ ३५ ॥ सर्वत्रपंचभूतानिषष्ठंकिंचिन्नविद्यते ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेरतिमेतुकधीरधीः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह त्याज्य है और यह ग्राह्यहै ये दोनों अपने आत्माके अज्ञानसे प्रादुर्भूत निश्चय जिस ज्ञानी पुरुषके गलित (नष्ट) होगये हैं वह महात्मा दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ चक्रवर्ती राजा होके भूमंडलमें राज्य करै, इन्द्रपदके ला-

भसे वृष्टिके अधिकारमें मेघमंडलमें प्रवेश करै, वरूणपदके लाभसे जलपर चलै, और योगकी सिद्धिसे सर्वत्र प्रवेश करै, परन्तु आत्मलाभके बिना यह जीव विश्रांतिको नहीं प्राप्त होता ॥ ३४ ॥ इस हेतुसे जो संत महामुनि इन्द्रियरूपी शत्रुओंके जीतनेसे शूर महाबुद्धिमान्हैं वेही जन्ममरण आदि ज्वरके विनाशकेलिये उपासनीयहैं ॥ ३५ ॥ पाताल, भूतल और स्वर्गमें सर्वत्र पंचभूत वा उनके कार्यभौतिक पदार्थही है षष्ठ (छठी) वस्तु कोई नहीं है तो धीर बुद्धिमान् विवेकी पुरुष प्रीति किसमें करै ॥ ३६ ॥

युक्त्याविचरतोज्ञस्यसंसारोगोष्पदाकृतिः ॥ दूरसंत्यक्तयुक्तेस्तुमहामत्तार्णवोपमः ॥ ३७ ॥ कदंबगोलकैस्तुल्यंब्रह्मांडंस्फारचेतसः ॥ किंप्रयच्छतिकिंभुंक्तेप्राप्तेस्मिन्सकलेपिसः ॥ ३८ ॥ एतदर्थमबुद्धीनांयन्महासमरक्रियः ॥ तन्मन्येरामधिक्कार्यंद्वंद्वलक्षक्षयावहम् ॥ ३९ ॥ कल्पमात्रेणकालेनसुमहापेलवोदरे ॥ तस्मिन्नपिहियोनाशःसर्वाधिरमहाधियाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—वेदोंमें कथित युक्तिसे ब्रह्मदर्शनद्वारा विचरते हुये आत्मज्ञानी पुरुषकेलिये यह संसार गौके खुरके समानहै, और उस युक्तिको दूसरेही त्याग करनेवालेको तो महाप्रलयके समुद्रके समानहै ॥ ३७ ॥ अपरिच्छिन्न आत्मानंदका अनुभव करनेसे विशाल चित्तवाले आत्मज्ञानी पुरुषको कदंबफलके गोलेंके समान यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड क्या देसकताहै, और क्या वह उसमें भोगताहै चाहै वह ब्रह्माण्ड उसको सम्पूर्ण प्राप्तभी होजाय ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जिस जगत्में राज्यादि सुख लाभके अर्थ मूढोंकी महासमरकी क्रिया होती हैं वह लाखों योधोंका क्षयकारक युद्ध दयालु तत्वज्ञानीको धिक्कार करने योग्यहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ ३९ ॥ दो पदार्थकी अवधिभूत महाकल्पांतकालसेभी नष्ट होनेसे अति कोमल उस ब्रह्मपदवीमेंभी जो सब प्राणियोंको प्रलयका निमित्त होनेसे मानसी व्यथाके निमित्तसे नाशहै वह पद मूढोंकोही प्रसंशनीयहै, इस हेतु ब्रह्मपदवीमेंभी ज्ञानीकी रति नहीं होसकती ॥ ४० ॥

आत्मनोज्ञस्यसर्गादेर्यन्मनागपिनोद्गतम् ॥ तस्मिञ्जगत्त्रयेप्राप्तेकिंचिदात्मावलीभवेत् ॥ ४१ ॥ इतः शैलशतैर्व्याप्तातथेतोजलराशिभिः ॥ कियानस्यभुवोदेहोयेनोदारंप्रपूरयेत् ॥ ४२ ॥ नतदस्तिजगत्यस्मिन्सपातालसुरालये ॥ यन्नामात्मवतोज्ञस्यकिंचित्कार्यतरंभवेत् ॥ ४३ ॥ एकतामनुयातस्यव्योमवद्विततस्यच ॥ स्वस्थस्यात्मवतोज्ञस्यस्थिरस्यात्मन्यचेतसः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तत्ववेत्ताकी दृष्टिसे जब सृष्टि आदिके उपायसे कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ तो उस सम्पूर्ण तीनों जगत्के मिलजानेपरभी क्या आत्मा कुछभी बलवान् होसकताहै ॥ ४१ ॥ एक ओर तो सैकडों पर्वतोंसे यह पृथिवी व्याप्तहै, और दूसरी ओर जलकी राशियोंसे तो इस भूमिका कितना देह (राज्यादिके योग्य) शेषहै जो कि सर्व त्यागसे महान् अंतःकरणवाले पुरुषको पूर्ण करसकै ॥ ४२ ॥ पाताल स्वर्गसहित इस सम्पूर्ण जगत्में ऐसा कुछभी नहीं है जो आत्मज्ञानीकेलिये अवश्य कर्तव्य हो ॥ ४३ ॥ एकताको प्राप्त, आकाशकेतुल्य विशाल, मनशून्य और स्वस्थतासे स्थित आत्मज्ञानीपुरुषकी दृष्टिमें ॥ ४४ ॥

शरीरजालनीहारधूसराशून्यकोटरा ॥ शांतसंसारसुभगात्रिलोकीविपुलातटी ॥ ४५ ॥ स्फारब्रह्मामलांभोधिफेनाःसर्वेकुलाचलाः ॥ चिदादित्यमहाभासमृगतृष्णाजलश्रियः ॥ ४६ ॥ आत्मतत्त्वमहांभोधिवीचयःसर्गराजयः ॥ अनुत्तमपदांभोदवृष्टयःशास्त्रदृष्टयः ॥ ४७ ॥ चंद्राग्नितपनालोकाघटकाष्ठादिसन्निभाः ॥ प्रकाशनीयाश्चिद्रूपत्विषोमलकणास्तथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—शरीरोंके समूहसे नीहार (कुहरे) के समान धूसर संसारकी शांततासे रमणीय यह त्रिलोकी रूप विशाल मृगतृष्णानदीकी तटी आकाशके उदरके समान शून्यरूपही है अर्थात् ज्ञानी इसको तुच्छ मानकरके दृष्टिपातभी नहीं करता ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! निर्मल ब्रह्मरूप समुद्रके मेरूमंदर आदि कुलपर्वत फेनहैं, और चित्रूपी महाप्रकाशशील सूर्यके तेजसे नदी समुद्र आदि सब मृगतृष्णाहैं ॥ ४६ ॥ सृष्टियोंकी पंक्ति आत्मतत्वरूप महासमुद्रके तरंगहैं, और वेद तथा धर्मशास्त्रादिसे धर्म तथा ब्रह्मतत्वादिके विचारके प्रकाशक शास्त्रदृष्टि सबसे उत्तम ब्रह्मपदरूप मेघकी वृष्टि हैं ॥ ४७ ॥ जैसे अति मलिन पृथिवीसे उत्पन्न पार्थिव आदि धातु आत्मासे प्रकाशितहैं ऐसेही चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यादिके प्रकाश घट काष्ठादिके प्रकाशसेही प्रकाशनीयहैं ॥ ४८ ॥

विहरंतिस्वमात्मानःसंसारवनचारिणः ॥ कामभोगोपलग्रासमृगानरसुरासुराः ॥ ४९ ॥ अस्थिखंडागलामूर्द्धपिधानाःस्नायुशृंखलाः ॥ जगद्देहाजरज्जीवरक्तमांससमुद्रकाः ॥ ५० ॥ वनमालामृगामुग्धाःपुरसंचारितास्थितौ ॥ बालबुद्धिविनोदाययोजिताश्चर्मपुत्रिकाः ॥ ५१ ॥ नैवंविधोदारमनामनागपिमहामतिः ॥ नज्ञश्चलतिभोगौघैर्मंदवातैरिवाचलः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिनका अपने देहको परिच्छिन्न अनुभव अथवा हिंसा करनेका स्वभाव है ऐसे संसाररूपी बनके चारी देव मनुष्य दैत्यादि काम भोगरूप तृणोंकी पंक्तियोंके ग्रासमें मृगोंके समान हैं ॥ ४९ ॥ जिनमें अस्थियों (हड्डियों) के खंडरूप अर्गला (आधारकाष्ठ) है शिररूपी ढकने हैं; और नाडीरूप लोहके बंधन हैं ऐसेही जगत्में देव मनुष्योंके देह अनादि संसाररूप जंगलमें जीर्ण जीवोंके बंधनार्थ संपुट (पेटरी) हैं ॥ ५० ॥ संसाररूप बनकी मालाके मृग देहके विवेक शून्य, सब देहरूप जीव सहित चर्मकी पुत्तलिकाओंको ब्रह्माजीने उन २ भोगोंकी भूमिरूप नगरकी संचारकी स्थितिमें बालकोंकी बुद्धिके विनोदार्थ (भोगरूपी पल्लवोंके ग्रासोंसे) नियुक्त किया है ॥५१॥ सर्वत्यागी पूर्वोक्त महा विवेकी पुरुष संसारके भोगोंके समूहोंसे ऐसे नहीं चलायमान होता जैसे मंद पवनोंसे पर्वत ॥५२

तस्मिन्किलपदेरामज्ञस्तिष्ठतिमहोत्तमे ॥ यस्मिंश्चंद्रार्कदेशोपिनपातालमिवस्थितः ॥ ५३ ॥ यस्यालोकाल्लोकपालाःसमालोकाःसुवेदिनः ॥ शरीरंपांत्ययमिवपश्यन्मूढाःक्षपार्णवे ॥ ५४ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ अप्यभ्यासगताःस्फारहृदयंखमिवांबुदाः ॥ ५५ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ मर्कटाइवनृत्यंतोगौरीलास्यार्थिनंहरम् ॥ ५६ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ प्राक्तनप्रतिबिंबश्रीरत्नेकुंभगतंयथा ॥ ५७ ॥ वज्रार्पितोपममसन्मयमंबुभंगतुंगंतरंगकृतबिंबमिवावलोक्य ॥ लोलांतदीहितसुखेषुरतिंनयातितज्ज्ञःकुशैवललवेष्विवराजहंसः ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे पूर्णाशयस्वरूपवर्णनं नाम सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस महा उत्तम पदमें ज्ञानीपुरूष स्थित रहताहै जिसमें चन्द्रसूर्यका प्रदर्शनभी पातालके छिद्रके समान अल्प भावसे स्थितहै ॥ ५३ ॥ तत्वज्ञानीके चित् प्रकाशसे ब्रह्मा आदि लोकपालभी सब जगत्के साधारण प्रकाशक होके नेत्र आदि इन्द्रियोंसे बाह्य देशमें बुद्धिसे अंतःकरणमें उत्तम व्यवहारके उचित, बोधसे शोभित होके अज्ञानरूप समुद्रमें मग्न, और शरीर रहित आत्माको देखते हुयेभी मूढ होके अज्ञजनके सदृश शरीरकोही आत्मभावसे पालन करतेहैं ॥ ५४ ॥ वैराग्यकी दृढतासे भोगोंकी वासनाओंके नाशसे विशाल हृदय शुद्धांतःकरणवाले ज्ञानीपुरूषको लोकपालोंके योग्य बारंबार अभ्यस्तभी जगत्के कोई पदार्थभी अपनेमें अनुरक्त (रंगसंहित) ऐसे नहीं करसकते जैसे मेघ आकाशको ॥ ५५ ॥ जगत्के नृत्य गीतादि कोईभी पदार्थ तत्वज्ञानीको ऐसे नहीं अनुरक्त करसकते, जैसे गौरीजीके क्रीडाके अर्थी महादेवजीको नाचते हुये मर्कट ॥५६॥ तत्वज्ञानी पुरूषको जगत्के कोईभी पदार्थ ऐसे नहीं अनुरागी करसकते जैसे घटसे बाह्य देशमें रत्नकी स्थितिदशामें रत्नके अंतर्गत स्तम्भ (खंभे) तथा गृहादिके प्रतिबिंबकी पूर्वकालकी शोभा घटके अंतर्गत रत्नको ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मलोक पर्यन्त इस संपूर्ण जगत्के ऐश्वर्य अज्ञानियोंकी दृष्टियोंमें अति दुर्भेद्य होनेसे वज्रके तुल्य हैं, और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें जलके विलासोंमें ऊंचे तरंगके अग्रभागमें चंद्रमा आदिके प्रतिबिंबके समान अनिर्वचनीय स्थितहै उसको विवेकी पुरूष तत्वदृष्टिसे असत् तथा तुच्छ देखके अज्ञानीके समान इष्ट सुखोंमें चंचल रति (प्रीति) ऐसे नहीं बाधता जैसे मद्गु (जलके पक्षी विशेष) के भोग्य दुष्ट (खराब) शैवालोंमें राजहंस ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषानुवादे पूर्णाशयस्वरूपवर्णनं नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

पूर्णपदमें आरूढ होनेके लिये सर्वात्मतासे स्थितिको जतानेवाली कचकी गाथा रामजीके अर्थ वसिष्ठजीने इस ५८ के सर्गमें वर्णन कीहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रैववस्तुन्युदिताःशृणुराघवपूर्वजाः ॥ कचेनगाथायागीताबार्हस्पत्येनपावनाः ॥ १ ॥ कस्मिंश्चिन्मेरुगहनेतिष्ठन्सुरगुरोःसुतः ॥ कदाचिदभ्यासवशाद्विश्रांतिंप्रापचात्मनि ॥ २ ॥ सम्यग्ज्ञानामृतापूर्णामतिर्नोरमतास्यसा ॥ पंचभूतमयेमान्येदृश्योस्मिन्पेलवात्मनि ॥ ३ ॥ सतेननिर्विण्णइवसदात्मत्वाद्दतेपदम् ॥ अपश्यन्समुवाचेदमेकोगद्गदयागिरा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसी पूर्वोक्त विषयमें कथित पूर्वकाल संबंधी वृत्तांतरूप, अति पवित्र गाथा जिसको बृहस्पतिके पुत्रनें कहा है तुम सुनो ॥ १ ॥ मेरूके किसी बनमें रहनेवाला वह बृहस्पतिका पुत्र कदा-

चित् सुनी हुई ब्रह्मविद्याके मनन और निदिध्यासनकी परिपाकतासे आत्मामें विश्रामपाके ॥ २ ॥ इस बृहस्पतिके पुत्रकी सम्यग् ज्ञानरूपी अमृतसे पूर्ण वह उत्तम बुद्धि पंचभूतमय अति कोमलरूप इस दृश्यमें रमणताको न प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ इस कारणसे उदासीनके समान उसने आत्मासे अतिरिक्त कोई वस्तु रमणके योग्य न देखते हुये गद्गद वाणीसे यह वक्ष्यमाण गाथा गानकी ॥ ४ ॥

किंकरोमिक्कगच्छामिकिंगृह्णामित्यजामिकिम् ॥ आत्मनापूरितंविश्वंमहाकल्पांबुनायथा ॥ ५ ॥ दुःख मात्मासुखंचेवखमाशासुमहत्तया ॥ सर्वमात्ममयंज्ञातंनष्टकष्टोहमात्मना ॥ ६ ॥ सबाह्याभ्यंतरेदेहेअ धश्चोर्ध्वंचदिक्षुच ॥ इतआत्माततश्चात्मानास्त्यनात्मयंक्वचित् ॥ ७ ॥ सर्वत्रैवस्थितोह्यात्मासर्वमा त्ममयंस्थितम् ॥ सर्वमेवेदमात्मैवमात्मन्येवभवाम्यहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं क्या करूं ! कहां जाऊं ! क्या ग्रहण करूं ! क्योंकि संपूर्ण विश्व आत्मासे ऐसे पूरित है जैसे महा-प्रलयमें जलसे ॥ ५ ॥ दुःख और उसका उपभोक्ता जीव और उसको इष्ट सुख यह सब जगत्का तत्व देखनेपर केवल शून्य मात्रही भान होताहै, क्योंकि संपूर्ण दिशाओंसे और मनोरथोंसेभी यह सब जगत् आत्ममय जाना जाताहै इसलिये आत्मासे मैं सर्व दुःख रहित हुं, अर्थात् आत्मासे भिन्न मुझे किसी वस्तुसे प्रयोजन नहीं है ॥ ६ ॥ देहके बाह्य तथा आभ्यंतर नीचे ऊपर तथा दिशाओंमें इधर तथा उधर सर्वत्र आत्माही व्याप्तहै, ऐसा कोई स्थान नहीं है जो आत्ममय नहो ॥ ७ ॥ सर्वत्र अधिष्ठानभावसे आत्मा स्थित है और बिबर्त रूपसे यह सब जगत् आत्मरूप है और तत्वदृष्टिसे यह सब आत्माही है, इसप्रकार मैं सर्वदा परमार्थ आत्मामेंही हुं ॥ ८ ॥

यन्नामनामतत्किंचित्सर्वमेवाहमांतरः ॥ आपूरितापारनभाःसर्वत्रसन्मयःस्थितः ॥ ९ ॥ पूर्णस्तिष्ठा मिमोदात्मासुखमेकार्णवोपमः ॥ इत्येवंभावयंस्तत्रकनकाचलकुंजके ॥ १० ॥ उच्चारयन्नोंकारंचघंटा स्वनमिवक्रमात् ॥ ॐकारस्यकलामात्रंपाश्चात्यंवालकोमलम् ॥ नांतरस्थोनबाह्यस्थोभावयन्परमे हृदि ॥ ११ ॥ व्यपगतकलनाकलंकशुद्धोहृदयनिरंतरलीनवातवृत्तिः ॥ गतघनशरदाशयोपमानःस्थि तइतिरामकचःसगायमानः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कचगाथा नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो कुछ चेतन नामसे प्रसिद्धहै और जो कुछ अचेतन करके प्रसिद्धहै उस सबके अंतर्गतमें आत्मस्व-रूपहुं, संपूर्ण आकाशमंडलकोभी पूर्ण करके सर्वत्र सन्मय आत्मा स्थितहै ॥ ९ ॥ पूर्ण और आनंद स्वरूप तथा सुख-रूप एक समुद्रके समान मैं स्थितहुं, इसप्रकार भावना करता हुआ उस मेरू पर्वतके कुंजमें ॥ १० ॥ और घंटाके शब्दके समान ओंकार शब्दको उच्चारण करते हुये और ओंकारकी कलामात्रको सबका विलयस्थान वालके कोम-लके समान तुरीय अर्द्धमात्राहै उसमें विलय करता हुआ न तो आभ्यंतर कारणमें स्थित और न बाह्य कार्यमें स्थित केवल परमात्म स्वरूपमें भावना करता हुआ ॥ ११ ॥ संपूर्ण कल्पनाके कलंकसे शुद्ध, और हृदयमें निरंतर प्राणकी गतिसे रहित, मेघसे शून्य शरदृतुके समान निर्मल अंतःकरणवाला पूर्वोक्त गाथाको गान करते हुये वह कच स्थितथा ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कचगाथा नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोन षष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

विषयोंकी असारता, ब्रह्माके संकल्पसे संसारकी कल्पना और ब्रह्माके वैराग्यसे विश्रांति तथा शास्त्रकी रचना इन विषयोंका वर्णन इस ५९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अन्नपानांगनासंगादृतेनास्तीहकिंचन ॥ शुभमस्त्वितिसंवादिमहान्कि मिववांछतु ॥ १ ॥ तिर्यंचःपशवोमूढायेनतुष्यंत्यसाधवः ॥ भोगैःकृपणसर्वस्वैरादिमध्यांतपेलवैः ॥ २ ॥ विश्वासंयांतियेलोकेतैरलंनरगर्दभैः ॥ इतःकेशाइतोरक्तमितीयंप्रमदातनुः ॥ ३ ॥ एतयातोष मायांतिसारमेयानमानवाः ॥ मृत्महीदारुतरवोदेहामांसमयाअपि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस संसारमें अन्नपान और स्त्री आदिरूप विषयोंके साथ जिव्हा उपस्थ आदि इन्द्रियोंके सङ्गके सिवाय शुभ पुरूषार्थ कुछभी नहीं है, इसबातको श्रुति स्मृति और आप्तोंके उपदेश और अनुभवसे निश्चयकरके विवेकी महात्मा पुरूष इन भोगोंमेंसे किसकी वांछा करे ॥ १ ॥ जैसे तिर्यग्योनिके जीव, पशु मूढ और असाधु संतुष्ट होतेहैं ऐसे सर्वथा कृपण और आदि अंत मध्यमें विनाशी भोगोंसे ॥ २ ॥ जो विश्वासको प्राप्त होतेहैं वे मनुष्योंमें गर्दभके समान व्यर्थ हैं एक ओर केश और अन्य ओर रक्त तथा मांस, यही स्त्रीका सुंदर शरीरहै ॥ ३ ॥ इस स्त्रीके सुंदर शरीरसे कुत्तेही संतोषको प्राप्त होतेहैं न कि मनुष्य, पृथिवी मृत्तिकामयी, वृक्षकाष्ठमय और प्राणियोंके शरीरभी मांसमयहैं ॥ ४ ॥

अधोभूरंबरंपृष्ठेकिमपूर्वंसुखायतु ॥ मात्रास्पर्शानुसारिण्योविवेकपदभंगुराः ॥ ५ ॥ मोहायैवापरामृष्टाःसकलालोकसंविदः ॥ सर्वस्याएवपर्यंतेसुखाशायाश्चसंस्थितम् ॥ ६ ॥ मालिन्यंदुःखमप्येवंज्वालायाइवकज्जलम् ॥ आगमापायिनोऽनित्यामनःषष्ठेंद्रियक्रियाः ॥ ७ ॥ लतानागेंद्रमृदिताधारयंतिनसंपदः ॥ पुत्रिकारक्तमांसस्यकांतेयमितिसादरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अधोदेशमें पृथिवी और उर्ध्वभागमें आकाशहै इस संसारमें सारभूत वस्तु क्याहै जो सुखकेलियेहो, इन्द्रियां जो हैं वे अपने विषयोंके अनुकूल और विवेक पदमें बाधकहैं ॥ ५ ॥ संपूर्ण जनोंके व्यवहार बिना विचारसे रमणीयमान होतेहैं यथार्थमें मोहकेहीलियेहैं संपूर्ण सुखकी आशाके अंतमें वर्तमान सुखके समान दुःखभी स्थितहै॥६॥ इसीप्रकार पाप विषयादिकी कलुषता और वियोग विषादादि जनितदुःखभी अग्निकी ज्वालाके कज्जलके समान सुखके अंतमें स्थितहै छटे मनसहित पांचों इंद्रियोंकी क्रिया अनित्य और उत्पत्ति विनाशशालीहैं ॥ ७ ॥ संपूर्ण विषयकी संपत्ति जो भोगमें आती हैं वेभी मत्त हांथीसे मर्दित लताके समान क्षीणभी सदा होती जाती हैं रक्त और मांसकी पुतलीको अतिसुंदर यह कांताहै, ऐसा मानकर आदर पूर्वक ॥ ८ ॥

स्वदेहनाम्नास्थिचयेश्लिष्यतेमोहकक्रमः ॥ सर्वसत्यमिदंरामस्थिरमज्ञस्यतुष्टये ॥ ९ ॥ ज्ञस्यास्थैर्यमसत्यंचजगद्रामनतुष्टये ॥ अभुक्तेपिविषयैषाविषमूर्छांप्रयच्छति ॥ १० ॥ तांपरित्यज्यभोगास्थांस्वात्मैकत्वगतिंभज ॥ अनात्ममयभावेनचित्तंस्थितिमुपागतम् ॥ ११ ॥ यदातदैतदाजातंजगज्जालमसन्मयम् ॥ वासनावशतोब्रह्ममनसाकल्पितंवपुः ॥ १२ ॥

अर्थ—पुरूष अपने देहके नामसे अस्थि और मांसके समूहमें आलिंगन करताहै यह केवल कामका प्रसंगहै हे रामजी ! यह सब अज्ञानीके लिये सत्य तथा संतोषके लिये है ॥ ९ ॥ और ज्ञानीपुरूषके लिये यह अस्थिर असत् और असन्तोषके लिये हैं और यह भोगकी तृष्णा बिना भोगेभी विषके समान मूर्च्छाको प्राप्त करती है ॥ १० ॥ हे रामजी ! इस भोगकी आस्थाको त्यागकर तुम केवल आत्माके शरणमें प्राप्तहो और भोगकी बासनासे अनात्म देहादिमय भावनासे जब यह चित्त स्थितिको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ उसी समय यह असन्मय जगज्जाल उत्पन्न हुआ और ब्रह्माके मनके संकल्पसे अस्मदादिकी बासना और कर्मादिके बशसे उसीके अनुसार यह जगत्का शरीर ऐसे कल्पित किया गयाहै ॥ १२ ॥

तेजसाश्रितकुड्येनहेमाभत्वमिवात्मनः ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विरिंचपदमासाद्यमनोब्रह्मन्महामते ॥ १३ ॥ इदंजगत्सुघनतांकथमानयतिक्रमात् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ गर्भतल्पात्समुत्थायपद्मजःप्रथमःशिशुः ॥ १४ ॥ ब्रह्मेतिशब्दमकरोद्ब्रह्मातेनसउच्यते ॥ संकल्पजालरूपस्यमनसाकल्पिताकृतेः ॥ अकरोत्तस्यसंकल्पलक्ष्मीःपदमथोत्तरे ॥ १५ ॥ ततःसंकल्पयामासपूर्वंतेजोमहाप्रभम् ॥ शरदंतेलताचक्रचक्रीकृतदिगंतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण, रजत और इन्द्रनीलमणि आदि भित्तिके आश्रित सूर्य आदिका तेज अपनेही अनुसार स्वरूप कल्पित करताहै, श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् हे महामते यह मन ब्रह्मके पदको प्राप्त करके ॥ १३ ॥ इस जगत्को क्रमसे घनताको कैसे प्राप्त करताहै, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! कमलके कोशरूप गर्भसे उठकर कमलसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मा कहाते हैं, और जागरण कल्पके अनंतर संकल्पात्मक मनरूपसे कल्पित आकारवाले ब्रह्माके संकल्पकी लक्ष्मीने भावी सर्ग विषयमें उद्योग किया ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् महा प्रकाशयुक्त तेजको संकल्पसे रचा, वह तेज शरत्कालके अंतमें हिमके समान पांडुरचक्रोंसे दिशा अंतरालोंको चक्रके समान करनेवालाथा ॥ १६ ॥

पक्षप्रतिमनिस्यूतकर्मणातिगुणाक्षरम् ॥ पुंजपिंजरपर्यंतंहेमज्ञाननिभांबरम् ॥ १७ ॥ जालहेमलता जालजटालनिजमंदिरम् ॥ कचत्प्रसरदुद्यानाकारकुंडलमंडितम् ॥ १८ ॥ तंशरीरंमनस्तस्मिंस्ततस्ते जसिभास्वरे ॥ आत्माकारसमाकारंभास्वरंसमकल्पयत् ॥ १९ ॥ सततस्तेजसस्तस्मादभ्युदेतिदि वाकरः ॥ जालमंडलमध्यस्थोज्वलत्कनककुंडलः ॥ २० ॥

अर्थ—पक्षियोंके पक्षके सदृश दोनोंभागमें सूचिकर्मसे सूत्रके विस्तारसे मानो अनेक सूत्रमय क्षय धर्म वर्जित शून्य करनेहारा विस्तृत तेजोंके समूहसे दिगंतको पिंजराके सदृश करनेवाला, और सुबर्णके तुल्य प्रकाशशील आवरणरहित अपरिच्छिन्न तथा प्रकाशरूप होनेसे ब्रह्मज्ञानके प्रकाशको करनेवालाथा ॥ १७ ॥ कमलदलोंके विकाशके लिये प्रविष्ट किरणोंसे झरोखोंमें रचित सुबर्णके लताजालोंके समान भास्वर केशरोंसे ब्रह्माके मंदिरको जटायुक्त करनेवाला, और देदीप्यमान, फैलते हुये बनाकार कुण्डलोंसे (किरणके अवर्तोंसे) वह तेज शोभितथा ॥ १८ ॥ उस तेजो मण्डलीकी सृष्टिके अनन्तर चतुर्मुखाकारसे स्थित पूर्वोक्त मनने उस प्रकाशमय तेजमें तेजोमय भास्वर, पुराण आदिमें प्रसिद्ध अपने सदृश आकारवाले शरीरको संकल्पसे रचा ॥ १९ ॥ उस पिंडीभूत तेजसे, प्रभामय मंडलके मध्यमें स्थित, जाज्वल्यमान कुण्डलके सदृश भगवान् सूर्य अद्यावधि उदयको प्राप्त होतेहै ॥ २० ॥

ज्वलज्जटाभारधरोपांतविस्फारपावकः ॥ ज्वालाविशालावयवःपूरिताकाशमंडलः ॥ २१ ॥ अथब्रह्मा महाबुद्धिरन्यास्तास्तेजसःकलाः ॥ अपाल्ययदसद्ब्रह्मातरंगानिवसागरः ॥ २२ ॥ तेपिसंकल्पसंप्रा प्तसिद्धयःसमशक्तयः ॥ यथासंकल्पितंवस्तुक्षणाद्दृष्ट्वापुरग्रतः ॥ २३ ॥ संकल्पयंतोयान्यांस्तेनानाभू तगणान्बहून् ॥ भूतेष्वन्यांस्तुतेष्वन्यांस्तेष्वन्यान्विविधानपि ॥ २४ ॥

अर्थ—जलती हुई ज्वालाकी पंक्तिधारी विशाल अग्नि सहित तथा महा अवयव सहित और आकाश मण्डलको पूर्ण करनेको समर्थ भगवान् सूर्य्य हैं ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् समष्टि बुद्धिमय सर्वज्ञ और महा बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्मा सूर्यकी सृष्टिसे शेष (बाकी) तेजकी कलाओंका विभाग नव (९) भेद ऐसे प्रक्षेप किया जैसे समुद्र तरंगोंका ॥ २२ ॥ और वेभी तेजके खण्ड ब्रह्माके संकल्पके कारण प्राप्त समस्त सिद्धि, और ब्रह्माके समान शक्ति सहित प्रजापति होके अपने संकल्पके अनुसार बस्तुको क्षणमें संमुख देखके उसको प्राप्त किया ॥ २३ ॥ वे मरीचि आदि प्रजापतियोंनेभी जिन पुत्रपौत्र परंपरासे देवदानवादि जाति भेदोंसे तथा अनेक व्यक्तिभेदोंसे बहुत गणोंका संकल्प किया और उन २ को पायाभी और भूतोंमें अन्य मैथुनी सृष्टि हुई, उनसे पुनः और उनसे पुनः इसी प्रकार अनेक प्रकार सृष्टि परंपरा बढी ॥ २४ ॥

संस्मृत्यवेदांस्तदनुयज्ञक्रमगुणान्बहून ॥ जगद्गृहादयंब्रह्मामर्यादांसमकल्पयत् ॥ २५ ॥ ब्राह्मंरूप मुपादायमनोनाममहद्वपुः ॥ तनोतीत्थमिमांदृष्टिंभूतसंततिसंकुलाम् ॥ २६ ॥ समुद्राचलवृक्षाढ्यांकृत लोकोत्तरक्रमाम् ॥ मेरुभूपीठदिकुंजजटालोदरमंडलाम् ॥ २७ ॥ सुखदुःखजराजन्ममरणस्वाधिबोधि ताम् ॥ रागद्वेषमयोद्विग्नांगुणत्रयमयात्मिकाम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् ब्रह्मा वेदोंका स्मरण करके इस जगत्रूप गृहसे बहुत यज्ञ क्रमके गुण और उनके मर्यादाकीभी कल्पनाकी ॥ २५ ॥ इसी रीतिसे यह मन विशाल शरीरवाला ब्रह्माका रूपधारण करके प्राणियोंके सन्तानसे व्याप्त इसी संकलपमयी दृष्टिको विस्तार करताहै ॥ २६ ॥ यह सृष्टि समुद्र पर्वत तथा वृक्षादिसे पूर्ण, लोकोंके उत्तर क्रम क्रियायुक्त मेरू, भूमण्डल, तथा दिशाओंके कुंजोंसे जटासहित उदर मण्डलधारिणी रची है॥२७॥ तथा शारीरिक सुखदुःख वृद्धावस्था तथा जन्ममरणोंसे, और मानसी चिंताओंसे यह संसार त्याज्यहै, इसप्रकार बोधित करानेवाली रागद्वेषमय होनेसे उद्विग्नताका कारण और सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणमयी यह रचीगई है २८

मनोहस्तैर्विरिंचोत्थैर्यथाकल्पितंपुरा ॥ तत्तथैवाखिलंद्रष्टुंदृश्यतेद्यापिमायया ॥ २९ ॥ इत्थंसर्वेषु भूतेषुकेषुचित्क्वथवापुनः ॥ संकल्पयतिसंसारंपरंपश्यतिचित्स्थितम् ॥ ३० ॥ मोहएवंमयोमिथ्या जागतःस्थिरतांगतः ॥ संकल्पनेनमनसाकल्पितोचिरतःस्वयम् ॥ ३१ ॥ संकल्पवशतःसर्वाःप्रसवं तिजगत्क्रियाः ॥ संकल्पवशतोदेवानियांतिनियतिस्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे आविर्भूत मनरूप हस्तोंसे पूर्वकल्पमें जिस वस्तुको जैसे देखनेको तथा प्राप्त होनेको कल्पित कियाहै वह अबभी मायासे वैसाही देखपडती है और प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ इसप्रकार समष्टिपक्षमें संपूर्ण भूतोंमें और व्यष्टि पक्षमें किन्ही जीवोंमें स्थितमन संसारका संकलपकरताहै और उसको वैसाही देखताहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार इस-

मिथ्या मोहमय जगत्को संकल्पात्मक मनने शीघ्र स्वयं रचाहै, और स्थिरताको प्राप्त हुआहै ॥ ३१ ॥ संकल्पकेही वशसे संपूर्ण जगत्की क्रिया उत्पन्न होती हैं और संकल्पकेही वशसे नियतिमें स्थित देवता लोगभी उत्पन्न होतेहैं ॥३२

कोपिताया:प्रजानाथैर्जगत्सृष्टे:कुलोद्भवः ॥ ब्रह्मासंचिंतयत्येषपद्मासनगत:प्रभुः ॥ ३३ ॥ मनःस्पंदनमात्रेणचित्रंचित्तंयदुत्थितम् ॥ सृष्टिर्वाभोगिनीस्फाराव्यवहारविकारिणी ॥ ३४ ॥ रुद्रोपेंद्रमहेंद्राद्याशैलसागरसंकुला ॥ पातालरोदोदिक्स्वर्गमार्गसंकटकोटरा ॥ ३५ ॥ संकल्पजालमत्यंतंमयेदमभितस्ततम् ॥ अधुनाविरतोस्म्यस्माद्विकल्पोल्लासनक्रमात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने २ उत्कर्षकेलिये मनुष्य आदि प्रजाओंमें धर्माधर्मकी वृद्धिके अर्थ प्रयत्न करते हुये इन्द्र विरोचन आदि प्रजानाथोंसे, तथा सात्विक, राजस, और तामस वृत्तियोंमें प्रवृत्तिके कारण जन्म बंध वृद्धावस्था और रोगादि सहस्रों क्लेशोंसे पीडित इस जगत्की सृष्टिसे विरक्त, सब प्रजाओंके कुलके उत्पत्तिस्थान, और पद्मासनपर स्थित यह प्रभु ब्रह्मा वक्ष्यमाण ऐसी चिंता करतेहैं ॥ ३३ ॥ कि मनके स्पंदमात्रसे व्यष्टिजीवकी उपाधिभूत विचित्र चित्त तथा उसके उपभोगार्थ बडे व्यवहारोंसे विशालरूपी इस पृथिवीको मैंने संकल्पजालसेही चारों ओरसे विस्तारित किया ॥ ३४ ॥ और रूद्र, वामन, (विष्णु) इंद्र महेंद्रादि सहित, पर्वत तथा समुद्रादिसे व्याप्त, पाताल, आकाश-दिशा और स्वर्गमार्गोंसे पूर्ण कोटरवाली यह भूमि आदि जो कुछहै मैंने अपना महान् संकल्प जालही चारों ओरसे विस्तारित कियाहै, परंतु अब इस संकल्पविकल्पादि क्रमसे मैं विरक्तताको प्राप्त हुआ हुं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

इतिनिश्चित्यविरत:कल्पनानर्थसंकटात् ॥ अनादिमत्परंब्रह्मस्मरत्यात्मानमात्मना ॥ ३७ ॥ तमासाद्यतदाभासेपदेगलितमानसे ॥ सुखंतिष्ठतिशांतात्मातल्पेध:श्रमवानिव ॥ ३८ ॥ निर्ममोनिरहंकारः परांशांतिमुपागतः ॥ अविक्षुब्धइवांभोधिरात्मनात्मनितिष्ठति ॥ ३९ ॥ ध्यानात्कदाचिद्भगवान्स्वयंविरमतिप्रभुः ॥ बंधनात्सलिलस्यंदात्सौम्यत्वादिववारिधिः ॥ ४० ॥

अर्थ—ऐसा निश्चय करके ब्रह्माजी कल्पनाके अनर्थ रूप संकटसे शांतिको प्राप्त हुये, और आदि अंत तथा मध्य शून्य परब्रह्मरूप अपने आत्माको आत्मासे स्मरण करने लगे ॥ ३७ ॥ स्मरण मात्रसे उस परमात्माको प्राप्त होके सर्वत्र प्रकाशमय, और मनशून्य सप्तमभूमिकारूप पदमें शांत चित्तहोके ऐसे सुखसे स्थितहैं जैसे श्रमवान् (थका हुआ) पुरूष एकान्तकी शय्यापर ॥ ३८ ॥ ममता और अहंकार रहित परम शांतिको प्राप्त अपने आत्मासे अपने आत्मामें ऐसे स्थित रहतेहैं जैसे क्षोभ रहित समुद्र ॥ ३९ ॥ कदाचित् वह भगवान् ब्रह्मा एकाकार वृत्तिकी धारणारूप ध्यानसे इस प्रकार विरामको प्राप्त होते हैं जैसे जलकी गतिसे शांत समुद्र ॥ ४० ॥

विचारयतिसंसारंसुखदुःखसमन्वितम् ॥ आशापाशशतैर्बद्धंरागद्वेषभयातुरम् ॥ ४१ ॥ ततःसकरुणाक्रांतमनाभूतविभूतये ॥ करोतीहमहार्थानिशास्त्राणिविविधानिच ॥ ४२ ॥ अध्यात्मज्ञानगर्भाणिवेदवेदांगसंग्रहम् ॥ पुराणादीनिचान्यानिमुक्तयेसर्वदेहिनाम् ॥ ४३ ॥ पुनस्तत्पदमालंब्यपरमापद्विनिर्गतः ॥ स्वस्थस्तिष्ठतिशांतात्मानिर्मंदरइवार्णवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कदाचित् सुख और दुःखसे संयुक्त सैकडों आशाके पाससे बद्धराग और द्वेषके भयसे व्याप्त इस संसारका विचार करतेहैं ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् करूणासे आक्रांत होकर प्राणियोंके ऐश्वर्यकेलिये बडे २ अर्थसहित नानाप्रकाके शास्त्रोंको रचतेहैं ॥ ४२ ॥ वे शास्त्र अध्यात्मज्ञान पूर्ण वेद और वेदांगोंका संग्रहरूप पुराणादिक तथा अन्यभी सब प्राणियोंके मुक्तिके अर्थ रचतेहैं ॥ ४३ ॥ पुनः सृष्टिके विक्षोभरूप आपत्तिसे निकलकर पूर्वोक्त सप्तम भूमिकारूपी परमपदका अवलंबन करके प्रसन्न चित्त मंदराचल पर्वतसे रहित समुद्रके सदृश स्वस्थचित्त रहतेहैं ॥४४

अवलोक्यजगच्चेष्टांमर्यादांविनियोज्यच ॥ ब्रह्माकमलपीठस्थ:पुनःस्वात्मनितिष्ठति ॥ ४५ ॥ कदाचित्केवलंसर्वसंकल्पपरिहीनया ॥ यदृच्छयानुग्रहार्थंलोकक्रमवदास्थितः ॥ ४६ ॥ नार्जवंनास्यसंत्यागोवपुषोनचसंग्रहः ॥ नानानचेतनंनेहनस्थितिर्नास्थिति:स्थिता ॥ ४७ ॥ सर्वभावसमारंभ:समःसर्वासुवृत्तिषु ॥ परिपूर्णार्णवाकारोमुक्तशेषोवतिष्ठते ॥ ४८ ॥

अर्थ—कमलके आसनपर स्थित भगवान् ब्रह्मा पुनः जगत्की चेष्टाको देखकर और उनकी मर्यादाको नियत करके अपने आत्मामें स्थित रहतेहैं ॥ ४५ ॥ कदाचित् सम्पूर्ण संकल्पसे वर्जित यदृच्छासे केवल अनुग्रहार्थ लोकके सदृश क्रम करते हुये स्थित रहतेहैं ॥ ४६ ॥ न इनको समाधिकालकी कोमलता, न सृष्टि और संहारकालमें उसका त्याग, देहादिकका संग्रह, सृष्टिरूपसे अनेकता और समाधिसे व्युत्थानकालमें कमलपर स्थिति और अन्यत्र

स्थितिका अभाव यह कुछभी नहीं होते ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्माजी सब पदार्थोंमें समान आरंभ करनेवाले सब वृत्तियोंमें पूर्णरूप परिपूर्ण समुद्रके समान आकारवाले मुक्त पुरूषके समान स्थित रहतेहैं ॥ ४८ ॥

कदाचित्केवलंसर्वसंकल्पपरिहीनया ॥ यदृच्छयानुग्रहार्थंलोकानांप्रतिबुध्यते ॥ ४९ ॥ एषाब्राह्मी स्थितिः पुण्यामयोक्तामहामते ॥ यातांविधिसुरानीकौतामेतांसात्विकीमपि ॥ ५० ॥ चित्सर्गोपरमा काशेब्रह्मणोयन्मनःफलम् ॥ उदेतिप्रथमःसैवब्रह्मत्वंसमवाश्नुते ॥ ५१ ॥ सर्गेस्थितिंगतेत्वन्यायोदे तिकल्पनापरा ॥ साव्योमानिलमाश्रित्यप्रविश्यौषधिपल्लवान् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कदाचित् सम्पूर्ण संकलपसे रहित यदृच्छासे केवल लोकोंके ऊपर अनुग्रहार्थ जाग्रत्दशाको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! जो मैंने आपसे कहा यही पवित्र ब्राह्मी स्थिति है, इसको प्रथम प्रजापतियोंका दल जो स्वयं ज्ञान ऐश्वर्यादिसे संपन्न रहताहै वह तथा देवतादि दल और मनुष्य आदिका दलभी उपासनादि द्वारा इस सा-त्विकी स्थितिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ क्योंकि ब्रह्माका प्रथम दल संपूर्ण सृष्टिका उपरमस्थान चिद्रूप ब्रह्माकाशमें ब्रह्माके मनरूपसे कल्पितफलके समानहै वही उदयको प्राप्त होताहै वह प्रजापतियोंका दल स्वयं सिद्धज्ञान और ऐश्व-र्यसे संपन्न प्रथम ब्रह्मको अच्छीतरहसे जानकर उसको प्राप्त होतेहै ॥ ५१ ॥ और प्रजापति औषधि आदिकी सृ-ष्टिके स्थित होनेपर दूसरा जो देव यक्षादिका दलहै जो प्रथमकी अपेक्षा अल्पगुण विशिष्टहै वह चन्द्रकलारूपसे आकाश और वायुका आश्रय करके औषधि और पल्लवोंमें प्रविष्ट होकर सोम घृत तथा दुग्धभावसे अग्निमें हवन होनेसे सूर्यमण्डलमें अमृताकारमें परिणत होकर प्रजापतियोंसे मुक्त होकर वीर्यदशामें प्रसिद्धिद्वारा ॥ ५२ ॥

काचित्सुरत्वमायातिकाचिदायातियक्षताम् ॥ उदेतिप्रथमंसैषाब्रह्मत्वंसमवाश्नुते ॥ ५३ ॥ यायत्स त्वंसमन्वेतिसातदेवाशुजायते ॥ जातासंसर्गवशतस्तस्मिन्नेवचजन्मनि ॥ बध्यतेमुच्यतेवासौस्वयम न्वारभेदतः ॥ ५४ ॥ इत्थंगतास्थितिरियंकिलरामभद्रसृष्टिःस्फुटप्रकटसंकटकर्मलब्धा ॥ आविर्भवे द्विविधवेगविहारभारसंरंभगर्भविधृताकलनापदेसा ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कमलजव्यवहारवर्णनं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—कोई तो देवभावको प्राप्त होताहै, और कोई यक्ष भावको, सो यह ब्रह्माका द्वितीय दल सात्विक होनेसे मनुष्यादिकी अपेक्षा प्रथम ज्ञानादि ऐश्वर्यकी संपत्तिसे उदित होताहै. इसलिये ब्रह्मकोही पृथक् प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ देवताओंमें वा मनुष्योंमें उत्पन्न जो व्यक्तिहै जैसे ज्ञान वैराग्य करके सम्पन्नहो वह उस संगतिसे शीघ्र वैसेही गुणसहित होजाती है, भोगलंपटके संगके बशसे स्वयं उसीप्रकार होकर बंधनको प्राप्त होती है और उसके विरूद्ध ज्ञान वैराग्य होनेसे मुक्त होती है, इसलिये मनुष्यादि तृतीय दलको उचितहै कि अपने पुरूषार्थसे साधु समागम सत् शा-स्त्रका श्रवण और इंद्रिय और मनके जीतनेके उपायोंको जबतक फलकी प्राप्ति न हो तबतक अभ्यास करताजाय॥५४॥ हे रामचन्द्रजी ! इसप्रकार उपासना यज्ञादि कर्म और निषिद्धकर्मोंसे प्राप्त स्वरूप तथा प्रारब्धोंके वेगसे और क्रीडा ओंके कौतुकोंसे और क्रोध लोभ व्यवहारोंसे बन्धीहुई यह सृष्टि सृष्टिकी ओर उन्मुख ब्रह्ममें सत्ताको प्राप्त हुई है; सो कदाचित् निमित्त बशसे प्रगट होती है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कमलजव्यवहारवर्णन नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

ब्रह्मासे आविर्भूत सात्विक जीवोंका और प्रधानतासे ज्ञानके अधिकारियोंका शरीरके ग्रहणका क्रम इस ६० के सर्गमें वर्णन किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अस्मिन्भगवतिब्रह्मंश्वपलंपदमाश्रिते ॥ पितामहेमहाबाहोकृतसर्गव्यव स्थितौ ॥ १ ॥ जगज्जीर्णारघट्टेस्मिन्वहतिस्वव्यवस्थया ॥ विप्रेतभूतघटयारज्ज्वाजीविततृष्णया ॥२॥ ब्रह्मोत्थेषुचभूतेषुविशत्सुभवपंजरम् ॥ आवर्तेष्वीश्वरव्योमबालमध्यविवर्तिषु ॥ ३ ॥ मनःस्वन्येषुवा तांतलोलाहतकणेष्विव ॥ अनारतंविनिर्यांतिविशंत्यन्येतथाभितः ॥ ४ ॥ रामब्रह्मणिजीवौघास्तरंगाइ ववारिधौ ॥ अनाद्यंतपदोपन्नाःकलनापदमागताः ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो रामजी ! जब सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाले भगवान् ब्रह्माजी समाधिसे उठतेहैं ॥ १ ॥ और जब प्रेत प्राणिरूप घटोंकी मालारूप रज्जुसे पुनः २ जन्ममरणरूप जल ग्रहण करके विषयकी तृष्णासे आरोह और अवरोहसे अपनी व्यवस्थाके अनुसारसे वह प्राचीन जगद्रूपी अरघटी यंत्र चलातेहैं ॥ २ ॥ तथा जब ब्रह्मसे उत्पन्न प्राणी संसाररूपी पंजरमें प्रवेश करतेहैं और माया सबलित ब्रह्मसे प्रथमोत्पन्न आकाशके मध्यमें वायुके यत्किंचित् सम्पर्कसे ताडित कणके तुल्य अन्य सब प्राणी भ्रमणशील होतेहैं ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! उससमय समुद्रमें तरंगके समूहोंके समान ये जीवोंके समूह जो कि अनादि कालसे उत्पन्न हुये हैं और कल्पनापदको प्राप्त हुये हैं, निरन्तर इनमेंसे कोई उपाधिके नाशसे नष्ट होजातेहैं और कोई उपाधिके लयसे सुषुप्तिके समान विश्रांतिके लिये प्रवेश करतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

भूताकाशंविशंत्येतेधूमश्रीरिवचांबुदम् ॥ एकतांयांतिजीवौघाब्रह्मण्याकाशमारुतैः ॥ ६ ॥ दिनंतन्मात्रवातेनतत्प्राणात्मतयायथा ॥ आक्रम्यंतेप्रचंडेनदैत्योघेनामराइव ॥ ७ ॥ भूतप्राणानिलंतेनगंधवाहेनतेनच ॥ निविशंतिशरीरेषुजीवागच्छंतिवीर्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—ये तृतीयदलके मनुष्य आदि जीव समूह भूताकाशमें ऐसे प्रवेश करतेहैं जैसे मेघमें धूमकी शोभा और ब्रह्ममें अध्यस्त आकाश तथा पवनके साथ जल तथा दुग्धके समान ब्रह्ममें एकताको प्राप्त होतेहैं ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् तेज जल तथा पृथिवीकी उत्पत्ति होनेसे प्रकाशको पाकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप तन्मात्रसहित पूर्वोक्तवायुसे और उसके उपभोगमें हेतुभूत मुख्य और अमुख्य दोनोंप्रकारकी प्राणरूपतासेभी सब जीव ऐसे वश किये जातेहैं जैसे दैत्योंके समूहसे देवता ॥ ७ ॥ इसीप्रकार लिंगदेहको पाकर उस प्राणके आत्मभाव, वायु तथा भूत तन्मात्र वायुकेभी साथ अन्न जलादि द्वारा अंडजादि चारों प्रकारके प्राणियोंके समूहोंके अन्नग्रास वा अपान वृत्तिभेदको प्राप्त होकर सब जीव कर्मोंके अनुसार शरीरोंमें प्रवेश करतेहैं और वीर्य्यदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥

ततोजगतिजायंतेभवंतिप्राणिनोऽस्फुटाः ॥ अन्याधूमादिमाजातारामजीवपरंपरा ॥ ९ ॥ तन्मात्रवतितावद्भिरशून्यैंबरकोटरे ॥ उदेतियावद्भगवानिंदुरुद्दाममंडलः ॥ १० ॥ क्षीरांबुधिनिभैर्लोलैःपांडुवद्रश्मिभिर्जगत् ॥ ततस्तेष्वतिरम्येषुचंद्ररश्मिषुसंपतत् ॥११॥ करोतिविहगीलीलावनेप्रेष्यांतरेष्विव ॥ तेभ्योपिस्वरसेनैवयांतिपीवरतामपि ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके अनंतर कोई अप्रकट ज्ञानैश्वर्यवाले प्राणी होके इस जगत्में उत्पन्न होतेहैं; और दूसरा दलभी औषधि बनस्पति आदिमें प्रवेश करके दुग्धघृतादिरूपसे अग्निमें होम होके धूमादि मार्गसे चन्द्रमण्डलमें जीवोंकी परंपरा रूपसे प्रविष्टहै ॥ ९ ॥ पूर्वोक्त लिंगदेहमें प्रदीप्त मंडलवाले पूर्ण भगवान् चन्द्रमा जितने किरणोंसे जगत्का प्रकाश करते हुये उदय करतेहैं उतनेही चंचल और पांडुवर्ण किरणोंसे पूर्ण अतएव क्षीरसमुद्रके प्रतिनिधि (स्थानापन्न एवजी) आकाशके मध्यमें वह जाति स्थित रहती है ॥ १० ॥ उसके पश्चात् अति रमणीय नन्दन आदि बनमें चन्द्रमाके किरणोंके गिरनेपर ॥ ११ ॥ किरणोंके अनुसार उसी बनमें दासी वा चंचल पक्षिणीके समान प्रवेश करती है, अनंतर फलरूप होकर चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे अपने रससे क्रमसे वृद्धि और मधुरताको प्राप्त होती हैं ॥ १२ ॥

फलेषुतेषुबध्नातिपदमिंदुकरात्क्षता ॥ जीवालीक्षीरपूर्णेषुमातुःस्तनभरेष्विव ॥ १३ ॥ ताःफलावलयःपक्वाभविष्यंतिमरीचिभिः ॥ तेष्वेववीर्यमागत्यातिष्ठंत्यप्राप्तबोधिताः ॥ १४ ॥ प्रसुप्तवासनाजालजीवतागर्भपंजरम् ॥ अधितिष्ठतिबीजश्रीःसुप्तपत्रायथावटम् ॥ १५ ॥ यथाकाष्ठेस्थितश्चाग्निर्यथामृदिघटाः स्थिताः ॥ अनेकक्रमयोगेनपरागत्यमहेश्वरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोक्त जीवोंकी पंक्ति चन्द्रमाके किरणसे विभक्त होकर रससे पूर्ण उन फलोंमें ऐसी स्थितिको बांधती है जैसे माताके स्तनमें बालक ॥ १३ ॥ वे फलके अवयव सूर्यकी किरणोंसे परिपक्व होकर और कश्यपादि ऋषियोंसे भुक्त होनेपर मूर्छितके सदृश वीर्यदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ १४ ॥ शांत वासनाजालसहित यह जीवता गर्भरूपी पंजरमें इसप्रकार निवास करती है जैसे अप्रगट पत्र अंकुरादि सहित बटके बीजकी शोभा ॥ १५ ॥ जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि और मृत्तिकामें घट स्थितहै इसी प्रकार परमात्मासे प्रलयमें आकर वा उपाधिके नाश होनेपर आकाशादिमें वा चन्द्रादि किरणोंमें जीव स्थितहै ॥ १६ ॥

अदृष्टान्यशरीरश्रीःक्रमतेयोनचोदति ॥ सहिसत्येवजातिःस्याद्दुदारव्यवहारवान् ॥ १७ ॥ तेनैवमोक्षभागीचेज्जन्मनासत्तुसात्विकः ॥ अथैतांयोनिमासाद्यकृत्यांजन्मपरंपराम् ॥ १८ ॥ रक्षार्थंप्राप्तजन्माचेत्तमोराजससात्विकः ॥ पाश्चात्यजन्मनापुंसोरामवक्ष्यामिचाधुना ॥ १९ ॥ प्राधान्येनयथायातःसंसारमितिसात्विकः ॥ सकदाचिन्नकश्चिच्चसंभवत्यनघाकृते ॥ २० ॥

अर्थ—जिस जीवने अन्य स्त्रीपुत्रादि शरीरकी शोभाको नहीं देखा अर्थात् सबसे विरक्त होकर मरणतक अपने कालको बितायाहै और जो पुरुष रागादिकोंसे ऐहिक तथा पारलौकिक भोग साधनोंमें नहीं प्रवृत्त होता उस धीरपुरूषकी सात्विकी जाति है, और वह जीवन्मुक्तोंके उचित व्यवहारवान्है ॥ १७ ॥ उसी जन्मसे जिसमें शरीरहै जो मोक्षका भागी हो उसको सात्विक कहतेहैं, और जो योनिको प्राप्त होकर छेदन करनेके योग्य जन्मकी परंपराको विषय लंपटतासे नहीं छेदन करता ॥ १८ ॥ किंतु उसीके रक्षाहीकेलिये शरीर प्राप्त कियाहै उसको तमोगुणयुक्त होनेसे राजस सात्विक कहतेहैं और जिसपुरुषकी अर्थात् प्रथम दलकी इसी अंतिम जन्मसे मोक्ष होती है उसके विषयमें हे राम ! अब मैं कहूंगा ॥ १९ ॥ जो जीव प्रधानतासे स्वयं ज्ञान ऐश्वर्ययुक्त प्रजापतिके अधिकारसे संसारमें प्राप्त हुआ है वह केवल सात्विकहै हे पापरहित रामजी ! वह कदाचित्भी संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ २० ॥

संभवंतीहपुरुषारामराजससात्विका ॥ प्रविचार्यसमायातामंतव्यंचेहतद्धिया ॥ २१ ॥ प्राधान्येनसमायातायेयदापरमात्मनः ॥ दुर्लभाःपुरुषारामतेमहागुणशालिनः ॥ २२ ॥ येचान्येविविधामूढामूकास्तामसजातयः ॥ तेषांस्थावरतुल्यानांकिंचरामविचार्यते ॥ २३ ॥ कतिपयानगताभवभावनांनरसुराःप्रकृतक्रमजन्मनि ॥ अहमिवप्रविचारणयोग्यतामनुगतोननुराजससात्विकः ॥ २४ ॥ स्थितस्यतेमहापदाविचार्यैवमायता ॥ विचारयत्वमंजसातदद्यचेहनद्वयम् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयप्रसंगोपदेशजीवावतारो नामषष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामचंद्रजी ! राजस और सात्विक पुरूष पुनः संसारमें उत्पन्न होतेहैं और केवल सात्विक पुरूष पूर्व जन्ममेंही आत्मतत्वको विचारकरके इस संसारमें जन्म धारण किया इस कारणसे इस जन्ममेंभी उसी बुद्धिसे आत्मतत्वका मनन वे करतेहैं ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो परमात्मासे अन्तिम जन्मकेलियेही प्रधानतासे प्रजापत्यादिके अधिकारमें आकार प्राप्त हुयेहैं वे महागुणशाली पुरूष इस संसारमें दुर्लभहैं ॥ २२ ॥ और जो तीनोंदलसे भिन्न रक्षस् पिशाच तिर्यगादि विविध प्रकारके मूढ और मूक तामस आदि जाति हैं वे स्थावरके तुल्यहैं, इसलिये उनके विषयमें आत्मज्ञानके विचारकी क्या अवश्यकताहै ॥ २३ ॥ हे रामचंद्रजी ! क्रमसे उत्तम जन्मपाकरभी देवता और मनुष्योंमें ऐसे जन विरलेही हैं जिनको संसारके भोगकी रूचि न हुईहो, मैंभी केवल आत्मतत्वकी विचारणाको प्राप्त हुआहुं इसलिये किंचित् रजोगुण युक्त सात्विकहुं ॥ २४ ॥ हे रामचंद्रजी ! महान् परमात्मा पदके अविचारसेही तुम स्थितहो इसलिये इसप्रकारकी संसारकी विस्तीर्ण भ्रांति तुमको हुई है उस पदको तुम अभी विचार करो तो केवल परमपद स्वरूपही तुमहो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विचार पुरुष निर्णय प्रसंगोपदेश जीवावतारो नाम षष्टितमःसर्गः॥ ६० ॥

एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

राजस और सात्विक मुक्तिके योग्य जो जनहैं उनकी प्रसंशा तथा उनके विवेक और वैराग्यका क्रम इस ६१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ येहिराजससात्विक्याजाताभुविमहागुणाः ॥ तेनित्यमेवमुदिताःप्रकाशाःखइवेंदवः ॥ १ ॥ नखेदमभिगच्छंतिव्योमभागोमलंयथा ॥ नापदाम्लानिमायांतिनिशिहेमांबुजंयथा ॥ २ ॥ नेहंतेप्रकृतादन्यत्तेनान्यत्स्थावरोयथा ॥ रमंतेस्वसदाचारैःस्वार्थैभ्यःपादपायथा ॥ ३ ॥ नित्यमापूर्यतांयातिसुधायामिंदुसुंदरी ॥ रामराजससत्वस्यमोक्षमायात्यसौयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामचन्द्रजी ! जो महागुण सहित राजस और सात्विकी जातिसे इस पृथिवीपर उत्पन्न हुयेहैं वे नित्यही प्रसन्न और आकाशमें चंद्रमाके समान ज्ञान प्रकाशसे युक्तहैं ॥ १ ॥ वे खेदको कभी ऐसे

नहीं प्राप्त होते जैसे आकाशका भाग मलीनताको और जैसे रात्रिमें सुवर्णका कमल म्लानिको नहीं प्राप्त होता ऐसेही वे आपत्तिसे कभी म्लान नहीं होते ॥ २ ॥ और वे स्थावरके समान यथा प्राप्त वस्तुसे अन्य किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते और वृक्षोंके समान अपने स्वार्थोंसे सदा सदाचारमें रमण करतेहैं ॥ ३ ॥ हे रामजी! रजोगुण तथा सत्वगुण युक्त पुरुषकी बुद्धि शांतिमय अमृतकी बुद्धि होनेपर पूर्णताको प्राप्त होती है, इसीसे शुक्लपक्षमें चंद्रमाके समान प्रकाश करती है जिससे कि प्राणीमोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

आपद्यपिनमुंचंतिशशिवच्छीततामिव ॥ प्रकृत्यैवविराजंतेमैत्र्यादिगुणकांतया ॥ ५ ॥ नवस्तबकभाविन्यालतयेववनद्रुमाः ॥ समाःसमरसाःसौम्यास्सततंसाधुसाधवः ॥ ६ ॥ अब्धिवद्धृतमर्यादाभवंतिभवतासमाः ॥ अतस्तेषांमहाबाहोपदमापद्वासनम् ॥ ७ ॥ सततंतत्तुगंतव्यंगंतव्यंनापदर्णवे ॥ तथातथेहजगतिविहर्त्तव्यमखेदिना ॥ ८ ॥

अर्थ—और यह प्राणी विपत्तिमेंभी अपनी स्थित सौम्यताको ऐसे नहीं त्यागता जैसे चन्द्रमा शीतताको, और रजोगुण तथा सत्वगुण युक्त पुरूष अपने स्वभावहीसे मैत्री आदि गुणरूप प्रियासे ऐसे शोभित होते हैं ॥ ५ ॥ जैसे स्तनके तुल्य नूतन पुष्पोंके गुच्छोंसे प्रेम युक्त लतासे आलिंगित बनके वृक्ष, और निरन्तर समभाव तथा समरस तथा साधुओंसेभी साधु (उत्तम) होतेहैं ॥ ६ ॥ और समुद्रके सदृश मर्यादाको धारण कर्त्ता आपके समान वे होतेहैं इस कारण हे महाबाहो जो पद आपत्तिका स्थान (विषय) नहीं है ॥ ७ ॥ उसी पदमें, न कि आपत्तिके समुद्रमें उनको इस प्रकार गमन करना चाहिये जिसमें वे खेद रहित इस संसारमें विहार करैं ॥ ८ ॥

आत्मोदयाश्चवर्द्धंतेयथाराजससात्विकाः ॥ अचिंत्यगत्यासच्छास्त्रंविचार्यंचपुनःपुनः ॥ ९ ॥ अनित्यतास्वमनसाविविधेवाशुभावतः ॥ आदावंतेचयांनित्यंक्रियां त्रैलोक्यवर्त्तिनीम् ॥ १० ॥ पदार्थानापदेवाशुभावयेन्नेतरत्सुधीः ॥ असम्यग्दर्शनंत्यक्त्वाव्यर्थमज्ञानसंततिम् ॥ ११ ॥ स्मर्त्तव्यंसम्यगेवेदंज्ञानमर्थमनंतकम् ॥ कोहंकथमिदंजातंसंसाराडंबरंविभो ॥ १२ ॥

अर्थ—और रजोगुणके क्षयसे युक्त आत्मानंदके लाभसहित पुरुष ऐसे वृद्धिको प्राप्त होतेहैं कि मूढोंके चिन्ता योग्य विषय गतिके त्यागसे उनको पुनः सत् शास्त्रही विचारके योग्य होताहै ॥ ९ ॥ और इसप्रकारके भावसे नानाप्रकारके निमित्तोंसे कथन करनेके योग्य संसारकी अनित्यताभी उनके विचारके योग्य होजाती है, इसी कारण (अनित्यतासे) इस लोकमें उपकारक लौकिक क्रियाको तथा मरणोत्तर परलोक उपकारक त्रिलोकीमें रहनेवाली यज्ञक्रियाको ॥ १० ॥ तथा उनके फलरूप स्त्री, पुत्र, पशु, धन, स्वर्ग विमान तथा अप्सरा आदि पदार्थोंकोभी विवेकसे शुद्धबुद्धि प्राणी आपत्तिरूप विचार करै, न कि यह संपत्तिरूपसे और बुद्धिमान् पुरुषको व्यर्थ अज्ञानकी सन्ततिरूप मिथ्या ज्ञानको त्यागे ॥ ११ ॥ और अनंत अर्थ प्राप्त करनेको इस वक्ष्यमाण ज्ञानको सदा स्मरण करना चाहिये हे प्रभो मैं कौन हुं और यह संसाररूपी आडंबर कैसे हुआ ॥ १२ ॥

प्रविचार्यप्रयत्नेनप्राज्ञेनसहसाधुभिः ॥ नचकर्मसुमंक्तव्यंनानर्थेनसहावसेत् ॥ १३ ॥ द्रष्टव्यःसर्वविच्छेदःसंसारानुगतःसदा ॥ साधुरेवानुगंतव्योमयूरेणांबुदोयथा ॥ १४ ॥ अहंकारस्यदेहस्यसंसारस्याप्लवस्यच ॥ स्वविचारमलंकृत्यसत्यमेवावलोकयेत् ॥ १५ ॥ शरीरमस्थिरमपिसंत्यक्त्वाघनशोभनम् ॥ वीतमुक्तावलीतंतुंचिन्मात्रमवलोकयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार अपने सपाठियोंके साथ सेवादिक अतिप्रयत्नसे प्रसन्न गुरूसे विनयपूर्वक प्रश्न करके विचार करना चाहिये, और संसारी कामोंमें निमग्न न होना चाहिये और न अनर्थमें निवास करना चाहिये ॥ १३ ॥ और जो कुछ स्त्रीपुत्र आदि प्रिय वस्तु इस संसारमें है उस सबका नाश अवश्य होगा ऐसा सदा देखना चाहिये ॥ १४ ॥ आभ्यन्तर अहंकार बाह्य शरीर तथा स्त्रीपुत्रादि ये सब नौका रहित समुद्रके समान हैं इसलिये अपने पूर्ण विचारसे सत्यकोही देखना चाहिये ॥ १५ ॥ अहंकार सहित शरीरको त्यागके अति शुभ तथा मुक्ता (मोती) की पंक्तियोंमें व्याप्त सूत्रके सदृश संपूर्ण देहादिके अन्तर्गत साक्षि चिन्मात्रको देखना चाहिये ॥ १६ ॥

तस्मिन्पदेनित्यततेसर्वगेसर्वभाविते ॥ शिवेसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणायथा ॥ १७ ॥ यैवचिद्भुवनाभोगेभूषणेव्योम्निभास्करे ॥ धराविवरकोशस्थेसैवचित्कीटकोदरे ॥ १८ ॥ कुंभव्योम्नांनभेदोस्तियथेहपरमार्थतः ॥ चितौशरीरसंस्थानांनभेदोस्तितथानघ ॥ १९ ॥ सर्वेषामेवभूतानांतिक्तकट्वादिभेदिनाम् ॥ एकत्वादनुभूतेर्हिकुतश्चिन्मात्रभिन्नता ॥ २० ॥

अर्थ—नित्य विस्तृत सर्वव्यापी और सर्वपूजित उस कल्याणस्वरूपपदमें यह सम्पूर्ण जगत्‌जाल ऐसे गुंथाहै जैसे सूत्रमें मणियोंका ॥ १७ ॥ जो चित् विशाल संसारमें, भूषणमें, आकाशमें, सूर्यमें, और पृथिवीके कोटररूपी कोशमें है, वही चित् एक कीट (कीट पतंग) के उदरमेंभी है ॥ १८ ॥ जैसे घटाकाश और महदाकाशमें कुछ भेद नहीं है ऐसेही हे पापरहित रामजी ! शरीरमें सम्पूर्ण जीवचेतनोंका ब्रह्मचेतनमें यथार्थमें कुछभी भेद नहीं है ॥ १९ ॥ तिक्त कटु आदिके अनुभव करनेवाले प्राणियोंमेंसे एक पुरुषके आस्वादनीय तिक्त कटु आदि रसका भेद रहतेभी परन्तु अनुभवमात्रमें भेद नहीं है तो चिन्मात्रमें भेद कैसे होसकताहै ॥ २० ॥

एकस्मिन्नेवसततंस्थितेसन्मात्रवस्तुनि ॥ जातोयमयमुन्नष्टइतितेषांतवेहधीः ॥ २१ ॥ नचतन्नामव स्त्वस्तियद्भूत्वासंप्रलीयते ॥ आभासमात्रमेवेदंनसन्नासच्चराघव ॥ २२ ॥ उद्भूतेनाप्रशांतेनचेतसास पदिस्थितम् ॥ नेहमोहांतआमोक्षान्नेदंयत्तदवस्तुच ॥ २३ ॥ किंकिलासतिरामेहमोहजालेसमुज्झति॥ यत्किंचित्संगसंगत्याविमोहेकारणंहितत् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जननमरणसंस्थितिर्नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—केवल एक चिन्मात्र वस्तु स्थित रहनेपरभी यह उत्पन्न हुआ, यह नष्ट हुआ, यह तुमारी मूढजनोंमें प्रसिद्ध बुद्धि है न कि शास्त्रसिद्ध ॥ २१ ॥ हे रामजी ! ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जो होके नष्ट होजाय यह सब जगत् आभासमात्रहै, नतो सत् न असत् है ॥ २२ ॥ क्योंकि जो मोक्षपर्य्यन्त अभिव्यक्त तथा शान्तचित्तसे स्पष्ट ग्रहण वर्तमानकालमें स्थितहै वह असत् नहीं है, और अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर कैवल्य मुक्तिपर्य्यन्त पूर्वकालमें यह जगत् नहीं है इस हेतुसे सत्‌भी नहीं है, इस कारणसे अनिर्वचनीय है ॥ २३ ॥ हे रामजी ! यदि मोहजाल सर्वथा असत् है तो ज्ञानसे किस बस्तुका निरास होगा, और सर्वथा सत् है तोभी ज्ञानसे क्या जायगा, इसलिये अनिर्वचनीय अध्यायसे रज्जु सर्पादिके सदृश यह दृश्यसमूहका अज्ञान कारणहै ॥ २४ ॥ हे रामजी ! इस जगत्‌के अत्यन्त असत् वा अत्यन्त सत् होनेपर अज्ञानका कारण कैसे होसकताहै इसलिये तुम जन्ममरण आदि संस्थितियोंमें आकाशके सदृश सदा निर्लिप्त शांतरूप स्थित रहो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जन्ममरणसंस्थितिर्नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

श्रीरामजीमें सम्पूर्ण शास्त्रोक्त गुणोंकी स्थिति, तथा अन्य साधारण पुरुषको सत्‌संग और पुरुषार्थसे उत्तम स्थितिका वर्णन इस ६२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ धीरोविचारवान्साक्षादादावेवमहाधिया ॥ शास्त्रेणविदुषाशास्त्रंसुजनेनवि चारयेत् ॥ १ ॥ सुजनेनवितृष्णेनविदुषामहतासह ॥ प्रविचार्यमहायोगात्पदमासाद्यतेपरम् ॥ २ ॥ शास्त्रार्थसुजनासंगवैराग्याभ्याससत्कृतः ॥ पुरुषस्त्वमिवाभातिनिजविज्ञानभाजनम् ॥ ३ ॥ त्वमुदार निजाचारोधीरोगुणगणाकरः ॥ अधितिष्ठसिनिर्दुःखंवीतसर्गमनोमलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! धीर और विचारवान् पुरुष अपनी महाबुद्धिसे तथा शास्त्रान्तरकी सहायतासे सज्जन और विद्वान् गुरुके निकट विधिपूर्वक जाके प्रथम स्वयं शास्त्रका विचार करै ॥ १ ॥ सज्जन, तृष्णारहित महाविद्वान्‌के साथ शास्त्रका विचार करके मनोनाशपर्य्यन्त समाधिसे परमपद प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ वेदान्तके उपयोगी अन्य शास्त्रके अर्थ सत्कर्म सदाचारादिसे तथा सज्जनोंके समागमसे और वैराग्यके अभ्याससे संस्कृत पुरुष आत्मज्ञानको पात्र होके तुमारे समान शोभित होताहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! तुम उदार अपने आचारमें कुशल, धीर, गुणोंके सागर तथा सबकी रचना करनेवाले मनरूप मलसे शून्य दुःखकी रहिततासे इस संसारमें स्थितहो ॥ ४ ॥

नूनमुत्सर्जिताभ्रेणशरद्व्योम्नासमोभवान् ॥ भवभावनयामुक्तोयुक्तउत्तमसंविदा ॥ ५ ॥ चिंतामुक्त कलावत्यामुक्तकल्पनयास्थितम् ॥ मनोमुक्तविभागंचमुक्तमेवनसंशयः ॥ ६ ॥ तवोत्तमानुभावस्यत

इदानींनराभुवि ॥ चेष्टामनुसरिष्यंतिरागद्वेषविहीनया ॥७॥ बहिर्लोकोचिताचाराविहरिष्यंतियेजनाः॥ भवार्णवंतरिष्यंतिधीमंतःपोतकान्विताः ॥ ८ ॥

अर्थ—संसारकी भावनासे मुक्त तथा उत्तम ज्ञानसे संपन्न आप इससमय मेघसे शून्य शरत्कालमें आकाशके तुल्य निर्मलहो ॥ ५ ॥ क्योंकि बाह्य तथा आभ्यन्तरकी चिंताओंसे मुक्त और अंतरमें परमात्माके साथ जल दुग्धके समान एकीभाव होनेसे ब्रह्माकारमें परिणत होनेवाली मुक्तोंके अनुभव सिद्ध कल्पनासें स्थितहो, और विभाग वर्जित मन मुक्तही है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! उत्तम अनुभाव युक्त आपकी चेष्टाका अनुकरण राग द्वेषशून्य बुद्धिसे पूर्वोक्त मुक्त पुरुषभी इससमय इस संसारमें करेंगे ॥ ७ ॥ जो पुरुष बाह्यदेशमें लोकोचित (धर्म शास्त्रके अनुकूल) आचरण करते हुये इस संसार सागरमें विहरतेहैं वे ज्ञानरूप नौकासे युक्तहोके संसार सागरकेपार अवश्य जायगे ॥ ८ ॥

तवतुल्यमतिर्यःस्यात्सुजनःसमदर्शनः ॥ योग्योसौज्ञानदृष्टीनांमयोक्तानांसुदृष्टिमान् ॥ ९ ॥ यावद्देहं धियातिष्ठरागद्वेषविहीनया ॥ बहिर्लोकोचिताचारस्त्वंतस्त्यक्ताखिलैषणः ॥ १० ॥ परांशांतिमुपाग च्छयथान्येगुणशालिनः ॥ अविचार्यास्तएवेहगोमायुशिशुधर्मकाः ॥ ११ ॥ येस्वभावामहासत्यानृ णांसात्विकजन्मनाम् ॥ तान्भजन्पुरुषोयातिपाश्चात्योदारजन्मताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमारे सदृश बुद्धिमान् समदर्शी जो पुरुषहैं वेही मेरे कहे हुये ज्ञानोपदेशोंके योग्यहैं ॥ ९॥ हे रामचंद्रजी ! जबतक यह शरीरहै तबतक रागद्वेषसे हीन बुद्धिसे बाहरसे धर्मशास्त्र तथा सद्वृत्तके अनुसार आचरण करते हुये, और अन्तःकरणसे तीनों एषणाओंको त्यागके संसारमें स्थित रहो ॥ १० ॥ हे रामजी ! तुम अन्य गुणी महात्माओंके समान परम शांतिको प्राप्तहो, और स्वार्थमें कुशल परबंचक यथेष्ट आचरण करनेवाले मूढ तुमारे विचार करनेके योग्य नहीं है ॥ ११ ॥ और सात्विक जन्मवाले पुरुषोंके शमदम आदि स्वाभाविक जो महासत्य स्वभावहैं उनको जो पुरुष उपार्जन करतेहैं वेभी क्रमसे ज्ञानको पाकर अन्तिम जन्म अर्थात् जीवन्मुक्तका शरीर प्राप्त करतेहैं१२

यानेवसेवतेजंतुरिहजातिगुणान्सदा ॥ अथान्यजातिजातोपिजातिंभजतितांक्षणात् ॥ १३ ॥ प्राक्तना नखिलान्भावान्यांतिकर्मवशंगताः ॥ पौरुषेणावजीयंतेधराधरमहाकुलाः ॥१४॥ धैर्येणाभ्युद्धरेद्बुद्धिं पंकान्मुग्धगवीमिव ॥ तामसींराजसींचैवजातिमन्यामपिश्रितः ॥ १५ ॥ स्वविवेकवशाद्यांतिसंतः सात्विकजातिताम् ॥ अतश्चित्तमणौस्वच्छेयद्राघवनियोज्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जो प्राणी इस संसारमें सदा जिन गुणोंका सेवन करताहै वह चाहे अन्य जातिमेंभी उत्पन्नहो परन्तु क्षणभरमें उसी जातिका होजाताहै ॥ १३ ॥ पूर्वकालके संपूर्ण भाव कर्मकी बशताको प्राप्त होतेहैं, इसलिये बडी २ सेनावाले राजाभी पुरुषार्थसे जीतलिये जातेहैं ॥ १४ ॥ धीरतासे विषयोंसे बुद्धिको ऐसे उद्धार करना चाहिये जैसे कीचडमें फसीहुई गौको, चाहे वह पुरुष तामसी वा राजसी अर्थात् राक्षस पिशाचादि वा अन्य सर्पादियोनिमें प्राप्त हो तोभी विषयसे निवृत्त होनेसे कल्याणका भागी होताहै ॥ १५ ॥ संतमहात्माजन अपने विवेकके वशसेही सात्विक जातिको प्राप्त होतेहैं, इसलिये हे रामचंद्रजी चित्तरूप स्फटिक मणिमें जो पदार्थ नियुक्त किया जाताहै ॥ १६ ॥

तन्मयोविभवत्येवंतस्माद्भवतिपौरुषम् ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनमहार्हगुणशालिनः ॥ १७ ॥ मुमुक्षवोभवं तीहपाश्चात्यशुभजातयः ॥ नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवाक्वचित् ॥ १८ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनयन्नाप्रो तिगुणान्वितः॥ब्रह्मचर्येणधैर्येणवीर्यैवैराग्यरंहसा॥ युक्त्यायुक्तेनहिविनानप्राप्तोषितदीहितम् ॥ १९॥ हितंमहासत्वतयात्मतत्त्वंविधायबुद्ध्याभववीतशोकः ॥ तवक्रमेणैवततोजनोयमुक्तौभविष्यत्यथवी तशोकः ॥ २० ॥ पाश्चात्यजन्मनिविवेकमहामहिम्नायुक्तेत्वयिप्रसृतसर्वगुणाभिरामे ॥ सत्वस्थकर्म णिपदंकुरुरामभद्रमैषाकरोतुभवसंगविमोहचिंता ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत् साहस्र्यांसंहितायां मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—वह तन्मय होजाताहै इसलिये पुरुष्यार्थही प्रधान है महात्मा पुरुष पौरुषरूप प्रयत्नसेही बहुमूल्य गुण युक्त ॥ १७ ॥ मुमुक्षु लोग अंतिम जन्मयुक्त शुभजातिमें उत्पन्न होतेहैं, इस पृथ्वीमें स्वर्गमें देवताओंमें वा अन्यत्रकहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है ॥ १८ ॥ जो पौरुषरूप प्रयत्नसे गुण करके युक्त न प्राप्त हो ब्रह्मचर्य धैर्य्य,

पराक्रम, और वैराग्यकर वेग और युक्ति करके सहित हुयेके विना इष्ट जो मोक्ष पदार्थ है वह नहीं प्राप्त होता ॥ १९॥ हे रामचंद्रजी ! जो सब प्राणियोंके दुःखके शांतिका कारण निरतिशय आत्मतत्व जिसका उपदेश मैंने कियाहै उसको महा क्रमवती बुद्धिसे स्थिति करके तुम शोकरहित होजाओ, हे रामचंद्रजी ! तुमारे उपदेशके क्रमसे अन्यभी अधिकारी जन शोकरहित और मुक्त होजावेंगे ॥ २० ॥ हे प्रिय रामचंद्रजी ! विवेकरूपी महा महिमासे युक्त विस्तृत सर्व शांत्यादि गुणोंसे रमणीय जीवन्मुक्तोंका आश्रयभूत जो सप्तमभूमिका रूप पदहै उसमें तुम स्थिति करो, परंतु वैराग्य प्रकरणमें वर्णनकी हुई सब जनोंमें प्रसिद्ध संसारके संगकी मोहकी चिंता तुममें स्थान नकरें ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपायेषु निखिलनगर ललामभूत दिल्ली नगरनिवासि रायबहादुरोपाधि धारि बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण प्रयागस्थ महाविद्यालय (यूनिवर्सीटी) मुख्य सम्यवेदांत विद्याऽनुरागि वैश्यवंशाऽवतंस जज्जपदारूढ श्रीबैजनाथमहाशयाज्ञया निखिल पाठालय ललामभूत काशिकराजकीय पाठालय प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री १०८ दामोदरशास्त्रि प्रधान शिष्य, प्रयागमण्डलांतर्गत हरिपुरनामक ग्रामनिवासि पूज्यपाद द्विवेदोपाख्य श्रीनचई प्रसादशर्म्मतनूजाचार्यपदवी समलंकृत ठाकुरप्रसादशर्म विरचित भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे द्विषतिष्टमः सर्गः ॥ ६२ ॥

स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ पंचममुपशमप्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥

गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीपरमात्मनेनमः—मध्यान्हकालके शंखोंकी ध्वनिसे सभाका उत्थान और वसिष्ठभगवान्का आन्हिककृत्य और रात्रिमें विश्वामित्रके साथ निवास ये विषय इस प्रथम सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथस्थितिप्रकरणादनंतरमिदंशृणु ॥ उपशमप्रकरणंज्ञातं निर्वाणकारियत् ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ शरत्तारकिताकाशस्तिमितायांसुसंसदि ॥ कथयत्ये वमाह्लादिवसिष्ठेपावनंवचः ॥ २ ॥ श्रवणार्थित्वमौनस्थपार्थिवेसंसदंतरे ॥ निर्वातइवनिस्पंदकमले कमलाकरे ॥ ३ ॥ विलासिनीषुसंशांतमदमोहबलासुच ॥ शममन्तःप्रयांतीषुचिरप्रव्रजितास्विव ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामचन्द्रजी ! इस स्थितिप्रकरणके अनन्तर अब तुम उपशम प्रकरण सुनो जो कि जाना हुआ निर्वाणकारी है ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि जब शरतकालमें तारागणसहित आकाशके समान सभा निश्चल होगई और वसिष्ठभगवान् आनन्ददायक तथा पवित्र बचन कह रहेथे ॥ २ ॥ तथा जब श्रवणके अर्थ सभाके अन्तर्गत सम्पूर्ण राजा ऐसे मौन होगयेथे जैसे वायुरहित कमलके बनमें निश्चल कमल ॥ ३ ॥ और स्त्रियोंके मदमोहका बल ऐसे शान्त होरहाथा जैसे चिरकालकी संन्यासनियोंके अन्तःकरण ॥ ४ ॥

करांभोरुहहंसेषुलीनेषुश्रवणादिव ॥ मुक्तघुर्घुरवादेषुवायसेषुतराविव ॥५॥ नासाग्रपरिविश्रांततर्जन्यंगुलिकोटिषु ॥ विचारयत्सुविज्ञानकलांतज्ज्ञेषुराजसु ॥ ६ ॥ रामेविकाशमायातेप्रभातइवपंकजे ॥ परित्यक्ततमःपीठेसूर्योदयइवांबरे ॥ ७ ॥ आकर्णयतिवासिष्ठीर्गिरोदशरथेरसात् ॥ कलापिनीवजीमूतनिर्ह्लादान्मुक्तवर्षणात् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब वसिष्ठके बचन श्रवण करनेसे हंसरूपी चमरसहित स्त्रियोंके हस्तकमल संकुचित होरहेथे और कंकन किंकिणियोंके शब्द पक्षियोंके शब्दके समान बन्द होरहेथे ॥ ५ ॥ और जब नासिकाके अग्रभागमें तर्जनी अंगुलीका अग्रभाग विश्राम कररहाथा ऐसे बिचारवान् राजाओंके विज्ञानकी कला विचारमें प्रवृत्त होरहीथी ॥ ६ ॥ तथा जब प्रातःकालके कमलके समान रामचन्द्रजी विकशित होरहेथे और जब आकाशमें सूर्य्योदयके समान अ-

ज्ञानान्धकार अपने स्थानसे निकल चलाथा ॥ ७ ॥ वृष्टि करनेवाले मेघके शब्दोंको मयूरके समान वसिष्ठभगवान्‌के बचनोंको राजा दशरथ प्रेमके साथ सुनतेथे ॥ ८ ॥

आद्दत्यसर्वभोगेभ्योमनोमर्कटचंचलम् ॥ श्रवणंप्रतियत्नेनसारणेमंत्रिणिस्थिते ॥ ९ ॥ वसिष्ठोक्त्या परिज्ञातस्वात्मनींदुकलामले ॥ लक्ष्मणेविलसल्लक्ष्येशिक्षाबलविचक्षणे ॥ १० ॥ शत्रुघ्नेशत्रुदलनेचेतसापूर्णतांगते ॥ अलमानंदमायातेराकाचंद्रोपमेस्थिते ॥ ११ ॥ सुमित्रेमित्रतांयातेमानसेदुःखशीलिते ॥ विकाशिहृदयेजातेतत्कालइवपंकजे ॥ १२ ॥ तत्रस्थेषुतथान्येषुतदासुनिषुराजसु ॥ सुधौतचित्तरत्नेषुप्रोल्लसत्स्विवचेतसा ॥ १३ ॥

अर्थ—और जब मनरूपी चंचल मरकटको सम्पूर्ण भोगोंसे हटाकर श्रवणके प्रति यत्नसे लगाके सारणमन्त्री स्थित होरहाथा ॥ ९ ॥ तथा जब वसिष्ठभगवान्‌के कथनसे आत्मारूपी निर्म्मल चन्द्रकी कलाके प्रकाशसे तथा शिक्षा बलसे विचक्षण लक्ष्मणके हृदयमें ब्रह्मरूप लक्ष्य स्फुरित होरहाथा ॥ १० ॥ और जब शत्रुओंको दलन करनेवाले शत्रुघ्नजी चित्तमें पूर्णताके प्राप्त होनेसे पूर्णआनन्दकी प्राप्तिद्वारा पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान स्थित होरहेथे ॥११॥ और जब दुःखशील मन सुमित्र मन्त्रीके मित्रके सदृश बश होरहाथा और उस समयमें कमलके समान सबके हृदय विकशित होगयेथे और उस कालमें शुद्धचित्तरूपी रत्नसहित उस सभामें स्थित मुनि और राजाजनक विकशित चित्त हो रहेथे ॥ १२ ॥ १३ ॥

उदभूत्पूरयन्नाशाःकल्पाभ्रवमांसलः ॥ अथमध्यान्हशंखानामब्धिघोषसमःस्वनः ॥१४॥ महतातेनशब्देनतिरोधानंमुनेर्गिरः ॥ ययुर्जलदनादेनकोकिलध्वनयोयथा ॥ १५ ॥ मुनिरंतरयांचक्रेस्वांवाचमथ संसदि ॥ जितसारोगुणःकेनमहतासमुदीर्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—उस समय प्रलयकालके मेघके शब्दके सदृश पुष्ट समुद्रके घोषकेसमान मध्यान्हकालके शंखोंका शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण करता हुआ प्रगट हुआ ॥ १४ ॥ उस महान् शब्दसे वसिष्ठभगवान्‌के बचन इसप्रकार अभिभूत (पराजित) होगये जैसे मेघके शब्दसे कोकिलकी ध्वनि ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर वसिष्ठभगवान् सभाके मध्यमें अपनी वाणीका उपसंहार करलिया अर्थात् मौन होगये क्योंकि जिस गुणका सार जीतलिया जाताहै उसको कौन महात्मापुरुष उच्चारण करसकताहै ॥ १६ ॥

मुहूर्त्तमात्रंविश्रम्यश्रुत्वामध्यान्हनिःस्वनम् ॥ घनेकोलाहलेशांतेरामंमुनिरुवाचह ॥ १७ ॥ रामायतनमेतावदान्हिकंकथितंमया ॥ प्रातरन्यत्तुवक्ष्यामोवक्तव्यमरिमर्द्दन ॥ १८ ॥ इदंनियतितःप्राप्तंकर्त्तव्यं तद्द्विजन्मनाम् ॥ मध्यान्हमुपपन्नंयत्कर्त्तव्यंनावसीदति ॥ १९ ॥ त्वमप्युत्तिष्ठशुभगसमस्ताचारसत्क्रियाम् ॥ आचराचारचतुरस्नानदानार्चनादिकाम् ॥ २० ॥

अर्थ—मध्यान्हकालके शब्द श्रवण करनेके पश्चात् मुनि वसिष्ठ एक मुहूर्त बिश्राम करके और घनीभूत कोलाहलके शान्त होनेपर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे रामचन्द्रजी ! आजकी कथा इतनी मैंने कहा, और हे अरिमर्दन ! प्रातःकाल और कुछ कहूंगा ॥ १८ ॥ सो हे रामजी ! शास्त्रकी मर्य्यादासे प्राप्त मध्यान्हकालमें युक्त ब्राह्मणोंको कर्तव्यकर्म्म नष्ट न हो इसलिये मुझेभी कर्तव्यहै ॥ १९ ॥ हे प्रिय रामजी ! तुमभी उठो और स्नान दान पूजादि समस्त आचारोंकी सत्क्रियाको करो ॥ २० ॥

इत्युक्त्वामुनिरुत्तस्थौसमंदशरथःप्रभुः ॥ ससदास्सेंदुरादित्यउदयाद्रितटादिव ॥ २१ ॥ तयोरुत्तिष्ठतोःसर्वासभोत्थातुमकंपत ॥ मंदवातपरामृष्टानलिनीवालिलोचना ॥ २२ ॥ उत्तस्थौसावतंसोत्थभृंगमंडलमंडिता ॥ करिसेनेवसंध्याद्रावालोलकरपुष्करा ॥ २३ ॥ परस्परांगसंघट्टचूर्णितांगदमंडली ॥ रत्नपूर्णारुणांभोदसंध्यासमयसूचनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इतना कहके वसिष्ठमुनि उठे और उनके साथही सभासदोंके साथ राजा दशरथभी ऐसे उठे जैसे उदयाचलसे चन्द्रमासहित सूर्य्य ॥ २१ ॥ उन दोनोंके उठनेके समय सम्पूर्ण सभा उठनेको ऐसे कम्पित हुई जैसे मन्दर पवनसे स्पष्ट भ्रमररूप नेत्रसहित कमलिनी ॥ २२ ॥ मुकुटोंसे निकले हुये भ्रमरमण्डलसे शोभित वह सभा ऐसे उठ खडी हुई जैसे अस्ताचलमें सूर्य्योदयकालमें हांथियोंकी सेना ॥ २३ ॥ और उस सभामें परस्परके अंगोंके संघट्टनसे अंगद (विजायठ) की मण्डली चूर्ण होगईथी तथा रत्नोंसे पूर्ण होनेसे रक्तमेघोंसे सन्ध्यासमयकी सूचना करनेवाली भान होती थी ॥ २४ ॥

पतद्वत्तंसविभ्रांतभृंगोपहितघुंघुमा ॥ मुकुटोद्दामविद्योतशक्रचापीकृतांबरा ॥ २५ ॥ कांतालताहस्त दलचारुचामरमंजरी ॥ वनलेखेवविक्षुब्धवरवारणमंडला ॥ २६ ॥ कचत्कटकभारक्तीकृतान्योन्यत तांबरा ॥ वातव्याधूतपुष्पेवमंदारवनमालिका ॥ २७ ॥ कर्पूरकणनीहाररचितामलवारिदा ॥ शरद्दि कटमालेवप्रसृताशेषभूमिका ॥ २८ ॥

अर्थ—गिरतेहुये शिरोभूषणमें भ्रमण करनेवाले भ्रमरोंसे शब्दयुक्त और मुकुटोंके नानाप्रकारके मणियोंके प्रकाशसे आकाशको इन्द्रके धनुषके समान करनेवाली वह सभाथी ॥ २५ ॥ कान्तारूप लताओंके हस्तपल्लवोंमें उत्तम चमररूप मञ्जरीसहित तथा मत्त हस्तियोंको विक्षुब्ध करानेवाली बनकी लेखाके समान ॥ २६ ॥ भान होती थी और अन्योन्यके आकर्षणद्वारा दैदीप्यमान कटको (कडो) की किरणोंसे रक्तवर्ण वस्त्रधारिणी तथा पवनसे कम्पित पुष्पपूर्ण वनकी मालाके सदृश ॥ २७ ॥ तथा कपूरके कणरूपी निहारसे निर्मल मेघ रचनेवाली वा काशके पुष्पोंसे सम्पूर्ण भूमिको व्याप्त करनेवाली शरद्ऋतुके दिशाओंकी मालाके समान वह सभा शोभित थी ॥ २८ ॥

लोलमौलिमणिप्रांतपाटलांबरकोटरा ॥ संध्येवाफुल्लनीलाब्जाकार्यसंहारकारिणी ॥ २९ ॥ रत्नांशुस लिलापूरमुखपद्मनिरंतरा ॥ पद्मिनीवालिवलितानूपुरारवसारसा ॥ ३० ॥ संततासासभोत्तस्थौभूभृ च्छतसमाकुला ॥ भूतसंततिसंभ्रांतास्रष्टिर्नवमिवोदिता ॥ ३१ ॥ प्रणम्याथनृपंभूपानिर्ययुर्नृपमंदिरात् ॥ शक्रचापीकृतारत्नैरंबुधेरिववीचयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चंचल मुकुटमणिके अग्रभागके किरणोंसे आकाशके कोटरोंको पीत वर्ण करनेवाली और विकसित कमलके सहित सन्ध्या कालके दिनके कृत्यको संहार करनेवाली वह सभा भान होतीथी ॥ २९ ॥ रत्नोंकी किरणरूप जलकी राशिमें मुखरूप निरन्तर कमल संयुक्त, और कर्पूरके शब्दसे शब्द करनेवाले सारसपक्षीसहित कमलोंसे आच्छादित कमलिनीके सदृश सैकडों राजोंसे व्याप्त, अतएव प्राणियोंके विस्तारसे संभ्रान्त नूतन सृष्टिके सदृश वह सभा शीघ्र उठ खडी हुई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण राजा महाराजा दशरथको प्रणाम करके राज्यभवनसे इसप्रकार निकले जैसे रत्नोंसे इन्द्रके धनुषके समान समुद्रसे किरण ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सुमंत्रोमंत्रिणश्चैववसिष्ठमथभूमिपम् ॥ प्रणम्यजग्मुःस्वानायरसविज्ञानकोविदाः ॥ ३३ ॥ वामदेवा दयश्चान्येविश्वामित्रादयस्तथा ॥ वसिष्ठंपुरतःकृत्वातस्थुरावर्जनोन्मुखाः ॥ ३४ ॥ राजादशरथस्तत्र पूजयित्वामुनिव्रजम् ॥ तद्विसृष्टोजगामाथस्वकार्यार्थमरिंदमः ॥ ३५ ॥ वनंवनास्पदाजग्मुर्व्योमव्यो मनिवासिनः ॥ नगरंनागराश्चैवप्राप्तरागमनायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—सुमन्त्र तथा अन्य मन्त्रीगण जो ब्रह्मविज्ञानमें कुशलथे महर्षि वसिष्ठजीको तथा राजा दशरथजीको प्रणाम करके बिदा हुये ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर वामदेवादिक तथा अन्य विश्वामित्रादि ऋषिवसिष्ठजीको अगाडी करके उनकी प्रतीक्षा करते हुये खडे रहें ॥ ३४ ॥ वहांपर राजा दशरथ सब मुनि समूहोंकी पूजा करके उनकी आज्ञा लेकर अपने कार्यके अर्थ गमन किया ॥ ३५ ॥ वनवासी अर्थात् वाणप्रस्थवनको आकाश निवासी आकाशको और नगरनिवासी जनोंने नगरको पुनः प्रातःकाल आगमनके लिये गमन किया ॥ ३६ ॥

महीपतिवसिष्ठाभ्यांप्रणयात्प्रार्थितःप्रभुः ॥ वसिष्ठसद्मनिनिशांविश्वामित्रोत्यवाहयत् ॥ ३७ ॥ वसि ष्ठःसहविप्रेंद्रैःपार्थिवैर्मुनिभिस्तथा ॥ उपास्यमानोरामाद्यैःसर्वैर्दशरथात्मजैः ॥ ३८ ॥ जगामस्वाश्र मंश्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ अनुयातस्सुरौघेनब्रह्मलोकमिवाब्जजः ॥ ३९ ॥ तस्मात्प्रदेशाद्रामादी न्पुनर्दशरथात्मजान् ॥ सर्वान्विसर्जयामासपादोपांतेनतानसौ ॥४०॥ नभश्चरान्धरणिचरानधश्चरा न्विसृज्यसंस्तुतगुणगोचरांश्चतान् ॥यथाक्रमंस्वगृहसुदारसत्ववांश्चकारतांद्विजजनवासरक्रियाम् ४१

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे आह्निकवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—राजा दशरथ तथा वसिष्ठसे प्रार्थना किये हुये भगवान् विश्वामित्रजी प्रेमसे वसिष्ठजीके स्थानमें उस रात्रिको बिताया ॥ ३७ ॥ उस समय उत्तम ब्राह्मणोंसे राजाओंसे तथा मुनियोंसे और रामादि दशरथके पुत्रोंसे उपासना किये हुये वसिष्ठजी ॥ ३८ ॥ अपने आश्रमको इसप्रकार गये जैसे और सब लोकोंसे नमस्कृत श्रीमान् ब्रह्माजी देवताके समूहोंसे आवृत्त ब्रह्मलोकको ॥ ३९ ॥ यह वसिष्ठमुनि रामादि सम्पूर्ण पुत्रोंको जो कि वसिष्ठजीके चरणोंपर

गिरे हुयेथे उसी स्थानसे बिदा किया ॥ ४० ॥ आकाशचारी पृथिवीनिवासी और पातालनिवासी जो कि सब वसिष्ठजीके गुणोंको गा रहेथे उन सबको यथाक्रम बिदा करके उदार और धैर्य्यवान् वसिष्ठजी अपने गृहमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंके उचित पंचमहायज्ञादि क्रियाको किया ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे आन्हिक वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस द्वितीय सर्गमें आन्हिक क्रिया और रात्रिमें रामचन्द्रजीका श्रुत अर्थका चिन्तन और श्रुत अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके लिये प्रार्थनाका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ तेसमेत्यगृहंगत्वाराजपुत्राःशशित्विषः ॥ चक्रुस्सर्वंशमेषेणस्वसद्मसु दिनक्रमम् ॥ १ ॥ वसिष्ठोराघवश्चैवराजानोमुनयोद्विजाः ॥ इतिचक्रुस्स्वकार्याणितथास्वगृहवीथिषु २ सस्नुःकमलकह्लारकुमुदोत्पलहारिषु ॥ जलाशयेषुचक्राह्वहंससारसराजिषु ॥ ३ ॥ गोभूतिलहिरण्यानिशयनान्यासनानिच ॥ ददुर्दानानिविप्रेभ्योभाजनान्यंशुकानिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान ये सब राजपुत्र अपने गृहमें जाकर और वहांपर दैनिक कर्मको सम्पूर्ण रीतिसे किया ॥ १ ॥ वसिष्ठजी रामचन्द्रजी राजा मुनि और ब्राह्मण ये सब वक्ष्यमाण रीतिसे गृहमें मार्गमें तथा अन्यत्र जो अपने उचित कार्य्यथे उनको किया ॥ २ ॥ श्वेतरक्त तथा नील कमलोंसे मनोहर चक्रवाक हंस और सारसकी पंक्तियों करके सहित तडागोंमें सबोंने स्नान किया ॥ ३ ॥ गौ पृथिवी तिल हिरण्य सज्जा आसन भोजन और वस्त्रादि ब्राह्मणोंको दान किया ॥ ४ ॥

हेमरत्नविचित्रेषुस्वेषुचामरसद्मसु ॥ आनर्चरच्युतेशानहुताशार्कादिकान्सुरान् ॥ ५ ॥ पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबंधुमित्रगणैस्सह ॥ ततआस्वादयामासुर्भोजनान्युचितानिवै ॥ ६ ॥ एतस्मिन्समयेचास्मिन्नगरे दिवसोभवत् ॥ तनुरष्टांगशेषत्वाद्दृष्टोनचमनोहरः ॥ ७ ॥ सायंतनदिनांतंतेतत्कालोचितचेष्टया ॥ अनयन्नंशुभिस्सार्द्धंयावदस्तंययौरविः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुवर्णयुक्त रत्नोंसे चित्रविचित्र देवालयोंके सदृश अपने २ स्थानोंमें विष्णु महादेव अग्नि तथा सूर्यादि देवताओंकी पूजा की ॥५॥ इसके पश्चात् पुत्र, पौत्र, मित्र, दास बन्धु और सुहृद् गणोंके साथ उचित भोजन किया ॥ ६ ॥ इसीसमयमें नगरमें दिन केवल अष्टमांश शेष रहगया अतएव अधिक मनोहर प्रतीत होताथा ॥ ७ ॥ उन सभोंने सायंकालको (दिनका अन्त) उस समयके योग्य धर्मशास्त्र पुराणादिके श्रवणसे सूर्य्योंकी किरणोंके साथ बिताया इतनेमें सूर्य्यभगवान्, अस्ताचलको प्राप्त हुये ॥ ८ ॥

संध्यांववंदिरेसुष्ठुजेपुश्चैवाघमर्षणम् ॥ पेठुःस्तोत्राणिपुण्यानिजगुर्गाथामनोहराः ॥ ९ ॥ ततश्चाभ्युदिताश्यामाकामिनीशोकहारिणी ॥ क्षीरोदादिवमाहेंद्रीचंद्रावश्यायदायिनी ॥ १० ॥ शनैरास्तीर्णपुष्पेषुकीर्णकर्पूरमुष्टिषु ॥ दीर्घेन्दुबिंबरम्येषुतस्थुस्तल्पेषुराघवाः ॥ ११ ॥ अथरामादृतेन्येषांतत्रतद्व्यवहारिणी ॥ व्यतीयायशनैःश्यामामुहूर्त्तइवशोभना ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय सभोंने सन्ध्यावन्दन किया, और पूर्ण रीतिसे अघमर्षणका जप किया, स्तोत्रोंका पाठ किया और मनोहर गाथाओंका गान किया ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् कान्त समागमसे कामिनियोंका शोक हरनेवाली रात्रि ऐसे प्रगट हुई जैसे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न पूर्व दिशामें तुषार सहित तथा आनन्द देनेवाली चन्द्र चन्द्रिका ॥ १० ॥ पुष्पोंसे आच्छादित तथा कर्पूरके कणसे पूर्ण और दीर्घ चन्द्रमाके बिम्बके सदृश रमणीय शय्याओंपर रघुवंशी धीरे २ स्थित हुये ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् रामचन्द्रजीके सिवाय और सब किसीकी की उस समयके उचित विषय भोगादि व्यवहारसहित और शोभायमान रात्रि धीरे धीरे मुहूर्तके समान बीतगई ॥ १२ ॥

तस्थौरामस्तुतामेववासिष्ठींवचनावलीम् ॥ चिंतयन्मधुरोदारांकरिणीकलभोयथा ॥ १३ ॥ किमिदं नामसंसारभ्रमणंकिमिमेजनाः ॥ भूतानिचविचित्राणिकिमायांतिप्रयांतिकिम् ॥ १४ ॥ मनसःकीदृशं

रूपंकथंचैतत्प्रशाम्यति ॥ मायेयंसाकिमुत्थास्यात्कथंचैवानिवर्त्तते ॥ १५ ॥ निवृत्तयानयाकःस्याद्गुणो दोषोथवाभवेत् ॥ कथमात्मनिचैवायंततेसंकोचआगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी वसिष्ठभगवान्की कही हुई मधुर और उदार बचनकी पंक्तियोंको चिन्तन करते हुये ऐसे स्थित रहे जैसे हस्तीका बच्चा अपनी माताको ॥ १३ ॥ इस संसारका भ्रमण क्याहै और ये मनुष्य क्या हैं और ये चित्रविचित्र प्राणीके समूह कहां आते हैं और कहां जाते हैं ॥ १४ ॥ मनका कैसा रूपहै और यह कैसे शान्त होता है और यह माया किससे प्रगटहै और कैसे इसकी निवृत्ति होती है ॥ १५ ॥ और इसके निवृत्त होनेसे क्या गुणहै और क्या दोषहै और आकाशसेभी विस्तीर्ण आत्मामें यह संकोच कैसे प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

किमुक्तंस्याद्भगवतामुनिनामनसःक्षये ॥ किंचेंद्रियजयेप्रोक्तंकिमुक्तमथवात्मनि ॥ १७ ॥ जीवश्चित्तंम नोमायेत्येवमादिभिराततैः ॥ रूपैरात्मैवसंसारंतनोतीममसन्मयम् ॥ १८ ॥ एभिरेवंमनोमात्रतंतुबद्धैः क्षयंगतैः ॥ दुःखोपशांतिरेतानिसुचिकित्स्यानिनःकथम् ॥ १९ ॥ भोगाभ्रमालावलयांधीबलाकामिमां कथम् ॥ पृथक्करोमिपयसोधारांहंसइवांभसः ॥ २० ॥

अर्थ—भगवान् वसिष्ठजीने मनके नाश करनेमें क्या कहाहै और इन्द्रियोंके जीतनेके विषयमें और आत्माके जाननेके विषयमें भी क्या कहाहै ॥ १७॥ जीव चित्त मन और माया इत्यादि विस्तृत रूपोंसे इस असन्मय संसारको आत्माही विस्तारित करताहै ॥१८ ॥ मनरूपी सूत्रमें बन्धे हुये जीव चित्त माया आदिके क्षय होनेपर दुःखकी शान्ति सिद्ध होती है इसलिये इनके सुगम रीतिसे नाश करनेका उपाय हम लोगोंकेलिये क्या है ॥ १९ ॥ विषयके भोगरूपी मेघोंकी मालासे पूर्ण इस बुद्धिरूप वकी (बकुली) को जैसे हंस जलकी धाराको पृथक् करताहै ऐसे आत्मासे कैसे पृथक् करूं ॥ २० ॥

भोगास्त्यक्तुंनशक्यंतेतत्यागेनविनावयम् ॥ प्रभवामोनविपदामहोसंकटमागतम् ॥२१॥ मनोमात्रमि दंप्राप्यंतच्चैवेदंप्रयोजनम् ॥ संपन्नंनोगिरिगुरुमौर्ख्याद्पक्षःशिशोरिव ॥ २२ ॥ परमांशांतिमागत्यगत संसारसंभ्रमा ॥ बालेवलब्धदयिताकंचित्प्राप्स्यतिनोमतिः ॥ २३ ॥ कदोपशांतसंरंभंविगताशेषकौतु कम् ॥ अपापमात्मविश्रांतंममस्यात्पावनंमनः ॥ २४ ॥

अर्थ—भोग त्यागनेके समर्थ नहीं हैं क्योंकि उनके त्यागनेसे जीवनका असम्भवहै और उनके त्यागके बिना हम विपत्तिका प्रतीकार (नाश) नहीं करसकतेहैं यह कैसा संकट आके पडाहै ॥ २१ ॥ यह प्राप्त करनेके योग्य आत्मतत्व मनमात्रकोही विषयभान होताहै और वह मनभी बाह्य विषयजालके सिद्धिका हेतुहै अहो यह मूर्खतासे बालकके पक्षके समान पर्वतसेभी गुरुतर अर्थात् उद्धार करनेके असमर्थ हम लोकोंको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ इसलिये संसारके भ्रमसे रहित परम शान्तिको प्राप्त होकर हम लोगोंकी बुद्धि अन्य पदार्थको ऐसे नहीं स्मरण करैगी जैसे अपने प्रियके प्राप्त होनेसे अन्यसे तरुण स्त्री ॥ २३ ॥ हे भगवन् वह कौनसा समय होगा जब क्रोधसे शून्य सम्पूर्ण काम कौतुकसे वर्जित, पापसे रहित, और पवित्र हमारा मन आत्मपदमें विश्रान्त होगा ॥ २४ ॥

कलाकलापसंपूर्णाच्छशांकादपिशीतले ॥ पदेसुरूढविश्रम्यभ्रमिष्यामिकदाजगत् ॥ २५ ॥ कलनापे लवंरूपमुत्सृज्यालीनमात्मनि ॥ कदैष्यतिमनःशांतिमंभसीवतरंगकः ॥ २६ ॥ तृष्णातरंगाकुलितमा शामकरमालिनम् ॥ कदासंसारजलधिंतीर्त्वास्यामहमज्वरः ॥ २७ ॥ कदोपशमशुद्धासुपदवीषुविच क्षणाः ॥ मुमुक्षूणांनिवत्स्यामोनिःशोकंसमदर्शनाः ॥ २८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कलाओंके समूहोंसे पूर्ण चन्द्रमासेभी शीतल सप्तम भूमिका रूप जीवन्मुक्तिके सुखमें दृढतापूर्वक विश्राम करके इस जगत्में मैं कब भ्रमण करूंगा ॥ २५ ॥ अनेकप्रकारकी कल्पनाओंसे कोमल (विनश्वर) मेरा मन अपने तुच्छरूपको त्यागकर आत्मामें लीन होकर जलमें तरंगके समान शान्तिको कब प्राप्त होगा ॥ २६ ॥ तृष्णारूपी तरंगोंसे व्याप्त आशारूपी मकर (मगर) की माला संयुक्त इस संसाररूपी समुद्रको पार होकर सन्तापरहित मैं कब होऊंगा ॥ २७ ॥ वह कौनसा समय होगा कि शमदमादि गुणोंसे शुद्ध मुमुक्षु लोगोंके प्राप्त होनेके योग्य पदोंमें निपुण तथा समदर्शी होकर शोक राहित्यसे निवास करैंगे ॥ २८ ॥

संतापितसमस्तांगःसर्वधातुभयंकरः ॥ संसृतिज्वरआदीर्घःकदानाशमुपैष्यति ॥ २९ ॥ निर्वातदीप लेखेवकदाचित्तंगतव्यथम् ॥ शममेष्यतिहेबुद्धेस्वप्रकाशघनांतरम् ॥ ३० ॥ कदेंद्रियाणिदुःखेभ्यःसंत रिष्यंतिहेलया ॥ दुरीहादग्धदेहानिगरुत्मंतइवार्णवान् ॥३१॥ अयंसोहंरुदन्मूढइतिव्यार्थाहितोभ्रमः॥ शरदीवाश्रितोमेघःकदानाशमुपैष्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्त्रीपुत्रादि तथा हस्तपादादि समस्त अंगोंको सन्तापित करनेवाला सुवर्णादि धातु वा रुधिरमांसादि धातुओंकी क्षीणतासे भयंकर और अति महान् यह संसाररूपी ज्वर कब नाशको प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ हे बुद्धे ! वायु शून्य देशमें दीपकी लेखाके समान शान्त, पीडारहित तथा प्रकाशमय मेरा यह चित्त कब शान्तिको प्राप्त होगा ॥३०॥ जैसे गरुडजी समुद्रके पार होते हैं ऐसेही विषयकी अभिलाषासे शरीरको नष्ट करनेवाली यह दुष्ट इन्द्रियां संसारको अनादर करके दुःखसे कब पार होंगी॥३१॥ यह शरीरादि और वह धन स्त्रीपुत्रादिके वियोगसे रोते हुये मूढके समान मुझमें जो व्यर्थ भ्रम आकर प्राप्त हुआहै वह शरत्कालके श्वेत मेघके समान कब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

मंदारवनलेखासुयामतिस्स्वादृणायते ॥ याचेतत्पदमात्मीयंसंप्राप्स्यामःकदावयम् ॥ ३३ ॥ वीतराग जनप्रोक्तानिर्मलाज्ञानदृष्टयः ॥ कच्चित्पदंत्वयिमनःकरिष्यंतीतिमेवद ॥ ३४ ॥ हातातमातःपुत्रेतिगि रामाक्षामहंपुनः ॥ भाजनंचित्तमाभूवंभोजनंह्वःखभोगिनाम् ॥ ३५ ॥ हेबुद्धेभगिनिभ्रातुरर्थितांपूरया शुभे ॥ आवयोर्दुःखमोक्षायविचारयमुनेर्गिरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मंदारवनकी मालाओंमें जो सुखका अनुभव होताथा वह इससमय तृणके समान भान होताहै मैं इससमय केवल यही प्रार्थना करताहूं कि उस अपने आत्मतत्वको कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३३ ॥ वीतराग वसिष्ठजीने जो निर्मल ज्ञानकी दृष्टि कही है वह हे मन ! कभी तुममेंभी अपना स्थान करेगी ॥ ३४ ॥ हा तात ! हा मातः ! हे पुत्र ! इत्यादि वाणियोंका विषय हे चित्त ! मैं पुनः कभी न चाहूं चाहै मेरा शरीर अजगरोंके भोजनका पात्रभी होजाय ॥ ३५ ॥ हे बुद्धे भगिनी ! (बहिन) तुम जीवरूपी अपने भाईको प्रार्थनाको शीघ्र पूर्ण करो जिसमें हम दोनोंका मोक्षहो इसलिये मुनि वसिष्ठकी बाणियोंको बिचारो ॥ ३६ ॥

त्वांपादपतितःप्रीत्यायाचेसतिसुतेमते ॥ तेनभव्येभवोच्छेदभूतयेसुस्थिराभव ॥ ३७ ॥ वसिष्ठमुनि नाप्रोक्काविरक्ताःप्रथमंगिरः ॥ ततोमुमुक्षोराचारउत्पत्तीनांक्रमस्ततः ॥ ३८ ॥ ततःस्थितिप्रकरणंस मंदृष्टांतसुंदरम् ॥ विज्ञानगर्भसुलभंयथावत्स्मरहेमते ॥ ३९ ॥ कृतमतिशतशोविचारितंयच्चदितरूपे तिनमानसस्यबुद्धिः ॥ भवतितदफलंशरदूघनाभंसततमतोमतिरेवकार्यसारः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्के मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उपदेशानुवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—हे सति पुत्रिरूप मननशीलेमते ! तुमारे चरणमें गिरकर यह याचना करताहूं कि इस मेरी प्रार्थनासे भव्यपुरुषमें संसारके विच्छेदसे पूर्ण पदकी संपत्ति प्राप्त होनेके लिये तुम स्थिरहो ॥ ३७ ॥ वसिष्ठमुनिने प्रथम वैराग्यकी बाणी कही उसके पश्चात् मुमुक्षुओंके आचार और उसके अनन्तर उत्पत्तिका क्रम ॥ ३८ ॥ उसके अनन्तर दृष्टान्तोंसे रमणीय और विज्ञान पूर्ण होनेसे अधिकारियोंके लिये सुलभ स्थितिप्रकरणमें जो कहाहै उसको हे मते ! (बुद्धि) यथावत् स्मरण करो ॥ ३९ ॥ जो बात मनसे सैकडों बार कुशलतापूर्वक बिचारी जाय परन्तु उसको निश्चयात्मक बुद्धि न ग्रहण करे तो वह शरत्कालके मेघके समान निष्फल होजाती है इसलिये श्रणवसे तत्वपदार्थके बिचारनेपरभी मननसे निश्चयात्मक बुद्धिही निरन्तर कर्तव्य अर्थके विषयमें सार पदार्थ है ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उपदेशानु वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

प्रातःकालका स्नान और रामादिकके साथ सभामें वसिष्ठजीकी यात्राका प्रस्ताव इस तृतीय सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ तस्यैवंप्राययातत्रततयोदारार्चितया ॥ साव्यतीयायरजनीपद्मस्येवार्क कांक्षिणः ॥ १ ॥ किंचित्तमःकडारासुकिंचिदप्यरुणासुच ॥ नभोविरलतारासुदिक्षुसंमार्जितास्विव२ प्रभाततूर्यघोषेणसममिंदुसमाननः ॥ उतस्थौराघवःश्रीमान्पद्मःपद्मकरादिव ॥ ३ ॥ प्रातःस्नानविधिं कृत्वासंपाद्यभ्रातृभिःपुनः ॥ प्रहितात्पपरीवारोवसिष्ठसदनंययौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—उस रामचन्द्रजीकी उदार बडी चिन्ता करते हुये वह रात्रि इसप्रकार बीती जैसे सूर्यके अभिलाषी कमलकी ॥ १ ॥ उसके पश्चात् कुछ अन्धकारसे कपिलवर्ण और कुछ अरूण आकाशमें विरल तारागणसहित दिशाओंके शोधितके समान होनेपर ॥ २ ॥ प्रातःकालमें तुरूहीके घोषके शब्दके साथ चन्द्रमाके

सदृश मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी ऐसे उठके खडे होगये जैसे कमलके बनमेंसे कमल ॥ ३ ॥ प्रातःकाल स्नान आदि विधिको करके कुछ दास वर्गोंको भेजकर भाइयोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठके स्थानपर गये ॥ ४ ॥

समाधिसंस्थमेकांतेमुनिमात्मपरायणम् ॥ दूरएवाननामासौरामोविनतकंधरः ॥ ५ ॥ तंप्रणम्यांगणे तस्थुस्तस्मिंस्तेविनयान्विताः ॥ यावत्तमस्तमालूनंव्यक्तंदिङ्मुखमंडलम् ॥ ६ ॥ राजानोराजपुत्राश्चा ऋषयोब्राह्मणास्ततः ॥ आययुस्सदनंमौनंब्रह्मलोकमिवामराः ॥ ७ ॥ तद्वसिष्ठस्यसदनंबभूवजनसंकुलम् ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधंपार्थिवाचारशोभनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् एकान्तमें समाधिमें स्थित और आत्मामें परायण मुनि वसिष्ठजीको रामचन्द्रजी नम्र होकर दूरहीसे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसके पश्चात् विनययुक्त वे सब रामादिक वसिष्ठजीको प्रणाम करके जबतक दिशाओंका अन्धकार अच्छीतरहसे नष्ट न हुआ तबतक उसी वसिष्ठजीके अङ्गनमें खडे रहे ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् अन्य राजे तथा राजपुत्र ऋषि और ब्राह्मण मौन होकर वसिष्ठजीके स्थानपर ऐसे आये जैसे ब्रह्मलोकमें देवता ॥७॥ वह वसिष्ठजीका गृह अनेक मनुष्योंसे व्याप्त हांथी और घोडे और रथसे पूर्ण राजाओंके योग्य आचार करके सहित अतएव राजभवनके सदृश शोभित हुआ ॥ ८ ॥

क्षणाद्वसिष्ठोभगवान्विरराम समाधितः ॥ आचारेणोपचारेणजग्राहप्रणतंजनम् ॥ ९ ॥ तथानुयातो मुनिभिर्विश्वामित्रान्वितोमुनिः ॥ आरुरोहरथंश्रीमान्सहसाब्जमिवाब्जजः ॥ १० ॥ ययौगृहंदाशरथंसैन्येनमहतावृतः ॥ ब्रह्मेवशक्रनगरंसमस्तसुरमालितः ॥ ११ ॥ विवेशावनतांतत्ररम्यांदाशरथीं सभाम् ॥ हंसयूथानुवलितोराजहंसइवाब्जिनीम् ॥ १२ ॥

अर्थ—एक क्षणमें वसिष्ठभगवान् समाधिसे विरामको प्राप्त हुये और विनयादि आचार तथा मधुर भाषण आदि उपचारसे सब नम्रीभूत जनोंका सत्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् मुनियों करके संयुक्त तथा विश्वामित्रजीके साथ श्रीमान् वसिष्ठमुनि रथपर इसप्रकार बैठे जैसे कमलके ऊपर ब्रह्माजी ॥ १० ॥ अनन्तर बडी भारी सेनासे घिरे हुये वसिष्ठजी दशरथजीके गृहमें इसप्रकार गये जैसे संपूर्ण देवताओंसे घिरे हुये ब्रह्माजी इन्द्रके भवनमें ॥ ११ ॥ वहां जाकर नम्रीभूत और रमणीय वसिष्ठकी सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे हंसके झुंडसे घिरा हुआ राजहंस कमलिनीमें १२

त्रीणितत्रपदान्याशुतदादशरथोनृपः ॥ निर्जगाममहावीरःसिंहासनसमुत्थितः ॥ १३ ॥ विविशुस्तत्रतेसर्वेनृपादशरथादयः ॥ वसिष्ठाद्याश्चमुनयोऋषयोब्राह्मणास्तथा ॥ १४ ॥ मंत्रिणश्चसुमंत्राद्याः सौम्याद्याश्चविपश्चितः ॥ राजपुत्राश्चरामाद्यामंत्रिपुत्राःशुभादयः ॥ १५ ॥ अमात्याद्याःप्रकृतयःसुहोत्राद्याश्चनागराः ॥ मालवाद्यास्तथाभृत्याःपौराद्याश्चैवमालिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—उससमय महापराक्रमी राजा दशरथ अपने सिंहासनसे उठकर तीन पैरतक शीघ्रतासे वसिष्ठजीको लेनेको गये ॥ १३ ॥ उस समय वहांपर दशरथ आदि सम्पूर्ण राजे वसिष्ठ आदि मुनि और विश्वामित्रादि ऋषि तथा ब्राह्मण ॥ १४ ॥ सुमन्त्र आदि मन्त्री सौमासे आदि लेकर बुद्धिमान् पुरुष रामादि राजपुत्र शुभ आदि मंत्रियोंके पुत्र ॥ १५ ॥ आमात्यसे आदि लेकर सम्पूर्ण प्रकृति सुहोत्र आदि नगरनिवासी मालव आदि भृत्य और मालीसे आदि लेकर अन्य नगरनिवासी उस सभामें प्रविष्ट हुये ॥ १६ ॥

अथतेषूपविष्टेषुस्वेषुस्वेष्वासनेषुच ॥ सर्वेष्वेवोपविष्टेषुवसिष्ठोन्मुखदृष्टिषु ॥ १७ ॥ सभाकलकले शांतेमौनसंस्थेषुबंदिषु ॥ वृत्तासुस्थितिवार्त्तासुसौम्येतस्मिन्सभांतरे ॥ १८ ॥ स्फुरत्पवनमालासुविशत्स्वंभोजकोटरात् ॥ परागेषुविलोलेषुमुक्तादामसुचंचलम् ॥ १९ ॥ बृहत्कुसुमदोलाभ्यःप्रसृताभ्यः समंततः ॥ वातिमांसलमामोदमादायमधुरानिले ॥ २० ॥

अर्थ—उसके अनन्तर जब सब राजा मंत्री आदि बैठ गये और पश्चात् वसिष्ठकी दृष्टिकी चेष्टासे अन्य सबके बैठ गये ॥ १७ ॥ सभाका कोलाहल शान्तिको प्राप्त हुआ बन्दीगण मौन होके स्थित होगये और उस शान्त सभाके मध्यमें परस्पर रात्रिके सुख प्रश्नकी वार्ता प्रवृत्त होनेलगी ॥ १८ ॥ और कमलके भीतरसे निकलकर चलती हुई पवनकी माला सभामें प्रवेश करनेलगी इसी हेतुसे कमलोंके परागोंमें मुक्ताओंके हार चंचल होने लगे ॥ १९ ॥ बडे २ चारों ओर फैले हुये पुष्पोंके झूलोंके उत्तम सुगन्धको ग्रहण करके मन्द २ वायुके वहने लगा ॥ २० ॥

वातायनेषुमृद्वषुकुसुमाकीर्णभूमिषु ॥ पर्यंकेषूपविष्टासुपश्यंतीषुपुरंध्रिषु ॥ २१ ॥ जालागतार्ककरलोलविलोचनासुरत्नप्रभानिकरपिंगलकोमलासु ॥ संत्यक्तचापललवंचपलासुतासुमौनस्थितासुसितचा

मरधारिणीषु ॥२२॥ मुक्ताफलप्रतिफलप्रतिमार्करश्मिरागोदरास्वजिरभूमिषुपुष्पकौघम् ॥ नासादयत्य भिनवातपबिंबबुद्धयाभ्रांतेभ्रमत्यलिकुलेनभसीवमेघे ॥२३॥ पुण्यैर्वसिष्ठवदनप्रसृतंश्रुतंयत्तत्संततिप्र सृतविस्मयमार्यलोके ॥ सत्संगमेमृदुपदाक्षरमुग्धवाक्यमन्योन्यमीप्सितमनल्पगुणाभिराम् ॥ २४ ॥

अर्थ—कोमल झरोखोंमें पुष्पोंसे आच्छादित पृथिवीमें आसनोंपर बैठकर स्त्रिया देखनेमें तत्पर हुई ॥ २१ ॥ जालमार्गसे प्राप्त हुये सूर्यकी किरणोंसे चंचल नेत्रधारिणी तथा रत्नकी प्रभाके समूहसे पिंगलवर्ण, तथा कोमल और चपलताके लेशकोभी त्यागकर श्वेत चमर धारण करनेवाले स्त्रिया मौन होकर स्थित होगई ॥ २२ ॥ और जब वहां- पर मोतियोंके प्रतिबिम्बके सदृश सूर्यकी किरणों पूर्ण उदरसहित नानाप्रकारके रत्नोंसे जटित अंगनकी भूमियोंपर नूतन आतपके बिम्बकी बुद्धिसे भ्रमरके समूहोंको पुष्पोंकी प्राप्ति न हुई तब वे मेघके समान आकाशमें भ्रमण करनेलगे श्रेष्ठ पुरूषोंसे युक्त उस सज्जनोंकी समाजमें पूर्वजन्मके पुण्योंसे वसिष्ठजीके मुखसे निकले हुये वचनको हृद- यमें विस्तार होनेसे अधिक आश्चर्यके साथ परस्पर अभिलषित अधिक गुणकी प्रसंशा आर्य्यलोकोंमें होने लगी॥२४॥

दिग्भ्यःपुराच्चगगनाच्चवनाच्चसिद्धविद्याधरार्यमुनिविप्रगणेवसिष्ठम् ॥ मौनप्रणाममभितःप्रविशत्यश ब्दंसोपांशुगौरववतासहजातवाक्ये ॥२५॥ उन्निद्रकोकनदकोमलकोशकृष्टमग्नालिजालमकरंदसुव र्णरागैः॥ आपिंगलेमरुतिवातिविलोलघंटाटांकारगीतविनिर्पीतनिशांतगीते ॥२६॥ अगुरुतततगरधूमैचं दनामोदमिश्रेसरसकुसुमदामोद्दामगंधांकिताभ्रे॥ सरतिसरतिवितानांभोरुहामोदलेशैश्चलकुसुमरजों केशब्दविज्ञातभृंगम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे सभासंस्थानवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—दिशाओंसे नगरोंसे स्वर्गसे आकर सिद्ध विद्याधर श्रेष्ठ मुनि तथा ब्राह्मण समूह मौन होकर वसिष्ठको प्रणाम करके बैठगये अनन्तर प्रतिष्ठित पुरुषके साथ मन्द स्वरसे वसिष्ठके विषयमें संभाषण प्रवृत्त होने लगा ॥२५॥ और भेष विकसित रक्त कमलोंके कोशोंसे आकृष्ट (खिचे हुये) प्रथम निमग्न भ्रमरोंके पुष्परसोंके और उत्तम परागोंके रंगोंसे किंचित् पिंगल वर्ण (कुछ लाल कुछ पीत) और गृहोंके प्रान्त (ओरों) में चंचल घंटाओंके टंका रकी गीतोंसे मनोहर तथा गृहोंमें रात्रिके शब्दोंको जीतनेवाले वायु वहने लगे ॥ २६ ॥ और जब चन्दनके सुगंध- सहित पुष्पोंकी धुलियोंसे रचित, इसी हेतुसे सरसमालाओंके उत्कट सुगन्धोंसे मेघमण्डलकोभी सुगन्धित करने- वाला और तगरके नील धूमसे मिलित होनेसे, निजरंगके छिपनेसे शब्दसेही भ्रमरोंका ज्ञान कराते हुये वंदनवारोंमें गूंथे हुये कमलोंके सुगंधको कुछ अंशको ग्रहण करके मन्द २ पवन चलने लगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे सभासंस्थान वर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

राजा दशरथजीसे वसिष्ठके वाक्योंकी प्रशंसा, और वसिष्ठमुनिके वाक्योंसे रामजीके विचारित अर्थोंका अनु- वाद इस ४ सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ मेघगंभीरयावाचाविश्रब्धपदसुंदरम् ॥ इदंदशरथोवाक्यमुवाचमुनिनायकम् ॥ १ ॥ भगवन्ह्यस्तनेनत्ववंवाक्यसंदर्भजन्मना ॥ कच्चिन्मुक्तोऽसिखेदेनतपःकार्श्यातिशायिना ॥ २ ॥ ह्यस्तनोक्तोयआनंदीविविक्तोवचसांगणः ॥ अमृतावर्षणेनेवतेनैवाश्वासितावयम् ॥ ३ ॥ चंद्रांशवइ वोत्सार्यतमांस्यमृतनिर्मलाः ॥ अंतःशीतलयंत्येतामहतामलागिरः ॥ ४ ॥

अर्थ—उससमय मेघके सदृश गंभीर वाणीसे विश्वास योग्य पदोंसे सुन्दर वक्ष्यमाण वाक्यको दशरथजी मु- नियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे बोले कि ॥ १ ॥ हे भगवन् तपकी कृशतासे अधिक क्लेशदायी पूर्वदिनकी कथाके श्रमसे तो आप मुक्त (रहित) हुये ॥ २ ॥ हे प्रभो ! पूर्वदिन सम्बन्धी श्रोत्रको आनन्ददायक आपके इस बचन समूहसे हम सब ऐसे तृप्त हुये हैं जैसे अमृतकी वृष्टिसे, ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! अमृतके समान निर्मल महात्माओंकी यह विमल वाणी चन्द्रमाके किरणके समान अज्ञानान्धकारको हटाकर अन्तःकरणको शीतल करती है ॥ ४ ॥

अपूर्वाह्लाददायिन्यउच्चैस्तरपदाश्रयाः ॥ अतिमोहापहारिण्यःसूक्तयोहिमहीयसाम् ॥ ५ ॥ आत्मरत्नावलोकैकदीपिकासरसात्मिका ॥ यस्माद्युक्तिलतोदेतिसवंद्यःसुजनद्रुमः ॥ ६ ॥ दुरीहितंदुर्विहितंसर्वसज्जनसूक्तयः ॥ प्रमार्जयंतिशीतांशोस्तमःकांडमिवांघ्रयः ॥ ७ ॥ तृष्णालोभादयोस्माकंसंसारनिगडामुने ॥ तवोक्त्यातनुतांयाताःशरदीवासितांबुदाः ॥ ८ ॥

अर्थ—अपूर्व आनन्द देनेहारी उच्चतर ब्रह्मपदके आशयसे युक्त और महा मोहको हरनेवाली महात्माओंकी उत्तम युक्ति होती हैं ॥ ५ ॥ वह सज्जनरूपी कल्पवृक्ष बन्दना करनेके योग्यहै जिससे आत्मरूपी रत्नके देखनेके अर्थ मुख्य दीपिकारूप सरसज्योतिर्मय युक्तिरूपी लता उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ सज्जनोंकी उत्तम युक्ति मानसिक शारीरिक तथा समस्त इन्द्रियोंके दोषोंको ऐसे दूर करती है जैसे अन्धकारको चन्द्रमाकी किरण ॥७॥ हे मुने ! संसारकी वेडीरूप हमलोगोंकी तृष्णा लोभादिक आपकी उक्तिसे इसप्रकार सूक्ष्मताको प्राप्त हुये जैसे शरदृऋतुमें मेघ ॥८॥

संप्रवृत्तावयंद्रष्टुमात्मानमपकल्मषम् ॥ रसांजनानीतदृशोजात्यंधाइवकांचनम् ॥ ९ ॥ संसारवासनानाम्नीमिहिकाहृदयांबरे ॥ प्रवृत्तातनुतांगंतुंत्वदुक्तिशरदेवनः ॥ १० ॥ मुनेमंदारमंजर्यस्तरंगावामृतांभसः ॥ नतथाह्लादयंत्यंतर्यथोदारधियांगिरः ॥ ११ ॥ यद्यद्राघवसंयातिमहाजनसपर्यया ॥ दिनंतदिहसालोकंशेषात्वंधादिनालयः ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय हमलोग पापरहित शुद्ध आत्माको देखनेके अर्थ ऐसे समर्थ हुये हैं जैसे सिद्धांजनसे प्राप्त दृष्टि जन्मान्ध पुरूष सुवर्णको ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आपकी उक्तिरूपी शरदृऋतुसे हमलोगोंकी संसारकी वासनारूप कुहरा हृदयरूपी आकाशमें सूक्ष्म होनेको प्रवृत्त हुई है ॥ १० ॥ हे मुने ! कल्पवृक्षकी लता वा अमृतमय समुद्रके तरंग अन्तःकरणको इसप्रकार आनन्द नहीं दे सकते जैसे उदार बुद्धि महात्माओंकी बाणी ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! (रामचन्द्रजीकी संबोधन करके कहते हैं) जो दिन ब्रह्मवेत्ताओंकी पूजामें बीतताहै वही प्रकाशयुक्तहै और शेष अन्धकारमयहैं ॥ १२ ॥

रामराजीवपत्राक्षप्रकृतार्थमिहाव्ययम् ॥ मुनिमाबोधयपुनःप्रसादेसमवस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तोभूभृतातत्ररामाभिमुखमास्थितः ॥ उवाचेदमुदारात्मावसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ राघवस्वकुलैकेंदोयन्मयोक्तंतेमहामते ॥ कच्चित्स्मरसिवाक्यार्थंपूर्वापरविचारितम् ॥१५॥ उत्पत्तीनांविचित्राणांसत्वादिगुणभेदतः ॥ कच्चित्स्मरसिसर्वासांविभागमरिमर्दन ॥ १६ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र रामचन्द्रजी ! अविनाशी मुनि वसिष्ठजी जो इससमय प्रसन्नतामें स्थितहैं उनसे प्रस्तुत अर्थके विषयमें पुनः प्रश्न करो ॥ १३ ॥ दशरथराजासे ऐसे कहे हुये रामचन्द्रजीके सम्मुख बैठे हुये उदार आशय श्रीभगवान् वसिष्ठमुनि इस बचनको बोले ॥ १४ ॥ हे निजकुलचन्द्र महामते रामचन्द्रजी ! जो कुछ मैंने कहाहै उस वाक्यार्थको पूर्वापर तुमने क्या विचार किया ॥ १५ ॥ हे शत्रुमर्दक रामचन्द्रजी ! पूर्वोक्त सम्पूर्ण जीव जातियोंकी सत्वआदि गुणभेदसे विचित्र उत्पत्तियोंके विभाग क्या तुमको स्मरणहै ॥ १६ ॥

कच्चित्सर्वमसर्वंचसदसच्चसदोदिम् ॥ रूपंस्मरसिवेत्स्येवविविक्तंपरमात्मनः ॥ १७ ॥ यथेदमुदितंविश्वंविश्वेशादेवचेश्वरात् ॥ कच्चित्स्मरसितत्साधोसाधुवादैकभाजन ॥ १८ ॥ रूपंकच्चिदविद्यायाबलाद्रंगुरमाततम् ॥ अनंतमंतवच्चैवसम्यक्स्मरसिसन्मते ॥ १९ ॥ चित्तमेवनरोनान्यदितियत्प्रतिपादितम् ॥ लक्षणादिविचारेणकच्चित्स्मरसिसाधुतत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! माया शक्तिसे जगत्के रूपसे स्थित और शुद्धरूपसे निष्प्रपंच स्थूल सूक्ष्म अथवा सत्य असत्य जगत् तथा ब्रह्मके रूपको जो मैंने कहा क्या वह तुमको स्मरणहै और बुद्धि आदि दृश्य जगत्से भिन्न परमात्माके रूपको क्या तुम जानतेहो ॥१७॥ हे साधो ! हे सज्जनोंकी प्रशंसा तथा उपदेशके पात्र रामचन्द्रजी ! जिस तरहसे संपूर्ण संसारके स्वामी सर्व शक्तिमान् परमात्मासे यह जगत् उत्पन्न हुआहै उसे क्या तुम स्मरण करतेहो ॥१८ कालके वशसे नाशमान प्रवाहरूपसे अनन्त और देशकालादि रूपसे अन्त इस मायाके रूपको क्या तुम स्मरण करते हो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! चित्तही मनुष्यहै और कुछ नहीं यह जो मैंने तुमसे कथन कियाथा उसके लक्षण आदि विचारपूर्वक क्या तुम भलीभांति स्मरण करतेहो ॥ २० ॥

वाक्यार्थश्चाखिलःकच्चित्त्वयारामविचारितः ॥ ह्यस्तनस्यविचारस्यरात्रौहृदिनिवेशितः ॥ २१ ॥ भूयोभूयःपरामिष्टंहृदयेसुनियोजितम् ॥ प्रयोजनंफलत्युच्चैर्नहेलाहतसंस्थितेः ॥ २२ ॥ भाजनंत्वंविविक्ता

नांवचसांशुद्धिशालिनाम् ॥ विविक्तहृदयःकंठेमुक्तानांमिवराघव ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ कम लासनपुत्रेणमुनिनासमहौजसा ॥ एवंवितीर्णावसरोरामोवाक्यमुवाचह ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! पूर्व दिनमें जो कुछ मैंने विचार कियाथा उसको तुमने अच्छीतरहसे बिचारा और रात्रिमें मननसे हृदयमें स्थापित किया ॥ २१ ॥ क्योंकि बारंबार विचार किया हुआ और मननसे हृदयमें स्थापित प्रयोजन मोक्षरूप फलको देताहै और अनादरसे जिस पुरुषने उपदेशको हृदयमें नहीं स्थापित किया उसको वह फल नहीं मिलता ॥ २२ ॥ हे राघव ! पवित्र तथा शुद्ध बाणियोंके तुम इसप्रकार पात्रहो जैसे पवित्र वा बिशाल कंठवाला मोतियोंके मालाका ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–ब्रह्माजीके पुत्र महातेजस्वी वसिष्ठजी इसप्रकार अवसर प्राप्त रामचन्द्रजी यह वाक्य बोले ॥ २४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञतवैवैतद्विजृंभितम् ॥ यदहंपरमोदारोबुद्धवान्वचनंतव ॥ २५ ॥ यदादिशसितत्सर्वंतथैवनतदन्यथा ॥ अपास्तनिद्रेणमयावाक्यार्थोहृदिचिंतितः ॥ २६ ॥ भवांधकार क्षतयेभवतोक्तिविवस्वता ॥ ह्यःप्रसादितमाह्लादिवाग्रश्मिपटलंप्रभो ॥ २७ ॥ तदतीतमदीनात्मन्सर्व मंतःकृतंमया ॥ रम्यंपुण्यंपवित्रंचरत्नवृंदमिवान्वितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे सर्व धर्मज्ञ ! यह आपहीका प्रतापहै कि मैंने परमउदार होकर आपके बचनको समझा ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! जैसा आप उपदेश देतेहो वैसाही मैंने किया उसके बिरूद्ध नहीं किया क्योंकि निद्राको दूर करके मैंने आपके कहे हुये वाक्यार्थके हृदयमें चिन्तन किया ॥ २६ ॥ संसारके अन्धकारको नाश करनेके लिये हे प्रभो ! आपके बचनरूपी सूर्यने गतदिनमें आनन्ददायक बाणीरूपी किरणके समूहको विस्तारित किया ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! हे उदाराचित्त ! उस सब कहे हुये पदार्थोंको जो कि रमणीय पुण्य पवित्र और क्रम करके युक्तहै उसको रत्नके समूहके सदृश मैंने अन्तर्गत करलिया ॥ २८ ॥

हितानुबंधिहृद्यंचपुण्यमानंदसाधनम् ॥ शिरसाध्रियतेकैर्नोसिद्धैस्त्वदनुशासनम् ॥ २९ ॥ प्रतिक्षिपं तस्संसारमिहिकावरणंवयम् ॥ प्रसन्नास्त्वत्प्रसादेनवर्षांतइववासराः ॥ ३० ॥ आपातमधुरारंभमध्ये सौभाग्यवर्द्धनम् ॥ अनुत्तमफलोदर्कंपुण्यंत्वदनुशासनम् ॥ ३१ ॥ विकासिसितमम्लानमाह्लादितशु भाशुभम् ॥ त्वद्वचःकुसुमंनित्यंश्रीमत्फलदमस्तुनः ॥ ३२ ॥ सकलशास्त्रविचारविशारदप्रसृतपुण्य जलैकमहाह्रद ॥ भजभृशंविततव्रतसंप्रतिप्रसृततांहतकिल्बिषसंततिम् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणेराघवप्रश्नो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! संपूर्ण अरिष्टोंका निवारक मनोहर परमपुरुषार्थ साधक ब्रह्मानन्दका साधन अति पवित्र आपके उपदेशको कौनसे ऐसे योगसे सिद्ध वा सनकादि सिद्धभी शिरसे नहीं धारण करते ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! संसाररूप तुषारको हम बस फेकते हुये आपकी कृपासे ऐसे प्रसन्न हुये हैं जैसे वर्षाके अन्तमें दिन ॥ ३० ॥ बिना बिचारेभी मधुर (कर्णको सुखद) मध्यमें अर्थात् मनन और निदिध्यासनकालमें सौभाग्य (शमादि सम्पत्ति सुखका) वर्द्धक और अन्तमें मोक्षरूप फलका दायक आपका उपदेशहै ॥ ३१ ॥ विकाशयुक्त, स्वच्छ, शुभ (देवादि) और अशुभ (सर्पादि) दोनोंको आनन्दित करनेवाला, शोभायुक्त आपका वचनरूप कल्पवृक्षका पुष्पहै ॥ ३२ ॥ हे देशकाल तथा शास्त्रोंको विचारोंमें निपुण तथा हे विस्तृत पुण्यरूप जलके महाह्रद ! हे पाप नाशक ! हे विस्तारित व्रत भगवन् वसिष्ठजी ! आप मेरी शुद्धिके लिये उसी प्रस्तुत उपदेशरूप प्रवाहको स्वीकार कीजिये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रश्नो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अविवेकसे बढी हुई मनोमात्र जगत्की स्थितिको उपशमनका उपाय इस ५ सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदमुत्तमसिद्धांतसुंदरंसुंदराकृते ॥ उपशांतिप्रकरणंशृणुष्वावहितोहितम् ॥ १ ॥ दीर्घसंसारमायेयंरामराजसतामसैः ॥ धार्यतेजंतुभिर्नित्यंसुस्तंभैरिवमंडपः ॥ २ ॥ सत्वस्थजाति

भिर्द्वीरैस्त्वादृशैर्गुणबृंहितैः ॥ हेलयात्यज्यतेपक्कामायेयंत्वगिवोरगैः ॥ ३ ॥ येसत्त्वजातयःप्राज्ञास्त थाराजससात्विकाः ॥ विचारयंतितेसाधोजगत्पूर्वपरंपराम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे सुन्दर आकारवाले रामजी ! यह हितदायक उत्तम सिद्धान्तसहित उपशमप्रकरणको सावधान होके सुनों ॥ १ ॥ हे रामजी ! राजस, सात्विक तथा शुद्ध सात्विक जीव इस दीर्घ संसारकी मायाको नित्य ऐसे धारण करते हैं जैसे उत्तम खंभे मण्डपको ॥ २ ॥ सत्वगुणमें स्थित, धीर गुणमें बढे हुये आपके सदृश जीवोंने इस संसारकी मायाको अनादर करके ऐसे त्याग देते हैं जैसे पकी हुई केचुलीको सर्प ॥ ३ ॥ हे साधो रामजी ! जो रजोगुण तथा सत्वगुण जातिवाले बुद्धिमान् प्राणी हैं वे जगत्के मूलकी परम्पराको विचारते हैं अर्थात् जगत्का आदि कारण क्याहै इसका विचार करके ब्रह्मको जानते हैं ॥ ४ ॥

शास्त्रसज्जनसत्कार्यसंगेनोपहतैनसाम् ॥ सारावलोकिनीबुद्धिर्जायतेदीपिकोपमा ॥ ५ ॥ स्वयमेववि चारेणविचार्यात्मानमात्मना ॥ यावन्नाधिगतंज्ञेयंनतावदधिगम्यते ॥ ६ ॥ प्रज्ञावतांनयवतांधीराणांकु लशालिनाम् ॥ जात्याराजससत्वानांमुख्यस्त्वंरघुनंदन ॥ ७ ॥ स्वयमालोकयप्राज्ञसंसारारंभदृष्टिषु॥ किंसत्यंकिमसत्यंवाभवसत्यपरायणः ॥ ८ ॥

अर्थ—शास्त्र सज्जन, तथा सत्कार्य अर्थात् यज्ञ दान और तप आदिसे जिनका पाप नष्ट होगयाहै उनकी दीपिका (दीप) के सदृश बुद्धि सारपदार्थको देखनेवाली होजाती है ॥ ५ ॥ अपनेही विचारसे जबतक आत्मासे आत्माका विचार करके ज्ञेयवस्तुको नहीं जाना तबतक वह नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन ! बुद्धिमान् प्रामाणिक, धीर, कुलीन और राजस सात्विक जातिमें उत्पन्न पुरुषोंमें मुख्य आपही हैं ॥ ७ ॥ हे प्राज्ञ रामजी ! संसारके कार्यके आरंभकी दृष्टिओंमें आप स्वयं देखो कि क्या सत्यहै और क्या असत्यहै तब सत्यमें परायणहो ॥ ८ ॥

आदावंतेचयन्नास्तिकीदृशीतस्यसत्यता ॥ आदावंतेचयन्नित्यंतत्सत्यंनामनेतरत् ॥ ९ ॥ आद्यंतास न्मयेयस्यवस्तुन्यासज्जतेमनः ॥ तस्यमुग्धपशोर्जतोर्विवेकःकेनजन्यते ॥ १० ॥ जायतेमनएवेहमनए ववविवर्द्धते ॥ सम्यग्दर्शनदृष्टयातुमनएवहिमुच्यते ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञातमेतन्मयाब्रह्मन्यथा स्मिन्भुवनत्रये ॥ मनएवहिसंसारिजरामरणभाजनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पदार्थ आदि अन्तमें नहीं है उसकी सत्यता कैसी ? और जो आदि अन्तमें नित्यहै वही सत्यहै अन्य नहीं ॥ ९ ॥ आदि अन्तमें असन्मय पदार्थमें जिसका मन सत्य बुद्धिसे निमग्न होताहै उस मूर्ख प्राणीको विवेक किससे उत्पन्न होगा ॥ १० ॥ इस संसारमें मनहीं उत्पन्न होताहै और मनहीं बढताहै और सम्यग्दर्शनकी दृष्टिसे मनही मुक्त होताहै ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकारसे मनही संसारीहै और वृद्धाऽवस्था तथा मृत्युका पात्र यह जिस प्रकार तीनों लोकमें है उसको मैंने आपकी कृपासे जानलिया ॥ १२ ॥

यस्तस्योत्तरणोपायस्तन्मेब्रूहिसुनिश्चितम् ॥ हार्दतमस्त्वयार्केणराघवाणांविनाश्यते ॥ १३ ॥ श्रीवसि ष्ठउवाच ॥ पूर्वंराघवशास्त्रेणवैराग्येणपरेणच ॥ तथासज्जनसंगेननीयतांपुण्यतांमनः ॥ १४ ॥ सौज न्योपहितंचेतोयदावैराग्यमागतम् ॥ तदानुगम्यागुरवोविज्ञानगुरवोपिये ॥ १५ ॥ ततस्तस्योपदिष्टेन कृत्वाध्यानार्चनादिकम् ॥ क्रमेणपदमाप्नोतितद्यत्परमपावनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अब जो कुछ निश्चित उपाय संसारसे तरनेकाहो उसे कहिये क्योंकि रघुवंशियोंके हृदयके अन्धकारको सूर्यरूप धारण करके आपही नाश करते हैं ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव ! प्रथम शास्त्रसे उत्तम वैराग्य तथा सज्जनोंके समागमसे मनको ज्ञानोदयके योग्य शुद्ध करना चाहिये ॥ १४ ॥ सुजनतासे पूर्णचित्त जब वैराग्यको प्राप्त होताहै तब शास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरूओंके समीप विधिपूर्वक जाना चाहिये ॥१५॥ अनन्तर उस गुरूके कहे हुये मार्गसे ध्यान पूजादिक करके क्रमसे वह परमपवित्र आत्मपद प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

विचारेणावदातेनपश्यत्यात्मानमात्मना ॥ इंदुनाशीतलेनांतर्विश्वंखमिवतेजसा ॥ १७ ॥ तावद्भवमहां भोधौजनस्तृणवदुह्यते ॥ विचारतटविश्रांतिमेतियावन्नचेतसा ॥ १८ ॥ विचारेणपरिज्ञातवस्तुनोस्य जनस्यधीः ॥ सर्वानधःकरोत्याधीन्सौम्यांभइववालुकाः ॥ १९ ॥ इदंरुक्ममिदंभस्मपरिज्ञातमिति स्फुटम् ॥ नयथाहेमकारस्यहेमज्ञानात्मनस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध विचारसे अपने आत्मासे आत्माको जीव इसप्रकार देखताहै जैसे शीतल चन्द्रमाके तेजसे पूर्ण आकाशको ॥ १७ ॥ इस संसाररूपी सागरमें यह जीव तृणके समान तभीतक बहाया जाताहै जबतक बुद्धिरूप नौ-

कासे बिचाररूपी तटपर स्थिरताको नहीं प्राप्त होता ॥ १८ ॥ जिस प्राणीने बिचारसे आत्मतत्वको जानलियाहै उसकी बुद्धि सम्पूर्ण मानस दुःखोंको ऐसे दूर करदेती है जैसे स्वच्छ और नीचेकी ओर बहता हुआ जल बालुकाको ॥१९॥ जैसे यह सुवर्ण है यह भस्महै ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान सुवर्ण जाननेवाले स्वर्णकार(सोनार)को होताहै ऐसाही ॥२०॥

अक्षयोयंमनागात्मास्वात्मन्यवगतेचिरम् ॥ भवतीतिनरस्येहमोहस्यावसरःकुतः ॥ २१ ॥ अपरिज्ञातसारेहिमनोंतर्यदिमुह्यते ॥ ज्ञातसारेत्वसंदिग्धमसतीकिलमूढता ॥ २२ ॥ हेजनाअपरिज्ञातआत्मा वोदुःखसिद्धये ॥ परिज्ञातस्त्वनंतायसुखायोपशमायच ॥ २३ ॥ मिश्रीभूतमिवानेनदेहेनोपहतात्मना॥ व्यक्तीकृत्यस्वमात्मानंस्वस्थाभवतमाचिरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञदृष्टिसे यह परिच्छिन्न जीव चिरकालके बिचारसे विवेकसे अपने स्वरूपके जाननेपर यह अक्षय अर्थात् देशकालवस्तुसे अपरिच्छिन्नरूप होजाताहै तब भला इसमें अज्ञानका अवसर कहां ॥ २१ ॥ यदि सार पदार्थको न जाननेवाले पुरुषका मन मोहको प्राप्त हो तो हो परन्तु सार वस्तुको जाननेवाले पुरुषमें तो निस्सन्देह यह मूढता असम्भव है ॥ २२ ॥ हे मनुष्यजन न जाननेसे यह तुमारा आत्मा दुःखकी सिद्धिकेलिये है और जाननेपर यही आत्मा अनन्त सुख और शान्तिकेलिये है ॥ २३ ॥ इस नष्ट देहसे आत्मा जो मिश्रित होगयाहै उसको पंचकोशके विवेककी दृष्टिसे पृथक् करके तुम लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

देहेनास्यनसंबंधोमनागेवामलात्मनः ॥ हेम्नःपंकलवेनेवतद्रतस्यापिमानवाः ॥ २५ ॥ पृथगात्मापृथग्देहीजलपद्मलवोपमौ ॥ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषनचकश्चिच्छृणोतिमे ॥ २६ ॥ जडधर्मिमनोयावद्गर्तकच्छपवत्स्थितम् ॥ भोगमार्गवदामूढंविस्मृतात्मविचारणम् ॥२७॥ तावत्संसारतिमिरंसेंदुनापिसवह्निना॥ अर्कद्वादशकेनापिमनागपिनभिद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे कीचडमें फसे हुये सुवर्णका कीचडके लेशसेभी संबन्ध नहीं है ऐसेही इस निर्मल आत्माका किंचित्भी देहके साथ सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥ ब्रह्म और जीव पद्मके आधार महाजल और पद्मके पत्रके ऊपर पडे हुये जलबिन्दुके समान भिन्न २ हैं अर्थात् ये दोनों उपाधिसे पृथक् हैं इस बातको मैं भुजा उठाकर घोषणा करताहुं परन्तु कोई नहीं सुनता ॥ २६ ॥ यह जडधर्मि मन दुर्वासनारूपी गढेमें कच्छपके समान लीन है और भोगके द्वार भूत इन्द्रियोंके विषयोंमें आत्माके बिचारको त्यागकर जबतक निमग्नहै ॥ २७ ॥ तबतक यह संसाररूपी अन्धकार चन्द्रमा और अग्निसहित द्वादश सूर्यसेभी किंचित्भी छिन्न नहीं होसकता ॥ २८ ॥

संप्रबुद्धेहिमनसिस्वांविवेचयतिस्थितिम् ॥ नैशमर्कोदयइवतमोहार्दंपलायते ॥ २९ ॥ नित्यमुत्तमबोधाययागशय्यागतंमनः ॥ बोधयेद्भवभेदायभवोह्यत्यंतदुःखदः ॥ ३० ॥ यथारजोभिर्गगनंयथाकमलमंबुभिः ॥ नलिप्यतेहिसंश्लिष्टैर्देहैरात्मातथैवच ॥ ३१ ॥ कर्दमादियथाहेम्नाश्लिष्टमितिपृथक्स्थितम् ॥ नांतःपरिणतिंयातिजडोदेहस्तथात्मना ॥ ३२ ॥

अर्थ—और मनके प्रबुद्ध होनेपर और अपनी यथार्थ स्थिति (शरीरादिसे पृथक्) के देखनेपर हृदयका अन्धकार ऐसे भागता है जैसे सूर्य्योदय होनेसे रात्रिका अन्धकार ॥ २९ ॥ जब यह मन देहादिके साथ अभेदरूपी शय्यापर शयन करै तब संसारके नाशकेलिये उत्तम ज्ञानवाले गुरूके निकट जाकर प्रश्न करै क्योंकि यह संसार अत्यन्त दुःखदायी है ॥ ३० ॥ जैसे धूलियोंसे आकाश जलसे कमल नहीं लिप्त होता ऐसेही मिले हुये देहोंसेभी आत्मा लिप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ जैसे कर्दम आदिकी मलिनता सुवर्णसे मिलीहुईभी पृथक् स्थितिको प्राप्त होती है न कि सुवर्णरूपसे ऐसेही जडदेहभी आत्मासे मिलनेपरभी आत्मरूपसे नहीं परिणत होता ॥ ३२ ॥

सुखदुःखानुभावित्वमात्मनीत्यवबुध्यते ॥ असत्यमेवगगनेबिंदुताम्लानतेयथा ॥ ३३ ॥ सुखदुःखेनदेहस्यसर्वातीतस्यनात्मनः ॥ एतेह्यज्ञानकस्यैवतस्मिन्नष्टेनकस्यचित् ॥ ३४ ॥ नकस्यचित्सुखंकिंचिद्दुःखंचनचकस्यचित् ॥ सर्वमात्ममयंशांतमनंतंपश्यराघव ॥ ३५ ॥ इमायाःपरिदृश्यंतेविततःसृष्टिदृष्टयः ॥ पयसीवतरंगास्तेपिच्छंव्योम्नीवचात्मनि ॥ ३६ ॥

अर्थ—विषयके सुख तथा दुःखका अनुभव आत्मामें जो भान होताहै यह ऐसे असत्यहै जैसे आकाशमें बिन्दुता और मलिनताकी प्रतीति ॥ ३३ ॥ सुख दुःख न तो देहको हैं और न सर्वातीत आत्माको किन्तु यह दोनों अज्ञानहीको हैं और अज्ञानके नष्ट होनेपर किसीको नहीं है ॥ ३४ ॥ न किसीको सुखहै और न दुःख हे रामचन्द्रजी ! यह सब आत्माका विवर्त है अर्थात् तुम सबको अनन्त नित्य प्रशान्त आत्मरूप देखो ॥ ३५ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आत्मामें जो यह विशालरूप सृष्टिकी दृष्टि देख पडती हैं वे ऐसी हैं जैसी जलमें तरंग वा अर्ध-नेत्र मूंदनेपर आकाशमें मोरके पंख ॥ ३६ ॥

यथामणिर्ददात्यात्मच्छायाःस्वयमकारणम् ॥ तेजोमयीस्तथैवायमात्मासृष्टीःप्रयच्छति ॥ ३७ ॥ आत्माजगच्चसुमतेनैकंनद्वैतमप्यसत् ॥ आभासमात्रमेवेदमित्थंसंप्रतिजृंभते ॥ ३८ ॥ समस्तंखल्विदं ब्रह्मसर्वमात्मैवमाततम् ॥ अहमन्यदिदंचान्यदितिभ्रांतित्यजानघ ॥ ३९ ॥ ततेब्रह्मघनेनित्येसंभवंतिनकल्पनाः ॥ विच्छित्तयःपयोराशौयथारामनसन्मयाः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे मणि अपनी तेजोमयी कान्ति निष्कारण बिना क्रियाके फैलाती है ऐसेही आत्मा अपनी सत्ता मात्रसे सृष्टियोंका प्रसार करताहै ॥ ३७ ॥ हे सुमते रामजी ! आत्मा और जगत् ये दोनों अद्वयरूप नहीं हैं और नानारूपभी नहीं है क्योंकि जगत् असत्यरूपहै यह सब इसीप्रकार अज्ञानकालमें भासताहै ॥ ३८ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त ब्रह्मरूपही है. हे पापशून्य रामजी ! मैं अन्यहूं यह जगत् अन्यहै इस भ्रांतिको त्यागो ॥३९॥ देश-काल और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य ब्रह्ममें यह कल्पना ऐसे नहीं सम्भवहै जैसे समुद्रमें तरंगोंके विच्छेद ॥ ४० ॥

एकस्मिन्नेवसर्वस्मिन्परमात्मनिवस्तुनि ॥ द्वितीयाकल्पनानास्तिवह्नौहिमकणोयथा ॥ ४१ ॥ भावयन्नात्मनात्मानंचिद्रूपेणैवचिन्मयम् ॥ ऋजूज्ज्वलमयेह्यात्मास्वयमात्मनिजृंभते ॥ ४२ ॥ नशोकोस्तिन मोहोस्तिनजन्मास्तिनजन्मवान् ॥ यदस्तीहतदेवास्तिविज्वरोभवराघव ॥ ४३ ॥ निर्द्वंद्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥ अद्वितीयोविशोकात्माविज्वरोभवराघव ॥ ४४ ॥

अर्थ–एकही सर्वरूप परमात्म वस्तुमें द्वितीय कल्पनाकी सम्भावना ऐसे नहीं है जैसे अग्निमें हिमकणकी ॥ ४१ ॥ चित्‌रूप आत्मासे चित्‌रूप आत्माकी भावना करता हुआ माया रचित कुटिलतासे शून्य आत्म स्वरूपमें आत्मा स्वयं प्रकाशित होताहै ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! न शोक न मोह न जन्म और न जन्मवान्‌है जो है वह है ऐसा जानकर तुम सन्ताप रहित हो ॥ ४३ ॥ हे राम ! शीत उष्ण आदि द्वन्द्वके विक्षेपसे रहित, नित्य सत्वमें स्थित होनेके कारण रजोगुण और रजोगुणके विक्षेपसे रहित, अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तके रक्षणकी निमग्नतासे शून्य, आत्मवान्, अद्वितीय, शोकरहित, तथा सन्तापरहित होओ ॥ ४४ ॥

समःस्वस्थःस्थिरमतिःशांतशोकमनामुनिः ॥ मौनीवरमणिस्वच्छेविज्वरोभवराघव ॥ ४५ ॥ विविक्तःशांतसंकल्पोधीरधीर्विजिताशयः ॥ यथाप्राप्तानुवर्तीचविज्वरोभवराघव ॥ ४६ ॥ वीतरागोनिरायासोविमलोवीतकल्मषः ॥ नादातानपरित्यागीविज्वरोभवराघव ॥ ४७ ॥ विश्वातीतपदंप्राप्तःप्राप्तप्राप्तव्यपूरितः ॥ पूर्णार्णववदक्षुब्धोविज्वरोभवराघव ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे राघव ! समस्वस्थ, स्थिर, स्थिर बुद्धि, शोकरहित; शान्त मन, मौन, और उत्तम मणिके सदृश स्वच्छ होके सन्तापरहित होओ ॥ ४५ ॥ अविद्या तथा उसके कार्य्यसे विनिर्मुक्त, आन्त संकल्प, धीर बुद्धि, स्वाधीन चित्त, और यथा प्राप्त वस्तुसे व्यवहारवान् होके हे राघव ! सन्ताप रहित होओ ॥ ४६ ॥ वीतराग चिन्ता शून्य, विमल, पापराहित, और न किसीके पदार्थको ग्रहणकर्ता वा त्यागी होके सन्तापराहित होओ ॥ ४७ ॥ विश्वातीत पदको प्राप्त होके, और प्राप्तव्य वस्तुकी प्राप्तिसे पूर्ण, और पूर्ण समुद्रके सदृश विक्षोभरहित होके सत्तापरहित होओ ॥ ४८ ॥

विकल्पजालनिर्मुक्तोमायांजनविवर्जितः ॥ आत्मनात्मनितृप्तात्मविज्वरोभवराघव ॥ ४९ ॥ अनंतापारपर्यंतवपुरात्मविदांवर ॥ धराधरशिरोधीरोविज्वरोभवराघव ॥ ५० ॥ यथाप्राप्तानुभवनात्सर्वत्रानभिवांछनात् ॥ त्यागादानपरित्यागाद्विज्वरोभवराघव ॥५१॥ आत्मन्येवात्मनौदार्यंभजपूर्णइवार्णवः ॥ आत्मन्येवात्मनाह्लादंभजपूर्णेंदुबिंबवत् ॥ ५२ ॥ विश्वप्रपंचरचनेयमसत्यरूपानासत्यरूपमनुधावतिरामतज्ज्ञः ॥ तज्ज्ञोसिशांतकलनोसिनिरामयोसिनित्योदितोसिभवसुंदरशांतशोकः ॥ ५३ ॥ एकातपत्रमवनौगुरुणोपदिष्टंसम्यक्सुपालयचिरंसमयेहदृष्ट्या ॥ राज्यंसभस्तगुणरंजितराजलोकस्त्यागोनयुक्तइहकर्मसुनाविरागः ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रशमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—विकल्पोंके जालसे विनिर्मुक्त, मायाके अंजनसे वर्जित, और आत्मासे आत्मामें तृप्त होके हे रामजी ! सन्तापरहित होओ ॥ ४९ ॥ हे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! अनन्त अपार शरीरवाले (सर्वव्यापी चेतनरूपसे)

और मेरूके समान धीर (सहनशील) होके सन्तापरहित होओ ॥ ५० ॥ हे रामजी ! यथा प्राप्त वस्तुके अनुभवसे और सर्वत्र वांच्छा न करनेसे, तथा त्याग और ग्रहणके परित्यागसे तुम सन्तापरहित होजाओ ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! समुद्रके सदृश अपने आत्मासे आत्मामें पूर्ण काम होओ, और पूर्ण चन्द्र बिम्बके सदृश सर्व सन्तापसे रहित शान्तिसुखके आश्रयको ग्रहण करो ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! यह संसारके प्रपञ्चकी रचना असत्यरूपहै, और असत्यताको जाननेवाला पुरुष असत्यरूपके पीछे नहीं दौडता, हे रामजी ! तत्वज्ञहो, कल्पनारहितहो, आधिव्याधि वर्जितहो और नित्य आत्मज्ञानके उदयसहितहो, इसलिये शान्त शोक और सुन्दर होजाओ ॥ ५३ ॥ और अपने गुणोंसे समस्त राजाओंको तथा प्रजाओंको रञ्जित (प्रसन्न) करते हुये पितासे दिये हुये एकछत्र राज्यको समदृष्टिसे चिरकालतक अच्छी तरहसे पालन करो, क्योंकि पारब्ध कर्म्मोंसे अवश्य भोक्तव्य कर्म्मोंमें तथा उनके फलोंमें त्याग और राग दोनों योग्य नहीं है ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे प्रशमोपदेशो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस ६ सर्गमें अन्तिम जन्मवाले मोक्ष भागियोंकी पूर्वकालकी कर्मकी गतियोंको कहके जीवन्मुक्तिको सिद्धिके लिये गुणोंकी प्राप्तिमें सामान्य क्रमका वर्णन करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इमंविश्वपरिस्पंदंकरोमीत्यस्तवासनम् ॥ प्रवर्त्ततेयःकार्येषुसमुक्तइतिमेमतिः ॥ १ ॥ पौरुषींतनुमाश्रित्यकेचिदेतत्क्रियारताः ॥ स्वर्गान्नरकमायांतिस्वर्गंचनरकात्पुनः ॥२॥ केचित्स्वकर्मणिरताविरताअपिकर्मणः ॥ नरकान्नरकंयांतिदुःखाद्दुःखंभयाद्भयम् ॥ ३ ॥ केचित्स्ववासनातंतुबद्धाःकर्मफलोदितः ॥ तिर्यक्त्वात्स्थावरतांयांतितिर्यक्त्वंततः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—श्रुति स्मृति तथा सदाचारसे प्राप्त इस संपूर्ण संसारके व्यवहारको अयस्कान्त मणिके समान आत्माकी सन्निधिमात्रसे मैं करताहुं इसप्रकार वासनारहित जो संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होताहै वह मुक्तहै ऐसी मेरी मति (मेरा सिद्धान्त) है ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस मनुष्य शरीरको पाकरभी जो कोई मूढ आसक्तिरहित कर्मोंके अनुष्ठानरूप क्रियामें तत्पर नहीं हैं वे निन्दित कर्म्मोंके शेष रहजानेसे स्वर्गसे नरकमें जाते हैं और उत्तम कर्म्मोंसे पुनः नरकसे स्वर्गमें जाते हैं ॥ २ ॥ हे रामजी ! कोई मनुष्य तो ऐसे हैं कि निषिद्ध कर्मोंमें अति तत्पर और शास्त्रविहित कर्मोंसे विरक्त रहते हैं वे एक नरकसे दूसरे नरक और एक दुःखसे अन्य दुःखोंमें और एक भयसे दूसरे भयमें प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और कोई अपने वासनाके सूत्रमें बंधे हुये नरकमें भोगे हुये दुष्कर्मोंके शेष फलोंसे तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होके तिर्यक्योनिसे स्थावर होते हैं और स्थावरसे पुनः तिर्यकयोनिमें प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

केचिदात्मविदोधन्याविचारितमनोदृशः ॥ विच्छिन्नतृष्णानिगडायांतिनिष्केवलंपदम् ॥ ५ ॥ पुराकतिपयान्येवभुक्त्वाजन्मानिराघव ॥ अस्मिञ्जन्मनियोमुक्तस्तस्माद्राजससात्विकः ॥ ६ ॥ जातोसौवृद्धिमभ्येतिपार्वणश्चंद्रमाइव ॥ कुटजंप्रावृषीवैनंसौभाग्यमनुगच्छति ॥ ७ ॥ यस्येदंजन्मपाश्चात्यंतमाश्वेवमहामते ॥ विशंतिविद्याविमलामुक्तावेणुमिवोत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोई आत्मज्ञानी शुद्ध सात्विक धन्य पुरुष अपने मनके साक्षीभूत आत्माको विचार करके तृष्णारूप बडी कटनेसे परम कैवल्य पदको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ और जो पुरुष उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ कुछ मनुष्य जन्मोंको भोग करके इसी जन्मसे मुक्त होजाते हैं इसलिये वे राजस सात्विक कहलाते हैं ॥ ६ ॥ और उत्पन्न होतेही पूर्णिमाके चन्द्रके समान वृद्धिको प्राप्त होताहै, और वर्षाकालमें कुटजवृक्षमें पुष्पकी शोभाके समान साधन चतुष्टय संपत्तिरूप सौभाग्य उसके पीछे २ चलताहै ॥ ७ ॥ हे महामते रामजी ! जिस मोक्षभागी पुरुषका यह अन्तिम जन्महै उसमें ब्रह्म विद्याके उपायभूत संपूर्ण निर्म्मल विद्या ऐसे प्रवेश करती हैं जैसे उत्तम वांसमें मुक्ता ॥ ८ ॥

आर्यताहृद्यतामैत्रीसौम्यताकरुणाज्ञता ॥ समाश्रयंतितंनित्यमंतःपुरमिवांगनाः ॥ ९ ॥ यःकुर्वन्सर्वकार्याणिपुष्टेनष्टेथतत्फले ॥ सधस्सन्सर्वकार्येषुनतुष्यतिनशोचति ॥ १० ॥ तमांसीवदिवायांतितत्रद्वंद्वानिसंक्षयम् ॥ शरदीवघनास्तत्रगुणागच्छंतिशुद्धताम् ॥११॥ पेशलाचारमधुरंसर्वेवांछंतितंजनाः ॥ वेणुंमधुरनिध्वानंवनेवनमृगाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रेष्ठता रमणीयता मैत्री सज्जनता करूणा और परोक्ष ज्ञान इत्यादि गुण उस पुरुषका नित्य ऐसे आश्रय करते हैं जैसे अन्तःपुरका अंगना (स्त्रियां) ॥ ९ ॥ जो पुरुष सब कार्योंको करता हुआ उनके फलके बढने वा नष्ट होनेपर समानरूप रहता हुआ न प्रसन्न होताहै और न शोच करताहै ॥ १० ॥ उस पुरुषमें सम्पूर्ण विषयके सुख तथा दुःख ऐसे क्षयको प्राप्त होते हैं जैसे दिनमें अन्धकार और सम्पूर्ण गुण उसमें ऐसे शुद्ध होजाते हैं जैसे शरत्कालमें मेघ ॥ ११ ॥ जो पुरुष शास्त्रोक्त कोमल आचारोंसे सुन्दरहै उसको सब प्राणी ऐसे चाहते हैं जैसे वायुसे पूर्ण मधुर शब्द करते हुये वांसको वनमें वनके मृग ॥ १२ ॥

नरंपाश्चात्यजन्मानमेवंप्रायागुणश्रियः ॥ जातमेवानुधावंतिबलाकाइववारिदम् ॥१३॥ ततोसौगुणसंपूर्णोगुरुमेवानुगच्छति ॥ सतमेवंविवेकेवैनियोजयतिपावने ॥ १४ ॥ विचारवैराग्यवताचेतसागुणशालिना ॥ देवंपश्यत्यथात्मानमेकरूपमनामयम् ॥ १५ ॥ ततोत्ययंविचारेणचारुणाशांतचेतसा ॥ प्रबोधनायप्रथमंमनोमननमांतरम् ॥ १६ ॥ येहिपाश्चात्यजन्मानस्तेहिसुप्तंमनोमृगम् ॥ प्रबोधयंतिप्रथमंगुणहीनंमहागुणाः ॥ १७ ॥ प्रथितगुणान्सुगुरूंन्निषेव्ययत्नादमलधियाप्रविचार्यचित्तरत्नम् ॥ गतिममलामुपयांतिमानवास्तेपरमवलोक्यचिरंप्रकाशमंतः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अन्तिम जन्मवाले पुरुषके पीछे पूर्वोक्त गुणकी श्री ऐसे दौडती है जैसे मेघके पीछे बककी पंक्ति ॥ १३ ॥ इस गुणोंकी सम्पत्तिके अनन्तर गुणोंसे पूर्ण यह पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाताहैं और वे गुरु पवित्र आत्म और अनात्मके विवेकमें उसे नियुक्त करते हैं ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् विचार और वैराग्यसे सम्पन्न और पूर्वोक्त गुणोंसे शोभायमान चित्तसे वह पुरुष आनन्दैकरस अपने आत्मस्वरूपको देखताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार उत्तम और शान्त चित्तयुक्त विचारसे प्रथम अपने अन्तःकरणको ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मननमें वह पुरुषनियुक्त करताहै ॥ १६ हे रामजी ! जो पुरुष अन्तिम जन्मवाले हैं वे महागुणी महात्मा अपने सोये हुये मनरूपी मृगको प्रथम ऐसा बोधन करते हैं कि जिसमें वह निर्गुण ब्रह्मरूप होजाताहै ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध जीवन्मुक्तोंके गुणसे शोभित उत्तम गुरूओंकी प्रयत्नसे सेवा करके उनकी दर्शाई हुई युक्तियोंसे निर्म्मल बुद्धिद्वारा चित्तके अन्तर्गत आत्मारूपी रत्नकी परीक्षा करके अन्तःकरणका प्रकाशक जो ब्रह्महै उसको चिरकालतक अनुभव करके वे महात्माजन निर्म्मल परमपुरुषार्थरूप गतिको अपने स्थानहीमें प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रथमोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस ७ के सर्गमें कुछ शुद्ध चित्तवाले पुरुषको अपनेही विचारसे आकाशके फलके पतनके सदृश ज्ञानकी प्राप्ति वर्णन की गई हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एषतावत्क्रमःप्रोक्तःसामान्यःसर्वदेहिनाम् ॥ इममन्यंविशेषंत्वंशृणुराजीवलोचन ॥ १ ॥ अस्मिन्संसारसंरंभेजातानांदेहधारिणाम् ॥ अपवर्गक्षमौराममद्वाविमावुत्तमौक्रमौ २ एकस्तावद्गुरुप्रोक्तादनुष्ठानाच्छनैःशनैः ॥ जन्मनाजन्मभिर्वापिसिद्धिदःसमुदाहृतः ॥ ३ ॥ द्वितीयस्त्वात्मनैवाशुकिंचिद्व्युत्पन्नचेतसा ॥ भवतिज्ञानसंप्राप्तिराकाशफलपातवत् ॥ ४ ॥ नभःफलनिपाताभज्ञानसंप्रतिपत्तये ॥ तत्रेमंशृणुवृत्तांतंप्राक्तनंकथयामिते ॥ ५ ॥ शृणुसुभगकथांमहानुभावाव्यपगतपूर्वशुभाशुभार्गलौघाः ॥ खपतितफलवत्परंविवेकंचरमभवाविमलंसमश्नुवंति ॥ ६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे आकाशफलप्राप्ति व ज्ञानसंप्राप्ति क्रमसूचनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह पूर्वोक्त क्रम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये साधारण मैंने कहाहै तुम इस अन्य विशेषको सुनो ॥ १ ॥ इस संसारके कार्यमें उत्पन्न प्राणियोके लिये आगे कहे हुये दो क्रम मोक्ष प्राप्त करनेमें

समर्थ हैं ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम तो यहहै कि गुरूके कहे मार्गका धीरे २ अनुष्ठान करना एक जन्ममें अथवा कई जन्ममें सिद्धि देनेवाला कहागयाहै ॥ ३ ॥ और दूसरा तो वहहै कि जिससे कुछ व्युत्पन्न चित्तवाले पुरुषको अपने आप आत्माके विचारसे आकाशके फलके पतनके समान शीघ्र ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! आकाशके फलके पतनके समान ज्ञानकी प्राप्तिके लिये यह प्राचीन दूसरा वृत्तांत सुनों मैं तुमसे कहताहुं ॥ ५ ॥ हे सुभग रामचन्द्रजी! तुम उस कथाको सुनो जिससे कि पूर्वजन्मके शुभ अशुभ कर्मरूपी अर्गलाओंसे निर्मुक्त अन्तिम जन्मवाले महानुभाव पुरुष आकाशके फलके पतनके समान परमविवेकको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे आकाश फलप्राप्ति व ज्ञान संप्राप्ति क्रमसूचनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस ८ के सर्गमें वसन्तकालमें बनमें कहीं विहार करते हुये जनकराजाने सिद्धोंसे गान किये हुये शुभश्लोक सुना उनका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अस्त्यस्तमितसर्वापद्युदत्संपद्दराधीः ॥ विदेहानांमहीपालोजनकोनाम वीर्यवान् ॥१॥ कल्पवृक्षोर्थिसार्थानांमित्राब्जानांदिवाकरः ॥ माधवोबंधुपुष्पाणांस्त्रीणांमकरकेतनः २ द्विजकैरवशीतांशुर्द्विषत्तिमिरभास्करः ॥ सौजन्यरत्नजलधिर्भुवंविष्णुरिवास्थितः ॥ ३ ॥ प्रफुल्लबाललतिकेमंजरीपुंजपिंजरे ॥ सकदाचिन्मधौमत्तकोकिलालापलासिनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रहित और सब प्रकारकी सम्पत्तियोंकी उदयताको प्राप्त उदार बुद्धि पराक्रमी विदेहोंका जनक नाम राजाहै (था) ॥ १ ॥ वह याचकोंके समूहका कल्पवृक्ष, मित्ररूप कमलोंका सूर्य्य, बन्धुरूप पुष्पोंका वसन्तऋतु स्त्रियोंको कामदेव रूपथा ॥ २ ॥ ब्राह्मणरूप कुमुदों (रात्रि कमलों) का चन्द्रमा, शत्रुरूप अन्धकारका सूर्य्य, और सुजनतारूप रत्नोंका समुद्र, और विष्णु (आप) के सदृश पालनके अर्थ अवतार लिये हुये महाराजथा ॥ ३ ॥ कदाचित् विकसित कोमल लताओंसे शोभित तथा लताके पुंजोंसे पिंजरके समान, और मत्त कोकिलके आलापसे नृत्य करते हुयेके समान स्थित वसन्तऋतुमें ॥ ४ ॥

ययौकुसुमिताभोगंसुविलासलतांगनम् ॥ लीलयोपवनंकांतंनंदनंवासवोयथा ॥ ५ ॥ तस्मिन्वरवने ह्येकेसरोद्दाममारुते ॥ दूरस्थानुचरःसानुकुंजेषुविचचारह ॥ ६ ॥ अथशुश्रावकस्मिंश्चित्तमालवन गुल्मके ॥ सिद्धानामदृश्यानांस्वप्रसंगादुदाहृताः ॥७॥ विविक्तवासिनांनित्यंशैलकंदरचारिणाम् ॥ इमाःकमलपत्राक्षगीतागीतात्मभावनाः ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे परिपूर्ण, उत्तम विलासवती लतारूप अङ्गनासहित, और अति रमणीय बनमें क्रीडाके लिये वह राजा ऐसे गया जैसे अपने नन्दनमें इन्द्र ॥ ५ ॥ रमणीय तथा केशरोंसे सुगन्धयुक्त पराग ले जानेमें समर्थ अर्थात् शीत मन्द तथा सुगन्ध वायुसे शोभित बनमें अपने अनुचरोंको दूर रखके पर्वतके कुंजोंमें बिचारने लगा ॥ ६ ॥ हे कमलनेत्ररामजी ! इसके अनन्तर किसी तमालबनके लता कुंजोंमें अदृश्य, एकान्त निवासी और सदा पर्वतकी कन्दराओंमें बिहार करनेवाले सिद्धोंसे अपने प्रसंगसे कही हुई, और श्रुति स्मृति प्रतिपादित आत्माका साक्षात्कार करानेवाली इन वक्ष्यमाण गाथाओंको सुना ॥ ८ ॥

॥ सिद्धाऊचुः ॥ द्रष्टृदृश्यसमायोगात्प्रत्ययानंदनिश्चयः ॥ यस्तंस्वमात्मतत्त्वोत्थंनिःस्पंदंसमुपास्महे ॥९॥ अन्येऊचुः ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानित्यक्त्वावासनयासह ॥ दर्शनप्रथमाभासमात्मानंसमुपास्महे॥१० अन्येऊचुः ॥ द्वयोर्मध्यगतंनित्यमस्तिनास्तीतिपक्षयोः ॥ प्रकाशनंप्रकाश्यानामात्मानंसमुपास्महे ॥११॥ अन्येऊचुः ॥ यस्मिन्सर्वयस्यसर्वयतःसर्वयस्माइदम् ॥ येनसर्वयद्धिसर्वतत्सत्यंसमुपास्महे १२

अर्थ—सिद्ध बोले-चक्षुष् आदि इन्द्रियोंके द्वारा विषयके प्रमाताका स्रक्चन्दन और वनिता आदि विषयोंके संयोगसे विषयाकार बुद्धि वृत्तिमें प्रसिद्ध जो आनन्दरूपका निश्चयहै उसी निरतिशय भूमानन्दसे आविर्भूत अपने आत्मस्वरूपको हम निर्विकल्प समाधिसे बाह्य तथा अन्तःकरणकी चेष्टाको रोकर निरन्तर उपासना (अनुभव) करते हैं ॥ ९ ॥ और सिद्ध बोले-द्रष्टा, दर्शन, और दृश्य, रूप त्रिपटी तथा वासना (सुषुप्तिकालिक अज्ञान) को त्यागकर चाक्षुष् वा मानस आदि वृत्तिके पूर्वही जो चक्षुष् आदि इंद्रिय जनित अथवा मानस ज्ञानके उत्पत्तिका साक्षी-

रूपसे भासमान जो आत्मरूपहै अर्थात् बीजसहित त्रिपुटीके त्यागसे तुरीय जो आत्महै उसीकी नित्य उपासना करते हैं ॥ १० ॥ दर्शन (चाक्षुष आदि ज्ञान) के प्रथम आभासमान साक्षीरूपकी सत्ताके विषयमें अस्ति (है) और नास्ति (नहीं है) ऐसा विवाद करते हैं उनकीभी अस्तिता तथा नास्तिता साक्षी बिना नहीं बनसकती इसलिये अस्ति नास्ति इन दोनों पक्षोंमें साक्षीरूपसे मध्यगत जो प्रकाश्य पदार्थोंका प्रकाशकहै अथवा अस्तित्व जगत्की प्रकटाऽवस्था (कार्य्यरूपता) और नास्तिता तिरोभावाऽवस्था इन दोनों पक्षोंका एककालमें असम्भव होनेसे दोनों पक्षोंमें अनुगत सन्मात्ररूपसे जो सब प्रकाशके योग्य पदार्थका प्रकाशक आत्मतत्वहै उसकी नित्य उपासना (ध्यान) करते हैं॥११॥अन्य बोले–जिस परमात्मामें सब कुछहै अर्थात् सर्वाधार, जिसका सब कुछहै अर्थात् सबका स्वामी, जिससे सबकुछ, सबकी उत्पत्तिका अवधिभूत जिसके अर्थ यह सबकुछ, अर्थात् जगत् संघात पुरुषके अर्थ है, और जिससे सबकुछ अर्थात् जो सबका तथा कर्ता कारणहै और जो सबकुछ है अर्थात् मायासे जो सम्पूर्ण जगत्के व्यवहारका निर्वाहक और सर्वरूपहै उस सत्यरूप परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ अन्येऊचुः ॥ अशिरस्कंहकारांतमशेषाकारसंस्थितम् ॥ अजस्रमुच्चरंतंस्वंतमात्मानमुपास्महे॥१३॥ ॥ अन्येऊचुः ॥ संत्यज्यहृद्गुहेशानंदेवमन्यंप्रयांतिये ॥ तेरत्नमभिवांछंतित्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥ १४ ॥ अन्येऊचुः ॥ सर्वाशाःकिलसंत्यज्यफलमतदवाप्यते ॥ येनाशाविषवल्लीनांमूलमालाविलूयते ॥१५॥ अन्येऊचुः ॥ बुद्धाप्यत्यंतवैरस्यंयःपदार्थेषुदुर्मतिः॥बध्नातिभावनांभूयोनरोनासौसगर्दभः ॥ १६ ॥ अन्येऊचुः ॥ उत्थितानुत्थितानेतानिंद्रियाहीन्पुनःपुनः ॥ हन्याद्विवेकदंडेनवज्रेणेवहरिर्गिरीन् ॥ १७ ॥ अन्येऊचुः ॥ उपशमसुखमाहरेत्पवित्रंशमवशतःशममेतिसाधुचेतः ॥ प्रशमितमनसःस्वकेस्वरूपेभवतिसुखेस्थितिरुत्तमाचिराय ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
उपशमप्रकरणे सिद्धगीतानामाष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—अन्यजन बोले–अकार जिसके आदिमें और हकार जिसके अंतमें ऐसे अहंपदके वाच्य, और अशेष (सम्पूर्ण) वस्तुओंके प्रकाशक जो वेदशास्त्रादि शब्दजालके प्रकृतिभूत सम्पूर्ण अक्षरोंका अकारसे आदि लेके हकारान्त समुदायके अन्तर्गत होनेसे अशेषाकार (सर्वाकार) रूपसे संस्थित, अथवा हननके अयोग्य वा सर्वत्र व्याप्त अथवा जिसमें अकारका शेष नहीं है ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें स्थित, और क्रियमाण व्यवहारोंमें निरन्तर अहंकारकी उपाधिके त्यागसे अहं पदार्थको कहनेवाले अपने आत्मस्वरूपकी नित्य भावना करते हैं ॥ १३ ॥ अन्यजन बोले–हृदयरूप गुहाका स्वामी " अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः " अंगुष्ठमात्र सबका अन्तरात्म पुरुष सब जनोंके हृदयमें प्रविष्टहै (अर्थात् प्रथमसे सर्वत्रहै) जो देवहै उसको त्यागकर जो अन्य देवके निकट जाते हैं, वे मानों हस्तमें स्थित कौस्तुभमणिको त्यागकर अन्य रत्नकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ संपूर्ण आशाओंको त्यागकर हृदयमें स्थित ज्ञानरूप ब्रह्म प्राप्त होताहै और जिस निरतिशय आनन्दके लाभसे आशारूप विषकी लताओंकी मूलमाला अर्थात् वासनाजालसे जटिल हृदयकी ग्रन्थियोंका मूलही छिन्न होजाताहै ॥ १५ ॥ अन्य बोले–पदार्थोंमें अत्यन्त नीरसत्ताको जानकरभी जो दुर्बुद्धि पदार्थोंमें पुनः भावना बांधताहै वह मनुष्य नहीं है किन्तु गर्दभ है ॥१६॥ अन्य बोले–जब २ इन्द्रियरूप सर्प उमडे तब २ उनको विवेकरूप दण्डसे ऐसे नाश करै जैसे इन्द्रबज्रसे पर्वतोंको ॥ १७ ॥ अन्य बोले–बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियोंके व्यापारके उपशमसे विक्षेपजनित दुःखके उपशमवत् आत्मसुखको सम्पादन करना चाहिये और उपशमसे इन्धनरहित अग्निके समान चित्त भलीभांति शान्त होजाताहै और जिसका चित्त शान्त होगयाहै उसकी सुखरूप परमार्थभूत अपने आत्मामें चिरकालकेलिये उत्तम स्थिति होती है१८

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
भाषानुवादे सिद्धगीतान्तनामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें सिद्धोंकी गीता सुनके वैराग्यसे गृहपर आये हुये राजाके पदार्थोंके विचारसे मनका निर्णय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसिद्धगणोद्गीतागीताःश्रुत्वामहीपतिः ॥ विशादमाजगामाशुभीरूरणरवादिव ॥ १ ॥ जगामपरिवारंस्वमाकर्षन्स्वगृहंप्रति ॥ स्वतीरवृक्षानुगतःसरिदोघइवार्णवम् ॥ २ ॥ प

रिवारमशेषेणविसृज्यस्वंस्वमालयम् ॥ एकएवारुरोहाग्र्यंगृहमर्कइवाचलम् ॥ ३ ॥ तत्रप्रोड्डयनालोलखगपक्षातचंचलाः ॥ आलोकयँल्लोकगतीर्विललापेदमाकुलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-राजा जनक इसप्रकार सिद्धोंसें गान की हुई गीताको श्रवण करके शीघ्र विषादको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे भीरूपुरुष रणके शब्दको सुनके ॥१॥ वह राजा अपने परिवारको खींचता हुआ अपने गृहके प्रति ऐसे गया जैसे अपने तीरके वृक्षोंके साथ नदीका वेग समुद्रके प्रति ॥ २ ॥ सम्पूर्ण परिवार (बन्धु सेवक आदि वर्ग) को उनके २ स्थानको बिदा करके एकाकी अपने गृह (अटारी) पर ऐसे चढा जैसे उदयाचलपर सूर्य्य ॥ ३ ॥ वहांपर जाके उडनेके समय चंचल पक्षियोंके पक्ष (पंख) मूलके समान अति चंचल संसारकी विचित्र गतियोंको देखते हुये वक्ष्यमाण रीतिसे व्याकुल होके विलाप किया ॥ ४ ॥

हाकष्टमतिकष्टासुलोकलोलदशास्वयम् ॥ पाषाणेष्विवपाषाणाआलुठाभिबलादहम् ॥ ५ ॥ अपर्यंतस्यकालस्यकोप्यंशोजीव्यतेमया ॥ तस्मिन्भवंनिबध्नामिधिङ्मामधमचेतनम् ॥ ६ ॥ कियन्मात्रमिदंनामर ज्यमाजीवितंमम ॥ किमेतेनविनाडुःखंतिष्ठामिहतधीर्यथा ॥ ७ ॥ आदावंतेप्यनंतोहंमध्येपेलवजीवितः ॥ बालश्चित्रेंदुनेवाहंकिंमुधाधृतिमास्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—हा ! अति खेदकी बात है कि जीवोंकी जन्ममृत्यु वृद्धाऽवस्था और भय आदिसे कष्टदायिनि चंचल दशाओंमें पाषाणोंपर पाषाणके समान बलात्कार मैं लुढकता फिरताहुं ॥ ५ ॥ इस अपार कालके किसी अंशमें मेरा जीवन है, यदि उस अल्पकालके जीवनमें मैं आशा बांधू तो मुझ अधम चेतनको धिक्कारहै ॥ ६ ॥ यह जीवनपर्य्यन्त मेरा राज्य क्या वस्तुहै इतनेहीसे सन्तुष्ट होके नष्ट बुद्धिके सदृश भावी दुःखके नाशकी चिन्ताके बिना मैं क्यों पडाहुं ॥ ७ ॥ हमारा स्वरूप अनादि और अनन्तहै मध्यमें केवल अल्प जीवन शरीरके सम्बन्धसे है तो चित्रमें लिखित चन्द्रमाको चन्द्रबुद्धिसे ग्रहण किये हुये बालकके समान अनात्मा देहादिको आत्माके समान ग्रहण किये हुये मैं क्यों धैर्य्यको प्राप्तहुं ॥ ८ ॥

प्रपंचरहितेनाहमिंद्रजालेनजालिना ॥ हाकष्टमतिमुग्धाभिकेनस्मिपरिमोहितः ॥ ९ ॥ यद्वस्तुयच्चवारम्यंयद्दारमकृत्रिमम् ॥ किंचित्तदिहनास्त्येव किं निष्ठहमतिर्मम ॥१०॥ दूरस्थमप्यदूरस्थंयन्मेमनसिवर्त्तते ॥ इतिनिश्चित्यबाह्यार्थभावनांसंत्यजाम्यहम् ॥ ११ ॥ लोकाजवंजवाभावःसलिलावर्त्तभंगुरः ॥ दृष्टोद्यापिहिदुःखायकेयमास्थासुखंप्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—हा ! खेद है किस प्रपंचरहित किस ऐन्द्रजालिकके इन्द्रजालसे मैं पर मोहितहूं, और अत्यन्त मोहको प्राप्त होरहाहूं ॥ ९ ॥ जो वस्तु सत्य सुखरूप अपरिच्छिन्न और अत्यन्त है वह इस संसारमें हैही नहीं जिसमें कि हमारी बुद्धिको विश्राम मिले ॥ १० ॥ मूढोंकी दृष्टिमें दूरस्थरूपसे प्रसिद्धभी जो सत्य वस्तुहै वह समीपमेंही स्थित है, क्योंकि वह मेरे मनमें स्थितहै ऐसा निश्चय करके बाह्य पदार्थकी भावनाको मैं त्यागताहूं ॥ ११ ॥ जीवोंके भोगके अर्थ धनके अर्जनादिमें प्रवृत्तिरूप वेग वारम्वार जलके आवर्तके समान क्षणभंगुर देखागयाहै, और इस समयमेंभी धनादि केवल दुःखकेलियेही हैं, इसलिये विषयसुखमें मेरा क्या विश्वास हो ॥ १२ ॥

प्रत्यब्दंप्रतिमासंचप्रत्यहंचप्रतिक्षणम् ॥ सुखानिदुःखपिंडानिदुःखानितुपुनःपुनः ॥१३॥ परामृष्टंविशिष्टंहिदृष्टंनष्टंनभावितम् ॥ अत्रस्थंनतदस्तीहसतांयत्रास्तुसंस्थितिः ॥ १४ ॥ अद्ययेमहतांमूर्ध्नितेदिनैर्निपतंत्यधः ॥ हतचित्तमहत्तायांकैषविश्वस्तताबत ॥ १५ ॥ अरज्जुरेवबद्धोहमपंकोस्मिकलंकितः ॥ पतितोस्म्युपरिस्थोपिहामममात्मन्हतास्थितिः ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रति दिन और प्रति क्षण जो सुख हैं वे सब दुःखके समूहही हैं, और दुःख तो दुःखही है ॥ १३ ॥ इस संसारमें जो कुछ वस्तु स्थित देखी गई है वह शीघ्रही नष्टभी होगई है और मेरे राज्यादिभी तुच्छताके हेतुसे चिन्तन नहीं किये गये क्योंकि सबसे उत्तम रूपसे प्रसिद्ध इन्द्र तथा ब्रह्माका पदभी विचार दृष्टिसे नश्वरही देखागयाहै इसलिये इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें विवेकियोंका चित्त सदाकेलिये विश्राम पावे ॥ १४ ॥ आज जो बडे बडोंके शिरपर स्थितहैं वे गिने हुये दिनोंमें नीचे गिरते हैं, इसलिये इस नष्ट चित्तके महत्त्वमें अर्थात् राज्यादि विभवकी उत्तमतामें क्या विश्वास होसकताहै ॥ १५ ॥ बिना रज्जुके मैं बंधाहूं, और बिना पंक (कीचड) केभी कलंकितहूं, और सबके ऊपर स्थित होकरकेभी नीचे गिराहूं, हा ! आत्मामें मेरी स्थिति नष्ट होगई ॥ १६ ॥

कस्मादकस्मान्मोहोयमागतोधीमतोपिमे ॥ असितःपिहितालोकोभास्करग्रमिवांबुदः ॥ १७ ॥ कइमेमेमहाभोगाःकइमेममबांधवाः ॥ बालोभूतमयेनेवसंकेतनाहमाकुलः ॥ १८ ॥ स्वयमेवानिबध्नामि जरामरणरागिणीम् ॥ किमीमामहमेतेषुधृतिमुद्वेगकारिणीम् ॥ १९ ॥ यातुतिष्ठतुवासम्यङ्ममैतांप्रति कोग्रहः ॥ बुद्बुदश्रीरिवैषाहिमिथ्यैवेत्थमुपस्थिता ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे प्रकाशको आच्छादन करनेवाला, सूर्यके अग्रदेशमें प्राप्त मेघके सदृश यह मोह बुद्धिमान् होनेपर भी मुझे कहांसे प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ कौन ये मेरे महान् भोग ! और कौन ये मेरे बन्धुहै, मैं बालकके समान भूतमय यह ममतारूप सम्बन्धकी कल्पनासे व्याकुल होरहाहूं ॥ १८ ॥ इन भोगादिकोंमें वृद्धाऽवस्था और मरणको प्राप्त करनेवाली और भयकारिणी आस्था (विश्वास) को मैं आप क्यों बांधताहूं ॥ १९ ॥ यह और बन्धु आदिकी संपत्ति जाय वा अच्छीतरहसे इसमें मेरा आग्रह क्या, क्योंकि जलमें बुद्बुदकी शोभाके समान यह सब संपत्ति मिथ्याही प्राप्त हुई है ॥ २० ॥

तेमहाविभवाभोगास्तेसंतःस्निग्धबांधवाः ॥ सर्वस्मृतिपथंप्राप्तंवर्त्तमानेपिकाधृतिः ॥ २१ ॥ कधनानि महीपानांब्रह्मणःकजगंतिवा ॥ प्राक्तनानिप्रयातानिकेयंविश्वस्ततामम ॥ २२ ॥ गिलितानींद्रलक्षाणिबुद्बुदानीववारिणि ॥ मांजीवितनिबद्धास्थंविहसिष्यंतिसाधवाः ॥२३॥ ब्रह्मणांकोटयोयातागताःसर्गपरंपराः ॥ प्रयाताःपांसुवद्भूपाःकाधृतिर्ममजीविते ॥ २४ ॥

अर्थ—वे महा चक्रवर्तियोंके भोग, और वे उत्तम गुणवाले प्रेमयुक्त बांधव, सब इससमय स्मरणमात्रहैं, तब वर्तमानमेंभी क्या बिश्वास ॥ २१ ॥ बडे २ राजाओंके धन कहां गये, और पूर्वकालके ब्रह्माजीके रचित प्राचीन अनेक ब्रह्माण्ड कहां गये, अर्थात् सब नष्ट होगये, तो हमारा यह धनादिमें बिश्वास कैसा ॥ २२ ॥ कालने लाखों इंद्रको ऐसे निगल लिया जैसे जल बुद्बुदोंको, इसलिये यदि मैं अपने जीवनमें बिश्वास करूंगा तो विवेकी लोग हसेंगे ॥ २३ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्मा बीतगए, और अनन्त सृष्टियोंको परम्परा गत होगई, और धूलिके समान अनेक राजा लोग उडगये, तो भला मेरे जीवनमें क्या बिश्वास ॥ २४ ॥

संसाररात्रिदुःस्वप्नेचेत्येदेहमयेभ्रमे ॥ आस्थांचेदनुबध्नामितन्मेमांतुधिगस्थितिम् ॥२५॥ अयंसोहमितिव्यर्थकल्पनाऽसत्स्वरूपिणी ॥ अहंकारपिशाचेनकिमज्ञवदहंस्थितः ॥ २६ ॥हतंहतमिदंकस्मादायुरातततयानया ॥ पश्यन्नपिनपश्यामिसूक्ष्मयाकाललेखया ॥ २७ ॥ पादपीठंकृतेशानाःशार्ङ्गीक्रीडनकंदुकः ॥ कालापालिकाग्रस्ताःकिमास्थेमयिवल्गसि ॥ २८ ॥

अर्थ—संसाररूप रात्रिके दुष्ट स्वप्नरूप देहादिमय भ्रमरूप इस संसारमें यदि मैं बिश्वास बांधताहूं तो इस मेरी अविवेकताको धिक्कारहै ॥ २५ ॥ यह पुत्रादि, वह धन आदि, और यह देहरूप आत्माकी कल्पना इत्यादि कल्पना व्यर्थ और असद्रूपहैं, मैं इस अहंकाररूपी पिशाचसे अज्ञानीके समान क्यों स्थितहूं ॥ २६ ॥ क्षण, निमेष, और मुहूर्तादिरूप कालकी सूक्ष्म लेखासे इस आयुको क्षणक्षणमें छिन्न देखता हुआभी मैं क्यों नहीं बिचार करता ॥ २७ ॥ आसनके समान रचित ब्रह्माण्डोंमें प्रतिमाके सदृश ब्रह्मादिभी निर्मित किये गये हैं, और विष्णु आदिके शरीरभी क्रीडाके बन्दुकके समान बारम्बार युद्ध आदि व्यवहारोंमें आकाशमें जिस करके फेके गयेहैं और महारूद्रकोभी जिसने ग्रास करलियाहै ऐसे महा कल्परूपकालमें हे जीवनकी आशा ! मेरे सम्मुख तूं क्यों नाचती है ॥२८॥

अजस्रमुपयांत्येतेयांतिचाद्यापिवासराः ॥ अविनष्टैकसद्वस्तुर्दृष्टोनाद्यापिवासरः ॥ २९ ॥ सारसाःसरसीवैतेसर्वस्मिञ्जनचेतसि ॥ भोगाएवस्फुरंत्यंतर्नतुस्वपददृष्टयः ॥ ३० ॥ कष्टात्कष्टतरंप्राप्तोदुःखाद्दुःखतरंगतः ॥ अद्यापिनविरक्तोस्मिहाधिङ्मामधमाशयम् ॥ ३१ ॥ येषुयेषुदृढाबद्धाभावनाभव्यवस्तुषु ॥ तानितानिविनष्टानिदृष्टानिकिमिहोत्तमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—निरंतर दिन आते हैं और चलेभी जाते हैं परंतु ऐसा दिन अभीतक एकभी नहीं देख पडा कि जिसमें निर्दोष आनंदरूप सद्वस्तु प्राप्तहो ॥ २९ ॥ जैसे तडागमें सारसपक्षी रहते हैं ऐसेही सम्पूर्ण प्राणियोंकी चित्तमें भोगकी आशाही स्फुरती हैं न कि आत्माके साक्षात्कार ॥ ३० ॥ कष्टसेभी अधिक कष्ट और दुःखसेभी अधिक दुःखको मैं प्राप्त हुआ, परन्तु इस समयतक मैं इस संसारसे विरक्त नहीं हुआ, हा! मुझ अधम चित्तवालेको धिक्कारहै ॥ ३१ ॥ जिन २ रमणीय पदार्थोंमें मैंने दृढ प्रीतिकी वे वे सब नष्ट होगये तो भला कहो इस संसारमें चिरस्थायी उत्तम कौनसी वस्तु देखी गई ॥ ३२ ॥

यन्मध्येयच्चपर्यंतेयदापायेमनोरमम् ॥ सर्वमेवापवित्रंतद्विनाशामेध्यदूषितम् ॥ ३३ ॥ येषुयेषुपदार्थेषु धृतिंबध्नातिमानवः ॥ तेषुतेष्वेवतस्यायंदृष्टोनाशोदयोभृशम् ॥ ३४ ॥ श्वःश्वःपापीयसीमेषश्वःश्वःक्रूर तरामपि ॥ श्वःश्वःखेदकरीमेतिदशामिहजडोजनः ॥ ३५ ॥ अज्ञानैकहतोबाल्येयौवनेमदनाहतः ॥ शेषेकलत्रचिंतार्त्तःकिंकरोतिकदाजडः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मध्यमें रमणीय यह अवस्था और अन्तमें रमणीय यागादि धर्म और विना विचारे रमणीय विषय ये सब अपने नाशरूप अपवित्रतासे दूःखितहैं, इसलिये अपवित्रही है ॥ ३३ ॥ यह मनुष्य जिन २ पदार्थोंमें विश्वास बांधताहै प्रायः उन २ पदार्थोंमें इसको दुःखका प्रादुर्भाव देख पडाहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जड प्राणी उत्तरकाल- मेंभी लोभ आदिकी वृद्धिसे प्रत्येक प्रातःकालमें अधिक पापमयी और प्रतिदिन अधिक क्रूरतर तथा प्रतिदिन अधिक खेदकारिणी दशाको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ जड प्राणी बाल्यअवस्थामें अज्ञानसे हतहै, यौवनअवस्थामें कामदेवसे और शेष (वृद्धाऽवस्थामें) कुटुंबकी चिंतासे पीडित रहताहै, तो किस समय अपने उद्धारका साधन करै ॥ ३६ ॥

आगमापायिविरसंदशावैषम्यदूषितम् ॥ असारसारंसंसारंकितत्पश्यतिदुर्मतिः ॥ ३७ ॥ राजसूयाश्वमे धादैरिष्ट्वायज्ञशतैरपि ॥ महाकल्पांतमप्यंशंस्वर्गंप्राप्नोतिनाधिकम् ॥३८॥ कोसौस्वर्गोस्तिभूमौवापाता लेवाप्रदेशकः ॥ नयत्राभिभवंत्येताद्भ्रमर्यइवापदः ॥३९॥ निजचेतोबिलव्यालाःशरीरस्थलपल्लवाः ॥ आधयोव्याधयश्चैतेनिवार्यंतेकथंकिल ॥ ४० ॥

अर्थ—आदि अन्तमें असत्, भोगकालमेंभी विरस, और दरिद्रता रोग तथा वृद्धता आदिकी विषमतासे दू- षित तथा असारकोही सार बुद्धिसे ग्रहण किये हुये इस संसारको दुर्बुद्धि पुरुष क्यों देखताहै ॥ ३७ ॥ राजसूय और अश्वमेधादि सैकडों यज्ञोंको करकेभी महाकल्पान्त ब्रह्माजीका भोग्यभी स्वर्ग महाकालका क्षणमात्रहै, वही प्राप्त होसकताहै न कि उससे अधिक ॥ ३८ ॥ वह स्वर्गप्रदेश पृथिवीपरहै वा पातालमें है जहांपर दुष्ट भ्रमरीरूप आपत्ति जाकर नहीं सताती ! अर्थात् स्वर्गमें परस्पर वा असुरादिककी पीडासे दुःख होताहै ॥ ३९ ॥ अपने चित्तरूपी बिलके सर्प्प और जहां शरीररूपी स्थलके पते हैं वहां आधि और व्याधि किसप्रकार निवारित होसकते हैं ॥ ४० ॥

सतोसत्तास्थितामूर्ध्निमूर्ध्निरम्येष्वरम्यता ॥ सुखेषुमूर्ध्निदुःखानिकिमेकंसंश्रयाम्यहम् ॥ ४१ ॥ जायंते चम्रियंतेचप्राकृताःक्षुद्रजंतवः ॥ धरातैरेवनीरंध्रादुर्लभाःसाधुसाधवः ॥ ४२ ॥ नीलोत्पलालिनयनाः परमप्रेमभूषणाः ॥ हासायैवविलासिन्यःक्षणभंगितयास्थिताः ॥ ४३ ॥ येषांनिमेषणोन्मेषैर्जगतांप्र लयोदयौ ॥ तादृशाःपुरुषाःसंतिमादृशांगणनैवका ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्तमानकालके जगत्के शिरके ऊपर नाश अवश्य स्थितहै और रमणीय पदार्थोंके शिरपर अरम्यता और सुखोंके ऊपर दुःख स्थितहै, तो ऐसी प्रधान कौन वस्तुहै जिसका मैं आश्रयलूं ॥ ४१ ॥ स्वाभाविक मनुष्य क्षुद्र जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं ऐसेही प्राणियोंसे यह पृथिवी पूर्ण है, परन्तु उत्तम महात्मालोग दुर्लभहैं ॥ ४२ ॥ नीलकमलके सदृश दीर्घ भ्रमरके सदृश कृष्णनेत्रके सहित और परम प्रेमरूपी भूषण धारिणी स्त्रियां क्षणभंगुर होनेसे केवल हास्यहीके योग्यहैं ॥ ४३ ॥ जिन पुरूषोंके नेत्रके खोलनेसे जगत्का उदय और मूंदनेसे प्रलयहै वेभी जब नहीं हैं तो हमारे सदृश प्राणियोंकी क्या गणना ॥ ४४ ॥

संतिरम्यतराद्रम्याःसुस्थिरादपिसुस्थिराः ॥ चिंतापर्यवसानेयंपदार्थश्रीःकिमीहसे ॥ ४५ ॥ संपद श्चविचित्रायास्ताश्चेच्चित्तेनसंमताः ॥ तत्ताअपिमहारंभाहतमन्येमहापदः ॥ ४६ ॥ आपदोपिविचि त्रायास्ताश्चेन्मनसिसंमताः ॥ तत्ताअपिमहारंभावन्येमनसिसंपदः ॥ ४७ ॥ मनोमात्रविवर्त्तेस्मिञ्ज गत्यब्धींदुभंगुरे ॥ ममेदमित्यपूर्वेयंकुतस्त्याक्षरमालिका ॥ ४८ ॥

अर्थ—रमणीयसेभी रमणीय स्थिरसेभी अधिक स्थिरतर पदार्थ हैं, परन्तु इन सब पदार्थोंकी श्रीका परिणाम अर्जन रक्षण और वियोगादि रूपसे चिन्तादायकही है, इसलिये इनकी इच्छा क्यों करतेहो ॥ ४५ ॥ चित्र विचित्रकी जो संपत्तियां हैं उनको यदि चित्त अधिक करके मानताहै, तो वेभी अनेक दुःखोंसे रक्षित अवश्य नश्यमानहैं, इसलिये उन सम्पत्तियोंकोभी मैं महा आपत्तिरूप मानताहूं ॥ ४६ ॥ आपत्तियां दारिद्रबन्धु राज्यादिका नाश यदि साधु समा- गम ज्ञानादिसे विचित्र कल्याणकारीही मनको इष्टहै तो वेभी विवेक वैराग्यादिके साधन होनेसे सम्पत्तिरूपहैं ऐसा मैं मानताहूं ॥ ४७ ॥ समुद्रके चन्द्रमाके समान क्षणभंगुर मनके विवर्तमात्र इस जगत्में यह मैं, यह मेरा इत्यादि वाक्य अक्षरकी पंक्ति कहासे आई, अर्थात् निरर्थकहै ॥ ४८ ॥

काकतालीययोगेनसंपन्नायांजगत्स्थितौ ॥ धूर्तेनकल्पिताव्यर्थंहेयोपादेयभावना ॥ ४९ ॥ इयत्ताच्छिन्नतप्तासुसुखनाम्नीषुदृष्टिषु ॥ कास्वेतास्वनुरक्तोस्मिपतंगोग्निशिखास्विव ॥ ५० ॥ वरमेकांतदाहेषुलुठनंरौरवाग्निषु ॥ नत्वाल्लनविवर्त्तासुस्थितंसंसारवृत्तिषु ॥ ५१ ॥ संसारएवदुःखानांसीमांतइतिकथ्यते ॥ तन्मध्यपतितेदेहेसुखमासाद्यतेकथम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—काकतालीय योगसे प्राप्त इस जगत्की स्थितिमें भोगके लम्पट इस धूर्त मनने त्याज्य और ग्राह्य भावना व्यर्थही कल्पितकी है ॥ ४९ ॥ देशकाल और वस्तुकी इयत्तासे परिच्छिन्न और त्रिविधतापसे तप्त अग्निशिखाके तुल्य इन संसारकी दृष्टियोंमें पतंगके समान मैं क्यों अनुरक्तहूं ॥ ५० ॥ एकान्तके दाहमें भस्म होना उत्तमहै रौरव नरकमें लोटनाभी उत्तमहै परन्तु सुखदुखरूपी विवर्तयुक्त इस संसारकी दशामें रहना उत्तम नहीं है ॥ ५१ ॥ संसारही संपूर्ण दुःखोंकी सीमाहै, इसमें आकर भला सुख कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ ५२ ॥

अकृत्रिममहादुःखेसंसारेयेव्यवस्थिताः ॥ तएतेऽन्यानिदुःखानिजानतेमधुराण्यलम् ॥ ५३ ॥ अहमप्यधमोत्कृष्टकाष्ठलोष्टसमस्थितिः ॥ अज्ञैरवोगतःसाम्यंपरमामृष्टवस्तुभिः ॥ ५४ ॥ सहस्रांकुरशाखात्मफलपल्लवशालिनः ॥ अस्यसंसारवृक्षस्यमनोमूलमहांकुरः ॥ ५५ ॥ संकल्पमेवतन्मन्येसंकल्पोपशमेनतत् ॥ शोषयामियथाशोषमेतिसंसारपादपः ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वाभाविक दुःखसे पूर्ण जो जगत्में स्थितहैं वेभी अन्य दुःखोंको सुखरूप जानते हैं अर्थात् जैसे तलवारकी चोटसे कोडेकी चोटको मनुष्य उत्तम समझताहै ऐसेही संसारके स्त्री पुत्रादि परिणाममें दुःखदायक कोही सुख समझाताहै ॥ ५३ ॥ मैंभी इस अधम और उत्कृष्ट काष्ठ और पाषाणके समान स्थितिवाले अविवेकी अज्ञानियोंके तुल्य विना विचारेसे होगया ॥ ५४ ॥ सहस्रों संकल्परूप अंकुर जिसमें है देह और ब्रह्माण्ड जिसके शाखाहैं और विराट् जिसका अवयवी है सुख दुःख जिसमें फलहैं और राग लोभादि जिसमें पल्लवहैं ऐसे शोभायमान इस संसाररूपी वृक्षका मूल महाअंकुरयुक्त यह मनहै ॥ ५५ ॥ संकल्पही इस मनकाभी रहस्यहै इसलिये संकल्पकी शान्तिसेही मैं इसको सुखाताहुं देखें तो कैसे संसाररूपी वृक्ष उत्पन्न होताहै ॥ ५६ ॥

आकारमात्ररम्यासुमनोमर्कटवृत्तिषु ॥ परिज्ञातास्विहाद्यैवनरमेनाशनीष्वहम् ॥ ५७ ॥ आशापाशशतप्रोताःपातोत्पातोपतापदाः ॥ संसारवृत्तयोभुक्ताइदानींविश्रमाम्यहम् ॥ ५८ ॥ हाहतोस्मिविनष्टोस्मिमृतोस्मीतिपुनःपुनः ॥ शोचितंगतमेवाहमिदानींनानुरोदिमि ॥ ५९ ॥ प्रबुद्धोस्मिप्रहृष्टोस्मिदृष्टश्चोरोयमात्मतः ॥ मनोनामनिहन्म्येनंमनसास्मिचिरंहतः ॥ ६० ॥

अर्थ—आकार मात्रसे रमणीय मनरूपी मरकटसे चपल नाशरूपसे परिज्ञात इन संसारकी दशाओंमें मैं अब नहीं रमण करूंगा ॥ ५७ ॥ सैकडों आशारूपी कांटोंसे गूंथी हुई ऊची नीची गति तथा दुःखको देनेवाली इन संसारकी वृत्तियोंको मैंने भोगलिया, अब मैं विश्राम करताहूं ॥ ५८ ॥ हा ! मैं मारागया, नष्ट हुआ, और मरा इत्यादि पुनः २ जो कुछ मैंनें सोचा वह तो बीतगया अब पुनः इस संसारके पदार्थोंके लिये रोदन नहीं करूंगा ॥ ५९ ॥ अब मैं प्रबुद्धहूं और प्रसन्नहूं पारमार्थिक धनरूप आत्माके चोरको मैंने देखलिया, वह चोर यह मनही है न केवल चोर किन्तु शत्रुभी है क्योंकि इससे चिरकालसे मैं मारागयाहूं इसलिये मैंभी अब इसको मारताहूं ॥ ६० ॥

एतावंतमिमंकालंमनोमुक्ताफलंमम ॥ अविद्धमसीदधुनाविद्धंतुगुणमर्हति ॥ ६१ ॥ मनस्तुषारकणिकाविवेकार्कातपेनमे ॥ चिरप्रवृत्तयेनूनमचिराल्लयमेष्यति ॥ ६२ ॥ विविधैःसाधुभिःसिद्धैरहंसाधुप्रबोधितः ॥ आत्मानमनुगच्छामिपरमानंदसाधनम् ॥ ६३ ॥ आत्मानंमणिमेकांतेलब्ध्वैव लोकयन्सुखम् ॥ तिष्ठाम्यस्तमितान्येहशरदीवाचलेंबुदः ॥ ६४ ॥ अयमहमिदमाततंममेतिस्फुरितमपास्यबलादसत्यमंतः ॥ रिपुमतिबलिनंमनोनिहत्यप्रशममुपैमिनमोस्तुतेविवेक ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
जनक वितर्को नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—इतने कालतक यह मनरूपी मेरा मुक्ताफल बींधा (लक्ष्य भूत) नहींथा, अब तो बींधाहै अतएव गुण (पक्षमें सूत्र) के योग्यहै ॥ ६१ ॥ मनरूपी तुषारकी कणिका मेरे विवेकरूप सूर्य्यके तापसे अनादि ब्रह्मतत्वमें प्रतिष्ठाके लिये चिरकालके अर्थ लयको प्राप्त होगा ॥ ६२ ॥ साधु तथा सिद्ध महात्माओंके अनेकप्रकारके उपदेशोंसे बोधित मैं परमानन्दके साधनीभूत परब्रह्मकी शरणमें जाताहूं ॥ ६३ ॥ आत्मरूपमणिको पाकर उसीको देखते (ध्यान करते) हुये अन्य चेष्टाओंको त्यागकर हिमालय आदि पर्वतपर मेघके समान एकान्तमें सुखपूर्वक स्थित रहूं ॥ ६४ ॥

यह शरीर मैं हुं, यह राज्यादि मेराहै इत्यादि असत्य स्फुरण जो स्फुरितेहैं उसको बलसे निकालके अति बली मनरूप शत्रुको मारकर विवेकके द्वारा सप्तभूमिका रूप शांतिमें स्थितहूं इसलिये हे विवेक तुमको नमस्कारहै ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे जनक वितर्कों नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

मध्यान्हकालकी विधि करनेके लिये द्वारपालके प्रार्थना करनेपरभी मौन होके पुनः विचार करना इस १० के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिचिंतयतस्तस्यपुरस्संप्रविवेशह ॥ प्रतीहारःपरोभानोस्स्यंदनग्रइवारुणः ॥ १ ॥ प्रतीहारउवाच ॥ देवदोःस्तंभविश्रांतसमस्तवसुधाभर ॥ संपादयोत्तिष्ठदिनव्यापारंनृपतोचितम् ॥ २ ॥ एताःकुसुमकर्पूरकुंकुमांबुघटाःस्त्रियः ॥ स्नानभूमौस्थिताःसज्जानद्योमूर्त्तियुताइव ॥ ३ ॥ एताःकमलकह्लारकाननभ्रांतषट्पदाः ॥ कृताःकमलिनीपाशरचितांशुकमंडपाः ॥ ४ ॥ एताःकमलिनीतीरभूवश्छत्रैःप्रपूरिताः ॥ सचामररथेभाश्वैःस्नानावसरसेविनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—इसप्रकार चिन्ता करते हुये राजा जनकजीके सन्मुख द्वारपालने आके इसप्रकार प्रवेश किया जैसे सूर्य्यके रथके सन्मुख अरुण सारथी ॥ १ ॥ अपनी भुजाओंपर समस्त पृथिवीके भारको विश्राम देनेहारे राजन् उठिये राजाओंके योग्य व्यवहारोंको सिद्ध कीजिये ॥ २ ॥ पुष्प, कर्पूर, और कुंकुमयुक्त जलके घट लिये स्त्रियां सुसज्जित (तैय्यार) होके ऐसे खडी हैं जैसे भूतिमती नदियां ॥ ३ ॥ श्वेतकमल तथा रक्तकमलोंके बनमें भ्रमर जहां भ्रमण कररहे हैं तथा पत्रसहित कमलकी रज्जुसे चारों ओरसे सुवर्ण जटित वस्त्र मण्डप जहां बने हैं, ऐसी पृथिवी कर्पूर [लाल और श्वेत] रंगकी सरसी (तलाई) के भूमिके सदृश और स्नानके समयमें सेवा करनेवाले मनुष्योंके चमर रथ हांथी घोडेसहित छत्रोंसे पूर्ण भूमि जहांपर विद्यमानहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

समग्रसुमनःपूर्णैरन्नौषधिपरिप्लुतैः ॥ सज्जीकृताःपटलकैर्देवार्चनगृहास्तथा ॥ ६ ॥ स्नातःपवित्रहस्तश्चपारंजप्याघमर्षणः ॥ त्वामेवप्रेक्षतेदेवदक्षिणार्होद्विजव्रजः ॥ ७ ॥ लसच्चामरहस्ताभिःपाल्यतेपरमेश्वर ॥ सज्जीकृताःस्तकृताभिःशीताभोजनभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा सम्पूर्ण पुष्प और श्रेष्ठ भृत्योंसे, तथा परिपक्व अन्न औषध आदिसे तथा संस्कृत समीपके भागोंसे आपके देवार्चन [देव ब्राह्मण तथा अतिथि आदि पूजा] के गृह सुसज्जितहैं ॥ ६ ॥ स्नान किये पवित्र हस्त, अघमर्षण मंत्रको जपनेवाला दक्षिणाके योग्य यह ब्राह्मणोंका समूह आपकी प्रतीक्षा कररहाहै ॥७॥ हे परमेश्वर ! (राजन्) शोभायमान चमरको धारण किये हुये स्त्रियोंसे लेपन, चन्दन, माला, आदिसे अति शीतलतापूर्वक सुसज्जित आपकी ये भोजनभूमि हैं ॥ ८ ॥

शीघ्रमुत्तिष्ठभद्रंतेनियतंकार्यमाचर ॥ नकालमतिवर्त्ततेमहांतःस्वेषुकर्मसु ॥ ९ ॥ प्रतीहारपतावित्थमुक्तवत्यथपार्थिवः ॥ तथैवचिंतयामासचित्रांसंसारसंस्थितिम् ॥ १० ॥ कियन्मात्रमिदंनामराज्यंसुखमितिस्थितम् ॥ नप्रयोजनमेतेनममेहक्षणभंगिना ॥ ११ ॥ सर्वमेवपरित्यज्यमिथ्याशंबरडंबरम् ॥ एकांतएवतिष्ठामिसंशांतइवबारिधिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका कल्याण हो शीघ्र उठिये और नियत सन्ध्या वन्दन आदि कार्य कीजिये, क्योंकि महात्मा लोग अपने कर्म्मोंमें समयका उल्लंघन नहीं करते ॥ ९ ॥ द्वारपालकोंके स्वामीके ऐसा कहनेपर राजा जनक विचित्र जगत्की स्थितिका चिन्तन करते रहे ॥ १० ॥ यह राज्य तथा सुख क्या है, अर्थात् कुछ नहीं, इस क्षणभंगुर राज्यसुखसे मुझे कुछभी अब प्रयोजन नहीं है ॥ ११ ॥ मृगतृष्णाके जलके सदृश इस सम्पूर्ण संसारको त्यागकर शान्त समुद्रके तुल्य मैं एकान्तमें स्थित रहूंगा ॥ १२ ॥

अलमेभिरसत्प्रायैर्ममभोगविजृंभितैः ॥ त्यक्त्वासर्वाणिकर्माणिसुखंतिष्ठामिकेवलम् ॥ १३ ॥ चित्तचातुर्यमेतस्माद्भोगाभ्याससुसंभ्रमात् ॥ त्यज जन्मजराजाड्यजालजंबालशांतये ॥ १४ ॥ दशासुस्वासुयास्वेवसंभ्रमंचित्तपश्यसि ॥ ताभ्यएवाभिरचितंपरमंदुःखमेष्यसि ॥ १५ ॥ प्रवृत्तंसन्निवृत्तंसद्भूयोभूयश्चिरंचिरम् ॥ भोगभूमिषुसर्वासुचित्तंतृप्तिंनगच्छति ॥ १६ ॥

अर्थ—असत्‌के समान इन भोगोंकी चेष्टाओंसे मुझे क्या प्रयोजन, मैं सब कर्म्मोंको त्यागकर केवल सुख (ब्रह्म) रूपसे स्थित रहुंगा ॥ १३ ॥ हे चित्त जन्ममरण तथा वृद्धाऽवस्था और जडताके जालरूप शैवालकी शान्तिके लिये इस भोगके अभ्यासरूप कुसंगके भ्रमसे सुखके लेशकी आस्वादकी चतुरताको तूं छोडदे ॥ १४ ॥ हे चित्त इन संसारकी दशाओंमें जो सुखके भ्रमको तूं देख रहा है उन सब दशाओंसे रचाहुआ परम दुःखही तुमको प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ भोगकी आशासे चिरकालसे प्रवृत्त होके, और भोगकी शक्तिके कुण्ठीभाव होनेसे वा शास्त्र वा लोक निन्दाके भयसे पुनः निवृत्त होके भी यह चित्त तृप्तिको नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

तस्मात्पापालमनयातुच्छयाभोगचिंतया ॥ भवत्यकृत्रिमाप्रीतिर्यैःाभिपततंततः ॥ १७ ॥ इतिसंचिंत्यजनकस्तूष्णीमेवबभूवह ॥ शांतचापलचेतस्त्वाल्लिखितकर्मार्पितोपमः ॥ १८ ॥ प्रतीहारोपिनोवाच गौरवेणभयेनच ॥ पुनर्वाक्यंमहीपानांचित्तवृत्तिषुशिक्षितः ॥१९॥ तूष्णीमथक्षणंस्थित्वाजनकोजनजीवितम् ॥ पुनःसंचिंतयामासमनसाशमशालिना ॥ २० ॥

अर्थ—इसलिये हे पापिष्ठ चित्त ! इस भोगकी तुच्छ आशासे अब कुछभी प्रयोजन नहीं है, किन्तु जिससे चारों ओरसे अकृत्रिम (स्वाभाविक) प्रीति होती है उस हेतु (ब्रह्मबिचार) की ओर तूं झुक ॥ १७ ॥ हे रामजी ! ऐसा बिचार करके चपल चित्तके शान्त होनेसे चित्र लिखितके समान जनकजी मौन होगये ॥ १८ ॥ राजाओंकी वृत्तियोंके वर्तनमें शिक्षित होनेसे वह द्वारपाल राजाके गौरव तथा भयसे पुनः कोई बचन नहीं बोला ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर जनकजी मौन होके पुनः शान्तिसे शोभायमान मनसे मनुष्यके जीवनके निदानके विषयमें चिंतन किया॥२०॥

किमुपादेयमस्तीहयत्नात्संसाधयाम्यहम् ॥ कस्मिन्वस्तुनिबध्नामिधृतिंनाशविवर्जिते ॥ २१ ॥ किंमेक्रियापरतयाकिंमेनिष्क्रिययापिवा ॥ नतदस्तिविनाशेनवर्जितंयत्किलोदितम् ॥ २२ ॥ क्रियावानक्रियोवास्तुकायोयमसदुत्थितः ॥ समस्थितस्यशुद्धस्याचितःकानाममेक्षतिः ॥ २३ ॥ नाभिवांछाम्यसंप्राप्तंसंप्राप्तंनत्यजाम्यहम् ॥ स्वस्थआत्मनितिष्ठामियन्ममास्तितदस्तुमे ॥ २४ ॥

अर्थ—ग्रहण करने योग्यवस्तु कौनसी है जिसको मैं यत्नसे सिद्ध करूं, और किस नाश रहित वस्तुमें मैं अपनी आस्था बांधू ॥२१ ॥ क्रियामें तत्पर होनेसे वा निष्क्रिय होनेसे मुझे क्या करनाहै क्योंकि ऐसी अन्यवस्तु कोई नहीं है जो नाशसे रहितहै ॥ २२ ॥ असत्‌रूपसे आविर्भूत यह शरीर क्रियावान् हो वा अक्रियहो परन्तु देहकी चल तथा अचल अवस्थामें समानरूपसे स्थित मुझ शुद्ध चेतनकी क्या हानिहै ॥ २३ ॥ न तो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा करता हूं और न प्राप्तको त्यागताहूं किन्तु स्वस्थरूपसे अपने आत्मामें स्थितहूं और आन्तरिक निरतिशय आनन्द वा प्रारब्धसें प्राप्त वस्तुहै वही मेराहै अन्य नहीं ॥ २४ ॥

नममेहकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ क्रिययाऽक्रियथावापियत्प्राप्तंतदसन्मयम् ॥ २५ ॥ अकुर्वतःकुर्वतोवायुक्तायुक्ताःक्रियामम ॥ नाभिवांछितमस्तीहयदुपादेयतांगतम् ॥ २६ ॥ तदुत्थायक्रमप्राप्तांकायोयंप्रकृतांक्रियाम् ॥ करोत्वस्पंदितांगस्तुकिमयंसंशुशुष्यति ॥ २७ ॥ स्थितेमनसिनिष्कामेसमेविगतरंजने ॥ कायावयवजैःकार्यैस्पंदास्पंदौफलेसमौ ॥ २८ ॥ कर्मजासुफलश्रीषुमनसाकर्तृभोक्तृते ॥ तस्मिन्प्रशांतिमायातेकृतमप्यकृतंनृणाम् ॥ २९ ॥ योनिश्चयोंतःपुरुषस्यरूढःक्रियास्वसौतन्मयतामुपैति ॥ अनामयंमेपदमाहताधीरधीरतामंतरलंत्यजामि ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे जनक निश्चयो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—न करनेसे वा उपेक्षासे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है क्रिया वा अक्रियासे जो कुछ प्राप्तहै वह मिथ्या मायामय दुःखरूपही है ॥ २५ ॥ शास्त्रविहित वा लौकिक क्रियाको न करते वा करते हुये मुझे कुछ वांछित नहीं है जो कि उपादेयता (ग्राह्यता) को प्राप्तहो ॥ २६ ॥ इसलिये क्रम प्राप्त उपस्थित क्रियाको यह शरीरकरै क्योंकि चेष्टारहित यह शरीर यदि शुष्क होजायगा तो उसकी क्या अवश्यकताहै ॥ २७ ॥ निष्काम आशक्तिरहित तथा समरूपसे स्थित होनेपर काय (शरीर) से उत्पन्न चेष्टा तथा चेष्टारहित प्रारब्धसे प्राप्त पुण्य पापके अनुदयरूप फल समानहै ॥ २८ ॥ कर्मसे उत्पन्नकालकी श्री (शोभा) में कर्तृता तथा भोक्तृता मनसे कल्पितहैं उसके शान्त होनेपर मनुष्योंसे कृत तथा भुक्तभी अकृत तथा अभुक्त होजाते हैं ॥ २९ ॥ कर्ता वा भोक्ताके विषयमें पुरुषके अन्तःकरणमें जैसा निश्चय रूढहै वह पुरुष संपूर्ण देहादि क्रियामें तन्मयताको प्राप्त होताहै और इस समय तो मेरी बुद्धि कर्तृता भोक्तृतारूप

रोगसे शून्य आत्मपदमें दृढ निश्चयको प्राप्त हुई है इसलिये इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति वा विघातके निमित्तभूत अधीरताको मैं सर्वथा त्यागताहूं ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे बाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे जनक निश्चयो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

दैनिक कृत्य समाप्त करनेवाले राजा जनकके रात्रिके अन्तमें अनेक प्रकारके उपदेशोंसे चित्तका प्रबोधन इस ११ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंचिंत्यजनकोयथाप्राप्तांक्रियामसौ ॥ असक्तःकर्त्तुमुत्तस्थौदिनंदिनपतिर्यथा ॥ १ ॥ इष्टानिष्टाःपरित्यज्यचेतसावासनाःस्वयम् ॥ यथाप्राप्तंचकारासौजाग्रत्येवसुषुप्तवत् ॥ २ ॥ संपाद्यतदहःकार्यमार्यावर्जनपूर्वकम् ॥ अनयच्छर्वरीमेकस्तयैवध्यानलीलया ॥ ३ ॥ मनःसमरसंकृत्वा संशांतविषयभ्रमम् ॥ शर्वर्यांक्षीयमाणायामित्थंचित्तमबोधयत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—यह राजा जनक इसप्रकार चिन्तन करके असक्त होके यथा प्राप्त क्रियाको ऐसे किया जैसे दिनकी सिद्धिरूप क्रियाको सूर्य्य करते हैं ॥ १ ॥ इष्ट अनिष्ट वासनाको चित्तसे त्यागकर जाग्रत्दशामेंही सुषुप्तके समान यथा प्राप्त क्रियाको किया ॥ २ ॥ श्रेष्ठ पूज्य ब्राह्मण आदिकी पूजा पूर्वक उस दिनके कार्य्यको समाप्त करके एकाकी उस रात्रिको उसी ध्यानकी लीलासे बिताया ॥ ३ ॥ अनन्तर शान्त मनको समरस अर्थात् समाहित करके रात्रिके बीतनेपर चित्तको इसप्रकार बोधन किया ॥ ४ ॥

चित्तचंचलसंसारआत्मनोनसुखायते ॥ शममेहिशमाच्छांतंसुखंसारमवाप्यते ॥ ५ ॥ यथायथाविकल्पौघान्संकल्पयसिहेलया ॥ तथातथैतिस्फारत्वंसंसारस्तवचिंतया ॥ ६ ॥ शतशाखत्वमायातिसेकेनविटपीयथा ॥ अनंताधित्वमायासिशठभोगेच्छयातथा ॥ ७ ॥ चिंताजालविलासोत्थाजन्मसंसारसृष्टयः ॥ तस्मात्त्यक्त्वाविचित्रांत्वंचितामुपशमंव्रज ॥ ८ ॥

अर्थ—कि हे चित्त ! यह चंचल संसार आत्माको सुखदायक नहीं है इसलिये तुम शान्तिको प्राप्त होओ; क्योंकि शान्तिसे विक्षेपरहित सारभूत आत्मसुख प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ जिस २ प्रकारसे तुम संकल्पके समूहोंकी कल्पना करते हो उस २ प्रकारसे तुमारी चिन्तासे यह संसार विशालताको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ जैसे वृक्ष सींचनेपर अनन्त शाखायुक्त होताहै ऐसेही हे शठ ! तूंभी भोगकी इच्छासे अनेक प्रकारकी मानसी तथा शारीरिक व्यथाको प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥ क्योंकि विषयके चिन्ताजालसे आविर्भूत जन्ममरण आदि संसारकी सृष्टि होती हैं इसलिये तुम विचित्र चिंताओंको छोडके उपशम (शान्ति) के शरणमें प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

संसारसृष्टितरलामिमांतुलयसुंदर ॥ अस्यांचेत्सारमाप्नोषितदेतामेवसंश्रय ॥ ९ ॥ आस्थांयस्मात्परित्यज्यदृश्यदर्शनलालसात् ॥ मैतद्गृहाणमासुंचस्वेच्छयाविहरेच्छया ॥ १० ॥ इदंदृश्यमसत्सद्वाप्युदेत्वस्तमुपैतुवा ॥ साधोविषमतांगच्छमैतदार्थैर्गुणागुणैः ॥ ११ ॥ मनागपिनसंबंधस्तवदृश्येनवस्तुना ॥ अविद्यमानरूपेणसंबंधःकोथमीदृशः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सुन्दर विवेकिन् ! इस संसारकी चंचल सृष्टि तथा उपशम (शान्ति) के सुखको तुला (तराजू) पर तोलो (बुद्धिसे कौन सारहै ऐसी परीक्षा करो) यदि इसमेंही सार प्राप्त हो तो इसी (संसारकी सृष्टि) काही आश्रय करो ॥ ९ ॥ यह संसारकी सृष्टि असार है इस कारण इसमें आस्थाको त्यागकर यह दृश्य असार है इस दृश्यकी दर्शनकी लालसासे प्रियका ग्रहण न करो और दर्शनके योग्य नहीं है इस द्वेषके कारण इसे त्यागोभी मत, किन्तु दोनोंके साक्षीरूपसे आत्म काम होके अपनी इच्छासे विहार करो ॥ १० ॥ यह संसार दृश्य असत् वा सत् अर्थात् सुख दुःखके साधनरूपसे उदयको प्राप्त हो अथवा नाशको प्राप्त हो परन्तु हे साधो ! तुम इसके गुण अगुणसे हर्ष विषादरूप विषमताको न प्राप्त हो ॥ ११ ॥ हे मन ! इस दृश्य वस्तुके साथ तुमारा कुछभी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि अविद्यमान पदार्थके साथ यह सम्बन्ध कैसा ॥ १२ ॥

असत्त्वमेतच्चनसद्वयोरेवासतोःसतोः ॥ संबंधइतिचित्रेयमपूर्वैवाक्षरावली ॥ १३ ॥ असदेतत्तुसच्चेत्त्वंतथापिकिलसुंदर ॥ संगःसदसतोःकीदृग्वदत्वंमर्त्यजीवयोः ॥ १४ ॥ चित्तत्वमथदृश्यंचद्वेएवय

दिसन्मये ॥ सदास्थितेतत्प्रसरःकुतोहर्षविषादयोः ॥१५॥ तस्मान्महाधिंमुंचत्वंमूकमुल्लासमाहर ॥ संक्षुब्धांबुधिमाविक्षंत्यजाभव्यामिमांस्थितिम् ॥ १६ ॥ कंदुकालातवद्व्यर्थमात्मनैवपरिज्वलन् ॥ मा मोहमलमासाद्यमंदतांगच्छसन्मते ॥ १७ ॥ नतदिहास्तिसमुन्नतमुत्तमंत्रजसियेनपरांपरिपूर्णताम् ॥ तदवलंब्यबलादतिधीरतांजहिहिचंचलतांशठरेमनः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे मन ! तुम असत्हो और दृश्यभी सत् नहीं है तो वन्ध्यापुत्र और आकाश पुष्पके तुल्य दोनों असत्का अथवा स्वरूप शून्य दोनों सत्का सम्बन्धहै यह उक्ति (कथन) अपूर्व आश्चर्यरूपही है ॥ १३ ॥ हे विवेकिन् ! मन यदि यह कहो कि यह दृश्य असत् और तुम आत्मरूपसे सत्हो तोभी कहो सदा मृतक और जीवितका सम्बन्ध कैसा ॥ १४ ॥ हे चित्त ! यदि यह मानते हो कि तुम और जगत् दृश्यभी सत्हो तोभी एकरूपसे दोनोंके सदा स्थित रहनेसे वियोगके अभावसे हर्ष विषादका क्या अवसरहै ॥ १५ ॥ इसलिये महान् आधि (मानसी व्यथा) रूप इस संसारको त्यागो और समाधिके अभ्याससे सदा मूक (शान्त) रूप आत्मस्वरूपकी स्थितिमें उत्साह प्राप्त करो और कलुषित तथा अभव्य इस विक्षेप पूर्ण संसारसमुद्रको त्यागो ॥ १६ ॥ हे सन्मते ! कन्दुक (गेन्द) के आकार आलातचक्र (अग्नि लगाके जो लकडी घुमाते हैं) समान स्वयं जलते हुये मोहको प्राप्त होके मन्दताको न प्राप्त हो ॥ १७ ॥ इस दृश्य समूहके मध्यमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिससे तुम परिपूर्णताको प्राप्त हो, इसलिये हे शठ मन ! अभ्यास और वैराग्यके बलसे धीरताका अवलम्बन करके चंचलताको छोड ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे चित्ताऽनुशासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस १२ के सर्गमें राजा जनककी जीवन्मुक्तरूपसे स्थिति तथा बिचार और बुद्धिका विचित्र माहात्म्य विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंविचारयंस्तत्रस्वराज्येजनकोनृपः ॥ चकाराखिलकार्याणिनमुमोहचधीरधीः ॥ १ ॥ नमनःप्रोल्ललासास्यक्वचिदानंदवृत्तिषु ॥ केवलंसुषुप्तसंस्थंसदैवव्यवतिष्ठत ॥ २॥ ततः प्रभृत्यसौदृश्यंनाजहारनवात्यजत् ॥ केवलंविगताशंकंवर्त्तमानेव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ अनारतविवेकेनतेनसद्यःसनातनम् ॥ पुनःकलंकंनैवाप्तमंबरेणेवराजसम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार बिचार करते हुये राजा जनक अपने राज्यमें यथा प्राप्त सम्पूर्ण कार्य्योंको किया और इनकी धीर बुद्धि अहन्ता और ममताके अभिमानसे पूर्वकालके समान मोहित न हुई ॥ १ ॥ और कहींभी विषय जनित हर्षके स्थानोंमें इनका मन उत्साहवान् नहीं होताथा किन्तु सुषुप्तिके स्थितिके सदृश स्थित रहताथा॥२॥ उसी समयसे लेके राजा जनक अपनी बुद्धिसे दृश्यको प्रिय दृष्टिसे नहीं ग्रहण किया, और द्वेष बुद्धिसे त्यागभी नहीं किया, किन्तु निःशंकहो वर्तमान (उस काल) में प्राप्त दृश्यमेंही तृप्त बुद्धिसे रहतेथे ॥ ३ ॥ जैसे रजधूलिकी मलिनताको नहीं प्राप्त होता ऐसेही निरंतर विवेकयुक्त राजा जनकको अनादि स्वभाव प्राप्त अहं और मम (मैं तथा मेरा) की अभिमानरूप मलिनता पुनः नहीं प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

स्वविवेकानुसंधानादितितस्यमहीपतेः ॥ सम्यग्ज्ञानमनंताभमलंविमलतांययौ ॥ ५ ॥ अनामृष्टविकल्पांशुश्चिदात्माविगतामयः ॥ उदियायहृदाकाशेतस्यव्योम्नीवभास्करः ॥ ६ ॥ सददर्शाखिलान्भावांश्चिच्छक्तौसमवस्थितान् ॥ आत्मभूताननंतात्मासर्वभूतात्मकोविदः ॥ ७ ॥ प्रहृष्टोनबभूवासौक्वचिन्नचसुदुःखितः ॥ प्रकृतेर्व्यवहारत्वात्सदैवसममानसः ॥ ८ ॥

अर्थ—सदा अपने विवेकके अनुसन्धानसे उस राजाका अनन्त ब्रह्माकार सम्यग् ज्ञान विमलताको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ मेघपटलों वा विक्षेपोंसे जिसकी किरण अभिभूत (पराजित) नहीं हुई, और देहके भेद प्रयुक्त रोगरहित चिदात्माके हृदयमें इसप्रकार प्रकाश किया जैसे आकाशमें सूर्य ॥६॥ अनन्त ब्रह्ममय तथा सर्व भूतात्मज्ञानमें प्रवीण

राजा जनकने सम्पूर्ण पदार्थोंको चित्त शक्तिहीमें अध्यस्त देखा मायासेही सब व्यवहार होनेसे असंग आत्माके साथ किसीका स्पर्श न होनेसे सर्वत्र समान चित्त राजा जनक न तो कभी अत्यन्त प्रसन्न और न अति दुःखी हुये ॥८॥

जीवन्मुक्तोबभूवासौततःप्रभृतिमानदः ॥ जनकोजरठज्ञानीज्ञातलोकपरावरः ॥ ९ ॥ राज्यंकुर्वन्विदेहानांजनकोजनजीवितम् ॥ नैवहर्षविषादाभ्यांसोवशःपरितप्यते ॥ १० ॥ नास्तमेतिनचोदेतिगुणदोषविचेष्टितैः ॥ ११ ॥ अर्थानर्थैःसराज्योत्थैर्नग्लायतिनहृष्यति ॥ कुर्वन्नपिकरोत्येषनकिंचिदपिकुत्रचित् ॥ सतिष्ठत्येवसततंसर्वदैवांतरेचितः ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रतिष्ठाके योग्य वृद्ध ज्ञानी इस लोक तथा परलोकका ज्ञाता यह राजा जनक उसी समयसे मुक्त होगया ॥ ९ ॥ संपूर्ण प्राणियोंको जीवनके समान प्रिय राजा जनक राज्य करते हुये हर्ष तथा विषादसे अवश होके परितप्त नहीं हुये ॥ १० ॥ और मानसी गुण दोषोंसे स्वरूपसे तिरोहित वा पुनः आविर्भूत नहीं होताथा ॥ ११ ॥ और बाह्य राज्यसे उत्पन्न अर्थों तथा अनर्थोंसे न वह हर्षित और शोकयुक्त होताथा और करते हुयेभी कर्तताके अभिमानके अभावसे कुछ नहीं करताथा और सदा चेतनकेही मध्यमें स्थित रहताथा ॥ १२ ॥

सुषुप्तावस्थितस्यैवजनकस्यमहीपतेः भावनाःसर्वभावेभ्यःसर्वथैवास्तमागताः ॥ १३ ॥ भविष्यंनानुसंधत्तेनातीतंचिंतयत्यसौ ॥ वर्त्तमाननिमेषंतुहसन्नेवानुवर्त्तते ॥ १४ ॥ स्वविचारवशेनैवतेनतामरसेक्षण ॥ प्राप्तंप्राप्यमशेषेणरामनेतरयेच्छया ॥ १५ ॥ तावत्तावत्स्वकेनैवचेतमाप्रविचार्यते ॥ यावद्यावद्विचाराणांसीमांतःसमवाप्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—सुषुप्तिके समान स्थित राजा जनककी राग आदि वासना संपूर्ण पदार्थोंसे असत्यताको प्राप्त हुई वासनाके अभावसे पूर्व उत्तरकालके अनुसन्धानके प्रभावसे भूत भविष्य दोनोंकी चिन्ता राजा जनक नहीं करतेथे किन्तु हसते हुए वर्तमानकालके अनुसार वर्त्ताव करतेथे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे कमलनेत्र रामजी! अपने विचारकेही वशसे राजा जनकने कण्ठगत विस्मृत मणिके सदृश प्राप्त होनेके योग्य सम्पूर्ण आत्माको ज्ञान मात्रसे पाया न कि अन्य इच्छासे ॥ १५ ॥ तबतक अपने चित्तसे आत्माका विचार करना चाहिये जबतक विचारोंकी सीमाका अन्त (आत्मज्ञानरूप फल) न प्राप्तहो ॥ १६ ॥

नतद्गुरोर्नशास्त्रार्थान्नपुण्यात्प्राप्यतेपदम् ॥ यत्साधुसंगाभ्युदिताद्विचारविशदाद्धृदः ॥ १७ ॥ सुंदर्यानिजयाबुद्धयाप्रज्ञयेववयस्यया ॥ पदमासाद्यतेरामननामक्रिययान्यया ॥ १८ ॥ यस्योज्ज्वलतितीक्ष्णाग्रापूर्वापरविचारिणी ॥ प्रज्ञादीपशिखाजातुजाड्यांध्यंतंनबाधते ॥ १९ ॥ दुरुत्तरायाविपदोदुःखकल्लोलसंकुलः ॥ तार्यतेप्रज्ञयाताभ्योनावापद्भ्योमहामते ॥ २० ॥

अर्थ—न गुरुसे, न शास्त्रार्थसे और न पुण्यसे वह पद प्राप्त होसकताहै जो कि साधु समागमसे अभ्युदयको प्राप्त और विचारसे विशद (विशाल) हृदयसे प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! वह (ब्रह्म) पद सत्शास्त्र और विवेकसे शोधित अनुरागिणी सखीके समान ऊहापोहमें कुशल बुद्धिसे प्राप्त होताहै न कि अन्य किसी क्रियासे ॥ १८ ॥ अग्रभागवाली पूर्वतपर विचारमें कुशल जिसकी बुद्धि रूप दीप शिखा प्रज्वलित होरही है उसको अज्ञानरूप अंधकार नहीं बाधा करता ॥ १९ ॥ हे महामते रामजी! दुःखरूप कल्लोलसे पूर्ण कठिनतासे तरनेयोग्य जो विपत्तिरूप नदियां है वे बुद्धिरूप नौकासे पार की जाती हैं ॥ २० ॥

प्रज्ञाविरहितंमूढमापदल्पापिबाधते ॥ पेलवाचानिलकलासारहीनमिवोलपम् ॥ २१ ॥ प्रज्ञावानसहायोपिविशास्त्रोप्यरिमर्दन ॥ उत्तरत्येवसंसारसागराद्रामपेलवात् ॥ २२ ॥ प्रज्ञावानसहायोपिकार्यांतमधिगच्छति ॥ दुष्प्रज्ञःकार्यमासाद्यप्रधानमपिनश्यति ॥ २३ ॥ शास्त्रसज्जनसंसर्गैःप्रज्ञांपूर्वंविवर्द्धयेत् ॥ सेकसंरक्षणारंभैःफलप्राप्तालतामिव ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अल्पभी वायुकी कल कोमल तृणको बाधा करताहै ऐसेही बुद्धिहीन मूढ पुरुष अल्पभी आपत्ति बाधा करती है ॥ २१ ॥ हे शत्रुमर्दन रामजी! बुद्धिमान् पुरुष शास्त्र शून्य सहायरहितभी हो परन्तु ज्ञान मात्रसे वाध्य संसारसागरके पार उतरताही है ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् असहायभी कार्य्यके अन्तको प्राप्त होताहै और दुष्टबुद्धि (मूढ अज्ञानी) अधिक सेना आदि बलयुक्त होकेभी नाशको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ जैसे फलकी प्राप्तिरूप कार्य्यमें सिंचन तथा रक्षण आदि कार्य्योंसे लताकी बुद्धि करते हैं ऐसेही शास्त्र तथा सज्जनोंके संबन्धसे प्रथम बुद्धिको बढाना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रज्ञाबालबृहन्मूलःकालेसत्कार्यपादपः ॥ फलंफलत्यतिस्वादुभासोबिंबमिवैंदवम् ॥ २५ ॥ यएवयत्नः क्रियतेबाह्यार्थोपार्जनेजनैः ॥ सएवयत्नःकर्त्तव्यःपूर्वंप्रज्ञाविवर्द्धने ॥ २६ ॥ सीमांतंसर्वदुःखानामापदां कोशमुत्तमम् ॥ बीजंसंसारवृक्षाणांप्रज्ञामांद्यंविनाशयेत् ॥ २७ ॥ स्वर्गाद्यद्यच्चपातालाद्राज्याद्यत्सम वाप्यते ॥ तत्समासाद्यतेसर्वंप्रज्ञाकोशान्महात्मना ॥ २८ ॥

अर्थ—बुद्धिरूप महान्बलसहित पूर्वकालका सत्कर्म (भाग्य) रूप वृक्ष उत्तम स्वाद फल फलताहै ॥२५॥ जो यत्न मनुष्य बाह्य द्रव्य आदि पदार्थोंके उपार्जनमें करते हैं वही प्रथम बुद्धिके बढानेमें करना चाहिये ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंकी पराऽवधि, विपत्तियोंका उत्तम कोश और संसाररूप वृक्षोंका बीजभूत जो बुद्धिका मान्द्य (मन्दता) है उसका यत्नसे नाश करना चाहिये ॥ २७ ॥ स्वर्गसे पातालसे और राज्यसे जो सुख प्राप्त होता वह सम्पूर्ण सुख महात्माजन प्राप्त करताहै ॥ २८ ॥

प्रज्ञयोत्तीर्यतेभीमात्तस्मात्संसारसागरात् ॥ नदानैर्नचवातीर्थैस्तपसानचराघव ॥ २९ ॥ यत्प्राप्ताःसंपदंदैवीमपिभूमिचरानराः ॥ प्रज्ञापुण्यलतायास्तत्फलंस्वादुसमुत्थितम् ॥ ३० ॥ प्रज्ञायानखराल्नम त्तवारणयूथपाः ॥ जंबुकैर्विजिताःसिंहाःसिंहैर्हरिणकाइव ॥ ३१ ॥ सामान्यैरपिभूपत्वंप्राप्तंप्रज्ञावशा न्नरैः ॥ स्वर्गापवर्गयोग्यत्वंप्राज्ञस्यैवेहदृश्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे राघव ! इस हेतुसे बुद्धि (आत्मज्ञान) से भयंकर संसारसागरसे पार जासकते हैं न कि दान तीर्थ वा तपसे ॥ २९ ॥ जो पृथिवीपर चलनेवालेभी मनुष्य दैवी सम्पत्ति (आकाशगमनरूप) पाते हैं वहभी बुद्धिरूप पवित्र लता उत्तम सुस्वादु फल आविर्भूतहै ॥ ३० ॥ अपने नखों (पंजों) से मत्त हस्तियोंके यूथपोंको छेदन करनेवाले सिंहभी सृगालों (गीदडों) से बुद्धिही द्वारा ऐसे जीतलिये गये हैं जैसे सिंहोंसे हरिण॥३१॥बुद्धिहीके वशसे सामान्य मनुष्यभी राजत्व पदवीको प्राप्त हुये हैं और स्वर्ग तथा मोक्षकी योग्यताभी बुद्धिमान् मनुष्यकोही देख पडती है ॥ ३२ ॥

प्रज्ञयावादिनस्सर्वेस्वविकल्पविलासिनः ॥ जयंतिसुभटप्रख्यान्नरानप्यतिभीरवः ॥ ३३ ॥ चिंतामणिरियंप्रज्ञाहृत्कोशस्थाविवेकिनः ॥ फलंकल्पलतेवैषाचिंतितंसंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥ भव्यस्तरतिसंसारंप्रज्ञयापोह्यतेधमः ॥ शिक्षितःपारमाप्नोतिनावानाप्नोत्यशिक्षितः ॥ ३५ ॥ धीस्सम्यग्योजितापारमसम्यगोजितापदम् ॥ नरंनयतिसंसारेभ्रमंतीनौरिवार्णवे ॥ ३६ ॥

अर्थ—निज रचित विकल्पोंमें विलास करनेवाले अतिभीरू (डरपोंक) भी सम्पूर्ण वादीलोग बुद्धिहीके बलसे बडे २ वादमें शूरोंको जीतलेते हैं ॥ ३३ ॥ भव्य (मोक्षका भागी) प्राणी बुद्धिसे संसारके पार उतर जाताहै और अधम मूर्ख वहा जाताहै, जैसे नौका खेवनेमें शिक्षित धीवर नदीके पार जाताहै न कि अशिक्षित ॥३४ ॥ ३५॥ विवेक तथा वैराग्यादिसे संपन्न सन्मार्गमें योजित यह बुद्धि नौकाके सदृश संसाररूपी समुद्रके पार ले जाती है और असन्मार्गमें नियोजितकी हुई यह बुद्धि आपत्तिको प्राप्त करती है ॥ ३६ ॥

विवेकिनमसंमूढंप्राज्ञमाशागणोत्थिताः ॥ दोषानपरिबाधंतेसन्नद्धमिवसायकाः ॥ ३७ ॥ प्रज्ञयेहजगत्सर्वंसम्यगेवांगदृश्यते ॥ सम्यग्दर्शनमायांतिनापदोनचसंपदः ॥ ३८ ॥ पिधानंपरमार्कस्यजडात्मा विततोसितः ॥ अहंकारांबुदोमत्तःप्रज्ञावातेनबाध्यते ॥ ३९ ॥ पदमतुलमुपैतुमिच्छतोच्चैःप्रथममियं मतिरेवलालनीया ॥ फलमभिलषताकृषीवलेनप्रथमतरंननुकृष्यतेधरैव ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
उपशमप्रकरणे प्रज्ञामहात्म्यं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् विवेकी पुरुषको तृष्णाके गण काम क्रोध लोभ तथा मोहादिसे उत्पन्न राग द्वेष चिन्ता और विषयादि दोष ऐसे नहीं बाधते हैं जैसे वर्म (कवच) संयुक्त पुरुषको बाण ॥३७॥ हे प्रिय राम ! बुद्धिहीसे गुण तथा दोषके विवेकद्वारा सम्पूर्ण यह जगत् देख पडताहै और सम्यक् दर्शनयुक्त पुरुषके निकट आपत्ति तथा विपत्ति दोनों नहीं आती अर्थात् उसका कुछ नहीं करसकती ॥ ३८ ॥ परमात्मारूप सूर्यका आच्छादक (ढाकनेवाला जड) वा जलरूप विस्तीर्ण, मलिन पक्षमें नील अहंकाररूप मत्त मेघ बुद्धि (ज्ञान) रूप वायुसे बाधित होताहै ॥ ३९ ॥ अतुल और उच्च ब्रह्मपदको प्राप्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको प्रथम बालकके समान विवेककी शिक्षासे लालन (शिक्षण) से शुद्ध करना चाहिये क्योंकि धान्य आदिकी वृद्धिरूप फलको चाहनेवाला किसान सबसे प्रथम कर्षण (जोतन) से पृथिवीकोही शुद्ध करताहै ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे
उपशमप्रकरणे प्रज्ञामाहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस १३ के सर्गमें उस जनकके विचारको दृष्टान्त करके चित्तकी शान्तिके उपाय वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंजनकवद्रामविचार्यात्मानमात्मना ॥ पदंविदितवेद्यानामविघ्नेनाधिगच्छसि ॥ १ ॥ येहिपाश्चात्यजन्मानःप्राज्ञाराजससात्विकाः ॥ प्राप्नुवंतिस्वयंप्राप्यंतेजनाजनकाइव ॥ २ ॥ तावत्तावद्विजित्यारीनिंद्रियाख्यान्पुनःपुनः ॥ यावदात्मात्मनैवायमात्मन्येवप्रसीदति ॥ ३ ॥ प्रसन्नेसर्वगेदेवेदेवेशेपरमात्मनि ॥ स्वयमालोकितेसर्वाःक्षीयंतेदुःखदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार जनकके सदृश आत्मासे आत्माका विचार करके असम्भावना आदि प्रतिबन्धकरूप विघ्नके निराससे ज्ञानियोंके प्राप्तव्य ब्रह्मपदको प्राणी प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ जो अन्तिम जन्मवाले राजस और सात्विक जातिवाले बुद्धिमान् पुरुष हैं वे जनकके सदृश प्राप्यवस्तुको स्वयं पाते हैं ॥ २ ॥ जबतक यह आत्माआत्मामें नहीं प्रसन्न होता तबतक पुनः २ इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतकर आत्माहीका अनुसंधान करना चाहिये ॥ ३ ॥ उस सर्वव्यापी सब इन्द्रियोंके स्वामी परमात्माके प्रसन्न तथा स्वयं दृष्ट होनेपर सम्पूर्ण दुःखकी दृष्टि क्षीण होजाती हैं ॥ ४ ॥

मुष्टयोमोहबीजानांवृष्टयोविविधापदाम् ॥ कुदृष्टयःक्षयंयांतिदृष्टेतस्मिन्परावरे ॥ ५ ॥ सदाजनकवद्रामसर्वारंभवदात्मना ॥ प्रज्ञयात्मानमालक्ष्यलक्ष्मीवानुत्तमोभव ॥६॥ नित्यमंतर्विचारस्यपश्यतश्चंचलं जगत् ॥ जनकस्येवकालेनस्वयमात्माप्रसीदति ॥ ७ ॥ नदैवंनचकर्माणिनधनानिनबांधवाः ॥ शरणं भवभीतानांस्वप्रयत्नादृतेनृणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मनुष्यके आनंदसे लेके ब्रह्माका आनंदपर्यंत जिसकी अपेक्षा न्यूनहैं उस परावररूप परमात्माके दृष्ट होनेपर मोहके बीजभूत दुर्वासनाओंकी मुष्टि और अनेक प्रकारकी आपत्तियोंकी वृष्टि और अहं ममता आदि कुदृष्टि सब क्षयको प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! विवेकयुक्त बुद्धिसे सब जगत्की उत्पत्ति आदिका अधिष्टानभूत जो ब्रह्महै उसी रूपसे सबको देखकर अर्थात् सबको ब्रह्मरूपसे अनुभव करके परमपुरूषार्थरूप लक्ष्मी करकेयुक्त सबसे उत्तम बन जाओ ॥ ६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें नित्य आत्माका विचारहै, और जगत्को चंचल (अनित्य) देखताहै उसका आत्मा कालपाके जनकके सदृश स्वयं प्रसन्न होताहै ॥ ७ ॥ संसारसे भयभीत मनुष्यके अर्थ आत्मज्ञानरूप अपने प्रयत्नके सिवाय न दैव, न कर्म, न धन, और न बन्धु, कोईभी शरण (रक्षक) नहीं है ॥ ८ ॥

येदैवनिष्ठाःकृत्यादौकुविकल्पपरायणाः ॥ तेषांमंदामतिस्तातनानुगम्याविनाशनी ॥ ९ ॥ विवेकंपरमाश्रित्यविलोक्यात्मानमात्मना ॥ धियाविरागोद्धुरयासंसारजलधिंतरेत् ॥ १० ॥ एषासाकथितारामनभःफलनिपातवत् ॥ सुखदाज्ञानसंप्राप्तिरज्ञानतरुशातनी ॥ ११ ॥ जनकस्येवसद्बुद्धेःस्वयमेवविलोकिनः ॥ विकासमेत्ययंदेहीदेवःप्रातरिवांबुजम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पुरूष यत्न विवेक वैराग्य आदिके विषयमें दैवके आधीनहैं अर्थात् यदि प्रारब्धमें होगा तो विवेक वैराग्य तथा ज्ञानादि स्वयं प्राप्त होजांयगे और दैवके प्रतिकूल होनेपर सहस्रों प्रयत्नसेभी कार्य सिद्ध न होगा क्योंकि दैवके बिरूद्ध होनेपर काम क्रोधादिसे अधःपतन अनेकोंका दृष्टहै इत्यादि कुविकल्पोंमें जो परायणहैं उनकी मतिमंदहै और हे प्रिय रामजी ! उनकी बुद्धिके अनुसार कभी नहीं चलना चाहिये ॥ ९ ॥ उत्तम विवेकका आश्रय लेके और आत्माको आत्मासे देखके और वैराग्यसे उत्तम बुद्धि द्वारा संसाररूप समुद्रको पार करै ॥ १० ॥ हे रामजी ! सुख देनेहारी, ज्ञानकी प्राप्ति और अज्ञानरूप वृक्षकी नाशिनी यह जनककी आख्यायिका आपसे उदाहरणरूपसे वर्णन किया ॥ ११ ॥ जो उत्तम बुद्धियुक्त पुरूष स्वयं अपने आत्माको देखताहै उसके हृदयमें परमात्मारूप देव ऐसे विकाशको प्राप्त होताहै जैसे प्रातःकालमें कमल ॥ १२ ॥

संसारमननंचित्रंविचारेणविलीयते ॥ गलद्दशीकृतस्पर्शमातपेनहिमंयथा ॥ १३ ॥ अयमेवाहमित्यस्यानिशायाउदितेक्षये ॥ स्वयंसर्वगतःस्फारःस्वालोकःसंप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ अयमेवाहमित्यस्मिन्संकोचेविलयंगते ॥ अनंतभुवनव्यापीविस्तारउपजायते ॥ १५ ॥ जनकेनपरित्यक्तायथाहंकारवासना ॥ तथात्वमपिसद्बुद्धेविचार्यांतःपरित्यज ॥ १६ ॥

अर्थ—बिचारसेही संसारका विकल्प और चिन्तन नाशको ऐसे प्राप्त होजाताहै जैसे धर्मसे शीततारहित गलता हुआ हिम ॥ १३ ॥ यह शरीर मैं हुं, इस अज्ञानरूप रात्रिके क्षीण होनेपर महान् सर्वव्यापी निज आत्माका

प्रकाश स्वयं प्रवृत्त होताहै ॥ १४ ॥ यह शरीर मैं हुं इस संकोचके विलय होनेपर अनन्तर सर्व भुवनव्यापी आत्माका विस्तार उत्पन्न होताहै ॥ १५ ॥ हे सद्बुद्धेरामजी ! जैसे जनकजीने अहंकारकी वासनाका त्याग किया ऐसेही तुमभी उसका त्याग करो ॥ १६ ॥

अहंकरांबुदेक्षीणेचिद्व्योम्निविमलेततते ॥ नूनंसंप्रौढतामेतिस्वालोकोभास्करःपरः ॥ १७ ॥ एतावदेवा तितमोयदहंभावभावनम् ॥ तस्मिंश्ववशममानीतेप्रकाशउपजायते ॥ १८ ॥ नाहमस्तिनचान्योऽस्तिन चनास्तीतिभावितम् ॥ मनःप्रशांतिमायातंनोपादेयेषुमज्जति ॥ १९ ॥ उपादेयानुपतनंहेयैकांतविवर्ज नम् ॥ यदेतन्मनसोरामतद्बंधंविद्धिनेतरत् ॥ २० ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघके क्षीण होनेसे विस्तृत चिदाकाशरूप आकाशके विमल होनेपर अपने आत्माका प्रकाशरूप सूर्य्य निश्चय करके प्रौढता (शरद्के समान स्फुट प्रकाशता) को प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ यही अत्यन्त तम (अज्ञानान्धकार) का बलहै जो शरीर आदिमें अहंकारकी भावनाहै उसके शान्त होनेपर आत्माका प्रकाश स्वयं होताहै ॥ १८ ॥ अहंपद वाच्यभी कोई वस्तु नहीं है और इससे पृथक् साक्षीरूप नहीं है यहभी नहीं है और इसप्रकार उस मनके शान्ति प्राप्त होनेपर उपादेय विषयोंमें निमग्न नहीं होता ॥ १९ ॥ हे रामजी ! उपादेय पदार्थोंमें हेय पदार्थोंके त्यागपूर्वक जो मनका रागहै इसीको तुम बन्ध जानो अन्य नहीं ॥ २० ॥

माखेदंभजहेयेषुनोपादेयपरोभव ॥ हेयादेयदृशौत्यक्त्वाशेषस्थःस्वच्छतांव्रज ॥ २१ ॥ येषामिदमुपा देयमिदंहेयमितिस्थितिः ॥ विलीनातेनवांछंतिनत्यजंतीहकिंचन ॥ २२ ॥ हेयोपादेयकलनेक्षीणेयाव न्नचेतसः ॥ नतावत्समताभातिसाभ्रेव्योम्नीवचंद्रिका ॥२३॥ अवस्त्विदमिदंवस्तुयस्येतिछुलितंमनः॥ तस्मिन्नोदेतिसमताशाखोटइवमंजरी ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! हेय पदार्थोंमें खेदको मत प्राप्तहो और उपादेय पदार्थोंमें परायणभी मत होओ, हेय और उपादेय दृष्टिको त्यागकर शेष साक्षीरूपमें स्थित होके स्वच्छताको प्राप्त होओ ॥ २१ ॥ यह उपादेयहै यह हेयहै ऐसी स्थिति जिसकी नष्ट होगई है वे न किसी पदार्थकी इच्छा करते हैं और न किसीसे द्वेष करते हैं ॥ २२ ॥ जबतक हेय और उपादेयकी कल्पना चित्तसे क्षीण नहीं हुई है तबतक ब्रह्मात्मतारूप समता ऐसे नहीं शोभती जैसे मेघसहित आकाशमें चन्द्रिका ॥ २३ ॥ यह वस्तु उत्तम नहीं है इसलिये त्याज्यहै और यह उत्तमहै इसलिये उपादेय (ग्राह्य) है इसप्रकार जिसका मन चंचल होगयाहै उसमें ब्रह्मात्मरूप समता ऐसे नहीं उदय होती जैसे आखोटके वृक्षमें लता ॥ २४ ॥

युक्तायुक्तैषणायत्रलाभालाभविलासिनी ॥ समतास्वच्छतातत्रकुतोवैराग्यभासिनी ॥ २५ ॥ एकस्मि न्ब्रह्मतत्त्वेस्मिन्विद्यमानेनिरामये ॥ नानाऽनानातयानित्यंकिमयुक्तंकयुक्तता ॥ २६ ॥ ईप्सितानीप्सि तासंकेमर्कव्यौचित्तपादपे ॥ चंचलेस्फुरतोयस्मिन्कुतस्तस्येहसौम्यता ॥२७॥ निराशतानिर्भयतानि त्यतासमताज्ञता ॥ निरीहतानिष्क्रियतासौम्यतानिर्विकल्पता ॥ २८ ॥

अर्थ—यह पदार्थ अनुकूलहै इसलिये मुझेही यह इच्छा लाभके लिये, और यह पदार्थ प्रतिकूलहै इसलिये मुझेही यह इच्छा लाभके लिये, और यह पदार्थ प्रतिकूलहै इसलिये मुझे कदापि न हो यह इच्छा अलाभ द्वेषके लिये जिस पुरुषमें विलास कर रहीं है उसमें भला वैराग्यसे प्रदीप्त ब्रह्मात्मरूप समता और स्वच्छता कहा ॥ २५ ॥ निरामय एक ब्रह्मतत्व विद्यमान रहते भेद और अभेदकी कल्पनासे युक्तता तथा अयुक्तता कहां ॥ २६ ॥ मैं यह मानताहूं कि चित्तरूप वृक्षमें इष्टता तथा अनिष्टतारूप चंचल मर्कटी जब स्फुरित होरही हैं तो उसमें सौम्यता (निष्काम्यता कहां ॥२७॥ निराशता, निर्भयता, नित्यता, समता, ज्ञानिता, निरीहता, निष्क्रियता, तथा निर्विकल्पता ॥२८॥

धृतिर्मैत्रीमतिस्तुष्टिर्मृदुतामृदुभाषिता ॥ हेयोपादेयनिर्मुक्तेज्ञेतिष्ठंत्यपवासनम् ॥ २९ ॥ धावमानमधो भागेचित्तंप्रत्याहरेद्बलात् ॥ प्रत्याहारेणपतितमधोवारीवसेतुना ॥ ३० ॥ बाह्यानर्थानिमांस्त्यक्त्वाति ष्ठन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ सर्वथासर्वदासर्वानांतरांश्चविचारय ॥ ३१ ॥ गृहीततृष्णशफरिवासना जालमाविलम् ॥ संसारवारिप्रसृतंचिंतातंतुभिराततम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—धैर्य्य, मैत्री, उत्तम बुद्धि, तुष्टि कोमलता, और कोमल भाषिता इत्यादि गुण हेय और उपादेय दृष्टिसे विनिर्मुक्त ज्ञानी पुरुषमें वासनारहित पुरुषमें स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ हे रामजी ! यह चित्त जब नीचेकी ओर गिरनेलगे तो उसको बाह्य इन्द्रियोंसे हटाके विषयोंसे बलसे लोटाके ऊपर ऐसा लेजाना चाहिये जैसे प्रवाहसे नीचे गिरते हुये जलके सेतु (पुल) से ॥ ३० ॥ इन सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंको त्यागकर स्थित रहते, चलते, फिरते,

सोते, और जागते हुयेभी सर्वथा और सर्वदा आन्तरीय (मन बुद्धि आत्मा आदि) पदार्थोंको विचारो ॥३१॥ तृष्णारूप शफरि (मछरि) योंको ग्रहण करनेवाले मोहरूप शैवालसे मलिन संसाररूप जलमें प्रसारित, और चिन्तारूप तन्तुओं (सूतों) से रचित ॥ ३२ ॥

अनयातीक्ष्णयातातच्छिधिबुद्धिशलाकया ॥ वात्ययेवांबुदंकालेवहंत्याविततेपदे ॥ ३३ ॥ अस्यसंसारवृक्षस्यमूलंदोषांकुरास्पदम् ॥ भव्यधीरेणधैर्येणप्रोद्धरोद्धुरयाधिया ॥ ३४ ॥ मनसैवमनश्छित्त्वाकुठारेणेवपादपम् ॥ पदंपावनमासाद्यसद्यएवस्थिरोभव ॥ ३५ ॥ मनसैवमनश्छित्त्वाविस्मृत्याचरमंमनः ॥ वर्त्तमानमपिछित्वाच्छिन्नसंसारतांव्रज ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा विस्तीर्ण जल वा ब्रह्मपदमें बहती हुई इस बासनाजालको इस बुद्धिरूप तीक्ष्ण कतरनीसे ऐसे छेदन करो जैसे महान् वायु कालपाके मेघको ॥ ३३ ॥ हे भव्य रामजी ! चिरकालके अभ्याससे दृढ किये हुये एकात्मके स्थैर्य्य चित्तके धैर्य्यसे सम्पन्न और अनादिकालसे अविद्यामें निमग्न आत्माके उद्धारमें समर्थ बुद्धिसे वासनारूप अंकुरके स्थानभूत इस संसारके मूलका तुम छेदन करो ॥ ३४ ॥ जैसे अग्रभागमें लोहसहित कुठाररूप काष्ठसे वृक्षरूप काष्ठ छेदा जाताहै ऐसे ब्रह्माकार वृत्तिसे प्रदीप्त चैतन्ययुक्त मनसेही मनका छेदन करके परम पवित्र पदको प्राप्त होके स्थिरहो ॥ ३५ ॥ मनसे अर्थात् वासनाके उच्छेदसे उत्तरकालमें प्रसक्त वृत्तिरूप मनको छेदन करके वासनाके अभावसे वर्तमान तथा भावी मनकाभी छेदन करके संसारकी उच्छिन्नताको प्राप्त होओ ॥ ३६ ॥

मोहोविस्मृत्यसंसारंनभूयःपरिरोहति ॥ चित्तंविस्मृत्यसंसारोनभूयःपरिरोहति ॥ ३७ ॥ तिष्ठन्गच्छन्स्वपञ्जाग्रन्निवसन्नुत्पतन्पतन् ॥ असदेवेदमित्यंतंनिश्चित्यास्थांपरित्यज ॥ ३८ ॥ समतामलमाश्रित्यसंप्राप्तंकार्यमाहरन् ॥ अचिंतयंस्तथाप्राप्तंविहरेहहिराघव ॥ ३९ ॥ यथाशर्वोपिलिंगानिनाबिभर्तिबिभर्तिच ॥ त्वमेवमिहकार्याणिकुरुमाकुरुचानघ ॥ ४० ॥

अर्थ—वासनाके क्षयरूप संसारके विस्मरण होनेसे अविद्यारूप मोह पुनः नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि चिन्ताके संस्कारके नाशरूप विस्मरण होनेसे पुनः यह संसार नहीं प्रादुर्भूत होता ॥ ३७ ॥ इसलिये बैठते, चलते, सोते, जागते, निवास करते, ऊपर जाते, वा गिरते हुयेभी यह संसार अनित्यही है ऐसा अन्तःकरणमें निश्चय करके जगत्में सत्य विश्वासको त्यागो ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मात्मतारूप समताका पूर्ण रीतिसे आश्रय करके यथा प्राप्त कार्यको करते हुये और अप्राप्तकी चिन्ता न करते हुये इस संसारमें विहार करो ॥ ३९ ॥ जिसप्रकार महेश्वर पृथिवी आदि अष्टमूर्तिरूप चिन्होंका चिन्मात्र दृष्टिसे नहीं धारण करते और जगदाकारसे विवर्तमान मायाका अधिष्ठान होते हुये सन्निधामात्रसे पृथिवी आदि अष्टमूर्तिरूप चिन्होंको धारण करते है ऐसेही हे पापरहित रामजी ! तुमभी राज्यकार्योंको सत्यकी आस्थाको त्यागकर सन्निधिमात्रसे करो, और सिद्धात्मामें कर्तृताके निश्चयसे न करो ॥ ४० ॥

त्वमेववेत्तात्वमजस्त्वमात्मात्वंमहेश्वरः ॥ आत्मनोव्यतिरिक्तःसंस्त्वयेत्थमिदमाततम् ॥ ४१ ॥ येनात्मदृश्यसद्भावादभितोभावनोज्झिता ॥ सनसंगृह्यतेदोषैर्हर्षामर्षविषादजैः ॥ ४२ ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तःसमलोष्टाश्मकांचनः ॥ युक्तइत्युच्यतेयोगीत्यक्तसंसारवासनः ॥ ४३ ॥ सयत्करोतियद्भुंक्तेयद्दातिनिहंतियत् ॥ तत्रमुक्तधियस्तस्यसमतासुखदुःखयोः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! चेतनरूपसे परमार्थमें सत् तुह्मीहो, जन्मादि विकार शून्यभी तुह्मीहो, सबका साक्षी तथा पूर्वोक्त महेश्वर तुह्मीहो, और अपने स्वभावसे प्रच्युत न होकर तुह्मीने अपने मोहसे इस जगत्का विस्तार कियाहै ॥ ४१ ॥ जिस तत्वज्ञानीने सर्वत्र आत्मरूप दृश्यके सद्भावसे और परमार्थ सन्मात्रकी भावनासे चारोंओरसे अन्य पदार्थकी भावनाको त्याग दियाहै वह हर्ष शोक तथा विषाद जनित दोषोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥ राग द्वेषसे विनिर्मुक्त लोह पाषाण और सुवर्णमें समदृष्टि और संसारकी वासनाको त्यागनेवाला जो योगी है उसको युक्त कहते हैं ॥ ४३ ॥ वह योगी जो कुछ करताहै, खाताहै, देताहै, और मारताहै उन सबमें युक्त बुद्धि होनेके कारण उसको सुख दुःखमें समता रहती है ॥ ४४ ॥

प्राप्तंकर्त्तव्यमेवेतित्यक्तेष्टानिष्टभावनः ॥ प्रवर्त्ततेयःकार्येषुनसमज्जतिकुत्रचित् ॥ ४५ ॥ चित्सत्तामात्रमेवेदमितिनिश्चयवन्मनः ॥ त्यक्तभोगाभिमननंशममेतिमहामते ॥ ४६ ॥ मनःप्रकृत्यैवजडंचित्तत्वमनुधावति ॥ मांसगर्द्धेनमार्जारोवनेमृगपतिंयथा ॥ ४७ ॥ सिंहवीर्यवशाल्लब्धंमांसंभुंक्तेनुगोहरेः ॥ चिद्वीर्यवशतःप्राप्तंदृश्यमाश्रयतेमनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस पुरूषने इष्ट अनिष्ट भावनोंको त्याग दियाहै और यह प्राप्त कार्य कर्तव्यहै इसप्रकार जो कार्य्योंमें प्रवृत्त होताहै वह किसीमें निमग्न नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे महामते ! यह सम्पूर्ण जगत् चेतनकी सत्तामात्रहै ऐसा निश्चययुक्त और भोगकी चिन्ताके अभिमानको जिसने त्याग दियाहै वह मन शान्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ यह मन स्वभावसेही जडहै इसलिये अपनी सिद्धि तथा दूसरेको साधनमें असमर्थ हानेसे अपनी तथा विषयकी सिद्धिके लिये अपने साक्षीभूत और प्रकाशक चिद्रूपकी और ऐसे दौडताहै जैसे मांसका लोभी मार्जार बनमें सिंहके पीछे ॥ ४७ ॥ जैसे सिंहके पराक्रमसे प्राप्त मांसको सिंहका अनुगामी मार्जार भोगताहै ऐसेही चेतनके अभावसे प्राप्त दृश्यका आश्रय मन करताहै ॥ ४८ ॥

मनएवमसत्कल्पंचित्प्रसादेनजीवति ॥ भावयन्विश्वमेवैकंचितामेत्यचिदप्युत ॥ ४९ ॥ जडंयत्किल निर्हीनंचितादीपिकयौजसा ॥ तन्मनःशवसंकाशमचिदुत्तिष्ठतेकथम् ॥ ५० ॥ चित्स्वभावपरामृष्टा स्पंदशक्तिरसन्मयी ॥ कल्पनाचित्तमित्युक्त्याकथ्यतेशास्त्रदृष्टिभिः ॥ ५१ ॥ यश्चितफणिफूत्कारःसै वेथंकलनोच्यते ॥ चिदेवाहमितिज्ञात्वासाचित्तामेवगच्छति ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसप्रकार असत्के सदृश यह मन अद्वितीय आत्माको भूलकर केवल जगदाकारकी भावना करता हुआ चेतनके प्रभावसेही जीताहै और आत्माको स्मरण करके अपने मनरूपताको त्यागकर पुनः चेतनरूप होजाताहै ॥ ४९ ॥ जो मन जड और चेतनरूप दीपक तथा उसके पराक्रमसे हीनहै वह मृतकके सदृशहै क्योंकि जड कुछ चेष्टा नहीं करसकता ॥ ५० ॥ चेतनके स्वभावसे किंचित् स्पष्ट विषयकी ओर अभिमुख स्पन्द शक्तिरूप असन्मयी जो कल्पनाहै उसीको शास्त्रज्ञोंने चित्त ऐसा कहाहै ॥ ५१ ॥ और दृश्य दर्शन द्रष्टारूप जो चित्तरूप सर्पका फूत्कारहै उसीको कलना कहते हैं और वह कलना मैं चिद्रूपहूं ऐसा जानकर चिद्रूपताको प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥

चेत्येनरहितायैषाचित्तद्ब्रह्मसनातनम् ॥ चेत्येनसहितायैषाचित्सेयंकलनोच्यते ॥ ५३ ॥ किंचिदामृष्टरूपंयद्ब्रह्मतच्चस्थिरंमनः ॥ कल्पनासत्सदैवंतत्सदिवोपस्थिताहृदि ॥ ५४ ॥ चित्तमित्येवरूढेयंय दैवकलनोदिता ॥ तदैवचित्त्वंविस्मृत्यसाजडेवव्यवस्थिता ॥ ५५ ॥ संपन्नाकलनानाम्नीसंकल्पानु विधायिनी ॥ अवच्छेदवतीवाग्राहेयोपादेयधर्मिणी ॥ ५६ ॥

अर्थ—विषयसे रहित जो चिद्है यही सनातन ब्रह्महै और विषयसहित यही चिद् कलना कही जाती है ॥ ५३ ॥ वही ब्रह्म किंचिद्विषयसे स्पष्ट होनेसे कलनारूप होकर हृदयमें सत्के समान संकल्प विकल्परूप होकर स्थिर यह प्रसिद्ध मन होजाताहै ॥ ५४ ॥ नित्य अनुभवरूप आत्माके विस्मरणसे स्मृतिरूपताको जब प्राप्त होती है तब वह चित्त कही जाती है और उससमय अपनी चिद्रूपताको भूलकर जडके समान स्थित होतीहै ॥५५॥ वही मुख्य चित् अतीत विषयके आकारकी कल्पनासे और अनागत विषायाकार संकल्पको विधान करनेवाली कलना नामिका होकर हेय और उपादेय दो धर्मोंसे परिच्छिन्न होती है ॥ ५६ ॥

सैषाचिदेवजगतामागतेवस्वशक्तितः ॥ नसंप्रबोधितायावद्रूपंतावन्नबुध्यते ॥ ५७ ॥ अतःशास्त्रविचा रेणवैराग्येणपरेणच ॥ निग्रहेणेंद्रियाणांचबोधयेत्कलनांस्वयम् ॥ ५८ ॥ कलनासर्वजंतूनांविज्ञानेनशमे नच ॥ प्रबुद्धाब्रह्मतामेतिभ्रमतीतरथाजगत् ॥५९॥ व्यामोहमदिरामत्तांलुठितांविषयावटे ॥ आत्मावे दनसंसुप्तांकलनामेवबोधयेत् ॥ ६० ॥

अर्थ—यही चित् अपनी माया शक्तिके वशसे मानों ब्रह्माण्डोंके आकारमें प्राप्त हुई है और जबतक गुरू और शास्त्रद्वारा अपने विचारोंसे बोधित नहीं की जाती तबतक वास्तविक पूर्णानन्द अद्वितीय अपने रूपको नहीं जानती ॥५७॥ इसलिये शास्त्रके विचारसे उत्तम वैराग्यसे तथा इन्द्रियोंके निग्रहसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूपसे अपने चिद्रूपको स्वयं पृथक् करना चाहिये ॥ ५८ ॥ शास्त्र जनित ज्ञानसे और शान्तिसे प्रबोधन की हुई सम्पूर्ण जीवनकी कलना ब्रह्मरूपताको प्राप्त होती है अन्यथा इस जगत्में भ्रमण किया करती है ॥ ५९ ॥ व्यामोहरूप मदिरासे मत्त विषयरूपी गढेमें लोटती हुई और आत्माके अज्ञानरूपी निद्रासे निद्रित इस कलनाहीको जगाना चाहिये ॥ ६० ॥

अप्रबुद्धायदाह्येषानकिंचिदवबुध्यते ॥ संकल्पकलनेवांतर्दृश्यमानाप्यसन्मयी ॥ ६१ ॥ तयापरमयादृष्ट्याकलनैषांतरस्थया ॥ मंजरीगंधशक्त्येवपदर्थेषुविराजते ॥ ६२ ॥ तनुःसंकल्पितयैषाकलनेतिजग त्त्रये ॥ साहिकिंचिद्विजानातिनित्यंज्ञानैकधर्मिणी ॥ ६३ ॥ चेतनेनजडारामकलनोपलरूपिणी ॥ पद्मि नीवातपेनासौपरेणैवप्रबोध्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिससमय यह कलना अप्रबुद्धहै उससमय अपने आत्मस्वरूपको कछ नहीं जानती क्योंकि दृश्यमा

नभी यह जगत्की स्थिति संकल्पकी कल्पनाके सदृश असन्मयी है ॥ ६१ ॥ यह चित्तकी वृत्तिरूप कल्पना अन्तःकरणमें स्थित सर्वसाक्षीरूप परम चेतनकी दृष्टिसे व्याप्त होकर अपने विषयोंके प्रकाश करनेमें ऐसे समर्थ होती है जैसे गन्धकी शक्तिसे लता ॥ ६२ ॥ जो यह ज्ञानधर्मवाली नित्य बोधरूप साक्षी चित्है वह वृत्ति कलनारूप उपाधिके वशसे अल्पही है इस हेतुसे तीनों लोकमें उन २ प्राणियोंसे संकल्पित होनेसे अल्पही जानती है, अर्थात् उन २ प्राणियोंके अन्तःकरणके धर्म्मोंहीको जानती है, ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! वृत्तिरूप कलना विवेकमें पाषाणके सदृश जडरूपहै इसलिये साक्षीचेतनसे ऐसे प्रबोधित की जाती है जैसे आतपसे पद्मिनी अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञानको स्वतः प्रकाश कता नहीं है ॥ ६४ ॥

यथाशिलामयीकन्याचोदितापिननृत्यति ॥ तथेयंकलनादेहेनकिंचिदवबुध्यते ॥ ६५ ॥ लिपिकर्मनृपैर्युद्धंककृतंघर्घरारवम् ॥ कचिंन्द्रचंद्रकिरणैरोषध्यःप्रतिबोधिताः ॥ ६६ ॥ असृगालिप्तगात्रैश्र्वशवैःकपरिवल्गितम् ॥ कगीतंमधुरध्वानंवनपाषाणखंडकैः ॥ ६७ ॥ कपुंसाविहितैरर्कैःक्षपितंयामिनीतमःक संकल्पमयैश्छायाक्रियतेव्योमकाननैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे पाषाणमयी कन्या प्रेरणा करनेसेभी नहीं नाचती ऐसेही साक्षीचेतनके बिना यह कल्पना देहमें कुछ नहीं जानती ॥ ६५ ॥ क्या चित्रमें लिखित राजाओंने घर्घर शब्दके साथ युद्ध कियाहै और चन्द्रकी किरणोंने कमल आदि ओषधियोंको कहीं विकासित किया ॥ ६६ ॥ रुधिरसे लिप्त शरीरवाले मृतक पुरुषोंने कहां गर्जना की और बनमें पाषाणके खण्डोंने मधुर गीत कहां गान किया ? ॥ ६७ ॥ पुरुषसे रचित पाषाणके सूर्य्योंने रात्रिके अन्धकारको कहां नाश कियाहै, और संकल्पमय आकाशके बनोंनें कहां छाया की ॥ ६८ ॥

कजडैरुपलाकारैर्मिथ्याभ्रमभरोत्थितैः ॥ मृगतृष्णामयैरेभिर्मनोभिःक्रियतेक्रिया ॥ ६९ ॥ यथातपेक्षते स्फारेमृगतृष्णातरंगिणी ॥ कलनातद्वदेवेयंस्फुरत्यात्मनिसत्यलम् ॥ ७० ॥ यदेतत्स्पंदितंनामतन्मनोधिगतंशठैः ॥ मरुतांविद्धितांशक्तिमंतःप्राणशरीरिणीम् ॥ ७१ ॥ येषांसंविदनाक्रांतासंकल्पलवनिश्र्वयैः ॥ अनाक्षिप्तरसाकाराप्रभैषापारमात्मिकी ॥ ७२ ॥

अर्थ—और पाषाणके समान जड, मिथ्या भ्रमके समूहसे आविर्भूत और मृगतृष्णामय इन मनोंने चेतनके सहकारके बिना कहां क्रिया की है ॥ ६९ ॥ जैसे पूर्ण और महान् आतपमेंही मृगतृष्णाकी नदी स्फुरती है ऐसेही आत्मसत्ताके होनेहीसे पूर्ण रीतिसे यह कलना (कल्पना) स्फुरती है ॥ ७० ॥ स्ववंचक अज्ञानियोंने आत्मामें मन आदि रूपसे स्पन्दित शक्तिकी स्फुरणाहीको मन कहाहै और अन्नमय अन्तःप्राण शरीरवाली उस प्राणमय कोशात्मक शक्तिको तुम पवनरूपताही जानो ॥ ७१ ॥ जिनकी संवित् संकल्पके लेशके निश्चयोंसे आक्रान्त नहीं है और विषयाकारसे कल्पित नहीं है वही संवित् परमात्माकी प्रभाहै ॥ ७२ ॥

अयंसोहमिदंतन्मइतियाकलनाविला ॥ प्राणात्मतत्त्वयोस्तस्याःसंज्ञाजीवेतिकथ्यते ॥ ७३ ॥ धीश्र्वित्तंजीवइत्येताःसंकल्पस्यासतोमताः ॥ संज्ञाःसंकल्पितास्तज्ज्ञैर्नरामपरमार्थतः ॥ ७४ ॥ मनोनोनमतिर्नापिधीरेषानशरीरकम् ॥ अस्तीहपरमार्थेनस्वात्मैवेहास्तिसर्वदा ॥ ७५ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमात्माकालक्रमस्तथा ॥ सचाकाशादच्छतरोनास्तीवास्त्येवचामलः ॥ ७६ ॥

अर्थ—यह शरीर मैं हुं, यह धन पुत्रादि मेरा इत्यादि जो स्पन्दात्मक प्राणका तथा चिदात्मक आत्मतत्त्वके अविवेकसे एकताके अध्यासद्वारा जड संवलित चिद्रूप कल्पनाहै वही प्राण धारण करनेसे जीव संज्ञक कहलाती है ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! असत् संकल्पकीही बुद्धि चित्त और जीव इत्यादि संज्ञा विज्ञानोंने कल्पितकी है न कि परमार्थमें ये कुछहैं ॥७४॥ क्योंकि परमार्थमें न मन न बुद्धि न मति और न यह शरीर कुछहै किन्तु सर्वदा आत्माही एक रसहै ॥ ७५ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है और कालक्रम आत्माही है वह आत्मा आकाशसेभी अति सूक्ष्म और स्वच्छतरहै इसलिये नहींके समान उसका भान होताहै और यथार्थमें निर्मल शुद्ध चेतनरूपसे वहहै ॥ ७६ ॥

अच्छत्वादसदाभासःसंविद्रूपतयातुसत् ॥ आत्मासर्वपदातीतःस्वानुभूत्यानुभूयते ॥ ७७ ॥ मनस्तत्रपरिक्षीणंयत्रसंवित्परात्मनः ॥ अंधकारक्षयस्तत्रयत्रालोकःप्रवर्त्तते ॥ ७८ ॥ यत्रात्मसंविदोच्छायाःसंकल्पोत्थतयामताः ॥ तत्रात्मनोविस्मरणंस्मरणंचित्तजन्मनः ॥ ७९ ॥ परस्यपुंसःसंकल्पमयत्वंचित्तमुच्यते ॥ अचित्तत्वमसंकल्पान्मोक्षस्तेनाभिजायते ॥ ८० ॥

अर्थ—अति स्वच्छतर और चक्षुष् आदि इन्द्रियोंका अविषय होनेसे वह असत्के तुल्य भासताहै और अपने संवत् (चिद्रूप) से तो सत् वह आत्मा सर्व इन्द्रियोंका अविषय और केवल अनुभवमात्रसे अनुभूत होताहै ॥७७॥

जहां परमात्माका ज्ञानरूप चित्स्वरूपका दर्शनहै वहांपर अज्ञानका कार्य्य मनभी क्षीण होजाताहै क्योंकि जहांपर प्रकाश होताहै वहां अन्धकारका क्षय होताहै ॥ ७८ ॥ जिस दशामें अति स्वच्छ आत्मसंविद्के संकल्पके वशसे बाह्य बिषयाकाररूपसे आविर्भूत और प्रकाश्यता (प्रकाशके लायक) से अभिमत बाह्य पदार्थ उस दशामें आत्माका विस्मरण होताहै और चित्तसे जन्मनेवाले मिथ्या पदार्थका स्मरण होताहै ॥७९॥ परम पुरुष (परमात्मा) का संकल्पमयही यह मनहै और उसके संकल्पका अभावही चित्तका अभावहै और उसी चित्तके अभावसे मोक्ष होताहै अर्थात् संकल्पमय मन सर्व संकल्प क्षयरूप मोक्षरूप आत्माके दर्शनमें कैसे समर्थ होसकताहै ॥ ८० ॥

एतावच्चेतसोजन्मबीजंसंसारभूतये ॥ संकल्पोन्मुखतांयातःसंविदोवाकिलात्मनः ॥ ८१ ॥ निर्विकल्पाचितःसत्तासंकल्पांककलंकिता ॥ कलनेत्युच्यतेतेनपुंस्त्ववद्बुद्ध्यतेमनः ॥८२॥ प्राणशक्तौनिरुद्धायांमनोरामविलीयते ॥ द्रव्यच्छायानुतद्द्रव्यंप्राणरूपंहिमानसम् ॥८३॥ देशांतरानुभवनंप्राणोवेत्ति हृदिस्थितम् ॥ स्पंदवेदनतोयत्तन्मनइत्यभिधीयते ॥ ८४ ॥

अर्थ—संकल्पकी और उन्मुखताको प्राप्त होते हुये आत्मका जो संवित् (चित्) स्वरूपसे किंचित् अन्यथा भावहै यही संसारकी उत्पत्तिके लिये चित्तके जन्मका बीजहै ॥८१॥ निर्विकल्प चित्स्वभासे प्रच्युत और संकल्पके चिन्हसे कलंकित जो सत्ताहै उसीको कलना कहते हैं और जैसे स्त्री आदिके संकल्पके बशसे प्रजाकी उत्पत्तिके अर्थ पुंस्त्व बोधित होताहै ऐसेही कलनासे जगत्की उत्पत्तिके लिये मनभी उत्पन्न होताहै ॥८२॥ जैसे दर्पण आदिकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिम्ब) उस दर्पणआदि द्रव्यके नष्ट होनेपर उसीके साथही लीन होजाताहै ऐसेही हे रामजी ! प्राण शक्तिके निरुद्ध होनेसे मनभी बिलय (नाश) को प्राप्त होताहै क्योंकि जैसे प्रतिबिम्ब दर्पणका कल्पितरूपहै ऐसेही मनकाभी रूप प्राणकाही है ॥ ८३ ॥ क्योंकि प्राणसहित जीवित पुरुष दूर देशस्थ पदार्थका मानसिक अनुभव अपने हृदयमें स्थितके समान करताहै वहांपर देशान्तरका सम्बन्ध स्पन्द (गति) शक्तिके बिना नहीं होसकता और अनुभव अंशकी सिद्धि चित्तके संबन्ध बिना नहीं होसकती इसलिये स्पन्द और वेदन दोनों शक्तिके योगसे प्राणही मन कहताहै ॥८४॥

वैराग्यात्कारणाभ्यासाद्युक्तितोव्यसनक्षयात् ॥ परमार्थावबोधाच्चरोध्यंतेप्राणवायवः ॥ ८५ ॥ दृषदो विद्यतेशक्तिःकदाचिच्चलनैधसाम् ॥ नपुनर्मनसामस्तिशक्तिःस्पंदावबोधने ॥८६॥ स्पंदःप्राणमरुच्छक्तिश्चलद्रूपैवसाजडा ॥ चिच्छक्तिःस्वात्मनःस्वच्छासर्वगासर्वगैवसा ॥ ८७ ॥ चिच्छक्तेःस्पंदशक्तेश्चसंबंधःकल्प्यतेमनः ॥ मिथ्यैवतत्समुत्पन्नंमिथ्याज्ञानंतदुच्यते ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वैराग्यसे, प्राणायामके अभ्याससे, समाधिसे, और व्यसनोंके क्षयसे तथा परमार्थ (ब्रह्म) के ज्ञानसे प्राण वायुका निरोध होताहै ॥ ८५ ॥ कदाचित् पाषाणमें चलनरूप तथा ज्वलनरूप शक्तिका संभव होसकताहै परमनकी शक्ति (चेतनकी सहायता बिना) स्पन्द (गति) तथा ज्ञान विषयमें नहीं है ॥ ८६ ॥ प्राण वायुकी शक्ति स्पन्दरूपहै और वह चलायमानभी जडरूपही है और आत्माकी चित्शक्ति (ज्ञानशक्ति) है और वही सर्वदा अतिस्वच्छ तथा सर्वव्यापिनी है ॥ ८७ ॥ चित्शक्ति तथा स्पन्द शक्तिका जो संबन्धहै उसको मन कहते हैं और वह मिथ्या उत्पन्न और मिथ्याज्ञान कहलाताहै ॥ ८८ ॥

एषाह्यविद्याकथितामायैषासानिगद्यते ॥ परमेतत्तदज्ञानंसंसारादिविषप्रदम् ॥ ८९ ॥ चिच्छक्तेःस्पंदशक्तेश्चसंगेसंकल्पकल्पनम् ॥ नकृतंचेत्परिक्षीणास्तदिमाभवभीतयः ॥ ९० ॥ वायुतःस्पंदशक्तिर्यासाचिताचेत्यतेयदा ॥ सचेत्याचित्तदेवांतःसंकल्पाद्यातिचित्तताम् ॥ ९१ ॥ चित्ततैषाचितोमिथ्या कल्पिताबालयक्षवत् ॥ अखंडमंडलाकारस्पंदरूपाचिदेवयत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—यही कार्य्य अविद्या तथा माया (विक्षेपशक्ति) है और यह मन संसारादि विषका दाता परम अज्ञान है ॥ ८९ ॥ चित्शक्ति तथा स्पन्दशक्तिके संकल्पकी कल्पनामें निमित्त यही मनहै यदि कल्पनाका निमित्त यह न कियाजाय तो सम्पूर्ण संसारके भय मानो नष्ट होचुके ॥ ९० ॥ वायुकी जो स्पन्दशक्तिहै वह जब चित्से बोधित की जाती है तब विषयसहित वही चित् चित्तको देनेहारी अन्तःकरणके संकल्पसे चित्तताको प्राप्त होती है ॥ ९१ ॥ यह चित्तता मिथ्याही बालकके यक्षके समान मिथ्याही कल्पितहै क्योंकि परमार्थमें अखण्डमण्डलाकार स्पन्दरूपसे-रहित परमार्थ चित्रूपही वह चित्तताहै ॥ ९२ ॥

सैषाचित्तातदन्येनकेनसंबाध्यतेकिल ॥ अखंडशक्तेरिंद्रस्यकेनस्यात्सहसंगरः ॥ ९३ ॥ अतःसंबंधिनोऽभावात्संबंधोत्रनविद्यते ॥ संबंधेनविनाकस्यसिद्धंतत्कीदृशंमनः ॥ ९४ ॥ चित्स्पंदयोरेकतायां

किंनाममनउच्यते ॥ कासेनाहयमातंगसंगसंघट्टनंविना ॥ ९५ ॥ तस्मान्नास्त्येवदृष्टात्मीचित्तंरामजगत्रये ॥ सैषासम्यक्परिज्ञानाच्चेतसोजायतेक्षतिः ॥ ९६ ॥

अर्थ—इस चित्स्वभावताका उससे भिन्न किससे खण्डन होसकताहै ॥ ९३ ॥ इसलिये सम्बन्धीके अभावसे चिद् और अचित्‌का कुछभी सम्बन्ध नहीं है और सम्बन्धके अभावसे वह मन किसको सिद्ध हुआ अथवा कैसे होगा ॥ ९४ ॥ यदि चित्के अपलापसे चित् स्पन्दकी एकता मानो तो स्पन्दका साधक न होनेसे मन कोई पदार्थ नहीं होसकता और स्पन्दके अभावमें केवल चित्‌रूपके रहनेमें राजासे पृथक् गज, अश्व, पदाति तथा रथादिके संघट्टनके बिना सेनाका क्या स्वरूप होसकताहै ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! इसलिये भेद वा अभेद दोनों पक्षमें तीनों लोकमें चित्त कोई पदार्थ नहीं है और यह चित्तका नाश तत्व (ब्रह्मतत्व) के सम्यक् ज्ञानसे होताहै ॥ ९६ ॥

मुधामैवमनर्थायमनःसंकल्पयानघ ॥ मनोमिथ्यासमुदितंनास्त्यत्रपरमार्थतः ॥ ९७ ॥ मात्वमंतःक्चित्किंचित्संकल्पयमहामते ॥ मनःसंकल्पकंरामयस्मान्नास्तीहकुत्रचित् ॥ ९८ ॥ असम्यक्ज्ञानसंभूताकल्पनामृगतृष्णिका ॥ हृन्मरौतवसंशांतासम्यगालोकनान्मुने ॥ ९९ ॥ जडत्वान्निःस्वरूपत्वात्सर्वदैवमृतंमनः ॥ मृतेनमार्यतेलोकश्चित्रेयंमौर्ख्यचक्रिका ॥ १०० ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! इसलिये अनर्थकेलिये व्यर्थ मनका संकल्प मत करो क्योंकि यह मन मिथ्या उत्पन्नहै परमार्थमें इसमें कुछ नहीं है ॥ ९७ ॥ हे महामते रामजी ! तुम अपने अन्तःकरणमें कभी कुछभी संकल्प मत्त करो क्योंकि यथार्थमें संकल्पात्मक मन कहीं कुछ नहीं है ॥ ९८ ॥ हे मननशील रामजी ! यह मनकी कल्पनारूप मृगतृष्णा मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्नहै और वह तुमारे हृदयमें स्थित साक्षीचेतनरूप मरूस्थलमें सम्यक् ज्ञान होनेसे शान्त होजायगा ॥ ९९ ॥ चैतन्य निवृत्तिरूप जडता तथा स्वरूपताके अभावसे यह मन सर्वदा मृतहै, और मृतमन संसारको मारताहै यह कैसा मूर्खताको चक्रहै ॥ १०० ॥

यस्यनात्मानदेहोस्तिनाधारोनापिचाकृतिः ॥ तेनेदंभक्ष्यतेसर्वंचित्रेयंमौर्ख्यवागुरा ॥ १०१ ॥ सर्वसामग्र्यहीनेनहन्यतेमसनापियः ॥ नीलोत्पलदलाघातैर्मन्येदलितमस्तकम् ॥ १०२ ॥ जडेनमूकेनांधेननिहतोमनसापियः ॥ मन्येसदह्यतेमूढःपूर्णचंद्रमरीचिभिः ॥ १०३ ॥ विद्यमानोपियःशूरोलोकस्तेनाभिभूयते ॥ अविद्यमानमेवेदंहन्यतेमुग्धतोदिता ॥ १०४ ॥

अर्थ—जिसका शरीर आधार वा कोई जाति नहीं है वह सम्पूर्ण संस्कारको भक्षण करताहै यह कैसा बिचित्र मूर्खताका जालहै ॥ १०१ ॥ शस्त्र अस्त्र देह तथा हस्त पादादि युद्धकी सामग्रीसे हीनभी मनसे जो मारा जाता है उसका मस्तक नीलकमलके आघातसेभी दलित होताहै ऐसा मैं मानताहूं ॥ १०२ ॥ जड मूक तथा अन्धे मनसेभी मारा जाताहै वह चन्द्रमाके किरणसेभी मारा जाताहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ १०३ ॥ शत्रुको जयकी सामग्रीसे सम्पन्न तथा विद्यमानभी मूढ जन जो अविद्यमान मनसे पराजित होताहै और जो विवेकी लोगोंसे वैराग्य आदि तथा समाधि आदिके अभ्याससे तत्व साक्षात्कार आदि उपायसे अविद्यमानही यह मन मारा जाताहै यह सब मूर्खताही उदितहै, न कि यथार्थमें ॥ १०४ ॥

मिथ्यासंकल्पकलितंमिथ्यावस्थितिमागतम् ॥ अन्विष्टमपिनोदृष्टंकातस्यकिलशक्तता ॥ १०५ ॥ अहोनुखलुचित्रेयंमायामयविधायिनी ॥ चेतसाप्यतिलोलेनलोकोयमभिभूयते ॥ १०६ ॥ मौर्ख्यंयदाऽऽपदाग्विष्टःकाहिनापदजानतः ॥ पश्यमौर्ख्याद्दियंसृष्टिरज्ञानेनैवजन्यते ॥ १०७ ॥ हाकष्टमपिदुर्बुद्धेःसृष्टिर्मौर्ख्यवशंगता ॥ असतैवयदेतेनजीवनाप्युपपाद्यते ॥ १०८ ॥

अर्थ—मिथ्या संकल्पसे रचित मिथ्याही स्थितिको प्राप्तहै और जो अन्वेषण करने (खोजने) सेभी दृष्ट नहीं होता भला उसकी अन्यके पराजयमें क्या शक्ति हसकती है ॥ १०५ ॥ अहो देखो यह कैसी विचित्र मायाहै जो महामायावीरूपसे प्रसिद्धमय नाम दैत्यकोभी रचतीहै, क्योंकि अति चंचल (विनाशी) इस चित्तसेभी संसार पराजित होरहाहै ॥ १०६ ॥ जब मूर्खता आई तब वहप्राणी सम्पूर्ण आपत्तियोंका आश्रय होचुका क्योंकि न जाननेवाले अज्ञानीको कौनसी आपत्ति नहीं है, देखो अज्ञानसेही यह सृष्टि उत्पन्न होती है ॥ १०७ ॥ हा कैसा कष्टहै कि मन देहादिकी दुर्बुद्धिके निमित्तसे मूर्खतासे पीडितभी इस सृष्टिको यह प्रसिद्ध जीव असत् मार्गके अनुवर्तनसे उत्तरोत्तर दुःखकेही लिये ग्रहण करताहै ॥ १०८ ॥

मन्येमौर्ख्यमयीसृष्टिरियमत्यंतपेलवा ॥ वास्तरंगप्रवाहेणकणशःपरिशीर्यते ॥ १०९ ॥ नीलांजनालवालेनयंत्रेणैवविचूर्ण्यते ॥ इंदोराभोगपूर्णस्यकरस्पर्शेनमुह्यति ॥ ११० ॥ रिपुभिर्नयनोन्मुक्तैर्दृष्टःसूत्रैर्नि

बध्यते ॥ संकल्पकृतयाशूरसेनयापरिभूयते ॥ १११ ॥ तस्मात्किलेयंमनसानस्थितेनैवकुत्रचित् ॥ कल्पितेनसुधान्येनकृपणेननिहन्यते ॥ ११२ ॥

अर्थ—अज्ञानमयी और अविचारसे उत्पन्न यह सृष्टि विचारसे बाधित होनेसे अति कोमलहै ऐसा मैं मानताहुं और जल जैसे निज कल्पित तरंगोंके प्रवाहसे मर्दित कण २ क्षीण होजाताहै यह भ्रान्ति जैसे है ऐसे यह सृष्टिभी भ्रान्तिरूहै ॥ १०९ ॥ और वही जल जहां आवर्त्त (भँवरेह) रहताहै वहांपर नीलवर्ण मध्यमें छिद्र संयुक्त यंत्रसे चूर्णित होताहै और वह जल जहां कांपताहै वहां चन्द्रमाके किरणोंके स्पर्शसेभी उन्मादसे परवशताको जैसे प्राप्त होताहैं यह भ्रम जैसे है ऐसेही सृष्टिकाभी भ्रमहै ॥ ११० ॥ शत्रुओंकी दृष्टि मात्रमें प्राप्त पुरुष नेत्र रचित सूत्रोंसे बांधा जाताहै और शंकासे रचित वीरोंकी सेनासे पराजित होताहै यह भ्रान्ति जैसेहै वैसेही यह सृष्टिभी भ्रमहै ॥ १११ ॥ हे रामजी ! इसलिये मिथ्या कल्पित और कहींभी स्थितिरहित इस मिथ्याभूत आक्रमण मनसे सम्पूर्ण संसार मारा जाताहै ॥ ११२ ॥

मूर्खलोकमयीसृष्टिर्मनएवासदुत्थितम् ॥ यःशक्तोनवशीकर्त्तुंनासौरामोपदिश्यते ॥ ११३ ॥ अभिजाता स्वरूपैषाप्रज्ञाक्षोदेषुनक्षमा ॥ नोपदेशगिरांयोग्यापरिपूर्णेवसंस्थिता ॥ ११४ ॥ बिभेत्येषापिवीणाया स्तंत्रीगुणतनुध्वनेः ॥ बंधोरपिसनिद्रस्यबिभेतिवदनद्युतेः ॥ ११५ ॥ असतोपिजनाद्दुच्चैर्गीताद्भीताप लायते ॥ स्वेनैवमनसाप्यज्ञाकिलैषाविवशीकृता ॥ ११६ ॥ सुखलवविवशाद्विषेवतप्ताद्दयगतेननिजे नचेतसैव ॥ विधुरितधिषणानवेत्तिसत्यंतदपिकथंपरिमोहितोसुधैव ॥ ११७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मनोविनिवारणं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—मूर्ख लोकमयी यह सृष्टि तथा असतरूपसे उत्पन्न इस मनको जो वश करनेमें समर्थ नहीं है हे रामजी ! वह पुरुष अध्यात्म शास्त्रकी बाणीके उपदेशका अधिकारी नहीं है ॥ ११३ ॥ ऐसे पुरुषकी दुष्ट बुद्धि बाह्य पदार्थोंमेंही रूढ आन्तरिक रूपसे रहितभी परिपूर्णके समान स्थित सूक्ष्मपदार्थोंके विचार करनेमें असमर्थ है तथा अध्यात्मशास्त्रकी वाणीके उपदेशके अयोग्य है ॥ ११४ ॥ यह दुर्बुद्धि वीणाके तारकी सूक्ष्मध्वनिसे डराती है तथा निद्राविशिष्ट वंधुके मुखकी दीप्तिसे डरतीहै ॥ ११५ ॥ शत्रुके अभावमें तुमारा शत्रु आया ऐसा प्रतारकके मुखसे उच्चस्वरसे गान सुनके भयभीत होके भागती है और अधिक कहांतक कहैं अपनेही मनसे यह अज्ञानिनी वशीकृतहै ॥ ११६ ॥ विषमिलित मोदकके आस्वादके समान सुखके लेशसे विवश अर्थात् मरणके अभिमुख, प्रहार करनेवाले शत्रुके सदृश हृदयगत अपने चित्तसेही सन्तापित और विवेक बुद्धि शून्यहै इसीसे सत्यको सर्वथा नहीं जानती तथापि इससे पुरुष मिथ्याही मोहित है ॥ ११७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोविनिवारणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नानाप्रकारकी योनियोंके दुःखसे दुःखित जो उपदेशके अयोग्य प्राणीयोंकी उपेक्षा करके जो उपदेशके योग्यहैं उनके उपदेशका उपाय इस १४ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ संसारसागरासारकल्लोलैरुह्यमानया ॥ मतेर्मानदमूकत्वंययाजनतयार्जितम् ॥१॥ आत्मलाभमयोदारकलाभिरिहसामया॥ विचारोक्तिभिरेताभिःशास्त्रेस्मिन्नोपदिश्यते ॥२॥ नपश्यत्येवयोत्यर्थंतस्यकःखलुदुर्मतिः ॥ विचित्रमंजरीचित्रंसंदर्शयतिकाननम् ॥ ३ ॥ कःकुष्ठघर्घर घ्राणंनानामोदविचारणे ॥ मूर्खमात्मोपदेशेनप्रमाणीकुरुतेऽमतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे मानके योग्य रामजी ! संसाररूपी समुद्रमें विषके अभिलाषरूपी तरंगोंसे वहते हुये जिस जनके समूहने अपनी बुद्धिकी मूंकता उपार्जितकी अर्थात् बुद्धिको कार्य्यमें नहीं लाया ॥ १ ॥ उसके लिये आत्मके लाभसे पूरित उदार कलाओंसेयुक्त विचारकी युक्तियोंसे इस अध्यात्मशास्त्रमें उपदेशके लिये अधिकारी मैं नहीं समझता ॥ २ ॥ जो दुर्बुद्धि नेत्र रहनेपरभी दूरतक नहीं देखता उसको कौनसा दुर्मति पुरुषहै जो नानाप्रकारकी चित्रविचित्र लताओंसे पूर्ण वनको दिखलाना चाहै ॥ ३ ॥ वह कौनसा दुर्मति पुरुषहै जो मूर्खको अपने उपदेशसे प्रमाणिक करताहै क्योंकि घ्राताशक्ति रहित पुरुषको नानाप्रकारके सुगंधके विचारमें कौन नियत करसकताहै ॥ ४ ॥

विपर्यस्तेंद्रियंमत्तंमदिराघूर्णितेक्षणम् ॥ धर्मनिर्णयसाक्षित्वेकःप्रमाणीकरोत्यधीः ॥ ५ ॥ कःशवंवा श्मशानस्थंसमवायकथाशतम् ॥ परिपृच्छतिसंदेहेकश्चमूर्खंप्रशास्तिच ॥ ६ ॥ येनाशयबिलस्थोपि मूकोंधोपिननिर्जितः ॥ मनोव्यालःसदुर्बुद्धिःकथंनामोपदिश्यते ॥ ७ ॥ जितमेवमनोविद्धिवस्तुतोयन्न विद्यते ॥ निकटात्साचिरास्तैवयाशिलानैवविद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—कौनसा दुर्बुद्धि पुरुषहै जो विपरीत इन्द्रियसहित तथा मत्त और मदिरापानसे घूर्णित नेत्रयुक्त पुरुषको धर्मके निर्णयमें साक्षीरूपसे प्रमाणिक बनाताहै ॥ ५ ॥ कौन पुरुष मृतक वा स्मशानमें स्थित जन समूहमें होनेवाली सैकडों कथाओंको सन्देह होनेपर पूंछताहै और मूर्खको शिक्षा कौन दे सकताहै ॥ ६ ॥ हृदयरूपी बिलमें स्थित मूंक और अन्ध मनरूपी सर्पको जिस दुर्बुद्धिने नहीं जीता उसको भला कैसे उपदेश दे सक्ते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो मन यथार्थमें नहीं है उसको तुम जीता हुआही जानों क्योंकि जो पाषाणकी शिलाहै ही नहीं है उसको अपने समीपसे तुम फेकी हुईही समझो ॥ ८ ॥

मनोनविजितंरामयेनासदपिदुर्धिया ॥ तेनाग्रस्तविषेणैवम्रियतेविषमूर्च्छया ॥ ९ ॥ ज्ञःपश्यतिसदैवा त्मास्पंदनेप्राणशक्तयः ॥ इंद्रियाणिस्वधर्मेषुमनोरामकिमुच्यते ॥ १० ॥ प्राणानांस्पंदनीशक्तिर्ज्ञानश क्तिःपरात्मनः ॥ इंद्रियाणांनिजाशक्तिरेकःकोत्रनिबध्यते ॥ ११ ॥ सर्वास्तदंशवस्तस्यसर्वशक्तेःकिला त्मनः ॥ पृथक्तावाच्यताचेयंकुतोनामतवोत्थिता ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस दुर्बुद्धिने असन्मनकोभी नहीं जीता वह विषसे ग्रस्त हुये विनाही विषकी मूर्छासे मानों मरचुका ॥ ९ ॥ ज्ञानी जन सदा अपने आत्माको देखताहै और स्पन्दनशक्तिमें प्राणोंको देखताहै और अपने २ धर्मोंमें नियुक्त इन्द्रियोंको तो कहो रामजी ! मन क्या पदार्थ रहा ॥ १० ॥ प्राणोंकी स्पन्दशक्ति, आत्माकी ज्ञान-शक्ति, और रूपरसादि विषयोंके साक्षात्कार करनेमें इन्द्रियोंकी शक्तिहै तो कहो एक यहांपर कौन निबद्ध होताहै ॥ ११ ॥ सबकी व्यवहारशक्ति सर्व शक्तिमान् और सबका रचयिता परमात्माकी किरणरूपही है तो कहो मन आदि शब्दकी वाच्यता पृथक् तुमको कहांसे आविर्भूत हुई ॥ १२ ॥

किंनामजीवइत्युक्तंयेनेहांधीकृतंजगत् ॥ चित्तंचैवासदेवत्वंविद्धिकातस्यशक्तता ॥ १३ ॥ मनोनिर्दग्ध दृष्टीनांदृष्ट्वादुःखपरंपराम् ॥ मतिर्मेकरुणाक्रांतारामसुग्धेवतप्यते ॥ १४ ॥ कःकिलात्रकुतःखेदोयन्मू र्खःपरितप्यते ॥ दुःखायैवहिजायंतेकरभाःप्राकृतास्तथा ॥१५॥ विनाशायैवजायंतेजडादेहेष्वबुद्धयः॥ अनारतोदयाःपामाबुद्बुदाजलधेरिव ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मासे पृथक् जीव कौनसा पदार्थ है जिसने इस सर्व जगत्को अन्धा करदिया क्या आत्मासे पृथक् जीव चेतनान्तरहै वा अचेतनहै यदि प्रथम पक्षहै "तो नान्योऽस्ति द्रष्टा" "नान्योऽस्ति विज्ञाता" अर्थात् ब्रह्मसे चेतन कोई नहीं है इस श्रुतिसे विरोध होगा और यदि अचेतनहै तो उसमें शक्ति क्या होसकती है, इसलिये आत्मासे पृथक् चित्त और जीव दोनोको असत्ही समझो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! अपने रचित मनसे जिनकी परमार्थ दृष्टि दग्ध होगई है उनके दुःखकी परम्पराको देखकर करुणासे आक्रान्त व्यामोहसे संयुक्तके सदृश मेरी बुद्धि सन्तप्त होती है ॥ १४ ॥ इसमें क्या खेद करना चाहिये जो कि मूर्ख दुःख पाताहै, क्योंकि गर्दभ और मूर्ख प्राणी दुःखहीके लिये उ-त्पन्न होते हैं अर्थात् इनके दुःखके लिये शोक न करना चाहिये ॥ १५ ॥ निरन्तर पाप करनेवाले जड दुर्बुद्धि और देहमें आत्माभिमानी प्राणी समुद्रमें बुद्बुद्के समान विनाशके लिये उत्पन्न होते है ॥ १६ ॥

कियंतःपश्यपशवःप्रत्यहंप्रतिमंडलम् ॥ सूनावद्भिर्निहन्यंतेकैवात्रपरिदेवना ॥ १७ ॥ अर्बुदान्यनिलो हंतिक्ष्माजातेषुचान्वहम् ॥ दंशानांमशकानांचकैवात्रपरिदेवना ॥ १८ ॥ दिशंप्रतिगिरींद्रेषुपुलिंदा यावनेवने ॥ निघ्नंतिमृगलक्षाणिकैवात्रपरिदेवना ॥ १९ ॥ जलेजलचरव्यूहान्सूक्ष्मान्स्थूलोनिकृंतति ॥ ग्रासार्थनिर्दयोमत्स्यःकैवात्रपरिदेवना ॥ २० ॥

अर्थ—प्रति दिशामें प्रतिदिन देखो कितने पशु हिंसास्थानमें नियत पुरुषोंसे बधे जाते हैं, उनके लिये क्या शोक करना चाहिये ॥ १७ ॥ पृथिवीमें उत्पन्न जीवोंके मध्यमें दंश तथा मच्छडोंके अर्बुदके अर्बुद अर्थात् असंख्यात वायु नाश करताहै इनके विषयमें क्या शोक करना चाहिये ॥ १८ ॥ बडे २ पर्वतोंमें प्रति दिशाओंमें वन २ के नि-वासी व्याधा आदि लक्षों मृगोंको मारते हैं इनके विषयमें क्या शोक करना चाहिये ॥ १९ ॥ जलमें निर्दय और स्थूल मच्छ अपने भोजनके लिये सूक्ष्म जल चारी जीवोंके समूहके समूहको खाजाताहै ॥ २० ॥

लिक्षामणुकणक्षामांक्षुधाखादतिमक्षिका ॥ तांकोशकारःक्षुधितोदंशस्तमपिचंचलम् ॥ २१ ॥ तंदंशं दर्द्दुरोभुंक्तेव्यालस्तमपिदर्द्दुरम् ॥ सर्पमुग्रंखगोहंतिबभ्रुश्चैनंनिकृंतति ॥२२॥ बभ्रुर्हिनस्तिमार्जारोमार्जारं श्वानिकृंतति ॥ ऋक्षःकौलेयकंहंतिऋक्षंव्याघ्रोनिकृंतति ॥२३॥ सिंहोभिभवतिव्याघ्रंशरभःसिंहमत्ति च ॥ शरभोनाशमायातिमत्तमेघविलंघने ॥ २४ ॥

अर्थ—सुधासे ग्रस्त मक्षिका अणुके कणके समान जुवांको खाजाती हैं और उसको क्षुधित मकरी खाजाती है और उस मकरीको वनमक्षिका खाजाती हैं ॥ २१ ॥ उस वनमक्षिकाको मेडक और मेडककोभी सर्प और उग्र सर्पोंकोभी गरुडादि पक्षी वा नकुल (नेवाला) खाजाताहै ॥ २२ ॥ नकुलको मार्जार मार्जारको कुत्ता कुत्तेको भालू भालूको व्याघ्र मारताहै ॥ २३ ॥ व्याघ्रको सिंह सिंहकोभी शार्दूल खाजाताहै और शार्दूलभी मत्त मेघके लंघन करनेमें गिरके मरजाते हैं ॥ २४ ॥

मेघावातैर्विधूयंतेवायवोगिरिभिर्जिताः ॥ गिरयोवज्रनिष्पिष्टाःशक्रस्यवशगःपविः ॥ २५ ॥ विष्णुना क्रियतेशक्रोविष्णुर्गच्छतिजंतुताम् ॥ सुखदुःखदशामेतांजरामरणपालिताम् ॥ २६ ॥ जंतवोपिमहा कायाअपिविद्याविधान्विताः ॥ लिक्षाभिरंगलग्नाभिरुपजीव्यंतएवहि ॥ २७ ॥ अजस्रमेवमालूनविशीर्णभूतजंगलम् ॥ परस्परमलंमोहादद्यतेरक्ष्यतेपिच ॥ २८ ॥

अर्थ—मेघभी वायुसे हटादिये जाते हैं और वायुभी बडे २ पर्वतोंसे पराजित होताहै पर्वतभी वज्रसे चूर्ण होते हैं और वह वज्रभी इन्द्रके वशमें है ॥ २५ ॥ इन्द्रभी विष्णुसे बनाये जाते हैं, और विष्णुभी जरा और मरणसे पालित सुखदुःख दशा संयुक्त मत्स्य कूर्म्म तथा वाराहादि जन्तुरूपताको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ बडे २ शरीरवाले विद्या तथा शस्त्र अस्त्र करके युक्त जीवभी शरीरमें संलग्न लीख वा जुवाँ खट्मल आदिसे भक्षित होते हैं ॥२७॥ इसप्रकार प्राणियोंका समूह आधि भौतिक जीवोंसे छिन्न और आध्यात्मिक तथा आधिदैविक दुःखोंसे विशीर्ण अज्ञानके कारण परस्पर भक्षित और रक्षितभी होते हैं ॥ २८ ॥

अनारतंविनश्यंतिविविधाभूतजातयः ॥ अनारतंचजायंतेलिक्षायुकापिपीलिकाः ॥ २९ ॥ जलकोशेषु जायंतेमत्स्येभमकरादयः ॥ भूमावंतःप्रजायंतेकीटौघावृश्चिकादयः ॥ ३० ॥ अंतरिक्षेपिजायंतेआका शविहगादयः ॥ वनवीथिषुजायंतेसिंहव्याघ्रमृगादयः ॥ ३१ ॥ प्राण्यंगेष्वपिजायंतेविचित्राःककुभंप्र ति ॥ स्थावरेष्वपिजायंतेघुणाजघनकादयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—नानाप्रकारकी लिक्षज और पिपीलिकादि प्राणियोंकी जाति निरन्तर उत्पत्ति तथा नाशको प्राप्त होती रहती हैं ॥ २९ ॥ जलाशयोंमें हस्तीके समान आकारवाले मत्स्य तथा मकर आदि उत्पन्न होते हैं, और पृथिवीके भीतरभी वृश्चिक आदि कीडोंके समूह उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥ अन्तरिक्षमेंभी आकाशमें उडनेवाले पक्षी उत्पन्न होते हैं और बनोंके मार्गोंमेंभी सिंह व्याघ्र तथा मृगादि उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ प्राणियोंके शरीरमेंभी चित्रविचित्र लीख जुआं आदि उत्पन्न होते हैं और स्थावरोंमेंभी घुण तथा काष्ठके कीडे भ्रमर आदि उत्पन्न होते हैं ॥ ३२ ॥

शिलांतरेषुजायंतेकीटभेकघुणादयः ॥ विष्टायामपिजायंतेनानाकीटगणास्तथा ॥ ३३ ॥ एवमेतेष्वसंख्येषुजन्मस्वपचयेषुच ॥ अजस्रंकरुणावंतोनंदंतुप्ररुदंतुवा ॥ ३४ ॥ अनारतमृतावस्मिन्ननारतसमुद्भवे ॥ संसारसंभ्रमेयुक्तानतुष्टिर्नचदुःखिता ॥ ३५ ॥ पंक्तयस्त्वेवमेवेमावृक्षपर्णगणैस्समाः ॥ उत्पत्योत्पत्यलीयंतेभूतानांभूरिसंभवाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पाषाणोंके भीतरभी कीडे मण्डूक तथा घुण आदि उत्पन्न होते हैं और विष्ठामेंभी नानाप्रकारके कीडोंके समूह उत्पन्न होते हैं ॥३३ ॥ इसप्रकार इनके असंख्य जन्म तथा नाशोंसे निरन्तर कृपालु हर्षित वा शोकितहो परंतु राग द्वेषके अभावसे उपेक्षाही युक्तहै ॥३४॥ निरन्तर नाश वा निरन्तर उत्पत्तिमय इस संसारके भ्रममें संतोष वा दुःख दोनों युक्त नहीं हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वृक्ष और पत्रोंके समूहके समान अनेक प्रकारकी उत्पत्तिमय प्राणियोंकी ये पंक्तियां उत्पन्न हो २ कर पुनः २ नाशको प्राप्त होती हैं ॥ ३६ ॥

यःप्रवृत्तःकुबुद्धीनांदयावान्दुःखमार्जने ॥ स्वगतच्छत्रनिर्मृष्टसूर्यांशुखिद्यतेनभः ॥ ३७ ॥ नतिर्यक्स मधर्माणउपदेश्यानराभुवि ॥ कथार्थकथनेनार्थःकःस्थाणुनिकटेवने ॥ ३८ ॥ किंकिलस्फारमनसांपशूनांचविशेषणम् ॥ कृष्यंतेपशवोरज्ज्वामनसामूढचेतसः ॥ ३९ ॥ स्वचित्तपंकमग्नानांस्वनाशारब्धकर्मणाम् ॥ मूर्खाणामापदंदृष्ट्वाप्ररुदंत्युपलाअपि ॥ ४० ॥

अर्थ—जो दयावान् पुरुष कुबुद्धियोंके दुःखोंको दूर करनेमें प्रवृत्त होताहै क्या वह अपने शिरके सम्पूर्ण आकाशको सूर्य्यके किरणोंसे आतपरहित करनेमें परिश्रम नहीं करता ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! इस पृथिवीपर कीट पतंग वा पशुओंके समान धर्म्मवाले मनुष्य उपदेशके योग्य नहीं हैं, क्योकि स्थाणु (ठूंठ) जिसके निकटहैं ऐसे बनमें कथाके अर्थ कहनेसे क्या प्रयोजनहै ॥ ३८ ॥ विषयोंमें विस्तारित चित्तवाले मनुष्योंमें तथा पशुओंमें क्या विशेषताहै क्योंकि रज्जु (रस्सो) से पशु खोंचे जाते हैं और मनसे मूढ चित्तवाले मनुष्य ॥ ३९ ॥ अपने चित्तरूपी कीचडमें निमग्न तथा अपने नाशके लिये कर्मको आरम्भ करनेवाले मनुष्योंकी आपत्ति देखकर पाषाणभी रूदन करने लगते हैं ॥ ४० ॥

अनिर्जितात्मचित्तानांसमंताद्दुःखदादशाः ॥ तन्मार्जनंकृतप्रज्ञोनातःसंप्रतिपद्यते ॥४१॥ विनिर्जितात्मचित्तानांदुःखानिरघुनंदन ॥ सुविचार्याणितेनात्रज्ञातज्ञेयःप्रवर्त्तताम् ॥ ४२ ॥ मनोनास्तिमहाबाहोमासुधोपप्रकल्पय ॥ अनेनकल्पितेनत्वंवेतालेनेवहन्यसे ॥ ४३ ॥ यावद्विस्मृतवानात्मतत्त्वंमूढोभवद्भवान् ॥ तावत्तवमनोव्यालोबभूवाभ्युदितस्ततः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिन पुरूषोंने अपने चित्तोंको नहीं जीता उनके लिये चारों ओरसे दुःखकी दशा पूर्ण हैं इसलिये सम्पूर्ण भूमिके सदृश उनके मार्जन (शोधन) में बुद्धिमान् नहीं प्रवृत्त होता ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जिन्होंने अपने चित्तको जीतलियाहै उनके दुःख सुखसे दूर करने योग्यहै इसलिये ज्ञानी पुरुष उसके दूर करनेमें प्रवृत्तहो ॥४२॥ यथार्थमें हे महाबाहो ! व्यर्थ इस मिथ्या मनकी कल्पना मत करो क्योंकि इसकी कल्पना करनेसे वेतालसे बालकके समान तुम मारे जातेहो ॥ ४३ ॥ आत्मतत्वको विस्मृत होके जबतक तुम मूढ होरहेहो तभीतक यह मनरूप सर्प चारो ओरसे अभ्युदयको प्राप्तहै ॥ ४४ ॥

इदानींभवताज्ञातंयथाभूतमरिंदम ॥ संकल्पाद्वर्द्धतेचित्तंतदेवाशुपरित्यज ॥ ४५ ॥ दृश्यमाश्रयसीदंचेत्तत्सचित्तोसिबांधवान् ॥ दृश्यंसंत्यजसीदंचेत्तदचित्तोसिमोक्षवान् ॥ ४६ ॥ अयंगुणसमाहारोबंधायैवसमाश्रितः ॥ संत्यक्तोभवमोक्षाययथेच्छसितथाकुरु ॥ ४७ ॥ नाहंनेदमितिध्यायंस्तिष्ठत्वमचलाचलः ॥ अनंताकाशसंकाशहृदयोहृदयेश्वरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे शत्रु नाशक रामजी ! इससमय तुम परमार्थभूत चित्त तथा (आत्मा) को जानलिया संकल्पसेही यह चित्त बढताहै इसलिये उसीको शीघ्र त्यागो ॥४५॥ यदि तुम सत्यबुद्धिसे चितका आश्रय करतेहो तो बन्धतावान् चित्तसहित तुमहो और यदि दृश्यको असत्य जानकर त्यागतेहो तो मोक्षवान् तथा चित्त रहितहो ॥ ४६ ॥ त्रिगुणरूप मायामय यह दृश्यके समूह बन्धनके लिये आश्रय किया जाताहै और यह पूर्ण रीतिसे त्यागा हुआ मोक्षकेही लिये है अब तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥४७॥ हे रामजी ! अन्तरिक और बाह्य यह दृश्य दोनों मैं नहीं हुं ऐसा ध्यान करते हुये पर्वतके समान तुम स्थित रहो क्योंकि आत्माका हृदय अनन्त आकाशके सदृश (अति विशाल) है ॥४८॥

आत्मनोजगतश्चास्यत्वमंगकलनामलम् ॥ रामद्वित्वमयींत्यक्त्वाशेषस्थःसुस्थिरोभव ॥ ४९ ॥ आत्मनोजगतश्चांतर्द्रष्टृदृश्यदशांतरे ॥ दर्शनाख्येस्वमात्मानंसर्वदाभावयन्भव ॥ ५० ॥ स्वाद्यस्वादकसंत्यक्तंस्वाद्यस्वादकमध्यगम् ॥ स्वादनंकेवलंध्यायंन्नित्यमात्ममयोभव ॥ ५१ ॥ रामानुभवनीयस्यतथानुभवितुःस्वयम् ॥ अवलंब्यनिरालंबमध्यंमध्येस्थिरोभव ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे अंग (प्रियरामजी !) आत्मा तथा जगत्की द्वित्वमयी जो भ्रान्तिमय कल्पनाहै उसको सर्वथा त्यागकर शेष साक्षीचेतनमें स्थित रहो ॥ ४९ ॥ आत्मा तथा जगत् वा दृश और द्रष्टाके अन्तराल (मध्य) में दर्शन नाम अर्थात् द्रष्टा तथा दर्शनरूप त्रिपुटीमें अनुस्यूत साक्षीरूपमें अपने आत्माकी भावना करते हुये स्थित रहो ॥ ५० ॥ स्वाद्य (स्वादके योग्य) स्वादक (स्वादके लेनेवाले) के मध्यमें प्राप्त स्वादनरूप त्रिपुटीके साक्षीचेतनको केवल ध्यान करते हुये नित्य आत्ममय होजाओ ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! अनुभवनीय (अनुभवके योग्य) तथा अनुभवकर्ता दोनोंके मध्यमें निरालम्ब त्रिपुटीसे भिन्न जो शुद्ध स्वरूपहै उसको हृदयमें अवलम्बन करके स्थिर होओ ॥ ५२ ॥

भवभावनयाहीनंभावाभावदशोज्झितम् ॥ भावयन्नेवमात्मानमात्मसंस्थःस्वयंभव ॥ ५३ ॥ आत्मसत्तांत्यजन्नेतांचेत्यंभावयसिस्वयम् ॥ यदारामतदायासिचित्ततामतिदुःखदाम् ॥ ५४ ॥ चित्ततांशृंखलामेतांस्वरूपज्ञानयुक्तितः ॥ बिलाच्चित्तान्महाबाहोस्वात्मसिंहंविमोचय ॥ ५५ परमात्मदशांत्यक्त्वाचेत्यंपरिपतन्नलम् ॥ यदागच्छसिसंकल्पंचेत्यंसंपश्यसेतदा ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वप्न जाग्रत् और सुषुप्ति दशासे रहित और सब दशाके साक्षीभूत आत्माकी भावना करते हुये स्वयं आत्मामें स्थित होओ ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! इस रीतिसे शुद्ध चिन्मात्र स्वभाववाली आत्मसत्ताको प्रमादसे त्यागते हुये यदि विषयकी भावना करोगे तो दुःखदायिनी चित्तता दशाको प्राप्त होओगे ॥ ५४ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इस चित्तरूप शृंखला (जंजीर) को आत्मस्वरूपके ज्ञानरूप युक्तिसे तोडकर चित्तरूप पिंजरेसे आत्मरूप सिंहको छोडाओ ॥ ५५ ॥ अपने शुद्ध आत्मदशाको त्यागकर विषयकी और पूर्ण रीतिसे गिरते हुये जब संकल्पको प्राप्त होओगे उससमय विषयको देखोगे अर्थात् विषयरूप होजाओगे ॥ ५६ ॥

आत्मनोऽव्यतिरिक्तंसच्चित्तमित्यंगसंविदा ॥ मनःसंपद्यतेदुःखिक्षीयतेत्यक्तयातया ॥ ५७ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमित्यंतःसंविदोदये ॥ क्वचेत्ताक्वचवाचित्तंकिंचेत्त्यंचेतनंचकिम् ॥ ५८ ॥ अहमात्मेतिजीवोस्मीत्येतावच्चित्तकंविदुः ॥ अनेनेत्थमनाद्यंतंदुःखंराघवतन्यते ॥५९॥ अहमात्मानजीवाख्याःसत्ताःसंतीतराःक्वचित् ॥ इत्येवचित्तोपशमःपरमंसुखमुच्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! पूर्वकालमें अनुभवसे उत्पन्न दृश्यके संस्कारके उद्बुद्ध होनेपर जब चित्तही कुछ स्थूलताको प्राप्त होताहै तब चित्त इस संवित्से आत्मासे भिन्न होके चित्तकी सिद्धि होती है और तभी पुनः २ मननसे दृढीभूत संकल्पमें समर्थ होके मननरूपमें प्राप्त होताहै और अपने पृथक् आत्मसत्ता संवित्से जब त्यक्त होजाताहै उससमय क्षीण होजाताहै ॥ ५७ ॥ वह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है अन्तःकरणमें इस संवित्के उदय होनेपर कहां चिंतिता (चेतनेवाला चेतन उपहित) उपाधिरूप चित्त कहां वृत्ति व्याप्य चेत्य (विषय) कहां और चेतन (वृत्ति) भी कहां अर्थात् शुद्ध चिद्दशामें चेत्ता चित्त चेत्य और वृत्ति चेतन कुछ नहीं रहता ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनुभवमें प्राप्त देह इन्द्रिय आदिसे शोभित जीव मैं हुं इसी दशाको चित्त कहते हैं और इसी चित्तने अनादि अनन्त दुःखका विस्तार कियाहै ॥ ५९ ॥ मैं शुद्ध ब्रह्महुं और ब्रह्मसे भिन्न जीव नामक सत्ता परमार्थमें कहींभी सत्य नहीं है यही चित्तका उपशम और परमसुख कहलाताहै ॥ ६० ॥

आत्मैवेदंजगदितिजातेराघवनिश्चये ॥ असत्ताचेतसोजाताभवत्येवनसंशयः ॥ ६१ ॥ एवंसत्यावबोधेनस्यात्मैवेदमितिस्थितिः ॥ मनःसुगलितंविद्धिसूर्यभासातमोयथा ॥ ६२ ॥ मनःसर्पःशरीरस्थोयावत्तावन्महद्भयम् ॥ तस्मिन्नुत्सारितेयोगाद्भयस्यावसरःकुतः ॥ ६३ ॥ भ्रांतिमात्रोत्थितश्चित्तवेतालोतिवलोनघ ॥ सम्यग्ज्ञानेनमंत्रेणप्रसभंविनिपात्यताम् ॥ ६४ ॥ देहगेहाद्गतेचित्तयक्षेबलवतांवरे ॥ निराधिर्विगतोद्वेगस्तिष्ठनास्तिभयंतव ॥ ६५ ॥ नीरागएवनिरुपार्जनएवचास्मीत्येतावतैवगलितातवचित्तसत्ता ॥ निर्दुःखमुत्तमपदंपरमंगतोक्षितिष्ठोपशांतपरमैषणएवमंतः ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे स्वचित्तनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह संपूर्ण जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय होजानेसे चित्तकाभी जगत्में अन्तर्भाव होनेसे चित्तकी असत्ता सिद्ध हुई, इसमे कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार सत्य ज्ञान होनेसे अपना आत्माही सम्पूर्ण जगत्है ऐसी स्थिति जब होती है तब तुम मनको ऐसे नष्ट समझो जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका ॥६२॥ हे रामजी ! जबतक मनरूप सर्प शरीरमें स्थितहै तबतक महाभय उपस्थितहै और उस सर्पको समाधि वा ब्रह्म चेतनके साथ एकतासे उखाड देनेके पश्चात् भयका अवसर कहां ॥ ६३ ॥ हे अनघ रामजी ! चित्तमें आविर्भूत भ्रांतिरूप अति बली वेतालको उत्तम ज्ञानरूप मंत्रसे बलसे मारो ॥ ६४ ॥ सब बलवानोंमें श्रेष्ठ चित्तरूप यक्षके देहरूप गृहसे निकल जानेपर मानसीव्यथा तथा उद्वेगसे रहित होके स्थित रहो, क्योंकि चित्तके अभाव होनेसे तुमको कहींभी भय नहीं है ॥ ६५ ॥ आत्माके लाभसे सर्व कामनाओंके पूर्ण होनेसे रागरहित तथा बाह्य विषयोंके सुख साधनकी उपार्जनतासे शून्य मैं हुं इतनेही विचारसे तुमारी चित्तकी सत्ता गलित होचुकी, इसप्रकार दुःख शून्य उत्तम परमपदको तुम प्राप्त होके अन्तःकरणमें सब एषणा (इच्छा) से शून्य स्थित रहो ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे स्वचित्त निरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

आत्मा मन दशाको प्राप्तहो करके संसारमे जिससे बांधा जाताहै अनर्थके बीजभूत उस तृष्णाका वर्णन इस १५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एतामनुसरन्रामचित्तसत्तामपावनीम् ॥ संसारबीजकणिकांजीवबंधनवागुराम् ॥१॥ आत्मात्यक्तात्मरूपाभोमलिनामापतद्दृशम् ॥ चित्तंसमनुसंधत्तेधत्तेचकलनामलम् ॥२॥ वर्द्धमानमहामोहदायिनीभयकारिणी ॥ तृष्णाविषलतारूपामूर्च्छामेवप्रयच्छति ॥ ३ ॥ यदायदोदेति तदामहामोहप्रदायिनी ॥ तृष्णाकृष्णानिशेवेयमनंतात्मविकारिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अपवित्र संसारके बीजकी कणिका और जीवके बन्धनके लिये जालरूप इस चित्तकी सत्ताका अनुसरण करता हुआ आत्मा अपने ब्रह्म स्वभावको त्यागकर मालिन अर्थात् इन्द्रियके वृत्तियोंके अधीन ज्ञानकी ओर झुकता हुआ चित्तसे कल्पित देहादि संघात मैं हुं ऐसा निश्चय करताहै और चित्तसे प्राप्त राग द्वेष प्रयुक्त वासनारूपी मलकोभी धारण करताहै ॥ १ ॥ २ ॥ बढती हुई महामोहकी दात्री और भयकी कारिणी तृस्णारूपी यह विषकी लता वासनारूप मलधारी आत्माको मूर्छाही संप्रदान करती है ॥ ३ ॥ जब २ महामोहको देनेवाली यह तृष्णारूपी कृष्णपक्षकी रात्रि उदय होती है तब २ अनन्त आत्मामें (पक्षमें आकाशमें) विकार उत्पन्न करती हैं ॥ ४ ॥

कल्पानलशिखादाहंसोढुंशक्ताहरादयः ॥ तृष्णानलशिखादाहंसोढुंशक्तानकेचन ॥ ५ ॥ तीक्ष्णाकृष्णा सुदीर्घाचवहत्यंगंसदानिजम् ॥ शीतलैवासुखोदर्काघोरातृष्णाकृपाणिका ॥ ६ ॥ यान्येतानिदुरंतानि दुर्जराण्युन्नतानिच ॥ तृष्णावल्ल्याःफलानीहतानिदुःखानिराघव ॥ ७ ॥ अदृश्यैवात्तिमांसास्थिरुधिरादिशरीरकात् ॥ मनोबिलविलीनैषात्तृष्णावनशुनीनृणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रलयकालकी अग्निकी शिखाके दाहको महादेव आदि सहनेको समर्थ हैं, परन्तु तृष्णारूपी शिखाके दाहको सहनेके लिये कोईभी समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! तीक्ष्ण, कृष्णवर्ण, अति दीर्घ दुःखरूप फलको देनेवाली, शीतल, तथा भयंकर यह तृष्णारूपी कृपाण (तलवार) सदा अपनेही अंगको काटती है ॥ ६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो यह दुर्निवारणीय छोटे बडे दुःखहैं वे सब तृष्णारूपी लताके फलहैं ॥ ॥ ७ ॥ अदृश्य होकर यह तृष्णारूपी व्याघ्री मनरूपी बिलमें छिपी हुई मांस रूधिर और हड्डीको भक्षण करती है ॥ ८ ॥

क्षणमुल्लासमायातिक्षणमायातिशून्यताम् ॥ जडाविदलयत्याशुतृष्णाप्रावृट्तरंगिणी ॥ ९ ॥ हृष्टदैन्योहतस्वांतोहतौजायातिनीचताम् ॥ मुह्यतेरौतिपततितृष्णयाभिहतोजनः ॥ १० ॥ नस्थिताकोटरेयस्य तृष्णाकृष्णभूजंगमी ॥ तस्यप्राणानिलाःस्वस्थाःपुंसोहृदयरंध्रगाः ॥ ११ ॥ नूनमस्तंगतोयत्रतृष्णाकृष्णनिशाक्रमः ॥ पुण्यानितत्रवर्द्धंतेशुक्लपक्षइवेंदवः ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षणहीमें तो यह वृद्धिको प्राप्त होती है और क्षणहीमें क्षयको प्राप्त होती है और क्षणहीमें वर्षाकालकी नदीके समान पाषाण तथा कंटकयुक्त देशमें लेजाकर प्राणियोंको खण्डित करती है ॥ ९ ॥ इस तृष्णासे मारा हुआ मनुष्य दीन अन्तःकरणमें शून्य तथा पराक्रमरहित नीचताको प्राप्त होताहै, मोहित होताहै, रोताहै और गिरताहै॥१०॥ जिसके कोटरमें तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं स्थितहै उस पुरुषके हृदयके छिद्रगामी प्राण वायु स्वस्थतासे चलते हैं॥११॥ निश्चय करके जहांपर तृष्णारूपी रात्रिका क्रम अस्त होगयाहै वहांपर पुण्य ऐसे बढते हैं जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा॥१२॥

योनतृष्णाघुणावल्ल्याक्षतःपुरुषपादपः ॥ पुण्यप्रसूनैःससदादशांयातिविकासिनीम् ॥ १३ ॥ अनंताकुलकल्लोलाविवर्त्तावर्त्तसंकुला ॥ प्रवहत्याशयारण्येतृष्णांधानांनदीनृणाम् ॥ १४ ॥ तृष्णयेमेजनाःसर्वे सूत्रयंत्रपतत्रिवत् ॥ भ्राम्यंतेप्रविशीर्येतेसंह्रियंतेचभूरिशः ॥ १५ ॥ मूलान्यपिसुसूक्ष्माणिकठिनाशयकर्कशा ॥ तृष्णापरशुधारेववल्गंतीविनिकृंतति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो पुरुषरूपी वृक्ष तृष्णारूपी घुणकी लतासे नहीं कटागया वह धर्मरूपी पुष्पोंसे सदा विकासमयी दशाको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ विवेकरूपी दृष्टिसे हीन पुरुषोंके हृदयरूपी बनमें अनन्त व्याकुलतारूप तरंगयुक्त और भ्रमरूपी आवर्तोंसे पूर्ण तृष्णारूपीनदी निश्चय करके वहती है ॥ १४ ॥ तृष्णासेही यह सम्पूर्ण प्राणी सूत्रके यंत्रमें पक्षीके समान घुमाये जाते हैं उसके अनन्तर रक्षण, व्यय, क्षय, चिंता तथा शोकरूपी पक्षोंके काटनेसे विशीर्ण होतेहैं

और अन्तमें अनेक वार मारेभी जाते हैं ॥ १५ ॥ निर्दय अन्तःकरणसे कर्कश यह तृष्णा परशुकी धाराके समान अतिसूक्ष्मभी (किंचित् अंकुरित) दया विवेकादि धर्मके मूलोंको काट देती है ॥ १६ ॥

निपतत्यवटेमूढस्तृष्णामनुसरज्जनः ॥ नीलामनुपतञ्छ्भ्रतृणशाखांयथैणकः ॥ १७ ॥ नोन्मत्तापिजरा चक्षुस्तथाजरयतिक्षणात् ॥ यथाजरयतिक्षामातृष्णाहृदयरूपिका ॥ १८ ॥ तृष्णयाशयकौशिक्याह्यमंगलभूतया ॥ रूढयाभगवानेषविष्णुर्वामनतांगतः ॥ १९ ॥ कयाचिदेवदैविक्याहृदिग्रथितयानया ॥ तृष्णयाभ्राम्यतेव्योम्निरज्ज्वेवार्कोन्वहंकिल ॥ २० ॥

अर्थ—तृष्णाके पीछे चलनेवाला मूढ मनुष्य नरकरूपी अन्धकूपमें ऐसे गिरताहै जैसे कूपके ऊपर जमी हुई हरित तृणकी शाखाके पीछे गिरनेवाला हरिण ॥ १७ ॥ अति प्रबलभी वृद्धाऽवस्था नेत्रको क्षणभरमें वैसी जीर्ण नहीं करती जैसी अति सूक्ष्मभी तृष्णारूपी हृदयकी पिशाचिका ॥ १८ ॥ इस तृष्णारूपी कौशिकी (उल्लूकी) अमंगलता रूपसे हृदयमें स्थित होनेसे यह अनन्त भगवान् विष्णुभी वामनताको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ ईश्वरसे प्रेरित हृदयमें गुंथी हुई किसी तृष्णाहीसे बंधे हुये सूर्य्य प्रतिदिन आकाशमें ऐसे घुमाये जाते है जैसे रज्जुसे ॥ २० ॥

सर्वदुःखमयाकारांजगतीजीवनच्छिदम् ॥ तृष्णांपरिहरेत्क्रूरामुरगीमिवदूरगः ॥ २१ ॥ तृष्णया वायवोवांतिशैलास्तिष्ठंतितृष्णया ॥ तृष्णयैवधराधात्रीत्रैलोक्यंतृष्णयाधृतम् ॥ २२ ॥ सर्वैवलोकयात्रेयंप्रोतातृष्णावरत्रया ॥ रज्जुबंधाद्विमुच्यंतेतृष्णाबंधान्नकेचन ॥ २३ ॥ तस्माद्राघवतृष्णांत्वंत्यजसंकल्पवर्जनात् ॥ मनस्त्वकल्पनंनास्तिनिर्णीतमितियुक्तितः ॥ २४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दुःखमय आकारवाली सम्पूर्ण पृथिवीपर स्थित प्राणियोंके जीवनको छेदन करनेवाली इस तृष्णारूपी अति क्रूरसर्पिणीको दूरसेही त्यागना चाहिये ॥ २१ ॥ तृष्णाहीसे वायु वहते हैं,पर्वत स्थितहैं पृथिवी सबको धारण करती है कहांतक कहैं त्रैलोक्यकोभी तृष्णाहीने धारण कररक्खाहै ॥ २२ ॥ तृष्णारूपी चर्म्मकी रस्सीमें यह सम्पूर्ण लोककी पात्रा गुंथी हुई है, रज्जुके बन्धनसे तो कोई २ छुटभी सकते हैं परन्तु तृष्णाके बन्धनसे कोईभी नहीं ॥ २३ ॥ इस कारणसे हे रामचन्द्रजी ! संकल्पके बर्जनसे तुम तृष्णाको त्यागो, संकल्पसे रहित मन कोईभी पदार्थ नहीं है, यह बात युक्तिसे निर्णय की गईहै ॥ २४ ॥

अयंत्वमहमित्येवप्रथमंतावदाशये ॥ मादुराशांमहाबाहोसंकल्पयतमोमयीम् ॥ २५ ॥ एतांदुःखप्रसविनीमनात्मन्यात्मभावनाम् ॥ नभावयसिचेद्रामतदातज्ज्ञेषुगण्यसे ॥ २६ ॥ एतामहंभावमयीमपुण्यांछित्त्वानहंभावशलाकयैव ॥ स्वभावनांभव्यभवांतभूमौभवाभिभूताखिलभूतभीतिः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे महाबाहो रामजी ! यह देहादि तुमहो तथा मैं हुं इस तमोमयी दुराशाको अपने हृदयमें मत संकल्पो ॥ २५ ॥ दुःखको उत्पन्न करनेवाली यह जो अनात्मा देहादिमें आत्माकी भावनाहै इसका ध्यान यदि नहीं करतेहो तो हे रामजी ! तुम ज्ञानियोंमें गिने जावोगे ॥ २६ ॥ हे भव्यरामजी ! अहंकारके अभावरूप कतर्नीसे इस अहंकारमयी तृष्णाका छेदन करके और सब संसारकी विभूतियोंका पराजय करके संसारके बादरूप ब्रह्ममें वा सप्तम् भूमिकामें स्थित रहो ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
भाषाऽनुवादे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

ध्येय तथा ज्ञेयके विभागपूर्वक वासनाका त्याग और उससे विदेह तथा जीवन्मुक्तोंका लक्षण इस १६ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ स्वभावगंभीरमेतद्भगवन्वचनंतव ॥ यदहंकारतृष्णांत्वंमाग्रहाणेतिवक्षि माम् ॥ १ ॥ यद्यहंकारसंत्यागंकरोमितदिदंप्रभो ॥ त्यजामिदेहनामानंसन्निवेशमशेषतः ॥ २ ॥ जानुस्तंभेनमहताधार्यतेसुतरुर्यथा ॥ अहंकारेणदेहोयंतथैवकिलधार्यते ॥ ३ ॥ अहंकारक्षयेदेहःक्षिलावश्यंविनश्यति ॥ मूलेक्रकचसंलूनेसुमहानिवपादपः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपका यह बचन स्वभावसेही गंभीर भान होताहै जो कि आप मुझे यह कहते हैं कि अहंकार तथा तृष्णाको मत ग्रहण करो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! यदि मैं अहंकारको त्यागूं तो शरीरकी सम्पूर्ण स्थितिको त्यागना पडेगा क्योंकि प्राण तथा अहंकारकी एकताहै प्राणको बचाके अहंकारका नाश असम्भवहै ॥ २ ॥ जैसे जंघेके सदृश विशाल मूल बन्धसे उत्तम वृक्ष धारण किया जाताहै ऐसेही अहंकारसे यह देह निश्चय करके धारण किया जाताहै ॥ ३ ॥ अहंकारके क्षय होनेपर यह देह निश्चय ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे आरासे मूलके छिन्न होनेपर महान् वृक्ष ॥ ४ ॥

तत्कथंसंत्यजाम्येनंजीवामिचकथंमुने ॥ एनमर्थंविनिश्चित्यबदमेवदतांवर ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वत्रवासनात्यागोरामराजीवलोचन ॥ द्विविधःकथ्यतेतज्ज्ञैर्ज्ञेयोध्येयश्चमानद ॥६॥ अहमेषांपदार्थानामेतेचममजीवितम् ॥ नाहमेभिर्विनाकश्चिन्नमयैतेविनाकिल ॥ ७ ॥ इत्यंतर्निश्चयंकृत्वाविचार्यमनसासह ॥ नाहंपदार्थस्यनमेपदार्थइतिभाविते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! इसलिये इस अहंकारको मैं कैसे त्यागूं और क्यों कर जीवनकोभी धारण करूं, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस अर्थको निश्चय करके मुझसे कहो ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे मानद कमलनेत्र रामजी ! वासनाका त्याग सर्वत्र ज्ञेय और ध्येयके विभागसे दो प्रकारका कहा गयाहै ॥ ६ ॥ देह इन्द्रियादि तथा बाह्य अन्नपानादि उपभुक्त पदार्थोंका संघातरूप मैं हुं और ये देह तथा अन्नादि मेरे जीवनके निमित्तहैं इनके बिना मैं कुछ नहीं है और मेरे बिना येभी कुछ नहीं हैं ॥७॥ इस प्रकार अन्तःकरणमें प्रथम अहंकारका निश्चय करके मनके साथ पृथक् करणमें देहादि संघातको अत्यन्त असत्‌रूप विचार करके, द्वितीय चिद्रूप मुझ अहं पदार्थके ये पदार्थ नहीं हैं इस प्रकार बोधके परिपक्व होनेपर ॥ ८ ॥

अंतःशीतलयाबुध्याकुर्वत्यालीलयाक्रियाम् ॥ योनूनंवासनात्यागोध्येयोरामसकीर्तितः ॥ ९ ॥ सर्वंसमतयाबुद्ध्यायंकृत्वावासनाक्षयम् ॥ जहातिनिर्ममोदेहंज्ञेयोसौवासनाक्षयः ॥ १० ॥ अहंकारमयींत्यक्त्वावासनांलीलयैववः ॥ तिष्ठतिध्येयसंत्यागीजीवन्मुक्तस्सउच्यते ॥ ११ ॥ निर्मूलकलनांत्यक्त्वावासनांयःशमंगतः ॥ ज्ञेयत्यागमयंविद्धिमुक्तंतंरघुनंदन ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रियाको करती हुई शीतल बुद्धिसे अन्तःकरणमें जो निश्चयरूपसे वासनाका त्यागहै उसको हे रामजी ! ध्येय (अधिष्ठानमात्रसे शेष) कहते हैं ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण जगत्‌को समतासे अर्थात् ब्रह्मभावसे साक्षात्कार करके भूमिकाके अभ्यासद्वारा जिस वासना क्षयको करके निर्मल और निरहंकार होके निर्विकल्प समाधिमें स्थित वा प्रारब्धके क्षयसे जो सर्वथा देहको त्यागताहै इसको 'ज्ञेय' वासना क्षय कहते हैं ॥ १० ॥ अहंकारमयी वासनाको त्यागकर लीलामात्रसे लोकके उचित व्यवहारमें जो स्थित रहताहै उसको ध्येय संत्यागी तथा जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ११ ॥ निर्मूल होगई है कलना जिसकी ऐसी वासनाको त्यागकर जो शान्तिको प्राप्त हुआहै उसको हे रघुनन्दन ! ज्ञेय त्यागमय अर्थात् ज्ञेय त्यागी जानो ॥ १२ ॥

ध्येयंतंवासनात्यागंकृत्वातिष्ठतिलीलया ॥ जीवन्मुक्तामहात्मानःसुजनाजनकादयः ॥ १३ ॥ ज्ञेयंतुवासनात्यागंकृत्वोपशममागताः ॥ विदेहमुक्तास्तिष्ठंतिब्रह्मण्येवपरावरे ॥ १४ ॥ द्वावेवराघवत्यागौसमौमुक्तपदेस्थितौ ॥ द्वावेतौब्रह्मतांयातौद्वावेवविगतज्वरौ ॥ १५ ॥ युक्तायुक्तमतीस्वासेकेवलंविमलेनघ ॥ एकःस्थितःस्फुरद्देहःशांतदेहःस्थितोपरः ॥ १६ ॥

अर्थ—ध्येय वासना त्यागको करके लोकोचित व्यवहारसे जीवन्मुक्त महात्मोंमें सुजन जनक आदि स्थित हैं ॥ १३ ॥ और ज्ञेय वासना त्याग करके शान्तिको प्राप्त विदेह मुक्त महात्माजन सर्व श्रेष्ठ ब्रह्ममेंही स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी ! ये दोनों त्याग समान कहे गये हैं और पदमें स्थितहैं और दोनों संतापरहित ब्रह्मताको प्राप्त हुये हैं ॥ १५ ॥ हे पापरहित रामजी ! समाधिमें आरूढ तथा समाधिके व्युत्थान कालमें व्यवहारवान् सुखसे विश्राम करनेवाले ये दोनों (जीवन्मुक्त तथा विदेह मुक्त) अविद्या जनित मलसे शून्य ब्रह्ममेंही केवल स्थितहैं एक (जीवन्मुक्त) देह सहित और दूसरा (विदेह मुक्त) देहरहित स्थितहै ॥ १६ ॥

एकःसदेहोनिर्मुक्तस्तिष्ठत्यपगतज्वरः ॥ त्यक्तदेहोविमुक्तोन्योवर्ततेज्ञेयवासनाः ॥ १७ ॥ आपतत्सुयथाकालंसुखदुःखेष्वनारतम् ॥ नहृष्यतिग्लायतियःसमुक्तइतिहोच्यते ॥ १८ ॥ ईप्सितानीप्सितेनस्तोयस्येष्टानिष्टवस्तुषु ॥ सुषुप्तवच्चरतियःसमुक्तइतिकथ्यते ॥ १९ ॥ हेयोपादेयकलनेममेत्यहमिहेतिच ॥ यस्यांतःसंपरिक्षीणेसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—एक देहसहित सन्ताप शून्य स्थितहै और दूसरा देहको त्यागकर ज्ञेय वासनावाला (ज्ञेय बाधित वासनावान्) है ॥ १७ ॥ और निरन्तर कालपाके सुखदुःखोंके आनेपरभी जीव प्रसन्न होताहै और न ग्लानिको प्राप्त होताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १८ ॥ इष्ट और अनिष्ट वस्तुओंमें जिसको इच्छा और द्वेष नहीं है और सुषुप्तके तुल्य यथा प्राप्त व्यवहार करताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १९ ॥ इस देह वा उसके संबन्धी धनादिमें अहं और मम (मैं तथा मेरा) ये दोनों कलना जिसके अन्तःकरणमें क्षीण होगई हैं उसको जीवन्मुक्त कहते हैं॥२०॥

हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः ॥ नपरामृश्यतेयोंतःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ २१ ॥ सुषुप्तवत्प्रशमितभाववृत्तिनास्थितंसदाजाग्रतियेनचेतसा ॥ कलान्वितोविधुरिवयस्सदामुदानिषेव्यतेमुक्तइतीहसस्मृतः ॥ २२ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ २३ ॥ दिवसः ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सानामषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—हर्ष,आमर्ष,क्रोध,काम, और दीनताकी दृष्टियोंसे अन्तःकरणमें जो स्पृष्ट नहीं उसको जीवन्मुक्त कहते है ॥ २१ ॥ जो पुरुष सुषुप्तके समान जाग्रतमेंभी स्थितहै और कलायुक्त पूर्णचन्द्र जैसे चन्द्रिकासे सेवितहै ऐसेही स्वाभाविक हर्षसे जो सेवितहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ २२ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—वाल्मीकिजी कहते है कि श्रीमुनि वसिष्ठके इतना कहनेपर दिवसका अन्त प्राप्त हुआ सूर्य्य अस्ताचलको प्राप्त हुये और नमस्कार प्रणामपूर्वक स्नानसन्ध्या करनेको सम्पूर्ण सभाभी गई और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्य किरणोंके साथ पुनः आके प्राप्त हुई ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सा नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ दिवसः ११

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

जिन निश्चयोंसे युक्त जीवन्मुक्त बन्धनमें नहीं आता तथा अज्ञानी बन्धनमें आताहै उनका विभाग पुनः इस १७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ विदेहमुक्तायेरामतेगिरामिहगोचरे ॥ नैवतिष्ठंतितस्मात्त्वंजीवन्मुक्तिमिमांशृणु ॥ १ ॥ प्राकृतान्येवकर्माणिययावर्जितवांछया ॥ क्रियंतेतृष्णयेमानितांजीवन्मुक्ततांविदुः ॥ २ ॥ यास्थितिस्तृष्णयाजंतोर्बाह्यार्थेबद्धभावया ॥ तंबंधमाहुराचार्याःसंसारनिगडंदृढम् ॥ ३ ॥ नूनमुज्झितसंकल्पाहृदिबाह्येविहारिणी ॥ वासनायोदितासेहजीवन्मुक्तशरीरिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जो विदेहमुक्तहै वे प्राणीके विषयमें नहीं रहते हैं इसलिये तुम इस जीवन्मुक्तिको सुनो ॥ १ ॥ विषयके आस्वादनके उत्साहसे वर्जित जिस तृष्णासे वर्ण आश्रमके स्वभावसे प्राप्त ये जो कर्म किये जाते हैं इसको जीवन्मुक्तता कहते हैं ॥ २ ॥ संसारके भोगोंमें सत्य बुद्धि वा उत्साहसहित तृष्णासे बाह्यपदार्थोंमें जो जन्तुकी स्थिति है उसको संसाररूप दृढ निगडसहित बन्ध आचार्य्य कहते हैं ॥ ३ ॥ हृदयमें संकल्पसे रहित और बाह्य पदार्थोंमें विहारिणी जो उदयको प्राप्त तृष्णाहै वह इस संसारमें जीवन्मुक्तोंकी शरीरहै ॥ ४ ॥

बाह्यार्थव्यसनोच्छूनातृष्णाबद्धेतिराघव ॥ सर्वार्थव्यसनोन्मुक्तातृष्णामुक्तेतिकथ्यते ॥ ५ ॥ पूर्वयस्यास्तुतृष्णायावर्त्तमानेपिशाश्वती ॥ निर्दुःखतानिष्कलतासामुक्तेतिबुधैःस्मृता ॥ ६ ॥ इदमस्तुममेत्यंतयैषाराघवभावना ॥ तांतृष्णांशृंखलांविद्धिकलनांचमहामते ॥ ७ ॥ तामेतांसर्वभावेषुसत्स्वसत्सुचसर्वदा ॥ संत्यज्यपरमोदारःपरमेतिमहामनाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बाह्य पदार्थोंमें लम्पटतासे बढी हुई जो तृष्णाहै उसको बद्ध कहते हैं और सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंमें वासनोंसे मुक्त जो तृष्णाहै उसको मुक्त कहते हैं ॥ ५ ॥ विषय प्राप्तिके पूर्वकालमें तथा विषयके नाशमें जो रागविरहादिसे जनित दुःखकी शून्यता निष्फलताहै वह जिस तृष्णाके वर्तमानकालमें नित्यहै उसको पण्डितलोग मुक्त कहते है ॥ ६ ॥ हे महामते राघवजी ! यह पदार्थ मुझे प्राप्तहो यह जो बद्ध भावनाहै उसीको शृंखला और कलनाभी तुम जानो ॥ ७ ॥ सत् वा असत् सम्पूर्ण पदार्थोंमें इस तृष्णाको त्यागके परमउदार महात्मा जीवन्मुक्तके पदको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

बंधाशामथमोक्षाशांसुखदुःखदशामपि ॥ त्यक्त्वासदसदाशांचतिष्ठाक्षुब्धमहाब्धिवत् ॥ ९ ॥ अजरामरमात्मानंबुद्धाबुद्धिमतांवर ॥ जरामरणशंकाभिर्मामनःकलुषंकृथाः ॥ १० ॥ पदार्थतत्त्वंनेदंतेनायंत्वमसिराघव ॥ किंचित्तदन्यदेवेदमन्यएवासिराघव ॥११॥ असदभ्युदितेविश्वेसतीवासतिसंस्थिते ॥ त्वयितत्तामतिगतेतृष्णायाःसंभवःकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—बन्धरूप देहादिकी आशाको मोक्षकी आशाको सुखदुःखकी दशाको और सत् और असत्‌की दशाकोभी त्यागके महासमुद्रके तुल्य क्षोभरहित स्थित रहो ॥ ९ ॥ हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठरामजी ! अजर और अमर आत्माको जानके जरा (वृद्धाऽवस्था) और मरणकी शंकाओंसे मनको कलंकित न करो ॥ १० ॥ हे रामजी ! यह दृश्य पदार्थ तत्वका रूप तुह्मारा नहीं है और तुमभी इनके नहीं हो इसलिये यह पदार्थ तत्वपरमार्थसे अन्य तुच्छ रूपही है, और तुमभी इनसे अन्य शुद्धरूपहो ॥ ११ ॥ असत् अज्ञानसे आविर्भूत सत् वा असत्‌रूपसे संसारके स्थित होनेपर और उस सत्ताके परे तुमारे स्थित होनेपर तृष्णाका संभव कहां ? ॥ १२ ॥

अन्यच्चराममनसिपुरुषस्यविचारिणः ॥ जायतेनिश्चयःसाधोस्फाराकारश्चतुर्विधः ॥ १३ ॥ आपादमस्तकमहंमातापित्रिविनिर्मितः ॥ इत्येकोनिश्चयोरामबंधायासद्विलोकनात् ॥ १४ ॥ अतीतःसर्वभावेभ्योवालाग्रादप्यहंतनुः ॥ इतिद्वितीयोमोक्षायनिश्चयोजायतेसताम् ॥ १५ ॥ जगज्जालपदार्थात्मासर्वमेवाहमक्षयः ॥ तृतीयोनिश्चयश्चेत्थंमोक्षायैवरघूद्वह ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो रामजी ! औरभी विचारशील मनुष्यके मनमें वक्ष्यमाण चार प्रकारके विशाल आकारवाले निश्चय होते हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! माता पितासे रचित पादसे लेके मस्तक पर्य्यन्त यह देह मैं हूं यह जो अज्ञान दृष्टिसे एक प्रकारका निश्चयहै वह बन्धके लिये है ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण देहेन्द्रियासे पृथक् बालके अग्रभागसेभी सूक्ष्म शुद्ध चेतन मैं हुं यह सज्जनोंका द्वितीय निश्चय मोक्षके लिये है ॥ १५ ॥ जगत्‌जालके पदार्थोंका जो आत्मा (स्वरूप) है वह सब कुछ अक्षय मैं हुं यह तृतीय निश्चयभी हे रघुश्रेष्ठ मोक्षकेही लिये है ॥ १६ ॥

अहंजगद्वासकलंशून्यंव्योमसमंसदा ॥ एवमेषचतुर्थोन्योनिश्चयोमोक्षसिद्धये ॥ १७ ॥ निश्चयेषुचतुर्ष्वेषुबंधायप्रथमःस्मृतः ॥ त्रयोमोक्षायकथिताःशुद्धभावनयोत्थिताः ॥ १८ ॥ एतेषांप्रथमःप्रोक्तस्तृष्णायाबंधयोग्यता ॥ शुद्धतृष्णास्त्रयःस्वच्छाजीवन्मुक्तविलासिनः ॥ १९ ॥ सर्वमात्माहमेवेतिनिश्चयोमहामते ॥ तमादायविषादायनभूयोयातिमेमतिः ॥ २० ॥

अर्थ—आध्यात्मिक और आधिदैविक तथा आधिदैहिक यह सम्पूर्ण जगत् आकाशके सदृश शून्य सब मैं हुं यह चतुर्थ निश्चयभी इसीप्रकार मोक्ष सिद्धिके लिये है ॥ १७ ॥ इन चारों निश्चयोंमें प्रथम निश्चय बन्धकेही अर्थ है और शेष तीनों भावना आविर्भूतहैं इसलिये मोक्षके लिये कहे हैं ॥ १८ ॥ इनमेंसे प्रथमकी मलिनता तृष्णा होनेसे बन्धकी स्थिरताहै और शेष तीनों शुद्ध तृष्णासहित होनेसे स्वच्छताके लिये जीवनमुक्तोंके विलासके योग्यहैं ॥ १९ ॥ हे महामते ! यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्मरूप मैं ही हूं यह जो निश्चयहै इसीका अवलम्बन करके मेरी मति पुनः विषादके लिये नहीं होती ॥ २० ॥

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चव्यापकोमहिमात्मनः ॥ सर्वमात्मेतितेनांतर्निश्चयेननबध्यते ॥ २१ ॥ शून्यंतत्प्रकृतिर्मायाब्रह्मविज्ञानमित्यपि ॥ शिवःपुरुषईशानोनित्यआत्मेवकथ्यते ॥ २२ ॥ सदासर्वंसदेवेदंनेहद्वित्वान्यतेकचित् ॥ विद्यतेविद्ययाव्याप्तंजगन्नेतरयाधिया ॥ २३ ॥ आपातालमनंतात्मापूरितोंभोधिरंबुभिः ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंजगदापूर्णमात्मना ॥ २४ ॥

अर्थ—तिर्यक् (इधर उधर टेढे) ऊपर नीचे सब आत्माका महिमा व्यापकहै इस हेतुसे संपूर्ण आत्मा यहहै इस अन्तःकरणके निश्चयसे जीव बन्धनमें नहीं आता॥२१॥ सबका शेष और अधिष्ठानभूत आत्मा शून्य आदि वादियोंसे शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म, विज्ञान, इत्यादि शब्दोंसे कहा जाताहै ॥ २२ ॥ और सदा सन्मात्ररूपही यह सम्पूर्ण जगत्‌है इसमें द्वैत वा अन्यता कहींभी नहीं है और परमार्थ सत्य विद्या दृष्टिसे यह सब जगत् व्याप्तहै न कि पूर्ववत् भ्रान्त बुद्धिसे ॥ २३ ॥ जैसे अनन्त परिणामवाला समुद्र पाताल पर्य्यन्त जलसे पूर्ण है ऐसेही ब्रह्मासे लेके स्तम्ब पर्य्यन्त यह जगत् आत्मासे पूर्ण है ॥ २४ ॥

अतःसत्यमृतंनित्यंनानृतंविद्यतेक्वचित् ॥ वार्येवसकलांभोधिर्नतरंगादयःक्वचित् ॥ २५ ॥ पृथक्कटककेयूरनूपुरादिनकांचनात् ॥ भिन्नास्तरुतृणाकारकोटयश्चैवनात्मनः ॥ २६ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्जगन्नि

र्मणलीलया ॥ परमात्ममयीशक्तिरद्वैतैवविजृंभते ॥ २७ ॥ आत्मीयेपरकीयेचसर्वस्मिन्नेवसर्वदा ॥ न ष्टेवोपचितेकार्येसुखदुःखेगृहाणमा ॥ २८ ॥

अर्थ—इस हेतुसे प्रमाण बोधित एक ब्रह्महीं सत्यहै उससे भिन्न अनृत जगद्रूप ऐसे कुछ नहीं है जैसे संपूर्ण समुद्र जलही है न कि तरंगादि ॥ २५ ॥ सुवर्णसे भिन्न कटकके पूर और नुपुरादि कुछ नहीं हैं पृथिवीके स्वरूपसे भिन्न वृक्ष और करोडों तृणके आकारभी कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ अद्वैत परमात्ममयी शक्ति अर्थात् ब्रह्मसत्ताहीं जगत् रचनाकी लीलासे द्वैत और अद्वैतके नानाप्रकारके भेदोंसे विकसित होरही है ॥ २७ ॥ अपने तथा अन्यके पुत्र मित्रादि सम्पूर्ण जगत्के सर्वदा वृद्ध होने वा नष्ट होनेपर ज्ञानस्वरूप तुम सुख दुःखोंको मत ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावाद्वैतमुपाश्रित्यसत्ताद्वैतमयात्मकः ॥ कर्माद्वैतमनादृत्यद्वैताद्वैतमयोभव ॥ २९ ॥ भवभूमिषु भीमासुभावभावनवात्यया ॥ मापतोत्पातपूर्णासुदरीष्वंतःकरीयथा ॥ ३० ॥ द्वैतंनसंभवतिचित्तमयंमहात्मन्नात्मन्यथैक्यमपिनद्वितयोदितात्म ॥ अद्वैतमैक्यरहितंसततोदितंसत्सर्वंनकिंचिदपिचाङ्गरतः स्वरूपम् ॥ ३१ ॥ नैवाहमस्तिनचनामजगंतिसंतिसर्वंचविद्यतइदंननुनिर्विकारम् ॥ विज्ञानमात्रमवभासतएवशांतंनासन्नसज्जगदिदंचसदेतिविद्धि ॥ ३२ ॥ परममृतमनाद्यंभासनंसर्वभासामजरमजमचिंत्यंनिष्कलंनिर्विकारम् ॥ विगतकरणजालंजीवनंजीवशक्तेःसकलकलनहीनंकारणंकारणानाम् ॥३३ सततमुदितमीशंव्याततेचित्प्रकाशेस्थितमनुभवबीजंस्वात्मभावोपदेश्यम् ॥ स्वदनमनुचितोंतर्ब्रह्म सर्वंसदेवत्वमहमपिजगचेत्यस्तुतेनिश्चयोंतः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे तृष्णाविच्छेदोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—सत्ता अद्वैतमय होकर व्यवहारकालमेंभी भावनासे अद्वैतका आश्रय करके वर्णाश्रमके धर्मकी व्यवस्थापनरूप कर्ममें सर्वथा अद्वैतका अनादर करके द्वैत अद्वैत दोनोंमें तुम तत्परहो ॥ २९ ॥ अशुभ निमित्तोंसे पूण भयंकर संसारकी भूमियोंमें गर्तोंमें हस्तीके समान तुम मत गिरो हे महात्मन् रामजी ! यह द्वैत परमार्थरूपसे संभव नहीं होता क्योंकि यह चित्तसे कल्पितहै न कि यथार्थमें ॥ ३० ॥ इसमें एकता और द्वैतता दोनों नहीं हैं इसलिये महात्माओंने संख्यारहित अद्वैत निरन्तर सन्मात्र उदित स्वभाव सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्मका स्वरूपही कहाहै ॥ ३१ ॥ यह देहादि संघातरूप हम और यह संपूर्ण जगत् कुछभी नहीं है किन्तु निर्विकार ब्रह्मही है केवल शान्त विज्ञानमात्रही भास रहाहै और यह जगत् न सत्है और न असत्है किन्तु सन्मात्र ब्रह्महीं सबको तुम समझो ॥ ३२ ॥ सर्वोत्तम, प्रमाण सिद्ध, अनादि सब प्रकाशोंका प्रकाशक अजर, अजत्मा, अचिन्त्य, निष्फल, निर्विकार इन्द्रियजालोंसे रहित, प्राण शक्तिका निमित्त, सम्पूर्ण कल्पनाओंसे हीन, सब कारणोंका कारण ॥ ३३ ॥ नित्य उदय स्वरूप व्यापक चित् प्रकाशमें स्थित चक्षुरादि अनुभवोंका मूलभूत अपने स्वरूपहीसे उपदेश करनेके योग्य आन्तरिक आनन्दैकरस ब्रह्मही यह जगत् और हम सबहै ऐसा निश्चय तुमारे अन्तःकरणमेंहो ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे तृष्णाविच्छेदोपदेशोनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

जिस रीतिसे स्थित विद्वान् इस संसारमें दुःख नहीं पाता वह स्थिति विस्तारसे इस १८ के सर्गमें रामचन्द्रके लिये वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ युक्ताशयानांमहतामहतानांकुदृष्टिभिः ॥ स्वभावोयंमहाबाहोलीलयाचरतामिह ॥ १ ॥ विहरन्नपिसंसारेजीवन्मुक्तमनामुनिः ॥ आदिमध्यांतविरसाविहसेज्जागतीर्गतीः ॥ २ ॥ सर्वप्रकृतकार्यस्थोमध्यस्थःसर्वदृष्टिषु ॥ ध्येयंतंवासनात्यागमवलंब्यव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ सर्वत्रविगतोद्वेगःसर्वार्थपरिपोषकः ॥ विवेकोद्योतदृष्टात्माप्रबोधोपवनस्थितिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहोरामजी ! समाहित चित्त काम लोभादि कुदृष्टियोंसे अदूषित लीलासे इस संसारमें विचरनेवाले महात्माओंका यह स्वभाव सुनो ॥ १ ॥ जीवन्मुक्त मनसे इस संसारमें विचरनेवाला मुनि आदि मध्य और अन्तमें नीरस संसारकी गतियोंको हंसैं ॥ २ ॥ सम्पूर्ण प्राप्त कार्य्योंमें स्थित और शत्रु मित्रादि दृ-

ष्टियोंमें समान ध्येयरूप वासनाके त्यागको अवलम्बन करके महात्मा इस संसारमें स्थित रहै ॥ ३ ॥ सर्वत्र उद्वेगसे रहित सबके कार्योंका साधक विवेकसे प्रकाशित अन्तःकरण ज्ञानरूपी उपवनमें स्थित ॥ ४ ॥

सर्वातीतपदालंबीपूर्णेंदुशिशिराशयः ॥ नोद्वेगीनचतुष्टात्मासंसारेनावसीदति ॥ ५ ॥ सर्वशत्रुषुमध्यस्थोदयादाक्षिण्यसंयुतः ॥ प्राप्तकर्मकरोऽयाणांसंसारेनावसीदति ॥ ६ ॥ नाभिनंदतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥ मौनस्थःप्रकृतारंभीसंसारेनावसीदति ॥७॥ पृष्टःसन्प्रकृतंवक्तिनपृष्टःस्थाणुवत्स्थितः ॥ ईहितानीहितैर्मुक्तःसंसारेनावसीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्वातीत ब्रह्मपदका अवलम्बी पूर्ण चन्द्रमाके समान शीतल अन्तःकरणयुक्त न अति प्रसन्न और न अति सन्तुष्ट प्राणी इस संसारमें दुःख नहीं पाता ॥ ५ ॥ सर्व शत्रुओंके मध्यमें स्थित दया दाक्षिण्यादि गुणोंसे संयुक्त तथा गुरू आदिका समयके उचित सेवा तथा पालनादि कार्य्य करनेवाला प्राणी संसारमें दुःख नहीं पाता ॥६॥ जो मनुष्य अभिमत वस्तुके प्राप्त होनेसे न अति प्रसन्न होताहै, अनिष्टकी प्राप्तिसे न अति दुःखी होताहै, न शोचता है, न चाहताहै, और जो मितभाषी और प्राप्त कार्य्योंका करनेवालाहै, वह इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ७ ॥ पूंछनेपर जो उपयोगी बात बोलताहै, और बिना पूंछे ठूंठके समान स्थित और राग द्वेषसे विनिर्मुक्त जो प्राणी है वह इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ८ ॥

सर्वस्याभिमतंवक्ताचोदितःपेशलोक्तिमान् ॥ आशयज्ञश्वभूतानांसंसारेनावसीदति ॥ ९ ॥ युक्तायुक्तदृशाग्रस्तमाशोपहतचेष्टितम् ॥ जानातिलोकदृष्टांतंकरकोटरविल्ववत् ॥ १० ॥ परंपदमुपारूढोभंगुरांजागतींस्थितिम् ॥ अंतःशीतलयाबुद्ध्याहसन्निवनिरीक्षते ॥११॥ जितचित्तामहात्मानोयेहिदृष्टपरावराः ॥ स्वभावईदृशस्तेषांकथितस्तवराघव ॥ १२ ॥

अर्थ—सब किसीका प्रियवक्ता प्रेरणाकरनेपर कोमल भाषी और प्राणियोंके हृदयको जाननेवाला पुरुष इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ९ ॥ युक्त और अयुक्त इस विषम दृष्टियोंसे ग्रस्त और आशायुक्त चेष्टित जिनमें ऐसे लोकके वृत्तान्तको हस्तरूप गर्तमें स्थित बिलके समान अपक्षपातसे देखताहै ॥ १० ॥ मुक्त पदमें आरूढ महात्मा जन जगत्की नाशशील गतिको अन्तःकरणमें शीतल बुद्धिसे हस्ते हुयेके समान देखताहै॥११॥हे रामजी ! चित्तके जीतनेवाले इस लोक और परलोकके ज्ञाता जो महात्मा जन हैं उनका ऐसा स्वभाव मैंने तुमसे कहा ॥ १२ ॥

वयंतुवक्तुंमूर्खाणामजितात्मीयचेतसाम् ॥ भोगकर्दममग्नानांनविद्मोऽभिमतंमतम् ॥ १३ ॥ तेषामभिमतानार्योभावाभावविभूषिताः ॥ ज्वालानरकवह्नीनांयास्ताःकनकरोचिषः ॥ १४ ॥ अनर्थगहनाश्चार्थाव्यर्थानर्थकदर्थनाः ॥ दिशंतोदुःखसंरंभमभितःप्रहितापदः ॥ १५ ॥ फलसंधीनिकर्माणिनानाचारमयानिच ॥ सुखदुःखावपूर्णानितानिवक्तुंनशक्नुमः ॥ १६ ॥

अर्थ—परन्तु अपने चित्तकोभी न जीतनेवाले भोगरूपी कर्दममें सदा निमग्न जो मूर्ख हैं उनके अभीष्ट अनन्त मतको कहना हमलोग नहीं जानते ॥ १३ ॥ उन मूर्खोंके अपार जलके समान पापमय स्त्रियांही अभीष्ट रहती हैं जो कि सुवर्णकी दीप्तिके समान नरककी ज्वाला हैं ॥ १४ ॥ और मूर्खोंके अभिमत स्त्री और धन ये दोनों अनर्थ कलह और क्लेशादि देनेवाले है और चारों ओरसे आपत्तिके देनेवाले दुःखकोही देतेहैं ॥ १५ ॥ इन मूर्खोंके नानाप्रकार आचारमयी जो यागादि कर्म्म हैं वेभी फलके संबन्धसे युक्त और सुखदुःखसे पूर्ण हैं इसलिये उनको हम नहीं कह सकते ॥ १६ ॥

पूर्णांदृष्टिमवष्टभ्यध्येयत्यागविलासिनीम् ॥ जीवन्मुक्ततयास्वस्थोलोकेविहरराघव ॥ १७ ॥ अंतःसंत्यक्तसर्वाशोवीतरागोविवासनः ॥ बहिःसर्वसमाचारोलोकेविहरराघव ॥ १८ ॥ उदारःपेशलाचारःसर्वाचारानुवृत्तिमान् ॥ अंतःसर्वपरित्यागीलोकेविहरराघव ॥ १९ ॥ प्रविचार्यदशाःसर्वायदतुच्छंपरंपदम् ॥ तदेवभावेनालंब्यलोकेविहरराघव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! ध्येयरूप त्यागके विलास संयुक्त आत्मासे पूर्ण दृष्टिका अवलंबन करके जीवन्मुक्ततासे स्वस्थ होके लोकमें विहार करो ॥१७॥ हे राघव ! अन्तःकरणमें सब आशाओंको त्यागकर वीतराग, वासना रहित व्यवहार सब वर्णाश्रमके आचारोंको करते हुये संसारमें विहार करो ॥ १८ ॥ हे राघव ! उदार कोमल आचारवान्, सब अज्ञानियोंके आचारोंके कर्ता और अन्तःकरणमें सबके त्यागी होके इस लोकमें बिहार करो ॥ १९ ॥ हे राघव ! सब संसार तथा परमार्थकी दशाओंको भलीभांति विचारकरके और जो महान् (ब्रह्म) पदहै उसीको सत्यतासे अवलम्बन करके इस संसारमें बिहार करो ॥ २० ॥

अंतर्नैराश्यमादायबहिराशोन्मुखेहितः ॥ बहिस्तप्तोंतराशीतोलोकेविहरराघव ॥ २१ ॥ बहिःकृत्रिम संरंभोहृदिसरंभवर्जितः ॥ कर्त्ताबहिरकर्त्तांतर्लोकेविहरराघव ॥ २२ ॥ ज्ञातवानसिसर्वेषांभावानांस म्यगंतरम् ॥ यथेच्छसितथादृष्ट्यालोकेविहरराघव ॥२३॥ कृत्रिमोल्लासहर्षस्थःकृत्रिमोद्वेगगर्हणः ॥ कृत्रिमारंभसंरंभोलोकेविहरराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राघव ! अन्तःकरणमें निराशताका अवलम्बन करके और बाहरसे आशावानोंके सदृश चेष्टासहित और धनादिके नाशसे बाहरसे अति सन्तप्त और अन्तःकरणमें शीतलतायुक्त इस संसारमें विहार करो ॥ २१ ॥ हे राघव ! बाहरसे क्रोधसहित और अन्तःकरणमें क्रोधसे वर्जित, बाहरसे सब कार्य्योंके कर्ता और अन्तःकरणसे अकर्ता होके इस लोकमें बिहार करो ॥ २२ ॥ हे राघव ! तुम सब पदार्थोंके सार और असारताकी तारतम्यताको जानते हो, जैसा तुम चाहते हो उस दृष्टिसे संसारमें विहार करो ॥ २३ ॥ हे राघव ! कृत्रिम (बनावटी) उत्साह तथा हर्षमें स्थित, कृत्रिम उद्वेग निन्दायुक्त और कृत्रिम, आरम्भ और क्रोधसहित इस लोकमें विहार करो ॥ २४ ॥

त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमतिराकाशशोभनः ॥ अगृहीतकलंकांकोलोकेविहरराघव ॥ २५ ॥ आशापाशश तोन्मुक्तःसमःसर्वासुवृत्तिषु ॥ बहिःप्रकृतिकार्यस्थोलोकेविहरराघव ॥ २६ ॥ नबंधोस्तिनमोक्षोस्तिदे हिनःपरमार्थतः ॥ मिथ्येयमिंद्रजालश्रीःसंसारपरिवर्त्तिनी ॥ २७ ॥ भ्रांतिमात्रमिदंमोहाज्जगद्राघवदृ श्यते ॥ जनितप्रत्ययंस्फारंजलंतीव्रातपेयथा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राघव ! अहंकारको त्याग कर, स्वस्थ मति, आकाशमें शोभायमान, और कलंकके चिन्हसे वर्जित अर्थात् चन्द्रमासेभी विलक्षण होके लोकमें व्यवहार करो ॥ २५ ॥ सैकडों आशाके पाशोंसे मुक्त सब वृत्तियोंमें सम रूप, बाहर वर्णाश्रमके स्वभावके योग्य, वा प्रजाओंके हितकारक कार्य्योंमें स्थित होके संसारमें विहार करो ॥ २६ ॥ यथार्थमें तो जीवनको न बन्ध न मोक्ष है किन्तु मिथ्याही यह इन्द्रजालकी श्री संसारका चक्र चलारही है ॥ २७ ॥ हे राघव ! यह सब संसार अज्ञानसे भ्रान्तिमात्रही देखपडताहै और महान् सत्य प्रत्ययको ऐसे उत्पन्न किये हैं जैसे तीव्र घर्म्ममें मृगतृष्णाका जल ॥ २८ ॥

अबद्धस्यैकरूपस्यसर्वगस्यात्मनःकथम् ॥ बंधःस्यात्तदभावेतुमोक्षःकस्यविधीयते ॥ २९ ॥ अतत्त्व ज्ञानजातेयंसंसारभ्रांतिरातता ॥ तत्त्वज्ञानात्क्षयंयातिरज्ज्वामिवभुजंगधीः ॥ ३० ॥ ज्ञातवानसितत्त्वं स्वमेकयासूक्ष्मयाधिया ॥ जातोसिनिरहंकारोव्योमवत्तिष्ठनिर्मलः ॥ ३१ ॥ ज्ञोसित्वित्थंतदखिलाः सुहृद्बांधववासनाः ॥ संत्यजासत्स्वभावस्यकानामकिलभावना ॥ ३२ ॥

अर्थ—असंग एकरूप और सर्वआत्माको बंधन कैसे होसकताहै, और बंधनके अभावमें मोक्षका विधान किसकेलिये ॥ २९ ॥ तत्वज्ञानके अभाव (संसारकी सत्यत्व बुद्धि) से यह विशाल संसारकी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है और आत्मतत्वज्ञानसे ऐसे क्षयको प्राप्त होती है जैसे रज्जूमेंसे सर्प ॥ ३० ॥ हे रामजी ! अब तुम अपनी एक सूक्ष्मबुद्धिसे अपने आत्मतत्वको जानगये हो और अहंकाररहित हो इसलिये आकाशकेसमान निर्मल स्थित रहो ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! तुम तो साक्षीरूप हो इसी प्रकार सुहृद् बन्धु आदिकी वासनाओंको त्यागो क्योंकि असत् स्वभाववाले सुहृद् बन्धु आदिकी चिन्ता क्या अर्थात् व्यर्थ है ॥ ३२ ॥

अपिचेत्थंतदन्यस्त्वंसत्त्ववाननुमीयसे ॥ इदंप्रथमतःप्राप्तंपरमादपिकारणात् ॥ ३३ ॥ भोगबंधुजग द्भावैःकर्मभिश्चशुभाशुभैः ॥ आत्मनोनास्तिसंबंधःकिमेताननुशोचसि ॥ ३४ ॥ आत्मतत्त्वैकसारोह मितिजातधियोभयैः ॥ नतेरामास्तिसंबधःकिंबिभेषिजगद्भ्रमात् ॥ ३५ ॥ अजातस्यसतोबंधोर्बंधुदुःख सुखभ्रमैः ॥ कस्तेराघवसंबंधोयदेताननुशोचसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम तो उस असत् स्वभावसे सत् अन्यरूपहो और सत् स्वभावसेही असत् अविद्या तथा उसके कार्य्योंसे तुम बलवान् अनुमित होतो हो और इसी हेतुसे अविद्यारूप कारणसेभी प्रथम प्राप्त इस बन्धनकी वासनाको त्यागो ॥ ३३ ॥ भोग और भोगके साधक बन्धु तथा जगत्के पदार्थोंसे और पदार्थोंके प्रापक शुभाशुभ कर्म्मोंसे आत्माका कुछभी संबंध नहीं है इसलिये इन बन्धु आदिके अर्थ क्यों शोचतेहो ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! आत्मतत्वही एक आनन्दरूप सारहै जिसमें ऐसा मैं हूं इसप्रकारकी बुद्धिसहित तुमको भयके निमित्तोंसे तुमारा संबन्ध नहीं है तुम जगत्के भ्रमोंसे क्यों भय करतेहो ॥ ३५ ॥ जो बन्धु (चित्‌रूपसे) कभी उत्पन्न नहीं हुआहै उस बंधुके दुःख तथा सुखसे तुमारा क्या संबन्धहै जो तुम इनके अर्थ शोचतेहो ॥ ३६ ॥

त्वंचेद्भूविथपुरातथेदानींभविष्यसि ॥ अद्यचेहस्थितोसीतिज्ञातवानसिनिश्चयम् ॥ ३७ ॥ तदानंतरगानन्यान्प्राणादीन्निकटस्थितान् ॥ बंधूनतीतान्सुबहून्कस्मात्त्वंनानुशोचसि ॥ ३८ ॥ पूर्वमन्यस्तथेदानींबभूविथभविष्यसि ॥ यदिरामतथापित्वंसद्रूपंकिंविमुह्यसि ॥ ३९ ॥ पुराभूत्वाद्यभूत्वाचभूयश्चेन्नभविष्यसि ॥ तथापिक्षीणसंसारःकिमर्थमनुशोचसि ॥ ४० ॥

अर्थ—और आत्माके संगीभी मानों तो उसकी नित्यता यदि मानतेहो तो तुम प्रथम जन्मेंथे और भावी जन्मोंमेंभी होओगे और इससमयमेंभी वर्तमानहो ऐसे स्वभाववाले आत्माको तुम निश्चय करके जानतेहो ॥ ३७ ॥ तो वर्तमान निकटमें स्थित बन्धुके प्राणके समान जैसे शोचतेहो ऐसे अनन्त जन्मके बीते हुये बन्धुओंकोभी क्यों नहीं शोचते, प्रमाणके अभावसे सबका शोक नहीं करसकते इसलियेही शोक करना युक्त नहीं है ॥ ३८ ॥ यदि आत्माको क्षणिक मानतेहो तो तुम तथा तुमारा बन्धु पूर्वकाल अन्यथे और अब अन्यहो तथा आगेभी पूर्वरूपसे अन्यहो आगे तो तुम जिसके लिये शोक करतेहो और शोच करनेवाले तुम भिन्न होगये तो बन्धुताहीका अभाव होगया तो सत्रूपको मानके तुम क्यों शोचतेहो ॥ ३९ ॥ और यदि नाशमान मानते हो तो प्रथम होके अब नहीं हुये और आगेभी न होगे तौभी आत्माके नाशसेही क्षीण संसार तुम हो तो क्यों शोचतेहो ॥ ४० ॥

तस्मान्नदुःखितायुक्ताप्राकृतेजागतेक्रमे ॥ तथैवमुदितायुक्तायुक्तंकार्यानुवर्त्तनम् ॥ ४१ ॥ मागच्छदुःखितांरामसुखितामपिमाव्रज ॥ समतामेहिसर्वत्रपरमात्माहिसर्वगः ॥ अनंतःसत्स्वरूपस्त्वंखमिवाततांतरम् ॥ प्रकाशोनित्यशुद्धस्त्वंज्वालानामिवकोटरम् ॥ ४३ ॥ जागतानांपदार्थानामदृष्टात्मततनुस्तनुः ॥ हृत्स्थोसिहारमुक्तानामेकस्तंतुरिवाततः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब आत्माके संगी होनेपरभी शोचयुक्त नहीं है तो असंग आत्माके सिद्धान्त पक्षमें इस मायामय जगत्के क्रम दुःख करना ठीक नहीं इसीप्रकार सहज सन्तोष वृत्ति तथा प्राप्त कार्यका करना युक्तहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! तुम सांसारिक पदार्थोंसे सुख तथा दुःखको न प्राप्त होओ किन्तु सर्वत्र समताको प्राप्त होओ क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापी तथा समरूपहै ॥ ४२ ॥ तुम अनन्त सत् स्वरूप आकाशके सदृश व्यापकहो और जैसे सर्वत्र दीप्ति पूर्ण अग्निकी ज्वालाके कोटर (गढे) में अन्धकारका अवकाश नहीं है ऐसेही तुमारे शुद्धरूपमें दुःख आदिका अवकाश नहीं हैं ॥ ४३ ॥ जगत्के पदार्थोंमें तुमारा व्यापकरूप नहीं देख पडता और हृदयमें स्थित तुम मुक्ताके हारमें सूत्रके सदृश सबमें सूक्ष्मरूपसे अनुस्यूतहो ॥ ४४ ॥

संसारस्थितिरेवेयंयद्भूत्वाभूयतेपुनः ॥ अज्ञेनैवनतज्ज्ञेनज्ञोसिरामसुखीभव ॥ ४५ ॥ स्वरूपमिदमस्यास्तुसंसृतेःसतताधिमत् ॥ अज्ञानात्स्फारतामेतिज्ञातवानसिसन्मते ॥ ४६ ॥ रूपंकिमन्यद्भवतुभ्रममात्राहृतेभ्रमे ॥ स्वप्नमात्राहृतेस्वप्नेभवत्यन्योहिकःक्रमः ॥ ४७ ॥ सर्वशक्तेरियंशक्तिर्भ्रममात्रमयंतथा ॥ रामदृश्यतएवेदमाभानमतिभास्वरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसारकी स्थिति ऐसीही है अज्ञानी जीवको उत्पन्न होकर पुनः २ उत्पन्न होना होताहै न कि ज्ञानीको, हे रघुनन्दन ! तुम तो ज्ञानीहो इसलिये सुखी होओ ॥ ४५ ॥ निरन्तर दुःखोंसे पूर्ण यह संसार अज्ञानसे विशालताको प्राप्त होताहै हे सन्मतेरामजी ! तुम तो ज्ञानवान्हो ॥ ४६ ॥ भ्रमको छोडके भ्रमका अन्य क्या स्वभाव होसक्ताहै क्योंकि स्वप्नमें स्वप्नके सिवाय अन्य क्या क्रम होसकताहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! यह भ्रममात्र जगत् जो अतिभास्वर व्यक्तआकारके भासमान देखपडताहै यह सर्वशक्तिमान् परमात्माकी शक्तिहै ४८

सुबंधुःकस्यचित्कःस्यादिहनोकश्चिदप्यरिः ॥ सदासर्वेचसर्वस्यसर्वेसर्वेश्वरेच्छया ॥ ४९ ॥ आलूनशीर्णमखिलमिदमन्योन्यसंश्रितम् ॥ अनारतंयातिजगत्तरंगौघइवांभसः ॥ ५० ॥ अधऊर्ध्वत्वमायातियात्यूर्ध्वत्वमधस्तथा ॥ संसारस्यचलस्यास्यचक्रनेमिरिवाभितः ॥ ५१ ॥ स्वर्गस्थानरकंयांतिनारकाश्चत्रिविष्टपम् ॥ योनेर्योन्यंतरंयांतिद्वीपाद्वीपांतरंजनाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस जगत्में न कोई किसीका बन्धुहै और सदा न कोई किसीका शत्रुहै किन्तु सबके सब शत्रु मित्र तथा उदासीन समय पाके ईश्वरेच्छासे होते रहते हैं ॥ ४९ ॥ यह सब जगत् परस्परके निमित्तसे निरन्तर ऐसे छिन्नभिन्नताको प्राप्त होताहै जैसे जलके तरंग ॥ ५० ॥ इस चलायमान संसारका चक्र सदा नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे चक्रकी नेमिके समान होता रहताहै ॥ ५१ ॥ स्वर्गमें स्थित प्राणी नरकमें और नरकमें स्थित स्वर्गमें प्राप्त होते हैं, और एक योनिसे दूसरी योनिमें एक द्वीपसे दूसरे द्वीपमेंभी प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

धीराःकार्पण्यमायांतिकृपणायांतिधीरताम् ॥ परिस्फुरंतिभूतानिपातोत्पातशतभ्रमैः ॥ ५३ ॥ एकरूपस्थिरंचक्रंस्वच्छंसंतापवर्जितम् ॥ नेहसंप्राप्यतेकिंचिदग्नौहिमकणोयथा ॥ ५४ ॥ येयेनाममहाभागाबहवोबांधवास्तथा ॥ विनष्टाएवदृश्यंतेतेतेकतिपयैर्दिनैः ॥ ५५ ॥ परतात्मीयतान्यत्वत्वत्त्वमत्त्वादिभावना ॥ नेहसत्यामहाबाहोद्विचंद्रादिदृशोयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—धीर जो कभी किसीसे यांचा नहीं करते समय पाके कृपणताको प्राप्त होते हैं और कृपण धीरताको प्राप्त होते हैं, पात तथा उत्पात (नीचे गिरना और ऊपर चढना) आदि सैकडों भ्रमोंसे इस जगत्के प्राणी संचलित होरहे हैं ॥ ५३ ॥ यह सम्पूर्ण चक्र (संसारके पदार्थोंका मण्डल) कभीं एकरूप स्वच्छ तथा सन्तापसे रहित कभी ऐसे नहीं प्रात होता जैसे अग्निमें हिमका कण ॥ ५४ ॥ जो २ महाभाग तथा अनेक बन्धुहैं वे कुछ दिनोंमेंही नष्ट देख पडते हैं ॥ ५५ ॥ हे महाबाहो रामजी ! परता (दूसरापन) आत्मीयता (अपनापन) अन्यता (भेदता) त्वत्ता मत्ता (तुमारापन तथा मेरापन) इत्यादि भावना इस संसारमें ऐसे सत्य नहीं हैं जैसे दो चन्द्रका दर्शन ॥ ५६ ॥

अयंबंधुःपरश्चायमयंचाहमयंभवान् ॥ इतिमिथ्यादृशोरामविगलंतुतवाधुना ॥ ५७ ॥ क्रीडार्थंव्यवहारस्थएताभिर्हतदृष्टिभिः ॥ आमूलमंतश्छिन्नाभिर्बहिर्विहरहेलया ॥ ५८ ॥ संसारसरणावस्यांतथाविहरसुव्रत ॥ नयथैवश्रमश्रांतोवासनाभारवानिव ॥ ५९ ॥ यथायथैषाकार्याणिवासनाक्षयकारिणी ॥ विचारणातवोदेतिसंशाम्यंतितथातथा ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह बन्धु है, यह शत्रु है, यह मैं हुं और यह आप हो; इत्यादि मिथ्या दृष्टि तुमारी इस समय नष्ट हो ॥ ५७ ॥ अज्ञान तथा वासनाके साथ अन्तःकरणमें छिन्न और ज्ञानसे बाधित इन बन्धु मित्र शत्रु आदिकी दृष्टियोंसे बाहरसे क्रीडार्थ व्यवहारमें स्थित लीलासे संसारमें विहार करो ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत रामजी ! इस संसारकी पद्धतिमें ऐसे विहार करो जिसप्रकार वासनाके भारवान्के तुल्य श्रमसे श्रान्त न हो ॥ ५९ ॥ जैसे २ वासनाके क्षय करनेवाली विचारणा उदयको प्राप्त होती है वैसे २ संसारके व्यवहार शान्तताको प्राप्त होंगे ॥ ६० ॥

अयंबंधुरयंनेतिगणनालघुचेतसाम् ॥ उदारचरितानांतुविगतावरणैवधीः ॥ ६१ ॥ नतदस्तिनयत्राहंनतदस्तिनयन्मम ॥ इतिनिर्णीयधीराणांविगतावरणैवधीः ॥ ६२ ॥ नास्तमेतिनचोदेतियश्चिदाकाशवन्महान् ॥ सर्वंसंपश्यतिस्वस्थःस्वस्थोभूमितलंयथा ॥ ६३ ॥ सर्वाएवहितेभूतजातयोरामबंधवः ॥ अत्यंतासंयुताएतास्तवरामनकाश्चन ॥६४॥ विविधजन्मशताहितसंभ्रमेजगतिबंधुरबंधुरितीक्षणम् ॥ भ्रमदशैवविवल्गतिवस्तुतस्त्रिभुवनंचिरबंधुरबंध्वपि ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—यह हमारा बन्धुहै, यह नहीं है, इत्यादि गणना लघु चित्तवालोंकी है उदार चित्तवालोंको तो यह बंधु है, इत्यादि परिच्छेद आवरणकी बुद्धि नष्ट होगई है ॥ ६१ ॥ वह कोई पदार्थ नहीं है जहां हम नहीं वह कोईभी वस्तु नहीं जो मेरे न हो ऐसा निर्णय करके धीरोंकी आवरणकी बुद्धि नष्ट होगई है ॥ ६२ ॥ जो न अस्त होताहै न उदय होताहै चिदाकाशके सदृश महान् विक्षेपके उपशमसे स्वस्थ होके सबको ऐसा देखताहै जैसे आकाशमें स्थित भूमितलको ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इस संसारमें जितनी प्राणियोंकी जाति हैं वे सब तुमारे बन्धु हैं क्योंकि अनेक योनिमें जन्म धारणसे बन्धुतासे अत्यन्त असंबन्ध कोईभी प्राणियोंकी जाति नहीं है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारकी योनियोंसे विचित्र सैकडों जन्मोंसे जिसमें भ्रम प्राप्तहै ऐसे इस जगत्में यह बन्धुहै, यह अबन्धु इस दृष्टिरूपसे भ्रमकी दशाही गर्ज रही है और यथार्थमें तो तीनों भुवनके जीव समूह जीव भावदृष्टिसे सब अपने बन्धुहैं और ब्रह्मभाव दृष्टिसे तो स्वयं आपही सब है इसलिये अबन्धुभी हैं ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस १९ के सर्गमें उक्त (कथित) वार्तोकी सिद्धि पुण्यपावनका आख्यान जो कि पुण्यने पिताके शोकसे पीडित पावनको बोधित किया वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ भ्रात्रोस्त्रिपथगातीरेसंवादंमुनिपुत्रयोः ॥ १ ॥ अयंबंधुरयंनेतिकथाप्रस्तावतःस्मृतम् ॥ इतिहासमिमंपुण्यमाश्चर्यंशृणुराघव ॥ २ ॥ अस्त्यस्यजंबूद्वीपस्यकस्मिंश्चिद्गिरिकुंजके ॥ वनव्यूहमहोत्तंसोमहेंद्रोनामपर्वतः ॥ ३ ॥ कल्पद्रुमवनच्छायाविश्रांतमुनिकिन्नरः ॥ शृंगैराततमाकाशंजितवान्यःसमुन्नतैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसी विषयमें मन्दाकिनीके तटपर निवास करनेवाले मुनिके पुत्रोंके दो भाइयोंका संवादरूप पुरातन इतिहास कहागया है ॥ १ ॥ यह बन्धुहै यह बन्धु नहीं है यह बात कथाके प्रसंगसे पवित्र आश्चर्य्यरूप इतिहास कहागयाहै हे राघव ! उसको तुम सुनो ॥ २ ॥ इस जम्बूद्वीपके किसी पर्वतके कुंजमें बनके समूहोंसे अति महान् महेन्द्र नाम पर्वत है ॥ ३ ॥ कल्पवृक्षके समान बनकी छायामें विश्राम कररहे हैं मुनि और किन्नर लोग जिसमें ऐसा वह पर्वत अपने ऊंचे शृंगोंसे विशाल आकाशकोभी जीतलियाहै ॥ ४ ॥

ब्रह्मलोकांतरप्राप्तशृंगकंदरचारिभिः ॥ सामवेदप्रतिध्वानघुंघुमैर्गायतीवयः ॥ ५ ॥ यःपयोमेदुरैर्मेघैर्लसितैःशृंगकोटिषु ॥ लताकुसुमसंप्रोतैःकुंतलैरिवराजते ॥ ६ ॥ यस्तटोड्डयनोत्कानांशरभाणांविजृंभितैः ॥ विस्फूर्जतिगुहावक्त्रैःकल्पाभ्राणिहसन्निव ॥ ७ ॥ येननिर्झरनिर्ह्रादैःकंदरांतरचारिभिः ॥ समुद्रजलकल्लोलविलासोविजितोभितः ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मलोकके अन्तरालतक प्राप्त शिखरोंकी कन्दरामें विचरनेवालोंसे घुंघुं शब्दयुक्त सामवेदकी प्रतिध्वनिसे मानों जो गान कर रहाहै ॥ ५ ॥ तथा जलसे श्यामवर्ण विद्युत् संयुक्त मेघोंसे और कोटिन शिखरोंपर लता और कुसुमोंसे ऐसे शोभित हो रहाहै जैसे केशोंसे ॥ ६ ॥ और तटोंके ऊपर उडनेवाले अष्टापद नाम मृगोंके शब्दोंसे गुहारूपी मुखोंसे हंसते हुये ऐसी गर्जना मानों कर रहाथा जैसे प्रलयकालके मेघ ॥ ७ ॥ कन्दराओंके मध्यमें उत्पन्न हुये झरनोंके शब्दोंसे जिसने समुद्रके तरंगोंके विलासको जिसने चारोंओरसे जीतलियाथा ॥ ८ ॥

तस्यैकदेशेविततेरत्नसानौमनोरमे ॥ मुनिभिःस्नानपानार्थंव्योमगंगावतारिता ॥ ९ ॥ तस्यास्त्रिपथगायास्तुतीरेविकसितद्रुमे ॥ रत्नाद्रितटविद्योतेकचत्कनकपिंजरे ॥ १० ॥ आसीदभ्युदितज्ञानस्तपोराशिरुदारधीः ॥ मुनिर्दीर्घतपानामतपोमूर्त्तमिवापरम् ॥ ११ ॥ मुनेर्बभूवतुस्तस्यपुत्रौद्वाविंदुसुंदरौ ॥ पुण्यपावननामानौद्वौकचाविववाक्पतेः ॥ १२ ॥

अर्थ—उस पर्वतके अति मनोरम और विशाल रत्नमय शिखरके एक देशमें मुनियोंने स्नान और पान करनेके लिये आकाशगंगा अर्थात् मन्दाकिनीको उताराथा ॥ ९ ॥ उस गंगाजीके जलसे विकसित कल्पवृक्ष संयुक्त मेरूके तटके समान प्रकाशशील शोभायमान सुवर्णके सदृश पिंजरयुक्त तटपर ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञान संयुक्त, तपकी राशि, उदार बुद्धि, शरीरधारी तपके समान, दीर्घतपा नाम मुनि रहताथा ॥ ११ ॥ उस मुनिके चन्द्रमाके समान अति सुन्दर पुण्य और पावननाम दो पुत्र ऐसे हुये जैसे बृहस्पति के दोकच ॥ १२ ॥

सताभ्यांसहपुत्राभ्यांभार्ययाचसहैकया ॥ उवाससरितस्तीरेतस्मिन्सफलपादपे ॥ १३ ॥ अथकालेतयोस्तस्यपुत्रयोर्ज्ञानवानभूत् ॥ पुण्योनामचयोज्येष्ठोगुणज्येष्ठश्चराघव ॥ १४ ॥ पावनोर्द्धप्रबुद्धोभूत्पूर्वसंध्यांबुजंयथा ॥ मौर्ख्यादधिगतोनाप्तःपदेदोलायितःस्थितः ॥ १५ ॥ ततोवहत्यकलितेकालेकलितकारणे ॥ संवत्सरशतेजीर्णदीर्घदेहलतायुषि ॥ १६ ॥

अर्थ—उन दोनों पुत्रोंके तथा एक स्त्रीके साथ वह ब्राह्मण फल संयुक्त वृक्षसहित गंगाजीके तटपर निवास करताथा ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर हे राघव ! काल पाकर उन दोनों पुत्रोंमेंसे पुण्यनाम पुत्र जो ज्येष्ठ तथा आयुः और गुणमेंभी ज्येष्ठथा वह ब्रह्मज्ञानी हुआ ॥ १४ ॥ पावन पूर्वकालकी सन्ध्यामें कमलके समान अर्धज्ञानी हुआ वह मूर्खतासे तो निकल गयाथा परन्तु ब्रह्मपदको नहीं पाया इसलिये मध्यहीमें स्थितथा ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् प्राणियोंकी आयुःके क्षय करनेमें अलक्षित कारणोंकेभी ग्रास करनेवाले दीर्घ शरीररूपी लता तथा आयुःको जीर्ण करनेवाले शत १०० वर्षरूप कालके बीतनेपर ॥ १६ ॥

अस्माद्भंगुरभूताढ्याद्वृत्तांतशतभीषणात् ॥ रतिमुत्सृज्यसंसाराज्जराजर्जरजीवितः ॥ १७ ॥ कलनापक्षिणीनीडंदेहंदीर्घतपामुनिः ॥ जहौगिरिगुहागेहेभारंवैवाधिकोयथा ॥ १८ ॥ प्रशांतकलनारंभंचेत्यरिक्तचिदास्पदम् ॥ पदंजगामनीरागंपुष्पगंधइवांबरम् ॥१९ ॥ अथभार्यामुनेर्देहंप्राणापानविवर्जितम् ॥ दृष्ट्वाविलुलितंभूमौविनालमिवपंकजम् ॥ २० ॥

अर्थ—नाशमान् प्राणियोंसे पूर्ण जन्म वृद्धाऽवस्थामरण नरकादि पतनरूप सैकडों वृत्तान्तोंसे भयंकर इस संसारसे प्रीतिको त्यागकर वृद्धाऽवस्थासे जर्जरीभूत जीवन ॥ १७ ॥ वह दीर्घतपा नाम मुनि कल्पनारूप पक्षिणीके घोसलेके समान अपनी देहको ऐसे त्यागा जैसे पालकी उठानेवाला अपने बोझेको ॥ १८ ॥ कल्पनाके आरम्भसे रहित विषय शून्य, चेतनरूप, राग द्वेष शून्य ब्रह्मपदको इसप्रकार प्राप्त हुआ जैसे पुष्पका गन्ध आकाशमें ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर मुनिकी भार्य्या प्राण और अपान वायुसे वर्जित नालरहित कमलके समान अपने पतिके शरीरको पृथिवीपर देखकर ॥ २० ॥

चिरमभ्यस्तयायोगयुक्त्यापतिवितीर्णया ॥ तत्याजतनुमम्लानांषट्पदीपद्मिनीमिव ॥ २१ ॥ भर्त्तारमेवानुययौजनस्यादृष्टतांगता ॥ प्रभागगनकोशस्थमस्तंयातमिवोडुपम् ॥ २२ ॥ मातापित्रोस्तुगतयोरौर्ध्वदेहिककर्मणि ॥ पुण्यएवस्थितोऽव्यग्रःपावनोदुःखमाययौ ॥ २३ ॥ शोकोपहतचित्तोसौभ्रमन्काननवीथिषु ॥ ज्यायांसमनवेक्ष्यैवपावनोविललापह ॥ २४ ॥

अर्थ—पतिसे दी हुई चिरकालसे अभ्यस्त योगरूपी युक्तिसे अपने शरीरको ऐसे त्यागदिया जैसे मलिन पद्मिनीको भ्रमरी ॥ २१ ॥ ब्रह्म भावको प्राप्त पतिका अनुगमन उसने किया अर्थात् स्वयं ब्रह्मभावको प्राप्त हुई, और मनुष्योंको अदृष्टताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे चन्द्रमाके अस्त होनेपर उसकी प्रभा आकाशके कोशमें ॥ २२ ॥ मृतक माता पिताके दाह आदि क्रिया करनेमें सावधान होके पुण्य नाम पुत्र उपस्थित हुआ और पावन दुःखको प्राप्त हुआ ॥२३॥ शोकसे नष्ट चित्त यह पावन बनके मार्गोंमें भ्रमण करता हुआ ज्येष्ठ पुण्यके धैर्य्यको न देखकर विलाप करनेलगा॥२४

अथौर्ध्वदेहिकंकृत्वामातापित्रोरुदारधीः ॥ आययौविपिनेपुण्यःपावनंशोकलालसम् ॥ २५ ॥ पुण्य उवाच ॥ किंपुत्रधनतांशोकंनयस्यांध्यैककारणम् ॥ बाष्पधाराधरंघोरंप्रावृट्कालइवांबुजम् ॥ २६ ॥ पितातवमहाप्राज्ञगतःसार्द्धंत्वदंबया ॥ स्वामेवपरमात्मात्मपदवींमोक्षनामिकाम् ॥ २७ ॥ तत्स्थानंसर्वजंतूनांतद्रूपंविजितात्मनाम् ॥ स्वभावमभिसंपन्नेकिंपितर्यनुशोचसि ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर दाहादि कियाको करके उदार बुद्धि पुण्य शोकमें निमग्न पावन नाम अपने भ्राताके निकट प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ पुण्य बोला–हे पुत्र ! अन्धताके कारण शोककी धनताको ऐसे क्यों प्राप्त करतेहो जैसे बाष्पकी धारा धारण करनेवाले वर्षाकालमें कमलको वा उसके सदृश नेत्रको ॥ २६ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुमारे पिता माताजीके साथ मोक्ष नामवाली अपनी परमात्म (ब्रह्म) पदवीको प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ वही (ब्रह्म) सब जीवोंका स्थानहै वही ब्रह्मवेत्ताओंका रूपहै पिताजीके अपने स्वभावके प्राप्त होनेपर तुम शोच क्यों करतेहो ? अर्थात् शोच व्यर्थ है ॥ २८ ॥

ईदृशीतुत्वयाबद्धाभावनेहविमोहजा ॥ संसारेयदशोच्योपित्वयाताततोनुशोच्यते ॥ २९ ॥ नसैवभवतोमातानासावेवपितातव ॥ नभवानेषतनयस्तयोर्निःसंख्यपुत्रयोः ॥ ३० ॥ मातापितृसहस्राणिसमतीतानितेसुत ॥ बहून्यंबुप्रवाहस्यनिम्नानीववनेवने ॥ ३१ ॥ असंख्यपुत्रयोर्नैवभवानेवसुतस्तयोः ॥ सरित्तरंगवत्पुत्रगताःपुत्रगणानृणाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह मेरी माता, ये मेरे पिता यह भावना जो तुमने बांधी वह अज्ञानसे है क्योंकि इस संसारमें जो शोकके योग्य नहीं है ऐसे पिताकोभी शोचतेहो ॥ २९ ॥ यही तुमारी माता और यही तुमारे पिता नहीं हैं और असंख्य पुत्र जिनके होचुके हैं ऐसे इन माता पिताके तुह्मी पुत्रभी नहीं हो ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! तुमारे माता पिता सहस्रों ऐसे बीत गये हैं जैसे जलके प्रवाहके बन २ में अनेक गंभीर (गढे आदि) देश ॥ ३१ ॥ और पुत्रवाले उन माता पिताके तुमी एक पुत्र नहींहो. क्योंकि हे पुत्र ! अन्य मनुष्योंकेभी पुत्रोंके समूहके समूह व्यतीत होगये हैं ॥ ३२ ॥

अस्मत्पित्रोरतीतानिपुत्रलक्षाण्यनेकशः ॥ पत्रकोरकवृंतानिलताविटपयोरिव ॥ ३३ ॥ मित्रबांधववृंदानिजंतोर्जन्मनिजन्मनि ॥ ऋतावृतावतीतानिफलानीवमहातरोः ॥ ३४ ॥ शोचनीयायदिस्नेहान्मातापितृसुताःसुत ॥ तदतीतानशोच्यंतेकिमजस्रंसहस्रशः ॥ ३५ ॥ प्रपंचोयंमहाभागदृश्यतेजागतेभ्रमे ॥ परमार्थेनतेप्राज्ञानास्तिमित्रंनबांधवाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—लता तथा वृक्षमें पत्र तथा कलीके सदृश हमारे तुमारे मातापिताके लाखों पुत्र अनेकवार होचुके हैं ॥ ३३ ॥ जीवके मित्र और बांधव आदिके समूहके समूह जन्म २ में ऐसे होते हैं जैसे बडे वृक्षके ऋतु २ में फल ॥ ३४ ॥ हे पुत्र ! यदि प्रेमसे मातापिता तथा पुत्र शोकके योग्यहैं तो अनेकवार सहस्रों बीतेहुये मातापिताके लिये क्यों नहीं शोचते ? ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! जगत्‌की कल्पनाका निमित्त भ्रम (अज्ञान) होनेहीसे यह जगत् देख पडताहै यथार्थमें तुमारे न मित्रहैं और न बन्धु हैं ॥ ३६ ॥

ननाशइवहिभ्रातःपरमार्थेनविद्यते ॥ महत्यपिचिरंतप्तेमरावपियोलवाः ॥ ३७ ॥ एतायाःप्रेक्षसेलक्ष्मीश्छत्रचामरचंचलाः ॥ स्वप्नएवमहाबुद्धेदिनानित्रीणिपंचवा ॥ ३८ ॥ दृष्ट्यातुपारमार्थिक्यापुत्रसत्यंविचारय ॥ नैवत्वंनवयंचैवभ्रांतिमंतःपरित्यज ॥ ३९ ॥ अयंगतोमृतश्चायमितिदुर्दृष्टयःपुरः ॥ स्वसंकल्पोपपातोत्थादृश्यंतेनतुसत्यतः ॥ ४० ॥ अज्ञानविस्तीर्णमरौविलोलंशुभाशुभस्यंदमयैस्तरंगैः ॥ स्ववासनानाममरीचिवारिपरिस्फुरत्येतदनंतरूपम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे पावनबोधनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—हे भ्रातः! जैसे चिरकालसे अति संतप्त मरूस्थलमें जलके लेशभी नहीं हैं ऐसेही परमार्थ दृष्टिसे आत्मामें (ब्रह्मके स्वभावमें) नाशभी कुछ नहीं है ॥ ३७ ॥ हे महाबुद्धे ! छत्र चमर आदि यह जो चंचल राज्य आदि लक्ष्मीको देखते हो यह सब तीन वा पांच दिन अर्थात् अल्पकालके लिये हैं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र[1] ! परमार्थ दृष्टिसे तुम सत्यको विचारो न तुमहो और न हम हैं, यह तुमहम भ्रमको अपने अन्तःकरणसे त्यागो ॥ ३९ ॥ यह गया, यह मृतक हुआ इत्यादि कुदृष्टियां अपनेही संकल्पके भ्रमसे आविर्भूत सम्मुख देख पडती हैं यथार्थमें ये सत्य नहीं हैं ॥ ४० ॥ अज्ञानरूप संतापसे आच्छादित मरूस्थलरूप आत्मामें शुभाऽशुभ कर्मरूप स्पन्दमय तरंगोंसे चंचल अपनी वासनारूप मृगतृष्णाका जलही यह अनन्त संसाररूपसे परिस्फुरित हो रहाहै ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे पावनबोधनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस २० के सर्गमें पुण्य अपने भाईके शोक दूर करनेको पावनके तथा अपने नानायोनियोंमें जन्मोंका वर्णन कियाहै ॥

॥ पुण्यउवाच ॥ कःपिताकिंचवामित्रंकामाताकेचबांधवाः ॥ स्वबुद्ध्यैवावधूयंतेवात्ययाजनपांसवः ॥ १ ॥ बंधुमित्रसुतस्नेहद्वेषमोहदशामयः ॥ स्वसंज्ञामात्रकेणैवप्रपंचोयंवितन्यते ॥ २ ॥ बंधुत्वेभावितोबंधुःपरत्वेभावितःपरः ॥ विषामृतदशेवेहस्थितिर्भावनिबंधनी ॥ ३ ॥ एकत्वेविद्यमानस्यसर्वगस्यकिलात्मनः ॥ अयंबंधुःपरश्चायमित्यसौकलनाकुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—पुण्य बोला–कौन पिता, कौन मित्र और कौन माता तथा बन्धु; ये सब अपनी भ्रान्तिहीसे उत्थापित (उत्पन्न) ऐसे किये जाते हैं जैसे महान् वायुसे मनुष्योंके लिये धूलि ॥ १ ॥ बंधु, मित्र, पुत्र, इनमें राग द्वेष तथा मोहमय दशारूप रोगयुक्त इस प्रपंचको आत्मा अपनेही संकेतमात्रसे विस्तारित करताहै ॥ २ ॥ बन्धुतामें दृढ भावना करनेसे बन्धु तथा शत्रुतामें दृढ भावना करनेसे शत्रु प्राणी शत्रु होजाताहै विष और अमृतकी दशाके सदृश अर्थात् जैसे विषके कीडाको विषमेंही जीवनकी हेतुताकी भावनासे अमृत, और अन्यको उसके विरुद्ध भावनासे विष होजाताहै ऐसेही इस संसारमें स्थिति भावनाकेही आधीन है ॥ ३ ॥ सब देहोंमें एक (अभिन्न) रूपसे विद्यमान सर्वव्यापी आत्माके यह बन्धु यह मित्र, तथा यह कल्पना कहां ॥ ४ ॥

रक्तमांसास्थिसंघाताद्देहादेवास्थिपंजरात् ॥ कोहंस्यामितिचित्तेनस्वयंपुत्रविचारय ॥ ५ ॥ दृष्ट्यातुपारमार्थिक्यानकश्चित्त्वंनवास्म्यहम् ॥ मिथ्याज्ञानमिदंपुण्यःपावनश्चेतिवल्गति ॥ ६ ॥ कस्तेपिताकश्चसुहृत्कामाताकश्चवापरः ॥ खस्यानंतविलासस्यकिमस्वंकिंस्वमुच्यताम् ॥ ७ ॥ असिचेत्त्वंतदन्येषुयातेषुबहुजन्मसु ॥ येबंधवोयेविभवाःकितानपिनशोचसि ॥ ८ ॥

---

(१) " ज्येष्ठभ्राता समःपिता " (ज्येष्ठ भाई पिताके तुल्यहै इस हेतुसे कई स्थानमें भ्राताको पुत्र कहा है) ॥

अर्थ—रक्त, मांस, तथा अस्थि (हड्डी) के संघातरूप इस देहके पंजरसे अन्य चेतन स्वभाव अपने आत्माको चित्तसे विचारो कि हम कौनहैं ॥ ५ ॥ परमार्थ दृष्टिसे देखो पावन शब्द वाच्य तुम, और पुण्य शब्द वाच्य हम कुछ नहीं हैं, देहमें आत्मताका अभिमानरूप मिथ्याज्ञानसे प्रसिद्ध होरहाहै ॥ ६ ॥ शरीर दृष्टिसे नाश होनेसे कौन तुमारा पिता, कौन तुमारा मित्र, कौन माता, और कौन शत्रु है और देहादि उपाधिसे पृथक् शुद्धचेतन दृष्टिसे अनन्त विलास चिदात्माको कौन अपना और कौन पराया ॥ ७ ॥ यदि लिंग सूक्ष्म शरीर दृष्टिसे अहं तथा बंधु आदि व्यवहारसे कहो तो यदि तुम हमसे पृथक् लिंग शरीरात्मा तुम हो तो भूत जन्मोंके बन्धु तथा धन आदिको क्यों नहीं शोचते हो ॥ ८ ॥

बभूवुस्तेसुपुष्पासुस्थलीषुमृगयोनिषु ॥ बहवोबंधवोमार्गास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ ९ ॥ बभूवुस्ते सपद्मासुतटीष्वंभोजिनीषुते ॥ हंसस्यबंधवोहंसास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १० ॥ बभूवुस्तेलमन्यत्र चित्रासुवनराजिषु ॥ बहवोबंधवोवृक्षास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ ११ ॥ बभूवुस्तेमहोग्रेषुशिखरेषुमहीभृताम् ॥ बहवोबांधवाःसिंहास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १२ ॥

अर्थ—पुष्पसहित बनकी स्थलियोंमें मृगयोनियोंमें बहुतसे मृगयोनिमें उत्पन्न तुमारे बन्धु हुये हैं, उनके क्यों नहीं शोचते ॥ ९ ॥ कमलसहित नदी आदिकी तटियोंमें तथा कमलके बनोंमें हंसरूप तुमारे अनेक वे २ प्रसिद्ध हंस बन्धु हुये थे उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १० ॥ औरभी अन्य विचित्र बनकी पंक्तियोंमें बहुतसे वृक्ष तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते हो ॥ ११ ॥ बडे २ पर्वतोंके महान् भयंकर और अति उच्च शिखरोंपर अनेक सिंह तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १२ ॥

बभूवुस्तेस्रवंतीषुसरःस्वंभोजिनीषुच ॥ बहवोबंधवोमत्स्यास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १३ ॥ बभूविथ दशार्णेषुकपिलोवनवानरः ॥ राजपुत्रस्तुषारेषुपुंड्रेषुवनवायसः ॥ १४ ॥ हैहयेषुचमातंगस्त्रिगर्तेषुच गर्दभः ॥ शाल्वेषुसरमापुत्रःपतत्रीसरलद्रुमे ॥ १५ ॥ विंध्याद्रौपिप्पलोभूत्वाघुणोभूत्वामहावटे ॥ मंदरेकुक्कुटोभूत्वाविप्रोजातोसिकंदरे ॥ १६ ॥

अर्थ—अनेक कमलसहित नदियोंमें बहुतसे मत्स्य तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १३ ॥ हे भ्रातः ! तुम दशार्ण नाम देशमें कपिल बनके वानर तुषार देशके राजाके पुत्र पुण्ड्रदेशमें बनके काक हुये हो ॥ १४ ॥ हैहयदेशमें हस्ती, त्रिगर्तदेशमें गर्दभ, शाल्वदेशमें कुत्ते और सरलके वृक्षमें पक्षी तुम हुये हो ॥ १५ ॥ विन्ध्याचलमें पिप्पल, महावटके वृक्षमें घुण; मन्दराचलमें कुक्कुट (मुर्गा) होके इस पर्वतकी कन्दरामें ब्राह्मण उत्पन्न हुए हो॥१६॥

कोसलेषुद्विजोभूत्वाभूत्वावंगेषुतित्तिरिः ॥ अश्वोभूत्वातुषारेषुजातस्त्वंब्रह्मणोध्वरे ॥ १७ ॥ यःकीटस्तालकंदांतर्मशकोयउदुंबरे ॥ यःप्राग्बकोविंध्यवनेसत्वंपुत्रममानुजः ॥ १८ ॥ हिमवत्कंदरेभूर्जत्वग्ग्रंथिकोटरे ॥ पिपीलिकोयःषण्मासान्सोयंत्वमनुजोमम ॥ १९ ॥ स्थितःसीमांतकुग्रामगोमयेय श्ववृश्चिकः ॥ सार्द्धसंवत्सरंसाधोसोयंत्वमनुजोमम ॥ २० ॥

अर्थ—कोशलदेशमें ब्राह्मण, वंगदेशमें तित्तिर, और तुषारदेशमें अश्व होके ब्राह्मणके घरमें तुम उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥ जो तुम प्रथम तालकी जडमें कीडे गूलरके वृक्षमें मच्छड हुयेहो, और विन्ध्याचलमें बक हुयेथे वही तुम अब हमारे छोटे भ्राता हुयेहो ! ॥ १८ ॥ जो तुम हिमालयकी कन्दराके भोजपत्रके कोमल त्वचाकी ग्रन्थिके कोटरमें छ ६ मासतक चेटी हुयेथे वही तुम अब मेरे लघु भ्राता हुयेहो ॥ १९ ॥ हे साधो ! इसी अपने देशकी सीमाके अन्तमें कुग्रामके शुष्क गोवरमें डेढ वर्षतक जो तुम वृश्चिक हुयेथे वही तुम अब मेरे लघु भ्राता हुयेहो ॥ २० ॥

पुलिंदीस्तनपीठेषुनिलीनंयेनकानने ॥ षट्पदेनेवपद्मेषुसोयंत्वमनुजोमम॥२१॥ एतास्वन्यासुबह्वीषुजनयोनिषुपुत्रक ॥ जातोसिजंबूद्वीपेस्मिन्पुराशतसहस्रशः ॥ २२ ॥ इत्थंतत्रात्मनश्चैवप्राक्तनंवासनाक्रमम् ॥ पश्यामिसूक्ष्मयाबुद्ध्यासम्यग्दर्शनशुद्धया ॥ २३ ॥ ममापिबह्वयोबह्वधायोनयोमोहमंथराः ॥ समतीताःस्मराम्यद्यताज्ञानोदितयादृशा ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कमलमें भ्रमर छिपताहै ऐसेही जिस तुमने चाण्डालकीके स्तन पीठमें छिपे (चाण्डालीके पुत्र हुये) थे वही तुम अब मेरे छोटे भ्राता हुयेहो ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! इन तथा अन्य प्राणियोंकी योनियोंमें इसी जम्बूद्वीपमें तुम पूर्वकालमें सहस्रों वार उत्पन्न हुयेथे ॥ २२ ॥ इसप्रकार तुमारे तथा अपने पूर्वकालके वासनाके क्रमको सूक्ष्म दर्शनसे शुद्ध सूक्ष्म बुद्धिसे मैं देखताहुं ॥ २३ ॥ मैं अपनीभी अज्ञान जड बीती हुई अनेक योनियोंको इससमय ज्ञानसे उदित दृष्टिसे स्मरण करताहूं ॥ २४ ॥

त्रिगर्त्तेषुशुकोभूत्वाभेकोभूत्वासरित्तटे ॥ वनेषुलावकोभूत्वाजातोहमिहकानने ॥ २५ ॥ भुक्त्वापुलिंदतांविंध्येवृत्वावंगेषुवृक्षताम् ॥ उष्ट्रत्वमपिविंध्याद्रौजातोहमिहकानने ॥ २६ ॥ यश्चातकोहिमगिरौयोराजापौंड्रमंडले ॥ व्याघ्रोयःसह्यकुंजेषुसएवाहंतवाग्रजः ॥ २७ ॥ योगृध्रोदशवर्षाणियोग्राहोमासपंचकम् ॥ यःसमानांशतंसिंहःसएवेहतवाग्रजः ॥ २८ ॥

अर्थ—त्रिगर्त देशमें शुक नदीके तटपर मण्डूक बनोंमें छोटा पक्षी होके अब इस बनमें उत्पन्न हुआहुं ॥ २५ ॥ विन्ध्याचलमें चाण्डालयोनिको वंगदेशमें वृक्षयोनिको और विन्ध्याचलमें पुनः उष्ट्रयोनिको देखके इस बनमें उत्पन्न हुआहुं ॥ २६ ॥ जो हिमालय चातक पोण्ड्रमण्डलमें राजा सप्त पर्वतके कुंजोंमें व्याघ्र हुआथा वही अब तुमारा ज्येष्ठ भ्राता हुआहै ॥ २७ ॥ जो दश वर्ष पर्य्यन्त गृध्र पांच मासतक ग्राह और शत (१००) वर्षतक सिंहथा वही अब तुमारा बडा भ्राताहै ॥ २८ ॥

आंध्रग्रामचकोरेणतुषारनृपराजिना ॥ श्रीशैलाचार्यपुत्रेणदंभवत्कथ्यतेमया ॥ २९ ॥ सर्वेविविधसंसारविविधाचारचेष्टिताः ॥ विलासाजन्मनोभ्रांतेःस्मर्यंतेप्राक्तनामया ॥ ३० ॥ एवंस्थितेजगज्जाताबांधवाःशतशोगताः ॥ पितरोमातरश्चैवभ्रातरःसुहृदस्तथा ॥ ३१ ॥ कांस्तान्समनुशोचावोनशोचावश्चकानपि ॥ बंधूनिहातिशोचावईदृश्येवजगद्गतिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—आंध्रदेशके चकोर, हिम संयुक्त देशमें मांडलिक राजाके सदृश शोभायमान श्रीशैलाचार्य्यके पुत्र यह मैं तुमसे दंभके समान कहताहुं ॥ २९ ॥ विविधप्रकारके संसारसहित, और नानाप्रकारके आचार तथा चेष्टा संयुक्त जन्मभेदकी भ्रान्तिके पूर्वकालके विलास इससमय मैं स्मरण करताहुं ॥ ३० ॥ ऐसा सिद्धान्त होनेसे इस जगत्में उत्पन्न सैकडों बन्धु, माता, पिता, भ्राता, तथा मित्रहोचुके ॥ ३१ ॥ उनमेंसे किन बन्धुओंमेंसे हम तुम किनको तो शोचें और किनको न शोचें क्योंकि इस जगत्की दशा ऐसीही है ॥ ३२ ॥

अनंताःपितरोयांतियांत्यनंताश्चमातरः ॥ इहसंसारिणांपुंसांवनपादपपर्णवत् ॥३३॥ किंप्रमाणमतःपुत्रदुःखस्यात्रसुखस्यच ॥ तस्मात्सर्वंपरित्यज्ययातिष्ठावःस्वच्छतांगतौ ॥ ३४ ॥ प्रपंचभावनांत्यक्त्वामनस्यहमितिस्थिताम् ॥ तांगतिंगच्छभद्रंतेयांयांतिगतिकोविदाः ॥ ३५ ॥ इहाजवंजवीभावंपतनोत्पातनात्मकम् ॥ नचशोचंतिसुधियश्चिरंवल्गंतिकेवलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस लोकमें बनके वृक्षके पत्तेके समान संसारीपुरूषोंके अनन्त पिता और अनन्तमाता होती चली जाती हैं ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! इसलिये इस संसारमें दुःख वा सुखका क्या प्रमाण (ठिकाना) है इसकारण सब शोक वा दृश्यमात्रको त्यागकर स्वच्छताको प्राप्त होके स्थितहैं ॥३४॥ हे भ्रातः ! मनमें अहंरूपसे स्थित जो प्रपंचकी भावनाहै उसे त्यागकर जिस गतिको आत्मज्ञानी लोग जाते हैं उस गतिको प्राप्त होओ, तुमारा कल्याणहो ॥ ३५ ॥ इस संसारमें नीचे गिरना, ऊपर चढनारूप निरन्तर चक्रभ्रमण होरहाहै इसको बुद्धिमान् लोग चिरकालतक नहीं शोचते किन्तु निरभिमानतासे यथाप्राप्त व्यवहार करते हैं ॥ ३६ ॥

भावाभावविनिर्मुक्तंजरामरणवर्जितम् ॥ संस्मरात्मानमव्यग्रोमाविमूढमनाभव ॥ ३७ ॥ नतेदुःखंनतेजन्मनतेमातानतेपिता ॥ आत्मैवासिनसद्बुद्धेत्वमन्यःकश्चिदेवहि ॥ ३८ ॥ अस्यांसंसारयात्रायांनानाभिनयदायिनः ॥ अज्ञाएवनराःसाधुरसभावसमन्विताः ॥ ३९ ॥ मध्यस्थदृष्टयःस्वस्थायथाप्राप्तार्थदर्शिनः ॥ तज्ज्ञास्तुप्रेक्षकाएवसाक्षिधर्मेव्यवस्थिताः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भ्रातः! भाव तथा अभावसे विनिर्मुक्त, तथा जरा (वृद्धाऽवस्था) से शून्य जो आत्माहै उसको सावधान होके स्मरण करो, और मूढमनवाले न होओ ॥३७ ॥ हे सद्बुद्धे ! तुमारे न माताहै न पिताहै, न तुमको दुःखहै न जन्महै तुम तो शुद्धआत्माहो अन्य (देहादि) कोई नहीं हो ॥ ३८ ॥ इस संसारकी यात्रामें, नानाप्रकारकी चेष्टा करनेवाले और पुरूषार्थमें सारबुद्धिसहित अज्ञानी मनुष्यहैं ॥ ३९ ॥ और तत्वज्ञानी तो मध्यस्थदृष्टि (उदासीन) स्वस्थ, यथाप्राप्त अर्थके द्रष्टा दर्शनके समान स्थित केवल साक्षी धर्ममात्रमें स्थितहैं ॥ ४० ॥

कर्त्तारोपिनकर्त्तारोयथादीपानिशागमे॥ आलोककर्मणामेवंतज्ज्ञालोकस्थिताविह॥४१॥प्रतिबिंबेनदृश्यंतेस्वात्मबिंबगतैरपि॥यथादर्पणरत्नाद्यास्तथाकार्येमहाधियः ॥४२॥ सर्वैषणामयकलंकविवर्जितेनस्वस्थात्मभावकलितेनहृदब्जमध्ये॥पुत्रात्मनात्मनिमहामुनिनामुनैवसंत्यज्यसंभ्रममलंपरितोषमेहि॥४३॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—रात्रिके आगमन दीपक जैसे सन्निधिमात्रसे प्रकाश क्रियाके कर्ताके सदृश कर्ता, और अभिमानसे व्याप्त न होनेसे अकर्तारूप तत्वज्ञानी जब इस संसारमें स्थितहैं ॥ ४१ ॥ आत्माके अध्यस्त कार्य्यके कर्ता होते हुयेभी तत्वज्ञानी अपने स्वरूपसे ऐसे नहीं प्रविष्ट होते जैसे प्रतिबिम्बकी उपाधिभूत हस्त आदिमें प्राप्त दर्पण रत्न आदि अपने बिम्बभूत सब देह धर्म्मोंके साथभी उनको प्रतिबिंब करनेपर बिंबधर्म्मके समान स्वयं नहीं देख पडते ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! सम्पूर्ण एषाणामय कलंकसे वर्जित, महामुनि महामननशील, और हृदय कमलके मध्यमें स्थित स्वस्थ आत्मभावसे निजसेही साक्षात्कार किये हुये इसी आत्मासे सम्पूर्ण संसारके भ्रमको त्यागके परिशिष्ट (बाकीशुद्ध) इसी आत्मासे सन्तोषको प्राप्त होओ ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे पावनबोधोनाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

तृष्णाका क्षय जो है वही मोक्षहै और आशासेही चित्तकी अनेक वृत्तियां होती हैं और आशा रहित आत्मज्ञानसे पूर्ण प्राणीकी मुक्ति स्वतः सिद्धहै यह विषय २१ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंप्रबोधितस्तेनतदापुण्येनपावनः ॥ प्रबोधमापप्राकाश्यंप्रभातइवभूतलम् ॥ १ ॥ उभावपिततःसिद्धौज्ञानविज्ञानपारगौ ॥ विचेरतुर्वनेतस्मिन्यावदिच्छमनिंदितौ ॥ २ ॥ ततः कदाचित्कालेननिर्वाणपदमागतौ ॥ तौविदेहौगतस्नेहौदीपाविवशमंगतौ ॥ ३ ॥ एवंप्राग्भुक्तदेहानामनंताजनबंधुता ॥ आःकैःकिंगृह्यतेताभ्यःकिंवासंत्यज्यतेनघ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! उससमय इसप्रकार पुण्यसे बोधित पावन ज्ञान इसप्रकार पाया जैसे प्रातःकालमें भूतल प्रकाशको ॥ १ ॥ इसके पश्चात् दोनों सिद्ध ज्ञान विज्ञान पारंगत निन्दारहित सिद्ध होगये और उसी बनमें विचरने लगे ॥ २ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों देहरहित कालपाके निर्वाणपदको ऐसे प्राप्त हुये जैसे स्नेहरहित दो दीप शान्तिको ॥ ३ ॥ इसप्रकार पूर्व मुक्त देहोंके अनन्त ये बन्धुओंके अनेक समूहहैं, अहो ! हे पापरहित रामजी ! उनमेंसे किसको ग्रहण करें और किसको त्यागें ॥ ४ ॥

तस्मादाशामनंतानांतृष्णानांरघुनंदन ॥ उपायस्त्यागएवैकोननामपरिपालनम् ॥ ५ ॥ चिंतनेनैधतेचिंतात्विंधनेनेवपावकः ॥ नश्यत्यचिंतनेनैवाविंधनमिवानलः ॥ ६ ॥ ध्येयत्यागरथारूढःकरुणोदारया दृशा ॥ लोकमालोकयन्दीनमातिष्ठोत्तिष्ठराघव ॥७॥ एषाब्राह्मीस्थितिःस्वच्छानिष्कामाविगतामया ॥ एतांप्राप्यमहाबाहोविमूढोपिनमुह्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये हे रघुनंदन ! सब शोकादिके मूलभूत, प्रत्येक विषयोंमें अनन्त तृष्णाओंको त्यागनाही शान्तिका उपायहै, न कि विषयके सम्प्रदानसे उनका बढाना ॥ ५ ॥ जैसे इन्धनसे अग्नि बढताहै ऐसेही चिन्तनसे चिन्ता बढतीहै, बिना चिन्तासे ऐसे नष्ट होती है जैसे बिना इन्धनसे अग्नि ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन ! ध्येयनाम वासनाके त्यागरूप रथपर आरूढ होके करूणासे उदार दृष्टिसे दीनजनोंको देखते हुये प्रकृत व्यवहारोंको करो ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! यह अति निर्म्मल, निष्काम उपाधिरहित ब्रह्म सम्बन्धी स्थिति है, इसको पाकर लोक व्यवहारमें चतुरतारहितभी प्राणी मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ ८ ॥

एकंविवेकंसुहृदमेकांप्रौढसखींधियम् ॥ आदायविहरन्नेवंसंकटेषुनमुह्यति ॥ ९ ॥ विनिवारितसर्वार्थादपहस्तितबांधवात् ॥ नस्वधैर्याद्दतेकश्चिदभ्युद्धरतिसंकटात् ॥ १० ॥ वैराग्येणाथशास्त्रेणमहत्त्वादिगुणैरपि ॥ यत्नेनापद्विघातार्थंस्वयमेवोन्नयेन्मनः ॥ ११ ॥ नतत्रिभुवनैश्वर्यान्नकोशाद्रत्नधारिणः ॥ फलमासाद्यतेचित्ताद्यन्महत्त्वोपबृंहितात् ॥ १२ ॥

अर्थ—एक विवेकरूप मित्र तथा परमार्थ बोधरूप प्रियसखी (स्त्री) को साथ लेके विहार करते हुये संकटमेंभी मोहित नहीं होता ॥ ९ ॥ धनोंके त्याग, बांधवोंके हस्तसे दूर करने तथा अपने धैर्य्यसे अन्य कोईभी मनुष्यको संकटसे उद्धार नहीं करता ॥ १० ॥ वैराग्यसे, शास्त्रसे और महत्वादि गुणोंसे यत्नसे आपत्तिके विघातके लिये अपनेको विषयरूप गर्तसे निकालो ॥ ११ ॥ हे रामजी ! तुच्छ विषयोंके त्यागसे वृद्धिको प्राप्त चित्तसे जो फल प्राप्त होताहै वह त्रिभुवनके ऐश्वर्य्यसे वा रत्नके कोशसे नहीं प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

तदेतस्मिञ्जगत्कुक्षौपातोत्पातनदोलनैः ॥ पतंतिरुषयेवैमनस्तेषांगतज्वरम् ॥ १३ ॥ पूर्णेमनसिसंपूर्णजगत्सर्वसुधाद्रवैः ॥ उपानद्गूढपादस्यननुचर्मास्तृतैवभूः ॥ १४ ॥ वैराग्यात्पूर्णतामेतिमनोनाशावशानुगम् ॥ आशयारिक्ततामेतिशरदेवसरोमलम् ॥ १५ ॥ हृदयंशून्यतामेतिप्रकटीकृतकोटरम् ॥ अगस्तिपीतार्णववदाशाविवशचेतसाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस कारणसे अधोगति ऊर्ध्वगति तथा मृत्युलोकमें जन्म परम्पराओंसे जो लोग इस संसारकी कुक्षि (कोख) में हैं उनका मन सदा संतापसहितहै ॥ १३ ॥ और ब्रह्मज्ञानसे पूर्ण मनके होनेपर सम्पूर्ण जगत् सुधारससे मानो पूर्ण है क्योंकि उपानत् (जूते) से आच्छादित पादवालेके अर्थ मानों सम्पूर्ण पृथिवी कोमल चर्म्मसेही आच्छादितहै ॥ १४ ॥ जो मन आशाके वशमें नहीं है वह वैराग्यसे पूर्णताको प्राप्त होताहै और आशासे समुद्रके उदरके समान ऐसे खाली होजाताहै जैसे शरदृतुसे भिन्न तडागका मल ॥ १५ ॥ आशासे विवश चित्तवालोंका हृदय अन्तर्गत लोभ दैन्यादि दोषोंको प्रगटतापूर्वक ऐसे शून्यताको प्राप्त होताहै जैसे आगस्तिऋषिके पीनेपर समुद्र ॥ १६ ॥

यस्यचित्ततरौस्फारेतृष्णाचपलमर्कटी ॥ नवल्गतिमहत्तस्यराजतेहृद्वनंततम् ॥ १७ ॥ पद्माक्षकोशंत्रिजगद्गोष्पदंयोजनव्रजम् ॥ निमेषार्द्धंमहाकल्पःस्पृहारहितचेतसाम् ॥ १८ ॥ शीततातासानशीतांशोर्नहिमाचलकंदरे ॥ नरंभाचंदनावल्यांनिःस्पृहेषुमनस्सुया ॥ १९ ॥ नतथाभातिपूर्णेंदुर्नपूर्णःक्षीरसागरः॥ नलक्ष्मीवदनंकांतंस्पृहाहीनंयथामनः ॥ २० ॥

अर्थ—जिसके शान्त वैराग्यादि फलसे चित्तरूप महावृक्षपर तृष्णा चंचल मर्कटी (वानरही) नहीं गर्जती उनका मन बुद्धि, चित्त तथा अहंकार यह चार प्रकारके वृक्षोंसे व्यापक हृदयरूप बन शोभित होताहै ॥ १७ ॥ इच्छारहित तथा ब्रह्मज्ञानसे पूर्णचित्तवालोंको तीनों लोक कमलके कोश (कमलबीज) के समानहै जो जनोंका समूह गौओंके खुरके सदृशहै और महाकल्पभी निमेषका अर्धभागहै ॥ १८ ॥ चन्द्रमामें वह शीतलता नहीं है हिमालयकी कंदरामें तथा रम्भा (केला) वा चन्दनोंकी पंक्तियोंमेंभी वह शीतलता नहीं है जो निस्पृह पुरुषोंके मनमें है ॥१९॥ पूर्णचन्द्र, क्षीणसार, और लक्ष्मीके मुखमें वह शोभा नहीं है जैसीकी स्पृहा (पदार्थकी इच्छा) रहित मनमें है ॥ २० ॥

यथाब्दलेखाशशिनंसुधालेपंमषीयथा ॥ दूषयत्येवमेवांतर्नरमाशापिशाचिका ॥ २१ ॥ आशाख्याश्चित्तवृक्षस्यशाखाःस्थगितदिक्तटाः ॥ तासुच्छिन्नास्वरूपत्वंयातिचित्तमहाद्रुमः ॥ २२ ॥ छिन्नतृष्णामहाशाखेचित्तस्थाणौस्थितिंगते ॥ एकरूपतयाधैर्यंप्रयातिशतशाखताम् ॥ २३ ॥ अनस्तमितधैर्येणतेनचित्तेक्षयंगते ॥ तत्पदंप्राप्यतेरामयत्रनाशोनविद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे चन्द्रलेखाको मेघमण्डल चूनाके लेपको वर्षा दूषित करती है इसीप्रकार मनुष्यके अन्तःकरणको आशारूप पिशाचिका ॥ २१ ॥ चित्तरूप वृक्षकी आशारूप शाखाये दिगन्तोंको आच्छादन करलियाहै और उन शाखाओंके छिन्न होनेपर चित्तरूप महावृक्ष ब्रह्म (पक्षमें स्थाणु) रूपताको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ छिन्न तृष्णारूप महाशाखाओंसे शोभित चित्तरूप स्थाणुके स्थित होनेपर एकरूप (अल्प) तासे जो धैर्य है वह शत शाखता (वृद्धि) को प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जिसका धैर्य्य अस्त नहीं है अर्थात् वैराग्य जितेन्द्रियत्व द्वन्द्वसहिष्णुतादि धैर्य्ययुक्त पुरुष उस पदको प्राप्त होताहै जिसका नाश नहीं है ॥ २४ ॥

एतासांचित्तवृत्तीनामाशानामुत्तमाशयः ॥ नदद्रासिप्रहरोहंचेत्तद्भयंनास्तिराघव ॥२५॥ चित्तंवृत्तिविहीनंतेयदायातमचित्तताम् ॥ तदामोक्षमयींमंतःसत्तामाप्रोषितांततम् ॥ २६ ॥ चित्तकौशिकपक्षिण्यातृष्णयाक्षुब्धयांतरे ॥ अमंगलानिविस्तारमलमायांतिराघव ॥ २७ ॥ चिंतनवृत्तिरित्युक्तंवर्त्ततेचित्तमाशया ॥ चित्तवृत्तिमतोह्याशांत्यक्त्वानिश्चित्ततांव्रज ॥ २८ ॥ योययावर्त्ततेवृत्त्यासतयैवविनाक्षयी ॥ अतश्चित्तोपशांत्यर्थंतद्वृत्तिप्रक्षयंनय ॥ २९ ॥ प्रशमितसकलैषणोमहात्मन्भवभवबंधमपास्यमुक्तचित्तः ॥ मनसिनिगडरज्जवःकदाशाःपरिगलितासुचतासुकोनमुक्तः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे तृष्णाविचिकित्सायोगोत्पत्तिर्नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उत्तम अन्तःकरणयुक्त होके यदि इन चित्तकी वृत्तियोंके उत्पन्न होनेके अर्थ स्थान नहीं दोगे तो जन्मादिका भय तुमको नहीं है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जब चित्तकी वृत्तिसे हीन तुमारा चित्त अचित्तता दशाको प्राप्त होगा तभी तुम उस पूर्ण मोक्षमयी सत्ताको प्राप्त होओगे ॥ २६ ॥ हे राघव ! जब क्षुब्धरूपसे तुमारे चित्तमें तृष्णारूप उल्लूकी स्थितहै तब तुमारे अमंगल पूर्णरीतिसे विस्तारको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥ चिन्तनको वृत्ति (चित्त

वृत्ति) कहते हैं और वह चित्तवृत्ति आशासे प्रवृत्त होती हैं इसलिये आशारूप चित्तवृत्तिको त्यागकर निश्चित्तता दशाको प्राप्त होओ ॥ २८ ॥ जो जिस वृत्तिसे है उसका क्षय उसी वृत्तिके अभावसे होताहै इसकारण चित्तके शान्तिके लिये चित्तकी वृत्तिका क्षय करो ॥ २९ ॥ हे महात्मन् ! तुम पुत्र, चित्त तथा लोक सम्पूर्णकी अन्वेषणा (इच्छा) को शान्त करके और आशानाम संसारके बन्धनको छोडके मुक्तचित्त होके जीवन्मुक्त होजाओ, क्योंकि मनमें जो दुष्ट आशाहैं वेही आत्माके बन्धनके लिये बैलकी रस्सी हैं उन दुष्ट आशाओंके नष्ट होनेपर कौन प्राणी मुक्त नहीं होसकता ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे तृष्णाविचिकित्सा योगोपदेशो नामैकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

बलिके आख्यानका उपक्रम (आरम्भ) करके इस २२ के सर्गमें पातालका तथा बलिका राज्य और वैराग्यसे मेरूके शिखरपर विचारणा इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथवारघुवंशाख्यनभःपूर्णनिशाकर ॥ बलिवद्बुद्धिभेदेनज्ञानमासादयामलम् ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञत्वत्प्रसादान्मयाहृदि ॥ प्राप्तंप्राप्तव्यमखिलविश्रांतंचामलेपदे ॥ २ ॥ शरदीवांबरादभ्रमदभ्रंममचेतसः ॥ विभोव्यपगतंसर्वंतृष्णाख्यंतन्महातमः ॥ ३ ॥ अमृतापूरितःस्वस्थःशीतलात्मामहाद्युतिः ॥ तिष्ठाम्यानंदवानंतःसायंपूर्णइवोडुराट् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पूर्णचन्द्र सदृश रघुवंशमणे ! अकस्मात् बुद्धिके उदयसे पूर्ण रीतिसे तुम बलिके तुल्य ज्ञान प्राप्त करो ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! आपकी कृपासे हृदयमें संपूर्ण प्राप्तव्य प्राप्त किया और निर्म्मल पदमें विश्रामभी पाया ॥ २ ॥ हे प्रभो ! जैसे शरत्कालमें आकाशसे शीघ्रही महामेघमण्डलभी नष्ट होजाताहै ऐसेही मेरे चित्तासे वह तृष्णारूप महातम नष्ट होगया ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! ज्ञानरूप अमृतसे सर्वथा पूर्ण शीतल चित्त और महाप्रकाशयुक्त और अन्तःकरणमें आनन्दसहित सायंकालमें पूर्ण चन्द्रके सदृश मैं स्थितहूं ॥ ४ ॥

अशेषसंशयांभोदशरत्समयकिंत्वहम् ॥ तृप्तिमेषांनगच्छामिवचसांवदतस्तव ॥ ५ ॥ बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिपुनर्मद्बोधवृद्धये ॥ विभोकथयखिद्यंतेसंतोनावनतंप्रति ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शृणुराघवतेवक्ष्येवलेर्वृत्तांत्तमुत्तमम् ॥ श्रुतेनयेनतंतत्त्वबोधंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ७ ॥ अस्त्यस्मिञ्जगतःकोशेकस्मिंश्चिद्दिङ्किकुंजके ॥ पातालमितिविख्यातोलोकोभूमेरधःस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—परन्तु हे पूर्ण संशयरूप मेघमण्डलके लिये शरत्समय आपके कहते हुये इन बचनोंको सुनके मैं तृप्त नहीं होता ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! पुनः मेरे ज्ञानकी वृद्धिके लिये राजाबलिके ज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तान्त कहिये क्योंकि नम्रशिष्यके उपदेश देनेमें महात्मालोग खेदको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राघव ! सुनो तुमारे लिये मैं राजा बलिका उत्तम वृत्तान्त कहूंगा जिसके सुननेसे तुम उस नित्य तत्वबोधको पावोगे ॥ ७ ॥ इस ब्रह्माण्डमें किसी दिशाके कुंजमें पृथिवीके नीचे पातालनामसे प्रसिद्ध लोकहै ॥ ८ ॥

क्षीरोदार्णवजाताभिर्दिग्धाभिरमृतांशुभिः ॥ क्वचिद्दानवकन्याभिर्भातिनिर्विवरांतरः ॥ ९ ॥ जिह्वागणोद्दामरवैर्विलोलरसनायुगैः ॥ क्वचिद्भोगिभिरापूर्णःसहस्रशतमस्तकैः ॥ १० ॥ देहाद्रिवलिताशेषविश्वोद्धरणघस्मरैः ॥ क्वचिद्दनुसुतैर्व्याप्तश्चलद्भिरिवमेरुभिः ॥ ११ ॥ कुंभकूटाग्रविश्रांतवसुधामंडलोदरैः ॥ क्वचिद्दिग्दंतिभिर्दंतद्रुमाद्रिभिरुपाश्रितः ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षीरसागरमें उत्पन्न अमृतकी किरणोंसे वर्जित दानवोंकी कन्याओंसे पूर्ण कहीं कहीं वह शोभित होरहाहै ॥ ९ ॥ दोसे आदि लेके सहस्र (हजार) जिव्हा गणोंसे उद्धत शब्दकारी, चंचल जिव्हायुक्त सहस्रों मस्तकवाले शेषादि सर्पोंसे कहीं पूर्ण ॥ १० ॥ देहरूप पर्वतोंसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करनेवाले, तथा विश्वके उद्धारक धर्म वा यज्ञके हविषके बलसे भक्षक और चलायमान मेरूके सदृश दनुके पुत्रों (दानवों) से किसी स्थानमें व्याप्त वह देशहै ॥ ११ ॥ जहां गण्डस्थलरूप शिखरोंपर वसुधामण्डलका मध्य विश्राम कररहाहै और दन्तरूप वृक्षोंसे पूर्ण रीतिसे उपाश्रित अर्थात् पर्वतके समान आश्रयभूत ॥ १२ ॥

महाकटकटाशब्दत्रस्तभूतपरंपरैः ॥ कचिद्दुर्गंधभूताभैरधोनारकमंडलैः ॥ १३ ॥ आभूतलमभिप्रोत सप्तपातालमंडलैः ॥ कचिद्रत्नाकरैर्व्याप्तःपातालैर्विवरैरिव ॥ १४ ॥ सुरासुरशिरःसुप्तपादांभोरुहपांसुना ॥ कचिद्भगवतातेनकपिलेनपविवित्रितः ॥ १५ ॥ आसुरीसंभृतानंतपूजनक्रीडनैषिणा ॥ कचिद्भगवतातेनहाटकेशेनपालितः ॥ १६ ॥

अर्थ—महा कटकटा शब्दोंसे भूतों (जीवों) की श्रेणियोंको त्रस्त (भयभीत) करनेवाले, और दुर्गन्धयुक्त कर्मोंके प्रतिभासयुक्त नारक (नरक निवासी) प्राणियोंसे अधोदेशमें कहीं व्याप्त वह देशहै ॥ १३ ॥ हमारे भूतल पर्य्यन्त लोहकी सलाकामें पूयके समान सप्त पातालमण्डल सहित रत्नोंके आकर मेरू आदि पर्वतोंसे कहीं २ व्याप्त, और कहीं विवरके समान पातालके अवयवोंसे व्याप्त वह देशहै ॥ १४ ॥ देवता तथा असुरोंके शिरोभागमें चरणको विश्राम करनेवाले भगवान् कपिल देवसे वह देश पवित्र किया गयाहै तथा असुरोंकी स्त्रिया वा सेनाओंसे एकत्रित किये हुये अनंतपूजन और क्रीडनके अभिलाषी सुवर्णसे रचित पूजित लिंग महादेवसे पालितहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

तस्मिन्नसुरदोस्तंभधार्यमाणमहाभरे ॥ बभूवदानवोराजाविरोचनसुतोबलिः ॥ १७ ॥ साक्रंदेनसमं सर्वैःसुरविद्याधरोरगैः ॥ पादसंवाहनंयस्यसुरराजेनवांछितम् ॥ १८ ॥ कोशस्त्रैलोक्यरत्नानांपातासर्वशरीरिणाम् ॥ धर्त्ताभूवनधर्तृणांयस्यपालयिताहरिः ॥ १९ ॥ ऐरावणस्यसंशोषंयन्नाम्नाकटभित्तयः ॥ केकयेवाहिहन्नाड्योजग्मुराजग्मुरार्त्तताम् ॥ २० ॥

अर्थ—असुरोंकी भुजारूपी स्तंभोंसे धारित महान् राज्यका भार सहित उस पातालमें विरोचनका पुत्र बलि नाम दानव राजा था ॥ १७ ॥ रोदनके साथ सब विद्याधर उरग तथा इन्द्रसेभी जिसका पादसंवाह (पैरदवाना) वांछित था ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यरूपी रत्नोंके कोश सब प्राणियोंके रक्षक भुवनोंके धारण करनेवाले ब्रह्मादिकाभी धारण करता विष्णुभगवान् जिसके रक्षकहैं ऐसा वह बलिराजा था ॥ १९ ॥ जिसका नाम श्रवणमात्रसे ऐरावत नाम हाथीके गण्डस्थल ऐसे शोषणता तथा आर्तता (दीनता) को प्राप्त होते जैसे मयूरकी वाणी सुननेसे सर्पोंके हृदयकी नाडियां ॥ २० ॥

प्रतापोग्रोष्मभिर्यस्यकल्पकालइवाब्धयः ॥ ययुःशोषोन्मुखाःसप्तसप्ततांकुपिताकृतेः ॥ २१ ॥ यदध्वराज्यधूमाभ्रराजयोवलिताब्धयः ॥ ब्रह्मांडकोटरस्यास्यसदाकवचतांययुः ॥ २२ ॥ यस्यदृष्टिहठाघातनुन्नाधारकुलाचलाः ॥ विनमंतिदिशःसर्वालताःफलनताइव ॥ २३ ॥ लीलाविजितनिःशेषभुवनाभोगभूषणः ॥ दशकोटीःसवर्षाणिदैत्योराज्यंचकारह ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसके कुपित आकारके प्रतापकी उष्णताके स्पर्शोंसे सातों महासमुद्र शोषणताकी ओर अभिमुख होकर प्रलयकालके समान सात गर्तकी संख्या मात्रताको प्राप्त होतेथे ॥ २१ ॥ जिसके अश्वमेधादि यज्ञसे उत्पन्न मेघकी पंक्तियां समुद्रको आच्छादन करनेवाली इस ब्रह्माण्डरूपी कोटरकें वृष्टि आदिके द्वारा रक्षाके हेतु होनेसे सदा कवचरूपताको प्राप्त होतीथीं ॥ २२ ॥ जिसके दृष्टिके कुपित निरीक्षणसे पृथिवीके आधार सप्त कुलाचलभी विदीर्ण होतेथे और सम्पूर्ण दिशा अर्थात् (सब देशके प्राणी) जिसको देखकर ऐसे नम्रीभूत होतेथे जैसे फलके बोझसे झुकी हुई सम्पूर्ण लता ॥ २३ ॥ ऐसा प्रतापी लीलामात्रसे सम्पूर्ण लोकोंके भूषणभूत इन्द्रादिकोंकोभी जीतनेवाला उस दैत्य राजा बलिने दश करोड वर्ष राज्य किया ॥ २४ ॥

अथगच्छत्स्वनल्पेषुयुगेष्वावर्त्तवृत्तिषु ॥ सुरासुरमहौघेषुप्रोत्पतत्सुपतत्सुच ॥ २५ ॥ अजस्रमतिभुक्तेषुत्रैलोक्योदारवृत्तिषु ॥ भोगेष्वभजदुद्वेगंबलिर्दानवनायकः ॥ २६ ॥ मेरुशृंगशिखारत्नकृतवातायनस्थितः ॥ एकदाचिंतयामासस्वयंसंसारसंस्थितिम् ॥२७॥ कियंतमिदमक्षुण्णशक्तिनैवमयाधुना ॥ साम्राज्यमिहकर्त्तव्यंविहर्त्तव्यंजगत्त्रये ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर जलके आवर्तके समान आवर्तनशील अनेक युगोंके बीतनेपर और सुर असुरोंके महान् समूहोंके ऊपर चढने तथा नीचे गिरनेपर ॥ २५ ॥ निरन्तर त्रैलोक्यमें उत्तम भोगोंके भोगनेपर दानवोंके राजा बलिको वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ मेरूपर्वतके शिखरकी चोटीपर रत्नसे निर्मित झरोखोंमें बैठे हुये उसने एक समय संसारकी स्थितिको स्वयं चिंतन किया ॥ २७ ॥ कि शत्रुओंसे अकुंठित शक्ति मुझे अब कितने कालतक संसारमें राज्य करना वा कबतक तीनों लोकमें विहार करना चाहिये ॥ २८ ॥

महतामभराग्रेणत्रैलोक्याद्भुतकारिणा ॥ किंवाभवतिभुक्तेनभूरिभोगातिहारिणा ॥ २९ ॥ आपातमात्रमधुरमावश्यकपरिक्षयम् ॥ भोगोपभोगमात्रंमेकिंनामेदंसुखावहम् ॥ ३० ॥ पुनर्दिनैककलनाशर्वरीसं

स्थितिःपुनः ॥ पुनस्तान्येवकर्माणिलज्जायैनचतुष्टये ॥ ३१ ॥ पुनरालिंग्यतेकांतापुनरेवचभुज्यते ॥ सेयंशिशुजनक्रीडालज्जायैमहतामिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—तीनों लोकमें अद्भुत कर्मकारी मेरे इस महान्‌राज्यमें क्या होगा और अति मनोहर भोगोंके भोगनेसेभी क्या होगा ॥ २९ ॥ बिना बिचारेही अति रमणीय, निश्चयरूपसे विनाशी, यह संपूर्ण भोगमात्र मुझे क्या सुखदायी है ॥ ३० ॥ पुनः वही दिनकी रचना पुनः रात्रिकी स्थिति, गमनागमन, पुनः वही स्नान भोजन शयनादि कर्म महात्माओंके लज्जाहीके लिये ह न कि सन्तोषको ॥ ३१ ॥ पुनः उन्हीं कान्ताओंका आलिंगन करना, पुनः उन्हीं भोगोंका भोगना यह बालकोंकी क्रीडा महात्माओंको इस संसारमें लज्जाहीके लिये है ॥ ३२ ॥

तमेवभुक्तविरसंव्यापारौघंपुनःपुनः ॥ दिवसेदिवसेकुर्वन्प्राज्ञःकस्मान्नलज्जते ॥ ३३ ॥ पुनर्दिनपुनरात्रिःपुनःकार्यपरंपरा: ॥ पुनःपुनरहंमन्येप्राज्ञस्येयंविडंबना ॥ ३४ ॥ ऊर्मितांपुनरासाद्यपुनरेतिनिरूर्मिताम् ॥ यथाजलंतथैवायंतांतामेतिक्रियांजनः ॥ ३५ ॥ उन्मत्तचेष्टिताकारापुनःपुनरियंक्रिया ॥ जनंहासयतेप्राज्ञंबाललीलोपमामुहुः ॥ ३६ ॥

अर्थ—भोगसे विरस उसी व्यापारके समूहको पुनः पुनः दिन दिन करते हुये बुद्धिमान् पुरुष क्यों नहीं लज्जित होता ॥ ३३ ॥ पुनः दिन, पुनः रात्रि, पुनः उन्ही कार्योंकी परम्परा बुद्धिमान् पुरुषके लिये पुनः करना इसको मैं बुद्धि विडम्बना मानताहुं ॥ ३४ ॥ जैसे जल तरंगरूपताको प्राप्त होकर पुनः तरंगके अभावको प्राप्त होताहै ऐसेही उन्ही २ क्रियाओंको यह जन पुनः प्राप्त होताहै न कि कोई नवीन वस्तु ॥ ३५ ॥ उन्मत्तकी चेष्टाके समान तथा बालककी लीलाके सदृश पुनः पुनः यह क्रिया बुद्धिमान् जनको वारम्वार हास्यके योग्य करती है ॥ ३६ ॥

कृतयाप्यनयानित्यंक्रिययाकृतकार्यया ॥ कोर्थःस्यात्तादृशोयेनपुनःकर्मनविद्यते ॥ ३७ ॥ कियंतमथवाकालमिदमाडंबरंमहत् ॥ इहास्माभिरनुष्ठेयंकितावत्समवाप्यते ॥ ३८ ॥ अनंतेयंशिशुक्रीडावस्तुशून्यैववस्तुतः ॥ आवृत्त्याक्रियतेव्यर्थमनर्थप्रसरार्थिभिः ॥ ३९ ॥ फलमेकंमहोदारंनेहपश्यामिकिंचन ॥ कार्यमस्तीतरत्प्राप्तेयस्मिन्नामनकिंचन ॥ ४० ॥

अर्थ—सफलरूपतासे इस क्रियाको नित्य करनेपरभी ऐसा कौनसा प्रयोजन होताहै जिससे पुनः कर्म्म नहो ॥ ३७ ॥ अथवा इस संसारमें इस महान् आडम्बर अर्थात् दृष्टअदृष्टरूप कर्म्म समूहको कितने कालतक हम लोगोंको अनुष्ठान करना चाहिये और इसके करनेसे कौनसा कर्म समाप्त होताहै ॥ ३८ ॥ यथार्थमें वस्तुशून्य अनन्त यह शिशुक्रीडा दुःख परम्पराके अर्थोको जीव व्यर्थ बार २ करतेहैं ॥३९॥ जिसके प्राप्त होनेपर अन्य कुछभी कर्तव्य नहीं है ऐसा फल पुरूषार्थरूप मैं कुछ नहीं देखता ॥ ४० ॥

भोगादृतेकिमन्यत्स्यात्तद्रव्यमविनाशियत् ॥ एवंसंचिंतयाम्यासुदध्यैमत्वेत्यसौबलिः ॥ ४१ ॥ अथाभ्युवाचासुरराडाःसंस्मृतमितिक्षणात् ॥ स्वात्मन्येवमनस्यर्थंसभ्रूभंगंविमर्शयन् ॥ ४२ ॥ पुराकिलेहभगवान्पृष्टोभूत्सविरोचनः ॥ पितामयात्मतत्त्वज्ञोदृष्टलोकपरावरः ॥ ४३ ॥ यथासकलदुःखानांसुखानांचमहामते ॥ यत्रसर्वेभ्रमाःशांताःकोसौसीमांतउच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—तुच्छ विषय सुखके सिवाय अन्य नित्य सुख क्या होसकताहै ऐसा मैं चिंतन करूं, ऐसा विचार करके इस राजा बलिने शीघ्र ध्यान किया ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् (ध्यानके पीछे) क्षणभरमें अपनेही मनमें वह असुरोंका राजा पूर्वकालके संस्कारके उद्बोधसे भौंह चढाके स्मरण कियेहुये अर्थको अपने मनमेंही विचारते हुये बोला कि आः मैंने स्मरण करलिया ॥ ४२ ॥ उसने अपने मनमें विचारा कि पूर्व समयमें इस लोक तथा परलोकके देखनेवाले तत्ववेत्ता भगवान् विरोचन अपने पितासे मैंने पूंछाथा ॥ ४३ ॥ कि–हे महामते पितः ! सब दुःखोंके परिहार तथा विषयके सुखोंकी प्राप्तिके उपायरूप सम्पूर्ण व्यवहार जहां शान्त होजातेहैं वह संसारका अंत कौन कहा गयाहै ॥४४

कोपशांतोमनोमोहःकातीताःसकलैषणाः ॥ विरामरहितंकुत्रतातविश्रमणंचिरम् ॥ ४५ ॥ किंप्राप्तेहसमस्तेभ्यःप्राप्येस्मिंस्तृप्तिमान्पुमान् ॥ किंदृष्ट्वादर्शनंभूयोनतातोपकरोत्यलम् ॥ ४६ ॥ अत्यंतबहवोप्येतेभोगाहिनसुखावहाः ॥ क्षोभयंतिमनोमोहेपातयंतिसतामपि ॥ ४७ ॥ तत्तातविहतानंदसुंदरंकिंचिदेवमे ॥ तादृक्कथययत्रस्थश्चिरंविश्रांतिमेम्यहम् ॥ ४८ ॥ इत्याकर्ण्यपुरानिशाकरकरस्पर्द्धालुगुच्छस्खलत्पुष्पापूरकृतावगुंठनपदस्योत्कंतलेतेनमे ॥ पित्रास्वर्गहृतस्यसागरतरोःसंरोपितस्याजिरेस्फारा कारसायनासवसमंसंमोहशांत्यैवचः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विरोचनस्मरणं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे तात ! मनका मोह कहां शान्त होताहै धन आदिकी एषणा (अभिलाषा) कहां जाके नष्ट होती है पुनः श्रम न करनेके लिये सदा कालके अर्थ चित्तको विश्राम कहां होताहै ॥ ४५ ॥ कौनसी वस्तुको प्राप्त होकर यह प्राणी ब्रह्मलोक पर्य्यन्त विषयोंसे तृप्त होता, और किसका दर्शनकर पुनः अन्य दर्शन उपकारी नहीं होताहै ॥४६ बहुत अधिक और अनेकभी ये संसारी भोग सुखदायक नहीं किन्तु सज्जनोंकोभी मनका मोह होनेपर क्षोभितकर देते हैं ॥ ४७ ॥ हे पितः ! इसकारणसे स्वाभाविक आनन्ददायी और सुन्दर कुछ उसप्रकारका पदार्थ मुझसे कहो कि जहांपर स्थितहोके मैं चिरकालतक परम विश्रान्तिको प्राप्त होऊं ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें चन्द्रमाके किरणोंके साथ स्पर्धाकारक पुष्प तथा फलोंके गुच्छोंके समूहोंसे जिसका मूलस्थान वेष्टित किया गयाहै ऐसे स्वर्गसे बलसे आनीत और अपने अंगणमें लगाये हुये कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुये मेरे पिता इस पूर्वोक्त मेरे प्रश्नको सुनकर उसी कल्पवृक्षके विशालाकार रसायनरूप पुष्परसोंके समान सुगन्धित तथा मधुर अर्थात् जरामरण निवारक बचन मेरे मोहके शान्तिके लिये जो कहाथा वह मुझे स्मरणहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे विरोचनवाक्यस्मरणं नामः द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ अस्तिपुत्रातिविततोदेशाविपुलकोटरः ॥ त्रैलोक्यानांसहस्राणियत्रमांतिबहून्यपि ॥ १ ॥ यत्रनांभोधयोनापिसागरावानचाद्रयः ॥ नवनानिनतीर्थानिननद्योनसरांसिच ॥ २ ॥ नमहीनापिचाकाशंनद्यौर्नपवनादयः ॥ नचंद्रार्कौनलोकेशानदेवानचदानवाः ॥ ३ ॥ नभूतयक्षरक्षांसि नगुल्मानवनश्रियः ॥ नकाष्ठतृणभूतानिस्थावराणिचराणिच ॥ ४ ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले–हे पुत्र ! विशालकोटरसहित अति विस्तृत देश (मोक्ष वा शुद्धात्मा) है जिसमें अनेक त्रिलोकी सहस्रभी समा सकते है ॥ १ ॥ जहां न समुद्र, न सागर, न पर्वत, न बन, न तीर्थ, न नदी, और न तडागहै ॥२॥ जहां न पृथिवी, न आकाश, न अन्तरिक्ष, न पवन, न चन्द्र, न सूर्य्य, न लोकेश इन्द्रादि, और न देवदानव, ॥३॥ न भूत, न यक्ष, राक्षस, न लता न बनकी शोभा, न काष्ठ, तृण, भूत, और न स्थावर और न चर ॥४

नापोनज्वलनोनाशानोर्ध्वनाधोनविष्टपम् ॥ नलोकोनातपोनाहंनहरींद्रहरादयः ॥ ५ ॥ एकएवास्तितसुमहांस्तत्रराजामहाद्युतिः ॥ सर्वकृत्सर्वगःसर्वःसचतूष्णींव्यवस्थितः ॥ ६ ॥ तेनसंकल्पितोमंत्रीसर्वसन्मंत्रणोन्मुखः ॥ अघटंघटयत्याशुघटंविघटयत्यलम् ॥ ७ ॥ भोक्तुंनकिंचिच्छक्नोतिनचजानातिकिंचन ॥ राजार्थंकेवलंसर्वंकरोत्यज्ञोपिसन्सदा ॥ ८ ॥

अर्थ—न जल न अग्नि न आशा, न ऊपर न नीचा और न स्वर्ग न लोक, न आतप, न हम, न विष्णु, और न महादेवादि कुछहैं ॥ ५ ॥ वहांपर अतिमहान् महा प्रकाशसहित, सर्वकर्ता, सर्वगामी, और सर्वरूप एक (आत्माही) राजाहै ॥ ६ ॥ उस राजाके संकल्पसे कल्पित मन्त्री (मन) सब सन्मन्त्रण करनेको सदा उन्मुख रहताहै तथा वह अघटित (अयुक्त) (आत्माकी संसारिता) की घटना करताहै और घटित अर्थात् युक्त आत्माकी पूर्ण आनंदताको भलीभांति विघटित करदेताहै ॥ ७ ॥ वह मंत्री कुछ रच नहीं सकता और न कुछ जानताहै अज्ञ होकरभी सदा केवल राजाके लिये कर्म करताहै ॥ ८ ॥

सएवसर्वकार्यैककर्त्तातस्यमहीपतेः ॥ राजाकेवलमेकांतेस्वस्थएवावतिष्ठते ॥ ९ ॥ बलिरुवाच ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तःकःसदेशोमहामते ॥ कथमासाद्यतेचापिकेनवाधिगतःप्रभो ॥ १० ॥ कःसतादृग्विधोमंत्रीराजाचापिमहाबलः ॥ हेलाजनजगज्जालैर्योस्माभिरपिनोजितः ॥ ११ ॥ अपूर्वमेतदाख्यानंममामरभयप्रद ॥ कथयापनयास्माकंहृद्व्योम्नःसंशयांबुदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस राजाका सब कार्यकर्ता वही मंत्री है राजा तो एकान्तमें केवल स्वस्थ होके स्थित रहताहै ॥९॥ बलिजी बोले–हे महामते प्रभो ! आधि व्याधिसे विनिर्मुक्त कौनसा देशहै और कैसे प्राप्त होताहै तथा किसको प्राप्त हुआहै ॥ १० ॥ कौन उस प्रकरका मंत्री, तथा महाबली राजाहै जो लीलासे जगत् समूहोंको जीतनेवाले हम लोगोंसेभी नहीं जीता गया ॥ ११ ॥ हे देवोंकोभी भयदाता अपूर्व इस आख्यानको मुझसे कहिये, और हमारे हृदयाकाशसे इस संशयरूप मेघको दूर कीजिये ॥ १२ ॥

॥ विरोचनउवाच ॥ सतत्रमंत्रीबलवान्देवासुरगणैःसुत ॥ समेतैर्लक्षगुणितैरपिनाक्रम्यतेमनाक् ॥ १३ ॥ नासौसहस्रनयनोनयमोनधनेश्वरः ॥ नामरोनासुरोवापियदिपुत्रकजीयते ॥ १४ ॥ तत्रासि मुसलप्रासवज्रचक्रगदादयः ॥ हेतयःकुंठतांयांतिदृषदीवोत्पलाहतिः ॥ १५ ॥ गम्योसौनास्त्रशस्त्राणां नभटोद्भवकर्णणाम् ॥ तेनदेवासुराःसर्वेसर्वदैववशीकृताः ॥ १६ ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले—हे पुत्र ! वह महाबलवान् मंत्री (मन) है जितने देवासुर समूहहैं उनसे लक्ष गुणभी मिलकर उस मंत्रीके ऊपर किंचित्भी आक्रमण नहीं करसकते ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! न यह इन्द्रहै न यमहै न कुबेरहै और न कोई देवता वा असुरहै जिसको तुम जीत सको ॥ १४ ॥ वहां तरवार, मुसल, बर्छी, बज्र, चक्र और गदा आदि सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र ऐसे कुंठित होजाते हैं जैसे पाषाणके ऊपर कमलोंका प्रहार ॥ १५ ॥ यह मंत्री (मनरूप) शस्त्र वा अस्त्रका विषय नहीं है और न बीरोंके पराक्रमका विषयहै इसी कारण उसने देवता तथा असुरोंको वशीभूत कर लियाहै ॥ १६ ॥

अविष्णुनापितेनेहहिरण्याक्षादयोसुराः ॥ पातिताःकल्पवातेनमेरुकल्पद्रुमाइव ॥ १७ ॥ नारायणाद योदेवाअपिसर्वावबोधिनः ॥ तेनाक्रम्ययथाकाममवटेषुनिवेशिताः ॥ १८ ॥ तत्प्रसादेनसाटोपंपंचमात्रशरःस्मरः ॥ त्रैलोक्यमिदमाक्रम्यसम्राडिवविवल्गति ॥ १९ ॥ सुरासुरौघगृह्योपिगुणहीनोपिदुर्मतिः ॥ दुराकृतिरपिक्रोधस्तत्प्रसादेनजृंभते ॥ २० ॥

अर्थ—विष्णु न होकरभी उसने हिरण्याक्ष आदि असुरोंको ऐसे गिरायाहै जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरूके कल्पवृक्षोंको ॥ १७ ॥ सबके ज्ञानके उपदेशक नारायण आदि देवोंकोभी उसने आक्रमण (पटककर) गर्भरूप गर्तमें प्रविष्ट कर दिया ॥ १८ ॥ उसीके प्रतापसे गर्वके साथ कामदेव केवल पांच ५ बाणसे इस त्रिलोकीका आक्रमण करके सम्म्राट् (चक्रवर्ती राजा) के समान गर्जताहै ॥ १९ ॥ सुर तथा असुरोंके समूहोंको विवश करनेवाला, गुणहीन तथा दुर्मतिभी और दुष्टाकृतिभी क्रोध उसी मंत्रीके प्रतापसे विकसित होरहाहै ॥ २० ॥

देवासुरसहस्राणांसंगरोथःपुनःपुनः ॥ तदेतत्क्रीडनंतस्यमंत्रिणोमंत्रशालिनः ॥ २१ ॥ समंत्रीकेवलं पुत्रतेनैवप्रभुणायदि ॥ जीयतेतत्सुजेयोसावन्यथात्वचलोपमः ॥ २२ ॥ तस्यैवतत्प्रभोःकालेजेतुंतंमंत्रिणंनिजम् ॥ इच्छासंजायतेतेनजीयतेसावयत्नतः ॥२३॥ त्रैलोक्यबलिनांमल्लमुच्छ्वासितजगत्त्रयम् ॥ जेतुंचेदस्तितेशक्तिस्तत्पराक्रमवानसि ॥ २४ ॥

अर्थ—देवता तथा असुरोंका पुनः २ यह जो लक्षोंवार युद्ध होताहै यह उसी मन्त्रमें कुशल मंत्रीका क्रीडामात्रहै ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! उस मन्त्रीको जीतना यदि वही प्रभु (आत्मा) जीतना चाहै तो वह सुखसे जीतने योग्यहै अन्यथा वह अचलके सदृशहै ॥ २२ ॥ उसी प्रभुके सुकृतके परिपाकसे विवेकके उदयसे कालपाके उस अपने मंत्रीको जीतनेकी इच्छा होती है और उससे वह बिना प्रयत्न जीता जाताहै ॥ २३ ॥ त्रैलोक्यके विजयियोंने वह मल्ल और तीनों लोकको ऊर्ध्व श्वासयुक्त (मृतकके समीप) करनेवाले इस मनरूप मन्त्रीको जीतनेकी शक्ति यदि तुममें है तो तुम पराक्रमी हो ॥ २४ ॥

तस्मिन्नभ्युदितेसूर्येत्रैलोक्यकमलाकराः ॥ इमेविकासमायांतिविलीयंतेस्तमागते ॥ २५ ॥ तमेकमेकयाबुद्धयाव्यामोहपरिहीनया ॥ यदिजेतुंसमर्थोसिधीरस्तदसिसुव्रत ॥ २६ ॥ तस्मिञ्जितेजितालोका भविष्यंत्यजिताअपि ॥ अजितेत्वजिताएतेचिरकालजिताअपि ॥ २७ ॥ तस्मादनंतसिद्धयर्थंशाश्वताय सुखायच ॥ तज्जयेयत्नमातिष्ठकष्टयापिहिचेष्टया ॥ २८ ॥ ससुरदनुजनागयक्षसंघंसनरमहोरगकिन्नरं समेतम् ॥ त्रिजगदपिवशीकृतंसमंतादतिबलिनाननुहेलयैवतेन ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदुतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विरोचनवचनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—उस मंत्रीरूप सूर्य्यके उदय होनेपर त्रिलोकीरूप ये कमलके आकर (खानि) सदा उदयको प्राप्त होते हैं और उसके अस्त होनेपर नष्ट होजाते हैं ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यदि अज्ञानसे शून्य और एकाग्रबुद्धि होके उस मंत्रीको जीतनेको समर्थ हो तो तुम धीर हो ॥ २६ ॥ उस मन्त्रीके जीतनेपर न जीते हुये लोकभी जीते हुये होजायगे और उसके न जीतनेपर चिरकालके जीते हुये लोक न जीते जांयगे ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! इसलिये अनन्त सिद्धियोंके अर्थ तथा और निरन्तर नित्य सुखकेलिये उसके जीतनेके अर्थ अति प्रयत्नसे सर्व त्यागरूप चेष्टासेभी संनद्ध

तैय्यार होजाओ ॥ २८ ॥ अति बली मंत्रीने सुर, दनुज, नाग, तथा यक्षोंके समूह सहित, तथा नर महोरग और कि-न्नर सहित तीनों लोकोंको साथही वशीभूत करलियाहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे विरोचनवचनोपदेशो नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस२४के सर्गमें उस दुष्ट मंत्रीके जीतनेके उपाय तथा राज्यादि सहित, राजाके जीतनेका उपाय वर्णित किया गयाहै॥

॥ बलिरुवाच ॥ ॥ केनोपायेनबलवान्सतातपरिजियते ॥ कोसावतिमहावीर्यःसर्वंप्रकथयाशुमे ॥१॥ ॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ मंत्रिणस्तस्यतनयानित्याजेयस्थितेरपि ॥ शृणुवच्मिसुसाध्यत्वंयेनासौपरि जीयते ॥२॥ पुत्रयुक्त्यागृहीतोसौक्षणादायातिवश्यताम् ॥ युक्तिंविनादहत्येषआशीविषइवोद्धतः ॥३॥ बालवल्लालयित्वैनंयुक्त्यानियमयंतिये ॥ राजानंतंसमालोक्यपदमासादयंतिते ॥ ४ ॥

अर्थ--बलि बोले-हे प्रभो ! किस उपायसे यह महाबली जीता जाताहै, और यह महापराक्रमी कौनहै यह सब कृपाकर शीघ्र कहिये ॥ १ ॥ विरोचनजी बोले-हे पुत्र ! यद्यपि उस मंत्रीकी स्थिति अजेय (जीतनेके अयोग्य) है तथापि सुनों मैं सुखसे जयका उपाय बताताहुं जिससे वह जीता जाताहै ॥ २ ॥ हे पुत्र ! राजयोगरूप युक्तिसे ग्र-हण किया यह शीघ्रही क्षणमेंही वश्यताको प्राप्त होताहै और विना युक्तिसे यह उद्धत सर्पके तुल्य भस्म करदेताहै॥३॥ जो कोई अल्पविषय संप्रदानसे बालकके सदृश लाड (प्यार) करके पश्चात् विषयोंके दोष दर्शाके वंचना करके उसी राजयोगरूप युक्तिसे अपने वशमें लाते हैं अनन्तर उस राजाके स्वरूपको देखके उसीके पदको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

दृष्टेतस्मिन्महीपालेसमंत्रीवशमेतिच ॥ तस्मिंचमंत्रिण्याक्रांतेसराजादृश्यतेपुनः ॥ ५ ॥ यावन्नदृष्टो राजासौतावन्मंत्रीनजीयते ॥ मंत्रीचयावन्नजितस्तावद्राजानदृश्यते ॥ ६ ॥ राजन्यदृष्टेदुर्मंत्रीसद्दुःखा यफलत्यति ॥ मंत्रिण्यनिर्जितेराजासोत्यंतंयात्यदृश्यताम् ॥७॥ अभ्यासेनोभयंतस्मात्सममेवसमार भेत् ॥ राजसंदर्शनंतस्यमंत्रिणश्चपराजयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस राजा (आत्मा) के देख पडनेपर वह मंत्री वशमें आजाताहै और उस मंत्रीके वशमें होनेपर वह राजा देख पडताहै अर्थात् एक होनेसे दोनों कार्य होजातेहैं ॥ ५ ॥ जबतक वह राजा नहीं देख पडता तबतक वह मंत्री नहीं जीता जाता और जबतक वह मंत्री न जीता जाय तबतक राजा नहीं देख पडता ॥ ६ ॥ क्योंकि राजाके न देख पडनेसे वह दुष्ट मंत्री रागद्वेषादि अनेक दुष्ट फलोंको फलता है, और मंत्रीको न जीतनेपर वह राजाभी अ-त्यन्त अदृश्यताको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ इस हेतुसे अभ्याससे राजाके दर्शनके उपायको तथा मंत्रीके पराजयको दो-नोंको साथही साथ बुद्धिमान् आरंभ करे ॥ ८ ॥

पौरुषेणप्रयत्नेनस्वभ्यासेनशनैःशनैः ॥ द्वयंसंपाद्ययत्नेनदेशमाप्नोषितंशुभम् ॥ ९ ॥ त्वमभ्यासेफली भूतेतंदेशमभिगच्छसि ॥ यदिदैत्येंद्रतद्भूयोमनागपिनशोचसि ॥ १० ॥ संशांतसकलायासानित्यप्रमु दिताशयाः ॥ साधवस्तत्रतिष्ठंतिप्रशांताशेषसंशयाः ॥ ११ ॥ शृणुकःपुत्रदेशोसौसर्वंप्रकटयामिते ॥ देशनाम्नामयोक्तस्तेमोक्षःसकलदुःखहा ॥ १२ ॥

अर्थ—पौरुषरूप प्रयत्नसे अपने अभ्याससे धीरे २ राजाका दर्शन और मंत्रीका पराजय दोनोंका संपादन क-रके उस शुभ देश (आत्मा) को प्राप्त होओगे ॥ ९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! अभ्यासके फलीभूत होनेपर तुम उस देशमें प्राप्त होओगे जहांपर पुनः किंचित्भी शोक न करोगे ॥ १० ॥ जिनके संपूर्ण सांसारिक परिश्रम सब शान्त होगये हैं और जिनका अन्तःकरण नित्य विकसितहै तथा जिनके संपूर्ण संशय शान्त होगये हैं ऐसे साधुमहात्मा वहां स्थितहैं ॥ ११ ॥ सो हे पुत्र ! सुनो ऐसा वह देश कौनसाहै सो मैं तुमसे प्रकट करताहुं, देश नामसे जो प्रसिद्धहै वह संपूर्ण दुःखोंका नाशक मोक्ष तुमसे कहाथा ॥ १२ ॥

राजातुतत्रभगवानात्मासर्वपदातिगः ॥ तेनमंत्रीकृतःप्राज्ञोमनोनाममहामते ॥ १३ ॥ मनोनिष्ठतयावि श्वमिदंपरिणतिंगतम् ॥ घटत्वेनेवमृत्पिंडोधूमोंबुदतयेवच ॥१४॥ तस्मिञ्जितेजितंसर्वंसर्वमासादितंभ वेत् ॥ दुर्जयंतद्विजानीयाद्युक्त्यैवपरिजीयते ॥ १५ ॥ बलिरुवाच ॥ यायुक्तिर्भगवंस्तस्यचित्तस्याक्र मणेस्फुटम् ॥ तांमेकथयतत्त्वावद्यथाजेष्यामिदारुणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और राजा तो मनुष्यादिके आनन्दसे लेके ब्रह्माके आनन्दसे परे अथवा सब इन्द्रियोंका अविषय आत्माहै, हे महामते ! उसने महाबुद्धिमान् मनको अपना मंत्री किया ॥ १३ ॥ मनमें वासनारूपसे सूक्ष्मभावसे स्थित यह जगत् आकारसे परिणत ऐसे हुआहै जैसे मृत्तिकाका पिण्ड घट और धूम मेघरूपमें परिणतहो ॥ १४ ॥ उसके जीतनेपर सब चेतव्य जित और प्राप्तव्य प्राप्त होजाताहै उसको दुर्जय समझना चाहिये केवल युक्तिसे वह जीता जाताहै ॥ १५ ॥ बलि बोले—हे भगवन् ! उस चित्तके जीतनेमें जो युक्तिहो वह प्रथम स्पष्ट रीतिसे कहिये जिससे कि उस भयंकर शत्रुको मैं जीतूं ॥ १६ ॥

॥ विरोचनउवाच ॥ विषयान्प्रतिभोःपुत्रसर्वानेवहिसर्वथा ॥ अनास्थापरमाह्येषासायुक्तिर्मनसोजये ॥ १७ ॥ एषैवपरमायुक्तिरनयैवमहामदः ॥ स्वमनोमत्तमातंगोद्रागित्येवावदम्यते ॥ १८ ॥ एषाह्यत्यं तदुष्प्रापासुप्रापाचमहामते ॥ अनभ्यस्तातिदुष्प्रापास्वभ्यस्ताप्राप्यतेसुखम् ॥ १९ ॥ क्रमादभ्यस्यमा नैषाविषयारतिरात्मज ॥ सर्वतःस्फुटतामेतिसेकसिक्तालतायथा ॥ २० ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले—हे पुत्र ! सम्पूर्ण विषयोंमें सर्वथा इच्छाका अभावही मनके जीतनेका परम उपायहै ॥ १७ ॥ यही (विषयोंकी इच्छा न करना) परमयुक्तिहै और इसीसे महामदवाला मत्तमातंगरूप मन शीघ्रही दमन करके जीतलिया जाताहै ॥ १८ ॥ हे महामते पुत्र ! यह युक्ति दुःष्प्रापभी और सुप्राप (सुखसे प्राप) भी है अभ्यास न करनेपर दुःष्प्राप और अभ्यासके करनेसे सुप्राप ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! क्रमसे अभ्यासकी हुई यह विषयकी विरक्ति चारोंओरसे प्रत्यक्ष रूपताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे जलसे सिंची हुई लता ॥ २० ॥

नासाद्यतेह्यनभ्यस्ताकांक्षतापिशठात्मना ॥ पुत्रशालिरिवाव्युप्तातस्मादेनांसमाहर ॥ २१ ॥ तावद्भ्रमं तिदुःखेषुसंसारावटवासिनः ॥ विरतिंविषयेष्वेतेयावन्नायांतिदेहिनः ॥ २२ ॥ अभ्यासेनविनाकश्चि न्नाप्नोतिविषयारतिम् ॥ अप्यत्यंतबलोदेहीदेशांतरमिवागतिः ॥ २३ ॥ ध्येयत्यागमतोजस्त्रंध्यायतादे हधारिणा ॥ भोगेष्वरतिरभ्यासाद्वृद्धिंनेयालतायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अभ्यासके अभावमें भोगमें लोभी चित्तवालेको यह युक्ति इच्छा करनेपरभी नहीं ऐसे मिलती जैसे बिना बोये खेतोंमे धान, इसकारण इसको अभ्याससे स्थिर करो ॥ २१ ॥ जबतक जीव सांसारिक विषयोंसे वैराग्यको नहीं प्राप्त होते तबतक संसाररूप गर्तमें निवास करते हुये दुःखोंमें भ्रमण किया करते हैं ॥ २२ ॥ बिना अभ्यासके विषयोंसे वैराग्य कोई ऐसे नहीं प्राप्त करसकता जैसे अति बलवान्भी देही गति शून्य (बिना गये) देशान्तरमें नहीं प्राप्त होता ॥ २३ ॥ इसलिये देहधारीको उचितहै कि ध्येयरूप वासना त्यागकी नित्य इच्छा करता हुआ भोगोंमें विरक्तताको ऐसे बढावै जैसे सींचके लताको ॥ २४ ॥

पुरुषार्थादृतेपुत्रनेहसंप्राप्यतेशुभम् ॥ क्रियाफलंपरिप्राप्तुंहर्षामर्षविवर्जितम् ॥ २५ ॥ दैवमित्युच्यते लोकेनदैवंदेहवत्क्वचित् ॥ अवश्यंभवितव्याख्यास्वेहयानियतिश्चया ॥ २६ ॥ उच्यतेदैवशब्देनसान दैरेवनेतरैः ॥ यद्यस्येहयदात्रयसंपन्नंसमतांगतम् ॥२७॥ हर्षामर्षविनाशायतद्दैवमितिकथ्यते ॥ दैवं नियतिरूपंचपौरुषेणोपजीयते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अपने पौरूषके सिवाय हर्ष तथा आमर्षसे शून्य क्रियाफल प्राप्त करनेके लिये अनुकूल शुभसाधन नहीं प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ नियतिसे प्रेरित जो अपनी शुभअशुभकी क्रियाहै उसको तो मनुष्य दृष्टिवाले दैव कहते हैं न कि अन्य (शास्त्रदृष्टि) और शास्त्रदृष्टिवाले तो हर्ष तथा आमर्षके निमित्त भूतकर्मोंका क्षय होनेपर जिससमय जिसके अर्थ हर्ष तथा आमर्षके बिनाशार्थ जो प्राप्त कर्म है उसीको दैव कहते हैं और यह (शास्त्रज्ञोंसे कथित) नियतिरूप दैव पुरूषार्थसे ऐसे जीताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

सम्यग्ज्ञानविलासेनमृगतृष्णाभ्रमोयथा ॥ यथासंकल्प्येयद्यत्पौरुषेणतथैवतत् ॥ २९ ॥ फलवत्तागृ हीतत्वेफलवत्तासुखप्रदम् ॥ कर्त्तानोमनएवेहयत्कल्पयतितत्तथा ॥ ३० ॥ नियतिंयादृशीमेतत्संकल्प यतिसातथा ॥ नियतानियतान्कांश्चिदर्थाननियतानपि ॥ ३१ ॥

अर्थ—जैसे मरूभूमिके यथार्थ ज्ञानसे मृगतृष्णाका भ्रम और सब मनसे जो कल्पित किया जाताहै वह पुरूषार्थसेभी वैसाही होताहै और सब मनसे कल्पित पदार्थोंमें बाधक न होनेसे प्रमाणोंसे जो फलवत्ता (सफलता) गृहीत होती है वही सुखप्रद होती है, और कर्ता जो जीवहै वह हमारे मतसे मनही है वह जैसी कपल्ना जिस बातकी करताहै वह उसीप्रकार होताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह मन जैसे नियतिकी कल्पना करताहै वह उसीप्रकार कदाचित् नियत और कदाचित् अनियत पदार्थोंको करती है ॥ ३१ ॥

करोतिचित्तंतेनैवचित्तंनियतियोजकम् ॥ नियत्यांनियतिंकुर्वन्कदाचित्स्वार्थनामिकाम् ॥ ३२ ॥ स्फुरत्यस्मिञ्जगत्कोशेजीवोव्योम्नीवमारुतः ॥ नियत्याविहितंकुर्वन्कदाचिन्नियतिश्वरः ॥ ३३ ॥ संज्ञार्थरूढनियतिशब्दःस्फुरतिसानुवत् ॥ तस्माद्यावन्मनस्तावन्नदैवंनियतिर्नच ॥ ३४ ॥ मनस्वस्तंगतेसाधोयद्भवत्यस्तुतत्तथा ॥ जीवोहिपुरुषोजातःपौरुषेणसयद्यथा ॥ ३५ ॥ संकल्पयतिलोकेस्मिंस्तत्तथातस्यनान्यथा ॥ पुरुषार्थादृतेपुत्रनकिंचिदिहविद्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसकारण यह चित्त अपने संकल्पित पदार्थके अनुसार नियतिकाभी उत्पन्न करनेहाराहै इसीकारण नित्य नियत एकस्वभाववाले परमात्मामें यह चित्तरूप जीव कदाचित् मोक्षके अधिकारी जन्ममें स्वार्थ नाम, अर्थात् साक्षी चेतनेके साक्षात्कार नियति (समाधि) को करता हुआ उस जगत्के कोश चिदाकाशमें वायुके समान असंग अपने चित्स्वभावमें स्फुरित होताहै कदाचित् समाधिके व्युत्थान कालमें शास्त्ररूप नियतिसे विहित अपने २ वर्ण आश्रमके उचित कर्म करता हुआ अज्ञानियोंके बोधके लिये ये याज्ञिक शिष्टाचारके प्रवर्तक इत्यादि रूपसे लोकमें प्रसिद्ध नियति शब्दसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे पर्वतका पाषाण स्वयं अचल होनेपरभी पवनके वेगसे वृक्षोंके चलायमान होनेसे चंचल, स्थिरोंमें स्थिरके सदृश स्फुरित होताहै, इस हेतुसे जबतक मन न जीताजाय तबतक न नियति और तदैव जीता जाताहै वा नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे साधो इसकारण मन जो पदार्थ जैसाहै (मनकी चेतनरूपता) वह वैसाही रहै, और यह जीव जब कर्म तथा ज्ञानके अधिकारी शरीरको प्राप्त होके पुरुष (मनुष्य) का जन्म होके जैसा ॥ ३५ ॥ लोकमें संकल्प करताहै वह वैसाही होताहै इसलिये अपने आधीन संकल्पमें पौरूष वैराग्यादि द्वारा ब्रह्मभावकाही संकल्प करना चाहिये क्योंकि पुरुषार्थके सिवाय इस संसारमें कुछ नहीं है ॥ ३६ ॥

परंपौरुषमाश्रित्यभोगेष्वरतिमाहरेत् ॥ नभोगेष्वरतिर्यावज्जायतेभवनाशनी ॥ ३७ ॥ नपरानिर्वृतिस्तावत्प्राप्यतेजयदायिनी ॥ विषयेषुरतिर्यावत्स्थितासंमोहकारिणी ॥ ३८ ॥ तावद्भवदशादोलाविलोलांदोलनस्थितिः ॥ अभ्यासेनविनापुत्रनकदाचनदुःखदा॥३९॥भोगभोगिभरप्रोताकदाशाविनिवर्त्तते४०

अर्थ—परम पुरुषार्थका आश्रय करके भोगोंमें वैराग्य संपादन करना चाहिये, क्योंकि संसारकी नाशिनी जबतक भोगोंमें विरक्ति नहीं उत्पन्न हुई ॥ ३७ ॥ तबतक जयको देनेहारी परम शान्ति नहीं होती, और जबतक मोहका कारण विषयोंमें प्रीति बनी है ॥ ३८ ॥ तबतक चंचल और भोगरूप सर्पके भारोंसे ग्रथित अति दुःखद यह संसारकी दशा श्रवण मननादि तथा समाधिरूप अभ्यासके विना कदापि निवृत्त नहीं होती ॥३९॥४०॥

बलिरुवाच ॥ भोगेष्वरतिरेवांतःकथंसर्वासुरेश्वर ॥ स्थितिमायातिजीवस्यदीर्घजीवितदायिनी ॥४१॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ आत्मावलोकनलताफलिनीफलतिस्फुटम् ॥ जीवस्यभोगेष्वरतिंशरदीवमहालता ॥ ४२ ॥ आत्मावलोकनेनैषाविषयारतिरुत्तमा ॥ हृदयेस्थितिमायातिश्रीरिवांभोजकोटरे ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रज्ञानिकाषेणविचारेणातिचारुणा ॥ देवमालोकयेद्भोगाद्रतिंचावहरेत्सम्रम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—बलि बोले–हे सब असुरोंके स्वामी जीवकी भोगोंमें अप्रीति जो कि दीर्घ जीवनदात्री अर्थात् नित्य आत्मस्वरूपमें स्थितिरूपहै वह स्थिरताको कैसे प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ विरोचनजी बोले–हे पुत्र ! आत्म दर्शनरूप लता मोक्ष फलको देती हुई जीवकी भोगोंमें अप्रीति ऐसे उत्पन्न करती है जैसे शरदृतु द्राक्षा आदिकी महालता फलको फलती है ॥ ४२ ॥ आत्माके दर्शनसे यह विषयोंमें अप्रीति ऐसे हृदयमें स्थित होती है जैसे कमलोंके बनमें लक्ष्मी ॥ ४३ ॥ इस हेतु बुद्धिरूप कसौटीसे युक्त उत्तम विचारसे आत्माका दर्शन करै और उसीके साथही भोगोंसे अपनी प्रीतिभी हटावै ॥ ४४ ॥

चित्तस्यभोगैर्द्वौभागौशास्त्रेणैकंप्रपूरयेत् ॥ गुरुशुश्रूषयाचैकमव्युत्पन्नस्यतुसत्क्रमे ॥४५॥ किंचिद्व्युत्पत्तियुक्तस्यभागंभोगैःप्रपूरयेत् ॥ गुरुशुश्रूषयाभागौभागंशास्त्रार्थचिंतया ॥ ४६ ॥ व्युत्पत्तिमनुयातस्यपूरयेच्चेतसोन्वहम् ॥ द्वौभागौशास्त्रवैराग्यैर्द्वौध्यानगुरुपूजया ॥ ४७ ॥ साधुतामागतोजीवोयोग्योज्ञानकथाक्रमे ॥ निर्मलाकृतिरादत्तेपटउत्तमरंजनाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—चित्तको दिनके भागके सदृश दो भाग उनमेंसे एक भाग देह यात्रामात्र उपायरूप भोगोंसे और दूसरा शास्त्र श्रवणसे पूर्ण करै, अथवा अपरिशुद्ध चित्तका एक भाग गुरू शुश्रूषारूप सन्मार्गके आरंभमें ॥ ४५ ॥ किंचित् व्युत्पन्न चित्तके ४ भाग करै उनमेंसे एक भाग देहयात्रामात्र भोगोंसे, दो भाग गुरूकी शुश्रूषा आदि सन्मार्गके आरम्भमें और एक भाग शास्त्रके श्रवणमें ॥ ४६ ॥ और तत्वके निश्चयरूप व्युत्पत्तियुक्त चित्तके दो

भाग प्रतिदिन शास्त्र तथा वैराग्यादिके सम्पादनमें पूर्ण करे, और दो ध्यान तथा गुरूकी पूजामें क्रमसे पूर्ण करे ॥४७॥ साधुता (मलिनतादि दोषोंके अभावसे शुद्धरूपता) की प्राप्त जीव ज्ञानकी कथाके क्रमके योग्य ऐसे होता है जैसे शुद्ध वस्त्र उत्तम कुसुंभ आदि रंगको ग्रहण करताहै ॥ ४८ ॥

शनैःशनैर्लालनीयंयुक्तिभिःपावनोक्तिभिः ॥ शास्त्रार्थपरिणामेनपालयेच्चित्तबालकम् ॥ ४९ ॥ परेपरिणतंज्ञानेशिथिलीभूतदुर्ग्रहम् ॥ ज्योत्स्नाऽहीनस्फटिकवच्चेतःशीतंविराजते ॥ ५० ॥ प्रज्ञयापरयाऋज्व्याभोगानामीश्वरस्यच ॥ सममेवाथदेहस्यरूपमाश्ववलोकयेत् ॥ ५१ ॥ प्रज्ञाविचारवशतःसममेवसदासुत ॥ आत्मावलोकनंतृष्णासंत्यागंचसमाहरेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—किंचित् अशुद्ध चित्त दुःखोंके आगमादि दर्शनेरूप युक्तियोंसे और श्रुतिस्मृति तथा गुरू आदिके पवित्र उक्तियोंसे चित्के साथ अमलक (अंबरा) और शर्कराके साथ एकरसतारूप परिणामसे चित्तरूप बालकको लालन करै ॥ ४९ ॥ परम ज्ञानमें परिणत, तथा बाह्य मलिन जडीभूत काठमें शिथिल और चन्द्रिकासे अभिन्न स्फटिकके तुल्य शीतल चित्त शोभित होताहै ॥ ५० ॥ विषमतारूप कुटिलतासे रहित ब्रह्माकार बुद्धिसे भोगोंके और उनके स्वामी जीव अर्थात् इन्द्रिय विषय और उनकी वृत्तियां तथा जीव और भोगके आयतन (स्थान) शरीर, इन सबको समान अर्थात् सच्चिदानन्द एक अधिष्ठान ब्रह्मरूप देखै ॥ ५१ ॥ हे पुत्र ! बुद्धि तथा विचारके कारण सदा आत्माका दर्शन और तृष्णाका त्याग एककालहीमें सम्पादन करै ॥ ५२ ॥

परदृष्टौवितृष्णत्वंतृष्णाभावेचदृक्परा ॥ एतेमिथःस्थितेदृष्टीतेजोदीपदशेयथा ॥ ५३ ॥ भोगपूगेगतास्वादेदृष्टेदेवेपरावरे ॥ परेब्रह्मणिविश्रांतिरनंतोदेतिशाश्वति ॥ ५४ ॥ विषयाकलितानंदमनंतोदेतिनिर्वृतिः ॥ नकदाचनजीवानामात्मविश्रवणादृते ॥ ५५ ॥ यज्ञदानतपस्तीर्थसेवाभिर्जायतेसुखम् ॥ नतपोभिर्नदानेननतीर्थैरपिजायते ॥ ५६ ॥

अर्थ—आत्माका दर्शन होनेसे तृष्णाका अभाव अर्थात् मूल अविद्याका नाश और तृष्णाके अभावमें आत्मदर्शनकी दृष्टि ये दोनों परस्पर एककालमेंही ऐसे स्थितहैं जैसे अग्निकी तेजोमयी दशा तथा दीपाकार दशा ॥ ५३ ॥ भोगोंके समूहमें स्वादरहित होने तथा सर्वोत्तम आत्मदेवके देख पडनेपर परब्रह्ममें सदाके लिये विश्रान्ति उदय होतीहै ॥ ५४ ॥ विषयोंमेंही सारभूत आनन्द जिस कर्ममें है उसको आस्वादन करनेवाले जीवोंको अनन्त शान्ति कदापि नहीं होती क्योंकि आत्मामें विश्रान्तिके सिवाय और शान्ति कहां ॥ ५५ ॥ यज्ञ दान तप तथा तीर्थ सेवन आदिसे विषय सम्बन्धी सुख होताहै, और न तप न दान तथा न तीर्थसेभी ॥ ५६ ॥

भोगेषुविरतिर्जंतोःस्वभावालोकनादृते ॥ कयाचिदपिनोयुक्त्याबुद्धिरात्मवलोकने ॥ ५७ ॥ स्वप्रयत्नादृतेपुंसःश्रेयसेसंप्रवर्त्तते ॥ भोगसंत्यागसंप्राप्तपरमार्थादृतेसुत ॥ ५८ ॥ नब्रह्मपदविश्रांतिसुखमासाद्यतेपरम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतेजगत्यस्मिन्नकुत्रचित् ॥ ५९ ॥ तद्वदाश्वस्यतेभातेपरमेकारणेयथा ॥ पौरुषंयत्नमाश्रित्यदैवंकृत्वासुदूरतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जीवकी भोगोंमें विरक्ति अपने आत्मस्वभाव (आत्मा) के दर्शन बिना नहीं होती और इसीप्रकार किसी युक्तिसे आत्माके दर्शनमें बुद्धि ॥ ५७ ॥ भोगोंसे वैराग्य तथा समाधि आदिके अभ्यासरूप पुरूषके प्रयत्नके बिना बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, और हे पुत्र ! भोगोंके त्यागसे प्राप्त परमार्थके बिना कल्याणके अर्थ पुरूषकी बुद्धिभी कदाचित् नहीं प्रवृत्त होती ॥ ५८ ॥ और ब्रह्मासे लेके स्तंब पर्य्यन्तको इस जगत्में ब्रह्मपदमें विश्रान्तिरूप सुख कदापि कहीं नहीं प्रात होता ॥ ५९ ॥ और इसीप्रकार अपने आत्मरूपसे अभिव्यक्त परमकारण परमात्मामें मनको विश्रामभी नहीं मिलता इसलिये पुरूषार्थरूप यत्नका अवलम्बन करके दैव (प्रारब्ध) को दूर करके ॥ ६० ॥

भोगान्विगर्हयेत्प्राज्ञःश्रेयोद्वारदृढार्गलान् ॥ प्रौढायांभोगगर्हायांविचारउपजायते ॥ ६१ ॥ वृद्धायांप्रावृषिश्रीमान्शरत्कालइवामलः ॥ विचाराद्भोगगर्हातोविचाराद्भोगगर्हणम् ॥ ६२ ॥ अन्योन्यमेतेपूर्येतेसमुद्रजलदाविव ॥ भोगगर्हाविचारश्चस्वात्मालोकश्चशाश्वतः ॥ ६३ ॥ अन्योन्यंसाधयंत्यर्थंसुस्निग्धाःसुहृदोयथा ॥ पूर्वंदैवमनादृत्यपौरुषेणप्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—कल्याण (मोक्षमार्ग) के दृढ अर्गलके समान भोगोंकी निन्दा (घृणा) बुद्धिमान् पुरुष करै और निन्दाके दृढ होनेपर सद्असद्का विवेक ऐसे उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ जैसे वर्षाऋतुके प्रौढ होनेपर शाली आदि सस्य फलकी संपत्तियुक्त शरत्काल उत्पन्न होताहै, ऐसेही भोगकी घृणासे विचार और विचारसे भोगोंसे घृणा उत्पन्न होती है ॥ ६२ ॥ ये दोनों (विचार और भोगोंसे घृणा) परस्पर एक दूसरेको ऐसे पूर्ण करते हैं जैसे समुद्र और

मेघ, और भोगोंसे घृणा, विचार (सद् असद् विवेक) और नित्य अपने आत्माका दर्शन ॥ ६३ ॥ ये तीनों एक दूसरेके अर्थको ऐसे सिद्ध करते हैं जैसे अति स्नेहयुक्त मित्र, प्रथम प्रारब्धका अनादर करके और पौरुषरूप यत्नसे ६४

दंतैर्दंतान्प्रसंपीड्य भोगेष्वरतिमाहरेत् ॥ देशाचाराविरुद्धेनबांधवैकमतेनच ॥६५॥ पौरुषेणक्रमेणादौ धनानिसमुपार्जयेत् ॥ धनैरभ्याहरेद्धन्यान्सुजनान्गुणशालिनः ॥ ६६ ॥ प्रवर्त्ततेसमासंगात्तेषांभोग विगर्हणा ॥ ततोविचारस्तदनुज्ञानंशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ ६७ ॥ ततःक्रमेणपरमपदप्राप्तिःप्रजायते ॥ यदा दूरतरेकालेविषयेभ्योविरम्यसे ॥ ६८ ॥

अर्थ—दांतोंसे दांतोंको पीडन करके अर्थात् अति परिश्रमसे भोगोंसे वैराग्य संपादन करै, और देश तथा अपने वर्णाश्रममें विहित तथा बन्धुजनके संमतसे ॥६५॥ पौरुषप्रयत्न प्रथम क्रमसे धन उत्पन्न करै और धनोंसे सज्जन गुणज्ञ और मोक्षोपदेशक महात्माओंकी आराधना करके अपने वशमें करै ॥ ६६ ॥ क्योंकि उन महात्माओंके संगसे भोगोंसे घृणा उत्पन्न होती है और भोगोंकी घृणासे विचार उत्पन्न होताहै और विचारसे शास्त्रार्थ अर्थात् सब श्रुतियोंका अद्वैत ब्रह्ममें तात्पर्य्य निर्णय होताहै ॥ ६७ ॥ उसके पश्चात् मनन निदिध्यासन क्रमसे परमपदकी प्राप्ति होती है, और यदि इससमय विषय त्यागनेमें असमर्थ हो तो यौवनकाल वा जिससमय विषयसे विरक्त होओगे ॥ ६८ ॥

तदाविचारवशतःपरमंपदमेष्यसि ॥ सम्यक्प्राप्स्यसिविश्रांतिमात्मन्यत्यंतपावने ॥६९॥ नपुनःकल्प नापंकेदुःखायनिपतिष्यसि ॥ स्थितापिनास्थातेशुद्धनमस्तेस्तुसदाशिव ॥७०॥ देशक्रमेणधनमल्पविगर्ह णेनतेनांगसाधुजनमर्जयमानपूर्वं ॥ तत्संगमोत्थविषयाद्यवहेलनेनसम्यग्विचारविभवेनतवात्मलाभः ७१

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तविचिकित्सायोगोपदेशो नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—उसीसमय बिचारके वशसे तुमको परमपदकी प्राप्ति होगी और अति पवित्र आत्मपदमें विश्रांतिभी तभी पाओगे ॥ ६९ ॥ और पुनः कल्पनारूप पंकमें तुम नहीं गिरोगे, और इससमय भोगोंमें विरक्ति न रहनेपरभी वह आगे होनेवाली है इस हेतुसे हे शुद्ध सदाशिव ब्रह्मरूप तुमको नमस्कारहै ॥ ७० ॥ हे प्रिय पुत्र ! देश और आचारसे अविरुद्ध रीतिसे प्रथम धन उपार्जन करो और उस धनसे तुच्छ धनकी घृणासे अर्थात् भोगके अर्थ अधिक धनका व्यय न करके ब्रह्मवेत्ता साधुमहात्माओंको दण्डवत्सेवा अन्न आच्छादनादिके दानादि सन्मानसे उपार्जन करो, अनन्तर उन महात्माओंके समागमसे आविर्भूत विषयमें रागद्वेषादिके अनादरद्वारा साधन चतुष्टयकी संपत्तिसे प्रवृत्त अध्यात्मशास्त्रके विचारसे विस्मृत कण्ठ माणिके सदृश तुमको आत्मलाभ होगा ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तविचिकित्सायोगो नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस २५ के सर्गमें पुनः बलिके अन्तःकरणमें विवेकरूप चन्द्रमाका शुभोदय और सन्देहकी शान्तिके अर्थ शुक्राचार्य्यकी चिन्ताका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ बलिरुवाच ॥ ॥ एतन्मेकथितंपूर्वंपित्राचारुविचारिणा ॥ इदानींसंस्मृतंदिष्ट्यासंप्रबोधमहंगतः ॥ १ ॥ अद्येयंममसंजाताभोगान्प्रत्यरतिःस्फुटं ॥ दिष्ट्याशमसुखंस्वच्छंविशाम्यमृतशीतलम् ॥ २ ॥ पुनरापूरयन्नाशांपुनरप्याहरन्धनम् ॥ पुनरावर्जयन्कांतांखिन्नोस्मिविभवस्थितौ ॥ ३ ॥ अहोनुखलुर म्येयंशमभूःशीतलांतरा ॥ सर्वाएवशमंयांतिसुखदुःखदृशःशमे ॥ ४ ॥

अर्थ—बलि बोले—उत्तम विचारवान् मेरे पितानें यह आख्यान मुझे कहा था इससमय प्रारब्धसे मैने स्मरण किया और बोधको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ इससमय प्रत्यक्ष रूपसे भोगोंमें अरुचि उत्पन्न हुई है और प्रारब्धसे स्वच्छ अमृतके समान शीतल शान्तिरूप सुखमें प्रवेश करताहुं ॥ २ ॥ पुनः २ आशाको पूर्ण करता और धनको पुनः २ एकत्र करता, और पुनः २ प्रार्थनादिसे स्त्रियोंको अनुकूल करता हुआ, तथा सम्पत्तिके परिपालनके विषयमें मैं अति संतप्तहुं ॥ ३ ॥ अहो ! यह शीतल गर्भयुक्त शान्तिकी पृथिवी कैसी रमणीयहै, शान्ति होनेसे सब सुखदुःखकी दृष्टि नाशको प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

शाम्यामिपरिनिर्वामिसुखमासेसमेस्थितः ॥ अयमंतःप्रहृष्यामिचंद्रबिंबइवार्पितः ॥ ५ ॥ उत्तांडवन्म नोरंहःप्रोषितोरुशरीरकम् ॥ अनारतपरिक्षोभंहादुःखंविभवार्जनम् ॥ ६ ॥ अंगमंगेनसंपीडयमांसंमां सेनचस्त्रियः ॥ पुराहमभवंप्रीतोयत्तन्मोहविजृंभितम् ॥ ७ ॥ दृष्टांतदृष्टयोदृष्टाभुक्तंभोक्तव्यमक्षतम् ॥ आक्रांतमखिलंभूतंजातंकिमिवशोभनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इससमय शमतामें स्थित अन्तःकरणमें सब तापोंसे निवृत्त होताहुं, चन्द्रबिंबमें अर्पितके समान शान्त होताहुं, अर्थात् निरतिशय आनन्दमें प्राप्त होताहुं, और इसीसे सुखमें स्थितहुं; और यह मैं अन्तःकरणमें अति हर्षित होताहुं ॥ ५ ॥ हा ! उद्दण्ड मनके वेगोंसे दग्ध वा देशभ्रमणसे भ्रान्त शरीरसहित अतएव निरन्तर क्षोभ-युक्त धनका उपार्जन दुःखही है ॥ ६ ॥ पूर्वकाल स्त्रीके अंगसे अंगको और मांससे मांस पीडनकरके जो मैं प्रसन्न होताथा यह केवल अज्ञानका विलासहै ॥ ७ ॥ सब ऐश्वर्य्योंके दृष्टान्त महा ऐश्वर्य्यकी दृष्टि स्वयं देखा, दूसरोंसे अव्याहत राज्यादि भोगभोगा, और संपूर्ण प्राणी मात्रको अपने सामर्थ्यसे नमित किया तथापि इससे नित्य शोभन (सुख) क्या हुआ, अर्थात् अनादि संसार विभव कभी किसीको होताहै कभी नहीं और अपनेको पूर्वकालके स-मान सहस्रशः दुर्दशाकी सम्भावना है इसलिये इस संसारमें कुछभी शोभन नहीं है ॥ ८ ॥

पुनस्तान्येवतान्येवतत्रेहान्यत्रवापिच ॥ इतश्चेतश्चवस्तूनिनापूर्वंनामकिंचन ॥ ९ ॥ सर्वमेवपरित्य ज्यपरिहृत्यधियास्वयम् ॥ स्वस्थएवावतिष्ठेहंपूर्णात्पूर्णइवात्मनि ॥ १० ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेस्त्रियोरत्नो पलादयः ॥ सारंतदपितुच्छेनकालेनाशुनिगीर्यते ॥ ११ ॥ एतावंतमहंकालंभृशंबालोभवंपुरा ॥ यःकु र्वन्द्वेषममरैस्तुच्छयाजगदिच्छया ॥ १२ ॥

अर्थ—इस लोक वा पर लोकमें इधर उधर पुनः वही वस्तु पुनः वही वस्तु अनुभवमें आती हैं इस कारण च-र्वित चर्वणके तुल्य सब हैं इसमें अपूर्व कुछभी नहीं हैं ॥ ९ ॥ सबको त्याग करके और बुद्धिसे सबको छोडके बो-धसे पूर्ण स्वरूपके प्राप्त होनेसे अपने आत्मामें पूर्णके समान मैं स्थित रहूं ॥ १० ॥ पातालमें स्वर्गमें और पृथिवीपर जो स्त्रियां तथा रत्न (हीरा पाषाणादि) भोग्य अज्ञानियोंने जो सार करके मानाहै वही सब अल्पकालसे निगल लिये जाते हैं ॥ ११ ॥ इतने समयतक मैं अति बालक (मूर्ख) था जो कि तुच्छ जगत्के आधिपत्यकी इच्छासे दे-वताओंके साथ मैंने पूर्वकालमें विरोध किया था ॥ १२ ॥

मनोनिर्माणमात्रेणजगन्नाम्नामहाधिना ॥ त्यक्तेनानेनकोर्थःस्यात्कोनुरागोमहात्मनः ॥ १३ ॥ कष्टंचि रतरंकालमनर्थेर्थधियामया ॥ अज्ञानमदमत्तेनकालेनस्वेनसेवितः ॥ १४ ॥ तरत्तरलतृष्णेनकिमिवा स्मिञ्जगत्रयम् ॥ मयानकृतमज्ञेनपश्चात्तापाभिवृद्धये ॥ १५ ॥ एतयातदलंमेस्तुतुच्छयापूर्वचिंतया ॥ पौरुषंयातिसाफल्यंवर्त्तमानाचिकित्सया ॥ १६ ॥

अर्थ—मनकी रचनामात्र जो यह जगत् नाम महामानसी दुःखहै इसके न त्यागनेसे भला क्या अर्थ सिद्ध होसकताहै और इसमें महात्माका अनुराग क्या होसकताहै ? ॥ १३ ॥ अहो खेदहै कि अज्ञानरूप मदसे मत्त मैंने दीर्घकालतक अनर्थकोही अर्थ बुद्धिसे सेवन किया ॥ १४ ॥ चंचलतृष्णा तथा अज्ञानसहित मैंने इस तीनोंलोकमें अपने पश्चात्तापकी वृद्धिके अर्थ ऐसा कौनसा कर्म है जिसको न किया हो ॥ १५ ॥ अब इस पूर्वकालकी तुच्छ चिंतासे कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि वर्तमानकालके अज्ञानके नाशार्थ उपाय करनेसे पौरूष (पुरुषका जन्म) सफल होताहै १६

अद्यापरिमिताकारकारणैकतयात्मनि ॥ सर्वतस्सुखमभ्येतिरसायनमिवार्णवे ॥ १७ ॥ कोयंतावदहं किंस्यादात्मेत्यात्मावलोकनम् ॥ पृच्छाम्यौशनसंनाथंनूनमज्ञानशांतये ॥ १८ ॥ संचिंतयामिपरमेश्वर माशुशुक्रमुद्यत्प्रसादमथतेनगिरोपदिष्टे ॥ तिष्ठाम्यनंतविभवेस्वयमात्मनात्मन्यक्षीणमर्थमुपदेशगिरः फलंति ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे बलिचिंता सिद्धांतयोगोपदेशो नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—अपरिमित आकारवान् कारणरूप परब्रह्मके साथ एकता (अभेद) स्थितिसे आत्मामें चारों ओरसे पूर्ण सुख ऐसे प्राप्त होताहै जैसे क्षीरसमुद्रमें मथनेसे अमृतरूप रसायन चारोओरसे आविर्भूत होताहै और आज॥१७॥ मैं अज्ञानकी शान्तिके अर्थ अपने कुलगुरू अर्थात् कुलके ईश्वर भगवान् शुक्राचार्यसे आत्मदर्शनका उपाय पूंछूं कि यह दृश्य प्रपंच क्याहै और अहं प्रत्यय वेद्य जीवतत्व क्याहै ॥ १८ ॥ मैं इससमय परमेश्वर (योग सिद्धिसे सर्व

कामेश्वर) और अपने शिष्यादि आश्रित जनोपर शीघ्र उदयभूत प्रसाद (प्रसन्नतायुक्त) शुक्राचार्यको चिंतन करताहुं अर्थात् दर्शनकी इच्छा करताहुं और उनके उपदिष्ट बाणीसे अनन्त विभवयुक्त परमात्मस्वरूपमें स्वयं स्थित रहुंगा, क्योंकि महात्माओंसे उपदेश की हुई बाणी अक्षय फल देती हैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे बलिचिन्ता सिद्धान्त योगोपदेशो नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

स्मरणमात्रसे आये हुये शुक्राचार्य्यका राजा बलिके प्रति संक्षेपसे तत्वपदार्थका उपदेश और उन (शुक्राचार्य) का आकाशमें गमन इस विषयका वर्णन इस २६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्यबलवान्बलिरामीलितेक्षणः ॥ दध्यौकमलपत्राक्षंशुक्रमाकाशमंदिरम् ॥१॥ सर्वस्थंचितयानंतुनित्यध्यानोथभार्गवः ॥ चेतःस्थंज्ञातवान्शिष्यंबलिंगुर्वर्थिनंपुरे ॥२॥ अथसर्वगतानंतचिदात्माभार्गवःप्रभुः ॥ आनिनायसदेहंस्वंरत्नवातायनंबलेः ॥ ३ ॥ गुरुदेहप्रभाजालपरिमृष्टतनुर्बलिः ॥ बुबुधेप्रातरर्कांशुसंबोधितमिवांबुजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार चिन्तन करके बलवान् राजा बलि नेत्रको मून्दको ब्रह्माकाशमें विश्राम करनेवाले और कमलके सदृश नेत्रसहित शुक्राचार्य्यका ध्यान किया ॥ १ ॥ इसके पश्चात् नित्य ब्रह्मध्यानमें तत्पर शुक्राचार्य्यजी सर्वरूप ब्रह्ममें स्थित अपनेको चिंतन करते हुये अपने चित्तमें स्थित, और तत्वज्ञानकी इच्छासे अभिलाषी अपने शिष्यको जाना ॥ २ ॥ इसके पश्चात् सर्वव्यापी अनन्त चिदात्मरूप भगवान् शुक्राचार्यजी रत्नोंसे रचित राजा बलिके झरोखेमें अपने शरीरको प्राप्त किया अर्थात् स्वयं आके वहां प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर गुरुके शरीरकी दीप्तिके समूहसे स्पष्ट शरीर राजा बलि ऐसे विकसित हुयें जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यके किरणसे कमल विकसितहो४

तत्ररत्नार्घ्यदानेनमंदारकुसुमोत्करैः ॥ पादाभिवंदनैरेनंपूजयामासभार्गवम् ॥ ५ ॥ रत्नार्घ्यपरिपूर्णांगंकृतमंदारशेखरम् ॥ महार्हासनविश्रांतमथोवाचगुरुंबलिः ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादोत्थाप्रतिभेयंपुरस्तव ॥ नियोजयतिमांवक्तुंकार्यकर्तुमिवार्कभा ॥ ७ ॥ भोगान्प्रतिविरक्तोस्मिमहासंमोहदायिनः ॥ तत्तत्त्वंज्ञातुमिच्छामिमहासंमोहहारियत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर रत्नोंके पात्रमें अर्घ्यके संप्रदानसे, कल्पवृक्षके पुष्पसमूहोंसे तथा चरणोंमें वन्दना आदिसे बलिने शुक्राचार्यकी पूजाकी ॥ ५ ॥ रत्नोंके अर्घ्यसे परिपूरित शरीर मन्दार (कल्पवृक्ष) के पुष्पोंसे रचित मालाके शिरमें भूषण संयुक्त, और बहु मूल्य आसनपर बैठे हुये गुरूसे राजा बलि बोले ॥ ६ ॥ बलि बोले–हे भगवन् ! आपकी कृपासे नूतन कल्पना करनेकी शक्ति विशिष्ट यह बुद्धि आपसे कुछ बोलनेको मुझे ऐसे नियुक्त करती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा अपने सन्निधान मात्रसे ब्राह्मणादिको सन्ध्या वन्दन आदि करनेको ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! महामोहदायी भोगोंसे मैं अब विरक्तहुं और महाअज्ञानका नाशक जो तत्वहै उसे मैं जानना चाहताहुं ॥ ८ ॥

कियन्मात्रमिदंभोगजालंकिंमयमेववा ॥ कोहंकस्त्वंकिमेतेवालोकाइतिवदाशुमे ॥ ९ ॥ श्रीशुक्रउवाच ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनखंगंतुंत्वलवानहम् ॥ सर्वदानवराजेंद्रसारंसंक्षेपतःशृणु ॥ १० ॥ चिदिहास्तिहिचिन्मात्रमिदंचिन्मयमेवच ॥ चित्त्वंचिदहमेतेचलोकाश्चिदितिसंग्रहः ॥ ११ ॥ भव्योसिचेत्तदेतस्मात्सर्वमाप्नोषिनिश्चयात् ॥ नोचेत्तद्बह्वपिप्रोक्तंत्वयिभस्मनिहूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इस भोगजाल (विषय समूह) की उत्तमताकी अवधि कहांतकहै और यहहै क्या २ और मैं क्या हुं और तुम क्या हो इसका तत्व मुझे शीघ्र कहो ॥ ९ ॥ श्रीशुक्राचार्यजी बोले–हे दानवराज ! मैं इससमय आकाशमें जानेको संनद्धहुं इससमय अधिक कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है तुम संक्षेपसे अपने तीनों प्रश्नोंका सार सुनो ॥ १० ॥ यह जगत् चेतनही है, इसकी सिद्धि चित्के आधीन होनेसे सब दृश्य चिन्मात्रही है चित्‌मेंही विचित्र भेदका अध्यास करनेसे सब चिन्मयहै, तुम चित् हम चित् और ये सब लोकभी चित्‌रूपहै वश यह संक्षेपहै ॥ ११ ॥ हे राजन् ! यदि तुम श्रद्धावान् तथा विवेकी हो तो इसी निश्चयसे सब कुछ पाओगे और यदि यह वार्ता नहीं हैं तो अधिक कहनाभी तमारेमें ऐसाहै जैसे भस्ममें हवन ॥ १२ ॥

चित्चेत्यकलनाबंधस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते ॥ चिदचेत्याखिलात्मेतिसर्वसिद्धांतसंग्रहः ॥ १३ ॥ एवं निश्चयमादायविलोकयसिहेलया ॥ स्वयमेवात्मनात्मानमनंतंपदमाप्स्यसि ॥ १४ ॥ खंव्रजाम्यहम चैवमुनयःसप्तसंगताः ॥ केनापिसुरकार्येणवस्तव्यंतत्रवैमया ॥ १५ ॥ राजन्यावदयंदेहस्तावन्मुक्त धियामपि ॥ यथाप्राप्तक्रियात्यागोरोचतेनस्वभावतः ॥ १६ ॥ इतिकथितवताथमार्गवेणस्फुटजलरा शिपथामहाजवेन ॥ प्लुतमलिशबलेनभोंतरालेतरलतरंगवदाकुलेग्रहौघैः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे बल्युपदेशयोगो नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—चित्की विषयाकार कल्पनाही बन्धहै और इस कल्पनासे मुक्तिही मुक्ति है, चेत्य अर्थात् विषयाकारसे निर्मुक्त चित् पूर्ण आत्माहै यह सब सिद्धान्तोंका सारहै ॥ १३ ॥ इस निश्चयको ग्रहण करके यदि अखण्डाकार वृत्तिसे सब संसारको देखोगे, तो निश्चय स्वयं ब्रह्मपदको पावोगे ॥ १४ ॥ मैं इससमय आकाशको जाताहुं, सप्तर्षिभी यहां मेरे साथ आये हैं किसी देव कार्य्यसे मेरा वहां जाके रहना अत्यावश्यकहै ॥ १५ ॥ क्योंकि हे राजन् ! जबतक यह शरीरहै तबतक जीवन्मुक्तोंकोभी यथा प्राप्त कियाका त्याग स्वभावसेही नही रुचता ॥ १६ ॥ इसप्रकार कहके भगवान शुक्राचार्य ग्रहोंसे व्याप्त अतएव पुष्पकी रजसे पूर्ण और भ्रमरके समान श्यामवर्ण आकाशके मध्यमें मेघके मार्गसे और उपर होके वेगसे उडे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे बल्युपदेशयोगो नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

शुक्राचार्यके कहेहुये मार्गसे सब कुछ विचार करतेहुये राजाबलिकी चित् पूर्णानन्दकी विश्रान्तिसे चिरकालतक स्थिति इस २७ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सुरासुरसभाज्येष्ठेतस्मिन्भृगुसुतेगते ॥ मनसाचिंतयामासबलिर्बुद्धिमतांवरः ॥ १ ॥ युक्तमुक्तंभगवताचिदेवेदंजगत्त्रयम् ॥ चिदहंचिदिमेलोकाश्चिदाशाश्चिदियंक्रिया ॥ २ ॥ स बाह्याभ्यंतरंसर्वंचिदेवपरमार्थतः ॥ अस्तिचिद्व्यतिरेकेणनेहकिंचनकुत्रचित् ॥ ३ ॥ आयमादित्यइ त्यर्कोनचितायदिचेत्यते ॥ तदर्कतमसोर्भेदःकइहेवोपलभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–सुर और असुरोंकी सभामें अति प्रसंशनीय उस शुक्राचार्य्यके जानेपर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजाबलिने मनमें चिंतन किया ॥ १ ॥ कि भगवान् शुक्राचार्यने सब सत्य कहा है यह तीनोलोक चिन्मात्रही है, मैंभी चित्रूपहुं, ये सब लोकभी चित्रूपहैं, सब दिशा चिद्रूपहैं, यह क्रियाभी चिद्रूपही है ॥ २ ॥ यथार्थमें बाह्य तथा आभ्यन्तर यह सब दृश्यमात्र चिद्रूपही है चित्से पृथक् इस संपूर्ण ब्रह्माण्डमें कहीं कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ यह सूर्य्य है यदि सूर्य्यको तम, घट तथा दीपादि भिन्नरूपसे चेतन न प्रकाशित करै तो सूर्य्य तथा अन्धकारका भेद क्या भानहो ? ॥ ४ ॥

इयंभूरितिभूरेषाचितायदिनचेत्यते ॥ भूमेःकिंनामभूमित्वंतद्भव्येभव्यतांगतम् ॥ ५ ॥ इमादिशोदिश इतिचेत्यंतेनचितायदि ॥ तत्किंनामदिशांदिक्त्वंशैलानांचापिकाद्रिता ॥ ६ ॥ इदंजगज्जगदितिचिता यदिनचेत्यते ॥ तत्किंजगत्त्वंजगतोनभस्त्वंनभसोथकिम् ॥ ७ ॥ कायोयंपर्वताकारश्चितायदिनचेत्य ते ॥ तत्किंनामशरीरत्वंशरीरस्यशरीरिणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह जो पृथिवी है इसको पृथिवीरूपसे यदि चेतन न जानै तो जलादि भिन्न पृथिवीत्वरूपसे यह प्रसिद्धताको कैसे प्राप्तहो ॥ ५ ॥ ये दिशा हैं इनको दिशारूपसे चेतन न प्रकाशित करै तो दिशाओंका दिशापन, और पर्वतोंमें पर्वतरूपसे यदि न जानै तो उनका पर्वत्व क्या है ? ॥ ६ ॥ यह जो जगत्है इसको जगत् इस रीतिसे यदि चेतन न प्रकाशित करै तो जगत्का जगत्व क्या और आकाशका आकाशत्वभी क्या ? ॥ ७ ॥ इस स्थूलाकार शरीरको चेतन न प्रकाशित करै तो शरीरियों (जीवों) के शरीरका शरीरत्व क्या ? ॥ ८ ॥

चिदिंद्रियाणिचित्कायश्चिन्मनश्चित्तदेषणा ॥ चिदंतश्चिद्बहिश्चित्खंचिद्भावाश्चिद्भवस्थितिः ॥ ९ ॥ चितैवैनमहंसर्वस्पर्शं नैवणपूर्वकम् ॥ करोमिमात्रासंस्पर्शंशरीरेणनकिंचन ॥ १० ॥ किमनेनशरीरेण

काष्ठलोष्टसमेनमे ॥ अशेषजगदेकात्माचिदहंचेतनात्मकः ॥ ११ ॥ अहंचिदंबरेभानावहंचिद्भूतपंजरे ॥ सुरासुरेषुचिदहंस्थावरेषुचरेषुच ॥ १२ ॥

अर्थ—इन्द्रियांचित्, शरीराचित्, मनाचित् इच्छाचित्, अन्तर और बाह्य सब चित्ही है शून्य आकाश (असत्) चित् उनसे विलक्षण सब चित् हैं और सब संसारकी स्थितिभी चिद्रूपही है ॥ ९ ॥ चित्‌रूपही मैं भोगकी इच्छा पूर्वक शब्द स्पर्श आदि विषयोंके भोगका कर्ताहुं और शरीरसे कुछभी नहीं करतां ॥१०॥ काष्ठ लोष्ठके समान इस शरीरसे मेरा क्या प्रयोजनहै उपाधि शून्य संपूर्ण जगत्‌का आत्मरूप चेतनात्मक चित् मैंहुं ॥ ११ ॥ आकाशमें सूर्यादि तेज पदार्थमें और वायु जल तथा पृथिवीरूप भूत समूहमें जो चित् है वह मैंहुं वा मैं वहीं हुं और सुर असुर आदि तथा अन्य स्थावर तथा जंगममें यो चित् है वह मैं वा वही मैंहुं ॥ १२ ॥

चिदस्तीहद्वितीयाहिकल्पनैवनविद्यते ॥ द्वित्वस्यासंभवाल्लोकेकःशत्रुःकश्चवासुहृत् ॥ १३ ॥ बलिनाम्नःशरीरस्यच्छिन्नेशिरसिभासुरे ॥ चितःकिंतद्भवेच्छिन्नंसर्वलोकावपूरणात् ॥ १४ ॥ चितासंचेतितोद्वेषोद्वेषोभवतिनान्यथा ॥ तस्माद्वेषादयस्सर्वेभावाभावाश्चिदात्मकाः ॥ १५ ॥ नचितोव्यतिरेकेणप्रविचार्यापिकिंचन ॥ आसाद्यतेकिलस्फारादस्मात्त्रिभुवनोदरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस ब्रह्माण्डमें केवल चिन्मात्रहै उससे पृथक् कुछ अन्य कल्पना नहीं है, और अन्यका असंभव होनेसे संसारमें शत्रु वा मित्र कौनहै ॥ १३ ॥ बलि नाम इस शरीरके प्रकाशमान शिरके कटनेपरभी असंग और सब लोकमें व्याप्त मुझ चित्स्वरूपका क्या छिन्न होसकताहै ॥ १४ ॥ और चित्तसेही प्रकाशित द्वेष द्वेषरूप होताहै अन्यथा नहीं, इसलिये रागद्वेषादिभाव अभावादि पदार्थोंकी चित्‌के आधीन कल्पना होनेसे सब रागद्वेषादि भावाभाव चिद्रूपही है॥१५॥भलीभांति विचारनेपरभी इस विशाल त्रिलोकके गर्भसे चित्‌से पृथक् कुछभी नहीं प्राप्तहोता है॥१६

नद्वेषोस्तिनरागोस्तिनमनोनास्यवृत्तयः ॥ चिन्मात्रस्यातिशुद्धस्यविकल्पकलनाकुतः ॥ १७ ॥ चिदहंसर्वगोव्यापीनित्यानंदमयात्मकः ॥ विकल्पकलनातीतोद्वितीयांशविवर्जितः ॥ १८ ॥ चितश्चिदितियन्नामनिर्नामायाननामतत् ॥ शब्दात्मिकैषाचिच्छक्तिःपरिस्फुरतिसर्वगा ॥ १९ ॥ दृश्यदर्शननिर्मुक्तकेवलामलरूपवान् ॥ नित्योदितोनिराभासोद्रष्टास्मिपरमेश्वरः ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध चिन्मात्र मेरे स्वरूपको न राग है न द्वेषहै, न मनहै और न मनकी वृत्ति हैं तो विकल्पकी कल्पना इसमें कहांसे होसकती हैं ॥ १७ ॥ सर्वगामी, सर्वव्यापी, विकल्पकी कल्पनासे प्रतीत और द्वितीय अंससे वर्जित नित्य आनन्दमय चिद्रूप मैं हुं ॥ १८ ॥ चित्‌का जो चित् यह नामहै वह नाम शून्य चित्‌का नाम नहीं है किंतु सर्वगामिनी तथा सम्पूर्ण नामरूप कल्पनाका अधिष्ठानभूत जो चित्‌शक्तिहै वही अपने नाम शब्दात्मकरूपसे स्फुरित होरही है ॥ १९ ॥ दृश्य तथा दर्शनसे निर्मुक्त केवल निर्मल रूप, नित्य उदित, और अन्य प्रकाशकरहित द्रष्टामात्र परमेश्वर मैं हुं ॥ २० ॥

कल्पनाविकलाकारःकालकांतकलामयः ॥ आभासमात्रमुदितोनित्याभासविवर्जितः ॥ २१ ॥ भारूपैकस्वरूपेस्मिन्स्वरूपेणजयाम्यहम् ॥ चेत्यरंजनरिक्तायविमुक्तायमहात्मने ॥ २२ ॥ प्रत्यक्चेतनरूपायस्वरूपायनमोस्तुते ॥ चितयेचेत्यमुक्ताययुक्त्यायुक्तायोग्यया ॥२३॥ सर्वावभासदीपायमह्यमेवनमोस्तुते ॥ चेत्यनिर्मुक्तचिद्रूपंविष्वग्विश्वावपूरकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रकाशमात्र मुझमें नित्य अपने आत्माके प्रकाशसे शून्य जल वा केशके अग्रभागमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी कलामय और अपनी कल्पनासे परिच्छिन्न आकारवाला जो जीवभाव उदितहै वह भ्रान्तिहै न कि यथार्थ ॥ २१ ॥ इसी कारण अन्तिम साक्षात्कार वृत्तिसे प्रदीप्त अपने शुद्ध रूपसे मैं जीवभावको पराजित करता हुं, अतएव विषयके रंजना (रंग) से रहित मुक्त स्वरूप तथा महात्मा ॥ २२ ॥ साक्षी चेतनरूप, अपने आत्मस्वरूपको नमस्कारहै विषयरहित चित्‌रूप, तथा मनन निदिध्यासन समाधिरूप योग्य युक्तिसे युक्त साक्षीचेतन मुझे मेरा नमस्कार है ॥ २३ ॥ सर्व प्रकाशक दीपरूप मुझे मेरा नमस्कारहै, विषयसे निर्मुक्त चित्‌रूप, चारो ओरसे ब्रह्माण्डमें पूर्ण ॥ २४ ॥

संशांतसर्वसंवेद्यंसच्चिन्मात्रमहंमहत् ॥ आकाशवदनंतोहमप्यणोरणुराततः ॥२५॥ नासादयंतिमामेताःसुखदुःखदशादृशः ॥ संवेदनमसंवेद्यमचेत्यंचेतनंततम् ॥ २६ ॥ नशक्तामांपरिच्छेत्तुंभावाभावाजगद्गताः ॥ अथचैतेजगद्भावाःपरिच्छिंदंतुमामिमम् ॥ २७ ॥ यथाभिमतमेवैतेमत्तोनव्यतिरेकिणः ॥ यदिस्वभावभूतेनवस्तुनावस्तुनीयते ॥ २८ ॥

अर्थ—शान्त सम्पूर्ण वेद्ययुक्त सच्चित्मात्र महत्‌रूप मैं हुं आकाशसेभी अनन्त व्यापक तथा अणुसेभी अणु मैं हुं ॥ २५ ॥ ये जगत्‌के सुखदुःख दशाकी दृष्टि मुझे नहीं पा सकती हैं, क्योंकि वर्तमानकालके विषयमें संवेदन (ज्ञान) असंवेद्य रहताहै और भूत तथा भविष्यत् विषयमें व्यापक चेतन अचेत्य (विषय शून्य) रहताहै ॥ २६ ॥ जगत्‌भाव अभाव पदार्थ देशकाल तथा वस्तु इयत्तारूप मेरा परिच्छेद नहीं करसकते, कदाचित् यह कहो तत्वनिश्चयरूप परिच्छेद, प्रमाणादि जगत्‌के पदार्थ मेरा करतेही हैं ॥ २७ ॥ तो यह हमको इष्टही है क्योंकि मेरे स्वरूपमात्रके परिच्छेदसे वे मुझसे पृथक् नहीं हैं जैसे यदि वस्तुको स्वभावभूत वस्तु एक देशसे प्राप्तकी जाय ॥ २८ ॥

ह्रियतेदीयतेवापितत्किंकस्यकिलक्षतम् ॥ सर्वदासर्वमेवाहंसर्वकृत्सर्वसंगतः ॥ २९ ॥ चेत्यमस्म्यहमेवैतन्नकिंचिदपिचोदितम् ॥ किंसंकल्पविकल्पाभ्यांचितंचिदियमेकिका ॥ ३० ॥ संक्षोभयाम्यहंतावच्छाम्याम्यात्मनिपावने ॥ इतिसंचिंतयन्नेवबलिःपरमकोविदः ॥ ३१ ॥ ओंकारादर्द्धमात्रार्थंभावयन्मौनमास्थितः ॥ संशांतसर्वसंकल्पःप्रशांतकलनागणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हरण की जाय वा दी जाय तो किसकी क्या हानि हुई जैसे देवदत्तके वामहस्तका गत धन दक्षिणहस्तमें ले ले हर ले वा दे दे तो इसमें किसीकी कुछ हानि नहीं है और यथार्थमें तो तत्वबोधसे प्रथमभी सर्वदा सर्वत्र प्राप्त, सर्वकर्ता, और सर्वरूप हमही हैं ॥ २९ ॥ मैं एक चित् यह सम्पूर्ण विषयरूप हुं, यथार्थमें कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि मुझ चिद्रूपका संकल्प विकल्पोंसे क्या संचित हुआ, क्या बढा और क्या नष्ट हुआ ॥३०॥ अज्ञानसे क्षोभको और बोधसे शांतिको मैंहीं प्राप्त होताहुं, ऐसा चिन्तन करते हुये परमकोबिद राजा बालि ॥ ३१ ॥ शान्त सब संकल्प तथा कल्पनारहितहोंके त्रिमात्रओंकारसे परे तुरीयआत्मरूप ब्रह्मकीभावना करतेहुये मौन धारण करके स्थितरहा ॥३२॥

निःशंकमपिदूरास्तचेत्यचिंतकचिंतनः ॥ ध्यातृध्येयध्यानहीनोनिर्मलःशांतवासनः ॥ ३३ ॥ बभूवावातदीपाभोबलिःप्राप्तमहापदः ॥ उपशांतमनास्तत्ररत्नवातायनेबलिः ॥ अवसद्बहुकालंससमुत्कीर्णइवोपले ॥ ३४ ॥ प्रशमितैषणयापरिपूर्णयामननदोषदशोज्झितयैतया ॥ बलिरराजतनिर्मलसत्तयाविघनमच्छतयेवशरन्नभः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिर्नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—निःशङ्कतापूर्वक चेत्य चेतन और चिंतकसे सर्वथा वर्जित, तथा ध्यातृ, ध्येय और ध्यानसे (त्रिपुटी शून्य) निर्मल, और वासना शून्य ॥ ३३ ॥ तथा निर्वातमें स्थित दीपके समान वह होगये और महा (ब्रह्म) पदको प्राप्त हुये और शान्तचित्त उसी रत्नके झरोखेमें बलिराजाने बहुत कालतक ऐसे निवास किया जैसे पाषाणमें खुदीहुई मूर्ति ॥ ३४ ॥ तीनों (धन पुत्र तथा लोक) ऐषणा (इच्छा) रहित चारोओरसे पूर्ण विषयके मननके दीपकी दशासे व्यक्त इस निर्मल ब्रह्मभाव प्राप्तिरूपसत्तासे ऐसे शोभित हुये जैसे मेघरहित शरत्कालका आकाश ॥३५॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे बलिविश्रान्ति नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

चेष्टारहित बलिको देखके शोकग्रस्त दानवोंने शुक्रको स्मरण किया उन्होंने आके बलिकी समाधिकी स्थिति कहके उनके शोकको हरलिया यह विषय इस २८ के सर्गमें कहागयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथतेदानवास्तत्रबलेरनुचरास्तदा ॥ तद्देहंस्फाटिकंसौधमुच्चैरारुरुहुःक्षणात् ॥ १ ॥ डिंभाद्यामंत्रिणोधीराःसामंताःकुमुदादयः ॥ सुराद्याश्चैवराजानोवृत्ताद्याबलहारिणः ॥२॥ हयग्रीवादयःसैन्याश्चाक्राजाद्याश्चबांधवाः ॥ लड्डुकाद्याश्चसुहृदोवल्गुकाद्याश्चलालकाः ॥ ३ ॥ कुबेरयमशक्राद्याउपायनकराःसुराः ॥ यक्षविद्याधरानागाःसेवावसरकांक्षिणः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! राजा बलिको चेष्टारहित देखकर बलिके अनुचर दानवलोग उससमय उसके स्फटिक मणिसे रचित अति उच्च राजभवनमें क्षणमेंही चढगये ॥ १ ॥ डिंभ आदि धीर मंत्री, कुमुद आदि सामन्त, सुर आदि राजा वृत्त आदि सेनापति ॥ २ ॥ हयग्रीव आदि सैनिक, चाक्राज आदि बांधव, लड्डुक आदि

मित्र, वल्कक आदि प्रीतिकारी ॥ ३ ॥ कुबेर, यम तथा इन्द्र आदिदेव भेट देनेहारे, और सेवाके अभिलाषी यक्ष विद्याधर और नाग ॥ ४ ॥

रंभातिलोत्तमाद्याश्चचामरिण्योवरांगनाः ॥ सागराःसरितःशैलादिशश्चविदिशस्तथा ॥ ५ ॥ सेवार्थमाययुस्तस्यतंप्रदेशंतदाबलेः ॥ अन्येचबहवःसिद्धास्त्रैलोक्योदरवासिनः ॥ ६ ॥ ध्यानमौनसमाधिस्थंचित्रार्पितमिवाचलम् ॥ नमत्किरीटवलयोददृशुर्बलिमादृताः ॥ ७ ॥ तंदृष्ट्वाकृतकर्त्तव्यप्रणामास्तेमहासुराः ॥ विषादविस्मयानंदभयमंथरतांययुः ॥ ८ ॥

अर्थ—हस्तोंमें चामर लिये हुये रंभा तथा तिलोत्तमादि उत्तम देवांगना, समुद्र, नदियां पर्वत, दिशा तथा उपदिशा ॥ ५ ॥ औरभी बहुतसे त्रिलोकके भीतर रहनेवाले सिद्धनाम देव उस स्थानमें बलिकी सेवा करनेको आये ॥ ६ ॥ नमस्कार करनेमें नमित किरीटोंकी पंक्तिसहित देवादिने ध्यानमें मौन समाधिस्थ बलिको आदरसहित देखा ॥ ७ ॥ उस बलिको देखके अवश्य कर्तव्य प्रणाम करनेवाले महाअसुर तथा सुरोंमें मित्र विषादसे, उदासीन विस्मयसे तत्त्वज्ञानी आनन्दसे और अज्ञानी भय तथा विस्मय दोनोंसे शिथिल होगये ॥ ८ ॥

मंत्रिणःप्रविचार्यत्रकिंप्राप्तमितिदानवाः ॥ भार्गवंचिंतयामासुर्गुरुंसर्वविदांवरम् ॥ ९ ॥ चिंतनानंतरंदैत्याभार्गवंभास्वरंवपुः ॥ ददृशुःकल्पितंप्राप्तंगंधर्वनगरंयथा ॥ १० ॥ पूज्यमानोसुरगणैर्निविष्टोगुरुविष्टरे ॥ ददर्शध्यानमौनस्थंभार्गवोदानवेश्वरम् ॥ ११ ॥ विश्रम्यसक्षणमिवप्रेमवानवलोक्यच ॥ बलिंविचारयन्दृष्ट्वापरिक्षीणभवभ्रमम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मंत्रियोंने विचारा की अब क्या करना चाहिये, ऐसा विचार करके सब दानवलोग सब वेत्ताओंमें श्रेष्ठ अपने गुरू शुक्राचार्यको चिंतन किया ॥ ९ ॥ चिन्तनके अनंतरही प्रकाशमान शुक्राचार्यकी शरीरको ऐसे देखा जैसे कल्पित गन्धर्व नगर ॥ १० ॥ असुरोंके समूहोंसे पूज्यमान और महान् सिंहासनपर बैठे हुये शुक्रने ध्यानसे मौन दानवोंके राजाको देखा ॥ ११ ॥ एक क्षण विश्रामके सदृश करके बलिको संसारके भ्रमसे रहित प्रेमसे देखके विचारते हुये ॥ १२ ॥

देहरश्मिशतैर्दत्तदीप्तिभिःक्षीरसागरम् ॥ क्षिपन्निवसभामाहहसन्वाक्यमिदंगुरुः ॥ १३ ॥ अतिमात्रमिदंदैत्याःस्वविचारणयैवयत् ॥ संप्राप्तविमलावासःसिद्धोथंभगवान्बलिः ॥ १४ ॥ अयंतदेवमेवेहतिष्ठन्दानवसत्तमाः ॥ स्वात्मनिस्थितिमाप्नोतुपदंपश्यत्वनामयम् ॥ १५ ॥ श्रांतोविश्राममायातःक्षीणचित्तभवभ्रमः ॥ शांतसंसारनीहारोवाचनीयोनदानवाः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने शरीरसेही हुई सैकडों किरणोंसे सभाको क्षीरमें फेंकते हुयेके समान गुरू शुक्राचार्य यह बचन बोले ॥ १३ ॥ हे दैत्यलोग ! अपनेही विचारसे विमल ब्रह्मपद जो सबका अधिष्ठानहै वह बलिको प्राप्तहै यह अति आश्चर्य है और यह भगवान् बलि अब सिद्ध होगया ॥ १४ ॥ हे दानवोंमें श्रेष्ठ ! इसलिये यह बली इसी प्रकार समाहित अपने आत्मामें चिरकालतक स्थिति पावै और अनामय (शान्त ब्रह्म) पद देखै ॥ १५ ॥ संसारके व्यवहारोंसे यह श्रांत (थकगया) है, और अब इसके चित्तसे संसारका भ्रम क्षीण होगया, तथा संसाररूप कुहिरा शान्त होगयाहै इसलिये विश्रामको प्राप्त हुआहै सो तुम लोग इस (राजा बलि) से न बोलना ॥ १६ ॥

स्वएवालोकएतेनसंप्राप्तोऽज्ञानसंकटे ॥ शांतेत्रसंभ्रमेसौरोदिनेनेवकरोत्करः ॥ १७ ॥ स्वयमेवहिकालेनप्रबोधमयमेष्यति ॥ बीजकोशात्स्वसंवित्त्यासुप्तमूर्त्तिरिवांकुरः ॥ १८ ॥ कुरुध्वंस्वामिकार्याणिसवेंदानवनायकाः ॥ बलिर्वर्षसहस्रेणसमाधेर्बोधमेष्यति ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वागुरुणातत्रहर्षामर्षविषादजाम् ॥ दैत्याश्चितांजहुःशुष्कांमंजरीमिवपादपाः ॥ २० ॥ वैरोचनिंसभासंस्थांविधायप्राग्व्यवस्थया ॥ स्वव्यापारपरास्तस्थुःसर्वएवासुरास्ततः ॥ २१ ॥ नरामहीमहिपतयोरसातलंमहानभस्त्रिदशगणास्त्रिविष्टपम् ॥ दिशोद्रयोदिक्पतयश्चकंदरान्वनेचरागगनचराश्चखंययुः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे बलिसमाधानवर्णनंनामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे भूमिपर रात्रिके अन्धकारके तथा निद्रादि संभ्रमके शान्त होनेपर दिनकी सूर्यके किरणोंका समूह प्राप्त होजाताहै ऐसे बलीकोही अज्ञान संकट शान्त होनेपर राजा बलीको यह आत्मदर्शन स्वयं प्राप्त हुआहै ॥ १७ ॥ कालपाके समाधिसे प्रबोध (जाग्रत्दशा) यह स्वयं ऐसे प्राप्त होगा, जैसे बीजकोशसे मूर्छितावस्थाके त्यागसे सुप्तमूर्ति अंकुर ॥ १८ ॥ सो हे दानवोंके नायक तुम लोग स्वामीके राज्यकार्य्यको आलस्य त्यागके करो, और

सहस्र (हजार) वर्षके अन्तमें यह बलि समाधिसे उठेगा ॥ १९ ॥ गुरू शुक्राचार्यसे ऐसा कहे हुये दैत्यलोग हर्ष आमर्ष और विषादसे उत्पन्न चिंताको ऐसे त्यागा जैसे शुष्क (सूखी) हुई लताको वृक्ष ॥ २० ॥ इसके पश्चात् सब दैत्यलोग पूर्वकालके नियत किये हुये राज्यके व्यवहारके क्रमसे बलिराजाकी सभाकी व्यवस्थाका विधान करके सब कोई अपने २ व्यवहारमें स्थित रहे ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् मनुष्य पृथिवीपर, शेष आदि सर्पोंके नायक रसातलको, ग्रहगण आकाशको, देवतागण स्वर्गको, कुलपर्वतोंके अधिष्ठात् देवता; तथा इन्द्रादि दिक्पाल अपनी २ दिशाओंको, ऋक्षवानरादि यूथपति बनेचर अपनी २ किष्किंधादि कन्दराओंको; और गरूड सम्पाति जटायु आदि गगनचारी आकाशको गये ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे बलिसमाधानवर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

जीवन्मुक्त राजा बलिकी राज्यकी ओर पातालमें अवरोध, तथा बलिके समान रामचन्द्रजीकीभी पूर्ण स्थिति यह विषय इस २९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणदिव्येनासुरपुंगवः ॥ देवदुंदुभिनिर्घोषैर्बुबुधेभगवान्बलिः ॥१॥ बलौप्रबुद्धेतद्बालंविरेजेनगरंतदा ॥ वैरिंचइवसूर्यौघउदितेकमलाकरः ॥ २ ॥ बलिःप्रबुद्धएवासौयाव न्नायांतिदानवाः ॥ तावत्संचिंतयामाससमाधिसदनेक्षणम् ॥ ३ ॥ अहोनुरम्यापदवीशीतलापारमार्थिकी ॥ अहमस्यांक्षणंस्थित्वापरांविश्रांतिमागतः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दिव्य सहस्रवर्षमें असुरोंमें श्रेष्ठभगवान् बलि देवताओंके दुंदुभीके शब्दके साथ समाधिसे जाग्रत हुये ॥ १ ॥ बलिके समाधिसे उठनेपर वह बलिका नगर उससमय ऐसे शोभित हुवा जैसे ब्रह्माके स्थानभूत आकाशमें सूर्यकी किरणोंके प्रवाहके उदय होनेपर कमलका बन ॥ २ ॥ समाधिसे उठतेही जबतक दानवलोग नहीं आए तबतक उसी पूर्वोक्त समाधिके स्थानपर बलिने यह शोचा ॥ ३ ॥ अहो ! यह परमार्थकी पदवी कैसी रमणीय और शीतलहै कि मैं इसमें क्षणभर स्थित होकर सर्वोत्तम विश्रान्तिको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

तदेतामेवपदवीमवलंब्यकरोम्यहम् ॥ भवतीहोपभुक्ताभिःकिंमेबाह्यविभूतिभिः ॥ ५ ॥ ऐंदवेष्वपिबिंबेषुनतथानंदवीचयः ॥ तोषयंतियथांतर्मेसंसिद्धिभवभूतयः ॥ ६ ॥ इतिभूयोपिविश्रांत्यैकुर्वाणंगलितंमनः ॥ बलिमावारयामासुर्दैत्याश्चंद्रमिवांबुदाः ॥ ७ ॥ तानालोक्यपुनर्दध्यौतत्प्रणामाकुलेक्षणः ॥ तैःकुलाचलसंकाशैःपरिवीतवपुस्त्विदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये इसी समाधिरूप पदवीको अवलम्बन करके विश्राम करूं, क्योंकि बाह्य विभवोंके भोगनेसे मेरा क्या प्रयोजन होगा ॥ ५ ॥ चन्द्रमाके बिम्बोंमें वह आनन्दकी तरंगें नहीं हैं जैसे कि समाधिके परिपाकसे उत्पन्न विभूति मेरे अन्तःकरणमें आनन्द देती हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकार फिरभी मन विश्रामकी ओर करते हुये बलिको दैत्यलोग ऐसे घेरलिया जैसे चन्द्रमाको मेघ ॥ ७ ॥ उनको देखकर और उन दैत्योंके प्रणामोंसे आकुल नेत्र तथा उन दैत्योंसे आवृत शरीर बलिने पुनः यह ध्यान किया ॥ ८ ॥

चितःक्षीणविकल्पस्यकिमुपादेयमस्तिमे ॥ मनस्तदभिपातित्वाद्यातितद्रसतामलम् ॥ ९ ॥ मोक्षमिच्छाम्यहंकस्माद्बद्धःकेनास्मिवैपुरा ॥ अबद्धोमोक्षमिच्छामिकेयंबालविडंबना ॥ १० ॥ नबंधोस्तिनमोक्षोस्तिमौर्ख्यंमेक्षयमागतम् ॥ किंमेध्यानविलासेनकिंवाध्यानेनमेभवेत् ॥ ११ ॥ ध्यानाध्यानभ्रमौत्यक्त्वापुंस्त्वंस्वमवलोकयत् ॥ यदायातितदायातुनमेवृद्धिर्नवाक्षयः ॥ १२ ॥

अर्थ—विकल्प शून्य चित्रूप मुझे क्या ग्रहण करनाहै तथापि अनादिकालसे मनके विषयकी ओर गिरनेसे उनके साथ शीघ्र एकरसताको जाताहै ॥ ९ ॥ मोक्षकी इच्छा मैं क्यों करूं क्या प्रथम मैं किसीसे बद्ध हुं, और बंधनरहित मोक्षकी इच्छा करूं यह कौनसी बालकों (मूर्खों) की चेष्टाहै ॥ १० ॥ न बन्धहै न मोक्षहै, मेरी मूर्खता नष्ट हुई है मुझे ध्यानके विलाससे क्या करनाहै और ध्यानके अभावसेभी मुझे क्या होगा ॥ ११ ॥ ध्यान तथा अध्यान दोनो भ्रमोंको त्यागकर अपना पुंस्त्व (आत्मस्वरूपता) देखते जो आवै सो आवै और जो जाय सो जाय परन्तु स्वरूपकी वृद्धि वा क्षय नहीं है ॥ १२ ॥

नध्यनंनापिवाध्यानंनभोगान्नाप्यभोगिताम् ॥ अभिवांछामितिष्ठामिसममेवगतज्वरः ॥ १३ ॥ नमे वांछापरेतत्त्वेनमेवांछाजगत्स्थितौ ॥ नमेध्यानदशाकार्यंनकार्यंविभवेनमे ॥ १४ ॥ नाहंमृतोनजीवामि नसन्नासन्नसन्मयः ॥ नेदंमेनैवचान्यन्मेनमोमह्यमहंबृहत् ॥ १५ ॥ इदमस्तुजगद्राज्यंतिष्ठाम्यत्रतुसं स्थितः ॥ नेहवास्तुजगद्राज्यंतिष्ठाम्यात्मनिशीतलः ॥ १६ ॥

अर्थ—न ध्यान, न ध्यानका अभाव, न भोगोंको, और न भोगके अभावको मैं चाहताहुं, किंतु संतापरहित समानरूपसे स्थित हुं ॥ १३ ॥ न तो मेरी इच्छा ब्रह्मतत्वकी प्राप्तिमें है और न जगत्की स्थितिमें न ध्यानकी दशासे मुझे कुछ कर्तव्य और न संसारके विभवसे ॥ १४ ॥ शरीरके साथ सम्बन्ध न होनेसे न मैं मृतक हुं और प्राणके संबन्धके अभावसे न जीवित हुं, न मैं मूर्ति हुं न मूर्तिमान्का विकार हुं, और न मैं देहभुवन आदि हुं और न अन्य देहभुवन आदि हुं किंतु मैं महान् शुद्ध चिदात्मा हुं इसलिये मुझे मेरा नमस्कारहै ॥ १५ ॥ यह जगत्का राज्य रहै वा न रहै परन्तु मैं अपने आत्मामें शीतल शान्तरूप स्थित हुं ॥ १६ ॥

किंमेध्यानदशाकार्यंकिंराज्यविभवश्रिया ॥ यदायातितदायातुनाहंकिंचनमेकाचित् ॥ १७ ॥ नकिंचिद पिकर्त्तव्यंयदिनाममयाधुना ॥ तत्कस्मान्नकरोमीदंकिंचित्प्रकृतकर्मवै ॥ १८ ॥ इतिनिर्णीयपूर्णात्माब लिर्ज्ञानवतांवरः ॥ दैत्यानालोकयामासपद्मानीवदिवाकरः ॥ १९ ॥ दृष्टिपातविभागेनसर्वेषांदनुज न्मनाम् ॥ शिरःप्रणामाञ्जग्राहपुष्पामोदानिवानिलाः ॥ २० ॥

अर्थ—मुझे ध्यानकी दृष्टिसे, अथवा राज्यविभवकी शोभासे कुछ कर्तव्य नहीं है जो आताहै वह आवे, न मैं कुछ हुं और न मेरा कहीं कोई है ॥ १७ ॥ यदि मुझे अब कर्तृत्वकी आस्थासे कहीं कुछभी कर्तव्य नहीं है तो बिना आस्थाकी चेष्टासे साध्य यह प्रकृत राज्यादिका पालनरूप क्यों नहीं करता ॥ १८ ॥ ऐसा निर्णय करके ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पूर्णात्मा राजा बलिने दैत्योंको ऐसे देखा, जैसे कमलोंको सूर्य ॥ १९ ॥ और सबकी ओर उचित दृष्टिपातके विभागसे उन सब दैत्योंके शिरसे प्रणामोंको अंजलियोंके ऐसे ग्रहण किया जैसे पुष्पके गंधोंके ॥ २० ॥

अथवैरोचनिस्तत्रध्येयत्यागमयात्मना ॥ मनसासकलान्येवराजकार्याणिसंव्यधात् ॥ २१ ॥ द्विजान्दे वान्गुरूंश्चैवपूजयामासपूजया ॥ संमानयामाससुहृद्बंधुसामंतसज्जनान् ॥२२॥ अर्थैनापूरयामासभृ त्यानर्थिगणांस्तथा ॥ ललनालालयामासविचित्रविभवार्पणैः ॥ २३ ॥ इत्यसौवृद्धेतस्मिन्राज्येसक लशासने ॥ यज्ञंप्रतिबभूवाथमतिरस्यकदाचन ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् राजा बलिने ध्येय वासनाके त्यागमय मनसे सम्पूर्ण राज्यके कार्योंको किया ॥ २१ ॥ देव ब्राह्मण तथा गुरूओंकी अर्घ्यपाद्यादिसे पूजा की, और मित्र, बन्धु, सामन्त तथा सज्जनोंका दान मानादिसे सत्कार किया ॥ २२ ॥ धनसे भृत्य तथा अर्थीगणोंको पूर्ण किया, और चित्रविचित्र विभवके सम्प्रदानोंसे अंगनाओंको प्यार किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण राज्य शासनमें वृद्धिको प्राप्त हुआ और कदाचित् यज्ञ करनेको इसकी बुद्धि हुई ॥ २४ ॥

तर्पिताशेषभुवनंदेवर्षिगणपूजितम् ॥ सहशुक्रादिभिर्मुख्यैःसचकारमहामखम् ॥ २५ ॥ बलिर्भोगभ रस्यार्थीनेतिनिर्णीयमाधवः ॥ बलेरीहितसिद्ध्यर्थंसिद्धिदस्तन्मखंययौ ॥ २६ ॥ भोगैककृपणायेदंजग ज्जंगलखंडकम् ॥ दातुंशोच्यायशक्रायवयोज्येष्ठायकार्यवित् ॥ २७ ॥ क्रममाणोबलेनात्रवंचयित्वाबलिं हरिः ॥ बबंधपातालतलेभूगेहइववानरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसमें सम्पूर्ण भुवन तृप्त किये गये थे देवता तथा ऋषिलोग जिसमें पूजित थे ऐसे महामखको (यज्ञको) शुक्र आदि मुख्य महाविद्वानोंके साथ किया ॥ २५ ॥ राजा बलि भोग समूहका अर्थी नहीं है इसप्रकार निर्णय करके विष्णुभवान् बलिके मनोरथ सिद्ध करनेके अर्थ उसके यज्ञमें गये ॥ २६ ॥ भोगमें आसक्त होनेसे कृपण अतएव शोचनीय अपने ज्येष्ठ भ्राता इन्द्रको इस जगत्‌रूप जंगल खंडको देनेके अर्थ कार्यमें चतुर विष्णुजी बलिके यज्ञमें गये ॥ २७ ॥ मायाके बलसे तीनों लोकको अपने पादसे नापते हुये धोखा देके बलिको पातालमें ऐसे बांधा जैसे पृथिवीगृहमें वानरको ॥ २८ ॥

अथासौसंस्थितोरामपुनरिंद्रत्वहेतुना ॥ जीवन्मुक्तवपुःस्वस्थोनित्यंध्यानविषण्णधीः ॥ २९ ॥ पाता लकुहरेतिष्ठञ्जीवन्मुक्तगतिर्बलिः ॥ आपदंसंपदंदृष्ट्यासमयैवसपश्यति ॥ ३० ॥ नास्तमेतिनचोदेतित त्प्रज्ञासुखदुःखयोः ॥ समास्थिरकराचित्रलेख्यासूर्यावलिर्यथा ॥ ३१ ॥ आविर्भावतिरोभावसहस्राणी हजीवताम् ॥ तन्मनश्चिरमालोक्यभोगेषुविरतिंगतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी! इससमय यह बलि जीवन्मुक्त शरीर, स्वस्थ, ध्यानमें तत्पर, संसारसे उदासीन बुद्धि होके स्थितहै ॥ २९ ॥ पातालरूप गर्तमें जीवन्मुक्तरूपसे स्थित बलि आपत्ति तथा सम्पत्तिको समानदृष्टिसे देखताहै ॥ ३० ॥ उस बलिकी बुद्धि सुख वा दुःखमें न उदय होती है और न अस्त होती है वह चित्रमें लिखित सूर्यमण्डलके किरणके सदृश स्थिररूपहै ॥ ३१ ॥ भोगलंपट जीवोंका, उनके विभवों तथा, जन्मोंका हजारों आविर्भाव तथा तिरोभाव देखके भोगोंसे वैराग्य प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥

दशकोटीश्ववर्षाणामनुशास्यजगत्रयम् ॥ अंतेविरक्ततांप्राप्तमुपशांतंबलेर्मनः ॥ ३३॥ ऊहापोहसहस्राणिभावाभावशतानिच ॥ बलिनापरिदृष्टानिकसमाश्वासमेत्यसौ ॥ ३४ ॥ भोगाभिलाषंसंत्यज्यबलिस्संपूर्णमानसः ॥ आत्मारामस्थितोनित्यंमध्येपातालकोटरे ॥ ३५ ॥ पुनरेतेनबलिनाजगदिंद्रतयाखिलम् ॥ अनुशास्यमिदंरामबहून्वर्षगणानिह ॥ ३६ ॥

अर्थ—दश कोटि (किरोड) वर्षतक तीनों लोकका शासन करके अन्तमें विरक्तताको प्राप्त होके राजा बलिका मन शान्त हुआ ॥ ३३ ॥ सहस्रों सुख दुःखोंके अनन्त आगम तथा अपाय (नाश) और सैकडों अनन्त भाव और अभावको बलिने देखाहै कहांपर यह धैर्य्य धरे ॥ ३४ ॥ भोगोंकी अभिलाषाको त्यागकर पूर्णचित्त तथा नित्य आत्माराम बलि सात पातालोंके मध्य रसातलके कोटरमें स्थितहै ॥ ३५ ॥ और पुनः यह बलि इन्द्र होके इस सम्पूर्ण तीनों लोकका अनुशासन बहुत वर्षतक इस ब्रह्माण्डमें करेगा ॥ ३६ ॥

नतस्येंद्रपदप्राप्त्यातुष्टिःसमुपजायते ॥ नतस्यस्वपदभ्रंशादुद्वेगउपजायते ॥ ३७ ॥ समःसर्वेषुभावेषुसर्वदैवोदिताशयः ॥ संप्राप्तमाहरन्स्वस्थआकाशइवतिष्ठति ॥ ३८ ॥ बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिरेषातेकथितामया ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यत्वमप्यभ्युदितोभव ॥ ३९ ॥ बलिवत्प्रविवेकेननित्योऽहमितिनिश्चयात् ॥ पदमासादयाद्वैतंपौरुषेणैवराघव ॥ ४० ॥

अर्थ—न तो उसको इन्द्रपदकी प्राप्तिसे प्रसन्नता होती है और न अपने पदसे पतनसे उसको उदासीनताहै ॥ ३७ ॥ सब भावोंमें समानरूप सदा संतुष्ट चित्त, प्रारब्धसे प्राप्त किये हुये भोगोंको भोगता हुआ और स्वस्थ राजा बलि आकाशके सदृश स्थितहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी! यह बलिकी ज्ञानकी प्राप्ति तुमसे मैंने कही इस दृष्टिका अवलम्बन करके तुमभी जीवन्मुक्तिके अभ्युदयसहित होओ ॥ ३९ ॥ हे रामजी! बलिके समान अपनेही विवेकसे मैं नित्य आत्मरूपहुं इस निश्चय तथा अपने पौरुषसे अद्वैतपद प्राप्त करो ॥ ४० ॥

द्वेचाष्टौचैववर्षाणांकोटीर्भुक्त्वाजगत्रयम् ॥ अंतेवैरस्यमापन्नोबलिरप्यसुरोत्तमः ॥ ४१ ॥ तस्मादवश्यवैरस्यंभोगभारमरिंदम ॥ संत्यज्यसत्यमानंदमवैरस्यंपदंव्रज ॥ ४२ ॥ इमाद्दृश्यदृशोरामनानाकारविकारदाः ॥ नेहकांततयाज्ञेयादूराच्छैलशिलाइव ॥ ४३ ॥ धावमानमिहामुत्रलुठितंलोकवृत्तिषु ॥ संस्थापयनिबद्ध्यैतच्चेतोहृदयकोटरे ॥ ४४ ॥

अर्थ—असुरोंमें उत्तम राजा बलिभी दश कोटि (करोड) वर्ष पर्य्यन्त तीनों लोकका भोग करके अन्तमें वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ हे शत्रुनाशक रामजी! इसलिये परिणाममें अवश्य दुःखरूप इस भोग समूहको त्यागकर सत्य सच्चिदानन्द नित्य दुःख शून्य पदको प्राप्त होओ ॥ ४२ ॥ हे रामजी! ये दृश्यकी दृष्टि अनेक प्रकारके विकारप्रदहैं दूरसे पर्वतकी शिलाके तुल्य इसमें कोईभी रमणीयता नहीं है ॥ ४३ ॥ इस लोक तथा परलोकमें दौडते हुये तथा पामरोंकी चेष्टामें प्रवृत्त इस मनको अपने हृदयरूप कोटरमें स्थापित करो ॥ ४४ ॥

चिदादित्योभवानेवसर्वत्रजगतिस्थितः ॥ कःपरस्तेकआत्मीयःपरिस्खलसिकिंमुधा ॥ ४५ ॥ त्वमनंतोमहाबाहोत्वमाद्यःपुरुषोत्तमः ॥ त्वंपदार्थशताकारैःपरिस्फूर्जसिचिद्वपुः ॥ ४६ ॥ त्वयिसर्वमिदंप्रोतंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ बोधेनित्योदितेशुद्धेसूत्रेमणिगणायथा ॥ ४७ ॥ नजायसेनम्रियसेत्वमजःपुरुषोविराट् ॥ चिच्छुद्धाजन्ममरणभ्रांतयोमाभवंतुते ॥ ४८ ॥

अर्थ—सबके प्रकाशक चित्रूप सूर्य सर्वत्र संसारमें तुमही स्थित हो तो तुमारा कौन शत्रु और कौन मित्र है, व्यर्थ क्यों तुम पदसे च्युत होतेहो हे महाबाहो राम! तुम अनन्तहो तुमही आद्य तथा पुरुषोत्तमहो और चिन्मात्र शरीर तुम सैकडों (असंख्य) प्रकारके पदार्थोंके आकार धारण करके गर्जतेहो ॥ ४६ ॥ नित्य बोधस्वरूप सूर्य्यके समान उदयको प्राप्त तुमारेमें यह सब स्थावर जंगम ऐसे गूंथाहै जैसे सूत्रमें मणिके समूह ॥ ४७ ॥ न तो तुम उत्पन्न होतेहो और न मरतेहो किंतु तुम अजन्मा विराट् पुरुष शुद्ध चित्रूपहो इसलिये जन्ममरणादि भ्रांति तुमको न हो ॥ ४८ ॥

समस्तजन्मरोगाणांप्रविचार्यबलाबलम् ॥ तृष्णामुत्सृज्यभोगानांभोक्त्रैवभवकेवलम् ॥ ४९ ॥ त्वयि स्थितेजगन्नाथेचिदादित्येसदोदिते ॥ इदमाभासतेसर्वसंसारस्वप्नमंडनम् ॥ ५० ॥ माविषादंकृथा व्यर्थंसुखदुःखैषणानते ॥ शुद्धचित्तोसिसर्वात्मासर्ववस्त्ववभासकः ॥ ५१ ॥ पूर्वमिष्टमनिष्टंत्वमनि ष्टंचेष्टमित्यपि ॥ परिकल्प्यतदभ्यासात्ततोपिपरित्यज ॥ ५२ ॥

अर्थ—तृष्णाकी वृद्धिमें जन्म आदि रोगोंकी प्रबलता और तृष्णाकी न्यूनतामें जन्मादि रोगोंकी निर्बलता होती है इसप्रकार बल अबलकी परीक्षा करके भोगोंकी तृष्णाको त्यागकर केवल भोगोंके साक्षीमात्र रहो ॥ ४९ ॥ जगत्‌के स्वामी चित्‌रूपी सूर्य्य तुमारे सदा उदित होनेहीपर यह सब संसारका मंडन भासताहै ॥ ५० ॥ व्यर्थ विषाद न करो तुमको सुखदुःखकी इच्छा नहीं है तुम शुद्ध चित्त (ज्ञानी) सर्वात्मा और सब वस्तुओंके प्रकाशकहो ॥ ५१ ॥ जो वस्तु (विषयादि) मनको प्रियहो उन सबको अन्तमें दुःखदायी, तथा तपके क्लेश और इन्द्रियोंके संयमादि मनके अप्रिय पदार्थोंकी अन्तमें सुखदायी कल्पना करके और सप्तमभूमिका पर्य्यन्त उनका अभ्यास करके अनन्तर उसकी कल्पनाकोभी त्यागो ॥ ५२ ॥

इष्टानिष्टदृशोस्त्यागेसमतोदेतिशाश्वती ॥ तयाहृदयवर्त्तिन्यापुनर्जंतुर्नजायते ॥ ५३ ॥ येषुयेषुप्रदेशेषु मनोमज्जतिबालवत् ॥ तेभ्यस्तेभ्यस्समाहृत्यतद्वितत्त्वेनियोजयेत् ॥ ५४ ॥ एवमभ्यागताभ्यासंमनो मत्तमतंगजम् ॥ निबद्ध्यसर्वभावेनपरंश्रेयोधिगम्यते ॥ ५५ ॥ माशरीरयथार्थज्ञैर्मिथ्यादृष्टिहताशयैः ॥ धूर्त्तैःसंकल्पविक्रीतैर्विमूढैःसमतांव्रज ॥ ५६ ॥

अर्थ—इष्ट और अनिष्ट दृष्टिके त्यागसे निरन्तरकी समत्ता उदित होती है और उस समताके हृदयमें स्थिर होनेसे यह जीव पुनः संसारमें नहीं जन्मता ॥ ५३ ॥ जिन २ पदार्थोंमें यह मन बालकके समान निमग्नहो वहां २ से हटाके अधिष्ठान चिन्मात्रमें उसको लगावै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार अभ्याससे अपने समीप प्राप्त मनरूप मत्तहस्तीको सब प्रयत्न तथा सबको आत्मभावसे रोंककर परम कल्याण मोक्षपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५५ ॥ शरीरको सत्य माननेवाले मिथ्या दृष्टिसे दूषित चित्त तथा भोगोंके संकलपसे विक्रीतके समान परवश मूढोंके तुल्य तुम न होजाओ ॥ ५६ ॥

अकिंचनात्स्वनिर्णीतौलंबमानात्परोक्तिषु ॥ नमौर्ख्यादधिकोलोकेकश्चिदस्तीहदुःखदः ॥ ५७ ॥ त्व मेतदविवेकाभ्रमुदितंहृदयांबरे ॥ विवेकपवनेनाशुदूरंनयमहामते ॥ ५८ ॥ आत्मनैवप्रयत्नेनग्रावदात्मा वलोकने ॥ नकुतोनुग्रहस्तावन्नविचारोदयोभवेत् ॥ ५९ ॥ वेदवेदांतशास्त्रार्थतर्कदृष्टिभिरप्ययम् ॥ नात्माप्रकटतामेतियावन्नस्वमवेक्षितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—आत्मतत्वके निर्णयके विषयमें विवेक वैराग्यादि उपायसे रहित, और मूर्खोंकी उक्तियोंमें गौके पुच्छके समान लम्बमान मूर्खताके समान इस संसारमें दुःखदायी कुछभी नहीं है ॥ ५७ ॥ हे महामते रामजी ! हृदयरूप आकाशमें उदित इस अविवेकरूप प्रचण्ड मेघको विवेकरूप पवनसे तुमही शीघ्र दूरकरो ॥ ५८ ॥ वेदान्त श्रवण वैराग्यादि पौरूषसे आत्मदर्शन (ज्ञान) में जबतक आत्माहीसे प्रयत्न न किया जाय तबतक आत्माका विचार उदय नहीं होता ॥ ५९ ॥ वेद वेदान्त तथा तर्क दृष्टिसे (बहिर्मुख दृष्टिसे) यह आत्मा प्रकटताको नहीं प्राप्त होता तबतक अन्तर्मुख दृष्टिसे गुरू आदिके उपदेशद्वारा स्वयं न देखा जाय ॥ ६० ॥

त्वमात्मन्यात्मनारामप्रसादेसमवस्थितः ॥ प्राप्तोसिविततंबोधंमद्वचस्येवबुध्यसे ॥ ६१ ॥ विकल्पां शविहीनस्यत्वयैषाचिद्विवस्वतः ॥ गृहीतावितताव्याप्तिर्मदुक्त्यापरमात्मनः ॥ ६२ ॥ विलीनसर्वसं कल्पःशांतसंदेहविभ्रमः ॥ क्षीणकौतुकनीहारोजातोसिविगतज्वरः ॥ ६३ ॥ यदुपगच्छसियासिनि हंसिवापिबसिविस्मयसेचविवर्द्धसे ॥ तदपितेनतदास्तुयदामुनेविगतबोधकलंकविशंकितः ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे बलेर्विज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमभी आत्मासे आत्मामें प्रसन्नतासे स्थित विशाल बोधको प्राप्त हुये हो वह मेरे उपदेशके होनेहीसे ॥ ६१ ॥ विकल्पोंके अविषय चिन्मात्र परमात्माकी देशकाल तथा वस्तुकृत व्याप्ति (व्यापकता) तुमने मेरेही उपदेशसे ग्रहण कियाहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! इससमय तुम सब संकल्पोंसे रहित, सन्देह विभ्रमशून्य बाह्य प्रपंचके चमत्कारक तथा आत्मतत्व जिज्ञासाके कौतुकसे रहित तथा संतापरहित होगयेहो ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! जब तुमारे आत्माका आवरण तथा विक्षेपरूप कलंक नष्ट होजायगा उससमय तुमको जो अप्राप्त ज्ञान तथा

उसके साधन विचार गुरूशास्त्रादि उपदेशको मोक्षके अर्थ स्वीकार करतेहो विवेक वैराग्यादिकी यत्नसे जो रक्षा करतेहो, आलस्यप्रमाद आदि दोष समूहोंको जो हनन करतेहो, समाधि सुखरूप अमृतका जो पान करतेहो, उत्तरोत्तर भूमिकापर चढनेसे जो विस्मित होतेहो, और सप्तम भूमिकामें विश्राम पाके पूर्व २ अवस्थासे अधिक सुखसे जो वृद्धिके प्राप्त होतेहो यह सबभी न रहेगा ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे बलेर्विज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

इस ३० के सर्गमें हिरण्यकशिपुका पराक्रम, प्रल्हाद आदि पुत्रोंकी उत्पत्ति, नृसिंहसे हिरण्यकशिपुका वध, और शोकसे उसकी ऊर्ध्व देह क्रियाका करना वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथेमंपरमंरामविज्ञानाभिगमेक्रमम् ॥ शृणुदैत्येश्वरःसिद्धःप्रह्लादःस्वात्मनाय था ॥ आसीत्पातालकुहरेविद्राविनसुरासुरः ॥ हिरण्यकशिपुर्नामनारायणपराक्रमः ॥ २ ॥ आक्रांतभु वनाभोगःसजहारहरेर्ज्जगत् ॥ षट्पदस्यबृहत्पत्रंराजहंसइवांबुजम् ॥ ३ ॥ चकारजगतांराज्यंसमा क्रांतसुरासुरः ॥ दंतीनिरस्तहंसौघोनलिन्यामलिनामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके पश्चात् यह विघ्नरहित और परमोत्तम ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय तुम सुनो जिसप्रकार दैत्योंका स्वामी प्रल्हाद सिद्ध होगया वह कथा मैं कहताहूं ॥ १ ॥ सुर तथा असुरोंको भगानेवाला, नारायणके तुल्य पराक्रमवान् हिरण्यकशिपु नाम दैत्य पातालके गर्तमें रहताथा ॥ २ ॥ तीनों लोकको आक्रमण करने (जीतने) वाला वह इन्द्रसे त्रिभुवनके ऐश्वर्य्यको ऐसे छीनलिया जैसे भ्रमरके स्थानभूत कमलको प्रातःकालमें विकसित राजहंस ॥ ३ ॥ सुर तथा असुरोंको जीतकर उसने त्रिभुवनका राज्य ऐसे किया जैसे कमलिनीमें भ्रमरोंके राज्यको हंसोंके समूहकोभी परास्त करके हस्ती ॥ ४ ॥

अथासावसुराधीशःकुर्वंस्त्रिभुवनेशताम् ॥ कालेनसुषुवेपुत्रानंकुरानिवमाधवः ॥ ५ ॥ तेवर्द्धताचिरेणै वतेजस्यूर्जितबालकाः ॥ दशार्कांशुशतानीवव्योमाक्रांतिविलासिनः ॥ ६ ॥ प्रह्लादनामाबलवान्प्रधा नात्माबभूवह ॥ तेषांमध्येमहार्हाणांमणीनामिवकौस्तुभः ॥ ७ ॥ तेनाराजतपुत्रेणहिरण्यकशिपुर्भृश म् ॥ सर्वसौंदर्ययुक्तेनवसंतेनेववत्सरः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वह असुरोंका स्वामी त्रिभुवनका राज्य करता हुआ समय पाके पुत्रोंको ऐसे उत्पन्न किया जैसे वसन्तकाल अंकुरोंको ॥ ५ ॥ तेजसे पराक्रमी और अवस्थासे बालक तथा आकाशकी व्याप्तिके विलास करनेवाले व पुत्र ऐसे बढे जैसे सूर्य्य दश २ संख्यायुक्त किरण अनन्तरूपसे बढे ॥६॥ उनके मध्यमें मणियोंमें कौस्तुभके सदृश प्रल्हादनाम पुत्र प्रधान युवराज हुआ ॥ ७ ॥ संपूर्ण सुन्दरतायुक्त उस प्रल्हादसे हिरण्यकशिपु ऐसे अत्यन्त शोभित हुआ जैसे वसन्तकालसे वर्ष ॥ ८ ॥

अथपुत्रसहायोसौबलकोशसमन्वितः ॥ आजगाममदंदैत्यस्त्रिगंडगलितेभवत् ॥ ९ ॥ तत्तापाक्रांति तापेनत्रिजगंतिविकासिना ॥ कल्पांतसूर्यगणवन्नवयैवकरश्रिया ॥ १० ॥ अखिद्यंतास्यतेनाथसूर्येंद्वप्र मुखाःसुराः ॥ दुर्विलासविलोलस्यबालस्येवस्वबंधवः ॥ ११ ॥ प्रार्थयांचक्रिरेथाजंदैत्येंद्रेभपतेर्वधे ॥ नक्षमंतेमहांतोपिपौनःपुन्येनदुष्क्रियाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस पुत्र सहायकयुक्त तथा सेना और कोशसहित यह दैत्य ऐसे मदको प्राप्त हुआ जैसे दोनों गंडस्थल और मस्तकके मदकी धारासे हस्ती ॥ ९ ॥ उस दैत्यके प्रकाशमान तापसे तीनों लोक ऐसे पीडित हुये जैसे नूतन किरण (पक्षमें कर) की शोभासे युक्त प्रलयकालके सूर्यके समूहसे ॥ १० ॥ सबको आक्रमण करनेवाले उसके तापसे सूर्य्य चन्द्र आदि देव ऐसे पीडित हुये जैसे दुष्ट विलाससे चंचल बालकसे उसके निजके बन्धु ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् उन दैत्योंके इन्द्ररूप हस्तीके बधके लिये देवताओंने अजन्मा विष्णुभगवान्से प्रार्थना की, क्योंकि बार २ के अपराधको महात्मालोगभी नहीं सहन करसकते ॥ १२ ॥

ततःप्रलयपर्यस्तजगद्धर्घरजृंभितम् ॥ दिग्दंतिदशनप्रख्यनखवज्रादिजृंभितम् ॥ १३ ॥ स्थिरविद्युल्ल ताजालभास्वरद्विजमंडलम् ॥ दशदिक्कोटरोद्भ्रांतज्वलज्ज्वलनकुंडलम् ॥ १४ ॥ समस्तकुलशैलेंद्रपिंड

पीठोद्भटोदरम् ॥ दोर्द्रुमाधूतनिर्द्धूतस्फुरद्ब्रह्मांडखर्परम् ॥ १५ ॥ वदनोदरनिष्क्रांतवातोत्सारितपर्वतम् ॥ त्रिजगद्दहनोद्युक्तकोपकल्पाग्निगर्वितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस प्रार्थनाके अनन्तर प्रलयमें विपर्य्ययको प्राप्त जगत्के समान घर्घर शब्द करते हुये अंगोंके परिवर्तनयुक्त तथा दिशाओंके हस्तियोंके दांतोंसे वज्रादिके समान शरीरके विकाशसे शोभित ॥ १३ ॥ स्थिर विद्युत् समूहके सदृश प्रकाशमान दंतमण्डल सहित, और दशों दिशाओंके कोटरोंमें जलते हुये अग्निरूप कुण्डलसहित ॥ १४ ॥ समस्त कुलपर्वतोंकी पिंडाकार रचनाके समान भयंकर उदरयुक्त, और भुजारूप वृक्षोंके परिवर्तनोंसे कम्पित इसीसे विदीर्यमाण ब्रह्मांड खर्पर (खप्पर) सहित ॥ १५ ॥ और मुखके द्वारसे निःसृत पवनसे पर्वतोंको उठाके फेकनेवाले तथा तीनोंलोकको जलानेमें उद्युक्त कोप रूप अग्निसे गर्वित ॥ १६ ॥

सटाविकटपीनांसस्पंदप्रेरितभास्करम् ॥ रोमकूपलसद्वह्निपुंजापिंजरपर्वतम् ॥ १७ ॥ कुलाचलमहाकुड्यघटनोद्भटदिक्तटम् ॥ सर्वावयवनिष्क्रांतपट्टिशप्रासतोमरम् ॥ १८ ॥ नारसिंहंवपुःकृत्वामाधवोहन्महासुरम् ॥ लसत्कटकटारावंतुरंगममिवद्विपः ॥ १९ ॥ पौरमासुरमुद्दांतैर्ददाहेक्षणवह्निभिः ॥ स सर्वभूतकल्पांतेजगज्जालमिवानलः ॥ २० ॥

अर्थ—सटा (गर्दनके केश) से भयंकर तथा स्थूल स्कन्धसे सूर्यकोभी प्रेरित करनेवाले और रोमके कूपों (रोम छिद्रों) में शोभायमान अग्निके पुंजोंसे पर्वतोंको पिंजराकार करनेवाले ॥ १७ ॥ और खने हुये कुलपर्वतोंकी महाभित्तिकी रचनाके समान उद्योगसहित सब दिशाओंके तटोंसे शोभित तथा सब शरीरके भागोंसे निकले हुये पट्टिश, प्रास (भाला) और तोमरसहित ॥ १८ ॥ नृसिंहकी शरीर रचके विष्णुभगवान्ने महाअसुर हिरण्यकाशिपुको शोभायमान कटकटा शब्दके साथ ऐसे मारा जैसे अश्वको हस्ती ॥ १९ ॥ और नेत्रकी प्रचण्ड अग्निसे उस असुरके नगरको नृसिंहभगवान्ने ऐसे भस्म किया जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रलयके अन्तमें जगत् समूहको अग्नि ॥२०॥

नृसिंहमारुतेतस्मिन्भृशंशोभामुपागते ॥ विस्फूर्जितघनास्फोटैरेकार्णवइवाकुले ॥ २१ ॥ द्रुद्रुवुर्दानवौघास्तेदिग्ज्वलन्मशकाइव ॥ उपाययुरदृश्यत्वंदीपाइवगतत्विषः ॥ २२ ॥ अथविद्रुतदैत्येंद्रंदग्धांतःपुरमंडलम् ॥ बभूवपातालतलंकल्पक्षुण्णजगत्समम् ॥ २३ ॥ अकालकल्पांतविधौहत्वादैत्यंशनैर्विभौ ॥ क्वापियातेसमाश्वस्तसुरसंरंभपूजिते ॥ २४ ॥

अर्थ—विद्युत्सहित संवर्तक आदि मेघोंकी गर्जनाओंसे प्रलयकालके समान व्याप्त नृसिंहरूप वायुके अति क्षोभित होनेपर ॥२१॥ दानवोंके समूह ऐसे भगे जैसे दिशाओंमें अग्नि लगनेसे मशक (मच्छर) और प्रकाशरहित दीपकके समान अदृश्य होगये ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर दैत्योंके नायकरहितके तथा भस्मीभूत अन्तःपुरसहित पाताललोक इसप्रकार होगयाहै जैसे प्रलयसे चूर्ण किया हुआ जगत् ॥ २३ ॥ अकालमें कल्पान्तके विधानके तुल्य युद्धमें हिरण्यकशिपुको मारकर धैर्य्यको प्राप्त असुरोंसे आदरपूर्वक पूजित विष्णुभगवान्के कहीं वाणीसे अगोचर निजपदमें प्राप्त होनेपर ॥ २४ ॥

मृतशिष्टादनुसुताःप्रह्लादपरिपालिताः ॥ दग्धंतंदेशमाजग्मुःसरःशुष्कमिवांडजाः ॥ २५ ॥ तत्रकालोचितांकृत्वास्वनाशपरिदेवनाम् ॥ और्ध्वदेहिकसत्कारंचक्रुःप्रेतेषुबंधुषु ॥ २६ ॥ हतबंधुजनंप्लुष्टबंधुबांधवमंडलम् ॥ शनैराश्वासयामासुर्मृतशिष्टंस्वकंजनम् ॥ २७ ॥ चित्रार्पितोपमद्वराकृतयोनिरीहादीनाशयाद्दिमहतांबुरुहोपमानाः ॥ शोकोपतप्तमनसोऽसुरनायकास्तेदग्धद्रुमाइवनिरस्तविकारमासन् ॥२८

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांतौहिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रल्हादसे पालित मरनेसे बचे हुये दनुके पुत्र दानवलोग उस भस्मीभूत स्थानपर ऐसे प्राप्त हुये जैसे सूखे हुये तडागमें पक्षी ॥ २५ ॥ वहां आके अपने बन्धुओंके नाशसे कालके उचित विलाप करके मृतक बन्धुओंकी और्ध्वदेहिक क्रिया की ॥ २६ ॥ हत तथा भस्मीभूत बन्धुओंके मण्डलमें मरनेसे बचे हुये अपने जनोंको प्रल्हादने धीरे २ शान्त किया ॥ २७ ॥ अनन्तर चेष्टारहित, अतएव चित्र लिखितके सदृश दुःखित आकारसहित और शोक संतप्त चित्त प्रल्हाद आदि असुरनायक भस्मीभूत शाखा और पत्रसहित वृक्षके सदृश चेष्टारहित होगये ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे प्रल्हाद विश्रान्तौ हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

प्रल्हादकी विष्णुके पराक्रमकी चिन्ता अपने जनोंके कल्याणका चिन्तन और विष्णुकी भक्तिसे विष्णुभाव इस विषयका वर्णन इस ३१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथदुःखपरीतात्माहरिणाहतदानवे ॥ प्रह्लादश्चिंतयामासमौनीपातालकोटरे कोन्वस्माकमुपायःस्याद्यएवेहासुरांकुरः ॥ तीक्ष्णाग्रोजायतेतंतंभुंक्तेशाखामृगोहरिः ॥ २ ॥ नकदाच नपातालेदैत्यादोर्दंडशालिनः ॥ स्थिराबभूवुरुद्भिन्नाःपद्माइवहिमाचले ॥ ३ ॥ उत्पत्योत्पत्त्यनश्यंति भासुराकारघर्घराः ॥ क्षीणप्रस्फुरितारंभास्तरंगाइववारिधेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके पश्चात् जहां दानवलोग मारेगये हैं ऐसे पातालके कोटरमें दुःखसे पूर्ण चित्त प्रल्हाद मौन होकर यह चिन्तन किया ॥१॥ अब हमारा सहायक कौन होसकताहै क्योंकि जो २ असुररूपी अंकुर संपत्तिरूप पत्रादिसे दृढ होताहै उस २ को विष्णुरूप कपि भक्षण करलेताहै ॥ २ ॥ अपने भुज विक्रमसे शोभित दैत्य पातालमें कदाचित्‌भी वीर्य्यसे प्रकाशित तथा स्थिर आकार ऐसे नहीं हुये जैसे हिमालयमें कमल ॥ ३ ॥ प्रकाशमान आकार तथा घर्घर शब्दसहित असुर उत्पन्न हो २ ऐसे नष्ट होते हैं जैसे आरंभमें चंचल और पश्चात् शीघ्रही क्षीणरूप समुद्रके तरंग ॥ ४ ॥

सबाह्याभ्यंतरंकष्टंसमग्रालोकहारिणः ॥ रिपवःप्रौढिमायाताअपूर्वतिमिरभ्रमाः ॥ ५ ॥ तमःप्रपूर्णहृ दयाःसंकुचत्पत्रसंपदः ॥ सुहृदःखेदमायांतिनिशीथकमलाकराः ॥ ६ ॥ तातस्यमलिनैर्नूनंपादपीठो पमर्दकैः ॥ सुरैर्विषयआक्रांतोमृगैरिवमहावनम् ॥ ७ ॥ निरुद्यमागतश्रीकादीनाःप्रकटिताशयाः ॥ बांधवानविराजंतेपद्माःप्लुष्टदलाइव ॥ ८ ॥

अर्थ—बाह्य राज्यादि सम्पत्ति और आभ्यन्तर उत्साह, हर्ष प्रसन्नता, और सुखसे विश्राम आदि सम्पत्तिको हरनेवाले तथा अपूर्व अन्धकार भ्रमसहित हमारे शत्रु देवता इसप्रकार प्रौढताको प्राप्त हुये हैं यह कष्टकी बातहै ॥५॥ दुःखरूप अन्धकारसे पूर्णहृदय संकुचित सम्पत्तिरूप पत्रादिसहित मित्ररूप रात्रिके कमल खेदको प्राप्तहैं ॥ ६ ॥ द्वेषसे मलिन और पूज्य पिताके प्रणामके समयमें चरणपादुकाको मर्दन करनेवाले देवताओंने हमारे देशको ऐसे आक्रमण करलियाहै जैसे हरिण महाबनको ॥ ७ ॥ उद्यमरहित, शोभासे शून्य, दीन और अपने हृदयके दुःखोंको प्रकट करनेवाले हमारे बान्धवगण ऐसे नहीं शोभित होते जैसे भस्मीभूत कमल ॥ ८ ॥

स्फुरंत्यसुरवीराणांगृहेष्वविरतानिलैः ॥ धूसराभस्मनीहाराधूपधूमभराइव ॥ ९ ॥ हृतद्वारकपाटासु दैत्यांतःपुरभित्तिषु ॥ प्रभामरकतस्येवजातानवयवांकुराः ॥ १० ॥ त्रिलोकीनाभिनलिनीमत्तेभादान वाअपि ॥ देववद्दैन्यमायाताःकिमसाध्यमहोविधेः ॥ ११ ॥ मनाक्चलतिपर्णेपिदृष्टारिभयभीतयः वध्वस्त्रस्यंतिविध्वस्तामृग्योग्रामगताइव ॥ १२ ॥

अर्थ—असुरबीरोंके गृहोंमें निरन्तर उत्पातरूप पवनसे बिखरे हुये भस्मरूप कुहिरे ऐसे शोभित होरहे हैं जैसे पूर्वकालमें धूपके धूम समूह ॥ ९ ॥ द्वारके कपाटरूप प्राणसे रहित दैत्योंकी अन्तःपुरकी भित्तियोंमें पूर्वकालमें मरकत माणिके समान इससमय नूतन यवके अंकुर उत्पन्न हुये हैं ॥१०॥ त्रिलोकीरूप अंगनाके नाभिकी कमलिनीके मेरूको मर्दन करनेमेंभी समर्थ ये दानव ? इससमय पूर्वकालमें देवोंके सदृश दीनताको प्राप्त हुये हैं, अहो विधिकी गतिको क्या असाध्यहै ॥ ११ ॥ किंचित् पत्रकेभी चलनेपर पूर्वकालमें भयको देखनेवाली दैत्योंकी स्त्रियां ऐसे डरती हैं जैसे ग्राममें बिडारी हुई मृगी ॥ १२ ॥

आसुरीकर्णपूरार्थंफुल्लारत्नगुलुच्छकाः ॥ नरसिंहकरालूनाःस्थाणुतामागताद्रुमाः ॥ १३ ॥ दिव्यांब रलतापत्रारत्नस्तबकदंतुराः ॥ पुनरारोपितास्तत्रनंदनेकल्पपादपाः ॥ १४ ॥ पुरात्वमरबंदीनामसुरैः संस्तुतंमुखम् ॥ अद्यत्वसुरबंदीनांसुरैरालोकितंमुखम् ॥ १५ ॥ मन्येदानमहानद्यःसुरेभकटभित्तिषु ॥ प्रवृत्तास्ताभविष्यंतिशैलसानुष्विवापगाः ॥ १६ ॥

अर्थ—असुरोंकी स्त्रियोंके कर्ण भूषणके अर्थ रत्नमय गुच्छोंके धारण करनेवाले दिव्य वृक्ष इससमय नरसिंहके हस्तसे छिन्नभिन्न होनेसे स्थाणुताको प्राप्त हुये हैं ॥ १३ ॥ दिव्यवस्त्र लतापत्र तथा शाखासहित और रत्नमय गुच्छोंसे उन्नत दन्तसहित कल्पवृक्ष नन्दनबनमें पुनः लगाये गये ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें देवताओंकी बन्दी की हुई स्त्रियोंका मुख असुरोंने प्रशंसाके साथ देखाहै और इससमय असुरोंकी बन्दी की हुई स्त्रियोंके सुख देवतालोग प्रसन्न-

तासे देखें ॥ १५ ॥ देवताओंके हस्तियोंके गण्डस्थलरूप भित्तियोंमें मदकी धारासे महानादियां ऐसे प्रवृत्त होंगी जैसे पर्वतोंके शिखरोंपर नदियां ऐसी तर्कना मैं करताहुं ॥ १६ ॥

अस्माकमिभगंडेषुदानदाहविभूतयः ॥ लसंतिमरुखंडेषुसंशुष्केष्विवधूलयः ॥ १७ ॥ विकासिसितमंदारमकरंदारुणानिलाः ॥ तेमेरुशिखरैस्तुल्यादैत्याइर्लभतांगताः ॥ १८ ॥ सुरगंधर्वसुंदर्योदानवांतःपुरोचिताः ॥ अद्यमेरौस्थितिंयातामंजर्यइवपादपे ॥१९॥ कष्टंतातपुरंध्रीणांशुष्कांबुरुहनीरसाः॥ विलासाःसुरनारीभिर्भर्त्स्यंतेलास्यलीलया ॥ २० ॥

अर्थ—और हम लोगोंके हस्तियोंके गण्डस्थलोंमें मदधाराके दाहजनित भस्म ऐसे शोभित होते हैं जैसे शुष्क मरूस्थलोंमें धूलि ॥ १७ ॥ विकसित तथा श्वेत मन्दरोंके परागसहित पुष्परसोंसे मिलित अंग स्पर्श करनेवाले वायुसे तृप्त तथा मेरूके शिखरोंके समान शरीर धारी दैत्य इससमय दुर्लभ होगये हैं ॥ १८ ॥ देवता तथा गन्धर्वोंकी सुन्दरी जो दानवोंके अन्तःपुरके योग्य हैं वे अब मेरूपर्वतपर ऐसे स्थितहैं जैसे उत्तम लता सामान्य वृक्षपर ॥ १९ ॥ यह कष्टकी बातहै की हमारे पिता आदिकी स्त्रियोंके शुष्क कमलके सदृश नीरस विलासोंकी देवांगना नृत्योंमें बिडम्बनाकी लीलासे निन्दा करैंगी ॥ २० ॥

पूर्वंयैरेवमत्तातश्चामरैरुपवीजितः ॥ सहस्रनयनःस्वर्गेकष्टंतैरेववीज्यते ॥ २१ ॥ इयमस्माकमप्यापदागतादैन्यदायिनी ॥ तस्यैकस्यप्रसादेनदुष्पौरुषगतेर्हरेः ॥ २२ ॥ तद्दोर्वनघनच्छायालब्धविश्रांतयः सुराः ॥ नकदाचनतप्यंतेहिमाद्रेरिवसानवः ॥ २३ ॥ शौरिशौर्याग्रशिखरसंश्रयेणाश्रितश्रियः ॥ अस्मान्समुपरुंधंतिशुनःशाखामृगाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथम जो चमर मेरे पिताजीके ऊपर चलतेथे वेही अब स्वर्गमें इन्द्रके ऊपर चलते हैं ॥२१॥ दुःख साध्य पौरुषकी गतिसे शोभित एक विष्णुकी कृपासे हम लोगोंपर यह दीनताको देनेहारी आपत्ति आई ॥ २२ ॥ उस विष्णुकी भुजारूप बनकी घनीभूत छायामें विश्राम करनेहारे देवगण कदाचित्भी ऐसे नहीं संतप्त होते जैसे हिमालयके शिखर ॥ २३ ॥ कृष्णभगवान्‌के पराक्रमरूप पर्वत वा वृक्षके शिखरके अग्रभागके आश्रयसे सम्पत्ति प्राप्त करनेवाले देवता दैत्यलोगोंको पातालके गर्तमें ऐसे अवरोध करते हैं जैसे वानर कुत्तोंको ॥ २४ ॥

तेनासुरपुरंध्रीणांनित्यंमंडनमंडने ॥ मुखपद्मेस्थितंबाष्पमब्जिनीनांहिमंयथा ॥ २५ ॥ शीर्णभिन्नलुठद्भित्तिर्जगज्जरठमंडपः ॥ अयंनीलमणिस्तंभैस्तद्भुजैरेवधार्यते ॥ २६ ॥ सधत्तांसुरसैन्यस्यमज्जतोविपदर्णवे ॥ क्षीरोदोदरमग्नस्यमंदरस्येवकच्छपः ॥ २७ ॥ एतेतातादयःसर्वेतेनैवासुरसत्तमाः ॥ पातिताः क्षुब्धकल्पांतवातेनेवकुलाचलाः ॥ २८ ॥

अर्थ—कृष्णके पराक्रमसे अलंकारोंकेभी अलंकारभूत असुरोंकी स्त्रियोंके मुखकमलोंपर नित्य अश्रु ऐसे स्थितहैं जैसे कमलिनियोंके मुखपर हिम ॥ २५ ॥ असुरोंके पराक्रमसे विदीर्ण इसीसे गिरती हुई भित्तिसहित यह जगत्‌रूप प्राचीन मण्डप नीलमणिके सदृश श्रीकृष्णभगवान्‌के भुजोंहीसे धारण किया गयाहै ॥ २६ ॥ विपत्तिरूप समुद्रमें डूबती हुई देवताओंकी सेनाको वह विष्णु ऐसे धारण करताहै जैसे क्षीरसागरमें निमग्न (डूबे हुये) मंदराचलको कच्छपावतार ॥ २७ ॥ ये हमारे पिता आदि असुरोंमें श्रेष्ठ उसी विष्णुसे ऐसे नष्ट किये गये हैं जैसे प्रलयकालके वायुसे कुलपर्वत ॥ २८ ॥

सएकएवसंहारकर्मक्षमभुजानलः ॥ सुरसार्थगुरुःश्रीमान्विषमोमधुसूदनः ॥ २९ ॥ दैत्यदोर्दंडपरशोस्तस्यवीर्येणवीर्यवान् ॥ दानवान्बाधतेशक्रोबालकानिवमर्कटः ॥ ३० ॥ दुर्जयःपुंडरीकाक्षःप्रतिमुक्तायुधोपिसन् ॥ नासौशस्त्रास्त्रविच्छेदैर्वज्रसारोविदीर्यते ॥ ३१ ॥ अभ्यस्ताबहवस्तेनमिथःप्रेरितपर्वताः ॥ भीमाःसमरसंरंभाःसममस्मत्पितामहैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—संहारके करनेमें समर्थ भुजारूप अग्निसहित देव समूहमें श्रीमान् और आक्रमण करनेके अयोग्य वह एकही विष्णु सबमें समर्थ है ॥ २९ ॥ दैत्योंके भुजदण्डके कुठाररूप उस विष्णुके पराक्रमसे पराक्रमवान् इन्द्र दानवोंको ऐसे पीडा देताहै जैसे महामर्कटके बलसे बली सामान्य मर्कट बालकोंको ॥ ३० ॥ अस्त्रशस्त्रोंके त्यागनेसेभी विष्णुभगवान् दुःखसे जीतने योग्यहैं, यह विष्णु शस्त्रअस्त्रके खण्डनोंसे खण्डित नहीं होता क्योंकि वज्रसेभी वह दृढतरहै ॥ ३१ ॥ परस्पर जिनमें पर्वत फेके गये हैं ऐसे समरके अनेक कौशल विशेष हमारे पितामहोंके साथ युद्ध करके विष्णुभगवान्‌ने सीखाहै ॥ ३२ ॥

तासुतास्वतिघोरासुविततास्वतिराजिषु ॥ योनभीतइदानींसभयमेष्यतिकाकथा ॥ ३३ ॥ उपायमेक मेवमंहरेराक्रमणेस्फुटम् ॥ मन्येतद्व्यतिरेकेणविद्यतेनप्रतिक्रिया ॥ ३४ ॥ सर्वात्मनासर्वधियासर्वसंरं भरंहसा ॥ सएवशरणंदेवोगतिरस्तीहनान्यथा ॥ ३५ ॥ नतस्मादधिकःकश्चिदस्तिलोकत्रयांतरे ॥ प्रलयस्थितिसर्गाणांहरिःकारणतांगतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—उन २ विचित्र और भयंकर समरकी पंक्तियोंमें जो भयभीत नहीं हुआ वह अब भयभीत होगा इसकी क्या कथाहै ॥ ३३ ॥ इसको मैं अंगीकार करताहूं कि विष्णुको वश करनेमें यही एक स्पष्ट उपायहै उससे भिन्न विष्णुकृत पीड़ाके निवारणका कोईभी उपाय नहीं है ॥ ३४ ॥ कि इससंसारमें सर्व वस्तुके भावसे, सब प्रकारके बुद्धि भेदोंसे और सब क्रियाओंके उद्योगसे वही एक शरणार्थिओंका शरणहै अन्यथा कोई गति नहीं हैं ॥ ३५ ॥ उससे अधिक तीनों लोकमेंभी कोई नहीं है प्रलय, स्थिति, और उत्पत्ति इन तीनोंकी कारणताको वही विष्णु प्राप्तहै३६

अस्मान्निमेषादारभ्यनारायणमजंसदा ॥ संप्रपन्नोस्मिसर्वत्रनारायणमयोह्यहम् ॥३७॥ नमोनारायणा येतिमंत्रःसर्वार्थसाधकः ॥ नापैतिममहृत्कोशादाकाशादिवमारुतः ॥३८॥ हरिराशाहरिर्व्योमहरिरुर्वी हरिर्जगत् ॥ अहंहरिरमेयात्माजातोविष्णुमयोह्यहम् ॥ ३९ ॥ अविष्णुःपूजयन्विष्णुर्नपूजाफलभा ग्भवेत ॥ विष्णुर्भूत्वायजेद्विष्णुमयंविष्णुरहंस्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी निमेषसे लेके अजन्मा नारायणके शरणमें मैं सदा प्राप्तहुं, क्योंकि सब देशकाल और वस्तुमें मैं नारायणहुं ॥ ३७ ॥ "नमो नारायणाय" यह सर्वार्थसाधक मंत्र मेरे हृदय कोशसे ऐसे कभी नहीं जाता जैसे आकाशसे वायु ॥ ३८ ॥ सब दिशा विष्णुहैं, आकाश विष्णुहैं, पृथिवी विष्णुहैं, संपूर्ण जगत् विष्णुहैं, मैंभी विष्णुहुं अमेय अर्थात् प्रमाणरहित विष्णुरूप मैं होगयाहुं ॥ ३९ ॥ विष्णुरूप न होकर विष्णुकी पूजा करता हुआ पूजाके फलका भागी नहीं होता विष्णु होके विष्णुकी पूजा करै इसलिये यह मैं विष्णुरूप स्थितहुं ॥ ४० ॥

हरिःप्रह्लादनामायोमत्तोनान्योहरिःपृथक् ॥ इतिनिश्चयवांनंतव्यापकोहंचसर्वतः ॥ ४१ ॥ अनंतमि दमाकाशमापूर्यविनतासुतः ॥ कनकांगोममांगानामयमासनतांगतः ॥ ४२ ॥ करशाखैकविश्रांतस र्वहेतिविहंगमाः ॥ नखांशुमंजरीकीर्णामहामरकतद्रुमाः ॥ ४३ ॥ इमेतेमृद्वमंदारदामदिग्धांसमंडलाः मंदराघृष्टकेयूराश्चत्वारोममबाहवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो हरि (विष्णु) है वही प्रल्हाद नामसे प्रकट हुआहै क्योंकि विष्णुसे पृथक् कहीं कुछभी नहीं है ऐसा निश्चयसहित मैं सर्वत्र व्याप्तहुं ॥ ४१ ॥ अनन्त इस आकाशमें व्याप्त होके सुवर्णके समान वर्ण विनताका पुत्र गरूड स्थितहै, यह मेरे शरीरके भागोंके आसनताको प्राप्तहै ॥ ४२ ॥ जिनके हस्तोंकी शाखाओं (भागों) में चक्र गदा आदि अस्त्रशस्त्र तथा कौस्तुभ आदि आभूषणरूप पक्षी विश्राम कररहे हैं ऐसे नखोंकी दीप्तिरूप लताओंसे व्याप्त इसीसे महामरकतमणिके वृक्षरूप कोमल कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालासे मूलस्थानमें शोभित और समुद्रके मथनकालमें मन्दराचलसे जिनके केयूर घिसगये हैं ऐसे ये चारो मेरे बाहुहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

चलच्छशिकलापूरचारुचामरधारिणी ॥ इयंमेपार्श्वगालक्ष्मीःक्षीरोदकुहरोत्थिता ॥ ४५ ॥ हेलाविलु ब्धभुवनात्रैलोक्यतरुमंजरी ॥ इयंमेपार्श्वगाकीर्त्तिरचलामलभासिनी ॥ ४६ ॥ अनारतजगज्जालनवनि र्माणकारिणी ॥ इयंमेपार्श्वगामायास्वेंद्रजालविलासिनी ॥ ४७ ॥ इयंसाहेलयाक्रांतत्रैलोक्यतरुखंडी का ॥ जयास्फुरतिमेपार्श्वेलताकल्पतरोरिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—चलती चन्द्रमाकी कलाके प्रवाहके समान उत्तम स्वच्छ चामर धारण किये हुये क्षीर समुद्रसे उत्पन्न मेरे समीपमें प्राप्त यह लक्ष्मी है ॥ ४५ ॥ बिना प्रयत्नही सब भुवनोंको सुननेमें इच्छुक करनेवाली त्रैलोक्यरूप वृक्षकी लताके सदृश शोभायमान, अचल तथा निर्म्मल प्रकाश करनेवाली विष्णुकी कीर्ति मूर्ति धारण किये हुये मेरे समीप स्थितहै ॥ ४६ ॥ निरन्तर जगत् समूहोंकी नित्य नूतन रचना करनेहारी, और अपने इन्द्रजालसे बिलास करनेवाली यह विष्णुकी माया मेरे समीपमें स्थितहै ॥ ४७ ॥ अपनी लीलासे त्रैलोक्यरूप वृक्षखण्डोंका आक्रमण करनेवाली, और कल्पवृक्षकी लताके समान यह जया नाम लक्ष्मीकी सखी मेरे समीपमें स्थितहै ॥ ४८ ॥

इमौमेनित्यशीतोष्णोदेवौशीतांशुभास्करौ ॥ प्रकटीकृतसंसारौमुखमध्येविलोचने ॥ ४९ ॥ ममेयमु त्पलश्यामापीनांभोधरसुंदरी ॥ श्यामीकृतककुप्चक्रादेहदीप्तिर्विसर्पिणी ॥ ५० ॥ अयंममकरेशंखः

पांजन्यःस्फुरद्ध्वनिः ॥ मूर्त्तखमिवशब्दात्माक्षीरोदइवसंस्थितः ॥ ५१ ॥ अयंमेकर्णिकाकोशनिलीनब्रह्मषट्पदः ॥ पद्मःकरतलेश्रीमान्स्वनाडीकुहरोद्भवः ॥ ५२ ॥

अर्थ—ये नित्य शीत और उष्णरूप, संसारको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्य और चन्द्रमारूप दोनों देवमुखके मध्यमें मेरे नेत्रहैं ॥ ४९ ॥ नीलकमलके समान श्यामवर्ण, स्थूल (महान् सजल) मेघके समान सुन्दर, दिशारूप चक्रको श्यामवर्ण करनेवाली, और चारोओर विसर्पण (गमन) शील यह मेरे शरीरकी कांति (दीप्ति) है ॥ ५० ॥ चंचलध्वनिसहित, आकाशके समान मूर्तिमान् शब्दरूप क्षीरसमुद्रके समान श्वेत यह मेरे हस्तमें स्थित पांचजन्य नाम शंखहै ॥ ५१ ॥ कर्णिका कोशमें लीन ब्रह्मरूप भ्रमरसहित शोभावान् और नाभीरूप गर्तसे उत्पन्न यह मेरे हस्तमें स्थित मेरा कमलहै ॥ ५२ ॥

इयंमेरत्नचित्रांगीसुमेरुशिखरोपमा ॥ हेमांगदागदागुर्वीदैत्यदानवमर्दिनी ॥ ५३ ॥ अयंमेभास्कराकारउद्यदंशुःसुदर्शनः ॥ ज्वालाजटिलपर्यंतपरिपाटलदिक्तटः ॥ ५४ ॥ अयंमेकेतुमद्वह्निसुंदरोज्वलितोसितः ॥ कुठारोदैत्यवृक्षाणानंदयन्नंदकःस्थितः ॥ ५५ ॥ इदंमेशरधाराणांपुष्करावर्त्तकोपमम् ॥ शार्ङ्गं धनुरहींद्राभमिंद्रकार्मुकसुंदरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—रत्नोंसे विचित्र शरीर, सुमेरूके शिखरके तुल्य, सुवर्णसे ग्रथित, और दैत्य तथा दानवोंको मर्दन करनेवाली यह मेरी गदाहै ॥ ५३ ॥ सूर्य्यके सदृश आकारवान्, उदयशील किरणसहित, ज्वालासे सब ओरसे जटित और चारो दिशाओंके तटोंको रक्तवर्ण करनेवाला यह मेरा सुदर्शन चक्रहै ॥ ५४ ॥ धूमकी रेखासहित अग्निके समान सुन्दर ज्वालायुक्त, श्यामवर्ण, और दैत्यरूप वृक्षोंके अर्थ कुठार, तथा देवताओंको आनन्ददायक यह मेरा नन्दक नाम खड्गहै ॥ ५५ ॥ बाणोंकी धाराके लिये प्रलयकालके पुष्करावर्तक मेघके सदृश शेषके समान दीतिमान् और इन्द्रके धनुष्के समान सुन्दर यह मेरा शार्ङ्ग धनुषहै ॥ ५६ ॥

इमान्यहमनंतानिजगंतिजठरेचिरम् ॥ बिभर्मिजातनष्टानिवर्त्तमानान्यनेकशः ॥ ५७ ॥ इमौमहीमेचरणाविदंमेगगनंशिरः ॥ इदंवपुर्मेत्रिजगदिमेमेकुक्षयोदिशः ॥ ५८ ॥ साक्षादयमहंविष्णुर्नीलमेघोदरद्युतिः ॥ सुवर्णपर्वतारूढःशंखचक्रगदाधरः ॥ ५९ ॥ एतेमत्तःपलायंतेसमग्राद्दुष्टचेतसः ॥ तार्णास्तरलसंचाराःपवनादिवराशयः ॥ ६० ॥

अर्थ—इससमयमें उत्पन्न चिरकालसे नष्ट, तथा चिरकालसे उत्पन्न वर्तमान और भविष्यत् ये असंख्यात ब्रह्माण्डहैं उनको अनादिकालसे मैं अपने उदरमें धारण करताहुं ॥ ५७ ॥ यह पृथिवी मेरे दोनों चरणहै, यह आकाश मेरा शिरहै यह तीनोंलोक मेरा विराट् शरीरहै, और ये दिशायें मेरा शिरहैं ॥ ५८ ॥ नीलमेघके समान कान्तिसहित, सुवर्ण (गरूड) रूप पर्वतपर आरूढ, और शंख चक्र गदा आदिको धारण किये हुये यह मैं साक्षात् विष्णुहुं॥५९॥ये सब राक्षस आदि दुष्ट चित्तके जीव मेरेसे ऐसे भागतेहैं जैसे चंचल संचारवाली तृणकी राशि पवनसे६०

अयंनीलोत्पलश्यामःपीतवासागदाधरः ॥ लक्ष्मीवान्गरुडारूढःस्वयमेवाहमच्युतः ॥ ६१ ॥ कोमामेतिविरुद्धात्मात्रैलोक्यदहनक्षमम् ॥ स्वनाशायततःक्षुब्धंकालाग्निंशलभोयथा ॥ ६२ ॥ इमेमेतैजसींसृष्टिममाग्रस्थाःसुरासुराः ॥ नशक्नुवंतिसंरोद्धुंचक्षुर्मंदाःप्रभाइव ॥ ६३ ॥ इमंमामीश्वरंविष्णुंब्रह्मेंद्राग्निहरादयः ॥ स्तुवंत्यनंतयावाचाबहुवक्त्रसमुत्थया ॥ ६४ ॥ अयंविजृंभितैश्वर्योजातोहमजिताकृतिः ॥ सर्वद्वंद्वपदातीतोमहिम्नापरमेणहि ॥ ६५ ॥ त्रिभुवनभवनोदरैकमूर्त्तिप्रसभविभिन्नसमस्तदुष्टसत्वम् ॥ घनगिरितृणकाननांतरस्थंसकलभयापहरंवपुःप्रणौमि ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादनिर्वाणे नारायणीकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—नीलकमलके समान श्यामवर्ण, पीतवस्त्रवाले, गदाधारी, लक्ष्मीवान्, और गरूडपर अरूढ यह मैं स्वयं अच्युत हुं ॥ ६१ ॥ त्रिलोककोभी भस्म करनेमे समर्थ द्वेषी कौन मेरे सन्मुख आसक्ताहै क्योंकि जो आताहै वह कालाग्निमें शलभके तुल्य अपने नाशकेही अर्थ आताहै ॥ ६२ ॥ मेरे सन्मुख स्थित ये सुर तथा असुर मेरी तेजोमयी सृष्टिको अर्थात् मेरे तेजकी ज्वालाके प्रसरको रोकनेको, शान्त करनेको वा सहनेको ऐसे समर्थ नहीं हैं जैसे मन्द नेत्रवाले प्रकाशको ॥ ६३ ॥ इस ईश्वर विष्णुरूप मुझे ब्रह्मा, इन्द्र तथा शिव आदि देव अनेक मुखसे उत्पन्न अनन्त वाणीसे मेरी स्तुति करते हैं ॥ ६४ ॥ अकुण्ठित ऐश्वर्यवान् तथा सब द्वन्द्वपदसे अतीत, और सर्वो-

त्तम महिमासे युक्त यह मैं विष्णुके आकारके सदृश प्रकट हुआहुं ॥ ६५ ॥ त्रिभुवनरूप गृहको उदरमें धारण करनेवाली मूर्तियुक्त तथा बलात्कार दुष्ट सत्वोंको नष्ट करनेवाले, मेघ, पर्वत, तृण, और बनोंके अन्तरमें अधिष्ठानरूपसे स्थित, तथा साक्षात्कारमात्रसे सम्पूर्ण भयहारी विष्णुरूप मुझे मेरा प्रणामहै ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हाद निर्वाणे नारायणीकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस ३२ के सर्गमें विष्णुकी मानसी पूजा और असुरोंके साथ प्रल्हादकी बाह्य पूजा, इसको सुनके आश्चर्यित देवताओंका विष्णुसे पूंछना यह विषय वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ प्रह्लादइतिसंचिंत्यकृत्वानारायणींतनुम् ॥ पुनःसंचिंतयामासपूजार्थमसुरद्विषः ॥ १ ॥ वपुषोवैष्णवादस्मान्माभून्मूर्त्तिःपरावरा ॥ अयंप्राणप्रवाहेणबहिर्विष्णुःस्थितोपरः ॥ २ ॥ वैनतेयसमारूढःस्फुरच्छक्तिचतुष्टयः ॥ शंखचक्रगदापाणिःश्यामलांगश्चतुर्भुजः ॥ ३ ॥ चंद्रार्कनयनःश्रीमान्कांतनंदकनंदनः ॥ पद्मपाणिर्विशालाक्षःशार्ङ्गधन्वामहाद्युतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! प्रल्हाद ऐसा विचार करके अपनें देहको नारायणमय शरीर करके पुनः विष्णुकी पूजा करनेकी चिन्ता की ॥ १ ॥ मुझसे कल्पित इस विष्णुको देहसे अन्य समष्टिरूप तथा अपर व्यष्टि देवतारूप नहीं किन्तु यही मुझरूप विष्णु हृदय देशसे प्राणके प्रवाहसे पुष्पाञ्जलिकी भावनाद्वारा बाह्यदेशमें आवाहित होकर पूजाकालतक बाह्य देशमें अन्यके समान स्थित कल्पित किये गये हैं ॥ २ ॥ गरूडपर आरूढ प्रकाशमान क्रिया, ज्ञान, इच्छा और अनुग्रह नाम चारों शक्तिसहित, हस्तोंमें शंख, चक्र, और गदाको धारण किये श्यामल शरीर, चतुर्भुज ॥ ३ ॥ चन्द्रसूर्य नेत्रधारी, श्रीमान्, और अति रमणीय अपने नन्दक नामके खड्गसे स्वजनोंको आनन्ददायक, हस्तमें कमल लिये, विशाल नेत्र, शार्ङ्ग धनुष्धारी, और अति प्रकाशमान् ॥ ४ ॥

तदेनंपूजयाम्याशुपरिवारसमन्वितम् ॥ सपर्ययामनोमय्यासर्वसंभाररम्यया ॥ ५ ॥ ततएनंमहादेवं पूजयिष्याम्यहंपुनः ॥ पूजयाबाह्यसंभोगमहत्त्याबहुरत्नया ॥ ६ ॥ प्रह्लादइतिसंचिंत्यसंभारभरभारिणा ॥ मनसापूजयामासमाधवंकमलाधवम् ॥ ७ ॥ रत्नौघपात्रपटलैश्चंदनादिविलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैर्विचित्रैश्चनानाविभवभूषणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीलिये सर्व संभार (सामग्री) से रमणीय मनोमयी पूजासे परिवार संयुक्त इनकी पूजा मैं करूं ॥ ५ ॥ बाह्य पदार्थ समूहोंसे विस्तृत रत्नमयी पूजासे इस महादेवकी मैं पुनः पूजा करूंगा ॥ ६ ॥ प्रल्हाद ऐसा विचार करके सम्पूर्ण सामग्रीके भारसे पूर्ण मनसे कमला (लक्ष्मी) के पति विष्णुकी पूजा की ॥ ७ ॥ रत्नोंसे जटित पात्रोंके अभिषेकोंसे, चन्दन आदिके लेपोंसे, नानाप्रकारके धूप तथा चित्रविचित्र विभव और अलंकारोंसे ॥ ८ ॥

मंदारमालावलनैर्हैमाब्जपटलोत्करैः ॥ कल्पवृक्षलतागुच्छैरत्नस्तबकमंडलैः ॥ ९ ॥ पल्लवैर्दिव्यवृक्षाणांनानाकुसुमदमभिः किंकिरातैर्बकैःकुंदैश्चंपकैरसितोत्पलैः ॥ १० ॥ कह्लारैःकुमुदैःकाशैःखर्जूरैश्चूतकिंशुकैः ॥ अशोकैर्मदनैर्बिल्वैःकर्णिकारैःकिरातकैः ॥ ११ ॥ कदंबैर्बकुलैर्निंबैःसिंदुवारैःसयूथकैः ॥ पारिभद्रैर्गुग्गुलीभिर्बिंडुकैःपुष्पकोत्करैः ॥ १२ ॥

अर्थ—मन्दारकी मालाओंके वेष्टनोंसे, सुवर्णकमलके पटलके समूहोंसे, कल्पवृक्षोंके लता और गुच्छोंसे, और रत्नमय स्तवक मण्डलोंसे ॥ ९ ॥ दिव्यवृक्षोंके नानाप्रकारके पल्लव और पुष्पोंकी मालाओंसे, किंकिरात, वक, कुंद, चंपक और नील कमलोंसे पूजा की ॥ १० ॥ रक्तकमल, कुमुद, काश, खजूर, आम्र, तथा किंशुकोंसे, अशोक, मदन, बिल्व, कर्णिकार और किरातोंसे ॥ ११ ॥ कदम्ब, बकुल, निम्ब, सिंदवार, यूथक, पारिभद्र, गुग्गुली और अन्यप्रकारकेभी पुष्पोंके समूहोंसे पूजाकी ॥ १२ ॥

प्रियंगुपटलैःपाटपाटैलैर्द्वातुपाटलैः ॥ आम्रैराम्रातकैर्गव्यैर्हरीतकबिभीतकैः ॥१३॥शालतालतमालानांलताकुसुमपल्लवैः ॥ कोमलैःकलिकाजालैःसहकारैःसकुंकुमैः ॥ १४ ॥ केतकैःशतपत्रैश्चतथैलामंजरीगणैः ॥ सर्वसौंदर्यसंमानैःस्वयमात्मार्पणैरपि ॥ १५ ॥ हरिंपरमयाभक्त्याजगद्विभवभव्यया ॥ मनसापूजयामासप्रह्लादोंतःपुरेपतिम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रियंगु, पटल, पाट, पाटल, धातुपाटल आम्र, आम्रातक, गव्य हरीतक, और विभतकोंसे ॥ १३ ॥ शाल, ताल और तमालोंके लता पुष्य और पल्लवोंसे, कोमल कलिकाओं (कलियों) के समूहोंसे और कुंकुमसहित आम्रोंसे पूजा की ॥ १४ ॥ केतक, कमल तथा इलायची आदिके लतासमूहोंसे सौन्दर्य्ययुक्त धूप दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दर्पण, छत्र, चामर, आरती, पुष्पांजली, प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादिसे तथा अन्यप्रकारकी सामग्रीसे और स्वयं आत्माके समर्पणसेभी विष्णुकी पूजा की ॥ १५ ॥ तथा जगत्में जो २ विभव होते हैं उनसे उत्तम भक्तिसे मानसी पूजा अपने स्वामी विष्णुभगवान्को प्रल्हादने अपने अन्तःपुरमें की ॥ १६ ॥

अथदेवगृहेतस्मिनबाह्यार्थैःपरिपुर्णया ॥ पूजयापूजयामासदानवेशोजनार्दनम्॥१७॥ बहिर्द्रव्यैरनेनैवक्रमेणपरमेश्वरम् ॥ पुनःपुनःपूजयित्वातुष्टिमान्दानवोभवत् ॥ १८ ॥ ततस्ततःप्रभृत्येवप्रह्लादःपरमेश्वरम् ॥ तथैवप्रत्यहंभक्त्यापूजयामासपूर्णया ॥ १९ ॥ अथतस्मिन्पुरेदैत्यास्ततःप्रभृतिवैष्णवाः ॥ सर्वएवाभवन्भव्याराजाह्याचारकारणम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस मानसी पूजाके पश्चात् उसी अन्तःपुरमें स्थित देव गृहमें बाह्यपदार्थोंसे परिपूर्ण पूजाकी सामग्रीसे दानवोंके स्वामी प्रल्हादने जनार्दनकी पूजा की ॥ १७ ॥ जिस क्रमसे मानसी पूजा की इसी क्रमसे बाह्य द्रव्योंसेभी परमेश्वरकी पुनः पूजाकरके प्रल्हाददानव प्रसन्न हुआ ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् उसी दिनसे प्रल्हाद उसी पूर्णभक्तिसे प्रतिदिन परमेश्वरकी पूजा की ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर उस नगरमें उसी समयसे लेके सब दैत्य वैष्णव और मोक्षके भागी होगये, क्योंकि राजाही आचारका कारणहै ॥ २० ॥

जगामवार्त्तागगनंदेवलोकमथारिहन् ॥ विष्णोर्द्वेषंपरित्यज्यभक्तादैत्याःस्थिताइति ॥ २१ ॥ देवाविस्मयमाजग्मुःशक्राद्याःसमरुद्गणाः ॥ गृहीतावैष्णवीभक्तिर्दैत्यैःकिमितिराघव ॥ २२ ॥ क्षीरोदेभोगिभोगस्थंविबुधाविस्मयाकुलाः ॥ जन्मुरंबरमुत्सृज्यहरिमाहवशालिनम् ॥ २३ ॥ तत्रैनंदैत्यवृत्तांतंकथयामासुरस्यते ॥ पप्रच्छुश्चैनमासीनमपूर्वाश्चर्यविस्मयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे शत्रुनाशकरामजी ! इसके पश्चात् यह वार्ता (दैत्योंका वैष्णव होना) दूतके मुखसे स्वर्गमें गई कि विष्णुका द्वेष त्यागके सब दैत्य वैष्णव होकर स्थितहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस वार्ताको सुनके मरूद्गणसहित इन्द्रादिदेव विस्मयको प्राप्त हुये कि दैत्योंने विष्णुकी भक्ति क्यों ग्रहण की ॥ २२ ॥ विस्मयसे व्याकुल देवगण अपनी अमरावतीनगरीको छोडके क्षीरसमुद्रमें शेषनागके फणपर स्थित और युद्धमें शोभायमान विष्णुभगवान्के समीप गये ॥ २३ ॥ वहांपर विष्णुभगवानको सब दैत्योंका वृत्तान्त कहदिया और सुखसे विराजे हुये विष्णुसे अपूर्व आश्चर्य तथा विस्मयपूर्वक यह पूंछा ॥ २४ ॥

॥ विबुधाऊचुः ॥ किमेतद्भगवन्दैत्याविरुद्धायेसदैवते ॥ तेहितन्मयतांयातामायेयमितिभाव्यते॥ २५ ॥ क्कैलात्यंतदुर्वृत्तादानवादलिताद्रयः ॥ क्कपाश्चात्यमहाजन्मलभ्याभक्तिर्जनार्दने ॥ २६ ॥ प्राकृतोगुणवान्जातइत्येषाभगवन्कथा ॥ अकालपुष्पमालेवसुखायोद्वेजनायच ॥ २७ ॥ नोपपन्नंहियद्यत्रतत्रतन्नविराजते ॥ मध्येकाचकलापस्यमहामूल्योमणिर्यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—विबुधगण बोले—हे भगवन् ! यह क्या कर्ता है कि जो दैत्यलोग सदा आपके विरूद्धथे वे आपमें तन्मय होगये हैं यह तो माया भान होती है ॥ २५ ॥ कहां ये आपके भक्त मुनियोंके निवासस्थान पर्वत आदिको दलनकर्ता दुराचारी दैत्य ! और कहां यह अन्तिम ब्राह्मणादि जन्मोंमें प्राप्त होने योग्य विष्णुभगवान्की भक्ति ! ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मूर्खपण्डित होगया यह कथा उत्पातदायिनी अकालके पुष्पकी मालाके समान सुख तथा दुःख दोनोंके अर्थ है॥२७॥जो पदार्थ जहां युक्त नहीं है वहां शोभा नहीं देता जैसे कांचोंके समूहके मध्यमें महामूल्यमणि२८

योयोयादृग्गुणोजंतुःस्वतामेवतिसंस्थितिम् ॥ सदृशेष्वप्यजेषुश्वानमध्येरमतेक्कचित् ॥ २९ ॥ नतथा दुःखयंत्यंगेमज्जंत्योवज्रसूचयः ॥ वैसादृश्येनसंबद्धायथैतावस्तुदृष्टयः ॥ ३० ॥ यद्यत्रक्रमसंप्राप्तमुपपन्नमनिंदितम् ॥ तदेवराजतेतत्रजलेंभोजंनतुस्थले ॥ ३१ ॥ क्काधमःप्राकृताचारंभोहीनकर्मरतिःसदा ॥ वराकोदानवोहीनजातिर्भक्तिःक्ववैष्णवी ॥ ३२ ॥ कमलिनीपरुषोषरभूगतासुखयतीहयथानद्दराश्रया ॥ दितिसुतोपिहिमाधवभक्तिमानितिकथानतथेशसुखायनः ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विबुधवाक्यं नामद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो २ जीव जैसे २ गणसे युक्तहै वह २ वैसेही संस्थिति अर्थात् तामस तामसी, राजस राजसी, और सात्विक सात्विकी प्रकृतिको प्राप्त होताहै, चाहे एकही वंशमें क्यों न हो, जैसे समान वर्णके बकरोंमेंभी कुत्ता

क्रीडा नहीं करता ॥ २९ ॥ अंगोंमें प्रवेश करती हुई वज्रकी सूची इतना दुःख नहीं देती जैसे अयोग्य रीतिसे संबद्ध ये वस्तुकी दृष्टि ॥ ३० ॥ जो पदार्थ जहां योग्यतासे प्राप्तहै वहां निन्दारहित वही शोभित होताहै, जैसे कमल जलमें शोभित होताहैं न कि स्थलमें ॥ ३१ ॥ कहां तो प्राकृत (पामरों) के योग्य कार्य्योंका आरम्भ कर्ता, नीच कर्ममें सदा रत, और हीन जाति तुच्छ दानव और कहां विष्णुकी भक्ति ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! जैसे तप्त ऊषर भूमिपर प्राप्त कमलिनी दुष्ट आश्रयमें प्राप्त श्रोताओंके कर्णोंको सुख नहीं देती ऐसेही हे माधव ! दितिका पुत्र दैत्यभी भक्तिमान्हैं यह वार्ता हम लोगोंको सुख नहीं देती ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे विबुधवाक्यं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ के सर्गमें विष्णुकी भक्तिसे प्रल्हाददैत्यको विवेक आदि गुणका उदय और प्रसन्न विष्णुको देखके प्रल्हादकी स्तुति इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ गर्ज्जतमतिसंरब्धंसुरलोकमथारिहा ॥ उवाचमाधवोवाक्यंशिखिवृंदमिवांबुदः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ विबुधामाविषण्णाःस्थप्रह्रादोभक्तिमानिति ॥ पाश्चात्यंजन्मतस्येदंमोक्षार्होसावरिंदमः ॥ २ ॥ अतउत्तरमेतेनगर्भतादनुजन्मना ॥ नकर्त्तव्याप्रदग्धेनबीजेनेवांकुरक्रिया ॥ ३ ॥ गुणवान्निर्गुणोजातइत्यनर्थक्रमंविदुः ॥ निर्गुणोगुणवान्जातइत्याहुःसिद्धिदंक्रमम् ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अनुचित दर्शनसे अति कुपित अतएव पूर्वोक्त रीतिसे गर्जके पूंछते हुये देवसमूहसे शत्रुनाशक विष्णुभगवान् ऐसे बोले जैसे मयूरके वृंदसे मेघ ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे देवगण ! प्रल्हाद मेरा भक्तहै इस वास्ते तुम लोग उदासीन मत होओ, क्योंकि प्रल्हादका यह अन्तिम जन्महै वह शत्रु नाशक इसी शरीरसे मोक्षका अधिकारी है ॥ २ ॥ इस जन्मके पश्चात् यह माताके गर्भमें निवास ऐसे नहीं करेगा, जैसे दग्धबीज अंकुर धारणकी क्रियाको ॥३॥ गुणवान् होके निर्गुण होगया यह तो पौरूषका विघातरूप अनर्थका क्रम कहाताहै॥४॥

आत्मीयानिविचित्राणिभुवनान्यमरोत्तमाः ॥ प्रयातनासुखायैषाप्राह्रादीगुणितेहवः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाविबुधांस्तत्रक्षीरोदार्णववीचिषु ॥ अंतर्द्धानंययौदेवस्तटतापिच्छगुच्छवत् ॥६॥ सोपिसंपूजितहरिःसुरौघोव्रजदंबरम् ॥ पुनर्मंदरनिर्द्धूतात्कणजालमिवार्णवात् ॥ ७ ॥ प्रह्रादंप्रतिगीर्वाणस्ततःस्निग्धत्वमाययुः ॥ महांतोयत्रनोद्विग्नास्तत्रविश्वासवन्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे देवोंमें श्रेष्ठ ! तुम लोग अपने २ विचित्र भवनोंमें जाते प्रल्हादका यह गुणपना तुम लोगोंके दुःखके अर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—श्रीभगवान्ने देवतावोंसे इसप्रकार कहके क्षीरसमुद्रके तरंगोंमें ऐसे अन्तर्ध्यान होगये जैसे तटमें उत्पन्न हुये तमालवृक्षके गुच्छें ऊंची नीची तरंगोंमें ॥ ६ ॥ वह देवोंका समूहभी आकाशमें ऐसे चलागया जैसे प्रथम आकाशसे समुद्रमें गिरा हुआ कणकासमूह मन्दराचलसे मथित समुद्रसे उठके पुनः आकाशमें लोप होजाय ॥ ७ ॥ उसीसमयसे देवतालोग प्रल्हादसे स्नेह करनेलगे क्योंकि महात्मालोग जिससे सन्तुष्ट होते हैं उससे छोटे लोगोंका मनभी विश्वासी होजाताहै ॥ ८ ॥

प्रत्यहंपूजयामासदेवदेवंजनार्द्दनम् ॥ मनसाकर्मणावाचाप्रह्रादोभक्तिमानिति ॥ ९ ॥ अथपूजापरस्यास्यसमवर्द्धतकालतः ॥ विवेकानंदवैराग्यविभवप्रमुखागुणाः ॥ १० नाभ्यनंददसौभोगपूगंशुष्कामिवद्रुमम् ॥ नचारमतकांतासुमृगोलोकमहीष्विव ॥ ११ ॥ नरेमेलोकचर्यासुशास्त्रार्थकथनादृते ॥ नजायतेरतिस्तस्यदृश्येस्थलइवाब्जिनी ॥ १२ ॥

अर्थ—भक्तिमान् प्रल्हाद तो उसीसमयसे देवोंके देव जनार्दनकी मन, वचन तथा वाणीसे प्रतिदिन पूजा करनेलगा ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् पूजामें तत्पर प्रल्हादके कालपाके विवेक, यथा प्राप्त वस्तुसे सन्तोष, वैराग्य और ऐश्वर्य्यादि गुण बढने लगा ॥ १० ॥ और प्रल्हादको तो भोगसमूह ऐसे नहीं रुचतेथे जैसे कि शुष्क वृक्ष, और मृग जैसे जन्तुसे पूर्ण भूमियोंपर नहीं रमण करता ऐसे यह स्त्रियोंमें नहीं रमण करताथा ॥ ११ ॥ और शास्त्रकी चर्चाके सिवाय यह लौकिक वार्ताओंमें नहीं रमण करताथा, और जलरहित स्थलमें कमलिनीकी प्रीति नहीं होती ऐसेही दृश्य पदार्थोंमें उसकी प्रीति नहीं होतीथी ॥ १२ ॥

नविश्रामचेतोस्यभोगरोगानुरंजने ॥ मुक्ताफलमसंश्लिष्टंमुक्ताफलइवामले ॥ १३ ॥ त्यक्तभोगादिकलनंविश्रांतिमनुपागतम् ॥ चेतःकेवलमस्यासीद्दोलायामिवयोजितम् ॥ १४ ॥ प्रह्लादींतांस्थितिंविष्णुर्देवःक्षीरोदमंदिरात् ॥ विवेदसर्वगतयाधियापरमकांतया ॥ १५ ॥ अथपातालमार्गेणविष्णुराह्लादितावतः ॥ पूजादेवगृहंतस्यप्रह्लादस्यसमाययौ ॥ १६ ॥

अर्थ—रोगरूप भोगोंके अनुकूल आचरण करनेमें इसका चित्त ऐसे नहीं विश्रामको प्राप्त होताथा जैसे निर्मल मोतियोंकी मालामें विना गूंथा वा छिद्ररहित मुक्ताफल ॥ १३ ॥ किंतु भोगादि संकल्पोंको त्यागनेवाला, और अप्राप्त विश्राम इसका चित्त न भोगोंमें न शुद्ध ब्रह्ममें विश्रान्त हुआ अर्थात् दोनोंके मध्यमें स्थितके समानथा॥ १४ ॥ विष्णुभगवान्ने प्रल्हादकी उस स्थितिको शुद्ध सत्वात्मिक तथा सर्वत्र व्याप्त ज्ञान शक्तिसे जानलिया ॥१५॥ इसके पश्चात् भक्तोंको परमानन्द दाता विष्णुभगवान् पातालके मार्गसे प्रल्हादके पूजागृहमें जाके संमुख स्थित हुये ॥१६॥

विज्ञायाभ्यागतंदेवंपूजयाद्विगुणेद्धया ॥ दैत्येंद्रःपुंडरीकाक्षमादरात्पर्यपूजयत् ॥ १७ ॥ पूजागृहगतंदेवंप्रत्यक्षावस्थितंहरिम् ॥ प्रह्लादःपरमप्रीतोगिरातुष्टावपुष्टया ॥ १८ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ त्रिभुवनभवनाभिरामकोशंसकलकलंकहरंपरंप्रकाशम् ॥ अशरणशरणंशरण्यमीशंहरिमजमच्युतमीश्वरंप्रपद्ये ॥ १९ ॥ कुवलयदलनीलसन्निकाशंशरदमलांबरकोटरोपमानम् ॥ भ्रमरतिमिरकज्जलांजनाभंसरसिजचक्रगदाधरंप्रपद्ये ॥ २० ॥

अर्थ—दैत्येन्द्र प्रल्हादने विष्णुभगवान्को आये हुये जानकर द्विगुणपदार्थोंके उपचारसे प्रदीप्त पूजासे अति आदरपूर्वक पुंडरीकाक्षकी पूजा की ॥ १७ ॥ पूजागृहमें प्राप्त और प्रत्यक्ष मूर्ति धारण करके स्थित विष्णुभगवान्की हर्षसे वृद्धिको प्राप्त वाणीसे प्रल्हादने स्तुति की ॥ १८ ॥ प्रल्हाद बोले–त्रिलोकरूप भवनके उत्तम रक्षास्थान, बाह्य तथा आभ्यन्तरके कलंकरूप अन्धकार हर्ता, सूर्य, अग्नि, चन्द्र, नेत्र तथा वाणी आदिके प्रकाशोंके प्रकाशक परमप्रकाशरूप, शरणरहित जनोंके शरणस्थान, अविनाशी होनेसे सबके शरणके योग्य ईश, अजन्मा, तथा सर्व दुःख नाशक विष्णुकी शरणमें मैं हुं ॥ १९ ॥ नीलकमल वा नीलमणिके समान, शरत्कालके आकाशके कोटरके समान भ्रमर, अन्धकार, कज्जल तथा अंजनके समान शोभायुक्त, और कमल, शंख चक्र गदाधारी विष्णुरूप आपकी मैं शरणमें हुं ॥ २० ॥

विमलमलिकलापकोमलांगंसितदलपंकजकुड्मलाभशंखम् ॥ श्रुतिरणितविरिंचिचंचरीकंस्वहृदयपद्मदलाश्रयंप्रपद्ये ॥ २१ ॥ सितनखगणतारकावकीर्णंस्मितधवलाननपीवरेंदुबिंबम् ॥ हृदयमणिमरीचिजालगंगंहरिशरदंबरमाततंप्रपद्ये ॥ २२ ॥ अविरलकृतसृष्टिसर्वलीनंसततमजातमवर्द्धनंविशालम् ॥ गुणशतजरठाभिजातदेहंतरुदलशायिनमर्भकंप्रपद्ये ॥ २३ ॥ नवविकसितपद्मरेणुगौरंस्फुटकमलावपुषा विभूषितांगम् ॥ दिनशमसनयारुणांगरागंकनकनिभांबरसुंदरंप्रपद्ये ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्मलरूप अलि (भ्रमर) समूहके सदृश कोमलांग, श्वेतकमलकी कलिकाके समान श्वेतवर्ण शंखधारी और श्रुतिही जिसके गूंजके शब्दहैं ऐसे ब्रह्मरूप भ्रमर जिसके हृदय कमलमें हैं, और भक्तोंका हृदयकमल जिसके रहनेंका आश्रयहै ऐसे विष्णुरूपके शरणमें मैं प्राप्तहुं ॥ २१ ॥ श्वेतनखोंकि गणरूप तारागणसे व्याप्त, मन्दहाससे श्वेत मुखरूप पूर्ण चन्द्रसहित और हृदयकी कौस्तुभमणिके किरणके समूहरूप मन्दाकिनीसे क्षोभित विष्णुरूप विशाल शरत्के आकाशके मैं शरणमें हुं ॥ २२ ॥ घन सृष्टि जिसमें लीनहै, सदा उत्पत्तिरहित अतएव वृद्धि आदि विकार शून्य महान् सत्व आदिमायाके गुणोंसे प्रेरित प्राचीन उत्पन्न तथा सुन्दरदेहवान् और प्रलयकालमें वटके पत्रके ऊपर शयन करनेवाले बालक स्वरूप विष्णुके मैं शरणमें हुं ॥ २३ ॥ नूतन विकसित कमलके रेणुओंसे गौरवर्ण और लक्ष्मीके शरीरसे विभूषित नाम अंगसहित और सायंकालके समान अरुणरक्त चन्दनके समान अंगरागयुक्त तथा सुवर्णके समान सुन्दर विष्णुभगवानकी शरणमें मैं हुं ॥ २४ ॥

दितिसुतनलिनीतुषारपातंसुरनलिनीसततोदितार्कबिंबम् ॥ कमलजनलिनीजलावपूरंहृदिनलिनीनिलयं विभुंप्रपद्ये ॥ २५ ॥ त्रिभुवननलिनीसितारविंदंतिमिरसमानविमोहदीपमग्र्यम् ॥ स्फुटतरमजडंचिदात्मतत्त्वंजगदखिलार्त्तिहरंहरिंप्रपद्ये ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिगुणबहुलाभिर्वाग्भिरभ्यर्चितोसौहरिरसुरविनाशःश्रीनिषण्णांसदेशः ॥ जलदइवमयूरंप्रीतिमान्प्रीयमाणंकुवलयदनीलःप्रत्युवाचासुरेंद्रम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे नारायणगमनं नाम त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—दितिके पुत्ररूप कमलिनियोंके लिये तुषारके पतन देवतारूप कमलिनीके अर्थ निरन्तर उदित सूर्य्य-बिम्ब ब्रह्मारूप कमलिनीके अर्थ तडाग और हृदयकमलके आश्रयस्थान व्यापक विष्णुके मैं शरणमें हुं ॥ २५ ॥ त्रिभुवनरूप नलिनीके सूर्य अज्ञानान्धकारके लिये श्रेष्ठ दीप नित्य स्वप्रकाश जडभिन्न चिदात्मरूप और साक्षात्कार-मात्रसे संपूर्ण लोकोंके दुःखके नाशक हरिके मैं शरणमें हुं ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार गुणोंसे पूर्ण स्तुतियोंसे पूजित लक्ष्मीसे आलिंगित असुरोंके विनाशस्थान नीलकमलके समान श्याम और प्रीतिसहित विष्णुभगवान् अपने प्रीतिपात्र दैत्येन्द्र प्रल्हादसे ऐसे बोले जैसे मयूर मेघसे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे नारायणगमनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस ३४ के सर्गमें विष्णुके वरदानसे प्रल्हाद उत्तम विचारको पाके अनात्मवर्ग देहादिके निरास (त्याग) से अद्वितीय चिन्मात्र आत्मतत्वको देखा ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरंगुणनिधेदैत्यकुलचूडामहामणे ॥ गृहाणाभिमतंभूयोजन्मदुःखोपशांतये॥१॥ ॥ प्रल्हादउवाच ॥ सर्वसंकल्पफलदसर्वलोकांतरस्थित ॥ यद्दुदारतमंवेत्सितदेवादिशमेविभो ॥ २॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वसंभ्रमसंशांत्यैपरमायफलायच ॥ ब्रह्मविश्रांतिपर्यंतोविचारोस्तुतवानघ ॥३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वादितिपुत्रेंद्रंविष्णुरंतरधीयत ॥ कृतघर्घरनिर्ह्रादस्तरंगस्तोयधेरिव॥४॥

अर्थ—श्रीभगवान् बोले–हे गुणनिधे दैत्यकुलचुडामणे ! तुम जिसमें पुनः जन्मका दुःख न पावो ऐसा वरदान ग्रहण करो॥१॥प्रल्हादजी बोले–हे सम्पूर्ण संकलिपत फलोंके देनेवाले परमात्मन्! हे सब लोकोंके अन्तरमें स्थित जो सबसे उत्तम वरदान आप समझते हो वही हे प्रभो ! मुझे दीजीये ॥ २ ॥ श्रीभगवानजी बोले–हे पापरहित प्रल्हाद ! सम्पूर्ण भ्रमकी शांतिके लिये और परमानन्द मुक्तिरूप फलके प्राप्तिके अर्थ ब्रह्ममें विश्रान्तिपर्य्यन्त तुमारा विचार हो ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–दितिके पुत्र दानवोंके इन्द्र प्रल्हादके प्रति इतना कहकरके विष्णुभगवान् ऐसे अन्तर्धान होगये जैसे घर्घर शब्द करके तरंग समुद्रमें ॥ ४ ॥

विष्णावंतर्हितेदेवेपूजायांकुसुमांजलिम् ॥ पाश्चात्यंदानवस्त्यक्त्वामणिरत्नपरिष्कृतम् ॥ ५ ॥ पद्मास नस्थोतिमुदाह्युपविश्यवरासने ॥ स्तोत्रपाठविधावंतश्चिंतयामासचेतसा ॥ ६ ॥ विचारवानेवभवा न्भवत्विविभवारिणा ॥ देवेनोक्तेस्मितेनांतःकरोम्यात्मविचारणम् ॥ ७ ॥ किमहंनामतावत्स्यांयो स्मिन्भुवनडंबरे ॥ वच्मिगच्छामितिष्ठामिप्रयत्नेनाहरामिच ॥ ८ ॥

अर्थ—विष्णुभगवान्के अन्तर्धान होनेपर रत्नसे पूरित कुसुमकी अन्तिम अंजलि पूजामें छोडकर ॥ ५ ॥ उत्तम आसनपर पद्मासनसे आनन्दपूर्वक बैठकर स्तुतिपाठके विधानमें अपने अन्तःकरणमें यह चिन्तन किया ॥ ६ ॥ संसारके नाश करनेवाले विष्णुदेवने मुझे यह वरदान दियाहै कि तुम बिचारवान्हो इसलिये मैं अपने अन्तःकरणमें विचार करूं ॥ ७ ॥ इस संसारके आडम्बरमें मैं भाषण करताहुं चलताहुं स्थितहुं और प्रयत्नसे विषयोंका भोग करता हुं इनमेंसे मैं कौन हुं ॥ ८ ॥

जगत्तावदिदंनाहंसवृक्षतृणपर्वतम् ॥ यद्बाह्यमलमत्यंतंतत्स्यांकथमहंकिल ॥ ९ ॥ असन्नभ्युदितोमू कःपवनैःस्फुरितःक्षणम् ॥ कालेनाल्पेनविलयीदेहोनाहमचेतनः ॥ १० ॥ जडयाकर्णशष्कुल्याकल्प्य मानःक्षणक्षयी ॥ शून्याकृतिःशून्यभवःशब्दोनाहमचेतनः ॥ ११ ॥ त्वचाक्षणविनाशिन्याप्राप्यमप्रा प्यमप्यथ ॥ चित्प्रसादोपलब्धात्मस्पर्शोनंनास्म्यचेतनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह वृक्ष तृण और पर्वतसहित जो जगत्है यह मैं नहीं हुं क्योंकि जो शरीरसे सर्वथा बाह्यहै यह मैं कैसे होसकताहुं ॥ ९ ॥ तीनोंकालमें असत् अल्पकालके लिये उदयको प्राप्त प्राणरूपी पवनोंसे क्षणभरके लिये स्थित अल्पकालमें नश्वर यह जड देह मैं नहीं हुं ॥ १० ॥ जडकर्ण संस्कुलीप्रदेशमें कल्पित क्षणमें नश्वर आकाररहित आकाशसे उत्पन्न जडशब्दभी नहीं हुं ॥ ११ ॥ क्षणमें नाश होनेवाली त्वगिन्द्रियसे कदाचित् चेतनके प्रमादसे प्राप्त और कदाचित् अप्राप्य यह अचेतन स्पर्शभी मैं नहीं हुं ॥ १२ ॥

बद्धात्माजिह्वयातुच्छोलोलयालोलसत्तया ॥ स्वल्पस्पंदोद्रव्यनिष्ठोरसोनाहमचेतनः ॥ १३ ॥ दृश्यद र्शनयोर्लीनंक्षयिक्षणविनाशिनोः ॥ केवलेद्रष्टरिक्षीणंरूपंनाहमचेतनम् ॥ १४ ॥ नासयाप्यंधजडयाक्ष

यिण्यापरिकल्पितः ॥ पेलवोऽनियताकारोगंधोनाहमचेतनः ॥ १५ ॥ निर्ममोऽमननःशांतोगतपंचेंद्रियभ्रमः ॥ शुद्धचेतनएवाहंकलाकलनवर्जितः ॥ १६ ॥

अर्थ—चंचल अर्थात् अनित्य जिव्हा इन्द्रियसे बद्ध स्वभाव जिव्हासे कण्ठपर्य्यन्त प्रदेशमें आस्वाददायक द्रव्यनिष्ठरसभी मैं नहीं हुं ॥ १३ ॥ अनित्य द्रव्य तथा नेत्र इन्द्रियके अधीन केवल द्रष्टामें नष्ट होनेवाला अचेतनरूपभी मैं नहीं हुं ॥ १४ ॥ प्रकाशरहित और क्षण विनाशी नासिका इन्द्रियसे परिकल्पित अति कोमल और अनियताकारवाला अर्थात् क्षणमें परिणामी अचेतन गन्धभी मैं नहीं हुं ॥ १५ ॥ किन्तु ममतारहित मन शून्य शान्त पंच इन्द्रियोंके भ्रमसे शून्य संकल्पकी कलासे वार्जित शुद्धचेतन आत्मामात्र मैं हुं ॥ १६ ॥

चेत्यवर्जितचिन्मात्रमाहमेषोऽवभासकः ॥ सबाह्याभ्यंतरव्यापीनिष्कलामलसन्मयः ॥ १७॥ अनेनचेतनेनेमेसर्वेघटपटादयः ॥ सूर्यांताअवभास्यंतेदीपेनोत्तमतेजसा ॥ १८ ॥ आइदानींस्मृतंसत्यमेतत्तदखिलंमया ॥ निर्विकल्पचिदाभासएषआत्मास्मिसर्वगः ॥ १९ ॥ अनेनैताःस्फुरंतीहविचित्रेंद्रियवृत्तयः ॥ तेजसांतःप्रकाशेनयथाग्निकणपंक्तयः ॥ २० ॥

अर्थ—विषयसे वर्जित सबका प्रकाशक बाह्य और आभ्यन्तर व्यापी निष्कल निर्मल सन्मात्र सन्मय केवल चिन्मात्र यह मैं हुं ॥ १७ ॥ इसी शुद्धचेतनमात्रसे सम्पूर्ण घटपटसे आदि लेकर सूर्य्य पर्यन्त पदार्थ ऐसे प्रकाशित होते हैं जैसे उत्तम प्रकाशवान् दीपसे ॥ १८ ॥ अहो इससमय मैंने यह स्मरण किया कि यह सम्पूर्ण जगत् निर्विकल्प चिदाभास आत्ममात्रही है और वह सर्वव्यापी आत्मस्वरूप मैं हुं ॥ १९ ॥ इसी मुझ चेतनस्वरूपसे संपूर्ण चित्रविचित्र इन्द्रियोंकी वृत्तियां ऐसे स्फुरित होती हैं जैसे अन्तःप्रकाशस्वरूप अग्निके कणोंकी पंक्ति ॥ २० ॥

अनेनैताःस्फुरंतीहविचित्रेंद्रियपंक्तयः ॥ सर्वगेननिदाघेनयथामरुमरीचिकाः ॥ २१ ॥ अनेनैतत्पदार्थानांवस्तुत्वंप्रतिपाद्यते ॥ शुक्लादिगुणवस्त्वंस्वंप्रदीपेनेववाससाम् ॥ २२ असावेवहिभूतानांसर्वेषामेवजाग्रताम् ॥ सर्वानुभविताभूमिरात्मामुकुरवस्थितः ॥ २३ ॥ तस्यैकस्याविकल्पस्यचिद्दीपस्यप्रसादतः ॥ उष्णोर्कःशिशिरश्चंद्रोघनोद्रिर्विद्रुतंपयः ॥ २४ ॥

अर्थ—इसी सर्वत्रगामी चेतनस्वरूप आत्मासे चित्रविचित्र इन्द्रियोंकी वृत्तियां ऐसे स्फुरती हैं जैसे निदाघ (उष्ण) ऋतुसे मरूस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां ॥ २१ ॥ और इसी चेतनसे इन पदार्थोंका वस्तुत्व अर्थात् सत्ताभी ऐसे प्रतिपादित होती है जैसे वस्त्रोंके शुक्लादि गुणोंका प्रतिपादन प्रदीप आदि प्रकाशोंसे ॥ २२ ॥ यही चेतनआत्मा सम्पूर्ण सचेतन पदार्थ देह इन्द्रिय मन तथा बुद्धि आदि भावोंके अनुभवकी ऐसे भूमिहैं जैसे सब प्रतिबिम्बोंका आश्रय दर्पण ॥ २३ ॥ उसी एक निर्विकल्प चित्रूप प्रदीप प्रतापसे सूर्य्य उष्णहै, चन्द्रमा शीतलहै, पर्वत घनहै, और दुग्ध द्रवशीलहै ॥ २४ ॥

सातत्येनानुभूतानांसर्वेषांचजगत्स्थितौ ॥ एतत्कारणमाद्यंतत्कारणंनास्यविद्यते ॥ २५ ॥ सातत्येनानुभूतानांपदार्थानामनेनतत् ॥ पदार्थत्वमुदेत्युच्चैःप्रतापेनेवतप्तता ॥२६॥ अनाकारात्कारणाच्चसर्वकारणकारणात् ॥ एतस्मादिदमुत्पन्नंजगच्छैत्यंहिमादिव ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्ण्वींद्ररुद्राणांकारणानांजगत्स्थितौ ॥ एतत्कारणमाद्यंतत्कारणनास्यविद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल इत्यादि निरन्तर श्रुति तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अनुभूत पदार्थोंकी जगत्में उत्पत्ति आदिकी व्यवस्थामें आदि कारण यही आत्माहै इसका कारण कोई नहीं है किन्तु सत्रूपसे सब कार्य्यमें व्यापकहै ॥ २५ ॥ और निरन्तर पूर्वोक्त क्रमसे अनुभूत आकाशादिमें वह प्रसिद्ध पदार्थता इसी आत्मासे ऐसे उदित होती है जैसे उष्णऋतुके सूर्य्यके तापसे भूमि आदिमें तप्तता ॥ २६ ॥ आकारशून्य, अविद्याद्वारा कारणभूत सब ब्रह्मादि देवोंकाभी कारण इसी प्रत्यक्रूप ब्रह्मसे यह सब जगत् ऐसे उत्पन्न हुआहै जैसे शीतता हिमसे ॥ २७ ॥ जगत्की स्थितिमें कारणभूत ब्रह्मा विष्णु इन्द्र तथा रूद्रादिकाभी आदि कारण यही है और इसका कारण कोई नहीं है ॥ २८ ॥

चिच्चेत्यद्रष्टृदृश्यादिनामभिर्वर्जितात्मने ॥ स्वयंसकृद्विभातायमह्यमस्मैनमोनमः ॥ २९ ॥ एतस्मिन्सर्वभूतानिनिर्विकल्पचिदात्मनि ॥ गुणभूतानिभूतेशेतिष्ठंतिविविशंतिच ॥ ३० ॥ यत्किलानेनकलितंचेतनेनांतरात्मना ॥ तत्तद्भवतिसर्वत्रनेतरत्सदपिस्थितम् ॥ ३१ ॥ यच्चिताकलितंकिंचित्तदाप्नोतिनिजंपदम् ॥ यच्चिताकलितंनेहतत्सदप्यंतमागतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—चित्त विषय, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तथा नामादिसे और स्वयं नित्य प्रकाशरूप इस मुझ आत्माको बार २ नमस्कारहै ॥ २९ ॥ इसी सब गुणोंके स्वामी निर्विकल्प चिदात्मामें गुणभूत प्रकृतिसे भिन्न वा अभिन्न सत्तावान् पदार्थ स्थित रहते हैं और इसीमें प्रवेशभी करते हैं ॥ ३० ॥ कारण सूक्ष्मरूपसे स्थित रहनेपरभी जिस २ पदार्थके लिये इस चित्ने यह संकल्प किया कि उत्तर क्षणमें हो वही वह सर्वत्र उत्तरकालमें होताहै अन्य नहीं॥३१॥ जिस किसीको चित्ने संकल्पित कियाहै वही अपने घट आदि व्यवहारपदको प्राप्त होताहै और जिसको नहीं संकल्पित किया वह सूक्ष्म वा स्थूलरूपसे होने परभी नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

इमेघटपटाकाराःपदार्थशतपंक्तयः ॥ जागत्योविपुलादर्शेह्यस्मिन्व्योमनिबिंबिताः ॥ ३३ ॥ एतद्वृद्धंवृद्धतरेक्षयिक्षयिणिजायते ॥ पदार्थेसदसच्चापिप्रतिबिंबार्कवत्स्थितम् ॥ ३४ ॥ अदृश्यंसर्वभूतानांप्राप्यंगलितचेतसाम् ॥ एतत्तद्दृश्यतेसद्भिःपरंव्योमातिनिर्मलम् ॥ ३५ ॥ इयमभ्युदयंयातिनानादृश्यलुमंजरी ॥ आचारचंचरीकाढ्याएतस्मात्कारणद्रुमात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ये घटपट आदि आकाररूपसे जगत्संबन्धी सैकडो पदार्थोंकि पक्तियां इसी महान् दर्पणरूप चिदाकाशमें प्रतिबिम्बितहैं ॥ ३३ ॥ जैसे प्रतिबिम्बके सूर्यमें क्षय वृद्धि आदि पृथक् रूपसे भान होती है ऐसेही आत्मामें ही पदार्थोंकी वृद्धि क्षयादि भी अध्यस्तहैं ॥ ३४ ॥ संपूर्ण अज्ञ जीवोंको अदृश्य और चित्तरहित जीवोंको प्राप्य (दृश्य) है क्योंकि यह अति निर्मल परम चिदाकाश सज्जन ज्ञानियोंकोही दृश्यहै ॥ ३५ ॥ इसी सबके कारण भूत चेतनरूप वृक्षसे अनेक आचाररूप भ्रमरोंसे पूर्ण यह नानाप्रकारकी दृश्यरूप लता अभ्युदयको प्राप्त होती है॥३६॥

अस्मादियमुदेत्युच्चैःसंसाररचनाचला ॥ विचित्रतरुगुल्माढ्याशैलादिववनावली ॥ ३७ ॥ सर्वेषामविभिन्नोसौत्रैलोक्योदरवर्त्तिनाम् ॥ ब्रह्मादीनांतृणांतानांचिदात्मासंप्रकाशकः ॥ ३८ ॥ एकोसावहमाद्यंतरहितःसर्वगाकृतिः ॥ चराचराणांभूतानामंतःस्वानुभवःस्थितः ॥ ३९ ॥ अस्यतस्यममेमानिस्थावराणिचराणिच ॥ परिसंख्यादिहीनानिशरीराणिबहूनिच ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी चेतन परमात्मासे यह विशाल अचल संसारकी रचना ऐसे उदय होती है जैसे पर्वतसे चित्रविचित्र लता आदिसे पूर्ण बनोंकी पंक्ति ॥ ३७ ॥ ब्रह्मासे आदि लेकर तृणपर्य्यन्त जो कुछ त्रैलोक्यके उदरमें विद्यमान पदार्थ हैं उन सबका अभिन्नरूपसे प्रकाशक यही चिदात्माहै ॥ ३८ ॥ आदि अन्तरहित सर्वत्रगामी आकारसहित और चराचरके प्राणियोंके अन्तरमें अनुभव स्वरूपसे स्थित यह एक परमात्मा मैंही हुं ॥ ३९ ॥ वेद और स्मृति प्रतिपाद्य उस परमात्मस्वरूप मेरे देशकाल और वस्तुकी इयत्तासे शून्य नानाप्रकारके स्थावर और जंगम शरीरहैं ॥४०॥

एकोसावनुभूत्यात्मास्वानुभूतिवशात्स्वयम् ॥ सर्वदृग्द्रष्टृदृश्यत्वात्सहस्रकरलोचनः ॥ ४१ ॥ एषोसावहमाकाशेसुर्यदेहेनचारुणा ॥ विहरामीतरेणापिव युदेहेनवायुना ॥ ४२ ॥ ममैतद्वपुरानीलंशंखचक्रगदाधरम् ॥ सर्वसौभाग्यसीमांतंह्यस्मिञ्जगतिवल्गति ॥ ४३ ॥ अहमस्मिन्समुद्भूतःपद्मासनगतःसदा ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थःपरांनिर्वृतिमागतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अनुभवस्वरूप एकही यह परमात्मा स्वयं सबका दृक् द्रष्टा और दृश्यरूप होनेसे असंख्य हस्त और नेत्रादि सहितहै ॥ ४१ ॥ यही आत्मस्वरूप मैं उत्तम सूर्यका रूप धारण करके आकाशमें बिहार करताहुं और वायुके देहसे सर्वत्र भ्रमण करताहुं ॥ ४२ ॥ यह अत्यन्त श्यामवर्ण शंख चक्र गदा पद्म धारण किये तथा सब सुन्दरताकी सीमाका अन्त यह मेराही शरीरहै उसी जगत्रूपमें सब कुछ व्यवहार हो रहाहै ॥ ४३ ॥ मैं प्रगट इस जगत्में आविर्भूत होकर सदा पद्मासनपर विराजमान निर्विकल्प समाधिमें स्थित अत्यन्त शान्तिको प्राप्तहुं ॥ ४४ ॥

अहंत्रिनेत्रयाऽऽकृत्यागौरीवक्त्राब्जषट्पदः ॥ सर्गांतेसंहरामीदंकूर्मोंगपटलंयथा ॥४५॥ अहमिंद्रेणरूपेणत्रिलोकीमखिलामिमाम् ॥ पालयामिक्रमप्राप्तांमठिकामिवतापसः ॥ ४६ ॥ स्त्रीपुमानहमेवैतत्कुमारोवृद्धमित्यपि ॥ जीर्णोहंदेहंधारित्वाजातोहंविश्वतोमुखः ॥ ४७ ॥ अहंतृणलतागुल्मजालंरसतयास्थितः ॥ उत्थापयामिचिद्भूमेःकूपोंतरलतामिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—मैं त्रिनेत्र शिवकी मूर्ति धारण करके पार्वतीके मुखकमलका भ्रमर होकर प्रलयमें इस सर्व जगत्का ऐसे संहार करताहुं जैसे कूर्म्म अपने अंग समूहका ॥ ४५ ॥ मैं इन्द्ररूप धारण करके मन्वन्तरसे प्राप्त इस सम्पूर्ण त्रिलोकीको ऐसे पालन करताहुं जैसे तापसी एक छोटी कुटीको ॥ ४६ ॥ स्त्री पुरुष तथा कुमाररूप मैंही हुं देह धा-

रण करनेसे वृद्ध स्वरूप मैंही होताहुं अनन्तमुख मैंहीं हुं ॥ ४७ ॥ तृण लता और गुल्म समूहको रसरूप होकर चि-द्रूप भूमिसे मैंही ऐसे उत्थापित करताहुं जैसे प्राचीन कूप आभ्यंतरसे लताको ॥ ४८ ॥

स्वलीलार्थमिदंचारुजगदाडंबरंततम् ॥ मयाभिजातबालेनपंकक्रीडनकंयथा ॥ ४९ ॥ मयेदमाप्यतेसर्वंसत्तामांप्राप्यगच्छति ॥ मत्परित्यक्तमेतच्चसदप्येवनकिंचन ॥ ५० ॥ मयिस्फारेचिदादर्शेप्रतिबिंबंयदागतम् ॥ तदस्तिनेतरत्त्वस्मान्मत्तोन्यन्नेहविद्यते ॥ ५१ ॥ कुसुमेष्वहमामोदःपुष्पपत्रेष्वहंछविः ॥ छविष्वहंरूपकलारूपेष्वनुभवोप्यहम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस उत्तम जगत्के आडम्बरको अपनी लीलाके लिये मैंने ऐसे विस्तारित कियाहै जैसे क्रीडामें कुशल बालक कीचडके खिलौनेको ॥ ४९ ॥ कारणरूपसे मैंहीं सर्वत्र व्याप्तहुं मेरे स्वरूपके साक्षात्कारसे स्थूल कार्यकी सत्ता लुप्त होजाती है मेरे तत्त्वदर्शनस्वरूपसे त्यक्त अर्थात् जीवन्मुक्तके व्यवहारमें वर्तमानभी यह जगत् कुछ नहीं है ॥ ५० ॥ मुझ विशाल चिद्रूपी दर्पणमें जो कुछ प्रतिबिंबितरूपसे प्राप्तहै वही है अन्य कुछ नहीं क्योंकि मुझसे भिन्न इस संसारमें कुछ नहीं है ॥ ५१ ॥ पुष्पोंमें सुगन्ध मैं हुं पुष्प और पत्रोंमें शोभा मैं हुं और छबियोंमें रूपकी कलाओंमें अनुभवरूपभी मैं हुं ॥ ५२ ॥

यत्किंचिदिदंदृश्यंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वसंकल्परहितंतच्चित्तत्त्वमहंपरम् ॥ ५३ ॥ आद्यारसमयीशक्तिरसौघाविस्तृतायया ॥ सायथादारुकुड्येषुतथाहंसर्ववस्तुषु ॥ ५४ ॥ परमांतामहंसर्वपदार्थांतरवर्त्तिताम् ॥ उपेत्यसंविद्वैचित्र्यंप्रतनोमिस्वयेच्छया ॥ ५५ ॥ घृतंयथांतःपयसोरसशक्तिर्यथाजले ॥ चिच्छक्तिःसर्वभावेषुतथांतरहमास्थितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो २ स्थावर जंगमात्मक यह जगत्है वह सम्पूर्ण संकल्पोंसे रहित चिदात्मरूपहै और चित् परमात्मा मैं हुं ॥ ५३ ॥ जैसे आदि रसमयी शक्ति रस तन्मात्ररूपसे समुद्र नदी तडागादि जल समूहरूपसे विस्तृत होताहै और वही जलरूप शक्ति जैसे वृक्ष शाखा पल्लव तथा तृण पत्र आदिरूपसे विस्तृत होती है ऐसेही सम्पूर्ण वस्तुओंमें उन २ कार्य्योंके उत्पत्तिके निमित्तरूपसे मैंभी स्थितहुं ॥ ५४ ॥ सर्वोत्तम सर्व पदार्थोंके अन्तर्वर्त्ती होकर मैं अपनी इच्छासे नानाप्रकारकी जीव संवित्का विस्तार करताहुं ॥ ५५ ॥ दुग्धके भीतर जैसे घृत और जलके भीतर जैसे रस शक्ति है ऐसेही संपूर्ण पदार्थोंके अन्तमैं चित् शक्तिरूपसे मैं स्थितहुं ॥ ५६ ॥

इदंजगत्त्रिकालस्थंचितिमध्येचसंस्थितम् ॥ चेत्योपचाररहितंवस्तुजातमिवावनौ ॥ ५७ भरिताशेषदिक्कुक्षिस्त्यक्तसंकोचविभ्रमः ॥ सर्वस्थःसर्वकर्त्ताचविराट्सम्राडहंस्थितः ॥ ५८ ॥ अपूर्वमनिबद्धेंद्रमशस्त्रदलितामरम् ॥ अप्रार्थितंमेसंप्राप्तंजगद्राज्यमिदंततम् ॥ ५९ ॥ अहोनुविततात्मास्मिनमाम्यप्यात्मनात्मनि ॥ कल्पांतपवनाधूतएकार्णवइवार्णवे ॥ ६० ॥

अर्थ—विषयकी प्रसिद्धिसेरहित भूतभविष्यत् और वर्तमानकालमें स्थित यह जगत् चेतनके मध्यमें ऐसे स्थितहै जैसे वस्तुसमूह पृथिवीमें ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंके अन्तरालको पूर्ण करनेवाला संकोचके भ्रमको त्यागकर सबमें स्थित सबका कर्ता विराट् और सम्राट् अर्थात् व्यष्टि और समष्टिरूपसे मैंही स्थितहुं ॥ ५८ ॥ यह अपूर्व इन्द्रके निबद्धसेरहित बिना शस्त्रही देवनाओंको दलन करनेवाला अप्रार्थित यह विशाल जगत्का राज्य मुझे प्राप्त हुआहै ॥ ५९ ॥ अहो कैसा विशालरूप मैंहुं मैं अपने आत्मस्वरूपमें ऐसे नहीं समाता जैसे प्रलयके पवनसे कम्पित समुद्रमें प्रलयकालका समुद्र ॥ ६० ॥

नात्मन्यंतमवाप्नोमिस्वस्थेंतःस्वदितेस्वयम् ॥ क्षीरवारिनिधौपंगुःसरीसृपइवस्फुरन् ॥ ६१ ॥ स्वल्पेयंमठिका ब्राह्मीजगन्नाम्नीसुसंकटा ॥ गजोबिल्वइवस्वांगेनमातिविपुलंवपुः ॥ ६२ ॥ विरिंचिभवनात्पारेतत्त्वांतेप्याहरत्पदम् ॥ प्रसरत्येवमेरूपमद्यापिननिवर्त्तते ॥ ६३ ॥ अयंनामाहमित्यंतःकुतोनिरवलंबना ॥ अपर्यंताकृतेरेषाकिलासीत्स्वल्पतामम ॥ ६४ ॥

अर्थ—निरतिशय आनन्दरूपसे स्वयं आस्वादित इस स्वस्थ आत्मरूपमें मैं ऐसे अन्त नहीं पाता जैसे क्षीरसमुद्रमें चलता हुआ कुण्ठित गति सर्प ॥ ६१ ॥ ब्रह्मासे रचित इस जगत् नाम अति छोटी मठीमें मेरा स्वरूप (चित्स्वरूप) ऐसे नहीं समाता जैसे बिल्वके शरीरमें हस्ती ॥ ६२ ॥ पृथिवीसे दशगुण जलसे दशगुण तेजसे दशगुण वायुसे दशगुण आकाशके आवरणसे आच्छादित ब्रह्मांडरूप ब्रह्माके भवनसे पार तथा सांख्यके अभिमत चौबिश तत्वके अथवा वैष्णवआदिके इष्ट रुद्र छत्तीस तत्व वा शैव पाशुपत आदिके अभिमत तत्वोंके पारभी चलता

हुआ मेरा स्वरूप अबभी नहीं निवृत्त होता ॥ ६३ ॥ यह देहादिरूपसे अवलम्बरहित कल्पना कहांसे हुई अहो ! अपार आकारवाले मेरे स्वरूपकी यह न्यूनता कहांसे हुई ॥ ६४ ॥

भवानयमयंचाहमितिमिथ्येवविभ्रमः ॥ कोदेहःकोप्यदेहोवाकोमृतःकश्चजीवति ॥ ६५ ॥ वगकाःपेलवधियोबभूवुर्मेपितामहाः ॥ येसाम्राज्यमिदंत्यक्त्वारेमिरेभवभूमिषु ॥ ६६ ॥ क्वेयंकिलमहादृष्टिर्भरिताब्रह्मबृंहिता ॥ क्वसरीसृपभीमाशाभीमाराज्यविभूतिभिः ॥ ६७ ॥ अनंतानंदसंभोगापरोपशमशालिनी ॥ शुद्धेयंचिन्मयीदृष्टिर्जयत्यखिलदृष्टिषु ॥ ६८ ॥

अर्थ—यह आप, यह मैं इत्यादि मिथ्याही भ्रमहै, देह क्या ! अदेह क्या ! देहके अभावसे मृतकभी कौन ! और शरीर आदिके अभावसेही प्राणभी कौन धारण करताहै ? ॥ ६५ ॥ हमारे पूर्वज निश्चय क्षुद्रबुद्धि हुये हैं जिन्होंने इस आत्मज्ञानरूप साम्राज्यको त्यागकर संसारके ऐश्वर्य्यकी भूमियोंमें रमण कियाहै ॥ ६६ ॥ कहांतो ब्रह्मज्ञानसे वर्द्धित यह पूर्ण दृष्टि ! और कहां सर्पोंके समान भयंकर आशाओंसे भयदायक राज्यकी विभूतियां ॥ ६८ ॥ निरतिशय अनन्त आनन्दके सम्भोगसहित, और परम शान्तिसे शोभायमान यह शुद्ध चिन्मयीदृष्टि सम्पूर्ण दृष्टियोंसे अति उत्तमहै ॥ ६८ ॥

सर्वभावांतरस्थायचेत्यमुक्तचिदात्मने ॥ प्रत्यक्चेतनरूपायमह्यमेवनमोनमः ॥ ६९ ॥ जयाम्यहमजोजातोजीर्णसंसारसंसृतिः ॥ प्राप्तप्राप्योमहात्मायंजीवामिचजयामिच ॥ ७० ॥ इदमुत्तमसाम्राज्यंबोधसंत्यज्यशाश्वतम् ॥ नरमेहमरम्यासुराज्यदुःखविभूतिषु ॥ ७१ ॥ दारुवारिदृषन्मात्रेलुलितोयोधरातले ॥ धिग्वराकमनात्मज्ञंतंकुदानवकीटकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंके अन्तरालमें स्थित, विषयोंसे निर्मुक्त तथा साक्षीरूप मुझ चिदात्माको मेरा बार २ नमस्कार है ॥ ६९ ॥ चिरकालसे भोजन कियेहुये अन्नके समान जीर्ण संसारकी संसृति (संसारमें गमनागमन) सहित मैं अब अजन्माहुं इस कारणसे सब ओरसे जयके फल पानेसे सब निअनर्थकी वृत्तिको प्राप्तहुं, और सब प्राप्त होने योग्य सुखोंके प्राप्त होसेसे मैं जीवनके फलकोभी प्राप्त हुं इसीसे सर्वोत्तम हुं॥ ७० ॥ इस नित्य आत्मज्ञानरूप साम्राज्य सुखको छोडके अरमणीय तथा दुःखदायी राज्यकी विभूतियोंमें मैं नहीं रमण करूंगा ॥ ७१ ॥ जो बनदुर्ग काष्ठमें, जलदुर्गरूप जलमें, गिरिदुर्ग (किले) रूप पाषाणमय धरातलमेंही अपने स्वामित्वके अभिमानसे लुब्धहोके उन्हींमें रमण किया उस दुष्ट दानवरूप कीडेको धिक्कारहै ॥ ७२ ॥

अविद्यैकात्मभिर्द्रव्यैरविद्यामयमंगकम् ॥ अज्ञेनसंतर्पयताकिंनामगुरुणाकृतम् ॥ ७३ ॥ वर्षाणिकतिचित्प्राप्यजगच्छ्रीमठिकामिमाम् ॥ किंनामप्रापदुचितंहिरण्यकशिपुःकिल ॥ ७४ ॥ अनास्वाद्येदमानंदंजगद्राज्यशतान्यपि ॥ समास्वादयतानेहाकिंचिदास्वादितंभवेत् ॥ ७५ ॥ नकिंचिद्येनसंप्राप्तंतेनेदंपरमामृतम् ॥ संप्राप्यांतःप्रपूर्णेनसर्वंप्राप्तमखंडितम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—अविद्याके कार्य अविद्यामय अन्नपानादि द्रव्योंसे अविद्यामय अंगको तृप्त करते हुये अज्ञ पिताने क्या किया ? अर्थात् कुछ पुरुषार्थ नहीं किया ॥ ७३ ॥ कुछ कालके या वर्षके लिये त्रैलोक्यकी लक्ष्मी युक्त इस जगत्-रूप छोटी मठीको पाकर मेरे पिता हिरण्यकशिपुने कश्यप कुलके उचित कौन पुरुषार्थ किया ॥ ७४ ॥ इस ब्रह्मानन्दका आस्वादन लेकर सैकडों जगत् राज्यके आनन्दका स्वाद लेतेहुयेभी कुछभी नहीं आस्वाद लिया और इसके आस्वादित होनेसे सब आनन्दका आस्वाद होगया ॥७५॥ जिसने अन्य विषयानन्दको नहीं प्राप्त किया और इस परम अमृतरूप ब्रह्मानन्दको प्राप्त होकर अन्तःकरणमें पूर्ण होनेसे मानों सब कुछ अखण्डितरूपसे प्राप्त करलिया ॥७६

त्यक्त्वापदमिदंमूर्खोमितमेतिनपंडितः ॥ उष्ट्रोहित्यक्तसुतलःकंटकंयातिनेतरः ॥ ७७ ॥ परांदृष्टिमिमांत्यक्त्वादग्धराज्येरमेतकः ॥ कस्त्यक्त्वेक्षुरसंप्राज्ञःकटुनिंबयुयःपिबेत् ॥ ७८ ॥ मूर्खाएवहितेसर्वेबभूवुर्मेपितामहाः ॥ इमांदृष्टिंपरित्यज्यरेमिरेराज्यसंकटे ॥ ७९ ॥ क्वफुल्लानंदनस्थल्यःक्वदग्धमरुभूमयः ॥ क्वेमाबोधदृशःशांताःक्वभोगेष्वात्मबुद्धयः ॥ ८० ॥

अर्थ—इस अपार पदको त्यागकर परिच्छिन्न पदको मूर्खही चाहताहै न कि पण्डित फलके भारसे नम्र द्राक्षा आदि लताको त्यागकर कंटककी ओर उष्ट्र (ऊंटही) जाताहै न कि अन्य पशु ॥ ७७ ॥ इस पूर्ण आत्म दृष्टिको त्यागकर भस्मीभूत राज्यसुखमें कौन रमण करसकताहै, वह कौन प्राणी है जो ईख (ऊख) केसरको त्यागकर कटु निम्बको पान करेगा ॥ ७८ ॥ हमारे वे सब पूर्वज मूर्खही हुये हैं जिन्होंने इस पूर्ण आत्मदृष्टिको त्यागकर

राज्यके संकटमें रमण किया है ॥ ७९ ॥ कहां तो विकसित नन्दनबनकी भूमि और कहां मरूस्थल ! ऐसेही कहां तो ये शान्त आत्मबोधकी दृष्टि और कहां भोगस्थान शरीर आदिमें आत्मदृष्टि ! ॥ ८० ॥

नकिंचिदपित्रैलोक्येयद्राज्यमपिवांछते ॥ सर्वमस्त्येवचितत्त्वेतत्कस्मान्नानुभूयते ॥ ८१ ॥ चितासर्वस्थयास्वस्थासमयानिर्विकारया ॥ सर्वयासर्वदासर्वसर्वतःसाधुलभ्यते ॥ ८२ ॥ भासिनीतैजसीशक्तिरमृतप्राप्तिरैंदवी ॥ ब्राह्मीमहत्तामहतीशाक्रीत्रैलोक्यराजता ॥ ८३ ॥ परमापूर्णताशार्वीजयलक्ष्मीश्चवैष्णवी ॥ मानसीशीघ्रगतिताबलवत्ताचवायवी ॥ ८४ ॥

अर्थ—इस त्रिलोकीमें कुछ नहीं है क्योंकि राज्य पाकरभी मनुष्य इच्छा करताहै, और चित्तत्वमें सब कुछहै उसका अनुभव क्यों नहीं करते ॥ ८१ ॥ सबमें स्थित, स्वस्थ; निर्विकार, और सर्वदा सर्वरूप चित्से सब सुख तथा दुःखके साधन सर्वत्र भलीभांति मिलते हैं ॥ ८२ ॥ तेजकी प्रकाशिका शक्ति, चन्द्रमाकी अमृत प्राप्ति, हिरण्यगर्भकी मान्यता, सर्वोत्तम इन्द्रकी त्रैलोक्यकी राजता ॥ ८३ ॥ महादेवका ज्ञान तथा ऐश्वर्य शक्तिकी संपूर्णता, विष्णुकी विजय लक्ष्मी मनकी शीघ्रगतिता, वायुकी बलवत्ता ॥ ८४ ॥

आग्नेयीदाहकलनापायसीरसनिर्वृतिः ॥ मौनीमहातपःसिद्धिर्विद्याबार्हस्पतीतथा ॥ ८५ ॥ वैमानिकीव्योमगतिःस्थिरताचापिपार्वता ॥ गंभीरताथसामुद्रीमैरवीचमहोन्नतिः ॥ ८६ ॥ शमश्रीःसौगतीसौम्यामादिरीमदलोलता ॥ माधवीपुष्पमयतावार्षिकीघनशब्दिता ॥ ८७ ॥ याक्षीचमायामयतानाभसीनिष्कलंकता ॥ शीततातापीचतौषारीनैदाघीतापतप्तता ॥ ८८ ॥

अर्थ—अग्निकी दाहकी कल्पना, जलकी रसकी सिद्धि, मुनियोंकी तपकी महासिद्धि तथा बृहस्पतिकी विद्या ॥ ८५ ॥ विमानोंकी आकाशकी गति पर्वतोंकी स्थिरता, समुद्रकी गम्भीरता, और मेरूपर्वतकी महोन्नति ॥८६॥ सब उपद्रवोंसे शान्त सुगत (बुद्धज्ञानी) सम्बन्धी शमकी शोभा, मदिराकी चंचलता, वसन्तऋतुकी पुष्पमयता, और वर्षाऋतुकी मेघकी गर्जना ॥ ८७ ॥ यक्षोंकी मायामयता आकाशकी निष्कलंकता तुषारकी शीतता और उष्णऋतुके तापकी तप्तता ॥ ८८ ॥

एताश्चान्यास्तथाबह्वयोदेशकालक्रियात्मिकाः ॥ नानाकारविकारोत्थास्त्रिकालोदरसंस्थिताः ॥ ८९ ॥ विचित्राःशक्तयःस्वस्थसमयानिर्विकारया ॥ चिताक्रियंतेपरयाकलाकलनयुक्तया ॥ ९० ॥ विकल्पहीनाचित्सर्वापदार्थशतदृष्टिषु ॥ सममेवाभिपततिप्रभाप्राभाकरीयथा ॥ ९१ ॥ सर्वाशाकोशविश्रांतांपदार्थपटलींमहीम् ॥ कालत्रयेहाकलितांयथानुभवतिक्षणात् ॥ ९२ ॥

अर्थ—ये तथा अन्य अनेक देशकाल क्रियात्मक नानाप्रकारके आकारके विकारोंसे उत्पन्न तीनोंकालके उदरमें वर्तमान ॥ ८९ ॥ चित्रविचित्र सब शक्ति स्वस्थसमानरूप निर्विकार सर्वोत्तम और उन २ शक्तिके कार्य्योंके अनुसन्धानकी ओर अभिमुख चित्सेही की जाती हैं ॥ ९० ॥ विकल्पसे रहित चिद्शक्ति नानाप्रकारके सैकडों पदार्थोंकी ओर एककालहीमें ऐसे गिरती है जैसे कांचन आदि भित्तियोंमें सूर्यकी प्रभा ॥ ९१ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंके कोशमें विश्रान्त करनेवाली तीनोंकालकी चेष्टासे संकल्पित अनन्त पदार्थकी पटलीको एककालमेंही ऐसे अनुभव करती है जैसे सूर्यकी प्रभा ॥ ९२ ॥

तथासमस्तसंसारबृहद्दृश्यदशाश्रियम् ॥ कालत्रयस्थाममलाचिच्चेततितदात्मिका ॥ ९३ ॥ तुल्यकालपरामृष्टात्रिकालकलनाशता ॥ अनंतभुवनाभोगापरिपूर्णैवशुद्धचित् ॥ ९४ ॥ परामृष्टत्रिकालायादृष्टानंतदृशश्चितः ॥ समतापरपर्यायापूर्णतैवावशिष्यते ॥ ९५ ॥ तुल्यकालावबुद्धेनस्वादुनाकटुनापिचित् ॥ समेनसमतामेतिमधुनिंबानुभूतिवत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार संपूर्ण संसारके महान्दृश्यकी शोभाको जो कि भूतभविष्यत् वर्तमान तीनों कालमें स्थितहैं उसको निर्मल चित् उन २ पदार्थोंका रूप होकर प्रकाशित करती है ॥ ९३ ॥ और अखण्ड शुद्धचित् अभिन्नकालहीमें तीनों कालके पदार्थोंसे मिलित होकरके अनन्त कल्पनाओंको अनुभव करती हुईभी अपने स्वरूपसे परिपूर्णही रहती है ॥ ९४ ॥ तीनों कालसे मिलित अनन्त अनुभवको करनेवाली चित्शक्तिकी समता पूर्णरूपसेही शेष रहती है ॥ ९५ ॥ इसीकारण दो प्रकारके मधुररस और दो प्रकारके कटुरस एक कालमें अनुभव करनेसेभी सबके साथही समताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे मधु और निम्बके अनुभवको ॥ ९६ ॥

त्यक्तसंकल्पकलयासूक्ष्मयाचिद्व्यवस्थया ॥ सर्वभावानुगतयासत्ताद्वैतैकरूपया ॥ ९७ ॥ विचित्रापिपदार्थश्रीरन्योन्यवलितांतरा ॥ तुल्यकालानुभवनासाम्येनैवानुभूयते ॥ ९८ ॥ भावेनाभावमाश्रि

त्यभावस्त्यजतिदुःखताम् ॥ प्रेक्ष्यभावमभावेनभावस्त्यजतिदुष्टताम् ॥ ९९ ॥ कालत्रयमपश्यंत्याहीनायाश्चेत्यबंधनैः ॥ चितश्चेत्यमुपेक्षिण्याः समतैवावशिष्यते ॥ १०० ॥

अर्थ—संकल्पकी कलाको त्यागनेवाली सूक्ष्म सब पदार्थोंमें अनुगत अद्वैत सत्तारूप चित्‌शक्तिसे ॥ ९७ ॥ परस्पर मिलितभी पदार्थोंकी शोभा एक कालमेंही अनुभूत होती है ॥ ९८ ॥ श्रुति स्मृति तथा आचार्यके उपदेशरूप भाव चित्तसे संपूर्ण दृश्यसमूहके अभावका आश्रय लेकर चित्‌रूप भाव शोक मोहादि दुःखरूपताको त्यागताहै और सब पदार्थोंके निषेधसे परमार्थमें सत् अद्वैत ब्रह्मरूप भावका अनुभव करके चित्त अपनी रागादि दुष्टताको त्यागताहै ॥ ९९ ॥ वर्त्तमान विषयको उपेक्षा करनेवाली भूत विषयके वासनाके बन्धनोंसे हीन और विषयके आधारभूत तीनों कालको न देखनेवाली चित्‌शक्तिकी समताही अवशेष रहजाती है ॥ १०० ॥

यातिवाचामगम्यत्वादसत्तामिवशाश्वतीम् ॥ नैरात्म्यसिद्धांतदशामुपयातेवतिष्ठति ॥ १०१ ॥ भवत्यात्मातथाब्रह्मनकिंचिच्चाखिलंचवा ॥ परमोपशमेऽलीनामोक्षनाम्नापरोच्यते ॥ १०२ ॥ संकल्पकलितात्वेषामंदाभासतयाजगत् ॥ नसम्यक्पश्यतीदंचिदृष्टिःपटलिनीयथा ॥ १०३ ॥ ईहानीहामयैरंतर्याचिदावलितामलैः ॥ साहिनोड्डयितुंशक्तापाशबद्धेवपक्षिणी ॥ १०४ ॥

अर्थ—वाणीका अविषय होनेसे नित्य चित्‌शक्ति अभावके समान प्राप्तहै इसी कारण आत्माके अभाव सिद्धान्तकी दशाको प्राप्त हुईके समान स्थितहै ॥ १०१ ॥ जो चित् स्थितहै वही शास्त्रीय व्यवहारमें साक्षीरूप होनेसे आत्मा और महान् होनेसे ब्रह्म होताहै और परमार्थदृष्टिसे वाणीकी प्रवृत्ति न होनेसे नहींके सदृशहै और सब शब्दोंकी प्रवृत्ति निमित्त होनेसे सब कुछहै और सब दृश्य पदार्थोंके शान्त होनेसे वही परम चित् मोक्ष नामसे कही जाती है ॥ १०२ ॥ संकल्पसे कलंकित मन्द प्रकाश होनेसे यही चित् संपूर्ण जगत्‌को ऐसे नहीं देखती जैसे परदा पडी हुई दृष्टि ॥ १०३ ॥ इष्ट और अनिष्टरूप मलोंसे कलंकित यह चित् संपूर्ण आकाशको ऐसे नहीं व्याप्त होसकती जैसे पाशसे बन्धी हुई पक्षिणी आकाशको ॥ १०४ ॥

संकल्पकलनेनैवयेकेचनजनाइमे ॥ पतितामोहजालेषुविनेत्राइवपक्षिणः ॥ १०५ ॥ संकल्पजालवलितैर्विषयावटपातिभिः ॥ पदवीगतबाधेयंनदृष्टामत्पितामहैः ॥ १०६ ॥ दिनैःकतिपयैरेवस्फुरिताधरणीतले ॥ वराकास्तेनतेनष्टामशकाःकुहरेष्विव ॥ १०७ ॥ यद्यज्ञास्यन्निमंतत्त्वंभोगदुःखार्थिनस्तदा ॥ भावाभावांधकूपेषुनापतिष्यन्हताशयाः ॥ १०८ ॥

अर्थ—संकल्पकी कल्पनासे जो मनुष्य बन्धे हुये हैं वे मोहकी जालमें ऐसे गिरे हैं जैसे व्याधसे पक्षीलोग ॥ १०५ ॥ संकल्पकी जालसे वेष्टित विषयरूपी गर्त (गढे) में गिरनेवाले हमारे पितामहोंने बाधारहित इस आत्मपदवीको नहीं देखी ॥ १०६ ॥ कुछ दिनकेही लिये हमारे दीन पूर्वज इस पृथिवीपर कुछ कालके लिये संपूरित होकर पुनः ऐसे नष्ट हुये जैसे धूममें मच्छर ॥ १०७ ॥ भोगके दुःखोंके अर्थी ये हमारे पूर्वज यदि इस आत्मतत्वके जानते तो दुर्बुद्धि होकर भाव अभावरूपी अंधकूपोंमें न गिरते ॥ १०८ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वंद्वमोहेनजंतवः ॥ धराविवरमग्नानांकीटानांसमतांगतः ॥ १०९ ॥ ईहितानीहिताकाराःकलनामृगतृष्णिकाः ॥ सत्यावबोधमेघेनयस्यशांताःसजीवति ॥ ११० ॥ कुतःकिलास्याःशुद्धायाअविच्छिन्नामलाकृतेः ॥ चंद्रिकायारुचःकोष्णाःकलंकाःकलनाश्रिताः ॥ १११ ॥ आत्मनेतुनमोमह्यमविच्छिन्नचिदात्मने ॥ लोकालोकमणेदेवचिरेणाधिगतोस्यहो ॥ ११२ ॥

अर्थ—इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुखदुःख शीतोष्ण आदिके मोहसे प्राणी पृथिवीके गर्तोंमें कीडोंकी तुल्यताको प्राप्त हुए ॥ १०९ ॥ इष्ट और अनिष्ट आकरवाली मृगतृष्णामय कल्पना जिसकी सत्य ज्ञानरूप मेघसे शान्त होगई हैं उसी प्राणीका जीवन इस संसारमें सफलहै ॥ ११० ॥ शुद्ध सदा निर्मल आकारवाली और चंद्र चन्द्रिकाके समान देदीप्यमान इस चित्‌के मन्दोष्ण कलंकोंकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ १११ ॥ निरन्तर मुझ चिदात्मारूप आत्माको मेरा नमस्कार है अहो लोकालोकके मणे आत्मदेव बहुत कालके पीछे तुमारा ज्ञान हुआहै ॥ ११२

परामृष्टोसिलब्धोसिप्रोदितोसिचिरायच ॥ उद्धृतोसिविकल्पेभ्योयोसिसोसिनमोस्तुते ॥ ११३ ॥ मह्यंतुभ्यमनंतायमह्यंतुभ्यंशिवात्मने ॥ नमोदेवाधिदेवायपरायपरमात्मने ॥ ११४ ॥ गतघनपरिपूर्णमिंदुबिंबंगतकलनावरणंस्वमेवरूपम् ॥ स्ववपुषिमुदितेस्वयंस्वसंस्थंस्वयमुदितंस्ववशंस्वयंनमामि ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादात्मोपदेशयोगो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—बहुत कालके अनन्तर तुम विचारित, लब्ध, प्रकर्षसे उदयको प्राप्त तथा विकल्पोंसे उद्धृत हो जो तुम होसो हो तुम आत्मस्वरूपको मेरा नमस्कार है ॥ ११३ ॥ अभिन्न मुझ तुझ (जीवाभिन्न ब्रह्म) अनन्त कल्याण, तथा इन्द्रादि देव और सब इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेव परमात्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ११४ ॥ मेघरहित पूर्णचन्द्रमाके बिम्बके सदृश, और अपने आनन्दैक रस आत्मशरीरमें अन्य आधार शून्य स्वयं परमार्थरूपसे स्थित अर्थात् निराधार स्वप्रकाश अपने आधीन और आत्मानन्द निजरूपको मैं स्वयं नमस्कार करता हुं ॥ ११५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादात्मोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

साक्षात्कार कियेहुये आत्माको अन्तःकरणमें निर्णय करके और उसको प्रणाम करके उसी आत्मबलसे जीते बन्धोंका अनुसंधान करके प्रल्हादका प्रसन्न होना इस विषयका वर्णन इस ३५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ प्रह्लादउवाच ॥ ओमित्येकोचिताकारोविकारपरिवर्जितः ॥ आत्मैवायमिदंसर्वंयत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ १ ॥ मेदोस्थिमांसमज्जासृग्गतीतोप्येषचेतनः ॥ अंतरस्थोहिसूर्यादीन्प्रकाशयतिदीपकः ॥ २ ॥ उष्णीकरोतिदहनंरसयत्यमृतंरसम् ॥ इंद्रियानुभवान्भुंक्तेभोगानिवमहीपतिः ॥ ३ ॥ तिष्ठन्नपिहिनासीनोगच्छन्नपिनगच्छति ॥ शांतोपिव्यवहारस्थःकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण अध्यारोपवान् ब्रह्मका बोधक और सब अपवादसे परिशिष्ट जो ब्रह्महै इसका बोधक महान् आकारवान् एक ओंकार जिसका नामहै और वृद्धि तथा जन्मादि विकारोंसे शून्य यह अनुभूयमान् आत्माही यह जगत्‌गत पदार्थ है न कि इसकेसिवाय अन्य ॥ १ ॥ मेदा, अस्थि, मांस, मज्जा, और रूधिर इनके अन्तर्गत तथा इनसे परेभी यह चेतन आत्माहै क्योंकि यह अन्तर्में स्थित होके दीपकके समान सूर्य्यादिककोभी प्रकाशित करताहै ॥ २ ॥ अग्निको अनुभवद्वारा उष्ण यही करताहै, अमृतको रसवान् यही अपनी सत्तासे करताहै, और इसी प्रकार अन्य इन्द्रियोंके स्पर्श आदि अनुभवोंको अपनी सत्ता सम्पादनसे ऐसे भोगताहै जैसे राजा भोगोंको ॥३॥ यह आत्मा सदा निष्क्रिय होनेपरभी मानो गतिमान स्थितहै अर्थात् धावन आदि व्यापारसे रहितहै क्योंकि पवनादिरूपसे यह सदा गतिहै इसीप्रकार कालरूपसे सदा चलता हुआभी कुलाल चक्रके सदृश तिलमात्रभी अन्यत्र नहीं जाता, शान्तभी सब व्यवहारोंमें स्थित, और करता हुआभी यह लिप्त नहीं होता ॥ ४ ॥

पूर्वमद्यतथेदानीमिहामुत्रोभयत्रच ॥ विहितोऽविहितोप्येषसमःसर्वासुवृत्तिषु ॥ ५ ॥ उद्भवत्यभयोभावंभुवनानिततस्ततः ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतंजगदावर्त्तयन्स्थितः ॥ ६ ॥ नित्यस्पंदमयोनित्यमपिदेवात्सदागतेः ॥ स्थाणोरप्यक्रियोनित्यमाकाशादप्यलेपकः ॥ ७॥ मनांसिक्षोभयत्येषपल्लवानीवमारुतः ॥ वाहयत्यक्षपंक्तिस्वामश्वालीमिवसारथिः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह आत्मा जैसा पूर्वकालमें था वैसाही वर्तमानकालमें है जैसा इस लोकमें है वैसाही परलोकमें रहेगा, इस लोक तथा पर लोक और संधिभूत अपने प्रस्थानादि लोकोंमें शास्त्रोंसे अनिषिद्ध वा विहित कर्मफलोंका भोक्ता होकरभी सब भोगवृत्तियोंमें समान रहताहै, क्योंकि दृश्य भोगोंसे दृष्टिको विकार नहीं सिद्ध होसकता ॥५॥ यथार्थमें यह अभयभी उन २ कर्मोंके अनुकूल स्वयं आविर्भूत होताहै, और तृणसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्त उत्पन्न भोक्ता तथा भोग्यभावको तथा उनके अधिकरण चतुर्दश भुवनरूप ब्रह्माण्डको अपने सन्निधान (सत्ता सन्निधान) मात्रसे चलता हुआ स्थितहै ॥ ६ ॥ यह नित्य अक्रिय होकेभी वायुदेवतासेभी अपनी नित्य आत्मसत्तासे अधिक गतिमान् है, स्थाणु (ठूंठ) सेभी अक्रिय, और आकाशसेभी नित्य लेप रहितहै ॥ ७ ॥ प्राणियोंके मनोंको यह ऐसे क्षोभित (कम्पित) करताहै जैसे पत्तोंको पवन,और अपनी इन्द्रियोंकी पंक्तिको ऐसे चलताहै जैसे अश्वोंकी पंक्तिको सारथी ८

अतिद्विविधदेहगेहेकर्मरतःसदा ॥ सम्राडिवात्मनिस्वस्थःसंस्थितोभोगभुग्विभुः ॥ ९ ॥ एषएवसदाऽन्विष्यःस्तुत्योध्यातव्यएवतु ॥ जरामरणसंमाहादनेनोत्तीर्यगम्यते ॥१०॥ सुलभश्चायमत्यंतंसुजेयश्चाप्तबंधुवत् ॥ शरीरपद्मकुहरेसर्वेषामेवषट्पदः ॥ ११ ॥ अनाकुष्टोप्यनाहूतःस्वदेहादेवलभ्यते ॥ मनागेवोपहूतोपिक्षणाद्भवतिसन्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—अति दुर्दशाग्रस्त इस शरीररूप गृहमें सदा यह कर्ममेंही तत्पर रहताहै, और भोगोंका भोगनेवाला यह विष्णुपरमात्मा सम्राट् (चक्रवर्ती राजा) के समान अपने आत्मामें स्थितहै ॥ ९ ॥ इसी परमात्माको सदा अन्वेषण करना (खोजना) चाहिये और इसीकी स्तुति तथा इसीका ध्यानभी करना चाहिये; क्योंकि प्राणी इसीके अन्वेषणसे जरा (वृद्धावस्था) और मरणके पार जाताहै ॥ १० ॥ यह आत्मज्ञानमात्रसेही अति सुलभहै, स्मरणमात्रसेही श्रेष्ठ बन्धुके समान वश करनेके योग्य, और सब प्राणीमात्रके हृदयकमलका भ्रमरहै ॥ ११ ॥ उच्च स्वरसे धारणरीतीसे आव्हानके बिनाही केवल प्रणवके उच्चरणमात्रसे स्मरण करनेसे यह आत्मा क्षणभरमेंही सन्मुख होताहै १२

नास्यसंसेव्यमानस्यसर्वसंपत्तिशालिनः ॥ धनानामीश्वरस्येवस्मयोगर्वोयथाभवेत् ॥ १३ ॥ आमोद इवपुष्पेषुतैलंतिलकणेष्विव ॥ रसजातिष्विवास्वादोदेवोदेहेषुसंस्थितः ॥ १४ ॥ अविचारवशादेषहृदयस्थोपिचेतनः ॥ नज्ञायतेचिराद्दृष्टोदृष्टबंधुरिवाग्रतः ॥ १५ ॥ विचारणापरिज्ञातएतस्मिन्परमेश्वरे ॥ अभ्युदेतिपरानंदोलब्धेप्रियजनेयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शोभायमान इस आत्माकी सेवा करनेपरभी जैसे धनीपुरुषको मान, गर्व वा अन्यका अनादर होताहै वैसा नहीं होता ॥ १३ ॥ जैसे पुष्पोंमें सुगन्ध, और तिलके कणोंमें तैल रहताहै तथा रस जातिवाले पदार्थोंमें स्वाद रहताहै ऐसेही यह आत्मदेव सम्पूर्ण देहोंमें स्थितहै ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थितभी यह चेतन आत्मा अविचारके कारणसे ऐसे नहीं ज्ञात होता जैसे सम्मुखभी स्थित चिरकालका दृष्ट बन्धु ॥ १५ ॥ विचारसे इस परमेश्वरके ज्ञात होनेपर ऐसा परमानन्द उदय होताहै जैसे प्रियजनके देख पडनेपर ॥ १६ ॥

अस्मिन्दृष्टेपरेबंधावुद्दामानंददायिनि ॥ आयांतिदृष्टयस्तास्तायाभिर्भंगोविलीयते ॥ १७ ॥ त्रुट्यंतेसर्वतःपाशाःक्षीयंतेसर्वशत्रवः ॥ नकृंततिमनांस्याशागृहाणीवद्रुराखवः ॥ १८ ॥ अस्मिन्दृष्टेजगद्दृष्टंश्रुतेस्मिन्सकलंश्रुतम् ॥ स्पृष्टेचास्मिञ्जगत्स्पृष्टंस्थितेस्मिन्संस्थितंजगत् ॥ १९ ॥ एषजागर्त्तिसुप्तानांप्रहरत्यविवेकिनाम् ॥ हरत्यापदमार्तानांवितरत्यमहात्मनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—सर्वोत्तम आनन्ददायी इस परमबन्धु दृष्ट होनेपर वे वे आत्मदृष्टि उदित होती हैं जिनसे जन्ममरण आदि विच्छेद नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ इसीके दृष्ट होनेसे सम्पूर्ण स्नेहरूपी पाश (फांसी) टूट जाती हैं, कामक्रोधादि सब शत्रु क्षीण होजाते हैं, और तृष्णा मनको ऐसे नहीं छेदन करती जैसे गृहोंके मूषक ॥ १८ ॥ इसी परमात्माके दृष्ट होनेसे सम्पूर्ण जगत् दृष्ट होजाताहै, इसीके श्रुत होनेसे सब श्रोतव्य श्रुत होताहै, इसीके स्पृष्ट होनेसे सब ब्रह्माण्ड स्पष्ट होजाताहै, और इसीके हृदयमें स्थित होनेसे संपूर्ण जगत् स्थित होताहै अर्थात् इसीके सत्तासे सम्पूर्ण जगत्की सत्ता प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ इन्द्रियादिके सुप्त होनेपर यही परमात्मा जागताहै, अविवेकियोंके ऊपर यही प्रहार करताहै, दुःखियोंकी आपत्तियोंको यही हरताहै, और परिच्छिन्न आत्मारूप ईश्वरके उपासकोंके वांछित फल यही देताहै ॥ २० ॥

विचरत्येषलोकेषुजीवएवजगत्स्थितौ ॥ विलसत्येवभोगेषुप्रस्फुरत्येववस्तुषु ॥ २१ ॥ आत्मनात्मानमेवातःशांतेनानुभवन्भवी ॥ स्थितःसर्वेषुदेहेषुतीक्ष्णत्वंमरिचेष्विव ॥ २२ ॥ चेतनाकलनारूपीसबाह्याभ्यंतराश्रितः ॥ जगत्पदार्थसंभारेसत्तासामान्यमास्थितः ॥ २३ ॥ एषशून्यत्वमाकाशेस्पंदएषसदागतौ ॥ प्रकाशश्चैवतेजस्तुपयस्स्वेषरसःपरः ॥ २४ ॥

अर्थ—जगत्की स्थितिमें यही आत्मा जीव होके विचरताहै, भोगोंमें विलास करताहै, और वस्त्र अलंकार तथा समाज उत्सव आदिमें यही शोभित होताहै ॥ २१ ॥ इसलिये यह आत्मा अपनेही शान्तरूपसे अपने आत्मरूपका अनुभव करते हुये सब देहोंमें ऐसे स्थितहै जैसे मरिचोंमें तीक्ष्णता ॥ २२ ॥ पूर्वोत्तर पदार्थोंके अनुसन्धानमें कलना वर्तमानकालके दर्शनमें कुरूप धारण करके बाह्य तथा आभ्यन्तर चेतन उपाधियोंमें यही आश्रितहै, और जगत्के पदार्थ समूहोंमें अधिष्ठान सत्ता सामान्य स्वभावसे यही आत्मा सबमें अनुगत होके स्थितहै ॥ २३ ॥ आकाशमें शून्यता, वायुमें निरन्तर गति, तेजोंमें प्रकाश तथा रसमय पदार्थोंमें उत्तम रस ॥ २४ ॥

काठिन्यमवनावेवमौष्ण्यमेवहुताशने ॥ शैत्यमेषनिशानाथेसत्ताचैषजगद्गणे ॥ २५ ॥ मषीपिंडेयथाकार्ष्ण्यंशैत्यंहिमकणेयथा ॥ यथापुष्पेषुसौगंध्यंदेहेदेहपतिस्तथा ॥ २६ ॥ यथासर्वगतासत्ताकालःसर्वगतोयथा ॥ प्रभुशक्तिर्महीयस्यसर्वदेशगतायथा ॥ २७ ॥ रूपालोकमनस्कारशुक्रंसत्वंतथात्मनः ॥ नित्यःसोयंमहादेवोदेवानामेवबोधकः ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथिवीमें कठिनता, अग्निमें उष्णता, चन्द्रमामें शीतता और ब्रह्मांड समूहोंमें सत्तारूप यही परमात्माहै ॥ २५ ॥ जैसे मषीके पिण्डमें कृष्णताहै और हिमके कणोंमें शीतता तथा जैसे पुष्पोंमें सौगन्ध्य है ऐसेही संपूर्ण देहोंमें देहोंका पति आत्मा प्रकाश कररहताहै ॥ २६ ॥ जिसप्रकार सत्ता तथा काल सर्वत्र हैं और जिसकी प्रभुशक्ति सर्व देशमें प्राप्त पृथिवी है ॥ २७ ॥ ऐसेही चक्षुष् आदि इन्द्रियोंके व्यापारोंके तथा मानसिक व्यापारोंसे युक्त जो प्रकाशहै वह सब आत्माहीका है अर्थात् वह प्रकाश मात्र स्वभावहै और यह नित्य महादेव इन्द्रियां तथा ब्रह्मादि देवोंकाभी प्रकाशक है ॥ २८ ॥

अहमेवास्मिमेनास्तिकलनापिकिलेतरा ॥ रेणुनेवाणुनाव्योम्निपद्मपत्रमिवांभसा ॥ २९ ॥ संभ्रमेणेव पाषाणेसंबंधोमयिनेतरैः ॥ सुखदुःखश्रियोदेहेमापतंतुपतंतुवा ॥ ३० ॥ तुंबकोपरिधाराश्चकानःक्षति रुपस्थिता ॥ दीपांगातिगतोरज्ज्वानालोकोबध्यतेयथा ॥३१॥ तथानायमहंबद्धःसर्वभावगणातिगः॥ संबंधःकोस्तुनःकामैर्भावाभावैरथेंद्रियैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं केवल शुद्धरूप हुं अन्य कल्पनासे मेरा किंचित्भी ऐसा संबन्ध नहीं है जैसे सूक्ष्मतम रेणुसे आकाशका वा जलका कमलसें ॥२९॥ जैसे भय वा कम्पन आदिका पाषाणमें संबन्ध नहीं है ऐसेही अन्य पदार्थोंसे मेरा कुछभी संबन्ध नहीं है सुखदुःखोंकी शोभा देहमें आवैं वा जांय मुझे इनसे कुछ नहीं कर्तव्य ॥ ३० ॥ तुम्बेके ऊपर जलकी धारा गिरै परन्तु तुम्बेके आकाशके तुल्य हमलोगोंकी क्या क्षति है क्योंकि दीपके अंगभूत तैलबत्ती और पात्रको अतिक्रमण करके जानेवाला दीपका प्रकाश जैसे रज्जुसे नहीं बांधा जाताहै ॥ ३१ ॥ ऐसेही यह आत्म-रूप तथा सब पदार्थोंसे परे मैं आत्मा किसीसे बांधा नहीं जाता और भाव तथा अभावरूप कामोंसे वा इन्द्रियोंसे मुझ शुद्ध चेतनका क्या संबन्धहै ॥ ३२ ॥

केनसंबध्यतेव्योमकेनसंबाध्यतेमनः ॥ शरीरेशतधायातेखंडनाकाशरीरिणः ॥ ३३ ॥ कुंभेभग्नेक्षतेक्षी णेकुंभाकाशस्यकाक्षतिः ॥ पिशाचकइवादृश्योमनोनामोदितंमुधा ॥ ३४ ॥ जडेतस्मिन्क्षतेबोधात्का नःक्षतिरुपस्थिता ॥ सुखदुःखमयीयस्यवासनातन्मनोमम ॥ ३५ ॥ अभवत्पूर्वमद्यैकासंपन्नाऽतनुनि र्वृतिः ॥ अन्योभुक्तेन्यआदत्तेप्यन्यस्यानर्थसंकटः ॥ ३६ ॥

अर्थ—आकाशको कौन बांधसकताहै मनको कौन मारसकताहै शरीरके सौ टुकडे होनेपरभी शरीर रहित आत्माका क्या खण्डन हुआ ? ॥ ३३ ॥ घट (घडे) के कपालके फूटनेसे छिद्रोंसे छत होनेसे और मृत्तिकाके न्हास (न्यूनता) से क्षीण होनेपरभी घटाकाशाकी क्या हानि ? अदृश्य पिशाचके समान यह मनही सर्वरूपसे व्यर्थ उदयको प्राप्त है ॥ ३४ ॥ मनसे भिन्न आत्मज्ञानसे उस जडमनका नाश होनेपरभी हमारी क्या हानि जिसकी सुख तथा दुःखमयी वासनाहै मेरा मन ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें अज्ञ दशामें था और अब तो अपरिमित सुखकी विश्रान्ति प्राप्त हुई है अहो ! अन्य भोक्ताहै अन्य ग्रहण करताहै और अन्यको अनर्थका संकट होताहै ॥ ३६ ॥

अन्यःपश्यत्यहोमौर्ख्यंकस्येयंखलुचक्रिका ॥ भुंक्तेप्रकृतिरादत्तेमनोदेहस्यसंकटः ॥ ३७ ॥ दुष्टात्मामौ र्ख्यमस्तीहनकिंचित्केवलेक्षतिः ॥ नमेभोगस्थितौवांछानचभोगविवर्जने ॥ ३८ ॥ यदायातितदायातु यत्प्रयातिप्रयातुतत् ॥ सुखेषुममनापेक्षानोपेक्षादुःखवृत्तिषु ॥ ३९ ॥ सुखदुःखान्यपायांतुयांतुवाप्यह मेषुकः ॥ वासनाविविधादेहेत्वस्तंचोदयमेववा ॥ ४० ॥

अर्थ—और अन्य देखताहै, यह भोक्ता आदिकी एकतारूप अध्यासकी मूर्खता किस इन्द्रजालिककी च-क्रके सदृश परिवर्तन चातुरी है, चेतन प्रतिबिम्बित प्रकृति भोग करती है, मन ग्रहण करताहै और देहको संकट (दुःख) होताहै ॥ ३७ ॥ प्रकृति आदिके दोषोंसे आत्माके दूषित (मलिन) होनेसे यह मूर्खता होती है, और वि-चारसे शुद्धमें कुछभी मूर्खता नहीं है इसलिये शुद्धमें कुछ हानि नहीं है न तो भोगोंकी स्थिति तथा उनके वर्जनमें मेरी आकांक्षा नहीं है ॥ ३८ ॥ जो आताहै वह आवै और जो जाताहै वह जावै, न तो सुखोंमें मेरी आकांक्षाहै और न दुःखकी वृत्तियोंमें उपेक्षाहै ॥ ३९ ॥ सुख तथा दुःख आवैं या जावैं मैं इनमें कौन ? और इसीप्रकार दे-होंमें उदय वा अस्तको ॥ ४० ॥

प्रयांतुनाहमेतासुनचैताममकाश्चन ॥ एतावंतमहंकालमज्ञानरिपुणाहतः ॥ ४१ ॥ हत्वाविवेकसर्वस्व मेकांतमवपोथितम् ॥ वैष्णवेनप्रसादेनस्वसमुत्थेनचारुणा ॥ ४२ ॥ इदानींसंपरिज्ञायमयैषपरिमोषि तः ॥ अहंकारपिशाचोयंशरीरतरुकोटरात् ॥ ४३ ॥ परावरबोधमंत्रेणमयेदानीमपाकृतः ॥ निरहंकारय क्षोयंमच्छरीरमहाद्रुमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्राप्तहों न तो मैं इनमें हुं और न ये कोई मुझमें हैं, इतने कालतक मैं अज्ञानरूप शत्रुसे मारागया ॥ ४१ ॥ और इसी अज्ञानरूप शत्रुने मेरा सर्वस्व अपहरण करके मुझे नष्ट करदिया, और विष्णुभगवान्के वरदानरूप अनुग्रहसे स्वयं प्रकटीभूत विचारसे ॥ ४२ ॥ इससमय इस शत्रुको मैं जानकर इसको त्यागा, और इस अहंकाररूप पिशाचको शरीररूप वृक्षके खोखलसे, परब्रह्मके ज्ञानरूप मन्त्रसे मैंने निकालदिया, और अहंकाररूप यक्ष जिससे निकल गयाहै, ऐसा यह मेरा शरीररूप महावृक्ष ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पुण्यतामलमायातःप्रफुल्लइवराजते ॥ प्रशांतमोहदारिद्र्योदुराशादोषसंक्षये ॥ ४५ ॥ विवेकधनसंभारान्स्थितोस्मिपरमेश्वरः ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलंदृष्टंद्रष्टव्यदृश्ययः ॥ ४६ ॥ तत्प्राप्तमधुनायेननप्राप्तमवशिष्यते ॥ दिष्ट्यादूरोज्झितानर्थामपेतविषयोरगाम् ॥ ४७ ॥ संशांतमोहनीहारांशांताशामृगतृष्णिकाम् ॥ रजोरहितसर्वाशांशीतलोपशमद्रुमाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अति पवित्रताको प्राप्त होके विकसितके समान शोभित होरहाहै दुष्ट आशाके दोषोंकी शान्तिके अर्थ प्रशान्त मोहरूप दारिद्र्य ॥ ४५ ॥ मैं विवेकरूप धनके समूहोंको पाकर परमेश्वररूप मैं स्थितहुं, जो कुछ जानने योग्यथा वह सम्पूर्ण मैंने जानलिया और जो कुछ देखनेकी दृष्टिथी उन सबको मैंने देखलिया ॥ ४६ ॥ और इससमय मुझे वह (आत्मज्ञान) पदार्थ प्राप्त हुआहै जिससे कोईभी प्राप्त होने योग्य पदार्थ अब शेष नहीं रह जाता और सौभाग्यसे दूर त्यागे हुये अनर्थ तथा विषयरूप सर्पोंसे शून्य ॥ ४७ ॥ मोहरूप नीहार (तुषार) से वर्जित, आशारूप मृगतृष्णासे रहित, सम्पूर्ण दिशाओंमें रजोगुण, वा धूलिसे वर्जित, तथा उपशमरूप शीतल वृक्ष संयुक्त ४८

प्राप्तोस्मिविततांभूमिमुन्नतांपारमार्थिकीम् ॥ स्तुत्याप्रणत्याविज्ञप्त्याशमेननियमेनच ॥ ४९ ॥ लब्धोयंभगवानात्मादृष्टश्चाधिगतःस्फुटम् ॥ अहंकारपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः ॥ ५० ॥ स्वभावाद्भगवानात्माविष्णोर्ब्रह्मसनातनम् ॥ इंद्रियोरगगर्त्तेषु मरणश्वभ्रभूमिषु ॥ ५१ ॥ तृष्णाकरजकुंजेषुकामकोलाहलेषुच ॥ वासनावनजालेषुजन्मकूपांतरेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—विशाल तथा अति उच्च इस परमार्थमयी भूमिपर मैं इससमय प्राप्त हुआहुं, विष्णुभगवान्की स्तुतिसे, प्रणामसे, प्रार्थनासे, नियमसे, और शमसे ॥ ४९ ॥ यह भगवान् आत्मा हमको लब्ध हुये और प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त तथा दृष्ट हुये, और विष्णुभगवान्कीही कृपा (वरदान) से अहंकार पदसे परे यह आत्मा स्मृति पथमें प्राप्त हुआहै ॥ ५० ॥ विष्णुकीही कृपासे यह सनातन ब्रह्म भगवान् आत्मा अति चिरकालसे स्मरणको प्राप्त हुआहै और अज्ञ इन्द्रियरूप सर्पोंके बिलहैं मरणरूप जिनमें गर्तमय भूमि हैं ॥ ५१ ॥ तृष्णारूप काटेंसहित वृक्षोंके जिनमें कुंजहैं. कामनारूप पक्षियोंके जहां कोलाहल शब्द होरहे हैं तथा अनेक जन्म जन्मान्तररूप जिनमें कूपहैं ॥ ५२ ॥

दुःखदावाग्निदाहेषुदुःखदावाग्निहारिषु ॥ पातोत्पातदशालक्षैर्मज्जनोन्मज्जनभ्रमैः ॥ ५३ ॥ आविर्भावतिरोभावैराशापाशविचेष्टनैः ॥ अहंचिरमहंकारद्विषासमवमोषितः ॥ ५४ ॥ निशायामल्पवीर्यात्मापिशाचेनेवजंगले ॥ स्वयमेवत्वथेदानींक्रियाशक्त्यास्वयैवहि ॥ ५५ ॥ शौरिणाव्यपदेशेनविवेकश्रीर्विबोधिता ॥ प्रबुद्धेभवतीशानेतमहंकारराक्षसम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तथा दुःखरूपी दावाग्निके दाह जिसमें होरहे हैं, और दुःखरूप दावाग्निसे जिनमें मनुष्योंके धन वा प्राणोंके हरनेवाले जहां चोरहैं ऐसे वासनाओंके जालोंमें अधःपतन तथा ऊर्ध्वपतनके तुल्य विपत्ति तथा सम्पत्तिके समूहोंसे, तथा डूबने और तिरनेके समान अधोगति तथा सद्गतियोंसे ॥ ५३ ॥ संसारमें जन्मादिके आविर्भाव और तिरोभावोंसे, और आशारूप फांसीकी चेष्टाओंसे अहंकाररूप शत्रुसे आत्माके अपहरणद्वारा मैं ऐसा पीडित किया गया ॥ ५४ ॥ जैसे अल्प पराक्रमी मनुष्य जंगलमें पिशाचसे, और अब विष्णुकी प्रसन्नतासे विवेककी श्री स्वयं प्रदीप्त हुई है ॥ ५५ ॥ और उस विवेककी श्रीसे अपने आत्माके प्रबुद्ध होनेपर अहंकाररूप राक्षसको ॥ ५६ ॥

नपश्यामिनभोदीपेज्वलितेतिमिरंयथा ॥ तस्याहंकारयक्षस्यमनोविवरवासिनः ॥ ५७ ॥ दीपस्येवप्रशांतस्यनवेद्मिगतिमीश्वरः ॥ दृष्टएवत्वयीशानेपलायनपरायणः ॥ ५८ ॥ संपन्नोमदहंकारश्चोरःसूर्योदयेयथा ॥ असदभ्युत्थितेतस्मिन्नहंकारेपिशाचवत् ॥ ५९ ॥ गतेतिष्ठाम्यहंस्वस्थोनिर्गोनसइवद्रुमः ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिजगत्यस्मिन्प्रबोधवान् ॥ ६० ॥

अर्थ—अब मैं ऐसे नहीं देखता जैसे दीपके प्रज्वलित होनेपर अन्धकारको, और मनरूप बिलके निवासी उस अहंकाररूप यक्षकी ॥ ५७ ॥ गति मैं इससमय शुद्ध आत्मस्वरूप होके इसप्रकार नहीं जानता जैसे शान्त दी-

पकी, और हे भगवन् ! आपके दृष्ट (अनुभूत) मात्र होनेसेही मेरा अहंकार भागनेमें ऐसे तत्पर होजाताहै ॥५८॥ जैसे सूर्य उदयके समयमें चोर, और पिशाचके तुल्य मिथ्या आविर्भूत इस अहंकारके ॥ ५९ ॥ चले जानेपर मैं ऐसा स्वस्थ स्थितहुं जैसे अजगर शून्य वृक्षसहित वाटिका, इस जगत्में ज्ञानवान् मैं शान्तहुं, तथा सुखी होताहुं ॥ ६० ॥

तस्करेणोज्झितोस्मीति निर्वृतोस्मिचिरोदयम् ॥ शैत्यमभ्यागतोस्म्यंतःशांताशामृगतृष्णिकः ॥६१॥ प्रावृडंबुभरस्नातःशांतदावइवाचलः ॥ प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदेस्वार्थविचारतः ॥ ६२ ॥ कोमोहःकानि दुःखानिकाःकदाशाःकआधयः ॥ नरकस्वर्गमोक्षादिभ्रमाःसत्यामहकृतौ ॥ ६३ ॥ भित्तावेवप्रवर्त्तंते चित्रेहाननभस्तले ॥ अहंकारकलापीतेचित्तेज्ञानचमत्कृतिः ॥ नराजतेंशुकेम्लानेयथाकुंकुमरंजना ॥६४॥

अर्थ—आत्माके अपहारी अहंकारसे इस समय मैं मुक्त हुं, और इसीसे चिरकालतक अभ्युदयपूर्वक शान्त हुं, और आशारूप मृगतृष्णाके शान्त होनेसे अन्तःकरणसे मैं ऐसे शीतल हुं ॥ ६१ ॥ जैसे वर्षाकालके जलसमूहसे स्नान किये दावाग्निके शान्त होनेसे पर्वत, आत्मपदके विचारसे अहंकारके धोडालननेसे ॥ ६२ ॥ कौन मोहहै क्या दुःखहै, कौनसी दुष्ट आशाहैं, और कौन मानसीव्यथाहैं क्योंकि नरक स्वर्ग और मोक्ष आदि भ्रम अहंकाररूप ॥ ६३ ॥ भित्तिके होनेहीपर प्रवृत्त होते हैं न कि आकाशमें अहंकार चित्तजनित उन्माद चित्तमें रहनेसे ज्ञानका चमत्कार ऐसे नहीं शोभित होता जैसे मलिन वस्त्रमें कुंकुमका रंग ॥ ६४ ॥

निरहंकारजलदेतृष्णानीहारविवर्जिते ॥ भातिचित्तशरद्व्योम्निस्वच्छताकांतिशालिनी ॥ ६५ ॥ निरहंकारपंकायसंप्रसन्नांतरायच ॥ मह्यमानंदसरसेतुभ्यमात्मन्नमोनमः ॥ ६६ ॥ शांतेंद्रियोग्रग्राहायक्षीणचित्तौर्ववह्नये ॥ आनंदांबुधतेतुभ्यंमह्यमात्मन्नमोनमः ॥ ६७ ॥ गताहंकारमेघायशांताशादाववह्नये ॥ महामानंदशैलायविश्रांतायनमोनमः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघसे विनिर्मुक्त तथा तृष्णारूप कुहिरासे वर्जित चित्तरूपी शरत्कालके आकाशमें, दीप्तिसे शोभायमान स्वच्छतारूप चन्द्रचन्द्रिका प्रकाश करती है ॥ ६५ ॥ अहंकारपंकसे शून्य तथा अति प्रसन्न, और आनन्दके समुद्र साक्षीरूप ब्रह्मरूप तुम आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ६६ ॥ हे आत्मन् शान्तहै इन्द्रियरूप उग्र ग्राह जिसके, और क्षीण होगयाहै चित्तरूप वडवाग्नि जिसकी ऐसे आनन्दके समुद्र प्रत्यक् आत्मस्वरूपको नमस्कार है ॥ ६७ ॥ अहंकाररूप मेघसेरहित, और आशारूप दावानल जिसका शान्तहै ऐसे विशाल मुझ आत्मरूप पर्वतको मेरा नमस्कारहै ॥ ६८ ॥

प्रफुल्लानंदपद्मायशांतचिंतामयोर्मये ॥ मह्यंसन्मानसायात्मंस्तुभ्यमंतर्नमोनमः ॥ ६९ ॥ संविदाभासयक्षायपद्मकोटरवासिने ॥ सर्वमानसहंसायस्वात्मनेंतर्नमोनमः ॥ ७० ॥ कलाकलितरूपायनिष्कलायामृतात्मने ॥ सदोदितायपूर्णात्मन्शशिनेतेनमोनमः ॥ ७१ ॥ सदोदितायशांतायमहाहृत्ध्वांतहारिणे ॥ सर्वगायाप्यदृश्यायचित्सूर्यायनमोनमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—विकसित आनन्दरूप कमलसहित और चिन्ता वा रोगरूप तरंगसे बर्जित प्रत्यक् साक्षीरूप मुझ आत्मारूप स्वच्छ मानससरोवरको मेरा नमस्कारहै ॥ ६९ ॥ बुद्धि और बुद्धिकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चेतनरूप यक्षयुक्त तथा हृदयकमलके कोटरके निवासी सबके मानसके हंसरूप आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ७० ॥ हे पूर्ण आत्मन् पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्म इन्द्रिय, पंचप्राण और मन बुद्धिरूप षोडश कलाओंसे कलिपतरूपसाहित निरवयव अमृतरूप और सदा उदयको प्राप्त चन्द्रमारूप तुमको नमस्कारहै ॥ ७१ ॥ सबकालमें उदयको प्राप्त, शान्तरूप हृदयके महाअज्ञानान्धकारके नाशक, और सर्वगामी होनेपरभी अदृश्यरूप चित्तरूप सूर्यको बार २ नमस्कारहै ॥ ७२ ॥

अस्नेहस्नेहदीपायवृत्तिनिष्क्रांतवर्तिने ॥ स्वभावाधारधीरायचिद्दिपायनमोनमः ॥ ७३ ॥ मदनानलसंतप्तेशीतेनमनसामनः ॥ भग्नमंतर्मयातप्तमयसेवबलादयः ॥ ७४ ॥ इंद्रियेणेंद्रियंछित्त्वाछित्त्वाचमनसामनः ॥ अहंकृतिमहंकृत्याछित्त्वाशेषोजयाम्यहम् ॥ ७५ ॥ भावेनाभावमाच्छिद्यहित्वातृष्णामतृष्णया ॥ निष्पिष्यप्रज्ञयाऽप्रज्ञांज्ञोज्ञःसत्योस्मितेनमः ॥ ७६ ॥

अर्थ—तैलरहित, परमप्रेमको प्रदीप्त करनेवाले, वृत्तिद्वारा निष्क्रमण बत्ती संयुक्त, सब पदार्थोंके स्वभावोंके आधार, और बुद्धिके प्रकाशक दीपरूप आत्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ ७३ ॥ और जैसे कृष्णवर्ण लोहेसे तप्त लोहाबलसे काटा जाताहै ऐसेही कामरूप अग्निसे सन्तप्त मनरूप लोहको शमआदि गुणयुक्त मनरूप ठंढे लोहसे मैंने इससमय आपके अनुग्रहसे काट डाला ॥ ७४ ॥ हे भगवन् ! साक्षीचेतनकी ओर झुकी नेत्रआदि इन्द्रियसे बहिर्मुख इन्द्रियोंको छेदन करके इसीप्रकार मनसे मनका तथा अहंकारका छेदन करके शेष चिन्मात्र मैं सबसे उत्कृष्टहुं

॥ ७५ ॥ श्रद्धासे अश्रद्धाको छिन्न करके, सन्तोषसे तृष्णाको मारकर, और विचारसे सन्देहादिरूप अज्ञानको नष्ट करके ज्ञातृताके अभिमानसे शून्य केवल ज्ञप्तिमात्र आप सत्यरूप आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ७६ ॥

मनसामनसिच्छिन्नेनिरहंकारतांगते ॥ भावेनगलितेभावेस्वच्छस्तिष्ठामिकेवलः ॥ ७७ ॥ निर्भावंनिर हंकारंनिर्मनस्कमनीहितम् ॥ केवलंस्पंदशुद्धात्मन्येतत्तिष्ठतिमेवपुः ॥७८॥ हेलानुकंपितानंतविश्वेशा दतिशायिनी ॥ परमोपशमोपेताजातेयंममनिर्वृतिः ॥ ७९ ॥ प्रशांतमोहवेतालोगताहंकारराक्षसः ॥ क दाशारूपिकोन्मुक्तोजातोस्मिविगतज्वरः ॥ ८० ॥

अर्थ—मनसे मनके छिन्न होनेपर, अहंकारसे रहित होनेपर तथा ब्रह्माहंभावसे देहादिमें अहंभावके गलित होनेपर इससमय मैं केवल स्वच्छ चित्रूप स्थितहूं ॥ ७७ ॥ भावनाके हेतुभूत बुद्धिसे शून्य, अहंकार तथा मनसे शून्य, और इच्छाके हेतु चित्तसे वर्जित मेरा शरीर इससमय केवल प्राण क्रियामात्रसे शुद्ध जीवन्मुक्त आत्मामें स्थितहै ॥७८॥ क्रीडामात्रसे भोग ऐश्वार्य्यादिके सम्प्रदानसे अपने अनन्त भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले विश्वके स्वामी ब्रह्मा विष्णु और महेशभी अधिक और परम शान्तिसेयुक्त निरतिशय आनन्दमें विश्रान्ति यह मुझे उत्पन्न हुईहै ॥७९ मोहरूप वेतालसेरहित, अहंकाररूप राक्षससेहीन और दुष्ट आशारूप पिशाचीसे मुक्त इससमय मैं संतापरहितहुं ॥८०

तृष्णारज्जुगुणंछित्त्वामच्छरीरकपंजरात् ॥ नजानेक्कगतोड्डीयदुरहंकृतिपक्षिणी ॥ ८१ ॥ उद्धूलितेघना ज्ञानाकुलायेकायपादपात् ॥ नजानेगतउड्डीयक्काहंभावविहंगमः ॥ ८२ ॥ दुराशादीर्घदौरात्म्यधूत्रमी सराभोगभस्मना ॥ भयभोगिहितादिष्ट्याभूयस्योवासनाःक्षताः ॥ ८३ ॥ एतावंतमहंकालंकोभूवंचि त्रम् ॥ येनाहमेषमिथ्यैवदृढाहंकारतांगतः ॥ ८४ ॥

अर्थ—तृष्णारूप रस्सीको तोडकर मेरे शरीररूप पिंजरेसे दुष्ट अहंकाररूप पक्षिणी उडकर न जाने इससमय कहां चलीगई ॥ ८१ ॥ ज्ञानके अभ्याससे धूलिकरणसे उडाये घन अज्ञानरूप कुलाय (नीड) में शरीररूप वृक्षसे देहादिमें अहंभावरूप पक्षी न जानें उडके कहां चलागया ॥ ८२ ॥ दुष्ट आशाओंसे तथा दुष्ट देहादिमें आत्माभिमानसे मलिन भयरूप सर्पोंकी हितकारिणी अनन्त वासना इससमय सौभाग्यसे क्षयको प्राप्त हुई हैं ॥ ८३ ॥ अहो कैसे आश्चर्यका विषयहै कि इतने कालतक मैं क्या था कि जिसमें मैं मिथ्या दृढ अहंकारताको प्राप्त हुआहुं ॥ ८४ ॥

अद्याहमस्मिजातोयमहमद्यमहामतिः ॥ अहंकारमहाभ्रेणयत्कृष्णेनालमुज्झितः ॥ ८५ ॥ दृष्टोयमात्मा भगवांतस्थैवाधिगतोमया ॥ आलब्धश्चानुभूतोंगस्वानुभूतौनियोजितः ॥ ८६ ॥ गतास्पदंगतमनन गतैषणंतिरस्कृतंनिपुणमहंकृतिभ्रमैः ॥ निरीहितंव्यपगतरागरंजनंविकौतुकंप्रशममिदंगतंमनः ॥ ८७ ॥ दुरुत्तराःसमविषमामहापदःसदुःसहाःप्रभवनदीर्घदोषदाः ॥ गताःक्षयंसमधिगतोमहेश्वरश्चिवदद्वयो पगतमचित्त्वमंतरे ॥ ८८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे ब्रह्मतात्मलाभचिंता नाम पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—इस समय मैं अनुभूयमान निरतिशय आनन्दरूप होगया हुं क्योंकि इस समय महान् अपरिच्छिन्न ब्रह्माकार मति अर्थात् ब्रह्मकी साक्षात्कार वृत्ति युक्त मैं अहंकार महाकृष्ण मेघसे सर्वथा विनिर्मुक्त हुं ॥८५॥ क्योंकि वाक्यप्रमाणसे दृष्ट मननसे अधिगत, समाधिमें मनसे चिरकालतक आलिंगनसे लब्ध, अपने देहके समान अनुभवमें इस आत्मा भगवान्को मैंने नियुक्त किया ॥ ८६ ॥ और इस समय विषय रहित इष्ट विषयोंके मननसे रहित एषणा (इच्छा) शून्य, कुशलतासे त्यक्त, अहंकारके भ्रमसे वर्जित, चेष्टारहित रागके रंगसे रहित, भोगकी इच्छासे वर्जित और इसीसे इन्धन रहित अग्निके समान शान्त यह मेरा मन होगयाहै ॥ ८७ ॥ उतरनेमें दुःसाध्य, कदाचित् चिरकालतक एकरूप, कदाचित् प्रति क्षणके दुःखसे विलक्षण, सुदुःसह, और नानाप्रकारके योनियोंकी परम्परा तथा दीर्घ दोष काम क्रोध लोभ मोहादिको देनेहारी महा आपत्तियां इस समय क्षयको प्राप्त होगई हैं और अद्वयचित् महेश्वर अर्थात् पूर्णानन्द आत्मा प्राप्त हुआ, क्योंकि साक्षीचेतनमें जडता ज्ञानसे बाधितहै ॥ ८८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मात्मलाभचिंता नाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

दुर्लभ आत्माको प्राप्तहोके बार २ प्रणाम करता हुआ, स्तुति करताहै और एकान्तमें कान्तके साथ कामिनीके समान आनन्दसे रमण करताहै इस विषयका वर्णन इस ३६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ प्रह्लादउवाच ॥ आत्मासर्वपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः ॥ दिष्ट्यालब्धोसिभगवन्नमस्तेस्तुमहात्मने ॥ १ ॥ अभिवंद्याथचालोक्यचिरमालिंग्यसेमया ॥ कोन्यःस्यात्त्वदृतेबंधुर्भगवन्भुवनत्रये ॥ २ ॥ हंसिपासिददासित्वंस्तौषियासिविवल्गसि ॥ अयंप्राप्तोसिदृष्टोसिकिंकगोषिकगच्छसि ॥ ३ ॥ स्वसत्तापूरिताशेषविश्वविश्वजनीनभोः ॥ सर्वत्रलक्ष्यसेनित्यमधुनाक्वपलायसे ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रल्हादजी बोले-मनुष्यके आनन्दसे लेके ब्रह्माके आनन्दपर्य्यन्त जितने आनन्द हैं उन सबसे परे जो आत्माहै वह इस समय प्रारब्धसे चिरकालके पीछे स्मरणमे आयाहै, हे भगवन् ! तुम सौभाग्यसे प्राप्त हुये हो तुम अपरिच्छिन्न आत्मको मेरा नमस्कारहै ॥ १ ॥ हे भगवन् ! दर्शन तथा वन्दना करके समाधिमें समवृत्तिसे अनुभव किये जाते हो हे भगवन् आपके सिवाय तीनों लोकमें परमप्रिय बन्धु कौनहै ॥ २ ॥ जबतक तुम दृष्ट और प्राप्त नहीं हो, तबतक मृत्यु होके अभक्तोंको मारते हो, भक्तोंकी रक्षा करते हो, उपासना कर्मोंसे आराधित मनोरथोंको देते हो, स्तुति कर्ता आदिके रूपसे स्तुति करते हो, यातृके रूपसे जाते हो, और सबके रूपसे व्यवहारभी करते हो, और मैंने तो यह तुमको अपरोक्षरूपसे प्राप्त तथा दृष्टभी करलिया अब मेरे प्रति तुम क्या करसकते हो, और कहां जासकते हो ॥३ ॥ हे आपनी सत्तासे सम्पूर्ण लोकोंके पुरक ! हे संसारके हित प्रभो तुम सर्वत्र मुझे भान होते हो, और अब तुम कहा भागते हो ॥ ४ ॥

आवयोरंतरंभूरिजन्मव्यवहितांतरम् ॥ अदूरमद्यसंपन्नंदिष्ट्यादृष्टोसिबांधव ॥ ५ ॥ नमस्तेकृतकृत्यायकर्त्रेभर्त्रेनमोस्तुते ॥ नमःसंसारवृंतायनित्यायविमलात्मने ॥ ६ ॥ नमश्चक्राब्जहस्तायनमश्चंद्रार्धधारिणे ॥ नमोविबुधनाथायनमस्तपद्मजन्मने ॥ ७ ॥ वाच्यवाचकदृष्ट्यैवभेदोयमिहावयोः ॥ असत्याकल्पनैवेषावीचिवाच्यंभसोरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—अनेक जन्मोंसे व्यवधान हमसे तुमसे अन्तर करनेवाला महत् अज्ञान था, और इस समय उस अज्ञानके नष्ट होनेसे अभेदरूप परम समीपताहै, हे बान्धव सौभाग्यसे तुम देखपडे हो ॥५॥ आत्मज्ञानसे कृत कृत्यरूप तुमको नमस्कारहै, संसारके कर्ता भर्ता तुमको नमस्कारहै, और संसाररूप पत्तोंके गुच्छे नित्य तथा विमलरूप आत्मरूप तुमको नमस्कारहै ॥ ६ ॥ चक्र कमलादिधारी विष्णु, अर्द्धचन्द्रधारी शिव, देवताओंके स्वामी इन्द्र तथा कमलयोनि ब्रह्मारूप तुम आत्माको नमस्कारहै ॥ ७ ॥ हमारा तुमारा यह भेद केवल व्यवहारदृष्टिसे है, और जैसे समुद्र तथा तरंगोंकी भेदकलपना मिथ्याहै ऐसेही यहभी मिथ्याहै ॥ ८ ॥

त्वमेवानंतयानंतवस्तुवैचित्र्यरूपया ॥ भावाभावाविलासिन्यानित्ययैवविजृंभसे ॥ ९ ॥ नमोद्रष्ट्रेनमःस्रष्ट्रेनमोनंतविकासिने ॥ नमःसर्वस्वभावायनमस्तेसर्वगात्मने ॥ १० ॥ प्रतिजन्मचिरंबह्वयोदीर्घदुःखवतामय ॥ त्वयामयोपदिष्टेनदग्धेनापहतौजसा ॥ ११ ॥ आलोकितालोकदृशोदृष्टादृष्टांतदृष्टयः ॥ नप्राप्तस्तत्त्वयानेनकिंचिदासादितंभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे अनन्त भगवन् ! प्रवाहरूपसे अनादि, विचित्र वस्तुरूप, भाव और अभावमें विलासिनी तथा नित्यरूप अनन्त कल्पनासे तुमही व्यवहार करते हो ॥ ९ ॥ रचित पदार्थोंके द्रष्टा, उनके स्रष्टा, रचित पदार्थोंके प्रकाशक, इसीसे सर्वस्वभावरूप, और अधिष्ठानरूपसे सर्वत्र प्राप्त आत्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ १० ॥ प्रतिजन्ममें दीर्घ दुःखमय मुझ जीवरूप दशाको प्राप्त, अपने कामादिसे दूषित, असत्मार्गमें प्रवृत्त, इसीसे लुप्त ईश्वरस्वभाव आपने ऊर्ध्व तथा अधोलोकके संचारके भ्रमोंको, तथा दृष्टान्तकी दृष्टियोंको देखा, इस कारणसे बाह्य पदार्थके दर्शनसे तुमने अपने स्वरूपको नहीं पाया क्योंकि तीनोंलोकके दर्शनसेभी अल्पभी पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती ॥ ११ ॥ १२ ॥

सर्वमृत्काष्ठपाषाणवारिमात्रमिदंजगत् ॥ नेहास्तित्वदृतेदेवयत्प्राप्तौनाभिवांछति ॥ १३ ॥ देवायमद्यलब्धोसिदृष्टोस्यधिगतोसिच ॥ संप्राप्तोसिगृहीतोसिनमस्तेस्तुनमुह्यसि ॥ १४ ॥ योक्ष्णोःकनीनिकारश्मिजालप्रोतवपुःस्थितः ॥ देवदर्शनरूपेणकथंसोत्रनदृश्यते ॥ १५ ॥ यस्त्वक्स्पर्शौस्पृशन्सर्वंगंधंतैलंतिलयथा ॥ स्पर्शमंतःकरोत्येषसकथंनानुभूयते ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण जगत् मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण, और जलमात्रहै, हे देव ! इस ब्रह्माण्डमें आपके सिवाय ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्तिसे पुरुषार्थकी इच्छा पूर्ण हो ॥ १३ ॥ हे देव ! इससमय यह तुम लब्ध, दृष्ट, अधिगत और संप्राप्त तथा गृहीत तो तुम मोहसे पार हो, इसलिये तुमको नमस्कारहै ॥ १४ ॥ हे देव ! जो आप दृष्टिरूपसे जो नेत्र इन्द्रियके द्वारा अन्तःकरणके घटआदि विषयदेशके गमनमें अन्तःकरण अब छिन्न चैतन्यरूपसे दोनों नेत्रोंकी कनीनिकाके किरणजालमें ग्रथित शरीर होके स्थित हो वह अब यहां क्या नहीं अनुभूत होते, अर्थात् सब कुछ होते हो ॥ १५ ॥ जो त्वग् इन्द्रियको तथा उष्णता आदि स्पर्शोंको अनुभव करता हुआ जैसे तिलके अन्तर्गत तैल अपनेमें तिल संयुक्त पुष्पके गन्धको ग्रहण करताहै ऐसेही शीत आदि स्पर्शोको अपनेमें अन्तर्गत करताहै वह भला कैसे अनुभूत नहीं होता ॥ १६ ॥

यःशब्दश्रवणादंतःशब्दशक्तिपरामृशन् ॥ रोमांचञ्जनयत्यंगेसदूरस्थःकथंभवेत् ॥ १७ ॥ जिह्वापल्लवलग्नानिस्वदितस्याग्रतोपिच ॥ स्वदंतेयस्यवस्तूनिस्वदतेसनकस्यच ॥ १८ ॥ पुष्पगंधानुपादायघ्राणहस्तेनदेहकम् ॥ यआलोकयतिप्रीत्याकस्यासौनकरेस्थितः ॥ १९ ॥ वेदवेदांतसिद्धांततर्कपौराणगीतिभिः ॥ योगीतःसकथंह्यात्माविज्ञातोयातिविस्मृतिम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो शब्दके श्रवणमात्रसे शब्दकी शक्तिको अर्थात् गानकाव्यआदि गुणके चमत्कारको प्रकाश करता हुआ अंगमें उत्पन्न करताहै वह भला दूरस्थ कैसे होसकताहै ॥ १७ ॥ जिव्हारूप पल्लवमें लग्न सम्पूर्ण वर्णवस्तु जिस स्वारसिक प्रेमविषयको प्रथम ही आश्वादित (अनुभूत) होते हैं वह भला किसको नहीं अनुभूत होताहै ॥ १८ ॥ जो प्राणरूप हस्तसे कण्ठमें धारण किये हुये माला अलंकारादि पुष्पोंके गन्धोंको ग्रहण करके माला अलंकारादिसे अलंकृत अपने देहको देखताहै वह भला किसको हस्तमें स्थितके समान प्रत्यक्ष नहीं है ॥ १९ ॥ वेदान्तोंके सिद्धान्तोंसे तर्कोंसे और पुराणोंके गीतोंसे जो गान किया गयाहै वह आत्मा विज्ञात होके भला कैसे विस्मृत होसकताहै ॥२०

सैवेहदेहभोगालीसुभगापीयमद्यमे ॥ अंतर्नस्वदतेस्वच्छेत्वयिदृष्टेपरावरे ॥ २१ ॥ त्वयाविमलदीपेनभानुःप्रकटतांगतः ॥ त्वयाशीततुषारेणचंद्रःशिशिरतांगतः ॥ २२ ॥ त्वयैतेगुरवःशैलास्त्वयैतेद्युचराधृताः ॥ त्वयैवेयंधराधीरात्वयैवांबरमंबरम् ॥ २३ ॥ दिष्ट्यामत्तामसिप्राप्तोदिष्ट्यात्वत्तामहंगतः ॥ अहंत्वंत्वमहंदेवदिष्ट्याभेदोस्तिनावयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! सर्वोत्तम आपके दृष्ट होनेसे वही यह देह और भोगोंकी पंक्ति अति सुभग (प्रिय) होनेपर भी अब मुझे नहीं रूचती ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! प्रदीपरूप आपकी सत्ताहीसे यह सूर्य्य प्रकटताको प्राप्त हुआहै, शीतल तुषाररूप आपके ही कारणसे यह चन्द्रमा शीतताको प्राप्त हुआहै ॥ २२ ॥ हे आत्मन् ! आपने ही इन पर्वतोंको गुरू करके धारण कियाहै, आकाशचारी पवन आदिको आपने ही धारण कियाहै, यह निश्चल पृथिवी तथा अवकाशदायी आकाश आपसे ही है ॥ २३ ॥ हे आत्मरूप ब्रह्मन् ! यह सौभाग्यहै कि तुम मेरे रूपको प्राप्त हुये और मैं तुमारे रूपको, हे देव ! मैं तुम और तुम मैं हुं, यह भी भाग्यसे ही है कि हम तुममें भेद नहीं है ॥ २४ ॥

अहंत्वमितिशब्दाभ्यांपर्यायाभ्यांमहात्मनः ॥ तववापमवाशाखासंयुक्ताभ्यांनमोनमः ॥ २५ ॥ नमोमह्यमनंतायनिरहंकाररूपिणे ॥ नमोमह्यमरूपायनमःसमसमात्मने ॥ २६ ॥ मय्यात्मनिसमेस्वच्छेसाक्षिभूतेनिराकृतौ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नस्वात्मन्येवेहतिष्ठसि ॥ २७ ॥ मनःप्रक्षोभमायातिस्फुरंतींद्रियवृत्तयः ॥ शक्तिरुल्लसतिस्फाराप्राणापानप्रवाहिनी ॥ २८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! लक्ष्यरूप शुद्ध ब्रह्मके बोधसे तव अर्थात् कारणकी उपाधिसहित वाच्यार्थकी, और मम अर्थात् कार्योपाधिसहित वाच्यार्थकी शाखाके समान एक देशभूत तव ममको नमस्कारहै ॥ २५ ॥ मुझ अनन्त अहंकाररहित अखण्ड ब्रह्मरूपको नमस्कारहै, तथा रूप शून्य और सर्वत्रसम आत्मरूप मुझ साक्षी चेतनको मेरा नमस्कारहै ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, आकार शून्य, देशकाल, तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य, और निजरूप मुझ आत्मामें तुम प्रत्यक् (साक्षी) स्वभाव होके स्थितहो न कि पराक् (भिन्न वा बहिर्) भावसे ॥२७॥ इसी आत्माके प्रतापसे अथवा प्रेरणासे मन क्षोभको प्राप्त होताहै, इन्द्रियोंकी वृत्तियां स्फुरित होती हैं, और प्राण तथा अपानवायुके चलानेवाली शक्ति उल्लासको प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

वहंतिदेहयंत्राणिकष्टान्याशावरत्रया ॥ चर्ममांसास्थिदिग्धानिमनःसारथिमंतिच ॥ २९ ॥ अयंसंविद्पुरहंनकाचिन्नकृतास्पदः ॥ देहःपततुवोदेतुयथाभिमतयेच्छया ॥ ३० ॥ चिरादहमहंजातःस्वात्म

लाभश्चिरादयम् ॥ चिराद्उपशमंयातिकल्पस्यांतेजगद्यथा ॥ ३१ ॥ चिरात्संसारगामित्वाद्दीर्घेसंसार वर्त्मनि ॥ विश्रांतोस्मिचिरंश्रांतःकल्पस्यांतइवानलः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चर्म, मांस तथा हड्डियोंसे वृद्धिको प्राप्त मनरूप सारथीसहित देहरूप यंत्र आशारूप रस्सीसे खीचे हुये चलरहे हैं ॥ २९ ॥ यह मैं केवल शुद्ध चिन्मात्र शरीरहुं न कि कोई शक्ति जो देहके आश्रयमें रहै, अपनी इच्छासे देह गिरै वा उदयको प्राप्तहो ॥ ३० ॥ मैं अपने शुद्धरूपको चिरकालसे प्राप्त हुआ, यह आत्मलाभ चिरकालसे हुआ, और जैसे कल्पके अन्तमें जगत् नाशको प्राप्त होताहै ऐसे भ्रम चिरकालमें शान्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इस दीर्घ संसारके मार्गमें चिरकालसे भ्रमणशील होनेसे चिरकालसे अति श्रान्त (थका हुआ) इससमय ऐसे विश्रामको प्राप्त हुआहुं जैसे कल्पके अन्तमें पवन ॥ ३२ ॥

सर्वातीतायसर्वायतुभ्यंमह्यंनमोनमः ॥ तेभ्योपिचनमस्तेस्तुयेमांत्वांप्रवदंतिच ॥ ३३ ॥ अखिलानंत संभोगानस्पृष्टादोषवृत्तिभिः ॥ जयत्यकृतसंरंभासाक्षितापरमात्मनः ॥ ३४ ॥ आत्मन्पुष्पइवामोदो भस्त्रापिंडइवानिलः ॥ तिलेतैलमिवास्मिस्त्वंसर्वत्रवपुषिस्थितः ॥ ३५ ॥ हंसिपासिदद्दासित्वमवस्फूर्जसिवल्गसि ॥ अनहंकृतिरूपोपिचित्रेयंतवमायिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—सबसे परे, सर्वरूप, साक्षीरूप तुमको बार २ नमस्कारहै, और उन गुरू वा वेदान्तशास्त्रोंकोभी नमस्कारहै, जो तुमको (ब्रह्मको) मेराही रूप कहते हैं ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण अनन्त भोग जिसके प्रकाश्यहैं, और जो प्रकाश्य पदार्थोंकी दोषकी वृत्तियोंसे स्पृष्ट नहीं है, तथा अभिनिवेशन करनेवाली (उदासीन) परमात्माकी साक्षिता सर्वोपरि है ॥ ३४ ॥ हे आत्मन् ! जैसे पुष्पमें सौगंध्य, भाथीमें वायु, और तिलमें तैलहै ऐसेही सर्वत्र शरीरमें सारभूत तुम ही स्थितहो ॥ ३५ ॥ हे आत्मन् ! अहंकारसे शून्य भी तुम ही सब दुष्टोंको मारतेहो, भक्तोंको पालतेहो, तुमही गर्जतेहो, और तुमही जगत्के व्यवहारभी करतेहो ! अहो तुमारी माया विचित्रहै ॥ ३६ ॥

जयामीशज्वलद्दीप्तिःसर्वमुन्मीलयञ्जगत् ॥ जयाम्युपरतारंभोजगद्भूयोनिमीलयन् ॥ ३७ ॥ परमाणोस्तवैवांतरिदंसंसारमंडलम् ॥ वटत्वंवटधानायांबभूवास्तिभविष्यति ॥ ३८ ॥ हयद्विपरथाकारैर्यद्वत्खे दृश्यतेंबुदः ॥ तद्वदालोक्यसेदेवपदार्थशतविभ्रमैः ॥ ३९ ॥ भावानांभूरिभंगानामभवायभवायच ॥ भवभावविमुक्तात्माभावाभावबहिष्कृतः ॥ ४० ॥

अर्थ—सृष्टिकालमें सबके तुम चेतनरूपसे प्रदीप्त शरीरसे बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थोंको प्रकाशनेसे जाज्वल्यमान मैं जीवभावसे सबमें प्रवेश करके नामरूपात्मक सब जगत्को निरूपण करता हुआ तुमारेही रूपसे सब जगत्को वश करते हुये पालन करताहुं, और प्रलयकालमें जगत्के आरम्भसे उपराम होके जगत्का पुनः संहार करता हुआ तुमारे (चेतन) रूपसे सबको जीतताहुं ॥ ३७ ॥ परमाणुरूप तुममेंही यह सब संसार मण्डलहै, क्योंकि वटमेंही वटत्व (वटपना) था, है, और होगा ॥ ३८ ॥ जैसे आकाशमें मेघ अश्व (घोडे) हस्ती और रथादि आकारसे देखपडताहै ऐसेही हे देव सैकडों पदार्थोंके भ्रमसे तुमही लक्षित होते हो ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकारके आकारवाले पदार्थोंके बाधके अर्थ, निरतिशय आनन्दके आविर्भावके अर्थ, और असंग आत्माके दर्शनसे भाव अभावसे पृथक् उसी शुद्धआत्मभावसे सदा तुम विमुक्त आत्मा होओ ॥ ४० ॥

जहिमानंमहाकोपंकालुष्यंक्रूरतांतथा ॥ नमहांतोनिमंजंतिप्राकृतेगुणसंकटे ॥ ४१ ॥ प्राक्तनींदीर्घदौरात्म्यदशांस्मृत्वापुनःपुनः ॥ कोहंकिंतद्भूवेतिहसन्मुक्ताच्छटासितम् ॥ ४२ ॥ तेप्रयाताःसमारंभाग तास्तेदग्धवासराः ॥ येषुचिंतानलज्वालाजालाकीर्णोभवानभूत् ॥ ४३ ॥ अद्यत्वंदेहनगरेराजास्फार मनोरथः ॥ नदुःखैर्गृह्यसेनापिसुखैर्व्योमकरैरिव ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस विमुक्त भाव प्राप्त होनेके अर्थ मान, महाक्रोध, कलुषता, औरक्रूरताको त्यागो, क्योंकि महात्मालोग साधारण गुणोंके संकटमें नहीं डूबते॥४१॥मैं कौनहुं और कौन था यह विचार करके मोतियोंकेसमान स्वच्छ हंसते हुये पूर्वकालकी दीर्घ शरीरादिमें आत्माभिमानरूप तथा कामक्रोधादि दुष्टताको त्यागो ॥४२॥ वे समारम्भ और वे दुष्ट (नष्ट) दिन बीतगये जिनमें तुम चिन्तारूप अग्निकी ज्वालाके जालसे व्याप्तथे ॥४३॥ इससमय तुम विशाल मनोरथसहित देहरूप नगरमें राजा हो तुम दुःख वा वैषयिक सुखोंसे ऐसे वशीभूत नहीं होसकते जैसे मुट्ठीसे आकाश ४४

अद्येंद्रियदुरश्वांश्चजित्वाजितमनोगजः ॥ भोगारिमभितोभंक्त्वासाम्राज्यमधितिष्ठसि ॥ ४५ ॥ अपारांबरपांथस्त्वमजस्रास्तमयोदयः ॥ अवभासकरोनित्यंबहिरंतश्चभास्करः ॥ ४६ ॥ सर्वदैवासिसंसुप्तःशक्त्यासंबोध्यसेविभो ॥ भोगालोकनलीलार्थंकामिन्याकामुकोयथा ॥ ४७ ॥ दृक्क्षुद्राभिरुपानीतंदूराद्रूपमधुत्वया ॥ पीयतेस्वीकृतंशक्त्यानेत्रवातायनस्थया ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब तुम इन्द्रियरूप दुष्ट घोडोंको तथा मनरूप हस्तीको जीतकर और भोगरूप शत्रुओंको चारोओ-रसे नष्ट करके सम्राज्यपर स्थितहो ॥ ४५ ॥ अपार आकाशके वटोही, बाह्य अविद्या दृष्टिमें निरन्तर अस्त और स्वरूपदृष्टिसे उदयमय तथा नित्य प्रकाशक तुम सूर्य्य हो ॥ ४६ ॥ अनादिकालसे संसुप्त और भोजकके अदृष्टशक्तिसे भोगोंके दर्शनकी लीलाके अर्थ उतनेही स्वरूपसे जागृत ऐसे होते हो जैसे कामिनीसे कामुक॥४७॥इन्द्रियोंकी वृत्तिरूप मधुमक्षिकाओंसे आनित स्वीकृतरूपादि रूप मधुको नेत्र आदिरूप झरोखोंमें चित्शक्तिद्वारा पान करतेहो ॥ ४८ ॥

ब्रह्मांडकोटरध्वांताःप्राणापानपरैस्त्वया ॥ गतागतैर्ब्रह्मपुरेसंप्रेक्ष्यंतेप्रतिक्षणम् ॥ ४९ ॥ देहपुष्पेत्व मामोदोदेहेंदौत्वमृतामृतम् ॥ रसस्त्वंदेहविटपेशैत्यंदेहहिमेभवान् ॥ ५० ॥ त्वय्यस्तिविस्मयस्नेहः शरीरक्षीरसर्पिषि ॥ त्वमंतरस्यदेहस्यदारुण्यग्निरिवस्थितः ॥ ५१ ॥ त्वमेवानुत्तमास्वादःप्राकाश्यंते जसामपि ॥ अवगंतात्वमर्थानांत्वंभासामवभासकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—प्राण तथा अपानके निरोधमें तत्पर योगियोंसे ब्रह्मपुर (देह) में प्रतिक्षण अभ्यस्त, हृदयमें पिण्डी-भूत प्राणोंके उठाके अन्य शरीरोंमें तथा लोकान्तरमें संचारके अनुकूल नानाप्रकारकी नाडियोंके मार्गोंमें गमनागमन-रूप संचारोंसे दूसरे लोकमें वा अर्चिरादि मार्गसे सूर्य्यमण्डलमें जानेके अर्थ, ब्रह्माण्ड कोटरके वा ब्रह्मरन्ध्रके सुषुम्ना आदि नाडियोंके पर्व, स्वयं प्रकाश ज्योतिरूप तुमारे ही द्वारा प्रत्यक्षरूपसे देख पडते हैं ॥ ४९ ॥ हे आत्मन् ! देह-रूप सुगन्ध तुम, देहरूप चन्द्रमें सत्य अमृत तुम, देहरूप वृक्षमें रस तुम, और देहरूप हिममें शीतता तुमहो ॥५०॥ सब प्राणियोंके शरीरमें निमित्तभूत जो स्नेहहै वह शरीररूप दुग्धके घृतमें घृतके समान सारता तुममें ही है ॥ ५१ ॥ सबसे उत्तम स्वादरूप तुम ही हो, सूर्य्य आदि तेजोंके प्रकाशके निमित्त पदार्थोंके ज्ञाता, और नेत्र आदि इन्द्रि-योंकेभी प्रकाशक तुम ही हो ॥ ५२ ॥

स्पंदस्त्वंसर्ववायूनांत्वंमनोहस्तिनोमदः ॥ प्रज्ञानलशिखायास्त्वंप्राकाश्यंतैक्ष्ण्यमेवच ॥ ५३ ॥ त्वद्द शादियमात्मीयावाचासंप्रविलीयते ॥ दीपवत्पुनरन्यत्रसमुदेतिकुतोपिसा ॥ ५४ ॥ त्वयिसंसारवर्त्ति न्यःपदार्थावलयस्तथा ॥ कटकांगदकेयूरयुक्तयःकनकेयथा ॥ ५५ ॥ भवानयमयंचाहंत्वंशब्दैरेवमा दिभिः ॥ स्वयमेवात्मनात्मानंलीलार्थंस्तौषिवक्षिच ॥ ५६ ॥

अर्थ—सब प्राणोंमें स्पंद (गतिके प्रेरक) तुमहो, मनरूप हस्तीके मद अर्थात् भ्रमके निमित्त तुमहो और बुद्धिरूप अग्निकी शिखाके प्रकाश तथा उष्णताके निमित्त भी तुम ही हो ॥ ५३ ॥ तुमारे उपसंहारसे यह निजकी बाणी मरण मूर्छा और स्वप्नमें दीपके तुल्य शान्त होजाती है तथा कालान्तर वा देहान्तरमें आपके ही प्रतापसे न जाने पुनः कहांसे उदयको प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ हे आत्मन् ! संसारमें रहनेवाली पदार्थोंकी पंक्तियां आपमें ऐसे रहती हैं जैसे सुवर्णमें कटक केयूर और अंगद आदिकी युक्ति ॥ ५५ ॥ हे भगवन् ! यह आप, यह हम, और यह तुम इत्यादि शब्दोंसे स्वयं अपनी लीलाके अर्थ स्तुति आदि व्यवहार करतेहो और अन्यरूपसे कहते भी हो ॥ ५६ ॥

मंदानिलविनुन्नोब्दोगजाश्वनरदृष्टिभिः ॥ यथासंलक्ष्यतेव्योम्नितथात्वंभूतदृष्टिभिः ॥ ५७ ॥ यथाहय गजाकारैर्ज्वालालसतिवह्निषु ॥ तथैवाव्यतिरिक्तैस्त्वंदृश्यसेभुविसृष्टिषु ॥ ५८ ॥ त्वंब्रह्मांडकमुक्ताना मच्छिन्नस्तंतुराततः ॥ क्षेत्रंत्वंभूतसस्यानांचिद्रसायनसेवितम् ॥ ५९ ॥ असत्तदनभिव्यक्तंपदार्थानां प्रकाश्यते ॥ त्वयातत्त्वंयथापक्त्यामांसानास्वादवेदनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे मन्द पवन छिन्नभिन्न मेघ आकाशमें कदाचित् हांथी घोडे और मनुष्य आदिरूपसे देखपड-ताहै ऐसेही भूतोंकी दृष्टिसे तुम भान होतेहो ॥ ५७ ॥ जैसे प्रत्येक काष्ठोंके जलनेपर अग्निकी ज्वालाओंमें कोई२ ज्वाला अश्व वा गजके आकारसे शोभित होती है ऐसेही इस भूतमण्डलकी सृष्टियोंमें आप भी अभिन्न आकारोंके होनेपर भी भिन्न आकारोंसे देख पडतेहो ॥ ५८ ॥ ब्रह्माण्डरूप मुक्ताफलोंके अखण्डित विशाल सूत्र तुमहीहो और प्राणीरूप सस्योंके चित्‌रूप रसायनसे सेवित क्षेत्र तुम ही हो ॥ ५९ ॥ अप्रकट अतएव असत्‌के तुल्य अविद्या बीजके भीतर स्थित सृज्यमान पदार्थोंके प्रसिद्ध तत्व सृष्टिरूपसे तुम ही ऐसे प्रकाशित होतेहो जैसे पाकसे मांसोंका स्वाद ॥ ६० ॥

विद्यमानापिवस्तुश्रीर्नस्थितात्वयिनस्थिते ॥ वनितारूपलावण्यसत्तेवगतचक्षुषः ॥ ६१ ॥ सदपीहन सत्तायैवस्तुनावर्जितंत्वया ॥ तृप्तयेनस्वलावण्यंमुकुरात्प्रतिबिंबितम् ॥ ६२ ॥ लुठतित्वांविनादेहःका ष्ठलोष्टसमःक्षितौ ॥ सन्नप्यसन्नगाच्छायाःश्यामास्विवरविंविना ॥ ६३ ॥ सुखदुःखक्रमःप्राप्यभवंतं परिनश्यति ॥ प्राकाश्यमासाद्ययथातमस्तेजोथवाहिमम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके अभावमें विद्यमान भी पदार्थोंकी शोभा ऐसे स्थिर नहीं है जैसे नेत्रके न होनेपर स्त्रीके रूपकी सुन्दरताकी सत्ता ॥ ६१ ॥ हे भगवन् ! विद्यमान भी वस्तु आपसे अर्थ क्रिया की शक्तिसे अनुगृहीत न होनेसे कार्य्य करनेमें ऐसे असमर्थ होती है जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बित भी अपने मुखकी सुन्दरता स्त्रीके चुंबनादि तृप्तिके लिये नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे भगवन् ! आपके बिना यह देह काष्ठ लोष्ठके समान पृथिवीपर लोटे, जैसे पर्वतकी उच्चता सूर्य्यके अन्धकारमयी रात्रियोंमें विद्यमान भी व्यर्थ ही है ॥ ६३ ॥ हे भगवन् ! आपको प्राप्त होनेसे विषयके सुख वा दुःखका क्रम ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे प्रकाशके निमित्त तेजको प्राप्त होके अन्धकार वा हिम ॥ ६४ ॥

त्वदालोकनयैवैते स्थितिंयांतिसुखादयः ॥ सूर्यालोकनयाप्रातवर्णाःशुक्लादयोयथा ॥ ६५ ॥ लब्धात्मानोविनश्यंतिसंबंधक्षणएवते ॥ तेतमांसीवदीपस्यदृष्टाइवव्रजंत्यलम् ॥ ६६ ॥ तमस्तातमसोदीपासत्तायांस्फुटतांगता ॥ दीपसंबंधसमयेसाचोत्पद्यविनश्यति ॥ ६७ ॥ ततेवंसुखदुःखश्रीर्दृष्टैवत्वामनामयम् ॥ जायतेजातमात्रैवंसर्वनाशेननश्यति ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके दर्शनमात्रसे ये सब सुखादि ऐसे स्थिरताको प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य्यके दर्शनमात्रसे प्रातःकालमें शुक्लादि वर्ण ॥ ६५ ॥ क्योंकि आपके दर्शनमात्रसे उनका जन्म होताहै इसलिये अन्तिम साक्षात्कारसे प्रदीप्त आपके सम्बन्धके ही क्षणमें वे विषयके सुख तथा दुःख नष्ट होजाते हैं परन्तु जब आप उनको देखते हैं तब ऐसे वे जाते हैं जैसे दीपके देखनेसे तम (अन्धकार) ॥६६॥ दीपके अभावमें ही अन्धकारकी अन्धकारता प्रत्यक्ष रूपताको प्राप्त होती है और दीपका सम्बन्ध होतेही वह उत्पन्न होकर नष्ट होजाती है ॥ ६७ ॥ इसलिये सुखदुःखकी शोभा मंगलमूर्ति आपके दर्शन (सत्ता) मात्रसेही उत्पन्न होती है और आपके साक्षात्कारसे उत्पन्न होते ही बीजभूत सर्व अविद्याके साथ नष्ट होजाती है ॥ ६८ ॥

भंगुरत्वादिहस्थातुंकालंनाणुमपिक्षमा ॥ निमेषलक्षभागाख्यातन्वीकालकलायथा ॥ ६९ ॥ गांधर्वीनगरीतन्वीसुखदुःखादिभावना ॥ स्फुरतित्वत्प्रसादेनत्वयिदृष्टेविलीयते ॥ ७० ॥ त्वदालोकेक्षणोद्भूतात्वदालोकेक्षणक्षया ॥ मृतेवजाताजातेवमृताकेनोपलक्ष्यते ॥ ७१ ॥ क्षणमप्यस्थिरंवस्तुकथंकार्यकरंभवेत् ॥ तरंगैरुत्पलाकारैर्मालाकथमवेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्योंकि सुख दुःखकी श्री विषयके अभावमें भंगुर होनेसे निरतिशय आनन्दरूप आत्मामें क्षणभरमें स्थित होनेके ऐसे समर्थ नहीं है जैसे अति सूक्ष्म निमेषकालके लक्षतम (लाखवां) भाग कालकी कला ॥ ६९ ॥ इसीप्रकार अति सूक्ष्म होनेसे अनुसन्धान करनेमें अशक्य गन्धर्वकी नगरीके तुल्य मिथ्याभूतभी सुखदुःखकी भावना आपके प्रसादसे अज्ञान प्राणीके लिये सत्यके समान प्रतीत होती हैं परन्तु आपके देख पडनेसे तत्कालमेंही नष्ट होजाती है ॥ ७० ॥ आपके दर्शन अज्ञात होनेके क्षणमें दुष्ट नेत्रसे उत्पन्न और तुमारे दर्शनके ज्ञानसे क्षयको प्राप्त इसप्रकारकी यह वैषयिक सुखदुःखादिकी शोभा मृतक होके स्वप्नमें पुनः उत्पन्न और स्वप्नमें जाग्रतमें मृतकके समान आपके सिवाय किसको भान होसकती है ॥ ७१ ॥ मिथ्याभूत स्वतु जो क्षणभरभी स्थिर नहीं हैं वह भला किसरीतीसे कार्यकारी होसकती है क्योंकि बुद्धि तरंगोंसे रचित माला भला कैसे देखपड सकती है ॥ ७२ ॥

यदावाजातनिर्नष्टंक्रियांवस्तुकरिष्यते ॥ तदारमेतलोकोयंमालांकृत्वातडिद्गणैः ॥ ७३ ॥ इमांसुखादिकांलक्ष्मींविवेकिजनचेतसि ॥ स्थितःसन्नेवगृह्णासिनजहासिसमस्थितिम् ॥७४॥ अविवेकिषुयोसित्वंसहजात्मन्यदृच्छया ॥ तद्रूपकथनेनालंममानल्पपदास्पद ॥७५॥ निरीहेणनिरंशेननिरहंकृतिनात्वया ॥ सतावाप्यसतावापिकर्तृत्वमुररीकृतम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—यदि उत्पन्न होतेती नश्वर पदार्थ अर्थक्रिया करै तो यह संसार विद्युत्की माला पहिनके रमण करै ॥ ७३ ॥ हे आत्मरूप ब्रह्मन् ! उक्त रीतिसे दुर्घट इस सुखदुःखकी लक्ष्मीको दुर्घटताके ज्ञाता विवेकियोंके हृदयमें स्थित होके तुम ग्रहण (अनुभव) करते हो परन्तु अपनीसमान स्थितिको नहीं त्यागते ॥ ७४ ॥ हे नानाप्रकारके नाम तथा रूपके आश्रय भगवन् ! अविवेकियोंके हृदयमें तो जो कुछ आपहैं उस रूपको अकस्मात् नानाप्रकारकी वासनाके आविर्भूत होनेसे मेरी वाणी कहनेमें समर्थ नहीं है ॥ ७५ ॥ चेष्टा, अययव और अहंकाररहित, मूर्त स्थूलदेहोपाधिवाले तथा अमूर्त सूक्ष्म देहोपाधिवाले आपने अध्यासद्वारा कर्तता स्वीकार की ॥ ७६ ॥

जयप्रोड्डामराकारजयशांतिपरायण ॥ जयसर्वागमातीतजयसर्वागमास्पद ॥ ७७ ॥ ॥ जयजातजयाजातजयक्षतजयाक्षत ॥ जयभावजयाभावजयजेयजयाजय ॥ ७८ ॥ उल्लसाम्युपशाम्यामितिष्ठाम्यधिगतो

स्मिच ॥ जयीजयायजीवामिनमोमह्यंनमोस्तुते ॥ ७९ ॥ त्वयिस्थितेमयिविगतामयात्मनिस्वसंस्थितौ व्यपगतरागरंजने ॥ कबंधनंकचविपदःकसंपदोभवाभवौकशममुपैमिशाश्वतम् ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे आत्मस्तवनं नाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्माण्डादि अति विस्तृत आकारवाले परमात्मन् ! आपका जय हो, हे शान्तिपरायण ! आपका जय हो, हे प्रत्यक्षादि सब प्रमाणोंसे परे ! आपका जय हो, तथा हे सब प्रमाणोंके आश्रय ! आपका जय हो ॥७७॥ हे मायिकरूपसे जात (उत्पन्न) आपका जय हो, हे शुद्धरूपसे अजात (अनुत्पन्न) आपका जय हो, हे क्षत ! आपका जय हो, हे स्वाभाविकरूपसे अक्षत ! आपका जय हो, हे भावरूप ! आपका जय हो, हे अभावरूप ! आपका जय हो, हे अविद्यासंबन्धीरूप जेय (जीतने योग्य) आपका जय हो, हे अजेय ! आपका जय हो ॥ ७८ ॥ उल्लास तथा शान्तिको प्राप्त मैं अपने स्वरूपसे स्थित हुं, और अविद्या सम्बन्धीरूपसे शून्य जयवाला होनेसे मैं विजयीहुं, तथा शेष प्रारब्ध कर्मको जीतनेके अर्थ जीताहुं, प्रत्यक् आत्मस्वरूप मुझे तथा ब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ ७९ ॥ सब प्रपंच तथा राग द्वेषसेरहित आपके रूपसे अभिन्नरूपसे मेरे स्थित होनेपर कहां बन्धन ! कहां विपत्ति ! कहां सम्पत्ति ! और कहां जीवनमरण ! अर्थात् मुझ शुद्धरूपमें इन सबका अभावहै इसलिये मैं निरन्तर शान्ति सुखको प्राप्त होताहुं ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे आत्मस्तवनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस ३७ के सर्गमें प्रल्हादके समाधिस्थ होनेपर, नायक शून्य चोरोंसे पीडित, और दुर्दशाग्रस्त वह दानवोंका नगर होगया इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ इतिसंचिंतयन्नेवप्रह्लादःपरवीरहा ॥ निर्विकल्पपरानंदसमाधिंसमुपाययौ ॥ १ ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थश्चित्रार्पितइवाचलः ॥ शैलादिवसमुत्कीर्णोबभौस्वपदमास्थितः ॥ २ ॥ तथानुतिष्ठतस्तस्यकालोबहुतरोययौ ॥ स्वगृहेभुवनस्थस्यमेरोरिवसुरद्विषः ॥ ३ ॥ बोधितोप्यसुराधीशैर्नाबुध्यत महामतिः ॥ अकालेबहुसेकोपिबीजकोशादिवांकुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्टजी बोले-इस पूर्वोक्त रीतिसे वर्णित आत्माका चिंतन करते हुये, शत्रुओंके बीरोंके हन्ता प्रल्हादजी परम आनन्दमय निर्विकल्प समाधिमें प्राप्त हुये ॥१॥ निर्विकल्प समाधिमें अपने स्वरूपके साम्राज्यमें स्थित प्रल्हादजी चित्रमें लिखित पर्वत वा पर्वतसे खुदी हुई प्रतिमाके सदृश शोभित हुये ॥ २ ॥ देव शत्रु, प्रल्हादको अपने गृहमें उसप्रकार समाधि करते हुये अधिककाल ऐसे बीतगया जैसे भुवनमें स्थित सुमेरू पर्वतको ॥३॥ असुरोंके अधीशोंसे बोधितहोनेपर भी वह महामति ऐसे नहीं जागृतहुआ जैसे अकालमें अधिक सींचनेपरभी बीजके कोशसे अंकुर॥४

एवंवर्षसहस्राणिपीनात्मातिष्ठदेकदृक् ॥ शांतएवासुरपुरेमार्त्तंडइवचोपले ॥ ५ ॥ परानंददशैकांतपरिणामितयातया ॥ निरानंदंपराभासमिवाभासपदंगतः ॥ ६ ॥ एतावताथकालेनतद्रसातलमंडलम् ॥ बभूवाराजकंतीक्ष्णंमात्स्यन्यायकदर्थितम् ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपौक्षीणेसमाधौतत्सुतेस्थिते ॥ नबभूवापरःकश्चिद्राजादनुसुतालये ॥ ८ ॥

अर्थ—इसप्रकार शान्तरूप ब्रह्ममय एक पदार्थका ध्यान करते हुये अपने नगरमें प्रल्हादजी सहस्र वर्षपर्य्यंत ऐसे स्थित रहे जैसे पाषाणमें खुदे हुये सूर्य्य ॥ ५ ॥ हे रामजी ! उस परमानन्दकी दशामें सर्वथा एकरस होनेसे, और देखनेवालोंकी दृष्टिमें असत्के तुल्य आनन्दसहित तथा परमात्माके प्रकाशसे वर्जित मरण दशामें प्राप्तके समान प्रल्हाद होगये ॥ ६ ॥ इतने समयमें वह रसातलका मण्डल राजासे शून्य मत्स्य न्याय (बलवान् मत्स्य निर्बलको मारते तथा निकाल भी देते हैं न्याय) से पीडित होगया ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुके मरने तथा उसके पुत्र प्रल्हादके समाधिस्थ होनेपर उस दैत्योंके नगरमें अन्य कोई राजा नहीं हुआ ॥ ८ ॥

असुरेशार्थिनांतेषांदानवानांसमाधितः ॥ परेणापिप्रयत्नेनप्रह्लादोनव्यबुध्यत ॥ ९ ॥ नप्राप्पुर्विकसद्रूपंतितममरारयः ॥ लसत्पत्रलताजालंनिशिपद्ममिवालयः ॥ १० ॥ संविद्वादोनतस्यांतरबोध्यतविचेत

सः ॥ भुवश्चेष्टाक्रमइवपौरुषोगतभास्वतः ॥ ११ ॥ अथोद्विग्नेषुदैत्येषुगतेष्वभिमतांदिशम् ॥ विचर त्सुयथाकाममराजनिपुरेपुरा ॥ १२ ॥

अर्थ—असुरोंके स्वामी चाहनेवाले उन दानवोंके महान् प्रयत्न करनेपर भी प्रल्हाद समाधिसे न उठा ॥ ९ ॥ उन देवताओंके शत्रुओंने जाग्रत्रूप उस अपने पतिको ऐसे न पाया जैसे रात्रिमें विकसित पत्र तथा लता समूहसहित कमलको भ्रमर ॥ १० ॥ गलित चित्त प्रल्हादके अन्तःकरणमें प्रबोधकी वार्ता ऐसे नहीं थी जैसे सूर्य्यास्तयुक्त पृथिवीपर सोते हुये पुरुषोंकी स्नान दान प्रस्थान और धावनादि चेष्टाकी रीति ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् दैत्योंके व्याकुल होनेपर तथा घबडाके अपनी अभिमत दिशाओंमें चलजानेपर, और राजारहित उस नगरमें बलवान् तस्करादि दैत्योंके अपनी इच्छापूर्वक विचरनेपर ॥ १२ ॥

चिरायपातालमभूदभूपालतयातया ॥ मात्स्यन्यायविपर्यस्तमस्तंगतगुणक्रमम् ॥ १३ ॥ बलिभुक्ताब लपुरंमर्यादाक्रमवर्जितम् ॥ सर्वार्त्ताशेषवनितंपरस्परहृतांबरम् ॥ १४ ॥ प्रलापाक्रंदपुरुषंविसंस्थान पुरांतरम् ॥ लुठद्वद्यानगरंव्यर्थानर्थकदर्थितम् ॥ १५ ॥ चिंतापरासुरगणंनिरन्नफलबांधवम् ॥ अ कांडोत्पातविवशंध्वस्ताशासुखमंडलम् ॥ १६ ॥ सुरार्भकपराभूतंभूतैराक्रांतमंत्यजैः ॥ भूतरिक्तमल क्ष्मीकमुच्छिन्नप्रायकोटरम् ॥ १७ ॥ अनियतवनितार्थमंत्रयुद्धंहृतधनदारविराविर्तसमंतात् ॥ ॥ कलि युगसमयोद्भटोत्कटाभंतदसुरमंडलमाकुलंबभूव ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे असुरमंडलव्याकुलीभवनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अराजता होनेके कारण वह पाताललोक गुण क्रमसे रहित मात्स्यन्यायसे ग्रस्त होगया ॥ १३ ॥ जहां बलवानोंने निबलोंके नगर छीन लियेथे तथा मर्यादाकी रीतिसे वर्जित जहां सबसे अधिक स्त्रियां पीडित होरही थी तथा जहां परस्पर एक दूसरेके वस्त्र छीने जातेथे ॥ १४ ॥ जहां पुरुषलोग रोदन कररहे थे, स्थानादि तोड डाले गयेथे, वाटिका तथा नगरोंके निवासीजन इधर उधर लोट रहेथे इसप्रकार और व्यर्थ अनेक अनर्थोंसे वह नगर पीडितथा ॥ १५ ॥ जहां असुरोंके समूह चिन्तामें निमग्नथे, अन्न और फलसे रहित वा बांधवगणथे, तथा आकस्मिक उत्पातसे परवश और सम्पूर्ण दिशाओंके मुखमण्डल रेणुओंसे व्याप्तथे ॥ १६ ॥ देवताके बालकोंसेभी तिरस्कृत, और चाण्डालादि तामस जीवोंसेभी आक्रान्त, प्राणियोंसे तथा धनसे रहित, और उच्छिन्नके समानहैं कोटरसहित वह नगर होगया ॥ १७ ॥ जहां स्त्री, धन, मंत्र, और युद्धादि लिये विरोधभी नियत नहींथा, धन और स्त्रीरहित पुरुष चारोंओरसे शब्द कररहेथे, और कलियुगके समयमें दूसरोंके धनादि हरनेमें उत्कठ तथा क्रूर भट वा तस्करोंके समान वह असुरोंका मण्डल होगया ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे असुरमण्डलव्याकुलीभवनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस ३८ के सर्गमें जगत्की व्यवस्थाकी सिद्धिके लिये विष्णुकी चिन्ता और दैत्योंके कुलकी रक्षाके लिये प्रल्हादका जगाना इत्यादि विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाखिलजगज्जालक्रमपालनदेवनः ॥ क्षीरोदनगरेशेषशय्यासनगतोहरिः ॥ १ ॥ प्रावृण्निद्राव्युपरमेदेवार्थमरिसूदनः ॥ धियाविलोकयामासकदाचिज्जागतींगतिम् ॥ २ ॥ त्रिविष्टपंस्व मनसापार्थिवंचावलोक्यसः ॥ आचारमाजगमाशुपातालमरिपालितम् ॥ ३ ॥ तत्रस्थिररसमाधानेस्थिते प्रह्लाददानवे ॥ दृष्ट्वासंपदमिंद्रस्यपुरेप्रौढिमुपागताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इस वृत्तान्तके पश्चात् सब जगत्के समूहकी मर्य्यादाओंका पालनादि क्रीडाकारी तथा क्षीरसमुद्ररूप नगरमें शेषकी शय्यापर शयन करनेहारे विष्णुभगवान् ॥ १ ॥ जो कि शत्रु सूदनहैं उन्होंने वर्षाकालकी निद्राके निवृत्त होनेपर देवताओंके कार्य्यके अर्थ जगत्की उससमयकी दशाको कदाचित् बुद्धिसे देखा ॥ २ ॥ प्रथम स्वर्गके, अनन्तर पृथिवीके प्राणियोंके शुभ अशुभ आचरणको मनसे देखके पश्चात् शत्रुओंसे पालित पातालमें मनसे ही गये ॥ ३ ॥ वहांपर प्रल्हाददैत्यके समाधिमें स्थिर होनेपर, और इन्द्रके नगरमें सम्पत्तिकी वृद्धिको देखकर ॥ ४ ॥

व्यालतल्पतलस्थस्यक्षीरोदार्णवशायिनः ॥ शंखचक्रगदापाणेर्देहस्यांतरचारिणः ॥ ५ ॥ पद्मासन स्थस्यमनःशरीरेणातिभास्वता ॥ इदंसंचिंतयामासत्रैलोक्याब्जमहालिना ॥ ६ ॥ प्रह्लादेपदविश्रांतेपा तालेगगनायके ॥ कष्टंसृष्टिरियंप्रायोनिर्दैत्यत्वमुपागता ॥ दैत्याभावेसुरश्रेणीनिर्जिगीषुपदंगता ॥ श ममेष्यत्यदृष्टाब्दपटलेषुसरिद्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—क्षीरसागरशायी, शेषशय्यापर स्थित, और शंख चक्र गदाधारी, तथा सब देहके अन्तरमें चलन-शील विष्णुभगवान्‌के मनसे कल्पित अति प्रकाशमान और त्रिलोकरूप कमलके भ्रमररूप शरीरसे यह वक्ष्यमाण कर्तव्य निश्चयसे चिन्तन कियागया कि ॥ ५ ॥ ६ ॥ समाधिरूप सम्राज्यपदमें प्रलहादके विश्रान्त होनेपर और नायकशून्य पातालके होनेपर, अहो ! कष्टका अवसरहै कि प्रायः यह सृष्टि दैत्योंसेरहित दशाको प्राप्त होगई है ॥ ७ ॥ और दैत्योंके अभावमें देवमण्डली विजयकी इच्छाके राहित्यपदको प्राप्त होगी, और इससे ऐसे शान्तिको प्राप्त होगी जैसे वर्षाके अन्तमें मेघपटलके न देख पडनेपर शरदृऋतु ॥ ८ ॥

मोक्षाख्यंनिर्गतद्वंद्वंततोयास्यतितत्पदम् ॥ क्षीणाभिमानविरसालतेवप्रविशुष्कताम् ॥ ९ ॥ देवौघेशां तिमायातेभुवियज्ञतपःक्रियाः ॥ अदेवत्वफलाःसर्वाःशममेष्यंत्यसंशयम् ॥ १० ॥ क्रियास्वथोपशां तासुभूर्लोकोस्तमुपैष्यति ॥ असंसारप्रसंगोथतस्यनाशोभविष्यति ॥ ११ ॥ आकल्पांतंत्रिभुवनंयदिदं कल्पितंमया ॥ नाशमेष्यत्यकालेनतापेहिमकणोयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अभिमानशून्य स्वर्गसुखसे विरक्त यह देवमण्डली द्वन्द्वरहित मोक्षपदको ऐसे प्राप्त होगी जैसे रसरहित लता शुष्कताको ॥ ९ ॥ देवोंके समूहके शान्त होनेपर पृथिवीपर देवताओंकी प्रसन्नतारूप फलसेरहित यज्ञ तप तथा दानादि क्रिया सब निश्चय शान्तिको प्राप्त होजायगे ॥ १० ॥ और क्रियाके शान्त होनेपर कर्मभूमि भूलोक अस्त होजायगा और कर्मभूमिके अस्त होनेपर कर्मके आधीन संसारकाही नाश प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ तो कल्पपर्य्यन्त स्थायी होनेके अर्थ जो त्रिभुवनको मैंने रचाथा वह कुसमयमें ऐसे नाशको प्राप्त होगा जैसे आतपसे हिमका कण ॥ १२ ॥

किमेवमस्मिन्नाभोगेविलीयक्षयमागते ॥ कृतंमयेहभवतिस्वलीलाक्षयकारिणा ॥ १३ ॥ ततोहमपिशून्येस्मिन्नष्टचंद्रार्कतारके ॥ वपुःप्रशांतिमाधायस्थितिमेष्यामितत्पदे ॥ १४ ॥ अकांडएवमेवंहिजगत्युपशमंगते ॥ नेहश्रेयोनपश्यामिमन्येजीवंतुदानवाः ॥१५॥ दैत्योद्योगेनविबुधास्ततोयज्ञतपःक्रियाः ॥ तेनसंसारसंस्थानंनसंसारक्रमोन्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—इस जगत्‌की रचनाके विलीन होके क्षयको प्राप्त होनेपर अपने लीलाके क्षय करनेवाले मैंने क्या उचित कर्म किया ॥१३॥ इस लीलाके क्षयके पश्चात् चन्द्र सूर्य्य और तारागणसे शून्य इस जगत्‌में लीलाके अर्थ इस शरीरका उपसंहार सम्पादन करके पुनः संसारके उत्पत्ति न होनेके अर्थ उस अपने पूर्णपदमें विश्राम पाऊंगा ॥१४॥ इसप्रकार कुसमयमें जगत्‌के शान्त होनेपर ज्ञानसे जो मोक्षरूप कल्याणहै उसे मैं नहीं देखता इसलिये मैं चाहताहुं कि जगत्‌में दानवलोग जीवैं ॥ १५ ॥ और दैत्योंके उद्योगसे देवतालोगोंके उद्योगी होनेपर यज्ञ तप आदि क्रिया प्रवृत्त होंगी और इससे संसारकी रचना होगी जिससे संसारका क्रम अन्यथा नहीं होगा ॥ १६ ॥

तस्माद्रसातलंगत्वायथावत्स्थापयाम्यहम् ॥ स्वेक्रमेदानवाधीशमृतुःपुनरिवद्रुमम् ॥ १७ ॥ विनाप्रह्लादमथचेदितरंदानवेश्वरम् ॥ करोमितदसौमन्येदेवानासादयिष्यति ॥ १८ ॥ प्रह्लादस्यत्वयंदेहःपश्चिमःपावनोमहान् ॥ आकल्पमिहवस्तव्यंदेहेनानेनतेनच ॥१९॥ एवंहिनियतिर्देवीनिश्चितापारमेश्वरी ॥ प्रह्लादेनकथाकल्पंस्थातव्यमिहदेहिना ॥ २० ॥

अर्थ—इसकारणसे मैं रसातलमें जाके पूर्ववत् सब निज मर्य्यादाके दानवोंके स्वामीको ऐसे स्थापन करूंगा जैसे वसन्तआदिऋतु वृक्षको ॥ १७ ॥ यदि प्रलहादके सिवाय अन्य किसीको दानवोंका स्वामी स्थापित करूं तो मुझे सम्भवहै कि वह देवताओंके ऊपर आक्रमण करैगा ॥ १८ ॥ और प्रलहादका यह अन्तिमदेह महापवित्रहै और इस देहसे उसे कल्पपर्य्यन्त रहना चाहिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार परमेश्वरकी नियति देवीसे निश्चितहै कि शरीर धारण करके प्रलहादको इस लोकमें कल्पपर्य्यन्त रहना चाहिये ॥ २० ॥

तस्मात्तमेवगत्वातुदैत्येंद्रंबोधयाम्यहम् ॥ गर्जन्गिरिनदीसुतंमयूरमिववारिदः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्तस माधिस्थःकरोत्वसुरनाथताम् ॥ मणिर्मुक्तमनस्कारःप्रतिबिंबक्रियामिव ॥ २२ ॥ नहिनश्यतिसर्गोयमेवंसहसुरासुरैः ॥ भविष्यतिचतद्वंद्वंतन्मेक्रीडाभविष्यति ॥ २३ ॥ सर्गक्षयोदयावेतौसुसमौममयद्यपि ॥ तथापीदंयथासंस्थंभवत्वन्येनकिंमम ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये मैं जाके उसी दैत्येन्द्रको ऐसे बोधन करताहुं जैसे गर्जता हुआ मेघ पर्वत वा नदीपर सोये हुये मोरको ॥ २१ ॥ और प्रल्हाद जीवन्मुक्तोंकी जो असंसक्तिरूप समाधिहै उसमें स्थित होके असुरोंकी स्वामिताको ऐसे करै जैसे चित्तकी चेष्टासे शून्यमणि प्रतिबिंबकी क्रियाको ॥ २२ ॥ इसप्रकार सृष्टिका नाश नहीं होगा और देवता दैत्योंका जो युद्ध होगा वह मेरी क्रीडा होगी ॥ २३ ॥ यद्यपि सृज्यमान पदार्थोंके क्षय तथा उदय मेरी दृष्टिमें समानहैं तथापि यह जैसाथा वैसाही रहै अन्यसृष्टि क्रमसे मुझे क्या लाभ ॥ २४ ॥

भावाभावेषुयत्तुल्यंतन्नाशेतत्स्थितौचवा ॥ यःप्रयत्नस्त्वबुद्धित्वात्तद्योगगमनंभवेत् ॥ २५ ॥ तस्मात्प्रयामिपातालंबोधयाम्यसुरेश्वरम् ॥ स्थैर्ययामिनसंसारलीलांसंपादयाम्यहम् ॥ २६ ॥ असुरपुरमवाप्यप्रोद्धताचारघोरंकमलमिवविवस्वान्दैत्यमुद्बोधयामः ॥ जगदिदमखिलंस्वस्थैर्यमभ्यानयामोघनविधिरिवशैलेचंचलंमेघजालम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे परमेश्वरवितर्कोनामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्योंकि भाव अभाव, उत्पत्ति अनुत्पत्ति, और नाश तथा स्थितिमें जो सुखहै वह बुद्धिमें अभिनिवेशन होनेके कारण योगनिद्राके गमनके सदृश ही है इसलिये योगनिद्रा स्वरूपको त्यागकर दैत्यनगरमें गमन अनुचित है, यह शंका निवृत्त हुई ॥२५॥ इसलिये पातालमें जाताहुं और असुरोंके स्वामी प्रल्हादको समाधिसे जगाताहुं और जाते हुये भी मैं स्थिरताको प्राप्त होताहुं क्योंकि अज्ञानियोंके तुल्य संसार लीलाको नहीं करता ॥ २६॥ अति प्रचण्ड चोरोंके आचारसे भयंकर दैत्यपुरमें प्राप्त होकर प्रल्हाद असुरको ऐसे उद्बोधन करूं जैसे कमलको सूर्य्य; और इस कार्य्यसे इस संपूर्ण जगत्को पूर्वके समान स्थिरताको ऐसे प्राप्त करूं जैसे वर्षाऋतु पर्वतपर चंचल मेघजालको॥२७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे परमेश्वरवितर्को नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥

विष्णुभगवान् दैत्यपुरमें जाके प्रल्हादको शंखनादसे जगाया और उनसे कहा कि कल्पपर्य्यन्त राज्यका पालन करो इस विषयका वर्णन ३९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्यसर्वात्माक्षीरोदादात्मकात्पुरात् ॥ चचालपरिवारेणसहसानुरिवाचलः ॥ १ ॥ क्षीरोतदलरंध्रेणतेनैवस्तंभितांभसा ॥ प्रह्लादनगरंप्रापशक्रलोकमिवापरम् ॥ २ ॥ हेममंदिरकोशस्थंददर्शात्रासुरंहरिः ॥ अथशैलगुहालीनंसमाधिस्थमिवाब्जजम् ॥ ३ ॥ तत्रतेतेजसादैत्या वैष्णवेनावधूलिताः ॥ दूरंययुर्दिनेशांशुविन्नस्ताइवकौशिकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार सर्वात्मा भगवान् चिन्तन करके अपने नगर क्षीरसागरके अन्तर्गत श्वेतद्वीपसे (लक्ष्मी आदि) सहित ऐसे चले जैसे शिखरोंके साथ पर्वत ॥ १ ॥ क्षीरसमुद्रके तलमें स्तंभित अधोभागमें छिद्रद्वारा स्वर्गके समान रमणीय प्रल्हादके नगरमें प्राप्त हुये ॥ २ ॥ इसके पश्चात् जहांपर सुवर्णके मंदिरके कोशमें स्थित विष्णुभगवान्ने प्रल्हादको ऐसे देखा जैसे सुमेरूपर्वतकी गुहामें लीन समाधिमें स्थित ब्रह्माको ॥ ३ ॥ वहांपर विष्णुके तेजसे तिरस्कृत दैत्यलोग ऐसे दूर चलेगये जैसे सूर्य्यके किरणसे तिरस्कृत उलूक ॥ ४ ॥

द्वित्रैःसहासुरैर्मुख्यैःपरिवारयुतोहरिः ॥ प्रविवेशासुरगृहंताराबानिवखंशशी ॥ ५ ॥ वैनतेयासनस्थोसौलक्ष्मीविधुतचामरः ॥ स्वायुधादिपरीवारोदेवर्षिमुनिवंदितः ॥ ६ ॥ महात्मन्संप्रबुद्धयस्वेत्येवंविष्णुरुदाहरन् ॥ पांचजन्यंप्रदध्मौचध्वनयन्ककुभांगणम् ॥ ७ ॥ महतातेनशब्देनवैष्णवप्राणजन्मना ॥ तुल्यकालपरिक्षुब्धकल्पाब्धार्णवरंहसा ॥ ८ ॥

अर्थ— मुख्य २ दोन तीन असुर तथा लक्ष्मीसहित विष्णुभगवाने असुरके गृहमें ऐसे प्रवेश किया जैसें तारासहित चन्द्रमा आकाशमें ॥ ५ ॥ गरूडके आसनपर स्थित, लक्ष्मीजीसे चमर तथा व्यजनादिद्वारा सेवित तथा अपने अस्त्र आदि परिवारसहित, देवर्षि तथा मुनियोंसे वन्दित ॥ ६ ॥ विष्णुभगवान् हे महात्मन् प्रल्हाद ! जागो ऐसा कहते हुये, और दिशाओंके समूहको शब्दयुक्त करते हुये पांचजन्य नाम शंख बजाया ॥ ७ ॥ विष्णुके बलके प्रभावसे उत्पन्न, और एककालमें क्षुब्ध समुद्रोंके प्रलयकालके शब्दकें समान उस महाशब्दसे ॥ ८ ॥

आसुरीजनताभूमौपपातागतसंभ्रमा ॥ मत्तलीलाभ्रनादेनराजहंसावलीयथा ॥ ९ ॥ जहर्षजनितानंदा वैष्णवीगतसंभ्रमा ॥ जनताजलदध्वानफुल्लेवकुटजावली ॥ १० ॥ बभूवसंप्रबुद्धात्मादानवेशःशनैः शनैः ॥ मेघावसरउत्फुल्लकदंबइवकानने ॥ ११ ॥ ब्रह्मरंध्रकृतोत्थानाप्राणशक्तिरथासुरम् ॥ शनैराक्रमयामासगंगासर्वमिवार्णवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—भय तथा मूर्छा प्राप्त होनेसे असुरोंका समूह पृथिवीपर ऐसे गिरपड़ा जैसे मत्त हांथीकी लीलाके मेघनादसे राजहंसोंकी पंक्ति ॥ ९ ॥ और आनन्द उत्पन्न होनेसे संभ्रम (भय) रहित वैष्णवोंका समूह ऐसे हर्षित हुआ जैसे मेघके शब्दसे विकसित कुटजोंकि पंक्ति ॥ १० ॥ और धीरे २ दानवोंका स्वामी ऐसे प्रबुद्ध हुआ जैसे मेघके समयमें जंगलमें विकसित कदम्ब ॥ ११ ॥ ब्रह्मरन्ध्रसे उठी हुई प्राण शक्तिने असुरको धीरे २ ऐसे पूर्ण किया जैसे समुद्रको गंगाजी ॥ १२ ॥

क्षणादाक्रमयामासप्राणश्रीस्सर्वतोसुरम् ॥ उदयानंतरंसौरीप्रभेवभुवनांतरम् ॥ १३ ॥ प्राणेषुरंध्रनवके प्रवृत्तेष्वथतस्यचित् ॥ चेत्योन्मुखीबभूवांतःप्राणदर्पणबिंबिता ॥ १४ ॥ चेतनीयोन्मुखीचेत्यंचिन्मनस्तामुपाययौ ॥ द्वित्वंमुकुरसंक्रांतामुखश्रीरिवराघव ॥१५॥ किंचिदंकुरितेचित्तेनेत्रेविकसनोन्मुखे ॥ शनैर्बभूवतुस्तस्यप्रातर्नीलेयथोत्पले ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्राणकी श्री प्रल्हाददैत्यको चारों ओरसे ऐसे पूर्ण किया जैसे उदयके पश्चात् सूर्य्यकी प्रभा लोकके अन्तरालको ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके नवो छिद्रोंमें प्रवृत्त होनेपर सूक्ष्म शरीररूप दर्पणमें प्रतिबिम्बित चित् विषयकी ओर उन्मुख हुई ॥ १४ ॥ हे रामजी ! चेतनीय विषयोंकी ओर उन्मुख चित् और विषयाकार संस्कारके उद्बोधसे विषयके तुल्य होके चित् और जडरूप मनरूपताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बित मुखकी श्री (शोभा) द्वित्वरूपताको ॥ १५ ॥ चित्तके कुछ अंकुरित होनेपर विकासकी ओर उन्मुख दोनों नेत्र ऐसे शोभित हुये जैसे प्रातःकालमें नील कमल ॥ १६ ॥

प्राणापानपरामृष्टानाडीविवरसंविदः ॥ वातार्त्तस्येवपद्मस्यस्पंदोस्यसमजायत ॥ १७ ॥ निमेषांतरमात्रेणमनःपीपरतांययौ ॥ तस्मिन्प्राणवशात्पूर्णेतरंगइवबारिणि ॥ १८ ॥ अथासौविकसन्नेत्रमनःप्राणवपुर्बभौ ॥ अर्द्धोदितइवादित्येसरःस्फुरितपंकजम् ॥१९॥ अस्मिन्नवसरेयावद्बुध्यस्वेत्यवदद्विभुः ॥ प्रबुद्धस्तावदेषोभूद्बर्हीघनरवादिव ॥ २० ॥

अर्थ—अन्तःकरणमें प्रविष्ट प्राण और अपान वायुसे उद्बोधित नाडीके छिद्रोंमें ज्ञानके निमित्तसे प्रल्हादके शरीरमें किंचित् संचलन ऐसे हुआ जैसे मन्द २ वायुसे प्रेरित कमलमें ॥ १७ ॥ प्राणके वशसे उस प्रल्हादके शरीरके पूर्ण होनेपर मन ऐसे स्थूलताको प्राप्त हुआ जैसे पूर्ण समुद्रमें तरंग ॥ १८ ॥ इसके पीछे विकसित नेत्र, मन प्राण और शरीरसहित प्रल्हाद इसप्रकार शोभित हुआ जैसे अर्द्ध सूर्य्योदय होनेपर विकसित कमलयुक्त तडाग ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें जबतक विष्णुपरमात्माने यह कहा कि प्रल्हाद उठो इतनेहीमें यह ऐसे जाग्रत हुआ जैसे मेघके शब्दसे मोर ॥ २० ॥

प्रफुल्लनयनंजातमननंपीवरस्मृतिम् ॥ उवाचैनंत्रिलोकेशःपुरानाभ्यब्जजंयथा ॥ २१ ॥ साधोस्मरमहालक्ष्मीमात्मीयांस्मरचाकृतिम् ॥ अकांडएवकिंदेहविरामःक्रियतेत्वया ॥ २२ ॥ हेयोपादेयसंकल्पविहीनस्यशरीरगैः ॥ भावाभावैस्तवार्थःकिमुत्तिष्ठोत्तिष्ठसंप्रति ॥ २३ ॥ स्थातव्यमिहदेहेनकल्पंयावदनेनते ॥ वयंहिनियतिंविद्मोयथाभूतामनिंदिताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अनन्तर विकसित नेत्र, और अहंभावसहित तथा पूर्वकालकी स्मृतिकी वृद्धियुक्त प्रल्हादसे तीनोंलोकके स्वामी भगवान् ऐसे बोले जैसे पूर्वकालमें अपने नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीसे ॥ २१ ॥ हे साधो ! तुम अपनी राज्यादि लक्ष्मी तथा अपनी आकृतिको स्मरण करो और यह आकालमेंही देहसे विरक्त क्यों होते हो ॥ २२ ॥ हेय और उपादेयके संकल्पसे हीन शरीरगामी भाव तथा अभावरूप पदार्थोंसे तुमारा क्या प्रयोजन ? तुम तो इससमय उठो उठो ॥ २३ ॥ इसी शरीरसे तुमको इस लोकमें कल्पपर्य्यंत रहना होगा, और हम लोग तुमारी आयुरूप अनिन्दित नियतिको यथार्थ जानते हैं ॥ २४ ॥

जीवन्मुक्तेनभवताराज्यएवेहतिष्ठता ॥ क्षेपणीयागतोद्वेगमाकल्पांतमियंतनुः ॥ २५ ॥ तन्वांकल्पांतशीर्णायांस्वेमहिम्नित्वयानघ ॥ वस्तव्यंस्फुटितेकुंभेकुंभाकाशेनखेयथा ॥ २६ ॥ कल्पांतस्थायिनिशुद्धा

दृष्टलोकपरावरा ॥ इयंतवतनुर्ज्ञाताजीवन्मुक्तविलासिनी ॥ २७ ॥ नोदिताद्द्वादशादित्यानप्रलीनाःशिलोच्चयाः ॥ नजगज्ज्वलितंसाधोतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी राज्यमें स्थित जीवन्मुक्तरूपसे तुमको घबराहटको त्यागकर कल्प-पर्य्यन्त व्यवहारमें इसशरीरको चलाना पडेगा ॥ २५ ॥ हे पाप रहित रामजी! कल्पके अन्तामें इस शरीरके जीर्ण (नष्ट) होनेपर निज आत्मभूत अपने निरतिशय महिमामें स्थित रहोगे जैसे घटके फूटनेपरभी आकाशमें घटाकाश ॥ २६ ॥ हे प्रल्हादजी कल्पके अन्ततक स्थायिनी, शुद्ध इसलोक तथा परलोकको देखनेवाली और जीवन्मुक्तोंके विलासवाली यह तुमारी शरीर अब हो गई ॥ २७ ॥ हे प्रल्हादजी अभी तो द्वादश आदित्य नहीं उदय हुये सुमेरू आदि पर्वत नष्ट नहीं हुये, और यह ब्रह्माण्ड भी नहीं जला. हे साधो इस शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ॥ २८ ॥

वायुर्वहतिनोन्मत्तस्त्रिलोकीभस्मधूसरः ॥ लोलामरकपालांकस्तत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ २९ ॥ अशोकइवमंजर्यःपुष्करावर्त्तविद्युतः ॥ नस्फुरंतिजगत्कोशेतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३० ॥ धरासाररणच्छैलाःप्रज्वलज्ज्वलनोज्ज्वलाः ॥ ककुभोनविशीर्य्यंतेतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३१ ॥ नब्रह्मविष्णुरुद्राख्यत्रयीशेषमिदंस्थितम् ॥ जगज्जरठजीमूतंतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३२ ॥

अर्थ—तीनों लोकके भस्मसे मलिन और चञ्चल देवताओंके शिरोंसे चिन्हित पवनभी अभी नहीं वहता इसलिये इस शरीरको अभी क्यों व्यर्थ त्यागते हो ॥ २९ ॥ अशोक वृक्षमें लताओंके सदृश पुष्करावर्त नाम मेघोंमें इस जगत्के कोशमें विद्युत् (विजली) अभी नहीं चमकती इसलिये तुम अपने शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३० ॥ जलती हुई पृथिवीके कंपसे शब्द करनेवाले पर्वत सहित तथा प्रज्वलित अग्निकी ज्वालासे युक्त दिशाओंके अन्तमें अभी ब्रह्माण्डकी भिति विशीर्ण (नष्ट) नहीं हो रहीं हैं, इसलिये तुम अपनी देहको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३१ ॥ प्रवृद्ध प्रलयके मेघ मंडलसहित यह जगत् अभी ब्रह्मा विष्णु महेश मात्र शेष नहीं रह गयाहै इसलिये अपनी देहको क्यों त्यागते हो ॥ ३२ ॥

नचेहाद्रिदलश्रेणिमात्रिकानुमितांतराः ॥ दिशोजर्जरतांयातास्तत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३३ ॥ स्फुटदद्रीद्रटंकाराःकराःसौराभ्रमंतिखे ॥ कल्पाभ्राणिनगर्ज्जंतितत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३४ ॥ अहंभूतावकीर्णासुसालोकासुखगध्वजः ॥ विहरामिदशाशासुमादेहमवधीरय ॥ ३५ ॥ इमेवयमिमेशैलाभूतानीमान्ययंभवान् ॥ इदंजगदिदंव्योममादेहमवधीरय ॥ ३६ ॥

अर्थ—अभी इस लोकमें प्रलय आदि कुलपर्वतोंके पृथिवीके कमलदलोंके सदृश श्रृंगोंसे अनुमित भेदवाले दिगन्तोंमें ब्रह्माण्डकी भीति जर्जरदशाको नहीं प्राप्त हुई है, तुम अपने शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३३ ॥ फुटते हुये मेरूके समान टंकार शब्दयुक्त प्रलयके सूर्यके किरण अभी आकाशमें नहीं भ्रमण करतीं, और प्रलयकालके मेघ अभी नहीं गर्जते तुम अपनी देहको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥३४॥ अण्डज आदि चारप्रकारके प्राणियोंसे व्याप्त आलोकसहित दशोंदिशाओंमें मैं गरूडध्वज विष्णुविहार करताहुं तुम अपनी देहको न त्यागो ये हमलोग ये सब पर्वत, ये सब भूत, यह तुम, यह जगत् यह आकाश ये सब विद्यमानहैं अभी तुम अपनी देहको न त्यागो ॥ ३६ ॥

पीवराज्ञानयोगेनयस्यपर्याकुलंमनः ॥ दुःखानिविनिकृंतंतिमरणंतस्यराजते ॥ ३७ ॥ कृशोतिदुःखीमूढोहमेताश्चान्याश्चभावनाः ॥ मतिंयस्यावलुंपंतिमरणंतस्यराजते ॥ ३८ ॥ आशापाशनिबद्धोंतररितश्चेतश्चनीयते ॥ योविलोलमनोवृत्त्यामरणंतस्यराजते ॥ ३९ ॥ यस्यतृष्णाःप्रभंजंतिहृदयंहतभावनाः ॥ प्ररोहमिवगर्धेभ्योमरणंतस्यराजते ॥ ४० ॥

अर्थ—घनीभूत अज्ञानके योगसे जिसका मन व्याकुलहै और जिसको दुःख छेदन करते हैं उसका मरण शोभित होताहै ॥ ३७ ॥ मैं कृशहुं अति दुःखीहुं और मूढहूं ये तथा अन्यभी भावना जिसकी बुद्धि नष्ट करती हैं उसका मरण शोभा देताहै ॥ ३८ ॥ जो जन आशारूप पाशसे अन्तःकरणमें बद्धहै और चंचल मनकी वृत्ति जिसको इधर उधर भ्रमाती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ३९ ॥ विवेकको हरण करके तृष्णा जिसके हृदयको ऐसे मर्दित करती हैं जैसे महाफलसहित शाली आदि अंकुरका खेत पशु आदिके हृदयको ॥ ४० ॥

चित्तवृत्तिलतायस्यतालोत्तालमनोवने ॥ फलितासुखदुःखाभ्यांमरणंतस्यराजते ॥ ४१ ॥ रोमराजीलताजालंयस्येमंदेहदुर्द्रुमम् ॥ अनर्थौघोहरत्युच्चैर्मरणंतस्यराजते ॥ ४२ ॥ यस्यस्वदेहविपिनमाधिव्याधिदवाग्नयः ॥ दहंतिलोलांगलतंमरणंतस्यराजते ॥ ४३ ॥ कामकोपात्मकायस्यस्फूर्जंत्यजगरास्तनौ ॥ अंतःशुष्कद्रुमस्येवमरणंतस्यराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—ताल वृक्षके समान रागादिसे उच्चतासहित मनरूप बनमें जिसकी चित्तकी वृत्तिरूप लता सुख तथा दुःखसे फलित होती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४१ ॥ जिसके रोमोंकी पंक्तिरूप लता जालसे वेष्टित इस देहरूप विषके वृक्षको कामादिरूप अनर्थ जनक पवन हरलेताहै उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४२ ॥ चंचल अंगरूप लतासहित जिसके निजदेहरूप बनको आदि व्याधिरूप दावाग्नि जलाती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४३ ॥ जिसके शरीरमें कामक्रोधादिरूप अजगर ऐसे गर्जते हैं जैसे शुष्क वृक्षके कोटरमें उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४४ ॥

योयंदेहपरित्यागस्तल्लोकेमरणंस्मृतम् ॥ नसतानासतातेनकारणंवेद्यवेदनम् ॥ ४५ ॥ यस्यनोत्क्रामतिमतिःस्वात्मतत्त्वावलोकनात् ॥ यथार्थदर्शिनोज्ञस्यजीवितंतस्यशोभते ॥ ४६ ॥ यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥ यःसमःसर्वभावेषुजीवितंतस्यराजते ॥ ४७ ॥ योंतःशीतलयाबुद्ध्यारागद्वेषविमुक्तया ॥ साक्षिवत्पश्यतीदंहिजीवितंतस्यराजते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस स्थूलशरीरका जो परित्यागहै इसको लोकमें मरण कहतेहैं वह त्याग निष्क्रिय सत् आत्मामें नहीं होसकता और असत् (अविद्यमान) अपना त्याग क्या करेगा, इससे वेद्य आत्मवस्तुका ज्ञानही शरीरके असत् होनेमें कारणहै ॥ ४५ ॥ जिस तत्वज्ञानी पुरुषकी मति अपने आत्मतत्वके दर्शनसे उद्विग्न नहीं होती उस पुरुषका जीवन शोभा देताहै ॥ ४६ ॥ जिसको देहादिमें अहंभाव नहीं है, जिसकी बुद्धि संसारी पदार्थोंमें लिप्त नहीं है और जो सब भावोंमें समहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४७ ॥ जो पुरुष रागद्वेषसे वर्जित अन्तःकरणमें शीतल बुद्धिसे साक्षीके समान इस जगत्‌को देखताहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४८ ॥

येनसम्यक्परिज्ञायहेयोपादेयमुज्झता ॥ चित्तस्यांतेर्पितंचित्तंजीवितंतस्यशोभते ॥ ४९ ॥ अवस्तुसदृशेवस्तुन्यसक्तंकलनामले ॥ येनलीनंकृतंचेतोजीवितंतस्यशोभते ॥ ५० ॥ सत्यांदृष्टिमवष्टभ्यलीलयेयंजगत्क्रिया ॥ क्रियतेऽवासनंयेनजीवितंतस्यराजते ॥ ५१ ॥ नांतस्तुष्यतिनोद्वेगमेतियोविहरन्नपि ॥ हेयोपादेयसंप्राप्तौजीवितंतस्यशोभते ॥ ५२ ॥

अर्थ—हेय तथा उपादेयको त्यागकर जिस पुरुषने संसारकी असारताको जानकर अपने चित्तको चित्तके अवसान साक्षीचेतनमें नियुक्त कियाहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४९ ॥ जिस पुरुषका चित्त शुक्तिके रजतके समान वस्तुके तुल्य भासमान बाह्य कल्पनात्मक पदार्थोंमें असक्तहै, और जिसने अपने चित्तको ब्रह्ममें लीन करदियाहै उसका जीवनशोभा देताहै ॥ ५० ॥ जो पुरुष सत्यदृष्टिका अवलम्बन करके वासनारहित होके जगत्‌के व्यवहारको करताहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ५१ ॥ जो प्राणी इससंसारमें विहार करता हुआ भी हेय दुःख हेतुके प्राप्त होनेसे अन्तःकरणमें दुःखी नहीं होता और उपादेय सुखके साधनकी प्राप्तिसे सन्तुष्ट नहीं होता उसका जीवनशोभा देताहै ॥ ५२ ॥

शुद्धपक्षस्यशुद्धस्यहंसौघःसरसोयथा ॥ यस्माद्गुणौघोनिर्यातिजीवितंतस्यशोभते ॥ ५३ ॥ यस्मिन्श्रुतिपथंप्राप्तेदृष्टेस्मृतिमुपागते ॥ आनंदंयांतिभूतानिजीवितंतस्यशोभते ॥ ५४ ॥ यस्योदयेषुहृदयेनजनांबुजानिजीवालिमंतिसकलानिविलासवंति ॥ तस्यैवभातिपरिजीवितमक्षयेंदोरापूर्णतेवदनुजेश्वरनेतरस्य ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे नारायणवचनोपन्यासोनामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—शुद्ध तत्वज्ञानी जिसके पक्ष (आत्मीय मित्रादि) में विवेकादि हैं और जो शुद्धहै तथा तडागसे हंसोंके समूहोंके तुल्य जिस पुरुषसे शांति क्षमा आदि गुण वा शैत्य सौरभादि गुणसमूह निकलते हैं उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ५३ ॥ जिसके सुनने, देखने, प्राप्त होने वा स्मरण होनेपर प्राणी प्रसन्न होते हैं उसका जीवन शोभा देताहै ॥५४॥ और जिस जीवके सम्पत्ति आदिके अधिक होनेपर जीवरूप भ्रमरसे शोभित प्राणीरूप कमल विकसित होते हैं, हे दैत्योंके ईश्वर प्रल्हाद उसका जीवन ऐसे शोभा देताहै जैसे क्षयरोगसे विनिर्मुक्त चंद्रमाकी पूर्णता ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे नारायणबचनोपन्यासो नामैकोन चत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

सदेहहो वा विदेहहो कूटस्थ हो वा क्रियामें तत्पर तत्वज्ञानी जिसप्रकार इससंसारमें व्यवहार करै वह क्रम इस ४० सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ स्थैर्यंदेहस्यदृष्टस्यजीवितंप्रोच्यतेजनैः ॥ देहांतरार्थंदेहस्यसंत्यागोमरणं स्मृतम् ॥ १ ॥ द्वाभ्यांचैवास्विपक्षाभ्यामाभ्यांमुक्तोमहामते ॥ किंतेमरणमस्तीहकिंवाजीविमतस्तिते ॥ २ ॥ निदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तमरिमर्दन ॥ नत्वंजीवसिसर्वज्ञम्रियसेनकदाचन ॥ ३ ॥ देहसंस्थोप्य देहत्वाददेहोसिविदेहहक् ॥ व्योमसंस्थोप्यसक्तत्वादव्योमेवहिमारुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवन्जी बोले–हे प्रल्हाद ! इस स्थूलदृष्टशरीरकी जो स्थिरताहै उसको संसारमें लोग जीवन कहते हैं और दूसरे देहको ग्रहण करनेके लिये जो इस देहका त्याग अर्थात् प्राणोंका उत्क्रमणहै उसको मरण कहते हैं ॥१॥ हे महामते ! इन दोनों पक्षोंसे अर्थात् देहकी स्थिरता तथा प्राणोंके उत्क्रमणसेभी तुम मुक्तहो इस संसारमें तुमारे लिये क्या जीवन और क्या मरणहै ॥२॥ हे शत्रुमर्दन ! यह जीवन मरण मैंने ज्ञान अज्ञानके गुण वर्णनके लिये तुमसे कहाहै, हे सर्वज्ञ ! तुम न जीतेहो और न कदाचित् मरतेहो देहमें आत्मदृष्टि न होनेसे तथा देहसे भिन्न होनेसे तुम देहमें स्थित रहते भी देह ऐसे नहींहो जैसे आकाशमें स्थित भी वायु असक्त होनेके कारण आकाश नहीं है ॥४॥

स्पर्शसंबोधकारित्वाद्देहएवास्तिसुव्रत ॥ उत्सेधारोधकत्वेनखमुत्सेधस्यकारणम् ॥ ५ ॥ प्रबुद्धोज्ञात वस्तुत्वाद्देहःकशमिनामिह ॥ इदंत्वेकंपरिच्छिन्नंरूपमज्ञेषुदुःस्थितम् ॥ ६ ॥ सर्वदासर्वमेवासिचि त्प्रकाशःपरैकधीः ॥ कोदेहःकोप्यदेहस्तेयंगृह्णासिजहासिच ॥ ७ ॥ समुदेतुवसंतोवावातुवाप्रलयानि लः ॥ भावाभावविहीनस्यकिमभ्यागतमात्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे सुव्रत ! त्वगइन्द्रियद्वारा स्पर्श ज्ञानके निमित्त होनेसे तुम देहमें ऐसे स्थितहो जैसे वृक्षके उगनेमें अवरोधक न होनेसे आकाश कारणहै ॥ ५ ॥ तत्वके ज्ञान होनेसे तुम प्रबुद्ध (ज्ञानी) हो और ज्ञान होनेपर सब द्वैतके शान्त करनेवाले ज्ञानियोंका देह कहां प्रवृत्त होताहै, और यह परिछिन्न और असंभव भी देह अज्ञानियोंमें स्थितहै ॥ ६ ॥ हे महात्मन् ! तुम सर्वदा चित्प्रकाशज्ञानरूपहो इसप्रकार देह तुमारा कौन पदार्थ है जिसको तुम अहंबुद्धिसे ग्रहण करो और देह भिन्न क्याहै जिसको अनहंभावसे त्यागो ॥ ७ ॥ वसन्तऋतु प्रकटहो वा प्रलयका वायुवहै परन्तु भाव अभावसे रहित आत्माका उसमें क्या आया ! ॥ ८ ॥

प्रलुठत्स्वपिशैलेषुकल्पाग्निषुदहत्स्वपि ॥ वहत्सूत्पातवातेषुस्वात्मन्येवहितिष्ठति ॥ ९ ॥ सर्वभूतानि तिष्ठंतुसर्वमेवप्रयातुवा ॥ नश्यंतुवाथवर्द्धंतामात्मन्येवाभितिष्ठति ॥ १० ॥ क्षीयतेनक्षयंप्राप्तेवर्धमानेन वर्धते ॥ नस्पंदतेस्पंदमानेदेहेस्मिन्परमेश्वरः ॥ ११ ॥ देहस्याहमहंदेहीतिक्षीणेचित्तविभ्रमे ॥ त्यजा मिनत्यजामीतिकिंमुधाकलनोदिता ॥ १२ ॥

अर्थ—पर्वतोंके लुढकनेपर, कल्पाग्निके जलनेपर, और उत्पातकारी पवनोंके वहनेपरभी तत्वज्ञानी अपने आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ सब भूत स्थित रहैं वा सब कुछ चलाजाय, सब नष्टहो वा सब कुछ बढैं परन्तु तत्वज्ञानी अपने आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ १० ॥ इस देहमें स्थित आत्मा परमेश्वर देहके क्षीण होनेसे न क्षीण होताहै और न उसके बढनेपर बढताहै मैं देहका हुं और देह मेराहै यत देह तथा उसके धर्मोंके साथ जो अभेदाध्यासहै इस चित्तके भ्रमके क्षीण होनेपर इसको मैं त्यागताहुं इसको नहीं त्यागता यह निष्फल कल्पना नहीं उदय होती ॥१२॥

इदंकृत्वाकरोमीदमिदंत्यक्त्वेदमित्यलम् ॥ इतितत्त्वविदांतातसंकल्पाःसंक्षयंगताः ॥ १३ ॥ प्रबुद्धाः सर्वकर्त्तारःकरिष्यंतीहकिंचन ॥ नतस्याकरणेनित्यमकर्त्तृत्वपदंगताः ॥ १४ ॥ अकर्त्तृत्वादभोक्तृत्व मर्थादेवसमागतम् ॥ संगृहीतंकिलानुप्तंकेनेहभुवनत्रये ॥ १५ ॥ शांतेकर्त्तृत्वभोक्तृत्वेशांतिरेवेहशि ष्यते ॥ प्रौढिमभ्यागतासैवमुक्तिरित्युच्यतेबुधैः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय प्रल्हादजी ! इसको करके इसको करूंगा इसे त्यागके इसे पूर्णरीतिसे त्यागूंगा इत्यादि संकल्प तत्ववेत्ताओंके क्षयको प्राप्त होगये हैं तत्वज्ञानी सब कुछ करते हुये भी कुछ नहीं करते तथा न करैंगे, और उसके न करनेसे नित्य ही अकर्तत्वपदको प्राप्त हुये हैं ॥१४॥ अकर्ता न होनेसे भोक्तृताका अभाव अर्थात् प्राप्त हुआ क्योंकि तीनोंलोकमें विनावोये किसीने नहीं काटा ॥ १५ ॥ और कर्तता तथा भोक्तृताके शान्त होनेसे केवल शान्तिही शेष रहजाती है और दृढताको प्राप्त उसी शान्तिको पण्डितजन मुक्ति कहतेहैं ॥ १६ ॥

प्रबुद्धाश्चिन्मयाःशुद्धाःसर्वमाक्रम्यसंस्थिताः ॥ किंत्यक्तंपरिगृह्णंतुकिंगृहीतंत्यजंतुवा ॥ १७ ॥ ग्राह्य ग्राहकसंबंधप्रमितावयविक्रमैः ॥ हीनःप्रमेयावयवैःकिंगृह्णातुजहातुकिम् ॥ १८ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधे क्षीणेशांतिरुदेत्यलम् ॥ स्थितिमभ्यागताशांतिर्मोक्षनाम्नाभिधीयते ॥ १९ ॥ तत्रस्थिताःसदाशांता स्त्वादृशाःपुरुषोत्तमाः ॥ सुषुप्तावयवस्पंदसाधर्म्येणचरंतिहि ॥ २० ॥

अर्थ—चिन्मय तथा शुद्धरूप तत्वज्ञानी महात्मा अपने स्वरूपके आविर्भावसे सबको अति क्रमण करके स्थित हैं वे लोग कौनसे त्यक्त पदार्थको ग्रहण करैं और कौनसे ग्रहण किये हुयेको त्यागैं ॥ १७ ॥ ग्राह्य ग्राहकके सम्बन्धोंसे, और यज्ञोंकी दृष्टिसे क्रियाकारक सम्बन्ध घटित अवान्तर वाक्यार्थरूप अंगीके क्रमोंसे, और महावाक्योंके प्रमेयके अवयवोंसे अर्थात् अंग तथा प्रधान क्रियासमूहरूप विकारोंसे हीन कूटस्थ आत्मा अंग वा प्रधानक्रियासे साध्य किस पारलौकिक स्वर्गादि फलको ग्रहण करै वा त्यागै ॥ १८ ॥ हे प्रल्हादजी ! ग्राह्य ग्राहकके सम्बन्धके क्षीण होनेपर पूर्ण शान्ति उदय होती है और स्थिरताको प्राप्त यही शान्ति मोक्ष नामसे कही जाती है॥१९॥ और मोक्षमें स्थित तुमारेसमान पुरुषोत्तम सदा शान्त रहते हैं और सुषुप्तिमें स्थित पुरुषोंकी जिससे प्राण तथा उदरमें स्थित अन्नरसादिकी संचलन क्रिया जीवनके अदृष्टसे होती हैं ऐसेही वे जीवन्मुक्त पुरुष आचरण करते हैं ॥२०॥

परावबोधविश्रांतवासनोजगतिस्थितिम् ॥ अर्द्धसुप्तइवेहेमांत्वंपश्यात्मस्थयाधिया ॥ २१ ॥ नरमंतेहि रम्येषुस्वात्मन्येवगताशयाः ॥ नोद्विजंतेन्यदुःखेषुस्वात्मन्येकरसायनाः ॥ २२ ॥ नित्यप्रबुद्धागृह्णंति कार्याणिमान्यसंगिनः ॥ मुकुराइवबिंबानियथाप्राप्तान्यवांछया ॥ २३ ॥ जाग्रतिस्वात्मनिस्वस्थाःसुप्ताःसंसारसंस्थितौ ॥ बालवत्प्रविवेपंतेसुषुप्तसदृशाशयाः ॥ २४ ॥ त्वमजितपदवीमुपागतोंतःकमल जवासरमेकमेवभुक्त्वा ॥ गुणगणकलितामिहैवलक्ष्मींव्रजपरमास्पदमच्युतंमहात्मन् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधनं नाम चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रल्हादजी ! परमात्माके ज्ञानसे वासनाओंको त्यागकर इस जगत्की स्थितिको अर्द्ध सुप्तके समान आत्मामें स्थित बुद्धिसे देखो ॥ २१ ॥ अपने आत्माहीमें जिनको परमसुखहै ऐसे तत्वज्ञानी जन आत्मासे भिन्न रमणीय (स्त्रीपुत्रादि) पदार्थोंमें रमण नहीं करते, और न आत्माको स्पर्श करनेसे दुःखोंमें वे व्याकुल होते हैं॥२२॥ असंगी और नित्य ज्ञानी महात्मा सुख दुःखके अभावसे सुखकी प्राप्ति तथा दुःखके परिहारार्थ इन सब यथा प्राप्त कार्य्योंको आसक्तिके अभावसे ऐसे ग्रहण करते हैं जैसे दर्पण प्रतिबिम्बोंको ॥ २३ ॥ वे स्वस्थ चित्त महात्मा आत्मज्ञानके विषयमें तो जागते हैं और संसारकी स्थितिमें सोते हैं, और सुषुप्तके तुल्य वे महात्माजन बालकके समान लोकमें व्यवहार करते हैं ॥ २४ ॥ हे महात्मन् ! तुम अन्तःकरणमें विष्णुपदवीको प्राप्त हो और अनेक गुणगणोंसे चिन्हित राज्यलक्ष्मीको ब्रह्माका एक दिन अर्थात् कल्पपर्यन्त भोग करके अन्तमें पतनरहित विदेह कैवल्यनाम परमपदको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे प्रल्हाद बोधनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

आज्ञा ग्रहण किये हुये दैत्य प्रल्हादसे अनुगसहित विष्णुभगवान्‌ने पूजा ग्रहण करके और दैत्यके राज्यमें इस प्रल्हादका अभिषेक करके वरदानोंसे उसे शोभित किया इस विषयका वर्णन ४१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ जगद्रत्नसमुद्रेणत्रैलोक्याद्भुतदर्शिना ॥ इत्युक्तेपद्मनाभेनज्योत्स्नाशीतलयागिरा ॥ १ ॥ प्रह्लादनामादेहोसौविकाशिनयनांबुजः ॥ सुदोवाचवचोधीरोगृहीतमननक्रमः ॥ २ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ ॥ हिताहितविचारेणराजकार्यशतेनच ॥ अत्यहंश्रमितोदेवक्षणंविश्रामतांगतः ॥ ३ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनस्थितिःसम्यग्गथागता ॥ समाधावसमाधौचरूपेणाहंसमःसदा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—प्रलयकालमें जगत्‌रूप रत्नोंके कोश और सृष्टिकालमें त्रैलोक्यरूपसे अद्भुत दर्शनशील कमलनाम भगवान्‌विष्णुके प्रकाशमय शीतल (मधुर) वाणीसे इतना कहनेपर ॥ १ ॥ अभिमानका क्रम ग्रहण किये हुये विकसित नेत्रकमलसे शोभित धीर प्रल्हाद नामवाला यह शरीर प्रसन्नतासे यह वचन बोला ॥ २ ॥

प्रल्हादजी बोले—हे देव ! दैत्योंके हित और देवताओंके अहित विचारसे युक्त सैकडों राज्यके कार्योंसे मैं अति श्रान्त था इससमय क्षणभर विश्रामको प्राप्त हुआहै ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपकी कृपासे इससमय उत्तम स्थिति प्राप्त हुई है समाधिमें अथवा असमाधिमें रहुं परन्तु मैं अपने आत्मरूपसे सदा एक रसहुं ॥ ४ ॥

चिरमंतर्महादेवदृष्टोस्यमलयाधिया ॥ पुनर्बहिरयंदृष्टयादिष्टयादेवप्रदृश्यसे ॥ ५ ॥ अहमासमनंताया मस्यांदृष्टौमहेश्वर ॥ सर्वसंकल्पमुक्तायांव्योमव्योम्नीवनिर्मले ॥ ६ ॥ नशोकेननमोहेननचवैराग्यचिंतया ॥ नदेहत्यागकार्येणनसंसारभयेनच ॥ ७ ॥ एकस्मिन्विद्यमानेहिकुतःशोकःकुतःक्षतिः ॥ कुतो देहःकसंसारःकस्थितिःकभयाभये ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महादेव चिरकालतक अखण्ड मानस साक्षात्कार वृत्तिसे आप दृष्टहो और अब भाग्यसे नेत्रसे बाहर देख पडतेहो ॥ ५ ॥ हे महेश्वर ! सब संकल्पोंसे विनिर्मुक्त मैं इस अनन्त आन्तरिक दृष्टिमें ऐसे था जैसे निर्मल आकाशमें आकाश ॥६॥ हे भगवान् ! न शोकसे, न मोहसे, न वैराग्यकी चिन्तासे, न देह त्यागके कार्यसे और न संसारके भयसे मैं समाधिमें आश्रितथा ॥७॥ क्योंकि एक अद्वितीय परमात्माके विद्यमान रहते कहां तो शोक! और कहां किसी प्रकारकी हानि, कहां देह, कहां यह संसार, कहां स्थिति, और कहां भय, तथा अभय ! ॥ ८ ॥

यथेच्छयैवामलयाकेवलंस्वयमुत्थया ॥ एवमेवाहमवसंवितते पावनेपदे ॥ ९ ॥ हाविरक्तोस्मिसंसारं त्यजामीतीयमीश्वर ॥ अप्रबुद्धदृशांचिंताहर्षशोकविकारदा ॥ १० ॥ देहाभावेनदुःखानिदेहेदुःखानिमे मतिः ॥ इतिचिंताविषव्यालीमूर्खमेवावलुंपति ॥ ११ ॥ इदंसुखमिदंदुःखमिदंनास्तीदमस्तिमे ॥ इति दोलायितंचेतोमूढमेवनपंडितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—किंतु केवल स्वयं आविर्भूत अपने स्वाभाविक निर्मल विचारसे देह त्यागादि अभिप्रायके बिनाही परमपवित्र व्यापक पदमें मैं निवास करताथा ॥ ९ ॥ हे परमेश्वर ! हा मैं विरक्तहुं इस संसारको त्यागताहुं यह अज्ञानियोंकी चिन्ता हर्ष शोकादि विकारोंको देनेहारी है ॥१०॥ देहके अभावमें दुःख नहीं होतेहैं और देहके रहनेमें दुःख होतेहै ऐसी मेरी बुद्धि कहती है इत्यादि चिन्तारूप विषमयी सर्पिणी मूर्खको छेदन करती है न कि पंडितको यह सुखहै यह दुःखहै यह मुझेहै यह नहीं है यह संशययुक्त चित्त मूढको छेदन करताहै न कि पण्डितको ॥१२॥

अहमन्योन्यएवायमित्यज्ञानांतुवासना ॥ दूरोदस्तात्मबुद्धीनांजयत्यसुमतामिह ॥ १३ ॥ इदंत्याज्यमि दंग्राह्यमितिमिथ्यामनोभ्रमः ॥ नोन्मत्ततांनयत्यंतर्ज्ञमज्ञमिवदुर्द्धियः ॥ १४ ॥ सर्वस्मिन्नात्मनिततेत्व यितामरसेक्षण ॥ हेयोपादेयपक्षस्थाद्वितीयाकलनाकुतः ॥ १५ ॥ विज्ञानाभासमखिलंजगत्सदसद्व स्थितम् ॥ किंहेयंकिमुपादेयमिहयस्त्यज्यतेनवा ॥ १६ ॥

अर्थ—मैं अन्यहुं, यह अन्यहै, इत्यादि वासना आत्मज्ञानको दूर फेकनेवाले प्राणियोंके हृदयमें सर्वोपरि है ॥ १३ ॥ यह त्याज्यहै यह ग्राह्यहै इत्यादि दुर्बुद्धिके मनका मिथ्या भ्रम ज्ञानीको अज्ञानीके तुल्य उन्मत्त नहीं करता ॥ १४ ॥ हे कमलनेत्र भगवन् ! सर्वरूप आप आत्मके व्याप्त होनेपर हेय और उपादेय पक्षमें स्थित द्वितीय कल्पना कहां है॥१५॥सत्आत्मा और असत् मायाके परस्पर अभेदाध्याससे आविर्भूत और शुक्तिमें रजतके तुल्य विज्ञानाभासके तुल्य यह सम्पूर्ण जगत्है इसमें क्या हेयहै और क्या उपादेयहै जिसको इससंसारमें प्राणी त्यागै वा न त्यागै॥१६

केवलंस्वस्वभावेनद्रष्टृदृश्येविचारयन् ॥ क्षणंविश्रांतवानंतःपरमात्मात्मनात्मनि ॥ १७ ॥ भावाभाव विनिर्मुक्तोहेयोपादेयवर्जितः ॥ एवमासमहंपूर्वमधुनेत्थंव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ समयात्मीयमापन्नंसर्व मात्मात्मतांगतः ॥ करोम्यहंमहादेवतुभ्यंयत्परिरोचते ॥ १९ ॥ त्वमयंपुंडरीकाक्षःपूज्यस्तावज्जगत्र ये ॥ तन्मत्तःप्रकृतिप्राप्तांपूजामादातुमर्हसि ॥ २० ॥

अर्थ—इसलिये केवल अपने आत्मस्वभावसे द्रष्टा तथा दृश्यका विचार करते हुये परमात्मास्वरूप मैंने आत्मासे आत्मामें क्षणभर विश्राम (समाधि) किया ॥ १७ ॥ भाव अभावसे विनिर्मुक्त, हेय तथा उपादेयसे वर्जित ऐसाही मैं समाधिकालमेंथा, और इससमय आपके आज्ञा दिये हुये कार्य करनेमें व्यवस्थितहुं ॥ १८ ॥ अपने स्वभावको प्राप्त मैं आपसे आज्ञप्त सब कार्य आपको जैसा रूचेगा वैसाही करूंगा ॥ १९ ॥ आप पुण्डरीकाक्ष (कमलनेत्र) तीनोंलोकमें पूज्य हो, इसलिये जैसे आपसे आज्ञप्त नियति प्राप्त राज्य मैं अंगीकार करताहुं ऐसे ही मुझसे दी हुई पूजाको आप ग्रहण करें ॥ २० ॥

इत्युक्त्वादानवाधीशःपुरःक्षीरोदशायिनः ॥ शैलेंद्रइवपूर्णेंदुमर्घपात्रमुपाददे ॥२१॥ सायुधंसाप्सरोवृंदं ससुरंसखगाधिपम् ॥ पूजयामासगोविंदंसत्रैलोक्यमथाग्रगम् ॥ २२ ॥ सबाह्याभ्यंतरभ्रांतभुवनंभुव

नेश्वरम् ॥ पूजयित्वाथतिष्ठंतमुवाचकमलापतिः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ उत्तिष्ठदानवा धीशसिंहासनमुपाश्रय ॥ यावदाश्वभिषेकंतेस्वयमेवददाम्यहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसा कहके दानवोंके स्वामी प्रल्हादजीने क्षीरसागरशायी विष्णुभगवान्‌के सम्मुख अर्घपात्र ऐसे ग्रहण किया जैसे उदयाचल पूर्णचन्द्रमाको ॥ २१ ॥ अस्त्र अप्सरावृन्द, गरूडजी तथा तीनोंलोकके साथ सम्मुख स्थित गोविन्दभगवान्‌की प्रल्हादने पूजा की ॥ २२ ॥ रोमकुपादि बाह्य देशोंमें और उदर हृदयादिमें आभ्यन्तरदेशमें जिसके अनेक जगत् भ्रमण कररहे हैं ऐसे भुवनोंके स्वामी विष्णुकी पूजा करके अग्रभागमे स्थित प्रल्हादसे लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् बोले॥२३॥हे दानवोंके अधीश ! उठो सिंहासनपर बैठो जबतक शीघ्र मैं तुमको स्वयं राज्याभिषेक देताहूं

पांचजन्यरवंश्रुत्वायइमेसमुपागताः ॥ सिद्धाःसाध्याःसुरौघास्तेकुर्वंतुतवमंगलम् ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा पुंडरीकाक्षोदानवंसिंहविष्टरे ॥ योजयामासयोग्यंतंमेरुशृंगइवांबुदम् ॥२६॥ अथैनंहरिराहूतैःक्षीरोदाद्यैर्महाब्धिभिः ॥ गंगादिभिःसरित्पूरैःसर्वतीर्थजलैस्तथा ॥२७॥ सर्वविप्रर्षिसंघैश्चसर्वसिद्धगणैःसह॥ पूर्वविद्याधरयुतोलोकपालसमन्वितः ॥ २८ ॥

अर्थ—पांच जन्य (शंख) के शब्दको सुनकर ये सब आये हुये सिद्ध साध्य और अन्य देवताके समूह तुमारे राज्यके मंगल कार्य्योंको करैं ॥ २५ ॥ पुण्डरीकाक्ष भगवान् इतना कहके योग्य प्रल्हाददैत्यको सिंहासनपर ऐसे नियुक्त किया जैसे मेरूके शिखरपर मेघको ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् क्षीरसमुद्रादि महासमुद्रोंसे गंगा आदि नदिनदियोंसे तथा सब तीर्थोंसे आनीत जलोंसे ॥ २७ ॥ सब ब्राह्मण ऋषियोंके संघोंके तथा सिद्ध गणोंके साथ प्रल्हादका अभिषेक किया और विद्याधर तथा लोकपालों करके सहित ॥ २८ ॥

अभ्यषिंचदमेयात्मादैत्यराज्येमहासुरम् ॥ मरुद्गणैःस्तूयमानंपूर्वस्वर्गेहरिंयथा ॥ २९ ॥ सुरासुरैःस्तूयमानंस्तूयमानःसुरासुरैः ॥ अभिषिक्तमुवाचेदंप्रह्लादंमधुसूदनः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ यावन्मेरुर्धरायावद्यावच्चंद्रार्कमंडले ॥ अखंडितगुणश्लाघीतावद्राजाभवानघ ॥ ३१ ॥ इष्टानिष्टफलंत्यक्त्वासमदर्शनयाधिया ॥ वीतरागभयक्रोधोराज्यंसमनुपालय ॥ ३२ ॥

अर्थ—अप्रमेय (प्रमाणके अयोग्य) आत्मा विष्णुभगवान् ! दैत्योंके राज्यमें महाअसुरको ऐसे अभिषेक किया जैसे स्वर्गमें देवताओंसे स्तूयमान इन्द्रको ॥ २९ ॥ सुर तथा असुरोंसे स्तुत विष्णुभगवान् सुर तथा असुरोंसे स्तुत प्रल्हादसे यह बचन बोले ॥ ३० ॥ हे प्रल्हाद ! जबतक सुमेरूपर्वत और पृथिवी है, तथा जबतक सूर्य्य चन्द्रका मण्डलहै तबतक अखण्डित गुणोंसे प्रसंशित इस लोकके तुम राजा रहो ॥ ३१ ॥ इष्ट अनिष्ट फलोंको त्यागकर बुद्धिसे समदर्शी और राग द्वेष भय तथा क्रोधको त्यागकर राज्यका पालन करो ॥ ३२ ॥

राज्येस्मिन्भोगसंपूर्णेदृष्टानुत्तमभूमिना ॥ नगंतव्यस्त्वयोद्वेगःस्वर्गेमानवकेथवा ॥ ३३ ॥ देशकालक्रियाकारैर्यथाप्राप्तासुदृष्टिषु ॥ प्रकृतंकार्यमातिष्ठत्यक्त्वामानसमास्वभो ॥ ३४ ॥ अतिदेहतयेदंताममतापरिवर्जितम् ॥ भावाभावेसमंकार्यंकुर्वन्निहनबाध्यसे ॥ ३५ ॥ दृष्टसंसारपर्यंतस्तुलितातुलतत्पदः ॥ सर्वंसर्वत्रजानासिकिमन्यदुपदिश्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—और निरत्तिशय आनन्दरूप भूमिको देखनेवाले तुम इस राज्यमें उद्वेग (वैराग्य) को मत प्राप्तहो, और अपने पिता आदिके सदृश स्वर्ग वा पृथिवीपर घबराहट न उत्पन्न करो ॥ ३३ ॥ और देशकाल क्रियाके अनुसार प्रजा शत्रु आदिके ऊपर निग्रह अनुग्रह दृष्टियोंमें यथा प्राप्त बधबन्ध और दण्डादि कार्य करो, और हे प्रल्हाद! मनसंबन्धी रागद्वेषादि विषमताको त्यागकर स्थित रहो ॥ ३४ ॥ और देहसे भिन्न आत्मभावसे, और इदन्ता तथा ममतासे वर्जित कार्यको लाभालाभ समान करके करते हुयेभी तुम नहीं बाधे जाओगे ॥ ३५ ॥ संसारके सब पर्य्यायवोंको देखनेवाले और अतुल (ब्रह्म) पदको जाननेवाले तुम सर्वत्र सब कुछ जानतेहो अन्य तुमारे लिये क्या उपदेश किया जाय अर्थात् तुम स्वयं सब व्यवहारोंमें कुशलहो कुछ उपदेशकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३६ ॥

वीतरागभयक्रोधेत्वयिराजनिराजति ॥ नेदानींदुःखदुर्ग्रंथिर्नोसुरान्दलयिष्यति ॥ ३७ ॥ बाष्पश्रीर्नोसुरीकर्णमंजरीप्लावयिष्यति ॥ वनराजिमिवोन्मत्तासरित्तारतरंगिणी ॥ ३८ ॥ अद्यप्रभृत्यसंप्राप्तदानवामरसंगरम् ॥ निर्मदांभोनिधिवज्जगत्स्वस्थमिवस्थितम् ॥ ३९ ॥ देवासुरकुटुंबिन्योभर्तृष्वंतःपुरेषुच ॥ स्वेष्वेवयांतुविश्वासमपरस्परमाहृताः ॥ ४० ॥ भवबहुलनिशानितांतनिद्रातिमिरमपास्यसदोदिताशयश्रीः ॥ दनुसुतवनिताविलासरम्यांचिरमाजितामुपभुंक्ष्वराज्यलक्ष्मीम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेकोनामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—राग भय, तथा क्रोधसे रहित तुम राजाके दीप्यमान रहते अब देवताओंको दुःखोंकी ग्रन्थि मर्दित नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ अश्रुओंकी श्रेणी अब असुरांगनाओंकी कर्ण मंजरीको ऐसे नहीं वहावेगी जैसे वर्षासे वर्द्धित बडे तरंगवाली नदी बनोंकी पंक्तिको ॥ ३८ ॥ देवासुर संग्रामरहित जगत् आजसे लेके इसप्रकार स्वस्थ रहै जैसे मन्दराचलके निकलनेपर समुद्र ॥ ३९ ॥ और एक दूसरेके पतियोंसे बन्द न की हुई देव तथा दैत्योंकी स्त्री अब अपने २ पति तथा अन्तः पुरोंमें विश्वासको प्राप्त हो ॥ ४० ॥ हे दनुपुत्र प्रल्हाद ! कृष्णपक्षकी रात्रिके घन अन्धकारके तुल्य अज्ञानान्धकारको दूर करके और अन्तःकरणमें स्वप्रकाश ब्रह्मज्ञानके स्फुरणसहित होकर असुरांगनाओंसे तथा सेवनीय शान्तिआदि गुणोंसे रमणीय तथा शत्रुओंसे वा कामक्रोधादिसे अपराजित राज्यलक्ष्मीका भोग करो ४१

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे
प्रल्हादाभिषेको नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस ४२ के सर्गमें विष्णुका क्षीरसागरमें गमन, आख्यानका उत्तम फल, और समाधि मुक्तोंके व्युत्थानमें हेतु, इन विषयोंका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वापुंडरीकाक्षःसनरामरकिंन्नरः ॥ द्वितीयइवसंसारश्चचालासुरमंदिरात् ॥ १ प्रह्लादादिविनिर्मुक्तैःपश्चात्पुष्पांजलिव्रजैः ॥ पूर्यमाणोविहंगेशपाश्वात्यांगरुहोत्करैः ॥ २ ॥ क्रमात्क्षीरोदमासाद्यविसृज्यसुरवाहिनीम् ॥ भोगिभोगासनेतस्थौश्वेताब्जइवषट्पदः ॥ ३ ॥ भोगिभोगासनेविष्णुःशक्रःस्वर्गेसहामरैः ॥ पातालेदानवाधीशइतितस्थुर्गतज्वराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—मनुष्य, देवता और किन्नरसहित विष्णुभगवान् इतना कहके असुर मन्दिरसे ऐसे चले जैसे द्वितीय समुद्र ॥ १ ॥ प्रल्हाद आदिसे छोडी हुई गरूडजी पीछेके रोमदेशोंमें राशीभूत पुष्पांजलिकेसमूहोंसे आच्छादित विष्णुभगवान् ॥ २ ॥ क्रमसे क्षीरसमुद्रमें पहुंचकर, और गंगाजीको त्यागकर शेषनागके फणरूप आसनपर ऐसे विराजे जैसे श्वेतकमलपर भ्रमर ॥ ३ ॥ शेषके फणपर विष्णु, देवोंके साथ स्वर्गमें इन्द्र, और पातालमें दानवोंके अधीश प्रल्हाद ये तीनों सन्तापरहित स्थित हुये ॥ ४ ॥

एवातेकथितारामनिःशेषमलनाशिनी ॥ प्राह्लादीबोधसंप्राप्तिरैंदवद्रवशीतला ॥५॥ तांतुयेमानवालोकेब दुष्कृतिनोपिहि ॥ धियाविचारयिष्यंतितेप्राप्स्यंत्यचिरात्पदम् ॥६॥ सामान्येनविचारेणक्षयमायाति दुष्कृतम् ॥ योगवाक्यविचारेणकोनयातिपरंपदम् ॥ ७ ॥ अज्ञानमुच्यतेपापंतद्विचारेणनश्यति ॥ पापमूलच्छिदंतस्माद्विचारंनपरित्यजेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण पाप नाशकारिणी, और अमृतके समान शीतल यह प्रल्हादके ज्ञानके सम्प्राप्तिकी कथा मैंने तुमसे कही ॥ ५ ॥ इस कथाको अति पापी भी जो मनुष्य मनसे धारण करेंगे वे भी शीघ्र परमपदको प्राप्त होंगे ॥६॥ सामान्य धर्मके विचारसे पाप तथा उसका मूल अज्ञान नष्ट होताहै और योग अर्थात् ब्रह्मप्रापक वेदान्तके वाक्यके विचारसे कौन नहीं परमपदको प्राप्त होता ॥ ७ ॥ अज्ञानही पापहै वह विचारसे नष्ट होताहै इसलिये पापके मूल अज्ञानको उच्छिन्न करनेवाले विचारको कदापि न त्यागैं ॥ ८ ॥

इमांप्रह्लादसंसिद्धिंप्रविचारयतांनृणाम् ॥ सप्तजन्मकृतंपापंक्षयमायात्यसंशयम् ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ परेपदेपरिणतंपांचजन्यस्वनैर्मनः ॥ कथंप्रबुद्धंभगवन्प्रह्लादस्यमहात्मनः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्विविधामुक्ततालोकेसंभवत्यनघाकृते ॥ सदेहैकाविदेहान्याविभागोयंतयोःशृणु ॥ ११ ॥ असंसक्तमतेर्यस्यत्यागादानेषुकर्मणाम् ॥ नैषणातत्स्थितिंविद्धित्वंजीवन्मुक्ततामिह ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस प्रल्हादकी सिद्धिको विचार करते हुये मनुष्योंके सात जन्मके किये हुये भी पाप निश्चय करके नष्ट होजाते है ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो महात्मा ! प्रल्हादका परमपदमें परिणत मन पांचजन्यके शब्दसे कैसे प्रबुद्ध (जागृत) हुआ ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे अनघस्वरूप रामजी ! संसारकी मुक्ति दो प्रकारकी कही गई है एक तो सदेहमुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति उन दोनोंका विभाग यह तुम सुनो ॥ ११ ॥ जिस

असंसक्त बुद्धि प्राणीके त्याग और आदान कर्मोंके विषयमें एषणा (इच्छा) नहीं है उसकी स्थितिको तुम जीवन्मुक्ति (सदेहमुक्ति) जानो ॥ १२॥

सैवदेहक्षयेरामपुनर्जननवर्जिता ॥ विदेहमुकताप्रोक्तातत्स्थानायांतिदृश्यताम् ॥ १३ ॥ भ्रष्टबीजोपमाभूयोजन्मांकुरविवर्जिताः ॥ हृदिजीवद्विमुक्तानांशुद्धाभवतिवासना ॥ १४ ॥ पावनीपरमोदाराशुद्धसत्वानुपातिनी ॥ आत्मध्यानमयीनित्यंसुषुप्तस्येवतिष्ठति ॥ १५ ॥ अपिवर्षसहस्रांतेतयैवांतरवस्थया ॥ सतिदेहेप्रबुद्धयंतेजीवन्मुक्तारघूद्वह ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वही देहके क्षय होनेपर पुन: जन्मसे वर्जित विदेहमुक्ति कही गई है उसमें प्राप्त जीव पुन: इस चर्म नेत्रके दृश्य नहीं होते ॥ १३ ॥ और भुने हुये बीजके समान जन्मरूप अंकुरसे वर्जितहैं, और जीवन्मुक्तोंके हृदयमें शुद्ध वासना आसंगरूप मलिनतासे रहित होती है ॥ १४ ॥ और वह शुद्ध ब्रह्मात्मभावना अति पवित्र, परम उदार, और अध्यात्म ध्यानमयी वासना नित्य सुषुप्तके हृदयके सदृश स्थित रहती है ॥ १५ ॥ हे रघु श्रेष्ठ रामजी ! सहस्र (हजार) वर्षके अन्तमें देहके विद्यमान रहते अन्त:करणमें स्थित उसी वासना (जिसके सहित समाधिस्थ हुये) के साथ जाग्रत होते हैं ॥ १६ ॥

प्रह्लादोंतस्थयाशुद्धसत्ववासनयास्वया ॥ बोधमापमहाबाहोशंखशब्दावबुद्धया ॥ १७ ॥ हरिरात्माहिभूतानांतस्ययत्प्रतिभासते ॥ तत्तथैवभवत्याशुसर्वमात्मैवकारणम् ॥ १८ ॥ प्रबोधमेतुप्रह्लादोयदेवेतिविचिंतितम् ॥ निमेषाद्वासुदेवेनतदेवैतदुपस्थितम् ॥ १९ ॥ आत्मन्यकारणेनैवभूतानांकारणेनच ॥ सृष्टयर्थंवपुरात्तंहिवासुदेवमयात्मना ॥ २० ॥

अर्थ—प्रल्हाद भी अन्त:करणमें स्थित, शंखसे बुद्ध उसी अपनी शुद्ध सत्व वासनाके साथ जाग्रत हुआ॥१७॥ विष्णु सब भूतोंका आत्मा (कारण) है उसको जिससमय जैसा भासताहै वैसाही शीघ्र होजाताहै, क्योंकि सबका कारण आत्माही है ॥ १८ ॥ उस वासुदेव भगवान्‌ने जब ही यह चिन्तन किया कि प्रल्हाद जाग्रतहो उसीसमय निमेष मात्रमें वैसा ही उपस्थित होजाताहै ॥ १९ ॥ शुद्धरूपसे तो अकारण और अव्याकृतरूपसे सब भूतोंका कारण जगत्‌की सृष्टिके लिये वह आत्मा वासुदेवरूपसे शरीरको ग्रहण किया ॥ २० ॥

आत्मावलोकनेनाशुमाधवःपरिदृश्यते ॥ माधवाराधनेनाशुस्वयमात्मावलोक्यते ॥ २१ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यराघवात्मावलोकने ॥ विहराशुविचारात्मापदंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ २२ ॥ दुःखासारवतीरामसंसारप्रावृडातता ॥ जाडयंददातिपरमंविचारार्कमपश्यताम् ॥ २३ ॥ प्रसादादात्मनोविष्णोर्मायेयमतिभासुरा ॥ प्रबाधतेनधीरांस्तुयक्षींमंत्रवतोयथा ॥ २४ ॥ आत्मेच्छयैवघनतांसमुपागतांतरात्मेच्छयैवतनुतामुपयातिकाले ॥ संसारजालरचनेयमनंतमायाज्वालेहवातबलयादिवपावकस्य ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्था नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्माके दर्शनसे माधवभगवान् देखपडताहै और माधवके आराधनसे आत्माका दर्शन शीघ्र होताहै ॥ २१ ॥ हे राघव ! इस दृष्टिको अवलम्बन करके आत्माका दर्शन करनेके लिये तुम शीघ्र प्रयत्न करो और विचारात्मा नित्य पदको तुम प्राप्त होओगे ॥ २२ ॥ हे रामजी ! दुःखरूप धारासहित संसाररूप प्रावृट् (वर्षा) विशाल ऋतु विचाररूप सूर्यको न देखनेवालोंको परम जडता (जलता) देती है ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्‌की कृपासे यह प्रकाशशील माया धीर (ज्ञानी) पुरुषोंको ऐसे नहीं बाधा करती जैसे मन्त्र सिद्धोंको पिशाची ॥ २४ ॥ हे रामजी ! यह संसारकी रचनारूप अनन्त विष्णुकी माया उसी आत्माकी इच्छासे देहादि घनीभूत अनर्थ भावको प्राप्त होती है और वही निष्कामभक्तिसे आराधित उसी आत्माकी इच्छासे विवेक विचारादिके जन्मकालमें ऐसे न्यूननताको प्राप्त होती है जैसे वायुके बलसे अग्नि प्रबलताके प्राप्त होताहै और अन्तमे उसी वायुके वशसे न्यूनताको प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादव्यवस्था नाम द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

ईश्वरके प्रसादके प्राप्त होनेपर भी ईश्वरके ऊपर बोझा नहीं देना चाहिये और पुरुषार्थसे इन्द्रियोंको जीतनेसे ज्ञान साध्यहै इस विषयका वर्णन ४३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञशुद्धैस्त्वद्वचनांशुभिः ॥ निर्वृताःस्मशशांकस्यकरैरोषधयोयथा ॥१ कर्णाभिवांछ्यमानानिपवित्राणिमृदूनिच ॥ सुखयंतिगृहीतानिपुष्पाणीववचांसिते ॥ २ ॥ पौरुषेणप्र यत्नेनसर्वमासाद्यतेयदि ॥ प्रह्लादस्तत्कथंबुद्धोनमाधववरंविना ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यद्यद्राघ वसंप्राप्तंप्रह्लादेनमहात्मना ॥ तत्तदासादितंतेनपौरुषादेवनान्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजीबोले-हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! आपके शुद्ध बचनके किरणोंसे हम सब ऐसे सुखी हुयेहैं जैसे चन्द्रमाके किरणोंसे औषधि ॥ १ ॥ हे प्रभो ! कर्णोको इष्ट अति पवित्र तथा कोमल आपके बचन हमको ऐसे सुखी करते हैं जैसे धारण किये हुये कमलादिके पुष्प ॥ २ ॥ हे भगवन् ! यदि पुरुषके प्रयत्नसे सब कुछ प्राप्त होताहै तो विष्णुके वरदानके बिनाही प्रल्हादको ज्ञान क्यों न हुआ ? ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव ! प्रल्हाद महात्माने जो २ प्राप्त कियाहै वह २ अपने पुरुषार्थसेही कियाहै न कि अन्य किसीसे ॥ ४ ॥

आत्मानारायणश्चैवनभिन्नस्तिलतैलवत् ॥ तथैवशौक्ल्यपटवत्कुसुमामोदवत्तथा ॥ ५ ॥ योहिविष्णुः सएवात्मायोह्यात्मासौजनार्दनः ॥ विष्ण्वात्मशब्दौपर्यायौयथाविटपिपादपौ ॥ ६ ॥ प्रह्लादनामाप्रथ ममात्मैवस्वयमात्मना ॥ स्वयैवपरयाशक्त्याविष्णुभक्तौनियोजितः ॥ ७ ॥ प्रह्लादोह्यात्मनैवेनंवरमर्जि तवान्स्वयम् ॥ स्वयंविचारगंकृत्वास्वयंविदितवान्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मा और नारायण तिल और तैल, वा शुक्लता पट अथवा पुष्प और सुगंध जैसे भिन्न नहीं है ऐसे भिन्न नहीं हैं ॥५॥ जो विष्णुहै वही आत्माहै और जो आत्माहै वही जनार्दन (विष्णु) है क्योंकि विष्णु और आत्मा ऐसे पर्य्यायहै जैसे बिटपी और पादप (वृक्षतरू) ॥ ६ ॥ प्रथम प्रल्हाद नाम आत्मा स्वयं अपनेही परम शक्तिसे अपने आत्माको विष्णुकी भक्तिमें लगाया था ॥ ७ ॥ प्रल्हाद अपने आत्मभूत विष्णुसे स्वयं वरदान उपार्जित किया, और निजात्मभूत विष्णुने स्वयं अपने मनको विचारगामी बनाकर अपने आत्माको आपही जाना ॥ ८

कदाचिदात्मनैवात्मा स्वयंशक्त्याप्रबुध्यते ॥ कदाचिद्विष्णुदेहेनभक्तिलभ्येनबोध्यते ॥ ९ ॥ चिरमारा धितोप्येषपरमप्रीतिमानपि ॥ नाविचारवतोज्ञानंदातुंशक्नोतिमाधवः ॥ १० ॥ मुख्यःपुरुषयत्नोत्थोवि चारःस्वात्मदर्शने ॥ गौणोवरादिकोहेतुर्मुख्यहेतुपरोभव ॥ ११ ॥ पूर्वमेवबलात्तस्मादाक्रम्येंद्रियपंच कम् ॥ अभ्यसन्सर्वयत्नेनचित्तंकुरुविचारवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् अपने विचारके बलसे अपने आत्माहीसे आत्माको जानताहै और कदाचित् अपनी भक्ति आदि प्रयत्न प्राप्त विष्णुकी देहद्वारा वरदानादिसे आत्माको जानताहै ॥ ९ ॥ चिरकालतक आराधित और परम प्रीतिमान् भी माधवहो परन्तु विचार शून्य प्राणीको ज्ञान देनेमें समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ अपने प्रयत्नसे उत्पन्न विचार अपने आत्माके दर्शनमें मुख्य हेतुहै और वर आदि सब गौण (अप्रधान) हेतुहै, इसलिये हे रामजी ! तुम मुख्य हेतुमें तत्पर होओ ॥ ११ ॥ इसकारणसे प्रथम अपने प्रयत्नके बलसे अपने पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रियोंको जीतकर प्रयत्नसे अभ्यास करते हुये अपने चित्तको विचारसे युक्त करो ॥ १२ ॥

यद्यदासाद्यतेकिंचित्केनचित्क्वचिदेवहि ॥ स्वशक्तिसंप्रवृत्त्यातल्लभ्यतेनान्यतःक्वचित् ॥ १३ ॥ पौरु षंयत्नमाश्रित्यप्रोल्लंघ्येंद्रियपर्वतम् ॥ संसारजलधिंतीर्त्वापारंगच्छपरंपदम् ॥ १४ ॥ विनापुरुषयत्नेनदृ श्यतेचेज्जनार्दनः ॥ मृगपक्षिगणंकस्मात्तदासौनोद्धरत्यजः ॥ १५ ॥ गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरु षादृते ॥ उष्ट्रंदांतंबलीवर्दंतत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ कोई पुरुष कहीं भी प्राप्त करताहै वह अपने प्रेरित शुभाचरणसे ही और अन्य किसीसे नहीं ॥ १३ ॥ पौरूष प्रयत्नका आश्रय लेके इन्द्रियरूप पर्वतका उल्लंघन करके संसाररूप समुद्रको तैर करके परम पदके पार पहुंच जाओ ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यदि पुरुषके यत्नके विना विष्णु देख पडै तो यह अजन्मा विष्णु मृग तथा पक्षियोंके समूहको आत्मदर्शनके द्वारा क्यों नहीं उद्धार करता ॥ १५ ॥ यदि गुरू अपने पौरूषके विना अज्ञका उद्धार करताहै तो यह बलीवर्दका उद्धार क्यों नहीं करता ॥ १६ ॥

नहरेर्नगुरोर्नार्थात्किंचिदासाद्यतेमहत् ॥ आक्रांतमनसःस्वस्माद्यदासादितमात्मनः ॥ १७ ॥ अभ्यासवैराग्ययुतादाक्रांतेंद्रियपन्नगात् ॥ नात्मनःप्राप्यतेयत्तत्प्राप्यतेनजगत्त्रयात् ॥ १८ ॥ आराधयात्मनात्मानमात्मनात्मानमर्चय ॥ आत्मनात्मानमालोक्यसंतिष्ठस्वात्मनात्मनि ॥ १९ ॥ शास्त्रयत्नविचारेभ्योमूर्खाणांप्रपलायिनाम् ॥ कल्पितावैष्णवीभक्तिःप्रवृत्त्यर्थंशुभस्थितौ ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानकी दृढतासे बाधित मनसहित अपने आत्मासे जो महत्पुरुषार्थ प्राप्त होताहै वह न गुरूसे न विष्णुसे और न धनसे मिलताहै ॥ १७ ॥ अभ्यास तथा वैराग्यसे युक्त और इन्द्रियसर्पोंको वशमें करनेवालेको जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता वह तीनोंलोकसे नहीं प्राप्त होसकताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! आत्मासे आत्माकी आराधना करो, आत्मासे आत्माकी पूजा करो, और आत्मासे आत्माको साक्षात्कार करके उसी निजआत्मामें भलीभांति स्थित रहो अर्थात् आत्मस्वभावसे कदापि च्युत न होओ ॥ १९ ॥ शास्त्र यत्न तथा विचारसे दूर भागनेवाले मूर्खोंके अर्थ विष्णुकी भक्ति नियत की गई है ॥ २० ॥

अभ्यासयत्नौप्रथमंमुख्योविधिरुदाहृतः ॥ तदभावेतुगौणःस्यात्पूज्यपूजामयक्रमः ॥ २१ ॥ अस्तिचेदिंद्रियाक्रांतिःकिंप्राप्यंपूजनैःफलम् ॥ नास्तिचेदिंद्रियाक्रांतिःकिंप्राप्यंपूजनैःफलम् ॥ २२ ॥ विचारोपशमाभ्यांहिनविनासाद्यतेहरिः ॥ विचारोपशमाभ्यांचमुक्तस्य ब्जकरणंकिम् ॥ २३ ॥ विचारोपशमोपेतंचित्तमाराधयात्मनः ॥ तस्मिन्सिद्धेभवान्सिद्धोनोचेत्त्वंवनगर्दभः ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथम अभ्यास और यत्न ज्ञानकी प्राप्तिमें मुख्य विधि कही गई है और उसके अभावमें यह पूज्य पूजामय क्रम गौणहै ॥ २१ ॥ यदि इन्द्रियोंके ऊपर वश्यता नहीं है तो भी पूजनसे क्या फल मिलैगा अर्थात् इन्द्रियोंके वश होनेसे पूजनके बिना भी सब फल मिलैगा और न वश होनेसे पूजन करनेपर भी कुछ फल न मिलैगा॥२२॥ विचार और शान्तिके विना पूर्णानन्द आत्मारूप विष्णुकी प्राप्ति नहीं होती और जो विचार तथा उपशमसे परमपुरुषार्थ प्राप्त होनेसे मुक्त होगयाहै उसको विष्णुके देहसे भी क्या प्रयोजन ॥ २३ ॥ हे रामजी ! विचार तथा शान्तिसे युक्त चित्तकी आराधना करो और आराधनासे चित्तको प्रसन्न करनेपर तुम भी सिद्ध ही हो अर्थात् परम पुरूषार्थरूप सिद्धि तुमको प्राप्त होचुकी और इसके न होनेसे अपनेको तुम बनका गर्दभ (गदहा) समझो ॥ २४ ॥

क्रियतेमाधवादीनांप्रणयप्रार्थनास्वयम् ॥ तथैवक्रियतेकस्मान्नस्वकस्यैवचेतसः ॥ २५ ॥ सर्वस्यैवजनस्यास्यविष्णुरभ्यंतरेस्थितः ॥ तंपरित्यज्ययेयांतिबहिर्विष्णुंनराधमाः ॥ २६ ॥ हृद्गुहावासिचित्तत्त्वंमुख्यंसानातनंवपुः ॥ शंखचक्रगदाहस्तोगौणआकारआत्मनः ॥ २७ ॥ योहिमुख्यंपरित्यज्यगौणंसमनुधावति ॥ त्यक्त्वारसायनंसिद्धंसाध्यंसंसाधयत्यसौ ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे मनुष्य विष्णु आदिकी आराधना करताहै वैसी ही अपने चित्तकी आराधना क्यों नहीं करता क्यों कि मनकी ही भक्ति मुख्य भगवत्की भक्तिहै ॥ २५ ॥ सबके हृदयमें विष्णु स्थितहै उस विष्णुको त्यागकर जो बाह्य विष्णुकी ओर दौडते हैं वे अधम नरहैं ॥ २६ ॥ हृदयरूप गुहाका निवासी सनातन चित्तत्व आत्माका मुख्य शरीरहै और हस्तमें शंख चक्र गदाधारी गौण शरीरहै ॥ २७ ॥ जो प्राणी आभ्यन्तर मुख्य शरीरको त्यागकर गौण शरीरकी ओर दौडताहै वह मानो सिद्ध अमृतका त्याग करके कृषि आदिसे साध्य ओदनको सिद्ध करताहै ॥ २८ ॥

यस्तुभोःस्थितिमेवास्यामात्मज्ञानचमत्कृतौ ॥ नासादयतिसंमत्तमनाःस्वरघुनंदन ॥ २९ ॥ अप्राप्तात्मविवेकोंतरज्ञचित्तवशीकृतः ॥ शंखचक्रगदापाणिमर्चयेत्परमेश्वरम् ॥ ३० ॥ तत्पूजनेनकष्टेनतपसातस्यराघव ॥ कालेनिर्मलतामेतिचित्तंवैराग्यकारिणा ॥ ३१ नित्याभ्यासविवेकाभ्यांचित्तमाशुप्रसीदति ॥ आम्रएवदशामेतिसाहकारींशनैःशनैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो मत्त चित्त आत्मतत्वकी चमत्कृतिमें स्थिति नहीं पाता ॥ २९ ॥ वह अन्तःकरणमें आत्मतत्वके विवेकसे शून्य, अवशीकृत चित्त अज्ञानी जीव शंख चक्र गदा पाणी परमेश्वरकी पूजा करै ॥ ३० ॥ हे राघव ! कष्ट साध्य विष्णुके पूजनसे और वैराग्यकारी तपसे कालपाके मनुष्यका चित्त निर्मलताको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ नित्य अभ्यास तथा विवेकसे चित्त शीघ्र ऐसे प्रसन्न होताहै जैसे आम्रका वृक्ष धीरे २ पुष्प फलादिसे सौगन्ध्यादि दशाको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

एतदध्यात्मनैवात्माफलमाप्नोतिभाषितम् ॥ हरिपूजाक्रमाख्येननिमित्तेनारिसूदन ॥ ३३ ॥ वरमाप्नोतियोवापिविष्णोरमिततेजसः ॥ तेनस्वस्यैवतत्प्राप्तंफलमभ्यासशाखिनः ॥ ३४ ॥ सर्वेषामुत्तमस्थानां

सर्वासांचिरसंपदाम् ॥ स्वमनोनिग्रहोभूमिर्भूमिःस्वस्यश्रियामिव ॥ ३५ ॥ अप्युर्वीखननोत्कस्यकर्ष तोपिशिलोच्चयम् ॥ स्वमनोनिग्रहादन्योनापायोस्ति हकश्चन ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे शत्रुनाशक रामजी ! शास्त्रमें विष्णुकी पूजासे जो कुछ भाषित फल प्राप्त होताहै यह भी आत्माके निज संकल्पसेही प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य अतुल तेजस्वी विष्णुसे वरदान पाताहै उसकोभी अपने अभ्यासरूप वृक्षका फलही प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ सब उत्तम पुरुषार्थ करनेवालोंका तथा चिरकालमें भोग्य मनु और ब्रह्मा आदिकी सम्पत्तिका अपने मनका निग्रह ऐसे भूमिहै जैसे धान्योंकी यह प्रत्यक्ष भूमि ॥ ३६ ॥ पृथिवीको खननेवाले सगरके पुत्रादि, तथा समुद्र मथनार्थ मन्दराचलको खींचनेवाले देव असुरादिको भी अपने मनके निग्रहके सिवाय अन्य कोई भी उपाय नहीं है ॥ ३६ ॥

तावज्जन्मसहस्राणिभ्रमंतिभुविमानवाः ॥ यावन्नोपशमंयातिमनोमत्तमहार्णवः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मविष्णिव द्ररुद्राद्याश्चिरसंपूजिताअपि ॥ उपप्लवान्मनोव्याधेर्नत्रायंतपिवत्सलाः ॥३८॥ आकारभासुरंत्यक्त्वा बाह्यमांतरमप्यजम् ॥ कुरुजन्मक्षयायाशुसंविन्मात्रैकचिंतनम् ॥ ३९ ॥ संवेद्यनिर्मुक्तनिरामयैकसंवि न्मयास्वादमनंतरूपम् ॥ सन्मात्रमास्वादयसर्वसारंपारंपरंप्राप्स्यसिजन्मनद्याः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे प्रह्लादविश्रांतिर्नाम त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जबतक मनरूप महासमुद्र शान्तिको नहीं प्राप्त होता तबतक इससंसारमें मनुष्य सहस्रों जन्मपर्य्यन्त भ्रमण किया करते हैं ॥ ३७ ॥ चिरकालतक पूजित भी दयालु ब्रह्मा विष्णु और रुद्र आदि मनरूप व्याधिके उपद्रवसे नहीं रक्षा करसकते ॥३८॥ बाह्य तथा अन्तरकी इन्द्रियोंके विषय भासमान पदार्थोंको त्यागकर जन्मादि क्रिया शून्य अखण्ड एकरस चिन्मात्रका चिन्तन जन्मके नाशार्थ करो ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंसे विनिर्मुक्त निरामय, स्वयं निरतिशय आनन्दरूपसे आस्वादके योग्य सविन्मात्र जो सबका सार अनन्तरूपहै उसीका आस्वादन आत्माकार वृत्तिसे निरन्तर करो ऐसा करनेसे तुम जन्म मरणरूप नदीके पार होजाओगे ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादविश्रान्तिर्नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस गाधिके आख्यानमें मनके निरासके लिये विस्तारसे दृश्यकी दुःखरूपताका वर्णन ४४ के सर्गमें किया गयाहै उसमें विष्णुके वरदानसे जलमें गाधिके मायाके देखनेमें उनका गृहमें मरना तथा स्मशानमें प्राप्त किये हुयेका दाह भी इसी ४४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामापर्यवसानेयंमायासंसृतिनामिका ॥ आत्मचित्तजयेनैवक्षयमायातिनान्यथा ॥ १ ॥ जगन्मायाप्रपंचस्यवैचित्र्यप्रतिपत्तये ॥ इतिहासमिमंवक्ष्येशृणुष्वावहितोनघ ॥ २ ॥ अस्त्य स्मिन्वसुधापीठेकोसलोनाममंडलः ॥ कल्पवृक्षवनंमेराविवरत्नगणाकरः ॥ ३ ॥ तत्राभूद्ब्राह्मणःकश्चि द्गुणीगाधिरितिश्रुतः ॥ परमश्रोत्रियोधीमान्धर्ममूर्तिरिवस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीबोले–हे रामजी ! यह अपार भ्रमका हेतु संसार नामिका माया अपने चित्तके जयसे ही क्षयको प्राप्त होती है न कि अन्य प्रकारसे ॥ १ ॥ हे पापरहित रामजी ! इस जगत्की मायाके प्रपंचके वैचित्र्यके ज्ञानके लिये इस इतिहासको मैं कहताहुं तुम सावधान होके श्रवण करो ॥ २ ॥ हे रामजी ! इस पृथिवीके सब रत्न समूहोंका आकर (खानि) कोशल नाम देश ऐसेहै जैसे मेरुके ऊपर कल्पवृक्षका वन ॥ ३ ॥ वहांपर गुणी परमश्रोत्रिय (वेदवेत्ता) बुद्धिमान् और धर्मके मूर्तिके समान स्थित गाधि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहताथा ॥ ४ ॥

आबाल्यात्प्रविरक्तेनचेतसासव्यराजत ॥ निष्कलंकावदातेनभुवनंनभसायथा ॥ ५ ॥ किमप्यभिमतं कार्यविनिधायस्वचेतसि ॥ बंधुवृंदाद्विनिष्क्रम्यतपस्तप्तुंवनंययौ ॥६॥ उत्फुल्लकमलंप्रापसरस्तत्रसवि प्रराट् ॥ चंद्रःप्रसन्नविमलंतारासारमिवांबरम् ॥ ७ ॥ आशौरिदर्शनंतस्मिंस्तपोर्थंसरसिद्विजः ॥ आकं ठमंबुनिर्मग्नःप्रावृट्पद्मइवाविशत् ॥ ८ ॥

अर्थ—बाल्यअवस्था लेके अतिविरक्त, निष्कलंक और शुद्ध चित्तसे वह ऐसे शोभितथा जैसे आकाशसे संसार॥५॥कुछ अभीष्ट कार्य अपने चित्तमें करके वह ब्राह्मण अपने बन्धुसमूहसे निकलके बनमें तप करनेको गया ॥६॥

वहांपर वह ब्राह्मणोंका राजा विकसित कमलयुक्त तडागको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे अश्विनी आदि सुन्दर तारासहित आकाशमें चन्द्रमा ॥ ७ ॥ विष्णुके दर्शनपर्य्यन्त उस तडागमें वह ब्राह्मण कण्ठतक जलमें प्रवेश करके ऐसे स्थित हुआ जैसे वर्षाकालमें कमल ॥ ८ ॥

ययौमासाष्टकंतस्यमग्नस्यसरसोंभसि॥वासपंकजसंकोचमनाग्भग्नमुखच्छवेः॥९॥अथैनंतपसातप्तमा जगामैकदाहरिः ॥ निदाघार्त्तंघनश्यामःप्रावृषीवधरातलम् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विप्रोत्तिष्ठप योमध्याद्गृहाणाभिमतंवरम् ॥ अभीप्सितफलोपेतोजातस्तेनियमद्रुमः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ असंख्येयजगद्भूतहृत्पद्मकुहरालिने ॥ जगत्त्रयैकनलिनीसरसेविष्णवेनमः ॥ १२ ॥

अर्थ—अपने निवासस्थान उस तडागके कमलोंके सूर्य्यके वियोगसे संकुचित् होनेसे किंचित् मलिन मुखकी छबियुक्त उस ब्राह्मणके जलमें निमग्न रहते आठ मास बीतगये ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् तपसे तप्त उस ब्राह्मणके निकट एकसमय घनश्याम विष्णु ऐसे आप जैसे उष्णकालसे तप्त धरातलपर वर्षाकालमें श्यामवर्ण मेघ ॥ १० ॥ श्रीभगवान्जी बोले—हे ब्राह्मण ! जलमेंसे उठो और अपने अभीष्ट वरको ग्रहण करो तुमारा तपरूप वृक्ष अभीष्ट फलसे संयुक्त होगया ॥ ११ ॥ ब्राह्मण बोले—अनन्त ब्रह्माण्डके प्राणियोंके हृदयकमलके भ्रमररूप तथा त्रिलोकीरूप कमलिनीके तडागरूप विष्णुभगवान्को नमस्कारहै ॥ १२ ॥

मायामिमांत्वद्रचितांभगवन्पारमात्मिकीम् ॥ द्रष्टुमिच्छामिसंसारनाम्नीमांध्यैककारिणीम् ॥ १३ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इमांद्रक्ष्यसिमायांत्वंततस्त्यक्ष्यसिचेत्यजः ॥ उक्त्वाययावदृश्यत्वंगांधर्वमिव पत्तनम् ॥ १४ ॥ गतेविष्णौसमुत्तस्थौजलात्सब्राह्मणेश्वरः ॥ शीतलामलमूर्त्तित्वादिंदुःक्षीरोदकादिव ॥ १५ ॥ बभूवपरितुष्टात्मादर्शनेनजगत्पतेः ॥ दर्शनस्पर्शनैरिंदोरुत्फुल्लमिवकैरवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपसे रचित परमात्मा सम्बन्धिनी जगत्को अन्धा करनेवाली संसारनामिका इस मायाको मैं देखना चाहताहुं ॥ ॥ १३ ॥ श्रीभगवान्जी बोले—हे ब्राह्मण ! इस मायाको देखोगे और उसके पश्चात् उसे त्यागोगे भी ऐसा कहके विष्णुभगवान् ऐसे अदृश्य होगये जैसे गन्धर्वनगर ॥ १४ ॥ विष्णुके जानेपर वह श्रेष्ठ वा ब्राह्मण जलसे निकलके शीतल तथा निर्मल मूर्ति होनेसे ऐसे शोभित हुआ जैसे क्षीरसमुद्रसे निकलके चन्द्रमा॥१५॥ जगत्के पति विष्णुके दर्शनसे ऐसे प्रसन्न चित्त हुआ जैसे चन्द्रदर्शनसे विकसित रात्रिका कमल ॥ १६ ॥

अथास्यकतिचित्तस्मिन्दिवसानिर्ययुर्वने ॥ हरिसंदर्शनानंदवतोब्राह्मणकर्मणा ॥ १७ ॥ एकदारब्धवान्स्नानंसरस्युदितपंकजे ॥ चिंतयन्वैष्णवंवाक्यंमहर्षिरिवमानसे ॥ १८ ॥ अथस्नानविधावंतर्जलमेषचकारह ॥ सकलाघविघातार्थंपरिवर्त्तमिवात्मना ॥१९॥ अंतर्जलविधौतस्मिन्विस्मृतध्यानमंत्रधीः ॥ पर्यस्तसंवित्प्रसरःसोपश्यज्जलमध्यतः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् विष्णुदर्शनसे आनन्तयुक्त इस ब्राह्मणके तपस्वाध्याय अतिथि पूजादि ब्राह्मकर्म करते हुये उस बनमें कुछ दिन बीतगये ॥१७॥ जैसे महाऋषि योगबलसे भूतभविष्यत् मनमें देखनेको चिन्तन करताहै ऐसे ही विष्णुके वाक्य विचारते हुये विप्रने विकसित कमलयुक्त तडागमें एकसमय स्नान करना प्रारम्भ किया॥१८॥इसके पश्चात् सकल पापनाशके अर्थ अघमर्षण करनेको जलके भीतर कुशसहित हस्त आवर्तके समान किया॥१९॥जलमें डूबके अवमर्षणके समयमें ध्यान मंत्रकी बुद्धि विस्मृत होनेसे तथा विपरीत ज्ञानयुक्त होकर जलके मध्यसे यह देखा॥२०

मृतमात्मानमात्मीयेसदनेशोच्यतांगतम् ॥ पतितंवातवेगेनकंदरांतरिवद्रुमम् ॥ २१ ॥ प्राणापानप्रवाहेणमुक्तमंतमुपागतम् ॥ संशांतावयवस्पंदंनिर्वातइवखंडकम् ॥ २२ ॥ पांडुराननमाम्लानंवृक्षपर्णमिवारसम् ॥ शवीभूतमिवाग्लानंछिन्ननालमिवांबुजम् ॥ २३ ॥ विपर्यस्तेक्षणंप्रातर्मग्नतारमिवांबरम् ॥ सावग्रहमिवग्रामंसर्वतःपांसुधूसरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अपने स्थानसे शोच्यताको प्राप्त अपनेको मृतक ऐसे देखा जैसे वायुके वेगसे कन्दरामें गिरे हुये वृक्षको ॥ २१ ॥ पुनः प्राण तथा अपानवायुके प्रवाहसे विनिर्मुक्त, और अंगोंके संचलन ऐसे शान्त होगया जैसे निर्वातस्थानमें गिरा हुआ कदली (केले) का खंड ॥ २२ ॥ पांडु मुख और ऐसे म्लान (कुंभिलान) जैसे नीरस वृक्षका पत्र, तथा मृतक दशाको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे दण्ड छिन्न होनेसे कमल ॥ २३ ॥ तथा इसप्रकार विपरीत दर्शन होगया जैसे अस्त तारागणवाला आकाश, और चारोओरसे ऐसे धूलिसे धूसर होगया जैसे वर्षाके रूकनेपर ग्राम॥२४॥

बाष्पक्लिन्नमुखैर्दीनैःकरुणाक्रंदकारिभिः ॥ आवृतंबंधुभिःखिन्नैःकुररैरिवपादपम् ॥ २५ ॥ सेतुभंगगलद्वारिह्रियमाणमुखाब्जया ॥ नलिन्यासमधर्मिण्याभार्ययापादयोःश्रितम् ॥ २६ ॥ तारांक्रंदरणद्रेफमला

पालापलुब्धया ॥ मात्रागृहीतंचिबुकेनवव्यंजनलांछिते ॥२७॥ अन्यैःपार्श्वगतैर्दीनैःस्रवदश्रुमुखैर्जनः ॥ श्रितंगलदवश्यायैःशुष्कपर्णैरिवद्रुमम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आंसुओंसे गीले मुखसहित, दीन, करूणासे विलाप करते हुये और खिन्न बन्धुओंसे ऐसे घिरा हुआ था जैसे कुरर नाम पक्षियोंसे वृक्ष ॥ २५ ॥ तथा पुलके टूटनेसे वहते जलसे प्रवाहित मुखरूप कमलयुक्त कमलिनी-केतुल्य अपनी धर्मपत्नीसे चरण देशमें आश्रितथा ॥२६॥ उच्च स्वरसे शब्द करते हुये भ्रमरकेसमान निरर्थक प्रलापमें आसक्त मातासे स्मश्रु (दाढी मोछा) से चिन्हित कपोलदेशमें गृहीत भान होताथा ॥ २७ ॥ अन्यभी समीपमें प्राप्त, दीन, और गिरती हुई अश्रुसहित मुखवाले मनुष्योंसे ऐसे आश्रितथा, जैसे तुषार गिरते हुये सूखे पत्तोंसे वृक्ष ॥२८ ॥

वियोगभीत्यासंयोगपरिहारपरैरिव ॥ दूरंविप्रसृतैतंगैरनात्मीयैरिवावृतम् ॥ २९ ॥ परस्परमलग्नाभ्या मोष्ठाभ्यांदशनैःस्मितैः ॥ सविरागमिवाम्लानैर्हसंतंस्वात्मजीवितम् ॥ ३० ॥ मौनध्यानमिवापन्नंपंका दिवविनिर्मितम् ॥ अप्रबोधायसंसुप्तंविश्राम्यंतमिवोच्चकैः ॥ ३१ ॥ बांधवाक्रंदसंरंभकोलाहलगता गिरः ॥ स्नेहभावविचारार्थंशृण्वंतमिवयत्नतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वियोगके भयसे संयोगके परिहारमें तत्परकेसमान, दूर फैले हुये अन्यके अंगोंके समान अपने अंगोंसे आवृत था ॥ २९ ॥ और परस्पर न मिले हुये दोनों ओठोंसे और किंचित् म्लानिको प्राप्त स्मितदांतोंसे अपने जी-वनको हंसते हुये विरक्त पुरुषके समान ॥ ३० ॥ मौन होनेसे ध्यानमें प्राप्तकेतुल्य मृत्तिकासे रचितके समान, पुनः न जागनेके लिये सोयेके सदृश, और पूर्णरीतिसे विश्राम करते हुयेके तुल्य वह होगया ॥ ३१ ॥ और स्नेहकी न्यूनता वा अधिकताके विचारार्थ बांधवोंके करुणामय रोदनके वेगसे कोलाहलतामें प्राप्त वाणियोंको यत्नसे सुनते हुयेके समान अपने मृतक शरीरको उसने देखा ॥ ३२ ॥

अथतत्कालकल्लोलप्रलापाकुलचेष्टितैः ॥ सोरस्ताडनमूर्च्छोत्थनेत्रवारिवहप्लुतैः ॥ ३३ ॥ क्रमेणस्वज नैःक्षुब्धैस्ताराक्रंदादिघर्घरैः ॥ निष्कालितममंगल्यमपुनर्दर्शनायवै ॥ ३४ ॥ नीतंश्मशानंमांसांत्रवसा पंककलंकितम् ॥ शुष्काशुष्करसक्लिन्नंकंकालशतसंकुलम् ॥ ३५ ॥ गृध्राभ्रच्छान्नसूर्यांशुचिताज्वलन निस्तमः ॥ शिवाशिवमुखज्वालाजालपल्लवितावनि ॥ ३६ ॥

अर्थ—और इसके पश्चात् उससमय निरन्तर रोदनसे व्याकुल चेष्टासहित, और वक्षस्थलके ताडनसे जनित मूर्छासे उत्पन्न नेत्र जलके प्रवाहसे आप्लुत होगया ॥ ३३ ॥ उच्च स्वरसे विलाप करनेसे घर्घर कण्ठ अतएव क्षुभित अपने बन्धुओंने क्रमसे गृहसे उस मृतदेहको निकालके पुनः दर्शन न होनेके अर्थ अमंगल ॥ ३४ ॥ स्मशानदेशमें प्राप्त किया, और मांस, आंती, और चर्वीरूप पंकसे कलंकित, कहीं शुष्क कहीं अशुष्क तथा रक्तसे आर्द्र, और सै-कडों मृतक शरीरसे व्याप्त ॥ ३५ ॥ गीधरूप मेघोंसे सूर्य्यके किरणोंके आच्छादित होनेसे चिताकी अग्निसे अन्धकार रहित और शृगालियोंके अमंगल मुखसे निःसृत ज्वालारूप पल्लवयुक्त स्थानसे शोभित ॥ ३६ ॥

वहद्रक्तसरित्स्नातमग्नकंकोग्रवायसम् ॥ रक्तार्द्रतंत्रीप्रसरजालाबद्धजरत्खगम् ॥ ३७ ॥ तत्रतेज्वलनेदी प्तेचक्रुस्तंभस्मसाच्छवम् ॥ बांधवाःसलिलापूरंसमुद्राइववाडवे ॥ ३८ ॥ चित्तिश्चटचटास्फोटैःशव माशुददाहसा ॥ शुष्केंधनबहूच्छूनज्वालाजालजटावली ॥ ३९ ॥ अभ्युल्लसत्कटकटारवमुक्तगंधव्या प्तांबुवाहपटलोस्थिचयंहुताशः ॥ दंतीसरंध्रमिववेणुवनंसमंताद्दुद्रांत्तमेदुररसंदलयांचकार ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते गाधिविनाशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा वहते हुये रक्तोंकी नदीमें कोई स्नात और कोई मग्न भयंकर काकयुक्त तथा रक्तसे आर्द्रताओंके विस्ताररूप जालमें बद्ध वृद्ध पक्षीगणसहित स्मशानदेशमें मृतकशरीर प्राप्त किया गया ॥ ३७ ॥ वहां प्रदीप्त अग्निमें बान्धवलोग मृतशरीरको क्षणमें ऐसे भस्म किया जैसे वडवानलमें जलके प्रवाहको समुद्र ॥३८॥ उस चिताने चटचटा शब्दोंके साथ शीघ्रही मृतशरीरको ऐसे जलाया जैसे शुष्क इन्धनोंसे अधिक बढी हुई अग्निकी ज्वाला जटाओंकी पंक्तिकी ॥३९॥चारोओर शोभायमान कटकटा शब्दोंसे और मुक्त गन्धोंसे मेघोंके पटलके व्याप्त करनेवाले अग्निने सब ओरसे सब अति चिक्कण रसयुक्त अस्थिके समूहको ऐसे दलित किया जैसे छिद्रसहित बासके बनको हस्ती ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते गाधिविनाशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस ४५ के सर्गमें इस गाधिकी चाण्डालीके उदरमें स्थिति चाण्डालरीतिसे निवास, और बंधुओंके मरनेपर कीरपुरमें राज्यकी प्राप्ति इन विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथापश्यदसौगाधिःस्वाधिपीवरयाधिया ॥ अंतर्जलस्थएवांतरात्मनात्मनि निर्मले ॥१॥ भूतमंडलपर्यंतग्रामोपांतनिवासिनाम् ॥ श्वपचानांस्त्रियागर्भेस्थितमात्मानमाकुलम् ॥२॥ गर्भवासभराक्रांतंपीडितंपेलवांगकम् ॥ श्वपचीहृदयेसुप्तंस्वविष्ठायामिवाकुलम् ॥ ३ ॥ शनैःपकतया कालेप्रसूतंमेचकच्छविम् ॥ श्वपच्याप्रावृषेवाब्दंश्याममावलितंमलैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके अनन्तर जलके भीतर निर्मल आत्मामें अपने अन्तरात्मासे मानस दुःखोंसे वृद्धिको प्राप्त बुद्धिसे इस गाधिने ॥ १ ॥ भूतमंडलदेशकी सीमाके ऊपर ग्रामके समीपके निवासी चाण्डालोंकी स्त्रीके गर्भमें स्थित अति व्याकुल अपनेको देखा ॥ २ ॥ पुनः गर्भनिवासके दुःखोंके भारसे आक्रान्त, इसीसे कोमल शरीर होनेसे पीडित, विष्ठामें व्याकुलके समान चाण्डालीके हृदयमें सुप्त अपनेको देखा ॥ ३ ॥ ४ ॥

संपन्नंश्वपचागारेशिशुंश्वपचवल्लभम् ॥ इतश्चेतश्चगच्छंतमुत्पीडमिवयामुनम् ॥ ५ ॥ द्वादशाब्ददशां यातंसंस्थितंषोडशाब्दिकम् ॥ पीवरांसमुदारांगंपयोदमिवमेदुरम् ॥ ६ ॥ सारमेयपरीवारंविहरंतंवना द्वनम् ॥ निघ्नंतंमृगलक्षाणिपौलिंदींस्थितिमागतम् ॥ ७ ॥ तमाललतयेवाथश्रितंश्वपचकांतया ॥ स्त नस्तबकशालिन्यानवपल्लवहस्तया ॥ ८ ॥

अर्थ—चाण्डालोंको प्रिय उनके स्थानमें बाल्यावस्थाको प्राप्त, और यमुनाके शिरोभूषण नील कमलक सदृश इधर उधर संचलित वह गाधि ॥ ५ ॥ कालपाके बारह वर्षके हुये अनन्तर सोलह वर्षमें स्थित, स्थूल स्कन्धसहित ऐसे सुन्दर शरीर भासतेथे जैसा श्याममेघ ॥ ६ ॥ कुत्तोंके साथ एक बनसे दूसरे बनमें विहार करते हुये, लाखों मृगोंके मारते हुये पूर्ण चाण्डाली स्थितिको प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् स्तनरूप गुच्छोंसे शोभित नूतनपल्लव सदृश हस्तधारिणी तमालकी लताके तुल्य चाण्डालकी कन्यासे गाधिने विवाह किया ॥ ८ ॥

श्यामयामलिनाकारदशनामलमालया ॥ वनपल्लवयाभूरिविलासवलितांगया ॥ ९ ॥ विलसंतंवनांते षुतयासहनवेष्टया ॥ श्यामलंश्यामयाभृंगंभृंग्येवकुसुमर्द्धिषु ॥ १० ॥ वनपर्णलतापत्रेवसंतंव्यसनातुर म् ॥ विंध्यकांतारमाकारमभ्यागतविवोद्भटम् ॥ ११ ॥ विश्रांतंवनकुंजेषुसुप्तंगिरिदरीषुच ॥ निलीनंप त्रपुंजेषुगुल्मकेषुकृतालयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पुनः श्यामवर्ण, दन्तधावनके अभावसे मलिन आकारवाली तथा स्वाभाविक शुक्लतासे निर्मल दन्तमाला धारण किये, और बनके पल्लवोंको लजानेवाली तथा अनेक क्रीडाओंसे वेष्टित शरीर ॥ ९ ॥ उस न वोढा चाण्डालीके साथ बनान्तमें ऐसे विलास किया जैसे पुष्पोंके समूहोंमें श्यामल भृंगीके साथ श्यामवर्णका भृंग ॥ १० ॥ और बनके पत्र तथा लतापत्रमें निवास करते हुये दुःखोंसे ऐसे व्याकुल हुये जैसे पुरुषका आकार धारण किये क्रूरताको प्राप्त साक्षात् विन्ध्याचलका जङ्गल ॥ ११ ॥ बनके कुंजोंमें विश्राम पर्वतके कन्दराओंमें शयन करते हुये, पत्रोंके कुंजोंमें लीन, और लता गुल्मोंसे रचितस्थान ॥ १२ ॥

किंकिरातावतंसाढ्यंयूथिकास्रग्विभूषिम् ॥ केतकोत्तंसस्सुभगंसहकारस्रगाकुलम् ॥ १३ ॥ लुलितंपु ष्पशय्यासुभ्रांतमद्रितटीषुच ॥ तज्ज्ञंकाननकोशेषुबहुज्ञंमृगमारणे ॥ १४ ॥ प्रसूतमथशैलेषुपुत्रान्निज कुलांकुरान् ॥ अत्यंतविषमोदंतान्खदिरःकंटकानिव ॥ १५ ॥ कलत्रवंतंसंपन्नंस्थितंप्रक्षीणयौवनम् ॥ शनैर्जर्जरतांयातंवृष्टिहीनमिवस्थलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—किंकिरात (वृक्षविशेष) की लताके शिरोभूषणसे पूर्ण, यूथिका (जूही) की मालासे शोभित, केतक पुष्पके शिरोभूषणसे सुन्दर और आम्रकी मालासे व्याप्त गाधि ॥ १३ ॥ पुष्पोंको शय्यापर लोटते हुये, पर्वतकी तटियोंमें भ्रमणशील, बनोंके कोशोंके विषयमें असाधारण ज्ञानयुक्त, और मृगोंके मारनेमें पण्डित उससे ॥१४॥ अति भयंकर कथनके अयोग्य चरित्रवाले अपने कुलके अंकुर पुत्रोंको उत्पन्न ऐसे किये जैसें खदिर वृक्ष कंटकोंको ॥ १५ ॥ कुटुंबिता दशाको प्राप्त क्षीण यौवन धीरे २ जर्जरता दशाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे हीन स्थल ॥ १६ ॥

ततोभूतग्रहग्रामजन्मदेशमुपेत्यतम् ॥ संस्थितंमठिकांपर्णैःकृत्वादूरेमुनींद्रवत् ॥ १७ ॥ जराजरठतां यातंस्वदेहसमपुत्रकम् ॥ जीर्णप्रायरसश्वभ्रतमालतरुसन्निभम् ॥ १८ ॥ प्रौढंश्वपचगार्हस्थ्यंकुर्वाणंव

हुबांधवम् ॥ क्रूरनामार्थवचनंपरांवृद्धिमुपागतम् ॥ १९ ॥ अथापश्यदसौगाधिर्यावत्तस्यकलत्रिणः ॥ जरठःश्वपचेभ्यश्वस्वात्मनोभ्रमहारिणः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् मण्डलदेशके ग्रामके निकट अपनी जन्मभूमिको प्राप्त होकर ताड आदिके पत्तोंसे छोटी कुटी बनाके श्रेष्ठमुनीके समान ग्रामसे दूरस्थित हुये ॥ १७ ॥ वृद्धाऽवस्थासे जीर्णताको प्राप्त, अपने शरीरके समान प्रमाणवाले पुत्रसहित, और जीर्णतुल्य रससहित तथा गढेमें उत्पन्न तमालके वृक्षके सदृश ॥ १८ ॥ अनेक बन्धुयुक्त चाण्डालके गार्हस्थ्यको अति दृढ करते हुये, क्रूर नाम अर्थ क्रिया तथा बचन संयुक्त, और अति वृद्धिको प्राप्त॥ १९ ॥ इस वृद्ध गाधि ब्राह्मणने अपनेको देखा, इसके पश्चात् भ्रमकी ही ओर झुके हुये उस कुटुंबी गाधिके ॥ २० ॥

तत्कलत्रमशेषेणनीतमाव्रत्यमृत्युना ॥ आसारसलिलेनाशुवनपर्णगणोयथा ॥ २१ ॥ प्रलपत्येकएवा सावटव्यांदुःखकर्शितः ॥ वियूथइवसारंगोविगतास्थोश्रुलोचनः ॥२२॥ दिनानिकतिचित्तत्रनीत्वाशो कपरीतधीः ॥ जहौस्वदेशंसंशुष्कपद्मंसरइवांडजः ॥२३॥ विजहारबहून्देशाननास्थश्चिंतयान्वितः ॥ प्रेर्यमाणइवान्येनवातनुन्नइवांबुदः ॥ २४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुटुम्बको मृत्यु ऐसे उठा ले गया जैसे वृष्टिका जलप्रवाह बनमें गिरे हुये शूखे पत्तेके समूहको ॥ २१ ॥ अब यह एकाकी दुःखोंसे पीडित उस महाजंगलमें ऐसे रोता फिरताहै जैसे अपने यूथ (झुण्ड) से भ्रष्ट अश्रुनेत्र और शान्तिरहित पक्षी ॥ २२ ॥ शोकसे पूर्ण चित्त उस ब्राह्मणने कुछ दिन वहां बिताकर उस देशको ऐसे त्यागा जैसे शूखे हुये कमल संयुक्त तडागको पक्षी ॥ २३ ॥ आस्थारहित, चिन्तायुक्त और दूसरेसे प्रेरितके समान अनेक देशोंमे उसने ऐसे भ्रमण किया जैसे वायुसे प्रेरित मेघ ॥ २४ ॥

एकदाप्रापकीराणांमंडलेश्रीमतींपुरीम् ॥ खेचरोविहरन्शून्येसद्विमानमिवांबरे ॥ २५ ॥ नृत्यद्रत्नांशुक च्छन्नमार्गवृक्षलतांगनम् ॥ आगुल्फाकीर्णकुसुमंचंदनागुरुसुंदरम् ॥ २६ ॥ सामंतैर्ललनाभिश्वनाग रैश्वनिरंतरम् ॥ स्वर्गमार्गोपमंराजमार्गमध्यमवापसः ॥ २७ ॥ मणिरत्नकृतागारंतत्रमंगलहस्तिनम् ॥ ददर्शामरशैलेंद्रमिवसंचारचंचलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—एकसमय कीरोंके निवासस्थान देशमें उनकी श्रीमतीपुरीमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे शून्यआकाशमें चलता हुआ पक्षी उत्तम विमानको ॥ २५ ॥ नाचते हुये तथा रत्नोंसे और वस्त्रोंसे आच्छादित मार्गस्थ वृक्ष जिनकी ऐसी लता और अंगनासहितहै, तथा एडीतक पुष्पोंसे व्याप्त, और चन्दन तथा अगरूसे अति सुन्दर मार्गके मध्यमें वह चाण्डालरूप गाधि प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ करदाता छोटे राजाओंसे उत्तम ललनाओंसे, नगरनिवासियोंसे पूर्ण और स्वर्गके तुल्य उस राजमार्गमें वह प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ श्रेष्ठमणियोंके हौदेसहित, और चलनेमें चंचल मेरूके समान मंगलहस्तीको वहां देखा ॥ २८ ॥

मृतेराजनिराजार्थीविहरंतमितस्ततः ॥ रत्नज्ञमिवरत्नार्थीचिंतामणिदिदृक्षया ॥ २९ ॥ तमसौश्वपचोना गंकौतुकोद्धुरयादृशा ॥ चिरमालोकयामासस्पंदयुक्ताचलोपमम् ॥ ३० ॥ आलोकयंतमादायतंकरेण सवारणः ॥ स्वकटेऽयोजयन्मेरुस्तटेर्कमिवसादरम् ॥ ३१ ॥ तस्मिन्कटगतेनेदुर्जयडिंडिभयोभितः ॥ कल्पांबुदइवाकाशमधिरूढेमहार्णवाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—राजाके मरनेपर अन्य राजाकी इच्छासे इधर उधर ऐसे वह हस्ती फिरताथा जैसे चिन्तामणिके देखनेकी इच्छासे रत्नकी परीक्षामें कुशल रत्नार्थी पुरुष ॥ २९ ॥ किंचित् संचलनयुक्त पर्वतके समान उस हस्तीको उत्कण्ठित दृष्टिसे चिरकालतक देखा ॥ ३० ॥ देखते हुये उस चाण्डालको उस हस्तीने उठाके अपने गण्डस्थलपर आदरसहित ऐसे बैठाया जैसे सुमेरू अपने तटपर सूर्यको ॥ ३१ ॥ उसके गण्डस्थलपर चढनेके अनन्तर जयके नगारे ऐसे बजे जैसे प्रलयकालके मेघके आकाशपर चढनेपर महासमुद्र ॥ ३२ ॥

पूरिताशोबभौराजाजयतीतिजनस्वनः ॥ उदभूत्संप्रबुद्धानांविहगानामिवारवः ॥ ३३ ॥ उदभूद्वंदिवृंदानांघनकोलाहलस्ततः ॥ वेलाविलुलितांबूनामंबुधीनामिवध्वनिः ॥ ३४ ॥ तंतत्रावरयामासुर्मंडनार्थंवरांगनाः ॥ क्षीरोदगतविभ्रांतालहर्यइवमंदरम् ॥ ३५ ॥ मानिन्यस्तंगुणप्रोतैर्नानारत्नैरपूरयन् ॥ नानाप्रभाप्रभातार्कावेलाइवतटाचलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—संपूर्ण दिशाओंको पूर्ण करनेवाला राजाकी जयहो ऐसा मनुष्योंका शब्द इसप्रकार उठा जैसे प्रातःकालमें जागे हुये पक्षियोंका ॥ ३३ ॥ इसके पीछे बन्दियोंके समूहोंका ऐसा कोलाहल हुआ जैसे तटके संक्षुब्ध जलोंसे समुद्रोंकी ध्वनि ॥ ३४ ॥ वहांपर श्रेष्ठ अंगना उसको मण्डनकेलिये चारोओरसे ऐसे घेरलिया जैसे क्षीरसमुद्रमें

मन्दराचलसे क्षुभित तरंग मन्दराचलको ॥ ३५ ॥ मानिनी स्त्रियोंने सूत्रोंमें गूंथे हुये नानाप्रकारके रत्नोंसे ऐसे पूर्ण किया जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यकी प्रभायुक्त नानाप्रकारकी मणीमयी समुद्रकी तटी अपने निकटमें स्थित पर्वतको ॥३६॥

तुषारशिशिरस्पर्शैस्तास्तंहारैरभूषयन् ॥ श्यामावननदीपूरैर्वर्षाःशृंगमिवोत्तमम् ॥ ३७ ॥ विचित्रवर्ण सौगंध्यैःपुष्पैरावलयन्स्त्रियः ॥ वनंमधुश्रियइवतंलोलकरपल्लवाः ॥ ३८ ॥ नानावर्णरसामोदैस्तास्त माश्रुविलेपनैः ॥ अलेपयन्प्रभाजालैर्नगोभ्रमिवधातुभिः ॥ ३९ ॥ रत्नकांचनकांतोसावाददेचित्तमात तम् ॥ संध्याभ्रतारेंदुनदीव्याप्तंमेरुरिवांबरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उन युवतियोंने तुषारके समान शीतल स्पर्शयुक्त हारोंसे ऐसे भूषित किया जैसे वर्षाऋतु नदीके प्रवाहोंसे उत्तम शिखरको ॥ ३७ ॥ चंचलकर पल्लव धारण किये हुई स्त्रियोंने चित्रविचित्र वर्ण और सौगन्धयुक्त पुष्पोंसे ऐसे वेष्टित किया जैसे वसन्तऋतुकी शोभा बनको ॥ ३८ ॥ उन स्त्रियोंने नानाप्रकारके रस और सौगन्ध्ययुक्त लेपनोंसे ऐसे उस गाधिको लिप्त किया (उबटन लगाया) जैसे पर्वत नानाप्रकारके धातुसम्बन्धी प्रभाके समूहोंसे मेघको ॥ ३९ ॥ रत्न तथा सुवर्णोंसे भूषित अति सुन्दर वह चाण्डाल राजा उन स्त्रियोंके चित्तको ऐसे ग्रहण किया जैसे सन्ध्याकालमें मेघ, तारागण, चन्द्रमा और नदियोंसे व्याप्त आकाशको सुमेरु ॥ ४० ॥

भूषितःसविलासाभिर्बालवल्लीभिरावृतः ॥ रत्नपुष्पांशुकाकीर्णःकल्पवृक्षइवाबभौ ॥ ४१ ॥ तादृशंत मुपाजग्मुःपरिवारसमन्विताः ॥ सर्वाःप्रकृतयःफुल्लंमार्गद्रुममिवाध्वगाः ॥ ४२ ॥ ताएनमासनेसिंहेत त्राभिषिषिचुःक्रमात् ॥ तस्मिन्नेवगजेशक्रमैरावतइवामराः ॥ ४३ ॥ एवंसश्वपचोराज्यंप्रापकीरपुरां तरे ॥ आरण्यंहरिणंपुष्टमप्राणमिववायसः ॥ ४४ ॥

अर्थ—विलासवती स्त्रियोंसे भूषित वह राजा ऐसे शोभित हुआ जैसे नूतन लताओंसे वेष्टित और रत्नरूप पुष्पोंसे तथा वस्त्रोंसे व्याप्त कल्पवृक्ष ॥ ४१ ॥ उसप्रकारसे भूषित उस राजाके निकट परिवारसहित सम्पूर्ण प्रजा ऐसे गई जैसे विकसित मार्गके वृक्षके निकट वटो ही ॥ ४२ ॥ वे सम्पूर्ण प्रजा इस राजाको सिंहके आसनपर बैठाकर और ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमसे इसका राज्याभिषेक किया, और अभिषेकके पश्चात् उसी हांथी (जिसने इसको अपने ऊपर बैठायाथा) पर बैठाकर सब प्रजा पीछे २ ऐसे चली जैसे ऐरावत हस्तीपर आरूढ इन्द्रके पीछे २ सब देवता ॥४३॥ इसप्रकार इस चाण्डालने कीरोंके नगरमें राज्य ऐसे पाया जैसे प्राणरहित और पुष्ट जंगली हरिणको कौआ ४४

कीरीकरतलांभोजप्रमृष्टचरणांबुजः ॥ सर्वांगेकुंकुमालेपैःसंध्यांबुधरशोभनः ॥ ४५ ॥ जज्वालकीरन गरेनागरीगणवानसौ ॥ सिंहीगणयुतःसिंहोयथाकुसुमितेवने ॥ ४६ ॥ हरिहतकरिकुंभोन्मुक्तमुक्ताक लापप्रविरचितशरीरःशांतचिंताविषादः ॥ अरमतसहसद्भिस्तत्रभोगैःसरस्यांरविकरमदतप्तोवारिपूरै रिवेभः ॥ ४७ ॥ परिविसृतनृपौजाःसर्वदिक्संस्थिताज्ञःकतिपयदिवसैर्हासिद्धदेशव्यवस्थः ॥ प्रकृति भिरलमूढाशेषराजन्यभारःसगवलइतिनाम्नातत्रराजाबभूव ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांतेश्वपचराज्यलाभो नाम पंचचत्वरिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—कीरोंकी स्त्रियोंके करकमलोंसे मर्दित चरणकमल तथा सब अंगोंमें कुंकुमके लेपसे संध्याकालके मेघके समान शोभायमान वह राजा ॥ ४५ ॥ नगरनिवासिनी स्त्रियोंके गणसे ऐसे दीप्तिमान हुआ जैसे सिंहीके गणसे वेष्टित पुष्पितबनमें सिंह ॥ ४६ ॥ सिंहोंसे मारे हुये हस्तियोंसे निकली हुई मोतियोंके समूहसे भूषित शरीर और चिंता तथा विषादोंसे रहित उस राजाने उत्तम मन्त्री तथा पुरोहितोंके साथ अनेक भोगोंसे उस नगरमें ऐसे रमण किया जैसे सूर्य्यके किरण और मदसे तप्त हांथियोंका राजा सरोवरमें जलके प्रवाहोंसे ॥ ४७ ॥ चारोंओर विस्तृत राज शक्तिसहित तथा सब दिशाओंमें राजाज्ञाको विस्तृत करनेवाली थोडे ही दिनोंमें स्वेच्छा मात्रसे राज्यकी व्यवस्था सिद्ध करके वह चाण्डाल गबल इस नूतन नामसे प्रसिद्ध उस कीरोंके देशमें राजा हुआ ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते स्वपचराज्यलाभो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इस ४६ के सर्गमें एक चांडालसे उस राजाको चाण्डाल सुनके सब मनुष्योंके अग्निमें प्रवेश करनेपर गाधिने भी अग्निमें प्रवेश किया और जलकर जागृत हुआ यह विषय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विलासिनीभिर्वलितोमंत्रिमंडलपूजितः ॥ वंदितःसर्वसामंतैश्छत्रचामरलालितः ॥ १ ॥ सिद्धानुशासनःकांतोज्ञातराज्यगुणक्रमः ॥ वीतशोकभयायासप्रजःप्राप्तमहादशः ॥ २ ॥ विस्मृतात्मस्वभावोभूदनिशंस्तवमंगलैः ॥ आनंदपूर्णयावृत्त्याभृशंक्षीबइवासवैः ॥ ३ ॥ कीरेषुश्वपचोराज्यंवर्षाण्यष्टौचकारह ॥ आर्यवृत्तमशेषेणतावत्कालंबभारह ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे राम ! विलासिनियोंसे वेष्टित (घिरा हुआ) मंत्रियोंके मंडलसे पूजित, संपूर्ण छोटे २ कर देनेवाले राजाओंसे वन्दित, तथा छत्र चमरसे शोभित ॥ १ ॥ तथा आज्ञाओंको प्रजासे स्वीकार करानेवाला तथा अति सुन्दर राज्यके गुण क्रमका ज्ञाता, प्रजाओंके शोक भय आदिका हर्ता, और उच्च दशाको प्राप्त॥२॥ वह चाण्डाल नित्य मंगल तथा स्तुतिके कारणसे अपनी पूर्वदशाको ऐसे विस्मृत होगया जैसे अति मद्यपानसे पूर्णानन्दकी वृत्तिसे मदोन्मत्त जन अपने पूर्वस्वभावको ॥ ३ ॥ इस चाण्डालने ८ आठ वर्षपर्य्यन्त राज्य किया तबतक पूर्ण रीतिसे दया दाक्षिण्य शौच आदि सब आर्य्योंके आचरणको धारण किया ॥ ४ ॥

यदृच्छयैकदाथासावतिष्ठत्त्यक्तभूषणः ॥ अतमस्तारकेंद्वर्कतेजोंभोदमिवांबरम् ॥ ५ ॥ बहुमन्यतनोहारकेयूरवलयान्यसौ ॥ प्रभूतावृंहितंचेतोनाहार्यमभिनंदति ॥ ६ ॥ एकएवाजिरंबाह्यंताद्दग्वेषःसनिर्ययौ ॥ मुख्यांगणान्नभोभागादस्तंगच्छन्निवांशुमान् ॥ ७ ॥ तत्रापश्यद्घनंश्यामंपीनंश्वपचपेटकम् ॥ गायन्मृद्वसंतोत्थंकोकिलानामिवव्रजम् ॥ ८ ॥

अर्थ—एकसमय अकस्मात् भूषणोंकी त्यागकर तम, तारा, सूर्य्य चन्द्रमाके तेज तथा मेघोंसे रहित आकाशके समान नीलवर्ण भान होनेलगा ॥ ५ ॥ हार, केयूर और कटकको यह अधिक नहीं समझताथा क्योंकि प्रभुतासे बढा हुआ चित्त कृत्रिम भुषणादिसे प्रसन्न नहीं होता ॥ ६ ॥ यह उसी नंगे वेषसे मुख्य जनोंसे आश्रित भीतरके अंगणसे नीच जनोंसे आश्रित बाहरके अंगणमें ऐसे गया जैसे सूर्य अस्त होतेसमय मुख्य आकाशके भागसे नचिके आकाशमें ॥ ७ ॥ वहांपर वसन्तऋतुमें निकले हुये मधुर गान करते हुये कोकिलके समान स्थूल और श्यामवर्ण चाण्डालके समूहको देखा ॥ ८ ॥

धुनानंवल्लकीतंत्रींकरपल्लवलीलया ॥ मृद्वरेफंरणद्रेफामालेश्रेणिमिवद्रुमम् ॥ ९ ॥ एकस्तस्मात्समुत्तस्थौजरावान्रक्तलोचनः ॥ काचशृंगंहिमापूर्णमिवश्वपचनायकः ॥ १० ॥ भोकटंजेतिसहसावदन्कीरमहीपतिम् ॥ इहराजाभवंतंवाकच्चिद्रेयक्रियाविदम् ॥ ११ ॥ रक्तकंठंमानयतिरागवानिवकोकिलम् ॥ आपूरयतिवाकच्चिद्गृहवस्त्रासनार्पणैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वीणाके गुणको हस्तपल्लवकी लीलासे ऐसे बजाते हुयेथे जैसे वृक्षको कँपाती हुई मधुर स्वरसे शब्द करती हुई भ्रमरकी श्रेणी ॥ ९ ॥ उस समूहसे वृद्ध और रक्तनेत्र एक चाण्डालोंका नायक उठके खडा हुआ ॥१०॥ और हे कटंज (यह उसका चाण्डालदशाका नामथा) ऐसा कीरोंके राजाको सम्बोधन करता हुआ बोला कि क्या गानक्रियामें कुशल मधुरकण्ठ तुमको यहांका राजा ॥ ११ ॥ सन्मान करताहै और रागवान् मधुर स्वर कोकिलके सदृश तुमारे गृहको वस्त्र आसन और अन्न आदिके दानसे पूर्ण करताहै ॥ १२ ॥

मधूरसालविटपंफलपुष्पभरैरिव ॥ दर्शनेनतवाद्याहंपरांनिर्वृतिमागतः ॥ १३ ॥ पद्मंसूर्योदयेनेवचंद्रोदयइवौषधी ॥ आनंदानामशेषाणांलाभानांमहतामपि ॥ १४ ॥ विश्रामाणामनंतानांसीमांतोबंधुदर्शनम् ॥ श्वपचेप्रवदत्येवंराजायावत्तयातया ॥ चकारतत्कालजयाचेष्टयैवावधीरणम् ॥ १५ ॥ तावद्वातायनगताःकांताःप्रकृतयस्तथा ॥ श्वपचोयमितिज्ञात्वाम्लानतामलमाययुः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे बन्धो ! फल पुष्पके भारोंसे लसित आम्रवृक्षको देखके वसन्त प्रसन्न होताहै ऐसे ही आपके दर्शनसे मैं सुखको प्राप्त हुआहुं ॥ १३ ॥ और जैसे सूर्य उदयसे कमल और चन्द्रोदयसे औषधि विकसित होती है ऐसे ही आपके दर्शनसे मैं प्रसन्नहुं, सम्पूर्ण आनन्दोंके बडे २ भी लाभोंके ॥ १४ ॥ और अनन्त विश्रामोंकी सीमाका अन्त बन्धुका दर्शनहै ऐसे उस चाण्डालके कहनेपर राजाने उसमयके उचित चेष्टासे उसका तिरस्कार किया ॥ १५ ॥ इतनेहीमें झरोखेमें बैठीहुई स्त्रियोंने तथा अन्य प्रजाने यह चाण्डालहै ऐसा जानकर परम मलिनताको ग्रहण किया॥१६॥

पद्मास्तुषारप्रावृष्ट्याग्रामाःसावग्रहाइव ॥ दाववंतइवाद्रींद्रानागरानविरेजिरे ॥ १७ ॥ नृपोवधीरयामा सतांतांश्वपचसंकथाम् ॥ वृक्षाग्रगतमार्जारफेत्कारंमृगराडिव ॥ १८ ॥ सत्वरंप्रविवेशांतःपुरमाम्लान मानवम् ॥ राजहंसइवावर्षेसीदत्सरसिजंसरः ॥ १९ ॥ सर्वावयवविश्रांतांम्लानतामयमाययौ ॥ जानु स्तंभांतरमहारंध्राग्निरिवद्रुमः ॥ २० ॥

अर्थ—और हिमकी वृष्टिसे जैसे कमल, वृष्टिके अभावमें ग्राम, तथा दावाग्निसे जैसे पर्वत नहीं शोभित होते ऐसेही नगरनिवासी शोभित नहीं हुये॥१७॥ राजाने उस २ चाण्डालकी कथाको ऐसे तिरस्कार किया जैसे वृक्षके ऊपर स्थित मार्जार (बिलार) के घुर्राहटको सिंह ॥ १८ ॥ अति उदासीन मनुष्योंसे आवृत्त अन्तःपुरमें शीघ्र ऐसे प्रवेश किया जैसे वर्षाके अभावमें शुष्क कमलयुक्त तडागमें राजहंस ॥ १९ ॥ और सम्पूर्ण अंगोंमें व्याप्त म्लानताको यह ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मूलभागमें महा छिद्रमें अग्निके होनेसे वृक्ष ॥ २० ॥

तत्रापश्यदसौसर्वंविषण्णवदनंजनम् ॥ जालंकुंकुमपुष्पाणांभुक्तमूलमिवाखुना ॥ २१ ॥ मंत्रिणोनाग रानार्यस्ततस्तेतंमहीपतिम् ॥ नस्प्राक्षुरपितिष्ठंतंगृहएवशवंयथा ॥ २२ ॥ भृत्याश्वाकृतसत्कारंदूरएन मथात्यजन् ॥ दुःखयुक्ताघनस्नेहाअपिबालाःशवंयथा ॥ २३ ॥ अनानंदमुखंश्यामंशरीरश्रीविवर्जितम्॥ दग्धंस्थलमिवैनंतेबह्वमन्यंतनाकुलाः ॥ २४ ॥

अर्थ—वहांपर संपूर्ण जनोंको उदासीन मुख ऐसे देखा जैसे मूषकसे भुक्त पुष्प लताका मूल ॥ २१ ॥ मंत्री; नगरनिवासी; और स्त्रियां गृहमें ही स्थित उस राजाको ऐसे नहीं स्पर्श करतीथी जैसे मृतक शरीरको ॥ २२ ॥ विना सत्कार किये हुये इस राजाको दुःखी भृत्यलोगोंने ऐसे त्यागदिया जैसे अति स्नेहयुक्त भी बालक मृतकशरीरको ॥ २३ ॥ आनन्दरहित मुखसहित, श्यामवर्ण और शरीरकी शोभासे वर्जित इस राजाका आदर व्याकुल भृत्यादिकोंने ऐसे नहीं किया जैसे स्मशान भूमिका ॥ २४ ॥

धूमायमानदेहस्यपरितापदशावती ॥ नाढौकतास्यजनतापार्श्वमग्निर्गिरेरिव ॥ २५ ॥ मंदोत्साहाःसमु द्भूताःसभ्यसंघातवर्जिताः ॥ नतदाज्ञापदंप्रापुर्भस्मनीवांबुविप्रुषः ॥ २६ ॥ क्रूरकर्मकराकारात्संगता शुभदायिनः ॥ तस्माद्विशेषेणजनाराक्षसादिवदुद्रुवुः ॥ २७ ॥ एकएवबभूवासौजनमध्यगतोपिसन् ॥ अर्थादिगुणनिर्मुक्तःपरदेशइवाध्वगः ॥ २८ ॥

अर्थ—धूमके सदृश शरीरधारी इस राजाके निकट जनसमूह ऐसे नहीं आया जैसे अग्नि पर्वतके शिला भाग-पर ॥ २५ ॥ उत्साहरहित उत्पन्न और कीरोंके समूहसे उपेक्षित उसकी आज्ञाके योग्य पुरुषको ऐसे नहीं पाया जैसे जलके बिन्दु भस्ममें ॥ २६ ॥ उस राजाके निकटसे विशेष करके सब लोग ऐसे भागतेथे जैसे क्रूरकर्मकी खानि संगतिसे पापदायी राक्षससे ॥ २७ ॥ जनके समूहमें प्राप्तभी यह अब एकाकी (अकेला) ऐसे रहगया जैसे परदेशमें धनसे हीन वटो ही ॥ २८ ॥

भृशमालपतेप्यस्मैनालापंनागरादद्वः ॥ मुक्ताजालयुतायापिकीचकायाध्वगाइव ॥ २९ ॥ अथसर्वेवयं दीर्घकालंश्वपचदूषिताः ॥ प्रायश्चित्तैर्नशुद्ध्यामःप्रविशामोहुताशनम् ॥ ३० ॥ इतिनिर्णीयनगरेनाग रामंत्रिणस्तथा ॥ अभितोज्वालयामासुश्चिताःशुष्कैंधनैधिताः ॥ ३१ ॥ ज्वलितास्वभितस्तासुतार कास्विवखेतदा ॥ बभूवनगरंसर्वमाक्रंदपरमानवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—बार २ बात कहते हुयेभी इसको नगरनिवासी उत्तर ऐसे नहीं देतेथे जैसे मुक्ताके समूहयुक्त और वा-युसे कूजते हुयेभी वांसको वटो ही ॥ २९ ॥ उसके पश्चात् सबने यह विचार किया कि हम सब दीर्घकालतक चा-ण्डालके संगसे दूषित हुये प्रायश्चित्तसे शुद्ध नहीं होंगे इसलिये अग्निमें प्रवेश करैं ॥ ३० ॥ ऐसा निर्णय करके नगर-निवासी तथा मंत्रीगण नगरमें शूखे इन्धनसे वर्द्धित चारोओरसे बडी भारी चिता प्रज्वलित की ॥ ३१ ॥ आकाशमें तारागणोंके समान चारोओरसे उन चिताओंके जलनेपर उस नगरके निवासी सब रोदनमें तत्पर होगये ॥ ३२ ॥

करुणारावमुखरैःकलत्रैर्बाष्पवर्षिभिः ॥ अवष्टब्धंज्वलत्कुंडोपांतमंदरुदत्प्रजम् ॥ ३३ ॥ अग्निकुंडप्रवि ष्टानांमंत्रिणांभृत्यरोदनैः ॥ रुदत्क्रंदद्दृढतरमरण्यमिवमारुतैः ॥ ३४ ॥ चितादीपितविप्रेंद्रमांसमांस लगंधया ॥ जातनीहारमुत्पातवात्ययावकरोद्धतैः ॥ ३५ ॥ वातदीर्घवसागंधदूरानीतखगोर्जितैः ॥ चक्रैर्व्योमाभवच्छन्नभास्करंजलदैरिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—करुणाके शब्दसे शब्दायमा न और अश्रुओंकी वृष्टिकरनेवाले सब कुटुम्ब एक दूसरेके हस्तके सहा-रेसे वहां स्थित थे और जलते हुये कुण्डोंके समीपमें प्रजाजन आकर वहां रोदन कररहीथी ॥ ३३ ॥ और कुण्डोंमें

प्रविष्ट मंत्रियोंके तथा भृत्योंके रोदनसे दृढतापूर्वक ऐसे रोदन और विलाप करतेथे जैसे महा झंझा वायुसे जंगल ॥ ३४ ॥ और चितामें जलते हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके मांससे वृद्धिको प्राप्त सुगन्ध सहित महा वायुसे उडी हुई धूलिसे उत्पन्न तुषारके समान स्थित, वह नगर भासताथा ॥ ३५ ॥ और पवनके द्वारा दूरदेशमें विस्तृत चर्वी आदिके गन्धोंसे दूर देश लाये हुये पक्षियोंके तथा पिशाचोंके बलवान् मण्डलोंसे मेघोंसे आच्छादित आकाशके समान वह नगर भासताथा ॥ ३६ ॥

वातोद्धूतचितावह्निप्रज्वलद्व्योममंडलम् ॥ उड्डीनाग्निकणव्राततारासारदिगंतरम् ॥ ३७ ॥ प्रमत्ततस्करक्रंदद्वेल्लद्बालकुमारकम् ॥ संत्रस्तनागरापास्तजीविताख्यमसंस्थिति ॥ ३८ ॥ अलक्षितगृहंचौरलुंटिताखिलसंचयम् ॥ त्यक्तपुत्रकलत्रंतन्मरणव्यग्रनागरम् ॥ ॥ ३९ ॥ तस्मिंस्तथावर्तमानेकष्टेविधिविपर्यये ॥ अशेषजनताशेषकल्पांतसदृशस्थितौ ॥ ४० ॥

अर्थ—वायुसे कम्पित चिताकी अग्निसे प्रज्वलित आकाशमण्डलसे व्याप्त और उडी हुई अग्निके कणरूप तारागणोंसे दिशाओंका अंतराल पूर्ण होरहा था ॥ ३७ ॥ और वहां आभूषणादि हरणके समयमें प्रचण्ड तस्करोंसे बालक तथा किंचित् प्रौढ मनुष्यभी कम्पित होरहे थे, और जहां भयसे त्रस्त नगरनिवासिओंने अपने प्राण और नामकोभी त्यागदियाथा इसीसे मर्य्यादा शून्य होगयाथा ॥ ३८ ॥ गृह वहां नहीं देख पडतेथे, चोरोंने संपूर्ण संचित धन लूट लियाथा अपने कुटुम्ब स्त्रीपुत्रादिको भी लोगोंने जहां त्यागदियाथा और मरनेके अर्थ नगरनिवासी शीघ्रता कररहेथे ऐसा वह नगर होगया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विधिसे विपर्य्यय कष्ट जब उस नगरमें वर्तमानथा, और संपूर्णमनुष्योंके कल्पांतके सदृश दशामें स्थित होनेपर ॥ ४० ॥

राज्यसज्जनसंपर्कपवित्रीकृतधीरधीः ॥ गवलश्चिंतयामासशोकेनाकुलचेतनः ॥ ४१ ॥ मदर्थेंहिकदर्थोंयंदेशेस्मिन्स्थितिमागतः ॥ अकालकल्पांतमयःसर्वनायकनाशनः ॥ ४२ ॥ किंमेजीवितदुःखेन मरणंमेमहोत्सवः ॥ लोकनिंद्यस्यदुर्जंतोर्जीवितान्मरणंवरम् ॥ ४३ ॥ इतिनिश्चित्यगवलोज्वलितेज्वलनेपुनः ॥ पतंगवदनुद्वेगमकरोदाहुतिंवपुः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्बलाद्द्वलनाग्निहुताशराशौदेहेपतत्यवयवाकुलतांप्रयाते ॥ स्वांगावदाहदहनस्फुरणानुरोधादंतर्जलेझटितिबोधमवापगाधिः ॥ ४५ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ४६ ॥ ॥ दिनम् ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांतेराज्यभ्रंशो नाम षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—राज्य तथा सज्जनोंके संगसे पवित्र वृद्धिसहित इस शोकाकुल गवलचान्डालने यह चिन्तन कियाकी ॥ ४१ ॥ अकालमें कल्पान्तके सदृश, और सब नायकों (राज्यके श्रेष्ठ मनुष्यों) का नाशक यह अनर्थ इस देशमें मेरे लिये हुआहै ॥ ४२ ॥ इसलिये दुःखमय मेरे जीवनसे क्या फल? मेरा मरण महोत्सवके तुल्यहै क्योंकि लोकमें निन्दनीय दुष्ट जन्तुके जीवनसे मरण श्रेष्ठहै ॥४३॥ ऐसा चिन्तन करके उस गवलने अग्निके प्रज्वलित होनेपर बिना घबराहटके अपनी शरीरको अग्निमें आहुति करदिया ॥ ४४ ॥ वैराग्यके बलसे उस गवल नाम शरीरके अग्निके पुंजमें गिरनेपर अपने हस्तपादादि अंगोंके जलनेसे संचलनके अनुरोधसे सब अवयवोंमें व्याकुलताके प्राप्त होनेपर जलके भीतर अघमर्षण करते हुये गाधि जाग्रत दशाको प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे भरद्वाज ! इतना मुनि वसिष्ठके कहनेपर दिवसका अन्त होगया और सायंकालके विधानके अर्थ सूर्य भगवान् अस्ताचलको गये और सभाभी (सभाके लोग) परस्पर नमस्कारके साथ सन्ध्या वन्दनादि कृत्यके लिये गई और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ पुनः आकर प्रात हुई ॥ ४६ ॥ दिवसः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते राज्यभ्रंशो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

गाधिने अपने अतिथिसे कीरके राजाका वृत्तान्त सुनके वहां जाके वैसा ही सुनके और बार २ पूंछकर अत्यन्त विस्मित हुये यह विषय इस ४७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुहूर्त्तद्वितयेनाथगाधिराधिभवभ्रमात् ॥ प्रशशामाकुलीभावोवेलावर्त्तइवांबुधेः ॥ १ ॥ मनोनिर्माणसंमोहात्तस्मात्सविररामह ॥ कल्पांतसमयेब्रह्माजगद्विरचनादिव ॥ २ ॥ बोधमापशनैःशांतःस्वमेवोन्निद्रधीरिव ॥ क्षीबतायांप्रशांतायांयथापरिणताशयः ॥ ३ ॥ अयंसोहमिदंकार्यमिदंनेतिददर्शह ॥ निशाव्यपगमेलोकोयथाक्षीणेतमःपटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके पश्चात् चार घडीके अनन्तर गाधि मानसीव्यथारूप संसारके भ्रमसे ऐसे शान्तिको प्राप्त हुआ जैसे अति संक्षुब्ध समुद्रके तटका आवर्त ॥ १ ॥ उस मनकी रचनाके भ्रमसे वह गाधि ऐसे विरामको प्राप्त हुआ जैसे कल्पान्तके समयमें जगत्की रचनासे ब्रह्मा ॥ २ ॥ यह धीरे २ अपने पूर्वकालके गाधि नामक शरीरमें अहंभावरूप बोधको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मदिरा आदिके मदके क्षीण होनेपर स्वच्छ चित्त प्राणी ॥ ३ ॥ जो जलमें स्नान करनेको उतराथा वह गाधि ब्राह्मण मैंहुं और यह स्नानका अंगभूत मेरा कार्य्य है और पूर्व दृष्ट चांडालादिका राज्य मेरा कार्य्य नहीं है यह उसने ऐसे देखा जैसे लोग रात्रिके अन्धकाररूप पटलके क्षीण होनेपर घटादि कार्य्य देखते हैं ॥ ४ ॥

स्मृतस्वरूपोथपदमुद्दध्रेसजलांतरात् ॥ शिशिरांतेप्रवृत्तास्यंसरोजमिवमाधवः ॥ ५ ॥ एतद्वारिककुब्व्योमवतींवसुमतीमिमाम् ॥ अन्यामिवपुनःपश्यन्विस्मयंपरमंययौ ॥ ६ ॥ कोहंकिमिवपश्यामिकिमकार्षमहंकिल ॥ एवंविचारयंश्चित्रंसभ्रूभंगमभूत्क्षणम् ॥ ७ ॥ भ्रांतस्तत्क्षणमात्रेणसंभ्रमंदृष्टवानहम् ॥ इतिविज्ञायसलिलादुदस्थादुदयार्कवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपको स्मरण करके जलके भीतरसे अपने चरणको ऐसे उठालिया जैसे शीतके अन्तमें किंचित् विकसित मुखवाले कमलको वसन्त ॥ ५ ॥ इसी रीतिसे जल दिशा, आकाशादि सहित इस पृथिवीको देखता हुआ वह परमविस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ मैं कौनहूं और किसके समान देखताहूं तथा क्या किया ऐसा भौंह चढाके क्षणभर वह अन्तःकरणमें विचारता रहा ॥ ७ ॥ मैं इससमय भ्रातहुं उसी भ्रांन्तिके कारण क्षणमात्रमें ही महाभ्रमको देखा ऐसा निश्चय करके उस जलसे ऐसे निकला जैसे उदयाचलसे सूर्य्य ॥ ८ ॥

चिंतयामासचतटेकसामाताकसाप्रिया ॥ यदाहंमृतिमायातोमध्येमातृमहेलयोः ॥ ९ ॥ बालास्बमातापितरौनष्टौकिलममामतेः ॥ वातनीतस्यपत्रस्यवल्लीवृक्षमिवासिना ॥ १० ॥ अविवाहोस्मिजानामिनस्वरूपमपिस्त्रियः ॥ दुष्टायाःक्षोभकारिण्यामदिरायाइवद्विजः ॥ ११ ॥ अतिदूरतरीभूताःस्वदेशस्यस्वबांधवाः ॥ केनाममममयेषांतेमध्येजीवंत्यजाम्यहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और जलके किनारे यह चिन्तन किया कि कहां वह मेरी माता और कहां प्रियापत्नी ! कि मैं अपनी माता और स्त्रीकी विद्यमानतामें मरणको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ जब मैं निपट निर्बुद्धि बालकथा उसीसमय मेरे मातापिता ऐसे मृत्युसे नष्ट किये गयेथे जैसे वायुसे पत्ररहित वल्ली (लता) वृक्ष तरवारसे नष्ट कियाजाय ॥ १० ॥ मैं तो जन्मसे अविवाहितहुं और स्त्रीका रूपभी ऐसे नहीं जानता जैसे दुष्ट क्षोभकारिणी मदिराका स्वरूप ब्राह्मण ॥ ११ ॥ हमारे देशके बान्धव अति दूरहैं, वे हमारे देशके ज्ञाति बान्धव कौनहैं जिनके मध्यमें मैंने अपना जीवन त्याग किया ! ॥ १२ ॥

तस्मादेतत्समुद्भूतमहंकिंनामदृष्टवान् ॥ विविधारंभसंरंभगंधर्वनगरंयथा ॥ १३ ॥ तदास्तामेतदेषाहिबंधुमध्येमृतस्थितिः ॥ मायामोहेमनागस्मिन्नसत्यमुपलभ्यते ॥ १४ ॥ नित्यमेवमनंतासुभ्रांतिदृष्टिषुदेहिनाम् ॥ चेतोभ्रमतिशार्दूलोवनराजिष्विवोन्मदः ॥ १५ ॥ अवधार्येतितंचित्तेमोहंगाधिर्निनायसः ॥ दिनानिकतिचित्तस्मिन्स्वकपवाश्रमेतदा ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये अनेक प्रकारके जन्म मरण आदि अभिनिवेश गन्धर्वनगरके समान मैंने क्या देखा ? ॥ १३ ॥ इसलिये यह बन्धुओंके मध्यमें मरणकी स्थिति जो मैंने देखा वह भ्रांति मात्रहै क्योंकि इस मायाके मोहमें सत्य किंचिन्मात्रभी नहीं देखता ॥ १४ ॥ और अनन्त भ्रान्तिकी दृष्टियोंसे सदा प्राणी ऐसे भ्रमण किया करताहै जैसे प्रचण्ड सिंह बनकी पंक्तियोंमें ॥ १५ ॥ इसप्रकार गाधिने अपने चित्तमें उस भ्रमको निश्चय करके उसी अपने आश्रममें कुछ दिन व्यतीत किया ॥ १६ ॥

एकदागाधिमगमत्कश्चित्तत्रप्रियोतिथिः ॥ ब्राह्मणमिवदुर्वासाःसविशश्रामसश्रमः ॥ १७ ॥ परमां तुष्टिमानीतःफलपुष्परसाशनैः ॥ सोतिथिर्गाधिनातेनवसंतेनेवपादपः ॥ १८ ॥ मिथोवंदितसंध्यौतौ कृतजाप्यावुभावपि ॥ क्रमाच्छयनमासाद्यतस्थतुर्मृदुपल्लवम् ॥ १९ ॥ ततःप्रावर्त्ततेशांतातयोस्तापस योःकथा ॥ स्वव्यापारोचितापुष्पश्रीरिवर्त्तुत्वमाशयोः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् एक समय गाधिके निकट एक प्रिय अतिथि ऐसे आया जैसे ब्रह्माजीके निकट दुर्वासा-मुनि, और वह अतिथि उस रात्रिमें वहां विश्राम किया ॥ १७ ॥ गाधिने फल पुष्प और रसादिके भोजनसे उस अतिथिको परम तृप्तिको ऐसे प्राप्त किया जैसे पुष्पादिसे वसन्तऋतु वृक्षको ॥ १८ ॥ वे दोनों परस्पर सन्ध्या जपादि कृत्योंको समाप्त करके क्रमसे शयनस्थानपर प्राप्त होके कोमल पल्लवपर विराजे ॥ १९ ॥ उसके पश्चात् उन दोनोंकी अपने २ तप ध्यानादि व्यापारके अनुकूल शांतरस प्रधान कथा ऐसे प्रवृत्त हुई जैसे पूर्व और उत्तर दिशाके सूर्यके योगसे वसन्तऋतुमें पुष्पोंकी शोभा ॥ २० ॥

तंपप्रच्छातिथिंगाधिःप्रसंगपतितंवचः ॥ किंब्रह्मन्सुकृशांगस्त्वंकिमितिश्रमवानसि ॥ २१ ॥ अतिथिरुवाच ॥ ॥ ममातिकार्श्यश्रमयोर्भगवन्शृणुकारणम् ॥ कथयामितथाभूतंवयंनासत्यवादिनः॥२२॥ अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेउत्तराशानिकुंजके ॥ कीरोनामातिविख्यातःश्रीमाञ्जनपदोमहान् ॥ २३ ॥ तत्राहमवसंमासंपूज्यमानःपुरेजनैः ॥ नानात्मस्वादलोलात्माचित्तवेतालमोहितः ॥ २४ ॥

अर्थ—कथाके प्रसंगमें गाधिने उस अतिथिसे पूंछा कि हे ब्रह्मन् ! तुम अति कृश शरीरवाले तथा श्रान्त क्यों हो ? ॥ २१ ॥ अतिथिने कहा कि—हे भगवन् ! मेरी कृशता तथा श्रमका कारण तुम सुनों मैं सत्य २ कहताहुं क्योंकि हमलोग असत्यवादी नहीं होते ॥ २२ ॥ इस पृथिवीपर उत्तर दिशाओंके कुंजमें एक लक्ष्मीवान् कीर नामसे प्रसिद्ध महादेशहै ॥ २३ ॥ वहांपर चित्तरूप वेतालसे मोहित नानाप्रकारके भोज्य अपने आस्वाद योग्य पदार्थोंमें लोलुप, और नगरनिवासियोंसे पूज्यमान मैं एक मास पर्यंत निवास किया ॥ २४ ॥

एकदैकेनतत्रोक्तंकथाप्रस्तावतःक्वचित् ॥ इहाभूच्छ्वपचोराजावर्षाण्यष्टौद्विजेतिमे ॥ २५ ॥ ततोग्रामेषु तत्पृष्टैःप्रोक्तंसकलजंतुभिः ॥ राजाबभूवश्वपचोवर्षाण्यष्टाविहेतितैः ॥ २६ ॥ सोयमंतेपरिज्ञातःप्रविष्टोज्वलनंजवात् ॥ ततोद्विजशतानीहप्रविष्टानिहुताशनम् ॥ २७ ॥ इतितेषांमुखाच्छ्रुत्वातस्मान्निर्गत्य मंडलात् ॥ प्रयागेऽकरवंशुद्धैप्रायश्चित्तमहंद्विज ॥ २८ ॥

अर्थ—एकसमय किसी कथाके प्रसंगमें कहीं एक मनुष्यने वहां यह कहा कि हे ब्राह्मण ! यहांपर आठ ८ वर्ष-पर्य्यन्त एक चाण्डालने राज्य किया ॥ २५ ॥ वह चाण्डाल आठवर्षके अन्तमें सबसे ज्ञात होनेपर वेगसे अग्निमें प्रविष्ट हुआ और उसके पश्चात् सैकडों द्विजो (ब्राह्मणादि) ने अग्निमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऐसा उन लोगोंके मुखसे सुनकर उस देशसे निकलकर प्रयागमें हे द्विज ! मैंने अपनी शुद्धि की ॥ २८ ॥

कृत्वाचांद्रायणस्यांतेतृतीयस्याद्यपारणम् ॥ इहाहमागतस्तेनश्रांतोस्म्यतिकृशोस्मिच ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिश्रुतवतातेनगाधिनासतदाद्विजः ॥ भूयःपृष्टोप्येतदेवकथयामासनान्यथा॥३०॥ अथविस्मयवान्गाधिस्तांनीत्वातत्रशर्वरीम् ॥ जगद्गेहमहादीपेरवावुदयमागते ॥ ३१ ॥ कृतप्रातःस्नानविधावापृच्छ्यस्वातिथौगते ॥ इदंसंचिंतयामासविस्मयोद्धुरयाधिया ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे ब्राह्मण ! तीसरे चान्द्रायणके अन्तमें पारणकरके आज इस तुमारे आश्रममें मैं आया इसलिये मैं श्रान्त और अति कृशहुं ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! गाधि ब्राह्मणने यह सुनकर उस अतिथिसे पुनः पूंछा तो उसने वही सब बात कहा न कि अन्यथा ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् विस्मययुक्त गाधिने उस रात्रिको वहां बिताकर जगत्‌रूप गृहके महादीपके समान सूर्यके उदय होनेपर ॥ ३१ ॥ प्रातःकालके स्नानसन्ध्या आदि करनेपर और अतिथिके आज्ञा लेकर चलजानेपर विस्मयसे उत्कंठित बुद्धिसे ऐसा चिन्तन किया ॥ ३२ ॥

यन्मयासंभ्रमेदृष्टंसत्यभूतंद्विजेनतत् ॥ उक्तंममेतिर्किंनामस्यान्मायाशंबरक्रमः ॥३३॥ यद्बंधुमध्येमरणं मयातदृष्टमात्मनः ॥ सामायैवनसंदेहःशेषंपश्यामितस्यतम् ॥ ३४ ॥ तदात्मश्वपचोदंतंद्रष्टुंतावदखिन्नधीः ॥ भूतमंडलपर्यंतग्रामंगच्छामिसत्वरम् ॥ ३५ ॥ इतिसंचिंतयन्गंतुंमंडलांतरमादरात् ॥ उत्तस्थौभास्करःपार्श्वमेरोर्द्रष्टुमिवोद्यतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कि जो कुछ मैंने भ्रममें देखा उसको ब्राह्मणने सत्य कहा सो क्या यह मायारूप दर्शन शम्बरासुरकी रचनाका क्रमहै ॥ ३३ ॥ जो मैंने बन्धुओंके मध्यमें अपना मरण देखा वह मायाहै इसमें सन्देह नहीं है अब मैं अ-

तिथिके चान्द्रायणके निमित्त अपने चाण्डालादि होनेके वृत्तान्तको देखूं॥ ३४॥ इसलिये अपने चाण्डाल होनेके वृत्तान्तको देखनेको अखिन्नभूत मण्डलदेशके समीप ग्राममें शीघ्र जाऊं॥ ३५॥ ऐसा चिन्तन करते हुये दूसरे मंडलमें जानेको आदरपूर्वक ऐसे खडा हुआ जैसे सूर्य्य मेरूके पृष्ठपर जानेको उद्यतहो॥ ३६॥

मनोराज्यमपिप्राज्ञालभंतेऽव्यवसायिनः॥ गाधिनास्वप्नसंदृष्टंगत्वालब्धमखंडितम्॥ ३७॥ सर्वमध्यवसायेनदुष्प्रापमपिलभ्यते॥ पश्यन्गाधिर्जगन्मायांप्रमेयीकर्तुमुद्यतः॥ ३८॥ विनिर्गत्याभवन्मार्गेप्रावृडोघजवेनसः॥ देशान्नुल्लंघयामासबहून्वाततुरंगवत्॥ ३९॥ तत्रेदृशानिजाचारंभूतमंडलमागतः॥ करभःकंटकार्थ्येकःकारंजमिवकाननम्॥ ४०॥

अर्थ—उद्योगी बुद्धिमान् पुरुष अपने मनोराज्यको भी देखनेको समर्थ होते हैं क्योंकि गाधिने स्वप्नदृष्ट वृत्तान्तको जागकर पूर्णरूपसे देखा॥ ३७॥ अपने उद्योगसे दुष्प्राप भी सब कुछ प्राप्त करसकते हैं क्योंकि गाधि जगत्की मायाको देखते हुये चक्षुके विषय करनेको उद्यतहै॥ ३८॥ वह गाधि अपने आश्रमसे निकलके मार्गमें वर्षाऋतुके प्रवाहके समान वेगवान् हुआ, और देशोंको वायुके वाहनपर आरूढके समान उल्लंघन किया॥ ३९॥ और पूर्वदृष्ट आचारादियुक्त भूतमण्डलदेशमें प्रथम ऐसा आया, जैसे कंटकका अर्थी ऊंट कांटेके बनमें॥ ४०॥

तत्रसंवित्स्थितेनैवसन्निवेशेनवेपुलः॥ अपश्यद्ग्रामकंकंचिद्गंधर्वइवपत्तनम्॥ ४१॥ ददर्शतस्यपर्यंतेतमेवश्वपचालयम्॥ अधस्ताद्भुवनस्येवपातालेनरकव्रजम्॥ ४२॥ चित्तचिंतितविस्तारंतन्निवेशमयंपरम्॥ गंधर्ववदसावात्मश्वपचंत्वंचदृष्टवान्॥ ४३॥ तेनैवसन्निवेशेनप्राग्दृष्टंश्वपचास्पदम्॥ तस्यकामपिवैराग्यपदवीमनयन्मनः॥ ४४॥

अर्थ—वहांपर पूर्वकालमें स्मृतिमें आरूढ रचना आदिके अनुसार गन्धर्वनगरके समान कोई ग्राम देखा॥ ४१॥ और उसी ग्रामके निकट उसी चाण्डालके गृहको ऐसे देखा जैसे इसी भुवनके नीचे पातालमें नरकके समूहको॥ ४२॥ चित्तमें चिंतित जन्मादि विस्तारसहित पूर्वकालके दृष्ट गृहादिके रचनामय अपने चाण्डालत्वको गन्धर्वनगरके समान देखा॥ ४३॥ उसी पूर्वदृष्ट रचनादिसे परिज्ञात वह चाण्डालका गृह देखके उसके मनमें एक अपूर्व वैराग्य उत्पन्न हुआ॥ ४४॥

प्रावृडासारलुठितंभित्तिजातयवांकुरम्॥ पर्यस्तच्छादनार्द्रांकिंकिंचिदादृष्टतल्पकम्॥ ४५॥ दारिद्र्यंतद्दृढमिवदौर्भाग्यमिवकुड्यमत्॥ भ्रष्टांगमिवदौरात्म्यंदौःस्थित्यमिवखंडितम्॥ ४६॥ गाधिर्दंतावदलितैर्गवाश्वमहिषास्थिभिः॥ धवलैर्व्याप्तपर्यंतंसाक्ष्यंकर्तुमिवस्थितैः॥ ४७॥ भुक्तंपीतंपुरातेनयेषुखर्परकेषुवै॥ तैरस्पंदाभ्रसलिलैःपानपूर्णैरिवावृतम्॥ ४८॥

अर्थ—वर्षाकी धारामें पतित भित्तियोंपर जव आदिके अंकुरसहित, इधर उधर फटे हुये आधेतीहे ओढनेके वस्त्रोंसे चिन्हित, और चटाईके टुकडे जिसके परिज्ञात॥ ४५॥ तथा प्रबल दारिद्र्यने और मूर्तिमान् गृहाकार दौर्भाग्यके समान, भ्रष्टांग चौरादि दुष्टताके तुल्य, और एक देशमें आच्छादित दुर्दशाके समान गृह देखा॥ ४६॥ अपने ही दांतोंसे मर्दित, श्वेत गो, अश्व तथा महिषोंकी अस्थियोंसे समीप देशमें व्याप्त, और मानो वे अस्थि (हड्डी) आदि साक्षी देनेको स्थित गृह देखा॥ ४७॥ और जिन खर्परों (खप्परों) में प्रथम खाया पियाथा उन वृष्टिके जलसे पूर्णपात्रोंसे वह ऐसे आवृत्त जैसे पानके पात्रोंसे॥ ४८॥

ताभिरेवांत्रतंत्रीभिःसंशुष्काभिर्लतावृतैः॥ तृष्णाभिरिवदीर्घाभिःपरितःपरिवेष्टितम्॥ ४९॥ चिरमालोकयामाससतदात्मगृहंजवात्॥ प्राक्तनंशुष्कशवतांयातंदेहमिवात्मवान्॥ ५०॥ अतिविस्मयमातस्थौग्रामकंसमुपाययौ॥ उल्लंघ्यम्लेच्छनगरमार्यदेशमिवाध्वगः॥ ५१॥ तत्राप्टच्छज्जनंसाधोकच्चित्स्मरतिभोभवान्॥ प्राग्वृत्तमस्यग्रामस्यपर्यंतेश्वपचक्रमम्॥ ५२॥

अर्थ—और स्तंभ (खम्मे) आदिमें लपटी शूखी लताके समान उन्हीं पशु आदिके आँतोंकी ताँतोंसे सब ओर ऐसे वेष्टितथा जैसें बडी तृष्णाओंसे॥ ४९॥ ऐसे अपने गृहको वेगसे ऐसे चिरकालतक देखा जैसे तत्वज्ञानी योगी शुष्क मृतकदशाको प्राप्त अपने पूर्व शरीरको॥ ५०॥ अति विस्मयमें स्थित उस अपने गृहका उल्लंघन करके उसके समीप दुष्ट ग्राममें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे वटोही म्लेच्छदेशको लंघन करके आर्यदेशमें प्राप्तहो॥ ५१॥ वहां जाके एक जनसे पूंछा कि हे साधो! क्या इस ग्रामके समीप पूर्वकालके एक चाण्डालके वृत्तान्तको तुम स्मरण करतेहो (जानतेहो)॥ ५२॥

सर्वएवहिधीमंतश्चिरवृत्तमपिस्फुटम् ॥ करस्थमिवपश्यंतिमयेतिसुजनाच्छ्रुतम् ॥ ५३ ॥ अत्रश्वपचमेकांतेवासिनंवृद्धमुत्तमम् ॥ स्मरस्येनंकिमुतभोदुःखानामिवदेहकम् ॥ ५४ ॥ यदिजानासिभोःसाधोतंन्मेकथयतत्त्वतः ॥ पांथसंशयविच्छेदेमहत्पुण्यफलंस्मृतम् ॥ ५५ ॥ भूयोभूयइतिग्राम्याःपृष्टागाधिद्विजन्मना ॥ अनल्पस्मयसंरंभमार्तेनेवचिकित्सकाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—क्योंकि सभी बुद्धिमान् पूर्वकालके वृत्तान्तको हस्तमें स्थितके समान प्रत्यक्ष रीतिसे जानते हैं ऐसा मैंने सज्जनके मुखसे सुनाहै ॥ ५३ ॥ हे नगरनिवासीजन ! शरीरके समान दुःखोंका स्थान एकान्तका निवासी उत्तम वृद्ध एक चाण्डालथा उसको तुम लोग जानतेहो ? ॥५४॥ हे साधो ! यदि उसे जानतेहो तो मुझे यथार्थ रीतिसे कहो क्योंकि वटोहीके संशयका नाश करना यह बडा भारी पुण्यहै ॥ ५५ ॥ अधिक विस्मय और प्रश्नके उद्योगके साथ बार २ उस गाधिब्राह्मणने इसप्रकार ग्रामीणोंसे ऐसे पूंछा जैसे रोगी वैद्योंसे ॥ ५६ ॥

ग्राम्याऊचुः ॥ यथाकथयसिब्रह्मंस्तत्तथानतदन्यथा ॥ कटंजनामाश्वपचइहाभूद्दारुणाकृतिः ॥ ५७ ॥ पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबंधुस्वजनपेटकम् ॥ यस्यातिविस्तीर्णमभूत्पत्रवृंदंतरोरिव ॥ ५८ ॥ यस्यवृद्धस्यतत्सर्वकलत्रंमृत्युराच्छिनत् ॥ अद्रेःपुष्पफलोपेतंदावोवनमिवानलः ॥ ५९ ॥ यस्ततोदेशमुत्सृज्ययौकीरपुरांतरम् ॥ वर्षाण्यष्टावनुद्वेगंतत्रराजाबभूवसः ॥ ६० ॥

अर्थ—ग्रामीण बोले–हे ब्राह्मण ! जो बात तुम पूंछतेहो वह वैसीही है अन्यथा नहीं, भयंकर आकारधारी एक कटंज नाम चांडाल यहां रहताथा ॥ ५७ ॥ वृक्षके पत्र समूहके समान जिसके पुत्र, पौत्र, भृत्य, बन्धु तथा स्वजनोंका समूह अति विस्तृतथा ॥ ५८ ॥ उसके अति वृद्ध होनेपर उसके संपूर्ण कुटुम्बको मृत्युने ऐसे छेदन किया जैसे पुष्प फलसे पूर्णपर्वतके बनको दावाग्नि ॥ ५९ ॥ इसके पीछे वह इस देशको त्यागकर कीरोंके देशमें गया और वहांपर बिना किसी विघ्न वा घबराहटके आठ वर्षपर्य्यन्त राजा रहा ॥ ६० ॥

यस्तत्रार्थपरिज्ञायजनैर्दूरेनिराकृतः ॥ यथाराशिरनर्थस्ययथाग्रामेविषद्रुमः ॥ ६१ ॥ ततोजनेग्निंप्रविशत्यात्मनायोहुताशनम् ॥ आर्यतामार्यसंसर्गादागतःप्रविवेशह ॥ ६२ ॥ किंत्वमेवप्रयत्नेनश्वपचंपृच्छसिप्रभो ॥ किंतेबंधुरसौकच्चिदभवस्त्वंस्वतोथवा ॥ ६३ ॥ एवंकथयतोग्राम्यान्गाधिःपृच्छन्पुनःपुनः ॥ सर्वेषुतत्रप्रांतेषुमासमेकमुवासस: ॥ ६४ ॥ यथातेनानुभूतंतच्छ्वपचत्वंतथैवतैः ॥ ग्रामीणैस्तस्यकथितंसर्वैरेवावखंडितम् ॥ ६५ ॥ अव्याहतंसकलभूतमुखादथैतदाकर्ण्यसम्यगवलोक्ययथानुभूतम् ॥ गाधिःशशांकमलवद्धृदयेधिरूढंगूढाकृतिःपरमविस्मयमाजगाम ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते प्रत्यक्षावलोकनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—लोगोंसे चाण्डाल परिज्ञात होनेसे वहांसे वह ऐसे तिरस्कारके साथ त्यागा गया जैसे ग्राममें अनर्थकी राशि वा विषका वृक्ष ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर प्रायश्चित्त करनेके लिये मनुष्योंके अग्निमें प्रवेश करनेपर आर्य्यजनोंके संगसे आर्यताको प्राप्त स्वयं अग्निमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६२ ॥ सो हे ब्राह्मण ! इसप्रकार अति प्रयत्नसे तुम क्यों उस चाण्डालको पूंछतेहो ! क्या वह तुमारा बन्धुथा अथवा तुम स्वयं उसके बन्धु थे ॥ ६३ ॥ इसप्रकार ग्रामीणोंके कहनेपर पुनः पुनः पूंछता हुआ गाधि उस ग्रामके समीप उसके निवासके योग्य सब गृहोंमें एक मासपर्य्यन्त निवास किया ॥ ६४ ॥ जिसप्रकार उसने चाण्डालत्वका अनुभव कियाथा वैसाही पूर्णरीतिसे सब ग्रामीणोंने कह दिया ॥ ६५ ॥ सब प्राणियोंके मुखसे सत्य वाणीको सुनके स्वयं अबाधितरूपसे सब जानकर जैसा अनुभव किया था वैसाही पूर्णरीतिसे देखकर लज्जागुप्तरूप गाधि चन्द्रके कलंकके समान निज हृदयमें खचित (गडके) परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते प्रत्यक्षावलोकनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

गाधि कीरनगरमें जाके और सब वृत्तान्त यथार्थ देखकर तपसे विष्णुको प्रसन्न किया और विष्णु उससे बोले कि यह सब मायाहै यह विषय इस ४८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ लुठितंश्वपचागारेपुनर्विस्मयमाययौ ॥ गाधेर्मनोहिनायातितृप्तिमाश्चर्यदर्शने ॥ १ ॥ तत्रावलोकयामासस्थानानिसदनानिच ॥ कल्पक्षोभविवृत्तानिजगंतीवांबुजोद्भवः ॥ २ ॥ उवाचस्वात्मनैवेदमरण्येलुठितालये ॥ शुष्कास्थिमालावलितेपिशाचकइवद्रुमे ॥ ३ ॥ इमास्तामृतमातंगतंतमालावृतीकृताः ॥ अद्यापिसंस्थिताःकल्पंप्रतिमेरुशिखाइव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! गाधिब्राह्मणका मन उस चाण्डालके स्थानमें चिरकालतक पुनः विस्मयको प्राप्त हुआ क्योंकि उसका मन आश्चर्यके दर्शनमें तृप्त न हुआ ॥ १ ॥ वहांपर बहुतसे स्थल और गृहोंके टूटे फूटे ऐसे देखा जैसे प्रलयकालमें नष्ट अनेक जगत्को ब्रह्माजी ॥ २ ॥ और जंगलमें एक गिरेस्थानमें अपने ही आत्मासे उसने यह बचन ऐसे कहा जैसे शूखी हड्डियोंकी मालासे आवेष्टित स्मशानके वृक्षपर पिशाच ॥ ३ ॥ कि ये वेही मृतक हांथियोंके दांतोंकी मालाहैं जिनको मैंने त्रिशूलके तुल्य खनके गाडाथा और वे अबतक ऐसे स्थितहैं जैसे प्रलयकालको लक्ष्य करके मेरूके शिखर ॥ ४ ॥

इहतद्वानरीमांसंपक्वंवंशांकुरैःसह ॥ भुक्तंपरासवोन्मत्तैसहश्वपचबंधुभिः ॥ ५ ॥ आलिंग्यश्वपचश्यामामिहकेसरिचर्मणि ॥ सुप्तमापीयमैरेयंतिक्तंगजमदेनच ॥ ६ ॥ कौलेयककुटुंबिन्यःपिण्याकपलवर्द्धिताः ॥ इहबद्धावरत्राभिर्मृतेभरदकाष्ठके ॥ ७ ॥ इहवारणमुक्तानांतदासीत्पिठरत्रयम् ॥ पिनद्धंमाहिषेणोग्रचर्मणांबुदशोभिना ॥ ८ ॥

अर्थ—यह वही स्थानहै जहां बानरियोंके मांसको बाँसके अंकुर (करिल) के व्यंजनके साथ मदिरासे उन्मत्त अपने चाण्डाल बन्धुओंको लेकर भोजन कियाथा ॥५॥ गजमदसे मिश्रित हस्तिप (पीलवान्) से मोल लेकर मद्यपान करके अपनी चाण्डाली युवतीका आलिंगन करके अश्वके चर्मपर यहां शयन कियाथा ॥६॥ मांसोंसे पालित कुत्तियोंको यहां मृतक हस्तीके दन्तरूप काष्ठमें चर्मकी रस्सियोंसे बांधाथा ॥७॥ और मेघके समान शोभायमान् महिषके भयंकर चर्मसे बन्धा हुआ, तीन ओखलियोंके बराबर गजमोतियोंसे पूर्ण हांथीदांतका पात्र इसी स्थानमें था ॥८॥

स्थलीष्वेतासुतास्वत्रसहश्वपचबालकैः ॥ चिरंविलुठितंचूतपत्रपुंजेपिकैरिव ॥ ९ ॥ अत्रतद्वालनिःश्वासरणद्वंशप्रवृत्तम् ॥ गीतंपीतंशुनीरक्तंसाधिताशवभूषिताः ॥ १० ॥ अत्रसार्द्धंकुटुंबेनजन्यत्रेषुकुटुंबिना ॥ नृत्तंतत्कृतमुन्नादकल्लोलैर्जलधाविव ॥ ११ ॥ अत्रोड्डनयलोलानांकाकभासपतत्रिणाम् ॥ धृतानामन्यदासार्थंग्रथितंवंशपंजरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस ग्रामके समीप पूर्वदृष्ट इन्ही स्थानोंमें चाण्डालोंके बालकोंके साथ चिरकालतक धूलि क्रीडा ऐसे की थी जैसे आम पत्रोंके पुंजमें कोकिल ॥ ९ ॥ इसी स्थानमें चाण्डालके बालकोंके साथ बासुरीके तालके अनुसार गान किया, कुत्तियोंका रक्तपान किया और इस स्थानमें स्मशानके माला चन्दनादिसे सबका अलंकार किया ॥१०॥ यहां कुटुंबसहित नृत्य वाद्य इसप्रकार किया जैसे समुद्रमें तरंगोंके उच्च नाद ॥ ११ ॥ और यहां पकडे हुये काकोंके समान पक्षियोंको अन्य दिनके भोजनके लिये वंशके पंजरमें गूंथाथा ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंप्रायाःस्मरन्गाधिःप्राक्तनीःश्वपचक्रियाः ॥ विस्मयोत्कंपितशिराधातुश्चेष्टांपरामृशत् ॥ १३ ॥ चचालतस्माद्दीर्घेणदेशात्कालेनकार्यवित् ॥ भूतमंडलमुत्सृज्यप्रापदेशांतरंक्रमात् ॥ समुल्लंघ्यनदीशैलमंडलारण्यसंततिम् ॥ आससादतुषाराद्रिरत्नंकिलजनास्पदम् ॥ १५ ॥ तत्रप्रापमहीपालनगरंनगसन्निभम् ॥ जगद्भ्रमणखिन्नात्मास्वर्लोकमिवनारदः ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसीप्रकार गाधिने पूर्वकालकी चाण्डालकी क्रियाओंका स्मरण करते हुये विस्मयसे शिर हिलाके ब्रह्माकी चेष्टाका अनुमान किया ॥ १३ ॥ कार्यका ज्ञाता वह गाधि दीर्घकालके पश्चात् उस देशसे चला, और भूतमण्डलदेशका उल्लंघन करके दूसरे देशमें प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ और बहुतसी नदियां पर्वत, मण्डल (देश) तथा जंगलोंके समूहको पार करके हिमालयपर श्रेष्ठ रत्नके समान श्रेष्ठ देश अर्थात् पूर्वकालमें दृष्ट कीरदेशमें प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ वहांपर पर्वतके समान उच्च और रत्नादिसे पूर्ण राजाके नगरमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे जगत्के भ्रमणसे खिन्ननारदजी स्वर्गलोकमें ॥ १६ ॥

अथात्मनानुभूतानिदृष्टान्यासेवितानिच ॥ स्थानानिनगरेपश्यन्प्रपच्छजनमादृतः ॥ १७ ॥ साधोस्म रसिकिंचित्त्वमिहश्वपचर्मीश्वरम् ॥ यदिजानासितत्त्वंमेवर्णयाशुयथाविधि ॥ १८ ॥ नागराऊचुः ॥ अभूदिहाष्टौवर्षाणिश्वपचोभूमिपोद्विज ॥ राजत्वमर्पितंयस्यनाममंगलहस्तिना ॥ १९ ॥ अंतेचसंपरि ज्ञातःसम्प्रविष्टोहुताशनम् ॥ अद्यद्वादशवर्षाणिसमतीतानितापस ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उस नगरमें अपने अनुभूत गृह प्रासादादि, पूर्व दृष्ट दूसरोंके प्रासादादि, और अपने आसेवित, वाटिका शाला आदि स्थानोंको देखता हुआ आदरसे एक मनुष्यसे पूंछा ॥ १७ ॥ कि हे साधो ! क्या तुम इस वृत्तान्तको जानतेहो कि यहांका एक चाण्डालथा, यदि जानतेहो तो मेरेसे यथार्थ कहो ॥ १८ ॥ नगरनिवासी बोले—हे ब्राह्मण ! यहांपर आठ ८ वर्षतक चाण्डाल राजाथा जिसको कि मंगल नाम हस्तीने राजत्व पदवी दी थी१९और अन्तमें जब जानलिया गया तब अग्निमें प्रवेश किया, और हे तापस ! इस वार्ताकोभी१२वर्ष होगये॥२०

यंयंपृच्छत्यसौगाधिर्जनंजातकुतूहलः ॥ तस्यतस्यमुखादेवशृणोत्यास्वादयत्यपि ॥ २१ ॥ अथापश्य त्पुरेतस्मिन्नृपंसबलवाहनम् ॥ देवंचक्रधरंविष्णुमंदिरान्निर्गतंबहिः ॥ २२ ॥ सदृष्ट्वास्थगिताकाशं चलरेणुपयोधरैः ॥ प्राक्तनींराजतांस्मृत्वासमुवाचातिविस्मयः ॥ २३ ॥ इमास्ताःकीरकामिन्यःपद्मग र्भोपमत्वचः ॥ कनकद्रववर्णिन्योलोलनीलोत्पलेक्षणाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस २ मनुष्यसे कुतूहली गाधि पूंछताहै उस २ के मुखसे वही वृत्तान्त सुनताहै और अन्तःकरणमें स्मरण करनेसे चमत्कारका अनुभव भी करताहै ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् उस नगरमें पूर्वदृष्ट सेनातथा वाहन (घोडे हाथी आदि) सहित नृप वेषधारी चक्र धारण किये हुये श्रीविष्णुभगवान्को राजाके मंदिरसे बाहर निकलते हुये देखा ॥ २२ ॥ चलायमान रेणुरूप मेघोंसे आकाश आच्छादन करनेवाली उसकी सेनाको देखकर और पूर्वकालके अपने राजत्वको स्मरण करके अति विस्मित होके अपने मनमें यह बोला ॥ २३ ॥ कमलके केसरके सदृश त्वच् (चर्म) वाली गौरांगी और चंचल नीलकमलके समान नेत्रवाली वे ही ये पूर्वकालकी ज्ञात कीरराजाकी कामिनी हैं ॥ २४ ॥

चामरौघाइमेचंद्रकरसंपिंडपांडुराः ॥ स्थिरनिर्झरसंकाशाःकाशपुष्पचयाइव ॥ २५ ॥ कांताभिरवधू यंतेबालव्यजनराजयः ॥ इमास्तावनवल्लीभिर्दीप्यमानाइवर्द्धयः ॥ २६ ॥ इमास्तामत्तमातंगघटाघटि तदिक्तटाः ॥ संकल्पपादपामेरोरिवशृंगपरंपराः ॥ २७ ॥ एतेतेयमवारीशकुबेरप्रतिमौजसः ॥ सामं तावासवस्येवलोकपालामहीभृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—चंद्रमाके किरणके पिंडके तुल्य गौरवर्ण, स्थिर दशामें प्राप्त झरनेके समान स्वच्छ, और काशके पुष्पके समूहके समान ये चामरोंके समूहहैं ॥ २५ ॥ ललनागणसे कंपित ये बालव्यजनकी पंक्ति ऐसे हैं जैसे बनकी लताओंसे दीप्यमान पुष्पोंकी लता ॥ २६ ॥ अपने दांतोंके अग्रभागसे दिशाओंके तटको फोडनेवाले मत्तमातंगोंके येही वे समूह ऐसे शोभायमान हैं जैसे संकल्पके अनुसार फल देनेवाले कल्पवृक्षसहित मेरुपर्वतके शिखरोंकी पंक्ति॥२७॥ जैसे इन्द्रके अतुलित तेजस्वी यम, वरूण, कुबेर आदि लोकपालहैं ऐसे ही ये कीर नरेशके सामन्तहैं॥२८

इमास्ताःसर्ववस्त्वोघाःसर्वाभिमतदास्तताः ॥ कल्पवृक्षलताकुंजसुंदर्योगृहपंक्तयः ॥ २९ ॥ इदंत त्कीरजनताराज्यंप्राग्भुक्तमद्यमे ॥ आत्मजन्मांतराचारइवप्रत्यक्षतांगतम् ॥ ३० ॥ सत्यंस्वप्नइवायंमे जाग्रद्रूतःपुनःस्थितः ॥ नजानेकिंकृतोत्थानामायेयंप्रविजृंभते ॥ ३१ ॥ अहोनुखलुदीर्घेणमनोमोहेन वल्गता ॥ वैवश्यमुपनीतोहंजालेनेवशकुंतकः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब धन धान्य आदि वस्तुओंके समूहसहित, अभिमत फलदायक, और कल्पवृक्षकी लताके कुंजके समान सुन्दरी ये ही वे पूर्वकालमें अनुभूत गृहोंकी पंक्तिहैं ॥ २९ ॥ यही वह कीरदेशकी प्रजाका राज्य जिसको मैंने पूर्वकालमें भोग किया और इससमय जन्मान्तरके चरित्रके समान प्रत्यक्षताको प्राप्त हुआहै ॥ ३० ॥ निश्चय यह मेरा स्वप्न पुनः जाग्रतके रूपसे स्थितहै, न जाने किस प्रयोजनके लिये आविर्भूत यह माया भासमान होरही है ॥३१॥ अहो ! यह कैसा आश्चर्य है इस अति दीर्घ मनके गर्जते हुये मोहसे ऐसे अस्वाधीनताको प्राप्तहुं जैसे जालसे पक्षी३२

हाधिक्कष्टमबुद्धंमेमनोवासनयाहृतम् ॥ पश्यतिभ्रमजालानिविततानिशिशोरिव ॥ ३३ ॥ एषाहिमाया महतीतेनमेचक्रधारिणा ॥ दर्शितेत्यधुनासाधुमयास्मृतमखंडितम् ॥ ३४ ॥ तदिदानींतथायत्नंकरिष्ये गिरिकंदरे ॥ यथाकुसंभ्रमस्यास्यजानेजन्मतथास्थितिम् ॥ ३५ ॥ इतिसंचिंत्यनगराद्गाधिस्तस्माज्ज गामह ॥ कंदरंप्राप्यशैलस्यतस्थौविश्रांतसिंहवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हां ! धिक्कार और कष्टकी वार्ता है कि वासनासे नष्ट ज्ञानरहित बालकके समान मेरा मन विशाल भ्रमजालोंको देखताहै ॥ ३३ ॥ यह महामाया विष्णुने मुझे दर्शायाहै यह मुझे अब पूर्णरीतिसे स्मरण होगया॥३४॥ इसलिये अब मैं पर्वतकी कन्दरामें ऐसा यत्न (तप) करूंगा कि जिससे इस दुष्ट भ्रमके जन्म तथा स्थितिको अर्थात् इसके निमित्तको जान जाऊं ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके गाधि उस नगरसे चला और पर्वतकी कन्दरामें जाकर विश्रान्त सिंहके समान स्थित हुआ ॥ ३६ ॥

तत्रसंवत्सरंसार्द्धंपयश्चुलुकभोजनम् ॥ तपश्चक्रेमहातेजास्तुष्टयेशार्ङ्गधन्वनः ॥ ३७ ॥ अथास्यपुंडरीकाक्षःपयोमूर्त्तिरुपाययौ ॥ प्रसादमुत्पलश्यामःशरदीवमहाह्रदः ॥ ३८ ॥ तमाजगामशैलेंद्रकंदरंद्विजमंदिरम् ॥ पयोधरवदच्छाच्छच्छविर्व्योमन्यथावसत् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गाधेकच्चित्त्वयादृष्टामायाममगरीयसी ॥ दृष्टंत्वयाजगज्जालचेष्टितंदैष्टिकात्मकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—वहां केवल एक चिल्लू जलपान करके महा तेजस्वी गाधि विष्णुकी प्रसन्नताके अर्थ डेढ वर्षपर्यन्त तप किया ॥ ३७ ॥ इसके पश्चात् जलके समान प्रसन्नताको प्राप्त हुये जैसे शरत्कालमें महा ह्रद ॥ ३८ ॥ स्वच्छसेभी स्वच्छ कान्तियुक्त भगवान् उस ब्राह्मणके निवासस्थान उस कन्दरामें आये और मेघके तुल्य आकाशमें स्थित हुये ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान्जी बोले–हे गाधि ! क्या तुमने मेरी अति महती मायाको देखा तथा दैवाधीन जगत्जालकी चेष्टाभी देखी ॥ ४० ॥

चित्ताभिगतएतस्मिन्प्राप्तेसम्यगनिंदितः ॥ तपोगिरितटेकुर्वन्किमन्यदभिवांछसि ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंवदंतमालोक्यहरिंगाधिर्द्विजोत्तमः ॥ अर्चाकुसुमपूरेणपादयोःपर्यपूरयत् ॥ ४२ ॥ दत्वार्घ्यंकीर्णकुसुमःप्रणम्याशुप्रदक्षिणैः ॥ विष्णुमाहद्विजोवाक्यमंभोदमिवचातकः ॥ ४३ ॥ गाधिरुवाच ॥ देवयैषात्वयामायादर्शिताततमोमयी ॥ महींप्रातरिवादित्यस्तांमेप्रकटतांनय ॥ ४४ ॥

अर्थ—चित्तसे वांछित इस जगत्की मायाके दर्शन होजानेपर और अब अनिन्दित (शुद्ध) होके इस पर्वतके तटपर तप करते हुये तुम अन्य क्या चाहतेहो ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गाधि ऐसा कहते हुये विष्णुभगवान्को देखकर नित्य पूज्यमान भगवत्के चरणके पूजार्थ पुष्पांजलिके प्रवाहके सन्मुख खडे हुये भगवान्के चरणकमलोंमें छोडदिया ॥ ४२ ॥ पुष्पोंको चरणोंमें छोडकर और अर्घ्य देकर शीघ्र पूजा करके वह ब्राह्मण विष्णुसे ऐसे बोला जैसे चातक मेघसे ॥ ४३ ॥ गाधि बोला–हे भगवन् ! अति तमोमयी माया यह जो आपने दर्शाया उसको ऐसे प्रकट करके दर्शाओ जैसे प्रातःकालमें सूर्य्य पृथिवीको ॥ ४४ ॥

भ्रमंयंपश्यतिमनोवासनामलमालितम् ॥ स्वप्नवत्सकथंदेवजाग्रत्यपिहिदृश्यते ॥४५॥ मुहूर्त्तमुपलब्धश्चजलांतःस्वप्नविभ्रमः ॥ कथंप्रत्यक्षतांप्राप्तोममामलपदास्पद ॥ ४६ ॥ दैर्घ्यादैर्घ्येस्यकालस्यशरीरस्यभवाभवाः ॥ कथमंतस्थितानस्युर्मदीयैःश्वपचभ्रमैः ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गाधेस्वाधिविधूतस्यस्वरूपस्यैतदात्मकम् ॥ चेतसोऽदृष्टतत्त्वस्ययत्पश्यत्युरुविभ्रमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! स्वप्नके तुल्य जिस भ्रमजालको बासनाके मलसे पूर्ण मन देखताहै वह जाग्रत्में भी कैसे देख पडताहै ॥ ४५ ॥ हे अविद्या मलसे शून्य पदके आश्रय भगवन् ! मुहूर्त मात्रके अर्थ जलके भीतर प्राप्त जो विभ्रम वह प्रत्यक्षताको कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! मेरे चाण्डालके भ्रमसे कृतकालकी दीर्घता तथा अल्पता, और चाण्डालकी शरीरकी उत्पत्ति और नाश ये मनमें ही क्यों न स्थित रहे और वे बाहर कैसे स्थितहैं ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानजी बोले–हे गाधे ! यह जगत् महान् विभ्रम जो कुछ तुम देखतेहो, वह बासना रोगोंसे गृहीत, अदृष्ट तत्व तथा चित्त दशाको प्राप्त जो आत्मस्वरूपहै उसीका रूप भासताहै न बाहर न भीतर न दीर्घ और न अल्प कोई पदार्थ है ॥ ४८ ॥

बहिर्नकिंचिदप्यस्तिखाद्र्यब्ध्युर्वीदिगादिकम् ॥ एतत्स्वचित्तएवास्तिपत्रपुंजमिवांकुरे ॥ ४९ ॥ फलादिस्फारतामेतियथैवबहिरंकुरात् ॥ बहिःप्रकटतांयातितथापृथ्व्यादिचेतसः ॥ ५० ॥ सत्यंपृथ्व्यादिचित्तस्थंनबहिष्ठंकदाचन ॥ अंकुरस्थःपल्लवस्तुतस्माद्यस्मात्फलश्रियः ॥ ५१ ॥ रूपालोकमनस्कारतत्ताकालक्रियात्मकम् ॥ कुंभकारोघटमिवचेतोहंतिकरोतिच ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे गाधे ! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथिवी और दिशा आदि पदार्थ बाहर कुछ नहीं है, ये सब अपने चित्तमेंही ऐसेहैं जैसे अंकुरमें पत्रोंके पुंज ॥ ४९ ॥ जैसे अंकुरसे बाहर फल आदि विशालताको प्राप्त होताहै ऐसेही

ये पृथिवी आदि चित्तसे बाहर प्रकटताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ यह पृथिवी आदि सब चित्तमेंही सत्य २ स्थितहै और बाहर कदाचित् नहीं है और अंकुर जो है वह पल्लवमें स्थितहै क्योंकि फलकी श्री अंकुरसेही है ॥५१॥ वर्तमान-कालमें चक्षुष आदिसे रूपादिका आलोक, और भावी पदार्थोंका मनसे समर्थनरूप मनस्कार, और अतीतकालमें तत्ताका निरूपक ये तीन प्रकारके काल और इनके द्योतक सूर्यादिकी क्रिया इत्यादि रूपसे जगत्को यह चित्तही ऐसे नष्ट करताहै और उत्पन्न करताहै जैसे कुंभकार घटको ॥ ५२ ॥

आबालमेतत्पुरुषैःसर्वैरेवानुभूयते ॥ स्वप्नभ्रममदावेगरागरोगादिदृष्टिषु ॥ ५३ ॥ चित्तेवृत्तांतलक्षाणिसंस्थितान्यात्तवासने ॥ पादपेफलपुष्पाणिमूलाक्रांतावनाविव ॥ ५४ ॥ त्यक्तावनेर्विटपिनोभूयःपत्राणिनोयथा ॥ निर्वासनस्यजीवस्यपुनर्जन्मादिनोतथा ॥ ५५ ॥ यत्रानंतजगज्जालंसंस्थितंतेनतेजसा ॥ श्वपचत्वंप्रकटितंयदितद्विस्मयोत्रकिम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और स्वप्न भ्रम और मदके आवेग तथा रोगादि दृष्टियोंमें आबाल सब पुरुषोंकी यह वार्ता अनुभूतहै ॥ ५३ ॥ वासनासहित चित्तमें लाखों वृत्तान्त ऐसे स्थितहैं जैसे पृथिवीमें लगे हुये वृक्षमें फल पुष्प ॥ ५४ ॥ पृथिवीको त्यागे हुये वृक्षसे पत्रादि नहीं होते ऐसे वासनारहित जीवके जन्मादि नहीं होते ॥ ५५ ॥ जिस चित्तमें उसी ब्रह्मके तेजसे अनन्त जगत्का जालहै उसमें चाण्डालत्व प्रकट होगया इसमें विस्मय किस बातकाहै ॥ ५६ ॥

अवबुद्धाश्वपचताप्रतिभासवशात्त्वया ॥ यथैवानल्पसंरंभाविचित्राधिविकारदा ॥ ५७ ॥ तथैवातिथिरायातोभुक्तवान्सुप्तवान्द्विजः ॥ कथांकथितवांश्चेतिदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ५८ ॥ तथैवोत्थायगच्छामिप्राप्तोहंभूतमंडलम् ॥ इमेभूताइमेग्रामादृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ५९ ॥ तथैवेदंकटंजस्यप्राक्तनंलुठितंगृहम् ॥ जनैरुक्तंकटंजस्यदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे अनेक आरम्भ तथा विकारकी देनेहारी संसारकी विचित्रता तुमको प्रतिभासके कारणसे भान हुई ऐसे ही प्रतिभासके बशसे चाण्डालत्वका तुमको भान हुआ ॥ ५७ ॥ ऐसे ही ब्राह्मण अतिथि तुमारे निकट आया भोजन किया, शयन किया, और चाण्डालकी कथा भी कहा यह संभ्रम तुमने देखा ॥ ५८ ॥ ऐसे ही मैं उठके जाताहुं भूतमण्डलदेशमें प्राप्त हुआ, ये वहांके प्राणी हैं ये ग्राम इस संभ्रमको भी देखा ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कटंज नाम चांडालके गृहमें तुमारा चित्त आसक्तथा और मनुष्योंने कहा कटंजकाहै इस संभ्रमको देखा ॥ ६० ॥

तथैवकीरनगरंप्राप्तोस्मिकथितंचमे ॥ कीरैःश्वपचराजत्वंदृष्टवानसिसभ्रमम् ॥ ६१ ॥ एवंसर्वत्वयादृष्टंमोहजालंद्विजोत्तम ॥ यत्सत्यमितिजानासियच्चासत्यमवैषिच ॥ ६२ ॥ वासनावलितंचेतःकिंनामांतर्नपश्यति ॥ साधितंदृश्यतेस्वप्नेवर्षसाध्यंप्रयोजनम् ॥६३॥ नातिथिर्नचभूतास्तेनकीरास्तेनतत्पुरम् ॥ सर्वमेतन्महाबुद्धेव्यामोहाद्दृष्टवानसि ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसप्रकार कीरके नगरमें मैं पहुंचा और कीरदेशके निवासियोंने चाण्डालका राजा होना मुझसे कहा इस संभ्रमको भी प्रतिभासके ही बशसे तुमने देखा ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसप्रकार मोहजाल सब कुछ तुमने देखा, और जो सत्यहै उसको तथा जो असत्यहै उसको भी तुम जानते हो ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मण ! वासनासे ग्रस्त चित्त अपने भीतर क्या नहीं देखता, क्योंकि वर्षोंसे साध्यप्रयोजन क्षणमें सिद्ध स्वप्नमें देख पडताहै ॥ ६३ ॥ हे महाबुद्धे ! ब्राह्मण यथार्थमें न वह अतिथि, न वे प्राणी, न कीरदेशके निवासी और न वह उनका नगरहै किन्तु यह सब तुमने भ्रमसे ही देखाहै ॥ ६४ ॥

गच्छताभवताभूतदेशंपांथेनकंदरे ॥ कस्मिंश्चिद्विप्रविश्रांतंकुरंगेणेवकानने ॥ ६५ ॥ तत्रैवश्रममूढत्वादिदंतद्भूतमंडलम् ॥ इदंतच्छ्वपचागारमितिदृष्टंनसत्यतः ॥ ६६ ॥ तथैवकीरनगरंदृष्टवानसितत्तथा ॥ तदैवचान्यदावापिमायार्थेहिभवान्द्विज ॥ ६७ ॥ सर्वदैवसमग्रासुविहरन्नसिदृष्टवान् ॥ दिक्षुप्रोन्मत्तकइवाविभ्रमंमनसामुने ॥ ६८ ॥ तद्वत्तिष्ठनिजंकर्मकुर्वंस्तिष्ठोपशांतधीः ॥ नस्वकर्मविनाश्रेयःप्राप्नुवंतीहमानवाः ॥ ६९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिगदितवान्सपद्मनाभोभुवनगतापसवृंदपूज्यमानः ॥ विबुधमुनिगणैःपवित्रहस्तैर्वृतउदधिंनिजमास्पदंजगाम ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते मायामहत्वकथनंनामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—इससमय भी तुम न तो भूतमंडलदेशमें गये और न कीरोंके नगरमें गये किंतु अतिथिके वाक्य सुनेके भूतमंडलदेशमें जाते हुये वटो ही तुम मार्गमें कीसी पर्वतकी कन्दरामें विश्रान्त किया और श्रमसे मोहित परबश

चित्त होनेसे जंगलमें हरिणके समान स्वप्नके तुल्य यह चाण्डालादिका वृत्तान्त तथा भूतमंडल तुमने देखा न कि यथार्थमें ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसीप्रकार हे ब्राह्मण ! उससमय तथा जलमें अघमर्षणके समयमें भी कीरनगरादि भी सब मायामय पदार्थ करते हुये दिशाओंमें उन्मत्तके समान मनसेही सब विभ्रम तुमने देखा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ इसलिये हे ब्राह्मण ! तुम उठो और अपने ब्रह्मचर्य्य आश्रमके योग्य अग्निहोत्र स्वाध्याय आदि कर्म करो क्योंकि इससंसारमें मनुष्य विना अपने आश्रमके योग्य कर्म किये कल्याणको नहीं पाता ॥६९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-तीनोंलोकके तापस वृन्दोंसे पूज्यमान पद्मनाभ विष्णुभगवान् इसप्रकार कहके भगवान्के चरणस्पर्श तथा सेवादिसे पवित्रहस्त देव तथा मुनिगणोंसे वृत्त (युक्त) अपने स्थानभूत क्षीरसागरमें गये ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते मायामहत्वकथनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

गाधि ब्राह्मण पुनः भूतमण्डलदेश तथा कीरदेशमें जाके और पुनः २ विष्णुभगवान्से पूंछ करके सब मायाहै यह निश्चय करके क्रमसे जीवन्मुक्त होगया यह विषय इस ४९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथगाधिर्गतेविष्णौपुनर्भूतादिकंक्रमात् ॥ स्वयंमोहविचारार्थंबभ्रामाभ्रमिवांबरे ॥ १ ॥ उपलभ्यतथैवात्मवृत्तांतंजनतस्ततः ॥ हरिमाराधयामासपुनरद्रिगुहांगतः ॥ २ ॥ आजगामैनमल्पेनकालेनाथजनार्दनः ॥ सकृदाराधनेनैवमाधवोयातिबंधुताम् ॥ ३ ॥ उवाचगाधिंभगवान्मयूरमिववारिदः ॥ किंत्वंप्रार्थयसेभूयस्तपसेतिप्रसादवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले-इसके पश्चात् विष्णुके अन्तर्ध्यान होनेपर गाधि ब्राह्मण अपने मोहके विचारके लिये अर्थात् विष्णुने जो कहाथा न अतिथि, न भूतमण्डलादि देशहै किन्तु तुमने भ्रमरूपही सब कुछ देखाहै इस भ्रमकी निवृत्तिके लिये कि कीरादि देशोंका बाधहै वा नहीं इसके परीक्षार्थ आत्माके साक्षात्कारके बिनाही भूतमण्डलादि देशमें ऐसे भ्रमण किया जैसे मेघ आकाशमें ॥ १ ॥ वहांपर उसी प्रकार अपने चाण्डालादि वृत्तांतको मनुष्योंसे पाकर इन्द्रकी गुहामें जाके पुनः विष्णुभगवान्की आराधना करने लगा ॥ २ ॥ इसके पश्चात् अल्पकालमेंही जनार्दन भगवान् उसके निकट आये क्योंकि विष्णुभगवान् एक कालके आराधन करनेहीसे बन्धु होजातेहैं ॥ ३ ॥ मेघ जैसे मोरसे बोलताहै ऐसेही प्रसन्न होके भगवान् गाधिसे बोले कि पुनः तुम तपसे क्या चाहतेहो ? ॥ ४ ॥

गाधिउवाच ॥ ॥ भ्रांतोस्मिदेवषण्मासान्भूतकीरजनास्पदम् ॥ तत्रव्यभिचरत्यस्मद्वृत्तांतोनकथास्वपि ॥ ५ ॥ माययाभूतभूर्दृष्टात्वयेत्युक्तोस्मिकिंप्रभो ॥ मोहनाशायमहतांवचोनोमोहवृद्धये ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ काकतालीययोगेनचेतसिश्वपचस्थितिः ॥ सर्वेषांभूतकीराणांतवेवप्रतिबिंबति ॥ ७ ॥ तेनांगतवद्वृत्तांतंयथावत्कथयंतिते ॥ प्रतिभासोहिनायातिपुनरप्रतिभासताम् ॥ ८ ॥

अर्थ— गाधि बोला कि हे भगवन् ! छ मासपर्य्यन्त मैं कीर तथा भूतमण्डलदेशमें भ्रमण किया परन्तु वहां मेरी वृत्तान्तकथा तथा प्रत्यभिज्ञा (जान पहिचान) आदिमें किंचित् व्यभिचार (अन्यथाभाव) को नहीं प्राप्त होती ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! आपने कहाथा कि भूतमंडलदेशकी भूमि तुमने मायासे देखाहै सो हे भगवन् ! मायाके दृष्ट पदार्थ अवश्य देशकालान्तरमें व्यभिचारको प्राप्त होते हैं और यह तो ज्योंके त्यों हैं इससे मेरा मोह और बढगया और महात्माओंके बचन मोहके नाशार्थ हैं न कि मोहकी वृद्धिकेलिये ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्राह्मण ! काकतालीय न्यायसे सब भूतमण्डल तथा कीरदेशके निवासियोंके चित्तमें कटंजकी चांडालरूपसे स्थिति तुमारेही सदृश भान हो रहीहै ॥ ७ ॥ हे प्रिय इसीसे वे लोग तुह्मारे वृत्तान्तको ज्योंकात्यों कहतेहैं और जो बात किसी समूह वा एकही जनको मिथ्या प्रतिभासित होती है उसका अप्रतिभास बाधके बिना नहीं होता ॥ ८ ॥

केनचिच्छ्वपचेनांतेग्रामस्यरचितंगृहम् ॥ तत्त्वयादृष्टमाविष्टमिष्टकाखंडतांगतम् ॥ ९ ॥ कदाचित्प्रतिभैकैवबहूनामपिजायते ॥ काकोलतालस्थितिवद्विचित्राहिमनोगतिः ॥ १० ॥ तथाहिबहवःस्वप्नमेकंपश्यंतिमानवाः ॥ स्वापभ्रमदमैरेयमदमंथरचित्तवत् ॥११॥ एकस्यामेवलीलायांरमंतेबहुबालकाः ॥ एकस्यामेवनीलायांवनस्थल्यामिवैणकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—ग्रामके समीपमें किसी चाण्डालने गृह बनाया था, भग्नदशाको प्राप्त उस गृहमें भ्रमसे तुमने यह देखा कि मैंनेही बनायाहै ॥ ९ ॥ और पके तालके फलोंपर वा ताल (ताड) वृक्षके मूल देशमें काकोल (द्रोणसंज्ञक) नामक काकोंकी पंक्ति स्थिति होती है ऐसेही कभी २ बहुत पुरुषोंकी एकही प्रकारकी प्रतिभा (भ्रमकी बुद्धि) होती है क्योंकि मनकी गति विचित्र होती है ॥ १० ॥ जैसे निद्रा, भ्रम, और मद्यके मदसे विक्षिप्त दिशाओंको भ्रमण करते हुयेके समान देखते हैं ऐसेही बहुत मनुष्य एकही स्वप्नभी देखते हैं ॥ ११ ॥ एकही लीलामें बहुतसे बालक ऐसे रमण (क्रीडा) करते हैं जैसे हरी घासोंसे एकही नीलबनकी स्थलीमें अनेक हरिणींके बच्चे चरते हैं॥१२॥

बहवस्तुल्यकालंचप्रतिभासेनकर्मणाम् ॥ जनायतंतेस्वफलपाकेतिबह्वलाकृतौ ॥ १३ ॥ प्रतिबंधाभ्यनुज्ञानाःकालोदातेतियाश्रुतिः ॥ विप्रसंकल्पमात्रोसौकालोह्यात्मनितिष्ठति ॥ १४ ॥ अमूर्त्तोभगवान्कालोब्रह्मैवतमजंविदुः ॥ नजहातिनचादत्तेकिंचित्कस्यकदेतिच ॥ १५ ॥ लौकिकोयस्त्वयंकालोवर्षकल्पयुगात्मकः ॥ संकल्प्यतेपदार्थौघैःपदार्थौघश्चतेनतु ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने प्रारब्धके अनुकूल फलकी परिपाकतासे प्राप्त होने योग्यभी बध, बंध, पराजय और पलायनादि नानाप्रकारके कार्य्योंमें सैनिक (योधा) लोग एकही कालमें जय लाभ भोगादि तुल्य प्रयोजन कर्मोंकी भ्रान्ति प्रतिभास होनेसे उन जयादिके लाभसे युद्ध आदिसे यत्न करते हैं यह प्रसिद्धहै ॥ १३ ॥ और हे ब्राह्मण ! हेमन्त आदि काल व्रीहि धानादिके अंकुरोंका प्रतिबंधक और जब गोधूमादिका उत्पादकहै यह जो लौकिक कथनहै सो प्रतिबंधक और अभ्यनुज्ञादायककाल संकल्पमात्रही और जो अखण्डित परमात्मरूप कालहै वह तो अपने आत्मामें स्थित रहताहै वह न तो किसीका प्रतिबंधक और न किसीका उत्पादकहै ॥ १४ ॥ अमूर्त अखंडित भगवान् कालहै उसीको अजन्मा ब्रह्म पंडितजन कहते हैं ॥ १५ ॥ और वर्ष युग और कल्पादिरूप जो कालहै वह तो सूर्यकी क्रिया तथा चन्द्रपिंडादि पदार्थसमूहोंसे कल्पितहै और प्रतिबंधक तथा उत्पादकरूप कालसे सब पदार्थसमूह कल्पितहै॥१६॥

समानप्रतिभासोत्थसंभ्रमंभ्रांतचेतसः ॥ तथातंदृष्टवंतस्तेभूतकीरजनोच्चयाः ॥ १७ ॥ स्वव्यापारपरोभूत्वाधियात्मानंविचारय ॥ साधोगतमनोमोहमिहैवास्वव्रजाम्यहम् ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुर्जगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥ अतिष्ठत्कंदरेगाधिराधिपीवरयाधिया ॥ १९ ॥ ततःकतिपयेष्वद्रौमासेष्वतिगतेषुसः ॥ पुनराराधयामासपुंडरीककरंद्विजः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे भ्रान्त चित्त प्राणी समान प्रतिभाससे आविर्भूत एकही संभ्रमको देखते हैं ऐसेही कीरदेशके निवासी जनसमूहने चाण्डालका राजा होना देखाहै ॥ १७ ॥ हे साधो ! इसलिये अपने वर्णाश्रमके योग्य आचारमें परायण होके मनके मोहसे शून्य आत्माका विचार अपनी बुद्धिसे करो और यहां ही स्थित रहो मैं अब जाताहुं ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्ध्यान होगये और गाधि मानसिक मोहरूप रोगसे और भी बढी बुद्धिसे उसी कन्दरामें स्थित रहा ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर कुछ मास बीतनेपर उसी पर्वतपर कमलहस्तधारी भगवान्की पुनः आराधना करनेलगा ॥ २० ॥

ददर्शैकदानाथमागतंप्रणनामतम् ॥ पूजयामासमनसाचोक्तेनोवाचचेश्वरम् ॥ २१ ॥ गाधिरुवाच ॥ भगवन्संस्मरंश्चैतामात्मनःश्वपचस्थितिम् ॥ इमांसंसारमायांचपरिमुह्यामिचेतसा ॥ २२ ॥ तदुक्त्वास्वयथावस्तुमहामोहनिवृत्तये ॥ एकस्मिन्नेवविमलेमांनियोजयकर्मणि ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्जगदिदंमायामहाशंबरडंबरम् ॥ सर्वाआश्चर्यकलनाःसंभवंतीहविस्मृतेः ॥ २४ ॥

अर्थ—एक समय अपने स्वामीको आये हुए देखके उनको प्रणाम किया और मनबचन कर्मसे उनकी पूज की और प्रश्नके अनुज्ञा वाक्यसे यह बचन बोला ॥ २१ ॥ गाधि बोला—हे भगवन् ! अपनी इस चाण्डालकी स्थितिको तथा जन्म मरण आदि अनेक अनर्थोंसे पूर्ण इससंसारकी मायाको स्मरण करके मैं चित्तसे मोहित होताहुं ॥ २२ ॥ इसकारणसे हे भगवन् ! महामोहकी निवृत्तिके लिये उपाय कहके शीघ्र न चले जाइये किंतु मोहकी निवृत्तिपर्यन्त यहां स्थित रहिये और मुझे एक विमल कर्ममें नियुक्त कीजिये ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् बोले–हे ब्रह्मन् ! महाशम्बरासुरके आडम्बरके तुल्य यह जगत् मायामयहै और आत्मतत्त्वके विस्मरणसे संपूर्ण आश्चर्यमयी कल्पना उत्पन्न होती हैं ॥ २४ ॥

भूतकीरपुरेमोहाद्दृष्टवांस्तत्तथाभवान् ॥ इत्येतत्संभवत्येवदृश्यतेद्विजनैर्भ्रमः ॥ २५ ॥ भूतास्त्वमिव कीराश्चदृष्टवंतस्तथाभ्रमम् ॥ मुधैवेत्यपिसत्याभंसमकालादिसंभवात् ॥ २६ ॥ इदंतुशृणुवक्ष्यामिय

थाभूतमनिंदितम् ॥ यथैतितनुतांचिंतामार्गशीर्षलतेवते ॥२७॥ योसौकटंजकोनामश्वपचोभूतमंडले ॥ तेनैवसन्निवेशेनसतथैवाभवत्पुरा ॥ २८ ॥

अर्थ—भूतमंडल तथा कीरदेशमें चाण्डालादि वृत्तान्त जो तुमने मोहसे देखा यह अज्ञानसे संभवहै क्योंकि स्वप्नादिमें असंभावितभी भ्रम मनुष्योंको देख पडताहै ॥ २५ ॥ भूतदेश तथा कीरदेशके लोग तुमारेही समान भ्रम देखाहै यद्यपि यह मिथ्याहै तथापि एक कालमें होनेसे सत्यके समान भान होताहै ॥ २६ ॥ यह यथार्थ तुमारे चाण्डालादि निन्दाका निवारक मैं तुमसे कहताहुं तुम सुनो, जिससे कि मार्गशीर्षकी लताके समान तुमारी चिन्ता नाशको प्राप्त होगी ॥ २७ ॥ जो यह कटंज नाम चाण्डालहै वह तुमसे दृष्ट शरीर ग्राम और गृहादि आकारसे युक्त भूतमंडल देशमें पूर्वकालमें उत्पन्न हुआथा ॥ २८ ॥

तथैवविकलत्रत्वंप्राप्यदेशांतरंगतः ॥ बभूवकीरनृपतिःप्रविवेशानलंततः ॥ २९ ॥ भवतःकेवलंचित्ते जलांतर्वर्तिनस्तदा ॥ प्रतिभातातथाभूताकटंजाचारसंस्थितिः ॥ ३० ॥ दृष्टानुभूतमप्यर्थंकदाचिद्धि स्मरत्यलम् ॥ कदाचिदप्यदृष्टंतुचेतःपश्यतिदृष्टवत् ॥३१॥ यथास्वप्नमनोराज्यधातुसंस्थितिविभ्रमः॥ जाग्रत्यपितथैवांगदृश्यंतेमनसास्वयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और उसी प्रकार वह कलत्र (कुटुंब) रहित होके दूसरे देशमें गया और कीरदेशका राजा हुआ अनन्तर चाण्डाल ज्ञात होनेसे अग्निमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ और उस जलके भीतर अवमर्षण जब जप रहेथे उससमय मेरे संकल्पके बशसे कटंज चाण्डालकी स्थिति तुमारे अन्तःकरणमें भान हुई कि वही मैं हुं ॥ ३० ॥ जैसे दृष्ट और अनुभूत भी अर्थ कदाचित् चित्त भूलजाताहै ऐसेही कदाचित् अदृष्ट भी देखताहै ॥ ३१ ॥ हे प्रियगाधे ! जैसे स्वप्न मनोराज्य और सन्निपात आदि भ्रमोंको यह मन देखताहै ऐसेही जगत्में भी यह मन स्वयं भ्रम देखताहै ॥ ३२ ॥

भविष्यद्भूतकालस्थंयथात्रैकाल्यदर्शिनः ॥ प्रतिभामेतिगाधेयत्कटंजाचरितंतथा ॥ ३३ ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिमज्जतिनात्मवान् ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिमज्जत्यनात्मवान् ॥ ३४ ॥ सर्वमेवाहमेवेतितत्त्वज्ञोनावसीदति ॥ नगृह्णातिपदार्थेषुविभागानर्थभावनाम् ॥ ३५ ॥ तेनासौभ्रमयोगेषुसुखदुःखविलासिषु ॥ ननिमज्जतिमग्नोपितुंबीपात्रमिवांभसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे त्रिकालदर्शी योगीकी दृष्टिमें उसके उत्तरकालमें दृश्यमान पदार्थोंकी अपेक्षा भूतकाल होजाताहै ऐसे ही हे गाधे ! अतीत भी कटंजका चारित वर्तमानकालकी प्रतिमा (बुद्धि) में आताहै ॥३३॥ यह शरीर आदि मैं ही हुं और कुटुंबादि मेराहै इत्यादि भ्रमोंमें ज्ञानी निमग्न नहीं होताहै और इसी भ्रममें अज्ञानी निमग्न होताहै ॥ ३४ ॥ सब पदार्थोंमें अहंभावनासे भी तत्वज्ञानी निमग्न नहीं होता, क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थोंमें विभागसे जो अनर्थकी भावनाहै उसको वह नहीं ग्रहण करता, और परिच्छिन्न पदार्थोंमें अहंभावना ही निमग्न होनेमें हेतु होती है ॥ ३५ ॥ इसी कारण यह तत्वज्ञानी भ्रमोंके योगोंमें और सुखदुःखके विलासोंमें निमग्न भी परन्तु तुम्बी पात्रके तुल्य निमग्न नहीं होता ॥ ३६ ॥

त्वंतावद्वासनाजालग्रस्तचित्तोविचेतनः ॥ किंचिच्छेषमहाव्याधिरिवनस्वस्थमागतः ॥ ३७ ॥ ज्ञानस्यापरिपूर्णत्वान्नशक्तोषिमनोभ्रमम् ॥ विनिवारयितुंमेघमसम्यग्यत्नवानिव ॥ ३८ ॥ यदेवतेमनोमात्रे सहसाप्रतिभासते ॥ तरुरुच्चजनेनेवतेनैवाक्रम्यसेक्षणात् ॥ ३९ ॥ चित्तंनाभिःकिलास्येहमायाचक्रस्यसर्वतः ॥ स्थीयतेचेत्तदाक्रम्यतन्नकिंचित्प्रबाधते ॥ ४० ॥

अर्थ—और तुमारी तो वासनाजालसे ग्रस्त, विचित्त, महाव्याधि (अज्ञानरूप) किंचित् शेष रहगई है इसीसे अपने आत्मस्वरूपमें प्राप्तहीके समान हो ॥ ३७ ॥ हे गाधे ! ज्ञान परिपूर्ण न होनेसे तुम मनके भ्रमको ऐसे नहीं निवारण करसकते जैसे गृहकी रचना तथा अन्यके गृहमें प्रवेश करनेमें उत्तम यत्नसे शून्यपुरूष मेघकी वृष्टिको ॥ ३८ ॥ जो कुछ तुमारे चित्तमें भान होताहै उसके अभिमानसे सहसा ऐसे बशीभूत होजाते हो जैसे उच्चजनसे वृक्ष ॥ ३९ ॥ चारोओरसे इस मायारूप चक्रका मध्य चित्तही है उस चित्तको जो कोई आत्मामें लय करके तिरस्कार करके स्थित रहताहै उसको वह मायाचक्र किंचित् भी बाधा नहीं करता ॥ ४० ॥

त्वमुत्तिष्ठगिरेःकुंजेदशवर्षाण्यखिन्नधीः ॥ तपःकुरुततोज्ञानमनंतंसमवाप्स्यसि ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वापुंडरीकाक्षस्तत्रैवांतरधीयत ॥ वाताभ्रवद्दीपकवद्यमुनोत्पीडवत्क्षणात् ॥ ४२ ॥ गाधिर्विवेकवशजंवैराग्यपदमागतः ॥ शरत्समयपर्यंतेवैरस्यमिवपादपः ॥ ४३ ॥ विचित्रंचेष्टितंधातुरसमंजसमागतम् ॥ भ्रमद्भ्रमभरोन्मुक्तमतिर्मंदमगर्हयत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे गाधे ! तुम उठो और इस पर्वतके कुंजमें मनका निरोधरूप तप दशवर्ष पर्य्यंत करो तब तुम अनन्त ज्ञान पाओगे ॥ ४१ ॥ इतना कहके विष्णुभगवान् उसी जगह ऐसे क्षणमेंही अन्तर्द्धान होगये जैसे वायुमें लीन मेघ निर्वाण दीप वा यमुनाजीका तरंग ॥ ४२ ॥ विवेकके वशसे गाधि वैराग्यको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे शरदृऋतुके अन्तमें वृक्ष नीरसताको ॥ ४३ ॥ भ्रमण करते हुये भ्रम समूहसे विनिर्मुक्त बुद्धियुक्त गाधिने अपने पूर्वकालके अयोग्य चाण्डालादि भाव दर्शनरूप विचित्र दैवकी चेष्टाको मन्दता पूर्वक निन्दा की ॥ ४४ ॥

जगामकरुणार्द्रात्मानियमायोत्तमश्रिये ॥ विश्रांत्यैऋष्यमूकंतुपयोधरइवाचलम् ॥ ४५ ॥ निरस्ताशेष संकल्पस्तपस्तत्रचकारह ॥ दशवर्षाणितेनासावात्मज्ञानमवापह ॥ ४६ ॥ अरमततदनुस्वांप्राप्यस त्तांमहात्माह्यपगतभयशोकोभोगभूमावनीषु ॥ सततमुदितजीवन्मुक्तरूपःप्रशांतःसकलइवशशांको घूर्णितापूर्णचेताः ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते गाधेर्ज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—अनन्तर उत्तम ज्ञानरूप लक्ष्मीके अर्थ करुणासे आर्द्रचित्त गाधि चित्तके निरोधके अर्थ ऋष्यमूक (मतंगऋषिके आश्रमभूत) पर्वतपर ऐसे गया जैसे मेघ अपने विश्रामार्थ पर्वतपर ॥ ४५ ॥ संपूर्ण संकल्पोंको त्यागकर गाधिने दशवर्ष वहांपर तप किया और उससे आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥ ४६ ॥ ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके अनन्तर महात्मा गाधिने अपनी पारमार्थिकी सत्ताको पाकर संपूर्ण भोग भूमियोंमें भय और शोकसे रहित होके, निरन्तर जीवन्मुक्तरूप होके अपरिच्छिन्न ब्रह्मानन्दके मदसे घूर्णित तथा चारों ओरसे पूर्ण चित्त पूर्ण चन्द्रके समान अपरिच्छिन्न ब्रह्माकाशमें विहार किया ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते गाधिज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ गाध्युपाख्यानं सम्पूर्णम्

पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

चित्तके जीतनेके उपाय और ज्ञानका उत्तम महात्म्य और स्थूलतादि दोष सब चित्तसेही होतेहैं यह विषय इस ५० के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेषातिविततादुर्ज्ञानारघुनंदन ॥ महामोहमयीमायाविषमापारमात्मिकी॥१॥ क्वमुहूर्त्तद्वयस्वप्नसंभ्रमाल्लोकदृष्टता ॥ क्वानेकवर्षसंभुक्तश्वपचावनिपभ्रमः ॥ २ ॥ क्वसंभ्रमोपलब्धत्वं क्वप्रत्यक्षनिदर्शनम् ॥ क्वासत्यत्वमसंदिग्धंक्वसत्यपरिणामिता ॥ ३ ॥ अतोवच्मिमहाबाहोमायेयंवि षमान्वहम् ॥ असावधानमनसंसंयोजयतिसंकटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुनन्दन ! इस रीतिसे अति विशाल अचिन्त्य, भयंकर, केवल परमात्मा मात्रके आश्रित और महा मोहमयी यह मायाहै ॥ १ ॥ देखो ? कहां तो दो मुहूर्तका संभ्रमका देख पडना ! और कहां अनेक वर्षोंसे भुक्त चाण्डालके राजा होनेका भ्रम ॥ २ ॥ कहां भ्रममें प्राप्ति और कहां संदेह रहित सत्यमें परिणामता (बदलाव) ॥ ३ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इसलिये मैं प्रतिदिन यह कहताहुं कि यह माया भयंकर है और असावधान मनवाले पुरुषको एक क्षणमें संकटमें डालती है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवमस्यकथंब्रह्मन्मायाचक्रस्यरोधनम् ॥ कुर्युःप्रवहतोवेगात्सर्वांगच्छेदकारिणः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यसंसाररूपस्यमायाचक्रस्यराघव ॥ चित्तंविद्धिमहानाभिमभितोभ्रम दायिनः ॥ ६ ॥ तस्मिन्द्रुतमवष्टब्धेधियापुरुषयत्नतः ॥ गृहीतनाभिवहनान्मायाचक्रंनिरुध्यते ॥ ७ ॥ अवष्टब्धमनोनाभिमोहचक्रंनगच्छति ॥ यथारज्ज्वांनिरुद्धायांकीलकंरज्जुवेष्टितं ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार सर्वांगच्छेदनकारी और वेगसे भ्रमण करते हुये इस मायाचक्रको अधिकारी जन कैसे रोके ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! चारोओर भ्रमण करते हुये तथा भ्रमदायी इस संसाररूप मायाचक्रकी महानाभि (महामध्य) चित्तकोही तुम जानो ॥ ६ ॥ पुरुषार्थके यत्नसे बुद्धिसे इस चित्तके शीघ्र रोकनेपर मध्यभागके ग्रहण होनेसे यह मायाचक्र भ्रमणसे रूक जाताहै ॥ ७ ॥ मनरूप नाभि मध्यभागके

रोकनेसे यह मोहचक्र ऐसे नहीं चलसकता जैसे तर्जनी अंगुलीसे रज्जु (रस्सी) के पकडनेसे बालकोंका रज्जुसे वेष्टित क्रीडा चक्र ॥ ८ ॥

चक्रयुद्धैकतज्ज्ञोसिकस्माज्जानासिनानघ ॥ चक्रंनाभावबष्टब्धंवशमायातिनान्यथा ॥ ९ ॥ चित्तंनाभिमवष्टभ्यतस्माद्यत्नेनराघव ॥ संसारचक्रंवहनादात्मनःपरिरोधय ॥ १० ॥ एतांयुक्तिंविनादुःखमनंतमितमात्मनः ॥ अस्यांदृष्टौक्षणादंतंगतमेवावलोकय ॥ ११ ॥ चित्ताक्रमणमात्रात्तुपरमादौषधादृते ॥ प्रयत्नेनापिसंसारमहारोगोनशाम्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! तुम चक्र युद्धमें कुशल होके क्यों नहीं इसके रोकनेका यत्न करते क्योंकि नाभिके रोकनेपर चक्र वशमें आताहै औरप्रकारसे नहीं ॥ ९ ॥ हे राघव ! इसलिये यत्नसे चित्तरूप नाभिको रोककर आत्माको जन्ममरणादिके प्रापक इस संसारचक्रको भ्रमण करनेसे रोको ॥ १० ॥ हे रामजी ! इस चित्तके निरोधरूप युक्तिके बिना आत्माने अनन्त दुःख पाया और इस दृष्टि (चित्तनिरोध) रूपके प्राप्त होनेपर इस आत्माके दुःखको तुम अन्तमें प्राप्तही समझो, अर्थात् मेरे बचनमें संशय हो तो करके देखो ॥ ११ ॥ चित्तके विजयरूप परम औषधके सिवाय सहस्रों प्रयत्नोंसे भी यह संसाररूप महोरोग नष्ट नहीं होता ॥ १२ ॥

तस्माद्राघवसंत्यज्यतीर्थदानतपःक्रियाः ॥ श्रेयसेपरमायांतश्चित्तमेववशंकुरु ॥ १३ ॥ चित्तांतरेवसंसारःकुंभांतःकुंभखंयथा ॥ चित्तनाशेनसंसारःकुंभनाशेनकुंभखम् ॥ १४ ॥ चिरंसंसरणाकाशकोटरंचित्तकुंभखम् ॥ विनाश्यातुलिताकाशस्वरूपंरूपमाविश ॥ १५ ॥ वर्त्तमानमनायासंभजद्बाह्यधियाक्षणम् ॥ भूतंभविष्यद्भजद्यातिचित्तमचित्तताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये हे राघव ! तपदान तथा तीर्थादि क्रियाओंको त्यागकर परम श्रेयमुक्तिके लिये अपने चित्तकोही तुम वशमें करो ॥ १३ ॥ जैसे घटाकाश घटके भीतरहै ऐसे ही चित्तके भीतर यह संसारहै, और जैसे घटके नाशसे घटाकाशका नाश होताहै ऐसे ही चित्तके नाशसे संसारका नाश होताहै ॥ १४ ॥ जैसे घटाकाशमें रूके हुये मसक आदि अपने दुःखके संसरण कोटरको दैवेच्छासे नाश करके अतुलिताकाशमें सुखी होते हैं ऐसे तुम चित्तरूप घटको नाश करके अतुलित ब्रह्माकाशमें प्रवेश करो ॥ १५ ॥ यथाप्राप्त वर्तमान विषयको बाह्य बुद्धिसे सेवन करता हुआ और भूतभविष्यत् विषयोंका अनुसन्धान न करता हुआ चित्त अचित्तता दशाको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

संकल्पांशानुसंधानवर्ज्जनंचेत्प्रतिक्षणम् ॥ करोषितदचित्तत्वंप्राप्तएवासिपावनम् ॥ १७ ॥ यावत्संकल्पकलनातावच्चित्तविभूतयः ॥ यावज्जलदविस्तारस्तावत्खजलबिंदवः ॥ १८ ॥ सचित्तंचेतनंयावत्तावत्संकल्पकल्पनम् ॥ सचंद्रांशुजगद्यावत्तावत्प्रालेयलेशकाः ॥ १९ ॥ चेतनंचित्तरिक्तंचेद्भावितंतत्स्वसंसृतेः ॥ आमूलमेवदग्धानिविद्धिमूलानिसिद्धवत् ॥ २० ॥

अर्थ—भावी विषयके संकलपका और उसके असंभूत पदार्थोंका वर्जन प्रतिक्षण तुम करतेहो तो परमपावन अचित्त दशामें आपनेको प्राप्तही समझो ॥ १७ ॥ जबतक संकलपहै तभीतक चित्तकी विभूति ऐसे हैं जैसे जबतक मेघोंका विस्तारहै तभीतक आकाशसे वर्षाके बिन्दु गिरते हैं ॥ १८ ॥ और जबतक चित्तसहित आत्माहै तभीतक संकलपकी कलपना ऐसे हैं जैसे चन्द्रमाके किरणसहित जबतक जगत्है तबतक तुषार (ओस आदि) के कणहैं ॥ १९ ॥ यदि चित्तरहित कूटस्थरूप आत्मा स्थित रहै तब संसारके मूलभूत काम कर्म वासना आदि मूल अज्ञानके साथ भस्म होजाते हैं यह महासिद्ध मंत्रके समान समझो ॥ २० ॥

चेतनंचित्तरिक्तंहिप्रत्यक्चेतनमुच्यते ॥ निर्मनस्कस्वभावंतन्नतत्रकलनामलः ॥ २१ ॥ सासत्यतासाशिवतासावस्थापारमात्मिकी ॥ सर्वज्ञतासासादृष्टिर्नतुयत्रमनःक्षतम् ॥ २२ ॥ मनोयत्रतुतत्राशास्तत्रदुःखसुखानिच ॥ सदासन्निधिमायांतिश्मशानइववायसाः ॥ २३ ॥ वस्तुतत्त्वावबोधेनसर्वभावव्यवस्थितेः ॥ संसृतिव्रततेर्बीजंसंकल्पेनोपजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—चित्तसे शून्य आत्माको प्रत्यक् चेतन कहते हैं, और मनरहित स्वभावयुक्त जो आत्माहै उसमें कलपनारूप मल नहीं रह सकता ॥ २१ ॥ जिस अवस्थामें यह नष्ट मन नहीं है वही आत्माकी परमार्थमें सत्यताहै, वही निरतिशय आनन्दरूपता, वही परमात्माकी आत्मस्वभावता, वही सर्वज्ञता, और वही सम्यक् दृष्टि है ॥ २२ ॥ और जहांपर मनहै वहांही अनेक प्रकारकी आशा और सुख दुःख ऐसे समीपताको प्राप्त होते हैं जैसे श्मशानभूमिमें काक ॥ २३ ॥ आत्मवस्तुके बोधसे सब पदार्थोंकी व्यवस्थापिका जो संसाररूप लताहै उसका बीज तत्वज्ञानियोंके मनमें नहीं उत्पन्न होता ॥ २४ ॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कसंततताभ्यासयोगतः ॥ जागतानामवस्तुत्वंभावानामवगम्यते ॥ २५ ॥ अविवेकाद्व पाहृत्यचेतस्सोद्यमनिश्चयैः ॥ बलात्कारेणसंयोज्यंशास्त्रसत्पुरुषक्रमैः ॥ २६ ॥ मुख्यंकारणमात्मैवप रमात्मावलोकने ॥ अगाधेपतितंरत्नंरत्नेनैवावलोक्यते ॥ २७ ॥ स्वानुभूतानिदुःखानिस्वात्मैवत्यक्तुमि च्छति ॥ तेनात्मैवात्मविज्ञानेहेतुरेकःपरःस्मृतः ॥ २८ ॥

अर्थ--शास्त्र और सज्जनके सम्पर्कसे और मनके निरोधके अभ्यासके योगसे जगत्के पदार्थोंमें वस्तुत्वका अभाव निश्चित होताहै ॥ २५ ॥ दृढ उद्यमके निश्चयसहित शास्त्र और सत्पुरुषोंके क्रमसे इस चित्तको अविवेकसे हटाकर बलात्कारसे आत्मामें लगाना चाहिये ॥ २६ ॥ परमात्माके दर्शनमें आत्मा मुख्य कारण इसप्रकारहै जैसे अगाधमें पतित रत्न प्रकाशमान रत्नोंहीसे प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ अपने अनुभूत सुख दुःखोंके आत्माही त्यागना चाहताहै इसकारण आत्माही आत्मज्ञानका मुख्य हेतुहै ॥ २८ ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ निरस्तमननानंतसंविन्मात्रपरोभव ॥ २९ ॥ जायमानस्तथा जीवन्म्रियमाणःक्रियारतः ॥ स्वात्मन्यमलतांप्राप्तेसंविदंशेस्थिरोभव ॥ ३० ॥ ममेदंतदयंसोहमिति संत्यज्यवासनाः ॥ एकनिष्ठतयांतस्थसंविन्मात्रपरोभव ॥ ३१ ॥ वर्त्तमानभविष्यंत्योःस्थित्योरादेहमे कधीः ॥ स्वसंवित्त्यानुसंधानसमाधानपरोभव ॥ ३२ ॥

अर्थ—वार्तालाप करते हुये, देते हुये ग्रहण करते हुये, नेत्र खोलते वा मूंदते हुये भी, मनके मननसे रहित केवल चेतनमात्रमें परायणहो ॥ २९ ॥ उत्पन्न होते, जन्मते, और मरते तथा अन्य दुर्दशाओंमें ग्रस्त और क्रियामें तत्पर, आत्माके अविस्मरणसे स्वात्मामें निर्मलता प्राप्त होनेपर केवल संवित् (चेतन) अंशमें स्थिर रहो ॥ ३० ॥ यह समीपमें स्थित, वह दूरस्थ मेराहै तथा यह शरीर आदि मैं हुं इत्यादि वासनाओंको त्यागकर केवल एक निष्ठासे संवित् (चेतन) मात्रमें तत्परहो ॥ ३१ ॥ वर्तमान बाल्यअवस्थाकी और भविष्यत् यौवनअवस्था तथा राज्यादिकी स्थितियोंमें तथा जबतक देह रहै सर्वत्र अपने संवित्ति (चेतन) मात्रमें एक बुद्धि होके उसी चेतनके अनुसंधान तथा समाधिमें तत्पर रहो, अर्थात् सब अवस्था आदिका परिवर्तन होताहै परन्तु चेतन वही एक सबमें अनुस्यूतहै इसका ध्यान सदा करतेहो ॥ ३२ ॥

बाल्ययौवनवृद्धेषुदुःखेषुचसुखेषुच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुस्वसंवित्तिपरोभव ॥ ३३ ॥ मलंसंवेद्यमुत्सृ ज्यमनोनिर्गलयन्परम् ॥ आशापाशमलंछित्त्वास्वसंवित्तिपरोभव ॥ ३४ ॥ शुभाशुभस्वसंकेतसंशांता शाविषूचिकः ॥ नष्टेष्टानिष्टदृष्टिस्त्वंसंवित्सारपरोभव ॥ ३५ ॥ सकर्तृकर्मकरणान्स्वास्पर्शानंतरास्पृ शन् ॥ निर्विकल्पनिरालंबःस्वचिन्मात्रपरोभव ॥ ३६ ॥

अर्थ—बाल्ययौवन, और वृद्धावस्थाओंमें, दुःखोंमें तथा सुखोंमें, जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिमें केवल स्वस्वरूप चेतनमात्रमें निष्ठ होओ ॥ ३३ ॥ बाह्य विषयरूप मलको त्यागकर, मनको आत्मामें विलय करते हुये आशारूप पाशको पूर्णरीतिसे छेदन करके केवल निज ज्ञान स्वरूपमें स्थित रहो ॥ ३४ ॥ शुभाशुभ लक्षण अपने संकलपसे कृत संकेतोमें जिसकी आशारूप महामारी शान्त होगई है ऐसे तथा इष्टा निष्ट विचारोंसे शून्य तुम केवल संवित्मात्रका अवलम्बन करो ॥ ३५ ॥ कर्ता (विज्ञानमय बुद्धि) और करणरूप इन्द्रियों करके सहित और अपनेको न स्पर्श करनेवाले संसारोंको अपने अन्तर्गत प्रतिबिम्बोंके सदृश स्पर्श करते अर्थात् साक्षीरूपसे सबके व्यापारोंको उनके विषयकोभी देखते हुये निर्विकल्प तथा निरालम्ब केवल निजस्वरूप चिन्मात्रमें निष्ठ रहो ॥ ३६ ॥

जाग्रत्येवहिसंसुप्तांभावयन्सुस्थिरांस्थितिम् ॥ सर्वमस्मीतिसंचिंत्यसत्तैकात्मवपुर्भव ॥ ३७ ॥ नाना नानादशामुक्तौयुक्तौमुक्ततयासमे ॥ समग्रकलनादीपःस्वचिन्मात्रपरोभव ॥ ३८ ॥ आत्मतापरतेत्य क्त्वानिर्विभागोजगत्स्थितौ ॥ वज्रस्तंभवदात्मानमवलंब्यस्थिरोभव ॥ ३९ ॥ स्थित्वांतर्मानसान्पा शानाशारूपान्नुदारया ॥ धियाधैर्यैकधर्मिण्यानिर्द्धर्माधर्मतांव्रज ॥ ४० ॥

अर्थ—और जाग्रत् अवस्थाहीमें सुषुप्तिके अति स्थिर समान निर्विकल्प स्थितिकी भावना करते हुये सब संसारमें चेतनमात्र मै हुं ऐसा विचार करके केवल चित् सत्तामात्र शरीर होजाओ ॥ ३७ ॥ नानादशा (जाग्रत् और स्वप्न) अनानादशा (सुषुप्ति) से वा सृष्टि तथा प्रलयमुक्त, मुक्तरूपसे सब ब्रह्ममेंयुक्त, और सम्पूर्ण दृश्यमात्रकी प्रथामें दीप वा सब बुद्धिकी वृत्तियोंके सदृश प्रकाशक तुम निज चिन्मात्र स्वरूपमें स्थिर रहो ॥ ३८ ॥ आत्मता तथा परताको त्यागकर जगत्की स्थितिमें विभागशून्य वज्रके स्तंभके तुल्य आत्माका अवलम्बन करके स्थिर रहो

॥ ३९ ॥ संकल्पमय आशारूप पाशोंके मध्य धैर्य्य धर्मवती बुद्धिसे (बाह्य बुद्धिसे) स्थित होके धर्माधर्मकी शून्यता दशाको तुम प्राप्त होओ ॥ ४० ॥

समास्वादयतस्तत्त्वंस्वसंवेदनधर्मिणः ॥ विषंहालाहलमपियास्यत्यमृततामथ ॥ ४१ ॥ तदोदेतिमहामोहःसंसृतिभ्रमकारणम् ॥ निर्मलायानिरंशायाःसंवित्तेश्चामतिर्यदा ॥ ४२ ॥ तदासंक्षीयतेमोहःसंसारभ्रमकारणम् ॥ निर्मलायांनिरंशायांस्वसंवित्तौस्थितिर्यदा ॥ ४३ ॥ स्वरूपमनुयातस्यतीर्णस्याशामहार्णवम् ॥ प्रसरिष्यतितेसंवित्सूर्यांशुरिवसर्वतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—ज्ञानमात्र साक्षीरूप अपने आत्माके तत्वको आस्वादन करनेवालेको हालाहल विषभी अमृतताको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जब निर्मल तथा निरवयव चेतनका विस्मरण होताहै अर्थात् अज्ञान होताहै उससमय संसारके भयका महामोह उदय होताहै ॥ ४२ ॥ जब निर्मल और निरवयव निज चेतनमात्रमें स्थिति होती है उससमय संसारके भ्रमका कारण महामोह क्षयको प्राप्त होजाताहै ॥ ४३ ॥ जिससमय तुम अपने स्वरूपमें प्राप्त और आशारूप समुद्रके पारंगत होओगे उससमय ज्ञानरूप सूर्यके किरण तुमारे चारो ओरसे प्रसृत होंगी ॥ ४४ ॥

स्वभावमालोकयतआनंदाद्वयसंस्थितेः ॥ रसायनमपिस्वादुराममप्रतिविषायते ॥ ४५ ॥ तैर्नोभजामहे पुंभिर्येस्वभावमुपागताः ॥ शेषाःपुरुषनामानोगर्दभादीर्घबाहवः ॥ ४६ ॥ पर्वतात्पर्वतंयांतिपुरोद्रेरिवदंतिनः ॥ परांकोटिंप्रयातस्यस्वसंवित्त्युन्नतस्थितेः ॥ ४७ ॥ अदृष्टादृश्यसीम्नोंतःसूर्यादीन्यखिलान्यति ॥ नतेजांस्युपकुर्वंतिस्वसंविद्दिव्यचक्षुषः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अपने स्वभावको देखते हुये, और अद्वैत ब्रह्मानन्दमें स्थित पुरुषको अति स्वादु अमृतभी विषके तुल्य प्रतीत होताहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष हमारे भाव अर्थात् प्रत्यग् आत्मभावको प्राप्त जीवन्मुक्त होगयेहैं उनके साथ हम लोग सदा मैत्री करतेहैं और शेष दीर्घ भुजावाले मनुष्य नामके गर्दभहैं ॥ ४६ ॥ अपने ज्ञानसे सबसे उच्च स्थिति सहित इसीसे उत्कर्षताकी पराकाष्ठाको प्राप्त तत्ववेत्ताके संमुख अन्य उपासक योगी ज्ञानार्थ जाते हुये ऐसे भासतेहैं जैसे मेरु आदि पर्वतके संमुख (आगे) अन्य पर्वतसे जाते हुये हस्ती ॥ ४७ ॥ भूतकालमें तत्ववेत्तासे अन्य किसी पुरुषसे अदृष्ट और वर्तमान तथा भविष्यत्मेंभी किसीसे देखनेके अशक्य अवधि सहित तथा अपने ज्ञानरूप दिव्य नेत्रयुक्त तत्ववेत्ताके अंतःकरणमेंही कल्पित सूर्य्यादि संपूर्ण तेज कुछभी उसका उपकार नहीं करते क्योंकि अपने ज्ञानसे उसकी सबसे उन्नत स्थितिहै ॥ ४८ ॥

अवस्तुतांव्रजंत्येतेमाध्याह्नइवदीपकाः ॥ अर्कादयोमहालोकाविद्ययाधिगतात्मनः ॥ ४९ ॥ तेजोंशुषु प्रभावेषुबलिष्वपिमहत्स्वपि ॥ सर्वेषून्नतियुक्तेषुतत्त्वज्ञःपरमोन्नतः ॥ ५० ॥ भांतीहभासायस्यार्कवह्नीद्भुमणितारकाः ॥ तथाजगतिराजंतेज्ञातज्ञेयानरोत्तमाः ॥ ५१ ॥ धराविवरकीटेभ्योगर्दभेभ्योपिमानवाः ॥ तिर्यग्भ्यश्वाप्यतत्त्वज्ञारामतुच्छतराःस्मृताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्मविद्यासे अपने आत्माको जिसने जान लियाहै उसके संमुख सूर्य्यादि महालोकभी ऐसे तुच्छताको प्राप्त होतेहैं जैसे मध्यान्हकालमें दीपक ॥ ४९ ॥ तेजोंके कार्य्य प्रकाशनोंमें, योगकी वशिता आदि सिद्धियोंके प्रभावोंमें, बलवानोंमें, ऐश्वर्य तथा आयु आदिसे श्रेष्ठ जनोंमें, तथा अन्य विद्वत्ता और वक्तृता आदि उन्नतियुक्त पुरुषोंमें तत्वज्ञानी पुरुष सबमें परम उन्नति युक्तहै ॥५०॥ जिस आत्मारूप जगदीश्वरके प्रकाशसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, मणि तथा तारागण प्रकाशित होतेहैं और उसी प्रकार ज्ञातज्ञेय (तत्वज्ञानी) उत्तम पुरुषकी कृपासे इस जगत्में प्रकाशमान होतेहैं ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! भूमिके बिलोंके कीडोंसे, गर्दभोंसे, और पशु कीट पतंगादिसेभी आत्मज्ञानसे रहित मनुष्य अति मूढतरहैं, क्योंकि आत्मज्ञानके अभावमें अधमतम कीटादि योनि मिलतीहै ॥ ५२ ॥

तावत्संमोहवेतालोदेहीयावदनात्मवान् ॥ आत्मज्ञएवसंयुक्तश्चेतनेनेतितद्विदः ॥ ५३ ॥ अनात्मज्ञो हिदुःखेहःप्रस्फुरन्नपिभूतले ॥ शवएवभ्रमत्युच्चैरात्मज्ञस्तुसचेतनः ॥ ५४ ॥ दूरादात्मज्ञतायातिचित्ते पीवरतांगते ॥ आलोकलक्ष्मीरभितोमहामेघइवोत्थिते ॥ ५५ ॥ भोगाभोगतिरस्कारैःकार्श्यंनेयंशनैर्मनः ॥ रसापहारैस्तज्ज्ञेनकालेनाजीर्णपर्णवत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक यह प्राणी आत्मज्ञ नहीं है तभीतक मोहरूप पिशाच गर्जताहै और आत्मज्ञानीही सचेतनहै अनात्मज्ञ अचेतनहै ऐसा तत्ववेत्ता जन कहते हैं ॥ ५३ ॥ दुःखोंके दाहके लिये जिसकी चेष्टाहै ऐसा अज्ञानी संसारमें चलता हुआ भी मानों मृतकही उच्चतासे भ्रमण करताहै, और आत्मज्ञ तो जीवितहै ॥ ५४ ॥ चित्तके स्थूल होनेपर आत्मज्ञता ऐसे दूर चली जाती है जैसे महामेघके उठनेपर चारोओरसे प्रकाशकी शोभा ॥५५॥ भोगों

(विषयों) की सेवाकातिरस्कार करनेसे और अप्राप्त विषयोंके अभिलाषके त्यागसे अपने मनको ज्ञानीको ऐसे कृश करना चाहिये जैसे काल जीर्ण पत्तेको ॥ ५६ ॥

अन्यात्मन्यात्मभावेनदेहमात्रास्थयानया ॥ पुत्रादारकुटुंबैश्चचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ५७ ॥ अहंकारविकारेणममतामलहेलया ॥ इदंममेतिभावेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ५८ ॥ जरामरणदुःखेनव्यर्थमुन्नतिमीयुषा ॥ दोषाशीविषकोशेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ॥ ५९ ॥ आधिव्याधिविलासेनसमाश्वासेनसंसृते ॥ हेयादेयप्रयत्नेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६० ॥

अर्थ—और अनात्मामें आत्मभावसे, देहमात्रमें आस्था करनेसे तथा पुत्र स्त्री और कुटुम्बोंसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥५७॥ अहंकारके विकारसे, ममतारूप मनमें आसक्ति, यह शरीरके भोगका स्थान आत्माहै इस भावनासे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥ जरा मरणके दुःखोंसे, व्यर्थ उन्नतिकी प्राप्तिकी इच्छासे, तथा दोषरूपी सर्पोंके कोशसे यह चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥५९॥ मानसिक तथा शारीरिक रोगोंके विलाससे, संसारमें रमणीयता तथा चिरस्थायिताके विश्वाससे, हेय तथा आदेयके प्रयत्नसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥

स्नेहेनधनलोभेनलाभेनमणियोषिताम् ॥ आपातरमणीयेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६१ ॥ दुराशाक्षीरपानेनभोगानिलबलेनच ॥ आस्थादानेनचारेणचित्ताहिर्यातिपीनताम् ॥ ६२ ॥ आगमापायवपुषाविषवैषम्यशंसिना ॥ भोगाभोगेनभीमेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६३ ॥ शरीरदुःश्वभ्रचिरप्ररूढंचिंताचयोद्याकृतिमंजरीकम् ॥ जरामृतिव्याधिफलौघनम्रंकामोपभोगौघविकासिपुष्पम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—स्नेहसे, धनके लोभसे, मणि तथा स्त्रियोंके लाभसे और आरंभमें बिना विचारे रमणीय विषयोंसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ दुष्ट आशारूप दुग्धके पान करनेसे, भोगरूप विषयके बलसे संसारी पदार्थोंमें सत्यताके विश्वाससे, और नानाप्रकारके विषयोंके संचारसे चित्तरूप सर्प स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६२ ॥ उत्पत्ति और नाश स्वभावयुक्त, विषरूप विषमताका प्रतिपादक और भयंकर भोगोंके सेवनसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! शरीररूप दुष्ट गर्त (गढे) में चिरकालसे पूर्ण रीतिसे जमा हुआ, चिन्ताके समूहरूप महान् आकारवाली लताओंसे वेष्टित, वृद्धाऽवस्था, मरण तथा रोगरूप फलोंके समूहसे नम्र, और कामोंके उपभोगोंके समूहरूप विकसित पुष्पसहित ॥ ६४ ॥

विचारसारक्रकचेनचित्तविषद्रुमंत्वद्भुतमद्रिकल्पम् ॥ आशामहाशाखमशंकमेनंछिंधिप्रसह्यात्रविकल्पपत्रम् ॥ ६५ ॥ मत्तेक्षणंचैकतटोपवेशंविश्रांतिसौख्येष्वसमर्थमुग्रम् ॥ आलोकनोत्कंसुजनक्रमाब्जखंडस्यचंडंसुखदुःखगंडम् ॥ ६६ ॥ चेतोगजंकायकुकाननस्थंसुतीक्ष्णयाधीकरजाग्रपंक्त्या ॥ विदारयादीर्घविकारदंतंक्रियाकरंराघवराजसिंह ॥६७॥ रतिंगतंनित्यमसत्प्रदेशेशरीरमांसग्रसनेनपुष्टम् ॥ दुष्टंक्रियाकर्कशचंचुदंडमेकेक्षणंपुष्टतमोंशुकृष्णम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—पर्वतके समान अति उच्च, आशारूप महाशाखा संयुक्त, और विकल्परूप पत्रोंसे युक्त इस चित्तरूप विषके वृक्षको अशंक होके तुम बलात्कारसे श्रेष्ठ विचार (आत्मविचार) रूप आरेसे काटो ॥ ६५ ॥ हे राजसिंह राघव ! विवेकके प्रमादसे मत्त आगम तथा अनुमानरूप नेत्रसहित, बहिर्मुखतारूप संसाररूप पर्वतके तटपर बैठे हुये, अन्तर्मुखतासे विश्रान्तिरूप सौख्यमें असमर्थ, द्वेष ग्रहादिसे भयंकर शम दम तितिक्षा आदि सज्जनोंके क्रमरूप कमलके बनके देखनेको बडे अभिलाषी, अति क्रोधी और सुखदुःखरूप गंडस्थलसे संयुक्त ॥ ६६ ॥ शरीररूप भयंकर बनमें स्थित, कामादिके विकाररूप दीर्घ दंतसहित और धैर्य्य आदिके विदारणरूप क्रियाको करनेवाले इस चित्तरूप मातंगको अति तीक्ष्ण बुद्धिरूप सिंहके नखाग्रसे विदीर्ण करो ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! स्त्री तथा भोज्यपदार्थरूप श्मशानदेशमें रतिको प्राप्त, शरीररूप मांसके भक्षणसे पुष्ट, अन्यके मर्मोंके छेदनमें कर्कश चोंचसहित, स्वार्थरूप एक नेत्रधारी, बुद्धिको प्राप्त तमोगुणकी वृत्तिरूप अन्धकारसे कृष्ण ॥ ६८ ॥

दूरेसमुत्सारयभारभूतंदुश्चेष्टितंकर्कशमारटंतम् ॥ गंधोद्गतंकायकुलायकोशाद्दोषोपशांत्यैनिजचित्तकाकम् ॥ ६९ ॥ तृष्णापिशाच्यापरिचर्यमाणंविश्रांतमज्ञानमहावटेषु ॥ भ्रांतंचिरंदेहशतेष्वटव्यांस्वसंस्तौचेतनवर्जितेषु ॥ ७० ॥ विवेकवैराग्यगुरुप्रयत्नमंत्रैःस्वतंत्रैःस्वचिदात्मगेहात् ॥ नोत्सादयेच्चित्तपिशाचमेनंयावत्कुतस्तावदिहात्मसिद्धिः ॥ ७१ ॥ शुभाशुभास्थंहतमानवौघंचिंताविषंकायकुकंचुकंच॥ अजस्रमच्छश्वसनाशनंचसर्वस्यनानाभयनाशदंच ॥ ७२ ॥

अर्थ—आत्मरूप वृक्षका भाररूप, दुर्वासनारूप दौर्गन्ध्यसे प्रकट, दुष्ट चेष्टाकारी, और कर्कश (कर्णकटु) रटते हुये इस अपने चित्तरूप काकको दोषोंकी शान्तिके लिये शरीररूप खोंथेसे दूर भगादो ॥ ६९ ॥ तृष्णारूपी

पिशाचीसे सेवित, अज्ञानरूप वटके वृक्षमें विश्रान्त, सैकडों देहोंमें वा अनन्त कोटि देहरूप महावनमें चिरकालसे भ्रमणकारी अपने चित्तकी चंचलतामें तथा अचेतन जनोंमें प्रत्यक्ष सिद्ध ॥ ७० ॥ इस अपने चित्तरूप पिशाचको विवेक तथा वैराग्यादि महाप्रयत्नरूप मंत्र तंत्रोंसे अपने आत्माके गृहरूप हृदयसे जबतक न हटा दोगे तबतक आत्माका शुद्ध स्वभावरूप सिद्धि (मुक्ति) कहांसे होसकती है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! शुभ अशुभ कर्मरूप दो दंतसहित, मनुष्य समूहोंका हन्ता चिन्तारूप विषधारी, शरीररूप दुष्ट केचुलीयुक्त निरन्तर श्रमरहित प्राण वायुका भक्षक, और नानाप्रकारके भय तथा मृत्युका दाता ॥ ७२ ॥

हृदब्जदुःशाल्मलिकोटरस्थममोघयाचित्खगमंत्रशक्त्या ॥ नीत्वाशमंरामामनोमहाहिंभयंभृशंप्रोज्झ्य भवाभयात्मा ॥ ७३ ॥ अमंगलाकारधरःशरीरशवावलीसंततसेवनेन ॥ दिगावलीसंभ्रमणश्रमार्त्तः श्मशानसेवीवपुषाक्षतेन ॥ ७४ ॥ भोगामिषोदिक्ष्वभिधावमानउत्कंधरोधीरविवृद्धगर्द्धः ॥ उड्डीयवेग च्छतिचित्तगृध्रोदेहद्रुमात्तन्निपुणंजयस्ते ॥ ७५ ॥ भ्रांतंवनांतेषुदिगंतरेषुफलार्थिनंचंचलमाकुलांगम् ॥ जन्मावनेर्जन्ममहींप्रयातंसंसारबंधंजनतांहसंतम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—तथा हृदयकमलरूप दुष्ट शालमलिवृक्षके कोटरमें स्थित, जो यह निज मनरूप महासर्प है इसको अमोघ चित्‌रूप गरूडके (" सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म " इत्यादि) मन्त्रकी शक्तिसे मूलसहित उच्छेद करके और सर्वथा भयको त्यागकर अभयात्मा होजाओ ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! शरीररूप मृतकोंकी पंक्तिको सदा सेवन (भक्षण) करनेसे सदा अमंगलरूपधारी, दिशाओंकी सब पंक्तियोंमें भ्रमण करनेके श्रमसे पीडित, अपमान, धनव्यय, शोक तथा भयादिरूप काकादिके चोंचोंके प्रहारोंसे खंडित देहसे स्मशान सेवीके तुल्य ॥ ७४ ॥ भोग (विषयभोग) रूप मांसका भक्षक, सब दिशाओंमें ग्रीवा उठाके दौडनेवाला, तथा अधीर और अति तृष्णाधारी यह चित्तरूप गृध्र यदि तुमारे देहरूप वृक्षसे उडके चलाजाय तब तुमारा सर्वथा जय है ॥ ७५ ॥ दिशाओंके अंतमें भ्रमण करनेवाला कवलका अर्थी, चंचल, व्याकुल शरीर, एक जन्मरूपसे दूसरी जन्मरूप भूमिको प्राप्त, तथा जनसमूह और उसके संसारके बंधनको अपनी चेष्टाओंसे हंसता हुआ ॥ ७६ ॥

द्रुमेक्षिनासाकुसुमेभुजादिशाखेविलोलांगुलिजालपत्रे ॥ समुल्लसंतंपरिमारयांतर्मनोमहामर्कटमंग सिद्ध्यै ॥ ७७ ॥ अभ्युत्थितंसत्फलसंक्षयायलसन्मुखासंगितडित्प्रकाशम् ॥ वर्षंतमासारमनर्थसार्थं मांदोलितंवासनवात्ययांतः ॥ ७८ ॥ संकल्पसंकल्पनवर्जनोग्रमंत्रप्रभावाद्धृदयांबरस्थम् ॥ सोत्साह मुत्सादयचित्तमेघंबृहत्फलंप्राप्यभवालमाद्यः ॥ ७९ ॥ ग्रंथीकृतंकर्मभिरात्मसृष्टेर्मंत्रैरभेद्यंज्वलनैरदग्धम् ॥ पीडांपरामात्मनिकल्पयंतंसमस्तजात्यंतरदीर्घदाम ॥ ८० ॥

अर्थ—नेत्र नासिकारूप पुष्पसहित; भुजा आदि शाखायुक्त, तथा अंगुलियोंके समूहरूप पत्रसहित वृक्षमें शोभायमान मनरूप महामर्कटको चारो ओरसे निरोधकेद्वारा; हे प्रिय रामजी ! आत्मसिद्धिकेलिये मारो ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! परमार्थ सुखरूप पक्कफलके नाशके लिये अकालमें उपस्थित, मुखके समान बाह्यमुख वृत्तिके अग्रभागमें आसक्त, विद्युत्के समान चिदाभासके प्रकाशयुक्त, अनर्थके समूहरूप धाराको वर्षते हुये, और वासनारूप वात्या (महावायुकेसमूह) से अन्तःकरणको कम्पित करनेवाले ॥ ७८ ॥ इस हृदयाकाशमें स्थित चित्तरूप मेघको उत्साहके साथ संकल्पोंकी कल्पनाओंके अभावरूप प्रचण्ड मंत्रके प्रभावसे हटाओ, और उससे जीवन्मुक्तिरूप महाफलको पाकर अपने पूर्व सिद्धस्वभाव अर्थात् नित्यमुक्त आत्मा पूर्णरीतिसे होजाओ ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! आत्माकी सृष्टि (आत्मा जिसमें उपादान कारण था उस सृष्टि) से लेके आजतक सुकृत दुष्कृत कर्मोंसे निरन्तर ग्रन्थीकृत अर्थात् दृढ मन्त्रोंसे अभेद्य, अग्निसे अदाह्य, आत्मामेंभी बडी पीडाका कल्पक, और समस्त नानाप्रकारकी जाति वा जन्मोंके भेदोंके बन्धनके लिये दीर्घ रज्जु (रस्सी) के समान उपस्थित ॥ ८० ॥

संप्रोतनिःसंख्यशरीरमालंबलादसंकल्पनमात्रशस्त्रैः ॥ छित्त्वास्वयंराघवचित्तपाशंयथासुखंत्वंविहरास्तशंकः ॥ ८१ ॥ फूत्कारदग्धाखिलपांथलोकमत्यंतदुष्प्रापपरप्रबोधम् ॥ आशीविषंशोषितलोकखंडं व्यात्त्यामिषोद्धूतशरीरदंडम् ॥ ८२ ॥ आमंथरंदेहगुहासुगुप्तंसंकल्पघोराजगरंजवेन ॥ अकामनानाममहानलेनबलेनदग्ध्वाविभवोभवत्वम् ॥ ८३ ॥ चित्तेनचेतःशममाशुनीत्वाशुद्धेनघोरास्त्रमिवास्त्रयुक्त्या ॥ चिरायसाधोत्यजचंचलत्वंविमर्कटोवृक्षइवाक्षतश्रीः ॥ ८४ ॥ अमलमितिचकृत्वाचेतसावीतशंकमुपशमितमनोंतःसर्वमादेहमेव ॥ तृणलवलघुपश्यँल्लीलयाहेयदृष्ट्यापिबविहररमस्वप्राप्तसंसारपारः ॥८५॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे राघवाशयविनियोगोनाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—और जिस रज्जूमें असंख्यशरीर माला गूंथी हैं ऐसे अपने चित्त पाश (फांसी) की शंकारहित होके असंकल्परूप महाशस्त्रोंसे छेदन करके यथा सुख तुम इससंसारमें बिहार करो॥८१॥हे रामजी ! क्रोधादिरूप फुफकारसे दक्षिणोत्तर मार्गगामी सब जीवरूप वटोहियोंको भस्म करनेवाले, अति दुष्प्राप परब्रह्मरूप प्रबोधज्ञान शून्य विषयरूप विषधारी इसीसे सम्पूर्ण भुवनोंको सन्तापित करनेवाले, तथा तृष्णारूप मुखको फैलाकर विषयरूप मांसके अर्थ चार-प्रकारके शरीररूप दण्डके कंपित करनेहारे ॥ ८२ ॥ और मोक्षके उद्योगमें आलसी होनेसे मन्दगति तथा देहरूप गुहामें शयनशील इस संकल्परूप भयंकर अजगरको अकामना (वैराग्य) रूप महा अग्निके द्वारा बलसे भस्म करके पूर्णानन्दरूप ऐश्वर्ययुक्त तुम होजाओ ॥ ८३ ॥ हे साधो रामजी ! अस्त्रोंसे भयंकर अस्त्रके समान शुद्धचित्तसे मलिन चित्तको सर्वथा शांत करके चिरकालके लिये चंचलताको त्यागो और मर्कट शून्य वृक्षके तुल्य अखण्डित शोभायुक्त तुम हो ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! इस उक्तप्रकारसे और पूर्वोक्त तत्वज्ञानसे प्रत्यग् आत्मामें मनको मलरहित करके स्थूल सूक्ष्म तथा कारण शरीरसहित सम्पूर्ण जगत्को तृणसे भी तुच्छतर अनादरकी दृष्टिसे देखते हुये संसारके पार प्राप्त तुम लीलासे लोक संग्रहके अर्थ सोमरसका पान करो वा ऋत्विजोंके साथ बिहार करो वा शास्त्रके अविरूद्ध लोकमें बिहार करो ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे राघवाशयविनियोगो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

शान्त पदमें विश्राम चाहनेवाले पुंजान (जिस योगीको चिन्ता करनेसे अदृष्ट पदार्थका भान होताहै उस देशमें प्राप्त) योग दशामें प्राप्त उद्दालक मुनिके मनके दोषोंसे विक्षेपका वर्णन इस ५१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ परिदीर्घासुतन्वीषुसुतीक्ष्णासुसितासुच ॥ क्षुरधारोपमानासुचित्तवृत्तिषुतिष्ठमा ॥ १ ॥ कालेनमहताक्षेत्रेजातेयंबुद्धिवल्लरी ॥ वृद्धिविवेकसेकेननयतांनयकोविद ॥ २ ॥ यावन्म्लायतिनोकायलतिकाकालभास्वता ॥ भूतलेऽपतितांतावदेनामुद्धृत्यधारय ॥ ३ ॥ महाक्याथैकतत्त्वज्ञमहाक्यार्थैकभावनात् ॥ सुखमाप्रोषिसर्पारिर्यथाभ्ररवभावनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसलोक तथा परलोक विषयोंके आसंगसे अति दीर्घ, वासनामय होनेसे सूक्ष्म, समाधिके सुखका शीघ्र छेदक होनेसे अति तीक्ष्ण, आत्माके प्रतिबिंब ग्रहण करनेसे सित (निर्मल) इसीसे क्षुराकी धाराके समान चित्तकी वृत्तियोंमें प्रमादसे विश्वासको मत प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे नीतिनिपुण रामजी ! उत्तम कुलमें उत्पन्न शरीररूप लतामें चित्तकी शुद्धि और श्रवण आदि दोहदके उपायोंसे परमात्माको परिचय करनेवाली यह तुह्मारी बुद्धिरूप लता होगई है इसको बाह्य दृश्योंसे निवृत्तिरूप विवेकसे सींचके बढाओ ॥ २ ॥ जबतक कालरूप सूर्य्यसे यह शरीररूप लता नहीं कुम्हिलाती, तभीतक भूतलमें गिरनेसे पूर्व गुरू शुश्रुषा तथा श्रवणादि द्वारा उद्धार करके इस बुद्धिरूप लताका पालन करो ॥३॥ हे मेरे वाक्यार्थके मुख्य तत्वके ज्ञातः रामजी ! मेरे वाक्यार्थमें दृढ भावना करनेसे तुम ऐसे सुख पाओगे जैसे मेघके शब्दकी भावनासे मोर ॥ ४ ॥

उद्दालकवदालूनंविशीर्णभूतपंचकम् ॥ कृत्वाकृत्वाधियाधीरधीरयांतर्विचारय ॥ ५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ केनक्रमेणभगवन्मुनिनोद्दालकेनतत् ॥ भूतपंचकमालूनंकृत्वांतःप्रविचारितम् ॥६॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामयथापूर्वभूतवृंदविचारणात् ॥ उद्दालकेनसंप्राप्तापरमादृष्टिरक्षता ॥ ७ ॥ जगज्जीर्णगृहस्यास्य कोणेकस्मिंश्चिदातते ॥ भूमेरनिलदिग्भाग्निभूभृद्भांडसमाकुले ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उद्दालक मुनि जैसे देह आदिके आरंभक तथा बाह्य अन्य प्रपंचोंके आरंभक पृथिवी आदि पंचभूतरूप तत्वको पदार्थके शोधनमें तत्पर बुद्धिसे कारणमें कार्यलय (जैसे पृथिवीका जलमें जलका तेजमें तेजका वायुमें इत्यादि रीतिसे) करके अधिष्ठान सन्मात्रके अन्वेषण (खोजने) में धीर पुरुषोंसे धीर बुद्धि अपने अन्तःकरणमें विचारो ॥ ५ ॥ श्री रामजी बोले–हे भगवन्! उद्दालक मुनिने किस क्रमसे भूत पंचका लय कारणमें करके अपने अन्तःकरणमें बिचारा सो कहिये ॥ ६ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! भूत समूहके विचारसे उद्दालक मुनिने जैसे पूर्वकालमें परम ज्ञानमयी दृष्टिको पाया वह वृत्तान्त तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ इस जगत्‌रूप प्राचीन गृहके किसी विशालकोणमें, पृथिवीके उच्च नीच पर्वतोंसे व्याप्त वायव्यकोणमें ॥ ८ ॥

गंधमादनशैलेंद्रनाम्निकाचित्किलस्थली ॥ विद्यतेकीर्णकुसुमाद्रुमकर्पूरकेसरा ॥ ९ ॥ विचित्रवर्णविहगानानावल्लीविलासिनी ॥ वनेचरव्याप्ततटीपुष्पकेसरभासिनी ॥ १० ॥ क्वचित्स्फीतमहारत्नाक्वचिल्लोलांबुजोत्पला ॥ क्वचिन्नीहारकबरीसरसीदर्पणाक्वचित् ॥११॥ तत्रकस्मिंश्विदुदितेसानौसरलपादपे॥ आगुल्फाकीर्णकुसुमेस्निग्धच्छायमहाद्रुमे ॥ १२ ॥

अर्थ—गंधमादन नाम पर्वतपर पुष्पोंसे व्याप्त और पुष्पसहित वृक्षरूप कर्पूरके परागके सदृश केसरयुक्त कोई वनस्थली है ॥ ९ ॥ कहीं तो चित्रविचित्र पक्षियोंसे पूर्ण, कहीं नानाप्रकारकी लताओंसे विलासयुक्त, कहीं बनचर जन्तुओंसे व्याप्त तटी, और कहीं पुष्प केसरोंसे प्रकाशमान ॥ १० ॥ कहीं स्वच्छ महारत्नोंसे पूर्ण, कहीं चंचल कमलसहित, कहीं नीहार (कुहिरा) रूप केश वेशधारिणी, और कहीं स्वच्छ बडे २ तडागरूप दर्पणसहित वह वनस्थली थी ॥ ११ ॥ उसमें सरलके वृक्षसहित एणीतक पुष्पोंसे व्याप्त, घनीभूत छायावाले वृक्षसहित अति ऊंचे किसी शिखर प्रदेशमें ॥ १२ ॥

उद्दालकोनाममुनिर्मौनिमानीमहामतिः ॥ अप्राप्तयौवनःपूर्वमुवासोद्दामतापसः ॥ १३ ॥ प्रथमंतुबभूवासावल्पप्रज्ञोविचारवान् ॥ अप्राप्तपदविश्रांतिरप्रबुद्धःशुभाशयः ॥ १४ ॥ ततःक्रमेणतपसाशास्त्रार्थनियमैःक्रमैः ॥ विवेकआजगामैनंनवर्त्तुरिवभूतलम् ॥ १५॥ अथेमंचिंतयामाससंसारामयभीरुधीः ॥ एकांतएवनिवसन्कदाचित्कांतमानसः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा अपने प्रयत्नोंसे अवश्य पुरुषार्थको सिद्ध करूंगा ऐसे अभिमानसेयुक्त, उदार बुद्धि, यौवन अवस्थाको अप्राप्त और उत्तम तपस्या करनेवाले उद्दालक नाम मुनि पूर्वकालमें रहतेथे ॥ १३ ॥ प्रथम तो यह मुनि, अल्पबुद्धि, विचारवान् परमपदमें विश्रामको अप्राप्त अज्ञानी, और ज्ञान प्राप्त होने योग्य शुभ अन्तःकरणसहित थे ॥ १४ ॥ उसके अनन्तर क्रमसे तपसे, और शास्त्रार्थके नियमवाले क्रमोंसे विवेक इसमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे भूमंडलमें वसंत ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् संसाररूप रोगसे भयभीत बुद्धि, और शुद्धचित्त उद्दालकने एकान्तमें निवास करते हुये इस वक्ष्यमाण कारणको कदाचित् चिन्तन किया ॥ १६ ॥

किंतत्प्राप्यंप्रधानंस्याद्यद्विश्रांतौनशोच्यते ॥ यत्प्राप्यजन्मनाभूयःसंबंधोनोपजायते ॥ १७ ॥ कदाहंत्यक्तमननेपदेपरमपावने ॥ चिरंविश्रांतिमेष्यामिमेरुशृंगइवांबुदः ॥ १८ ॥ कदाशममुपैष्यंतिममांतर्भोगसंविदः ॥ आलोलकल्लोलरवाऊर्मयोंबुनिधाविव ॥ १९ ॥ इदंकृत्वेदमप्यन्यत्कर्त्तव्यमितिकल्पनाम् ॥ कदांतर्विहसिष्यामिपदविश्रांतयाधिया ॥ २० ॥

अर्थ—वह मुख्य प्राप्य वस्तु कौनसाहै जिसमें विश्राम पाकर मनुष्य पुनः नहीं शोच करता, और जिसको पानेसे पुनः जन्मका संबन्ध नहीं होता ॥ १७ ॥ कि वह कौनसा समय होगा कि मेरूके शिखरपर मेघके समान अति पवित्र तथा मनके व्यापारसे शून्य पदमें मैं चिरकालकेलिये विश्राम पाऊंगा ॥ १८ ॥ जैसे चंचल कल्लोल शब्दसहित तरंग समुद्रमें शान्त होती है ऐसेही भोगोंकी तृष्णा मेरे अन्तःकरणमें कब शान्त होंगी ॥ १९ ॥ इस कार्यको करके और अन्य कार्य यहभी कर्तव्यहै इस कल्पनाको मैं अन्तःकरणमें कब हसूंगा ॥ २० ॥

कदाविकल्पजालंमेनलगिष्यतिचेतसि ॥ स्थितमप्युज्झितासंगपयःपद्मदलेयथा ॥ २१ ॥ कदाबहुलकल्लोलांनावापरमयाधिया ॥ परितीर्णोभविष्यामिमत्तांतृष्णातरंगिणीम् ॥ २२ ॥ कदेमांजागतैर्भूतैः क्रियमाणामसन्मयीम् ॥ क्रियामपहसिष्यामिबाललीलामिवाकुलाम् ॥ २३ ॥ कदाविकल्पपर्यस्तंमनोदोलावदोलनम् ॥ शममेष्यतिमेशांतवातोजसइवभ्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कमलके दलमें स्थितभी जल नहीं लगता ऐसे ही आभासमात्रसे स्थितभी विकल्पजाल मेरे चित्तमें कब नहीं संलग्न होगा ॥ २१ ॥ अति कल्लोलसहित और अविवेकसे बढी हुई मृगतृष्णारूप नदीको परम उत्तम बुद्धिरूप नौकासे कब पार करूंगा ॥ २२ ॥ जगत्के प्राणियोंसे क्रियमाण इस असत्य क्रियाको चंचल बालक लीलाके समान मैं कब हसूंगा ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! विकल्पोंसे विक्षिप्त और दोला (झूला) के समान चंचल (अविश्रान्त) मेरा मन ऐसे कब शान्तिको प्राप्त होगा जैसे शान्त उन्माद रोगसहित वातरोगीका भ्रम ॥ २४ ॥

कदोदितवपुर्भासाविहसन्नागतीर्गतीः ॥ अंतःसंतोषमेष्यामिविराडात्मेवपूर्णधीः ॥ २५ ॥ अंतःसमसमाकारःसौम्यःसर्वार्थनिस्पृहः ॥ कदोपशममेष्यामिमंथमुक्तामृताब्धिवत् ॥ २६ ॥ कदेमामचलांदृश्यश्रियमाशाशतात्मिकाम् ॥ सर्वांसुषुप्तवत्पश्यन्भविष्यांम्यंतराततः ॥ २७ ॥ सबाह्याभ्यंतरंसर्वंशांतकल्पनयाधिया ॥ पश्यंश्चिन्मात्रमखिलंभावयिष्याम्यहंकदा ॥ २८ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपके प्रकाशसे जगत्‌की गतिको हंसते हुये अन्तःकरणमें पूर्ण बुद्धि मैं ऐसे संतुष्ट कब होऊंगा जैसे ब्रह्माण्डरूप शरीरधारी विराट् भगवान् ॥ २५ ॥ अन्तःकरणमें सम परमात्माके साथ एकरस, शान्त, धर्मार्थ काम तथा अमृत और कौस्तुभादि सब पदार्थोंमें निष्प्रिह मैं कब ऐसे शान्त होऊंगा जैसे मन्दराचलसे रहित क्षीरसमुद्र ॥ २६ ॥ वह कौन समय होगा कि सैकडों आशासे पूर्ण इस अचल दृश्यकी सब शोभाको कब सुप्तके तुल्य अर्थात् सन्मात्ररूपसे देखता हुआ कब शान्त होऊंगा ॥ २७ ॥ संपूर्ण कल्पनाओंसे शान्त बुद्धिसे बाह्य तथा आभ्यन्तर सब जगत्‌को चिन्मात्ररूप देखता हुआ कब उसी चिन्मात्रकी भावनासे स्थिर होऊंगा ॥ २८ ॥

कदोपशांतचित्तात्मचित्तामुपगतःपराम् ॥ परमालोकमेष्यामिजात्यंधविगमादिव ॥ २९ ॥ कदाभ्यासोपलभ्येनचित्प्रकाशेनचारुणा ॥ दूरादालोकयिष्यामितन्वींकालकलामिमाम् ॥ ३० ॥ ईहितानीहितैर्मुक्तोहेयोपादेयवर्जितः ॥ कदांतस्तोषमेष्यामिस्वप्रकाशपदेस्थितः ॥ ३१ ॥ कदाशाकौशिकीकीर्णा जाड्यजीर्णहृदंबुजा ॥ क्षयमेष्यतिकृष्णेयंकदामेदोषयामिनी ॥ ३२ ॥

अर्थ—शान्त चित्त होके चित्‌के साथ एकरसताको प्राप्त मैं परम प्रकाशको ऐसे कब प्राप्त होऊंगा जैसे कोई प्राणी जन्मकी अन्धताके नाशसे ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! वह कौनसा समय होगा कि अभ्याससे लभ्य उत्तम चित्प्रकाशसे इस तुच्छ आयुकी शेषरूप कालकी कलाको दूरसेही देखूंगा ॥ ३० ॥ इष्ट अनिष्ट तथा हेय और उपादेयसे वर्जित मैं स्वप्रकाश पदमें स्थित अन्तःकरणमें सन्तोषको कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३१ ॥ दुष्ट आशारूप उल्लूकोंसे पूर्ण और जडतारूप हिमसे हृदय कमलको जलानेवाली अविद्यासे जनित अन्धकारमयी यह दोष पूर्ण कृष्णपक्षकी रात्रि कब शान्त होगी ॥ ३२ ॥

कदोपशांतमननोधरणीधरकंदरे ॥ समेष्यामिशिलासाम्यनिर्विकल्पसमाधिना ॥ ३३ ॥ कदामेमान मातंगःस्वाभिमानमहामदः ॥ सत्त्वावबोधहरिणाहतोनाशमुपैष्यति ॥ ३४ ॥ निरंशध्यानविश्रांतेर्मूकस्यममसूर्द्धनि ॥ कदातार्णंकरिष्यंतिकुलायंवनघूर्णिकाः ॥ ३५ ॥ कदानिःशंकमुरसिध्यानधीरधियःखगाः ॥ ममविश्रांतिमेष्यंतिशैलस्थाण्वचलस्थितेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनके व्यापारसे शून्य पर्वतकी कन्दरामें निर्विकल्प समाधिसे शिलाकी समताको मैं कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३३ ॥ निज अंशभूत अभिमानकी वृत्ति जिसके महान् मद प्रवाह हैं ऐसा मेरा अहंकाररूप मातंग परमार्थ सन्मात्रके ज्ञानरूप सिंहसे मारा हुआ कब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ निर्विकल्प ध्यानमें विश्रान्त और मौनव्रताऽवलम्बी मेरे शिरमें बनके पक्षी तृणका खुंथा कब लगावैंगे ॥ ३५ ॥ ध्यानमें स्थिर बुद्धि तथा पर्वत वा स्थणुके समान अचल स्थितिवाले मेरे वक्षस्थलमें लंबमान जटासे रचित खुंथेमें पक्षी लोग कब विश्राम करैंगे ॥ ३६ ॥

तृष्णाकरंजजटिलांजन्मजर्जरगुल्मिकाम् ॥ संसाराररण्यसरसींत्यक्त्वायास्याम्यहंकदा ॥ ३७ ॥ इति चिंतापरवशोवनउद्दालकोद्विजः ॥ पुनःपुनस्तूपविशन्ध्यानाभ्यासंचकारह ॥ ३८ ॥ विषयैर्नीयमानेतु चित्तेमर्कटचंचले ॥ नसलेभेसमाधानप्रतिष्ठांप्रीतिदायिनीम् ॥ ३९ ॥ कदाचिद्बाह्यसंस्पर्शपरित्यागादनंतरम् ॥ तस्यागच्छच्चित्तकपिःप्रोद्वेगंसत्त्वसंस्थितौ ॥ ४० ॥

अर्थ—तृष्णारूप कंटकित वृक्षसे जटायुक्त और कामादिके संचारसे अनेक जन्मरूप लता गुल्मसहित इस संसाररूप बनके महा तडागको त्यागकर कब मैं जाऊंगा ॥ ३७ ॥ इसप्रकार उस बनमें चिन्तामें परवश उद्दालक ब्राह्मण पुनः २ बैठ २ कर ध्यानका अभ्यास किया ॥ ३८ ॥ मर्कटके समान चंचल चित्तको विषय अपनी ओर खींचकर लेजाताथी इसकारण सन्तोषदायिनी प्रतिष्ठा समाधिमें उद्दालक ऋषिको न मिली ॥ ३९ ॥ कभी २ बाह्य विषयोंको त्यागकर सत्वगुण प्रधान समाधिमें स्थितिके प्रसक्त होनेपर रजोगुणसे क्षुब्ध उसका चित्तरूप मर्कट भय अरति तथा आलस्य आदि उद्वेगको प्राप्त होता था ॥ ४० ॥

कदाचिदांतरान्स्पर्शान्परित्यज्यमनःकपिः ॥ लोलत्वात्तस्यसंयातोविषयंविषदग्धवत् ॥ ४१ ॥ कदाचिद्वदितार्काभंतेजोदृष्ट्वांतरेमनः ॥ विषयोन्मुखतांयातंतस्यतामरसेक्षण ॥ ४२ ॥ आंतरांध्यतमस्त्यागंकृत्वाविषयलंपटम् ॥ तस्योड्डीयमनोयातिकदाचित्रस्तपक्षिवत् ॥ ४३ ॥ बाह्यानाभ्यंतरान्स्पर्शास्त्यक्त्वानिद्रांचतन्मनः ॥ तमस्तेजोंतिकेलेभेकदाचिच्छाश्वतींस्थितिम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कदाचित् समाधिके सुखोंको त्यागकर उसका मनरूप मर्कट (वानर) विषयकी ओर ऐसे चला जाता था जैसे विषसे मृत लोकान्तरमें ॥ ४१ ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! कदाचित् हृदयाकाश ब्रह्मस्वरूपमें उदित सूर्यके समान ज्योति देखके उस उद्दालकका मन विषयकी ओर चला जाता था ॥ ४२ ॥ कदाचित् ब्रह्मस्वरूप दर्शा-

नेसे उसका मन अन्तःकरणके अज्ञानान्धकारको त्यागकर अर्थात् किंचित् शान्त करके उसी समय विषयके अनुसन्धानसे विषयलंपट होके त्रस्त पक्षीके समान उडके चला जाताहै ॥ ४३ ॥ कभी २ उसका मन विषयसुख तथा समाधि सुखकोभी त्यागकर अज्ञान तथा आत्मज्योतिकी संधिमें लीन होके चिरकालसे अभ्यस्त निद्राहीको प्राप्त होता था ॥ ४४ ॥

इतिपर्याकुलस्यांतःसखलुध्यानवृत्तिषु ॥ दरीष्वन्वहमुग्रासुवातमग्नइवद्रुमः ॥ ४५ ॥ अतिष्ठद्ध्यानसंरूढमननःसंकटेयथा ॥ दोलायितवपुस्तुच्छतृष्णातीरतरंगकैः ॥ ४६ ॥ अथपर्याकुलमनाविजहारमुनिर्गिरौ ॥ प्रत्यहंदिवसार्धीशोमहामेराविवैककः ॥ ४७ ॥ समस्तभूतदुष्प्रापामेकदाप्रापकंदराम् ॥ संशांतसर्वसंचारांमुनिर्मोक्षदशामिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार भयंकर कन्दराओंमें प्रतिदिन ध्यानमें तत्पर वह उद्दालक ध्यानकी वृत्तियोंमें व्याकुल मनके मध्य २ में तृष्णारूप तरंगोंसे दोलायित शरीर डूबता उतराता ऐसे संकटमें स्थित था जैसे वायुसे डुबता हुआ तटकी तरंगोंसे वृक्ष ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ महामेरूपर इसके अनन्तर एकाकी सूर्य भ्रमण किया करतेहैं ऐसे व्याकुल चित्त वह उद्दालक मुनि उस पर्वतपर भ्रमण किया करता था ॥ ४७ ॥ एक समय भ्रमण करते २ उद्दालकने समस्त प्राणीयोंसे दुष्प्राय और सब जीवोंके संचारसे शून्य एककन्दराको ऐसे पाया जैसे कोई मुनि मोक्षकी दशाको ॥ ४८ ॥

अपर्याकुलितांवातैरप्राप्तमृगपक्षिणीम् ॥ अदृष्टांदेवगंधर्वैःपरमाकाशशोभनाम् ॥ ४९ ॥ पुष्पप्रकरसंछन्नांमृदुशाद्वलकोमलम् ॥ ज्योतिरसाश्मसंप्रोतैःकृतांमरकतैरिव ॥ ५० ॥ सुस्निग्धशीतलच्छायांप्रकटारत्नदीपकैः ॥ सुगुप्तांवनदेवीनामंतःपुरकुटीमिव ॥ ५१ ॥ कुलंबनाहिमालोकांनात्युष्णांनातिशीतलाम् ॥ शारदस्योदितार्कस्यहेमगौरींप्रभामिव ॥ ५२ ॥ बालालोकपरिम्लानांकोमलाशब्दमारुताम् ॥ मंजरीजटिलोपेतांबालांमालावतीमिव ॥ ५३ ॥ उपशमपदवीमिवानुरूपांकमलजविश्रमणाययोग्यरूपाम् ॥ कुसुमनिकरकोमलाभिरामांसरसिजकोटरकोमलांसमंतात् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकमनोरथो नामैकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—और पुनः अधिक वायुके संचारसेरहित मृग तथा पक्षियोंसे कदापि अप्राप्त, देव गन्धर्वादिसेभी अदृष्ट तथा ब्रह्मके समान शोभित ॥ ४९ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे आच्छादित, नूतन और हरित घासोंसे कोमल, और चन्द्रकान्तमणियोंसे ग्रन्थित होनेसे मानो मरकत मणियोंसे रचित ॥ ५० ॥ द्वारदेशमें सघन और शीतल छायासहित रत्नोंके दीपोंसे प्रकट, और बनदेवियोंकी सुरक्षित अन्तःपुरकी कुटीके सदृश ॥ ५१ ॥ द्वारभूमिमें फैले हुये अति शीतल अर्थात् शीत निवारणमात्रमें समर्थ प्रकाशयुक्त, और शरदृतुमें उदित सुवर्णके तुल्य सूर्य्यकी गौरवर्ण प्रभाके समान ॥ ५२ ॥ उदयकालके सूर्य्यके तेजसे म्लान, मन्द और शब्दरहित वायुसेयुक्त, लतारूप जटासहित वृक्षोंसे समीप भागमें पूर्ण, और स्वयंवरकेलिये उद्युक्त माला लिये राजकन्याकेसमान स्थित ॥ ५३ ॥ कमलके कोटरकेसमान कोमल इसीसे ब्रह्माके विश्रामके योग्य, चारो ओरसे पुष्पके समूहोंसे कोमल और रमणीय और उपशमकी पदवीकेतुल्य सदा आश्रय करनेके योग्य उस कन्दराको प्राप्त हुआ ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उद्दालक मनोरथो नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

उस गुहामें आसनपर स्थित, समाधिमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाले उद्दालकने अपने चित्तके समझानेके उपाय शोचे यह विषय इस ५२ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सतांविवेशधर्मात्मागंधमादनकंदराम् ॥ चित्रभ्रमणसंप्राप्तामलिःपद्मकुटीमिव ॥ १ ॥ समाधानोन्मुखतयाप्रविशन्सव्यराजत ॥ सर्गव्यापारविरतावात्मपुर्यामिवाब्जजः ॥ २ ॥ चकारासनमम्लानैःपत्रैरंतस्वगुच्छकम् ॥ मृदुमेघविधिर्वृंदमंभोदमिवतत्रसः ॥ ३ ॥ सततप्रस्तारयामासपृष्ठेचारुमृगाजिनम् ॥ नीलरत्नतटेमेरुस्तारासारमिवांबरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-धर्मात्मा उद्दालकमुनिने उस गंधमादनपर्वतकी कन्दरामें ऐसे प्रवेश किया जैसे बहुत प्रसारके भ्रमणसे (खोजनेसे) प्राप्त कमलकी कुटीमें भ्रमर ॥ १ ॥ समाधिकी ओर उन्मुखतासे प्रवेश करते हुये वह ऐसे शोभित हुआ जैसे सृष्टिके व्यापारसे विरक्त ब्रह्माजी सत्यलोकमें अपराजित नाम पुरीमें ॥२॥ नूतन पत्रोंसे कोमल; और निजशरीररूप गुच्छेसहित आसनको इसप्रकार बांधा जैसे इन्द्र मेघको वृन्दमय ॥३॥ उस आसनपर अपने कांखमें स्थित मृगचर्मको ऐसे फैलाया जैसे मेरू अपने रत्नमय तटपर ताराख्प बहुमूल्य रत्नयुक्त आकाशको ॥ ४ ॥

सतत्रोपाविशद्वत्तीश्चेतसस्तनुतांमयन् ॥ अतःशुद्धवपुःशृंगेवृष्यमूकइवांबुदः ॥ ५ ॥ बुद्धवत्सुदृढंबद्धपद्मासनउदङ्मुखः ॥ पार्ष्णिभ्यांवृषणौधृत्वाचकारब्राह्ममंजलिम् ॥ ६ ॥ वासनाभ्यःसमाहृत्यमनोमृगमुपप्लुतम् ॥ निर्विकल्पसमाध्यर्थंचकारेमांविचारणाम् ॥ ७ ॥ अयिमूर्खमनःकोर्थस्तवसंसारवृत्तिभिः ॥ धीमंतोननिषेवंतेपर्यंतेदुःखदांक्रियाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर जड विषयोंके त्यागसे अपने चित्तकी वृत्तियोंको सूक्ष्म करते हुये अन्तःकरणमें शुद्धशरीर, ऐसे स्थितहुआ जैसे वृष्टिकरके पर्वतपरमूक मेघ ॥ ५ ॥ उत्तरमें मुखकरके प्रबुद्ध कपिलादिके समान पद्मासन बांधके और एणियोंसे वृषणों (अण्डकोशों) को दबाकर ब्रह्मादि गुरूपरंपरासे प्राप्त प्रणामकी अंजलि रचा ॥६॥ विषयोंकी ओर दौडते हुये मनरूप मृगको वासनाओंसे निवृत्त करके निर्विकल्प समाधिके अर्थ यह विचार किया ॥ ७ ॥ कि हे मूर्खमन ! तुमको संसारकी वृत्तियोंसे क्या करनाहै क्योंकि बुद्धिमानजन अन्तमें दुःखदायी क्रियाको नहीं करते ॥ ८ ॥

अनुधावतियोभोगांस्त्यक्त्वाशमरसायनम् ॥ संत्यज्यमंदारवनंसयातिविषजंगलम् ॥ ९ ॥ यदियासिमहीरंध्रंब्रह्मलोकमथापिवा ॥ तन्नर्निर्वाणमायासिविनोपशमनामृतम् ॥ १० ॥ आशाशतावपुर्णत्वेत्वमेवंसर्वदुःखदम् ॥ त्यज्ययाहिपरंश्रेयःपरमेकांतसुंदरम् ॥ ११ ॥ इमाविचित्राःकलनाभावाभावमयात्मिकाः ॥ दुःखायैवतवोग्रायनसुखायकदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—जो शान्तिरूप रसायन (अमृत) को त्यागकर विषयभोगोकी ओर दौडताहै वह कल्पवृक्षके बनको त्यागकर मानो विषके जंगलमें जाताहै ॥ ९ ॥ हे मन ! यदि तुम पातालमें जाओ वा ब्रह्मलोकमें जाओ परन्तु शांतिरूप अमृतके बिना निर्वाण अर्थात् नित्य निरतिशय आनन्दमें विश्राम नहीं होता ॥ १० ॥ हे मन ! तुम सैकडों आशाओंसे अपूर्ण होनेपर सबको दुःखदायी होओगे, इसलिये भोगोंकी आशाओंको त्यागकर दुःखरहित निरतिशय आनन्दरूप होनेसे एकान्त सुन्दर परमश्रेय मोक्षको प्राप्त होओ ॥ ११ ॥ इष्टकी सम्पत्ति और अनिष्टके निवारणसे पूर्ण ये चित्र विचित्र विषय तुमारे उग्र दुःखहीके लिये हैं न कि कदाचित् सुखके अर्थ ॥ १२ ॥

शब्दादिकाभिरेताभिःकिंमूर्खहतवृत्तिभिः ॥ भ्रमस्यविरतंव्यर्थंमेघेमंडूकिकायथा ॥ १३ ॥ मनोमंडूकिकेव्यर्थमियंतंकालमंधया ॥ भ्रमंत्याभुवनंक्षिप्रंकिंसमासादितंत्वया ॥ १४ ॥ यस्मात्किंचिदवाप्नोषियस्मिन्वहसिनिर्वृतिम् ॥ तस्मिश्चेतःशमेमूर्खनानुबध्नासिकिंपदम् ॥ १५ ॥ आगत्यश्रोत्रतांमूर्खव्यर्थोत्थानोपबृंहिताम् ॥ धियाशब्दानुसारिण्यामृगवन्माक्षयंव्रज ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मूर्खमन ! जैसे मेडकी मेघमें भ्रमण करती है ऐसेही नष्टवृत्ति इन शब्दादिकी वृत्तियोंमें तुम व्यथ निरन्तर क्यों भ्रमण करते हो ॥ १३ ॥ हे मनरूप ! मण्डूकिके (मेडकी) इतने कालतक व्यर्थ सब जगत्में भ्रमण करती हुई तूंने क्या पाया ? ॥ १४ ॥ हे मन ! जिससे तूं कुछ अर्थात् मन बाणीका अविषय विदेह कैवल्यरूप सुखको प्राप्त करताहै और जिसमें जीवन्मुक्तिके सुखको पाताहै हे मूर्ख चित्त ! उस सब वृत्तियोंके परमरूप समाधिके सुखके लिये उद्योग क्यों नहीं करता ॥ १५ ॥ हे मूर्खचित्त ! व्यर्थ बहिर्मुखतारूप उत्थानसे वृद्धिको प्राप्त श्रोत्रइन्द्रियके साथ अभेदरूपताको प्राप्त होके शब्दके अनुसारिणी बुद्धिसे लुब्धकके गीत वा घंटाके शब्दसे मृगके समान क्षयको न प्राप्तहो ॥ १६ ॥

त्वक्तामागत्यदुःखायस्पर्शोन्मुखतयाधिया ॥ मूर्खमाबद्धतामेहिगजीलुब्धगजेंद्रवत् ॥ १७ ॥ रसनाभावमागत्यगर्द्धेनांधदुरंधसाम् ॥ मानाशमेहिबडिशपिंडीलंपटमत्स्यवत् ॥ १८ ॥ चाक्षुषींवृत्तिमाश्रित्यप्रभारूपचयोन्मुखी ॥ मागच्छदग्धतांमुग्धकांतिलुब्धपतंगवत् ॥ १९ ॥ घ्राणमार्गमुपाश्रित्यशरीरांभोजकोटरे ॥ गंधोन्मुखतयाबंधंमात्वंसंश्रयभृंगवत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे मूर्ख चित्त ! बाह्यस्पर्शकी ओर उन्मुख बुद्धिसे त्वगइन्द्रियताको प्राप्त होकर अर्थात् त्वगिन्द्रियसे अभिन्न होकर हथिनीके लोभसे गजेंद्रके तुल्य लोभसे बंधनमें न प्राप्त हो ॥ १७ ॥ ऐसेही दुष्ट अन्नोंके लोभसे रसना दशाको प्राप्त होकर बंशीमें लगे हुये पिशानके पिंडमें लंपट मीनके समान नाशको न प्राप्त हो ॥ १८ ॥ इसी प्रकार

नानाप्रकारके रूपकी ओर दौडती हुई नेत्र वृत्तिको प्राप्त होकर रूपके लोभी पतंगके सदृश भस्म मत हो जाओ ॥ १९ ॥ हे मूर्ख चित्त ! गन्धकी ओर उन्मुख शरीररूप कमलके कोटरमें नासिका रूपताको प्राप्त होकर भृंगके समान बन्धनमें मत आओ ॥ २० ॥

कुरंगालिपतंगेभमीनास्त्वेकैकशोहताः ॥ सर्वैर्युक्तैनरर्थैस्तुव्याप्तस्याज्ञकुतःसुखम् ॥ २१ ॥ हेचित्तवासनाजालंबंधायभवतोहितम् ॥ स्वात्मनःसहजःफेनस्ततःकुक्रमिणायथा ॥ २२ ॥ शरदभ्रवदागत्यशुद्धित्यक्तभवामयाम् ॥ यदिशाम्यसिनिर्मूलंतदनंतोजयस्तव ॥ २३ ॥ क्षयोदयदशाधात्रींपर्यंतपरितापिनीम् ॥ जानन्नपिजगत्स्थितिंनत्यक्ष्यसिविनंक्ष्यसि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे अज्ञ मन ! मृग, भ्रमर, पतंग, हांथी और मत्स्य ये सब एक एक इन्द्रियोंके अनर्थसे युक्त होनेपर मारे गये और जो मिले हुये पांचों इन्द्रियोंके अनर्थोंसे युक्तहै उसको सुख कहां ? ॥ २१ ॥ हे चित्त ! जैसे दुष्ट कृमि मकरी अपने स्वाभाविक फेनका लार अपने बंधनकेही लिये विस्तारित करतीहै ऐसेही तुमने यह बासनाका जाल अपने बंधनकेही अर्थ रचाहै ॥ २२ ॥ संसारके जन्ममरणादि रोगसे शून्य शुद्धिको कर्म उपासना आदिके द्वारा शरत् कालके मेघके समान प्राप्त होके यदि श्रवणादिके परिपाकसे ज्ञानोदयसे मूल अज्ञानके साथ शान्त हो तो तुह्मारा अनन्त जयहै ॥ २३ ॥ हे चिन्त ! जन्म, मरण, बाल्य यौवनादि तथा दारिद्र्यादि दशाओंको धारण करनेवाले, और मरणके उत्तरभी नरक स्थावर आदि गतिरूप तापको देनेहारी इस जगत्की प्रवृत्तिको जानते हुये भी तुम नहीं त्यागते किंतु इसमें लीन होके नष्ट होते हो ॥ २४ ॥

करोम्यथकिमर्थंवातवैतदनुशासनम् ॥ विचारणवतःपुंसश्चित्तमस्तिहिनानघ ॥ ॥ २५ ॥ यावदज्ञानघनतातावत्प्रघनचित्तता ॥ यावत्प्रावृड्जलदतातावन्नीहारभूरिता ॥ २६ ॥ यावदज्ञानतनुतातावच्चित्तस्यतानवम् ॥ प्रावृट्परिक्षयोयावत्तावन्नीहारसंक्षयः ॥२७॥ यावत्तानवमायातंशुद्धंचित्तंविचारतः ॥ तावत्तत्क्षीणमेवाहंमन्येशारदमेघवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—अथवा हित शून्य तुम हो इसलिये तुमको यह हितोपदेश व्यर्थ है क्योंकि विचारवान् पुरुषको चित्तका उच्छेदही करना चाहिये ॥ २५ ॥ जबतक अज्ञानकी अधिकता रहती है तभीतक चित्तकीभी अधिकता ऐसे रहती है जैसे जबतक वर्षाऋतुमें मेघकी अधिकताहै तबतक नीहारकी अधिकता ॥ २६ ॥ और जबतक अज्ञाकी न्यूनताहै तबतक चित्तकी न्यूनता रहती है क्योंकि वर्षाऋतुका जितना वर्षाका क्षय उतनाही नीहारका संक्षय ॥२७॥ जितना विचारद्वार बासनाके क्षयसे चित्त शुद्धताको प्राप्त होताहै उतनाही शरत्कालके मेघके समान उस चित्तको मैं क्षीणही मानताहूं ॥ २८ ॥

अनुशासनमेतद्यदसतोनश्यतोथवा ॥ क्रियतेतन्नभोवारिपवनाहननैःसमम् ॥ २९ ॥ तस्मात्संक्षीयमाणत्वात्त्यजामित्वामसन्मयम् ॥ मौर्ख्यंपरममेवाहुःपरित्याज्यानुशासनम् ॥ ३० ॥ निर्विकल्पोस्मिचिद्दीपोनिरहंकारवासनः ॥ त्वयाहंकारबीजेननसंबद्धोस्म्यसन्मय ॥ ३१ ॥ अयंसोहमितिव्यर्थंदुर्दृष्टिरवलंबिता ॥ त्वयामूढविनाशायशंकाविषविषूचिका ॥ ३२ ॥

अर्थ—अविवेकीका असत् चित्त और विवेकीका नष्ट होता हुआ चित्त इन दोनोंको उपदेश तथा आकाश जल और वायुके ताडन समानहै अर्थात् निरर्थकहै क्योंकि अविवेकीका तो सुधरेगा नही और विवेकीका नष्टही होजायगा ॥ २९ ॥ इसवास्ते संक्षीयमाण होनेसे असन्मय तुमको मैं त्यागताहुं क्योंकि त्यागके योग्य जो है उसको उपदेश देना परम मूर्खता कही गई है ॥ ३० ॥ मैं चित्‌रूप दीपक विकल्प अहंकार और वासनारहितहुं, हे असत्यरूप चित्त अहंकारके बीजभूत तुमसे मेरा कुछ संबंध नहीं है ॥ ३१ ॥ यह शरीर आदि वह आत्मा मैं हुं इस दुष्टदृष्टिको तुमने विषप्रेरित मिथ्या विषूचिकाके समान मूढ जनोंके नाशार्थही अवलंबित कियाहै ॥ ३२ ॥

अनंतस्यात्मतत्त्वस्यतन्वीतिमनसिस्थितिः ॥ नसंभवतिबिल्वांतर्वासितादंतिनोर्यथा ॥ ३३ ॥ महाश्वभ्रीवगंभीरादुःखदावासनाश्रिता ॥ त्वयैषाबतचित्तेतिनैनामनुसराम्यहम् ॥ ३४ ॥ कःकिलायंमुधामोहोबालस्येवाविचारिणः ॥ अयंसोहमितिभ्रांतिस्त्वहंतापरिकल्पिता ॥ ३५ ॥ पादांगुष्ठाच्छिरोयावत्कणशःप्रविचारितम् ॥ नलब्धोसावहंनामकःस्यादहमितिस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनन्त आत्मतत्वकी परिच्छिन्न स्थिति मनमें ऐसे नहीं सम्भव होती जैसे बिल्वके फलके भीतर हांथी तथा हथिनीकी ॥ ३३ ॥ हे चित्त ! कामक्रोधादिरूप पिशाचोंके स्थानभूत महा पुरानी गडहीके तुल्य, अति दुःखदायिनी इस वासनाको तुमने अपना आश्रय बनायाहै और मैं अब इसका अनुगामी नहीं बनता किन्तु तुम इसके

अनुगामीहो इसलिये तुमकोभी त्यागताहुं ॥३४॥ और यह देह, वह आत्मा मैंहुं, यह मिथ्या भ्रान्ति जो तुमने अहंतासे कल्पित कियाहै वह विचार शून्य बालककेसमान महामोहहै, इससे मेरा क्या सम्बन्धहै अर्थात् कुछ नहीं ॥ ३५ ॥ पादके अंगूठेसे लेके कण २ मैंने विचाराहै परन्तु इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो अहंपदके योग्य स्थितहो ॥३६॥

भरिताशेषदिक्कुंजंयत्स्यामेकंजगत्त्रये ॥ संवेदनमसंवेद्यंसर्वत्रविगतात्मकम् ॥ ३७ ॥ दृश्यतेयस्यनेयत्ता ननामपरिकल्पना ॥ नैकतानान्यतैवेहनमहत्तानचाणुता ॥ ३८ ॥ वेदतत्त्वांस्वसंवेद्यमाततंदुःखकार णम् ॥ विवेकजेनबोधेनतादिदंहन्यसेमया ॥ ३९ ॥ इदंमांसमिदंरक्तमिमान्यस्थीनिदेहके ॥ इमेतेश्वा समरुतःकोसावहमितिस्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण करनेवाला, तीनोंलोकमें एक और क्रमसे ज्ञेय देशकाल तथा वस्तुकृत अवस्थाके परिच्छेदसे शून्य इसी रीतिसे सबप्रकारके स्वरूपसे शून्य जो केवल ज्ञानमात्रहै वह मैंहुं ॥ ३७ ॥ जिसका परिच्छिन्नरूप नामकी परिकल्पना, एकता, अन्यता, महत्ता, तथा अणुता नहीं है वह संवेदनरूप मैंहुं ॥ ३८ ॥ ज्ञानस्वरूप मैंहुं इसीसे साक्षीरूपसे संवेद्य और दुःखके कारण चित्त रूप तमको मैं देखता हुं और इसी कारण विवेकजनित बोधसे मैं तुमको मारताहुं ॥ ३९ ॥ यह मांस यह देह ये हड्डियां, और ये प्राणके वायुहैं इस देहमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४० ॥

स्पंदोहिवातशक्तीनामवबोधोमहाचितः ॥ जरामृतिश्चकायेस्मिन्कोसावहमितिस्थितः ॥ ४१ ॥ मास मन्यदसृक्चान्यदस्थीन्यन्यानिचित्तहे ॥ बोधोन्यस्पंदनंचान्यत्कोसावहमितिस्थितः ॥ ४२ ॥ इदं घ्राणमियंजिह्वात्वगियंश्रवणेइमे ॥ इदंचक्षुरसौस्पर्शःकोसावहमितिस्थितः ॥ ४३ ॥ यथाभूततयाना हंमनोनत्वंनवासना ॥ आत्माशुद्धचिदाभासःकेवलोयंविजृंभते ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस शरीरमें जो संचलन शक्तिहै वह तो प्राणोंकी है, ज्ञान महाचित्काहै, और वृद्धावस्था तथा मरणादि अवस्था इस शरीरमें है इसमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४१ ॥ मांस, रुधिर, हड्डियां, ज्ञान, और संचलनशील इन्द्रिया सब अहंपदसे भिन्नहैं तो अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४२ ॥ यह नासिका, यह जिव्हा, यह त्वक् ये दोनो कान यह नेत्र, और यह स्पर्श है इनमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४३ ॥ यथार्थ विचार करनेसे मन अहं नहीं है, और हे चित्त ! न तुम और न वासना अहं है किंतु चिन्मात्र प्रकाश यह आत्मा अहं (मैं) रूपसे प्रकाशित होरहाहै ॥ ४४ ॥

अहमेवेहसर्वत्रनाहंकिंचिदपीहवा ॥ इत्येवसन्मयीदृष्टिर्नेतरोविद्यतेक्रमः ॥ ४५ ॥ चिरमज्ञानधूर्तेन पीडितोस्मित्वहंतया ॥ वृकेणदृप्तेनाटव्यांलब्धेनपशुपोतकः ॥ ४६ ॥ दिष्ट्येदानींपरिज्ञातोमयैवाज्ञान तस्करः ॥ पुनर्नसंश्रयाम्येनंस्वरूपार्थापहारिणम् ॥ ४७ ॥ निर्दुःखोदुःखयोग्यस्यनाहंतस्यनचैपमे ॥ कश्चिद्भवतिशैलस्यतत्स्थएवयथांबुदः ॥ ४८ ॥

अर्थ—आरोपदृष्टिसे सब कुछ मैं ही हुं, और अपवाद दृष्टिसे मैं कुछ नहीं हुं यही सत्यदृष्टिहै और देहमात्रमें परिच्छिन्न अहंभावरूप अन्य अहंका क्रम नहीं है ॥ ४५ ॥ इस अज्ञानरूप धूर्तसे चिरकालसे मैं ऐसे क्लेशित हुं जैसे बनमें मिले हुये प्रचण्ड वृक (भेडिये) से पशुका लघुबालक ॥ ४६ ॥ वह सौभाग्यहै कि इससमय इस अज्ञानरूप चोरको मैंने जानलिया, और अब परमार्थ आत्मारूप धनके चोरानेवाला इसका आश्रय मैं नहीं करूंगा ॥ ४७ ॥ दुःखरहित मैं उस दुःखके योग्यका कुछ नहीं हुं और न यह मेरा कुछ इसप्रकार नहीं है, जैसे पर्वतपर स्थित मेघ पर्वतका कुछ नहीं है ॥ ४८ ॥

भूत्वात्वहमिदंवच्मिवेद्मितिष्ठामियामिच ॥ आत्मावलोकनेनाहमनहंकारतांगतः ॥ ४९ ॥ नूनमेवाह मेवैतेमन्येज्ञाश्चक्षुरादयः ॥ यांतुतिष्ठंतुवादेहेममैतेतुनकिंचन ॥ ५० ॥ कष्टंकोयमहंनामकथंकेनोपक ल्पितः ॥ जगद्बालकवेतालस्तालोत्तालातुलाकृतिः ॥ ५१ ॥ एतावंतंचिरंकालंव्यर्थमालुठितोऽवटे ॥ अहमत्रतृणोन्मुक्तेदुरद्रौहरिणोयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—किन्तु नटकेसमान अहंकाररूप होके यह तुमको उपदेश आदिका बचन कहताहुं, और चक्षुष् आदि इन्द्रियोंका वा शरीरका रूप धारण करके मैं जानताहुं, स्थित हुं, और आता जाता हुं, क्योंकि आत्माके दर्शनसे मैं अहंकारका विषय नहीं हुं ॥ ४९ ॥ और यह निश्चयहै नेत्रादि इन्द्रियां (इन्द्रियोंको ज्ञानदाता) मैं ही हुं, और यदि मेरेसे भिन्न ये कुछहैं तो अज्ञ (जड) होके देहमें स्थित रहैं वा जांय मेरे तो ये कोई नहीं है ॥ ५० ॥ यह

खेदकी बातहै यह अहं नाम कौनहै कैसे और किससे कल्पितहै, यह तो जगत्रूप बालकका वेताल तालसे ऊंचा तथा दीर्घ आकारवालाहै ॥ ५१ ॥ व्यर्थ इतने कालतक गर्त (गढे) रूप इसमें मैं ऐसे लोटता रहा जैसे तृणसे रहित दुष्टपर्वतपर हरिण ॥ ५२ ॥

स्वार्थमालोकनेचक्षुर्यदितून्मुखतांगतम् ॥ तदहंनामकोसौस्यायोस्मिन्दुःखेनमोहितः ॥ ५३ ॥ स्पर्श नायनिजेतत्त्वेयदिजातात्वगुन्मुखी ॥ तत्कोयंस्यादहंनामकुपिशाचइवोदितः ॥ ५४ ॥ रसेष्वभिनिष ण्णेस्मिन्स्वकर्मेरसनेंद्रिये ॥ अहंमृष्टभुगित्येषकुतस्त्यःकुत्सितोभ्रमः ॥ ५५ ॥ शब्दशक्तिगतेश्रोत्रेवरा केस्वार्थपीडिते ॥ तदहंकारदुःखस्यनिर्बीजस्यकआगमः ॥ ५६ ॥

अर्थ—यदि नेत्र अपने विषयरूपमात्र देखनेमें तत्परहै तो अहंरूप कौनहै जो दुःखसे इसमें मोहितहै ॥ ५३ ॥ यदि त्वगिन्द्रिय अपने विषय स्पर्शनमात्रमें उन्मुखहै तो दुष्ट पिशाचके तुल्य उदयको प्राप्त अहंरूपसे इसमें कौन स्थितहै ॥ ५४ ॥ और रसना (जिव्हा) इन्द्रिय जब केवल रसमात्र साक्षात्कार करनेमें स्थितहै तब मैं स्वादिष्ट पदार्थोंका भोगनेवालाहुं यह निन्दित भ्रम कहांसे आया ॥ ५५ ॥ श्रवणकी तृष्णासे पीडित दीनकर्ण इन्द्रियमें शब्द ग्रहणकी शक्ति रहनेपर मूलरहित अहंकार दुःखका प्रसंग क्या ॥ ५६ ॥

आत्मंभरित्वेननिजेघ्राणेस्वंगंधमागते ॥ अहंघ्रातेतियोमातातंचौरंनैववेद्म्यहम् ॥ ५७ ॥ मृगतृष्णाक्र मेणैषाभावनाव्यर्थभाविनी ॥ भावस्तस्यामसत्यायांयःसोयमितिसंभ्रमः ॥ ५८ ॥ वासनाहीनमप्ये तच्चक्षुरादींद्रियैःस्वतः ॥ प्रवर्त्ततेबहिःस्वार्थेवासनानात्रकारणम् ॥ ५९ ॥ वासनारहितंकर्मक्रियतेनतु चित्तहे ॥ केवलंनानुभूयंतेसुखदुःखदृशोग्रगाः ॥ ६० ॥

अर्थ—अपनेही उदर पोषणमात्रमें लोभी (केवल गंधमात्रका लोभी) नासिका इन्द्रियके अपने विषय गंधमात्रमें आनेपर मैं घ्राता (सूंघनेवाला) हुं इस अभिमान करनेवाले चोरको मैं नहीं जानता ॥ ५७ ॥ इसप्रकार इन्द्रियादिमें जो अहंताकी कल्पनाहै वह मृगतृष्णाकेतुल्य मिथ्याहै, और उस कल्पनाके मिथ्या होनेपर यह देह तथा वह इन्द्रियादि मैं हुं यह भावना भ्रान्तिमात्रहै इसलिये देहादिमें अहंभाव त्याज्यहै ॥ ५८ ॥ हे चित्त ! यह शरीर अपने जीवन हेतु स्वार्थमें वासनासे हीनभी चक्षुष् (नेत्र) आदि इन्द्रियोंके साथ प्रवृत्त होना ऐसे है जैसे दाम व्याल और कट आदिका, इसलिये इस शरीरके व्यापारमें वासना नहीं कारणहै ॥ ५९ ॥ हे चित्त ! वासनारहित जो कर्म कियाजाताहै उसमें तत्कालके भोगाभाससे मैं दुःखी हुं ऐसा अभिमान नहीं होता, और भावी सुखदुःखकी दृष्टिका तो अनुभवही नहीं होता, यह वासनाके त्यागमें गुणहै ॥ ६० ॥

तस्मान्मूर्खाणींद्रियाणित्यक्त्वांतर्वासनांनिजाम् ॥ कुरुध्वंकर्महेसर्वेनदुःखंसमवाप्स्यथ ॥ ६१ ॥ भव द्भिरेवदुःखायवासनावासितामुधा ॥ बालैःपंकक्रीडनकंविनाशेनेवखिन्नता ॥ ६२ ॥ वासनाद्यादृशःस र्वाव्यतिरिक्तास्तुनात्मनः ॥ जलादिवतरंगाद्याज्ञस्यैवान्यस्यनानघ ॥ ६३ ॥ तृष्णयैवविनष्टाःस्थव्यर्थ मिंद्रियबालकाः ॥ कोशकारकुकृमयस्तंतुनेवस्वयंभुवा ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसलिये हे मूर्ख इन्द्रियो ! तुम अपनी वासनाको त्यागके कर्म करो तो हे सर्व इन्द्रिय तुम दुःख नहीं पावोगे ॥ ६१ ॥ जैसे बालक प्रथम मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं पश्चात् उनके विनाशसे आपही दुःखी होते हैं ऐसेही तुम लोगोंने बिषयके उपार्जनमें तथा उनके नाशमें केवल दुःखकेहीलिये आत्मामें वासनाकी कल्पना की है ॥ ६२ ॥ हे पापरहित शुद्धचित्त ! ज्ञानीके अर्थ सब वासना आदिकी दृष्टि आत्मासे भिन्न नहीं है ॥ ६३ ॥ जैसे कोशकार कृमि (मकरी) अपनेहीसे उत्पन्न किये सूत्रसे नष्ट होताहै ऐसेही हे इन्द्रियरूप बालक ! तुम अपनेही रचित तृष्णासे व्यर्थ नष्ट हुये हो ॥ ६४ ॥

तृष्णयैवेहलुठथजरामरणसंकटे ॥ भ्रमदृष्टेववशिखरिपथिकाःश्वभ्रभूमिषु ॥ ६५ ॥ वासनैवेहभवतां हेतुरेकत्रबंधने ॥ रज्जुःशून्याशयप्रोतामुक्तानामाततायथा ॥ ६६ ॥ कल्पनामात्रकलितासत्यैषाहिनव स्तुतः ॥ असंकल्पनमात्रेणदात्रेणेवविलूयते ॥ ६७ ॥ एषाहिभवतामेवविमोहायक्षयायच ॥ वातलेखे वदीपानांस्फुरतामर्पितेजसाम् ॥ ६८ ॥ हेचित्तसर्वेंद्रियकोशतस्मात्सर्वेंद्रियैरैक्यमुपेत्यनूनम् ॥ आलो क्यचात्मानमसत्स्वरूपंनिर्वाणमेवामलबोधमास्व ॥ ६९ ॥ विषयविषविषूचिकामनंतांनिपुणमहंस्थि तिवासनामपास्य ॥ अभिमतपरिहारमंत्रयुक्त्याभवविभवोभगवान्भियामभूमिः ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे इन्द्रियगण ! तुम लोग इस संसाररूप शिला और कंटकमयी भूमिपर नीचे पडे हुये ऐसे लोटरहे हो जैसे मार्गगामी (बटोही) पर्वतके शिखरपर चलते हुये पित्तके कारण भ्रमणशील दृष्टिसे नीचे गिरके लोटते हैं ॥ ६५ ॥ तुम लोगोंके बंधनमें वासना ऐसे कारण है जैसे मोतियोंके छिद्रित आशय (स्थान) में गुंथी हुई रज्जू (रस्सी) ॥ ६६ ॥ यह वासना भ्रांतिमात्रसे रचितहै न कि यथार्थमें इसलिये असंकल्पमात्र शस्त्रसे काटी जाती है ॥ ६७ ॥ यह वासना तुम लोगोंके अज्ञान तथा क्षयकेलिये इसप्रकारहै जैसे वायुकी लेखा दीपोंके तथा उल्का और विद्युत् आदिके नाशकेलिये है ॥ ६८ ॥ हे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके आधारभूत चित्त ! तुम उक्त कारणोंसे सब इन्द्रियोंके साथ निश्चयरूपसे एकताको प्राप्त होके, और अपने स्वरूपको असत् निश्चय करके अपने स्वरूपके साक्षी निर्मल बोधमात्र होके स्थित रहो अर्थात् पुनः चित्त रूपताको न ग्रहण करो ॥ ६९ ॥ हे चित्त ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके वेत्ताओंको अभिमत द्वैतके परिहाररूप मन्त्रकी युक्तिसे असंख्य दुःखदायिनी अहंकारकी वासनामयी जो विषयसम्बन्धी विष (अज्ञान) प्रेरित विषूचिका (महामारी) है उसको कुशलतापूर्वक त्यागकर संसाररहित होके जन्ममरणके अविषय तुम पूर्णानंद आत्मस्वरूप होजाओ ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकविचारो नाम द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

वासना तथा अहंकारसे आत्माकी निर्लिप्तता, शरीर और मनके साथ वैर इत्यादि विषय इस ५३ के सर्गमें निरूपण किया गयाहै ॥

॥ उद्दालकउवाच ॥ अपारपर्यंतवपुःपरमाण्वणुरेवच ॥ चिदचेत्यातदाक्रांतौनशक्तावासनादयः ॥ १ ॥ मनःशेमुष्यहंकार प्रतिबिंबैर्जडेंद्रियैः ॥ वासनावितताशून्यावेतालत्रासनोद्यताः ॥ २ ॥ तत्कृतेभ्यो विचारेभ्योऽनुभूतेभ्योपिभूरिशः ॥ भूयोप्यनुभवत्यंतरहंहिचिदलेपिका ॥ ३ ॥ स्वदुर्भावोपरचितांदेहस्संसारसंस्थितिम् ॥ गृह्णात्वथत्यजतुवाप्यहंहिचिदलेपिका ॥ ४ ॥

अर्थ—उद्दालक बोले—परिच्छिन्न परिमाणयुक्त तथा स्थूल तिलके तैलादि पुष्प आदिसे वासित होते हैं और पृथिवी आदि कस्तूरी आदिसे वासित होते हैं परन्तु सब ओरसे अपार अर्थात् अवधिरहित शरीरवाली, तथा विषयशून्य चित्के किंचित्भी स्पर्श करनेमें वासना आदि समर्थ नहीं है ॥ १ ॥ और चित् प्रतिबिम्बित जड इन्द्रियोंसे बुद्धि तथा अहंकारमें वेतालके सदृश त्रासके अर्थ विस्तारित जो सूक्ष्म वासनाहैं उनको मन अनुभव करताहै ॥ २ ॥ और जाग्रत् अवस्थामें मनसे रचित अनेक विषयोंके विचारोंसे तथा अनुभव किये हुये विषयोंसेभी स्वप्नमें पुनः नाडियोंके छिद्रोंके अन्तर्गत वासनामय विषयोंको अनुभव करताहै और मैं चित्स्वरूप निर्लिप्त हुं ॥ ३ ॥ और यह जो स्थूल शरीरहै वह अपनी दुष्ट चेष्टाओंसे रचित इस संसारकी स्थितिको ग्रहण करै वा त्यागै परन्तु मैं चित् इसके बंधसे निर्लिप्त हुं ॥ ४ ॥

चितोनजन्ममरणेसर्वगायाश्चितःकिल ॥ किंनामम्रियतेजंतुर्मार्यतेकेनवापिकिम् ॥ ५ ॥ चितोनजीवितेनार्थःसर्वात्मासर्वजीवितम् ॥ किंप्राप्स्यतिकदात्मैषाप्रायतायदिर्जीवितम् ॥ ६ ॥ जीव्यतेम्रियतेचेति कुविकल्पकमालिनी ॥ कलनामनसामेवनात्मनोविमलात्मनः ॥ ७ ॥ योह्यहंभावतांप्राप्तोभावाभावैः सगृह्यते ॥ आत्मनोनास्त्यहंभावोभावाभावाःकुतोस्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—चित्के जन्ममरण नहीं हैं क्योंकि सर्वव्यापी निराकार चित्का कौनसा पदार्थ मरसकताहै और जीव किससे मारा जासकताहै और उसका क्या मारा जासकताहै ॥ ५ ॥ और चित्को जीवनसे भी कुछ प्रयोजनहीं है क्योंकि सर्वात्मा चित्ही सबका जीवनहै और जब सम्पूर्ण देशकाल वस्तुमें चित्स्वरूपही विस्तृतहै तो उसको जीवनसे किससमय क्या अभिलषित पदार्थ है ? ॥ ६ ॥ यह मरताहै यह जीताहै इत्यादि कुविकल्पनामयी कल्पना मनकी है न कि निर्मल आत्माकी ॥ ७ ॥ जो देहादिमें अहंभावनाको प्राप्तहै वही जन्ममरणसे गृहीत होताहै और आत्मामें देह आदिमें अहंभावना तो है ही नहीं इसलिये इसके जन्ममरण कहां ? ॥ ८ ॥

अहंभावोमुधामोहोमनश्वमृगतृष्णिका ॥ जडःपदार्थसंभारःकस्याहंकारभावना ॥ ९ ॥ रक्तमांसमयो देहोमनोनष्टंविचारणात् ॥ जडाश्चित्तादयःसर्वेकुतोहंभावभावना ॥ १० ॥ आत्मंभरितयानित्यमिंद्रि

याणिस्थितान्यलम् ॥ पदार्थाश्चपदार्थत्वेकुतोहंभावभावना ॥ ११ ॥ गुणागुणार्थेवर्त्तंतेप्रकृतौप्रकृतिः स्थिता ॥ सदेवसतिविश्रांतंकुतोहंभावभावना ॥ १२ ॥

अर्थ—यह जो देहमें अहंभावनाहै सो मिथ्या मोहरूपहै क्योंकि अहंकार और मन मिथ्या मृगतृष्णारूप होनेसे उनमें अहंभावना असत्है और पदार्थसमूह अत्यन्त जडहै वह अहंभावरूप अभिमानके योग्य नहीं है इसलिये देहमें अहंभावना किसको होसकती है ॥ ९ ॥ और यह देहरक्त मांसादिमयहै और मन विचारसे नष्ट होताहै तथा चित्त आदि सब जडहैं तो इनको अहंभावना कहांसे होसकती है ॥ १० ॥ और इन्द्रियां सब अपने २ रूपादि विषयोंके साक्षात्कार करनेहीमें पूर्णरूपसे स्थितहैं और सब पदार्थ अपने पदार्थत्वके प्रकट करनेमें स्थितहैं तो इनको अहंभावना कहांसे ॥ ११ ॥ सत्व, रजस् और तमोगुण अपने प्रकाश प्रवृत्ति तथा मोहरूप व्यापारमें स्थितहैं, और तीनों-गुणोंकी साम्यावस्थारूप स्वभावमें प्रकृति वा प्रधान नाम माया स्थितहै और सत्ब्रह्म अपने स्वात्मभाव स्वभावमें स्थितहै तो इसमें कहां अहंभावना ॥ १२ ॥

सर्वगंसर्वदेहस्थंसर्वकालमयंमहत् ॥ केवलंपरमात्मानंचिदात्मैवेहसंस्थितः ॥ १३ ॥ एवंकिमाकृतिः कोवाकिमादेशश्चकिंकृतः ॥ किंरूपःकिंमयःकोहंकिंगृह्णामित्यजामिकिम् ॥ १४ ॥ तेनाहंनामनेहास्ति भावाभावोपपत्तिमान् ॥ अनहंकाररूपस्यसंबंधःकेनमेकथम् ॥ १५ ॥ असत्यलमहंकारेसंबंधःकस्य केनकः ॥ संबंधाभावसंसिद्धौविलीनाद्वित्वकल्पना ॥ १६ ॥

अर्थ—और जो इस देहमें चिदाभास स्थितहै वह सर्वगामी, सर्वकालमय, महत् केवल परमानन्द चिदात्माहैं इसलिये देहमें अहंभावना उसको भी नहीं होसकती ॥ १३ ॥ इसप्रकारकी स्थिति होनेपर इस देहमें अहंभावका अभिमानी किसप्रकारका है ? किस आकारका है ? यथार्थमें कौनहैं, उसका निरूपण किसप्रकार होसकताहै किस वर्णकाहै ? किसका विकारहै ? और उस भावसे मैं कोनहुं और क्या ग्रहण करताहुं और क्या त्यागताहुं ॥ १४ ॥ इसलिये भाव अथवा अभावसे उपपत्तियुक्त न होनेसे इस ब्रह्मांडमें अहंभावका अभिमानी यथार्थमें कोई नहीं है और अहंकारसे शून्य चिदात्मस्वरूप मुझसे क्या संबन्धहै ॥१५॥ और अहंकारके पूर्णरीतिसे असत् होनेपर किसका किसके साथ क्या सम्बन्धहै? और सम्बन्धके अभाव सिद्ध होनेसे द्वित्वआदिकी कल्पना विलीन (नष्ट)होचुकी॥१६॥

एवंब्रह्मात्मकमिदंयत्किंचिज्जगतिस्थितम् ॥ सदेवास्मितदेवास्मिपरिशोचामिकिंमुधा ॥ १७ ॥ एकस्मिन्नेवविमलेपदेसर्वगतेस्थिते ॥ अहंकारकलंकस्यकथंनामोदयःकुतः ॥ १८ ॥ नास्त्येवहिपदार्थश्रीरात्मैवास्तीहसर्वगः ॥ पदार्थलक्ष्म्यांसत्यांचसंबंधोस्तिनकस्यचित् ॥ १९ ॥ इंद्रियैरिंद्रियैरंगैर्मनोमनसिव लगति ॥ चिदलिप्तवपुःकेनसंबंधःकस्यकिंकथम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार यह सब जगत् ब्रह्मात्मकहै और मैं वही सत्रूपहुं व्यर्थ शोच क्यों करूं क्योंकि इस समय मैं अद्वैत साम्राज्यमें स्थितहुं ॥ १७ ॥ एक, निर्मल, सर्वव्यापी, और शुद्ध आत्मपदके स्थित रहनेपर अहंकाररूप कलंकका उदय कैसे और कहांसे होसकताहै ? ॥१८॥ यथार्थमें तो पदार्थोंकी शोभा कुछ नहीं है किंतु सर्वव्यापी आत्मा मात्रहै और कथंचित् आभास मात्रसे पदार्थोंकी सत्ता रहनेपर आत्माके साथ उसका कोई संबन्ध नहीं है ॥ १९ ॥ अपने अवयव रूपसे कल्पित सब इन्द्रियोंके साथ यह मन मनमेंही स्वप्नके समान गर्जताहै न कि बाह्य पदार्थोंको वह साक्षात् करनेमें समर्थ होताहै और चित्का शरीर निर्लिप्तहै तो किसका संबंध कैसे और क्या होसकताहै ॥ २० ॥

उपलायःशलाकानासंबंधोनयथामिथः ॥ तथैकत्रापिदृष्टानांदेहेंद्रियमनश्चिताम् ॥ २१ ॥ असदभ्युत्थितेव्यर्थमहंकारमहाभ्रमे ॥ ममेदमिदमस्येतिविपर्यस्तमिदंजगत् ॥ २२ ॥ अतत्त्वालोकजातेयमहंकारचमत्कृतिः ॥ तापेनहिमलेखेवतत्त्वालोकेविलीयते ॥ २३ ॥ आत्मनोव्यतिरेकेणनकिंचिदपिविद्यते ॥ सर्वंब्रह्मेतिमेतत्त्वमेतत्तद्भावयाम्यहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे पाषाण, मणि और लोहकी शलाकाओंका संबंध परस्पर नहीं है ऐसेही एकत्र दृष्टभी इन्द्रिय मन और चेतनका संबन्ध नहीं है ॥ २१ ॥ इस अहंकाररूप महा भ्रमके अज्ञानसे व्यर्थ प्रादुर्भूत होनेपर यह धनादि मेरा है, यह इसकाहै, इत्यादि व्यवहारोंमें यह जगत् भ्रान्तहै ॥ २२ ॥ आत्मतत्वके न देखनेसे यह अहंकारकी चमत्कृति उत्पन्नहै और आत्माके दर्शनसे ऐसे गलित होजाती है जैसे तापसे हिमकी लेखा॥२३॥आत्मासे भिन्न कुछभी नहीं है क्योंकि सब कुछ ब्रह्महीहै यह मुझ साक्षी चेतनको अनुभव सिद्धहै इसलिये उसीकी भावना मैं करताहुं॥२४॥

अहंकारभ्रमस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनःस्मरणंमन्येनूनंविस्मरणंवरम् ॥ २५ ॥ समूलंसंपरित्यज्यचिरायाहंकृतिभ्रमम् ॥ तिष्ठाम्यात्मनिशांतात्माशरत्खंशरदीवखे ॥ २६ ॥ ददात्यनर्थनिचयंवि

स्तारयतिदुष्कृतम् ॥ विस्तारयतिसंतापमहंभावोनुसंहितः ॥ २७ ॥ स्फुरत्यहंकारघनेहृद्व्योम्निससि लात्मनि ॥ विकसत्यभितःकायकदंबेदोषमंजरी ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशके वर्णके समान उत्पन्न इस अहंकाररूप भ्रमका पुनः स्मरण न होनेके लिये विस्मरण होने-हीको मैं निश्चयरूपसे उत्तम समझताहुं ॥ २५ ॥ मूल अविद्यासहित इस अहंकाररूप भ्रमको चिरकालके लिये त्या-गकर शान्तात्मा मैं अपने आत्मामें ऐसे स्थितहुं जैसे शरत्कालका आकाश अपने निर्मल स्वभावरूप आकाशमें ॥२६॥ देहादिमें बढा हुआ यह अहंभाव अनर्थ समूहको देताहै और पाप तथा संतापको बढाताहै ॥ २७ ॥ हृदयरूप आकाशमें अहंकाररूप मेघके स्फुरित होनेपर दुर्वासनारूप जलके भीतर शरीररूप कदंबमें दोषरूप लता चारो ओरसे विकसित होती है ॥ २८ ॥

मरणंजीवितोपांतंजीवितंमरणांतगम् ॥ भावोभावाद्व्यवच्छिन्नःकष्टेयंदुःखवेदना ॥ २९ ॥ इदंलब्धमि दंप्राप्स्यामीत्यार्तिर्दाहकारिणी ॥ नशाम्यत्यर्करत्नानांग्रीष्मेग्निरिवद्धिंयाम् ॥ ३० ॥ नास्तीदमिदम स्तीतिचिंताधावत्यहंकृतिम् ॥ जडाशयाजडामभ्रमालाशैलवलीमिव ॥ ३१ ॥ अहंभावेपरिक्षीणेशुष्कः संसारपादपः ॥ भूयःप्रयच्छत्यरसोनपाषाणवदंकुरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मरण आदि अन्य लोकका दुःख पुनर्जन्मपर्य्यन्त होता रहताहै और जीवित अर्थात् इस लोकका दुःख मरणपर्य्यन्त होता रहताहै, तथा भोग्यपदार्थ नाशसे खंडित है, अहो ! यह दुःखवेदना कैसी कष्टदायिनी है ॥ २९ ॥ यह पाया यह और पाऊंगा इत्यादि अन्तःकरणको भस्मकरनेवाली मूर्खोंकी पीडा किसी समय ऐसे नहीं शान्त होती जैसे ग्रीष्मकालमें सूर्य्यकान्तमणियोंकी अग्नि ॥३०॥यह है, यह नहीं है, इत्यादि मूर्खोंकी चिंता अहंका-रकी ओर ऐसे दौडती है जैसे जलके आश्रय मेघोंकीमाला पर्वतोंकी पंक्तिकी ओर ॥ ३१ ॥ देहादिमें अहंभावके क्षीण होनेपर संसाररूप वृक्ष सूखकर नीरस होजाताहै इसीसे पाषाणके तुल्य रागद्वेषआदि अंकुर नहीं उत्पन्न करता ॥३२॥

स्वतृष्णाकृष्णभोगिन्योदेहद्रुमकृतालयाः ॥ क्वापियांतिविचारात्मन्यागतेविनतासुते ॥ ३३ ॥ असद भ्युत्थितेविश्वेतज्जातेभ्रमसन्मये ॥ असन्मयपरिस्पंदेत्वहंत्वंचेतिकःक्रमः ॥ ३४ ॥ इदंजगद्देत्या दावकारणमकारणात् ॥ यदकारणमुद्भूतंतत्सदित्युच्यतेकथम् ॥ ३५ ॥ अपर्यंतपुराकालेमृदिकुंभइ वाकृतिः ॥ देहोभवदिदानींतुतथैवास्तिभविष्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस देहरूप वृक्षमें स्थान किये हुये अपनी तृष्णारूप काली सर्पिणी (नागिनि) आत्मज्ञानरूप गरू-डके आनेपर न जाने कहां चली जाती है ॥ ३३ ॥ अज्ञानसे उत्पन्न तथा अज्ञानसेही सत्के समान भासमान, और असत्य व्यवहार युक्त इस संसारके सिद्ध होनेपर "त्वम्" और "अहम्" इत्यादि भेद व्यवहारकाभी क्या अवसरहै ॥ ३४ ॥ कारणताके अयोग्य अज्ञानसे निष्प्रयोजन यह संसार प्रथम उत्पन्न हुआ है और जो विनाकारण उत्पन्न है वह सत्य कैसे कहां जासकता है ॥ ३५ ॥ हे चित्त ! यह देह अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अनादिकालमें मृत्तिकामें घटके समान चिद्रूपमें था और इस समयभी वैसाही है और रहेगा ॥ ३६ ॥

मध्येतरपयोमात्रंकंचित्कालंचलाचलम् ॥ आद्यंतसौम्यतेत्यक्त्वावारिवीचितयायथा ॥ ३७ ॥ अस्मि न्क्षणपरिस्पंदेदेहेविसरणोन्मुखे ॥ तरंगेचनिबद्धास्थायेहतास्तेकुबुद्धयः ॥३८॥ प्राक्पुरस्ताच्चसर्वाणि संतिवस्तूनिनाभितः ॥ मध्येस्फुटत्वमेतेषांकैवास्थाहतरूपिणी ॥ ३९ ॥ चित्तंपूर्वंपुरस्ताच्चचिद्देहंशां तमित्यपि ॥ सदसद्वाखसंलीनंमध्येस्मिन्किंतवोदितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे तरंगरूपसे अपनी उत्पत्तिसे पूर्व और उत्तरकालमें केवल जलमात्र है किंतु मध्यमें कुछ कालके लिये किंचित् चंचल तरंगरूपसे स्थितहै न कि वह जलसे पृथक् कोई वस्तुहै ऐसे देहादि तीनोंकालमें ब्रह्मरूपही है ॥ ३७ ॥ क्षणमात्रके अर्थ चेष्टासहित और नाशकी ओर उन्मुख इस शरीर तथा तरंगमें जो कुबुद्धि विश्वास करते हैं वे नष्टही हैं ॥ ३८ ॥ उत्पत्तिसे पूर्व तथा उत्तरकालमें सर्वत्र कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु मध्यमें अपने अधिकरण एकसत्ता वा हस्तमात्र देशमें विद्यमानरूपसे भान होते हैं तो इस हस्तरूपमें विश्वास क्या ? ॥ ३९ ॥ और लिंग (सूक्ष्म शरीर) भी अपनी उत्पत्तिके पूर्वकाल तथा देशमें निजसाक्षी चिन्मात्र स्वभाव था ऐसे ही उत्तरकाल तथा देशान्तरमेंभी शान्तरूपहै तो इसीसे आकाशमें गुप्तके सदृश सत् वा असत्रूपसे अनिर्वचनीय है तो चित्तबुद्धि आदिसाहित यह सूक्ष्मशरीर वर्तमानकाल तथा निज अधिकरण देशमेंभी ब्रह्मसे भिन्न कहो क्या तुमारा उदित हुआ अर्थात् कुछ नहीं ॥ ४० ॥

यथास्वप्नविकारेषुयथासंभ्रमदृष्टिषु ॥ यथावामदलीलासुयथानौयानसंभ्रमे ॥ ४१ ॥ यथाधातुविकारेषुयथाचेंद्रियविक्लवे ॥ यथातिसंभ्रमानंदेदोषावेशदशासुच ॥ ४२ ॥ दृश्यतेक्षीयतेचैवरूपंसदसतोश्चलम् ॥ तथैवेयमिहत्वेषाकालेन्यूनातिरिक्तका ॥ ४३ ॥ साचत्वयाकृतानित्यंचित्तदुःखसुखोदये ॥ यथावियोगयामिन्योमतयोहंतिरागिणम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नके विकारोंमे, व्याघ्र आदि संभ्रमकी दृष्टियोंमें, मदकी लीलाओंमें, नौका आदि यानकी यात्राके संभ्रममें ॥ ४१ ॥ पित्त आदिके विकारोंमें, नेत्र आदि इन्द्रियोंके दूषित होनेपर दो चंद्र आदि भ्रममें, अति प्रियतमके लाभ जनित हर्षमें, और विधुर वा स्त्रीरहित कामीपुरुषोंकी कामादि ग्रस्त दशाओंमें भी भाव तथा अभावका चलरूप प्रतीति काल मात्र स्थायी कुछ कामिनी आदि रूपसे देख पडताहै और शीघ्रही बाध होनेसे नष्ट होजाता ऐसेही इस संसारकी भ्रान्तिहै परंतु इस संसारकी भ्रान्तिमें विशेषता इतनी है कि यह मोक्ष पर्य्यन्त अधिक कालतक रहती है और स्वप्न आदिकी भ्रांन्ति न्यूनकालतक रहती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह कालकृत न्यूनता और अधिकता व्यवहारकी वस्तुओंमें सत्यताकी भ्रान्तिसे संयोग वियोगद्वारा नित्य सुखदुःखके उदयसे तुमारी की हुई तुमको ही अधिक ऐसे पीडित करती है जैसे स्त्री पुत्रादिके मरण न होनेपरभी दुष्ट प्रतारकके बचनसे उत्पन्नहै मरणकी बुद्धि जिनमें ऐसी कल्पित वियोगकी रात्रि रागी पुरूषको मारती हैं ॥ ४४ ॥

मय्येवेहासदभ्यासान्मिथ्यासदिवलक्ष्यसे ॥ मृगतृष्णेवतेनैतत्त्वत्कृतंमत्कृतंभवेत् ॥ ४५ ॥ यदिदंकिंचिदाभोगितत्सर्वंदृश्यमंडलम् ॥ अवस्त्वितिविनिर्णीयमनोयात्यमनःपदम् ॥ ४६ ॥ आवस्त्विदमितिस्फारैरूढेमनसिनिश्चये ॥ हेमंतइवमंजर्यःक्षीयंतेभोगवासनाः ॥ ४७ ॥ चित्त्वादृष्टात्मनानूनंसंत्यक्तमननौजसा ॥ मनसावीतरागेणस्वयंस्वस्थेनभूयते ॥ ४८ ॥

अर्थ—अथवा हे चित्त इसमें तुमारा अपराध नहीं है किंतु तुमारेमें मेरे अहंभावके अभ्याससे मृगतृष्णाके तुल्य तुम असत्भी मुझे सत्के समान देख पडतेहो इसीसे तुमारा किया कार्य्य मेरा किया होजाताहै ॥ ४५ ॥ इसी कारणसे यह जो कुछ विस्तारयुक्त दृश्य मंडलहै वह संपूर्ण अवस्तुहै अर्थात् मिथ्याहै ऐसा निर्णय करके मन जो है वह अमन पद (ब्रह्मरूपता) को प्राप्त होताहै अर्थात् तुमारे विवेकसे मेरे अपराधरूप तुमारी शांति होती है ॥ ४६ ॥ यह संसार मिथ्याहै ऐसा विशाल निश्चय मनमें दृढ होनेपर भोगोंकी वासना ऐसे क्षीण होजाती हैं जैसे शीतऋतुमें कमलकी लता ॥ ४७ ॥ चित्के प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेसे चित्तरूप, आत्मदर्शी, संकल्प विकल्पमय व्यापारको त्यागनेवाला और बीतराग मन स्वयं स्वस्थ होजाताहै ॥ ४८ ॥

परमात्मानलेक्षिप्तंसंवृत्त्यावयवंस्वयम् ॥ दग्ध्वात्मानमलंचित्तंशुद्धतामेतिशाश्वतीम् ॥ ४९ ॥ देहमन्यतयादृष्ट्वात्यक्त्वाविषयवासनाम् ॥ विनाशमुररीकृत्यमनोजयतिवीरवत् ॥ ५० ॥ मनःशत्रुःशरीरस्यशरीरंमनसोरिपुः ॥ एकाभावेननश्येतेआधाराधेयकार्यवत् ॥ ५१ ॥ रागद्वेषवतोर्नित्यमन्योन्यातिविरुद्धयोः ॥ एतयोर्मूलकाषेणविनाशःपरमंसुखम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह चित् अपने अंगभूत इन्द्रियादिको एकत्र करके तत्वज्ञानसे परमात्मारूप अग्निमें फेके हुये अपने चित्तस्वरूपको भस्म करके अत्यन्त नित्य शुद्धताको प्राप्त होताहै ॥४९॥ यह चित्त देहको अपनेसे भिन्न देखके विषय वासनाको त्यागकर अपने विनाशको भी स्वीकार करके ब्रह्मलोकको ऐसे जीतताहै जैसे युद्धमें वीरपुरूष ॥ ५० ॥ मन जो है वह शरीरका तापकहै और शरीर मनका तापकहै और एककी वासनाके उच्छेदसे दोनों ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे आधार तथा आधेय घट और जलका कार्य्यभूत जो संयोगहै वह जल घटमेंसे किसीके नाशसे नष्ट होजाताहै ॥ ५१ ॥ उसप्रकार परस्पर उपजीवी होनेसे रागवान् और परस्पर तापक होनेसे द्वेषवान् शरीर और मनका मूल अविद्याके सहित नाश होनेसे ही जीवको परमसुख इसप्रकारहै जैसे व्याघ्रोंके नाशसे बनके हरिणोंको ॥ ५२ ॥

एतयोरकेसंस्थानेमृतिरित्येवयाकथा ॥ साव्योम्न्ययाखियाभुक्ताधरेतिकथयासमा ॥ ५३ ॥ अकृत्रिमविरोधस्थौयत्रसंघटितावुभौ ॥ धाराइवपतंत्येवतत्रानर्थपरंपराः ॥ ५४ ॥ मिथोविरुद्धसंसर्गैरतिमेत्यधमोहियः ॥ त्यक्तव्यःसपतद्धारावग्निराशावलेपने ॥ ५५ ॥ संकल्पेनमनःपुष्ट्वाशरीरंबालयक्षवत् ॥ आयुरेवाशनान्यस्मैस्वदुःखानिप्रयच्छति ॥ ५६ ॥

अर्थ—इन दोनोंमें एकके रहनेपरभी मृत्युसे सब दुःखका नाश होगा यह जो कथाहै सो ऐसी है जैसी आकाशमें जाती हुई स्त्रीने पृथिवीको ग्रसलिया इसके समान (असंभव) है अर्थात् देहके नाश होनेपर मनसे पुनः देहकी

अनिवारणीय कल्पना होजायगी ॥ ९३ ॥ और स्वाभाविक विरोधवाले ये शरीर और मन जहां एकत्र स्थित होते हैं अनर्थकी परंपरा ऐसे गिरती हैं जैसे दो युद्ध करनेवालोंके मध्यमें स्थित पुरुषके ऊपर खड्ग बाण आदिकी धारा॥९४॥ परस्पर बिरोधी देह और मन जिसमें उत्पन्न किये जाते हैं ऐसे विषयके सुखभोगमें जो अधम सत्य मानकर प्रीति करताहै उसको ऐसे वडवानलमें फेकना चाहिये जहां निरन्तर अग्निसे प्रतप्त जलकी धारा गिररही है वहां भी वह विषयके सुखमें प्रीति करेगा ॥ ९५ ॥ जैसे बालक पिशाचकी कल्पना करताहै ऐसेही मन अपने संकलपसे शरीरकी कल्पना करके, और आयुपर्य्यन्त उसको भोजनकी कल्पनासे पुष्ट करके अपने दुःखोंको भी इसको दे देताहै ॥ ९६ ॥

तैर्दुःखैस्तापितोदेहोमनोहंतुमथेच्छति ॥ पुत्रोपिहंतिपितरमाततायिपदंगतम् ॥ ५७ ॥ नास्तिशत्रुःप्रकृत्यैवनचमित्रंकदाचन ॥ सुखदंमित्रमित्युक्तंदुःखदाःशत्रवःस्मृताः ॥ ५८ ॥ देहोदुःखान्यनुभवन्स्वमनोहंतुमिच्छति ॥ देहंमनःस्वदुःखानांसंकेतंकुरुतेक्षणात् ॥ ५९ ॥ एवंमिथोदुःखदयोःश्लिष्टयोः कःसुखागमः ॥ एतयोर्देहमनसोर्जात्यैवातिविरुद्धयोः ॥ ६० ॥

अर्थ—उन मनके दिये हुये दुःखोंसे तापित यह शरीर दुष्ट व्यसनोंके सेवनद्वारा मनमें राग, द्वेष, शोक, मोह और पाप आदिको उत्पन्न करनेसे उस मनको पीडित करना चाहताहै यद्यपि मनसे उत्पन्न शरीर मनका पुत्रहै तथापि पीडा जनक आततायी पदको प्राप्त पिताको पुत्रभी मारता ही है ॥ ५७ ॥ क्योंकि स्वभावसे न कोई कभी किसीका शत्रुहै और न मित्रहै किंतु सुख देनेवालेको मित्र कहा है और दुःखके देनेवाले शत्रु कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ यह देह दुःखोंको अनुभव करता हुआ अपने मनको मारना चाहताहै और मन भी अपने दुःखोंके भोगका स्थान क्षणभरमें अपने संकलपसे करताहै ॥ ५९ ॥ इसप्रकार परस्पर दुःखदायी, मिले हुये और स्वभावसे ही विरुद्ध इन देह और मनके वर्तमान रहते सुखका आगम कहां ॥ ६० ॥

मनस्येवपरिक्षीणेनदेहोदुःखभाजनम् ॥ तत्क्षयोत्कतयानित्यंदेहोपिपरिधावति ॥ ६१ ॥ नष्टानष्टमनर्थायशरीरंपदमापदाम् ॥ अलब्धात्मविवेकेनमनसासुप्रजायते ॥ ६२ ॥ एतेमनःशरीरेहिमिथःपीवरतांगते ॥ जडरूपेहिवपुषापयोदसरसीयथा ॥ ६३ ॥ मिथोदुःखायसंपन्नेएकरूपेद्विधास्थिते ॥ व्यवहारपरेसार्द्धंलोकेवार्यनलाविव ॥ ६४ ॥

अर्थ—मनके क्षीण होनेपर शरीर दुःखका पात्र नहीं रहता इसलिये यह अति अभिलाषासे उस मनके नाशके अर्थ ज्ञान तथा उसके साधनोंमें दौडताहै ॥ ६१ ॥ जबतक मनको आत्माका ज्ञान नहीं तबतक चाहै शरीरको वह नष्ट करै वा न नष्ट करै परन्तु वह शरीर आपत्तियोंका स्थान होकर अनर्थके ही लिये होताहै ॥ ६२ ॥ जडरूप ये मन और शरीर परस्परके अनुग्रहसे शरीरसे स्थूलताको ऐसे प्राप्त है जैसे मेघ और तडाग ॥ ६३ ॥ परस्पर विरुद्धतासे दो रूपसे स्थितभी ये शरीर और मन परस्पर अभेदके अध्याससे एकरूपसे स्थित होके दुःखोंके भोगनेके वा परिहारके लिये साथ मिलकर भोग अथवा मोक्षके व्यवहार साधनमें ऐसे तत्पर हैं जैसे पाक क्रियाके लिये अग्नि और जल ॥ ६४ ॥

चित्तेक्षयिणिसंक्षीणेदेहोह्यामूलितोभवेत् ॥ वर्द्धमानेतरुरिवशतशाखःप्रवर्त्तते ॥ ६५ ॥ क्षीयतेमनसिक्षीणेदेहःप्रक्षीणवासनः ॥ मनोनक्षीयतेक्षीणेदेहेतत्क्षपयेत्मनः ॥ ६६ ॥ संकल्पपादपंतृष्णालतंछित्त्वामनोवनम् ॥ विततांभुवमासाद्यविहराम्यथासुखम् ॥ ६७ ॥ प्रक्षीयमाणमेवेदंनमनोमनसिस्थितम् ॥ प्रशाम्यद्वासनाजालंप्रावृडंतइवांबुदः ॥ ६८ ॥

अर्थ—नाशमान चित्तके क्षीण होनेसे शरीर मूलसे उच्छिन्न होजाताहै और मनके बढनेपर सैकडो शाखासहित वृक्षके समान बढताहै ॥ ६५ ॥ मनके क्षीण होनेपर वासना रहित शरीरभी क्षीण होजाताहै और शरीरके क्षीण होनेसे मन नहीं क्षीण होता इसलिये आत्माके विवेकादिसे मनको क्षीण करना चाहिये ॥६६॥ इस हेतुसे संकलपरूप वृक्षसे पूर्ण और बनरूप लतासहित मनरूप बनका छेदन करके विशाल परमात्मारूप भूमिको प्राप्त होके सुखसे विहार करूं ॥ ६७ ॥ क्षीण होता हुआ यह मन अपने मनके स्वभावमें नहीं स्थित रहता किंतु वासनाओंके जालके शान्त होनेसे वर्षाके अन्तमें मेघके समान नष्ट होजाताहै ॥ ६८ ॥

धातूनांसन्निवेशोयंदेहनामारिपुर्मम ॥ प्रक्षीयमाणेमनसिगलत्वेषोवतिष्ठतु ॥ ६९ ॥ यदर्थंकिलभोगश्रीर्वांछतेस्वकलेवरम् ॥ तन्मेनापिनतस्याहंकोर्थःसुखलवेनमे ॥ ७० ॥ नाहंदेहइतित्वस्मिन्युक्तिमाकर्णयक्रमे ॥ सर्वांगेष्वपिसत्स्वेवशवःकस्मान्नवल्गति ॥ ७१ ॥ तस्माद्देहादतीतोहंनित्योऽनस्तमितद्युतिः ॥ यःसंगंभास्वताप्राप्यवेभिव्योमनिभास्करम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—त्वचा, रूधिर, मास, हड्डी, मेदा मज्जा और शुक्र (वीर्य) धातुओंकी रचना विशेष यह शरीर नाम मेरा शत्रुहै मनके नष्ट होनेपर वह स्थित रहै वा नष्टहो मेरा इससे कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥ ६९ ॥ जिसके लिये भोगकी लक्ष्मी अपने शरीरको चाहती है वह न मेराहै न मैं उसका हुं इसलिये सुखके लेशसे भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ७० ॥ मैं यह देह नहीं हुं इसमें युक्ति मुझसे सुनो क्योंकि सब हस्त पाद आदि अंगोंके रहनेपरभी मृतक शरीर क्यों नहीं दर्शन श्रवण आदि व्यवहार करता ॥ ७१ ॥ इस कारण देहसे पृथक्, नित्य, सदा प्रकाशशील मैं हुं, जो व्यापक होनेसे सूर्यमण्डलमें सूर्यके साथ संगति प्राप्त करके आकाशमें सूर्यको भी जानताहुं वह चिद्रूप मैंहुं ॥७२॥

नाज्ञोहंनचमेदुःखंनानर्थोनिचदुःखिता ॥ शरीरमस्तुमावास्तुस्थितोस्मिविगतज्वरः ॥७३॥ यत्रात्मातत्र नमनोनेंद्रियाणिनवासनाः ॥ पामराःपरितिष्ठंतिनिकटेनमहीभृतः ॥ ७४ ॥ पदंतदनुयातोस्मिकेवलो स्मिजयाम्यहम् ॥ निर्वाणोस्मिनिरीहोस्मिनिरंशोस्मिनिरीप्सितः ॥ ७५ ॥ इदानीमस्म्यसंबद्धोमनोदे हेंद्रियादिभिः ॥ पृथक्कृतस्यतैलस्यतिलैर्विगलनैरिव ॥७६॥

अर्थ—मैं अज्ञ नहीं न मुझे दुःख न अनर्थ और न दुःखिताहै यह शरीर रहै वा न रहै मैं तो सन्तापरहित स्थितहुं ॥ ७३ ॥ जहां आत्माहै वहां न मन, न इन्द्रिय, और न वासना पहुंचसकती हैं क्योंकि राजाओंके निकट पामर नहीं रहसकते ॥ ७४ ॥ मैं उस परम (ब्रह्म) पदको प्राप्तहुं केवलहुं, सबके ऊपर विजयीहुं, शान्तहुं, निरवयवहुं, और चेष्टा तथा इच्छारहितहुं, ॥ ७५ ॥ इससमय मैं देह मन और इन्द्रियादिके सम्बन्धसे ऐसे रहितहुं जैसे पृथक् किया हुआ तैल तिल निकाले हुये तिलोंसे ॥ ७६ ॥

स्वस्मात्पदवरादस्माल्लीलयाचलितस्यमे ॥ पृथक्कृतमतेःकिंचपरिवारोह्ययंशुभः ॥ ७७ ॥ स्वच्छतो र्जिततासत्ताहृद्यतासत्यताज्ञता ॥ आनंदितोपशमितासदाचमृदुभाषिता ॥ ७८ ॥ पूर्णतोदारतासत्या कांतिमत्तैकताननता ॥ सर्वैकतानिर्भयताक्षीणद्वित्वविकल्पता ॥ ७९ ॥ नित्योदिताःसमाःस्वस्थाःसुं दर्यःसुभगोदयाः ॥ ममैकात्ममतेर्नित्यंकांताहृदयवल्लभाः ॥ ८० ॥ सर्वथासर्वदासर्वसर्वस्मिन्संभ भवत्यतः ॥ सर्वप्रतिममक्षीणेवांछावांछेसुखासुखे ॥ ८१ ॥ विगतमोहतयाविमनस्तयागतविकल्पन चित्ततयास्फुटम् ॥ उपरमाम्यहमात्मनिशीतलेघनलवःशरदीवनभस्तले ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविचारविलासो नाम त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—अपने श्रेष्ठ आत्मपदसे शेष प्रारब्ध कर्मोंकी भोगकी लीलासे चालित और देह इन्द्रियादिसे पृथक् बुद्धिवाला जो मैं हुं उसका देह इन्द्रिय आदि उत्तम परिवार विलासकेलिये हैं ॥ ७७ ॥ और स्वच्छता, पूर्णकामता, आत्मसत्ता, रमणीयता, आत्मज्ञानता, आनन्दिता, उपशमिता, सदाचारता, मृदुभाषिता ॥ ७८ ॥ पूर्णता, निर्लोभता, अबाधितस्वभावता, कांतिमत्ता ब्रह्मके साथ नित्य एकतात्मता, सबके साथ एकात्मता, निर्भयता द्वित्व तथा विकल्पोंकी क्षीणता, ॥ ७९ ॥ ये सब नित्य उदयको प्राप्त, सम, स्वस्थ, और सौभाग्ययुक्त अतिसुन्दरी एकात्मबुद्धि जो मैं हुं तिसकी प्राणप्रिय वल्लभा (स्त्री) हैं ॥ ८० ॥ सबप्रकारसे सदा सब कुछ सबमें कल्पनासे सम्भव होसकताहै इसलिये, सबमें मेरा रागद्वेष तथा उसके फलभूत सुखदुःख क्षीणहैं ॥ ८१ ॥ मोह तथा मनकेरहित होनेसे तथा विकल्पयुक्त चित्त नष्ट होनेसे इससमय मैं प्रत्यक्ष रीतिसे दृश्यवर्गको त्यागकर आत्मामें ऐसे विश्राम करताहुं जैसे शरदृतुमें शीतल आकाशमें मेघका खण्ड ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकविचार विलासो नाम त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

अग्नि और जल प्रलयादिसे अपने शरीरको विष्णुकी शरीरभावना करते हुये सब विकल्पोंको कपा (त्याग) कर उद्दालकमुनि समाधिमें विश्राम किया यह विषय इस ५४ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिनिर्णीयततयाधियाधवलयामुनिः ॥ बद्धपद्मासनस्तस्थावर्धोन्मीलितलो चनः ॥ १ ॥ ओमित्येतत्परंब्रह्मनिर्णीयसमुनिस्तदा ॥ ॐकारोच्चारितोयेनतेनाप्तंपरमंपदम् ॥ २ ॥

ॐकारमकरोत्तारस्वरमूर्ध्वगतध्वनिम् ॥ सम्यगाहतलांगूलंघंटाकुंडमिवारवम् ॥ ३ ॥ ओमुच्चारयतस्त स्यसंवित्तस्त्वेतद्गुन्मुखे ॥ यावदोंकारमूर्द्धस्थेवितत्तेविमलात्मनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–शुद्ध तथा उदारबुद्धिसे उद्दालकमुनिने पूर्वोक्त रीतिसे निर्णय करके पद्मासन बांध और अर्द्धनेत्र मून्दकर स्थित हुआ ॥ १ ॥ ओम् यह जो है वह ब्रह्महै और जिसने ओंकारका उच्चारण किया उसने परमपदको पाया ऐसा निर्णय करके उस उद्दालकमुनिने ॥ २ ॥ उच्चस्वर और उर्द्धगतध्वनिसे ओंकारका उच्चारण इस प्रकार किया जैसे भलीभांति लम्बमान जिव्हाकार लोहासहित घंटेका शब्द ॥ ३ ॥ उस उद्दालकमुनिने तबतक ओंकारका उच्चारण किया जबतक इसके मूलाधारसे लेके ब्रह्मरंध्रपर्य्यन्त प्रसिद्ध सुषुम्नानाडीमें ओंकारके शिरपर स्थित अर्द्धमात्राके उपरममें अभिव्यक्त व्यापक और निर्मल आत्मब्रह्ममें ओंकार वृत्तिका उपहितचेतन और कूटस्थ जीवचेतन अभिमुख नहीं हुये ॥ ४ ॥

सार्द्धत्र्यंशात्ममात्रस्यप्रथमेंशेस्फुटारवे ॥ प्रणवस्यसमाक्षुब्धप्राणाराणितदेहके ॥ ५ ॥ रेचकाख्योखि लंकायंप्राणनिष्क्रमणक्रमः ॥ रिक्तीचकारपीतांबुरगस्त्यइवसागरम् ॥ ६ ॥ अतिष्ठत्प्राणपवनश्चिद्रसा पूरितांबरे ॥ त्यक्तदेहःपरित्यक्तनीडःखगइवांबरे ॥ ७ ॥ हृदयाग्निर्ज्वलज्ज्वालोददाहनिखिलंवपुः ॥ उत्पातपवनोद्भूतोदावःशुष्कमिवद्रुमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अकार उकार और मकाररूप साढेतीन मात्रासहित प्रणवके प्रथम अंशउदात्त अकार भागके उच्च स्वरसे प्रकट उच्चारित होने तथा भलीभांति संक्षुब्ध बाह्यदेशमें निकलनेमें उद्युक्त प्राणोंसे मूल देशसे लेके ओष्ट पर्य्यंत देहके शब्दसहित करनेपर ॥ ५ ॥ रेचक नामसे प्रसिद्ध प्राणोंके निष्क्रमण (निकलने) के क्रमने सब शरीरको ऐसे खाली किया जैसे अगस्त्यऋषिने समुद्र ॥ ६ ॥ उसके शरीरसे त्यागाहुआ रेचक नाम प्राणवायु चिद्रस अर्थात् ब्रह्मभावनासे अभिव्यक्त हृदयके अमृतसे पूर्ण बाह्य आकाशमें ऐसे स्थित हुआ जैसे अपने खुंथेको त्यागकर पक्षी ॥ ७ ॥ उससमय जलती ज्वालासहित हृदयस्थ अग्निने सब देहको ऐसे भस्म किया जैसे उत्पातके वायुसे उत्पन्न बनकी अग्नि सुखेहुये वृक्षको ॥ ८ ॥

यावदित्थमवस्थैषाप्रणवप्रथमक्रमे ॥ बभूवनहठादेवहठयोगोहिदुःखदः ॥ ९ ॥ अथेतरांशावसरेप्रणव स्यसमस्थितौ ॥ निष्कंपकुंभकोनामप्राणानामभवत्क्रमः ॥ १० ॥ नबहिर्नांतरेनाधोनोर्ध्वेनाशासुतत्र ते ॥ संक्षोभमगमन्प्राणाआपःसंस्तंभिताइव ॥ ११ ॥ दग्धदेहपुरोवह्निःशशामाशनिवत्क्षणात् ॥ अ दृश्यतसितंभस्मशारीरंहिमपांडुरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—तबतक यह अवस्था प्राणके प्रथम क्रममें भावनासे हुई न कि हठसे क्योंकि हठयोग अति दुःखदायी है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रणवके अर्ध अर्थात् उकार भागके गंभीर उच्चारणके अवसरमें प्राणोंकी समान स्थितिमें निश्चल कुंभक नामसे प्रसिद्ध प्राणोंका क्रम हुआ ॥ १० ॥ उससमय नासिकाके छिद्रोंमें न बाहर, न अन्तरालमें, न नीचे और न ऊपर वे प्राण संक्षोभको ऐसे प्राप्त हुये जैसे रूके हुये जल ॥ ११ ॥ और देहरूप नगरको भस्म करनेवाली अग्नि क्षणमेंही ऐसे शांत होगई जैसे विद्युत् और हिमकेसमान गौर शरीरका भस्म देख पडा॥१२

यत्रकर्पूरशय्यायांसुप्तानीवसुखोचितम् ॥ शरीरास्थीनिलक्ष्यंतेनिष्पंदानिसितानिच ॥ १३ ॥ तद्भस्मप वनानीतंसास्थिवायुरयोजयत् ॥ स्वदेहेभृशमुत्सन्नेत्रिनेत्रव्रतवानिव ॥ १४ ॥ तच्चंडपवनोद्भूतमात्रस्य गगनंक्षणात् ॥ शरदीवाभ्रमिहिकाक्वापिभस्मास्थिमद्ययौ ॥ १५ ॥ यावदित्थमवस्थैषाप्रणवस्यापरे क्रमे ॥ बभूवनहठादेवहठयोहिदुःखदः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस अवस्थामें सुखके उचित कर्पूरकी धूलिसे रचित शय्यापर सोते हुये चेष्टारहित तथा श्वेतवर्ण शरीरकी अस्थि (हड्डियां) भावनासे लक्षित होती हैं ॥ १३ ॥ महावायुसे उर्ध्वदेशमें लाये उस अस्थिसहित भस्मको ऊर्ध्ववाही प्रचंड पवन जो की महादेवके समान भस्म व्रतधारी है उसने तपस्वीके समान अति कृश अपने शरीरपर धारण किया ॥ १४ ॥ प्रचण्ड पवनसे आविर्भूत वह अस्थिसहित भस्म क्षणभरमें आकाशको व्याप्त करके न जाने कहां इसप्रकार चली गई जैसे शरद्ऋतुमें मेघका कुहिरा ॥ १५ ॥ जबतक प्रणवके दूसरे क्रममें भावनासे हुई न कि हठसे क्योंकि हठयोग दुःखदायी होताहै ॥ १६ ॥

ततस्तृतीयावसरेप्रणपस्योपशांतिदे ॥ पूरणात्पूरकोनामप्राणानामभवत्क्रमः ॥ १७ ॥ अस्मिन्नवसरे प्राणाश्चेतनामृतमध्यगाः ॥ व्योम्निशीतलतामीयुर्हिमसंस्पर्शसुंदरीम् ॥ १८ ॥ क्रमाद्गगनमध्यस्थाश्चं

द्रमंडलतांययुः ॥ धूमागगनकोशस्थाःशीतलांबुदतामिव ॥ १९ ॥ कलाकलापसंपूर्णेतेतस्मिश्चंद्रमं डले ॥ पुण्यराशाविवापूर्णेरसायनमहार्णवे ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रणवके शांतिदायक तृतीय अवसरमें पूरण करनेसे प्राणोंका पूरक नाम क्रम हुआ ॥ १७ ॥ इस अवसरमें जीव चेतनाके अमृतमें स्थित प्राण हिमके स्पर्शके समान सुन्दर शीतलताको बाह्य आकाशमें प्राप्त हुये ॥ १८ ॥ और क्रमसे गगनके मध्यमें स्थित चंद्रमण्डलताको ऐसे प्राप्त हुये जैसे आकाशके कोशमें धूम शीतल भाव मेघको ॥ १९ ॥ अमृतमय कलाओंके समूहसे पूर्णपुण्यकी राशिके तुल्य और अमृतसे पूर्ण महा समुद्रके समान उस चन्द्रमंडलमें ॥ २० ॥

रसायनमयाधाराःसंपन्नाःप्राणवायवः ॥ मणियष्टिसमाकाराजालेष्विंदोरिवांशवः ॥ २१ ॥ स्रापपातां बराद्धाराशेषेशारीरभस्मनि ॥ रसायनीहरशिरःपतितेवसुरापगा ॥ २२ ॥ उदभूदिंदुबिंबाभंचतुर्बाहु वपुस्तया ॥ प्रस्फुरन्मंदरादब्धेःपारिजातइवद्रुमः ॥ २३ ॥ उद्दालकशरीरंतन्नारायणतयोदितम् ॥ प्रफु ल्लनेत्रवक्त्राब्जमाबभौदीप्तिसुंदरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वे प्राणवायु अमृतमय किरण ऐसे होगये जैसे जाल (छान छप्परके छिद्र) के भीतर चन्द्रमाके किरण स्फटिक मणिके दण्डाकार होजाती हैं ॥ २१ ॥ पवनसे उठानेसे शेष जो शरीरकी भस्महै उसपर वह अमृत वाहिनी धारा ऐसे गिरी जैसे महादेवके शिरपर गंगाजी ॥ २२ ॥ उससमय उस धारासे चन्द्रमाके बिम्बके समान शोभायमान चतुर्भुजाधारी (विष्णु) का शरीर ऐसे प्रकट हुआ जैसे जाज्वल्यमान मन्दराचलसहित समुद्रसे पारिजाताका वृक्ष ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्के रूपसे उदयको प्राप्त, विकसित नेत्र मुखरूप कमलसे क्षोभित और दीप्तिसे अति सुन्दर वह उद्दालकका शरीर शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

रसायनमयाःप्राणास्तच्छरीरमपूरयन् ॥ सलिलौघइवसरोवृक्षंमधुरसाइव ॥ २५ ॥ अंतःकुंडलिनींप्रा णाःपूरयामासुरादृताः ॥ चक्रानुवर्त्तप्रसृतांपयांसीवसरिद्वराम् ॥ २६ ॥ प्रकृतस्थंबभूवास्यतच्छरीरं द्विजन्मनः ॥ प्रावृट्शरीरविगमेधौतंतलमिवावनेः ॥ २७ ॥ अथपद्मासनगतःकृत्वादेहेस्थितिंदृढम् ॥ आलानइवमातंगंनिबद्धवेंद्रियपंचकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अमृतमय वे प्राण उद्दालकके शरीरको ऐसे नष्ट किया जैसे जलके प्रवाह तडागको और वसन्तके रस वृक्षको ॥ २५ ॥ अन्तःकरणकी कुण्डलिनीको आदरयुक्त उन अमृतमय प्राणोंने ऐसे पूरित किया जैसे आवर्तो (भंवरेहों) से बहती हुई गंगाजीको जलके प्रवाह ॥ २६ ॥ जैसे शरदृतुमें अन्तिम वृष्टिसे धोया हुआ और शीघ्र शुष्क तथा वर्षाकालके पंक शैवालादिसे दूषित अपने पूर्वाकारके नष्ट होजानेसे पृथिवीका तल प्रसन्न और निर्मल होकर व्यवहारियोंके प्रकृत यात्राका उपयोगी होताहै ऐसेही दहन तथा प्लवन (अमृतमय आदि दशामें प्राप्ति) आदि भावनासे शुद्ध इस उद्दालक ब्राह्मणका शरीर पाप रहित होनेसे प्रकृत समाधिरूप कार्यके योग्य हुआ ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् पद्मासनपर विराजमान होकर देहमें दृढ स्थितिको करके और पांचों इन्द्रियोंको ऐसे बांधा जैसे श्रृंखला (जंजीर) में मत्त मातंग ॥ २८ ॥

निर्विकल्पसमाध्यर्थंव्यवसायमुपाददे ॥ स्वभावंस्वच्छतांनेतुंशरत्कालइवामलम् ॥ २९ ॥ प्रशांतवात हरिणमाशादिगणगामिनम् ॥ चिंतयाहृदयंनिन्येदूराद्रज्ज्वेवकीलकम् ॥ ३० ॥ धावमानमधोमत्तंचि त्तंविमलमाकुलम् ॥ बलात्संरोधयामाससेतुर्जलमिवद्रुतम् ॥ ३१ ॥ निमिमीलदृशावर्द्धपरिपक्ष्मलप क्ष्मके ॥ निस्पंदताराग्मधुरेसंध्याकालइवांबुजे ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके अनंतर निर्विकल्प समाधिके अर्थ तथा शरदृतुके समान अपने स्वभावको (मनको) निर्मल तथा स्वच्छ करनेके अर्थ उद्दालक मुनिने उद्योग किया ॥ २९ ॥ और आशा तृष्णा लोभादिकी ओर गामी अपने स्वभावको प्रशान्त प्राणरूप हरिणसहित चित्तको स्वच्छ करनेका उद्योग किया उससमय पूर्वकालमें अनुभव किये पुत्र भार्या तथा गृह आदिकी चिन्ता ऐसे दूर लेगई जैसे अदृढतासे गाडे हुये अश्वबंधनके कीलकादिको उनके खींचनेवाली रस्सी ॥ ३० ॥ विषयकी ओर दौडते हुये मत्त और व्याकुल चित्तको निर्मल करके बलसे ऐसे रोका जैसे बहनेकी ओर उन्मुख जलको पुल ॥ ३१ ॥ दोनों ओरसे पलकयुक्त, और तारा (पुतली) के निश्चल होनेसे सन्ध्याकालके समान सुन्दर दोनों नेत्रोंको आधा मूंद लिया ॥ ३२ ॥

सौम्यतामनयन्मौनीप्राणापानजवंमुखे ॥ श्वसनंश्रेयसेदेशेप्रशस्तःसमयोयथा ॥ ३३ ॥ तिलेभ्यइवतै लानिपृथकृचक्रेप्रयत्नतः ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यःकूर्मांगानीवगोपयन् ॥ ३४ ॥ बाह्यस्पर्शानशेषेणजहौ

दूरेसधीरधीः ॥ सहसाकुंडकच्छन्नोमणिर्दूरत्विषोयथा ॥ ३५ ॥ विलीनानांतरांश्चक्रेस्पर्शानुज्झितद र्शनात् ॥ रसान्विटपकोशस्थान्मार्गशीर्षइवद्रुमः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मौन व्रतधारी उद्दालकने प्राण अपानके वेगसे मुखपर ऐसी शान्तता प्राप्त की जैसे चक्रवर्तियोंका जन्मसमय जगत्के कल्याणके अर्थ शुभ जनानेके लिये उस देशके वायुको शीतल मन्द और सुगन्ध गुणयुक्त करताहै ॥ ३३ ॥ जैसे तिलसे तैल पृथक् किया जाताहै ऐसे ही अपने इन्द्रियोंको कछुयेके अंगके समान छिपाते हुये विषयोंसे यत्नसे पृथक् किया ॥ ३४ ॥ उस धीरबुद्धिने बाह्य विषयोंको सम्पूर्ण रीतिसे दूरहीसे ऐसे त्यागा जैसे छोटी कोठरीमें ढकाहुआ मणि दूरकी दीप्तियोंको त्यागताहै ॥ ३५ ॥ आत्मतत्वके दर्शनसे मनोवासनारूप विषयोंको ऐसे लीन किया जैसे मार्गशीर्षका वृक्ष वृक्षके कोशमें स्थित रसोंको ॥ ३६ ॥

रुरोधगुदसंकोचान्नवद्वारानिलानथ ॥ सुखसंस्थगितःकुंभोरंध्रकोशानिवेतरान् ॥ ३७ ॥ स्वात्मरत्नप्र काशाढ्यांस्पष्टांकुसुमलांछिताम् ॥ दधारकंधरांधीरोमेरुःशृंगशिखामिव ॥ ३८ ॥ बभारहृदयाक शेम नःसंयममागतम् ॥ विंध्यखातइवोन्मत्तंगजंयुक्तिवशीकृतम् ॥ ३९ ॥ शरन्नभोवदासाद्यनिर्मलामति सौम्यताम् ॥ जहारपरिपूर्णाब्धेर्निर्वातस्याचलांश्रियम् ॥ ४० ॥

अर्थ—पादकी एडी गुदाके स्तम्भन नव (९) इन्द्रियद्वारोंके पवनोंको ऐसे रोधन किया जैसे मुखमें भलीभांतिसे बन्धा जलपूर्ण घटवायुके न प्रवेश करनेसे अन्य छिद्रोंके कोशोंको रोकताहै ॥ ३७ ॥ अपने आत्मारूप रत्नसे पूर्ण, रजोगुण तमोगुणके आवरणके अभावसे स्वच्छ और प्रसन्न मुखकमलसे चिन्हित ग्रीवाको ऐसे धारण किया जैसे सुमेरू अपने शिखाकी चोटीको ॥ ३८ ॥ धारणा, ध्यान और समाधिकी ओर अभिमुख और धारणा आदि युक्तिसे वशीकृत अपने मनको हृदयाकाशमें ऐसे धारण किया जैसे उन्मत्त गजको विन्ध्याचलकी खन्दक ॥ ३९ ॥ शरत्कालके आकाशकी निर्मलताके समान सौम्यताको पाकर वायुरहित परिपूर्ण समुद्रकी निश्चल शोभाको हरलिया ४०

दुधावातिविकल्पौघान्प्रतिभाससुपेयुषः ॥ पुरःपरिस्फुद्रूपान्मशकानिवमारुतः ॥ ४१ ॥ आगच्छतो यथाकामंप्रतिभासान्पुनःपुनः ॥ अच्छिनन्मनसाशूरःखड्गेनेवरणेरिपून् ॥ ४२ ॥ विकल्पौघेपराहूने सोपश्यद्धृदयांबरे ॥ तमश्छन्नविवेकार्कंलोलकज्जलमेचकम् ॥ ४३ ॥ तमप्युन्मार्जयामाससम्यक्स्वां तविवस्वता ॥ सम्यग्ज्ञानोदितेनाशुपवनेनेवकज्जलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—ब्रह्माकार वृत्तियोंके मध्य २ में विच्छेद करनेवाले विपरीत भावनाके विकल्पके समूहोंको उसने ऐसे उडाया जैसे सम्मुख उडनेवाले मच्छरोंको वायु ॥ ४१ ॥ पुनः २ आनेवाले बिकल्पोंके प्रतिभासोंको उसने इसप्रकार छेदन किया जैसे शूरवीर रणमें खड्गसे शत्रुओंको ॥ ४२ ॥ विकल्पोंके समूहके नष्ट होनेपर उसने हृदयाकाशमें चंचल कज्जलके समान कृष्णवर्ण, और तमोगुण प्रेरित अन्धकारसे आच्छादित विवेकरूपी सूर्य्यके देखा ४३ सत्वगुणकी वृद्धिसे उत्तम ज्ञानसे उदयको प्राप्त मनरूप सूर्यसे उस अन्धकारको भी ऐसे नष्ट किया जैसे प्रकाशसे ४४

तमस्युपरतेकांतंतेजःपुंजंददर्शसः ॥ शार्वरेतिमिरेशांतेप्रातःसंध्यामिवांबुजम् ॥ ४५ ॥ तत्लुलावस्थ लाब्जानांवनंबालइवद्विपः ॥ अपिबच्चाप्यसृक्पूरंवेतालइववेगतः ॥ ४६ ॥ तेजस्युपरतेतस्यघूर्णगानंम नोमुनेः ॥ निशाब्जवदगान्निद्रांलोलंक्षीबवदेववा ॥ ४७ ॥ मेघमालामिवमरुद्द्वयालोनीलाब्जिनीमिव ॥ यामिनीमिवतीक्ष्णांशुस्तामप्याशुलुलावसः ॥ ४८ ॥

अर्थ—तमोगुणरूप अन्धकारके नष्ट होनेपर उसने रमणीय तेजके पुंजको ऐसे देखा जैसे रात्रिके अन्धकारके नष्ट होनेपर प्रातःकालकी सन्ध्याको कमल ॥ ४५ ॥ उस तेजके पुंजने स्थल कमलोंके बन (रजोगुणकी वृत्तियोंके समूह) को बाल हस्तीके समान छेदन करदिया, और वेतालके सदृश रुधिरके प्रवाह (रजोगुणकी धारा) को वेगसे पी भी लिया ॥ ४६ ॥ अनन्तर उस तेजके उपराम होनेपर निद्राके तरंगोंसे चंचल और भ्रमणशील मुनिका मन निद्राको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे रात्रिका कमल वा मदिरासे मत्त पुरुष ॥ ४७ ॥ उस निद्राकोभी विवेकके प्रबोधसे शीघ्र ऐसे नष्ट किया जैसे मेघकी मालाको वायु, नीलकमलिनीको गज, और रात्रिको सूर्य्य ॥ ४८ ॥

निद्राव्यपगमेतस्यभावयामासतन्मनः ॥ व्योमश्यामलदृग्जंतुर्नभसीवशिखंडकान् ॥ ४९ ॥ पयोदइव लापिच्छंनीहारमिवमारुतः ॥ दीपस्तमइवाच्छात्मतदप्याशुममार्जसः ॥ ५० ॥ व्योमसंविद्विनष्टायां मूढंतस्याभवन्मनः ॥ निद्रायांतुविलीनायांमैरेयमदवानिव ॥ ५१ ॥ मोहमप्येषमनसस्तंममार्जमहाश यः ॥ यामिनीजनितंजाड्यंभुवनादिवभास्करः ॥ ५२ ॥

अर्थ—निद्राके नष्ट होनेपर उसका मन नानाप्रकारकी वासनाओंसे कल्पित रूपवाले आकाशको ऐसे भावनाकी जैसे सूर्य्यके आतपके संमुख श्याम आकाशको देखनेवाला जीव मोर आदिके पंखको ॥ ४९ ॥ मेघ जैसे मालतीके पुष्पको, वायु कुहिराको, दीप अंधकारको नष्ट करताहै ऐसेही उसने स्वच्छ स्वभाव आकाशको भी शुद्ध किया ॥ ५० ॥ उस आकाशके ज्ञानके नष्ट होनेपर उद्दालकका मन ऐसे मूढ होगया जैसे निद्राके नष्ट होनेपर मदिरासे मत्तका ॥ ५१ ॥ उस उदार चित्त उद्दालकने मनके मोहकोभी शुद्ध करके ऐसे दूर किया जैसे रात्रिके अन्धकारको ब्रह्माण्डसे सूर्य्य ॥ ५२ ॥

ततस्तेजस्तमोनिद्रामोहादिपरिवर्जितम् ॥ कामप्यवस्थामासाद्यविशश्राममनःक्षणम् ॥ ५३ ॥ विश्रम्याशुपपातांगसंविदंविश्वरूपिणीम् ॥ सेतुरुद्धंसरोवारिप्रतीपंस्वमिवास्पदम् ॥ ५४ ॥ चिरानुसंधानवशात्स्वदनाच्चस्वसंविदः ॥ ततश्चिन्मयतामागाद्धेमनूपूरतामिव ॥ ५५ ॥ चित्तत्वमथसंत्यज्यचित्तंचित्तत्त्वतांगतम् ॥ अन्यदेवबभूवाशुपंकःकुंभस्थितोयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् तेज, तम, निद्रा, और मोह आदिसे शून्य इसका मन वाणीसे अगोचर अवस्था (निर्विकल्प समाधि) को प्राप्त होकर क्षणभर विश्राम किया ॥ ५३ ॥ हे प्रिय रामजी ! उस अवस्थामें एक क्षण विश्राम करके उसका मन बाह्य प्रपंचकी वृत्तिमें ऐसे गिरा जैसे तडागका जल नालीके द्वारा खेतकी क्यारीमें प्रवेश करायाहुआ खेतकी क्यारीको पूर्ण करके बंधसे रोका हुआ उलटे प्रवाहसे बहताहुआ पुनः अपने पूर्व स्थान तडागमें गिरताहै ॥ ५४ ॥ उसके अनन्तर चिरकालके अनुसंधानसे और समाधिमें आत्मानन्दके आस्वादसे चिद्रूपताको वह उद्दालक ऐसे प्राप्तहुआ जैसे सुवर्ण नूपुरताको ॥ ५५ ॥ इसके पश्चात् उद्दालकके चित्तने अपनी चित्तता दशाको त्यागकर चिद्रूप जो तत्वहै उस दशाको प्राप्त होकर पूर्व अवस्थासे अन्यरूपको शीघ्रही ऐसे प्राप्तहुआ जैसे घटमें जलका कीचड जलके सूख जानेपर घटमें लिप्त होकर घटरूपताको ॥ ५६ ॥

चेत्यंसंत्यज्यचिच्छुद्धाचित्सामान्यमथाययौ ॥ त्यक्तवीच्यादिभेदोब्धिर्वाःसामान्यमिवैकधीः ॥ ५७ ॥ त्यक्तभूतौघमननंततोविश्वंभरंमहत् ॥ चिदाकाशंततःशुद्धंसोभवद्बोधमागतः ॥ ५८ ॥ तत्रप्रापदथानंदंदृश्यदर्शनवर्जितम् ॥ अनंतमुत्तमास्वादंरसायनमिवार्णवम् ॥ ५९ ॥ शरीरात्समवेतोसौकामप्यत्र निमागतः ॥ सत्तासामान्यरूपात्माबभूवानंदसागरः ॥ ६० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वृत्तिगत चित् अपने प्रकाश्य विषयाकारको छोडके सब वृत्तियोंकी साधारणरूपसे साक्षिणी चित् रूपताको प्राप्त हुई क्योंकि उस चित्की उपाधि जो बुद्धिहै वह चित्के साथ एकरस ताको प्राप्त हुई है ॥ ५७ ॥ अनन्तर उद्दालक उस समाधिसे तत्व साक्षात्काररूप बोधको प्राप्त होकर सब जगत्को अधिष्ठान द्वैत प्रपंचसेरहित, शुद्ध और महत् चिदाकाशरूपताको प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ उस अवस्थामें दृश्य दर्शनसे वर्जित, ब्रह्मादिकसे आस्वादित सब विषयसुख कणोंका आधारभूत समुद्रके समान स्थित उत्तम आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ इसके पश्चात् शरीरसे भलीभांति शुद्ध होकर पृथक्रूपताको प्राप्त आनन्दका समुद्र वह उद्दालक परमात्माकी सत्ता सामान्यरूपताको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

द्विजचेतनहंसोसावानंदसरसिस्थितः ॥ अतिष्ठच्छरदच्छेखेकलापूर्णइवोडुपः ॥ ६१ ॥ बभूवावातदीपाभोलिपिकर्मार्पितोपमः ॥ वीतवीच्यंबुधिप्रख्योवृष्टमूकांबुदस्थितिः ॥ ६२ ॥ अथैतस्मिन्महालोके तिष्ठन्नुद्दालकश्चिरम् ॥ अपश्यद्व्योमगान्सिद्धानमरानपिभूरिशः ॥ ६३ ॥ आगतानिविचित्राणिसिद्धिजालानिचाभितः ॥ शक्रार्कपददातॄणिनीरंध्राण्यप्सरोगणैः ॥ ६४ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मणका जीव चेतनरूप हंस आनंदरूप तडागमें स्थित इसप्रकार शोभित हुआ जैसे सरदृतुके स्वच्छ आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा ॥६१॥ और उस समय उसकी स्थिति निर्वात दीप, भित्तिमें लिखित चित्र तरङ्गरहित समुद्र और अन्तिम वृष्टि करके पश्चात् मूक शरदृतुके मेघके तुल्य होगई ॥६२॥ इसके अनन्तर उस महाप्रकाशमें उद्दालक चिरकालतक आकाशचारी सिद्धोंको और अनेक देवताओंकोभी देखा ॥ ६३ ॥ अप्सराओंके गणोंसे व्याप्त इन्द्र तथा सूर्य्यपदको देनेहारे चित्रविचित्र सिद्धिओंके समूह आके प्राप्त हुये ॥ ६४ ॥

तानिनादरयांचक्रेसिद्धिवृंदानिसद्द्विजः ॥ गंभीरमतिरक्षुब्धोविलासानिवशैशवान् ॥ ६५ ॥ सिद्धिसार्थमनादृत्यतस्मिन्नानंदमंदिरे ॥ अतिष्ठदथषण्मासान्दिक्तटेर्कइवोत्तरे ॥ ६६ ॥ जीवन्मुक्तपदंतत्त्वयावत्संप्राप्तवान्द्विजः ॥ तत्रसिद्धाःसुराःसाध्याःस्थिताब्रह्महरादयः ॥ ६७ ॥ आनंदेपरिणामित्वादनानंदपदंगतः ॥ नानंदेननिरानंदेततस्तत्संविदाबभौ ॥ ६८ ॥

अर्थ—उन सिद्धियोंके समूहको उस ब्राह्मणने ऐसे नहीं आदर किया जैसे गंभीरबुद्धि और उदारचित्त मनुष्य बालकोंकी क्रीडाको ॥ ६५ ॥ वह ब्राह्मण सिद्धियोंके समूहका निरादर उस समाधिरूप आनन्दके मन्दिरमें छ६ मासपर्य्यन्त इसप्रकार स्थितरहा जैसे उत्तरायण दिशाके तटमें सूर्य्य ॥ ६६ ॥ वहां पर्य्यन्त उत्तरोत्तर सर्वोत्कृष्ट जीवन्मुक्त पदको उस ब्राह्मणने प्राप्त किया जहांपर कि सिद्ध, साध्य, और ब्रह्माआदि देवस्थित हैं ॥ ६७ ॥ विषयके आनन्दोंमें चित्तका परिणाम होनेसे नहीं है उत्तम आनन्दयुक्त आत्मानन्द पदमें वह प्राप्तहुआ इसलिये उसका आत्मा चैतन्य न तो विषयियोंके क्षुद्र आनन्दमें और न दुःखमें स्थितथा किन्तु स्वप्रकाश अपने पूर्णस्वरूपमें शोभितहुआ६८

क्षणंवर्षसहस्रंवातत्रलब्ध्वास्थितिंमनः ॥ रतिमेतिनभोगौघेदृष्टस्वर्गइवावनौ ॥ ६९ ॥ तत्पदंसागतिः शांतातच्छ्रेयःशाश्वतंशिवम् ॥ तत्रविश्रांतिमाप्तस्यभूयोनोबाधतेभ्रमः ॥ ७० ॥ तत्पदंसाधवःप्राप्यं दृश्यदृष्टिमिमांपुनः ॥ नायांतिखदिरेद्यानंलब्धचैत्ररथाइव ॥ ७१ ॥ तांमहानंदपदवींचित्तादासाद्यदेहिनः ॥ दृश्यंनबहुमन्यंतेराजानोदीनतामिव ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्षणभर अथवा सहस्रों वर्षपर्य्यन्त उस समाधिके आनन्दमें जिसने स्थिति पायाहै उसका मन भोगोंके समूहमें ऐसे नहीं प्रीति करता जैसे स्वर्गका विभव देखनेवाला पुरुष भूलोकके सुखमें नहीं प्रीति करता ॥ ६९ ॥ वही (निर्विकल्प समाधिमें ब्रह्मानन्दका सुख) परमपदहै, वही शान्तगतिहै, और वही नित्य कल्याणहै, क्योंकि वहांपर विश्राम पाये हुयेको पुनः भ्रम बाधा नहीं करता ॥ ७० ॥ साधुलोग उसपदको प्राप्त होकर पुनः २ इस दृश्यकी दृष्टिमें इसप्रकार नहीं आते जैसे नन्दनबनमें प्राप्त पुरुष खदिरके बनमें ॥७१॥ श्रवण मनन तथा समाधिसे शुद्ध चित्त उस महानन्दपदवीको प्राणी जन पाकर दृश्य जगत्को अधिक ऐसे नहीं मानते जैसे राजालोग दीनताको ॥७२॥

चेतस्तत्पदविश्रांतंबुद्धंदृश्यदशांप्रति ॥ कदर्थाद्बोधमायातिनायात्येवाथवानघ ॥ ७३ ॥ उद्दालकोत्र षण्मासान्दूरोत्सारितसिद्धिभूः ॥ उषित्वोन्मिषितोंभोदकोशादर्कोमधाविव ७४ ॥ ददर्शसंप्रबुद्धात्मापुनःपरमतेजसः ॥ प्रणामलालसाःस्निग्धाश्चंद्रबिंबवपुर्द्धराः ॥ ७५ ॥ रमणीगौरमंदाररेणुभ्रमरचामराः ॥ स्फुरत्पताकापटलाद्युविमानपरंपराः ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे पापरहितरामजी ! आत्मज्ञान जिस चित्तको होगयाहै वह समाधिसे व्युत्थानदशामें दूसरोंसे बडे२ प्रयत्नोंसे आताहै वह भी षष्ठभूमिकामें स्थित न कि सप्तम भूमिकामें स्थित योगी ॥ ७३ ॥ उद्दालक सिद्धियोंकी भूमिको दूर फेंककर छ मासपर्य्यन्त इसी दशामें निवास करके व्युत्थानको प्राप्त हुआ जैसे चैत्रके मासमें मेघके कोशसे सूर्य ॥ ७४ ॥ उस ज्ञानी उद्दालकने परमतेजस्वी, प्रणामकी लालसायुक्त स्नेह करनेवाले और चन्द्रमाके बिंबके समान शरीर देवताओंको ॥ ७५ ॥ गौरवर्ण मन्दारके पुष्पोंकी रेणुसे आच्छन्न भ्रमर और चामरसहित देवांगना गणोंको तथा पताकाओंके समूहसहित विमानोंको ॥ ७६ ॥

अस्मदादीन्मुनीन्दर्भपवित्रांककरांबुजान् ॥ विद्याधरीभिर्वलितान्विद्याधरपतीनपि ॥ ७७ ॥ तेतमूचुर्महात्मानमुद्दालकमुनिंतदा ॥ प्रसादेनप्रणामान्नोभगवन्नवलोकय ॥ ७८ ॥ आरुह्येदंविमानंत्वमेहिदैविष्टपंपुरम् ॥ स्वर्गएवहिसीमांतोजगत्संभोगसंपदाम् ॥ ७९ ॥ आकल्पमुचितान्भुंक्ष्वभोगानभिमतान्विभो ॥ स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः ॥ ८० ॥

अर्थ—और हमसे आदि लेके कुशाओंसे पवित्र कर कमलयुक्त मुनियोंको तथा विद्याधारियोंसे आवृत्त (घिरेहुये) विद्याधरोंकोभी उद्दालकने पुनः देखा ॥ ७७ ॥ उन देवता तथा मुनियोंने उस महात्मा उद्दालकमुनिसे कहा हे भगवन् ! प्रणामसे अनुग्रह करके हम लोगोंको देखिये ॥ ७८ ॥ इस विमानपर आरूढ होके तुम देवताओंके नगरमें आओ क्योंकि संसारके भोगोंकी तथा सम्पत्तियोंकी अवधि स्वर्गही है ॥ ७९ ॥ हे प्रभो ! कल्पपर्य्यंत अपने अभिलषित भोगोंको भोगो, क्योंकि स्वर्गके फलोंके भोगनेहीके अर्थ तप और यज्ञादिक क्रियाहैं ॥ ८० ॥

हारचामरधारिण्योविद्याधरवरांगनाः ॥ पश्येमास्त्वामुपासीनाःकरिण्यःकरिणंयथा ॥ ८१ ॥ कामोधर्मार्थयोःसारःकामसाराःसुयोषितः ॥ वसंतइवमंजर्यःस्वर्गएवभवंतिताः ॥ ८२ ॥ एवंकथयतःसर्वानतिथीनित्यसौमुनिः ॥ परिपूज्ययथान्यायमतिष्ठद्गतसंभ्रमम् ॥८३॥ नाभ्यनंदन्नतत्याजतांविभूतिंसधीरधीः ॥ भोसिद्धात्रजतेत्युक्त्वास्वव्यापारपरोभवत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—देखिये ! हार तथा चामर धारण किये हुये श्रेष्ठ विद्याधरोंकी अंगनाये तुमारी उपासना ऐसे करती हुई स्थित हैं जैसे हस्तिनी हस्तीकी ॥ ८१ ॥ हे ब्रह्मन् ! धर्म तथा अर्थका मुख्य फल कामही है और काममें मुख्य तत्व

उत्तम स्त्री ऐसे हैं जैसे वसन्तमें लता और वे उत्तम स्त्रियां स्वर्गमेंही होती हैं ॥ ८२ ॥ इसप्रकार कहते हुये उन सब देवताओंको यह मुनि अतिथि मानके यथा योग्य सबकी पूजा करके भ्रमसे शून्य स्थितरहा ॥ ८३ ॥ न तो उस विभूतिको उस धीर बुद्धि ऋषिने प्रसन्न किया और न त्यागा किन्तु हे सिद्धलोग ! जाइये ऐसा कहके अपने समाधिरूप व्यापारमें तत्पर हुआ ॥ ८४ ॥

अथस्वधर्मनिरतंभोगेष्वरतिमागतम् ॥ तमुपास्ययुः सिद्धादिनैःकतिपयैःस्वयम् ॥ ८५ ॥ जीवन्मुक्तःसचमुनिर्विजहारयथासुखम् ॥ यावदिच्छंवनांतेषुमुनीनामाश्रमेषुच ॥ ८६ ॥ मेरुमंदरकैलासहिमवद्विंध्यसानुषु ॥ द्वीपोपवनदिक्कुंजजंगलारण्यभूमिषु ॥ ८७ ॥ ततःप्रभृतिसंप्राप्तपदमुद्दालकोद्विजः ॥ गुहासुगिरिकुक्षीणामवसद्ध्यानलीलया ॥ ८८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अपने समाधिरूप व्यापारमें तत्पर और भोगोंसेभी विरक्त उस ऋषिकी चिरकालतक प्रतीक्षा, प्रणाम, तथा प्रशंसा आदिसे उपासना करके सिद्धजन स्वयं चलेगये ॥ ८५ ॥ जीवन्मुक्त उस मुनिने अपनी इच्छापूर्वक बनोंमें मुनियोंके आश्रमोंमें भ्रमण किया ॥८६॥ मेरू, मन्दर, कैलास, हिमालय और विन्ध्यनाम पर्वतोंके शिखरोंपर द्वीप, उपवन, दिशाओंके कुंज, जंगल और महाबनकी भूमियोंमें ॥ ८७ ॥ और पर्वतोंकी गुहाओंमें उसीसमयसे लेके उस उद्दालकमुनिनें जीवन्मुक्त पदको प्राप्त कर अनायास ध्यानकी लीलासे निवास किया ॥ ८८ ॥

कदाचिदह्नामासेनकदाचिद्वत्सरेणच ॥ कदाचिद्वत्सरौघेणध्यानासक्तोव्यबुध्यत ॥ ८९ ॥ उद्दालकस्तदारभ्यव्यवहारपरोपिसन् ॥ सुसमाहितएवासौचित्तस्वैकत्वमागतः ॥ ९० ॥ चित्तस्वैकघनाभ्यासान्महाचित्त्वमुपेत्यसः ॥ बभूवसर्वत्रसमस्तेजस्सौरमिवावनौ ॥ ९१ ॥ चित्सामान्यचिराभ्यासात्सत्तासामान्यमेत्यसः ॥ दृश्येस्मिश्चित्ररविवन्नास्तमायान्नचोदयम् ॥ ९२ ॥ शमपरपदलाभप्राप्तिसंशांतचेतागलितजननपाशःक्षीणसंदेहदोलः ॥ शरदिखमिवशांतंव्याततंचोर्जितंचस्फुटममलमचेतस्तद्वपुःसंबभार ॥ ९३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिर्नामचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—कभी एकमासमें, कभी एकवर्षमें और कभी वर्षोंके समूहमें आरूढ वह उद्दालक मुनि समाधिसे जागता था ॥ ८९ ॥ उस समयसेलेके चेतनकेसाथ एकताको प्राप्त उद्दालक मुनि व्यवहारमें तत्परभी परन्तु समाधि निष्ठथा न कि अज्ञानीके सदृश विक्षेपयुक्तथा ॥ ९० ॥ अन्तःकरण और अन्तःकरणकी वृत्तिके साक्षी चेतनको पृथक् करके समाधिमें बार २ दर्शन करनेके अभ्याससे अपरिच्छिन्न चिद्भावको प्राप्त होकर सब भूतोंमें रागद्वेषके अभावसे समरूप ऐसे होगया जैसे पृथिवीपर सूर्य्यका तेज अर्थात् सर्वत्र ब्रह्मरूपके देखनेसे षष्ठभूमिकामें उसने प्रवेश किया ॥९१॥ साक्षी चित् (सर्वत्र साधारण चित्) का समाधिमें चिरकालतक अभ्यास करनेसे स्वप्रकाश निरतिशय आनन्द चित्रूपताको प्राप्त होकर वह उद्दालक इस दृश्यमें चित्रके सूर्यके समान न उदय और न अस्तको प्राप्त हुआ ॥९२॥ सर्वत्र शान्तिमय निरतिशय आनन्दपदवीकी प्राप्तिसे भलीभांति शान्तचित्त, इसी कारणसे सब कर्म बीजोंके क्षय होनेसे जन्ममरणके पाशसे वर्जित, उस उद्दालकने शरत्कालके आकाशके समान शान्त और अपरिच्छिन्न सदा सत्ताकी स्फूर्तिकी उत्कर्षतासे बलयुक्त, प्रत्यक्षरूप, निर्मल, तथा पूर्वदशाके विस्मरणसे चित्तरहित ब्रह्मस्वभावको प्राप्त शरीर धारण किया न कि पूर्वके समान उद्दालकका शरीर ॥ ९३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रान्तिर्नाम चतुःपंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस ५५ के सर्गमें सत्ता सामान्यके लक्षण, और युक्तिसे उद्दालकके देहके त्यागका क्रम, तथा त्यागेहुये शरीरकी खिंखिनी अर्थात् चामुंडा देवीने अपना भूषण बनाया यह विषय वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मज्ञानदिनैकार्कमत्संशयतृणानल ॥ अज्ञानदाहशीतांशोसत्तासामान्यमीशकिम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदासंक्षीयतेचित्तमभावात्यंतभावनात् ॥ चित्सामान्यस्वरूपस्यसत्तासामान्यतातदा ॥ २ ॥ नूनंचेत्यांशरहिताचिद्यदात्मनिलीयते ॥ असद्रूपवदत्यच्छासत्तासामान्यतातदा ॥ ३ ॥ यदासर्वमिदंकिंचित्सबाह्याभ्यंतरात्मकम् ॥ अपलप्यासेचेतःसत्तासामान्यतातदा ॥ ४ ॥

अर्थ—रामजी बोले–हे आत्मज्ञानरूप दिनके सूर्य्य; हे मेरे संशयरूप तृहके अनल, हे अज्ञान प्रेरित तीनों तापोंके दाहकी शान्तिके अर्थ चन्द्ररूप, तथा हे ईश सर्व कार्य समर्थ भगवन् ! सत्ता सामान्य क्या वस्तु है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिससमय चित्सामान्यरूप विषयोंके संस्कारोंका सर्वथा अभाव होनेसे यह चित्त सर्व था क्षीण होजाताहै उससमय सत्ता सामान्यता कही जाती है ॥ २ ॥ निश्चयकरके विषयकी वृत्ति और विषय-सेरहित चित् जब अपने बिम्ब चैतन्यमें लीन होती है उस समय उस बिंबके असत् रूपसे अधिकरणसहित आकाशकेसमान जो स्वच्छ सत्ताहै, वही सत्ता सामान्यहै ॥ ३ ॥ जिस समय चित्की वृत्तिमें अभिव्यक्त अखंडचेतन बाह्य तथा आभ्यंतर संपूर्ण जगत्का अपलापकरके केवल अपने स्वरूपसे स्थितरहै उससमय सत्ता सामान्यताहै ॥४॥

यदासर्वाणिदृश्यानिसत्तासामान्यवेदनम् ॥ स्वरूपेणस्वरूपाभंसत्तासामान्यतातदा ॥ ५ ॥ कूर्मोगानीवदृश्यानिलीयंतेस्वात्मनात्मनि ॥ अभावितान्येवयदासत्तासामान्यतातदा ॥ ६ ॥ दृष्टिरेषाहिप रमासदेहादेहयोःसदा ॥ मुक्तयोःसंभवत्येवतुर्यातीतपदोपमा ॥ ७ ॥ व्युत्थितस्यभवत्येषासमाधिस्थस्यचानघ ॥ ज्ञस्यकेवलमज्ञस्यनभवत्येवबोधजा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिससमय सब भूतोंका अपने पारमार्थिक रूपसे अपने स्वरूप चिन्मात्रका अनुभव होताहै उससमय सत्ता सामान्यताहै ॥ ५ ॥ जिससमय ये समस्तभूत पदार्थ सहज स्वभावसे (बिना प्रयत्न) अपने आत्मामें अपने आत्मासे आत्मामेंही ऐसे लीन होजातेहैं जैसे कूर्मके शरीर उससमय चित्की सामान्य सत्ता जानो यह स्थिति षष्ट भूमिकाकी है॥६॥दृढ अभ्यास होनेसे यही सप्तम भूमिकाकी रूढ दृष्टि होती है क्योंकि तुरीयातीत पदके तुल्यहै इसीसे सदेह मुक्त तथा विदेहमुक्तकी यह स्थिति समानहै दोनोंके स्वरूप स्थितिमें कोई विशेषता नहीं है ॥ ७ ॥ हे पापरहित रामजी ! यह दृष्टि पंचम आदि भूमिकामेंभी समाधिस्त पुरूषकी होती है, और सप्तम भूमिकामें रूढ पुरूषकी यह दृष्टि समाधिके विरहदशामें होती है, और बोधसे यह दृष्टि केवल ज्ञानीको होती है न कि कदापि अज्ञानीको ॥ ८ ॥

अस्यांदृशिस्थिताःसर्वेजीवन्मुक्तामहाशयाः ॥ सिद्धारसाइवभुविव्योमवीथ्यामिवानिलाः ॥ ९ ॥ अस्मत्प्रभृतयःसर्वेनारदाद्याश्वराघव ॥ ब्रह्मविष्णवीश्वराद्याश्चदृष्टावस्यांव्यवस्थिताः ॥ १० ॥ एतामालंब्यपदवीसमस्तभयनाशिनीम् ॥ उद्दालकोसाववसद्यावदिच्छंजगद्गृहे ॥ ११ ॥ अथकालेनबहुनाबुद्धिस्तस्यबभूवह ॥ विदेहमुक्तस्तिष्ठामिदेहंत्यक्त्वेतिनिश्चला ॥ १२ ॥

अर्थ— सब जीवन्मुक्त महात्मा इस दृष्टिमें स्थित होके भूमिमें पारद (पारे) के समान और आकाशमें वायुके समान रहतेहैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इस दृष्टिमें हमसे आदि लेके सब ऋषि मुनि तो पृथिवीपर, नारद आदि आकाशमें तथा ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी उससेभी ऊपरके लोकोंमें स्थितहैं ॥ १० ॥ समस्त भयोंको नाश करनेवाली इस पदवीका अवलम्बन करके इस उद्दालक ब्राह्मणने अपने प्रारब्धके क्षय पर्य्यन्त जगत्रूप गृहमें निवास किया ॥११॥ इसके पश्चात् बहुत कालमें उसकी यह दृढ बुद्धि हुई कि मैं इस देहको त्यागकर विदेहमुक्त होकर स्थित रहुं ॥ १२

एवंचिंतितवानद्रेर्गुहायांपल्लवासने । बद्धपद्मासनस्तस्थावर्द्धोन्मीलितलोचनः ॥ १३ ॥ संयम्यगुदसंरोधाद्वाराणिनवचेतसः ॥ मात्रास्पर्शान्विचिन्वानोभावितस्वांगचिद्घनः ॥ १४ ॥ संरुद्धप्राणपवनःसमसंस्थानकंधरः ॥ तालुमूलतलालग्नजिह्वामूलोलसन्मुखः ॥ १५ ॥ नबहिर्नांतरेनाधोनोर्ध्वेनार्थेनशून्यके ॥ संयोजितमनोदृष्टिर्दंतैर्दंतानसंस्पृशन् ॥ १६ ॥

अर्थ— इसप्रकार दृढनिश्चययुक्त उद्दालक उस पर्वतकी कन्दरामें पल्लवके आसनपर आधानेत्र मून्दकर पद्मासन बांधकर स्थित हुआ ॥ १३ ॥ पदकी एडीसे गुदामार्गको रोंककर नौ (९) इन्द्रियद्वारोंका संयम करके चित्तसे शब्द स्पर्श आदिको एकत्र करके हृदयमें निवेश करते हुये, और हृदयमें प्रवेशित वृत्तियोंको अपने स्वरूपभूत चित्तके साथ एकरस करके चित्घनरूप स्थित हुआ ॥ १४ ॥ प्राणरूप पवनको रोकनेवाला समान स्थित कण्ठसे शोभित तथा तालुके मूलदेशमें अर्थात् कण्ठदेशमें कपाटके तुल्य जिव्हाके स्थापित करनेसे प्रसन्न मुख ॥ १५ ॥ दांतोंको दांतोंसे न स्पर्श करते हुये उस उद्दालकने न बाहर, न भीतर, न नीचे, न ऊपर, न रूपादि विषयोंमें और न शून्यमें अपने मन तथा दृष्टिको लगाया किन्तु चिन्मात्रमें स्थित तथा ॥ १६ ॥

प्राणप्रवाहसंरोधसमःस्वच्छाननच्छविः ॥ अंगचित्संविद्वत्तानरोमकंटकितांगभूः ॥ १७ ॥ अंगचित्संविदाभ्यासाच्चित्सामान्यमुपाददे ॥ तदभ्यासादवापांतरानंदस्पंदमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तदास्वादनतोलीनचित्सामान्यदशाक्रमम् ॥ विश्वंभरमनंतात्मसत्तासामान्यमाययौ ॥ १९ ॥ तस्थौसमसमाभोगःपरांविश्रांतिमागतः ॥ अनानंदसमानंदमुग्धमुग्धमुखद्युतिः ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! प्राणोंके प्रवाहके निरोधसे सब देह और मन आदिकी चंचलतासे शून्य होनेसे समरूप, प्रसन्न मुख, और चिद्रूप, ब्रह्मानन्दके अनुभवसे रोमोंके सीधेखडे होजानेसे कण्टकित शरीररूप पृथिवीसहित उस ब्राह्मणने ॥ १७ ॥ अन्तःकरणके एक देशभूत वृत्तियोंके विलयके अभ्याससे अपने चित् सामान्यरूपमें प्रवेश किया, और बिंबभूत चित्मात्रके अभ्याससे हृदयमें सर्वोत्तम ब्रह्मानन्दको पाया अर्थात् ब्रह्मानन्दका अनुभव किया ॥ १८ ॥ उस चित्सत्ता (ब्रह्मानन्द) का अनुभव करनेसे स्वरूपको विस्मृत होके अपनेमें अनुगत नित्य प्रकाशरूप चित्सामान्य रूपताको प्राप्त, विश्वंभर अपरिच्छिन्न आत्मसत्ताको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ समसे अति सम अर्थात् विक्षेपकी विषमतासे सर्वथा शून्यस्वरूप वह उद्दालक सर्वोत्तम आनन्दकी प्राप्तिसे अति सुन्दर मुखकी दीप्ति सहित होकर परम विश्रांतिको प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

संशांतानंदपुलकःपदंप्राप्यामलंगतः ॥ चिरकालपरिक्षीणमननादिभवभ्रमः ॥ २१ ॥ बभूवसमहासत्त्वोलिपिकर्मार्पितोपमः ॥ समःकलावपूर्णेनशरदच्छांबरेंदुना ॥ २२ ॥ उपशशामशनैर्दिवसैरसौकतिपयैःस्वपदेविमलात्मनि ॥ तरुरसःशरदंतइवामलेरविकरौजसिजन्मदशातिगः ॥ २३ ॥ गतसकलविकल्पोनिर्विकारोभिरामःसकलमलविलासोपाधिनिर्मुक्तमूर्त्तिः ॥ विगलितसुखमाद्यंतत्सुखंप्रापयस्मिस्तृणमिवजलराशावूह्यतेशक्रलक्ष्मीः ॥ २४ ॥

अर्थ—जीतेही परमपदको पाकर रोमांचादिसे भी शून्य, प्रारब्धरूप मलके क्षयके निर्मल पदको प्राप्त, तथा चिरकालसे संकल्पादि संसारके भ्रमसेरहित होगया ॥ २१ ॥ वह महात्मा उद्दालक चित्र लिखितके समान, और कलाओंसे पूर्ण शरत्कालके स्वच्छ आकाशमें स्थित चन्द्रमाके सदृश शोभित हुआ ॥ २२ ॥ हे रामजी ! शरदृतुके अन्त अर्थात् हेमन्तमें वृक्षोंका रस जैसे सूर्य्यके किरणमें शान्त होताहै ऐसेही थोडे ही दिनोंमें अपने विमलपदमें यह उद्दालक तप्तजलकी उष्णताके समान शान्त होगया ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण विकल्पोंसे शून्य, निर्विकार, अतिसुन्दर, तथा सम्पूर्ण मलोंके बिलासोंसे तथा उपाधियोंसे निर्मुक्त आकारधारी उद्दालकने बाणीसे अगोचर सबसे प्रथम और ब्रह्मापर्यन्तके सुखको भी तिरस्कारके उस सुखको पाया, जिस सुखमें इन्द्रकी लक्ष्मी भी समुद्रमें तृणकी राशिके समान वही जाती है ॥ २४ ॥

अपरिमितनभोंतर्व्यापिदिग्व्यापिपूर्णंभुवनभरणशीलंभूरिभव्योपसेव्यम् ॥ कथनगुणमतीतंसत्यमानंदमाद्यंपरमसुखमनंतंब्राह्मणोसौबभूव ॥ २५ ॥ गतवतिपदमाद्यंचेतसिस्वच्छभावंद्विजतनुरथमासैःसोपविष्टैवषड्भिः ॥ रविकरपरितप्तावातभांकाररम्यातनुतरुभुजतंत्रीशैलवीणाबभूव ॥ २६ ॥ अथबहुतरकालेनैतदद्रेर्भुवंतामुपययुरगकन्यासंयुतामातरःखात् ॥ अभिमतफलसिद्ध्यैसंयुताएवसर्वाअनलमिवशिखानांपंक्तयःपिंगकेश्यः ॥ २७ ॥ दिनकरकरशुष्कंविप्रकंकालकंतज्झटितिमुकुटकोटौखड्गखट्वांगमध्ये ॥ सकलविबुधवंद्याखिंखिनीदेवदेवीनिशिनवतरवृत्ताकांतकांतिंचकार ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्रह्माडोंके भेदोंसे अपरिमित और अनन्त आकाशकोंभी अपने उदरमें व्याप्त करनेवाला दिशाओंकोभी व्याप्त करनेवाला, (देशकृत परिच्छेदसे शून्य) सदा सब वस्तुओंमें पूर्ण, सब वस्तुओंके आधारभूत सब भुवनोंको पोषण करनेवाला अति भाग्यसे उत्तम जनोंसे सेवन करनेके योग्य, बचनकी प्रवृत्तिके धर्मोंसे परे, सत्यज्ञान तथा अनन्तस्वरूप, और सबको सुखरूपकारक अनादि (कालकृत परिच्छेदसेरहित) जो ब्रह्मसुखहै तद्रूप यह उद्दालक ब्राह्मण होगया ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् उस ब्राह्मणके जीवके स्वच्छ स्वभाव, निर्मल तथा अनादिरूप ब्रह्मभावके प्राप्त होनेपर उसी स्थानपर स्थित, छ मासतक सर्यके किरणोंसे संतप्त, और बहते हुये वायुके भांकार शब्दोंसे रमणीय उस ब्राह्मणकी शरीर वाल वृक्षरूप भुजाओंके बजानेके योग्य नाडीरूप तंत्रियोंसे उस पर्वतकी मानो बीणा होगई॥२६॥ इसके पश्चात् छ मासमें आकाशतलसे परस्पर मिलित पर्वतकी कन्याओंसहित गौर केशवाली ब्राह्मी आदि मातृगण किसी भक्तके मनोरथकी सिद्धिकेलिये उस पर्वतकी भूमिपर ऐसे प्राप्त हुई जैसे ज्वालाओंकी पंक्ति अग्निकेप्रति॥२७॥ उस मातृगणके मध्यमें रात्रिकेसमय नूतन २ भूषणोंसे अति नवीन क्रीडा साधनसहित, ब्रह्मा आदि सब देवताओंसे भी वन्दनीय खिंखिनी नाम देवीने उद्दालकके मृतशरीरको शीघ्रही खड्ग तथा पाटीके मध्यमें स्थित अपने मुकुटकी किरीटकी कोटि (अग्रभाग) का भूषण बनाया ॥ २८ ॥

इत्युद्दालकदेहकंसुविलसन्मायूरबर्हव्रजव्यालोलाब्दलवेनवैर्विवलितेमंदारमालागणैः ॥ शेतेखिंखिनिकामहाभगवतीलीलाललामेलताजालेभृंगइवांतपुष्पपटलेपश्चाद्रुपागच्छति ॥ २९ ॥ एषोद्दालकचित्त

वृत्तिकलनावल्लीविवेकस्फुरत्स्वानंदप्रविकासभासिकुसुमाहतत्काननेविस्तृता ॥ रूढायस्यकदाचिदेव विहरन्नप्येवसच्छाययानासावेतिवियोगमेतिसफलेनोच्चैस्तरांसंगमम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणं नाम पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—उत्तमरीतिसे शोभायमान, मोरके पंखोंके समूहरूप चंचल मेघ खंडसे शोभित तथा नूतन मंदारकी मालाओंके गणोंसे वेष्टित और अग्रभागमें पुष्प समूहयुक्त खिंखिनी नाम महा भगवतीके लीलार्थ शिरकी माला जो वेणीके मिषसे पृष्ठभागमें प्राप्तहोताहै उसमें उक्तरीतिसे रक्तमांसमय उद्दालकका देहभी ऐसे शयन कररहाहै जैसे लताके समूहमें भृंग ॥ २९ ॥ हे रामजी ! संपूर्ण दृश्यके विवेक होनेपर स्फुरित जो आत्मानंद वही उत्तम विकाशोंसे शोभायमान पुष्पसहित यह उद्दालककी आरंभसे लेके विदेह कैवल्य प्राप्ति पर्यन्त चरित्रकी कल्पनारूप कल्पवृक्षकी लता जिस पुरुषके हृदयरूप बनमें उत्पन्न होकर उत्तरोत्तर भूमिकाके अधिरोहणसे विस्तारको प्राप्त हुईहै वह पुरुष तीनों तापरूप सूर्यसे संतप्त व्यवहाररूप बनमें बिहार करताहुआभी सत्यशान्ति आदिगुणोंसे सुगन्धित तथा शीतल सहज संतोषरूप छायासे कदाचित्भी वियोगको नहीं प्राप्तहोता और सर्वोत्तम मोक्षके फलके साथ संयोगकोभी पाताहै

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकनिर्वाणं नाम पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५६ ॥

जिसका मायारूप अन्धकार नष्टहै ऐसा बासनारहित ज्ञानी पुरुष व्यवहारमेंभी आसक्त समाधिस्थहै यह विषय इस ५६ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ क्रमेणानेनविहरन्विचार्यात्मानमात्मना ॥ विश्रांतिमेहिविततेपदेपद्मदलेक्षण ॥ १ ॥ शास्त्रार्थगुरुचेतोभिस्तावत्तावद्विचार्यते ॥ सर्वदृश्यक्षयाभ्यासाद्यावदासाद्यतेपदम् ॥ २ ॥ वैराग्याभ्यासशास्त्रार्थप्रज्ञागुरुमयक्रमैः ॥ पदमासाद्यतेपुण्यंप्रज्ञयैवैकयाथवा ॥ ३ ॥ संप्रबोधवतीतीक्ष्णाकलंकरहितामतिः ॥ सर्वसामग्र्यहीनापिपदंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे कमलनेत्र रामजी ! इसी पूर्व कथित रीतिसे विचरते हुये आत्मासे आत्माको विचारके व्यापक ब्रह्मपदमें विश्राम करो ॥ १ ॥ शास्त्रके श्रवणसे, आत्मतत्वकी परीक्षासे, गुरूके बचनमें विश्वाससे, और चित्तके शोधनसे जबतक सब दृश्यके बाधसे परमपदकी प्राप्ति न हो तबतक विचार अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥ वैराग्य, आत्मचिंतनके अभ्यास, वेदान्त शास्त्रका श्रवण, आत्मरूप अर्थकी परीक्षा, बुद्धि, गुरूके बचनमें विश्वास, और इन्द्रियोंके निग्रह आदि क्रमोंसे पवित्र (ब्रह्म) पद प्राप्त होताहै अथवा केवल एक बुद्धिसे ॥ ३ ॥ ज्ञानयुक्त, अति तीव्र, तथा अविद्यारूप कलंकसे रहित जो बुद्धि है वह चाहै सब वैराग्यादि सामग्रीसे शून्यभी हो परन्तु उससे नित्य ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवन्भूतभव्येशकश्चिज्ज्ञातसमाधिकः ॥ प्रबुद्धइवविश्रांतोव्यवहारपरोपिसन् ॥ ५ ॥ कश्चिदेकांतमाश्रित्यसमाधिनियतःस्थितः ॥ तयोस्तुकतरःश्रेयानितिमेभगवन्वद ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इमंगुणसमाहारमनात्मत्वेनपश्यतः ॥ अंतःशीतलतायासौसमाधिरितिकथ्यते ॥७॥ दृश्यैर्मनसिसंबंधइतिनिश्चित्यशीतलः ॥ कश्चित्संव्यवहारस्थःकश्चिद्ध्यानेव्यवस्थितः ॥८॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भूतभविष्यत् तथा वर्तमानके स्वामीन् ! क्या कोई ज्ञानीपुरुष ऐसाभी है कि जो व्यवहारमें तत्पर होकरभी समाधिस्थके सदृश विश्रान्त हो ॥ ५ ॥ और जो कोई पुरुष एकान्तमें जाके समाधिके नियममें स्थितहै और जो व्यवहारमेंभी स्थित समाधिस्थहै इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठहै ? यह मुझे कहिये ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस गुणके समूहरूप दृश्य प्रपंचको आत्मासे भिन्न देखते हुये पुरुषकी जो पूर्णकामताहै इसीको समाधि कहते हैं ॥ ७ ॥ मनके रहनेसे दृश्योंके साथ सम्बन्धहै और वह संबंध मुझ आत्माके साथ नहीं है ऐसा निश्चय करके जो पूर्णकाम व्यवहारमें आसक्तहै अथवा कोई समाधिस्थहै ॥ ८ ॥

द्वावेतौरामसुखितावंतश्चेत्परिशीतलौ ॥ अंतःशीतलतायास्यात्तदनंततपःफलम् ॥ ९ ॥ समाधिस्थानकस्थस्यचेतश्चेद्वृत्तिचंचलम् ॥ तत्तस्यतत्समाधानंसममुन्मत्ततांडवैः ॥ १० ॥ उन्मत्ततांडवस्थस्य

चेतश्चेत्क्षीणवासनम् ॥ तदस्योन्मत्तवृत्तंतत्समंबुद्धसमाधिना ॥ ११ ॥ व्यवहारीप्रबुद्धोयःप्रबुद्धोयो वनेस्थितः ॥ द्वावेतौसुसमौनूनमसंदेहंपदंगतौ ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ये दोनों प्राणी यदि अन्तःकरणमें पूर्णकामहै तो सुखहै क्योंकि आपूर्णकामताहै यही अनन्त तपका फलहै ॥ ९ ॥ यदि समाधिस्थ पुरुषकी अन्तःकरणकी वृत्ति चंचलहै तो उसकी समाधिभी उन्मत्त पुरुषके तांडवनृत्यके तुल्यहै ॥ १० ॥ और तांडवनृत्यमें स्थित उन्मत्त पुरुषका चित्त यदि वासनासे शून्यहै तो उसका उन्मत्तताका वृत्तान्तभी बुद्धकी समाधिकेतुल्यहै ॥ ११ ॥ व्यवहारमें तत्पर पुरुष जो ज्ञानी है और ज्ञानी पुरुष जो बनमें स्थितहै ये दोनों भलीभांति तुल्यहैं, और निश्चय करके सन्देहरहित पदको प्राप्तहैं ॥ १२ ॥

अकर्तृकुर्वदप्येतच्चेतःप्रतनुवासनम् ॥ दूरंगतमनाजंतुःकथासंश्रवणेयथा ॥ १३ ॥ अकुर्वदपिकर्त्तैवचेतःप्रघनवासनम् ॥ निस्पंदांगमपिस्वप्नेश्वभ्रपातस्थिताविव ॥ १४ ॥ चेतसोयदकर्त्तृत्वंतत्समाधानमुत्तमम् ॥ तंविद्धिकेवलीभावंसाशुभानिर्वृतिःपरा ॥ १५ ॥ चेतश्चलाचलत्वेनपरमंकारणंस्मृतम् ॥ ध्यानाध्यानदृशोस्तेनतदेवानंकुरंकुरु ॥ १६ ॥

अर्थ—करता हुआभी चित्त ऐसे अकर्ता है यदि उसकी वासना क्षीणहैं जैसे स्त्री आदिकी कथाके श्रवणमें अन्य स्थानगत चित्त मनुष्य उस कथाके राग द्वेषसे बंधनमें नहीं आता ॥ १३ ॥ घनीभूत वासनावाला चित्त न कर्ता हुआभी कर्ता ऐसे है जैसे अंगकी चेष्टासेरहित चित्त स्वप्नमें गर्तपात्त (गढेमें गिरे हुये) की स्थितिमें कर्तता होती है ॥ १४ ॥ चित्तकी जो अकर्तृताहै वही उत्तम समाधि है, और उसीको तुम केवलीभाव जानो और वही परमसुखमें विश्रान्तिहै ॥१५ ॥ ध्यान तथा अध्यान (समाधि तथा उसके अभाव) की दृष्टिमें चित्तकी चंचलता तथा अचंचलताही मुख्य कारण कहागयाहै इसलिये उसी चित्तको अंकुरबीज वासनासे शून्य करो ॥ १६ ॥

अवासनंस्थिरंप्रोक्तंमनोध्यानंतदेवतु ॥ सएवकेवलीभावःशांततैवचसासदा ॥ १७ ॥ तनुवासनमत्युच्चैःपदायोद्यतमुच्यते ॥ अवासनंमनोकर्त्तृपदंतस्मादवाप्यते ॥ १८ ॥ घनवासनमेतत्तुचेतःकर्त्तृत्वभाजनम् ॥ सर्वदुःखप्रदंतस्माद्वासनांतनुतांनयेत ॥ १९ ॥ प्रशांतजगदास्थोंतर्वीतशोकभयैषणः ॥ स्वस्थोभवतियेनात्मासमाधिरितिस्मृतः ॥ २० ॥

अर्थ—वासनारहित मन स्थिर कहागयाहै और वही ध्यानहै वही केवलीभावहै और वही शान्तताहै ॥ १७ ॥ वासनारहित मन अति उच्च (ब्रह्म) पदकेलिये है, और वासनारहित मन कर्ता नहीं है और उसी मनसे ब्रह्मपद प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ घन वासनासहित चित्त कर्तृताका भाजनहै और वही सब दुःखोंका दाताहै, इसलिये वासनाको सूक्ष्म करना चाहिये ॥ १९ ॥ जगत् तथा देहादि दृश्यमें जिसका अहं ममताभिमान नष्ट होगयाहै, और अन्तःकरणमें शोक भय तथा इच्छासेरहित जो है और जिससे आत्मा शान्त होजाताहै उसको समाधि कहते हैं ॥ २० ॥

चेतसासंपरित्यज्यसर्वभावात्मभावनाम् ॥ यथातिष्ठसितिष्ठत्वंतथाशैलेगृहेथवा ॥ २१ ॥ गृहमेवगृहस्थानांसुसमाहितचेतसाम् ॥ शांताहंकृतिदोषाणांविजनावनभूमयः ॥ २२ ॥ अरण्यसदनेतुल्येसमाहितमनोदृशाम् ॥ भवतामिहभूतानांभूतानांमहतामिव ॥ २३ ॥ शांतचित्तमहाभ्रस्यजनज्वालोज्ज्वलान्यपि ॥ नगराण्यपिशून्यानिवनान्यवनिपात्मज ॥ २४ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंमें अहं तथा ममताकी भावनाको त्यागकर जैसे तुम चाहो वैसे स्थित रहो चाहो पर्वतपर समाधि लगाओ अथवा गृहमें व्यवहार करो ॥ २१ ॥ जिन गृहस्थोंका चित्त समाहितहै और अहंकारादि दोष जिनका शान्तहैं उनका गृहही जनरहित बनकी भूमि हैं ॥ २२ ॥ जिनके मन तथा दृष्टि समाहितहैं और जो नित्य अपरोक्ष आत्मामें स्थितहैं इसप्रकार आपके सदृश महात्माजनोंको बन और गृह ऐसे तुल्यहैं जैसे आकाशादि भूतोंको ॥ २३ ॥ हे राजपुत्र रामजी ! जिसका चित्तरूप महाकाश शान्त (शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ) है उसके लिये मनुष्योंके समूहसे व्याप्त भी नगर शून्य वनहैं ॥ २४ ॥

वृत्तिमच्चित्तमत्तस्यविजनानिवनान्यपि ॥ नगराणिमहालोकपूर्णानिपरवीरहन् ॥ २५ ॥ व्युत्थितंचित्तमभ्येतिभ्रमस्यांतःसुषुप्ततास् ॥ निर्वाणमेतिनिर्वाणंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २६ ॥ सर्वभावपदातीतंसर्वभावात्मकंचवा ॥ यःपश्यतिसदात्मानंससमाहितउच्यते ॥ २७ ॥ ईहितानीहितेक्षीणेयस्यांतर्वितताकृते ॥ सर्वेभावाःसमायस्यससमाहितउच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे शत्रुघातक रामजी ! रागादिकी वृत्तिसे विक्षिप्त चित्तयुक्त मनुष्योंके लिये जन शून्य बनभी महालोकोंसे पूर्ण नगरहै ॥ २५ ॥ रागआदिसे विक्षिप्त नानाप्रकारके विषय भ्रमके शान्त होनेपर भी पुनः वह सहस्रों बीज

वासनाकी सुषुप्तता दशाको प्राप्त और शान्तचित्त मोक्षको प्राप्त होताहै जब जैसी तुमारी इच्छाहो वैसा करो ॥ २६ ॥ जो समाधिमें सब पदार्थोंसे अतीत और व्यवहारमें सब पदार्थरूप आत्माको सदा देखताहै वही समाधिस्थहै ॥२७॥ तथा जिस विशाल आकारवालेके रागद्वेष क्षीण होगये हैं और जिसको पदार्थ समान (ब्रह्म) रूप देख पडते हैं वह समाधिस्थ कहाताहै ॥ २८ ॥

सदात्मनास्देवेदंजगत्पश्यतिनोमनः ॥ यथास्वप्नेतथैवास्मिन्जाग्रत्यपिजनेश्वर ॥ २९ ॥ यथाविपणि कालोकाबहिरंतोप्य्सत्समाः ॥ असंबंधात्तथाज्ञस्यग्रामोपिविपिनोपमः ॥ ३० ॥ अंतर्मुखमनानित्यं सुप्तोबुद्धोव्रजन्नपि ॥ पुरंजनपदंग्राममरण्यमिवपश्यति ॥३१॥ सर्वमाकाशतामेतिनित्यमंतर्मुखस्थितेः॥ सर्वथानुपयोग्यत्वाद्भूताकुलमिदंजगत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मनुष्योंके ईश्वर! समाहित पुरुषका चित्त जैसे स्वप्नमें वैसे जाग्रत्में इस दृश्य जगत्को ब्रह्मरूपसे ही सदा देखताहै उसका मन इस जगत्को आत्मासे भिन्न नहीं देखता ॥ २९ ॥ जैसे पराय (बाजार) में लोग अपना २ व्यवहार करते हुये भी उदासीन पुरुषके उपकारी न होनेसे असत्के तुल्यहैं ऐसेही ज्ञानी पुरुषको सम्बन्ध न होनेसे ग्रामभी बनके तुल्यहै ॥ ३० ॥ नित्य अन्तर्मुखमनवाला पुरुष चाहै सोताहो वा जागताहो वा चलताहो परन्तु वह नगर, राज्य और ग्रामको भी बनके समान देखताहै ॥ ३१ ॥ अन्तर्मुख वृत्तियुक्त पुरुषको सर्वथा उपयोगी न होनेसे प्राणियोंसे तथा पृथिवी आदिसे पूर्ण भी यह जगत् नित्य शून्यरूपताहीको प्राप्त रहताहै ॥ ३२ ॥

अंतःशीतलतायांतुलब्धायांशीतलंजगत् ॥ विज्वराणामिवनृणांभवत्याजीवितस्थितेः ॥ ३३ ॥ अंतस्तृष्णोपतप्तानांदावदाहमयंजगत् ॥ भवत्यखिलजंतूनांयदंतस्तद्बहिःस्थितम् ॥ ३४ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ अंतःकरणतत्त्वस्यभागाबहिरिवस्थिताः ॥ ३५ ॥ वटधानावटइवयदंतस्थंसदात्मनः ॥ तद्बहिर्भासतेभास्वद्विकासेपुष्पगंधवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अन्तःकरणकी शीतलताके लब्ध होनेसे मनुष्योंके लिये जीवनपर्यन्त यह जगत् ऐसे शीतल भान होताहै जैसे नीरोगी पुरूषको ॥ ३३ ॥ और अन्तःकरणमें तृष्णारूप अग्निकी ज्वालासे संतप्त जीवोंको यह सम्पूर्ण जगत् बनकी अग्निके दाहमय होजाताहै क्योंकि अन्तःकरणमें जैसा संतप्त वा शीतल यह जगत् स्थितहै वैसाही बाह्य आकारसेभी स्थित है ॥ ३४ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां और दिशायें अन्तःकरणके भाग बाह्य (बाहर) देशमें थितहैं ॥ ३५ ॥ जैसे वटवृक्षके भीतर वटके बीजहैं तो बाहर भासतेहैं ऐसेही सत् आत्माके भीतर जो जगत् स्थितहै वही विकाशित पुष्पके गंधके समान बाहर भासताहै ॥ ३६ ॥

नबहिर्नवनांतस्थंकचित्किंचनविद्यते ॥ यद्यथाकचितंचित्त्वात्तत्तथातत्त्वमुत्थितम् ॥ ३७ ॥ आत्मतत्त्वांतरंभातिबहिर्नेनजगत्तया ॥ कर्पूरमिवगंधेनसंकोचेप्रविकासिच ॥ ३८ ॥ आत्मैवस्फुरतिस्फारंजगत्वेनाप्यहंतया ॥ बाह्यत्वेनांतरत्वेनसचनासन्नसन्विभुः॥३९॥ बहिष्ठेनांतरंबाह्यमंतःस्थेनांतरस्थितम् यथाविदितमात्मायंस्वचित्तमनुपश्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें न कहीं कुछ बाहरहै और न कहीं कुछ भीतरहै किंतु जो वस्तु पूर्वके वासनाके बलसे चित् जैसे भासित हुई वही उसी रूपसे प्रकटहै ॥ ३७ ॥ भीतर जो आत्मतत्त्वहै वही बाहर जगत्के आकारसे ऐसे भान होताहै जैसे डिब्बेके भीतर संकोचमें स्थित कर्पूर बाहर गन्धसे विकासित (अधिक देशमें विस्तृत) होताहै ॥ ३८ ॥ आत्माही विशालतासे बाह्य जगत्रूपसे तथा अंतर अहंतारूपसे स्फुरताहै और यथार्थमें वह न तो नेत्र आदिसे अदृश्य अहंकारादिरूपहै और न स्थूल बाह्यरूपहै किंतु दोनोंमें गुंथा हुआ वह विभु सन्मात्रहै ॥ ३९ ॥ इसीसी यह आत्मा अपना आन्तरिक चित्त पूर्व २ अनुभूत वासनाके अनुसार जानताहै वैसेही बहिर्मुख होके नेत्र आदिसे जगत्के आकारको देखताहै और अन्तःकरणमें स्थित होके जाग्रत्की वासनादिसे हृदयमें स्थित स्वप्न और मनोराज्यादिको देखताहै ॥ ४० ॥

सबाह्याभ्यंतरंशांतमात्मनोभेदितंजगत् ॥ अहंत्वादिस्थितेभेदेभूरिभंगभयंततत् ॥ ४१ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वतास्सरितोदिशः ॥ कल्पादिरेवज्वलितंसर्वमाधिहतात्मनः ॥ ४२ ॥ यस्त्वात्मरतिरेवांतःकुर्वन्कर्मेंद्रियैःक्रियाः ॥ नवशोहर्षशोकाभ्यांससमाहितउच्यते ॥ ४३ ॥ यःसर्वगतमात्मानंपश्यन् समुपशांतधीः ॥ नशोचतिध्यायतिवाससमाहितउच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके जगत्में अनुस्यूत (गूंथे हुये) सत्रूप आत्मासे भिन्न सत्रूपसे भासमान यह जगत् शान्त अर्थात् मृतकही है और आत्मासे पृथक्करणके अभावमें तो उन २ पदार्थोंकी सत्तासे बाह्य

आभ्यंतर भेद स्थित होनेपर उन २ पदार्थोंमें अहंता और ममताके अध्याससे उन २ पदार्थोंके भंगसे बहुत भंग (भेद) का भय होगा ॥ ४१ ॥ उन २ पदार्थोंकी चिंतासे नष्ट आत्मापुरुषको अन्तरिक्ष, पृथिवी, आकाश, पर्वत, नदियां, और दिशा आदि सब वस्तु तीनोंप्रकारके तापकी ज्वालासे प्रज्वलित होके प्रलयका आरंभही होजाताहै॥४२॥ ॥ ४२ ॥ और जो पुरुष अंतःकरणसे केवल आत्माहीमें प्रीति करताहै अर्थात् अहंता ममताको त्यागकर सर्वत्र सन्मात्र आत्माहीको देखताहै वह कर्म इन्द्रियोंसे क्रियाओंका कर्ता हुआभी हर्ष शोकके वशमें नहीं आता और समाधिस्थ कहा जाताहै ॥ ४३ ॥ जो सर्वव्यापी आत्माको सर्वत्र देखता हुआ शान्त बुद्धि पुरुष संसारके पदार्थोंको न शोचताहै और न उनका ध्यान करताहै वह समाधिस्थहै ॥ ४४ ॥

सपूर्वापरपर्यंतांयःपश्यन्जागतींगतिम् ॥ दृष्टिष्वेतासुहसतिससमाहितउच्यते ॥ ४५ ॥ समेपरेपिनाहंतानजगज्जन्मनोमयि ॥ वीचिवृंदेष्विवातप्तानाकाशेफलधातवः ॥ ४६ ॥ यस्यांतरस्थिताहंत्वंनविभागादिनोमनः ॥ नचेतनाचेतनत्वेसोस्तिनास्तीतरोजनः ॥ ४७ ॥ व्योमस्वच्छोबहिश्चेष्टांसम्यगाचरतीहयः ॥ हर्षामर्षविकारेषुकाष्ठलोष्ठसमःशमः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो पुरुष उत्पत्ति तथा नाशसहित जगत्की गतिको देखता हुआ मूढजनोंमें प्रसिद्ध अहंता तथा ममता आदि दृष्टियोंपर हंसताहै वह समाधिस्थ कहा जाताहै ॥ ४५ ॥ प्रत्यक् स्वरूप मुझ आत्मामें तथा असंग अद्वैत कूटस्थ और सर्वत्र समरूप परब्रह्ममें अहंता ममता तथा जगत्के जन्ममरण आदि विकार ऐसे नहीं सम्भव होसकते जैसे शरत्के घामसे दूरसे देख पडती हुई पुंजीभूत पिघले हुये रजतकी कांति तरंगोंके समूहोंमें सम्भव नहीं होसकती क्योंकि आकाशमें प्राप्य आदि क्रियाके फल धारण करनेकी शक्ति नहीं है ॥ ४६ ॥ जिस ज्ञानीका भिन्नरूपसे प्रत्यक् आत्मरूप स्थित नहीं है अहंताभी नहीं है, और दृश्य जगत्के विभाग आदि तथा मनभी नहीं हैं और अहंता ममताके अधीन चेतन अचेतन व्यवहारभी नहीं है किंतु सर्वरूप वही आत्माही स्थितहै न कि अन्य जन॥४७॥ जो ज्ञानीपुरुष आकाशके समान स्वच्छ, शास्त्र तथा शिष्टाचारके अविरूद्ध बाह्य चेष्टाको करताहै और हर्ष क्रोधादिके विकारोंमें काष्ठ पाषाणके तुल्यहै तथा शान्त स्वभावहै वही समदर्शी है ॥ ४८ ॥

आत्मवत्सर्वभूतानिपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥ स्वभावादेवनभयाद्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ४९ ॥ अर्थोतनुस्तनुर्वापिनासद्रूपेणचेत्यते ॥ सद्रूपेणानुभूतोज्ञेनज्ञैनेवनतत्तया ॥ ५० ॥ ईदृशाशयसंपन्नोमहासत्त्वपदंगतः ॥ तिष्ठतुदेतुवायातुमृतिमेतुनतत्स्थितिम् ॥ ५१ ॥ वसतूत्तमभोगाढ्येस्वगृहेवाजनाकुले ॥ सर्वभोगोज्झिताभोगेसुमहत्यथवावने ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो सब जीवोंको अपने समान और दूसरेके द्रव्यको पाषणके तुल्य स्वभावहीसे देखताहै न कि भयसे वही देखताहै अर्थात् समदर्शी है ॥ ४९ ॥ और अज्ञानी पुरूष तो चाहै महान् पदार्थ (ब्रह्माका ऐश्वर्य्य) हो वा न्यून काकिणी (छदाम) अथवा सुवर्ण स्त्री आदि पदार्थ हों परंतु उनको असत्रूपसे नहीं देखता और न असत्का अधिकरण सद्रूपका उसने अनुभव किया है इसलिये पदार्थोंको न वह मिथ्यात्वरूपसे देखताहै और न सत्रूपसे देखताहै किंतु ज्ञानीही वैसा देखताहै ॥ ५० ॥ हे रामजी ऐसा अभिप्राय युक्त मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त है वह चाहै निर्धनहो वा ऐश्वर्य्ययुक्तहो और पुत्र बांधव आदिके मरणको प्राप्त वा उस स्थितिको न प्राप्तहो परन्तु उसकी कोई हानि नहीं है ॥ ५१ ॥ और उत्तम भोगोंसे पूर्ण, मनुष्योंसे व्याप्त अपने गृहमें निवास करै, अथवा सब भोगोंसे रहित बडे बनमें रहै ॥ ५२ ॥

उद्दाममन्मथंपानतत्परोवापिनृत्यतु ॥ सर्वसंगपरित्यागीसममायातुवागिरौ ॥ ५३ ॥ चंदनागुरुकर्पूरैर्वपुर्वापरिलिंपतु ॥ ज्वालाजटिलविस्तारेनिपतत्वथवानले ॥ ५४ ॥ पापंकरोतुसुमहद्वाइलंपुण्यमेवच ॥ अद्यवामृतिमायातुकल्पांतनिचयेनवा ॥ ५५ ॥ नासौकिंचिन्नतत्किंचित्कृतंतेनमहात्मना ॥ नासौकलंकमाप्नोतिहेमपंकगतंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—और प्रचंड कामदेवके वेगसे मद्यपानमें तत्परहो अथवा नृत्य करै, अथवा सर्वसंग परित्याग करके पर्वतपर तप करै ॥ ५३ ॥ और चन्दन अगरू तथा कर्पूरसे अपने शरीरको लिप्त करे, वा ज्वालासे जटिल विस्तार युक्त अग्निमें गिरै ॥ ५४ ॥ पाप करै अथवा बहुत पुण्य करै, आज मरै वा कल्पोंके समूहके अनन्तर ॥ ५५ ॥ इस बातके होनेपरभी यह समदर्शी मरण दुःखादि विकारोंका तथा देह मन आदिके अहंताका आश्रय नहीं है, और न इस महात्माने कुछ किया है और यह दोषरूप कलंकको इसप्रकार नहीं प्राप्त होता जैसे कीचडमें प्राप्त सुवर्ण ॥५६॥

संवित्पुरुषशब्दार्थैःसकलंकैःकलंक्यते ॥ अहंत्वंवासनारूपैःशुक्तिकारजतोपमैः ॥ ५७ ॥ समस्तव स्तुप्रशमात्सम्यग्ज्ञानाद्यथास्थितेः ॥ स्वभावस्योपशांतोंतःकलंकोसत्तयास्वतः ॥ ५८ ॥ अहंत्ववास नानर्थप्रसूतेःसंविदात्मनः ॥ पुरुषस्यविचित्राणिसुखदुःखानिजन्मनि ॥ ५९ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेशांतेऽहि र्नेतिनिर्वृतिर्यथा ॥ अहंत्वभावसंशांतौंतथांतःसमतामता ॥ ६० ॥

अर्थ—शास्त्रविरूद्ध विषयोके सेवनसे दूषित वासनारूप, इन्द्रियसंबन्धी ज्ञानोंसे, उनके आश्रयभूत पुरूषके देहसे और भोग्य शब्द अर्थरूप विषयोंसे अहंकार प्रधान लिंगात्मा ऐसे कलंकित होताहै जैसे रजत (चांदी) के सदृश पदार्थोंमें शुक्ति (सींप) का ॥ ५७ ॥ जो पदार्थ जैसा है उसके यथार्थ ज्ञानसे सब वस्तुओंके शान्त होनेसे चित्तका कलंक सत्ताके अभावसे स्वयं शांत होजाताहै ॥ ५८ ॥ और अहंता ममताके अध्याससे वासनारूप अनर्थोंकी उत्पत्ति होनेसे पुरूषके जन्ममें चित्रविचित्र दुःख होते हैं ॥ ५९ ॥ रज्जुमें सर्पका भ्रम नष्ट होजानेसे यह सर्प नहीं यह शांति जैसे होती हे ऐसेही अहन्ताके शान्त होनेसे अन्तःकरणमें समता प्राप्त होती है ॥ ६० ॥

यत्करोतियदश्नातियद्ददातिजुहोतिवा ॥ नतज्ज्ञस्यनतत्रज्ञोमाकरोतुकरोतुवा ॥ ६१ ॥ कर्मणास्तिनत स्यार्थोनार्थस्तस्यास्त्यकर्मणा ॥ यथास्वभावावगमात्सआत्मन्येवसंस्थितः ॥ ६२ ॥ इच्छास्ततःस मुद्यंतिनमंजर्यइवोपलात् ॥ याश्चोद्यंतिचताःसर्वाःसइवाप्स्विववीचयः ॥ ६३ ॥ सकलमिदमसावसौ चसर्वंजगदखिलंनविभागितात्रकाचित् ॥ परमपुरुषपावनैकरूपीससदितितत्सदकिंचिदेवनासौ ॥ ६४

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे
ध्यानविचारो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो कुछ करताहै, जो कुछ खाताहै जो देताहै और जो यज्ञ आदि हवन करताहै वह ज्ञानी पुरूषका नहीं है और न उसमें ज्ञानी है चाहै वह उन कर्मोंको करै वा न करै ॥ ६१ ॥ न उसको कुछ कर्मसे प्रयोजन और न कर्मके अभावसे कुछ प्रयोजनहै किन्तु यथार्थ आत्माके ज्ञानसे वह आत्माहीमें स्थित है ॥ ६२ ॥ क्योंकि जैसे पाषाणसे लता नहीं उत्पन्न होती ऐसेही उस पुरूषके अन्तःकरणसे इच्छा नहीं उत्पन्न होती और जो उत्पन्न होती हैं जलमें तरंगके समान उसका रूपहै ॥ ६३ ॥ और यह सब ब्रह्माण्ड इसका रूपहै और यह अखण्ड ब्रह्माण्ड रूपहै क्योंकि इस जगत्में देश काल तथा वस्तुकृत विभाग किंचित्भी नहीं है इसीसे यह परमपुरूष अति पावन एकरूप और सब द्वैत बन्धनसे निर्मुक्त सन्मात्र है ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे
ध्यानविचारो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

निजस्वभावसे अज्ञात चित् दृक्रूप होनेसे जिस दृश्यरूपताको वह चित् धारण करती है वह दृश्य चित्रूपही है क्योंकि चित्से भिन्न कुछ नहीं है इस विषयका वर्णन ५७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदात्ममरिचस्यांतश्चित्त्वात्तीक्ष्णत्ववेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादिचेत्य तः ॥ १ ॥ यदात्मलवणस्यांतश्चित्त्वाल्लवणवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादिमत्स्थितम् ॥ २ ॥ स्वतोयदंतरात्मेक्षोश्चित्त्वान्माधुर्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिजगत्तत्त्वादिजृंभितम् ॥ ३ ॥ स्वतोय दात्मदृषदश्चित्त्वात्काठिन्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादितांगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जो आत्माहै उसीकी निज प्रकाशकी तीक्ष्णता मरिच (मिर्चा) है उस आत्माका चिद्धर्म होनेसे जो तीक्ष्णतारूपसे अनुभवहै वही उस स्थानके ब्रह्मस्वभावके अज्ञात होनेसे अहंतात्वंतारूप घटभित्ति आदिरूप और उनके आधार देशकालादिरूप जगत्है इसप्रकार चिद्ब्रह्मसे सबका अभेद सिद्धहै ॥ १ ॥ ऐसेही आत्मारूप लवणका जो चित्केद्वारा लवणरूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, घट कुड्य (भीति) आदि रूप, और उनके आधार देशकालादिमान् होके यह जगत् स्थितहै ॥ २ ॥ तथा स्वयं जो अंतरात्मारूप इक्षु (ईख वा ऊख) का मधुरता रूपसे अनुभवहै वही अहंतात्वंतारूप तथा पृथिवी आदि उन २ तत्वोंके आकाररूपसे

---

(१) सब इन श्लोकोंमें तथा आगेभी (वही) इस शब्दका यही अभिप्रायहै कि उस स्थानका अज्ञातब्रह्मही उन २ पदार्थरूपसे स्थितहै ॥

प्रकट यह जगत् स्थितहै ॥ ३ ॥ आत्मारूप पाषाणका जो कठिनतारूपसे अनुभवहै वही अहंतादि रूपसे घट भित्ति आदिरूप तथा उनके अधिकरण देश कालादि रूपताको प्राप्तहै ॥ ४ ॥

स्वतोयदात्मशैलस्यज्ञतयाजाड्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीतिसंस्थितम् ॥ ५ ॥ स्वतोयदात्मतोयस्यचिद्द्रवत्वादिवर्त्तनम् ॥ तदावर्ताद्यहंतादिभेदाद्याकारिताइव ॥ ६ ॥ स्वतोयदात्मवृक्षस्यशाखादिस्तस्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीवसत्स्फुरत् ॥ ७ ॥ यदात्मगगनस्यांतश्चित्त्वाच्छून्यत्ववेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीतिभावनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और स्वयं जो आत्मारूप पर्वतका जो चिद्धर्मसे गुरुता (भारीपन) रूपसे अनुभवहै वही चित् अहंतादि रूपसे तथा घट कुड्य और भुवन आदिरूप यह जगत् स्थितहै ॥ ५ ॥ और स्वयं जो आत्मारूप जलका चित्के द्वारा द्रवतारूपसे अनुभवहै वही चित् आवर्तादि और अहंतादिके आकाररूपसे स्थितहै ॥ ६ ॥ स्वयं आत्मरूप वृक्षका शाखारूपसे जो अनुभवहै वही अहंतादिरूपसे तथा भुवनादिरूपसे वर्तमान होके भासताहै ॥ ७ ॥ आत्मारूप आकाशके भीतर जो चित्से शून्यताका अनुभवहै वही अहंतादि, रूप, घट कुड्य आदिरूप तथा उनके आधार भुवनादिरूपसे कल्पनाहै ॥ ८ ॥

यदात्मगगनस्यांतश्चित्त्वात्सौषिर्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिशरीरादिचदीपितम् ॥ ९ ॥ स्वतोयदात्मकुड्यस्यनैरंतर्यनिरंतरम् ॥ तदहंतादिभेदेनचित्ताद्बहिरिवस्थितम् ॥ १० ॥ स्वतोयदात्मसत्तायाश्चित्त्वात्सत्त्वैकवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिचेतनानीतिवत्स्थितम् ॥ ११ ॥ अंतरात्मप्रकाशस्यस्वतोयदवभासनम ॥ तदहंतादिचित्त्वादिर्जीवइत्येववेदसः ॥ १२ ॥

अर्थ—और जो आत्मारूप आकाशका अवकाश दातृत्वरूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, घटपटादिरूप तथा शरीरादिरूपसे प्रकाशितहै ॥ ९ ॥ और स्वयं आत्मरूप भित्तिका जो घनतारूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप तथा भित्ति आदिरूपके भेदमें चित्तसे बाहर चित्से भिन्नके तुल्य दृश्यरूपसे स्थितहै ॥ १० ॥ स्वयं आत्मसत्ताका जो चित्के द्वारा सत्तारूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, तथा चिदाभासरूप स्थितहै ॥ ११ ॥ अन्तरात्माके प्रकाशका जो स्वयं अनुभवहै उसीको वृत्तियोंके भेदसे भिन्न २ चिदाभासोंमें अनुगत सामान्य जीवरूपसे वह जानताहै ॥ १२ ॥

अंतरस्तियदात्मेंदोश्चिद्रूपंचिद्रसायनम् ॥ स्वतआस्वादितंतेनतदहंतादिनोदितम् ॥ १३ ॥ परमात्मगुडस्यांतर्यच्चित्स्वादूदयात्मकम् ॥ तदेवास्वाद्यतेतेनस्वतोहंतादिनांतरे ॥ १४ ॥ परमात्ममणेश्चित्त्वाद्यदंतःकचनंस्वयम् ॥ चेतनात्मपदेचांतरहमित्यादिवेत्त्यसौ ॥ १५ ॥ नचकिंचनवेत्त्यंतर्वेद्यस्यासंभवादिह ॥ नचास्वादयतिस्वाद्रस्वाद्यस्यासंभवादयम् ॥ १६ ॥

अर्थ--आत्मारूप चन्द्रके भीतर जो स्वयं अनुभूत चित्रूप अमृतहै वही अहंतादिरूपसे अविर्भूतहै ॥ १३ ॥ परमात्मारूप गुडके भीतर जो स्वादुमय चिद्रूपहै उसका आस्वाद अपने आत्मामें वही लेताहै ॥ १४ ॥ परमात्मारूप मणिके भीतर जो चित्रूपसे स्वयं प्रकाशहै वही अपने आत्मस्वरूपमें अन्तःकरणमें अहं इस रूपसे अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ और यथार्थ यह आत्मा अपने स्वरूपमें कुछ नहीं जानता क्योंकि आत्मासे भिन्न ज्ञेय पदार्थका असंभवहै और न कुछ आस्वाद लेताहै क्योंकि चित्से भिन्नस्वादके योग्य पदार्थका होना असंभवहै ॥ १६ ॥

नचकिंचिच्चिनोत्यंतश्चेत्यस्यासंभवेसति ॥ विंदतेनचवाकिंचिद्वेद्यस्यासंभवादसौ ॥ १७ ॥ असदाभासएवात्माअनंतोभरिताकृतिः ॥ स्थितःसदैवैकघनोमहाशैलइवात्मनि ॥ १८ ॥ अनयातुवचोभंग्या मयातेरघुनंदन ॥ नाहंतादिजगत्तादिभेदोस्तीतिनिदर्शितम् ॥ १९ ॥ नचित्तमस्तिनोचेतानजगत्तादिविभ्रमः ॥ वृष्टमूकांबुदसितंशांतंशाम्यतिकेवलम् ॥ २० ॥

अर्थ—न दुसरे चेतनसे विकारको प्राप्त होता है क्योंकि विकार होने योग्य पदार्थका अभाव है और प्राप्य पदार्थके अभावसे इसको कुछ प्राप्त नहीं ॥ १७ ॥ असत् जगत्का आकार जिसमें भासताहै ऐसा अनंत पूर्णरूप सदाज्ञान एकरूप यह परमात्मा महापर्वतके तुल्य आत्मामें स्थितहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! इस पूर्वोक्त वचनकी रचनासे मैंने तुमको यह दर्शाया कि अहंता और जगत्में कुछ भेद नहीं है ॥ १९ ॥ यथार्थमें न चित्त है और न चित्तवाला है और न जगत् आदिका भ्रम है किन्तु प्रथम वृष्टिकरके पीछे निःशब्द शरद्ऋतुके मेघके समान शुद्ध सन्मात्रसे बाधित यह जगत् शान्तहो रहाहै ॥ २० ॥

यथावर्त्तादितामेतिद्रवत्वाद्वारिवारिणि ॥ तथाहंतादितामेतिज्ञप्ताज्ञप्तिरात्मनि ॥ २१ ॥ यथाद्रवत्वं पयसियथास्पंदःसदागतौ ॥ अहंतादेशकालादितथाज्ञेज्ञप्तिमात्रके ॥ २२ ॥ ज्ञोज्ञतायांशिवंज्ञानंजाना

तिज्ञानवृंहया ॥ ज्ञायतेऽहंतदाज्ञेनजीवादीत्यभिजीवनैः ॥ २३ ॥ यथोदेतियथाज्ञस्यतृप्तिर्ज्ञानेनयादृशी ॥ अनन्येवान्यताबुद्धासतथाजृंभतेतया ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे द्रवस्वभाव होनेसे जलमें जल आवर्त आदि रूपताको प्राप्त होताहै ऐसे मायावी ईश्वर अपनी मायासे आवृत ज्ञप्तिमात्र निजआत्मामें जगत् जीवदशाको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ जैसे जलमें द्रवताहै और वायुमें गति है ऐसेही ज्ञप्तिमात्र ईश्वर अहंता देशकाल आदि है ॥ २२ ॥ ईश्वर अपने ईश्वरभावमें आवरण तथा परिच्छेद शून्य ज्ञानकी वृद्धिसे नित्य निरतिशय आनन्दस्वरूप ज्ञानको सदा जानताहै और अहंकारसे स्थूल देहरूप जीव भावमें जो चेतनभूतभी जीवनके हेतु भूतप्राण इन्द्रियादिके विषयसंबंधके अभ्याससे जीवादि रूपआत्मा केवल जाना जाताहै न कि यथार्थ ॥ २३ ॥ और जिस २ काम कर्मोंकी वासनासे, जैसे विषयज्ञानसे जिस २ दर्शन लाभादि भोगकी विचित्रतासे अज्ञानीकी जैसे प्रिय मोदप्रमोद आदि नानाप्रकारकी तृप्ति उदय होती है वह विचित्रता अभिन्न-स्वरूप परमात्मासे ज्ञात होती है और वह ईश्वर उन २ उनकी कामनाआदि वासनासे उसी २ प्रकारसे अपने अंगोंको परिणत (विवर्तित) करताहै ॥ २४ ॥

जीवनंज्ञाततताज्ञाताजीवनंजीवजीवनम् ॥ अत्यंतमस्तिनोभेदश्चिद्रूपत्वेज्ञजीवयोः ॥ २५ ॥ यथाज्ञजीवयोर्नास्तिभेदोनामतथैतयोः ॥ भेदोस्तिज्ञशिवयोर्विद्धिशांतमखंडितम् ॥ २६ ॥ सर्वप्रशांतमजमेकमनादिमध्यमाभास्वरंस्वदनमात्रमचेत्यचिह्नम् ॥ सर्वप्रशांतमितिशब्दमयीतुदृष्टिर्बोधार्थमेवहिमुधैवतदोमितीदम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भेदनिरासोनाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—और जिस समय सत्‌शास्त्रोंसे तथा गुरूके उपदेशादिसे यह ज्ञात होताहै कि भोग्य जगत्‌के अधिष्ठान सन्मात्ररूपकी स्फूर्ति होनाही जीवन है अर्थात् जगत्‌के अधिष्ठान परमात्माके ज्ञानको परमार्थ स्थिति समझी जाती है और सब प्राणियोंका जीवन जिसके आधीन है उस जीवका परमानन्दही जीवन मुख्य है यह जब ज्ञात होताहै उस समय भोग्यभोक्ताके अधिष्ठान दोनोंके चिद्रूप शेष होनेपर जीव ईश्वरका भेद सर्वथा नहीं है ॥ २५ ॥ जैसे जीव ईश्वरका भेद नहीं है ऐसेही ईश्वर ब्रह्म (तुरीय) तथा जीव तुरीयकाभी भेद नहीं है इसलिये शान्त अखंड परिपूर्ण ब्रह्ममात्रही शेषहै ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इसलिये संपूर्ण जगत् प्रशान्त, अजन्मा एक, अनादि, सर्वत्र भासमान निज अनुभवमात्र, अपने व्यावर्तित चिन्होंसे ब्रह्ममात्रही है और सब प्रशान्त इत्यादि दृष्टिज्ञानके लिये मिथ्यामात्रहैं क्योंकि वाक्य अखंडार्थ ओंकार पदका लक्ष्यार्थही सब कुछ है ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे भेदनिरासो नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्ट पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

किरातोंके स्वामी सुरघुका वैराग्य तथा सर्व त्यागादि उपायसे मांडव्यऋषिका उपदेश इस ५८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ किरातेशस्यसुरघोर्वृत्तांतंविस्मयास्पदम् ॥ १ ॥ उत्तरस्यादिशोभेदःकर्पूरपटलंभुवः ॥ संभूतंहसनंशार्वंशुक्लोवाचांद्रआतपः ॥२॥ हिमाद्रेः शृंगमस्तीहकैलासोनामपर्वतः ॥ शैलकुंजरनिर्मुक्तकलापस्येवनायकः ॥ ३ ॥ विष्णोःक्षीरोदकइवस्वर्गःसुरपतेरिव ॥ अब्जजस्येवनाभ्यब्जंगृहंयःशशिमौलिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शब्दमयी दृष्टि केवल बोधके अर्थ है इस विषयमें किरातके स्वामी सुरघुका विस्मयकारक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देतेहैं ॥ १ ॥ उत्तरदिशाका सारभूत, पृथिवीसे निःसृत कर्पूरकी राशिकेसमान, तथा महादेवजीके हास्य वा शुक्लपक्षके चन्द्रके प्रकाशके तुल्य ॥ २ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयसे धारण किये हुये शिखरोंकी पंक्तिरूप मोतियोंके मालाके सुमेरूके सदृश कैलास नामसे प्रसिद्ध हिमालयका एक शिखरहै ॥ ३ ॥ जैसे विष्णुका क्षीरसमुद्र, इन्द्रका स्वर्ग, और ब्रह्माका विष्णुकी नाभिका कमल गृहहै ऐसेही वह शिखर शंकरभगवान्‌का गृह है ॥ ४ ॥

रुद्राक्षवृक्षदोलाभिःसाप्सरोभिर्विभातियः ॥ लोलरत्नशलाकाभिर्लहरीभिरिवार्णवः ॥ ५ ॥ गणांगनानामविशंमत्तानांचरणैर्हताः ॥ अशोकाइवराजंतेयत्राशोकाविलासिनः ॥ ६ ॥ संचरन्शंकरोदिक्षुभृगुष्विंदुमणिद्रवैः ॥ निवर्त्ततेप्रवर्ततेयत्राजस्रंचनिर्झराः ॥ ७ ॥ योलतावृक्षगुल्मौघवापीह्रदनदीनदैः ॥ मृगैर्मृगगणैर्भूतैर्ब्रह्मांडवदिवावृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—अप्सराओंकरकेसहित रुद्राक्षोंके वृक्षोंमें लटकती हुई झूलाओंसे वह ऐसा शोभित था जैसे चंचल रत्नोंकी शलाकाओंसेयुक्त तरंगोंसे समुद्र ॥ ५ ॥ कामदेवके वेगसे मदोन्मत्त प्रथम गणोंकी अंगनाओंके चरणोंसे ताडित शोकरहित विलासी ऐसे शोभित होरहे हैं जैसे अशोकके वृक्ष ॥ ६ ॥ और उस शिखरपर जिन २ दिशाओंमें शंकरभगवान् भ्रमण करतेहैं वहां २ चन्द्रकान्तमणिके द्रवोंसे निरन्तर झरने झरते हैं और अन्य दिशाओंसे निवृत्त होतेहैं ॥ ७ ॥ और जो लता, वृक्ष, गुल्मोंके समूह, वापी, ह्रद, नदी, नद मृग तथा मृगोंके गणोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे प्राणियोंके गणोंसे ब्रह्मांड ॥ ८ ॥

तस्यहेमजटानामकिराताःसंस्थिताःस्थले ॥ पिपीलिकावटतरोर्मूलकोशगताइव ॥ ९ ॥ कैलासपादारण्यानांरुद्राक्षैस्तरुगुल्मकैः ॥ वसंतिघूकवत्क्षुद्रास्तेवैनिकटजीविनः ॥ १० ॥ आसीत्तेषामुदारात्माराजापरपुरंजयः ॥ जयलक्ष्म्याभुजइवयःप्रजायाश्चदक्षिणः ॥ ११ ॥ सुरघुर्नामबलवान्सुरघोरारिदर्पहा ॥ अर्कःपराक्रमइवमूर्त्तिमानिवमारुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—उस हिमालयके मूलदेशमें हेम जटा (सुवर्णके तुल्य पीत जटाधारी) नाम किरात ऐसे निवास करतेथे जैसे वटवृक्षके मूलके खोंखलमें चेटी ॥ ९ ॥ उस कैलासपर्वतके नीचे पर्वतोंके जंगलोंके रूद्राक्षोंसे तथा अन्य वृक्षोंके इन्धनफल मूलादिसे वे किरात अपनी जीविका करनेसे निकट जीवी थे ॥ १० ॥ उन किरातोंका उदारचित्त शत्रुओंके नगरोंका जेता, लक्ष्मीके भुजाके सदृश तथा प्रजाके पालन पोषणसे दक्षिण भुजाके समान ॥ ११ ॥ सुरघुनामसे प्रसिद्ध राजाथा और पुनः वह राजा बलवान् देवताओंके तुल्य भयंकर शत्रुओंके गर्वका हन्ता, पराक्रममें सूर्य्यके तुल्य, वेगमें मूर्तिमान् वायुके समानथा ॥ १२ ॥

जितोवैराज्यविभवैर्धनैर्गुह्यकनायकः ॥ शतक्रतुगुरुर्बोधैःकाव्यैरसुरदेशिकः ॥ १३ ॥ सचक्रेराजकार्याणिनिग्रहानुग्रहक्रमैः ॥ यथाप्राप्तान्यखिन्नांगोदिनानीवदिवाकरः ॥ १४ ॥ तज्जाभ्यांसुखदुःखाभ्यामथतस्याभ्यभूयत ॥ स्वगतिर्वागुराबंधैःश्लिष्टांगस्येवपक्षिणः ॥ १५ ॥ किमार्त्तपीडयाम्येनंतिलान्यंत्रमिवौजसा ॥ सर्वेषामेवभूतानांममैवार्त्तिःप्रजायते ॥ १६ ॥

अर्थ—और वह राज्यके ऐश्वर्य्योंसे तथा धनोंसे कुबेरको जीतनेवाला तथा ज्ञानसे बृहस्पति और काव्य साहित्यकी रचनामें शुक्राचार्य्यको जीतनेवालाथा ॥ १३ ॥ दण्ड और अनुग्रहके क्रमोंसे यथाप्राप्त राज्यकार्य्यको ऐसे करताथा जैसे अपनी क्रियाको सूर्यभगवान् ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् निग्रह (दण्ड) अनुग्रहजनित सुखदुःखोंसे ऐसे उसकी गति पराजित हुई जैसे जालसे बन्धे हुये अंगवाले पक्षीकी ॥ १५ ॥ यंत्रमें तिलोंके सदृश दुःखीको मैं क्यों पराक्रमसे पीडित करताहुं क्योंकि सब प्राणियोंको दुःख मेरे ही समान होताहै ॥ १६ ॥

धनमस्मैप्रयच्छामिधनेनानंदवान्जनः ॥ भवत्यहमिवाशेषस्तदलंमेतिनिग्रहैः ॥ १७ ॥ अथवानिग्रहंप्राप्तंकरोम्येतेनैवविना ॥ वर्त्ततेनप्रजैवेयंविनावारिसरिद्यथा ॥ १८ ॥ हाकष्टमेषनिग्राह्योनित्यानुग्राह्यएषमे ॥ दिष्ट्याद्यसुखवानस्मिकष्टमद्यास्मिदुःखवान् ॥ १९ ॥ इतिदोलायितंचेतोनविशश्रामभूपतेः ॥ एकत्रांबुमहावर्त्तेचिरतृष्णमिवभ्रमत् ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रजाजनको धन दूं, जिससे मेरे समान सब प्रजाजन पूर्ण रीतिसे आनन्दित हों और दण्डसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ अथवा यथाप्राप्त दण्डभी दूं क्योंकि इसके बिना प्रजा अपनी २ मर्य्यादामें नहीं प्रवृत्त होसकती जैसे जलके बिना नदी ॥१८॥ हा ! यह कष्टका विषयहै कि वध बन्धन आदिसे यह मेरा दण्डनीयहै और यह नित्य अनुग्राह्यहै, प्रारब्धसे आज सुखी हुं और आज दुःखी हुं ॥ १९ ॥ इसप्रकार संशयरूप दोला भ्रमण इस राजाका चित्त ऐसे नहीं विश्राम पाया जैसे तृषायुक्त निद्रित (सोते हुये) मनुष्यका दीर्घकालकी तृष्णासहित मन जलके महाआवर्तमें भ्रमण करताहै ॥ २० ॥

अथैकदागृहंतस्यमांडव्योमुनिराययौ ॥ भ्रांताशेषककुप्कुंजोवासवस्येवनारदः ॥ २१ ॥ तमसौपूजयामासपप्रच्छचमहामुनिम् ॥ संदेहद्रुमस्तंभपरशुंसर्वकोविदम् ॥ सुरघुरुवाच ॥ भवदागमनेनास्मिमुनेनिर्वृतिमागतः ॥ परमांवसुधापीठंसंप्राप्तइवमाधवे ॥ २३ ॥ अद्यतिष्ठाम्यहंनाथधन्यानांधुरिधर्मतः विकासिरविणेवाब्जंयस्त्वयास्म्यवलोकितः ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर एक समय समस्त दिशाओंके मण्डलमें भ्रमण करके माण्डव्यनामऋषि उस राजाके गृहमें ऐसे आये जैसे इन्द्रके गृहमें नारद ॥ २१ ॥ सन्देहरूप दुष्ट वृक्षरूप स्तम्भके परशु (कुठार) के तुल्य और सब शास्त्रोंमें प्रवीण उस ऋषिकी राजाने पूजाकी और पूंछा ॥ २२ ॥ सुरघुजी बोले-हे भगवन् ! आपके आगमनसे परमशान्तिको मैं ऐसे प्राप्त हुं जैसे पृथिवीपर वसन्तकाल वा विष्णुभगवान्के आगमनसे सब प्रजाजन ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! सूर्य्यके किरणसे कमलके समान प्रफुल्लित मैं इससमय धन्य पुरुषोंमें धर्मसे मेरी गणना प्रथम है क्योंकि आपने मेरे ऊपर कृपादृष्टि की है ॥ २४ ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञचिरंविश्रांतवानसि ॥ तदमुंसंशयंछिंधिममार्कस्तिमिरंयथा ॥ २५ ॥ महतांसंगमेनार्तिःकस्यनामननश्यति ॥ संदेहंतुपरामार्त्तिमाहुरार्त्तिविदोजनाः ॥ २६ ॥ मन्निग्रहानुग्रहजामङ्गभृत्यवपुषिस्थिताः ॥ कषंतिमामलंचिंतागजंहरिनखाइव ॥ २७ ॥ तद्यथासमतोदेतिसूर्यांशुरिवसर्वदा ॥ मतौममसुनेनान्यातथाकरुणयाकुरु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! सर्व धर्मज्ञ यदि श्रमरहितहों तो मेरे इस सन्देहको इसप्रकार नाश करो जैसे सूर्य्य अन्धकारको ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! महात्माओंके संगसे किसकी पीडा नष्ट नहीं होती और पीडा जाननेवालोंने सन्देहको सबसे बडी पीडा कही है ॥ २६ ॥ मेरे दंड तथा अनुग्रहसे उत्पन्न चिंता जो किये भृत्यों (शत्रु मित्रादि) के शरीरपर स्थितहैं वे (चिन्ता) मुझे ऐसे पीडित करती हैं जैसे सिंह हस्तीको ॥ २७ ॥ हे मुने ! इसलिये मेरी बुद्धिमें जिसप्रकार समदृष्टि सदा सूर्य्यके किरणके समान उदय हो न कि अन्य विषमदृष्टि ऐसी कृपा कीजिये ॥ २८ ॥

॥ मांडव्यउवाच ॥ स्वयत्नेनस्वसंस्थेनस्वेनोपायेनभूपते ॥ एषामनःपेलवताहिमवत्प्रविलीयते ॥२९॥ स्वविचारणयैवाशुशाम्यत्यंतर्मनोज्वरः ॥ शरदागममात्रेणमिहिकामहतीयथा ॥ ३० ॥ स्वेनैवमनसास्वानिस्वशरीरगतानिच ॥ विचारयेंद्रियाण्यंतःकीदृशान्यथकानिच ॥ ३१ ॥ कोहंकथमिदंकिंवाकथंमरणजन्मनी ॥ विचारयांतरेवंत्वंमहत्तामलमेष्यसि ॥ ३२ ॥

अर्थ—मांडव्य बोले-हे राजन् ! वैराग्य त्यागादि अपने यत्नसे और आत्मज्ञानपर्य्यन्त श्रवण मनन आदि उपायसे हर्ष विषाद आदि कंटकोंसे छेदने योग्य यह मनकी कोमलता आतपसे हिमके तुल्य नष्ट होजाती है ॥२९॥ हे राजन् ! मनके भीतरका संताप अपने विचारसेही शीघ्र, ऐसे शान्त होजाताहै जैसे शरत्के आगमन मात्रसे महान् मेघका पटल ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अपनेही मनसे तुम अपने पुत्र स्त्री धनादिको, अपने अङ्गके अन्तर्गत इन्द्रियोंको तथा अन्य बुद्धिआदिको विचारो कि ये कैसे है और कौन हैं ॥ ३१ ॥ और अपने चित्तमें यहभी विचारो कि हम कौन हैं, कैसे यह संसार है और जन्ममरण कैसे होते हैं तब तुम पूर्ण महत्वको प्राप्त होओगे ॥ ३२ ॥

विचारणापरिज्ञातस्वभावस्यसतस्तव ॥ हर्षामर्षदशाश्चेतस्तोलयिष्यंतिनाचलम् ॥ ३३ ॥ मनःस्वरूपमुत्सृज्यशममेष्यतिविज्वरम् ॥ भूतपूर्ववपुर्भूत्वातरंगःपयसीवते ॥ ३४ ॥ तिष्ठदेवमनोरूपंपरित्यक्ष्यतितेनघ ॥ कलंकविकलंकालंमन्वंतरगतादिव ॥ ३५ ॥ अनुकंप्याभविष्यंतिश्रीमंतःसर्वएवते ॥ दृष्टतत्त्वस्यतुष्टस्यजनाःपितुरिवावनौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—जब विचारसे अपने सत्स्वभावको जानजाओगे तब हर्षशोकादिकी दशा पर्वतके तुल्य तुमारे चित्तको ऊंचानीचा नहीं करसकेगी ॥ ३३ ॥ उस समय तुमारा चित्त अपने पूर्वस्वरूपको त्यागकर और संतापरहित पूर्व सिद्ध ब्रह्मस्वरूप होके ऐसे शान्तिको प्राप्त होगा जैसे जलमें तरंग ॥ ३४ ॥ हे पाप शून्य राजन् ! जैसे पूर्व मनुके अन्तमें कलिकालको प्राप्त होके पापोंसे विकल यह संसार पुनः अन्य मनुके आनेपर अपने स्वरूपसे विद्यमान रहतेही कलंकसहित पूर्वरूपको त्यागताहै ऐसे ही तुमारा मनभी जीवन्मुक्तोंके व्यवहारके समर्थ स्थित रहतेही अपने पूर्व मलिन स्वरूपको त्याग देगा ॥ ३५ ॥ और जब तुम आत्मतत्वको देखलोगे तब सब महा ऐश्वर्य्य युक्त ब्रह्माआदिभी तुमारे कृपाके पात्र ऐसे होंगे जैसे पृथिवीपर संतुष्ट पालन कर्ता पिताके प्रजाजन ॥ ३६ ॥

विवेकदीपदृष्टात्मामेर्वब्धिनभसामपि ॥ अथोकरिष्यसिनृपमहत्तामुत्तमार्थदाम् ॥ ३७ ॥ महत्तामागतेचेतस्तवसंसारवृत्तिषु ॥ ननिमज्जतिहेसाधोगोष्पदेष्विवारणः ॥ ३८ ॥ कृपणंतुमनोराजन्पेलवेपिनिमज्जति ॥ कार्यगोष्पदतोयेपिजीर्णागोमशकोयथा ॥ ३९ ॥ चेतोवासनयापंकेकीटवत्परिमज्जति ॥ हृदयमात्रावलंबिन्यास्वयादीनतयातया ॥ ४० ॥

अर्थ—और हे राजन् ! विवेकजनित् ज्ञानरूप दीपसे आत्माको जब देखोगे तब सुमेरु, समुद्र और आकाशादि महान् पदार्थोंकोभी उत्तम अर्थदायक महत्वको तुम सम्प्रदान करोगे, क्योंकि तुमारी आत्मसत्ताके अधीन

उनकी महत्ताहै ॥ ३७॥ और हे साधो राजन्! आत्मज्ञानसे महत्वके प्राप्त होनेपर तुमारा चित्त संसारकी वृत्तियोंमें ऐसे नहीं डूबेगा जैसे गौके खुरमें हस्ती॥३८॥ हे राजन्! कामादिकी कृपणतासे दूषित मन तुच्छकार्य्योंमें ऐसे डूबजाताहै जैसे गौके खुरमात्र जलमेंभी शिथिलशरीरवाला मशक (मच्छर) ॥ ३९ ॥ हे राजन्! यह चित्त वासनासे और दृश्यमात्रको अवलम्बन करनेवाली उस अपनी प्रसिद्ध दीनतासे कीटके समान दृश्यरूप कीचडमें डूबताहै ॥४०

तावत्तावन्महाबाहोस्वयंसंत्यज्यतेऽखिलम् ॥ यावद्यावत्परालोकःपरमात्मैवशिष्यते ॥ ४१ ॥ तावत्प्रक्षाल्यतेधातुर्यावद्धेमैवशिष्यते ॥ तावदालोक्यतेसर्वंयावदात्मैवलभ्यते ॥ ४२ ॥ सर्वःसार्विकयाबुद्धयासर्वंसर्वत्रसर्वदा ॥ सर्वथासंपरित्यज्यस्वात्मनात्मोपलभ्यते ॥ ४३ ॥ यावत्सर्वंनसंत्यक्तंतावदात्मानलभ्यते ॥ सर्वावस्थापरित्यागेशेषआत्मेतिकथ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो राजन्! जबतक स्वयं ज्योतिःस्वरूप आत्मामात्रका अनुभव शेष न रहजाय तबतक सब कुछ त्यागना चाहिये॥ ४१ ॥ सुवर्णकी खानि तबतक शोधित होती है जबतक कि सुवर्णमात्रही शेष रहजाताहै. और तभीतक सब अध्यात्मशास्त्र विचारा जाताहै जबतक कि आत्माका लाभ नहीं होता ॥ ४२ ॥ सब वस्तुओंके रूपभूत बुद्धिसे सर्वदा सबदेशमें सर्वथा सब दृश्यको त्यागकर अपने आत्माहीसे पूर्ण आत्माका लाभ होताहै, न कि कभी किसी देशमें और कुछ विषयोंके त्यागमात्रसे आत्माका लाभ होताहै ॥ ४३ ॥ जबतक सब पदार्थ नहीं त्यागे गये तबतक आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि संपूर्ण अवस्थाओंके परित्यागसे शेष जो रहजाताहै वही आत्मा कहागयाहै ॥ ४४ ॥

यावदन्यन्नसंत्यक्तंतावत्सामान्यमेवहि ॥ वस्तुनासाद्यतेसाधोस्वात्मलाभेतुकाकथा ॥ ४५ ॥ यत्नसवर्त्मनैवात्मालाभाययततिस्वयम् ॥ त्यक्तान्यकार्यंप्राप्नोतितन्नामनृपनेतरत् ॥ ४६ ॥ स्वात्मावलोकनार्थंतुतस्मात्सर्वंपरित्यजेत् ॥ ॥ सर्वंकिंचित्परित्यज्ययद्दृष्टंतत्परंपदम् ॥ ४७ ॥ सकलकारणकार्यपरंपरामयजगद्गतवस्तुविजृंभितम् ॥ अलमपास्यमनःस्ववपुस्ततःपरिविलाप्ययदेतितदेवतत् ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तांतेमांडव्योपदेशो नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—क्योंकि जबतक अन्य वस्तु नहीं त्यागी जाती तबतक साधरण वस्तु गोधन आदिभी नहीं प्राप्त होते. तो हे साधो! बिना त्यागे आत्मलाभ होगा इसकी कथा अर्थात् बिना सर्व त्यागके आत्माका लाभ नहीं होसकता ॥ ४५ ॥ हे राजन्! जिस विषयकेलिये अन्यकार्य्यको त्यागकर सबप्रयत्नसे आत्मा स्वयं प्रयत्न करता है तब उसी पदार्थको पाता है न कि अन्य पदार्थको ॥ ४६ ॥ इस कारण सब कुछ त्याग करना आत्माके लाभार्थ उचितहै. और सब कुछ त्यागकर जो त्यागनेको सर्वथा अशक्य देख पडै वही परमपद है ॥ ४७ ॥ संपूर्ण कार्यकारणकी परंपरामय इस जगत्में मणियोंमें गूंथे हुये सूत्रके तुल्य सन्मात्र आत्मामें अपनी कल्पनासे सत् भिन्नरूपसे कल्पित सब दृश्यरूपको पूर्ण रीतिसे यह मन त्यागकर अनन्त मूल अज्ञानके नाशसे अपनी मनोरूपताकोभी लय करके सच्चिद्रूप वस्तुको यह पाताहै और वही एक रस ब्रह्म है ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तान्ते माण्डव्योपदेशो नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

बाह्य तथा आभ्यन्तर दृश्यको एकान्तमें त्यागतेहुये राजाको अपने विचारसे आत्माका लाभ हुआ यह विषय इस ५९ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वाभगवानेनंसुरघुंरघुनंदन ॥ ययौस्वमेवरुचिरंमांडव्योमौनमंडलम् ॥ १ ॥ गतेवरमुनौराजागत्वैकांतमनिंदितम् ॥ धियासंचिंतयामासकोनामाहमितिस्वयम् ॥ २॥ नाहंमेरुर्नमेमेरुर्जगन्नाहंनमेजगत् ॥ नाहंशैलानमेशैलाधरानाहंनमेधरा ॥ ३ ॥ किरातमंडलंनेदंममनाहंचमंडलम् ॥ निजसंकेतमात्रेणकेवलंदेशएवमे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुनन्दन इसप्रकार राजासे कहके भगवान् माण्डव्य कहके मुनियोंके निवासभूत अतिरुचिर अपने आश्रममें गये ॥ १ ॥ मुनिके जानेपर राजा उत्तम एकान्तस्थानमें जाके अपनी बुद्धिसे

स्वयं यह विचार किया कि मैं कौनहुं ॥ २ ॥ न मैं मेरुहुं न मेरु मेरा है न मैं जगत्हुं न जगत् मेरा है; न मैं पर्वतहुं न पर्वत मेरे हैं और न मैं पृथिवीहुं न पृथिवी मेरी है ॥ ३ ॥ न मैं किरातका मण्डलहुं और न मेरा यह मंण्डल है किंतु सबके संकेतमात्रसे राज्याभिषेक होनेसे केवल इस देशका मैं राजाहुं, और कल्पनामात्रसे यह मेरा देशहै ॥४॥

त्यक्तोमयैषसंकेतोनाहंदेशोनवैषमे ॥ इदानींनगरंशिष्टमेषएवात्रनिश्चयः ॥ ५ ॥ पताकावनपंक्त्याढ्या भृत्योपवनसंकुला ॥ गजाश्वसामंतयुतापुरीनाहंनमेपुरी ॥ ६ ॥ व्यर्थसंकेतसंबंधंसंकेतविगमेक्षतम् ॥ भोगवृंदंकलत्रंचनाहंनैतन्ममाखिलम् ॥ ७ ॥ एवंसभृत्यंसबलंसवाहनपुरांतरम् ॥ नाहंराज्यंनमे राज्यंसंकेतोह्ययमाकुलः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस सब कीर्तिमात्रसे जो राजाका संकेतहै उसको त्यागकर न मैं देशहुं, न मेरा यह देशहै, अब यह नगर शेष रहा इसमेंभी संकेतको त्यागकर यही निश्चयहै ॥ ५ ॥ पताका तथा वाटिकाओंकी पंक्तिसे पूर्ण भृत्य तथा उपवनोंसे व्याप्त, गज, अश्व और सामन्तों (करदेनेवाले छोटे राजों) से संयुक्त यह नगरी मैं नहीं हुं और न मेरी यह नगरी है ॥ ६ ॥ संकेतके त्यागमें व्यर्थ जो संकेतका संबन्धहै वह नष्ट होगया इसलिये राज्य तथा नगरी मैं नहीं हुं, और न ये मेरे हैं, भोगसमूह तथा कुटुंबभी मैं नहीं और न ये सब मेरे हैं ॥ ७ ॥ इसीप्रकार, भृत्य, सेना वाहन और पुरसहित यह राज्य मैं और न यह राज्य मेराहै क्योंकि यह संबन्ध अन्धपरंपरासे कल्पित है ॥ ८ ॥

देहमात्रमहंमन्येहस्तपादादिसंयुतम् ॥ तदिदंतावदाश्वंतरलमालोकयाम्यहम् ॥ ९ ॥ तदत्रतावन्मांसास्थिनाहमेतदचेतनम् ॥ नचैतन्ममसंश्लेषमेत्यब्जस्ययथाजलम् ॥ १० ॥ मांसंजडंनतदहंनैवाहंरक्तमप्यलम् ॥ जडान्यस्थीनिनैवाहंनचैतानिममक्वचित् ॥ ११ ॥ कर्मेंद्रियाणिनैवाहंनचकर्मेंद्रियाणिमे ॥ जडंयत्किलदेहेस्मिंस्तदहंनैवचेतनः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये हस्तपाद आदिसहित यह देह मैं हुं ऐसा संभवहै, इसलिये शीघ्र आभ्यंतरभी मैं अब विचार करताहुं ॥ ९ ॥ इस देहमें अचेतन मांस हड्डी मैं नहीं हुं और कमलके जलके समान इस देहका तथा मेरा सबंन्धभी नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥ जड मांस रक्त और हड्डियां मैं नहीं हुं और न कदापि वे मेरे हैं ॥ ११ ॥ कर्म इन्द्रिय (हस्त, पाद, वाग्, गुदा, उपस्थ) मैं नहीं और न कर्म इन्द्रिय मेरे हैं, क्योंकि इस देहमें जो जडहै वह चेतन मैं नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

नाहंभोगानमेभोगानमेबुद्धींद्रियाणिच ॥ जडान्यसत्स्वरूपाणिनचबुद्धींद्रियाण्यहम् ॥ १३ ॥ मूलंसंसृतिदोषस्यमनोनाहंजडंह्रितत् ॥ अथबुद्धिरहंकारइतिदृष्टिर्मनोमयी ॥ १४ ॥ मनोबुद्धींद्रियाद्यंतोभूतकोशश्वलद्वपुः ॥ नाहमेवंशरीरादिशिष्टमालोकयाम्यहम् ॥ १५ ॥ शेषस्तुचेतनोजीवःसचेच्चेत्येनचेतति ॥ अन्येनबोध्यमानोसौनात्मतत्त्ववपुर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—न मैं भोग हुं न भोग मेरे हैं और न बुद्धि इन्द्रियभी मेरे हैं और जड मिथ्यारूप बुद्धि इन्द्रियभी मैं नहीं हुं ॥ १३ ॥ संसारके दोषोंका मूल मनभी मैं नहीं हुं, क्योंकि वह मन जड है और बुद्धि अहंकार यह जो दृष्टि है वहभी मैं नहीं हुं क्योंकि यह दृष्टि मनोमय अंतःकरणका भेदरूपही है ॥ १४ ॥ शरीरसे आदि लेके सूक्ष्म तथा स्थूलभूत और मन बुद्धि तथा इन्द्रियादिभी नहीं हुं और शेषको देखकर विचारताहुं ॥ १५ ॥ शेष (मन बुद्धिसे परे) चेतन प्रमाताविषय प्रमेयके साथ चेतताहै. त्रिपुटीके साक्षीसे अनुभूयमान यह प्रमाता आत्मतत्त्वका यथार्थ शरीर नहीं होसकता ॥ १६ ॥

एवंत्यजामिसंवेद्यंचेत्यंनाहंह्रितत्किल ॥ शेषोविकल्परहितोविशुद्धचिदहंस्थितः ॥ १७ ॥ चित्रमेषोस्मिलब्धात्माजातःकालेनकार्यवान् ॥ एषसोहमनंतात्मानांतोस्यपरमात्मनः ॥ १८ ॥ ब्रह्मणींद्रेयमेवायौसर्वभूतगणेतथा ॥ सएषभगवानात्मातंतुर्मुक्तास्विवस्थितः ॥ १९ ॥ चिच्छक्तिरमलासैषाचेत्यामयविवर्जिता ॥ भरिताशेषदिकुंजाभैरवाकारधारिणी ॥ २० ॥

अर्थ—इसी प्रकार साक्षीसे वेद्य (जानने योग्य) प्रमित तथा प्रमेयको मैं त्यागताहुं, क्योंकि वह मैं नहीं हुं, किंतु सर्व शेष विकल्परहित विशुद्ध साक्षी चेतन मैं हुं, यह निश्चयमें स्थितहै ॥ १७ ॥ अहो ! कैसे आश्चर्यका विषयहै कि चिरकाल (अनादिकाल) से आत्माको प्राप्तभी आज परमपुरुषार्थके लाभयुक्त हुआ हुं, यह मैं अनंतरूप आत्मा हुं इस परमात्माका अंत नहीं है ॥ १८ ॥ ब्रह्मामें, इन्द्रमें, यम वायुमें, तथा सब भूतगणोंमें यह भगवान् आत्मा ऐसे अनुगतरूपसे स्थितहै जैसे मोतियोंकी मालामें सूत्र ॥ १९ ॥ यह निर्मलविषयरूप रोगसे वर्जित, सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाली, अज्ञानियोंको भयंकर आकार धारणकरनेवाली चित् शक्ति है ॥ २० ॥

सर्वभावगतासूक्ष्माभावाभावविवर्जिता ॥ आब्रह्मभुवनांतःस्थासर्वशक्तिसमुद्गिका ॥ २१ ॥ सर्वसौंदर्यसुभगासर्वप्राकाश्यदीपिका ॥ सर्वसंसारमुक्तानांतंतुराततरूपिणी ॥ २२ ॥ सर्वाकारविकाराढ्या सर्वाकारविवर्जिता ॥ सर्वभूतौघतांयातासर्वदासर्वतांगता ॥ २३ ॥ चतुर्दशविधान्येषाभूतानिभुवनोदरे ॥ एतन्मयीयंकलनाजागतीवेदनात्मिका ॥ २४ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंमें प्राप्त, सूक्ष्म, उत्पत्ति तथा नाशसे वर्जित, पातालसे लेके ब्रह्मलोकपर्य्यन्त सब भुवनोंमें स्थित और सब शक्तियोंकी पिटारी यह चित्शक्ति है ॥ २१ ॥ निरतिशय आनन्दसे पूर्ण, सबप्रकाशके योग्य पदार्थोंकी दीपिका, और सब ब्रह्मांडरूप मोतियोंकी मालामें विशालसूत्रके समान यह चित्शक्ति है ॥ २२ ॥ सब आकार तथा विकारोंसे पूर्ण, और सबआकारोंसे वर्जित, सबभूतोंके समूहरूपताको प्राप्त यह चित्शक्ति सदा सर्वरूपताको प्राप्त हुई है ॥ २३ ॥ चौदहलोकोंके भेदसे चौदहप्रकारके प्राणियोंको यह अपने उदरमें धारण करती है, और यह जगत्की अनुभवरूप कल्पना इसीका रूप है ॥ २४ ॥

मिथ्यावभासमात्रंतुसुखदुःखदशागतिः ॥ नानाकारमयाभासःसर्वमात्मैवचित्परा ॥ २५ ॥ सोयमात्मामममव्यापीसेयंयदवबोधनम् ॥ सेयमाकलितांगाभाकरोतिनृपविभ्रमम् ॥ २६ ॥ अस्याएवप्रसादेन मनोदेहरथेस्थितम् ॥ संसारजाललीलासुयातिवल्गतिनृत्यति ॥ २७ ॥ इदंमनःशरीरादिनकिंचिदपि वस्तुतः ॥ नष्टेनकिंचिदप्यस्मिन्परिनश्यतिपेलवे ॥ २८ ॥

अर्थ—यह सुखदुखःमयी दशाओंकी गति मिथ्याही भासती है, और नानाप्रकारके आकारोंसे आभासमान आत्मा जो है यह सबकुछ परा चित् है ॥ २५ ॥ यही चित् मेरा आत्मा सब जगत्में अनुगत है; यही मेरी बुद्धिका साक्षी है, और द्रष्टा दृश्यके भेदसे कल्पित शरीरधारिणी यही चित् मैं राजा हुं ऐसा भ्रम कराती है (प्रथम कराती थी) ॥ २६ ॥ इस चित्के प्रतापसे मन देहरूप रथमें स्थित होके संसारजालकी लीलाओंमें जाताहै, व्यवहार करता है, नाचता है ॥ २७ ॥ यथार्थमें यह मन शरीर आदि कुछ नहीं है, और इस तुच्छ शरीर आदिके नष्ट होनेसें आत्माका कुछ नहीं नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

जगज्जालमयंनृत्तमिदंचित्तनटैस्ततम् ॥ एतयैवैकयाबुद्ध्यादृश्यतेदीपलेखया ॥ २९ ॥ कष्टंसुधैवमेचिंतानिग्रहानुग्रहस्थितौ ॥ बभूवदेहनिष्ठेहनकिंचिदपिदेहकम् ॥ ३० ॥ अहोत्वहंप्रबुद्धोऽस्मिगतंदुर्दर्शनं मम ॥ दृष्टंद्रष्टव्यमखिलंप्राप्तंप्राप्यमिदंमया ॥ ३१ ॥ सर्वंकिंचिदिदंदृश्यंदृश्यतेयज्जगद्गतम् ॥ चिन्निष्पंदांशमात्रांशान्नान्यत्किंचनशाश्वतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस जगत्जालमय नाटक चित्तरूप नटोंने कियाहै और यह एक इसी दीपकी लेखाकेसमान साक्षीरूप बुद्धिसे देख पडताहै ॥ २९ ॥ अहो ! यह कष्टका विषयहै कि निग्रह और अनुग्रहकी स्थितिमें देहनिष्ठ मुझे व्यर्थ हुई है और देह कुछभी नहीं है ॥ ३० ॥ अहो ! अब तो मैं ज्ञानवान् हुं अब मेरा दुष्ट दर्शन (शरीर आदिमें आत्मदृष्टि) गया. सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थ मैंने देखलिया और सब प्राप्य पदार्थ पाया ॥ ३१ ॥ जो कुछ सब दृश्य पदार्थ जगत्गत देखपडताहै वह चित्का निष्पंद अर्थात् मायासे जीव और जगत्भाव उसका अंश जो पंच ज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पंचप्राण और मन बुद्धिरूप सप्तदश अवयववाला लिंगशरीरका भ्रम उसकी मात्रा बाह्य तथा अंतःकरणके भ्रम उस मात्राके अंश जाग्रत् तथा स्वप्नमय दृश्य उससे पृथक् नित्य कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥

क्वतौकीदृग्विधौवापिकिंनिष्ठौवाकिमात्मकौ ॥ निग्रहानुग्रहौलोकेहर्षामर्षकमौतथा ॥ ३३ ॥ किंसुखं किंनुवादुःखंसर्वंब्रह्मेदमाततम् ॥ अहमासंमुधामूढोदिष्ट्यामूढोऽस्म्यहंस्थितः ॥ ३४ ॥ किमस्मिन्नेव मालोकेशोच्यतेकिंविमुह्यते ॥ किंप्रेक्ष्यतेकिंक्रियतेस्थीयतेवाथगम्यते ॥ ३५ ॥ किंचिदेवमिदंनामचिदाकाशंविराजते ॥ नमोनमस्तेनिस्तत्त्वदिष्ट्यादृष्टोऽसिसुंदर ॥३६॥ अहोनुसंप्रबुद्धोस्मिसम्यग्ज्ञातमलंमया ॥ नमोमह्यमनंतायसम्यग्ज्ञानोदयायच ॥ ३७ ॥ विगतरंजननिर्विषयस्थितिर्गतभवभ्रमरंजितवर्जिते ॥ स्थिरसुषुप्तकलाभिगतस्ततःसमसमंनिवसाम्यहमात्मनि ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुविश्रांतिर्नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—वे दोनों निग्रह और अनुग्रह कहां हैं, कैसे किसमें रहनेवाले और किस स्वरूपके हैं और उनसे उत्पन्न हर्ष और अमर्षभी क्या हैं अर्थात् शरीर आदिके मिथ्या होनेसे ये निराश्रय सिद्ध हुये ॥३३॥ सुख तथा दुःख

क्या पदार्थ हैं, यह सब व्यापक ब्रह्महीहै, मैं व्यर्थ मूढ था, और अब सौभाग्यसे ज्ञानवान् स्थितहूं ॥ ३४ ॥ इस आनंदरूप पूर्णस्वभाव आत्माके अनुभव होनेपर किसका शोच किया जाय और किसकेलिये मोहित हों और किसको देखैं क्या करैं वा कहां जांय ॥ ३५ ॥ अलौकिक चमत्कार चिदाकाशही विराजमानहै, हे भौतिकतत्त्वरहित परमात्मन् ! तुमको नमस्कारहै, बडे सौभाग्यसे तुम देखपडे हो ॥ ३६ ॥ अहो ! मैं ज्ञानवान् हुं भलीभांतिसे मैंने जानलिया, इसलिये सम्यक् ज्ञानका प्रादुर्भाव जिसको उत्पन्न हुआहै ऐसे मुझ अनन्त आत्माको नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ राग द्वेषके अभावसे जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्तिके विषयकी स्थिति जिसकी नष्ट होगई है ऐसा तथा स्थिर सुषुप्तिकी कला अर्थात् ब्रह्ममें लयकी युक्तिसे उपाधिके नाशसे ब्रह्ममें एकभावको प्राप्त मैं संसारके भ्रम तथा रागद्वेषसे वर्जित साक्षीभूत आत्मस्वरूप ब्रह्ममें सर्वथा भेदरहित समतासे निवास करता हुं ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुविश्रान्तिर्नामैकोनषष्ठितमःसर्गः ५९ ॥

षष्ठितमःसर्गः ॥ ६० ॥

देहपात पर्य्यन्त सुरघुका असंग आचार तथा उस जीवन्मुक्तके देहके शान्त होनेपर आकाशके समान स्थिति इस ६० के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिहेमजटाधीशोलेभेपदमनुत्तमम् ॥ विवेकाध्यवसायेनब्राह्मण्यमिवगाधिजः ॥ १ ॥ अनर्थाकारकार्यासुनासीच्चेष्टासुखेदवान् ॥ भूयोभूयःप्रयुक्तासुदिनमालास्विवेश्वरः ॥ २ ॥ ततःप्रभृतिसोऽतिष्ठत्सर्वदाविगतज्वरः ॥ समासमेस्वकेकार्येजलौघाग्रइवाचलः ॥ ३ ॥ हर्षामर्षविनिर्मुक्तःप्रत्यहंकार्यमाहरन् ॥ उदारगंभीरवपुर्जहारांबुनिधेःश्रियम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार विवेकके निश्चयसे हेमजटानाम किरातोंके स्वामीने परमोत्तम (ब्रह्म) पद ऐसे प्राप्त किया जैसे विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको ॥ १ ॥ पुनः २ अनुष्ठान कीहुई दैवगतिसे अनर्थाकार दुःखदायिनी चेष्टाओंमें वह सुरघु खेदवान् ऐसे नहीं हुआ जैसे दिनमालाओंमें सूर्य्य ॥ २ ॥ उसी समयसे लेके निग्रह अनुग्रहरूप अपने राज्यके उचित कार्य्योंमें जलके प्रवाहके संमुख स्थित पर्वतके समान अचल, और सदा संतापरहित वह स्थित रहा ॥ ३ ॥ हर्ष तथा अमर्षसे वर्जित और प्रतिदिन अपने आय (आमदनी) व्यय (खर्च) आदि कार्य्योंको करतेहुये उस उदार तथा गंभीरशरीरवालेने समुद्रकी शोभाको जीतलिया ॥ ४ ॥

सुषुप्तपदधर्मिण्याचित्तवृत्त्याव्यराजत ॥ निष्कंपयाप्रकाशिन्यादीपःस्वशिखयेवसः ॥ ५ ॥ ननिर्घृणो दयावान्नोनद्वंद्वीनाथमत्सरी ॥ नसुधीर्नासुधीर्नार्थीनानर्थीसबभूवह ॥ ६ ॥ समदर्शनयानित्यंवृत्त्याचापलधीरया ॥ अंतःशीतलयारेजेपरिपूर्णार्णवेंदुवत् ॥ ७ ॥ सर्वचित्तत्त्वकलनंजगदित्यवलोक्यसः ॥ प्रशांतसुखदुःखश्रीस्तस्यपूर्णामतिर्बभौ ॥ ८ ॥

अर्थ—सुषुप्तिके समान निश्चल तथा चेतनसे प्रकाशमयी अपनी चित्तकी वृत्तिसे वह ऐसे शोभित हुआ जैसे अपनी निष्कंप प्रकाशमयी शिखासे दीप ॥ ५ ॥ वह न निर्दयी, न दयावान्, न द्वंद्वी, न मत्सरी, न अतिबुद्धिमान्, न अर्थी और न अनर्थी अर्थात् सर्वत्र यथाप्राप्त कार्य्योंके करनेसे समदर्शी था ॥ ६ ॥ समदर्शिनी, चपलतारहित, धीर और अंतःकरणमें नित्य शीतल चित्तकी वृत्तिसे वह ऐसे शोभित हुआ जैसे पूर्ण समुद्र और चन्द्रमा ॥ ७ ॥ यह सब जगत् चित्तकी कल्पनामात्र है ऐसा विचार करके उसकी बुद्धि भौतिक सुख तथा दुःखसे शान्त होगई क्योंकि उसकी बुद्धि पूर्णथी ॥ ८ ॥

उल्लसन्विकसन्पूर्णस्तिष्ठन्गच्छन्विशन्स्वपन् ॥ अभूत्समसमाधिस्थःप्रबुद्धश्चिल्लयंगतः ॥ ९ ॥ स कुर्वन्विगतासंगंराज्यंराजीवलोचनः ॥ अतिष्ठदक्षताकारोभूरिवर्षशतान्यथ ॥ १० ॥ सन्निवेशमिमंदेहनामकंतदनुस्वयम् ॥ सजहौतेजसाक्रांतोरूपंहिमकणोयथा ॥ ११ ॥ विवेशपरमाद्यंतकारणंकारणेश्वरम् ॥ प्रज्ञयासरितांवारिपरिपूर्णमिवांबुधिम् ॥ १२ ॥ अधिगतविमलैकरूपतेजाविजनदशांसमुपेत्यशांतशोकः ॥ अलमभवदसौपरस्वरूपंघटखमिवांबरसंयुतंमहात्मा ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तांते सुरघुनिर्वाणं नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—शरीरसे शोभायमान, चित्तसे विकसित, पूर्ण स्थित रहते, चलते, फिरते, सोते और चित्में लयको प्राप्त वही ज्ञानीपुरुष सदा समाधिस्थ था ॥ ९ ॥ कमलनेत्र वह राजा आसक्तिरहित राज्य करता हुआ अखंडित आकारसे सैकडोंवर्षपर्य्यन्त राज्य करतारहा ॥ १० ॥ इसके अनंतर पंचभूतोंकी रचनामय इस शरीरको ऐसे त्यागा जैसे सूर्य्यके किरणसे आक्रान्त अपने मूर्त आकारको हिमका कण ॥ ११ ॥ और साक्षीरूप बुद्धिसे सब ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयके कारण और ब्रह्माआदिकेभी नियंता परब्रह्ममें ऐसे प्रवेश किया जैसे नदियोंका जल पूर्ण समुद्रमें ॥ १२ ॥ यह महात्मा सुरघु बुद्धिसे निज आत्मरूपसे विमल शोकरहित आनन्दपरिपूर्ण आत्माको पाया और उससे जन्मआदि क्रियासे शून्यदशाको पाकर पूर्णरीतिसे परब्रह्मस्वरूप ऐसे होगया जैसे घटके नष्ट होनेसे घटाकाश महदाकाशमें संयुक्त होके मिलजाताहै ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे सुरघुनिर्वाणं नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

सहजसमाधिके ज्ञानकेलिये सुरघुराजाका परिघराजाके साथ संवाद इस ६१ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवमुत्पलपत्राक्षराघवाघविपर्यये ॥ पदमासादयाद्वंद्वंविशोकोभवभूतये ॥ १ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यनमनःपरितप्यते ॥ घोरेतमसिनिर्मग्नंलब्धदीपंशिशुर्यथा ॥ २ ॥ विवेकावस्थयाचेतस्तथैवायातिनिर्वृतिम् ॥ पतच्छ्वभ्रेदृढतृणप्रचयालंबनादिव ॥ ३ ॥ अथैतांपावनींदृष्टिंभावयित्वाप्युदाहरन् ॥ नित्यमेकसमाधानोभवभूषितभूतलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे कमलनेत्र रामजी ! हर्ष शोकादिके कारण पापके नाश होनेपर द्वंद्वरहित पदको प्राप्त करो और परम कल्याण मोक्षकेलिये शोकरहित हो ॥ १ ॥ इस सुरघुकी दृष्टिको अवलम्बन करनेसे घोर अज्ञानान्धकारमें मन ऐसे नहीं गिरता जैसे दीप प्राप्त होनेसे बालक ॥ २ ॥ विवेककी अवस्थासे चित्त ऐसी शान्तिको प्राप्त होताहै जैसे गढेमें गिरताहुआ तटके तृणके अवलंबनसे ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इस सुरघुकी परमपवित्र दृष्टिको बार २ अभ्यास करके दूसरोंकोभी अपना उदाहरण शिखाते हुये संसारको भूषित करके नित्य एकब्रह्मकी समाधिमें तत्पर होओ ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ कथमेकसमाधानंकीदृशंवामुनीश्वर ॥ वाताहतमयूरांगरुहलोलंमनोभवेत् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शृणुतस्यैवसुरघोःप्रबुद्धस्यसतस्तदा ॥ पर्णादस्यचराजर्षेःसंवादमिममद्भुतम् ॥ ६ ॥ राघवैकसमाधानबोधितायोजितात्मनोः ॥ परस्परंसमालापमिमंप्रकथयामिते ॥ ७ ॥ बभूवपारसीकानांपार्थिवःपरवीरहा ॥ परिघोनामविख्यातःपरिघःस्यंदनेयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुनीश्वर ! वायुसे ताडित मोरके पंखके समान चंचल मन कैसे एकब्रह्ममें समाधिनिष्ठ होसकता है ॥५॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! उसी ज्ञानी सुरघुका तथा राजा पर्णाद (अन्य नाम परिघ) का यह उत्तम तथा अद्भुत संवाद इस विषयमें सुनो ॥ ६ ॥ हे राघव ! एक समाधानमें चित्तको लगानेवाले और चित्त इंद्रिय आदिके जीतनेवाले दोनों राजाओंके परस्परके संवादको मैं तुमसे कहताहुं ॥ ७ ॥ रथके परीघ (धुरा) के तुल्य शत्रुघातक और प्रसिद्ध पारसीकेदेशोंका वह राजा परीघ नाम था ॥ ८ ॥

सबभूवपरंमित्रंसुरघोरघुनंदन ॥ नंदनोद्यानसंस्थस्यमदनस्येवमाधवः ॥ ९ ॥ कदाचित्परिघस्याभूदवर्षमंडलेमहत् ॥ कल्पांतइवसंसारेप्रजाद्दुष्कृतदोषजम् ॥ १० ॥ विनेशुर्जनतास्तत्रबह्वयःक्षुत्क्षामजीविताः ॥ ज्वलितेविपिनेवह्नौयथाभूतपरंपराः ॥ ११ ॥ तद्दुःखंपरिघोदृष्ट्वाविषादमतुलंययौ ॥ तत्याजाश्वखिलंराज्यंदग्धंग्राममिवाध्वगः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह परिघ सुरघुका ऐसे परममित्र था जैसे नंदनवाटिकामें स्थित कामदेवका वसन्त ॥ ९ ॥ कदाचित् परिघके राज्यमंडलमें संसारमें प्रजाओंके पापसे प्रलयके समान बडी भारी अवृष्टि (वर्षाका अभाव) हुई ॥ १० ॥ उससे वहांपर अनेक जनसमूह क्षुधासे पीडित होकर ऐसे नष्ट होगये जैसे प्रलयको अग्निके प्रज्वलित होनेपर जीवोंकी पंक्ति ॥ ११ ॥ राजा परिघ उस दुःखको देखकर अतिशोकको प्राप्तहुआ और अपने सम्पूर्ण राज्यको शीघ्र ऐसे त्यागदिया जैसे जले ग्रामको बटोही ॥ १२ ॥

प्रजानाशप्रतीकारेष्वसमर्थोविरागवान् ॥ जगामविपिनेकर्तुंतपोऽजिनमुनींद्रवत् ॥ १३ ॥ पौराणामप रिज्ञातेकस्मिंश्चिद्दूरकानने ॥ समुवासविरक्तात्मालोकांतरइवापरे ॥ १४ ॥ तपश्चरञ्छांतमतिर्दांतःकं दरमंदिरे ॥ स्वयंशीर्णानिशुष्काणितत्रपर्णान्यभक्षयत् ॥ १५ ॥ चिरंहुताशवच्छुष्कपर्णान्येवाथभक्ष यन् ॥ पर्णादइतिनामासौप्रापमध्येतपस्विनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रजाओंके नाशके रोकनेमें असमर्थ होकर वैराग्ययुक्त राजा वल्कलधारी मुनीन्द्रोंके समान तप करनेको वनमें गया ॥ १३ ॥ नगरनिवासियोंसे अज्ञात किसी दूरके वनमें यह विरक्तचित्त राजा ऐसे निवास करताथा जैसे लोकान्तरमें ॥ १४ ॥ शांतमति, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला कन्दराऊप गृहमें तप करताहुवा वह राजा आपही गिरे सूखे पत्तोंको खाताथा ॥ १५ ॥ चिरकालतक अग्निके समान शुष्क पत्तोंहीको भोजन करते हुये उसने तप किया इसलिये तपस्वियोंके मध्यमें पर्णाद नाम प्राप्त किया ॥ १६ ॥

ततःप्रभृतिपर्णादनामाराजर्षिसत्तमः॥ जंबूद्वीपेबभूवासौविख्यातोमुनिसद्मसु ॥१७॥ ततोवर्षसहस्रेण तपसादारुणात्मना ॥ प्रापदभ्यासवशतोज्ञानमात्मप्रसादजम् ॥ १८ बभूवविगतद्वंद्वोनिराशःशांतमा नसः ॥ नीरागोनिरनुक्रोशोजीवन्मुक्तःप्रबुद्धधीः ॥ १९ ॥ विजहारयथाकामंत्रिलोकीमठिकामिमाम् ॥ सिद्धसाध्यैःसमंसाधोसहंसालिरिवाब्जिनीम् ॥ २० ॥

अर्थ—उसी समयसे लेके यह राजर्षियोंमें श्रेष्ठ जम्बूद्वीपमें मुनियोंके आश्रममें पर्णाद नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ १७ ॥ उसके पश्चात् सहस्रवर्षमें दारुण तपसे समाधिके अभ्याससे चित्तशुद्धि तथा ईश्वरके अनुग्रहद्वारा इस राजर्षिने आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥ १८ ॥ वह जीवन्मुक्त, ज्ञानयुक्त, बुद्धिसहित, शीतोष्णादि द्वंद्वरहित, आशाओंसे रहित, शान्तचित्त राग द्वेष शून्य, और क्रोधादिसे रहित होगया ॥ १९ ॥ हे साधो ! सिद्ध (मोक्षमार्गमें आरूढ) साध्य (मोक्षमार्गमें जानेकी इच्छा) करनेवालोंकी साथ इस त्रिलोकीरूप मठिकामें ऐसे भ्रमण किया जैसे हंससहित भ्रमर कमलिनीमें ॥ २० ॥

एकदातस्यसदनंहेमचूडमहीपतेः ॥ प्रापरत्नविनिर्माणंमेरोःशृंगमिवापरम् ॥ २१ ॥ तेतत्रप्राक्तनेमित्रे पूजामकुरुतांमिथः ॥ पूर्णौविज्ञातविज्ञेयौमौर्ख्यगर्भाद्विनिर्गतौ ॥ २२ ॥ अहोनुबतकल्याणैःफलितंम मपावनैः ॥ संप्राप्तवानहंयत्त्वामित्यन्योन्यमथोचतुः ॥ २३ ॥ आलिंगितशरीरौतावन्योन्यानंदिताकृ ती ॥ एकासनेविविशतुश्चंद्रार्काविवभूधरे ॥ २४ ॥

अर्थ—एकसमय किरातोंके स्वामी उस सुरघुराजाके रत्नोंसे रचित गृहमें पर्णाद ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मेरुके दूसरे शिखरपर ॥ २१ ॥ पूर्णकाम ज्ञेय (ब्रह्म) को जाननेवाले तथा जीवन्मुक्त वे दोनों प्राचीन मित्र एक दूसरेकी पूजा करतेभये ॥२२॥ और दोनों परस्पर यह बोले कि अहो ! यह परम पवित्र सुकृतोंका फलहै कि मैंने तुमको पाया ॥ २३ ॥ परस्पर एक दूसरेको आलिंगनकर प्रसन्न आकारवाले दोनों एक आसनपर ऐसे विराजतेभये जैसे एकपर्वतपर चन्द्रमा और सूर्य्य ॥ २४ ॥

॥ परिघउवाच ॥ परमानंदमायातंचेतस्त्वद्दर्शनेनमे ॥ इंदुबिंबइवोन्मग्नंमनःशीतलतांगतम् ॥ २५ ॥ अ कृत्रिमसुखंप्रेमवियोगेशतशाखताम् ॥ प्रयातिपल्वलतटेऽच्छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ २६ ॥ विश्रब्धांस्तान्क थालापांस्तालीलास्तच्चचेष्टितम् ॥ संस्मृत्यप्राक्तनंसाधोहृष्यामिचपुनःपुनः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेतन्मयाप्रा प्तंत्वयाज्ञातंयथाऽनघ ॥ मांडव्यस्यप्रसादेनपरमात्मप्रसादजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—परिघ बोले–हे मित्र ! आज तुमारे दर्शनसे मेरा चित्त परम आनन्दको प्राप्तहुआ, और चन्द्रबिंबमें निमग्नके समान मेरा मन शीतल होगया ॥ २५ ॥ स्वाभाविक प्रेम वियोगमें सैकडोंशाखायुक्त इसप्रकार होताहै जैसे शाखाके छिन्नताको प्राप्त तडागके तटका वृक्ष ॥ २६ ॥ हे साधो ! विश्वासके योग्य उन २ वार्तालापोंको, उन २ लीलाओंको तथा चेष्टाओंको स्मरण करके पुनः प्रसन्न होताहुं ॥ २७ ॥ हे मित्र ! जैसे महर्षि मांडव्यकी कृपासे तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कियाहै ऐसेही मैंनेभी तपसे आराधित ईश्वरके अनुग्रहसे ज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ २८ ॥

अद्यकच्चिदद्दुःखस्त्वंकच्चिद्विश्रांतवानसि ॥ परमेकारणेमेराविवभूमंडलाधिपः ॥ २९ ॥ कच्चित्परमक ल्याणआत्मारामतयातव ॥ प्रसादोजायतेचित्तेशरदीवसरोंभसि ॥ ३० ॥ कच्चित्करोषिसमयासुप्रस न्नगभीरया ॥ दृष्ट्यासुभगकार्याणिकार्याण्येवनराधिप ॥ ३१ ॥ निराधिव्याधयोधीराःकच्चित्संपन्नशा लयः ॥ जनतास्तवदेशेषुतिष्ठंतिविगतज्वरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—क्या इससमय तुम दुःखशून्य और परम कारण ब्रह्ममें ऐसे विश्राम पाया जैसे मेरुपर भूमंडलका अधिप ? ॥ २९ ॥ हे परम कल्याण ! क्या आत्माराम होनेसे तुमारे चित्तमें ऐसी प्रसन्नता होती है जैसे शरदृऋतुमें तडागके जलमें ? ॥ ३० ॥ हे राजन् ! क्या तुम अति प्रसन्न, गम्भीर तथा समदृष्टिसे सब जनोंके हित अवश्य कर्तव्यकर्मोंको करते हो ? ॥ ३१ ॥ क्या शारीरिक तथा मानसीपीडासेरहित धनधान्य सम्पन्न और सन्ताप-रहित तुमारी प्रजा देशोंमें स्थितहैं ? ॥ ३२ ॥

कच्चिदुद्दामफलिनीफलिनीवफलानता ॥ धरातवफलापूरैर्भृशंधारयतिप्रजाः ॥ ३३ ॥ कच्चित्तवदिगंतेषु चंद्रस्येवांशुपंजरम् ॥ तुषारनिकराकारंप्रसृतंपावनंयशः ॥३४॥ कच्चिद्गुणगणैरेतादिशोनिर्विवरीकृताः ॥ त्वयासरोंभसाबाह्याबिसानामिवभूमयः ॥ ३५ ॥ कच्चित्कलमकेदारकोणस्थानेषुहृष्यती: ॥ प्रतिग्रामं कुमार्यस्तेगायंत्यानंदनंयशः ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्या यह तुमारी पृथिवी उत्तम फल संयुक्त होके समय २ पर अभिलषित फलोंके समूहोंसे प्रजाओंका ऐसे पालन करती है जैसे फलसहित कल्पलता ? ॥ ३३ ॥ चंद्रमाके किरणोंके पुंजके तुल्य क्या दिशाओंके अन्तमें तुषारके समूहके समान तुह्मारा यश विस्तृत हुआहै ? ॥ ३४ ॥ जैसे तडागका जल अपने अंतर्गत कमलदंडकी भू-मियोंको पूर्ण करताहै ऐसेही क्या तुमने अपने गुणगणोंसे दिशाओंको पूर्ण किया ? ॥ ३५ ॥ कलमकी क्यारियों (एगहनके चावलके खेतों) के कोनोंमें स्थित प्रसन्न कुमारीगण प्रत्येक ग्राम तुमारे आनन्ददायक यशको गान करती है ॥ ३६ ॥

कुशलंतवधान्येषुधनेषुविभवेषुच ॥ भृत्येषुचकलत्रेषुपुत्रेषुनगरेषुच ॥ ३७ ॥ आधिव्याधिविहीनेयंक च्चित्कायलतातव ॥ फलंफलतिपुण्याख्यंयदिहामुत्रचोदितम् ॥ ३८ ॥ आपातरमणीयेषुवर्त्तेतात्यंतवै रिषु ॥ कच्चिद्विषयसर्पेषुसविरागंमनस्तव ॥ ३९ ॥ अहोबतचिरंकालमावांविश्लेषमागतौ ॥ कालेनश्ले षितौभूयोवसंताद्रितटाविव ॥ ४० ॥

अर्थ—तुमारे धन, धान्य, ऐश्वर्य, भृत्य, कुटुंब, पुत्र तथा नगरोंमें कुशलता है ? ॥३७॥ क्या मानसिक तथा शारीरिक पीडारहित यह तुमारी शरीररूप लता इसलोक तथा परलोकमें फल देने पुण्यरूप फल (कारीरी तथा ज्योतिष्टोमादि) को फलती है ? ॥ ३८ ॥ अतिवैरी विना बिचारे रमणीय विषयरूप सर्पोंमें तुमारा मन वैराग्ययुक्त तो रहताहै ? ॥ ३९ ॥ अहो ! हम दोनों बहुतकालतक वियुक्त रहे; अब पुनः काल पाके वसंत और पर्वतके तटके सदृश युक्त हुये हैं ॥ ४० ॥

नताजगतिविद्यंतेसुखदुःखदशाःसखे ॥ जीवद्भिर्यानदृश्यंतेसंयोगजवियोगजाः ॥ ४१ ॥ तथैतास्वति दीर्घासुदशास्वन्यत्वमागताः ॥ भूयोवयमपिश्लिष्टाश्चित्रोहिनियतेर्विधिः ॥ ४२ ॥ सुरघुरुवाच ॥ भ गवन्नियतेरस्यागतिंसर्पगतेरिव ॥ दैविक्याःकोहिजानातिगंभीरांविस्मयप्रदाम् ॥ ४३ ॥ त्वमहंचव्य पोह्येतिदूरेदूरदशासुच ॥ अद्यसंघटितौभूयःकिमसाध्यमहोविधेः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे सखे ! इष्ट अनिष्टके संयोग तथा वियोगजनित ऐसी सुखदुःखोंकी कोई दशा नहीं है जो जीवधारी प्राणियोंको न देख पडें ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार हमलोग इन दीर्घदशाओंमें इतने कालतक वियोगी थे अब पुनः एकत्र हुये हैं. अहो ! प्राणियोंके कर्मानुसार चलनेवाली ईश्वरकी इच्छाका विलासभी विचित्रहै ॥ ४२ ॥ सुरघु बोले—हे भगवन् ! सर्पकी गतिके तुल्य इस ईश्वरकी इच्छारूप नियतिकी विस्मयदायक गतिको कौन जानताहै ॥ ४३ ॥ देखो तुमको और मुझे दूरदेश तथा काल वियोगमें स्थापित करके इस समय मिलाया है ! अहो ! ईश्वरकी इच्छाको क्या असाध्य है ॥ ४४ ॥

वयंत्वद्यमहासत्वभृशंकुशलिनःस्थिताः ॥ त्वदागमनपुण्येनपरांपावनतांगताः ॥ ४५ ॥ पश्यत्वदाग मक्षीणपापानांपुण्यपादपैः ॥ तथाफलितमस्माकंनयथावयमाकुलाः ॥ ४६ ॥ सर्वाःसंपत्तयोऽस्माकंरा जर्षेसंस्थिताःपुरे ॥ भवदागमनेनाद्यप्रयाताःशतशाखताम् ॥ ४७ ॥ विकिरतिपरितोरसायनानामिव निकरंमधुरंमहानुभाव ॥ तववचनमवेक्षणंचपुण्यंपरमपदप्रतिमोहिसाधुसंगः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुपरिघसमागमो नामैकषष्ठितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे महात्मन् ! हम लोगतो इस समय अतिआनंदमें स्थित हैं और आपके आगमनरूप पुण्यसे परम पवित्रताको प्राप्त हुये हैं ॥ ४५ ॥ हे सखे ! देखो आपके आगमनसे क्षीणपाप हम लोगोंके पुण्यरूप वृक्ष ऐसे फल

युक्त हुये हैं जिससे कि हम लोग व्याकुलतासे निर्मुक्त और कृतकृत्य होगये हैं ॥ ४६ ॥ हे राजर्षे ! हम लोगोंके नगरमें सब संपत्ति स्थितहैं और इस समय आपके आगमनसे सैकडों शाखायुक्त होगई हैं ॥ ४७ ॥ हे महानुभाव ! अतिपवित्र आपका वचन तथा दर्शन मानों चारोओरसे अमृतके समूहकी वृष्टि कररहाहै, क्योंकि महात्माओंका समागम परमपद (मोक्ष) के सदृश कहागया है ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुपरिघसमागमो नामैकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्ठितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

अज्ञानरूप आवरणके नष्ट होनेपर चित् स्फुरणकी स्थितिसे विद्वानोंकी सदा एक ब्रह्ममें समाधि होती है यह विषय इस ६२ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैवंप्राययातत्रविश्रंभकथयाचिरम् ॥ प्राक्तनस्नेहगर्भिण्यास्थित्वोवाचायुधाभिधः ॥१॥ परिघउवाच ॥ यद्यत्संसारजालेऽस्मिन्क्रियतेकर्मभूमिप ॥ तत्तत्समाहितचित्तस्यसुखायान्यस्यनानघ ॥ २ ॥ कच्चित्संकल्परहितंपरंविश्रमणास्पदम् ॥ परमोपशमंश्रेयःसमाधिमनुतिष्ठसि॥३॥ सुरघुरुवाच ॥ एतन्मेब्रूहिभगवन्सर्वसंकल्पवर्जितम् ॥ परमोपशमंश्रेयःसमाधिर्हिकिमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके अनंतर प्राचीन स्नेहसे पूर्ण इसप्रकार विश्वासकी कथासे चिरकालतक स्थित होकर परिघ बोला ॥ १ ॥ हे पापरहित राजन् ! इस संसारजालमें जो २ कर्म किये जाते हैं वे सब समाहितचित्तकेही सुखकेलिये हैं, न कि अन्यके ॥ २ ॥ क्या संकल्पसे वर्जित, परम विश्रामका स्थान, परम शांतिमय और संसारके सुखसे अतिश्रेष्ठ समाधि तुम करतेहो ॥ ३ ॥ सुरघु बोला–हे भगवन् ! सर्व संकल्पोंसे वर्जित परम शांति संसारके सुखसे अति श्रेष्ठ कल्याणदायक यह मुझसे कहिये परंतु समाधिका अनुष्ठान करना यह क्यों कहतेहो ॥४॥

योऽज्ञोमहात्मन्सततंतिष्ठन्व्यवहरंश्ववा ॥ असमाहितचित्तोऽसौकदाभवतिकःकिल ॥५॥ नित्यंप्रबुद्धचित्तास्तुकुर्वंतोऽपिजगत्क्रियाः ॥ आत्मैकतत्त्वसन्निष्ठाःसदैवसुसमाधयः ॥ ६ ॥ बद्धपद्मासनस्यापिकृतब्रह्मांजलेरपि ॥ अविश्रांतस्वभावस्यकःसमाधिःकथंचवा ॥ ७ ॥ तत्त्वावबोधोभगवन्सर्वाशातृणपावकः ॥ प्रोक्तःसमाधिशब्देननतुतूष्णीमवस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महात्मन् ! जो ज्ञानी है वह चाहै स्थित रहै वा व्यवहार करताहो वह असमाहितचित्त कब और कौन होसकताहै ॥ ५ ॥ नित्य प्रबुद्ध (ज्ञानसहित) चित्तवाले जगत्की क्रियाओंको करते हुये भी सदा एक आत्मतत्वनिष्ठ और उत्तम समाधिधारी हैं ॥ ६ ॥ और पद्मासन बांधे हुयेभी हो और ब्रह्मांजलि कि हुये हो परंतु आत्मस्वभावमें जिसका चित्त विश्रांत नहीं है उसकी कौन समाधी और कैसे ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! सम्पूर्ण आत्मरूप तृणकी अग्नि जो आत्मतत्वका ज्ञानहै वही समाधिशब्दसे कहा जाताहै ॥ ८ ॥

समाहितानित्यतृप्तायथाभूतार्थदर्शिनी ॥ साधोसमाधिशब्देनपराप्रज्ञोच्यतेबुधैः ॥ ९ ॥ अक्षुब्धानिरहंकाराद्वंद्वेष्वननुपातिनी ॥ प्रोक्तासमाधिशब्देनमेरोःस्थिरतराकृतिः ॥ १० ॥ निश्चिताधिगताभीष्टाहेयोपादेयवर्जिता ॥ प्रोक्तासमाधिशब्देनपरिपूर्णामनोगतिः ॥ ११ ॥ यतःप्रभृतिबोधेनयुक्तमात्यंतिकंमनः ॥ तदारभ्यसमाधानमव्युच्छिन्नंमहात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे साधो ! एकाग्र नित्यतृप्त तथा सत्यपदार्थको देखनेवाली जो अबाधित आत्मतत्वका दर्शनरूप पराप्रज्ञा (बुद्धि) है वही समाधिशब्दसे कहीगई है ॥ ९ ॥ क्षोभ तथा अहंकाररहित और द्वंद्वों (सुखदुःखरूप) की ओर न गिरनेवाली मेरुसेभी स्थिरतर जो आकृति (आकार) है वही समाधिशब्दसे कहीगई है ॥ १० ॥ निश्चिन्त, अभीष्टको प्राप्त, हेय उपादेयसे वर्जित और परिपूर्ण जो मनकी गति है वही समाधिशब्दसे कही गई है ॥ ११ ॥ जिससमयसे यह मन सदाकेलिये ज्ञानसेयुक्त होताहै उसीसमयसे लेके महात्माकी निरंतर समाधिहै ॥ १२ ॥

नंहिप्रबुद्धमनसोभूत्वाविच्छिद्यतेपुनः ॥ समाधिर्दूरमाकृष्टोबिसतंतुःशिशोरिव ॥ १३ ॥ समग्रंदिनमालोकाद्विरमत्यक्षयोयथा ॥ आजीवितांतंनोप्रज्ञातथातत्त्वावलोकनात् ॥ १४ ॥ अजस्रमंबुवहनाद्यथानद्यानरुद्ध्यते ॥ तथाविज्ञानदृग्बोधात्क्षणमात्रंनरुद्ध्यते ॥ १५ ॥ नविस्मरत्यविरतंयथाकालःकलागतिम् ॥ नविस्मरत्यविरतंस्वात्मानंप्राज्ञधीस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे क्रीडा करतेहुये बालकके हस्तमें दूर खींचाहुआ कमलका सूत टूट जाताहै इसप्रकार ज्ञानीकी समाधि होकर पुनः नहीं टूटती ॥ १३ ॥ जैसे सूर्य्य सब दिन प्रकाशसे विरामको नहीं प्राप्त होते ऐसेही जीवन कैवल्य (मुक्ति) पर्यंत ज्ञानीकी बुद्धि दृढसंस्कारसे आत्माके दर्शनसे विरामको नहीं प्राप्तहोती ॥ १४ ॥ जैसे जलके बहनेसे नदी क्षणभरभी नहीं रूकसकती ऐसेही आवरणके नाशसे विज्ञानकी दृष्टि बोध (आत्मज्ञान) से क्षणभरभी नहीं रूकसकती ॥ १५ ॥ जैसे काल अपनी कलाकी गतिको क्षणभरभी नहीं भूलता ऐसेही ज्ञानीकी बुद्धि परमप्रेमका आस्पद अपने आत्माको कदापि नहीं भूलती ॥ १६ ॥

नविस्मरतिसर्वज्ञयथासततगोगतिम् ॥ नविस्मरतिनिश्चेयंचिन्मात्रंप्राज्ञधीस्तथा ॥ १७ ॥ गतिंकाल कलायद्वच्चिन्वानासमवस्थिता ॥ चिच्चितिश्चेत्यरहिताचिन्वानागतयस्तथा ॥ १८ ॥ यथासत्ताविहीनात्मापदार्थोनोपलभ्यते ॥ तथात्मज्ञानहीनात्माकालोज्ञस्यनलभ्यते ॥ १९ ॥ नसंभवतिसंसारेगुणहीनोगुणीयथा ॥ नसंभवत्यात्मसंविद्वर्जितोह्यात्मवांस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—और जैसे निरन्तर चलनेवाला अपनी गतिको नहीं भूलता ऐसेही तत्वज्ञानीकी बुद्धि निश्चय करने योग्य चिन्मात्र आत्माको कदापि नहीं भूलती ॥ १७ ॥ हे मित्र जैसे कालकी कला (सूर्यकी मूर्ति) अपनी गतिको एकत्र करते (सदा चलते हुये) स्थितहै ऐसेही विषयरहित चैतन्यकी स्फूर्ति आत्माकार वृत्तियोंको एकत्र करती हुई सदा स्थितहै ॥ १८ ॥ जैसे विना सत्तासे कोई पदार्थ प्राप्त नहीं होता ऐसी आत्मज्ञानसे हीन ज्ञानीको कोई भी समय नहीं प्राप्त होता ॥ १९ ॥ जैसे संसारमें गुणी पुरुष गुणसे हीन होनेका कदाचित् संभव नहीं है ऐसेही आत्मज्ञानी आत्मज्ञानसे रहित होना कदाचित् संभव नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सर्वदैवास्मिसंबुद्धःसर्वदैवास्मिनिर्मलः ॥ सर्वदैवास्मिशांतात्मासर्वदास्मिसमाहितः ॥ २१ ॥ भेदः केनसमाधेर्मेजन्यतेकथमेववा ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेणनित्यमेवसदात्मता ॥ २२ ॥ तस्मात्कदाचिदपि मेनासमाधिमयंमनः ॥ नवासमाहितंनित्यमात्मतत्त्वैकसंभवात् ॥२३॥ सर्वगःसर्वदैवात्मासर्वमेवच सर्वथा॥असमाधिर्हिकोऽसौस्यात्समाधिरपिकःस्मृतः॥२४॥नित्यंसमाहितधियःसुसमामहांतस्तिष्ठंति कार्यपरिणामविभागमुक्ताः॥तेनासमाहितसमाहितभेदभंग्यानित्योदितःक्वनुसउत्तमवाक्प्रपंचः॥२५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयोनामद्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—देखो मैं सदा ज्ञानवान्हुं, सदा निर्मलहुं, सदा शान्तात्माहुं, और सदा समाधिनिष्ठहुं ॥ २१ ॥ समाधिसे मेरा भेद किससे और कैसे होसकताहै क्योंकि आत्मासे अभिन्न सदा मेरी आत्मसत्ता सिद्धहै ॥ २२ ॥ इस कारण मेरा मन कदाचित्भी समाधिसे वर्जित नहीं है और मनके अभावमें कदाचित्भी वह समाधिनिष्ठ नहीं है क्योंकि नित्य एक आत्मतत्वकाही संभवहै ॥ २३ ॥ सबप्रकारसे और सदा आत्मा सर्वव्यापी और सर्वस्वरूपहै इसलिये असमाधि और समाधि क्या होसकती है ? ॥ २४ ॥ भेदके बाधसे नित्यही समाहितहै बुद्धि जिनकी ऐसे कार्यके परिणाम तथा विभागसे विनिर्मुक्त उत्तम महात्मालोग सदा स्थित रहतेहैं तो असमाहित तथा समाहित भेदकी वाक्यकी रचनासे प्रवृत्त जो तुमारा उत्तम वाक्यप्रपंच है वह कहां स्थितहै ? ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयोनाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस ६३ के सर्गमें परिघसे परीक्षा करके सुरघुने सहजसमाधिकी स्थितिका वर्णन कियागयाहै ॥

परिघउवाच ॥ राजन्नूनंप्रबुद्धोऽसिप्राप्तवानसितत्पदम् ॥ संशीतलांतःकरणःपूर्णेंदुरिवराजसे ॥ १ ॥ आनंदमधुसंपूर्णलक्ष्म्याचपरयाश्रितः ॥ शीतलःस्निग्धमधुरोराजीवमिवराजसे ॥ २ ॥ निर्मलोविततः पूर्णोगंभीरःप्रकटाशयः ॥ वेलानिलविलासेनमुक्तोऽब्धिरिवराजसे ॥ ३ ॥ स्वच्छआनंदसंपूर्णोनष्टाहंकारवारिदः ॥ स्फुटोविस्तीर्णगंभीरःशरत्खमिवराजसे ॥ ४ ॥

अर्थ—परिघ बोला–हे राजन् ! तुम निश्चयकरके ज्ञानवान् हो और उस परम (ब्रह्म) पदको पहुंचगये हो, इसीसे अतिशीतल अंतःकरणयुक्त तुम पूर्णचन्द्रमाकेसमान प्रकाशमान हो ॥ १ ॥ और आनंदरूप मधुर-

रससे पूर्ण सर्वोत्तम लक्ष्मीसे सेवित, शीतल, स्निग्ध और मधुर कमलके समान शोभित हो ॥ २ ॥ निर्मल, विशाल, पूर्ण, गंभीर और स्पष्ट प्रकट अन्तःकरणसे क्षोभित तुम तटके वायुके विलाससे मोतीके समुद्रतुल्य शोभित हो रहे हो ॥ ३ ॥ स्वच्छ और आनन्दसे पूर्ण अहंकाररूप मेघसे रहित प्रत्यक्ष विस्तृत तथा गंभीर शरत्कालके आकाशके तुल्य शोभितहो ॥ ४ ॥

सर्वत्रलक्ष्यसेस्वस्थःसर्वत्रपरितुष्यसि ॥ सर्वत्रवीतरागोऽसिराजन्सर्वत्रराजसे ॥ ५ ॥ सारासारपरिच्छेदपारगस्त्वंमहाधिया ॥ जानासिसर्वमेवेदंयथास्थितमखंडितम् ॥ ६ ॥ भावाभावपरिच्छेदतत्त्वज्ञमुदिताशयम् ॥ गमागमदशालौल्यमुक्तंतववपुःस्थितम् ॥ ७ ॥ वस्तुनावस्तुनेवांतरमृतेनेवसागरः ॥ अपुनःक्षययायैवपरेतृप्तोऽसिसुंदर ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! इष्ट अनिष्ट सब विषयोंमें स्वस्थ (समरूप) देख पडतेहो, सर्वत्र संतुष्ट हो, और सर्वत्र वीतराग हो इसीसे सर्वत्र शोभित हो ॥ ५ ॥ हे मित्र ! तुम अपनी महाबुद्धिसे सार असारके निर्णयके पारंगत हो और यहभी जानते हो कि यह संपूर्ण दृश्य जगत् अखण्डित ब्रह्महीं ज्योंका त्यों स्थितहै ॥ ६ ॥ हे उत्पत्ति नाशके निर्णयके तत्त्वज्ञ ? प्रसन्न चित्त अवरोह तथा आरोह (चढने उतरने) से प्रेरित रागकी दशाकी चंचलतासे निर्मुक्त यह आपका शरीर शोभित होरहाहै ॥ ७ ॥ हे सुंदर ! जिससे उत्तम वस्तु संसारमें नहीं है ऐसे निज आत्मरूपवस्तुसे अपनी महिमामें तुम ऐसे तृप्त हो जैसे अमृतसे समुद्र ॥ ८ ॥

सुरघुरुवाच ॥ नतदस्तिमुनेवस्तुयत्रोपादेयतास्तिनः ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यंतावदेतन्नकिंचन ॥ ९ ॥ उपादेयस्यचाभावाद्धेयमप्यस्तिकिंकिल ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदंविनाहेयंकिमुच्यते ॥ १० ॥ तुच्छत्वात्सर्वभावानामतुच्छत्वाचकालतः ॥ चिरंममपरिक्षीणेतुच्छातुच्छेमनःस्थिती ॥ ११ ॥ देशकालवशादेवतुच्छस्यातुच्छतामिह ॥ अतुच्छस्यतुतुच्छत्वंवर्ज्येनिंदास्तुतीबुधैः ॥ १२ ॥

अर्थ—सुरघु बोला—हे मुने ! संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हम लोगोंको उपादेय (ग्राह्य) हो, क्योंकि जितना यह दृश्य प्रपंच है वह सब मिथ्याहै ॥ ९ ॥ और उपादेयके अभावसे हेय (त्याज्य) क्या है ? क्योंकि उपादानके विना हेयभी क्या होसकताहै ॥ १० ॥ केवल देशकालसे सब वस्तुओंके तुच्छ तथा अतुच्छ होनेसे मेरे मनकी तुच्छ और अतुच्छकी स्थिति चिरकालसे क्षीण होगई है ॥ ११ ॥ देशकालकेही वशसे तुच्छ पदार्थकी अतुच्छता और अतुच्छकी तुच्छता होती है इसीसे तुच्छ अतुच्छकी निन्दा स्तुति न करनीचाहिये ऐसा पंडित लोग मानतेहैं ॥ १२ ॥

रागान्निंदास्तुतीलोकेरागश्चपरिवांछितम् ॥ वांछतेचमहोदारंवस्तुशोभनबुद्धिना ॥ १३ ॥ त्रैलोक्येचस्त्रियःशैलाःसमुद्रवनराजयः ॥ भूतानिवस्तुशून्यानिसारोनास्त्यत्रवस्तुतः ॥ १४ ॥ मांसास्थिदारुमृद्रत्नमयेजगतिजर्जरे ॥ वांछनीयविहीनेऽस्मिन्शून्येकिमिववांछ्यते ॥ १५ ॥वांछायांविनिवृत्तायांसंक्षयोद्वेषरागयोः ॥ दिनलक्ष्म्यांव्यपेतायामालोकातपयोरिव ॥ १६ ॥ अलमतिविततैर्वचःप्रपंचैरियमुचिते हसुखायदृष्टिरेका ॥ उपशमितरसंसमंमनोंतर्यदितत्तदनुत्तमाप्रतिष्ठा ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुपरिघनिश्चयो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

अर्थ—लोकमें निन्दा स्तुति रागसे होती हैं और राग इच्छासे होताहै सो उत्तम बुद्धिमान् महोदार वस्तु (ब्रह्म) की ही इच्छा करताहै ॥ १३ ॥ त्रिलोकमें स्त्री, पर्वत, समुद्र और बनकी पंक्तियां तथा समस्त प्राणी और पृथिवी पंचभूत सब सत्यवस्तुसे शून्य है इसमें कुछ सार नहीं है ॥ १४ ॥ मांस, हड्डी, काष्ठ, मृत्तिका और रत्नमय, इच्छासे करनेकी योग्यतासे रहित इस प्राचीन शून्य जगत्में भला किस पदार्थकी इच्छा कीजाय ॥१५॥ पदार्थोंकी इच्छाके निवृत्त होनेपर रागद्वेषका क्षय ऐसे होजाताहै जैसे दिनकी लक्ष्मीके निवृत्त होजानेपर प्रकाश और आतपका ॥ १६ ॥ हे सखे ! अब अधिक वाग्जाल व्यर्थ है. यदि चारोओरके रागद्वेषसे निवृत्त शान्त और एक आत्मरस होके यह मन केवल अपने आत्माहीमें तृप्त है तो यही उत्तम प्रतिष्ठा (सबसे उत्तम विश्रांति) है. और यही एक दृष्टि सेवन करनेके योग्य है ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सुरघुपरिघनिश्चयो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्ठितमः सर्गः ॥ ६४॥

जिन उपायोंसे मन दोषोंके बंधनमें नहीं आता और दुःखसे आत्माका उद्धार होताहै वे उपाय इस ६४ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ सुरघुःपरिघश्चैवविचार्येतिजगद्भ्रमम् ॥ मिथःप्रपूजितौतुष्टौस्वव्यापारपरौगतौ ॥ १ ॥ तदेवराघवश्रुत्वापरमंबोधकारणम् ॥ अनेनैवविबोधेनभवलब्धास्पदःस्फुटम् ॥ २ ॥ परयाप्रज्ञयाधीरविचारगततीक्ष्णया ॥ गलत्यलमहंकारकालमेघेहृदंबरे ॥ ३ ॥ समस्तलोकानुमतेसफलेह्लादकारिणि ॥ निर्मलेविततेचेतःशरत्कालउपस्थिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–सुरघु और परिघ इसप्रकार जगत्के भ्रमका विचार करके परस्पर पूजित और सन्तुष्ट होके अपने २ व्यापारमें तत्पर हुये ॥ १ ॥ हे रामजी ! इतना सुनकर निश्चय करनेसे परमबोधका कारण होताहै और इसी सुरघु और परिघके ज्ञानसे परमपदका लाभ प्रत्यक्षरीतिसे प्राप्त करो ॥ २ ॥ धीर विद्वानोंके साथ विचार करनेसे तीव्र उत्तमबुद्धिसे अहंकाररूप लक्षणयुक्त कालरूप मेघके हृदयाकाशमें गलित होनेपर ॥ ३ ॥ सब लोकके अनुमत, फलसहित, आनंदकारी, और निर्मलचित्तरूप शरत्कालके आनेपर ॥ ४ ॥

ध्येयेशरण्येसुगमेसकलानंदसंपदि ॥ सुप्रसन्नेचिदाकाशेस्थीयतेपरमात्मनि ॥ ५ ॥ योनित्यमध्यात्ममयोनित्यमंतर्मुखःसुखी ॥ नित्यंचिदनुसंधानोमनःशोकैर्नबाध्यते ॥ ६ ॥ व्यवहारपरोत्युच्चैरागद्वेषमयोऽपिसन् ॥ नांतःकलंकमायातिपद्मोजलगतोयथा ॥७॥ सम्यग्विज्ञानवान्शुद्धोयोऽतःशांतमनामुनिः नबाध्यतेसमनसाकरिणेवमृगाधिपः ॥ ८ ॥

अर्थ—ध्यान करने योग्य, शरणदायक, आत्मरूप होनेसे सुगम, सब आनन्दोंके सम्पत्तिस्वरूप, तथा अतिप्रसन्न चिदाकाशरूप परमात्मामें जो स्थित होताहै ॥ ५ ॥ और जो नित्य आत्मविचारमें तत्पर रहताहै, नित्य अन्तर्मुख और सुखी है और नित्यही पुनः २ आदरसे चित्के आस्वादनमें तत्परहै उसका चित्त शोकसे पीडित नहीं होता ॥ ६ ॥ वह पुरुष सर्वथा व्यवहारमें तत्पर हो और रागद्वेषसे पूर्णभी हो परन्तु अन्तःकरणमें वह कलंकयुक्त ऐसे नहीं होता जैसे जलके मध्यमें प्राप्त कमल ॥ ७ ॥ जो मुनि उत्तमज्ञानी है, अंतःकरणमें शुद्ध है और शांतचित्त है वह मनसे ऐसे नहीं बाधित होता जैसे हांथीसे सिंह ॥ ८ ॥

भोगैकशरणंदीनंनचित्तंज्ञस्यविद्यते ॥ नंदनेदुर्द्रुमइवज्ञचित्तंहिमहावपुः ॥ ९ ॥ विरक्तोजन्ममरणेयथादुःखीनमानवः ॥ परिज्ञाताखिलाविद्यंतथाचित्तंनदुःखितम् ॥ १० ॥ परिज्ञातमनोमोहोजगद्भावोद्भवात्मना ॥ स्पृश्यतेनैनसासाधोरजसेवनभस्तलम् ॥ ११ ॥ अविद्यासंपरिज्ञातमिदमेवमहौषधम् ॥ अविद्याविततव्याधेस्तिमिरस्येवदीपकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—भोग लंपट और दीन ज्ञानीका चित्त ऐसे नहीं होता जैसे नंदनवनमें कंटकयुक्त वृक्ष, किंतु उसका चित्त विशाल होताहै अर्थात् विषयके क्षुद्रसुखमें उसकी इच्छा नहीं होती ॥ ९ ॥ जैसे विरक्त मनुष्य किसीके जन्ममरणमें दुःखी नहीं होता ऐसेही सब ओरसे विचार करके विषय इन्द्रिय शरीरादि तथा अन्य सब दृश्यकी अविद्या (मिथ्या भ्रांति) जिस चित्तने जानलियाहै वही दुःखी नहीं होता ॥ १० ॥ हे साधो ! जिस पुरुषने अपने मनके मोह (भ्रम) को जानलियाहै उसको जगत्में कर्तृत्वके अभिमानसे उत्पन्न पाप ऐसे नहीं स्पर्श करता (छूता) जैसे धूलि आकाशको ॥ ११ ॥ अविद्यारूप विशाल रोगका यह जगत् अविद्यामात्रहै इसप्रकार विचारसे उत्पन्न उत्तम ज्ञान ऐसे महा औषधहै जैसे अन्धकारका दीपक ॥ १२ ॥

अविद्यासंपरिज्ञातायदैवहितदैवहि ॥ सापरिक्षीयतेभूयःस्वप्नेनेवहिभोगभूः ॥ १३ ॥ व्यवहारपरोप्यंतरसक्तमतिरेकधीः ॥ स्पृश्यतेनैनसासाधुर्मत्स्येक्षणमिवांभसा ॥ १४ ॥ प्राप्तेचिद्भासुरालोकेप्रक्षीणाज्ञानयामिनी ॥ शेमुषीपरमानंदमागताज्ञस्यराजते ॥ १५ ॥ अज्ञाननिद्रोपशमेजनोज्ञानार्कबोधितः ॥ तत्प्रबोधमवाप्नोतिपुनर्येननसुह्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—यह अविद्या अविद्यारूपसे जिससमय ज्ञात होजाती है उसीसमय वह ऐसे नष्ट होजाती है जैसे स्वप्नके भोगकी भूमि यह स्वप्नहै ऐसे ज्ञानसे ॥ १३ ॥ संसारमें असक्तमति और केवल ब्रह्ममें जिसकी बुद्धि मग्नहै वह आत्मा पापसे ऐसे नहीं स्पृष्ट (छुआ जाता) होताहै जैसे जलसे मत्स्य (मछली) का नेत्र ॥ १४ ॥ चेतनमय प्रदीप्त प्रकाशके प्राप्त होनेपर अज्ञानरूप रात्रि नष्ट होजाती है और परमानंदको प्राप्त तत्वज्ञानीकी बुद्धि प्रकाशित होती है

॥ १५ ॥ अज्ञानरूप निद्राके शांत होनेपर ज्ञानरूप सूर्य्यसे प्रबोधित प्राणी उस प्रबोधको प्राप्त होताहै जिससे कि पुनः मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

दिनानिजीव्यतेतानिसानंदास्तेक्रियाक्रमाः ॥ आत्मचंद्रोदितायेषुचिज्ज्योत्स्नाहृदयांबरे ॥ १७ ॥ नरो मोहसमुत्तीर्णःसततंस्वात्मचिंतया ॥ अंतःशीतलतामेतिस्वामृतेनेवचंद्रमाः ॥ १८ ॥ तानिमित्राणि शास्त्राणितानितानिदिनानिच ॥ विरागोल्लासवान्येभ्यआत्मचित्तोदयःस्फुटम् ॥ १९ ॥ चिरंशोच्यंतिते दीनाजन्मजंगलवीरुधः ॥ आत्मावलोकनेहेलायेषामविगतैनसाम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिन दिनोंमें आत्मारूप चंद्रमासे उदयको प्राप्त चित् चन्द्रिका हृदयाकाशमें खिलरही है वेही दिन जीवनसहित हैं और वे क्रिया आनंदसहित हैं ॥ १७ ॥ मोहरूप सागरसे समुत्तीर्ण मनुष्य निरंतर आत्माकी चिंतासे अंतःकरणमें ऐसी शीतलताको प्राप्त होताहै जैसे अपने अमृतसे चंद्रमा ॥ १८ ॥ वेही मित्र मित्रहैं, वेही शास्त्र शास्त्रहैं और वही दिन दिनहैं जिनके कारणसे वैराग्यके उल्लाससे पूर्ण आत्माकार वृत्तिरूप चित्तका अभ्युदय स्पष्टरीतिसे होता है ॥ १९ ॥ वे दीन और जन्म जंगलके वृक्षके तुल्य दीर्घ कालतक शोचने योग्यहैं जिनसे पापियोंको आत्माके दर्शनमें अनादरहै ॥ २० ॥

आशापाशशतैर्बद्धंभोगोलपसुलालसम् ॥ जराजर्जरिताकारंशोकोच्छ्वासकदर्थितम् ॥ २१ ॥ व्यूढ दुःखमहाभारंजन्मजंगलजीवितम् ॥ कुकर्मकर्दमालिप्तंमोहपल्वलशायिनम् ॥ २२ ॥ रागदंशावलीदष्टं कृष्टंतृष्णावरत्रया ॥ मनोवणिङ्निकेतस्थंबंधुबंधननिश्चलम् ॥ २३ ॥ पुत्रदारजराजीर्णमग्नोन्मग्नंकुकर्द मे ॥ श्रांतंविगतविश्रामंभग्नमादीर्घवर्त्मनि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सैंकडों आशारूप फांसीसे बद्ध, भोगरूप तृणके अति अभिलाषी, जरासे जर्जरित आकारधारी, शोकरूप उच्छ्वाससे निन्दनीय ॥ २१ ॥ दुःखरूप महाभारके वाहक, जन्मरूप वनमें जीवित, दुष्टकर्मरूप कीचडसे पूर्ण, मोहरूप अल्प जलाशयमें शयनशील ॥ २२ ॥ रागरूप मच्छरोंकी पंक्तिसे दष्ट (काटे हुये) तृष्णारूप चर्मकी रस्सीसे खींचे हुये, मनरूप वैश्यके संकेत वा गृहके निवासी, बंधुरूप बंधनसे चलनेमें असमर्थ ॥ २३ ॥ पुत्र स्त्रीरूप वृद्धावस्थासे जीर्ण, दुष्टकर्मरूप गोबरमें सदा निमग्न, थकित विश्रामरहित, दीर्घ मार्ग (लोक परलोक) मे मग्न (टूटे हुये) २४ ॥

गमागमपरिक्षीणंसंसारारण्यचारिणम् ॥ अलब्धशीतलच्छायंतीव्रतापोपतापितम् ॥ २५ ॥ आकार भासुरंदीनंबाह्यैराक्रांतमिंद्रियैः ॥ कर्मघंटारवाक्रांतंक्रांतंदुष्कृतताडनैः ॥ २६ ॥ आविर्भावतिरोभावच क्रावर्त्तधुरोद्वहम् ॥ अज्ञानविकटाटव्यांलुठितंसन्नगात्रकम् ॥ २७ ॥ निजानर्थसदामग्नंसीदमानमकिं चनम् ॥ सन्नांगंकर्मभारेणकरुणाक्रंदकारिणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आवागमनसे परिक्षीण, संसाररूप वनके चरनेवाले, शीतलछायासे वर्जित, अतितीव्र मनके संतापसे तप्त ॥ २५ ॥ बाहरके आकारमात्रसे शोभित, और अन्तः करणसे दीन, नेत्र आदि बाह्यइन्द्रियोंसे पराजित, काम्यकर्मरूप घंटाके शब्दसे भ्रमणशील, पापोंके ताडनेसे पीडित ॥ २६ ॥ आविर्भाव तथा तिरोभावरूप शकट (गाडी) के धुराके भारवाहक और अरूप महाबिकट वनमें शरीरोंके टूटनेसे लोटतेहुये ॥ २७ ॥ अपने अनर्थमें सदा मग्न, सदा दुःखी, दरिद्रि, जडीभूतशरीर, और, कर्मके भारसे करुणासे रोदन करते हुये ॥ २८ ॥

रामजीवबलीवर्दमिमंसंसारपल्वलात् ॥ परमंयत्नमास्थायचिरमुत्तारयेद्बलात् ॥ २९ ॥ तत्त्वावलोक नात्क्षीणेचित्तेनोजायतेपुनः ॥ जीवःकदाचनतदाभवेत्तीर्णभवार्णवः ॥ ३० ॥ महानुभावसंपर्कात्सं सारार्णवलंघने ॥ युक्तिःसंप्राप्यतेरामस्फुटानौरिवनाविकात् ॥ ३१ ॥ यस्मिन्देशमरौतज्ज्ञोनास्तिस ज्जनपादपः ॥ सफलःशीतलच्छायोनतत्रनिवसेद्बुधः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस जीवरूप बलीवर्द (बैल) को परम यत्नका अवलम्बन करके ज्ञानरूप बलसे संसाररूप कीचडसे चिरकालके लिये निकालना चाहिये ॥ २९ ॥ आत्मतत्वके दर्शनसे चित्तके क्षीण होजानेसे पुनः भ्रम नहीं उत्पन्न होता और वह जीव संसारसागरसे अवश्य पार हो जाताहै ॥ ३० ॥ महानुभाव ज्ञानीके संगसे संसाररूप सागरसे पार उतरनेकी युक्ति ऐसे प्राप्त होती है जैसे मल्लाहके निकट नौका ॥ ३१ ॥ जिस मरुस्थलसमान देशमें फल सहित शीतलछायायुक्त सज्जन ज्ञानीरूप वृक्ष नहीं है वहां बुद्धिमान्‌को निवास नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

स्निग्धशीतवचःपत्रेसच्छायेस्मितपुष्पके ॥ क्षणाद्विश्रम्यतेरामभृशंसुजनचंपके ॥ ३३ ॥ तदभावेम हामोहतापसंपत्तिदायिनि ॥ किंचिज्जातविवेकेनस्वस्तव्यंनेहधीमता ॥ ३४ ॥ आत्मैवह्यात्मनोबंधुरात्म

नात्मैवमुद्धरेत ॥ नात्मानमवलेपेनजन्मपंकार्णवेक्षिपेत् ॥ ३५ ॥ किमिदंकथमायातंकिंमूलमितिकिं क्षयम् ॥ देहदुःखमितिप्राज्ञैःप्रेक्षणीयंप्रयत्नतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्निग्ध तथा शीतलबचनरूप जिसके पत्र हैं, उत्तमस्वभावरूप छाया जिसकी है ऐसे स्मित (मुस्किरान) रूप पुष्पसहित सज्जन विद्वान्‌रूप चंपाके वृक्षके नीचे क्षणमेंही विश्राम मिलताहै ॥ ३३ ॥ आत्मलाभरूप विश्रामके अभावमें महामोह और संतापकी संपत्तिदायक इस संसारमें किंचित् विवेक जिस बुद्धिमान्‌को उत्पन्न हुआहै उसको शयन करना न चाहिये ॥ ३४ ॥ आत्माही आत्माका बंधुहै इससे आत्मासे आत्माका उद्धार करना चाहिये न कि देहके अभिमान तथा गर्वसे आत्माको जन्मरूप पंकके समुद्रमें फेंकना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह देहसंबंधी दुःख क्याहै ? कैसे आया, और क्या इसका मूलहै, वा कैसे इसका क्षय होताहै, इसप्रकार बुद्धिमानोंको प्रयत्नसे विचारना चाहिये ॥ ३६ ॥

नधनानिनमित्राणिनशास्त्राणिनबांधवाः ॥ नराणामुपकुर्वंतिमग्नस्वात्मसमुद्धृतौ ॥ ३७ ॥ मनोमात्रेण सुहृदासदैवसहवासिना ॥ सहकिंचित्परामृश्यभवत्यात्मासमुद्धृतः ॥ ३८ ॥ वैराग्याभ्यासयत्नाभ्यां स्वपरामर्शजन्मना ॥ तत्त्वालोकनपोतेनतीर्यतेभवसागरः ॥ ३९ ॥ शोच्यमानंजनैर्नित्यंदह्यमानंदुराशया ॥ नात्मानमवमन्येतप्रोद्धरेदेनमादरात् ॥ ४० ॥

अर्थ—न धन, न मित्र न अन्यशास्त्र अज्ञानसागरमें मग्न आत्माके उद्धार करनेमें मनुष्योंके उपकारी होतेहैं ॥३७॥ सदा सहवासी शुद्ध मनमात्रसुहृद्‌से कुछ परामर्श करके आत्माका उद्धार कियाजाताहै ॥३८॥ अभ्यास तथा वैराग्यरूप यत्नसे विचारसे उत्पन्न, तत्वज्ञानरूप महानौकासे संसाररूप सागर पार कियाजाताहै॥३९॥मनुष्योंसे नित्य शोच्यमान, दुष्टआशासे पीडित आत्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये किंतु आदरसे इसका उद्धार करना चाहिये ॥४०॥

अहंकारमहालानंतृष्णारज्जुंमनोमदम् ॥ जन्मजंबालनिर्मग्नंजीवदंतिनमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥ अयमेतावतैवात्मात्रातोभवतिराघव ॥ यदपास्यविमूढत्वमहंकारःप्रमार्ज्यते ॥ ४२ ॥ एतावतैवसन्मार्गेयातिप्रकटतामलम् ॥ यदपास्यमनोजालमहंभावोविलूयते ॥ ४३ ॥ एतावतैवदेवेशःपरमात्मावगम्यते ॥ काष्ठलोष्ठसमत्वेनदेहोयदवलोक्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अहंकारही जिसका बांधनेका स्तंभ है तृष्णाही जिसके बांधनेकी रज्जुहै मनही जिसके गंडस्थलसे झरनेवाला मद है और जो जन्मरूप कीचडमें निमग्न (फंसा) होरहाहै ऐसे जीवरूप हाथीका उद्धार करना चाहिये ॥ ४१ ॥ आत्माकी रक्षा होती है कि अपने आत्माके अज्ञानको दूर करके अहंकार दूर कियाजाय ॥ ४२ ॥ इतनेहीमें सन्मार्ग (ज्ञान) पर्य्यन्त विचारमें भलीभांति प्रकटताको प्राप्त होताहै कि मनसे बाह्य तथा अध्यात्मिक जगत्‌में आसक्तिजालको दूर करके अहंकारको नष्ट करै ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! इतनेहीमें सब देवोंका स्वामी परमात्माका ज्ञान होताहै कि काष्ठ वा पाषाणके समान यह देह देखाजाय ॥ ४४ ॥

अहंकारांबुदेक्षीणेदृश्यतेचिद्दिवाकरः ॥ ततस्तत्परिणामेनतत्पदंसमवाप्यते ॥ ४५ ॥ यथाध्वांतसमुच्छेदेस्वयमालोकवेदनम् ॥ तथाहंकारविच्छेदेस्वयमात्मावलोकनम् ॥ ४६ ॥ अहंकारेपरिक्षीणेयावस्थासुखमोदजा ॥ सावस्थाभरिताकारासासेव्यासंप्रयत्नतः ॥ ४७ ॥ परिपूर्णार्णवप्रख्यानवागोचरमेतिनः ॥ नोपमानमुपादत्तेनानुधावतिरंजनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघके नष्ट होनेपर चित्‌रूप सूर्य देख पडताहै और आत्मदर्शनकी भूमिकाके परिपाकसे परमपद प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार अंधकारका नाश होनेपर प्रकाशका ज्ञान स्वयं होताहै ऐसेही अहंकारका नाश होनेपर आत्माका दर्शन स्वयं सिद्ध होताहै ॥ ४६ ॥ अहंकारके क्षीण होनेपर निरतिशय आनंदमें विश्रान्तिसे उत्पन्न जो निर्विकल्पावस्था होती है वह अवस्था पूर्ण आकारवाली है, और यत्नसे उसीकी सेवा करनी चाहिये ॥४७॥ परिपूर्ण समुद्रके तुल्य वह हमलोगोंके मन आदिके विषयताको नहीं प्राप्त होती, न उसके कोई सदृश है और न वह दृश्यके रागसे रंजित होती है ॥ ४८ ॥

केवलंचित्प्रकाशांशकलिकास्थिरतांगता ॥ तुर्याचेत्प्राप्यतेदृष्टिस्तत्तयासोपमीयते ॥ ४९ ॥ अदूरगतसादृश्यात्सुषुप्तस्योपलक्ष्यते ॥ सावस्थाभरिताकारागगनश्रीरिवातता ॥ ५० ॥ मनोहंकारविलयेसर्वभावांतरस्थिता ॥ समुदेतिपरानंदायातनुःपारमेश्वरी ॥ ५१ ॥ सास्वयंयोगसंसिद्धासुषुप्तादूरभाविनी ॥ नगम्यावचसांरामहृद्येवेहानुभूयते ॥ ५२ ॥

अर्थ—केवल चित्प्रकाशोंकी कली स्थिरताको प्राप्त होती है, और यदि तुर्य्य (निर्विकल्प समाधि) दृष्टि होतो उसकी उपमा उसीके साथ होसकती है ॥ ४९ ॥ निर्विक्षेपके समीपताके कारण सदृश होनेसे सुषुप्तिको भान होती है, और वह पूर्णाकार अवस्था आकाशकी शोभाके समान व्यापक है ॥ ५० ॥ घटके नाशसे घटाकाश जैसे महदाकाशमें मिलताहै ऐसेही मन तथा अहंकाररूप उपाधिके नष्ट होनेपर सब पदार्थोंके अन्तरमें स्थित त्वं तथा तत्पदका लक्ष्यरूप परमेश्वरकी जो परानन्दात्मकता है वह उदय होती है ॥५१॥ वह स्वयं योगसे सिद्ध होती है और सुषुप्तके अदूर होनेवाली है, और हे रामजी ! वह अवस्था वाणियोंका विषय नहीं है किंतु हृदयमें ही अनुभूत होती है

अनुभूतिंविनातत्त्वंखंडादेर्नानुभूयते ॥ अनुभूतिंविनारूपंनात्मनश्चानुभूयते ॥ ५३ ॥ अखिलमिदमनंतमात्मतत्त्वंदृढपरिणामिनिचेतसिस्थितेऽतः॥ बहिरुपशमितेचराचरात्मास्वयमनुभूयतएवदेवदेवः ॥ ५४ ॥ तदनुविषयवासनाविनाशस्तदनुशुभःपरमःस्फुटप्रकाशः ॥ तदनुचसमतावशात्स्वरूपेपरिणमनंमहतामचिंत्यरूपम् ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उपदेशोनाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ—अनुभवके विना साधारण खंड (खांडचीनी) आदिका तत्व जैसे नहीं ज्ञात होताहै ऐसेही अनुभव विना आत्माकाभी स्वरूप नहीं ज्ञात होता ॥ ५३ ॥ यह संपूर्ण जगत् केवल अनंत आत्मस्वरूपही है, और दृष्ट परिणामी इस चित्तके बाह्यविषयोंके शांत होनेपर वह चराचरोंका आत्मा ब्रह्मादिदेवोंकाभी देव स्वयं अनुभूत होताहै ॥ ५४ ॥ इस चतुर्थभूमिकाके पश्चात् पंचमभूमिकामें विषयकी वासनाका नाश होताहै, षष्ठभूमिकामें परमपुरुषार्थरूप आत्माका प्रकाश होताहै, और इसके पश्चात् सप्तमभूमिकामें समाधि तथा असमाधिकी समताके कारण केवल आनन्दैकघनरूपसे आत्माका परिणाम होताहै जो ब्रह्मादिकेंभी अचिन्त्यरूप है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपदेशो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

सह्यनाम पर्वतपर अत्रिमुनिके आश्रमपर विलास तथा भासके जन्मकर्म और शोकके उदयका क्रम इस ६५ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनसैवमनश्छित्त्वायद्यात्मानावलोक्यते ॥ ममेत्यहमितित्यक्त्वातत्तामरसलोचन ॥ १ ॥ नास्तमेतिजगद्दुःखंयथाचित्रगतोरविः ॥ आयात्यापदनंतत्वंमहार्णववदातता ॥ २ ॥ पुनःपुनरुपायातिजलकल्लोलकारणम् ॥ मेघनीलतमःश्यामासंसृतिप्रावृडाकुला ॥ ३ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ संवादंसुहृदोःसह्यसानौभासविलासयोः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे कमलनेत्र रामजी ! यह धनादि मेरा यह शरीर आदि मैं इस अभिमानको त्यागकर और मनसे मनका छेदन करके यदि आत्माका दर्शन न किया जाय तो ॥ १ ॥ जगत्का दुःख ऐसे नहीं अस्त होता जैसे चित्रका सूर्य्य, और महासमुद्रकेतुल्य अपरिमित आपत्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥ और जल (ज) के कल्लोलका कारण, मेघ तथा नील अन्धकारसे श्याम संसाररूप वर्षाऋतु पुनः आती है ॥ ३ ॥ इसी विषयमें सह्यनाम पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले भास तथा विलास नाम दो मित्रोंके संवादके पुरातन इतिहासका उदाहरण देतेहैं ४

अस्त्युत्सेधजिताकाशःपीठेनजितभूतलः ॥ तलेनजितपातालस्त्रिलोकविजयोगिरिः ॥ ५ ॥ असंख्यकुसुमापूरोऽसंख्यनिर्मलनिर्झरः ॥ गुह्यकारक्षितनिधिःसह्यनामाऽविषह्यभाः ॥ ६ ॥ मुक्तापटलसंपूर्णैर्भानुभासुरभित्तिभिः ॥ भासुरःकांचनतटैकटैरिवसुरद्विपः ॥ ७ ॥ क्वचित्पुष्पभरासारोधातुसाराततःक्वचित् ॥ कचित्फुल्लसरःसारोरत्नशालिशिलःक्वचित् ॥ ८ ॥

अर्थ—उचाईमें आकाशकोभी जीतनेवाला तथा नीचेकी भूमिसे भूतल, और भूमिके मूलभागके प्रवेशसे पातालको जीतनेवाला त्रिलोकमें विजयी वह पर्वत है ॥ ५ ॥ पुनः असंख्यपुष्पोंके समूहोंसे पूर्ण, असंख्य निर्मल झरनेसहित, गुह्यकोंसे रक्षित और रत्नादिकी दीप्तिसे दृष्टिको प्रतिबन्ध करनेवाला वह सह्यनाम पर्वत है ॥ ६ ॥ मोतियोंके

समूहसे पूर्ण, चन्द्रकांतमणियोंकी भित्तियोंसे प्रकाशशील, सुवर्णमय नितंबोंसे ऐसे शोभितहै जैसे गंडस्थलसे हस्ती ॥ ७ ॥ कहीं पुष्पोंके समूहोंके प्रवाहमय, कहीं हरिताल और मनःशिला आदि धातुओंसे व्याप्त, कहीं विकसित पुष्प-संयुक्त सरोवरोंसे रमणीय, और कहीं रत्नोंकी शोभायमान शिलामय ॥ ८ ॥

इतोरटन्निर्झरवानितःक्वणितकीचकः ॥ इतोरटद्गुहावातइतःषट्पदघुंघुमः ॥ ९ ॥ सानौगीतोप्सरोवृंदैर्वनेमृगखगारवः ॥ अधित्यकायांमत्ताभ्रोगगनेषुखगारवः ॥ १० ॥ विद्याधराश्रितगुहोभृंगगीतांबुजाकरः ॥ किरातगीतपर्यंतःखगगीतवनद्रुमः ॥ ११ ॥ स्कंधेषुदेवैर्वलितःपादेषुवलितोनरैः ॥ पाताले वलितोनागैर्जगद्गृहमिवापरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कहीं झरनोंके कहीं बांसोंके शब्दोंसे पूर्ण कहीं कंदराओंमें वायुकी सन्सनाहटसे शोभित और कहां भ्रमरगूंजसे व्याप्त ॥ ९ ॥ और कहीं शिखरपर अप्सराओंके समूहके गानसे मनोहर और बनमें मृग तथा पक्षियोंके शद्बोंसें पूर्ण ऊपरकी भूमिमें मत्तके समान मेघोंकी गर्जनासे रमणीय, और आकाशदेशमें पक्षियोंके शब्दसे शोभित वह पर्वत था ॥ १० ॥ और उसकी कन्दरा विद्याधरोंसे आश्रित थी. कमलोंकी खानिमें भ्रमर गूंजरहे थे. उसके अधो-भागमें किरातलोग गान करते थे और उसके बनके वृक्षोंमें पक्षीगण गान करतेथे ॥ ११ ॥ स्कंधदेशोंमें देवताओंसे वेष्टित, पाददेशमें मनुष्योंसे, और पातालदेशमे नागोंसे सेवित ऐसे भान होता था जैसे ब्रह्मांडका दूसरा गृह ॥ १२ ॥

कंदरेषुश्रितःसिद्धैर्निधानैरंतराश्रितः ॥ चंदनेषुश्रितोनागैःसिंहैःशृंगशिखासुच ॥ १३ ॥ पुष्पाभ्रसंवीतवपुःपुष्परेण्वभ्रपांसुलः ॥ पुष्पवात्याभ्रहृद्भ्रांतःपुष्पपादपपांडुरः ॥ १४ ॥ धातुधूल्यभ्रकपिलोरत्नोपलतलस्थितैः ॥ मंदारगैरिवपुरस्त्रीगणैरलमाश्रितः ॥१५॥ अभ्रनीलांशुकच्छन्नाभूकरत्नविभूषणाः ॥ शिलाःकनकसुंदर्योयत्रशृंगाभिसारिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—और कंदराके प्रदेशोंमें सिद्धोंसे सेवित, भीतरके स्थानोंमें अनेकप्रकारकी निधियोंसे आश्रित, चंद-नोंमें सर्पोंसे और शिखरकी चोटियोंपर सिंहोंसे सेवित वह पर्वत था ॥ १३ ॥ पुनः गिरेहुये पुष्पोंसे आच्छादित शरीर सद्यः पतितपुष्पोंकी रेणुसे धूलिमय, उडतेहुये पुष्परूप महावायुसहित, मेघोंसे भ्रमणशील और पुष्पमय वृक्षोंसे गौरवर्ण ॥ १४ ॥ अनेकधातुओंकी धूलियोंसे मेघके सदृश गौरवर्ण और रत्नमयपाषाणोंके तलपर मंदार (कल्प) के वृक्षोंपर आरूढ पुरकी अंगनाओंसे पूर्णरीतिसे आश्रित वह पर्वत था ॥ १५ ॥ मेघरूप नीलवस्त्रोंसे आच्छादित, शब्दरहित रत्नोंके भूषणमय, कनकमय वर्ण सुन्दरी शिला वहां मानो शिखररूप पुरुषोंकी अभिसारिका (पुंश्चली) थी ॥ १६ ॥

तत्रोत्तरतटेसानौविनम्रफलपादपे ॥ रत्नपुष्करिणीजालवहन्निर्झरवारिणि ॥ १७ ॥ चूतद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पस्तबकदंतुरे ॥ विफुल्लांकोलपुन्नागनीलनीरजदिक्तटे ॥ १८ ॥ लतावितानच्छन्नार्केरत्नांशुभरभास्वरे॥ स्रवज्जंबूरसस्यूतेस्वर्लोकाह्लादकारिणि ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकसमःस्वर्गरम्यःशिवपुरोपमः ॥ अत्रेरस्त्याश्रमःश्रीमान्सिद्धश्रमहरोमहान् ॥ २० ॥

अर्थ—उस पर्वतपर फलके भरसे नम्र वृक्ष और रत्नमय बावलियोंके समूहसे जलके झरने बह रहेथे ॥ १७ ॥ आम्रके वृक्षोंकी शाखाओंसे गिरे पुष्पोंसे ऊंचे और दिशाओंके तटोंपर विकसित अंकोल, पुंनाग और नीलकमल शोभित होरहे थे ॥ १८ ॥ वहां लताओंके विस्तारसे सूर्य ढकाथा तथा रत्नोंकी किरणसमूहसें प्रकाशमान बहते-हुये जंबूरससे पूर्ण और स्वर्गलोकके समान आनन्ददायक उत्तरके शिखरपर ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकके सदृश, स्वर्गके सदृश सुंदर, शिवपुर (कैलास) के समान, धनधान्यसे पूर्ण, सिद्धोंके श्रमको हरनेवाला और विशाल अत्रिमुनिका आश्रम था ॥ २० ॥

महत्यत्राश्रमेतस्मिंस्तापसौद्वौबभूवतुः ॥ कोविदौतुनभोमार्गइवशुक्रबृहस्पती ॥ २१ ॥ तयोरथैकास्पदयोस्तत्राभूतांसुतावुभौ ॥ फुल्लांकुरौशुद्धतनूसरस्यंबुजयोरिव ॥ २२ ॥ विलासभासनामानौवृद्धिमाययतुःक्रमात् ॥ तौपित्रोःपल्लवेदीर्घलतापादपयोरिव ॥ २३ ॥ आस्तामन्योन्यसुस्निग्धौसुहृदौवल्लभौमिथः ॥ तिलतैलवदाश्लिष्टौतौपुष्पामोदवत्स्थितौ ॥ २४ ॥

अर्थ—उस महान आश्रममें विद्वान् आकाशमें शुक्र तथा बृहस्पतिके तुल्य इसी नामके दो तपस्वी रहतेथे ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् एक आश्रममें रहनेवाले उन तपस्वियोंके दो पुत्र ऐसे हुये जैसे दो कमलोंके पुष्पोंके अंकुर (कली) ॥ २२ ॥ जैसे लता और वृक्षके पल्लव वृद्धिको प्राप्त होते हैं ऐसेही अपने २ पिताके स्थानमें विलास

तथा भास नाम दोनों पुत्र क्रमसे वृद्धिको प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ वे दोनों तिल और तैल वा पुष्प और सुगंधके समान मिलके परस्पर एक दूसरेके प्रियमित्र थे ॥ २४ ॥

नायुक्तौपुत्रयुक्तौतुसुरक्ताविवदंपती ॥ एकंद्वित्वमिवापन्नंसममासीत्तयोर्मनः ॥ २५ ॥ तौतथान्योन्य मुदितौमनोहरतराकृती ॥ तस्थतुःस्वाश्रमेमौनेसरोजइवषट्पदौ ॥ २६ ॥ प्रापतुर्यौवनंबाल्यमुत्सृज्यन ववल्लभौ ॥ कालेनाल्पतरेणैवचंद्रसूर्याविवोदितौ ॥ २७ ॥ जग्मतुर्देहमुत्सृज्यततस्तौपितरौतयोः ॥ स्वर्गंजरार्त्तावुड्डीयनीडादिवविहंगमौ ॥२८॥ पंचत्वंगतयोःपित्रोर्दीनवक्त्रौबभूवतुः॥ तप्तांगौविगतोत्सा हौपद्माविवजलोद्धृतौ ॥ २९ ॥ तत्रौर्ध्वदेहिकंकृत्वाचक्रातेपरिदेवनम् ॥ लोकस्थितिरलंघ्याहिमहता मपिमानद ॥ ३० ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकमथोव्यथयाभिभूतौशोकोत्थयाकरुणयार्त्तगिराविलप्य ॥ चित्रा र्पितावविनिरस्तसमस्तचेष्टौतौसंस्थितौसुखमशून्यहृदौविवृत्तौ ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतेसह्यगिरिवर्णनं नाम पंचषष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—वे दोनों पुत्र सदा मिलित परस्पर ऐसे प्रेम करतेथे जैसे पुत्रके अर्थ स्त्रीपुरुष और एकही द्वैतभाव प्राप्तके समान उन दोनोंका मन समान था ॥ २५ ॥ वे दोनों परस्पर प्रसन्न मनोहर आकारधारी उस मुनिके आश्रममें ऐसे स्थित थे जैसे कमलमें दो भ्रमर ॥ २६ ॥ अल्पकालमेंही बाल्य अवस्थाको त्यागकर युवावस्थाको ऐसे प्राप्तहुये जैसे उदयको प्राप्त सूर्य और चंद्रमा ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् वृद्धावस्थासे पीडित उन दोनोंके पिता देहको त्याग स्वर्गमें ऐसे गये जैसे अपने खुंथेसे उडके पक्षी ॥ २८ ॥ पिताके मरनेपर तप्त शरीरवाले, उत्साहरहित और दीनमुखवाले वे दोनों ऐसे होगये जैसे जलसे निकालेहुये कमल ॥ २९ ॥ हे मानके योग्य रामजी ! वहांपर अपने पिताके दाह आदि क्रिया करके दोनोंने विलाप किया, क्योंकि लोकरीतिको उल्लंघन महात्माओंकोभी न करनाचाहिये ॥ ३० ॥ हे रामजी ! और्ध्वदैहिक (मृतककर्म) करके व्यथासे ग्रस्त, शोकजनित करुणासे पूर्णवाणीसे विलाप करके समस्तचेष्टारहित, चित्रमें लिखितके समान जीवनसहित (मूर्छित) सुखसे स्थितहुये ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे भासविलासवृत्तान्ते सह्यवर्णनं नाम पंचषष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

अज्ञानमति भासके बचनसे विस्तारपूर्वक दुःखसमुद्रमें डूबना इस ६६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अतिशोकपराभूतौतस्थतुर्दृढतापसौ ॥ तापसंशुष्कसर्वांगौतावरण्यद्रुमाविव ॥ १ ॥ विरक्तौविपिनेकालंक्षेपयामासतुर्द्विजौ ॥ यूथाविवसारंगावनास्थामागतौपराम् ॥ २ ॥ जग्मुर्दि नानिमासाश्चववर्षाण्यथतयोस्तदा ॥ क्रमाद्द्वावपिसंयातौजरांश्वभ्रद्रुमाविव ॥ ३ ॥ अप्राप्तविमलज्ञानौ चिराज्जर्जरतापसौ ॥ तावेकदासंघटिताविदमन्योन्यमूचतुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-अतिशोकसे पराजित दृढ तपस्वी तपसे शुष्कसर्वाङ्ग वे दोनों ऐसे स्थित हुये जैसे जंगलके वृक्ष ॥ १ ॥ हे रामजी ! वे दोनों विरक्त ब्राह्मण पृथक् होकर धन गृहादि संपूर्णसे वैराग्यको प्राप्त वनमें ऐसे कालक्षेप किया जैसे अपने झुंडसे बिछुरे हुये दो मृग ॥ २ ॥ इसके पश्चात् उन दोनोंके दिन, मास और बहुत वर्ष व्यतीत हो गये. अनन्तक्रमसे गर्तके वृक्षके समान दोनों वृद्धावस्थाको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ विमलज्ञानको अप्राप्त वृद्ध दोनों तपस्वी चिरकालमें एकसमय मिलके परस्पर यह बात बोले ॥ ४ ॥

विलासउवाच ॥ ॥ जीविताग्र्यद्रुमफलहृदावासामृतांबुधे ॥ जगत्यस्मिन्महाबंधोभासस्वागतम स्तुते ॥ ५ ॥ एतावत्योदिनावल्र्योमद्वियोगवतात्वया ॥ वदक्कक्षपिताःसाधोकच्चित्तेसफलंतपः ॥६॥ कच्चित्तेविज्वराबुद्धिःकच्चिज्जातस्त्वमात्मवान् ॥ कच्चित्फलितविद्यस्त्वंकच्चित्कुशलवानसि ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्तवंतंसंसारसमुद्विग्नमलंतथा ॥ प्राहाप्राप्तमहाज्ञानंसुहृत्सुहृदमादरात् ॥८॥

अर्थ—विलास बोला-हे श्रेष्ठ जीवनरूप वृक्षके फलरूप तथा हृदयके निवासी चन्द्र, और इस जगत्में महा बंधो आपका यह शुभागमन है ॥ ५ ॥ हे साधो ! मेरे वियोगसे इतनी दिनकी बहुत पंक्तियोंके तुमने कहां बिताया, यह कहिये. क्या तुमारी तपस्या सफल हुई ? ॥ ६ ॥ क्या तुमारी बुद्धि संतापरहित हुई, और तुम आत्मज्ञानी हुये ?

क्या तुमारी विद्या फलीभूत हुई ? और तुम कुशलमें तो हो ? ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–संसारसे उद्विग्न इसप्रकार कहते हुये और अप्राप्त आत्मज्ञान अपने मित्रसे मित्रने स्पष्टरीतिसे यह आदरसे कहा ॥ ८ ॥

भासउवाच ॥ ॥ साधोस्वागततायैवदिष्ट्याद्दष्टोऽसिमानद ॥ कुशलंतुकुतोऽस्माकंसंसारेतिष्ठतामिह ॥ ९ ॥ यावन्नाधिगतंज्ञेयंयावत्क्षीणानचित्तभूः ॥ यावत्तीर्णोनसंसारस्तावन्मेकुशलंकुतः ॥ १० ॥ आशायावदशेषेणनलूनाश्चित्तसंभवाः ॥ वीरुधोदात्रकेणेवतावन्नःकुशलंकुतः ॥ ११ ॥ यावन्नाधिगतंज्ञानंयावन्नसमतोदिता ॥ यावन्नाभ्युदितोबोधस्तावन्नःकुशलंकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—भास बोला–हे साधो ! हे माननीय आज यह आपका शुभागमन हुआ बडे सौभाग्यहैं कि आप दृष्टिपथमें प्राप्तहुये, और संसारमें रहतेहुये हम लोगोंको कुशल कहां ? ॥ ९ ॥ जबतक ज्ञेय (ब्रह्म) को नहीं जाना जबतक काम संकल्प आदि नष्ट नहीं हुये, और जबतक संसारसागरके पार नहीं हुये तबतक मेरा कुशल कहां ? ॥ १० ॥ जैसे कुठारसे वृक्ष काटे जाते हैं ऐसेही चित्तसे उत्पन्न जबतक संपूर्ण आशाओंको नहीं काटा तबतक कुशल कहां ? ॥ ११ ॥ जबतक ज्ञान नहीं प्राप्त किया, जबतक समता नहीं उदय हुई, और जबतक आत्मबोध नहीं उदय हुआ तबतक हम लोगोंका कुशल कहां ? ॥ १२ ॥

आत्मलाभंविनासाधोविनाज्ञानमहौषधम् ॥ उदेतिपुनरेवेयंदुःसंसृतिविषूचिका ॥ १३ ॥ शैशवांकुरितोज्जृंभान्नवयौवनपल्लवः ॥ जराकुसुमितोऽभ्येतिपुनःसंसारदुर्द्रुमः ॥ १४ ॥ कायजीर्णतरोरस्माद्बांधवाक्रंदषट्पदा ॥ जराकुसुमितोदेतिपुनर्मरणमंजरी ॥ १५ ॥ भुक्तकर्मर्तुविरसापुराणदिवसांभिता ॥ नीयतेनीरसप्रायापुनःसंवत्सरावली ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो ! आत्मलाभके बिना, और ज्ञानरूप महाऔषधकेबिना पुनः २ यह संसाररूप महामारी (हैजा)उदयको प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ हे सखे ! बाल्यअवस्थारूप अंकुरको उल्लंघनकर नूतनयौवनरूप पल्लवसहित, और वृद्धावस्थारूप पुष्पसहित यह संसाररूप वृक्ष पुनः उत्पन्न होताहै ॥ १४ ॥ हे मित्र ! इस शरीररूप जीर्ण वृक्षसे बांधवोंके रुदनरूप भ्रमरसहित, और वृद्धावस्थारूप पुष्पसहित यह मरणरूप लता पुनः उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥ मरणके उत्तर पशु आदि योनियोंकी प्राप्तिमें पापकर्मोंके भोगसे विरस, तथा स्वर्ग आदिकी प्राप्तिमें पूर्वसंचित पुराणकर्मोंके भोगमात्रसे पूर्ण की हुई नीरसके समान पुनः वर्षोंकी पंक्तियोंको व्यर्थ व्यतीत करतेहैं ॥ १६ ॥

महादरीषुदेहाद्रेस्तृष्णाकंटकितास्वपि ॥ फलव्यालासुचपुनःक्रियासुपरिलुठ्यते ॥ १७ ॥ दुःखैःसुखलवाकारैर्दीर्घादीर्घैःशुभाशुभैः ॥ अपर्याप्तागमापायाःप्रयांत्यायांतिरात्रयः ॥ १८ ॥ अयथार्थक्रियारंभैः कदाशावेशपल्लवैः ॥ क्षीयतेकर्मभिस्तुच्छैरायुराहतकर्मभिः ॥ १९ ॥ उन्मूलिताश्रयालानोमनोमत्तमतंगजः ॥ तृष्णाकरेणुकोनिद्रोदूरंविपरिधावति ॥ २० ॥

अर्थ—विषयभोगके फलही जीनमें सर्प हैं, और सहस्त्रों तृष्णारूप कांटे जिनमें हैं ऐसी इस देहरूप पर्वतकी कन्दराओंके समान ऐहिक तथा पारलौकिक विषयभोगसाधक क्रियाओंमें पुनः लोटतेहैं ॥ १७ ॥ सुखके लेशके आकार जिनमें प्रतीत होतेहैं ऐसे न्यून वा अधिक दुःखोंसे तथा शुभ अशुभों (पुण्यपापों) से सर्वदा उत्पत्ति और नाश जिनमें लगाहै ऐसी रात्रि (काल) बीतती चली जाती हैं और आतीभी हैं ॥ १८ ॥ मिथ्या जिनके फल हैं और दुष्टआशा जिनके पत्ते हैं ऐसे कर्मोंसे मिथ्याकर्मकारी जीव अपनी आयु नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥ परमात्माके स्वरूपमें बंधनके हेतु विवेकको तोडनेवाला और तृष्णारूप हथिनीमें आसक्त होनेसे निद्राशून्य यह मनरूप मत्त हांथी दूर २ दौडताहै ॥ २० ॥

जिह्वाचपलतालग्नःकायद्रुममहालये ॥ पतच्चिंतामणौवृद्धोगर्द्धगृध्रोविवर्द्धते ॥ २१ ॥ नीरसानिःसुखालघ्वीपतत्पेलवगात्रिका ॥ जीर्णपर्णसवर्णेयंक्षीयतेदिवसावली ॥ २२ ॥ अवमानरजोध्वस्तमस्तंगतवपुःश्रियम् ॥ मुखंधूसरतामेतिहिमैःपद्ममिवाहतम् ॥ २३ ॥ शुष्यतःकायसरसःप्रगलद्यौवनांभसः ॥ राजहंसःक्षणादायुरनिवर्तिपलायते ॥ २४ ॥

अर्थ—व्यर्थही परमपुरुषार्थके उपायोंको गिरानेवाला इस शरीररूप वृक्षमें स्थित, हृदयरूप खुंथेमें विषयोंकी ओर जीभकी चंचलतामें तत्पर अभिलाषरूप गीध बढताहै ॥ २१ ॥ फलरहित कर्मोंसे नीरस, सुखशून्य, लघु और श्रम दुर्बलता तथा रोगादिसे क्षीण पत्तेसहित दिनोंकी पंक्ति (उसमें होनेवाली शरीररूप लता) क्षीण होती चली जाती है ॥ २२ ॥ पुत्रादिके अपमानरूप रजोगुणसे ध्वस्त, और अस्त आकारकी कांतियुक्त वह मुख ऐसे धूसर

(मलिन) होजाताहै जैसे हिमसे ताडित कमल ॥ २३ ॥ सूखे शरीररूप तडागसे जब यौवनरूप जल नष्ट होने लगताहै तब आयुरूप राजहंस पुनः न आनेकेलिये भागके चलदेताहै ॥ २४ ॥

कालानिलबलोद्धूताज्जर्जराज्जीवितद्रुमात् ॥ भोगपुष्पाणिदिवसपर्णानिनिपतंत्यधः ॥ २५ ॥ भोगभोगिश्रितेष्वंतर्दुःखदर्दुरधारिषु ॥ मनोमोहांधकूपेषुपूरेषुविनिमज्जति ॥ २६ ॥ नानानुरंजनास्पृष्टात्तृष्णा तरलपेलवा ॥ चैत्यमग्रपताकेवदूरंसमधिरोहति ॥ २७ ॥ अस्यसंसारतंत्रस्यबृहत्कालबिलास्पदः ॥ जीविताशामयंतंतुमंतकाखुर्निकृंतति ॥ २८ ॥

अर्थ—कालरूप पवनसे कम्पित और जर्जर जीवनरूपवृक्षसे भोगरूप पुष्प और दिवसरूप पत्ते चलेजाते हैं ॥ २५ ॥ भोगरूप सर्पोंसे पूर्ण, और अन्तःकरणके दुःखरूप मंडूकोंके धारण करनेवाले, मोहरूप अन्धकूपोंके प्रवाहमें डूबताहै ॥ २६ ॥ नानाप्रकारके अनुरागसे पूर्ण चंचल और तुच्छ यह तृष्णारूप देवस्थानके अग्रभागमें बंधी पताकाकेसमान दूरही चढ़ती है ॥ २७ ॥ इस संसाररूप जोलहेकी शलाकाके जीवनकी आशामय सूतको महान्कालरूप बिलमें स्थित मृत्युरूप मूषक काटताहै ॥ २८ ॥

यौवनोत्कटकल्लोलावहल्लोलासिफेनिला ॥ परावर्त्तमहावर्त्तायातिजीवितदुर्नदी ॥ २९ ॥ कलाकुल जगत्कार्यकल्लोलाकुलसंकुला ॥ क्रियासरिदपर्यंतावहत्याकुलकोटरा ॥ ३० ॥ अनंताबंधुजनतानद्योगंभीरकोटरे ॥ अजस्रंनिपतंत्येताविततेकालसागरे ॥ ३१ ॥ देहरत्नशलाकेयंनाशपंकार्णवोदरे ॥ नज्ञाय तेक्कमग्नेतितातजन्मनिजन्मनि ॥ ३२ ॥

अर्थ—यौवनकी उत्कटतारूप तरंगसहित और बहती हुई चंचल तलवारके सदृश कामक्रोधादिरूप फेनसंयुक्त तथा तृष्णालोभादिके भ्रमणरूप महाआवर्तवाली जीवनरूप दुष्टनदी चली जाती है ॥ २९ ॥ शिल्प, नृत्य, और नीतिशास्त्ररूप कुशलताके वृन्द और जगत्के व्यवहाररूप तरंगोंसे पूर्ण तथा व्याकुल कोटरवाली यह प्रवृत्तिरूप कार्य्यकी अपार नदी वह रही है ॥ ३० ॥ अनन्त बन्धुओंके जनसमूहरूप नदियां गंभीरकोटरवाले विशाल कालरूप सागरमें निरन्तर वहा करती है ॥ ३१ ॥ हे प्रिय ! परमपुरुषार्थका साधक होनेसे यह देहरूप रत्नकी शलाका नाशके पंकरूप समुद्रके उदरमें प्रतिजन्म न जाने कहां डूबजाती है ॥ ३२ ॥

चिंताचक्रेचिरंबद्धंकुक्रियाचारचंचुरम् ॥ चेतोभ्रमतिसासुद्वेगगर्त्तावर्त्तेतृणंयथा ॥ ३३ ॥ उह्यमानमनंते षुचेतःकार्यमहोर्मिषु ॥ क्षणमेतिनविश्रांतिंचिंतातांडविताशयम् ॥ ३४ ॥ इदंकृतंकरोमीदंकरिष्यामी दमित्यलम् ॥ कलनाजालवलितामूर्छितामतिपक्षिणी ॥ ३५ ॥ अयंसुहृदयंशत्रुरितिद्वंद्वमहाद्विपः ॥ विनिकृंततिमर्माणियथानीलोत्पलानिमे ॥ ३६ ॥

अर्थ—चिंतारूप समुद्रके चक्रमें चिरकालसे बद्ध और दुष्टक्रिया तथा आचारोंसे प्रसिद्ध यह चित्त ऐसे भ्रमण करताहै जैसे गर्तके चक्रमें तृण ॥ ३३ ॥ अनंतकार्य्यरूप महातरंगोंमें, चिंतारूप तांडवनृत्यसे पूर्ण वहता हुआ यह चित्त क्षणभरभी विश्राम नहीं पाता ॥ ३४ ॥ यह करलिया यह करताहुं और पूर्णरूपसे यह करूंगा इत्यादि चिंतारूप जालबद्ध बुद्धिरूप पक्षिणी मूर्छित (मोहित) होती है ॥ ३५ ॥ यह मित्र है, यह शत्रु है इत्यादि द्वन्द्वरूप महाहस्ती मेरे मर्मस्थानोंको ऐसे भेदन करताहै जैसे नीलकमलको ॥ ३६ ॥

चिंतानद्यामहावर्त्तेवीचिकानिचयेचिरम् ॥ क्षणाद्दुच्चूनतामेतिमनोमीनःक्षणाद्गतिः ॥ ३७ ॥ अनात्मीयानिदुःखानिबहून्येवंविधान्ययम् ॥ आत्मबुद्ध्याविचिन्वानोजनोगच्छतिदीनताम् ॥३८॥ बहुविधसुख दुःखमध्यपातीविततजरामरणप्रवातभग्नः ॥ जगदुदरगिरौलुठञ्जनोयंगतरसपर्णवदेतिजर्जरत्वम्॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतेअनित्यताप्रतिपादनं नाम षट्षष्ठितमःसर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—चिंतारूप नदीके तरंगसमूहमय महावर्त्तमें अतिचपल यह मनरूप मीन क्षणमेंही वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार आत्मासे न संबंध रखनेवाले अनेकदुःखोंको देहादिमें आत्मबुद्धिसे एकत्र करता हुआ यह प्राणी दीनताको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ अनेक सुखदुःखके मध्यमें पतित, जरामरणरूप पवनभग्न, और जगत्के उदररूप पर्वतपर लोटताहुआ यह जन रसशून्य जर्जरपत्ररूपताको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे भासविलासवृत्तान्ते अनित्यताप्रतिपादनं नाम षट्षष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

देह तथा आत्माका असंबंध समर्थन करनेके लिये अंतःकरणकी आसक्तिसे बंध और उसके त्यागसे मुक्ति होती है इस विषयका वर्णन इस ६७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंतौकुशलप्रश्नंकृतवंतौपरस्परम् ॥ कालेनासाद्यविमलंज्ञानंमोक्षंततोगतौ ॥ १ ॥ ततोवच्मिमहाबाहोयथाज्ञानेतरागतिः ॥ नास्तिसंसारतरणेपाशबंधस्यचेतसः ॥ २ ॥ इदंभव्य मतेर्दुःखमनंतमपिपेलवम् ॥ कुखगस्यांतरोंभोधिःसर्पारेर्गोष्पदायते ॥ ३ ॥ देहातीतामहात्मानश्चि न्मात्रस्वात्मनिस्थिताः ॥ दूराद्देहंसमीक्षंतेप्रेक्षकोजनतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर उन दोनोंने कुशल प्रश्न किया और कालसे विमलज्ञान पाके मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ इसलिये हे महाबाहो ! पाश (फांसी) के समान बंधनके हेतु चित्तके लिये संसाररूप समुद्रके पार होनेके अर्थ ज्ञानको छोडके अन्य कोई गति नहीं है ॥ २ ॥ यह अनंतभी संसारका दुःख विवेकीके अर्थ ऐसे अतितुच्छ है जैसे समुद्र नीचपक्षीके लिये तरनेके अयोग्यभी है परन्तु गरुडके लिये तो गौके खुरके समानही है ॥ ३ ॥ देहसे अतीत और चिन्मात्रमें स्थित, महात्मालोग देहको दूरसे ऐसे देखते हैं जैसे दर्शक (तमासा देखनेवाला) जनसमूहको ॥ ४ ॥

देहेदुःखातिसंक्षुब्धेकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ रथेविधुरितेभग्नेसारथेःकेवखंडना ॥ ५ ॥ मनसिक्षुब्धतां यातेचित्त्वस्यांगकिमागतम् ॥ तरंगजलसंतानेविपरीत्यंकिमंबुधेः ॥ ६ ॥ केभवन्पयसांहंसाःपयसामु पलाश्चके ॥ काःशिलाःकिलदारूणांकेभोगाःपरमात्मनः ॥ ७ ॥ संबंधःकइवश्रीमन्शैलापरसमुद्र योः ॥ अंतरेगिरिसंबाधेकश्चचित्तस्वबंधयोः ॥ ८ ॥

अर्थ—देहके अतिसंक्षुब्ध होनेपरभी चिन्मात्ररूप हम लोगोंकी क्या क्षति हुई, जैसे रथके टूटनेपर सारथीकी क्या हानि हुई ॥ ५ ॥ हे प्रियरामजी ! मनके संक्षोभित होनेपर चेतनका क्या बिगडा, क्योंकि तरंगरूपसे जलका विस्तार होनेपर समुद्रके पूर्णताकी क्या हानि हुई ॥ ६ ॥ जलके हंस और पाषाण कौन होते हैं, वा काष्ठके पाषाण कौनहैं अर्थात् कोई नहीं है ऐसेही परमात्माके भोग कौनहैं अर्थात् अचेतनको वा असंग चेतनको ममताप्राप्ति नहीं होसकती है ॥ ७ ॥ हे श्रीमन् रामजी ! मध्य २ में पर्वतोंसे व्याप्त होनेपरभी पर्वत और समुद्रका क्या संबंध, ऐसेही चेतन और बंधनहेतु संसारका क्या संबंध ? ॥ ८ ॥

अप्युत्संगेोह्यमानानिपद्मानिसरिदंभसाम् ॥ कानिनामभवंतीहशरीराणितथात्मनः ॥ ९ ॥ संघट्टा त्काष्ठपयसोर्यथोत्तुंगाःकणादयः ॥ देहात्मनोःसमायोगात्तथैताश्चित्तवृत्तयः ॥ १० ॥ संबंधाद्दारुपय सांप्रतिबिंबानिदारुणः ॥ यथापयसिलक्ष्यंतेशरीराणितथात्मनि ॥ ११ ॥ यथादर्पणवीच्यादौप्रतिबिं बानिवस्तुतः ॥ नासत्यानिचसत्यानिशरीराणितथात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे अंकमें धारण किये हुयेभी जलके कमल कोई नहीं है ऐसेही आत्माके शरीर कौन हैं ॥ ९ ॥ जैसे जल और काष्ठके संयोगसे काष्ठके कण ऊंचे होते हैं ऐसेही आत्मा तथा मनके परस्पर अभेदबुद्धिसे सुखदुःखादिरूप चित्तकी वृत्ति होती हैं ॥ १० ॥ जैसे जलके और काष्ठके संबंधसे जलमें काष्ठके प्रतिबिंब देख पडते हैं ऐसेही आत्मामें शरीर ॥ ११ ॥ जैसे दर्पण तरंगआदिमें वस्तुओंके प्रतिबिंब जो देख पडते हैं न सत्यहैं न असत्यहैं किन्तु अनिर्वचनीयहैं ऐसेही आत्मामें शरीरहैं ॥ १२ ॥

दारुवार्युपलास्फोटेदुःखितानयथाक्वचित् ॥ संयुक्तेषुवियुक्तेषुनतथापंचसुक्षतिः ॥ १३ ॥ दारुसंश्ले षितात्तोयात्कंपशब्दादयोयथा ॥ प्रजायंतेतथैवास्माद्देहाच्चित्परिबोधितात् ॥ १४ ॥ नशुद्धजडयोरेताः संविदश्चिच्छरीरयोः ॥ एताह्यज्ञानमात्रस्यतस्मिन्नष्टेचिदेवनः ॥ १५ ॥ यथानकस्यचिद्वारिदारुश्लेषेऽ नुभूतयः ॥ तथानकस्यचिद्देहदेहिसंगेऽनुभूतयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठ, जल और पाषाण फोडा होनेपर कहीं दुःखी नहीं देखेगये हैं ऐसेही पृथिवी आदि पंचभूतोंके देह आदिरूपमें परिणत होनेपर कोडा वा चन्दन आदिके संयोग होनेपर वा पुत्रादिके वियोग होनेपर क्या हानि हुई ॥ १३ ॥ जैसे काष्ठके संबन्धसे जलमेंसे कंप तथा शब्द आदि होते हैं ऐसेही चेतनके संबन्धमात्रसे चारोओरसे ज्ञानको प्राप्त इस देहसे शब्द तथा कंपादि क्रिया होती हैं ॥ १४ ॥ शुद्धआत्मा तथा जडशरीरको ये सुखदुःख आदि वृत्ति नहीं होती किंतु अज्ञानमात्रको होती हैं. उस अज्ञानके नष्ट होनेपर हम चिन्मात्रही रहगये

॥ १५ ॥ जैसे काष्ठ और जलके संयोगमें किसीको सुखदुःखका अनुभव नहीं है ऐसेही देह और उसके अभिमानीके संयोगमें किसीको सुखदुःखादिका अनुभव यथार्थमें नहीं है ॥ १६ ॥

अज्ञस्यायंयथादृष्टःसंसारःसत्यतांगतः ॥ नज्ञस्यायंयथाभूतःसंसारःसत्यतांगतः ॥ १७ ॥ अंतःसंग विहीनास्तुयथास्नेहादृषज्जले ॥ तथासक्तमनोवृत्तौबाह्यभोगानुभूतयः ॥ १८ ॥ अंतःसंगेनरहितोयद्व त्सलिलकाष्ठयोः ॥ ॥ संबंधस्तद्वदेवांतरसंगोदेहदेहिनोः ॥ १९ ॥ अंतःसंगेनरहितःसंबंधोजल काष्ठयोः ॥ सदेहदेहिनोश्चैवंप्रतिबिंबांभसोस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे अज्ञानीके अर्थ यह संसार दृष्टहै वैसे सत्यताको प्राप्तहै वैसे ज्ञानीको जैसा दृष्टहै उस रूपसे सत्यताको नहीं प्राप्तहै ॥ १७ ॥ जल और पाषाणके संयोगमें उनके संबन्ध आभ्यन्तरके संगसे हीन होते हैं ऐसेही मनकी वृत्तिके आसक्त न होनेसे अंतःकरणके अभिमानसे शून्य बाह्य मनसे ज्ञानीको विषयके सुख तथा दुःखका अनुभव होताहै ॥१८॥ जैसे जल और काष्ठका संबन्ध आभ्यन्तरके संगसे रहित है ऐसेही देह तथा आत्माका है॥१९॥ और जैसे जल तथा काष्ठका अभेद संबन्ध नहीं है ऐसेही आत्मा तथा देहकाभी नहीं है ॥ २० ॥

स्थितासर्वत्रसंवित्तिःशुद्धासंवेद्यवर्जिता ॥ द्वित्वोपलांछितात्वन्याद्दुःसंवित्तिर्नविद्यते ॥ २१ ॥ अदुः खमेतिदुःखित्वमंतःसंवेदनास्फुटम् ॥ स्फारोभवतिवेतालोवेतालत्वेनभावितः ॥ २२ ॥ असंबंधोपि संबंधोभवत्यंतर्विनिश्चयात् ॥ स्वप्नांगनासुरतवत्स्थाणुवेतालसंगवत् ॥ २३ ॥ असत्प्रायोहिसंबंधोय थासलिलकाष्ठयोः ॥ तथैवमिथ्यासंबंधःशरीरपरमात्मनोः ॥ २४ ॥

अर्थ—विषयसे वर्जित शुद्ध संवित् सर्वत्र स्थितहै और द्वित्वसे कलंकित अन्य जो संवित्है वह यथार्थमें नहीं है ॥ २१ ॥ दुःखरहित आत्मा अन्तःकरणमें दुःखकी भावना करनेसे दुःखी ऐसे होताहै जैसे वेतालरूपसे भावना करनेसे विशाल वेताल होजाताहै ॥ २२ ॥ संबन्ध न रहतेभी अन्तःकरणके निश्चयसे संबन्ध ऐसे होताहै जैसे स्वप्नकी अंगनाका सुरत वा स्थाणु और वेतालका संग ॥ २३ ॥ जैसे मिथ्याके तुल्यभी जल और काष्ठका संबन्ध होताहै ऐसेही शरीर और आत्माका संबन्ध मिथ्या है ॥ २४ ॥

अंतःसंगंविनानांबुकाष्ठपातैःप्रगृह्यते ॥ आत्मांगसंगरहितोदेहदुःखैर्नदह्यते ॥ २५ ॥ देहभावनयैवा त्मादेहदुःखवशेस्थितः ॥ तत्त्यागेनततोमुक्तोभवतीतिविद्वर्बुधाः ॥ २६ ॥ अंतःसंगविहीनत्वादुःखर्व त्यंगनोयथा ॥ पत्रांबुमलदारूणिश्लिष्टान्यपिपरस्परम् ॥ २७ ॥ अंतःसंगेनरहितायांतिनिर्दुःखतांप राम् ॥ श्लिष्टान्यपितथैवात्मदेहेंद्रियमनांस्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे आभ्यंतरके संबंधके विना काष्ठके गिरनेसे जल नहीं पीडित होता ऐसेही शरीरके अध्यासशून्य आत्माभी दुःखोंसे पीडित नहीं होता ॥ २५ ॥ देहकी भावनासेही देहके दुःखके वशमें आत्मा स्थित है और उसके त्यागसे आत्मा मुक्त है यह विद्वानोंका निश्चय है ॥ २६ ॥ हे प्रिय रामजी ! परस्पर मिलितभी तडागमें गिरेहुये पत्र, जल, मल और काष्ठ अंतःकरणके सम्बन्धसे रहित होनेसे जैसे दुःखी नहीं होते ॥ २७ ॥ इसीप्रकार अंतःकरणके संगसे रहित होनेसे मिलितभी आत्मा, देह, इन्द्रिय और मन दुःखके अभावको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

अंतःसंगोहिसंसारेसर्वेषांरामदेहिनाम् ॥ जरामरणमोहानांतरूणांबीजकारणम् ॥ २९ ॥ अंतःसंसं गवाञ्जंतुर्मग्नःसंसारसागरे ॥ अंतःसंसक्तिमुक्तस्तुतीर्णःसंसारसागरात् ॥ ३० ॥ अंतःसंसंगवच्चित्तं शतशाखमिवोच्यते ॥ अंतःसंसंगरहितंविलीनंचित्तमुच्यते ॥ ३१ ॥ भग्नस्फटिकवद्विद्धिमनःसक्तम पावनम् ॥ अभग्नस्फटिकाभासमसक्तंविद्धिमेमनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अन्तःकरणका संगही सब प्राणियोंके इस संसारमें जरामरण और मोहका कारण ऐसे है जैसे वृक्षोंका कारण बीज ॥ २९ ॥ आभ्यन्तरसे संगकरनेवालाही जीव इस संसाररूप सागरमें मग्न है और आभ्यंतरके संगसे शून्य तो संसारसागरसे उत्तीर्ण ही है ॥ ३० ॥ आभ्यन्तरके संगसहित चित्त अनन्तशाखायुक्त कहाजाताहै और आभ्यन्तरके संगसे हीन चित्त नष्ट कहागयाहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जो चित्त विषयमें आसक्त है उसको तुम फूटे हुये स्फटिकमणिके लिंगके समान अपवित्र जानो और जो मन वा चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं है उसको तुम स्फटिकमणिके लिंगके तुल्य पवित्र समझो ॥ ३२ ॥

असक्तंनिर्मलंचित्तंमुक्तंसंसार्यपिस्फुटम् ॥ सक्तंतुदीर्घतपसायुक्तमप्यतिबंधवत् ॥ ३३ ॥ अंतःसक्तम नोबद्धंमुक्तंसक्तिविवर्जितम् ॥ अंतःसंसक्तिरेवैकंकारणंबंधमोक्षयोः ॥ ३४ ॥ अंतःसंसक्तिमुक्तस्यकुर्व

तोपिनकर्तृता ॥ गुणदोषवतीतोयेदारुवाहननौर्यथा ॥ ३५ ॥ अंतःसंसक्तितोजंतोरकर्तुरपिकर्तृता ॥ सुखदुःखवतिस्वप्नेसंभ्रमोन्मुखतायथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी! जो चित्त विषयमें आसक्त नहीं है वह संसारीभी हो परन्तु उसको तुम निर्मल और मुक्तही समझो. और जो चित्त विषयमें आसक्त है उसको दीर्घतपस्यासे युक्त होनेपरभी अतिबंधनसे युक्तही समझो ॥ ३३ ॥ आभ्यन्तरकी आसक्तिसे युक्त मन बद्ध है और आभ्यन्तरकी आसक्तिसे वर्जित मुक्त है इसलिये आभ्यन्तरकी आसक्तिही बन्धमोक्षका कारण है ॥ ३४ ॥ आभ्यन्तरकी आसक्तिसे मुक्तको करतेहुयेकोभी कर्तृता ऐसे नहीं है जैसे काष्ठको लेजानेवाली नौका स्वयं जलमें वर्तमानभी काष्ठोंके छेदन भेदनदाहादि गुणदोषोंसे तथा जलके चलन परिवर्तन निर्मलतादि गुणदोषोंसें युक्त नहीं होती ॥ ३५ ॥ आभ्यन्तरके संगसे न करतेहुये जीवकीभी कर्तृता ऐसे होती है जैसे सुखदुःखवाले स्वप्नमें व्याघ्र आदिके भयमें भागने आदि व्यापारमें तत्परता ॥ ३६ ॥

चित्तेकर्त्तरिकर्तृत्वंदेहस्यापिहिविद्यते ॥ स्वप्नादाविवविक्षुब्धसुखदुःखदृशोपमम् ॥ ३७ ॥ अकर्त्तरिम नस्यंतरकर्तृत्वंस्फुटंभवेत् ॥ शून्यचित्तोहिपुरुषःकुर्वन्नपिनचेतति ॥ ३८ ॥ चेतसाकृतमाप्नोषिचेत सानकृतंतुन ॥ नकचित्कारणंदेहोनचचित्तेनकर्तृता ॥ ३९ ॥ असंसक्तमकर्त्तवकुर्वदेवमनोविदुः ॥ न कर्मफलभोक्तृत्वमसक्तंप्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्तके कर्ता होनेसे चेष्टाशून्यभी देहको कर्तृता ऐसे है जैसे स्वप्न आदिके तुल्य विक्षुब्ध पुरुष (पुत्र वा भृत्य आदिके युद्ध आदि कर्म देखनेवाले) को सुखदुःख आदिकी दृष्टि होती है ॥ ३७ ॥ मनके कर्ता न होनेसे अकर्तृता स्पष्टरीतिसे होती है; क्योंकि चित्तसे शून्य पुरुष करताहुआभी कार्यका अभिमान नहीं करता ॥ ३८ ॥ हे रामजी! जो कुछ तुमने चित्तसे किया वही पाओगे, और जो चित्तसे नहीं किया वह नहीं पाओगे, क्योंकि कर्तृतामें देह कारण नहीं है और चित्तको कर्तृता नहीं है यहभी नहीं है ॥ ३९ ॥ जो आसक्त मन नहीं है वह करता हुआभी अकर्ता है और जो आसक्त नहीं है वह कर्मोंके फलका भोक्ताभी नहीं है ॥ ४० ॥

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यामसंसक्तोनलिप्यते ॥ दूरस्थकांतासंलीनमनाःकार्यैरिवाग्रगैः ॥ ४१ ॥ अंतःसंस क्तिनिर्मुक्तोजीवोमधुरवृत्तिमान् ॥ बहिःकुर्वन्नकुर्वन्वाकर्त्ताभोक्तानहिकंचित् ॥ ४२ ॥ अंतःसंसक्तिमु क्तंयन्मनःस्यात्तदकर्तृकम् ॥ तद्विमुक्तंप्रशांतंतत्तद्युक्तंतदलेपकम् ॥ ४३ ॥ तस्मात्सर्वपदार्थानांश्लिष्टा नांनिश्चितंबहिः ॥ सर्वदुःखकरींक्रूरामंतःसक्तिविवर्जयेत् ॥ ४४ ॥ विरहितमलमंतःसंगदोषेणचेतः शममुपगतमाद्यंव्योमवन्निर्मलाभम् ॥ सकलमलविमुक्तेनात्मनैकत्वमेतिस्थिरमणिनिभमंभोवारिणी वारिनीले ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे अंतःसंसंगविचारोनामसप्तषष्ठितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जो आसक्त नहीं है वह ब्रह्महत्या तथा अश्वमेधके पापपुण्यसे ऐसे नहीं लिप्तहोता जैसे दूरकी स्त्रीमें लग्न चित्त पुरुष संमुख स्थित शीतउष्णके अनुभव आदि कार्य्योंसे ॥ ४१ ॥ अन्तःकरणकी आसक्तिसे निर्मुक्त जीव निर्विक्षेपके सुखसे युक्त होताहै और वह बाहरके मनसे कर्ता हो वा न कर्ता हो परन्तु उसमें कर्तृता भोक्तृता कहीं नहिं है ॥४२॥ जो मन आभ्यन्तरके संगसे विनिर्मुक्त है वही अकर्ता है और वही मुक्त, शान्त, युक्त तथा निर्लिप्त है ॥४३॥ इस कारण सब पदार्थोंके अंतर्गत आत्मासे बाह्य परस्पर मिलित पंचकोश वा भोग्यवर्ग तथा बंधनभूत सब पदार्थोंके निराश करनेमें यही एक उपाय है कि सर्वदुःखकारिणी आभ्यन्तरकी आसक्तिको वर्जित करना चाहिये ॥ ४४ ॥ आभ्यन्तरके संगके दोषसे सदा रहित, संसारकी दशासे पूर्व शांतरूपको प्राप्त और आकाशके समान निर्मल यह चित्त सदा मुक्तरूप आत्माके साथ एकताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे स्फटिकमणिके सदृश श्वेतजल तलवारके समान नील यमुनाजलमें मिलके एकताको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे अन्तःसंगविचारो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

संसक्ति और असंसक्तिके लक्षण और उनके प्रतीकारके उपाय तथा वंध्यासंसक्ति (पदार्थोंमें आसक्ति) और वंध्यासंसक्तिका विभाग इस ६८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ कीदृशोभगवन्संगःकथंबंधायवानृणाम् ॥ कश्चमोक्षायकथितःकथंवैषचिकित्स्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहदेहिविभागैकपरित्यागेनभावनात् ॥ देहमात्रेहविश्वासःसंगोबंधाईउच्यते ॥ २ ॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यसपर्यंतत्वनिश्चये ॥ यत्सुखार्थित्वमंतःससंगोबंधाईउच्यते ॥ ३ ॥ सर्वमात्मेदमखिलंकिंवांछामित्यजामिकिम् ॥ इत्यसंगस्थितिंविद्धिजीवन्मुक्ततनुस्थितिम् ॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! कैसा संग मनुष्योंके बंधनकेलिये होताहै और कैसा मोक्षकेलिये होताहै और कैसे इसका प्रतीकार होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! देह और देही अर्थात् क्षेत्र क्षेत्रज्ञके विभागके सर्वथा विना विचारे परस्परके धर्मोंकी विपरीतभावनासे जो देहमात्रमें विश्वास है वह संग (संसक्ति) बंधके योग्य कहागयाहै ॥ २ ॥ अनन्त आत्मतत्वका देश काल और वस्तुके परिच्छेदसे निश्चय होनेसे अपने अपरिच्छिन्न सुखस्वभाव आत्माका विस्मरण करके जो विषयसुखकेलिये आभ्यन्तरका संग है वही बंधके लिये कहा गयाहै ॥ ३ ॥ यह सब आत्माही है किसकी इच्छा करूं और किसको त्यागूं इसप्रकार जो असंग स्थिति है उसको तुम जीवन्मुक्तके शरीरकी स्थिति जानों ॥ ४ ॥

नाहमस्मिनचान्योस्तिमाभवंतुभवंतुवा ॥ सुखान्यसक्तइत्यंतःकथ्यतेमुक्तिभाङ्नरः ॥ ५ ॥ नाभिनंदतिनैष्कर्म्यंनकर्मस्वनुषज्जते ॥ सुसमोयःफलत्यागीसोऽसंसक्तइतिस्मृतः ॥६॥ आत्मतत्त्वैकनिष्ठस्यहर्षामर्षवशंमनः ॥ यस्यनायात्यसक्तोऽसौजीवन्मुक्तःसकथ्यते ॥ ७ ॥ सर्वकर्मफलादीनांमनसैवनकर्मणा ॥ निपुणंयःपरित्यागीसोऽसंसक्तइतिस्मृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं परिच्छिन्न अहंकारका विषय नहीं हुं और मेरेसे भिन्न कोई नहीं है इसलिये मिथ्या शरीर आदिमें विषयके सुख हों वा न हों मैंतो देहादिसे असंगस्वभाव हुं इसप्रकारका जिसके अन्तःकरणमें दृढ निश्चय है वह मनुष्य मुक्तिका भागी है ॥ ५ ॥ जिसको न तो कर्मके त्यागकी आकांक्षा है और न फलकी इच्छासे कर्मोंमें प्रवेश करताहै फलकी सिद्धि वा असिद्धिमें जो समान और फलका त्यागी है वह असंसक्त कहाताहै ॥ ६ ॥ जिस आत्मतत्वमात्रमें निष्ठ पुरुषका मन हर्ष और शोकके वशमें नहीं आता वह असक्त जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ७ ॥ सब कर्मोंके फलका जो मनसेही कुशलतासे त्याग करताहै न कि कर्मसे उसको असंसक्त कहतेहैं ॥ ८ ॥

असंसंगेनसकलाश्चेष्टानानाविजृंभिताः ॥ चिकित्सिताभवंतीहश्रेयःसंपादयंतिच ॥ ९ ॥ संसक्तिवशतःसर्वेविततादुःखराशयः ॥ प्रयांतिशतशाखत्वंश्वभ्रकंटकवृक्षवत् ॥ १० ॥ रज्जुकृष्टघनघ्राणोयद्गत्यापथिगर्दभः ॥ भारंवहतिभीतात्मातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ ११ ॥ शीतवातातपक्लेशमेकदेशनिषण्णया ॥ तरुर्वहतियत्तन्वातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—असंगसेही सम्पूर्ण नानाप्रकारकी दुष्ट चेष्टा नष्ट होती है और श्रवण मनन आदि सब चेष्टा निर्विघ्नतासे कल्याण सिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥ संगसेही विस्तृत सब दुःखकी राशि अनन्तशाखाको ऐसे प्राप्त होती है जैसे गढेमें कांटेका वृक्ष ॥ १० ॥ रज्जुसे (रस्सीसे) खींची गई है घनीभूत घ्राणइन्द्रिय जिसकी ऐसा गर्दभ जो अपनी गतिसे भारको वहन करता (ढोता) है वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ ११ ॥ एकदेशमें स्थित स्थितशरीरसे जो वृक्ष शीत वात और आतपके क्लेशको सहन करताहै वह संसक्ति (संग) हीके फलका विस्तार है ॥ १२ ॥

धराविवरनिर्मग्नोयत्कीटःपीडितांगकः ॥ क्षिणोतिविकलःकालंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामकुक्षिःक्षपयत्यायुर्व्याघातभीरुधीः ॥ पक्षीवृक्षशिखाशार्यातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १४ ॥ दूर्वांकुरतृणाहारःकिरातशरपीडया ॥ जहातियन्मृगोदेहंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १५ ॥ कृमिकीटत्वमायांतिजायमानाःपुनःपुनः ॥ यदिमाजनताजीर्णास्तत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पृथिवीके छिद्रमें निमग्न, पीडित शरीर और विकल कीट जो कालको काटताहै वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥१३॥ क्षुधासे कृश है कोख जिसकी ऐसा तथा बाण, पाषाण और गोली आदिके प्रहारसे भयभीत तथा वृक्षकी शाखापर शयन करनेवाला पक्षी जो अपनी आयुको बिताताहै वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १४ ॥ दूर्वा, अंकुर और तृण आहार करनेवाला मृग जो किरातके बाणकी पीडासे अपने देहको त्यागताहै वह संसक्ति (संग) हीके फलका विस्तार हैं ॥ १५ ॥ जो पुण्य पापके अधिकारी जनसमूह जर्जर होकर उत्पन्न हो २ कर कृमि तथा कीटताको पुनः २ प्राप्त होते हैं यह संसक्तिके फलका विस्तार है ॥ १६ ॥

उत्पत्योत्पत्यलीयंतेतरंगिणितरंगवत् ॥ भूतानियदनंतानितत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १७ ॥ वीरुत्तृणद शांयाताम्रियंतेयत्पुनःपुनः ॥ नराविगतसंचारास्तत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १८ ॥ रसातलरसायोगात्तृ णगुल्मलतादयः ॥ जनयंतियदाकारंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १९ ॥ स्वानर्थांतरसंकाशपदार्थशतसं कुला ॥ यत्संसारनदीमत्तातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ २० ॥

अर्थ—जलाशयमें तरंगके तुल्य उत्पन्न हो २ कर प्राणी जो लीन होजाते हैं यह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १७ ॥ पृथिवीके तलके रसके उपयोगसे तृण गुल्म लता आदि जो अपने अद्भुत आकारको उत्पन्न करते हैं वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १८ ॥ अपनी अनंत परंपराओंके सदृश विच्छेद, भ्रांति, पतन और विक्षेपादि सहस्रों अनर्थके हेतुओंसे व्याप्त यह संसाररूप नदी बढी हुई है यह संसक्ति (अभ्यन्तर) केही संगका विलास है॥२०॥

संसक्तिर्द्विविधाप्रोक्तावंद्यावंध्याचराघव ॥ वंध्यासर्वत्रमूढानांवंद्यातत्त्वविदांनिजा ॥ २१ ॥ आत्मत त्त्वावबोधेनहीनादेहादिवस्तुजा ॥ भूयःसंसारसक्तिर्यादृढावंध्येतिकथ्यते ॥ २२ ॥ आत्मतत्त्वावबोधे नसत्यभूतविवेकजा ॥ वंद्याहिकथ्यतेसक्तिर्भूयःसंसारवर्जिता ॥ २३ ॥ शंखचक्रगदाहस्तोदेवोविवि धयेहया ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःपरिपातिजगत्त्रयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसक्ति (संग) दो प्रकारकी है एक वन्द्या (प्रशंसनीय) और दूसरी वंध्या (परमपुरुषार्थ फलसे रहित) इनमें वन्ध्या तो मूढोंकी सर्वत्र है और वंद्या आत्मज्ञानीयोंकी होती है ॥ २१ ॥ आत्मतत्वज्ञानसे शून्य देहादिसे उत्पन्न संसारमें जो दृढ आसक्ति है उसको वन्ध्या कहते हैं ॥ २२ ॥ और आत्मतत्वके बोधसे विवेकसे उत्पन्न जो सर्वथा संसारसे रहित होती है वह वंद्या कही जाती है ॥ २३ ॥ वन्द्या (प्रशंसनीया) संसक्तिहीके प्रतापसे शंख चक्र गदाधारी देव विविधप्रकारकी चेष्टासे तीनों लोकका पालन करतेहैं ॥ २४ ॥

अनारतनिरालंबंव्योमवर्त्मनिपांथताम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःकरोतिरविरन्वहम् ॥ २५ ॥ महाकल्पस माधानचिरकल्पितकल्पनम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतोब्राह्मंस्फुरतिवैवपुः ॥ २६ ॥ लीलयाललनालानली नंभूतिविभूषितम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःशरीरंशांकरंस्थितम् ॥ २७ ॥ विज्ञानगतयःसिद्धालोकपाला स्तथेतरे ॥ वंद्यसंसक्तिवशतस्तिष्ठंतिजगतोंगणे ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी वंद्या संसक्तिके प्रभावसे निरंतर निरालंब सूर्यभगवान् प्रतिदिन आकाशमार्गमें यात्रा करते हैं ॥ २५ ॥ वन्द्या संसक्तिहीके कारणसे महाकल्प (प्रकृतिके प्रलयके अन्त) में विदेहकैवल्यमें विश्रान्तिके हेतु चिरकाल द्विपरार्द्धके अन्ततक सृष्टिकी कल्पना करनेवाला यह ब्रह्माका शरीर स्फुरित होरहाहै ॥ २६ ॥ लीलासे गौरीरूप बन्धनमें आसक्त, विभूतिसे शोभित यह महादेवजीका शरीर वंद्या संसक्तिहीके प्रतापसे स्थितहै ॥२७॥ वंद्या संसक्तिकेही प्रतापसे ब्रह्ममें दृढ प्रतिष्ठावाले सिद्धलोक तथा अन्यलोक पातालादि ब्रह्माण्डके आंगनमें स्थितहैं ॥२८॥

धत्तेशारीरयंत्रौघमन्याभुवनसंततिः ॥ वंद्यसंसक्तिवशतोजरामृतिविवर्जितम् ॥ २९ ॥ मनःपततिभो गेषुगृध्रोमांसलवेष्विव ॥ वंध्यसंसक्तिवशतोव्यर्थयारम्यशंकया ॥ ३० ॥ संसक्तिवशतोवातिवायुर्भु वनकोटरे ॥ पंचभूतानितिष्ठंतिवहतीयंजगत्स्थितिः ॥३१॥ दिविदेवाभुविनराःपातालेभोगिनोऽसुराः॥ ब्रह्मांडोडुंबरफलेस्फुरन्मशकवत्स्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसी वंद्या संसक्तिके प्रतापसे इस त्रिलोकसे भिन्न अन्यमहर्जन तपलोकादिकी श्रेणी वृद्धावस्था तथा मरणसे वर्जित शरीरोंके यन्त्रसमूहको धारण करती है ॥ २९ ॥ और वंध्यासंसक्तिके प्रभावसे व्यर्थ सुन्दरताकी आशंकासे मन भोगोंमें ऐसे गिरताहै जैसे गीध मांसके कणपर ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इसी संसक्तिकेही प्रभावसे भुवनके कोटरमें वायु वहताहै, पांचोभूत स्थितहैं, और यह जगत्की स्थिति चलीजाती है ॥ ३१ ॥ स्वर्गमें देवता; पृथिवीपर मनुष्य, पातालमें सर्प तथा असुर ये सब इस ब्रह्मांडरूप गूलरके फलमें मशकके समान स्फुरित होते हुये जो स्थितहैं यह इसी संसक्तिहीका प्रताप है ॥ ३२ ॥

जायंतेचम्रियंतेचनिपतंत्युत्पतंतिच ॥ भूतानियदनंतानितरंगिणितरंगवत् ॥ ३३ ॥ उत्पत्योत्पत्यली यंतेतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ भूतानिविरसंभूयोनिर्झरांबुकणाइव ॥ ३४ ॥ परस्परनिगीर्णांगाजनताजा ड्यजर्ज्जरा ॥ संभ्रांताप्रभ्रमत्यंगशीर्णपर्णमिवांबरे ॥ ३५ ॥ नक्षत्रचक्रंगगनेद्रुमेमशकसंततिः ॥ स्फुर त्यावर्तवृत्त्यैवपातालेगजलौघवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जलाशयमें तरंगके तुल्य अनंत प्राणी उत्पन्न होतेहैं और मरतेहैं, गिरतेहैं और ऊपर चढतेहैं यहभी इसीका विलास है ॥ ३३ ॥ झरनेके कणके तुल्य विरसतापूर्वक सब प्राणी उछल २ कर जो नष्ट होतेहैं यह इसी

संसक्तिका विलास है ॥ ३४ ॥ मात्स्यन्याय (मछलीके तुल्य) एक दूसरेके अंगको निगलनेवाली और जडतासे जर्जर यह जनता (जनसमूह) आकाशमें सूखे पत्तेकेसमान जो भ्रमण करती है यह इसी संसक्तिका प्रभाव है ॥३५॥ हे प्रिय रामजी ! वृक्षमें मच्छरोंकी पंक्तिके तुल्य तथा पातालमें जलके प्रवाहके समान आवर्त (भंवरेह) की वृत्तिसे जो आकाशमें नक्षत्रोंका चक्र भ्रमण करताहै यह इसीका विलासहै ॥ ३६ ॥

पातोत्पातदशाजीर्णकालबालककंदुकम् ॥ अद्यापिनजहातींदुर्जलमामालिनंवपुः ॥ ३७ ॥ नानापारयुगावर्त्तदुःखालोकनकर्कशम् ॥ नछुनातिमनःखंडंदुःखिगीर्वाणमंडलम् ॥ ३८ ॥ वासनामात्रवशतःपरेव्योमनिकेनचित् ॥ इदमारचितंचित्रंविचित्रंपश्यराघव ॥ ३९ ॥ मनःसंगैकरंगेणशून्येव्योम्निजगन्मयम् ॥ यदिदंरचितंचित्रंतत्सत्यंनकदाचन ॥ ४० ॥

अर्थ—उदय अस्त वा वृद्धि और क्षय आदि मयदशासे जीर्ण इसीसे कालरूप बालकके कंदुक (गेंद) रूप जडरूप कलंकसे दूषित अपने शरीरको अबभी नहीं त्यागता ॥ ३७ ॥ नानाप्रकारके युगोंके परिवर्तनके दुःखोंके दर्शनसे कठिन अपने मनरूप छेदनयोग्य व्रणको उस व्रणके दुःखसे दुःखी इन्द्र आदि देवमण्डल संसक्तिके वशसे छेदन नहीं करता ॥३८॥ हे रामजी ! वासनाहीसे चिदाकाशमें इस विचित्र चित्ररूप जगत्को किसीने रचाहै ॥३९॥ हे रामजी ! मनके संसर्ग (संसक्ति) मात्र रंगनेके द्रव्यसे किसीने शून्य आकाशमें जो जगत्मय चित्र खींचाहै यह सत्य कदापि नहीं है ॥ ४० ॥

संसक्तमनसामस्मिन्संसारेव्यवहारिणाम् ॥ अत्तितृष्णाशरीराणितृणान्यग्निशिखायथा ॥ ४१ ॥ परिसक्तमतेर्देहान्सिकताःपत्युरंभसाम् ॥ कःशक्तःपरिसंख्यातुंत्रसरेणुगणंयथा ॥ ४२ ॥ मुक्तालतायागंगायामेरोरापादमस्तकम् ॥ तरंगमुक्तागण्यंतेनदेहाःसक्तचेतसाम् ॥ ४३ ॥ संसक्तमनसामेतारम्यांतःपुरपंक्तयः ॥ रचितारौरवावीचिकालसूत्रादिनामिकाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो जीव इस संसारमें आसक्तचित्तसे व्यवहार करतेहैं उनके शरीरोंको तृष्णा ऐसे भक्षण करती है जैसे तृणोंको अग्निकी शिखा ॥ ४१ ॥ जिस जीवकी बुद्धि विषयोंमें चारोओरसे आसक्तहै उसके अनन्तदेहोंकी गणना करनेमें ऐसे कोई समर्थ नहीं है जैसे समुद्रके जलके कणको वा त्रसरेणुके समूहको ॥ ४२ ॥ मेरुके मस्तकसे लेके पादपर्यंत लंबायमान गंगारूप लताकी तरंगरूप मोतियोंकी गणना कदाचित होसकती है परन्तु आसक्तचित्तवालोंके शरीरोंकी गणना नहीं होसकती ॥ ४३ ॥ जिनका मन संसारमें आसक्तहै उन्हींकेलिये अग्नि शस्त्रादि प्रदीप्त होनेसे रमणीय रौरव आवीची तथा कालसूत्रादि नामक यातना नाम अन्तःपुरकी पंक्तियां रचीगई हैं ॥ ४४ ॥

सक्तचित्तंजनंदुःखशुष्कमिंधनसंचयम् ॥ ज्वलतांनरकाग्नीनांविद्धितेनज्वलंतिते ॥ ४५ ॥ दुःखजालमिदंनामयत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ संसक्तमनसामर्थेतत्सर्वपरिकल्पितम् ॥ ४६ ॥ संसक्तचित्तमायांतिसर्वादुःखपरंपराः ॥ जलकल्लोलवलितामहानद्यइवांबुधिम् ॥ ४७ ॥ मनःसंसर्गरूपिण्याभारभूतशरीरया ॥ क्षयोदयदशार्थिन्यासर्वंततमविद्यया ॥ ४८ ॥

अर्थ—जलती हुई नरककी अग्नियोंका, आसक्तचित्तवाला और दुःखोंसे शुष्क इन्धनका समूह है, जिससे कि नरककी अग्नि जलती हैं ॥ ४५ ॥ इस जगत्में जो दुःखोंका जाल है वह सब आसक्तचित्तवालोंहीकेलिये कल्पित है ॥ ४६ ॥ आसक्तचित्तवाले जीवके निकट सब दुःखोंकी परम्परा ऐसे आती हैं जैसे जलके तरंगोंसे वेष्टित नदियां समुद्रके निकट ॥ ४७ ॥ मनके संगरूप, भारभूत शरीरको धारण किये हुई तथा जीवके अर्थ जन्ममरणकी प्रार्थना करनेवाली इस अविद्याने यह सब दुःखजाल फैलाया है ॥ ४८ ॥

असंसंगेनभोगानांसर्वारामविभूतयः ॥ परंविस्तारमायांतिप्रावृषीवमहापगाः ॥ ४९ ॥ अंतःसंसंगमंगानामंगारंविद्धिराघव ॥ अनंतःसंगमंगानांविद्धिरामरसायनम् ॥ ५० ॥ संसंगेनांतरस्थेनदह्यतेप्रकृतिःस्वयम् ॥ स्वकलोत्थेनैरकांक्षीपावकेनयथौषधिः ॥ ५१ ॥ सर्वत्रासक्तमाशांतमनंतमिवसंस्थितम् ॥ असत्कल्पंसदाभासंसुखायैवमनोभवेत् ॥ ५२ ॥ विद्यादृशिप्रोदयमागतेनक्षयंत्वविद्याविषयेगतेन ॥ सर्वत्रसंसक्तिविवर्जितेनस्वचेतसातिष्ठतियःसमुक्तः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संविचारयोगोपदेशोनामाष्टषष्ठितमःसर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संगके अभावसे सब विभूति परमविस्तारको ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे वर्षाकालसे महा नदियां ॥ ४९ ॥ हे रावव ! अंगोंके साथ आभ्यन्तरके संगको तुम अंगारही जानो और उनके संगके परित्यागको

अमृत जानो ॥ ५० ॥ आभ्यन्तरमें स्थित संगसे देहादि कार्य्योंकी प्रकृतिभूत जीव स्वयं ऐसे दग्ध होताहै जैसे अपने मिलानेवाले तृणोंसे आविर्भूत अग्निसे आलंबनार्थ एर (तृण विशेष) वृक्षको चाहनेवाली औषधि ॥ ५१ ॥ आसक्तिसे रहित मन सब ओरसे शांत अनन्तआकाशके समान स्थित है वह मन असत्के तुल्य सत्के समान आभासमान सदा सर्वत्र सुखके ही अर्थ है ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे संगविचारयोगोपदेशो नामाष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सब पदार्थोंकी आसक्तिके परित्यागसे मन चिन्मात्र स्थिर रहताहै और जिस क्रमसे चिन्मात्र शेष रहताहै वह क्रम इस ६९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वदासर्वसंस्थेनसर्वेणसहतिष्ठता ॥ सर्वकर्मरतेनापिमनःकार्यंविजानता ॥१॥ नसक्तमिहचेष्टासुनचिंतासुनवस्तुषु ॥ नाकाशेनाप्यधोनाग्रेनदिक्षुनलतासुच ॥ २ ॥ नबहिर्विपुलाभोगेनचैवेंद्रियवृत्तिषु ॥ नाभ्यंतरेनचप्राणेनमूर्द्धनिनताल्वनि ॥ ३ ॥ नभ्रूमध्येननासांतेनमुखेनचतारके ॥ नांधकारेनचाभासेनचास्मिन्हृदयांबरे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सर्वदा सब व्यवहारोंमें स्थित और सब भृत्य आदिके साथ स्थित, तथा अनिषिद्ध लौकिक और शास्त्रीय कर्मोंमें तत्पर विवेकीपुरुषको अपना मन आगे कहेहुयेके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥ साध्यविषयोंकी चेष्टाओंमें, अतीतकी चिंताओंमें, वर्तमान वस्तुओंमें, आकाशमें, अधोभागमें, मध्यमें, दिशाओंमें और लताओंमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ २ ॥ बाह्य आधिभौतिक पदार्थोंमें, स्त्रीपुत्रादिमें इन्द्रियोंकी वृत्तिमें, आध्यात्मिक पदार्थोंमें, प्राणमें, मूर्द्धास्थानमें और तालुमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ३ ॥ भ्रूके मध्यमें, नासिकाके अग्रमें, मुखमें, नेत्रोंकी पुतलीमें, अन्धकारमें, प्रकाशमें और हृदयाकाशमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ४ ॥

नजाग्रतिनचस्वप्नेनसुषुप्तेननिर्मले ॥ नासितेनचवापीतरक्तादौशबलेनच ॥ ५ ॥ नचलेनस्थिरेनादौन मध्येनेतरत्रच ॥ नदूरेनांतिकेनाग्रेनपदार्थेनचात्मनि ॥ ६ ॥ नशब्दस्पर्शरूपेषुनमोहानंदवृत्तिषु ॥ नगमागमचेष्टासुनकालकलनासुच ॥ ७ ॥ केवलंचितिविश्रम्यकिंचिच्चेत्यावलंबिनि ॥ सर्वत्रनीरसमिव तिष्ठत्वात्मरसंमनः ॥ ८ ॥

अर्थ—जाग्रत्में, शयनमें, स्वप्नमें, सुषुप्तिमें, शुद्ध सत्वगुणमें, रजोगुणमें, तमोगुणमें और गुणोंके मेलमें, चित्तको आसक्त न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चल (कार्यवर्ग) स्थिर (कारण अव्यक्त) सृष्टिके आदि मध्य और अन्तमें, दूर, समीप तथा अग्रभागमें नामरूप पदार्थोंके समूहमें और जीवमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ६ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंधमें, मोह तथा आनंदकी वृत्तियोंमें, आकाशादिमें, गमन आगमनकी सिद्धियोंमें, तथा भूतभविष्यत् आदिके कालज्ञान और चिरजीवन आदि सिद्धिमें, मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ७ ॥ किन्तु बुद्धिके साक्षी चिन्मात्रमें विश्राम करके सब विषयोंके आनन्दसे निवृत्त केवल सच्चित् ब्रह्मानन्दमें तत्पर होके मनको स्थित रहना चाहिये ॥ ८ ॥

तत्रस्थोविगतासंगोजीवोऽजीवत्वमागतः ॥ व्यवहारमिमंसर्वमाकरोतुकरोतुवा ॥ ९ ॥ अकुर्वन्नपिकुर्वाणोजीवःस्वात्मरतिःक्रियाः ॥ क्रियाफलैर्नसंबंधमायातिखमिवांबुदैः ॥१०॥ अथवातमपित्यक्त्वाचेत्यांशंशांतचिद्घनः॥ जीवस्तिष्ठतुसंशांतोज्वलन्मणिरिवात्मनि॥११॥निर्वाणमात्मनिगतःसततोदितात्मा जीवोऽरुचिर्व्यवहरन्नपिरामभद्र ॥ नोसंगमेतिगतसंगतयाफलेनकर्मोद्भवेनसहतीवचदेहभारम्॥१२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे शांतिसमायातयोगोपदेशो नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—ब्रह्ममें स्थित, संगरहित ब्रह्मभावको प्राप्त जीव संसारी व्यवहारोंको करै या न करै ॥ ९ ॥ आत्मामें प्रेम करनेवाला यह जीव क्रियाओंको करताहुआ वा न करताहुआ क्रियाओंके फलसे ऐसे सम्बन्ध नहीं रखता

जैसे जलके बिन्दुओंसे आकाश ॥ १० ॥ अथवा बुद्धिकी साक्षिताकोभी त्यागके शांत चिद्घनमणिके समान दीप्यमान यह जीव अपने आत्मामें स्थित रहै ॥ ११ ॥ हे प्रिय रामजी ! व्यवहारके फलकी इच्छासे रहित, आत्मामें शांतिको प्राप्त और निरन्तर उदयको प्राप्त यह जीव संगके हेतुरूप अविद्याकर्मादिसे शून्य होनेसे कर्मसे उत्पन्न फलको नहीं प्राप्त होता किंतु प्रारब्धके क्षयपर्य्यन्त देहरूप भारको सहताहै ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे शांतिसमायातयोगोपदेशो नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

असंगके सुखमें विश्रान्त जीव व्यवहारसे उत्पन्न दोषोंसे जैसे नहीं पीडित होता वह बात युक्तिसे इस ७० के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असंसंगसुखाभ्याससंस्थितैर्विततात्मभिः ॥ व्यवहारिभिरप्यंतर्वीतशोकभयैःस्थितम् ॥ १ ॥ प्रक्षुब्धाक्षुब्धदेहस्याविसंवादेनसंविदः ॥ अंतःपूर्णस्यवदनेश्रीरिंदोरिवलक्ष्यते ॥ २ ॥ चेत्यहीनंचिदालंबंमनोयस्यगतज्वरम् ॥ तेनांबुकतकेनेवजनतासंप्रसीदति ॥ ३ ॥ नित्यमात्मदृशालीनोज्ञःस्वस्थश्चंचलोऽपिसन् ॥ क्षुब्धोदृश्यतएवासौप्रतिबिंबार्कवन्मुधा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-निरंतर असंगके आस्वादके अभ्यासमें स्थित और विशालअंतःकरणवाले जीव व्यवहार करतेहुयेभी शोक और भयसे रहित स्थित रहतेहैं ॥ १ ॥ धन पुत्रादिके नाश तथा बन्धन अपमानादिसे क्षोभित देहसहित दृश्यमानभी पदार्थमें क्षोभरहित चित्तवृत्तिसंयुक्त, और परमार्थ सुखमें निर्विषादके कारण अन्तःकरणमें पूर्णपुरुषके मुखमें पूर्णचन्द्रमाकी शोभा लक्षित होती है ॥ २ ॥ जिस पुरुषका मन विषयकी आसक्तिसे रहित संतापशून्य है उससे सम्पूर्ण जनसमूह ऐसे प्रसन्न रहतेहैं जैसे कतक औषधिसे जल ॥३॥ ज्ञानीपुरुष नित्य आत्मदृष्टिमें लीन होनेसे चपल होनेपरभी वह स्वस्थही है. यह प्रतिबिंबके सूर्यके समान मिथ्याही क्षुब्धके तुल्य देख पडताहै ॥४॥

आत्मारामामहात्मानःप्रबुद्धाःपरमोदयाः ॥ बहिःपिच्छाग्रतरलाअंतर्मेरुरिवाचलाः ॥ ५ ॥ चित्तमात्मत्वमायातंसुखदुःखानुरंजनम् ॥ नोपैतिरंगसंयुक्तोमसृणःस्फटिकोयथा ॥ ६ ॥ संसारदृष्टिरुदितंज्ञातलोकपरावरम् ॥ नरंजयतिसच्चितंजललेखायथांबुजम् ॥ ७ ॥ आत्मध्यानमयोऽध्यानेप्रबोधंपरमात्मनः ॥ कलनामलनिर्मुक्तःस्वसक्तइतिकथ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मामें रमणकरनेवाले ज्ञानी महात्मालोग बाहरसे तो मोरके पंखके समान चंचल प्रतीत होतेहैं, और आभ्यन्तरसे मेरुके सदृश अचल होतेहैं ॥ ५ ॥ आत्मदशाको प्राप्त चित्त सुखदुःखके रंगको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे जपापुष्पके रंगसे युक्त चिक्कण स्फटिकमणि ॥ ६ ॥ निरतिशय आन्दके अभ्युदयको प्राप्त, लोकोंसे परे ईश्वर तथा जीवतत्वको जाननेवाले तथा सच्चिदानन्दपरमात्मामें चित्त लगाये जीवको संसारकी दृष्टि ऐसे नहीं रंजित करती जैसे जलकी लेखा कमलको ॥ ७ ॥ जब यह जीव परमात्माके ज्ञानको प्राप्त होकर सब कल्पनासे निर्मुक्त होताहै और ध्यानके अभावमेंभी आत्मध्यानमग्न (आत्माके सुखमें मग्न) होताहै उस समय यह जीव स्वसक्त कहाजाताहै ॥ ८॥

आत्मारामतयाजीवोयात्यसंसंगतामिह ॥ आत्मज्ञानेनसंसंगस्तनुतामेतिनान्यथा ॥ ९ ॥ जाग्रत्येव सुषुप्तस्थोजीवोभवतिराघव ॥ अस्यांदृशिगतोऽद्वंद्वोनित्यानस्तमयोदयः ॥ १० ॥ अत्रप्रौढिमुपायातःसूर्यतामेतिपावनीम् ॥ परिणामवशादिंदुरमावास्यार्कतामिव ॥ ११ ॥ चित्तेचित्तदशाहीनेयास्थितिःक्षीणचेतसाम् ॥ सोच्यतेशांतकलनाजाग्रत्येवसुषुप्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—इस संसारमें यह जीव आत्माराम होनेसेही असंगताको प्राप्त होताहै आत्मज्ञानके उत्कर्षसे संग क्षीण होताहै न कि अन्यथा ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जाग्रत्मेंही जब सुषुप्तमें वह जीव स्थित होजाताहै तब इस अवस्थामें प्राप्त नित्य निर्द्वन्द्व और उदयमय होताहै ॥ १० ॥ इस अवस्थामें दृढताको प्राप्त होकर परमपवित्र सूर्य्य (प्रकाश) रूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे क्रमसे कलाके क्षयके कारणसे जलमयमंडलमें सूर्यके प्रतिबिंबरूप चंद्रमा अमावस्याको अपने बिम्बभूत सूर्य्यरूपताको ॥ ११ ॥ चित्तकी दशासे हीन चित्तके होनेपर क्षीणचित्तवालोंकी शान्त कल्पनामय जो स्थिति होतीहै उसीको जाग्रत्मेंही सुषुप्तता कहतेहैं ॥ १२ ॥

तांसुषुप्तदशामेत्यजीवन्व्यहरन्नरः ॥ सुखदुःखवरत्राभिर्नकदाचनकृष्यते ॥ १३ ॥ जाग्रत्येवसुषुप्तस्थोयःकरोतिजगत्क्रियाम् ॥ तंयंत्रपुत्रकमिवनायातिसुखदुःखदृक् ॥ १४ ॥ चित्तस्यबाधिकाशक्तिर्भावाभावोपतापदा ॥ आत्मतामागतेचित्तेतस्यकिंबाधतेकथम् ॥ १५ ॥ सुषुप्तबुद्धिःकर्माणिपूर्वमेवावहेलया ॥ कुर्वन्नबद्ध्यतेजीवोजीवन्मुक्ततयास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस सुषुप्तदशाको प्राप्त जीवनका व्यवहार करताहुवा यह मनुष्य सुखदुःखरूप रज्जु (रस्सी) से कदापि नहीं आकृष्ट होता ॥ १३ ॥ जाग्रत्‌मेंही सुषुप्तदशाको प्राप्त जो जीव जगत्‌की क्रियाको करताहै उस नर्तक (नाचनेवाले) की प्रतिमाके तुल्य जीवको सुखदुःखकी दृष्टि नहीं प्राप्त होती ॥१४॥ चित्तको पीडा करनेवाली अहंकाररूप शक्ति इष्ट अनिष्ट विषयोंके आगम तथा नाशसे संताप देती है और जब चित्तही आत्मदशाको प्राप्त होगया तब उसका क्या और कैसे बाधित होसकताहै ॥१५॥ सुषुप्तिकी बुद्धियुक्त प्राणी पूर्व साधनदशासेही लेके कर्मोंको अभिनिवेश (अहंकार) के त्यागसे करताहुआभी बंधनमें नहीं आता और जीवन्मुक्तकी रीतिसे स्थित रहताहै ॥१६॥

सौषुप्तींवृत्तिमाश्रित्यकुरुमाकुरुवानघ ॥ कर्मप्रकृतिजंपाकवशादुपगतंस्थितम् ॥ १७ ॥ नादानंनपरित्यागःकर्मणोज्ञायरोचते ॥ तिष्ठंत्यवगतात्मानोयथाप्राप्तानुवर्त्तिनः ॥ १८ ॥ कुर्वन्नपिनकर्त्तासिसुषुप्तैकस्थयाधिया ॥ अकर्त्तापिचकर्त्तासियथेच्छसितथाकुरु ॥ १९ ॥ यथानकिंचित्कलयन्मंचकेस्पंदतेशिशुः ॥ तथाफलान्यकलयन्कुरुकर्माणिराघव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सुषुप्तिवृत्तिका अवलंबन करके प्रारब्धके परिपाकसे वर्णाश्रमके उचित कर्मोंको करो वा न करो ॥ १७ ॥ ज्ञानीको न कर्मोंका ग्रहण न त्याग रूचताहै किन्तु आत्माको जानकर वे ज्ञानी प्रारब्धके अनुसार वर्तनेवाले स्थित रहतेहैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! केवल सुषुप्तिमें स्थितबुद्धिसे तुम करतेहुयेभी कर्ता नहीं हो. आसक्तचित्त होनेसे न करतेहुयेभी कर्ताहो. इसमें जैसी तुमारी इच्छा हो वैसा करो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जैसे कुछभी संकल्प न करतेहुये बालक मंचपर चेष्टा करताहै ऐसेही फलोंका संकल्प न करतेहुये तुमभी कर्मोंको करो ॥ २० ॥

अचेत्यचित्पदस्वस्थोजाग्रत्यपिसुषुप्तधीः ॥ यद्यत्करोतिलब्धात्मातस्मिंस्तस्यनकर्तृता ॥ २१ ॥ दशामासाद्यसौषुप्तींस्वचित्तेचविवासनः ॥ अंतःशीतलतामेतिज्ञोरसेनयथाशशी ॥ २२ ॥ सुषुप्तस्थोमहातेजाःपूर्णःपूर्णेंदुबिंबवत् ॥ समःसर्वास्ववस्थासुभवत्यद्रिर्यथर्तुषु ॥ २३ ॥ सुषुप्तसंस्थोधीरात्माबहिरयातिलोलताम् ॥ क्रियासुनोभवत्कंपःप्रस्पंदितइवाचलः ॥ २४ ॥

अर्थ—विषयोंसे वर्जित चित् (ब्रह्म) पदमें स्थित इसीसे जाग्रत्‌मेंभी सुषुप्तकी बुद्धियुक्त आत्मज्ञानके प्राप्त जीव जो २ कर्म करताहै उन २ में उसकी कर्तृता नहीं है ॥ २१ ॥ इस सुषुप्तिकी दशाको पाकर और अपने चित्तमें वासनासे रहित होकर ज्ञानीपुरुष अन्तःकरणमें ऐसी शीतलताको प्राप्त होताहै जैसे अमृतसे चन्द्रमा ॥ २२ ॥ इस सुषुप्तिदशामें स्थित जीव महातेजस्वी पूर्णचन्द्रबिंबके समान पूर्ण अपनी संपत्ति विपत्तिकी अवस्थाओंमें ऐसे समान होताहै जैसे छः ऋतुओंमें विकाररहित पर्वत ॥ २३ ॥ सुषुप्तिमें स्थित धीरात्मा पुरुष लौकिक वैदिक क्रियाओंमें बाहरसे चंचलताको प्राप्त होताहै परन्तु आभ्यन्तरमें कंपरहित वह ऐसे रहताहै जैसे वायुसे बाह्यदेशमें कंपित वृक्षतृणादि सहित पर्वत ॥ २४ ॥

सुषुप्तावस्थितोभूत्वादेहंविगतकल्मषः ॥ पातयाश्वथवादीर्घकालंधारयशैलवत् ॥ २५ ॥ एषैवरामसौषुप्तीस्थितिरभ्यासयोगतः ॥ प्रौढासतीतुर्यमितिकथितातत्त्वकोविदैः ॥ २६ ॥ आनंदमयएवांतःप्रक्षीणसकलामयः ॥ अत्यंतास्तंगतमनाभवतिज्ञोमहोदयः ॥ २७ ॥ तत्रस्थोज्ञःप्रमुदितःपरमानंदघूर्णितः॥ लीलामिवेमांरचनांसदासमनुपश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सुषुप्तअवस्थामें स्थित होनेसे पापरहित होकर अपने देहको चाहो तुम शीघ्र गिराओ वा पर्वतकेसमान दीर्घकालतक धारणकरो ॥२५॥ हे रामजी ! यह सुषुप्तकी दशा जब अभ्याससे दृढताको प्राप्त होती है तब इसीको तत्वज्ञानी महात्मा तुरीयावस्था कहते हैं ॥ २६ ॥ इस दशामें ज्ञानी आनन्दमय सब विघ्नोंसे वर्जित सर्वथा मनसे शून्य और महान् अभ्युदययुक्त होताहै ॥ २७ ॥ इस दशामें स्थित ज्ञानी अतिप्रसन्न, परमानन्दसे मदोन्मत्त इस जगत्‌की रचनाको सदा लीलाके समान देखताहै ॥ २८ ॥

वीतशोकभयायासोगतसंसारसंभ्रमः ॥ तुर्यावस्थामुपारूढोभूयःपततिनात्मवान् ॥ २९ ॥ प्राप्यस्वांपदवींपुण्यांयथेदंभ्रमितंजगत् ॥ शैलसंस्थइवाधःस्थंहसन्पश्यतिधीरधीः ॥ ३० ॥ अस्यांतुतुर्यावस्थायांस्थितिंप्राप्याविनाशिनीम् ॥ आनंदैकांतलीनत्वादनानंदपदंगतः ॥ ३१॥ अनानंदमहानंदकलातीत

स्ततोऽपिहि ॥ मुक्तइत्युच्यतेयोगीतुर्यातीतंपदंगतः ॥३२॥ परिगलितसमस्तजन्मपाशःसकलविलीन तमोमयाभिमानः ॥ परमरसमयींप्रयातिसत्तांजलगतसैंधवखंडवन्महात्मा ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे असंसंगविकल्पोपदेशो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—शोक, भय, तथा संसारी प्रपंच और भ्रमसे रहित, तथा तुरीयावस्थामें दृढतासे प्राप्त ज्ञानी पुरुष पुनः संसारमें नहीं गिरता ॥ २९ ॥ इस पवित्र अपनी पदवीको प्राप्त होकर धीर बुद्धियुक्त पुरुष इस भ्रांतजगत्को हसताहुवा ऐसे देखताहै जैसे पर्वतपर स्थित प्राणी नीचेवालेको ॥ ३० ॥ इस अविनाशिनी तुरीयावस्थाको प्राप्त होकर सर्वथा आनंदमें मग्न होनेसे उस आनन्दको प्राप्त होताहै जिससे उत्तम कोई आनन्द नहीं है ॥ ३१ ॥ तीनों अवस्थाके आनन्द तथा तुरीयावस्थाके आनन्दकी कलासे परे प्राप्त होताहै और उससे मुक्त होनेसे योगी तुरीयातीत पदमें प्राप्त कहाजाताहै ॥ ३२ ॥ क्योंकि इस समय सब तमोगुणमय अभिमानगलित होगये हैं जिसके ऐसा तथा समस्तजन्मोंके निमित्त वासना कर्म आदि पाश (फासी) से रहित महात्मा जलमें प्राप्त लवणके खंडकेसमान परमानन्दरूप रसमयी सत्ता (स्थिति) को प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे असंगविकल्पोपदेशो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

तुरीयातीतपद व्यवहारका विषय नहीं है इसलिये शरीर आदिका निरास करके इस ७१ के सर्गमें तुरीया अवस्था तथा मोहसे जन्मके क्रमका वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यावत्तुर्यपरामर्शस्तावत्केवलतापदम् ॥ जीवन्मुक्तस्यविषयोवचसांचरघूद्वह ॥१॥ अतऊर्ध्वमदेहानांमुक्तानांवचसांतथा ॥ विषयोनमहाबाहोपुरुषाणामिवांबरम् ॥ २ ॥ साहिविश्रांति पदवीदूरेभ्योऽपिदवीयसी ॥ गम्याविदेहमुक्तानांखलेखेवनभस्वताम् ॥३॥ सुषुप्तावस्थयाकंचित्कालं भुक्त्वाजगत्स्थितिम् ॥ तुर्यतामेतितदनुपरमानंदघुर्णितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! तीनों अवस्थारूप पादोंका विचार करके चिन्मात्र शेषकी स्थितिरूप तुरीयाअवस्थाका अनुभव जहांतक होताहै वहांहींतक केवलतापद जीवन्मुक्तोंका और वेदवाणियोंका विषय है ॥ १ ॥ हे महाबाहो ! इससे परे विदेहमुक्त तथा जीवन्मुक्तोंसे प्राप्यभी तुरीयातीत पद है, परन्तु वह विदेहमुक्त वा जीवन्मुक्त और वेदवचनोंका विषय ऐसे नहीं है जैसे पुरुषोंका आकाश ॥ २ ॥ दूरसेभी अतिदूर वही विश्रामकी पदवी है, और विदेहमुक्तोंके ऐसे गम्य है जैसे वायुका आकाश ॥ ३ ॥ ज्ञानी पुरुष सुषुप्तअवस्थामें कुछकालतक जगत्की स्थितिको भोग करके उसके अनन्तर परमानन्दसे घूर्णित (मत्त) तुरीयपदको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

तुर्यातीतदशांतज्ज्ञायथायांत्यात्मकोविदाः ॥ तथाधिगच्छनिर्द्वंद्वंपदंरघुकुलोद्वह ॥ ५ ॥ सुषुप्तावस्थयारामभवसंव्यवहारवान् ॥ चित्रेंदोरिवतेनस्तः क्षयोद्वेगावरिंदम ॥ ६ ॥ शरीरसन्निवेशस्यक्षयेस्थैर्ये चसंविदः ॥ मागृहाणभ्रमोह्येषशरीरमितिजृंभते ॥ ७ ॥ देहनाशेनकोऽर्थस्तेकोऽर्थस्तेदेहसंस्थया ॥ भवत्वंप्रकृतारंभस्तिष्ठत्वेषयथास्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! तुरीयातीत पदको जाननेवाले आत्मज्ञानी पुरुष जिसप्रकार तुरीयातीत दशाको प्राप्त होते हैं ऐसेही तुमभी द्वंद्वरहित इसी पदको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! सुषुप्तअवस्थामें स्थित होके तुम जगत्के व्यवहार करो तो चित्रमें स्थित चन्द्रमाके समान क्षय और उद्वेग नहीं प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ शरीरकी रचनाके क्षय वा स्थिर होनेसे ज्ञानका क्षय और स्थिरता होती है इस भ्रमको न धारण करो क्योंकि क्षयआदि धर्मसहित यह शरीर विकसित होरहाहै ॥ ७ ॥ देहके नाशसे वा उसकी स्थितिसे तुमारा क्या प्रयोजन है, केवल आत्मबोधकी स्थिरताका प्रयत्न करो. यह देह किसीभी अवस्थामें रहो ॥ ८ ॥

ज्ञातवानसितत्सत्यंबुद्धवानसितत्पदम् ॥ प्राप्तवानसिरूपंस्वंविशोकोभवभूतये ॥ ९ ॥ इप्सितानी प्सितंत्यक्त्वाशीतलालोकशोभया ॥ अंधकारात्तथांभोदान्मुक्तंखमिवशोभते ॥ १० ॥ मनस्तवात्मसं पन्नंनाधःसमनुधावति ॥ योगमंत्रतपःसिद्धःपुरुषःखादिवावनिम् ॥ ११ ॥ इहशुद्धाचिदेवास्तिपारा वारविवर्जिता ॥ अयंसोऽहमिदंतन्मइतितेमास्तुविभ्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जगत् तथा तीनो अवस्थाके अधिष्ठान सत्यरूप उस ब्रह्मपदको जानगये हो और अखण्ड-वाक्यार्थस्वरूप आत्माको तुम प्राप्त हो, इसलिये मुक्तिरूप ऐश्वर्यकेलिये होओ ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इष्ट अनिष्टको त्यागकर शीतल आत्मप्रकाशसे ऐसे शोभित हो जैसे अन्धकार तथा मेघसे निर्मुक्त शरत्कालका आकाश ॥ १० ॥ हे रामजी ! आत्मामें सम्पन्न तुमारा मन नीचेको विषयोंमें ऐसे नहीं दौडता जैसे मंत्रके प्रभावसे आकाशगामिनी सिद्धिको प्राप्त योगी आकाशको त्यागकर पृथिवीपर नहीं दौडता ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्मांडमें देश, काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य केवल शुद्धचेतनमात्र है इसलिये यह शरीर आदि मैं हुं वह धनादि मेरा है यह भ्रम तुमको न हो ॥ १२ ॥

आत्मेतिव्यवहारार्थमभिधाकल्पिताविभोः ॥ नामरूपादिभेदस्तुदूरमस्मादलंगतः ॥ १३ ॥ जलमेव यथांभोधिर्नतरंगादिकंपृथक् ॥ आत्मैवेदंतथासर्वंनभूतोयादिकंपृथक् ॥ १४ ॥ यथासमस्ताज्जलधौज लादन्यन्नलभ्यते ॥ तथैवजगतःस्फारादात्मनोऽन्यन्नलभ्यते ॥१५॥ अयंसोऽहमितिप्राज्ञककरोषिव्यव स्थितिम् ॥ किंतत्त्वंकिंचवातेस्यात्किंतत्त्वंकिंचवानते ॥ १६ ॥

अर्थ—और व्यापक परमात्माका आत्मा यह नाम कल्पित कियागयाहै यथार्थमें वह सर्वथा नामरूपादिसे दूर प्राप्त है ॥ १३ ॥ जैसे समुद्र जलही है और तरंग आदि उससे भिन्न नहीं हैं ऐसेही यह सब आत्माही है भूमि जलादि उससे पृथक् नहीं है ॥ १४ ॥ जैसे समुद्रमें पूर्णजलसे अन्य कुछ नहीं प्राप्त होता ऐसेही जगत्के आकारसे विस्तृत परमात्मासे भिन्न इस जगत्में कुछ नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ हे प्राज्ञ रामजी ! यह धनादि वह देहादि मैं हुं इसकी व्यवस्था कहां करोगे. देहादिमेंसे जो तुम हो वह क्या है और उनमें जो तुमारा है उसका और जो नहीं है उसका क्या तत्व है ? ॥ १६ ॥

नद्वित्वमस्तिनोदेहाःसंबंधोनचतैःस्थितः ॥ संभाव्यतेकलंकोवाभानोरिवतमःपटैः ॥ १७ ॥ द्वित्वम भ्युपगम्यापिकथयामितवारिहन् ॥ देहादिभिःसद्भिरपिनसंबंधोविभोर्भवेत् ॥ १८ ॥ छायातपप्रसर योःप्रकाशतमसोर्यथा ॥ नसंभवतिसंबंधस्तथावैदेहदेहिनोः ॥ १९ ॥ यथाशीतोष्णयोर्नित्यंपरस्परवि रुद्धयोः ॥ नसंभवतिसंबंधोरामदेहात्मनोस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! न द्वैत है,न देह हैं,और उनके साथ कोई संबन्ध ऐसे नहीं सम्भावित है जैसे सूर्य्यमें अंधेरा ॥ १७ ॥ और हे शत्रुनाशक रामजी ! द्वैतकी सत्ताको मानकरभी मैं तुमसे कहता हुं कि विद्यमान देहादिके साथभी व्यापक शुद्धचिन्मात्र परमात्माका सम्बन्ध नहीं होसकता ॥ १८ ॥ जैसे छाया और आतप (घाम) तथा अन्धकार और प्रकाशका सम्बन्ध नहीं होसकता ऐसे देह आत्माका नहीं होसकता ॥१९॥ हे रामजी ! सदा परस्पर विरुद्धस्व-भाववाले शीत और उष्णके सम्बन्धका सम्भव नहीं है ऐसेही देह और आत्माका सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है२०

अविनाभाविनोर्यस्तुसंबंधःकथमेतयोः ॥ जडचेतनयोर्देहदेहिनोरनुभूयते ॥ २१ ॥ चिन्मात्रस्यात्म नोदेहसंबंधइतियाकथा ॥ सैषाद्गुरवबोधार्थादावाग्नौजलधिर्यथा ॥ २२ ॥ सत्यावलोकनेनैषामिथ्याद्द ष्टिर्विनश्यति ॥ अवलोकनयासाम्यमातपेजलधिर्यथा ॥ २३ ॥ चिदात्मानिर्मलोनित्यःस्वावभासोनि रामयः ॥ देहस्त्वनित्योमलवांस्तेनसंबंध्यतेकथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—नित्य सम्बन्ध (रूपरूपवान् वा घटकत्वके तुल्य) जड चेतन देहका आत्माके साथ सम्बन्धका अ-नुभव होताहै॥२१॥इसप्रकार चिन्मात्र आत्माका देहके साथ तादात्म्य वा समवाय है यह जो कथा है अग्निमें समुद्रके तुल्य बुद्धिसे बाहर है, क्योंकि देहको चेतनका आश्रय माननेसे विषयका अभाव होनेसे उसका स्फुरण नहीं होसकता और विषय माननेसे आश्रयके अभावसे समवाय वा तादात्म्य (अभेदसम्बन्ध) नहीं होसकता ॥२२ ॥ सत्यपदार्थके दर्शनसे यह मिथ्यादृष्टि ऐसे नष्ट होती है जैसे मृगतृष्णाके भ्रममें आतपके देखनेसे समुद्र समताको प्राप्त होताहै वा बाधित होजाताहै ॥ २३ ॥ चित्स्वरूप आत्मा तो निर्मल, नित्यप्रकाश तथा विकाररहित है. और यह देह अनित्य, मलवान् तथा परप्रकाश्य है. इसलिये आत्माके साथ इसका सम्बन्ध कैसे होसकताहै ॥ २४ ॥

स्पंदमायातिवातेनभूतैर्वापीवरीकृतः ॥ देहस्तेननसंबंधोमनागेवसहात्मना ॥ २५ ॥ सिद्धेद्वित्वेऽपिदे हस्यनसंबंधस्यसंभवः ॥ द्वित्वासिद्धौतुसुमतेकलनैवेदृशीकुतः ॥ २६ ॥ इत्येतदेवतत्सत्वेतत्रैवांतः स्थितिंकुरु ॥ नबंधोऽस्तिनमोक्षोऽस्तिकदाचित्कस्यचित्क्वचित् ॥ २७ ॥ सर्वमात्ममयंशांतमित्येवंप्र त्ययंस्फुटम् ॥ सबाह्याभ्यंतरंरामसर्वत्रदृढतांनय ॥ २८ ॥

अर्थ—देहकी चेष्टा प्राणवायुसे होती है. और अन्न जलआदि पृथिवीआदि भूतोंसे यह देह वर्द्धित है. इसलिये आत्माके साथ इसका किंचित्‌भी सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥ द्वैतके सिद्ध होनेपरभी देहके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं है, और द्वैतकी असिद्धिमें तो ऐसी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ २६ ॥ इसप्रकार द्वैतकी सिद्धि सत्य माननेपर वही पूर्वोक्तयुक्तिका उपन्यास करनाचाहिये अर्थात् चित्‌से अन्य द्वितीयकी सत्तामें द्वैत सिद्ध होताहै सो यदि वह द्वितीय चित् है तो इस चित्‌से उसका भेदक कोई नहीं है और यदि जड है तो छाया आतपकेसमान विरुद्ध होनेसे वह मिथ्या है इसलिये कदाचित् और कहीं न किसीका बंध है न मोक्ष है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! यह जो बाह्य तथा आभ्यन्तर सम्पूर्ण जगत् है वह शांत आत्मामय है यही वृत्ति सर्वत्र तुम दृढ करो ॥ २८ ॥

सुखीदुःखीविमूढोऽस्मीत्येताइदृष्टयःस्मृताः ॥ आसुचेद्दस्तुबुद्धिस्तेतच्चिरंदुःखमिच्छसि ॥ २९ ॥ यःक्रमःशैलतृणयोःकौशेयोपलयोस्तथा ॥ साम्यंप्रतिसएवोक्तःपरमात्मशरीरयोः ॥ ३० ॥ यथातेजस्तिमिरयोर्नसंबंधोनतुल्यता ॥ अत्यंतभिन्नयोरामतथैवात्मशरीरयोः ॥ ३१ ॥ यथाशीतोष्णयोरैक्यंकथास्वपिनदृश्यते ॥ जडप्रकाशयोःश्लेषोनतथात्मशरीरयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं सुखी हुं मैं दुःखी हुं ये दुष्टदृष्टि कहीगई हैं. यदि इनमें तुमारी सत्यबुद्धि है तो तुम चिरकालके-लिये दुःख चाहतेहो ॥ २९ ॥ तुल्यता होनेमें जो रीति पर्वत तथा तृणकी अथवा रेशम और पाषाणकी है वही रीति आत्मा और शरीरकी समानतामें तुम जानो ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जैसे तेज और अन्धकारका न सम्बन्ध और न समानता है ऐसेही अत्यन्त भिन्न आत्मा तथा शरीरकाभी सम्बन्ध तथा समानता नहीं है ॥ ३१ ॥ जैसे शीत तथा उष्णकी एकता और जडप्रकाशका सम्बन्ध कथामेंभी नहीं देखपडता यही दशा आत्मा तथा शरीरकी है ॥ ३२ ॥

देहश्चलतिवातेनतेनैवायातिगच्छति ॥ शब्दंकरोतिवातेनदेहनाडीविलासिना ॥ ३३ ॥ शब्दःकचटतप्रायःस्फुरत्यंतःसमीरणैः ॥ यथाप्रजायतेवंशाद्देहरंध्रात्तथैवहि ॥ ३४ कनीनिकापरिस्पंदश्चक्षुःस्पंदस्यमारुतात् ॥ इंद्रियस्फुरणात्सैवसंवित्केवलमात्मनः ॥ ३५ ॥ आकाशोपलकुड्यादौसर्वत्रात्मदशास्थिता ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शेचित्तएवात्रदृश्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह देह प्राणवायुसे चलताहै और उसीसे आताजाताहै. और नाडियोंमें निवास करनेवाले प्राणवायुके द्वारा शब्दभी करताहै ॥ ३३ ॥ जैसे बाह्यके छिद्रमेंसे शब्द होताहै ऐसेही देहमें कंठरूप छिद्रमें प्राप्त जो प्राण पवन है वे जब कंठ तालुआदि स्थानोंमेंसे जिव्हाआदिके अभिघातसे निकाले जाते हैं तब कवर्ग, चवर्ग तथा टवर्गादि शब्द स्फुरित होताहै वह प्रत्यक्ष सिद्ध है ॥ ३४ ॥ विषयदेशमें जो नेत्रका संचलन होताहै उसमें वायुके द्वारा पुतलीका संचलन कारण है, और इन सब इन्द्रियोंके स्फुरणसे सिद्ध जो सबकी साक्षी संवित् (ज्ञान) है वह केवल आत्माका है न कि अन्यका ॥ ३५ ॥ आकाश, पाषाण तथा भित्तिआदि स्थानोंमें आत्माकी सत्ता स्थितहै पर वह चित्तमेंही ऐसे प्रकट होती है जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब ॥ ३६ ॥

शरीरालयमुत्सृज्ययत्रचित्तविहंगमः ॥ स्ववासनावशाद्यातितत्रैवात्मानुभूयते ॥ ३७ ॥ यत्रपुष्पंतत्रगंधसंविदःसंस्थितायथा ॥ यत्रचित्तंहितत्रात्मसंविदःसंस्थितास्तथा ॥ ३८ ॥ सर्वत्रस्थितमाकाशमादर्शेप्रतिबिंबति ॥ यथातथात्मासर्वत्रस्थितश्चेतसिदृश्यते ॥ ३९ ॥ अपामवनतंस्थानमास्पदंभूतलेयथा ॥ अंतःकरणमेवात्मसंविदामास्पदंतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—अपनी वासनाके वशसे शरीररूप स्थानको छोडके चित्तरूप पक्षी जहां जाताहै वहांही आत्माका अनुभव होताहै ॥ ३७ ॥ जैसे जहां पुष्प है वहां गंधसंवित् स्थितहैं, ऐसेही जहां चित्त है वहां आत्मसंवित् स्थितहैं ॥ ३८ ॥ जैसे आकाश सर्वत्र स्थित रहनेपरभी दर्पणमेंही प्रतिबिंबित होताहै ऐसेही आत्मा सर्वत्र स्थित रहनेपरभी चित्तमेंही अनुभूत होताहै ॥ ३९ ॥ जैसे पृथिवीपरभी नीचस्थान आकाशका निवास स्थानहै ऐसेही अंतःकरण आत्मसंविदोंका स्थानहै ॥ ४० ॥

सत्यासत्यंजगद्रूपमंतःकरणबिंबिता ॥ आत्मसंवित्तनोतीदमालोकमिवसूर्यभा ॥ ४१ ॥ अंतःकरणमेवातःकारणंभूतसंसृतौ ॥ आत्मासर्वातिगत्वात्तुकारणंसदकारणम् ॥ ४२ ॥ अविचारणमज्ञानंमौर्ख्यमाहुर्महाधियः ॥ संसारसंसृतौसारमंतःकरणकारणम् ॥ ४३ ॥ असम्यक्प्रेक्षणान्मोहाच्चेतस्सत्तांगृहीतवत् ॥ सम्मोहबीजकणिकांतमोर्कादिवदृश्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक जगत्‌को तथा अंतःकरणकी प्रतिबिंबताको यही आत्मसंवित् ऐसे विस्तार करती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा प्रकाशको ॥ ४१ ॥ इसलिये समस्त अन्तःकरणरूप हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) सब

भूतोंकी सृष्टिमें कारण है. और सबसे परे होनेसे प्रतिबिंबद्वारा कारण होकेभी शुद्धरूपसे अकारण है ॥ ४२ ॥ अविचार, अज्ञान वा मूढताको संसारकी सृष्टिका सारभूत जो अन्तःकरण है उसका कारण कहतेहैं ॥ ४३ ॥ विपरीत-संस्कारके ग्रहणरूप मोहसे भ्रमोंके बीजोंकी कणिकासहित चित्ताकार परिणामको आत्माहीने धारण कियाहै, क्योंकि सूर्यसे भासित राहुरूप तम जैसे देख पडताहै ऐसे अत्यंत असंभावित आत्माकी जन्ममरण आदि परंपरा इस अज्ञानसे देख पडती है ॥ ४४ ॥

यथाभूतात्मतत्त्वैकपरिज्ञानेनराघव ॥ असत्तामेत्यलंचेतोदीपेनेवतमःक्षणात् ॥ ४५ ॥ संसारकारणमितःस्वयंचेतोविचारयेत् ॥ जीवांतःकरणंचित्तंमनश्चेत्यादिनामकम् ॥ ४६॥ श्रीरामउवाच ॥ एताः संज्ञाःप्रभोब्रह्मंश्चेतसोरूढिमागताः ॥ कथमित्येवकथयमयिमानदसिद्धये ॥४७॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वेभावाइमेनित्यमात्मतत्त्वैकरूपिणः ॥ चित्तात्तरंगकगणाजलैककलितायथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी! इसप्रकार अनर्थका हेतु चित्त सत्य आत्मतत्वके ज्ञानसे क्षणमेंही ऐसे अभावको प्राप्त होताहै जैसे दीपसे अंधकार ॥ ४५ ॥ इसी चित्तके कारणसे संसारका कारण अज्ञान प्राप्तहुआहै ऐसा अधिकारी जनसमूहको विचारना चाहिये और जिसको विचारना चाहिये उसका जीव अंतःकरण, चित्त और मन इत्यादि नाम है ॥ ४६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो! ये संज्ञा चित्तकी किसयोगसे रूढिको प्राप्त हुई हैं सो मुझे पूर्वोक्तविचारकी सिद्धिकेलिये कृपाकरके कहिये ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! सब पदार्थ आत्मतत्वके साथ एकता अध्याससे एकरूप समष्टि चित्त ऐसे उत्पन्न हुयेहैं जैसे जलसे तरंग ॥ ४८ ॥

आत्मास्पंदैकरूपात्मास्थितस्तेषुक्वचित्क्वचित् ॥ तरंगेषुविलोलेषुपयोधेःसलिलंयथा ॥ ४९ ॥ क्वचिदस्पंदरूपात्मास्थितस्तेषुमहेश्वरः ॥ तरंगत्वमयातेषुजलभावोजलेष्विव ॥ ५० ॥ तत्रोपलादयोभावाअलोलाःस्वात्मनिस्थिताः ॥ सुराफेनवदुत्स्पंदालोलास्तुपुरुषादयः ॥ ५१ ॥ तत्रतेषुशरीरेषुसर्वशक्तिस्तदात्मनः ॥ कलिताज्ञानकलनातेनाज्ञानमसौस्थितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—स्पंदरूप आत्मा उनमें प्रतिबिंबरूपसे कहीं २ ऐसे स्थितहै जैसे चंचलतरंगोंमें समुद्रका जल ॥ ४९ ॥ और कहीं स्पन्दरूपके अभावसहित ऐसे स्थितहै जैसे तरंगदशामें अप्राप्त जलोंमें जलरूप ॥ ५० ॥ उन पदार्थोंमें पाषाण आदि चंचलतासे शून्य होके अपने आत्मामें स्थितहैं और मद्यके फेनके समान उत्कटचेष्टायुक्त और चंचल पुरुषआदि हैं ॥ ५१ ॥ उन सब शरीरोंमें उन २ पदार्थरूप परमात्माकी कल्पित अज्ञानकी कलनासे प्रसिद्ध सर्व-शक्ति है इसी हेतुसे कल्पित अज्ञानरूप वह परमात्मा स्वयं होके प्रलय और सुषुप्तिमें स्थितहै ॥ ५२ ॥

तदज्ञानमनंतात्मभूषितंजीवउच्यते ॥ ससंसारेमहामोहमायापंजरकुंजरः ॥ ५३ ॥ जीवनाज्जीवइत्युक्तोऽहंभावःस्यात्त्वहंतया ॥ बुद्धिर्निश्चायकत्वेनसंकल्पकलनान्मनः ॥ ५४ ॥ प्रकृतिःप्रकृतित्वेनदेहोदिग्धतयास्थितः ॥ जडःप्रकृतिभावेनचेतनःस्वात्मसत्तया ॥ ५५ ॥ जडाजडदृशोर्मध्यंयत्तत्त्वंपारमात्मिकम् ॥ तदेतदेवनानात्वंनानासंज्ञाभिराततम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रतिबिंबदशाको प्राप्त इस आत्मासे भूषितके तुल्य स्फुरण होताहुआ वही अज्ञान जीव कहा जाताहै और वह जीव इस संसारमें महामोहमयी मायाके पिंजरेका कुंजर है ॥ ५३ ॥ और जीवन (प्राण) धारण करनेसे जीव कहा गयाहै. मैं हुं ऐसा प्रथम कहनेसे अहंकार, पदार्थोंका निश्चय करनेसे बुद्धि, तथा संकल्प विकल्प करनेसे मन कहागयाहै ॥ ५४ ॥ तथा देह मनआदिका कारण होनेसे प्रकृति, बढनेसे देहरूप होके स्थितहै, अज्ञानकी प्रधानतासे जड, और चित्की प्रधानतासे चेतन कहाताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी! अज्ञान तथा उसके साक्षीके मध्यमें परमात्माके आभाससहित जो मनरूप तत्व है वही अनेकताको प्राप्त होकर जीव, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन आदि नानाप्रकारके नामोंसे व्याप्तहै ॥ ५६ ॥

एवंस्वरूपंजीवस्यबृहदारण्यकादिषु ॥ बहुधाबहुषुप्रोक्तंवेदांतेषुकिलानघ ॥ ५७ ॥ अज्ञैस्त्वेतासुसंज्ञासुकुविकल्पकुतार्किकैः ॥ मोहायकेवलंमूढैर्व्यर्थमास्थाःप्रकल्पिताः ॥ ५८ ॥ एवमेषमहाबाहोजीवस्संसारकारणम् ॥ सूकेनातिवराकेणदेहकेनेहकिंकृतम् ॥५९॥ आधाराधेययोरेकनाशेनान्यस्यनष्टता॥ यथातथाशरीरादिनाशेनात्मनिनष्टता ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी! इसप्रकार जीवका स्वरूप बृहदारण्यक तथा अन्य वेदांतके ग्रंथोंमें अनेकप्रकारसे कहा गयाहै, जैसे " प्राणन्नेव प्राणोनाम भवति वदन् वाग्भवति पश्यंश्चक्षुः " इत्यादि (वह आत्मा श्वासादिक्रियासे प्राण,

बोलनेसे वाक् और देखनेसे चक्षु होताहै) ॥ ५७ ॥ अज्ञानी दुर्बुद्धि और मूढ ऐसे तार्किकोंने लोकोंके मोहके निमित्त इन्द्री नामोंसे व्यर्थ अभिनिवेश कियाहै॥५८॥हे महाबाहो ! इसप्रकार जीवही संसारका कारण है और मूक तथा दीन शरीरने क्या किया है ॥ ५९ ॥ जैसे आधार (घट) और आधेय (जल) मेंसे एकके नाशमें अन्यका नाश नहींहोता इसीप्रकार शरीर आदिके नाशसें आत्मामें नष्टता नहींआती ॥ ६० ॥

एकपर्णरसेक्षीणेरसोनैतियथाक्षयम् ॥ यातिपर्णरसश्चार्करश्मिजालांतरेयथा ॥ ६१ ॥ शरीरसंक्षयेदेहीनक्षयंयातिकस्यचित् ॥ निर्वासनश्चेत्तद्व्योम्नितिष्ठत्यात्मपदेतथा ॥ ६२ ॥ देहनाशेविनष्टोऽस्मीत्येवं यस्यामतेर्भ्रमः ॥ मातुःस्तनतटात्तस्यमन्येवेतालउत्थितः ॥ ६३ ॥ यस्यह्यात्यंतिकोनाशःस्यादसावुदितःस्मृतः ॥ चित्तनाशोहिनाशःस्यात्समोक्षइतिकथ्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे एक पत्तेमें रसके क्षीण होनेसे रस क्षीण नहींहोता किंतु वह पत्तेका रस सूर्य्यके किरणोंमें मिलजाताहै ॥ ६१ ॥ शरीरके नष्ट होनेपर किसीका आत्मा नष्ट नहींहोता. यदि वह वासनासहित होतो वासनामें रहताहै और वासनारहित होनेसे चिदाकाशमें स्थित रहता है ॥ ६२ ॥ जिस निर्बुद्धिको यह भ्रम है कि देहके नाश होनेसे मैं नष्ट हुआहुं उसकी माताके स्तनतटसेभी वेताल प्रकट हुआहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ ६३ ॥ वज्रकी बेडीके समान जिस उपाधिका सर्वथा नाश होगयाहै वह जीव अपने ब्रह्मस्वभावका स्मरण करके निरतिशय आनंदके अभ्युदयको प्राप्त हुआहै क्योंकि उसप्रकार चित्तका नाश जीवकेलिये कहागयाहै ॥ ६४ ॥

मृतोनष्टइतिप्रोक्तोमन्येतच्चमृषाह्यसत् ॥ सदेशकालांतरितोभूत्वाभूत्वानुभूयते ॥ ६५ ॥ इहोह्यंतेजनैरेवंतरंगांतस्तृणैरिव ॥ मरणव्यपदेशासुदेशकालतिरोहितैः ॥ ६६ ॥ वासनावस्थितोजीवोयात्युत्सृज्यशरीरकम् ॥ कपिर्वनतरुंत्यक्त्वातर्वंतरमिवस्थितः ॥ ६७ ॥ पुनस्तदपिसंत्यज्यगच्छत्यन्यदपिक्षणात् ॥ अन्यस्मिन्विततेदेशेकालेऽन्यस्मिंश्चराघव ॥ ६८ ॥

अर्थ—और यह मरगया, नष्ट होगया, यह जो कथन है इसको मैं मिथ्या मानताहुं क्योंकि यह असत् है, वह जीव देशकालके अंतरमें होके पुनः शरीरांतरके ग्रहणमें अनुभूत होताहै ॥६५॥ इस संसारमें मरणनामयुक्त नदियोंमें तरंगोंके अंतर्गत तृणकेतुल्य देशकालमें तिरोहित जीवोंसे पूर्वोक्तकथनके अनुसार मरगया, नष्ट हुआ, उत्पन्नहुआ, बढा, सुखी और दुःखी है इत्यादि पदार्थोंकी कल्पना कीजाती है ॥ ६६ ॥ वासनामें स्थित जीव एकशरीरको त्यागके अन्यशरीरमें ऐसे जाताहै जैसे वानर वनके एकवृक्षको त्यागकर दूसरे वृक्षपर जाताहै ॥६७॥ हे रामजी ! इसीप्रकार क्षणभरमेंही उसकोभी त्यागकर अन्यमें जाताहै और पुनः अन्य विशालदेशकालमें उत्पन्नहोताहै ॥ ६८ ॥

इतश्चेतश्चनीयंतेजीवावासनयास्वया ॥ चिरंतदपिजीविन्याधूर्त्याधात्र्येवबालकाः ॥ ६९ ॥ वासनारज्जुवलिताजीर्णाःपर्वतकुक्षिषु ॥ जरयंत्यतिदुःखेनजीवितंजीवजीविकाः ॥ ७० ॥ जरठजरदुपोढदुःखभाराःपरिणतिजर्जरजीविताश्चसत्यः ॥ हृदयजनितवासनानुवृत्त्यानरकभरेजनताश्चिरंपतंति ॥ ७१ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेऽस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसारोपदेशो नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अर्थ—उन जीवोंकोभी चिरकालतक जिलाने अपनेही वासनासे जीव इधरउधर ऐसे प्राप्त कियेजातेहैं जैसे धूर्तके साथ समागम करनेवाली धायीसे बालक ॥ ६९ ॥ वासनारूप रज्जुसे बंधेहुये, और परस्परके उपयोगसे जीवनरूप हैं. जीविकासहित प्रथमसेही जीर्णजीव अतिदुःखसे अपने जीवनको जीर्ण करतेहैं ॥ ७० ॥ हृदयमें उत्पन्न वासनासे अनेक जनता (जनसमूह) जीर्णसेभी जीर्ण, दारिद्र्यवियोग आदि दुःखोंके भारोंको वहन करनेवाले, तथा नानाप्रकारकी योनियोंकी दुर्दशाके परिणामोंसे अतिशिथिल जीवनधारी होके चिरकालकेलिये नरकके समूहमें गिरते हैं ॥ ७१ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–श्रीमुनि वसिष्ठके इतना कहनेपर दिवसका अन्त होगया और सूर्य्यभगवान्भी सायंतनविधि करनेकेलिये अस्ताचलको गये, और स्नानसंध्याविधि करनेके अर्थ सभाभी बिदाहुई, और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यकी किरणके साथ पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ७२ ॥ त्रयोदशो दिवसः दिन १३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसारोपदेशो नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

शरीरके भौतिक होनेसे शोक मोह आदिकी अयोग्यता दृश्यदर्शनका सम्बन्ध और आत्मा साक्षात् शुद्ध है इन विषयोंका वर्णन इस ७२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहेजातेनजातोऽसिदेहेनष्टेननश्यसि ॥ त्वमात्मन्यकलंकात्मादेहस्तवनकश्चन ॥ १ ॥ यः कुंडबदरन्यायोयाघटाकाशसंस्थितिः ॥ तत्रैकस्मिन्क्षतेक्षीणेद्वेइतिव्यर्थकल्पना ॥ २ ॥ विनाशिनिविनष्टेऽस्मिन्देहेस्वांस्थितिमागते ॥ विनश्यामीतियःखेदीतंधिगस्त्वंधचेतसम् ॥ ३ ॥ यादृशोरश्मिरथयोःस्नेहोद्वेगविवर्जितः ॥ संबंधस्तादृशोदेहचित्तेंद्रियमुखैश्चितेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! देहके उत्पन्न होनेसे न तुम उत्पन्न होतेहो और न उसके नष्ट होनेसे नष्ट होतेहो, तुम तो अपने आत्मामें अकलंकस्वरूप स्थित हो. देह तुमारा कुछ नहीं है ॥ १ ॥ कुंड (कूंडा) और बदर (बेर) का जो न्याय है और घट तथा आकाशकी जो स्थिति है इनमेंसे एक (कुंडा वा घट) के नाश होनेसे दोनो अर्थात् कूंडेके नाशसे कूंडाबेर और घटके नाशसे घट तथा आकाश दोनोंका नाश होगया यह कल्पना व्यर्थ है ॥ २ ॥ विनाशी इस देहके नष्ट होके अपनी स्थितिमें प्राप्त होनेपर मैं नष्ट होताहुं इसप्रकार जो खेदवान् होताहै उस अन्धचित्तको धिक्कारहै ॥ ३ ॥ जैसे स्नेह तथा द्वेषसे वर्जित अश्व आदिका रज्जु और रथसे सम्बन्ध है ऐसेही देह इन्द्रिय तथा चित्तआदिके साथ चेतनका सम्बन्ध है ॥ ४ ॥

गतेतरेतरापेक्षःसरःपंकामलांभसाम् ॥ यथाराघवसंबंधस्तथादेहेंद्रियात्मनाम् ॥ ५ ॥ यादृशोध्वागताध्वानांनिरास्थापरिदेवनः ॥ संयोगोविप्रयोगश्चतादृशोदेहदेहिनोः ॥ ६ ॥ यथाकल्पितवेतालविकारभयभीतयः ॥ मिथ्यैवकल्पिताएतेतथास्नेहसुखादयः ॥ ७ ॥ भूतपंचकसंपिंडाद्रचिताजनताःपृथक् ॥ एकस्मादेवविटपाद्विचित्राइवपुत्रिकाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! जैसे तडागमें कीचड और निर्मलजलका परस्पर अनुराग है ऐसेही देह इन्द्रिय और आत्माकाभी है ॥ ५ ॥ जैसे मार्गगामी (राही) तथा मार्गका ममताके अभिमान तथा वियोगके विलापसे वार्जित संयोग वियोग है ऐसेही देह तथा आत्माका है ॥ ६ ॥ जैसे कल्पित वेतालके भयंकर मुख दांतआदिके स्मरणसे बालकको पुनः भयआदि होतेहैं ऐसेही आत्माके स्नेह सुख आदि मिथ्याही कल्पितहैं ॥७ ॥ मिलेहुये पंचभूतोंसे समस्त जनसमूह पृथक् २ ऐसे उत्पन्न हुयेहैं जैसे एकही वृक्षसे पृथक् २ प्रतिमा ॥ ८ ॥

काष्ठेतरत्काष्ठभारेकिंचिदन्यन्नदृश्यते ॥ भूतपिंडेतरद्देहेकिंचिदन्यन्नदृश्यते ॥९॥ भूतपंचकविक्षोभनाशोत्पादेषुहेजनाः ॥ हर्षामर्षविषादानांकिंभवंतोवशंगताः ॥ १० ॥ कोनामातिशयःपुंसांस्त्रीनाम्न्यपरनाग्निच ॥ पेलवेभूतसंघातेप्रोद्भूतजनपातवत् ॥ ११ ॥ सन्निवेशांशवैचित्र्यमज्ञानामेवतुष्टये ॥ तज्ज्ञानांतुयथाभूतभूतपंचकदर्शनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठके भारमें काष्ठके सिवाय और कुछ नहीं देखपडता ऐसेही इस देह पंचभूतके पिंड (मेल) के सिवाय और कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे जन ! पांचोभूतके क्षोभ, नाश और उत्पत्तिमें हर्ष क्रोध तथा विषादके वशमें क्यों प्राप्त होतेहो ॥ १० ॥ व्यामोह तथा रागसे पतंग जैसे अग्निमें गिरतेहैं ऐसेही स्त्रीरूप अन्यनामयुक्त तुच्छभूतके संघातरूप विषयअग्निमें गिरनेवाले पुरुषोंको कौनसी विशेषता है जिससे कि वे इसमें गिरनेकी चेष्टा करतेहैं ॥ ११ ॥ सुकुमारता तथा शरीरकी सुन्दरता आदिकी रचनाकी विचित्रतारूप विशेषता तो अज्ञानियोंकेही प्रसन्नताके लिये है और ज्ञानियोंको पदार्थ पंचभूतका दर्शनमात्र है ॥ १२ ॥

मिथःशिलापुत्रकयोर्यथैकोपलपुत्रयोः ॥ श्लिष्टयोरपिनोरागस्तथाचित्तशरीरयोः ॥ १३ ॥ मृत्पुंसांयादृशोन्योन्यमाशयःसंगमेभवेत् ॥ बुद्धींद्रियात्ममनसांसंगमेतादृशोऽस्तुते ॥ १४॥ नान्योन्यस्नेहसंबंधभाजनंशैलपुत्रकाः ॥ देहेंद्रियात्मप्राणाश्चकस्यात्रपरिदेवना ॥ १५ ॥ इतश्चेतश्चजातानियथासंश्लेषयंत्यलम् ॥ तरंगास्तृणजालानितथाभूतानिदेहदृक् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे एक पाषाणसे बनी दो प्रतिमाओंके मिलनेपरभी राग नहींहोता ऐसेही चित्त और शरीरकाभी है ॥ १३ ॥ मृत्तिकासे रचित पुरुषोंके समागम होनेपर जैसा ममतादिशून्य आशय होताहै वैसाही बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा और मनके समागममें तुमारा हो ॥१४॥ जैसे पर्वतसे घढीहुयी प्रतिमाओंका परस्पर प्रेम नहींहोता ऐसेही देह, इन्द्रिय, आत्मा तथा प्राणके अर्थ इस संसारमें किसका विलाप होसकताहै ॥ १५ ॥ जैसे भिन्न २ देशकालमें उत्पन्न तृणोंको तरंग एकत्र करती हैं ऐसेही पंचभूतोंको आत्मा ॥ १६ ॥

संयुज्यंतेवियुज्यंतेतृणान्यब्धिजलेयथा ॥ मुक्तांतःकलनंदेहेभूतान्यात्मनिवैतथा ॥ १७ ॥ आत्माचि ततयादेहभूतान्याश्लेषयन्स्थितः ॥ तृणान्यावृत्तवृत्तांतकलनोत्सिक्तमब्धिवत् ॥ १८ ॥ प्रबोधाचैत्य तांत्यक्त्वाव्रजत्यात्मात्मतांस्वयम् ॥ स्वस्पंदवशतोवारित्यक्त्वाच्छत्वमिवाच्छताम् ॥ १९ ॥ ततोवि श्लिष्टभूतौघोदेहंसंप्रतिपश्यति ॥ वायुस्कंधगतोजंतुर्वसुधामंडलंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे समुद्रके जलमें तृण मिलते और पृथक् होतेरहतेहैं ऐसेही रागादि अभिमानके त्यागपूर्वक पुत्र पशुआदि प्राणी तथा पंचभूत आत्मामे ॥ १७ ॥ जैसे समुद्र आवर्ताकार कल्पनासे बढेहुये वेषको प्राप्त होकर तृणोंको एकत्र करतेहुये स्थितहै ऐसेही चित्तस्वरूपको प्राप्त होकर आत्मा पंचभूतोंको एकत्र करतेहुये स्थितहैं ॥ १८ ॥ ज्ञानसे विषयरूपताको त्यागकर यह जीव अपने ब्रह्मरूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे संचलनसे मलिनताको प्राप्त जल अपनी मलिनताको त्यागकर स्वच्छरूपताको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ और प्रबोधसमयमें पांचोंभूतोंके समूहको पृथक् करनेवाला अपने देहको ऐसे देखताहै जैसे वायुमंडलमें स्थित आकाशचारी देवआदि भूमंडलको ॥ २० ॥

पृथक्भूतगणंदृष्ट्वादेहातीतोभवत्यजः ॥ परंप्रकाशमायातिसूर्यकांतिरिवाहनि ॥ २१ ॥ जानात्यथात्म नात्मानंमानमेयामयोज्झितम् ॥ मुक्तक्षीबतयेवांतःस्वांसंविदमनुस्मरन् ॥ २२ ॥ आत्मैवस्पंदतेविश्वंव स्तुजातैरिवोदितम् ॥ तरंगकणकल्लोलैरनंतांब्वंबुधाविव ॥ २३ ॥ एवंप्रायमहाबोधावीतरागागतैनसः॥ जीवन्मुक्ताश्चरंतीहमहासत्वपदंगताः ॥ २४ ॥

अर्थ—भूतोंके समूहको पृथक् २ देखकर देहातीत वह जीव अजन्मा होजाताहै और परमप्रकाशको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे दिनमें सूर्य्यकांतमणि ॥ २१ ॥ इसके अनंतर प्रमाण प्रमेय तथा विकारोंसे रहित अपने आत्माको ऐसे देखताहै जैसे मदिराके मदसे विनिर्मुक्त प्राणी स्मरण करताहुआ अपने पूर्वकालके ज्ञानको ॥ २२ ॥ इन सब वस्तुसमूहोंके रूपसे आविर्भूतके समान आत्माही यह सब चेष्टा ऐसे करताहै जैसे समुद्रमें तरंगके कणोंके कल्लोलसे अनन्तप्रकारका जल ॥ २३ ॥ इसप्रकार इस संसारमें महाबोधको वीतराग, पापरहित, और ब्रह्मपदको प्राप्त जीव-न्मुक्त महात्मालोग विचरतेहैं ॥ २४ ॥

यथाचरंतिविविधैर्मणिरत्नैर्महोर्मयः ॥ निरस्तवासनाश्चित्तव्यवहारैस्तथोत्तमाः ॥ २५ ॥ नकूलकाष्ठै र्जलधिर्नरजोभिर्नभस्तलम् ॥ नम्लायतिनिजैर्लोकव्यवहारैरिहात्मवान् ॥ २६ ॥ गतैरभ्यागतैःस्वच्छै श्चपलैर्मलिनैर्जडैः ॥ नरागोनांबुधेर्द्वेषोभोगैश्चाधिगतात्मनः ॥ २७ ॥ यन्मनोमननंकिंचित्समग्रंजग तिस्थितम् ॥ तच्चैत्योन्मुखचित्तस्वविलासोल्लसनंविदुः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें अनेकप्रकारके रत्नोंसे वेष्टितभी महातरंग विचरतेहैं ऐसेही वासनारहित ज्ञानी महात्मा-लोग रत्न आदिसे पूर्णभी चित्तसे पाषाणकी शिलाके सदृश उनसें व्यवहार करतेहैं ॥ २५ ॥ जैसे भूतलके काष्ठोंसे समुद्र और धूलियोंसे आकाश मलिन नहींहोता ऐसेही संसारके व्यवहारोंसे आत्मज्ञानी ॥ २६ ॥ उत्तमभोगोंसे राग और निकृष्टसे द्वेषको आत्मज्ञानी पुरुष ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे स्वच्छ वा मलिन चंचल तरंगादिके गमनागमनसे समुद्र ॥ २७ ॥ जो कुछ इस जगत्में स्थित है वह समस्तमनका मननमात्र और विषयकी ओर उन्मुख चेतनके विलासका उल्लास है ऐसा आत्मज्ञानी लोग जानतेहैं ॥ २८ ॥

यदहंयच्चभूतादिकालत्रितयभावियत् ॥ दृश्यदर्शनसंबंधविस्तारैस्तद्विजृंभते ॥२९॥ यद्दृश्यंतदसत्सद्वा दृष्टिमेकामुपाश्रितम् ॥ अन्यत्त्वलेपकंतस्माद्धर्षशोकदृशौकुतः ॥ ३० ॥ असत्यमेवासत्यंहिसत्यंसत्यं सदेवहि ॥ सत्यासत्यमसद्विद्धितदर्थेकिंनुमुह्यसि ॥ ३१ ॥ असम्यग्दर्शनंत्यक्त्वासम्यक्पश्यसुलो चन ॥ नकश्चिन्मुह्यतिप्रौढःसम्यग्दर्शनवानिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो कुछ "अहम्" में आदि सब तीनोंकालमें होनेवाला दृश्यदर्शनके संबंधके विस्तारोंसे भान होताहै वह सब मनही विकसित होरहाहै ॥ २९ ॥ दृश्य तथा दर्शनके मध्यदर्शन (दृक्) के आधीन सिद्धिवाला दृश्य सत् वा असत्रूपसे निर्णीत न होनेसे हर्षशोकके अयोग्य है और स्वयंसिद्ध दृक्रूप आत्मा तो असंग है इस-लिये हर्षशोककी दृष्टि कहां ? ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जो तुमारा हर्ष वा शोक असत्यकेलिये है वा सत्यकेलिये अथवा सत्यासत्यकेलिये इनमेंसे असत्य है वह तो असत्यही है उसके अर्थ हर्षशोक क्यों ? और सत्य जो है वह तो सत्य होनेसे नित्य प्राप्त है उसके लाभके अर्थ हर्ष और सदा प्राप्त होनेसे नाशप्रयुक्त शोकभी अयोग्य है और विरुद्ध दो धर्मोंका समावेश न होनेसे सत्यासत्यको तो मिथ्याही जानो उसकेलिये तुम क्यों मोहित होतेहो ? ॥ ३१ ॥ हे

उत्तमनेत्र रामजी ! असम्यक् (मिथ्या) दर्शनको त्यागकर सम्यक् दर्शनको देखो और सम्यक्दर्शनमें दृढ प्राणी कहीं मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ ३२ ॥

दृश्यदर्शनसंबंधविस्तारैस्तद्विजृंभते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेयत्सुखंपारमात्मिकम् ॥ ३३ ॥ अनुभूतिमयंतस्मात्सारंब्रह्मेतिकथ्यते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेसुखसंविदनुत्तमा ॥ ३४ ॥ ददात्यज्ञायसंसारंज्ञायमोक्षंसदोदयम् ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसुखमात्मवपुर्विदुः ॥ ३५ ॥ तद्दृश्यवलितंबंधस्तन्मुक्तंमुक्तिरुच्यते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसुखसंविदनामया ॥ ३६ ॥

अर्थ—और दृश्यदर्शनके सम्बन्धके विस्तारसे मनरूप आत्मा प्रकाशित होरहाहै और दर्शनके सम्बन्धमें जो परमात्मा सम्बन्धी अनुभवरूप सुख है वह वृत्ति तथा उपाधिकृत भेदके निराशसे जो सुख है वह अखण्डरूप ब्रह्मरूपही है ॥ ३३ ॥ इसलिये अनुभवरूपही सार ब्रह्म कहाताहै और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो सर्वोत्तम सुख संवित् है ॥ ३४ ॥ वह अज्ञानियोंकेलिये संसार देती है और ज्ञानियोंको सदा अभ्युदयको प्राप्त मोक्ष देती है, और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो अनुभवरूप सुख है वही आत्माका शरीर कहागयाहै वही सुख दृश्य (विषय) से वेष्टित होनेसे बंध और दृश्यसे मुक्त होनेसे मुक्ति कहाजाताहै और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें विकाररहित जो सुख संवित् है ३६

क्षयातिशयमुक्ताचेत्तन्मुक्तिःसोच्यतेबुधैः ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेयानुभूतिःस्वगोचरा ॥ ३७ ॥ दृश्यदर्शननिर्मुक्तातामालंब्यभवाभवः ॥ सौषुप्तीदृष्टिरेषाहियात्येवंसंप्रकाशते ॥ ३८ ॥ एवंचयातितुर्यत्वमेवंमुक्तिरितिस्मृता ॥ दृश्यदर्शनमुक्तायांयुक्तायांपरयाधिया ॥ ३९ ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसंविदस्यांतुराघव ॥ नात्मास्थूलोनचैवाणुर्नप्रत्यक्षोनचेतरः ॥ ४० ॥

अर्थ—वह क्षय तथा अतिशयसे निर्मुक्त होनेसे पंडितलोगोंसे मुक्ति कहीगई है और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो अनुभव है वही अखंड पूर्णानन्दका स्फुरणरूप ब्रह्म है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! दृश्यदर्शनसे निर्मुक्त जो सुख संवित् है उसको अवलम्बन करके तुम संसारसे रहित हो और इसप्रकार अपने सुखस्वरूपके अवलम्बन करनेसे सुषुप्तिकी जो वृत्ति है वह नष्ट होजाती है और अपने स्वरूपकी दृष्टि प्रकाश करती है ॥ ३८ ॥ इसप्रकार तुरीया अवस्था प्राप्त होती है और इसीप्रकार मुक्ति कहीगई है, और दृश्यदर्शनसे निर्मुक्त और परमबुद्धिसे युक्त यह संवित् है ॥ ३९ ॥ उसमें दृश्यदर्शनके सम्बन्धकी संवित् तुरीयाअवस्थाको प्राप्त होती है. और हे रामजी ! इस तुरीया अवस्थारूप मुक्तिमें आत्मा न स्थूल न अणु न प्रत्यक्ष न अप्रत्यक्ष रहताहै ॥ ४० ॥

नचेतनोनचजडोनचैवासन्नसन्मयः ॥ नाहंनान्योनचैवैकोनानेकोनाप्यनेकवान् ॥ ४१ ॥ नाभ्याशस्थोनदूरस्थोनैवास्तिनचनास्तिच ॥ नप्राप्योनातिचाप्राप्योनवासर्वोनसर्वगः ॥ ४२ ॥ नपदार्थोनापदार्थोनपंचात्मानपंचच ॥ यदिदंदृश्यतांप्राप्तंमनःषष्ठेंद्रियास्पदम् ॥ ४३ ॥ तदतीतंपदंयत्स्यात्तन्नकिंचिदिवेहतत् ॥ यथाभूतमिदंसम्यग्ज्ञस्यसंपश्यतेजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और न चैतन्यगुणका आश्रय है न जड है न अस्ति अर्थात् द्वितीय पदार्थ विकारसे युक्त है, न असत् है न अहं (मैं) रूप है न अन्यरूप है न एकत्वसंख्या और न अनेकत्वसंख्याका आश्रय है ॥ ४१ ॥ निजअनुभवरूप होनेसे न समीपस्थ न दूरस्थ है, सत्तारूप होनेसे न सत्ताका आश्रय है न अभावका, अपना बोधरूप होनेसे न प्राप्य है न सर्वथा अप्राप्य है, सबसे पृथक् होनेसे न सर्वरूप है न सर्वगामी है ॥ ४२ ॥ वाणीका अविषय होनेसे न पदार्थरूप है और तुरीयावस्थाका लक्ष्य होनेसे अपदार्थभी नहीं है. पंचभूतोंका आत्मा यहभी पंचभूतरूपभी नहीं है, किंतु यह जो कुछ दृश्यरूपताको प्राप्त है वह षष्ठ (छठें) इन्द्रियके योग्य मनही है ॥ ४३ ॥ और उस मनसे परे जो आत्मतत्त्व है वह कुछ नहीं है यह नहीं किन्तु यथास्थित (मिथ्या) इस जगत्को देखनेवालेको सब कुछ वही है४४॥

सर्वमात्ममयंविश्वंनास्त्यनात्ममयंक्वचित् ॥ काठिन्यद्रवणस्पंदखावकाशावलोकनैः ॥ ४५ ॥ आत्मैवसर्वसर्वेषुभूवार्यनिलखाग्निषु ॥ सत्तैवास्तिनवस्तूनांयायारामचिताविना ॥ व्यतिरिक्तंततोऽस्मीतिविद्धिप्रोन्मत्तजल्पितम् ॥ ४६ ॥ एकोजगंतिसकलानिसमस्तकालकल्पक्रमांतरगतानिगतागतानि ॥ आत्मैवनेतरकलाकलनास्तिकाचिदित्थंमतिर्भवतयातिगतोमहात्मन् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—सब यह जगत् आत्मामय है और आत्मासे भिन्न कुछभी नहीं हैं. और काठिन्य, द्रव, संचलन, अवकाश तथा प्रकाशके दर्शनोंसे ॥ ४५ ॥ आत्माही सब पृथिवी, जल, वायु, आकाश तथा अग्निमें सबरूप धारण क॰

रके नटके समान स्थितहै. हे रामजी ! वस्तुओंकी सत्ताही नहीं है जो चित्के बिना हो और आत्मासे भिन्न मैं हुं इस कथनको उन्मत्तका प्रलय समझो ॥ ४६ ॥ हे महात्मन् रामजी ! संपूर्ण देश तथा कालमें और अनंतकल्पोंके क्रमोंमें, तथा मध्यमे प्रविष्ट जो अनेक ब्रह्मांड हैं और उन ब्रह्मांडोंमें अनेकप्रकारके जीवोंके गमनागमनरूप संचार हैं यह सब एक आत्माही है इसमें कोई अन्यकलाकी कल्पना नहीं हैं, तुम इसप्रकारकी बुद्धिसे युक्त होकर उस बुद्धिसेभी परे होके संसारसे अतीत (परे) होजाओ ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

दो अहंभावना ग्राह्य हैं और अन्य अहंभावना त्याज्य है और तीनों अहंभावनाके अभावमें मुक्तिकी अनिच्छा इस ७३ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंविचारयादृष्ट्याद्वैतत्यागेनराघव ॥ स्वभावःप्राप्यतेतज्ज्ञैस्तज्ज्ञैश्चिंतामणिर्यथा ॥ १ ॥ अथेमामपरांदृष्टिंशृणुरामानयायथा ॥ द्रक्ष्यस्यात्मानमचलंभविष्यसिचदिव्यदृक् ॥ २ ॥ अहंखमहमादित्योदिशोहमहमप्यधः ॥ अहंदैत्याअहंदेवालोकाश्चाहमहंमहः ॥ ३ ॥ अहंतमोऽहमभ्राणिभूःसमुद्रादिकंत्वहम् ॥ रजोवायुरथाग्निश्चजगत्सर्वमिदंत्वहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार द्वैतके त्यागसे विचारकी दृष्टिसे आत्मज्ञानी लोग स्वभाव अर्थात् अपने आत्माके स्वरूपमें स्थितरूप मुक्तिको ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे चिंतामणिके ज्ञाता देवताआदि चिंतामणिको ॥ १ ॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् इस दृष्टिको तुम सुनो जिसप्रकार इस दृष्टिसे दृश्यके स्वरूपको तथा अचल अपने आत्माको जानोगे और दिव्यदृष्टिभी होजाओगे ॥ २ ॥ वह यह कि मैं (आत्मा) आकाश हुं, मैंही सूर्य्य और सब दिशा हुं, मैंही ऊपर और नीचे हुं, दैत्य मैं हुं, देवता मैं हुं, सब लोक मैं और चन्द्रमा आदिकी प्रभा मैं हुं, अंधकार मैं हुं, मेघमंडल मैं हुं, पृथिवी और समुद्रआदि मैं हुं, धुलि मैं हुं, अग्नि मैं हुं, और यह संपूर्ण जगत् मैं हुं॥४॥

जगत्रयेऽहंसर्वत्रयआत्मैवकिलास्थितः॥कोऽहंकिमन्यद्देहादिद्वित्वमेकस्यकीदृशम्॥५॥ इतिनिश्चयवानंतर्भूतमात्मतयाजगत्॥ पश्यहर्षविषादाभ्यांनावशःपरिभूयसे॥६॥ तन्मयेऽस्मिन्किलजगत्यखिलेसंस्थितेऽनघ ॥ किमात्मीयंपरंकिंस्यात्कमलेक्षणकथ्यताम्॥७॥ किंतज्ज्ञव्यतिरेकेणविद्यतेयदुपागतम्॥ हर्षमेतुविषादंवाविषादेऽज्ञोजगन्मयः ॥ ८ ॥

अर्थ—तीनों लोकमें मैं आत्माही नियश्चरूपसे स्थित हुं, सबसे पृथक् परिच्छिन्न मैं क्या हुं अर्थात् कुछ नहीं. मुझसे अन्य देहादिभी क्याहै, और सर्वभूत एक जो मैं हुं उसका स्वगत (निज) भेदभी कैसाहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करके नियश्चयुक्त होकर संपूर्ण जगत् आत्मारूपसे देखो तब तुम हर्षशोकसे अवश होके पराजित नहीं होओगे ॥ ६ ॥ हे कमलनेत्र तथा पापरहित रामजी ! इस संपूर्ण जगत्के आत्मामय स्थित होनेपर क्या अपना है और क्या अन्यका है सो कहो ॥ ७ ॥ जगत्में यदि कुछ प्राप्तहै वह आत्मज्ञानीसे पृथक् क्याहै कि जिसकेलिये वह हर्ष वा विषादको प्राप्तहो. और यदि विषादको प्राप्त हो तो वह अज्ञ जगन्मय है न कि चिन्मय ॥ ८ ॥

अहंकारदृशावेतेसात्विकेद्वेऽतिनिर्मले ॥ तत्त्वज्ञानात्प्रवर्तंतेमोक्षदेपारमार्थिके॥९॥ परोऽणुस्सकलातीतरूपोऽहंचेत्यहंकृतिः ॥ प्रथमासर्वमेवाहमित्यन्योक्ताऽरघूद्वह ॥ १० ॥ अहंकारदृगन्यातुतृतीयाविद्यतेऽनघ ॥ देहोऽहमितितांविद्धिदुःखायैवनशांतये ॥११॥ अथचैतत्रयमपित्यक्त्वासकलसिद्धये ॥ यच्छेषंतदुपालंब्यतिष्ठावष्टब्धतत्परः ॥ १२ ॥

अर्थ—ये वक्ष्यमाण दो अहंकारकी दृष्टि निर्मल और सात्विक हैं, और तत्वज्ञानसे होती हैं, तथा मोक्षदायक और पारमार्थिक हैं ॥९॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! आकाशसेभी सूक्ष्म सबसे परे चित्रूप आत्मा मैं हुं यह अहंकार प्रथम है और सब कुछ मैं हुं यह अहंकार द्वितीय है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! तृतीय अहंकार यह है कि यह देह मैं हुं, उसको तो तुम दुःखकेही अर्थ समझो न कि शांतिकेलिये ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर तुम तीनों अहंकारोंको त्यागकर जो शेष निरहंभावरूप पूर्ण चिन्मात्र है उसका अवलंबन करके उसीमें तत्पर होके स्थित रहो ॥ १२ ॥

सर्वातीतस्वरूपोऽपिसर्वसत्तातिगोऽपिच ॥ असत्तापूरितजगदस्त्येवात्माप्रकाशकः ॥ १३ ॥ स्वानुभू त्यैवपश्याशुसएवासिसदोदितः ॥ साशयंहृदयग्रंथिंत्यजतत्त्वविदांवर ॥ १४ ॥ नात्मास्त्यनुमयाराम नचाप्तवचनादिना ॥ सर्वदासर्वथासर्वसप्रत्यक्षोऽनुभूतितः ॥१५॥ यदिदंस्पर्शनंस्पंदंकिंचिद्यत्संविदा व्यपि ॥ तत्सर्वमात्माभगवान्दृश्यदर्शनवर्जितः ॥ १६ ॥

अर्थ—सबसे अतीतस्वरूपभी, सबसत्तासे परेभी वह अपनी बाधरूप शक्तिसे जगत्को पूर्ण करनेवाला स्वप्रकाशरूप आत्मा है ॥ १३ ॥ हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! तुम शीघ्र अपने अनुभवसे देखो कि जो सदा उदयको प्राप्त है वही आत्मा तुम हो, और देहादिकी वासनासहित हृदयकी ग्रंथिको त्यागो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आत्मा अनुभव वा शब्दप्रमाणसे गम्य नहीं है किंतु सदासर्वथा सबरूप वह अनुभवसेही प्रत्यक्ष है ॥ १५ ॥ बाह्य तथा आभ्यन्तरकी वृत्तिकी चेष्टासे साक्षात् पदार्थोंका प्रत्यक्षरूप जो दर्शन है अनुमान, उपमान, तथा शब्दप्रमाण-जनित जो संविद् है वह सब दृश्य तथा अंतःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके त्यागसे भगवान् आत्माही है ॥ १६ ॥

नसन्नासन्नसौदेवोनाणुर्नापिमहानसौ ॥ नाप्येतयोर्द्वशोर्मध्यंसएवेदंचसर्वतः ॥ १७ ॥ सएवचैवंवद तिसचवक्तुंनयुज्यते ॥ नतदन्यदिदंतातपश्यात्मानमनामयम् ॥ १८ ॥ नात्मायमयमप्यात्मासंज्ञाभेद इतिस्वयम् ॥ तेनैवसर्वगतयाशक्त्यास्वात्मनिकल्पितः ॥ १९ ॥ संस्थितःसहिसर्वत्रत्रिषुकालेषुभा स्वरः ॥ सूक्ष्मत्वात्सुमहत्वाचकेवलंनविभाव्यते ॥ २० ॥

अर्थ—वहआत्मा सत्ताका आश्रय नहीं और असत् है, न वह देव अणु है, न यह महान् है, और न सत् असत्दृष्टिके मध्य सत्यासत्यरूप है, किन्तु यह सब कुछ वही है ॥ १७ ॥ वह आत्मा है, यह प्राणि कहाता तो है परंतु वह कथनके योग्य नहीं है. हे प्रिय रामजी ! उससे अन्य यह कुछ नहीं है, इससे सर्वत्र विकाररहित उस आत्माको देखो ॥ १८ ॥ यह आत्मा है, यह आत्मा नहीं है, इस नामरूपके विभागको उस आत्माने अपनी सर्वगामिनी अज्ञानशक्तिसे अपने आत्मामें कल्पित कियाहै ॥ १९ ॥ वह प्रकाशमान आत्मा तीनों कालमें सर्वत्र स्थितहै और अतिसूक्ष्म तथा महान् होनेसे स्थूलदेहादि पदार्थोंमें आसक्तबुद्धिवाले पुरुषोंसे विचारनेके योग्य नहीं है ॥ २० ॥

सत्स्वनंतपदार्थेषुजीवत्वेनाभिबिंबति ॥ आत्मापुर्यष्टकादर्शेस्वभाववशतःस्वतः ॥ २१ ॥ पुर्यष्टकोद यादेवस्वयमात्मानुभूयते ॥ सर्वदासर्वसंस्थःखेघनास्पंदादिवानिलः ॥ २२ ॥ चिदात्मासर्वगोव्यापी नक्वचिन्नासससंस्थितः ॥ यद्वत्सर्वपदार्थानांसत्तातद्वन्महेश्वरः ॥ २३ ॥ सतिपुर्यष्टकेतस्मिञ्जीवःस्फुर तिनोपले ॥ सतिवायाविवरजःसतिदीपइवेक्षणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—सृष्टिके क्रमसे उत्पन्न अनेक भोग्य तथा भोगके स्थानोंके विद्यमान रहतेभी पुर्य्यष्टक (लिंगशरीर) रूप दर्पणमें अपने स्वभाववश जीवरूपसे प्रतिबिंबित होताहै ॥ २१ ॥ सर्वदा सबमें स्थितभी आत्मा लिंगशरीरमें उदय होनेसे अहम् इस रूपसे प्रकट ऐसे अनुभूत होताहै जैसे आकाशमें व्यजनआदिसे अभिघात करनेसे वायु ॥२२॥ चित्स्वरूप सर्वव्यापी आत्मा कहीं देहमात्रमेंही स्थितहै यह बात नहीं है किन्तु जैसे सब पदार्थोंकी सत्ता है वैसा वह महेश्वर आत्माभी स्थितहै ॥ २३ ॥ उस लिंगशरीरके विद्यमान रहते जीव ऐसे स्फुरित होताहै जैसे वायुके रहते धूलि उडती है और दीपक रहते प्रकाश होताहै ॥ २४ ॥

इयंपुर्यष्टकेस्वेच्छास्वात्मन्येवात्मनिस्थिते ॥ सतिस्फुरत्यभ्युदितेभानाविवजनैषणा ॥ २५ ॥ यदिसू र्येस्थितेव्योम्नितादृशोचितसंस्थितिः ॥ नश्यतिव्यवहारोऽयंभास्करेतत्किमागतम् ॥ २६ यद्यात्मनि स्थितेदेवेतत्सतालब्धसंस्थितिः ॥ देहोनाशमुपायातितत्किंनष्टमिहात्मनि ॥ २७ ॥ नजायतेनम्रियते नादत्तेनाभिवांछति ॥ नमुक्तोनचबद्धोऽयमात्मासर्वस्यसर्वदा ॥ २८ ॥

अर्थ—लिंगशरीरके रहते जो विचित्रभोगकी इच्छा है वह परमप्रेमास्पद निरातिशयानन्द आत्माके स्फुरित होनेपरही ऐसे होती है जैसे आकाशमें सूर्य्यके स्फुरित रहनेपर उस समयके उचित सबजनोंकी क्रियाके फलकी इच्छा, क्योंकि सबमें आत्माहीके प्रसन्नार्थ है ॥ २५ ॥ और यदि सूर्य्यके आकाशमें स्थित रहनेपर उस समयके फलके अनुकूल जिसकी स्थिति है ऐसा यह व्यवहार नष्ट होजाय तो इसमें सूर्य्यमें क्या विशेषता प्राप्त हुई ॥ २६ ॥ ऐसेही आत्मदेवके स्थित रहते उस आत्माकी सत्तासे प्राप्त स्थिति यह देह नाशको प्राप्त हो तो आत्माका क्या नष्ट हुआ ॥ २७ ॥ यह सब प्राणिमात्रका आत्मा न उत्पन्न होताहै न मरताहै, न ग्रहण करताहै, न कुछ चाहताहै, न बद्ध है और न मुक्त है ॥ २८ ॥

आत्माप्रबोधाभ्युदितानिरात्मन्यात्मतांगता ॥ सर्परज्जुभ्रमाकाराभ्रांतिर्दुःखायकेवलम् ॥ २९ ॥ अनादित्वान्नजातोऽयमजातत्वान्ननश्यति ॥ आत्मात्मव्यतिरिक्तंतुनाभिवांछत्यसंभवात् ॥३०॥ दिक्कालाद्यनवच्छेदान्नबद्धोऽयंकदाचन॥ बंधाभावेक्रमुक्तिःस्यादमोक्षस्तेनसंस्थितः ॥ ३१ ॥ एवंगुणविशिष्टोऽयमात्मासर्वस्यराघव ॥ अविचारवशान्मूढोलोकोऽयंपरिरोदिति ॥ ३२ ॥

अर्थ—और आत्मा अज्ञानसे उदित, अनात्मामें आत्मताको प्राप्त, रज्जुमें सर्पके भ्रमके आकारवाली यह देहादिमें आत्माकी भ्रांतिके बल दुःखहीके लिये है ॥ २९ ॥ अनादि होनेसे यह आत्मा कदापि उत्पन्न नहीं हुआ, और न उत्पन्न होनेसे नष्ट नहींहोता. और यह आत्मा अपनेसे पृथक् किसीको नहींचाहता. क्योंकि आत्मासे भिन्नका असंभव है ॥ ३० ॥ देशकालादिसे अपरिच्छिन्न होनेसे यह कदाचित् बद्ध नहींहोता, और बद्ध न होनेसे मुक्ति कहां और किसकी, इसलिये मोक्षका अभाव स्थितहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकारका स्वभावसहित सबका आत्मा है, अविचारकेही बससे यह मूढ संसार होताहै ॥ ३२ ॥

सम्यगालोकिताशेषपूर्वापरजगत्क्रमः ॥ माशोकंगच्छसुमतेमौर्ख्योपगतलोकवत् ॥३३ ॥ द्वेएवकलने त्यक्त्वामोक्षबंधात्मिकेयथा ॥ विदुषाव्यवहर्त्तव्यंयंत्रेणेवात्ममौनिना ॥ ३४ ॥ नमोक्षोनभसःपृष्ठेनपातालेनभूतले ॥ मोक्षोहिचेतोविमलंसम्यग्ज्ञानविबोधितम् ॥ ३५ ॥ सकलाशास्वसंसक्त्यायत्स्वयंचेतसःक्षयः ॥ समोक्षनाम्नाकथितस्तत्त्वज्ञैरात्मदर्शिभिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे सुमते रामजी ! भलीभांति पूर्वापर संपूर्ण जगत्का क्रम विचारकरके मूर्खताके अनुयायीजनोंके सदृश तुम शोकको न प्राप्त होओ ॥ ३३ ॥ बंधमोक्षरूप दोनो कल्पनाओंको त्यागकर विद्वान्को ऐसे मौन होके व्यवहार करनाचाहिये जैसे गोधूम (गेहुं) पीसनेमें जलयंत्र ॥ ३४ ॥ मोक्ष न तो आकाशमें है, न पातालमें, और न भूतलमें है, किंतु उत्तम आत्मज्ञानसे बोधित विमलचित्तही मोक्ष है ॥ ३५ ॥ सब प्रार्थनीय पदार्थोंमें जो आसक्तिके अभावसे चित्तका स्वयं क्षय होनाहै उसीको उसके ज्ञाता आत्मज्ञानियोंने मोक्ष कहाहै ॥ ३६ ॥

यावत्प्रबोधोविमलोनोदितस्तावदेवसः ॥ मौर्ख्याद्दीनतयाराम भक्त्यामोक्षोऽभिवांछयते ॥ ३७ ॥ परंप्रबोधमासाद्यचित्तेचित्तत्वतांगते ॥ दशमोक्षानवांछ्यंतेकिमुतैकोहिमोक्षकः ॥ ३८ ॥ अयंमोक्षस्त्वयंबंधःपेलवांकलनामिति ॥ परित्यज्यमहात्यागीसत्वमेवभवाभव ॥ ३९ ॥ परिगलितविकल्पनांप्रयातःसगरसुतौघनिखातमेखलांकम् ॥ अवनिवलयमंतरस्तसंगश्चिरमनुपालयसर्वदोदितश्रीः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे स्वात्मविचारो नाम त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक विमल आत्मज्ञान नहीं उदयको प्राप्त हुआहै तभीतक वह पुरुष दीन होके भक्तिआदिसे मोक्षकी वांछा करताहै ॥ ३७ ॥ परमज्ञानको प्राप्त होकर चित्तके ब्रह्मदशामें प्राप्त होनेपर आत्मासे भिन्न दशमोक्षभी नहीं वांछित होते तो एक तुच्छ मोक्षकी क्या गणना ॥ ३८ ॥ हे संसाररहित रामजी ! यह बंध है, यह मोक्ष है, इस तुच्छ कल्पनाको त्यागकर महात्यागी मोक्षरूप तुमही होजाओ ॥ ३९ ॥ नष्ट होगई हैं कल्पना जिसकी ऐसी दशाको प्राप्त आभ्यन्तरसे संगरहित और सदा उदित शोभाको धारणकरनेवाले तुम चिरकालतक सगरके पुत्रोंसे खनीहुई समुद्ररूप मेखलासे चिन्हित इस पृथिवीरूप वलय (कंकण) को पालन करो ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे स्वात्मविचारो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

प्रमाद (अज्ञान) से यह संसारकी भ्रांति होती है और ज्ञानसे आत्मामें पूर्णता होती है, तथा जीवन्मुक्तिके गुणोंकी पंक्ति इस विषयका विस्तारसे इस ७४ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ लीलयापश्यतिवपुःकालेनात्मनिजायते ॥ रम्यस्यापश्यतोवक्रंहृदिदौरूप्यधीरिव ॥ १ ॥ तद्वशादियमायातामहतीमेदुरोदरा ॥ मायामदमहाशक्तिःसुरास्वादलवादिव ॥ २ ॥ तयानयाविकारिण्यातदतद्भावभूतया ॥ इदंसंपन्नमखिलंतापादिवमरीपयः ॥ ३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोवासनाश्चेंद्रियाण्यपि ॥ एवंकलितनामांकैःस्फुरत्यात्माब्धिरंबुभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-प्रलय तथा सुषुप्तिमें अज्ञानसे आच्छादित होनेसे परमप्रेमास्पद अपने स्वरूपको आत्माके न देखनेपर काम कर्म वासनाके परिपाकसे क्रमप्राप्त सृष्टि तथा जागरणकालमें चेतनकी लीलामात्रसे सूक्ष्म स्थूल तथा समष्टिव्यष्टिशरीर ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे रम्य स्त्रीपुत्रआदिके मुख न देखनेसे विरहीपुरुषके हृदयमें म्लानि, कृशता, तथा कुरूपताआदिसे उदासीनता उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ इन्ही सूक्ष्म स्थूल तथा समष्टिव्यष्टिशरीरमें अहंभावसे, अध्याससे यह महान् उदरवाली माया ऐसे प्राप्त हुई है जैसे मदिराके आस्वादसे महामदकी शक्ति ॥२॥ पुण्यपापकी वासनादि अनर्थकी परम्परारूप विकारमयी और आत्माके अन्यथा भावसे उत्पन्न उस मायाहीसे यह सम्पूर्ण जगत् ऐसे उत्पन्न हुआहै जैसे अधिकतापसे मरुस्थलमें जल ॥ ३ ॥ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, वासना और इन्द्रियां इत्यादि कल्पित नामरूप चिन्हसहित आत्मस्वरूप जलोंसे आत्मा ऐसे स्फुरित होताहै जैसे जलसे समुद्र॥४

चित्ताहंकारयोर्द्वित्वंवचस्यस्तिनवस्तुतः ॥ यच्चित्तंसह्यहंकारोयोऽहंकारोमनोहितत् ॥ ५ ॥ व्यतिरिक्तं हिमाच्छौक्ल्यमितिसंकल्प्यतेयथा ॥ मुधैवकल्प्यतेभेदश्चित्ताहंकारयोस्तथा ॥ ६ ॥ मनोहंकारयोरंतर्द्वयोरेकतरक्षये ॥ क्षीणेद्वेएवहियथापटशौक्ल्येपटक्षये ॥ ७॥ तुच्छांमोक्षधियंत्यक्त्वाबंधबुद्धिंतथैषणाम् ॥ स्ववैराग्यविवेकाभ्यांकेवलंक्षपयेन्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—पदार्थोंके मननसे मन, चेतनसे चित्त, निश्चयसे बुद्धि, और अभिमान करनेसे अहंकार, ये सब एकही अंतःकरणके नाम हैं, इसलिये चित्तअहंकारका जो द्वित्व (दो भेद) कथनमात्रके हैं न कि यथार्थ, क्योंकि जो चित्त है वही अहंकार, और जो अहंकार है वही मन है ॥ ५ ॥ जैसे हिम (बर्फ) से शुक्लता पृथक् है यह मिथ्याही लोग कल्पित करते हैं ऐसेही चित्तअहंकारका भेदभी मिथ्याही कल्पित है ॥ ६ ॥ मन और अहंकारके मध्यमें एकके क्षीण होनेपर दोनों ऐसे क्षीण होजातेहैं जैसे पटके नष्ट होनेपर पट और शुक्लता ॥ ७ ॥ तुच्छ मोक्षबुद्धिको त्यागके अनन्तर बंधबुद्धि और धनपुत्रादि एषणाकोभी त्यागकर अपने वैराग्य तथा विवेकसे केवल मनको नष्ट करै ॥ ८ ॥

मोक्षोमेस्त्वितिचिंत्तांतर्जाताचेदुत्थितंमनः ॥ मननोत्केमनस्युच्चैर्वपुर्दोषायकेवलम् ॥ ९ ॥ आत्मन्यतीतेसर्वत्मात्सर्वभूतेथवातते ॥ कोबंधःकश्चवामोक्षोनिर्मूलंमननंकुरु ॥ १० ॥ वायुःस्पंदनधर्मत्वाद्यदाचलतिदेहके ॥ तदास्फुरतिहस्तांगरसनापल्लवावली ॥ ११ ॥ पादपेपल्लवश्रेणींचालयत्यनिलोयथा ॥ तथैवांगावलींवायुर्देहेसंचालयत्यलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मुझे मोक्ष प्राप्त हो ऐसी इच्छा यदि चित्तमें उत्पन्न हुई तो समझना चाहिये कि मन प्रबलतासे आविर्भूत हुआहै, और मनके मननकी ओर उत्कंठित होनेपर वही (मन) शरीरका आकार धारण करके केवल दोषकेही अर्थ होताहै ॥ ९ ॥ सबसे परे अथवा सर्वभूतमें व्याप्त आत्माके स्थित होनेपर क्या बंध और क्या मोक्ष है, इसलिये तुम अपने मनको मननसे रहित करो ॥ १० ॥ प्राणवायु संचलनधर्म होनेसे जब इस तुच्छदेहमें चलताहै तब हस्त पाद अंग तथा जिव्हारूप पल्लवोंकी पंक्ति चलती है ॥ ११ ॥ जैसे वृक्षमें पल्लवोंकी पंक्तिको वायु संचालित करताहै ऐसेही देहमें अंगोंकी पंक्तिको प्राणवायु संचालित करताहै ॥ १२ ॥

चित्सर्वव्यापिनीसूक्ष्मानचलानैवचाल्यते ॥ नस्वतःस्पंदमायातिदेवाचलइवानिलैः ॥ १३ ॥ प्रतिबिंबितसर्वार्थाकेवलंस्वात्मनिस्थिता ॥ प्रकाशयतिबोधेनजगंतीमानिदीपवत् ॥ १४ ॥ तत्रकोऽयंमुधामोहोभवतामतिदुःखदः ॥ अयंसोऽहंममांगानिममेदंचेतिदुर्धियाम् ॥ १५ ॥ इतिकल्लोलहतयादृशानित्यमनित्यया ॥ ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वक्रियासमुपलभ्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—और सर्वव्यापिनी चित् न चल है और न किसीसे चलायमान होती है, और स्वयं ऐसे नहीं चलीत होती जैसे पवनोंसे पर्वत ॥ १३ ॥ सब पदार्थोंमें प्रतिबिंबित अपने स्वरूपमें स्थित यह चित् ज्ञानद्वारा अनेक ब्रह्मांडोंको ऐसे प्रकाशित करती है जैसे दीप घट पट आदि पदार्थोंको ॥ १४ ॥ इसमें आप सब दुर्बुद्धियोंको यह देहादि मैं हुं, यह मेरे अंग तथा धन है इत्यादि अतिदुःखदायक मिथ्यामोह कहांसे हुआ ॥ १५ ॥ इसप्रकार आत्मासे अत्यंत विरुद्धधर्मयुक्त इस शरीरमें अविद्याके तरंगरूप रागादिसे नष्ट सदा अनित्यदृष्टिसे ज्ञानित्व, कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वआदि धर्ममयी क्रिया प्राप्त होती है ॥ ॥ १६ ॥

तत्रायमयमागंताभोक्ताकर्त्तेतिजायते ॥ मुधैवाज्ञाततापोत्थामृगतृष्णेववासना ॥ १७ ॥ अज्ञतैषामनोमत्तमृगंविषयतर्षुलम् ॥ असत्यैवहिसत्येवमृगतृष्णेवकर्षति ॥ १८ ॥ विज्ञातासत्यरूपांगनाशंयातिप

लायते ॥ विप्रमध्यात्परिज्ञातायथाचांडालकन्यका ॥ १९ ॥ अविद्यासंपरिज्ञातानचैनंपरिकर्षति ॥ मृगतृष्णापरिज्ञातातर्षुलंनावकर्षति ॥ २० ॥

अर्थ—उसीमें यह मैं आगंता, भोक्ता, तथा कर्ता हुं इत्यादि मिथ्यावासना ऐसे होती है जैसे अज्ञाततापसे उत्पन्न मृगतृष्णा ॥ १७ ॥ असत्यरूपसे न जानी हुई सत्यके समान यह अविद्यामत्त तथा विषयमें लुब्ध इस मनरूप मृगको ऐसे खींचती है जैसे मृगको मृगतृष्णा ॥ १८ ॥ हे प्रिय रामजी ! असत्यरूपसे जानीहुई यह अविद्या नाशको प्राप्त होकर ऐसे भागती है जैसे ब्राह्मणोंके मध्यसे जानीहुई चाण्डालकी कन्या ॥ १९ ॥ जानीहुई यह अविद्या मनरूप मृगको ऐसे नहीं खींचती जैसे जानी हुई मृगतृष्णा तृषासे पीडित मृगको ॥ २० ॥

परमार्थावबोधेनसमूलंरामवासना ॥ दीपेनेवांधकारश्रीर्गलत्यालोकएतिच ॥ २१ ॥ नास्त्यविद्येतिसंजातेनिश्चयेशास्त्रयुक्तितः ॥ गलत्यविद्यातापेनतुषारकणिकायथा ॥ २२ ॥ देहस्यास्यजडस्यार्थेकिंभोगैरितिनिश्चयः ॥ भिनत्त्याशामलंज्ञातापंजरंकेसरीयथा ॥ २३ ॥ आशापरिकरेरामनूनंपरिहृतेहृदा ॥ पुमानागतसौंदर्योह्लादमायातिचंद्रवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमार्थ (आत्मा) के ज्ञानसे मूल (अविद्या) सहित यह वासना ऐसे नष्ट होती है जैसे दीपसे अंधकारकी शोभा और परमप्रकाश प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ शास्त्र तथा युक्तिसे यह निश्चय होनेसे कि अविद्या नहीं है तब यह अविद्या ऐसे गलित होजाती है जैसे तापसे हिमकी कणिका ॥ २२ ॥ इस जडदेहकेलिये भोगोंसे क्या प्रयोजन है ऐसा जिसका निश्चय है वह मनुष्य आशारूपमलको ऐसे भेदन करताहै जैसे पिंजरेको सिंह ॥ २३ ॥ आशाके परिवार देहाभिमान आदि हृदयसे नष्ट होनेपर सुन्दरता आदि गुण प्राप्त पुरुष दूसरोंको ऐसे प्रसन्न करताहै जैसे चन्द्रमा ॥ २४ ॥

परांशीतलतामेतिवृष्टिधौतइवाचलः ॥ निर्वृतिंपरमांधत्तेप्राप्तराज्यइवाधमः ॥ २५ ॥ शोभतेपरयालक्ष्म्याशरदीवनभस्तलम् ॥ आत्मन्येवनमात्युच्चैःकल्पस्यांतइवार्णवः ॥ २६ ॥ भवत्यपेतसंरंभोवृष्टिमूकइवांबुदः ॥ तिष्ठत्यात्मनिसंवेत्ताप्रशांतइववारिधिः ॥ २७ ॥ परंधैर्यमुपादत्तेस्थैर्यंमेरुरिवाचलः ॥ राजतेस्वच्छयालक्ष्म्याशांतेंधनइवानलः ॥ २८ ॥

अर्थ—परमशीतलताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वृष्टिसे धौत (धुला) पर्वत, और ऐसी शांतिको धारण करताहै जैसे राज्यप्राप्तिसे दरिद्र ॥ २५ ॥ शरत्कालके आकाशके तुल्य परमलक्ष्मीसे शोभित होताहै और अतिमहान् अपने आत्मामें ऐसे नहीं समाता जैसे कल्पके अंतमें समुद्र ॥ २६ ॥ अभिनिवेश तथा क्षोभसे ऐसे रहित होताहै जैसे शरत्कालमें वृष्टिके अंतमें मेघ, और ज्ञानी पुरुष अपने आत्मामें समुद्रके समान शांत रहताहै ॥ २७ ॥ परम धीरता तथा मेरुके समान स्थिरताको प्राप्त होताहै और मोक्षकी लक्ष्मीसे ऐसे शोभित होताहै जैसे इन्धन शान्त होनेपर अग्नि ॥ २८ ॥

भवत्यात्मनिनिर्वाणःप्रशांतइवदीपकः ॥ तृप्तिमायातिपरमांनरःपीतामृतोयथा ॥२९॥ अंतर्दीपोघटइव मध्यज्वालइवानलः ॥ स्फुरद्दीप्तिर्मणिरिवप्रयात्यंतःप्रकाशताम् ॥ ३० ॥ सर्वात्मकंसर्वगतंसर्वेशंसर्वनायकम् ॥ सर्वाकारंनिराकारंस्वमात्मानंप्रपश्यति ॥ ३१ ॥ हसत्यलमतीतास्ताःपेलवादिवसावलीः॥ यासुस्मरशरश्रेणीचपलंचित्तमास्थितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—निर्वातस्थानके दीपके तुल्य शांतताको प्राप्त होताहै और अमृत पियेहुये मनुष्यकेसमान परमतृप्तिको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ जैसे घटके मध्यमें दीप, ज्वालाके मध्यमें अग्नि, और दैदीप्यमानमणि प्रकाशित होताहै ऐसेही आत्मज्ञानी प्रकाशको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ सर्वमय, सर्वगत, सबके स्वामी, सर्वनायक, सर्वाकार, और निराकार अपने आत्माको देखताहै ॥ ३१ ॥ उन बीतीहुई तुच्छ दिवसोंकी पंक्तिको हंसताहै, जिनमें कि कामदेवके बाणोंसे चित्त चंचल रहताथा ॥ ३२ ॥

संगरंगविनिष्क्रांतःशांतमानमनोज्वरः ॥ अध्यात्मरतिरासीनःपूर्णःपावनमानसः ॥ ३३ ॥ निर्मुष्टकामपंकांकश्छिन्नबंधनिजभ्रमः ॥ द्वंद्वदोषभयोन्मुक्तस्तीर्णसंसारसागरः ॥ ३४ ॥ प्राप्तानुत्तमविश्रांतिर्लब्धालभ्यपरास्पदः ॥ अनिवृत्तिपदंप्राप्तोमनसाकर्मणागिरा ॥ ३५ ॥ सर्वाभिवांछितारंभोनकिंचिदपिवांछति ॥ सर्वानुमोदितानंदोनकिंचिदनुमोदते ॥ ३६ ॥

अर्थ—संगरूप युद्धसे निःसृत, अभिमान तथा मनरूप सन्तापकी शांतिसे शोभित ज्ञानीपुरुष आत्मामें प्रीतियुक्त, पूर्ण तथा पवित्रचित्त होके स्थित रहताहै ॥ ३३ ॥ कामरूप कर्दमसे स्वच्छ, बंधनरूप भ्रमका छेदन

कर्ता, शीतोष्ण, सुखदुःखादि द्वंद्वके दोषोंसे मुक्त, संसारसागरको पार करनेवाला ॥ ३४ ॥ सर्वोत्तम विश्रांतिको प्राप्त, सबसे परे अलभ्यस्थानके लाभसे युक्त और पुनरागमनसे शून्य, साम्राज्यपदको प्राप्त, तथा मनसे, कर्मसे और वाणीसे सबजनोंसे अभिलषित जीवनसहित आत्मज्ञानी स्वयं कुछ नहीं चाहता, और उसके चरित्रके फलको सब अनुमोदन करतेहैं और आप वह कुछ नहीं अनुमोदन करताहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

नददातिनचादत्तेनस्तौतिनचनिंदति ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनतुष्यतिनशोचति ॥ ३७ ॥ सर्वारंभपरित्यागीसर्वोपाधिविवर्जितः ॥ सर्वाशासंपरित्यागीजीवन्मुक्तइतिस्मृतः ॥ ३८ ॥ सर्वैषणाःपरित्यज्य चेतसाभवमौनवान् ॥ धारानिरवशेषेणयथात्यक्त्वापयोधरः ॥ ३९ ॥ नतथासुखयत्यंगसंलग्नावरवर्णिनी ॥ यथासुखयतिस्वांतमिंदुशीतानिराशता ॥ ४० ॥

अर्थ—न वह किसीको कुछ देताहै, न कुछ लेताहै, न किसीकी स्तुति करताहै न निंदा करताहै, न अपने स्वरूपसे अस्त होताहै न उदय होताहै, न प्रसन्न होताहै और न शोचताहै ॥ ३७ ॥ सब आरंभोंका परित्यागी, सब उपाधियोंसे वर्जित, और सब आशाओंका सर्वथा त्यागी, जो है वह जीवन्मुक्त कहागयाहै॥३८॥हे रामजी ! पुत्र आदि सब एषणाओंको त्यागकर चित्तसे तुम ऐसे मौन होजाओ जैसे सम्पूर्ण जलधाराको त्यागके मेघ॥३९॥हे प्रिय रामजी ! अंगमे संलग्न उत्तम स्त्री अंतःकरणको वैसा सुख नहीं देती है जैसा कि चन्द्रमाके समान शीतल निराशता ॥ ४० ॥

नतथेंदुःसुखयतिकंठलग्नोऽपिराघव ॥ नैराश्यंसुखयत्यंतर्यथासकलशीतलम् ॥ ४१ ॥ पुष्पपूर्णनवलतो नतथाराजतेमधुः ॥ यथोदारमतिर्मौनीनैराश्यसममानसः ॥ ४२ ॥ नहिमाद्रेर्नमुक्ताभ्योनरंभाभ्योनचंदनात् ॥ नचचंद्रमसःशैत्यंनैराश्याद्यदवाप्यते ॥ ४३ ॥ अपिराज्यादपिस्वर्गादपींदोरपिमाधवात् ॥ अपिकांतासमासंगान्नैराश्यंपरमंसुखम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—कण्ठमें संलग्न चन्द्रमा वैसा सुख नहीं देता जैसा सम्पूर्ण जगत्को शीतलकारी निराशता ॥ ४१ ॥ पुष्पोंसे पूर्ण तथा नवीनलतासंयुक्त वसंतऋतु ऐसा शोभित नहीं होता जैसाकी निराशतासे समान मनसहित तथा उदारमति ज्ञानवान् मौनी ॥ ४२ ॥ न हिमालयसे, न मोतियोंसे, न केलासे न चन्दनसे और न चन्द्रमासे वह शीतलता प्राप्त होती है जो कि नैराश्यसे ॥ ४३ ॥ राज्यसेभी, स्वर्गसेभी, चन्द्रमासेभी, विष्णुसे, और उत्तम स्त्रीके समागमसेभी नैराश्य परमसुख है ॥ ४४ ॥

तृणवन्नोपकुर्वंतियत्रत्रिभुवनश्रियः ॥ सापरानिर्वृतिःसाधोनैराश्यादुपलभ्यते ॥ ४५ ॥ आपत्करंजपरशुंपरायानिर्वृतेःपदम् ॥ पुष्पगुच्छंशमतरोरालंबस्वनिराशताम् ॥४६॥ गोष्पदंपृथिवीमेरुःस्थाणुराशाःसमुद्रिकाः ॥ तृणंत्रिभुवनंरामनैराश्यालंकृताकृतेः ॥ ४७ ॥ दानादानसमाहारविहारविभवादिकाः ॥ क्रियाजगतिहस्यंतेनिराशैःपुरुषोत्तमैः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे साधो रामजी ! जिसमें त्रिभुवनकी लक्ष्मी तृणके समानभी उपकार नहीं करसकती वह परमशांति नैराश्यसेही प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ आपत्तिरूप कंटकके वृक्षकेलिये परशु (फर्सा) परमशांतिका स्थान, और शम- (शांति) रूप वृक्षका पुष्पका गुच्छा जो निराशता है उसका अवलंबन तुम करो ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! नैराश्यरूप आभूषणसे जो पुरुष अलंकृत है उसके लिये पृथिवी गौका खुर है, और सुमेरुपर्वत वृक्षका ठूंठ है, त्रिभुवन तृण है ॥ ४७ ॥ शास्त्रोय तथा लौकिकदान धनादिका स्वीकार, कोशादिका संचय, धनके व्ययसे पुत्र स्त्रीआदिकी क्रीडा, और वस्त्र आभूषण तथा अन्नपानादिकी क्रियाओंकी निराशतायुक्त उत्तम पुरुष इस जगत्में हंसतेहैं ॥ ४८ ॥

पदंयस्यनबध्नातिकदाचित्कलनाहृदि ॥ तृणीकृतत्रिभुवनःकेनासावुपमीयते ॥ ४९ ॥ इदमेवास्त्विदंमास्तुममेतिहृदिरंजना ॥ नयस्यास्तितमात्मेशंतोलयंतिकथंजनाः ॥ ५० ॥ सर्वसंकटपर्यंतमसंकटमलंसुखम् ॥ सौभाग्यंपरमंबुद्धेर्नैराश्यमवलंब्यताम् ॥ ५१ ॥ नाशास्तेनत्वमाशानांविद्धिमिथ्याभ्रमंजगत्॥ वहद्रथस्थदिक्चक्रपरावर्तवदुत्थितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके हृदयमें आशा अपना पद नहीं जमाती उस त्रिभुवनकोभी तृण समझनेवाले पुरुषकी उपमा किसके साथ दीजासकती है ॥ ४९ ॥ यह मेरेलिये हो, और यह न हो, यह रागद्वेष जिसके हृदयमें नहीं है उस स्वाधीनचित्तकी तुलना भला मनुष्य कैसे करसकतेहैं ॥ ५० ॥ सब कंटकके पार, पूर्ण सुखरूप, और बुद्धिका परमसौभाग्यरूप जो निराशता है उसका अवलंबन तुम करो ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! आशा तुमारी कुछ नहीं है और न तुम आशाओंके संबंधीभी हो, इसकारणसे वैराग्यादि साधनकी संपत्तिसे मुख्य अधिकारी होनेसे इस

जगत्को दौडतेहुये रथपर स्थित पुरुषके दोनों ओरके वृक्षलताआदि जैसे चक्राकार भ्रमणशील भान होतेहैं वैसाही मिथ्या तुम जानो ॥ ५२ ॥

किंमुह्यसिमहाबाहोमूर्खवद्बोधितोपिसन् ॥ ममेदंतदयंसोऽहमित्युद्भ्रांतेनचेतसा ॥ ५३ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वंनानातेहनविद्यते ॥ एकरूपंजगज्ज्ञात्वाधीरैर्नामनखिद्यते ॥ ५४ ॥ यथाभूतपदार्थौघदर्शनादेव राघव ॥ परमाश्वासनंबुद्धेर्नैराश्यमधिगच्छति ॥ ५५ ॥ भावाभावविसंवादमुक्तमाद्यंतयोःस्थितम् ॥ यद्रूपंतत्समालंब्यपदार्थानांस्थितिंकुरु ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सम्बन्धी पदार्थ मेरा है और वह देह मैं हुं इसप्रकार भ्रांतचित्तसे बोधित होकरभी मूढजनोंके समान क्यों मोहित होतेहो ॥ ५३ ॥ यह सब जगत् आत्माही है इस संसारमें अनेकता नहीं है, इसीसे एक आत्मरूप जगत्को जानकर धीरलोग खेद नहीं करते ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! इन सब पदार्थसमूहको यथार्थ आत्मारूपके दर्शन (ज्ञान) से बुद्धिको परमधैर्य्य होताहै और निराशता प्राप्त होती है ॥ ५५ ॥ भाव अभाव (उत्पत्ति तथा नाश) के विकल्पसे मुक्त, सबके आदिअंतमें स्थित जो सच्चिन्मात्ररूप है उसको अवलंबन करके पदार्थोंकी स्थिति करो, अर्थात् सबके आदिअंतमें वही रहजाताहै इसलिये सब कुछ वही है ॥ ५६ ॥

वैराग्यवीरमनसोमायेयमतिमोहिनी ॥ पलाय्ययातिसांसारीमृगीकेसरिणोयथा ॥ ५७ ॥ कांतामुद्दाममदनांलोकांवनलतामिव ॥ जर्जरोपरपांचालीसमांपश्यतिधीरधीः ॥ ५८ ॥ भोगानानंदयत्यंतःखेदयंतिनचापदः ॥ दृश्यश्रियोहरंत्यंगनतमद्रिमिवानिलाः ॥ ५९ ॥ रक्तबालांगनस्यापिज्ञस्योदारधियामुनेः ॥ कणशःपांसुतांयांतिमनसःस्मरसायकाः ॥ ६० ॥

अर्थ—वैराग्यसे वीर मनसहित पुरुषसे भागकर यह महामोहिनी संसारकी माया न जाने कहां ऐसे चली जाती है जैसे सिंहसे हरिणी ॥ ५७ ॥ धीरबुद्धि आत्मज्ञानी पुरुष कामसे मत्त और बनकी लताकेसमान चंचल स्त्रीको जर्जरीभूत पाषाणकी प्रतिमाकेसमान देखताहै ॥ ५८ ॥ उस आत्मज्ञानी पुरुषको विषयभोग आनन्द नहीं देते, आपत्तियां खेदित नहीं करतीं और संसारकी शोभा उसे अपने स्वरूपसे ऐसे नहीं डिगा सकती जैसे पर्वतको वायु ॥ ५९ ॥ जिसमें सुकुमार बालवनिता आसक्तहै ऐसेभी मननशील उदारबुद्धि ज्ञानीपुरुषके मनसे कामदेवके बाण कण २ होके धूलिदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ ६० ॥

रागद्वेषैःस्वरूपज्ञोनावशःपरिकृष्यते ॥ स्पंदएवास्यनैताभ्यांकिमुताक्रमणंभवेत् ॥ ६१ ॥ समदृष्टलतालोलवनितोद्रिशिलाकृतिः ॥ रमतेनैषभोगेषुपांथोमरुमहीष्विव ॥ ६२ ॥ अयत्नोपनतंसर्वंलीलयासक्तमानसः ॥ भुंक्तेभोगमरंप्राज्ञस्त्वालोकमिवलोचनम् ॥ ६३ ॥ काकतालीयवत्प्राप्ताभोगालीललनादिका ॥ स्वादिताप्यंगधीरस्यनदुःखायनतुष्टये ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपको जाननेवाला पुरुष रागद्वेषसे अवश होके खींचा २ नहीं फिरता, और इन दोनों (रागद्वेष) से इसका किंचितभी संचलन नहीं होता तो इसके ऊपर आक्रमण कैसे होगा ॥ ६१ ॥ समानरूपसे लता तथा चंचल वनिताको देखनेवाला इसीसे पर्वतकी शिलाकेसमान आकारसहित ज्ञानीपुरुष भोगोंमें ऐसे नहीं रमण करता जैसे वटोही मरुस्थलकी भूमियोंमें ॥ ६२ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष बिना यत्नसे प्राप्त भोगसमूहको आसक्तमन होके देहधारणकी चेष्टामात्रसे ऐसे भोगताहै जैसे प्रकाशको नेत्र ॥ ६३ ॥ हे प्रिय रामजी ! अकस्मात् प्राप्त ललना आदि भोगोंकि पंक्ति आस्वादित होनेपरभी धीरपुरुषको न दुःखकेलिये और न प्रसन्नताकेलिये है ॥ ६४ ॥

सम्यग्दृष्टपथंतज्ज्ञंसुखदुःखमतीमनाक् ॥ द्वेवीच्याविवशैलेंद्रंक्षोभंनेतुंनशक्नुतः ॥ ६५ ॥ हेलयालोकयन् भोगान्मृदुर्दांतोगतज्वरः ॥ स्वमेवपदमालंब्यसर्वभूतांतरस्थितम् ॥ ६६ ॥ ज्ञस्तिष्ठतिगतव्यग्रोव्यग्रेणापिसमन्वितः ॥ जगंतिजनयन्नेवब्रह्मेवात्मपरायणः ॥ ६७ ॥ आपतत्सुयथाकालंयथादेशंयथाक्रमम् ॥ सुखदुःखेषुनक्षोभमेतिभूभृद्दतुष्विव ॥ ६८ ॥

अर्थ—उत्तमरीतिसे आत्मस्वरूपके दर्शनके मार्गको देखनेवाले तत्वज्ञानीको सुखदुःखकी बुद्धि किंचित्‌भी शोचित करनेको ऐसे नहीं समर्थ होती जैसे दो तरंग पर्वतराजको ॥ ६५ ॥ मिथ्याबुद्धिसे भोगोंको देखताहुआ, मृदु, जितेन्द्रिय, सन्तापरहित ज्ञानीपुरुष सबभूतोंमें स्थित अपने स्वरूपका अवलम्बन करके ॥ ६६ ॥ उन २ समयके उचित क्रियाओंमें इन्द्रियादिसे युक्तभी स्वयं ऐसे अव्यग्र रहताहै जैसे लोकोंको रचतेहुये आत्मपरायण ब्रह्माजी ॥ ६७ ॥ देश, काल, तथा क्रमके अनुसार आपत्तियोंमें और सुखदुःखोंमें ज्ञानी ऐसे नहीं क्षोभको प्राप्त होता जैसे वसंत आदि ऋतुओंमें पर्वत ॥ ६८ ॥

मज्जतोऽपिबहुज्ञस्यरामकर्मेंद्रियभ्रमैः ॥ असक्तमनसोनित्यंनकिंचिदपिमज्जति ॥ ६९ ॥ कलंक्यंतःकलंकेनप्रोच्यतेहेमनान्यथा ॥ भावासक्त्यासमासक्तउक्तोजंतुर्हिनान्यथा ॥ ७० ॥ शरीराद्व्यतिरिक्तंहंपश्यतःप्रविवेकिनः ॥ विकर्त्तितांगकस्यापिनकिंचित्प्रविकर्त्तितम् ॥ ७१ ॥ सकृत्प्रभातंविमलंयज्ज्ञातंज्ञातमेवतत् ॥ नहिबंधुःपरिज्ञातःपुनरज्ञाततांव्रजेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! कर्म इन्द्रियोंके व्यापारोंसे विषयोंमें निमग्न होतेभी नित्य अनासक्त ज्ञानीपुरुषका चित्त कुछ निमग्न नहीं होता ॥ ६९ ॥ जैसे सुवर्ण भीतरसे कलंकित होनेसे कलंकी कहाजाताहै न कि बाहरके कीचड आदि लेपसे ऐसे अन्तःकरणकी आसक्तिसे जीव आसक्त कहाजाताहै न कि अन्यथा ॥ ७० ॥ शरीरसे भिन्न आत्माको विवेकसे देखनेवालेका अंगोंके काटनेसेभी कुछ नहीं कटा ॥ ७१ ॥ एक समयमेंभी जो विमलज्ञान ज्ञातहुआ तो वह ज्ञातही रहताहै, क्योंकि ज्ञातबंधु पुनः अज्ञातताको नहीं प्राप्त होता ॥ ७२ ॥

सर्पभ्रांतौनिवृत्तायांनरज्ज्वांसर्पभावना ॥ पुनरेतियथाप्रावृण्नदीगिरितटाच्युता ॥ ७३ ॥ नहेमतापशुद्धांगंस्वभावमलमागतम् ॥ कर्दमेमग्नमपिसत्समादत्तेमलंपुनः ॥ ७४ ॥ क्षीणेस्वहृदयग्रंथौनबंधोस्तिपुनर्गुणैः ॥ यत्नेनापिपुनर्बद्धंकेनवृंतेच्युतंफलम् ॥ ७५ ॥ अवच्छेदविचाराभ्यामभितःखंडशोगतम् ॥ पाषाणंचमणिंचैवसंधातुंकस्यशक्तता ॥ ७६ ॥

अर्थ—रज्जुसे सर्पकी भ्रांति निवृत्त होनेसे पुनः उसमें सर्पकी संभावना नहीं होती, जैसेकि वर्षाकालमें पर्वतसे गिरीहुई नदीके आगमनकी ॥ ७३ ॥ अग्निके तापसे शुद्ध, और अपने स्वभावको पूर्णरीतिसे प्राप्त सुवर्ण कीचडमें लिप्त होनेपरभी पुनः मलको नहीं धारणकरता ॥ ७४ ॥ हृदयकी अज्ञानरूप ग्रंथिके छूटनेपर पुनः गुणोंसे बंधन ऐसे नहीं होता जैसे वृक्षके वृंत (घोंपे) से गिरेहुये फलको उस वृंतमें कोई बडे यत्नसेभी पुनः नहीं लगासकता ॥ ७५ ॥ जैसे पाषाणके भीतर स्थित मणिके विचार और पाषाणके चारोओरसे छेदनेसे पुनः उस पाषाण और मणिको कोई नहीं मिलासकता ॥ ७६ ॥

विज्ञातायामविद्यायांकःपुनःपरिमज्जति ॥ परिज्ञायश्वपाकानांयात्रांकःप्रेक्षतेद्विजः ॥ ७७ ॥ शुद्धांभसियथाक्षीरधीर्विचारान्निवर्त्तते ॥ संसारवासनातद्वद्धीविचारान्निवर्त्तते ॥७८॥ मध्वंबुशंकयातावद्विप्रवर्यैःप्रपीयते ॥ यावन्नात्रपरिज्ञातंपरिज्ञातंप्रहीयते ॥ ७९ ॥ रूपलावण्ययुक्तापिचित्रकांतेवकामिनी ॥ द्रव्यमात्रसमारंभात्तत्त्वविद्भिर्विलोक्यते ॥ ८० ॥

अर्थ—हे रामजी ! ऐसेही इस अविद्याके न जाननेपर पुनः कोई इसमें नहीं डूबता, क्योंकि जानकर चांडालोंके समाजके उत्सवमें जानेकी प्रतीक्षा कौन ब्राह्मण करसकताहै ॥ ७७ ॥ जैसे शुद्धजलमें दुग्धकी बुद्धि विचारसे निवृत्त होजाती है ऐसेही विचारसे वासना निवृत्त होजाती है ॥ ७८ ॥ जलके भ्रमसे मद्य श्रेष्ठ ब्राह्मणलोक तभीतक पान करतेहैं जबतक उसको नहीं जानते, और जाननेपर उसे त्यागदेतेहैं ॥ ७९ ॥ पंचभूतमात्रसे रचित होनेसे रूप और सुन्दरता गुणयुक्तभी कामिनी चित्रलिखितके समान तत्वज्ञानीलोग देखतेहैं ॥ ८० ॥

यथामषीकुसुंभादिस्त्रियाश्चित्रेतथैवहि ॥ जीवत्याअपिकेशोष्ठंकस्तांपरिकिलग्रहः ॥ ८१ ॥ अनुभूतोगुडःस्वादुरपिदाहविकर्त्तनैः ॥ नशक्यतेन्यथाकर्तुंतत्त्वालोकस्तथात्मनः ॥ ८२ ॥ परव्यसनिनीनारीव्यग्रापिगृहकर्मणि ॥ तदेवास्वादयत्यंतःपरसंगरसायनम् ॥ ८३ ॥ एवंतत्त्वेपरेशुद्धेधीरोविश्रांतिमागतः ॥ नशक्यतेचालयितुंदेवैरपिसवासवैः ॥ ८४ ॥

अर्थ—जैसे चित्रलिखित स्त्रीके अंग मषी कुसुंभआदि पंचभूतमात्र हैं ऐसेही प्राण धारण करनेवाली स्त्रीके केश, स्तन तथा मुखआदिभी पंचभूतमात्र हैं, तो प्राणवालीमेंही अधिक ग्रहणका आग्रह क्यों? ॥ ८१ ॥ जैसे अनुभव कियाहुआ गुडका मधुररस अनुभव करनेवाले जिव्हाआदिके दाहादि सैकडों यत्नोंसेभी मधुर नहीं तिक्त है यह अन्यथाभाव कोई नहीं करसकता ऐसेही आत्मानंदके अनुभवकाभी अन्यथाभाव नहीं होसकता ॥ ८२ ॥ परपुरुषमें निरतस्त्री गृहकर्ममें व्यग्रभी परंतु उसी परपुरुषके संगके रसायनका आस्वाद लेती है ॥ ८३ ॥ इसीप्रकार शुद्धपरब्रह्ममें विश्रामको प्राप्त धीरपुरुष इन्द्रसहित देवोंसेभी चलायमान नहीं होसकता ॥ ८४ ॥

परव्यसनिनीनारीकेनभर्त्राबलीयसा ॥ विस्मारितास्वसंकल्पकांतसंगमहोत्सवम् ॥ ८५ ॥ जगत्समरसानंदचिदालोकावलंबनम् ॥ केनविस्मार्यतेबुद्धिस्तत्त्वज्ञस्यमहात्मनः ॥८६॥ समग्रसुखदुःखाढ्यंव्यवहारमखंडितम् ॥ कुर्वन्कुलजनायत्तोभर्तृश्वशुरखेदितः ॥ ८७ ॥ यथासंकल्पकांतेनभवत्यानंदमंथरः॥ वधूलोकोव्यसनवान्दुःखदैन्यैर्नबाध्यते ॥ ८८ ॥

अर्थ—परपुरुषमें निरतस्त्रीको अपने संकल्पके कांतके समागमके महोत्सवसे कौन बलवान् पति विस्मारित करके हटासकता है ॥ ८५ ॥ जगत्के सब आनन्द जिसमें नानापुष्पोंके रसमय मधुके तुल्य सम होजातेहैं उस आनन्दका अवलंबन करनेवाली तत्वज्ञानीकी बुद्धिको कौन विस्मृत करा सकता है ॥ ८६ ॥ संपूर्ण दुःखोंसे पूर्ण संपूर्ण व्यवहारोंको करताहुआ कुलके जनोंके आधीन पति तथा श्वशुरआदिसे खेदितभी ॥ ८७॥ परपुरुषमें तत्पर वधू (स्त्रीजन) दुःखोंके समूहोंसेभी नहीं बाधित होती किन्तु जैसे अपने संकल्पके कांतके समागमसे आनन्दमें निमग्न होती है॥८८॥

तथाविगलिताविद्योव्यवहारपरोऽप्यलम् ॥ सम्यग्दृष्टिःसदाचारोमुदमेत्यंतरात्मना ॥ ८९ ॥ छिद्यतेन निकृत्तांगोगलदश्रुर्नरोदिति ॥ दह्यतेनप्रदग्धोऽपिनष्टोऽपिनविनश्यति ॥९०॥ व्यपगतसुखदुःखसन्निपातोविधिविधुरेष्वपिसंकटेष्वचित्तः ॥ विलसतुसदनेपुरोत्तमेवाविततगिरौविपिनेतपोवनेवा ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वैराग्योपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ऐसेही अविद्याशून्य ज्ञानीपुरुष सदाचार तथा लोकव्यवहारमें पूर्णरीतिसे तत्परभी अन्तःकरणमें सदानंदसे आनन्दित होताहै ॥ ८९ ॥ अंगोंके छिन्नभिन्न होनेपरभी वह छिन्न आंशु वहतेहुयेभी नहीं रोता, जलाहुआभी नहीं जलता, देहसे नष्ट होनेपरभी नष्ट नहीं होता ॥ ९० ॥ चित्तशून्य आत्मज्ञानी पुरुष, प्रारब्धसे कर्मोंके भोगशून्य और संकटमेंभी सुखदुःखके समागमसे रहित चाहै उत्तमनगरमें रहै वा उत्तमवनमें रहै, वा बडे पर्वतपर, वनमें अथवा तपोवनमें रहे ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वैराग्योपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

महान् अधिकारोंमें हर्षशोकआदिमें असंग, देव, असुर तथा नरआदि बहुतसे जीवन्मुक्त इस ७५ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जनकःसंस्थितोराज्येव्यवहारपरोऽपिसन् ॥ विगतज्वरएवांतरनाकुलमतिःसदा ॥ १ ॥ पितामहोदिलीपस्तेसर्वारंभपरोऽप्यलम् ॥ वीतरागतयैवांतर्बुभुजेमेदिनींचिरम् ॥२ ॥ निरंजनतयाबुद्धोजनतांपालयंश्चिरम् ॥ जीवन्मुक्ताकृतिर्नित्यंमनूराज्यमपालयत् ॥ ३ ॥ विचित्रबलयुद्धेषुव्यवहारेषुभूरिषु ॥ मांधातासुचिरंतिष्ठन्प्राप्तवान्वैपरंपदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! राजाजनक राज्यके व्यवहारमें तत्परभी संतापरहित और अनाकुलमति सदा स्थित रहे ॥ १ ॥ और तुमारे पितामह दिलीप सबकार्योंके आरंभकर्ता होकेभी अंतःकरणमें वीतराग होके चिरकालतक पृथिवीका पालनकिया ॥२॥ प्रबुद्ध मनुने रागादिरूप कलंकके दोषसे शून्य होकर चिरकालतक प्रजाका पालनकिया, और नित्य जीवन्मुक्तके आकारको धारणकरके स्वायंभूमनुने प्रजाओंका पालनकिया ॥ ३ ॥ मांधाताने चित्रविचित्र सेना जिनमें थी ऐसे युद्धोंमें, अन्य अनेकव्यवहारोंमें चिरकालतक स्थित रहते परमपद प्राप्तकिया ॥ ४ ॥

बलिःपातालपीठस्थःकुर्वन्सदिवसंस्थितिम् ॥ सदात्यागीसदाऽसक्तोजीवन्मुक्तइतिस्थितः ॥ ५ ॥ नमुचिर्दानवाधीशोदेवद्वंद्वपरःसदा ॥ नानाचारविचारेषुक्वचिन्नांतरतप्यत ॥ ६ ॥ वासवाजौतनुत्यागीवृत्रोविततमानसः ॥ अंतःशांतमनामानीचकारसुरसंगरम् ॥७ ॥ कुर्वन्दानवकार्याणिपातालतलपालकः ॥ अनपायंनिराक्रोशंप्रह्लादोह्लादमागतः ॥ ८ ॥

अर्थ—पातालके पीठपर स्थित राजाबलि यथार्थकेसमान सबव्यवहारोंको करताहुआभी सदात्यागी, सदाविरक्त तथा जीवन्मुक्तही स्थितहै ॥५॥ दानवोंका स्वामी नमुचि सदा देवताओंकेसाथ युद्धमें तत्पर और नानाप्रकारके देव तथा असुरोंके आचारविचारमें तत्पर रहतेभी अंतःकरणसे खिन्न नहींहुआ ॥ ६ ॥ इन्द्रके युद्धमें शरीरत्यागी उदारचित्त, तथा मानी वृत्रासुरने अंतःकरणसे शांत होके युद्ध किया ॥ ७ ॥ पातालके तलका स्वामी दानवोंके कार्य्योंको करताहुआभी प्रल्हाद अक्षय तथा वाणीके अविषय सुखको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

शंबरैकपरोप्यंतःशंबरैकतयोदितः ॥ संसारशंबरंरामशंबरस्त्यक्तवानिदम् ॥ ९ ॥ असक्तबुद्धिर्हरिणा कुर्वन्दानवसंगरम् ॥ परांसंविदमासाद्यकुशलस्त्यक्तवानिदम् ॥ १० ॥ सर्वामरमुखोवह्निःक्रियाजालप रोह्यपि ॥ यज्ञलक्ष्मीश्चिरंभुंक्तेमुक्तएवेहतिष्ठति ॥ ११ ॥ पीयमानःसुरैःसर्वैःसोमःसमरसाशयः ॥ क्वचिदेतिनसंसंगमाक्रांतावंबरंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा मायामें तत्परभी शंबरासुरने परचिदाकाशमें एकतारूपसे आविर्भूत इस संसारकी मायाको त्यागदिया ॥ ९ ॥ असक्तबुद्धि होके दानवोंके अर्थ युद्ध करताहुआभी कुशल वह शंबरासुर इस संसारको त्यागताहुवा ॥१०॥ सब देवताओंका मुखरूप अग्नि क्रियाओंके जालमें तत्पर यज्ञोंकी लक्ष्मीको चिरकाल भोगताहै और मुक्तही इस संसारमें स्थित रहताहै ॥११॥ सब देवताओंसे पीयमान (पियाहुआ) ब्रह्मही पुनः उज्जीवन अमृत है जिसका ऐसा सोम किसीके साथ संगको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे पादोंसे आक्रमण करनेमें आकाश ॥१२॥

बृहस्पतिर्देवगुरुर्दारार्थंचंद्रयोध्यपि ॥ आचरन्दिविचित्रेहांमुक्तएवह्यवस्थितः ॥ १३ ॥ शुक्रोऽबरतल द्योतीबुधःसर्वार्थपालकः ॥ निर्विकारमतिःकालंनयत्यसुरदेशिकः ॥ १४ ॥ जगद्भूतगणांगानिचिरं संचारयन्नपि ॥ सर्वदासर्वसंचारीमुक्तएवसमीरणः ॥ १५ ॥ लोकाजवंजवीभावप्रोद्वेगज्ञोप्यखिन्नधीः ॥ ब्रह्मासममनारामक्षिपयत्यायुराततम् ॥ १६ ॥

अर्थ—देवताओंके गुरु बृहस्पति स्त्रीकेलिये चन्द्रमासे युद्ध करनेवाले और स्वर्गमें देवताओंका पौरोहित्य आदि चेष्टा करते हुएभी मुक्तही स्थित हैं ॥ १३ ॥ आकाशतलको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानी, नीतिशास्त्रके रचनेसे सब अभिमत पदार्थोंके पालक, और असुरोंके उपदेशक शुक्राचार्यजी निर्विकारबुद्धिसे अपना कालक्षेप करते हैं ॥ १४ ॥ नीचे तथा ऊपरके लोकोंको तथा सब प्राणियोंके अंगोंको संचालित करतेहुये और सर्वदा सब देशोंमें स्वयं संचारीभी वायु मुक्तही है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! सब लोकोंका ऊर्ध्व, अधो, तथा मध्यगतियोंके परिवर्तनसे जो उद्वेग है उसके ज्ञाताभी ब्रह्माजी समचित्तसे दोपरार्धपर्य्यन्त अपनी महान् आयु बितातेहैं ॥ १६ ॥

जरामरणयुद्धादिद्वंद्वसंगरलीलया ॥ चरतीहचिरंकालंमुक्तोऽपिभगवान्हरिः ॥१७॥ मुक्तेनापित्रिनेत्रेण सौंदर्यतरुमंजरी ॥ देहार्धेधार्यतेगौरीकामुकेनेवकामिनी ॥ १८ ॥ मुक्तयापिगलेबद्धोगौर्यागौरस्त्रिलोच नः ॥ संशुद्धइवमुक्तानांहारःशशिकलामलः ॥ १९ ॥ गुहोगहनधीर्वीरस्तारकादिरणक्रियाम् ॥ मुक्तो ऽपिकृतवान्सर्वज्ञानरत्नैकसागरः ॥ २० ॥

अर्थ—देखो विष्णुभगवान् मुक्त होकेभी वृद्धावस्था, मरण तथा युद्धआदि द्वन्द्वलीलासे काल बितातेहैं ॥ १७ ॥ और त्रिनेत्र महादेवजी मुक्त होकरभी सौन्दर्य्यरूप वृक्षकी लता पार्वतीजीको ऐसे धारण करतेहैं जैसे कोई कामी कामिनीको ॥ १८ ॥ इसीप्रकार मुक्तभी गौरी (पार्वती) ने त्रिनेत्रशंकरजीको अपने गलेमें ऐसा बांधाहै जैसे चन्द्रमाकी कलाकेसमान निर्मल और शुद्ध मोतियोंके हारको ॥ १९ ॥ ऐसेही अपारबुद्धि, वीर, और रूपरत्नोंके समुद्र स्वामीकार्तिकजीने मुक्त होकेभी तारकासुरके साथ युद्ध आदि क्रिया की ॥ २० ॥

भृंगीशोरक्तमांसंस्वंस्वमात्रेप्रवितीर्णवान् ॥ मुक्तयैवधियारामधीरयाध्यानधौतया ॥ २१ ॥ मुनिर्मुक्त स्वभावोऽपिजगज्जंगलखंडकम् ॥ नारदोविजहारेमंशीतयाकार्यशीलया ॥ २२ ॥ जीवन्मुक्तमनामान्यो विश्वामित्रोऽप्ययंप्रभुः ॥ वेदोक्तांमखनिर्माणक्रियांसमधितिष्ठति ॥ २३ ॥ धारयत्यवनींशेषःकरोत्यर्को दिनावलीम् ॥ यमोयमत्वंकुरुतेजीवन्मुक्ततयैवहि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! भृंगीरिटि (शिवके गणविशेष) ने धीर, ध्यानसे शुद्ध तथा मुक्तबुद्धिसे माता पार्वतीजीको अपना रक्त और मांस दियाहै ॥ २१ ॥ मुक्तस्वभावही नारदमुनिजीने शांत तथा कलहकौतुकमें प्रवृत्त करनेवाली बुद्धिसे इस जगत्रूप जंगलके खण्डमें भ्रमण कियाहै ॥ २२ ॥ देखो सबके मान्य ये विश्वामित्रप्रभु मुक्तही हैं परन्तु वेदोक्त यज्ञक्रियाका अनुष्ठान करतेहैं ॥ २३ ॥ जीवन्मुक्तस्वरूपही शेषभगवान् पृथिवीका धारण करतेहैं, सूर्य दिनकी पंक्तियोंको रचतेहैं, और यमराज दुष्टोंको दंड देतेहैं ॥ २४ ॥

अन्येऽप्यस्मिंस्त्रिभुवनेयक्षासुरनराःसुराः ॥ शतशोमुक्ततांयाताःसंतस्तिष्ठंतिसंस्तौ ॥२५॥ संस्थिता व्यवहारेषुविचित्राचारधारिषु ॥ अंतराशीतलाःकेचित्केचिन्मूढाःशिलासमाः ॥२६॥ परमंबोधमासा द्यकेचित्काननमागताः ॥ यथाभृगुभरद्वाजविश्वामित्रशुकादयः ॥ २७ ॥ केचिद्राज्येषुतिष्ठंतिच्छत्रचा मरपालिताः ॥ यथाजनकशर्यातिमांधातृसगरादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अन्यभी यक्ष, असुर, मनुष्य तथा देवता सैकडों इस त्रिभुवनमें मुक्त होगये. और मुक्त महात्मा इस संसारमेंभी स्थितहैं ॥ २५ ॥ चित्रविचित्र शोक मोह आदि दायक, स्त्री पुत्र धन और मृत्युआदिके संग्रहपूर्वक वध बंधन आदि आचारसहित व्यवहारोंमें कितनें स्थितहैं, और अंतःकरणसे शीतल जीवन्मुक्त हैं तथा कितने पाषाणकी शिलाके तुल्य मूढ हैं ॥ २६ ॥ कितने कनने तो परमज्ञानको प्राप्त करके बनका आश्रय लिया. जैसे भृगु,भरद्वाज, विश्वामित्र और शुक आदि॥२७॥ और कितने छत्र चमर आदिसे रक्षित राज्यकार्यमें स्थित हैं. जैसे जनक, शर्य्याति, मांधाता, और सगर आदि ॥ २८ ॥

केचिद्व्योमनितिष्ठंतिधिष्ण्यचक्रांतरस्थिताः ॥ यथाबृहस्पत्युशनश्चंद्रसूर्यमुनीश्वराः ॥ २९ ॥ केचित्सुरपदेयाताविमानावलिमास्थिताः ॥ यथाग्निवायुवरुणयमतुंबुरुनारदाः ॥ ३० ॥ केचित्पातालकुहरे जीवन्मुक्ताव्यवस्थिताः ॥ यथाबलिसुहोत्रांधप्रह्रादाल्हादपूर्वकाः ॥ ३१ ॥ तिर्यग्योनिष्वपिसदाविद्यंते कृतबुद्धयः ॥ देवयोनिष्वपिप्राज्ञाविद्यंतेमूर्खबुद्धयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कितने नक्षत्रोंके आधारभूत ज्योतिश्चक्र आकाशमें स्थितहैं. जैसे बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, सूर्य और मुनीश्वर (सप्तर्षि) ॥ २९ ॥ और कोई इन्द्रपुर (स्वर्ग) में जाके विमानोंकी पंक्तिमें स्थितहैं. जैसे अग्नि, वायु, वरुण, यम, तुंबरू, और नारद आदि ॥ ३० ॥ कोई तो पातालरूप गुफामें जीवन्मुक्त होके स्थितहैं. जैसे बलि, सुहोत्र, अंध, प्रल्हाद तथा ल्हाद आदि ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! तिर्यग्योनिमेंभी सदा ज्ञानी रहतेहैं और देवयोनिमेंभी बुद्धिमान् होके मूर्खबुद्धि होतेहैं ॥ ३२ ॥

सर्वंसर्वेणसर्वत्रसर्वथासर्वदैवहि ॥ संभवत्येवसर्वात्मन्यात्मन्याततरूपिणि ॥ ३३ ॥ विधेर्विचित्रा नियतिरनंतारंभमंथरा ॥ सन्निवेशांशवैचित्र्यात्सर्वंसर्वत्रदृश्यते ॥ ३४ ॥ विधिर्देवविधिर्धातासर्वेशः शिवईश्वरः ॥ इतिनामभिरात्मानःप्रत्यक्चेतनउच्यते ॥ ३५ ॥ अस्त्यवस्तुनिवस्त्वंतःकांचनंसिकतास्विव ॥ अस्तिवस्तुन्यवस्त्वंतर्मलंहेमकणेष्विव ॥ ३६ ॥

अर्थ—सब कुछ, सबसे सबप्रकार और सदा सर्वरूप और सर्वव्यापी आत्मामें संभव है ॥ ३३ ॥ अनन्त-कार्य्योंके आरंभमें तत्पर परमात्माकी नियति विचित्र है, इसलिये रचनाविशेषकी विचित्रतासे सबकुछ सदासर्वत्र देख पडती. है जैसे घट चूर्णहोके कपासके खेतमें जानेसे घटका पट ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा, दैव, विष्णु, धाता, सर्वेश्वर, शिव, और ईश्वर इत्यादि नामोंसे हम सबका आत्मा प्रत्यक् चेतनही कहाजाताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! और कहांतक कहैं अवस्तुके अंतर्गत वस्तु है. जैसे सुवर्ण, सिकता (रेत) में, और वस्तुके अंतर्गत अवस्तुभी है जैसे सुवर्णके कणोंमें मल ॥ ३६ ॥

अयुक्तेयुक्ततायुक्त्याप्रेक्ष्यमाणाप्रदृश्यते ॥ पापस्यहिभयाल्लोकोरामधर्मेप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ असत्येसत्यतासाधोशाश्वतीपरिलक्ष्यते ॥ शून्येनध्यानयोगेनशाश्वतंपदमाप्यते ॥ ३८ ॥ यत्रास्तितदुदेत्याशुदेशकालविलासतः ॥ शशकाःशृंगवंतोहिदृश्यंतेशंबरस्थितौ ॥ ३९ ॥ येवज्रसाराःसुदृढादृश्यंतेतेक्षयंगताः ॥ कल्पस्यांतेयथेंद्वर्कधराब्धिविबुधादयः ॥ ४० ॥

अर्थ—अत्यंत अयुक्तमेंभी युक्तिसे युक्तता देखपडती है, अयुक्त पापके भयसे लोक धर्ममें प्रवृत्त होताहै ॥ ३७ ॥ हे साधो ! असत्यमेंभी नित्य सत्यता प्रतीत होती है, सर्वशून्य ध्यानसे सर्वशून्यमें ध्यानमात्रका साक्षी नित्यपद प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ जो पदार्थ जहां नहीं है वहभी देशकालके विलाससे वहां उदय होता है. जैसे इन्द्र-जालमें शशक (खरगोस) सींगवाले देख पडते हैं ॥ ३९ ॥ जो वज्रसारके समान अतिदृढ देख पडतेहैं वेभी क्षयको प्राप्त हुयेहैं. जैसे कल्पके अन्तमें चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, समुद्र और देवता आदि ॥ ४० ॥

इतिपश्यन्महाबाहोभावाभावभवक्रमम् ॥ हर्षामर्षविषादेहाःसंत्यज्यसमतांव्रज ॥ ४१ ॥ असत्सदेव भातीहसदसच्चापिदृश्यते ॥ आस्थानास्थेपरित्यज्यतेनाशुसमतांव्रज ॥ ४२ ॥ मुक्तौराघवलोकेऽस्मिन्न प्राप्तिःसंभवत्यलम् ॥ अप्रवृत्तौविवेकस्यमग्नाहिजनकोटयः ॥ ४३ ॥ मुक्तौराघवलोकेऽस्मिन्प्राप्तिरस्ति सदैवहि ॥ प्रवृत्त्याहिविवेकस्यविमुक्ताभूतकोटयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! ऐसा देखके उत्पत्तिप्रलयरूप संसारके क्रमको, तथा हर्ष, अमर्ष, विषाद तथा अन्य चेष्टाओंको त्यागके समताको प्राप्त होओ ॥ ४१ ॥ इस संसारमें असत् सत्केसमान भान होताहै, और सत् (ब्रह्म) असत्के तुल्य देख पडताहै. इसलिये तुम आस्था तथा अनास्थाको त्यागकर शीघ्र समताको प्राप्त हो,

॥ ४२ ॥ हे रामजी ! विवेकके न होनेपर मुक्तिकी अप्राप्तिकी पूर्णरीतिसे सम्भावनाहै और इसी अज्ञानदशामें करोंडों मनुष्य डूबे हैं ॥ ४३ ॥ और हे रामजी ! निजसाक्षीरूप होनेसे मुक्तिकी प्राप्तिका सदा संभव है क्योंकि विवेककी प्रवृत्तिसे करोडों मनुष्य मुक्त होगयेहैं ॥ ४४ ॥

प्रविवेकाविवेकाभ्यांसुलभालभ्यतांगता ॥ मुक्तिर्मनःक्षयप्राप्याविवेकंतेनदीपय ॥ ४५ ॥ आत्मावलोकनेयत्नःकर्त्तव्योभूतिमिच्छता ॥ सर्वदुःखशिरश्छेदआत्मालोकेनजायते ॥ ४६ ॥ नीरागानिरुपासंगा जीवन्मुक्तामहाधियः ॥ संभवंतीहबहुशःसुहोत्रजनकाइव ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वमपिवैराग्यविवेकोदित धीरधीः ॥ जीवन्मुक्तोविहरभोसमलोष्टाश्मकांचनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—मुक्ति विवेकसे सुलभ्यभी अविवेकसे अलभ्यताको प्राप्त है इसलिये तुम मनके नाशसे अपना विवेक बढाओ ॥ ४५ ॥ मुक्तिके अभिलाषी जनको आत्माके दर्शनके लिये विवेकरूप यत्न करनाचाहिये, क्योंकि आत्माके दर्शनसे सब दुःखोंका शिरच्छेद होजाताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! इससमयभी राग तथा संगरहित और महाबुद्धिमान अनेक जीवन्मुक्त महात्मा संभवते हैं जैसे सुहोत्र जनक आदि ॥ ४७ ॥ इसलिये तुमभी विवेक और वैराग्यसे उदयको प्राप्त बुद्धिको धारण करके, सुवर्ण तथा पाषाणमें समबुद्धिसहित हे रामजी ! इस संसारमें विहार करो ॥४८

द्विविधामुक्ततालोकेविद्यतेदेहधारिणाम् ॥ सदेहैकाविदेहान्याविभागोऽयंतयोःशृणु ॥४९॥ असंसंगात्पदार्थानांमनःशांतिर्विमुक्तता ॥ सत्यसत्यपिदेहेसासंभवत्यनघाकृते ॥ ५० ॥ स्नेहसंशयमेवांगविदुःकैवल्यमुत्तमम् ॥ तत्संभवतिदेहस्यभावेचाभावएवच ॥ ५१ ॥ योजीवतिगतस्नेहःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ सस्नेहजीवितोबद्धोमुक्तएवतृतीयकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस संसारमें प्राणियोंकी दो प्रकारकी मुक्तिहै एक तो सदेह दूसरी विदेह उनका यह भेद तुम सुनो ॥ ४९ ॥ हे पापरहित रामजी ! पदार्थोंके असंगसे मनकी शांतिरूप मुक्ति देहके रहते तथा न रहतेभी संभव है ॥ ५० ॥ हे प्रिय रामजी ! देहादिमें आत्माके भ्रमसे जो प्रीति है उसके नाशकोही उत्तम कैवल्य (मुक्ति) जानतेहैं, और वह देहके भाव तथा अभाव दोनोंमें संभव है ॥ ५१ ॥ जो प्राणी देहादिमें प्रेमरहित होके जीता है वह जीवन्मुक्त कहाताहै और जो देहादिमें प्रीतिसहित है वह बद्ध है, और जो राग द्वेष दोनोंसे रहित है वह मुक्तहै ५२

यत्नोयत्नेनकर्त्तव्योमोक्षार्थंयुक्तिपूर्वकम् ॥ यत्नयुक्तिविहीनस्यगोष्पदंदुस्तरंभवेत् ॥ ५३ ॥ नत्वनध्यवसायस्यदुःखायविपुलात्मने ॥ आत्मापरवशःकार्योमोहमाश्रित्यकेवलम् ॥५४॥ सुमहद्धैर्यमालंव्यमनसाव्यवसायिना ॥ विचारयात्मनात्मानमात्मनश्चिरसिद्धये ॥ विततध्यवसायस्यजगद्भवतिगोष्पदम् ॥ ५५ ॥ यदुपगतःसुगतःपदंप्रधानंयदपगतोऽध्रुवतांनृपश्चकश्चित् ॥ यदुपगताःपदमुत्तमंमहांतःप्रयतनकल्पतरोर्महाफलंतत् ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—साधनचतुष्टयके मध्यमें यत्नसे पूर्व २ साधनकी सिद्धि होनेसे उत्तर २ के जीतनेके अर्थ मोक्षके लिये प्रमाणोंके तात्पर्य्य, और ब्रह्मतत्वके निश्चयरूप युक्तिसे पुनः २ यत्न करनाचाहिये, क्योंकि यत्न और युक्तिसे हीन प्राणीको गौका खुरभी दुस्तर होजाताहै ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानके पूर्व उद्योगका अनादर करके केवल मोहमात्रमें फंसके महान् दुःखकेलिये आत्माको परवश नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! महाधैर्यका आश्रय लेके फलकी प्राप्तिपर्य्यंत दृढ तथा उद्योगी मनसे आत्माहीसे आत्माका विचारकरो, और प्रतिबंधक होनेपर कई जन्मोंमें सिद्धिको मनमें रखके आत्माका विचार करो ॥ ५५ ॥ जिससे स्वयंप्रकाश आत्मपदको बुद्ध भगवान् प्राप्त हुआ, और उत्तम विवेकयुक्त आत्माके निश्चयमें किंचित् न्यूनता रहनेसे जिस पदसे च्युत गुणत्रयकी साम्यावस्था अध्रुव प्रधानपदको प्राप्त हुआ. और इसीप्रकार अवाच्यनामा अर्हत्नामसे प्रसिद्ध कोई क्षत्रिय चित्स्वरूपका निश्चय होनेपरभी परंतु हस्तिमशकादिके शरीरमें प्रवेश होनेसे घटना बढना आत्माका निश्चय करनेसे जिस अखंड आत्मपदसे च्युत होनेसे अध्रुवपदको प्राप्तहुआ. अर्थात् ये सब मिथ्यापदमें निमग्न हुये, और वेदोंके रहस्यके ज्ञाता महात्मालोग तो सत्यज्ञान अनंतस्वरूप आत्मपदको प्राप्तहुये. महात्मालोग वेदोक्तमार्गसे जिस पदको प्राप्त हुये वह प्रयत्नरूप कल्पवृक्षका महाफल है ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

इस ७६ के सर्गमें संसारको समुद्ररूप और स्त्रियोंको तरंगरूप उसके पश्चात् उससे तरनेका उपाय, और तरनेपर सुखपूर्वक क्रीडा इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मणस्समुपायांतिजगंतीमानिराघव ॥ स्थैर्ययांत्यविवेकेनशाम्यंत्येवविवेकतः ॥ १ ॥ जगज्जालजलावर्त्तवृत्तयोब्रह्मवारिधौ ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेभासांचत्रसरेणवः ॥ २ ॥ असम्यक्प्रेक्षणंविद्धिकारणंजगतःस्थितौ ॥ संसारशांतयेकांतकारणंसम्यगीक्षणम् ॥ ३ ॥ अयंहिपरदुष्पारो घोरःसंसारसागरः ॥ विनायुक्तिप्रयत्नाभ्यामस्माद्रामनतीर्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अविद्याके प्रभावसे ये सब जगत् ब्रह्मसेही आते हैं, अविवेकसे स्थिर होते हैं और विवेकसे शांत होजाते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मरूप समुद्रमें जगत्के समूहरूप जलके तरंगोंकी गणना कौन कर-सकता है, क्योंकि जालके अन्तर्गत सूर्यके किरणसंबंधी त्रसरेणुओंको कौन गिन सकता है ॥ २ ॥ हे रामजी ! असम्यक् दर्शनको तुम जगत्की स्थितिमें कारण जानो. और इसकी शांतिके लिये सम्यक् दर्शनको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह अत्यत दुर्गमपार, तथा भयंकर संसाररूप समुद्र बिना युक्ति और प्रयत्नके पार होनेके समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

प्रभ्रमत्पुण्यडिंडीरोज्वलन्नरकवाडवः ॥ तृष्णाविलोललहरिर्मनोजलमतंगजः ॥ ६ ॥ आलीनजीवितसरिद्भोगरत्नसमुद्रकः ॥ क्षुब्धरोगोरगाकीर्णइंद्रियग्राहघर्घरः ॥ ७ ॥ यस्यायंसागरःपूर्णोमोहांबुभरपूरितः ॥ अगाधमरणावर्तकल्लोलाकुलकोटरः ॥ ५ ॥ पश्यास्मिन्प्रसृताराम वीचयश्चारुचंचलाः ॥ इमामुग्धांगनानाम्न्यःशिखराकर्षणक्षमाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसाररूपसमुद्र, जो कि अथाह मरणरूप आवर्तोंसे और बडे २ तरंगोंसे पूर्ण है ॥५॥ भ्रमणशील पुण्यरूप फेनसे युक्त, जाज्वल्यमान नरकरूप वडवाग्निसहित, तृष्णारूप चंचल तरंगवान्, और मनरूप-जलके हस्ती (हांथीके सदृश या दो नाम जलजंतु) संयुक्त ॥ ६ ॥ जिसमें जीवनतरंग लीन होरहे हैं ऐसा तथा भोगरूप रत्नोंका संदूक, रोगरूप क्षुब्धसर्पोंसे व्याप्त, और इंद्रियरूप ग्राहोंसे जिसमे घर्घर ऐसा भयंकर ध्वनि होरहाहै ऐसा यह संसाररूप सागरहै ॥ ७ ॥ और हे रामजी ! देखो इसमें उत्तम तथा चंचल ये मुग्ध अंगनारूप तरंग फैली हैं जो कि पर्वतके शिखरके समान धीर पुरुषोंके खींचनेमेंभी समर्थ हैं ॥ ८ ॥

छदश्रीपद्मरागाढ्यानेत्रनीलोत्पलाकुलाः ॥ दंतपुष्पफलाकीर्णाःस्मितफेनोपशोभिताः ॥ ९ ॥ केशेंद्रनीलवलयाभ्रूविलासतरंगिताः ॥ नितंबपुलिनस्फीताःकंठकंबुविभूषिताः ॥ १० ॥ ललाटमणिपट्टाढ्याविलासग्राहसंकुलाः ॥ कटाक्षलोलगहनावर्णकांचनवालुकाः ॥ ११ ॥ एवंविलोललहरिभीमात्संसारसागरात् ॥ उत्तीर्यतेचेन्मग्नेनतत्परंपौरुषंभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—पुनः ये अंगना (स्त्री) रूप लहर ओष्ठोंकी शोभारूप पद्मरागमणियोंसे पूर्ण, नेत्ररूप नीलकमलोंसे व्याप्त, दांतरूप पुष्प तथा फलोंसे पूर्ण और मुसकियान रूप फेनोंसे शोभित ॥ ९ ॥ केशरूप इन्द्रनीलमणिसे शोभित, भोंहके विलासोंसे तरंगमालामय, नितंबरूप तटोंसे स्वच्छ, कंठरूप शंखोंसे भूषित ॥ १० ॥ ललाटरूप मणियोंके पट्टोंसे युक्त, विलासरूप ग्राहोंसे पूर्ण, कटाक्षोंकी चंचलतासे गहन, और देहोंकी कांतिरूप सुवर्णवत् वालुकामय ॥ ११ ॥ चंचल तरंगोंसे भयंकर यह संसाररूप सागर जिसके मोहरूप जलसे पूर्ण है वही इसमें निमग्न पुरुष इससे पार हो तो परम पुरुषार्थ है ॥ १२ ॥

सत्यांप्रज्ञामहानाविविवेकेसतिनाविके ॥ संसारसागरादस्माद्योनतीर्णोधिगस्तुतम् ॥ १३ ॥ अपारावारमाक्रम्यप्रमेयीकृत्यसर्वतः ॥ संसारार्णवगाहतेयःसएवपुरुषःस्मृतः ॥ १४ ॥ विचार्यार्यैःसहालोक्यधियासंसारसागरम् ॥ एतस्मिंस्तदनुक्रीडाशोभतेरामनान्यथा ॥ १५ ॥ इहभव्योभवान्साधोविचारपरयाधिया ॥ त्वयाधुनैवतेनायंसंसारःप्रविचार्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बुद्धिरूप महानौका तथा विवेकरूप केवटके विद्यमान रहते इस संसाररूप सागरसे जो पार नहीं हुआ उसको धिक्कार है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! अपारसंसाररूप सागरको जो ब्रह्मज्ञानसे बाधित करके और सब जगत्को ब्रह्ममय करके संसाररूप समुद्रमें प्रवेश करताहै वही परमपुरुषार्थ कहागयाहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठ आत्मज्ञानी विद्वानोंके साथ इस संसाररूप समुद्रको पार करके और बुद्धिसे इसको ब्रह्ममय जानकर अनंतर जो इसमें क्रीडा है वही शोभा देती है अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥ हे साधो रामजी तुम धन्य हो कि अभी इसी अल्पअवस्थामें विचारमें तत्परबुद्धिसे इस संसारका विचार करतेहो ॥ १६ ॥

भवानिवविचार्यादौसंसारमतिकांतया ॥ मत्यायोगाहतेलोकोनेहासौपरिमज्जति ॥ १७ ॥ पूर्वंधियाविचार्यैतेभोगाभोगिभयप्रदाः ॥ भोक्तव्याश्वरमंरामगरुडेनेवपन्नगाः ॥ १८ ॥ विचार्यतत्त्वमालोक्यसेव्यंतेयाविभूतयः ॥ ताउदर्कोदयाजंतोःशेषाडुःखायकेवलम् ॥ १९ ॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चदृष्टतत्त्वस्यवर्द्धते ॥ सवसंतस्यवृक्षस्यसौंदर्याद्यागुणाइव ॥ २० ॥ घनरसायनपूर्णसुशीतयाविमलयासमयाखततं श्रिया ॥ शिशिररश्मिरिवातिविराजसेविदितवेद्यसुखंरघुनंदन ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसारसागरसाम्यप्रतिपादनं नाम षट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

अर्थ—तुमारेसमान आरम्भमेंही इस संसारको अतिउत्तम बुद्धिसे विचार करके अनन्तर जो कोई ब्रह्ममें प्रवेश करताहै वह पुनः नहीं डूबता ॥ १७ ॥ हे रामजी ! प्रथम विचार करके सर्पोंके समान भयंकर भोगोंकी उपेक्षा करके पश्चात् ऐसे भोगना चाहिये जैसे गरुडजी सर्पोंको ॥ १८ ॥ और इस संसारमेंभी राजाके अनुग्रह आदि रहस्यको जानकर जो कोई विभूतियोंका सेवन किया जाताहै वेही विभूति प्राणियोंकेलिये भविष्यत्में उदयको प्राप्त होती हैं, और शेषके बल दुःखोंके अर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जिसने आत्मतत्त्वदर्शन किया उसी प्राणीके बल, बुद्धि तथा तेज ऐसे बढते हैं जैसे वसंतसहित वृक्षके सुन्दरताआदि गुण ॥ २० ॥ हे रघुनन्दन ! तुमने जानने योग्य आत्मवस्तुको सुखपूर्वक जानलिया है इसी हेतुसे आनन्दरूप अमृतसे पूर्ण अतिशीतल अर्थात् तीनोंतापनिवारक, विमल, और सदा निर्मलशोभासे ऐसे शोभित हो जैसे पूर्णचन्द्रमा ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसारसागरसाम्यप्रतिपादनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

जीवन्मुक्तोंके गुणोंकी माला वसिष्ठमुनिने इस ७७ के सर्गमें रचीहै उसको पंडितोंको अपने शिरसे कंठमें मंदारकी मालाके समान धारण करनाचाहिये ॥

श्रीरामउवाच ॥ समासेनमुनेभूयोदृष्टतत्त्वचमत्कृतेः ॥ कथयोदारवृत्तांतंकस्तेवचसितृप्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवन्मुक्तस्यबहुधाकथितंलक्षणंमया ॥ भूयोऽपित्वंमहाबाहोकथ्यमानमिदंशृणु ॥ २ ॥ सुषुप्तवदिदंनित्यंपश्यत्यपगतैषणः ॥ असद्रूपमिवासक्तंसर्वत्राखिलमात्मवान् ॥ ३ ॥ कैवल्यमिवसंप्राप्तःपरिसुप्तमनाइव ॥ घूर्णमानइवानंदीतिष्ठत्यधिगतात्मदृक् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! जिसने आत्मतत्वके चमत्कारको देखाहै उसके उदारचरित्रको संक्षेपसे पुनः कहिये क्योंकि आपके बचनसे कौन तृप्त होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे महाबाहो ! जीवन्मुक्तके लक्षण बहुधा मैंने वर्णन किये हैं, पुनःभी मैं कहताहुं तुम सुनो ॥ २ ॥ संपूर्ण इच्छाओंसे रहित आत्मज्ञानी इस जगत्को व्यवहारदृष्टिसे सुषुप्तके तुल्य और परमार्थदृष्टिसे असत्रूपसे सर्वत्र देखताहै ॥ ३ ॥ कैवल्यके समान प्राप्त, परिसुप्त मनके तुल्य और आनन्दसे मत्तके तुल्य आत्मद्रष्टा इस जगत्में स्थित रहताहै ॥ ४ ॥

नादत्तमप्युपादत्तेगृहीतमपिपाणिना ॥ अंतर्मुखतयोदात्तरूपयासमयाधिया ॥ ५ ॥ यंत्रपुत्रकसंचारइतीमंजनताक्रमम् ॥ अंतःसंलीनयादृष्ट्यापश्यन्हसतिशांतधीः ॥ ६ ॥ नापेक्षतेभविष्यंचवर्तमानेनतिष्ठति ॥ नसंस्मरत्यतीतंचसर्वमेवकरोतिच ॥ ७ ॥ सुप्तःप्रबुद्धोभवतिप्रबुद्धोपिचसुप्तवान् ॥ सर्वकर्मकरोत्यंतर्नकरोतिचकिंचन ॥ ८ ॥

अर्थ—नेत्रआदि इन्द्रियोंसे ग्रहीत पश्चात् हस्तआदिसे ग्रहीतभी धन, वस्त्र, अलंकार आदिको अंतर्मुख समरूप और उदारबुद्धिसे उसका ग्रहण नहीं करता ॥ ५ ॥ और अन्तर्मुखदृष्टिसे इस संपूर्ण जनसमूहके व्यवहारको काष्ठकी पुतलीके समान शांतबुद्धिसे देखताहुआ हंसताहै ॥६॥ आत्मज्ञानी भविष्यत् पदार्थकी आकांक्षा, और वर्त-

---

(१) प्रथम गरुडजीने अमृतके लानेसे सर्पोंकी उपेक्षा करदी थी अनन्तर माताकी शापमोचनके पश्चात् उनको खाया यह कथा पुराणोंमें हैं.

मानमें आस्था नहीं रखताहै ॥७॥ व्यवहारविषयमें सुप्तभी आत्माके विषयमें जागताही रहताहै और व्यवहारमें प्रबुद्धभी (कुशलभी) सुप्तकेही समान रहताहै बाहरके मनसे सब कर्मोंको करताहै और अंतरमनसे कुछ नहीं करता८

अंतःसर्वपरित्यागीनित्यमंतरनेषणः ॥ कुर्वन्नपिबहिःकार्यंसममेवावतिष्ठते ॥ ९ ॥ बहिःप्रकृतसर्वेहो यथाप्राप्तक्रियोन्मुखः ॥ स्वकर्मक्रमसंप्राप्तबंधुकार्यानुवृत्तिमान् ॥ १० ॥ समग्रसुखभोगात्मासर्वाशा स्विवसंस्थितः ॥ करोत्यखिलकर्माणित्यक्तकर्तृत्वविभ्रमः ॥ ११ ॥ उदासीनवदासीनःप्रकृतःक्रमक र्मसु ॥ नाभिवांछतिनद्वेष्टिनशोचतिनहृष्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—और अंतःकरणसे सबका त्यागी तथा सब एषणारहित रहताहै और बाहरसे सब कार्य्योंका करता हुआभी, आभ्यंतरसे समानरूपही स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ बाहरसे प्रचलित सब कार्य्योंकी चेष्टा करनेवाला, यथाप्राप्त क्रियाओंकी ओर तत्पर, और अपने वर्णाश्रमके उचित तथा पितृपितामहादिके क्रमसे प्राप्त राज्यादि तथा बन्धु मित्रआदिके कार्य्योंको करताहुआ ॥ १० ॥ सब गृहसुखभोगको आत्मारूपही समझके तथा सबविषयोंमें स्थितके समान आत्मज्ञानी कर्ताके अभिमानको त्यागकर सब कार्य्योंको करताहै ॥११॥ उदासीनके सदृश आसीन कर्म्मोंके इष्ट अनिष्ट फलोंमें समान, और न किसीकी इच्छा करताहै, न द्वेष करताहै, न शोचताहै, और न प्रसन्न होताहै.॥१२

अनुबंधपरेजंतावसंसक्तेनचेतसा ॥ भक्तेभक्तसमाचारःशठेशठइवस्थितः ॥ १३ ॥ बालोबालेषुवृद्धेषु वृद्धोधीरेषुधैर्यवान् ॥ युवायौवनवृत्तेषुदुःखितेष्वनुदुःखितः ॥ १४ ॥ प्रवृत्तवाक्पुण्यकथोदैन्यादृप्यपग ताशयः ॥ धीरधीरुदितानंदःपेशलःपुण्यकीर्त्तनः ॥ १५ ॥ प्राज्ञःप्रसन्नमधुरःपूर्णःस्वप्रतिभोदये ॥ निरस्तखेददौर्गत्यःसर्वस्मिन्स्निग्धबांधवः ॥ १६ ॥

अर्थ—अनुकूल तथा प्रतिकूल आचरणमें तत्पर जीव अनासक्तचित्तसे व्यवहार करताहै. भक्तमें भक्तकेसमान और शठमें शठकेतुल्य व्यवहार करताहुआ आत्मज्ञानी स्थिर रहताहै ॥ १३ ॥ आत्मज्ञानी बालकोंमें बालक, वृद्धोंमें वृद्ध, धीरोंमें धैर्य्यवान् रहताहै, तथा यौवनके वृत्तान्तोंमें युवाके सदृश व्यवहार करताहै. और दुःखितोंमें दुःखी रहताहै ॥ १४ ॥ यद्यपि बालक आदिमें उनके समान आचरण करनेवालाभी है तथापि बोलतेसमय पवित्रवाणीका वक्ता, दीनतासे अभिमानरहित, धीरबुद्धि, उदित आनंदको प्राप्त, कोमल, तथा लोकमें पवित्र कीर्ति॥१५॥ बुद्धिमान्, प्रसन्नमुख, पूर्ण अपनी बुद्धिके उदयसे खेद तथा दुर्दशारहित और सब प्राणीमात्रका स्नेही बंधु ॥ १६॥

उदारचरिताकारःसमःसौम्यसुखोदधिः ॥ सुस्निग्धःशीतलस्पर्शःपूर्णचंद्रइवोदितः ॥ १७ ॥ नतस्य सुकृतेनार्थोनभोगैर्नचकर्मभिः ॥ नदुष्कृतैर्नभोगानांसंत्यागेननबंधुभिः ॥ १८ ॥ नकार्यकारणारंभैर्ननि ष्कृततयातथा ॥ नबंधेननमोक्षेणनपातालेननोदिवा ॥ १९ ॥ यथावस्तुयथादृष्टंजगदेकमयात्मकम् ॥ तदाबंधविमोक्षाणांनकचित्कृपणंमनः ॥ २० ॥

अर्थ—उदारचरित, सब अवस्थामें समानरूप, सौम्य तथा सुखके समुद्र, अतिस्नेही, अपने संगसे सबका संतापहारी और पूर्णचंद्रमाके समान उदयको प्राप्त आत्मज्ञानी रहताहै ॥ १७ ॥ न उसको सुकृतसे कुछ प्रयोजन, न भोगोंसे, न कर्म्मोंसे, न दुष्कृतोंसे और न अनिषिद्धभोगोंसे, तथा न बंधुओंसे कुछ प्रयोजन है ॥ १८ ॥ न फलनिमित्त कर्मोंके आरंभसे, न निष्कर्मतासे, न बंधसे, न मोक्षसे, न पातालसे और न स्वर्गसे कुछ उस जीवन्मुक्तको प्रयोजन है ॥ १९ ॥ जैसे अनुभवसे दृष्ट आत्मतत्व है वैसाही एक ब्रह्ममय यह संपूर्ण जगत् है. जब यह दशा है तब बंध वा मोक्षमें कदापि कहीं यह मन दीनतायुक्त नहीं होता ॥ २० ॥

सम्यग्ज्ञानाग्निनायस्यदग्धाःसंदेहजालिकाः ॥ निःशंकमलमुड्डीनस्तस्यचित्तविहंगमः ॥ २१ ॥ यस्य भ्रांतिविनिर्मुक्तंमनःसमरसंस्थितम् ॥ नास्तमेतिनचोदेतिव्योमवत्सर्वदृष्टिषु ॥ २२ ॥ मंजूषायांनिष ण्णस्ययथाबालस्यचेष्टते ॥ अंगावल्यनुसंधानवर्जितंयस्यवैतथा ॥ २३ ॥ घूर्णन्क्षीबइवानंदीमंदीभूत पुनर्भवः ॥ अनुपादेयबुद्ध्यातुनस्मरत्यकृतंकृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसके ज्ञानरूप अग्निसे संदेहरूप पिंजरा नष्ट होगयाहै उसका चित्तरूप पक्षी निःशंक पूर्णरीतिसे उड गया ॥ २१ ॥ जिस आत्मज्ञानीका मन भ्रमसे मुक्त ब्रह्मरूप होके न अस्त होताहै न उदय होताहै किंतु सब अवस्थामें आकाशके तुल्य स्थितहै ॥ २२ ॥ मनके अभावमेंभी उसके अंगोंकी पंक्ति अनुसंधानके विना ऐसे चेष्टा करती हैं जैसे झूलनेकी शय्यामें स्थित बालककी ॥ २३ ॥ मदिरासे मत्तके तुल्य ब्रह्मानन्दसे घूरताहै, और पुनर्जन्मका भय जिसका मंद है, वह अग्राह्यबुद्धिके कारणसे किये वा न किये हुयेको स्मरण नहीं करता ॥ २४ ॥

सर्वंसर्वप्रकारेणगृह्णातिचजहातिच ॥ अनुपादेयसर्वार्थोबालवच्चविचेष्टते ॥ २५ ॥ सतिष्ठन्नपिकार्येषु देशकालक्रियाक्रमैः ॥ नकार्यसुखदुःखाभ्यांमनागपिहिगृह्यते ॥ २६ ॥ बहिःप्रकृतसर्वार्थोऽप्यंतःपुनर नीहया ॥ नसत्तांयोजयत्यर्थेनफलान्यनुधावति ॥ २७ ॥ नोपेक्षतेदुःखदशांनसुखाशामपेक्षते ॥ कार्यो दयेनैतिमुदंकार्यनाशेनखिद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—सब कुछ सबप्रकारसे ग्रहणभी करता है, और त्यागताभी है, और उसको सब पदार्थ अग्राह्य हैं, तथा बालकके समान चेष्टा करताहै ॥ २५ ॥ देश, काल, तथा क्रियाके क्रमोंसे कार्य्योंमें स्थितभी परंतु कार्यजनित सुख तथा दुःखसे वह वशीभूत नहीं होता ॥ २६ ॥ बाहरके मनसे तथा प्राप्त सब कार्योंको करताहै, और आभ्यं-तरसे चेष्टारहित रहताहै. बाह्यपदार्थोंमें सत्यताबुद्धिसे विश्वास नहीं करता, और इसीसे फलोंकीओरभी नहीं दौडता ॥ २७ ॥ समीपमें प्राप्तभी दुःखकी दशाकी ओर नहीं देखता, न सुखकी इच्छा करता है. कार्यके उदयसे प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, और न कार्यके नाशसे खिन्न होताहै ॥ २८ ॥

अपिशीतरुचावर्केसुतप्तेपींदुमंडले ॥ अप्यधःप्रसरत्यग्नौविस्मयोऽस्यनजायते ॥ २९ ॥ चिदात्मनइमाइ त्थंप्रस्फुरंतीहशक्तयः ॥ इत्यस्याश्चर्यजालेषुनाभ्युदेतिकुतूहलम् ॥ ३० ॥ नदयादैन्यमादत्तेनक्रौर्यमनु धावति ॥ नलज्जामनुसंधत्तेनालज्जत्वंचगच्छति ॥ ३१ ॥ नकदाचनदीनात्मानोद्धतात्माकदाचन ॥ नप्रमत्तोनखिन्नात्मानोद्विग्नोनचहर्षवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—सूर्य शीतल और चन्द्रमा उष्ण होजाय वा चन्द्रमा तप्त और सूर्यमंडल शीतल होजाय, अग्नि चाहे नीचेकी ओर चले परन्तु इस आत्मज्ञानीको विस्मय नहीं होता॥२९॥ये सब इसीप्रकार सच्चिदानन्दकी माया स्फुरित होती हैं इस विचारसे आश्चर्यके समूहमेंभी इसको विस्मय नहीं होता ॥ ३० ॥ न तो दयासे दीनताको ग्रहण करताहै और न क्रूरताकी ओर दौडताहै, न भिक्षासे अपमान आदिमें लज्जित होताहै, और कुकर्मआदिमें निर्लज्जताकोभी नहीं धारण करता ॥ ३१ ॥ न तो कभी दीन हो और न कभी गर्वी हो, न कभी प्रमत्त और न कभी खिन्न हो, न कभी भयशोकादियुक्त हो, और न कभी हर्षित होताहै ॥ ३२ ॥

नास्यचेतसिसुस्फारेशरदंबरनिर्मले ॥ कोपादयःप्रजायंतेनभसीवनवांकुराः ॥ ३३ ॥ अनारतपतज्जात भूतायांजगतःस्थितौ ॥ ककथंकिलकासौस्यात्सुखिताऽसुखिताथवा ॥ ३४ ॥ फेनाजवंजवीभावेजले भूतक्रमेतथा ॥ क्वकिलेदंकुतःकोऽतःप्रसंगःसुखदुःखयोः ॥ ३५ ॥ भावाभावैरपर्यंतैरजस्रंजंतुसंभवैः ॥ नविशीर्यंतिनोद्यंतिदृष्टिसृष्टिक्षमानराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—विशाल तथा शरत्कालके आकाशकेसमान इसके चित्तमें कोप आदि ऐसे नहीं होते जैसे आकाशमें नूतन अंकुर ॥ ३३ ॥ निरन्तर मरण तथा उत्पत्ति जिसमें होरही हैं ऐसी इस जगत्की स्थितिमें कहां! कैसे और कौनसी सुखिता वा दुःखिता होसकती है ॥ ३४ ॥ तरंगोंकेद्वारा फेनोंके भ्रमण जिसमें होते हैं ऐसे जनके सदृश इस पंचभूत वा प्राणियोंके क्रममें कहां ! किसप्रकार और कैसा सुख तथा दुःखका क्रम है ! ॥ ३५ ॥ प्राणियोंसे उत्पन्न निरन्तर अपार उत्पत्ति तथा नाशकेद्वारा जगत्के दृष्टिसृष्टिमें समर्थ जीवन्मुक्त न कभी जीर्ण होते हैं और न हर्ष शोकादिसे उदय अस्तको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥

निमेषंप्रतियामिन्यांयथान्याःस्वप्नदृष्टयः ॥ क्षणोत्पत्तिविनाशिन्यस्तथैतालोकदृष्टयः ॥ ३७ ॥ अनार तसमुत्पत्तावनारतविनाशिनि ॥ कःक्रमोदग्धसंसारेकारण्यानंदयोरिह ॥ ३८ ॥ शुभाभावात्सुखाभा वेस्थितिंयातेविलक्षणाः ॥ कीदृश्यःकथमायाताःक्वाताद्दुःखसंविदः ॥ ३९ ॥ सुखसंवेदनांतोत्थास्व बीजंवितनोतिया ॥ शांताद्दुःखदशासेयंकथमंतर्हितेसुखे ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे रात्रिमें एक निमेषकेलिये स्वप्नकी दृष्टि हैं ऐसेही क्षणमें उत्पत्ति और नाशसे ये संसारकी दृष्टिभी हैं ॥ ३७ ॥ निरन्तर उत्पत्ति तथा विनाशमय इस संसारमें शोक और आनन्दका क्या क्या प्रसंगहै ॥ ३८ ॥ शुभ-कर्मके अभावसे सुखके अभाव स्थिर होनेपर शुभफलसे विलक्षण किसप्रकारके और कहांसे वे दुःखके अनुभव हो-सकते हैं ॥ ३९ ॥ क्योंकि शुभकर्मोंके फलरूप जो सुखके अनुभवके अंतमें उत्पन्न दुःखकी दशा अपने बीजरूप शोक मोहआदिका विस्तार करती है वह स्वयं सुखके शांत होजानेसे कैसे होसकती है ॥ ४० ॥

क्षीणाभ्यांसुखदुःखाभ्यांहेयोपादेययोःक्षये ॥ ईप्सितानीप्सितेकस्तोगलितेथशुभाशुभे ॥ ४१ ॥ रम्या रम्यदृशोर्नाशाद्यातेभोगाभिवांछने ॥ नैराश्येसंततंप्रौढेहिमवद्विगलेन्मनः ॥ ४२ ॥ आमूलान्मनसिक्षी

णेसंकल्पस्यकथाचका ॥ तिलेष्विवातिदग्धेषुतैलस्यकलनाकुतः ॥ ४३ ॥ भावेष्वभावघनभावनया महात्मानिर्मुक्तसंकलनमंबरवत्स्थितेषु ॥ चित्तंप्रतिस्वमुदितोविततैकरूपीन्नास्तिष्ठतिस्वपितिजीवति नित्यतृप्तः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तस्वरूपवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—क्षीण सुखदुःखसे हेय और उपादेय (ग्राह्य) के क्षय होनेपर शुभ अशुभके गलित होनेपर इष्ट अ-निष्ट कहां ! ॥ ४१ ॥ रम्य तथा अरम्यदृष्टिके नाशसे भोगकी इच्छाके नष्ट होनेपर; और निरन्तर नैराश्यके प्रबल होनेपर हिमकेतुल्य मन गलजाताहै ॥ ४२ ॥ मनके मूलसे क्षीण होजानेपर संकल्पकी कथा कहां रही जैसे तिलके भस्म होनेपर तेलकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥४३॥ हे रामजी ! अपने आत्मासे भिन्न कुछ नहीं है इस अभावकी दृढभावनासे संकल्प विकल्पकी रहिततापूर्वक आकाशके तुल्य सब दृश्यपदार्थोंके स्थित होनेपर परिच्छिन्नताके अभावसे आत्मज्ञानी महात्मा नित्यतृप्त तथा आत्मानन्दसे मुदित होके जाग्रत् स्वप्नमें यथाप्राप्त पदार्थोंके दर्शनमात्रसे चित्तके प्रति स्थित रहताहै, चित्तके लयमें शयन करताहै, और प्रारब्धके क्षयतक जीताहै ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे जीवन्मुक्तस्वरूपवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

चित्तके स्पंदसे जगत्की भ्रांति और चित्तके स्पन्द (संचलन) से जो दृष्टि होती हैं, उनका तथा चित्तका निरोध योग होताहै यह विषय इस ७८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यथालातपरिस्पंदादग्निचक्रंप्रदृश्यते ॥ असदेवसदाभासंचित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ १ ॥ यथाजलपरिस्पंदाद्व्यतिरिक्तइवांभसः ॥ दृश्यतेवर्त्तुलावर्त्तश्चित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ २ ॥ यथाव्योम्नीक्षणस्पंदात्पिच्छमौक्तिकमंडलम् ॥ दृश्यतेसदिवासत्यंचित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ ३॥ श्रीराम उवाच ॥ येनप्रस्पंदतेचित्तंयेननस्पंदतेतथा ॥ तद्ब्रह्मन्ब्रूहिमेयेनचिकित्सेयंतदेवहि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—जैसे जलतेहुये काष्ठके घुमानेसे अग्निका चक्र देखपडताहै इसीप्रकार चित्तके स्पन्द (संचलन) से असत्स्वरूपही यह जगत् आभासमान देखपडताहै ॥ १ ॥ जैसे जलके भ्रमणसे जलसे पृथक्केसमान वर्तुलाकार (गोल) आवर्त (भंवरेह) देखपडताहै ऐसेही चित्तके स्पन्दसे यह जगत् है ॥ २ ॥ जैसे आतपमें आकाश (सूर्य) की ओर दृष्टि करनेसे क्षणमेंही मोरके पंख वा मोंतियोंकी माला देखपडती है ऐसेही चित्तके स्पन्दसे अस-त्यही यह जगत् सत्यकेसमान देखपडताहै ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! जिस स्वभावसे चित्त संचलित होताहै और जिससे स्पन्दका अभाव होताहै वह उपाय कहिये, क्योंकि उस मनकोही दमन करना आवश्यहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथाशौक्ल्यहिमेरामतिलतैललवौयथा ॥ यथाकुसुमसौगंध्येतथौष्ण्यदहनौयथा ॥ ५ ॥ तथाराघवसंश्लिष्टौचित्तस्पंदौतयैवहि ॥ अभिन्नौकेवलंमिथ्याभेदःकल्पितएतयोः ॥ ६ ॥ चित्ताचित्तपरिस्पंदपक्षयोरेकसंक्षये ॥ स्वयंगुणगुणिस्थित्वानश्यतोद्वौनसंशयः ॥ ७ ॥ द्वौक्रमौचित्त नाशस्ययोगोज्ञानंचराघव ॥ योगस्तद्वृत्तिरोधोहिज्ञानंसम्यगवेक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जैसे हिम और शुक्लता, तिल और तेलका कण, पुष्प और सौगन्ध्य, तथा उष्णता तथा अग्नि अभिन्नरूप हैं ॥ ५ ॥ ऐसेही चित्त और उसके स्पन्दमिलित अभिन्नरूप हैं, इनका भेद मि-थ्याही कल्पितहै ॥ ६ ॥ चित्त और चित्तके परिस्पन्दमेंसे एकके क्षय होनेसे गुणगुणीरूपसे कल्पित कारणस्वरूपसे स्थित होके दोनों नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! चित्तस्पन्दरूप चित्तके नाशकेलिये शास्त्रमें दो क्रम कहे हैं, योग तो चित्तकी वृत्तियों (स्पन्दों) का निरोध है और ज्ञान पूर्णरीतिसे दर्शन है ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कदाकीदृक्क्रयायुक्त्याप्राणापाननिबंधया॥ योगनाम्न्यामनःशांतिमेत्यनंतसुखप्रदाम् ॥९॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहेस्मिन्देहनाडीषुवातःस्फुरतियोऽभितः ॥ स्पंदेष्विवभुवोवारिसप्राणइति कीर्त्तितः ॥१०॥ तस्यस्पंदवशादंतःक्रियावैचित्र्यमीयुषः ॥ अपानादीनिनामानिकल्पितानिकृतात्मभिः ॥ ११ ॥ आमोदस्ययथापुष्पंशौक्ल्यस्यतुहिनंयथा ॥ तथैषरसआधारश्चित्तस्याभिन्नतांगतः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! कब और किस प्राणअपानके आधीन योगरूप युक्तिसे अनन्त सुखदायक मनकी शांतिको प्राणी प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस देहमें प्रतिशाखामें ७२ बहत्तरि २ नाडीयोंके समूह हैं सहस्रों नाडियोंमें पवन चारोंओरसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे भूमिके, संचलनमें जल, उसको प्राण कहतेहैं ॥ १० ॥ स्पंदके कारणसे विचित्र (अधोगमन आदि) क्रियाको प्राप्त उसी प्राणके पंडितोंने अपान आदि नाम कल्पित कियेहैं ॥ ११ ॥ जैसे सौगन्ध्यका पुष्प, शुक्लताका हिम, आधार है, ऐसेही यह चित्‌रूप रस चित्तसे अभिन्नके समान इसका आधार है ॥ १२ ॥

अंतःप्राणपरिस्पंदात्संकल्पकलनोन्मुखी ॥ संवित्संजायतेयैषाताच्चित्तंविद्धिराघव ॥ १३ ॥ प्राणस्पंदाच्चितःस्पंदस्तत्स्पंदादेवसंविदः ॥ चक्रावर्तविधायिन्योजलस्पंदादिवोर्मयः ॥ १४ ॥ चित्तंप्राणपरिस्पंदमाहुरागमभूषणाः ॥ तस्मिन्संरोधितेनूनमुपशांतंभवेन्मनः ॥ १५ ॥ मनस्पंदोपशांत्यायंसंसारः प्रविलीयते ॥ सूर्यालोकपरिस्पंदशांतौव्यवहृतिर्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! भीतर प्राणकी गति होनेमें संकल्पकी कल्पनाकी ओर उन्मुख जो संवित् (चिदाभासकी वृत्ति) उत्पन्न होती है उसीको तुम चित्त कहतेहो ॥ १३ ॥ प्राणके स्पंदसे चिदाभाससे व्याप्त वृत्तियोंका स्पंद होताहै और उसके विषयाकार अनुभव ऐसे होताहै जैसे जलके स्पंदसे चक्राकार आवर्तको अनुसरण करनेवाली तरंग ॥१४॥ वेदके मर्मवेत्ता प्राणके स्पंदकोही चित्त कहते हैं, इसलिये प्राणका निरोध होनेसे चित्त शांत होताहै ॥ १५ ॥ और मनकी शांतिसे यह संसार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे सूर्य्यके प्रकाशके संचारके शांत होनेसे दिनका व्यवहार ॥ १६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनिशंचरतांदेहगेहेगगनगामिनाम् ॥ प्राणादीनांपरिस्पंदोवायूनांरोध्यतेकथम् ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासयोगतः ॥ अनास्थायांकृतास्थायांपूर्वसंसारवृत्तिषु ॥ १८ ॥ यथाभिवांछितध्यानाच्चिरमेकतयोदितात् ॥ एकतत्वघनाभ्यासात्प्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते॥१९॥पूरकादिनिजायामादृढाभ्यासादखेदजात् ॥ एकांतध्यानसंयोगात्प्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते॥२०॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! इस देहरूप गृहमें बहत्तर (७२) सहस्र नाडियोंमें नासिकाआदि छिद्ररूप आकाशमें निरंतर गामि प्राणआदि पवनके परिस्पंदका निरोध कैसे होसकताहै ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शास्त्र तथा सज्जनके संगसे तथा वैराग्य तथा अभ्यासके योगसे पूर्वकालमें अभ्यस्त संसारकी वृत्तियोंमें अविश्वासके दृढ होनेपर ॥ १८ ॥ एकाग्रतासे उदयको प्राप्त यथाभिमत ध्यानसे अनंतर एकतत्वके दृढ अभ्याससे प्राणके स्पन्दका निरोध (रूकावट) होताहै ॥ १९ ॥ दृढअभ्यास तथा बिना खेदसे उत्पन्न पूरक आदि निजप्राणायामसे एकांतमें ध्यानके संयोगसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २० ॥

ओंकारोच्चारणप्रांतशब्दतत्वानुभावनात् ॥ सुषुप्तेसंविदोजातेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २१ ॥ रेचकेनूनमभ्यस्तेप्राणेस्फारिखमागते ॥ नस्पृशत्यंगरंध्राणिप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २२ ॥ पूरकेनूनमभ्यस्तेपूराद्रिरिघनस्थिते ॥ प्राणेप्रशांतसंचारेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २३ ॥ कुंभकेकुंभवत्कालमनंतंपरितिष्ठति॥ अभ्यासात्स्तंभितेप्राणेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—उच्चस्वरसे ओंकारके उच्चारणमें चतुर्थमात्राके आलंबनके योगसे ब्राह्मसंवित्के सर्वथा उपराम होनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २१ ॥ और रेचकके दृढ अभ्यास होनेसे विशालप्राणके छिन्नमेघके तुल्य आकाशरूप होनेसे और उससे नासिकाके छिद्रआदिको स्पर्श न करनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २२ ॥ और पूरकके निश्चयरूपसे अभ्यास करनेपर आभ्यन्तरसे पूरण होनेसे पर्वतपर मेघके तुल्य पूर्तिपर्य्यन्त वृद्धिके निश्चल होनेपर तथा प्राणोंके संचारके शांत होनेपर प्राणोंके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २३ ॥ पूर्तिके अनन्तर पूर्णघटके समान कुंभकप्राणायामके अनन्तकालतक स्थित होनेपर, और अभ्याससे प्राणके स्तंभित होनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै२४

तालुमूलगतांयत्नाज्जिह्वायाक्रम्यघंटिकाम् ॥ उर्ध्वरंध्रगतेप्राणेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २५ ॥ समस्तकलनोन्मुक्तेनकिंचिन्नामसूक्ष्मखे ॥ ध्यानात्संविदिलीनायांप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २६ ॥ द्वादशांगुलपर्यंतेनासाग्रेविमलांबरे ॥ संविद्दृशिप्रशाम्यंत्यांप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २७ ॥ अभ्यासादूर्ध्वरंध्रेणताल्वूर्ध्वंद्वादशांतगे ॥ प्राणेगलितसंवृत्तेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—मुखके फैलानेसे तालुके मूलमें स्तनके समान लटकती हुई इन्द्रकी योनि घंटिकाको जिव्हासे रोककर प्राणको ब्रह्मरंध्रमें प्रवेशित करके धारण करनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २५ ॥ समस्त कल्पनाओंके

विकारसे रहित इसीसे नामशून्य सूक्ष्म हार्दाकाशमें बाह्य तथा आभ्यन्तर संवेदनकी वृत्तिमात्रके निर्विकल्प समाधिसे लीन होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २६ ॥ द्वादश (१२) अंगुलपर्य्यन्त नासिकासे अग्रभागमें विमल आकाशमें नेत्र तथा मनके निरोधसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २७ ॥ और अभ्याससे ऊर्ध्वरंध्र (छिद्र) तालुके ऊपर ब्रह्मरंध्रमें प्राणकी वृत्तिके गलित होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २८ ॥

भ्रूमध्येतारकालोकशांतावंतमुपागते ॥ चेतनेकेतनेबुद्धेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २९ ॥ झटित्येवयदुद्भूतं ज्ञानंतस्मिन्दृढाश्रिते ॥ असंश्लिष्टविकल्पांशेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३० ॥ चिरंकालंहृतेकांतव्योमसंवेदनान्मुने ॥ अवासनान्मनोध्यानात्प्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्जगति भूतानां हृदयंतत्किमुच्यते ॥ इदंसर्वंमहादर्शेयस्मिंस्तत्प्रतिबिंबति ॥ ३२ ॥

अर्थ—और भ्रू (भौंह) के मध्यस्थानमें नेत्र इंद्रियके चिरकालतक निरोधसे शांत होनेपर और पूर्वोक्तरीतिसे प्राणके कपालछिद्रमें प्रवेशसे चिन्मात्रस्वभाव परमात्माको आत्मारूपसे जाननेपर प्राणका निरोध होताहै ॥ २९ ॥ गुरु वा ईश्वरके अनुग्रहसे शीघ्र जो आत्मज्ञान होताहै उस ज्ञानके विल्कपांशसे रहित दृढ होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ ३० ॥ हे मननशील रामजी ! हृदयाकाशमें चिरकालतक चित्तके लगानेसे और वासनारहित होके आत्माका ध्यान करनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! इस संसारमें प्राणियोंका हृदय क्या है जिस महादर्प्पणमें यह सब दृश्य स्फुरित होताहै ॥ ३२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साधोजगति भूतानांहृदयंद्विविधंस्मृतम् ॥ उपादेयंचहेयंचविभागोयंतयोःशृणु ॥ ३३ ॥ इयत्तयापरिछिन्नेदेहेयद्वक्षसोंतरम् ॥ हेयंतद्धृदयंविद्धितनावेकतटेस्थितम् ॥ ३४ ॥ संविन्मात्रंतुहृदयमुपादेयंस्थितंस्मृतम् ॥ तदंतरेचबाह्येचनचबाह्येनचांतरे ॥ ३५ ॥ तत्तुप्रधानंहृदयंतत्रेदंसमवस्थितम् ॥ तदादर्शःपदार्थानांतत्कोशःसर्वसंपदाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे साधो ! इस जगत्में प्राणियोंका दो प्रकारका हृदय है एकतो ग्राह्यहै और दूसरा त्याज्यहै उनका यह भेद तुम सुनो ॥ ३३ ॥ इयत्ता (इतनाहै) से परिच्छिन्न देहमें, वक्षस्थलमें, शरीरके एकदेशमें जो मांसपिंड है उसको तुम त्याज्य जानो ॥ ३४ ॥ संवित् (ज्ञान) मात्र जो हृदय है वह उपादेय कहागयाहै, और वह सबके भीतर तथा बाहर है ॥ ३५ ॥ वही प्रधान हृदय है, उसी ज्ञानमें यह सब जगत् स्थित है, वही सब पदार्थोंका दर्पण तथा सब संपत्तियोंका कोश है ॥ ३६ ॥

सर्वेषामेवजंतूनांसंविद्धृदयमुच्यते ॥ नदेहावयवैकांशोजडजीर्णोपलोपमः ॥ ३७ ॥ तस्मात्संविन्मये शुद्धेहृदयेहतवासनः ॥ बलान्नियोजितेचित्तेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३८ ॥ एभिःक्रमैस्तथान्यैश्चनानासंकल्पकल्पितैः ॥ नानादेशिकवक्त्रस्थैःप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३९ ॥ अभ्यासेननिराबाधमेतास्तायोगयुक्तयः ॥ उपायतामुपायांतिभव्यस्यभवभेदने ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब जीवोंका हृदय संवित् कहागया है न कि देहका अवयव, जड प्राचीन पाषाणके समान मांसपिंड ॥ ३७ ॥ इसलिये संवित्रूप शुद्धहृदयमें वासनाके त्यागपूर्वक चित्तके बलसे नियुक्त करनेपर प्राणका स्पंद निरुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ इन तथा अन्य नानाप्रकारके आचार्य्योंके मुखमें स्थित नानाप्रकारके संकल्पोंसे कल्पित कर्मोंसे प्राणके स्पंदका निरोध होताहै ॥ ३९ ॥ मोक्षके अधिकारी पुरुषको संसारके भेदनमें ये सब कहीहुई योगकी युक्तियां अभ्याससे निःसंदेह उपायताको प्राप्त होतीहैं ॥ ४० ॥

आभ्यासाद्दृढतांयातोवैराग्यपरिलांछितः ॥ यथावासनमायामःप्राणानांसफलःस्मृतः ॥ ४१ ॥ भ्रूनासाताल्वसंस्थासुद्वादशांगुलिकोटिषु ॥ अभ्यासाच्छाम्यतिप्राणोदूरेगिरिनदीयथा ॥ ४२ ॥ भूयोभूयश्चिराभ्यासाज्जिह्वाप्रांतेनतालुनि ॥ घंटिकास्पृश्यतेप्राणोयेनोच्चैर्निवहत्यलम् ॥ ४३ ॥ विकल्पबहुलास्त्वेतेस्वाभ्यासेनसमाधयः ॥ परमोपशमायाशुसंप्रयांत्यविकल्पताम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—अभ्याससे दृढताको प्राप्त, वैराग्यसे चिन्हित, वासनाओंके निरोधकेलिये प्राणायाम सफल कहा गयाहै ॥ ४१ ॥ भ्रू, नासिका, तालु वा कंठदेशसे १२ अंगुलिपर्य्यन्त, कंठ, नाभि तथा कूर्म नाडी आदि देशोंमें चित्तके स्थिर करनेके अभ्याससे प्राण ऐसे शांत होताहै जैसे दूरदेशमें जानेसे झरनेकी नदी ॥ ४२ ॥ जिव्हाके अग्रभागसे पुनः २ जो घंटिका पीडित की जाती है जिससे प्राण अधिक नहीं चलता ॥ ४३ ॥ यद्यपि इन समाधियोंके अनेक विकल्प हैं तथापि निष्कामपुरुषकेलिये अविकल्पताको प्राप्त होती हैं ॥ ४४ ॥

आत्मारामोवीतशोकोभवत्यंतःसुखःपुमान् ॥ अभ्यासादेवनान्यस्मात्तस्मादभ्यासवान्भव ॥ ४५ ॥ अभ्यासेनपरिस्पंदेप्राणानांक्षयमागते ॥ मनःप्रशममायातिनिर्वाणमवशिष्यते ॥ ४६ ॥ वासनावलितं जन्ममोक्षंनिर्वासनंमनः ॥ प्राणंचरामगृह्णातियथेच्छसितथाकुरु ॥ ४७ ॥ प्राणस्पंदोमनोरूपंतस्मा त्संसृतिविभ्रमः ॥ तस्मिन्नेवशमंयातेदीयतेसंसृतिज्वरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अभ्यास (चित्तके निरोधरूप अभ्यास) सेही पुरुष आत्माराम शोकरहित, और अंतः-करणमें सुखी होताहै न कि अन्य किसी उपायसे, इस कारण तुमभी अभ्यासवान् होओ ॥ ४५ ॥ अभ्याससे प्राणोंके परिस्पन्दके क्षय होनेपर मन शांतिको प्राप्त होताहै और केवल निर्वाण (ब्रह्म वा मोक्षपद) शेष रहताहै ॥ ४६॥ हे रामजी ! वासनासे वेष्टित चित्त जन्म शरीर और प्राणको ग्रहण करता है और वासनारहित मोक्षको, अब तुम जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! प्राणोंका स्पंदही मनका रूप है और उसीसे यह संसारका भ्रम है. उस प्राणके स्पंदके शांत होनेपर यह संसारका ताप खंडित होजाताहै ॥ ४८ ॥

विकल्पांशक्षयाज्जंतोःपदंतदवशिष्यते ॥ यतोवाचोनिवर्त्तंतेसमस्तकलनान्विताः ॥ ४९ ॥ यत्रसर्वंय तःसर्वंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ यत्रनेदंयतोनेदंयन्नेदंनेदृशंजगत् ॥ ५० ॥ विनाशित्वाद्विकल्पत्वाद्गुणि त्वान्निर्गुणात्मनः ॥ यस्यनोसदृशोदृष्टोदृष्टांतःकश्चिदेवहि ॥ ५१ ॥ स्वादनीसर्वशालीनांदीपिकास र्वतेजसाम् ॥ कलनासर्वकामानामंतश्चिच्चंद्रिकोदिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—प्राणीके विकल्प अंशके क्षय होनेसे वह (ब्रह्म) पद शेष रहताहै जिससे समस्त कल्पनायुक्त वाणी निवृत्त होती हैं ॥ ४९ ॥ जहां वह सब है, जहांसे यह सब (दृश्य) है, जो सब है, और जो सबओरसे है, और अपने स्वरूपसे जहां यह नहीं है, जहांसे यह नहीं है, जो यह नहीं है, और जिस ब्रह्मके सदृश किसी अंशमें यह जगत् नहीं है ॥ ५० ॥ विनाशी होनेसे, विकल्पमय होनेसे, निर्गुण परमात्माके सदृश कोईभी दृष्टांत जगत्में नहीं देखागया ॥ ५१ ॥ अन्तःकरणमें उदित चित्रूप चन्द्रिका सब रूपरसादि गोचर बाह्यवृत्तिकी त्रिपुटीका आस्वाद लेनेवाली (साक्षीरूप) और सब तेजस्वीपदार्थोंकी दीपिका (प्रकाशिका) तथा आमआदि आभ्यन्तर वृत्तियोंकी त्रिपुटीकीभी प्रकाशिका है ॥ ५२ ॥

यस्मात्कल्पतरोर्बह्वयःसंसारफलपंक्तयः ॥ अनारतंबहुरसाजायंतेचपतंतिच ॥ ५३ ॥ तत्पदंसर्वसी मांतमवलंब्यमहामतिः ॥ यःस्थितःस्थिरधीस्तज्ज्ञःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ५४ ॥ विगतसर्वसमीहित कौतुकःसमुपशांतहिताहितकल्पनः ॥ सकलसंव्यवहारसमाशयोभवतिमुक्तमनाःपुरुषोत्तमः ॥५५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे योगवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जिस चेतनरूप कल्पवृक्षसे अनेकरससंयुक्त ये संसाररूप फलोंकि पंक्ति निरन्तर उत्पन्न होती हैं और गिरती हैं ॥ ५३ ॥ सब सीमाओंका अंत उस ब्रह्मपदका अवलम्बन करके जो महामति स्थितहै वही धीर बुद्धि-युक्त है और वही उस ब्रह्मपदका ज्ञाता जीवन्मुक्त कहाजाताहै ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! सब वांछित कामभोगादिकी अभिलाषा जिसकी गलित होगई हैं सब हित अहितकी कल्पना जिसकी शांत है और सब व्यवहारोंमें हर्ष शोक आदिसे जो शून्य हैं ऐसा प्राणी मनसे मुक्त पुरुषोत्तम है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे योगवर्णनं नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

चित्तके नाशकेलिये जो योग और ज्ञानका क्रम पूर्वप्रसंगमें कहागयाहै उनमेंसे प्रथम (योग) के ज्ञात होने-पर दूसरा (ज्ञानका क्रम) इस ७९ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ योगयुक्तस्यचित्तस्यशमएवनिरूपितः ॥ सम्यग्ज्ञानमिदानींमेकथयानुग्रहात्प्रभो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनाद्यंतावभासात्मापरमात्मेहविद्यते ॥ इत्येकोनिश्चयःस्फारःसम्यग्ज्ञानंविदु र्बुधाः ॥ २ ॥ इमाघटपटाकाराःपदार्थशतपंक्तयः ॥ आत्मैवनान्यदस्तीतिनिश्चयःसम्यगीक्षणम् ॥ ३ ॥ असम्यग्वेदनाज्जन्ममोक्षस्सम्यगवेक्षणात् ॥ असम्यग्वेदनाद्रज्जुःसर्पोनोसम्यगीक्षणात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! योगसे युक्त पुरुषके चित्तके नाशका प्रथम उपाय आपने कहा, अब मेरे ऊपर अनुग्रह करके सम्यक्ज्ञान कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अनादि अनंत परमात्माही एक असाधारण इस जगत्में है अन्य नहीं है इसी एक महान् निश्चयको पण्डितलोग सम्यक्ज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥ घटपट आकारकी ये सैकडों पदार्थोंकी पंक्तियां स्फुरित होती हैं वह सब आत्माही है न कि अन्य यही निश्चय सम्यक्ज्ञान है. मिथ्याज्ञानसे जन्मादि और सम्यक्ज्ञानसे मोक्ष होताहै, क्योंकि मिथ्याज्ञानहीसे रज्जु सर्प होताहै न कि सत्यज्ञानसे ॥ ४ ॥

संकल्पांशविनिर्मुक्तासंवित्संवेद्यवर्जिता ॥ संवित्त्याभिसमाख्यातामुक्तावस्तीहनेतरत् ॥ ५ ॥ साशुद्धरूपाविज्ञातापरमात्मेतिकथ्यते ॥ शुद्धात्वशुद्धरूपांतरविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ ६ ॥ संवित्तिरेवसंवेद्यं नानयोर्द्वित्वकल्पना ॥ चिनोत्यात्मानमात्मैवरामैवंनान्यदस्तिहि ॥ ७ ॥ यथाभूतात्मदर्शित्वमेतावद्भुवनत्रये ॥ यदात्मैवजगत्सर्वमितिनिश्चित्यपूर्णता ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पके अंशसे विनिर्मुक्त और विषयसे वर्जित जो संवित् है वही अपने स्वप्रकाश स्वभावसे चारों-ओरसे मुक्तिकेलिये प्रख्यात है न कि अन्य ॥ ५ ॥ वही शुद्धरूपसे ज्ञात संवित् परमात्मा कही गई है, और वह शुद्ध-रूपभी होके अन्तमें अशुद्धरूपकी कल्पनासे पंडितोंसे अविद्या कहीजाती है ॥ ६ ॥ ज्ञानही ज्ञेय है इन दोनों (ज्ञान ज्ञेय) में द्वित्वकी कल्पना नहीं है. हे रामजी ! आत्माही आत्माका संचय करताहै और अन्य कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥ इस तीनों भुवनोंमें सत्य आत्माकी दर्शिता और यह सब जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय करके पूर्णकामता है ॥ ८ ॥

सर्वमात्मैवकौदिष्टौभावाभावौक्वचस्थितौ ॥ क्वबंधमोक्षकलनेकिमन्यद्रामशोच्यते ॥ ९ ॥ नचेत्यमन्यन्नोचित्तंब्रह्मैवेदंविजृंभते ॥ सर्वमेकंपरंव्योमकोमोक्षःकस्यबंधता ॥ १० ॥ ब्रह्मेदंबृंहिताकारंबृहद्बृहदवस्थितम् ॥ ज्ञानादस्तमितद्वित्वंभवात्मैवत्वमात्मना ॥ ११ ॥ सम्यगालोकितेरूपेकाष्ठपाषाणवाससाम् ॥ मनागपिनभेदोस्तिक्वासिसंकल्पनोन्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब संसार आत्माही है तब भावअभाव आत्मासे भिन्न क्या निरूपण किये गये हैं और वे कहां स्थित हैं और बंधमोक्षकी कल्पना कहां है, इसलिये आत्मासे अन्य क्या है जिसकें लिये मूढलोग शोच क-रते हैं ॥ ९ ॥ आत्मासे अन्य न विषय है, न चित्त है, किन्तु ब्रह्मही यह दृश्यरूपसे शोभित है. सब जगत् एक चि-दाकाशही है, तब क्या मोक्ष है और किसको बंधन है ॥ १० ॥ महान्‌सेभी महान् ब्रह्मही यह बडे आकारसे इस दृश्यरूपसे व्यवस्थित है इस हेतुसे ज्ञानसे द्वित् (द्वैत) का बाध करके तुम आत्मासे आत्मारूप होओ ॥ ११ ॥ काष्ठ, पाषाण और वस्त्रोंका तत्व अधिष्ठान सन्मात्रसे भलीभांति विचारनेपर किंचिन्मात्रभी भेद किसीका नहीं है तब किसमें तुम संकल्पकी ओर उन्मुख हो ॥ १२ ॥

आदावंतेचसंशांतंस्वरूपमविनाशियत् ॥ वस्तुनात्मामनश्चैवतन्मयोभवराघव ॥ १३ ॥ परंव्योमेदमखिलंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ सुखदुःखक्रमःकुत्रविज्वरोभवराघव ॥ १४ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भूतैर्जरामरणविभ्रमैः ॥ स्फुरत्यात्मभिरात्मैवचित्रैरंब्विववीचिभिः ॥ १५ ॥ शुद्धमात्मानमालिंग्यनित्यमंतस्थया धिया ॥ यःस्थितस्तंकआत्मेहंभोगाबंधयितुंक्षमाः ॥ १६ ॥

अर्थ—आदिअन्तमें अविनाशी जो स्वरूप है वही वस्तुके नामसे प्रसिद्ध और वही आत्माका स्वरूप है, इस लिये हे रामजी ! तुम आत्ममय होजाओ ॥ १३ ॥ हे रामजी ! यह स्थावरजंगम सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म चिदाकाशही है, सुख तथा दुःखका क्रम कहां है इसलिये तुम सन्तापरहित होजाओ ॥ १४ ॥ द्वैत तथा अद्वैतसे उत्पन्न जरामर-णके भ्रमसे संयुक्त चित्रविचित्र आत्मा (जीवों) से आत्माही ऐसे स्फुरित होताहै जैसे विचित्र तरंगोंसे जल ॥१५॥ अन्तरमें स्थितबुद्धिसे नित्य शुद्धआत्माका आलिंगन करके जो स्थित है उस आत्माभिलाषी तत्त्वज्ञानीको भोग बांध-नेमें समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥

कृतस्फारविचारस्यमनोभोगादयोरयः ॥ मनागपिनभिंदंतिशैलंमंदानिलाइव ॥१७॥ अविचारिणमज्ञानं मूढमाशापरायणम् ॥ निगिरंतीहदुःखानिबकामत्स्यमिवाजलम् ॥१८॥जगदात्मैवसकलमविद्यानास्ति कुत्रचित् ॥ इतिदृष्टिमवष्टभ्यसम्यग्रूपःस्थिरोभव ॥ १९॥ नानात्वमस्तिकलनासुनवस्तुतोंतर्नानाविधा सुसरसीषुजलादिनान्यत् ॥ इत्येकनिश्चयमयःपुरुषोविमुक्तइत्युच्यतेसमवलोकितसम्यगर्थः ॥ २०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सम्यग्ज्ञानलक्षणनिरूपणं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ—जिसने महान् आत्माका विचार कियाहै उसको मन भोगआदि शत्रु ऐसे किंचित् भेदन नहीं करसकते जैसे पर्वतको मंद पवन ॥ १७ ॥ अविचारी, अज्ञानी, मूढ तथा आशामें परायण जीवको दुःख ऐसे निगलजाते हैं जैसे जलरहित मत्स्यको बक (बगुले) ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् आत्माही है, अविद्या कहीं नहीं है, इस दृष्टिका अवलंबन करके तुम आत्मरूपसे स्थिर होओ ॥ १९ ॥ जैसे नानाप्रकारके जलाशयोंमें तरंग फेन और बुद्बुद आदि जलसे अन्य कुछ नहीं हैं ऐसेही नानाप्रकारकी कल्पनाओंमें आत्माके सिवाय यथार्थमें कुछ नहीं है ऐसा विचार करके सम्यक् आत्मदर्शी और आत्मामें मुख्य निश्चययुक्त पुरुष मुक्त कहाजाताहै ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सम्यग्ज्ञानलक्षणनिरूपणं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

जिस विचारके दृढ होनेपर संमुख स्थित दिव्यभोगोंमेंभी इच्छा नहीं होती वह विचार इस८०के सर्गमें वर्णन करतेहैं॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदमंतःकलयतो भोगान्प्रतिविवेकिनः ॥ पुरःस्थितानपिसदास्पृहैवांगनजायते ॥ १ ॥ चक्षुरालोकनायैवजीवस्तुसुखदुःखयोः ॥ भारायैवबलीवर्दोभोक्ताद्रव्यस्यनायकः ॥ २ ॥ नयनेरूपनिमग्नेक्षोभःकइवदेहिनः ॥ गर्दभेपल्वलेमग्नेकैवसेनापतेःक्षतिः ॥ ३ ॥ रूपकर्दममेतन्मानयनास्वादयाधम ॥ नश्यत्येतन्निमेषेणभवंतमपिहिंसति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह वक्ष्यमाण विचार करतेहुये विवेकी पुरुषकी संमुख स्थित भोगोंमेंभी सदा रुचि नहीं होती॥१॥कि नेत्र केवल रूप दर्शनके लिये हैं और सुखदुःखका भोक्ता जीव है जैसे बलीवर्द भार ढोनेके लिये है और द्रव्यका भोक्ता उसका स्वामी है ॥ २ ॥ नेत्र इन्द्रियके रूपमें मग्न होनेसे आत्माको क्या क्षोभ क्योंकि गर्दभके तलावमें डूबनेसे सेनापतिकी क्या हानि ! ॥ ३ ॥ हे नीच नेत्र स्त्री पुत्रआदिकी सुन्दरतारूप इस कीचडका आस्वाद तुम मत लो क्योंकि यह एक निमेषमें स्वयं नष्ट होगा और तुमकोभी नष्ट करेगा ॥ ४ ॥

येनैवसंख्याक्रियतेयेनैवास्वानुगम्यते ॥ तदीयैःकर्मभिःक्षिप्रंप्राज्ञःक्रूरोनिबध्यते ॥ ५ ॥ उत्पन्नध्वंसिचापातमात्रहृद्यमसन्मयम् ॥ रूपमाश्रयमानेत्रविनाशायाविनाशिने ॥ ६ ॥ साक्षिवत्त्वंस्थितंनेत्ररूपमात्मनितिष्ठति ॥ आलोकंकालवशतस्त्वमेकंकिंप्रतप्यसे ॥ ७ ॥ सलिलस्पंदवद्दृष्टिःपिच्छिकेवांबरोत्थिता ॥ सुजातिबंधास्फुरतितवचित्तकिमागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और तीव्रबुद्धि आत्मज्ञानी तो जिस अंतर्गत चिदात्मासे बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थोंकी प्राप्तिद्वारा प्रकाश कियाजाताहै और जिसकेद्वारा अनात्मभूत पंचकोशोंकी परम्परा आत्माके साथ अभिन्नरूपसे अनुगम की जाती है उनके उदासीनतासे यथाप्राप्त पदार्थोंके प्रकाशनरूप चरित्रोंसे अभ्याससे सम्बन्धित होताहै न कि मूढोंके तुल्य सौंदर्य्यरूप कीचडके आस्वादनरूप कर्मोंसे ॥ ५ ॥ हे नेत्र उत्पत्ति तथा नाशशील, और बिना विचारे रमणीय, तथा असत्य इस रूपका आश्रय अवश्य होनेवाले मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेके वास्ते न करो ॥ ६ ॥ और हे नेत्र ! सदा सब पदार्थोंके प्रकाशनमें बिना किसीकी अपेक्षा समर्थ होकेभी रूपादिके विषयमें उदासीन साक्षीरूपसे स्थित है इसलिये तुमभी साक्षीके तुल्य सदा सत्रूप आत्माको देखो क्यों एकाकीपरि तप्त होतेहो ! ॥ ७ ॥ हे चित्त ! यह रूपकी दृष्टि जो गो, अश्व, स्त्री, पुरुषआदि उत्तम तथा तीन जातिके अनुबन्धसे युक्त होकर नेत्रको स्फुरित होरही है वह नदीआदिके जलकी गतिके समान अनियतरूप, और अश्रुसहित नेत्रसे आकाशकी ओर देखनेसे मोरके पंखके समान मिथ्याभूत है, परन्तु तुमको इसमें क्या प्राप्त हुआ ! ॥ ८ ॥

कल्पांभसीवशफरीचित्तेस्फुरणधर्मिणि ॥ स्वयंस्फुरत्यहंकारस्त्वमयंप्रोत्थितःकुतः ॥ ९ ॥ आलोकरूपयोर्नित्यंजडयोःस्फुरतोर्मिथः ॥ आधाराधेययोश्चित्तव्यर्थमाकुलतातव ॥ १० ॥ रूपालोकमनस्काराःपरस्परमसंगिनः ॥ संपन्नाइवलक्ष्यंतेवदनादर्शबिंबवत् ॥ ११ ॥ अज्ञानजंतुनाह्येतेश्लिष्टाजातानिरंतरा ॥ अज्ञानेज्ञानगिलितेपृथक्तिष्ठंत्यसन्मयाः ॥ १२ ॥

अर्थ—और हे अहंकार! प्रलयकालके जलमें मछलीके सदृश चित्तमें यह जगत् स्फुरित होताहै तो हो परन्तु तुम कहांसे आके आविर्भूत हो ॥ ९ ॥ हे चित्त ! स्त्री आदिके पिंडादिरूप सूर्य्य आदिके प्रकाशके आश्रयसे, और

सूर्यआदिका प्रकाश पिंडआदिके आश्रयसे इसप्रकार परस्पर दोनों जड आधार आधेय स्फुरित हों परन्तु सुन्दरता आदिकी भ्रांतिसे कामादिकी पीडासे बिना सम्बन्ध तुम व्याकुल होतेहो ॥१०॥ रूप, नेत्रआदिसे बाह्यपदार्थोंका दर्शन और मनके संकल्पमें परस्पर सम्बन्धरहित होकेभी मिलितके समान ऐसे देखपडते हैं जैसे मुख दर्पण और प्रतिबिंब ॥ ११ ॥ अज्ञानी जीवके लिये तो परस्पर मिलितहैं. जब ज्ञानसे अज्ञानका बाध होजाताहै तब पृथक् असन्मय स्थित रहते हैं अर्थात् अधिष्ठानरूपसे रहते हैं ॥ १२ ॥

मनःकल्पनयाह्येतेसुसंबद्धाःपरस्परम् ॥ रूपालोकमनस्कारादारुणीजतुनायथा ॥ १३ ॥ स्वमनोमननंतंतुर्मनोभ्यासेनयत्नतः ॥ विचाराच्छेदमायातिच्छिन्नैवाज्ञानभावना ॥ १४ ॥ अज्ञानसंक्षयात्क्षीणे मनसींमेपुनर्मिथः ॥ रूपालोलमनस्काराःसंघट्टंतेनकेचन ॥ १५ ॥ सर्वेषांचित्तमेवांतरिंद्रियाणांप्रबोधकम् ॥ तदेवतस्माङ्च्छेद्यंपिशाचइवमंदिरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—रूप प्रकाश और मनके संकल्प विकल्प ये सब मनकी कल्पनासे परस्पर ऐसे सम्बद्ध हैं जैसे लाहसे काष्ठ ॥ १३ ॥ अपने मनका संकल्प विकल्पही मकरीके जालके तुल्य अपने बन्धनका कारणहै और यत्नपूर्वक मनके अभ्याससे विचारद्वारा जब विच्छेदको प्राप्त हुआ तब मनकी भावना छिन्नही है ॥ १४ ॥ अज्ञानके क्षयसे मनके क्षीण होनेपर रूप प्रकाश तथा संकल्प किसीप्रकार नहीं मिलसकते ॥ १५ ॥ सब इन्द्रियोंका प्रेरक एक चित्तही है इसलिये मन्दिरसे पिशाचके तुल्य उसीका उच्छेद करना चाहिये ॥ १६ ॥

चित्तवल्गसिमिथ्यैवदृष्टोऽतोभवतोमया ॥ आद्यंतयोःसुतुच्छंत्वंवर्त्तमानेविनश्यसि ॥ १७ ॥ मुधापंचभिराकारैःकिमंतःपरिवल्गसि ॥ यस्त्वांस्वमितिजानातितस्यैवपरिवल्गसि ॥ १८ ॥ त्वद्वल्गनंमेकुमनोनमनागपितुष्टये ॥ मायामनःस्पंदइवव्यर्थंवृत्तिषुदह्यसे ॥ १९ ॥ तिष्ठवागच्छवाचित्तनासिमेनच जीवसि ॥ प्रकृत्यासिमृतंनित्यंविचारात्सुमृतंस्मृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे चित्त अब मिथ्याही गर्जना करतेहो अब तुमारा अंत हमने देखलिया, जब आदि अंतमें तुम सर्वथा अतितुच्छ हो तो वर्तमानमेंभी नष्टही हो ॥ १७ ॥ तुम पांचों इन्द्रियोंसे प्राप्त कियेहुये शब्द, रूप, रसआदि आकारोंसे व्यर्थ भीतरसे क्यों गर्जतेहो, क्योंकि जो तुमको नहीं जानता उसीके लिये तुम गर्जतेहो ॥ १८ ॥ हे मन यह तुमारा गर्जन किंचित्भी मेरे प्रसन्नताके लिये नहींहै, तुम विषयाकार वृत्तियोंमें व्यर्थ ऐसे क्यों भस्म होरहेहो जैसे इन्द्रजालकी मायासे प्रेरित मनकी नानाप्रकारकी विषयाकार चेष्टाओंमें॥१९॥ हे चित्त ! रहो वा जाओ मेरेलिये न तुम हो और न जीत हो तुमतो अपने मिथ्यास्वभावहीसे मृतहो और विचारसे स्मृत तुम सर्वथा असत् हो ॥ २० ॥

निस्तत्त्वंत्वंजडंभ्रांतंशठंनित्यमृताकृते ॥ मूढएवत्वयाज्ञेनबाध्योनप्रविचारवान् ॥ २१ ॥ वयमज्ञातवंतस्त्वांमौर्ख्येणाशुमृतंभवत् ॥ मृतमस्माकमद्यासिदीपानांतिमिरंयथा ॥ २२ ॥ शठेनभवतादीर्घकालंदेहगृहंमम ॥ उपरुद्धमभूत्सर्वसाधुसंसर्गवर्जितम् ॥ २३ ॥ जडेप्रेतसमाकारेगतेत्वयिमनःशठे ॥ सर्वसज्जनसंसेव्यमिदंदेहगृहंमम ॥ २४ ॥

अर्थ—तत्वरहित, जड, भ्रांत और शठ हो, हे नित्य मृतक आकारवाले चित्त तुम अज्ञानसहित हो इसलिये मूढकोही बाधा पहुंचासकतेहो नकि विचारवान्को ॥ २१ ॥ अपनी मूर्खतासे हमलोगोंने शीघ्र तुमको मृतकरूप नहीं जाना और अब आत्माके दर्शनकालमें तो तुमको ऐसे मृत जानलिया जैसे दीपकोंसे अंधकार ॥ २२ ॥ तुमने ज्ञानसे पूर्व शमदमआदि साधुसमागमसे वर्जित हमारे देहरूप गृहको दीर्घकालतक रोक रक्खाथा ॥ २३ ॥ जड प्रेतके समान आकारसहित शठरूप तुमारे जानेसे हमारा देहरूप गृह सब शमआदि सज्जनोंसे सेवनीय होगया॥२४॥

पूर्वमेवासिनासीस्त्वंसंप्रत्येवशठंजगत् ॥ नभविष्यसिचेदानींवेतालकिंनलज्जसे ॥ २५ ॥ सहतृष्णापिशाचीभिःसहकोपादिगुह्यकैः ॥ निर्गच्छचित्तवेतालशरीरसदनान्मम ॥ २६ ॥ दिष्ट्याविवेकमात्रेणनिर्गतोदेहमंदिरात् ॥ प्रमत्तश्चित्तवेतालःकुवृकःकंदरादिव ॥ २७ ॥ अहोनुचित्रंसुमहज्जडेनक्षणभंगिना ॥ मनःशठेनसर्वोयंनीतोविवशतांजनः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे जगत्रूपधारी शठ चित्तरूप वेताल ! तुम प्रथमभी न थे और अबभी नहो, तथा आगेभी न होओगे तथापि लज्जित नहीं होते ? ॥ २५ ॥ हे चित्तवेताल ! यदि लज्जावान् है तो मेरे शरीररूप गृहसे तृष्णारूपी पिशाचियों तथा क्रोधादि गुह्यकोंके साथ चलेजाओ ॥ २६ ॥ यह सौभाग्य है कि विवेकरूप मंत्रसे चित्तरूप प्रमत्त वेताल मेरे देहरूप मन्दिरसे ऐसे चलागया जैसे कन्दरासे वृक (भेडिया) ॥ २७ ॥ अहो ! यह कैसे आश्चर्यका विषय है कि अतिजड तथा क्षणभंगुर इस शठ मनने सब प्राणीमात्रको अपने वशमें करलियाहै ॥ २८ ॥

कस्तेपराक्रमःकिंतेबलंकस्तेसमाश्रयः ॥ यदिवल्गसिमामेकंजनानांबाधसेमृतम् ॥ २९ ॥ सर्वथैवा सिनमयादीनचित्तकमार्यसे ॥ मृतमित्यवबुद्धंत्वमद्यकेवलमज्ञहे ॥ ३० ॥ एतावंतमहंकालंत्वांज्ञात्वा जीवदास्थिति ॥ श्लिष्टःप्रभूतसंगासुचिरंसंसृतिरात्रिषु ॥ ३१ ॥ चित्तंमृतंहिनास्तीदमित्यद्याधिगतंम या ॥ तेनत्वदाशांसंत्यज्यतिष्ठाम्यात्मनिकेवलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—रे दुष्ट प्राणीयोंके मध्यमें देहात्मदर्शनसे स्वमृतक जनकोही तूं बाधा करताहै तो क्या तेरा पराक्रम है, क्या बल है, और क्या आश्रय है ? यदि अद्वितीय आत्मस्वरूप मेरे ऊपर बाधा करनेमें समर्थ हो तब तेरा पराक्रम है, ॥ २९ ॥ हे दीन चित्त ! अब सर्वथा मैं तुझे नहीं मारता क्योंकि हे अज्ञ आत्माके दर्शनसे मुझे अब यह ज्ञात हुआ कि तुम प्रथमसेही मृत हो ॥ ३० ॥ हे दुष्ट ! इतने कालतक मैंने तुझे जीवितके समान जानकर संसाररूप रात्रियोंमें चिरकालतक तुमसे अभेदबुद्धिसे मिलारहा ॥ ३१ ॥ चित्त नहीं है कि तुम प्रथमसेही मृतक है यह बात अब मैंने जानली इसलिये तुमारी आशा छोडके मैं केवल आत्मामें स्थित हुं ॥ ३२ ॥

दिष्ट्याचित्तंमृतमितिज्ञातमद्यमयास्वयं ॥ नशठेनसमंनेयंसमग्रंजीवितंनिजम् ॥ ३३ ॥ उत्सार्यदेहस दनान्मनःशठमहंक्षणात् ॥ अहंस्वस्थःस्थितोऽस्म्यंतर्वेतालपरिवर्जितः ॥ ३४ ॥ चित्तवेताललब्धेनचि रंकालंमयात्मना ॥ कृताविकाराविविधाःस्वयंस्मृत्वाहसाम्यहम् ॥ ३५ ॥ चिरान्निपातितोदिष्ट्याविचा रासिपरार्दितः ॥ हृद्गेहाच्चित्तवेतालस्तालोत्तालसमुन्नतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह सौभाग्य है कि अब मैंने चित्तको मृत जानलिया. मुझ जीवन्मुक्तको शठचित्तके साथ अपना स- मग्र जीवन व्यर्थ नहीं बितानाचाहिये ॥ ३३ ॥ कामक्रोधादिके उत्सवरूप शठ मनको अपने देहरूप गृहसे निकालके अब मैं अन्तःकरणमें ऐसे स्वस्थ स्थितहुं जैसे वेतालसे वर्जित जीव ॥ ३४ ॥ चित्तरूप वेतालसे वंचित उससे अभिन्न होके प्रथम अनेक विकार (दुष्टकर्म) जो मैंने किये हैं उनको स्मरण करके अब मैं स्वयं हंसताहुं ॥ ३५ ॥ यह सौभाग्य है कि चिरकालमें विचाररूप खड्गसे मर्दित, तालके समान उच्चआकारवाले इस चित्तरूप वेतालको अपने हृदयरूप गृहसे गिराके मारडाला ॥ ३६ ॥

प्रशांतेचित्तवेतालेपवित्रांपदवींगते ॥ दिष्ट्याशरीरनगरेसुखंतिष्ठामिकेवलम् ॥ ३७ ॥ मृतंमनोमृताचिं तामृतोऽहंकारराक्षसः ॥ विचारमंत्रेणसमःस्वस्थस्तिष्ठामिकेवलम् ॥ ३८ ॥ किंमनोमेममाशाकाकोमे हंकारकोभवेत् ॥ दिष्ट्याव्यर्थकलत्रंमेनष्टमेतदशेषतः ॥३९॥ एकस्मैकृतकृत्यायनित्यायविमलात्मने॥ निर्विकल्पचिदाख्यायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह सौभाग्य है कि चित्तरूप वेताल जिसमें शांत होगया है ऐसे पवित्रताको प्राप्त अपने शरीररूप गृह- में मैं सुखसे स्थितहुं ॥ ३७ ॥ विचाररूप मन्त्रसे मन मरगया, चिंता मरगई, और अहंकाररूप दुष्टराक्षसभी मरगया, इसीसे मैं सबप्रकारकी विषयतारूप दीपसे शून्य स्वस्थ स्थितहुं ॥ ३८ ॥ मन मेरा क्या है ? आशा मेरी क्या है ? तुच्छ अहंकारभी क्या है ? सौभाग्यसे स्त्रीपुत्रआदि व्यर्थ भानहुये, और मन आशाआदि सब नष्टहोगये ॥ ३९ ॥ अद्वितीय, कृतार्थ, नित्य, निर्मल, और निर्विकल्प चित्स्वरूप मुझ प्रत्यक् चेतनको बार २ नमस्कार है ॥ ४० ॥

नशोकोस्तिनमोहोस्तिनचैवाहमहंस्वयम् ॥ नचनाहंनचान्योहंमह्यमेवनमोनमः ॥ ४१ ॥ नममाशान कर्माणिनसंसारोनकर्तृता ॥ नभोक्तृतानदेहोमेमह्यमेवनमोनमः ॥ ४२ ॥ नाहमात्मानवाकोन्योनाहम स्मिनचेतरः ॥ सर्वमेवाहमेतस्मैमह्यमेवनमोनमः ॥ ४३ ॥ अहमादिरहंधाताचिदहंभुवनान्यहम् ॥ ममनास्तिव्यवच्छेदोमह्यमेवनमोनमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मुझमें न शोक है, न मोह है, न मैं अभिमानप्रधान जडरूप हुं, किन्तु अहंकारका साक्षी चित्स्वरूप मैं हुं, इससे अन्य मैं नहीं हुं, इसलिये मुझ साक्षी चेतनको बार २ नमस्कार है ॥४१॥ न मुझे आशा हैं, न कर्म हैं, न संसार है, न कर्तृता है, न भोक्तृता है, और न देह है, इसलिये मुझे बार २ नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आत्माशब्दका वाच्य मैं नहीं और अहंशब्दके प्रत्ययसे भिन्नभी मैं नहीं हुं, अथवा मुझसे अन्य कौन है इसलिये सब मैंही हुं, अतः मुझे बार २ नमस्कार है ॥ ४३ ॥ सब भुवनोंका आदिकारण मैंही हुं, धारणकरनेवाला मैं हुं, चित् और भुवन मैं हुं, तथा देश काल और वस्तुसे मेरा परिच्छेद नहीं है ॥ ४४ ॥

निर्विकारायनित्यायनिरंशायमहात्मने ॥ सर्वस्मैसर्वकालायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४५ ॥ नीरूपायनिरा ख्यायप्रकाशायमहात्मने ॥ स्वयमात्मैकसंस्थायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४६ ॥ समांसर्वगतांसूक्ष्मांजग देकप्रकाशिनीम् ॥ सत्तामुपगतोऽस्म्यंतर्मह्यमेवनमोनमः ॥ ४७ ॥ साद्र्यब्ध्युर्वीनदीसेयंनाहमेवाहमे

वा ॥ जगत्सर्वपदार्थाढ्यंमह्यमेवनमोनमः ॥ ४८ ॥ व्यपगतमननंसमाभिरामंप्रकटितविश्वमविश्वम प्यनंतम् ॥ स्वयमजमजरंगुणादतीतंवपुरहमच्युतमीश्वरंनमामि ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे दृश्यदर्शनसंबंधो नामाशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—निर्विकार, नित्य, अंशरहित, सर्वरूप, तथा सर्वकालरूप मुझ आत्मरूपको बार २ नमस्कार है ॥४५॥ निरूप, आख्यारहित, प्रकाशरूप, महात्मा, और एक आत्मास्वरूप परमात्माको बार २ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ समरूप, सर्वगत, सूक्ष्म और एकही जगत्को प्रकाश करनेवाली चित्सत्ताको मैं प्राप्त हुं इसलिये मुझ आत्माको बार२ नमस्कार है ॥ ४७ ॥ पर्वत, समुद्र, पृथिवी और नदीसहित यह जगत्की शोभा, और सब पदार्थोंसे पूर्ण यह जगत् मैं नहीं हुं अथवा सब मैंही हुं इसलिये मुझ आत्माको बार २ नमस्कार है ॥ ४८ ॥ मनके विकल्पोंसे रहित, समतासे रमणीय, विश्वको प्रकटकरनेवाले तथा विश्वरहित, अनन्त, स्वयं अजन्मा, अजर, अच्युत, और गुणोंसे परे चित्रूप ईश्वरको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे दृश्यदर्शनसंबोधो नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

पूर्वसर्गमें यत्नसे चित्तरूप वेतालको देहरूप गृहसे निष्कासित किया है और इस ८१ के सर्गमें चित्तकी सत्ताका अभाव प्रतिपादन करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंविचार्यबुध्वांतःपुनरित्थंविचार्यते ॥ तत्त्वविद्भिर्महाबाहोज्ञेयआत्मामहात्मभिः ॥ १ ॥ आत्मैवेदंजगदितिसत्यंचित्तेनमार्जितम् ॥ उत्थितंस्यात्कुतश्चित्तमहोचित्तमवस्तुयत् ॥ २ ॥ अविद्यत्वादचित्तत्वान्मायात्वाच्चासदेवहि ॥ ध्रुवंनास्त्येववाचित्तंभ्रमादन्यत्खवृक्षवत् ॥ ३ ॥ सिद्धःस्थाणुपरिस्पंदोनौगतस्ययथाशिशोः ॥ अबुद्धस्यनबुद्धस्यतथाचित्तमसन्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो ! इसप्रकार अन्तःकरणमें विचारसे निश्चय करके पुनः तत्ववेत्तालोग अवश्य ज्ञातव्य आत्माका वक्ष्यमाणप्रकारसे बिचार करते हैं ॥ १ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है इसप्रकार जिस चित्तने जगतका निराकरण किया है वह चित्त जगत्के अन्तर्गत होनेसे स्वयं अवस्तु (मिथ्या) है उसका फिर उत्थान कैसा होगा. ॥२॥ अविद्या तथा मायाका कार्य होनेसे तथा अन्यचित्तसे शून्य होनेसे निश्चयकरके असत् और नहीं है अथवा आकाशके वृक्षके भ्रमसेही यह जगत् आत्मासे भिन्न प्रतीत होताहै, यथार्थमें तो शुद्ध आत्माही है ॥ ३ ॥ जैसे नौकामें प्राप्त बालकके लिये भ्रांतिसे वृक्षका चलना सिद्ध है ऐसाही अज्ञानीको यह चित्त सिद्ध है, और ज्ञानीकेलिये तो यह असन्मय है ॥ ४ ॥

मौर्ख्यमोहभ्रमेशातेचित्तंनोपलभामहे ॥ चक्रारोहभ्रमस्यांतेपर्वतस्पंदनंयथा ॥ ५ ॥ एवंहिचित्तंनास्त्येवब्रह्मैवास्तितथात्मकम् ॥ पदार्थभावनाश्चित्तात्तेनासत्यामयोज्झिताः ॥ ६ ॥ जातेस्मिशांतसंदेहः स्थितोस्मिविगतज्वरः ॥ तथातिष्ठामितिष्ठामितथैवविगतैषणः ॥ ७ ॥ चित्ताभावेपरिक्षीणाबाल्यतृष्णादयोगुणाः ॥ आलोकोपरमेचित्रावर्णाख्याइवसंविदः ॥ ८ ॥

अर्थ—मूर्खतासे मोहके भ्रमके शांत होजानेपर चित्तकी सत्ता ऐसे नहीं पाते जैसे तेल वा इक्षु (ऊख वा ईख) पेरनेके यंत्रपर चढनेसे भ्रमके अंतमें पर्वतकी गति नहीं मिलती ॥ ५ ॥ इस रीतिसे चित्तही है किंतु ब्रह्मही चित्तरूपसे भान होताहै, और बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थोंकी भावना असत्यचित्तसे आविर्भूत होनेसे असत्य हैं इसलिये मैंने त्यागदियाहै ॥ ६ ॥ मैं इस समय संदेहरहित तथा संतापशून्य स्थितहुं, और मैं एषणा (पुत्रादिकी अभिलाषा) शून्यतापूर्वक जैसे पारमार्थिक अपने स्वभावसे स्थितहुं ऐसेही अपने अनुभवसेभी स्थितहुं ॥ ७ ॥ चित्तके अभावसे बाल्यअवस्थाकी चपलता तथा तृष्णाआदि सब गुण ऐसे क्षीण होगये जैसे प्रकाशके अभावसे नेत्रका ज्ञान ॥ ८ ॥

मृतंचित्तंगतातृष्णाप्रक्षीणोमोहपंजरः ॥ निरहंकारताजाताजाग्रत्यस्मिन्प्रबुद्धवान् ॥ ९ ॥ एकमेवजगच्छांतंनानात्वंनसदित्यपि ॥ किमन्यद्विमृशाम्यंतःकथयैवालमेतया ॥ १० ॥ निराभासमनाद्यंतंपदंपावनमागतः ॥ सौम्यस्सर्वगतस्सूक्ष्मःस्थितआत्मास्मिशाश्वतः ॥ ११ यदस्तियच्चनास्तीहचित्ताद्यात्माद्यवस्तुच ॥ तत्स्वादच्छतरंशांतमनंताग्राह्यमातम् ॥ १२ ॥

अर्थ—चित्त मृत हुआ, तृष्णा गई, मोहरूप पिंजरा टूटा, निरहंकारता आई, और अज्ञानरूप निद्राके नष्ट होनेसे अब मैं प्रबुद्ध हुं ॥९॥ यह जगत् शांत एक ब्रह्महीहै, अनेकता तथा आत्मासे सत् यहभी कथन नहीं होता, और मैं अन्तःकरणमें क्या बिचारूं, इस असत्विषयक कथासेभी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १० ॥ अज्ञानसहित जीवदशासे रहित, अनादि, अनन्त, परमपवित्र पदको प्राप्त, सौम्य,सर्वगत, सूक्ष्म, और नित्य आत्मारूपसे मैं अब स्थितहुं. ॥ ११ ॥ व्यवहारदृष्टिसे जो चित्तादि तथा परमार्थदृष्टिसे आत्मा ब्रह्म चेतन जो अस्तिरूपसे प्रसिद्धहै और रज्जु सर्प आदि जो भ्रमसिद्ध नास्तिरूपसे प्रसिद्ध वस्तु है वह सब आकाशसेभी निर्मल शांत आत्माही व्याप्त है ॥१२ ॥

चित्तंभवतुमावांतर्म्रियतांस्थितिमेतुवा ॥ कोविचारणयाथोंमेचिरंसाम्योदितात्मनः ॥ १३ ॥ विचारा कारकोमौर्ख्यादहमासंमितस्थितिः ॥ विचारेणामिताकारःक्कनामाहंविचारकः ॥ १४ ॥ मृतेऽपिमन सीयंमेविकल्पश्रीर्निरर्थिका ॥ मनोवेतालवृत्त्यर्थंकिमर्थमुपजायते ॥ १५ ॥ तामिमांप्रजहाम्यंतःसंक ल्पकलनामिति ॥ निर्णीयोमितिशांतात्मातिष्ठाम्यात्मनिमौनवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—अंतर्में चित्त हो वा न हो, मरे वा स्थित रहै, मुझे अब इसके बिचारसे क्या प्रयोजन है, क्योंकि चिरकालसे आत्माकी समता उदितहै ॥१३॥ इतने कालतक मैं विचारको न कर्ताहुआ मूर्खतासे परिच्छिन्नरूपसे स्थित था परन्तु अब विचारसे अपरिच्छिन्न होनेसे अहंकार कहां गया यह नहीं कहाजाता॥१४॥मनके नष्ट होनेपर विचार कहै वा नहीं कहै यह विकल्पकी श्री व्यर्थ पुनः मनके जीनेकेलिये क्यों उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥ अब मैं इस संकल्पकी कल्पनाको अंतःकरणसे त्यागताहुं और ओंकारका लक्ष्य तुरीय आत्मामें शांतहीके तुल्य स्थित हुं ॥ १६ ॥

अश्नन्गच्छन्स्वपंस्तिष्ठन्निर्तिराघवचेतसा ॥ सर्वत्रप्रज्ञयातज्ज्ञःप्रत्यहंप्रविचारयेत् ॥ १७ ॥ प्रविचार्य स्वसंस्थेनस्वस्थेनस्वेनचेतसा ॥ तिष्ठंतिविगतोद्वेगंसंतःप्रकृतकर्मसु ॥ १८ ॥ विगतमानमदामुदिता शयाःशरदुपोढशशांकसमत्विषः ॥ प्रकृतसंव्यवहारविहारिणस्त्विहसुखंविहरंतिमहाधियः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तासत्ताप्रतिपादनं नामैकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चलते, फिरते, खातेपीते और सोतेहुये सर्वत्र अपने चित्तसे आत्मज्ञ पुरुष अपनी बुद्धिसे प्रतिदिन आत्माका विचार करे ॥ १७ ॥ संत महात्माजन अपने अंतरमें स्थित स्वस्थचित्तसे आत्माका विचार करके अपने २ वर्ण आश्रमके अनुकूल कर्मोंमें भयआदिसे रहित होके स्थित रहतेहैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! मान और मदसेरहित, प्रसन्नचित्त, शरत्कालके चन्द्रमाके तुल्य प्रसन्नमुखकी कांतिसहित, और अपने २ वर्ण आश्रमके अनुकूल व्यवहारोंमें विहार करनेवाले महाबुद्धिमान् विवेकीजन इस संसारमें स्थित रहतेहैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे चित्तासत्ताप्रतिपादनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस ८२ के सर्गमें वीतहव्यमुनिने आत्माकी एकाग्रताकेलिये व्यर्थ चेष्टाआदि निमित्तोंसे इन्द्रिय और मनको बोधन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विचारएवंविद्वषासंवर्त्तेनकृतःपुरा ॥ कथितोममविंध्याद्रौतेनैवविदितात्मना॥१॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यविचारपरयाधिया ॥ संसारसागरादस्मात्तारतम्येनसंतर ॥ २ ॥ अथेमामपरांरामशृ णुदृष्टिंपदप्रदाम् ॥ मुनिनावीतहव्येनययास्थितमशंकितम् ॥३॥ वीतहव्योमहातेजाविबभ्रामवनेपुरा ॥ विंध्यशैलदरीर्दीर्घारविर्मेरुदरीरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! ऐसाही विचार बृहस्पतिके भ्राता संवर्तने पूर्वकालमें कियाथा, और उसी आत्मज्ञने मुझे विंध्याचलपर कहाथा ॥ १ ॥ इसलिये हे रामजी ! विचारनिष्ठबुद्धिसे तुम इस दृष्टिका अवलम्बन करके उत्तरोत्तर चित्तकी विश्रांतिकी परिपाकताजनित भूमिकाओंके आरोहणके क्रमसे इस संसारसागरसे अवश्य उतरो ॥२॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् इन्द्रिय मनको बोधदायक तथा ब्रह्मपदप्रद तुम इस दृष्टिको सुनो जिससे कि वीतहव्यमुनि निःशंक आत्मपदपर आरूढ हुये हैं ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें महातेजस्वी वीतहव्यमुनि विन्ध्याचलकी बडी कंदराओंको समाधिकेलिये खोजते हुये बनमें ऐसे भ्रमण करतेथे जैसे सुमेरुके कंदराओंको खोजतेहुये सूर्य्य ॥ ४ ॥

अस्मात्क्रियाक्रमाद्घोरात्संसारभ्रमदायिनः ॥ आधिव्याधिमयाकारात्कालेनोद्वेगमाययौ ॥ ५ ॥ निर्वि कल्पसमाध्यंशलभ्योदारपरेच्छया ॥ सजहारजगज्जीर्णास्वव्यापारपरंपराम् ॥ ६ ॥ विवेशरंभारचितं निजंपर्णोटजांतरम् ॥ कृतगौरंसुसौगंध्यमलिनीलमिवोत्पलम् ॥ ७ ॥ तत्रासनेसमेशुद्धेस्वास्तीर्णहरि णाजिने ॥ विशश्रामाचलेशांतेवीतवर्षइवांबुदः ॥ ८ ॥

अर्थ—शरीर तथा मनकी पीडासे पूर्ण संसारमें भयदायक इस सब भयंकर क्रियाक्रमसे वह काल पाके वि-रक्त होगया ॥ ५ ॥ निर्विकल्पसमाधिसे लभ्य परब्रह्मकी प्राप्तिकी इच्छासे जगत्से जर्जरीभूत अपने व्यापारोंकी पं-क्तिको उसने बंद किया अर्थात् संन्यास लिया ॥ ६ ॥ केलेसे रचित, श्वेत पीत पुष्प तथा कर्पूरके परागोंसे गौर, सु-गंधित, और नीलकमलके तुल्य शोभित अपनी पर्णशाला अर्थात् पत्ररचित कुटीमें उसने प्रवेशकिया ॥ ७ ॥ उस सम, शुद्ध तथा मृगचर्मसे आच्छन्न आश्रममें विश्राम किया, जैसे शांतपर्वतपर वृष्टिके अंतमें मेघ ॥ ८ ॥

बद्धपद्मासनस्तस्थौपाष्ण्योंरधिकरांगुलिः ॥ शृंगवच्छांतचलनमतिष्ठत्स्पष्टकंधरम् ॥ ९ ॥ सजहारा लमालोकाद्दिग्विकीर्णमनःशनैः ॥ विशन्मेरुदरींसायंभानुर्भासइवोत्करम् ॥ १० ॥ बाह्यानाभ्यंतरां श्चैवस्पर्शान्परिजहत्क्रमात् ॥ इदमाकलयामासमनसाविगतैनसा ॥ ११ ॥ अहोनुचंचलमिदंप्रत्याहृ तमपिक्षणात् ॥ नमनःस्थैर्यमायातितरंगप्रौढपर्णवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—पादोंके तलके ऊपर अंगुलियोंको रखके, पद्मासन बांध और ऊपर गला उठाके संचाररहित पर्वत शि-खरके समान वह स्थित हुआ ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंके प्रकाशसे सब दिशाओंमें फैलेहुये मनको धीरे २ निग्रहके उपायसे ऐसे रोका जैसे मेरुकी कन्दरामें सायंकालके समय प्रवेश करतेहुये सूर्य्य अपनी किरणके समूहको॥१०॥उसने क्रमसे बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंको त्यागतेहुये अपने शुद्धमनसे यह विचार किया ॥११॥ अहो ! यह चित्त कैसा चंचल है कि रोकाहुआभी क्षणभरके वास्ते स्थिरताको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे प्रबल तरंगमें बहता हुआ पत्र ॥ १२ ॥

चक्षुरादिभिरुद्दामैरूपैराहितसंभ्रमैः ॥ अजस्रमुत्पतत्येववीटेवतलताडिता ॥ १३ ॥ त्यजदेवानुगृह्णा तिवृत्तीरिंद्रियवर्द्धिताः ॥ यस्मान्निवार्यतेतस्मिन्प्रोन्मत्तइवधावति ॥ १४ ॥ घटात्पटमुपायातिपटाच्छ कटमुत्कटम् ॥ चित्तमर्थेषुचरतिपादपेष्विवमर्कटः ॥ १५ ॥ पंचद्वाराणिमनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम्॥ दग्धेंद्रियाभिधानानितावदालोकयाम्यहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—भ्रमणसहित नानाविषयोंके निमित्त प्रबल इन्द्रियोंसे यह मन ऐसे नांचता है जैसे पादतलसे ताडित गेंद ॥ १३ ॥ इन्द्रियोंसे वर्द्धित पूर्वकालकी वृत्तियोंको त्यागतेही उन्हींके अनुकूल वृत्तियोंको ग्रहण करताहै, और जिससे रोको प्रमत्तके समान उसी ओर दौडते हैं ॥ १४ ॥ घटसे पट, पटसेभी शकट (गाडी) की ओर बडी चावसे जाताहै, यह चित्त पदार्थोंमें ऐसे दौडताहै जैसे वृक्षोंपर वानर ॥ १५ ॥ अतिनिंदित नेत्रआदि इन्द्रियनामवाले मनके निकलनेके जो पांच द्वार हैं उनको अब मैं देखता (विचारता) हुं ॥ १६ ॥

हेहेहतेंद्रियगणाःकिंमेबोधायनेहवः ॥ वेलाविह्वलितांबूनामब्धीनामिवचंचलाः ॥ १७ ॥ माकुरु ध्वमनर्थायचापलंचपलाशयाः ॥ स्मरतातीतवृत्तीनिदुःखजालानिभूरिशः ॥ १८ ॥ रूपाणिमनसोयूयं जडाएवकिलाधमाः ॥ जडेतूत्सिक्तताव्यर्थंमृगतृष्णेववल्गति ॥ १९ ॥ असारात्मस्वरूपाणामनालो कवतीसदा ॥ अंधानामुद्धतिर्येयंसाहृश्यथैवजायते ॥ २० ॥

अर्थ—हे चंचल इन्द्रियगण ! इस देहके नष्ट होनेपर क्या निर्विकल्पसमाधिसे चिरकालतक हमारे आत्माके बोध (दर्शन) के लिये तुम लोगोंको अवसर नहीं है ॥ १७ ॥ हे चपल आशययुक्त इन्द्रियगण ! अनर्थकेलिये तुम-लोग चपलता न करो किन्तु दुःखजालमय अपने बीतेहुये कर्मोंको स्मरण करो ॥ १८ ॥ तुम सब मनकेही द्वारभूत, कल्पित, अधम और जडरूप हो, और जड (जल) रूप तरंगमें जलका सिंचन व्यर्थही मृगतृष्णाकेतुल्य गर्जता है ॥ १९ ॥ मिथ्याभूत तुम लोगोंकी आत्मज्ञानसे रहित जो प्रमादसे कुमार्गमें प्रवृत्ति है वह अन्धोंके सदृश कूपमें गिरनेहीके लिये है ॥ २० ॥

चिदात्माभगवान्सर्वसाक्षित्वेनकरोम्यहम् ॥ हतेंद्रियगणायूयंकिंनिरर्थकमाकुलाः ॥ २१ ॥ मिथ्यैव मेविवल्गंतिनीरूपानयनादयः ॥ अलातचक्रप्रतिमाःसर्परज्जुभ्रमोपमाः ॥ २२ ॥ तेनात्मनाबहुज्ञेन निर्ज्ञाताश्चक्षुरादयः ॥ मनागपिनसंबंधोस्त्युपातालतलाद्रिवत् ॥ २३ ॥ भीतःपांथइवाहिभ्यःपुल्कसे भ्यइवद्विजः ॥ दूरेतिष्ठतिचिन्मात्रमिंद्रियेभ्यस्त्वनामयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—भगवान् चिदात्मारूप मैं सब कुछ साक्षीरूपसे करताहुं, नष्ट इन्द्रियगण तुम व्यर्थ क्यों व्याकुल होते हो ॥ २१ ॥ सत्वरूपसे रहित, अलातचक्र (काष्ठमें अग्नि लगाके जो घुमानेवाले) चक्रके सदृश तथा रज्जुके सर्पके भ्रमके तुल्य ये नेत्रआदि मिथ्याही गर्ज रहे हैं ॥ २२ ॥ जिसने बहुज्ञ सब प्रकाशक साक्षीरूप नेत्रआदिको जाना है उन नेत्रआदिके साथ उस साक्षी आत्माका किंचित्भी सम्बन्ध ऐसे नहीं है जैसे स्वर्ग और पातालके पर्वतोंका ॥२३॥ सर्पोंसे वटोही और चांडालोंसे भीत ब्राह्मणके समान विकाररहित चिन्मात्र परमात्मा इन्द्रियोंसे दूरही रहताहै ॥२४॥

चित्सत्तामात्रकेणालंसंक्षोभोभवतांमिथः ॥ तिष्ठतिस्वैरमादित्येदिनकार्यवतामिव ॥ २५ ॥ चित्तचारणचार्वाकचतुर्दिक्कुक्षिभिक्षुक ॥ श्वेवव्यर्थमनर्थायमैवंविहरहेजगत् ॥ २६ ॥ अहंचिद्वदितिव्यर्थमसत्यातववासना ॥ अत्यंतभिन्नयोरैक्यंनास्तिचिन्मनसोःशठ ॥ २७ ॥ जीवाम्येवाहमित्येषातवाहंकारदुर्मतिः ॥ मिथ्यैवजाताद्दुःखायनसत्यासत्यवर्जिता ॥ २८ ॥

अर्थ—चित्सत्ताकी समीपतामात्रसे तुमलोगोंकी चेष्टा पूर्णरीतिसे ऐसे होती है जैसे स्वयं अपनी इच्छासे सूर्यके स्थित रहते श्राद्ध तथा कृषिआदि कर्म ॥ २५ ॥ इन्द्रियोंका प्रतारक होनेसे चित्तरूप चारण, देहाभिमानी होनेसे चार्वाक, दिशाओंमें भ्रमण करनेसे भिक्षकरूप तुं व्यर्थ कुत्तेके समान अनर्थके लिये इस जगत्में विहार न कर ॥ २६ ॥ मैं चेतन हुं यह तेरी वासना असत्य और व्यर्थ है, कि हे शठ अत्यंत भिन्न जड चेतनरूप मन तथा चित्की एकता नहीं है ॥ २७ ॥ मैं जीताहुं यहभी तुमारी अहंकाररूप दुर्मति सत्यसे वर्जित मिथ्याही दुःखके लियेही उत्पन्न हुई है क्योंकि सुषुप्तिमें अहंकारके नहिं होतेभी जीवनहै ॥ २८ ॥

अहंकारोदयेसोस्मीत्येतांसंरब्धतांत्यज ॥ नकिंचिदपिमूर्खत्वंकिंव्यर्थंतरलायसे ॥ २९ ॥ संविच्चिरवमनाद्यंतंसंविदोन्यन्नविद्यते ॥ देहेस्मिंस्तन्महामूर्खकिंत्वंस्याश्चित्तनामकम् ॥ ३० ॥ विषपर्यवसानेयंरसायनवदुत्थिता ॥ भोक्तृताकर्तृताशंकाबतचित्तमुधैवहि ॥ ३१ ॥ मोपहासपदंगच्छमूर्खेंद्रियगणाश्रयम् ॥ नकर्तात्वंनभोक्तात्वंजडोस्यन्येनबोध्यसे ॥ ३२ ॥

अर्थ—अभिमान परिणामके उदयमें मैं हुं इस अपने गर्वको तुम त्यागो, क्योंकि हे मूर्ख तूं कुछ नहीं है व्यर्थ चंचलता क्यों करता है ॥ २९ ॥ संवित्की चेतनता अनादि अनंत है और संवित् (अनुभव) से भिन्न कुछ नहीं है, इसलिये हे महामूर्ख! तुम इस चित्तमें देहनामक क्याहो ॥ ३० ॥ अंतमें विषरूप और भोगकालमें अमृतके समान आविर्भूत यह कर्तृता भोक्तृताकी तुमारी आशंका मिथ्याही है ॥ ३१ ॥ हे मूर्ख चित्त इन्द्रियगणका आश्रय लेके तुम हास्यपदको मत प्राप्त होओ, तुम न कर्ता हो न भोक्ता हो किंतु जड हो और साक्षीसे बोधित होतेहो॥३२॥

कस्त्वंभवसिभोगानांकेवाभोगाभवंतिते ॥ जडस्यात्मैवतेनास्तिबंधुमित्रादितत्कुतः ॥ ३३ ॥ यज्जडंतद्धिनास्त्येवसदेवासत्तयान्वितम् ॥ ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वमन्यत्वानामसंभवात् ॥ ३४॥ प्रत्यक्चेतनरूपश्चेत्त्वंतदात्मैवतेवपुः ॥ भावाभावमयीचित्तसत्ताकेवदुःखदा ॥ ३५ ॥ यथाकर्तृत्वभोक्तृत्वेमिथ्यैवाधिगतेत्वया ॥ मयातेहिप्रमार्ज्येतेशृणुयुक्त्याकथंशनैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—भोगोंकी अनुभवशक्तिसे शून्य जडरूप तुम भोगोंके कौन होसकते हो और भोग तुमारे क्या होसकते हैं. जड होनेसे यथार्थमें जब तुमारा स्वरूपही नहीं तब बंधु मित्रआदि कहांसे होसकतेहैं॥३३॥जो जड है वह नहीं है, किंतु अन्यकी सत्तासे स्फटिककी ललाईके सदृश सत्के समान भासमान है, यथार्थमें वह असत्तासे युक्त है. क्योंकि आत्मासें पृथक् तत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा अन्यत्वका असंभव है॥३४॥और यदि तुम साक्षी चेतनरूपही हो तब तो निर्विकल्प आत्माही तुमारा स्वरूप है तब भावअभावमयी और दुःखप्रद तुमारी चित्तरूप सत्ता कैसे होसकती है ॥ ३५ ॥ जैसे मिथ्या तुमने कर्तृत्व भोक्तृत्व प्राप्त कियाहै उनको सुनों मैं कैसे युक्तिसे धीरे २ निवारण करताहुं॥३६॥

स्वयंतावद्भवानेषजडोनास्त्यत्रसंशयः ॥ जडस्यकीदृक्कर्तृत्वंनृत्यंतीहकथंशिलाः ॥ ३७ ॥ उपजीवचिरंतस्माच्छुद्धंतद्रागमैश्वरम् ॥ जीवसीच्छसिहंसित्वंवृथायासिविवल्गसि ॥३८॥ क्रियतेयत्तुयच्छक्त्या तत्तेनैवकृतंभवेत् ॥ लुनातिगात्रंपुंशक्त्यालावकःप्रोच्यतेपुमान् ॥ ३९ ॥ हन्यतेयस्तुयच्छक्त्यासतेनैवहतोभवेत् ॥ निहंतिखड्गःपुंशक्त्याहंतैवप्रोच्यतेपुमान् ॥ ४० ॥

अर्थ—देखो चेतनके प्रतिबिम्बसे शून्य स्वयं तुम जड हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है, और जडकी कर्तृता भोक्तृता आदि कैसे, क्योंकिं पाषाणकी प्रतिमा कैसे नांचसकती हैं ॥३७॥ इसलिये यदि तुम जीवन धारण करना चाहतेहो तो शुद्ध ईश्वरके चिदाभासका आश्रय लेके तुम अपना स्वरूप धारण करो, और व्यर्थ क्यों तुम मरते, आते, जाते तथा गर्जतेहो॥३८॥ जिसकी शक्तिसे जो कियाजाताहै वह उसीका किया कहाजाताहै. जैसे पुरुषकी शक्तिसे

दात्र (हंसिया वा सरोता) काटताहै और पुरुष काटनेवाला कहाजाताहै. ॥ ३९ ॥ जिसकी शक्तिसे जो मारा जाताहै उसीसे हत वह कहलाताहै. जैसे पुरुषकी शक्तिसे तरवार काटती है और पुरुष हंता कहाजाताहै ॥ ४० ॥

पीयतेयस्तुयच्छक्त्यापीतंतेनैवतद्भवेत् ॥ पात्रेणपीयतेपानंपातायस्तूच्यतेनरः ॥ ४१ ॥ प्रकृत्यैवासिसु जडःसमस्तज्ञेनबोध्यसे ॥ तेनात्मैवात्मनात्मानंचिनोतीदंहिनोभवत् ॥ ४२ ॥ अनारतंबोधयतित्वामा त्मापरमेश्वरः ॥ बोधनीयाबुधैर्मूढाःकिलावृत्तिशतैरपि ॥ ४३॥ आत्मसत्तैवबोधैकरूपिणीस्फुरतीहहि॥ तयैवचित्तशब्दार्थावंगीकृत्यत्वयास्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिसकी शक्तिसे पियाजाताहै उसीसे पियाहुआ वह कहाजाताहै. जैसे पात्रकेद्वारा जलादि पियाजाताहै परन्तु पान करता मनुष्यही कहाजाताहै ॥ ४१ ॥ हे चित्त ! तुम अपने स्वभावहीसे जड हो, सर्वज्ञ परमात्मासे बोधित होतेहो, क्योंकि उस आत्माने स्वयं भोक्तृता भोग्यकरण और उपकरणआदि सब यह जगत् स्वप्नके समान संचय कियाहै ॥ ४२ ॥ आत्मा परमेश्वर निरन्तर तुमको बोधन करतारहताहै, क्योंकि पंडितलोगोंको उचित है कि मूढोंको सैकडोंप्रकारसे बोधन करे ॥ ४३ ॥ बोधरूप आत्माकी सत्ताहीसे तुमारी सत्ता स्फुरित होरही है, और उसीसे चित्तके शब्द तथा अर्थकी सत्ताको अंगीकार करके तुम स्थितहो ॥ ४४ ॥

एवंचित्तत्वमज्ञानादात्मशक्तेरुपागतम् ॥ ज्ञानेत्वयाविगलितंतीव्रेहिममिवातपे ॥ ४५ ॥ तस्मान्मृतंत्वं मूढंत्वंनासित्वंपरमार्थतः ॥ तदेवाहमितिव्यर्थमतोमास्त्वसुखायते ॥ ४६ ॥ असत्याचित्तकलनाइंद्र जाललताइव ॥ विज्ञानमात्रमेवेहब्राह्ममंगंविजृंभितम् ॥ ४७ ॥ नरामरजगद्रूपैर्ब्राह्मीशक्तिरुदेत्यलम् ॥ सामुद्रकणकल्लोलजालैर्वेलेववल्गति ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार अज्ञानसे आत्माकी शक्तिहीसे चित्त प्राप्त हुआहै और ज्ञानसे तुम ऐसे गलित होतेहो जैसे तीव्र आतपमें हिम ॥ ४५ ॥ हे चित्त ! तुम मृत हो, मूढ हो और परमार्थसें कुछ नहीं हो, इसलिये आत्मा मैं हुं यह आत्माके साथ अभेद पुनर्जन्मके दुःखके लिये न हो ॥ ४६ ॥ इन्द्रजालकी लताकेसमान चित्तकी कल्पना व्यर्थही है. विज्ञानमात्रही इस जगत्में ब्रह्मका स्वरूपही विकसित होरहाहै ॥ ४७ ॥ मनुष्य, देवता आदि जगत्के स्वरूपोंसे ब्रह्मकी चित्शक्तिसे संवलित माया पूर्णरूपसे ऐसे उदय होती है जैसे समुद्रके तरंगके समूहोंसे तट गर्जना करताहै॥४८

चिन्मयश्चेद्भवेर्मूढतत्तस्मात्परमात्पदात् ॥ नित्यमव्यतिरिक्तंत्वंकिमन्यत्परिशोचसि ॥ ४९ ॥ सर्वगं सर्वभावस्थंसर्वरूपंहितत्पदम् ॥ तत्प्राप्तौसर्वमेवाज्ञप्राप्तंभवतिसर्वदा ॥ ५० ॥ नत्वमस्तिनदेहोस्ति ब्रह्मास्तीहमहत्स्फुरत् ॥ अहंत्वमितिनिस्पंदेस्फुरत्यार्तिर्हिकस्यका ॥ ५१ ॥ आत्माचेत्त्वंतदात्मैवस र्वगोस्तीहनेतरः ॥ आत्मनोन्यज्जडत्वंचेत्तत्त्वंनास्त्यस्तितद्वपुः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे मूढ चित्त ! यदि तुम चिन्मय हो तब उस परमपदसे नित्य अभिन्नरूप हो तो अन्य किसके अर्थ शोच करतेहो ॥ ४९ ॥ क्योंकि वह परमपद सर्वव्यापी, और सब अतीत (भूत) भविष्यत् और वर्तमान पदार्थोंमें स्थितहै, इसलिये हे अज्ञ ! उसकी प्राप्तिसे सदा सबकुछ प्राप्तही है ॥ ५० ॥ न तुम हो, न यह देह है किन्तु महत् ब्रह्मही यह जगत्रूपसे स्फुरित होरहाहै, अहं और त्वम् यह आभास चेष्टारहित आत्मामेंही स्फुरित होताहै तो किसको क्या पीडाहै ॥ ५१ ॥ यदि तुम चित्आत्मा हो तब तो सर्वव्यापी आत्माही सर्वत्र है न कि अन्य, क्योंकि आत्मासे अन्य जड कुछ नहीं है किंतु असत्रूप है ॥ ५२ ॥

आत्मैवसर्वंत्रिजगत्तदन्यत्तुनकिंचन ॥ तत्त्वंकिंचित्त्वमात्मान्यद्यदितत्त्वंनकिंचन ॥ ५३ ॥ अहंत्विद महंतन्मइतिव्यर्थंकिमीहसे ॥ असद्वपुःकिंस्फुरतिशशशृंगेणकोहतः ५४ ॥ तृतीयाकलनानास्तिचिज्ज डांशेतराशठ ॥ छायातपनयोर्मध्येतृतीयेवानुरंजना ॥ ५५ ॥ सत्यावलोकनाज्जातेचित्तजाड्यदृशोःक्षये॥ संपद्यतेयत्तुतज्जंस्वसंवेदनमात्रकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तीनों जगत् आत्माही है उससे भिन्न अन्य कुछ नहीं है, इसलिये यदि तुम आत्मासे भिन्न कुछ हो तब तुम परमार्थमें कुछ नहीं हो ॥ ५३ ॥ यह बाल शरीर, यह वृद्ध शरीर मैं हुं, और यह बालक संबंधी क्रीडा आदि और वृद्ध शरीर संबन्धी पुत्रपौत्रआदि मेरे हैं ऐसी चेष्टा व्यर्थ क्यों करते हो, क्योंकि आत्माको शरीर नहीं है तो असत्शरीर कैसे स्फुरित होसकताहै, क्योंकि शशकके शृंगसे कौन मारागयाहै ॥ ५४ ॥ हे शठ चित्त ! चेतन और जड अंशसे भिन्न तीसरी कोई कल्पना ऐसे नहीं है जैसे छाया और आतप (घाम) के मध्यमें पदार्थोंके अनुरक्त होनेकी तीसरी कोई वस्तु नहीं है ॥ ५५ ॥ सत्यपदार्थके ज्ञानसे चित्त और जडताकी दृष्टिके क्षय होनेसे अंतिम साक्षात्कारवृत्तिसे आविर्भूत स्वप्रकाश चिन्मात्र शेष अपना अनुभवरूप आत्मा जो रहजाताहै वही तुम हो ॥ ५६ ॥

तेनमूढनकर्तृत्वंनभोक्तृत्वंतवापिहि ॥ तदेवासिपरंब्रह्मत्यजमौर्ख्यंभवात्मवान् ॥ ५७ ॥ केवलंज्ञत्वविषयमुपदेशार्थसिद्धये ॥ त्वयाकरणभूतेनकरोत्यात्मेतिकथ्यते ॥ ५८ ॥ असत्स्वरूपंकरणंजडंनिरवलंबनम् ॥ निःस्पंदनंनस्पंदेतकर्तृसंबोधनंविना ॥ ५९ ॥ अकर्त्तुःकरणस्यास्यशक्तिःकाचिन्नविद्यते ॥ दात्रस्यलावकाभावेकर्तुंकिमिवशक्तता ॥ ६० ॥

अर्थ—इसलिये हे मूढ ! नतो तुमको कर्तृता है न भोक्तृता है किंतु तुम वही परब्रह्म हो अतः तुम मूर्खता त्यागो और आत्मज्ञानी बनो ॥ ५७ ॥ यदि यह कहो कि " मनसैवानुद्रष्टव्यं मनसैवेदमाप्तव्यमिति " (मनसेही आत्माको देखना चाहिये मनसेही यह प्राप्त होताहै) इत्यादि श्रुतियोंसे हमको आत्माकी प्राप्तिमें करण कहाहै तो अज्ञदशा शास्त्र आचार्य्यकृत उपदेशोंके प्रयोजनकी सिद्धिकेलिये करणरूपसे कल्पित तुमारेसे केवल यह श्रुति आत्माके साक्षात्कारको विषय करती है और यथार्थमें वह आत्मा है ॥५८॥ असत्‌रूप, जड तथा अवलंबनरहित चित्त चेतनकृत अर्थप्रकाशके विना स्वयं स्पंदनशक्तिसे रहित कैसे चेष्टा करसकताहै ॥ ५९ ॥ क्योंकि कर्ताके विना करणकी शक्ति कुछ नहीं है, दात्र (सरौता) को काटनेवालेके विना काटनेकी क्या शक्ति है ? ॥ ६० ॥

खड्गप्रहारविच्छेदक्रियायांपुंसिशक्तता ॥ नखड्गेसुजडेचित्तसर्वांगेष्वपिशक्तता ॥ ६१ ॥ तस्मात्रासिसखेकर्तृमाव्यर्थंदुःखभाग्भव ॥ परार्थक्लेशितामूर्खप्राकृतेषुनशोभते ॥ ६२ ॥ ईश्वरोनेदृशःशोच्योयस्त्वयासदृशोभवेत् ॥ नचतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ ६३ ॥ गर्वात्तूपकरोम्येनमितिकेवलमल्पधीः॥ क्लिश्यतेवसतांत्वर्थोनाकिंचिदुपयुज्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे चित्त ! खड्गके प्रहार तथा छेदनक्रिया करनेमें शक्ति पुरुषमेंही है न कि जड खड्गआदि मूलसे लेके समस्त सामग्रीमें शक्ति है ॥६१॥ हे सखे चित्त ! इसलिये तुम कर्ता नहीं हो, व्यर्थ दुःखके भागी न बनो. हे मूर्ख ! पामरके तुल्य प्रकृतिके कार्योंमें दूसरेके अर्थ क्लेश नहीं शोभितहोता ॥ ६२ ॥ जो तुमारे सदृश जड हो उसीका शोच तुमको करना चाहिये और ईश्वर तो ऐसा नहीं है क्योंकि उसको तो न इस जगत्‌में कृतपदार्थसे कुछ प्रयोजन है न अकृतसे ॥ ६३ ॥ और कार्यकारणके संघातके अभिमानसे इस आत्माका मैं उपकार करताहुं इस भ्रांतिसे तुम परिच्छिन्नबुद्धिको पीडित करतेहो, क्योंकि संघातमें रहनेवाले प्राण, बुद्धि, मन और दशों इन्द्रिय इन सबके अचेतन होनेसे भोगोंसे कुछ अर्थ नहीं है इसलिये किसीका कोईभी कुछ उपयोगी नहीं है ॥ ६४ ॥

कर्त्तुर्भोगेश्वरस्यैवमर्थेचेदनुवर्त्तसे ॥ तदस्यकाचिन्नेच्छेहतृप्तत्वात्सर्वदैवहि ॥ ६५ ॥ अकृत्रिमावभासेनसर्वगेनचिदात्मना ॥ एकेनैवेदमापूर्णंकल्पनैवास्तिनेतरा ॥ ६६ ॥ एकानेकावभासेनसमस्तेनतदात्मना ॥ आत्मन्येवांतरात्मांतःक्रियतेकिंकिमिष्यते ॥ ६७ ॥ त्वादृशस्यतुदृष्ट्यैवक्षुब्धताजायतेमुधा॥ आलोक्यराजमहिषींयूनोमदमयींतथा ॥ ६८ ॥

अर्थ—यदि यह मानों कि भोगका स्वामी जो कर्ता ईश्वर है उसीके लिये तुमारी प्रवृत्ति है तो उसके सदा तृप्त होनेसे कोई इच्छा नहीं है ॥ ६५ ॥ स्वाभाविक प्रकाशयुक्त सर्वव्यापी एक चिदात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है उससे अन्य कल्पना नहीं है ॥ ६६ ॥ एक और अनेकका प्रकाशक उस आत्माने अपने आत्माहीमें सब जगत्‌को रचा है तो उसमें सब कुछ प्राप्त होनेसे कौन पदार्थ अलभ्य है जिसकी इच्छा कीजाय ॥ ६७ ॥ जगत्‌के पदार्थ सब ईश्वरके होनेपरभी तुमारे समान मूर्खकोही उसकी दृष्टिसे क्षोभ ऐसे होताहै जैसे राजाकी स्त्रीको देखनेसे मूर्ख युवाको मदमयी विकारता उत्पन्न होती है ॥ ६८ ॥

आत्मनासहसंबद्धंचेतःकर्त्रसिसुंदर ॥ किंतुनास्यासिसंबंधिकुसुमस्ययथाफलम् ॥ ६९ ॥ द्वितीयेन समंयैषातत्तावद्भवनैकता ॥ सासंबंधगतिःप्रोक्ताप्राग्द्वित्वादधुनैकता ॥ ७० ॥ नानाप्रकाररचनानानारूपक्रियोन्मुखी ॥ सुखदुःखदशाहेतुर्भवान्नैकविधास्मृता ॥ ७१ ॥ संबंधःसमयोर्दृष्टस्तथार्द्धसमयोरपि ॥ नविलक्षणयोश्चान्यस्तस्मिन्सतिजगत्त्रये ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे सुंदर चित्त ! यदि आत्माके साथ संबन्ध करताहो तो तुम आत्माके साथ संबन्धके योग्य ऐसे नहीं हो जैसे पुष्पके संबन्धके योग्य फल नहीं है, क्योंकि फलके समयमें पुष्पका अभावहै ॥ ६९ ॥ एकका दूसरेके साथ एककी क्रियासे वा दोनोंकी क्रियासे यह, जो एक अन्यमें अंतर्भाव वा दोनोंकी एकता है वह संबन्धकी गति (संबन्धका लक्षण) कही गई है, क्योंकि प्रथम द्वैत था और अब एकता होगई ॥ ७० ॥ और तुम तो उस एकतारूप सम्बन्धके हेतुभी नहीं हो क्योंकि तुमारी स्वयं एकप्रकारता नहीं है किन्तु कार्यसे नानाप्रकारकी रचना, और

नानाप्रकारकी शास्त्रके अनुकूल तथा प्रतिकूल क्रियाओंकी ओर झुकी हुई सुखदुःखकी दशा तुमारी कही गई है ॥७१ क्योंकि सम्बन्ध समान (दुग्धका दुग्धसे) रूप, वा अर्द्धसमान (जल दुग्ध) का देखा गया न कि सर्वथा विलक्षण अग्नि और जलका और सर्वथा विरुद्धका सम्बन्ध तीनों लोकमें हो तो दोनोंमेंसे एकका नाश अवश्य होताहै ॥७२॥

द्रव्यांतरगुणाद्रव्याण्याश्रयंतिबहून्यलम् ॥ संविदश्च्ययवनंदुःखंसंविदोमाच्युतोभव ॥ ७३ ॥ एतावतैक ध्यानेननित्यध्यानोथवात्मदृक् ॥ अभावेदुःखदस्यांतर्दृशादृश्यस्यवस्तुनः ॥ ७४ ॥ संकल्पोन्मुखतांवि द्धिदुःखदांसंविदश्च्युतिम् ॥ जडेषूपलभूतेषुमनोदेहेंद्रियादिषु ॥ ७५ ॥ कीदृशीकर्तृताचित्तपुष्पंव्यो म्निकथंभवेत् ॥ निरस्तकलनापंकेमननध्वंसरूपिणि ॥ ७६ ॥

अर्थ—और रूपरसादि विरुद्धस्वभाव द्रव्यान्तरके बहुत गुण पूर्णरीतिसे द्रव्यकाही आश्रय करतेहैं न कि अन्य विरुद्धका, इसलिये तुमारा संवित्से पृथक् होके गिरना दुःखही है अतः संवित्से तुम च्युत न होओ ॥ ७३ ॥ अथवा अन्तर्दृष्टिरूप संवित्से तुमसे आदिलेके सब दृश्यवस्तुका अभाव होनेपर दुःखरहित आनन्दरूप आत्माका शेष रहजाताहै, यदि इतनेसे संतोष है तो नित्यध्यानसे समाधिनिष्ठ होके आत्मदर्शी बनो ॥ ७४ ॥ जड पाषाणके समान मन, देह और इंद्रियआदिमें संकल्पकी ओर उन्मुख संवित्की च्युति (गिरने) को तुम दुःखदायी जानो ॥ ७५ ॥ कल्पनारूप पंकसे रहित, तथा संकल्पविकल्पका ध्वंसरूप आत्मामें कर्तृता कैसी, क्योंकि आकाशमें पुष्प कैसे होसकता है ॥ ७६ ॥

नचैवात्मनिकर्तृत्वंसंभवत्यंबरांगवत् ॥ अयंकेवलमात्मैवनानानानातयात्मनि ॥ ७७ ॥ स्फुरत्यब्धिरि वांभोभिःफेनबुद्बुदवीचिभिः ॥ आभासमात्रेसर्वस्मिन्स्फुरत्यस्मिश्चिदात्मनि ॥ ७८ ॥ द्वितीयाना स्तिकलनातप्तांगारइवांबुधौ ॥ कलनारहितेदेवेदेहेमनसिवाजडे ॥ ७९ ॥ संवित्संवेद्यनिर्मुक्तासारंसुं दरनेतरत् ॥ इदमन्यदिदंनान्यच्छुभंवाशुभमेवच ॥ ८० ॥

अर्थ—आकाशके हस्तपादआदि अंग जैसे नहीं होसकते ऐसेही आत्मामें कर्तृताका संभव नहीं है यह केवल आत्माही अपने आत्मामें अनेकता और एकतारूपसे स्फुरित होताहै ॥ ७७ ॥ फेन, बुद्बुद् और तरंगरूप जलोंसे जैसे समुद्र अपनेमें स्फुरित होताहै ऐसे आभासमात्र चित् आत्मामें आत्माही जगत्रूपसे स्फुरित होताहै ॥ ७८ ॥ समुद्रमें जैसे तप्त अंगार नहीं है ऐसेही आत्मामें द्वितीयकल्पना नहीं है, ऐसेही कल्पनारहित आत्मदेव तथा जड मनके विद्यमान रहते हे सुंदर चित्त ! यह अन्य है यह अन्य नहीं है यह शुभ है इत्यादि असत् कल्पना कल्पकके अभावसे नहीं है किन्तु विषयसे वर्जित सारभूत वह सब संवित् है न कि अन्य कुछ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

इत्यसत्कल्पनानास्तियथानभसिकाननम् ॥ संवेद्यरहितंसंविन्मात्रमेवेदमाततम् ॥८१॥ तत्रायमहम न्योयमित्यसत्कलनाकथम् ॥ अनादिमतिनीरूपेसर्वगेविततात्मनि ॥ आरोपयेत्कःकलनामृग्वेदंव्यो म्निकोलिखेत् ॥ ८२ ॥ नित्योदितेसकलवस्तुपदार्थसारेसंवित्स्थितेभरितनिर्भरभूरिदिक्कम् ॥ आत्मन्य सत्यमिवसाधुगतेमलत्वात्क्षीणौसुखासुखलवौममवैसमोहः ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे इंद्रियानुशासनयोगोपदेशो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कल्पना आत्मामें ऐसे असत् है जैसे आकाशमें जंगल, इसलिये विषयसे वर्जित संवित्मात्रही इस सम्पूर्ण जगत्रूपसे व्याप्तहै ॥ ८१ ॥ उस केवल आत्मामें मैं अन्य हुं यह अन्य है यह असत्कल्पना कैसे हो सकती है. अनादि, रूपरहित सर्वगामी और व्यापक आत्मामें कल्पनारूप कलंकका आरोप कौन करसकताहै, क्योंकि आकाशमें ऋग्वेद कौन लिखसकताहै ॥ ८२ ॥ नित्यउदयको प्राप्त, सम्पूर्णवस्तुओंमें सारभूत दिशाओंकी पूर्णतापूर्वक संविन्मात्र स्थित आत्माके प्रत्यक्षरूपसे जाननेपर मेरे सुखदुःख असत्य मृगतृष्णाके जल और रज्जुके सर्पके समान क्षीण होगयेहैं, क्योंकि पूर्वकालकी सुखदुःखकी प्रतीतिरूप मोह भ्रांतिही है न कि यथार्थ ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रियानुशासनयोगो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

इन्द्रियगणके रहते समस्तदोषोंकी प्राप्ति और उसके न रहनेसे समस्तसौख्यकी प्राप्ति होती है यह विषय इस ८३ के सर्गमें कहागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूयोमुनिवरोधीरोधियाधवलमेधया ॥ स्वमिंद्रियगणंगुप्तोबोधयामाससाध्विद म् ॥ १ ॥ तच्चेंद्रियगणस्यार्थेशृणुवक्ष्यामितेस्फुटम् ॥ श्रुत्वातद्भावनामेत्यपरांनिर्दुःखतांव्रज ॥ २ ॥ भवतामात्मसत्तैषादुःखयैवांतदायिनी ॥ असत्यामात्मनस्सत्तांतद्भवंतस्त्यजंत्विति ॥ ३ ॥ मदीयेनो पदेशेनसत्तैषाभवतांक्षयम् ॥ गतैवेतिस्फुटंमन्येयूयंह्यज्ञानसंभवाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पुनः उस धीर और मुनियोंमें श्रेष्ठ वीतहव्यने एकांतमें स्थित होकर अपने इन्द्रियगणको रोधन किया ॥ १ ॥ हे रामजी ! वह तुम अपने इन्द्रियगणके अर्थ सुनों मैं स्पष्टरीतिसे कह- ताहुं, और सुनकर उसी भावनाको प्राप्त होकर दुःखरहिततताको प्राप्तहो ॥ २ ॥ हे इन्द्रिय ! आत्मासे भिन्न अ- विद्यासे जो तुमारी सत्ता है वह जीवनकालमें अनेक दुःखदायिनी है और उसके अनन्तर पुनः २ मृत्यु नरकआदि अंतदायिनी हैं इसलिये आपलोग अपनी असत्य आत्मसत्ताको त्यागदें ॥ ३ ॥ और मेरे पूर्वकृत आत्माके उपदेशसे तुमारी सत्ता स्पष्टरीतिसे क्षयको प्राप्तही है, क्योंकि तुमारी उत्पत्ति अज्ञानसे है और अज्ञानके नष्ट होनेसे तुमारी सत्ता न मिलेगी ॥ ४ ॥

स्वसत्तास्फुटतांयातिदुःखायतवचित्तक ॥ तप्तकांचनरुल्लासोदाहायैवस्वपार्श्वयोः ॥ ५ ॥ पश्यत्वयि सतिभ्रांतजलकल्लोलसंकुलाः ॥ विशंतिकालजलधिंसंसारसरितांगणाः ॥ ६ ॥ पतंत्यहमहमिकावि हितान्योन्यचिंतिताः ॥ कुतोपिदुःखावलयोधाराआसारगाइव ॥ ७ ॥ परिस्फुरत्यपर्यंताहृदयोन्मूलनो द्यता ॥ आक्रंदकारिणीक्रूराभावाभावविषूचिका ॥ ८ ॥

अर्थ—हे तुच्छ चित्त ! तुमारी सत्ता तुमारे दुःखकेलिये ऐसे प्राप्त होती है जैसे अग्निके साथ क्रीडा दोनों भागके दाहकेही लिये है ॥ ५ ॥ देखो तुमारे रहनेपर भ्रान्तजनरूप जलतरंगोंसे व्याप्त संसाररूप नदियोंके गण कालरूपसमुद्रमें निरन्तर प्रवेश कररहे हैं ॥ ६ ॥ देखो ! परस्परके अहंकारसे रचित, और परस्पर वध, पराजय तथा पीडा आदिकी जिनमें चिंता हैं ऐसी दुःखकी पंक्तियां ऐसे गिरती हैं जैसे वृष्टिकी धारा ॥ ७ ॥ अपार, हृदयके उखाडनेमें तत्पर, रोदन करानेवाली, और क्रूर सम्पत्ति तथा विपत्तिरूप महामारी चारो ओरसे स्फुरित होरही है॥८॥

कासश्वासरणद्भृंगाकलेवरजरद्द्रुमे ॥ विकसत्यमलोद्योताजरामरणमंजरी ॥ ९ ॥ कल्लोलव्यालवलिते शरीरश्वभ्रकोटरे ॥ घननीहारखेस्वांतश्चिंताचपलमर्कटी ॥ १० ॥ लोभनात्त्वारटत्पक्षीतीक्ष्णयाद्वंद्वतुंड या ॥ कायजीर्णद्रुमादस्माद्गुणखंडंनिकृंतति ॥ ११ ॥ हृदयावकरंकीर्णमितश्चेतश्चकर्कशः ॥ अपवित्रो दुराचारःकुरुतेकामकुक्कुटः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस शरीररूप प्राचीन वृक्षमें कासश्वास (खांसी) रूप भृंग जिसमें शब्द कररहे हैं ऐसी निर्मल प्र- काशयुक्त वृद्धावस्थारूप लता विकसित होरही है ॥ ९ ॥ मनोरथके तरंगरूप सर्पोंसे वेष्टित, और घनीभूत जडता- सहित इन्द्रियोंके छिद्र जिसमें द्वार हैं ऐसे शरीरके अन्तर्गतके कोटर अर्थात् हृदयमें, जाल रचनेमें व्यग्र चिन्तारूप मकरी भ्रमण करती है ॥ १० ॥ लोभरूप अपने विलासोंसे शब्द करताहुआ चित्तरूप पक्षी सुखदुःखआदि द्वन्द्वरूप तीव्र चोंचसे शम दम धर्मादि पुष्प फलरूप गुणके समूहको इस शरीररूप प्राचीन वृक्षसे काटरहाहै ॥११॥ अपवित्र, दुराचारी, और कर्कश यह कामरूप मुरगा राग आदि वासनाओंसे व्याप्त हृदयको पुनः अपने पैरोंसे विखराताहै॥१२

महत्यांमोहयामिन्यामुल्बणोज्ञानकौशिकः ॥ श्मशानइववेतालःपरिवल्गतिहृद्द्रुमे ॥ १३ ॥ एताश्चा न्याश्चबह्वयोपित्वयींद्रियगणेसति ॥ पिशाच्यइवशर्वर्यांप्रवल्गंत्यशुभश्रियः ॥ १४ ॥ त्वयित्वसतिहे साधोसर्वाएवशुभश्रियः ॥ प्रभातइवपद्मिन्यःसालोकंविलसंत्यलम् ॥१५॥ प्रशांतमोहमिहिकंराजतेहृ दयांबरम् ॥ निर्मलालोकवलितंनीरजस्कतरांतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—महामोहरूप रात्रिमें अज्ञानरूप भयंकर उल्लूक हृदयरूप वृक्षपर ऐसे गर्जताहै जैसे स्मशानभूमिमें वेताल ॥ १३ ॥ हे इन्द्रियगण ! तुमारे विद्यमानरहते ये तथा अन्य पाप शोभा रात्रिमें पिशाचीके तुल्य गर्जती है ॥ १४ ॥ हे साधो चित्त ! तुमारे न रहनेपर संपूर्ण धर्मोंकी शोभा विवेकआदि प्रकाशसहित ऐसे पूर्णरीतिसे विक- सित होतीहै जैसे प्रातःकालमें कमलिनी ॥ १५ ॥ और मोहरूप तुषारसे शून्य तथा निर्मलप्रकाशसे पूर्ण और रजोगुणरूप धूलिसे व्याप्त, हृदयरूप आकाश शोभित होताहै ॥ १६ ॥

अशंकितनभःकोशपतिताकुलपूरवत् ॥ नापतंतिविकल्पौघाश्चिरंवैकल्यकारिणः ॥ १७ ॥ सर्वस्याह्लादनीशांतमैत्रीपरमपावनी ॥ अभ्युदेतिहृदोहृद्यासुतरोरिवमंजरी ॥ १८ ॥ अंतश्छिद्रवतीजाड्ययुक्तायुक्तगुणास्वयम् ॥ चिंताशोषमुपायातिहिमदग्धेवपद्मिनी ॥ १९ ॥ आलोकःस्फुटतामंतरायात्यज्ञानसंक्षये ॥ प्रशाम्यत्यंबुदेव्योम्निशरदीवार्कमंडलम् ॥ २० ॥

अर्थ—अकस्मात् निःशंक आकाशके कोशमें वायुसे व्याप्त वृष्टिके धाराके समान विकल करानेवाले विकल्पोंके समूह नहीं गिरते ॥ १७ ॥ सबको आनन्ददायिनी, और परमपवित्र मित्रता हृदयमें ऐसे उदयको प्राप्त होती है जैसे उत्तमवृक्षसे रमणीयलता ॥ १८ ॥ भीतर छिद्रयुक्त, और जडतायुक्त मूर्खोंमें अपनी विद्या और कुशलतादिका उपयोग करनेवाली चिंता सर्वथा ऐसे सूख जाती है जैसे हिमसे जली कमलिनी ॥ १९ ॥ अज्ञानके नष्ट होनेपर ज्ञानका प्रकाश अंतःकरणमें ऐसे प्रत्यक्ष होताहै जैसे शरत्कालमें मेघ शांत होनेपर आकाशमें सूर्यमण्डल ॥ २० ॥

प्रसन्नंस्फारगांभीर्यमक्षुब्धमपराहतम् ॥ हृदयंसमतामेतिशांतवातइवार्णवः ॥ २१ ॥ अमृतापूरपूर्णेन नित्यानंदमयेनच ॥ स्थीयतेपुरुषेणांतःशीतेनशशिनायथा ॥ २२ ॥ संविदःस्फुटतामंतरायांत्यज्ञानसंक्षये ॥ संविदंशैकविश्रांतंसमग्रंसचराचरम् ॥ २३ ॥ भाव्यतेभरिताकारंवपुरानंदमंथरम् ॥ नभवत्यसुसंगानामाशापाशविधायिनाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रसन्न, विशालगंभीरतासहित, क्षोभरहित और विषमताके हेतुओंसे अपराजित हृदय ऐसे शांत होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे समुद्र ॥ २१ ॥ आत्मानन्दरूप अमृतसे पूर्ण नित्य आनन्दमय पुरुष ऐसे स्थित होताहै जैसे शीतल चंद्रमा ॥ २२ ॥ अज्ञानके नष्ट होनेसे अंतःकरणमें आत्माकार वृत्ति स्पष्ट होती है और संपूर्ण चराचर बाधित होकर केवल संवित् चेतनमात्र विश्रान्त रहताहै ॥ २३ ॥ और आनंदसे व्याप्त आत्माका पूर्णस्वरूप अनुभूत होता है, परंतु यह अनुभव आशाकी फांसीमें बंधेहुये केवल प्राणसहित देहके संगियोंको नहीं होता ॥ २४ ॥

दग्धानामिवपर्णानांरसानांपुनरागतिः ॥ पुंसांक्षपितसंसारजराजन्ममहाध्वनाम् ॥ २५ ॥ अपुनर्भ्रमणायात्मद्रुमेविश्रम्यतेचिरम् ॥ एवंप्रायास्तथान्याश्चभवंतिगुणसंपदः ॥ २६ ॥ असतित्वयिसर्वाशिन्सर्वाशाक्षयसंक्षये ॥ पक्षयोरेतयोश्चित्तसत्तासत्तास्वरूपयोः ॥ २७ ॥ येनैवपश्यसिश्रेयस्तमेवांगीकुरुक्षणम् ॥ स्वात्मभावस्तवसुखंमन्येमानवतांवर ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे ग्रीष्मऋतुमें दग्धपत्रसहित वृक्षोंमें वर्षाकालमें रसका आगमन पुनः होताहै ऐसेही ज्ञानरूप अग्निसे संसार वृद्धावस्था तथा जन्मआदि महामार्गके क्षयसे पुरुषोंके आरोग्य, तुष्टि पुष्टि और कांतिआदि गुणोंका आगमन पुनः होताहै ॥२५ ॥ और वह पुरुष पुनः भ्रमण न करनेके अर्थ आत्मारूप वृक्षपर चिरकालतक विश्राम करताहै. हे चित्त ! तुमारे क्षय होनेसे ऐसी तथा अन्यगुणोंकी संपत्ति होती है ॥ २६ ॥ हे सर्वभक्षक चित्त ! सब आशाओंके वर्धक तुमारे न रहनेपर सब संपत्ति प्राप्त होती हैं. और सर्वथा आत्मभावसे स्थिति अथवा सर्वथा आत्माके अभावका स्वीकार इन दोनों पक्षोंमेंसे ॥ २७ ॥ जिस पक्षमें कल्याणका मार्ग देखो उसीको क्षणभरकेलिये स्वीकार करो. और हे मानियोंमें श्रेष्ठ ! आत्माकी सत्ताही तुमारे लिये मैं सुख मानताहुं ॥ २८ ॥

तमेवभावयाभावंसुखत्यागोहिमूढता ॥ यदित्वस्तिभवेत्सत्यमंतर्भावितचेतनम् ॥ २९ ॥ जीवतस्तत्तवात्यंतमभावंकइवेच्छति ॥ किंतुनास्त्यसिसत्येनवदामितवसुंदर ॥३० ॥ तेनमिथ्यैवजीवामीत्याशयामासुखीभव ॥ पूर्वमेवासिनास्त्येवयावद्भ्रांत्यात्वदस्तिता ॥ ३१ ॥ सैवेदानींविचारेणभृशंक्षयमुपागता ॥ एतावदेवतेरूपंसाधोयदविचारणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे चित्त ! अन्यपदार्थोंकी सत्तासे शून्य उसी आत्माके भावकी भावना करो, क्योंकि सुखका त्याग मूढता है. और यदि अन्तमें चेतनसहित तुम प्रसिद्धरूप सत्य हो ॥ २९ ॥ तो उस रूपसे जीतेहुये तुमारा अभाव कौन चाहताहै. परंतु तुम उस स्वरूपसे असत् हो. हे सुन्दर ! यह मैं श्रुति (वेद) शास्त्र तथा अनुभव आदिसे विचार करके सत्य २ कहताहुं ॥ ३० ॥ इसलिये मैं जीताहुं इस मिथ्या आशासे सुखी न होओ, तुम कल्पितरूपही हो और यथार्थमें तुम नहीं हो क्योंकि तुमारी अस्तिता भ्रांतिसे सिद्ध है ॥ ३१ ॥ वही भ्रांति अब विचारसे सर्वथा क्षयको प्राप्त हुई. हे साधो ! तुमारा रूप इतना है कि आत्मस्वरूपका अविचार ॥ ३२ ॥

विचारेविहितेसम्यक्समरूपंसमंस्थितम् ॥ अविचारात्प्रजातंत्वमनालोकात्तमोयथा ॥ ३३ ॥ विचारेणोपशांतंत्वमालोकेनतमोयथा ॥ एतावंतंसखेकालंबभूवाल्पविवेकिता ॥ ३४ ॥ तवानेनाभिपीनत्वम

भूदुःखैककारणम् ॥ मोहसंकल्पमात्रेणबालवेतालवद्भवेत् ॥ ३५ ॥ द्वंद्वंचाद्यंतसंकल्पक्षीणंक्षयिभव स्थितम् ॥ इदानीमुदितंनित्यंस्वप्राग्रूपेक्षयंगते ॥ ३६ ॥ विवेकस्यप्रसादेनविवेकायनमोनमः ॥ बहु धापिप्रबुद्धस्त्वंचित्तकाप्यनुबोधितः ॥ ३७ ॥ चित्ततायांप्रनष्टायांस्थितस्त्वंपरमेश्वरः ॥ प्राक्स्वरूप विलासस्तेश्रेयसेस्थितिमागतः ॥ ३८ ॥ समस्तवासनोन्मुक्तःसंप्रत्यसिमहेश्वरः ॥ यस्याविवेकाड्ड त्पत्तिःसविवेकाद्विनश्यति ॥ ३९ ॥ प्रकाशेनप्रयात्यंतमनालोकोभवत्तमः ॥ अनिच्छतोपितेसाधोवि चारेस्थितिमागते ॥ ४० ॥

अर्थ—विचार करनेपर तुमारा रूप विक्षेपादि विषमतासे शून्य सन्मात्र स्थित है. अविचारसे तुम ऐसे उत्पन्न हो जैसे प्रकाशके अभावसे अन्धकार ॥ ३३ ॥ विचारसे तुम ऐसे शांत होजाते हो जैसे प्रकाशसे अन्धकार. हे मित्र ! इतनेकालतक अल्प विवेक रहा ॥ ३४ ॥ इस अल्पविवेकसे दुःखका कारण तुमारी स्थूलता ऐसे हुई जैसे मोहके संकल्पमात्रसे बालकको वेताल उत्पन्न होताहै ॥ ३५ ॥ और उसी तुमारी स्थूलतासे स्रष्टाके आदिअन्त कल्पसे क्षीण अतएव क्षयी द्वंद्वभी हुआ, और जिस विवेकके प्रतापसे पूर्व अविद्याका रूप क्षय होनेपर इस ज्ञानोदयकालमें आत्मस्वरूप उदयको प्राप्त हुआहै उस विवेकको नमस्कार है. हे चित्त ! तुम स्वयं प्रबुद्ध हो और शास्त्रआदिसेभी बोधितहो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ कि चित्तताके नष्ट होनेसे तुम परमेश्वर हो, पूर्वभी तुम परमेश्वर थे, और अबभी हो, तुमारा विलास अब स्थितिको प्राप्त हुआहै ॥ ३८ ॥ इसलिये सब वासनाओंसे मुक्त तुम महेश्वर हो, क्योंकि जिसकी अविवेकसे उत्पत्ति होती है वह विवेकसे नष्ट होताहै ॥३९॥ प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होताहै. हे साधो ! तुमारी इच्छा न रहतेभी विचारके स्थिर होनेपर ॥ ४० ॥

सर्वतोयमुपायातोविनाशःसुखसिद्धये ॥ तस्मान्नास्त्यसिनिर्णीतमितिसिद्धांतयुक्तिभिः ॥ ४१ ॥ चित्तेंद्रियेश्वरस्वस्तिभवतेत्वंतमागतः ॥ नित्यंपूर्वमभूतायनास्तिरूपायसंप्रति ॥ ४२ ॥ भविष्यतेचनोद कैस्वमनःस्वस्तितेस्त्विति ॥ परिनिर्वामिशांतोस्मिदिष्ट्यास्मिविगतज्वरः ॥ ४३ ॥ स्वात्मन्येवावति ष्ठेहंतुर्यरूपपदेस्थितः ॥ अतोनास्त्येवनास्त्येवसंसारेचित्तमस्थिति ॥ ४४ ॥

अर्थ—सुखकी सिद्धिकेलिये तुमारा विनाश चारोओरसे आके उपस्थित हुआ इसलिये शास्त्र और सिद्धान्तयुक्तियोंसे यह निर्णय हुआ कि तुम अपने कल्पितरूपसे नहीं हो ॥ ४१ ॥ हे चित्त ! इन्द्रियोंके ईश्वर तुम संसारके पार होगयेहो, पूर्वकालमेंभी न थे, और इस समयमेंभी नास्तिरूप हो, इसलिये तुमारा कल्याण हो ॥ ४२ ॥ हे स्वकीय चित्त ! भविष्यत्कालमेंभी तुम नहीं रहोगे, इसलिये तुमारा कल्याण हो, मैं इससमय सौभाग्यसे सन्तापरहित चारोओरसे तृप्त और शान्त हुं ॥ ४३ ॥ तुरीयपदमें स्थित मैं अपने आत्मामें स्थित हुं इसलिये स्थितिशून्य चित्त इस संसारमें नहींहै ॥ ४४ ॥

आत्मात्वस्त्वेवचास्त्वेवयस्मादन्यत्रविद्यते ॥ अयमात्माहमेवासौनास्त्यन्यन्महतेकचित् ॥ ४५ ॥ स्फुरच्चिदेवबोधात्मासर्वत्राहंस्थितःसदा ॥ अयमात्मेतिकलनामन्येनोनिर्मलांतरे ॥ ४६ ॥ प्रतियोगि व्यवच्छेदकलनैकस्यवैकुतः ॥ अहंतेनायमात्मेतिकलनामनुदाहरन् ॥ मौनिस्वात्मनितिष्ठामितरंगइ ववारिणि ॥ ४७ ॥ संशांतवासनमनाश्रितचेतनांशमप्राणसंचरणमस्तमितांशदोषम् ॥ संवेद्यवर्जित मुपेत्यसुसंविदंशंशाम्यामिमौनमहमेवनिरीहमंतः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे चित्तसत्ताविचारयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—आत्मातो अवश्य है, क्यों यह शुद्धचित् आत्मा है और यह आत्मा मैं हुं मुझसे अन्य अन्यत्र कहीं कुछ नही है ॥ ४५ ॥ सदा सर्वत्र अनुभवरूप आत्मा स्फुरणशील मैं स्थितहुं. यह मैं मानताहुं कि शुद्धचिद्रूप आत्मामें यह आत्मा है यह कल्पनाभी नहीं होसकती तो अन्यकल्पनाकी क्या कथा ॥ ४६ ॥ क्योंकि एक अद्वितीय परमात्मामें उससे भिन्न कोई नहीं है यह कल्पना कहांसे होसकती है, इस हेतुसे यह आत्मा मैं हुं इस कल्पनाका उच्चारणभी न करतेहुये मौन आत्मामें ऐसे स्थितहुं जैसे तरंग जलमें ॥ ४७ ॥ वासनासे शून्य, चिदाभासकेभी आश्रयसे रहित, प्राणसंचारसे वर्जित, सबदोषोंसे वर्जित, और विषयसेरहित चिन्मात्र आत्मामें प्राप्त होकर, चेष्टा तथा मनसे शून्य, और मौन होकर विश्रांतहुं ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे चित्तसत्ताविचारयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

वीतहव्यमुनिकी समाधि, पृथिवीके भीतर स्थिति, और हृदयमें विद्याधर तथा इन्द्रता आदिके अनुभवका वर्णन इस ८४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिर्णीयसमुनिर्वीतहव्योविवासनः ॥ आसीत्समाधावचलोविंध्यकंदरकोटरे ॥ १ ॥ अपरिस्पंदिताशेषसंविदानंदसुंदरः ॥ बभावस्तंगतमनाःस्तिमितांभोधिशोभनः ॥ २ ॥ अंतरेवशशामास्यक्रमेणप्राणसंततिः ॥ ज्वालाजालपरिस्पंदोदग्धेंधनइवानलः ॥ ३ ॥ अनंतर्निर्वृतां यातेबाह्यार्थेचाप्यसंस्थिते ॥ शेषंतर्लब्धसंस्थानेतस्यास्फुरितपक्ष्मणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वासनारहित वीतहव्यमुनि विंध्याचलकी कन्दरामें समाधिमें अचल होगया ॥ १ ॥ चेष्टारहित स्वप्रकाश पूर्णआत्मानन्दसे सुन्दर और मनरहित वह ऐसे शोभित हुआ जैसे निश्चल समुद्र ॥ २ ॥ क्रमसे प्राणोंका संचार इस मुनिके अंतःकरणमें ऐसे शांत होगया जैसे इंधन जलेहुये अग्निमें ज्वालाके जालकी गति ॥ ३ ॥ बाह्यपदार्थोंमें स्थित न होकर अर्द्धमिलित (आधे मूंदे) हुये इसके पलक होगये, और आधेसे शेष अन्तर्मुख होगये ॥ ४ ॥

घ्राणप्रांतगतात्पाल्पसमालोकेइवेक्षणे ॥ अर्द्धकुड्मलितैःपद्मैःश्रियमाययतुःसमाम् ॥ ५ ॥ समकाय शिरोग्रीवस्थानकःसमहामतिः ॥ आसीच्छैलादिवोत्कीर्णश्चित्रार्पितइवाथवा ॥ ६ ॥ तथापितिष्ठत स्तस्यसंवत्सरशतत्रयम् ॥ कोटरेविंध्यकच्छस्ययथावर्द्धमुहूर्तवत् ॥ ७ ॥ एतावंतमसौकालंनाबुद्धय तकिलात्मवान् ॥ जीवन्मुक्ततयाध्यानीनचतत्याजतांतनुम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और नासिकाके अग्रभागमें प्राप्त दोनों ओर समान प्रकाशवाले इसके नेत्र ऐसे शोभित हुये जैसे अर्द्धविकसित कमल ॥ ५ ॥ समशरीर ऊपर शिर तथा गला उठायेहुये वह महाबुद्धि मुनि ऐसा होगया जैसे पर्वतपर खुदाहुआ अथवा चित्रमें लिखित ॥ ६ ॥ विन्ध्याचलपर्वतपर झरनेके समीपदेशमें उसप्रकार रहते उसको तीनसौ वर्ष ऐसे बीतगये जैसे आधा मुहूर्त ॥ ७ ॥ जीवन्मुक्त होनेसे वह ज्ञानी और ध्यानी मुनि इतने समयतक समाधिसे जाग्रत नहींहुआ और न उस शरीरको उसने त्यागा ॥ ८ ॥

तावत्कालंससुभगोनप्राबुद्धयतयोगवित् ॥ उदारैरंबुदारावैरासारभरघर्घरैः ॥ ९ ॥ पर्यंतमंडलाधीश मृगयानतबृंहितैः ॥ पक्षिवानरनिर्हादैर्मातंगास्फोटनिःस्वनैः ॥ १० ॥ सिंहसंरंभरटितैर्निर्झरारावसी त्कृतैः ॥ विषमाशनिसंपातैर्जनकोलाहलैर्घनैः ॥ ११ ॥ प्रमत्तशरभास्फोटैर्भूकंपतटघट्टनैः ॥ वनदाह धमध्वानैर्जलौघाहतिवल्गनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वह सुंदर योगी उतने कालतक, बडे २ मेघोंके शब्दसे, तथा वृष्टिकी धाराकी घर्घराहटसेभी समाधिसे न जगा ॥ ९ ॥ और मंडलके अधीशोंके अहेरमें आयेहुये हाथीके शब्दोंसे, पक्षी तथा वानरोंकी चिल्लाहटसे. और हाथियोंकी गर्जनासेभी न जागा ॥ १० ॥ क्रोधसहित सिंहोंके गर्जनोंसे, झरनोंकी घर्घराहटोंसे, भयंकर वज्रपातोंसे और मनुष्योंके कोलाहलसेभी समाधिसे वह न जागा ॥ ११ ॥ प्रमत्त शरभ (गेंडे) पशुओंके शब्दोंसे, भूकंपसे टूटेहुये पर्वतके तटोंके संघट्टनसे, वनके दाहमें अग्निके शब्दोंसे, और जलके प्रवाहके शब्दोंसेभी वह समाधिसे न जागा ॥ १२ ॥

महोपलतटाघातैर्धरणीतलमृज्जलैः ॥ जलौघांदोलनायातैस्तापैरनलकर्कशैः ॥ १३ ॥ केवलंवहतिस्वैरं कालेगलितकारणम् ॥ परियांतीषुवर्षासुलहरीष्विववारिणि ॥ १४ ॥ स्वल्पेनैवहिकालेनतस्मिन्पर्व तकंदरे ॥ प्रावृडोघविनुन्नेनपंकेनोर्वीतलेकृतः ॥ १५ ॥ तत्रासाववसद्भूमौकोटरेसंकटोदरे ॥ पंकसं पीडितस्कंधःपर्वतेषुशिलायथा ॥ १६ ॥

अर्थ—बडे २ पर्वतोंके तटोंके आघातोंसे, पृथिवीसे फसिलते हुये कीचडयुक्त जलके शब्दोंसे, जलके प्रवाहके आंदोलनोंसे, तथा अग्निके समान कर्कश तापोंसेभी वह योगी समाधिसे न जागा ॥ १३ ॥ किंतु केवल स्वतंत्रतासे कारणरहित कालके वीततेहुये जलमें तरंगोंके समान अनेकवार वर्षाकालके बीतनेपर ॥ १४ ॥ थोडेही कालमें उस पर्वतकी कन्दरामें वर्षाकालसे उत्पन्न कीचडसे वह वीतहव्य मुनि पृथिवीके नीचे होगया ॥ १५ ॥ वहां संकटके स्थानमें उस भूमिके कोटरमें कीचडसे लिप्त स्कन्धहोनेपर ऐसे पीडासे रहित निवास करताथा जैसे पर्वतकी शिला ॥ १६

शतत्रयेसवर्षाणामथयातेस्वयंप्रभुः ॥ व्यबुध्यतात्मरूपात्माधराकोटरपीडितः ॥ १७ ॥ संविदेवास्य तंदेहंजयाहोर्वीनिपीडितम् ॥ तनुःप्राणमयस्पंदःप्राणसंसरणंविना ॥ १८ ॥ उत्पत्तिप्रौढिमासाद्यकल नाहृदयांतरे ॥ स्वमनोरूपिणीतस्यहृद्येवानुबभूवसा ॥ १९ ॥ कैलासकाननेकांतेकदंबस्यतरोस्तले ॥ मुनित्वंशतमब्दानांजीवन्मुक्तात्मनिर्मलम् ॥ २० ॥

अर्थ—तीन (३००) सौ वर्षके अनंतर पृथिवीके कोटरमें पीडित वह आत्मारूप प्रभु स्वयं समाधिसे जागा ॥ १७ ॥ पृथिवीसे पीडित उसके शरीरको संवित् (ज्ञान) ही ने पालन किया न कि प्राणोंके संचारने क्योंकि वह सूक्ष्मथा ॥ १८ ॥ इस तीनसौ वर्षके अनंतर शेषप्रारब्धके भोगार्थ उसकी जीवसंवित् हृदयमें उत्पत्तिद्वारा प्रबल और अपने मनोरूप होकर वक्ष्यमाण बातोंको हृदयमेंही अनुभव किया ॥ १९ ॥ रमणीय कैलासपर्वतके बनमें कदंबके वृक्षके तले जीवन्मुक्त होनेसे निर्मल आत्मासहित मुनित्वका अनुभव सौ वर्षतक किया ॥ २० ॥

विद्याधरत्वंवर्षाणांशतमाधिविवर्जितम् ॥ युगपंचकमिंद्रत्वंप्रणतंसुरचारणैः ॥ २१ ॥ श्रीरामउवाच॥ शक्रत्वादिषुतेष्वस्यप्रतिभासेषुभोमुने ॥ नियमोऽनियमश्चैवदिक्कालनियतेःकथम् ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वात्मिकैषाचिच्छक्तिर्यत्रोदेतियथायथा ॥ तथातत्राशुभवतितथात्मैकस्वभावतः ॥२३॥ यथायत्रयदाबुद्धौनियमःसतदास्थितः ॥ देशकालादिनियमक्रमाणांतन्मयात्मता ॥ २४ ॥

अर्थ—और मानसीव्यथासे वर्जित देवता तथा चारणोंसे बंदित इन्द्रपदका अनुभव किया ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! इस मुनिके इन्द्रआदि पदके अनुभवोंमें कैलासके बनमें यह देशका नियम, पांचयुग यह कालका नियम और अल्पकालमें हृदयदेशमें यह देशकालरूप नियतिका नियम तथा अनियम कैसे हुआ ? ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! सर्वरूप चेतनशक्ति जहां जिस २ प्रकारसे उदित होती है वहां अनुभव करनेवाले चेतनके स्वभावसे उसी २ प्रकारकी शीघ्र होजाती है ॥ २३ ॥ जिस समय वैसाही नियम वहीं स्थित होजाताहै, क्योंकि देशकालादि नियमके क्रम बुद्धिमय चिदात्मामें अध्यस्त हैं, तात्पर्य यह कि असर्वरूपसे ज्ञात चेतन अल्पदेशकालमें विशालदेशकालके होनेमें विरोधहै न कि सर्वरूपसे ज्ञात चेतनमें ॥ २४ ॥

तेननानाविधान्येषजगंतिपरिदृष्टवान् ॥ हृदिसंवेदनाकाशेवीतहव्योविवासनः ॥ २५ ॥ सम्यग्बोधवतामेषावासनैवनवासना ॥ ज्ञानाग्निदग्धादग्धस्यकैवबीजस्यबीजता ॥ २६ ॥ कल्पमेकंगणत्वंसचंद्रमौलेश्चकारह ॥ समस्तविद्यानिपुणंत्रिकालामलदर्शनम् ॥ २७ ॥ योयादृग्दृढसंस्कारःसतंपश्यतितादृशम् ॥ जीवन्मुक्ततयैवैतद्वीतहव्योनुभूतवान् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी हेतुसे वासनारहित वीतहव्य मुनिने अपने हृदयस्थित चिदाकाशमें नानाप्रकारके जगत्का अनुभव किया ॥ २५ ॥ हे रामजी ! उत्तमज्ञान (आत्मज्ञान) वालोंकी यह वासना वासना नहीं है क्योंकि ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध और दर्शनमात्रसे अदग्ध भर्जित बीजकी बीजता (अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्तिसहित बीजता) क्या अर्थात् कुछ नहीं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उस वीतहव्यने समस्तविद्यामें निपुण, त्रिकालमें निर्मलज्ञानसहित श्रीमहादेवजीकी गणपतिकी पदवीका अनुभव एक कल्पपर्य्यन्त किया ॥ २७ ॥ जो प्राणी जैसे दृढसंस्कारसहितहै वह उसको वैसाही देखताहै, क्योंकि भोग करानेवाले प्रारब्धकर्मके दृढसंस्कारके आविर्भूत होनेसे जीवन्मुक्तभी वीतहव्यमुनिने यह सब अनुभवकिया ॥ २८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेमुनिश्रेष्ठजीवन्मुक्तमतेरपि ॥ बंधमोक्षदृशःसंतिवीतहव्यात्मनोयथा॥२९॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथास्थितमिदंविश्वंशांतमाकाशनिर्मलम् ॥ ब्रह्मैवजीवन्मुक्तानांबंधमोक्षदृशः कुतः ॥ ३० ॥ एतत्संविन्नभोभातियत्रयत्रयथायथा ॥ तत्रतत्रतथातावत्तावत्तद्विंदतेततम् ॥ ३१ ॥ तेनानुभूतानिबहून्यनुभूयंतएवच ॥ जगंतिसर्वात्मतयाब्रह्मरूपेणराघव ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुनिश्रेष्ठ ! जब ऐसा है तो जीवन्मुक्तकोभी बंधमोक्षकी दृष्टि होती हैं जैसे कि वीतहव्यकी ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यथारूपसे स्थित यह संपूर्ण जगत् जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें शांत और निर्मल आकाशके तुल्य ब्रह्म है तो उनको बंधमोक्षकी दृष्टि कैसे होसकती है ॥ ३० ॥ यह संवित् चिदाकाश जहां २ जैसे २ भासताहै वहां २ वैसाही वैसा उतना २ व्याप्त प्राप्त करताहै ॥ ३१ ॥ सर्वरूप होनेसे उस ब्रह्मरूप वीतहव्यने अनेक जगत्के अनुभव किये और अनेक कररहाहै ॥ ३२ ॥

धराकोटरनिर्मग्नवीतहव्यचिदात्मसु ॥ जगत्सुतेष्वसंख्येषुनीरूपेषुमहात्मसु ॥३३॥ यःशक्रोनवबुद्धात्मासोद्यदीनेषुपार्थिवः ॥ कर्तुंप्रवृत्तोमृगयांक्षणेस्मिन्नपिकानने ॥ ३४ ॥ योहंसोनवबुद्धात्मापाश्मेपैत

मद्देभवत् ॥ स्थितःसएवदाशेंद्रःकैलासवनकुंजके ॥ ३५ ॥ योराजानवबुद्धात्माभूमेःसौराष्ट्रमंडले ॥ सएषोद्यस्थितोंध्राणांग्रामेबहुलपादपे ॥ ३६ ॥

अर्थ—वीतहव्यके हृदयस्थ चेतनके हमसे आदि लेके सर्व जीवस्थ चेतनरूप होनेसे सब जगत्के जीवोंका अनुभव उसीकाहै इसलिये पृथिवीके कोटरमें निमग्न वीतहव्यके चेतनसहित असंख्यरूपरहित अथवा प्रतिभाससे विशालरूप ब्रह्माण्डोंमें ॥ ३३ ॥ जो इन्द्र था वह इससमय दीन नाम देशोंमें अज्ञानी राजा है और क्षणभरकेलिये बनमें मृगया (शिकार) करनेको प्रवृत्त है ॥ ३४ ॥ जो पितामहके पद्मकल्पमें वीतहव्यके गणपती होनेके समयमें कैलासके बनमें उसका अज्ञानी क्रीडा हंसहुआथा वह अब दासेंद्र अर्थात् निषादोंका राजा होके स्थितहै ॥ ३५ ॥ इसीप्रकार जो पृथिवीके सौराष्ट्रदेशमें अज्ञानी राजा था वह अब अंधदेशके बहुत वृक्ष सहित ग्राममें स्थितहै ॥३६

श्रीरामउवाच ॥ ॥ मानसःकिलसर्गोसौवीतहव्यस्यतत्रये ॥ देहिनोभ्रांतिमात्रंचेत्तद्देहाकारिणःकथम् ॥ ३७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यदिभ्रांत्येष्टमात्रात्मवीतहव्यस्यतज्जगत् ॥ तदिदंनामते रामकिंभूयःपरिभासते ॥ ३८ ॥ इदमप्यंगचिन्मात्रंमनोमात्रभ्रमोपमम् ॥ तदपिव्योमचिन्मात्रंमनोमात्रंभ्रमोपमम् ॥ ३९ ॥ वस्तुतस्तुनतद्रामजगन्नैवंनचेतरत् ॥ तवापिनजगत्सत्ताब्रह्मेदंभातिकेवलम् ४०

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! वीतहव्यकी सृष्टि तो मानसीथी, उसमें देहधारी यदि भ्रान्तिमात्रये तब इन्द्र और हंस देहाकारभी चेतनसहित कैसे हुये ? ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यदि वीतहव्यमुनिके मानस उस जगत्के भ्रान्तिमात्र होनेसे देहधारियोंके चेतनसहित होनेमें शंका करतेहो तब तुमारा यह प्रसिद्ध जगत् चेतनसहित कैसे भासताहै अर्थात् मनका कार्य्य होनेसे यहभी भ्रान्तिमात्रही है ॥ ३८ ॥ हे प्रिय रामजी ! यह तुमारा जगत्भी चिन्मात्र मनसे भ्रमके तुल्य है और वह वीतहव्यकाभी चिदाकाशमात्र मनसे रचित भ्रमके तुल्यही है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! और यथार्थमें तो न वह जगत् इसके सदृश है और न इससे विलक्षण है और तुमाराभी जगत् कुछ नहीं है किंतु यह केवल ब्रह्मही जगत्रूपसे भासताहै ॥ ४० ॥

भाविभूतंभविष्यच्चतथेदंचतथेतरत् ॥ जगत्सर्वमिदंदृश्यंसंविन्मात्रमनोमयम् ॥ ४१ ॥ एवंरूपमिदं यावन्नपरिज्ञातमीदृशम् ॥ वज्रसारदृढंतावज्ज्ञातंसतपरमांबरम् ॥ ४२ ॥ अज्ञानान्मनएवेदमित्थंसंप्र विजृंभते ॥ प्रत्युल्लासविलासाभ्यांजलमंबुनिधाविव ॥ ४३ ॥ यथास्थितेनैवचिदंबरेणस्वचित्तमेवैति मनोभिधानम् ॥ स्फारंकृतंतेनजगच्चदृश्यमेवंततंनैवततंचकिंचित् ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यमनोजगद्वर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—भावी भूत और भविष्य यह सम्पूर्ण दृश्यमात्र जगत् है वह संवित्मात्र (चिन्मात्र) शेष जो मनहै तन्मय है ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जबतक इसप्रकार यह जगत् ज्ञात नहीं है तबतक वह सत्रूप चिदाकाश वज्रके समान दृढ है ॥ ४२ ॥ अज्ञानियोंकेलिये मनोमात्रही यह जगत् उत्पत्ति तथा वृद्धिआदि परिणामोंसे ऐसे विकसित होरहाहै जैसे समुद्रमें तरंगआदि रूपसे जल ॥ ४३ ॥ विकाररहित चिदाकाश स्वभावसे स्थित ब्रह्मही अपनी मायासे किंचित् चेतित होतेहुये अपनेको चित्तरूपसे कल्पित करताहुआ चित्त होकर उसीकी मननशक्ति मनरूपताको प्राप्त होताहै और उस मनसे यह विशाल जगत् रचा जिससे कि इसप्रकार यह दृश्य व्याप्त है और यथार्थमें तो ब्रह्मसे भिन्न यह कुछ नहीं व्याप्तहै ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यजगद्वर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

वीतहव्यमुनिका उस पिंगलमें प्रवेश करके अपने देहका उद्धार और जीवन्मुक्तकी स्थिति तथा अंतिम समाधिका वर्णन इस ८५ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अथकिंवीतहव्यःस्वंस्थितंतस्मिन्धरोदरे ॥ कथमुद्धृतवान्देहंससंपन्नश्चकिंकथम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनंतरमनंतात्मवीतहव्याभिधंमनः ॥ स्वमेवात्मचमत्कारमात्रंसमवबुद्धवान् ॥ २ ॥ शार्वस्यास्यगणस्याभूत्प्राग्ज्योतिःस्मरणेस्वयम् ॥ इच्छाकदाचित्सकलप्राग्जन्मालोकनोन्मुखी॥३॥अशेषान्सददर्शाथनष्टानष्टान्स्वदेहकान्॥अनष्टानांततोमध्यात्तत्कोटरसंस्थितम् ४

यदृच्छयैवप्रोद्धर्त्तुंदेहंतस्याभवन्मतिः ॥ अपश्यत्तत्तथातत्रपंकेकीटमिवस्थितम् ॥ ५ ॥ शरीरंवीतहव्याख्यंधराकोटरपीडितम् ॥ प्रावृडोघोपनीतंतत्पृष्ठस्थंपंकमंडलम् ॥ ६ ॥ तृणजालावकीर्णत्वग्देहपृष्ठमृदंतथा ॥ एतदृष्ट्वामहातेजाधराविवरयंत्रितम् ॥ ७ ॥ भूयोपिचिंतयामासधियापरमबोधया ॥ सर्वसंपीडितांगत्वात्कायोमेप्राणवायुभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे प्रभो ! वीतहव्यमुनिने पृथिवीके उदरमें स्थित उस अपने देहका उद्धार कैसे किया और वह कैसे रहे और क्या वर्ताव किया ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर अनन्त आत्मस्वरूप वह वीतहव्यनामक जो मन है उसने आत्माका चमत्कारमात्र अपनेको जाना ॥ २ ॥ और जिससमय यह वीतहव्यका मन महादेवजीका गण था उससमय आत्माके ध्यानकालमें कदाचित् अपने पूर्वकालके सब शरीरोंके देखनेकी इच्छा स्वयं हुई ॥३॥ इसके पश्चात् उसने नष्ट तथा अनष्ट सब शरीरोंको देखा और अनष्टशरीरोंके मध्यमें पृथिवीके भीतर कीटकके समान स्थित उस शरीरको देखा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पृथिवीके कोटरमें स्थित, वर्षाके प्रवाहसे दूर खींचाहुवा पृष्ठपर पंकसमूहसहित उस वीतहव्यनाम शरीरको देखा ॥ ६ ॥ तथा तृणके जालसे चर्मपूर्ण और पृष्ठदेशमें मृत्तिकासे व्याप्त वह शरीर, इसप्रकार पृथिवीके वेष्टित उस शरीर उस महातेजस्वी ऋषिने देखकर ॥ ७ ॥ पुनः परमज्ञानयुक्तबुद्धिसे चिंतन किया कि यह मेरा देह सर्व अंगमें पीडित होनेसे प्राणोंके संचारसे ॥ ८ ॥

मुक्तश्चलितुमाकर्तुंशक्नोतिनमनागपि ॥ तज्ज्ञात्वाप्रविशाम्याशुदेहमेवंविवस्वतः ॥ ९ ॥ तदीयःपिंगलोदेहमुद्धरिष्यतिमेततः ॥ अथवाकिंममैतेनशाम्याम्यहमविघ्नतः ॥ १० ॥ निर्वामिस्वंपदंयामिकोर्थोमेदेहलीलया ॥ इतिसंचिंत्यमनसावीतहव्योमहामते ॥ ११ ॥ तूष्णींस्थित्वाक्षणंभूयश्चिंतयामासभूतले ॥ उपादेयोहिदेहस्यनमेत्यागोनसंश्रयः ॥ १२ ॥

अर्थ—रहित है, किंचित् चलने वा कुछ करनेको समर्थ नहीं है इसलिये इसके उद्धारके उपायको जानकर मैं शीघ्र सूर्यके शरीरमें प्रवेश करूं ॥ ९ ॥ उसमें प्रवेश करनेसे सूर्यका पिंगलनाम गण मेरे देहका उद्धार करेगा, अथवा इस प्रपंचसे मुझे क्या प्रयोजन है मैं इस देहके साथ विदेहमुक्तिसे शांत होजाऊं ॥ १० ॥ अपने परमपदको प्राप्त होके मैं शांत होजाऊं मुझे देहकी लीलासे क्या प्रयोजन, हे महामते ! वीतहव्यमुनि मनसे ऐसा चिंतन करके ॥११॥ हे महामते ! वीतहव्यमुनिने मनसे ऐसा चिन्तन करके और क्षणभर भूतलपर मौन स्थित होकर पुनः विचार किया कि मुझे इस देहका त्याग, अथवा आश्रय, ग्राह्य नहीं है ॥ १२ ॥

यादृशोदेहसंत्यागस्तादृशोदेहसंश्रयः ॥ तद्यावदस्तिदेहोयंनयावदणुतांगतः ॥ १३ ॥ तावदेनमुपारुह्यकिंचित्प्रविहराम्यहम् ॥ पिंगलेनशरीरंस्वमुद्धर्त्तुंतापनंवपुः ॥ १४ ॥ प्रविशामिनभःसंस्थंमुकुरंप्रतिबिंबवत् ॥ इत्यसौमुनिरादित्यंविवेशानिलरूपधृक् ॥ १५ ॥ पुर्यष्टकवपुर्भूत्वाभस्त्राखमिवचानलः॥ भगवान्मुनिरप्येनंहृद्गतंमुनिनायकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे देहका त्याग है वैसाही उसका आश्रय है, इस हेतुसे जबतक यह देह परमाणुरूपको न प्राप्त हो ॥१३॥ तबतक इसपर आरूढ होके विहार करूं, और पिंगलसे शरीरका उद्धार करनेके लिये सूर्यके शरीरमें ॥१४॥ जो कि आकाशमें स्थितहै उसमें ऐसे प्रवेश करूं जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब, ऐसा विचार करके वायुके समान सूक्ष्मशरीरसे यह मुनि सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट हुआ ॥ १५ ॥ भाथीके अन्तर्गत आकाशके समान सूक्ष्मशरीरसे सूर्यके शरीरमें प्रवेश किया और मननशील सूर्यभगवान्भी अपने हृदयमें प्राप्त मुनियोंमें श्रेष्ठ वीतहव्यको ॥ १६ ॥

दृष्ट्वासौचिंतयन्कार्यंपौर्वापर्यमुदारधीः ॥ विंध्यभूधरभूकोशमंतर्मुनिकलेवरम् ॥ १७ ॥ तृणोपलपरिच्छन्नंददर्शगतसंविदम् ॥ ऋषेश्चिकीर्षितंज्ञात्वाभानुर्गगनमध्यगः ॥ १८ ॥ धरातोमुनिमुद्धर्तुमादिदेशाग्रगंगणम् ॥ वीतहव्यमुनेःसंवित्सापुर्यष्टकरूपिणी ॥ १९ ॥ रविंवातमयीपूज्यंप्रणनामाशुचेतसा ॥ भानुनाप्यभ्यनुज्ञातोमानपूर्वकमग्रगम् ॥ २० ॥

अर्थ—देखकर और उदारबुद्धि सूर्य उनके कार्य्य तथा पूर्वापर शरीरोंकोभी देखकर चिंता करतेहुये, विंध्यपर्वतकी भूमिके भीतर मुनिके शरीरको ॥ १७ ॥ जो कि तृण तथा पाषाणआदिसे आच्छादित और चेष्टारहित था उसको देखा, और आकाशके मध्यमें वर्तमान सूर्यने ऋषिके कर्तव्यको जानकर ॥ १८ ॥ पृथिवीके भीतरसे मुनिके शरीरको निकालनेके अर्थ अग्रगामी पिंगलगणको आज्ञा दी, और वीतहव्यमुनिकी वातरूप सूक्ष्मशरीरकी संवित्ने पूज्य सूर्यभगवान्को शीघ्र प्रणाम किया, वह मुनि बहुतमानपूर्वक सूर्यसे आज्ञा दिये हुये अपने कार्यकेलिये प्रस्थित अग्रगामी ॥ १९ ॥ २० ॥

विवेशपिंगलाकारंविंध्यकंदरगामिनम् ॥ पिंगलोसौनभस्त्यक्त्वाकुंजकुंजरसुंदरम् ॥ २१ ॥ प्रापविंध्य वनंप्रावृण्मत्ताभ्रांबरभासुरम् ॥ उद्दधारधराकोशान्नखनिष्कृष्टभूतलः ॥ २२ ॥ कलेवरंमुनेःपंकान्मृणालमिवसारसः ॥ मौनंपुर्यष्टकमथस्वंविवेशकलेवरम् ॥ २३ ॥ नभस्तलपरिभ्रांतोविहंगमइवालयम् ॥ प्रणेमतुर्मिथोमूर्त्तवीतहव्यनभश्वरौ ॥ २४ ॥

अर्थ—और विंध्याचलकी कन्दरामें जानेवाले पिंगलके शरीरमें प्रवेश करतेभये, और यह पिंगलभी आकाशको त्यागकर, लतागृह तथा हस्तीआदिसे रमणीय ॥ २१ ॥ और वर्षाकालके मेघोंसे प्रकाशमान विंध्याचलके वनमें प्राप्त हुआ और नखसे खोदके पृथिवीके भीतरसे मुनिके शरीरको ऐसे निकाला जैसे सारस कीचडमेंसे कमलको, और अनन्त मुनिका सूक्ष्मदेह अपने देहमें ऐसे प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ जैसे आकाशमें भ्रमण करताहुआ पक्षी. अपने खुंथेमें अनन्तर मुर्तिरूपधारी वीतहव्य और आकाशगामी पिंगलने परस्पर प्रणाम किया ॥ २४ ॥

बभूवतुःस्वकार्यैकतत्परौतेजसांनिधी ॥ जगामपिंगलोव्योममुनिश्वविमलंसरः ॥ २५ ॥ तारकाकारकुमुदंसूर्यांशुकवदाकृति ॥ वीतहव्योममज्जाशुसरस्युद्भिन्नपंकजे ॥ २६ ॥ पंकपल्वललीलांतेवनेकलभकोयथा ॥ तत्रस्नात्वाजपंकृत्वापूजयित्वादिवाकरम् ॥ मनोभूषितयातन्वापूर्ववत्पुनराबभौ ॥ २७ ॥ मैत्र्यातयासमतयापरयाचशांत्यासत्प्रज्ञयामुदितयाकृपयाश्रियाच ॥ युक्तोमुनिःसकलसंगविमुक्तचेताविंध्येसरित्तटगतोदिनमेवरेमे ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे वीतहव्यसमाधियोगोपदेशो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—और वे दोनों तेजके समुद्र अपने २ कार्य्यमें तत्पर हुये, पिंगल तो आकाशमें गये और मुनि अपने शरीरसे स्नानार्थ निर्मल तडागमें गये ॥ २५ ॥ वह तडाग कुमुदरूप तारागणसे युक्त और सूर्य्यके प्रातःकालके किरणसे रक्त तथा पीतवस्त्र मानो धारण कियाथा, उस कमलसंयुक्त तडागमें मुनि वीतहव्यने स्नान किया ॥ २६ ॥ वनमें हांथीके बच्चेके समान उस पंकयुक्त तलावकी लीलाके अन्तमें स्नान करके जप तथा सूर्यकी पूजा करके, मनसे भूषित उस शरीरसे पूर्वकालके समान प्रकाशमान हुआ ॥ २७ ॥ समानजीवोंमें उस प्रसिद्ध जीवन्मुक्तोंकी मित्रता, परमशांति, उत्तमबुद्धि, श्रेष्ठोंमें प्रसन्नता, दीनोंमें करुणाआदि शोभासे युक्त और मनसे सबसंगोंसे निर्मुक्तमुनिने विंध्याचलकी नदीके तटपर दिनभर (एकही दिन) रमण किया ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यसमाधियोगोपदेशो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

पुनः छः रात्रितक समाधि, अनंतर जीन्मुक्तिकी स्थिति, मुक्तिमें रागआदिसे तिलांजलि, और इसकी समाधि इन विषयोंका वर्णन इस ८६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दिनांतेससमाधातुंपुनरेवमनोमुनिः ॥ विवेशकांचिद्विततांविज्ञातांविंध्यकंदराम् ॥ १ तदेवात्मानुसंधानमत्यजन्ससमिंद्रियैः ॥ चेतसाकलयामासदृष्टलोकपरावरः ॥ २ ॥ पूर्वमेवेंद्रियगणोमयापरिहृतःस्फुटम् ॥ इदानींचिंतयानार्थःपुनर्विततयामम ॥ ३ ॥ अस्तिनास्तीतिकलनांभंक्त्वामृद्वींलतामिव ॥ शेषंतुबद्धसंस्थानस्तिष्ठाम्यचलशृंगवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—दिनके अंतमें उस मुनिने पुनः समाधि करनेकी इच्छा की और जानीहुई किसी विशाल विंध्याचलकी कंदरामें प्रवेश किया ॥ १ ॥ लोकमें सारअसारको जाननेवाले उस मुनिने आत्माके अनुसंधानको त्यागतेहुये इन्द्रियोंके साथ वही विचार (इन्द्रियआदिके अभाव) को पुनः किया ॥ २ ॥ कि इन्द्रियगणको तो प्रथमहीसे मैंने स्पष्टरीतिसे त्यागदिया अब उस महाचिंतासे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३॥ कोमललताके तुल्य "अस्तिनास्ति" इस कल्पनाको त्यागकर शेष उन दोनोंके साक्षी चिन्मात्रका अवलंबन करके शरीरसे सम तथा दृढ आसन बांधके पर्वतके शिखरके समान स्थितहुं ॥ ४ ॥

उदितोस्तंगतइवस्वस्तंगतइवोदितः ॥ समःसमरसाभासस्तिष्ठामिस्वच्छतांगतः ॥ ५ ॥ प्रबुद्धोपि सुषुप्तस्थःसुषुप्तस्थःप्रबुद्धवत् ॥ तुर्यमालंब्यकायांतस्तिष्ठामिस्तंभितस्थितिः ॥ ६ ॥ स्थितःस्थाणुरि

वैकांतेस्वांतांतेसर्वतःस्थिते ॥ सत्वसामान्यसाम्येहितिष्ठाम्यपगतामयः ॥ ७ ॥ इतिसंचिंत्यसध्याने पुनस्तस्थौदिनानिषट् ॥ ततःप्रबोधमापन्नःक्षणसुप्तइवाध्वगः ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवितभी अज्ञकी दृष्टि मृतकके समान, ज्ञानीकी दृष्टिमें इसके विरुद्ध, और स्वच्छताको प्राप्त एक चिन्मात्ररूप मैं स्थितहुं ॥ ५ ॥ जाग्रत होनेपरभी द्वैतजालको न देखनेसे सुषुप्त, और सुषुप्तभी अपने आत्मरूपके देखनेमें जाग्रत मैं तुरीयपदका अवलंबन करके शरीरके अंतपर्य्यन्त अचल होके स्थितहुं ॥ ६ ॥ मनसे परे सर्वत्र स्थित सामान्य सत्तारूप एक परमात्मामें विकाररहित मैं स्थाणुके समान स्थितहुं ॥७॥ ऐसा निश्चय करके छः दिन-पर्य्यंत पुनः वह मुनि ध्यानमें तत्पर रहा उसके अनंतर समाधिसे ऐसे जाग्रत् हुआ जैसे क्षणभरके शयनसे बटोही ८

ततःसिद्धःसभगवान्वीतहव्योमहातपाः ॥ विजहारचिरंकालंजीवन्मुक्ततयातदा ॥ ९ ॥ वस्तुनाभिन नंदासौनिनिंदनकदाचन ॥ नजगामतथोद्वेगंनचहर्षमवापसः ॥ १० ॥ गच्छतस्तिष्ठतश्चैवतस्यैवम भवद्धृदि ॥ विनोदायविचित्तस्यकथास्वमनसासह ॥ ११ ॥ अव्ययेंद्रियवर्गेशमनःशमवतात्वया ॥ प श्यानंदसुखंकीदृग्विधमासादितंततम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् महातपस्वी वीतहव्य सिद्ध होके जीवन्मुक्तरूपसे बहुतकालतक इस पृथिवीपर विचरतारहा ॥९॥ गुण देखके न किसी वस्तुकी प्रशंसा की और न किसीकी कभी निंदा की और न भय शोक और न हर्षको कभी प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ चलते फिरते उठते बैठते उसके हृदयमें विनोदके अर्थ चित्तकी मनके साथ यह कथा (वक्ष्यमाण विचारणा) होतीथी ॥११॥ कि हे विषयभोगके सामर्थ्यके व्यय (खर्च) से हीन इन्द्रियोंके ईश मन देखो ! शांति धारण करनेसे सब जगत्को आनंदित करनेवालेकेसे अनुपम सर्वत्र व्याप्त सुखको तुमने प्राप्त किया १२

एषैवाविरतंतस्मान्नीरागैवदशात्वया ॥ अवलंब्यापरित्याज्यंचापलंचलतांवर ॥ १३ ॥ भोभोइंद्रियचौराहेहताशाहतनामकाः ॥ युष्माकंनायमात्मास्तिनभवंतस्तथात्मनः ॥ १४ ॥ व्रजतांवोविनाशांशमा शावोविफलीकृताः ॥ नसमर्थाःसमाक्रांतौभवंतोभंगुराश्रयाः ॥ १५ ॥ वयमात्मेतियैषावोबभूवकिल वासना ॥ तत्त्वविस्मृतिजाताहिदृष्टरज्जुभुजंगवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे चंचलोंमें श्रेष्ठ मन ! तुमको भविष्यमेंभी इसी रागरहित दशाका अवलम्बन करके चपलताको त्यागनाचाहिये ॥ १३ ॥ हे इन्द्रियरूप चोर ! हे नष्ट आशा ! यह आत्मा तुमारा नहीं है और न तुम इसके हो ॥ १४ ॥ आत्मासे सम्बन्ध न होनेसे तुम शेष अपने नाशरूपको प्राप्त होओ, तुमारी आशा व्यर्थ है, नष्टआशय-युक्त तुम मेरे ऊपर आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं हो ॥ १५ ॥ हम आत्मा हैं यह जो निश्चयरूपसे तुमारी वासना है वह आत्मतत्त्वके विस्मरणसे ऐसे हुई जैसे रज्जुमें सर्प ॥ १६ ॥

अनात्मन्यात्मतासैषासैषावस्तुन्यवस्तुता ॥ अविचारेणवैजाताविचारेणक्षयंगता ॥ १७ ॥ भवंतोन्ये वयंचान्येब्रह्मान्यत्कर्त्तृतापरा ॥ अन्योभोक्तान्यआदत्तेकोदोषःकस्यकीदृशः ॥ १८ ॥ वनेभ्योदारुसं जातंरज्जवोवेणुचर्मणः ॥ वासीचायःफलान्येवतक्षाग्रासार्थमुद्यतः ॥ १९ ॥ इत्थंयथेहसामग्र्यास्वश क्तिस्थपदार्थया ॥ संपन्नाकाकतालीयादृढावरगृहाकृतिः ॥ २० ॥

अर्थ—यही अनात्मामें आत्मता है और यही वस्तुमें अवस्तुता है, अविचारसे यह उत्पन्न हुई और विचारसे क्षयको प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ हे इन्द्रियगण ! तुम करणभूत अन्य हो हम अभिमान करनेवाले अन्य हैं, अद्वैत ब्रह्म अन्य है, प्राणसे प्रेरित क्रियाकी निमित्तता अन्य है, भोक्ता चिदाभास अन्य है, और ग्रहणकर्ता मन अन्य है तब किसको किसप्रकारका कौन दोष है ॥ १८ ॥ बनोंसे काष्ठ उत्पन्न हुआहै, बांसके छिलकेकी रज्जु (रस्सी) हैं, वसुला कुठारआदि लोहरचित हैं और बढई अपने भोजनकेलिये प्रवृत्त है न कि गृहकी सिद्धिकेलिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार अपनी शक्तिमें स्थित भिन्न २ प्रयोजनकी क्रियाकारकी सामग्रीसे काकतालीयन्यायसे दृढआवरणसहित गृहकी आकृति जैसे सिद्ध हुई है ॥ २० ॥

संपन्नाःकाकतालीयात्स्वशक्तिनियत्तेंद्रियाः ॥ तथैवकलिकालोलंकेवकस्यात्रखंडना ॥ २१ ॥ विस्मृति विस्मृतादूरंस्मृतिःस्फुटमनुस्मृता ॥ सत्सज्जातमसच्चासत्क्षतंक्षीणंस्थितंस्थितम् ॥ २२ ॥ एवंविधेन भगवान्विचारेणमहातपाः ॥ सोतिष्ठन्मुनिशार्दूलोबहून्वर्षगणानिह ॥ २३ ॥ अपुनर्भवनायैवयत्रचिं तांतमागता ॥ मूढताचसुदूरस्थातत्रासाववसत्सदा ॥ २४ ॥

अर्थ—उसीप्रकार इस शरीरमें कार्यकारणसंघातमें दर्शन, श्रवण, बचन और आदानफलरूप अपनी २ श-क्तियोंसे नियतहैं, ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियसहित व्यवहारकार्यकी कलिका काकतालीयन्यायसेही उत्पन्न हुई है उसमें

किसकी क्या क्षति है ॥ २१ ॥ अविद्यातो दूर विस्मृत होगई, आत्मविद्या स्पष्टरूपसे स्मरणहुई, सत् सत् हुआ, असत् असत् हुआ, विघ्न क्षीण हुआ, और स्थित होनेयोग्य स्थितहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! मुनियोंमें श्रेष्ठ और महातपस्वी वीतहव्य इसप्रकारके विचारोंसे बहुत वर्षोंके गणोंतक इस संसारमें स्थितरहा ॥ २३ ॥ पुनः इस संसारमें न आनेकेलिये जहां चिन्ताका अन्त है और मूढता जहां अतिदूर है उस ब्रह्मपदमें सदा स्थितरहा ॥ २४ ॥

यथाभूतपदार्थौघदर्शनोत्थमनर्थकम् ॥ ध्यानाश्वासनमालंब्यसोवसत्सुखगःसदा ॥ २५ ॥ हेयादेयसमासंगत्यागादानदृशोःक्षये ॥ वीतहव्यमुनेरासीदिच्छानिच्छातिगंमनः ॥ २६ ॥ विदेहकेवलीभावे सीमांतेजन्मकर्मणाम् ॥ संसारसंगसंत्यागरसासवनवेच्छया ॥ २७ ॥ विवेशसतयैवांतेसह्याद्रेहेमकंदरम् ॥ अपुनःसंगमायाशुजगज्जालमवेक्ष्यसः ॥ २८ ॥

अर्थ—यथारूपसे स्थित पदार्थोंके समूहसे प्रवृत्त अनर्थके रोकनेके अर्थ ध्यानकाही अवलम्बन करके सदा आत्मसुख प्राप्तही वह निवास करताथा ॥ २५ ॥ त्याज्य तथा ग्राह्यपदार्थोंके प्राप्त होनेसेभी त्याग तथा आदानकी दृष्टिके क्षय होनेपर वीतहव्यमुनिका मन इच्छा और अनिच्छासे परे था ॥ २६ ॥ विदेहसे केवलीभावरूप, और जन्मकर्मकी सीमाका अंत, संसारके त्यागसे शेष ब्रह्मरूप मकरंदमें नूतन इच्छाके साथ ॥ २७ ॥ सह्यपर्वतकी कन्दरामें उसने प्रवेश किया, और इस जगत्जालको देखकर पुनः उनके संग न होनेके अर्थ ॥ २८ ॥

बद्धपद्मासनःस्थित्वातत्रोवाचात्मनात्मनि ॥ रागनीरागतांगच्छद्वेषनिर्द्वेषतांव्रज ॥ २९ ॥ भवद्भ्यांसुचिरंकालमिहप्रक्रीडितंमया ॥ भोगानमोस्तुयुष्मभ्यंजन्मकोटिशतान्यहम् ॥ ३० ॥ भवद्भिर्लालितोलोकेलालकैरिवबालकः ॥ इमामपिपरांपुण्यांनिर्वाणपदवीमहम् ॥ ३१ ॥ येनविस्मारितस्तस्मैसुखायास्तुनमोनमः ॥ त्वद्रुत्तप्तेनहेदुःखमयात्मान्विष्टआदरात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—पद्मासनसे बैठकर वहां अपने आत्मासे आत्मामें वह मुनि बोला-कि हे राग ! अब तुम नीरागताको प्राप्त हो, और हे द्वेष तुम निर्द्वेषताको प्राप्त होओ ॥ २९ ॥ तुम दोनों (रागद्वेष) के साथ बहुतकालतक मैंने क्रीडा की. हे भोग ! तुमको नमस्कार है, करोडोंजन्मपर्यन्त ॥ ३० ॥ तुमलोगोंसे मैं ऐसे पालित हुआ जैसे प्यार करनेवाले मातापिताआदिसे बालक इस परमपवित्र निर्वाणपदवीकोभी ॥ ३१ ॥ जिसने विस्मृत करादिया उस विषयके सुखको नमस्कारहै. हे दुःख ! तुमसेही सन्तप्त होके मैंने आदरसे आत्माका अन्वेषण किया ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वदुपदिष्टोयंमार्गोममनमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादेनलब्धेयंशीतलापदवीमया ॥ ३३ ॥ दुःखनाम्नेदुःखतत्त्वसुखदात्मन्नमोस्तुते ॥ कल्यामस्तुतेमित्रसंसारासारजीवित ॥ ३४ ॥ देहस्थितिरियंयामोवयमात्मीयमास्पदम् ॥ प्रयोजनानांजंतूनामहोनुविषमागतिः ॥ ३५ ॥ देहेनापिवियुज्येहंभूत्वाजन्मशतान्यपि ॥ मित्रकायमयायस्त्वंत्यज्यसेचिरबांधवः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस आत्माके मार्गका उपदेश तुमनेही मुझे दियाहै इसलिये तुमकोभी नमस्कार है. तुमारीही कृपासे यह शीतल आत्मपदवी मुझे प्राप्त हुई है ॥ ३३ ॥ हे दुःखके तत्व सुखप्रद दुःखनामयुक्त आत्मन् तुमको नमस्कार है. हे मित्र ! हे संसारमें असारजीवनसहित शरीर आत्मज्ञान तुमारी कृपासे लब्ध होताहै इसलिये तुमारा कल्याण हो ॥ ३४ ॥ देह मैं अब अपने ब्रह्मपदको जाताहुं. यह हमारी तुमारी वियोगकी स्थिति अनादिनियतिका स्वभावही है, क्योंकि प्राणियोंके स्वार्थकी विषमगति है ॥ ३५ ॥ क्योंकि सैकडों जन्म साथ रहके अब मैं शरीरसेभी अलग होताहुं. हे मित्र ! देह चिरकालके बंधु तुम जो मुझसे त्यागेजातेहो यह स्वार्थकीही लीला है ॥ ३६ ॥

त्वयैवात्मन्नुपानीतासात्मज्ञानवशात्क्षतिः ॥ अधिगम्यात्मविज्ञानमात्मनाशःकृतस्त्वया ॥ ३७॥ देहनान्येनभग्नोसित्वयैवैतदुपासितम् ॥ एकाकिन्यापिशुष्यंत्याप्रशांतेमयिदीनया ॥३८॥ त्वयादुःखंनकर्त्तव्यंमातस्तृष्णेव्रजाम्यहम् ॥ क्षंतव्याःकामभगवन्विपरीतापराधजाः ॥ ३९ ॥ दोषाउपशमैकांतंव्रजाम्यादिशमंगलम् ॥ चिराच्चिरायचेदानीमंबतृष्णेकिलावयोः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मज्ञानके वशसे तुमनेही अपनी हानि प्राप्तकी. आत्मभाव प्राप्तकरके तुमने अपना नाश किया ॥३७॥ हे देह ! तुम अन्यसे नहीं नष्ट कियेगये यह अपना नाश तुमनेही किया. मेरे शांत होनेसे एकाकिनी सूखती हुई दीन ॥ ३८ ॥ हे मातः तृष्णे ! तुम दुःख न करना अब मैं जाता हुं. हे काम भगवन् ! तुमारी शांतिके अर्थ जो मैंने वैराग्यआदि सेवन किया उन अपराधोंसे दोषोंको क्षमा करना ॥ ३९ ॥ मैं शांतिमय परमधामको जाताहुं मेरेको मंगल आशीर्वाद दो. हे मातः तृष्णे ! इससमय चिरकालसेभी चिरकालके लिये हम दोनोंका ॥ ४० ॥

वियोगेयोगदोषेणप्रणामोयंसपश्चिमः ॥ नमःसुकृतदेवायभवतेस्तुत्वयापुरा ॥ ४१ ॥ नरकेभ्यःसमु त्तार्यस्वर्गेहमभियोजितः ॥ कुकार्यक्षेत्ररूढायनरकस्कंधवाहिने ॥ ४२ ॥ शासनापुष्पभारायनमोदुष्कृ तशाखिने ॥ येनसार्द्धचिरंबह्व्योभुक्ताःप्राकृतयोनयः ॥ ४३ ॥ अद्यप्रभृत्यदृश्यायतस्मैमोहात्मनेनमः॥ प्रध्वनद्वंशमधुरवचसेपत्रवाससे ॥ ४४ ॥

अर्थ—वियोग दोषके कारणसे होताहै, यह तुमको मेरा अंतिम प्रणामहै. हे सुकृत देव ! तुमको नमस्कारहै, तुमने पूर्वकालमें ॥ ४१ ॥ नरकोंसे मुझे निकालके स्वर्गमें नियुक्तकियाथा. दुष्टकार्य्यरूप क्षेत्रमें उत्पन्न नरकरूप महान् शाखाओंके वाहक ॥ ४२ ॥ नरककी यातनारूप पुष्पभारसहित पापरूपवृक्षको नमस्कार है, जिसके साथ रहके चिरकालतक अनेक नीचयोनियोंको मैंने भोगाथा उस पापको नमस्कारहै ॥४३॥ और आजसे लेके जो अदृश्य मोह है उसको नमस्कार है. शब्द करतेहुये वांस जिसके मधुर वचन हैं, और गिरेहुये पत्र जिसके वस्त्र हैं ऐसे ॥४४॥

नमोगुहातपस्विन्यैवयस्यायैसमाधिषु ॥ संसाराध्वनिखिन्नस्यत्वंममाश्वासकारणम् ॥ ४५ ॥ आसी र्वयस्यासुस्निग्धासर्वलोभापहारिणी ॥ सर्वसंकटखिन्नेनदोषेभ्योद्रवतामया॥४६॥ त्वमेकाशोकनाशार्थ माश्रितापरमासखी ॥ संकटावटकुंजेषुहस्तालंबनदायिने॥४७॥ वार्द्धकैकांतसुहृदेदंडकायतेनमः॥ अस्थिपंजरमात्मीयंतथारक्तांत्रतंतुकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा समाधिमें स्त्रीकेसमान गुहारूप तपस्विनीको नमस्कारहै. हे गुहे ! संसाररूप महामार्गमें जो खिन्न मैं हुं उसके तुम विश्रामके कारण हो ॥४५॥ हे गुहे! पूर्णानन्दरूप आत्मामें विश्राम देनेसे सब लोभको हरनेवाली तुम मेरी अत्यंत स्नेह करनेवाली सखीथी, और सब संकटोंसे खिन्न, तथा समाधिके विघ्नोंसे द्रवीभूत मैंने ॥ ४६ ॥ शोकोंके नाशार्थ मुख्य परमसखीरूप तुमारा आश्रय लियाहै. और गढोंमें तथा बनके कुंजोंमें हस्तको आलंब देनेवाले ॥ ४७ ॥ और वृद्ध अवस्थामें परम सुहृद्रूप दंडको मेरा नमस्कारहै. हे देह ! अपने अस्थिपंजरको तथा रक्त और आंतीरूप सूत्र ॥ ४८ ॥

एतावन्मात्रसारैकंगृहीत्वागच्छदेहक ॥ पयःक्षोभप्रकारेभ्यःस्नानेभ्योपिनमोस्तुते ॥ ४९ ॥ नमोस्तुव्य वहारेभ्यःसंस्तुतिभ्योनमोस्तुते ॥ एतेभवंतःसहजाःप्राक्तनाःसुहृदोमया ॥५०॥ क्रमेणाद्योत्कृताःप्राणाः स्वस्तिवोस्तुव्रजाम्यहम् ॥ भवद्भिःसहचित्रासुमयाबह्वीषुयोनिषु ॥ ५१ ॥ विश्रांतंगिरिकुंजेषुश्रांत लोकांतरेषुच ॥ क्रीडितंपुरपीठांतरुषितंपर्वतेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—यही मुख्य अपने अपने भागको ग्रहण करके अपनी प्रतिमाओंमें जाओ. तथा हे देह ! तुमारे मलदुर्गंधता और प्रस्वेद आदिसे जलके क्षोभरूप अपराधोंके भेद विशेष तुमको पवित्रकारक जो स्नान है उनकोभी नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ और भोजन शयन और अभ्यंजन (तेलादि मर्दन) रूप व्यवहारोंको, तथा उनके अर्थ जो गमनादिरूप हैं उनकोभी नमस्कारहै. हे प्राण ! तुमलोग मेरे स्वाभाविक पूर्वकालके मित्र हो ॥ ५० ॥ इससमय मित्रोंके नमस्कारके क्रमसे तुमको सबसे उत्तम मैंने कियाहै अर्थात् तुमको सविनय नमस्कारहै, तुमारा कल्याणहो मैं जाता हुं, तुमारे साथ मैंने बहुत चित्रविचित्र योनियोंमें ॥ ५१ ॥ विश्राम किया, पर्वतके कुंजोंमें तथा लोकांतरोंमें विश्राम किया, सिद्धोंके क्षेत्रोंमें क्रीडा की, और पर्वतोंमें निवास किया ॥ ५२ ॥

स्थितंकार्यविलासेषुप्रस्थितंविविधाध्वसु ॥ नतदस्तिजगत्कोशेभवद्भिःसहयन्मया ॥ ५३ ॥ नकृतं नहृतंयातंनदत्तंनावलंबितम् ॥ इदानींस्वांदिशंयांतुभवंतोयाम्यहंप्रियाः ॥ ५४ ॥ सर्वेक्षयांतानिचयाः पतनांताःसमुच्छ्रयाः ॥ संयोगाविप्रयोगांताःसर्वेसंसारवर्त्मनि ॥ ५५ ॥ अयंचाक्षुषआलोकोविशत्वा दित्यमंडलम् ॥ विशंतुवनपुष्पाणिसौगंध्यानंदसंविदः ॥ ५६ ॥

अर्थ—कार्य्योंके विलासोंमें स्थितरहा, अनेकप्रकारके मार्गोंमें प्रस्थानकिया, कहांतक कहैं इस संसारके कोशमें ऐसा कुछभी नहीं है जिसको तुम लोगोंके साथ मैंने ॥ ५३ ॥ न किया हो, न हरण किया हो, न गया हो, मनसे न ग्रहण किया हो. हे प्रियप्राण ! अब तुमलोग अपनी प्रकृतिको जाओ और मैं ब्रह्ममें जाताहुं ॥ ५४ ॥ हे सब प्राण ! जो इस ब्रह्मांडमें संचय है उसके क्षय अवश्य है, जो ऊंचे हैं वे अवश्य गिरेंगे, और जो संयोग है उसका वियोगभी अवश्य है ॥ ५५ ॥ यह नेत्रका प्रकाश आदित्यमण्डल (तेज) में प्रवेशकरै, प्राणइन्द्रिय पृथिवीमें प्रवेश करै ॥ ५६ ॥

प्राणानिलस्तथास्पंदंविशत्वद्यप्रभंजनम् ॥ विशंत्वाकाशकुहरंशब्दश्रवणशक्तयः ॥ ५७ ॥ इंदुमंडल मायातुरसनारसशक्तयः ॥ निर्मदइवांभोधिर्गतार्कइववासरः ॥ ५८ ॥ शरदीवघनःस्वैरंप्राप्तःकल्पांत

सर्गवत् ॥ ओंकरांतेस्वमननंप्रशांम्याम्यात्मनात्मनि ॥ दग्धेंधनइवार्चिष्मान्त्रिःस्नेहइवदीपकः॥५९॥व्य पगताखिलकार्यपरंपरःसकलदृश्यदशातिगतस्थितिः ॥ प्रणवशांत्यनुसंस्तुतिशांतधीर्विगतमोहमलो यमहंस्थितः ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे इंद्रियवर्गनिराकरणोपदेशो नाम षडशीतितमःसर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ—प्राणवायु तथा चेष्टा महावायुमें प्रवेश करें, और कर्णइन्द्रिय आकाशविवरमें प्रवेश करें ॥ ५७ ॥ जिव्हाइन्द्रियकी रसकी शक्ति जलमय चन्द्रमण्डलमें प्रवेश करें, अर्थात् पंच ज्ञान और पंच कर्मइन्द्रिय तथा पंच-प्राण अपनी २ प्रकृतिमें लीन हों, और मैं (आत्मा) मन्दराचलसे रहित समुद्र तथा सूर्य्यशून्य दिनके समान॥५८ शरत्कालमें अपने उपादान कारणमें लीन मेघके तुल्य और कल्पके अन्तमें सृष्टिके सदृश ओंकारके अर्द्धमात्राके ल-क्ष्यभूत ब्रह्मरूप आत्मामें ऐसे शान्त होताहुं जैसे इंधनरहित अग्नि वा तेलरहित दीपक ॥ ५९ ॥ और सम्पूर्ण का-र्योंकी परम्परासे शून्य तथा सम्पूर्ण दृशसे परे स्थित और उच्चस्वरसे प्रणवसे उच्चारकी ब्रह्मरंध्रमें शांतिके अनुसर-णसे ब्रह्माकारताकी प्राप्तिसे शांत तथा मोहशून्य यह मैं पूर्णरीतिसे आत्मामें स्थितहुं ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रियवर्गनिराकरणोपदेशो नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

प्रणवके अन्तका आलम्बन करके वीतहव्यमुनि जिस क्रमसे विदेहताको प्राप्त हुये वह क्रम इस ८७ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंकलितवानंतःप्रशांतमननैषणः ॥ शनैरुच्चारयंस्तारंप्रणवंप्राप्तभूमिकः ॥ १॥ मा त्रादिपादभेदेनप्रणवंसंस्मरन्यतिः ॥ अध्यारोपापवादेनस्वरूपंशुद्धमव्ययम् ॥२॥ सबाह्याभ्यंतरान्भा गान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि ॥ त्रैलोक्यसंभवांस्त्यक्त्वासंकल्पाकल्पकल्पितान् ॥ ३ ॥ तिष्ठन्नक्षुभिता कारश्चिंतामणिरिवात्मनि ॥ संपूर्णइवशीतांशुर्विश्रांतइवमंदरः ॥ ४ ॥ कुंभकारगृहेचक्रंसंरोधितइवभ्र मात् ॥ अंभोधिरिवसंपूर्णस्तिमितस्फारनिर्मलः ॥ ५ ॥ शांततेजस्तमःपुंजंविगतार्केंदुतारकम् ॥ अधू माभ्ररजःस्वच्छमनंतंशरदीवखम् ॥ ६ ॥ सहप्रणवपर्यंतदीर्घनिःस्वनतंतुना ॥ जहाविंद्रियतन्मात्रजा लंगंधमिवानिलः ॥७॥ ततोजहौतमोमात्रंप्रतिभातमिवांबरे॥ उत्तिष्ठत्प्रस्फुरद्रूपंप्राज्ञःकोपलवंयथा॥८॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार मनन तथा सब एषणासे रहित वह संन्यासी प्रणवके दीर्घ-स्वरसे धीरे २ उच्चारण करतेहुये षष्ठ वा सप्तमभूमिकामें प्राप्त होकर अपने हृदयमें ब्रह्मको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ और अकार, उकार, मकार तथा अर्द्धमात्रासे कल्पित स्थूल, सूक्ष्म, अव्याकृत और तुरीयरूप पादके भेदसे प्रणव (ओं-कार) को स्मरण करताहुआ और विराट् हिरण्यगर्भ तथा अव्याकृत पादोंके तुरीयमें प्रथम जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ है इस वेदोक्तरीतिके अध्यारोपसे और न अन्तःप्रज्ञ है न बहिःप्रज्ञ है इत्यादि अपवादसे त्रैलोक्यके उत्पत्तिके स्थान, तथा संकल्पसे कल्पपर्य्यंत कल्पित स्थूल तथा सूक्ष्मकारणका बाह्य और आभ्यन्तरसहित भागोंको त्यागकर, शुद्ध, अव्यय, तेज अन्धकार दोनोंसे रहित, सूर्यचन्द्र तथा तारागणसे वर्जित, और धूम मेघ तथा धूलिसे रहित, स्वच्छ (निर्मल) अनन्त शरत्कालके आकाशके तुल्य अपने आत्माको देखकर, स्वयं वह यति क्षोभरहित, चिंताम-णिके समान, पूर्णचन्द्रके समान, विश्रांतमन्दरके तुल्य, ब्रह्माकारके गृहमें भ्रमणसे रोंके हुये चक्रके सदृश और शांत तथा निर्मल पूर्णसमुद्रके तुल्य होकर पूर्वोक्त तुरीय आत्मामें स्थित होताहुआ प्रणवपर्य्यंत दीर्घशब्दरूप सूत्रके साथ इन्द्रिय तन्मात्रजालको ऐसे त्यागा जैसे गन्धको वायु ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके अनन्तर साक्षीसे स्फुरितरूप तमोमात्रको ऐसे त्यागा जैसे आकाशमें प्रकाश वा बुद्धिमान कोपके लेशको ॥ ८ ॥

प्रतिभातंततस्तेजोनिमेषार्धविचार्यसः ॥ जहौबभूवचतदानतमोनप्रकाशकम् ॥ ९ ॥ तामवस्थामथा साद्यमनसातन्मनस्तृणम् ॥ मनागपिप्रस्फुरितंनिमिषार्द्धादशातयत् ॥ १० ॥ ततोंगसंविदंस्वस्थांप्र तिभासमुपागताम् ॥ सद्योजातशिशुज्ञानसमानकलनामलम् ॥११॥ निमेषार्द्धार्द्धभागेनकालेनकलनां प्रभुः ॥ जहौचित्तश्चेत्यदशांस्पंदशक्तिमिवानिलः ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर तेजका प्रकाश हुआ विचारके अर्द्धनिमेषमें उसेभी त्यागा, उससमय न तम न प्रकाशरूप हुआ ॥९॥ उसने तम और प्रकाशसे शून्य अवस्थाको प्राप्तहोके उसके कल्पनाके हेतु किंचित्‌भी स्फुरित मनरूपतृणको आधे निमेषमें काटडाला ॥१०॥ हे प्रिय रामजी ! उसके पश्चात् वातशून्य दीपके तुल्य स्फुटप्रकाशरूप प्राप्त संवित्‌का आलम्बन करके, तत्कालमें उत्पन्न बालकके ज्ञानके समान उस कल्पनाको॥११॥उस वीतहव्य प्रभुने निमेषके चतुर्थभागमेंही ऐसे त्यागदिया जैसे वायु अपनी स्पन्दशक्तिको, यही चित्‌की चेत्यदशाका त्याग कहाताहै ॥१२॥

पश्यंतीपदमासाद्यसत्तामात्रात्मकंततः ॥ प्रसुप्तपदमालंब्यतस्थौगिरिरिवाचलः ॥ १३ ॥ ततःसुषुप्त संस्थानंस्थित्वास्थित्वाविभुर्मनाक् ॥ सुषुप्तस्थैर्यमासाद्यतुर्यरूपमुपाययौ ॥ १४ ॥ निरानंदोपिसानंदःसच्चासच्चापितत्रसः ॥ आसीन्नकिंचित्किंचित्तत्प्रकाशस्तिमिरंयथा ॥ १५ ॥ अचिन्मयंचिन्मयंच नेतिनेतियदुच्यते ॥ ततस्तत्संबभूवासौयद्गिरामप्यगोचरः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस रीतिसे साक्षीमात्र शेष पश्यंतीपदको प्राप्तहोकर, अनंतर सत्तामात्रपदको प्राप्तहुआ, और अनन्तर सुषुप्तपदका अवलंबनकरके पर्वतके समान अचल स्थितहुआ ॥१३॥ इसके अनंतर वह समर्थ मुनि किंचित् २ काल सुषुप्तमें स्थित रहकर, अनंतर सुषुप्तपदमें स्थिरताको प्राप्त होके तुरीयपदमें प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इस दशामें वह विषयानंदशून्यभी अपने स्वरूपके आनंदसे सहित, अपने अन्यसत्तासे शून्यभी सत्‌रूप, अन्यसे अकिंचित्‌रूपभी स्वरूपसे किंचित्‌रूप, और उसको रात्रिचर जीवोंके समान अंधकारभी आकाशही था ॥ १५ ॥ चेत्य (प्रकाश्यविषय) न होनेसे अचिन्मय, और स्वयं चिन्मय और जिसको नेति नेति कहते हैं, हे रामजी ! इसीसे वह उस स्वरूपको प्राप्तहुआ जो वाणीकाभी विषय नहीं है ॥ १६ ॥

तदसौसुसमंस्फारंपदंपरमपावनम् ॥ सर्वभावांतरगतमभूत्सर्वविवर्जितम् ॥ १७ ॥ यच्छून्यवादिनांशून्यंब्रह्मब्रह्मविदांवरम् ॥ विज्ञानमात्रंविज्ञानविदांयदमलंपदम् ॥ १८ ॥ पुरुषःसांख्यदृष्टीनामीश्वरोयोगवादिनाम् ॥ शिवःशशिकलांकानांकालःकालैकवादिनाम् ॥ १९ ॥ आत्मात्मनस्तद्विदुषांनैरात्म्यंतादृशात्मनाम् ॥ मध्यंमाध्यमिकानांचसर्वंसुसमचेतसाम् ॥ २० ॥

अर्थ—सबप्रकारसे सम, विशाल, परमपावन, सब पदार्थोंके अंतर्गत और सबसे वर्जितभी जो पद है वही रूप वीतहव्य होगया ॥१७॥ जो शून्यवादियोंके मतमें शून्य, ब्रह्मवेत्ताओंके मतमें ब्रह्म, विज्ञानवादियोंके मतसे निर्मल विज्ञान ॥ १८ ॥ सांख्यवादियोंके मतसे पुरुष, योगवादियोंके मतसे ईश्वर, शैवोंके मतमें शिव ॥ १९ ॥ आत्मवेत्ताओंके मतसे आत्मा, सौत्रांतिक वैभाषिकके मतमें निरात्मता, माध्यमिकोंके मतमें चिदचिन्मध्यम शून्यमात्र, और जीवन्मुक्तोंके मतमें सर्वरूप ॥ २० ॥

यत्सर्वशास्त्रसिद्धांतोयत्सर्वहृदयानुगम् ॥ यत्सर्वंसर्वगंसार्वंयत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २१ ॥ यदनुत्तमनिःस्पंदंदीप्यतेतेजसामपि ॥ स्वानुभूत्यैकमात्रंयद्यत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २२ ॥ यदेकंचाप्यनेकंच सांजनंचनिरंजनम् ॥ यत्सर्वंचाप्यसर्वंचयत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २३ ॥ अजमजरमनाद्यनेकमेकंपदममलंसकलंचनिष्कलंच ॥ स्थितइतिसतदानभःस्वरूपादपिविमलस्थितिरीश्वरःक्षणेन ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यनिर्वाणोपदेशो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—जो छःशास्त्रोंका सिद्धांत, सबके हृदयमें अनुगत, जो सर्वरूप, सर्वगामी, और सबका तत्व सत्‌रूप है वही होके यह वीतहव्य स्थितहै ॥ २१ ॥ जो सर्वथा निष्क्रिय, सूर्य्यआदि तेजस्वीपदार्थोंकाभी प्रकाशक और निज अनुभवरूप जो सत्‌रूप है वही रूप होके वीतहव्य स्थितहै ॥ २२ ॥ जो स्वयं एक, और उपाधिभेदसे अनेक, मायासहित होनेसे सराग, शुद्धरूपसे नीराग, जो सर्वरूप, और सबसे भिन्न जो सत्‌रूप है उसी स्वरूपसे वीतहव्य स्थित है ॥ २३ ॥ वह वीतहव्य पूर्वोक्तरीतिसे मुक्तोंकी दृष्टिमें अजन्मा, अजर, अनादि, एक, अमल तथा निष्कल पद होके स्थितहै और बद्धोंकी दृष्टिसे क्षणमेंही ईश्वर होके कार्य्योंके भेदसे अनेक तथा सकल (कलासहित) होके स्थितहै ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे वीतहव्यनिर्वाणोपदेशो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

वीतहव्यके मुक्त होनेपर उसके प्राणोंका हृदयमें लय, देहका सूखना, तथा कलाओंका कारणमें यह विषय इस ८८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्राप्यसंसृतिसीमांतंदुःखाब्धेःपारमागतः ॥ वीतहव्यःशशामैवमपुनर्मननेमुनिः ॥ १ ॥ तस्मिंस्तथोपशांतेहिपरांनिर्वृतिमागते ॥ पयःकणइवांभोधौस्वेपदेपरिणामिनि ॥ २ ॥ तथैव तिष्ठन्निःस्पंदस्सकायोम्लानिमाययौ ॥ अंतर्विरसतांप्राप्यमार्गशीर्षांतपद्मवत् ॥ ३ ॥ तस्यदेहद्रुमांतःस्थंत्यक्त्याहृन्नीडमाययुः ॥ प्रोड्डीयविहगायंतोयंत्रान्मुक्ताइवासवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पूर्वोक्तरीतिसे संसारकी सीमाके अन्तको प्राप्त होकर और दुःखरूप समुद्रके पारंगत वीतहव्यमुनि सर्वथा मनका नाश होनेपर ब्रह्ममें लीन होगया ॥ १ ॥ उसप्रकार उस मुनिके शांत होनेपर तथा परमतृप्तिके प्राप्त होनेपर समुद्रमें जलकणके समान अपरिणामी अपने आत्मपदमें ॥ २ ॥ उसीप्रकार स्थित होताहुआ हेमन्तमें कमलके तुल्य भीतरसे नीरसताको प्राप्त होकर चेष्टारहित वह शरीर म्लानिको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ उस मुनिके प्राण देहरूपवृक्षके अन्तर्गत जो नाडीस्थान है उसको त्यागकर पक्षीके सदृश आचरण करतेहुये (प्राण वायु) हृदयरूप नीडसें उडके ऐसे आगये जैसे यन्त्रसे विनिर्मुक्त शिला ॥ ४ ॥

भूतेष्वेवप्रतिष्ठानिभूतानिसकलान्यलम् ॥ मांसास्थियंत्रदेहस्तुवनावनितलेवसत् ॥ ५ ॥ चिदर्णवप्रतिष्ठाचिद्धातवोधातुषुस्थिताः ॥ स्वेस्वरूपेस्थितंसर्वंमुनावुपशमंगते ॥ ६ ॥ एषातेकथितारामविचारशतशालिनी ॥ विश्रांतिर्वीतहव्यस्यप्रज्ञयैनांविवेचय ॥ ७ ॥ एवंप्रकारयाचार्व्यास्वविचारणयेद्धया ॥ तत्त्वमालोक्यतत्सारमातिष्ठोत्तिष्ठराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—सब पंचभूत पंचभूतोंमें पूर्णरीतिसे जाके लीन होगये और मांसअस्थिमय यन्त्ररूप देहने तो वन तथा पृथिवीतलमें जाके निवास किया ॥ ५ ॥ और चेतन महाचेतनरूप समुद्रमें प्रतिष्ठित हुआ, त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्र ये सप्तधातु सप्तधातुओंमें मिलगये, मुनिके शांत होनेपर अपने २ कारणमें सब स्थित हुआ ॥ ६ ॥ हे रामजी ! यह सैकडो विचारोंसे शोभायमान वीतहव्यकी विश्रांति तुमसे मैंने कहदी, अब तुम अपनी बुद्धिसे इसका विवेक करो ॥ ७ ॥ हे रामजी ! तुमभी उठो और अपने मनसे प्रदीप्त और रमणीय पूर्वोक्तरीतिसे आत्मतत्वको देखकर उसी सारवस्तुपर आरूढ रहो ॥ ८ ॥

यदेतदखिलंरामभवतेवर्णितंमया ॥ यदिदंवर्णयाम्यद्यवर्णयिष्यामियच्चवा ॥ ९ ॥ त्रिकालदर्शिनानित्यं चिरंचकिलजीवता ॥ विचारितंचदृष्टंचमयातदखिलंस्वयम् ॥ १० ॥ तदेताममलांदृष्टिमवलंब्यमहामते ॥ ज्ञानमासादयपरंज्ञानान्मुक्तिर्हिलभ्यते ॥ ११ ॥ ज्ञानान्निर्दुःखतामेतिज्ञानादज्ञानसंक्षयः ॥ ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नान्यस्माद्रामवस्तुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जो मैंने वर्णन किया, करताहुं और आगे जो कुछ वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ उस सबको त्रिकालदर्शी तथा चिरजीवी मैंने स्वयं नित्य विचारा और नित्य देखाहै ॥ १० ॥ इसलिये हे महामते रामजी ! इस निर्मलदृष्टिका अवलम्बन करके तुम ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि ज्ञानसेही मुक्ति मिलती है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह जीव ज्ञानसेही दुःखके अभावको प्राप्त होताहै, ज्ञानसेही अज्ञानका नाश होताहै और ज्ञानसेही परमसिद्धि मिलती है, यथार्थमें इस ज्ञानसे उत्तम अन्य कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

ज्ञानेनसकलामाशांविनिकृत्यसंमततः ॥ शातिताशेषचित्ताद्रिर्वीतहव्योमुनीश्वरः ॥ १३ ॥ वीतहव्यात्मिकासंवित्संकल्पजगतीतिसा ॥ अनुभूतवतीदृश्यमिदमेवचतज्जगत् ॥ १४ ॥ वीतहव्योमनोमात्रंमनोहंत्वमिवेंद्रियः ॥ मनोजगदिदंकृत्स्नमन्यतानन्यतेतुके ॥ १५ ॥ अधिगतपरमार्थःक्षीणरागादिदोषःसकलमलविकारोपाधिसंगाद्यपेतः ॥ चिरमनुसृतमंतःस्वंस्वभावंविवेकीपदममलमनंतंप्राप्तवान् शांतशोकः ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यविश्रांतिर्नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

अर्थ—देखो वीतहव्य मुनीश्वरने संपूर्ण आशाओंको ज्ञानसेही छेदन करके संपूर्ण चित्तरूप पर्वतको काटडाला ॥ १३ ॥ हे रामजी ! वह वीतहव्यकी संवित् (ज्ञान) अपने हृदयमें स्थितब्रह्ममें यह जो हमलोगोंका जगत् है

इसीको अपना संकल्प तथा जगत्‌रूपसे अनुभव किया, इससे यह शंका परास्त हुई कि वीतहव्यने हृदयमें संकल्प रचित जगत्‌में इन्द्रत्व तथा गणपदवी आदिका अनुभव किया और उसी संकलपके द्वारा जगत्‌के सूर्यके शरीरमें प्रवेशकरके पिंगलके द्वारा इस जगत्‌के अन्तर्गत पृथिवीके भीतरसे शरीरका उद्धार कैसे किया क्योंकि स्वप्नकी लाठीसे जाग्रत्‌का सांप नहीं मरता ॥ १४ ॥ हे रामजी! हमलोगोंका नेत्रआदि इन्द्रियोंका दृश्य तथा वीतहव्य यह सब हमलोगोंका मनोमात्र है, तुम तथा हम जो भासतेहैं हमारे मनसे भिन्न नहीं है, और यह सब जगत् मनोमात्रही है उसमें अन्य तथा अपना क्या ॥ १५ ॥ हे रामजी! परमअर्थको प्राप्त, रागादि दोषोंसे रहित, तथा समस्त अविद्या काम और कर्म आदि मलोंसे, उनके द्वारा इंद्रियोंके विकारोंसे, स्थूल सूक्ष्म तथा कारणशरीरोंसे और उनसे जनित प्रिय, स्त्रीपुत्रादिसंगोंसे शून्य, शांतशोक और विवेकी वीतहव्य मुनिने चिरकालतक श्रवण मनन आदिसे अपने हृदयमें साक्षात्कृत अपने स्वभावरूप निर्मल आत्मतत्वको प्राप्त किया ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यविश्रांतिर्नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

जिनके मोह शांत होगये हैं उनको आकाशगमनआदि सिद्धियोंमें इच्छा नहीं होती और उनके शरीरको हिंसक जीव कुछ नहीं करसकते यह विषय इस ८९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वीतहव्यवदात्मानंनीत्वाविदितवेद्यताम् ॥ वीतरागभयोद्वेगस्तिष्ठराघवसर्वदा ॥१॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणिविजहारयथासुखम् ॥ वीतहव्योवीतशोकस्तथाविहरराघव ॥ २ ॥ अन्येचराजन्मुनयोज्ञातज्ञेयामहाधियः ॥ यथावसन्स्वराष्ट्रेत्वंतथैवास्वमहामते ॥ ३ ॥ सुखदुःखक्रमैरात्मानकदाचन गृह्यते ॥ सर्वगोपिमहाबाहोकिंमुधापरिशोचसि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वीतहव्यके तुल्य अपने आत्माको विदितवेद्य (आत्मज्ञानी) संपादन करके, तथा राग द्वेष और भय क्रोधादिसे वर्जित होके इस संसारमें सदा स्थित रहो ॥ १ ॥ हे राघव! शोक रहित वीतहव्यने इस संसारमें सुख पूर्वक तीससहस्र (तीस हजार) वर्षतक जैसे विहार किया ऐसेही तुमभी करो॥२॥ हे महामते राजन्! अन्य महाबुद्धिमान् आत्मज्ञानी मुनिलोग जैसे अपने २ राज्यकार्यमें स्थित रहे हैं ऐसेही तुमभी रहो ॥ ३ ॥ हे महाबाहो! सुखदुःखोंके क्रमोंसे आत्मा कदापि वशीभूत नहीं होता, वह सर्वगामी आप होकेभी तुम व्यर्थ शोक क्यों करतेहो ॥ ४ ॥

बहवोविदितात्मानोविहरंतीहभूतले ॥ नकेचनवशंयांतिदुःखस्यांगभवानिव ॥ ५ ॥ स्वस्थोभवभवोदारःसमोभवसुखीभव ॥ सर्वगस्त्वंत्वमात्मैवतवनास्तिपुनर्भवः ॥ ६ ॥ हर्षामर्षविकाराणांजीवन्मुक्ताभवादृशाः ॥ नकेचनवशंयांतिमृगेंद्राःशिखिनामिव ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ अनेनैवप्रसंगेनसंशयोयंममोदितः ॥ शरत्कालइवांभोदंतंमेत्वंतनुतांनय ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी! अनेक आत्मज्ञानी पुरुष इस संसारमें विहरते हैं परंतु वे आपके समान कोईभी दुःखके वशीभूत नहीं होते ॥ १५ ॥ हे रामजी! स्वस्थ होओ, अंतःकरणसे सब त्यागी बनो, और सम तथा सुखी हो, क्योंकि तुम सर्वव्यापी आत्मा हो तुमारा पुनर्जन्म नहीं है ॥ ६ ॥ आपके समान जीवन्मुक्त कोईभी महात्मा लोग हर्ष क्रोधआदि विकारोंके वशमें ऐसे नहीं आते जैसे सिंह मोरोंके ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! इसी प्रसंगमें मुझे एक संशय उत्पन्न होगयाहै उसको आप ऐसे सूक्ष्म करो जैसे शरत्काल मेघको ॥ ८ ॥

जीवन्मुक्तशरीराणांकथमात्मविदांवर ॥ शक्तयोनेहदृश्यंतेआकाशगमनादिकाः ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आकाशगमनादीनियान्येतानिरघूद्वह ॥ प्रमाणिताःपदार्थानांसहजाःखलुशक्तयः ॥ १० ॥ यद्दिचित्रंक्रियाजालंदृश्यतेगम्यतेपुनः ॥ रामवस्तुस्वभावोसौनतदात्मविदांमतम् ॥ ११ ॥ अनात्मविदमुक्तोपिनभोविहरणादिकम् ॥ द्रव्यकर्मक्रियाकालशक्त्याप्राप्नोतिराघव ॥ १२ ॥

अर्थ—हे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तोंके शरीरोंकी आकाशमें गमनआदि शक्ति क्यों नहीं देखपडती, जैसे वीतहव्यके मानसी इन्द्रआदिके भोग ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रघुकुलदीपक रामजी! आकाशगमन आदि जो सिद्धि हैं वे अग्निके ऊर्ध्वजलनके समान पदार्थोंकी स्वाभाविक शक्ति हैं ॥ १० ॥ हे रामजी! यह जो

आकाशगमनआदि विचित्र क्रियाजाल दृष्ट और अनुभूत होताहै वह उन २ योनियोंके देहके स्वभाव हैं (जैसे मच्छर, पक्षीआदिका उडना) यह आत्मज्ञानियोंको इष्ट नहीं है ॥११॥ आत्मज्ञानसे शून्य और मुक्तिसे रहितभी जीव मणि औषधादि द्रव्यकी शक्ति, मंत्रशक्ति, योगाभ्यासआदि क्रियाशक्ति उनके परिपाकादि कालकी शक्तिसे आकाशगमनआदि सिद्धिको प्राप्त करताहै ॥ १२ ॥

नात्मज्ञस्यैषविषयआत्मज्ञोह्यात्मवान्स्वयम् ॥ आत्मनात्मनिसंतृप्तोनाविद्यामनुधावति ॥ १३ ॥ येकेचनजगद्भावास्तानविद्यामयान्विदुः ॥ कथंतेषुकिलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्योनिमज्जति ॥१४॥ अविद्यामपियेयुक्त्यासाधयंतिसुखात्मिकाम् ॥ तेह्यविद्यामयाएवनत्वात्मज्ञास्तथाक्रमाः ॥ १५ ॥ तत्त्वज्ञोवाप्यतत्त्वज्ञोयःकालद्रव्यकर्मभिः ॥ यथाक्रमंप्रयततेतस्योर्ध्वत्वादिसिद्ध्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशगमनादि सिद्धि आत्मज्ञानीके अभिलाषा योग्य नहीं है क्योंकि आत्माका ज्ञाता तो स्वयं अपने आत्मामें तृप्त रहताहै वह अविद्याकी ओर नहीं दौडता ॥ १३ ॥ संसारके जितने पदार्थ हैं वे सब अविद्यामय हैं, अविद्याको त्यागेहुये आत्मज्ञ भला उनमें कैसे डूबसकताहै ॥१४॥ जो योगाभ्यासादिके परिश्रमसे विषयसुखके कारण आकाशगमनआदि अविद्याहीको सिद्ध करते हैं ॥ १५ ॥ आत्मज्ञ हो वा अज्ञानी हो परंतु द्रव्यकाल क्रियादिसे शास्त्रोक्त क्रमसे प्रयत्न करताहै उसको आकाशगमनादि सिद्धि होती हैं ॥ १६ ॥

आत्मवानिहसर्वस्मादतीतोविगतैषणः ॥ आत्मन्येवहिसंतुष्टोनकरोतिनचेहते ॥ १७ ॥ नतस्यार्थोनभोगत्यानसिद्ध्यानचभोगकैः ॥ नप्रभावेणनोमानैर्नाशामरणजीवितैः ॥ १८ ॥ नित्यतृप्तःप्रशांतात्मावीतरागोविवासनः ॥ आकाशसदृशाकारस्तज्ज्ञआत्मनितिष्ठति ॥ १९ ॥ अशंकितोपयातेनदुःखेनचसुखेनच ॥ तृप्यत्यपगतासंगोजीवेनमरणेनच ॥ २० ॥

अर्थ—आत्मज्ञानी सबसे परे तथा धनादिइच्छासेरहित अपने आत्माहीमें नित्य संतुष्ट रहता है वह न कुछ चाहताहै न करताहै ॥ १७ ॥ उसको न आकाशगमनसे कुछ प्रयोजन है, न सिद्धिसे, न तुच्छभोगोंसे, न प्रभावसे, न मानसे, न आशासे, न जीवनसे और मरणसे कुछ प्रयोजन है ॥ १८ ॥ आत्मज्ञजीव तो नित्य तृप्त शांतचित्त, रागरहित, वासनाशून्य और आकाशके सदृश महान् आकारयुक्त आत्मामेंही स्थित रहताहै ॥ १९ ॥ अपने जीवनमरणसेभी आसक्तिरहित आत्मज्ञानी अकस्मात् प्राप्तदुःख वा सुखसे अपनी स्वाभाविक तृप्तिको नहीं त्यागता॥२०

समुद्रःसरितेवांतःक्रमसंप्राप्तवस्तुना ॥ समेनविषमेणापितिष्ठत्यात्मानमर्चयन् ॥ २१ ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ २२ ॥ यस्त्ववाभावितात्मापिसिद्धिजालानिवांछति ॥ ससिद्धिसाधकैर्द्रव्यैस्तानिसाधयतिक्रमात् ॥ २३ ॥ सिद्ध्यतीत्थमिदंयुक्त्यैवेत्ययंनियतेःक्रमः ॥ त्र्यक्षादिभिःसुरवरैर्व्यर्थीकर्तुंनशक्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—आत्मज्ञ प्रतिकूल वा अनुकूल प्रारब्धसे प्राप्त भोग्यवस्तुसे ज्योंका त्यों अखंडाकार वृत्तिरूप पुष्पोंसे आत्माकी पूजा करताहुआ अपने आत्मामें ऐसे स्थित रहताहै जैसे नदियोंसे समुद्र ॥ २१ ॥ करने वा न करनेसे उसे कुछभी अर्थ नहीं है, और सबभूतोंमें किसी प्रयोजनसे उसका जीवन नहीं है ॥ २२ ॥ और जो आत्माके ज्ञानसे सदा शून्यभी है परंतु साधक द्रव्यादिसे सिद्धिसमूहको चाहताहै वह उसे अवश्य क्रमसे सिद्ध करलेताहै ॥ २३ ॥ मणि मंत्र आदि युक्तियोंसेही आकाशगमनआदि सिद्धि होती हैं, उन २ शास्त्रोंमें प्रसिद्ध नियतिका क्रम है इस नियतिको श्रेष्ठदेव महादेवआदिभी अन्यथा नहीं करसकते ॥ २४ ॥

स्वभावएववस्तूनांस्वतःसिद्धिर्हिनान्यतः ॥ नियतिंनजहात्येवशशांकइवशीतताम् ॥ २५ ॥ सर्वज्ञोपिबहुज्ञोपिमाधवोपिहरोपिच ॥ अन्यथानियतिंकर्तुंनशक्तःकश्चिदेवहि ॥ २६ ॥ द्रव्यकालक्रियामंत्रप्रयोगाणांस्वभावजाः ॥ एतास्ताःशक्तयोरामयद्व्योमगमनादिकम् ॥ २७॥ यथाविषाणिनिघ्नंतिमदयंतिमधूनिच ॥ वमयंतिचशुक्तानिमदनानिफलानिच ॥ २८ ॥

अर्थ—और जो देव तथा पक्षीआदिको स्वयं आकाशगमनादि सिद्ध है वह तो वस्तुका स्वभाव है, वह अपनी नियतिको ऐसे नहीं त्यागता जैसे चन्द्रमा शीतलताको ॥ २५ ॥ सर्वज्ञ हो वा बहुज्ञ हो, विष्णु हो वा महादेवजी हो परंतु कोईभी नियतिको अन्यथा नहीं करसकता ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह जो आकाशगमन आदि है वह सब द्रव्य, काल, क्रिया, तथा मन्त्रके प्रयोगकी स्वाभाविक बहुतसी शक्ति है ॥ २७ ॥ जैसे विष प्राणियोंको मारते हैं, मधु (मद्य) मत्त करती है शहत और मदनके फल बमन कराते हैं ॥ २८ ॥

तथास्वभाववशतोद्रव्यकालक्रियाक्रमाः ॥ नियतंसाधयंत्याशुप्रयोगंयुक्तियोजिताः ॥ २९ ॥ एतस्मा त्समतीतस्यत्यक्ताविद्यस्यराघव ॥ आत्मज्ञानस्यनास्त्यत्रकर्तृताकर्तृतानघ ॥ ३० ॥ द्रव्यदेशक्रिया कालयुक्तयःसाधुसंविदः ॥ परमात्मपदप्राप्तौनोपकुर्वंतिकाश्चन ॥ ३१ ॥ यस्येच्छाविद्यतेकाचित्स सिद्धिंसाधयत्यलम् ॥ आत्मज्ञस्यतुपूर्णस्यनेच्छासंभवतिक्वचित् ॥ ३२ ॥

अर्थ—वैसेही वस्तुके स्वभावसे द्रव्य, काल और क्रियाके क्रम योग आदिमें कुशलपुरुषोंसे नियत कियेहुये सिद्धियोंके समूहको सिद्ध करते हैं ॥२९ ॥ हे राघव ! द्रव्य, काल और क्रियाके क्रमरूप अविद्यासे परे और अविद्याको त्यागनेवाले आत्मज्ञानीको इस विषयमें न कर्त्ता है न अकर्त्ता है॥३०॥द्रव्य; देश काल तथा क्रियाआदिकी तत्वज्ञानसे परमात्मपदकी प्राप्तिमें कुछभी उपकार नहीं करते ॥ ३१ ॥ जिसको इच्छा है वह पूर्णरीतिसे सिद्धिको सम्पादन करताहै और सर्वथा पूर्ण आत्मज्ञानीको तो किसी बातकी इच्छाही नहीं है ॥ ३२ ॥

सर्वेच्छाजालसंशांतावात्मलाभोदयोहियः ॥ तद्विरुद्धाकथंकस्मादिच्छासंजायतेनघ ॥ ३३ ॥ यथो देतिचयस्येच्छासतयायततेतथा ॥ यथाकालंतदाप्नोतिज्ञोवाप्यज्ञतरोपिवा ॥ ३४ ॥ वीतहव्येनयति तंनोज्ञानेच्छेनकिंचन ॥ ज्ञानेच्छेनाशुयतितंप्रोत्थितोसौयथावने ॥ ३५ ॥ एवंकालक्रियाकर्मद्रव्ययुक्ति स्वभावजाः ॥ यथेच्छमेवसिद्ध्यंतिसिद्धयःस्वाःक्रमार्जिताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! सब इच्छा जालके समाप्त होनेसे जो आत्मलाभ होताहै उसके विरुद्ध भला इच्छा कैसे होसकती है ॥ ३३ ॥ चाहे ज्ञानी हो वा अज्ञानी हो जिसको जैसी इच्छा होती है वह वैसाही उद्योग करताहै और काल पाके उसको पाताहै ॥ ३४ ॥ ज्ञानके अभिलाषी वीतहव्यने अन्य किसीके अर्थ यत्न नहीं किया और ज्ञानकी इच्छासे तो यत्न किया इसीलिये योगाभ्यासार्थ वनमें प्रस्थान किया॥३५॥इसप्रकार देश, काल क्रिया; द्रव्य तथा कर्मादिकी युक्तियोंसें उत्पन्न, क्रमसे उपार्जित सिद्धि अपनी इच्छाके अनुसार सिद्ध होती हैं ॥ ३६ ॥

याःफलावलयोयेनसंप्राप्ताःसिद्धिनामिकाः ॥ तास्तेनाधिगताराममनिजात्प्रयतनद्रुमात् ॥ ३७ ॥ महतां नित्यतृप्तानांतज्ज्ञानांभावितात्मनाम् ॥ ईहितंसंप्रयातानांनोपकुर्वंतिसिद्धयः ॥ ३८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अयंमेसंशयोब्रह्मन्वीहतव्यस्यसातनुः ॥ क्रव्यादैर्नकथंभुक्ताकथंक्लिन्नानभूतले ॥ ३९ ॥ तदैवीतहव्यो सौकथंवनगतःप्रभो ॥ विदेहमुक्ततांशीघ्रंयथावदितिमेवद ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो सिद्धिके नामसे प्रसिद्ध फलोंकी प्राप्ति हुई है वे अपने प्रयत्नरूप वृक्षके फलके रूपही देखपडती हैं ॥ ३७ ॥ और नित्यतृप्त आत्मज्ञानी परिनिष्ठितचित्तवाले तथा अपने अभिलषित आत्मसुखको प्राप्त जो महात्मा हैं उनकी सिद्धि कुछभी उपकार नहीं करती ॥ ३८ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! वीतहव्यके उस शरीरको हिंसकजीवोंने क्यों नहीं खाया और वह पंक (कीचड) आदिसे क्यों नहीं सडगया ? ॥ ३९ ॥ और हे प्रभो ! जब यह वीवहव्य बनमें गया और जब शरीर पृथिवी पंकआदिसे ढकगया तभी वह विदेहमुक्तताको क्यों न प्राप्त हुआ यह मुझे कहिये ॥ ४० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यासंविद्दलितासाधोवासनामलतंतुना ॥ सुखदुःखदशादाहभागिनीभवतीहसा ॥ ४१ ॥ निर्मुक्तवासनाशुद्धसंविन्मात्रमयीतुसा ॥ तनुस्तिष्ठतितच्छेदेशक्तानेहहिकेचन ॥ ४२ ॥ शृणुयुत्त्याकयायोगीतनुच्छेदादिविभ्रमः ॥ नाक्रम्यतेमहाबाहोबहुवर्षशतैरपि ॥ ४३ ॥ चेतःपदार्थेपत तियस्मिन्यस्मिन्यदायदा ॥ तन्मयंतद्भवत्याशुतस्मिंस्तस्मिंस्तदातदा ॥ ४४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे साधो रामजी ! जो अज्ञानीकी संवित् (इच्छारूप वृत्ति) वासनारूप रागद्वेषरूप मलसे दूषित सूत्रसे दृढतासे वेष्टित रहती है वही सुखदुःखआदि दशा तथा दाहआदि क्रियाकी भागिनी होती है ॥ ४१ ॥ और ज्ञानसे अविद्या अंश बाधित होनेसे वासनारहित शुद्ध संवित्मात्रमय जो जीवन्मुक्तका वह शरीर था उसके छेदन करनेमें कोईभी समर्थ न थे ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! महाबाहो ! सुनो जिस युक्तिसे योगी शरीरछेदनआदि विभ्रमोंसे बहुतवर्षतक आकुलित नहीं होता ॥ ४३ ॥ यह चित्त जब २ जिन २ पदार्थोंमें गिरताहै तब २ उस २ पदार्थमें शीघ्र उसीका रूप होजाताहै ॥ ४४ ॥

तथादृष्टेगिरिहिमनोविकारमुपगच्छति ॥ दृष्टमित्रंसुहृद्यत्वंस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४५ ॥ रागद्वेषविहीनेतु पथिकेपादपेगिरौ ॥ भवत्यरागद्वेषंचस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४६ ॥ मृष्टेलौल्यमुपादत्तेदुर्भोज्येयातिनिस्पृहम् ॥ वैरस्यंयातिकटुनिस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४७ ॥ समसंविद्विलासाढ्येयद्यदायतिदेहके ॥ हिंस्त्रचेतःपतत्याशुसमतामेतितत्तदा ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे यह मन जब अपने शत्रुको देखताहै तब विकारी होजाताहै और मित्रके देखनेसे आनन्दित होता है यह प्रतिदिन सब कोई प्रत्यक्ष अनुभव करताहै ॥ ४५ ॥ और रागद्वेषसे शून्य वटोही, वृक्ष वा पर्वतके देखनेसे रागद्वेषरहित रहताहै यहभी सब अनुभव करते हैं ॥ ४६ ॥ स्वादिष्टपदार्थमें यह मन चंचलताको धारण करताहै, नीरसमें इच्छारहित और कटुमें बेरस होजाताहै यहभी स्वयं अनुभूत है ॥ ४७ ॥ रागद्वेषकी विषमतासे शून्य संवित्के विलाससे पूर्ण योगीके शरीरपर जब हिंसक जीवका चित्त गिरताहै तब वह चित्त योगीकी समसंवित्के प्रतिबिंबसे समताको प्राप्त होजाताहै इसलिये उसकी कीहुई हिंसा नहीं होती ॥ ४८ ॥

समसंगविमुक्तत्वाच्छेदादौनप्रवर्त्तते ॥ पांथोव्यर्थपथिग्रामेयथाग्रामीणकर्मणि ॥ ४९ ॥ योगिदेहसमीपात्तुगत्वाप्राप्तोहिंस्त्रताम् ॥ यद्यद्भवतितत्राशुतथारूपंनसंशयः ॥ ५० ॥ इतिहिंस्त्रैर्मृगव्याघ्रसिंहकीटसरीसृपैः ॥ नच्छिन्नावीतहव्यस्यतनुर्भूतलशालिनी ॥ ५१ ॥ सर्वत्रविद्यतेसंवित्काष्ठलोष्ठोपलादिके ॥ सत्तासामान्यरूपेणसंस्थितामूकबालवत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—वह सिंसक जीव समदर्शी योगीके संगसे राग द्वेषआदिसे विनिर्मुक्त होनेसे छेदादिमें नहीं प्रवृत्त होता जैसे यात्री मार्गके ग्राममें समीपके वृक्षके छेदनआदि कर्म्मोंमें नहीं प्रवृत्त होता ॥ ४९ ॥ और योगीके देहके समीपसे चले जाताहै तब हिंसकताको प्राप्त यह चित्त जहां २ जैसी भावना करताहै वहां २ वैसाही रूप शीघ्र होजाताहै ॥ ५० ॥ हे रामजी ! इन पूर्वोक्त दोनों कारणोंसे पृथिवीके भीतर शोभायमान उस वीतहव्यके शरीरको सिंह, व्याघ्र तथा सर्प वृश्चिक आदिने नहीं काटा ॥ ५१ ॥ और सामान्यसत्तासे मूक बालकके तुल्य काष्ठ मट्टी और पाषाणआदि सबमें संवित् चित्शक्ति विद्यमानहै ॥ ५२ ॥

प्रोष्प्लूयमानातरलाकेवलंपरिदृश्यते ॥ तन्वीपुर्यष्टकेष्वेवप्रतिबिंबजलेष्विव ॥ ५३ ॥ तेनभूजलवाय्वग्निसंवित्त्यासमरूपया ॥ निर्विकारंतनुर्नीतावीतहव्यस्यराघव ॥ ५४ ॥ अन्यच्चशृणुमेरामस्पंदोनाशस्यकारणम् ॥ विकारःसचचित्तोत्थोवातजोवाजगत्स्थितौ ॥ ५५ ॥ प्राणानांप्राणनंस्पंदस्तच्छांतौतेदृषत्समाः ॥ यतःस्थिताधारणयातेनानष्टास्यसातनुः ॥ ५६ ॥

अर्थ—परंतु चलतीहुई चंचल केवल प्राण, पंच ज्ञान और पंच कर्म इन्द्रिय और मनबुद्धियुक्त सूक्ष्म शरीरोंमेंही देखपडती है ॥ ५३ ॥ इसी हेतुसे समानरूपसे विद्यमान पृथिवी, जल, वायु और अग्निकी संवित्से निर्विकारदशामें प्राप्त (ब्रह्मभावको प्राप्त) वह शरीर विकारताको नहीं प्राप्त हुआ ॥५४॥ हे रामजी ! औरभी मुझसे सुनो, नाशका कारण स्पंद (शरीर वा अंतःकरणकी चेष्टा) ही है और वह स्पंदरूप विकार चित्त वा वायुसे उत्पन्न जगत्के व्यवहारमें प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ प्राणोंकी गतिही स्पंद है उस गतिके शांत होनेसे वे प्राण पाषाणके तुल्य दृढ योगको धारण किये स्थित रहते हैं इसीसे वीतहव्यका वह शरीर नहीं नष्ट हुआ ॥ ५६ ॥

सबाह्याभ्यंतरंस्पंदश्चितजोवात्तजोथवा ॥ नयस्यविद्यतेतस्यदूरस्थौप्रकृतिक्षयौ ॥५७ ॥ सबाह्याभ्यंतरेशांतेस्पंदेतत्त्वविदांवर ॥ धातवःसंस्थितिंदेहेनत्यजंतिकदाचन ॥ ५८ ॥ संशांतेदेहप्रस्पंदेचित्तवातमयेतथा ॥ धातवोमेरवत्स्थैर्यंयांतिसंस्तंभितात्मकाः ॥ ५९ ॥ तथाचदृश्यतेलोकेस्पंदशांतौदृढास्थितिः ॥ दारूणामिवधीराणांशवांगानामचोपता ॥ ६० ॥

अर्थ—आभ्यन्तर प्राणोंका और बाह्य हस्त पाद आदिका चित्त वा पवनसे उत्पन्न स्पंद जिसके नहीं है उसके वृद्धि तथा क्षयआदि दूरहैं ॥ ५७ ॥ हे तत्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर स्पंदके शांत होनेपर इस शरीरमें अपनी स्थितिको शुक्रआदि धातु कदापि नहीं छोडते ॥ ५८ ॥ चित्त वा वातमय स्पंदके शांत होनेपर योगसे स्तंभित धातु मेरुके तुल्य स्थिरताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५९ ॥ जैसे कि स्पंदके शांत होनेपर काष्ठोंके तुल्य धीर योगियोंकी दृढ स्थिति तथा मृतकों अंगोंकी अकंपता लोकमें देख पडती है ॥ ६० ॥

इतिवर्षसहस्राणिदेहाजगातियोगिनाम् ॥ नक्लिद्यंतेनभिद्यंतेमग्नवज्जलदाइव ॥ ६१ ॥ तदैववीतहव्योसौशृणुकिंनोपशांतवान् ॥ देहमुत्सृज्यतत्त्वज्ञोज्ञातज्ञेयवतांवरः ॥ ६२ ॥ येहिविज्ञातविज्ञेयावीतरागामहाधियः ॥ विच्छिन्नग्रंथयःसर्वेतेस्वतंत्रास्तनौस्थिताः ॥ ६३ ॥ दैवंवापिचकर्माणिप्राक्तनान्यैहिकानिच ॥ वासनावानतेषांतच्चेतोनियमयंत्यलम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसी कारणसे सहस्रों वर्षपर्य्यन्त योगियोंके शरीर न तो मेघोंके तुल्य गीले होतेहैं और न पृथिवीके भीतर शिलाके समान विदीर्ण होते हैं ॥ ६१ ॥ अब यह सुनो कि उसी समय वीतहव्य जो कि ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ था

क्यों नहीं अपने देहको त्यागकर विदेहमुक्त हुआ इसका कारण सुनो ॥ ६२ ॥ जो कि आत्मज्ञानी वीतराग महाबुद्धिमान् और छिन्नग्रंथि महात्मालोग हैं वे अपने शरीरमें स्वतंत्र हैं ॥ ६३ ॥ दैव (प्रारब्धकर्मोंके फल देनेवाला ईश्वर) इस जन्म तथा पूर्वजन्मके कर्म, और वासना शेष प्रारब्ध भोगकरनेको प्रवृत्त योगियोंके चित्तको अन्यथा नहीं करसकते ॥ ६४ ॥

तेनतत्त्वविदांतातकाकतालीयवन्मनः ॥ यद्यद्भावयतिक्षिप्रंतत्तदाशुकरोत्यलम् ॥ ६५ ॥ काकतालीययोगेनवीतहव्यस्यसंविदा ॥ सांप्रतंजीवितंबुद्धंतदेवाशुस्थिरीकृतम् ॥ ६६ ॥ यदातुतस्यप्रतिभाविदेहोन्मुक्ततांगता ॥ तदाविदेहमुक्तोभूदसौस्वातंत्र्यसंस्थितिः ॥ ६७ ॥ विगतवासनमाशुविपाशतामुपगतंमनआत्मतयोदितम् ॥ यदभिवांछातितद्भवतिक्षणात्सकलशक्तिमयोहिमहेश्वरः ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे सद्विलासविचारयोगोपदेशनामैकोननवतितमःसर्गः ॥ ८९ ॥

अर्थ—इसलिये हे प्रिय रामजी ! अकस्मात् प्रारब्धसे प्राप्त जिन कार्य्योंकी भावना योगी करताहै वह वक्ष्यमाणमेंही होजाताहै ॥ ६५ ॥ काकतालीयन्यायसे वीतहव्यके शरीरने इससमय जीवनकी भावना की और शीघ्र वही स्थिर होगया ॥ ६६ ॥ और जब उसकी प्रतिभा विदेहमुक्तिकी ओर अभिमुख हुई उससमय वह विदेहमुक्त होगया क्योंकि वह अपने शरीरके त्यागादिमें स्वतन्त्र था ॥ ६७ ॥ वासनारहित शीघ्र बन्धनसे विनिर्मुक्त, अन्तःकरणके उपाधिवाला वीतहव्यका जीव आत्मारूपसे आविर्भूत होनेसे सकलशक्तिमय महेश्वररूप था इसीलिये जो कुछ चाहता था वही शीघ्र होताथा ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सद्विलासविचारयोगोपदेशोनामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

मित्रताआदि गुणसे सम्पन्न तथा निष्कल, यह दो प्रकारके चित्तका नाश इस ९० के सर्गमें विस्तारपूर्वक वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदाह्यस्तंगतप्रायंजातंचित्तंविचारतः ॥ तदाहिवीतहव्यस्यजातामैत्र्यादयोगुणाः ॥ श्रीरामउवाच ॥ विचाराभ्युदयाच्चितस्वरूपेंतर्हितेमुने ॥ मैत्र्यादयोगुणाजाताइत्युक्तंकिंत्वयाप्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मण्यस्तंगतेचित्तेकस्यमैत्र्यादयोगुणाः ॥ क्वापरिस्फुरंतीतिवदमेवदतांवर ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्विविधश्चित्तनाशोस्तिसरूपेऽरूपएवच ॥ जीवन्मुक्तःसरूपःस्यादरूपोदेहमुक्तिजः ॥४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जब विचारसे चित्त प्रायः अस्त होगया उससमय वीतहव्यके मैत्री करुणाआदि गुण उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! विचारसे चित्तके स्वरूपमें लीन होनेपर मैत्रीआदि गुण उत्पन्न भये यह आप किस आशयसे कहाहै॥२॥चित्तके ब्रह्ममें लीन होनेपर मैत्रीआदि गुण किसको होते हैं क्या बाधित चित्तको अथवा अधिष्ठानको, और किसमें स्फुरित होते हैं, चिदाभासमें वा बिंबचेतनमें, क्योंकि बाधित मृगतृष्णाकी नदी वा मरुस्थलमें शीतता वा मधुरतादिगुणोंका सम्भव नहीं है यह मुझे कहिये क्योंकि आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! चित्तका नाश दोप्रकारका होताहै, एक जीवन्मुक्तका रूप दूसरा विदेहमुक्तिसे उत्पन्न अरूप है ॥ ४ ॥

चित्तसत्तेहदुःखायचित्तनाशःसुखायतु ॥ चित्तसत्तांक्षयंनीत्वाचित्तंनाशमुपानयेत् ॥ ५ ॥ तामसैर्वासनाजालैर्व्याप्तंयजन्मकारणम् ॥ विद्यमानंमनोविद्धितद्दुःखायैवकेवलम् ॥ ६ ॥ प्राक्तनंगुणसंभारंममेतिबहुमन्यते ॥ यत्तुचित्तमतत्त्वज्ञंदुःखितंजीवउच्यते ॥ ७ ॥ विद्यमानंमनोयावत्तावद्दुःखक्षयःकुतः॥ मनस्यस्तंगतेजंतोःसंसारोस्तमुपागतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस संसारमें चित्तकी सत्ता दुःखके लिये है और उसका नाश सुखके अर्थ है इसलियें चित्तकी सत्ताका क्षय करके चित्तका नाश सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥ तामस (मलिन) वासनाके जालोंसे व्याप्त और जन्मोंका कारण जो मन है उसीको तुम विद्यमान जानो, और केवल दुःखोंकेही लिये है ॥ ६ ॥ अनादिका अभेद अध्याससे

सिद्ध देह इंद्रियआदिके धर्मसमूहोंको जो यह मानताहै कि यह मेरा है तथा इसीसे दुःखी अज्ञानी जो चित्त है उसको जीव कहतेहैं ॥ ७ ॥ जबतक मन विद्यमान है तबतक दुःखका क्षय कहां, मनका क्षय होतेही जीवके लिये संसारका अन्त आगया ॥ ८ ॥

दुःखमूलमवष्टब्धमस्मिन्नेवविनिश्चलम् ॥ विद्यमानंमनोविद्धिदुःखवृक्षवनांकुरम् ॥ ९ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ नष्टंकस्यमनोब्रह्मन्नष्टंवाकीदृशंभवेत् ॥ कीदृशश्चास्यनाशःस्यात्सत्तानाशस्यकीदृशी ॥ १० ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेतसःकथितासत्तामयारघुकुलोद्वह ॥ अस्यनाशमिदानींत्वंशृणुप्रश्न विदांवर॥११॥ सुखदुःखदशाधीरंसाम्यान्नप्रोद्धरंतियम् ॥ निःश्वासाइवशैलेंद्रंचित्तंतस्यमृतंविदुः॥१२॥

अर्थ—इस अज्ञानी जीवमें वासनाके जालोंसे बंधेहुये विद्यमान मनको दुःखरूप वृक्षका मूल तथा दुःखरूप वनके वृक्षका अंकुर तुम जानो ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! नष्ट मन क्या है और अनष्ट क्या है और इसका नाश कैसाहै नाश (अभाव) को प्राप्त पुनः इसकी सत्ता कैसी ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे प्रश्नवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रघुकुलोद्वह रामजी ! चित्तकी सत्ता तो मैं तुमसे कह चुकाहुं अब तुम इसका नाश सुनो ॥११॥ जिस धीरपुरुषको समस्वरूप आत्मासे सुखदुःखकी दशा ऐसे न चलासकै जैसे श्वासके वायु मेरुको उसके चित्तको नष्ट कहतेहैं ॥१२॥

अयंसोहमयंनाहमितिचिंतानरोत्तमम् ॥ खर्वीकरोतियंनांतर्नष्टंतस्यमनोविदुः ॥ १३ ॥ आपत्कार्पण्यमुत्साहोमदोमांद्यंमहोत्सवः ॥ यंनयंतिनवैरूप्यंतस्यनष्टंविदुर्मनः ॥ १४ ॥ एषसाधोमनोनाशोनष्टंचेह मनोभवेत् ॥ चित्तनाशदशाचैषाजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥१५॥ मनस्तांमूढतांविद्धियदानश्यतिसानघ ॥ चित्तनाशाभिधानंहितदासत्वमुदेत्यलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यह साढेतीन हाथका शरीर मैं हुं इससे अन्य नहीं हुं यह चिंता जिस श्रेष्ठ पुरुषको परिछिन्न (छोटी) नहीं करती उसके चित्तको नष्ट कहते हैं ॥ १३ ॥ अपत्ति, दीनता, उत्साह, धनादिसे मद, महत्ता, और महान् उत्सव ये जिसके मुखपर विरूपता नहीं उत्पन्न करतेहैं उसके चित्तको नष्ट कहतेहैं ॥ १४ ॥ हे साधो ! यह चित्तका नाश है और इसीप्रकारके मनको नष्ट चित्त (मन) कहतेहैं और जीवन्मुक्तकी यही स्थिति है ॥ १५ ॥ हे पापरहित रामजी ! परमार्थको त्यागकर दृश्यको मनन करनेहीको तुम मूढता जानो और जिससमय वह मूढता नष्ट होती है उसीसमय चित्तका नाशरूप शुद्ध सत्त्वभाव उदयको पूर्णतासे प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

तस्यसत्वविलासस्यचित्तनाशस्यराघव ॥ जीवन्मुक्तस्वभावस्यकैश्चिच्चित्ताभिधाकृता ॥ १७ ॥ मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तंभवत्युत्तमवासनम् ॥ भूयोजन्मविनिर्मुक्तंजीवन्मुक्तमनोनघ ॥ १८ ॥ व्याप्तंवासनया यत्स्याद्भूयोजननमुक्तया ॥ जीवन्मुक्तमनःसत्तारामतत्सत्त्वमुच्यते ॥ १९ ॥ संप्रत्येवानुभूतत्वात्सत्त्वा स्यातन्वसंयुतः ॥ सरूपोसौमनोनाशोजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे राघव ! शुद्ध सत्त्वभाव तथा जीवन्मुक्तके स्वभावरूप उस चित्तके नाशको उस व्यवहाराभासको देखनेवालोंने चित्तके नामसे प्रसिद्ध कियाहै ॥ १७ ॥ हे पापरहित रामजी ! मैत्रीआदि गुणसंपन्न, उत्तमवासनामय और पुनर्जन्मसे वर्जित जीवन्मुक्तका मन होताहै ॥ १८ ॥ ब्रह्माकार वासनासे, और पुनर्जन्मसे वर्जित जो जीवन्मुक्तके मनकी सत्ता है उसको शुद्धसत्वके नामसे व्यवहार करतेहैं ॥ १९ ॥ व्युत्थानकालमेंही अनुभूत होनेसे और सन्मात्रस्वभावकी प्राप्तिसे देहादिपरिच्छेदको स्पर्श न करनेवाला जो है इसको जीवन्मुक्तका स्वरूप मनोनाश कहतेहैं ॥ २० ॥

मैत्र्यादयोथमुदिताःशशांकइवदीप्तयः ॥ जीवन्मुक्तमनोनाशेसर्वदासर्वथास्थिताः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्तमनोनाशेसत्त्वनाम्निहिमालये ॥ वसंतइवमंजर्यःस्फुरंतिगुणसंपदः ॥ २२ ॥ अरूपस्तुमनोनाशोयोमयोक्तोरघूद्वह ॥ विदेहमुक्तएवासौविद्यतेनिष्कलात्मकः ॥२३॥ समग्राग्र्यगुणाधारमपिसत्त्वंप्रलीयते ॥ विदेहमुक्तेविमलेपदेपरमपावने ॥ २४ ॥

अर्थ—जीवन्मुक्तके मनके नाश होनेपर सद् मैत्रीआदि गुण प्रफुल्लित होके ऐसे स्थित रहते हैं जैसे चन्द्रमामें दीप्ति ॥ २१ ॥ सत्वनाम युक्त हिम वा संतोषके स्थानभूत जीवन्मुक्तके मनके नाशमें सब गुणोंकी संपत्ति ऐसे स्फुरित होती है जैसे वसन्तकालमें लता ॥ २२ ॥ हे रामजी ! जो मैंने अरूप मनोनाश कहाथा वह तो निष्कल विदेहमुक्तकोही होताहै ॥ २३ ॥ समग्र उत्तमगुणोंके आधारभूत जो प्रातिभासिक मन है वहभी परमपावन विदेहरूप जो विमलपद है उसमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥

विदेहमुक्तविषयेतस्मिन्सत्वक्षयात्मके ॥ चित्तनाशेविरूपाख्येनकिंचिदपिविद्यते ॥२५॥ नगुणानागु णास्तत्रनश्रीर्नाश्रीर्वलोलता ॥ नचोदयोनास्तमयोनहर्षामर्षसंविदः ॥ २६ ॥ नतेजोनतमःकिंचिन्नसं ध्यादिनरात्रयः ॥ नदिशोनचवाकाशोनाधोनानर्थरूपता ॥ २७ ॥ नवासनानरचनानेहानीहेनरंजना ॥ नसत्तानापिवासत्तानचसाध्यंहितत्पदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—केवल विदेहमुक्तके विषयभूत उस सत्वके क्षयरूप रूपरहित चित्तके नाशमें किंचित्भी दृश्य नहीं रहता ॥२५॥ उस अरूपचित्तके नाशमें न गुण, है न अगुण है, न लक्ष्मी है, न दरिद्रता है, न चंचलता है, न उदय है न अस्त और न हर्ष न शोककी संवित् है ॥ २६ ॥ न तेज, न अन्धकार, न सन्ध्या न दिन न रात्रि न दिशा न आकाश, न अधोभाग, और न अनर्थरूपता ॥ २७ ॥ न वासना न कोई रचना, न इच्छा न अनिच्छा, न राग न सत्ता तथा असत्ताका अभाव, और न दोनोंकि संधिरूप वह पद है ॥ २८ ॥

अतमस्तेजसाव्याप्तावितारेंद्वर्कवायुना ॥ तत्समंशरदच्छेननिःसंध्येनारजस्त्विषा ॥२९॥ येहिपारंगता बुद्धेःसंसाराचरणस्यच ॥ तेषांतदास्पंदफारंपवनानामिवांबरम् ॥३०॥ संशांतदुःखमजडात्मकमेवसुप्त मानंदमंथरमपेतरजस्तमोयत् ॥ आकाशकोशतनवोतनवोमहांतस्तस्मिन्पदेगलिताचित्तलवावसंति॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तोपदेशविचारयोगोपदेशो नाम नवतितमःसर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—तम तथा अन्धकारसे शून्य, तारागण, चन्द्र, सूर्य तथा वायुसे रहित और सूर्यकी प्रभासेभी वर्जित; और शरत्कालके समान स्वच्छआकाशके समान वह विमलपद है ॥ २९ ॥ जो महात्मालोग बुद्धि तथा इस संसारूप आडम्बरके पार प्राप्त होगये हैं उन्हीका स्थान वह पद ऐसे है जैसे पवनका आकाश ॥ ३७ ॥ शांतदुःख, जडतारहित, उन्मेष आदि चेष्टा शून्य, धीर तथा रजोगुण अज्ञासे शून्य उस पदमें आकाशके विशालरूप, विदेहमुक्त और चित्तके लेशसेभी शून्य महात्मालोग पुनः इस संसारमें न आनेके अर्थ निवास करतेहैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे चित्तोपदेशविचारयोगोपदेशो नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस संसाररूपलताका बीज यह शरीर है, उसका बीज मन है और उसकाभी प्राणस्पंद तथा वासना है इस विषयका वर्णन इस ९१ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ परमाकाशकोशाद्रिरूढलोकांतरद्रुमम् ॥ तारकापुष्पशबलंदेवासुरविहंगमम् ॥ १ ॥ विद्युन्मंजरितोपांतनीलनीरदपल्लवम् ॥ सर्वर्तुरम्यचंद्रार्कगणरम्यकदंतुरम् ॥ २ ॥ सप्ताब्धिवापीवलि तंसरिच्छतमनोहरम् ॥ चतुर्दशविधानंतभूतजातोपजीवितम् ॥ ३ ॥ जगत्काननमाक्रम्यस्थितायाःकृ तजालकम् ॥ ब्रह्मन्संसृतिमृद्वीकालतायावितताकृतेः ॥ ४ ॥ जरामरणपर्वायाःसुखदुःखफलावलेः ॥ आरूढमूलमालायामोहसेकजलांजलेः ॥ ५ ॥ किंबीजमथबीजस्यतस्यकिंबीजमुच्यते ॥ अथतस्यापि किंबीजंबीजंतस्यापिकिंभवेत् ॥ ६ ॥ सर्वमेतत्समासेनपुनर्बोधविवृद्धये ॥ सिद्धयेज्ञानसारस्यवदमेव दतांवर ॥ ७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अंतर्लीनघनारंभशुभाशुभमहांकुरम् ॥ संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरंविद्धिराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—निर्विशेष ब्रह्मको रोकनेसे पर्वतके तुल्य अव्याकृत ब्रह्ममें जहांपर अनेक ब्रह्मांडरूप वृक्ष लगे हैं ऐसे तथा तारागणरूप पुष्पोंसे विचित्र, और देव असुररूप पक्षीसंयुक्त ॥ १ ॥ विद्युत् (बिजुली) रूप लतासहित, दिशारूप शाखाओंकें अग्रभागमें नीलआदि वर्णयुक्त मेघरूप पल्लवोंसे शोभित और सब ऋतुओंमें रमणीय तथा विकाशमय चंद्रसूर्य तारागणरूप पुष्पोंसे उन्नत (ऊंचे) हसतेहुयेके समान स्थित ॥ २ ॥ सातोसमुद्ररूप वापियोंसे वेष्टित, सैकडों नदियोंसे मनोहर और चौदह भुवनोंके निवासी अनंतभुवनोंके जीवनका हेतु ॥ ३ ॥ जो यह संसाररूप वन है उसको घेरकर जालकी रचनापूर्वक विशालआकार वृद्धअवस्था तथा मरणरूप ग्रंथिसहित सुखदुःखफलोंकी पंक्तिसे पूर्ण, दृढमूल और मोहरूप सिंचनकी अंजलीयुक्त इस जीवकी संसरण (गमनागमन) रूप दाखकी लताका बीज क्या है. हे ब्रह्मन् ! कृपाकरके कहिये. और उस बीजकाभी बीज क्या और उसकाभी बीज क्याहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! यह सब संक्षेपसे पुनः बोधकी वृद्धि और ज्ञानके सारांशकी सिद्धिके लिये

कहिये ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राघव ! अंतःकरणमें गुप्त चित्रविचित्र अनन्तकार्योंके आरंभक शुभ तथा अशुभकर्मरूपी महाअंकुरसहित इस शरीरकोही तुम संसाररूप लताके बीज जानो ॥ ८ ॥

शाखाप्रतानगहनाफलपल्लवशालिनी ॥ तेनेयंभवतिस्फीताशरदीववसुंधरा ॥ ९ ॥ भावाभावदशाकोशंदुःखरत्नसमुद्गकम् ॥ बीजमस्यशरीरस्यचित्तमाशावशानुगम् ॥ १० ॥ चित्तादिदमुदेत्युच्चैस्सदसच्चांगजालकम् ॥ तथाचैनत्स्वयंस्वप्नसंभ्रमेष्वनुभूयते ॥ ११ ॥ यथागंधर्वसंकल्पात्पुरमेवंहिचेतसः॥ सवातायनमाकारभासुरंजायतेवपुः ॥ १२ ॥

अर्थ—शाखाके विस्तारोंसे गहन, फल तथा पल्लवआदिसे शोभायमान यह संसृति (संसार) रूप लता उस शरीर (लिंगशरीर जिसमें अनंतकार्य्योंके आरंभक कर्म गुप्त रहते हैं) से वृद्धिको ऐसे प्राप्तहै जैसे सस्यकी संपत्तिसे शरत्कालमें पृथिवी ॥ ९ ॥ और हे रामजी ! पदार्थोंकी बुद्धि तथा नाशरूप दशाका कोश, दुःखरूप रत्नोंकी पेटारी और आशाओंके वशमें होके उनके अनुगामी चित्तको तुम शरीरका बीज जानों ॥ १० ॥ चित्तसेही वर्तमान तथा भूत भविष्यत् शरीरोंके जाल उत्पन्न होते हैं और वह बात स्वप्न और संभ्रममें सबको अनुभूत है ॥ ११ ॥ जैसे संकल्पसे गंधर्वनगर प्रकाशमय तथा झरोखे आदि सहित उत्पन्न होताहै ऐसेही चित्तसे यह शरीरभी उत्पन्न होताहै १२

यदिदंकिंचिदाभोगिजागतंदृश्यतांगतम् ॥ रूपंतच्चेतसःस्फारंघटादित्वंमृदोयथा ॥ १३ ॥ द्वेबीजेचित्तवृक्षस्यवृत्तिव्रततिधारिणः ॥ एकंप्राणपरिस्पंदोद्वितीयंदृढभावना ॥ १४ ॥ यदाप्रस्पंदतेप्राणोनाडीसंस्पर्शनोद्यतः ॥ तदासंवेदनमयंचित्तमाशुप्रजायते ॥ १५ ॥ यदानस्पंदतेप्राणःशिरासरणिकोटरे ॥ असंवित्तिवशात्तेनचित्तमंतर्नजायते ॥ १६ ॥

अर्थ—और जो कुछ कृत्रिम आकारधारी यह जगत्का रूप दृश्यताको प्राप्तहुआहै वह विशालरूप चित्तका ऐसे है जैसे मृत्तिकाके घटआदि ॥ १३ ॥ और वृत्तिरूप लताधारी चित्तवृक्षके दो बीज हैं एक प्राणका स्पंद और दूसरा दृढवासना ॥ १४॥ जब नाडियोंके स्पर्श करनेमें उद्यत प्राणकी गति होती है उस समय शीघ्रही चिद्विकारमय यह चित्त शीघ्र उत्पन्न होताहै ॥ १५ ॥ और जब नाडियोंके मार्गके छिद्रमें प्राणका स्पंद नहींहोता उस समय बाह्य अनुभवके न होनेसे चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ १६ ॥

प्राणस्पंदनमेवेदंचित्तद्वारेणदृश्यते ॥ जगन्नामागतंव्योम्निनीलत्वादिवदीदृशम् ॥ १७ ॥ प्राणस्पंदनसुप्राचतच्छांतिःशांतिरुच्यते ॥ प्राणसंस्पंदनात्संविद्यातिवीटेवचोदिता ॥१८॥ संवित्स्फुरतिदेहेषुप्राणस्पंदप्रबोधिता ॥ चक्रावर्तैरंगणेषुवीटेवकरताडिता ॥ १९ ॥ सतीसर्वगतासंवित्प्राणस्पंदेनबोध्यते ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराकारागंधलेखेववायुना ॥ २० ॥

अर्थ—यह प्राणका स्पंदही चित्तके द्वारा जगत्के नामसे प्रसिद्ध ऐसे देखपडताहै जैसे आकाशमें नीलताआदि ॥ १७ ॥ और समष्टिप्राणके स्पंदनविषयमें उपरत जो चित्की निष्क्रियतारूप शांति है उसीको जगत्का प्रलय वा मोक्ष कहतेहैं, और प्राणके स्पंदसे चित्तसंवित् ऐसे होजाती है जैसे हस्तसे ताडित कन्दुक (गेंद) ॥१८॥ प्राणोंके स्पन्दोंसे बोधित संवित् देहोंमें ऐसे स्फुरित होती है जैसे हस्तों (हांथों) से प्रेरित गेंद अंगणो (आंगनों) में ॥१९॥ सर्वगत विद्यमानही संवित् प्राणके स्पंदसे ऐसे बोधित होती है जैसे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्मगंधकी लेखा पवनसे॥२०

संवित्संरोधनेश्रेयःपरमंविद्धिराघव ॥ कारणाक्रमणंयत्रक्षोभस्तत्रनविद्यते ॥ २१ ॥ संवित्समुदितैवाशुयातिसंवेद्यमादरात् ॥ संवेदनादनंतानिततोदुःखानिचेतसः ॥ २२ ॥ संसुप्तांतरबोधायसंवित्संतिष्ठतेयदा ॥ लब्धंभवतिलब्धव्यंतदातदमलंपदम् ॥ २३ ॥ तस्मात्प्राणपरिस्पंदैर्वासनाचोदनैस्तथा ॥ नोचेत्संविदमुच्छूनांकरोषितदजोभवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संवित्के रोकनेसे परमकल्याण (मोक्ष) होताहै और उसके लिये प्राणके स्पंदका प्राणायामोंके अभ्याससे आक्रमणसें करना चाहिये जिसमें क्षोभ नहीं है ॥२१॥ यह संवित् उदयमात्र होतेही बाह्यविषयोंके प्रतिरागसे होजाती है और उन बाह्यपदार्थोंमें उपभोगके संवेदनसे चित्तको अनन्त दुःख होते हैं॥२२॥ और जब बाह्यविषयमें सुप्तके तुल्य तथा अन्तर आत्माके ज्ञानके लिये जाग्रत् होके यह संवित् उद्युक्त होती है उससमय प्राप्त होनेयोग्य वह विमलपद मानो प्राप्त होचुका ॥ २३ ॥ इस हेतुसे प्राणोंके परिस्पंदोंसे और वासनाओंके उत्तेजनसे यदि तुम संवित्को मूर्खोंके तुल्य नहीं बढाते हो तो तुम जन्मादिविक्रियाशून्य मुक्तही हो ॥ २४ ॥

संविदुच्छूनताचित्तंविद्धितेनेदमाततम् ॥ अनर्थजालमालूनविशीर्णजनजीवकम् ॥ २५ ॥ योगिनश्चित्तशांत्यर्थंकुर्वंतिप्राणरोधनम् ॥ प्राणायामैस्तथाध्यानैःप्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥ २६ ॥ चित्तोपशांतिफल

दंपरमंसाम्यकारणम् ॥ सुभगंसंविदःस्वास्थ्यंप्राणसंरोधनंविदुः ॥ २७ ॥ ज्ञानवद्भिःप्रकटितामनुभूतांचराघव ॥ चित्तस्योत्पत्तिमपरांवासनाजीवितांशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—संवित्का बढानाही चित्त जानों और जिससे अनेक प्राणियोंके जीव खंडित और विशीर्ण होगये हैं ऐसा यह अनर्थोंका जाल संसार व्याप्त है ॥ २५ ॥ योगीलोग प्राणायामोंसे, ध्यानोंसे, और योगशास्त्रोक्त तथा सद्गुरुओंके संप्रदायआदिसे सिद्ध युक्तियोंसे, कल्पितप्रयोगोंसे प्राणोंका निरोध चित्तकी शांतिके लिये करते हैं ॥ २६ ॥ चित्तकी शांतिरूप फलका दायक, समताका परमकारण, सौख्यदायक और संवित्की स्वस्थताका हेतु प्राणका निरोध कहागयाहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीमहात्माओंसे उपदिष्ट, स्वयं अनुभूत और वासनाओंसे उज्जीवित अन्य प्रकारकी चित्तकी उत्पत्ति सुनो ॥ २८ ॥

दृढभावनयात्यक्तपूर्वापरविचारणम् ॥ यदादानंपदार्थस्यवासनासाप्रकीर्तिता ॥ २९ ॥ भावितस्तीव्रसंवेगादात्मनायत्तदेवसः ॥ भवत्याशुमहाबाहोविगतेतरसंस्मृतिः ॥ ३० ॥ तादृग्रूपोहिपुरुषोवासनाविवशीकृतः ॥ यत्पश्यतितदेतत्तत्सद्वस्त्विवितिविमुह्यति ॥ वासनावेगवैवश्यात्स्वरूपंप्रजहातितत् ॥ भ्रांतंपश्यतिदुर्दृष्टिःसर्वमदवशादिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्वकालकी दृढभावनासे पूर्वापर विचारको त्यागकर देहादिपदार्थोंका जो अहंमम इत्यादिरूपसे ग्रहण है उसीको वासना कहते हैं ॥ २९ ॥ हे महाबाहो ! तीव्रसंवेगसे आत्माकेद्वारा जैसी भावना आत्मा करताहै अन्यस्मृतियोंको त्यागकर उसी आकारका आत्मा शीघ्र होजाताहै ॥ ३० ॥ वासनाके वशीभूत पुरुष उसी प्रकारका रूप धारणकरके जो कुछ देखताहै वही सत् अर्थात् आत्मसत्तासे वासित सत्वस्तु है इस हेतुसे मोहित होजाताहै ॥ ३१ ॥ वासनाके वेगकी विवशतासे अपने स्वरूपको त्यागताहै और वासनासे उपस्थापित सब जगत्के रूपको ऐसे देखताहै जैसे मदके वशसे दुष्ट (दूषित) दृष्टि सब पदार्थोंको भ्रमणशील ॥ ३२ ॥

असम्यग्ज्ञानवानेवभवत्याधिपरिप्लुतः ॥ अंतस्थयावासनयाविषेणेववशीकृतः ॥ ३३ ॥ असम्यग्दर्शनंयस्मादनात्मन्यात्मभावनम् ॥ यदवस्तुनिवस्तुत्वंतच्चितंविद्धिराघव ॥ ३४ ॥ दृढाभ्यासपदार्थैकवासनादतिचंचलम् ॥ चित्तंसंजायतेजन्मजरामरणकारणम् ॥ ३५ ॥ यदानवास्यतेकिंचिद्धेयोपादेयरूपियत् ॥ स्थीयतेसकलंत्यक्त्वातदाचित्तंनजायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने अंतःकरणमें स्थित वासनासे मिथ्या ज्ञानयुक्त पुरुषही मानसीव्यथाओंसे पूर्ण ऐसे होताहै जैसे विषसे वशीभूत जन ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जिससे मिथ्याज्ञान, अनात्मामें आत्मबुद्धि, और अवस्तु (देहादि) में वस्तु (आत्म) ज्ञान होताहै उसीको चित्त जानो ॥ ३४ ॥ दृढअभ्यासके कारण देहादिपदार्थोंके साथ अभेदवासना होनेसे जरा, जन्म और मृत्युका कारण अतिचंचल चित्त उत्पन्न होताहै ॥ ३५ ॥ जब कि हेय और उपादेयरूपवाला कुछभी सत्ताको नहीं प्राप्तहोता किंतु सबको त्यागकर वासनारहित स्थितहोताहै उससमय चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ ३६ ॥

अवासनत्वात्सततंयदानमनुतेमनः ॥ अमनस्तातदोदेतिपरमोपशमप्रदा ॥ ३७ ॥ यदाकिंचिन्नसंविंत्तौस्फुरत्यभ्रमिवांबरे ॥ तदापद्मइवाकाशेचित्तमंतर्नजायते ॥ ३८ ॥ यदानभाव्यतेभावःक्वचिज्जगतिवस्तुनि ॥ तदाहृदंबरेशून्येकथंचित्तंप्रजायते ॥ ३९ ॥ एतावन्मात्रकंमन्येरूपंचित्तस्यराघव ॥ यद्भावनंवस्तुनोंतर्वस्तुत्वेनरसेनच ॥ ४० ॥

अर्थ—वासनाके अभावसे जब मन कुछभी मनन नहीं करता उससमय परमशांतिदायक अमनस्ता (मनकी अभावता) उदित होती है ॥ ३७ ॥ आकाशमें मेघके तुल्य जब संवित्में कुछभी नहीं स्फुरितहोती उससमय आकाशमें कमलके तुल्य चित्में चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ ३८ ॥ जब जगत्की वस्तुमें कहींभी भावपदार्थकी भावना नहीं होती उससमय शून्य हृदयाकाशमें चित्त कैसे उत्पन्न होगा ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! मैं चित्तका रूप इतनाही मानताहुं कि रागसे वस्तुके अंतरमें वस्तुत्वरूपसे (जगत्में सत्यरूपसे) भावना करना ॥ ४० ॥

नकिंचित्कल्पनायोग्यंदृश्यंभावयतस्ततः ॥ आकाशकोशस्वच्छस्यकुतश्चित्तोदयोभवेत् ॥ ४१ ॥ यदभावनमास्थाययदभावस्यभावनम् ॥ यद्यथावस्तुदर्शित्वंतदचित्तत्वमुच्यते ॥ ४२ ॥ सर्वमंतःपरित्यज्यशीतलाशयवर्तियत् ॥ वृत्तिस्थमपितच्चित्तमसद्रूपमुदाहृतम् ॥ ४३ ॥ वासनायारसाध्यानाद्रागोयस्यनविद्यते ॥ तस्यचित्तमचित्तत्वंगतंसत्त्वंतदुच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् कल्पनाकी युक्तियोंसे दृश्यपदार्थ समर्थनके योग्य नहीं है ऐसी भावना करते हुये तथा आकाशके कोशके समान स्वच्छ आत्माको चित्तका उदय कहांसे होसकताहै ॥ ४१ ॥ सब बाह्यपदार्थोंका विस्मरणरूप निरोधपदार्थका अवलम्बन करके सब दृश्यके शोधनरूप अभावके साधक जो आत्मवस्तुका दर्शन है उसको चित्तका अभाव कहते हैं ॥ ४२ ॥ भीतरसे सब कुछ त्यागकर शीतल आशयमें वर्त्ती वृत्तिमें स्थितभी चित्त दग्धपटाभासके तुल्य असत्‌रूप कहाजाताहै ॥ ४३ ॥ वासनासे विषयरसके ध्यानसे जिसको राग नहीं है उसका चित्त अचित्त-अवस्थाको प्राप्त शुद्धसत्त्वभाव कहाजाताहै ॥ ४४ ॥

घनानवासनायस्यपुनर्जननकारिणी ॥ जीवन्मुक्तःससत्त्वस्थश्चक्रभ्रमवदास्थितः ॥ ४५ ॥ भृष्टबीजोपमायेषांपुनर्जननवर्जिता ॥ वासनारसनिर्हीनाजीवन्मुक्ताहितेस्थिताः ॥ ४६॥ सत्त्वरूपपरिप्राप्तचित्तास्तेज्ञानपारगाः ॥ अचित्ताइतिकथ्यंतेदेहांतेव्योमरूपिणः ॥ ४७ ॥ द्वेबीजेरामचित्तस्यप्राणस्पंदनवासने ॥ एकस्मिंश्चतयोःक्षीणेक्षिप्रंद्वेअपिनश्यतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—पुनः जन्ममरणको करनेवाली घनीभूत वासना जिसको नहीं है वह जीवन्मुक्त चक्रके भ्रमिकेतुल्य संसारके कार्य्योंको करताहुआभी सत्वमेंही स्थितहै ॥ ४५ ॥ भुनेहुये बीजके तुल्य, पुनर्जन्मसे वर्जित और रागसे हीन जिनकी वासना है वे इस संसारमें जीवन्मुक्तही स्थित हैं ॥ ४६ ॥ सत्वरूपमें प्राप्त चित्त और ज्ञानके पारंगत जो महात्मा हैं वे अचित्त कहेगये हैं और इस देहके अन्तमें वे चिदाकाशरूप होजातेहैं ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं एक प्राणोंका स्पंद और द्वितीय वासना इनमेंसे एकके क्षीण होनेपर दोनों नष्ट होजाते हैं ॥ ४८ ॥

मिथःकारणमेतेहिबीजेजन्मानिचेतसः ॥ जलांगीकरणेरामजलाशयघटाविव ॥ ४९ ॥ घनानवासनायस्यपुनर्जननकारिणी ॥ बीजांकुरवदेतेहिसंस्थितेतिलतैलवत् ॥ ५० ॥ अविनाभाविनीनित्यंकालाकांक्षिक्रमेतथा ॥ सर्वमुत्पादयत्येतच्चित्तकःसंविदात्मकः॥ ५१ ॥ यथाप्राणेंद्रियानंदमानंदपवनावुभौ ॥ चित्तस्योत्पादिकेसार्द्धंयदैतेवासनेतदा ॥ ५२ ॥

अर्थ—चित्तकी उत्पत्तिमें प्राणस्पन्द और वासना दोनों मिलकरके इसप्रकार कारण हैं जैसे घटाकाशके जल अंगीकार करनेमें घट और जलाशय दोनों कारण हैं ॥ ४९ ॥ पुनर्जन्मकारिणी घनीभूत वासना जिसको नहीं है उसको तिलोंमें तेलके सदृश परस्पर एक दूसरेके अन्तर्गत बीज अंकुरके न्यायसे कालसे क्रमके आकांक्षी परस्पर एक दूसरेके कारण तथा एकके होनेसे दोनों वर्तमान ये दोनों प्राणस्पन्द और वासना हैं ॥ ५० ॥ इसीप्रकार चित्त संवित्, इन्द्रिय तथा सुखदुःख आदिको उत्पन्न करताहै ॥ ५१ ॥ यथाक्रमसे यह चित्त प्रथम प्राणको अनन्तर इन्द्रियोंको इनके पश्चात् आनन्द इस रीतिसे सबको उत्पन्न करताहै, और इसीप्रकार जब प्राण पवन आनन्द ये दोनों वासना होजाते हैं तब साथ दोनों मिलकर चित्तको उत्पन्न करते हैं ॥ ५२ ॥

आमोदपुष्पवत्तैलतिलवच्चव्यवस्थिते ॥ वासनावशतःप्राणस्पंदस्तेनचवासना ॥ ५३ ॥ जायतेचित्तबीजस्यतेनबीजांकुरक्रमः ॥ वासनोत्प्लवमानत्वात्संवित्प्रक्षोभकर्मणा ॥ ५४ ॥ प्राणस्पंदंबोधयतितेन चित्तंप्रजायते ॥ प्राणःस्पंदनधर्मित्वात्स्पंदतेस्पृष्टहृद्गुणः ॥ ५५ ॥ संविदंबोधयंस्तेनचित्तबालःप्रजायते ॥ एवंहिवासनाप्राणस्पंदौद्वौतस्यकारणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे पुष्प और उसका सौगन्ध्य तथा तिल और तेल ये एकत्र स्थित हैं ऐसेही वासनासे प्राणका स्पंद और प्राणस्पन्दसे वासना होती है ॥ ५३ ॥ इसलिये चित्तके बीजका क्रम बीजके और अंकुरके क्रमके तुल्य है. इनमेंसे वासना तो ऊर्ध्वगतिशील होनेसे संवित् प्रक्षोभरूपक्रियाद्वारा ॥ ५४ ॥ प्राणस्पन्दको बोधित करती है और उससे चित्त उत्पन्न होताहै और हृदयके गुण राग आदि स्पर्श (प्रेरणा) करनेवाला प्राण स्पन्दनधर्मी होनेसे संवित्‌को बोधन करताहै उससे चित्तरूप बालक उत्पन्न होताहै इसप्रकार वासना और प्राणस्पन्द दोनों चित्तके कारणहैं

तयोरेकक्षयेनाशोद्वयोश्चित्तस्यराघव ॥ सुखदुःखमनःस्पंदंशारीरकबृहत्फलम् ॥ ५७ ॥ कार्यपल्लविताकारंकृतिव्रततिवेष्टितम् ॥ तृष्णाकृष्णाहिवलितंरागरोगबकालयम् ॥ ५८ ॥ अज्ञानमूलंसुदृढंलीनेंद्रियविहंगमम् ॥ वासनाक्षयमानीताचित्तवृक्षंक्षणेनहि ॥ ५९ ॥ प्रपातयतिवातौघःकालपक्वफलंयथा ॥ पांडुरीकृतसर्वाशंस्थगिताखिलदर्शनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! उन दोनोंमेंसे एककेभी क्षय होनेसे चित्तका नाश अवश्य होताहै, और सुखदुःखसे व्याकुल मननरूप स्पन्दसहित और शरीररूप महान् फलसंयुक्त ॥ ५७ ॥ और कार्यरूप पल्लवसंयुक्त आकारको धारण-

कियेहुये, तृष्णारूप कालेसर्पोंसे वेष्टित, और राग तथा रोगरूप बकोंका स्थान ॥ ५८ ॥ अज्ञानरूप अतिदृढमूलसहित, और इन्द्रियरूप पक्षीका स्थान चित्तरूपवृक्षको क्षयको प्राप्त कीहुई वासना क्षणमेंही ॥ ५९ ॥ ऐसे गिराती है जैसे कालसे परिपक्कफलको पवनका प्रवाह, और सबदिशाओंको पांडुर (मलिन) करनेवाली, और सब प्राणियोंके नेत्रभूत चिद्रूपका आच्छादक ॥ ६० ॥

विलोलजलदाकारमज्ञानावकरोत्थितम् ॥ तृष्णातृणलवव्याप्तंस्तंभाकृतिशरीरकम् ॥ ६१ ॥ स्फुरत्तनुतनुक्षुब्धंसुखमुत्प्लवनंप्रति ॥ अंतःस्थितमहालोकमपश्यत्प्रविलीयते ॥ ६२ ॥ पवनस्पंदरोधाच्चरामचित्तरजःक्षणात् ॥ वासनाप्राणपवनस्पंदयोरनयोर्द्वयोः ॥६३॥ संवेद्यंबीजमित्युक्तंस्फुरतस्तौयतस्ततः ॥ हृदिसंवेद्यमाप्यैवप्राणस्पंदोथवासना ॥ ६४ ॥

अर्थ—चंचलमेघके सदृश आकारवाली अज्ञानरूप मार्जनी (झाडू) से आविर्भूत तृष्णारूप तृणके खंडोंसे व्याप्त, और स्तंभाकृति शरीररूप संस्थानसे शोभित ॥ ६१ ॥ और अल्पसेभी अल्प वृत्तिरूप वात्यासे क्षुभित, बिनापरिश्रम सब दिशाओंमें उडनेमें प्रवीण, और अन्तःकरणमें स्थित ब्रह्मके अथवा सूर्यके महाप्रकाशको देखनेमें असमर्थ यह चित्तरूप आंधीसे उडीहुई धूलि, हे रामजी! प्राणस्पन्दके निरोधसे क्षणभरमेंही लयको प्राप्त होजाती है, और प्राण पवनका स्पन्द तथा वासना इन दोनोंका ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ बीज, प्रिय अप्रिय शब्द स्पर्श तथा रूपादि विषयभी हैं, क्योंकि शब्दादिविषयको पाकर प्राणस्पन्द और वासना हृदयमें इधर उधर स्फुरित होते हैं ॥ ६४ ॥

उदेतितस्मात्संवेद्यंकथितंबीजमेतयोः ॥ संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पंदनवासने ॥ ६५॥ समूलंनश्यतःक्षिप्रंमूलच्छेदादिवद्रुमः ॥ संविदंविद्धिसंवेद्यंबीजंधीरतयाविना ॥ ६६ ॥ नसंभवतिसंवेद्यंतैलहीनस्तिलोयथा ॥ नबहिर्नांतरेकिंचित्संवेद्यंविद्यतेपृथक् ॥ ६७ ॥

अर्थ—और शब्दादिविषयकी प्राप्तिहीसे प्राणस्पंद और वासना उदयको प्राप्त होती हैं इसलिये इन दोनोंका बीज संवेद्य (शब्दादि) कहा गयाहै और संवेद्यके त्यागसे प्राणस्पंद तथा वासना दोनों ॥ ६५ ॥ मूलसहित ऐसे शीघ्र नष्ट होते हैं जैसे मूलसे काटनेसे वृक्ष, और संवित्ही अपनी स्वाभाविक धीरताको त्यागकर संवेद्य (विषय) रूप होके चित्तका बीज होती है ॥ ६६ ॥ संवित्के विना संवेद्यकी प्रसिद्धि ऐसे नहीं है जैसे तेलके विना तिल, और बाह्य तथा आभ्यन्तर विषय कुछभी संवित्से भिन्न नहीं है ॥ ६७ ॥

संवित्स्फुरंतीसंकल्पात्संवेद्यंपश्यतिस्वतः ॥ स्वप्नेयथात्ममरणंतथादेशांतरस्थितिः ॥ ६८ ॥ स्वचमत्कारयोगेनसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ स्ववेदनंस्वसंकल्पात्संविदोयत्रवर्तते ॥ ६९ ॥ जगज्जालमतोभातितदिदंरघुनंदन ॥ यथाबालस्यवेतालःससंकल्पोद्भवाद्भवेत् ॥ ७० ॥ पुरुषत्वंयथास्थाणोःसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ यथाचंद्रार्करश्मीनांदंडतारेणुतातथा ॥ ७१ ॥ यथानौस्थाचलस्पंदःसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ एतन्मिथ्याहिदुर्ज्ञानंसम्यग्ज्ञानाद्विलीयते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह संवित् स्फुरित होती हुई अपने संकल्पसेही जैसे स्वप्नमें अपना मरण और देशांतरकी स्थितिको अपने चमत्कारके योगसे देखती है ऐसेही जाग्रत्के विषयसे भिन्न नहीं है, और जिस दशामें अपने संकल्पसे अपनेको जानती है वहभी स्वप्नकेही समानहै क्योंकि अद्वैतब्रह्ममें अपना अनुभव विवेकादिकाभी संभव नहीं है ॥ ६८ ॥६९॥ हे रघुनंदन! इसी संवित्से यह जगत्जाल ऐसे भान होताहै जैसे बालकको अपने संकल्पके भ्रमसे वेताल भान होताहै ॥ ७० ॥ जैसे स्थाणु (ठूंठ) पुरुषरूपसे भान होताहै ऐसेही संवित् विषयरूपसे भान होती है, और जैसे चंद्र और सूर्यकी किरण झरोखे वा गृहके छिद्रमेंसे आके दंडाकार वा भ्रमण करतेहुये त्रसरेणुके आकारसे भान होती है ॥ ७१ ॥ जैसे कि नौकापर स्थित पुरुषको अचल वृक्षआदिकी गति भान होती है ऐसेही संवित्का संवेद्य (विषय) रूपसे भान होताहै यह मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानसे ऐसे नष्ट होताहै ॥ ७२ ॥

रज्ज्वामिवभुजंगत्वंद्वींदुत्वंस्वीक्षितादिव ॥ शुद्धैवसंवित्रिजगत्संवेद्यंनान्यदस्त्यलम् ॥ ७३ ॥ इत्यंतनिश्चयोरूढःसम्यग्ज्ञानंविदुर्बुधाः ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टंवायदस्याःप्रतिभासते ॥ ७४ ॥ संविदस्तत्प्रयत्नेनमार्जनीयंविजानता ॥ तदमार्जनमात्रंहिमहासंसारसंगतम् ॥ ७५ ॥ तत्प्रमार्जनमात्रंतुमोक्षइत्यनुभूयते ॥ संवेदनमनंतायदुःखायजननात्मने ॥ ७६ ॥

अर्थ—जैसे उत्तमदर्शनसे रज्जुका सर्प और दोचंद्रकी भ्रांति, और यह त्रिलोक शुद्ध संवित् मात्रहै अन्य कुछ नहीं है ॥ ७३ ॥ अंतःकरणमें इस दृढ निश्चयको सम्यग् ज्ञान पंडित लोग कहते हैं, पूर्वकालमें दृष्ट वा अदृष्ट जो कुछ इस संवित्को भान होता है ॥ ७४ ॥ उसको ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि प्रयत्नसे मार्जन (मिथ्यारूपसे

निश्चय) करनाचाहिये और उसका मार्जन न करनाही आत्माके साथ महासंसारका संबन्धहै ॥ ७५ ॥ और इस दृश्यका चित्तसे मार्जन (मिथ्या निश्चय) मोक्ष है यह वार्ता अनुभूत है, और दृश्यका सत्यरूपसे दर्शन जन्ममरण-आदि अनंतदुःखके लिये है ॥ ७६ ॥

असंवित्तिरजाड्यस्थासुखायाजननात्मने ॥ अजडोगलितानंदस्त्यक्तसंवेदनोभव ॥ असंवेद्यप्रबुद्धात्मा यस्तुसत्वंरघूद्वह ॥ ७७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अजडश्चाप्यसंवित्तिःकीदृशोभवतिप्रभो ॥ असंवित्तौच जाड्यंतत्कथंवाविनिवर्तते ॥ ७८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यःसर्वत्रानवस्थास्थोविश्रांतास्थोनकुत्रचित् ॥ जीवोनविंदतेकिंचिदसंविदजडोहिसः ॥ ७९ ॥ संविद्वस्तुदृशालंबःसयस्येहनविद्यते ॥ सोसंविदजडः प्रोक्तःकुर्वन्कार्यशतान्यपि ॥ ८० ॥

अर्थ—विषयोंका अदर्शन चिदेकरस तथा जडतारहित आत्मस्वभावमें परिणत होताहै इसलिये तुम विषय-दर्शनको त्यागकर पूर्णानंदरूप होजाओ, क्योंकि जो संवेद्य (विषय) रहितभी स्वयंप्रबुद्ध आत्मा है वह तुम हो ॥ ७७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! अजड और असंवेदन (ज्ञान तथा जडतारहित) कैसे होताहै ? क्योंकि जडताके त्यागमे संवेदन (ज्ञान) मात्र शेष और संवेदनके त्यागमें जडताका शेष रहताहै इसलिये संवेदनके अभा-वमें जडता कैसे निवृत्त होती है ? ॥ ७८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! बाह्यपदार्थोंको सत्यरूपसे जानना इसको संवित् कहतेहैं, और जीवन्मुक्तका जीव सर्वत्र वर्तमानविषयोंमें सत्यकी आस्था नहीं करता, और भूतभवि-ष्यत्में कहींभी सत्यरूपसे आस्था (विश्वास) नहीं करता इसलिये सत्यरूपसे कुछ न जाननेसे उस अंशमें काष्ठ-पाषाणके समान संवेदनरहित है और स्वयंप्रकाशरूप होनेसे वह अजड (जडता शून्य) भी है ॥ ७९ ॥ पदा-र्थोंको सत्यबुद्धिसे जाननेको संवित् कहते हैं इस सद्वस्तुरूप संवित्का आलंब जिसको इस संसारमें नहीं है उसको असंवित् और अजड कहतेहैं चाहै वह अनन्तकार्य्योंको करताभी हो ॥ ८० ॥

संवेद्येनहृदाकाशोमनागपिनलिप्यते ॥ यस्यासावजडासंविज्जीवन्मुक्तश्चकथ्यते ॥ ८१ ॥ यदानभाव्य तेकिंचिन्निर्वास्नितयात्मनि ॥ बालमूकादिविज्ञानमिवचस्थीयतेस्थिरम् ॥ ८२ ॥ तदाजाड्यविनिर्मुक्त मच्छवेदनमाततम् ॥ आश्रितंभवतिप्राज्ञोयस्माद्भूयोनलिप्यते ॥ ८३ ॥ समस्तवासनात्यागीनिर्विक ल्पसमाधितः ॥ नीलत्वमिवखात्स्फारआनंदस्संप्रवर्तते ॥ ८४ ॥

अर्थ—और जिसकी बुद्धि विषयकेसाथ सद्रूपसे किंचित्भी लिप्त नहीं होती वह पुरुष अजड, असंवित् तथा जीवन्मुक्त कहाजाताहै ॥ ८१ ॥ वासनारहित होनेसे जब आत्मामें वर्तमानकालके किसी पदार्थोंकी भावना नहीं की जाती और बालक मूक आदिके तुल्य विज्ञान स्थित रहताहै ॥ ८२ ॥ उससमय जडतासे निर्मुक्त तथा व्याप्त स्वच्छज्ञान बुद्धिमान् पुरुषका अवलंब होताहै जिससे कि पुनः वह विषयमें लिप्त नहीं होता ॥ ८३ ॥ समस्त-बासनाओंके त्यागीके लिये निर्विकल्पसमाधिसे विशाल आनन्द ऐसे प्रवृत्त होताहै जैसे आकाशसे नीलता ॥ ८४ ॥

योगिनस्तत्रतिष्ठंतिसंवेदनमसंविदः ॥ तन्मयत्वादनाद्यंतंतदप्यंतर्विलीयते ॥ ८५ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्पृश ञ्जिघ्रन्नपितेनसउच्यते ॥ अजडोगलितानंदस्त्यक्तसंवेदनःसुखी ॥ ८६ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यकष्टयाय त्नचेष्टया ॥ तरदुःखांबुधेःपारमपारगुणसागर ॥ ८७ ॥ यथाबीजाद्बृहद्वृक्षोव्योमव्याप्नोतिकालतः ॥ तथैवेदंस्वसंकल्पात्संवेद्यमसदुत्थितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—संविद्रहित योगीजन उसी परमानंदस्वरूपमें स्थित रहते हैं और तन्मय होनेसे अनादि अनंत ब्रह्मा-कार संवेदन (ज्ञान) भी ब्रह्मप्रकाशकेही मध्यमें लीन होजाताहै है ॥ ८५ ॥ चलते बैठते स्पर्शकरते और देख-तेभी वह संवेदनका त्यागी पुरुष सुखी और अजड तथा परमानन्दरूप कहलाताहै ॥ ८६ ॥ हे अपारगुणोंके सागर रामजी ! इस दृष्टिका अवलम्बन करके प्राणायाम आदि श्रमसे साध्य यत्नकी चेष्टासे दुःखरूप समुद्रके पारहो ॥ ८७ ॥ जैसे बीजसे महान्वृक्ष काल पाके आकाशको व्याप्तकरताहै ऐसेही आत्माके संकल्पसे अविर्भूत यह विषयप्रपंच मिथ्या है ॥ ८८ ॥

यदासंकल्प्यसंकल्प्यसंवित्स्वांविंदतेवपुः ॥ तदास्यजन्मजालस्यसैवगच्छतिबीजताम् ॥ ८९ ॥ जन यित्वात्मनात्मानंमोहयित्वापुनःपुनः ॥ स्वयंमोक्षंनयत्यंतःसंवित्स्वांविद्धिराघव ॥ ९० ॥ यदेवभावयत्ये षातदेवभवतिक्षणात् ॥ नभवद्भूमिकामुक्तासमायातिचिराद्वपुः ॥ ९१ ॥ देवोनासौसुरोरक्षोयक्षःकिं किन्नरोजनः ॥ आत्मैवाद्यविलासिन्याजगन्नाट्यंप्रनृत्यति ॥ ९२ ॥

अर्थ—पुनः २ संकल्प करके जब यह संवित् अपने संकल्पके स्वरूपको प्राप्त होती है तब वही अपने जन्मसमूहके बीजभावको प्राप्त होती है ॥८९॥ हे रामजी ! यह संवित् अपनेको आपही उत्पन्न करके और पुनः २ मोहन करके जब हृदयमें स्थित आत्मतत्वको देखती है तब आपही अपनेको मोक्षको प्राप्तकरती है ॥ ९० ॥ यह संवित् जैसी भावना करती है क्षणभरमें वैसाही होजाती है परंतु रागादिकी भूमिकाओंसे बिना मुक्त हुये चिरकालसेभी अपने यथार्थ शुद्धचिद्रूपको नहीं प्राप्तहोती ॥ ९१ ॥ यह जो जगत्में देव असुर यक्ष किन्नरआदि देखते हो यह देव असुरआदि नहीं है किन्तु यह आत्माही है जो आदिसिद्ध विलासवती मायाके संग जगत्रूप नाट्यका नृत्य करताहै.

बध्वात्मानंरुदित्वाचकोशकारकृमिर्यथा ॥ चिरात्केवलतामेतिस्वयंसंवित्स्वभावतः ॥ ९३ ॥ जगज्जलधिजालानांसंविज्जलमलंगता ॥ एषैवापूर्वदिक्चक्रंस्फुरत्यद्र्यादितांगता ॥ ९४ ॥ द्यौःक्ष्मावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ इत्यस्यावीचयःप्रोक्ताःसंवित्सलिलसंततेः ॥ ९५ ॥ संविन्मात्रंजगत्सर्वंद्वितीयानास्तिकल्पना ॥ इत्येवसम्यग्ज्ञानेनसंविद्गच्छतिनान्यताम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—जैसे मकरी वा मायावी नट अपनेको बाधके और रोदन करके पुनः अपनेको मुक्त करताहुआ देखताहै ऐसेही यह संवित् स्वयं अपने स्वभावसे चिरकालसे केवलताको प्राप्त होती है ॥ ८३ ॥ जगत्रूप समुद्रके समूहोंकी पर्याप्तजलरूपताको संवित्ही प्राप्त है, और यही अपूर्व दिशाओंका मण्डल है, तथा यही पर्वतआदिरूपसेभी स्फुरित होरही है ॥ ९४ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदी और दिशा ये सब संवित्रूप जलके समुद्रके तरंग कहेगये हैं ॥ ९५ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् संविन्मात्रही है इसमें दूसरी कल्पना नहीं है इस सत्यज्ञानसे संवित् अद्वैतब्रह्मरूपताको प्राप्त होती है ॥ ९६ ॥

यदानविंदतेकिंचित्स्पंदतेननवेपते ॥ स्वात्मन्येवस्थितिंयातिसंविन्नोलिप्यतेतदा ॥ ९७ ॥ अथास्याः संविदोरामसन्मात्रंबीजमुच्यते ॥ संविन्मात्राद्दुदेत्येषाप्राकाश्यमिवतेजसः ॥ ९८ ॥ द्वेरूपेतत्रसत्तायाएकंनानाकृतिस्थितम् ॥ द्वितीयमेकरूपंतुविभागोयंतयोःशृणु ॥ ९९ ॥ घटतापटताचैवत्वत्तामत्तेति कथ्यते ॥ सत्तारूपविभागेनयत्तन्नानाकृतिस्थितम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जब यह संवित् न चलायमान होती है न कम्पित होती है किन्तु अपने आत्मामें स्थिरताको प्राप्त होती है उससमय यह संवित् किसीमें लिप्त नहीं होती अर्थात् अपने स्वरूपके उत्तमज्ञानसे युक्त है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर इस संवित्का सन्मात्र बीज मैं तुमसे कहताहुं कि संविन्मात्ररूप ब्रह्मसे यह सम्वित् (प्रतिबिंबसम्वित्) ऐसे उदित होती है जैसे सूर्यआदि तेजसे प्रभा ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! इस सत्ताके दो रूप हैं उनमेंसे एक तो नानाप्रकारके आकारसे स्थित है और दूसरा तो एक सन्मात्ररूप है, अब उनका यह विभाग तुम सुनो ॥९९॥ घटता, पटता, त्वत्ता और मत्ताआदि रूपके विभागसे जो सत्ता कही जाती है वह तो नानाआकारसे स्थितहै

विभागंतुपरित्यज्यसत्तैकात्मतयाततम् ॥ सामान्येनैवसत्तायारूपमेकमुदाहृतम् ॥ १०१ ॥ विशेषंसंपरित्यज्यसन्मात्रंयदलेपकम् ॥ एकरूपंमहारूपंसत्तायास्तत्पदंविदुः ॥ २ ॥ रूपंनानाकृतित्वेनसत्तायानकदाचन ॥ असंवेद्यंसंभवतितस्मादेतदवस्तुकम् ॥ ३ ॥ एकरूपंतुयद्रूपंसत्तायाविमलात्मकम् ॥ नकदाचनतद्यातिनाशंनापिचविस्मृतिम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—और घट, पट, तुम, हम इत्यादि विभागको त्यागकर सबके आत्मारूपसे जो सत्ता स्थितहै वह सब जगत्के अधिष्ठानरूप साधारणस्वभावसे सत्ताका एकरूप कहागयाहै ॥ १०१ ॥ घटपटआदि विशेषको त्यागकर सर्वत्र व्याप्त और निर्लिप्त जो सन्मात्र है उस सत्ताके एक महारूपको वस्तुतत्व (ब्रह्मपद) कहते हैं ॥ १०२ ॥ और सत्ताका जो घटपटआदि नाना आकार स्थितहै वह घटपट चूर्ण धूलिआदि अवस्थाओंमें अनुवृत्तरूपसे काष्ठादि संवेद्य नहीं है अर्थात् यह घट है यह पट है यह पिंड है यह चूर्ण है इत्यादि अवस्थाओंमें घटादिकी अनुवृत्ति नहीं होती और सन्मात्र (है) यह सर्वत्र लगाहै इसलिये घटपटआदि अवस्तु है और सन्मात्रही सद् वस्तुहै ॥ १०३ ॥ और सत्ताका एक जो विमल सन्मात्ररूप है वह न तो कदाचित् विस्मृत होता और न नाशको प्राप्त होताहै ॥ १०४ ॥

कालसत्ताकलासत्तावस्तुसत्तेयमित्यपि ॥ विभागकलनांत्यक्त्वासन्मात्रैकपरोभव ॥ ५ ॥ कालसत्तास्वसत्ताचप्रोन्मुक्तकलनासती ॥ यद्यप्युत्तमसद्रूपातथाप्येषानवास्तवी ॥ ६ ॥ विभागकलनायत्रविभिन्नपददायिनी ॥ नानाताकारणंदृष्टातत्कथंपावनंभवेत् ॥ ७ ॥ सत्तासामान्यमेवैकंभावयत्सकलंवपुः ॥ परिपूर्णपरानंदीतिष्ठाभारितदिग्भरः ॥ ८ ॥

अर्थ—भूत भविष्यत् पदार्थोंके व्यवहारोंमें "अस्ति" (है) इस व्यवहारके दर्शनसे वर्तमानकालही सब वस्तुओंका कारणहै यह कालकी सत्ता, अवयवोंके पुंजही अवयवीरूपसे स्फुरित होते हैं यह कला सत्ता और अवयवियोंमें अनुगत सत्ता जाति है यह वस्तुकी सत्ताहै इत्यादि सबकी विभागकल्पनाको त्यागकर तुम सन्मात्रमें परायण हो ॥ १०५ ॥ और कालकी सत्ताभी सब जगत्की सत्ताकेसमान अध्यस्तकल्पनाको त्यागकर उत्तम सत्ताही है तथापि विभक्तरूपसे बाधके योग्य होनेसे यह कालकी सत्ता वास्तविक नहीं है ॥ १०६ ॥ और भिन्न २ पदको देनेहारी विभागकी कल्पना जहां अनेकताका कारण दृष्ट है वह पद भला परमपावन कैसे होसकताहै ॥ १०७ ॥ हे रामजी ! सत्ता सामान्यरूपसे संपूर्णशरीरको एकरूपसे भावना करतेहुये परिपूर्ण परमानंदयुक्त सब दिशाओंको तथा उनमें रहनेवाले सब पदार्थोंको पूर्णकरके तुम स्थित रहो ॥ १०८ ॥

सत्तासामान्यमात्रस्ययाकोटिःकोविदेश्वर ॥ सैवास्यबीजतांयातातत‌एवप्रवर्तते ॥ ९ ॥ सत्तासामान्यपर्यंतेयत्तत्कलनयोज्झितम् ॥ पदमाद्यमनाद्यंतंतस्यबीजंनविद्यते ॥ ११० ॥ सत्तालयंयातियत्रनिर्विकारंचतिष्ठति ॥ भूयोनावर्ततेदुःखेतत्रलब्धपदःपुमान् ॥ ११ ॥ तद्धेतुस्सर्वहेतूनांतस्यहेतुर्नविद्यते ॥ संसारःसर्वसाराणांतस्मात्सारंनविद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! सत्तासामान्यकी परम अवधिभूत जो सत्ता है वही इस जगत्के तथा प्रतिबिंबचेतनकी बीजताको प्राप्त है क्योंकि उसीसे यह सब प्रवृत्तहै ॥ १०९ ॥ सब सत्ताओंकि परम अवधिमें जो सब कल्पनाओंसे रहित अनादि अनंत पद है उसका बीज कोई नहीं है ॥ ११० ॥ और जहां सत्‌धर्मतारूप सत्ताभी धर्मधर्मीके विभागकी कल्पनासे लयको प्राप्त होती है और जो पद निर्विकार स्थित रहताहै उस पदमें जो स्थितिको पाताहै वह पुनः इस दुःखमय संसारमें नहीं आता और मोक्षरूप पुरुषार्थके साधनमें समर्थ होनेसे वही पुरुष है ॥ १११ ॥ वह पद सब कारणोंका कारण है और उसका कारण कोई नहीं है तथा वह सब सारवस्तुओंका सारहै उसका सार कोई नहीं है ॥ ११२ ॥

तस्मिंश्चिद्दर्पणेस्फारेसमस्तावस्तुदृष्टयः ॥ इमास्ताःप्रतिबिंबंतिसरसीवतटद्रुमाः ॥ १३ ॥ सर्वेभावाइमेतत्रस्वदंतेसाधुवारिधेः ॥ षड्रसाइवजिह्वायाःप्रकटत्वंप्रयांतिच ॥ १४ ॥ तस्मादच्छतरस्यापिचिदाकाशस्यवैपदम् ॥ सर्वेषांस्वादुजातीनामलमास्वादनंचतत् ॥१५॥ जायतेवर्ततेचैववर्द्धतेस्पृश्यतेथवा ॥ तिष्ठंतिचगलंतीहतत्रांगजगतांगणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस चित्तरूप विशालदर्पणमें ये सब वस्तुओंकी दृष्टि ऐसे प्रतिबिंबित होती है जैसे तडागमें तटके वृक्ष ॥ ११३ ॥ उसी प्रत्यक्‌चेतनमें अध्यस्त होनेसे सब पदार्थ स्वादिष्ट होते हैं अर्थात् इन्द्रियोंकी प्रीति उत्पन्न करते हैं और उसी स्वादके समुद्रसे सब आनंद प्रकटताको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे षट्रस जिव्हाको ॥ ११४ ॥ स्वादरहितभी विषय जिसके संयोगसे स्वादुताको प्राप्त होते हैं इस कारण वह चिदाकाशका स्वरूप सब स्वादुजातीय आनन्द तथा प्रियोंके मध्यमें अतिस्वादुमय और प्रियतम है ॥ ११५ ॥ हे प्रिय रामजी ! उसी आनंदमय परमात्मासे सब ब्रह्मांडोंके गण उत्पन्न होते हैं, उसीमें स्थित रहतेहैं, बढतेहैं, स्पर्श करते हैं, स्थितहैं, और अंतमें लीनभी उसीमें होते हैं ॥ ११६ ॥

तत्तद्गुरुगरिष्ठानांतत्तल्लघुलघीयसाम् ॥ तत्तत्स्थूलंस्थविष्ठानामणीयस्तदणीयसाम् ॥ ११७ ॥ दवीयसांदविष्ठंतदंतिकानांतदंतिकम् ॥ कनीयसांकनीयस्तत्तज्ज्येष्ठंज्यायसामपि ॥ १८ ॥ तेजसामपितत्तेजस्तमसामपितत्तमः ॥ वस्तूनामपितद्वस्तुदिशामप्यंगदिक्परा ॥ १९ ॥ तत्रकिंचिन्नकिंचिच्चतत्तदस्तीवनास्तिच ॥ तत्तद्दृश्यमदृश्यंचतत्तदस्मिनचास्मिच ॥ १२० ॥ रामसर्वप्रयत्नेनतस्मिन्परमपावने ॥ पदेस्थितिमुपायासियथाकुरुतथानघ ॥ २१ ॥ तदमलमजरंतदात्मतत्त्वंतदवगतावुपशांतिमेतिचेतः ॥ अवगतवितथैकतत्स्वरूपोभवभयमुक्तपदोसितचिराय ॥ १२२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसृतिबीजविचारयोगोपदेशोनामैकनवतितमःसर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—वह प्रसिद्ध परमात्मा गुरुतर वस्तुओंमें सबसे गुरुतम, सब लघुतर वस्तुओंमें लघुतम, स्थूलतरोंमें स्थूलतम, और अणुतर वस्तुओंमें अणुतम (सबसे छोटा) है ॥ ११७ ॥ वही दूरतर पदार्थोंमें सबसे दूर, निकटतरोंमें सबसे निकट, कनिष्ठोंमें सबसे कनिष्ठ (लहुरा) और ज्येष्ठोंमें सबसे ज्येष्ठ ॥ ११८ ॥ वही सूर्य्यआदि

तेजोंकाभी तेज (प्रकाशक) अंधकारोंकाभी अंधकार, वस्तुओंकाभी वस्तु (आत्मा) और दिशाओंकाभी दिक् (अवकाशदाता) है ॥ ११९ ॥ लोकमें प्रसिद्धवस्तुओंमेंसे वह कुछ नहीं, अतिअल्प प्रसिद्ध वस्तुभी वही, भाव तथा अभावरूपभी वही है, दृश्य तथा अदृश्यरूप वही है, और प्रत्यक् तथा अहंकाररूपसेभी वही है ॥ १२० ॥ हे पापरहित रामजी ! उस परमपावनपदमें जिसप्रकार तुम स्थितिको प्राप्त होओ सबप्रयत्नोंसे वही उपाय करो ॥ १२१ ॥ हे रामजी ! वह आत्मपद अमल और अजर है उसीके साक्षात्कारअनुभवसे चित्त शांतिको प्राप्तहोताहै, इसलिये जिससमय तुम उस व्यापकस्वरूपको जानजाओगे उसीसमय पुनः चिरकाल (सदा) के लिये संसारमें न आनेके अर्थ तुम संसारके भयसे मुक्तरूपही हो ॥ १२२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसृतिबीजविचारयोगोपदेशोनामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस ९२ के सर्गमें पूर्वकथित स्थितियोंके भेदोंमें यत्नका गौरव और लाघव, और वासनाका क्षय, मनका नाश, तथा ज्ञानका साथ अभ्यास करना चाहिये यह विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एतानितानिप्रोक्तानित्वयाबीजानिमानद ॥ कतमस्यप्रयोगेणशीघ्रंतत्प्राप्यतेपदम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतेषांदुःखबीजानांप्रोक्तंयद्यन्मयोत्तरम् ॥ तस्यतस्यप्रयोगेणशीघ्रमासाद्यतेपदम् ॥ २ ॥ सत्तासामान्यकोटिस्थेद्रागित्येवपदेयदि ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनबलात्संत्यज्यवासनाम् ॥३॥ स्थितिंबध्नासितत्त्वज्ञक्षणमप्यक्षयात्मिकाम् ॥ क्षणेस्मिन्नेवतत्साधुपदमासादयस्यलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! संसृतिरूपलताके आपने पूर्वोक्त बीज कहे हैं उनमेंसे किस उपायके प्रयोगसे (निवृत्तिसे) परमपद प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इन दुःखोंके बीजोंका उत्तर जो २ मैंने कहाहै उस २ की निवृत्तिसे शीघ्र परमपद प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ सत्तासामान्य अर्थात् शोधित तत्पदार्थकी पराकाष्ठामें स्थित शोधित त्वंपदार्थकी एकतासे अखण्डपदमें बलसे वासनाको त्यागकर पौरुषके यत्नसे ॥ ३ ॥ यदि निश्चलस्थितिको क्षणभरकेलियेभी प्राप्तकरते हो तो उसी क्षणमें पूर्णरीतिसे उस उत्तमपदको पाओगे ॥ ४ ॥

सत्तासामन्यरूपेवाकरोषिस्थितिमंगचेत् ॥ तत्किंचिदधिकेनेहयत्नेनाप्रोषितत्पदम् ॥ ५ ॥ संवित्तत्वे कृतध्यानोयदितिष्ठसिचानघ ॥ यद्यत्नेनाधिकेनोच्चैरासादयसितत्पदम् ॥ ६ ॥ संवेद्येकेवलेध्यानंनसंभवतिराघव ॥ सर्वत्रसंभवादस्याःसंवित्तेरेवसर्वदा ॥ ७ ॥ यच्चिंतयसियद्यासियत्तिष्ठसिकरोषिच ॥ तत्रतत्रस्थितासंवित्संविदेवतदेवसा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! शोधित जगत्के कारण सत्तासामान्यरूपमें यदि तुम स्थितिको करते हो तो किंचित् बोधरूप अधिक यत्नसे तुम आत्मपदको पाओगे ॥ ५ ॥ पापरहित रामजी ! शोधित त्वंपदार्थरूप सम्वित्तत्वमें ध्याननिष्ठ होके यदि तुम स्थित हो तो अधिकयत्नसे उस उच्चपदको प्राप्त करोगे ॥६॥ हे रामजी ! केवल संवेद्य (विषय) में तो ध्यानका सम्भव नहीं है क्योंकि विषयोंके पूर्व सदासर्वत्र इस सम्वित्की स्फूर्तिकाही सम्भव है और सम्वित्के छिपानेसे विषयका भान नहीं होसकता ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो कुछ तुम चिंतन करते हो, जाते हो, स्थित हो, और करते हो वहां २ सम्वित् स्थित है इसलिये चिंतन और चिंतनीय आदि सब कुछ सम्वित्ही है ॥ ८ ॥

वासनासंपरित्यागेयदियत्नंकरोषिच ॥ तत्तेशिथिलतांयांतिसर्वाधिव्याधयःक्षणात् ॥ ९ ॥ पूर्वेभ्यस्तुप्रयत्नेभ्योविषमोयंहिसंस्मृतः ॥ दुःसाध्योवासनात्यागःसुमेरून्मूलनादपि ॥१०॥ यावद्विलीनंनमनोनतावद्वासनाक्षयः ॥ नक्षीणावासनायावच्चित्तंतावन्नशाम्यति ॥ ११ ॥ यावन्नतत्त्वविज्ञानंतावच्चित्तशमःकुतः ॥ यावन्नचित्तोपशमोनतावत्तत्त्ववेदनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वासनाके परित्यागमें यदि तुम यत्न करोगे तब तो तुमारी आधिव्याधि सब क्षणमेंही दूर होजांयगे ॥ ९ ॥ पूर्व ध्यानआदि जितने प्रयत्न कहे हैं उन सबसे यह भयंकर कहागया है क्योंकि वासनाका त्याग सुमेरुके उखाडनेसेभी दुःसाध्य है ॥ १० ॥ जबतक मनका लय नहीं होता तबतक वासनाका क्षय नहीं होता और जबतक वासना क्षीण नहीं होती तबतक चित्त नहीं शांत होता ॥ ११ ॥ और जबतक आत्मतत्वका ज्ञान नहीं है तबतक चित्तकी शांति कहां और जबतक चित्तकी शांति नहीं है तबतक आत्मतत्वका ज्ञान कहां ? ॥ १२ ॥

यावन्नवासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः ॥ यावन्नतत्त्वसंप्राप्तिर्नतावद्वासनाक्षयः ॥ १३ ॥ तत्त्वज्ञानं मनोनाशोवासनाक्षयएवच ॥ मिथःकारणतांगत्वादुःसाध्यानिस्थितान्यतः ॥ १४ ॥ तस्माद्राघवयत्ने नपौरुषेणविवेकिना ॥ भोगेच्छांदूरतस्त्यक्त्वात्रयमेतत्समाश्रयेत् ॥ १५ ॥ सर्वथातेसमंयावन्नस्वभ्य स्तामुहुर्मुहुः ॥ तावन्नपदसंप्राप्तिर्भवत्यपिसमाशतैः ॥ १६ ॥

अर्थ—जबतक वासनाका नाश नहीं होता तबतक आत्मतत्वका ज्ञान कहां, और जबतक आत्मतत्वकी प्राप्ति नहीं है तबतक वासनाका क्षय कहां ? ॥ १३ ॥ आत्मतत्वका ज्ञान, मनका नाश, और वासनाका क्षय ये तीनों परस्पर कारणताको प्राप्त हैं इसलिये दुःसाध्य स्थित है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इसकारणसे प्राणीको चाहिये कि विवेकयुक्त पौरुषसे प्रयत्न करके भोगकी इच्छाको दूर करके इन तीनों (मनोनाश आदि) का समाश्रय करे ॥१५॥ ये तीनों साथही बार २ जबतक अभ्यास नहीं किये जाते तबतक अनन्तवर्षोंसेभी ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥१६॥

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशामहामते ॥ समकालंचिराभ्यस्ताभवंतिफलदामुने ॥ १७ ॥ एकैकशोनिषे व्यंतेयद्येतेचिरमप्यलम् ॥ तन्नसिद्धिंप्रयच्छंतिमंत्राःसंकीलिताइव ॥ १८ ॥ चिरकालोपरचिताअप्ये तेसुधियापिच ॥ एकशःपरमभ्येतुंनशक्ताःसैनिकाइव ॥१९॥ सममुद्योगमानीताःसंतएतेहिधीमता ॥ संसाराब्धिनिकृंतंतिजलान्यद्रितटानिव ॥ २० ॥

अर्थ—हे महामते मननशील रामजी ! वासनाका क्षय मनका नाश और आत्मतत्वका ज्ञान ये तीनो समान-कालमें चिरकालतक अभ्यास कियेहुये फलदायक होते हैं ॥ १७ ॥ और एक २ चिरकालतक पूर्णरीतिसे सेवितभी परंतु सिद्धिको ऐसे नहीं देते जैसे कीलन कियेहुये मंत्र ॥ १८ ॥ बुद्धिमानपुरुषसे और चिरकालतक सेवादिसे वशमें करके कार्य्यमें एक २ करके नियुक्त ये परमात्माको प्राप्त होनेको ऐसे नहीं समर्थ होते जैसे एक २ योधा शत्रुके ऊपर आक्रमणको ॥ १९ ॥ और बुद्धिमान्पुरुषसे साथही वासनाके क्षय आदि संसाररूप समुद्रको ऐसे काटते हैं जैसे प्रवाहरूपसे मीलित जल पर्वतके तटोंको ॥ २० ॥

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशाःप्रयत्नतः ॥ समंसेव्यास्तवचिरंतेनतातनलिप्यसे ॥ २१ ॥ त्रिभिरेतैश्चि राभ्यस्तैर्हृदयग्रंथयोदृढाः ॥ निःशेषमेवत्रुट्यंतिबिसच्छेदाद्गुणाइव ॥ २२ ॥ जन्मांतरशताभ्यस्ताराम संसारसंस्थितिः ॥ साचिराभ्यासयोगेनविनानक्षीयतेक्वचित् ॥ २३ ॥ गच्छन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रस्ति ष्ठन्जाग्रत्स्वपंस्तथा ॥ श्रेयसेपरमायास्यत्रयस्याभ्यासवान्भव ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे प्रिय रामजी ! वासनाका क्षय, आत्मतत्वका ज्ञान और मलका नाश ये तीनो समकालहीमें चिरकालतक तुमारे सेव्य हो इससे तुम निर्लिप्त स्वभाव ब्रह्मपदमें स्थित होजाओगे ॥ २१ ॥ इन तीनोंके चिरकाल-तक अभ्यास करनेसे हृदयकी सब दृढग्रंथि ऐसे टूट जाती है जैसे मृणाल (कमल) दंडके छेदनसे उसके सूत ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अनेक जन्मोंसे अभ्यास कीहुई यह संसारकी स्थिति है वह विना चिरकालके अभ्यास योगके क्षीण नहीं होती ॥ २३ ॥ हे रामजी ! चलते, फिरते, सुनते, स्पर्श करते, सूंघते, स्थितरहते, जागते और सोतेहुयेभी परम कल्याण मोक्षकेलिये तुम तीनोंका अभ्यास करो ॥ २४ ॥

वासनासंपरित्यागसमंप्राणनिरोधनम् ॥ विदुस्तत्त्वविदस्तस्मात्तदप्येवंसमाहरेत् ॥ २५ ॥ वासनासं परित्यागाच्चितंगच्छत्यचित्तताम् ॥ प्राणस्पंदनिरोधाच्चयथेच्छसितथाकुरु ॥२६॥ प्राणायामचिराभ्या सैर्युक्त्याचगुरुदत्तया ॥ आसनाशनयोगेनप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २७ ॥ यथाभूतार्थदर्शित्वाद्वासना नप्रवर्तते ॥ आदावंतेचवस्तूनामविसंवादियत्स्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—वासनाके त्यागके साथही प्राणायामका अभ्यासभी करना तत्वज्ञानी लोग कहतेहैं इसलिये उसकाभी अभ्यास करनाचाहिये॥२५॥वासनाके त्याग तथा प्राणके निरोधसे चित्त अचित्तताको प्राप्त होताहै. अब तुमारी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥२६॥ प्राणायामके अभ्याससे योगाभ्यासमें कुशल गुरुकी दीहुई युक्तिसे, स्वस्तिकआदि आस-नके जयसे,हित मित तथा पवित्र भोजनसे और यम नियम आदि योगसे प्राणोंकी गति निरुद्ध होती है॥२७॥सब वस्तु-ओंके आदि अन्त तथा मध्यमें विवादरहित सन्मात्र आत्मा स्थित है इस यथार्थदर्शनसे वासना नहीं प्रवृत्त होती २८

रूपंतद्दर्शनंज्ञानंक्षीयतेतेनवासना ॥ निःसंगव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् ॥ २९ ॥ शरीरनाशदर्शि त्वाद्वासनानप्रवर्त्तते ॥ वासनाविभवेनष्टेनचित्तंसंप्रवर्तते ॥ ३० ॥ संशांतेपवनस्पंदेयथापांसुर्नभस्त ले ॥ यःप्राणपवनस्पंदश्चित्तस्पंदःसएवहि ॥ ३१ ॥ तस्माज्जगतिजायंतेपांसवोवकरादिव ॥ प्राणस्पं दजयेयत्नःकर्तव्योधीमतोच्चकैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—बहिर्मुखजनोंके संगके अभावसे, और सांसारिक मनोरथोंके वर्जनसे आत्मरूपका दर्शन तथा ज्ञान होताहै और उससे वासना क्षीण होती है ॥ २९ ॥ शरीरके नाशके देखनेसे वासना नहीं होती और वासनाके विभवके नष्ट होनेसे चित्त नहीं प्रवृत्त होता ॥ ३० ॥ प्राणस्पंदके शांत होनेसे चित्तका स्पंद ऐसे शांत होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे आकाशमें धूलि, क्योंकि जो प्राणस्पंद हैं वेही चित्तके स्पंद हैं ॥ ३१ ॥ इसी प्राणकी गतिसे जगत्में अनेक अनर्थ ऐसे होते हैं जैसे धूलिकी राशिसे धूलि उडती है, प्राणके स्पंदके निरोधमें अति महान् प्रयत्न ॥३२

उपविश्योपविश्यैकचित्तकेनमुहुर्मुहुः ॥ अथवैनंक्रमंत्यक्त्वाचित्ताक्रमणमेवचेत् ॥ ३३ ॥ रोचतेतत्तदाप्नोषिकालेनबहुनापदम् ॥ नशक्यतेमनोजेतुंविनायुक्तिमनिंदिताम् ॥ ३४ ॥ अंकुशेनविनामत्तंयथादुष्टमतंगजम् ॥ अध्यात्मविद्याधिगमःसाधुसंगमएवच ॥ ३५ ॥ वासनासंपरित्यागःप्राणस्पंदनिरोधनम् ॥ एतास्तायुक्तयःपुष्टाःसंतिचित्तजयेकिल ॥ ३६ ॥

अर्थ—एकान्तमें बैठ २ के बार करना चाहिये, अथवा यदि हठयोग करनेमें शक्ति वा रुचि नहीं है और चित्तकाही आक्रमण (जीतना) तुमको रुचताहै तो बहुतकालसे उस पदको पाओगे, क्योंकि अल्पकालमें अध्यात्मशास्त्रोक्त अनिंदित युक्तिके बिना चित्त जीतनेके शक्य ऐसे नहीं है जैसे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अंकुशके विना दुष्ट मत्त गज और अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति, साधुमहात्माओंका संग ॥ ३५ ॥ वासनाका त्याग, और प्राणके स्पंदका निरोध, ये प्रबलयुक्तियां निश्चयरूपसे चित्तके जीतनेके लिये हैं ॥ ३६ ॥

याभिस्तज्जीयतेक्षिप्रंधाराभिरिवभूरजः ॥ सतीषुयुक्तिष्वेतासुहठान्नियमयंतिये ॥ ३७ ॥ चेतस्तेदीपमुत्सृज्यविनिघ्नंतितमोंजनैः ॥ विमूढाःकर्तुमुद्युक्तायेहठाच्चेतसोजयम् ॥ ३८ ॥ तेनिबध्नंतिनागेंद्रमुन्मत्तंबिसतंतुभिः ॥ चित्तंचित्तस्यवाऽदूरंसंस्थितंस्वशरीरकम् ॥ ३९ ॥ साधयंतिसमुत्सृज्ययुक्तिंयेतान्हठान्विदुः ॥ भयाद्भयमुपायांतिक्लेशात्क्लेशंव्रजंतिते ॥ ४० ॥

अर्थ—जिन युक्तियोंसे वह चित्त शीघ्र ऐसे जीता जाताहै जैसे जलकी धाराओंसे पृथिवीकी धूलि, और इन पूर्वोक्तयुक्तियोंके विद्यमान रहते जो कोई सत्शास्त्रवेत्ता गुरुओंसे कयेहुए मार्गसे रहित कायका शोषण तथा मंत्र यंत्रादिरूप हठसे चित्तको वश करते हैं वे मानो दीपकको त्यागके अंजनसे अंधकारको नष्ट करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वे मानो कमलके सूतोंसे हाथियोंको बांधते हैं, और चित्तको अथवा चित्तके समीपमें स्थित अपने तुच्छ शरीरको ॥ ३९ ॥ स्थिर करनेको जो मूढ युक्तिको त्यागकरके यत्न करते हैं उनको महात्मालोग शठ कहते हैं और वे एक भयसे अन्यभयको तथा एक क्लेशसे दूसरे क्लेशको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥

निर्वृतिंनाधिगच्छंतिदुर्भगाइवजंतवः ॥ भ्रमंतिगिरिकूटेषुफलपल्लवभोजनाः ॥ ४१ ॥ मुग्धमुग्धधियोभीतावराकाहरिणाइव ॥ मतिराल्लनशीर्णांगीतदीयापेलवांगिका ॥ ४२ ॥ नक्वचिद्यातिविश्वासंमृगीग्रामगतायथा ॥ कल्लोलकलितंचेतस्तेषांजलइवाहिते ॥ ४३ ॥ प्रोह्यतेप्रपतद्दूरंतृणंगिरिनदीष्विव ॥ कालंयज्ञतपोदानतीर्थदेवार्चनभ्रमैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—और वे अभागे जीवोंके समान उत्तम धीरताकी विश्रांतिको नहीं पाते किंतु पर्वतोंके शीखरोंके फल तथा पत्र भोजन करके भ्रमण किया करते हैं ॥ ४१ ॥ और वे अतिमूर्खतायुक्त बुद्धिरहित दीन हरिणके समान भयभीत रहते हैं और छिन्न तथा कोमल अंगवाली उनकी मति ॥ ४२ ॥ कहींभी विश्वासको ऐसे नहीं प्राप्त होती जैसे ग्राममें प्राप्त मृगी, और जलमें तरंगके समान भयस्थानमें चिंतारूप तरंगोंसे व्याप्त तथा विषयके ओर गिरनेवाला उनका चित्त ॥ ४३ ॥ रागआदिसे दूर ऐसे प्राप्त किया जाताहै जैसे नदियोंमें तृण. और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, तथा देवार्चनके भ्रमोंसे ॥ ४४ ॥

चिरमाधिशतोपेताःक्षपयंतिमृगाइव ॥ आत्मतत्त्वंविधिवशात्कदाचित्केचिदेवते ॥ ४५ ॥ दुःखदोषशतादग्धाविदंतिनविदंतिवा ॥ आगमापायिनोऽनित्यानरकस्वर्गमानुषैः ॥ ४६ ॥ पातोत्पातकराकाराःक्षीयंतेकंदुकाइव ॥ इतोगच्छंतिनरकंततःस्वर्गमिहैवच ॥४७॥ आवृत्तिभिर्निवर्ततेसरसीवतरंगकाः ॥ तस्माद्वैतांपरित्यज्यदुर्दृष्टिंरघुनंदन ॥ ४८ ॥ शुद्धांसंविदमाश्रित्यवीतरागःस्थिरोभव ॥ ज्ञानवानेवसुखवान्ज्ञानवानेवजीवति ॥ ज्ञानवानेवबलवांस्तस्माज्ज्ञानमयोभव॥४९॥संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकंसंवित्पदंविकलनंकलयन्महात्मन्॥हृद्येवतिष्ठकलनारहितःक्रियांतुकुर्वन्नकर्तृपदमेत्यशमोदितश्रीः ५०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसृतिनिराकरणक्रमयोगोपदेशोनाम द्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२ ॥

अर्थ—सैकडों मानसी चिंताओंसे व्याप्त चिरकालको ऐसे बिताते हैं जैसे बनमें मृग. और दैवेच्छासे आत्मतत्वको उनमेंसे कदाचित् कोई ॥ ४५ ॥ जो अनेक दुःख तथा रागआदि दोषोंसे चारोओरसे पीडितहैं वे आत्मतत्व नहीं जानते और कदाचित् अधिक प्रयत्नसे जानतेभी हैं, और वे सदा उत्पत्तिविनाशशील तथा अनित्य, तथा नरकस्वर्ग मनुष्योंके भोगोंके भेदोंके निमित्तोंसे ॥ ४६ ॥ पतन और उत्पतनशील देहवाले होके कंदुक (गेंद) के समान पीडित होते हैं, कभी नरकमें जाते हैं कभी स्वर्गमें जाते हैं ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार आवृत्तियोंसे वे ऐसे स्थित रहते हैं जैसे तडागमें तरंग, इसकारण हे रघुनन्दन इस दृष्टिको त्यागके ॥ ४८ ॥ शुद्धसंवित्का आश्रय लेके, वीतराग होके तुम स्थिर हो. और हे रामजी ! संसारमें ज्ञानवान्ही सुखी है; ज्ञानवान्का जीवन सफल है, और ज्ञानवान्ही बली है इसलिये तुम ज्ञानी होजाओ ॥ ४९ ॥ हे महात्मन् रामजी ! विषयसे वर्जित, सर्वोत्तम आदि तथा कल्पनाशून्य निर्विकार सम्वित्पदकी भावना करतेहुये तथा कल्पनाशून्य होकर हार्दाकाश (ब्रह्म) मेंही स्थित रहो और व्युत्थानकालमें वर्ण आश्रमके अनुकूल क्रियाओंको करते हुयेभी शमतासे जीवन्मुक्तोंके गुणोंकी सम्पत्तिरूप शोभायुक्त होकर अकर्तृताके पदमें प्राप्त होकर स्थित रहो ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे संसृतिनिराकरणयोगोपदेशो नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

विचारकी प्रौढता तथा वैराग्यादि उत्तमगुणोंसे बोधकी स्थिति होनेपर विषयोंसे अकंपनीयताके कारणसे समान स्थिति इस ९३ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनागपिविचारेणचेतसःस्वस्यनिग्रहः ॥ मनागपिकृतोयेनतेनाप्तंजन्मनःफलम् ॥ १ ॥ विचारकणिकायैषाहृदिस्फुरतिपेलवा ॥ एषैवाभ्यासयोगेनप्रयातिशतशाखताम् ॥ २ ॥ किंचित्प्रौढविचारंतुनरंवैराग्यपूर्वकम् ॥ संश्रयंतिगुणाःशुद्धाःसरःपूर्णमिवांडजाः ॥ ३ ॥ सम्यग्विचारिणं प्राज्ञंयथाभूतावलोकिनम् ॥ आसादयंत्यपिस्फारानाविद्याविभवाभृशम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अल्पविचारसेभी जिसने किंचित्भी अपने चित्तका निग्रह कियाहै उसीने अपने जन्मका फल प्राप्त किया ॥ १ ॥ हे रामजी ! विचाररूप कल्पवृक्षका कोमल अंकुरभी जो हृदयमें स्फुरित होताहै यही अभ्यासके योगसे अनंत शाखा रूपताको प्राप्त होताहै. ॥ २ ॥ जिसका विचार किंचित् प्रौढताको प्राप्तहै उस वैराग्ययुक्त मनुष्यको शमदमआदि शुद्ध गुण ऐसे आश्रय करते हैं जैसे पूर्ण तडागका पक्षी वा मत्स्य ॥ ३ ॥ उत्तमविचारयुक्त और यथार्थ आत्माको देखनेवाले बुद्धिमान् ज्ञानीको ब्रह्मापर्य्यंतके विशाल ऐश्वर्य्यभी प्रलोभित नहीं करसकते ॥ ४ ॥

किंकुर्वंतीहविषयामानस्योवृत्तयस्तथा ॥ आधयोव्याधयोवापिसम्यग्दर्शनसन्मतेः ॥ ५ ॥ क्वभ्रमत्पवनापूरास्तडित्पटलपाटलाः ॥ पुष्करावर्तजलदागृहीताबालमुष्टिभिः ॥ ६ ॥ क्वनभोमध्यसंस्थेंदुर्मुग्धेर्मणिसमुद्गकैः ॥ मुग्धयांगनयाबद्धोमुग्धेंदीवरशंकया ॥ ७ ॥ क्वकटप्रोच्चलद्भृंगमंडलोत्पलशेखराः ॥ मुग्धस्त्रीश्वासमधुरैर्मशकैर्मथितागजाः ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनसे सद्बुद्धिवालेका विषय, मानसी वृत्ति तथा शारीरिक और मानसी पीडा क्या करसकती हैं ॥ ५ ॥ भ्रमणकर पवनके प्रवाहसहित विद्युत्के पटलसे पीतवर्ण प्रलयकालके पुष्करावर्त्त मेघ बालकोंकी मुष्टिसे कहां ग्रहण किये गये हैं ॥ ६ ॥ विकाशसे रमणीय रात्रिके कमलोंसे अपने नेत्रके पराभवकी आशंकासे मुग्धस्त्रीने रत्नकी पिटारीमें आकाशके मध्यमें स्थित चंद्रमाको कहां बांधाहै ॥ ७ ॥ गंडस्थलोंसे चलायमान भृंगोंके मंडलरूप नीलकमलरूपी शिरोभूषणसे क्षोभित मतंगजोंको स्त्रियोंके श्वासोंसेभी कोमल मच्छरोंने कहां हनन कियाहै ॥ ८ ॥

क्वेभमुक्ताफलोल्लासलसत्सन्नखपंजराः ॥ सिंहास्समरसंरब्धाहरिणैःप्रविमर्दिताः ॥ ९ ॥ क्वविषोल्लासनिर्यासदग्धोन्नतवनद्रुमाः ॥ क्षुधिताजगराःक्षुब्धैर्निगीर्णाबालदर्दुरैः ॥ १० ॥ क्वप्राप्तभूमिकोधीरोज्ञातज्ञेयोविवेकवान् ॥ आक्रांतःकिलविक्रांतोविषयेंद्रियदस्युभिः ॥ ११ ॥ विचारधियमप्रौढांहरंतिविषयारयः ॥ प्रचंडपवनामूर्हीकृतवृंतांलतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—अपनेसे विदीर्ण कियेहुये गजोंके मुक्ताओं (मोतियों) से नखपिंजरमे शोभायमान तथा रणमें गर्वी सिंहोंको हरिणोंने कब माराहै ॥ ९ ॥ विषकी अधिकतासे रसरूप विषके बिंदुओंसे बडे २ ऊंचे बनके वृक्षोंको भस्म करनेवाले क्षुधित अजगरोंको बालमंडूकों (मेडकों) ने कब निगललियाहै ॥ १० ॥ चतुर्थ पंचमादि भूमिकामें प्राप्त; ब्रह्मज्ञाता उत्तरभूमिकाके जीतनेमें उद्युक्त ज्ञानीपुरुष विष तथा इन्द्रियरूप शत्रुओंसे कब जीता गयाहै ॥ ११ ॥ निर्बलविचारकी बुद्धिको विषरूप शत्रु ऐसे हरण करते हैं जैसे छिन्नमूल कोमललताको प्रचंड पवन ॥ १२॥

नविवेकलवंप्रौढंभंक्तुंशक्ताद्दुराशयाः ॥ कल्पक्षोभमहाधीरंशैलंमंदानिलाइव ॥ १३ ॥ अगृहीतमहीपीठंविचारकुसुमद्रुमम् ॥ चिंतावात्याविधुन्वंतिनास्थिरस्थितिसुस्थितम् ॥१४॥ गच्छतस्तिष्ठतोवापिजाग्रतःस्वपतोपिवा ॥ नविचारमयंचेतोयस्यासौमृतउच्यते ॥ १५ ॥ किमिदंस्याज्जगत्किंस्याद्देहमित्यनिशंशनैः ॥ विचारयाध्यात्मदृशास्वयंवासज्जनैःसह ॥ १६ ॥

अर्थ—विवेकके लेशको रागआदि वृत्ति नाश करनेमें ऐसे समर्थ नहीं हैं जैसे अवांतरकल्पके क्षोभमेंभी महाधीर मेरुआदि पर्वतको पवन ॥ १३ ॥ पृथिवीरूप महापीठ अर्थात् मूलबंधनको जिसने नहीं ग्रहण कियाहै ऐसे विचाररूप पुष्पके वृक्षको चिंतारूप आंधी कंपाती है न कि दृढतासे स्थित वृक्षको ॥ १४ ॥ चलते बैठते जागते और सोते जिसका चित्त विचारमय नहीं है वह नर मृतक कहाता है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् क्याहै यह शरीर क्याहै ऐसा निरंतर अध्यात्मदृष्टिसे स्वयं वा सज्जनमहात्माओंके साथ विचार करो ॥ १६ ॥

अंधकारहरेणाशुविचारेणपरंपदम् ॥ दृश्यतेविमलंवस्तुप्रदीपेनेवभास्वता ॥ १७ ॥ ज्ञानेनसर्वदुःखानां विनाशउपजायते ॥ कृतालोकविलासेनतमसामिवभानुना ॥ १८ ॥ ज्ञानेप्रकटतांयातेज्ञेयंस्वयमुदेत्यलम् ॥ रवावभ्युदितेभूमावालोकइवनिर्मलः ॥ १९ ॥ येनशास्त्रविचारेणब्रह्मतत्त्वंप्रबुद्ध्यते ॥ तद्ज्ञानमुच्यतेज्ञेयादभिन्नमिवसंस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रमादरूप अन्धकारको नाश करनेवाले विचारसे विमल परमपद ऐसे देखपडताहै जैसे प्रकाशमान दीपकसे वस्तु ॥१७॥ ज्ञानसे सब दुःखोंका नाश ऐसे होताहै जैसे प्रकाशसे विलासकारी सूर्यसे अन्धकारोंका ॥१८॥ ज्ञानके प्रकट होनेपर ज्ञेयवस्तु पूर्णरीतिसे स्वयं उदयको ऐसे प्राप्त होती है जैसे सूर्यके उदय होनेपर पृथिवीपर निर्मल प्रकाश ॥ १९ ॥ जिस शास्त्रके विचारसे ब्रह्मतत्व जानाजाताहै और ज्ञेयब्रह्मसे अभिन्नरूपसे जो स्थित है उसको ज्ञान कहते हैं ॥ २० ॥

विचारोत्थात्मविज्ञानंज्ञानमंगविदुर्बुधाः ॥ ज्ञेयंतस्यांतरेवास्तिमाधुर्यंपयसोयथा ॥ २१ ॥ सम्यग्ज्ञानसमालोकःपुमान्ज्ञेयमयःस्वयम् ॥ भवत्यापीतमैरेयःसदामदमयोयथा ॥ २२ ॥ समंस्वरूपममलंज्ञेयं ब्रह्मपरंविदुः ॥ ज्ञानाभिगममात्रेणतत्स्वयंसंप्रसीदति ॥२३॥ ज्ञानवानुदितानंदोनकचित्परिमज्जति ॥ जीवन्मुक्तोगतासंगःसम्राडात्मैवतिष्ठति ॥ २४ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! विचारसे आविर्भूत आत्मज्ञानको पंडितलोग ज्ञान कहते हैं और ज्ञेय उसके भीतर ऐसे है जैसे दुग्धमें मधुरता ॥ २१ ॥ सम्यग्ज्ञानसे समानप्रकाशयुक्त पुरुष सदा स्वयं ज्ञेयमय ऐसे रहताहै जैसे मदिरा पीनेवाला सदा मदमय ॥ २२ ॥ समान निर्मलरूप ब्रह्मको ज्ञेय कहते हैं और ज्ञानकी प्राप्तिमात्रसे स्वयं अविद्या तथा उसके कार्य्यके निराशसे प्रसन्न होताहै ॥ २३ ॥ ज्ञानवान् पुरुष आनन्दयुक्त कहीं निमग्न नहीं होता किन्तु वह जीवन्मुक्त, संगदोषरहित राजाधिराजके आत्माके समान पूर्णमनोरथमें स्थित रहताहै ॥ २४ ॥

ज्ञानवान्हृद्यशब्देषुवीणावंशरवादिषु ॥ कामिन्याःकांतगीतेषुसंभोगमलिनेषुच ॥ २५ ॥ वसंतमदमत्तानांषट्पदानांस्वनेषुच ॥ प्रावृट्प्रसरपुष्पेषुजलदस्तनितेषुच ॥ २६ ॥ उत्तांडवशिखंडेषुकेकाकलरवेषुच ॥ रणितांभोदखंडेषुसारसक्वणितेषुच ॥ २७ ॥ कर्तर्यादिकरांतेषुगंभीरमुरजेषुच ॥ ततावनद्धसुषिरचित्रवाद्यस्वनेषुच ॥ २८ ॥

अर्थ—और ज्ञानवान् पुरुष वीणावंशआदि मनोहरशब्दोंमें, संभोगसे मलिन कामिनियोंके प्रिय गीतोंमें २५ वसंतऋतुके मदसे मत्त भ्रमरोंके शब्दोंमें, वर्षाके पुष्पोंमें मेघोंके, शब्दोंमें ॥ २६ ॥ मयूरके नृत्य तथा मधुरशब्दोंमें, शब्दयुक्त मेघोंके खण्डोंमें, और सारसोंके मधुरशब्दोंमें ॥ २७ ॥ सूची शलाका सूत्र और कंटकरचित शब्दोंमे और चर्मसे मिढे हुये मुरज (मृदंग) तंत्री (वीणादि) सुषिर (छिद्र) युक्त वंशआदि चित्रविचित्र वाद्योंमें ॥ २८ ॥

केषुचिन्ननिबध्नातिरूक्षेषुमधुरेषुच ॥ रणितेषुरतिंरामपद्मेष्विवनिशाकरः ॥ २९ ॥ ज्ञानवान्बालकदलीस्तंभपल्लवपालिषु ॥ सुरगंधर्वकन्यांगलतानंदनकेलिषु ॥ ३० ॥ केषुकचिन्नबध्नातिस्वायत्तेष्वप्य

सक्तधीः ॥ रामस्पर्शरतिंधीरोहंसोमरुमहीष्विव ॥ ३१ ॥ ज्ञानवान्पिंडखर्जूरकदंबपनसादिषु ॥ मृद्वीकौर्वारुकाक्षोटबिंबजंबीरजातिषु ॥ ३२ ॥

अर्थ—किसीमें अपना चित्त नहीं लगता. हे रामजी ! रूक्ष वा मधुरशब्दोंमें प्रीति ऐसे नहीं बांधता जैसे कमलके पुष्पोंमें चन्द्रमा ॥ २९ ॥ और ज्ञानवान् पुरुष नूतन केलोंके स्तंभोंकी पल्लवोंकी पंक्ति जिनमें शोभित हैं, तथा देव गंधर्व कन्याओंके अंगोंकी लतासे शोभित नंदनवनकी क्रीडाओंमें किसीमेंभी अपनी प्रीति नहीं बांधता. हे रामजी ! अपने स्वाधीन विषयोंमेंभी वह प्रीति ऐसे नहीं करता जैसे मरुस्थलमें हंस ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पिंडखजूर, कदंब कटहरआदि तथा द्राक्षा (अंगूर) खर्बूजा, अखरोट, बिंब, और नींबूआदि फलोंमें ॥ ३२ ॥

मदिरामधुमैरेयमाध्वीकासवभूमिषु ॥ दधिक्षीरघृतामिक्षानवनीतौदनादिषु ॥ ३३ ॥ षड्रसेषुविचित्रेषु लेह्यपेयविलासिषु ॥ फलेष्वन्येषुमूलेषुकाकेष्वप्यामिषेषुच ॥ ३४ ॥ केषुचिन्नानुबध्नातितृप्तमूर्तिरसक्तधीः ॥ आस्वादनरतिर्विप्रःस्वशरीरलवेष्विव ॥ ३५ ॥ ज्ञानवान्यमचंद्रेंद्ररुद्रार्कानिलसद्मसु ॥ मेरुमंदरकैलाससह्यदर्दुरसानुषु ॥ ३६ ॥

अर्थ—मदिरा, मधु, मैरेय, माध्वीक और आसवआदि मद्यभेदोंमें, और दधि दुग्ध, घृत, आमिक्षा (तप्त दुग्धमें दधि डालनेसे पिंडीभूत द्रव्य) नवनीत और ओदनादि पदार्थोंमेंभी प्रीति नहीं करता ॥ ३३ ॥ भक्ष्य भोज्य लेह्य तथा प्रेमका जिनमें विलास है ऐसे विचित्र षट्रसोंमें तथा अन्य २ प्रकारके फल और मूलोंमें शाकोंमें तथा किसीप्रकारके मांसोंमेंभी वह असक्तबुद्धि और तृप्तमूर्ति प्रीतिको ऐसे नहीं करते जैसे अपने शरीरके खण्डोंमें आस्वादनकी प्रीतियुक्त ब्राह्मण ॥ ३५ ॥ ज्ञानवान् प्राणी यम, चन्द्र, रुद्र, सूर्य और वायुके स्थानोंमें तथा मेरु, मन्दर, कैलास, सह्य और दर्दुरआदि पर्वतोंके रेशमके समान कोमल शिखरोंपर ॥ ३६ ॥

कौशेयदलजालेषुचंद्रबिंबकलादिषु ॥ कल्पपादपकुंजेषुदेहशोभाविलासिषु ॥ ३७ ॥ रत्नकांचनकुड्येषुमुक्तामणिमयेषुच ॥ तिलोत्तमोर्वशीरंभामेनकांगलतासुच ॥ ३८ ॥ केषुचिद्दर्शनंश्रीमान्नाभिवांछत्यसक्तधीः ॥ परिपूर्णमनामानीमौनीशत्रुषुचाचलः ॥ ३९ ॥ ज्ञानवान्कुंदमंदारकह्लारकमलादिषु ॥ कुमुदोत्पलपुन्नागकेतक्यगुरुजातिषु ॥ ४० ॥

अर्थ—और चन्द्रबिंबकी कलाओंमें, तथा दिव्यशरीरकी संपत्ति होनेसे देहकी शोभासे विलासी कल्पवृक्षके कुंजोंमें ॥ ३७ ॥ तथा मुक्तामणिजटित रत्न तथा सुवर्णरचित स्थानोंमें, तथा तिलोत्तमा, उर्वशी, रंभा और मेनकाआदिके अंगरूप लताओंमेंभी शोभावान् और असक्तबुद्धि ज्ञानीपुरुष दर्शन नहीं चाहता, किन्तु परिपूर्णचित्त, मानी और शत्रुओंमें अचल स्थितरहताहै. और ज्ञानीपुरुष कुंद, मंदार, रक्तकमलादिमें, कुमुद, नीलकमल, पुंनाग, केतकी आदि और पुष्पजातियोंमें ॥ ४० ॥

कदंबचूतजंब्वाम्रकिंशुकाशोकशाखिषु ॥ जपातिमुक्तसौवीरबिंबपाटलजातिषु ॥ ४१ ॥ चंदनागुरुकर्पूरलाक्षामृगमदेषुच ॥ काश्मीरजलवंगैलाकंकोलतगरादिषु ॥ ४२ ॥ केषुचिन्ननिबध्नातिसौगंध्यरतिमेकधीः ॥ समबुद्धिरविक्षोभोमद्यामोदेष्विवद्विजः ॥ ४३ ॥ अब्धौगुडगुडारावेप्रतिश्रुत्खस्वनेगिरौ ॥ निनादेचमृगेंद्राणांनक्षुभ्यतिमनागपि ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कदंब, चूत, जामुन, आम, किंशुक, और अशोकआदि वृक्षोंमें, और जपा, अतिमुक्ता, सौवीर, बिंब, तथा पाटल, आदि लताकी जातियोंमें ॥ ४१ ॥ चन्दन, अगुरु, कर्पूर, लाह, कस्तूरी, केशर, लवंग, इलायची कंकोल और तगरआदि अंगरागोंमेंसे किसीमेंभी ॥ ४२ ॥ प्रिय अप्रियमें समबुद्धि तथा एकब्रह्ममें बुद्धिनिष्ठ सौगन्ध्यकी बुद्धि ऐसे नहीं बांधता जैसे मदिराके सौगन्ध्यमें ब्राह्मण ॥ ४३ ॥ गडगडाहट शब्दसहित समुद्रमें, प्रतिध्वनिरूप आकाशजनित शब्दोंमें, और सिंहोंके नादमेंभी ज्ञानी किंचित् भयभीत नहीं होता ॥ ४४ ॥

द्विषद्भेरीनिनादेनपटहारणितेनच ॥ कटुकोदंडघोषेणनबिभेतिमनागपि ॥ ४५ ॥ मत्तवारणबृंहासुवेतालकलनासुच ॥ पिशाचरक्षःक्ष्वेडासुमनागपिनकंपते ॥ ४६ ॥ अशनिस्वनघोषेणनगस्फोटरवेणच ॥ ऐरावणनिनादेनसम्यग्ध्यानीनकंपते ॥ ४७ ॥ वहत्क्रकचकाषेणसितासिदलनेनच ॥ शराशनिनिपाते नकंपतेनस्वरूपतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—शत्रुओंके नगारे आदिके नादसे डमरूके शब्दसे, कर्णकटु धनुषके शब्दसेभी ज्ञानी किंचित्भी नहीं डरता ॥ ४५ ॥ मत्तहाथियोंकी गर्जनामें, वेतालोंके कलहोंमें, पिशाच राक्षसआदिके सिंहनादोंमें ज्ञानी किंचित्भी नहीं कांपता ॥ ४६ ॥ वज्रके शब्दसे, पर्वतके स्फोटसे, और ऐरावतके नादसे सम्यग् ध्यानयुक्त पुरुष नहीं कांपता ॥ ४७ ॥

चलतेहुये आरेके घर्षणसे न चोखी तरवारके दलनसे, बाण तथा वज्रके निपातसे ज्ञानी अपने स्वरूपसे चलायमान नहीं होता ॥ ४८ ॥

नानंदमेत्युपवनेनखेदमुपगच्छति ॥ नखेदमेतिमरुष्वुनानंदमुपगच्छति ॥ ४९ ॥ पूतांगारसमाकल्पसैकतेष्वपिधन्वसु ॥ पुष्पप्रकरसंछन्नमृदुशाद्वलभूमिषु ॥ ५० ॥ क्षुरधारासुतीक्ष्णासुशय्यासुचनवोत्पलैः ॥ उन्नताचलदेशेषुकूपकोशतलेषुच ॥५१॥ शिलास्वर्कांशुरूक्षासुमृद्वीषुललनासुच ॥ संपत्स्वापत्सुचोग्रासुरमणेषूत्सवेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—उपवन (वाटिका) में न आनंदको प्राप्त होताहै और न खेदको, ऐसेही मरुस्थलमें न वह खेदको प्राप्त होताहै और न आनंदको ॥ ४९ ॥ भस्मरहित अंगारके समान असह्य वालुकासहित मरुस्थलोंमें और पुष्पोंके समूहसे आच्छादित कोमल घासमय भूमियोंपर ॥ ५० ॥ तीक्ष्ण क्षुराकी धाराओंपर, नूतन कमलोंसे आच्छादित शय्याओंपर, उन्नतपर्वतोंमें, कूपोंके अधोभागोंमें ॥ ५१ ॥ सूर्यके किरणोंसे तप्त शिलाओंपर, कोमललताओंमें, संपत्तियोंमें, तथा उग्रविपत्तियोंमेंभी ॥ ५२ ॥

विहरन्नपिनोद्वेगीनानंदमुपगच्छति ॥ अंतर्मुक्तमनानित्यंकर्मकर्तेवतिष्ठति ॥ ५३ ॥ अयस्संकुचितांगासुनरकारण्यभूमिषु ॥ परस्परेरितानंतकुंततोमरवृष्टिषु ॥ ५४॥ नविभेतिनवादत्तेवैवश्यंनचदीनताम् ॥ समःस्वस्थमनामौनीधीरस्तिष्ठतिशैलवत् ॥ ५५ ॥ अपवित्रमपथ्यंचविषसिक्तमलाद्यपि ॥ भुक्त्वाजरयतिक्षिप्रंक्लिन्नंनष्टंचमृष्टवत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—विहारकरतेहुयेभी तत्वज्ञानी न भयको प्राप्त होताहै और न आनंदको, किंतु भारको वहनेवाला श्रांत होके भार उतारके विश्रामके सुखको अनुभव करतेहुये जैसे रहताहै वैसेही अंतर्मुख होके स्थित रहताहै ॥५३॥ और ज्ञानी लोहमययंत्रोंसे अंगोंको संकुचित करनेवाली नरककी अरण्यभूमियोंमें, जिनमें परस्पर बर्छी तथा तोमर (भाला) आदि अस्त्रोंकी वृष्टि होरही हैं वहांपर ॥ ५४ ॥ न भयभीत होताहै और न व्याकुलता वा दीनताको ग्रहण करताहै किंतु सम, स्वस्थचित्त, मौनी और धीर पर्वतके समान स्थित रहता है ॥ ५५ ॥ और अपवित्र, अपथ्य, विषसे मिले गोमयआदि, गीले और रसरहित आहारकाभी भोजन करके पचालेताहै ॥ ५६ ॥

बिंबप्रतिविषाकल्कक्षीरेक्षुसलिलांधसाम् ॥ असक्तबुद्धिस्तत्त्वज्ञोभवत्यास्वादनेसमः ॥ ५७ ॥ मैरेयमदिराक्षीररक्तमेदोरसासवैः ॥ रूक्षास्थितृणकेशांतैर्नहृष्यतिनकुप्यति ॥ ५८ ॥ जीवितस्यापिहर्तारंदातारंचैकरूपया ॥ दृशाप्रसादमाधुर्यशालिन्यापरिपश्यति ॥ ५९ ॥ स्थिरास्थिरशरीरेषुरम्यारम्येषुवस्तुषु ॥ नहृष्यतिग्लायतिवासदासमतयेद्धया ॥ ६० ॥

अर्थ—और बिंबके फल, विषके तुल्य अति कसैले दूध तथा ऊखके रस और ओदन (भात) के आस्वादनमें तत्वज्ञानी असक्तबुद्धि होनेसे समानचित्त होताहै ॥ ५७ ॥ मैरेय (मद्यविशेष) मदिरा, दुग्ध, रक्त, चर्बीके रस तथा अन्य मादकरसोंसे, रूखी हड्डी और तृणकेशादिसेभी ज्ञानीपुरुष न प्रसन्न होताहै और न कोप करताहै ॥ ५८ ॥ और जीवनके हर्ता तथा जीवनके दाताकोभी प्रसन्नता तथा मधुरतासे शोभायमान एकरूपदृष्टिसे देखताहै ॥ ५९ ॥ देवआदिके चिरस्थायी और मनुष्यआदिके अल्पकालस्थायी शरीरोंमें और उनके भोग्य रमणीय और अरमणीय विषयोंमें सदा प्रदीप्त समतासे न प्रसन्न होताहै और न शोक करताहै ॥ ६० ॥

मुक्तास्थत्वादनास्थेयरूपत्वाज्जगतःस्थितौ ॥ नूनंविदितवेद्यत्वान्नीरागत्वात्स्वचेतसः ॥६१॥ नकस्यचित्रोकदाचिदक्षस्यविषयस्थितौ ॥ ददातिप्रसरंसाधुराधिप्रोज्झितयाधिया ॥ ६२ ॥ अतत्त्वज्ञमविश्रांतमलब्धात्मानमस्थितिम् ॥ निगिरंतींद्रियाण्याशुहरिणाइवपल्लवम् ॥ ६३ ॥ उह्यमानंभवांभोधौवासनावीचिवेल्लितम् ॥ निगिरंतींद्रियग्राहामहाक्रंदपरायणम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—चित्तके रागरहित होनेसे, और वेद्य (आत्मा) को जाननेसे जगत्की स्थितिमें आस्थाके अभावसे और विषयोंके मिथ्या होनेसे ॥ ६१ ॥ इन्द्रियोंकी विषयकी स्थितिमें कदाचित् किसीको चिंतारहित बुद्धिसे ज्ञानीपुरुष अवसर नहीं देता ॥ ६२ ॥ संसाररूप समुद्रमें वहतेहुये तथा वासनारूप तरंगोंसे वेष्टित और महारोदनमें परायण प्राणीको इन्द्रियरूप ग्राह निगलजातेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

विचारिणंभव्यपदंविश्रांतधियमात्मनि ॥ नहरंतिविकल्पौघाजलौघाइवपर्वतम् ॥ ६५ ॥ सर्वसंकल्पसीमांतेविश्रांतायेपरेपदे ॥ तेषांलब्धस्वरूपाणांमेरुरेवतृणायते ॥ ६६ ॥ जगज्जरत्तृणलवोविषंचामृत

मेवच ॥ क्षणःकल्पसहस्रंचसममाततचेतसाम् ॥ ६७ ॥ संविन्मात्रंजगदितिमत्वामुदितबुद्धयः ॥ संविन्मयत्वादंतस्थजगत्काविहरंत्यमी ॥ ६८ ॥

अर्थ—विचारयुक्त, भव्यपदमें स्थित और आत्मामें विश्रांत बुद्धिवाले जीवको विकल्पोंके समूह ऐसे नहीं हरते जैसे पर्वतको जलके प्रवाह ॥ ६५ ॥ हेरामजी ! सब संकल्पोंके सीमाके अंतर्भूत परमपदमें जो विश्राम करते हैं उन आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेवालोंको मेरूभी तृणके तुल्य है ॥ ६६ ॥ पूर्ण आत्माकार विस्तृतचित्तवालोंके अर्थ जगत् सडे तृणका टुकडा है, विषभी अमृत है, तथा क्षण और अनंत कल्पभी समान हैं ॥ ६७ ॥ यह संपूर्ण जगत् संवित्मात्र है इसकारण प्रसन्नचित्त, और सबजगत्को साक्षी आत्मामात्र देखनेसे सब जगत्के मध्यमें स्थित ये ज्ञानी पुरुष विहार करतेहैं ॥ ६८ ॥

संविन्मात्रपरिस्पंदेजागतेवस्तुपंजरे ॥ किंहेयंकिमुपादेयमिहतत्त्वविदांमतम् ॥ ६९ ॥ संविदेवेदमखिलंभ्रांतिमन्यांत्यजानघ ॥ संविन्मयवपुःस्फारंकिंजहातिकिमीहते ॥ ७० ॥ यदेतज्जीयतेभूमेर्भविष्यत्पल्लवांकुरम् ॥ तत्संविदेवप्रथतेतथातत्त्वांकुरस्थितम् ॥ ७१ ॥ आदावंतेचयन्नास्तिवर्तमानेपितस्यच ॥ कंचित्काललवंदृष्टासत्तासौसंविदोभ्रमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जगत्संबन्धी वस्तुमात्र पंजरके संवित्के परिस्पंदमात्र होनेसे तत्ववेत्ताओंको कौन वस्तु हेय और कौन उपादेयरूपसे इष्ट हैं ॥ ६९ ॥ हे पापरहित रामजी ! यह सब जगत् संविन्मात्र है इससे अन्यभ्रमको तुम त्यागो, और संविन्मात्र विशालशरीर किसको त्यागै और किसको ग्रहण करै ॥ ७० ॥ भूतविषयमें इच्छाके अभावसे अज्ञानीरूप हरिणके अभिलषणीय पल्लवके तुल्य वर्तमान विषयसमूह जो कुछ पृथिवीसे उत्पन्नहोताहै और जो कुछ भविष्यत् है वह सब जैसे संवित् प्रसिद्ध होती है वैसेही आकाशादि तथा शब्दस्पर्शआदि तत्वके अंकुरके समान स्थितहै ॥ ७१ ॥ जो वस्तुआदि अंतमें नहीं है वह वर्तमानमेंभी वैसेही है और उसकी वर्तमानसमयमें जो कुछ कालके लिये सत्ता दृष्ट है वह केवल संवित्का भ्रम है ॥ ७२ ॥

इतिमत्वाधियंत्यक्त्वाभावाभावानुपातिनीम् ॥ निस्संगसंविद्वारूपोभवभावांतमागतः ॥ ७३ ॥ कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिंद्रियैरपि ॥ कर्मकुर्वन्नकुर्वन्वानिस्संगःसन्नलिप्यते ॥ ७४ ॥ गतसंगेनमनसा कुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ सुखदुःखैर्महाबाहोमनोरथदशास्विव ॥ ७५ ॥ गतसंगांमतिंकुर्वन्कुर्वन्नप्यंगयष्टिभिः ॥ नलिप्यतेसुखैर्दुःखैर्मनोरथदशास्विव ॥ ७६ ॥

अर्थ—ऐसा मननसे दृढ निश्चय करके भाव तथा अभावकी ओर गिरनेवाली बुद्धिको त्यागकर भावके अंतमें प्राप्त तुम निःसंग प्रकाशरूप सम्विन्मात्र होओ ॥ ७३ ॥ शरीरसे, मनसे, बुद्धिसे, आसंगके दोषोंसे शून्य केवल इन्द्रियोंसे व्युत्थानकालमें कर्मोंको करतेहुये और समाधिकालमें न करतेहुये निःसंग होनेसे तुम उन कर्मोंमें लिप्त नहीं होगे ॥ ७४ ॥ हे महाबाहो ! संगरहित मनसे कर्मोंको करतेहुयेभी सुखदुःखोंसे तुम ऐसे नहीं लिप्त होओगे जैसे मनोरथकी दशाओंमें ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! संगरहित बुद्धिको करतेहुये और अंगरूप यष्टियोंसे कर्मोंको करतेहुयेभी मनोरथकी दशाओंके तुल्य लिप्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

गतसंगमनादृष्ट्यापश्यन्नपिनपश्यति ॥ एतदन्यस्थचित्तत्वाद्बालेनाप्यनुभूयते ॥ ७७॥ गतसंगमनाजंतुःपश्यन्नेवनपश्यति ॥ नशृणोत्यपिशृण्वंश्चनस्पृशत्यपिचस्पृशन् ॥ ७८॥ नजिघ्रत्यपिसंजिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ पदार्थेचपतत्येवबलात्पततिनाप्ययम् ॥७९॥ देशांतरस्थचेतोभिरेतदात्मगृहस्थितैः ॥ अप्रौढमतिभिःसाधुमूर्खैरप्यनुभूयते ॥ ८० ॥

अर्थ—संगरहित मनवाला प्राणी दृष्टिसे देखता हुआभी नहीं देखता यह वार्ता अन्यवस्तुमें चित्तके स्थित होनेसे बालकभी अनुभव करताहै अर्थात् चित्तके अन्यमें स्थित होनेसे दृष्टिसे पदार्थको देखताहुआभी नहीं देखता ॥७७॥ असक्तमनवाला जीव देखताहुआभी नहीं देखता, सुनता हुआभी नहीं सुनता, और स्पर्श करता हुआभी स्पर्श नहीं करता ॥ ७८ ॥ सूंघताहुआभी नहीं सूंघता, नेत्रोंको खोलताहुआभी नहीं खोलता, इसप्रकार कर्म इन्द्रियगणके संस्कारके बलसे अपने २ विषयोंमें गिरनेपरभी यह आत्मा नहीं गिरता ॥ ७९ ॥ अन्यदेशमें जिनका मन है और अपने गृहमें जो स्थित है ऐसे अप्रौढबुद्धिवाले मूर्खभी इस बातको भलीभांति समझते हैं कि मनके अन्यत्र रहते दृष्टिआदिसे देखते हुये नहीं देखते वा सुनते ॥ ८० ॥

संगःकारणमर्थानांसंगःसंसारकारणम् ॥ संगःकारणमाशानांसंगःकारणमापदाम् ॥ ८१ ॥ संगत्यागंविदुर्मोक्षंसंगत्यागादजन्मता ॥ संगंत्यजत्वंभावानांजीवन्मुक्तोभवानघ ॥ ८२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्वसंशयनीहारशरन्मारुतहेमुने ॥ संगःकिमुच्यतेब्रूहिसमासेनममप्रभो ॥ ८३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भावाभावेपदार्थानांहर्षामर्षविकारदा ॥ मलिनावासनायैषासासंगइतिकथ्यते ॥ ८४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब पदार्थोंका कारण संगही है, संगही संसारका कारण है, संगही आशाओंका कारण है, तथा संगही आपत्तियोंकाभी कारण है ॥ ८१ ॥ संगके त्यागको मोक्ष कहतेहैं और संगके त्यागसे जन्मकाभी अभाव होताहै इसकारण हे रामजी ! तुम पदार्थोंके संगको त्यागके जीवन्मुक्त होजाओ ॥ ८२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे संपूर्ण-संशयरूप नीहारके हरनेमें शरत्कालके पवन हे मुने ! संग क्या वस्तु है सो मुझे संक्षेपसे हे प्रभो ! कहिये ॥ ८३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पदार्थोंके संयोग और वियोगमें हर्ष तथा शोकादि विकारोंको देनेवाली जो मलिन वासना है उसीको संग कहतेहैं ॥ ८४ ॥

जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी ॥ मुक्ताहर्षविषादाभ्यांशुद्धाभवतिवासना ॥८५॥ तामसंगाभिधांविद्धियावद्देहंचभाविनी ॥ तयायत्क्रियतेकर्मनतद्बंधायवैपुनः ॥ ८६ ॥ अजीवन्मुक्तरूपाणांदीनानांमूढचेतसाम् ॥ युक्तामर्षविषादाभ्यांबंधनीवासनाभवेत् ॥ ८७ ॥ सैवोक्तासंगशब्देनपुनर्जननकारिणी ॥ तयायत्क्रियतेकर्मतद्बंधायैवकेवलम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—और जीवन्मुक्तके शरीरोंकी पुनर्जन्मको न करनेवाली तथा हर्षशोकसे विनिर्मुक्त शुद्धवासना होती है ॥ ८५ ॥ प्रारब्धकर्मके क्षयपर्य्यन्त होनेवाली उस वासनाको तुम असंगनामवाली जानो और उससे जो कर्म किया जाताहै वह पुनः बंधनके लिये नहीं होता ॥ ८६ ॥ और जो जीवन्मुक्त नहीं है ऐसे दीन और मूढचित्तवालोंकी वासना हर्ष और शोकसे युक्त तथा बंधनका हेतु होतीहै ॥ ८७ ॥ वही पुनर्जन्मकारिणी वासना संगशब्दसे कही जाती है और उस वासनासे जो कुछ कर्म कियाजाताहै वह केवल बंधनके लिये होताहै ॥ ८८ ॥

एवंरूपंपरित्यज्यसंगंस्वात्मविकारदम् ॥ यदितिष्ठसिनिर्व्यग्रःकुर्वन्नपिनलिप्यसे ॥ ८९ ॥ हर्षामर्षविषादाभ्यांयदिगच्छसिनान्यताम् ॥ वीतरागभयक्रोधस्तदसंगोसिराघव ॥ ९० ॥ दुःखैर्नग्लानिमायासियदिहृष्यसिनोसुखैः ॥ आशावैवश्यमुत्सृज्यतदसंगोसिराघव ॥ ९१ ॥ विहरन्व्यवहारेषुसुखदुःखदशासुच ॥ नविमुंचसिसत्साम्यंतदसंगोसिराघव ॥ ९२ ॥

अर्थ—इसप्रकारके आत्माको विकारप्रद वासनारूप संगको त्यागके यदि तुम स्वस्थ स्थितहो तो कर्म करते-हुयेभी लिप्त नहीं हो ॥ ८९ ॥ हे राघव ! यदि तुम हर्ष आमर्ष तथा विषादसे विरूपताको नहीं प्राप्तहोओगे, औ राग, भय तथा क्रोधसे रहित हो तो तुम असंगहो ॥ ९० ॥ हे राघव ! यदि तुम दुःखोंसे ग्लानिको नहीं प्राप्तहो और सुखोंसे प्रसन्न नहीं होतो आशाकी व्याकुलताको त्यागकर असंगहो ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! लोकके व्यवहारोंमें तथा सुखदुःखादिकी दशाओंमें यदि तुम ब्रह्मकेसाथ एकरूपताको नहीं त्यागतेहो तो तुम असंग हो ॥ ९२ ॥

संवेद्योयदिचैवात्मावेदितेलक्ष्यतेसमः ॥ यथाप्राप्तानुवर्तीचतदसंगोसिराघव ॥ ९३ ॥ असंगतामनायासाज्जीवन्मुक्तस्थितिंस्थिराम् ॥ अवलंब्यसमःस्वस्थोवीतरागोभवानघ ॥ ९४ ॥ जीवन्मुक्तमतिर्मौनीनिगृहीतेंद्रियग्रहः ॥ अमानमदमात्सर्यमार्यस्तिष्ठतिविज्वरम् ॥९५॥ सदासमग्रेपिहिवस्तुजालेसमाशयोप्यंतरदीनसत्वः ॥ व्यापारमात्रात्सहजात्क्रमस्थान्नकिंचिदप्यन्यदसौकरोति ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यदि तुमारा चित्त स्वभाव संवेद्य है और विदित होनेपर सम (ब्रह्म) रूप लक्षित होताहै तब तुम यथाप्राप्त कार्य्योंको करनेवाले असंगहो ॥ ९३ ॥ अनायास (विना परिश्रम) सिद्ध जो असंगताहै वही जीवन्मुक्तकी स्थिर स्थिति है उसको अवलंबन करके हे पापरहित रामजी ! तुम स्वस्थ तथा वीतराग होओ ॥९४॥ जीवन्मुक्तोंकी बुद्धिसहित, मौनी, और इन्द्रियरूप ग्राहोंका निग्रह करनेवाला आर्य्य (श्रेष्ठज्ञानी) मान, मद और मात्सर्य्य (डाह) रहित तथा संतापरहित स्थित रहताहै ॥ ९५ ॥ भोग विक्षेप आदिके हेतुभूत समस्त वस्तुसमूहके सदा अधिकतर होनेपरभी समानचित्त, तथा अदीनस्वभाव यह ज्ञानी पुरुष रहताहै, तथा वर्णआश्रमके सहजक्रममें स्थित व्यापारमात्रसे अन्य यह कुछ नहीं करता ॥ ९६ ॥

यदेवकिंचित्प्रकृतंक्रमस्थंकर्तव्यमात्मीयमसौतदेव ॥ संसर्गसंबंधविहीनयैवकुर्वन्नखेदंरमतेधियांतः ॥ ९७ ॥ अथापदंप्राप्यसुसंपदंवामहामतिःस्वप्रकृतंस्वभावम् ॥ जहातिनोमंदरवेल्लितोपिशौक्ल्यंयथा

क्षीरमयांबुराशिः ॥ ९८ ॥ संप्राप्यसाम्राज्यमथापदंवासरीसृपत्वंसुरनाथतांवा ॥ तिष्ठत्यखेदोदयमस्त हर्षक्षयोदयेष्विंदुरिवैकरूपः ॥ ९९ ॥ निरस्तसंरंभमपास्तभेदंप्रशांतनानाफलवल्गुवेषम् ॥ विचारया त्मानमदीनसत्वोयथाभवस्युत्तमकार्यनिष्ठः ॥ १०० ॥ तयोदितप्रसरविलासशुद्धयागतज्वरंपदमवलंब यामलम् ॥ धियेद्धयापुनरिहजन्मबंधनैर्नबध्यसेसमधिगतात्मदृश्यया ॥ १०१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां बालकांडे मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे समदर्शनंनाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

उपशमप्रकरणं संपूर्णम् ।

अर्थ—जो अपने प्रकृतक्रम (पूर्वप्रचलित) में स्थित अपना कर्तव्य है उसीको क्रियाके अभिनिवेश तथा फलकी अभिलाषासे शून्यबुद्धिसे करताहुआ अपने आत्मामें यह ज्ञानी रमण करताहै ॥ ९७ ॥ और आपत्ति वा संपत्तिको पाकर यह महामति अपने पूर्वसिद्ध शांति दांति प्रसाद शम दम तथा दर्शन आदि युक्त स्वभावको कदाचि त्भी ऐसे नहीं त्यागता जैसे मन्दराचलसे मथितभी क्षीरसागर अपनी स्वाभाविक शुक्लता (श्वेतता) को ॥९८॥ और साम्राज्यपद, वा कृमिकीटता अथवा इन्द्रत्वपदकोभी पाकर ज्ञानीपुरुष खेद वा हर्षके उदयसे शून्य क्षय (अस्त) और उदयमें एकरूप चन्द्रमाके समान स्थित रहताहै ॥ ९९ ॥ हे रामजी ! क्रोध तथा भेदके त्यागपूर्वक, और नाना- प्रकारके तुच्छ आकारोंकी शांततापूर्वक अदीनस्वभाव होके अपने आत्माका इसप्रकार विचार करो जिससे कि अं- तिम पुरुषार्थ मोक्षरूप उत्तमकार्यमें निष्ठ होओ ॥ १०० ॥ हे रामजी ! उस विचारसे उदयको प्राप्त समाधिके विला- ससे सब वासनाओंके क्षयसे शुद्ध अवश्य दृष्ट आत्मपदको प्राप्त करनेवाली, तथा अविद्या और उसके कार्यको भस्म करनेमें समर्थ होनेसे प्रदीप्तबुद्धिसे निरतिशय परमानन्दरूपपदमें पूर्णरूपसे स्थित होओ जिससे कि पुनः तुम जन्म- मरणरूप बन्धनोंसे बन्धनीय न होओगे ॥ १०१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यांसंहितायां बालकांडे मोक्षोपाये
उपशमप्रकरणे निखिलपाठालयललामकाशिक राजकीयपाठालयप्रधानाध्यापक पूज्यपादश्री ६
दामोदरशिष्य, प्रयागमंडलान्तर्गत हरिपुरनामकग्रामनिवासि द्विवेदोपनामक
पूज्यपादश्री ६ नचईप्रसादात्मज दिल्लिनिवासि सेशनजज्ज पदारूढश्री ५
लाला बैजनाथप्रेरित ठाकुरप्रसादशर्मप्रणीतभाषानुवादे
समदर्शनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

उपशमप्रकरणं समाप्तम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

पं० श्रीधर शिवलाल.

'ज्ञानसागर' छापाखाना.

(बम्बई.)

Shri Sharn
Acknowledged ^ Shiv Lala, Bombay, + to

Hon. Lala Baij Nath Agra

Feb. 19 - 1905

ॐ

आदिकवि श्रीवाल्मीकिमुनिप्रणीतम् ।

श्रीयोगवासिष्ठमहारामायणम् ।

उत्तरार्द्धम् ।

निर्वाणप्रकरणम् ।

विद्वज्जनपदानुरक्त बी. ए. एफ़. ए. यू. इत्याद्युपपदा-
लंकृत श्रीयुत रायबहादुर लाला बैजनाथ महाश-
याज्ञया श्रीयुत विद्वद्वर पं० ठाकुरप्रसाद-
शर्माचार्यविरचित भाषानुवादसमेतम् ।

तच्च

मुम्बय्यां

श्रीज्ञानसागर यंत्रालयाधिपतिना
पं० श्रीधर शिवलालात्मज पं० किशनलाल शर्मणा
स्वकीये "ज्ञानसागर" यन्त्रालये मुद्रितम्
संवत् १९६०, शकाब्दाः १८२५.

समर्पणम्.

यतीन्द्रवर ब्रह्मलीन परमहँस परिव्राजका-
चार्य श्री १०८ स्वामी भास्करानन्द
सरस्वती चरणसरोरुहेषु

इदम्

श्रीयोगवासिष्ठ महारामायणम्

आचार्य्योपाधिधारि

श्री पं० ठाकुरप्रसाद द्विवेदिप्रणीतम्

भाषानुवादसमेतम्

तत्पादपङ्कजमकरन्दलुब्धवैजनाथगुप्तेन

परमभक्त्या समर्प्पितम्.

भूमिका ।

निर्वाणप्रकरण योगवासिष्ठका छठा प्रकरण है और उसमें चौदह हजार श्लोक हैं और जैसा कि वसिष्ठजीने मुमुक्षुप्रकरणके सत्रहवे अध्यायमें कहाहै इस प्रकरणका श्रोता सब संसारके भ्रमोंसे रहित होकर विषयशून्य प्रकाशात्मा, विज्ञानात्मा, निरामय, आकाशसेभी स्वच्छ, जगद्यात्राको समाप्त करनेवाला, कृतकृत्य, वज्रमणिके खंभके सदृश विकाररहित, वस्तुके प्रतिबिम्बभावको ग्रहणकरनेवाला, निस्तरंग समुद्रवत् गंभीर, कार्य्यकारण ग्रहण-त्यागसे रहित, सदेह होनेपरभी विदेह, संसारसहित होनेपरभी संसाररहित होजाताहै, आशारूपी विशूचिकासे मुक्त, अहंकाररूपी वेतालसे रहित, सम्पूर्णब्रह्मांडकी लक्ष्मीको अपने रोमके अग्रभागमें धारणकरनेवाला, विदित-वेद्य, ऐसे श्रोताकी तुलनाको कोई ऐसी वस्तु संसारमें नहीं है जो होसके.

यह प्रकरण दोभागोंमें विभक्त, है पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धकी अपेक्षा छोटा है परन्तु इसमेंभी वही सिद्धान्त जो पहिले प्रकरणोंमें निरूपण कियागयाहै नये २ आख्यानों और महाविचित्र और मनोहर दृष्टान्तोंसे दिखायागयाहै, वसिष्ठजीका सिद्धान्त यह है कि अध्यात्मशास्त्रविचाररूपी औषधिकेविना तृष्णारूपी विषविषूचिका कदापि शान्त नहींहोती, यह जगत् जो अज्ञानियोंको वज्रसारवत् भासताहै, ज्ञानीकी दृष्टिमें वैसाही मिथ्या है, जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रतमें, जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहींहोती तभीतक यह जगत् जगत्‌रूपसे भासताहै, ज्ञान होनेपर वही जगत् जगत्‌रूपसे भासमान नहींहोता किन्तु शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपसे भासताहै, आरोपदृष्टिसे ब्रह्म जगद्रूपसे भासताहै; अपवाददृष्टिसे जगत्का जगदाकार नहीं रहता किन्तु ब्रह्मही शेष रहताहै, इसलिये विद्या और अविद्यामें केवल यही अन्तर है कि जगत् ब्रह्मरूप है या जगद्रूप यदि ब्रह्मरूप है तौ विद्या और जगद्रूप है तौ अविद्या, परन्तु पुनः २ अभ्यास बिना यह भावना जो अनेकजन्मोंसे जगत्‌की सत्यताके विषयमें दृढ होगईहै दूर नहीं होती और जबतक यह भावना दूर नहो तबतक सुखकी आशा कदापि नहीं होसकती. वास्तवमें जो कुछ भासताहै वह केवल चिन्मात्रही है, कोई वस्तु कभीभी सत् वा असत् नहीं है, इसलिये मनुष्यको जल-में भ्रमतेहुये तृणके समान अपने आपको इस जगत्‌भ्रान्तिसे निकालनाही सुखका हेतु होसकताहै, आ-त्मज्ञानकी प्राप्तिके दो उपाय हैं, एक योग दूसरा ज्ञान, वास्तवरीत्या दोनों उपाय योगशब्दसेही कहे जासक-तेहैं परन्तु रूढ़िमें योगशब्द प्राणके निरोधमें प्रयुक्त है । यह विषय भुशुंडाख्यानमें वसिष्ठजीने सम्यक्‌रीत्या निरूपण कियाहै, भुशुंडजीने चित्तके नाशका उपाय प्राणअपानकी गतिका साक्षी होना बतायाहै, हृदयसे प्राण उदयकोप्राप्त होकर नासिकाके बाहर बारह अंगुलपर अपानवायुमें लीनहोताहै और वहाँसे अपान उदयको प्राप्त होकर हृदयमें प्राणमें लीन होताहै, प्राणापानकी संधि शरीरके बाहर और हृदयमें ब्रह्मस्थान है उसकी धारणा करनेसे चित्त तत्क्षण एकाग्र होकर स्वस्वरूपमें लीन होजाताहै, यदि अपानके लय होनेके स्थानकी धारणाद्वारा अन्तःकुंभक किया जावे तौ वही परिणाम होताहै जो प्राणके लय होनेके स्थानकी धारणाद्वारा बाह्यकुंभकसे, प्राण अपानका उदय अस्त आतप और छायाकी नाईं बराबर चलता रहताहै "परन्तु जब अपानके अस्त होनेपर अन्तःकुंभकद्वारा प्राणका उदय नहो अथवा प्राणके अस्त होनेपर बाह्यकुंभकद्वारा अपानका उदय नहो, तौ स्वच्छ कुंभकके अभ्याससे प्राणीको दुःखकी प्राप्ति नहीं होती प्रत्युत देशकालान्तर्गत वस्तुसमूहके बाध होनेसे केवल एक निष्कल चिन्मात्र ब्रह्म शेष रहताहै. यह कुंभक जहां प्राणके अस्त होनेपर अपानका उदय न हो और अपानके लय होनेपर प्राणका उदय न हो योगियोंको अयत्नसिद्ध है और यही प्राणापानकी संधि परमात्माका स्वरूप है, जो सत्‌स्वरूपसे भासमान प्राणकाभी प्राण, जीवनकाभी परमजीवन और देहके धारण करनेका धुरा है इसी चिदात्माकी योगीजन उपासना करतेहैं."

दूसरा उपाय ज्ञान है जो अभ्यास और वैराग्यद्वारा अहम्‌को अनहम्‌भावमें लयकरनेसे मिलताहै, यह वसिष्ठजीने अपने और महादेवजीके सम्वादमें विस्तारपूर्वक दिखलायाहै. महादेवजी कहतेहैं कि न विष्णु,

न त्रिनेत्रधारी शिव, न ब्रह्मा, न इन्द्र, न पवन, न सूर्य्य, न अग्नि, न चन्द्रमा, न ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न तुम, न मैं, न कोई देहधारी वा चित्तरूपधारी, देवशब्दसे कथित होसकताहै, वह देव अकृत्रिम, आद्यन्तरहित, चित्स्वरूप, चिन्मात्र है. उसीकी उपासना करो, कृत्रिम देवादिकोंकी अर्चना उनलोगोंके लिये है कि जो उस अकृत्रिमदेवकी पूजाके अधिकारी नहीं हैं । उस परमदेवकी पूजाके लिये बोध साम्य शमही पुष्प हैं, आत्मज्ञान उस परमदेवताकी परमपूजा है, वह देव कहीं दूर नहीं है, न वह किसीको दुष्प्राप्य है, किन्तु वह इसी देहमें सर्वदा स्थितहै, नामरूपसे वर्जित, मन और इंद्रियोंसे परे, व्यवहारके लियेही उसकी संज्ञा चित्, काल, ईश्वर, आदि कल्पनाकी गई हैं और जब वह देवही एक अद्वितीय सर्वत्र स्थितहै तो द्वैत अद्वैतकी कल्पना कैसे होसकती है क्योंकि दोकी अपेक्षा एक होताहै किन्तु जब दोही नहीं है तो एक कैसे कहाजासकताहै.

इसी प्रकरणमें वसिष्ठजीने श्रीकृष्ण और अर्जुनका सम्वाद जो भगवद्गीतामें है उसकोभी संक्षेपसे वर्णन किया है और वहांपर यह दिखलायाहै कि मैं यह हूं, यह मेरा है, इसीसे सब दुःख होताहै, परन्तु जब यह जानालिया कि मुझमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है, तो फिर सुख, दुःख, कर्म्म, अकर्म्मसे बन्धायमान नहीं होता, नेत्र रूपको देखें, कर्ण शब्दको सुनें, त्वचा स्पर्श करे, रसना रस ले, मन कल्पना करे, मुझे इनके कर्म्मसे कुछ प्रयोजन नहीं है. जब सब संकल्प शान्त होगये, वासनाका क्षय होगया, मनमें कोई भावना न रही, तो फिर जो शेष रहा वह मेराही शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप है. जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्य्यन्त सत्तासामान्यरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहाहै वही सब शरीरोंमें सूक्ष्म अनुभवरूपसे स्थित है, उसीका यह जगत् आभास है, उसीमें यह सब सर्ग और प्रलय होते भान होतेहैं, और उसीमें वह महात्मा स्थित हैं जो मानमोहसे रहित, संगदोषसे वर्जित, अध्यात्मविचारमें तत्पर और सब संकल्पों तथा सुखदुःखोंसे मुक्त हैं.

इसके अनन्तर भगीरथ उपाख्यान है जिसमें यह दिखलायागयाहै कि जब बुद्धिसे राज्यादिके अभिमानको त्यागकर भयशून्य, सबप्रकारकी इच्छाओंसे रहित, अकिंचन होकर और अपनी सब लक्ष्मीको अपने शत्रुओंको देकर, अहंकारसे रहित, उन्हीं शत्रुओंके यहां भिक्षाटन करके गुरुकोभी छोडदोगे तबही ब्रह्मपदमें स्थित होगे, सुतरां राजा भगीरथने ऐसाही महात्याग किया और परमपदमें विश्रान्ति पाकर प्रारब्धवशात् फिर राजकिया परन्तु उसमें लिप्त नहींहुआ, शिखिध्वजको जिसप्रकार उसकी रानी चुडालाने उपदेश किया वह इस बातका साक्षीहै कि उससमयकी स्त्रियां कैसी विदुषी होती थीं, राजा शिखिध्वज वैराग्यकी प्रबलतासे अपने राजको त्याग, बनको चलेगये और वहाँ देवार्चन आदिमें अपना काल व्यतीत करनेलगे, परन्तु चित्तकी शान्ति नहीं हुई, रानीने कुछ कालतक तो राज्यव्यवस्थाको निबाहा और फिर मुनिपुत्रके वेषमें जाकर पतिको ज्ञानोपदेश किया, राजाने कहा कि मैं संसारसे भयभीत होकर इस वनमें निवास करताहूं, परन्तु सुखदुःखकी पुनः २ दशाओंको देखकर और एकदिशासे दूसरी दिशामें भ्रमण करकेभी चित्तकी शान्ति नहींपाता, इसपर चुडालाने उत्तर दिया कि जो कुछ क्रियाफल है वह वासनामात्र है, यदि वासनाको त्याग दियाजाय तो फिर कोई क्रिया बाधक न होगी, मनमें वासनाका होनाही उसका मनोभाव है, जब उसमें वासना नहीं रहती तब मनका मनोभाव जातारहताहै और ज्ञानद्वारा ज्ञेयको प्राप्त होकर पुनरुत्पत्ति नहीं होती. इन दंड कमंडल आदिमें क्यों रमण करतेहो ? क्यों तुम इस बातका विचार नहीं करते कि मैं कौन हूं ? यह संसार क्या है ? और इसकी शान्ति कैसे हो ? तुमने अपने ऊपर मूढ़ हस्तीकी नाईं अहंकारका महावत ऐसा चढ़ालियाहै कि वह तुमको नहीं छोडता. तुम समझतेहो कि मैंने राज्य छोडकर सर्वत्याग किया परन्तु बिना चित्तके त्यागे सर्व त्याग नहींहोता. जैसे २ वासनाका त्याग करोगे वैसेही सुखी होगे. सर्ववासनाके त्यागसे परमपद मिलताहै. राज्य और देह और आश्रम आदि सबका बीज मन है. जबतक मनका नाश नहीं होगा तबतक यह संसाररूपी रोग शान्त नहोगा. इस मनका स्वरूप वासनासे अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिये तुमको न केवल पदार्थवासना त्यागनी उचितहै किन्तु त्यागके अभिमानकोभी त्यागना उचितहै, इस अभिमानके त्यागका प्रथम उपाय यह है कि निरन्तर यह विचार रहे कि मेरा स्वरूप क्याहै ? मैं न संसारी हूं, न संसारके पदार्थोंसे मेरा कुछ सम्बन्ध है, न देह हूं, न ज्ञान अथवा कर्म्मेन्द्रिय हूं, न मन हूं, न बुद्धि हूं, न अहंकार हूं, किन्तु इन सबसे परे, इन सबका साक्षी हूं. मेरेमें कार्यकारणभाव कुछ नहीं है. कर्ताके अभावसे चित्त और जगत् कुछ नहीं है, किन्तु शुद्धबोधस्वरूप मैंही हूं.

इसप्रकार जब राजाको ज्ञान हुआ तो चुडालाने उसकी परीक्षार्थ फिर स्त्रीरूप धारणकरके उससे विवाह किया और कुछकाल उसकेसाथ रमणकरके उसकी पूर्ण परीक्षार्थ दूसरे पुरुषकेसाथ रमण करतीहुई दिखाईदी, परन्तु राजा अपने स्वरूपसे चलायमान न हुआ. रानीने उसको फिर राज्यमें लाकर स्थापितकिया परन्तु राजाका अनुभव सदा यही रहा कि मैं निरीह, निरंश, हर्षशोकमें समान जो हूं वही हूं, न मुझे प्रतिषेधका भान होताहै, न वांछितपदार्थका, मैं तो सर्वदा सबसे अतीत, आकाशवत् सर्वव्यापीरूपसे स्थितहूं.

इक्ष्वाकुमनुसम्बादमें यह निरूपण कियागयाहै कि परमेश्वर न शास्त्रसे, न गुरुसे, किन्तु अपनी स्वच्छ निर्मल-बुद्धिसेही प्राप्त होताहै ॥ "मैं देहहूं" यही बुद्धि संसारके बंधनका हेतु है, "मैं अकिंचिन्मात्रचिन्मात्ररूप आकाशसेभी सूक्ष्म हूं" यह बुद्धि संसारबन्धनसे मुक्त करनेवाली है ॥ मोक्ष किसी देश वा कालका नाम नहीं है, वह केवल अहंकारके लयका नाम है ॥ न ज्ञानी और अज्ञानीमें कोई और भेद है. ज्ञानी नित्यतृप्त शान्तचित्त होताहै. अज्ञानी सदा तृष्णासे दग्ध अशान्त चित्त रहताहै. जो लोग कि मंत्रसिद्धि तपसिद्धि आदिद्वारा आकाशगमनादिकोही बडा समझतेहैं उनकी ज्ञानियोंमें गणना नहीं होसकती किन्तु ज्ञानी सर्वदा निर्लिप्त रहताहै. ऐसे ज्ञानीका कि जिसका संसार-भ्रम सर्वथा नष्ट होगयाहै, कोई चिन्ह इसके अतिरिक्त नहीं है कि उसके काम क्रोध मोह लोभरूपी आपदा प्रतिदिन क्षय होते हों. वह जाग्रतमेंभी सुषुप्तके समान होताहै, यद्यपि बाहरसे कर्म्म करताहुआ दृष्टि आताहै परन्तु भीतरसे अकर्त्ता है. जब उसने यह जानलिया कि चित्तकी सत्ताही परमदुःख है और उसका अभाव अर्थात् चिदेकात्मामें लय होनाही परमसुख है, तो फिर उसे क्या कर्त्तव्य शेष रहा. यह सम्वेदन कि यह वस्तु ऐसी है और यह ऐसी नहीं है, यह ऐसा हो, यह ऐसा नहो यही संसार है, इसकी शान्ति मोक्ष है. संकल्पके वेगकोही संसार जानो, जब यह वेग शान्त होगया फिर संसार कहाँ रहा? संकल्पका बीज स्मृति है, स्मृतिका अभावही परम कल्याणका हेतु है. वसिष्ठ-जी कहते हैं कि "मैं ऊंचे हाथ उठाकर कहताहूं पर मेरी कोई नहीं सुनता. संकल्पका न फुरनाही परम कल्याण-कारी है, क्यों नहीं उसकी भावना करते, थोडे कालतकभी सब व्यापारसे उपरत हो मौन धारण करनेसे, उस पदकी प्राप्ति होती है, जहांपर त्रैलोक्यका राज्यभी तृणवत् भासताहै, जैसे कोई पथिक अपने गम्यदेशको जाता-हो और उसके पाँव आपही उठते चलेजातेहों वैसेही संकल्पको त्यागकर कर्म्ममें प्रवृत्त होवो. बहुत कहनेसे क्या, संक्षेपसे कहाजाताहै कि संकल्पही बंध है और उसका अभावही मोक्ष है. अवेदन अर्थात् चित्तकी किसी वृत्तिका उदय नहोना और चित्तका अत्यन्त क्षय होनाही योग है. अत्यन्त तन्मय होकर जैसे हो वैसे स्थितहो, जो शिव सर्वगत शान्त बोधात्मक अज और शुभ एकपद है उसीकी भावना करना सर्वत्याग है, ऐसी भावना करतेहुये इस संसारमें विचरो. जबतक अहंममका सम्वेदन फुरताहै तबतक दुःखसे नहीं छूटता. उसके न फुरनेसेही दुःखसे छूटताहै, जैसी इच्छाहो वैसा करो. वसिष्ठजीके उपदेशका सार यह? है कि:—

स्वयं विचार्य्य स्वयमेव चेतसा तत्प्राप्यते येन न शोचते पुनः ।
सत्संगसच्छास्त्रविवेकतः पुनर्वैराग्ययुक्तेन विभाव्यमेतत् ॥

स्वयं विचारद्वारा अपने चित्तसेही वह वस्तु प्राप्त होतीहै जिससे पुनः यह जीव सोच नहीं करता. वैराग्ययुक्त होकर सत्संग, सच्छास्त्र, और विवेकसे उसीकी भावना करो.

इसप्रकरणके उत्तरार्द्धमेंभी, जो पूर्वार्द्धकी अपेक्षा बहुत विस्तृत है, जगत और ब्रह्मकी एकता दृढ कीगई है, वसिष्ठ-जीका कथन है कि जिस निमिषमें अहम्भावना उठे उसी निमिषमें अनहम् भावना करो, और इस भावनाको हृदयमें धारण करो कि यह सब जगत मैंही हूं, मुझसे पृथक् कुछभी नहीं है; अथवा न मैं हूं, न यह जगत् है, किन्तु एक चिन्मात्रही है. चित्तही जगत्का कारण है. जब चित्त बहिर्मुख होताहै तो पहिले अहम् फिर मम और फिर इदम् फुरताहै. चित्त प्राणके अन्तर्गत और प्राण चित्तके अन्तर्गत है, इन दोनोंका परस्परसम्बन्ध बीजांकुरवत् है; और जब जगत् चित्तके अन्तर्गत है तो चित्तके निरोधसे जगत्की स्फुरणा नहीं होती,, ब्रह्ममें यह जगत् हैही नहीं परन्तु विद्यमानके समान भासताहै. जब यह जगत् हैही नहीं तो इसका कारणान्वेषण वैसेही वृथा है, जैसे शशशृंग अथवा वन्ध्यापुत्रका कारणान्वेषण. इस अनादि भ्रमजालकी शान्तिका उपाय शमही है. जैसे निमेष और उन्मेष रूपावलोकन और उसके तिरोधानका हेतु है, वैसेही सम्वित्का बहिर्मुख और अन्तर्मुख होना जगत्की उत्पत्ति और लयका हेतु है, इसीको दृष्टिसृष्टिवाद कहतेहैं. जब यह जगत् हैही नहीं तो इससे भीति किसप्रकारकी होसकती है और जब केवल चिदाकाशमात्रही

है तौ सुखदु:खकी व्यवस्था क्या? इसलिये आपदा और सम्पदा, उत्पति और नाश, हर्ष और विषादकी भावनाको सर्वथा त्यागकर निस्तरंग समुद्रवत्, अहंकार रहित, यथास्थित रहनाही कल्याणकारी है.

जाग्रतको सुषुप्तिवत् और सुषुप्तिको जाग्रतवत् देखनेसेही उस पदको प्राप्तहोगे. जो न एक है, न दो है, न जगत् है, न माया है, किन्तु आकाशवत् शुद्ध और निरामय है. वहां वाणीकी गति नहीं है, वाणी वहींतक प्रवेश करसकती है जहां द्वैतका लेश है. इसपर रामचन्द्रजीने प्रश्न किया कि महाराज जब न एक है न दो है तौ फिर वसिष्ठजी कौन हैं? इसपर वसिष्ठजी मौन होगये और जब रामचन्द्रजीने पूँछा कि आप क्यों मौन होगये तौ उन्होंने उत्तर दिया कि जो कुछ वाणीका विषय है वह चाहे व्यावहारिक हो वा पारमार्थिक, विकल्पके कलंकसे रहित नहीं है, अतएव जब ज्ञातज्ञेय होगया तौ वहां सिवाय मौनके और कोई उत्तर नहींहोसकता. आत्मपद वाणीके कलंकको धारण नहीं करसकता. यदि यह पूंछो कि हम, तुम और यह जगत् क्या है तौ उसका उत्तर ज्ञानकी प्राप्तिके पहिले तो यह है कि ब्रह्मरूप है और उसके पश्चात् मौन है. यदि यह कहाजाय कि इस पदमें स्थित ज्ञानीका व्यवहार कैसे बनेगा तो इसका उत्तर यह है कि उसका व्यवहार निर्वाणपदकी प्राप्तिसे पहिलेही बनसकताहै. उस दशामें वह व्यवहार रागद्वेषसे वर्जित होगा और निर्वाणपदमें तौ व्यवहार बनही नहीं सकता. जब मनुष्यके हृदयमें यह शुभवासना उत्पन्नहोती है कि मैं इस संसारसमुद्रसे कैसे तरूँ, इन क्षणभंगुर विषयसुखोंकी अपेक्षा मुझको वह सुख जो सदा एकरस है कैसे प्राप्त हो, तब वह शुभेच्छानामकी प्रथमभूमिकामें प्रवेश करताहै. फिर सत्संग और सच्छास्त्रविचारद्वारा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको जानकर अपने चित्तको बहिर्मुख होनेसे रोकताहै और उसके मलोंका प्रक्षालन करताहुआ शुभविचारमें तत्पर रहताहै. यह सुविचारणानाम्नी द्वितीयभूमिका है. तृतीयभूमिकामें वह यह जानलेताहै कि मैंही चिदाकाशरूप हूं और इस अनुभवके दृढीकरणार्थ वैराग्यको बढाताहै, विषयवासनाको क्षय करताहै, और मनो बाक् अतीतपदमें स्थितिका प्रयत्न करताहै. इस अवस्थाको तनूमांसा कहते हैं. यह तीनों भूमिका जाग्रतभूमिका हैं, जिनमें यद्यपि जगत्की असत्यताका निश्चय होजाताहै, तथापि उसका सर्वथा बाध नहींहोता, इसलिये जो कुछ व्यवहार होताहै वह इन तीन भूमिकाओंमें तौ अन्यमनुष्योंकी अपेक्षा शुद्ध और रागद्वेषसे रहित होताहै. अगली तीन भूमिकाएँ अर्थात सत्वापत्ति, असंसक्ति, और तुर्य्या हैं, उनमें स्वस्वरूपमें ज्ञानी जागताहै और जगत्की ओरसे स्वप्न अथवा सुषुप्तिमें रहताहै. इसलिये इन भूमिकाओंमें व्यवहार बन नहींसकता. यद्यपि शारीरिकक्रियाको कुछकालतक निबाहताहै परन्तु आगे जाकर वहभी परप्रेरणासे होती है वा होतीही नहीं. अन्तिमभूमिका तुर्य्यातीत तो विदेहमुक्तिका विषय है; उसमें क्रिया कहाँ. जबतक अविद्याका लेशहै तभीतक प्रवृत्ति होती है, जब अविद्याके बीजका नाश होगया तब फिर प्रवृत्ति बन नहींसकती. यदि यह पूंछो कि अविद्याका स्वरूप क्याहै तो उसका उत्तर यहहै कि जो ढूंढनेसे न मिले वही अविद्या है यदि वह ढूंढनेसे मिलेगी तो अविद्या न रहेगी किन्तु विद्या होजायगी। वासना, इच्छा, चित्, जीव, अविद्या सब पर्य्यायशब्दहैं, इनका मूल अहम् ममका स्फूरणमात्र है और उसकी शान्तिही निर्वाणपद है. इच्छामात्रही संसारहै. उसकी शान्तिही मोक्ष है. अब प्रश्न यहहै कि ज्ञानीको कोई कर्त्तव्य है वा नहीं? उसका उत्तर यही है कि यद्यपि ज्ञानीको कोई कर्त्तव्य नहीं है तथापि संसार मायाके वेगको देखकर वह अपने प्रयत्नसे कभी शिथिल नहींहोता किन्तु शुभकर्म्म और अभ्यास वैराग्यमें सदा सावधान रहताहै. ऐसे महापुरुष कि जिनको संसारसे वैराग्य होगयाहै, जिन्होंने सत्संग और सच्छास्त्रद्वारा विषयवासनाको सर्वथा दग्ध करदियाहै, वह यदि धनवान होते हैं तौ परोपकारार्थ अपना धन काममें लाते हैं. सबसे मित्रता रखते हैं, दीनोंपर दया करते हैं, दु:खियोंके दु:ख दूर करते हैं और सदा अपने लक्ष्यमें स्थिर रहते हैं. ऐसे अधिकारियोंकी ईश्वर विवेकदानद्वारा सहायता करताहै और नित्यप्रति उनकी ज्ञानकला बढतीजाती है उनसे किसीप्रकारका निषिद्धाचार बनही नहीं सकता. यथेच्छाचरण, यथेच्छाभक्षण, यथेच्छाकथन कि जो परपीडाका हेतु अथवा जो लोक वा शास्त्रविरुद्ध हो उनसे कदापि नहीं होता. उनका हृदयसे त्यागही यज्ञ है. ध्यानमें सदा स्थितिही उस यज्ञका यूप है और स्थावरजंगम प्राणीमात्रको ब्रह्मरूप देखनाही उस यज्ञकी आहुति है. सब धर्म्मोंकी समाप्ति इसही एक आत्मदर्शनपर है. जबतक यह नहीं मिलता तभीतक सबओर मनुष्य दौडताहै. जब यह मिलगया तौ फिर किसीधर्म्मकी अपेक्षा नहीं रहती. जब यह निश्चय होगया कि न मैं हूं, न कोई दूसरा है, न कुछहै, किन्तु केवल ब्रह्महीहै तौ फिर किस पदार्थकी इच्छा रहसकती है?

यह दृश्य चिद्रूप है. ज्ञानीको उचित है कि सब दृश्यका बाधकरके पाषाणके उदरके सदृश अपने स्वरूपमें स्थित रहे. सब दृश्य परमार्थदृष्टिसे ब्रह्महीहै. सृष्टिके पूर्वभी यह चिन्मात्रस्वरूप था, अबभी चिन्मात्रस्वरूप है. और वही चिन्मात्र ब्रह्म अपने स्वरूपको विनात्यागे जगत्‌रूपसे भासताहै. यह जीव इस संसाररूपी महासमुद्रमें तभीतक तरंगभावको धारण करताहै जबतक कि वह अपने स्वरूपको नहींपहिचानता. स्वरूपनिश्चय होनेपर उसका तरंगभाव निवृत्त होजाताहै और वह ब्रह्मरूपी समुद्रमें लीन होजाताहै. स्थूल और तथा जाग्रत् सूक्ष्मका भेद अज्ञानदृष्टिसेही भासताहै. जैसे कि स्वप्नका नगर जाग्रतमें असत्य भासताहै, वैसेही ज्ञानदशामें स्वप्न दोनों जगत् असत् भासतेहैं. वास्तवमें एक चिदाकाशही है और ज्ञानीका यह अनुभव है कि वह चिदाकाश जैसे मैं हूं वैसे सब है, और नामरूपकी भावना अज्ञोंकी है न कि मेरी. जैसे स्वप्नमें स्फुरितनगर चिद्रूपसे निजआत्मामें स्थित है वैसेही प्रलयपर्य्यन्त यह सृष्टि ब्रह्ममें स्थित है. चिद्रूप होनेसे न कुछ मरताहै न उत्पन्न होताहै किन्तु चित्‌ही तथा जाग्रत जगत जगद्रूपसे स्फुरित होताहै. यह चित्त जैसा देखताहै वैसाही उसको भासने लगताहै. जब वह चेत्य अर्थात् विषयकी ओर आताहै तौ संसार भासताहै और जब स्वरूपको देखताहै तौ कुछ नहीं भासता. जबतक उसको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती तबतक वह लोक, परलोक, तीर्थ, स्नान, दान, अग्निहोत्र, पूजा, ध्यान, विचार, शास्त्रार्थमें तत्पर रहताहै. उससमयतक सब सत्य है परन्तु ज्ञानके पश्चात् तौ आत्माही सत्य है. स्वर्गमें देवता भोगोंमें निमग्न ईर्षा वैरसे दानवों और असुरोंकेसाथ युद्ध करतेहैं. गंधर्व गीतवाद्यमें तत्पर हैं. विद्याधर, यक्ष, पिशाच, राक्षसादि अपने २ भोगोंमें लगेहुयेहैं, पिपीलिकाकेसमान मनुष्य महातुच्छ विषयकणके लोभसे अहर्निश पृथिवीपर भ्रमणकरते और मत्तके सदृश व्यर्थ महादुष्ट चेष्टाओंमें अपने दिन विताते हैं और देहाद्यभिमानकी वायुसे ऐसे उडेजातेहैं जैसे निःसार धान्यका भुसा. विरलेही इस संसारमें आत्मपदमें विश्रांति पातेहैं. देवताओंमें यम, सूर्य्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि, ऋषियोंमें नारद, सनत्कुमारादि, दानवोंमें बलि, प्रल्हाद, शम्बरादि, राक्षसोंमें विभीषण, इन्द्रजीत आदि, और मनुष्योंमेंभी कोई २ ज्ञानी हुयेहैं. ऐसे महापुरुष दृष्टिसेही औरोंके अन्तःकरणोंको शीतलकरदेतेहैं. शास्त्रके अर्थ और लोकतत्वके जाननेवाले, यथाप्राप्तानुवर्त्ती, शास्त्रविरुद्ध कार्योंसे बचनेवाले, सज्जनोंके आचारके रसिक, जनसमूहके पापनिवारणमें समर्थ, विपत्तिमें सबको सहारा देनेवाले, माधुर्य्य और प्रेमकी खानि, ऐसे साधुजनोंको देखकरही संसारमार्गसे थकेहुये पुरुष विश्रांति पातेहैं. सज्जनोंसे कोई वस्तु दुष्प्राप्य नहीं होती. उनके सत्संगसे मनुष्यके चित्तको वैसाही आल्हाद होताहै जैसा सुगंधितपुष्पोंसे. ऐसे महानुभावोंको न मरनेकी चिन्ता है न जीनेका एक हर्ष है. एकदेहसे दूसरे देहमें प्राप्ति नित्य नया उत्सव है, इसलिये इस मरणात्मक शरीरके त्यागमें हर्ष होना चाहिये न कि विषाद. यदि मरणके पश्चात् दूसरा देह न मिले तो इस संसारदुःखसे सदाके लिये छूटगये और जो मिले तौ इस जीर्णदेहके स्थानमें नयादेह मिलना परमसुखका हेतु है. हे मूढ ! तूं कहताहै कि हाय ! मैं मरा मरा मरा– तूं यह नहीं देखता कि मैं होऊंगा होऊंगा होऊंगा. ज्ञानीका अनुभव स्वसम्वेद्य है, परसम्वेद्य नहीं. उसको इसबातकी अपेक्षा नहीं कि अन्यपुरुष मेरा गुण जाने किन्तु जब उसने जगत्‌को तृणवत् जानलिया तौ फिर उसको दूसरोंसे क्या लेना है. यह चित्तकी नदी विवेक तथा अविवेक दोनों ओर बहती है. ज्ञानी उसको संसारभावनाके तनूकरणीद्वारा विवेककी ओर, और अज्ञानी भावनाके पोषणद्वारा अविवेककी ओर लेजाताहै. ज्ञानीका लक्ष्य सदा उस चिन्मात्रवस्तुपर रहताहै जो एकदेशसे दूसरे देशमें जानेवाली दो सम्विदोंके मध्यमें है, जो सब इच्छाओंके शान्त होनेपर समभावसे शेष रहती है, जो निद्राके तौ न आनेपर परन्तु विषयके क्षीण होनेपर समभावमें स्थितिहै इसीको चिदाकाश कहतेहैं. जो तृण लता और गुल्मआदिकी ऋतु २ में वृद्धिका हेतु है, जो रूप आलोक और मनस्कारसे मुक्त है, जो पुरुषका शरद्‌आकाशवत् निर्मलभाव है, जो पाषाणोंकी पाषाणवत् स्थिति और चेतनोंकी चेतनसत्ता है, जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इनके उदय और लय होतेहैं, जो सब पदार्थोंका अनुभवरूप है, जिसमें यह सब है, जिससे यह सब है, जो यह सब है, और जो सब ओर, सबमें, स्वर्ग, आकाश, पाताल, भीतर, बाहर, सबको धारणकररहाहै; जिसमें यह सब ओतप्रोत है, जो कुछ नहीं है और सब कुछ है, वही चिदाकाश ब्रह्म है. जो निर्वासनिक होकरभी सब इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करताहै, जो सुषुप्तघन होकरभी जाग्रत् रहताहै, जिसमें आरोपदृष्टिसे यह जगत् भान होताहै और अपवाददृष्टिसे कुछ नहीं रहता उसी चिदाकाशमें ज्ञानीकी स्थिति है. यही पाषाणोपाख्यानका सार है ॥

विपश्चिदाख्यानमें यह निरूपण कियागयाहै कि इस जगतमायाका अन्त इसमें भ्रमण करनेसे न किसीने पायाहै, न कोई पासकताहै. और यह जगत् जो सत्यवत् भान होताहै दीर्घकालके स्वप्नसे अधिक कुछ नहीं है. जीवकी निजअभ्यस्त वासना जिस २ पदार्थमें दृढ होती है वही पदार्थ उसको दृढ भासताहै और जब बहुतसे प्राणियोंकी एक वासना होती है तो उनको वैसाही पदार्थ भान होताहै. इसीका नाम जगतमाया है ॥ राजा विपश्चित्के अविद्याके खोजनेकी दृढ वासना चित्तमें धारण करतेही उसको अनेक जन्मजन्मान्तरोंमें अनेक जगतोंका भान हुआ, और एक चिद्रूप परमाणुके उदरमें वासनामय अनेक जगत् दिखाईपडे. अनेक शरीरोंको ग्रहण किया और अन्तमें मृगका शरीर धारण करनापडा और फिर मनुष्यशरीरमें प्रवेश किया, उन्होंने अपने अनुभवको इस तरहसे कथन किया कि जब मैं अनन्त ब्रह्मांडोंसे पूर्ण इस जगत्को देखकर चकित हुआ और कहींभी आलम्बन नमिला तो मैंने एक स्त्री देखी और उससे पुछा कि तुम कौनहो? उसने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण पदार्थमात्रमें शुद्धचित् मैं हूं और यह सब जगत् मेरा अंग है. अविवेकी जन मेरे शुद्धरूपके अज्ञानसे जगत्को मुझसे भिन्न मानकर वृथा भ्रमण करते हैं, वास्तव रीत्या जैसे अनाहतशद्ध प्राणीमात्रके देहमें निरन्तर होताहै परन्तु उसको योगीजनही सुनसकतेहैं इसीप्रकार यह चेतनसत्ता अपने आपको सर्वत्र पुकार २ कर कहरहीहै परन्तु अज्ञजन पदार्थोंमें पृथक् २ वासनावशात् उसको नहीं सुनते. प्रत्येक प्राणीका चित्त जैसी २ कल्पना सत् अथवा असत् करताहै वैसाही वह होजाताहै. जब वह इस बातकी दृढ भावना करताहै कि मैं प्राण और देहके विना कभी न रहूं तो उसको अनेक देह निरन्तर भान होतेहैं जब उसको यह निश्चय होगया कि मैं देह नहींहूं, न देहसे मेरा कोई सम्बध है, किन्तु मैं चिद्रूपहूं, तो फिर उसको देहभान नहीं होता. अद्वैतब्रह्ममें यह सृष्टि किसीप्रकार द्वैतरूपसे उत्पन्न नहीं होती किन्तु चेतनके जगदाकार स्फुरणनेही जगत्का रूप धारण करलिया है और निजकल्पनासेही प्राणवान् देहधारी और फिर त्रिलोकीरूप वहीहै यही उसका निश्चय रहताहै. चितिशक्तिही नश्वर तथा अनश्वरस्वरूपसे भान होती है. यथार्थमें वह ज्योंकीत्यों रहती है. मनसे पूर्वसे पश्चिमतक चलेजाओ और अनेकस्थानोंपर अनेक दृष्ट, श्रुत, अनुमित पदार्थोंको देखते जाओ परन्तु वहां उन पदार्थोंकी दृष्टिके साथ तुम अपने चित्स्वरूपको कभी नहीं भूल सकते. वह चित् जैसी की तैसी सब दृष्टियोंमें सत्तासामान्यरूपसे रहती है. इसीप्रकार जब तुम कोई संकल्प करते हो और यह भावना होती है कि मैं वैसा होजाऊं तो पहिले प्रातिभासिकरूप और फिर व्यावहारिकरूपसे वैसाही भान होनेलगताहै. जगत् केवल वाणीका विकारमात्र है, ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कुछ नहीं है, वही शरीर, कर्म्म, सुख, दुःख, सदसद्रूप, अपने संकलपसे होताहै. यह कहना कि चित्का स्फुरण जगत् है यहभी राहुशिरवत् षष्ठीसमास है. वास्तवमें स्फुरणभी नहीं, चित्ही चित् है. आत्मख्याति, असत्ख्याति, अन्यथाख्याति और अख्यातिमेंसे कोईभी नहीं बनसकती. इसीप्रकार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य्याभी केवल आभासमात्रहैं. इन सबमें जो चिदाकाश अनस्यूत है वही सब कुछ है. जब चित्तको शान्ति नहीं होती तो जाग्रत, भ्रममें स्थित रहनेसे स्वप्न, अविद्या आवरणसे सुषुप्ति, तीनोंको उल्लंघन करनेसे तुर्य्या और तीनोंके असत् होनेसे तुर्य्याभी असत् है. सर्वथा शान्तरूप सब निर्विकल्प परमात्माहीहै, यही ज्ञानीका निश्चय है. वह आकाशवत् निर्म्मल अन्यपुरुषोंके सदृश व्यवहार करताहुआभी अपने आनन्दमें मग्न रहताहै. ऐसे तत्त्वदर्शीकी जो संसारकी ओरसे निद्रा होतीहै वह सांसारिकनिद्रासे अतीव विलक्षण है क्योंकि उसके नेत्र खुले होने और अंगोंके व्यापार होनेपरभी वह विषयकी ओरसे सदा सुषुप्त रहताहै तथापि विरुद्ध आचरणोंके करनेमें मृतककेसमान और शुद्धाचारमें बृहस्पतिके तुल्य होताहै. पवित्रकथाओंका कहनेवाला, अपने दोषोंको जाननेवाला, समदर्शी, उदारचरित, दानशील, स्निग्धस्वभाव, अतिकोमल, यही जीवन्मुक्तका लक्षण है और जैसे कि चन्द्र, सूर्य्य तथा अग्नि अपने प्रकाशको किसी दूसरेकी प्रेरणासे नहीं फैलाते किन्तु स्वभावसेही फैलाते हैं ऐसेही ज्ञानीके शुभगुण स्वभावहीसे आचरित होतेहैं नकि प्रयत्नसे. उसको सदा समाधिका सुख व्यवहारकालमेंभी रहताहै. भेद रहनेपरभी वह सर्वत्र एकरस, शरीरआदि होनेपरभी सदा अशरीर, बाह्यसंसार होनेपरभी अन्तर्मुख रहताहै. सम्पूर्ण व्यवहार करताहुआभी ब्रह्ममें स्थित, आत्मासे भिन्न किसीपदार्थको नहीं जानता. यही ज्ञानीके चिन्हहैं. जिसमें यह चिन्ह नहों वह ज्ञानी नहींहै चाहे कितनाही शास्त्रवेत्ता क्यों नहो. जबतक अज्ञान है तबतक

परमात्मामें लक्षों ब्रह्मांडोंकेसमूह उससे अभिन्न रहकरभी भिन्नकेतुल्य भासते हैं. वास्तवमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, सब स्वप्नवत् मिथ्याहै, केवल एक ब्रह्मही सत्यहै, उसमें दोनों धर्म्महैं. पदार्थका भान अज्ञदृष्टिसे और आनादि अनन्त अद्वैत एकरूप ब्रह्म तत्वदृष्टिसे, यही ज्ञानका सार है.—

अन्तमें जब रामचन्द्रजीने वसिष्ठजीसे यह प्रश्न किया कि जब आपका यह सिद्धान्त है कि कारणके अभावमें आरंभसेही सृष्टि नहींहुई और केवल आभास अथवा भ्रममात्र है तब यह भ्रम किसको हुआ ? वसिष्ठजीने उत्तर दिया कि वस्तुतः भ्रान्ति हैही नहीं केवल इस ज्ञानकी दृढता न होनेसे कि एक परमात्माही है नानात्वकी भ्रान्तिसी जानपडती है. यदि यह कहाजाय कि ज्ञान अथवा बोधभी बोध्य और बोधकके अभावसे नहीं है तो यहभी परमार्थतः सत्य है. क्योंकि परमार्थदृष्टिसे मैं ज्ञानी हूं अथवा मैं ब्रह्म हूं यह कथनभी नहीं बनसकता. अन्तमें मौनही रहना श्रेय है. क्योंकि यह विषय मन और वाणीसे परे है.

इसप्रकार वसिष्ठजीने जब रामचन्द्रजीको उपदेश किया तो उन्होंने यह जानकर कि विद्या, अविद्या, सुख, दुःख, परिज्ञात होनेपर केवल ब्रह्मही है और जगत्भी उससे कुछ व्यतिरिक्त नहीं है, कहा कि अब मैंने अपने स्वरूपको जानलिया परन्तु कुछ अन्यरूप नहींहोगया. पहिले जो ब्रह्म अज्ञात आत्मा था वह अब ज्ञात होनेपर निजस्वरूप आत्मा है. हे मुने ! ज्ञानोदयसे मैं निर्वाणरूप हूं, अज्ञानके नाशसे शंकारहित हूं, विक्षेपरहित नित्य आत्मसुखमें यथास्थित नित्य अनन्त आत्मस्वरूपमें स्थित हूं, ब्रह्मभावसे च्युतहोनेके कारण अज्ञानादिके अभावसे समस्त ब्रह्मस्वरूपमें मैं क्यों न स्थित होऊं. सर्वदा सर्वरूप अनन्त ब्रह्म मैंही हूं, सर्वाधार सत् अद्वितीय मैंही हूं, अदेशकालादि अपनेंसे भिन्नआधारके अभावसे कहींभी नहींहूं अथवा शान्तस्वरूप हूं, वा सच्चिद्स्वरूप हूं, अथवा सापेक्ष होनेसे कुछभी नहींहूं. अहो यह निर्वाणरूप शान्ति आश्चर्य्यरूप है. हे मुने ! जानने योग्य ब्रह्मतत्व मैंने जाना, अज्ञजनोंको अप्राप्य मोक्षसुख मुझे प्राप्तहुआ, संसारके अनर्थ सब अस्त होगये, अन्तिम परमार्थस्वरूपके साक्षात्कारके उदयसे वह बोधस्वरूप मेरा उदितहुआ, कि जिस स्वरूपमें उदयअस्तमय जननमरण-आदि दुःखोंका लेशमात्र नहीं है. जब इसप्रकार रामचन्द्रजीको आत्मानुभव हुआ तो वसिष्ठजीने कहा कि अब तुम अमनीभावको प्राप्तहोकर ब्रह्मरूपसे समदर्शी, स्वस्वरूपमें निःशंक स्थित हो. सम्पूर्ण ज्ञान तुह्मारे हृदयमें स्थित है. अब तुम कहो कि तुह्मारी स्थिति कैसी है और तुम जगत्को कैसा देखतेहो ? रामचन्द्रजीने उत्तर दिया कि मुझको जगत् ब्रह्मरूपसे ऐसाही दीखताहै कि जैसे स्फटिक स्फटिकरूपसे. मैं अब विषयोंकी आशासे व्याकुल नहींहूं, न मेरी देहमें आत्मबुद्धि है. मेरी मोहनिद्रा ज्ञानद्वारा बाधित होनेपर मैं अविनाशी चित्स्वरूप जागताहूं, भावी कार्यको यथाकाम, वर्त्तमानको यथाप्राप्त, अतीतको यथोचित आपकी आज्ञा और शास्त्रके अनुसार फलकी आकांक्षासे राहित करूंगा. चाहे सृष्टिविपर्य्यय हो, देश सौम्य हो वा नहो, मैं अपने स्वरूपमें सदा स्थिर रहूंगा. लोकदृष्टिसे और मनुष्योंके समान मैंभी स्थितहूं परन्तु जबतक यह शरीर रहैगा तबतक निर्मलदृष्टिसे संसारकी मर्य्यादाको ऐसे पालन करूंगा जैसे बालक अपनी अवस्थाके अनुकूल लीलाको, सर्व क्रिया करूंगा परन्तु सर्वत्र समदृष्टि ब्रह्मानन्दमें स्थित रहूंगा.

यह वसिष्ठजीके उपदेशका परिणाम श्रीरामचन्द्रजीने प्रकट किया और उसके अनुकूल यथाप्राप्तानुवर्ती अपने कार्य्यमें तत्पर हुये. यही फल इस ग्रन्थके विचारका अद्यपर्य्यन्त सब सज्जनोंमें देखागयाहै. वेदान्तमें कोई ग्रन्थ ऐसा विस्तृत और अद्वैतसिद्धान्तको इतने आख्यानों और दृष्टांतों और युक्तियोंसे ऐसे दृढ प्रतिपादन करनेवाला आजतक नहीं लिखागया, इस विषयमें सभी सहमत हैं कि इस एक ग्रन्थके विचारसेही कैसाही विषयासक्त और संसारमें मग्न पुरुष हो वहभी वैराग्यसम्पन्न होकर क्रमशः आत्मपदमें विश्रान्ति पाताहै. यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आई है कि इस ग्रन्थके सम्यक् विचार करनेवाले यथेच्छाचारी होनेके स्थानमें अपने कार्य्यको लोकोपकारार्थ उसी दृष्टिसे कि जिस दृष्टिसे श्रीरामचन्द्रजी करतेथे करतेहुये उनकीनाई स्वस्वरूपमें सदा जागते हैं. पाठकगण श्रीरामचन्द्रजीके इस अनुभवको सदा चित्तमें रखें.

साम्राज्यस्याथवा व्योम्नि या स्थितिःक्षोभवर्जिता ।
तामेवानुभवाम्यत्र मच्चित्तामनपायिनीम् ॥ १८ ॥
खादप्यतितरामच्छं चिदाकाशांशमात्रकम् ।
जगदित्येव पश्यामि लोचनाद्यंगतां गतः ॥ १९ ॥
आकाशमात्रमेवेदं जगदित्येकनिश्चयः ।
दृश्यनाम्नि नभस्यस्मिन् क्षये जागर्मि चाक्षयः ॥ २० ॥
न तुष्यामि न हृष्यामि न पुष्यामि न रोदिमि ।
कार्य्यं कार्य्यं करोम्येको भ्रान्तिर्दूरंगता मम ॥ २२ ॥

और वसिष्ठजीके इस अन्तिम उपदेशको कभी न भूलें.

ज्ञानं सदेतदखिलं श्रुतमुत्तमं चित्
संसारदीर्घरजनी सितरश्मिबिम्बम्
जातस्त्वमभ्युदयवानमलैकबोध
उत्सार्य्य मोहमनुतिष्ठ यथागतं त्वम् ॥ १ ॥
तिष्ठंस्तदात्मनि परे विमलस्वभावे
सर्वात्मके तपति सर्वपदार्थमुक्तः
निर्वाणशान्तमतिरम्बरकोशकान्तो
धर्म्मेण राज्यमनुपालय तीर्णतृष्णः ॥ २ ॥

पंडित ठाकुरप्रसादजीने जिसपरिश्रमसे इस ग्रंथका भाषानुवाद किया और पंडित श्रीधरशिवलालजीने जिस परिश्रमसे इसको मुद्रित किया उसका धन्यवाद कहांतक दूं. आशाहै कि यह भाषाटीका सर्वसाधारणको उपयोगी होगी. यदि उसमें कुछ त्रुटी रहगई हो तो विद्वज्जन क्षमा करेंगे.

विद्वज्जनपदानुरक्त—

वैजनाथ.

ॐ तत्सत् ॥

श्री.

योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका ।

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
	१ वैराग्यप्रकरणम् ।	
१	सूत्रपातः ...	१
२	सूत्रपातः ...	५
३	तीर्थयात्राकरणम् ...	७
४	दिवस व्यवहारानिरूपण ...	१०
५	कार्श्यनिवेदनम् ...	११
६	विश्वामित्राभ्यागमनम् ...	१२
७	विश्वामित्रवाक्यम् ...	१५
८	दशरथवाक्यम् ...	१७
९	वसिष्ठमाश्वासनम् ...	१९
१०	राघवविषादः ...	२१
११	राघव समाश्वसन ...	२४
१२	प्रथम परिताप ...	२७
१३	लक्ष्मीनिराकरण ...	२९
१४	जीवितगर्हा ...	३०
१५	अहंकार जुगुप्सा ...	३२
१६	चित्तदौरात्म्यम् ...	३३
१७	तृष्णाभंगः ...	३५
१८	कायजुगुप्सा ...	३९
१९	बाल्यजुगुप्सा ...	४३
२०	यौवन गर्हा	४५
२१	स्त्रीजुगुप्सा ...	४८
२२	जराजुगुप्सा ...	५०
२३	कालापवादः ...	५२
२४	कालविलासः ...	५६
२५	कृतान्तविलसितम् ...	५७
२६	दैवविलासवर्णन ...	५९
२७	निःश्रेयस विरोधभावानित्यताप्रतिपादनम्	६२
२८	सर्वभावाविरतिविपर्य्यासप्रतिपादनम् ...	६५
२९	सकलपदार्थानास्थाप्रतिपादनम् ...	६८
३०	प्रयोजनकथनम् ...	७०
३१	राघवप्रश्नः ...	७२
३२	नभश्चरसाधुवादः ...	७४
३३	नभश्चर महीचरमेलनम् ...	७५

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
	२ मुमुक्षु व्यवहारप्रकरणम् ।	
१	शुकनिर्य्याणम् ...	७८
२	विश्वामित्रवाक्यम् ...	८२
३	भूयोभूयः सर्गानुवर्णनम् ...	८४
४	पौरुषप्रकरणम् ...	८७
५	पौरुषस्थापनम् ...	८९
६	दैव निराकरण ...	९१
७	पौरुषप्राधान्यसमर्थनम् ...	९४
८	दैव निराकरणम् ...	९७
९	कर्म्मविचारः ...	९९
१०	ज्ञानावतरणम् ...	१०२
११	वक्तृप्रच्छक लक्षणम् ...	१०५
१२	तत्वमाहात्म्यवर्णनम् ...	११०
१३	शमनिरूपणम् ...	११२
१४	विचारनिरूपणम् ...	११७
१५	सन्तोपनिरूपणम् ...	१२१
१६	सदाचारनिरूपणम् ...	१२३
१७	ग्रन्थसंख्यादि वर्णनम् ...	१२५
१८	दृष्टान्त निरूपणम् ...	१२८
१९	प्रमाण निरूपणम् ...	१३३
२०	सदाचार निरूपणम्	१३६-७
	३ उत्पत्ति प्रकरणम् ।	
१-३	बन्ध हेतु ...	१३९—१४९
४	अर्थकल्पना ...	१५०—१५४
५	मूलकारण ...	१५५— ५६
६	मुमुक्षु प्रयत्न उपदेशः ...	१५६—१५८
७	जगत्आदि दृश्य असत्ता परिज्ञान	१५८—१६२
८	सच्छास्त्र निरूपण ...	१६२—१६३
९	परम कारण वर्णन ...	१६३—१६८
१०	महाकल्पान्ता वशिष्ठ परमभाव	१६८— ७२
११	परमार्थ वर्णन ...	१७२— ७५
१२	जगदुत्पत्ति	१७५—१७८

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
१३	स्वयम्भुवोत्पत्ति ...	१७८—१८१
१४	ब्रह्मप्रतिपादन ...	१८१—१८७
१५	मंडपोपाख्यान ...	१८७—१९०
१६	,, राज्ञी परिदेवन	१९०—१९३
१७	लीलोपाख्याने सन्देहराष्ट्र वर्णन	१९३—१९७
१८	,, सकलजगद्भ्रांति-प्रतिपादन ...	१९७—१९९
१९	,, ब्राह्मण मरण वर्णन	१९९—२०१
२०	,, परमार्थ प्रतिपादन	२०१—२०५
२१	,, विश्रान्ति उपदेश	२०५—२१०
२२	,, अभ्यास वर्णन	२१०—२१२
२३	,, ज्ञानदेहाकारागमन	२१३—२१४
२४	,, गगन वर्णन ...	२१४—२१८
२५	,, भूलोक ...	२१८—२२०
२६	,, सिद्धदर्शन हेतु	२२०—२२४
२७	,, लीलाजन्मान्तर	२२४—२२७
२८	,, गिरिग्राम वर्णन	२२८—२३२
२९	,, परमाकाश वर्णन	२३२—२३६
३०	,, विचित्रब्रह्मांड कोटि ...	२३६—२३९
३१	,, युद्ध प्रेक्षिक स्थिता-म्बर ...	२३९—२४१
३२	,, आव्हारंभनम	२४१—२४३
३३	,, सेनयोःप्रथमपातः	२४३—२४७
३४	,, रणप्रेक्षक जनोक्ति	२४७—२५०
३५	,, रणवर्णनम् ...	२५१—२५२
३६	,, जनपद व० ...	२५३—२५६
३७	,, जनपद व० ...	२५७—२६०
३८	,, आहव व० ...	२६०—२६४
३९	,, निशाचर कुलरा-त्रिरणांगण ...	२६४—२६७
४०	,, समरसमनन्तरः संस्मृत्यनुभवः	२६७—२७१
४१	,, भ्रान्तिविचार	२७१—२७५
४२	,, स्वप्नपुरुष व०	२७५—२७६
४३	,, अग्निदग्ध गृह्यादि व० ...	२७८—२८२
४४	,, जगद्ब्रह्म व० ...	२८२ २८६
४५	लीलोपाख्याने सत्यकामसंकल्प-स्थिता ...	२८६—२८८
४६	,, विदूरथनिर्याण ...	२८९—२९०
४७	,, विदूरथसिन्धुसमा-गम ...	२९०—२९२
४८	,, आयुध वर्णन	२९२—९७
४९	,, तृतीयास्त्रयुद्ध ...	२९८—३००
५०	,, सिन्धुराष्ट्र व०....	३००—३०३
५१	,, विदूरथमरण ...	३०३—३०५
५२	,, मरणसमन्तरदेहप्रतिभा	३०५ ३०९
५३	,, संसृति विदितवेद्य	३०९—३१२
५४	,, मरणविचार व०....	३१२—३१७
५५	,, संसारमरणावस्था व० ...	३१८—३२३
५६	,, मरण शयनान्तर प्रेतव्यवस्था....	३२३—३२६
५७	,, स्वप्नार्थविचार	३२७—३३१
५८	,, पद्मजीवन ...	३३१—३३४
५९	,, पद्मनिर्वाण ...	३३५—३३६
६०	,, प्रयोजन वर्णन	३३६—३४१
६१	,, जगत्स्वरूप वर्णन	३४१—३४४
६२	,, दैवशब्दार्थनिरू-पणम् ...	३४४—३४६
६३	,, चित्तविकार ...	३४६—३४७
६४	,, परमबीजांकुर योगनिर्णय...	३४७—३५०
६५	,, जीवविचार ...	३५०—३५१
६६	,, संसृति परमयोग	३५१—३५३
६७	,, सत्योपदेश ...	३५३—३५९
६८	,, कर्कटयुपाख्यान राक्षसी व०	३५९—३६१
६९	,, विशूचिका मंत्र क०	३६१—३६२
७०	,, २ शूचीव्यवहार	३६२——९
७१	कर्कटयुपाख्यान सूचिका परिदेवनम्	३६९—३७२
७२	,, सूची तपप्रभावः	३७२—३७४
७३	,, सूची तपो व०...	३७४— ८
७४	,, सूची तपः पाक	३७९— ८०
७५	,, ,, शरीरलाभ	३८१— २
७६	,, अन्याय बाधक	३८२— ३

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
७७	,, कर्कटी विचार...	३८३— ५
७८	,, राक्षसी व० ...	३८६— ९
७९	,, राक्षसी प्रश्न ...	३८९—३९१
८०	,, प्रश्न भेदन ...	३९२—३९६
८१	,, पमार्थ पिंडीकरण	३९६—४०४
८२	,, राक्षसीसौहार्द ...	४०४—४०८
८३	,, कन्दरा पूजन ...	४०८—४०९
८४	,, मनोंकुर कथन...	४०९—४१२
८५	ऐन्दवोपाख्यान ब्रह्मादित्य समागम	४१२—४१५
८६	,, ऐन्दव समाधान	४१५— ८
८७	,, दशजगत् व० ...	४१८— ९
८८	,, ऐन्दव निश्चय कथन	४१९— २०
८९	इन्द्र अहिल्या कृत्रिम वाक्यम्...	४२१— २४
९०	कृत्रिम इन्द्र अहिल्या अनुराग	४२४— ५
९१	जीवावतरण क्रमोपदेश	४२५— ९
९२	मनो माहात्म्य वर्णनम् ...	४२९— ३१
९३	उत्पत्ति दर्शन ...	४३१—४३३
९४	ब्रह्मण:सर्वमुत्पद्यते इति कथनम्	४३३—४३५
९५	कर्मपुरुषयोरेकत्व क० ...	४३६— ३८
९६	मन:संज्ञा विचार ...	४३८— ४३
९७	चिदाकाश माहात्म्य ...	४४३— ४५
९८	चित्त उपाख्यानम् ...	४४५—४४८
९९	,, ...	४४८—४५१
१००	चित्त चिकित्सा ...	४५१—४५४
१०१	बालकाख्यायिका ...	४५४—४५६
१०२	उपदेश करण ...	४५६—४५९
१०३	चित्तमाहात्म्य ...	४५९—४६१
१०४	इन्द्र जालोपाख्यान ...	४६१—४६४
१०५	इन्द्रजालोपाख्यान–राजावबोध	४६४—६६
१०६	,, चांडालीविवाह	४६६—४७०
१०७	,, राजाऽपद् ...	४७०—३
१०८	,, अकांडदुर्भिक्ष व०	४७४—४७६
१०९	,, चांडालव्यपगम	४७६—४७८
११०	,, चित्तवर्णन ...	४७८—४८२
१११	चित्तचिकित्सा ...	४८२—४८५
११२	सुखरवेणोपदेश अंश	४८५—४८७
११३	अविद्यावर्णन	४८७—४९१
११४	यथाकथितदोषपरिहार ...	४९२—४९६
११५	सुखदु:खभोक्तृत्व	४९६—४९९
११६	साधकजन्मावतार	४९९—५०१
११७	अज्ञानभूमिका ...	५०१—५०३
११८	ज्ञानभूमिकोपदेश ...	५०४—५०६
११९	हेमोर्म्युपदेश	५०६—५०९
१२०	चांडालीशोचनम्	५०९—५११
१२१	चित्ताभावप्रतिपादनम्	५११—५१६
१२२	स्वरूपनिरूपणम् ...	५१६—५२०

४ स्थितिप्रकरणम्।

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
१	जन्यजनिनिराकरणम् ...	५२१
२	स्थितिबीजोपयास: ...	५२४
३	जगदानन्त्यवर्णनम् ...	५२६
४	स्थितिअंकुर कलनम् ...	५२८
५	भार्गवोपाख्याने भार्गवस्खलनम् ...	५२९
६	,, भार्गवमनोराज्यम्	५३१
७	,, नवसंगम: ...	५३२
८	,, विविधजन्मानुभाव:	५३४
९	,, भार्गवकलेवर व०	५३६
१०	,, कालवचन	५३८
११	,, संसारप्रवृत्तिदर्शन	५४२
१२	,, संसारोत्पत्तिविस्तार व०	५४७
१३	,, भृगुसमाश्वासनम् ...	५४९
१४	,, भार्गवजन्मान्तर व०	५५०
१५	भार्गवोपपाख्याने भार्गवपरिदेवन ...	५५३
१६	,, शुक्रस्य पुनर्जीवनम् ...	५५६
१७	मनोराज्यसम्मेलनम् ...	५५८
१८	जीवखंडकावतार:	५६०
१९	जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयस्वरूपविचार ...	५६५
२०	मनोनिरूपणम्	५६८
२१	विज्ञानवाद: ...	५६९
२२	अनुत्तमपद विश्रान्तिवर्णनम् ...	५७३
२३	शरीरनगरविभूतियोग: ...	५७६
२४	मनस: सत्ता प्रतिपादनम् ...	५८०
२५	दाम व्याल कटोत्पत्तिवर्णनम् ...	५८२
२६	दाम व्यालकट संग्राम	५८४
२७	पितामहवाक्यम्	५८८
२८	दाम व्यालकट पुनर्युद्ध व० ...	५९१
२९	असुरप्ररिभ्रंश ...	५९४
३०	,, ,, ,, जन्मान्तर चित्रवर्णनम् ...	५९५
३१	सदसंन्निराकरणम् ...	५९७

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
३२	दामव्यालकटोपाख्याने सदाचार निरूपणम्	६००
३३	,, अहंकारविचार ...	६०४
३४	,, समाप्ति	६०९
३५	उपशमवर्णनम्	६११
३६	चिदादित्यस्वरूपवर्णनम् ...	६१५
३७	उपशमवर्णनम्	६१८
३८	,, ...	६१९
३९	सर्वैकत्वप्रतिपादनम्	६२२
४०	ब्रह्मैवेदम्जगदितिप्रतिपादनम्	६२५
४१	अविद्या कथनम् ...	६२८
४२	जीवावतरणम् ...	६३०
४३	जीवनिचयस्थानोपदेश:	६३४
४४	संसारावतरणप्रतिपादनोपदेश:	६३७
४५	यथाभूतार्थयोगोपदेश:	६४०
४६	जीवन्मुक्तस्थिति गुणवर्णनम् ...	६४३
४७	जगद्वासनिर्णययोगोपदेश: ...	६४५
४८	दाशूरोपाख्याने दाशूरवर्णनम् ...	६५१
४९	दाशूरोपाख्याने दाशूर कदम्ब वर्णनम् ...	६५३
५०	,, दाशूरदिगवलोकनम् ...	६५६
५१	,, दाशूरसुतानुबोधनम् ...	६५७
५२	,, खोत्थविभव वर्णनम् ...	६५९
५३	,, संसारनगरविकल्पयोग-विचार ...	६६१
५४	,, संकल्प चिकित्सा ...	६६४
५५	,, वसिष्ठ दाशूरमेलनम् ...	६६७
५६	कर्तृत्व विचारयोग: ...	६७०
५७	पूर्णाशय स्वरूप वर्णनम् ...	६७२
५८	कचगाथा	६७७
५९	कमलजव्यवहार वर्णनम् ...	६७८
६०	विचारपुरुषनिर्णय प्रसंगोपदेशजीवावतार:	६८२
६१	जन्ममरणसंस्थिति ...	६८४
६२	सम्पूर्ण शास्त्रोक्त गुणस्थिति:	६८६

पंचम–उपशम प्रकरणम्।

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
१	आन्हिकवर्णनम्	६८५
२	उपदेशानुवर्णनम् ...	६९२
३	सभा संस्थान व०	६९४
४	प्रश्न	६९६
५	प्रशमोपदेश: ...	६९८
६	प्रथमोपदेश: ...	७०२
७	आकाशफलप्रातिवज्ज्ञानसम्प्राप्तिक्रमसूचनम्	७०३
८	सिद्ध गीतान्त ...	७०४
९	जनकवितर्क: ...	७०५
१०	जनकनिश्चय: ...	७१०
११	चित्तानुशासनम् ...	७१२
१२	प्रज्ञामाहात्म्यम् ...	७१३
१३	मनोनिवारणम् ...	७१६
१४	स्वचित्त निरूपणम्	७२३
१५	तृष्णावर्णनम् ...	७२८
१६	तृष्णाचिकित्सा	७२९
१७	तृष्णाविच्छेदोपदेश: ...	७३१
१८	जीवन्मुक्तवर्णन	७३३
१९	पावनबोध: ...	७३८
२०	,, ...	७४०
२१	तृष्णाविचिकित्सा	७४३
२२	विरोचनवाक्यस्मरणम्	७४५
२३	,, वचनोपदेश: ...	७४८
२४	चित्तविचिकित्सायोग: ...	७५०
२५	बलिचिन्तासिद्धान्तयोग: ...	७५४
२६	बल्युपदेशयोग: ...	७५६
२७	बलिविश्रान्ति: ...	७५७
२८	बलिसमाधान वर्णन	७५९
२९	बलिविज्ञानप्राप्ति: ...	७६१
३०	प्रल्हादविश्रान्तौ हिरण्यकशिपुवध	७६५
३१	,, निर्वाणे नारायणीकरणम्	७६७
३२	बिबुधवाक्यम् ...	७७१
३३	नारायणगमनम्	७७३
३४	प्रल्हादआत्मोपदेश: ...	७७५
३५	ब्रह्मात्मलाभ चिन्ता	७८२
३६	आत्मस्तवनम् ...	७८८
३७	असुरमंडलव्याकुलीभवनम् ...	७९३
३८	परमेश्वरवितर्क ...	७९४
३९	नारायणवचसोपन्यास: ...	७९६
४०	प्रल्हादबोधन ...	८००
४१	प्रल्हादाभिषेक ...	८०१
४२	प्रल्हादव्यवस्था ...	८०४
४३	प्रल्हादविश्रान्ति: ...	८०६
४४	गाधिवृत्तान्ते गाधिविनाश:	८०८
४५	,, श्वपचराज्यलाभ: ...	८११

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
४६	,, राज्यभ्रंश:	.... ८१४
४७	,, प्रत्यक्षावलोकनम्	... ८१७
४८	,, मायामहत्वकथनम्	.... ८२१
४९	गाधिवृत्तान्ते गाधिज्ञानप्राप्ति:	... ८२५
५०	राघवाशय विनियोग:	.... ८२८
५१	उद्दालक मनोरथ:	... ८३४
५२	उद्दालक विचार:	... ८३७
५३	,, विलास:	.... ८४२
५४	उद्दालक विश्रान्ति:	.... ८४७
५५	निर्वाणम्	.... ८५३
५६	ध्यानविचार:	.... ८५६
५७	भेद निरास:	... ८६०
५८	सुरघुवृत्तान्ते मांडव्योपदेश:	.... ८६२
५९	,, सुरघु विश्रान्ति:	.... ८६५
६०	,, सुरघु निर्वाणम्	.... ८६८
६१	,, सुरघुपरिघसमागम	... ८६९
६२	,, समाधि निश्चय:	... ८७२
६३	,, सुरघुपरिघ निश्चय:	... ८७३
६४	उपदेश:	... ८७५
६५	भास विलास वृत्तान्ते सह्य वर्णनम्	... ८७८
६६	,, अनित्यताप्रतिपादनम्	.... ८८०
६७	अन्त: संग विचार:	... ८८३
६८	संगविचार योगोपदेश:	... ८८५
६९	शान्तिसमायात योगोपदेश:	... ८८९
७०	असंग विकल्पोपदेश:	... ८९०
७१	संसारोपदेश:	.... ८९२
७२	मोक्षस्वरूपोपदेश:	.... ८९७
७३	स्वात्मविचार:	... ९००
७४	वैराग्योपदेश:	.... ९०२
७५	मुक्तामुक्तविचार:	.... ९०८
७६	संसार सागर साम्य प्रतिपादनम्	.... ९१२
७७	जीवन्मुक्तस्वरूप वर्णनम्	.... ९१३
७८	योग वर्णनम्	... ९१६
७९	सम्यक् ज्ञाने लक्षण निरूपणम्	... ९१९
८०	दृश्य दर्श सम्बोध:	.... ९२१
८१	चित्तासत्ता प्रतिपादनम्	... ९२४
८२	इन्द्रियानुशासन योग:	... ९२५
८३	चित्तसत्ता विचार योगोपदेश:	.... ९३१
८४	वीतहव्यजिद्वर्णन	... ९३४
८५	वीतहव्यसमाधि योगोपदेश:	.... ९३६
८६	इन्द्रियवर्ग निराकरणोपदेश:	.... ९३८
८७	वीतहव्य निर्वाणोपदेश:	.... ९४२
८८	वीतहव्य विश्रान्ति:	... ९४४
८९	सद्विलासविचार योगोपदेश:	.... ९४५
९०	चित्तोपदेशविचार योगोपदेश:	.... ९४९
९१	संसृति बीज विचार योगोपदेश:	... ९५१
९२	संसृति निराकरण योगोपदेश:	... ९५९
९३	समदर्शनम्	... ९६२
		.... ६८

६ निर्वाणप्रकरणम्।

पूर्वार्द्ध.

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
१	दिवस व्यवहार वर्णनम्	... १
२	विश्रान्त सुदृढीकरणम्	... ४
३	ब्रह्मैक्यप्रतिपादनम्	... ८
४	चित्ताभाव प्रतिपादनम्	... १०
५	राघव विश्रान्ति वर्णनम्	... ११
६	मोह माहात्म्यम्	... १२
७	अज्ञानमाहात्म्यम्	.... १६
८	अविद्याविलासोपदेश:	.... २१
९	विद्या निराकरणम्	.... २३
१०	अविद्या चिकित्सा	... २५
११	जीवन्मुक्त निश्चययोगोपदेश:	.... २८
१२	जीवन्मुक्तसंशय निरूपणम्	.... ३६
१३	ज्ञानविचारयोगोपदेश:	.... ३८
१४	भुशुंडोपाख्याने मेरुशिखरवर्णनम्	.... ३९
१५	,, भुशुंड दर्शनम्	.... ४१
१६	,, वसिष्ठभुशुंड समायोगोपदेश:	४३
१७	,, भुशुंडस्वरूप व०	... ४४
१८	,, मातव्यवहार व०	.... ४५
१९	,, आलयलाभ:	... ४८
२०	,, भुशुंड स्वरूपनिरूपणम्	५१
२१	,, चिरजीवित वृत्तान्त कथनम्	५३
२२	,, चिरजीवित वर्णनम्	... ५७
२३	,, समाधान संकल्प निराकरणम्	.... ६०
२४	,, प्राणविचारणम्	.... ६३
२५	,, समाधिवर्णनम्	.... ६५

सर्गाङ्क.		विषय.	पृष्ठांक.
२६	,,	चिरजीवित हेतु कथनम्	७०
२७	,,	समाप्तिः	७३
२८	परमार्थ योगोपदेशः	....	७४
२९	जगतःपरमात्ममयत्व वर्णनम्	...	८०
३०	शिवपूजोपाख्याने	चेत्योन्मुख विचारः....	८१
३१	,,	मनःप्राणैकप्रतिपादनम्	९६
३२	,,	देहपातविचारः	१००
३३	,,	द्वैतैक्यप्रतिपादनम् ...	१०४
३४	,,	श्रीपरमेश्वरोपदेशः	१०७
३५	,,	सीमान्तत्वकथनम्	१०९
३६	,,	परमेश्वरवर्णनम् ...	१११
३७	,,	नियतनृत्यम् ...	११३
३८	,,	बाह्यपूजनम्	११५
३९	,,	देवार्चनविधिः	११८
४०	,,	देवतातत्वविचारः	१२२
४१	,,	जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनम्	१२३
४२	,,	परमात्माभिधानम्	१२७
४३	विश्रान्तिवर्णनम्	...	१२९
४४	चित्तसत्ता सूचनम्	....	१३१
४५	बिल्वोपाख्यानम्	....	१३४
४६	,,	शिलाकोशोपदेशः	१३६
४७	,,	चिह्नोपदेशः	१३९
४८	ब्रह्मैकात्म्यप्रतिपादनम्	....	१४१
४९	संसृतिविचार योगोपदेशः	....	१४३
५०	अक्षसंवेदन विचारयोगोपदेशः	...	१४७
५१	इन्द्रियार्थोपलम्भ विचारः	....	१४८
५२	अर्जुनो पाख्याने नरनारायणावतार कथनम्		१५३
५३	,,	अर्जुनोपदेशः	१५६
५४	,,	आत्मज्ञानोपदेशः	१६०
५५	,,	जीवतत्व निर्णयः	१६२
५६	,,	चित्तवर्णनम् ...	१६५
५७	,,	अर्जुन विश्रान्तिवर्णनम्	१६८
५८	,,	अर्जुनकृतार्थता	१६९
५९	प्रत्यगात्मावबोधः	....	१७०
६०	विभूतियोगोपदेशः	...	१७३
६१	जगत्स्वप्नकथनम्	....	१७५
६२	जीवटोपाख्याने	स्वप्नशतरुद्रीये भिक्षुसंसारो दाहरणम्	१७७
६३	,,	स्वप्नशतरुद्रीय कथनम्	१७९
६४	,,	गणत्वप्राप्तिः	१८४
६५	,,	विद्योत्तर विस्मय वर्णनम्	१८७
६६	,,	भिक्षु संसृति कथनम्	१८८
६७	,,	ब्रह्मैक्य प्रतिपादनम्	१९०
६८	,,	महामौन्य यत्नोपदेशः	१९३
६९	,,	प्राणमनः संयोग विचारः	१९५
७०	वेतालप्रश्नः	...	१९९
७१	वेताल प्रथम प्रश्न वर्णनम्	....	२००
७२	वेताल प्रश्न भेदः	....	२०१
७३	वेतालोपाख्यानम्	...	२०२
७४	भागीरथोपदेशः	...	२०३
७५	भागीरथ निर्वाणम्	....	२०५
७६	गंगावतरणम्	...	२०७
७७	चूडालोपाख्याने	शिखिध्वजविलासः	२०८
७८	,,	चूडालाप्रबोधः ...	२११
७९	,,	चूडालात्मलाभः	२१५
८०	,,	पंचकविलासः	२१७
८१	,,	अग्नीषोमविचारणम्	२२२
८२	,,	अणिमादि लाभ योगोपदेशः	२३०
८३	,,	किराटोपाख्यानम् ...	२३२
८४	,,	शिखिध्वजप्रव्रज्या	२३४
८५	,,	सुखविचारयोगोपदेशः....	२३८
८६	,,	कुंभजननकथनम्	२४७
८७	,,	शिखिध्वजबोधः	२४९
८८	,,	मणिकाचोपाख्यानम्	२५२
८९	,,	हस्तिकोपाख्यानम्	२५३
९०	,,	चिन्तामणिसाधकवृत्तान्त	२५५
९१	,,	हस्तिकाख्यान तात्पर्य्यम्	२५७
९२	,,	सर्वत्याग करणम् ...	२५९
९३	,,	शिखिध्वजावबोधनम्	२६१
९४	,,	,, ...	२६५
९५	,,	शिखिध्वजविश्रान्तिः	२७०
९६	चूडालोपाख्याने	शिखिध्वजावबोधनम्....	२७१
९७	,,	शिखिध्वजप्रबोधनम्	२७५
९८	,,	शिखिध्वजाव बोधनम्	२७७
९९	,,	,, ,, ...	२७९
१००	,,	शिखिध्वज परमावबोधनम्	२८०
१०१	,,	शिखिध्वज बोधनम्	२८३
१०२	,,	शिखिध्वज समाधानम्...	२८७

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठांक.
१०३	„ कुम्भपुनरागमनम्	२८८
१०४	„ जीवन्मुक्त व्यवहार प्रतिपादनम्	२९१
१०५	„ कुंभस्य स्त्रीत्वलाभः ...	२९४
१०६	„ लीलाविवाहः ...	२९७
१०७	„ शक्रगमनम्	३०२
१०८	„ चूडाला स्वरूपदर्शनम्....	३०४
१०९	„ „ प्रकटीकरणम् ...	३०६
११०	„ शिखिध्वजनिर्वाणम्	३११
१११	कचोपाख्याने कचप्रबोधः ...	३१३
१९२	„ मिथ्यापुरुषोपाख्याने आकाशरक्षणम्	३१५
११३	„ समाप्तिः	३१७
११४	परमार्थोपदेशः	३१९
११५	वृत्तत्रय निरूपणम् ...	३२१
११६	मलितचित्तलक्षण कथनम् ...	३२४
११७	इक्ष्वाकुमनुसम्वादः ...	३२४
११८	„ „	३२६
११९	„ „	३२७
१२०	„ „ सप्तभूमिका विभागः	३२८
१२१	„ „ ...	३३०
१२२	„ „ इक्ष्वाकुप्रबोधनम्	३३१
१२३	अज्ञादेर्ज्ञस्य विशेषकथनम् ...	३३२
१२४	मृगव्याधीयम् ...	३३२
१२५	तुर्य्यस्थैर्य्योपायकथनम् ...	३३५
१२६	परमार्थस्वरूपवर्णनम् ...	३३६
१२७	भरद्वाजानु शासनम्	३४१
१२८	ब्रह्मदर्शने रामव्युत्थानम्	३४६
	इति पूर्वार्द्धः ॥	
१	इच्छादिचिकित्सायोगोपदेशः	३५५
२	कर्म्मबीज दाहयोगोपदेशः	३५८
३	दृश्योपशमयोगोपदेशः ...	३६१
४	अहन्ता निरासः ...	३६३
५	विद्याधरोपाख्याने विद्याधरप्रश्नः	३६७
६	„ वैराग्यवर्णनम्	३६८
७	„ जगद्वृक्षवीजवर्णनम् ...	३७१
८	„ मायामंडपवर्णनम्	३७३
९	„ चित्कचनयोगोपदेशः	३७५
१०	„ सर्गापवर्गप्रतिपत्तियोगोपदेशः	३७६
११	„ यथाभूतार्थवेदनम् ...	३७७
१२	„ संकल्पसर्गयोरैक्यप्रतिपादनम्	३७९
१३	„ अन्तर्गत इन्द्रोपाख्याने „	३८१
१४	„ „ इन्द्राण्वाख्याने „ ...	३८३
१५	„ विद्याधरनिर्वाणम्	३८५
१६	„ „ ...	३८७
१८	अहन्त्वासत्तायोगोपदेशः	३८८
१८	जगज्जालकोश साधर्म्य योगोपदेशः	३८९
१९	विराडात्मवर्णनम् ...	३९२
२०	जीवनिर्वाणयोगोपदेशः ...	३९४
२१	ज्ञानविचारः	३९६
२२	सुखयोगोपदेशः	३९७
२३	मंक्युपाख्याने मंकिनिर्वाणम्	४०१
२४	„ मंकिवैराग्यम्	४०३
२५	„ मंकिबोधनम् ...	४०५
२६	„ मंकिनिर्वाणम्	४०७
२७	मुख्ययोगोपदेशः	४१०
२८	शंकातत्व प्रतिपादनम्	४११
२९	भावनाप्रतिपादनम्	४१३
३०	परमार्थोपन्यास योगोपदेशः	४१५
३१	युक्त्युपदेशवर्णनम् ...	४२०
३२	सत्यावबोधनोपदेशः ...	४२३
३३	सत्यार्थोपदेशयोगः ...	४२५
३४	परमार्थयोगोपदेशः ...	४२८
३५	परब्रह्मस्वरूपवर्णनम् ...	४३१
३६	संसारबीज कथनम् ...	४३४
३७	दृश्योपदेश योगः ...	४३७
३८	निर्वाण वर्णनम् ...	४४२
३९	विश्रान्तियोगोपदेशः ...	४४५
४०	वसिष्ठगीतासु आत्मविश्रान्तिः ..	४४७
४१	स्वरूपविश्रान्त्यर्थमुपदेशकरणम् ...	४४८
४२	निर्वाणोपदेशः ...	४५०
४३	ब्रह्मैकतानतोपदेशः ...	४५४
४४	मनोमृगविपद्वर्णनम् ...	४५८
४५	मनो हरिणकोपाख्यानम् ...	४६२
४६	साम्यावबोधनम् ...	४६६
४७	मुमुक्षुप्रथमोपक्रमः ...	४६७
४८	विवेकमाहात्म्यम् ...	४७१

सर्गाङ्क.		विषय.	पृष्ठांक.
४९	सर्वोपशान्तिः		... ४७३
५०	जीव सप्तकप्रकार वर्णनम्		... ४७७
५१	विश्रान्तियोगोपदेशः		... ४७८
५२	ब्रह्मस्वरूप वर्णनम्		... ४८१
५३	निर्वाण वर्णनम्		... ४८५
५४	अद्वैतैक्यप्रातिपादनम्		... ४८६
५५	जगतः परमार्थ मयत्व वर्णनम्		... ४८८
५६	पाषाणोपाख्याने	आकाशमंदिरे वसिष्ठसमाधानम्	... ४९०
५७	,,	विदितवेद्याहंकारविचारः	४९२
५८	,,	सर्ग ब्रह्मत्वप्रतिपादनम्	४९५
५९	,,	जगज्जाल वर्णनम्	... ४९६
६०	,,	,,	... ५००
६१	,,	जगदाकाशैक बोधनम्	... ५०५
६२	,,	चिद्वैक्यम्	... ५०७
६३	,,	जगत्त्वैकप्रतिपादनम्	... ५१०
६४	,,	विद्याधरी व्यसन वर्णनम्	५१३
६५	,,	विद्याधरी जन्मव्यवहारवर्णनम्	... ५१७
६६	,,	शिलान्तर वर्णनम्	... ५१८
६७	,,	अभ्यासप्रशंसा	... ५२०
६८	,,	प्रमाणाप्रति सिद्ध्याद्दश्यानुपपत्तिः	... ५२३
६९	,,	सर्ग प्राप्तिः	... ५२६
७०	,,	शिलान्तर्गत जगत् पितामह वाक्यानि	... ५२८
७१	पाषाणोपाख्याने	कल्पक्षोभः	... ५३०
७२	,,	निर्वाण वर्णनम्	... ५३४
७३	,,	विराडात्मव.	... ५३६
७४	,,	,,	... ५४०
७५	,,	महाकल्पान्ताग्निव०	... ५४२
७६	,,	पुष्करावर्त्त डम्बर व०	... ५४७
७७	,,	पुष्करावर्त्त वृष्टिविसंष्टुल जगद् व०	.... ५४९
७८	,,	एकार्णव वर्णनम्	... ५५२
७९	,,	वासना भाव प्रतिपादनम्	५५४
८०	,,	भ्रान्तिमात्रित्व प्रतिपादन	५५७
८१	,,	कालरात्रिवर्णनम्	.... ५६१
८२	,,	शिवस्वरूप व०	... ५६८
८३	,,	विश्वरूप दर्शनम्	... ५७०
८४	,,	शिवशक्ति व०	... ५७२
८५	,,	प्रकृतिपुरुष क्रम व०	... ५७५
८६	,,	जगदन्यान्यत्व व०	... ५७७
८७	,,	,, प्रतिपादनम्	... ५८०
८०	,,	भूमंडलगत विशेष व०	... ५८५
८९	,,	दृश्यमनो मात्रित्व प्रतिपाद०	५८६
९०	,,	जलजगद्वर्णनम्	... ५८८
९१	,,	तैजस जगत् व०	... ५९०
९२	,,	परमार्थ सर्गयोरैक्य प्रति०	५९४
९३	,,	आकाशमंडप सिद्धः	... ५९८
९४	,,	पिशाचप्रसंगेनजगद्ब्रह्मैक्य प्रति०	... ६०४
९५	,,	वसिष्ठ शरीर व०	... ६०९
९६	अमरत्व प्रतिपादनम्		... ६११
९७	विवेकि विरलत्व व०		... ६१४
९८	सज्जन समागम प्रशंसा		... ६१७
९९	परमार्थ निरूपणम्		... ६१८
१००	नास्तिक्य निराकरणम्		... ६२१
१०१	परमोपदेशः		... ६२५
१०२	मरणाद्यभावोपदेशः		... ६२७
१०३	सकलभावाभावोपदेशेन परमार्थैकता प्रतिपत्तिः		६३१
१०४	जगत् सत्ता प्रति०		... ६३७
१०५	जाग्रत् स्वप्नैक्य प्रतिपादनम्		... ६३८
१०६	कार्य्यकारण निरासः		... ६४१
१०७	अविद्याभाव प्रतिपादनम्		... ६४५
१०८	अविद्योपाख्याने, विपश्चिदुपाख्याने, पार्थिव संरंभव०		... ६४६
१०९	,,	,, अग्निप्रवेशाद्देहलाभः	... ६४९
११०	,,	,, संग्रामवर्णनम्	... ६५२
१११	,,	,, चतुर्द्दिग्गतबलव०	... ६५५
११२	,,	,, बलपरिभ्रंशः	... ६५८
११३	,,	,, समुद्रवर्णनम्	... ६६१
११४	,,	,, दिग्दर्शनम्	... ६६४
११५	,,	,, विपश्चिदनुचरकृत पदार्थ व०	... ६६६
११६	,,	,, श्वकाक कोकिलान्योक्ति	६७२
११७	,,	,, पद्महंस भ्रमरवर्णनम्	.... ७६९
११८	,,	,, हरिण मयूर बक मुक्तादि व०	... ६८३

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ षष्ठं निर्वाणप्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इस १ प्रथमसर्गमें मुनिके वचनसे उठना तथा आन्हिकक्रिया और श्रुत अर्थका चिंता तथा निद्रासे रात्रिका बिताना वर्णन कियागया है ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ उपशमप्रकरणादनंतरमिदंशृणु ॥ त्वंनिर्वाणप्रकरणंज्ञातंनिर्वाणदायियत् ॥ १ ॥ कथयत्येवमुद्दामवचनेमुनिनायके ॥ श्रवणैकरसेमौनस्थितेराजकुमारके ॥ २ ॥ मुनिवागर्थनिक्षिप्तमनस्यस्ततपःक्रिये ॥ राजलोकेगतस्पंदेचित्रार्पितइवस्थिते ॥ ३ ॥ वसिष्ठवचसामर्थंविचारयतिसादरम् ॥ लसदंगुलिभंगेनमुनिसार्थेस्फुरद्भुवि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीगणेशायनमः ॥ ओं सर्वाभीष्टप्रदपरब्रह्मणेनमः ॥ श्रीवाल्मीकजी बोले–हे रामजी ! उपशमप्रकरणके अनन्तर तुम अब निर्वाणप्रकरण सुनो जो कि ज्ञात होनेसे निर्वाण (मोक्ष) का दायक है ॥ १ ॥ इसप्रकार श्रेष्ठ मुनिनायक वसिष्ठजी जब कहतेथे और केवल श्रवणमें तत्पर राजकुमार (रामादि) मौन स्थित होरहेथे ॥ २ ॥ और मुनि कथित वाणी तथा अर्थ मनमें धारण करके तथा मानसी तथा बाह्यपदार्थोंकी चेष्टासहित संचाररहित राजालोग चित्रमें लिखितके समान स्थित थे ॥ ३ ॥ और तर्जनी उठाके भ्रूभंगके साथ वसिष्ठके वचनोंके अर्थोंको आदरपूर्वक मुनियोंके समूह विचार करतेथे ॥ ४ ॥

विस्मयालोकनोल्लासप्रोत्फुल्लनयनालिनि ॥ पुरंध्रिवर्गेगंभीरतरुमंजरितांगते ॥ ५ ॥ खेवासरचतुर्भागदेशेदिनकरेस्थिते ॥ किंचिज्ज्ञानोदयात्सौम्येकिंचिच्छममुपेयुषि ॥ ६ ॥ श्रवणायेवसंशांतेवितानस्पंदमालिते ॥ मौनंमरुतिमंदारमधुरामोददायिनि ॥ ७ ॥ पुष्पदामसुषुप्तासुमहाभ्रमरपंक्तिषु ॥ ज्ञातज्ञेयतयानूनंसम्यग्ध्यानवतीष्विव ॥ ८ ॥

अर्थ—विस्मयसे देखनेके उल्लाससे प्रफुल्ल नेत्ररूप भ्रमर सहित ललनासमूह गंभीरवृक्षकी लतारूपताको प्राप्त होगये थे ॥ ५ ॥ और किंचित् ज्ञानके उदयसे दृष्टिप्रिय सौम्यरूप किंचित् तापकी उपशमताके प्राप्तके समान सूर्यभगवान् आकाशमें दिनके चतुर्थ भागके देशमें स्थित थे ॥ ६ ॥ और श्रवणके लिये शांतके समान पुष्पके बि-

तानकी गतिसे मालासे वेष्टित तथा मन्दारकी मधुर सुगन्धके देनेहारा वायु मौन स्थित होरहा था ॥ ७ ॥ ज्ञेयपदार्थके ज्ञानसे सम्यग् ध्यानमें युक्तके समान महाभ्रमरपंक्तियोंके पुष्पोंकी मालाओंपर सुप्त होरहे थे ॥ ८ ॥

मुक्ताजालकलापांतर्गतास्वंतरभूमिषु ॥ कचत्यपगतस्पंदंतोयेश्रोतुमिवास्थिते ॥ ९ ॥ गृहांतरंप्रविष्टेषु गवाक्षेदूरमंशुषु ॥ विश्रामार्थमिवादीर्घनभःपांथेषुशीतलम् ॥ १० ॥ मुक्ताजालप्रभाजालभस्मनोद्धूलितात्मनि ॥ शंसतीवशमंशाम्यद्दिनदेहेदिवातपे ॥ ११ ॥ करेलीलासरोजेषुशेखरेषुचभूभृताम् ॥ श्रुत्वासुरसमामोदादवृत्तिषुमनःस्विव ॥ १२ ॥

अर्थ—मुक्तामय जालाकार वापियोंके वेष्टन सहित उनके मध्यस्थानोंमें गतिरहित स्वच्छ जल मानों श्रवणके लिये स्थित होरहेथे ॥ ९ ॥ और आकाशरूप दीर्घमार्गके यात्री सूर्यके किरण मानों विश्रामके लिये अन्य शीतल गवाक्षरूप गृहमें प्रविष्ट होरहे थे ॥ १० ॥ मोतियोंके समूहकी प्रभारूप भस्मसे अपने शरीरके तपस्वीके समान धूलि (भस्म) युक्त शांत होते हुये दिनके देहभूत दिनके आतप (घाम) अपने आत्मामें मानों शान्ति गुणसूचन करताथा ॥ ११ ॥ राजाओंके हस्तमें तथा शिरोभूषणमें स्थित कमलोंके शोभन रसमय वसिष्ठके वचनको सुनकर आनन्दके आविर्भावसे मानो वृत्तिरहित उनके मनके समान मिलनेको उद्यत होरहे थे ॥ १२ ॥

बालकेष्वज्ञलोकेषुलीलापक्षिषुसादरम् ॥ भोजनार्थंवधूलोकमुपरुंधत्स्वनारतम् ॥ १३ ॥ भ्रमद्भ्रमरपक्षोत्थवातधूतरजस्यलम् ॥ कौमुदेपरिविश्रांतेचामरेष्वक्षिपक्ष्मसु ॥ १४ ॥ रश्मिष्वगगुहोन्मुक्तच्छायाजालभयादिव ॥ गवाक्षादिष्विवोड्डीयप्रविष्टेषुगृहांतरम् ॥१५॥ आसीद्दिनचतुर्भागसत्तावेदनतत्परः ॥ भेरीपटहशंखानांदिङ्मुखापूरकोध्वनिः ॥ १६ ॥

अर्थ—और जब अज्ञबालकोंके तथा लीलाके पक्षियोंके भोजनके अर्थ निरन्तर आदरसहित स्त्रीजन प्रेरणा करतेथे ॥ १३ ॥ भ्रमण करतेहुये भ्रमरोंके पक्षोंसे उत्पन्न वायुसे किंचित् विकसित कुमुदकी धूलि कंपित होरही थी और चामर तथा नेत्रके पलक सर्वथा शांत होरहीथी ॥ १४ ॥ और जब सूर्यके किरण पर्वतोंकी गुहाओंसे उन्मुक्त छायाके समूहरूप अन्धकारसे मानों भयभीत होकर उडकर गवाक्षआदि द्वारोंमेंसे गृहके मध्यमें प्रविष्ट होरहे थे ॥ १५ ॥ तब दिनके चतुर्थभागकी सत्ताका सूचक और दिशाओंके मुखको पूर्ण करनेवाला, नगारे मृदंग तथा शंख घंटाआदिका शब्द हुआ ॥ १६ ॥

तेनतत्तारमप्याशुवचोंतर्धानमाययौ ॥ मौनंजलदनादेनमायूरइवनिस्वनः ॥ १७ ॥ आक्षुब्धाक्षुब्धपक्षालिःपंजरस्थाखगावली ॥ भूकंपेतरसातालीपल्लवेववनावली ॥ १८ ॥ आययुर्भयवित्रस्ताबालाधात्रीकुचांतरम् ॥ सारवंप्रावृषीवाब्दाःप्रोन्नतंशृंगकोटरम् ॥ १९ ॥ उत्तस्थुरवतंसेभ्योभूभृतांभ्रमरस्रजः ॥ ईषत्करालवाहाभ्यःसरिद्भ्योंबुकणाइव ॥ २० ॥

अर्थ—उस शब्दसे अति उच्चभी मुनि वसिष्ठका वचन ऐसे तिरोहित (दव) होगया जैसे मेघके नादसे मयूरका शब्द ॥ १७ ॥ और वेगसे पिंजरोंमें स्थित पक्षियोंकी पंक्ति ऐसे संचालित होगई जैसे भूकंप होनेपर ताडके दलोंके वनोंकी पंक्ति ॥ १८ ॥ भयसे त्रस्त बालकलोग रोदनशब्दके साथ धात्रियोंके कुचोंके मध्यमें ऐसे प्राप्त हुये जैसे पर्वतके दो शृंगोंके मध्यमें मेघ ॥ १९ ॥ राजाओंके शिरोभूषणसे भ्रमरोंके पक्षोंसे उत्पन्न पवनके द्वारा पुष्पोंकी धूलि ऐसे उठी जैसे किंचित् क्षुभित प्रवाहयुक्त नदियोंसे जलके कण ॥ २० ॥

एवंप्रक्षुभितेतस्मिन्गृहेदाशरथेतदा ॥ प्राप्तेवासरवृद्धत्वेशांतशंखस्वनेशनैः ॥ २१ ॥ संहरन्प्रस्तुतंवस्तुवचोमधुरवृत्तिमत् ॥ उवाचमुनिशार्दूलःसभामध्येरघूद्वहम् ॥ २२ ॥ राघवानघवाग्जालंमयैतत्प्रविसारितम् ॥ तेनचित्तखगंबध्वाक्रोडीकृत्यात्मतांनय ॥ २३ ॥ कच्चिद्गृहीतोभवतामद्गिरामर्थईदृशः ॥ त्यक्त्वादुर्बोधमर्क्षीणोहंसेनेवांभसःपयः ॥ २४ ॥

अर्थ—उससमय इसप्रकार दशरथके गृहके क्षुभित होनेपर और दिनके अन्तमें धीरे २ शंखोंके शब्द शांत होनेपर प्रचलित अर्थसंयुक्त मधुरवृत्तिसहित वचनको उपसंहार करतेहुये मुनियोंमें सिंह श्रीवसिष्ठजी सभाके मध्यमें रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥२२॥कि हे रामजी ! मैंने यह वाणीरूप जालका विस्तार कियाहै उस जालसे अपने चित्तरूप पक्षीको बांधकर और हृदयमें रोककर आत्मरूपताको प्राप्त करो ॥२३॥ क्या तुमने अपने दुर्बोधको त्यागकर इसप्रकार मेरे वचनोंके पूर्ण अर्थको ग्रहण किया है जैसे जलमेंसे जलको त्यागकर दुग्धमात्रको हंस ॥२४

विचार्यैतदशेषेणस्वधियैवंपुनःपुनः ॥ अनेनैवपथासाधोगंतव्यंभवताधुना ॥ २५ ॥ अनयैवधियाराम विहरन्नैवबध्यसे ॥ अन्यथाधःपतस्याशुविंध्यखातेयथागजः ॥ २६ ॥ सुगृहीतंधियाराममद्वचोनक रोषिचेत् ॥ तत्पतस्यवटेत्यक्तदीपोवांधोनिशास्विव ॥ २७ ॥ असंगेनयथाप्राप्तोव्यवहारोऽस्यसिद्धये ॥ इत्येवशास्त्रसिद्धांतमादायोदारवान्भव ॥ २८ ॥

अर्थ—हे साधो रामजी! पूर्णरूपसे इसको अपनी बुद्धिसे पुनः २ विचार करके इसी मार्गसे अब आपको चलना चाहिये ॥ २५ ॥ हे रामजी! इस बुद्धिसे विहार करतेहुये तुम बंधनमें नहीं आओगे, और इसके विरुद्ध चलनेसे तुम नीचे ऐसे गिरोगे जैसे विंध्याचलके खातेमें गज ॥ २६ ॥ हे रामजी! बुद्धिसे अच्छी तरहसे ग्रहण करके यदि तुम मेरे बचनोंको न करोगे तो गढेमें ऐसे गिरोगे जैसे दीपको त्यागनेवाला अथवा अंधा रात्रिमें ॥ २७ ॥ इस मेरे कथित अर्थकी सिद्धिकेलिये असंग होके तुमको कार्य्य करना चाहिये, यही सब शास्त्रोंका परम सिद्धान्त है इसको मनमें करके तुम उदारवान् अपरिच्छिन्न होजाओ ॥ २८ ॥

हेसभ्याहेमहाराजरामलक्ष्मणभूमिपाः ॥ सर्वएवभवंतोद्यतावद्व्यापारमान्हिकम् ॥२९॥ कुर्वंत्वयंहिदि वसःप्रायःपरिणताकृतिः ॥ शेषंविचारयिष्यामोविचार्यंप्रातरागताः ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तामुनिनातेनसासर्वैवतदासभा ॥ प्रोत्तस्थौपद्मवदनासविकासेवपद्मिनी ॥ ३१ ॥ राजानःस्तुत राजानःकृतराघववंदनाः ॥ परिस्तुतेवसिष्ठेतेजग्मुरात्मनिवेशनम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे सभ्यगण! हे महाराज दशरथ! हे रामलक्ष्मण! हे सब राजालोग! अब आप सब अपने २ दैनिक व्यापार संध्या वंदनको ॥ २९ ॥ कीजिये क्योंकि यह दिन प्रायः समाप्त होनेपर है, और शेष जब आपलोग सभामें प्रातःकाल आवैंगे तब विचार करैंगे ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–उस वसिष्ठमुनिसे इसप्रकार कहीहुई कमलके सदृश मुखवाली सब सभा उस समय विकसित कमलिनीके समान उठ खडीहुई ॥ ३१ ॥ राजालोग महाराज दशरथकी स्तुति करके रामचन्द्रजीको प्रणाम करके और वसिष्ठजीकी स्तुति करके अपने २ स्थानपर गये ॥ ३२ ॥

विश्वामित्रेणसहितोवसिष्ठोगंतुमाश्रमम् ॥ उत्तस्थावासनाच्छ्रीमान्नमस्कृतनभश्वरः ॥ ३३ ॥ दशरथ प्रभृतयोराजानोमुनयस्तथा ॥ यथानुरूपंवक्तारमनुगम्यमुनिंचिरम् ॥ ३४ ॥ आपृच्छ्यकेचिद्गगनंययुः केचिद्वनांतरम् ॥ केचिद्राजगृहंसंतोभृंगाःपद्मोत्थिताइव ॥ ३५ ॥ वसिष्ठपादयोस्त्यक्त्वापुष्पांजलिम नाविलम् ॥ दारैरनुगतोराजाप्रविवेशगृहांतरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—शोभावान् तथा आकाशचारी देव गंधर्व आदिसे नमस्कार कियेहुये श्रीवसिष्ठमुनिभी विश्वामित्रजीके साथ अपने आश्रमको जानेकेलिये उठे ॥ ३३ ॥ दशरथ आदि सब राजा और मुनिलोग यथायोग्य उपदेश देनेवाले वसिष्ठमुनिके पीछे २ आश्रमपर्य्यंत जाके ॥ ३४ ॥ और उनसे आज्ञा लेके कोईतो आकाशको गये, कोई बनमें गये, और कोई राजाके गृहमें इसप्रकार गये जैसे कमलसे निकलेहुये भृंग ॥ ३५ ॥ वसिष्ठभगवान्के चरणोंमें निर्मल पुष्पाञ्जलि छोडके स्त्रीगणोंसे अनुगत राजा दशरथने अपने राजगृहमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नाःप्राप्तस्यस्वाश्रमंगुरोः ॥ अभ्यर्च्यचरणौभक्त्यात्वाजग्मुर्नृपमंदिरम् ॥ ३७ ॥ सद नानिसमासाद्यश्रोतारःसर्वएवते ॥ सस्नुरानर्चुरभ्येयुर्देवान्विप्रान्पितॄंस्तथा ॥ ३८ ॥ यथाक्रमंस्वभृ त्यांतैर्विप्राद्यैश्चपरिच्छदैः ॥ समंबुभुजिरेभोज्यंवर्णधर्मक्रमोदितम् ॥ ३९ ॥ अस्तंगतेदिनकरेसमंदि वसकर्मभिः ॥ अभ्यागतेरात्रिकरेसमंरजनिकर्मभिः ॥ ४० ॥

अर्थ—राम लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न अपने आश्रममें मातापिताके चरणोंकी भक्तिसे पूजा (वंदना) करके अपने राजमंदिरमें गये ॥ ३७ ॥ उन सब श्रोतालोगोंने अपने २ स्थानोंमें प्राप्त होकर स्नान किया, देवता तथा पितरोंकी पूजा की; और ब्राह्मण तथा अतिथियोंको संमुख आके आदरयुक्त होकर स्वीकार किया ॥ ३८ ॥ और यथाक्रम भृत्यपर्य्यन्त तथा ब्राह्मणसे आदि लेके परिवारसहित अपने वर्णके धर्मके अनुसार सभोंने भोज्यपदार्थोंका भोजन किया ॥ ३९ ॥ दिनके कर्मोंके साथ सूर्यके अस्त होनेपर और रात्रिके कर्मोंके साथ चन्द्रमाके उदय होनेपर ॥४०॥

स्थित्वातल्पेषुकौशेयशयनेष्वासमेषुच ॥ भूचरामुनिराजानोराजपुत्रामहर्षयः ॥ ४१ ॥ संसारोत्तरणो पायंवसिष्ठवदनेरितम् ॥ यथावदेकाग्रधियश्चिंतयामासुरादृताः ॥ ४२ ॥ ततःप्रहरमात्रेणनिद्रामामुद्रि ताननाः ॥ उत्स्वप्नसुंदरीमीयुःपद्माइवदिनार्थिनः ॥ ४३ ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नाःप्रहरत्रयमेवतत् ॥ वा सिष्ठमुपदेशंतेचिंतयामासुरक्षतम् ॥ ४४ ॥ प्रहरस्यार्द्धमात्रंतेततआमुद्रितेक्षणाः ॥ उत्स्वप्नमाययुर्निद्रां

क्षणाद्विद्रावितश्रमाम् ॥ ४५ ॥ इतिशुभमनसांविवेकभाजामधिगतसारतयोदिताशयानाम् ॥ अभज तविरतिंतदात्रियामामलिननिशाकरवक्रतांजगाम ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे दिवसव्यवहारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—कौशेय (रेशम) से आच्छादित राजाओंके शय्याओंपर तथा आसनोंपर, राजा राजपुत्र तथा मह. र्षिगणोंने स्थित होकर ॥ ४१ ॥ तथा अति आदरयुक्त होकर वसिष्ठमुनिके मुखसे कहेहुये संसारसे पार उतरनेके उपायको पूर्णरूपसे चिंतन किया ॥ ४२ ॥ इसके पश्चात् प्रहरमात्रमें कमलके सदृश दिनके अर्थी तथा मुद्रितनेत्र वे सब उत्तमस्वप्नसे रमणीय निद्राको प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ राम लक्ष्मण और शत्रुघ्नने तीन प्रहरतक वसिष्ठमुनिके पूर्ण उपदेशको चिंतन किया ॥ ४४ ॥ अर्द्धप्रहर (दोघडी) मात्र वे लोग नेत्र मूंदके उत्तम स्वप्नपूर्वक क्षणमेंही श्रमको दूर करनेवाली निद्राको प्राप्तहुये ॥ ४५ ॥ इसप्रकार शुभमनसहित, विवेकयुक्त, और आत्माके ज्ञानसे उत्तम आशयसहित उन रामचन्द्र आदिकी रात्रि विराम (अंत) को प्राप्तहुई इसीसे चंद्रमारूप मुखकी मलिनता-युक्त वह रात्रि प्राप्तहुई ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे दिवसव्यवहारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस २ रे सर्गमें रामादिकसे वसिष्ठजीका सभामें आनयन और पूर्वोक्त अर्थके स्मरणसे तत्वमें विश्राम यह विषय वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ततःक्लिन्नेंदुवदनापर्याकुलतमःपदा ॥ क्षीयमाणाबभौश्यामाविवेकइववासना ॥ १ ॥ पूर्वध्वस्ततयालोकंदृश्यमानेपरेचले ॥ शयालीकावतंसाभंतापकोनिकरोदधौ ॥ २ ॥ अवश्या यकणाकर्षीपरामृष्टेंदुमंडलः ॥ ज्योत्स्नाकवलनालोकोबभौप्राभातिकोनिलः ॥ ३ ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना उत्थायानुचरैःसह ॥ ययुर्वंदितसंध्यास्तेपुण्यंवासिष्ठमाश्रमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—उसके अनंतर मलिन चंद्रमारूप मुखसहित तथा अंधकाररूप व्याकुल पदयुक्त मरणको उद्यतरात्रि ऐसे शोभितहुई जैसे विवेक उदय होनेसे वासना, इसके पश्चात् किंचित् उदित सूर्य्यने पूर्वदिशामें स्थित पूर्वाभिमुख जनोंसे दृश्यमान पर्वतपर शृंगोंसे प्रतिरुद्ध होनेसे उनके मध्यमें निकलतेहुये प्रकाशरूप प्रसारित हस्तकी शोभाको धारण किया और पश्चिमदिशामें अभिमुख जनोंसे दृश्यमान पश्चिमके पर्वतपर तो मिथ्याकल्पित शिरोभूषणआदिकी शोभाको धारण किया ॥ २ ॥ अनंतर हिमके कणोंको खींचनेवाला, चन्द्रमंडलको स्पर्शकरनेवाला तथा चंद्रचंद्रि-काको ग्रास करनेवाला प्रातःकालका मंदपवन शोभितहुआ ॥ ३ ॥ राम लक्ष्मण और शत्रुघ्न अपने अनुचरोंके साथ उठके स्नानसंध्यादि कार्य्य करके पवित्र वसिष्ठमुनिके आश्रमपर गये ॥ ४ ॥

तत्रवंदितसंध्यस्यनिर्गतस्यापिसद्मतः ॥ मुनेर्ववंदिरेपादौपदौर्दत्वार्घ्यसंततिम् ॥ ५ ॥ क्षणात्तत्सदनं मौनंमुनिब्राह्मणराजाभिः ॥ हस्त्यश्वरथयानैश्चशनैर्नीरंध्रतांययौ ॥ ६ ॥ अथासौमुनिशार्दूलस्तथैवसह सेनया ॥ गृहंदाशरथंकालेरामाद्यनुगतोययौ ॥ ७ ॥ तत्रैनंपूर्वसंबंधःकृतसंध्योमहीपतिः ॥ दूरमार्ग विनिर्गत्यपूजयामाससादरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर संध्यावन्दन समाप्तकर गृहसे निःसृत वसिष्ठमुनिके चरणोंको अर्घ्यप्रदान करके पूजा (वंदना) की ॥ ५ ॥ क्षणभरमेंही वह मुनिका आश्रम मुनि ब्राह्मण, तथा राजाओंसे, और हांथी घोडे तथा रथआदि यानोंसे पूर्ण होगया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् मुनियोंमें सिंह वसिष्ठमुनिजी उस सेनाके साथ तथा रामादिसे अनुगत समयपर दशरथके गृहपर गये ॥ ७ ॥ वहांपर गृहप्रवेशसे पूर्वही मिलनेवाले सन्ध्यावन्दनादि कार्य किये हुये शीघ्रता और उत्साहयुक्त राजादशरथने गृहसे दूर मार्गतक निकलके आदरपूर्वक वसिष्ठजीकी पूजा की ॥ ८ ॥

पुष्पमुक्तामणिव्रातैर्भूयोत्यधिकभूषिताम् ॥ सभांप्रविश्यतेसर्वेविविशुर्विष्टरालिषु ॥ ९ ॥ अथतस्मिन्न वसरेह्यस्तनाःसर्वएवते ॥ श्रोतारस्समुपाजग्मुर्नभश्चरमहीचराः ॥ १० ॥ विवेशसासभासौम्याकुला

न्योन्याभिवंदना ॥ बभौराजसमाभोगाशांतवातेवपद्मिनी ॥ ११ ॥ यथाप्रदेशमेवाशुनिविष्टेषुयथासुखम् ॥ तेषुतद्देशयोगेषुविप्रर्षिमुनिराजसु ॥ १२ ॥

अर्थ—पुष्प तथा मोती और मणियोंके समूहसे अधिक भूषित उस सभामें प्रवेश करके आसनोंकी पंक्तियोंमें वे लोग बैठगये ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् उस अवसरमें पूर्व दिनके आकाशचारी तथा पृथिवीचारी सब श्रोतागण आके प्राप्त हुये ॥ १० ॥ और सौम्य तथा परस्पर प्रणाम करनेवाली और राजाओंके योग्य आकारवाली वह सभा बैठगई तथा शांत कमलिनीके समान शोभित हुई ॥ ११ ॥ विप्रर्षि, मुनि तथा राजाओंके अपने योग्य स्थानोंमें सुखपूर्वक बैठजानेपर ॥ १२ ॥

मृदुनिस्वागतरवेशनैःशममुपागते ॥ सभाकोणोपविष्टेषुशांतशब्देषुबंदिषु ॥ १३ ॥ तरसैवोदितेष्वाशु श्रोतुमभ्यागतेष्विव ॥ गवाक्षादिवजालेषुप्रविष्टेष्वर्करश्मिषु ॥ १४ ॥ सत्वरप्रविशच्छ्रोतृहस्तस्पर्शघट्टोद्भवे ॥ मुक्ताजालझणत्कारेनिद्रायामिवशाम्यति ॥ १५ ॥ कुमारःशंकरस्येवकचोदेवगुरोरिव ॥ प्रह्लादइवशुक्रस्यसुपर्णइवशार्ङ्गिणः ॥ १६ ॥

अर्थ—और धीरे २ कोमल स्वागतके शब्दके शांत होनेपर, और सभाके कोणोंमें शांत शब्द होके बंदीजनोंके बैठनेपर ॥ १३ ॥ उदयको प्राप्त शीघ्र आके सूर्यके किरणोंके एक झरोंखेसे दूसरे झरोंखेमें प्राप्त होके झरोंखेके जालमें प्रविष्ट होनेपर ॥ १४ ॥ शीघ्र प्रवेश करनेवाले श्रोतागणोंके हस्तोंके स्पर्शोंसे अंगोंके संमर्दनसे उत्पन्न मोती माणिमय भूषणोंके झणत्कार शब्दोंके निद्राके समान शांत होनेपर ॥ १५ ॥ कुमार (स्वामिकार्तिक) शंकरके, कच बृहस्पतिके, प्रल्हाद शुक्राचार्यके, और गरुड विष्णुके मुखकी ओर जैसे दृष्टि लगाते हैं ऐसेही ॥ १६ ॥

वसिष्ठस्याननेरामःशनैर्दृष्टिन्यवेशयत् ॥ भ्रमंतीमंबरोपांतेफुल्लपद्मइवालिनीम् ॥ १७ ॥ मुनिस्त्वनुज्झितेनाथतेनैवरघुनंदनम् ॥ क्रमेणोवाचवाक्यज्ञोवाक्यंवाक्यार्थकोविदम् ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कच्चित्स्मरसियत्प्रोक्तंह्योमयारघुनंदन ॥ वाक्यमत्यंतगुर्वर्थंपरमार्थावबोधनम् ॥१९॥ इदानीमवबोधार्थमन्यच्चरिपुमर्दन ॥ उच्यमानंमयेदंचशृणुशाश्वतसिद्धये ॥ २० ॥

अर्थ—वसिष्ठभगवान्‌के मुखकी ओर रामचन्द्रजीने इसप्रकार दृष्टिको निविष्ट किया जैसे आकाशकी ओर भ्रमण करतीहुई कमलिनीको सूर्यका उदयकाल ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वाक्यको जाननेवाले श्रीवसिष्ठमुनि तो उसी पूर्वोक्त क्रमसे अर्थमें निपुण श्रीरामजीसे इस वाक्यको बोले ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रघुनंदन रामजी ! पूर्वदिनमें परमार्थका अवबोधन करनेवाला और अत्यन्त अर्थकी गांभीर्यता करके युक्त ऐसा जो मैंने कहा उसका स्मरणहै ? ॥ १९ ॥ अब औरभी नित्य मोक्षकी सिद्धिके लिये मुझसे कहे हुये वचनको सुनो ॥ २० ॥

वैराग्याभ्यासवशतस्तथातत्त्वावबोधनात् ॥ संसारस्तीर्यतेतेनतेष्वेवाभ्यासमाहर ॥ २१ ॥ सम्यक्त्वावबोधेनदुर्बोधेक्षयमागते ॥ गलितेवासनावेशेविशोकंप्राप्यतेपदम् ॥ २२ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमदृष्टोभयकोटिकम् ॥ एकंब्रह्मैवहिजगत्स्थितंद्वित्वमुपागतम् ॥ २३ ॥ सर्वभावानवच्छिन्नंयत्रब्रह्मैव विद्यते ॥ शांतंसमसमाभासंतत्रान्यत्वंकथंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वैराग्य तथा अभ्यासके वशसे तथा तत्वज्ञानसे मनुष्य संसारके पार होजाताहै, इसलिये उन्ही वैराग्यआदिका अभ्यास करो ॥ २१ ॥ सम्यक्‌प्रकारसे तत्वके बोधसे अज्ञानके क्षय होने तथा वासनाके प्रपंचके गलित होनेपर शोकरहित पद प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ देश काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित, तथा देश वा कालसे जिसकी पूर्वपर अवधि नहीं दृष्ट है ऐसा एक ब्रह्महीं जगत्‌रूपसे स्थित द्वित्वकल्पनाको प्राप्त है ॥ २३ ॥ सब पदार्थोंसे परिच्छिन्न शांत और साधारण गोत्वआदिमेंभी समान सत्तासे प्रसिद्ध जहां ब्रह्मही है वहां भिन्नता कैसे होसकती है ॥ २४ ॥

इतिमत्वाहमित्यंतमुक्त्वामुक्तवपुर्महान् ॥ एकरूपःप्रशांतात्मासाक्षात्स्वात्मसुखोभव ॥ २५ ॥ नास्तिचित्तंनचाविद्यानमनोनचजीवकः ॥ एताःस्वकलनारामकृताब्रह्मणएवताः ॥ २६ ॥ यास्संपदो याश्चदृशोयाश्चितोयास्तदेषणाः ॥ ब्रह्मैवतदनाद्यंतमब्धिवत्प्रविजृंभते ॥ २७ ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेतृणेप्राण्यंबरेपिच ॥ दृश्यतेतत्परंब्रह्मचिद्रूपंनान्यदस्तिहि ॥ २८ ॥

अर्थ—यह उक्त ब्रह्मस्वभावका निश्चय करके और अहंकारको त्यागकर, मुक्तशरीर, महान्, एकरूप, प्रशांतात्मा, और साक्षात् उत्तम आत्मसुखरूप तुम होजाओ ॥ २५ ॥ हे रामजी ! न चित्त है, न अविद्या है, न मन है,

और न जीव है, किन्तु ये सब कल्पना ब्रह्मसेही की गई हैं ॥२६॥ जो भोग्य संपत्ति हैं, और जो भोग्य वृत्ति हैं, जो उन वृत्तियोंमें प्रतिबिंबित चिदाभास हैं, और जो भोगोंकी स्पृहा हैं वह सब अनादि अनन्त ब्रह्महीं समुद्रके समान विकसित होरहाहै ॥ २७ ॥ पाताल, भूतल, और स्वर्गादि देशभेदोंमें, तृण प्राणी तथा आकाशादि वस्तुभेदोंमें, और भूतआदि काल भेदोंमें, जो कुछ दृश्य देखपडता (अनुभूत होताहै) है वह सब चिद्रूप ब्रह्महीं है अन्य कुछ नहीं है ॥ २८ ॥

उपेक्ष्यहेयोपादेयबंधवोविभवावपुः ॥ ब्रह्मैवविगताद्यंतमब्धिवत्प्रविजृंभते ॥ २९ ॥ यावदज्ञानकलनायावदब्रह्मभावना ॥ यावदास्थाजगज्जालेतावच्चिताहिकल्पना ॥ ३० ॥ देहेयावदहंभावोदृश्येस्मिन्यावदात्मना ॥ यावन्ममेदमित्यास्थातावच्चितादिविभ्रमः ॥ ३१ ॥ यावन्नोदितमुच्चैस्त्वंसज्जनासंगसंगतः ॥ यावन्मौर्ख्यंनसंक्षीणंतावच्चितादिनिम्नता ॥ ३२ ॥

अर्थ—उपेक्ष्य (त्याज्य) और उपादेय (ग्राह्य) और अधिकतर उपादेय जैसे बन्धु, ऐश्वर्य तथा शरीर है यह सब आदिअन्त शून्य ब्रह्महीं समुद्रके तुल्य विकसित होरहाहै ॥ २९ ॥ जबतक अज्ञानकी कल्पना है, जबतक ब्रह्मभिन्न देहादिमें आत्मभावना है, और जबतक जगज्जालमें सत्यताका विश्वास है तभीतक चित्तरूप सर्पकी कल्पना है ॥ ३० ॥ देहमें जबतक आत्मभाव है और दृश्यमें जबतक अपनेसे अहं मम (मैं मेरा) इत्यादि सत्य विश्वास है तबतक चित्तका भ्रम है ॥ ३१ ॥ जबतक सज्जनोंके संगसे पूर्णता नहीं उदय होती, और जबतक मूर्खता नहीं क्षीण हुई तबतक चित्तआदि प्रयुक्त नीचताहै ॥ ३२ ॥

यावच्छिथिलतांयातंनेदंभुवनभावनम् ॥ सम्यग्दर्शनशक्त्यांतस्तावच्चितादयःस्फुटाः ॥ ३३ ॥ यावदज्ञत्वमंधत्वंवैवश्यंविषयाशया ॥ मौर्ख्यान्मोहसमुच्छ्रायस्तावच्चित्तादिकल्पना ॥ ३४ ॥ यावदाशाविषामोदःपरिस्फुरतिहृद्वने ॥ प्रविचारचकोरोंतर्नतावत्प्रविशत्यलम् ॥ ३५ ॥ भोगेष्वनास्थमनसःशीतलामलनिर्वृतेः ॥ छिन्नाशापाशजालस्यक्षीयतेचित्तविभ्रमः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सम्यक्दर्शनकी शक्तिसे जबतक यह संसारकी भावना शिथिलताको नहीं प्राप्त हुई तबतक चित्त-आदि प्रत्यक्ष हैं ॥ ३३ ॥ जबतक अज्ञतारूप अन्धता है, विषयकी आशासे जबतक व्याकुलता है और मूर्खतासे जबतक मोहकी उन्नति है तबतक चित्तआदिकी कल्पना है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! जबतक हृदयरूप बनमें आशारूप विषकी सुगंधता स्फुरित होरही है तबतक विचाररूप चकोर अन्तःकरणरूप बनमें नहीं प्रवेश करता ॥ ३५ ॥ भोगोंमें सत्यताका विश्वास जिसके मनमें नहीं है, शीतल निर्मल जिसकी शांति है तथा आशारूप फांसीका जाल जिसका छिन्न है उसके चित्तका भ्रम क्षीण होजाताहै ॥ ३६ ॥

तृष्णामोहपरित्यागान्नित्यशीतलसंविदः ॥ पुंसःप्रशांतचित्तस्यप्रबुद्धात्यक्तचित्तभूः ॥ ३७ ॥ असंस्तुतमिवानास्थमवस्तुपरिपश्यतः ॥ दूरस्थमिवदेहंस्वमसंतंचित्तभूःकुतः ॥ ३८ ॥ भावितानंतचित्तस्वरूपरूपांतरात्मनः ॥ स्वांतावलीनजगतःशांतोजीवादिविभ्रमः ॥ ३९ ॥ असम्यग्दर्शनेशांतेमिथ्याभ्रमकरात्मनि ॥ उदितेपरमादित्येपरमार्थैकदर्शने ॥ ४० ॥

अर्थ—तृष्णा तथा मोहके परित्यागसे जिसकी संवित् शांतहै और चित्त जिसका शांत है उस पुरुषकी त्यागी हुई चित्तकी भूमि ज्ञानरूप फलयुक्त होती है ॥ ३७ ॥ उपयोगरहित दूरस्थ मिथ्यावस्तुके तुल्य अपने देहको देखनेवाले पुरुषको चित्तकी भूमि कहां ? ॥ ३८ ॥ श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कारोंसे परिशुद्ध चिन्मात्र अनंतरूप तथा संसार प्रसिद्धरूपसे विलक्षणरूप जिसका आत्मा है तथा जिसके अन्तःकरणमें संपूर्ण जगत् लीन है उसको जीवादिका भ्रम शांतहै ॥ ३९ ॥ मिथ्याभ्रमकारी अज्ञानके शांत होनेपर, और परमार्थका दर्शक चिद्रूप सूर्यके उदय होनेपर ॥ ४० ॥

अपुनर्दर्शनायैवदग्धसंशुष्कपर्णवत् ॥ चित्तंविगलितंविद्धिवन्हौघृतलवंयथा ॥ ४१ ॥ जीवन्मुक्तामहात्मानोयेपरावरदर्शिनः ॥ तेषांयाचित्तपदवीसासत्त्वमितिकथ्यते ॥ ४२ ॥ जीवन्मुक्तशरीरेषुवासनाव्यवहारिणी ॥ नचित्तनाम्नीभवतिसाहिसत्त्वपदंगता ॥ ४३ ॥ निश्चेतसोहितत्त्वज्ञानित्यंसमपदेस्थिताः ॥ लीलयाप्रभ्रमंतीहसत्वसंस्थितिहेलया ॥ ४४ ॥

अर्थ—पुनः दर्शन देनेकेलिये शुष्क भस्मीभूत पत्रके समान चित्तको तुम ऐसे गलित जानो जैसे अग्निमें घृतका बिन्दु ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जो ब्रह्मतत्व तथा संसारकेभी देखनेसे जीवन्मुक्त महात्मागण हैं उन लोगोंकी चित्तकी

जो पदवी है उसको सत्व कहते हैं ॥ ४२ ॥ जीवन्मुक्तोंके शरीरमें केवल व्यवहारमात्रकारिणी वासना जो है वह चित्तनामवाली नहीं है किंतु वह सत्वपदवीको प्राप्त है ॥ ४३ ॥ चित्तरहित और समरूप ब्रह्मपदमें स्थित महात्मा तत्वज्ञानीलोग लीलामात्रसे और सत्वकी स्थितिसे जगत्में सत्यताके विश्वाससे शून्य इस जगत्में भ्रमण करतेहैं॥४४

शांताव्यवहरंतोपिसत्त्वस्थाःसंयतेंद्रियाः ॥ नित्यंपश्यंतितज्ज्योतिर्नद्वैतैक्येनवासना ॥ ४५ ॥ अंतर्मुखतयासर्वंचिद्वन्हौत्रिजगत्तृणम् ॥ जुह्वतांतनिर्वर्ततेमुनेश्चित्तादिविभ्रमाः ॥ ४६ ॥ विवेकविशदंचेतः सत्वमित्यभिधीयते ॥ भूयःफलतिनोमोहंदग्धबीजमिवांकुरम् ॥ ४७ ॥ यावत्सत्वंविमूढांतःपुनर्जननधर्मिणी ॥ चित्तशब्दाभिधानोक्ताविपर्यस्यतिबोधतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सत्वमें स्थित जितेन्द्रिय पुरुष व्यवहार करतेहुयेभी शांत होके नित्य उस अद्वय ब्रह्मज्योतिको देखते हैं जहां न द्वैतता तथा एकता और वासनाभी नहीं है ॥ ४५ ॥ अन्तर्मुख होनेसे सब तीनोंलोकरूप तृणको चिद्रूप अग्निमें हवन करनेवाले मुनिके अन्तःकरणसे चित्तआदिका भ्रम दूर होजाताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! विवेकसे विशाल जो चित्त है उसीको सत्व कहते हैं, और उस चित्तमें मोहरूप फल ऐसे नहीं होता जैसे दग्धबीजसे अंकुर ॥ ४७ ॥ जबतक मूढोंका अंतःकरण चित्तशब्दसे प्रतिपाद्य है तबतक वह पुनर्जन्मका हेतु है, और ज्ञानसे तो वह सत्वरूपमें परिणत होके जन्मकी निवृत्तिरूप कार्य्य करताहै ॥ ४८ ॥

प्राप्तप्राप्योभवान्रामसत्वभावमुपागतम् ॥ चित्तंज्ञानाग्निनादग्धंनभूयःपरिरोहति ॥ ४९ ॥ संरोहतीषणाविद्धंयथापरशुनाग्निना ॥ नतुज्ञानाग्निनिर्दग्धंप्रबोधविशदंमनः ॥ ५० ॥ ब्रह्मबृंहैवहिजगज्जगच्चब्रह्मबृंहणम् ॥ विद्यतेनानयोर्भेदश्चिद्घनब्रह्मणोरिव ॥ ५१ ॥ चिदंतरस्तित्रिजगन्मरिचेतीक्ष्णतायथा ॥ नातश्चिज्जगतीभिन्नेतस्मात्सदसतीसुधा ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम प्राप्यवस्तुको प्राप्त होचुकेहो, तुमारा चित्त अब सत्वदशाको प्राप्तहै और ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध होनेसे पुनः वह नहीं जमता ॥ ४९ ॥ पुत्र, वित्त, धनकी एषणा (अभिषाला) ओंसे विंधा हुआ चित्त ऐसे पुनः उत्पन्न होताहै जैसे परशुसे छिन्न वा अग्निसे दग्ध तृणादि भीतर बीजशक्ति होनेसे उत्पन्न होताहै, और ज्ञानशक्तिरूप अग्निसे दग्ध और बोधसे विशद (विशाल) चित्त पुनः नहीं ऊगता ॥ ५० ॥ ब्रह्मके अज्ञानसे उसीको आरोपित वृद्धिरूप यह जगत् है और जगत्भी ब्रह्मका वृद्धिरूप स्वभावही ज्ञानसे भासताहै, और जैसे चिद्घन तथा ब्रह्मका भेद नहीं है ऐसेही जगत् और ब्रह्मकाभी भेद नहीं है ॥ ५१ ॥ यह तीनोंलोक चिद्रूपही ऐसे है जैसे तीक्ष्णतारूपसे अभिन्न मरिच (मिरच) में तीक्ष्णता है इसलिये चित् और जगत् भिन्नरूप नहीं हैं, इसलिये ज्ञानदृष्टिसे जगत्के प्रलय, उत्पत्ति, मायाजनित भ्रमरूपही है ॥ ५२ ॥

शब्दशब्दार्थसंकेतवासनेहनसंविदा ॥ चिद्व्योमत्वाद्विभेभातस्त्यजातःसदसन्मती ॥ ५३ ॥ अचिन्मयत्वान्नासित्वंस्वात्माकिमिवरोदिषि ॥ अचिन्मयत्वेजगतामभावेकल्पनंकुतः ॥ ५४ ॥ चिन्मयंचेत्सदासर्वंतच्चित्वंप्रविचारय ॥ शुद्धंसत्वमनार्यंतंतत्रांगकल्पनाकुतः ॥ ५५ ॥ चिदात्मासिनिरंशोसिपारावारविवर्जितः ॥ रूपंस्मरनिजंस्फारंमाऽस्मृत्यासंमितोभव ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! घटपटआदि लौकिक तथा " इषेत्वोर्जेत्वा " इत्यादि वैदिकशब्द तथा अर्थके जो संकेत हैं वे श्रोता तथा वक्ताकी वासनारूप हैं न किप्रमा संवित्रूप हैं क्योंकि विचारसे अवस्तुरूप हैं और चिदाकाशकी सत्ताहीसे दोनोंका भान होताहै इसलिये वही परमार्थभूत सर्वत्र सत्तारूपसे अनुगत वस्तु शब्दके योग्यहै न कि परस्पर व्यावृत्त शब्द तथा अर्थ, अतः सद्असद्की भ्रांतिको त्यागो ॥ ५३ ॥ त्वंपदके व्यवहारयोग्य सदसद्रूप रामनामक शरीर आत्मा नहीं है क्योंकि वह जड है तब उसके लिये तुम क्यों रोते हो, और सब ब्रह्मांडोंके अचिन्मय होनेसे अभावनिश्चयरूपसे ज्ञात होनेपर शरीरआदिकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ ५४ ॥ यदि चित्की व्यावृत्तिरूप जडताके त्यागसे शेष चिन्मयरूप सदा यह सब जगत् है तो उसी चिन्मात्रको विचारो, और वह सम्यक् विचार्य्यमाण शुद्ध सत्वमात्र है उसमें शरीरआदि अनर्थकी कल्पना कहां ? ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! तुम अंशांशीभावरहित, और पारावारवर्जित चिदात्मा हो, तुम अपने व्यापक विशालरूपका स्मरणकरो उसके विस्मरणसे परिच्छिन्न देहमात्र न होओ ॥ ५६ ॥

तांस्वसत्तांगतःसर्वमसर्वंभावयोदयी ॥ तादृग्रूपोसिशांतोसिचिदसिब्रह्मरूप्यसि ॥ ५७ ॥ चिच्छिलोदरमेवासिनासिनानास्यथाप्यसि ॥ योसिसोसिनसोसीवसदस्यसदसिस्वभाः ॥ ५८ ॥ यःपदा

र्थविशेषांतर्नत्वंनह्येवसोस्तिते ॥ तदस्यतदसिस्वस्थश्चिद्घनात्मन्नमोस्तुते ॥ ५९ ॥ आद्यंतवर्जितविशालशिलांतरालसंपीनचिद्घनवपुर्गगनामलस्त्वम् ॥ स्वस्थोभवाजठरपल्लवकोशलेखालीलास्थिताखिलजगज्जयतेनमस्ते ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे विश्रांतिसुदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—और अपनी उस व्यापक शुद्ध चिन्मात्र सत्ताको प्राप्त तथा निरतिशय आनन्दरूपके लाभके उदयसे युक्त होके परिच्छिन्न जगत्को पूर्णरूप संपादन करो, क्योंकि तुम वही पूर्ण, शांत, और चिद्रूप ब्रह्मको ॥ ५७ ॥ चिद्रूप शिलाका उदरमात्र तुम होओ और नानारूपसे स्थितिशील जो पदार्थ हैं वह तुम नहीं हो, तथा उन नानाप्रकारके बाधकी अवधि तुम हो, उस तुमारे स्वरूपमें सब वाणी तथा मनकी प्रवृत्तिका अभाव है इसलिये जो कुछ तुम हो सो हो, परंतु वाणी मनका अविषय होनेसे तुम परोक्ष नहीं हो किंतु असत्के विरुद्ध सत् स्वप्रकाशरूप हो ॥ ५८ ॥ जो सबपदार्थोंका व्यावृत्तिरूप अन्तः परिच्छेद है वह मिथ्या होनेसे तुम नहीं हो और न वह परिच्छेद तुमारे हैं, तुम तो वही सद्रूप हो और असत्रूप नहीं हो, तुम स्वस्थसत्तामात्र हो इसलिये हे चिद्घनात्मन् ! तुमको नमस्कारहै ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! आदि अंतवर्जित विशाल स्फटिकशिलाके मध्यके समान घनीभूत जो चिद्घन स्वभाव है वही निर्मल चिदाकाशरूप तुम हो, न कि दुःख आदि विकारके भागी इसलिये स्वस्थ होओ, और तुमारे चारोओरसे विस्तीर्ण चिद्रूप शिलाके उदरमें प्रतिबिंबित पल्लवके कोशके तुल्य कल्पित मायाकी रेखाके सदृश वासनाके भेदोंमें लीलासे स्थित अनेक जगत् सहित तुमारे स्वरूपको हे रामजी ! नमस्कार है और तुमारा जयहो ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे विश्रांतिसुदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

ब्रह्म, जीव, मन, देह और जगत्की एकताके दर्शनसे सब द्वैतकी भ्रांतिके शांति होनेसे पूर्ण एकताकी स्थिति इस ३ रे सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ भाविभूरितरंगाणांपयोवृंदमिवांबुधौ ॥ याचिद्वहत्यनंतानिजगंत्यनघसोभवान् ॥ १ ॥ भवभावनयामुक्तोभावाभावविवर्जितः ॥ चिदात्मन्संस्थिताःक्वेववदतेवासनादयः ॥ २ ॥ जीवोयंवासनादीदमितिचित्कचतिस्वतः ॥ इतरोक्त्यर्थयोरत्रकःप्रसंगोंगकथ्यताम् ॥ ३ ॥ महातरंगगंभीरभासुरात्मचिदर्णवः ॥ रामाभिधोर्मिस्तिमितःसमसौम्योसिव्योमवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे पापरहित रामजी ! जैसे समुद्रमें उत्पन्न होनेवाले अनेक तरंगोका आत्मा (स्वरूप) सामान्य जलसमूह है ऐसेही जो चित् अनेक जगत् धारणकरती है वही सबका आत्मा है ॥ १ ॥ हे रामजी ! संसारकी भावनासे मुक्त तथा भाव और अभावसे तुम रहित होजाओ, हे चित्स्वरूप ! कहो वासनाआदि तुमारे कहांपर स्थितहै ? अर्थात् कहीं नहीं ॥ २ ॥ यह जीव, और यह वासनाआदि रूपसे चेतन स्वयं विकसित होरहाहै. हे प्रिय ! यहांपर अन्यशब्द तथा अर्थका क्या प्रसंग है सो कहो ॥ ३ ॥ महातरंगोंसे गंभीर तथा प्रकाशशील चेतन आत्मारूप समुद्र रामनामक (जिसमें योगीलोग रमण करैं ऐसे) तरंगसे स्तब्ध, सम तथा शांत आकाशके तुल्य तुम निर्मल हो ॥ ४ ॥

यथानभिन्नमनलादौष्ण्यंसौगंध्यमंबुजात् ॥ काष्ण्र्यंकज्जलतःशौक्ल्यंहिमान्माधुर्यमिक्षुतः ॥ ५ ॥ आलोकश्चप्रकाशांगादनुभूतिस्तथाचितेः ॥ जलाद्वीचिर्यथाऽभिन्नाचित्स्वभावात्तथाजगत् ॥ ६ ॥ चितोनभिन्नोनुभवोभिन्नोनानुभवादहम् ॥ नमत्तोभिद्यतेजीवोनजीवाद्भिद्यतेमनः ॥ ७ ॥ मनसोनेंद्रियंभिन्नंपृथग्देहश्चनेंद्रियात् ॥ नशरीराज्जगद्भिन्नंजगतोनान्यदस्तिहि ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे अग्निसे उष्णता, कमलसे सुगन्धि, कज्जलसे कृष्णता, हिमसे श्वेतता, और ईखसे मधुरता ॥ ५ ॥ तेजसे प्रकाश, चेतनसे वृत्तिमें प्रतिबिंबित चैतन्य, और जलतरंग भिन्न नहीं हैं ऐसेही चित्स्वभावसे जगत् भिन्न नहीं है ॥ ६ ॥ मूल अधिष्टान चेतनसे भिन्न अनुभव (मायाकी वृत्तिमें आरूढ चिदाभास) नहीं, अनुभवसे भिन्न समष्टिव्यष्टिरूप अहंकाररूप हम नहीं हैं, हमसे भिन्न जीव नहीं है, जीवसे भिन्न मन नहीं है ॥ ७ ॥ मनसे भिन्न

इन्द्रियां नहीं हैं, इन्द्रियोंसे भिन्न समष्टिव्याष्टि शरीर नहीं है, और शरीरसे भिन्न जगत् नहीं है, और जगत्से भिन्न अन्य कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

एवंप्रवर्तितमिदंमहच्चक्रमिदंचिरम् ॥ नचप्रवर्तितंकिंचिन्नचशीघ्रंचनोचिरम् ॥ ९ ॥ स्ववेदनमनंतंच सर्वमेवमखंडितम् ॥ विद्यतेव्योमनिव्योमनकस्मिंश्चिन्नकिंचन ॥ १० ॥ शून्यंशून्येसमुच्छूनंब्रह्मब्रह्म णिबृंहितम् ॥ सत्यंविजृंभतेसत्येपूर्णेपूर्णमिवस्थितम् ॥ ११ ॥ रूपालोकमनस्कारान्कुर्वन्नपिनकिंच न ॥ ज्ञःकरोत्यनुपादेयान्नज्ञस्यैवहिकर्तृता ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार जगत्रूप चक्रको अपने स्वरूपके अज्ञानके अध्याससे चेतनही चिरकालसे प्रवृत्त कियाहै; और यथार्थमें न शीघ्र न चिरकालसे कुछ प्रवृत्त कियाहै ॥ ९ ॥ यथार्थमें तो सब कुछ अपना अनुभव पूर्ण अखंडित चिदाकाश चिदाकाशमें विद्यमानहै और किसीमें कुछ नहीं है ॥ १० ॥ शून्यमें शून्य और ब्रह्ममें ब्रह्म वृद्धिको प्राप्तहै सत्यमें सत्यही प्रकाशित होरहाहै, और पूर्णमें पूर्ण स्थितहै ॥ ११ ॥ बाह्यइन्द्रिय तथा मन (अन्तःकरण) के व्यापारोंको करताहुआभी ज्ञानी उपादेयबुद्धिसे कुछ नहीं करता, इसलिये ज्ञानीको कर्तृता नहीं है ॥ १२ ॥

यदुपादेयबुद्ध्याचतदुःखायसुखायते ॥ भावाभावेननादेयमकर्तृसुखदुःखयोः ॥ १३ ॥ यथानानाप्यना नैवखंखेखानीतिवाग्गणः ॥ सार्थकोप्यतिशून्यात्मातथात्मजगतोःक्रमः ॥ १४ ॥ अंतर्व्योमामलोबाह्ये सम्यगाचारचंचुरः ॥ हर्षामर्षविकारेषुकाष्ठलोष्टसमस्थितिः ॥ १५ ॥ यएवातितरांशत्रुःसत्वरंमारणो द्यतः ॥ तमेवाकृत्रिमंमित्रंयःपश्यतिसपश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो कुछ उपादेयबुद्धिसे कियाजाताहै वही तुमारे सुख तथा दुःखके लिये होताहै, और ज्ञानीके लिये दृश्यमान पदार्थोंके मिथ्यात्वसे उपादेयताके अभावसे सुखदुःखकी कर्तृता उसके लिये नहीं है ॥ १३ ॥ जैसे आकाशमें घटाकाश १ मठाकाश २ अभ्राकाश ३ इत्यादि नानारूपता रहतेभी वह एकरूप महत् आकाशही है, और उसमें बहुबन्धनका प्रयोग सार्थक रहतेभी जैसे आकाश अत्यन्त शून्यरूप है ऐसेही आत्मा तथा जगत्का क्रम है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! अन्तःकरणमें तो निर्मल आकाशके सदृश निर्लिप्त, और बाहरसे अपने वर्ण आश्रमके अनुकूल आचारमें तत्पर, तथा हर्ष अमर्ष आदि विकारोंमें काष्ठपाषाणके तुल्य स्थितिवाले होओ ॥ १५ ॥ जो कोई अतिशत्रु है और शीघ्र मारनेके अर्थ उद्यतहै उसके शरीरमेंभी अपनाही आत्मा होनेसे उस शत्रुकोभी स्वाभाविक मित्रके समान देखताहै वही देखताहै अर्थात् आत्मज्ञानी है ॥ १६ ॥

समूलकाषंकषतिनदीतटइवद्रुमम् ॥ यःसौहृदंमत्सरंचसहर्षामर्षदोषहा ॥ १७ ॥ रागद्वेषविकाराणां स्वरूपंचेन्नभाव्यते ॥ ततःसंतोप्यसद्रूपाःसेविताअप्यसेविताः ॥ १८ ॥ यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्य नलिप्यते ॥ हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥ १९ ॥ यन्नास्तितस्यसद्भावप्रतिपत्तिरुदाहृता ॥ मायेतिसापरिज्ञानादेवनश्यत्यसंशयम् ॥ २०॥ निःस्नेहदीपवच्छांतोयस्यांतर्वासनाभरः ॥ तेनचित्रकृ तेनेवजितंज्ञेनाविकारिणा ॥ २१ ॥ यस्यानुपादेयमिदंसमस्तंपदार्थजातंसदसद्दशासु ॥ नदुःखदाहाय सुखायनैवविमुक्तएवेहसजीवएव ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे नदी अपने तटके वृक्षको मूलसहित उखाड देती है ऐसेही जो मित्रता तथा मत्सर (डाह) वा क्रोधको मूलसहित नष्ट करताहै वही हर्षअमर्षरूप दोषोंका नाशकहै ॥ १७ ॥ जिनको राग द्वेष और विचारका स्वरूप नहीं ज्ञात होता तो रागद्वेषसे रहित प्रसिद्धभी जन असाधुही हैं, इसलिये उनकी सेवाभी मिथ्यारूपही है, क्योंकि रागद्वेषके स्वरूपको न जाननेसे उनका मूलसे उच्छेदन होनेसे पुनः उनको रागद्वेष उत्पन्न होनेकी संभावनाहै ॥ १८ ॥ जिसको देहादिमें अहंकारका भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि रागद्वेषमें लिप्त नहीं है वह इन संपूर्ण लोकोंको मारकरभी बंधनमें नहीं आता ॥ १९ ॥ जो यथार्थमें नहीं है उसके सत्ताकी प्रतिपत्ति (निश्चयरूपसे भान) को माया कहते हैं और वह माया निःसन्देह ज्ञानसेही नष्ट होती है ॥ २० ॥ जिसके अन्तःकरणमें तैलरहित दीपके समान वासनाका समूह शांत होगयाहै उस संसारको बोधसे निरास करनेवाले नित्यसिद्ध पूर्णात्माने रागद्वेषादिको ऐसे जीता जैसे चित्रलिखित राजा चित्रलिखित शिरच्छेदन करनेवाले शत्रुको ॥ १२ ॥ जिस महान् पुरुषको आवि-

र्भाव तिरोभाव दशाओंमें, वा विभव तथा दरिद्रताकी दशाओंमें, तथा आध्यारोप तथा अपवादकी दशाओंमें समस्त पदार्थरूप भोग्यसमूह मिथ्या होनेसे संयोग तथा वियोगप्रयुक्त दुःख दाह वा सुखके लिये नहीं होता वह अपने जीवनमेंही मुक्तहै ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस ४ के सर्गमें वसिष्ठजी अन्य बाह्यदृष्टियोंका निरास करके और अन्तर्मुखदृष्टिमें रामचन्द्रजीको स्थिर करके संशयकी शांतिके लिये प्रश्न किया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनोबुद्धिरहंकारइंद्रियादितथानघ ॥ अचेत्यचिन्मयंसर्वंक्वतेजीवादयःस्थिताः ॥ १ ॥ एकेनैवात्मनादत्तानानातेयंमहात्मना ॥ यथैकेनैवचंद्रेणतिमिराप्पात्रदर्पणैः ॥ २ ॥ भोगतृष्णाविषावेशोयदैवोपशमंगतः ॥ तदैवमस्तमज्ञानमांध्यंध्वांतक्षयादिव ॥ ३ ॥ अध्यात्मशास्त्रमंत्रेणतृष्णाविषविषूचिका ॥ क्षीयतेभाविततेनांतःशरदामिहिकायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पापरहित रामजी ! मन, बुद्धि, अहंकार, तथा इन्द्रिय यह सब विषयवर्जित सर्वत्र अखंडरूपसे अनुगत चिन्मात्रही है तब तुमारे जीवआदि कहां स्थितहै ॥ १ ॥ हे रामजी ! एकही आत्माने अपनी सत्ताके संसर्गके अध्याससे यह अनेकता ऐसे प्राप्त की है जैसे एकही चन्द्रमासे दर्पणोंसे तिमिनामक नेत्ररोग-की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ जिससमय भोगकी तृष्णारूप विषका आवेश शांत होजाताहै उसीसमय अज्ञान ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे अन्धकारके क्षयसे नेत्रके विषयोंके न ग्रहण करनेका असामर्थ्य॥३॥अन्तःकरणमें उत्तमरीतिसे विचारित अध्यात्मशास्त्ररूप मन्त्रसे तृष्णारूप विषकी विषूचिका (महामारी) ऐसे नष्ट होती है जैसे शरदृऋतुसे तुषार ॥ ४ ॥

मौर्ख्येक्षीणेक्षतंविद्धिचित्तंरामसबांधवम् ॥ विलीनांबुधरेव्योम्निजाड्यंशाम्यत्यविघ्नतः ॥ ५ अचित्तत्वं गतेचित्तेक्षीयतेवासनाभ्रमः ॥ हारमुक्तासमावेशश्छिन्नेतंताविवानघ ॥ ६ ॥ रघुनाथविघातायशास्त्रार्थंभावयंतिये ॥ कृमिकीटत्वयोग्यायचेतसासंमिलंतिते ॥ ७ ॥ नवतामरसाकारकांतलोचनलोलता ॥ शांतेमौर्ख्येक्षतावातेचलतासरसोयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अज्ञानके नष्ट होनेपर अपने परिवार सहित चित्तको तुम ऐसे नष्ट समझो जैसे आकाशमें मेघके शांत होनेपर निर्विघ्नतासे जडता शांत होती है ॥ ५ ॥ चित्तकी अचित्ततादशा प्राप्त होनेपर वासनारूप भ्रम ऐसे क्षीण होजाताहै जैसे सूत्रके टूटनेपर हारके मोतियोंकी स्थिति ॥ ६ ॥ हे रामजी ! मुझसे कहेहुये शास्त्रके रह-स्यको जो कोई उपेक्षा करके उसके विघातके लिये अन्यविषयजनक शास्त्रका अभ्यास करते हैं वे कृमिकीटादिके योग्य चित्तसे मिलते हैं ॥ ७ ॥ नूतन कमलके सदृश रमणीय नेत्रोंकी चंचलता इत्यादि स्त्रीआदिके देहपिंडमें क-ल्पित दुर्बुद्धि अज्ञानके नष्ट होनेसे ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे तडागके तरंगोंकी चंचलता ॥ ८ ॥

स्थिरतामुपयातोसिभावाभावविवर्जितः ॥ पदेपरमविस्तारेनभसीवप्रभंजनः ॥ ९ ॥ मन्येमद्वचनैर्बोधमागतोसिरघूद्वह ॥ विगताज्ञाननिद्रांतर्नृपतिःपटहैरिव ॥ १० ॥ सामान्येचलगंत्येवजनेकुलगुरोर्गिरः ॥ अत्युदारमतौरामनलगंतिकथंत्वयि ॥ ११ ॥ यत्रोपादेयवाक्यत्वंभावितंस्वेनचेतसा ॥ मद्वचांतर्विशत्युच्चैस्तप्तेक्षेत्रेयथापयः ॥ १२ ॥ वयमिहहिमहानुभावनित्यंकुलगुरवोभवतांरघूद्वहानाम् ॥ मदुदितमिदमाशुधार्यमार्यशुभवचनंहदिहारवत्त्वयेति ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम अब भाव अभावसे वर्जित होके विस्तारयुक्त परमपदमें ऐसे स्थिरताको प्राप्त हो जैसे आकाशमें पवन ॥ ९ ॥ हे रघुकुलके दीपक रामजी ! यह मैं मानताहुं कि अब तुम अज्ञानरूप निद्रासे रहित होके मेरे बोधको ऐसे प्राप्त हो जैसे बन्दीजनोंके जगानेके बाह्यभेदोंसे राजालोग ॥ १० ॥ हे रामजी ! साधारण जन-मेंभी अपने कुलगुरुके उपदेशके वचन अवश्य लगते (ज्ञान उत्पन्न करते) हैं तो आपके समान उदारबुद्धिमें मेरे

जैसे कुलगुरुके वचन क्यों नहीं लगते अर्थात् अवश्य लगते हैं ॥ ११ ॥ जहां तुमने मुझमें आप्त (श्रेष्ठ) वाक्यता अपने चित्तसे चिंतित किया तहां मेरे वचन तुमारे हृदयमें ऐसे प्रवेश करते हैं जैसे तप्तक्षेत्र (खेत) में जल ॥ १२ ॥ हे महानुभाव रामजी ! हम लोग आप रघुकुलमें श्रेष्ठ पुरुषोंके सदासे कुलगुरु हैं इसलिये हे आर्य्य मेरे शुभवचनको तुम हारके सदृश अपने हृदयमें धारण करना ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

इस ५ के सर्गमें ज्ञानयुक्त रामचन्द्रजीने अपने परमसुखमें विश्रांत होके गुरुके सन्मुख विस्तारपूर्वक अपना अनुभव वर्णन किया है ॥

श्रीरामउवाच ॥ अहोअहंगतश्चित्त्वंभवद्वाक्यार्थभावनात् ॥ शांतंजगज्जालमिदमग्रस्थमपिनाथमे॥१॥ परामंतःप्रयातोस्मिपरमात्मनिनिर्वृतिम् ॥ दीर्घावग्रहसंतप्तंवृष्ट्येववसुधातलम् ॥ २ ॥ शाम्यामिशीतलाकारःसुखंतिष्ठामिकेवलम् ॥ प्रसादमनुयातोहंसरोनिर्वारणंयथा ॥ ३ ॥ सम्यक्प्रसन्नमखिलंदिङ्मंडलमिदंमुने ॥ यथाभूतंप्रपश्यामिनिर्नीहारमिवाधुना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! अहो आपके वाक्योंके अर्थको विचार करनेसे मेरा अहंकार चित्तके साथ पूर्ण आत्मरूपताको प्राप्त होगया है और मेरे सन्मुख स्थितभी यह जगत्का जाल शांत है ॥ १ ॥ और परमात्मामें अन्तःकरणसे ऐसी परमशीतलताको प्राप्त हुं जैसे दीर्घकालकी वृष्टिके अभावसे संतप्त वसुधातल वृष्टिसे ॥ २ ॥ अब मैं शीतल आकार होके शांत होता हुं, और सुखपूर्वक केवल स्थितहुं, तथा ऐसे स्वच्छताको प्राप्त हुं जैसे गजके निकलजानेपर तडाग ॥ ३ ॥ हे मुने ! इससमय मैं सन्मात्रस्वभाव ब्रह्मको ऐसे देखताहुं जैसे कुहरासे रहित सम्पूर्ण दिशाओंके मंडलको ॥ ४ ॥

जातोस्मिगतसंदेहःशांताशामृगतृष्णिकः ॥ रागनीरागनिर्मुक्तोमृष्टजंगलशीतलः ॥ ५ ॥ आत्मनैवांतरानंदंतत्प्राप्तोस्म्यंतवर्जितम् ॥ रसायनरसास्वादोयत्रनाथतृणायते ॥ ६ ॥ अद्याहंप्रकृतिस्थोस्मिस्वस्थोस्मिमुदितोस्मिच ॥ लोकारामोस्मिरामोस्मिनमोमह्यंनमोस्तुते ॥ ७ ॥ तेसंशयास्ताःकलनाःसर्वमस्तंगतंमम ॥ रात्रिवेतालसंसारःप्रभातइवभास्करे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! मैं देहरहित हूं, मेरी आशारूप मृगतृष्णा अब शांत होगई है, तथा रागद्वेषसे विनिर्मुक्त, तुषार तथा धूलिसे रहित शरत्कालके जंगलके समान मैं इससमय स्थितहूं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! इससमय मैं आत्माही अंतःकरणमें इस अंतवर्जित आनन्दपदको प्राप्तहुं, जहांपर अमृतका स्वादभी तृणके तुल्यहै ॥६॥ हे प्रभो ! इससमय मैं अपने पारमार्थिक चित्स्वभावमें स्थितहुं, प्रसन्नहुं, संपूर्ण लोक जिसमें पूर्णरीतिसे रमण करतेहैं वह राम (परब्रह्म) मैं हुं, उस ब्रह्मस्वरूप मुझे तथा उसके प्रदर्शक आपको नमस्कारहै ॥ ७ ॥ वे मेरे संशय तथा वे सब भ्रम इससमय आपकी कृपासे ऐसे नष्ट होगये जैसे प्रातःकालमें सूर्य्य उदय होनेपर रात्रिमें बालकोंकी भ्रांतिसे कल्पित वेतालोंका प्रचार ॥ ८ ॥

निर्मलेहृदिविस्तीर्णेसंपन्नेहिमशीतले ॥ मनोनिर्वृतिमायातंसरसीशरदीवमे ॥ ९ ॥ कलंकआत्मनःकस्मात्कथंचेत्यादिसंशयः ॥ नूनंनिर्मूलतांयातोमृगांकाग्रेयथातमः ॥ १० ॥ सर्वमात्मैवसर्वत्रसर्वदाभाविताकृतिः ॥ इदमन्यदिदंचान्यदित्यसत्कलनाकुतः ॥११॥ कोभवंप्रागहंतादृक्तृष्णानिगडयंत्रितः ॥ अंतरात्मानमेवेतिविहसामिविकासवान् ॥ १२ ॥

अर्थ—निर्मल, विशाल तथा हिमके समान शीतल हृदयके होनेसे मेरा मन ऐसे शांतिको प्राप्तहै जैसे शरद्ऋतुमें तडाग ॥ ९ ॥ चिद्रूप आत्मामें कलंक किस निमित्तसे आया, स्वप्रकाश आत्मामें कैसे वह रहताहै, असंग आत्माको कैसे आच्छादन करताहै, और कूटस्थ विकारशून्य आत्माको संसारका अनुभव कैसे होताहै इत्यादि सब मेरा संशय मूल अज्ञानके नष्ट होनेसे निर्मलताको ऐसे प्राप्त होगया जैसे चंद्रमाके संमुख अंधकार ॥ १० ॥ सर्वत्र सदा और सब कुछ आत्माही है ऐसा आत्माकार स्फुरित होरहाहै तब यह अन्य है इत्यादि असत्कलपना

कहांसे होसकती हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! इससमय ज्ञानयुक्त होके क्षुधा पिपासा आदिसे परे आत्माके बिना पूर्वकालमें तृष्णासे यंत्रित मैं कौन था इस बातको स्मरण करके मैं हसताहुं ॥ १२ ॥

आइदानींस्मृतंसम्यग्यथैषसकलोस्म्यसौ ॥ यस्त्वद्वागमृतापूरस्नातेनायमहंस्थितः ॥ १३ ॥ अहोनुविततांभूमिमधिरूढोस्मिपावनीम् ॥ इहस्थएवयत्रार्कोनपातालमिवस्थितः ॥ १४ ॥ महांसत्तामुपेताय भावाभावभवार्णवात् ॥ नमोनित्यंनमस्यायजयाम्यात्मात्मनात्मनि ॥ १५ ॥ अनुभववशतोहृदब्जकोशेस्फुटमलितांसमुपागतेननाथ ॥ तववरवचसेहवीतशोकांचिरमुदितांचदशामुपागतोस्मि ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे राघवविश्रांतिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—आपके बचनरूप अमृतप्रवाहमें स्नान कियाहुआ मैं जैसे परमार्थरूप स्थितहुं और जैसे यह सब संसार मैं हुं यह सब मैंने इससमय स्मरण किया ॥ १३ ॥ अहो ! इससमय मैं अतिविशाल उच्चतम तथा पवित्र भूमिमें प्राप्तहुं, जहां सूर्य्य पातालमेंभी नहीं भान होताहै अर्थात् उससे अधिक अधोभागमें भान होताहै ॥ १४ ॥ भावअभावरूप समुद्रसे पार उतरके उसके अधिष्ठानरूप सत्ताको प्राप्त तथा सबके नमस्कार करनेयोग्य मुझे नमस्कार है क्योंकि मैं आत्मामें सबसे उत्कृष्टहुं ॥ १५ ॥ हे नाथ ! हृदयरूप कमलके कोशमें भ्रमरके तुल्य स्थिरताको आपके श्रेष्ठबचनसे इस देशकालमें अपने अनुभवसे शोकरहित, सदा उदित और मोदयुक्त जीवन्मुक्तदशाको प्राप्तहुं. ॥१६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे राघवविश्रांतिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

देहात्माका विवेक देहमें आत्मबुद्धिसे दुःख और अज्ञानियोंकी स्त्रीके संगसे मोहकी वृद्धि इत्यादि विषय इस ६ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमेपरमंवचः ॥ यत्तेहंप्रीयमाणायवक्ष्यामिहितकाम्यया ॥ १ ॥ भेदमभ्युपगम्यापिशृणुबुद्धिविवृद्धये ॥ भवेदल्पप्रबुद्धानामपिनोदुःखितायथा ॥ २ ॥ यस्याज्ञानात्मनो ज्ञस्यदेहएवात्मभावना ॥ उदितेतिरुषैवाक्षरिपवोभिभवंतितम् ॥ ३ ॥ यस्यज्ञानात्मनोज्ञस्यसत्येवात्मनिसंस्थितिः ॥ संतुष्टैवाक्षसुहृदोनघ्नंतितमनिंदितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रामजी ! पुनः मेरे श्रेष्ठ बचनको तुम सुनो,जो कि सब जनके हितकी इच्छासे मेरे उपदेशके विषयभूत आत्मानन्दके प्रीतिके पात्र तुमारे लिये मैं कहताहुं ॥ १ ॥ जगत् ब्रह्मके भेदको मानकेभी बुद्धि (ज्ञान) की वृद्धिके अर्थ तुम सुनो जिससे कि मंदबुद्धियोंकोभी दुःख न होगा ॥ २ ॥ जिस अज्ञानीको देहमें आत्मभावना उदय होती है तथा इन्द्रिय वशमें नहीं है उसका पराजय इन्द्रियरूप शत्रु अतिक्रोधसे करतेहैं ॥ ३ ॥ और जिस उत्तम आचरणसहित ज्ञानीकी सत्य आत्मामें स्थिति है उसके इन्द्रियगण आत्माके दर्शनरूप उपकारके संतोषसे उसे नहीं मारते. अनुकूल आचरणसे ज्ञानकी वृद्धिद्वारा उसका पालन करतेहैं ॥ ४ ॥

पदार्थेस्फुरतोयस्यनस्तुतिर्निंदनाहते ॥ सदेहंदेहदुःखार्थमादत्तेकेनहेतुना ॥ ५ ॥ नात्माशरीरसंबंधीशरीरमपिनात्मनि ॥ मिथोविलक्षणावेतौप्रकाशतमसीयथा ॥ ६ ॥ सर्वैर्भावविकारैस्तुनित्योन्मुक्तस्त्वलेपकः ॥ नात्मास्तमेतिभगवान्नचोदेतिसदोदितः ॥ ७ ॥ जडस्याज्ञस्यतुच्छस्यकृतघ्नस्यविनाशिनः ॥ शरीरकोपलस्यास्ययद्भवत्यस्तुतत्तथा ॥ ८ ॥

अर्थ—पदार्थोंमें व्यवहार करतेहुयेभी जिस पुरुषको पदार्थोंमें दोषदर्शनसे निंदाके सिवाय उनकी स्तुति नहीं रुचती वह देहको आत्मरूपसे दुःखके लिये क्यों ग्रहण करेगा ॥ ५ ॥ आत्मा शरीरका संबंधी नहीं है और शरीरभी आत्मामें नहीं है ये दोनों चित् जडरूप होनेसे परस्पर ऐसे विलक्षण हैं जैसे प्रकाश और अंधकार ॥ ६ ॥ सब भावके विकारोंसे नित्यमुक्त और निर्लिप्त सदा उदयको प्राप्त भगवान् आत्मा न कभी अस्त हो और न कभी उदय हो ॥ ७ ॥ जड, अज्ञानी, कृतघ्न, विनाशी, तथा पाषाणके तुल्य इस शरीरको जो चाहै वह हो आत्मासे कुछ संबंध नहीं है ॥ ८ ॥

आदत्तेतत्कथंनित्यंचिन्मयत्वंसदोदितम् ॥ ययोरेकपरिज्ञानेजडतैवापरस्थिता ॥ ९ ॥ तयोःकीदृग्विधाभूतासमानसुखदुःखता ॥ यौसमौसमधर्माणौनकदाचनतौकथम् ॥ १० ॥ यावप्यसक्तावन्योन्यंमिथःसंनमितौकथम् ॥ कथंस्थूलोणुरूपःस्यादणुःस्थूलःकथंभवेत् ॥ ११ ॥ एकोदयेद्वितीयस्यनसत्तादिनरात्रयोः ॥ ज्ञानंनाज्ञानतामेतिच्छायानायातितापताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और सदा उदयको प्राप्त चिन्मयरूपका किसप्रकारका ग्रहण कियाजाय, क्योंकि चित् जड इनमेंसे एकके ज्ञानमेंभी शरीरकी जडताही शेष रहजाती है ॥ ९ ॥ जो कि अग्नि तथा लोहके पिंडके सदृश विवेक न करनेसे तथा परस्परके धर्मके व्यतिक्रमसे समानधर्मवाले भासतेहैं अर्थात् मनके सुखदुःखमें शरीरके सुखदुःख मनको सुखादि अज्ञानसे भान होताहै और ज्ञान विभक्त होनेसे कदाचित् जब वे समानधर्मवाले नहीं हैं तब उनकी समान सुखदुःखरूपता कैसी ? ॥ १० ॥ जो परस्पर भिन्न हैं वे परस्पर कैसे मिलसकतेहैं, क्योंकि स्थूल मेरुआदि परमाणु कैसे होसकताहै, परमाणुभी स्थूल कैसे होसकता है ॥ ११ ॥ दिन और रात्रिमेंसे एकके उदयमें दूसरेकी सत्ता नहीं रहसकती, ऐसेही ज्ञान अज्ञान नहीं होसकता है, और छाया आतपभावको नहीं प्राप्त होती ॥ १२ ॥

सद्ब्रह्मनासद्भवतिविचित्रास्वपिदृष्टिषु ॥ मनागपिनसंश्लेषःसर्वगस्यापिदेहिनः ॥ १३ ॥ देहेनदेहगस्यापिकमलस्येववारिणा ॥ मनागपिनसंश्लेषोब्रह्मणोदेहसत्तया ॥ १४ ॥ (जगत्यात्मनिकोकिंचिन्नासतोदेहकस्यच ॥ तदातत्रसुखैवैषसुखदुःखक्रमःकुतः ॥) तद्गतस्याप्यतद्वृत्तेरंबरस्येववायुतः ॥ जरामरणमापन्नसुखदुःखेभवाभवौ ॥ १५ ॥ मनागपिनसंतीहतस्मात्त्वंनिर्वृतोभव ॥ स्थितोदेहतयाप्युच्चैःपातोत्पातमयोभ्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—विचित्र दृष्टियोंमेंभी सद्ब्रह्म असद्देहादि नहीं होसकता, और सर्वव्यापी देहके अधिष्ठानभूत चिदात्मासे देहका किंचित्भी संबंध नहीं है ॥ १३ ॥ देहीका देहकेसाथ संबंध किसीप्रकारकाभी नहीं है जैसे कमलका स्वाधिष्ठान उदककेसाथ ऐसाही ब्रह्मका देह सत्ताकेसाथ किंचिन्मात्रभी संबंध नहींहै. ॥ १४ ॥ शरीरमें स्थितभी परन्तु शरीरसे विलक्षण स्वभाव आत्माको जरामरण, सुखदुःख, तथा उत्पत्ति नाशआदि वायुके कंप शोषआदि आकाशके समान ॥ १५ ॥ किंचित्भी नहीं है; इसलिये हे रामजी ! तुम स्वस्थ होओ, देहात्मदृष्टिसे स्थितभी पात, उत्पात्त, जन्म, मरण, आदि भ्रम ॥ १६ ॥

दृश्यतेकेवलंब्रह्मण्यप्सुवीचिचयोयथा ॥ आत्मसत्तोपजीवित्वादात्मानुभवतीहहि ॥ १७ ॥ देहयंत्रंपयःसत्तामात्रादूर्मिमिवस्थितम् ॥ आधारस्पंदनेनांगयथाक्षोभोनवाभवः ॥ १८ ॥ सूर्यादेःप्रतिबिंबस्यतथादेहेनदेहिनः ॥ सम्यग्दृष्टेयथाभूतेवस्तुन्येवाभिजायते ॥ १९ ॥ स्थितिर्देहमयोज्ञानविभ्रमोलयमेतिच ॥ देहदेहवतोर्ज्ञानाद्यथाभूतार्थयोःस्थितिः ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मात्मदृष्टिसे ब्रह्ममें ऐसे देखपडतेहैं जैसे जलमें तरंगोंका समूह. आत्माकी सत्ता सबका उपजीवक होनेसे आत्माही ॥ १७ ॥ देहरूपयन्त्रका ऐसे अनुभव करताहै जैसे अपनी सत्तासे स्थित जल तरंगको, और जैसे प्रतिबिम्बके आधारके स्पंद कंपादिके कारणसे ॥ १८ ॥ सूर्यादिबिंबको किंचित्भी जैसे क्षोभादि नहीं होते ऐसेही देहके क्षोभसे आत्माको कुछ क्षोभादि नहीं होते. सत्यआत्माका यथार्थ ज्ञान होनेसे आत्मवस्तुमें स्थिति होती है ॥१९॥ और देहमय अज्ञानके भ्रमका लय होताहै, और देह तथा देहके साक्षी आत्माका यथार्थ ज्ञान होनेसे ॥२०॥

सत्तासत्तात्मिकोदेतिदीपाद्दीपपदार्थयोः ॥ असम्यग्दर्शिनोदेहस्यावर्त्तपरिवर्त्तनैः ॥२१॥ अंतःशून्याःस्फुरंतीहतेमोहार्जुनपादपाः ॥ अपर्यालोचितात्मार्थाअपरामृष्टसंविदः ॥ २२ ॥ स्पंदंतेचेतितोन्मुक्तास्तृणवन्मूढबुद्धयः ॥ अनास्वादितचित्तत्वाज्जडाःसर्वेखवायुभिः ॥ २३ ॥ यत्रतत्रोदिताक्रांतारटंतिप्रस्फुरंतिच ॥ तृणकाष्ठादिकंसर्वमाहरंतित्यजंतिच ॥ २४ ॥

अर्थ—देहकी असत्ताकी और आत्माकी सत्ताकी स्थिति उदयको प्राप्त ऐसे होती है जैसे तम और प्रकाशके यथार्थज्ञानसे तमके असत्ताकी और प्रकाशके सत्ताकी. और असम्यग्दर्शी पुरुष देहके आवागमनरूप परिवर्तनोंसे ॥ २१ ॥ भीतरसे मोहरूप अर्जुनवृक्षके तुल्य, आत्मारूप पदार्थको न देखनेवाले, और ज्ञानके स्पर्शसे रहित स्फुरित होतेहैं ॥ २२ ॥ और मूढबुद्धिलोग चेतनतासे रहित तृणके समान चेष्टा करते हैं, तथा चेतनका आस्वादन लेनेसे सब जड नासिका कण्ठआदि छिद्रोंसे संचारी पवनोंके द्वारा जिस स्थानमें अभिघातसे आक्रांत होते हैं वहां स्फुरित होके काष्ठ तृणादिके तुल्य रटतेहैं, सब कुछ लातेहैं और त्यागतेभी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

सशब्दस्पर्शरूपाढ्यास्तरंगतरलांगकाः ॥ जडासंतःस्फुरद्रूपाभृशंस्फाररसासवाः ॥ २५ ॥ सविहारा गमापायामहौघाइवदुर्द्धियः ॥ सर्वेषामेवचैतेषांस्थितैवेषाचिदव्यया ॥ २६ ॥ किंत्वबोधवशादस्याःप रांकृपणतांगता ॥ श्वाससंततयोह्यज्ञाल्लोहकारदृतेर्यथा ॥ २७ ॥ स्पंदमात्रार्थमेवाशुदृश्यंतेनार्थकारिणः ॥ तर्जनंगर्जनंमूढाद्धनुर्दंडगुणादिव ॥ २८ ॥

अर्थ—और शब्दस्पर्शसहित रूपआदि विषयोंके लाभसे कृतार्थताको माननेवाले, तरंगके समान चंचल अंगयुक्त स्फुरितरूप, तथा विशाल विषयभोगके आग्रही तथा मद्यके तुल्य मादकताके हेतु जडप्राणी ॥ २५ ॥ नदीआदिके महाप्रवाहके सदृश चेतनरहितभी विहारके उत्पत्तिनाशादि चेष्टासहित दुर्बुद्धिसे ग्रस्तरहते हैं, और इन सबमें नाशरहित चेतनशक्ति है ॥ २६ ॥ तथा इस चेतनशक्तिके ज्ञानकेविना परमकृपणताको प्राप्त हैं, और इसप्रकारके मूर्खसे श्वासोंका संचार ऐसे होताहै जैसे लोहारके भातीसे ॥ २७ ॥ और इनके श्वासोंका संचार केवल जठराग्निकी चेष्टाके अर्थ देखपडताहै न कि उनसे ये मूर्ख परमार्थकारी होते हैं, और मूढसे गर्जनआदि ऐसे निकलतेहैं जैसे धनुष्की डोरीसे ॥ २८ ॥

श्रूयतेमरणायैवचिद्बोधपरिवर्जितम् ॥ फलभोगोपियोमूढात्तदरण्यतरोरिव ॥२९॥ तस्मिन्विश्रमणंयत्तच्छिलाफलहकेयथा ॥ तेनयत्संगमःसस्यात्स्थाणुनाभुविजंगले ॥ ३० ॥ तदर्थंयत्कृतंकिंचित्तद्व्योमकुटलैर्हतम् ॥ तस्मिन्यदधमेदत्तंतत्त्यक्तंकिंनकर्दमे ॥ ३१ ॥ तेनसार्द्धकथायत्तत्कौलेयाह्वानमंबरे ॥ अज्ञानमापदांनिष्ठाकाहिनापदजानतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चेतनके बोधसे वर्जित केवल मरणकेही अर्थ इनके गर्जनआदि शब्द सुन पडतेहैं, और मूढसे जो फलका भोग है वह जंगलके वृक्षके समान है ॥ २९ ॥ और उस मूढके अवलंबसे जो विश्राम है तप्तपाषाणकी शिलाके ऊपरके समान है, और मूढकेसाथ समागम ऐसे है जैसे जंगलकी भूमिपर छिन्न मूलवृक्षका ॥ ३० ॥ उस मूढका उपकार ऐसे हैं जैसे आकाशको दंडोंसे ताडन, और उस मूढ अधमको दान है वह क्या कीचडमें त्यागके सदृश नहीं है ॥ ३१ ॥ और उस मूढके साथ जो कथा है वह आकाशमें कुत्तेके आव्हान (बुलाने) के समानहै, अज्ञानही आपत्तियोंकी परम प्रतिष्ठा है क्योंकि आत्माको न जाननेवालेको कौन आपत्ति नहीं आसकती ॥ ३२ ॥

इयंसंसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः ॥ अज्ञस्योग्राणिदुःखानिसुखान्यपिदृढानिच ॥ ३३ ॥ पुनःपुनर्निवर्ततेयुगंप्रत्यचलाइव ॥ शरीरधनदारादावास्थांसमनुबध्नतः ॥ ३४ ॥ इदंदुर्दुःखमज्ञस्यनकदाचनशाम्यति ॥ अनात्मनिशठेदेहेआत्मभावमुपेयुषि ॥ ३५ ॥ असद्बोधमयीमायाकथंनामापिनश्यति ॥ दुर्भावस्वंचितधियोवस्तुन्यंधस्यदुर्मतेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसारकी पद्धति अज्ञानीहीके प्रमाद (भ्रम) से है, अज्ञानीको भयंकर दुःख तथा अध्रुव दुःखभी होते हैं ॥ ३३ ॥ तथा पुनः २ आतेजातेरहते हैं, और वे सुखदुःखसे ऐसे उल्लंघनीय है जैसे हल वा रथकेलिये पर्वत, और शरीर, धन, स्त्री आदिमें सत्य विश्वास बांधनेवाले ॥ ३४ ॥ अज्ञानीका दुःख कदाचित् शांत नहीं होताहै, और अनात्मा शठदेहमें आत्मभावको प्राप्त पुरुषमें ॥ ३५ ॥ असद्बोधमयी माया किसीप्रकार नष्ट नहीं होसकती, और दुष्टभावोंमें जिसकी बुद्धि व्याप्त है ऐसे तथा आत्माके दर्शन अंध दुर्बुद्धिके ॥ ३६ ॥

अवस्तुनिसनेत्रस्यलुठतश्वपदेपदे ॥ विषमुत्पद्यतेचंद्रादामोदःकुसुमादिव ॥ ३७ ॥ कंटकश्चैतिपयसोदूर्वांकुरइवस्थलात् ॥ देहशाल्मलिभोगिन्योमनोमातंगशृंखलाः ॥ ३८ ॥ अज्ञस्याशाःप्रसूयंतेसुकृष्टादिवशालयः ॥ नरकश्रीरिहाज्ञानंदुष्कृतव्यालवेष्टितम् ॥ ३९॥ परिपालयतिप्रीतामयूरीवारिदंयथा ॥ नेत्रलोलालिनीलोलास्फुरिताधरपल्लवा ॥ ४० ॥

अर्थ—और अवस्तु विषयआदिमें नेत्रसहित तथा पद २ में गिरनेवाले पुरुषको चन्द्रमासेभी विषय ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे पुष्पसे सुगन्ध ॥ ३७ ॥ और भूमिसे दूर्वाके अंकुरके समान जलसे उसके अर्थ कांटा उत्पन्न होताहै और देहरूप सेमरके वृक्षके कोटरमें नित्य निवास करनेवाली, तथा मनरूप मातंगकी शृंखलाके समान ॥३८॥ अज्ञपुरुषके हृदयमें आशारूप सर्पिणी ऐसे उत्पन्न होती है जैसे उत्तमतासे जुतेहुये खेतमें धान, और पापरूप सर्पसे वेष्टित अज्ञपुरुषकी नरककी ॥ ३९ ॥ ऐसे प्रतीक्षा (बाट देखती) करती है. जैसे मयूरी (मोरनी) मेघकी, और चंचल नेत्ररूप भ्रमरसंयुक्त चंचल अधरपल्लवसहित ॥ ४० ॥

मूर्खार्थमेवविकसत्यंगनाविषवल्लरी ॥ अज्ञस्यहृदिसद्भूमावेवपेलवपल्लवा ॥ ४१ ॥ विद्यतेपतगच्छायोरागविद्रुमदुर्द्रुमः ॥ तरुच्छदलसद्भूमःशस्त्रजालरदोल्मुकः ॥ ४२ ॥ ज्वलतिद्वेषदावाग्निर्हेम्मरौकायता

पदः ॥ अज्ञमात्सर्यमनसिपरापवदनच्छदा ॥ ४३ ॥ ईर्ष्याकर्मांलेनीचिंताषट्पदाविलसत्यलम् ॥ प्रतिजन्मप्रमृष्टोग्रदुःखकल्लोलविभ्रमम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा कोमलपल्लवयुक्त अंगनारूप विषकी लता मूर्खजनके हृदयरूप उत्तमभूमिमें मूर्खकेहीलिये विकसित होरही है ॥ ४१ ॥ पापादिरूप अनर्थकारी पक्षियोंकी छायाभूत स्फुरित ओष्ठरूप पल्लवोंपर श्वासरूप धूमसे शोभित और शस्त्रोंके समान कटकटायमान दंतरूप उल्मुकसहित ॥ ४२ ॥ और द्वेषरूप दावाग्नि सो शरीरको तापदायक रागरूप विद्रुम (मूंगे) का वृक्ष हृदयरूप मरुस्थलमें भस्म होरहा है. अज्ञानीके मात्सर्यरूप जलसे पूर्ण मनरूप मानससरोवरमें दूसरेकी निंदारूप पत्रको धारण कियेहुये ॥ ४३ ॥ चिन्तारूप भ्रमरयुक्त ईर्ष्यारूप कमलिनी पूर्णरीतिसे विकसित होरही है. और प्रतिजन्ममें उपायके द्वारा मार्जितहै, दुःखरूप कल्लोलके विभ्रममें शोभित ॥४४॥

जडमेवसमभ्येतिपुनर्मरणवाडवः ॥ जन्मबाल्यंव्रजत्येतद्यौवनंद्रुवताजराम् ॥ ४५ ॥ जरामरणमभ्येतिमूढस्यैवपुनःपुनः ॥ जगज्जीर्णारघट्टेस्मिन्नज्ञवासंसृतिरूपया ॥ ४६ ॥ मज्जनोन्मज्जनैरज्ञोयंत्रेकलशतांगतः ॥ यदेवगोष्पदापूरंज्ञधियःपेलवंजगत् ॥ ४७ ॥ तदेवापारपर्यंतमगाधममहात्मनः ॥ धियोदृशइवाज्ञस्यदीर्घजठरकोटरात् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अज्ञरूप समुद्रमेंही पुनः २ मरणरूप वडवानल आके प्राप्त होताहै, जन्म बाल्यअवस्थाको प्राप्त होता है, बाल्य युवाको, युवापन वृद्धअवस्थाको ॥ ४५ ॥ और वृद्धअवस्था मरणअवस्थाको मूढकेही अर्थ पुनः प्राप्त होती है. इस जगत्रूप जीर्ण अरघट्टमें संसृति (पुनः २ अवागमन) रूप रस्सीसे ॥ ४६ ॥ बंधाहुआ अज्ञजीव मज्जन तथा उन्मज्जन (डूबने निकलने) से कलशरूपताको प्राप्त है, और जो तुच्छ जगत् ज्ञानीकी बुद्धिमें गौके खुरके समान है ॥ ४७ ॥ वही जगत् अज्ञानीकी बुद्धिमें अपार है. अज्ञानीकी बुद्धि दृष्टिके उदरभरणमें आसक्तिरूप बंधनके कारणसे दीर्घ संसाररूप समुद्रके ॥ ४८ ॥

नप्रयांत्यपरंपारंविहंग्यःपंजरादिव ॥ भावमात्रपरावृत्तवासनाभारनाभयः ॥ ४९ ॥ स्पष्टीकर्तुंनशक्यंतेजन्मचक्रस्यनेमयः ॥ अज्ञेनेंद्रियगृध्रार्थंरागान्मृगयुणातनुः ॥ ५० ॥ संसारारण्यआस्तीर्णादूरादामिषपिंडवत् ॥ भूतशैलमयीदृष्टिर्मृन्मांसलवमात्रिका ॥ ५१ ॥ मोहात्संलक्ष्यतेचित्रपदार्थानंतरंजनः ॥ जयत्यनल्पसंकल्पकल्पनाकल्पपादपः ॥ ५२ ॥

अर्थ—दूसरे पारको ऐसे नहीं जाती जैसे पक्षिणी पिंजरेसे, क्योंकि बाह्यपदार्थमात्र संलग्न वासनाके भारसे आक्रांत हृदयरूप नाभिसहित ॥ ४९ ॥ पंकमें मग्न जन्मरूप रथके चक्रकी नेमिरूप इन्द्रियगणको निकालके शुद्ध करनेको समर्थ नहीं है. अज्ञानीरूप शिकारीने इन्द्रियरूप गृध्र (गीध) के लिये अपने देहोंकी परंपराको ॥ ५० ॥ संसाररूप वनमें दूरतक मांसके पिंडके समान फैलाया है, मनुष्य पशुआदि प्राणियोंसे पूर्ण, हिमालय, विंध्य, मलयआदि पर्वतोंसे पूर्णदृष्टि, यथार्थमें मांस तथा मृत्तिकामयी दृष्टि मोहसेही लक्षित होती है, क्योंकि चित्रविचित्र पद तथा अर्थोंसे अनन्त रंजनासहित महानसंकल्पकी कल्पनारूप कल्पवृक्ष अत्यन्त सत्पदार्थोंसे कामनाओंका पूरक होनेसे सबसे उत्तम है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अज्ञानात्प्रसृतायस्माज्जगत्पर्णपरंपराः ॥ यस्मिंस्तिष्ठंतिराजंतेविशंतिविलसंतिच ॥ ५३ ॥ विचित्ररचनोपेताभूरिभोगिविहंगमाः ॥ यत्रजन्मानिपूर्णानिकर्मजालंचकोरकम् ॥ ५४ ॥ फलानिपुण्यपापानिमंजर्योविभवश्रियः ॥ अज्ञानेंदूदयेनेतायोषिदोषधयःस्फुटम् ॥ ५५ ॥ संसारवनखंडेस्मिन्परांशोभामुपागताः ॥ जन्मजालकलापर्णस्तमःकालकृतोदयः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अज्ञानसे जगत्रूप पत्रोंकी श्रेणी फैली हैं जिसमें कि अनेकप्रकारके प्राणी स्थितहैं, प्रवेश करते हैं, और विलास करतेहैं, जिसमें चित्रविचित्र रचनाओंसे युक्त अनेक भोगीरूप पक्षी हैं, जन्मरूप जिसमें पत्ते हैं, और कर्मजालरूप जिसमें कली हैं ॥ ५४ ॥ पुण्यपापरूप जिसमें फल हैं, विभवकी शोभा जिसमें लता हैं, और अज्ञानरूप चन्द्रमाके उदयसे स्त्रीरूप ओषधियां प्रत्यक्षरूपसे ॥५५॥ इस पूर्वोक्त संसारवनके खण्डमें परमशोभाको प्राप्त हैं, और यह अज्ञानरूप चन्द्रमा जन्मके समूहरूप कलाओंसे पूर्ण, विवेकरूप सूर्यके अस्तकालमें उदय होताहै ॥ ५६ ॥

शून्योदितात्मादोषेशोजयत्यज्ञानचंद्रमाः ॥ अज्ञानेंदोःप्रसादेनवासनामृतशालिना ॥ ५७ ॥ तर्पिताशाचकोरेणचिंत्तरत्नरसैषिणा ॥ राजहंसविलासिन्यःप्रालेयशिशिरांगिकाः ॥ ५८ ॥ भ्रांतिकांताकुसुद्रत्योलोललोचनषट्पदाः ॥ धम्मिल्लतिमिरोल्लासालसत्पांडुपयोधराः ॥ ५९ ॥ रामारजन्योराजंतेत

न्मौर्ख्येणविजृंभितम् ॥ ६० ॥ आपातमात्रमधुरत्वमनर्थसत्त्वमाद्यंतवत्त्वमखिलस्थितिभंगुरत्वम् ॥ अज्ञानशाखिनइतिप्रसृतानिरामनानाकृतीनिविपुलानिफलानितानि ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे मोहमाहात्म्यं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—शून्य (प्रपंचरहित) ब्रह्म वा आकाशमें प्रकाशमान, दोषा (रात्रि) वा दोषोंका स्वामी यह अज्ञानरूप चंद्र विजयको प्राप्त है, वासनारूप अमृतसे शोभित, आशारूप चकोरोंको पोषण करनेवाले और चित्तरूपी सूर्य्यके रसका अभिलाषी अज्ञानरूप चंद्रमाके प्रसाद (चांद्रिका) से राजहंसोंके समान, विलास (मंदगमनआदि) हिमके समान शीतल शरीर ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ चंचल नेत्ररूप भ्रमरोंको धारण कियेहुये कुमुदके समान विकसित स्त्रियां प्रकाशित होरही हैं, अज्ञानरूप केशपाशोंसे शोभित शोभायमान कुचसे युक्त ॥ ५९ ॥ स्त्रीरूप रात्रि जे शोभितहैं यह मूर्खताका प्रताप है, यथार्थमें स्त्रियोंके शरीरमें जो शोभाकारसे परिणत है उसमें मांस अस्थिआदि धातुओंसे भिन्न कुछ नहीं हैं॥६०॥ हे रामजी ! जो विषयोंमें प्रसिद्ध विना विचारे सौंदर्य्य अंतमें अनर्थका हेतु, देशकाल. तथा वस्तुसे परिच्छिन्न, और सब दशाओंमें नश्वर है वह सब अज्ञानरूप वृक्षके नानाप्रकारके आकारधारी फल हैं जो बीजांकुरकी परंपरासे जगद्रूपसे परिणतहैं ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे मोहमाहात्म्यं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

काम अर्थादि पुरुषार्थोंसे अनर्थोंमें तारतम्यता (न्यूनाधिकता) को धारणकरनेवाली अज्ञानकी विभूति इस ७ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन की गई हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यन्मुक्तावलितारत्नभूषिताभांतियोषितः ॥ मदेंदावुदितेक्षुब्धकामक्षीरार्णवोर्मयः ॥ १ ॥ सौवर्णांभोजकोशस्थलोलालिपटलश्रियम् ॥ धारयंतिदृशःस्त्रीणांकपोलतलदोलिताः ॥ २ ॥ उद्यानवनखंडेषुभूमौकृतमदामधौ ॥ दृश्याःसुमनसोभांतिदासाइवमनोभुवः ॥ ३ ॥ क्रव्यादगृध्रगोमायुकौलेयकवलांगिकाः ॥ स्त्रियःसमुपमीयंतेचंद्रचंदनपंकजैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! मदरूप चंद्रके उदय होनेपर क्षुभित कामरूप क्षीरसमुद्रके तरंगके तुल्य मोतियोंसे वेष्टित, तथा रत्नोंसे भूषित जो स्त्रियां प्रकाश करती हैं वह अज्ञानकी विभूति है ॥ १ ॥ और कपोलतलमें चंचल स्त्रियोंकी दृष्टि जो सुवर्णके कमलके कोशमें स्थित भ्रमरोंके पटलकी शोभाको धारण करती हैं वह अज्ञानकी विभूति हैं ॥ २ ॥ उद्यान (वाटिका) में बनके खंडोंमें वृक्षोंमें तथा पृथिवीपर वसंतऋतुमें कामियोंको मद उत्पन्न करनेवाले, कामके दासतुल्य, और अति मनोहर पुष्प जो शोभित होतेहैं वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ ३ ॥ कच्चे मांसके भोजी व्याघ्र, गृध्र, शृगाल और कुत्ते आदिके कवलरूप अंगधारिणी स्त्रियां जो चंद्रमा, चन्दन और कमलआदिके साथ उपमा दी जाती हैं वहभी अज्ञानकाही विलास है ॥ ४ ॥

सौवर्णकलशांभोजकलिकामातुलुंगवत् ॥ दृश्यतेस्त्रीस्तनश्रेणीरक्तपूतिसुगंधिका ॥ ५ ॥ रसायनेंदुनिस्यंदमधुबिंबासवद्रवैः ॥ ओष्ठाभिधोमांसलवोलालाक्तउपमीयते ॥ ६ ॥ अल्पाल्पाष्ठीवदाकाराभुजा क्रूरास्थिशंकवः ॥ महाबाहुलताशब्दैर्वर्ण्यंतेकविभिःशुभैः ॥ ७ ॥ कदलीस्तंभसंभारसुंदरीभिस्तथा भृता ॥ कुचशोत्रोचितानंदतरेणालिर्विराजते ॥ ८ ॥

अर्थ—रक्त वा पिउवके सदृश गन्धयुक्त स्त्रियोंके स्तनकी श्रेणी (पंक्ति) जो सुवर्णके कलश, कमलकी कली, तथा इन्द्रारूनिके फलके समान जो देख पडती है वह अज्ञानकी विभूति है ॥ ५ ॥ लालसे आर्द्र (गीला) मांसका टुकडा ओष्ठनामक रसायन, अमृत, मधु, बिंब और मद्यके साथ जो उपमा दियाजाताहै वहभी अज्ञानकाही विलास है ॥ ६ ॥ एक २ को पृथक् करके देखनेसे अति अल्प पर्व (पोर) के समान आकारधारी भुजाशब्दवाच्य कठोर अस्थि हड्डीके तुल्य जो महाबाहु तथा लताआदि शुभशब्दोंसे कविलोग वर्णन करते हैं वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ ७ ॥ केलेके स्तंभही जिनके जंघेकी सामग्री हैं ऐसी सुन्दरी स्त्रियोंसे धारणकीहुई शोभा और द्रष्टा-

ओंके योग्य आनन्द जिससे होताहै ऐसी मन्मथके गृहके तोरणकी मालाके सदृश कांची (कर्धनी) जो विराजती है इत्यादि जो कथन है वहभी अज्ञानका विलास है ॥ ८ ॥

आपातमंदमधुरामध्येद्वंद्वानुबंधिनी ॥ शीघ्रावसानविरलालक्ष्मीरप्यभिवांछयते ॥ ९ ॥ समुपैतिमति दुःखंसुखंचशतशाखताम् ॥ दुःखशाखास्तुजायंतेनानाकर्मफलाःश्रियः ॥ १० ॥ बद्धजालघनाकाराः कारार्थमिवरज्जवः ॥ दच्छदःसदृशावाचःप्रतानगहनेस्थिताः ॥ ११ ॥ संततामोहमिहिकाकार्यासारविसारिणी ॥ यमुनाप्रावृषीवैतितिमिरश्यामलाचिरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—बिना विचारे मूर्खोंकेलिये मधुर व्ययके समय रागद्वेषसे सम्बन्ध करनेवाली, शीघ्रही नाशके योग्य, और अल्पजनोंमें दृश्य होनेसे विरल लक्ष्मी जो मनुष्योंसे अभिलषित है वहभी अज्ञानकाही प्रभाव है ॥९॥ जो बुद्धि दुःखको प्राप्त होती है, और सुख जो अनंतशाखापनको प्राप्त होताहै नानाप्रकारके कर्मफलसहित दुःखही जिनकी शाखा हैं ऐसी लक्ष्मी जो उत्पन्न होती हैं वहभी अज्ञानकाही विलास है ॥ १० ॥ काम्यकर्मोंके विस्ताररूप जंगलमें स्थित, लताके समान बद्ध नानाफलरूप कामजालोंसे घनाकार इसीसे देवआदि ऋणवाले कर्मोपासकोंके कारागृहमें रक्षणार्थ रज्जुके सदृश, तथा ओष्ठोंके तुल्य राग और चपलतामय कर्मकांडके वचनभी अविद्याकी विभूति हैं ॥११॥ प्रवृत्तिरूप कार्य्योंके आसारोंसे विस्तीर्ण मोहरूप मिहिका (कुहरा) आपही कृष्णवर्णभी वर्षाकी कीचसे अतिश्यामल स्वयं (शास्त्रके प्रमाणके बिना) ऐसे वहती है जैसे स्वतः कृष्णभी तथापि वर्षाकालके पंकसे अतिकृष्ण उसपरभी कृष्णपक्षकी रात्रिसे अतिकृष्णतम यमुना चिरकालतक वहती है ॥ १२ ॥

कटुकृतांतःकरणोनानासुखविशारदः ॥ वर्द्धतेहिगतस्नेहंजन्मप्रतिविषारसः ॥ १३ ॥ व्याधूतजर्जेर कीर्णजनतापर्णराजयः ॥ स्वकर्मपवनावांतिनानावकररेणवः ॥ १४ ॥ कालःकवलितानंतजगत्पक्वफलोप्ययम् ॥ घस्मराचारजठरःकल्पैरपिनतृप्यति ॥ १५ ॥ मोहमारुतमापीयत्वचाविषमचारिणः ॥ स्फुरंतीहाहयश्चित्राःशीतलाचलदीप्तयः ॥ १६ ॥

अर्थ—औरभी आरम्भमें नानाप्रकारके सुखमें प्रवीण, अन्तमें दुःखमय पर्य्यवसानदायक, तथा द्वेषमात्सर्य्य और चिन्ता आदिका जनक होनेसे स्नेहके अभावपूर्वक अन्तःकरणको कटु करनेवाला, जन्मरूप विषकी लताके समान पल्लवकी वृद्धिका दायक पुत्रपौत्रादि राग बढताही जाताहै वह अज्ञानकी विभूति है ॥ १३ ॥ और व्याधि आदिसे जर्जर पुत्रपौत्रआदि जनसमूहरूप पत्तोंकी राशियोंको गिरानेवाले, तथा नानाप्रकारकी आंधीसे उडाई हुई रेणुके समान विवेकरूप दृष्टिके अपहारक अपने दुष्कर्म्मरूप पवन जो वहतेहैं वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ १४ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डोंको पकेहुये फलके समान ग्रास करनेवाला, तथा अतिक्षुधासे आतुर आचारयुक्त उदरको धारण करनेवाला यह काल जो अनेक कल्पोंसेभी नहीं तृप्त होता यहभी अज्ञानकाही विलासहै ॥ १५ ॥ मोहरूप पवनको पान करके (अन्तःकरणमें पूर्ण करके) स्थित और पुनः वियुक्त होतेहुये नानाप्रकारकी देहरूप त्वचासे उपलक्षित, कुटिलगति; त्रिविधतापशून्य अचल ब्रह्मकी दीप्तिके सदृश प्रकाश करतेहुये चित्रविचित्र सर्पके समान जो जीव स्फुरित होरहे हैं वहभी अज्ञानका विलास है ॥ १६ ॥

चिंतापिशाचोपहताविवेकेंदूदयंविना ॥ तमसेवनिरालोकायातियौवनयामिनी ॥ १७ ॥ जिह्वाजर्जरतामेतिप्राकृतानुनयज्वरैः ॥ पद्मकोटरकोणस्थमपिसूत्रंहिमैरिव ॥ १८ ॥ दुःखशोकमहाष्ठीलःकष्टकंटकसंकटः ॥ सहस्रशाखतांयातिदारिद्र्यदृढशाल्मलिः ॥ १९ ॥ अंतःशून्योन्नतिध्वस्तचित्तचैत्यकृतालयः॥ मायाबहुलयामिन्यांलोभोलूकोविवल्गति ॥ २० ॥

अर्थ—चिन्तारूप पिशाचसे उपहत, विवेकरूप चन्द्रोदयके बिना अन्धकार (पक्षमें अज्ञानान्धकार) से प्रकाशरहित उन जीवोंकी यौवनरूप रात्रि जो चलीजाती है वहभी अविद्याहीका प्रताप है ॥ १७ ॥ पामर स्त्रीपुत्रादिके कोप दूर करनेरूप सन्तापोंसे जो उनकी जिव्हा ऐसे जर्जरताको प्राप्त होती है जैसे कमलके कोणमें स्थित सूत्र हिमसे यहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ १८ ॥ दुःख और शोकरूप ग्रन्थियुक्त, कष्टरूप कीडोंसे पूर्ण, दारिद्र्यरूप शाल्मलि वृक्ष जो अनन्तशाखताको प्राप्त होताहै वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ १९ ॥ और जो सत्यवस्तुके अवलम्बनके अभावसे अंतःकरणसे शून्य, अपनी उन्नतिके भारसे ध्वस्त, तथा चित्तरूप वृक्षपर निवासी लोभरूप उलूक मायारूप कृष्णपक्षकी रात्रिमें गर्जताहै वहभी अज्ञानका विलास है ॥ २० ॥

पूर्वंगृहीत्वाकर्णाभ्यांस्फुरंतीपरिनिश्चयम् ॥ जराजर्जरमार्जारीयौवनाखुंनिकृंतति ॥ २१ ॥ निःसाराक्मशःकांतधराधरसमुन्नतिः ॥ डिंडीरपिंडिकेवेयंस्थिरायातिपुष्टताम् ॥ २२ ॥ आभासपुष्पधवलाजग

त्पल्लवशालिनी ॥ सत्तालताविकसिताधर्मार्थफलधारिणी ॥ २३ ॥ सुराचलमहास्थूणंचंद्रसूर्यगवाक्ष कम् ॥ गगनाच्छादनंचारुध्रियतेत्रिजगद्गृहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—आरम्भसमयमें कर्णोंके निकट कपोलदेशमें ग्रहण करके, निश्चयसे स्फुरणशील वृद्धावस्थारूप जर्जर मार्जारी जो यौवन मूषकका छेदन करती है वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ २१ ॥ सारतारहित, क्रमसे पर्वतके समान उन्नतिशील, और फेनकी पिंडीके समान यह सृष्टि पुनः सृष्टिताको प्राप्त होती है ॥ २२ ॥ चिदाभासरूप पुष्पोंसे श्वेत, जगत्रूप पल्लवोंसे शोभित, और धर्म अर्थरूप फलको धारण करनेवाली व्यवहारिक सत्तारूप लता जो विकसित होरही है वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ २३ ॥ देवाचल (सुमेरू) रूप खंभायुक्त, चन्द्र सूर्य्यरूप झरोखेदार, और आकाशरूप छदसहित यह त्रिलोकीरूप गृह जो धारण कियागयाहै वहभी अविद्याकी विभूति है ॥२४॥

संसारसरसिस्फारेचरंतिप्राणषट्पदाः ॥ शरीरपुष्करेष्वंतश्चिद्रूपरसपायिनः ॥ २५ ॥ नभोमार्गमहानीलकुट्टिमैकांतशालिनी ॥ भुवनोदररम्यांतःस्फुरत्यादित्यदीपिका ॥ २६ ॥ आशातंतुनिबद्धांगीजागतीजीर्णपक्षिणी ॥ स्ववासनाशलाकांतर्निबद्धेंद्रियपंजरे ॥ २७ ॥ अनारतपतज्जालभूतपर्णपरंपरा ॥ स्पंदतेमरुतामृष्टासंसृतिव्रततिश्चिरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इस संसाररूप विशालतडागमें, शरीररूप कमलोंमें चिद्रूप रसको पान करनेवाले प्राणरूप भ्रमर जो चलरहेहैं वहभी अविद्याका विलास है ॥ २५ ॥ आकाशके मार्गमें नीलमणिसे रचित, महान् अकृत्रिम भूमिके भागमें अत्यन्त शोभायमान, और ब्रह्माण्डके उदरमें अतिरमणीय सूर्यरूप दीपिका जो स्फुरित होरही है यहभी अज्ञानका विलास है ॥ २६ ॥ आशाके तंतुओं (सूतों) से जिसके अंग बंधे हैं ऐसी जगत्के अन्तर्गत जीर्ण जीवोंकी राशिरूप पक्षिणी जो अपनी वासनारूप शलाकाओंसे रचित इन्द्रिय तथा देहरूप पिंजरेमें बद्ध है वहभी अविद्याका प्रभाव है ॥ २७ ॥ निरंतर प्राणरूप पत्तोंकी पंक्ति जिसके जालमें गिररही है और प्राणवायुसे कंपित संसृति (संसार) रूप लता चिरकालसे जो चेष्टा करतीहै यहभी अविद्याका विलास है ॥ २८ ॥

सृष्टेःकतिपयंकालंप्रहृष्टाःकुलशालिनः ॥ अधःकृतोग्रनरकपंकाःशंकोज्झिताःक्षणम् ॥ २९ ॥ भुक्तेंदुखंडकणिकानीलनीरदशैवले ॥ स्वर्गमार्गसरस्यंतःस्फुरंतिसुरसारसाः ॥ ३० ॥ नानाफलालिमलिनावासनाजालमालिता ॥ स्पंदमोदमयीस्फीताक्रियाविकसिताब्जिनी ॥ ३१ ॥ वराकीसृष्टिशफरीस्फुरंतीभवपल्वले ॥ कृतांतवृद्धगृध्रेणशठेनविनिगीर्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—पातालमें भयंकर नरकके पंक किये हुयेभी हमलोग उत्तमकुलसे शोभितहैं, इसप्रकार नरककी शंकासे रहित प्राणी देव मनुष्यआदि सृष्टिके कुछकालतक क्षणभरके लिये जो प्रसन्न होते हैं वहभी अज्ञानका विलास है॥२९ नीलमेघरूप जिसमें शैवाल हैं ऐसे स्वर्गरूप मेघके मार्गभूत आकाशमें चन्द्रबिंबके अमृतखण्डको भोगनेवाले देवरूप सारस जो स्फुरित होरहे हैं वहभी अज्ञानका विलास है ॥ ३० ॥ नानाप्रकारके काम्यफलरूप भ्रमरोंसे मलिन, वासनारूप जालसे वेष्टित, तथा गतिरूप सौगन्धमयी क्रियारूप कमलिनी जो विकसित होरही है वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ ३१ ॥ संसाररूप अल्प जलाशय दीन सृष्टिरूप सहरी (क्षुद्रमत्सी) जो स्फुरित होती है उसकोभी कालरूप शठ गीध जो निगल जाताहै वहभी अविद्याकाही विलास है ॥ ३२ ॥

तरंगफेनमालेवसैवान्येवचभंगुरा ॥ श्वःश्वोपरेंदुलेखेवसमुदेतिविचित्रता ॥ ३३ ॥ भूरिभूतशरावाणिक्षणभंगानिकुर्वता ॥ इदंकालकुलालेनचक्रंसंपरिवर्त्यते ॥ ३४ ॥ असंख्यातानिकल्पानिसंजातान्यचलेपदे ॥ जगज्जंगलजालानिदग्धानियुगवह्निना ॥ ३५ ॥ भावाभावैरपर्यंतैःसुखदुःखदशाशतैः ॥ वैपरीत्यंप्रयात्येवमजस्रंजागतीस्थितिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—तरंगके फेनकी मालाके समान वही तथापि अन्यके तुल्य और क्षणमें प्रतिदिन चन्द्रमाकी लेखाके सदृश यह सृष्टि जो उदय होतीहै वहभी अज्ञानका विलास है ॥ ३३ ॥ अनन्त प्राणीरूप सरावों (सकोरों) को क्षणभंगुर करतेहुये इस जगत्चक्रको कालरूप कुलाल जो बनाया करताहै वहभी अविद्याहीका प्रभाव है ॥ ३४ ॥ जगत्रूप जंगलके जाल जिनमें हैं ऐसे अनन्त ब्रह्मांड उत्पन्न करके युगके अन्तमें अग्निने भस्म करदिया ॥ ३५ ॥ अपार उत्पत्ति तथा नाशों और सैकडों सुखदुःखकी दशाओंसे यह जगत्की स्थिति निरंतर परिणामको प्राप्त होती रहती है ॥ ३६ ॥

क्षुब्धैर्युगपरावर्तैर्वासनाशृंखलांभिता ॥ महाशनिनिपातैश्चनभग्नाबुद्धधीरता ॥ ३७ ॥ शतशोविद्रुतारिभैर्दनुपुत्रैरभिष्टुताम् ॥ भवभग्नतयामेंद्रींतनुंवहतिवासना ॥ ३८ ॥ विशत्यविरतंभूतसर्गपांसुपरंप

रा ॥ नित्यंनियतिवात्येयंकालव्यालगलांतरम् ॥ ३९ ॥ पदार्थांभसिसर्वाणिफलफेनानिसर्वतः ॥ पतं त्यविरतापातमभाववडवामुखे ॥ ४० ॥

अर्थ—वासनारूप शृंखला (जंजीर) से बद्ध मूर्खोंकी मूर्खतारूप धीरता, क्षुभित युगोंके आवागमनोंसे तथा बडे २ वज्रोंके प्रहारोंसेभी कि भग्न न हुई ॥ ३७ ॥ अपने पराक्रमोंसे सैकडों भगेहुये शत्रुओंकोभी युद्धके अभिलाषसे धारण करनेवाले दनुके पुत्र दानवोंसे स्तुत, और मन्वन्तरके पश्चात् भग्नवेग इन्द्रकी शरीरको जो वासना मन्वन्तरतक धारण करती है वहभी अविद्याका विलास है ॥३८॥ प्राणियोंकी सृष्टिरूप धूलिकी श्रेणीसे शोभित नियतिरूप आंधी कालरूप महाव्यालके मुखमें निरन्तर प्रवेश करती है वहभी अविद्याहीका विलास है ॥३९॥ नाशरूप वडवानलके मुखमें फलरूप फेनसहित सम्पूर्ण पदार्थरूप जल निरन्तर पातपूर्वक जो गिरते हैं वहभी अविद्याका विलास है.

स्फुरंत्याकस्मिकोद्भूताविचिद्रव्यशक्तयः ॥ स्वभावमात्रसंपन्नाःस्पंदश्रियइवांभसः ॥ ४१ ॥ भूतभौ क्तिकसंपूर्णान्बृहतःसुबहूनपि ॥ जगत्कलभकानत्तिकृतांतोद्रिक्तकेसरी ॥ ४२ ॥ कुलशैलफलामेघप क्षपुंजाःफलामृजः ॥ जायंतेचम्रियंतेचध्रियंतेचजगत्खगाः ॥ ४३ ॥ चिद्भित्तौस्पंदशुभ्रायांरंगैःपंचभि रिंद्रियैः ॥ उन्मीलयतिसंसारचित्राणिविधिचित्रकृत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्तासे अपने स्वरूपको पानेवाली और आकस्मिक वासनाकी विचित्रतासे कम्पित चित्रविचित्र द्रव्यकी शक्तियां जो स्फुरित होरही हैं वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ ४१ ॥ भूत और भौतिक पदार्थोंसे पूर्ण, महान् तथा अनन्त जगत्रूप गजेन्द्रोंको कालरूप प्रचंड सिंह नित्य जो भोजन करताहै यहभी अविद्याका प्रताप है ॥ ४२ ॥ महेंद्र मलय आदि कुलाचल देव मनुष्यादिकी भोग्यभूमि होनेसे फलयुक्त तथा मेघरूप पक्ष पुंजसहित, और फलको खोजनेवाले उत्तरायण दक्षिणायण मार्गसे गमनशील जीव पक्षी जो उत्पन्न होते हैं, मरते हैं, और मरणपर्य्यन्त जीवनद्वारा जो धारण कियेजाते हैं वहभी अविद्याका विलास है ॥ ४३ ॥ चिद्रूप निर्मलभित्तिमें पंचज्ञानेन्द्रियरूप रंजकद्रव्योंसे विधाता(द्रष्टा)रूप चित्रकार विचित्र अनेक जगत्रूप चित्रोंको खींचा करताहै. ॥४४

अजस्रगत्वरींसर्वपरिवर्त्तविधायिनीम् ॥ निमेषशतभागांगीमसदृःसाधितांकुराम् ॥ ४५ ॥ सूक्ष्मांकाल स्यकलनांस्वसमुत्थानकारिणीम् ॥ ध्यानेनैवान्ववेक्ष्यैताःस्थिताःस्थावरजातयः ॥ ४६ ॥ रागद्वेषसमु त्थेनभावाभावमयेनच ॥ जरामरणरोगेणजीर्णाजंगमजातयः ॥ ४७ ॥ सुदुष्कृतोत्तमध्यानचारिण्योध रणीतले ॥ नियत्यानियतंकालंपीड्यंतेकीटपंक्तयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—निरन्तर गमनशील, सब पदार्थोंको परिवर्तन करने (बदलने) वाली, निमेषके शतांशभागरूप अंगधारिणी और अपना जगदाकारसे परिवर्तन करनेवाली सूक्ष्मकालकी कलाको आंतरिक ध्यानसे देखके ये स्थावरजाति स्थितहैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रागद्वेषसे उत्पन्न भाव तथा अभावमय जरावस्था तथा मरणरूप रोगसे जंगमजाति जीर्ण होरही हैं ॥ ४७ ॥ अतिपापरूप उत्तम ध्यान अर्थात् पापोंके फलभोगरूप ध्यानके करनेवाली कीडोंकी पंक्ति इस पृथिवीपर नियतकालपर्य्यन्त पीडित होती है ॥ ४८ ॥

क्षणेनादृश्यएवेदंनिगिरत्यखिलंसुखी ॥ सुदुर्लक्ष्यबिलःकालव्यालोविपुलभोगवान् ॥ ४९ ॥ कालेनकिं चिदालक्ष्यस्वशरीराकुलीकृताः ॥ शीतवातातपप्रौढाःप्रोल्लसत्पुष्पदीप्तयः ॥ ५० ॥ फलप्रदाश्चरंतीह शीलिनःश्वभ्रविग्रहाः ॥ पयःपटलविश्रांतत्रैलोक्यांभोजकोटरे ॥ ५१ ॥ करोतिघुंघुमंभूरिभूतभ्रमरपे टिका ॥ ब्रह्मांडभैक्ष्यभांडेयंकालीभगवतीक्रिया ॥ ५२ ॥

अर्थ—अदृश्य तथा अतिदुर्लक्ष्य बिलका निवासी और महान् भोगवाला यह कालरूप सर्प क्षणमेंही सब स्थावरजंगमका कवल करजाताहै ॥ ४९ ॥ गर्तमें प्रविष्ट मूलभागमें बद्ध स्थावर अपना तथा अन्यके अदृष्टको निमित्त करके मनुष्य पशुपक्षीआदिसे अपने शरीरमें पीडित, वसंतआदिसे शोभायमान, पुष्पोंकी दीप्तिसहित, और फलदायक, इसीसे शीतवात आतपसे प्रौढ तपस्वीके समान शीलयुक्त इस संसारमें आचरण करतेहुये स्थितहैं, और जलके पटलपर विश्रांत त्रैलोक्यरूप कमलके उदरमें ॥ ५० ॥ ५१ ॥ अनंत प्राणीरूप भ्रमरोंकी पेटिका गुंजाध्वनि करतीहै, ब्रह्मांडरूप भिक्षापात्रवाली कालकी स्त्री कालीभगवती क्रिया ॥ ५२ ॥

स्वयंदत्त्वैवदत्त्वैवभूतभिक्षांजिघृक्षति ॥ तिमिरालीककबरीइंद्वर्कचपलेक्षणा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोपेंद्रमहेंद्रा दिधरागिरिवरादिका ॥ ब्रह्मतत्त्वैकपिटिकालंबमानपयोधरा ॥५४॥ चिच्छक्तिमात्रकास्थूलातरलाघन चापला ॥ तारकाजालदशनासंध्यारुणतराधरा ॥ ५५ ॥ समस्तपद्मिनीहस्ताशतक्रतुपुरानना ॥ सप्ता ब्धिमुक्तालतिकानीलांबरपरीवृता ॥ ५६ ॥

अर्थ—चारप्रकारकी पिंडजआदि प्राणियोंकी जातिरूप भिक्षा ग्रहण करके अपने पति कालको पुनः २ देकर अन्यप्राणियोंकी भिक्षाको ग्रहण करना चाहती है, और अंधकाररूप मिथ्या केशपाशको धारण कियेहुये चंद्रसूर्य नेत्रवाली ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र आदिसे चेतनस्वभाव, पृथिवी पर्वतआदिसे बाह्य स्थूलदेहरूपसे जडस्वभावयुक्त, ब्रह्मतत्वरूप स्फोटकके तुल्य गोप्यवस्तुयुक्त, सुमेरु, हिमालयरूप लंबमान कुलधारिणी ॥ ५४ ॥ चेतनशक्तिरूप पोषण करनेवाली मातासंयुक्त, इसीसे स्थूल, चंचल मेघोंसे चपल, तारागणरूप दांतोंकी पंक्तिसे शोभित, और सन्ध्यारूप अणुतर ओष्ठोंसे भूषित ॥ ५५ ॥ समस्त कमलिनीरूप हस्तधारिणी, इन्द्रकी पुरीरूप मुखसहित, सातो समुद्ररूप मुक्ताकी लतारूप कांचीसे शोभित, नील आकाशरूप वस्त्रसे वेष्टित ॥ ५६ ॥

जंबूद्वीपमहानाभिर्वनश्रीरोमराजिका ॥ भूत्वाभूत्वाविनश्यंतीत्रिलोकीवृद्धकामिनी ॥ ५७ ॥ असकृज्जायंतेनष्टाभूरिविभ्रमकारिणी ॥ मग्नमन्यैरथोन्मग्नंभीमेकालमहार्णवे ॥ ५८ ॥ प्रतिकल्पक्षणंक्षीणैर्ब्रह्मांडस्फुटबुद्बुदैः ॥ कालेऽगाधरसस्यंदेस्थित्वास्थित्वापुनःपुनः ॥ ५९ ॥ कल्पमात्रनिमेषेणोड्डीनाःकारणसारसाः ॥ उत्पत्त्योत्पत्त्यनाशिन्यःसंततप्ताःसृष्टिविद्युतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जंबूद्वीप महानाभिसे शोभित, और वनकी शोभारूप रोमकी पंक्तियोंसे शोभित त्रिलोकीरूप वृद्धकामिनी (स्त्री) होहोकर नष्ट होती हुई ॥ ५७ ॥ अनेकबार उत्पन्न होती है और नष्ट होकर महान्‌भ्रमको यह त्रिलोकीरूप कामिनी जो करती है यहभी अज्ञानकी विभूति है, और इस भयंकर कालरूप महासमुद्रमें जो अनेक मग्न हुये (डूबे) और अनेक निकले वहभी अविद्याकी विभूति है ॥ ५८ ॥ और अनेककल्परूप क्षणमें क्षीणरूप ब्रह्मांडरूपी स्पष्ट बुद्‌बुद अनन्त भ्रम तथा सहस्रों तृष्णारूप जलके प्रस्रवणमय अथाह कालरूप तडागमें स्थित होहोकर जो क्षीण होते हैं यहभी अविद्याका विलास है ॥ ५९ ॥ और कल्पमात्र निमेषमेंही ब्रह्मारूप सारसपक्षी जो उडजातेहैं यहभी अविद्याका प्रभावहै; और उत्पन्न हो २ कर नाशवती ये सृष्टिरूप विद्युत् ॥ ६० ॥

कालमेघेस्फुरंत्येताश्चित्प्रकाशवनोद्यमाः ॥ प्रपतद्भूतविहगाःपतंत्यविरतभ्रमाः ॥ ६१ ॥ कालतालात्किलोत्तालाद्ब्रह्मांडफलपालयः ॥ उन्मेषकृतवैरिंचसृष्टयोदेवनायकाः ॥ ६२ ॥ निमेषकृतसंहाराःसंतिकेचनकुत्रचित् ॥ निमेषोन्मेषसंक्षीणकल्पजालाःसहस्रशः ॥ ६३ ॥ रुद्राःकेचनविद्यंतेतस्मिश्चित्परमेपुनः ॥ तेपियस्यनिमेषेणभवंतिनभवंतिच ॥ ६४ ॥

अर्थ—कालरूप मेघमें जो चेतनके प्रकाशसे प्रकाशयुक्त होके स्फुरित होतीहैं यहभी अविद्याका विलासहै, पूर्णरीतिसे प्राणीरूप पक्षी जिनसे गिररहे हैं ऐसी ब्रह्मांडरूप फलोंकी पंक्ति तालवृक्षसेभी अति ऊंचे कालरूप वृक्षसे निरंतर भ्रमयुक्त होके गिरती हैं, वहभी अविद्याका विलास है, और ब्रह्माकी सृष्टिको उन्नति देनेहारे देवनायक अर्थात् विष्णु रुद्र सदाशिवआदि जो हैं वहभी अज्ञानकी विभूति है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ कोई तो इनमेंसे कहीं एक निमेषमें सृष्टिके संहार करताहै और कितनोंने निमेषमात्रमें सहस्रों कल्पसमूहोंको नष्ट करदियाहै वहभी अज्ञानकी विभूतिहै ॥ ६३ ॥ उसपरभी चिद्रूप कारणमें पुनः कितने रुद्र हैं वेही एक निमेषमें होतेहैं और नष्ट होजाते हैं॥६४॥

तादृशोप्यस्तिदेवेशोह्यनंतेयंक्रियास्थितिः ॥ अनंतसंकल्पमयेशून्येचब्रह्मणःपदे ॥ ६५ ॥ नसंभवंतिकानामशक्तयश्चित्रपूरकाः ॥ एवमक्षीणसंकल्पलब्धार्थभरभासुरा ॥ जागतीकल्पनायेयंतदज्ञानविजृंभितम् ॥ ६६ ॥ याःसंपदोयद्दुतसंततमापदश्चयद्बाल्ययौवनजरामरणोपतापाः ॥ यन्मज्जनंचसुखदुःखपरंपराभिरज्ञानतीव्रतिमिरस्यविभूतयस्ताः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते त्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—ऐसाभी देवताका स्वामा है क्योंकि यह रुद्रपर्य्यंत क्रियाकी स्थिति अनंत मायामयी है, अनंत संकल्पमय तथा प्रपंचशून्य ब्रह्मपदमें ॥ ६५ ॥ अनेक आश्चर्योंको पूर्ण करनेवाली मायामयी शक्ति नहीं होसकती ? हे रामजी ! इसप्रकार अमोघसंकल्पोंसे प्राप्त पदार्थ समूहोंसे प्रकाशशील यह जो जगत्‌की कल्पना है वह सब अज्ञानकी विभूतिहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जितनी संपत्तिहै, और निरंतर आपत्ति हैं, तथा बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था, मरण और रोग तथा सुखदुःखोंकी पंक्तिमें जो डूबनाहै यह सब अज्ञानरूप तीव्र अंधकारकी विभूतिहै ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

पूर्वसर्गमें कारण अविद्याका वर्णन किया गयाहै जिसकी विभूति यह जगत्है, और इस ८ के सर्गमें संसाररूप जंगलमें कार्य्य अविद्या लतारूपसे वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ संसारवनखंडेस्मिश्चित्पर्वततटेस्थिता ॥ कीदृशीसृष्ट्यविद्याख्यालताविकसिताकदा ॥ १ ॥ बृहत्पर्वतपर्वाढ्याब्रह्मांडत्वक्समावृता ॥ देहयष्टिरियंयस्याश्त्रिलोकीलोककाशिनी ॥ २ ॥ सुखंदुःखंभवोभावोज्ञानमज्ञानमेवच ॥ अत्रैतान्युरुवृत्तानिमूलानिचफलानिच ॥ ३ ॥ सुखादविद्योदेत्युच्चैस्तदेवांतेप्रयच्छति ॥ दुःखादविद्योदेत्युच्चैस्तदेवैषाफलत्यलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इस संसाररूप बनके खंडमें चित्तरूप पर्वतके तटपर स्थित सृष्टि (कार्य्य) रूप अविद्यानाम लता कैसी और किससमय विचित्रतासे विकसित है सो मैं आपसे वर्णन करताहुं आप सुनिये ॥ १ ॥ यह महान् पर्वतरूप पर्व अर्थात् काण्डकी संधियोंसे पूर्ण, ब्रह्मांडरूप त्वक्से आवृत (घिरीहुई) और त्रिलोकी जनोंसे पत्र अंकुरआदिसे विकासयुक्त है ॥ २ ॥ हे रामजी ! सुख, दुःख, जन्म, नाश, ज्ञान, तथा अज्ञान, मूल और फल ये सब इस सृष्टिरूप लतामें प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ सम्पत्तिके भोगरूप सुखसे भविष्यत्में मुझे और सम्पत्ति हो, यह रागरूप महा अविद्या उदित होती है, और वह अविद्या यज्ञदानादि धर्मद्वारा सुख देती है, और दारिद्र्यादि दुःखसे धनादिकी तृष्णारूप अविद्या उदित होती है, और यह अविद्या पापकी वासनासे दुष्प्रतिग्रह, चौर्य्य तथा हिंसादि अधर्ममें प्रवृत्तिसे दुःखरूपही फल देती है ॥ ४ ॥

भावादविद्योदेत्येषातमेवफलतिस्फुटम् ॥ भावात्सत्तामवाप्नोतितमेवफलतिक्षणम् ॥ ५ ॥ अज्ञानादृद्धिमायातितदेवस्यात्फलंस्फुटम् ॥ ज्ञानेनायातिसंवित्तिस्तामेवांतेप्रयच्छति ॥ ६ ॥ नानाविधोल्लासवतीवासनामोदशालिनी ॥ घनप्रवालतरलातनुरस्याविजृंभते ॥ ७ ॥ दिवसव्यूहकुसुमायामिनीलोलषट्पदा ॥ अजस्रंस्पंदमानैषाप्रपतद्भूतपल्लवा ॥ ८ ॥

अर्थ—जन्मसे अविद्या उत्पन्न होती है और वह जन्मरूप फल देती है, और स्थितिसे सत्ता प्राप्त होती है, और वह उसी स्थितिरूप फलको देती है ॥ ५ ॥ अज्ञानसे यह सृष्टिरूप अविद्यालता बढती है और यही अज्ञान उसका प्रत्यक्ष फलहै, और प्रत्यक् चेतनके विचारसे उत्तरोत्तर भूमिकाओंपर आरूढतारूप ज्ञानकी वृद्धि प्राप्त होती है और अन्तमें उसी ज्ञानकी वृद्धिको देती है ॥ ६ ॥ और नानाप्रकारके उल्लाससे युक्त, तथा वासनारूप सौगन्ध्यसे शोभित, तथा घनीभूत नानाप्रकारके नूतनपल्लवोंसे चंचल इस सृष्टिरूप लताका शरीर शोभित होरहा है ॥ ७ ॥ दिनके समूहरूप पुष्पयुक्त, रात्रिरूप चंचल भ्रमरसहित, निरन्तर गतिशील, और रागादिसे पतनशील प्राणीरूप पल्लवोंसे भूषित यह सृष्टिरूप लताहै ॥ ८ ॥

आगत्यागत्यपततिविवेककरिणींक्वचित् ॥ विधूयतेधूतरजाःप्रसक्तिपुनरेतिच ॥ ९ ॥ जायमानप्रवालाढ्यासंजातांकुरदंतुरा ॥ सर्वर्तुकुसुमोपेतासमग्ररसलालिनी ॥ १० ॥ जन्मपर्वाहिनीरंध्राविनाशच्छिद्रचंचुरा ॥ भोगाभोगरसापूर्णाविचारैकघुणक्षता ॥ ११ ॥ विकसंत्यःप्रतिदिनंचंद्रार्कावलयोभितः ॥ व्योम्निवातविलोलानिपुष्पाण्यस्याःकिलग्रहाः ॥ १२ ॥

अर्थ—और कर्मरूप वायुसे पुनः २ भ्रमण कर २ के किसी विवेकवान् अधिकारीरूप हस्तिनीपर गिरती है, और कदाचित् यह हस्तिनी अपने विचाररूपी शूंडके अग्रभागसे उस सृष्टिरूप लताको आलंबभूत विषयरूप वृक्षके विच्छेदसे कंपाती है और वासनारूप धूलिके निरस्त होनेपरभी उसके सुंडसे गिरीहुई पुनः विषयरूप वृक्षको यह लपटा जाती है ॥ ९ ॥ उत्पन्न होतेहुये मित्र पशुआदि पल्लवोंसे पूर्ण, उत्पन्न पुत्रपौत्रआदि अंकुरोंसे आनन्दसे किंचित् हास्य (मुसकिरान) युक्त मुखवाली, सब ऋतुके पुष्पोंसे संयुक्त और सम्पूर्ण रसोंसे शोभित ॥ १० ॥ हे रामजी ! जन्मरूप पर्वोंसे ग्रन्थियुक्त दुःखआदिरूप सर्वोंसे पूर्ण, मरणरूप शाखासम्बन्धी छिद्रोंमें हठसे विदीर्ण होनेसे व्याकुल तथा केवल विचाररूप घुणसेयुक्त यह सृष्टिरूप लता नष्ट होती है ॥ ११ ॥ और चन्द्रसूर्य्यसहित ज्योतिश्चक्रोंकी पंक्ति इस लताके चारोंओरसे विकसित होरही हैं और आकाशमें गतिशील सूर्य्यआदि ग्रह इसके वायुसे कम्पित पुष्प हैं ॥ १२ ॥

अस्याःप्रस्फुरिताकाराःकोरकत्वमुपागताः ॥ पूरिताकाशकोशायास्तारकारघुनंदन॥१३॥चंद्रार्कदहनालोकायस्यास्तत्कौसुमंरजः ॥ अनेनेयंहिगौरांगीस्त्रिविचेतांसिकर्षति ॥ १४ ॥ मनोमातंगविधुतासंक

ल्पकलकोकिला ॥ इंद्रियव्यालसंबाधात्तृष्णात्वगुपरंजिता ॥ १५ ॥ नीलाकाशतमालांगसंश्रयेणोन्नतिं गता ॥ रोदसीजानुसुस्तंभाभुवनोद्यानभूषिता ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आकाशमंडलको पूर्ण करनेवाली इस सृष्टिरूप लताके प्रस्फुरित आकारसंयुक्त तारागण कलिका (कली) हैं ॥ १३ ॥ और चन्द्र सूर्य तथा अग्निके प्रकाश इसके पुष्पोंके प्रसिद्ध पराग (धूलि) हैं और इसीसे यह गौरांगी स्त्रीके समान चित्तको आकर्षण करती है ॥ १४ ॥ मनरूप मातंगसे कंपित, संकल्परूप मधुर-कण्ठ कोकिलयुक्त, इन्द्रियरूप सर्पोंसे पूर्ण और तृष्णारूप चर्मसे आच्छादित ॥ १५ ॥ नील आकाशरूप तमालवृक्षके अंगका आश्रय (अवलम्बन) करनेसे विस्तारको प्राप्त, आकाश और पृथिवीरूप संकुचित जंघाकार मूलस्तम्भसहित और चतुर्दशभुवनरूप वाटिकासे शोभित ॥ १६ ॥

अधोब्रह्मांडखंडेषुत्वालवालेनजालिता ॥ विधृताशेषजलधिजलक्षीरादिसेचना ॥ १७ ॥ त्रयीविलोल भ्रमरारमणीपुष्पपुंजिका ॥ चित्स्पंदवातचलिताक्रियाविमलपुत्तिका ॥ १८ ॥ कुकर्माजगरव्याप्तस्वर्ग श्रीपुष्पमंडपा ॥ जीवजीवननीरंध्रानानामोदमदप्रदा ॥ १९ ॥ नानोपशमवैचित्र्यनानाकुसुमभासिनी॥ नानाफलावलीव्याप्तानानावर्षविकासिनी ॥ २० ॥

अर्थ—सातसमुद्ररूप शोभायमान आलवाल (थाले) से आवृत, क्षीरसमुद्रसे सिंचित, और नीचेके ब्रह्मांडखंडोंमें मूलके विस्तारोंसे बद्धजाल ॥ १७ ॥ काम्यकर्मकांडरूप वेदत्रयीसे चंचल, रागीजनरूप भ्रमरसंयुक्त, और रागीजनोंसे उपभोग्य स्त्रीरूप पुष्पके गुच्छोंसे शोभित, चित्के स्पन्दरूप वायुसे कंपित, और स्वाभाविक क्रियामें प्रवृत्त जनरूप सूक्ष्म कीटसंयुक्त ॥ १८ ॥ शास्त्रोंसे निषिद्धकर्मरूप अजगरोंसे व्याप्त, स्वर्गकी श्रीरूप पुष्पमंडपसे शोभित, जीवोंकी जीवनोंपायोंसे पूर्ण, और नानाप्रकारके सुगन्धरूप मदको देनेहारी ॥ १९ ॥ और विवेकियोंके लिये नानाप्रकारके उपशम (शांति) से विचित्रपुष्पोंसे प्रकाशमान, नानाप्रकारकी फलोंकी पंक्तियोंसे व्याप्त और नानाप्रकारके पुष्पोंके रज और मकरन्द (पुष्परस) से विकसित ॥ २० ॥

नानालवालवलयानानाविहगधारिणी ॥ नानापरागपरुषानानाभूधरजालिका ॥ २१ ॥ नानाकलाकुड्म लिनीनानावनगणोत्थिता ॥ नानागिरितटारूढानानादलनिरंतरा ॥ २२ ॥ जाताचजायमानाचम्रियमा णातथामृता ॥ अर्द्धच्छिन्नातथाछिन्नानित्यमच्छेदिनीतथा ॥ २३ ॥ अतीतावर्तमानाचसत्येवासत्यव त्सदा ॥ नित्यमत्यंततरुणीनित्यंशोषमुपेयुषी ॥ २४ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके समुद्ररूप आलवालों (थालों) से वेष्टित, नानाप्रकारके पक्षियोंको धारण करनेहारी, नानाप्रकारके पुष्पोंसे परुष, नानाप्रकारके पर्वतरूपजालसंयुक्त ॥ २१ ॥ नानाप्रकारके वनके समूहोंसे उत्पन्न, नानाप्रकारकी कलारूप कलीसंयुक्त, नानाप्रकारके पर्वतके तटोंपर आरूढ, नानाप्रकारके कमलके दलोंसे व्याप्त ॥ २२ ॥ यहां सृष्टिरूप लता अनेकबार उत्पन्न, तथा अनेकबार उत्पन्न होतीहुई, तथा मृत्युसे ग्रस्त, तथा मृतकोंसे अर्द्धछिन्न, कहीं सर्वथा छिन्न, और प्रवाहरूपसे नाशरहित यह सृष्टिरूप लताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! यह सृष्टिरूप लता अनेक होगई, होती हैं और सदा होंगी, और असत्य होनेपरभी सत्यके समान भासमान, नित्यही नूतनपल्लवसे तरुणी, और नित्यही शोषको प्राप्त है ॥ २४ ॥

महाविषलतैषाहिसंसारविषमूर्छनाम् ॥ ददातिरभसाश्लिष्टापरामृष्टाविनश्यति ॥ २५ ॥ स्फीतेंतर्गलि तातस्यअन्तंतःसंस्थितान्विता ॥ इतोजलमितःशैलाइतोनागाःसुराइतः ॥ २६ ॥ इतःपृथ्वीत्वमायाता तथेतोव्युतयास्थिता ॥ इतश्चंद्रार्कतांप्राप्तातथेतस्तारकाकृतिः ॥ २७ ॥ इतस्तमइतस्तेजइतःखमितउ र्वरा ॥ इतःशास्त्रमितोवेदाइतोद्वयविवर्जिता ॥ २८ ॥

अर्थ—और यह महाविषकी लता बिना विचारे आलिंगन करनेसे संसार विषकी मूर्च्छा देती है और विचारसे नष्ट होजाती है ॥ २५ ॥ और विचार करनेवालेके स्वच्छा तथा आत्माके अनुभवसे पूर्ण अन्तःकरणमें तो यह सृष्टिरूप लता गलित होजाती है तथा अज्ञानीके अन्तःकरणमें तो चारोंओरसे आके स्थित रहती है, कहीं तो इस सृष्टिरूप लताके समीप जलहै, कहीं पर्वतहैं, कहीं नाग हैं, कहीं देवताहैं ॥२६॥ कहीं यह पृथिवीरूपताको प्राप्त है, कहीं अन्तरिक्षरूपसे स्थितहै, इधर कहीं सूर्यचन्द्ररूपताको प्राप्त है, कहीं तारागणका रूप धारण किये हैं ॥ २७ ॥ कहीं अन्धकार, कहीं तेज, कहीं आकाश, कहीं उपजाऊ पृथिवी, कहीं शास्त्र, कहीं वेद, तथा कहीं प्रलय सुषुप्ति दोनोंसे वर्जितहै ॥ २८ ॥

क्वचित्खगतयोड्डीनाक्वचिद्देवतयोत्थिता ॥ क्वचित्स्थाणुतयारूढाक्वचित्पवनतांगता ॥ २९ ॥ क्वचिन्नरकसंलीनाक्वचित्स्वर्गविलासिनी ॥ क्वचित्सुरपदंप्राप्ताक्वचित्कमितयास्थिता ॥३०॥ क्वचिद्विष्णुःक्वचिद्ब्रह्माक्वचिद्रुद्रःक्वचिद्रविः ॥ क्वचिदग्निःक्वचिद्वायुःक्वचिच्चंद्रःक्वचिद्यमः ॥ ३१ ॥ यत्किंचनांगभुवनेषु महामहिम्नाव्याप्तंजरत्तृणलवत्वमुपागतंवा ॥ दृश्यंस्फुरन्ननुहराय्यपितामविद्यांविद्धिक्षयायतददतीतत यात्मलाभः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे अविद्यालताविलासोपदेशो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—कहीं पक्षी होके उडगई है, कहीं देवतारूपसे स्थितहै, कहीं स्थाणु (ठूंठ) रूप खडी है, और कहीं पवनरूपताको प्राप्त है ॥ २९ ॥ कहीं नरकरूपसे पातालके गर्तमें छिपी है, कहीं स्वर्गकी निवासिनी है, कहीं देवपदको प्राप्त है, और कहीं वृश्चिक आदि कृमि (कीडे) रूपसे स्थितहै ॥ ३० ॥ और कहीं विष्णु, कहीं ब्रह्मा, कहीं रुद्र; कहीं सूर्य, कहीं अग्नि, कहीं वायु, कहीं चन्द्रमा, और कहीं यमरूपसे स्थितहै ॥ ३१ ॥ हे प्रिय रामजी ! महामहिमासे व्याप्त महारुद्रसे लेके और संहार्य (संहारके योग्य) व्याकृत, तथा अल्पप्रभावसे जर्जर तृणरूपताको प्राप्त जो कुछ यह जगत् स्फुरित होरहाहै उस सबको तुम तत्त्वबोधसे बाधके लिये अविद्या जानो, और उसके बाधसेही आत्मलाभरूप मोक्ष होताहै ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अविद्याविलासोपदेशो नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें तीनो गुणोंका विभाग, महादेवआदिकी शुद्धरूपता, विद्याअविद्याका स्वरूप, तथा उसकी अतीता वर्णन कीगई है ॥

श्रीरामउवाच ॥ आकारजातमुदितंशुद्धंहरिहराद्यपि ॥ अविद्यैवेत्यहंश्रुत्वाब्रह्मन्भ्रममिवागतः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संवेद्येनापरामृष्टंशांतंसर्वात्मकंचयत् ॥ तत्सच्चिदाभासमयमस्तीहकलनोज्झितम् ॥ २ ॥ समुदेतिस्वतस्तस्मात्कलाकलनरूपिणी ॥ जलादावर्तलेखेवस्फुरज्जलतयोदिता ॥ ३ ॥ सूक्ष्मामध्यातथास्थूलाचेतिसाकल्प्यतेत्रिधा ॥ पश्चान्मनस्तयातेनज्ञातैववपुषापुनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! आकारमात्रसे आविर्भूत शुद्धरूप महादेव आदिभी अविद्याहैं इसको सुनके मैं मिथ्याभ्रमको प्राप्तहुं उसको आप दूरकरें ॥ १॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जगदाकारसे रहित, शांत और सबके संस्कारसे पूर्ण माया शबलित होनेसे सर्व जगत्रूप कल्पनासे वर्जित, प्रसिद्ध सच्चिदाभासमय जो परमात्मा है वही इस जगत्से प्रथमहै अन्य कुछ नहीं ॥ २ ॥ उस परमात्मासे सब जगत्के संस्कारके उद्बोधरूपकला अर्थात् चिदाभासकी स्फूर्ति सृष्टिके आदिकालमें स्वयं अपनी सत्तामें स्थित रहतेही किंचित् पृथक्के तुल्य गुणगुणीभेदसे व्यवहारकी योग्यतासे ऐसे आविर्भूत होतीहै जैसे जलसे जलमय आवर्तकी लेखा ॥ ३ ॥ वह कला सूर्य्यसे भिन्नतेज, प्रौढ आतप, मन्द आतप (छाया) आदिभेदोंसे तीनप्रकारकी है ऐसेही सूक्ष्मा, मध्या, और स्थूला तीनप्रकारकी कल्पितहै, और सूक्ष्मकल्पनाके पश्चात् उस कल्पचितासे मन वा हिरण्यगर्भरूपसे मध्या ज्ञात अनंतर शरीरसे स्थूल विराट् आकारसे ज्ञात ॥ ४ ॥

तिष्ठत्येतास्ववस्थासुभेदतःकल्प्यतेत्रिधा ॥ सत्वंरजस्तमइतिएवैवप्रकृतिःस्मृता ॥ ५ ॥ अविद्यांप्रकृतिंविद्धिगुणत्रितयधर्मिणीम् ॥ एषैवसंसृतिर्जंतोरस्याःपारंपरंपदम् ॥ ६ ॥ अत्रतेयेत्रयःप्रोक्तागुणास्तेपित्रिधास्मृताः ॥ सत्वंरजस्तमइतिप्रत्येकंभिद्यतेगुणः ॥ ७ ॥ नवधैवंविभक्तेयमविद्यागुणभेदतः ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यमनयैवतदाश्रितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वैसेही स्थितहै और यह अव्याकृत उपाधि प्रकृतिही सत्व रज तम इन भेदोंसे तीनप्रकारकी है इसीसे सूक्ष्मआदि अवस्थाओंमेंभी तीनभेद कल्पितहै ॥ ५ ॥ तीन प्रकारके गुणरूप धर्मवाली इस अविद्याको प्रकृति जानो यही जीवोंके लिये संसृति (संसार) है इसकेपार परमपदहै ॥ ६॥ इस प्रकृतिरूप अविद्यामें जो गुणहैं वेभी तीनप्रकारके हैं, सत्व, रज, तम, इसप्रकार गुण प्रत्येक भिन्नहै ॥ ७ ॥ इसप्रकार गुणोंके भेदसे नौप्रकारकी

अविद्याहै, अर्थात् सत्व, रज, तम इन भेदोंसे सूक्ष्मा तीनप्रकारकी है, ऐसेही मध्या स्थूलाकोभी जानो, जो कुछ दृश्य जगत्है वह सब इसी अविद्यासे व्याप्तहै ॥ ८ ॥

ऋषयोमुनयःसिद्धानागाविद्याधराःसुराः ॥ इतिभागमविद्यायाःसात्विकंविद्धिराघव ॥ ९ ॥ सात्विकस्यास्यभागस्यनागविद्याधरास्तमः ॥ रजस्तुमुनयःसिद्धाःसत्वंदेवाहरादयः ॥ १० ॥ सत्वजातौदेवयोनावविद्याप्राकृतैर्गुणैः ॥ निर्मलंपदमायाताःसत्वंहरिहरादयः ॥ ११ ॥ सात्विकःप्राकृतोभागोरामतज्ज्ञोहियोभवेत् ॥ नसमुत्पद्यतेभूयस्तेनासौमुक्तउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ऋषि, मुनि, सिद्ध, नाग, विद्याधर, देवता इन सबको अविद्याका सात्विक भाग जानो ॥९॥ इस सात्विकभागमेंभी नाग तथा विद्याधर तमोगुणके अंशसे हैं, मुनिसिद्ध रजोगुणके अंशसे हैं और हरआदि देव सत्व अंशसे हैं ॥ १० ॥ सत्वजातिमें देवयोनियोंमें यह अविद्या प्रकृतिसंबंधी गुणोंसे आवरणशून्य निर्मल आत्मपदको प्राप्त हुईहै इसीसे महादेवआदि शुद्ध सत्वहैं ॥११॥ हे रामजी ! प्रकृतिके सात्विकभागको जाननेवाले अर्थात् महादेवआदिके उपासक जो होते हैं वे पुनः इस संसारमें नहीं उत्पन्न होते इसलिये वह मुक्त कहाते हैं ॥१२॥

तेनरुद्रादयोह्येतेसत्वभागामहामते ॥ तिष्ठंतिमुक्ताःपुरुषायावद्देहंजगत्स्थितौ ॥ १३ ॥ यावद्देहंमहात्मानोजीवन्मुक्तव्यवस्थिताः ॥ विदेहमुक्तादेहांतेस्थास्यंतिपरमेश्वरे ॥ १४ ॥ भागएषत्वविद्यायाएवंविद्यात्वमागतः ॥ बीजंफलत्वमायातिफलमायातिबीजताम् ॥ १५ ॥ उदेत्यविद्याविद्यायाःसलिलादिवबुद्बुदः ॥विद्यायांलीयतेविद्यापयसीवहिबुद्बुदः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसकारण हे महामते ! रुद्रआदि सात्विकभागके पुरुष अपने देहतक जगत्की स्थितिमें मुक्त होके रहते हैं ॥ १३ ॥ क्योंकि जीवन्मुक्त महात्मालोग वर्तमान देहकी स्थितिपर्य्यन्त इस लोकमें स्थित रहते हैं और शरीरके अन्तमें विदेहमुक्त होके शुद्ध ब्रह्मस्वभावमें स्थित होंगे ॥ १४ ॥ इसप्रकार यह अविद्याका भाग विद्यादशाको प्राप्त हुआ क्योंकि बीजकारण अविद्याका कार्य्य अविद्यारूप फलदशाको प्राप्त होताहै और कार्य्य अविद्याफलकी प्रलयमें बीजकारण (अविद्या) रूपताको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ अविद्यासे विद्या ऐसे उत्पन्न होती है जैसे जलसे बुद्बुद, और विद्यामें अविद्या लीन इसप्रकार होती है जैसे जलमें बुद्बुद ॥ १६ ॥

पयस्तरंगयोर्द्वित्वभावनादेवभिन्नता ॥ विद्याविद्यादृशोर्भेदभावनादेवभिन्नता ॥ १७ ॥ पयस्तरंगयोरैक्यंयथैवपरमार्थतः ॥ नाविद्यात्वंनविद्यात्वमिहकिंचनविद्यते ॥ १८ ॥ विद्याविद्यादृशौत्यक्त्वायदस्तीहतदस्तिहि ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदवशादेतद्द्वयूहह ॥ १९ ॥ विद्याविद्यादृशौनस्तःशेषेबद्धपदोभव॥ नाविद्यास्तिनविद्यास्तिकृतंकल्पनयानया ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे द्वित्वकी भावनासे जल और तरंगकी भिन्नता है ऐसेही भेदकी भावनासे विद्या और अविद्याकी दृष्टिमें भिन्नताहै ॥ १७ ॥ जैसे यथार्थमें जल और तरंगमें भेद नहीं है ऐसेही विद्या और अविद्यामेंभी कुछ भेद नहीं हैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! विद्या अविद्या दृष्टिको त्यागकर जो कुछ है वह है क्योंकि बाधसे अविद्याके असत् होनेसे अविद्यानिरूपित बाधकता नहीं होसकती, इसप्रकार अविद्याके अभावसे विद्याभी कुछ नहीं है ॥१९ ॥ विद्या और अविद्याकी दृष्टि कुछ नहीं है इसलिये शेष चिन्मात्रमें तुम स्थिर होओ, क्योंकि न अविद्या है और न विद्या है इन दोनोकी कल्पना व्यर्थ है ॥ २० ॥

किंचिदस्तिनकिंचिद्यच्चित्संविदितितत्स्थितम् ॥ तदेवाविदिताभासंसदविद्येत्युदाहृतम् ॥ २१ ॥ विदितंसत्तदेवेदमविद्याक्षयसंज्ञितम् ॥ विद्याभावादविद्याख्यामिथ्यैवोदेतिकल्पना ॥ २२ ॥ मिथःस्वांतेतयोरंतश्छायातपनयोरिव ॥ अविद्यायांविलीनायांक्षीणेद्वेएवकल्पने ॥ २३ ॥ एतेराघवलीयेतेअवाप्यंपरिशिष्यते ॥ अविद्यासंक्षयात्क्षीणोविद्यापक्षोपिराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—अधिष्ठानमात्रसे जो किंचित्रूपसे है और आत्मासे भिन्न जहां कुछ नहीं है इसलिये न किंचित्रूपसे वह संवित् शेषरूपसे स्थित है और उसीका प्रकाशरूप अज्ञात होनेसे अविद्या कहीगई है ॥ २१ ॥ और विदित होनेसे अविद्याका क्षय वही सत्रूप शेष रहताहै. हे रामजी ! और विद्याके अभावसे अविद्यानामक कल्पना मिथ्याही उदित होती है ॥ २२ ॥ छाया तथा आतपके तुल्य मनमे परस्पर विरुद्धस्वभाव विद्या अविद्याके मध्यमें चित्स्वरूपके भीतर अविद्याके लीन होनेपर विद्या और अविद्या दोनों कल्पना क्षीण होचुकी ॥ २३ ॥ हे रामजी ! ये दोनों क्षय होजाती है तब प्राप्य पूर्णानन्दस्वरूप शेष रहताहै क्योंकि अविद्याके क्षीण होनेपर विद्यापक्षभी क्षीण होही चुका ॥ २४ ॥

यच्छिष्टंतन्नकिंचिद्वाकिंचिद्वापीदमाततम् ॥ तत्रैवंदृश्यतेसर्वंनकिंचनचदृश्यते ॥ २५ ॥ वटश्ववटधा नायामिवपुष्पफलादिमान् ॥ सर्वशक्तिर्हिकिंचित्त्वंसर्वशक्तिसमुद्गकम् ॥ २६ ॥ नभसोप्यधिकंशून्यंन चशून्यंचिदात्मकम् ॥ सूर्यकांतेयथावह्निर्यथाक्षीरेघृतंतथा ॥ २७ ॥ तत्रेदंसंस्थितंसर्वंदेशकालक्रमो दये ॥ यथास्फुलिंगाअनलाद्यथाभासोदिवाकरात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो शेषहै वह सबके बाधरूप होनेसे न किंचित् (कुछ नहीं) रूपसे है, अथवा परमार्थ सत्‌रूप होनेसे किंचित्‌रूपसे है, उसीसे यह सब व्याप्त है, उसीमें सबकुछ देखपडताहै, और कुछ नहीं देखपडता अर्थात् उसका दर्शन सब बाधका दर्शन है ॥ २५ ॥ जैसे फलपुष्पादिमय वटका वृक्ष वटके बीजमें है ऐसेही सर्वशक्तिसहित चेतनत्वही है क्योंकि चित् सर्वशक्तियोंकी पेटारी है ॥ २६ ॥ आकाशसेभी अधिक शून्य तथा चित्‌रूपसे सर्वत्र व्याप्त होनेसे शून्य नहीं है और जैसें सूर्य्यकान्तमणिमें अग्नि है तथा दुग्धमें घृत है ॥ २७ ॥ ऐसे देशकालका क्रम जिससे उदय होताहै उसी परमात्मामें सबकुछ स्थितहै, और जैसे अग्निसे स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं और सूर्य्यसे प्रकाश॥२८॥

तस्मात्तथेमानिर्यांतिस्फुरंत्याःसंविदश्चितः ॥ यथांभोधिस्तरंगाणांयथामलमणिस्त्विषाम् ॥ २९ ॥ को शोनित्यमनंतानांतथातत्संविदांत्विषाम् ॥ सबाह्याभ्यंतरेसर्ववस्तुन्यस्त्येववस्तुसत् ॥ ३० ॥ सर्वदैवा विनाशात्मकुंभानागगनंयथा ॥ यथामणेरयःस्पंदेअयस्कांतस्यकर्तृता ॥ ३१ ॥ अकर्तुरेवहितथाकर्तृता तस्यकथ्यते ॥ मणिसन्निधिमात्रेणयथायःस्पंदतेजडम् ॥ तत्सत्तयातथैवायंदेहश्चेतत्यचिद्वपुः॥३२॥ तत्रस्थितंजगदिदंजगदेकबीजे चिन्नान्निसंविदितकल्पितकल्पनेन ॥ लोलोर्मिजालमिववारिणिचित्ररू पंखादप्यरूपवतियत्रनकिंचिदस्ति ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विद्यानिराकरणं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसे उसीसे स्थित दोनोंसे ब्रह्मसंवित्‌सेही ये प्रसिद्ध जीवसंवित् प्रकट होती है क्योंकि जैसे समुद्र तरंगोंका और सूर्य्य दीप्तियांका ॥ २९ ॥ कोशहै ऐसे भ्रमस्थानीय अनन्त जीवसंवित्‌का ब्रह्म नित्यकोश है और ब्रह्म आभ्यन्तर सब वस्तुमें वही है क्योंकि अवस्तुकी सत्ता सद्‌वस्तुकी सत्ताके आधीन है ॥ ३० ॥ और वह सद्‌वस्तु ब्रह्म जो सबके बाहरभीतर है वह घटोंके आभ्यन्तर आकाशके तुल्य अविनाशस्वरूप है, और चुंबकमणिके समीप लोहेकी गतिमें जैसे चुंबककी कर्तृता समीपमें स्थितिमात्रसे है ॥ ३१ ॥ ऐसेही स्थितिमात्रसे कर्ता न होनेसेभी उसकी कर्तृता कहीजाती है, और चुंबकमणिकी सत्तामात्रसे जैसे जड लोह खिस सकताहै इसीप्रकार आत्माकी सत्तामात्रसे अचेतन शरीर चेतताहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! जगत्‌के मुख्य बीजभूत उस अज्ञात चिद्‌ब्रह्ममें, पूर्व २ संविदित जगत्‌की कल्पितवासनासे जनित उत्तर २ की कल्पनासे यह जगत ऐसे स्थितहै जैसे समुद्रमें चित्ररूप तरंगसमूह और ज्ञात होनेपर आकाशसेभी निर्मल मूर्तअमूर्तस्वरूपशून्य उस ब्रह्ममें कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे विद्यानिराकरणं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अविद्यासे बंधका भ्रम, स्थावरोंमें मनकी स्थिति, और बुद्धिपूर्वक विचारसे बंधसे मुक्ति होती है यह विषय १० के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मान्नकिंचिदेवेदंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ नकिंचिद्भूततांप्राप्तंयत्किंचिदितिविद्धि ॥ १ ॥ यत्रकाचिन्नकलनाभावाभावमयात्मिका ॥ तदिदंशमजीवादिसर्वव्यर्थकिमीहसे ॥ २ ॥ संबंधोयमसावंतर्हृदियोव्यपदिश्यते ॥ नतंलभामहेसर्परज्जुसर्पभ्रमादिव ॥ ३ ॥ अपरिज्ञातआत्मैवभ्र मतांसमुपागतः ॥ ज्ञातआत्मत्वमायातिसीमांतःसर्वसंविदाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह सब स्थावरजंगमरूप दृश्य अज्ञात ब्रह्मरूप होनेसे कुछ नहीं है, और कुछभी भूतरूपताको नहीं प्राप्त हुआ यह तुम जानो ॥ १ ॥ हे रामजी ! जहां भाव अभावमयी कोईभी कल्पना नहीं है किन्तु ब्रह्महीहै तब इस जीवआदि सबको तुम क्यों चाहते हो ॥ २ ॥ अपने देह तथा बाह्य स्त्रीपुत्र धनादिमें

यह मैं और मेरा यह सम्बन्ध जो कहाजाताहै उससे बंधको रज्जुके सर्पके तुल्य नहीं पाता ॥ ३ ॥ हे रामजी ! अज्ञात ब्रह्महो जगत्की भ्रांतिको प्राप्त है और ज्ञात होनेसे यही सब जीवादिसंवित्के सीमाका अन्तहै ॥ ४ ॥

अविद्येत्युच्यतेलोकेचिच्चेत्यमलमाश्रिता ॥ चेत्यातीतात्मतामेतिसर्वोपाधिविवर्जिता ॥ ५ ॥ चित्तमात्रंहिपुरुषस्तस्मिन्नष्टेचनश्यति ॥ स्थितेतिष्ठतिचात्मायंघटेसतिघटांबरम् ॥ ६ ॥ गच्छन्पश्यतिगच्छंतंस्थितंतिष्ठंश्छिशुर्यथा ॥ भ्रांतमेवमिदंचेतःपश्यत्यात्मानमाकुलम् ॥ ७ ॥ कोशकारवदात्मानंवासनातनुतंतुभिः ॥ वेष्टयन्नैवचेतोंतर्बालत्वान्नावबुध्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—यही चित् अपनी सत्ताके आरोपसे चेत्यके बीजभूत आश्रय (विषयकी ओर अभिमुख होने) से अविद्या कहलाती है और सब उपाधिसे रहित तथा विषयसे परे होनेसे आत्मरूपताको प्राप्त होती है ॥ ५ ॥ चित्तमात्रही यह पुरुष है उसके नष्ट होनेसे नष्ट होताहै और स्थित रहनेपर ऐसे स्थित रहताहै जैसे घटके रहनेसे घटाकाश ॥ ६ ॥ और यह आत्मा चित्तको चलते देखके अपनेको चलते और स्थित रहते स्थित बालकके समान अपनेमें देखता (आरोप करता) है, इसप्रकार यह आत्मा चित्तको भ्रांत देखके अपनेहीको व्याकुल देखताहै ॥ ७ ॥ अपने जालसे मकरीके समान वासनारूप तंतु (सूत) से बांधता हुआभी यह चित्त विवेकरहित होनेसे नहीं जानता ॥८

श्रीरामउवाच ॥ मौर्ख्यमत्यंतघनतामागतंसमवस्थितम् ॥ स्थावरादितनुप्राप्तंकीदृशंभवतिप्रभो ॥९॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अमनस्त्वमसंप्राप्तंमनस्त्वादपिचच्युतम् ॥ तटस्थंरूपमाश्रित्यस्थितैषास्थावरेषु चित् ॥ १० ॥ तत्रदूरस्थितामुक्तिर्मन्येवेद्यविदांवर ॥ सुप्तपुर्यष्टकायत्रचित्स्थिताद्दुःखदायिनी ॥ मूकांधजडवत्तत्रसत्तामात्रेणतिष्ठति ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सत्ताद्वैततयायत्रसंस्थितास्थावरेषुचित् ॥ तत्रादूरस्थितामुक्तिर्मन्येवेद्यविदांवर ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! अत्यन्त घनीभूत मौर्ख्य (अविद्या) को प्राप्त होके स्थित जो कि स्थावर आदिकी शरीरमें प्राप्ति है वह कैसे होती है सो कहिये ॥ ९ ॥ हे रामजी ! अमनस्त्वदशाको प्राप्त अर्थात् सुषुप्तिके तुल्य सुखदुःखके अनुभवसे शून्य और पूर्वापरके विचाररूपकी मननकी योग्यतासेभी च्युत जो चित् है वह अपने तटस्थ सत्ताभावरूपका आलंबन करके स्थावरआदिमें स्थितहै ॥ १० ॥ हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! स्थावरआदि जातिमें मुक्ति अति दूरस्थितहै क्योंकि जहांपर बाह्य तथा अंतःकरण सुप्त हैं वहां स्थित चित् अत्यन्त दुःखदायिभी होती है कि मूक अन्ध और जडके समान अर्थात् ज्ञानेंद्रिय कर्मेंदिय और मनकी शक्तिसे शून्य सत्तामात्रसे स्थित रहती है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले–हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! जहां स्थावर आदि जीवोंमें सत्ता अद्वैतरूपसे अर्थात् ज्ञान कर्मेंद्रियके व्यापारसेरहित तथा मनके व्यापारसेरहित सामान्यसत्तासे चित् स्थितहै तो इसप्रकारकी स्थितिमें योगियोंके सदृश शीघ्रही वासनाका क्षय और मनके नाश होनेसे मुक्ति समीपमें स्थितहै ऐसा मैं समझताहुं तब स्थावरोंमें मुक्ति दूर स्थितहै ऐसा आपके कथनका क्या आशय है ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बुद्धिपूर्वविचार्येदंयथावस्त्ववलोकनात् ॥ सत्तासामान्यबोधोयःसमोक्षश्चेदनंतकः ॥ १३ ॥ परिज्ञायपरित्यागोवासनानांयउत्तमः ॥ सत्तासामान्यरूपत्वंतत्कैवल्यपदंविदुः ॥१४॥ विचार्यार्यैःसहालोक्यशास्त्राण्यध्यात्मभावनात् ॥ सत्तासामान्यनिष्ठत्वंयत्तद्ब्रह्मपरंविदुः ॥ १५ ॥ अंतःसुप्तास्थितामंदायत्रबीजइवांकुरः ॥ वासनातत्सुषुप्तत्वंविद्धिजन्मप्रदंपुनः ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! बुद्धिपूर्वक शास्त्रके विचारद्वारा यथार्थ आत्माके दर्शनसे जो सत्तासामान्यका ज्ञान है वही अनन्तमोक्ष है ॥ १३ ॥ आत्मतत्वको जानकर जो वासनाओंका उत्तम त्यागहै उसको सत्तासामान्यरूप कहते हैं और उसीको कैवल्यपरमपद कहते हैं ॥ १४ ॥ श्रेष्ठ आत्मवेत्ताओंके साथ अध्यात्मशास्त्रका विचार करके यथार्थ आत्माकार भावना होनेसे जो सामान्यसत्तामें निष्ठाहै उसीको परब्रह्म कहते हैं ॥ १५ ॥ जहांपर बीजमें अंकुरकेसमान मूर्छितरूपसे वासना स्थितहै उस सुषुप्तरूपताको तुम पुनः जन्मप्रद जानो ॥ १६ ॥

अंतःसंलीनमननंपरितःसुप्तवासनम् ॥ सुषुप्तंजडधर्मापिजन्मदुःखशतप्रदम् ॥ १७ ॥ स्थावरादयएतेहिसमस्ताजडधर्मिणः ॥ सुषुप्तपदमारूढाजन्मयोग्याःपुनःपुनः ॥ १८ ॥ यथाबीजेषुपुष्पादिमृदोराशौघटोयथा ॥ तथांतःसंस्थितासाधोस्थावरेषुस्ववासना ॥ १९ ॥ यत्रास्तिवासनाबीजंतत्सुषुप्तंनसिद्धये ॥ निर्बीजावासनायत्रतत्तुर्यंसिद्धिदंस्मृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिसकी भीतरमें मनन (मन) की शक्ति लीन है, चारोओरसे वासना सुप्तहै और सर्वथा सुप्त पाषाणके तुल्य वृत्तिरहितभी, परन्तु वह सुप्तवासना सैकडों जन्मके दुःखोंके देनेवाली है ॥ १७ ॥ हे रामजी ! ये समस्त जडधर्मी स्थावरआदिके सुषुप्तपदको अधिक अज्ञानके कारणसे आरूढ हैं इसलिये पुनः २ जन्मके योग्यहैं ॥ १८ ॥ हे साधो रामजी ! जैसे बीजमें पुष्पफलादि हैं और मृत्तिकाकी राशिमें घट शराव आदि हैं ऐसेही स्थावर आदि उनकी वासनामें स्थितहै ॥ १९ ॥ जहांपर वासनाका बीजमात्रभी है वह सुषुप्त है सिद्धिके लिये नहीं है और जहां ज्ञानरूपसे भर्जित बीजके तुल्य निर्बीज वासना है वह तुर्य्यपद मोक्षकी सिद्धिके लिये है ॥ २० ॥

वासनायास्तथावह्नेर्ऋणव्याधिद्विषामपि ॥ स्नेहवैरविषाणांयःशेषःस्वल्पोपिबाधते ॥ २१ ॥ निर्दग्धवासनाबीजसत्तासामान्यरूपवान् ॥ सदेहोवाविदेहोवानभूयोदुःखभाग्भवेत् ॥ २२ ॥ चिच्छक्तिर्वासनाबीजरूपिणीस्वापधर्मिणी ॥ स्थितारसतयानित्यंस्थावरादिषुवस्तुषु ॥ २३ ॥ बीजेषूल्लासरूपेणजाड्येनजडरूपिषु ॥ द्रव्येषुद्रव्यभावेनकाठिन्येनेतरेषुच ॥ २४ ॥

अर्थ—वासना, अग्नि, ऋण, व्याधि, और शत्रु तथा स्नेह, विरोध और विषका किंचित्भी शेष अवश्य पीडा देताहै ॥ २१ ॥ जहां वासनाका बीज ज्ञानाग्निसे भस्म होगयाहै और आत्मज्ञानसे सर्वत्र सत्तासामान्यका रूप देखताहै वह चाहै देहरहित हो वा सदेह हो परंतु पुनः दुःखका भागी वह नहीं होता ॥ २२ ॥ वासनाका बीजरूप धारण किये हुवे तथा शयनधर्मवाली चित्शक्ति स्थावरआदिमें बीजमें अंकुरशक्तिके तुल्य रसरूपसे नित्य स्थितहै ॥ २३ ॥ वह चित्शक्ति बीजोंमें भूमि जलके संयोगसे उल्लास (उत्फुल्लता) रूपसे, अर्थात् अंकुर उत्पन्न करनेकी योग्यतारूपसे, पाषाण आदि जडधर्मियोंमें जडतारूपसे धन रत्नआदि द्रव्योंमें अभिलषणीयता (उनके प्राप्त करनेकी इच्छारूप) से, और कठिनपदार्थोंमें कठिनतारूपसे स्थितहै ॥ २४ ॥

भस्मन्यथानित्यरूपापांसुष्वप्यणुरूपिणी ॥ असितेष्वस्थितस्थित्यासितधारतयासिषु ॥२५॥ आत्माशक्तिःपदार्थेषुतथाघटपटादिषु ॥ सर्वत्रसत्तासामान्यरूपमाश्रित्यतिष्ठति ॥ २६ ॥ इतीयमखिलादृश्यदशामापूर्यसंस्थिता ॥ तथाघटापटाप्रावृडंबरालंबिनीतथा ॥ २७ ॥ स्वरूपमस्याश्चैवैतत्कथितंप्रविचारितम् ॥ असर्वसर्वतोव्यापिसदिवासन्मयात्मकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—भस्म तथा धूलियोंमें पाषाणकाष्ठादिके अनित्यध्वंसरूपसे, मलिनमें मलिनतारूपसे और तरवारआदिमें तीक्ष्णतारूपसे स्थितहै ॥ २५ ॥ तथा घटपट आदि पदार्थोंमेंभी चित्शक्तिरूप आत्माही सत्तासामान्यरूप धारण करके जलका आनयन तथा शीतनिवारणआदि शक्तिरूप धारण कियेहुये स्थितहै ॥ २६ ॥ इसप्रकार यह चित् संपूर्ण दृश्यदशाको पूर्ण करके ऐसे स्थितहै जैसे मेघोंके जालसे आच्छादक वर्षाऋतु आकाशको ॥ २७ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अज्ञानसे आवृत इस चित्शक्तिका स्वरूप मैंने तुमसे कहा और विचार यद्यपि सर्वव्यापी और सत् इसका स्वभाव है तथा असत्यमायाके विकारोंसे अभिन्नरूप होके परिच्छिन्न भान होताहै ॥ २८ ॥

आत्मदृष्टिरदृष्टैषासंसारभ्रमदायिनी ॥ दृष्टासतीसमग्राणांदुःखानांक्षयकारिणी ॥२९॥ अस्यास्त्वदर्शनंयत्तदविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ अविद्याहिजगद्धेतुस्ततःसर्वंप्रवर्त्तते ॥ ३० ॥ अविद्यारूपरहितायावदेवावलोक्यते ॥ तावदेवगलत्याशुतुहिनाणुर्यथातपे ॥ ३१ ॥ यथानरोगलन्निद्रोयावत्कलनयामनाक् ॥ विमृशत्याशयंतावन्निद्रातस्यविलीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सर्वत्र चित्रूप आत्मदृष्टि अदृष्ट (अज्ञात) होनेसे संसाररूप भ्रमको देती है और दृष्ट (ज्ञात) होनेसे समग्रदुःखोंका अन्त करदेती है ॥ २९ ॥ इस आत्मदृष्टिरूप चित्के न देखनेको पंडितलोग अविद्या कहतेहैं और अविद्या जगत्का कारण है क्योंकि उससे सब कुछ होताहै ॥ ३० ॥ स्वरूपशून्य इस अविद्याको जबतक देखो तभीतक शीघ्र ऐसे गलजाती है जैसे तुषार (बर्फ) का परमाणु घाममें ॥ ३१ ॥ जैसे जिस पुरुषकी निद्रा गलित होरही है वह जबतक अपने चित्तके वृत्तांतको किंचित विचारताहै तभीतक उसकी निद्रा नष्ट होजाती है, ऐसेही किंचित् विचारमात्रसे यह अविद्या नष्ट होती है ॥ ३२ ॥

यथाकीदृगवस्त्वेतदितियावद्विकल्प्यते ॥ अविद्याक्षीयतेतावदालोकेनांधतायथा ॥ ३३ ॥ दीपहस्तोयथाभ्येतितमोरूपदिदृक्षया ॥ तथाविलीयतेसर्वतमस्तापैर्घृतंयथा ॥ ३४ ॥ नचसंलक्ष्यतेदीपेतमसोरूपनिश्चयः ॥ उदेतिकेवलंध्वांतध्वंसोविमलमूर्तिमान् ॥ ३५ ॥ एवमालोक्यमानैषाकापियातिपलायते ॥ असद्रूपाह्यवस्तुत्वादृश्यतेह्यविचारणात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे रज्जुमें सर्पआदि कैसे हैं क्या वास्तविक हैं या हमारी भ्रांतिसे कल्पित हैं यह विचार जबतक प्राणी करताहै इतनेहीमें अविद्या ऐसे क्षीण होजाती है जैसे प्रकाशसे अन्धता (दर्शनकी प्रतिबन्धकशक्ति) ॥ ३३ ॥ हस्तमें दीप लियेहुये पुरुष यदि अन्धकारका रूप देखनेको आवे तो जैसे अन्धकार नष्ट होताहै वा जैसे तापसे घृद नष्ट होताहै ऐसेही विचारसे अविद्यासहित जब जगत् नष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! दीपके आनेपर अंधकारके रूपका निश्चय जैसे नहीं लक्षित होता किन्तु विमल मूर्तिमान् अन्धकारका नाश उदय होताहै ॥ ३५ ॥ इसीप्रकार बिचार करनेसे यह मन्द २ न जाने कहां चलीजाती है और भलीभांति बिचारनेसे न जाने कहां भागजाती है, अवस्तु होनेसे यह असत्रूप है और अविचारसेही देखपडती है ॥ ३६ ॥

आलोकआगतेयादृक्तमस्तदृश्यतेतथा ॥ यावस्तुत्वेत्वविद्यायास्त्ववस्तुत्वंप्रतीयते ॥ ३७ ॥ यावन्नालोक्यतेतावन्नकिंचिदपिदृश्यते ॥ आलोकितेयथाविद्यात्ततथाप्रतिपद्यते ॥३८॥ रक्तमांसास्थियंत्रेस्मिन्कः स्यामहमितिस्वयम् ॥ यावद्विचार्यतेतावत्सर्वमाशुविलीयते ॥ ३९ ॥ आद्यंतयोरसद्रूपेनूनंपरिदृतेहृदा ॥ सर्वस्मिन्नेवयःशेषस्तमविद्याक्षयंविदुः ॥ ४० ॥

अर्थ—प्रकाशके आनेपर जैसे अन्धकार असद्रूप है ऐसेही विचार आनेपर अविद्याभी असद्रूपहै, और त्रैकालिक प्रातीमिके मतसे अन्धकारको वस्तु मानो तो मानो परन्तु अविद्याका अवस्तुत्व तो तीनकालमें बाध होनेसे भान होताहै ॥ ३७ ॥ जबतक बिचार न कियाजाय तबतक शुक्ति रज्जुआदि वा रजतसर्पादि यथार्थ नहीं देखपडता, और विचारसे देखनेपर जो कुछ अविद्या है और जो कुछ वस्तु है वह यथार्थ देखपडताहै ॥ ३८ ॥ रक्तमांसमय इस देहरूपयन्त्रमें मैं कौन होसकताहूं ऐसा जबतक विचार कियाजाय तबतक शीघ्र सब अविद्याका परिवार नष्ट होजाताहै ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारवान् मनसे आदिअन्तमें जो असत्रूप है उसके त्याग करनेपर जो शेष चिदात्मा है उसीको अध्यस्तपदार्थोंके बाधका अधिष्ठान होनेसे अविद्याका क्षय कहते हैं ॥ ४० ॥

तन्नकिंचिच्चकिंचिद्वातत्सद्ब्रह्मैवशाश्वतम् ॥ तद्वस्तुतदुपादेयंयदविद्यानिवर्तते ॥ ४१ ॥ रूपंस्वनाम्नएवास्याज्ज्ञायतेनिःस्वभावकम् ॥ नहिजिह्वागतस्वाद्यस्वादोन्यस्मात्प्रतीयते ॥ ४२ ॥ नाविद्याक्वचिदप्यस्तिब्रह्मैवेदमखंडितम् ॥ सदसदत्कलनास्फारमशेषंयेनमंडितम् ॥ ४३ ॥ एतावदेवाविद्यायानेदंब्रह्मेतिनिश्चयः ॥ एतदेवक्षयोयस्याब्रह्मेदमितिनिश्चयः ॥ ४४ ॥ घटपटशकटावभासजालंनविभुरितीत्युदितेहसात्वविद्या ॥ घटपटशकटावभासजालंविभुरितिचेद्गलितैवसात्वविद्या ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू० अविद्याचिकित्सानाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—सबका बाध होनेसे वह कुछ नहीं और अधिष्ठान चिद्रूप होनेसे नित्य ब्रह्म वही है, क्योंकि जिससे अविद्या निवृत्तहै वही उपादेय और वस्तुहै ॥ ४१ ॥ अविद्या (नहीं है) इस नामसेही इसका रूप स्वभावरहितहै, क्योंकि जिस वस्तुका स्वाद जिव्हासे नहीं भानहोता उसका स्वाद किसी अन्यवस्तुसे प्रतीत होताहै ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! अविद्या कहीं नहीं यह सब अखंडित ब्रह्महीहै जिसने सद् असत् कल्पनासे विशाल इस सम्पूर्ण जगत्को मंडित कियाहै ॥ ४३ ॥ यह जगत् ब्रह्म नहीं है ऐसा जो निश्चय है यही अविद्याका स्वरूप है, और यह सब ब्रह्महीहै यही निश्चय अविद्याका क्षय है ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! घट, पट और शकट (गाडा) इत्यादिरूपसे भासमान जो यह जगत्जाल है यह सब अपरिच्छिन्न सच्चिदानन्द ब्रह्म नहीं है किन्तु उससे अन्य है यह आरोपित दृष्टि अविद्या है, और घट, पट तथा शकटआदिरूपसे भासमान जगत् अपरिच्छिन्न सच्चिदानन्दरूपही है यह सन्मात्रदृष्टिसे वह अविद्या गलित होचुकी ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अविद्याचिकित्सा नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

जिस दृष्टिसे जीवन्मुक्त हरिहर आदि स्थितहैं वह सब ब्रह्मही "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" है इस दृष्टिका उपदेश रामचन्द्रके लिये इस ११ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पुनःपुनरिदंरामप्रबोधार्थंमयोच्यते ॥ अभ्यासेनविनासाधोनाभ्युदेत्यात्मभावना ॥ १ ॥ अज्ञानमेतद्बलवदविद्येतरनामकम् ॥ जन्मांतरसहस्रोत्थंघनंस्थितिमुपागतम् ॥ २ ॥ स बाह्याभ्यंतरंसर्वैरिंद्रियैरनुभूयते ॥ भावाभावेषुदेहस्यतेनातिघनतांगतम् ॥ ३ ॥ आत्मज्ञानंतुसर्वेषामिंद्रियाणामगोचरम् ॥ सतांकेवलमायातिमनःषष्ठेंद्रियक्षये ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! कथित अविद्या आदि पदार्थके विषयमें पुनः २ मैं ज्ञानके अर्थ कहताहुं क्योंकि दृढ अभ्यासके बिना आत्मभावना नहीं उत्पन्न होती ॥ १ ॥ यह प्रबल अज्ञानकाही नाम अविद्या है, जो कि सहस्रों जन्मसे उत्पन्न होके घनताको प्राप्तहै ॥ २ ॥ हे रामजी! देहकी सत्तामें जीवन जागरण आदि अवस्थाओंमें साक्षीकेद्वारा अज्ञानसे सदा यह द्वैत अनुभूत होताहै इस कारण अतिघनताको प्राप्तहै ॥ ३ ॥ और आत्मज्ञान तो सब इन्द्रियोंके अगोचर है, वह तो केवल षष्ठ (छठां) इन्द्रिय मनके नाश होनेसे अपनी चिदात्मसत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

प्रोल्लंघ्येंद्रियजांवृत्तियत्स्थितंतत्कथंकिल ॥ यातिप्रत्यक्षतांजंतोःप्रत्यक्षातीतवृत्तिमत् ॥ ५ ॥ त्वमविद्यालतामेतांप्ररूढांहृदयद्रुमे ॥ ज्ञानाभ्यासविलासासिपातैश्छिधिस्वसिद्धये ॥ ६ ॥ यथाविहरतिज्ञातज्ञेयोजनकभूपतिः ॥ आत्मज्ञानाभ्यासपरस्तथाविहरराघव ॥ ७ ॥ निश्चयोयमभूत्तस्यकार्याकार्यविहारिणः ॥ जाग्रतस्तिष्ठतोवापितज्ज्ञानांतेनसत्यता ॥ ८ ॥

अर्थ—जो इन्द्रियजनित वृत्तियोंको उल्लंघन करके स्थित है और इन्द्रियजनित प्रत्यक्षसेभी परे है वह भला जीवको इन्द्रियजनित प्रत्यक्षताको कैसे प्राप्तहो ॥ ५ ॥ हे रामजी! हृदयरूप वृक्षपर प्रबलतासे बढीहुई इस अविद्यारूप लताको ज्ञानके पुनः २ अभ्यासरूप खड्गपातोंसे अपने मोक्षकी सिद्धिके लिये छेदन करो ॥ ६ ॥ हे रामजी! आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर और ज्ञात ज्ञेय राजा जनक जैसे इस संसारमें विहार करताहै ऐसे तुमभी विहार करो ॥ ७ ॥ हे रामजी! यह मेरे अनुभवके अनुसार निश्चयव्यवहार समाधिमें वा विहार करतेहुये, जागते अथवा सोते तथा चलते वा बैठतेहुयेभी उस राजा जनकको था और वही ज्ञान अभ्यासका फल है उसीसे अपने स्वरूपकी सत्यता होती है न कि आपातज्ञानसे ॥ ८ ॥

निश्चयेनहरियेंनविविधाचारकारिणा ॥ योनिष्ववतरत्युर्व्यांतत्तज्ज्ञत्वमुदाहृदम् ॥ ९ ॥ निश्चयोयस्त्रिनेत्रस्यकांतयासहतिष्ठतः ॥ ब्रह्मणोवाप्यरागस्यसतेभवतुराघव ॥ १० ॥ योनिश्चयःसुरगुरोर्वाक्पतेर्भार्गवस्यच ॥ दिवाकरस्यशशिनःपवनस्यानलस्यच ॥ ११ ॥ नारदस्यपुलस्त्यस्यममचांगिरसस्तथा॥ प्रचेतसोभृगोश्चैवक्रतोरत्रेःशुकस्यच ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! जिस निश्चयसे विष्णुभगवान् अनेकप्रकारके व्यवहारोंको करतेहुये पृथिवीपर गर्भवास आदि क्लेशोंमें अवतार लेते हैं और उनके दुःखोंसे स्पृष्ट नहीं है उसीका नाम ब्रह्मज्ञता है ॥ ९ ॥ हे राघव! स्त्रीके साथ स्थितभी महादेवजीका जो निश्चय था और रागशून्य ब्रह्माजीका जो कुछ निश्चय था वह निश्चय तुमारा हो ॥ १० ॥ देवताओंके गुरु बृहस्पतिका, दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्यका, सूर्य्यका, चन्द्रमाका, पवनका और अग्निका जो निश्चय था वही निश्चय तुमारा हो ॥ ११ ॥ तथा नारदका, पुलस्त्यका, मेरा, अंगिराका, प्रचेताका, भृगुका, क्रतुका, अत्रिका, शुकदेवजीका ॥ १२ ॥

अन्येषामेवविप्रेंद्रराजर्षीणांचराघव ॥ योनिश्चयोविमुक्तानांजीवतांतेभवत्वसौ ॥ १३ ॥ श्रीरामउवाच॥ येनैतेभगवन्धीरानिश्चयेनमहाधियः ॥ विशोकाःसंस्थितास्तन्मेब्रह्मन्प्रब्रूहितत्त्वतः ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ राजपुत्रमहाबाहोविदिताखिलवेद्यहे ॥ स्फुटंशृणुयथादृष्टमयमेषांहिनिश्चयः ॥ १५ ॥ यदिदंकिंचिदाभोगिजगज्जालंप्रदृश्यते ॥ तत्सर्वममलंब्रह्मभवत्येतद्व्यवस्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा अन्य ब्रह्मर्षि, राजर्षि, और अन्य जीवन्मुक्तोंका जो निश्चय था वही तुमारा हो ॥ १३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे भगवन्! जिस निश्चयसे ये धीर और महाबुद्धिमान् शोकरहित होके स्थित थे उस निश्चयको यथार्थरीतिसे मुझे कहिये ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राजपुत्र! हे महाबाहो! हे सम्पूर्ण ज्ञेयपदार्थको जाननेवाले रामजी! यह वक्ष्यमाण इन लोगोंका निश्चय जैसे आपने पूंछा है स्पष्टरीतिसे सुनिये ॥ १५ ॥ यह विस्तारयुक्त जो कुछ जगत्का जाल देखपडताहै वह सब मायासम्बधी अव्यवस्थितरूप त्यागके विमलब्रह्महीस्थितहै १६

ब्रह्मचिद्ब्रह्मभुवनंब्रह्मभूतपरंपराः ॥ ब्रह्माहंब्रह्ममच्छत्रुर्ब्रह्मसन्मित्रबांधवाः ॥ १७ ॥ ब्रह्मकालत्रयंतच्चब्रह्मण्येवव्यवस्थितम् ॥ तरंगमालयांभोधिर्यथात्मनिविवर्द्धते ॥ १८ ॥ तथापदार्थलक्ष्म्येत्थमिदंब्रह्म

इदंत्वयुक्तमित्यंतर्ज्ञातेसोदेतिभावना ॥ यस्मादयुक्ताद्वैरस्याद्ययाकिलविरज्यते ॥ ५३ ॥ द्वैतंत्वसत्य मित्यंतर्ज्ञातेसोदेतिभावना ॥ तस्माद्वैताद्ववैरस्याद्ययाकिलविरज्यते ॥ ५४ ॥ अयंनाहमितिज्ञातेस्फु टेसोदेतिभावना ॥ मिथ्याहंकारतातस्माद्ययानूनंविरज्यते ॥ ५५ ॥ ब्रह्मैवाहमितिज्ञानेसत्येसोदेति भावना ॥ तस्मिन्सत्येनिजेरूपेयथांतःपरिलीयते ॥ ५६ ॥

अर्थ—यह जीव जगद्भावरूप प्रपंच मिथ्याहै ऐसा अंतःकरणमें निश्चय होनेसे वह ब्रह्मभावना उदयको प्राप्त होती है, क्योंकि विचारसेही शुक्तिके रजत (चांदी) के मिथ्या होनेसे शुक्तिके रजतके तुल्य भोग्यपदार्थोंसे पुरुष विरक्त होताहै ॥ ५३ ॥ द्वैत मिथ्या है ऐसा अंतःकरणमें निश्चय होनेसे ब्रह्मभावना उत्पन्न होती है इसीसे द्वैतकी निरसतासे पुरुष इससे विरक्त होताहै ॥ ५४ ॥ यह देह आदि संघात मैं नहींहुं ऐसा अंतःकरणमें ज्ञात होनेसे प्रत्य-क्षरूप ब्रह्मभावना उदय होती है, इसलिये अहंकार मिथ्याहै इस विचारसे पुरुष वैराग्यको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ मैं ब्रह्महीहुं ऐसा सम्यज्ञान होनेपर ब्रह्मभावना उदय होती है और उस आविर्भूत निज सत्वबोधरूपमें जीवजगद्भाव लीन होजाताहै ॥ ५६ ॥

सतिविस्तारजेतस्मिन्ब्रह्मेदमितिवेद्म्यहम् ॥ त्वमहंत्वादिबाधेतत्सदित्यादिजगद्गतम् ॥ ५७ ॥ सत्यं सर्वप्रकाराढ्यंब्रह्मेदमितिवेद्म्यहम् ॥ नमेदुःखंनकर्माणिनमेमोहोनवांछितम् ॥ ५८ ॥ समःस्वस्थोविशो कोस्मिब्रह्माहमितिसत्यता ॥ कलाकलंकमुक्तोस्मिसर्वमस्मिनिरामयः ॥ ५९ ॥ नत्यजामिनवांछामि ब्रह्माहमितिसत्यता ॥ अहंरक्तमहंमांसमहमस्थीन्यहंवपुः ॥ ६० ॥

अर्थ—उस अखंड वाक्यार्थके अपरिच्छिन्नस्वभावसे आविर्भूत होनेपर पूर्णआत्मस्वरूपमें त्वत्ता अहंता और इदंताका बाध होनेपर अस्ति, भाति, प्रिय नाम तथा रूप यह जगत्के अन्तर्गत पांच प्रकारका जो वस्तुसमूह है उसको मैं ब्रह्मरूपही जानताहुं ॥ ५७ ॥ सत्य तथा सब प्रकारसे पूर्णब्रह्महो मैं इस जगत्को जानताहुं, न मेरेको कोई दुःख है न मेरे कोई कर्म हैं और न कुछ अभिलषित है ॥ ५८ ॥ स्वस्थ, सर्वत्र समरूप, तथा शोकरहित ब्रह्म मैं हुं, और कल्पनारूप कलासे निर्मुक्त, निर्विकार सर्वजगत्रूप मैंहीहुं यही सत्यताहै ॥ ५९ ॥ न कुछ त्यागताहुं, न चाहताहुं, किन्तु ब्रह्मरूप मैंहुं यही सत्यहै और सब आत्मारूप होनेसे रक्त, मांस, हड्डी और शरीर मैंहीहुं ॥ ६० ॥

चिदहंचेतनंचाहंब्रह्माहमितिसत्यता ॥ द्यौरहंखमहंसार्कमहमाशाभुवोप्यहम् ॥ ६१ ॥ अहंघटपटा कारोब्रह्माहमितिसत्यता ॥ अहंतृणमहंचोर्वीगुल्मोहंकाननाद्यहम् ॥ ६२ ॥ शैलसागरसार्थोहंब्रह्मै वत्वंकिलस्थितम् ॥ आदानदानसंकोचपूर्विकाभूतशक्तयः ॥ ६३ ॥ सर्वमेवचिदात्मास्मिब्रह्मण्यातत रूपधृक् ॥ लतागुल्मांकुरादीनामहंसंभवनैषिणाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—चित् मैं हुं, चेतन मैं हुं, ब्रह्म मैं हुं, अंतरिक्ष मैंहुं, सूर्यमंडल मैं हुं, सब दिशा तथा सब प्रकारकी पृथिवी मैं हुं, और ब्रह्म मैं हुं, यही सत्यता है ॥ ६१ ॥ घट, पट आदि आकार मैं हुं, ब्रह्म मैं हुं, यही सत्यता है, मैं तृण हुं, मैं पृथिवी हुं, लता, गुल्म आदि मैं हुं, और बन आदि सब मैं हुं ॥ ६२ ॥ पर्वत, समुद्र और प्राणियोंका समूह मैं हुं, क्योंकि ब्रह्मकी एकताही सर्वत्र स्थितहै, और दान आदान और अंगोंके संकोच (बटोरने) आदि सब प्राणियोंके धर्म ॥ ६३ ॥ आदि सब कुछ ब्रह्ममें विशालरूपधारी चिद्रूप मैं हुं, और लता, गुल्म अंकुर आदिके शाखाविस्तारके आविर्भावके आभिलाषियोंके ॥ ६४ ॥

चिदात्मांतर्गतंशांतंपरंब्रह्मरसात्मकम् ॥ यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ ६५ ॥ योमतःस र्वएकात्मापरंब्रह्मेतिनिश्चयः ॥ चिदात्माब्रह्मसत्सत्यमृतंज्ञइतिनामभिः ॥ ६६ ॥ प्रोच्यतेसर्वगंतत्त्वं चिन्मात्रंचेत्यवर्जितम् ॥ आभासमात्रममलंसर्वभूतात्मबोधकम् ॥ ६७ ॥ सर्वत्रावस्थितंशांतंचिद्ब्र ह्मेत्यनुभूयते ॥ मनोबुद्धींद्रियव्रातसमस्तकलनान्वितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—अन्तर्गत चिदात्मा मैं हुं, और शांत परमानन्दरूप परब्रह्म मैं हुं, जिसमें सब कुछ है, जिससे सब कुछ है, जो सब कुछ है, और जो सब ओरसे है ॥ ६५ ॥ और जो एक चिदात्मा परब्रह्म सबको निश्चयरूपसे इष्ट है, और चिदात्मा, ब्रह्म, सत्, सत्य और अमृत, और ज्ञ (सबका ज्ञाता) इत्यादि नामोंसे ॥६६॥ कहाजाताहै तथा जो सर्वगत चिन्मात्र चेत्य (विषय) वर्जित प्रकाशरूप निर्मल, और सब प्राणियोंका अवबोधक (ज्ञानदाता) ॥ ६७ ॥ सर्वत्र स्थित, और शांत ब्रह्मरूप जिस चित्को ब्रह्मवेत्तालोग अनुभव करतेहैं तथा मन, बुद्धि और इन्द्रि-यके समूह तथा सब वृत्तियोंमें अनुगत ॥ ६८ ॥

भेदंत्यक्त्वास्वमाभासंचिद्ब्रह्माहमनामयम् ॥ शब्दादीनामशेषाणांकारणानांजगत्स्थितेः ॥ ६९ ॥ तत्त्वावकाशकंस्वच्छंचिद्ब्रह्मास्मिनमेक्षयः ॥ अनारतगलत्स्वच्छचिद्धारागहनात्मकम् ॥ ७० ॥ आलोकःसुमनोमौनंचिद्ब्रह्मास्म्यमृतंपरम् ॥ अनारतगलद्रूपंनित्यंचानुभवामृतम् ॥ ७१ ॥ अहंनिःशेषचक्राणिचिद्ब्रह्माहमलेपकम् ॥ सुषुप्तसदृशंशांतमालोकाविमलात्मकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—सब उपाधिकृत भेदको त्यागकर जो विकार चिद्ब्रह्म है वह मैं हुं, और सम्पूर्ण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, तथा उनके कारण आकाश, वायु, तेज, और पृथिवी, तथा इनसे कृत जगत्की स्थितिके ॥ ६९ ॥ सत्ताकी प्रथाके स्वरूप और स्वच्छ चिद्ब्रह्म मैं हुं मेरा नाश कदापि नहीं है और अग्निके स्फुलिंगके धाराके समान निरन्तर वृत्तिरूप धाराओंसे निकलती हुई चिद्रूपकी धाराओंका आकार (उत्पत्तिस्थान) ॥ ७० ॥ प्रकाशरूप, योगियोंसे अनुभूयमानभी वाणीका अविषय निरतिशय आनन्दरूप अहंकाररूप समस्त भोक्ताओंके चक्रोंकेप्रति तत्तद्भोगोंकी वृत्तिधारारूप उपाधियोंसे मधुकी धाराके समान निरन्तर जिसका रूप गलित होरहाहै अर्थात् भोगोंसे सम्बन्ध न होनेसे कूटस्थ नित्य अनुभवरूप चिद्ब्रह्म मैं हुं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

संभोगोत्तममाभासंचिद्ब्रह्मास्म्यपवासनम् ॥ खंडादिस्वादुसंवित्तिरीषन्मात्रातुतिष्ठति ॥ ७३ ॥ चित्तादिष्ववबुद्धेषुतद्धिब्रह्माहमच्युतः ॥ कांतासंसक्तचित्तस्यचंद्रेसमुदितेसति ॥ ७४ ॥ चंद्रप्रत्ययसत्वात्मचिद्ब्रह्माहमनामयम् ॥ भूमिष्ठनरदृष्टीनांलग्नानांखेनिशाकरे ॥ ७५ ॥ याखस्थाननुचिच्छक्तिस्तच्चिद्ब्रह्मास्तिनिर्मलम् ॥ सुखदुःखादिकलनाविकलोनिर्मलस्तथा ॥ ७६ ॥

अर्थ—मनुष्यके आनन्दसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्तके विषयके सुखोंसेभी परमोत्तम चारोओरसे प्रकाशमान और वासनारहित चिद्ब्रह्म मैं हुं और रसनाआदि इन्द्रियोंसे स्वादके अनुभवकी किंचिन्मात्रा अर्थात् जिव्हासे कण्ठके ऊर्ध्वभाग अल्पदेशकालमें स्थितहैं ॥ ७३ ॥ और वही किंचिन्मात्रा अपने परिच्छेदके हेतुभूत चित, चेत्य, और चेतपिताके स्वप्रकाश आनन्दरूपसे अनुभव होनेपर परिच्छेदके उपाधिके च्युत होनेपर च्युतिरहित वही निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्म मैं हुं, और रात्रिमें कांतामें आसक्तचित्तवालेको चन्द्रोदय होनेपर ॥ ७४ ॥ चन्द्रमा तथा कांता (स्त्री) के दर्शनके मध्यदेशमें चित्के अनुभवके छेदन होनेसे चन्द्राकार वृत्तिके पूर्व अविच्छिन्न सत्तारूप निर्विषय जो चिद्ब्रह्म प्रसिद्ध है वही मैं हुं, क्योंकि पृथिवीपर स्थित पुरुष जिनकी दृष्टि आकाशमें चन्द्रमामें संलग्नहै उनकी चन्द्राकार वृत्तिके पूर्व आकाशमें स्थित जो चिच्छक्ति है वह निर्मल चिद्ब्रह्म है, और सुखदुःखादिकी कल्पनासे रहित तथा निर्मल ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सत्यानुभवरूपात्मचिद्ब्रह्मात्मास्मिशाश्वतः ॥ असंस्तुताध्वगालोकेमनस्यन्यत्रसंस्थिते ॥ ७७ ॥ याप्रतीतिरनागस्कातचिद्ब्रह्मास्मिसर्वगः ॥ भूवार्यनिलबीजानांसंबंधेंकुरकर्मसु ॥ ७८ ॥ शक्तिरुद्गमनीयांतस्तच्चिद्ब्रह्माहमाततम् ॥ खर्जूरनिंबबिंबानांस्वयमात्मनितिष्ठताम् ॥ ७९ ॥ यास्वादसत्तालीनांतस्तद्ब्रह्मचिदहंसमः ॥ खेदानंदविमुक्तांतःसंवित्तिर्मननोदया ॥ ८० ॥

अर्थ—सत्यअनुभवरूपी नित्य चिद्ब्रह्म मैं हुं, इसीप्रकार जो पुरुष इस देशमें स्थितहै उसका मन जिसने मध्यदेशके वृक्षादि पदार्थ नहीं ग्रहण की या दूर स्थितहै ॥ ७७ ॥ तो मध्यदेशमें विषयग्रहणरूप अपराधसे शून्य निर्विषय जो प्रतिति है वही सर्वगामी चेतन परब्रह्म है, और पृथिवी, जल, वायु तथा बीजका मेल होनेपर अंकुरकी उत्पत्तिरूप कार्योंमें ॥ ७८ ॥ बाह्य (बाहर) देशमें निःसरणके अनुकूल जो शक्ति है वह सर्वत्र व्यापक चिद्ब्रह्म है, और अपने जडस्वभावमें स्थित खर्जूर (खजूर) निंब तथा बिंब (कुंदुरु) आदि पदार्थोंकी ॥७९॥ जिव्हाआदि इन्द्रियोंसे अभिव्यक्त आभ्यन्तर लीन जो आस्वादकी सत्ता है वही चिद्ब्रह्म है, शोक हर्षसे शून्य, जो शुद्ध संवित्॥८०

लाभालाभविधौतुल्याचिद्ब्रह्मास्मिनिरामयम् ॥ यावद्भूम्यर्कमेतावदृष्टिसूत्रंयदाततम् ॥ ८१ ॥ तन्मध्यसदृशंशांतंनिर्मलंचिदहंततम् ॥ जाग्रत्यपिसुषुप्तेपितत्स्वप्नेपितथोदितम् ॥ ८२ ॥ तुर्यरूपमनाद्यंतंचिद्ब्रह्माहमनामयम् ॥ पुंसांक्षेत्रशतोत्थानामिक्षूणांस्वादुवत्स्थितम् ॥ ८३ ॥ सर्वेषामेकरूपंतच्चिद्ब्रह्मास्मिसमःस्थितः ॥ सर्वगाप्रकृतास्वच्छरूपाभानोरिवप्रभा ॥ ८४ ॥

अर्थ—और लाभ अलाभमें तुल्य निर्विकार चिद्ब्रह्म मैं हुं, पृथिवीपर स्थित सूर्य्यको देखनेवाले पुरुषकी भूमिसे लेके सूर्य्यतक दृष्टिरूप सूत्र जो विस्तृत होरहाहै ॥ ८१ ॥ उसके मध्य नेत्र और सूर्य्य दोनोंसे असंलग्न भागके सदृश अर्थात् विषयके प्रकाश करनेमें समर्थभी विषयसे निर्मुक्त, शांत, निर्मल और व्यापक जो चिद् है वह मैं

हुं ॥ ८२ ॥ और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों अवस्थामें उसी साक्षीरूप उदयको प्राप्त ॥ ८३ ॥ चतुर्थ अनादि, अनन्त तथा निर्विकार चिद्ब्रह्म मैं हुं, अनेक चित्तोंमें उत्पन्न ऊख (ईख) के स्वादके तुल्य सब पुरुषोंमें समानरूप जो चिद्ब्रह्म स्थित है वह मैं हुं, सूर्य्यकी दीप्तिके सदृश सर्वत्र अनुगत सर्वगामिनी स्वच्छरूप ॥ ८४ ॥

आलोककारिणीकांताचिद्ब्रह्मेदमहंततम् ॥ संभोगानंदलववदमृतास्वादशक्तिवत् ॥ ८५ ॥ स्वानुभूत्येकमात्रंयच्चिद्ब्रह्मास्मितदव्ययम् ॥ प्रोतांगमपिगुप्तास्यंदेहेतंतुर्बिसेयथा ॥ ८६ ॥ छेदेभेदेस्फुरद्रूपंचिद्ब्रह्माहमनामयम् ॥ आक्रांतभुवनाप्यभ्रमालेवस्पंदशालिनी ॥ ८७ ॥ दुर्लक्ष्याणुमयाकाराचिच्छक्तिरहमातता ॥ अनुभूतिमयांतस्थस्नेहमात्रोपलक्षिता ॥ ८८ ॥

अर्थ—और प्रकाशकारिणी जो चिद्ब्रह्म व्यापक है वह मैं हुं, और स्त्रीसंभोग आदिमें जिस आनन्दका लेशमात्र है उस अमृतके आस्वादकी शक्तिसहित ॥ ८५ ॥ स्वानुभवमात्र जो चिद्ब्रह्म है वह मैं हुं, कमलके दंडमें सूत्रके समान देहमें व्याप्त ॥ ८६ ॥ शरीरके छेदन भेदन आदिमें साक्षी होके स्फुरितरूप, तथा निर्विकार चिद्ब्रह्म मैं हुं, सब लोकोंका आक्रमण करनेवाली, और वृत्ति तथा वायुकी उपाधिसे गमनसे शोभायमान ॥ ८७ ॥ और दुर्लक्ष्य, और अणु अर्थात् सूक्ष्म जीव आकारवाली व्यापक जो चित्शक्ति है वही मैं हुं, अनुभवमात्र सारवाली, परमप्रेममात्रसे उपलक्षित ॥ ८८ ॥

क्षीराद्घृतस्यसत्तेवचिदहंक्षयवर्जिता ॥ कटकांगदकेयूररचनातदतन्मयी ॥ ८९ ॥ हेम्नीवसंस्थितादेहे चिद्ब्रह्मात्मास्मिसर्वगः ॥ पदार्थौघस्यशैलादिर्बहिरंतश्चसर्वदा ॥९०॥ सत्तासामान्यरूपेणयाचित्सोहमलेपकः ॥ सर्वासामनुभूतीनामादर्शोयोह्यकृत्रिमः ॥९१॥ अगम्योमललेखानांतच्चित्तत्वमहंमहत् ॥ सर्वसंकल्पफलदंसर्वतेजःप्रकाशकम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—क्षयसे वर्जित दुग्धमें घृतके सत्ताके तुल्य चिद् मैं हूं, जैसे कटकके पूर अंगद आदिकी रचना ॥ ८९ सुवर्णमें स्थितहै ऐसेही सर्वगामिनी देहमें जो चिद्ब्रह्मकी सत्ता स्थितहै वह मैं हुं, पर्वतआदि पदार्थसमूहके बाह्य तथा आभ्यन्तर सदा ॥ ९० ॥ सत्तासामान्यरूपसे जो निर्लिप्त चित् स्थितहै वह मैं हुं, और जो सब अनुभवकी वृत्तियोंका स्वाभाविक दर्पण है ॥ ९१ ॥ और जो सम्पूर्ण पापरूप मलका अविषय है वह महत् चित्तत्व मैं हुं, सब संकल्पोंके फलोंके दाता सब सूर्यआदि तेजस्वी पदार्थोंकेभी प्रकाशक ॥ ९२ ॥

सर्वोपादेयसीमांतंचिदात्मानमुपास्महे ॥ सर्वावयवविश्रांतंसमस्तावयवातिगम् ॥ ९३ ॥ अनारतकचद्रूपंचिदात्मानमुपास्महे ॥ घटेपटेतटेकूपेस्पंदमानंसदातनौ ॥ ९४ ॥ जाग्रत्यपिसुषुप्तस्थंचिदात्मानमुपास्महे ॥ उष्णमग्नौहिमेशीतंमृष्टमन्नेशितंक्षुरे ॥ ९५ ॥ कृष्णंध्वांतेसितंचंद्रेचिदात्मानमुपास्महे ॥ आलोकंबहिरंतस्थंस्थितंचस्वात्मवस्तुनि ॥ ९६ ॥

अर्थ—और साक्षीरूप होनेसे सब उपादेय वस्तुओंकी सीमाका अन्त चिद्ब्रह्म मैं हुं, क्योंकि सबका ग्रहण आत्माके अर्थ है ऐसे चित्स्वरूप आत्माकी मैं उपासना करताहुं, सब अवयवोंमें विश्रांत और सब अवयवोंसे परे ॥ ९३ ॥ और निरंतर विकसितरूप जो चिदात्मा है उसकी मैं उपासना करताहुं. घट, पट, तट, और कूपआदि पदार्थमें सत्रूपसे स्थित, चार प्रकारके देहोंमें चेष्टाके निमित्त और जाग्रत्में सुषुप्त चित्स्वरूप आत्माकी उपासना (अभेदसंबन्धसे) मैं करताहुं. और अग्निमें उष्णता, चन्द्रमें शीतता, अन्नमें मधुरता, छुरा तरवारआदिमें तीक्ष्णता ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ अन्धकारमें कृष्णता, चन्द्रप्रकाशमें श्वेततारूप जो चिदात्मा है उसकी मैं उपासना करताहुं. बाहर, भीतर प्रकाशरूप, और अपने आत्मवस्तुमें स्थित, साक्षीरूप होनेसे ॥ ९६ ॥

अदूरमपिदूरस्थंचिदात्मानमुपास्महे ॥ माधुर्यादिषुमाधुर्यंतीक्ष्णादिषुचतीक्ष्णताम् ॥ ९७ ॥ गतंपदार्थजातेषुचिदात्मानमुपास्महे ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुतुर्यातुर्यातिगेपदे ॥ ९८ ॥ समंसदैवसर्वत्रचिदात्मानमुपास्महे ॥ प्रशांतसर्वसंकल्पंविगताखिलकौतुकम् ॥ ९९ ॥ विगताशेषसंरंभंचिदात्मानमुपास्महे ॥ निष्कौतुकंनिरारंभंनिरीहंसर्वमेवच ॥ १०० ॥

अर्थ—समीपस्थभी अज्ञानसे दूरस्थ चिदात्माकी उपासना करताहुं. शर्कराआदि मिष्टपदार्थोंमें मधुरता, मरिचआदिमें तीक्ष्णताको प्राप्त ॥ ९७ ॥ और पदार्थसमूहोंमें सत्तारूपसे स्थित चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं. जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तमें एकरूपतासे स्थित तथा तुर्य्य (चतुर्थ) रूप तथा तुर्य्यपदसे परे ॥ ९८ ॥ सदासर्वत्र सत्तारूपसे स्थित चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं. और सब संकल्प जिसके शांत और सम्पूर्ण कामनारहित

॥ ९९ ॥ तथा सब क्रोधसे रहित चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं. और कामना (भोगोंकी उत्कण्ठा) यत्न तथा चेष्टासे रहित सर्वरूप ॥ १०० ॥

निरंशंनिरहंकारंचिदात्मानमुपास्महे ॥ सर्वस्यांतःस्थितंसर्वमप्यपारैकरूपिणम् ॥ १०१ ॥ अपर्यंतचिदारंभंचिदात्मानमुपागतः ॥ त्रैलोक्यदेहमुक्तानांतंतुमुन्नतमाततम् ॥ १०२ ॥ प्रचारसंकोचकरंचिदात्मानमुपागतः ॥ लीनमंतर्बहिःस्वाप्तान्क्रोडीकृत्यजगत्खगान् ॥ १०३ ॥ चित्रंबृहज्जालमिवचिदात्मानमुपागतः ॥ सर्वंयत्रेदमस्त्येवनास्त्येवचमनागपि ॥ १०४ ॥

अर्थ—तथा अंश और अहंकारसे रहित चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं. सबके अन्तःकरणमें स्थित और सबमें अपकारकाभी रूप ॥ १०१ ॥ और अपार चिदाभासों (जीवों) के आरम्भके निमित्त चिदात्मरूपताको प्राप्त और त्रिलोकीमें विद्यमान सब देहरूप मोतियोंकी मालामें महान् सूत्ररूपसे व्याप्त ॥१०२॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिदशाका रचयिता चिदात्मारूपको प्राप्त और बाह्य तथा आभ्यन्तरसे अपने व्याप्त जगत्‌रूप पक्षियोंको अपने स्वरूपके भीतर करके प्रच्छन्न (गुप्त) रीतिसे स्थित ॥ १०३ ॥ और विचित्र महा जंजालके समान चिदात्मारूपको प्राप्त, और अधिष्ठानरूपसे सब जगत्‌का आधार और बाधरूपसे किंचित्‌भी नहीं है ॥ १०४ ॥

सदसद्रूपमेकंतंचिदात्मानमुपागतः ॥ परमप्रत्ययंपूर्णमास्पदंसर्वसंपदाम् ॥ १०५ ॥ सर्वाकारविहारस्थंचिदात्मानमुपागतः ॥ स्नेहाधारमथोऽशांतंजडवाताहतिभ्रमैः ॥ १०६ ॥ युक्तंमुक्तंचचिद्दीपंबहिरंतरुपास्महे ॥ हृत्सरःपद्मिनीकंदंतंतुंसर्वांगसुंदरम् ॥१०७॥ जानताजीवनोपायंचिदात्मानमुपागतः ॥ अक्षीरार्णवसंभूतमशशांकमुपस्थितम् ॥ १०८ ॥

अर्थ—सृष्टिकालमें सबकी सत्ताका निर्वाहक होनेसे सत्‌रूप और प्रलयकालमें सबके लयका अधिष्ठान होनेसे असत्‌रूप, उस एक चिदात्माको मैं प्राप्त हुं; जो कि अत्यन्त विश्वासके योग्य तथा सब सुखलेशोंकी प्रतिष्ठा है ॥ १०५ ॥ उस सब आकारके विहारोंमें स्थित चित् आत्मरूपताको मैं प्राप्त हुं, और उपाधिरहित प्रेमोंका आधार और जडदेह तथा प्राणोंके अभिघातजनित भ्रमोंसे अविनाशी ॥ १०६ ॥ और भ्रांतदृष्टि देह तथा प्राण-आदि सहित तथा तत्वदृष्टिसे सबसे मुक्त चिद्‌रूप द्वीपकी बाहर भीतरसे मैं उपासना करताहुं जो कि हृदयरूप तडागमें कमलिनीके कन्दके (मूलके) समान गुप्त और हस्त पादआदि अंगोंके उत्तम (दृढ) तंतु अर्थात् रज्जुके सदृश आधारभूत ॥ १०७ ॥ जनसमूहके जीवनके उपायभूत जो चिदात्मा है उसकी शरणमें मैं प्राप्त हुं. तथा क्षीर-सागरसे विलक्षण समुद्र (आत्मारूप) से उत्पन्न, और चन्द्रमासे भिन्न पदार्थमें उपस्थित ॥ १०८ ॥

अहार्यममृतंसत्यंचिदात्मानमुपास्महे ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगंधैराभासमागतम् ॥ १०९ ॥ तैरेवरहितंशांतंचिदात्मानमुपागतः ॥ आकाशकोशविशदंसर्वलोकस्यरंजनम् ॥ ११० ॥ नरंजनंनचाकाशंचिदात्मानमुपागतः ॥ महामहिम्नासहितंरहितंसर्वभूतिभिः ॥ कर्तृत्वेवाप्यकर्तारंचिदात्मानमुपागतः ॥१११॥ अखिलमिदमहंममैवसर्वंत्वहमपिनाहमथेतरच्चनाहम्॥ इतिविदितवतोजगत्कृतंमेस्थिरमथवास्तुगतज्वरोभवामि ॥ ११२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू० जीवन्मुक्तनिश्चययोगोपदेशो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—गरुडआदिसेभी हरनेको अशक्य अमृतरूप सत्य चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं. और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्धसे अभिव्यक्तताको प्राप्त अर्थात् इन विषयोंके अनुभवसे अज्ञानीकोभी साक्षीरूपसे प्रकट ॥ १०९ ॥ और यथार्थमें शब्दादिविषयोंसे रहित तथा शांत चिदात्मरूपताको मैं प्राप्त हुं. और आकाशके कोशके तुल्य विशद (विशाल) और सब लोकोंका अपनी व्याप्तिसे अभिव्यंजक ॥ ११० ॥ और यथार्थमें न किसीका अ-भिव्यंजक और न आकाशरूप जो चिदात्मा है उसको मैं प्राप्त हुं. और महामहिमासहित, अद्वैतदृष्टिसे सब ऐश्वर्य्य वा महिमासे रहित, और मायाशबलित जगत्‌का कर्ता होनेपरभी यथार्थमें अकर्ता जो चिदात्मा है उसको मैं प्राप्त हुं ॥ १११ ॥ अभेद अध्यारोपदृष्टिसे सब मैंही हुं, संसर्ग अध्यारोपदृष्टिसे सब कुछ मेरा है, और अपवाददृष्टिसे अहं-ताका आरोपक अहंकारभी मैं नहीं हुं, तथा अन्य देहआदि वस्तु तो सुतरां नहीं हुं, इसप्रकार अध्यारोप और अप-

वाददृष्टिसे तत्वके जाननेसे मेरेको यह जगत् मायामय कृत्रिम हो अथवा स्थिर मेरा आत्माही हो परंतु मैं दोनों-प्रकारसे संतापरहित हुं ॥ ११२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्चयोगोपदेशो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

बाहरसे राग तथा संगरहित और अन्तःकरणसे स्वच्छ आत्माकार प्रकाशमान, गुरुसे कथित जनक आदिकी स्थितिको रामचन्द्रजीने ग्रहण कियाहै यह विषय इस १२ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिश्चयवंतस्तेमहांतोविगतैनसः ॥ सत्याःसत्येपदेशांतेसमेसुखमवस्थिताः ॥ १ ॥ इतिपूर्णधियोधीराःसमनीरागचेतसः ॥ ननिंदंतिननंदंतिजीवितंमरणंतथा ॥ २ ॥ इत्यलक्ष्य चमत्कारानारायणभुजाइव ॥ ऋजवःस्खलिताकाराअपराइवमेरवः ॥ ३ ॥ रेमिरेवनखंडेषुद्वीपेषुनगरेषुच ॥ देवोपवनमालासुस्वर्गेषुचसुराइव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकारके निश्चययुक्त, पापरहित, सत्यशील और महात्मा वे जनकादिक सत्य सम तथा शांत ब्रह्मपदमें सुखपूर्वक स्थितरहे ॥ १ ॥ इसप्रकार बाहरसे पूर्णबुद्धि अर्थात् शोधित त्वंपदार्थवाले तथा सम और रागरहित चित्तवाले जीवन्मुक्त महात्मालोग अपने जीवन वा मरणकी न निंदा करतेथे न स्तुति ॥ २ ॥ और इसप्रकार अलक्ष्य अर्थात् सूक्ष्मतम (ब्रह्मरूप) लक्ष्यके वेधनमें चमत्कारी, इसीसे नारायणकी भुजाओंके समान, और सीधे तथा नम्रस्वभावसहित, तथापि दूसरे मेरुके सदृश गुरु वे महात्मा थे ॥ ३ ॥ और बनोंके खंडोंमें, द्वीपोंमे,नगरोंमें, देवताओंकी उपवनकी मालाओंमें, तथा स्वर्गमें ऐसे रमण करतेथे जैसे देवतालोग॥४॥

प्रेमुःकुसुमपूर्णासुदोलांदोलचलासुच ॥ विचित्रवनलेखासुमेरुशृंगशिखासुच ॥ ५ ॥ चक्रुर्विजितशत्रूणिचामरच्छत्रवंतिच ॥ विचित्रार्थानिराज्यानिचित्राचारमयानिच ॥ ६ ॥ अनुजग्मुरिमान्सर्वान्नानाचारविचेष्टितान् ॥ श्रुतिस्मृत्युदितारंभामितिकर्त्तव्यतामिति ॥ ७ ॥ ईदृशीरमणीयेषुललनाहास्यहारिषु ॥ विहाराहाररम्येषुभोगाभोगेषुभूषिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—और पुष्पोंसे पूर्ण, झूलाओंके आंदोलनसे चलायमान चित्रविचित्र बनकी लेखाओंमें, और मेरुपर्वतकी शिखाओंपर भ्रमण करतेथे ॥ ५ ॥ शत्रुविजयी तथा चमरयुक्त, विचित्र धर्म अर्थ, तथा कामको देनेहारे और विचित्रवर्ण, आश्रमके आचारमय राज्यभी वे जीवन्मुक्त महात्मागण करतेथे ॥ ६ ॥ और अनेकप्रकारके शिष्टाचारोंसे अनुष्ठित धर्मोंको तथा श्रुति स्मृतिके अनुसार सांगोपांग यज्ञ आदिको स्वयं करतेथे ॥ ७ ॥ दृष्ट तथा अदृष्टसाधनोंकी सम्पत्तियोंसे रमणीय, स्त्रियोंके हास्यसे मनोहर, और आहार तथा विहारोंसे सुन्दर भोगोंके समूहोंसे वे जीवन्मुक्त भूषित थे ॥ ८ ॥

विविशुश्चारुचूतासुमंदारवलितासुच ॥ अप्सरोगीतपूर्णासुनंदनोद्यानभूमिषु ॥ ९ ॥ सचराचरभूतेषुविश्रांताखिलजंतुषु ॥ यज्ञक्रियाकलापेषुगार्हस्थ्येषुयथाक्रमम् ॥ १० ॥ तेरुर्हतगजेंद्रासुभ्रांतभूरिशिवासुच ॥ भेरीभांकारभीमासुसंग्रामार्णववीथिषु ॥ ११ ॥ तस्थुःपरुषचित्तासुहृतवित्तोद्धतासुच ॥ संरंभक्षोभरौद्रीषुसर्वासुद्वंद्वरीतिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—और उत्तम आम्रके वृक्षोंसे संयुक्त, मन्दारकी मालाओंसे वेष्टित, और अप्सराओंके मनोहरगीतोंसे पूर्ण नन्दनवनकी उद्यानभूमियोंमें वे लोग प्रवेश करके उसका भोग करतेथे ॥ ९ ॥ चराचर प्राणियोंसे सहित सब भुवनोंमें, सब जीवोंको सुख देनेवाले यज्ञक्रियाके समूहोंमें तथा गार्हस्थ्यधर्म्मोंमेभी यथाक्रम स्थित रहतेथे ॥ १० ॥ जिनमें बडे २ गजेंद्र मारेगयेथे, और अनेक शृगाली शृगाल जिनमें भ्रमण कररहेथे, तथा नगारोंके भांकार शब्दोंसे भयंकर संग्रामरूप समुद्रके मार्गोंकोभी वे महात्मालोग पार करतेथे ॥११॥ जिनसे चित्त तथा शरीरको क्लेश होताथा, ऐसे तथा धनहारी शत्रुओंसे पराजित और क्रोध क्षोभ आदिसे भयंकर सब द्वन्द्वकी रीतियों (विपत्तियों) मेंभी दृढतासे स्थित रहतेथे ॥ १२ ॥

मनस्तेषांतुनीरागमनुपाधिगतभ्रमम् ॥ असक्तंमुक्तमाशांतंपरंसत्वपदंगतम् ॥ १३ ॥ नममज्जुःकचिदपिसंकटेषुमहत्स्वपि ॥ महदप्युपयातेषुकुलशैलाःसरःस्विव ॥ १४ ॥ नोल्लासविलासिन्याश्रिया परमकांतया ॥ परिपूर्णेंदुलक्ष्म्येवजलराशीरघूद्वह ॥ १५ ॥ नमम्लौदुःखशोकेनग्रीष्मेणेववनस्थलम् ॥ जहर्षचनभोगौघैरवश्यायैरिवौषधी ॥ १६ ॥

अर्थ—रागद्वेषरहित, उपाधिके भ्रमसे रहित, असक्त, प्रपंचोंसे मुक्त, अतिशांत, तथा परम सत्यपदको प्राप्त उन जीवन्मुक्तोंका मन ॥ १३ ॥ बडे २ संकटोंमें तथा बडे २ ऐश्वर्य्योंमेंभी हिमालय आदि कुलपर्वतोंके समान नहीं निमग्न होताथा ॥ १४ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जैसे परिपूर्णचन्द्रमाकी शोभासे समुद्र उल्लासको प्राप्त होता है ऐसे उन महात्माओंका मन परमसुन्दर लक्ष्मी वा स्त्रीसे उल्लासको नहीं प्राप्त होताथा ॥ १५ ॥ ग्रीष्मऋतुसे बनके तुल्य उनका मन म्लान नहीं होताथा और ओससे औषधिकेसमान भोगसमूहोंसे प्रसन्नभी नहीं होताथा १६

तेहिकेवलमव्यग्राःकुर्वतःकाममंजरीः ॥ इष्टानिष्टफलंरामनाभिलेषुर्नतत्यजुः ॥ १७ ॥ नोदगुःकार्यसंपत्तावाक्रांतानास्तमाययुः ॥ जहृषुर्नसुखप्राप्तौमम्लुर्नैवचसंकटे ॥ १८ ॥ मुमुहुर्नविमोहेषुनममज्जुर्विपत्क्रमैः ॥ नजहर्षुःशुभैःशोकैरुरुदुर्नभवानिव ॥ १९ ॥ प्राकृताचारसंप्राप्तंकुर्वतःकर्मकेवलम् ॥ स्थिताविगतसंरंभमपराइवमेरवः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! वे तो सदा कर्तृताके अभिमानसेरहित केवल भोगरूप लताओंका अनुभव करतेहुये इष्ट वा अनिष्टफलको न चाहतेथे और न त्याग करतेथे ॥ १७ ॥ शत्रुके जय आदि कार्य्योंकी सिद्धिमें न वे अति उत्कर्षको प्राप्त होतेथे और न शत्रुसे आक्रमण होनेपर अस्त होतेथे. सुखकी प्राप्तिमें प्रसन्न और न संकटमें म्लान होतेथे ॥ १८ ॥ मोहमें मोहको नहीं प्राप्त होतेथे, न विपत्तियोंके आक्रमणोंमें निमग्न होतेथे उत्तमकार्योंसे न प्रसन्न होतेथे और न शोकोंसे तुमारे सदृश रोतेथे ॥ १९ ॥ केवल अपने २ वर्णाश्रमके अनुकूल आचारसे संप्राप्त विषयमें कर्म करतेहुये क्रोधरहित दूसरे मेरुके समान स्थित थे ॥ २० ॥

तांत्वंदृष्टिमवष्टभ्यराघवाघविनाशिनीम् ॥ अनहंकृत्यहंकारोविहरस्वयथाक्रमम् ॥ २१ ॥ यथाभूतामिमामेवपश्यन्सर्गपरंपराम् ॥ मेरुस्थितोऽब्धिगंभीरःसममास्वगतभ्रमः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रंसर्वमेवेदमित्थमाभासतांगतम् ॥ नेहसत्यमसत्यंवाकचिदस्तिनकिंचन ॥ २३ ॥ महत्तामलमालंब्यत्यक्त्वेदमवहेलया ॥ असक्तबुद्धिःसर्वत्रभवभव्यभवक्षयी ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राघव पापको नाश करनेवाली इसी पूर्वोक्तदृष्टिका अवलंबन करके शुद्ध चिन्मात्रमें आत्म बुद्धि करके सुखपूर्वक विहार करो ॥ २१ ॥ यथास्थित इस सृष्टिकी परंपराको देखतेहुये मेरुके समान स्थिर और समुद्रकेसमान गंभीर तथा भ्रमरहित समतापूर्वक स्थितरहो ॥ २२ ॥ यथास्थिति यह है कि यह संपूर्ण जगत् चिन्मात्रही है, इसप्रकार प्रकाशताको प्राप्त है, यहांपर कुछभी पदार्थ सत्य वा असत्य नहीं है किंतु अनिर्वचनीय है ॥ २३ ॥ हे कल्याणरूप रामजी ! ब्रह्मरूपताका अवलंबन करके और इस संसारको अनादरसे त्याग करके सर्वत्र असक्तबुद्धि होके तुम संसारके नाश करनेवाले होओ ॥ २४ ॥

किंरोदिषिघनोद्वेगंमूढवच्चानुशोचसि ॥ भ्रमस्युद्भ्रांतचित्तश्चसौम्यावर्ततृणंयथा ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुभगवन्नूनंसम्यग्जातमलक्षयः ॥ त्वत्प्रसादात्प्रबुद्धोऽस्मिसूर्यसंगादिवांबुजम् ॥ २६ ॥ भ्रांतिरस्तंगतानूनंमिहिकाशरदीवमे ॥ संशांताखिलसंदेहःकरिष्येवचनंतव ॥ २७ ॥ व्यपगतमदमोहोमानमात्सर्यमुक्तश्चिरतरमुदितात्माशांतशोकाश्चिरेण ॥ पुनरसुखमगच्छन्स्वच्छयैकांतबुद्ध्यायदिहवदसिसाधोतत्करिष्येविशंकम् ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू० जीवन्मुक्तसंशयनिरूपणं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सौम्य रामजी ! तुम अधिक त्रासकेसाथ क्यों रोते हो, मूढके तुल्य शोच क्यों करते हो, और आवर्तमें तृणके सदृश भ्रांत चित्त क्यों भ्रमतेहो ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले—अहो हे भगवान् ! मेरे अज्ञानका क्षय निश्चयकरके पूर्णरीतिसे होगया और आपके प्रसाद (अनुग्रह) से मैं ऐसा प्रबुद्ध हुं जैसे सूर्यके संगसे कमल ॥ २६ ॥ शरत्कालमें कुहिरेकेसमान मेरी भ्रांति निश्चयकरके अस्त होगईहै और मेरे सब सन्देह अब शांत होगए, और आपके बचनका मैं पालन करूंगा ॥ २७ ॥ मदमोहसे रहित, मान तथा मात्सर्य्य (डाह) से मुक्त और

चिरकालसे शान्तशोक मैं पुनः दुःखको न प्राप्त होताहुआ आप जो कुछ कहतेहो हे साधो! उसे एकांतबुद्धिसे शंकारहित होके करूंगा ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे जीवन्मुक्तसंशयनिरूपणं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

पूर्वप्रसंगमें बासनाके क्षयका क्रम तत्वज्ञानसे कहा है और इस १३ के सर्ग में प्राणके निरोधसे बासनाका क्षय कहनेको भूमिका रचतेहैं ॥

श्रीरामउवाच ॥ सम्यग्ज्ञानविलासेनवासनाविलयोदये ॥ जीवन्मुक्तपदेब्रह्मन्नूनंविश्रांतवानहम् ॥१॥ प्राणस्पंदनिरोधेनवासनाविलयोदये ॥ जीवन्मुक्तपदेब्रह्मन्वदविश्रम्यतेकथम् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच संसारोत्तरणेयुक्तिर्योगशब्देनकथ्यते ॥ तांविद्धिद्विप्रकारांत्वंचित्तोपशमधर्मिणीम् ॥३॥आत्मज्ञानंप्रकारोस्याएकःप्रकटितोभुवि ॥ द्वितीयःप्राणसंरोधःशृणुयोयंमयोच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन्! यथार्थ ज्ञानके बिलाससे बासनाका क्षय उदय होनेसे जीवन्मुक्तके पद-में निश्चयरूपसे मैंने विश्रांति पाया ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! प्राणकी गतिके निरोधसे बासनाका क्षय उदय होनेपर जीवन्मुक्तके पदमें जीव कैसे विश्राम पाताहै सो कृपाकरके कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिजष्ठी बोले–हे रामजी संसारके पार उतरनेमे जो युक्ति है उसको योगशब्दसे कहतेहै सो चित्तको उपशमन धर्मवाली उस युक्तिको तुम दो प्रकारकी जानो ॥ ३ ॥ इस युक्तिका एक प्रकार तो संसारमें प्रसिद्ध आत्मज्ञान है और दुसरा प्राणका निरोध है जिसको मैं कहता हुं तुम सुनो ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ सुलभत्वाददुःखत्वात्कतरःशोभनोनयोः ॥ येनावगतमात्रेणभूयःक्षोभोनबाधते ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रकारौद्वावपिप्रोक्तौयोगशब्देनयद्यपि ॥ ॥ तथापिरूढिमायातःप्राणयुक्तावसौभृशम् ॥ ६ ॥ एकोयोगस्तथाज्ञानंसंसारोत्तरणक्रमे ॥ समावुपायौद्वावेवप्रोक्तावेकफलप्रदौ ॥ ७ ॥ असाध्यःकस्यचिद्योगःकस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः ॥ ममत्वभिमतःसाधोसुसाध्योज्ञाननिश्चयः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–सुलभता तथा दुःखकी रहिततासे इन दोनों भेदोंमेंसे उत्तम कौन है जिसके ज्ञानमात्रसे पुनः क्षोभ (विक्षेप) न हो ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ये दोनोंप्रकार यद्यपि योगशब्दसे शास्त्रमें कहेगयेहैं तथापि प्राणके निरोधरूप युक्तिमें यह (योगशब्द) अधिक रूढ है ॥ ६ ॥ संसारसे पार उतरनेमें यह एक योग (प्राणनिरोध) दूसरा ज्ञान ये दोनो उपाय समान और एक फलप्रद कहेगयेहैं ॥ ७ ॥ किसी (क्लेश सहनेमें असमर्थ) को योग असाध्य है और किसी (मन्दबुद्धि) को ज्ञानका निश्चय, और विचारमें कुशल मुझे तो ज्ञानका निश्चय सुसाध्य है ॥ ८ ॥

अज्ञानंपुनरज्ञातंस्वप्नेष्वपिनतद्भवेत् ॥ ज्ञानंसर्वास्ववस्थासुनित्यमेवप्रवर्तते ॥ ९ ॥ धारणासनदेशादि साध्यत्वेनसुसाध्यताम् ॥ नायातियोगोह्यथवाविकल्पोनैवशोभनः ॥ १० ॥ द्वावेवकिलशास्त्रोक्तौज्ञान योगौरघूद्वह ॥ तत्रोक्तंभवतेज्ञानमंतस्थंज्ञेयनिर्मलम् ॥ ११ ॥ प्राणापानतयारूढोदृढदेहगुहाशयः ॥ अनंतसिद्धिदःसाधोयोगोयंबुद्धिदःशृणु ॥ १२ ॥ मुखानिलस्फुरणनिरोधसंभवस्थितिंगतोनृपसुतचेतसा क्षये ॥ समाहितस्थितिरिहयोगयुक्तितःपरेपदेप्रगलितगीर्निवत्स्यसि ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू० ज्ञानविचारयोगोपदेशोनाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—और अज्ञानका अज्ञात रहना स्वप्नमेंभी नहीं सम्भव है क्योंकि साक्षीचेतन सदा अज्ञानका अनुभव करताहै और ज्ञान तो स्वप्रकाश होनेसे सब अवस्थाओंमें प्रवृत्त होता है इसलिये ज्ञाननिश्चय सुसाध्य है और योग दुःसाध्य है ॥ ९ ॥ पर्वत चन्द्रकंठादिदेशमें चित्त बंधरूप धारण तथा पवित्र देशादिमें आसन आदि साध्य होनेसे योग सुसाध्य नहीं होसकता, अथवा निरुत्साह और मन्दमतियोंके सदृश धीर तथा उद्योगी अधिकारीके लिये शास्त्रसिद्ध उपायोंमें यह सुसाध्य है यह कष्टसाध्य है, यह विकल्प उत्तम नहीं है, और न करना चाहिये ॥ १० ॥ हे, रामजी! योग और ज्ञान दोनों उपाय शास्त्रमें कहेगये हैं उनमेंसे आभ्यन्तरमें स्थित आत्मारूप ज्ञेय जिससे निर्मल

क्षीत होताहै वह तो मैंने तुमसे कहा ॥ ११ ॥ और हे साधो ! प्राण अपानकी समतासम्पत्तिरूपसे प्रसिद्ध दृढ देहरूप गुहामें स्थित तथा आकाशचारिता, मनोरथोंकी पूर्ति और मोक्षार्थियोंको सुबुद्धि आदि अनन्त सिद्धिको देनेवाले इस प्राणनिरोधरूप योगको तुम सुनो ॥ १२ ॥ हे राजपुत्र रामजी ! उद्योगी चित्तसे प्राणकी गतिके निरोधसे सिद्ध होनेवाली स्थितिको प्राप्त होके चित्तकी वृत्तियोंके निरोधके अभ्यासरूप युक्तिसे समाहितचित्त होके इस साक्षीरूप अक्षय परमपदमें वाणी तथा मनसे अगोचर तुम स्थित होओगे ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानविचारयोगोपदेशो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

वेदांत आदि उत्तम कथाओंके सुननेवाले भुशुंडके देखनेकी इच्छासे वसिष्ठका मेरुपर्वतपर गमन तथा मेरु और उसके शिखरका वर्णन इस १४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्तितावदनंतस्यतस्यक्वचिदयंकिल ॥ जगद्रूपःपरिस्पंदोमृगतृष्णामराविव ॥१॥ तत्रकारणतांयातोब्रह्माकमलसंभवः ॥ स्थितःपितामहत्वेनसृष्टभूतभरभ्रमः ॥ २ ॥ तस्याहंमानसः पुत्रोवसिष्ठःश्रेष्ठचेष्टितः ॥ ऋक्षचक्रेध्रुवधृतेनिवसामियुगंप्रति ॥ ३ ॥ सोहंकदाचिदास्थानेस्वर्गेति ष्ठञ्छतक्रतोः ॥ श्रुतवान्नारदादिभ्यःकथांसुचिरजीविनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! उस अनंत चिदात्माका परिस्पंद यह जगत् किसी कोणमें ऐसे है जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णा ॥ १ ॥ वहांपर कमलसे उत्पन्न, प्राणीयोंके समूहरूप भ्रमके स्रष्टा पितामहरूपसे स्थित ब्रह्मा उसके कारणताको प्राप्त हुयेहैं ॥ २ ॥ श्रेष्ठ चेष्टायुक्त वसिष्ठ नामसे प्रसिद्ध उस ब्रह्माका मैं मानस पुत्र हुं और ध्रुवसे धारण कियेहुये सप्तर्षिमंडलमें मन्वंतरतक मैं निवास करताहुं ॥ ३ ॥ सो मैं किसीसमय स्वर्गमें इन्द्रकी सभामें बैठाहुआ नारदआदि ऋषियोंसे चिरजीवियोंकी कथाको सुना ॥ ४ ॥

कथाप्रसंगेकस्मिंश्चिदथतत्राभ्युवाचह ॥ शातातपोनाममुनिर्मौनीमानीमहामतिः ॥ ५ ॥ मेरोरीशान कोणस्थेपद्मरागमयेदिवि ॥ अस्तिकल्पतरुःश्रीमाञ्छृंगेचूतइतिश्रुतः ॥ ६ ॥ तस्यकल्पतरोर्मूर्ध्निदक्षि णस्कंधकोटरे ॥ कलधौतलताप्रोतेविद्यानेविहगालयः ॥ ७ ॥ तस्मिन्निवसतिश्रीमान्भुशुंडोनामवा यसः ॥ वीतरागोबृहत्कोशेब्रह्मेवनिजपंकजे ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर उस कथाके प्रसंगमें मौनव्रतधारी मानके योग्य और महाबुद्धिमान् शातातप नाम मुनि बोला कि ॥ ५ ॥ मेरुके ईशानकोणमें स्थित पद्मरागमय शिखरपर शोभायमान चूत (आम्रविशेष) कल्पवृक्ष है ॥ ६ ॥ उस कल्पवृक्षके ऊपर दक्षिण स्कंधके सुवर्ण और रूप्यकी लतासे ग्रथित कोटरमें एक पक्षियोंका स्थान है ॥७॥ उस महान् निवासस्थानमें वीतराग श्रीमान् भुशुंड नाम वायस (काक) ऐसा रहताहै जैसा कमलके महान् कोशमें ब्रह्मा ॥ ८ ॥

सयथाजगतांकोशेजीवतीहसुराश्चिरम् ॥ चिरंजीवीतथास्वर्गेनभूतोनभविष्यति ॥ ९ ॥ सदीर्घायुःस नीरागःसश्रीमान्समहामतिः ॥ सविश्रांतमतिःशांतःसकांतःकालकोविदः ॥ १० ॥ सयथाजीवति खगस्तथेहयदिजीव्यते ॥ तद्भवेज्जीवितंपुण्यंदीर्घंचोदयमेवच ॥ ११ ॥ इतितेनभुशुंडोसौभूयःपृष्टेनव र्णितः ॥ यथावद्देवदेवानांसभायांसत्यमुक्तवान् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे देवगण ! वह जगत्के कोशमें इतने दीर्घकालतक जीताहै ऐसा स्वर्गमेंभी न कोई है, था, न होगा ॥ ९ ॥ वह भुशुंड दीर्घायु, रागरहित, श्रीमान्, महामति, विश्रांतबुद्धि, सुंदर और त्रिकालज्ञ है ॥ १० ॥ वह पक्षी जैसे जीता है यदि वैसाही प्राणी जीवै तो जीवन साधनदशामें और फलदशामें परमपुरुषार्थरूप अभ्युदययुक्त होताहै ॥ ११ ॥ इसप्रकार पुनः प्रश्न करनेपर पुनः देवोंकी सभामें सत्य २ यथार्थ भुशुंडको वर्णन किया ॥ १२ ॥

कथावसरसंशातावथयातेसुरव्रजे ॥ भुशुंडंविहगंद्रष्टुमहंयातःकुतूहलात् ॥ १३ ॥ भुशुंडःसंस्थितोयत्र मेरोःशृंगंतदुत्तमम् ॥ संप्राप्तवान्क्षणेनाहंपद्मरागमयंबृहत् ॥ १४ ॥ रत्नगैरिककांतेनतेजसावह्निवर्चसा ॥ मध्वासवरसेनेवरंजयत्ककुभांगणम् ॥ १५ ॥ कल्पांतज्वलनोज्ज्वालापिंडाद्रिमिवसंचितम् ॥ इंद्रनील शिखाधूममालोकारुणितांबरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कथाके अवसरके शांत होनेपर और देवताओंके चलेजानेपर कुतूहलसे मैं भुशुंडपक्षीको देखनेके अर्थ गया ॥ १३ ॥ जहांपर भुशुंड स्थित था वह उस उत्तम महत् और पद्मरागमय मेरुके शिखरपर मैं प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ रत्नोंसे तथा गेरुमय धातुओंसे रमणीय अग्निके समान तेजसे दिशाओंके गणको ऐसे रंजित कररहाथा जैसें मद्यके मदसे ॥ १५ ॥ प्रलयकी अग्निसे निकली हुई ज्वालाओंका संचित पिंडरूप पर्वत, अतएव इन्द्रनीलकी शिखाके सदृश कांति (प्रभा)से पूर्ण और अपने प्रकाशसे आभ्रके अंतरालकोभी अरुण करनेवाला वह शिखर था १६

सर्वेषामेवरागाणांराशिमद्राविवस्थितम् ॥ सर्वसंध्याभ्रजालानांघनमेकमिवाकरम् ॥ १७ ॥ उत्क्रांतिं कुर्वतोमेरोर्ब्रह्मनाड्येवनिर्गतम् ॥ मूर्धानमागतंकांतंवाडवंजठरानलम् ॥ १८ ॥ सुमेरुवनदेव्येवनवालककरंजितम् ॥ लीलयादातुमिंदुंखेनीतंहस्तशिखांगुलिम् ॥ १९ ॥ ज्वालाभिरिवमालाभिररुणाभिःपयोमुखम् ॥ खंगंतुमिवसस्पंदंशैलस्थमिववाडवम् ॥ २० ॥

अर्थ—सब रागों (लोहित रंगों वा स्नेहों) की एक राशिके तुल्य पर्वतपर स्थित और संध्याकालके सम्पूर्ण मेघजालोंके घनीभूत एक आकर (खानि) के समान स्थित ॥ १७ ॥ और सुषुम्नानाडीसे ब्रह्मरन्ध्रको भेदन करके गमन करतेहुये मेरुके जठरसे निःसृत शिरोभागमें आके वडवानलके सदृश जठराग्निके तुल्य स्थित वह शिखरथा ॥ १८ ॥ और उसकी लताओंसे यह भान होताथा कि मानो सुमेरुकी वनदेवीने क्रीडाके अर्थ चन्द्रमाको ग्रहण करनेके लिये महावरसे रंजित अपने हस्तकी शिखाके अंगुलीसमूहको फैलायाहै ॥ १९ ॥ मालाओंके सदृश गुथीहुई ज्वालाओंसे व्याप्त, आकाशको जानेके लिये पर्वतपर आरूढ यज्ञके अग्निके तुल्य स्थित वह शिखर था ॥ २० ॥

ताराःस्प्रष्टुमिवाकाशमंगुलीभिरिवत्रिभिः ॥ कचदंशुनखाग्राभिःपरिचुंबदिवोन्नतम् ॥ २१ ॥ गर्जज्जीमूतमुरजंभूभृतानांतुमंडपम् ॥ हसत्कुसुमगुच्छाढ्यंध्वनत्षटपदपेटकम् ॥ २२ ॥ दंततालदलावल्लयापरिहासादिवस्फुरत् ॥ दोलालोलाप्सरोवृंदसुदारमदमन्मथम् ॥ २३ ॥ शिलाविश्रांतविबुधमिथुनाश्रितकंदरम् ॥ वरांबराजिनंशुभ्रगंगायज्ञोपवीतिच ॥ २४ ॥

अर्थ—शोभित रत्नोंकी किरणरूप नखोंके अग्रभागसे शोभित तीनों अंगुलीसे अश्विनी आदि तारागणके स्पर्श करनेको आकाशमें व्याप्त होके उन्नतरूपसे स्थित ॥ २१ ॥ गर्जतेहुये मेघरुप मृदंग जिसमें बजरहे हैं ऐसे तथा खिलतेहुये पुष्पोंके गुच्छोंसे पूर्ण, और भ्रमरके समूह जिसमें गूंजरहे हैं ऐसे बनदेवीयोंके नृत्यमंडपके समान स्थित वह शिखरथा ॥ २२ ॥ दातोंकी पंक्तिके सदृश विकसित तालपत्रोंकी पंक्तिसें परिहासके समान स्फुरित, दोलो(झूलों) पर चंचल अप्सराओंके समूहसे व्याप्त तथा अतिप्रबल मन्मथ और मदयुक्त प्राणियोंसे पूर्ण वह शिखरथा ॥ २३ ॥ उसकी शिलाओंपर देवतालोग बिश्राम कररहेथे, उसके मिथुन (स्त्रीपुरुषके जोडे) ने कंदराओंका आश्रय लियाथा, तथा श्रेष्ठ आकाशरूप मृगचर्मसे भूषित ॥ २४ ॥

तापसंपिंगलमिववेणुदंडधरंस्थितम् ॥ गंगानिर्झरनिर्ह्रादिलतागृहगतामरम् ॥ २५ ॥ गंधर्वगीतसुभगमामोदमधुरानिलम् ॥ फुल्लहेमांबुजोत्तंसंताराखविभूषितम् ॥ २६ ॥ व्योम्नःपारमिवप्राप्तंपिंगलंमेरवंशिरः ॥ २७ ॥ सितहरितपीतपाटलधवलैर्वनकुसुमराशिनवरंगैः ॥ दिविविहितामलचित्रंलीलाचलममरयुवतिवर्गस्य ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू० भुशुंडोपाख्याने मेरुशिखरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—बांसके दंड धारण कियेहुये पिंगल तपस्वीके समान स्थित, और गंगाजीके झरनोंसे शब्दित लतागृहोंमें देवताओंके समूह प्राप्त ॥ २५ ॥ गंधर्वोंके गीतोंसे सुभग, मन्द, शीतल तथा सुगन्धवायुसे युक्त, विकसित सुवर्णके कमलके शिरोभूषणसहित, और तारागणरूप रत्नोंसे भूषित ॥२६॥ और आकाशके ऊपरके पार अवधिको देखनेको मेरुके पिंगल शिरके समान स्थित ॥ २७ ॥ श्वेत, हरित, पीत, रक्तवर्ण बनके पुष्पकी राशिरूप नूतनद्रव्योंसे आकाशमें निर्मल चित्रमें लिखित देवताओंकी स्त्रियोंके क्रीडा पर्वतके समान स्थित उस मेरुके समान स्थित शिखरपर मैं प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भुशुंडोपाख्याने मेरुशिखर वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

उस शिखरपर कल्पवृक्ष चूतपुष्प तथा भक्ष्यपदार्थोंकी सम्पत्ति, उसके कोटरमें काकोंके कुल और भुशुंडका वर्णन इस १५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुसुमापूर्णकल्पाभ्रकुंतलेतस्यमूर्द्धनि ॥ ॥ कल्पांगमहमद्राक्षंशाखाचक्रमिवस्थितम् ॥ १ ॥ पुष्परेण्वभ्रवलितंरत्नस्तबकदंतुरम् ॥ उत्सेधनिर्जिताकाशंशृंगेशृंगमिवार्पितम् ॥ २ ॥ ताराद्विगुणपुष्पौघंमेघद्विगुणपल्लवम् ॥ रश्मिद्विगुणरेण्वभ्रंतडिद्द्विगुणमंजरीम् ॥ ३ ॥ स्कंधेषुकिंन्नरीगीतद्विगुणभ्रमरस्वनम् ॥ दोलालोलाप्सरोलोकद्विगुणीकृतपल्लवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे पूर्ण कल्प (प्रलय) कालके मेघके समान शोभित उस शिखरके शिरोदेशमें प्राणियोंके मनोरथ पूरक होनेसे कल्पवृक्षके समान अंगयुक्त और चारोओरसे पूर्णरीतिसे फैलनेसे शाखाचक्रके समान स्थित अम्रवृक्षको मैंने देखा ॥ १ ॥ पुष्पोंकी रेणुरूप मेघोंसे व्याप्त, उंचाईसे आकाशकोभी जीतनेवाला और पूर्व-वर्णित शृंगमें मानो अन्यशृंगके समान आर्पित ॥ २ ॥ तारागणोंसे पुष्पके समूहसहित मेघोंसे द्विगुणित पल्लवसंयुक्त किरणोंसे द्विगुण मेघसंयुक्त तथा विद्युत्से द्विगुण लतासहित वृक्षको मैंने देखा ॥ ३ ॥ शाखादेशोंमें किन्नरियोंके गीतोंसे द्विगुण भ्रमरोंके शब्दसहित, और झूलाओंमें चंचल अप्सराओंके ओष्ठ, हस्त, तथा पदरूप पल्लवोंसे द्विगुण पल्लवसहित ॥ ४ ॥

सिद्धगंधर्वसंघातद्विगुणोत्थविहंगमम् ॥ रत्नकांत्यच्छनीहारद्विगुणत्वग्वृतांशुकम् ॥ ५ ॥ चंद्रबिंबसमाश्लेषद्विगुणांगबृहत्फलम् ॥ मूलसंलीनकल्पाभ्रद्विगुणीकृतपर्वकम् ॥ ६ ॥ सुरसंवलितस्कंधंपत्रविश्रांतकिन्नरम् ॥ निकुंजकुंजजीमूतंकच्छसुप्तसुरादिकम् ॥ ७ ॥ स्वाकारविपुलंभृंगानुत्सार्यवलयस्वनैः॥ अप्सरोभ्रमरीभिश्चगृहीतकुसुमांतरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सिद्ध, गंधर्व, और किन्नरोंके समूहोंसे दूने पक्षियोंसहित, और रत्नोंकी किरणोंसे स्वच्छ नीहारके सदृश द्विगुणित त्वचासे मानों ऊपरका वस्त्र धारणकिये स्थित आम्रवृक्षको मैंने देखा ॥ ५ ॥ और चन्द्रबिंबके आलिंगनसे अमृतरससे पूर्ण द्विगुण आकारके महान फलसंयुक्त, और मूलदेशमें प्रलयकालके मेघको छिपानेसे द्विगुण किये पर्वसंयुक्त वृक्षको देखा ॥ ६ ॥ स्कन्धदेशमें देवताओंसे व्याप्त, पत्रदेशमें किन्नरोंसे शोभित, लतादेशमें मेघसहित और पत्रोंके तटपर देवता आदिसे पुर्णवृक्षको मैंने देखा ॥ ७ ॥ कडोंके शब्दोंसे मनोहर अप्सरारूप भ्रमरियोंसे भ्रमरोंके हटाके पुष्पोंके रसपानसे अपने आकारसे द्विगुण ॥ ८ ॥

सुरकिंनरगंधर्वविद्याधरवरान्वितम् ॥ जगज्जालमिवानंतंदशाशाकाशपूरकम् ॥ ९ ॥ नीरंध्रकलिकाजालंनीरंध्रमृदुपल्लवम् ॥ नीरंध्रविकसत्पुष्पंनीरंध्रवनमालितम् ॥ १० ॥ नीरंध्रमंजरीपुंजंनीरंध्रमणिगुच्छकम् ॥ नीरंध्रांशुकरत्नाढ्यंलताविलसनाकुलम् ॥ ११ ॥ सर्वत्रकुसुमापूरैःसर्वत्रफलपल्लवैः ॥ सर्वामोदरजःपुंजैःपरंवैचित्र्यमागतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रेष्ठ देवता, किन्नर, गंधर्व और विद्याधरोंसे संयुक्त, और अनन्त ब्रह्मांडसमूहके समान दशो दिशा तथा आकाशको पूर्ण करनेवाला ॥ ९ ॥ घनीभूत कलिका तथा कोमल पल्लव और विकसित पुष्पोंसहित, तथा बनकी मालाओंसे वेष्टित ॥ १० ॥ और घनीभूत लताओंके पुंज तथा मणियोंके समान पुष्पोंके गुच्छोंसहित और अनेक दिव्यवस्त्र तथा रत्नोंसे पूर्ण और लताओंके नृत्योंसे व्याप्त ॥ ११ ॥ और सर्वत्र पुष्पोंके प्रवाहोंसे फलपत्रोंसे और सर्वप्रकारके सौगंध्य तथा पुष्पोंके परागोंसे अतिविचित्रताको प्राप्त उस चूत (आम्र) के वृक्षको मैंने देखा ॥ १२ ॥

तस्यकक्षेषुकुंजेषुलतापत्रेषुपर्वसु ॥ पुष्पेष्वालयसंलीनान्विहगान्दृष्टवानहम् ॥ १३ ॥ निशानाथकलाखंडमृणालशकलैधितान् ॥ अर्जुनांभोजिनीकंदकवलान्ब्रह्मसारसान् ॥ १४ ॥ विरिंचेरथहंसानांपोतकान्सामगायिनः ॥ ॐकारवेदसुहृदोब्रह्मविद्यानुशासनान् ॥ १५ ॥ उद्गीर्णमंत्रनिचयान्स्वाहाकारनिभस्वनान् ॥ अस्थिनैकतडित्पुंजनीलमेघसमोपमान् ॥ १६ ॥

अर्थ—उस वृक्षकी शाखाकी संधियोंमें, लतासे वेष्टित शाखाओंके अग्रभागोंमें, पर्वोंमें, और पुष्पोंमें, अपनेर घोसलो (खुंथो) में छिपेहुये पक्षियोंको मैंने देखा ॥ १३ ॥ कमलके दंडोंके खंडके सदृश चंद्रमाके खंडसे वर्द्धित और श्वेतकमलिनीके कंदको ग्रास करनेवाले ब्रह्माके बाहनभूत हंसोंको मैंने देखा ॥ १४ ॥ और इसके पश्चात् ब्रह्माके हंसोंके शिशु (बच्चे) जो सामको गानेवाले थे उनको मैंने देखा, तथा ओंकार तथा रहस्यको जाननेसे मित्र-

रूप और गुरुमुखसे परअपर ब्रह्मविद्याके वेत्ताओंकोभी देखा ॥ १५ ॥ और मंत्रोंके समूहोंको पढनेवाले, स्वाहाकारके समान शब्दकारी, वर्णमें शंखके सदृश अनेक विद्युत्पुंज तथा नीलमेघोंके सदृश ॥ १६ ॥

देवैर्निरीक्षितान्नित्यंयज्ञवेदिलतादलान् ॥ शुकान्कार्शानवाञ्छ्यामाञ्छिशूञ्छिखिशिखाशिखान् ॥१७॥ गौरीरक्षितबर्हौघान्कौमारान्वरबर्हिणः ॥ स्कंदोपन्यस्तनिःशेषशैवविज्ञानकोविदान् ॥ १८ ॥ व्योम्नैव जातनष्टानांमहतांव्योमपक्षिणाम् ॥ बंधूनाबद्धनिलयाञ्छरदभ्रसमाकृतीन् ॥ १९ ॥ विरंचिहंसजानन्यानन्यानग्निशुकोद्भवान् ॥ कौमारबर्हिजानन्यानन्यानंबरपक्षिजान् ॥ २० ॥

अर्थ—देवताओंसे नित्यदृष्ट, यज्ञकी वेदियोंमें बिछेहुये कुशोंके सदृश हरितवर्ण, और अग्निवाहनभूत शुकों (तोतों) को मैंने देखा, तथा अग्निके सदृश प्रकाशमान शिखाधारी ॥ १७ ॥ पार्वतीजीसे रक्षित पंखसमूहसे शोभित कुमार (स्वामिकार्तिक सम्बंधी) श्रेष्ठपरवाले, स्कंदपुराणमेंभी प्रावीण, संपूर्ण शैवमतके ज्ञानमें पारंगत मोरोंके बच्चोंको देखा ॥ १८ ॥ आकाशमेंही उत्पन्न और आकाशमेंही नष्ट बडे २ पक्षियोंके क्रीडामें सहायक होनेसे बंधुरूप, उसी आमके वृक्षमें खुंथा बनाये और शरत्कालके मेघके समान आकारवाले अन्य पक्षियोंकोभी मैंने देखा ॥ १९ ॥ ब्रह्माके हंसोंसे उत्पन्न अन्य पक्षियोंको, और अग्निके वाहन शुकसे, कुमारके वाहन मोरसे तथा अन्य श्रेष्ठपक्षियोंसे उत्पन्न अन्य २ पक्षियोंको मैंने देखा ॥ २० ॥

द्वितुंडांश्चभरद्वाजान्हेमचूडान्विहंगमान् ॥ कलविंकबलान्गृध्रान्कोकिलान्क्रौंचकुक्कुटान् ॥ २१ ॥ भासच षबलाक दीन्बहूनन्यांश्चराघव ॥ भूतौघंजगतीवाहंदृष्टवांस्तत्रपक्षिणः ॥ २२ ॥ दक्षिणस्कंधशाखायांस्थितायांविदवीयसि ॥ अथाहंदृष्टवान्पुष्टपत्रायामंबरस्थितः ॥ २३ ॥ कालेकाकोलवलयंमंजरीजालमालितम् ॥ लोकालोकाचलेरण्येकल्पाभ्रौघमिवस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और दो चोंचवाले भरद्वाज नाम पक्षियोंको, सुवर्णकी शिखायुक्त पक्षियोंको, कलविंकोंको, गृध्रोंको, कोकिलोंको, और क्रौंच तथा कुक्कुटोंकोभी मैंने देखा ॥ २१ ॥ हे रामजी ! भास, चषक, और बलाकाआदि अन्य पक्षियोंको तथा जगत्में जैसे समूह देख पडते हैं इसीप्रकार उस वृक्षपर मैंने अनंत पक्षियोंको देखा ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् पुष्टपत्रवाली दूर दक्षिणदेशमें स्थित शाखापर आकाशमें (अति ऊंचे) स्थित मैंने दक्षिणशाखाके दर्शनके पश्चात्कालमें लोकालोकपर्वतके जंगल कल्प (प्रलय) के मेघके समूहके तुल्य स्थित तथा लताके जालसे वेष्टित द्रोणनाम काकोंका मंडल देखा ॥ २३ ॥ २४ ॥

तत्रपश्याम्यहंयावदेकांतेस्कंधकोटरे ॥ विचित्रकुसुमास्तीर्णेविविधामोदशालिनि ॥ २५ ॥ पुण्यकृद्योषितांस्वर्गेप्रियस्तबकवासिताः ॥ अपरिक्षुभिताकाराःसभायांवायसाःस्थिताः ॥ २६ ॥ विभेद्यमेघावातेनसमेनेवापसारिताः ॥ तेषांमध्येस्थितःश्रीमान्भुशुंडःप्रोन्नताकृतिः ॥ २७ ॥ मध्येचकाचखंडानामिंद्रनीलइवोन्नतः ॥ परिपूर्णमनामानीसमःसर्वांगसुंदरः ॥ २८ ॥

अर्थ—वहांपर जबतक मैं दृष्टिपात करताहुं, इतनेहीमें चित्रविचित्र पुष्प जहां बिछे हैं ऐसे और अनेकप्रकारके सुगंधसे शोभित ॥ २५ ॥ तथा पुण्यात्माजनोंके भोग्य अप्सराओंके रतिसुख भोगनेके योग्य शाखाके एकांत कोटरमें प्रिय पुष्पकें गुच्छोंसे सुगंधित और शांताकार धारण कियेहुये काकसभामें स्थित ॥ २६ ॥ और उन काकोंके मध्यमें अति उच्चआकारधारी तथा शोभायुक्त काकभुशुंडको देखा ॥ २७ ॥ और आत्मज्ञानसे परिपूर्णचित्त, मानके योग्य, समदर्शी, और सर्वांगसुंदर काकभुशुंडजी उन काकोंके मध्यमें ऐसे स्थित थे जैसे कांचके टुकडोंके बीचमें महान् इन्द्रनीलमणि ॥ २८ ॥

प्राणस्पंदावधानेननित्यमंतर्मुखःसुखी ॥ चिरंजीवीतिविख्यातश्चिरजीवितयातया ॥ २९ ॥ जगद्विदितदीर्घायुर्भुशुंडइतिविश्रुतः ॥ युगागमापायदशादर्शनप्रौढमानसः ॥ ३० ॥ प्रतिकल्पंचगणयन्खिन्नश्चक्रपरंपराम् ॥ जन्मनांलोकपालानांशर्वशक्रमरुत्वताम् ॥ ३१ ॥ संस्मर्तासमतीतानांसुरासुरमहीभृताम् ॥ प्रसन्नगंभीरमनाःपेशलःस्निग्धमुग्धवाक् ॥ ३२ ॥ अव्यक्तव्यक्ताविज्ञातानिर्ममोनिरहंकृतिः ॥ सुहृद्बंधुस्तथामित्रंमृत्युपुत्रोगुरुप्रभुः ॥ सर्वदासर्वथासत्यंसर्वसर्वस्यसंस्तवे ॥ ३३ ॥ सौम्यःप्रसन्नमधुरोरसवान्महात्माहृद्यःसरोवरइवांतरखंडशैत्यः ॥ हृत्पुंडरीककुहरंव्यवहारवेत्तागांभीर्यमच्छमजहृत्प्रकटाशयश्रीः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धेभुशुंडोपाख्यानेभुशुंडदर्शनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—पुनः प्राणोंके निरोधसे नित्य अंतर्मुख वृत्तिसहित, सुखी, और उस प्रसिद्ध चिरजीवितासे चिरजीवी करके प्रसिद्ध ॥ २९ ॥ जगत्में दीर्घायु करके विदित, योगोंके आगमन और नाशके दर्शन प्रबल मुनि भुशुंड नामसे विख्यात ॥ ३० ॥ प्रतिकल्पमें लोकपालोंके, रुद्रोंके, इन्द्रों और अग्निआदिके जन्मोंकी चक्रपरंपराओंको गिननेसे विरक्तताको प्राप्त ॥३१॥ भूतकालके देवता, असुर तथा राजाओंका स्मरणकर्ता, प्रसन्न तथा गंभीरमन, चतुर, स्निग्ध तथा मधुरभाषी ॥ ३२ ॥ सूक्ष्मतमपदार्थोंका स्पष्टवक्ता, ज्ञानी, ममता तथा अहंकारसेरहित, सब प्राणीयोंके सुहृद्बंधु तथा मित्र, मृत्युके प्रियपुत्र (अवध्य) बुद्धिमें बृहस्पतिकेभी स्वामी, और सर्वदा सबप्रकारसे प्राणीमात्रके सबप्रकारके आरोपक सत्यअधिष्ठान होनेसे सबके वर्णनके प्रसंगमें सबको संमत वह भुशुंड था ॥ ३३ ॥ और पुनः सौम्य, प्रसन्न (स्वच्छ) ब्रह्मरसयुक्त, महात्मा, मनोहर, सरोवरके तुल्य अखंड शीततायुक्त, हृदयकमलका हार्दाकाशरूप, सब व्यवहारोंका ज्ञाता, गांभीर्य्य तथा स्वच्छताको कदापि न त्यागतेहुये और अतिनिर्मल होनेसे प्रकटित अंतःकरणको शोभायुक्त वह काक भुशुंड था ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भुशुंडोपाख्याने भुशुंडदर्शनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

भुशुंडके संमुख प्राप्त और आसनआदिसे पूजित वसिष्ठने भुशुंडके जन्मकर्मआदिके विषयमें प्रश्न किया है उनका वर्णन इस १६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथतस्याहमपतंदीप्यमानवपुःपुरः ॥ किंचिद्विक्षोभितसभःखान्नक्षत्रमिवाचले ॥ १ ॥ चुक्षोभवायसास्थानंनीलोत्पलसरःसमम् ॥ मत्पातमंदवातेनभूकंपेनेवसागरः ॥ २ ॥ अशंकितमपिप्राप्तंदर्शनान्मामनंतरम् ॥ भुशुंडस्तुवसिष्ठोयंप्राप्तइत्यवबुद्धवान् ॥३॥ पत्रपुंजात्समुत्तस्थौ मेघशावइवाचलात् ॥ हेमुनेस्वागतमितिप्रोवाचमधुराक्षरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके पश्चात् प्रकाशमान शरीर तथा सभाको कुछ विक्षोभित करनेवाला मैं उस भुशुंडके संमुख आकाशसे ऐसे गिरा जैसे पर्वतपर नक्षत्र ॥ १ ॥ मेरे पतनरूप मंदवायुसे नीलकमलसंयुक्त तडागके तुल्य काकोंकी सभा ऐसे हिलगई जैसे भूकंपसे समुद्र ॥ २ ॥ असंभावित मेरे प्राप्त होनेपरभी मेरे दर्शनके पीछेहि त्रिकालदर्शी होनेसे भुशुंडने यह जाना कि यह वसिष्ठ हैं ॥ ३ ॥ पर्वतसे सूक्ष्म मेघके समान वह पत्रपुंजसे उठ खडाहुआ, और हे मुने ! आपका शुभागमन हुआ ऐसी मधुरवाणी बोला ॥ ४ ॥

संकल्पमात्रजाताभ्यांकराभ्यांकुसुमांजलिम् ॥ मह्यमाशुतदैवादान्मेघोहैममिवोत्करम् ॥ ५ ॥ इदमासनमित्युक्त्वानवंकल्पतरुच्छदम् ॥ उपानीतवतित्यक्तभृत्येवायसनायके ॥ ६ ॥ भुशुंडउत्थितेस्वीयकलापक्षेषुपक्षिषु ॥ उपविष्टंमुनिंदृष्ट्वास्वासनोन्मुखदृष्टिषु ॥७॥ समंतात्खगवृंदेनभुशुंडेनसमंततः ॥ तस्मिन्कल्पलतापुंजेह्युपविष्टोहमासने ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पमात्रसे उत्पन्न दोनों हस्तोंसे पुष्पांजलि लेके उसीसमय मेरे ऊपर ऐसे डाला जैसे मेघ हिमकी धाराको ॥ ५ ॥ यह आपके लिये आसन है ऐसा कहके भृत्य आदिको त्यागकर काकोंके स्वामी भुशुंडके स्वयं कल्पवृक्षके नूतन पत्ररूप आसन लानेपर ॥ ६ ॥ और भुशुंडके खडे होनेपर उठनेकेसमय निजकांतिरूप पक्षको फलाके पक्षियोंके मुनिके बैठेहुये देखकर अपने आसनोंपर दृष्टि करनेपर ॥ ७ ॥ उससमय पक्षियोंके समूहके साथ भुशुंडको लेके उस लताके पुंजमें आसनपर मैं बैठगया ॥ ८ ॥

अर्घ्यपाद्यादिसंपाद्यभुशुंडस्तुष्टमानसः ॥ मामुवाचमहातेजाःसौहृदान्मधुराक्षरम् ॥ ९ ॥ भुशुंडउवाच ॥ ॥ अहोभगवतास्माकंप्रसादोदर्शितश्चिरात् ॥ दर्शनामृतसेकेनयत्सिक्ताःसद्रुमावयम् ॥१०॥ मत्पुण्यचिरसंभारप्रेरितेनत्वयाधुना ॥ मुनेमान्यैकमान्येनकुतश्चागमनंकृतम् ॥ ११ ॥ कच्चिदस्मिन्महामोहेचिरंविहरतस्तव ॥ अखंडितैवसमतास्थिताचेतसिपावने ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् अर्घ्यपाद्य आदि पूजाकी सामग्री सम्पादन करके प्रसन्नमन तथा महातेजस्वी भुशुंड मित्रताके कारण मधुरवाणीसे मुझसे बोला ॥ ९ ॥ भुशुंडजी बोले–अहो ! चिरकालसे आपने यह अनुग्रह हमारे ऊपर दर्शाया कि अपने दर्शनरूप अमृतके सिंचनसे उत्तम वृक्षके समान हम सींचेगये ॥ १० ॥ हे मुने ! मेरे पुण्यके

समूहसे प्रेरित इससमय आपका आगमन कहांसे हुआ ॥ ११ ॥ क्या महामोहके कार्य्य इस जगत्में चिरकालतक विहार करतेहुये आपके पवित्र चित्तमें अखंडित समदर्शिता तो स्थितहै ? ॥ १२ ॥

किमर्थमद्यागमनक्लेशेनात्माकदर्थितः ॥ वचनश्रवणोत्कानामाज्ञांनोवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ त्वत्पाददर्शनादेवसर्वंज्ञातंमयामुने ॥ त्वदागमनपुण्येनवयमायोजितास्त्वया ॥ १४ ॥ चिरंजीवितचर्चाभिर्वयंवः स्मृतिमागताः ॥ तेनेदमास्पदंपादैस्त्वंपवित्रितवानयम् ॥ १५ ॥ ज्ञातत्वदागमोप्येवंत्वांपृच्छामीहय न्मुने ॥ भवद्वाक्यामृतास्वादवांछितंप्रविजृंभते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इससमय आगमनके क्लेशसे आत्माको क्लेशित क्यों किया, आपके बचन सुननेमें उत्कंठित हमलोगोंको आज्ञा देनेको योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे मुने ! आपके चरणके दर्शनके प्रतापसेही मैंने सब कुछ जानलिया, इस आपने अपने आगमनरूप पुण्यसे हमको युक्त किया ॥ १४ ॥ चिरजीवनकी चर्चासे आपके स्मरणमें हमलोग प्राप्तहुये इसीसे आपने अपने चरणोंसे इस आश्रमको पवित्र किया ॥ १५ ॥ हे मुने ! आपके आगमनके कारणको जानकरभी जो यह पूंछताहुं वह आपके वाक्यरूप अमृतके आस्वादकी अभिलाषा लहलहा रहीहै ॥ १६ ॥

इत्युक्तवानसौपक्षीभुशुंडश्चिरजीवितः ॥ त्रिकालामलसंवेदीतत्रप्रोक्तमिदंमया ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विहंगममहाराजसत्यमेतत्त्वयोच्यते ॥ द्रष्टुमभ्यागतोस्म्यद्यत्वामेवचिरजीवितम् ॥ १८ ॥ आशीतलांतःकरणोदिष्ट्याकुशलवानसि ॥ पतितोसिनबुद्धात्माभीषणांभववागुराम् ॥ १९ ॥ तदेतंसंशयंछिधिभगवन्ममसत्यतः ॥ कस्मिन्कुलेभवान्जातोज्ञातज्ञेयःकथंभवान् ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार त्रिकालदर्शी और चिरजीवी भुशुंडपक्षीने मुझसे कहा तब वहांपर मैंने यह कहा ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाराज विहंगम (काक) आपने यह सत्य कहा मैं चिरजीवी तुमको देखनेको आयाहुं॥१८॥ अतिशीतल अन्तःकरणसहित और ज्ञानसम्पन्न तुम सौभाग्यसे कुशल हो और इस भयंकर संसारकी जालमें नहीं गिरे ॥ १९ ॥ सो हे भगवन् ! मेरे इस संशयको यथार्थरूपसे छेदन करो किस कुलमें उत्पन्न हुये और कैसे ज्ञातज्ञेय (ब्रह्मवेत्ता) हुये ॥ २० ॥

कियदायुश्चतेसाधोवृत्तंस्मरसिकिंचवा ॥ केनायंवानिवासस्तेनिर्दिष्टोदीर्घदर्शिनः ॥ २१ ॥ भुशुंडउवाच ॥ यत्पृच्छसिमुनेसर्वंतदिदंवर्णयाम्यहम् ॥ अनुद्वेगितयायत्नात्कथाश्राव्यामहात्मना ॥ २२ ॥ युष्मद्विधास्त्रिभुवनप्रभुपूज्यरूपाआकर्णयंतियमुदारधियोमहांतः ॥ तेनाशुभंप्रकथितेनविनाशमेतिमेघास्पदेनविभवेनयथार्कतापः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वसिष्ठभुशुंडसमायोगोनाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो ! आपकी आयु कितनी हुई और कौनसा चरित्र आपको स्मरण है, और आप दीर्घदर्शीको यह निवासस्थान किसने बतलाया ॥ २१ ॥ भुशुंडजी बोले–हे मुने ! जो कुछ आप पूंछते हो वह सब वर्णन करताहुं, उद्वेगसे रहितहोके यत्नसे महात्माकी कथा सुननी चाहिये ॥ २२ ॥ जिस वृत्तांतको आपके सदृश त्रिभुवनके गुरुओंकेभी पूज्य उदारबुद्धि तथा महात्माजन श्रवण करतेहैं उस कथनसे वक्ता तथा श्रोताओंके अशुभ शीघ्र ऐसे नष्ट होजातेहैं जैसे वृष्टि छाया वन आदि मेघके ऐश्वर्य्यसे सूर्य्यका ताप ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे वसिष्ठभुशुंडसमायोगोपदेशो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस १७ सर्गमें भुशुंड जीवन्मुक्तोंके उचित गुणोंसे वर्णित होके पूछेहुये अर्थको विस्तारसे कहनेके प्रवृत्त हुये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथरामभुशुंडोसौनप्रहृष्टेनवक्रधीः ॥ सर्वांगसुंदरःश्यामःप्रावृषीवपयोधरः ॥ १ ॥ स्निग्धगंभीरवचनःस्मितपूर्वाभिभाषणः ॥ करस्थबिल्वफलवत्प्रतोलितजगत्त्रयः ॥ २ ॥ तृणवद्दृष्टसकलःप्रमेयीकृतसंसृतिः ॥ लोकाजवंजवीभावेदृष्टज्ञानपरावरः ॥ ३ ॥ धीरस्थिरमहाकारोविश्रांतिगतमंदरः ॥ परिपूर्णमनाःशुद्धःक्षीरार्णवइवागतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके अनंतर यह भुशुंड जो न प्रसन्न न वक्रबुद्धि था और सर्वांग-सुंदर वर्षाकालके समान श्याम ॥ १ ॥ स्निग्ध तथा गंभीरवक्र स्मित (मुकसियानपूर्बक) भाषणकर्ता और हस्तमें स्थित बिल्वके फलके समान तीनों लोंकोको तोडने वाला ॥ २ ॥ तृणके सदृश भोगवृंदको देखनेवाला लोकोंके कामोंके दौडनेके बिषयमें भलीभांति विचारके जन्ममरण आदि संसारको निष्फल निश्चय करनेवाला ज्ञानसे पर तथा अपर ब्रह्मका द्रष्टा ॥ ३ ॥ धीर स्थिर तथा महान् आकारयुक्त परिपूर्ण मन तथा शुद्ध आकार मंदराचल पर्वतरहित समुद्रके तुल्य विश्रामको प्राप्त ॥ ४ ॥

परिविश्रांतधीःशांतःपरमानंदघूर्णितः ॥ आविर्भावतिरोभावतज्ज्ञःसंसारजन्मनाम् ॥ ५ ॥ सरभस वदनाभिरामरूपःप्रियमधुरोचितगानहृद्यवाक्यः ॥ स्वयमिवनवमाश्रितःशरीरंसकलभयापहरंप्रहर्ष युक्तः ॥ ६ ॥ इदममलगिरासमाहशुद्धममृतमनुज्झितसंभ्रमक्रमेण ॥ कथयितुमखिलंनिजंस्वरूपंमधु पमिवस्तनितेनमुग्धमेघः ॥ ७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडोपाख्याने भुशुंडस्वरूपवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७॥

अर्थ—बाह्यसे विश्रांतबुद्धि अंतःकरणसे परमानंदसे मत्त, संसारमें उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंके आविर्भाव तिरोभाव तथा उनके निमित्तभूत माया और ईश्वरके तत्वके ज्ञाता ॥ ५ ॥ अतिप्रसन्नचित्त, और दर्शनमात्रसे सब प्राणियोंके भयको हरनेवाले ब्रह्मके सदृश नूतनशरीरधारी तथा उद्योगसहित मुखसे अतिसुन्दर भुशुंडजी ॥ ६ ॥ निर्मलवाणीसे इस अमृतमय सम्पूर्ण आत्मस्वरूपक्रमको न त्यागकर मुझसे ऐसे कहा जैसे सुंदर मेघ निजस्वरसे मधुपानमें रसिक भ्रमरको, वही सब; अर्थात् पूर्वकालमें व ब्रह्मके आनंदमें रसिक मेरेलिये भुशुंडका कथन अनुवादमात्र था नकी उपदेश ॥ ७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने भुशुंडस्वरूपवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस १८ के सर्गमें भुशुंडने अपना जन्म कहनेके लिये आदिमें महादेवजी उनके गण, मातृका तथा उनके यानके उत्सव आदिको वर्णन किया है ॥

भुशुंडउवाच ॥ अस्त्यस्मिञ्जगतिश्रेष्ठःसर्वनाकनिवासिनाम् ॥ देवदेवोहरोनामदेवदेवाभिवंदितः ॥१॥ षट्पदश्रेणिनयनायस्योच्चस्तबकस्तनी ॥ विलासिनीशरीरार्धेलताचूततरोरिव ॥ २ ॥ हिमहारसिताय स्यलहरीस्तबकोंभिता ॥ आवेष्टितजटाजूटागंगाकुसुममालिका ॥ ३ ॥ क्षीरसागरसंभूतःप्रस्तामृत निर्झरः ॥ प्रतिबिंबकरःश्रीमान्यस्यचूडामणिःशशी ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले—हे वसिष्ठजी ! इस ब्रह्मांडमें सब देवोंमें श्रेष्ठ देवोंकेभी देव और देवताओंसेभी पूजित हर (महादेव) नाम प्रसिद्धदेव हैं ॥ १ ॥ भ्रमरोंकी पंक्तिके समान नेत्रधारिणी और पुष्पोंके गुच्छोंके सदृश स्तनधारिणी पार्वती उन श्रीके अर्द्धशरीरमें ऐसी विलासिनी हैं जैसे चूत (अम्र) के वृक्षमें लता ॥२॥ हिम तथा हारके समान श्वेतलहरी पुष्पोंके गुच्छोंसे गुंफित और जटाजूटको लपेटनेवाली श्रीगंगाजी उनके शिरमें पुष्पके मालाके सदृश हैं ॥ ३ ॥ क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न, और अमृतके प्रवाहसे शोभायमान चन्द्रमा दर्पणके तुल्य उनका चूडामणि है ॥ ४ ॥

अनारतशिरश्चंद्रप्रस्रवेणामृतीकृतः ॥ यस्येंद्रनीलवत्कालकूटःकंठेविभूषणम् ॥ ५ ॥ धूलिलेखामहाव र्त्तस्वच्छपावकसंभवम् ॥ परमाणुमयंभस्मयस्यज्ञानजलंसितम् ॥ ६ ॥ निर्मलानिजितेंदूनिमृष्टानिघटि तानिच ॥ यस्यास्थीन्येवरत्नानिदेहकांतमयानिच ॥ ७ ॥ सुधाकरसुधाधौतंनीलनीरदपल्लवम् ॥ तार काबिंदुशबलंयस्यचांबरमंबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—निरन्तर शिरमें स्थित चन्द्रमाके अमृतमय प्रवाहसे विषकी शक्तिका दमन होनेसे अमृतरूपतामें सम्पादित कालकूट (महाविष) उनके कंठमें इन्द्रनीलके समान भूषण है ॥ ५ ॥ और धूलिके श्रेणीरूप महान् प्रलयकालके आवर्तसे उत्पन्न, और साक्षी चिन्मात्ररूप जलसे द्रवीभूत मायारूप भस्म उस मायाशबलित परमात्माका भूषण है ॥६॥ और निर्मल चन्द्रमाकोभी शोभानेवाले शिलापर चढेहुये मालाके समान शोभित और शरीरमें मनोहर अस्थी

(हड्डियां) उनके कण्ठके रत्न हैं ॥७॥ निर्मल चन्द्रमाके अमृतसे धूलाहुआ, नीलमेघरूप पल्लव (दशी वा किनारा) सहित और ताराओंके बिन्दुसे चित्रवर्ण आकाश अर्थात् सब दिशा उसका वस्त्र है ॥ ८ ॥

भ्रमच्छिवांगनापक्कमहामांसोदनाकुलम् ॥ बहिर्भूतंगृहंयस्यश्मशानंहिमपांडुरम् ॥ ९ ॥ कपालमालाभरणाःपीतरक्तवसासवाः ॥ आंत्रस्त्रग्दामवलिताबंधवोयस्यमातरः ॥ १० ॥ प्रस्फुरन्मूर्धमणयश्चरंतो मसृणांगकाः ॥ भुजगावलयायस्यप्रकचत्कनकत्विषः ॥ ११ ॥ दृक्पातदग्धशैलेंद्रंजगत्कवललालसम् ॥ भैरवाचरितंयस्यलीलासंत्रासितासुरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—भ्रमण करतीहुई शृगालियोंसे पकायेहुये मनुष्योंकी मांसरूप ओदन (भात) से पूर्ण हिमके समान पांडुर और ग्राम (नगर) आदिसे बाहर स्मशानदेश उनका गृह है ॥ ९ ॥ कपालोंसे रचित मालाओंके आभरण धारण कियेहुये रक्त तथा चर्बीके मद्य पियेहुये तथा आंतकी माला पहने मातृकागण उनके नृत्यआदिमें सहायक होनेसे बंधु हैं ॥ १० ॥ और शिरमें उनके मणि प्रकाशमान होरहेहैं बादी २ से सबको अंगोंके भूषणके लिये भ्रमण करतेहुये चिक्कणदेह और सुवर्णके समान प्रकाशमान सर्प उनके हाथोंके कटक (कडे) हैं ॥ ११ ॥ दृष्टिपातमात्रसे हिमालय भस्म करनेवाला, जगत्को कवल करनेका अभिलाषी, और लीलामात्रसे असुरोंका त्रासकारी अतिभयंकर उसका चरित हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थीकृतजगज्जातस्वव्यापारस्थचेतसः ॥ यदृच्छयाकरस्पंदोयस्यासुरपुरक्षयः ॥ १३ ॥ एकाग्रमूर्तयःस्नेहरागद्वेषविवर्जिताः ॥ स्वशनायस्यतेशैलाःसरसाअपिनीरसाः ॥ १४ ॥ शिरःखुराःखुरकराः करदंतमुखोदराः ॥ ऋक्षोष्ट्राजाहिवक्त्राश्वप्रमथायस्यलालकाः ॥ १५ ॥ तस्यनेत्रत्रयोद्भासिवदनस्यामलप्रभाः ॥ यथागणास्तथैवान्याःपरिवारोहिमातरः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने समाधिरूप व्यापारमें स्थित संकल्पमात्रसे जगत् मात्रको स्वस्थकारक जिसका चित्त है और यह इच्छासे जिसके समाधिभंगके समयमें करका संचलन असुरोंके नगरोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १३ ॥ और स्नेह तथा रागद्वेषसे वर्जित जल पृथिवीरूप रससहितभी उत्तम भोजन कियेहुयेके समान तृप्त, अर्थात् क्षुधा पिपासासे शून्य मेरु हिमालयआदि उस महादेवके ध्यानकी एकाग्रमूर्ति हैं ॥ १४ ॥ शिर जिनके धावन खंडनआदि हस्तशक्तियोंसे युक्त हैं, और जिनके खुर विचित्र शिल्पआदि हांथोंकी शक्तियोंसे युक्त हैं, तथा जिनके हांथ दांत मुख तथा उदर चर्वण भक्षणआदि विचित्र शक्तिसहित हैं ऐसे तथा भालू, ऊंट, बकरे तथा सर्पके समान मुखवाले प्रमथ गण उसके क्रीडामें सहायक हैं॥१५॥ तीनो नेत्रोंसे प्रकाशमान मुखसहित उस महादेवके निर्मल कांतियुक्त जैसे प्रमथ आदि गण परिवार हैं ऐसेही सब अंगोंमें सब शक्तियुक्त नानाप्रकारके मुखके आकारवाली मातृकाभी परिवार हैं॥१६॥

नृत्यंतिमातरस्तस्यपुरोभूतगणानताः ॥ चतुर्दशविधानंतभूतजातैकभोजनाः ॥ १७ ॥ खरोष्ट्राकारवदनारक्तमेदोवसासवाः ॥ दिगंतरविहारिण्यःशरीरावयवस्रजः ॥ १८ ॥ वसंतगिरिकूटेषुव्योम्निलोकांतरेषुच ॥ अवटेषुश्मशानेषुशरीरेषुचदेहिनाम् ॥ १९ ॥ जयाचविजयाचैवजयंतीचापराजिता ॥ सिद्धारक्तालंबुसाचउत्पलाचेतिदेवताः ॥ २० ॥

अर्थ—चतुर्दश भुवनोंमें चतुर्दश प्रकारके अनंत प्राणीसमूह जिनके मुख्य भोजन हैं ऐसी मातृका तथा भूतगण उस हरके संमुख नम्र होके नृत्य करते हैं ॥ १७ ॥ खर तथा ऊंटके समान मुखधारण कियेहुये, रक्त, मज्जा तथा चर्बी मद्यके तुल्य उनका सदा पान है, दिशाओंके अंततक विहार करनेवाली और मृतकोंके हस्तपादआदिकी मालाओंसे भूषित मातृकागण ॥ १८ ॥ पर्वतोंके शिखरोंपर, आकाशमें, अन्य लोकोंमें, गढोंमें, स्मशान भूमियोंमें तथा प्राणियोंके शरीरोंमें वसती हैं ॥ १९ ॥ जया १ विजया २ वैजयन्ती ३ अपराजिता ४ सिद्धा ५ रक्ता ६ अलंबुसा ७ और उत्पला ८ ये मातृदेवता हैं ॥ २० ॥

सर्वासामेवमातृणामष्टावेतास्तुनायिकाः ॥ आसामनुगतास्त्वन्यास्तासामनुगताःपराः ॥ २१ ॥ तासांमध्येमहार्हाणांमातॄणांमुनिनायक ॥ अलंबुसेतिविख्यातामातामानदविद्यते ॥ २२ ॥ वज्रास्थितुंडश्चंडाख्यइंद्रनीलाचलोपमः ॥ तस्यास्तुवाहनंकाकोवैष्णव्यागरुडोयथा ॥ २३ ॥ इत्यष्टैश्वर्ययुक्तास्तामातरोरौद्रचेष्टिताः ॥ कदाचिन्मिलिताव्योम्निसर्वाःकेनापिहेतुना ॥ २४ ॥

अर्थ—सब मातृका गणोंमें ये आठ नायिका (मुख्य) हैं, इनके अनुगामिनी दूसरी अनेक हैं, और उनकीभी अनुगामिनी अन्य अनेक हैं ॥ २१ ॥ हे मुनिनायक ! हे प्रतिष्ठादायक ! इन सबके मध्यमें सप्तमी अलंबुसा नाम जो माताहै ॥ २२ ॥ उसका वज्रकी अस्थि (हड्डी) से रचित तुंडधारी और इन्द्रनीलपर्वतके समान चंडाख्यनामसे

प्रसिद्ध ऐसे काक वाहन है जैसा वैष्णवीका गरुड ॥ २३ ॥ अष्ट ऐश्वर्यसंपन्न, भयंकर चेष्टाकारिणी ये सब मातृकाओंने किसीसमय मिलकर किसी विहारके कारण आकाशमें ॥ २४ ॥

उत्सवंपरमंचक्रुःपरमार्थप्रकाशकम् ॥ वामस्रोतोगताएतास्तुंबुरुंरुद्रमाश्रिताः ॥ २५ ॥ पूजयित्वाजगत्पूज्यौदेवौतुंबुरुभैरवौ ॥ विचित्रार्थाःकथाश्चक्रुर्मदिरामदतोषिताः ॥ २६ ॥ अथेयमाययौतासांकथावसरतःकथा ॥ अस्मानुमापतिर्देवःकिंपश्यत्यवहेलया ॥ २७ ॥ प्रभावंदर्शयामोस्यपुनर्नास्मांस्त्वसौयथा ॥ दृष्टमात्रमहाशक्तिःकरिष्यत्यवधीरणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—चित्तकी एकाग्रताद्वारा परमार्थभूत आत्मतत्वका प्रकाशक पानका उत्सव किया, और उस समय वाममार्गसे परशक्तिके आराधनप्रकारमें प्राप्त तुंबुरूनाम रुद्रमूर्तिकी पूजाकेलिये सब एकत्र आश्रितथी ॥ २५ ॥ और वाममार्गसे जगत्पूज्य तुंबुरू और भैरवदेवकी पूजा करके मदिराके मदसे संतुष्ट होके विचित्र अर्थसंयुक्त गोष्ठीकी ॥ २६ ॥ इसके अनंतर उनके परस्परके संवादकी कथाके अवसरमें यह कथा आगई कि उमापति देव (महादेव) हमलोगोंको अनादरकी दृष्टिसे क्यों देखते हैं ॥ २७ ॥ हमलोग इनको अपना प्रभाव देखलावें जिससे हमलोगोंकी महती शक्तिको देखने मात्रसे पुनः महादेवजी हमलोगोंका अनादर न करें ॥ २८ ॥

इतिनिश्चित्यतादेव्योविवर्णवदनांगिकाम् ॥ उमामेववशीकृत्यप्रोक्षयामासुराहृताः ॥ २९ ॥ माययापहृताभर्तुरंगाद्रंगमुपागताम् ॥ तामालोलकचांदेव्यःशेपुरोदनतांगताम् ॥ ३० ॥ पार्वतीप्रोक्षणदिनेतस्मिस्तत्रमहोत्सवः ॥ बभूवतासांसर्वासांनृत्यगेयमनोहरः ॥ ३१ ॥ अत्यानंदमनुद्दामरवमेवांबरंबभौ ॥ दीर्घावयवविक्षेपविकासिजघनोदराः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे वसिष्ठजी ! उन देवियोंने इतना निश्चय करके अपने यथार्थवर्णसे अन्यवर्ण संपादनकरके पार्वतीजी (जोकी इन माताओंकी दुसरी मूर्तिही हैं) को वशमें करके मंत्रसहित जलसे आदरसंयुक्त प्रोक्षण (बलिके संस्कारयुक्त) किया ॥ २९ ॥ मायासे हृत, अपने पतिके मंडलसे मातृकाओंके मंडलमें प्राप्त उस चंचलकेशवाली पार्वतीजीको मातृकादेवियोंने ओदनताको प्राप्त अर्थात् सबके भक्ष्य भोज्य तथा लेह्यरूपताको करनेके अर्थ मानों शाप दिया ॥ ३० ॥ उस पार्वतीके प्रोक्षणके दिन उन माताओंका उत्सव नृत्य गीतआदिसे अति मनोहर हुआ ॥ ३१ ॥ और अति आनन्दयुक्त महान् शब्दके साथ आकाश शोभित हुआ, और दीर्घअंगोंके विक्षेपसे प्रकाशित तथा जंघा तथा उदरयुक्त वे मातृका नृत्य गान आदि करती थीं ॥ ३२ ॥

अन्याजहसुरुद्दामतालक्ष्वेडाघनारवम् ॥ लसदंगविकारंचध्वनत्सगिरिकानना: ॥ ३३ ॥ अन्याजगुर्ध्वनच्छैलगृहमापानतोषिताः ॥ वारीवरववद्व्रंजज्जगन्मंडलकोटरे ॥ ३४ ॥ अन्याःपानंपपुःपुष्टचर्चितांगशिरःखुरम् ॥ लीलाघुरघुरारावरणदाकाशकोटरे ॥ ३५ ॥ पपुरुदगुरथोच्चैःसत्वराजग्मुरूचुर्जहसुरपुरहौषुःपेतुरुच्चैर्ववल्गुः॥ननृतुरनिशमाद्युःस्वादुमांसंचदेव्यस्त्रिभुवनमपवृत्तंचक्रुरुन्मत्तवृत्ताः॥३६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडोपाख्यानेमातृव्यवहारवर्णननामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—और उच्च करताल तथा सिंहनाद घनशब्दपूर्वक, तथा शोभायमान अंगोंके विकारपूर्वक पर्वत तथा बन शब्दयुक्त करती हुई अन्य मातृका हंसने लगीं ॥३३॥ और अन्य अति मद्यपानसे संतुष्ट मातृका पर्वत तथा गृहादिको पूर्ण करनेवाली गर्जनाको इसप्रकार आकाश मंडलके कोटरमें किया जैसे चंद्रमाके उदयसे प्रेमयुक्त शब्दयुक्त समुद्र ॥ ३४ ॥ अन्य चंदन तथा रक्त मज्जाआदिसे खुरसे लेके शिरपर्य्यंत लिप्त तथा पुष्टदेहपूर्वक लीलासे आकाशके कोटरमें घुर २ शब्द करतेहुये मद्यपान करती थी ॥ ३५ ॥ हे वसिष्ठजी ! कोई तो मद्यपान करती थीं, कोई अति उच्चस्वरसे गर्जतीथीं, कोई शीघ्र जाके आतीथीं, कोई परस्पर हंसतीथीं. और एकदूसरेकी रक्षा करतीथीं. और अग्नि वा परस्परके मुखमें हवन करतीथीं, एकदूसरेके ऊपर गिरतीथीं, उच्च स्वरसे गर्जतीथीं, नाचतीथीं, तथा निरंतर स्वादिष्ट मांसको खातीथीं, इसप्रकार उन्मत्त चरित्र करनेवाली उन देवियोंने अपनी शिक्षासे त्रिभुवनको सच्चरितसे रहित करदिया ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे मातृव्यवहारवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

---

(१) इन माताओंकी उमा दूसरी मूर्ति होनेसे अपने आत्मामें अपने शापका असंभव होनेसे परिहासके लिये मानो शाप दिया॥

एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

ब्राह्मी (ब्रह्माणी) की हंसीमें चंडनाम काकके योगसे भाइयोंके साथ अपना जन्म, और ब्राह्मीके प्रतापसे ज्ञानकी प्राप्ति तथा पिताके स्थानकी प्राप्ति इस १९ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

भुशुंडउवाच ॥ इत्युत्सवेवर्तमानेतासांवाहास्तउत्तमाः ॥ तथैवमत्ताजहसुर्ननृतुःपपुरप्यसृक् ॥ १ ॥ तत्रैकत्रासवोन्मत्ताःकाश्चिन्ननृतुरंबरे ॥ रथहंस्यःस्थिताब्राह्म्यःकाकश्चालंबुसारथः ॥ २ ॥ नृत्यंतीनां चहंसीनांपिबंतीनामथासवम् ॥ तलेचाब्धिटधानांतुरतिःसम्यगजायत ॥ ३ ॥ संजातरतयोमत्ताःस र्वाहंस्यःक्रमेणताः ॥ रेमिरेसहकाकेनाप्यथमत्तास्तदाकिल ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले–हे वसिष्ठजी ! इसप्रकार उनके वर्तमान उत्सवमें उन मातृकाओंके उत्तम वाहनभी उसीप्रकार मद्यसे मत्त होके हंसतेथे, नाचतेथे और रुधिरभी पान करतेथे ॥ १ ॥ उस उत्सवमें मदोन्मत्तहो ब्राह्मी देवीकी वाहनभूत हंसी तथा अलंबुसाका वाहन चंडनाम काक एकत्र होके आकाशमें नाचतेथे ॥ २ ॥ इसके अनन्तर समुद्रके किनारे मद्यपान करके नाचनेवाली हंसियोंको पुरुषके समागमका अनुराग उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ उससमय रतिकी इच्छावाली मदोन्मत्त सब हंसीओंने काकके साथ क्रमसे रमण किया ॥ ४ ॥

सप्तानांकुलहंसीनांदयितोवायसस्त्वसौ ॥ क्रमेणारमतैकत्रयावदन्योन्यमीप्सितम् ॥ ५ ॥ अथताग र्भधारिण्योबभूवुरतितोषिताः ॥ देव्यश्चकृतनृत्यास्ताःसुप्रशांतमथाययुः ॥ ६ ॥ दद्रुरोदनतांयातामी श्वरायप्रियामुमाम् ॥ भोजनायमहामायादेव्यस्ताःशूलपाणये ॥ ७ ॥ प्रियामेभोजनेदत्तेत्येवंचशशिशे खरः ॥ बुद्ध्वाबभूवरुषितोयदामातृगणंप्रति ॥ ८ ॥

अर्थ—सात कुलहंसियोंके मध्यमें प्रिय यही एक चंडनामका काक था और ये सब हंसी इसी एक काकके साथ जबतक एककी इच्छा पूर्णहुई तबतक क्रमसे रमण किया ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् गर्भ धारणकियेहुये वे हंसी अतिप्रसन्न हुई और नृत्य समाप्त करके वे देवी (मातृकागण) तथा हंसी मायाके अविचारसे प्रशांतचित्त रुद्रके निकट गई ॥ ६ ॥ और ओदनदशामें प्राप्त पार्वतीजीको महामाया उन देवियोंने शूलपाणी रूद्रभगवान्‌के भोजन केलिये दिया ॥ ७ ॥ मेरी प्रियाको भोजनकेलिये मुझे दिया ऐसा जानकर चन्द्रशेखरभगवान् मातृकागणके ऊपर जब अति रुष्ट हुये ॥ ८ ॥

तदातास्तांसमुत्पाद्यस्वांगदानेनवैपुनः ॥ ददुर्भूयोविवाहेनपार्वतीमिंदुमौलये ॥ ९ ॥ ततोदेव्योहरश्चै वपरिवारस्तथैतयोः ॥ सर्वेसंतुष्टमनसःस्वांस्वामुपययुर्दिशम् ॥ १० ॥ अंतर्वत्न्योबभूवुस्ताब्राह्म्योहं स्योमुनीश्वर ॥ वृत्तांतंकथयामासुर्ब्राह्म्यादेव्यायथास्थितम् ॥ ११ ॥ ब्राह्म्युवाच ॥ हेवत्स्यःसांप्रतंवै त्सवत्योमेरथकर्माणि ॥ नसमर्थाभवंत्योहिस्वैरंचरतसांप्रतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—तब वे मातृका अपने शिर आदिके दानसे पुनः उसको उत्पन्न करके पुनः पार्वतीको विवाहकी विधिसे चन्द्रमौलि महादेवजीको दिया ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् देवी तथा महादेव और देवी और हंसियोंका सब परिवार संतुष्ट-चित्त होके अपनी २ दिशाको चलेगये ॥ १० ॥ हे मुनीश्वर ! वे सब ब्राह्मीकी हंस गर्भिणी होगयी, और इस वृत्तान्तको ब्राह्मीदेवीसे यथार्थ कहदिया ॥ ११ ॥ हे पुत्रियों ! इससमय तुम सब गर्भिणी हो इसलिये मेरे बाहनके कार्य्यमें समर्थ नहीं हो इसलिये अब अपनी इच्छापूर्वक तुम भ्रमण करो ॥ १२ ॥

इतिगर्भालसाहंसीरुक्त्वादेवीदयापरा ॥ निर्विकल्पसमाधानेब्राह्मीतस्थौयथासुखम् ॥ १३ ॥ अजना भिसरोजांतर्वैरिंचकमलाकरे ॥ गर्भालसाविचेरुस्ताराजहंस्योमुनीश्वर ॥ १४ ॥ एवंविपक्वगर्भास्ताना भीकमलपल्लवे ॥ सुवतेस्मसृदून्यंडान्यथवल्लयइवांकुरान् ॥ १५ ॥ तानिकालंसमासाद्यततोंडान्येक विंशतिः ॥ गर्भाक्रांत्याद्विधाजग्मुर्ब्रह्मांडानीवसारवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार दयामें तत्पर ब्राह्मी गर्भसे आलसयुक्त हंसियोंको कहकर निर्विकल्पसमाधिमें सुखपूर्वक स्थित हुई ॥ १३ ॥ और हे मुनीश्वर ! विष्णुकी नाभिकमलके समीप जो कि ब्रह्माके कमलका उत्पत्ति स्थान है वहां-पर गर्भसे आलसयुक्त वे सब राजहंसी विहार करतीथी ॥ १४ ॥ इसप्रकार पूर्णगर्भवाली वे सब नाभीके कमलके कोमल पल्लवपर कोमल अंडोंको ऐसे उत्पन्न किया जैसे लता अंकुरोंको ॥ १५ ॥ वे सब २१ एकीस अंडे काल पाके परिपक्व गर्भके पादके बिक्षेपसे दो २ टुकडे ऐसे होगये जैसे सुवर्ण और रजतके खप्परोंमें दृढ ब्रह्मांड ॥ १६ ॥

अंडेभ्यस्तेभ्यएवंहिज तावयमिमेमुने ॥ भ्रातरश्चंडतनयावायसाएकविंशतिः ॥ १७ ॥ तेषंजातागता वृद्धिंतस्मिन्कमलपल्लवे ॥ संजातपक्षाःसंपन्नागगनोड्डयनेक्षमाः ॥ १८ ॥ मातृभिःसहहंसीभिर्ब्राह्मीभ

गवतीततः ॥ चिरमाराधितासम्यक्समाधिविरतासती ॥ १९ ॥ प्रसादपरयाकालेभगवत्याततःस्व यम् ॥ तथांगानुगृहीताःस्मोयेनमुक्तावयंस्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने ! इसप्रकार इन अंडोंसे हमलोग इक्कीस (२१) भाई चंडके पुत्र काक उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥ उस कमलके पल्लवपर हम लोग उत्पन्न होके बढे, और पंख उत्पन्न हुये और आकाशमें उडनेको समर्थ हुये ॥ १८ ॥ अपनी २ माता हंसीके साथ हम लोगोंसे समाधिसे उठी हुई ब्राह्मीदेवी चिरकालतक पूर्णरीतिसे आराधित होकर ॥ १९ ॥ अनुग्रहमें तत्पर उस भगवतीने उसके पश्चात् कालपाके स्वयं ऐसा अनुगृहीत हम लोगोंको किया कि जिससे हमलोग मुक्त होके स्थित हैं ॥ २० ॥

संशांतमनसःशांताएकांतेध्यानसंस्थितौ ॥ तिष्ठामइतिनिश्चित्यपितुःपार्श्वेवयंगताः ॥ २१ ॥ आलिंगितास्ततःपित्रापूजितालंबुसावयम् ॥ तयादृष्टाःप्रसादेनसंस्थितास्तत्रसंयताः ॥ २२ ॥ चंडउवाच ॥ पुत्राःकच्चिदपर्यंतवासनातंतुगुंठितात् ॥ भवंतोनिर्गतानूनमस्मात्संसारजालकात् ॥ २३ ॥ नोचेदयं भगवतींतदिमांभृत्यवत्सलाम् ॥ प्रार्थयामोयथायूयंभवथज्ञानपारगाः ॥ २४ ॥

अर्थ—अतिशांतमनवाले तथा शांत होके एकान्तध्यानकी स्थिति (समाधि) में स्थित होवें ऐसा निश्चय करके विंध्याचलके तटपर अपने पिताके निकट हम लोग गये ॥ २१ ॥ वहांपर हम लोग अपने पितासे आलिंगित हुये और अलंबुसा भगवतीकी पूजा की और विनयआदि गुणसंपन्न हम लोग उस भगवतीसे प्रसन्नतासे देखे हुये स्थित रहे ॥ २२ ॥ चंड बोले—पिताचंडने कहा कि हे प्रियपुत्रो ! क्या तुम लोग बासनारूप सूत्रसे गुंफित इस संसाररूप जालसे निकलेहो ? ॥ २३ ॥ यदि यह नहीं है तो इस भृत्यवत्सल अलम्बुसा भगवतीकी ऐसी प्रार्थना करैं कि तुमलोग ज्ञानके पारंगत होजाओ ॥ २४ ॥

काकाऊचुः ॥ ॥ तातज्ञातमलंज्ञेयंब्राम्ह्यादेव्याःप्रसादतः ॥ किंत्वेकांतस्थितेःस्थानमभिवांछामउत्तमम् ॥ २५ ॥ चंडउवाच ॥ सर्वरत्नगणाधारःसमस्तसुरसंश्रयः ॥ अस्तिह्येवमहोत्सेधोमेरुर्नाममहीधरः ॥ २६ ॥ लसच्चंद्रार्कदीपस्यभूतवृंदकलत्रिणः ॥ ब्रह्मांडमंडपस्यांतस्तंभःकनकनिर्मितः ॥ २७ ॥ सौवर्णचंद्रपीठाढ्योरत्नाढ्यशिखरांगुलिः ॥ ध्वनद्द्वीपाब्धिवलयोभूवेवोन्नमितोभुजः ॥ २८ ॥

अर्थ—काक बोले—हे प्रियपितः ! हम लोग ब्राह्मीदेवीके अनुग्रहसे ज्ञेय (ब्रह्म) को पूर्णरीतिसे जान गये हैं किंतु एकांतस्थितिके लिये उत्तम निवासस्थान चाहते हैं ॥ २५ ॥ चंड बोला—हे पुत्रगण ! संपूर्ण रत्नसमूहोंका आधार, संपूर्ण देवताओंका आश्रय, अति ऊंचा मेरुनाम पर्वत है ॥ २६ ॥ और पुनः शोभायमान चंद्रसूर्य्यरूप उसमें दीप हैं, और प्राणियोंके समूहरूप उसके कुटुंबी हैं, ऐसे ब्रह्मांडरूप गृहका सुवर्णसे रचित मध्यस्तंभ (खंभा) वह मेरु है ॥ २७ ॥ और सुवर्णसे रचित चंद्राकार पीठ अर्थात् मूलदेशमें बंधा अंगके सदृश किंपुरुष आदि वर्षोंसे युक्त, रत्नमय अंगुठियोंसे पूर्ण शिखररूप अंगुलीधारी और शब्द करतेहुये द्वीप तथा समुद्ररूप कटकधारी भुजा मानों पृथिवीने ऊपर उठायाहै ॥ २८ ॥

वृतःकुलाद्रिसामंतैर्जंबुद्वीपासनेस्थितः ॥ राजाचंद्रार्कनयनेभ्रमयञ्छैलसंसदि ॥ २९ ॥ तारौघमालतीमाल्योदिग्दशैकांबरांबरः ॥ नागजातिद्वयस्थात्मानाकनायकभूषणः ॥ ३० ॥ दिगंगनाभिरभितोरम्याभिःपुरभूषणैः ॥ एषनिस्यंदिभिःशीतैर्वीजितोघनचामरैः ॥ ३१ ॥ षोडशास्यसहस्राणियोजनानामधःक्षितौ ॥ स्थिताःपादाःप्रपूज्यंतेनागासुरमहोरगैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—कुलाचलरूप सामंतोंसे घिराहुआ सब पर्वतोंका राजा वह मेरु चंद्रसूर्यरूप नेत्रोंको घुमाताहुआ पर्वतोंकी सभामें जंबूद्वीपरूप आसनपर स्थित है ॥ २९ ॥ और तारागणरूप मालतीकी मालाओंसे शोभित, दिशारूप दशा (किनारा) वाला, मुख्य आकाशरूप वस्त्रधारी, सर्प तथा गजरूप दोनो नागजातियोंका आधार, और स्वर्गके नायक इन्द्रआदिरूप आभूषण संयुक्त वह मेरु है ॥ ३० ॥ और सुंदर दिशारूप अंगनाओंसे नगररूप भूषणसहित यह पर्वत जलकी धारायुक्त शीतल मेघरूप नील श्वेत चमरोंसे वीजित होताहै ॥ ३१ ॥ और सोलहसहस्र योजन नीचे पृथिवीमें स्थित इसके पाद नाग, असुर और महोरग आदिसे पूजित हैं ॥ ३२ ॥

अशीतिश्चसहस्राणिदेहोस्याकेंदुलोचनः ॥ पूज्यतेनाकसदनैसुरगंधर्वकिन्नरैः ॥ ३३ ॥ चतुर्दशविधान्येनंगृहस्थमिवबांधवाः ॥ उपजीवंतिभूतानिमिथोदृष्टपुरास्पदम् ॥ ३४ ॥ अस्यत्वीशानदिग्भागेपद्मरागमयंबृहत् ॥ विद्यतेशृंगमपरोदिवाकरइवोदितः ॥ ३५ ॥ अस्यास्तिपृष्ठेभूतौघवृतःकल्पतरुर्महान् ॥ जगतःशिखरादर्शेप्रतिबिंबमिवस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और असी (८०) सहस्र योजन चंद्रसूर्य नेत्रसंयुक्त इसका देह स्वर्गरूप गृहमें सुर, गंधर्व और किन्नरोंसे सेवित है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, देवता, पितर, गंधर्व, किन्नर, अप्सरा, विद्याधर, यक्ष, राक्षस, प्रमथ, गुह्यक, और नाग ये चतुर्दशप्रकारके प्राणी, जिनका निवासस्थान एक दूसरेसे नहीं दृष्ट है इस मेरुके आ-श्रयमें ऐसे रहते हैं जैसे सब बंधु गृहस्थके ॥ ३४ ॥ इसके ईशानकोणमें पद्मरागमय महान् एक दूसरा शिखर ऐसे उदित है जैसे अन्य सूर्य ॥ ३५ ॥ और इस शिखरके पृष्ठपर प्राणीयोंके समूहसे आवृत शिखररूप विद्रुम (मूंगे) के दर्पणमें जगत्के प्रतिबिंबके समान स्थित एक महान् कल्पवृक्ष है ॥ ३६ ॥

तस्यास्तिदक्षिणस्कंधेशाखाकनकपल्लवा ॥ रत्नस्तबकनीरंध्राचंद्रबिंबोल्लसत्फला ॥ ३७ ॥ तत्रपूर्वमया नीडंकृतमासीत्स्फुरन्मणि ॥ देव्यांध्याननिषण्णायांयस्मिन्किलरमेसुताः ॥ ३८ ॥ रत्नपुष्पदलच्छन्नंर सायनफलान्वितम् ॥ चिंतामणिशलाकाभिर्विहितालिंदसंस्थिति ॥ ३९ ॥ बुद्धिपूर्वसमाचारैःसंपूर्ण काकपुत्रकैः ॥ शीतलाभ्यंतरंहृद्यंपूरितंकुसुमोत्करैः ॥ ४० ॥

अर्थ—इस वृक्षके दक्षिणभागमें, सुवर्णके पल्लवसंयुक्त, रत्नमय पुष्पोंके गुच्छोंसे पूर्ण, और चंद्रबिंबसे समान शोभायमान फलसहित एक शाखा है ॥ ३७ ॥ हे पुत्रगण ! उस शाखामें प्रकाशमान मणिमय नीड (खुंथा) मैंने पूर्वकालमें बनायाथा जिसमें देवीके ध्यानमें निमग्न होनेपर मैं रमण करताथा ॥३८॥ पुनः वह नीड (खुंथा) रत्नमय पुष्पोंके दलसे आच्छन्न अमृतमय फलसहित, चिंतामणिकी शलाकाओंसे रचित द्वारसहित वह खुंथा है ॥३९॥ और विचारपूर्वक व्यवहारोंमें कुशल काकपुत्रोंसे पूर्ण है, और भीतरसे अति शीतल मनोहर तथा पुष्पसमूहोंसे पूर्ण है ४०

तद्गच्छतसुतानीडंदुर्गमंनाकवतामपि ॥ भोगंमोक्षंचतत्रस्थानिर्विघ्नमलमाप्स्यथ ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वास्मा न्पितातत्रचुचुंबाभ्यालिलिंगच ॥ ददौदेव्यायदानीतमस्मभ्यंचतदामिषम् ॥ ४२ ॥ तद्भुक्त्वाचरणौदे व्याःपितुश्चैवाभिवाद्यच ॥ विंध्यकच्छाद्वयंतस्मात्स्थानादालंबुसात्प्लुताः ॥ ४३ ॥ क्रमेणाकाशमुल्लं घ्यनिर्गत्यांबुदकोटरैः ॥ पवनस्कंधमासाद्यवंदितव्योमचारिणः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये हे पुत्रो ! उस खुंदेमें तुमलोग जाके निवासकरो जो कि देवताओंकोभी दुर्लभहै, और वहां-पर स्थित तुमलोग भोग मोक्ष दोनों निर्विघ्नतासे पाओगे ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके पिताने हमलोगोंको चुंबन तथा आलिंगन किया और भगवतीसे लायाहुआ मांसभी दिया ॥ ४२ ॥ उस मांसको भोजन करके और भगवती तथा पिताके चरणोंको वंदन करके उस अलंबुसाके निवासस्थान विंध्याचलके तटसे हमलोग उडे ॥ ४३ ॥ और क्रमसे आकाशमंडलका उल्लंघन करके मेघमंडलसे निकलकर तथा वायुमंडलमें प्राप्तहोके देवताओंको वंदना की ॥ ४४ ॥

परिहृत्यदिनाधीशंलोकांतरपुरंगताः ॥ स्वर्गमुल्लंघ्ययाताःस्मोब्रह्मलोकंमुनीश्वर ॥ ४५ ॥ प्रणामपूर्वंत त्रैतद्यथावत्तत्पितुर्वचः ॥ मात्रेचभगवत्यैचब्राम्ह्यैचाशुनिवेदितम् ॥ ४६ ॥ ताभ्यांसस्नेहमालिंग्यगच्छ तेत्याज्ञयैधिताः ॥ वयंकृतनमस्काराब्रह्मलोकाद्विनिर्गताः ॥ ४७ ॥ उल्लंघ्यलोकपालानांपुरीस्तपनभा स्वराः ॥ आकाशगामिनोलोलाःपवनस्कंधचारिणः ॥ ४८ ॥ इमंकल्पतरुंप्राप्यनिजंनीडंप्रविश्यच ॥ दूरस्थबाधास्तिष्ठामोमुनेमौनमवस्थिताः ॥ ४९ ॥ जातायथावयमिमेस्थितिमागताश्चसंप्राप्यबोधमुप शांतधियोयथावत् ॥ एतत्तदुक्तमविखंडमलंमयातेशेषेणमांसमनुशाधिमहानुभाव ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भुशुंडस्यआलयलाभो नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—और सूर्य्यको त्यागकर इस लोकसे अन्य स्वर्गलोकके नगर अमरावतीमें प्राप्तहुय ॥ ४५ ॥ वहां प्रणामपूर्वक यह पिताके बचनसे अपनी माता हंसी तथा ब्राह्मी भगवतीकोभी शीघ्र निवेदन किया ॥ ४६ ॥ उन दोनोंने स्नेहपूर्वक आलिंगन करके कहा कि जाओ इस आज्ञासे वृद्धिको प्राप्त हमलोग उन दोनोको नमस्कार करके ब्रह्मलोकसे हमलोग बाहर निकले ॥ ४७ ॥ और सूर्य्यके समान लोकपालोंकी नगरियोंको उल्लंघन करके आकाश-गामी तथा वायुमंडलविहारी चंचल हमलोग ॥ ४८ ॥ इस कल्पवृक्षपर प्राप्तहोके अपने नीड (खुंथे) में प्रविष्ट होके हे मुने ! सबप्रकारकी बाधाओंसे दूर मौन (मितप्रयोजनमात्रभाषी) होके स्थित हैं ॥ ४९ ॥ हे महानुभाव ! हमलोग जिसप्रकार उत्पन्नहुये, और ज्ञानको प्राप्तकरके शांतबुद्धि होके जैसे स्थितिको प्राप्तहुये, वह सब पूर्णरीतिसे मैंने आपसे वर्णन किया, और इसके आगे शेष अर्थात् कितनी आयु है और क्या वृत्तान्त स्मरण है इन दो प्रश्नके उत्तर देनेको मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने आलयलाभो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

प्रतिकल्पमें जगत्की समता, भाइयोंका मरण, और प्रलयमेंभी अपने चित्तकी स्थिरताका भुशुंडने इस २० के सर्गमें वर्णन किया है ॥

भुशुंडउवाच ॥ ॥ आसीत्किंचित्पुराकल्पेजगद्यच्चिरमास्थितम् ॥ सन्निवेशेनचैतद्वदद्यापिचनदूरगम् ॥ १ ॥ तदेतद्वृत्तमभ्यासाद्वर्तमानेनवर्णितम् ॥ मयामुनेंद्रबोधायप्राग्जन्मसाम्यदर्शिना ॥ २ ॥ अद्यमेफलितंपुण्यैश्चिरकालोपसंभृतैः ॥ निर्विघ्नमेवपश्यामियद्भवंतंमुनेततः ॥ ३ ॥ इदंनीडमिमांशाखामहंचायमयंद्रुमः ॥ अद्यपावनतांप्राप्तान्येतानितवदर्शनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले–हे मुने! पूर्वजन्मके हेतुभूत कल्पमें यह जगत् चिरकालसे जैसे स्थितथा वैसाही रचना आदिसे अब इस कल्पमेंभी हैं इसलिये पूर्वकल्पके साथ अभेद आरोपसे वह अबभी दूर नहीं है इसीसे इस कल्पवृक्षपर आके इत्यादि वर्णन मैंने कियाहै ॥ १ ॥ प्रत्येक कल्पमें मेरु कल्पवृक्ष आदिकी समताहीके कारणभूत कालकाभी वृत्तान्त पूर्वजन्मकी समता देखनेवाले मैंने जगत्की भ्रांतिके अभ्याससे वर्तमान जगत्की एकता मानके वर्णन कियाहै ॥ २ ॥ हे मुने! चिरकालसे संचित मेरा पुण्य आज फलीभूत हुआहै कि निर्विघ्न आपको चारोओरसे देखताहुं ॥ ३ ॥ हे मुने! यह नीड, यह शाखा, यह वृक्ष, तथा मैं आपके दर्शनसे सब पवित्र हुये ॥ ४ ॥

इदमर्घ्यमिदंपाद्यंगृहीत्वाविहगार्पितम् ॥ नूनंपावनतांनीत्वाशेषेणादिशचाशुभोः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ इदमर्घ्यंचपाद्यंचभूयोदत्तवतिस्वयम् ॥ भुशुंडविहगेतस्मिन्निदंरामाहमुक्तवान् ॥ ६ ॥ भ्रातरस्तेविहंगेशताहक्सत्वामहाधियः ॥ इहकस्मान्नदृश्यंतेत्वमेवैकोहिदृश्यसे ॥७॥ भुशुंडउवाच ॥ तिष्ठतामिहनःकालोमहानतिगतोमुने ॥ युगानांपंक्तयःक्षीणादिवसानामिवानघ ॥ ८ ॥

अर्थ—पक्षीसे अर्पित इस अर्घ्य और पाद्य निश्चय करके पवित्र करके शेष वृत्तान्त कहनेको मुझे दीजिये ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यह अर्घ्य यह पाद्य इसप्रकार पुनः पक्षी भुशुंडके देनेपर मैंने यह कहा ॥ ६ ॥ हे पक्षिराज महाधैर्य्यवान्! तथा बुद्धिमान् तुमारे भाईलोग क्यों नहीं यहां देखपडते क्योंकि आप एकही देखपडते हो ॥ ७ ॥ भुशुंडजी बोले–हे मुने! हमलोगोंको यहां रहते महान् काल बीतगया. हे अनघ! दिनके समान युगोंकी पंक्तिकी पंक्ति बीतगई ॥ ८ ॥

एतावताथकालेनसर्वएवममानुजाः ॥ तनूस्तृणमिवत्यक्त्वाशिवेपरिणताःपदे ॥ ९ ॥ दीर्घायुषोमहांतोपिसंतोपिबलिनोपिच ॥ सर्वएवनिगीर्यंतेकालेनाकलितात्मना ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्कंधव्यूढार्कशशिषुवहत्स्वविरतंजवात् ॥ वातस्कंधातिवातेषुकच्चित्तातनखिद्यसे ॥ ११ ॥ दग्धोदयास्तशैलेंद्रवनव्यूहैरवेःकरैः ॥ चिरमत्यंतमासन्नैःकच्चित्तातनखिद्यसे ॥ १२ ॥

अर्थ—इतने समयमें मेरे सब छोटे भाई अपनी २ शरीरको तृणके समान त्यागके शिवजीमें लीन होगये ॥ ९ ॥ दीर्घायु, महात्मा, संत, और बली ये सभी इस अलक्षितरूपकालसे निगललिये जातेहैं ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे प्रिय! अपने स्कंधमें मालाके समान द्वादश सूर्य तथा चन्द्रमाको धारण किये और अतिवेगसे वहतेहुये प्रलयके पवनोंमें क्यों तुम खेदित नहीं होते ॥ ११ ॥ तथा हे प्रिय भुशुंड! उदयाचल अस्ताचल तथा अन्य पर्वत और बनसमूहोंको भस्म करनेवाली, और अतिसमीपवर्ती सूर्य्यकी किरणोंसे क्या तुम खिन्न नहीं होते ॥१२॥

इंदोरथकरैःशीतैःपाषाणीकृतवारिभिः ॥ आसन्नकरकापातैःकच्चित्तातनखिद्यसे ॥ १३ ॥ अजस्रमिह विश्रांतैःकल्पजीमूतमंडलैः ॥ परशुच्छेदनीहारैःकच्चित्तातनखिद्यसे ॥ १४ ॥ विषमैर्जागतैःक्षोभैरुच्चैस्तरपदस्थितः ॥ कथंनक्षोभमायातिकल्पवृक्षोयमुन्नतः ॥ १५ ॥ भुशुंडउवाच ॥ निरालंबास्पदाब्रह्मन्सर्वलोकावहेलिता ॥ तुच्छेयंसर्वभूतानांमध्येविहगजीविका ॥ १६ ॥

अर्थ—और जलकोभी घनीभूत पाषाण करनेवाले नीहारसहित शीतल चन्द्रकिरणोंसे तथा समीपस्थ विनौरी (पाषाण) के पतनोंसे क्या तुम खेदित नहीं होते? ॥ १३ ॥ निरन्तर सुमेरुपर विश्राम करनेवाले और परशुकोभी छेदन करनेवाले पाषाणरूप नीहारसहित प्रलयकालके मेघमंडलोंसे क्या तुम खिन्न नहीं होते ॥ १४ ॥ उच्चस्थानपर स्थित, और स्वयं ऊंचा यह कल्पवृक्ष भयंकर जगत्के क्षोभोंसे क्षोभको क्यों नहीं प्राप्त होता? ॥ १५ ॥

(१) दीर्घकथामें पूजाको विलंब न हो इसलिये प्रथम भुशुंडजी पूजा स्वीकारकेलिये प्रार्थना करते हैं ॥

भुशुंडजी बोले–हे ब्रह्मन्! निरालम्ब आकाशमें रहनेवाली, सबलोकसे तिरस्कृत तथा सब जीवोंमें तुच्छ यह काककी जाति है ॥ १६ ॥

ईदृशेषुचभूतेषुनिर्जनेषुवनेषुच ॥ कल्पितास्थास्थितिर्धात्राशून्येवाव्योमवर्त्मनि ॥ १७ ॥ कथमस्यां प्रभोजातौजातस्यचिरजीविनः ॥ आशापाशनिबद्धस्यविहगस्यविशोकिता ॥ १८ ॥ वयंतुभगवन्नित्य मात्मसंतोषमास्थिताः ॥ नकदाचननीरूपेमुह्यामोजातविभ्रमैः ॥ १९ स्वभावमात्रसंतुष्टाःकष्टैर्मुक्ता विचेष्टितैः ॥ क्षिपामःकेवलंकालमस्मिन्ब्रह्मन्निजालये ॥ २० ॥

अर्थ—ऐसे प्राणियोंमें और निर्जनबनोंमें शून्य आकाशमार्गके तुल्य है, प्रीतिसे परमात्माने जीविका कल्पित की यह आश्चर्य है ॥ १७ ॥ हे प्रभो! इस काकजातिमें उत्पन्न और आशारूप फांसियोंसे बद्ध चिरजीवी काकपक्षीको शोकरहितता कैसे होसकती है. और हे भगवन्! हम लोग तो आत्माके संतोषसे तोषित हैं, और स्वरूपरहित इस संसारमें उत्पन्न भ्रमोंसे कदापि मोहको नहीं प्राप्त होते ॥ १९ ॥ और आत्माके स्वभावमात्रसे सन्तुष्ट, और अन्य प्राणियोंको पीडासम्प्रदान आदि चेष्टाओंसे रहित होके हे ब्रह्मन्! केवल अपने स्थानमें कालक्षेपमात्र करते हैं ॥ २० ॥

नजीवितान्नमरणात्कर्मदेहस्यरोधनम् ॥ यथास्थितेनतिष्ठामस्तथैवास्तंगतेहिताः ॥ २१ ॥ आलोकिता लोकदशादृष्टादृष्टांतदृष्टयः ॥ नूनंसंत्यक्तमस्माकंमनसाचंचलंवपुः ॥ २२ ॥ अनारतनिजालोकेनित्यं चापरितापिनि ॥ कल्पागस्योपरिसदावेद्मिकालकलागतिम् ॥ २३ ॥ रत्नगुच्छप्रकाशाढ्येब्रह्मन्कल्पल तागृहे ॥ प्राणापानप्रवाहेणवेद्मिकल्पमखंडितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—न जीवनसे न मरणसे इसलोक तथा परलोकके अर्थ क्रियाको हमलोग चाहते हैं किन्तु जैसे इससमय नित्यसिद्ध निरतिशय आनन्दरूप आत्मस्वभावसे स्थितहैं ऐसेही भविष्यत्‌मेंभी रहेंगे ॥ २१ ॥ संसारकी जन्ममरण आदि अनर्थकी दशाको तथा मिथ्यात्वनिश्चायक युक्तियोंकोभी देखलिया और चंचल शरीरको मनसे हमलोग अवश्य त्यागे हैं ॥ २२॥ नित्य शीतल सर्वदा आत्माके प्रकाशमें इस दिव्यकल्पवृक्षके संविधानसे सदाकालकी कलागतिको मैं जानताहुं ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन्! रत्नोंके गुच्छोंके प्रकाशसे पूर्ण इस अपने कल्पलताके गृहमें स्वरोदय शास्त्रसिद्ध प्राण अपानके प्रवाहसे अखंडित कल्पको मैं जानताहुं ॥ २४ ॥

अविज्ञातदिवारात्रौह्यस्मिन्नुच्चैःशिलोच्चये ॥ जानामिनिजयाबुद्ध्यालोककालक्रमस्थितिम् ॥ २५ ॥ सा रासारपरिच्छेदिबोधाद्विश्रांतिमागतम् ॥ निरस्तचापलंशांतंसुस्थिरंमेमुनेमनः ॥ २६ ॥ संसारव्यवहा रोत्थैराशापाशैरसन्मयैः ॥ उद्दारैरिवभूकाकोनैववश्यंव्रजाम्यहम् ॥ २७ ॥ परोपशमधर्मिण्यावयमालो कशीतया ॥ पश्यंतोजागतींमायांधियाधैर्यमुपागताः ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसमे दिवस और रात्रिका ज्ञान नहिं होता ऐसे इस अति उच्च मेरुपर्वतमे लोक और कालके क्रमकी स्थितिको मैं अपने बुद्धिसे जानताहुं ॥ २५ ॥ हे मुने! सार असारके पृथक् करनेवाले बोधसे बिश्रामको प्राप्त, चपलतारहित तथा शान्त मेरा मन अति स्थिरहै इससे मुझे खेद नहीं होता ॥ २६ ॥ संसारके व्यवहारोंसे उत्पन्न मिथ्याआशारूप कलियोंसे मैं ऐसे लयको नहीं प्राप्त होता जैसे अल्पशब्दोंसे प्राकृत काक ॥ २७ ॥ अति शांतिमय धर्मवाली, तथा आत्माके प्रकाशमें अतिशीतलबुद्धिसे जगत्‌की मायाको देखतेहुये हमलोग परम धैर्य्यको प्राप्तहैं इसलियेभी खेदका प्रसंग नहीं है ॥ २८ ॥

भीमास्वपिमहाबुद्धेदशास्वचलबुद्धयः ॥ विनिर्मलोपलाकाराःसंप्राप्तासुयथाक्रमम् ॥ २९ ॥ इयमारं भसुभगातरलाजगतीस्थितिः ॥ भूयोभूयःपरामृष्टानचकिंचनबाधते ॥ ३० ॥ सर्वाण्येवप्रयांत्येवस मायांतिचवानवा ॥ भगवन्भूतजालानिभयमस्माकमत्रकिम् ॥ ३१ ॥ भूतजालतरंगिण्याविशंत्याःका लसागरे ॥ वयंसंसारसरितस्तटस्थाअप्यनादृताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे! संसारकी दशाके क्रमके अनुसार भयंकर दशाओंके प्राप्त होनेपरभी निर्मल स्फटिकके समान अचलबुद्धिसे स्थित रहतेहैं ॥ २९ ॥ आरंभमें सुंदर, और अतिचंचल यह जगत्‌की स्थिति पुनः २ विचारी गई है इसलिये हमलोगोंको बाधा नहीं करती ॥ ३० ॥ हे भगवन्! ये सब प्राणियोंके समूह आतेहैं और जातेहैं अथवा व्यवहारदृष्टिसे न आतेहैं न जातेहैं इसकारण हमको इसमें क्या भय है ॥ ३१ ॥ प्राणीयोंके समूहरूप नदीके कालरूप सागरमें प्रवेश करते समय हमलोग उस संसाररूप नदीके तटपर स्थितभी अनादरसे छोडदिये गये हैं

नोज्झामोनचगृह्णीमस्तिष्ठामोनेहचस्थिताः ॥ मृदुपादादृशाकूरावयमस्मिन्द्रुमेस्थिताः ॥ ३३ ॥ वीत शोकभयायासैस्त्वादृशैःपुरुषोत्तमैः ॥ तुष्टैरनुगृहीताःस्मःसंस्थिताविगतामयाः ॥ ३४ ॥ ततस्ततश्व पर्यस्तंलुठितंनचवृत्तिषु ॥ नापरामृष्टतत्त्वार्थमस्माकंभगवन्मनः ॥ ३५ ॥ निर्विकारेगतक्षोभेचात्मन्यु पशमंगते ॥ चित्तरंगाःप्रबुद्धाःस्मःपर्वणीवमहाब्धयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—न तो प्राप्त वस्तुका त्याग करते हैं और न अप्राप्तके ग्रहणकी चेष्टा करतेहैं, और व्यवहारदृष्टिसे स्थितभी यथार्थमें स्थित नहीं है, और व्यवहारमात्रकी सिद्धिके लिये कंटकसहित भूमिके सदृश संसारमें सावधानीसे चलनेसे कोमलपाद और तत्वदृष्टिसे संसारके उच्छेदक होनेसे क्रूर हमलोग इस वृक्षपर स्थितहै ॥ ३३ ॥ और हे भगवन् ! शोकमय और त्रासरहित आपके समान उत्तमपुरुषोंसे हम अनुगृहीत हैं इसलिये विकाररहित स्थितहैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! व्यवहारकी सिद्धिके लिये इधर उधर प्रक्षिप्तभी रागआदि वृत्तियोंमें निमग्न तथा आत्मतत्वके विचारसे रहित हमलोगोंका मन नहीं होता ॥ ३५ ॥ निर्विकार तथा क्षोभरहित आत्मामें शान्ति प्राप्त होनेसे चारोंओरसे ब्रह्माकार वृत्तिरूप चंद्रमाके उदयसे उत्कट बोधरूपही चित्का तरंग जिनका ऐसे पर्वमें महासमुद्रके तुल्य हमलोग प्रबुद्धहैं ॥ ३६ ॥

भवदागमनाद्ब्रह्मन्निदानीमुदिताशयाः ॥ मंदरोद्धूतसर्वांगःक्षीरोदोयेनतन्यते ॥ ३७ ॥ नातःपरतरंकिं चिन्मन्येकुशलमात्मनः ॥ संतोयदनुगम्यंतेसंत्यक्तसकलैषणाः ॥ ३८ ॥ आपातमात्ररम्येभ्योभोगेभ्यः किमवाप्यते ॥ सत्संगचिंतामणितःसर्वसारमवाप्यते ॥ ३९ ॥ स्निग्धगंभीरमसृणमधुरोदारधीरवाक् ॥ त्रैलोक्यपद्मकोशेस्मिंस्त्वमेकःषट्पदायसे ॥ ४० ॥ अधिगतपरमात्मनोपिमन्येभवदवलोकनशांतदुष्कृ तस्य ॥ ममसफलमिहाद्यजन्मसाधोसकलभयापहरोहिसाधुसंग ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू०भु०भुशंडस्वरूपनिरूपणं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जिस उद्देशसे मन्दराचलसे कंपित सर्वशरीर मथ्यमान क्षीरसागर विस्तारको प्राप्त होताहै उसी अमृतसेयुक्त इससमय हमलोग आपके आगमनसे प्रसन्नचित्त हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! इससे अधिक अपना कुशल कुछ नहीं समझता कि संपूर्ण एषणा (इच्छा) से रहित संतलोग अनुग्रह करतेहैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! विना विचारे रमणीय भोगोंसे क्या प्राप्त होसकता है, और सत्संगरूप चिंतामणिसे तो सबमें सारभूत ज्ञान प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ हे मुने ! स्निग्ध, गंभीर, चिक्कण, मधुर, उदार और धीरवाणीवाले आपही एक इस त्रैलोक्यरूप कमलके कोशमें भ्रमरके तुल्य हैं ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! परमात्मतत्वज्ञानयुक्तभी मैं हुं तथापि आपके दर्शनसे सकल पापरहित मेरा जन्म सफल है ऐसा मानताहुं, क्योंकि हे साधो ! साधुओंकासंग समस्त भयका अपहर्ताहै ४१

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने भुशुंडस्वरूप निरूपणं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

कल्पवृक्षका माहात्म्य, प्रलयमें धारणमे स्थिति, मर्य्यादा और अनेक विचित्र अर्थोंकी स्मृति इस २१ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

भुशुंडउवाच ॥ युगक्षोभेषुघोरेषुवात्यासुविषमासुच ॥ सुस्थिरःकल्पवृक्षोयंनकदाचनकंपते ॥ १ ॥ अगम्योयंसमग्राणांलोलांतरविहारिणाम् ॥ भूतानांतेनतिष्ठामइहसाधोसुखेनवै ॥ २ ॥ हिरण्याक्षोधरा पीठंद्वीपसप्तकवेष्टितम् ॥ यदाजहारतरसानाकंपततदातरुः ॥ ३ ॥ यदालोलायितवपुर्बभूवामरपर्वतः ॥ सर्वतोदत्तसाम्याद्रिस्तदानाकंपतद्रुमः ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले-हे मुने ! युगोंके अंतके घोर उत्पातोंमें तथा भयंकर महापवनोंके चलनेपरभी अतिस्थिर यह कल्पवृक्ष कदाचित्भी कंपित नहीं होता ॥ १ ॥ हे साधो ! लोकान्तर (स्वर्ग) मेंभी बिहार करनेवाले समग्र प्राणियोंके यह अगम्यहै इसलिये यहां सुखसे हमलोग स्थितहैं ॥ २ ॥ जिससमय सातोंद्वीपोंसे वेष्टित इस पृथिवीरूप पीठका हरण कियाथा, उससमय यद्यपि उसपर स्थित होनेसे इसकाभी हरण कंपन आदि होतेथे तथापि दिव्यबलसे यह कल्पवृक्ष कंपित न हुआ ॥ ३ ॥ वाराहभगवान्‌के उद्धारके समय समताके लिये चारोंओरसे आधारभूत शिलाके समान पर्वत जिसके लियेगये हैं ऐसा मेरु जिससमय चंचलशरीर हुआथा उससमयभी यह कल्पवृक्ष न कंपा ॥ ४ ॥

भुजावष्टंभविनमन्मेरुर्नारायणोयदा ॥ मंदरंप्रोद्धाराद्रिंतदानाकंपतद्रुमः ॥ ५ ॥ यदासुरासुरक्षोभप तच्चंद्रार्कमंडलम् ॥ आसीज्जगदतिक्षुब्धंतदानाकंपतद्रुमः ॥ ६ ॥ उन्मूलिताद्रींद्रशिलायदोत्पातानिला ववुः ॥ आधूतमेरुतरवस्तदानाकंपतद्रुमः ॥ ७ ॥ यदाक्षीरोदलोलाद्रिकंदरानिलकंपिताः ॥ कल्पाभ्र पंक्तयश्चेरुस्तदानाकंपतद्रुमः ॥ ८ ॥

अर्थ—चतुर्भुज नारायण भगवान् दो भुजाओंसे मेरुको अवष्टंभ (पकड) कर दबातेहुये जब समुद्रमेंसे मंदराचलका उद्धार किया था उससमयभी यह कल्पवृक्ष कंपित नहींहुआ ॥ ५ ॥ जब देवासुरके तीव्रयुद्धसे चंद्र-सूर्य्य जिससे गिररहेथे ऐसा यह जगत् अतिक्षुब्धहुआ था उससमयभी यह कल्पवृक्ष न कंपा ॥ ६ ॥ पर्वतेन्द्रोंकी शिलाओंको उत्मूलन करनेवाले और मेरुके अन्य वृक्षोंकोभी कंपानेवाले प्रलयकालके उत्पातकारी वायु बहतेथे उस समयभी यह वृक्ष न कंपा ॥ ७ ॥ जिससमय क्षीरसागरमें चंचल मंदराचलकी कंदराके वायुसे कंपितके समान प्रलय-कालके मेघोंकी पंक्ति भ्रमण कररहीथीं उससमयभी यह कल्पवृक्ष नहीं कंपितहुआ ॥ ८ ॥

यदासमंततोमेरुःकालनेमिभुजांतरे ॥ किंचिदुन्मूलितोतिष्ठत्तदानाकंपतद्रुमः ॥९॥ पक्षीशपक्षपवनाअ मृताक्रांतिसंगरे॥ यदाववुःपतत्सिद्धास्तदायंनापतद्रुमः ॥ १० ॥ यदाशेषाकृतिरुद्रोनसमाप्तैकचेष्टिता म् ॥ ययौगरुत्मान्ब्रह्मांडंतदानाकंपतद्रुमः ॥ ११ ॥ यदाकल्पानलशिखाःशैलाब्धिसकलोल्बणः ॥ शेषःफणाभिस्तत्याजतदानाकंपतद्रुमः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिससमय कालनेमिके भुजाके अंतरालमें (तारकासुरके युद्धमें) किंचित् उन्मूलित होके स्थित रहा उससमयभी यह कल्पवृक्ष नहीं कंपितहुआ ॥ ९ ॥ अमृतहरणके लिये संग्रामके समयमें जब गरुडके पक्षसे निकलेहुये; तथा सिद्धलोगभी जिससे गिरतेथे ऐसे पवन वहरहेथे उससमयभी यह वृक्ष नहीं कंपा ॥ १० ॥ नहीं समाप्त है एक पृथिवीधारणरूप चेष्टित जिसका ऐसी शेषकी आकृतिको जिससमय रुद्रभगवान्ने धारण किया था और गरुडजी जिससमय ब्रह्मांडका उल्लंघन करके गये थे उससमयभी यह कल्पवृक्ष नहीं कंपित हुआ था ॥११॥ पर्वत, समुद्र तथा सब प्राणियोंकोभी दुःसह प्रलयकालकी अग्निकी ज्वालाको शेषभगवान्ने अपने फणाओंसे त्यागा था[१] उससमयभी वह वृक्ष कंपित नहीं हुआथा ॥ १२ ॥

एवंरूपेद्रुमवरेतिष्ठतामापदःकुतः ॥ अस्माकंमुनिशार्दूलदौस्थित्येनकिलापदः ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवा च ॥ कल्पांतेषुमहाबुद्धेवहत्सूत्पातवायुषु ॥ प्रततत्स्विद्वभार्केषुकथंतिष्ठसिविज्वरः ॥ १४ ॥ श्रीभु शुंडउवाच ॥ ॥ यदापपातकल्पांतेव्यवहारोजगत्स्थितौ ॥ कृतघ्नइवसन्मित्रंतदानीडंत्यजाम्यहम्॥१५ आकाशएवतिष्ठामिविगताखिलकल्पनः ॥ स्तब्धप्रकृतिसर्वांगोमनोनिर्वासनंयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मुनिशार्दूल ! इसप्रकारके श्रेष्ठ वृक्षपर निवास करते हुये हम लोगोंको आपत्ति कहांसे होसकती हैं क्योंकि दुष्टस्थितिसे सब आपत्ति होती हैं ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबुद्धे ! प्रलयकालके उत्पातकारी पवनोंके बहनेपर और चंद्रमा सूर्य्य और नक्षत्रोंके गिरनेपर तुम संतापरहित कैसे स्थित रहतेहो ॥ १४ ॥ श्रीभुशुं-डजी बोले–जब सहस्रमहायुगके अंतमें जगत्की स्थितिमें व्यवहार गिरजाताहै तब इस अपने नीडको ऐसे त्याग-ताहुं जैसे कृतघ्न अपने सच्चे मित्रको ॥ १५ ॥ सब कल्पनारहित और सब स्वभावोंको निश्चल करके आकाशमेंही ऐसे स्थित रहताहुं जैसे वासनाशून्य मन ॥ १६ ॥

प्रतपंतियदादित्याःशकलीकृतभूधराः ॥ वारुणींधारणांबद्ध्वातदातिष्ठामिधीरधीः ॥ १७ ॥ यदाशकलि ताद्रींद्रावांतिप्रलयवायवः ॥ पार्वतींधारणांबद्ध्वाखेतिष्ठाम्यचलंतदा ॥ १८ ॥ जगद्गलितमेर्वादियात्येका र्णवतांयदा ॥ वायवींधारणांबद्ध्वासंप्लवेऽचलधीस्तदा ॥ १९ ॥ ब्रह्मांडपारमासाद्यतत्त्वांतेविमलेपदे ॥ सुषुप्तावस्थयातावत्तिष्ठाम्यचलरूपया ॥ २० ॥

अर्थ—पर्वतोंकोभी टुकडे २ करनेवाले द्वादश आदित्य तपते हैं उससमय सब दिशाओंमें अपरिच्छिन्न जल-रूप वरुण मैं हुं ऐसी धारणा बांधके धीरबुद्धि मैं स्थित रहताहुं ॥ १७ ॥ जिससमय पर्वतोंके टुकडे करनेवाले प्रलयके वायु बहतेहैं उससमय पर्वत मैं हुं ऐसे धारण बांधके अचलतापूर्वक आकाश (वायुके आगम्य देश) में स्थित रहताहुं ॥ १८ ॥ मेरु आदि जब गलित होजाताहैं तब यह जगत् एक समुद्ररूपताको प्राप्त होताहै, सर्वत्रगामी

---

(१) शेषभगवान्के मुखकी अग्निसे अंतमें प्रलय होना पुराणोंमें प्रसिद्धहै ॥

वायु मैं हुं ऐसी धारणा बांधके अचलबुद्धि होके उडताहुं ॥ १९ ॥ स्थूल, सूक्ष्म, समष्टिरूप ब्रह्मांडके पार अर्थात् परम अवधिभूत अव्याकृतको प्राप्त होकर वीस, छव्वीसवा, किसीके मतसे तीस तत्वोंके अंतमें भूमाख्यपदमें निर्विकल्पसमाधिमें अचलरूपसे तबतक स्थित रहताहुं ॥ २० ॥

यावत्पुनःकमलजःसृष्टिकर्मणितिष्ठति ॥ तत्रप्रविश्यब्रह्मांडंतिष्ठामिविहगालये ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यथातिष्ठसिपक्षींद्रधारणाभिरखंडितः ॥ कल्पांतेषुतथाकस्मान्नान्येतिष्ठंतियोगिनः ॥ २२ ॥ भुशुंडउवाच ॥ ब्रह्मन्नियतिरेषाहिदुर्लंघ्यापारमेश्वरी ॥ मयेदृशेनवैभाव्यंभाव्यमन्यैस्तुतादृशैः ॥ २३ ॥ नशक्यतेतोलयितुमवश्यंभवितव्यता ॥ यद्यथातत्तथैतद्धिस्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—जबतक कि कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा पुनः अपने सृष्टिकर्ममें नहीं स्थित होते और नूतनसृष्टिके पश्चात् समाधिसे विरक्त होके ब्रह्मांडमें प्रवेश करके पुनः इसी कल्पवृक्षके स्थानापन्न अपने पक्षियोंके निवासस्थानमें स्थित रहताहुं ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पक्षियोंमें इन्द्र भुशुंडजी ! जैसे कल्पांतोंमें धारणोंसे अखंडितरूपसे तुम स्थित रहते हो ऐसेही अन्य योगीलोग क्यों नहीं स्थित रहते ॥ २२ ॥ भुशुंड बोले–हे ब्रह्मन् ! यह परमेश्वरकी नियति दुर्लंघ्यहै, सत्यसंकल्प परमेश्वरकी नियतिने ऐसाही नियम कियाहै कि मुझे प्रतिकल्पमें ऐसेही धारण करके रहना चाहिये और उन लोगोंको अपने प्रारब्धके अनुसार वैसाही होना चाहिये ॥ २३ ॥ यह ऐसाही होगा इसप्रकार अवश्यभवितव्यतारूप नियतिका निश्चय कोई नहीं करसकता जो जिसप्रकारके प्रारब्धसे युक्त रहताहै यही नियतिका निश्चय है ॥ २४ ॥

मत्संकल्पवशेनैवकल्पेकल्पेपुनःपुनः ॥ अस्मिन्नेवगिरेःशृंगेतरुरित्थंभवत्ययम् ॥ २५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्यंतमोक्षदीर्घायुर्भवान्निर्देशनायकः ॥ ज्ञानविज्ञानवान्धीरोयोगयोग्यमनोगतिः ॥ २६ ॥ दृष्टानेकविधानल्पसर्गसंगमागमः ॥ किंकिंस्मरसिकल्याणचित्रमस्मिञ्जगत्क्रमे ॥ २७ ॥ भुशुंडउवाच ॥ ॥ वृहत्तराशिलावृक्षामजातवृणवीरुधम् ॥ अशैलवनवृक्षौघांस्मरामीमांधरामधः ॥ २८ ॥

अर्थ—मेरे संकल्पकेही वशसे कल्पकल्पमेंही पुनः२ इसी पर्वतके इसी शिखरपर यह कल्पवृक्ष होताहै ॥२५॥ श्रीवसिष्ठ बोले–हे भुशुंड ! मोक्षके समान दीर्घ अपरिच्छिन्न वा जीवन्मुक्तिसे उपलक्षित आयुसहित चिरकालके पदार्थोंमें उदाहरण देनेमें श्रेष्ठज्ञान विज्ञानसंपन्न, धीर और योगसे गम्य मनोगति आपही हैं ॥ २६ ॥ प्रत्येक कल्पके अनेक बार सृष्टियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आपहीने देखाहै सो हे कल्याणरूप ! अपने देखेहुये जगत्के क्रममें आश्चर्य्य वृत्तांत क्या क्या तुमको स्मरण है ॥ २७ ॥ हे श्रेष्ठत्तर ! पाषाणकी शिला तथा वृक्षोंसे शून्य तृण तथा अन्न अंकुररहित, और पर्वत बन तथा वृक्षसमूहसे वर्जित इस पृथिवीको मेरुके नीचेमै स्मरण करताहुं ॥ २८ ॥

दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ भस्मसारभरापूर्णांसंस्मरामिधरामधः ॥ २९ ॥ अनुत्पन्नदिवाधीशामजातशशिमंडलाम् ॥ अविभक्तदिवालोकांसंस्मरामिधरामधः ॥ ३० ॥ मेरुरत्नतलोद्योतैरर्धप्रकटकोटरम् ॥ लोकालोकमिवाढ्याद्रिभुवनंसंस्मराम्यहम् ॥ ३१ ॥ प्रवृद्धासुरसंग्रामेक्षियमाणांतरामिह ॥ पलायमानामभितःसंस्मरामिधरामिमाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—दशसहस्र तथा दशशत वर्षपर्य्यन्त भस्मसारके समूहसे पूर्ण मेरुके नीचे इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ २९ ॥ सूर्य्य जिससमय इसपर नहीं तपतेथे, चंद्रमंडलसेभी अविज्ञात और दिनके प्रकाशसे रहित इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं॥३०॥ मेरुके रत्नमय तलके प्रकाशोंसे अर्द्धप्रकाशसहित कोटरहै जिसका ऐसे और इसीसे लोकालोकके समान स्थित, कहीं प्रकाशसे युक्त जिसमें पर्वतथे ऐसे भुवनको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३१ ॥ देवासुरसंग्रामके बढनेपर जब इसका आभ्यंतर क्षीयमाण होरहाथा और पलायमान (भागते हुये) प्राणियोंसे व्याप्त इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३२ ॥

चतुर्युगानिचाक्रांतामसुरैर्मत्तकाशिभिः ॥ दैत्यांतःपुरतांप्राप्तांसंस्मरामिधरामिमाम् ॥ ३३ ॥ अत्यंतांतरितांतांतसमस्तापरमंडलाम् ॥ अजदेवत्रयीशेषांसंस्मरामिजगत्कुटीम् ॥ ३४ ॥ चतुर्युगार्धमपरं नीरंध्रांवनपादपैः ॥ अदृष्टेतरनिर्माणांसंस्मरामिधरामिमाम् ॥ ३५ ॥ एवंचतुर्युगंसाग्रंनीरंध्रैरचलैर्वृताम् ॥ अप्रवृत्तजनाचारांसंस्मरामिधरामिमाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—चारों युगोंमें मदोन्मत्त असुरोंसे आक्रांत और दैत्योंसे अंतःपुरताको प्राप्त इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३३ ॥ मेरुसे भिन्न समस्त अपरमंडल समुद्रसे जिसका अंततक आच्छादितथा और मेरुपर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रमहादेव त्रयी जिसमें शेष रहगई ऐसी इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३४ ॥ दो युगपर्य्यंत केवल बनके

वृक्षोंसे पूर्ण और उससमयमें अन्य पदार्थोंकी रचना जिसमें नहीं दृष्टथी ऐसी इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं॥३५॥ और इसीप्रकार चतुर्थांश अधिक चारयुग पर्य्यंत घनीभूत पर्वतोंसे व्याप्त और मनुष्योंके आचारसे रहित इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३६ ॥

दशवर्षसहस्राणिमृतदैत्यास्थिपर्वतैः ॥ आकीर्णांपरितःपूर्णांसंस्मरामिधरामिमाम् ॥ ३७ ॥ भयादंतर्हिताशेषवैमानिकनभश्चराम् ॥ द्यांचनिर्वृक्षनिःशेषांसंस्मरामितमोमयीम् ॥ ३८ ॥ अनगस्त्यामगस्त्याशामेकपर्वततांगताम् ॥ मत्तेविंध्यमहाशैलेसंस्मरामिजगत्कुटीम् ॥ ३९ ॥ एतांश्चान्यांश्ववृत्तांतान्संस्मरामिबहूनपि ॥ किंतेनबहुनोक्तेनसारंसंक्षेपतःशृणु ॥ ४० ॥

अर्थ—दशसहस्र (दशहजार) वर्षपर्य्यंत मृतक दैत्योंके अस्थि (हड्डी) रूपपर्वतोंसे चारोओरसे व्याप्त तथा पूर्ण पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३७ ॥ भयसे अंतर्ध्यानदशाको प्राप्त विमानयुक्त आकाशचारि गणसे शोभित अंतरिक्षआदि लोकोंको और वृक्षोंसे शून्य तमोमयी इस पृथिवीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३८ ॥ और अगस्त्यऋषिकी (दक्षिण) दिशाको और अगस्त्यसेरहित तथा मेरुके स्पर्धासे विंध्यमहापर्वतके बढनेपर मलय, दर्दुर तथा सह्यआदि विभाजकके अभावसे एकपर्वतरूपताको प्राप्त इस जगत्रूप कुटीको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३९ ॥ हे मुने ! इन तथा अन्य बहुत वृत्तांतोको मैं स्मरण करताहुं, परंतु बहुत कहना व्यर्थ है इसलिये संक्षेप तुम श्रवण करो ॥ ४० ॥

असंख्यातान्मनून्ब्रह्मन्स्मरामिशतशोगतान् ॥ सर्वान्संरंभबहुलांश्चतुर्युगशतानिच ॥ ४१ ॥ एकमेवस्वयंशुद्धंपुरुषासुरवर्जितम् ॥ आलोकनिचयंचैकंकंचित्सर्गस्मराम्यहम् ॥ ४२ ॥ सुरापंब्राह्मणंमत्तंनिषिद्धसुरशूद्रकम् ॥ बहुनाथसतीकंचकंचित्सर्गस्मराम्यहम् ॥ ४३ ॥ वृक्षनीरंध्रभूपीठमकल्पितमहार्णवम् ॥ स्वयंसंजातपुरुषंकंचित्सर्गस्मराम्यहम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे मुने ! प्रभावकी अधिकतासे असंख्यात बीतेहुये मनुओंको तथा सैंकडो चतुर्युगियोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ४१ ॥ एक स्वयं शुद्ध देव असुरआदि पुरुषोंसे वर्जित और तेजस्वीपदार्थोंका समष्टिरूप किसी सृष्टि (जब विराट् ब्रह्मांडकी शरीरमात्रसे उत्पन्न आत्मतत्वके तथा सूर्य्यादिको विभागसे रचनेका विचार कियाथा) को मैं स्मरण करताहुं ॥ ४२ ॥ मद्यप, मदोन्मत्त ब्राह्मण असत्, देवताओंकी निंदाकारी तथा बहुतपतिवाली स्त्रीसहित सृष्टि (कलियुग) को मैं स्मरण करताहुं ॥ ४३ ॥ घनीभूत वृक्षोंसे धरातल जिसमें व्याप्तथा, महासमुद्रकी रचना जिसमें प्रियव्रतकी उत्पत्ति न होनेसे नहीं थी, और स्त्रीपुरुषके समागमके विनाही मानसीसृष्टिसे स्वयं भृगुआदि पुरुष जिसमें उत्पन्नहुये थे ऐसी किसी सृष्टिको मैं स्मरण करताहुं ॥ ४४ ॥

अपर्वतमभूमिंचव्योमस्थामरमानवम् ॥ अचंद्रार्कप्रकाशाढ्यंकंचित्सर्गस्मराम्यहम् ॥ ४५ ॥ अनिंद्रममहीपालममध्यस्थाधमोत्तमम् ॥ सममंधककुप्चक्रंकंचित्सर्गस्मराम्यहम् ॥ ४६ ॥ सर्गप्रारंभकलनाविभागोभुवनत्रये ॥ कुलपर्वतसंस्थानंजंबूद्वीपपृथक्स्थितम् ॥ ४७ ॥ वर्णधर्मधियांसृष्टिविभागोमंडलावनेः ॥ ऋक्षचक्रकसंस्थानंध्रुवनिर्माणमेवच ॥ ४८ ॥

अर्थ—पर्वत तथा भूमिरहित और देवता मनुष्य तथा योगसिद्ध सब जिसमें आकाशमेंथे ऐसे तथा चंद्रसूर्य्यके प्रकाशसे विलक्षण प्रकाशसे पूर्ण किसी सृष्टिको मैं स्मरण करताहुं ॥ ४५ ॥ इन्द्र तथा अन्य राजाओंसे रहित उत्तम, मध्यम तथा अधम मनुष्योंसे शून्य इसी अंधीभूत दिशाओंके मंडल जिसमें थे ऐसी किसी सृष्टिको मैं स्मरण करताहुं ॥ ४६ ॥ और सृष्टिके प्रारंभकी कल्पना, त्रिभुवनमें विभाग, कुलपर्वतोंकी रचना, जंबूद्वीपकी पृथक् स्थिति, पृथिवीपरके वर्णाश्रमधर्मवाले बुद्धिधारियोंकि सृष्टिका विभाग, नक्षत्रमंडलकी रचना और ध्रुवकी रचना ॥ ४८ ॥

जन्मेंदुभास्करादीनामिंद्रोपेंद्रव्यवस्थितिम् ॥ हिरण्याक्षापहरणंवराहोद्धरणंक्षितेः ॥ ४९ ॥ कल्पनंपार्थियानांचवेदानयनमेवच ॥ मंदरोन्मूलनंचाब्धेरमृतार्थंचमंथनम् ॥५०॥ अजातपक्षोगरुडःसागराणांचसंभवः ॥ ॥ इत्यादिकायाःस्मृतयःस्वल्पातीतजगत्क्रमाः ॥ बालैरपिहितास्तातस्मर्यंतेतासुकोग्रहः ॥ ५१ ॥ गरुडवाहनंविहगवाहनंविहगवाहनंवृषभवाहनम् ॥ वृषभवाहनंगरुडवाहनंकलितवाहनंकलितजीवितः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भु० चिरजीवितवृत्तांतकथनं नाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—चंद्र सूर्य्यआदिका जन्म, इंद्र तथा बामनकी स्थिति, पृथिवीका हिरण्याक्षसे हरण और वराहसे उद्धार ॥ ४९ ॥ देव दानव तथा मनुष्यआदिमें प्रत्येक देशको राजोंकी कल्पना मत्स्यावतारसे वेदोंका आनयन, मंदराचलका

उखाडना और अमृतके लिये समुद्रका मथना ॥ ५० ॥ पक्षरहित गरुडकी अवस्था, और समुद्रोंकी उत्पत्ति, इत्यादि स्मर्तव्य पदार्थ तो मुझसे दृष्ट अनेककल्पकी अपेक्षा इस कल्पमें उत्पन्न होनेसे अति अल्प जगत्के क्रम बीते हैं, इनको तो मेरी अपेक्षा अति अल्प अवस्थावाले इस कल्पमात्रमें उत्पन्न आपके सदृश बालकभी स्मरण करतेहैं, इसलिये हे प्रिय ! उनके विषयमें गरुडवाहन (विष्णु) करके प्रसिद्ध हैं उनको अन्यकल्पमें हंसवाहन (चतुर्मुख ब्रह्मा) होके देव दैत्य आदिकी सृष्टि करते देखाहै, जो हंसवाहन (ब्रह्मा) करके इस कल्पमें प्रसिद्ध हैं उनको अन्यकल्पमें वृषभवाहन (रुद्र) होके संहार करते हुये देखाहै, तथा इस कल्पमें जो वृषभवाहन (रुद्र) करके प्रसिद्ध हैं उनको दूसरे कल्पमें गरुडवाहन (विष्णु) होके पालन करते हुये देखाहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चिरजीवित वृत्तांतकथनं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

वसिष्ठजीका अष्टम जन्म, सर्वथा सम तथा अर्द्धसम सृष्टि, तथा क्षीरसागरका मंथन इत्यादि विषय इस २२ के सर्गमें वर्णन किये गयेहैं ॥

भुशुंडउवाच ॥ ततोजगतिजातेषुभगवन्युष्मदादिषु ॥ भरद्वाजपुलस्त्यात्रिनारदेंद्रमरीचिषु ॥ १ ॥ पुलहोद्दालकाद्येषुक्रतुभृग्वंगिरस्सुच ॥ सनत्कुमारभृंगीशस्कंदेभवदनादिषु ॥ २ ॥ गौरीसरस्वतील क्ष्मीगायत्र्याद्यासुभूरिषु ॥ मेरुमंदरकैलासहिमवद्दर्दुरादिषु ॥ ३ ॥ हयग्रीवहिरण्याक्षकालनेमिबला दिषु ॥ हिरण्यकशिपुक्राथबलिप्रह्लादकादिषु ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले–हे भगवन् ! उसके पश्चात् कुछकाल दूर बीतनेपर जगत्में इस सर्गकी सृष्टिके विषयमें आपसे आदि लेके भरद्वाज, पुलस्त्य, अत्रि, नारद, इन्द्र और मरीचि आदिके स्मरणकी क्या गणना है ॥१॥ पुलह उद्दालकादि, क्रतु, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार, भृंगीश, स्कंद, और गणेश, आदिके उत्पत्तिके स्मरणकीभी क्या गणनाहै ॥२॥ गौरी, सरस्वती, लक्ष्मी, और गायत्री आदि अनेक देवियोंकि उत्पत्तिके स्मरणके विषयकी क्या गणनाहै, और हिमालय, मंदर, कैलास, और दर्दुर आदि पर्वतोंकी उत्पत्तिके स्मरणकीभी क्या गणनाहै ॥ ३ ॥ हयग्रीव, हिरण्याक्ष, कालनेमि, बल आदि हिरण्यकशिपु, क्राथ, बलि और प्रल्हाद आदिकी उत्पत्तिके स्मरणकी क्या गणनाहै ॥ ४ ॥

शिबिन्यंकुपृथूलाख्यवैन्यनाभागकेलिषु ॥ नलमांधातृसगरदिलीपनहुषादिषु ॥ ५ ॥ आत्रेयव्यासवा ल्मीकिशुकवात्स्यायनादिषु ॥ उपमन्युमणीमंकीभगीरथशुकादिषु ॥ ६ ॥ अल्पकातीतकालेषुकिंचि द्दूरेषुकेषुचित् ॥ तथाद्यतनसर्गेषुस्मरणेगणनैवका ॥ ७ ॥ मुनेतेब्रह्मपुत्रस्यजन्माष्टकमिदंकिल ॥ सं स्मराम्यष्टमेसर्गेतस्मिंस्त्वंममसंगतः ॥ ८ ॥

अर्थ—शिबि न्यंकु, पृथु, उलाख्य, वैन्य, नाभाग, केलि, नल, मांधाता, सगर, दिलीप, और नहुष आदि राजर्षियोंकी उत्पत्ति मरण आदिके स्मरणकी क्या गणनाहै ॥५॥ आत्रेय, दुर्वासा, व्यास, वाल्मीकि, शुक बात्स्यायन और ब्रह्मर्षिकी उत्पत्ति तथा मरणके विषयकी क्या गणनाहै, ऐसेही उपमन्यु, मणी, मंकी, भगीरथ और शुक आदिके स्मरणकी क्या गणनाहै ॥ ६ ॥ दो चार कल्प जिनको व्यतीत होगयेहै वा उससेभी कुछ दूरवालेके विषयमें तथा इस सृष्टिमें उत्पन्न होनेवालोंके स्मरणके विषयमें क्या गणनाहै अर्थात् इनमें तो विस्मरणकी संभावनाभी नहीं है ॥ ७ ॥ हे मुने ! ब्रह्माके पुत्रका यह तुमारा अष्टम (आठवां) जन्म है और आठ सर्ग (कल्प वा जन्मकी उत्पत्ति) मे तुम मुझसे मिलेथे यह मुझे स्मरणहै ॥ ८ ॥

कदाचिज्जायसेब्ध्योम्नःकदाचिज्जायसेजलात् ॥ कदाचिद्वायुतःशैलात्कदाचिज्जायसेऽनलात् ॥ ९ ॥ या दृशोयादृशाचारोयादृक्संस्थानदिग्गणः ॥ सर्गंयंतादृशानेवत्रीन्सर्गान्संस्मराम्यहम् ॥१०॥ एकरूपाखिलाचारसन्निवेशधरामरान् ॥ समकालान्स्थिरस्थैर्यान्दशसर्गान्स्मराम्यहम् ॥ ११ ॥ अंतर्धानं गताधात्रीवारपंचकमुद्धृता ॥ मुनेपंचसुसर्गेषुकूर्मेणैवपयोनिधेः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे मुने ! कभी तो तुम आकाशसे, कभी जलसे, कभी वायुसे, और कभी अग्निसे उत्पन्न होतेहो ॥ ९ ॥ जैसा जिसप्रकारका आचारसहित, और जिसप्रकारकी रचनामय दिशाओंके गणसहित यह सर्ग (इस कल्पकी सृष्टि) है वैसेही बीते हुये तीन सर्गोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ १० ॥ और एकप्रकारके रूप, आचार, और रचनाको धारण करनेवाले तुल्य आयु और असुरोंसे अविचालित स्थिर अपने २ स्थानमें युक्त देवतालोग जिनमें थे ऐसे दश सर्गोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ११ ॥ हे मुने ! पांच बार यह पृथिवी अंतर्धान हुई और पाचो सर्गोंमें समुद्रसे कूर्मावतारसे उद्धृत हुई न कि वाराहसे ॥ १२ ॥

मंदाराकर्षणावेगपर्याकुलसुरासुरम् ॥ स्मरामिद्वादशंचेदममृतांभोधिमंथनम् ॥ १३ ॥ सर्वौषधिरसोपेतांबलिग्राहस्तदादिवः ॥ वारत्रयंहिरण्याक्षोनीतवान्वसुधामधः ॥ १४ ॥ रेणुकात्मजतांगत्वाषष्ठवारमिमंहरिः ॥ बहुसर्गांतरेणापिचकारक्षत्रियक्षयम् ॥ १५ ॥ शतंकलियुगानांचहरेर्बुद्धदशाशतम् ॥ शौकराजतयैवात्तंस्मरामिमुनिनायक ॥ १६ ॥

अर्थ—मंदराचलके आकर्षण (खीचने) के वेगसे जिसमें सुर असुर व्याकुल थे ऐसे अमृतके लिये समुद्रके इस १२ बारहवें मंथनको मैं स्मरण करताहुं ॥ १३ ॥ संपूर्ण औषधियोंके रससे युक्त इस वसुधाको स्वर्गसे करलेनेवाले हिरण्याक्षने तीन बार नीचे प्राप्त किया ॥ १४ ॥ विष्णुभगवान् रेणुकाके पुत्रताको प्राप्त होके परशुरामावतार शून्य अनेककल्पके व्यवधानसेभी यह छठें बार क्षत्रियोंका क्षय कियाहै ॥ १५ ॥ हे मुनिनायक ! १०० सौ कलियुगमें शोक (कीकट) देशके राजा शुद्धोदनके पुत्र होके विष्णुकी बुद्धावतारकी १०० सौ दशाको मैं स्मरण करताहुं ॥ १६ ॥

त्रिंशत्त्रिपुरविक्षोभान्द्वौदक्षाध्वरसंक्षयौ ॥ दशशक्रविघातांश्चचंद्रमौलेःस्मराम्यहम् ॥ १७ ॥ बाणार्थमष्टौसंग्रामान्ज्वरप्रमथमंत्रकान् ॥ विक्षोभितसुरानीकान्स्मरामिहरिशर्वयोः ॥ १८ ॥ युगंप्रतिधियांपुंसान्यूनाधिकतयामुने ॥ क्रियांगपाठवैचित्र्ययुक्तान्वेदान्स्मराम्यहम् ॥ १९ ॥ एकार्थानिसमग्राणिबहुपाठानिमेनघ ॥ पुराणानिप्रवर्ततेप्रस्तुतानियुगंप्रति ॥ २० ॥

अर्थ—तीस कल्पोंमें तीस बार त्रिपुरोंके दाहोंको, और दो बार दक्षके यज्ञोंके विध्वंसको तथा महादेवके अपराध किये दश इन्द्रोंके गुहामें निरोध (रोकना) रूप दश बारके दंडोंको मैं स्मरण करताहुं ॥१७॥ बाणासुरके लिये विष्णु तथा महादेवका वैष्णव और माहेश्वरज्वरोंके जिनमें प्रमथोंके आव्हानार्थ मंत्रक्रिया होतीथी और जो सुर असुरको विक्षोभ उत्पन्न करतेथे ऐसे आठ संग्राम मैंने देखेहै और उनको स्मरण करताहुं ॥ १८ ॥ प्रतियुगमें पढनेवाले पुरुषोंकी बुद्धियोंकी, ब्रह्मचर्य्य, गुरुशुश्रूषा, तथा भूमिशयन आदि क्रियाओंकी, शिक्षादि अंगोंकी तथा सावधानीसे स्वर, वर्ण आदिरूपताकी न्यूनता तथा अधिकतासे जनित चित्रविचित्र प्रभावयुक्त वेदोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ १९ ॥ एक अर्थ प्रतिपादक, और प्रतिद्वापरमें निर्माताके भेदसे अनेकप्रकारके पाठयुक्त समग्र पुराण प्रतियुगमें प्रवृत्त हुयेहैं ॥ २० ॥

पुनस्तानेवतानेवमन्यानपियुगेयुगे ॥ वेदादिवित्प्ररचितानितिहासान्स्मराम्यहम् ॥ २१ ॥ इतिहासंमहाश्चर्यमन्यंरामायणाभिधम् ॥ ग्रंथलक्षप्रमाणंचज्ञानशास्त्रंस्मराम्यहम् ॥ २२ ॥ रामवद्व्यवहर्तव्यंनरावणविलासवत् ॥ इतियत्रधियांज्ञानंहस्तेफलमिवार्पितम् ॥ २३ ॥ कृतंवाल्मीकिनाचैतदधुनायत्करिष्यति ॥ अन्यच्चप्रकटंलोकेस्थितंज्ञास्यसिकालतः ॥ २४ ॥

अर्थ—वेदवेत्ता व्यास वाल्मीकि आदि ऋषियोंने युग २ में पुनः २ महाभारत, रामायण आदि तथा अन्य इतिहासोंको जो रचाहै उनको मैं स्मरण करताहुं ॥ २१ ॥ और अन्य रामायणनाम लक्षश्लोकप्रमाणयुक्त ब्रह्मा वसिष्ठ तथा विश्वामित्रादिसे उपदिष्ट ज्ञानशास्त्र रचाहै उनको मैं स्मरण करताहुं ॥ २२ ॥ रामचंद्रजीके सदृश व्यवहार करना चाहिये न कि रावणके समान ऐसा ज्ञान जिसमें बुद्धियोंको ऐसे दियागयाहै जैसें हस्तमें फल ॥ २३ ॥ इस पूर्वरामायणको वाल्मीकिजीने रचाहै और अब जो अन्य वसिष्ठ रामका सम्वादरूप ब्रह्मप्रतिपादक ३२ सहस्र श्लोकप्रमाण वासिष्ठमहारामायण नामसे करेंगे उसकोभी दिव्यज्ञानके बलसे मैं स्मरण करताहुं और कालपाके तुमभी उसको जानों अर्थात् रामजीसे कहोगे ॥ २४ ॥

वाल्मीकिनाम्नाजीवेनतेनैवान्येनवाकृतम् ॥ एतच्चद्वादशंवारंक्रियतेविस्मृतिंगतम् ॥ २५ ॥ द्वितीयमेतस्यसमंभारतंनाममनामतः ॥ स्मरामिप्राक्तनव्यासकृतंजगतिविस्मृतम् ॥ २६ ॥ व्यासाभिधेनजीवेनते

नैवान्येनवाकृतम् ॥ एतत्तुसप्तमंवारंक्रियतेविस्मृतिंगतम् ॥ २७ ॥ आख्यानकानिशास्त्राणिनिवृत्तानियुगंप्रति ॥ विचित्रसंनिवेशानिसंस्मरामिमुनीश्वर ॥ २८ ॥

अर्थ—यह वसिष्ठ रामका सम्वादरूप महारामायण उसी पूर्ववाल्मीकिने वा अन्य वाल्मीकिनाम जीवने पूर्वकालमें कृत महारामायण जो विस्मरणको प्राप्त होगयाहै उसको यह बारहवीं बार करतेहैं ॥ २५ ॥ और दूसरा इसीके सदृश जो भारतनामसे प्रसिद्ध है और पूर्वकल्पमें व्याससे रचागयाथा और जगत्में विस्मृत होगयाहै उसीको ॥ २६ ॥ व्यासने अन्यव्यासजीवने रचाहै और यह विस्मृतिको प्राप्त पुनः सातवीं बार कियाजाताहै ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वर ! आख्यानशास्त्र जो विचित्र रचनासहित युग २ में प्रवृत्त हुये हैं उनको मैं स्मरण करताहुं ॥ २८ ॥

भूयस्तान्येवतान्येवतथान्यानियुगेयुगे ॥ साधोपदार्थजालानिप्रपश्यामिस्मरामिवै ॥ २९ ॥ राक्षसक्षतयेविष्णोर्महीमवतरिष्यतः ॥ अधुनैकादशंजन्मरामनाम्नोभविष्यति ॥ ३० ॥ नारसिंहेनवपुषाहिरण्यकशिपुंहरिः ॥ जघानवारत्रितयंमृगेंद्रइववारणम् ॥ ३१ ॥ वसुदेवगृहेविष्णोर्भुवोभारनिवृत्तये ॥ अधुनाषोडशंजन्मभविष्यतिमुनीश्वर ॥ ३२ ॥

अर्थ —हे साधो ! पुनः वेही २ तथा अन्यभी युग २ के प्रति जो पदार्थसमूह हैं उनको मैं देखताहुं तथा स्मरण करताहुं ॥ २९ ॥ हे साधो ! राक्षसोंके नाशके लिये पृथिवीपर अवतार लेनेवाले विष्णुका रामनामका अब यह ग्यारहवां जन्म अर्थात् ग्यारहवां रामावतार होगा ॥ ३० ॥ नरसिंहका शरीर धारण करके हिरण्यकशिपुको तीन बार ऐसे मारा जैसे सिंह हस्तीको ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वर ! पृथिवीका भार उतारनेके लिये वसुदेवके गृहमें विष्णुभगवान्का अब यह सोलहवां जन्म होगा ॥ ३२ ॥

जगन्मयीभ्रांतिरियंनकदाचनविद्यते ॥ विद्यतेतुकदाचिच्चजलबुद्बुदवत्स्थिता ॥ ३३ ॥ दृश्यभ्रांतिरनित्येयमंतस्थासंविदात्मनि ॥ जायतेलीयतेचाशुलोलावीचिरिवांभसि ॥ ३४ ॥ समैकसन्निवेशानिबहूनिविषमाणिच ॥ तथार्धसमरूपाणित्रिजगंतिस्मराम्यहम् ॥ ३५ ॥ तान्येवतादृक्कर्माणितथान्याचरणानिच ॥ तत्कर्माणितथान्यानिभूतानीहस्मराम्यहम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! यथार्थमें यह जगन्मयी भ्रांति कदाचित् नहीं है और कदाचित् जो अज्ञानसे भान होती है वह जलके बुद्बुदके समान स्थितहै ॥ ३३ ॥ यह दृश्यकी भ्रांति अनित्यहै और संविद् आत्मामें आभ्यन्तर स्थितहै, और शीघ्र ऐसे उत्पन्न तथा नष्ट होती है जैसे चंचल तरंग जलमें ॥ ३४ ॥ कितने समान एकप्रकारके आकारवाले, कितने विषम और कितने आधेसमान आधे विषम तीनों लोकोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३५ ॥ वैसेही और वैसेही कर्मवाले तथा अन्यप्रकारके आचरणसहित, वैसेही कर्मयुक्त तथा अन्यप्रकारके प्राणियोंको जो अन्य २ युगमें उत्पन्न हुये हैं उनको मैं स्मरण करताहुं ॥ ३६ ॥

प्रतिमन्वंतरंब्रह्मन्विपर्यस्तेजगत्क्रमे ॥ सन्निवेशेन्यथाजातेप्रयातेसंश्रुतेजने ॥ ३७ ॥ ममान्यान्येवमित्राणिअन्यएवचबंधवः ॥ अन्यएवनवाभृत्यास्त्वन्यएवसमाश्रयाः ॥ ३८ ॥ कदाचिदहमेकांतेविंध्यकच्छकृतालयः ॥ कदाचित्सह्यनिलयःकदाचिद्दर्दुरालयः ॥ ३९ ॥ कदाचिद्धिमवद्वासीकदाचिन्मलयाचलः ॥ कदाचित्प्राक्तनेनैवसन्निवेशेनभूधरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! प्रतिमन्वन्तर जगत्के क्रमके विपर्य्यय होनेपर, अवयवोंकी स्थिति अन्यप्रकार होनेपर और प्रख्यात मनुष्योंके चलेजानेपर ॥ ३७ ॥ मेरे दूसरेही मित्र, दूसरेही बन्धु होते हैं; दूसरेही नूतन भृत्य होते हैं, और दूसरेही निवासस्थानभी होते हैं ॥ ३८ ॥ कभी तो एकांतदेशमें विन्ध्याचलके जलमय स्थानमें अपना खुंथा बनाताहुं, कभी सह्य और कभी दर्दुरपर्वतपर ॥३९॥ कभी हिमालयपर निवास करताहुं, और कभी मलयाचलपर और कभी पूर्वकल्पमें जैसी अवयवोंकी रचनाथी वैसेही रचनासहित इस पर्वत (मेरु) पर ॥ ४० ॥

चूतवृक्षेचशाखायांप्राप्यनीडंकरोम्यहम् ॥ अनाद्यंतेषुयागेषुयुगेषुमुनिनायक ॥ ४१ ॥ प्राक्तनेनैवजातोयंसन्निवेशेनपादपः ॥ देहंत्यक्त्वासुखंसाधोनातःपरिणतिंगतः ॥ ४२ ॥ तदीयेनैवजातोयंसन्निवेशेनपादपः ॥ तातेजीवतियैवाभूच्छोभास्यसुतरोस्तथा ॥ ४३ ॥ कृतप्राक्सन्निवेशोयमहंस्थितिमिहागतः ॥ नेहाभूदुत्तरापूर्वककुन्नायंचभूधरः ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्राप्त होके असंख्ययुगोंके बीतजानेपर इसी कल्पवृक्षकी शाखापर अपना नीड (खुंथा) बनाताहुं ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वर साधो ! अनन्तकल्पोंके बीतनेपरभी यह वृक्ष अपनी देहको त्यागकर पूर्वकल्पके अवयवोंकी रचनासहित उत्पन्न हुआहै इसलिये परिणामको नहीं प्राप्त हुआहै ॥ ४२ ॥ हे मुने पूर्वकल्पकी रचनासहित यह वृक्ष

उत्पन्न हुआहै इसलिये पिता चंडके सन्मुख इस वृक्षकी जैसी शोभाथी वैसेही अबभी है ॥ ४३ ॥ पूर्वकल्पमें जो उत्तरदिशा थी वह यह नहीं और वह पर्वतभी नहीं है ॥ ४४ ॥

दिगुत्तराभूदन्येयंपूर्वमेवमहीधरः ॥ एकैकदेहसंस्थानवीतब्रह्मनिशागमः ॥ ४५ ॥ ध्यानांतेतत्वएवैनं सर्गमालोक्यवेद्म्यहम् ॥ अर्कादेर्ऋक्षसंचारान्मेर्वादिस्थानकादिशः ॥ ४६ ॥ संस्थानमन्यथातस्मिन् स्थितेयांतिदिशोन्यथा ॥ नसन्नासजगन्मन्येभ्रमयन्केवलंधियः ॥ ४७ ॥ आत्मस्पंदचमत्कारविभवो यंविजृंभते ॥ पुत्रःपितृत्वमायातिमित्रंयात्यरितांतथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—पूर्वकल्पमें उत्तरदिशा औरही थी और मेरुपर्वतभी अन्यथा था परंतु मैं एकही एक इसी देहसे अनेक ब्रह्माकी रात्रिको बिताया ॥ ४५ ॥ क्योंकि पूर्वोक्तधारणापूर्वक स्थिर किये हुये निर्विकल्प समाधिके अंतमें इस सर्गको देखकर वही यह (उसके सदृश) मेरु है इसप्रकार तत्वके प्रत्यभिज्ञानमान होनेपर इस सर्गको मैं जानताहुं, यदि मैं अन्य होता तो वही यहहै ऐसी तत्तारूप प्रत्यभिज्ञा (देखी वस्तुको पहिचानना) न होती, और सूर्य्य, चंद्र आदि नक्षत्रोंकी नियतगतिसे उत्तरदिशामें मेरु आदिका स्थान प्रसिद्ध होताहै ॥ ४६ ॥ और दूसरेकल्पमें मेरुके प्रकारसे स्थित होनेपर चित्रलिखित मेरुके आधीन दिशाओंके परिवर्तन होनेके समान सब दिशाभी अन्यथाभावको प्राप्त होती हैं, दिशाओंके अन्यथाभावके समान सदसत्वसे विलक्षण मिथ्याभूत यह जगत् बुद्धिको भ्रमातेहुये स्थितहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ ४७ ॥ आत्माके स्पंदका चमत्कारका विभव यह विकसित होरहाहै, इस मिथ्या तथा परिवर्तनशील जगत्में पुत्र पितृदशाको और मित्र शत्रुदशाको प्राप्त होताहै ॥ ४८ ॥

स्त्रीत्वंचशतशोयातान्पुंसश्चैवस्मराम्यहम् ॥ कलौकृतयुगाचारान्कृतेकलियुगस्थितिम् ॥ ४९ ॥ त्रेतायांद्वापरेचैवसंस्मरामिमुनीश्वर ॥ अदृष्टवेदवेदार्थान्स्वसंकेतविहारिणः ॥ ५० ॥ सर्गान्निरर्गलाचारान्कचित्कांश्चित्स्मराम्यहम् ॥ ध्यातरिब्रह्मणोब्रह्मन्ससुरासुरमानुषम् ॥ ५१ ॥ चतुर्युगसहस्रांतेजगच्छून्यंस्मराम्यहम् ॥ मनोमननिर्माणान्पार्थिवाकारवर्जितान् ॥ व्याप्तान्वायुमयैर्भूतैर्दशसर्गान्स्मराम्यहम् ॥ ५२ ॥ विचित्रसंस्थानविशेषदेशान्विचित्रकार्याकुलभूतकोशान् ॥ विचित्रविन्यासविलासवेषान्स्मराम्यहंब्रह्मदिनेष्वशेषान् ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भू० चिरजीवितवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—सैकडों पुरुषोंको स्त्रीदशामें प्राप्त मैं स्मरण करताहुं. कलिमें सत्युगका आचार और सत्युगमें कलियुगकी स्थितिको मैं स्मरण करताहुं ॥ ४९ ॥ और मुनीश्वर त्रेता तथा द्वापरमेंभी कलियुगके आचार देखेगये हैं. जैसे त्रेता द्वापरमें वेदार्थ (स्मृति) को न देखनेवाले अपनी इच्छासे विहार करनेवाले ब्राह्मण देखे गयेहैं ॥ ५० ॥ और कोई २ सर्ग सत्युगमेंभी निरंकुश आचारवाले देखेगये हैं, जिनको मैं स्मरण करताहुं. और हे ब्रह्मन्! चारों युग जब सहस्रबार बीतजातेहैं और ब्रह्मा जब ब्रह्मके ध्यानमें निमग्न होते हैं उससमय सुर असुर तथा मनुष्यसहित ॥ ५१ ॥ शून्यसत्ताको प्राप्तके समान इस जगत्को मैं स्मरण करताहुं, और इसप्रकार ब्रह्माकी रात्रिमें जगत्के लीन होनेपर इन्दुके १० पुत्रोंके भवके मननसे रचित पृथिवीके अंशसे वर्जित और वायुभूत प्राणियोंसे व्याप्त १० सर्गोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ५२ ॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके अनेक दैनिक कल्पोंमें विचित्र विशेष स्थानयुक्त देश जिनमें थे ऐसे चित्रविचित्र कार्य्योंसे व्याकुल प्राणियोंके कोशरूप और चित्रविचित्र रचना विलास और वेशयुक्त संपूर्ण सर्गोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चिरजीवितवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

जिन दोषोंके त्यागनेसे मृत्यु मनुष्यको नहीं बाधा करता है और जिसमें मन लगानाचाहिये वह सब इस २३ सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवासिष्ठउवाच ॥ अथासौवायसश्रेष्ठोजिज्ञासार्थमिदंमया ॥ भूयःपृष्टोमहाबाहोकल्पवृक्षलताग्रके ॥ १ चरतांजगतःकोशेव्यवहारवतामपि ॥ कथंविहगराजेंद्रदेहंमृत्युर्नबाधते ॥ २ ॥ भुशुंडउवाच ॥ ज.न

न्नपिहिसर्वज्ञब्रह्मन्जिज्ञासयेवमाम् ॥ पृच्छसिप्रभवोनित्यंभृत्यंवाचालयंतिहि ॥ ३ ॥ तथापियत्पृच्छसिमांतत्तेप्रकथयाम्यहम् ॥ आज्ञाचरणमेवाहुर्मुख्यमाराधनंसताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रामजी ! उस वृक्षके लताके अग्रभागमें उस काकश्रेष्ठ पुनः मैंने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे पक्षिराजेन्द्र इस जगत्के कोशमें भ्रमण करनेवाले व्यवहारी मनुष्योंकोभी मृत्यु किसप्रकार बाधा नहीं करसकता ॥ २ ॥ भुशुंडजी बोले–हे ब्रह्मन् ! जानतेहुयेभी केवल जिज्ञासाकेलिये मुझसे आप पूंछतेहैं इसका यह कारण है कि स्वामी भृत्यको प्रश्नद्वारा बोलनेमें प्रवीण करके प्रसिद्ध करतेहैं ॥ ३ ॥ तिसपरभी जो कुछ मुझसे आप पूंछते हैं वह मैं आपसे कहूंगा, क्योंकि महात्माओंकी आज्ञाका पालन करनाही उनकी मुख्य सेवा है ॥ ४ ॥

दोषमुक्ताफलप्रोतावासनातंतुसंततिः ॥ हृदिनग्रथितायस्यमृत्युस्तंनजिघांसति ॥ ५ ॥ निःश्वासवृक्षक्रकचाःसर्वदेहलताघुणाः ॥ आधयोयंनभिंदंतिमृत्युस्तंनजिघांसति ॥ ६ ॥ शरीरतरुसर्पौघाश्चिंतार्पितशिरःफणाः ॥ आशायंनदहंत्यंतर्मृत्युस्तंनजिघांसति ॥ ७ ॥ रागद्वेषविषापूरःस्वमनोबिलमंदिरः॥ लोभव्यालोनभुंक्तेयंमृत्युस्तंनजिघांसति ॥ ८ ॥

अर्थ—दोषरूप मोतियोंके फलसे गूंथीहुई वासनारूप सूत्र (सूत) की संपत्ति जिसके हृदयमें नहीं गूंथी है अर्थात् जिसके हृदयमें बासना नहीं है उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ५ ॥ निःश्वास (प्राण) रूप वृक्षके आरे और सबदेहलताके घुणरूप मानसीव्यथा जिसको छेदन नहीं करते उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ६ ॥ शरीररूप वृक्षके कोटरमें स्थित सर्पोंके समूहरूप और चिंतारूप फणोंके शिरमें धारण कीयेहुई आशा जिसको नहीं जलाती उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ७ ॥ रागद्वेषरूप बिषसे पूर्ण, और मनरूप बिलका निवासी लोभरूप सर्प जिसको नहीं काटता उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ८ ॥

पीताशेषविवेकांबुःशरीरांभोधिवाडवः ॥ ननिर्दहतियंकोपस्तंमृत्युर्नजिघांसति ॥ ९ ॥ यंत्रंतिलानांकठिनंराशिमुग्रमिवाकुलम् ॥ यंपीडयतिनानंगस्तंमृत्युर्नजिघांसति ॥ १० ॥ एकस्मिन्निर्मलेयेनपदेपरमपावने ॥ संश्रिताचित्तविश्रांतिस्तंमृत्युर्नजिघांसति ॥ ११ ॥ वपुःखंडाभिपतितंशाखामृगमिवोदितम्॥ नचंचलंमनोयस्यतंमृत्युर्नजिघांसति ॥ १२ ॥

अर्थ—संपूर्ण विवेकरूप जलका पीनेवाला, और शरीररूप समुद्रका वडवानल यह क्रोध जिसको नहीं जलाता उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ९ ॥ तिलोंकी उग्र और कठिण राशिको जैसे यंत्र (कोलू) पेरताहै ऐसेही कामदेव व्याकुलतापूर्वक जिसको पीडित नहीं करता उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ १० ॥ एक निर्मल परमपावन ब्रह्मपदमें जिसने अपने चित्तको विश्राम कियाहै उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ ११ ॥ शरीररूप पुष्पित बनके खंडोंमें चारोओरसे गिराहुआ मर्कटके समान उदयको प्राप्त जिसका मन चंचल नहीं है उसको मृत्यु नहीं मारता ॥ १२ ॥

एतेब्रह्मन्महादोषाःसंसारव्याधिहेतवः ॥ मनागपिनलुंपंतिचित्तमेकंसमाहितम् ॥ १३ ॥ आधिव्याधिसमुत्थानिचलितानिमहाभ्रमैः ॥ नविलुंपंतिदुःखानिचित्तमेकंसमाहितम् ॥ १४ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनसंस्मृतिर्नविस्मृतिः ॥ नसुप्तंनचजाग्रत्स्याच्चित्तंयस्यसमाहितम् ॥ १५ ॥ अंधीकृतहृदाकाशाःकामकोपविकारजाः ॥ चिंतानपरिहिंसंतिचित्तंयस्यसमाहितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! संसाररूप रोगके कारणभूत ये (वासना, आशा, लोभ, क्रोध तथा काम) महादोष एकसमाहित चित्तको किंचित्भी छेदन नहीं करता ॥ १३ ॥ आधिव्याधिसे उत्पन्न और महाभ्रमोंसे चलायमान दुःखसमाहित चित्तको किंचित्भी छेदन नहीं करसकते ॥ १४ ॥ जिसका चित्त समाहित है वह न उदय होताहै और न अस्त होताहै, न उसको स्मृति होती है न विस्मृति होती, और न सुप्त है न जाग्रत् ॥१५॥ जिस पुरुषका चित्त समाहित है उसके हृदयाकाशको अंधी करनेवाली तथा काम, क्रोध आदिरूप विकारोंसे उत्पन्न चिंता नहीं छेदन करती१६

नददातिनचादत्तेनजहातिनयाचते ॥ कुर्वदेवचकार्याणिचित्तंयस्यसमाहितम् ॥ १७ ॥ येदुरर्थादुरारंभादुर्गुणादुरुदाहृताः ॥ दुष्क्रमास्तेनकृंततिचित्तंयस्यसमाहितम् ॥ १८ ॥ आभांतिविपुलार्थानिमहांतिगुणवंतिच ॥ सर्वाण्येवानुधावंतिचित्तंयस्यसमाहितम् ॥ १९ ॥ यद्वदर्कहितंसत्यमनपायिगतभ्रमम् ॥ दुरीहितदृशोन्मुक्तंतत्परंकारयेन्मनः ॥ २० ॥

अर्थ—जिसका चित्त समाहित है वह न कुछ लेताहै न देता, न कुछ त्यागताहै और न कुछ मागताहै किंतु यथाप्राप्त कार्य्योंको करता रहताहै ॥ १७ ॥ जिसका चित्त समाहित है उसको जो दुष्ट उपार्जनको योग्य धन

कृषी, गृह, धनादिके आरंभ, रागद्वेषादि गुण, मर्मछेदनकी युक्ति, और दुष्ट नीति जो हैं वे छेदन नहीं करसकते ॥१८॥ जिसका चित्त समाहित है उसकी ओर बहुतलाभयुक्त, प्रकाशमान्, शांतिआदि अनेकगुणयुक्त, तथा महान्, संपूर्ण सुख चारोओरसे दौडतेहैं ॥ १९ ॥ जो भविष्यत्में हित, सत्य, अविनाशी, भ्रमशून्य, और भोगकी दृष्टिसे रहित जो स्वात्माका लाभ है उसमें मनुष्योंको चित्त लगाना चाहिये ॥ २० ॥

यदद्दष्टमशुद्धेनचित्तवैधुर्यदायिना ॥ अनेकत्वपिशाचेनतत्परंकारयेन्मनः ॥ २१ ॥ आदौमध्येतथांतेच चिरायपरमोचितम् ॥ यच्चारुमधुरंपथ्यंतत्परंकारयेन्मनः ॥ २२ ॥ यदनंतंमनःपथ्यंतथ्यमाद्यंतमध्य गम् ॥ समस्तसाधुभिर्जुष्टंतत्परंकारयेन्मनः ॥ २३॥ यद्बुद्धेःपरमालोकमाद्यंयदमृतंपरम् ॥ यदनुत्त मसौभाग्यंतत्परंकारयेन्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो अशुद्ध, चित्तको पुरुषार्थसे भ्रष्ट करनेवाले भेदकी दृष्टिरूप पिशाचसे नहीं देखागयाहै उसकी (आत्मलाभकी) ओर चित्तको लगानाचाहिये ॥ २१ ॥ आरंभमें सुखदायक, मध्यमेंभी मधुर और अंतमें चिर-कालके पथ्य अर्थात् सर्वदुःखनिवर्तक आत्मज्ञान है उसमें चित्तको लगाना चाहिये ॥ २२ ॥ जो आदि, अंत, मध्यमें सुखरूपसे अनुगत, अनंत और मनको पथ्य है और समस्त साधुजनोंसे सेवित है उसमें मन लगानाचाहिये ॥ २३ ॥ जो बुद्धिका परमप्रकाशक, सबसे प्रथम, अमृतरूप जिसमें उत्तम सुख कोई नहीं है अर्थात् निरतिशय आनन्दरूप आत्मलाभ है उसमें चित्त लगाना चाहिये ॥ २४ ॥

सामरासुरगंधर्वेसविद्याधरकिन्नरे ॥ ससुरस्त्रीगणेस्वर्गेनकिंचित्सुस्थिरंशुभम् ॥ २५ ॥ सतरौसनरा धीशेसपर्वतपुरव्रजे ॥ सांबुधौभूतलेतातनकिंचिच्छोभनंस्थिरम् ॥ २६ ॥ सनागेसासुरव्यूहेसासुरस्त्री गणेतथा ॥ समस्तएवपातालेनकिंचिच्छोभनंस्थिरम् ॥ २७ ॥ सस्वर्गेससुरालोकेसपातालेसदिक्तटे॥ जगत्यस्मिंस्तुसर्वस्मिन्नकिंचिच्छोभनंस्थिरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—देवता, असुर, गंधर्व, विद्याधर और किन्नरसहित, और देवांगनाओंकरकेसहित स्वर्गमेंभी कोई वस्तु कल्याणदायक स्थिर नहीं है ॥ २५ ॥ हे प्रिय मुने ! वृक्षसमूहसहित राजागणसहित, पर्वत तथा नगर समूहस-हित तथा समुद्रसहित इस भूतलमें कुछभी शोभन स्थिर नहीं है ॥ २६ ॥ नाग, असुर और असुरोंकी अंगनासहित समस्त पातालमें कुछ शोभन स्थिर नहीं है ॥ २७ ॥ स्वर्ग, देवलोग, पाताल और दशोदिशासहित इस संपूर्ण जगत्में कुछभी शोभन स्थिर नहीं है ॥ २८ ॥

आधिव्याधिविलोलासुदुःखौघवलितासुच ॥ क्रियासुनित्यतुच्छासुनकिंचित्सुस्थिरंशुभम् ॥ २९ ॥ त रलीकृतचित्तासुहृदयानंदिनीषुच ॥ चिंतासुधीविकारासुनकिंचित्सुस्थिरंशुभम् ॥ ३० ॥ हृत्क्षीरोदक संस्पंदमंदरेषुचलेष्वपि ॥ स्वसंकल्पविकल्पेषुनकिंचित्सुस्थिरंशुभम् ॥ ३१ ॥ अनारतागमापायपरा स्वसिशिरास्वपि ॥ चित्राकारासुचेष्टासुनकिंचित्सुस्थिरंशुभम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आधि तथा व्याधिसे चंचल, दुःखोंके समूहसे आवृत, और नित्य तुच्छ क्रियाओंमे वा उनके फलोंमें कुछभी शोभन और स्थिर नहीं है ॥ २९ ॥ चित्तों चंचलवाली, बिना बिचारे हृदयको आनंददायक बुद्धिके विकार-रूप चिंताओंमें (वेदान्तके सिवाय) अन्यशास्त्रोंके चिंतनोंमें कुछभी शोभन और स्थिर नहीं ॥ ३० ॥ निजहृदय-रूप क्षीरसागरके विक्षोभित करनेमें मन्दराचलके समान चंचल अपने संकल्पविकल्पोंमेंभी कुछ कल्याणदायक स्थिर नहीं है ॥ ३१ ॥ निरंतर आगम तथा अपाय (नाश) में तत्पर अतिविचित्र तथा तरवारकी धाराके सदृश इन्द्रि-योंकी चेष्टाओंके बीचभी कुछ शोभन तथा स्थिर नहीं है ॥ ३२ ॥

नवरमेकमहीतलराजतानचवरंविबुधामररूपता ॥ नचवरंधरणीतलनागतास्थितिमुपैतिहियत्रसतांम नः ॥३३॥ नवरमाकुलशास्त्रविचारणंनचवरंपरकार्यविवेचनम् ॥ नवरमग्र्यकथाक्रमवर्णनंस्थितिमुपैति हियत्रसतांमनः ॥३४॥ नवरमाधिमयंचिरजीवितंनचवरंमरणंदृढमूढता ॥ नचवरंनरकोनचविष्टपंस्थि तिमुपैतिहिनक्वचिदाशयः ॥ ३५ ॥ इतिविविधजगत्क्रमाःसमस्ताःखलुमतिमूढतयानरस्यरम्याः ॥ च लतरकलनाहितेपदार्थेकथमुपयांतिचिरस्थितिंमहांतः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भु० समाधानसंकल्पनिराकरणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—हे मुने ! एक अखंड पृथिवीका राज्य श्रेष्ठ नहीं है स्वर्गका राज्य श्रेष्ठ नहीं है और पातालकाभी राज्य श्रेष्ठ नहीं है जहां कि सज्जनोंका चित्त विश्राम पावै ॥ ३३ ॥ आकुलताका हेतुभूत नानाप्रकारके शास्त्र अर्थात् चतुर्दश विद्याओंका विचारण (पांडित्य) श्रेष्ठ नहीं है, और भारत आदि कथाओंके क्रमका वर्णन करनाभी श्रेष्ठ नहीं है जहां कि सज्जनोंका मन स्थितिको प्राप्तहो ॥ ३४ ॥ अनेक मानसीव्यथाओंसे पूर्ण चिरकालका जीवनभी श्रेष्ठ नहीं है. प्रबल समूहता प्रधान मरणभी श्रेष्ठ नहीं है, पापमय जन्मका नरकभी श्रेष्ठ नहीं और सब भुवनोंका आधिपत्यभी श्रेष्ठ नहीं जहां कि हृदय (मन) स्थितिको पावै ॥ ३५ ॥ विवेकीपुरुषको इसप्रकार विचार्य्यमाण सब जगत्के क्रम किंचित् रमणीय नहीं है क्योंकि चंचलतर कल्पनासे गृहीत पदार्थोंमें महात्मालोग चिरकालकी स्थितिको कैसे प्राप्तहों ३६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने समाधानसंकल्पनिराकरणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

देहकी नाडियोंके क्रमसे युक्त, षट्चक्रयुक्त हृदयसहित, और प्राणोंके स्पंदको विभागसे पूर्ण प्राणकी चिंता इस २४ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

भुशुंडउवाच ॥ एकैवकेवलाहृष्टिर्निरापायागतभ्रमा ॥ विद्यतेसर्ववित्त्वेषुसर्वश्रेष्ठासमुन्नता ॥ १ ॥ आत्मचिंतासमस्तानांदुःखानामंतकारिणी ॥ चिरसंभृतदुःस्वप्नसंसारभ्रमहारिणी ॥ २ ॥ निष्कलंकमनोमार्गविपुलांगणचारिणी ॥ तथासमस्तदुःखानांचितानर्थविनाशिनी ॥ ३ ॥ ज्योत्स्नयेवांधकाराणामलमंतःप्रजायते ॥ सास्वात्मचिंताभगवन्सर्वसंकल्पवर्जिता ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले—हे मुने! नाश तथा भ्रमरहित, सर्व विद्वत्ता श्रेष्ठ और केवल एक आत्मदृष्टिही है ॥१॥ हे मुने ! आत्मचिंता वा आत्मदृष्टिसे पूर्ण दुःखोंकी अंतकारिणी, तथा चिरकालसे संचित दुःस्वप्नरूप संसारके भयके हरनेवाली है ॥ २ ॥ माया आदि कलंकरहित आत्माकी ओर अभिमुख मनही मार्ग जिसमें ऐसे मनसेभी अगम्य निरतिशय आनंदरूप साक्षीचेतन आत्मारूप विशाल अंगणमें विचरनेवाली तथा समस्तदुःखोंकी और चिंतारूप अनर्थकी विनाशिनी ॥३॥ और जैसे चंद्रिकासे अंधकारोंका नाश होताहै, ऐसेही जिसके द्वारा अज्ञानान्धकारका नाश होताहै, हे भगवन् ! सब संकल्पोंसे वर्जित वह स्वात्मचिंता ॥ ४ ॥

युष्मदादिषुसुप्रापादुष्प्रापैवास्मदादिषु ॥ समस्तकलनातीतंपरांकोटिमुपागतम् ॥ ५ ॥ पदमासादयंत्येतत्कथंसामान्यबुद्धयः ॥ आत्मचिंताविलासिन्यास्तस्याःसख्योमहामुने ॥ ६ ॥ किंचित्साम्यमुपायाताविज्ञानशशिशीतलाः ॥ आत्मचिंतासमानानांविविधानांमुनीश्वर ॥ ७ ॥ आत्मचिंतावयस्यानांमध्यादेकतमामया ॥ सर्वदुःखक्षयकरीसर्वसौभाग्यवर्धिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—आपके सदृश महात्माओंमें सुलभ और हमलोगोंमें दुर्लभ है, क्योंकि सब कल्पनाओंसे परे सबसे पराकाष्ठाको प्राप्त ॥ ५ ॥ जो पद है उसको अविशुद्ध प्राकृत बुद्धिवाले कैसे प्राप्त करसकतेहैं. और हे महामुने ! उस आत्मा चिंतारूप विलासिनीकी कईएक सखियां है ॥ ६ ॥ जोकि विज्ञानरूप चन्द्रमासे किंचित् आत्मचिंताकी समताको प्राप्तहैं. और हे मुनीश्वर ! आत्मचिंताके समान विविधप्रकारकी ॥ ७ ॥ आत्मचिन्ताकी सखियोंके मध्यसे एक जोकि सब दुःखोंकी क्षयकारिणी और सर्व सौभाग्यवर्द्धिनी है ॥ ८ ॥

कारणंजीवितस्येहप्राणचिंतासमाश्रिता ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्युक्तवंतंविहगंभुशुंडंपुनरप्यहम् ॥ जानन्नपीदमव्यग्रःपृष्टवान्क्रीडयामुनिम् ॥ ९ ॥ सर्वसंशयविच्छेदिन्नत्यंतचिरजीवित ॥ यथार्थंब्रूहिमेसाधोप्राणचिंताकिमुच्यते ॥ १० ॥ भुशुंडउवाच ॥ ॥ सर्ववेदांतवेत्तासिसर्वसंशयनाशकः ॥ मामेतत्परिहासार्थंमुनेपृच्छसिवायसम् ॥ ११ ॥ अथवाभवतामेवभगवन्परिशिक्षितुम् ॥ पुनःप्रत्युत्तराणीदंकामेक्षतिरुपस्थिता ॥ १२ ॥

अर्थ—और इस संसारमें जीवनका कारण है ऐसी प्राणचिंताका आश्रय मैंने लिया है. श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ऐसा कहनेवाले मुनिरूप भुशुंडपक्षीसे जानतेहुयेभी सावधान होके मैंने क्रीडासे पूंछा ॥ ९ ॥ कि हे सर्वसंशयके छेदन करनेवाले तथा अत्यंत चिरंजीविन् हे साधो ! मुझसे यथार्थ कहिये कि प्राणचिन्ता क्या वस्तु है

॥१०॥भुशुंडजी बोले–हे भगवन् ! आप सब वेदान्तोंके वेत्ता, और सर्वसंशयनाशक हैं, मुझ वायसके यह परिहासके लिये पूंछतेहो॥११॥अथवा हे भगवन् ! आपलोगोंकी शिक्षाके लिये मैं प्रत्युत्तर देताहुं इसमें मेरी क्या हानि है॥१२

भुशुंडजीवितकरंभुशुंडस्वात्मलाभदम् ॥ शृणुप्राणसमाधानंवक्ष्यमाणमिदंमया ॥ १३ ॥ पश्येदंभगवन्सर्वदेहगेहंमनोरमम् ॥ त्रिप्रकारमहास्थूणंनवद्वारसमावृतम् ॥ १४ ॥ पुर्यष्टककलत्रेणतन्मात्रस्वजनेनच ॥ अहंकारगृहस्थेनसर्वतःपरिपालितम् ॥ १५ ॥ अंतःपश्यसिसत्कर्णशष्कुलींचंद्रशालिकम् ॥ शिरोरुहाच्छादनवद्विपुलाक्षिगवाक्षकम् ॥ १६ ॥

अर्थ— भुशुंडके जीवनका हेतु, और भुशुंडके आत्मलाभका हेतु मुझसे कहाहुआ यह तुम प्राणका समाधान सुनो ? ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! इस मनोरमदेहरूप गृहको आप देखो, इसमें वात, पित्त तथा कफरूप महास्थूणा (आधारभूत काष्ठ) हैं, और नौ (९) इन्द्रियरूप द्वार है ॥ १४ ॥ पुर्य्यष्टक (सूक्ष्मशरीर) रूप कलत्र और बन्धु तथा अहंकाररूप गृहस्थसे चारोंओरसे यह पालितहै ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! जिस देहरूप गृहका मैं वर्णन करताहुं उसको साक्षीरूपसे आप अनुभव करतेहो, दोनो कर्ण (कान) शष्कुली इस गृहके शिरकी चन्द्रशालिका हैं केशरूप इसके आच्छादन हैं, और विशालनेत्ररूप झरोखे हैं ॥ १६ ॥

आस्यप्रधानसुद्वारंभुजपार्श्वोपमंदिरम् ॥ दंतालिकेसरस्रग्भिर्भूषितद्वारकोटरम् ॥ १७ ॥ अनारतंरूपरसस्पर्शनद्वारपालवत् ॥ संकुलालोकवलितंतारालिंदकृतस्थिति ॥ १८ ॥ रक्तमांसवसादिग्धंस्नायुसंततिवेष्टितम् ॥ स्थूलास्थिकाष्ठसंबद्धंसुकुड्यंसुसमाहितम् ॥ १९ ॥ इडाचपिंगलाचास्यदेहस्यमुनिनायक ॥ सुस्थितेकोमलेमध्येपार्श्वकोष्ठेनिर्मीलिते ॥ २० ॥

अर्थ—और पुरुष प्रधानद्वारसे युक्त हैं भुजारूप दोनो भागों मंदिरोंसे युक्त हैं, और दांतोंकी पंक्तिरूप केशरोंकी (कलियोंकी) मालओंसे जिसके द्वारका कोटर भूषित है ॥ १७ ॥ रूप, रस, गंधआदि सब विषयोंको अनुभव करानेवाली ज्ञानइन्द्रियरूप द्वारपालसहित, सर्वत्र लिंगदेहकी व्याप्तिसे आत्माके प्रकाशसे व्याप्त तारा (नेत्रोंकी पुतली) जहां सबसे ऊपरके द्वारपर स्थिति कियाहै ऐसा ॥ १८ ॥ तथा रक्तमांस और चर्बीसे जल, मृत्तिका और गोवरके समान लिप्त, नाडियोंके समूहसे रुद्ध, और स्थूल अस्थि (हड्डी) रूप काष्ठोंसे बद्ध, अतएव उत्तमस्थानके समान स्थित यह देहरूप गृह है ॥ १९ ॥ और हे मुनिनायक ! इडा तथा पिंडालाना दो सूक्ष्म नाडीरूप कोष्ठ (कोठरी) वाम और दक्षिणभागमें गुप्तरीतिसे स्थित हैं ॥ २० ॥

पद्मयुग्मत्रयंयंत्रमस्थिमांसमयंमृदु ॥ ऊर्ध्वाधोनालमन्योन्यमिलत्कोमलसद्दलम् ॥ २१ ॥ सेकेनविकसत्पत्रंसकलाकाशचारिणा ॥ चलंतितस्थपत्राणिमृदुव्यापानिवायुना ॥ २२ ॥ चलत्सुतेषुपत्रेषुसमरुत्परिवर्धते ॥ वाताहतेलतापत्रजालेबहिरिवाभितः ॥ २३ ॥ वृद्धिंनीतःसनाडीषुकृत्वास्थानमनेकधा ॥ ऊर्ध्वाधोवर्तमानासुदेहेस्मिन्प्रसरत्यथ ॥ २४ ॥

अर्थ—वहां (हृदयमे) पर अस्थि और मांसमय, और परस्पर संपुटीभाव होनेसे मिलरहे उत्तम शोभायमान कोमलदल जिनके ऐसे तथा नीचे ऊपरसे नालसंयुक्त और यंत्राकार तीन कमलके युग्म (जोडे) हैं ॥ २१ ॥ और नासिकाके अग्रभागसे लेके पादके अंततक व्याप्त आकाशमें गमनशील चंद्रनाम अपानवायुके अमृतमय सिंचनसे जिसके पत्र विकसित होरहेहैं और प्राणवायुके संचारसे जिसके पत्र किंचित् संकुचित होरहे हैं ऐसे वे हृदयकमलके तीनों जोडे अर्थात् छ कमलचक्र हैं, जिनमेंके ७२ बहत्तर सहस्र (हजार) नाडियां जाके मिली हैं, औरवह षट् (छ) कमल संपूर्ण प्राणशक्तियोंका आधारभूत है, और प्राण अपानरूप वायुसे उनके पत्र विकसित और संकुचितभावसे सदा चलतेरहते हैं ॥ २२ ॥ और उन पत्रोंके चलनेपर षट् कमल चक्ररूप पुरीके संबंधसे सब नाडियोंमें प्रवेश करके चारोंओरसे ऐसे फैलताहै जैसे बाहर जंगलआदि लतापत्र जालके वायुसे ताडित होनेपर वायु फैलताहै ॥२३॥ इसप्रकार बुद्धिको प्राप्त वह वायु हृदय, गुदा, नाभि तथा कंठआदि सब अंगोंमें अपने अनेक स्थान बनाके, प्राणआदि पंचसंज्ञाको प्राप्त होके नीचेपर वर्तमान मूलभूत एक अधिक शतशाखाओंमें तथा सूक्ष्म ७२ सहस्रनाडिमें प्रवेश करके इस देहमें फैलताहै ॥ २४ ॥

प्राणापानसमानाद्यैस्ततःसहृदयानिलः ॥ संकेतैःप्रोच्यतेतज्ज्ञैर्विचित्राचारचेष्टितैः ॥ २५ ॥ हृत्पद्मयंत्रत्रितयेसमस्ताःप्राणशक्तयः ॥ ऊर्ध्वाधःप्रसृतादेहेचंद्रबिंबादिवांशवः ॥ २६ ॥ यांत्यायांतिविकर्षंतिहरंतिविहरंतिच ॥ उत्पतंतिपतंत्याशुताएताःप्राणशक्तयः ॥ २७ ॥ सएषहृत्पद्मगतःप्राणइत्युच्यतेबुधैः ॥ अस्यकाचिन्मुनेशक्तिःप्रस्पंदयतिलोचने ॥ २८ ॥

अर्थ—वह हृदयस्थ पवन चित्रविचित्र चेष्टा तथा आचारसे संयुक्त प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान आदि संज्ञाओंसे पंडितोंसे कहाजाताहै ॥ २५ ॥ हृदयके तीनो यन्त्राकार कमलके युग्म (जोडे) में समस्त प्राणोंकी शक्ति नीचे ऊपरसे देहमें ऐसे फैलती हैं जैसे चन्द्रबिम्बसे किरण ॥ २६ ॥ हे मुने ! ये सब प्राणोंकी शक्ति इस देहके अन्तर्गत नाडियोंमें शीघ्रही जाती हैं, आती हैं, आकर्षण करती हैं, हरण करती हैं, विहार करती हैं, और मिनटमें आठ (८) बार ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर चढती उतरती रहती हैं ॥२७॥ हृदयकमलही मुख्य वायुका स्थानहै और यही प्राण मुख्य है,अन्य सब इसीकी वृत्तियोंके भेद हैं, इसी प्राणकी कोई शक्ति नेत्रोंको चलारही है॥२८

काचित्स्पर्शमुपादत्तेकाचिद्वहतिनासया ॥ काचिदन्नंजरयतिकाचिद्वक्तिवचांसिच ॥ २९ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनसर्वमेवशरीरके ॥ करोतिभगवान्वायुर्यंत्रेहामिवयांत्रिकः ॥ ३० ॥ तत्रोर्ध्वाधोद्विसंकेतौप्रसृतावनिलौमुने ॥ प्राणापानावितिख्यातौप्रकटौद्वौवरानिलौ ॥ ३१ ॥ तयोरनुसरन्नित्यंमुनेगतिमहंस्थितः ॥ शीतोष्णवपुषोर्नित्यंनित्यमंबरपांथयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—त्वगुइन्द्रियमें स्थित होके कोई शक्ति मृदु, कठोर, शीत, तथा उष्ण आदि स्पर्श ग्रहण करती है, कोई नासिकाके द्वारा बहती है, कोई अन्नको पचाती है, कोई वाग्इन्द्रियपर स्थित होके बचन बोलती हैं ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! अधिक कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है यह प्राणवायु सब शरीरमें ऐसे सम्पूर्ण चेष्टा करताहै जैसे यंत्रका सूत्रधार प्रतिमादियंत्रकी नृत्य आदि चेष्टाको ॥ ३० ॥ हे मुने ! उन ऊपर तथा नीचे गमनरूप दोप्रकारके संकेतवाले प्राण तथा अपाननामसे प्रसिद्ध दो श्रेष्ठ वायु हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! शीत तथा उष्ण शरीरवाले तथा नित्य आकाशके यात्रा उन दोनोंकी गतिका अनुसरण करताहुआ अर्थात् साक्षीरूपसे उनकी गति देखताहुआ मैं स्थितहूं॥३२

कलेवरमहायंत्रवाहयोःश्रमहीनयोः ॥ हृदाकाशार्कशशिनोस्त्वग्नीषोमस्वरूपयोः ॥ ३३ ॥ शरीरपुरपालस्यमनसोरथचक्रयोः ॥ अहंकारनृपस्यास्यप्रशस्येष्टतुरंगयोः ॥ ३४ ॥ तयोर्ममानुसरतःप्राणापानाभिधानयोः ॥ गतिंशरीरमरुतोराशरीरमरुद्वयोः ॥ ३५ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुसदैवसमरूपयोः ॥ सुषुप्तसंस्थितस्येवब्रह्मन्गच्छंतिवासराः ॥३६॥ सहस्रविनिकृत्तांगाद्बिसतंतुलवादपि ॥ दुर्लक्ष्याविद्यमानापिगतिःसूक्ष्मतरानयोः ॥ ३७ ॥ अविरतगतयोर्गतिंविदित्वाहृदिमरुतोरनुसृत्यचोदितांताम् ॥ नपुनरिहहिजायतेमहात्मन्मुदितमनाःपुरुषःप्रणष्टपाशः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू०भु०प्राणविचारणंनामचतुर्विंशतितमःसर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—शरीररूप महायंत्रके वाहक, श्रमहीन, हृदयाकाशके सूर्य चन्द्र और अग्निचन्द्रस्वरूप ॥ ३३ ॥ शरीररूप नगरके पुरके पालक, मनके रथके चक्र, और अहंकाररूप राजाके उत्तम तुरंग ॥ ३४ ॥ जीवनपर्य्यन्त निरन्तर रोकरहित, और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिमें समानरूप उन दोनों प्राणअपाननामवालोंकी गति अनुसरण करतेहुये मेरे दिन ऐसे बीतते हैं जैसे सुषुप्तिमें स्थितके ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ विद्यमानभी इन दोनोंकी सूक्ष्मतर गति सहस्र टुकडा कियेहुये कमलके दंडके सूत्रसेभी दुर्लक्ष्य है ॥ ३७ ॥ हे मुने ! हृदय आदि स्थानोंमें निरन्तर प्राण अपानकी गतिको जानकर, और वक्ष्यमाणरीतिसे उनकी उपासना करके मृत्युके पाससे मुक्त और ज्ञानद्वारा जीवन्मुक्तहो यह जीव पुनः संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भुशुंडोपाख्याने प्राणविचारणं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

इस २५ के सर्गमें प्राण अपानकी गतियोंमें रेचक आदिकी कल्पना और प्राण तथा अपानके उदय तथा लयका स्थान ब्रह्म है इस विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंसकथयन्पक्षीपृष्टस्तत्रपुनर्मया ॥ कीदृशीप्राणवातस्यगतिरित्येवराघव ॥ १ ॥ भुशुंडउवाच ॥ जानन्नपिमुनेसर्वंकिंतांपृच्छसिलीलया ॥ यथापृष्टमहंवच्मिशृणुतत्रापिमद्वचः ॥ २ ॥ प्राणोयमनिशंब्रह्मन्स्पंदशक्तिःसदागतिः ॥ सबाह्याभ्यंतरेदेहेप्राणोयमुपरिस्थितः ॥ ३ ॥ अपानोप्यनिशंब्रह्मन्स्पंदशक्तिःसदागतिः ॥ सबाह्याभ्यंतरेदेहेत्वपानोयमवाक्स्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे राघव ! इसप्रकार कहतेहुये उस पक्षीसे मैंने पुनः कहा कि प्राणकी गति कैसी होती है ॥ १ ॥ भुशुंडजी बोले-हे मुने ! सब कुछ जानतेहुयेभी लीलासे मुझसे क्यों पूंछते हो तथापि जैसा आपने पूछाहै वैसा मैं कहताहुं मेरे बचनको सुनिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह नित्य चलनशक्तियुक्त सदा गमनशील है और यह बाह्य आभ्यंतर शरीरमें सबसे उपर स्थितहै ॥ ३ ॥ और हे ब्रह्मन् ! यह अपानभी सदा चलनशक्तियुक्त सदा गमनशीलहै और बाह्य आभ्यंतर इस देहमें अपानवायु नीचेकी ओर स्थितहै ॥ ४ ॥

जाग्रतःस्वपतश्चैवप्राणायामोयमुत्तमः ॥ प्रवर्ततेयतस्तज्ज्ञतत्तावच्छ्रेयसेशृणु ॥ ५ ॥ बाह्योन्मुखत्वं प्राणानांयद्धृदंबुजकोटरात् ॥ स्वरसेनास्तयत्नानांतंधीरारेचकंविदुः ॥ ६ ॥ द्वादशांगुलपर्यंतंबाह्यमाक्रमतामधः ॥ प्राणानामंगसंस्पर्शोयःसपूरकउच्यते ॥ ७ ॥ बाह्यात्परापतत्यंतरपानेयत्नवर्जितः ॥ योयंप्रपूरणःस्पर्शोविदुस्तमपिपूरकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्राणायामोंके वेत्ता जागते सोते यह उत्तम प्राणायाम होतारहताहै इसलिये सबके कल्याणार्थ यह प्राणायाम सुनिये ॥ ५ ॥ जो हृदयकमलसे अपनी इच्छासे बिनाप्रयत्न प्राणोंका हृदयकमलके कोटरसे बाह्य देशमें निकलनाहै उसको पंडितलोग रेचक कहते हैं ॥ ६ ॥ और बारह अंगुलपर्य्यंत बाह्यदेशसे अंगस्पर्श करताहुआ नीचेकी ओर जो आक्रमणहै उसको पूरक कहते हैं ॥ ७ ॥ और बाहरसे अंतरालमें जो अपानका यत्नके बिना गिरनाहै उसकोभी पूरक कहते हैं ॥ ८ ॥

अपानेऽसंगतेप्राणोयावन्नाभ्युदितोहृदि ॥ तावत्साकुंभकावस्थायोगिभिर्यानुभूयते ॥ ९ ॥ रेचकःकुंभकश्चैवपूरकश्चत्रिधास्थितः ॥ अपानस्योदयस्थानेद्वादशांतादधोबहिः ॥ १० ॥ स्वभावाःसर्वकालस्थाःसम्यग्यत्नविवर्जिताः ॥ येप्रोक्ताःस्फारमतिभिस्ताञ्छृणुत्वंमहामते ॥ ११ ॥ द्वादशांगुलपर्यंताद्बाह्यादभ्युदितःप्रभो ॥ योवातस्तस्यतत्रैवस्वभावात्पूरकादयः ॥ १२ ॥

अर्थ—अपानके अस्त होनेपर हृदयमें जबतक प्राण नहीं उदय होता उतने कालतक कुंभकावस्था है, जो कि योगियोंके अनुभवमें आती है ॥ ९ ॥ इसप्रकार रेचक, कुंभक, और पूरक तीनप्रकारका प्राण स्थितहै, और नासिकाके अग्रभागसे बाहर बारह अंगुलपर्य्यंत अपानके उदयस्थानमें ॥ ९ ॥ बिना यत्न स्वयं होनेवाले और सबकालमें स्थित रेचक आदि जो विशालबुद्धियोंसे कहेगयेहैं, हे महामते ! उनको तुम सुनो ॥ १० ॥ हे प्रभो ! बारह अंगुलपर्य्यंत बाह्यदेशसे अभिमुख स्थित जो पवन है उस वायुके बाह्यदेशमेंही पूरक आदिकी चिंता करनीचाहिये १२

मृदंतरस्थानिष्पन्नघटवद्यास्थितिर्बहिः ॥ द्वादशांगुलपर्यंतेनासाग्रसमसंमुखे ॥ १३॥ व्योम्निनित्यमपानस्यतंविदुःकुंभकंबुधाः ॥ बाह्योन्मुखस्यवायोर्यानासिकाग्रावधिर्गतिः ॥ १४ ॥ तंबाह्यपूरकंत्वाद्यंविदुर्योगविदोजनाः ॥ नासाग्रादपिनिर्गत्यद्वादशांतावधिर्गतिः ॥ १५ ॥ यावायोस्तंविदुर्धीराअपरंबाह्यपूरकम् ॥ बहिरस्तंगतेप्राणेयावन्नापानउद्गतः ॥ १६ ॥

अर्थ—सिद्धघटकी मृत्तिकाके अंतर्गत जो स्थिति है, ऐसीही नासिकाके अग्रभागसे बारह अंगुलपर बाह्यदेशमें संमुख ॥ १३ ॥ आकाशमें अपानकी जो स्थिति है उसको पंडितलोग कुंभक कहतेहैं, और बाहरकी ओर जानेको अभिमुख वायुकी नासिकाके अग्रभागतक जो गति है ॥ १४ ॥ उसको प्रथम बाह्यपूरक योगवेत्ता लोग कहते हैं, और नासिकाके अग्रभागतक निकलकर बारह अंगुलपर्य्यंत वायुकी जो गति है ॥ १५ ॥ उसको धीर पंडितलोग दूसरा पूरक कहतेहैं, और बाहिर प्राणवायुके अस्त होनेपर जबतक वहांसे अपानवायु नहीं चलता ॥ १६ ॥

तावत्पूर्णसमावस्थंबहिष्ठंकुंभकंविदुः ॥ यत्तदंतर्मुखत्वंस्यादपानस्योदयंविना ॥ १७ ॥ तंबाह्यरेचकं विद्याच्चिंत्यमानंविमुक्तिदम् ॥ द्वादशांताद्बहुत्थायरूपपीवरतापरा ॥ १८ ॥ अपानस्यबहिष्ठंतमपरंपूरकंविदुः ॥ बाह्यानाभ्यंतरांश्चैतान्कुंभकादीननारतम् ॥ १९ ॥ प्राणापानस्वभावांस्तान्बुद्ध्वाभूयोनजायते ॥ अष्टावेतेमहाबुद्धेरात्रिंदिवमनुस्मृताः ॥ २० ॥

अर्थ—तबतक पूर्णसमअवस्थामें प्राप्त तथा बाह्यदेशमें स्थित पवनको बाह्य कुंभक कहतेहैं, और अपानके उदयके विना जो उसी पवनको ॥ १७ ॥ बाह्य रेचक कहना चाहिये जो कि चिंता करनेसे मुक्तिदायक होताहै. और बाहर बारह अंगुलके अंतसे उठके जो विशालरूपता है ॥ १८ ॥ अपानवायुकी हैं उसको बाह्यदेशमें स्थित अन्यपूरक कहतेहैं, बाह्य तथा आभ्यंतर निरंतर गतिशील ये कुंभक आदि हैं ॥ १९ ॥ जिनका कि प्राण अपान स्वभाव है उनको जानकर (उपासना करके) मनुष्य पुनः इस संसारमें उत्पन्न नहीं होता. हे महाबुद्धे ! निरंतर स्मृत प्रधान ये आठो प्राणायाम ॥ २० ॥

स्वभावादेहवायूनांकथितामुक्तिदामया ॥ गच्छतस्तिष्ठतोवापिजाग्रतःस्वपतोपिवा ॥ २१ ॥ एतेनिरोधमायांतिप्रकृत्यातिचलानिलाः ॥ यत्करोतियदश्नातिबुद्ध्यैवालमनुस्मरन् ॥ २२ ॥ कुंभकादीन्नरःस्वांतस्तत्रकर्तानकिंचन ॥ अव्यग्रमस्मिन्व्यापारेबाह्यंपरिजहन्मनः ॥ २३ ॥ दिनैःकतिपयैरेवपदमाप्नोतिकेवलम् ॥ एतदभ्यसतःपुंसोबाह्येविषयवृत्तिषु ॥ २४ ॥

अर्थ—जो कि देहके पवनसे स्वयं होते हैं और चिंतन करनेसे मुक्तिदायक हैं इसलिये मैंने कहा, और चलते, बैठते, जागते, सोते, ॥२१॥ प्रकृतिसे चंचलभी ये निरोधदशाको प्राप्त होते हैं और मनुष्य जो कुछ करताहै जो खाताहै, उनका कर्ता किंचित्भी नहीं होसकता, यदि बुद्धिसे इन कुंभक आदिको निरंतर अपने अंतःकरणमें स्मरण करताहै, और इस प्राणचिंतनमें निमग्न और बाह्यपदार्थोंको त्यागतेहुये यह मन ॥ २२ ॥ २३ ॥ कुछ दिनोंमेंही केवल परमपद प्राप्त करसकताहै, और इस प्राणचिंतनके अभ्यास करतेहुये पुरुषका चित्त बाह्यविषयकी वृत्तियोंमें ॥ २४ ॥

नबध्नातिरतिंचेतःश्ववृत्तौब्राह्मणोयथा ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्ययेस्थिताःकृतबुद्धयः ॥ २५ ॥ प्राप्तप्राप्तव्यमखिलंतैरखिन्नास्तएवहि ॥ तिष्ठतागच्छतानित्यंस्वपताजाग्रतातथा ॥ २६ ॥ एषाचेत्प्रेक्ष्यतेदृष्टिस्तन्नबंधनमाप्यते ॥ प्राणापानानुसरणप्राप्तबोधवतामलम् ॥ २७ ॥ संशांतमलमोहेनस्वस्थेनांतरिहेष्यते ॥ सर्वारंभान्सदास्वच्छःकुर्वन्वापिविबुधोजनः ॥ २८ ॥

अर्थ—प्रीति ऐसे नहीं बांधता जैसे कुत्तेके चर्ममें स्थित दुग्ध आदि ब्राह्मण. हे मुने ! इस दृष्टिका अवलंबन करके जो कृत (कुशल) बुद्धि महात्मालोग स्थितहैं ॥ २५ ॥ उन लोगोंने सब कुछ प्राप्त वस्तु प्राप्त करचुके और वेही खेदरहित प्रसन्नहैं, और चलते फिरते तथा सोते जागते ॥ २६ ॥ यदि प्राण अपानकी गतिका चिंतन कियाजाय तो बंधन नहीं प्राप्त होता, और इस प्राण अपानके चिंतनसे पूर्णरीतिसे प्राप्तबोधवाले पुरुषोंका ॥ २७ ॥ मलरूप मोह जिसका शांत होगयाहै ऐसा स्वस्थचित्त साक्षी चेतनमें स्थित रहतेहैं ॥ २८ ॥

प्राणापानगतिंप्राप्यसुस्वस्थःसुखमेधते ॥ प्राणस्याभ्युदयोब्रह्मन्पद्मपत्राद्धृदिस्थितात् ॥ २९ ॥ द्वादशांगुलपर्यंतेप्राणोस्तंयात्ययंबहिः ॥ अपानस्योदयोबाह्याद्द्वादशांतान्महामुने ॥ ३० ॥ अस्तंगतिरथांभोजमध्येहृदयसंस्थिते ॥ प्राणोयत्रसमायातिद्वादशांतेनभःपदे ॥ ३१ ॥ पदात्तस्मादपानोयंखादेतिसमनंतरम् ॥ बाह्याकाशोन्मुखःप्राणोवहत्यग्निशिखायथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—और स्वच्छ बुद्धिमान् सब कार्योंको करताहुआभी जन प्राण अपानकी गतिको प्राप्तहोके और अति स्वस्थहोके सुखको प्राप्त होताहै. और हे ब्रह्मन् ! हृदयमें स्थित कमलपत्रसे प्राणका अभ्युदय होताहै ॥ २९ ॥ और बारह अंगुलपर अस्त होजाताहै. और हे महामुने ! नासिकासे बाहर बारह अंगुलपर अपानवायुका उदय होताहै ॥ ३० ॥ और हृदयमें स्थित कमलके मध्यमें आके अस्त होताहै, और नासिकासे बारह अंगुलपर आकाशमें प्राणवायु समाप्त होताहै ॥ ३१ ॥ उसी आकाशपद (बारह अंगुल बाहर) से यह अपान वायु प्राणके अस्त होनेके अनंतरही उठताहै और अग्निकी शिखाके बाहर आकाशकी उन्मुख होके प्राणवायु वहताहै ॥ ३२ ॥

हृदाकाशोन्मुखोपानोनिम्नेवहतिवारिवत् ॥ अपानश्चंद्रमादेहमाप्याययतिबाह्यतः ॥ ३३ ॥ प्राणःसूर्योग्निरथवापचत्यंतरिदंवपुः ॥ प्रणोहिहृदयाकाशंतापयित्वाप्रतिक्षणम् ॥ ३४ ॥ मुखाग्रगगनंपश्चात्तापयत्युत्तमोरविः ॥ अपानेंदुर्मुखाग्रंतुप्लावयित्वाहृदंबरम् ॥३५॥ पश्चादाप्याययत्येषनिमेषसमनंतरम् ॥ अपानशशिनोंतस्थाकलाप्राणविवस्वता ॥ ३६ ॥

अर्थ—और हृदयाकाशकी ओर अभिमुख होके नीचेकी ओर जलके समान यह अपानवायु बहताहै और चंद्रमारूप अपान बाहरसे अमृतसे तृप्त करताहै ॥ ३३ ॥ और प्राणरूप सूर्य्य वा अग्नि इस शरीरको भीतरसे परिपक्व करताहै, और यह प्राण प्रतिक्षण हृदयाकाशको तपाकर ॥३४ ॥ पीछे मुखके अग्रभागके आकाशको यह प्राणरूप उत्तम सूर्य्य तपाताहै, और अपानरूप चंद्रमा मुखके अग्रभागको गिलाकरके पीछे हृदयाकाशको ॥ ३५ ॥ क्षणभरमेंही अपने अमृतप्रवाहसे यह तृप्त करताहै, और अपानरूप चंद्रमाकी अंतर्गत कला (अंतिमभाग) प्राणरूप सूर्यसे ३६

यत्रग्रस्तातदासाद्यपदंभूयोनशोच्यते ॥ प्राणार्कस्यतथांतस्थायत्रापानसितांशुना ॥ ३७ ॥ ग्रस्तातत्पदमासाद्यनभूयोजन्मभाग्नरः ॥ प्राणएवार्कतांयातिसबाह्याभ्यंतरेंबरे ॥ ३८ ॥ आप्यायनकरींपश्चाच्छशितामधितिष्ठति ॥ प्राणएवेंदुतांत्यक्त्वाशरीराप्यायकारिणीम् ॥ ३९ ॥ क्षणादायातिसूर्यत्वंसंशोषणकरंपदम् ॥ अर्कतांसंपरित्यज्यनयावच्चंद्रतांगतः ॥ ४० ॥

अर्थ—जिस हार्दाकाशरूप ब्रह्ममें स्थितहोके ग्रस्त होती उस ब्रह्मपदको प्राप्तकरके पुन: यह प्राणी शोच नहीं करता, और इसीप्रकार प्राणरूप सूर्य्यके भीतरकी कला (अंतिमभाग) जिस द्वादश अंगुलपर्य्यन्त बाह्यदेशसे उपलक्षित ब्रह्ममें स्थित अपानसे ग्रस्त होतीहै उस ब्रह्मको पाकर मनुष्य पुन: जन्मका भागी नहीं होता, और यही प्राणसूर्य्यरूप बाह्य तथा आभ्यंतर आकाशमे धारण करताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और अनंतर प्रसन्नकारिणी चंद्ररूपताको प्राप्त होताहै और पश्चात् शरीरको आल्हादनकारिणी चंद्ररूपताको त्यागके ॥ ३९ ॥ क्षणमेंही शोषणकारी सूर्यपदको प्राप्तहोताहै और यह प्राण सूर्य्यरूपता (उष्णता) को त्यागकर जबतक चंद्ररूपता (शीतता) को नहीं प्राप्तहुआ ॥ ४० ॥

प्राणस्तावद्विचार्यतेऽदेशकालेनशोच्यते ॥ हृदिचंद्रार्कयोर्ज्ञात्वानित्यमस्तमयोदयम् ॥ ४१ ॥ आत्मनो निजमाधारंनभूयोजायतेमन: ॥ सोदयास्तमयंसेंदुंसरश्मिंसगमागमम् ॥ ४२ ॥ हृदयेभास्करंदेवंय:प श्यतिसपश्यति ॥ नक्षीणंनापरिक्षीणंबहिष्ठंसिद्धयेतम: ॥ ४३ ॥ हार्दंतुक्षपयेद्ध्वांतंयत्क्षयेसिद्धिरुत्त मा ॥ बाह्येतमसिसंक्षीणेलोकालोक:प्रजायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—वही प्राण अपानकी संधि अवस्था है उस अवस्थामें देहसे बाहर प्राणका लय होनेसे आत्माके निर्देहत्व, निर्मनस्कत्व, और निःष्क्रियत्वआदि वास्तविक धर्मविचार करनेके योग्यहैं, और उस बाह्य कुंभकमें देहआदि देशके परिच्छेदके अभावसे तथा चंद्रसूर्य्यरूप प्राण अपानकी क्रियाजनित आयुके परिच्छेदकके अभावसेभी देश· कालके धर्मसे रहित आत्मामें स्थित योगी शोच करनेयोग्य नहीं है, और हृदयमें प्राण अपानकी संधि जो कि चंद्रसूर्य्यरूप प्राण तथा अपानकी नित्य उदय अस्तका स्थान है और अपने मन तथा आत्माकी अभिव्यक्तिका आधार है उसको जानकर पुन: इस संसारमें नहीं उत्पन्न होता, और उदय, अस्त, चंद्रमा और किरणसहित, तथा गमनागमनसहित ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ प्राणरूप भास्कर (सूर्य्य) देवको जो देखताहै अर्थात् वही अज्ञानान्धकारसे दूर, और न क्षीण; न विद्यमान बाह्यदेशमें स्थित सिद्धिके लिये नहीं है ॥ ४३ ॥ कि हृदयके अंधकारको प्राणरूप सूर्य्यके दर्शनरूप प्रकाशसे दूर करनाचाहिये, जिस अंधकारके क्षयसे आत्मज्ञानरूप उत्तम सिद्धि होतीहै, और बाह्य अंधकारके क्षीण होनेपर केवल घटपटआदि जगत्के रूपका प्रकाश होताहै ॥ ४४ ॥

हार्देतुतमसिक्षीणेस्वालोकोजायतेमुने ॥ हार्द्दांधकारक्षयदंपरिज्ञातंविमुक्तिदम् ॥ ४५ ॥ सोदयास्तमयं यत्नात्प्राणार्कमवलोकयेत् ॥ अपानेंदु:प्रयात्यस्तंयत्रहृत्पद्मकोटरे ॥ ४६ ॥ पदात्तस्माद्धुदेत्यंत:प्राणार्को बहिरुन्मुख: ॥ अपानेस्तंगतेप्राण:समुदेतिहृदंबुजात् ॥ ४७ ॥ छायायांगलितांगायांतत्रैवाशुयथात प: ॥ प्राणेत्वस्तंगतेबाह्यादपान:प्रोदित:क्षणात् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे मुने ! हृदयके अंधकारका क्षय होनेसे आत्माका दर्शन होताहै, इसलिये हृदयके अंधकारका नाशक, जाननेसे मुक्तिदायक ॥ ४५ ॥ उदय तथा अस्तकेसहित प्राणरूप सूर्य्यकोऽयत्नसे देखै, और जिस हृदयकमलके कोटरमें अपानरूप चंद्र अस्त होताहै ॥ ४६ ॥ उसी स्थानसे प्राणरूप सूर्य्य बाहरको चलनेकेलिये अभि· मुख उदय होताहै क्योंकि अपानरूप चंद्रमाके अस्त होनेपर हृदयस्थ कमलसे प्राणरूप सूर्य्य उदय होताहै ॥ ४७ ॥ जैसे छायाके नष्ट होनेपर शीघ्र उसी स्थानपर आतप (घाम) उदय होताहै ऐसेही प्राणके अस्त होनेपर क्षणमेंही बाह्यदेशसे भीतर जानेको क्षणमेंही अपान उदित होताहै ॥ ४८ ॥

आतपेपरितोनष्टेछायवानुपदंतथा ॥ प्राणजन्मावनौनष्टमपानंविद्धिसन्मते ॥ ४९ ॥ अपानजन्मभूमौच प्राणंनष्टमवेहिहि ॥ अस्तंगतवतिप्राणेत्वपानेभ्युदयोन्मुखे ॥ ५० ॥ बहि:कुंभकमालंब्यचिरंभूयोनशो च्यते ॥ अपानेस्तंगतेप्राणेकिंचिदभ्युदयोन्मुखे ॥ ५१ ॥ अंत:कुंभकमालंब्यचिरंभूयोनशोच्यते ॥ प्रा णरेचकमालंब्यअपानाद्दूरकोटिगम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे सन्मते इसीप्रकार जैसे आतपके नष्ट होनेपर शीघ्रही छाया आती है ऐसेही प्राणकी जन्म भूमिपर अपानको तुम नष्ट समझो ॥ ४९ ॥ और अपानकी जन्मभूमिपर प्राणको नष्ट समझो, तथा प्राणके नष्ट होनेपर और अपानके अभ्युदयकी ओर उन्मुख होनेपर ॥ ५० ॥ बाह्यकुंभकका अवलंबन करके (अपानके अभ्युदयकी ओर उन्मुखताका निरोध करके) चिरकालतक अर्थात् सदाकेलिये शोचने योग्य यह प्राणी नहीं रहता; और अपानके अस्त होनेपर और प्राणके किंचित् अभ्युदयकी ओर उन्मुख होनेपर ॥५१॥ अंत:कुंभका अवलम्बन करके (भीतरसे प्राणके आगमनका निरोध करके) पुन: चिरकालतक शोचने योग्य नहीं रहता, और अपानके उदयस्थानसे दूर कोटितक (१६ अंगुलतक) जानेवाले प्राणके रेचकका आलम्बन करके ॥ ५२ ॥

स्वच्छंकुंभकमभ्यस्यनभूयःपरितप्यते ॥ अपानेरेचकाधारंप्राणपूरांतरस्थितम् ॥ ५३ ॥ स्वसंस्थंपूर कंहृत्वानभूयोजायतेनरः ॥ प्राणापानावुभावंतर्यत्रैतौविलयंगतौ ॥ ५४ ॥ तदालंब्यपदंशांतमात्मानंना नुतप्यते ॥ प्राणभक्षोन्मुखेपानेदेशंकालंचनिष्कलम् ॥ ५५ ॥ विचार्यबहिरंतर्वानभूयःपरिशोच्यते ॥ अपानभक्षणपरेप्राणेहृदितथाबहिः ॥ ५६ ॥ देशंकालंचसंप्रेक्ष्यनभूयोजायतेमनः ॥ यत्रप्राणोह्यपानेन प्राणेनापानएवच ॥ ५७ ॥

अर्थ—और स्वच्छ कुंभकका अभ्यास करके पुनः परितापको नहीं प्राप्त होता, और नासिकाके छिद्रद्वारा अपानके प्रवेश करतेसमय बाह्यदेशसे अपानमें रेचकका आधार प्राणके पूरणके लिये स्थित तथा अपने देहके अन्तर्गत कुंभककी उपासना करके प्राणी पुनः इस संसारमें नहीं आता, और जिस हार्दाकाशस्थ ब्रह्ममें प्राण अपान दोनों लयको प्राप्त होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उस शांतपदका आलम्बन करके यह प्राणी पुनः सन्तापको नहीं प्राप्त होता, और प्राणका ग्रास करनेको उन्मुख अपानके देशमें अर्थात् बाहर प्राणके लय और अन्तःमें प्राणके निकलनेके अपादानके अधिष्ठानचेतनमें देशकाल तथा देशकालके अन्तर्गत वस्तुसमूहका बाध होनेसे देशकाल तथा उसके अन्तर्गत सब वस्तु निष्कल चिन्मात्र हैं ॥ ५५ ॥ इसको विचार करके पुनः शोचने योग्य नहीं रहता, और अपानका ग्रास करनेको प्राणके उद्यत होनेपर अपानके लयके अधिष्ठानचेतनमें, तथा अपानके उत्पत्तिके अधिष्ठानचेतनमें सबका बाध होनेसे देशकाल तथा उसके अन्तर्गत वस्तुमात्र ब्रह्ममात्र देखकर पुनः इस संसारमें नहीं उत्पन्न होता, और जहां अपानसे प्राण तथा प्राणसे अपान ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

निगीर्णौबहिरंतश्चदेशकालौचपश्यतौ ॥ क्षणमस्तंगतप्राणमपानोदयवर्जितम् ॥ ५८ ॥ अयत्नसिद्धबा ह्यस्थंकुंभकंतत्पदंविदुः ॥ अयत्नसिद्धोह्यंतस्थकुंभकःपरमंपदम् ॥ ५९ ॥ एतत्तदात्मनोरूपंशुद्धैषापर मैवचित् ॥ एतत्तत्तत्सदाभासमेतत्प्राप्यनशोच्यते ॥ ६० ॥ पुष्पस्यांतरिवामोदःप्राणस्यांतरवस्थित म् ॥ नसप्राणंनवापानंचिदात्मानमुपास्महे ॥ ६१ ॥ जलस्यांतरिवास्वादमपानस्यांतरस्थितम् ॥ नस प्राणंनवाप्राणंचिदात्मानमुपास्महे ॥ ६२ ॥ प्राणक्षयस्योपांतस्थमपानक्षयकोटिगम् ॥ अपानप्राणयो र्मध्यंचिदात्मानमुपास्महे ॥ ६३ ॥ प्राणस्यप्राणनंप्रोच्चैःपरंजीवस्यजीवनम् ॥ देहस्यधारणंधुर्यंचिदा त्मानमुपास्महे ॥ ६४ ॥

अर्थ—बाहर भीतर देशकालके साथ निगल लियेगयेहैं, इसको आप देखें, और उसीसमय जब क्षणभरके लिये प्राणका अस्त है,तथा अपानके उदयसेभी वर्जितहै॥५८॥इसको योगीलोक अयत्नसिद्ध बाह्यकुम्भक कहतेहैं,और इसप्रकार अपानका जहां अस्त है और प्राणकाभी उदय नहीं है इसको योगीजन अयत्नसिद्ध अन्तस्थ कुंभक अथात् परमपद कहते हैं, अर्थात् प्राण अपानकी बाहर भीतरकी संधिरूप अवस्था यद्यपि सब प्राणियोंको होती हैं तथापि उसको योगीलोगही जानते हैं न कि अन्य ॥ ५९ ॥ यही (प्राण अपानकी संधि) परमात्माका रूप है, यही शुद्ध-चित् है, यही सत्‌रूपसे भासमान है, और इसको प्राप्त होके प्राणी शोचके योग्य नहीं रहता ॥ ६० ॥ पुष्पके भीतर सौगन्ध्यके समान प्राणके भीतर जो साक्षीरूपसे स्थित है और जो न प्राण है न अपान है उस चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६१ ॥ और जलके भीतर मधुर आस्वादके तुल्य अपानके भीतर साक्षीरूपसे जो स्थितहै तथा न वह सप्राण है न अप्राण (न जीवसहितहै न निर्जीव है) उस चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६२ ॥ प्राण तथा अपानके क्षयके समीपमें जो स्थितहै, और प्राण अपानका मध्य जो है अर्थात् प्राण अपानके व्यापारमें जो निमित्तभूत है उस चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६३ ॥ प्राणकाभी प्राण जीवनकाभी जीवन और देह-धारणमें जो धुरा चिदात्माहै उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६४ ॥

मनसोमननंसत्यंबुद्धेरेकावबोधनम् ॥ अहंकृतेरहंकारंचिदात्मानमुपास्महे ॥ ६५ ॥ यस्मिन्सर्वंयतः सर्वंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ यच्चसर्वमयंनित्यंतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ६६ ॥ आलोकालोकनंपुण्यंसर्वपाव नपावनम् ॥ नचभावनमत्रूनंतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ६७ ॥ नापानोऽभ्युदितोयत्रप्राणश्चांतमुपागतः ॥ नासाग्रगगनावर्तंतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ६८ ॥

अर्थ—मनकाभी मनन (ज्ञाता) सत्य, बुद्धि तथा अहंकारकाभी अहंकार (साक्षी) जो चिदात्मा है उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६५ ॥ जिसमें सब है, जिससे सब है, जो सब है, जो सबओरसे है जो सबमय है, तथा जो नित्य है उस चित्‌तत्वकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६६ ॥ सूर्य्य आदि प्रकाशमय पदार्थोंकाभी प्रकाशक, पवित्र, सब पावनोंकाभी पावनकर्ता, और मन बुद्धि आदि विकारमय पदार्थोंसेभी जो अपने स्वतःसिद्ध पूर्वस्वभावको नहीं

त्यागता उस चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६७ ॥ (अपान जहांपर अस्त होताहै और प्राणभी क्षणभरके लिये जहां उदित नहीं है उस कल्पनारूप कलाके कलंकसे रहित चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं) जहां अपान उदित नहीं है और प्राणका अन्त जहां होगयाहै तथा नासिकाके अग्रभागसे १२ अंगुलपर प्राण अपानके प्रवाहकी सन्धिरूप आवर्त जिसका स्थानहै उस चित्तत्वकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६८ ॥

यत्रप्राणोस्तमायातियत्रापानोस्तमेतिच ॥ यत्रद्वावप्यनुत्पन्नौतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ६९ ॥ प्राणापानो द्भवस्थानेबाह्याभ्यंतरमास्थिते ॥ येद्वेयोगिपदाधारतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ७० ॥ प्राणापानरथारूढंप्राणा पानमनाततम् ॥ यच्छक्तिरूपंशक्तीनांतच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ७१ ॥ हत्प्राणकुंभकंदेवंबहिश्चापानकुं भकम् ॥ पूरकांशविसृष्टंयत्तच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ७२ ॥

अर्थ—जहां प्राण अपान दोनों अस्त होते हैं और जहां दोनो उत्पन्न नहीं हैं उस चिदात्माकी मैं उपासना करताहुं ॥ ६९ ॥ जो प्राण अपानकी उत्पत्तिका स्थान है, बाहर भीतर जो स्थितहै, और जो प्राण अपानकी उत्पत्तिका स्थान योगियोंके पद (प्राप्तिस्थान) का आधार चेतनतत्व है उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ७० ॥ जो प्राण अपानरूप रथपर आरूढ होके परिच्छिन्नरूप होके प्राण अपानकी शक्तिरूप होताहै, और अन्य इन्द्रियोंकी शक्तिकीभी शक्ति (निमित्त) जो चित्तत्व है उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ७१ ॥ पूरकके अंशसहित हृदयस्थ प्राण कुम्भकदेवको और बाहर अपान कुम्भक चित्तत्वदेवकी मैं उपासना करताहुं ॥ ७२ ॥

प्राणापानपरामर्शसत्ताबोधंविरूपकम् ॥ यत्प्राप्यंप्राणमननात्तच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ७३ ॥ यत्प्राणपव नस्पंदोयत्स्पंदानंदकारकम् ॥ कारणंकारणानांयत्तच्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ ७४ ॥ यदखिलकलनाकलंक हीनंपरिवलितंचसदाकलागणेन ॥ स्वनुभवविभवंपदंतदग्र्यंसकलसुरप्रणतंपरंप्रपद्ये ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भु० समाधिवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—जो प्राण अपानके चालनका निमित्त और उसकी सत्ताका बोधरूप जो है, और प्राणके मननसे प्राप्य जो चित्तत्व है उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ७३ ॥ जो प्राणपवनके स्पंदका निमित्तहै, और जो इन्द्रियोंके विषयदेशमें गतिका और उसके उपभोगरूप आनंदका कारण है, तथा कारणोंकाभी कारण जो चित्तत्व है उसकी मैं उपासना करताहुं ॥ ७४ ॥ जो यथार्थमें संपूर्णकलाओंके कलंकसे वर्जितहै, और व्यवहारदृष्टिसे जीवकी उपाधिभूत प्राणआदि षोडश कलाओंसे वेष्टितहै, उत्तम अनुभव (निरतिशय आनंदरूपता) जिसका विभव है, और सब देवताओंसे प्रणत जो सर्वश्रेष्ठ आत्मपदहै उसके मैं शरणमें हुं ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भुशुंडीपाख्याने समाधिवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इसप्रकार प्राणकी चिंतासे अपने आत्मज्ञानका निरूपण करके भुशुंडने यहां २६ के सर्गमें चिरजीवनके हेतुओंको कहाहै ॥

भुशुंडउवाच ॥ ॥ एषाहिचित्तविश्रांतिर्मयाप्राणसमाधिना ॥ क्रमेणानेनसंप्राप्तास्वयमात्मनिनिर्मले ॥ १ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यसंस्थितोस्मिमहामुने ॥ नचलामिनिमेषांशमपिमेरुविचालतः ॥ २ ॥ गच्छतस्तिष्ठतोवापिजाग्रतःस्वपतोपिवा ॥ स्वप्नेपिनचलत्येषसुसमाधिर्ममात्मनि ॥ ३ ॥ नित्यानित्यासुलोलासुजगत्स्थितिषुसुस्थितः ॥ अंतर्मुखोस्मितिष्ठामिस्वकामेनात्मनात्मनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभुशुंडजी बोले-हे मुने ! इस उक्त क्रमसे प्राणकी समाधिद्वारा मैंने निर्मल आत्मामें यह चित्तकी विश्रांति स्वयं प्राप्त की है ॥ १ ॥ हे महामुने ! इस दृष्टिका अवलंबन करके मैं आत्मामें स्थितहुं, और मेरुके संचालनसेभी एक निमेषभी चलायमान नहीं होता ॥ २ ॥ चलते, बैठते, सोते, जागते, तथा स्वप्नमेंभी मेरे आत्मामें यह समाधि चलित नहीं होती ॥ ३ ॥ इष्ट अनिष्ट चंचल तथा नित्य अनित्य जगत्की स्थितियोंमें मैं विक्षेपरहित स्थितहुं और अपनी इच्छासे आत्मासे आत्मामेंही मैं अंतर्मुख होके स्थितहुं ॥ ४ ॥

(१) यह श्लोक केवल काश्मीरदेशके पुस्तकमें है ॥

अपिसंरुद्धयतेवायुरपिवासलिलंगते ॥ नैतस्मात्सुसमाधानाद्विरुद्धंसंस्मराम्यहम् ॥ ५ ॥ प्राणापानानुसरणात्परमात्मावलोकनात् ॥ अशोकमनुजातोस्मिपदमाद्यंमहातपः ॥ ६ ॥ आमहाप्रलयाद्ब्रह्मन्नुन्मज्जननिमज्जनम् ॥ अहमद्याभिभूतानांपश्यञ्जीवामिधीरधीः ॥ ७ ॥ नभूतंनभविष्यंचाचिंतयामिकदाचन ॥ दृष्टिमालंब्यतिष्ठामिवर्तमानामिहात्मना ॥ ८ ॥

अर्थ—वायु अथवा महानदियोंका जल गतिसे रुकसकताहै परंतु इस प्राण अपानकी चिंतारूप समाधिका व्याघातक किसी विषयसमूहको मैं नहीं स्मरणकरता ॥ ५ ॥ हे महातेजस्विन् ! प्राण अपानके स्मरणसे उत्पन्न परमात्माके दर्शनसे मैं शोकरहित प्रथमपदको प्राप्तहुं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! महाप्रलयपर्य्यंत सब भूतोंकी उत्पत्ति और नाश मैं देखताहुआ धीरबुद्धि अबतक जीताहुं ॥ ७ ॥ भूत और भविष्यत्की चिंता मैं कदापि नहीं करता किंतु वर्तमानदृष्टिका अवलंबन करके आत्मासे आत्मामें मैं स्थितहुं ॥ ८ ॥

यथाप्राप्तेषुकार्येषुपरित्यक्तफलैषणः ॥ सुषुप्तसमयाबुद्ध्यापरितिष्ठामिकेवलम् ॥ ९ ॥ भावाभावमयीं चिंतामीहितानीहितान्विताम् ॥ विमृश्यात्मनितिष्ठामिचिरंजीवाम्यनामयः ॥ १० ॥ प्राणापानसमायोगसमयंसमनुस्मरन् ॥ स्वयमात्मनितुष्यामिचिरंजीवाम्यनामयः ॥११॥ इदमद्यमयालब्धमिदंप्राप्स्यामिसुंदरम् ॥ इतिचिंतानमेतेनचिरंजीवाम्यनामयः ॥ १२ ॥

अर्थ—और यथाप्राप्तकार्य्योंमें फलोंकी इच्छाको त्यागकर अभिमानरहित सुषुप्तिके तुल्य बुद्धिसे केवलमें स्थितहुं ॥९॥ इष्ट अनिष्टसहित भाव अभावमयी चिंताको त्याज्यरूपसे निश्चयकरके आत्मामें मैं स्थितहुं, और उससे चिरकालतक विकाररहित मैं जीताहुं ॥ १० ॥ और प्राण अपानकी संधिके समय प्रकाशशील ब्रह्मको स्मरणकरताहुआ मैं स्वयं अपने आत्मामें संतुष्ट होताहुं, और उससे विकाररहित चिरकालतक जीताहुं॥११॥आज मैंने इस पदार्थको पाया और इस सुंदरपदार्थको मैं पाऊंगा यह चिंता मुझे नहीं होती इस हेतुसे निर्विघ्न चिरकालतक जीताहुं १२

नस्तौमिनचनिंदामिकंचित्किंचित्कदाचन ॥ आत्मनोन्यस्यवासाधोतेनाहंशुभमागतः ॥ १३ ॥ नतुष्यतिशुभप्राप्तौनाशुभेष्वपिखिद्यते ॥ मनोममसमंनित्यंतेनाहंशुभमागतः ॥ १४ ॥ परमंत्यागमालंब्य सर्वमेवसदैवहि ॥ जीवितादिमयात्यक्तंतेनाहंशुभमागतः ॥ १५ ॥ प्रशांतचापलंवीतशोकंस्वस्थंसमाहितम् ॥ मनोममुनेशांतंतेनजीवाम्यनामयः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो ! अपने वा अन्यके किसी चेष्टितको न तो मैं कदापि स्तुति करताहुं और न निंदा करताहुं इसकारण चिरकालके शुभजीवनको प्राप्त हुआहुं ॥ १३ ॥ मेरा नित्य समताको प्राप्त मन न तो शुभकी प्राप्तिमें संतुष्ट होताहै और न अशुभकी प्राप्तिमें खिन्न होताहै इसलिये मैं शुभ जीवनको प्राप्तहुं ॥ १४ ॥ हे मुने ! सब द्वैतके बाधरूप त्यागका आलंबन करके सदा सब जीवनके अभिमान आदिको मैंने त्यागदिया है इसलिये मैं शुभजीवनको प्राप्तहुं ॥ १५ ॥ हे मुने ! मेरा मन चपलता तथा शोकरहित, स्वस्थ, शांत और समाहित है इसलिये निर्विघ्नतापूर्वक चिरकालतक मैं जीताहुं ॥ १६ ॥

काष्ठंविलासिनींशैलंतृणमग्निंहिमंनभः ॥ समंसर्वत्रपश्यामितेनजीवाम्यनामयः ॥ १७ ॥ किमद्यममसंपन्नंप्रातर्वाभवितापुनः ॥ इतिचिंताज्वरोनास्तितेनजीवाम्यनामयः ॥ १८ ॥ जरामरणदुःखेषुराज्यलाभसुखेषुच ॥ नबिभेमिनहृष्यामितेनजीवाम्यनामयः ॥ १९ ॥ अयंबंधुःपरश्चायंममायमयमन्यतः ॥ इतिब्रह्मन्नजानामितेनजीवाम्यनामयः ॥ २० ॥

अर्थ—काष्ठ, स्त्री, पर्वत, तृण, अग्नि, हिम और आकशको सर्वत्र समानरूप मैं देखताहुं इसलिये विकाररहित मैं चिरकालतक जीताहुं ॥ १७ ॥ आज मुझे क्या प्राप्तहुआ और प्रातःकाल क्या होगा यह चिंतारूप ज्वर मुझे नहीं है इससे विकाररहित जीताहुं ॥ १८ ॥ जरामरणआदि दुःखोंमें तथा राज्यलाभादि सुखोंमें न मैं भयभीत होताहुं और न प्रसन्न होताहुं इससे विकाररहित चिरकालतक जीताहुं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह बंधु है यह शत्रुहै, यह मेरा बंधु है, और यह परका है यह मैं नहीं जानता इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २० ॥

सर्वंसर्वपदाभासमनाद्यंतमनामयम् ॥ अहंचिदितिजानामितेनजीवाम्यनामयः ॥ २१ ॥ आहरन्विहरंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठन्नुच्छ्वसन्स्वपन् ॥ देहोहमितिनोवेद्मितेनास्मिचिरजीवितः ॥ २२ ॥ इमंसांसारमारंभंसुषुप्तपदवत्स्थितः ॥ असंतमिवजानामितेनजीवाम्यनामयः ॥ २३ ॥ यथाकालमुपायातावर्थानर्थौसमौमम ॥ हस्ताविवशरीरस्थौतेनजीवाम्यनामयः ॥ २४ ॥

अर्थ—सब कुछ और नानाप्रकारसे जो भासताहै यह सब अनादि अनंत चित्‌रूप है यह मैं जानताहुं इस हेतुसे मैं विकाररहित जीताहुं ॥ २१ ॥ ग्रहण करते, विहरते, स्थितरहते, उठते, श्वास लेते और सोते मैं देह हुं यह मैं नहीं जानता इससे चिरजीवी हुं ॥ २२ ॥ इस संसारके कार्य्यको सुप्तके समान स्थित अविद्यमानके तुल्य मैं जानताहुं इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २३ ॥ प्रारब्धसे प्रापित भोगकालके अनुसार प्राप्त अर्थ तथा अनर्थको अपने शरीरस्थ दोनों हस्तके समान मैं जानताहुं इससे विकाररहित मैं जीताहुं ॥ २४ ॥

अपरिचलयाशक्त्यासुहृदशास्निग्धमुग्धया ॥ ऋजुपश्यामिसर्वत्रतेनजीवाम्यनामयः ॥ २५ ॥ आपाद मस्तकांतेस्मिन्नदेहेममतामम ॥ त्यक्ताहंकारपंकस्यतेनजीवाम्यनामयः ॥ २६ ॥ यत्करोमियदश्नामि तत्त्यक्त्वातद्दतोपिमे ॥ मनोनैष्कर्म्यमादत्तेतेनजीवाम्यनामयः ॥ २७ ॥ यदायदामुनेकिंचिद्विजानामि तदातदा ॥ मतिरायातिनौद्धत्यंतेनजीवाम्यनामयः ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपसे अविचल मनकी स्थिरशक्तिसे, और अतिप्रेमयुक्त संपूर्ण जीवोंमें आत्माके समान सर्वत्र कुटिलतारहित मैं देखताहुं इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २५ ॥ अहंकाररूप पंकको त्यागनेवाली मेरी चरणसे लेके मस्तकपर्य्यंत इस देहमें ममता नहीं है इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २६ ॥ जो कुछ मैं करताहुं और जो कुछ खाताहुं उन २ के अभिमानको त्यागेहुये तथा शरीरसे उनके सहितभी मेरा मन निष्कर्मता अर्थात् कर्तृता भोक्तृताके अभावकोही स्वीकार करताहै ॥ २७ ॥ हे मुने ! जब २ मैं कुछ २ जानताहुं तब २ मेरी बुद्धि गर्वभावको नहीं धारण करती इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २८ ॥

करोमीशोपिनाक्रांतिपरितापेनखेदवान् ॥ दरिद्रोपिनवांछामितेनजीवाम्यनामयः ॥ २९ ॥ पश्यद्रूपे शरीरेस्मिन्भूतस्थात्माचिदास्पदः ॥ भूतवृंदमहंसाम्यात्तेनजीवाम्यनामयः ॥ ३० ॥ आशापाशविलु न्नायाश्चित्तवृत्तेःसमाहितः ॥ संस्पर्शनाददाम्यंतस्तेनजीवाम्यनामयः ॥ ३१ ॥ असत्तांजगतःसत्ता मात्मनः करबिल्ववत् ॥ सुप्तप्रबुद्धःपश्यामितेनास्मिचिरजीवितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—समर्थ होनेपरभी किसीका पराजय नहीं करता, और दूसरेके दुःख देनेपरभी सहनशील होनेसे मैं खिन्न नहीं होता इससे विकाररहित जीताहुं ॥ २९ ॥ हे मुने ! चेतनप्राय (चेतनरूप) इस शरीरमें चिन्मात्र-दर्शी मैं हुं और सब प्राणीमें चिन्मात्रकी समानता होनेसे सब भूतमात्रका आत्मा मैं होके संपूर्ण प्राणीमात्रके शरीरको अपने शरीरके समान देखनेसे मैं चिरजीवी हुं ॥३०॥ हे भगवन् ! समाहितचित्त मैं आशाके पाशों (फासियों) से विदीर्ण चित्तकी वृत्तिका प्रवेश अपने हृदयमें नहीं देता इस हेतुसे विकाररहित जीताहुं ॥३१॥ और बाह्यदृष्टिके विषयमें सुप्त होके जगत्‌की असत्ताको तथा प्रबुद्ध होके हस्तमें स्थित बिल्वके समान आत्माकी सत्ताको मैं देखता हुं इससे चिरजीवी हुं ॥ ३२ ॥

जीर्णंभिन्नंश्लथंक्षीणंक्षुब्धंक्षुण्णंक्षयंगतम् ॥ पश्यामिनववत्सर्वंतेनजीवाम्यनामयः ॥३३ ॥ सुखितोस्मि सुखापन्नेदुःखितोदुःखितेजने ॥ सर्वस्यप्रियमित्रंचतेनजीवाम्यनामयः ॥ ३४ ॥ आपद्यचलधीरोस्मिज गन्मित्रंचसंपदि ॥ भावाभावेषुनैवास्मितेनजीवाम्यनामयः ॥ ३५ ॥ नाहमस्मिनचान्योमेनाहमन्य स्यकस्यचित् ॥ इतिमेभावितंचित्तंतेनजीवाम्यनामयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और जीर्ण, विदीर्ण, शिथिलांग, कृशांग, क्षुब्ध, संचूर्णित, अवयवसहित, तथा क्षयकोभी प्राप्त अतीत अनागत तथा वर्तमान वस्तुको नित्य निर्विकार चिन्मात्रदृष्टिसे नूतनके समान देखताहुं इस हेतुसे विकाररहित जीताहुं ॥ ३३ ॥ सुखी जनको देखकर मैं सुखी होताहुं और दुःखीको देखके दुःखी होताहुं और सबका प्रिय मित्र हुं इसकारण विकाररहित जीता हुं ॥३४॥ आपत्तिमें अचल धीर हुं, संपत्तिमें जगत्‌का मित्रहुं, और धनादिकी वृद्धि तथा उनके क्षयमें मैं अभिमानी नहीं हुं ॥ ३५ ॥ न देह मैं हुं, न मेरा कोई है और न मैं किसीका हुं ऐसा मेरा चित्त निश्चितहै इसलिये विकाररहित जीताहुं ॥ ३६ ॥

अहंजगदहंव्योमदेशकालक्रमावहम् ॥ अहंक्रियेतिमेबुद्धिस्तेनजीवाम्यनामयः ॥ ३७ ॥ घटश्चित्पट श्चिच्चित्खंचिद्दनंचशकटंचचित् ॥ चित्सर्वमितिमेभावस्तेनजीवाम्यनामयः ॥३८॥ इत्यहंमुनिशार्दूल त्रिलोककमललालिकः ॥ भुशुंडोनामकाकोलःकथितश्चिरजीवितः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मार्णवेविलुलितंत्रिजग त्तरंगमुत्पादनाद्यभिभवेनविभिन्नरूपम् ॥ आलिनमुन्नमितमाकुलदृश्यदृश्यमालोकयन्प्रकलयंश्चचि रंस्थितोस्मि ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू० भु० चिरजीवितहेतुकथनं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—यह जगत् मैं हुं, आकाश मैं हुं, देशकालके क्रमका निर्वाहक मैं हुं, तथा यह सब क्रिया मैं हुं ऐसी मेरी बुद्धि है इसलिये मैं विकाररहित जीताहुं ॥ ३७ ॥ घट, पट, आकाश, बन, शकट (गाडी॰) आदि सब चिद्रूपही ऐसा मेरा भाव है इसलिये मैं विकाररहित जीताहुं ॥ ३८ ॥ हे मुनियोंमें सिंह ! त्रिलोकरूप कमलका, मेरुका निवासी तथा श्याम होनेसे भ्रमररूप चिरजीवी भुशुंडनामका काक होगयाहुं ॥ ३९ ॥ ब्रह्मरूप समुद्रमें लुढकता हुआ, उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिणाम तथा क्षय आदि परस्परके प्रतिघातसे विचित्ररूपसहित, अत्यंत लीन, पुन: २ उन्नमित और अति व्याकुल इस साक्षी तथा मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके दृश्यरूप त्रिलोकतरंगको समाधिकालके व्युत्थान देखताहुआ और समाधिकालमें लय करता हुआ चिरकालतक स्थितहुं ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भुशुंडोपाख्याने चिरजीवितहेतुकथनं नाम षड्विंश: सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

इस २७ के सर्गमें भुशुंडकी प्रसंशा, और गमनकी इच्छावाले वसिष्ठकी भुशुंडसे पूजा और आकाशगतिसे वसिष्ठजीका गमन वर्णन कियागयाहै ॥

भुशुंडउवाच ॥ एतत्तेकथितंब्रह्मन्यथास्मियदिहास्मिच ॥ त्वदाज्ञामात्रसिद्ध्यर्थंधार्ष्ट्येनज्ञानपारग ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहोनुचित्रंभगवन्भवताभूषणंश्रुतेः ॥आत्मोदंत:प्रकथित:परंविस्मयकारणम् ॥ २ ॥ धन्यास्तेयेमहात्मानमत्यंतचिरजीवनम् ॥ भवंतंपरिपश्यंतिद्वितीयमिवपद्मजम् ॥३॥ यावदद्यदृशोधन्या:स्वात्मोदंतमखंडितम् ॥ यथावत्पावनंबुद्धेःसर्वंकथितवानसि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे ज्ञानपारग ब्रह्मन् ! जिसप्रकार मैं चिरजीवी हुं और परमार्थरूप इस कार्य्यकारणरूप संघातमें जो कुछ हुं वह सब आपकी आज्ञा पालन करनेको धृष्टतासे मैंने कहां ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे भगवन् ! कर्णका भूषण, और विस्मयका हेतु यह आत्माका चित्रविचित्र उत्तम वृत्तान्त आपने कहा यह आश्चर्य है ॥ २ ॥ वे महात्मा लोग धन्य हैं जो द्वितीयब्रह्माके समान अतिचिरजीवी आपको देखते हैं ॥ ३ ॥ आजतक ये दृष्टिभी धन्य हैं कि बुद्धिको पवित्र करनेवाले सब अखंडित आत्माका वृत्तांतको तुमने कहा ॥ ४ ॥

प्रभांतंदिक्षुसर्वासुदृष्टाविबुधभूतयः ॥ भवानिवजगत्यस्मिन्नमहानवलोकितः ॥ ५ ॥ कथंचित्प्राप्यते कश्चिद्भ्रांत्वेहहिमहाजनः ॥ नभवानिभव्यात्मासुलभोजगतिकचित् ॥ ६ ॥ वंशखंडेहिकस्मिंश्चिज्जाय तेमौक्तिकंयथा ॥ जगत्खंडेहिकस्मिंश्चिद्दृश्यतेत्वादृशस्तथा ॥ ७ ॥ मयातुसुमहत्कार्यमद्यसंपादितं शुभम् ॥ पुण्यदेहविमुक्तात्मायद्भवानवलोकितः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब दिशाओंमें मैंने भ्रमण किया, और देवता तथा विद्वानोंकी ज्ञान ऐश्वर्य्यआदि संपत्तियोंको देखा, परंतु इस जगत्में आपके समान महात्मा मैंने नहीं देखा ॥ ५ ॥ यत्नसे इस संसारमें भ्रमण करनेपरभी ज्ञानी महात्माजन तो अतिकष्टसे प्राप्त होताहै और उसमेंभी आपके समान महात्मातो कहींभी जगत्में सुलभ नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे बासोंके बनमेंभी कहीं २ मोति प्राप्त होताहै ऐसेही इस जगत्के किसी खंडमेंभी आपके सदृश महात्माजन देखपडतेहैं ॥ ७ ॥ मैंने तो इस समय अतिमहान् शुभकार्य्य सिद्ध किया कि पुण्यदेह और मुक्तात्मा आपके सदृश महात्माजन मैंने देखा ॥ ८ ॥

तदस्तुतवकल्याणंप्रविशात्मगुहांशुभाम् ॥ मध्याह्नसमयोयन्मेव्रजामिसुरमंदिरम् ॥ ९ ॥ इत्याकर्ण्य भुशुंडोसौजग्राहोत्थायपादपात् ॥ संकल्पिताभ्यांहस्ताभ्यामुपात्तंहेमपल्लवम् ॥ १० ॥ कल्पवृक्षलता पुष्पकेसरेणहिमत्विषा ॥ तत्पात्रंमौक्तिकार्घ्येणपूरयामासपूर्णधीः ॥ ११ ॥ तेनार्घ्यपाद्यपुष्पेणत्रिनेत्र मिवमामसौ ॥ आपादमस्तकंभक्त्यापूजयामासपूर्वजः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये हे भगवन् ! आपका कल्याण हो मैं सप्तर्षियोंके लोकमें जाताहुं, तुमभी शुभगुहामें प्रवेश करो क्योंकि यह मध्यान्हकालके कर्मका समय है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह भुशुंड इतना सुनके उस वृक्षसे ऊठके और संकल्पजनित हस्तोंसे सुवर्णके पल्लवको ग्रहणकिया ॥ १० ॥ हिमके समान दीप्तिसहित और कल्पवृक्षके लताओंके पुष्पोंके केसरसंयुक्त मोतियोंके समूहरूप अर्घार्थ जलसे उस पात्रको उस पूर्णबुद्धिमान् भुशुंडने पूर्ण किया ॥ ११ ॥ उस अर्घ्य, पाद्य और पुष्पसे चरणसे लेके मस्तकपर्य्यंत महादेवजीके समान उसने मेरी पूजा की ॥ १२ ॥

अनुव्रज्याकदर्थेनखगेंद्रालमितिब्रुवन् ॥ विष्टरादहमुत्थायततःखगवदात्प्लुः ॥ १३ ॥ व्योम्नियोजन मात्रंतुमदनुव्रज्ययागतः ॥ करंकरेणावष्टभ्यबलात्संरोधितःखगः ॥ १४ ॥ मयियातेक्षणेनैवगगनाध्वन्य दृश्यताम् ॥ निवृत्तोसौविहंगेंद्रोदुस्त्यजासंगतिःसताम् ॥ १५ ॥ अन्योन्यमपिकस्मिंश्चित्तरंगकइवां बुधौ ॥ व्योमन्यदृश्यतांयातोखगस्मृत्यामुनीनहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अनंतर मेरे पीछेरचलनेके परिश्रमके क्लेशको हे खगेन्द्र आपन करें ऐसा कहताहुआ मैं अपने आसनसे ऊठके पक्षीके समान उडा ॥ १३ ॥ आकाशमें एकयोजनपर्य्यंत मेरे पीछे २ वह आया, अनंतर हांथ पकडके बलात्कारसे मैंने उस पक्षीको लोटाया ॥१४॥ उस आकाशमार्गमे क्षणमेंही मेरे अदृश्य होनेपर वह पक्षियोंका राजा कष्टसे लोटा, क्योंकि सज्जनोंकी संगति दुस्त्यज है ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् आकाशमार्गमें समुद्रमें तरंगके समान हम दोनों परस्पर अदृश्य होगये, और मैं उस भुशुंडपक्षीके निरंतर स्मरणसहित सप्तर्षिमंडलमें प्राप्त होके मुनियोंको देखा ॥१६

सप्तर्षिमंडलंप्राप्यजाययापरिपूजितः ॥ यातेकृतयुगस्यादौपुरावर्षशतद्वये ॥ १७ ॥ संगतोहंभुशुंडेन मेरोःशृंगद्रुमेभवम् ॥ अद्यरामकृतेक्षीणेत्रेतासंप्रतिवर्तते ॥ १८ ॥ मध्येत्रेतायुगस्यास्यचातस्त्वंरिपु मर्दन ॥ पुनरद्याष्टमेवर्षेतत्रैवोपरिभूभृतः ॥ १९ ॥ मिलितोभूद्भुशुंडोमेतथैवाजररूपवान् ॥ इतिसंक थितंचित्रंभुशुंडोदंतमुत्तमम् ॥ श्रुत्वाविचार्यचैवांतर्यद्युक्तंतत्समाचर ॥ २० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इतिसुमतिभुशुंडसत्कथांयोविमलमतिःप्रविचारयिष्यतीह ॥ भवभयबहुलाकुलास्थितांसप्रसभमस त्सरितंतरिष्यतीति ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू० भुशुंडोपाख्यानसमाप्तिर्नामसप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—और अपनी स्त्री अरुंधतीसे पूजितहुआ, और पूर्वकालमें सत्युगकी आदिमें दोसौ (२००) वर्ष बीतगये कि मैं भुशुंडसे मेरुके शिखरपर मिलाथा. और हे रामजी ! इससमय सत्युगके क्षीण होनेसे यह त्रेतायुग लगरहाहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! त्रेतायुगके मध्यमें तुम उत्पन्न हुयेहो, और पुनः आज अष्टम' वर्षमें उसी मेरुपर्वतके ऊपर ॥ १९ ॥ भुशुंड वैसाही अमररूपवान् मुझे मिलाथा, यह मैंने विचित्र भुशुंडके उत्तम वृत्तांतको कहदिया, इसको सुनके तथा अंतःकरणमें विचार करके जो योग्यहो उसे करो ॥ २० ॥ श्रीवाल्मीकि बोले—इसप्रकार भुशुंडकी उत्तम कथाको जो विमल मति विचार करेगा वह संसारके भयसे व्याप्त संसाररूप नदीके पार होगा ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भुशुंडोपाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

आख्यायिकासंबंध, देहके अनियतिका बर्णन, और देहादिकी आपातभ्रांतिमात्रता इस २८ के सर्गमें वर्णनकी गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंभुशुंडवृत्तांतःकथितस्तेमयानघ ॥ अनयाप्रज्ञयातीर्णोभुशुंडोमोहसंकटात् ॥ १ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यस्वप्राणाभ्यासपूर्विकाम् ॥ भुशुंडवन्महाबाहोभवतीर्णमहार्णवः ॥ २ ॥ यथाज्ञानेन योगेनसंतताभ्यासजन्मना ॥ भुशुंडःप्राप्तवान्प्राप्यंतथासादयतत्पदम् ॥ ३ ॥ असक्तबुद्धयःसर्वेभुशुं डवदवस्थितम् ॥ प्राप्नुवंतिपरेतत्त्वेप्राणापानावलोकिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे पापरहित रामजी ! इसप्रकार भुशुंडका वृत्तान्त मैंने तुमसे वर्णन कियाहै, इसी बुद्धिसे भुशुंड मोहसमुद्रके पार हुआहै ॥ १ ॥ हे महाबाहो रामजी ! अपने प्राणायामके अभ्यासपूर्वक इस दृष्टिका अवलंबन करके संसाररूप समुद्रसे तुम पार होजाओ ॥ २ ॥ जैसे निरंतरके अभ्याससे उत्पन्न ज्ञान और योगसे भुशुंडने प्राप्तव्य वस्तुको पाया ऐसेही तुमभी प्राप्त करो ॥ ३ ॥ संसारमें असक्तबुद्धि प्राण अपानके उपासक लोग परब्रह्ममें भुशुंडके समान स्थितिको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

एताविचित्राभवताश्रुताविज्ञानदृष्टयः ॥ इदानींधियमालंब्ययथेच्छसितथाकुरु ॥ ५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भवताभूमिभास्वताज्ञानरश्मिभिः ॥ हार्दंसुहामदौरात्म्यंप्रमृष्टमखिलंतमः ॥ ६ ॥ प्रबुद्धाःस्मः

प्रहृष्टाःस्मःप्रविष्टाःस्मःस्वमास्पदम् ॥ स्थिताःस्मोज्ञातविज्ञेयाभवंतोह्यपराइव ॥ ७ ॥ अहोभुशुंडच रितंपरंविस्मयकारकम् ॥ भगवन्भवताप्रोक्तमुत्तमार्थावबोधनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! यह विचित्र ज्ञानकी दृष्टि आपने सुनी अब योगपूर्वक वा उपासनापूर्वक अपने आत्माकी प्रतिष्ठा करो ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! अनात्मा देहादिमें आत्मदर्शन तथा उस दर्शन अतिप्रचंड दुष्टचेष्टित जिसमें हैं ऐसे हृदयके सब अंधकारको पृथिवीके सूर्य्य आपने ज्ञानरूप किरणोंसे दूर करदिया ॥ ६ ॥ हे भगवन्! हमलोग आपके उपदेशसे प्रबुद्ध हैं, प्रसन्न हैं, अपने आत्मारूप स्थानमें प्रविष्ट हैं और द्वितीय आपकेही तुल्य विज्ञेय (ब्रह्म) को जानके स्थितहैं ॥ ७ ॥ हे भगवन्! अहो अतिविस्मयका हेतु तथा उत्तम परमार्थका बोधक भुशुंडका चरित आपने कहाहै ॥ ८ ॥

भुशुंडचरितेब्रह्मन्नेतस्मिन्कथितेत्वया ॥ यच्छरीरगृहंप्रोक्तंमांसचर्मास्थिनिर्मितम् ॥ ९ ॥ तत्केनना मरचितंकुतोवातत्समुत्थितम् ॥ कथंवास्थितिमायातंकोवातत्रावतिष्ठते ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमार्थावबोधायदोषापाकरणायच ॥ शृणुराघवतत्वेनवक्ष्यमाणमिदंमया ॥ ११ ॥ अस्थिस्थूणंनव द्वारंरक्तमांसावलेपनम् ॥ शरीरसदनंरामनकेनचिदिदंकृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! आपसे कहेहुये, इस भुशुंडके चरितमें जो मांस चर्म तथा हड्डीसे रचित शरीररूप गृह आपने कहाहै ॥ ९ ॥ तो उस गृहको किसने रचाहै, कैसे कहांसे वह प्रकट हुआहै, किसप्रकार स्थितिको प्राप्तहुआहै और कौन उसमें रहताहै ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव! परमार्थके बोधार्थ, और दोषोंके निराकरणकेलिये यथार्थ वक्ष्यमाण (जो मैं कहूंगा) को सुनिये ॥ ११ ॥ हे रामजी! हड्डियोंके स्तंभपर स्थित, नव (इन्द्रियरूप) द्वारसंयुक्त, और रक्त मांससे लिप्त शरीररूप गृहको किसीने नहीं रचाहै ॥ १२ ॥

आभासमात्रमेवेदमित्थमेवावभासते ॥ द्विचंद्रविभ्रमाकारंसदसच्चव्यवस्थितम् ॥ १३ ॥ द्विचंद्रदर्शन विधौचंद्रद्वित्वंसदैवहि ॥ वस्तुतश्चैकएवेंदुःस्थितोदेहस्तथैवहि ॥ १४ ॥ देहप्रत्ययकालेहिदेहोयंसम वस्थितः ॥ असन्नेवचसत्तस्मात्प्रोक्तःसदसदात्मकः ॥ १५ ॥ स्वप्नेस्वप्नावबोधःसंस्त्वन्यदासमुधै वहि ॥ बुद्बुदोबुद्बुदविधौसत्योमिथ्यवचान्यदा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! यह सब आभासमात्रहै इसीप्रकार भासता है, और दो चन्द्रमाके भ्रमके तुल्य सद् असद्रूपसे स्थितहै ॥ १३ ॥ दो चंद्रके दर्शनकेही समयमें सदा चंद्रमाकी द्वैतता जैसे मिथ्या भासती है यथार्थमें चंद्रमा एकही है ऐसेही मिथ्या यह भासताहै ॥ १४ ॥ देहके भानकालमें यह देह स्थित भासताहै इसलिये असत् है और सद् (अधिष्ठान सत्तासे) असत्रूप कहा गयाहै ॥ १५ ॥ स्वप्नमेंही स्वप्नका पदार्थ सत्रूपसे भासताहै और अन्यकालमें मिथ्याही है, बुद्बुदके भानकालमें बुद्बुद सत्य भासताहै और अन्यकालमें वह मिथ्याही है ॥ १६ ॥

देहोदेहविधौसत्योह्यसत्यइतरद्विधौ ॥ प्रतिभासविधौतावज्जलंसदसदन्यदा ॥ १७ ॥ प्रतिभासविधौ देहःसन्नसंश्चान्यदास्मृतः ॥ आभासमात्रमेवेदमित्थंसंप्रतिभासते ॥ १८ ॥ अयंनामाहमित्यंतर्गृही तमननंस्थितम् ॥ मांसास्थिमयनिर्माणदेहोहमितिविभ्रमम् ॥ १९ ॥ त्यजसंकल्पनिर्माणदेहाःसंतिस हस्रशः ॥ सुखतल्पगतोयेनस्वप्नदेहेनदिक्तटान् ॥ २० ॥

अर्थ—ऐसेही देहके भानकालमें देह सत्य है और शुद्ध आत्माके दर्शनकालमें यह देह मिथ्या है और जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमके समयमें मिथ्याहै और अन्यसमयमें वह सद् असद्रूप है ॥ १७ ॥ ऐसेही प्रतिभासके समयमें यह देह सत् भासताहै अन्यकालमें असत् कहागयाहै. यह देह प्रतिभास (प्रतीति) मात्र इसीप्रकार भासताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी! यह मेरा नाम है इसप्रकार अंतःकरणमें गृहीत निश्चयसहित मांस और अस्थि (हड्डी) के निर्माणमय इस देहके भ्रमको ॥ १९ ॥ तुम त्यागो क्योंकि संकल्पसे रचित सहस्रशों (हजारों) देह हैं. देखो सुखकी शय्यापर प्राप्त तुम स्वप्नमें जिस देहसे दिशाओंके तटोंमें ॥ २० ॥

परिभ्रमसिहेरामसदेहस्तेक्वसंस्थितः ॥ जागरायांमनोराज्येयेनस्वर्गपुरांतरम् ॥ २१ ॥ परिभ्रमसिमेरु वासदेहस्तेक्वसंस्थितः ॥ स्वप्नेष्वपिचयःस्वप्नस्तत्रयेनमहीतटान् ॥ २२ ॥ परिभ्रमसिहेरामसदेहस्ते क्वसंस्थितः ॥ मनोराज्यंमनोराज्येमहद्विभवभूमिषु ॥ २३ ॥ परिभ्रमसियेनेहसदेहस्तेक्वसंस्थितः ॥ गतैर्देहैर्मनोराज्येयाविचित्राजगत्क्रियाः ॥ २४ ॥

अर्थ—भ्रमण करते हो वह तुमारा देह अब कहां स्थितहै, और जाग्रत् अवस्थामेंभी मनो राज्यमें स्वर्गके नगरांतरमें ॥ २१ ॥ वा सुमेरुपर्वतपर तुम भ्रमण करते हो वह तुमारा देह कहां स्थित है और स्वप्नमेंभी जो अन्य स्वप्न है

वहां जिस शरीरसे पृथिवीके अनेक देशोंमें ॥२२॥ परिभ्रमण करते हो हे रामजी ! वह तुमारा देह कहां स्थित है और मनोराज्यमेंभी जो मनोराज्य है उसमें महान् इन्द्र चन्द्र आदिकी विभवकी भूमियोंमें ॥२३॥ जिस देहसे तुम भ्रमण करते हो वह तुमारा देह कहां स्थितहै, और बीतेहुये जिन देहोंसे तुम जगत्की क्रियाओंको मनोराज्य करते हो॥२४

प्रकरोषिमहाबाहोतेदेहास्तेक्कसंस्थिताः ॥ विलासिन्यानुरागिण्यायेनसंकल्पकांतया ॥ २५ ॥ निर्वृतिं यासिदेहेनसदेहस्तेक्कसंस्थितः ॥ एतेरामयथादेहामनसःसदसन्मयाः ॥ २६ ॥ तथैवतादृशाचारोदे होयंमनसःस्मृतः ॥ इदंधनमयंदेहोदेशोयमितिविभ्रमः ॥ २७ ॥ तत्सर्वंचित्तवीर्यस्यसंकल्पस्यविजृं भितम् ॥ दीर्घस्वप्नमिमंविद्धिदीर्घंवाचित्तविभ्रमम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे महाबाहो रामजी ! वे सब तुमारे देह कहां स्थित हैं, और जिस देहसे अनुरागयुक्त संकल्पकी विलासिनी स्त्रीसे ॥ २५ ॥ संभोगके सुखको प्राप्त होते हो वह तुमारा देह कहां स्थित है, हे रामजी ! ये सब मनसे रचित भविष्यत् स्वप्न मनोराज्य आदिके देह जैसे सदसन्मय हैं ॥ २६ ॥ ऐसेही तुमारे समान आचारसहित यह देहभी मनसेही रचित कहां गयाहै, यह धन, यह देह, और यह देश इत्यादि जो भ्रम है ॥ २७ ॥ वह सब चित्तके पराक्रमसे उत्पन्न संकल्पकाही प्रभाव है. हे रामजी ! इस देहादि सब संसारको दीर्घस्वप्न वा दीर्घचित्तका भ्रम तुम जानो ॥ २८ ॥

दीर्घंवापिमनोराज्यंसंसाररंघुनंदन ॥ प्रबोधमेष्यसियदापरमात्मेच्छयास्वया ॥ २९ ॥ द्रक्ष्यसित्वंतदा सम्यगिदमर्कोदयेयथा ॥ स्वप्नसंकल्पजालेनयथान्यैवजगत्स्थितिः ॥ ३० ॥ तथैवेयंहिसंकल्पकलना काचिदेवहि ॥ यथापूर्वमयोत्पत्तिःप्रोक्ताकमलजन्मनः ॥ ३१ ॥ मनसःस्वयमेवांतःसंकल्पकलनो द्भवा ॥ विचित्ररचनोपेतंमनस्तत्रात्तविभ्रमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अथवा हे रामजी ! इस देहादिसंसारको तुम दीर्घ मनोराज्य जानो. जब परमात्माकी निजइच्छासे तुमको ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ तब भलीभांति इस बातको तुम ऐसे देखोगे जैसे सूर्य्यके उदयमें घटपटआदि पदार्थ. जैसे स्वप्न वा संकल्पके जालसे जगत्की स्थिति अन्यप्रकारकी होजातीहै ॥ ३० ॥ ऐसेही यह वर्तमान-कालके जगत्की स्थितिभी संकल्पकी कल्पनासे कोई अनिर्वचनीय (मिथ्या) है. जैसे पूर्व उत्पत्तिप्रकरणमें ब्रह्मासे जगत्की उत्पत्ति मैंने कहीहै ॥ ३१ ॥ ऐसेही मनसेही अंतःकरणके संकल्पसे चित्रविचित्र कल्पनासे उत्पन्न यहभी जगत्की स्थिति है, और भ्रमको ग्रहण कियेहुये चित्रविचित्र रचनासे युक्त उस उत्पत्तिमें जैसे मनही कारण है॥३२॥

संकल्पकलनामात्रंतथेदमवभासनम् ॥ यथाकल्पितआभासोमनसोब्जजतांगतः ॥ ३३ ॥ देहाद्विचिं तितोदेहःस्थितोन्यस्तद्वदेवहि ॥ प्राक्प्रवाहचिराभ्यस्तोवासनातिशयेनयः ॥ ३४ ॥ तथैवदृश्यतेदेह स्तथाकृत्युदयेनसः ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनसंकल्पोह्ययमेवचित् ॥ ३५ ॥ अन्यथाभाव्यतेरामभूयतेतदिहा न्यथा ॥ अयंसोहंममायंचसंसारइतिभाविते ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह देहादि सब संसारका अवभास ऐसे संकल्पकी कल्पनामात्र है जैसे इन्दुके पुत्रोंका मनका आभासही ब्रह्मरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ ऐसेही पूर्वदेहसे जीवके निकलतेसमय जैसा देह चिंतित हुआ है वै-साही दूसरा स्थित होताहै. वासनाकी अधिकतासे पूर्वकालका प्रवाह जो चिरकालसे अभ्यस्तहै ॥ ३४॥ वह वैसीही रचनाकी संपत्तिसे देखपडताहै, और पौरुषरूप यत्नसे मनको अंतर्मुख करके आत्माके दर्शनसे यह देह जगदाकार संकल्प चित्‌रूपही है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! यदि चित्‌से भिन्न भावनाकी जाती है तब अन्यथाही भावही भान होताहै. यह देहादि मैं, वह पुत्र धन आदि मेरा ऐसी भावना करनेपर वैसाही भान होताहै ॥ ३६ ॥

सत्योयोभाव्यतेरामभावनादार्ढ्यसंभवः ॥ भावितंतीव्रवेगेनयदेवाशुतदेवहि ॥ ३७ ॥ सर्वत्रदृश्यते रामकांतेवात्यंतवल्लभा ॥ अहर्व्यवृत्तिरभ्यस्तायथास्वप्नेषुदृश्यते ॥ ३८ ॥ यथायंभावनाभ्यस्तःसंसा रोप्यवलोक्यते ॥ यथास्वप्नावनौक्षिप्रमहर्यदवभासते ॥ ३९ ॥ तथेदमल्पकालस्थमपिसंलक्ष्यतेस्थिर म् ॥ व्योमन्येवयथातापतप्तेसंदृश्यतेसरित् ॥ ४० ॥

अर्थ—भावनाकी दृढताके संभवसे जो सत्यभावना की जाती है वह तीव्रवासनासे भावित शीघ्र वैसाही होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! अत्यन्त प्रिय स्त्री जैसे दिनमें सर्वदा अभ्यस्त स्वप्नमें वही सर्वत्र देखपडती है ॥ ३८ ॥ उसी-प्रकार भावनासे अभ्यस्त यह संसार देखपडताहै. जैसे स्वप्नकी पृथिवीमें क्षणविनाशी क्षण आदि तीसघटिकारूप दीर्घदिवसरूपसे भासताहै ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार अल्पकालकेलिये स्थितभी यह संसार स्थिर भान होताहै, और जैसे आतपसे संतप्त मरुभूमिके आकाशमें मृगतृष्णाकी नदी भासती है ॥ ४० ॥

धराप्यविद्यमानापिसंकल्पाद्दृश्यतेतथा ॥ दृश्यतेदृष्टिवैरूप्याद्ययाव्योमनिपिच्छिका ॥ ४१ ॥ तथैवेयं जगल्लक्ष्मीर्दुर्ज्ञानादवभासते ॥ दृश्यतेसमयादृष्ट्यानयथाव्योम्निपिच्छिका ॥ ४२ ॥ सम्यग्दृष्ट्याजगल्लक्ष्मीस्तथेयंनावभासते ॥ भीरुरभ्येतिनयथास्वसंकल्पेषुसंभ्रमम् ॥ ४३ ॥ स्वसंकल्पेहिसंसारेनतथैतिभयंसुधीः ॥ स्वएवहिस्वभावोयमित्थंसंप्रतिभासते ॥ ४४ ॥

अर्थ—ऐसेही अविद्यमानभी पृथिवी संकल्पसे देखपडती है, और जैसे दृष्टिविरूपतासे आकाशमें मोरके पंखकी बद्धमुष्टि देखपडती है ॥ ४१ ॥ ऐसेही भ्रांतिज्ञानसे जगत्की लक्ष्मी भासती है, जैसे समदृष्टिसे आकाशमें मोरके पंखका गुच्छा नहीं देखपडता ॥ ४२ ॥ ऐसेही सम्यग्ज्ञानसे यह जगत्की लक्ष्मी नहीं भासती. और जैसे अपने संकल्प मनोराज्य आदिसे कल्पित हस्ती व्याघ्राआदिमें भीरु (डरपोक) भी भयको नहीं प्राप्त होता ॥ ४३ ॥ ऐसेही बुद्धिमान् अपने संकल्पसे कल्पित संसारमें भयको नहीं प्राप्त होता. और बहिर्मुखतादशामें आत्मस्वभावही देह जगत्आकारसे भासताहै ॥ ४४ ॥

संसारसरणिस्थित्यांकस्मात्कोत्रबिभेतिकिम् ॥ सएवकिंचित्संशोध्यःशुद्ध्याविमलतांगते ॥ ४५ ॥ तस्मिन्नदृश्यतेराममोहोयंजगतःस्थितः ॥ सम्यगालोकमात्रेणस्वभावःशुद्धिमृच्छति ॥ ४६ ॥ नगृह्णातिमलंभूयस्ताम्रतामिवकांचनम् ॥ आभासमात्रमेवेदंनसन्नासज्जगत्रयम् ॥ ४७ ॥ इत्यन्यकलनात्यागःसम्यगालोकनंविदुः ॥ मरणंजीवितंस्वर्गोज्ञानमज्ञानमेवच ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस संसारके मार्गकी स्थितिमें कौन क्यों यहां भय करताहै, जो भय करताहै उसीका शोधन (विवेचन) करना चाहिये और शोधनसे विमलता प्राप्त होनेपर ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! उस शुद्ध अद्वयआत्मामें यह भय आदि रूप मोह नहीं देखपडता, और सम्यग्दर्शनमात्रसे आत्मशुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ और शुद्धिके पश्चात् आत्मा पुनः मल ऐसे नहीं ग्रहण करता जैसे स्वाभाविक सिद्ध सुवर्ण ताम्ररूपताको; और यह तीनोंलोक केवल आभासमात्रही है ॥ ४७ ॥ इस हेतुसे अन्यकल्पनाके त्यागको सम्यग्दर्शन कहतेहैं, और मरण, जीवन, ज्ञान अज्ञान, तथा स्वर्ग ॥ ४८ ॥

चिदाभासादृतेनास्तीत्येकतासम्यगीक्षणम् ॥ त्वमहंतादिसंसारइतिमेनदिशोदश ॥ ४९ ॥ सर्वस्वाभासमेवेतिसम्यगालोकनंविदुः ॥ सदसन्मयसंसारेयथाभूतार्थदर्शनात् ॥ ५० ॥ नास्तमेतिनचोदेतिसम्यगालोकनान्मनः ॥ निर्णीयसर्वभावानामसत्त्वंसत्वमेवच ॥ ५१ ॥ निष्कामंशांतिमभ्येतिसम्यगालोकनान्मनः ॥ ननिंदतिनचस्तौतिनहृष्यतिनशोचति ॥ ५२ ॥

अर्थ—ये सब चित्प्रकाशसे पृथक् कुछ नहीं है इसप्रकार एक चिन्मात्रके परिशेषको सम्यग् ईक्षण कहतेहैं, और अपनेसे भिन्न चेतनता, देहमात्रपरिच्छिन्नता तथा त्वत्ता अहंताके अभिमानका विषय यह कार्य्यकारणसमूह आत्माको लोकांतरमें भ्रमण करानेवाला विषयसमूहरूप संसार और उनके आधारभूत दशोंदिशा ॥ ४९ ॥ यह सब चित्प्रकाश है इसको सम्यग्दर्शन कहतेहैं, और सत्य आत्माके दर्शनसे शांति होती है ॥ ५० ॥ सम्यग्दर्शनसे सब पदार्थोंका सत्व और असत्वनिर्णय मनन तो अस्त होताहै और न उदय होताहै ॥ ५१ ॥ तथा सम्यग्दर्शनसे मन निष्काम शांतिको प्राप्त होताहै, न निन्दा करताहै, न स्तुति करताहै, न प्रसन्न होताहै और न शोचताहै ॥ ५२ ॥

शीतलांसत्यतामेतिसम्यगालोकनान्मनः ॥ अवश्यमेवमर्तव्यंसर्वैरेवहिबंधुभिः ॥ ५३ ॥ इतिबंधुवियोगेषुकिंवृथापरितप्यसे ॥ अवश्यमेवचमयामर्तव्यमितिनिश्चयः ॥ ५४ ॥ इत्यात्मभरणप्राप्तौकिंमुधापरितप्यसे ॥ अवश्यमेवजातेनकिंचित्सुविभवादिकम् ॥ ५५ ॥ प्राप्तव्यंपुरुषेणेतिहर्षस्यावसरोहिकः ॥ सर्वस्यैवहिसंसारेनरस्यव्यवहारिणः ॥ ५६ ॥

अर्थ—तथा सम्यग्दर्शनसे तापत्रयशून्य सत्यशीतलताको प्राप्त होताहै, और सब बंधुओंको इस संसारमें अवश्य मरनाहोगा ॥ ५३ ॥ इस हेतु बंधुओंके वियोगमें वृथा क्यों संतप्त हो, और अवश्य मुझेभी मरना है यह निश्चय है ॥ ५४ ॥ इसलिये अपने मरणप्राप्तिमें व्यर्थ शोच क्यों करतेहो, तथा संसारमें उत्पन्न पुरुष अवश्य कुछ विभवआदि ॥ ५५ ॥ प्राप्त करैगा तो इसमें हर्षका क्या अवसर है, इस संसारमें सब व्यवहारीपुरुषको ॥ ५६ ॥

अर्थायाताभवत्यापच्छोकस्यावसरोहिकः ॥ बृहत्युदेतिस्फुरतिबुद्बुदौघइवार्णवे ॥ ५७ ॥ इदंहिजगतांजालंकिमत्रपरिदेवना ॥ सत्सदेवसदैवैतदसदेवासदेवहि ॥ ५८ ॥ क्रियावैचित्र्यमात्रेतुकिमन्यत्परिदेव्यते ॥ नाहमस्मिनचाभूवंभविष्यामिनसोधुना ॥ ५९ ॥ देहोयंचित्रदोषोत्थःकिमन्यत्परिदेव्यते ॥ देहाच्चेदन्यएवाहंचिदाभासस्तदंगहे ॥ ६० ॥

अर्थ—दरिद्रता आदि आपत्ति अवश्य होती है तो इसमें शोकका क्या अवसर है, और समुद्रमें बुद्बुदके समूहके समान यह जगत्का जाल उदय होताहै, बढताहै, और स्फुरितहोताहै तो इसमें विलाप क्यों करना, सत् सदा सत् और असत् सदा असत् है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ मायाकी विक्रियासे विचित्रात्मक इस प्रपंचमें चित्से अन्य और क्या है जिसके अर्थ विलाप करते हो, अहंकारात्मा मैं नहीं हूं, न था, और न अब होऊंगा ॥ ५९ ॥ विचित्र अविद्या काम कर्म वासना आदि दोषोंसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है इस कारण इसकेलिये क्या शोच करनाचाहिये. देहसे भिन्न यदि मैं हुं तो हे प्रिय रामजी ! चित्प्रकाशरूपही हुं ॥ ६० ॥

कौतेमेसदसद्भावौयन्निष्ठंपरितप्यते ॥ इतिनिश्चयवत्स्वांतंसम्यग्ज्ञानात्मनोमुनेः ॥६१॥ नास्तमेतिन चोदेतिनशांतंपरितप्यते ॥ परतामेवनाशांतामनुत्तमपदेस्थितः ॥ ६२ ॥ आदत्तेतित्तिरीमूर्द्वीतृणकोटि मिवामलाम् ॥ एतदर्थमसत्येस्मिन्नास्थाकार्यामनागपि ॥ ६३ ॥ सुरज्ज्वेवबलीवर्दोबध्यतेजंतुरास्थ या ॥ अतस्त्वयाद्दढमिदमितिनिर्णायिबुद्धितः ॥ ६४ ॥

अर्थ—मेरे वे सदसद्भाव कहां है कि जिसके निमित्त परिताप कियाजाय, सम्यग्ज्ञानवाले मुनिका ऐसा निश्चययुक्त अन्तःकरण ॥ ६१ ॥ न अस्त होताहै, न उदय और न शांत होनेसे परिताप करताहै, सर्वोत्तमपदमें स्थित ब्रह्मवित् सबभावोंमें सर्वथा शांत ब्रह्मपरताकोही ॥ ६२ ॥ ऐसे स्वीकारकरताहै, जैसे तित्तिरी अपना नीड (खुंथा) बनानेके अर्थ कोमल तृणका अग्रभागही ग्रहण करती है, इस कारण इस असत्य देह आदिमें किंचित्भी आस्था नहीं करनीचाहिये ॥ ६३ ॥ उत्तम रज्जु (रस्सी) से बलीवर्दके समान आस्था (जगतमें सत्यविश्वास) से जीव बांधाजाताहै इसलिये सबका अग्रभूत ब्रह्मही दृढ (नित्य) है ऐसा बुद्धिसे निर्णय करके ॥ ६४ ॥

आस्थारहितयाबुद्ध्याविहर्तव्यमिहानघ ॥ कर्तव्यमेवकर्तव्यमकर्तव्यमुपेक्ष्यते ॥ ६५ ॥ आस्थानास्थे परित्यज्यलीलयैवमहाधिया ॥ आभासमात्रमेवेदंयस्यचप्रतिभासते ॥ ६६ ॥ सोंऽतःशीतलतामेतिदि नांतेभुवनंयथा ॥ प्रतिभासंपरित्यज्यपदार्थपटलव्रजे ॥ ६७ ॥ आभासमात्रसामान्यमिदमालोकयान घ ॥ आभासमात्रकंरामचित्तामर्शकलंकितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! आस्थारहित बुद्धिसे इस संसारमें विहरनाचाहिये, और शास्त्रविहित कर्म करना चाहिये, तथा निषिद्धकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ६५ ॥ अनंतर लीलापूर्वक महाबुद्धिसे आस्था अनास्थाका परित्याग कर यह सब जगत् आभासमात्रही है यह जिसको भासताहै ॥ ६६ ॥ वह अपने अंतःकरणमें ऐसी शीतलाको प्राप्त होताहै जैसे दिनके अंतमें यह भुवन, और पंचभूतोंके समूह घट पट आदि विषयोंमेंभी प्रतिभासकोभी त्यागकर ॥ ६७ ॥ हे अनघ ! आभासमात्रही यह जगत् है ऐसा सामान्यरीतिसे देखो. हे रामजी ! यद्यपि यह आभासमात्र है तथापि चित्तके विशेषकल्पनासे कलंकित हुआ ॥ ६८ ॥

ततस्तदपिसंत्यज्यनिराभासोभवोत्तमः ॥ चिदाकाशमयोनित्यंसर्वगःसर्ववर्जितः ॥ ६९ ॥ आभास स्यपरित्यागेभवस्येकांतनिर्मलः ॥ नाहमस्मिनमेभोगाःसत्याइत्यभिभावित ॥ ७० ॥ नेदमाडंबरंव्य र्थमनर्थायावभासते ॥ अहमेवाहिवासर्वचिदित्येवंविभाविते ॥ ७१ ॥ नेदमाडंबरंव्यर्थमनर्थायावभा सते ॥ दर्शनद्वयमप्येतत्सत्यमत्यंतसिद्धिदम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—इसलिये उस आभासकोभी त्यागकर निराभास, चित्प्रकाशमय, नित्य, सर्वगामी और संगवर्जित सर्वोत्तम होजाओ ॥ ६९ ॥ आभासके परित्यागसे सर्वथा निर्मल होजाओगे, न मैं हुं न मेरे भोग सत्य हैं ऐसा चारोओरसे चिंतन करनेपर ॥ ७० ॥ यह जगदाडंबर नहीं किंतु व्यर्थही अनर्थकेलिये भासताहै, अथवा सब कुछ चित्रूप मैंही हुं ऐसा चिंतन करनेपर ॥ ७१ ॥ यह जगदाडंबर कुछ नहीं है किंतु व्यर्थही अनर्थकेलिये भासताहै, ये दोनो (मैं कुछ नहीं हुं, और सब कुछ मैंही हुं) दर्शन सत्य और अत्यंत सिद्धिदायकहैं ॥ ७२ ॥

यदेकमेतयोर्वेत्सिरम्यंतद्रामसंश्रय ॥ द्वाभ्यामेवाथवैताभ्यांदर्शनाभ्यामिहानघ ॥ ७३ ॥ विहरन्कुरुक ल्याणरागद्वेषपरिक्षयम् ॥ यत्किंचिदुदितंलोकेयत्रभस्यथवादिवि ॥ ७४ ॥ तत्सर्वप्राप्यतेरामरागद्वेषप रिक्षयात् ॥ रागादिहतयाबुद्धयायादृग्रामविचेष्टितम् ॥ ७५ ॥ तत्तदेवप्रयात्याशुमूढानांविपरीतताम् ॥ द्वेषदोषोर्मिरुद्धासुनगुणाश्चित्तवृत्तिषु ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इनमेंसे जो तुम सत्य समझते हो उसका आश्रय करो. अथवा हे अनघ ! इन दोनों दर्शनोंसे ॥ ७३ ॥ हे कल्याणरूप ! इस संसारमें विहरतेहुये राग द्वेषका क्षय करो, क्योंकि जो कुछ इस संसारमें, आकाशमें,

अथवा स्वर्गमें उदित है ॥ ७४ ॥ हे राम ! वह सब रागद्वेषके परिक्षयसे प्राप्त होताहै. और हे रामजी ! रागद्वेषसे दग्ध-बुद्धिसे जैसा चेष्टित होताहै ॥ ७५ ॥ वही शीघ्र मूढोंके लिये विपरीतताको प्राप्त होताहै. द्वेषादिदोषरूप तरंगोंसे रुद्धचित्तकी वृत्तियोंमें गुण ॥ ७६ ॥

पदंकुर्वंतिदग्धासुस्थलीषुहरिणाइव ॥ रागोद्वेषश्चसर्पौद्वौनविलीनौमनोबिले ॥ ७७ ॥ यस्यकल्पतरोस्तस्मात्किनामांगनलभ्यते ॥ येहिप्राज्ञाःस्वनियताविदग्धाःशास्त्रशालिनः ॥७८॥ रागद्वेषमयास्तेवैजंबुकास्तेधिगस्तुतान् ॥ मद्धनंभुक्तमन्येनधनंत्यक्तंमयान्यतः ॥ ७९ ॥ इतिसंव्यवहारेहाःकेरागद्वेषयोःक्रमाः ॥ धनानिबंधवोमित्रंपुनरायांतियांतिच ॥ ८० ॥

अर्थ—ऐसे अपना स्थान नहीं बनाते जैसे भस्मीभूत वनस्थलियोंमें मृग. और रागद्वेषरूप दो सर्प जिन मन-रूप बिलमें नहीं प्रविष्टहुये ॥ ७७ ॥ हे प्रियरामजी ! उस कल्पवृक्षसे भला क्या (दुःख फल) नहीं प्राप्तहोता, जो बुद्धिमान् अपने आचारमें नियत और चतुर तथा शास्त्रज्ञानसंपन्न होकरभी ॥ ७८ ॥ रागद्वेषमय हैं उन बनके प्रसिद्ध शृगालोंको धिक्कार है. मेरा धन दूसरेने भोगलिया, मैंने अपना अवश्य लेनेयोग्य धन प्रमादसे अन्यत्र छो-डदिया ॥ ७९ ॥ इन व्यवहारोंकी वधबंधन आदिरूपसे जो चेष्टा हैं वेही तुच्छ रागद्वेष आदि क्रम हैं, क्योंकि धन, मित्र, बंधु और पुत्र आदि पुनः २ आतेहैं और जातेहैं ॥ ८० ॥

किमेतेषुनरःप्राज्ञोरज्यतेवाविरज्यते ॥ भावाभावभवाभोगामायेयंपारमेश्वरी ॥ ८१ ॥संसाररचनासर्वासंसक्तंपातयत्यलम् ॥ नधनंनजनोनात्मासत्यंराघववस्तुतः ॥ ८२ ॥ मिथ्यैवमिथ्यावसितमितीदंपरिलक्ष्यते ॥ आद्यंतयोःसर्वमसन्मध्येप्यस्थिरमाधिमत् ॥८३ ॥ कबध्नातिरतिंप्राज्ञोह्यन्यकल्पितखद्रुमे ॥ एकेनकल्पिताखेस्त्रीभुंक्तेतांदूरगोपरः ॥ ८४ ॥

अर्थ—इनमें बुद्धिमान् पुरुष किसमें प्रीति करै और किससे विरक्तहो, क्योंकि प्रियविषयके भावसे और अप्रियविषयोंके अभावसे संसारके जिसमें आभोग हैं ऐसी यह अपूर्व संसारकी सब रचना परमेश्वरकी माया है॥८१॥ जो कि इस रचनामें लंपट है उसे यह शीघ्र गिरादेती है. हे राघव! यथार्थमें न धन, न जन और न आत्मा सत्य है ॥ ८२ ॥ इस वक्ष्यमाण युक्तिसे यह संसार मिथ्या निश्चित है, और मिथ्याही देख पडताहै, क्योंकि जो आदि अंतमें असत् है वह मध्यमेंभी अस्थिर और रोगयुक्त है ॥ ४३ ॥ अन्यसे कल्पित आकाशके वृक्षमें बुद्धिमान् प्रीति कैसे करै, क्योंकि एकने आकाशमें स्त्रीकी कल्पना की और अन्य दूरगामी उसे भोगताहै यह कैसा असंगत है ॥ ८४ ॥

इतीयमंगसंसाररचनातेनमाभ्रम ॥ भूताजवंजवीभावमिममाततमाकुलम् ॥ ८५ ॥ गंधर्वपुरनिर्माणविलासेनसमंविदुः ॥ स्वप्नसंकल्पपुरवदसदेवेदमुत्थितम् ॥ ८६ ॥ सर्वत्रसंस्थमेवेदंसुषुप्तमिवविच्युतम् ॥ परिपश्यसिसंसारदीर्घस्वप्नपुरद्रुमम् ॥ ८७ ॥ अज्ञाननिद्राल्लुठनस्वभावात्मकमच्युतम् ॥ संसारस्वप्नसंभ्रांतोभवानयमिहस्थितः ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! इसप्रकार यह संसारकी रचना है इसलिये तुम भ्रमको न प्राप्त होओ, और भूतोंके ग-मन आगमनसे व्याप्त तथा विस्तृत इस संसारको ॥ ८५ ॥ गंधर्वके नगरकी रचनाके विलासके समान पंडितलोग जानतेहैं, क्योंकि स्वप्नके तथा संकल्पके नगरके समान यह असत्‌ही प्रादुर्भूत है ॥ ८६ ॥ सर्वत्र अधिष्ठान चित्में क-ल्पनाके संभवसे स्थित और स्वप्न आदि दशामें प्राप्त सुषुप्तके तुल्य तथा दीर्घस्वप्नपुरके वृक्षके सदृश इस संसारको तुम देखतेहो ॥ ८७ ॥ और अज्ञानरूप निद्रामें लुठन (अपहरणशील) और निरंतर गूंथेहुये इस जगत्‌को संसार-रूप स्वप्नमें भ्रांत होके देखतेहुये यह तुम स्थितहो ॥ ८८ ॥

तदेनांविततांनिद्रांघनाज्ञानमयात्मिकाम् ॥ त्यजालक्ष्मीमिवावाप्तनिधानःपुरुषोत्तमः ॥ ८९ ॥ प्रबोधमेहिपश्यस्वमात्मानमुदितंसदा ॥ निर्विकल्पंचिदाभासंप्रातःपद्मंरविंयथा ॥ ९० ॥ प्रबुद्ध्यस्वप्रबुद्ध्यस्वपुनःपुनरयंमया ॥ प्रबोद्ध्यसेमहाबाहोपश्यात्मार्कमनामयम् ॥ ९१ ॥ मयैतेनाभिवृष्टेनशीतेनज्ञानवारिणा ॥ सुशब्दशालिनारामह्यनेनैवासिबोधितः ॥ ९२ ॥

अर्थ—इसलिये घनीभूत अज्ञानमय इस विशाल निद्राको तुम ऐसे त्यागो जैसे निधि (खजाना) पानेवाला उत्तमपुरुष दरिद्रताको ॥ ९९ ॥ और ज्ञानको प्राप्त करो, तथा निर्विकल्प चित्प्रकाशमय और सदा आनंदरूप अपने आत्माको ऐसे देखो जैसे प्रातःकालमें कमल सूर्य्यको ॥ ९० ॥ हे महाबाहो रामजी ! अज्ञाननिद्रासे जागो इसप्र-कार मैं पुनः २ आपको प्रबोधन करताहूं, सो तुम इसप्रकार मुझसे प्रबोधित विकाररहित आत्मरूप सूर्य्य देखो

॥ ९१ ॥ हे रामजी ! उत्तम शब्द (पक्षमें गर्जन) से शोभायमान मुझसे वर्षा कियेहुये इस ज्ञानरूप जलसे इससमय तुम बोधित किये गयेहो ॥ ९२ ॥

बोधमासादयपरंप्रबोधोद्येवराघव ॥ सत्यमालोकयालीकंत्यक्त्वेमंजागतंभ्रमम् ॥ ९३ ॥ नतेजन्मनते दुःखंनदोषास्तेनतेभ्रमाः ॥ सर्वसंकल्पमुत्सृज्यतिष्ठात्मनिसुसंस्थितः ॥ ९४ ॥ परिगलितविकल्पदोष जालस्त्वमसिसुसारसुषुप्तसौम्यदृष्टिः ॥ अतिविततमिदंसुशुद्धयेत्वंसमुपशमात्मनितिष्ठहेमहात्मन् ९५

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थयोगोपदेशो नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राम ! तुम बोधको प्राप्त करो और उत्तम बोधयुक्त होकर और इस जगत्को तुम त्यागकर इसीसमय अपने आत्मतत्वको देखो ॥ ९३ ॥ न तुमारा जन्म है, न तुमको दुःख है, न तुमारे दोष हैं, और न तुमको भ्रम है, सब संकल्पको त्यागकर तुम अपने आत्मामे भलीभांति स्थित रहो. हे रामजी ! विकल्पआदि दोषजालोंसे रहित, तथा अत्यंत सारभूत सुषुप्तके समान जिसकी सौम्यदृष्टि है ऐसे तुम नित्य अपरोक्ष तथा अतिमहान् विशाल ब्रह्महो तुम हो इसलिये सर्वथा शुद्धिकेलिये शांतिरूप निजआत्मामें स्थित रहो ॥ ९५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

इस २९ के सर्गमें बोधसे रामजीकी विश्रांति, कथित अर्थका पुनः विस्तार और पूर्वकालमें कैलासपर ऐसाही उपदेश शिवजीने वर्णन किया है इस विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्याकर्णयतिस्वस्थसमचेतसिराघवे ॥ विश्रांतेस्वात्मनिस्वैरंपरमानंदमागते ॥ १ ॥ तत्रस्थेषुचसर्वेषुतेषूपशमशालिषु ॥ राघवस्यात्मविश्रांतेःस्थित्यर्थंवचनामृतम् ॥ २ ॥ विररामसुनेर्वारिसस्येष्वंबुधरादिव ॥ अथयातेमुहूर्त्तार्धेराघवेप्रतिबोधिते ॥ ३ ॥ पुनराहतमेवार्थंवसिष्ठोवदतांवरः ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामसम्यक्प्रबुद्धोसिस्वात्मानमसिलब्धवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकजी बोले—हे राजन् ! इसप्रकार स्वस्थ तथा समचित्त रामचंद्रजीके सुननेपर, अपनी इच्छापूर्वक अपने आत्मामें विश्रांत होने तथा परमानंद आनेपर ॥ १ ॥ और उस सभामें जो स्थित थे उनकेभी आत्मामें विश्रांत होनेपर, रामचंद्रजीकी आत्मामें विश्रांतिको स्थिरताकेलिये वसिष्ठमुनिका वचनरूप अमृत ॥ २ ॥ ऐसे विरामको प्राप्तहुआ जैसे पर्वतसे चलाहुआ जल वृष्टिसे तर्पित सस्यों (खेतों) में विरामको प्राप्तहो, और इसके पश्चात् अर्द्धमुहूर्त (एकघडी) बीतनेपर और समाधिसे रामचंद्रके वसिष्ठके द्वारा उठानेपर ॥ ३ ॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने उक्तार्थको दृढ करनेके अर्थ पुनः उसी अर्थको कहा. श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! तुम उत्तमप्रकारसे ज्ञानयुक्त हो और अपने आत्माको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

एवमेवावलंब्यार्थंतिष्ठनेहपदंकुथाः ॥ इदंसंसारचक्रंहिनाभौसंकल्पमात्रके ॥ ५ ॥ संरोधितायांवहना द्रघुनंदनरुद्ध्यते ॥ क्षोभितायांमनोनाभ्यामिदंसंसारचक्रकम् ॥ ६ ॥ प्रयत्नाद्रोधितमपिप्रवहत्येववेगतः ॥ परंपौरुषमास्थायबलंप्रज्ञांचयुक्तितः ॥ ७ ॥ नाभिसंसारचक्रस्यचित्तमेवनिरोधयेत् ॥ प्रज्ञासौजन्ययुक्तेनशास्त्रसंवलितेनच ॥ ८ ॥

अर्थ—इसी पूर्वोक्त अर्थका अवलंबन करके अपने आत्मामें स्थित रहो और इस संसारमें सत्यताके विश्वाससे स्थिति न करो, और यह संसाररूपचक्र संकल्पमात्र नाभिके ॥ ५ ॥ रोकनेपर हे रघुनंदन ! चलनेसे रुक जाताहै. और मन वा संकल्परूप नाभिके क्षोभित करनेपर यह संसारचक्र ॥ ६ ॥ प्रयत्नसे रोकनेपरभी वेगसे चलताहै इसलिये परमपौरुष अभ्यास वैराग्यकी दृढता तथा बुद्धिबलका युक्तिसे आश्रय लेके ॥ ७ ॥ संसाररूपचक्रकी नाभि जो चित्त है उसको रोकनाचाहिये. बुद्धि और सुजनतासे युक्त तथा शास्त्रसे संमत ॥ ८ ॥

पौरुषेणनयत्प्राप्तंनतत्क्वचनलभ्यते ॥ दैवैकपरतांत्यक्त्वाबालबोधोपकल्पिताम् ॥ ९ ॥ निजंप्रयत्नमाश्रित्यचित्तमादौनिरोधयेत् ॥ आविरिंचात्प्रवृत्तेनभ्रमेणाज्ञानरूपिणा ॥ १० ॥ असदेवसदाभासमिद

मालक्ष्यतेनघ ॥ अज्ञानभ्रमविस्तारमात्रकाकृतयोनघ ॥ ११ ॥ इमेदेहाभ्रमंतीहसर्वधर्मोत्समुत्थिताः ॥ संकल्पःपुनरस्त्वेवदेहस्यार्थेकदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—पौरुषसे जो नहीं प्राप्त होता वह कहीं नहीं मिलैगा, बालकोंके ज्ञानसे कल्पित एक दैव (प्रारब्ध) परताको त्यागकर ॥ ९ ॥ अपने प्रयत्नका अवलम्बन करके आदिमें चित्तका निरोध करनाचाहिये, और ब्रह्मासें लेके अबतकके प्राणियोंमें प्रवृत्त अज्ञानरूप भ्रमसे ॥ १० ॥ असत्भी यह जगत् सत्के समान भासताहै, और अज्ञानजनित भ्रमके विस्तारमात्र ये सब दृश्यजगत्के आकार हैं ॥ ११ ॥ और सब विकल्प आदि धर्मोंका उत्पत्तिस्थान जो संकल्प है उसीसे आविर्भूत ये सबदेह भ्रमण कररहेहैं इसलिये इस देहके नाशसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा क्योंकि शरीरोंके समूहोंका बनानेवाला संकल्प तो बनाही है इसकारण इस देहके अर्थ ॥ १२ ॥

सुखदुःखविचारित्वंनकार्यंरामधीमता ॥ दुःखम्लानमुखःक्लेदीप्रसन्नात्क्लेदवर्जितात् ॥ १३ ॥ अपिचित्रनराद्देहनरस्तुच्छतरःस्मृतः ॥ आधिव्याधिपरिम्लानेस्वयंक्लेदिनिनाशिनि ॥ १४ ॥ नतथास्थिरतादेहे चित्रपुंसोयथाकिल ॥ विनाशितोहिचित्रस्थोदेहोनश्यतिनान्यथा ॥ १५ ॥ अवश्यनाशोमांसात्मास्वयंदेहोविनश्यति ॥ पालितःसुस्थिरांशोभामादत्तेचित्रमानवः ॥ १६ ॥

अर्थ—कदाचित् बुद्धिमान् पुरुषको सुखदुःखका विचार न करना चाहिये, देहके सुखदुःखोंकी चिंतामें तत्पर होनेवाला मनुष्य दुःखसे सदा म्लानमुख बाष्प (अश्रु) के स्वेदसे आर्द्र रहताहै वह सदा प्रसन्न और स्वेद अश्रु आदिसे वर्जित ॥ १३ ॥ चित्रलिखित मनुष्यभी तुच्छतर है और आधिव्याधिसे चारोओरसे म्लान, स्वयं क्लेद- (आर्दता) युक्त और विनाशी ॥ १४ ॥ इस शरीरमें ऐसी स्थिरता नहीं है जैसी कि चित्रलिखित पुरुषकी शरीरमें, क्योंकि चित्रस्थ शरीर नाश करनेसे नष्ट होताहै अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥ और अवश्यनाशयुक्त मांसमय देह स्वयं नष्ट होताहै, और रक्षित चित्रका मनुष्य अति स्थिरशोभाको ग्रहण करताहै ॥ १६ ॥

देहस्तुपालितोऽप्युच्चैर्नश्यत्येवनवर्धते ॥ तेनश्रेष्ठश्चित्रदेहोनायंसंकल्पदेहकः ॥ १७ ॥ येगुणाश्चित्रदेहे हिनतेसंकल्पदेहके ॥ चित्रदेहादपिजडाद्योयंतुच्छतरःकिल ॥ १८ ॥ तस्मिन्मांसमयेदेहेकैवास्थाभवतोनघ ॥ दिर्घसंकल्पदेहोयंतस्मिन्नास्थामहामते ॥ १९ ॥ स्वप्नसंकल्पजाद्देहादपितुच्छतरोह्ययम् ॥ अल्पसंकल्पजोदीर्घैःसुखदुःखैर्नगृह्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और देह तो अतिप्रयत्नसेभी पालित होनेपर नष्ट होताहै न कि बढताहै इस हेतुसे चित्रमें स्थित देह श्रेष्ठ है न कि यह संकल्पजनित मांसमय ॥ १७ ॥ जो गुण चित्रकी देहमें है वे गुण संकल्पकृत देहमें नहीं हैं क्योंकि जो यह देह जड चित्रस्थदेहसेभी तुच्छतर है ॥ १८ ॥ उस मांसमयदेहमें हे पापरहित रामजी ! क्या विश्वास कियाजाय, हे महामते रामजी ! उस दीर्घसंकल्पमय देहमें मेरी आस्था नहीं है ॥ १९ ॥ क्योंकि यह देह स्वप्न और संकल्पजनित देहसेभी तुच्छतर है, अल्पसंकल्पजनित चित्रका देह सुखदुःखसे वशीभूत नहीं होता ॥ २० ॥

दीर्घसंकल्पजश्चायंदीर्घदुःखेनदुःखितः ॥ देहोहिसंकल्पमयोनायमस्तिनवास्तिनः ॥२१॥ किंव्यर्थंमेतदर्थंहिमूढोयंक्लेशभाजनम् ॥ यथाचित्रमयेपुंसिक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥२२॥ तथासंकल्पपुरुषेक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥ यथामनोराज्यमयेक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥२३॥ यथाद्वितीयेशशिनिक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥ यथास्वप्नसमारंभेक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥ २४ ॥

अर्थ—और मांसमय देह दीर्घ संकल्पसे उत्पन्न इसलिये दीर्घ सुखदुःखोंसे गृहीत होताहै, क्योंकि यह संकल्पमय देह यथार्थमें नहीं है अथवा यह हमारा शुद्ध असंग आत्माका नहीं है ॥ २१ ॥ यह मूढजन क्यों इस देहके लिये क्लेशका भागी होताहै, जिस चित्रके पुरुष क्षीण वा क्षत होनेपर आत्माकी क्या हानि होती है ॥ २२ ॥ ऐसेही संकल्पके पुरुषके क्षीण वा क्षत होनेपर आत्माकी कोई हानि नहीं हैं, और जैसे मनोराज्यमय पुरुषके क्षीण वा क्षत होनेपर आत्माकी क्षति नहीं है ॥ २३ ॥ जैसे द्वितीयचंद्रके क्षत वा क्षीण होनेपर वास्तविक चंद्रकी कोई हानि नहीं है, और जैसे स्वप्नके कार्य्यके क्षीण वा क्षत होनेपर कोई हानि आत्माकी नहीं है ॥ २४ ॥

यथानद्यातपजलेक्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥ संकल्पमात्ररचितेप्रकृत्यैवचनाशिनि ॥ २५ ॥ तथाशरीरयंत्रेस्मिन्क्षतेक्षीणेनतत्क्षतिः ॥ दीर्घस्वप्नमयेह्यस्मिंश्चित्तसंकल्पकल्पिते ॥ २६ ॥ भूषितेदूषितेदेहेनहिकिंचिच्चितःक्षतम् ॥ नचिदंतमुपायातिनात्माचलतिराघव ॥ २७ ॥ नब्रह्मविकृतिंयातिकिंवादेहक्षयेक्षतम् ॥ भ्रमचक्रोपरिस्थोहिपूर्वचक्रोपचक्रवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे मृगतृष्णाकी नदीके क्षत वा क्षीण होनेपर यथार्थ नदीकी कोई हानि नहीं है, ऐसेही संकल्पमात्र-रचित और प्रकृतिसे विनाशी ॥ २५ ॥ इस शरीररूप यंत्रके क्षत वा क्षीण होनेसे आत्माकी कोई क्षति नहीं है, और दीर्घसंकल्पमात्रसे रचित और दीर्घस्वप्नमय ॥ २६ ॥ इस देहके भूषित वा दूषित होनेपर चित्की कुछ क्षति नहीं है, और हे रामजी ! चित्का अंत नहीं होता, चिदात्मा चलायमान नहीं होता ॥ २७ ॥ चिद्रूप ब्रह्म विकारको नहीं प्राप्त होता, और देहके क्षत वा क्षीण होनेसे चित्का क्या क्षतहुआ, और भ्रमणकरतेहुये चक्रपर स्थित पुरुष अपने पूर्व अधिष्ठित चक्रके समान ॥ २८ ॥

यथापश्यतिदिक्चक्रंभ्रमदत्यंतमोहितः ॥ अकस्मादेवरूढेनमिथ्याज्ञानेनवल्गता ॥२९॥ तत्रस्थेनतथैवेदंदृश्यतेदेहचक्रकम् ॥ भ्रमितंचभ्रमद्रूपंपतद्रूपंप्रपादितम् ॥ ३० ॥ हतंचहन्यमानंचदृश्यतेदेहचक्रकम् ॥ धीरतामलमालंब्यघनभ्रममिमंत्यजेत् ॥ ३१ ॥ संकल्पेनकृतोदेहोमिथ्याज्ञानेनसन्नसन् ॥ असत्येनकृतंयस्मान्नतत्सत्यंकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—समस्त दिक्चक्रको भ्रमण करतेहुये अकस्मात् उत्पन्न गर्जतेहुये मिथ्या अज्ञानसे अत्यंत मोहित होके देखताहै ॥ २९ ॥ और मिथ्या अज्ञानचक्रपर स्थित जीव भ्रमित और भ्रमण करतेहुये तथा पातित और गिरतेहुये इस देहरूप चक्रको देखताहै ॥ ३० ॥ तथा हत और हन्यमान इस देहचक्र मिथ्या अज्ञानचक्रपर आरूढ वह जीव देखताहै, इस कारण पूर्णरीतिसे धीरताका अवलंबन करके इस घनीभूत भ्रमको त्यागनाचाहिये ॥ ३१ ॥ संकल्पसे रचित यह देह मिथ्या अज्ञानसे सत्रूपसे भासमानभी यथार्थमें असत् है, और असत्यसे रचित होनेसे यह कदाचित्भी सत्य नहीं है ॥ ३२ ॥

असदभ्युत्थितोदेहोरज्ज्वामिवभुजंगधीः ॥ असत्यामेवसत्यांचकरोत्यपिजगत्क्रियाम् ॥ ३३ ॥ जडेनरामक्रियतेयन्नतत्कृतमुच्यते ॥ कुर्वन्नपितदादेहोनकर्ताकचिदेवहि ॥ ३४ ॥ निरीहोहिजडोदेहोनात्मनोस्याभिवांछितम् ॥ कर्तानकश्चिदेवातोद्रष्टाकेवलमस्यसः ॥ ३५ ॥ यथादीपोनिवातस्थःस्वात्मन्येवावतिष्ठते ॥ साक्षिवत्सर्वभावेषुतथातिष्ठेज्जगत्स्थितौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—रज्जुमें सर्पकी बुद्धिके समान असत्रूपसे प्रादुर्भूत यह देह असत्य तथा सत्यभी जगत्की क्रियाको करताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जडही यह सब कुछ करताहै, यदि अचेतन होनेसे नहीं करता ऐसा कहाजाय तो यह कर्ताहुआभी कहीं कर्ता नहीं है ॥ ३४ ॥ जड देह इच्छारहित है और असंग आत्मामें इच्छाका असंभव है, इसलिये आत्मा देह इनमेंसे कोईभी कर्ता नहीं होसकता, किंतु आत्मा केवल शरीरआदिका द्रष्टा है ॥ ३५ ॥ जैसे वायुरहितदेशमें स्थित दीप अपने आत्मामें स्थित रहताहै, ऐसाही साक्षीके तुल्य सब पदार्थोंमें जगत्की स्थितिमें रहनाचाहिये ॥ ३६ ॥

यथादिवसकर्माणिभास्करःखस्थएवसन् ॥ करोत्येवमिमांरामकुरुपार्थिवसंस्थितिम् ॥ ३७ ॥ अस्मिन्नसन्मयेदेहगृहेशून्येसमुत्थिते ॥ सत्तामुपगतेमिथ्याबालकल्पितयक्षवत् ॥ ३८ ॥ कुतोप्यागत्यनिःसारःसर्वसज्जनवर्जितः ॥ अहंकारःकुवेतालःप्रविष्टश्चित्तनामकः ॥ ३९ ॥ अस्यमाभृत्यतांगच्छत्वमहंकारदुर्मतेः ॥ अस्यभृत्यतयारामनिरयःप्राप्यतेफलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे सूर्य्य आकाशमेंही स्थित दिनरूप क्रियाको करते हैं ऐसेही तुमभी असक्त होके राजाके कार्यको करो ॥ ३७ ॥ इस असन्मय देहरूप गृहके शून्यसत्ताके प्राप्त होनेपरभी उसने बालकसे कल्पित यक्षके समान ॥ ३८ ॥ सारतारहित, सब सज्जनोंके संगसे वर्जित, चित्तनामक अहंकाररूप दुष्ट वेताल कहींसे आकर प्रविष्ट है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! तुम इस दुष्ट अंहकारकी दासताको मत धारण करो, क्योंकि इसकी दासताका फल नरककी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

स्वसंकल्पविलासेनदेहगेहेदुराकृतिः ॥ उन्मत्तचित्तवेतालःपरिवल्गतिलीलया ॥ ४१ ॥ शून्यंदेहगृहंप्राप्यचित्तयक्षेणतत्कृतम् ॥ भीतायेनमहांतोपिसमाधिनियताःस्थिताः ॥ ४२ ॥ चित्तवेतालमुद्वास्यस्वशरीरकमंदिरात् ॥ संसारशून्यनगरेनबिभेतिकदाचन ॥ ४३ ॥ चित्तभूताभिभूतेस्मिन्येशरीरगृहेरताः ॥ चित्रमद्यापितेकस्माद्धदिताआत्मवत्स्थिताः ॥ ४४ ॥

अर्थ—दुष्ट आकार धारण कियेहुये उन्मत्तचित्तरूप वेताल अपने संकल्पके विलाससे देहरूप गृहमें लीलासे गर्जताहै ॥ ४१ ॥ चित्तरूप यक्षसे रचित देहरूप गृहमें प्राप्त होकर महात्मालोगभी भयभीत होकर समाधिमें नियत होके स्थित हैं ॥ ४२ ॥ अपने शरीररूप मंदिरसे चित्तरूप वेतालको निकालकर संसाररूप शून्यनगरमें बुद्धिमान्

पुरुष कदाचित्भी भय नहीं करता ॥ ४३ ॥ चित्तरूप भूतसे पीडित इस शरीररूप गृहमें जो आसक्त हैं आश्चर्य है की अनंतकोटि देहोंके नष्ट होनेपरभी आजतक देहके साथ अभिन्न होके क्यों स्थित हैं ? अर्थात् देहके साथ अनेक दुःखोंके अनुभव करनेपरभी उस देहके सदाकेलिये नाश करनेको यत्न क्यों नहीं करते ॥ ४४ ॥

ग्रस्तेचित्तपिशाचेनदेहसद्मनियेमृताः ॥ पिशाचस्येवयाबुद्धिर्नापिशाचस्यराघव ॥ ४५ ॥ अहंकारबृह द्यक्षगृहेदग्धशरीरके ॥ विहरन्नास्थयासाधोनतुवैतत्किलस्थिरम् ॥ ४६ ॥ अहंकारानुचरतांत्यक्त्वा विततयाधिया ॥ अहंकारास्मृतिंप्राप्यस्वात्मैवाश्रवलंब्यताम् ॥ ४७ ॥ अहंकारपिशाचेनग्रस्तायेनिरये षिणः ॥ तेषांमोहमदांधानांनमित्राणिनबांधवाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—चित्तरूप पिशाचसे ग्रस्त देहरूप गृहमें जो मरे हैं उनकी बुद्धि पिशाचकेही तुल्य है न कि अपिशाचकी ॥ ४५ ॥ हे साधो रामजी ! अहंकाररूप बडे यक्षसे ग्रस्त और सदा तीनों तापकी आग्नसे दग्ध इस शरीररूप गृहमें सत्यविश्वाससे विहार करताहुआ मनुष्य सदा पिशाचही है क्योंकि शरीररूप गृह स्थिर नहीं है यह नियश्चहै ॥ ४६॥ हे रामजी ! विशाल बुद्धिसे अहंकारकी दासताको त्यागकर और अनंतर यागकी भूमिकाके अभ्याससे सर्वथा अहंकारकी विस्मृतिको प्राप्त होकर शीघ्र आत्माका अवलंबन करो ॥ ४७ ॥ जो नरकके अभिलाषी अहंकाररूप पिशाचसे ग्रस्त हैं उन मोहरूप मदसे अंधे पुरुषोंके न मित्र हैं न बंधु हैं ॥ ४८ ॥

अहंकारोपहतयाबुद्ध्यायाक्रियतेक्रिया ॥ विषवल्लयाइवफलंतस्याःस्यान्मरणात्मकम् ॥ ४९ ॥ विवेक धैर्यहीनेनस्वाहंकारमहोत्सवः ॥ मूर्खेणालंबितोयेननष्टमेवाशुविद्धितम् ॥ ५० ॥ अहंकारपिशाचेनव राकायेवशीकृताः ॥ तएतेनरकाग्नीनांराघवेंधनतांगताः ॥ ५१ ॥ अहंकारोरगोयस्यपरिस्फूर्जतिकोटरे ॥ स्वदेहपादपोधीरैरचिरेणनिपात्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—अहंकारसे नष्टबुद्धिसे जो क्रिया कीजाती है विषकी लताके समान उसका फल मरणरूपही होताहै ॥ ४९ ॥ विवेकरूप धीरतासे हीन जिस मूर्खने अपने अहंकाररूप महान्उत्सवका अवलंबन किया उसको तुम शीघ्र नष्टही जानो ॥ ५० ॥ हे रामजी ! जो दीन अहंकाररूप पिशाचसे वशीकृत हैं वेही लोग नरककी अग्निके इन्धन हैं ॥ ५१ ॥ जिस देहरूप वृक्षके कोटरमें (हृदयमें) अहंकाररूप सर्प गर्जताहै वह अपना देहरूप वृक्ष अधीरपुरुषोंसे शीघ्र गिरादिया जाताहै ॥ ५२ ॥

अहंकारपिशाचेस्मिन्देहेतिष्ठतुयातुवा ॥ त्वमेनमालोकयमामनसामहतांवर ॥ ५३ ॥ अवधूतोह्यव ज्ञातश्चेतसैवतिरस्कृतः ॥ अहंकारपिशाचस्तेनेहकिंचित्करिष्यति ॥ ५४ ॥ देहालयेस्फुरत्यस्मिन्रा मचित्तपिशाचके ॥ अस्यानंतविलासस्यकिमिवागतमात्मनः ॥ ५५ ॥ चित्तयक्षाभिभूतानांयाःपुंसां विततापदः ॥ शक्यंतेपरिसंख्यातुंनतावर्षशतैरपि ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे महात्माओंमें श्रेष्ठ रामजी ! अहंकाररूप पिशाच इस देहरूप गृहमें रहे वा जाय परंतु तुम मनसेभी इसे न देखो ॥ ५३ ॥ क्योंकि चित्तसे अनादर तथा तिरस्कार कियाहुआ यह अहंकाररूप पिशाच तुमारा कुछ नहीं करेगा ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! देहरूप गृहमें अहंकारपिशाचके स्फुरित होनेपर यदि आत्मा उसका अनुसरण न करे तब इस अनंतविलासी आत्माको क्या प्राप्त हुआ अर्थात् उपेक्षित किया वह कुछ नहीं करसकता ॥ ५५ ॥ चित्तरूप यक्षसे पराजित पुरुषोंको जो विशाल आपत्तियां होती हैं उनकी गणना सैकडों वर्षोंसेभी नहीं होसकती ॥ ५६ ॥

हाहामृतोस्मिदग्धोस्मीत्येतावेदुःखवृत्तयः ॥ अहंकारपिशाचस्यशक्तयोन्यस्यनानघ ॥ ५७ ॥ सर्वगो पियथाकाशःसंबंधोनेहकेनचित् ॥ सर्वगोपितथैवात्मानाहंकारेणसंगतः ॥ ५८ ॥ यत्करोतियदादत्ते देहयंत्रमिदंचलम् ॥ वातरज्जुयुतंरामतदहंकारचेष्टितम् ॥५९॥ वृक्षोत्पत्तौयथाहेतुरकर्त्रपिकिलांबरम् ॥ आत्मसंस्थस्तथेहात्माचित्तचेष्टासुकारणम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! हा ! मैं मरा, हा ! मैं भस्म हुआ इत्यादि दुःखोंकी वृत्तियां अहंकाररूप पिशाचकी शक्ति हैं अन्यकी नहीं ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! जैसे अहंकार सर्वगामी है परंतु उसका संबंध किसीके साथ नहीं है ऐसेही आत्मा सर्वगामी है तथापि अहंकारसे उसका संबंध नहीं है ॥ ५८ ॥ यह चंचल देहरूप यंत्र जो कुछ करताहै और जो कुछ ग्रहण करताहै वह सब सूत्रात्मा प्राणसे युक्त अहंकारका चेष्टित है ॥ ५९ ॥ जैसे वृक्षकी उत्पत्तिमें आकाश कर्ता न होनेपरभी अवकाशदानादिरूपसे कारण है ऐसेही अपनी महिमामें प्रतिष्ठित आत्मा चित्तकी चेष्टामें कारण है ॥ ६० ॥

आत्मसन्निधिमात्रेणस्फुरत्यात्तवपुर्मनः ॥ दीपसन्निधिमात्रेणकुड्यरूपमिवामलम् ॥ ६१ ॥ अपिविश्लिष्टयोरामनित्यमेवात्मचित्तयोः ॥ द्यावापृथिव्योरिवकःसंबंधःप्रकटांधयोः ॥ ६२ ॥ चपलस्पंदनैराभिरात्मशक्तिभिरावृतम् ॥ चित्तमात्मेतिमौख्येणदृश्यतेरघुनंदन ॥ ६३ ॥ आत्माप्रकाशरूपोहिनित्यः सर्वगतोविभुः ॥ चित्तंशठमहंकारंविद्धिहार्दंबृहत्तमः ॥ ६४ ॥

अर्थ—आत्माकी संनिधिमात्रसे सत्ताको पाकर मन ऐसे स्फुरित होताहै जैसे दीपकी संनिधिमात्रसे भित्ति आदिका रूप स्फुरित होताहै ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! आकाश और पृथिवीके समान विभक्त तथा चित् और जडरूप आत्मा तथा चित्तका क्या संबंधहै ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन ! चपलगतिको प्रेरणा करनेवाली आत्माकी शक्तियोंसे आवृत्त यह चित्त मूर्खतासे देख पडताहै ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! आत्मा नित्यप्रकाशरूप, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है, और हृदयका महान् अहंकाररूप वंचक तुम चित्त और अहंकारको जानो ॥ ६४ ॥

आत्मासिवस्तुतस्त्वंहिसर्वज्ञोनमनोभृशम् ॥ दूरेकुरुमनोमोहंकिमेतेनाभिसंगतः ॥ ६५ ॥ पिशाचोपि मनोरामशून्यदेहगृहेस्थितः ॥ भावयत्येषदुष्टात्मामौनमुत्तमसंस्पृशन् ॥ ६६ ॥ भवप्रदमकल्याणंधैर्यसर्वस्वहारिणम् ॥ मनःपिशाचमुत्सृज्ययोसिसत्वंस्थिरोभव ॥ ६७ ॥ चित्तयक्षदृढाक्रांतंनशास्त्राणि नबांधवाः ॥ शक्नुवंतिपरित्रातुंगुरवोनचमानवम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम यथार्थमें सर्वव्यापी और सर्वज्ञ आत्मा हो, न कि चंचल मन, इस मनके मोहको दूर करो, क्यों इससे तुम मिलेहो ॥ ६५ ॥ हे उत्तम रामजी ! यह मनरूप पिशाच आत्माका स्पर्श न करता हुआभी, शून्य देहरूपगृहमें स्थित होके अपने स्पृष्ट (छुये हुये) आत्माकी भावना सदा करताहै ॥ ६६ ॥ संसारप्रद, अमंगलरूप, और धैर्य्यरूप सर्वस्व धनके अपहारक मनरूप पिशाचको त्यागकर जो तुम (चिदात्मा) हो सो स्थिर रहो ॥ ६७ ॥ चित्तरूपयक्षसे दृढतासे आक्रांत मनुष्यकी रक्षा करनेको न शास्त्र, न बंधु, और न गुरु समर्थ हैं ॥ ६८ ॥

संशांतचित्तवेतालंगुरुशास्त्रार्थबांधवाः ॥ शक्नुवंतिसमुद्धर्तुंस्वल्पपंकान्मृगंयथा ॥ ६९ ॥ अस्मिञ्जगच्छून्यपुरेसर्वमेवप्रदूषितम् ॥ देहगेहंप्रमत्तेनचित्तयक्षेणवल्गता ॥ ७० ॥ चित्तवेतालवलितासमस्तादेहखंडजा ॥ इयंजगदरण्यानीशून्याकस्यनभीतये ॥ ७१ ॥ जगन्नगर्यामस्यांतुशांतचित्तपिशाचकम्॥ देहगेहंकतिपयैःसेव्यतेसद्भिरेवयत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—और जिसका चित्तरूप वेताल शांत (शुद्ध) है उसका उद्धार गुरु, शास्त्र, और बंधु ऐसे करसकतेहैं जैसे थोडे चीचडमें फंसे हुये मृगके तुल्य वत्स (वछवा) का ॥ ६९ ॥ इस जगत्‌रूप शून्यनगरमें प्रमत्त और गर्जते हुये चित्तरूप यक्षने सब देहरूप गृहको दूषित किया ॥ ७० ॥ चित्तरूप वेतालसे आवृत, और देहरूप परिच्छिन्न-भागमें उत्पन्न यह शून्य जगत्‌रूप महाजंगल किसके भयके लिये नहीं है ॥ ७१ ॥ इस जगत्‌रूप नगरीमें शांत है चित्तरूप पिशाच जिसमें ऐसा देहरूप गृह गिने हुये सज्जनोंसे सेवितहै ॥ ७२ ॥

इहसंश्रूयतेयायादिक्सैवरघुनंदन ॥ प्रमत्तमोहवेतालैःपूर्णादेहश्मशानकैः ॥ ७३ ॥ अस्यांजगदरण्यान्यांमुह्यंतंमुग्धबालवत् ॥ स्वयमाराध्यधैर्यांशमात्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ७४ ॥ जगज्जरदरण्येस्मिन्भ्रमद्भूतमृगव्रजे ॥ धृतिंतृणरसैरामनागच्छमृगपोतवत् ॥ ७५ ॥ अस्मिन्महीतलारण्येचरंतिमृगपोतकाः ॥ त्वमज्ञानगजंभुक्त्वासैंहींवृत्तिमुपाश्रय ॥ ७६ ॥

अर्थ—इस ब्रह्मांडमे जो २ दिशा सुन पडती हैं, वे सब प्रमत्त मोहयुक्त वेताल जिनमें हैं ऐसे अज्ञानियोंके देहरूप स्मशानभूमियोंसे पूर्ण हैं ॥ ७३ ॥ इस जगत्‌रूप महाजंगलमें मूर्खबालकके समान मोहित होते हुये आत्माका आत्मासे धैर्य्य अंशका अवलंबन करके उद्धार करना चाहिये ॥ ७४ ॥ जिसमें प्राणियोंके समूह भ्रमण कररहे हैं ऐसे इस प्राचीन जगत्‌रूप जंगलमें तृणके तुल्य असार विषयके रसोंसे मृगके बालके (बच्चे) के सदृश तुम कृतार्थताबुद्धिको न धारण करो ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! भूमंडलरूप जंगलमें पशुके समान अन्य मूढजन यदि विषयरूप तृण चरते हैं तो चरने दो परंतु तुम अज्ञानरूप गजका मर्दन करके सिंहकी वृत्ति धारण करो ॥ ७६ ॥

अन्येनरमृगामुग्धाजंबूद्वीपेस्वजंगले ॥ विहरंतियथारामतथामाविहरानघ ॥ ७७ ॥ अत्यल्पकालाशिशिरेकर्दमालेपदायिनि ॥ नमंक्तव्यंबंधुरूपेमहिषेणेवपल्वले ॥ ७८ ॥ भोगाभोगाबहिःकार्याआर्यस्यानुसरेत्पदम् ॥ प्रविचार्यमहार्थस्वमेकमात्मानमाश्रयेत् ॥ ७९ ॥ अपवित्रस्यतुच्छस्यद्भंगस्यद्वराकृतेः॥ देहस्यार्थेनमंक्तव्यंचिताचंडीसुदारुणा ॥ ८० ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! अन्य मृगके समान मूर्खजन अपने जंबूद्वीपरूप जंगलमें विषयरूप तृणको चरते हुये जैसे विहार करते हैं ऐसे तुम न विहरो ॥ ७७ ॥ अति अल्पकालके शीतल (सुखद) कर्दम (पाप) का लेप देनेहारे वधुरूप अल्पजलाशयमें महिषके समान तुम न डूबो ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! विषयभोगरूप सर्पोंको अपने शरीररूप गृहसे निकालनाचाहिये, श्रेष्ठ महात्माके पद (मार्ग) का अनुसरण करनाचाहिये, तथा महावाक्योंके अर्थको विचारकर स्वयं अपने एक आत्माका आश्रय लेनाचाहिये ॥ ७९ ॥ अपवित्र, तुच्छ, दुर्भग, और दुराकृति इस देहके लिये आसक्तिरूप कीचडमें न फसनाचाहिये क्योंकि उसमें चितारूप कोपन राक्षसी है वह भक्षणकरलेगी ॥ ८० ॥

अन्येनरचितोदेहोयक्षेणान्येनसंश्रितः ॥ दुःखमन्यस्यभोक्तान्यश्चित्रेयंमौर्ख्यचक्रिका ॥ ८१ ॥ यथैकरूपघनताद्दषदोस्यात्मनस्तथा ॥ सत्तामात्रैकसामान्यादितरस्याप्यसंभवात् ॥ ८२ ॥ यथोपलस्य घनतामानसादितथात्मनः ॥ सत्तामात्रादभिन्नत्वादभावादस्यसंस्थितेः ॥ ८३ ॥ यथोपलस्योपलता घटस्यघटतायथा ॥ सत्तामात्रादभिन्नेवमानसादितथात्मनः ॥ ८४ ॥

अर्थ—कर्मसे तो यह देह रचितहै उससे भिन्न अहंकाररूप यक्षसे आश्रितहै, उससे अन्य मनको दुःख होताहै, और उससे भिन्न जीव सुखदुःख आदिका भोक्ताहै. अहो ! कैसा आश्चर्य्यरूप यह मूर्खताका चक्र है ॥ ८१ ॥ जैसे पाषाणकी शिलाकी एकरूप घनता है ऐसेही इस आत्माकी एकसत्तामात्रसे सामान्यता होनेसे अन्यका असंभव है इससे आत्मामें दुःखादि तथा उनके भोग शरीर आदिका अभावहै ॥८२॥ जैसे पाषाणकी कठिनता पाषाणसे भिन्न नहीं है ऐसेही समष्टि व्यष्टि मनसमूह तथा उसका कार्य्य स्थूलप्रपंच आत्मासे भिन्न नहीं है क्योंकि सत्तामात्रस्वभाव परमात्मासे अभिन्नसे इनकी पृथक्स्थितिका अभाव है ॥ ८३ ॥ जैसे पाषाणकी पाषाणता और घटकी घटता सत्तामात्रसे अभिन्न है ऐसेही आत्मासे समष्टि व्यष्टि मनसमूह अभिन्न है ॥ ८४ ॥

अत्रेमामपरांदृष्टिंमहामोहविनाशिनीम् ॥ शृणुयाकथितापूर्वंममकैलासकंदरे ॥ ८५ ॥ संसारदुःखशांत्यर्थंदेवेनार्द्धेंदुमौलिना ॥ अस्तींदुकरसंभारभासुरःपारगोदिवः ॥ ८६ ॥ कैलासोनामशैलेंद्रोगौरीरमणमंदिरम् ॥ तत्रास्तेभगवान्देवोहरश्चंद्रकलाधरः ॥ ८७ ॥ तंपूजयन्महादेवंतस्मिन्नेवगिरौपुरा ॥ कदाचिदवसंगंगातटेविरचिताश्रमः ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस विषयमें अज्ञानविनाशिनी अन्य (मानस शिवपूजा) रूप दृष्टिको सुनो जो कि पूर्वकालमें कैलासमंदिरमें ॥८५॥ संसारके दुःखके नाशके अर्थ साक्षात् शिवजीने कहाथा. चंद्रमाके किरणसमूहके सदृश भासमान; आकाशसे पारंगत ॥ ८६ ॥ पार्वतीजीके रमणका मन्दिर कैलासनाम पर्वत है वहांपर चन्द्रकलाधारी भगवान् महादेवजी हैं ॥ ८७ ॥ उसी महादेवकी पूजा करताहुआ उसी श्रेष्ठपर्वतपर कदाचित् गंगाजीके तटपर आश्रम बनाकर मैं निवास करताथा ॥ ८८ ॥

तपोर्थंतापसाचारेचिरायरचितस्थितिः ॥ सिद्धसंघातवलितःकृतशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ ८९ ॥ पुष्पार्थस्यूतपुटिकःपुस्तकव्यूहसंग्रही ॥ एवंगुणविशिष्टस्यकैलासवनकुंजके ॥ ९० ॥ तपःप्रचरतोराममममकालोत्यवर्तत ॥ अथैकदाकदाचित्तुबहुलस्याष्टमेदिने ॥ ९१ ॥ गतेश्रावणपक्षस्यरात्र्यग्रेक्षयमागते ॥ दिक्षुसंशांतरूपासुकाष्ठमौनस्थितास्विव ॥ ९२ ॥

अर्थ—तपकेलिये कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तपस्वियोंके आचारमें स्थिति रचेहुये सिद्धोंके समूहसे आवृत्त, शास्त्रार्थोंका संग्रह कियेहुये ॥ ८९ ॥ पुष्पोंके अर्थ टोकनी बनाये तथा पुस्तकोंका संग्रह कियेहुये वहांपर मैं निवास करताथा, उस कैलासके कुंजमें इसप्रकार गुणसहित ॥ ९० ॥ तप करतेहुये मेरा काल बीतताथा, इसके अनंतर एकसमय कदाचित् श्रावणमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको ॥ ९१ ॥ जब सायंकाल बीतगया. और हस्तआदिकी चेष्टासे कार्य्योंके अभावसे काष्ठके समान मौन तथा शांतरूप सब दिशाओंके होनेपर ॥ ९२ ॥

खड्गच्छेद्यांधकारेषुकुंजेषुगहनेषुच ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रयामार्धेप्रथमेगते ॥ ९३ ॥ समाधितनुतांनीत्वा स्थितोहंबाह्यमग्नदृक् ॥ अपश्यंकाननेतेजोझटित्येवसमुत्थितम् ॥ ९४ ॥ शुभ्राभ्रशतसंकाशंचंद्रबिंबगणोपमम् ॥ प्रकटीकृतदिक्कुंजंतदालोक्यमयास्मयात् ॥ ९५ ॥ अंतःप्रकाशशालिन्याबुद्धिदृष्ट्यावलोकितम् ॥ यावत्पश्यामितंसानुंप्राप्तश्चंद्रकलाधरः ॥ ९६ ॥

अर्थ—खड्गछेद्य (घनीभूत) अन्धकारयुक्त कुंजोंके गहन होनेपर और इसी अवसरमें रात्रिके प्रथमप्रहरके अर्द्धभागके बीतनेपर ॥ ९३ ॥ समाधिको न्यून करके मैं बाह्यदृष्टि होकर स्थितथा, इतनेहीमें उस बनमें शीघ्र

आविर्भूत तेजको मैंने देखा ॥ ९४ ॥ जो कि चन्द्रबिम्बके समान सैकडों शुभ्रमेघके तुल्य, और दिशाओंके कुंजोंको प्रकट करनेवाले उस तेजको विस्मयसे देखके ॥ ९५ ॥ अंतःकरणके प्रकाशसे शोभित बुद्धिदृष्टिसे मैंने देखा इतनेहीमें क्या देखताहुं कि चन्द्रकलाधारी भगवान् महादेवजी उस शिखरपर प्राप्त हैं ॥ ९६ ॥

गौरीकरार्पितकरोनंदिप्रोत्सारिताग्रगः ॥ शिष्यान्संबोध्यतत्रस्थान्गृहीत्वार्घ्यंसुसंयतः ॥ ९७ ॥ अगमंसुमनास्तस्यदृष्टिपूतमहंपुरः ॥ तत्रपुष्पांजलिंदत्वादूरादेवत्रिलोचनः ॥ ९८ ॥ दत्तार्घ्येणमयादेवः संप्रणम्याभिवंदितः ॥ ततश्चंद्रप्रभासख्याऋज्व्याशीतलयातया ॥ ९९ ॥ दृशासर्वार्तिहारिण्याचिरमस्म्यास्पदीकृतः ॥ पुष्पलानूपविष्टायतस्मैत्रैलोक्यसाक्षिणे ॥ १०० ॥

अर्थ—वे भगवान् श्रीपार्वतीजीका हस्त ग्रहण किये तथा अग्रभागमें नन्दीश्वरसंयुक्त थे, उन भगवान्को देखकर मैंने अपने शिष्योंकरके अर्घ्य ग्रहण करके सावधान हुआ ॥९७॥ और प्रसन्न होके भगवान्की दृष्टिसे पवित्र ऐसे उनके पुरोभागमे मैं उसके सन्मुख प्राप्त हुआ और पुष्पांजलि देकर दूरसेही त्रिलोचन महादेवजी ॥ ९८ ॥ अर्घ्यपाद्य देकर प्रणामपूर्वक मुझसे अभिवादितहुये उसके पश्चात् चन्द्रमाकी प्रभाके समान कोमल और शीतल ॥९९॥ तथा सर्वदुःखनिवारिणी उस भगवान्की दृष्टिका स्थान हुआ अर्थात् देखागया, अनन्तर पुष्पके शिखरपर स्थित उस त्रिलोकसाक्षी भगवान्को ॥ १०० ॥

अर्घ्यंपुष्पंतथापाद्यमभ्युपेत्यार्पितंमया ॥ मंदारपुष्पांजलयोविकीर्णाबहवःपुरः ॥ १०१ ॥ नानाविधैर्नमस्कारैःस्तोत्रैश्चाभ्यर्चितःशिवः ॥ ततोभगवतीगौरितादृश्यैवसपर्यया ॥ १०२ ॥ संपूजितासखीयुक्तागणमंडलिकातथा ॥ पूजांतेपूर्णशीतांशुरश्मिशीतलयागिरा ॥ १०३ ॥ तत्रोपविष्टंप्रोवाचमामर्द्धेंदुकलाधरः ॥ ब्रह्मन्प्रशमशालिन्यःप्राप्तविश्रांतयःपरे ॥ १०४ ॥

अर्थ—अर्घ्यपाद्य और पुष्प निकट जाके मैंने समर्पण किया, और अनेक पुष्पांजलि भगवान्के सन्मुख मैंने बिखेरी ॥ १०१ ॥ और नानाप्रकारके स्तोत्र तथा नमस्कारोंसे शिवभगवान् मुझसे पूजितहुये, और उसीप्रकारकी पूजाकी सामग्रीसे भगवती गौरी ॥ १०२ ॥ अपनी सखियोंसे युक्त तथा गणके मण्डलमें स्थित पूजित हुई, और पूजाके अन्तमें पूर्णचन्द्रमाके किरणके समान शीतलवाणीसे ॥१०३॥ अर्द्धचन्द्रकलाधारी भगवान् महादेवजी उनकी आज्ञासे उस शिखरपर बैठेहुये मुझसे बोले कि–हे ब्रह्मन्! शमतासे शोभित, परमतत्वमें विश्राम पानेवाली ॥ १०४ ॥

कच्चित्कल्याणकारिण्यःसंविदस्तेस्थिताःपदे ॥ कच्चित्तपस्तेनिर्विघ्नंकल्याणमनुवर्तते ॥ ५ ॥ कच्चित्प्राप्यमनुप्राप्तंकच्चिच्छाम्यंतिभीतयः ॥ एवंवादिनिदेवेशेसर्वलोकैककारिणि ॥ ६ ॥ गिरानुनयशालिन्यामयोक्तंरघुनंदन ॥ त्र्यक्षानुस्मृतिकल्याणवतामिहमहेश्वर ॥ ७ ॥ नकिंचिदपिदुष्प्रापंनचकाश्चनभीतयः ॥ त्वदनुस्मरणानंदपरिघूर्णितचेतसाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा कल्याणकारिणी आपकी चित्तवृत्ति तो परब्रह्ममें स्थित हैं ? और क्या तुमारा तप निर्विघ्न कल्याणकी ओर चलताहै ॥ १०५ ॥ क्या तुमने प्राप्यवस्तुको प्राप्त किया, क्या तुमारी भीति (भय) शांतहैं ? जब सब देवोंके स्वामी, तथा सब लोकोंके एक (प्रधान) कारण शिवजी ऐसा कह रहेथे ॥ १०६ ॥ तब हे रघुनन्दन ! शमतासे शोभितवाणीसे मैंने कहा कि–हे महेश्वर ! त्रिनेत्र (आप) के स्मरणसे कल्याणयुक्त प्राणियोंको ॥ १०७ ॥ ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो दुष्प्राप है, और न उनको कोई भय हैं. हे प्रभो ! आपके अनुस्मरणसे आनन्दसे घूर्णित (मत्त) चित्तवाले प्राणियोंको ॥ १०८ ॥

नतेसंतिजगत्कोशेप्रणमंतिनयेपुनः ॥ तेदेशास्तेजनपदास्तादिशस्तेचपर्वताः ॥ ९ ॥ त्वदनुस्मरणैकांतधियोयत्रस्थिताजनाः ॥ फलंभूतस्यपुण्यस्यवर्तमानस्यचेतनम् ॥ ११० ॥ तनोतिचैष्यतोबीजंत्वदनुस्मरणंप्रभो ॥ ज्ञानामृतैककलशोधृतिज्योत्स्नानिशाकरः ॥ १११ ॥ अपवर्गपुरद्वारंत्वदनुस्मरणंप्रभो ॥ त्वदनुस्मरणोदारचिंतामणिमताप्रभा ॥ ११२ ॥

अर्थ—इस जगत्के कोशमें ऐसे कोई नहीं हैं जो प्रणाम न करें. और हे भगवन् ! वेही देश धन्य हैं, वेही जनपद (राज्य) धन्य हैं, तथा वेही दिशा और पर्वत धन्य हैं ॥ १०९ ॥ जहांपर आपके स्मरणसे एकाग्रचित्तवाले प्राणीजन निवास करतेहैं. तथा हे प्रभो ! आपका अनुस्मरण पूर्वकालके संचित पुण्यरूपवृक्षके फलको अनंतकोटि गुण विस्तार करताहै, और इस देहसे कियेहुये वर्तमान पुण्य वृक्षको अमृतके सिंचनसे बढाताहै ॥ ११० ॥ और आगामी पुण्यरूप वृक्षके बीजकी वृद्धिका विस्तार करताहै, तथा ज्ञानरूप अमृतका पूर्णकलश, और धैर्य्य (धीरता)

रूप चंद्रिकाका चंद्र है ॥ १११ ॥ तथा हे प्रभो ! आपका स्मरण स्वर्गरूप नगरका खुलाहुआ द्वार है. और हे प्रभो ! आपके स्मरणरूप मतान चिंतामणि धारण करके मैंने ॥ ११२ ॥

सर्वासामापदांमूर्ध्निदत्तंभूतपतेपदम् ॥ इत्युक्त्वासुप्रसन्नंतंभगवंतंमहेश्वरम् ॥ १३ ॥ अवोचंप्रणतो भूत्वाश्वद्रामतदिदंशृणु ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनपूर्णामेसकलादिशः ॥ १४ ॥ किंतुपृच्छामिदेवेशसंदेहे तत्रनिर्णयम् ॥ ब्रूहिप्रसन्नयाबुद्ध्यात्यक्तोद्वेगमनामयम् ॥ १५ ॥ सर्वपापक्षयकरंसर्वकल्याणवर्धनम् ॥ देवार्चनविधानंतत्कीदृशंभवतिप्रभो ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भूतपते ! संपूर्ण आपत्तियोंके शिरपर चरण स्थापित करदियाहै, इतना कहके अतिप्रसन्न भगवान् महेश्वरसे ॥ ११३ ॥ अति नम्र होके जो कुछ मैंने कहा वह हे राममी ! तुम श्रवण करो. मैंने कहा कि हे भगवन् ! आपकी कृपासे संपूर्णदिशा मेरेलिये पूर्ण हैं ॥ ११४ ॥ किंतु हे भगवन् ! हे देवेश संदेह होनेसे निर्णय आपसे पूंछताहुं सो प्रसन्नबुद्धिसे वह देवार्चन कहिये जिसमें चित्तके विक्षेपके कारण नहीं और विघ्न विकार आदिसे रहित हो ॥ ११५ ॥ हे प्रभो ! सब पापोंका नाशक तथा सब कल्याणोंका वर्द्धक देवार्चन कौनसा है सो कहिये ॥ ११६ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ॥ शृणुब्रह्मविदांश्रेष्ठदेवार्चनमनुत्तमम् ॥ वदामिमुच्यतेयेनकृतेनसकृदेवहि ॥ १७ ॥ कच्चिद्वेत्सिमहाबाहोदेवःकःस्यादितिद्विज ॥ नदेवःपुंडरीकाक्षोनचदेवस्त्रिलोचनः ॥ १८ ॥ नदेवःकमलोद्भूतोनदेवस्त्रिदशेश्वरः ॥ नदेवःपवनोनार्कोनानलोननिशाकरः ॥ १९ ॥ नब्राह्मणोनावनिपोनाहंन त्वंद्विजोत्तम ॥ नदेवोदेहरूपोहिनदेवश्चित्तरूपधृक् ॥ १२० ॥

अर्थ—ईश्वरजी बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सर्वोत्तम देवार्चन सुनिये मैं कहताहुं, जिसके एकवार करनेसेभी प्राणी मुक्त होजाताहै ॥११७॥ हे महाबाहो ब्राह्मण, क्या तुम यह जानते हो कि देव (जिसका अर्चन किया जाय) कौन है क्यों कि कमलनेत्र विष्णु देव नहीं है, त्रिनेत्र महादेवजी देव नहीं है ॥ ११८ ॥ कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी देव नहीं है, देवोंके ईश इन्द्र देव नहीं है, पवन, सूर्य्य, चन्द्र वा अग्नि देव नहीं हैं ॥ ११९ ॥ ब्राह्मण वा क्षत्रिय देव नहीं है, हे द्विजोत्तम, हम देव नहीं, तुम देव नहीं हो, क्योंकि देहरूपधारी वा चित्तरूपधारी यथार्थ देव नहीं है॥१२०

नदेवःकमलारूपीनापिदेवोभवेन्मतिः ॥ अकृत्रिममनाद्यंतंदेवनंदेवउच्यते ॥ १२१ ॥ आकारादिपरिच्छिन्नेमितेवस्तुनितत्कुतः ॥ अकृत्रिममनाद्यंतंदेवनंचिच्छिवंविदुः ॥ १२२ ॥ तदेवदेवशब्देनकथ्यते तत्प्रपूजयेत् ॥ तदेवास्तियतःसर्वसत्तासत्तात्मरूपधृक् ॥ १२३ ॥ अज्ञातशिवतत्वानामाकाराद्यर्चनं कृतम् ॥ योजनाध्वन्यशक्तस्यक्रोशाध्वापरिकल्प्यते ॥ १२४ ॥

अर्थ—आध्यात्मिक शरीरकी शोभा अथवा लक्ष्मी देव नहीं, और बुद्धि तथा इन्द्रियां देव नहीं है किंतु निरतिशय आनंद तथा चित्प्रकाशरूप देव जिसमें है वही अकृत्रिम और अनादि अनंत देव कहा जाताहै ॥ १२१ ॥ आकारादि (देश, काल, वस्तु) से परिच्छिन्न परिमित वस्तुमें देवत्व कहां, किंतु अकृत्रिम अनादि अनंत चित् शिवको तत्वज्ञानीलोग देव कहतेहैं ॥ १२२ ॥ हे वसिष्ठजी उसी चित्‌रूप निरतिशय अकृत्रिम आनन्दको देवशब्दसे कहते हैं उसीकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि सब जगत् जीव तथा संसार उसी चित्तकी सत्तासे अपने २ स्वरूपको धारण करतेहैं न कि स्वतः इसलिये वहां सबका प्रकाशक देवहै न कि अन्य ॥ १२३ ॥ और जिसने चित्‌रूप शिव तत्वको नहीं जानाहै उसके लिये विष्णु आदिके आकारका पूजनविधान किया गयाहै, क्योंकि जो योजन (४कोश) नहीं चलसकता उसके लिये १ कोश मार्गका विधान किया जाताहै ॥ १२४ ॥

इयत्तादिपरिच्छिन्नंरुद्रादेःप्राप्यतेफलम् ॥ अकृत्रिममनाद्यंतंफलमानंदआत्मनः ॥ १२५ ॥ अकृत्रिम फलंत्यक्त्वायःकृत्रिमफलंव्रजेत् ॥ त्यक्त्वासमंदारवनंकारंजंयातिकाननम् ॥ १२६ ॥ बोधःसाम्यंशम इतिपुष्पाण्यग्र्याणितत्रच ॥ शिवंचिन्मात्रममलंपूज्यंपूज्याविदोविदुः ॥ १२७ ॥ शमबोधादिभिःपुष्पैर्दे वआत्मायदर्च्यते ॥ तत्तुदेवार्चनंविद्धिनाकारार्चनमर्चनम् ॥ १२८ ॥

अर्थ—क्योंकि रुद्र आदि मूर्तिकी पूजासे इयत्ता (इतना) से परिच्छिन्न फल प्राप्त होताहै और चित्‌रूप आत्माके साक्षात्कारपर्य्यंत पूजनेसे अकृत्रिम, अनादि, अनंत आनंदकी प्राप्तिरूप फल मिलताहै ॥ १२५ ॥ और जो जन अकृत्रिमफलको त्यागकर कृत्रिमफलकी और जाताहै वह मानो कल्पवृक्षके बनको त्यागकर कंटकोंके बनमें जाताहै ॥ १२६ ॥ सो बोध (आत्माका ज्ञान) सर्वत्र समता, और शांति यह उस पूजामें उत्तम पुष्प हैं, और चिन्मात्र निर्मल शिवको पूज्यवेत्तालोग पूज्य कहते हैं ॥ १२७ ॥ शम तथा ज्ञान आदि पुष्पोंसे जो आत्मा पूजितहो उसीको तुम देवार्चन जानो न कि आकारके पूजनको ॥ १२८ ॥

आत्मसंवित्तिरूपंतुत्यक्त्वादेवार्चनंजनाः ॥ कृत्रिमार्चासुयेसक्ताश्चिरंक्लेशंभजंतिते ॥ १२९ ॥ ज्ञातज्ञे याहियेसंतोबालक्रीडोपमंचते ॥ आत्मध्यानादृतेब्रह्मन्कुर्वतोदेवपूजनम् ॥ १३० ॥ आत्मैवदेवोभगवाञ्छिवःपरमकारणम् ॥ ज्ञानार्चनेनाविरतंपूजनीयःससर्वदा ॥ १३१ ॥ त्वमेतच्चेतनाकाशमात्मानंजीवमव्ययम् ॥ स्वभावंविद्धिनत्वन्यःपूज्यःपूजात्मपूजनम् ॥ १३२ ॥

अर्थ—आत्माके ज्ञानरूप देवार्चनको त्यागकर कृत्रिमपूजामें जो आसक्तहैं वे चिरकालतक क्लेशके भागी होते हैं ॥ १२९ ॥ और जो ज्ञातज्ञेय (ब्रह्म) वेत्ता समाधिसे ऊठके साकार शिवादिकी पूजा करते हैं वे लोक संग्रहके लिये बालककी क्रीडाके सदृश करते हैं, क्योंकि हे ब्रह्मन्! अध्यात्मज्ञानके सिवाय अन्य देव पूजन कहां है ॥ १३० ॥ आत्माही भगवान् देव शिव और परमकारण है वह ज्ञानपूजासे सदा पूजनीय है ॥ १३१ ॥ हे रामजी! तुम जीवको अकृत्रिम, अविनाशी, चिदाकाश ब्रह्म जानो, और वही पूज्यहै न कि अन्य अनात्मा, क्योंकि ज्ञानरूप आत्माका पूजन मुख्य पूजन है ॥ १३२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेतनाकाशमात्रात्मयथाजगदिदंप्रभो॥ यथातच्चेतनस्यैवजीवादित्वंतदुच्यताम्॥ ३३ श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ चिद्व्योमैवकिलास्तीहपारावारविवर्जितम् ॥ सर्वत्रासंभवच्चेत्यंयत्कल्पांतेवशिष्यते ॥ ३४ ॥ यद्यत्स्वयंप्रकचतितस्यस्वकचनस्यतु ॥ स्वयंयत्स्पंदितंनामतेनेदंजगदित्यलम् ॥ ३५ ॥ इत्येवंस्वप्नपुरवज्जगद्भातिचिदात्मकम् ॥ एवंचिव्द्योममात्रात्मजगदच्छंनभित्तिमत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे प्रभो! जिसप्रकार यह जगत् चिदाकाशमात्र है और जिसप्रकार चेतनकोही जीवादिताहै वह कहिये ॥ १३३ ॥ श्रीईश्वर बोले—हे वसिष्ठजी! सर्वत्र विषयसे रहित, पारावारवर्जित, चिदाकाशही सब कुछहै, जोकि कल्पके अन्तमेंभी शेष रहताहै ॥ १३४ ॥ जो सूर्य्य, चन्द्र, प्रदीप, मन और इन्द्रिय आदि स्वयं प्रकाशमय होताहै उस निज कंचन (प्रकाश) का अपने बिम्बमें असन्मानसे स्वयं जो बिंबसे बाहर प्रभाके आकारसे जो स्पन्दन प्रसिद्ध है वही नीलपीतादि तथा उनके विषय जगत्‌रूपसे अतिप्रसिद्ध है ॥ १३५ ॥ उक्तरीतिसे चिदात्मक यह जगत् स्वप्ननगरके तुल्य भान होताहै, मेरी कथितरीतिसे यथार्थ विचार करनेपर तो यह जगत् आकारवान् नहीं है किन्तु अमूर्त निर्मल चिदाकाशही है ॥ १३६ ॥

अत्यंतासंभवाच्चेत्यंदृश्यंचिव्द्योममात्रकम् ॥ चित्त्वात्कचतिसर्गादौयत्तज्जगदितिस्मृतम् ॥ ३७ ॥ तस्मात्स्वप्नपुराकारंयदिदंभासतेजगत् ॥ तत्रचिव्द्योममात्रात्मन्यन्यतानामकाकुतः ॥ ३८ ॥ चिन्मात्रमेवगिरयश्चिन्मात्रंजगदंबरम् ॥ चिन्मात्रमात्माजीवश्वचिन्मात्रंभूतसंततिः ॥ ३९ ॥ चिव्द्योममात्रादितरत्सर्गादौसर्ववेदने ॥ भिन्नस्वर्गेपुरेवापिकिंसंभवतिकथ्यताम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अपरिणामी, अद्वैत, चित्तरूप तथा अत्यन्त असम्भव होनेसे और सर्वव्यापीस्वभाव चिदात्मासे भिन्न अन्यथा स्वभाव जो यह विषयसमूह सृष्टिके आदिमें स्फुरताहै वह दृश्य जगत्‌नामसे प्रसिद्ध है वास्तविकमें वह चिदाकाशरूपही है ॥ १३७ ॥ इसकारण जो कुछ यह जगत् भासता है वह स्वप्ननगरके समान है क्योंकि उस चिदाकाशमात्रमें भिन्नता कहां? ॥ १३८ ॥ ये सब मेरुआदिपर्वत चिन्मात्रही हैं, चिन्मात्रही यह आकाशादि जगत् है, चिन्मात्रही ब्रह्म तथा जीव है, और चिन्मात्रही सब प्राणीसमूह है ॥ १३९ ॥ चिदाकाशसे भिन्न सबके अनुभवके अनुसार स्वर्गमें, इस भूमंडलमें, अथवा पातालमें किस पदार्थका सम्भव है सो कहिये, क्योंकि जडकी सत्तास्फूर्ति स्वतः माननेसे जडताका व्याघात है. सत्ता न माननेसे मिथ्या है, और असंगाचित्‌के साथ सम्बन्धभी नहीं है ॥ १४० ॥

आकाशंपरमाकाशंब्रह्माकाशंजगच्चितिः ॥ इतिपर्यायनामानितत्रपादपवृक्षवत् ॥ ४१ ॥ एवंद्वैस्वप्नसंकल्पमायाभिःस्वनुभूयते ॥ तदाकिलचिदाकाशमेवभातिजगत्तया ॥ ४२ ॥ यथैतत्संविदाकाशंस्वप्नेभातिजगद्वपुः ॥ तथेदंजाग्रदाख्येपिस्वप्नेभातितदेवनः ॥ ४३ ॥ यथास्वप्नपुरेचित्त्वंवर्जयित्वेतरत्कचित् ॥ नकिंचित्संभवत्येवंजाग्रत्येवंमहाचितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—आकाश, परमाकाश, ब्रह्माकाश, जगत्‌चित् और जीव इत्यादि पादप, वृक्ष और तरुआदिके समान पर्य्यायनाम हैं इससे ददाति, यजति, और जुहोति, इत्यादि शब्दभेदसे कर्मके भेदके तुल्य आकाश, जीव, ब्रह्म, इन शब्दोंके भेदसे जीव, ब्रह्म, जगत्‌आदि सिद्ध है यहभी कथन परास्तहै ॥ १४१ ॥ इस रीतिसे जब स्वप्न माया आदिमें द्वैतका भान होताहै तब तत्वदृष्टिसे चिदाकाशहि जगत्‌रूपसे भान होताहै ॥ १४२ ॥ जैसे यह चिदाकाशही स्वप्नमें जगदाकार भासताहै ऐसेही जाग्रत्‌नामसे प्रसिद्ध स्वप्नमें हमलोगोंको वही चिदाकाश भासताहै ॥ १४३ ॥

जैसे स्वप्ननगरमें चिदाकाशके सिवाय कहीं किसीकाभी सम्भव नहीं है ऐसेही जाग्रत्मेंभी महाचित् (ब्रह्म) से भिन्न अन्यका सम्भव नहीं है ॥ १४४ ॥

यतोनसंभवत्यन्यच्चेत्यंकिंचित्ततोखिलम् ॥ चित्तंसंचेत्यमप्येतदचेत्यंसज्जगत्स्थितम् ॥ ४५ ॥ परमाकाशकलनंत्रिजगत्स्वयमुत्थितम् ॥ स्वप्नवद्दिद्धिचिद्व्योम्निनत्वेतद्वैतवत्स्थितम् ॥ ४६ ॥ यथाचिद्व्योममात्रात्मस्वप्नेघटपटादिकम् ॥ सर्गादावेवसर्गोयंयथाचिद्व्योममात्रकम् ॥ ४७ ॥ शुद्धसंवित्तिमात्रत्वाद्दतेन्यत्स्वप्नपत्तने ॥ यथानविद्यतेकिंचित्तथास्मिन्भुवनत्रये ॥ ४८ ॥

अर्थ—जबकी विषयका किंचित्भी संबंध नहीं है तब सब चित् और विषयसमूह यह जगत् विषयशून्य सच्चिन्मात्रही स्थितहै ॥१४५॥ मैं एक हुं अनेक होजाऊं ऐसी ब्रह्मकी स्फुरणमात्रसे यह तीनों लोक स्वयं आविर्भूत है ॥ १४६ ॥ जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही स्वप्नमें घटपट आदि रूपी होताहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशही सृष्टिरूप होताहै ॥ १४७ ॥ जैसे स्वप्ननगर शुद्धचिदाकाशके सिवाय और कुछ नहीं है ऐसेही इन तीनोंलोकमें चिदाकाशमात्रसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ १४८ ॥

याःकाश्चनदृशोयेयेभावाभावास्त्रिकालगाः ॥ सदेशकालचित्तास्तत्सर्वंचिद्व्योममात्रकम् ॥ ४९ ॥ स एषदेवःकथितोयःपरःपरमार्थतः ॥ यस्त्वंसोहमशेषंवाजगदेवचयोखिलः ॥ १५० ॥ सर्वस्यवस्तुजातस्यजगतोन्यस्यतेमम ॥ देहोहिचेतनाकाशंपरमात्मैवनेतरत् ॥ ५१ ॥ संकल्पनेस्वप्नपुरेशरीरंचिद्व्योमतोन्यन्नयथास्तिकिंचित् ॥ तथेहसर्गेप्रथमैकसर्गान्मुनेप्रभृत्यस्तिनरूपमन्यत् ॥ १५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू०जगतःपरमात्ममयत्ववर्णनंनाम एकोनत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—जो २ दृष्टि हैं और देशकालचित्सहित तीनोंकालमें स्थित जो पदार्थ हैं वह सब चिदाकाशमात्र है ॥ १४९ ॥ वही देव पदार्थमें ज्ञानसे पूज्य मैंने तुमारे प्रथम प्रश्नका उत्तर रूपसे कहा, जो देव तुम. वह मैं और संपूर्ण जगत्रूप है ॥ १५० ॥ सब वस्तुमात्रका, जगत्का, अन्यका, तुमारा और मेरा यह देह चिदाकाश परमात्मारूप है न कि अन्य ॥ १५१ ॥ हे मुने! संकल्पमें, स्वप्नके नगरमें चिदाकाशसे भिन्न अन्य शरीर जैसे कुछ नहीं है ऐसीही प्रथम ब्रह्माकी सृष्टिसे लेके इस सृष्टिपर्य्यन्त चिदाकाशसे भिन्न अन्य कुछ रूप नहीं है ॥ १५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे जगतःपरमात्ममयत्ववर्णनंनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस तीस (३०) के सर्गमें चित्की सर्वरूपता, सर्वभोक्तभावसे स्थिति है और वह चित् जैसे जीवदशाको प्राप्त हुई यह वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ एवंसर्वमिदंविश्वंपरमात्मैवकेवलम् ॥ ब्रह्मैवपरमाकाशमेषदेवःपरःस्मृतः ॥ १ ॥ तदेतत्पूजनंश्रेयस्तस्मात्सर्वमवाप्यते ॥ तदेवसर्गभूःसर्वमिदंतस्मिन्व्यवस्थितम् ॥ २ ॥ अकृत्रिममनाद्यंतमद्वितीयमखंडितम् ॥ अबहिःसाधनासाध्यंसुखंतस्मादवाप्यते ॥ ३ ॥ प्रबुद्धस्त्वंमुनिश्रेष्ठतेनेदंतवकथ्यते ॥ नातिदेवार्चनेयोग्यःपुष्पधूपचयोमहान् ॥ ४ ॥

अर्थ—ईश्वर बोले–हे मुने! इसप्रकार यह सब विश्व केवल परमात्मरूपही है, और यही ब्रह्म परमाकाश और सबसे परे देव कहागयाहै ॥ १ ॥ इसलिये इसी देवका पूजन कल्याणकारकहै. उसीसे सब कुछ प्राप्त होताहै वह सब जगत्की सृष्टिके आरोपका अधिष्ठानहै, वही सब कुछ और उसीमें सब स्थित है ॥ २ ॥ अकृत्रिम, अनादि, अनंत, अद्वितीय, अखंडित, तथा बाह्यसाधनसे असाध्यहै इसीसे (आत्मा होनेसे) सुखपूर्वक प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ हे मुने! तुम ज्ञानी हो इसीलिये तुमसे यह कहताहुं कि सबसे परे आत्मदेवकी पूजाके योग्य महान् पुष्प धूप आदिका समूह नहीं है ॥ ४ ॥

अव्युत्पन्नधियोयेहिबालपेलवचेतसः ॥ कृत्रिमार्चामयंतेषांदेवार्चनमुदाहृतम् ॥ ५ ॥ शमबोधाद्यभावेहिपुष्पाद्यैर्वार्चयंतिहि ॥ मिथ्यैवकल्पितैरेवमाकारेकल्पितात्मके ॥ ६ ॥ स्वसंकल्पकृतैःकृत्वाक्रमैर

र्चनमादृताः ॥ बालाःसंतोषमायांतिपुष्पधूपलवार्चनैः ॥ ७ ॥ स्वसंकल्पकृतैरर्थैःकृत्वादेवार्चनंमुधा॥ यतःकुतश्चिन्मिथ्यात्मफलमात्रंनयंतिते ॥ ८ ॥

अर्थ—जो कि अपरिपक्वबुद्धि और आत्मज्ञानके अभावसे कोमलचित्त हैं उन्हीकेलिये कृत्रिम प्रतिमापूजाका विधान कियागयाहै ॥ ५ ॥ शम बोध आदिके अभावमें मिथ्याकल्पित पुष्प आदिसे मिथ्याकल्पित आकारकी पूजा अज्ञानीलोग करतेहैं ॥ ६ ॥ अपने संकल्पसे कल्पित पुष्प धूप दीपादिके लेशका अर्चन जिनमें है ऐसे कर्मोंसे प्रतिमा पूजनेसे बालकजनही संतोषको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ अपने संकल्पसे रचित पदार्थोंसे मिथ्याही देवार्चन करके जिस किसी स्थानसे स्वप्नके तुल्य मिथ्या विमान अप्सरा आदि साधनसंपन्न स्वर्ग आदि फल प्राप्त करतेहैं ॥८॥

पुष्पधूपार्चनंब्रह्मन्कल्पितंबालबुद्धिषु ॥ यत्स्याद्भवादृशांयोग्यमर्चनंतद्वदाम्यहम् ॥ ९ ॥ अस्मदादिस्त्वसौकश्चिद्देवोमतिमतांवर ॥ देवस्त्रिभुवनाधारःपरमात्मैवनेतरत् ॥ १० ॥ शिवस्सर्वपदातीतःसर्वसंकल्पनातिगः ॥ सर्वसंकल्पवलितोनसर्वोनचसर्वकः ॥ ११ ॥ दिक्कालाद्यनवछिन्नःसर्वारंभप्रकाशकृत् ॥ चिन्मात्रमूर्तिरमलोदेवइत्युच्यतेमुने ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! पुष्प धूप आदिकी पूजा बालबुद्धियोंकेलिये कल्पितहै और जो आपलोगोंके योग्य पूजन है सो मैं कहताहुं ॥९॥ और हमलोग जिसकेकारण हैं ऐसा हमारे प्रपंचके अंतर्गत नेत्रआदिसे दृश्यमूर्ति जो देव है वह तो अनिर्वचनीय और मायामयहै, और त्रिभुवनका आधार चिन्मात्र परमार्थ देव तो परमात्माही है न कि अन्य ॥ १०॥ वह देव ब्रह्माविष्णु तथा रुद्रआदि देवोंसे परे, शिवरूप, और सब मनकी वृत्तियोंसे परे हैं, और जो सबविषयोंके भोग तथा संकल्पोंसे वेष्टित ब्रह्मा, विष्णु वा रुद्ररूप है वह साधनसेभी सर्वरूप नहीं है और फलसेभी उससे सर्व सुख नहीं है ॥ ११ ॥ हे मुने ! देश, काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित सब आरंभोंका प्रकाशक चिन्मात्रमूर्ति, और वही आत्मा देव कहलाताहै ॥ १२ ॥

संवित्सर्वकलातीतासर्वभावांतरस्थिता ॥ सर्वसत्ताप्रदादेवीसर्वसत्तापहारिणी ॥ १३ ॥ ब्रह्मब्रह्मन्सदसतोर्मध्यंतद्देवउच्यते ॥ परमात्मपराभिख्यंतत्सदोमित्युदाहृतम् ॥ १४ ॥ महासत्तास्वभावेनसर्वत्रसमतांगतम् ॥ महाचिदितिसंप्रोक्तंपरमार्थइतिश्रुतम् ॥१५॥ स्थितंसर्वत्रसर्वतुलतास्वंतर्यथारसः ॥ सत्तासामान्यरूपेणमहासत्तात्मनापिच ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मुने ! सब कल्पनाओंसे परे, सब पदार्थोंके मध्यमें स्थित, सबको सत्ता देनेवाली, और कल्पित पदार्थोंकी सत्ताको हरनेवाली संवित् (चित्रूप) जो देवी है वही देव है ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! भाव अभाव, वर्तमान तथा अन्यकाल कार्य कारण, तथा व्यावहारिक अथवा प्रातिभासिकका आंतरिक साक्षी, चिन्मात्र होनेसे वा सबका अधिष्ठान होनेसे जो मध्य है वही ब्रह्म और देवहै, और वही सूर्य्य, चंद्र, अग्नि आदि प्रकाशमय पदार्थोंसे उत्कृष्ट आत्माही सबके प्रकाश करनेमें समर्थ होनेसे वेदसे ओम् इस पदसे कहागयाहै ॥ १४ ॥ और महासत्ताके स्वभावसे सर्वत्र वह समताको प्राप्तहै इसलिये महाचित् कहागयाहै, और वही देव परमार्थनामसेभी श्रुतहै ॥ १५ ॥ सब व्यवहारोंमें सत्तासामान्यरूपसे वा महासत्तारूपसे जो सर्वरूप सर्वत्र ऐसे स्थितहै जैसे लताओंमें रस ॥ १६ ॥

यच्चित्तत्त्वमरुंधत्यायच्चित्तत्त्वंतवानघ ॥ यच्चित्तत्त्वंचपार्वत्यायच्चित्तत्त्वंगणेषुच ॥ १७ ॥ चित्तत्त्वंयन्ममेदंचचित्तत्त्वंयज्जगत्त्रये ॥ तद्देवइतितत्त्वज्ञाविदुरुत्तमबुद्धयः ॥ १८ ॥ पादपाण्यादिमानन्योयोवादेवःप्रकल्प्यते ॥ संविन्मात्रादृतेब्रह्मन्किंसारःकिलकथ्यताम् ॥ १९ ॥ चिन्मात्रमेवसंसारसारःसकलसारताम् ॥ गतःसदेवःसर्वोहंतस्मात्सर्वमवाप्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और हे पापरहित मुने ! जो अरुंधती (तुमारी पत्नी) का चिदात्मा है, जो तुमारा चिदात्मा है, जो पार्वतीका चिदात्मा है, जो गणोंका चिदात्मा है ॥१७॥ और जो मेरा चिदात्माहै, तथा जो यह तीनों लोकका चित्तत्व (चिदात्मा) है उसीको उत्तमबुद्धिवाले तत्वज्ञानी देव कहतेहैं ॥ १८ ॥ और हे ब्रह्मन् ! हस्तपादआदि शरीरधारी जो २ देव कहलाताहै उसमें चेतनके शिवाय और क्या सार है सो आप कहिये ॥१९॥ चिन्मात्रही इस संसारमें सारहै इसलिये सब सारताको वह देव प्राप्तहै, और वह अपरिच्छिन्न देव मैं हुं क्योंकि उसीसे सब कुछ प्राप्त होताहै ॥२०॥

नसदूरेस्थितोब्रह्मन्नदुष्प्रापःसकस्यचित् ॥ संस्थितःससदादेहेसर्वत्रैवचखेतथा ॥ २१ ॥ सकरोति सचाश्नातिसबिभर्तिप्रयातिच ॥ सनिःश्वसितिसंवेत्तिसांगान्यंगानिवेत्तिच ॥ २२ ॥ सोस्यांविचित्रचेष्टायांप्रकाशिन्यांचतद्दशात् ॥ तत्स्वरूपनिबद्धायांपुर्यामास्तेमुनीश्वर ॥ २३ ॥ शरीरावसथायांचचलायांतत्प्रसादतः ॥ सोस्यांगहनकोशायांहृद्गुहायांगुहेश्वरः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! वह देव दूर नहीं स्थित है और न वह किसीको दुष्प्राप है, किन्तु वह सदा सर्वत्र सबके देह तथा आकाशमेंभी स्थित है ॥ २१ ॥ वही सब करताहै, वही भोक्ता वही सबका धारणकरताहै, वही जाताहै, वही प्राणकी क्रिया करताहै, वही सबका वेत्ता (ज्ञाता) है, और सब अंग २ को जानताहै ॥ २२॥ चित्रविचित्र प्रकाशनी इस इन्द्रिय आदिके चेष्टामे वही है. और हे मुनीश्वर ! उसके प्रभावसे उसके स्वरूपसे निबद्ध इस शरीररूप नगरीमें वही है ॥ २३ ॥ उसीके प्रभावसे चंचल इस शरीररूप महागृहमें वही है, और अन्नमय आदि कोश जिसमें ऐसी हृदयरूपगुहामें आनन्दमय आदि कोशरूपगुहाका स्वामी वही है ॥ २४ ॥

मनःषष्ठेंद्रियाचारसत्तातीतामलात्मनः ॥ तस्यसंव्यवहारार्थसंज्ञाचिदितिकल्पिता ॥ २५ ॥ सएषचिन्मयःसूक्ष्मःसर्वव्यापीनिरंजनः ॥ इमंभास्वरमाभासंकरोतिनकरोतिच ॥ २६ ॥ साचिदत्यंतविमला जगदर्थंजगत्क्रियाम् ॥ इमांरंजयतिप्राज्ञरसेनेवमधुर्लताम् ॥ २७ ॥ चारवोयेचमत्काराश्चितश्चिति यथास्थितम् ॥ चमत्कुर्वंतिकिलतेतेनकेचिन्नभोभिधाः ॥ २८ ॥

अर्थ—मनरूप षष्ठ इन्द्रियोंके आचार (प्रवृत्ति) से परे उस निर्मल आत्मरूप देवके व्यवहारकेलिये चित् यह संज्ञा कल्पित है ॥२५॥ वही यह देव चिन्मय, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरंजन आत्मा इस भास्वर आभास (ब्रह्मांड प्रकाश) को आरोपसे मानो करताहै, और प्रकाशके अपवादसे नहीं करता ॥ २६ ॥ हे प्राज्ञ वसिष्ठजी ! वह अतिनिर्मल चित् जगत्के अर्थ इस जगत्की क्रियाको ऐसे रंजित करताहै जैसे वसन्तऋतु लताको ॥ २७ ॥ मायाशबलित चेतनमें पूर्वकर्मवासनाके अनुसार जो नियतरूपसे चमत्कार करतेहैं अर्थात् आविर्भूत होते हैं इसी हेतुसे उन चमत्कारोंमेंसे कोई तो आकाशनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २८ ॥

केचिज्जीवाभिधानाश्चकेचिच्चित्ताभिधानकाः ॥ केचित्कलाभिधानाश्चकेचिद्देशाभिधानकाः ॥ २९ ॥ केचित्क्रियाभिधानाश्चकेचिद्द्रव्याभिधानकाः ॥ केचिद्भावविकारादिजात्यौचित्याभिधानकाः ॥ ३० ॥ केचित्प्रकाशाभिधानाःकेचिच्छैलतमोभिधाः ॥ अर्कैंद्राद्यभिधाःकेचित्केचिद्यक्षाभिधानकाः ॥ ३१ ॥ निरिच्छस्वस्वभावेनवसंतेनयथांकुरः ॥ तन्यतेतद्वदेवेयंजगल्लक्ष्मीश्चिदात्मना ॥ ३२ ॥

अर्थ—कोई जीवनामसे प्रसिद्ध हैं, कोई चित्तनामसे, कोई कलानामसे, तथा कोई देशनामसे, प्रसिद्ध हैं ॥ २९ ॥ और कोई चित् चमत्कार क्रियाके नामसे प्रसिद्ध, कोई द्रव्यनामसे प्रसिद्ध है और कोई उत्पत्ति, स्थिति वृद्धि,परिणाम और अपक्षयआदि भावविकारके नामसे,और कोई घटत्व पटत्व जाति तथा नीलादिगुणके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३० ॥ जैसे कोई प्रकाशके नामसे, कोई पर्वत वा अन्धकारके नामसे प्रसिद्ध हैं, और कोई सूर्य्य इन्द्र आदिके नामसे और कोई यक्षके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३१ ॥ जैसे इच्छारहित स्वभाव वसंत अंकुरका बिस्तार करताहै उसीप्रकार इस चिदात्मासे जगत्रूप लक्ष्मी विस्तृत की जाती है. ॥ ३२ ॥

चिदेवासुसमग्रासुसर्वदैवैकिकैवहि ॥ त्रैलोक्यांभोधिसंस्थासुशरीरजलजालिका ॥ ३३ ॥ शरीरपंकजभ्रांतमनोभ्रमरसंभृताम् ॥ आस्वादयतिसंकल्पमधुसत्तांचिदीश्वरी ॥ ३४ ॥ ससुरासुरगंधर्वसशैलार्णवकंजगत् ॥ चितिस्थितंप्रवहतिजलावर्त्तजलंयथा ॥३५ ॥ बंधचित्तमयाचारचारुचंचुरचक्रिकम् ॥ संसारचक्रंचिच्चक्रेभ्राम्यतिभ्रमभाजनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनेकबार उत्पन्न त्रैलोक्यरूप समुद्रोंकी स्थितियोंका विचार करनेपर चित्ही जलरूप चक्रिका है ॥ ३३ ॥ शरीररूपकमलमें भ्रांत मनरूप भ्रमरसे संचित सबप्रकाशमें समर्थ चित्रूप ईश्वरीदेवी, संकल्परूप मधुकी सत्ताका आस्वादन करती है ॥ ३४ ॥ सुर, असुर, गंधर्वसहित तथा पर्वतसहित सब जगत् चेतनमें स्थित होके ऐसे बहरहाहै जैसे जलमें आवर्त ॥ ३५ ॥ बंधनका हेतुभूत चित्तमय कर्तृत्वभोक्तृत्वरूप आचारसे चंचल यह जीव समष्टिरूप संसारचक्र मायाशबलित चित्में भ्रमण कररहाहै ॥ ३६ ॥

चिच्चतुर्भुजरूपेणजघानासुरमंडलम् ॥ कालोजलदखंडेनसायुधेनयथातपम् ॥ ३७ ॥ चित्त्रिनेत्रतयाब्रह्मन्वृषशीतांशुचिह्नया ॥ गौरीकमलिनीवक्त्रपद्मषट्पदतांगता ॥ ३८ ॥ विष्णोःपद्मालितामेत्यचिद्दयानाधीनमानसा ॥ त्रयीनलिन्याःसरसींधत्तेपैतामहींस्थितिम् ॥ ३९ ॥ चितोब्रह्मन्विचित्राणिशरीराणीहभूरिशः ॥ पत्राणीवतरोर्हेम्निकेयुरादिक्रियेवच ॥ ४० ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! इस चित्ने चतुर्भुजरूप धारणकरके असुरमंडलको ऐसे नष्ट किया जैसे वर्षाऋतु इन्द्रधनुषके साथ मेघखंड धारण करके आतपको नष्ट करती है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह चित् नंदी वृषभ तथा चन्द्रमा

चिन्हसे चिन्हित त्रिनेत्र शिवरूप धारण करके पार्वतीरूप कमलिनीके मुखकमलके भ्रमररूपताको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ तथा यही चित् विष्णुभगवान्‌की नाभिकमलके भ्रमरताको प्राप्त होके ध्यानके आधीन मनको करके वेदरूप कमलिनीकेलिये महान् सरोवरकी स्थितिको धारण करती है अर्थात् वेदोंको उत्पन्न करती है ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! चित्‌सेही सम्पूर्ण शरीर ऐसे बनते हैं जैसे वृक्षसे पत्ते वा सुवर्णसे केयूर (बिजायठ) कटकआदि आभूषण ॥ ४० ॥

चित्समस्तसुरानीकपरिवंदितपादया ॥ त्रैलोक्यचूडामणितांधत्तेवासवलीलया ॥ ४१ ॥ चित्सुभासु रतामेत्यत्रैलोक्योदरडंबरे ॥ पतत्युदेतिसंयातिस्वात्मन्येवाब्धिवारिवत् ॥ ४२ ॥ चिच्चंद्रिकाचतुर्दिक्षु अवभासंवितन्वती ॥ विकासयतिनिःशेषभूतसत्ताकुमुद्वतीम् ॥ ४३ ॥ चिद्दर्पणमहालक्ष्मीस्त्रिजगत्प्र तिबिंबितम् ॥ गृण्हात्यनुग्रहेणांतःस्वगर्भमिवगर्भिणी ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा यही चित् समस्तदेवताओंकी सेनासे वंदित हैं चरण जिसमें ऐसी इन्द्रकी लीलासे त्रिलोकीकी चूडामणिता (वंदनीयता) को धारण करतीहै ॥ ४१ ॥ और यही चित् सूर्य्यआदि तेजरूपताको प्राप्त होके त्रैलोक्यरूप उदरके आडम्बरमें गिरती है, उदय होती, और अपने आत्मामें ऐसे जाती आती है जैसे समुद्रका जल ॥ ४२ ॥ यह चित्‌रूप चन्द्रिका अपने प्रकाशका विस्तार करतीहुई सब प्राणियोंकी सत्तारूप कुमुदिनीका विस्तार करतीहै ॥ ४३ ॥ इस चित्‌रूप दर्पणकी स्वच्छ भास्वरतारूप लक्ष्मी (शोभा) अर्थात् वैष्णवीमाया प्रतिबिम्बित तीनोंलोकोंको ऐसे ग्रहण करती है जैसे अपने गर्भको गर्भिणी ॥ ४४ ॥

चिच्चतुर्दशभूतानांमंडलानिमहांतिच ॥ भूतीकरोतिवारिश्रीःसमुद्रस्वमिवांबुधिः ॥ ४५ ॥ विचित्रा लोककुसुमाघनसंकल्पपल्लवा ॥ व्योमकेदारिकारूढासत्तौघफलशालिनी ॥ ४६ ॥ जीवजालरजःपुंज वासनारसरंजिता ॥ संवेदनत्वग्वलिताचित्तेहाकलिकाकुला ॥ ४७॥ अतीतासंख्यत्रिजगत्केसरोज्ज्व लरूपिणी ॥ अनातरस्पंदमहाविलासोल्लासहासिनी ॥ ४८ ॥

अर्थ—यह चित् चतुर्दशभुवनोंमें स्थित प्राणियोंके जो महान् मंडल हैं उनकी सत्ताको ऐसे सम्पादन करतीहै जैसे जलकी शोभा जलसमूहरूप होके समुद्रकी सत्ताको ॥ ४५ ॥ पुनः विचित्र चतुर्दशलोकरूप पुष्पसंयुक्त, घनीभूत संकल्परूप पल्लवसहित, मायाकाशरूप खेतकी क्यारीमें ब्रह्मारूपसे अकुंरित और पदार्थोंकी सत्ताके समूहरूप फलोंसे शोभित ॥ ४६ ॥ जीवोंके समूहरूप धूलिके पुंजयुक्त वासनारूप रससे रंजित, सविकल्पज्ञानरूप त्वचासे वेष्टित, और चित्तकी चेष्टारूप कलिकाओं (कलियों) से पूर्ण ॥ ४७ ॥ बीतेहुये असंख्य तीनोंलोकरूप केसरोंसे उज्वलरूपधारिणी, निरन्तर स्पंद (किंचित् चलन) रूप महाविलासोंके उल्लाससे हांसयुक्त ॥ ४८ ॥

सर्वर्तुपर्वपरुषाजडशैलादिगुल्मका ॥ विग्रहग्रंथिवलितामूलाग्रपरिवर्तिता ॥ ४९ ॥ चिल्लतेयंविकसि तापेलवंसदसद्वपुः ॥ विचित्रंदृश्यकुसुमंपरामर्शासहंबहु ॥ ५० ॥ अनयेहहिसर्वत्रच्छायाच्छमिवज न्यते ॥ मन्यतेतन्यतेवस्तुगीयतेक्रियतेपिच ॥ ५१ ॥ महाचितानयानित्यंभासंतेभास्करादयः ॥ देहाः स्वदंतेचमिथस्तत्सच्चिज्जडविभ्रमैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—सब ऋतुरूप पर्वोंसे कठोर, जड पर्वत आदि गुल्मसहित, उद्भिज तथा पिंडज आदि चारप्रकारके शरीररूप ग्रंथियोंसे वेष्टित, और मूलके अग्रभागतक प्रवृत्तिरूप शाखाओंसे वेष्टित ॥ ४९ ॥ यह चित्‌रूप लता विकसित होरही है, और कोमल, सदसद्रूप, विचित्र, अधिकविचारके अयोग्य ॥ ५० ॥ और चंद्रमाकी कांतिके समान स्वच्छ दृश्यरूप पुष्पको यह चित्‌रूप लता सदा उत्पन्न करती है, अभिमानके विषय करती है, वस्तुरूपसे गान करती है, और विस्तार करती है ॥ ५१ ॥ और इसी महाचित्‌से सूर्य्य आदिक प्रकाशित होते हैं, और उस चित्‌की चेतनता तथा जडताके अविवेकसे प्रेरित भोक्ता तथा भोग्यभ्रमोंसे स्त्रीपुरुषके देह यथार्थमें अमंगलभी प्रीतिके विषय होते हैं ॥ ५२ ॥

चिताचावर्तवर्तिन्यासिद्धान्येवप्रनृत्यति ॥ जगज्जालरजोलेखातत्सत्ताद्दृश्यदेहिनी ॥ ५३ ॥ चित्सर्वं जगदारंभमिमंप्रकटयत्यलम् ॥ त्रैलोक्यदीपकशिखादीपोवर्णाश्रयंयथा ॥ ५४ ॥ चिच्चंद्रबिंबेविमलेश शवत्प्राप्यसंगमम् ॥ सर्वत्रलक्ष्यतामेतिपदार्थश्रीर्जगद्गता ॥ ५५ ॥ चिद्रसायनसेकेनपदार्थपटलाव ली ॥ रूपमेतिफलंचैवप्रावृट्सिक्तेवसल्लता ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने ! मायारूप आवर्तमें विद्यमान चित्‌की सत्तासे सिद्ध और चित्‌की सत्ताहीसे दृश्य आकार धारण करके जगत्‌के समूहरूप रजोलेखा (धूलिरेखा) होनेसे चित्तसे भिन्न होके यह चित् नृत्य करती है ॥ ५३ ॥

त्रैलोक्यरूप दीपककी शिखारूप यह चित् इस संपूर्ण जगत्को आरंभके पूर्णरीतिसे ऐसे प्रकट करती है, जैसे दीपक वर्णके आश्रय द्रव्यको ॥ ९४ ॥ चित्‌रूप चंद्रमाके निर्मलबिंबमें शशकके तुल्य समागममें प्राप्त होके यह पदार्थकी लक्ष्मी सर्वत्र दृश्यरूपताको प्राप्त होती है ॥ ९५ ॥ चित्‌रूप रसायनसे सींची हुई पदार्थोंके समूहकी पंक्ति दृश्यरूप तथा फलको ऐसे प्राप्त होती है, जैसे वर्षाऋतुसे सींची हुई उत्तम लता ॥ ९६ ॥

चिच्छाययैवसर्वस्यजाड्यंसम्यगुदेतिच ॥ सर्वस्यास्यशरीरस्यगृहस्येवतमस्त्विह ॥ ५७ ॥ चिच्चमत्कृतयोदेहेनभवेयुरिमायदि ॥ त्रैलोक्यदेहास्त्यक्त्वैतेनस्पृशेयुःकिलाकृतिम् ॥ ५८ ॥ चिदाकाशप्रकाशेस्मिन्संकल्पशिशुधारिणी ॥ क्रियाकुलवधूर्देहगृहेस्फुरतिचंचला ॥ ५९ ॥ चिदालोकंविनाकस्यरसनाग्रेस्फुरन्नपि ॥ कथंकदाप्रकटतामेतिदृष्टःक्वारसः ॥ ६० ॥

अर्थ—और जैसे पंचीकृत गृहादिमें चारोंओरसे तेजकी व्याप्तिसे अंधकारका प्रसंग न होनाचाहिये तथापि पृथिवी आदि भूतोंसे सूर्यके तेजका अभिभव होनेसे बाह्यदेशमें सूर्य्यके प्रकाशकी अभिव्यक्ति होनेपर भीतर अंधकारका उदय होताहै ऐसेही घटादिकी अधिष्ठानभूत चित्‌की प्रकाशताका अध्याससे अभिभव होनेपरभी बाहर चाक्षुष आदि वृत्तियोंसे अभिव्यक्त चित्‌की व्याप्तिसे घट आदिका स्फुरण होनेपर उसकी छायासे भीतर जडता उदयको प्राप्त होती है ॥५७॥ जैसे सूर्य्यके प्रकाशकी विचित्रताहीसे देहोंमें विचित्रता है ऐसे यदि इस देहमें प्रमाता चेतनके चेतनता तथा जडतारूप चमत्कार न हो तो छाया जडताको त्यागकर त्रैलोक्यके देह अपने आकारकोभी न ग्रहण करें ॥ ९८ ॥ इस चिदाकाशके प्रकाश संकल्परूप बालक धारण कियेहुई तथा अतिचंचल क्रियारूप कुलवधू देहरूप गृहमें स्फुरित होतीहै. ॥ ९९ ॥ हे मुने ! देखो जिव्हाके अग्रभागमें स्फुरित होताहुआभी रस परंतु चित्‌के प्रकाश (चिद्‌व्याप्ति) के विना कब और किसको गूढ देखागयाहै ॥ ६० ॥

शृण्वंगस्वांगशाखोपिकुंतलालिलतोप्यलम् ॥ चिन्मज्जनंविनादेहवृक्षःकइवराजते ॥ ६१ ॥ वर्द्धतेविलुठत्यत्तिचिच्चराचरकारिणी ॥ चिदेवास्तीतरन्नास्तिचिन्मात्रमिदमुत्थितम् ॥ ६२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तवांस्तदात्र्यक्षसुधांशुःस्वच्छयागिरा ॥ पुनःपृष्टोमयारामसुधांशुस्वच्छयागिरा ॥ ६३ ॥ यदिसर्वगतादेवचिदस्त्येकातदात्मकः ॥ तदयंचावनिस्फारमयांथेवनचेतति ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे प्रिय मुने ! सुनिये यह देहरूपवृक्ष अपनी अंगरूप शाखाओंसे युक्त होने तथा केशसमूहोंकी पंक्तिलतासे युक्त होनेपरभी चित्‌के विना क्या शोभित होसकताहै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! चराचरको रचनेवाली यह चित्‌ही उत्पन्न होके बढती है, इधर उधर लुढकती है और भोजन आदि क्रिया करती है इसलिये सब कुछ चित्‌है, उससे भिन्न कछु नहीं है, और चिन्मात्रही यह आविर्भूत है ॥ ६२ ॥ हे मुने ! चन्द्रकलाधारी त्रिनेत्र महादेवजीने स्वच्छवाणीसे मुझसे यह कहा, अनंतर चंद्रमाके किरणके समान शीतल और स्वच्छवाणीसे पुनः मैंने प्रश्न किया ॥ ६३॥ कि हे देव ! यदि एक चिन्मात्रही सबकुछ है तो सर्वथा चित्‌रूप यह देव निद्रा, मरण, मूर्च्छा आदिमें मृत्तिकाका विकारभूत नेत्रादिसे हीन भीतके समान नहीं चेतता इसका क्या कारणहै ॥ ६४ ॥

अयंचित्त्वात्पुराभूत्वाचिद्धीनःसंप्रतिस्थितः ॥ इतीयंकल्पनालोकेप्रत्यक्षानुभवाकथम् ॥ ६५ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ शृण्वेतदखिलंब्रह्मन्यदापृष्टंवदामिते ॥ महानयंत्वयाप्रश्नःकृतोब्रह्मविदांवर ॥ ६६ ॥ चित्स्तिहिशरीरेहसर्वभूतमयात्मिका ॥ चलोन्मुखात्मिकैकातुनिर्विकल्पापरास्मृता ॥ ६७ ॥ संकल्पबुद्धासैवांतःस्वयमन्येवसंस्थिता ॥ संकल्पितेतरवरादौःशील्यंस्त्रीयथागता ॥ ६८ ॥

अर्थ—यह देह प्रथम चेतनयुक्त था और अब दृश्य मरण आदि दशामें चेतनहीन है, यह प्रत्यक्ष अनुभूत कल्पना कैसे होसकती है, क्योंकि जब सर्वथा सर्वदा सब कुछ चेतनमय है तब चेतनयुक्त और उससे हीन यह दशा कैसे होसकती है ॥ ६५ ॥ श्रीईश्वर बोले—हे ब्रह्मन् ! जो कुछ तुमने पूंछा वह सब मैं तुमसे कहूंगा, सुनो, हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह आपने महान्‌प्रश्न कियाहै ॥ ६६ ॥ इस शरीरमें चंचल व्यष्टिसमष्टि बुद्धिमें आसक्तस्वभाव और विज्ञानमयशब्दवाच्य कर्तृत्वभोक्तृत्वस्वभाववाली एक (कल्पित वा प्रतिबिंबरूप) चित् है और दूसरी निर्विकल्प वा बिंबरूप चित्‌है ॥ ६७ ॥ और अपने संकल्पसे अपने शुद्धरूपकोही जीवरूपसे जानतीहुई स्वयं अन्यकेसमान ऐसे स्थितहै जैसे सुशीला सती स्त्री स्वप्न आदिमें पतिसे अन्यपुरुषका संकल्प करके दुःशीलताको प्राप्त अन्यस्त्रीके समान होजाती है ॥ ६८ ॥

सएवहिपुमान्कोपाद्यथेहान्यइवक्षणात् ॥ भवत्येवंविकल्पांकाचित्स्वरूपान्यतांगता ॥ ६९ ॥ विकल्पकल्पिताब्रह्मंश्चित्स्वरूपपरिच्युता ॥ जाड्यंक्रमाद्भावयंतीप्रयातिकलनापदम् ॥७०॥ चित्स्वयंचेत्य

तामेतिसाकाशपरमाणुताम् ॥ शब्दबीजात्मिकांपश्चाद्वाततन्मात्रगामिनी ॥७१॥ देशकालविभागांता तन्मात्रवलिताक्रमात् ॥ जीवोभूत्वाभवत्याशुबुद्धिःपश्चादहंमनः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसे वही पुरुष क्रोधसे क्षणमेंही अन्य राक्षसके समान क्रूर होजाताहै ऐसेही संकल्पविकल्पसे चिन्हित यह चित् अन्यस्वरूपताको प्राप्तके तुल्य होजाती है ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! विकल्पसे कल्पित और अपने शुद्धस्वरूपसे परिच्युत जडताके साथ अभेदकी कल्पना करतीहुई सविकल्पबुद्धिरूप कल्पनाकी विषयताको प्राप्त होतीहै ॥७०॥ हे मुने ! यह चित् स्वयं आकाशसहित सूक्ष्मभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंधरूप भोग्यपदार्थोंके बीजभूत चेत्यता अर्थात् मायोपाधिक चित्की विषयताको प्राप्त होती है, और अनंतर वायुतन्मात्राकी ओर अर्थात् समष्टि प्राणभावकी ओर चलती है ॥ ७१ ॥ उसके अनंतर सूक्ष्मभूतोंके पंचीकरणसे वेष्टित होके सप्तद्वीप और चतुर्दशभुवनपर्य्यंत देशके विभागसहित निमेषसे लेके द्विपरार्धपर्य्यंत कालके विभागसहित क्रमसे होतीहै और वहां प्राणधारणसे जीव होके पश्चात् शीघ्रही बुद्धि अहंकार और चित्तरूप होती है ॥ ७२ ॥

मनस्त्वंसमुपायातासंसारमवलंबते ॥ चंडालोस्मीतिमननाचंडालत्वमिवद्विजः ॥ ७३ ॥ संकल्पिता प्रबोधेनजाड्याविश्वप्रबोधिनी ॥ शबलंरूपमासाद्यसंकल्पायात्यनारतम् ॥ ७४ ॥ अनंतसंकल्पमयी जाड्यसंकल्पपीवरा ॥ चिज्जाड्यान्मोहमायातिपयःपाषाणतामिव ॥ ७५ ॥ ततश्चित्तंमनोमोहोमायेति विहिताभिधा ॥ जाड्यंनिपुणमाश्रित्यसंसारेजायतेमुने ॥ ७६ ॥

अर्थ—और मनदशामें प्राप्तहोके संसारको ऐसे ग्रहण करती है जैसे ब्राह्मण मैं चांडाल हुं ऐसा मनन (भावना) करनेसे चांडाल होजाताहै ॥ ७३ ॥ यही ब्रह्मरूप चित् अज्ञान मायाशबलितरूप धारण करके देह और जीवरूपसे संकल्पित होतीहुई देह तथा जीवसे उत्पन्न अज्ञानसे असर्वज्ञ होके पुनः २ भोगके संकल्पसे निरंतर इस संसारमें गमनागमनरूप संसरण कियाकरतीहै ॥ ७५ ॥ अनन्तसंकल्पमयी और जडताके संकल्पसे स्थूल यह चित् जडतासे मोहको ऐसे प्राप्तहोती है जैसे जल शीततासे पाषाणताको प्राप्तहोताहै ॥ ७५ ॥ उसके पश्चात् चित्त, मन, मोह और माया इत्यादिनामयुक्त होतीहै और कुशलतासे जडताका आश्रय लेके इस संसारमें पुनः २ उत्पन्न होतीहै ॥ ७६ ॥

मोहमांद्यमुपायातातृष्णानिगडपीडिता ॥ कामक्रोधभयोपेताभावाभावातिपातिनी ॥ ७७ ॥ त्यक्तानंत निजाभोगाव्यवच्छेदविकारिणी ॥ दुःखदावानलातप्ताशोकाशिवकृशाशया ॥ ७८ ॥ इयमस्मीतिभावे नश्यून्येनविकलीकृता ॥ देहमात्रगृहीतास्थापरंदैन्यमुपागता ॥ ७९ ॥ मग्नामोहमहापंकेजीर्णेववनदंतिनी ॥ भावाभावलतादोलापरिलोलशरीरका ॥ ८० ॥

अर्थ—मोहरूप मंदताको प्राप्त, तृष्णारूप बेडीसे बंधीहुई, काम, क्रोध, और भयसे युक्त, और भाव अभाव (उत्पत्ति तथा नाश) की ओर गिरनेवाली ॥ ७७ ॥ अपने अनंतविशालरूपको त्यागनेवाली, स्त्रीपुत्रआदिके वियोगमें शोकआदि विकारवाली, दुःखरूप दावानलसे आतप्त, और शोक तथा अमंगलसे कृश यह चित् ॥ ७८ ॥ प्रत्यक्ष दुःखमोहादि स्वभावमें इस मिथ्याभ्रमसे विकल, और देहमात्रमें आस्था करनेसे परम दीनताको प्राप्त है ॥ ७९ ॥ तथा वृद्धहस्तिनीके तुल्य मोहरूप महापंकमें निमग्न, और भाव अभाव (ऐश्वर्य्य तथा दरिद्रता) रूप लताके झूलापर अतिचंचलशरीरवाली ॥ ८० ॥

असारापारसंसारविकारव्यवहारिणी ॥ तापोपतप्तहृदयारागतेजोनुरंजिता ॥ ८१ ॥ निजयूथपरिभ्रष्टा मृगीवावशतांगता ॥ आविर्भावोदिताकारातिरोभावेस्तमागता ॥ ८२ ॥ स्वसंकल्पोपयातासुभीतासं भ्रमदृष्टिषु ॥ पलायतेवाप्यन्यासुवेतालेष्विवबालिका ॥ ८३ ॥ उष्ट्रीवमधुरंबिंदुंवांछतेभावितंसुखम् ॥ अवांतरपरिभ्रष्टादोषाद्दोषंपतत्यधः ॥ ८४ ॥

अर्थ—सारताशून्य अपार इस संसारके विकारमें व्यवहार करनेवाली, तीनो तापोंसे संतप्तहृदय और राग तथा क्रोधसे अनुरंजित ॥ ८१ ॥ अपने यूथसे विछुरीहुई मृगीके समान अवशताको प्राप्त, विभव वा भूतमात्रोंके आविर्भावमें प्रसन्न वा प्रकट, और अभावमें अस्ततताको प्राप्त ॥ ८२ ॥ अपनेही संकल्पसे रचित अन्य भ्रमकी दृष्टियोंमें भयभीत होके ऐसे भागती है जैसे वेतालोंके बीचमेंसे बालिका ॥ ८३ ॥ और जैसे उष्ट्री (ऊंटिनी) नींव, बबूर आदिके खातेहुये भावी अल्प मधुररसको चाहती है ऐसेही दुःखमय विषयभोगोंमें सुखकोही यह चित् चाहती है, और मध्यकालमेंही भ्रष्ट होके एकदोषसे दूसरे दोषमें नीचेही गिरती चलीजातीहै ॥ ८४ ॥

परवैषम्यमायातिसंकटात्संकटंगता ॥ दुःखाद्दुःखंनिपतितविपदोविपदिस्थिता ॥ ८५ ॥ नानानर्थग णोपेताचेष्टापरवशाशया ॥ कष्टात्कष्टमनुप्राप्तापरितापानुतापिनी ॥ ८६ ॥ क्रमादाबद्धवैदग्ध्याद्वैदग्ध्यां गमुपागता ॥ विचित्रबंधनिर्माणपराक्रमपदंगता ॥ ८७ ॥ सर्वतःशंकतेभीताप्राणात्ययमुपागता ॥ क्षीणतोयेवशफरीविवर्तनपरायणा ॥ ८८ ॥

अर्थ—एक संकटसे दूसरे संकटमें प्राप्तहोके अतिविषमतामें आती है, एक दुःखसे दुसरे दुःखमें गिरती है और एक विपत्तिसे निकलके दुसरी विपत्तिमें स्थित होतीहै ॥ ८५ ॥ नानाप्रकारके अनर्थोंके गणसे संयुक्त, चेष्टासे परवश अंतःकरणसहित, नरकआदिकी भूमियोंमें कष्टसेभी अतिकष्टको प्राप्त, और परितापसे अनुतापयुक्त यह चित् है ॥ ८६ ॥ और क्रमसे मनुष्यजन्म मिलनेपरभी बाल्यअवस्थासे लेके व्यवहारकी कुशलताके अभ्याससे नाटक काव्यआदि अभ्यासको प्राप्त होतीहुई विचित्र अपने बंधनभूत धन गृहपरिवार आदिकी रचनामें पराक्रमपदको प्राप्त यह चित् है ॥ ८७ ॥ और क्रमसे अवस्थाके अंतको प्राप्त होके तथा चारोओरसे भयभीत होके शंका करती है और अल्पजलमें शफरी (मछली) के समान भूमिमें लोटनेमें तत्पर रहतीहै ॥ ८८ ॥

बाल्येविवशसर्वार्थायौवनेचिंतयावृता ॥ वार्धकेप्यतिदुःखार्तामृताकर्मवशीकृता ॥ ८९ ॥ जायतेस्वर्ग नगरेनागीपातालकोटरे ॥ आसुरीदैत्यविवरेनरस्त्रीवसुधातले ॥ ९० ॥ राक्षसीराक्षसाधारेवानरीवनको टरे ॥ सिंहीगिरींद्रशिखरेकिंनरीकुलपर्वते ॥ ९१ ॥ विद्याधरीदेवगिरौव्यालीचवनगर्त्तके ॥ लतातरौ खगीनीडेवीरुत्सानौवनेमृगी ॥ ९२ ॥

अर्थ—बाल्यअवस्थामें सबभोग इसके पराधीन रहतेहैं, यौवनअवस्थामें विषय तथा धनादिकी चिंतासे विवेकशून्य होके अज्ञानसे आच्छादित रहती है, और वृद्धअवस्थामें अतिदुःखित होके मरणको प्राप्तहोती है, अनंतर कर्मोंके वशीभूत होके ॥ ८९ ॥ स्वर्गनगरमें देवांगना होके उत्पन्न होती है, पातालके कोटरमें नागी, दैत्यलोकमें आसुरी और पृथिवीपर स्त्रीपुरुष होके उत्पन्न होती है ॥९०॥ और राक्षसोंके स्थानमें राक्षसी, बनमें बडे २ पर्वतोंके शिखरोंपर सिंही, और हिमालयआदि कुलपर्वतोंपर किन्नरी होके उत्पन्न होती है ॥९१॥ तथा सुमेरुपर विद्याधरी, बनके गढोंमें सर्पिणी, वृक्षमें लता, खुंथेमें पक्षिणी, शिखरपर लता, और बनमें मृगी होतीहै ॥ ९२ ॥

शेतेनारायणोंभोधौध्यानीब्रह्मपुरेब्जजः ॥ कांतागतोहरःशैलेस्वर्गेसुरवरोहरिः ॥ ९३ ॥ दिनंकरोतिती क्ष्णांशुर्वर्षत्यंबुधरोजलम् ॥ करोतिश्वसनंसंवित्सपर्वतमहोदधिम् ॥ ९४ ॥ ऋतुचक्रंप्रवहतिसहसा कालमंडलम् ॥ दिनरात्रितयोपैतितेजस्तिमिरतांक्रमात् ॥ ९५ ॥ क्वचिद्बीजरसोल्लासाक्वचित्पाषाण मौनिनी ॥ क्वचिन्नदीरसवतीक्वचित्कुमुदविस्तृतिः ॥ ९६ ॥

अर्थ—और यही चित् विष्णुभगवान् होके समुद्रमें शयन करती है, विष्णुकी नाभिकमलसे उत्पन्न होके ब्रह्मलोकमें ध्यानमें निमग्न होती है, अर्द्धांगमें पार्वतीसहित कैलासपर्वतमें महादेवरूप धारणकरती है और स्वर्गमें सब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रपदवीको धारण करती है ॥ ९३ ॥ सूर्य होके दिनकी रचना करती है, मेघ होके वृष्टि करती है, और वायु होके पर्वत तथा समुद्रादिको कंपाती है ॥ ९४ ॥ तथा कालरूप धारण करके वर्षचक्र तथा युगमन्वन्तर आदिका निर्वाह करती है, और दिनरात्रिके रूपसे क्रमसे तेज और अन्धकारको धारण करती है ॥ ९५ ॥ कहीं वृक्षादिमें बीज होके अंकुरका हेतु होताहै और कहीं रसरूप उल्लास करती है, कहीं पाषाण होके मौन होती है, कहीं मधुर जलसाहित नदीरूप धारण करती है, कहीं कुमुदका विस्तार करती है ॥ ९६ ॥

क्वचित्फलावलीपाकैःक्वचित्काष्ठानलादिभिः ॥ क्वचिच्छैत्यहिमद्वारिःक्वचित्खादिनकिंचन ॥ ९७ ॥ क्वचिदुज्ज्वलिताकाराक्वचित्कष्टाशिलाक्वचित् ॥ क्वचिन्नीलाथहरिताक्वचिदग्निक्वचिन्मही ॥ ९८ ॥ सर्वात्मत्वात्सर्वगत्वात्सर्वशक्तित्वयोगतः ॥ सर्वात्वादेवंरूपैवखादप्यच्छैवसापरा ॥ ९९ ॥ चिच्चिनो तियथात्मानंयेनयत्रयदायदा ॥ तत्तथानुभवत्यंबुस्पंदाद्वीच्यादितांयथा ॥ १०० ॥

अर्थ—कहीं परिपाकतासे प्रकट फलोंकी पंक्तिरूप धारण किये हैं, कहीं काष्ठ तथा अग्नि आदि रूपसे उपलक्षित है, कहीं हिमकेसमान शीतल जलरूप धारण किये हैं, और कहीं आकाश वायु आदिका रूप इसी चित्ने धारण कियाहै न कि अन्यकिसीने ॥ ९७ ॥ कहीं उज्वल आकार, कहीं कंटककुश आदिसे दुर्गम शिलारूप, और कहीं नील, कहीं हरित, कहीं अग्नि, और कहीं पृथिवीका रूप इसी चित्ने धारणकियाहै ॥ ९८ ॥ और मायाके सम्बन्धसे सर्वरूप तथा सर्वगामी होनेसे सब जगत्‌रूप यही है, और यथार्थमें आकाशसेभी स्वच्छ सबसे रहितहै ॥ ९९ ॥ हे

मुने ! यह चित् अपनेको जिस भावसे जहांपर और जैसे और जब भावना करती है उस भावको उसीप्रकार उसीसमय वैसेही शीघ्र अनुभव ऐसे करती है जैसे जल तरंग आदि रूपताको ॥ १०० ॥

हंसीक्रौंचीबकीकाकीसारसीतुरगीवृकी ॥ बकीबलाकाहरिणीवानरीकिन्नरीशुनी ॥ १०१ ॥ वटीकापिंगलीशालीमक्षिकाभ्रमरीशुकी ॥ धीःश्रीर्हीःप्रीतीरतिश्र्वशंबरीशर्वरीशशी ॥ १०२ ॥ एतास्वन्यासुचान्यासुपरिभ्रमतियोनिषु ॥ विवर्तमानसंसारेजलावर्तेतृणंयथा ॥ १०३ ॥ बिभेत्यथस्वसंकल्पात्स्वशब्दादिवगर्दभी ॥ नानयासदृगन्यास्तिमुग्धाबालाचलाऽबला ॥ १०४ ॥

अर्थ—हे मुने ! हंसी, काकी, क्रौंची, बकी, (बकुली) सारसी, तुरगी (घोडी) व्याघ्री, बककी पंक्ति, वानरी, किंनरी, कुत्ती ॥ १०१ ॥ बटेर, पिंगली, शारिका, मधुमक्षिका, भ्रमरी, शुकी, बुद्धि, श्री, ह्री (लज्जा) प्रीति, रति, शंबरी, रात्रि, और चन्द्ररूपता ॥ १०२ ॥ इन तथा अन्यदेहोंमें इस परिवर्तनशील संसारमें यह चित् ऐसे भ्रमण करती है जैसे जलके आवर्तमें तृण ॥ १०३ ॥ यह अपने संकल्पसे रचित पदार्थोंसे ऐसे डरती है जैसे अपने शब्दसे गर्दभी, इसके सदृश अन्य मुग्ध, चंचल तथा दुर्बल (मायासे) स्त्री कोई नहीं है ॥ १०४ ॥

एषासाकथितातुभ्यंजीवशक्तिर्मुहामुने ॥ प्राकृताचारविवशावराकीपशुधर्मिणी ॥१०५॥ कर्मात्मेत्यभिधांप्राप्तशोच्यास्यापरमात्मनः ॥ अनंतंदुःखबहुलंस्वयंविभ्रममाश्रिता ॥ १०६ ॥ असदेवानयाक्रांतंविनाशिसहजंमलम् ॥ तंडुलेनेवकंचूकमनन्यया ऽव्यवस्थितम् ॥ १०७ ॥ अनंतविभवभ्रष्टादौर्भाग्यपरितापिनी ॥ शोचंतीप्राप्यजीवत्वंभर्तृहीनेवनायिका ॥ १०८ ॥ जडगतेरवलोकयशक्ततांनिजपदस्मरणेनविनेहचित् ॥ व्रजतिकष्टमधःपतनाययायदरघट्टघटीघनपीठवत् ॥ १०९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शिवपूजोपाख्याने चेत्योन्मुखचिद्विचारो नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—हे महामुने ! यह प्राकृत (प्रकृतिजनित) आचारसे विवश, दीन और पशुधर्मवाली जीवकी शक्ति मैंने तुमसे कही ॥ १०५ ॥ कर्मरूप स्वभावको प्राप्त, और अनंतदुःखोंसे पूर्णविभ्रमके आश्रित यह परमात्माकी (माया शबलित) शक्ति शोचनीय है ॥ १०६ ॥ अपनेसे भिन्न सत्ताकी स्फूर्ति (स्फुरणा) से शून्य अविद्यासे अनियतस्वभाव, असत्विनाशी, तथा स्वाभाविक मलको इसने ऐसे आक्रमण कियाहै जैसे तंडुल अपने तुषको ॥ १०७ ॥ सर्वज्ञत्व, सर्वव्यापित्व आदि अनंतविभवोंसे भ्रष्ट, और दौर्भाग्यसे तापयुक्त यह चित् जीवदशाको प्राप्त होके ऐसे शोच करतीहै जैसे पतिहीन स्त्री ॥ १०८ ॥ हे मुने ! तुम इस जडस्वभाव अविद्याका सामर्थ्य देखो कि, जिसके प्रभावसे जो पूर्णब्रह्म स्वभाववालीभी चित् है वह अरघट्टके घटीयंत्रके घडोंमें प्रविष्ट आकाशके तुल्य अपने निरतिशय आनंद पूर्णस्वभावके विस्मरणसे मैं भोगनिमित्त पुण्यके क्षीण होनेपर अथवा अल्पजलके गिरनेपर परिच्छिन्न वा खालीहुं, ऐसा मानतीहुई पुनः २ अपने गिरनेके अर्थ नीचेसेभी और नीचे चलीजाती है यह खेदकी बातहै ॥ १०९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिवपूजोपाख्याने चेत्योन्मुखविचारो नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस ३१ के सर्गमें जीवादिका निषेध करके शुद्धचित् दर्शाई गई है, और मन, प्राण तथा इंद्रियोंके द्वारा बाह्य आभ्यंतर उसकी सिद्धिभी वर्णितहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ चिनोत्यलीकमेवैवंसदुःखास्मीतिभावनात् ॥ चित्स्वप्नक्षीबतामोहपतितासंभ्रमे यथा ॥ १ ॥ अमृतापिमृतास्मीतिविपर्यस्तमतिर्वधूः ॥ यथारोदित्यनष्टैवनष्टास्मीतितथैवचित् ॥२॥ अकारणंविपर्यस्तामतिर्भ्रांतमपिस्थिरम् ॥ यथाजगत्पश्यतीदंतथाहंताभ्रमश्चिति ॥ ३ ॥ चित्तंहिकारणं त्वस्याःसंसारानुभवेचितेः ॥ नचतत्कारणंकिंचिच्चित्वान्यत्वात्यसंभवात् ॥ ४ ॥

अर्थ—इसप्रकारसे वर्णित असत्रूपही जीव जगत्भावको अज्ञानसे यह चित् मोहमें गिरीहुई अपनेमें ऐसे आरोपसे संचय करती है जैसे स्वप्नमें मदिराके मदसे मदोन्मत्त जीव अपनेमें अनेक आपत्तियोंका आरोप करै ॥ १ ॥ जैसे विपरीतबुद्धिवाली मुग्ध स्त्री न मरनेपरभी मैं मरीहुं इसप्रकार रोदन करती है ऐसेही नाशरहितभी यह चित्

मैं नष्ट हुं इसप्रकार विलापकरती है ॥ २ ॥ जैसे विनाकारणही विपरीतबुद्धिवाली स्त्री भ्रमणकरतेहुएभी कुंभकारके चक्रको स्थिर देखती है ऐसेही यह चित् भ्रमणशीलभी इस जगत्को चेतनमें स्थिरही देखती है ॥ ३ ॥ इस चित्के संसारके अनुभव करनेमें चित्त कारण है परंतु यथार्थमें उसका कारण कुछ नहीं हैं क्योंकि चित्त वा उसके अन्यका सर्वथा असंभव है ॥ ४ ॥

एवंहिकारणाभावाच्चेत्यस्यासंभवादिति ॥ नासौचित्तंततश्चेत्यंयत्नतश्चेत्यतेयया ॥ ५ ॥ नदृश्यदर्शनद्रष्टृरूपंतैलमिवोपले ॥ नकर्तृकर्मकरणंदृशींदाविवकृष्णता ॥६॥ नमातृमेयमानानिनभसीवनवांकुरः॥ नचिच्चेतनचेत्यादिनंदनेखदिरोयथा ॥ ७ ॥ नाहंत्वत्वंत्वतत्त्वादिपर्वतत्वमिवांबरे ॥ सदेहत्वान्यदेहत्वे शंखत्वमिवकज्जले ॥ ८ ॥

अर्थ—इस रीतिसे जगत्के कारण चित्तके अभावसे चेत्य (विषयरूप जगत्काभी) अभाव सिद्ध है क्योंकि जिस चित्से यत्नपूर्वक चित्त चेतित (अनुभूत) होताहै यह चित् और उसके अधीन चित्तभी नहीं है किंतु शुद्ध चित् है ॥ ५ ॥ शुद्धचित्में दृश्य, दर्शन, और द्रष्टाका रूप ऐसे नहीं है जैसे पाषाणमें तैल, और दृक्स्वरूप आत्मामें कर्ता, कर्म, और कारण ऐसे नहीं है जैसे चंद्रमामें कृष्णता ॥ ६ ॥ और प्रमाता, प्रमेय और प्रमाणपना शुद्धचित्तमें इसप्रकार नहीं हैं जैसे आकाशमें नूतनअंकुर, और ऐसेही उसमें चित्, चेतन और चेत्य ऐसे नहीं है जैसे नंदनवनमें खदिरका वृक्ष ॥ ७ ॥ और शुद्धचित्में अहंता, त्वंता, आदिभी ऐसे नहीं जैसे आकाशमें पर्वतत्व और सदेहत्व और अन्यदेहत्व उसमें ऐसे नहीं हैं जैसे कज्जलमें शंखता ॥ ८ ॥

नानानानानचप्यंतरणाविवसुमेरवः ॥ नचशब्दार्थशब्दश्रीर्महोषरलतायथा ॥ ९ ॥ नेतिनेतिनचैवार्कमंडलेरजनीयथा॥ नवस्तुतावस्तुतेचतुषारेतुयथोष्णता॥ १०॥ नशून्यताशून्यतेवाशिलाकोशइवद्रुमः॥ शून्यताशून्यतानाममहतीवइवाखता ॥ ११ ॥ केवलंकेवलीभावस्वच्छतैवावशिष्यते ॥ नचित्तात्कस्यचिद्दोषाजातयैतदवाप्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा जीवोंके नानाभेद और प्रतिदेह आत्माके भेद उसमें ऐसे नहीं हैं जैसे परमाणुमें सुमेरु, और नामरूपकी तो कथा ऐसे नहीं है जैसे महा ऊखरमें लता ॥ ९ ॥ और उस शुद्धचित्में "नेतिनेति" यह वेदका निषेधभी ऐसे नहीं है जैसे सूर्यमंडलमें रात्रि, और वस्तुता अवस्तुता उसमें ऐसे नहीं है जैसे तुषारमें उष्णता ॥ १० ॥ उसमें शून्यता अशून्यता ऐसे नहीं है जैसे शिलाके गर्भमें वृक्ष, और आकाशमें जैसे महाशून्यता तथा अशून्यता विचार करनेसे केवल केवलीभाव भावरूप स्वच्छताही शेष रहजाती है न कि अणुमात्रभी उससे भिन्नता ऐसेही चित्में भी जानो, और चित्के दोषभूत ब्रह्माके चित्तसे उत्पन्न संसारके अनर्थको यह चित् नहीं पाती ॥ ११ ॥ १२ ॥

तत्सर्वभावनामात्रेणानर्थःप्रकृतःस्थितः ॥ तज्ज्ञेप्यभावनामात्रेणानर्थउपशाम्यति ॥ १३ ॥ तज्ज्ञेप्यभावनामात्राद्दतेन्यत्रोपयुज्यते ॥ नतृणंनचत्रैलोक्यमितिस्वायत्ततात्रया ॥ १४ ॥ स्वायत्तएवचैषोर्थोदुःसाध्योभावनास्थितः ॥ यद्यत्रसाध्यतेपुंसातत्कथंकेवलभ्यते ॥ १५ ॥ निर्विकल्पाद्वितीयाचिद्यासौसकलगासती ॥ परमैकापरासाच्छादीपिकातेजसामपि ॥ १६ ॥

अर्थ—किंतु उस चित्से उत्पन्न देहइन्द्रिय आदिमें सत्यताकी भावनामात्रसे यह संसाररूप अनर्थ उपस्थित है और तत्वज्ञानीमें उसकी भावनामात्रसे वह संसार शांत होजाताहै॥१३॥और तत्वज्ञानीकोभी अभावनामात्रसे शांतके योग्यभी यह संसार अन्यत्र अर्थात् तृणके समानभी यह त्रैलोक्य पदार्थ अज्ञानियोंके अर्थ दुःसाध्य है इसलिये इसमें भावना और अभावना अपने अधीन है ॥ १४॥ और अपने अधीन जो भावना है उसीसे यह त्रैलोक्य असाध्यरूपसे स्थितहै क्योंकि अतिसरल (तृणादिसंमर्दन वा लाभादि) जो पुरुष अपने प्रयत्नसे नहीं सिद्ध करता उसको कहां पाताहै ॥ १५ ॥ और चित्स्वरूप ब्रह्म मैं हुं इस भावनामात्रसे जो निर्विकल्प, अद्वितीय, सर्वगामिनी, परमश्रेष्ठ, अतिस्वच्छ और सूर्य्यआदि तेजस्वीपदार्थोंकीभी प्रकाशिका यह चित् है वह प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

सैषावभासनकरीसर्वगानित्यनिर्मला ॥ नित्योदितानिर्मनस्कानिर्विकारानिरंजना ॥ १७ ॥ घटेपटेवटेकुड्येशकटेवानरेखरे ॥ असुरेसागरेभूतेनरेनागेचसंस्थिता ॥ १८ ॥ साक्षिवत्तिष्ठतिसतीस्पंदतेनचकुत्रचित् ॥ दीपःप्रकाशनायेवकरोतिनपुनःक्रियाम् ॥ १९ ॥ मलिनाप्यमुनैषासाविकल्पाढ्याविकल्पिनी ॥ जडेवाप्यजडाभासानसर्वासर्वगैवच ॥ २० ॥

अर्थ—यह शुद्ध चित् सबपदार्थोंके प्रकाश करनेमें समर्थ, सर्वगामिनी, नित्यनिर्मल, नित्य उदयको प्राप्त मन तथा उसके विकारोंसे शून्य और निरंजन (रागद्वेषादि वर्जित) है ॥ १७ ॥ और यह चित् घट, पट, वट, कुड्य

(ग्रहादि) शकट, वानर, गर्दभ, असुर, देवता, मनुष्य, समुद्र, पंचभूत, तथा नागआदिमें सर्वत्र एकरूपसे स्थितहै ॥ १८ ॥ जैसे दीप प्रकाशके शिवाय अन्यकोई क्रिया पुनः नहीं करता ऐसेही यह चित्भी साक्षीकेतुल्य स्थित रहती है अन्य कुछ संचलनआदि क्रिया कहीं नहीं करती ॥ १९ ॥ इसप्रकार शुद्धरूपभी यह चित् इस देहादिकी भावनासे मलिनताको प्राप्तहुई और विकल्परहित विकल्पोंसे पूर्ण, चित्रूप होकेभी जडकेसमान भासमान सर्वगामिनीभी असर्वगामिनीके तुल्य भासती है ॥ २० ॥

निर्विकल्पापरासूक्ष्माचिच्चिनोतिस्वसंविदम् ॥ वातावातांगमर्मादियथायंत्रादिवेष्टने ॥ २१ ॥ रूपालोकमनस्कारावलिताचिदबोधतः ॥ बोधतश्चैवभवतिनिद्रांसदसतीयतः ॥ २२ ॥ सापैरेवचिदत्यच्छचिंतामायातिचेतनात् ॥ साधुरेवयथासाधुर्भावितेदुर्जनैषणाः ॥ २३ ॥ मलेनस्वर्णमायातिताम्रतांमलमार्जनात् ॥ पुनःकनकतामेतियथाचित्परमातथा ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्विकल्प अर्थात् विशेष अभिमान आदिके स्पर्शसे शून्य, सबसे परीभूत, सूक्ष्म, और सर्वव्यापिनी यह चित् प्राण जिसमें प्रधान है ऐसे लिंगशरीरमें प्रतिबिंबभावसे अनुगत होतीहुई हस्तपादादि, अंगोंमें हृदयआदि मर्मस्थानोंमें तथा बहत्तर (७२) सहस्र नाडियोंमेंभी व्याप्त होके अपनी सर्वव्यापिनी संवित्को उतने शरीरमात्रमें ऐसे संचय करती है जैसे रेशमआदि सूत्र यंत्रादिके वेष्टन (पेच करील आदि) में अपनेको संकुचित करके बदर (बेर) आदिका आकार धारण करताहै ॥ २१ ॥ इसीसे जाग्रत्पुरुषको विवाह्यदेशमें रूप रसआदि विषयोंके आलोकनोंसे और अंतःकरणमें उनके मननआदि व्यापारोंसे आवृत चित् बोधपक्षमें होती है, और निद्रामें प्राप्त होते पुरुषको तो स्वप्नमें वा समयरूपादिके आलोकन तथा मननआदिसे आवृत होतीहुई अंतःकरणमें बोधसे और बाहर अबोधसे होती है, और सुषुप्तिमें अज्ञानमात्रकी साक्षी होनेसे सत्भी अज्ञानपक्षमें असत्के समान भान होती है ॥ २२ ॥ वह अतिस्वच्छभी ब्रह्म चित् देहआदिमें आत्माकी भावनासे देहादिके अनुकूलकी प्राप्ति और प्रतिकूलके परिहारकी चिंताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे साधुमेंभी दुर्जनकी संगतिसे चिरकालतक दुष्टोंकी इच्छा चित्तमें धारण करनेसे असाधु होजाता है ॥ २३ ॥ और जैसे मलसे सुवर्ण ताम्रताको प्राप्त होताहै और पुनः मलके मार्जनसे शुद्धसुवर्णभावको प्राप्त होताहै ऐसेही परमचित्भी मलके मार्जनसे शुद्धताको प्राप्त होती है ॥ २४ ॥

स्वारोपशांत्यास्वादर्शोयथैतिप्रतिमास्थितिम् ॥ तथासर्गमिवागम्यबोधात्स्वंयातितत्पदम् ॥ २५ ॥ अभाववेदनादस्याःसंसारःसंप्रवर्तते ॥ स्वभाववेदनादेषत्वसदेवोपशाम्यति ॥ २६ ॥ यदाचित्वाच्चिनोत्यंतरन्यतामसतींतदा ॥ अहंतामिवसंप्राप्यनश्यतीवाप्यनाशिनी ॥ २७ ॥ ईषत्स्पंदादधोयातिभृगुप्रांतात्तरोःफलम् ॥ यथातथैवसंवित्तेरधःपातोमहानिव ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे उत्तम दर्पण अपनेमें आरोपित मलके मार्जनसे पुनः प्रतिबिंबके ग्रहण करने योग्य स्थितिको प्राप्त होताहै ऐसेही स्वच्छ ब्रह्म चित्भी जडजीव आदि सृष्टिको प्राप्त होकेभी ज्ञानसे पुनः कैवल्यपदको प्राप्त होतीहै ॥ २५ ॥ इस चित्के अभावके ज्ञानसे संसार प्रवृत्त होताहै और इसके जाननेसे असत् यह संसार शांत होजाताहै ॥ २६ ॥ हे मुने ! जिससमय शुद्ध चेतनसे जीव जगत्का भेद संचय करती है उससमय अहंताको प्राप्त होकर अविनाशिनीभी नाशवाली भान होती है ॥ २७ ॥ जैसे पर्वतके तटके ऊपरका फल किंचित् संचलनसेभी नीचे जाताहै ऐसेही अपने शुद्धस्वरूपसे किंचित् संचलनसे चित्का महान् अधःपात होताहै ॥ २८ ॥

रूपादीनांतुसत्तैषाचितएवामलैवचित् ॥ द्वित्वैकत्वेत्वबोधोत्थेबोधेनविलयंगते ॥ २९ ॥ सत्तामात्रेणचित्तस्यबोधश्चित्तेंद्रियादिषु ॥ आलोकसत्तामात्रेणव्यवहारःक्रियास्विव ॥ ३० ॥ वातात्कनीनिकास्पंदस्तद्दीप्तिर्दृष्टिरुच्यते ॥ तद्वाह्यवतितदूपरूपबोधस्तुचित्परा ॥ ३१ ॥ त्वङ्मारुतौजडौतुच्छौतत्संगःस्पर्शउच्यते ॥ मननंस्पर्शसंवित्तिस्तत्संवित्तिस्तुचित्परा ॥ ३२ ॥

अर्थ—और रूपआदिकी जो यह सत्ता है वह केवल निर्मल चिन्मात्रही है, और इनमें द्वित्व एकत्व आदि जो हैं वे अज्ञानसे उत्पन्न हैं और ज्ञानसे नष्ट होजातेहैं ॥ २९ ॥ चित्तके साक्षीभूत ब्रह्म (चित्) की सत्तामात्रसे चित्त तथा इन्द्रियआदिमें ज्ञान ऐसे प्राप्त होताहै जैसे प्रकाशकी सत्तामात्रसे क्रियाओंका व्यवहार ॥ ३० ॥ चित्के सन्निधानसे व्यानवायुसे प्रेरित नेत्रकी पुतलियोंमें संचलन उत्पन्न होताहै और उस पुतली (कनीनिका वा तारा) में स्थित जो दीप्ति उसको तेज नेत्र इन्द्रिय कहते हैं, और नालीसे क्षेत्रदेशमें जैसे जल प्राप्त होताहै ऐसेही नेत्र वा दृष्टिसे बाहर घटआदि विषयदेशमें प्रापणीय अंतःकरणसे व्याप्त घट आदिमें उस घटके आकार नीलपीतआदि रूपका, घटका;

और नेत्रकाभी मनके विना जो बोध है उसको पराचित् अर्थात् साक्षी चेतन कहतेहैं ॥ ३१ ॥ ऐसेही त्वगिन्द्रिय और वायु दोनों जड और तुच्छ (मिथ्याकल्पित) हैं अर्थात् स्वयं सत्ताकी स्फुरणसे शून्य हैं इसलिये चित्के संनिधानसे वायु और त्वग्इन्द्रियका संबंध होताहै और स्पर्शनइन्द्रियके कल्पनाके निमित्त होनेसे उसको स्पर्श (त्वगिन्द्रिय) कहतेहैं, उस इन्द्रियके द्वारा शीत, उष्णआदि पदार्थोंमें तदाकार मनकी वृत्ति होती है उसीको स्पर्शन-ज्ञान कहते हैं, उसको और स्पर्शनीयपदार्थ तथा मनसे हीन स्पर्शकाभी जो ज्ञान है उसीको पराचित् कहतेहैं ॥ ३२ ॥

गंधतन्मात्रपवनसंबंधोगंधसंविदः ॥ आसांतुमनसाहीनंवेदनंपरमैवाचित् ॥ ३३ ॥ शब्दतन्मात्रश्रव णवातसंगान्मनोविना ॥ सुषुप्तसदृशीसंवित्परमाचिद्दुदाहृता ॥ ३४ ॥ क्रियोन्मुखत्वंसंकल्पात्संक ल्पोमननक्रमः ॥ मननंचित्तकालुष्यमात्माचिन्निर्मलाभवेत् ॥ ३५ ॥ चित्प्रकाशात्मिकानित्यास्वात्म न्येवावसंस्थिता ॥ इदमंतर्जगद्धत्तेसन्निवेशंयथाशिला ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसीरीतिसे घ्राणइन्द्रिय और गन्धरूपसे विभक्त गन्ध तन्मात्राका नासिकासे प्रविष्ट पवनसे किया-हुआ जो सम्बन्ध है उसको गन्धका अनुभव कहतेहैं, उसका तथा गंधाकार अंतःकरणकी वृत्तियोंका जो ज्ञान है वही परा साक्षी चेतन है ॥ ३३ ॥ और इसीप्रकार शब्दतन्मात्ररूप श्रवणइन्द्रियके तथा व्यानवायुके संगसे उत्पन्न जो मनकी वृत्ति हैं उनको शब्दज्ञान कहते हैं, उन वृत्तियोंका और शब्दका अर्थात् मनको छोडके त्रिपुटीका जो बोध है उसको सुषुप्तिके तुल्य निर्विकार होनेसे साक्षी परमचित् कहतेहैं ॥ ३४ ॥ और चित्के संनिधानसे संकल्प होताहै उससे क्रियाकी ओर प्रवृत्ति होती है और संकल्परूप मनकी वृत्ति तथा उसकी मलिनताका जो साक्षी है वही निर्मल चिदात्मा है ॥ ३५ ॥ यह नित्यउदयको प्राप्त प्रकाशरूप चित् अपने आत्मामे स्थितहै और जैसे स्फटिकमणिकी शिला अपने अन्तर्गत बन, नदी, पर्वत आदिके प्रतिबिम्बित आकारको धारण करती है ऐसेही यह चित् जगत्को धारण करती है ॥ ३६ ॥

अद्वितीयादधानेदंविकारादिविवर्जितम् ॥ नास्तमेतिनचोदेतिस्पंदतेनोनवर्द्धते ॥ ३७ ॥ संकल्पाज्जीव तामेत्यनिःसंकल्पात्मनात्मना ॥ चिज्जडंनोजडंभावंभावयंतीस्वसंस्थिता ॥ ३८ ॥ रथस्त्वस्याश्चिते र्जीवोजीवस्याहंकृतीरथः ॥ अहंकृतेरथोबुद्धिस्ततोबुद्धेर्मनोरथः ॥ ३९ ॥ मनसस्तुरथःप्राणःप्राणस्या क्षगणोरथः ॥ अक्षौघस्यरथोदेहोदेहस्यस्पंदनोरथः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह अद्वितीय चित् विकारआदिकी रहिततापूर्वक इस जगत्को धारणकरतीहुई न उदित होती है, न अस्त होती है, न किंचित् चलित होती है और बढती है ॥ ३७ ॥ हे मुने ! यह चित् अपनेही संकल्पसेही जीवद-शामें प्राप्त होती है और संकल्पके अभावसे जडजगत्को चित्रूप भावना करतीहुई अपने आत्मामें स्थितहै ॥ ३८ ॥ और इस चित्के लोकान्तरके गमनादिमें रथरूप जीव है, जीवका रथ अहंकार, अहंकारका रथ बुद्धि, बुद्धिका रथ मन ॥ ३९ ॥ मनका रथ प्राण, प्राणका रथ इन्द्रियगण, इन्द्रियगणका रथ यह देह और इस देहका रथ स्पंदन अ-र्थात् कर्मेन्द्रियगण हैं ॥ ४० ॥

स्पंदनंकर्मसंसारेजरामरणपंजरम् ॥ एवंप्रवर्तितंचक्रमिदमादिविभूतिजम् ॥ ४१ ॥ प्रतिभासतएवात्म न्यसत्स्वप्नइवाततः ॥ मनागपिनसत्यात्ममृगतृष्णांबुवत्स्थितम् ॥ ४२ ॥ रथस्त्वत्रस्मृतःप्राणःकल्प नायामुनीश्वर ॥ यत्रप्राणमरुत्तत्रमननंपरितिष्ठति ॥ ४३ ॥ आलोकश्रीःस्थितायत्ररूपंतत्रैवराजते ॥ प्राणोबलीस्थितोयत्रतदेवपरिवेपति ॥ ४४ ॥

अर्थ—और इस संसारमें सब रथोंका भ्रमणही कर्मसाध्यहै, और वृद्धावस्था तथा मरणसे ग्रस्त ये देह जि-समें पंजर है ऐसा यह देह जीवपक्षीका दोलाचक्र (झूला) आदिकारण ईश्वरकी मायारूप विभूतिसे उत्पन्न है ॥४१॥ और यह शरीरआदि जगत् असत्स्वरूपही विशालस्वप्नके तुल्य आत्मासे केवल भासतामात्र है, मृगतृष्णाके जलके समान स्थित यह किंचित्भी सत्यरूप नहीं है ॥ ४२ ॥ हे मुनीश्वर ! इस मानसकल्पनामें मुख्य रथ प्राणही कहा-गयाहै क्योंकि जहां प्राणवायु है वहांही मनका व्यापार होताहै ॥ ४३ ॥ जैसे जहां प्रकाशकी शोभा है वहाँही रूप शोभित है ऐसेही सूत्ररूप सबके धारण तथा चालनमें समर्थ बली प्राण जहां है वही कंपित होताहै ॥ ४४ ॥

यत्प्रयातिवनंवात्यातदेवपरिघूर्णते ॥ मनस्याकाशसंलीनेनप्राणःपरिवेपति ॥ ४५ ॥ तेजस्यसत्तामाया तेनरूपमिवराजते ॥ प्राणेप्रशांतेमरुतिमनोंतर्नमनागपि ॥ ४६ ॥ वात्यायामुपशांतायांरजोनपरिकंपते ॥ यत्रप्राणोमरुद्यातिमनस्तत्रैवतिष्ठति ॥ ४७ ॥ यत्रयत्रानुसरतिरथस्तत्रैवसारथिः ॥ प्राणसंप्रेरितंचित्तं यातिदेशांतरेक्षणात् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे जिस बनमें आंधी जाती है वही कांपताहै, ऐसे जहां प्राण वहांही मन और हृदयाकाशमें मनके लीन होनेपर प्राणभी क्षीणहोजाताहै अर्थात् किंचित् चेष्टा नहीं करता ॥ ४५ ॥ जैसे तेजके अभाव होनेपर रूपकी शोभा नहीं रहती ऐसेही प्राणके शांत होनेपर मन किंचित्भी नहीं रहजाता ॥ ४६ ॥ आंधीके शान्त होजानेपर जैसे धूलि नहीं उडती ऐसेही जहां प्राण नहीं वहां मन किंचित्भी चेष्टा नहीं करताहै. जहां प्राणवायु रहताहै वहांही मन स्थित रहताहै ॥४७॥ जहां २ रथ चलताहै वहीं २ सारथी चलताहै, यही दशा प्राण और मनकी है, प्राणसे प्रेरित चित्त क्षणमेंही देशांतरमें ऐसे चलाजाताहै ॥ ४८ ॥

क्षेपणोन्मुक्तपाषाणइवतत्रान्यथाक्षयि ॥ यत्रपुष्पंतत्रगंधोयत्राग्निस्तत्रसोष्णता ॥ ४९ ॥ यत्रप्राणोमरुद्यातियत्रेंदुस्तत्रतच्छविः ॥ संवित्तिःपवनस्पंदान्नाडीसंस्पर्शनश्वसः ॥ ५० ॥ संवित्तिस्फारताचित्तं मनस्तत्प्राणकोटरे ॥ सर्वत्रविद्यतेसंविद्व्योमस्वच्छाजडाजडे ॥ ५१ ॥ क्षुभ्यंतीवतुसाप्राणस्पंदादित्यनुभूयते ॥ सत्तामात्रस्वरूपेणजडेषुसमवस्थिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे यन्त्रसे फेकाहुआ पाषाण दूरदेशमें चलाजाताहै, जहां पुष्प है वहीं सुगन्ध है, जहां अग्नि वहां उष्णता है ॥ ४९ ॥ ऐसेही जहां प्राणवायु जाताहै वहांही मन, जैसे जहां चन्द्रमा वहां प्रकाश ऐसेही जहां प्राण वहां मनका व्यापार, और इसी प्राणके द्वारा सबनाडियोंमें अन्नरसादिककाभी प्रवेश होताहै इसलिये यह प्राणवायु सबनाडियोंसे स्पर्श करताहै ॥ ५० ॥ और चित्त और मनसहित लिंगशरीरमें जहांपर प्राणका प्रवेश है वहांही अनुभवका स्फुरण होती है, यद्यपि चित् सर्वत्र आकाशके समान स्वच्छ है तथापि जहांपर प्राण है तहांही वह भान होती है ॥ ५१ ॥ क्योंकि जिस शरीरमें प्राणोंकी गति है वहांही इस चेतनका अनुभव होताहै और सत्तासामान्यरूपसे तो जडमेंभी वह स्थितहै ॥ ५२ ॥

प्राणसंबोधितावेत्तिवेदनात्मतयाजडे ॥ नानास्फारसमुल्लासैर्यःपूर्वपरिवल्गति ॥ ५३ ॥ प्राणेतीतेत्वमननःसएवाशुनवेपति ॥ पुर्यष्टकेचित्परमास्वेमुनेप्रतिबिंबति ॥ ५४ ॥ आदर्शएवप्रतिमादृश्यतेनोपलादिषु ॥ मनःपुर्यष्टकंविद्धिसर्वकार्यैककारणम् ॥ तदेवभेदैःकथितमन्यैःस्वाशयकल्पितैः ॥ ५५ ॥ यस्मादुदेतिकलनाकुलदृश्यजालंयत्तत्रचस्थितवदित्यनुभूतमुच्चैः ॥ यस्मान्मनोविपरिवर्ततिदेहदृष्ट्यासर्वंतुतत्परमवस्त्वितिविद्धिविश्वम् ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मनःप्राणैक्यप्रतिपादनं नामैकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—प्राणसे संबोधित होकरके जडदेहमेंभी यह चित् अनुभूत होती है, देखो जो देह प्राणदशामें नानाप्रकारके विलासोंसे शोभित होताथा ॥ ५३ ॥ वही शरीर प्राणके चलेजानेपर मनके व्यापारसे रहित होकर किंचित्भी चलायमान नहीं होता, और हे मुने ! लिंगशरीरमेंही यह चित् प्रतिबिम्बित होती है ॥ ५४ ॥ जैसे दर्पणहीमें प्रतिबिंब देखपडताहै न कि पाषाणादिमें, और लिंग (सूक्ष्म) शरीरमेंही सबकार्य्योंका मूलकारण तुम मनकोही जानो, इसी मनकोही आचार्य्योंने शिष्योंके ज्ञानकेलिये अपने अभिप्रायसे कल्पितबुद्धि चित् आदि भेदोंसे कहाहै ॥ ५५ ॥ हे मुने ! जहांसे यह कल्पनासे व्याप्त सम्पूर्णजगत्समूह उत्पन्न होताहै और जिसमें स्थितहै और अन्तमें उसीमें जायके लय होजाताहै और जिसकी सत्तासे देहदृष्टिसे यह मनही सर्वत्र भ्रमण करताहै इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व परब्रह्मरूपही है यह वार्ता ज्ञानीमहात्माओंको पूर्णरीतिसे अनुभूत है ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे मनःप्राणैक्यप्रतिपादनं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

जिसप्रकार यह चित् सूक्ष्मशरीरमें प्राप्त होकर देहादिको चेष्टित करती है और देहांतरमें प्राप्त होती है वह संपूर्ण इस ३२ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ मुनेशृणुकथंकार्यकारिणीस्पंदशालिनी ॥ चरंतीचतनुंपुंसामुपैतिपरमाभिधाम् ॥१॥ प्राक्तनैस्तैर्निहत्येवस्वमनोमननेहितैः ॥ कर्मत्रातैर्विचित्रैर्हेःपरिपीवरतांगतैः ॥ २ ॥ मनस्तयागताशक्तिःसज्जडेवागताचितेः ॥ सास्फुरत्यनयाब्रह्मन्नुचिताशक्तिभूतया ॥ ३ ॥ अस्याःप्रसादादिहसाचित्कलंकवतीमुने ॥ जगद्गंधर्वनगरंकरोतिनकरोतिच ॥ ४ ॥

अर्थ—ईश्वर बोले–हे मुने ! किसप्रकार ऐहिक तथा पारलौकिक कर्मको करनेवाली और उन कर्मोंके अनुकूल अनेकप्रकारके देहोंमें गमनकरनेवाली यह चित् स्नान करती है, भोजन करती है, यजन करती है, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवदत्त, यज्ञदत्त इत्यादि शब्दयोग्यताको प्राप्त होती है वह सब मैं तुमसे कहताहुं सुनो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अनादि मायारूप ब्रह्मकी शक्ति अपनी आवरणशक्तिसे निज आश्रयभूत ब्रह्मकोही भान होनेके योग्य प्राप्त करके अनादिकालसे संचित अनेकप्रकारके वासनाओंसे युक्त मन, वाणी और शरीरकी चेष्टारूप कर्मके समूहोंसे मनरूपमें परिणत अधिष्ठान चेतनकी सत्तासे सद्रूप होतीहुईभी जडके समान इस देहमें स्फुरित होती है ॥२॥ ३ ॥ हे मुने ! इसी मायाके प्रभावसेही इस ब्रह्मांडमें यह चित् कलंकयुक्त होती है और जगत्रूप गंधर्वनगर करती है और नहींभी करती है ॥ ४ ॥

चित्ताद्यसत्तयादेहोमूकस्तिष्ठतिकुड्यवत् ॥ तत्सत्तयाप्रस्फुरतिनभःसंप्रेरिताश्मवत् ॥ ५ ॥ यथास्फुरत्यतिजडमयोयस्कांतसन्निधौ ॥ तथास्फुरतिजीवोयंसतिसर्वगतेपरे ॥ ६ ॥ सर्वस्थयात्मशक्त्यैवजीवएषस्फुरत्यलम् ॥ मुकुरोबिंबमादत्तेद्रव्यात्मन्यस्थितादपि ॥ ७ ॥ प्रविस्मृतस्वभावत्वाज्जीवोयंजडतांगतः ॥ मोहाद्विस्मृतभावत्वाच्छूद्रतामिवसद्विजः ॥ ८ ॥

अर्थ—चित्त आदिके अभावसे यह देह काष्ठ कुड्यके समान मूक जडके समान स्थित, और चित्त आदिकी सत्तासे ऐसे स्फुरित होती है जैसे आकाशसें प्रेरित पाषाण ॥ ५ ॥ जैसे यस्कांतमणिके सन्निधानसे जडभी लोहा संचलित होताहै ऐसेही सर्वव्यापी परमात्माके रहते यह जीव स्फुरित होताहै ॥ ६ ॥ सर्वत्र स्थित आत्मशक्तिसेही यह जीव स्फुरित होताहै क्योंकि दर्पण द्रव्यस्वभावमें न स्थित गुण जाति आदिसे प्रतिबिंब ग्रहण करताहै ॥ ७ ॥ यह जीव अपने शुद्धचित्स्वरूपको विस्मृत होके जडताको प्राप्त हुआहै, जैसे ब्राह्मण मद्यपान आदिसे अपने स्वभावको विस्मृत होके शूद्रताको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

प्रविस्मृतस्वभावाहिचिच्चितत्वमुपागता ॥ मोहापहतचित्तत्वात्सुमहानिवदीनताम् ॥ ९ ॥ जडयावशयादेहोवातशक्तिसमानया ॥ संचाल्यतेतदनयावारीववीचिमालया ॥ १० ॥ कर्मात्मनावराकेणजीवेन मनसामुना ॥ चाल्यंतेदेहयंत्राणिपाषाणाइववायुना ॥ ११ ॥ शरीरशकटानांहिकर्षणेपरमात्मना ॥ मनःप्राणोदयौब्रह्मन्कृतौकर्मकृतौदृढौ ॥ १२ ॥

अर्थ—मोहसे अपने शुद्धभावको विस्मृत होके यह चित् चित्तके धर्म मलिनता तथा जडताधर्मको ऐसे प्राप्त हुई है जैसे मोहसे महान् (गाधि हरिश्चंद्र आदि) दीनताको प्राप्तहो ॥ ९ ॥ प्राणके साथ अभिन्नताको प्राप्त जडीभूत इस चित्की शक्तिसे यह देह ऐसे संचालित होताहै जैसे तरंगोंकी मालासे जल ॥ १० ॥ और पूर्वोक्तरीतिसे कर्मस्वभावको प्राप्त और मनकी शक्तिसहित इस जीवसे ये देहरूप यंत्र ऐसे एकदेशसे अन्यदेशमें प्राप्त कियेजातेहैं जैसे पालके द्वारा नौकाके पाषाण ॥ ११ ॥ शरीररूप गाडियोंको खींचनेके अर्थ मन और प्राणरूप दो बलीवर्द परमात्माने उत्पन्न किये हैं ॥ १२ ॥

चिज्जडंतूररीकृत्यरूपंजीवत्वमेत्यच ॥ मनोरथमुपारुह्यवहत्प्राणतुरंगमम् ॥ १३ ॥ क्वचिज्जातपदार्थत्वंक्वचिन्नष्टपदार्थताम् ॥ क्वचिद्बहुपदार्थत्वंक्वचिदेकपदार्थताम् ॥ १४ ॥ गतेवभिन्नेवास्त्येवमत्यजंती निजंपदम् ॥ जलतेवतरंगत्वंसैवासदसदोदिता ॥ १५ ॥ उपजीव्यात्मनोरूपंपरंस्फुरतिवृत्तिषु ॥ आलोकमुपजीव्येमंरूपश्रीर्दृश्यगायथा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मुने ! यह चित् जडजीवरूपको स्वीकार करके प्राणरूप घोडे जिसको खींचतेहैं ऐसे मनरूप रथपर चढके ॥ १३ ॥ कहीं जाग्रत् और स्वप्नके प्रकट पदार्थरूपताको, कहीं सुषुप्तिके सबपदार्थोंके तिरोभावरूपताको, कहीं अनेक और कही एक पदार्थरूपताको प्राप्त ॥ १४ ॥ तथा भिन्नके समान भान होतीहुई अपने पारमार्थिकरूपको न त्यागती हुई ऐसे स्थितहै जैसे जलमें तरंगता, और तत्वदृष्टिसे जाग्रतमें और व्यवहारके दृष्टिसे स्वप्नमेंके समान असत्रूपसे किंचित् विकसित है ॥ १५ ॥ यह चित् मनकी वृत्तियोंमें प्रतिफलित आत्मा चेतनका आश्रय लेके जीव जगत्भावसे ऐसे प्रसिद्ध होती है जैसे प्रकाशका आश्रय लेके रूपकी शोभा दृश्यताको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

परमात्मनिचित्त्वेस्थितेसतिनिरामये ॥ जीवोजीवतिसालोकंदीपेसतिगृहंयथा ॥ १७ ॥ आधयोव्याधयश्चैवप्रयांत्यस्यप्रपीनताम् ॥ अपामिवतरंगत्वंवीचित्वस्येवफेनता ॥ १८ ॥ आधिव्याधिभिराकीर्णशरीरांभोजषट्पदः ॥ जीवोवैषम्यमायातितरंगत्वेयथापयः ॥ १९ ॥ चिच्छक्तिःसर्वशक्तित्वान्नाहंचिदितिभावनात् ॥ अन्नसैवेतिवैवश्यंसूर्योदीप्तैरिवांबुदैः ॥ २० ॥

अर्थ—विकाररहित शुद्धचित्रूप परमात्माके स्थित रहतेही जीव अपने स्वरूपको ऐसे धारणकरताहै जैसे दीप रहते प्रकाशसहित सत्ताको गृह ॥ १७ ॥ और अज्ञदशामें इस जीवकी आधि और व्याधि इसको ऐसी स्थूलताको प्राप्त होती है जैसे जलकी तरंगता और तरंगका फेनता ॥ १८ ॥ आधिव्याधिसे पूर्ण शरीर कमलका भ्रमररूप यह जीव दीनतादुःखादिरूप विषमताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे तरंगदशामें जल ॥ १९ ॥ यह चित्शक्ति सर्वशक्तियुक्त होनेके कारण मैं चित् नहीं हुं इस भावनासे तिरोभाव मलिनता आदि विवशताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे अपनेहीसे प्रकाशित मेघोंसे सूर्य्य ॥ २० ॥

वैवश्याच्चयवतीमौढ्यान्नविंदत्यात्मसंविदम् ॥ घनजाड्यपराभूतःस्वांगावदलनंयथा ॥ २१ ॥ प्राप्यचाप्यनुसंधानमस्यामोहोविनश्यति ॥ घनमोहरतोजंतुःस्वकार्यस्मरणंयथा ॥ २२ ॥ यदांगसंविदांवातस्पंदशक्तिःप्रमोषतः ॥ नकरोत्यनुसंधानंकुष्ठीस्पंदेषणंयथा ॥ २३ ॥ असंवित्स्पंदतोदेहेपद्मपत्रंहृदिस्थितम् ॥ नस्फुरत्यपरामृष्टंदारुपात्रंयथाबहिः ॥ २४ ॥

अर्थ—मलिनता आदि विषमतासे ज्ञानके अयोग्य योनियोंमें गिरतीहुई यह चित्शक्ति अधिक मूढतासे अपने स्वरूपको ऐसे नहीं जानती जैसे मदिरासे घनीभूत मोहमें निरत जीव अपने अंगके छेदनको ॥ २१ ॥ और इस चित्का मोह ज्ञान प्राप्त होनेसे ऐसे नष्ट होजाता है जैसे काल पाके मदसे उन्मत्त प्राणी मदके नष्ट होनेसे अपने कार्यके स्मरणको ॥ २२ ॥ जबकी प्राणकी शक्ति नखसे लेके शिखापर्य्यंत लिंगशरीरके द्वारा प्रविष्ट जीवसंविदोंकी हृदयमें लिंगशरीरके उपसंहारके निमित्तसे हस्त पाद आदिका अनुसंधान ऐसे नहीं जैसे कुष्ठी गलित आदिके संचालनकी इच्छाको ॥ २३ ॥ उससमय प्राणके स्पंदन होनेसे हृदयमें स्थित और वायुके आघातसे रहित कमलपत्र ऐसे नहीं संचलित होता जैसे बाहर स्थित काष्ठका पात्र ॥ २४ ॥

निःस्पंदेपद्मपत्रेंतःप्राणाःशांतिंप्रयांत्यमी ॥ तालवृंतेयथाऽस्पंदेबहिःपवनशक्तयः ॥ २५ ॥ प्राणेशांतेतरस्पर्शेजीवोनिष्पूर्णमूकताम् ॥ यातिशांतेनभोवायौनदृश्यत्वंयथारजः ॥ २६ ॥ विरजंविगताधारंमनोहिशिष्यतेमुने ॥ तिष्ठत्यात्मपदंलब्ध्वाजलादितरुबीजवत् ॥ २७ ॥ इतिवैकल्यमायातैःकारणौघैःसंततः ॥ पुर्यष्टकेशमंयातेदेहःपततिनिश्चलः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस हृदयमें स्थित कमलपत्रके शांत होनेसे सबप्राणभी ऐसे शांत होजातेहैं जैसे तालपत्र (पंखे) के बंद होनेसे बाहर पनवकी शक्ति शांत होजाती है ॥ २५ ॥ अन्यस्पर्श जिसका शांतहै ऐसे प्राणके होनेपर अर्थात् गतिरहित होनेपर नामरूप दोनो उपाधिके विलयसे सर्वथा पूर्ण और मूकता अर्थात् कारणरूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे आकाशमें वायुके शांत होनेपर धूलि अदृश्यताको प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ हे मुने ! रजोगुणाप्रधान प्राणके शांत होनेपर रजोगुणशून्य, तथा प्राणरूप आधारशून्य मन केवल कारणरूपसे शेष रहताहै और आत्मपदको प्राप्त होके ऐसे स्थित हरताहै जैसे जलादिको प्राप्त करके वृक्ष बीजादि ॥ २७ ॥ इसप्रकार कारणके समूहोंके कैवल्यरूप प्राप्त होनेपर और पूर्य्यष्टक (लिंगदेह) के शांत होनेपर निश्चल होके यह देह गिरजाताहै ॥ २८ ॥

चित्तेत्यचेतनान्मोहात्स्पंदमायांतिवासनाः ॥ तदीरितास्मरत्यंतरन्यद्विस्मरतिस्वयम् ॥ २९ ॥ हृत्पद्मपत्रस्फुरणात्स्फुटंपुर्यष्टकंभवेत् ॥ हृत्पद्मयंत्रेवहनाद्धुद्धेपुर्यष्टकंक्षयि ॥३०॥ देहेपुर्यष्टकंयावदस्तितावत्सजीवति ॥ शांतेपुर्यष्टकेदेहोमृतइत्युच्यतेद्विज ॥ ३१ ॥ विरुद्धमलसंबोधाच्छेदभेददशावशात् ॥ नप्रस्फुरतिहृत्पद्मयंत्रमभ्यंतरेयदा ॥ ३२ ॥

अर्थ—चित्तके विषयकी ओर चेतनसे स्वरूपका अज्ञान होताहै और उससे वासना स्फुरित होती हैं, और उन सब वासनाओंसे प्रेरित चित् हृदयस्थकमलके सिंचनसे पूर्वकालके भोक्तृ भावादिको स्मरण करती है, और अन्य सब अपने अपरिच्छिन्न शुद्धरूपादिको विस्मृत होजाती है ॥ २९ ॥ और हृदयकमलके स्फुरणसे पुर्य्यष्टक (पंचभूत १ अंतःकरण २ पंचप्राण ३ ज्ञानेन्द्रिय ४ कर्मेन्द्रिय ५ अविद्या ६ काम ७ और कर्मरूप लिंगदेह ८) भी स्पष्टरीतिसे प्रकाशित होताहै और हृदयस्थकमलके प्रवाहके रोकनेसे लिंग वा स्थूलदेहकाभी नाश होताहै ॥ ३० ॥ और जबतक पुर्य्यष्टक (अंतःकरण कर्मज्ञानेन्द्रियादि लिंग वा सूक्ष्मदेह) है तभीतक यह स्थूलदेहभी रहताहै, और लिंगदेहके शांत होनेपर यह स्थूलदेह मृतक कहाजाताहै ॥ ३१ ॥ वात, पित्त, कफ तथा राग, द्वेष आदि मलके कोपसे और शस्त्रअस्त्रके द्वारा देहके छेदभेदसे जब हृदयस्थकमल नहीं स्फुरित होता ॥ ३२ ॥

तदापुर्यष्टकंशांतिमुपैतिगगनेशनैः ॥ संरोधितेवातयंत्रेयथापवनसंततिः ॥ ३३ ॥ स्वसंवित्तिवशाज्जीवोवैवश्यमुपगच्छति ॥ पद्मयंत्रंशरीरस्थंप्रवाहंयातिनित्यदा ॥ ३४ ॥ वासनाविमलायेषांहृदयान्नापसर्प

ति ॥ स्थिरैकरूपजीवास्तेजीवन्मुक्ताश्चिरायुषः ॥ ३५ ॥ संरुद्धेपद्मयंत्रेहिप्राणेशांतिमुपागते ॥ देहः पतत्यधैर्योयंकाष्ठलोष्टसमःक्षितौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—उससमय धीरे २ लिंगशरीर शांत ऐसे होजाताहै जैसे बाहर पंखे आदिके रोकनेसे वायुका संचार ॥ ३३ ॥ जब नित्यहृदयस्थकमल चलतारहताहै उससमय अपने संकल्पआदिके कारणसे यह जीव जन्म-मरणआदि विवशताको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ और जिन जीवोंके हृदयसे विमल वासना नहीं जाती वे जीव स्थिर, एकरूप, चिरजीवी, और जीवन्मुक्त हैं ॥ ३५ ॥ कमलयंत्रके रोकनेपर और प्राणके शांत होनेपर भूमिपर अधीर यह देह काष्ठपाषाणके समान गिरजाताहै ॥ ३६ ॥

यथैवव्योममरुतिलीनंपुर्यष्टकंभवेत् ॥ तथैवतत्रैवतदालयमेतिमनोमुने ॥ ३७ ॥ सुचिराभ्यस्तभावंतु वासनाखचितंमनः ॥ यत्रतत्रभ्रमत्स्वर्गनरकादिप्रपश्यति ॥ ३८ ॥ शरीरंशवतामेतिमनोमारुतवर्जितम् ॥ गतेगृहजनेदूरंगृहंसंशून्यतामिव ॥ ३९ ॥ सर्वगाचिच्चेतनतोजीवीभूयमनःस्थिता ॥ पुर्यष्टकवपुर्भूत्वासातिवाहिकदेहिनी ॥ ४० ॥

अर्थ—हे मुने! जैसे प्राणवायुमें लिंगशरीर लीन होताहै ऐसेही उसी स्थानमें (हृदयस्थित प्राणमें) उसीसमयमें मनभी लीन होताहै ॥ ३७ ॥ और हे मुने! अनादिकालसे अभ्यस्त हैं उन २ भोगोंके भोग्य शरीर आदि भाव जिसमें ऐसा तथा वासनाओंसे जडित यह मन जहां तहां भ्रमण करताहुआ स्वर्ग नरक आदि देखताहै ॥ ३८ ॥ हे मुने! मन तथा प्राणवायुसे वर्जित यह देह मृतकतादशाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे गृहके मनुष्योंके दूर चलेजानेपर गृह शून्यताको ॥ ३९ ॥ सर्वगामिनी यही ब्रह्मचित् अपनी इच्छासे "अनेन जीवेन आत्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" इति श्रुतेः (इस जीवरूप आत्मासे जगत्में प्रवेश करके नामरूपका विवेचन मैं करूं) जीवरूप धारण करके मन तथा लिंगशरीर ऐसे स्थितहै, और इसी मनसहित लिंगशरीरसे लोकांतरमें गमनागमन करती है ॥ ४० ॥

तन्मात्रपंचकंचित्तंक्रोडीकृत्यव्यवस्थिता ॥ स्वप्नभ्रमवदाकारंभावात्स्थूलंप्रपश्यति ॥ ४१ ॥ दृढभावनयापश्चात्तत्रैवरसशालिनी ॥ आतिवाहिकदेहत्वंविस्मरत्यखिलंक्षणात् ॥ ४२ ॥ असत्येवशरीरेस्मिन्कृतकृत्रिमभावना ॥ नयत्यसत्यंसत्यत्वंसत्यंचासत्यतामपि ॥ ४३ ॥ सर्वगाहिचिदंशेनजीवीभूयाभवन्मनः ॥ मनःपुर्यष्टकरथमाक्रामतिततोजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और पंच सूक्ष्मभूतोंका संघात चित्त जो कि लिंगदेहसे गमनागमनमें समर्थ है उस रूपको अंगीकार करके व्यवस्थितहै, और स्वप्न तथा भ्रमकेतुल्य आकारवाले स्थूलदेहको देखती है ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् दृढभावनासे इसी स्थूलदेहमें अहंकार करती है और क्षणमेंही सूक्ष्मदेहके संपूर्णभावोंको विस्मृत होजाती है ॥ ४२ ॥ इस असत् स्थूलदेहमें कृत्रिमभावना करनेवाली चित् असत्यजगत्को सत्य और सत्यब्रह्मको असत्यके समान प्राप्त करती है ॥ ४३ ॥ और यह सर्वगामिनी चित् बुद्धिमें प्रतिबिंबित चिदंशसे जीव होके मनदशाको प्राप्त होती हैं और मन पुर्य्यष्टक (सूक्ष्मदेह) रूप रथपर चढके अनंतर जगत्में भ्रमण करताहै ॥४४॥

पुर्यष्टकंवातमयंदेहमुत्थापयत्यलम् ॥ हृत्स्पंदिवेतालइवजीवतीत्युच्यतेतदा ॥ ४५ ॥ क्षीणेपुर्यष्टकेचित्तंयदाव्योमनिलीयते ॥ तदास्फुरतिदेहोयंमृतइत्युच्यतेपिच ॥ ४६ ॥ स्वभाववशतोजीवोविस्मृत्याशक्तिमृच्छति ॥ वैवश्यात्कालवशतःपर्णजर्जरतामिव ॥ ४७ ॥ जीवशक्त्यापरामुष्टेनिरुद्धेपद्मयंत्रके ॥ प्राणेसंरोधमायातेम्रियतेमानवोमुने ॥ ४८ ॥

अर्थ—जब सूत्रभूत प्राणमय लिंगशरीर इस स्थूलदेहको पूर्णरीतिसे उठाताहै उससमयमें हृदयमें प्रवेश करके शरीरको संचलित करनेवाला वेताल जिसमें हैं ऐसे मृतकशरीरमें जैसे जीता है यह व्यवहार होताहै ऐसेही इसकोभी मनुष्य जीता है ऐसा कहते हैं ॥ ४५ ॥ और जब लिंगदेह क्षीण होजाताहै तब हृदयस्थ आकाश है उपाधि जिसकी ऐसे ब्रह्ममें चित्तलीन होजाताहै उससमय काष्ठ पाषाण आदिके समान इस देहको मृतक कहतेहैं ॥ ४६ ॥ और नियतिके स्वभावसे यह जीव जरामरणरहित अपनी शुद्धब्रह्मरूपताको भूलकर कालके वश तथा दुःखके कारणसे वृद्धदेहकी अशक्तिको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे पत्र प्राचीनताको ॥ ४७ ॥ हे मुने! पूर्वोक्त जीवसंबंधिनी स्मृति (स्मरण) शक्तिसे स्पृष्ट न होनेसे हृदयस्थकमलके रुकनेपर और प्राणकी गतिके निवृत्त होनेपर यह मनुष्य मृतक होताहै ॥ ४८ ॥

यथाजातानिजातानिचान्यान्यन्यानिकालतः ॥ वृक्षात्पर्णानिशीर्यंतेशरीराणितथानृणाम् ॥ ४९ ॥ जायंतेचम्रियंतेचशरीराणिशरीरिणाम् ॥ पादपानांचपर्णानिकातत्रपरिदेवना ॥ ५० ॥ चिदंबुधौस्फुरंत्येता

देहबुद्बुदपंक्तयः ॥ इतश्चान्याइतश्चान्याएतास्वास्थानधीमतः ॥ ५१ ॥ सर्वगापिचिदेतस्मिंश्चेतसि प्रतिबिंबति ॥ पदार्थमंतरादत्तेनान्योहिमुकुराद्दते ॥ ५२ ॥ चिदमलनभसिप्रयत्नरूपाःपरिविततेतद तन्मयाःस्फुरंति ॥ कलकलमुखराःस्फुटाभिरामाविविधशरीरविमोहतापनाय ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे देहपातविचारो नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे उत्पन्न हो २ कर काल पाके वृक्षसे पत्ते गिरिजातेहैं ऐसेही मनुष्योंके शरीरभी हो २ कर नष्ट होजातेहैं ॥ ४९ ॥ जीवोंके शरीर और वृक्षोंके पते उत्पन्नहोतेहैं और पुनः नष्ट होतेहैं इसमें शोक क्या करना ॥ ५० ॥ इधर अन्य और उधर अन्य ये देहरूप बुद्बुदोंकी पंक्ति चित्‌रूप समुद्रमें स्फुरित होती हैं इनमें बुद्धिमानको सत्य विश्वास नहीं करनाचाहिये ॥ ५१ ॥ सर्वव्यापिनीभी यह चित् इसी चित्तमेंही प्रतिबिंबित होती है क्योंकि दर्पणके सिवाय पदार्थोंके प्रतिबिंबोंको अपनेभीतर अन्य कौन धारणकरसकता है ॥ ५२ ॥ हे मुने ! पूर्वकालके संचित शुभअशुभ प्रयत्नों (कर्मों) के परिणामरूप, अतः एक सुखदुःखके भोगोंमें हास्यरोदनादि कलकल शब्द-युक्त, और विना विचारे रमणीय चिन्मय अर्थात् जीव जगत्‌रूप कल्पना यें चारोओरसे पूर्ण तथा निर्मल चिदाकाशमें विविधिप्रकारके शरीरोंसे आत्माके मोह तथा संतापकेलिये स्फुरित होती हैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे देहपातविचारोनाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

मोहके संकल्पसे कल्पित जीव और जगत्‌के भेद जिसप्रकार विचारमें संभव न हों (मिथ्याभास) वैसात-कोंसे इस ३३ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ चंद्रार्धशेखरधरचित्तत्त्वस्यमहात्मनः ॥ अनंतस्यैकरूपस्यद्वित्वंकथमुपाग तम् ॥ १ ॥ कथंचतन्महादेवरूढंपर्यायसंकुलम् ॥ भवेद्दुःखोपघातायप्रज्ञयाविनिवारितम् ॥ २ ॥ श्री ईश्वरउवाच ॥ सर्वशक्तिहितब्रह्मसदेकंविद्यतेयदा ॥ तदानिर्मूलएवायंद्वित्वैकत्वकलोदयः ॥ ३ ॥ स तिद्वित्वेकिलैकंस्यात्सत्येकत्वेद्विरूपता ॥ कलेद्वेअपिचिद्रूपेचिद्रूपत्वात्तदप्यसत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले--हे चंद्रशेखर ! महान् अनंत और एकरूप चेतनमें द्वित्व कैसे आया ॥ १ ॥ और हे महादेव ! करोडों बंधनोंसे व्याप्त और चिरकालसे आरूढबंधनका तत्वज्ञानसे निवारण करनेसे दुःखके नाशकेलिये वह चेतन कैसे होताहै ॥ २ ॥ श्रीईश्वरजी बोले—हे मुने ! जब व्यवहारदृष्टिसे ब्रह्म सर्वशक्तियुक्त है और परमार्थ-दृष्टिसे सद्रूपही है तब द्वित्व और एकत्वकी कल्पनाका उदय निर्मूलही है ॥ ३ ॥ क्योंकि द्वित्वके प्रसिद्ध होनेपर एकत्वकी कल्पना होती है और एकत्वके प्रसिद्ध होनेपर अन्य एकत्वसहित द्वित्वकी कल्पना होती है इसलिये द्वित्व एकत्व दोनों चिद्रूप हैं और चिद्रूपसे भिन्न एकत्वधर्मभी असत् है ॥ ४ ॥

एकाभावादभावोत्रएकत्वद्वित्वयोर्द्वयोः ॥ एकंविनानद्वितीयंनद्वितीयंविनैकता ॥ ५ ॥ कार्यकारणयो रेकसारत्वादेकरूपता ॥ फलांतस्यापिबीजादेर्विकारादिहकल्पना ॥ ६ ॥ चित्त्वंचेत्यविकल्पेनस्वयं स्फुरतितन्मयम् ॥ विकारादितदेवांतस्तत्सारत्वान्नभिद्यते ॥ ७ ॥ विकारादिविकल्पोयंततउत्थायव स्तुषु ॥ यातिसार्थकतांनानाकार्यकारणतादिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस ब्रह्ममें एकत्व संख्याके अभावसे द्वित्व और एकत्व दोनों नहीं है, क्योंकि एकत्वकेविना द्वित्व नहीं होसकता और द्वित्वकेविना एकत्व नहीं होसकता ॥ ५ ॥ और कार्यकारणमें कारणही सार होनेसे दोनोंकी एकरूपता है और फलपर्य्यंत बीजादिके विकारसे जो नानात्व है वह केवल विकारसे कल्पनामात्र है ॥ ६ ॥ यह चेतनही विषयरूपके संकल्पसे स्वयं तन्मय होके विकारादिरूपसे स्फुरित होताहै और वह विकार परमार्थमें कार-णरूप होनेसे भिन्न नहीं है ॥ ७ ॥ हे मुने ! उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, अपक्षय और विनाशादि क्षयभाव विकाररूप यह विकल्प सद्वस्तुसे आविर्भूत होके जैसे मृत्तिकासे घट नानाप्रकारके कार्य और कारणतादिरूपसे भोगपर्य्यंत सार्थ-कताको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

तरंगाःसलिलेयेपितेयेशैलस्यतेसमाः ॥ शशशृंगसमःसोपियस्यसत्यःशशांकुरः ॥ ९ ॥ वस्तुबोधोत्र संधत्तेतत्रालंवाग्विकल्पनैः ॥ व्यवच्छेदादिदुश्छेद्यंवचोवाच्यात्किलद्विज ॥ १० ॥ ब्रह्मणःसर्वशक्तित्वंतत्त्वतोनविभिद्यते ॥ तरंगकणकल्लोलजलौघइववारिणः ॥ ११ ॥ पुष्पपल्लवपत्रादिलतायानेतरद्यथा ॥ द्वित्वैकत्वजगत्त्वादित्वंत्वाहंत्वंतथाचितेः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस तत्वज्ञानीके सिद्धांतमें शश (खर्गोस) का परिणाम होकर उत्पन्न व्रीहि जवआदि अंकुरही सत्य ब्रह्मरूपही है उसकेलिये जलके प्रसिद्ध तरंग और पर्वतके शिखरपर मृगतृष्णाकी नदीके तरंग तथा वह पर्वतभी शशके शृंगके समानही है ॥ ९ ॥ जो इस संसारमें अज्ञानसे सम्पूर्ण पदार्थोंका परस्पर भेद है वह तत्वज्ञानसेही एकताको प्राप्त होताहै इसमें व्यर्थ वाग्जाल अनुचित है क्योंकि अज्ञानके नष्टहुये विना प्रत्यक्ष भ्रमसिद्ध भेदसे सहस्रों युक्तियोंसेभी दुच्छेद्यहै ॥ १० ॥ तत्वदृष्टिसे ब्रह्मकी सर्वशक्तिता अर्थात् सर्वजगदाकार मायिकरूप ब्रह्मसे ऐसे भिन्न नहीं है जैसे तरंगके कण और कल्लोल जलसे ॥ ११ ॥ जैसे पुष्प पल्लवआदि लतासे भिन्न नहीं हैं ऐसेही द्वित्व, एकत्व, जगद्रूपता, त्वत्ता, और अहंताभी चेतनसे भिन्न नहीं है ॥ १२ ॥

देशकालविकारादिःकृतोभेदश्चितस्तुयः ॥ तच्चिदेतदसत्प्रोक्तंनप्रश्नोत्रतवोचितः ॥ १३ ॥ देशकालक्रियासत्तानियत्याद्याश्चशक्तयः ॥ चिदात्मिकाएवचितःसत्वात्संपतिताःस्वतः ॥ १४ ॥ चित्तत्वंचित्तचेत्येहंचिद्ब्रह्माद्यभिधास्मृता ॥ यथावीच्याद्यभिधाहिस्थितमंबुतरंगकम् ॥ १५ ॥ असंभवत्तरंगस्य चिद्विलासमहांबुधेः ॥ तरंगितत्वामिवयत्तत्तावच्चेत्यसंगिता ॥ १६ ॥

अर्थ—देश काल और विकारादिका भेद जो चेतनसे कियागयाहै वह यदि चिद्रूपही है तो चेतनमें द्वित्व कैसे आया यह तुमारा प्रश्न असत् और अनुचित है ॥ १३ ॥ देश काल और क्रियाकी सत्ता और नियतिआदिकी शक्ति यह सब चिद्रूपही हैं क्योंकि चेतनकी सत्ताहीसे इनकी सत्ता प्राप्तहुई है ॥ १४ ॥ चित्त चेत्य (विषय) और उनकी अभिलाषा इत्यादिरूप प्रपंच तथा ब्रह्मासे लेकर स्तंभपर्यंत नामप्रपंचभी ऐसे चिद्रूपहै जैसे तरंग और वीचिआदिरूपमें स्थित जल ॥ १५ ॥ जिसमें तरंगआदि चंचलताका संभव नहीं है ऐसे चिद्विलासरूप महासमुद्रका तरंगता अर्थात् चंचलताके समान जो रूप है वही चेतनका विषयकेसाथ संबन्ध है ॥ १६ ॥

तदेतत्परमंब्रह्मसत्येश्वरशिवादिभिः ॥ शून्यैकपरमात्मादिनामभिःपरिगीयते ॥ १७ ॥ एवंरूपपदातीतंयद्रूपंपरमात्मनः ॥ यत्तुनामाहममलंविषयोनगिरांचतत् ॥ १८ ॥ यदिदंदृश्यतेतस्यास्तल्लतायामहाचितेः ॥ फलपल्लवपुष्पादिनभिन्नंतन्मयंयतः ॥ १९ ॥ महाविद्योपनयनाच्चिद्भवत्यभिधासती ॥ सा जीवत्वेनबाह्यत्वंतदार्द्वींद्विवपश्यति ॥ २० ॥

अर्थ—यही चेतन परब्रह्म, सत्य, ईश्वर, शिव, शून्य, एक और परमात्मादिनामोंसे कहाजाताहै ॥ १७ ॥ और जो नाम और रूपसे परे निर्मल परमात्माका रूप है वह तो बाणी और मनकाभी अविषय है ॥ १८ ॥ और जो यह जगत्का रूप देख पडताहै वह महाचेतनरूप लताका पुष्प फल और पल्लावादि है, जोकि तन्मय होनेसे उससे भिन्न नहीं है ॥ १९ ॥ और यह चित् अनेक वर्णोंमें रंजित महाअविद्यारूप नेत्र जब धारण करती है तब जीवशब्दसे कहीजाती है, और दोचंद्रमाके समान बाह्य जीव और जगत्भावको देखती है ॥ २० ॥

स्वयमन्यैवमस्मीतिभावयित्वास्वभावतः ॥ अन्यतामिवसंयातिस्वविकल्पात्मिकांस्वतः ॥ २१ ॥ अकलंकेनरूपेणरूपंयत्सकलंकवत् ॥ संसारसरितंप्राप्यचेतनेनैवचेतति ॥ २२ ॥ चिद्वपुःस्वयमेतेनह्येकतामेतिजीवताम् ॥ चित्तत्वस्यावभासेनजीवोजीवतितन्मयः ॥ २३ ॥ आतिवाहिकदेहोपिजीवतां समुपागतः ॥ भावनापंचकंभूत्वाद्रव्यमस्मीतिवेत्त्यलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और मैं ब्रह्मसे अन्य हूं ऐसी भावना जीवके स्वभावसे करके अपने संकल्पहीसे अन्यरूपताके समान स्वयं प्राप्त होती है ॥ २१ ॥ यह चित् अपने अकलंकरूपसे स्थितभी लिंगशरीररूप कलंकसहित कल्पितरूपसे संसाररूपी नदीमें प्राप्त होकर उपाधिसाहित चेतनसे चेतती है ॥ २२ ॥ यह चित् इसी सूक्ष्मशरीरसे जीवरूपताको प्राप्त होती है और सूक्ष्मशरीरमें अभेदाध्याससे जीव सूक्ष्मशरीरका रूपही होजाताहै ॥ २३ ॥ और लोकांतरगामी सूक्ष्म शरीरभी जीवरूपताको प्राप्त होकर पांचभौतिक स्थूल देहके संस्कारसे मैं द्रव्य हुं ऐसा अनुभव करता है और इसीसे जब गोधूमादिरूपसे उत्पन्न होताहै ॥ २४ ॥

तद्द्रव्यंप्राणिनाभुक्तमाशुगच्छतिवीर्यताम् ॥ ततोहंप्राणवान्जातोवेत्तीत्यनुभवात्मकम् ॥ २५ ॥ अहंतादिक्रमेणाशुपंचकानुभवभ्रमात ॥ स्थावरंजंगमंसर्वंवेत्तितत्तद्भवत्यलम् ॥ २६ ॥ काकतालीययोगेन

दृढाभ्यासक्षयेणच ॥ वासनांतरसंश्लेषात्सूक्ष्ममाकारमुज्झति ॥ २७ ॥ द्वित्वस्वसंविदाद्वित्वमेकस्ये वप्रवर्तते ॥ पुंसोवेतालसंकल्पाद्वेतालइवभासुरः ॥ २८ ॥

अर्थ—वह द्रव्य प्राणीसे भोजन कियाहुआ शीघ्र बीजदशाको प्राप्त होताहै, उसके अनन्तर माताके गर्भमें जाकरके मैं प्राणवान् स्थूलदेह हूं ऐसा अनुभव करताहै ॥२५॥ अनुभवरूप ब्रह्महीं अहंकार आदि क्रमसे शीघ्र स्थूलदेहके भ्रमसे नेत्रादि इन्द्रियोंके द्वारा सब बाह्य स्थावर और जंगम जगत्को जानताहै, और पुनः उनकी वासनासे आपभी वैसाही होजाताहै ॥ २६ ॥ काकतालीययोगसे (अकस्मात्) दृढ अभ्यासके क्षयसे अन्यवासनाके संबंधसे अपने पूर्वसूक्ष्मआकारको त्यागताहै अर्थात् मच्छरके रूपको त्यागकर कदाचित् हस्तिरूपभी होजाताहै ॥ २७ ॥ जैसे अपने द्वित्वके ज्ञानसे द्वित्वका ज्ञान और प्रेतकी कल्पनासे पुरुषहीमें प्रेतका ज्ञान उत्पन्न होताहै ॥ २८ ॥

अद्वित्ववेदनाद्वित्वमात्मनोपिनिवर्तते ॥ नकरोमीतिसंकल्पात्पुरुषस्येवकर्तृता ॥ २९ ॥ द्वित्वसंकल्पतोद्वित्वमेकस्यैवप्रवर्तते ॥ अद्वित्वसंविदाद्वित्वमनेकस्यापिनश्यति ॥ ३० ॥ परमात्मतयाद्वित्वंनकिलात्मनिविद्यते ॥ अविकारादिमत्त्वेनसर्वगत्वेनसर्वदा ॥ ३१ ॥ यत्स्वसंकल्परचितमसंकल्पक्षयंहि तत् ॥ यथामुनेमनोराज्यंगंधर्वनगरंयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—द्वित्वकी भावना न करनेसे आत्माकाभी द्वित्व ऐसे निवृत्त होताहै जैसे मैं नहीं करता इस संकल्पसे पुरुषकी कर्तृता ॥ २९ ॥ एकही पदार्थमें द्वित्वके संकल्पसे द्वित्व उत्पन्न होताहै और अनेक जगत्मेंभी द्वित्वके ज्ञानके अभावसे द्वित्व नष्ट होजाताहै ॥ ३० ॥ विकारकी रहिततासे और सर्वदा सर्वगामी होनेसे आत्मामें परमात्मारूपसे द्वैतभाव नहीं है ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जो वस्तु अपने संकल्पसे रचित होताहै वह संकल्पके अभावसे नष्टभी होताहै जैसे मनोराज्य और गंधर्वनगर ॥ ३२ ॥

तथासंकल्पनेक्लेशोनसंकल्पविनाशने ॥ संकल्पयक्षोगंधर्वपुर्याःस्रष्टौनतुक्षये ॥ ३३ ॥ पुष्टसंकल्पमात्रेणयदिदंदुःखमागतम् ॥ तदसंकल्पमात्रेणक्षयिकात्रकदर्थना ॥ ३४ ॥ यत्किंचिदपिसंकल्प्यनरोदुःखे निमज्जति ॥ नकिंचिदपिसंकल्प्यसुखमव्ययमश्नुते ॥ ३५ ॥ संकल्पव्यालनिर्मुक्तानयदातवचेतना ॥ नतदानंदनोद्यानेत्वमुच्चैःपरिराजसे ॥ ३६ ॥

अर्थ—मानसप्रयत्नरूप संकल्पकी रचनामें जैसा क्लेश है वैसा संकल्पके नाशमें नहीं है क्योंकि गंधर्वकी नगरीकी रचनाहीमें संकल्परूप यक्ष समर्थ है न कि उसके नाशमें ॥ ३३ ॥ संकल्पकी प्रबलतामात्रसे जो यह जगत्का दुःख प्राप्त है वह संकल्पके अभावमात्रसे नष्ट होताहै उसकेलिये क्लेश क्यों करना ॥ ३४ ॥ कुछभी संकल्प करके मनुष्य दुःखमें डूबताहै और कुछ संकल्प न करनेसे अक्षयसुखको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ संकल्परूपी सर्पसे निर्मुक्त यदि तुमारा चित्त नहीं है तो अत्युत्तम नन्दनबनमें स्थितभी तुम शोभित नहीं हो ॥ ३६ ॥

स्वविवेकानिलैःकृत्वासंकल्पजलदक्षयम् ॥ परांनिर्मलतामेहिशरदीवनभोंतरम् ॥ ३७ ॥ संकल्पसरितंमत्तांमणिमंत्रेणशोषय ॥ तत्रोह्यमानमात्मानंसमाश्वास्यभवामनाः ॥ ३८ ॥ संकल्पानिलनिर्धूतंभ्रांतं पर्णतृणांशवत् ॥ भूताकाशेचिदात्मानमवलंब्यविलोकय ॥ ३९ ॥ स्वसंकल्पनकालुष्यंविनिवार्यात्मनात्मनः ॥ परंप्रसादमासाद्यपरमानंदवान्भव ॥ ४० ॥

अर्थ—अपने विवेकरूपी वायुसे संकल्परूपी मेघका क्षय करनेके परमनिर्मलताको ऐसे प्राप्त हो जैसे शरद्ऋतुमें आकाश ॥ ३७ ॥ प्रबलप्रवाहसे वहतीहुई संकल्परूपी नदीको विवेकरूपी मणि वा मंत्रसे सुखाओ और उसमें वहतेहुये आत्माको धैर्य्य देके तुम मनरहित होजाओ ॥ ३८ ॥ संकल्परूपी वायुसे कंपित पत्र वा तृणके खंडके समान सब जीवोंके हृदयाकाशमें भ्रमण करतेहुये आत्माका अवलम्बन करके उसीको देखो ॥ ३९ ॥ आत्माहीसे अपने आत्माके संकल्परूपी कालुष्यको निवारणकरके परमप्रसन्नताको प्राप्तहोके परमानन्दसे युक्तहो ॥ ४० ॥

सर्वशक्तिमयोह्यात्मायद्यथाभावयत्यलम् ॥ तत्तथापश्यतितदास्वसंकल्पविजृंभितम् ॥ ४१ ॥ संकल्पमात्रमेवेदंजगन्मिथ्यात्वमुत्थितम् ॥ असंकल्पनमात्रेणब्रह्मन्क्कापिविलीयते ॥ ४२ ॥ संकल्पवातवलितंजन्मजालकदंबकम् ॥ असंकल्पानिलस्पर्शाद्विश्राम्यतिपरेपदे ॥ ४३ ॥ तृष्णाकरंजलतिकामिमां रूढिमुपागताम् ॥ संकल्पमूलोद्धरणात्परिशोषवतींकुरु ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! सर्वशक्तिमान् यह आत्मा जब जैसी ब्रह्माकार वा भोग्याकार भावना करताहै उससमय अपने संकल्पके विलाससे शीघ्र वैसाही देखताहै ॥ ४१ ॥ यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्रसे मिथ्या उत्पन्न है और संक-

रूपके अभावमात्रसे न जाने कहां लीन होजाताहै ॥ ४२ ॥ संकल्परूपी वायुसे वेष्टित यह जन्मरूपी समूह असंकल्परूपी वायुके स्पर्शसे परमपदमें विश्रांति पाताहै ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन्! दृढताको प्राप्त इस तृष्णारूपी कंटककी लताको संकल्परूपी मूलके उखाडनेसे शुष्क करो ॥ ४४ ॥

प्रतिभाससमुत्थानंप्रतिभासपरिक्षयम् ॥ यथागंधर्वनगरंतथासंसृतिविभ्रमः ॥ ४५ ॥ प्रभुरस्मीतिविस्मृत्यतावच्छोचतिभूमिपः ॥ भूमिपोस्मीतिसंजातायावन्नास्यहृदिस्मृतिः ॥ ४६ ॥ नास्यतज्जातयाब्रह्मन्प्राक्स्मृतिर्वर्त्तमानया ॥ शरदेवोपगतयाप्रावृड्जाड्यापवारिणी ॥ ४७ ॥ घनप्रवाहायाऽकस्माच्चित्तेहासैववर्द्धते ॥ यएवोच्चैःस्वरस्तंत्र्यास्सएवाक्रामतिश्रुतिम् ॥ ४८ ॥ अहमेकोहमात्मास्मीत्येकांभावयभावनाम् ॥ तयाभावनयायुक्तःसएवत्वंभवस्यलम् ॥ ४९ ॥ एवंह्यसंभवदिदंत्वविरागभास्वत्तत्स्त्वमुत्तमपदंपरमेकदेवः ॥ पूजासुपूजकसुपूजनपूज्यरूपंकिंचिन्नकिंचिदिवचित्तपदैकमूर्तिः ॥ ५०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे द्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—यह संसार अविद्याकामके संकल्पसे उत्पन्नहै और उसके नाशसे नष्टहै इसलिये गंधर्वके नगरके समान इस संसारका भ्रम है ॥ ४५ ॥ मैं प्रभुहूं इसको विस्मरण करके राजा शोच तभीतक करताहै जबतक इसके हृदयमें यह स्मृति नहीं होती कि मैं राजाहूं ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं राजाहूं वा ब्रह्महूं इस स्मृतिसे पूर्वकालकी स्मृति बाधित होनेसे पुनः इसके ज्ञान हरण करनेमें ऐसे नहीं समर्थ होती जैसे शरदृऋतुसे ध्वस्त वर्षाऋतु पुनः मेघजालसे आच्छादन करनेको समर्थ नहीं होती ॥ ४७ ॥ दो चित्तकी चेष्टाओंमेंसे जिसका प्रवाह प्रबल होताहै वही बढती है क्योंकि उच्च और मंद वीणाके शब्दोंमेंसे जो उच्चहै वही सुन पडताहै ॥ ४८ ॥ मैं एक अद्वितीय आत्माहूं ऐसा दृढ निश्चय तुम करो ऐसे निश्चयसे युक्त तुम पूर्णरीतिसे वैसाही होजाओगे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार बाह्यपूजाका विधान तुमारे सदृश पुरुषोंकेलिये असंभवहै क्योंकि वह तुच्छफल चाहनेवालोंकेही लिये प्रकाश है तुमारे लिये तो वही एक अद्वितीय परब्रह्म पूजनीय है जिसकी पूजाओंमें पूजक पूजा षोडशोपचार पूजाकी सामग्री अतितुच्छ है क्योंकि वह सब चित्तमात्रसे कल्पित है ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे द्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस ३४ के सर्गमें सुषुप्तिसंबंधी तुरीय और तुरीयातीत पदका उपदेश करके अंतमें ईश्वरने इसी स्थानपर विश्राम किया यह विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ इत्थंस्थितमिदंविश्वंसदसद्देवरूपिच ॥ द्वैतैक्यपदनिर्मुक्तंयुक्तंद्वैतैक्यमप्यतः ॥ १ ॥ चितेःकलंकवैरूप्यमितिसंसारतांगतम् ॥ अकलंकमसंसारितच्चाभिन्नाद्वयात्मकम् ॥ २ ॥ इयमस्मीतिसंप्राप्तकलंकाचिन्निबध्यते ॥ एतामेवकलांबुद्ध्वास्वकाभिन्नांविमुच्यते ॥ ३ ॥ चिदर्थाकारताभावाद्द्वित्वात्सत्त्वंसमुज्झति ॥ सुखादिमिलितांधत्तेनसत्यांसदितिक्षणात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीईश्वर बोले–इसप्रकार इस पूजासे पूज्यमान यह संसार बाधदृष्टिसे असत् और अधिष्ठानदृष्टिसे तो सत् और देवरूप है, और तत्त्वदृष्टिसे द्वैतता तथा एकतापदसे विनिर्मुक्त, और व्यवहारदृष्टिसे द्वैतता तथा एकतापदसे युक्त है ॥ १ ॥ चेतनके अज्ञानकृत जडतारूप विरूपता इससे संसारिताको प्राप्त है, और अज्ञानसे रहित असंसारिताको प्राप्त है, इसी कल्पनासे अभिन्न अद्वैतरूप है ॥ २ ॥ और देह आदि दृश्य मैं हूं इस कलंकयुक्त होनेसे चित् बंधनमें आती है, और दृश्यरूपताको समर्थ इस चित्कलाको जानकर बंधनसे विनिर्मुक्त होती है ॥ ३ ॥ और पदार्थके आकार भावनाके निमित्तसे द्वैतभावको प्राप्त होकर यह चित् अपने अखंडरूपको विस्मृत होजाती है और देहसुख आदिसे मिलित असत्य अपनी स्थितिको सत्यके समान क्षणमेंही धारण करती है ॥ ४ ॥

शुद्धानिरंशासत्यावासत्यावेत्येवमादिभिः ॥ विमुक्तानामशब्दार्थैःसर्वैःसर्वात्मिकापिखम् ॥ ५ ॥ सर्वंनिरुपमंशांतंमनसैतत्त्रिमार्गगम् ॥ ब्रह्मेदंबृंहितंब्रह्मशक्त्याकाशविकासया ॥ ६ ॥ मनसामनसिच्छिन्ने

स्वेंद्रियावयवात्मनि ॥ सत्यालोकाज्जगज्जालेप्रच्छन्नेविलयंगते ॥ ७ ॥ छिद्यतेशीर्णसंसारकलनाकल्प नात्मिका ॥ भृष्टबीजोपमासत्ताजीवस्यइतिनामिका ॥ ८ ॥

अर्थ—और शुद्धअंशरहित सत्य वा असत्य इत्यादि विकल्पित नामशब्दार्थोंसे विमुक्त, और व्यवहारमें सर्वरूप होनेसेभी यथार्थमें सबसे शून्यस्वभाव है ॥ ५ ॥ यह सब जगत् अनुपम ब्रह्महीं आकाशके तुल्य विकसनशील अपनी मायाशक्तिसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, वा सृष्टि, स्थिति, और संहार, अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिकरूप तीनोंमार्गसे प्रवृत्त मनका विलास है ॥ ६ ॥ अपने इंद्रियरूप मनके मनसे छिन्नभिन्न होनेपर और सत्य परमात्माके साक्षात्कार करनेपर तथा जगत्जालके लीन होनेपर ॥ ७ ॥ भर्जितबीजकेसमान जीव इस नामकी संसारकी कल्पनात्मिका सत्ता नष्ट होजातीहै ॥ ८ ॥

पश्यंतीनामकलितोत्सृजंतीचेत्यचर्वणाम् ॥ मनोमोहाभ्रनिर्मुक्ताशरदाकाशकोशवत् ॥ ९ ॥ शुद्धाचिद्भावमात्रस्थाचेत्यचिन्नापलंगता ॥ समस्तसामान्यवतीभवतीर्णभवार्णवा ॥ १० ॥ अपुनर्भवसौषुप्तपदपांडित्यपीवरी ॥ परमासाद्यविश्रांताविश्रांताविततेपदे ॥ ११ ॥ एतत्तेमनसिक्षीणेप्रथमंकथितंपदम् ॥ द्वितीयंशृणुविप्रेंद्रशक्तेरस्याःसुपावनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और शरदृऋतुके आकाशके कोशके सदृश मनके महामोहसे निर्मुक्त प्रीतिपूर्वक पुनः २ विषयके स्मरणको त्यागती हुई पश्यंतीनाम धारण करती है ॥ ९ ॥ विषयके सम्बंधसे चपलताको प्राप्तभी परन्तु ज्ञानदशामें शुद्धचित् स्वभावमात्रमें स्थित, समस्तजगत्की सामान्यतामात्रसे स्थित, और जीवनदशामेंही संसारके पार यह चित् होजाती है ॥ १० ॥ और पुनर्जन्म न होनेकेलिये सुषुप्तस्थानके निरतिशय आनंदके पांडित्यसे अतिमहती यह महापद्नामिका चित् परमपदको प्राप्त होकर विशालपदमें विश्राम करती है ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! मनके क्षीण होनेपर यह तुमको प्रथम स्थान कहा अब इस चिच्छक्तिका अति पवित्र द्वितीयस्थान सुनो ॥ १२ ॥

एषैवमनसोन्मुक्ताचिच्छक्तिःशांतिशालिनी ॥ सर्वज्योतिस्तमोमुक्तावितताकाशसुंदरी॥१३॥ घनसौषुप्तलेखावच्छिलांतःसन्निवेशवत् ॥ सैंधवांतस्थरसवद्वातांतःस्पंदशक्तिवत् ॥ १४ ॥ कालेनतत्रतत्रैवपरांपरिणतिंयदा ॥ शून्यशक्तिरिवाकाशेपरमाकाशगातदा ॥ १५ ॥ चेत्यांशोन्मुखतांनूनंत्यजत्यंबिवचापलम् ॥ वातलेखेवचलनंपुष्पलेखेवसौरभम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चित्शक्ति मनसे रहित, शांतिसे शोभायमान, सूर्य, चंद्र, अग्नि, वाणी तथा इंद्रियादिरूप सब प्रकाशक पदार्थोंसे विनिर्मुक्त, और अज्ञान तथा उसके कार्यरूप अंधकारोंसेभी वर्जित, विशाल (व्यापक) आकाशके तुल्य सुंदरी ॥१३॥ यह चित् घनीभूत सुषुप्तिसंबंधी रेखाके तुल्य, पाषाणकी शिलाके भीतरकी रचनाके सदृश सैंधव लवणके भीतरके रसके समान और वायुके स्पंदशक्तिके सदृश ॥ १४ ॥ काल पाके जब परमपरिणतिको प्राप्त होती है उससमय आकाशमें विद्यमान शून्यशक्ति परमाकाश चित्रूप ब्रह्माकाशभावको प्राप्तके समान होकर विषयकी अभिमुखताको ऐसे त्यागती है जैसे जल वायुके विना चपलताको, वायु अपने संचलनको, और पुष्पकी रेखा सुगंधको ॥ १५ ॥ १६ ॥

कालताकाशतेत्यक्त्वासकलेसकलाकला ॥ नजडानाजडास्फाराधत्तेसत्तामनामिकाम् ॥१७॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमहासत्तापदंगताम् ॥ तुर्यतुर्यांशकलितामकलंकामनामयाम् ॥ १८ ॥ कांचिदेवविशालाक्षसाक्षिवत्समवस्थिताम् ॥ सर्वतःसर्वदासर्वप्रकाशस्वाद्वतत्पराम् ॥ १९ ॥ एषाद्वितीयापदताकथितातवसुव्रत ॥ तृतीयंशृणुवक्ष्यामिपदंपदविदांवर ॥ २० ॥

अर्थ—क्रिया और वस्तुरूप काल और आकाशरूपताको त्यागकर संपूर्ण दृश्यमात्रको संकल्प न करनेवाली और न जडस्वभाव न अजडस्वभाव होकर वक्ष्यमाणशब्दके अविषय विशालसत्ताको यह चित् धारण करती है ॥१७॥ देश काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न महासत्तापदको प्राप्त जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृतिसे जो तुरीयअंश उससे प्रसिद्ध और विकार तथा कलंकरहित ॥ १८ ॥ कोई अनिर्वचनीय विशालरूपधारी साक्षीके समान स्थित सबओरसे सर्वदा सबकालमें और सबप्रकाशोंसे और संपूर्ण आनंदोंसे पराकाष्ठाको प्राप्त यह चित् इस दशामें होती है ॥ १९ ॥ हे उत्तमव्रतधारी ब्रह्मन् ! यह द्वितीयपदका रूप मैंने तुमसे कहदिया अब तुम तृतीयपदको सुनो ॥ २० ॥

एषादृक्चेत्यवलनादनामार्थापदंगता ॥ ब्रह्मात्मेत्यादिशब्दार्थादतीतोदेतिकेवला ॥ २१ ॥ स्थैर्येणकालतःस्वस्थानिष्कलंकापरात्मना ॥ तुर्यातीतादिनामत्वादपियातिपरंपदम् ॥ २२ ॥ सापरापरमाकाष्ठा

प्रधानंशिवभावतः ॥ चित्येकानिरवच्छेदावृतीयापावनीस्थितिः ॥ २३ ॥ चिरमस्यांप्रतिष्ठायांसर्वाध्वा ध्वगदूरगा ॥ साममाप्यंगवचसांनसमायातिगोचरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्माकार अखंडवृत्तिरूप यह दृष्टि ब्रह्म और आत्मा इत्यादि नाम और अर्थसे परे केवल उदय होती है ॥२१॥ षड्भावविकारोंसे रहित और कालसे स्थिर और तुरीयपदसेभी अतीत होनेसे परमपदको प्राप्त होती है ॥ २२ ॥ सब उत्तम वस्तुओंकी पराकाष्ठा परममंगल होनेसे सब मंगलोंसे प्रधान, एक, निरवच्छिन्न, पवित्र चित्की यह तृतीय स्थिति है ॥ २३ ॥ चिरकालपर्यन्त इस भूमिकामें स्थिति सब शास्त्रोंसे और सब मतानुयायियोंको दुष्प्रापहै. और हे प्रिय! वह मेरेभी वाणीके अविषय है किंतु अनुभवमात्र गम्य है ॥ २४ ॥

त्रिमार्गकलनातीतमितितेकथितंमुने ॥ तिष्ठतस्मिन्पदेनित्यमितिदेवःसनातनः ॥ २५ ॥ एतन्मयमिदंविश्वंमुनेतन्मयवेदनात् ॥ सत्यसंवेदनान्नेदंनचनेदंमुनीश्वर ॥ २६ ॥ नेदंप्रवर्ततेकिंचिन्नेदंकिंचिन्निवर्तते ॥ शांतंसमसमाभासंप्रथतेस्वस्यकोशवत् ॥ २७ ॥ अद्वैतैक्यादसंक्षोभाद्घनचेतनयातया ॥ अविकारादिमत्वाच्चनित्यानित्यतयाचिरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे तथा संख्यासे परे यह पद मैंने तुमसे कहदिया इस पदमें सनातन आत्मदेव होकर तुम स्थित रहो ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर! तन्मयज्ञान होनेसे यह विश्व आत्ममय है. और हे मुनीश्वर! यथार्थमें सत्यज्ञानसे यह जगत् कुछ नहीं है और अधिष्ठानरूपसे यह सब कुछ है ॥२६॥ यथार्थमें न यह कभी प्रवृत्त होता है न निवृत्त होताहै किंतु शांत समानरूप आकाशके उदरके समान स्थित रहताहै ॥२७॥ अद्वैतके साथ एकता होनेसे संक्षोभके अभावसे घनीभूत चेतनरूपसे और विकाररहित होनेसे यह चित् सर्वथा नित्यरूपहै ॥ २८ ॥

चिद्घनत्वाच्छिशुशिलाकोशानांजगतामपि ॥ मनागपिनभेदोस्तिसतामप्यसतामपि ॥२९॥ समस्तं सुशिवंशांतमतीतंवाग्विलासतः ॥ ओमित्यस्यचतन्मात्रातुर्यासापरमागतिः ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवानमलदृक्परिणामतोस्मिन्पारेपदेसमुपशांतरवाभिधाने ॥ तूष्णीमतिष्ठदमुनामुनिनाचसार्धंविश्रांतवृत्तिरथतत्रमुहूर्त्तमीशः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू० श्रीपरमेश्वरोपदेशोनाम चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—विद्यमान तथा अविद्यमान बालकोंसे कल्पित आकाशकी शिलाके कोशके समान संपूर्ण ब्रह्माण्डोंका चिद्घनरूप होनेसे किंचित्भी भेद नहीं है ॥ २९ ॥ यह संपूर्णजगत् शांत शिव और वाणीसे परे ब्रह्मरूपही है और वही ब्रह्म ओंकार इस अक्षरकी विराट् आदिसे आकार आदि मात्राके भेदसे तुरीय और परमगति है ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे द्विज! निर्मलदृष्टि शिवजीने इसप्रकारसे जब कहा उससमय सबकी निर्मल ब्रह्मपद्में स्थिति हुई और शब्दके शांत होनेपर इसी वसिष्ठमुनिके साथ एक मुहूर्तपर्य्यन्त संपूर्णवृत्तियोंसे रहित होकर आत्मध्यानमें तत्पर होगये ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे श्रीपरमेश्वरोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदिकाभी जो पिता है वही महादेव परमात्मा सबके पूजनीय है यह विषय इस ३५ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोमुहूर्त्तेनहरोगौरीकमलिनीसरः ॥ मद्विकासोन्मुखःस्वैरंविकासंबहिराददे॥१॥ दृक्चयोद्योतयामाससुखाकाशतलोदितः ॥ बोधंसमुद्रकादर्कअंशुराशिरिवोद्गतः ॥ २ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ मुनेमननमाहृयस्वसत्तेवाशुनीयताम् ॥ त्वमर्थमाहरानर्थपवनःस्पंदतामिव ॥ ३ ॥ द्रष्टव्यमिहयत्किंचित्तदृष्टंकिंसमंभ्रमैः ॥ नहिहेयमुपादेयंचेहपश्यामितद्विदः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके पश्चात् पार्वतीरूप कमलिनीमें विकसित महादेवजी मेरे विकासकी ओर उन्मुख अर्थात् मेरे भाग्यसे प्रेरित अपनी इच्छासे बाहर नेत्र खोला ॥ १ ॥ महादेवजीके मुखरूप निर्मल आकाशमें उदयको

प्राप्त वह चन्द्र सूर्य्य और अग्निरूप दृष्टियोंका समूह समाधिरूप बोधको ऐसे द्योतित करताभया जैसे सूर्य दिनको ॥ २ ॥ श्रीईश्वरजी बोले–हे मुने ! प्रथम तुम विचारको अपने समीपमें करके अपने साक्षीका पारमार्थिक प्रमाणोंसे निश्चय करो और उस साक्षीमें बहिर्मुखतारूप अनर्थके सम्पादनसे तुम अचिदंश अनर्थको ऐसे मत ग्रहण करो जैसे पवन स्पन्दशक्तिको ॥ ३ ॥ जो कुछ द्रष्टव्य है वह देखचुके, श्रमोंसे क्या प्रयोजन क्योंकि ज्ञानीको कुछ हेय और उपादेय मैं नहीं देखता ॥ ४ ॥

शांत्यशांतिमयानेतान्विकल्पान्दयलन्नसि: ॥ धीरोसिनान्यथास्थित्वात्वमेवभवचात्मदृक् ॥ ५ ॥ इमांदृश्यदशामाशुबाह्यबोधायवापुन: ॥ समाश्रित्यमदुक्तंत्वंशृणुतूष्णींस्थितेनकिम् ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा बाह्यबोधस्त्वंमाभवेतित्रिशूलधृक् ॥ प्राणेनेदंदेहगेहंपरिस्फुरतियंत्रवत् ॥ ७ ॥ प्राणहीनंपरिस्पंदंत्य क्त्वातिष्ठतिमूकवत् ॥ चालनीपावनीशक्ति:शक्ति:संवेदनीचिति: ॥ ८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! चित्तके आश्वासनके हेतु होनेसे शांतिमय और चित्तके विक्षेपके हेतु होनेसे अशांतिमय विकल्पोंको दलन करतेहुये तुमही धीर खड्ग हो अन्यथा तुम धीर नहीं हो इसलिये तुम विश्वास करके आत्मदृक् और धीर बनो ॥ ५ ॥ और यदि आत्माके दर्शनमें असमर्थ हो तो श्रवणआदिके अनुकूल इस युक्तिका अवलम्बन करके सबसे परे परमात्माके बोधके लिये तुम प्रयत्न करो क्योंकि आत्मलाभके बिना व्यर्थ बैठनेसे क्या प्रयोजन है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! त्रिशूलधरी श्रीमहादेवजीने इतना मुझसे कहके और यह कहा कि तुम देहात्मज्ञानी न बनो और आगे कहेहुए देहात्मतारूप भ्रमके निवारणार्थ यह कहा कि प्राणकेही प्रतापसे देहरूप गृह ऐसे स्फुरित (संचलित) होताहै जैसे यंत्र ॥ ७ ॥ और प्राणसे रहित यह शरीर अपनी गतिको त्यागकर मूकके समान स्थित रहताहै, क्योंकि इस शरीरमें संचलनकी शक्ति तो प्राणपवनकी है, और चेतनशक्ति चिदात्माकी है ॥ ८ ॥

साऽमूर्ताखादपिस्वच्छासत्सत्तैवात्रकारणम् ॥ विनश्यत:प्राणदेहौवियोगान्मरुदेवच ॥ ९ ॥ चिदा त्माखादपिस्वच्छोनविनश्यतिकिंभ्रमै: ॥ मन:प्राणमयेदेहेचित्तत्त्वंपरिजायते ॥ १० ॥ मुकुरेह्यमला भासेप्रतिबिंबंप्रवर्तते ॥ सदप्यग्रगतंवस्तुप्रतिबिंबक्रियांविना ॥ ११ ॥ यथानास्तिमलोपेतेमुकुरेमुनि नायक ॥ तथानास्तिगतप्राणेविद्यमानेपिदेहके ॥ १२ ॥

अर्थ—वह मूर्तिरहित चित्शक्ति आकाशसेभी स्वच्छ है तथा उसी सत्की सत्ता इस शरीरमें कारण है, और उसके वियोगसे प्राण तथा देह दोनों नष्ट होजातेहैं और वह चित्शक्ति तो सदा अविनाशिनी है ॥ ९ ॥ आकाशसेभी चिदात्मा तो स्वच्छहै वह कभी नाशको नहीं प्राप्त होता. भ्रमोंसे क्या प्रयोजन, और मन प्राणआदिसहित सूक्ष्मदेहमें वह आवरणरहित अभिव्यक्त (प्रकट) होताहै ॥ १० ॥ निर्मलदर्पणमेंही प्रतिबिंब पडताहै. और हे मुनिनायक ! जैसे मलिनदर्पणमें प्रतिबिंबग्रहकी क्रियाके बिना सन्मुख विद्यमानभी वस्तु उसमें नहीं देखपडती ऐसेही प्राणरहित इस विद्यमानभी तुच्छशरीरमें चिच्छक्तिकी अभिव्यक्ति नहिं होती. ॥ ११ ॥ १२ ॥

सर्वगापिचिद्रुच्छूनबोधात्स्पंदादिकंप्रति ॥ बोधात्कलंकविमलाचिदेवपरमंशिवम् ॥ १३ ॥ विदुर्देवंत दाभासंसर्वसत्तार्थदंतथा ॥ सहरि:सशिव:सोज:सब्रह्मासमुरेश्वर: ॥ १४ ॥ अनिलानलचंद्रार्कवपु स्सपरमेश्वर: ॥ सएषसर्वगोह्यात्माचित्खनिश्चेतन:स्मृत: ॥ १५ ॥ देवेशोदेवभृद्धातादेवदेवोदिव: पति: ॥ महाचित:समुल्लासंमुह्यंतीवनकेचन ॥ १६ ॥

अर्थ—सर्वगामिनी चित्शक्ति मायारूप कलंकसे आवृत होनेसे बाह्यशरीरकी क्रियाओंमें तथा आत्मतत्त्वके बोधमेंभी असमर्थ होती है, और लिंगशरीरकी विद्यमानतामें बोधकी वृद्धिसे दोनोंप्रकारकी क्रियाओंमें शरीरसं-चालनमेंभी समर्थ होती है और ब्रह्माकार बोध होनेसे मायाके कलंकसे रहित अतिनिर्मल परमकल्याणमय कैवल्य-रूपसे स्थित रहती है ॥ १३ ॥ और सबपदार्थोंकी सत्ताकी स्फूर्तिप्रद होनेसे तथा प्रकाशक होनेसे इसी चित्को देव और आभास कहते हैं, और प्रकाशकी अधिकतासे वही चिदात्मा, विष्णु, वही शिव, वही हिरण्यगर्भ और इंद्र है ॥ १४ ॥ वही चित् वायु, अग्नि, चन्द्रमाका शरीर और वही परमेश्वर है, और सर्वगामी आत्मा सब चैतन्यकी खानि कहागयाहै ॥ १५ ॥ और वही चिदात्मा देवेश, देवताओंका धारणकर्ता वही देवदेव, और स्वर्गका स्वामी है, क्योंकि महाचित्के निरतिशय आनंदको प्राप्त होके जो कोई मोहित होतेहैं ॥ १६ ॥

येनामतेजगत्येतेब्रह्मविष्णुहरादय: ॥ परस्मात्परिनिर्याताब्रह्मविष्णुहरादय: ॥ १७ ॥ कणास्तप्तायस इववारिधेरिवबिंदव: ॥ तेष्विवभ्रमभूतेषुजातेष्विवपरात्पदात् ॥ १८ ॥ स्थितेषुभ्रमबीजेषुकल्पना

जालकर्तृषु ॥ सहस्रशतशाखेयमविद्योदेतिपीवरी ॥ १९ ॥ वेदवेदार्थवेदादिजीवजालजटावली ॥ तत स्तस्याअनंतायाःप्रस्तायाःपुनःपुनः ॥ २० ॥

अर्थ—वेही इस संसारमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि होतेहैं, और जो परब्रह्म देव है उसीसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ऐसे उत्पन्न हैं, जैसे तप्तलोहसे लोहके गोलेसे अग्निके स्फुलिंग और समुद्रसे बिन्दु और यथार्थमें परमपदसे उत्पन्नके तुल्य भ्रमभूत ॥१७॥१८ ॥ तथा भ्रमके बीज तथा कल्पनाजालके कर्ताओंके स्थित रहनेपर सहस्रशाखावाली अतिस्थूल अविद्या उदय होती है ॥ १९ ॥ और वेदवेदार्थ, सृष्टिके आदिका क्रम, सांगोपांगक्रियाके समूह, उपासनाओंके भेद, और ब्रह्मतत्वके आख्यापनके अर्थ जीव तथा उनके जन्ममरणरूप जटाओंकी पंक्तिरूप अविद्या उत्पन्न होती है, और उसके पश्चात् चारोओरसे पुनः २ फैली उस अनन्त ॥ २० ॥

संपन्नदेशकालायाःक्रमःस्याद्वर्णनासुकः ॥ ब्रह्मविष्णुहरादीनामतोयंपरमःपिता ॥ २१ ॥ मूलबीजंम हादेवःपल्लवानामिवद्रुमः ॥ सर्वसत्वाभिधःसर्वःसर्वसंवेदनैककृत् ॥ २२ ॥ सर्वसत्ताप्रदोभास्वान्वं द्योभ्यर्च्यश्चतद्विदः ॥ प्रत्यक्षवस्तुविषयःसर्वत्रैवसदोदितः ॥ २३ ॥ संवेदनात्मकतयागतयासर्वगो चरम् ॥ नतस्याह्वानमंत्रादिकिंचिदेवोपयुज्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा अनेकप्रकारके देशकालसंपन्न उस अविद्याके वर्णनमें कौन समर्थ होसकताहै क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदिकोभी इस अविद्याहीके कारण शरीर धारण करनापडताहै इसलिये उन ब्रह्माआदिकाभी परमपिता वही चिदात्मा है ॥ २१ ॥ और सब लोकोंके कथनके योग्य और सबके ज्ञानोंका एकही कर्ता यह महादेव सबका मूलबीज है ॥ २२ ॥ सब पदार्थोंको सत्ताप्रद, प्रकाशमान, ज्ञानीकेलिये वंदनीय तथा पूजनीय, प्रत्यक्ष अनुभवका विषय, और सर्वत्र सदा उदयरूप यह चिदात्मा है ॥ २३ ॥ ज्ञानमात्ररूप सर्वत्र प्राप्त होनेसे सबका विषय है और उसके आव्हानके लिये मंत्रआदिका उपयोग नहीं है ॥ २४ ॥

नित्याहूतःससर्वस्थोलभ्यतेसर्वतःस्वचित् ॥ यांयांवस्तुदशांयातितततएवमुनेशिवम् ॥ २५ ॥ स्वरू पंसमवाप्नोतिरूपालोकमनोदृशाम् ॥ आद्यंपूज्यंनमस्कार्यंस्तुत्यमर्घ्यंसुरेश्वरम् ॥ २६ ॥ एनंतंविद्धिवे द्यानांसीमांतंमहतामपि ॥ एतमात्मानमालोक्यजराशोकभयापहम् ॥ संभृष्टबीजवज्जंतुर्नभूयःपरिरो हति ॥ २७ ॥ सकलजंतुषुयत्त्वभयप्रदंविदितमाद्यमुपास्यमयत्नतः ॥ त्वमजमात्मगतंपरमंपदंभवसि किंपरिमुह्यसिदृष्टिषु ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पू०महादेवस्यपूज्यसीमांतत्वकथनं नाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—वह चेतनभी नित्यही आहूत, सबमें स्थित और सर्वत्र स्वयं वह चित् लब्ध होती है, और हे मुने ! जिस २ दशामें चित् प्राप्त होती है ॥ २५ ॥ वहां २ रूपोंका उनके प्रकाश तथा मननरूप मन तथा उसके साक्षी रूपको स्वयं धारण करती है, इसलिये आद्य, पूजनीय, नमस्कार तथा स्तुतिके योग्य, अर्घप्रदानके योग्य ॥२६॥ और अतिमहान् वेद्यपदार्थोंकी सीमाका अंत इसीको तुम जानो. और जरा, शोक तथा भयके नाशक इस आत्माको जानकर प्राणी भर्जित (भुने) बीजके समान इस संसारमें पुनः नहीं उत्पन्न होता ॥२७॥ विदित (ज्ञात) होनेसे सब जीवोंका अभयका दाता, सबकाआदि, और बिनापरिश्रम उपासनीय जो आत्मा है हे मुने ! वह अजपद तुमही हो, बाह्यदृष्टियोंमें तुम क्यों मोहित होते हो ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे महादेवस्यपूज्यसीमान्तत्वकथनंनाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सब विश्वकी उत्पत्तिका स्थान, सर्वाकारसे स्थित, सबसे अस्पृष्ट, और अतिशुद्ध परमात्माका सर्वैश्वर्य्यका वर्णन इस ३६ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ ततश्चिद्रूपमेवैकंसर्वसत्तातरास्थितम् ॥ स्वानुभूतिमयंशुद्धंदेवंरुद्रेश्वरंविदुः ॥ १ ॥ बीजंसमस्तबीजानांसारंसंसारसंस्तृतेः ॥ कर्मणांपरमंकर्मचिद्धातुंविद्धिनिर्मलम् ॥ २ ॥ कारणंकारणो

घानामकारणमनाविलम् ॥ भावनंभावनौघानामभाव्यमभवात्मकम् ॥ ३ ॥ चेतनंचेतनौघानांचेतना त्मनिचेतनम् ॥ स्वंचेत्यचेतनंचेत्यपरमंभूरिभावनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीईश्वरजी बोले-हे मुने ! इस कारण चिद्रूपही सब सत्ताके भीतर स्थितहै और उसीको स्वानुभूति-मय, शुद्ध, देव, और दर्शनमात्रसे संसाररूप रोगको भगानेवाले सर्वेश्वर तत्ववेत्तालोग कहते हैं ॥ १ ॥ और समस्त-बीजोंकाबीज (उत्पादक) संसारकी गतिका सार, कर्मोंका परमकर्म, तथा निर्मल चित्सार उसी चिदात्माको तुम जानो ॥२॥ और क्रियाशक्तिसे सबकारणसमूहोंकाभी कारण, यथार्थमें विकाररहित अकारण और सबपदर्थोंका सत्ताप्रद, यथार्थमें असत्ताप्रद तथा स्वयं जन्मरहित वह चेतन ॥ ३ ॥ तथा सबबुद्धिवृत्तियोंका प्रकाशक, जीवमेंभी सारभूत चिद्रूप, स्वयं साक्षीरूप, बाह्यपदार्थोंकाभी बुद्धिकी वृत्तियोंकी व्याप्तिसे प्रकाशक, और मायाशक्तिसे अपनेहीको अनेकरूपसे भावना करनेवाला यही चेतनहै ॥ ४ ॥

आलोकालोकममलमनालोक्यमलोकजम् ॥ आलोकंबीजबीजौघंचिद्घनंविमलंविदुः ॥ ५ ॥ असत्यंस न्मयंशांतंसत्यासत्यविवर्जितम् ॥ महासत्तादिसत्तांतेचिन्मात्रंविद्धिनेतरत् ॥ ६ ॥ स्वयंभवतिरागा त्मारंजकोरंजनंरजः ॥ स्वयमाकाशमप्याशुकुड्यंभवतिमंडितम् ॥ ७ ॥ अस्मिंश्चिच्चेतसिस्फारेजगन्म रुमरीचयः ॥ स्फुरिताःप्रस्फुरिष्यंतिप्रस्फुरंतिचकोटयः ॥ ८ ॥

अर्थ—और नेत्रआदि इन्द्रियोंका तथा सूर्य्यआदि प्रकाशकपदार्थोंका प्रकाशक, निर्मल स्वयं नेत्रादि वा सूर्य्यआदिसे अप्रकाश्य, अलौकिक प्रकाशरूप, एकरूप होतेहुयेभी सब बीजसमूहरूपसे स्थित और निर्मल चित्घ-नस्वरूप उसको तत्वज्ञानीलोग कहते हैं ॥ ५ ॥ जिसमें पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश सत् नहीं है, तथा सन्मय, शांत, सत्य, व्यावहारिक और प्रतिभासिक अवस्थासे वर्जित, और जगत्की महासत्ता तत्कारणरूप अव्या-कृतसत्ताके बाध होनेपर साक्षीरूप उसी चिन्मात्रको तुम शेष जानो न कि अन्यको ॥ ६ ॥ और वही परमात्मा बीज अवस्थामें रागरूप होताहै, विषयोंके स्मरणमें चित्तके विक्षोभका हेतु रंजक, विषयोंके सम्बंधमें रंजन, विषयके वियो-गमें रज (धूलि) और स्वयं मूर्तिरहित होनेपरभी चित्रादिसे रंजित भित्तिरूप होजाताहै ॥ ७ ॥ इस स्वप्रकाश आत्म-पदमें जगत्रूप मरुस्थलकी सैकडों नदियां संचलितहुई, होरही हैं और होंगी ॥ ८ ॥

स्तसत्तामात्रसंपन्नंपदमस्मिन्स्वतेजसि ॥ नकिंचनचसंपन्नमन्यदौष्ण्यादिवानले ॥ ९ ॥ गर्भीकृतमहा मेरुंपरमाणुसमंविदुः ॥ आच्छादितमहामेरुंपरमाणुसमंविदुः ॥ १० ॥ गर्भीकृतमहाकल्पोनिमेषोसा वुदाहृतः ॥ आक्रांतकल्पेनानेननसंत्यक्तानिमेषता ॥ ११ ॥ वालाग्रकादप्यणुनाव्याप्तानेनाखिलामही॥ सप्ताब्धिवसनाप्युर्वीनास्यांतमधिगच्छति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे मुने ! इस स्वप्रकाशमय परमात्मामें उसकी सत्तामात्रसे सिद्धभी यह जगत् यथार्थमें चित्से भिन्न वस्तुके अभावसे कुछ ऐसे नहीं हुआहै जैसे अग्निमें ज्वाला. अंगार विस्फुलिंग और प्रकाशआदि विचित्रता होनेपरभी उष्णभाव वन्हि (अग्नि) से भिन्न कुछ नहीं होता ॥९॥ महामेरुको अपने गर्भमें तथा उसको आच्छादन करनेपरभी इस चिदात्माको परमाणुके समानही कहते हैं ॥ १० ॥ महाकल्पकोभी अपने गर्भमें करनेसे यह निमेषमात्रही कहा-गयाहै और कल्पकोभी त्यागनेवालेभी इसने निमेषताको नहीं त्यागा ॥ ११ ॥ बालके अग्रभागसेभी अणु चिदा-त्माने संपूर्ण पृथिवीको व्याप्त करलियाहै और सातोसमुद्ररूप वस्त्र धारण कियेहुयेभी इसका अन्त नहीं पाती ॥१२॥

अकुर्वन्नेवसंसाररचनांकर्तृतांगतः ॥ कुर्वन्नेवमहाकर्मनकरोत्येवकिंचन ॥ १३ ॥ द्रव्यमप्येषनिर्द्रव्यो निर्द्रव्योपिहिद्रव्यवान् ॥ अकायोपिमहाकायोमहाकायोप्यकायवान् ॥ १४ ॥ अद्याप्येषसदाप्रातःप्रात रप्ययतांगतः ॥ नवाद्यमद्यनप्रातस्त्वद्यप्रातश्चवासदा ॥ १५ ॥ भिंडिंभिंडिखिलेमत्तापुरुपिच्छिलि सालघम् ॥ विचिचलित्सदालोकालासोगुलुगुलुःशिली ॥ १६ ॥ इत्याद्यनर्थकंवाक्यंतथासत्यंसए वच ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयत्त्वसौ ॥ १७ ॥ यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयःसर्वंसर्वतश्चयः ॥ यश्च सर्वमयोनित्यंतस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ १८ ॥ यत्रांतरालगहनेनविलासवत्याहेलाविलोलघनसर्जितयाम लेन ॥ मल्लेनपल्लवमदामलमालितानांलक्ष्मीलताविरलिताविलितेवमुष्टिः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमेश्वरवर्णनंनाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—न करतेहुयेभी संसारकी रचनाकी कर्तृताको यह प्राप्त है, और सन्निधिमात्रसे संसारकी रचनारूप महाकर्म करतेहुयेभी कुछ नहीं करता ॥ १३ ॥ और अधिष्ठानरूपसे सब द्रव्यरूप होनेपरभी यह द्रव्यरहित है

और द्रव्यरहित होनेपरभी अधिष्ठानरूपसे यह द्रव्यवान् है, और शरीररहित होनेपरभी यह ब्रह्मांडरूप महाशरीर-वाला, तथा महाशरीरवाला होनेपरभी यथार्थमें यह शरीरवाला, तथा महाशरीरवाला होनेपरभी यथार्थमें यह शरीर-रहित है ॥ १४ ॥ यह चिदात्मा अद्य (आज) स्वरूप होनेपरभी सदा प्रातःस्वरूप है और प्रातःस्वरूप होनेपरभी अद्यस्वरूपहै और यथार्थमें न यह अद्यस्वरूप है न प्रातःस्वस्वरूप है: और भिंडिंभिडि इत्यादि बालक तथा उन्मत्त-आदि प्रलपित अनर्थक वाक्य तथा सत्यार्थक वेदशास्त्रजालभी वही है क्योंकि ऐसा कुछ नहीं है जो अधिष्ठानरूपसे सत्य नहो और ऐसाभी कुछ नहीं है जो चिद्रूप न हो ॥ १५॥१६॥१७ ॥ जिसमें सबहै, जिससे सब हैं, जो सब है, जो सब ओर है तथा जो सर्वमय है उस सर्वआत्मारूप चिदात्माको नित्य हमारा नमस्कारहै ॥१८॥ पल्लव तथा दलोंसे रचित निर्मलवनमालाओंसे वेष्टित पुरुषोंके मध्यमें मल्लवसन भूषणआदिसे निर्मल, और अपने उदरमें चतुर्दशभुव-नोंको धारण करनेसे गहन विष्णुने जगत्को मोहन करानेवाली सुंदरतासे विलासवती और देवोंको तिरस्कार करनेसे अभिमानयुक्त अपने देहकी शोभासे अपनेको आलिंगनकारिणी लक्ष्मीको अपनेसे अभिन्नरूप कियाहै ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे परमेश्वरवर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

सत्के योगसे असत्पदार्थोंकी सत्ता, कल्याणरूप परमात्माकी अनंत शक्तियां, और प्रधानशक्ति नियतिका नृत्य इस ३७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ इत्यादिकानांशब्दानामर्थश्रीःसत्यरूपिणी ॥ तस्मिन्सर्वेश्वरेसर्वसत्तामणिसमुद्गके ॥ १ ॥ कानामविमलाभासास्तस्मिन्परमचिन्मणौ ॥ नकचंतिविचिन्वंतिविचित्राणिजगंतियाः॥२ एषाबीजकणांतस्थाचित्सत्तास्ववपुर्मयम् ॥ लब्ध्वामृत्कालवार्यादिकरोत्यंकुरमोदनम् ॥ ३ ॥ फेनावर्तविवर्त्तांतर्वर्तिनीरसरूपिणी ॥ कठिनेंद्रियसंबंधेकरोतिस्पंदमंभसाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीईश्वरजी बोले–जिस पमात्मामें पूर्वसर्गके अंतमें कहेहुये श्लोकोंके शब्दोंके अर्थोंकी शोभा सत्यही भासती है सबजगत्की सत्तारूप मणिके पेटारीरूप उस सर्वेश्वर परमात्मामें ॥१॥ कौनसी विमलप्रकाशवाली शक्तियां नहीं शोभित होतीं; और इस चिन्मणिमें वे कौनसी बीजशक्ति जो अनेक विचित्र ब्रह्मांडोंका संचय करती हैं और स्फुरित नहीं अर्थात् सबशक्ति उसीमें हैं ॥ २ ॥ और यह चित् सबबीजके कणके भीतर स्थित यह ईश्वरकी चित् सत्ता क्षेत्रमें परिष्कृत मृत्तिका जलआदि सहकारणोंको पाकर प्रथम अंकुर उत्पन्न करती है और अनंतर क्रमसे तंडुल होकर मनुष्यका भोग्यओदनको बनाती है ॥ ३ ॥ फेन आवर्त (भंवरेह) तथा विवर्तआदि जिसकेभीतर हैं अर्थात् उनमें अनुगत रसरूपिणी यही ईश्वरकी शक्ति कठिन शिलातल आदिके संयोगमें, तथा नीचेकीओर सर्पणरूप जिव्हा इंद्रियके संयोगमें जलका स्पंद (दूरगमन) कराती है ॥ ४ ॥

एषाकुसुमगुच्छेषुरसरूपेणसंस्थिता ॥ कचतिघ्राणरंध्रेषुकरोतिपरिफुल्लताम् ॥ ५ ॥ शिलांगस्थाशिलांगाभामसतींसत्यतापदम् ॥ सर्गाधारदशांधत्तेगिरींद्रःस्थितिलीलया ॥ ६ ॥ पवनस्पंदकोशात्मरूपिणीवत्वगिंद्रियम् ॥ संसाधयत्यात्मसुतंपितेवात्मतयातया ॥ ७ ॥ अशेषसारसंपिंडमध्यात्मानंस्वसिद्धये ॥ भावयित्वानकिंचित्त्वमिवस्वत्वंकरोत्यलम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह ईश्वरकी चित्शक्ति पुष्पोंके गुच्छोमें सुगंधयुक्त रसरूपसे स्थित होके नासिकाके छिद्रोंमें प्रसन्नताको प्रदीप्त करती है ॥ ५ ॥ शिलाके अंगमें स्थित यह ईश्वरकी चित्शक्ति प्रतिमाके सदृश व्यावहारिक सत्यता-पदरूप सृष्टिके आधारकी दशाको ऐसे धारणकरती है जैसे पर्वत तृण वृक्षलताआदिकी स्थितिको ॥ ६ ॥ सबप्रकारकी गति तथा क्रियाका कोशरूप पवनमें उसके स्वरूपसे स्थित होके स्पर्श ग्रहण करनेके अर्थ त्वगिन्द्रियको ऐसे प्रेरित करती है जैसे पिता अपने पुत्रको अपने कार्योंमें ॥ ७ ॥ और जिसप्रकार प्रवृत्तिशक्तिसे संसारमें गमन कराताहै ऐसे निवृत्तिशक्तिसे सबजगत्की सत्ताओंका सारभूत एक आत्माका आश्रय करके श्रवण मननआदि उपायोंसे आत्माकी सिद्धिकेलिये नेति २ इत्यादि वाक्योंसे सबके निषेधसे सब जगत्की सत्ताकी शून्यताका विधान करती है॥८॥

स्वसत्ताप्रतिबिंबाभमाकाशमुकुरोदरे ॥ धत्तेकल्पनिमेषांकंकालाख्यममलंवपुः ॥ ९ ॥ आमहापंचमेशानंपरिणाममयाइमे ॥ इदमित्थमिदंनेतिनियतिर्भवतिस्वयम् ॥ १० ॥ साक्षिणिस्फारआभासेगृहे

दीपइवक्रियाः ॥ सत्येतस्मिन्प्रकाशांतेजगच्चित्रपरंपराः ॥ ११ ॥ परमाकाशनगरनाट्यमंडपभूमिषु ॥ स्वशक्तिवृत्तंसंसारंपश्यंतीसाक्षिवत्स्थिता ॥ १२ ॥

अर्थ—और यही चिदात्मा अपनी सत्ताके प्रतिबिंबके समान आकाशरूप दर्पणके उदरमें कल्प तथा निमेष-आदिसे चिन्हित कालशरीरको धारण करताहै ॥ ९ ॥ और " ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः " इस वाक्यसे उत्कर्षकी अधिकतामें शिवपर्य्यन्त परिणामी हैं, इसप्रकार सबकार्योंकी यह ऐसा नहीं है ऐसी व्यवस्था-कारिणी नियतिरूप यह चित् स्वयं धारण करती है ॥ १० ॥ हे मुने ! उस विशालप्रकाशरूप साक्षीके स्थित रहतेही चित्रविचित्र ब्रह्माण्डोंकी परंपरा ऐसे प्रकाशित होती हैं जैसे दीप रहते गृहकी क्रिया ॥ ११ ॥ परम आकाशरूप गंधर्वनगरमें नाट्यभूमिरूप जाग्रत्आदि अवस्थाओंमें अपनी शक्तिसे आच्छादित (शक्तिचरितयुक्त) असार संसारको देखती हुई साक्षीके तुल्य यह चित् स्थित है ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शिवस्यास्यजगन्नाथशक्तयःकाःकथंस्थिताः ॥ साक्षिताकाचकितासांवृत्तंस्यात्कियदेवतत् ॥ १३ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ अप्रमेयस्यशांतस्यशिवस्यपरमात्मनः ॥ सौम्यचिन्मात्ररूपस्य सर्वस्यानाकृतेरपि ॥ १४ ॥ इच्छासत्ताव्योमसत्ताकालसत्तातथैवच ॥ तथानियतिसत्ताचमहासत्ता चसुव्रत॥१५॥ज्ञानशक्तिःक्रियाशक्तिःकर्तृताकर्तृतापिच॥इत्यादिकानांशक्तीनामंतोनास्तिशिवात्मनः १६

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे जगन्नाथ ! इस सदाशिवकी कौन शक्ति हैं और अद्वितीय आत्मामें कैसे स्थितहैं और उनकी साक्षिता क्याहै तथा उन शक्तियोंका चरित क्याहै और वह कितनी है ॥ १३ ॥ श्रीईश्वरजी बोले—हे सौम्य मुने ! अप्रमेय, शान्त, चिन्मात्ररूप, सर्वरूप और आकाररहित शिवरूप परमात्माकी ॥ १४ ॥ " सोऽकामयत बहुस्याम् " इस श्रुतिसे इच्छाकी सत्ता प्रकटहुई अनंतर आकाशसत्ता उसके पश्चात् कालसत्ता और इसी क्रमसे नियतस्थितिवाले भूतभौतिकपदार्थोंके आविर्भूत होनेपर नियतिकी सत्ता प्रकट होती है और इन सबमें अनुगत महासत्ता है ॥ १५ ॥ और इसीप्रकार ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृता और अकर्तृता इत्यादि शिवरूप आत्माकी शक्तियोंका अन्त नहीं ही है ॥ १६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शक्तयःकुतएवैताबहुत्वंकथमासुच ॥ उदयश्चकथंदेवभेदाभेदश्चकीदृशः ॥ १७ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ शिवस्यानंतरूपस्यएषाचिन्मात्रतात्मनः ॥ एषाहिशक्तिरित्युक्तातस्माद्भिन्नामनागपि ॥१८॥ ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वसाक्षित्वादिविभावनात ॥ शक्तयोविविधंरूपंधारयंतिबहूदकम् ॥१९॥ एवंजगतिनृत्यंतिब्रह्मांडेनृत्यमंडपे ॥ कालेननर्तकेनेवक्रमेणपरिशिक्षिताः ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे भगवन् ! अद्वितीय परमात्मामें ये शक्ति कैसे उत्पन्नहुई और उनमें बहुत्व कैसे हुआ, उनका उदय कैसे हुआ ? और शक्ति तथा शक्तिमान्का भेद अथवा अभेद कैसा ॥ १७॥ श्रीईश्वरजी बोले—हे मुने ! शिवरूप अनंतपरमात्माकी चिन्मात्रताही उसकी शक्ति अर्थात् मायिककल्पनाप्रेरित चिद्भेदही उसकी शक्ति हैं और यही माया उसकी शक्ति कही गई है और कल्पनामात्रसे उससे किंचित् भिन्न है यथार्थमें नहीं॥१८॥ और ज्ञत्व, कर्तृत्व और साक्षिताआदि अनेकरूप विकल्पसे शक्तियां ऐसे धारण करती हैं जैसे तरंगआदि भेदोंसे जल ॥ १९ ॥ इसप्रकार कालरूप नर्तकसे ऋतु मासआदि नियतिके क्रमसे शिक्षित ईश्वरकी शक्तियां ब्रह्मांडरूप नृत्यके मंडपमें नाचती है ॥ २० ॥

यैषापरापराभासासैषानियतिरुच्यते ॥ क्रियाथकृतिरिच्छावाकालेत्यादिकृताभिधा ॥ २१ ॥ आमहारुद्रपर्यंतमिदमित्थमितिस्थितेः ॥ आतृणापद्मजस्पंदंनियमान्नियतिःस्मृता ॥ २२ ॥ नियतिर्नित्यमुद्वेगवर्जितापरिमार्जिता ॥ एषानृत्यतिवैनृत्यंजगज्जालकनाटकम् ॥ २३ ॥ नानारसविलासाढ्यंविवर्ताभिनयान्वितम् ॥ कल्पक्षणहतानेकपुष्करावर्तघर्घरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—दोनों परार्द्धरूप तथा अवांतर कल्परूप जो ईश्वरकी शक्ति है इसीको नियति, कृति, इच्छा और काल इत्यादि नाम वादियोंने कल्पित कियाहै, और कलनामात्रसे काल कल्पनासे कल्प इत्यादि पर्याय नाम हमलोगोंने कल्पित कियाहै ॥ २१ ॥ तृणसे लेके रुद्रपर्य्यन्त स्थित रहनाचाहिये और तृणसे लेके ब्रह्मापर्यन्त इसप्रकार विकारी होनाचाहिये इत्यादि नियम करनेसे नियति कहलाती है ॥ २२ ॥ यह नियति नित्य उद्वेगरहित आत्मज्ञान-पर्य्यन्त जगज्जालरूप नाटक करती है ॥ २३ ॥ और नानाप्रकारके करुणाआदि रसोंके विलासोंसे पूर्ण, विवर्तरूप अभिनवसे युक्त, और प्रलयरूप नाट्यके उपराममें विद्युत्से ताडितहै पुष्कर, आवर्तक मेघरूप जिसमें ऐसे ॥ २४ ॥

सर्वर्त्तुकुसुमाकीर्णधारागोलकमंदिरम् ॥ भूयोभूयःपतद्वर्षभूरिस्वेदजलोत्करम् ॥ २५ ॥ पयोदपल्लवा लोलनीलांबरकृतभ्रमम् ॥ पूर्णसंशुद्धसप्ताब्धिरत्नौघवलयाकुलम् ॥ २६ ॥ यामपक्षदिनप्रेक्षाकटाक्षोद्भासितांबरम् ॥ मज्जनोन्मज्जनव्यग्रकुलाद्रिकुलशेखरम् ॥२७॥ भ्रमच्छशिमणिप्रोतगंगामुक्ताफलत्रयम् ॥ संदृष्टादृष्टसंध्याभ्रविलोलकरपल्लवम् ॥ २८ ॥

अर्थ—सब ऋतुके पुष्पोंसे व्याप्त, वर्षाकी धाराओंसेयुक्त, ब्रह्मांडगोलकही जहां नाट्यमंदिर हैं और पुनः २ वृष्टिके पतनसे अधिक प्रस्वेदके जलसमूहसहित ॥ २५ ॥ मेघरूप दशाके (दर्शाके) प्रांतोंसे चंचल नीलाकाशरूप वस्त्रोंके धारणसे रात्रिदिनरूप वेषसे भ्रमसंपादक, तथा पूर्ण और शुद्धसमुद्ररूप रत्नोंके समूहसे जटित कटकोंसे व्याप्त ॥२६॥ प्रहर, पक्ष, दिन तथा मास आदि दर्शनरूप कटाक्षोंसे आकाशको प्रकाशित करनेवाला, मज्जन और उन्मज्जनसे व्यग्र, कुलपर्वतोंके समूहरूपही शिरके अग्रभाग हैं जहां ॥ २७ ॥ भ्रमणकरतेहुये चन्द्र सूर्य तथा ग्रंथीहुई गंगाजी जहां मोतियोंके तीन हार हैं और कुछ दृष्ट तथा कुछ अदृष्ट सन्ध्याकालके मेघरूप चंचल करपल्लव जहां हे ॥ २८ ॥

अनारतरणल्लोललोकालंकारकोमलम् ॥ भूरिभूतलपातालनभस्तलपदक्रमम् ॥ २९ ॥ मग्नोन्मग्नमहानेकताराघर्मकणोत्करम् ॥ चंद्रार्ककुंडलस्पंदस्मितस्फुटनभोमुखम् ॥ ३० ॥ कल्पितानेकब्रह्मांडकपाटकवितानकम् ॥ लुठल्लोकांतरव्यूहध्वनन्मुक्तांकपल्लवम् ॥ सुखदुःखदशादोषभावाभावरसांतरम् ॥३१ अस्मिन्विकारवलितेनियतेर्विलासेसंसारनाम्निचिरनाटकनाट्यसारे ॥ साक्षीसदोदितवपुःपरमेश्वरोयमेकःस्थितोनचतयानचतेनभिन्नः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे नियतिनृत्यंनाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—निरन्तर शब्द करतेहुये चंचल चतुर्दशभुवनरूप अलंकारोंसे सुन्दर, और भूतल, पाताल तथा आकाशरूप विशालस्थान जहां नटीके नृत्यके लिये हे ॥ २९ ॥ उदय तथा अस्तदशाको प्राप्त प्रकाश तारागणरूप जहां स्वेदजलके समूह हैं और चन्द्रसूर्य्यरूप कुंडलकी गतिसे किंचित् हास्यसहित स्पष्ट है आकाशरूप नटीका मुख जहां ॥ ३० ॥ और कल्पित अनेक ब्रह्मांडही जहांके बाढके तुल्य वितान (कनात वा पडदा) हैं, असुरोंसे व्याकुल किये तथा लोटतेहुये ऊपर तथा नीचेके लोकही शब्दायमान और मोतियोंसे गुंफित ऊपर नीचेके वस्त्रोंके प्रांत (दशा) हैं और सुखदुःखकी दशा तथा उसके निमित्त दोषस्थायी संचारीभाव तथा शृंगारआदि रसके भेद जहां हैं ऐसा वह नाट्यमंदिर (शाला) है ॥ ३१ ॥ नाट्यशास्त्रोंमें प्रसिद्ध स्तंभरोमांचआदि विकारोंसे वेष्टित संसारनामक चिरकालसे प्रवृत्त नाटकके नाट्यसार नटीके विलासमें साक्षात् द्रष्टा साक्षीप्रभुके स्थान यह एक साक्षी चेतन परमेश्वर स्थित है और वह यथार्थमें उस नटी तथा नाट्यसे भिन्न नहीं है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे नियतिनृत्यं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अनंतचिन्मात्रमूर्ति शिवका बाह्यध्यानसे पूजन और ज्ञानसे महापुण्य तथा मुक्तिरूपफल इस ३८के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ एषदेवःसपरमःपूज्यएषसदासताम् ॥ चिन्मात्रमनुभूत्यात्मासर्वगःसर्वसंश्रयः ॥ १ ॥ घटेपटेवटेकुड्येशकटेवानरेस्थितः ॥ शिवोहरोहरिर्ब्रह्माशक्रोवैश्रवणोयमः ॥ २ ॥ बहिरंतश्चसर्वात्मासदास्वात्मासुबुद्धिभिः ॥ विविधेनक्रमेणैषभगवान्परिपूज्यते ॥ ३ ॥ बहिस्तावन्महाबुद्धे क्रमेणपरिपूज्यते ॥ येनतच्छृणुतत्त्वज्ञश्रोष्यस्यंतःक्रमंततः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीईश्वरजी बोले—हे मुने ! यही नियतिके नाटकका साक्षी चिदात्मा परमदेव है, और यही चिन्मात्र, अनुभवरूप, सर्वगामी, और सर्वाश्रय सज्जनोंको पूजनीय है ॥ १ ॥ घट, पट, वट, कुड्य, शकट (गाडी) तथा वानरादि पशुओंमें स्थित हैं, और यही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव, इन्द्र, कुबेर, तथा यमरूप है ॥ २ ॥ बाहर भीतर स्थित सर्वात्मा यही भगवान् अपना आत्मारूप देव सुबुद्धियोंको अनेक प्रकारके पूजाके योग्य है ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धे ! जिसरीतिसे बाह्यदेशमें यह आत्मा पूजित होताहै उसको तुम सुनो, अनन्तर हे तत्वज्ञ ! अंतःक्रमको सुनना ॥ ४ ॥

पूजाक्रमेषुसर्वेषुदेहगेहंपवित्रकम् ॥ त्याज्यंदेहावबोधात्मपरंयत्नात्पवित्रकम् ॥ ५ ॥ पूजनंध्यानमेवां तर्नान्यदस्त्यस्यपूजनम् ॥ तस्मात्त्रिभुवनाधारंनित्यंध्यानेनपूजयेत् ॥ ६ ॥ चिद्रूपंसूर्यलक्षाभंसमस्ता भासभासनम् ॥ अंतस्थचित्प्रकाशंस्वमहंतासारमाश्रयेत् ॥ ७ ॥ अपारपरमाकाशविपुलाभोगकंध रम् ॥ अनंताधस्तनाकाशकोशपादसरोरुहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सबपूजाके क्रमोंमें शास्त्रोक्त संस्कारोंसे तथा स्नान आचमन आदिसे पवित्रभी देहरूप गृह तो त्याग- नाहीचाहिये और देहके बोधसे साक्षीचित्के प्रकाशरूपको शोधन करके ग्रहण करनाचाहिये ॥ ५ ॥ अन्तःकरणमें ध्यान करनाही इस आत्मदेवका पूजन है, इस तीनोलोकका आधार परमात्माका पूजन ध्यानसे नित्य करनाचाहिये ॥ ६ ॥ चिद्रूप, लक्षों सूर्य्योंके प्रकाशके समान, सूर्यचन्द्रादि तथा समस्तबुद्धियोंकाभी प्रकाशक, अहंकारसे शो- धित और अपने अंतःकरणमें स्थित चित्प्रकाशरूप आत्मदेवका आश्रय करना चाहिये ॥ ७ ॥ अपार परमाकाशसे वि- शाल जिसकी ग्रीवा है और अनंत भूलोकादिके नीचेका आकाशकोश जिसका चरणकमल है ॥ ८ ॥

अनंतदिक्तटाभोगभुजमंडलमंडितम् ॥ नानाविधमहालोकगृहीतपरमायुधम् ॥ ९ ॥ हृत्कोशकोणवि श्रांतब्रह्मांडौघपरंपरम् ॥ प्रकाशपरमाकाशपारगापारविग्रहम् ॥ १० ॥ अधऊर्ध्वंचतुर्दिक्षुविदिक्षुचनि रंतरम् ॥ ब्रह्मेंद्रहरिरुद्रेशप्रमुखामरमंडितम् ॥ ११ ॥ इमांभूतश्रियंतस्यरोमालिंप्रविचिंतयेत् ॥ विवि धारंभकारिण्यस्त्रिजगद्यंत्ररज्जवः ॥ १२ ॥

अर्थ— अनन्तदिशाओंके तटरूप विस्तारयुक्त भुजमंडलोंसे शोभित, और नानाप्रकारके ब्रह्मांडोंमें जो सत्य आदि लोक हैं वे जिसके दिशारूप भुजाओंमें शस्त्र अस्त्र हैं ॥ ९ ॥ और जिसके हृदयाकाशके कोणमें ब्रह्मांडोंकी ओघ परंपरा विश्राम करती हैं, तथा प्रकाशरूप परमाकाशरूप अन्धकारसे परे और स्वयं अपार जिसका शरीर है ॥ १० ॥ और ऊपर नीचे चारोंदिशाओंमें निरन्तर व्याप्त, और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तथा इन्द्रादिदेवोंसे शोभित उस आत्मदेवका ध्यान करनाचाहिये ॥११॥ इस चारोंप्रकारोंके प्राणियोंकी शोभाको उस परमात्माकी रोमकी पंक्तियोंके सदृश चिन्तन करनाचाहिये ॥ १२ ॥

इच्छाद्याःशक्तयस्तस्यचिंतनीयाःशरीरगाः ॥ एषदेवःसपरमःपूज्यएषसदासताम् ॥ १३ ॥ चिन्मात्र मनुभूत्यात्मासर्वगःसर्वसंश्रयः ॥ घटेपटेवटेकुड्येशकटेवानरेस्थितः ॥ १४ ॥ शिवोहरोहरिर्ब्रह्माशक्रो वैश्रवणोयमः ॥ अनंतैकपदाधारसत्तामात्रैकविग्रहः ॥१५॥ विवर्तितजगज्जालःकालोस्यद्वारपालकः ॥ सशैलभुवनाभोगमिदंब्रह्मांडमंडलम् ॥ १६ ॥ देहकोणोस्यकस्मिंश्चित्स्वांगावयवतांगतम् ॥ विचिं तयेन्महादेवंसहस्रश्रवणेक्षणम् ॥ १७ ॥

अर्थ—और अनेकप्रकारके कार्योंको करनेवाली तथा तीनों लोकोंके अंतर्गत सबपदार्थोंकी चेष्टाके अर्थ यं- त्रकी रस्सीके तुल्य इच्छा आदि शक्तियोंको उस परमात्माके शरीरमें रहनेवाली नाडियां चिंतन करनीचाहिये, यही आत्मा परमदेव और सज्जनोंका पूजनीय है ॥ १३ ॥ चिन्मात्र अनुभवरूप, सर्वव्यापी, सबका आश्रय, घट, पट, बट, तथा बानरमेंभी वह स्थितहै ॥ १४ ॥ वही आत्मदेव शिव, हर, विष्णु, ब्रह्मा, कुबेर और रूपोंके भेदोंसे अनंत- पदोंका आधारहै, और उन भेदोंके त्यागसे एकपदका आधार लक्ष्यभूत सत्तामात्र विग्रहधारी वहहै ॥ १५ ॥ और जग- द्रूपजालोंका परिवर्तन करनेवाला काल इस आत्मदेवका द्वारपाल है, और पर्वत तथा चतुर्दशभुवनोंके विस्तारस- हित जो यह ब्रह्मांडमंडल है वह इस आत्मदेवका कोणरूप है, और मायाशबलित अपने अंगमें अवयवताको प्राप्त है, इसप्रकार उस आत्मारूप देवका सहस्रों श्रवण तथा नेत्र आदि सहित चिंतन करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

सहस्रशिरसंशांतंसहस्रभुजभूषणम् ॥ सर्वत्रेक्षणशक्त्याढ्यंसर्वतोघ्राणशक्तिकम् ॥ १८ ॥ सर्वतःस्प र्शनमयंसर्वतोरसनान्वितम् ॥ सर्वत्रश्रवणाकीर्णंसर्वत्रमननान्वितम् ॥ १९ ॥ सर्वतोमननातीतंसर्वतः परमंशिवम् ॥ सर्वदासर्वकर्तारंसर्वसंकल्पितार्थदम् ॥ २० ॥

अर्थ—सहस्रों प्राणियोंके शिर, नेत्र, नासिका, भुजा आदि विश्वरूप, सर्वत्र दर्शनशक्तिसे पूर्ण, और सर्वत्र घ्राण (सूंघने) शक्तिसे युक्त ॥ १८ ॥ चारोंओरसे स्पर्शनमय, सर्वत्र रसनायुक्त, सर्वत्र श्रवणशक्तिसे व्याप्त, और सर्वत्र मनन (विचार) शक्तिसहित ॥ १९ ॥ सर्वत्र मनन अर्थात् बुद्धिके व्यापारसे परे, चारोओरसे परमकल्याण- रूप सर्वदा सबके कर्ता और सब संकल्पितपदार्थोंका दाता ॥ २० ॥

सर्वभूतांतरावस्थंसर्वंसर्वैकसाधनम् ॥ इतिसंचिंत्यदेवेशमर्चयेद्विधिवत्ततः ॥ २१ ॥ विधानमर्चनस्ये दंशृणुब्रह्मविदांवर ॥ स्वसंविदात्मादेवोयंनोपहारेणपूज्यते ॥२२॥ नदीपेननधूपेननपुष्पविभवार्पणैः॥

नान्नदानादिदानेननचंदनविलेपनैः ॥ २३ ॥ नचकुंकुमकर्पूरभोगैश्चित्रैर्नचेतरैः ॥ नित्यमक्लेशलभ्येन शीतलेनाविनाशिना ॥ २४ ॥

अर्थ—सब प्राणीमात्र तथा पृथिवी आदिमें स्थित, सर्वरूप, और सबकी सत्ताका दाता वह परमात्मा है इस-प्रकार चिंतन करके अनंतर विधिपूर्वक उस देवेशकी पूजा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इस आत्म-देवकी पूजाका विधान तुम सुनो, यह आत्मदेव अपने ज्ञानसेही पूजित होताहै न कि गंध पुष्प धूप आदि उपहारोंसे ॥ २२ ॥ हे मुने! यह आत्मदेव न दीपसे न धूपसे न पुष्पादि विभवोंके समर्पणसे न अन्नदानसे और न चंदन आदि लेपोंसे ॥ २३ ॥ न चित्रविचित्र कुंकुम कर्पूर आदि भोगोंसे और न अन्यपदार्थोंसे यह आत्मदेव पूजित होताहै किंतु विना क्लेशलभ्य शीतल तथा अविनाशी ॥ २४ ॥

एकेनैवामृतेनैषबोधेनस्वेनपूज्यते ॥ एतदेवपरंध्यानंपूजैषैवपरास्मृता ॥ २५ ॥ यदनारतमंतस्थशुद्धचिन्मात्रवेदनम् ॥ पश्यञ्छृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ २६ ॥ प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्शुद्धसंविन्मयोभवेत् ॥ ध्यानामृतेनसंपूज्यस्वयमात्मानमीश्वरम् ॥ २७ ॥ परमास्वादयुक्तेनमुक्तेनकुसुमेहितैः ॥ ध्यानोपहारएवात्मध्यानंह्यस्यसमीहितम् ॥ २८ ॥

अर्थ — एक अमृतमय अखंड साक्षात्कारवृत्तिमें आरूढ अपने ज्ञानसेही यह पूजित होताहै, यही इसका पर-मध्यान है, और यही इसकी सर्वश्रेष्ठ पूजा कहीगई है ॥ २५ ॥ जो कि निरंतर अन्तःकरणमें स्थित शुद्ध, चिन्मात्र आत्मा है, देखते, सुनते, छूते, सूंघते, खाते, चलते, फिरते, सोते, श्वास लेते ॥ २६ ॥ बोलते, मलादि त्यागते और ग्रहणकरतेहुये शुद्ध चिदात्ममय होना चाहिये, परम आस्वादयुक्त पुष्पादिरहित इस ध्यानरूप अमृतकी धारासे स्वयं आत्मारूप ईश्वरकी पूजा करके उसे प्रसन्न करै, क्योंकि ध्यानही आत्माकी भेट है और ध्यानही इसको इष्ट है ॥ २७ ॥ २८ ॥

ध्यानमर्घ्यंचपाद्यंचशुद्धसंवेदनात्मकम् ॥ ध्यानसंवेदनंपुष्पंसर्वध्यानपरंविदुः ॥ २९ ॥ विनातेनेतरेणायमात्मालभ्यतएवनो ॥ ध्यानात्प्रसादमायातिसर्वभोगसुखश्रियः ॥ ३० ॥ अयमात्मामुनेभुंक्तेदेहरूपोगृहेयथा ॥ ध्यानेनानेनसुमतेनिमेषांस्तुत्रयोदश ॥ ३१ ॥ मूढोपिपूजयित्वेशंगोप्रदानफलंलभेत् ॥ पूजयित्वानिमेषाणांशतमेकमितिप्रभुम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस आत्माका शुद्धरूपसे अनुभवरूप ध्यानही अर्घ्य तथा पाद्य है,क्योंकि ध्यानसे प्रकट आत्मा चैत-न्यही पुष्परूपहै, इस आत्माकी सबपूजा ज्ञानही है ॥ २९ ॥ विना इस ज्ञानके यह आत्मा औरप्रकारसे प्राप्तही नहींहोता, ध्यानके प्रसादसेही मनुष्यसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्तके भोगोंकी सुखसंपत्ति प्राप्तहोती हैं ॥ ३० ॥ हे मुने! जैसे देहका अभिमानी गृहमें भोगोंको भोगताहै ऐसेही ध्यानके सुखको भोगताहै, क्योंकि विषयके भोगमें आत्माके सुखकाही अनुभव होताहै. और हे सुमते! इस आत्माके १३ निमेषके ध्यानसे ॥ ३१ ॥ मूढजनभी पूजा करके गो-दानका फल प्राप्त करताहै, और १०० निमेषतक इस प्रभुकी ध्यानसे पूजा करनेसे ॥ ३२ ॥

अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ पूजयित्वास्वमात्मानंघटिकार्धमितिप्रभुम् ॥ ३३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्यफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ध्यानबल्युपहारेणस्वयमात्मानमात्मना ॥ ३४ ॥ घटिकांपूजयेद्यस्तुराजसूयंलभेतसः ॥ मध्याह्नपूजनादित्थंराजसूयैकलक्षभाक् ॥ ३५ ॥ दिवसंपूजयित्वैवंपरेधाम्निवसेन्नरः॥ एषोसौपरमोयोगएषासापरमाक्रिया ॥ बाह्यसंपूजनंप्रोक्तमेतदुत्तममात्मनः ॥ ३६ ॥ एतत्पवित्रमखिलाघविघातहेतुंयस्त्वाचरिष्यतिनरःक्षणमप्यखिन्नः ॥ तंवंदयिष्यतिसुरासुरलोकपूगःप्राप्तास्पदंजगतिमामिवमुक्तमात्मन् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे बाह्यपूजनं नामाऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करताहै, और अर्द्ध (आधी) घडीतक इस अपने आत्मा प्रभुकी इस रीतिसे पूजा करनेसे सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल मनुष्य पाताहै, और ध्यानरूप भेंटसे आत्मासे आत्माके ॥ ३३ ॥ ॥३४॥ एक घडीपर्यन्त जो पूजा करताहै वह राजसूययज्ञका फल प्राप्त करताहै, और मध्यान्हपर्य्यन्त पूजा करनेसे लक्षराजसूययज्ञका फल होताहै ॥ ३५ ॥ और एकदिवसतक पूजा करनेसे परमधाममेंही मनुष्य बास करताहै, यही आत्मध्यान परमयोग है, तथा यही परमोत्तम क्रिया है, हे प्रीतिपात्र मुने! यह तुमसे मैंने बाह्य उत्तम पूजन कहदिया

॥ ३६ ॥ हे आत्मन्! (आत्माके सदृश प्रेमपात्र) अतिपवित्र तथा संपूर्ण पापके नाशके हेतु इस उक्तलक्षण पूजनको अर्थात् आत्मध्यानको जो प्राणी क्षणभरभी खेदरहित होके करेगा उस आत्मपद पानेवाले मनुष्यको मेरे सदृश सुरअसुरलोकसमूह वंदना करेगा ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे बाह्यपूजनं नामाष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

प्राप्त शब्द आदि विषयोंसे अंगप्रत्यंगमें प्रकाशक साक्षी शिवरूप आत्माकी अन्तःपूजा इस३९के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ पावनंपावनानांयद्यत्सर्वतमसांक्षयः ॥ तदिदानींप्रवक्ष्येहमंतःपूजनमात्मनः ॥ १ ॥ गच्छतस्तिष्ठतश्चैवजाग्रतःस्वपतोपिच ॥ सर्वाचारगतापूजानित्यंध्यानात्मिकात्वियम् ॥ २ ॥ नित्यमेवशरीरस्थमिमंध्यायेत्परंशिवम् ॥ सर्वप्रत्ययकर्त्तारंस्वयमात्मानमात्मना ॥ ३ ॥ शयानमुत्थितंचैवव्रजंतमथवास्थितम् ॥ स्पृशंतमभितःस्पृश्यंत्यजंतमथवाभितः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो सब पवित्र वस्तुओंकाभी पवित्रकारक है, और जो सब अज्ञानरूप अंधकारका नाशक है उस आत्माकी अन्तःपूजा मैं तुमसे कहूंगा ॥१॥ चलते, ठहरते, जागते तथा सोतेभी सब व्यवहारोंमें प्राप्त ध्यानरूप यह आत्माकी पूजा नित्यविहित है ॥ २ ॥ नित्य शरीरमें अपनी सन्निधिमात्रसे सबबुद्धिवृत्तियोंका जनक इस परम शिवरूप आत्माकी पूजा स्वयं आत्मासे करनीचाहिये ॥३॥ शयन करते, उठते, चलते, फिरते, स्थित रहते, विषयोंके सबओरसे स्पर्श करते (सेवन करते) अथवा त्यागते ॥ ४ ॥

भुंजानंसंत्यजंतंचभोगानाभोगपीवरान् ॥ बाह्यार्थपरिकर्त्तारंसर्वकार्यस्वरूपदम् ॥ ५ ॥ देहलिंगेषु शांतस्थंत्यक्तलिंगांतरादिकम् ॥ यथाप्राप्तार्थसंवित्त्याबोधलिंगंप्रपूजयेत् ॥ ६ ॥ प्रवाहपतितार्थस्थःस्वबोधस्नानशुद्धिमान् ॥ नित्यावबोधार्हणयाबोधलिंगंप्रपूजयेत् ॥ ७ ॥ आदित्यभावनाभोगभावितांबरभास्वरम् ॥ शशांकभावनाभोगभावितेंदुतयोदितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अतिस्थूलविषयोंके भोगते वा त्यागते बाह्यपदार्थोंको अपनेमें अध्यारोपमात्रसे जनक, और सब कार्योंको अपनी सत्ताप्रद ॥ ५ ॥ पद्मासनमें स्थित अपने देहरूपलिंगमें शांतरूप निर्विक्षेपसे स्थित, इसीसे मूर्तिका पाषाण तथा अन्यप्रकारकी प्रतिमाओंकोभी त्यागनेवाले यथाप्राप्तवृत्तियोंमें बोधरूप आत्माकी पूजा करै ॥ ६ ॥ प्रारब्धसे प्राप्त भोगोंमें स्थित, और अपने बोधरूप स्नानसे शुद्ध नित्यज्ञानरूप पूजासे अपने ज्ञानरूप आत्माकी पूजा करै ॥ ७ ॥ और इस प्रकारकी पूजामें यदि मन अंधकारमें निमग्नहो तब बाह्य संपूर्णआकाशपरिपूर्ण सूर्यमंडलकी भावना करै, और तापमें निमग्न होनेसे उदयको प्राप्त विशालचंद्रमंडलकी भावना करै ॥ ८ ॥

प्रतिभासपदार्थौघनित्यावगतसंविदम् ॥ द्वारैर्वहंतंशारीरैर्मुखेप्राणस्वरूपिणम् ॥ ९ ॥ रसीकृत्यरसंप्राणस्वांतोदात्ततुरंगमम् ॥ प्राणापानरथारूढंगूढमंतर्गुहाशयम् ॥ १० ॥ ज्ञातारंज्ञेयदृष्टीनांकर्तारंसर्वकर्मणाम् ॥ भोक्तारंसर्वभोज्यानांस्मर्तारंसर्वसंविदाम् ॥ ११ ॥ सम्यक्संविदितांगौघंभावाभावनभावितम् ॥ आभासभास्वरंभूरिसर्वगंचिंतयेच्छिवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यंतर बुद्धिकी वृत्तियोंमें और उनसे प्रतिभासित पदार्थसमूहोंमें अनुगत नित्यसंवित्रूप, बाह्यविषयदेशोंमें अपने आभासोंको प्राप्त करतेहुये, और मुखमें प्राणस्वरूप ॥ ९ ॥ शब्दआदि विषयोंको अपने आत्मानंदसे रसयुक्तकरके रसका आस्वाद लेतेहुयेके तुल्य, प्राण तथा अन्तःकरणरूप उत्तम अश्वसहित, प्राण अपान रूप उत्तम अश्वपर आरूढ और बुद्धिरूप गुहामें गुप्त ॥ १० ॥ सब ज्ञेयदृष्टियोंका ज्ञाता, सबकर्मोंका कर्ता, सबभोज्यपदार्थोंका भोक्ता, और सबसंविदों (इन्द्रियजन्य ज्ञानो) का स्मर्ता ॥ ११ ॥ संपूर्णअंगोंका भलीभांति प्रतिप्रकाशक, विषयोंकी भावना तथा अभावनासे लक्षित, बुद्धि वृत्ति तथा सूर्यआदिप्रकाशोंसेभी अतिप्रकाशमान, और सर्वव्यापी उस आत्मारूप शिवका चिंतन करनाचाहिये ॥ १२ ॥

निष्कलंसकलंचैवदेहस्थंव्योमचारिणम् ॥ अरंजितंरंजितंचनित्यमंगांगसंविदम् ॥ १३ ॥ मनोमननशक्तिस्थंप्राणापानांतरोदितम् ॥ हृत्कंठताल्वमध्यस्थंभ्रूनासापुटपीठगम् ॥ १४ ॥ षट्त्रिंशत्पदकोटिस्थमु

न्मन्यंतदशातिगम् ॥ कुर्वंतमंतःशब्दादींश्चोदयंतंमनःखगम् ॥ १५ ॥ विकल्पिन्यविकल्पेचाद्विविधे वाक्पथेस्थितम् ॥ तिलेतैलमिवांगेषुसर्वेष्वेवांतरंस्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—मायासे सकल (कलासहित) और यथार्थमें निष्कल, देहमें स्थित, हृदयाकाशमें विचारशील, मायासे रंजित, और प्रत्येक अंगमें व्याप्त बोधरूप ॥ १३ ॥ मन तथा मननकी शक्तिमें स्थित प्राण तथा अपानके मध्यमें उदयको प्राप्त, हृदय कण्ठ और तालुके मध्यमें स्थित, तथा भोंह नासिकाके अग्रभागमें प्राप्त॥१४॥ शैव मतमें प्रसिद्ध षट्त्रिंशत् (३६)तत्वोंमें अंतिमस्थानमें स्थित, काली कराला तथा कलविकरणीआदि शक्तियोंके विभागमें उन्मन्यानाम अंतिम शक्तिके पारंगत, भीतर शब्दादिको करतेहुये तथा मनपक्षीको प्रेरणा करतेहुये ॥ १५ ॥ व्यवहार तथा समाधिजनित मोक्षमें स्थित, और तिलमें तैलके समान सबअंगमें स्थित ॥ १६ ॥

कलाकलंकरहितंकठिनंचकलागणैः ॥ एकदेशेसुहृत्पद्मेसर्वदेहेचसंस्थितम् ॥ १७ ॥ चिन्मात्रममलाभासंकलाकलनकल्पनम् ॥ प्रत्यक्षदृश्यंसर्वत्रस्वानुभूतिमयात्मकम् ॥ १८ ॥ प्रत्यक्चेतनमात्मीयमर्थित्वेनपुनःस्थितम् ॥ पदार्थानामुपेत्याशुक्षणाद्वित्वमिवागतम् ॥ १९ ॥ सहस्तपादावयवःसकेशनखदंतकः ॥ स्वदेहसंविदाभासोदेवोयमितिभावयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—कलाके कलंकोंसे शून्य, और भूतोंकी मात्राओंसे मूर्तिमान्, एकदेशमें स्थित, हृदयके कमलमें स्थित और संपूर्ण देशमें स्थित ॥ १७ ॥ चिन्मात्र, निर्मलप्रकाश, अध्यासके विकल्पोंके अधिष्ठान निज अनुभवरूप होनेसे सर्वत्र प्रत्यक्षदृश्य ॥ १८ ॥ निजसाक्षीरूप, और अपने स्वरूपके विस्मरणसे पुनः पदार्थोंके अर्थीरूपसे स्थित और अपनेसे भिन्नपदार्थोंके रूपको प्राप्त होके शीघ्रही अपने संकेतमात्रसे द्वित्वको प्राप्त ॥ १९ ॥ हस्तपादादि अंगसहित केश नख दंतआदिसहित, और निजदेहके ज्ञानसे ज्ञात यह आत्मारूप देव है ऐसी चिंता करनीचाहिये ॥२०

विचित्राःशक्तयोबह्व्योनानाचारामनोदृशाम् ॥ उपासतेमामनिशंपत्न्यःकांतमिवोत्तमम् ॥ २१ ॥ मनोमेद्वारपालोयंनिवेदितजगत्रयः ॥ चितेयंमेप्रतीहारीद्वारस्थाशुद्धरूपिणी ॥ २२ ॥ शक्तिर्ममात्मिकाबुद्धिःक्रियाचैववरांगना ॥ ज्ञानानिचविचित्राणिभूषणान्यंगगानिमे ॥ २३ ॥ कर्मेंद्रियाणिद्वाराणिबुद्धींद्रियगणैःसह ॥ अयंसोहमनंतात्माव्यवच्छेदोज्झिताकृतिः ॥ २४ ॥

अर्थ – मनकी वृत्तियोंकी नानाप्रकारकी मनकी अनेक शक्ति निरंतर मेरी उपासना ऐसे करती हैं जैसे धर्मपत्नी अपने पतिकी ॥२१॥ तीनोंलोकके समाचारको निवेदन करनेवाला मन मेरा द्वारपाल है, शुद्धरूप चिंता द्वारपर स्थित मेरी प्रतिहारी है ॥ २२॥ आत्माके तुल्य अन्यमें प्रीति करनेवाली बुद्धि मेरी ज्ञानशक्ति है, क्रिया श्रेष्ठ स्त्री है, लौकिक तथा शास्त्रीय विचित्रज्ञान मेरे अंगोंके भूषण हैं ॥ २३ ॥ ज्ञानेंद्रियके गुणोंकेसहित कर्म मेरे द्वार हैं, और सब विकल्पोंसे वर्जित आकारवाला यह मैं अनन्तरूपहुं ॥ २४ ॥

तिष्ठामिभरितैकात्मापूर्णःसर्वावपूरकः ॥ इतिदैवीमुपाश्रित्यस्वच्छामात्मचमत्कृतिम् ॥ २५ ॥ देवत्वपरिपूर्णोंतरदीनात्मावतिष्ठते ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनतुष्यतिनकुप्यति ॥ २६ ॥ नतृप्तिंनक्षुधंयातिनाभिवांछतिनोज्झति ॥ समःसमसमाचारःसमाभासःसमाकृतिः ॥ २७ ॥ सौम्यतामलमायातःसमंतात्सुंदराशयः ॥ आदेहमेकएवासावव्युत्पन्नमहामतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार सबका पूरक सब ओरसे पूर्ण मैं स्थितहुं, इसप्रकार अलौकिक आत्मचेतनकी चमत्कृतिकी उपासना करके ॥ २५ ॥ देवत्वभावसे पूर्ण अदीनात्मा होके अपने शुद्धरूपसे जीव स्थित रहताहै, न वह अस्तंगत होताहै, न उदित होताहै न संतुष्ट होताहै, और न कोप करताहै ॥ २६ ॥ न वह तृप्तिको न क्षुधाको प्राप्त होताहै, न किसी वस्तुको चाहताहै और न त्यागताहै, अन्तःकरणमें सम, और बाहरसे जीवन्मुक्तोंके समान आचारधारी, समानप्रकाशयुक्त और समान आकारवान् स्थितहै ॥ २७ ॥ पूर्णसौम्यताको प्राप्त, चारोओरसे सुंदर (शुद्ध) अन्तःकरणके अभिप्रायसहित और देहपातपर्य्यंत यह महामति एक अखंडस्वरूपसे स्थित रहताहै ॥ २८ ॥

देवार्चनंकरोत्येवदीर्घदीर्घमहर्निशम् ॥ चित्तत्वचलितोदेहोदेवोस्यसमुदाहृतः ॥ २९ ॥ यथाप्राप्तेनसर्वेणतमर्चयतिवस्तुना ॥ समयासर्वयाबुद्ध्याचिन्मात्रंदेवचित्परम् ॥ ३० ॥ यथाप्राप्तक्रमोत्थेनसर्वार्थैनसमर्चयेत् ॥ मनागपिनकर्त्तव्योयत्नोत्रापूर्ववस्तुनि ॥ ३१ ॥ प्राप्तदेहतयानित्यंतथार्थक्रिययानया ॥ कामसंसेवनेनाथपूजयेच्छोभनंविभुम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—चिरकालतक प्रतिदिन अहर्निश यह पूजा करताहै और चित्तत्वसे चलायमान देह (चित्तसे शून्य आत्मरूप) इसका देव कहागयाहै ॥ २९ ॥ और यथाप्राप्त समग्र त्रिपुटीरूप वस्तुसे सम और संपूर्णबुद्धिसे इन्द्रि-

योंकी वृत्तियोंमें प्रतिबिंबित चित्‌रूप देवोंसे परे शुद्ध चिन्मात्रदेवकी यह ॥ ३० ॥ यथाप्राप्त क्रमसे उत्पन्न बाह्य तथा आभ्यंतर सब वस्तुसे आत्माकी पूजा करै, और गंध पुष्प आदि अपूर्ववस्तुके लिये किंचित्‌भी उद्योग नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय आदिके शरीरके शास्त्रोक्तक्रियासे और देहधारणके निमित्त अन्नपानके सेवनसेभी उस कल्याणरूप विभुकी सेवा करनीचाहिये ॥ ३२ ॥

भक्ष्यभोज्यान्नपानेननानाविभवशालिना ॥ शयनासनयानेनयथाप्तेनार्चयेच्छिवम् ॥ ३३ ॥ कांतान्नपानसंभोगसंभारादिविलासिना ॥ सुखेनसर्वरूपेणसंबुद्ध्यात्मानमर्चयेत् ॥ ३४ ॥ आधिव्याधिपरीतेन मोहसंरंभशालिना ॥ सर्वोपद्रवदुःखेनप्राप्तेनात्मानमर्चयेत् ॥ ३५ ॥ समस्तैश्चसमस्तानांचेष्टानांजगतःस्थितेः ॥ मृतिजीवितस्वप्नाद्यैःप्राप्तैरात्मानमर्चयेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—भक्ष्य, भोज्य, और अन्नपानसे तथा नानाप्रकारके विभवोंसे शोभायमान, यथाप्राप्त शयन, आसन और यानादिसे उस परमात्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ स्त्री अन्नपानआदिके संभोगके समूहादिके विलाससे युक्त सबप्रकारके सुखसे यथार्थ आत्माको जानके उसकी पूजा करै ॥ ३४ ॥ आधिव्याधिसे व्याप्त और मोहके संरंभसे शोभित यथाप्राप्त दुःखोंसेभी आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ जगत्‌की स्थितिसंबंधी समस्तचेष्टाओंके समस्तफलोंसे, तथा जीवनमरण और यथाप्राप्त स्वप्नआदिसे आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

दारिद्र्येणाथराज्येनप्रवाहपतितात्मना ॥ विचित्रचेष्टापुष्पेणशुद्धात्मानंसमर्चयेत् ॥ ३७ ॥ नानाकलहकल्लोलललनोल्लासशालिना ॥ रागद्वेषविलासेनसौम्यमात्मानमर्चयेत् ॥ ३८ ॥ सतांहृदयगामिन्यारूढयाशशिशीतया ॥ मैत्र्यामाधुर्यधर्मिण्याहृत्स्थमात्मानमर्चयेत् ॥ ३९ ॥ उपेक्षयाकरुणयासदामुदितयाहृति ॥ शुद्धयाशक्तिपद्धत्याबोधेनात्मानमर्चयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—प्रवाह पतित दारिद्र्य अथवा राज्यसे और चित्रविचित्र चेष्टारूप पुष्पोंसे शुद्ध आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥ और नानाप्रकारकी कलहोंके तरंगोंसे युक्त स्त्रियोंके उल्लाससे शोभित रागद्वेषके विलाससे सौम्य आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ और सज्जनोंके हृदयमें आरूढ चंद्रमाके समान शीतल और मधुरतायुक्त मैत्रीसे आत्माकी पूजा करै ॥ ३९ ॥ उपेक्षासे करुणासे, हृदयमें नित्य मुदिततासे, क्रोधादिके निग्रहरूप शक्तिसे तथा ज्ञानसे आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

आकस्मिकोपयातेनस्थितेनानियतेनच ॥ भोगाभोगैकभोगेनप्राप्तेनात्मानमर्चयेत् ॥ ४१ ॥ भोगानामनिषिद्धानांनिषिद्धानांचसर्वदा ॥ त्यागेनवातिरागेणस्वात्मानंशुद्धमर्चयेत् ॥ ४२ ॥ ईहितानीहितैर्येन युक्तायुक्तमयात्मना ॥ त्यक्तेनात्तेनचार्थेनह्यर्थानामीशमर्चयेत् ॥४३॥ नष्टंनष्टमुपेक्षेतप्राप्तंप्राप्तमुपाहरेत् ॥ निर्विकारतयैतद्धिपरमार्चनमात्मनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अकस्मात् प्राप्त, अनियत स्थित, भोगोंके समूहोंमेंसे यथाप्राप्त किसी एकके किसीसमय भोगसे आत्माकी पूजा करनीचाहिये ॥ ४१ ॥ निषिद्ध वा अनिषिद्ध भोगोंके सर्वथा त्यागसे वा अतिरागसे शुद्ध आत्माकी पूजा करै ॥ ४२ ॥ इष्टअनिष्टके समूहोंमें इष्टके ग्रहण और अनिष्टके त्यागसे सबके भोक्ता आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४३ ॥ नष्टपदार्थकी उपेक्षा करै, और यथाप्राप्त पदार्थोंको ग्रहण करै, इसप्रकार निर्विकारतासे इस आत्माकी पूजा करै ॥ ४४ ॥

सर्वदैवसमग्रासुचेष्टानिष्टासुदृष्टिषु ॥ परमंसाम्यमाधायनित्यात्मार्चाव्रतंचरेत् ॥ ४५ ॥ सर्वविंदेत सुशुभंसर्वविद्याच्छुभाशुभम् ॥ सर्वमात्ममयंकुर्यान्नित्यात्मार्चाव्रतंचरेत् ॥ ४६ ॥ आपातरमणीयंय च्चापातसुदुःसहम् ॥ तत्सर्वंसुसमंबुद्धानित्यात्मार्चाव्रतंचरेत् ॥ ४७ ॥ अयंसोहमयंनाहंविभागमितिसंत्यजेत् ॥ सर्वंब्रह्मेतिनिश्चित्यनित्यात्मार्चाव्रतंचरेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे मुने ! नित्य समग्र इष्ट अनिष्ट दृष्टियोंमें परमसमताको धारणकरके नित्यआत्माकी पूजाव्रतका आचरण करै ॥ ४५ ॥ ब्रह्मदृष्टिसे सब शुभही है ऐसा ग्रहण करै, वा मायाशबलित ब्रह्मदृष्टिसे सब शुभाशुभ मिलित इसप्रकार समतासे सब आत्माही है, वा आत्मय है, वा सब आत्म प्रचुर है ऐसा चिंतन करै (देखै) ॥ ४६ ॥ जो पदार्थ आपातरमणीय हैं और जो अतिदुःसह हैं उन सबको समान जानकर नित्यआत्मपूजारूप व्रत करै ॥ ४७ ॥ यह मैं हुं यह मैं नहीं हुं इस भेदको त्यागना चाहिये और सब ब्रह्म है ऐसा निश्चय करके आत्मपूजारूप व्रतका आचरण करै ॥ ४८ ॥

सर्वदासर्वरूपेणसर्वाकारविकारिणा ॥ सर्वसर्वप्रकारेणप्राप्तेनात्मानमर्चयेत् ॥ ४९ ॥ अनीहितंपरि त्यज्यपरित्यज्यतथेहितम् ॥ उभयाश्रयणेनापिनित्यमात्मानमर्चयेत् ॥ ५० ॥ नवांछतानत्यजतादे वप्राप्ताःस्वभावतः ॥ सरितःसागरेणेवभोक्तव्याभोगभूमयः ॥ ५१ ॥ उद्वेगोनानुगंतव्यस्तुच्छातुच्छा सुदृष्टिषु ॥ व्योम्नाचित्रपदार्थेषुपतितोह्याततेष्विव ॥ ५२ ॥

अर्थ—सदा सबरूपसे, सबप्रकारके आकारयुक्त विकारवाले यथाप्राप्त सबप्रकारके सर्वरूप आत्माकी पूजा करे ॥ ४९ ॥ इष्ट अनिष्ट दोनोंको त्यागकर वा दोनोंको ग्रहण करके नित्य आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५० ॥ न इच्छा करतेहुये और न त्यागतेहुये स्वभावसे प्राप्त सुखदुःखके हेतु विषयोंको ऐसे भोगना चाहिये जैसे समुद्र नदियोंको ॥ ५१ ॥ अपमान तथा वध बंध और सर्वस्वनाशआदिके उपस्थित होनेपर उद्विग्न (शांतताको त्यागकर उससे विरुद्धस्वभावमें परिपतित) ऐसे न होना चाहिये जैसे सरल, वक्र, शीत और दाहआदि चित्रपदार्थोंमें प्राप्त आकाश ॥ ५२ ॥

देशकालक्रियायोगाद्यद्यपैपिशुभाशुभम् ॥ अविकारंगृहीतेनतेनैवात्मानमर्चयेत् ॥ ५३ ॥ आत्मार्चन विधानेस्मिन्प्रोक्ताद्रव्यश्रियस्तुयाः ॥ एकेनैवसमेनैतारसेनपरिभाविताः ॥ ५४ ॥ नाम्लानकटव्योनो तिक्तानकषायाश्चकाश्चन ॥ चित्रैरपिरसैर्दिग्धामधुराएवताःकिल ॥ ५५ ॥ समतामधुरारस्यारसश क्तिरतींद्रिया ॥ तयायद्भावितंचेत्यममृतंतत्क्षणाद्भवेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने ! देश काल और क्रियाके योगसे जो कुछ शुभअशुभ प्राप्त होताहै उसके अविकाररूपसे ग्रहणसे आत्माकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ और इस आत्माकी पूजाके विधानमें जो द्रव्यकी श्री कहीगई हैं वे सब समतारूपसे मधुर की हुई ॥ ५४ ॥ वे न आम्ल, न कटु, न तिक्त, और न कोई कसैली होती हैं, किंतु चित्रविचित्र रसोंसे लिप्त होनेपरभी केवल मधुरही रहती है ॥ ५५ ॥ समतासे मधुररसयुक्त और अती इन्द्रिय रसकी शक्ति (चित्शक्ति) है उससे जो विषय जैसे भावित (निश्चित) होताहै वह क्षणमेंही अमृत होजाताहै ॥ ५६ ॥

समतामृतरूपेणयद्यन्नामविभाव्यते ॥ तत्तदायातिमाधुर्यंपरमिंदोरिवच्युतम् ॥ ५७ ॥ समताकाशव द्भूत्वायत्तुस्याल्लीनमानसम् ॥ अविकारमनायासंतदेवार्चनमुच्यते ॥ ५८ ॥ पूर्णेंदुनेवपूर्णेनभाव्यंसम समत्विषा ॥ स्वच्छेनचिद्घनैकेनज्ञेनाप्युपलरूपिणा ॥५९॥ अंतराकाशविशदोबहिःप्रकृतकार्यकृत् ॥ रंजनामिहिकामुक्तःसंपूर्णोज्ञउपासकः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे मुने ! समतारूप अमृतसे जो २ भावित होताहै वह २ परम मधुरताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे चंद्रमासे पतित अमृत ॥ ५७ ॥ ब्रह्मकेसाथ एकताके दर्शनरूप समता आकाशके तुल्य स्वच्छ तथा विशाल होके मनकी लीनतापूर्वक अविकृत तथा अनायास जो स्थिति है उसीको मुख्य देवार्चन कहतेहैं ॥ ५८ ॥ पूर्णचंद्रके तुल्य पूर्ण, सम तथा समानप्रकाशयुक्त और स्फटिकमणिके सदृश स्वच्छ ज्ञानीको होना चाहिये ॥ ५९ ॥ भीतर आकाशके तुल्य पूर्ण, बाहरसे यथाप्राप्त कार्योंका कर्ता, और रंजनारूप कुहिरा मुक्ता ज्ञानी पुरुषही मेरा उपासक (पूजक) होसकताहै ॥ ६० ॥

स्वप्नेप्यदृष्टहृल्लेखमज्ञानाभ्रपरिक्षये ॥ शांताहंतादिमिहिकंज्ञःशरद्व्योमराजते ॥ ६१ ॥ सोमार्कमस्तमि तमानसमात्रमेयंसद्यःप्रसूतशिशुवेदनवद्वितानम् ॥ पश्यन्प्रशांतमतिचेतनचित्तबीजंजीवन्ननुत्तमप दस्थितएवतिष्ठ ॥ ६२ ॥ देशकालकरणक्रमोदितैःसर्ववस्तुसुखदुःखविभ्रमैः ॥ नित्यमर्चयशरीरनाथ कंतिष्ठशांतसकलेहयाधिया ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे देवार्चनविधिर्नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अज्ञानरूप मेघके नाश होनेपर स्वप्नमेंभी कामनारूप विद्युत्को न देखनेवाला, और अहंकाररूप कुहिरा जिसका शांत है ऐसा ज्ञानीपुरुष शरत्कालके आकाशके तुल्य शोभित होताहै ॥ ६१ ॥ आनंदामृतसे पूर्ण होनेसे निष्कलंक चंद्ररूप होताहुआ अपने प्रचंड निरंतर प्रकाशसे सूर्यरूप मनकी वृत्ति तथा प्रमाता प्रमाणआदि जहां शांत हैं, शीघ्र उत्पन्न बालकके तुल्य विकल्पोंके विस्तारसे रहित और चिदाभास तथा चित्तका बीजभूत जो अपना आत्मारूप शिव है उसको देखतेहुये तुम शांतबुद्धिहोके जीवन्मुक्तोंके पदमें स्थित रहो यही परा पूजा है ॥६२॥६३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे देवार्चनविधिर्नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

पूज्य पूजक और पूजादिविकल्पोंसे आत्मारूप शिवरहित है और सर्वथा शुद्धचिदात्माही देवताका तत्व है इस विषयका वर्णन ४० के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ यथाकालंयथारंभंनकरोषिकरोषियत् ॥ चिन्मात्रस्यशिवस्यातस्तदेवार्चनमात्मनः ॥ १ ॥ तेनैवाह्लादमायातियातिप्रकटतांतथा ॥ तथास्थितेनरूपेणस्वेनैवस्वयमीश्वरः ॥ २ ॥ रागद्वेषादिशब्दार्थानात्मन्यन्यतयामले ॥ संभवंतिपृथग्रूपावह्नौवह्निकणाइव ॥ ३ ॥ यद्यद्राजत्वदीनत्व सुखदुःखादिवेदनम् ॥ आत्मीयंपरकीयंचतत्तदर्चनमात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीईश्वरजी बोले–काल तथा शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त कार्य करो वा न करो परंतु चिन्मात्र शिवस्वरूप आत्माका अन्तःकरणमें ध्यानही उसका पूजन है ॥ १ ॥ इसी पूजा तथा इसीप्रकार स्थित होनेसे निरतिशय आनंदरूपता तथा स्वप्रकटताको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ रागद्वेषआदि शब्द तथा अर्थ निर्मल आत्मामें भिन्नरूपसे ऐसे नहीं रहसकते जैसे अग्निमें अग्निके कण ॥ ३ ॥ और आत्मीय तथा परकीय जो २ राजत्व वा दीनत्व अर्थात् संपत्ति वा विपत्ति आदिका अनुभव है वह सब आत्मदेवकी पूजा है ॥ ४ ॥

विश्वसंवित्तिरेवार्चानित्यस्यात्मनएवच ॥ घटाद्यात्मतयाब्रह्मस्वयमात्मातथैवच ॥ ५ ॥ शिवंशांतमनाभासमेकंभास्वरमागतम् ॥ जगत्प्रत्ययवत्सर्वमात्मरूपमिदंस्थितम् ॥ ६ ॥ अहोनुचित्रमात्मैवघटाद्यन्यद्व्यवस्थितम् ॥ जीवादिस्वस्वभावांतर्नूनंविस्मृतिमानिव ॥ ७ ॥ सर्वात्मकस्यानंतस्याशिवस्यांतःकिलात्मनः ॥ पूज्यपूजकपूजाख्योविभ्रमःप्रोदितःकुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—और नित्यब्रह्म तथा साक्षीरूप आत्माकी यथाक्रम आकाशादिरूप और जाग्रद् आदिरूप विश्वकी संपत्तिही पूजा है अर्थात् जैसे आकाशादिकी उत्पत्तिके क्रमसे घटआदि रूपसे नित्यब्रह्म शोभित होताहै ऐसे जाग्रद् आदि क्रमसे साक्षी आत्मा शोभित होताहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार शिव, शांत, अन्यसे अप्रकाश्य, एक, साक्षीरूप आत्माही जाग्रद्रूपसे उदित है, और यह सर्व आत्मरूपही स्थितहै अर्थात् उसीकी सत्तासे सब स्थितहै ॥ ६ ॥ अहो ! कैसा आश्चर्य है कि यही आनंदरूप साक्षी चेतन अपने स्वरूपको विस्मृतके तुल्य होके जीवादिस्वभाव होताहुआ घटआदि रूपसे व्यवस्थित है ॥ ७ ॥ सर्वरूप अनंत तथा शिव आत्माके भीतर पूज्य पूजक और पूजाका भ्रम कहांसे उदय हुआ ॥ ८ ॥

नियताकारताशांतेनचसंभवतीश्वरे ॥ यत्रसंकल्प्यतेब्रह्मन्पूज्यपूजामयःक्रमः ॥ ९ ॥ पूज्यपूजाद्यवच्छिन्नोदेवोनित्यामलात्मनः ॥ सर्वशक्तेरनंतस्यनेश्वरत्वस्यभाजनम् ॥ १० ॥ त्रिजगत्प्रसृताच्छाच्छसंविद्रूपस्यचात्मनः ॥ नेश्वरस्याकृतेर्ब्रह्मन्व्यपदेशोहियुज्यते ॥ ११ ॥ देशकालपरिच्छिन्नोयेषांस्यात्परमेश्वरः ॥ अस्माकमुपदेश्यास्तेनविपश्चिद्विपश्चिताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! जिस नियत (परिमित) आकारतामें पूज्य पूजा आदिकी कल्पना कीजाती है उस नियत आकारताका शांत और अपरिच्छिन्न आत्मामें संभव नहीं है ॥ ९ ॥ क्योंकि पूज्यपूजादिसहित देव, नित्य निर्मल सर्वशक्तिमान् और अनंत ईश्वरत्वका भागी नहीं होसकता ॥ १० ॥ तीनों लोकमें जिसका अतिस्वच्छ ज्ञानस्वरूप विस्तृत होरहाहै उस आत्मारूप ईश्वरका आकार वाणीका विषय नहीं है ॥ ११ ॥ जिनके मतमें देश काल और वस्तुसे परिच्छिन्न आत्मारूप ईश्वर है वे लोग हम बुद्धिमानोंके उपदेशके योग्य नहीं है ॥ १२ ॥

तदीयांदृष्टिमुत्सृज्यतथेमामवलंब्यच ॥ समःस्वच्छमनाःशांतोवीतरागोनिरामयः ॥ १३ ॥ कामोपहारैरभितोयथाप्राप्तैरखिन्नधीः ॥ आत्मानमर्चयंस्तिष्ठसुखदुःखशुभाशुभैः ॥ १४ ॥ अधिगतवतिसाधौचैकमेवानुरूपंत्वयितरलितजीवेजन्मदुःखादिकिंचित् ॥ नलगतिपरिशून्येसर्वतःस्फाटिकांगेनवसदनइवांकेनिष्कलंकेकलंकः ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे देवतातत्त्वविचारो नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—इसलिये परिच्छिन्न आत्मवादियोंकी दृष्टिको त्यागके और अपरिच्छिन्न आत्मा (ईश्वर) की दृष्टिका अवलंबन करके सम, स्वच्छमन, शान्त, वीतराग, निरामय तथा अखिन्नबुद्धि होकर सुखदुःख तथा शुभअशुभ यथाप्राप्त कामनारूप उपहारोंसे (भेटों) नित्य आत्माकी पूजा करतेहुये स्थित रहो ॥ १३ ॥ १४ ॥ महावाक्यादिसे

शोधन करके देहसे जीवस्वरूपको पृथक् करनेवाले,अभिमान आदि गणसे शून्य,होनेपर पूज्यपूजादिके विचारसे अपने योग्य एक आत्मतत्त्वको जाननेवाले, साधुरूप तुममें जन्मआदिका दुःख किंचित् ऐसे नहीं लगता जैसे नीलवस्तुओंसे शून्य स्फटिकशिलासे रचित निष्कलंक नूतनगृहमें कलंक ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे देवतात्वविचारोनाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

शास्त्र आचार्य्यआदिकी सफलता, नामके भेदादिकी कल्पना, अध्यारोपका क्रम, और पश्चात् अपवादआदि विषयोंका वर्णन ४१ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शिवःकिमुच्यतेदेवपरंब्रह्मकिमुच्यते ॥ आत्माकिमुच्यतेनाथपरमात्माकिमुच्यते ॥ १ ॥ तत्सत्किंचिन्नकिंचिच्चशून्यंविज्ञानमेवच ॥ इत्यादिभेदोभगवंस्त्रिलोकेशकिमुच्यते ॥२॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ अनाद्यंतमनाभासंसत्किंचिदिहविद्यते ॥ इंद्रियाणामगम्यत्वाद्यन्नकिंचिदिवस्थितम् ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यदिंद्रियाणांबुद्ध्यादियुक्तानामप्यदृश्यताम् ॥ गतंतत्कथमीशानत्वशंकेनोपगम्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे देव ! हे नाथ ! शिव किसको कहतेहैं, परब्रह्म किसको कहतेहैं, आत्मा किसको और परमात्मा किसे कहते हैं ॥ १॥ हे त्रिलोकेश भगवन् ! वह सत् है, वह किंचित्‌रूप है, कुछहै, शून्य है, तथा विज्ञानभी है इत्यादि भेद श्रुतिमें क्यों कहेहै ॥ २ ॥ श्रीईश्वरजी बोले–हे मुने ! अनादि अनंत, अन्यपदार्थोंसे अप्रकाश, सन्मात्र, किंचित् (कुछ) इस ब्रह्मांडमें है, और वह इंद्रियोंका अविषय होनेसे न किंचित् (कुछ नहीं) के सदृश स्थित है ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे भगवन् ! जो मन बुद्धिआदिसे युक्त इन्द्रियोंकाभी विषय नहीं है, हे ईशान (शिव) उसको उपादेयप्राप्तिके शंकासे रहित अधिकारी पुरुष साक्षात्कार कैसे करताहै ॥ ४ ॥

श्रीईश्वरउवाच ॥ ॥ योमुमुक्षुरविद्यांशःकेवलोनामसात्विकः ॥ सात्विकैरेवसोविद्याभागैःशास्त्रादिनामभिः ॥ ५ ॥ अविद्याश्रेष्ठयाश्रेष्ठांक्षालयन्निहतिष्ठति ॥ मलंमलेनापहरन्युक्तिज्ञोरजकोयथा ॥६॥ काकतालीयवत्पश्चादविद्याक्षयआगते ॥ प्रपश्यत्यात्मनैवात्मास्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ ७ ॥ यथाकथंचिदंगारेनिघृष्यक्षालयञ्छिशुः ॥ करनैर्मल्यमाप्नोतिकाष्ण्र्यांगारक्षयेयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीईश्वरजी बोले–हे मुने ! जो मुमुक्षु है वह केवल सात्विक अविद्यांशको शास्त्र नामक सात्विक अविद्याके भागोंसे ॥ ५ ॥ श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिसे तत्वसाक्षात्कारांत अपनी वृत्तियोंकी परंपरासे अनेक जन्मसंचित सुकृतद्वारा श्रेष्ठकार्य अविद्याको क्षालन करतेहुये अधिकारी जीव ऐसे स्थित रहतेहैं जैसे मलसे मलको क्षालन करनेकी युक्ति जाननेवाला रजक (धोबी) ॥ ६ ॥ इसके अनंतर चिरकालके अभ्याससे अकस्मात् भाग्यके परिपाकतासे उत्पन्न ब्रह्माकारवृत्तिसे अविद्याका सर्वथा क्षय होनेसे आवरणरहित आत्मा आत्माहीसे आत्माको देखता है, क्योंकि आत्माके स्वभावका स्वप्रकाशरूपसे शेष रहजानाही निश्चय है ॥७॥ जैसे दो कोलेके टुकडोंको लेके बालक अपने हांथमें घिसतेहुये उन टुकडोंके क्षय होनेपर हांथकी स्वतःसिद्ध निर्मलता प्राप्त करताहै ॥८॥

यथाकथंचिच्छास्त्राद्यैर्भागैर्भागांविचारयैत् ॥ सात्विकस्तामसोभागोद्वयोरात्मोदयस्तथा ॥ ९ ॥ पश्यत्यात्मानमात्मैवविचारयतिचात्मना ॥ आत्मैवेहास्तिनाविद्याइत्यविद्याक्षयंविदुः ॥ १० ॥ यावत्किंचिदिदंवस्तुनानानात्मावगम्यताम् ॥ क्रमागुरूपदेशाद्यानात्मज्ञानस्यकारणम् ॥ ११ ॥ गुरुर्हीद्रियवृत्तात्मात्ब्रह्मसर्वेंद्रियक्षयात् ॥ यद्वस्तुयत्क्षयेप्राप्यंतत्तस्मिन्सतिनाप्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही शास्त्ररूप सात्विक अविद्याके भागोंसे विचारतेहुये सात्विक और तामस दोनों अविद्याके भागोंके नाश होनेपर आत्माका उदय होताहै ॥ ९ ॥ विचारसे आत्मा आत्मासे आत्माको देखताहै क्योंकि यथार्थमें आत्माही है न कि अविद्या इससे अविद्याको क्षय कहतेहैं ॥ १० ॥ जो कुछ नानाप्रकारकी वस्तु है वह आत्मा नहीं है और गुरुके उपदेश तथा शास्त्रआदि आत्मज्ञानके साक्षात् कारण नहीं है ॥ ११ ॥ क्योंकि गुरु इन्द्रिय आदिसे घटित है अर्थात् इन्द्रियादिसहित है, और ब्रह्म सबइन्द्रियोंके क्षयसे प्राप्त होताहै, और जो वस्तु जिसके क्षयसे प्राप्त होतीहै वह उसके रहनेसे नहीं प्राप्त होती ॥ १२ ॥

अकारणान्यपिप्राप्ताभृशंकारणतांद्विज ॥ क्रमागुरूपदेशाद्याआत्मज्ञानस्यसिद्धये ॥ १३ ॥ क्रमेगुरूप देशानांप्रवृत्तेशिष्यबोधतः ॥ अनिर्देश्योप्यदृश्योपिस्वयमात्माप्रसीदति ॥ १४ ॥ शास्त्रार्थैर्बुध्यतेनात्मा गुरोर्वचनतोनच ॥ बुध्यतेस्वयमेवैषस्वबोधवशतस्ततः ॥ १५ ॥ गुरूपदेशशास्त्रार्थैर्विनाचात्मानबु ध्यते ॥ एतत्संयोगसत्तैवस्वात्मज्ञानप्रकाशिनी ॥ १६ ॥

अर्थ—हे द्विज ! गुरुके उपदेशआदि क्रम आत्मज्ञानकी सिद्धिकेलिये विस्मृत कंठगत मणिके दर्शनिके तुल्य कारण न रहतेभी अतिकारणताको प्राप्त हैं ॥ १३ ॥ गुरुओंके उपदेशके प्रवृत्त होनेपर शिष्यके बोधसे अनिर्देश्य और अदृश्यभी आत्मा स्वयं प्रकट होताहै ॥ १४ ॥ केवल गुरुके वचन वा शास्त्रर्थसे आत्मा नहीं जानाजाता किंतु आत्माके बोधसे वह स्वयं जानाजाताहै ॥ १५ ॥ और गुरुके उपदेश तथा शास्त्रार्थकी सत्यता विनाभी आत्मा नहीं जानाजाता, गुरु तथा शास्त्रर्थके संयोगकी सत्ताही आत्मज्ञानकी प्रकाशिनी है ॥ १६ ॥

गुरुशास्त्रार्थशिष्याणांचिरसंयोगसत्तया ॥ अहनीवजनाचारआत्मज्ञानंप्रवर्तते ॥ १७ ॥ कर्मबुद्धींद्रि यार्थंतसुखदुःखादिसंक्षये ॥ शिवआत्मेतिकथितस्तत्सदित्यादिनामभिः ॥ १८ ॥ यत्रेदमखिलंनास्ति तद्रूपेणैवचास्तिवा ॥ तदाकाशादच्छतरमनंतंसदिवास्तिहि ॥ १९ ॥ अविश्रांततयायत्रतनुविद्यैर्मुमु क्षुभिः ॥ विचित्रशुद्धमननकलंककलितात्मभिः ॥ २० ॥ अदूरएवतिष्ठद्भिर्जीवन्मुक्तस्यदृक्पथे ॥ मो क्षोपासकबोधायशास्त्रार्थरचनायच ॥ २१ ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रप्रमुखैर्लोकपालैःसुपंडितैः ॥ पुराणवेदसिद्धां तसिद्धयेभावितात्मभिः ॥ २२ ॥

अर्थ—गुरु शास्त्रार्थ और शिष्योंके संयोगकी सत्तासे आत्मज्ञान ऐसे प्रवृत्त होताहै जैसे दिनमें मनुष्योंके आ-चार ॥ १७ ॥ कर्मेइन्द्रिय ज्ञानेइन्द्रिय तथा सुखदुःखआदिके क्षय होनेपर शिव आत्मा और तत्सत् इत्यादि नामोंसे कहाजाताहै ॥ १८ ॥ जहांपर यह संपूर्ण ब्रह्मांड नहीं है अथवा उसीके रूपसे है वह परमात्मा आकाशसेभी स्वच्छ अनंत और सत्रूप है ॥ १९ ॥ जिस स्वरूपमें अविश्रांत होनेके कारण अधिकारीपुरुषोंकी मुक्ति चाहनेवाले विचित्र जगत् तथा शुद्ध तत्वके मननरूप कलंकयुक्त आत्मासे युक्तहै मन जिनका परमार्थके समीप जीवन्मुक्तोंके दृष्टिपथ-स्थित, अति प्राचीन पंडित प्रतिष्ठित ब्रह्मा रुद्रादिकोंने मोक्षके उपासक भक्तोंके ज्ञानकेलिये तथा तत्वज्ञान और उसके उपायरूप शास्त्रार्थके वर्णनेकालिये पुराणे वेद और व्याससूत्रादिकोंके सार्थकताकेलिये ॥ २० ॥ २१ ॥ २२॥

चिद्ब्रह्मशिवआत्मेशपरमात्मेश्वरादिका ॥ एतस्मिन्कल्पितासंज्ञानिःसंज्ञेपृथगीश्वरे ॥ २३ ॥ एवमेत जगत्तत्त्वंस्वंतत्त्वंशिवनामकम् ॥ सर्वथासर्वदासर्वसर्वंयत्सुखमास्वभो ॥ २४ ॥ शिवआत्मापरंब्रह्मे त्यादिशब्दैस्तुभिन्नता ॥ पुरातनैर्विरचितातस्यभेदोनवस्तुतः ॥२५॥ एवंदेवार्चनंनित्यंज्ञःकुर्वन्मुनिना यक ॥ यत्रास्मदादयोभृत्यास्तत्प्रयांतिपरंपदम् ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अविद्यमानमेवेदंविद्यमा नमिवस्थितम् ॥ यथातन्मेसमासेनभगवन्वक्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ योसौब्रह्मादिश ब्दार्थःसंविदंविद्धिकेवलम् ॥ स्वच्छमाकाशमप्यस्यस्थूलंमेरुरणोरिव ॥ २८ ॥

अर्थ—चित्, ब्रह्म, शिव, आत्मा, ईश, परमात्मा और ईश्वरआदि संज्ञा संज्ञारहित इस परब्रह्ममें पृथक् २ कल्पित कीहैं ॥ २३ ॥ हे वसिष्ठजी ! आकाशादिके आरोपका अधिष्ठान होनेसे जगत्तत्व, और तीनों अवस्था-ओंके आरोपका अधिष्ठान होनेसे निजआत्मरूप तत्व जो सबवस्तुओंके भावका निर्वाहक है वह केवल ब्रह्म स-र्वथा सदा सर्वरूप सुखही है, अणुमात्रभी भिन्न न हो ऐसा निश्चय करके तुम उसी रूपमें स्थित रहो ॥ २४ ॥ और प्राचीन मुनियोंने शिव, परब्रह्म, आत्मा और परमात्मा इत्यादिशब्दोंसे जो भेद कहाहै वह यथार्थ नहीं है ॥ २५ ॥ हे मुनिनायक वसिष्ठजी ! ज्ञानीपुरुष इस आत्माचिन्तनरूपदेवपूजन करताहुआ उस परमशिवपदमें प्राप्तहोताहै जहांपर एक २ गुणके अभिमानी सृष्टिकार्यमें नियत हमलोगभी भृत्यके तुल्य हैं ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे भ-गवन् ! जिसप्रकार अविद्यमानही यह जगत् विद्यमानके समान स्थित है वह मुझसे संक्षेपसे कहो ॥ २७ ॥ श्रीईश्व-रजी बोले—हे मुने ! यह जो ब्रह्मआदि शब्द उनको केवल संवित्मात्र जानो और स्वच्छ आकाशभी इससे ऐसा स्थूल है जैसे अणुसे मेरु ॥ २८ ॥

सावेद्यमिहगच्छंतीयातिचित्रामयोग्यताम् ॥ अप्यवेद्यवतीनूनमुन्मन्यंतपदस्थिता ॥ २९ ॥ क्षणाद्भा वितवेद्यत्वादहंतामनुगच्छति ॥ पुरुषत्वात्पुमान्स्वप्नेवनवारणतामिव ॥ ३० ॥ अस्याहंतादिरूपाया देशतांकालतांगताः ॥ संपद्यंतेततःशून्यरूपिण्यःसख्यएवताः ॥ ३१ ॥ ताभिःसंवलितासैवसत्ता जीवाभिधानिका ॥ भवतिस्पंदविज्ञानापवनस्येवलेखिका ॥ ३२ ॥

अर्थ—विषयसेरहित निर्विकल्पसमाधिमें स्थित विषयकी ओर अभिमुख निश्चय करके चित्नामकी योग्यता प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ और क्षणमेंही भावित वेद्यदशासे अहंकारताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे स्वप्नमें पुरुष अपनी पुरुषतासे हस्ती (हांथी) दशाको ॥ ३० ॥ और देशकालतादशाको प्राप्त जो कल्पना होती हैं ॥ वे इस अहंतारूप चित्की सखी हैं ॥ ३१ ॥ उन देशकालआदि कल्पनाओंसे आच्छादित वही सत्ता अहंताके योग्य संस्कारोंके जागनेसे स्पंद तथा विज्ञानयुक्त होके प्राणकी लेखाके तुल्य जीवनामिका होती है ॥ ३२ ॥

जीवशक्तिस्तथाभूतानिश्चयैकविलासिनी ॥ बुद्धितामनुयातासाभवत्यज्ञपदेस्थिता ॥ ३३ ॥ शब्दशक्त्याक्रियाशक्त्याज्ञानशक्त्यानुगम्यते ॥ प्रत्येकंप्रस्फुरत्यंतरप्रदर्शितरूपया ॥ ३४ ॥ मिलित्वैषगणः क्षिप्रंस्मृतिसमनुकूलयन् ॥ मनोभवतिभूतात्मबीजंसंकल्पशाखिनः ॥३५॥ आतिवाहिकदेहोक्तिभाजनंतद्विदुर्बुधाः ॥ अंतस्थयाब्रह्मशक्त्याज्ञरूपंस्वात्मनात्मदृक् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसप्रकार वह शक्ति निश्चयके संस्कारोंके उद्बोध (जागने) से निश्चयरूप विलासयुक्त बुद्धिताको प्राप्त होके अज्ञानके पदमें स्थित रहती है ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् कायिक वाचिक और मानसिक व्यवहारोंके संस्कारके उद्बोधसे शब्दशक्ति, क्रियाशक्ति, और ज्ञानशक्ति अहंताके पीछे चलती हैं ॥ ३४ ॥ और इसके पश्चात् कर्मेंद्रिय और ज्ञानेन्द्रियादिका यह सब गुण मिलकर स्मरणके अनुकूल होताहै, और भौतिक मन होताहै जोकि संकल्परूप वृक्षका बीज है ॥ ३५ ॥ और इसीको अर्थात् पंचज्ञानेंद्रिय और पंचकर्मेंद्रिय तथा प्राणको बुद्धिमान् पंडित सूक्ष्म शरीर कहतेहैं, और अन्तःकरणमें स्थित साक्षीरूप ब्रह्मशक्तिसे व्याप्त अपने आत्माहीसे आत्माको देखनेवाला प्रमातारूप चेतन होजाताहै ॥ ३६ ॥

संपद्यमानाएवास्मिंश्चेतसीमाहिशक्तयः ॥ पश्चादिहबहिष्ठास्ताउद्यंत्यनुदिताअपि॥ ३७ ॥ वातसत्तास्पंदसत्तास्पर्शसत्तातथैवच ॥ त्वक्सत्तातेजसांसत्तातथासत्ताप्रकाशिनी ॥ ३८ ॥ रूपसत्ताजलसत्तास्वादुसत्तातथैवच ॥ तथैवरससत्ताचगंधसत्तातथैवच ॥ ३९ ॥ भूसत्ताहेमसत्ताचपिंडसत्ताचपीवरी ॥ देशसत्ताकालसत्तासर्वाख्याकारवर्जिता ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी चित्तमें उत्पन्न होती हुई ये शक्ति पश्चात् ये तथा वक्ष्यमाण अनुदयको प्राप्त शक्ति बाह्य दृश्यरूपताको प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ वायुकी सत्ता उसकी प्रकाशिका स्पंद (गति) सत्ता, स्पर्शसत्ता, त्वगिन्द्रियकी सत्ता तेजकी सत्ता और उसका प्रकाश करनेवाली नेत्रइन्द्रियकी सत्ता ॥ ३८ ॥ रूपकी सत्ता, जलकी सत्ता, स्वादकी सत्ता, उसकी प्रकाशिका रसना इन्द्रियकी सत्ता, और गंधकी सत्ता ॥ ३९ ॥ तथा पृथिवीकी सत्ता, और देशकालकी सत्तासहित सबवस्तुसे पूर्ण सुवर्ण और रजत (चांदी) मय ब्रह्मांडके खप्परकी अतिमहती सत्ता अहंताका अनुसरण करती है और यथार्थमें आकारसे रहित चित्शक्ति ॥ ४० ॥

सर्वसत्तागणंचैतत्क्रोडीकृत्यस्वरूपवत् ॥ स्फुरत्याश्रित्यपत्रादिबीजंबीजादितांगतम् ॥ ४१ ॥ एतत्पुर्यष्टकंविद्धिदेहोयंचातिवाहिकः ॥ अपारबोधमेतत्तुस्फुरत्यंगविभागवत् ॥ ४२ ॥ एवमाद्यंगसंपन्नंसंपन्नंनचकिंचन ॥ नज्ञानंनचतद्रूपंनविदाचितचेतनम् ॥ ४३ ॥ परंपरेप्रस्फुरितंकेवलंकेवलात्मसत् ॥ जलपीठस्यजठरेजलद्रवविलासवत् ॥ ४४ ॥

अर्थ —इस सबसत्ताके समूहको अपने स्वरूपसे अभिन्नरूपसे संग्रह करके सबके आगे ऐसे स्फुरित होती है जैसे बीज उत्तरोत्तरके परिणामसे बीजदशाको प्राप्त अंकुर शाखा पत्र आदिको अपने स्वरूपमें रखके स्फुरित होताहै ॥ ४१ ॥ हे मुने! सबकी सत्ताको अपने स्वरूपमें अन्तर्भाव करनेवाले इसी चित्को तुम पुर्यष्टक जानो, वासनासे यही सूक्ष्मशरीर है, अपारज्ञानयुक्त चित्स्वरूप ब्रह्मही इस पूर्वोक्त विभागवान् होके स्फुरित होताहै ॥ ४२ ॥ हे प्रिय मुने! अज्ञानियोंकी दृष्टिमें इस पूर्वोक्त आकारादि युक्त संपन्नहुआ है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें कुछ नहीं हुआ, न ज्ञानहै, न ज्ञानयुक्त चेतनका स्वरूप है, और न उन २ शरीरआदिमें चिदाभाससे संचित चेतन (जीवादि) है, क्योंकि ज्ञानरूप चेतन ब्रह्मके सिवाय कुछ है ही नहीं है ॥ ४३ ॥ सनातन परब्रह्ममें केवल सत्रूप ब्रह्मही यह ऐसे प्रस्फुरितहै जैसे समुद्रके गर्भमें तरंग आदि जलके विलास ॥ ४४ ॥

संवित्संवेदनैकात्मपृथगेतदचेतनम् ॥ संपद्यतेपरिज्ञातंसंकल्पनगरोपमम् ॥ ४५ ॥ संवेदनात्परिज्ञानाच्छिवतामेवगच्छति ॥ अज्ञातमेववायत्तत्कथंगच्छतिवस्तुताम् ॥ ४६ ॥ अथैतद्विदलेस्वांतःसंकल्पादंशतांस्वतः ॥ तन्मात्रसत्तातस्याणोरेतांपश्यतिदेहके ॥ ४७ ॥ सर्वस्थूलत्वमापन्नंतदेवाशुप्रपश्यति ॥ तस्यतन्मात्ररंध्राणियथादेशंप्रपश्यति ॥ ४८ ॥

अर्थ—क्योंकि संपूर्ण संसारके ब्रह्मस्वरूप ज्ञात होनेसे सब एकात्मक है और ब्रह्मसंवित्‌से पृथक् कियाहुआ सब प्रकाशक चेतनसे शून्य गंधर्वनगरके तुल्य परिज्ञात होताहै ॥ ४५ ॥ और संवित्‌रूपके ज्ञानसे सब संसार शिवरूपताको प्राप्त होताहै, और अज्ञात तो वस्तुताको प्राप्त हो नहीं सकता ॥ ४६ ॥ यदि यह कहो कि यह चित् अपने भीतरके संकल्प (एकाहंबहुस्याम्) से स्वयं दृश्य अंशताका अपने भीतर यह चित् अनुभव करती है तो संकल्पित पदार्थके मिथ्या होनेसे पर सूक्ष्म आत्माके स्वभावसे उसकी सत्ता है, प्रथम कल्पित सूक्ष्मशरीरमें चिरकालके अभ्याससे स्थूलताको देखती है ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्म स्थूलशरीरके संबंधसेही शीघ्र स्थूलताको प्राप्त सब अन्नमय आदि भीतरके चार कोश और बाह्य विषयसमूहको देखताहै और बाह्यविषयोंके दर्शनमें उस देहके नेत्र आदिके छिद्रोंको रूप आदि अपने २ विषयोंमें व्यवस्थित देखताहै ॥ ४८ ॥

ततःपुरुषरूपैकभावनात्पुरुषाकृतिम् ॥ काकतालीयवद्दृष्ट्वातुष्टंपुष्टंभवत्यलम् ॥ ४९ ॥ जीवदेतदवस्थाकंस्थितंपश्यतिदेहकम् ॥ असंतमेवगंधर्वपुरंस्वप्ननरंयथा ॥ ५० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ गंधर्वनगराकारमपिस्वप्ननरोपमम् ॥ जगद्दुःखायदुःखस्यकात्रयुक्तिःपरिक्षये ॥५१॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ वासनावशतो दुःखंविद्यमानेचसाभवेत् ॥ अविद्यमानंचजगन्मृगतृष्णांबुभगवंत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—उसके अनंतर हस्तपाद आदि समूहमें और आभ्यंतरके कोशोंमें पुरुषाकार भावना करनेसे अपनेको पुरुषाकार देखताहै, और अकस्मात् अपनेको व्यवहारके समर्थ देखके पूर्णरीतिसे तुष्ट तथा पुष्ट होताहै ॥ ४९ ॥ असत्य और अविद्यमान गंधर्वनगर तथा स्वप्नके मनुष्यके समान जीते हुये इस देहको देखताहै ॥ ५० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे भगवन् ! गंधर्वनगर वा स्वप्नके मनुष्यके तुल्य यह सब संसारहो परंतु जगत्‌में दुःख तो उत्पन्न करताही है इसलिये दुःखके नाशके लिये क्या युक्ति है ॥ ५१ ॥ हे मुने ! वासनासे दुःख होताहै और वह वासना विद्यमान वस्तुमें होती है और जगत् तो मृगतृष्णाके जलके तरंगके समान मिथ्या है ॥ ५२ ॥

अतःकिंवास्यतेकेनकस्यवावासनाकुतः ॥ कथंस्वप्ननरेणांगमृगतृष्णांबुपीयते ॥ ५३ ॥ सद्द्रष्टरितुसाहंतेसमनोमननादिके ॥ अविद्यमानेजगतियत्सत्तत्परिदृश्यते ॥ ५४ ॥ यत्रनोवासनानैववासकोनैववास्यता ॥ केवलंकेवलीभावःसंशांतकलनभ्रमः ॥ ५५ ॥ यस्यसत्योप्यसत्योवाशून्यएवहियक्षकः ॥ विलीनस्तस्यकैवल्यात्किमन्यदवशिष्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसलिये किससे क्या वासित होताहै और किसको और कहांसे वासना होती है, क्योंकि स्वप्नका मनुष्य मृगतृष्णाकी नदीका जल कैसे पीसकताहै ॥ ५३ ॥ द्रष्टा, अहंकार, मन और मननसहित अविद्यमान इस जगत्‌में जो सन्मात्र है वह शेष रहजाताहै ॥५४॥ जहां न वासना न वासक (वासना देनेवाला) और न वास्य (वासनाके योग्य) कुछ नहीं है, किंतु केवल शांत कल्पनाके भ्रमसे शून्य चित्‌स्वरूपमात्र है ॥ ५५ ॥ सत्यहो वा असत्यहो जिसका मनरूप यक्ष शून्य होनेसे नित्य लीन है उसके कैवल्यसे पृथक् और क्या शेष रहजाताहै ॥ ५६ ॥

शून्यएवहिवेतालइवेत्थंचित्तवासना ॥ उदितेयंजगन्नाम्नीतच्छांतौशांतिरक्षता ॥ ५७ ॥ अहंतायांजगतिचमृगतृष्णाजलेषुयः ॥ सास्थस्तंधिग्घतनरंनोपदेश्यस्त्वसाविति ॥ ५८ ॥ जीवंविवेकिनमिहोपदिशंतितज्ज्ञानोबालमुद्भ्रमसन्मयमार्यमुक्तम् ॥ अज्ञंप्रशास्तिकिलयःकनकावदातांसस्वप्नदृष्टपुरुषाय सुतांददाति ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—हे मुने ! शून्यमें वेतालके समान जगत्‌नामवाली यह चित्‌की वासना उदित हुई है उसकी शांतिके अर्थ शांति अक्षत (विघ्नरहित) है ॥ ५७ ॥ अहंकारमें, जगत्‌में, और मृगतृष्णाके जलमें जो विश्वासवान् है उस अभागे मनुष्यको धिक्कार है ॥ ५८ ॥ इससंसारमें आत्मज्ञानीलोग अधिकारी विवेकी जीवकोही उपदेश देतेहैं न कि अनेकभ्रमयुक्त आर्योंसे उपेक्षित अज्ञानी जीवको, क्योंकि अज्ञानी जीवको जो उपदेश करताहै वह मानो अपनी कनकांगी कन्या स्वप्नमें देखे हुये पुरुषको देताहै ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

ईश्वर आदिपूर्वक समष्टि व्यष्टि संसारकी सिद्धि (रचना) सब माया है ऐसा उपदेश करके महादेवजी अपने स्थानको गये ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ततःसजीवोभगवन्दृष्टवान्देहसंभ्रमम् ॥ आदिसर्गेनभःसंस्थःकामवस्थामुपैतिहि ॥ १ ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ परस्मात्परमेव्योम्निपूर्वोक्तक्रमतोवपुः ॥ जीवःपश्यतिसंपन्नंसचस्वप्नरोयथा ॥२॥ सर्वगत्वाच्चिद्घनस्यकार्यंस्वप्नरोपिहि॥ यथाकरोत्याशुतथाजीवोप्यपिशरीरधृक्॥३॥ सनातनोहमव्यक्तःपुमानित्यभिधांततः ॥ करोत्यात्मनितिनाशुप्रथमःप्रथितःपुमान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे भगवन् ! देहके संभ्रमको जिस जीवने देखलियाहै, वह प्रलयके अनन्तर आकाशमें स्थित आदिसर्ग (सृष्टि) में किस अवस्थामें प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ ईश्वरजी बोले–हे मुने ! जैसे स्वप्नका मनुष्य सूक्ष्मनाडीके छिद्रोंमें ब्रह्मांडको देखताहै ऐसेही वह जीव पूर्वोक्तक्रमसे परमसूक्ष्म चिदाकाशमें शरीरको देखताहै ॥ २ ॥ चिद्घन परमात्माके सर्वगामी होनेसे नाडियोंके छिद्रोंमेंभी स्वप्नका मनुष्य जैसे शरीर धारण करके ब्रह्मांडरूप कार्य करताहै वह इससमयभी प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ आदिसृष्टिमें वही समष्टिउपाधिवाला हिरण्यगर्भमें सनातन अव्यक्त पुरुषहूं ऐसी अभिधा (नाम) को प्राप्त होके अपने आत्मामें तथा बाह्यविषयोंमेंभी नामरूपादिभेदकी रचना शीघ्र करताहै ॥ ४ ॥

एवंससर्गेकस्मिंश्चित्प्रथमोथसदाशिवः ॥ कस्मिंश्चिद्विष्णुरित्युक्तोनाभ्युत्पन्नःपितामहः ॥ ५ ॥ पितामहःसकस्मिंश्चित्कस्मिंश्चिदपिचेतरः ॥ सचसंकल्पपुरुषःसंकल्पान्मूर्तिमास्थितः ॥ ६ ॥ पुष्टःप्रथमसंकल्पस्तांमनोमूर्तिमास्थितः ॥ यद्यथाकल्पयत्याशुतत्तथानुभवत्यलम् ॥ ७ ॥ तत्त्वसद्रूपमखिलंशून्यवेतालकोयथा ॥ भ्रमदृष्ट्यातुसद्रूपमित्यहंताजगद्गतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसप्रकार कभी तो आदिसृष्टिमें सदाशिव इस नामसे, कभी विष्णु और कभी पितामहनामसे वह पुरुष कहाजाताहै ॥ ५ ॥ कभी आदिसृष्टिमें पितामहनामसे कभी अन्य दुर्गा भैरव और गणेश आदि नामसे प्रसिद्ध होके सृष्टि करताहै, क्योंकि वह संकल्पका पुरुष है और संकल्पसेही मूर्तिको धारणकियाहै ॥ ६ ॥ उसका प्रथम संकल्पही सूक्ष्मभूतोंकी सृष्टिद्वारा पुष्ट होके शीघ्र समष्टि व्यष्टि उस मनकी मूर्ति अर्थात् हिरण्यगर्भ होके भुवन और प्रजाकी सृष्टि आदिकी जैसी कल्पना करताहै वह शीघ्र वैसाही होजाताहै ॥ ७ ॥ तत्त्वदृष्टिसे वह सम्पूर्ण भुवनआदि ऐसे असत् हैं जैसे शून्यस्थानमें वेताल, और भ्रमदृष्टिसे तो सब जगत् सत्यके समान भासता है, इसप्रकार अहंकारसे कल्पित जगत्की गति है ॥ ८ ॥

द्रष्टादिपुरुषस्त्वेवंस्वयंसंपद्यतेहियः ॥ सनिमेषंप्रतिव्योमसमुदेत्यथनीयते ॥ ९ ॥ निमेषएवकल्पोयोमहाकल्पपरंपराम् ॥ प्रतिभासविपर्यासमात्रेणानुभवत्यलम् ॥ १० ॥ परमाणौपरमाणौव्योम्निव्योम्निक्षणेक्षणे ॥ सर्गकल्पमहाकल्पभावाभावाभवंतिते ॥११॥ दृश्यंतेकेचिदन्योन्यंसाधर्म्याद्वासनागतेः॥ मिथःकेचिन्नदृश्यंतेदृष्टेनाथसदात्मना ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार आदिपुरुष सदाशिव अपने संकल्पसे रचित जगत् द्रष्टा आदि होजाताहै, वही अपने २ शुद्धरूपका स्मरण करताहै तब निमेषमात्रमें चिदाकाशरूप होजाताहै, और अपने स्वरूपके विस्मरणसे निमेषमात्रमें अनंत अपार संसारमें प्राप्त कियाजाताहै ॥ ९ ॥ जो एकनिमेषमेंही प्रतिभासके विपर्यासमात्रसे अनंतकल्प तथा महाकल्पोंकी परम्पराका अनुभव करताहै ॥ १० ॥ और परमाणु २ में, सूचीके छिद्रमात्र आकाशमेंभी और क्षण २ में सर्ग (सृष्टि) कल्प तथा महाकल्पोंके उत्पत्ति और नाश हुआ करते हैं ॥ ११ ॥ वासनाकी तुल्यतासे कोई सृष्टि तथा कल्प तो परस्पर देखपडतेहैं और कोई वासनाके भेदसे अधिष्ठानरूपसे नित्य अपरोक्ष इस आत्मासे परस्पर नहीं देख पडते ॥ १२ ॥

सर्गासर्गेणसर्वत्रसंभवंतिनतेशिवे ॥ भवंतिपरमेव्योम्निव्योमरूपाइतिस्वयम् ॥ १३ ॥ स्वयंचसदसद्रूपालीयंतेस्वप्नशैलवत् ॥ सर्गैर्नदेशआक्रांतोनचकालोनकर्तृता ॥ १४ ॥ नचैतेसत्स्वरूपावानकल्प्यंनापिचक्षणः ॥ नचेदंजायतेकिंचिन्नचकिंचननश्यति ॥१५॥ सर्वसंकल्परूपेणचिच्चमत्कुरुतेचिति ॥ स्वप्नपत्तननिर्माणपातोत्पातनवज्जगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—क्योंकि सर्गरूपसे स्थित जीवसे भावित सर्ग (सृष्टि) सम्भव होतेहैं, और परमार्थस्वभाव शिवरूप आत्मामें उनका सम्भव नहीं है क्योंकि परमचिदाकाश आत्मामें वे स्वयं चिदाकाशरूप होजातेहैं ॥ १३ ॥ और स्वयं सर्ग सदसत्‌रूप हैं स्वप्नके पर्वतके समान लीन होजातेहैं, और सर्गोंमे उत्पत्तिके पूर्व देशकालका आक्रमण और न उनकी कर्तृताहै !! १४ ॥ मिथ्या होनेसे ये सर्ग सत्स्वरूपभी नहीं हैं न इन सर्गोंमें सत्वकी कल्पना है क्योंकि अ-सत् सत्का आश्रय नहीं होसकताहै, न वैनाशिक मतके अनुसार यह क्षणिक है, और यथार्थमें न कुछ उत्पन्न हो, और न कुछ नष्ट हो ॥ १५ ॥ किन्तु स्वप्नके नगरकी रचना तथा पतन उत्पतनके तुल्य इस सब जगत्‌को चित् अपनेही स्वरूपमें संकल्पमात्रसे चमत्कार कररहीहै ॥ १६ ॥

नदेशकालक्रमणंकरोतिचमनागपि ॥ यथासंकल्पशैलेनदेशकालाद्यनंतकम् ॥ १७ ॥ आक्रांतमपिनाक्रांतंतथैवजगतासता ॥ अथनाक्रांतमक्रांतमिवसंकल्पमेरुणा ॥ १८ ॥ यथोच्चैर्देशकालादितथैवजगतासता ॥ संपद्यतेयथायोसौपुरुषःसर्वकारकः ॥ १९ ॥ अनेनैवक्रमेणेहकीटःसंपद्यतेक्षणात् ॥ तस्थुषामेवमेवेहजातयोहिचतुर्विधाः ॥ २० ॥

अर्थ—और अनन्तदेशकालादिकाभी किंचित्‌भी आक्रमण ऐसे नहीं करता जैसे संकल्पका पर्वत ॥ ७ ॥ जैसे संकल्पका मेरु देशकालको आक्रांत न करनेपरभी आक्रांतके तुल्य भासताहै ऐसेही दशा इस जगत्‌की है ॥१८॥ जैसे स्वप्न संकल्पआदिमें महान् देशकालआदि होतेहैं ऐसेही यह जगत्‌की दशा, तथा यह पुरुषभी संकल्पके अनुसार इसलोक तथा परलोकके कर्मआदि करनेमें समर्थ होताहै ॥ १९ ॥ इसी क्रमसे कीट (कीड मकोडा) एक क्षणमें स्थावर (वृक्ष पर्वत आदि) होजाताहै और इसीप्रकार अंडज आदि चारप्रकार प्राणियोंकी जाति होजातीहै २०

रुद्राद्यास्तृणपर्यंताःसंपद्यंतेक्षणंप्रति ॥ परमाणूपमाःसंतितथाकेचिदणूपमाः ॥ २१ ॥ एषएवक्रमस्तेषांसतिवासतिसर्गके ॥ अस्याःसंसारमायायाएवंभूतार्थभावनात् ॥ २२ ॥ भेदोपशांतावभ्यासाद्भवत्युपगतःशिवः ॥ निमेषशतभागार्धमात्रमेवपराचितिः ॥२३॥ स्वरूपतश्चेल्लुठितासैषोदेत्यनवस्थितिः ॥ साज्ञरूपाच्छिलाकाशइवचित्स्वात्मनिस्थिता ॥ २४ ॥

अर्थ—रुद्रसे लेके तृणपर्यन्त क्षणमेंही होजातेहैं, कोई तो परमाणुके तुल्य और कोई अणुके तुल्य होजातेहैं ॥ २१ ॥ तुच्छ सर्गके रहने वा न रहनेपर वर्तमानसृष्टिके सदृश अतीत और अनागत उन रुद्रआदिकी सृष्टिका क्रम है और इस संसारकी मायाके अधिष्ठानभूत सत्व अर्थ (ब्रह्म) के साक्षात् करनेसे ॥ २२ ॥ भेदके शांत होनेपर अभ्याससे शिवरूप आत्माकी प्राप्ति होती है, और निमेषके शतांशके अर्द्धभागपर्यंतभी परा चिति ॥ २३ ॥ यदि अपने स्वरूपसे च्युत होती है तो कोटियों (करोंडो) कल्पपर्यन्त विस्तृत अनर्थकी प्राप्ति होती है और इस अनर्थकी अनवस्थाको तत्वज्ञानीरूप चित् पाषाणकी शिलाके समान अपने आत्मामें स्थित होकर अनुकरण करती है

तदनाद्यवभासात्मब्रह्मशब्देनगीयते ॥ अस्मिन्प्रौढिंगतेसर्गेमहाचिद्योतनंनच ॥२५॥ संगतासत्यदिग्देशकालांशपरमाणुता ॥ जीवतामागताभूततन्मात्रवलनाक्रमात् ॥२६॥ भवत्यंगमृगीवीरुत्कीटदेवासुरादिकम् ॥ यस्मिन्नित्येततेनंतेदृढेस्रगिवतिष्ठति ॥ २७ ॥ सदसद्ग्रथितंविश्वंविश्वगेविश्वकर्मणि ॥ नतद्दूरेननिकटेनोर्ध्वेनाधोनतेनमे ॥ नपूर्वनाद्यनप्रातर्नसन्नासन्नमध्यमम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसीको अनादि प्रकाशरूप ब्रह्म कहतेहैं, और इस सृष्टिके अभिमानके प्रौढ होनेपर महाचित्‌का प्रकाशभी नहीं होता ॥ २५ ॥ असत्य देशकालआदिके परिच्छिन्न अंशोंसे, मशक वा चेंटीकी देहकी क्षुद्रता आत्माकी होती है, और यहीब्रह्मचित् लिंगशरीरकी उपाधिसे जीवरूपताको प्राप्त होतीहुई सूक्ष्मभूत, देह, इन्द्रियआदिके क्रमसे ॥ २६ ॥ हे प्रिय मुने ! मृगी, वृक्ष, लता, कीट, देव और असुरआदि रूप होती है, और जिस अनन्त तथा नित्य परमात्माके स्वरूपमें दृढसूत्रके तुल्य यह जगत् स्थितहै ॥ २७ ॥ और उसी सर्वव्यापी विश्वकर्म सूत्रमें सदसत्‌रूपसे यह जगत् ग्रथित है, वह आत्मा न दूर है, न निकट है, न ऊपर है, न नीचे है, न तुमारा न मेरा है, न अद्य (आज) न प्रातःकालरूप है, न सत् है न असत्, और न सदसत्‌का मध्यम अर्थात् अनिर्वचनीय है ॥ २८ ॥

अनुभवकलनामृतेस्यमाताभवतिनसर्वविकल्पनेष्वसत्सु ॥ फलदुरुविभवाप्रमाणमालास्थितिमुपयातिनवारिणीववह्निः ॥ २९ ॥ यथापृष्टंमुनेप्रोक्तंत्वयिकल्याणमस्तुते ॥ दिशंप्रयामोभिमतामागच्छोत्तिष्ठपार्वति ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वानीलकंठोसौत्यक्तपुष्पांजलीमयि ॥ ततारपरिवारेणस

ममंबरकोटरम् ३१ ॥ तस्मिन्गतेत्रिभुवनाधिपतावुमेशेस्थित्वाक्षणंतदनुसंस्मृतिपूर्वमेव ॥ अंगीकृतं नवपवित्रधियामयात्मदेवार्चनंशमवतैवजिहासितंतत् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमात्माभिधानं नाम द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—इसप्रकार सब विकल्पोंके असत्रूप होनेपर अनुभवके शिवाय और कुछ प्रमाता (ज्ञाता) नहीं हैं और लौकिकव्यवहाररूप अनेक फल देनेवाली प्रमाणमाला उस आत्मपद पर्यन्त ऐसे नहीं जासकती जैसे जलमें अग्नि ॥ २९ ॥ हे मुने ! जैसे तुमने पूंछा था वैसा मैंने तुमसे कहदिया, तुमारा कल्याण हो, अब हम अपने अभिमत दिशामें जातेहैं. हे पार्वतीजी ! उठो आओ चलैं ॥३०॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! नीलकंठ भगवान् मुझसे ऐसा कहके, और मेरे पुष्पांजलि छोडनेपर अपने परिवारसहित आकाशके कोटरमें उडे ॥३१॥ उस त्रिभुवनके पति और उमाके स्वामीके चले जानेपर उन परमगुरुका स्मरण करताहुआ मैं क्षणभर स्थित होकर परमश्रद्धायुक्त और प्रथमसेही शमसहित बुद्धिसे मैंने नूतन (मानस) देवपूजाका अंगीकार किया, और जड देवपूजाको त्यागदिया ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे परमात्माभिधानं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस ४३ के सर्गमें वैराग्यसहित अपने आत्मदेवका पूजन सुनके प्रबुद्ध रामचंद्रजी अपनेको कृतकृत्य और आत्मामें स्थित वर्णन करतेहैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतदुक्तंपरंतेनस्वयमेवचवेद्म्यहम् ॥ रामत्वमपिजानीषेयथेदंसमवस्थितम् ॥ १ ॥ यत्रालीकमलीकेनकिलालीकेविलोक्यते ॥ तस्यांसंसारमायायांकिंसत्यंकिमसन्मयम् ॥ २ ॥ यथायेन विकल्पेनयद्विकल्पेनकथ्यते ॥ तथातेनात्मकल्पेननगताप्यनुभूयते ॥ ३ ॥ यथाद्रवत्वंपयसियथास्पंदोनभस्वति ॥ यथानभसिशून्यत्वंतथासर्गत्वमात्मनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह सर्वोत्तम देवपूजन जो श्रीमहादेवजीने कहाहै उसको मैं स्वयं जानताहुं और तुमभी जानते हो, और जैसे यह जगत्का तत्व स्थित है उसकोभी तुम जानते हो ॥ १ ॥ जिस परमात्मामें मिथ्या भ्रममें मिथ्या उपाधिद्वारा मिथ्या जीव मिथ्या जगत्को देखताहै उस संसारकी मायामें क्या सत् होसकताहै और क्या असत् है ॥ २ ॥ जिस कविने जिस राजाआदिमें सुमेरु तथा कल्पआदि विविधभावकी कल्पना की और जिस काव्यकी रचनासे जैसे २ कहता है वैसा २ सुनकर राजाआदि अपनेमें सुमेरुता वा कल्पवृक्षताका अनुभव करताहै ॥ ३ ॥ जैसे जलमें द्रवत्व, वायुमें स्पंद, आकाशमें शून्यता, है ऐसीही आत्मामें सृष्टिहै ॥४

ततःप्रभृतितेनैवक्रमेणार्चनमात्मनः ॥ अद्ययावद्गतव्यग्रःकुर्वन्नहमवस्थितः ॥ ५ ॥ अनेनार्चाविधाने नमयेमेरामवासराः ॥ अखिन्नेनातिवाह्यंतेव्यवहारपराअपि ॥ ६ ॥ यथाप्राप्तैःक्रियाचारकुसुमैरात्मनोर्चनम् ॥ व्युच्छिन्नमपिव्युच्छिन्नंनकदाचिदहर्निशम् ॥ ७ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधेसामान्येसर्वदेहिनाम् ॥ योगिनःसावधानत्वंयत्तदर्चनमात्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसीसमयसे लेके उस क्रमसे आत्मदेवकी पूजा आजपर्यन्त करता हुआ मैं चिंतारहित स्थितहुं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! मानसपूजाके विधानसे व्यवहारोंसे पूर्णभी दिनोंको खेदरहित होके बीताताहुं ॥ ६ ॥ यथाप्राप्त क्रियाओंके आचाररूप पुष्पोंसे रात्रिदिन मैं आत्मदेवकी पूजा करताहुं, यद्यपि प्रतिरात्रि सुषुप्तिकालमें व्युच्छिन्न होताहै तथापि मैं सुखसे सोया कुछ नहीं जाना इस प्रातःकालके प्रतिसंधानरूप अविद्याकी वृत्तिरूप पुष्पोंसे उससमयभी पूजन विद्यमानही है ॥ ७ ॥ यद्यपि मूर्ख तथा विद्वान् सब जीवोंका ग्राह्यग्राहक (ग्रहणयोग्य वस्तु तथा ग्रहणकर्ता) का संबंध समान है तथापि विद्वान्योगीकी सावधानताही विशेषताहै ॥ ८ ॥

दृष्टयानयारघुपतेसंगमुक्तेनचेतसा ॥ संसारविरलारण्येविहरास्मिन्नखिद्यसे ॥ ९ ॥ दुःखेमहतिसंप्राप्ते धनबंधुवियोगजे ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यविचारंकुरुसुव्रत ॥ १० ॥ सुखदुःखेनकर्तव्येधनबंधूदयक्षये ॥ एवं प्रायाएवसर्वानित्यंसंसारदृष्टयः ॥ ११ ॥ जानास्येवगतिंचित्रांविषयाणांप्रमाथिनीम् ॥ यथायांतियथा यांतियथापरिभवंतिच ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रघुपते! इस मानस आत्मपूजाकी दृष्टिसे, तथा संगरहित चित्तसे इस संसाररूप बनमें विहार करते हुये दुःखी नहीं होओगे ॥ ९ ॥ हे सुव्रत! धन तथा बंधुओंके वियोगसे जनित महादुःखके प्राप्त होनेपर इस दृष्टिका अवलंबन करके तुम विचार करो ॥ १० ॥ धन और बंधुके उदय वा क्षयमें हर्ष विषाद न करनाचाहिये क्योंकि संसारकी दृष्टि इसीप्रकार नश्वरहै ॥ ११ ॥ हे रामजी! तुम विषयोंकी प्रमथन करनेवाली गतिको जानते हो ये प्रथम तो आती है और पुनः चलीजाती हैं और अपने व्यसनसे पुरुषको वशमें करलेते हैं ॥ १२ ॥

एवमेवप्रवर्ततेप्रेमाणिचधनानिच ॥ एवमेवावहीयंतेनिमित्तैरविचारितैः ॥ १३ ॥ नतास्तवनतासांत्वं निर्मलांतर्जगत्क्रियाः ॥ इदमित्थंजगत्किंचिकिंमुधापरितप्यसे ॥१४॥ त्वमिहासिजगद्रूपंचिन्मात्रवित ताकृते ॥ निजावयवकावृत्तौकःक्रमोहर्षशोकयोः ॥ १५ ॥ तातचिन्मात्ररूपोसिनतेभिन्नमिदंजगत् ॥ अतस्तवकथंकुत्रहेयोपादेयकल्पना ॥ १६ ॥

अर्थ—बिना विचारित निमित्तोंसे प्रेम और धन आजाते हैं और इसीप्रकार नष्टभी होजाते हैं ॥ १३ ॥ हे निर्मलचित्त रामजी! जगत्की क्रिया न तुमारी हैं न तुम उनके हो, यह जगत् इसीप्रकार किंचित् अनिर्वचनीयरूप है इसके लिये व्यर्थ क्यों शोच करते हो ॥ १४ ॥ यदि तुम जगत्की तुच्छता नहीं चाहते तो चिन्मात्र विशाल-आकारवाले तुमही जगत्रूप हो और इसप्रकारके दर्शनसे बंधु आदिके वियोगसे अपने अंगोंके परिवर्तनके सदृश हर्ष-शोकका क्या प्रसंगहै ॥१५॥ हे प्रिय! तुम चिन्मात्ररूप हो, तुमसे भिन्न जगत् नहीं है इसलिये तुमको कैसे और कहां हेय तथा उपादेयकी कल्पना होसकती है ॥ १६ ॥

इतिचिच्चक्रचांचल्येचिन्मयेजगदंबुधौ ॥ तरंगजालेचांभोधौकःक्रमोहर्षशोकयोः ॥ १७ ॥ चिदेकता नतामेत्यसौषुप्तीमागतःस्थितिम् ॥ अद्यप्रभृतिरामत्वंतुर्यावस्थात्मकोभव ॥ १८ ॥ समःसमसमाभा सोभास्वद्वपुरुदारधीः ॥ तिष्ठात्मार्चागतोनित्यंपरिपूर्णइवार्णवः ॥ १९ ॥ एतत्त्वंश्रुतवान्सर्वेस्थित स्त्वंपरिपूर्णधीः ॥ यदिच्छसीतरत्प्रष्टुंतत्पृच्छरघुनंदन ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसे चिद्रूप जगत्रूपी चक्रकी चंचलतासहित जगत्रूप समुद्रमें हर्षशोकका क्या प्रसंगहै ॥ १७ ॥ चित्के साथ एकताको प्राप्त तथा सुषुप्तिकालकी स्थितिमें प्राप्त होके आजसे लेके तुम तुरीय-अवस्थारूप होजाओ ॥ १८ ॥ हे रामजी! समदर्शी, समप्रकाशयुक्त, प्रकाशयुक्त शरीरवान्, उदारबुद्धि, और परिपूर्णसमुद्रके समान आत्माकी पूजामें नित्य स्थितरहो ॥ १९ ॥ हे रामजी! यह तुमने सब कुछ सुनलिया और अब तुम परिपूर्णबुद्धि स्थित हो, और कुछ पूंछना चाहते हो सो पूंछो ॥ २० ॥

यत्पृष्टंप्रथमेकल्पेतदद्यपरिचोदये ॥ श्रीरामउवाच ॥ इदानींसंशयोब्रह्मन्विनिवृत्तोविशेषतः ॥ २१ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलंजातातृप्तिरकृत्रिमा ॥ नमुनेस्तिमलंद्वित्वंनचेत्यंनचकल्पनम् ॥ २२ ॥ तदाममाभूद ज्ञानंप्रशांतमधुनावुतत् ॥ कलंकआत्मनोस्तीतितदज्ञानवशेनया ॥ २३ ॥ भ्रांतिरासीदिदानींसानिवृत्ता त्वत्प्रसादतः ॥ नजायतेनम्रियतेनचैवात्माकलंकितः ॥ २४ ॥

अर्थ—और जो प्रथमकल्पमें वैराग्यप्रकरणमें पूछाथा उसकी प्रेरणा पुनः करो. श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! इससमय मेरा संशय विशेषरीतिसे निवृत्त होगया ॥ २१ ॥ हे मुने! मैंने समस्त ज्ञातव्य जानलिया, स्वाभाविक तृप्ति होगई, जीवब्रह्मका भेदरूप मल (अज्ञान) तथा विषय नहीं है और कल्पनाका मूल मनभी शांत होगया ॥२२॥ और वैराग्यप्रकरणमें जब मैंने आपसे प्रश्न कियेथे उससमय मुझे अज्ञान था और अब वह शांत होगया, जो कि आत्मामें कलंकके समान था और उस अज्ञानके वशसे जो ॥ २३ ॥ भ्रांति थी वह इससमय आपके प्रतापसे निवृत्त होगई क्योंकि आत्मा न उत्पन्न होताहै, न मरताहै और न कलंकयुक्त है ॥ २४ ॥

सर्वंचखल्विदंब्रह्ममयमित्युदितोस्म्यलम् ॥ प्रश्नेभ्यःसंशयेभ्यश्ववांछितेभ्यश्वसर्वतः ॥ २५ ॥ शुद्धं मेनिर्मलंचेतस्त्वग्र्यायंत्रभ्रमादिव ॥ सर्वाचारोपदेशेषुप्राप्तप्रोक्तेषुसाधुभिः ॥२६॥ निराकांक्षीस्थितोस्म्यं तःसुमेरुःकनकेष्विव ॥ नतदस्त्यस्तियन्नाशानतदस्तियदीप्सितम् ॥ २७ ॥ नतदस्तियदादेयंहेयंम ध्यंचराचरे ॥ इदंहेयमुपादेयमिदंसदिदमप्यसत् ॥ २८ ॥

अर्थ—यह सब ब्रह्ममयहै इसलिये मैं पूर्णरीतिसे उदयको प्राप्तहुं, और सब प्रश्नोंसे, सब संशयोंसे तथा सब अभिलषितोंसे मेरा चित्त निवृत्तहै ॥२५॥ हे भगवन्! मेरा चित्त शुद्ध तथा ऐसे निर्मल है जैसे यंत्रके भ्रमणसे निवृत्त शुद्ध प्रकाशमान सूर्य्यका प्रतिबिंब, और प्राप्त शिष्योंके लिये उपदेश किये सब आचारोंके उपदेशोंमें ॥ २६ ॥ आ-

कांक्षारहित ऐसे स्थितहुं जैसे सुवर्णसे सुमेरु, क्योंकि ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जहां मेरी आशा हो और ऐसाभी कुछ नहीं है जो मुझे इष्ट हो ॥ २७ ॥ ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझे आदेय हो त्याज्य हो वा उपेक्ष्य हो, यह हेय है, यह उपादेय है, यह सत् और यह असत्है ॥ २८ ॥

इतिचिंताभ्रमःशांतोनिपुणंपरमोमुने ॥ नस्वर्गमभिवांछामिद्वेष्मिवापिनरौरवम् ॥ २९ ॥ आत्मन्येवहि तिष्ठामिमंदराद्रिरिवाभ्रमः ॥ कणशःकीर्णत्रिजगत्क्षीरसागरसंस्तृतिः ॥ ३० ॥ विश्रांतश्चिरसंभ्रांतोनि भ्रमोराममंदरः ॥ अवस्त्विदमिदंवस्तुपश्येतिकलनास्त्यलम् ॥ ३१ ॥ हृदितस्यकुसंदेहजालेनज्वलिता धिकम् ॥ इदमित्थंजगदितिज्ञातंयेनमुनीश्वर ॥ ३२ ॥

अर्थ—इत्यादि चिंतारूप भ्रम निपुणतापूर्वक शांत होगया, और हे मुने! न मैं स्वर्ग चाहताहुं, न रौरवनरकसे द्वेष करताहुं ॥ २९ ॥ मंदराचलपर्वतके समान भ्रमरहित मैं अपने आत्मामें स्थितहुं, और कण २ तीनोंलोकको बिखीरनेवाले क्षीरसागरमें व्याप्ति है जिसकी ऐसे ॥ ३० ॥ मंदरके समान मैं चिरकालसे अब भ्रमरहित विश्रांतहुं, यह जगत् जैसा दृष्टहै वैसाही वस्तु है अन्यथा अवस्तु है ऐसा जिस मूर्खने जानलियाहै उसके हृदयमें संदेहजालसे जलतेहुयेके समान अधिक संतापदायिनी यह वस्तु है यह अवस्तु है ऐसी कल्पना पूर्णरीतिसे है. हे मुनीश्वर! इस मेरे कथित अर्थको अपने अनुभवके संवादके लिये देखो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सयत्रयातिकार्पण्यंजगतस्तन्नलभ्यते ॥ विचित्राकुलकल्लोलाज्जडावृत्तिविवर्जितात् ॥ ३३ ॥ त्वत्प्रसादेनभगवंस्तीर्णाःस्मोभवसागरात् ॥ संपदामवधिर्ज्ञातोदृष्टःसीमांतआपदाम् ॥ ३४ ॥ सर्वसारेप्यदीनाःस्मःपूर्णाःस्मःपरमेश्वर ॥ ययावभेद्यामपरैर्दलिताशामतंगजम् ॥ संसारसागरेसम्यग्वीरतामागतंमनः ॥ ३५ ॥ परिगलितविकल्पतामुपेतंप्रगलितवांछमदीनसारसत्त्वम् ॥ त्रिजगतियदतिप्रसन्नरूपंप्रमुदितमंतरनुत्तमंमनोमे ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विश्रांतिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—इसप्रकार जगत्की सत्यता देखनेवाला पुरुष जिस विषयमें कृपणताको प्राप्त होताहै वह वस्तु तत्वदृष्टिसे हमलोग जगत्संबंधी नहीं देखते क्योंकि विचित्र क्षुधा पिपासा आदिसे व्याप्त, काम, क्रोधलोभादि षट् ऊर्मिसहित, और शुद्धचिदाकारवृत्तिसे वर्जित जडभाव सागरसे ॥ ३३ ॥ आपकी कृपासे पारहोगये हैं, और संपत्तियोंकी अवधि जानलि, तथा विपत्तियोंकी सीमाका अन्तभी देखलियाहै ॥ ३४ ॥ नित्य प्राप्त होनेसे सबके सारभूत ब्रह्मानंदकेलियेभी अदीन हैं, चारोओरसे परिपूर्ण हैं, और हे परमेश्वर! इस संसाररूपसागरमें आशारूप हस्तीको मर्दन करनेवाला हमारा मन शत्रुओंसे अभेद्य वीरताको पूर्णरीतिसे प्राप्तहै ॥ ३५ ॥ इससमय मेरा मन चारोओरसे गलित, विकल्पदशाको प्राप्त, अभिलाषासे शून्य, दृढसत्वयुक्त और तीनोंलोकमें अतिप्रसन्न जो पूर्णचंद्र, क्षीरसागर तथा शरत्कालका आकाश आदि उनसेभी अतिप्रसन्न अन्तःकरणमें प्रमुदित और सबसे उत्तम होगयाहै ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे विश्रांतिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्ग. ॥ ४४ ॥

इस ४४ के सर्गमें आसक्तिके क्षयके उपाय, और मनके क्षयपर्य्यंत वांछाके त्याग आदि गुण ज्ञानकी दृढताके लिये गुरुने पुनः वर्णन किये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ केवलेनेंद्रियैःसार्द्धंवर्त्तमानार्थवर्तिना ॥ असंगमेनमनसायत्करोषिनतत्कृतम् ॥ १॥ यथाप्राप्तिक्षणेवस्तुप्रथमेतुष्टयेतथा ॥ नप्राप्त्यैकक्षणादूर्ध्वमितिकोनानुभूतवान् ॥ २ ॥ वांछाकालेयथा वस्तुतुष्टयेनान्यदातथा ॥ तस्मात्क्षणसुखेसक्त्िवालोबध्नातिनेतरः ॥ ३ ॥ वांछाकालेतुष्टयेयत्तत्रवांछैव कारणम् ॥ तुष्टिस्त्वतुष्टिपर्यंतातस्माद्वांछांपरित्यज ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—केवल अर्थात् रागादिरहित, कर्तृत्वके अभिमानसे शून्य, और वर्जपदार्थसे व्यवहार करनेवाले मनसे इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ करतेहो वह मानों नहीं किया ॥ १ ॥ जैसे कोई पदार्थ प्राप्तिके क्षणमें सं-

तोषके लिये होताहै वैसा उस प्राप्तिके उपरांत क्षणमें नहीं होता इसका किसने नहीं अनुभव किया ॥ २ ॥ ऐसेही इच्छाकालमें तुष्टिके लिये वस्तु जैसे प्रतीत होती है वैसे अन्यकालमें नहीं होती इसलिये क्षणभरके सुखके अर्थ विषयोंमें आसक्ति केवल बालक बांधताहै न कि अन्य ॥ ३ ॥ और वांछाकालमें तुष्टिके लिये वांछाही (वांछितपदार्थका लाभ) कारण है और निरतिशय आनंद वांछाके निरोधमें है इसलिये वांछाको त्यागो ॥ ४ ॥

यदितत्पदमाप्तोसिकदाचित्कालपर्ययात् ॥ तदहंभावनारूपेनमंक्तव्यंत्वयापुनः ॥ ५ ॥ आत्मज्ञानाचलस्याग्रेरामविश्रांतवानसि ॥ अहंभावमहाश्वभ्रेनपुनःपातमर्हसि ॥६॥ यत्स्मृतानंतसदृष्टेर्ज्ञत्वमेरुशिरःस्थितेः ॥ पुनर्गर्भानुकारांतःपातालेपतनंकुतः ॥ ७ ॥ दृश्यतेतेस्वभावोयंसमतासत्यतामयः ॥ मन्येक्षीणविकल्पोसिजातोसिहतकालिकः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राम ! यदि तुम उस आत्मपदको प्राप्त हो तो कालके विपर्ययसे पुनः अहंभावनारूप पंक (कीचड) में निमग्न न होना ॥ ५ ॥ हे रामजी ! तुमने आत्मज्ञानरूप पर्वतके अग्रभागमें विश्राम कियाहै सो अहंभावरूप महागर्तमें पुनः मत गिरना ॥ ६ ॥ स्मरणमात्रसे अनेकदृष्टि प्रापक, और ज्ञानियोंमें मेरुके शिखर जिसकी स्थिति है ऐसे पुरुषकी पातालके सदृश गर्भमें पात कैसे होसकताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ! तुम तो सत्यता और समतामय मुझे देख पडतेहो, और इन चिन्होंसे मैं जानताहुं कि तुमारे विकल्प क्षीण होगये और अविद्याभी नष्ट होगई ॥ ८ ॥

स्वभावेसंस्थितोरामइत्यावेदयतीवमे ॥ सौम्यपूर्णार्णवप्रख्यासमतानिर्मलातव ॥ ९ ॥ आशायातुनिराशत्वमभावंयातुभावनम् ॥ अमनस्त्वंमनोयातुतवासंगेनजीवतः ॥ १० ॥ यांयांवस्तुदृशंयासितस्यांतस्यामवस्थितम् ॥ सत्तासामान्यरूपेणब्रह्मबृंहितचिद्घनम् ॥११॥ अज्ञातात्मानिबद्धोसिविज्ञातात्मानबध्यसे ॥ रामत्वंस्वात्मनात्मानंबोधयस्वबलादतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! शांत तथा पूर्णसमुद्रके समान निर्मल तुमारी समता मुझे यह प्रकट करती है कि तुम आत्मस्वभावमें स्थित हो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! तुमारी आशा निराशताको, भावना अभावनाको, और मन अमनीभावको प्राप्त हो, और तुमारा जीवन संगसे रहित हो ॥ १० ॥ हे रामजी ! जिस २ वस्तुकी दृष्टिमें तुमारा मन जाय वहां २ सत्तासामान्यरूपसे वृद्धिको चिद्घनरूप ब्रह्महीं तुम स्थित जानो ॥ ११॥ हे रामजी ! आत्माको न जाननेसे तुम बंधनमें हो और आत्माको जाननेसे तुम बंधनमें नहीं आओगे इसलिये मननआदिकी दृढतासे आत्माको जानो ॥१२॥

यत्रनस्वदतेवस्तुस्वदतेचयथागतम् ॥ अवासनत्वंतद्विद्धिसाम्यमाकाशकोमलम् ॥ १३ ॥ वासनारहितैरंतरिंद्रियैराहरक्रियाः ॥ नविक्रियामवाप्नोषिखवत्क्षोभशतैरपि ॥ १४ ॥ ज्ञाताज्ञानंतथाज्ञेयंत्रयमेकतयात्मनि ॥ शांतात्मानुभवाभव्यंनभूयोभवभागसि ॥१५॥ चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यांसंसारप्रलयोदयौ ॥ वासनाप्राणसंरोधादनिमेषंमनःकुरुः ॥ १६ ॥

अर्थ—जहां भोगका सुख स्वादिष्ट नहीं लगता और प्रारब्धसे प्राप्त अच्छा लगताहै उसी मनको आकाशके समान निर्मल शांत और वासनारहित तुम जानो ॥ १३ ॥ अन्तःकरणमें वासनारहित क्रियाओंको करो तो तुम आकाशके तुल्य सैकडों क्षोभोंसे विकारको नहीं पाओगे ॥ १४ ॥ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंको एकरूपसे आत्मामें देखतेहुये शांतात्मा दुःखोंकोभी त्रिपुटीके अंतर्गत अनुभव करो तो तुम संसारके भागी नहीं होओगे ॥१५॥ चित्तके उदय तथा नाशसे संसारकेभी उदय और प्रलय होतेहैं इसलिये वासना तथा प्राणके निरोधसे तुम मनको गतिरहित करो ॥ १६ ॥

प्राणोन्मेषनिमेषाभ्यांसंसृतेःप्रलयोदयौ ॥ तमभ्यासप्रयोगाभ्यामुन्मेषरहितंकुरु ॥ १७ ॥ मौर्ख्योन्मेषनिमेषाभ्यांकर्मणांप्रलयोदयौ ॥ तद्विलीनंकुरुबलाद्गुरुशास्त्रार्थसंयमैः ॥ १८ ॥ यथावातरजःसंगस्पंदात्खंभाववेदनम् ॥ तथाचितश्चेत्यतयास्पंदादिदमुपस्थितम् ॥ १९ ॥ दृश्यदर्शनसंबंधस्पंदेनेयंजगद्गतिः ॥ स्फुरत्यालोककुड्यादिसंगजावर्णधीरिव ॥ २० ॥

अर्थ—प्राणोंके उदय अस्तसे संसारका उदय अस्त होताहै इस कारण अभ्यास और योगसे प्राणको चंचलतासे रहित करो ॥ १७ ॥ अज्ञानके उदय और अस्त होनेसे कर्मोका उदय और अस्त होताहै इस कारण गुरुशास्त्रार्थ और संयमोंसे अज्ञानको नष्ट करो ॥ १८ ॥ जैसे वायु और धूलिसे आकाशमें मलिनताका उदय होताहै ऐसेही चित्का विषयाकार स्पंद होनेसे यह जगत् आविर्भूत है ॥ १९ ॥ दृश्यदर्शनके संबंधके स्पंदसे यह जगत्की गति ऐसे स्फुरित होतीहै जैसे प्रकाश तथा भित्तिआदिके संयोगसे नील पीतआदि वर्णका ज्ञान होताहै ॥ २० ॥

दृश्यदर्शनसंबंधस्पंदाभावेनजायते ॥ वेदनाभवदाभासाचित्रपुंसामिवाशये ॥ २१ ॥ चित्तस्पंदोत्थितामायातदभावेविलीयते ॥ पयःस्पंदोत्थितावीचिस्तदभावेविनश्यति ॥ २२ ॥ त्यागेनवासनांशस्यबोधाद्वाप्राणरोधनात् ॥ चित्तेनिस्पंदतांयातेकुतःस्पंदस्यसंभवः ॥ २३ ॥ असंवित्स्पंदमात्रेणयातिचित्तमचित्तताम् ॥ प्राणानांवानिरोधेनतदेवचपरंपदम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और दृश्य दर्शनके संबन्धके स्पंदके अभाव जगत्के आभासकी पीडा ऐसे नहीं होती जैसे चित्रलिखित पुरुषोंके हृदयमें॥२१॥ चित्तके स्पंदसेही यह माया उत्पन्न है और उसके अभावसे ऐसे नष्ट होजाती है जैसे जलके स्पंदके अभावसे तरंग ॥ २२ ॥ वासनाके त्यागसे, ज्ञानसे और प्राणोंके निरोधसे चित्तके स्पंदरहित होनेसे कूटस्थ-आत्माकी अपने स्वरूपसे प्रच्युति कहां होसकती है ॥ २३ ॥ संवित्का स्पंदन होनेसे वा प्राणोंके निरोधसे चित्त अचित्ततादशाको प्राप्त होताहै क्योंकि वही (संवित्स्पंदका अभाव वा प्राणनिरोध) परमपद है ॥ २४ ॥

दृश्यदर्शनसंबंधेयत्सुखंपारमार्थिकम् ॥ तदंतैकांतसंवित्याब्रह्मदृष्ट्यामनःक्षयः ॥ २५ ॥ यत्रनाभ्युदितंचित्तंतत्तत्सुखमकृत्रिमम् ॥ नस्वर्गादौसंभवतिमरौहिमगृहंयथा ॥ २६ ॥ चित्तोपशमजंस्फारमवाच्यंवचसासुखम् ॥ क्षयातिशयनिर्मुक्तंनोदेतिनचशाम्यति ॥ २७ ॥ बोधाद्भवतिचित्तांतोऽबोधाच्चितवेदिता ॥ बालवेतालवत्तेनमोहश्रीर्घनतांगता ॥ २८ ॥

अर्थ—विषय और इंद्रियोंके संबन्धसे जो सुख होताहै वह परमार्थ ब्रह्मकाही सुख है क्योंकि ब्रह्मकी पूर्णतारूप ब्रह्मदृष्टिसे मनका क्षय होताहै और मनका क्षयही ब्रह्मसुख है ॥ २५ ॥ जिस दशामें चित्त अभ्युदयको नहीं प्राप्त है वह अकृत्रिम ब्रह्मसुख है और वह स्वर्गआदि भूमिमें ऐसे संभव नहीं है जैसे मरुस्थलमें हिमका गृह॥ २६ ॥ चित्तके उपशमसे जो सुख होताहै वह वाणीका विषय नहीं है किंतु अपने अनुभवमात्रसे गम्यहै, और वह सुख न उदय होताहै, न शांत होताहै, किंतु सदा एकरस रहताहै ॥ २७ ॥ ज्ञानसे चित्तका नाश होताहै और अज्ञानसे चित्तकी सत्ता प्रतीत होती है इससे यह अज्ञानकी श्री बालकसे कल्पित अज्ञानके समान घनताको प्राप्तहै ॥ २८ ॥

विद्यमानमपिह्येतच्चित्तंबोधाद्विलीयते ॥ सदप्यसदिवाभातिताम्रंहेमीकृतंयथा ॥ २९ ॥ ज्ञस्यचित्तंनचित्ताख्यंज्ञचित्तंसत्त्वमुच्यते ॥ नामार्थान्यत्वभाक्चित्तंबोधात्ताम्रसुवर्णवत् ॥ ३० ॥ नसंभवतिचित्त्वंतेनतत्प्रविलीयते ॥ भ्रमःशाम्यतिबोधेननाभावोविद्यतेसतः ॥ ३१ ॥ अवस्त्वेवविकल्पात्मचित्तादिशशशृंगवत् ॥ सर्वंतदात्मनस्तस्मात्तद्विबोधाद्विलीयते ॥ ३२ ॥ चित्तंसत्त्वंसमायातंकिंचित्कालंजगत्स्थितौ ॥ विहृत्यतुर्यावस्थायांतुर्यातीतंभवत्यतः ॥३३॥ ब्रह्मैवभूरिभुवनभ्रमविभ्रमौघैरित्थंस्थितंसममनेकतयैकमेव ॥ सर्वात्मसंभवतिनेतरदंगकिंचिच्चित्तादिकंचनहृदीवहिसान्निवेशः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चित्तसत्तासूचनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—विद्यमानभी यह चित्त ज्ञानसे नष्ट होजाताहै, विद्यमानभी असत्के तुल्य ऐसे भासताहै जैसे सोनेका मुलम्मा कियाहुआ ताम्र ॥ २९ ॥ ज्ञानीका चित्त चित्त नहीं है किंतु उसका चित्त सत्व (ब्रह्मसत्तामात्र) है, और यह चित्तही नाम अर्थसे भेदका भागी होताहै और बोधसे तामेके ऊपरका सुवर्णके तुल्य भान होने लगताहै ॥ ३० ॥ यथार्थमें चित्तका संभव नहीं है इसलिये ज्ञानसे वह नष्ट होजाताहै क्योंकि ज्ञानसे भ्रम शांत होताहै और सत्पदार्थका अभाव नहीं होताहै ॥ ३१ ॥ शशशृंगके तुल्य विकल्पात्मक चित्तआदि सब अवस्तु है क्योंकि चित्तआदि सब पारमार्थिक आत्माका विवर्त है वह बोधसे नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥ जगत्की स्थितिमें कुछकाल (प्रारब्धकर्मसे प्राप्तकाल) तक जीवन्मुक्तका चित्त सत्वको प्राप्त है और तुरीयावस्थामें विहार करके अनंत विदेहकैवल्यमें तुरीयातीत होजाताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मही अनेक भुवनादिके भ्रम तथा विभ्रमोंके समूहोंसे अनेकरूपसे इसीप्रकारसे स्थितहै क्योंकि एक ब्रह्मही सबरूपमें संभवहै न कि अन्य, और जैसे मनोरथसे कल्पित प्रासाद (महागृह) उपवन, वापी तथा वाटिकादि हृदयमें नहीं समासकते ऐसेही परमसूक्ष्म छिद्ररहित चिद्घनमात्र स्वभाव परमात्मामें चित्त और उससे रचित जगत् नहीं समा सकते ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चित्तसत्तासूचनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

अपने आत्मानंदसे पूर्ण, और तीनोंलोककी कल्पनाका स्थान, बिल्वफलके तुल्य परब्रह्मका वर्णन इस ४५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रेमामवबोधायविस्मयोल्लासकारिणीम् ॥ अपूर्वांचैवसंक्षेपाद्रामरम्यांकथां शृणु ॥ १ ॥ योजनानांसहस्राणिविपुलंविमलंस्फुटम् ॥ युगैरप्यजरद्रूपमस्तिबिल्वफलंमहत् ॥ २ ॥ अविनाशरसाधारंसुधामधुरसारवत् ॥ पुराणमपिबालेंदुदलमार्दवसुंदरम् ॥ ३ ॥ व्यूहमध्यमहामेरुमं दराद्रिरिवाचलम् ॥ महाकल्पांतवात्यायाअपिवेगैरचालितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यहां तुम ज्ञानके अर्थ विस्मयसे उल्लास (आनन्द) कारिणी, अपूर्व और रमणीय बिल्वाख्यानरूप कथाको संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥ असंख्यात योजनसहस्र विशाल, विमल, स्पष्ट, असंख्य-युगोंसेभी अजीर्णस्वभाव एक महत् बिल्व (बेल) फल है ॥ २ ॥ विनाशरहित रसका आधार, अमृतसे अतिमधुर, सारयुक्त, पुराणभी बालचन्द्रके सदृश प्रतिदिन वर्द्धमान दलकी कोमलतासे सुन्दर ॥ ३ ॥ भुवनोंके मध्यमें महामेरुके सदृश रूढ, मन्दराचलके तुल्य अचल, महाकल्पकी महावात्या (आंधी) के वेगसेभी अचलित ॥ ४ ॥

योजनायुतकोटीनांकोटिलक्षशतैरपि ॥ वैपुल्येनापरिच्छेद्यंमूलमाद्यंजगत्स्थितेः ॥ ५ ॥ यस्यबिल्वफलस्योच्चैर्ब्रह्मांडानिसमीपतः ॥ हरंतिलीलांशैलाधोराजिकाकणपद्धतेः ॥ ६ ॥ स्यंदमानरसापूरांस्वाद्वींरसचमत्कृतिम् ॥ यस्यातिशेतेनोकश्चिदपिराघवषड्रसः ॥७॥ नकदाचनपाकेनपातंतेनसमेतियत् ॥ सदैवपक्वमप्यंगजरसायन्नबाध्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—और करोडों लाखों (असंख्यात) योजनोंकी विशालतासे अपरिच्छिन्न, और जगत्की स्थितिका मूलकारण वह बिल्वफल है ॥ ५ ॥ जिस बिल्वफलके समीप अनेक ब्रह्मांड ऐसे लीलाको धारण करतेहैं जैसे पर्वतके समीप सर्षपकी पंक्ति ॥ ६ ॥ वहतेहुये रससे पूर्ण, अतिस्वादयुक्त जिसके रसकी चमत्कृति छःही इन्द्रियोंके भोग्य सुख अथवा ब्रह्माके सुखसेभी अधिक है ॥ ७ ॥ कभी पाकसेभी नहीं गिरता, किन्तु सदा परिपक्कताको प्राप्तभी जीर्णतासे बाधित नहीं होता ॥ ८ ॥

ब्रह्मविष्णिवद्ररुद्राद्याजरठाःकेचिदेवन ॥ यस्योत्पत्तिविजानंतिमूलंवावृंतमेवच ॥ ९ ॥ अदृष्टांकुरवृक्षस्यत्वदृष्टकुसुमाकृतेः ॥ अस्तंभमूलशाखस्यफलस्यास्यमहाकृतेः ॥ १० ॥ एकापडघनाकारविततस्थौल्यशालिनः ॥ यस्योत्पत्तिविकारादिपरिणामोनदृश्यते ॥ ११ ॥ समस्तफलसारस्यफलस्यास्यमहाकृतेः ॥ नमज्जानाष्ठिविततोनिर्विकारोनिरंजनः ॥ १२ ॥

अर्थ—और चिरायु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रभी जिसकी उत्पत्ति, मूल वा वृत्त (घुंपे) को नहीं जानते ॥९॥ जिसके अंकुर वृक्ष और पुष्प अदृष्ट हैं ऐसे तथा मूल और शाखासे रहित इस महाकारवाले फलके आदि कोई नहीं जानता ॥ १० ॥ एकपिंड चिद्घनाकार विशाल महान् आकारवाले जिस फलकी उत्पत्ति विकार आदि परिणाम नहीं देखपडता ॥ ११ ॥ समस्त (धर्मार्थ आदि) फलोंमें सार आकारवाले इस फलमें मज्जा और गुठली नहीं हैं इसकारण सम्पूर्ण रसरूप निर्विकार निरंजन यह है ॥ १२ ॥

शिलांतरिवनीरंध्रःस्यंदमानेंदुबिंबवत् ॥ रसंस्वसंविदास्वाद्यंस्यंदमानइवामृतम् ॥ १३ ॥ कोशस्सकलसौख्यानांशीतलालोककारकः ॥ शैलाभोमृतपिंडाभोमज्जाआत्मफलस्थितेः ॥ १४ ॥ तस्मात्परममजातुयासौस्वात्मचमत्कृतिः ॥ अनंतरक्षितोनित्यमनन्यःश्रीफलंगतः ॥ १५ ॥ स्वसंनिवेशवैचित्र्यमन्यत्वफलतांगताम् ॥ अत्यजंत्यातयातन्व्यास्थूलयाप्यतिबालया ॥ १६ ॥

अर्थ—पाषाणकी शिलाके गर्भके समान छिद्ररहित, अमृतको वहतेहुये चन्द्रबिम्बके तुल्य और अपनी संवित्से अमृतके समान आस्वादयुक्त यह फल निरतिशयानंदरूप रसको स्पंदमान है ॥१३॥ और सब सुखोंका कोश, शीतल प्रकाशकारी, पर्वतके समान शोभित, अमृतपिंडके सदृश शोभायुक्त और मनुष्यसे लेके ब्रह्माके आनन्दपर्यन्त कर्मफलकी स्थितिका सारहै ॥ १४ ॥ हिरण्यगर्भके आनन्दरूप फलसे बढके जो आत्माकी चमत्कृति है वही इस परमअव्यक्तकी मज्जा (सार वस्तु) है, और देशकाल आदि त्रिविधपरिच्छेदसे शून्य अपने स्वभावसे रक्षित श्रीफलरूपको प्राप्त है और यथार्थमें वह अद्वैतरूपही ॥ १५ ॥ और सूक्ष्मसभी सूक्ष्म, स्थूलसेभी स्थूल तथा प्राचीन होनेपरभी

वृद्धि आदि विकारसे शून्य उस आत्म चमत्कृतिरूप शरीर अपनेमें अध्यस्त भेदसमूहके फलरूपताको प्राप्त अपने चिद्रस मज्जारूप पारमार्थिक रचनाविशेषको न त्यागतेहुये ॥ १६ ॥

इयमस्मीतिकलनादसदप्यन्यतामलम् ॥ भेदाद्यसंभवदिदंस्वयमुत्पाद्यभावितम् ॥ १७ ॥ अहंकला समुदयसमनंतरमेवसा ॥ वलिताकाशशब्दांगत्रैलोक्यपरमाणुभिः ॥ १८ ॥ इत्यनुक्रमतोयातासंवि च्छक्तिस्वरूपताम् ॥ मज्जाप्राक्सन्निवेशंस्वंतमेवाप्यसमुज्झति ॥ १९ ॥ संविच्छक्त्यातयातत्रततस्त रलरूपया ॥ निजएवसमेरूपेदृगित्थंसंप्रसारिता ॥ २० ॥

अर्थ—यह शरीरआदि मैं हुं इत्यादि कल्पनासे भेद उत्पादक अविद्यारूप मलकोही भेदादिका सम्भव वह-तेभी आपही इस जगत्को उत्पन्न करके उसकी भावनाकी ॥ १७॥ अहंकारके उदयके अनन्तरही वह आत्मचमत्कृति आकाश और उसके गुणशब्द और त्रैलोक्यके व्यष्टि समष्टि शरीरोंके परमाणुओंसे आच्छादित हुई ॥ १८ ॥ इसी-प्रकार क्रमसे अपने पूर्वोक्त चित्सारस्वरूपकी रचनाको न त्यागतीहुई चित्शक्ति व्यवहारसमर्थताको प्राप्तहुई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर चंचलरूप संवित्शक्तिसे उसी अपने सम निर्विकाररूपमें जगत्के आकारकी दृष्टि फैलाया इसप्रकार आत्माकी चमत्कृतिका मैंने वर्णन किया ॥ २० ॥

इदंव्योममहानंतमियंकालमयीकला ॥ इयंनियतिरित्युक्ताक्रियेयंस्पंदरूपिणी ॥ २१ ॥ अयंसंकल्पवि स्तारस्त्वयमाशांतरभ्रमः ॥ रागद्वेषस्थितिरियंहेयोपादेयधीरियम् ॥ २२ ॥ इयंत्वत्तात्वियंमत्तातत्तेयं संस्थितास्वयम् ॥ ब्रह्मांडौघोयमूर्ध्वस्थःस्वयमंगोर्ध्वमप्यधः ॥ २३ ॥ अयंपुरःपार्श्वतोयंपश्चादाराद्द वीयसी ॥ इदंभूतंवर्तमानंभविष्यत्त्विदमित्यपि ॥ २४ ॥

अर्थ—यह अनन्त आकाश, यही क्षण, घटिका, दिन, मास, वर्ष तथा कल्पादिरूपकालकी कला, यही नियति और स्पन्दधर्मवाली क्रिया यही आत्मशक्ति है ॥ २१ ॥ यही संकल्पोंका विस्तार, यही आशाओंका भ्रम है, यही चित्शक्ति रागद्वेषकी स्थिति है, और यही हेयउपादेयकी बुद्धि है ॥ २२ ॥ त्वत्ता, मत्ता तथा सत्ताआदिरूपसे यही स्थित है और नीचेऊपर ब्रह्मांडोंके समूहरूपसे यही आत्मा स्थित है ॥ २३ ॥ यही आत्मा सन्मुख, दोनोंओर, पीछे, निकट तथा बोध न होनेसे दूरसेभी दूर स्थित है और भूतभविष्य वर्तमानकाल यही ब्रह्म है ॥ २४ ॥

इदमंतःस्थितानल्पकल्पनांभोरुहालयम् ॥ ब्रह्मांडमंडपापीडक्रीडामंडपमंडलम् ॥ २५ ॥ अनंतकल नातत्त्वपरिपल्लविताहरेः ॥ हृदब्जकर्णिकाचेयंलोकपद्माक्षमालिका ॥ २६ ॥ इयंकीर्णमहारुद्रगणापूरि तकोटरा ॥ दीर्घाभ्रसरणिर्भ्रांतिध्वंसनेभ्यःप्रभाविनी ॥ २७ ॥ इयंमेरुःककुभ्यत्रजगत्पंकजकर्णिका ॥ स्फुरदिंदुमधूल्लासलंपटामरषट्पदा ॥ २८ ॥

अर्थ—अनन्तकल्पनारूप कमलोंको आश्रयभूत जीव जिसमें हैं ऐसा ब्रह्मांडमंडपका शिरोभूषण तथा क्री-डामंडपका मंडल यही है ॥ २५ ॥अनन्तप्रकारके रचनाके रहस्योंसे चारोओरसे पल्लवित, और लोकरूप पद्माक्षोंकी और विष्णुभगवान्के हृदयकमलकी कर्णिका यही है ॥ २६ ॥ और महारुद्रके गणोंसे आकाशके कोटरको पूर्ण करनेवाली यही आत्मशक्ति है, दीर्घआकाशकी पदवी यही है और भ्रांतिसे विषयलंपट स्वर्गनिवासियोंके पतनके नि-मित्तसे प्रकाशवाली यही आत्मशक्ति है ॥ २७ ॥ देदीप्यमान चन्द्ररूप मधुके उल्लासमें अर्थात् अमृतमकरंदमें देवता-रूप भ्रमर जिसमें लंपट हैं ऐसी जगत्रूप कमलकी कर्णिकारूप उत्तरदिशामें मेरु यही आत्मशक्ति है ॥ २८ ॥

इयमुद्दामसौगंध्यस्वर्गश्रीपुष्पमंजरी ॥ जगज्जरठवृक्षस्यरजोनरकमूलिनः ॥ २९ ॥ इयंचताराकिंजल्का ब्रह्मार्णवतटस्थिता ॥ अपारापारपर्यंताव्योमलीलासरोजिनी ॥ ३० ॥ इयंक्रियापरिग्राह्यातरंगतरला वली ॥ सर्वावर्तविधानस्थभूरिभूतपरंपरा ॥ ३१ ॥ इयत्तयाप्रसरिणीक्षणकल्पादिपल्लवा ॥ तेजःकेस रिणीकालनलिनीव्योमपंकजा ॥ ३२ ॥

अर्थ—रजोगुणके कार्य्य रागआदिसे नरक तथा दुःखोंसे मूलसहित जगत्रूप पुरानेवृक्षकी उत्तम सुगंधयुक्त स्वर्गकी शोभारूप पुष्पकी लता यही चित्शक्ति है ॥ २९ ॥ तारागणरूप केसरसहित, ब्रह्मरूप समुद्रके तटपर स्थित ऊपरसे अपार तथा चारोओरसे अपारपर्य्यन्त, और आकाशके आकारवाली कमलिनी यही है ॥ ३० ॥ क्रिया (अनेकप्रकारके कर्म) रूप चारोओरसे जिसमें ग्राह हैं, तरंगके समान चंचल मास, ऋतु, आदिकी जिसमें पंक्ति हैं, प्रजाओंकी उत्पत्तिरूप आवर्तोंके कार्यमें स्थित अनंतप्राणियोंकी पंक्ति जिसमें हैं ऐसी ॥ ३१ ॥ तथा प्रा-

ाणियोंके आयुके परिणामसे विस्तृत, और अग्नि, सूर्य और चंद्र आदि तेजोमयपदार्थोंसे केसरसहित तथा आकाशरूप कमलसे शोभित यह कालमयी कमलिनी है ॥ ३२ ॥

इमाभावविकाराढ्याजरामृतिविषूचिकाः ॥ विद्याविद्याविलासाढ्याइमाःशास्त्रार्थदृष्टयः ॥ ३३ ॥ इति सातस्यबिल्वस्यनिजमज्जाचमत्कृतिः ॥ संकल्पसन्निवेशांतरेवैवकृतसंस्थितिः ॥ ३४ ॥ शांतास्वस्था निराबाधासौम्याभावनयोज्झिता ॥ कर्तृत्वमप्यकर्तृत्वंकृत्वाकृत्वेवसंस्थिता ॥ ३५ ॥ एषैकिकैवविवि धेवविभाव्यमानानैकात्मिकानविविधाननुसैवसैव ॥ सत्यास्थितासकलशांतिसमैकरूपासर्वात्मिका तिमहतीतिनिरूपशक्तिः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे बिल्वोपाख्याने पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—ये अनेकप्रकारके भावविकारसे पूर्ण जरामरणरूप महामारी, यही चित्शक्ति है, और विद्याअविद्याके विलासोंसे पूर्ण ये शास्त्रोंके अर्थोंकी दृष्टि यही आत्मशक्ति है ॥ ३३ ॥ हे रामजी! इस पूर्वोक्तप्रकारसे सब कहेहुये पदार्थ वही निज मज्जा (सार) चमत्कृति (आत्मचमत्कृति) ही पूर्वोक्तरीतिसे व्यष्टिसमष्टिसंकल्पके भीतर स्थिति किये हैं ॥ ३४ ॥ शांत, स्वस्थ, बाधारहित, सौम्य, तथा भावनासे व्यक्त, आत्मचमत्कृति कर्तृताकोभी अकर्तृताके समान करके स्थितहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी! एकभी यह आत्मशक्ति नानाप्रकारकी भान होती है, विचार करनेसे न यह नानारूप है न एकएकरूप किंतु एकत्वसंख्या और एक वही है, सब द्वैतप्रपंचकी शांतिसे सत्य, समानरूप, सर्वात्मक ब्रह्मशब्दकी श्रीका लक्ष्यरूप महती चितिरूप शक्ति यह तुमसे मैंने वर्णन किया ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे बिल्वोपाख्याने पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इस ४६ के सर्गमें शिल्पी (कारीगर) के मनमें दृष्ट पद्मिनीवनसे शोभित, पाषाणकी शिलाके उदरके समान ब्रह्म तथा उसके प्रपंचका आभास वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वसारज्ञत्वयैषाबिल्वरूपिणी ॥ महाचिद्घनसत्तेहकथितेतिमतिर्मम ॥ १ ॥ चिन्मज्जारूपमखिलमहंतादीदमाततम् ॥ नमनागपिभेदोस्तिद्वैतैक्यकलनात्मकः ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ यथाब्रह्मांडकूश्मांडमज्जामेर्वादिसंस्थितिः ॥तथाचिद्बिल्वमज्जेयंब्रह्मांडादिजगत्स्थितिः॥३॥ सृष्टिचिद्बिल्वमज्जास्यात्स्वाधारान्यत्वसंभवे ॥ विनाशःसर्वगस्यास्यनचैतत्संभवत्यलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! हे सब सारपदार्थोंके जाननेवाले आपने बिल्वरूपसे यह महाचिद्घनकी सत्ताका निरूपण कियाहै ॥ १ ॥ यह सब विस्तृतरूप अहंकारआदिका किंचित्भी भेद नहीं है तब अद्वैत और एकताकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–जैसे ब्रह्मरूप कूष्माण्डकी मज्जा मेरु आदिकी स्थिति ऐसेही चित्रूप बिल्वकी मज्जा यह ब्रह्मांडादि जगत्की स्थिति ॥ ३ ॥ जैसे बिल्व (वेल) की खोपड़ी उसकी मज्जाका आधार है ऐसेही आधेयभूत सृष्टिरूप मज्जाके अन्यआधार संभव हो तपर उसके भीतरकी मज्जा परिणामरूप होगी तो सर्वव्यापी इस आत्माका विनाश दुर्वार होगा, इसलिये इससे निरवयव आत्मामें मुख्य अन्तःप्रवेश वा परिणामसंभव नहीं है कारण मज्जाशब्दका अर्थ परिणाम नहीं है ॥ ४ ॥

चितेर्मरीचबीजस्यजगदाख्याचमत्कृतिः ॥ स्थितासौसुप्तसौम्यांतःशिलांतःसन्निवेशवत् ॥ ५ ॥ अ त्रेमामिंदुवदनचित्रांविस्मयकारिणीम् ॥ वर्ण्यमानांमयारम्यामन्यामाख्यायिकांशृणु ॥ ६ ॥ स्निग्धास्प ष्टामृदुस्पर्शामहाविस्तारशालिनी ॥ निबिडानित्यमक्षुब्धाक्वचिदस्तिमहाशिला ॥ ७ ॥ तस्यामंतःप्रफु ल्लानिपद्मानिसुबहून्यपि ॥ सरस्यामिवरम्याणितान्यनंतानिसंतिवै ॥ ८ ॥

अर्थ—किन्तु मरीचके बीजके समान चित्की जगत्नामक चमत्कृति, सुषुप्तके वा शिल्पी (कारीगर) के मनसे कल्पित कमलके बनकी रचनाके समान विवर्तरूपसे स्थित है ॥ ५ ॥ इस विषयमें चन्द्रमाके समान विचित्र विस्मयकारिणी तथा रमणीय मुझसे कहीहुई अन्यआख्यायिका (ब्रह्मशिलाकी कथा) को तुम सुनो ॥ ६ ॥ चिक्कण

स्पष्ट, कोमल स्पर्श, महाविस्तारसे शोभित, घनीभूत और नित्य क्षोभरहित महाशिला कहीं है ॥ ७ ॥ सरसी (त-लाई) के समान उसके भीतर अनेक रमणीय कमल विकसित होरहे हैं और वे कमल (लोक) अनंत हैं ॥ ८ ॥

अन्योन्यप्रोतपत्त्राणिमिथोविघटितानिच ॥ मिथश्वोपनिगूढानिगूढानिप्रकटानिच ॥ ९ ॥ अधोमुखा न्यूर्ध्वमुखान्यपितिर्यङ्मुखानिच ॥ मिथोमिलितमूलानिमिथःप्रोतमुखान्यपि ॥ १० ॥ कर्णिकाजालमू लानिमूलांतःकर्णिक निच ॥ ऊर्ध्वमूलान्यधोमूलान्यमूलानीतराणिच ॥ ११॥ तेषांचनिकटेसंतिशंखाः शतसहस्रशः ॥ चक्रौघाश्वमहाकाराःपद्मवत्संनिवेशिनः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई २ पत्र परस्पर गुंथे और मर्दित हैं, कोई परस्पर संश्लिष्ट (आलिंगित) हैं, कोई गुप्त हैं, तथा कोई प्रकट हैं॥९॥ कोई उनमेंसे अधोमुख हैं, कोई ऊर्ध्वमुख, कोई तिर्यमुख हैं, किसी २ के मूल परस्पर मिलित और किसीके मुख परस्पर मिलित और किसीके मुख परस्पर एकदूसरेमें गुंथे हैं ॥ १० ॥ किसी २ कर्णिकाके जालमें मूल है और किसी २ के कर्णिकामें मूल है, कोई ऊर्द्धमूल है कोई अधोमूल है ॥ ११ ॥ पद्मकी कलीके सदृश रचना-वाले सहस्रों शंख उनके निकट हैं और महाकार चक्रोंके समूह कमलोंकी रचनाके समान स्थितहैं ॥ १२ ॥

श्रीरामउवाच ॥ सत्यमेतन्मयादृष्टातादृशीसामहाशिला ॥ शालग्रामेहरेर्धाम्निविद्यतेपरिवारिणी॥१३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतद्विजानासिदृष्टवानसितांशिलाम् ॥ योयश्चतत्रवैप्राणःसमस्ताद्गगनंतरः॥१४ मयोत्त्वियमपूर्वैवशिलेहकथितातव ॥ यस्यामंतर्महाकुक्षौसर्वमस्तिचनास्तिच ॥ १५ ॥ चिच्छिलैषा मयोक्तातेयस्यामंतर्जगंतिवै ॥ घनत्वैकात्मकत्वादिवशादेषाशिलैवचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! शालग्रामक्षेत्रमें हरिके धाममें कमलके बनसे वेष्टित महाशिला है मैंने तीर्थयात्रासे देखी है ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह ऐसाही है, उस दृष्टांतभूत शिलाको तुमने देखाहै इसको तुम जानतेहो और जो दार्ष्टान्तिक चिदात्मा जैसा चिद्घन सब प्राणोंकाभी प्राण निरतिशय आनंदरूप वहां इस विषयमें तुमने देखाहै उसको तुम जानते हो ॥ १४ ॥ परंतु मैंने तो यह तुमसे देखीहुईसे अपूर्व शिला (ब्रह्मशिला) तुमसे मैंने कही है जिसकेभीतर महाकुक्षिमें सब कुछ है और कुछ नहीं है ॥ १५ ॥ यह चित्शिला मैंने तुमसे कहीहै जिसमें अनेक जगत् हैं, कूटस्थघन और एकरूप होनेसे यह शिला चित्रूपही है ॥ १६ ॥

अप्यत्यतघनांगायाःसुनीरंध्राकृतेरपि ॥ विद्यतेंतर्जगद्वृंदंव्योम्नीवविपुलानिलः ॥ १७ ॥ द्यौःक्षमावायु राकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ संतितस्यांशिलायांचसुषिरंनमनागपि ॥ १८ ॥ अस्यामेवघनांगात्मज गत्पद्मंविजृंभते ॥ एतस्माद्वस्तुतोनान्यदन्यच्चुद्धात्मकंचवा ॥ १९ ॥ शंखपद्मादिकंलोकंपाषाणेलिख्य तेयथा ॥ भूतंभवद्भविष्यच्चशिलायांशालभंजिका ॥ २० ॥

अर्थ—अतिसघन और सर्वथा छिद्ररहितभी इस शिलाकेभीतर जगत्के समूहके समूह ऐसे स्थितहैं जैसे आकाशमें विशालवायु ॥ १७ ॥ आकाश, पृथिवी, अंतरिक्ष, पर्वत, नदी और दिशा उस चित्शिलामें हैं और छिद्र उसमें किंचित्भी नहीं है ॥ १८ ॥ इसी शिलामें सघन अंग जगत्रूप कमल शोभित होरहाहै और यथार्थमें इससे भिन्न नहीं है, अथवा शुद्ध चित्रूप नहीं है किंतु मायारूप है ॥ १९ ॥ जैसे कारीगरकी कल्पनासे पाषाणके ऊपर शंख पद्मआदि चित्र लिखते हैं ऐसेही भूत भविष्य संपूर्ण जगत् उस शिलामें प्रतिमा जैसे वास्तविकमें रहती है ॥ २०॥

तथास्तितत्रतत्सर्वसंस्थानंवस्तुतोयथा ॥ उपलांतःसन्निवेशोनानात्माप्येकपिंडताम् ॥ २१ ॥ यथाद त्तेतथैषाचित्पिंडाकारैकिकांघनाम् ॥ यथापद्मःशिलाकोशादभिन्नस्तद्वपुर्मयः ॥ २२ ॥ तथासर्गश्चितो रूपादभिन्नोपिवपुर्मयः ॥ सुषुप्तावस्थयाचक्रपद्मलेखाःशिलोदरे ॥ २३ ॥ यथास्थिताश्चितेरंतस्तथेयं जगदावली ॥ शिलांतःपद्मलेखालीमरिचांतश्चमत्कृतिः ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही सबजगत्की रचना है, और पाषाणकी शिलामें नानाप्रकारकी प्रतिमाकी रचना एकपिंड-ताको स्वीकार करतीहै ॥ २१ ॥ ऐसेही यह चित्शिलाभी एक चिद्घन पिंडताको ग्रहण करतीहै, और जैसे शिलाकेभीतरका कमल उसके कोशसे अभिन्नरूप है तोभी आकारवान् है ॥ २२ ॥ ऐसेही यह जगत्की सृष्टि चित्से अभिन्नरूप है तबभी पृथक् परिच्छिन्न आकारवान् भासती है, जैसे टांकी छेदनेसे पूर्व चक्र पद्मआदि शिलाके उदरमें अनभिव्यक्तरूप करके स्थितहै ॥२३॥ ऐसेही चित्के भीतर असंख्य जगत्की पंक्ति स्थितहै, जैसे विद्यमान शिला और मरिचके भीतर प्रतिमा तथा तीक्ष्णताकी चमत्कृति ॥ २४ ॥

नोदेतिनास्तमायातियथासर्गस्थताचितौ ॥ यथापुरंध्यांमस्यांतर्मजावाबिल्वगायथा ॥ २५ ॥ तथानं तविकाराढ्याचितौब्रह्मांडमंडली ॥ विकारादितदेवेतिमुधैवोक्तिरनर्थिका ॥ २६ ॥ तत्तांसमुपयात्याशु

जलबिंदुरिवांभसि ॥ अनंतत्वाच्चितेरेतद्विकारादिचितेरिति ॥ २७ ॥ उत्तयासंपद्यतेयच्चतल्लयेनविलीयते ॥ ब्रह्मैवेदंविकारादिविकाराद्यर्थवर्जितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—न उदय न अस्त होती है, ऐसेही चित्में यह जगत्की सृष्टिहै, जैसे सतीस्त्रीके मनमें सदा उसका पति रहताहै, जैसे बिल्वमें मज्जा (गूदा वा गिरी) रहती है ॥ २५ ॥ ऐसेही अनंतविकारोंसे पूर्णब्रह्मांडोकी मंडली चेतनमें रहती है, और यह विकारआदि चिन्मयहै यह कथन निष्फल और निरर्थक है ॥ २६ ॥ क्योंकि यह सब विकारआदि ब्रह्माण्डोंके चिन्मात्र देखनेसे शीघ्र चित्स्वरूपताको ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे जलमें जलका बिंदु (बुद्बुद) चित्के अनंत होनेसे यह सब विकारआदि चित्केही हैं ॥ २७ ॥ जो पदार्थ कथनमात्रसे उत्पन्नहोताहै वह उसके लीन होनेसे लीन होजाताहै, यह विकारआदि सब ब्रह्मही है और विकारआदि सब अर्थशून्य हैं ॥ २८ ॥

वर्जनावर्जनेर्थस्यब्रह्मैवानंततावशात् ॥ ब्रह्मस्थितंविकारादिब्रह्मैवोत्पादितंक्रमात् ॥ २९ ॥ अत्रान्यार्थमिदंविद्धिमृगतृष्णांभसासमम् ॥ बीजंपुष्पफलांतस्थंबीजांतर्नान्यदात्मकम् ॥ ३० ॥ यादृशीबीजसत्तासाभवंतीयात्यथोत्तरम् ॥ चिद्घनेचिद्घनत्वंयत्सएवत्रिजगत्क्रमः ॥३१॥ एकत्वमेतयोर्द्वित्वमेकाभावेद्वयोःक्षतिः ॥ जगदन्यभवोद्भूतिर्नकदाचित्तदीदृशम् ॥ ३२ ॥ चिदचिन्नकदाचिच्चद्वयमंतर्मिथोद्वयम् ॥ महाशिलांतरेभेदोलेखात्मास्तियथाबहुः ॥ ३३ ॥

अर्थ—पदार्थोंकी वर्जनता और अवर्जनता अनंतताके कारण ब्रह्मही है, विकादिरूप ब्रह्मही स्थितहै और क्रमसे ब्रह्मही उत्पन्न कियाहै॥२९॥इस चित्की शिलामें इससे भिन्न अर्थ मृगतृष्णाके जलके समान तुम जानो और पुष्पफल-पर्यन्त अपने कार्यमें जैसे बीजकी अनुवृत्ति होतीहै ऐसेही सर्वत्र चेतनकी अनुवृत्तिसे उससे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ३० ॥ जैसे अंकुरआदि पूर्व २ विकारोंमें विद्यमानही बीजसत्ता उत्तर २ काण्ड,शाखा, पल्लवआदिमें जातीहै ऐसेही चिद्धन आत्मामें चिद्घनत्व रहताहुआ तीनोंलोंक क्रमहै अर्थात् तीनोंलोकमें जाताहै ॥ ३१ ॥ बीज तथा उसके कार्य्यका एकत्व और द्वित्व दोनों नहीं है और एकत्वके अभावसे द्वित्वकीभी क्षति है, और चित्से भिन्न जडकी कल्पनासे जगत्की उत्पत्ति नहीं है क्यों कि परमात्मामें जडता नहीं है और चित् तथा अचित् दोनो परस्पर एक नहीं होसकते, और महाशिलाकेभीतर रेखाओंके जैसे परस्पर अनेक भेदहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तदन्यानन्यमज्जादिचिद्घनेत्रिजगत्तथा ॥ रेखोपरेखावलितायथैकापीवरीशिला ॥३४॥ तथात्रैलोक्यवलितंब्रह्मैकमितिदृश्यते ॥ एतच्छिलांतरब्जादियथानित्यंसुषुप्तकम् ॥ ३५ ॥ नास्तमेतिनचोदेतितथाहंताजगद्गतिः ॥ यथाशिलांतर्लेखादिभिद्यतेनशिलांतरात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और बिल्वके फलमें मज्जाआदि जैसे अभिन्न और भिन्नरूप है ऐसेही चिद्घन परमात्मा तीनोंलोक क्रम है, और जैसे एक पाषाणकी महाशिला रेखाउपरेखासे आच्छादित रहती है, ऐसेही त्रैलोक्यसे आच्छादित एक ब्रह्म है, और जैसे शिलामें सुषुप्त अर्थात् शिल्पीकी वासनामात्रसे नित्य मलआदि ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ न उदय होतेहैं न अस्त होतेहैं इसीप्रकार परमात्मामें जगत् और अहंकारहै, और जैसे शिलाके भीतरके रेखा प्रतिमाआदि शिलासे भिन्न नहीं हैं ॥ ३६ ॥

तत्सारत्वाज्जगत्कर्तृकर्तृत्वादिजगच्चितिः ॥ यथाशिलांतराब्जानांस्पंदास्पंदभवाभवाः ॥ ३७ ॥ विषयत्वंनगच्छंतिकर्तारोजगतस्तथा ॥ नेदंकदाचित्क्रियतेनकदाचननश्यति ॥ ३८ ॥ अद्रिवत्प्रभवोल्लासविलासावेदनात्मकम् ॥ यथायच्चयदाकारंतथातत्रतदेवहि ॥ ३९ ॥ ब्रह्मसत्तात्मकंसर्वसुषुप्तस्थमिवस्थितम् ॥ भूरिभावविकाराढ्योयोयंजगद्गुरुभ्रमः ॥ सुषुप्तमेवतद्विद्धिशिलांतःपंकजादिवत् ॥ ४० ॥ नित्यंसुषुप्तपदमेवजगद्विलासःसम्यक्प्रशांतसमचिद्घनखात्मकत्वात् ॥ पद्माःशिलांतरिवसर्गदशास्त्वसाराद्दृष्टानदेहमुपयांतिकदाचिदेव ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे शिलाकोशोपदेशो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—ऐसे चिन्मय सार होनेसे जगत्के कर्ता जीव, ईश्वर, उनके कर्ता और जगत् सब चिन्मयहैं, और जैसे शिलाके भीतरके कमलादिकी गति और उसके अभावके आविर्भाव तिरोभाव ॥ ३७ ॥ विषयताको नहीं प्राप्त होते ऐसेही जगत्के कर्ताओंकी दशाहै, यथार्थमें यह जगत् न कभी किया गया और कभी नष्ट होताहै ॥३८॥ किंतु अविकारी होनेसे पर्वतके समान उत्पत्ति उल्लास और विलास ज्ञानसे रहित शिला प्रतिमाआदि नानाप्रकारके शिल्पियोंके

मानसकल्पनासे भिन्न होती है ऐसेही ब्रह्म जिसप्रकार जहां जब जिस आकारकी कल्पना करताहै वही शीघ्र वैसाही होजाताहै ॥ ३९ ॥ जैसे वासनाके भेदसे एकही विषयमें प्रतिजीव स्वप्नके पदार्थोंमें भेद होताहै ऐसेही वासनामात्रसे भिन्न सबजगत् ब्रह्म एक है, और शिलाकेभीतर कमलआदिके तुल्य अनेकविकारोंसे पूर्ण इस जगत्के महान् भ्रमको सुषुप्तवासनामात्र जानो ॥ ४० ॥ सम्यक् शांत समरूप चिद्घन ब्रह्मरूप होनेसे यह जगत्का विलास सुषुप्तमात्रही है और शिलामेंके मूलआदिके तुल्य ये सब सृष्टि आत्मामें असार (तुच्छ) देखी गई है इसलिये कदाचित्भी स्वरूपमें स्थितिको नहीं प्राप्त होती ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिलाकोशोपदेशोनाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

इस ४७ के सर्गमें मयूरके अंडेके रसमें, पक्ष (मोरका पंख) वर्ण तथा अन्यशरीरकी रचनाके भेदके समान बिल्वाख्यानका तात्पर्य वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तत्त्वस्यफलस्येवचितःस्वापापरक्रमात् ॥ ससत्तासन्निवेशेनयःससर्गइतिस्थितः ॥ १ ॥ देशकालक्रियादीनामपितन्मयरूपतः ॥ इदमन्यदिदंचान्यदितिनात्रोपपद्यते ॥ २ ॥ समस्तशब्दशब्दार्थवासनाकलनाविदः ॥ एकात्मत्वादसच्चेदमितिसंकथ्यतेकथम् ॥ ३ ॥ फलस्यांतःसंनिवेशोनामानुक्रमतोयथा ॥ चितःस्वसत्ताघनतानानानानास्थितातथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-फलके समान चित्तत्वके स्वरूपका यथार्थ अनुसंधान नहीं रहता तभीतक उसके गर्भमें सृष्टि रहती है और प्रसिद्ध स्वप्नसे अन्य युग वर्ष आदिके क्रमसे सत्तासे कल्पित रचना विशेषसे जो प्रवृत्तहै (न कि चित्के समसत्ताक) वही सर्ग (सृष्टि) रूपसे स्थितहै ॥ १ ॥ और अधिष्ठानरूपसे देशकालक्रियादि कभी चिन्मयरूप होनेसे यह अन्य है यह अन्य है यह कथन युक्त नहीं है ॥ २ ॥ और समस्त शब्द, उनके अर्थ तथा उन शब्दार्थोंकी वासना और उन वासनाओंसे प्रेरित संकल्पविकल्पोंकी कलाओंके वेत्ताका तीनों अवस्था (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति) में एकरूप होनेसे सत्यरूपता अंगीकार करनेसे यह सब जगत् असत्य है यहभी कैसे कह सकतेहैं ॥ ३ ॥ जैसे फलके भीतर वृक्ष अंकुर आदिकी रचनाका अनुक्रम रहताहै ऐसेही चित्की सत्ताभी नाना और अनाना (अनेक और एक) रूप होके स्थितहै ॥ ४ ॥

अनानैवापिनानैवक्षुब्धेवाक्षुभितैवच ॥ यथाफलांतःस्वासत्ताचिदंतःसिद्धयस्तथा ॥ ५ ॥ जगन्नगरमादर्शेचितःस्वंप्रतिबिंबितम् ॥ कचतीवाकचदपिशिलांतःसंनिवेशवत् ॥ ६ ॥ परमेचिन्मणौसंतिजगत्कोटिशतान्यपि ॥ चिंतामणावनंतानिफलानीवार्पितान्यलम् ॥ ७ ॥ चित्समुद्गकएवेदंतदंगोत्कीर्णमाततम् ॥ जगन्मौक्तिकमाभातितदंशमयमन्यवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह चित् एकरूप रहतेभी अनेकरूपसे भान होती है और अविकृतरूप होतेहुयेभी विकृत भान होती है, और जैसे बिल्वफलके भीतर अंकुर मज्जा आदिकी रचना रहती है ऐसेही चित्के भीतर जगत्की रचनाकी सिद्धि रहती है ॥ ५ ॥ जैसे आदर्श (दर्पण) में नगर आदि प्रतिबिंबित होते हैं ऐसेही विकसित वा अविकसितरूप जगत् चित्का प्रतिबिंबी है यही तात्पर्य ब्रह्मशिलाके भीतर जगत्है इस कथनका है ॥६॥ जैसे चिंतामणिमें चिंतककी वासनाके अनुसार फल अर्पितहैं ऐसेही परम चिन्मणिमें करोडों ब्रह्मांड समर्पित हैं ॥७॥ चित्रूप पेटारीमें उसीमें निकले हुयेके सदृश यह जगत्रूप मोतियां उसीके अनेक अंश (कल्पित) के समान ऐसे भासती है जैसे सीपमें मोती ॥ ८ ॥

अहोरात्रंविकरयन्वेदनावेदनान्यलम् ॥ चिदादित्यःस्थितोभास्वाञ्जगद्द्रव्याणिदर्शयन् ॥ ९ ॥ समुद्रकोटरावर्तपयःस्पंदविलासवत् ॥ अनानैवचनानाचिच्छिलांतःसन्निवेशवत् ॥ १० ॥ यदस्तितच्चितिशिलाशरीरेशालभंजिका ॥ यन्नास्तितच्चितिशिलाशरीरेशालभंजिका ॥ ११ ॥ भावाभावेषुयत्सत्यंचिन्मजाकल्पमेवतत् ॥ मज्जासारापदार्थश्रीस्तन्मयंस्यात्तदेवहि ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य अपने स्वरूपका आविर्भाव तिरोभावरूप रात्रिदिनका विभाग करताहै ऐसेही चित्रूप सूर्यभी अनुभव तथा अननुभवरूप करता हुआ जगत्रूप द्रव्यके विकल्पोंको दर्शाताहुआ स्थितहै ॥ ९ ॥ जैसे समु-

द्रवके गर्भके भीतर आवर्त तरंग आदि, और शिलाके भीतर कमलादि नानारूप होतेहुयेभी उनसे भिन्न नहीं हैं ऐसेही चित्के भीतर इस जगत्की दशा है ॥ १० ॥ जो जगत् वर्तमानसमयमें चित्में है वे पाषाणकी शिलामें खुदी-हुई प्रतिमाके तुल्य हैं, और जो भविष्यत्कालमें होनेवाले हैं वे विना खुदी हुई प्रतिमाके तुल्य हैं ॥ ११ ॥ भाव तथा अभावरूप पदार्थोंमें जो तत्त्व है वह चित्रूप मज्जाके सदृशहै, क्योंकि बिल्व आदि पदार्थोंकी शोभामें सार मज्जाही है इसलिये मंजामय सब है ॥ १२ ॥

पद्मनानादिशब्दार्थस्त्यक्त्वायद्वच्छिलोदरम् ॥ नानातद्वदिदंनानातदेतन्मयमद्वयम् ॥ १३ ॥ नानाव्ये कतयानानापद्मबिंबंशिलोदरम् ॥ यथातदविभागात्मतथेदंचिद्घनांतरम् ॥ १४ ॥ यथामलपयःकोशः स्थलधियांवुभानुभाः ॥ सन्नेवासन्निवैवंचिन्नैवत्वंसदसद्वपुः ॥ १५ ॥ यथासम्यक्पयोराशिःकोटरेक लनोन्मुखम् ॥ द्रवत्वात्स्पंदतेऽस्पंदंतथेदंचिद्घनांतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कमल आदि नानाशब्द अर्थ शिलाके उदरसे पृथक् न किये जांय तो नानारूप होतेहुये शिलारूपही ऐसे चित्से अपृथक् किया जगत् नानारूपभी चित्रूपही है ॥ १३ ॥ जैसे शिला आदिमें कमल आदिके बिंब नाना-रूप होनेपरभी उसीके रूपहैं ऐसेही चित्में अविभागरूप यह जगत्भी चित्रूपही है ॥ १४ ॥ जैसे मरुस्थलकी मृग-तृष्णा हरिण आदिकी दृष्टिमें निर्मल जलकी राशि है स्थूल बुद्धिवालोंके यह स्थूलही है और विद्वानोंकी दृष्टिमें सूर्यका प्रकाश भान होताहै ऐसेही मरुस्थलमें विद्यमान आतप असत् जलादि सदसत्स्वरूप भासताहै ऐसे चित्स्वरूप तुमभी भासतेहो ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र मध्यमे द्रवीभूत होनेसें संचलित होताहै ऐसेही स्पंदरहितभी चिद्घन ब्रह्मभी सृष्टिके स्वभावसे संचलित होताहै ॥ १६ ॥

चिच्छिलाशंखपद्मौघस्तन्मयत्वेप्यतन्मयः ॥ जगद्विद्धिसपद्मादिपदार्थचिच्छिलांतरम् ॥१७॥ महाशि लाघनोप्येषचिद्घनस्थंशिलोदरम् ॥ अरंध्रोनिर्द्वयोच्छोजःसंशांतःसंनिवेशवत् ॥१८॥ तपतीदंजगद्ब्रह्म शरत्कालइवामलम् ॥ स्फुरतीदंजगद्ब्रह्मसौम्यःसोमइवद्रुतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मणीदंसुषुप्ताभंनास्त्यनाशं शिलाब्जवत् ॥ ब्रह्मत्वंब्रह्मणियथातथैवेदंजगत्स्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कमल आदि पदार्थसहित जगत्को चित् शिलाके भीतरही जानो, और चित् शिलाके भीतर शंख पद्म आदि तन्मय होनेपरभी अज्ञानसे अतन्मय हैं ॥ १७ ॥ दृष्टांतभूत महाशिलाभी यथार्थमें चित्शिलाके भीतर (चि-त्रूप) है, इसीसे सहस्रों शिल्पियोंसे छिद्रके अयोग्य (छिद्ररहित) अद्वैत, शांत, स्वच्छ और मिथ्या सन्निवेशके समान भासताहै ॥ १८ ॥ निर्मल शरत्कालके समान ब्रह्मही इस जगत्को तपाताहै और सौम्य तथा अमृतके समान द्रवीभूत यह स्फुरित होताहै ॥ १९ ॥ ब्रह्ममें यह जगत् अपने स्वरूपसे असत् और ब्रह्मरूप नित्य ऐसे है जैसे शि-लाके भीतर कमल अपने स्वरूपसे असत् और शिलास्वरूपसे नित्य है और जैसे ब्रह्ममें ब्रह्मत्व है ऐसेही यह जगत्भी ब्रह्ममें स्थितहै ॥ २० ॥

नानयोर्विद्यतेभेदस्तरुपादपयोरिव ॥ यानीमानिजगंतीहनान्यतानिचिदाकृतेः ॥ २१ ॥ भावाभावादि तास्त्येषांतस्याइवकदाचन ॥ ब्रह्मैवजगदाभासंमरुतापोयथाजलम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मैवालोकनाच्छुद्धंभव त्यंबुयथातपः ॥ मेर्वादेस्तृणगुल्मादेश्चितादेर्जगतोपिच ॥ २३ ॥ परमांबुविभागेनयद्रूपंतत्परंविदुः ॥ तत्समूहस्तदेवोचैश्चित्तंमेरुतृणादिकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—चेतनरूपसे जगत् और ब्रह्मका ऐसे भेद नहीं है जैसे वृक्ष और पादपका, क्योंकि जितने ब्रह्मांड हैं वे सब चिदाकार ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं ॥ २१ ॥ इन ब्रह्मांडोंके भावअभाव आदि विकार कदाचित् ऐसे भासते हैं जैसे मरु-स्थलमें सूर्यका आतप जलरूपसे ॥ २२ ॥ मेरु आदि अतिस्थूल पदार्थभी तत्त्वदृष्टिसे देखनेसे शुद्ध स्थूलतादिरहित ब्रह्मही ऐसे होजाताहै जैसे करक (बिनौली) आदि तपसे जलरूप, इसकारण बाह्य तृण गुल्मादि ब्रह्मांडका और आभ्यंतर चित्तसे लेके हिरण्यगर्भपर्य्यन्त जगत्का ॥ २३ ॥ जो जलके समान उत्तरोत्तर परम अव्याकृत अक्षरतक सूक्ष्मभूत है उसका जो रूप उसके विभागसे शेष रहताहै उसको तत्वज्ञानीलोग परब्रह्म कहतेहैं और वही ब्रह्मपंचीकृत भूतसमूह है तथा वही उच्च मेरु पर्वत और तृण गुल्मादिभी वही है ॥ २४ ॥

यत्सौक्ष्म्येपिहिसारात्मस्थौल्येसारतरंहितत् ॥ यथारसात्मिकाशक्तिःपरमाणुतयानघ ॥ २५ ॥ स्थि ताजगत्पदार्थेषुपायसीब्रह्मतातथा ॥ रसशक्तिर्यथानानातृणगुल्मलतांभसाम् ॥ २६ ॥ तथानानातयो देतिसैवासैवेवब्रह्मता ॥ येषारूपविलासानामालोकपरमाणुता ॥ २७ ॥

अर्थ—और जो ब्रह्म सूक्ष्ममें सार है वही स्थूलमेंभी है. हे पापरहित रामजी! इसीसे जैसे जो रसकी शक्ति परमाणुरूपसे स्थित है ॥ २५ ॥ वैसे स्थूल जलमें जो इन्द्रियका विषय है उसमेंभी स्थित है ऐसेही जो ब्रह्मकी शक्ति चित्त तथा सूक्ष्म पदार्थोंमें स्थित है वही जगत्के स्थूलपदार्थोंमेंभी स्थित है, और जैसे एकही रसशक्ति तृण गुल्म और लताआदिके जलोंमें नानारूपसे स्थित है ॥ २६ ॥ ऐसेही वही २ ब्रह्मशक्ति नानाप्रकारके पदार्थोंमें नानारूपसे उदय होती है, और नील, पीत, आदि विचित्ररूपोंके आलोकके सूक्ष्मतम सत्ता है ॥ २७ ॥

गुणगुण्यर्थसत्तात्मरूपिण्यासांपरात्मता ॥ चितिचित्तेस्तिमेवादितदभिव्यंजनात्मनि ॥ २८ ॥ पिच्छपक्षौघकाठिन्यंमयूरांडरसेयथा ॥ चितितत्त्वेस्तिनानातातदभिव्यंजनात्मनि ॥ २९ ॥ विचित्रपिच्छिकापुंजोमयूरांडरसेयथा ॥ यथानानात्मिकेह्येवबर्ह्यंडरसबर्हिते ॥ ३० ॥ विवेकदृष्ट्यादृष्टेतेतथाब्रह्मजगत्स्थितम् ॥ सनानातोप्यनानातोयथांडरसबर्हिणः ॥ ३१ ॥ अद्वैतद्वैतसत्तात्मातथाब्रह्मजगद्भ्रमः ॥ यथासदसतोःसत्तासमतायामवस्थितिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्मसत्ताभी इन घट आदि व्यक्तियोंके गुणगुणीके भेदसत्ताको धारण करती है और सर्वथा तिरोभावदशामें मायाशबलित चित्में, और अर्द्धतिरोभाव चित्में मेरुआदि स्थूलकार्यसमूह कारणस्वरूपसे ऐसे है जैसे मोरके पंख और कठिनता आदि मोरके अंडके रसमें, और आविर्भावदशामें चित्में मेरु घट आदि पदार्थोंकी अनेकता ऐसे है जैसे चित्रविचित्र मोरके पंखका समूह मोरके अंडेके रसमें ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ भेदकी दृष्टिसे वे पदार्थ भिन्नरूपसे देखेगयेहैं और अभेददृष्टिसे सब ब्रह्मरूपही यह जगत् स्थितहै और जैसे अंडमें रसरूप मोर रहताहै ऐसेही सनातन (नित्य) आत्माभी सबमें एकरूपही है. कल्पितभेद यथार्थ अभेद वा विरोध नहीं है ॥ ३१ ॥ जैसे ब्रह्म यथार्थमें जगत् है यह भ्रम है ऐसेही द्वैत तथा अद्वैतरूप ब्रह्म है यहभी भ्रम है क्योंकि सदसत्की स्थिति सत्ता समताहीमें है ॥ ३२ ॥

यतस्सदसतोरूपंभावस्थंविद्धितंपरम् ॥ नानानानात्मकमिदंत्वनुभूतंनसंभवम् ॥ ३३ ॥ चिज्जगद्दलनंपश्यबर्ह्यंडेरसबर्हिणम् ॥ यथाजगतिचित्तत्त्वंचित्तत्त्वेयज्जगत्तथा ॥ नानानानात्मकैकंचमयूरांडरसो यथा ॥ ३४ ॥ नानापदार्थभ्रमपिच्छपूर्णाजगन्मयूरांडरसश्चिदाद्या ॥ मयूररूपंत्वमयूरमंतःसत्तापदंविद्धिकुतोस्तिभेदः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चिद्घनोपदेशो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—और सद्सत्का तत्वभावस्थ है अर्थात् वस्तुरूप है नकि शून्यरूप और उस भावको तुम परब्रह्म जानो, वह अद्वैत भिन्न अभिन्नस्वभाव यह जगत् नहीं होसकता ॥ ३३ ॥ जगत्में जैसे चिदात्मा अनुगत है ऐसेही मोरमें रस अनुगत है, और जैसे चित्तत्वमें जगत् लीन है ऐसेही मोरमें रस अनुगत है, और वह ब्रह्म एक तथा अनेकरूप ऐसे है जैसे मोरमें रस ॥ ३४ ॥ हे रामजी! नानाप्रकारके पदार्थोंके भ्रमरूप मोरके पक्षों (पंखों) से पूर्ण आद्य (प्रथम) चित्ही जगत्रूप मोरके अंडका रस है और उस चित्में भासमान जगत्रूप मोरका रूपभी मोरका रूप नहीं है कि उसको सत्ताका पद अर्थात् परब्रह्म है ऐसा जानो वहांपर भेद कहां है ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चिद्घनोपदेशो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

जिसकी सत्ताकी स्फूर्तिसे कल्पितपदार्थोंमें सब सुख प्रतिबिम्बित होतेहैं उस चिद्घनानन्द परमात्माका परब्रह्मका वर्णन पृथक् करके इस ४८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यत्रानुदितरूपात्मसर्वमस्तीदमाततम् ॥ मयूरइवबीजेंतस्तदहंतादिगादिच ॥ १ ॥ यत्रनाभ्युदितंकिंचित्तत्रसर्वंचविद्यते ॥ तदत्राप्यंगिराःस्वर्गसुखसारेणबिंबति ॥ २ ॥ तथाचमुनयोदेवागणाःसिद्धामहर्षयः ॥ आस्वादयंतःस्वंरूपंसदातुर्यपदेस्थिताः ॥ ३ ॥ एतेयेस्तब्धनयनदृष्टयोनिर्निमेषिणः ॥ तेदृश्यदर्शनासंगस्पदत्यागेव्यवस्थिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—बीज वा अंडमें जैसे मोर रहताहै ऐसेही जिस शुद्ध परमात्मामें आभ्यन्तर अहंकार आदि और बाह्य दिगादि तीनोंकालमें अनुत्पन्नरूपसे हैं वही पूर्वोक्त दृष्टान्तका विषय है नकि मायाशबलित ॥ १ ॥ और यथार्थमें कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ और अविद्यासे सब जगत् जिसमें हैं तथा वही इस शरीरमें अंगोंके रसरूप प्राणस्वरूप होके स्वर्गआदिके विषयसुखके आकारसे, और चित्तकी वृत्तियोंके भेदसे चित्रविचित्र भोगाकारसे स्फटिकमणि वा दर्पणआदिमें चन्द्रमाके समान प्रतिबिंबित होताहै, अर्थात् विषयके सुखके बलसे निरतिशय आनन्दरूप बिंबभूत ब्रह्मकी सत्ताका अनुमान होताहै ॥२॥ और जो मुनि, देवगण, सिद्ध और महर्षिलोग हैं वे अपने निरतिशय आत्माके आनन्दका आस्वाद लेतेहुये तुरीयदपदमें स्थित हैं ॥ ३ ॥ और इसी आत्माके आनन्दके लिये नासिकाके अग्रभागमें दो नेत्रकी ज्योतिके रोकनेमें तथा दृश्यदर्शनके आसंगकी गतिकी निवृत्तिके अर्थ प्राणके निरोधमें योगी जन तत्पर हैं ४

नास्थिताभावनायेषांस्थितानामपिकर्मसु ॥ संवित्संवेद्यसंबंधस्पंदत्यागेचयेस्थिताः ॥ ५ ॥ प्राणोनस्पंदतेयेषांचित्रस्थवपुषामिव ॥ मनोनस्पंदतेयेषांचित्रस्थवपुषामिव ॥ ६ ॥ चित्तचेत्यसमासंगत्यागेते स्वपदेस्थिताः ॥ स्पंदात्संसाधयंत्यर्थंतेनांशेनेश्वरोयथा ॥ ७ ॥ तथैवचित्तचेत्यादिस्पंदात्कुर्वंतिसंस्थितिम् ॥ यथाह्लादयतिस्वच्छःपल्लवंरश्मिरेंदवः ॥ ८ ॥

अर्थ—और जो षष्ठ वा सप्तमभूमिकामें स्थित हैं, और कर्म (व्यवहार) में स्थित जिन पुरुषोंकी भावना बाह्यपदार्थोंमें किंचित्भी स्थित नहीं है तथा जो विषय और चेतनके सम्बन्धके त्यागमें व्यवस्थित हैं ॥ ५ ॥ और जिनका प्राण ऐसे नहीं चलता जैसे चित्रस्थ शरीरोंका, तथा जिनके मनकी गतिकाभी ऐसे अभाव है जैसे चित्रलिखित शरीरोंका ॥ ६ ॥ वे चित्त और चेत्य (विषय तथा चित्ता) की आसक्तिके त्यागरूप अपने पदमें स्थित हैं और आभ्यन्तरसे समाधिद्वारा अपना पुरुषार्थभी सिद्ध करतेहैं और बाहरसे विषयचित्तकी गतिसे व्यवहारभी ऐसे साधते हैं जैसे आभ्यन्तरसे अपने स्वरूपमें स्थित रहताहै और मायाद्वारा जगत्के कार्यकोभी करताहै ॥७॥ उन महात्माओंका बाह्यविषयोंमें बुद्धिकी वृत्तियोंके समागमसे त्रिपुटीमें अभिव्यक्त निरतिशय आनन्द तथा स्वच्छ आत्मा आभ्यन्तरमें आनंदित करताहै और जैसे चन्द्रमाका किरण पल्लव आदिके आभ्यन्तरमें प्रवेश करके आल्हाद उत्पन्न करताहै ॥८॥

तथात्माह्लादयत्यंतर्दृश्यदर्शनसंगमे ॥ बिंबाद्दूरंप्रयातस्यभित्तावपतितस्यच ॥ ९ ॥ यदिंदोस्तेजसोरूपंतद्रूपंशुद्धसंविदः ॥ नदृश्यंनोपदेशार्हंनात्यासन्नंनदूरगम् ॥ १० ॥ केवलानुभवप्राप्यंचिद्रूपंशुद्धमात्मनः ॥ नदेहोनेंद्रियप्राणौनचित्तंनचवासना ॥ ११ ॥ नजीवोनापिचस्पंदोनसंवित्तिर्नवैजगत् ॥ नसन्नासन्नमध्यंचशून्याशून्यंनचैवहि ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही दृश्यदर्शनके समागममें आत्माही सुख देताहै और बिंबसे दूर प्राप्त तथा भित्तिपर पतित शुद्ध आकाशमें स्थित चंद्रमाकी चंद्रिका जो रूप है वही परमात्माका रूप है,वह न दृश्य है न उपदेशके योग्य है न समीपहै न दूर किंतु केवल योगियोंके अनुभवगम्य है ॥ ९ ॥ १० ॥ और शुद्ध आत्माका अनुभवसे प्राप्यरूप न देह है न इंद्रिय है न प्राण है न चित्त न वासना ॥ ११ ॥ न जीव, न स्पंद न संविद् (वृत्तिमें अभिव्यक्त ज्ञान) न जगत् न सत् न असत् न मध्य, शून्याशून्य ॥ १२ ॥

नदेशकालवस्त्वादितदेवास्तिनचेतरत् ॥ एतैःसर्वैर्विनिर्मुक्तंहृदिकोशशतेनच ॥ १३ ॥ यत्रैतत्स्पंदतेदृश्यंतत्तदात्मपदंभवेत् ॥ यच्चनाद्यंनकल्पांतंनवस्त्वाग्न्यनिलादिभिः ॥ १४ ॥ इहचामुत्रसद्रूपादन्यथा भवतिकिंचित् ॥ जायंतेचम्रियंतेचदेहकुंभाःसहस्रशः ॥ १५ ॥ सबाह्याभ्यंतरस्यास्यनात्माकाशस्यखंडना ॥ तच्चदेहादिसकलमात्मैवात्मविदावर ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा देश काल वस्तु आदिभी वह नहीं है और त्रिविध परिच्छेदसे निरूपणके योग्य ब्रह्मही न कि अन्य, यह आत्मा इन देहादिसे तथा सैकडों हृदयस्थ कोशोंसे निर्मुक्तहैं ॥१३॥ और अनंतकोशसहित चित्तमें जिस परमात्माके रहनेहीपर यह दृश्य आविर्भाव तिरोभाव आदिसे संचलित होताहै वही सन्मात्र आत्मपदसे निश्चय कियागया है और जो शुद्ध ब्रह्म महाकल्पके आदिमें अव्याकृतरूप कारण नहीं है और प्राकृतप्रलयभी जो नहीं है, और जो सृष्टिकालमें अग्नि वायु आदिसे दहन, शोषण तथा क्लेदन आदि विकारोंसे ॥ १४ ॥ इस लोकमें तथा परलोकमें सद्रूपसे अन्यथा विकृत कभी नहीं होता, और चेतनरूप आकाशसे भिन्न देहरूप अनंत घट उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ और देहरूप घटके बाह्य तथा आभ्यंतर व्याप्त आत्मारूप आकाशका खंडन नहीं होसकता, और आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी अधिष्ठानरूप सब देह आदि वह आत्माही है ॥ १६ ॥

केवलंबोधवैरूप्यादीषत्पृथगिवस्थितम् ॥ विश्वगात्ममयंविश्वंज्ञातंबुद्धयासुसिद्धया ॥ १७ ॥ प्रज्वल न्नपिकार्येषुनिर्वाणोनिर्ममोभव ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १८ ॥ तत्सर्वंब्रह्मनिर्धर्म निर्गुणंनिर्मलात्मकम् ॥ निर्विकारमनाद्यंतंनित्यंशांतंसमात्मकम् ॥ १९ ॥ कालक्रियाकरणकर्तृनिदानकार्य जन्मस्थितिप्रलयसंस्मरणादिसर्वम् ॥ ब्रह्मेतिदृष्टवतएवतवात्मदृष्ट्या भूयोपिकिंभ्रमणमंगसमंगएव ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैकात्मप्रतिपादनं नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ — केवल बोधके विरोधसे किंचित् पृथक्के समान स्थितहै और चारोओरसे शुद्धबुद्धिसे ज्ञात होनेसे यह सब संसार आत्ममय भान होने लगताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी ! अपने राज्यके योग्य व्यवहारोंमें दीप्यमानभी तुम शांत और ममतारहित होजाओ और जो कुछ यह स्थावरजंगमरूप जगत् देखपडताहै ॥ १८ ॥ वह सब निर्गुण, निर्मल, निर्विकार, अनादि, अनंत, नित्य, शांत और समरूप ब्रह्महीहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! काल, कर्ता, करण, क्रिया, कारण, कार्य्य, जन्म, स्थिति प्रलय, और स्मरण आदि सब कुछ ब्रह्महीहै ऐसा आत्मदृष्टिसे देखनेवाले तुमको क्या पुनः भ्रमण होसकताहै क्योंकि तुम सदा समब्रह्मको प्राप्तहो इसलिये ब्रह्महीहो ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकात्मप्रतिपादनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

विकारोंसे विवर्तकी विलक्षणता, अज्ञानसे अविद्याकी सत्ता तथा ज्ञानसें उसका अभाव इस विषयका वर्णन इस ४९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ यदिनास्तिविकारादिब्रह्मन्ब्रह्मणिबृंहिते ॥ तदिदंकथमाभातिभावाभावमयंजगत् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अपुनःप्रागवस्थानंयत्स्वरूपविपर्ययः ॥ तद्विकारादिकंतातयत्क्षीरादिषुवर्तते ॥ २ ॥ पयस्तांपुनरभ्येतिदधित्वान्नपुनःपयः ॥ बुद्धमाद्यंतमध्येषुब्रह्मब्रह्मैवनिर्मलम् ॥ ३ ॥ क्षीरादेरिवतेनास्तिब्रह्मणोनविकारिता ॥ अनाद्यंतविभागस्यनचैषोवयविक्रमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी ! बोले–हे भगवन् ! यदि देश काल वस्तुआदिके परिच्छेदसे शून्य महान् ब्रह्ममें बिकार आरंभ आदि नहीं है तो भावअभावरूप यह जगत् कैसे भान होताहै ॥ १ ॥ अतिरोहित पूर्वभाव १ प्रतिबद्ध पूर्वभाव २ प्रच्छन्न पूर्वभाव ३ अप्रच्छन्न पूर्वभाव ४ और विनष्ट पूर्वभाव ५ इनमेंसे मृत्तिकाका घटआदि प्रथम १ जलके करका वा २ हिमादि ३ रज्जुका सर्प, ४ जलके तरंगआदि ५ और दुग्धआदिके दधिआदि, इन पांचोंमेंसे दुग्ध वा धान्यआदिका दधि वा तुष (भूसी) रहितरूप कार्य्य जो कि पूर्वकी दुग्धआदि अवस्थासे शून्यहै वा दुग्धआदिके स्वरूपसे विपरीतहै वही विकार वा परिणाम आदि शब्दोंसे कहाजाताहै और २ ॥ और दुग्ध दधि (दही) होनेसे पुनः दुग्धदशामें नहीं प्राप्त होता और ब्रह्ममें जगत्रूप कार्य तो आदि अन्त तथा मध्यमें ब्रह्म देखा वा जानागयाहै ॥ ३ ॥ इस कारण दुग्धआदिके तुल्य ब्रह्ममें विकारिता नहीं है और अंतरहित परमात्मामें अवयव अवयवीभावका क्रम नहीं है, इससे परमाणुओंसे द्व्यणुकआदि क्रमसे अवयवीका आरंभ क्रम है, वा अनेक संयुक्त वा समवायसंबंधवालोंका अपने आश्रयमें समवायसंबंधसे कार्यकी आरंभकताहै इत्यादि कथनभी परास्तहुआ ॥ ४ ॥

समस्याद्यंतयोर्येयंदृश्यतेविकृतिःक्षणात् ॥ संविदःसंभ्रमंविद्धिनाविकारेस्तिविक्रिया ॥ ५ ॥ नसंवेद्यंनसंवित्तिस्तत्रब्रह्मणिविद्यते ॥ तद्ब्रह्मशब्दकथितंनिःसंबंधचिदात्मवत् ॥ ६ ॥ यादृगाद्यंतयोर्वस्तु तादृगेवतदुच्यते ॥ मध्येयस्ययदन्यत्वंतदबोधाद्विजृंभितम् ॥ ७ ॥ आत्मात्वाद्यंतमध्येषुसमःसर्वत्र सर्वदा ॥ स्वमप्यन्यत्वमायातिनात्मतत्त्वंकदाचन ॥ ८ ॥

अर्थ—और समआत्माको जो क्षणमेंही आदिअंतमें विकार देखते हो यह केवल ज्ञानका भ्रम (विवर्त) है क्योंकि अविकारी आत्मामें विकार नहीं होसकता ॥ ५ ॥ उस ब्रह्ममें न विषय है न उसका वेत्ता है वह तो संबंधसे शून्य चिदात्मा ब्रह्मशब्दसे कहागयाहै ॥ ६ ॥ वस्तुका जो स्वभाव आदिअंतमें रहता है वही उसका स्वरूप

कहाजाताहै, और उसके मध्यमें जो अन्यथाभाव जानपडताहै वह अज्ञानका विलासहै ॥ ७ ॥ आत्मा तो आदि अंतमध्यमें सर्वत्र सदा समरूप है वह निज आत्मतत्व कदाचित्भी अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होता ॥ ८ ॥

अरूपत्वात्तथैकत्वान्नित्यत्वादयमीश्वरः ॥ वशंभावविकाराणांनकदाचनगच्छति ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विद्यमानेसदेकस्मिन्ब्रह्मण्येकांतनिर्मले ॥ संविद्भ्रमस्वरूपायाअविद्यायाःकआगमः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ब्रह्मतत्त्वमिदंसर्वमासीदस्तिभविष्यति ॥ निर्विकारमनाद्यंतंनाविद्यास्तीतिनिश्चयः ॥११॥ यस्तुब्रह्मेतिशब्देनवाच्यवाचकयोःक्रमः ॥ तत्रापिनान्यताभावमुपदेष्टुंक्रमोह्यसौ ॥१२॥

अर्थ—रूपरहित, एक तथा नित्य होनेसे यह ईश्वर आत्मा किसीके वशमें कदाचित नहीं आता ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! सदा एकरस सर्वथा निर्मल और प्रकाशरूप चिद्ब्रह्मके विद्यमान रहते उससे विरुद्ध अविद्याका आगमन उसमें कैसे हुआ ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् निर्विकार अनादि अनंत ब्रह्मतत्वही था, है, और होगा, इसमें अविद्याका प्रवेश नहीं है यह निश्चयहै ॥ ११ ॥ और जो ब्रह्मशब्दसे सच्चिद्ब्रह्मका वाच्यवाचक क्रम है उसमेंभी अन्यभाव नहीं है किंतु उपदेश देनेका यह क्रम है ॥ १२ ॥

त्वमहंजगदाशाश्चद्यौर्भूश्चाप्यनलादिवा ॥ ब्रह्ममात्रमनाद्यंतंनाविद्यास्तिमनागपि ॥ १३ ॥ नाम्नैवेदमविद्येतिभ्रममात्रमसद्विदुः ॥ नविद्यतेयासासत्याकीदृग्रामभवेत्किल ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ उपशमप्रकरणेह्यस्तनेतुत्वयेरितम् ॥ अविद्येयंतथेत्थंचविचार्यतइतिप्रभो ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतावंतमबुद्धस्त्वमभूःकालंरघूद्वह ॥ कल्पिताभिःकिलैताभिर्बोधितोसिस्वयुक्तिभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—तुम, हम, यह जगत, सब दिशा, पृथिवी, अग्नि, और स्वर्ग, यह सब अनादि अनन्तब्रह्ममात्रही है, इसमें अविद्या किंचित्भी नहीं है ॥ १३ ॥ यह अविद्या नाममात्रको है क्योंकि मात्रको असत् कहते हैं. हे राम ! जो अविद्या हैही वह सत्य कैसे होसकती है ॥ १४ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! कल आपने उपशमप्रकरणमें यह कहाथा कि यह अविद्या जिसप्रकार भ्रांतिरूप है उसका विचार ऐसे करनाचाहिये, यदि वह नहीं है तो उसका विचार कैसे कहा ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रघुश्रेष्ठ ! इतनेकालतक तुम अज्ञानी थे इसलिये मैंने अपनी कल्पित युक्तियोंसे बोधित किया ॥ १६ ॥

अविद्येयमयंजीवइत्यादिकलनाक्रमः ॥ अप्रबुद्धप्रबोधायकल्पितोवाग्विदांवरैः ॥ १७ ॥ अप्रबुद्धंमनो यावत्तावदेवभ्रमंविना ॥ नप्रबोधमुपायातितदाक्रोशशतैरपि ॥ १८ ॥ युक्त्यैवबोधयित्वैषजीवआत्मनियोज्यते ॥ यद्युक्त्यासाध्यतेकार्यंनतद्यत्नशतैरपि ॥ १९ ॥ सर्वंब्रह्मेतियोब्रूयादप्रबुद्धस्यदुर्मतेः ॥ स करोतिसुहृदस्त्यास्थाणोर्दुःखनिवेदनम् ॥ २० ॥

अर्थ—यह अविद्या है, यह जीव है, और यह मन है, इत्यादि कल्पनाका क्रम अज्ञानियोंके बोधके लिये ज्ञानियोंने कल्पित किया है ॥ १७ ॥ जबतक यह मन अप्रबुद्ध है तबतक अविद्यासे आदि लेके शास्त्रीयव्यवहारके बिना सैकडों कोश जानेपरभी प्रबोधको नहीं प्राप्त होता ॥ १८ ॥ इस जीवको युक्तिसे बोधनद्वारा आत्मामें युक्त करतेहैं क्योंकि जो कार्य्य युक्तिसे प्राप्त होताहै वह सैंकडो युक्तिसेभी नहीं प्राप्त होता ॥ १९ ॥ जो कोई अज्ञानी दुर्मतिको सबब्रह्म है ऐसा कहताहै वह मानो स्थाणु (ठूंठ) कोभी अपना मित्र जानकर अपना दुःख निवेदन करताहै ॥ २० ॥

युक्त्याप्रबोध्यतेमूढःप्राज्ञस्तत्त्वेनबोध्यते ॥ मूढःप्राज्ञत्वमायातिनयुक्त्याबोधनंविना ॥ २१ ॥ एतावंतमबुद्धस्त्वंकालंयुक्त्याप्रबोधितः ॥ इदानींसंप्रबुद्धस्त्वंमयायेनावबोध्यसे ॥ २२ ॥ ब्रह्माहंत्रिजगद्ब्रह्मत्वंब्रह्मखल्विदृश्यभूः ॥ द्वितीयाकलनानास्तियथेच्छसितथाकुरु ॥ २३ ॥ असंवेद्यमहासंवित्कोटिमात्रंजगत्त्रयम् ॥ एकप्रत्ययवानंतःकुर्वन्नपिनलिप्यसे ॥ २४ ॥

अर्थ—मूढ युक्तिसे बोधित होताहै और ज्ञानी तत्वसे, क्योंकि युक्तिसे बोधनके बिना प्राज्ञदशाको नहीं प्राप्त होता ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इतनेसमयतक तुम अबोधथे इसलिये मैंने तुमको युक्तिसे बोधन किया और अब तुम प्रबुद्ध हो इसलिये जिस रीतिसे मुझसे बोधित कियेजातेहो वह सुनो ॥ २२ ॥ हम ब्रह्म हैं, तीनोलोक ब्रह्म है, तुम ब्रह्म हो, यह दृश्य पृथिवी ब्रह्म है, इसमें दूसरी कल्पना कुछ नहीं है, अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करो ॥ २३ ॥ यह महासंवित् ज्ञानका विषय नहीं है और तीनोंलोक तथा प्रकार भ्रांतिमात्रके बाधकी वही है ऐसी एक प्रतीतिवाले तुम जगत्के व्यवहारोंको करतेहुयेभी न होओ ॥ २४ ॥

भारूपश्चेतनोव्यापीपरमात्माहमित्ययम् ॥ रावबानुभवांतस्त्वंतिष्ठन्गच्छञ्छ्वसन्स्वपन् ॥ २५ ॥ निर्ममोनिरहंकारोबुद्धिमानसिसाधुचेत् ॥ तद्ब्रह्मावेदनंशांतंसर्वभूतस्थितंभव ॥ २६ ॥ तदनाद्यंतमाभासंसत्त्वमेवपरंपदम् ॥ स्थितोसिसर्वगैकात्मशुद्धसंविन्मयात्मकः ॥ २७ ॥ यद्ब्रह्मात्मापितुर्यश्चया विद्याप्रकृतिश्चया ॥ तदभिन्नसदैकात्मयथाकुंभशतेषुमृत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम स्थितरहते चलते फिरते सोते जागते अहंभावरूपमें प्रकाशरूप चेतन सर्वव्यापी परमात्मा मैं हुं ऐसा अंतःकरणमें निश्चय करो ॥ २५ ॥ हे रामजी ! तुम ममता तथा अहंकारसे रहित और बुद्धिमान्हो सो यदि कल्याण चाहते हो तो शान्त सर्वभूतमें स्थित चिदेकरस ब्रह्ममात्र होजाओ ॥ २६ ॥ वह वेदोंमें प्रसिद्ध अनादि अनन्त प्रकाशमय परमपद तुमही हो, और सर्वव्यापी, शुद्ध, एक तथा संवित्‌रूप आत्मा तुम स्थितहो ॥२७॥ जो ब्रह्म आत्मा तुरीय और जो अविद्या प्रकृति वा जगत्‌रूपसे प्रसिद्ध है वह सब अभिन्न सन्मात्र आत्मा ऐसे है जैसे सैकडों घडोंमें मृत्तिका ॥ २८ ॥

नात्मनःप्रकृतिर्भिन्नाघटान्मृन्मयतायथा ॥ सन्मृन्मात्रंयथाचांतरात्मैवंप्रकृतिःस्थिता ॥ २९ ॥ आवर्तः सलिलस्येवयःस्पंदस्त्वयमात्मनः ॥ प्रोक्तःप्रकृतिशब्देनतेनैवेहसएवहि ॥ ३० ॥ यथैकःस्पंदपवनौनाम्नाभिन्नौनसत्तया ॥ तथैकमात्मप्रकृतीनाम्नाभिन्नेनसत्तया ॥ ३१ ॥ अबोधादेतयोर्भेदोबोधेनैवविलीयते ॥ अबोधात्सन्मयोयातिरज्ज्वांसर्पभ्रमोयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे घटसे मृत्तिकामयता भिन्न नहीं ऐसेही आत्मासे भिन्न प्रकृति नहीं है, जैसे विद्यमान घट मृत्तिकामात्र है ऐसेही प्रकृतिभी विद्यमानतादशामें आत्मरूपसे स्थित है ॥ २९ ॥ जैसे जलका स्पंद आवर्तशब्दसे कहाजाताहै इसीरीतसे अपने सन्मात्रस्वभावसे इस अपने विवर्तमें आत्मा पूर्ण है अन्य अणुमात्रभी कुछ नहीं है ॥ ३० ॥ जैसे वायु तथा उसकी गति एकपदार्थ हैं किंतु नाममात्रसे भेद प्रतीत होताहै ऐसेही आत्मा और प्रकृति नाममात्रसे भिन्न है न कि सत्तासे ॥ ३१ ॥ अज्ञानसे आत्मा तथा प्रकृति (अविद्या) का भेद है वह ज्ञानसे लीन होजाताहै, और अज्ञान सत्यताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम ॥ ३२ ॥

चित्क्षेत्रेकलनाबीजंयदेतत्पततिस्फुरन् ॥ चित्तांकुरंतदेतस्माद्भाविसंसारखंडकः ॥ ३३ ॥ एतदेवात्मविज्ञानाद्दग्धंसद्वासनाजलैः ॥ संसिक्तमपियत्नेननभवत्यंकुरक्षमम् ॥ ३४ ॥ नोचेत्पततिचित्क्षेत्रेकलनाबीजकंततः ॥ चित्तांकुरानजायंतेसुखदुःखलवद्रुमाः ॥ ३५ ॥ द्वित्वंजगत्यसद्रूपात्तमबोधजातंबोधक्षयंजहिहिबोधमुपागतोसि ॥ आत्मैकभावविभवेनभवाभयात्मानास्त्येवदुःखमितिनःपरमार्थसारः॥३६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे संसृतिविचारयोगो नाम एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चित्‌रूप क्षेत्रमें कल्पनाका बीज गिरता है वही चित्तरूप अंकुर होके उस क्षेत्रसे स्फुरित होताहुआ भावी संसाररूप सब बनका खंड होजाताहै ॥ ३३ ॥ यह कल्पनारूप बीज आत्मज्ञानसे दग्ध होनेपर उत्तम वासनारूप जलसे यत्नसेभी सिंचाहुआ अंकुरके समर्थ नहीं ॥ ३४ ॥ यदि कल्पनाका बीज चित्क्षेत्रमें न गिरै तो शरीररूप वृक्षसहित सुखदुःख संयुक्त चित्तरूप अंकुर कभी न उत्पन्न हो ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! ज्ञानका नाशक, असत्, भ्रांतिसे ग्रहीत इस जगत्‌में द्वैतभावको तुम त्यागो, क्योंकि अब तुम बोधको प्राप्त हो, और निरतिशय आनंदरूप आत्माके विभवसे तुम अभयात्मा हो, और दुःखतो यथार्थमें तीनकालमेंभी नहिंहै यह हमारे उपदेशका सारहै ॥३६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे संसृतिविचार योगोपदेशो नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इस ५० के सर्गमें जीवमें लिंग पुर्य्यष्टक (सूक्ष्म) शरीरकी उत्पत्ति, और स्थूल इंद्रियोंके द्वारा बाह्यपदार्थोंका ग्रहण वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलंदृष्टंद्रष्टव्यमक्षतम् ॥ परेणपरिपूर्णाःस्मोब्रह्मज्ञानामृतेनते ॥ १ ॥ पूर्णात्पूर्णमिदंपूर्णंपूर्णात्पूर्णंप्रसूयते ॥ पूर्णेनापूरितंपूर्णंस्थितापूर्णंचपूर्णता ॥ २ ॥ लीलयेदंतुपृच्छामि भूयोबोधाभिवृद्धये ॥ बालस्येवपिताब्रह्मन्नकोपंकर्त्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनंचरसनंघ्राणमेवच ॥ विद्यमानमपिब्रह्मन्दृश्यमानमपिस्फुटम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने संपूर्ण ज्ञातव्य जानलिया, अखंडितरूपसे द्रष्टव्य पदार्थ देखा, और आपके सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानरूप अमृतसे हमलोग तृप्त हैं ॥ १ ॥ पूर्णब्रह्मसे उपाधिमें प्रवेश करके नखपर्य्यंत पूर्ण यह जीवरूप यथार्थमें पूर्ण ब्रह्महीहै क्योंकि पूर्णब्रह्मसे आकाशआदि क्रमसे समष्टिव्यष्टिरूप उपाधिरूप जो उत्पन्न होताहै वह पूर्णब्रह्मही है और महावाक्यजनितज्ञानसे उत्पन्न "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानसे समूल उपाधिके नाशद्वारा पूर्णब्रह्मसे यह पूर्णही जीवतत्व अखंड एकतासे आपूरितहै और उस साक्षात्कारसमयमें भ्रमके नाशसे पूर्णब्रह्मकी पूर्णताही पूर्वकालके समान स्थितहै ॥ २ ॥ और यह तो लीलासे अधिक अधिकारीजनोंकी ज्ञानकी वृद्धिकेलिये मैं आपसे पूंछताहुं हे ब्रह्मन् ! बालकके ऊपर पिताकेसमान आप मेरेऊपर कोप करने योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि ब्रह्मतत्व सर्वत्र विद्यमान तथा पूर्ण है तो कर्ण, नेत्र, त्वग्, रसना और घ्राणइन्द्रियां विद्यमान तथा स्पष्टरीतिसे दृश्यमानभी ॥ ४ ॥

कथंमृतस्यवैजंतोर्विषयंस्वंनपश्यति ॥ जीवतश्चकथंसर्वंविषयंस्वंप्रपश्यति ॥ ५ ॥ कथंघटादिबाह्यत्वमिंद्रियाणिजडान्यपि ॥ शरीरेनुभवंत्यंतःपुनर्नानुभवंत्यपि ॥ ६ ॥ अयःशलाकोपमयोर्घटादींद्रिययोः किल ॥ अश्लिष्टयोरंतरसौकथंतत्रोदितामिथः ॥ ७ ॥ जानन्नपियदेतान्वैविशेषाञ्छतधापुनः ॥ पृच्छामितदशेषेणकथयस्वानुकंपया ॥ ८ ॥

अर्थ—मृतकजीवके अपने २ विषयको क्यों नहीं देखती है और जीवित जीवके अपने २ विषयको कैसे देखती हैं ॥ ५ ॥ और यदि कोई यह कहै कि नेत्र आदि इन्द्रिय घटादिदेशके बाहर जाके उनको अनुभव करके अंतःकरणमें कहती हैं तो जड इन्द्रियोंका बाह्यदेशमें जाना असंभवहै और बाहरसे लाके विषयका अनुभव कराती हैं तब पुनः २ उन्ही विषयोंको अनुभव क्यों नहीं करती क्योंकि बाहरके विषयको भीतरसे निकालना असंभव है ॥ ६ ॥ भिन्न २ प्रदेशमें गडी हुई लोहाके शलाकाके समान विभक्त घटादि विषय और इन्द्रियोंकी यह तुमारी कही हुई परस्पर आकर्षणशीलता नहीं होसकती क्योंकि रज्जुसे मिलेहुये घट आदिकी आकर्षणशीलता प्रसिद्धहै ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! इन विशेषोंको जानतेहुयेभी जो सैकडों प्रकारसे अज्ञानियोंके ऊपर अनुग्रहकेलिये आपसे पूंछताहुं इसलिये आप संपूर्ण कृपा करके कहिये ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इंद्रियाद्यपिचित्तादिघटाद्यपिनकिंचन ॥ पृथक्संभवतीहांगनिर्मलाच्चेतनादृते॥९॥ गगनादपियाऽच्छाचित्तयारूपंस्वमात्मना ॥ चित्त्वात्पुर्यष्टकत्वेनभावत्त्यैवभावितम् ॥ १० ॥ तदेव चप्रकृतितांगतंजगदवस्थितेः ॥ तस्याअवयवाज्जातमिंद्रियादिघटादिच ॥ ११ ॥ पुर्यष्टकत्वमायातंयच्चित्तंस्वस्वभावतः ॥ स्वएवावयवस्तस्मिन्घटादिप्रतिबिंबति ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे प्रिय रामजी ! इससंसारमें निर्मल चेतनसे पृथक् इन्द्रिय आदि अर्थात् प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता, चित्त आदि और घट आदि कुछ नहीं होसकते ॥ ९ ॥ परंतु आकाशसेभी निर्मल जो चित् है उसने चित् होनेपर अघटितघटनापटीयसी मायाशबल स्वभाव अपने पुर्य्यष्टक (सूक्ष्मशरीर) से पूर्व २ वासनाके अनुसार अपने स्वरूपको कल्पित कियाहै ॥ १० ॥ वही मायाशबलित कल्पितरूप जगत्की स्थितिकी प्रकृतिदशाको प्राप्तहोताहै और इसी प्रकृतिके अवयवोंसे यह सब इन्द्रिय आदि तथा घट आदि जगत् उत्पन्न हुआहै ॥ ११ ॥ इसप्रकार पुर्य्यष्टकदशाको प्राप्त जो चिद्रूप है उसमें पुर्य्यष्टकके चित्तादिघटित होनेसे आपही चित्तकी वृत्तिनामक अपना अवयव होताहै और उस अवयव (चित्तकी वृत्ति) में बाह्य घट आदि बाह्यआकारसेही प्रतिबिंबित होतेहैं, और मृतदेहमें तो पुर्य्यष्टकघटित लिंगात्मा जीवके लीलोपाख्यानमें दिखलाईहुई रीतिसे अपनीही कल्पनासे शरीरसे निकल जानेसे प्रतिबिंबग्रहणकी योग्यताके अभावसे दर्शन आदि सामर्थ्य नहीं रहता ॥ १२ ॥

श्रीरामउवाच ॥ जगत्सहस्रनिर्माणमहिम्नोदर्पणस्यच ॥ पुर्यष्टकस्यभगवन्रूपंकथयकीदृशम् ॥१३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनाद्यंतंजगद्बीजंयद्ब्रह्मास्तिनिरामयम् ॥ भारूपंशुद्धचिन्मात्रंकलाकलनवर्जितम् ॥ १४ ॥ कलनोन्मुखतांयातमंतर्जीवइतिस्मृतः ॥ सजीवःखलुदेहेस्मिञ्श्वनोतिस्पंदतेस्फुटम् ॥ १५ ॥ अहंभावादहंकारोमननान्मनउच्यते ॥ बोधनिश्चयतोबुद्धिरिंद्रदृष्टेस्तथेंद्रियम् ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! सहस्रों ब्रह्मांडोंकी रचनाकी जिसकी महिमाहै और ब्रह्मांडका दर्पणरूप जो पुर्य्यष्टक है कहिये उसका रूप कैसा है ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! आदि अंतशून्य, जगत्का बीज, निरामय, प्रकाशरूप, शुद्ध चिन्मात्र, और कलंकके कलासे वर्जित जो ब्रह्म है ॥ १४ ॥ वह ब्रह्म आकाश

आदि क्रमसे सूक्ष्मभूतको रचके अनंतर अपंचीकृत भूतसूक्ष्मसे लिंगशरीरको, और पंचीकृतसे ब्रह्मांडको रचके प्रतिबिंबरूप कलनाके उन्मुख होकर प्राणोंके धारणसे जीव ऐसा कहागयाहै, और वासना तथा अंगोंके संचयसे वृद्धिको प्राप्त होताहै, और वृद्धिको प्राप्त इस देहमें बाह्य तथा आभ्यंतररूपसे चेष्टा करताहै ॥ १५ ॥ और अहंभावनासे यह अहंकार, मननसे मन, निश्चयबोधसे बुद्धि तथा इन्द्र (आत्मा) का अनुमानसे दर्शन करानेसे इन्द्रिय कहाजाताहै ॥ १६ ॥

देहभावनयादेहोघटभावनयाघटः ॥ एषएवस्वभावात्माजनैःपुर्यष्टकंस्मृतः ॥ १७ ॥ ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वसाक्षित्वाद्यभिपातिनी ॥ यासंविज्जीवइत्युक्तातद्धिपुर्यष्टकंविदुः ॥ १८ ॥ कालेकालेततोजीवस्त्वन्योन्योभवतिस्वतः ॥ भावितनाकारयानंतवासनाकणिकोदयम् ॥ १९ ॥ पुर्यष्टकस्वभावेनकालेनाकारमृच्छति ॥ यथावासनतःसेकाद्बीजंपल्लवतामिव ॥ २० ॥

अर्थ—देहकी भावनासे देह, घटकी वासनासे घट, यह सर्वसाधारण व्यापारवाला आत्मा पुर्य्यष्टक कहागयाहै ॥ १७ ॥ ज्ञानेन्द्रियके व्यापारसे ज्ञातृता, कर्मेन्द्रियके व्यापारसे कर्तृता, उनके फल सुखदुःख आदिके आश्रय होनेसे भोक्तृता, और उदासीनतासे सबका प्रकाश करनेसे साक्षित्वइत्यादिकेओर झुकनेवाली, जो जीवसंवित् कहीगई है उसीको पुर्य्यष्टक कहते हैं ॥१८॥ और अनंतर भावित (भावना कियेहुये) बुद्धिकी वृत्तियोंके अभेद अध्यास करनेसे काल २ के भेदसे काम, क्रोध, हर्ष, शोक तथा विषाद आदिसे अन्य २ रूप स्वयं होताहै और अनंतवासनाओंकी कणिका जिसमें उदित है ॥ १९ ॥ ऐसे आकारको अपने पुर्य्यष्टकस्वभावसे कालकरके ऐसे प्राप्तहोताहै जैसे सींचनेसे बीज पल्लवदशाको ॥ २० ॥

आकारोहंशरीरादिस्थावरादिचरादिच ॥ नाहमाद्यश्चिदात्मेतिमिथ्याज्ञानेनचेतति ॥ २१ ॥ भ्रमत्येवजगज्जीवोवासनावलितश्चिरम् ॥ ऊर्ध्वाधोगमनैरब्धौकाष्ठंवीचिहतंयथा ॥ २२ ॥ कश्चिद्विशुद्धजातित्वाद्भवबंधादनंतरम् ॥ बुद्ध्वात्मानंसमभ्येतिपदमाद्यंतवर्जितम् ॥ २३ ॥ कश्चित्कालेनबहुनाभुक्तयोनिगणातुरः ॥ आत्मज्ञानवशादेतिपरमंपदमात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—और इसके अनंतर मैं आद्य चिदात्मा नहीं हुं किंतु स्थावर तथा जंगम शरीर आदि हुं इस मिथ्याज्ञानसे देखताहै ॥ २१ ॥ इसप्रकार वासनासे वेष्टित जीव चिरकालतक ऊर्ध्व अधोभागोंके गमनोंसे जगत्में ऐसे भ्रमण कियाकरताहै जैसे समुद्रमें तरंगसे ताडित काष्ठ ॥ २२ ॥ उनमेंसे कोई सनकआदिके तुल्य विशुद्धजाति होनेसे आदिकल्पमें जन्म लेके अनंतरही प्रथमजन्ममेंही अपने आत्मस्वरूपको जानकर आदिअंतशून्य पदको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ और कोई बहुतकालसे अनेकयोनियोंके समूहको भोगकरके आत्मज्ञानके कारण आत्माके परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

एवंरूपश्चसुमतेजीवोयातःशरीरताम् ॥ नेत्रादिनाघटाद्यंतर्यथावेत्तितथाशृणु ॥ २५ ॥ चित्त्वस्यकलनांतस्यसंप्रयातस्यजीवताम् ॥ मनःषष्ठेंद्रियग्रामोदेहोयमवतिष्ठते ॥ २६ ॥ यदान्यःसर्वदेहेभ्यःखेपतत्यक्षरूपिणा ॥ तदातज्जीवसंस्पर्शाज्जीवात्मैकत्वमृच्छति ॥ २७ ॥ बाह्यार्थवेदनेनित्यंसंबंधोक्षस्यकारकः ॥ समन्वितस्यचित्तेननमुक्तस्यकदाचन ॥ २८ ॥

अर्थ—हे सुमते रामजी ! इसप्रकार यह जीव शरीरता (पुर्य्यष्टकता) को प्राप्तहुआ और नेत्रआदिसे घट आदिको अपने आभ्यन्तर जैसे जानताहै वह सुनो ॥२५॥ पुर्य्यष्टकमें प्रतिबिंबित होनेसे जीवदशामें प्राप्त परिच्छेद्य चेतनका मनसहित छः इन्द्रियोंके समूहसहित यह स्थित रहताहै और इसीसे जीवचेतन सदा देहपरिमित तथा देहके अन्तर्गत सुखदुःख आदिको ग्रहण करताहै ॥२६॥ और जब बाह्य घट आदि द्रष्टव्य होते हैं तब जैसे तडागसे नालीद्वारा निकलके जल क्यारी (जलकी किआरी) का रूप होजाताहै ऐसेही नेत्रआदि इंद्रियोंके द्वारसे सबशरीरसे निकलाहुआ जीव अपने आकारवृत्तिद्वारा विषयदेशस्थ चेतनका स्पर्शकरके विषयावच्छिन्न चेतनके साथ अभेद अध्याससे विषयके अनुभवको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ बाह्यपदार्थके अनुभवमें चित्तसहित जीवकेही साथ इंद्रियोंका सम्बन्ध होताहै नकि चित्तरहित मृतक जीवके साथ ॥ २८ ॥

यद्यदच्छतरंतस्मिन्नभःस्थंप्रतिबिंबति ॥ जीवेनभवतिश्लिष्टोबहिर्जीवोप्यजीवति ॥ २९ ॥ निघृष्टनवरत्नाभेयदानयनतारके ॥ तदातयोर्बाह्यगतःपदार्थःप्रतिबिंबति ॥ ३० ॥ जीवेनभवतिश्लिष्टःप्रतिबिंबतयाततः ॥ जीवज्ञेयत्वमायातिबाह्यंवस्त्वितिराघव ॥ ३१ ॥ यत्संश्लेषमुपायातितद्बालोपिहिविंदति ॥ पशुर्वास्थावरोवापिजीवःकस्मान्नवेत्स्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—और जो २ स्वप्नपदार्थ हैं जैसे अन्तःकरण और नेत्रआदिकी किरण हैं उनमें बाह्य आकाशस्थ घट-आदि प्रतिबिंबित होताहै और वह प्रतिबिंबवृत्तिके अन्तर्गत जीवके साथ संयुक्त होताहै और बाह्यदेशस्थ जीवचेतन प्राणधारणव्यापारके बिना जीवित नहीं है ॥२९॥ कमल पटलआदि दोषरहित नेत्रोंके तारे जब शाणपर घिसेहुये नूतन रत्नके समान स्वच्छ होतेहैं उससमय उन दोनों तारोंमें घटके प्रतिबिंबसहित चित्तकी वृत्ति प्रवेश करती है इसीको बाह्य घटआदि पदार्थोंका प्रतिबिंबित होना कहाजाताहै ॥ ३० ॥ और हे राम ! वह ताराआदिकेद्वारा प्रविष्ट पदार्थ हृदयस्थ अभिमानवाले जीवके साथ संयुक्त होताहै, इसीप्रकार बाह्यपदार्थ जीवका ज्ञेय होताहै ॥ ३१ ॥ जो श्लेष (स्पर्श) को प्राप्त होताहै उसका बालककोभी भान होताहै तथा पशु, स्थावर, (वृक्षआदि) कोभी भान होताहै तौ जीव क्यों नहीं जानेगा ॥ ३२ ॥

अच्छस्यनयनस्याथोरश्मयोजीववेष्टिताः ॥ क्रोडीकुर्वंत्यलंदृश्यंजीवस्तत्त्वेनविंदति ॥ ३३ ॥ एषएवक्रमःस्पर्शसंबंधःप्रत्ययोद्भवः ॥ रसेगंधेचकथितोजीवसंस्पर्शसंभवः ॥ ३४ ॥ शब्दत्वाकाशनिष्ठत्वात्कर्णाकाशमतःक्षणात् ॥ जीवाकाशंविशत्यंतरित्थमिंद्रियसंविदः ॥ ३५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ दृश्यतेमानसादर्शेयंत्रदार्वोदरेषुतत् ॥ प्रतिबिंबितमेतन्मेब्रूहिब्रह्मन्किमात्मकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—गोलकातिरिक्त अतिस्वच्छ नेत्रेंद्रियके जीवसे आच्छादित किरण दृश्यपदार्थको अपनेमें ले लेते हैं और उनको जीव अनुभव करताहै ॥ ३३ ॥ हे राम ! जो क्रम नेत्रइंद्रियके विषयमें कहाहै यही क्रम रस, स्पर्श, और गंधके सम्बन्धद्वारा जीवके संस्पर्शसे प्रत्यक्षके विषयमें समझनाचाहिये ॥ ३४ ॥ और शब्द तो आकाशनिष्ठ होनेसे कर्णकेभीतरके आकाशमें प्राप्त होके क्षणमेंही जीवाकाशके आभ्यन्तर प्रवेश करताहै और इसीप्रकार अन्य (घ्राणके पवनद्वारा गंध) के विषयभी प्रवेश करतेहैं ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! मन, दर्पण, कांच, कांस्यमणि, जलयंत्र इत्यादिकोंके उदरसे बाहिर निकलेहुये नूतन पल्लवादिकेविषे प्रतिबिंबित घटमुखकांति इत्यादि जो प्रतिबिंब देखपडताहै इसका क्या स्वरूपहै वह मुझसे कहिये ॥ ३६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्यंतजडयोरेवजीवयोरिवतन्मिथः ॥ प्रतिबिंबंदृशोभ्रांतिंविद्धिवेद्यविदांवर॥३७॥ तावन्मात्रंजगत्त्वेतद्विश्वासोमातवास्त्विह ॥ अहमित्यादिस्तरंगोवर्तमानंसदाजलम् ॥ ३८ ॥ परंभोधौतुनास्त्येवदेशकालक्रियादिकम् ॥ तन्मयैकतयानित्यमात्मासर्वत्रसर्वगः ॥ ३९ ॥ नित्यमसक्तमतिर्मुदितात्माशांतमृषासुखदुःखविदंतः ॥ तिष्ठनिविष्टमतिःसमतायामस्तसमस्तभवामयमायः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अक्षसंवेदनविचारयोगोपदेशो नाम पंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जैसे चित्के प्रतिबिंबभूत व्यष्टिसमष्टिजीवोंका स्वरूपभी बिंबचित्से भिन्न मिथ्या और दृष्टिकी भ्रांतिमात्र अनिर्वचनीय है वैसेही अत्यन्त जड मुख, दर्पण, वा घट तथा वृत्तिके परस्पर सापेक्ष प्रतिबिंबकोभी जीवचेतनकी भ्रांतिसे सिद्ध अनिर्वचनीय जानो ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! यह जगत्भी भ्रांतिसिद्ध है इसमें तुमारा विश्वास न हो, और चित्रूप जलमें अहं इत्यादि तरंग हैं, और विद्यमान तो वही सदा चित्रूप जल रहताहै ॥ ३८ ॥ चित् परब्रह्मरूप समुद्रमें देशकालक्रियादिका क्रम नहीं हैं, और चिन्मय होनेसे आत्मा सर्वगामी है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! तुम नित्य प्रसन्नचित्त, संसारमें असक्तबुद्धि होकर, और मिथ्या सांसारिक सुखदुःखबुद्धिकोभी शांत करके, तथा संसाररूप रोग तथा मायाको अस्तकर समतारूप ब्रह्मस्वभावमें प्रवेश करो ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे अक्षसंवेदनविचारयोगोपदेशो नाम पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

जीव, इन्द्रियां, मन, देह, पुर्य्यष्टक हैं यह भ्रम अबोधसे होताहै और बोधसे तो सब ब्रह्मही है यह विषयका वर्णन इस ५१ सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नपुनर्भवतःपूर्वसंपन्नाश्चक्षुरादयः ॥ यथाकमलजस्यैतत्सर्वमेवत्वयाश्रुतम् ॥१॥ ब्रह्मपुर्यष्टकस्यादावर्थसंविद्यथोदिता ॥ पुर्यष्टकस्यसर्वस्यतथैवोदेतिसर्वदा ॥ २ ॥ विद्धिपुर्यष्टकंजी

वोयोगर्भस्थेंद्रियोदयः ॥ यद्यथाभावयत्याशुतत्तथापरिपश्यति ॥३॥ इंद्रियाणींद्रियार्थाख्यंविद्धिसंवेदनंस्वकम् ॥ संपन्नंचयथातत्तेप्रोक्तमाद्यमनःस्थितौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जैसे ब्रह्माजीको सृष्टिके पूर्व नेत्रआदि इंद्रियां नहीं उत्पन्न हुईथी ऐसेही ब्रह्मस्वरूपमें स्थित तुमारे (व्यष्टि) जीवकोभी नहीं उत्पन्न थीं यह तुमने मेरे वचनसे निश्चय कियाहै ॥ १ ॥ ब्रह्माके पुर्य्यष्टक (समष्टि पुर्य्यष्टक) की संवित् सृष्टिकी आदिमें व्यवहारकेलिये जैसे उदयको प्राप्त हुई ऐसेही सब व्यष्टिपुर्य्यष्टकभी संवित् व्यवहारके योग्य पदार्थोंकेलिये उदितहुई है ॥ २ ॥ हे रामजी ! तुम इस बातको जानो कि जो गर्भस्थ व्यष्टिजीव षष्ठमासमेंही नेत्रआदि इन्द्रियोंको प्राप्त होताहै वह उसी समय व्यवहार करने योग्य वस्तुओंमें जैसी भावना करताहै उसको शीघ्र वैसाही देखताहै ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भके मनकी स्थितिके अर्थात् ब्रह्माके मनके व्यापारमें इन्द्रिय और अपना ज्ञान जैसे उत्पन्न हुआहै ऐसेही तुम (व्यष्टि) जीवकोभी उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

शुद्धासंवित्सं भवंतीसवेदनमनिंदितम् ॥ ततोहंवेदनानंतजीवपुर्यष्टकान्विता ॥ ५ ॥ नत्वेकत्वादनंतत्वादवेद्यत्वादनामये ॥ अभावत्वादनेकत्वादशून्यत्वात्परास्थिता ॥ ६ ॥ चेत्यादिबुद्ध्यातत्किंचित्रमनस्तांचगच्छति ॥ नचजीवत्वमायातिनचपुर्यष्टकात्मिका ॥ ७ ॥ नविद्यादिविलासोस्तिसोस्तिनास्तीवयःसदा ॥ परमात्मेतिकथितोमनःषष्ठेंद्रियातिगः ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिके पूर्व व्यष्टिसमष्टि एकही शुद्धसंवित् संभव होती है और उसके पश्चात् अहंभावके ज्ञानरूप जीव पुर्य्यष्टक करके युक्तहुई तथापि उसका ज्ञान यथार्थमें अनिंदितहै ॥ ५ ॥ एक, अनंत और अवेद्य, देशकालवस्तुके परिच्छेदसे स्वयं अनेकरूप होनेसे अनामय परमात्मामें अवस्तुकी स्थिति है ॥ ६ ॥ विषय मंतव्य आदिको प्रत्यक्ष करनेवाली बुद्धिकी वृत्तिके अध्यारोपसे मनआदि रूपता चित्की भान होती है और यथार्थमें संवेदन चित् न मनरूपता, न जीवता, और न पुर्य्यष्टकरूपताको प्राप्त होती है ॥ ७ ॥ तथा वह अविद्याका विलास है किंतु सत्तारूप वह है, और जिसको मूढलोग "नास्ति" (नहीं है) ऐसे कल्पना करते हैं वह परमात्मा मनसहित छःही इन्द्रियोंसे परें सदा है ॥ ८ ॥

तस्मात्संपद्यतेजीवश्चिन्मूर्तिर्मननात्मकः ॥ भ्रमःकेवलमित्याद्यउपदेशायगीयते ॥ ९ ॥ यतकुतश्चित्संपन्नेत्वविद्यामयआमये ॥ उपदेश्योपदेशेनप्रविलीनेविचारणात् ॥ १० ॥ प्रशांतसकलाकारंज्ञानंतत्रावशिष्यते ॥ यत्राकाशमपिस्थूलमणाविवमहाचलः ॥ ११ ॥ यत्रोद्यदाचारमपिसदप्यसदिवस्थितम् ॥ जगज्जान्विषयांस्त्यक्त्वाकायेत्वंतिष्ठनिर्मले ॥ १२ ॥

अर्थ—अग्निसे स्फुलिंगोंके समान उस परमात्मासे मननरूप चिन्मूर्ति जीव उत्पन्न होताहै इत्यादि केवल भ्रममात्र उपदेशके अर्थ कहाजाताहै ॥ ९ ॥ चाहै जहांसे उत्पन्न हो परंतु उपदेशके क्रमसे अविद्यामय रोगके उपदेश्यवस्तुके उपदेशसे विचार द्वारा लीन होनेपर ॥ १० ॥ जिसमें संपूर्ण आकार शांत होगये हैं ऐसा स्वरूपका ज्ञानाकारमात्र शेष रहजाताहै. जिस स्वरूपमें आकाशभी ऐसे स्थूल भान होताहै जैसे मणिमें महान् पर्वत ॥ ११ ॥ जहांपर उत्पन्नहोतेहुये व्यवहारकेलिये सदाचारभी असत्के समान स्थितहैं उस निर्मल स्वरूपमें तुम जगत्के विषयोंको त्यागकर स्थित रहो ॥ १२ ॥

असन्मयमविद्यायारूपमेवतदेवहि ॥ यद्वीक्षितासतीनूनंनश्यत्येवनदृश्यते ॥ १३ ॥ आलोकितंनामकथमवस्तुकिललभ्यते ॥ प्रयत्नेनापिसंप्राप्तंमृगतृष्णांबुकैरिव ॥ १४ ॥ असदेवसदेवासदज्ञानादस्यसत्यता ॥ ज्ञानाद्यथास्थितंवस्तुदृश्यतेनश्यतिभ्रमः ॥ १५ ॥ अविद्यायाविचारोयंजीवपुर्यष्टकादिका॥ अप्यत्यंतमसत्यायाःकल्पनाकल्पितात्मनः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो कि देखनेमात्रसे निश्चयकरके नष्ट होजाती है किंचित्भी नहीं देखपडती यही अविद्याकी असन्मयताहै ॥ १३ ॥ जो अवस्तु है वह देखनेसे भला किसको मिलसकती है, अतियत्नसे मृगतृष्णाका जल किसने पायाहै ॥ १४ ॥ असत्ही सत्के तुल्य भान होताहै क्योंकि अज्ञानसेही इसकी सत्यताहै, और ज्ञानसे तो यथास्थित वस्तु भान होती है और भ्रम नष्ट होता है ॥ १५ ॥ जीव पुर्य्यष्टकरूप अविद्याका यही विचार है कि सत्य आत्माके सन्निधानसे अत्यंत असत्भी अविद्याकी कल्पना कल्पित की गई है ॥ १६ ॥

तस्यास्तउपदेशायसेयंजीवादिकल्पना ॥ कृताशास्त्रैःप्रबोधायतांत्वमेकमनाःशृणु ॥ १७ ॥ जीवत्वमिवसंप्राप्तापुर्यष्टकपदस्थिता ॥ कलाकलंककलिताचितिराबोधनोन्मुखी ॥ १८ ॥ यद्यथाभावयत्याशुतत्तथानुभवत्यलम् ॥ सत्योभवत्वसत्योवाबालेननिशियक्षकः ॥ १९ ॥ पंचतन्मात्रकलनांसंभावयतिसत्तया ॥ तत्रात्मनितथारंध्रान्प्रपश्यतितथोदितान् ॥ २० ॥

अर्थ—उस अविद्याकेद्वारा जीवआदि कल्पना शास्त्रोंने जो की हैं वे सब तुमारे (जीवके) उपदेशकेलिये हैं उसको तुम ज्ञानकी वृद्धिकेलिये एकचित्त होके सुनो ॥ १७ ॥ जीवत्वरूपको प्राप्तकेसमान पुर्य्यष्टकपदमें स्थित, कलाके कलंकसे वेष्टित, और बाह्यपदार्थोंके दर्शनकी ओर उन्मुख चिति ॥ १८ ॥ जो जो जैसी भावना करती है चाहै वह सत्यहो वा असत्य हो शीघ्र पूर्ण वैसाही ऐसा अनुभव करती है जैसे बालक रात्रिमें यक्षको ॥ १९ ॥ क्षणमेंही वह पंचतन्मात्रक कल्पना (संभावना) करती है और वहां आत्मामें इंद्रियोंके छिद्ररूप द्वारोंके अनुसार देखती है ॥ २० ॥

एभ्यएवसमुत्पन्नंबाह्यःस्थंभूतपंचकम् ॥ पश्यंत्यनन्यदन्याभंशाखाशतमिवांकुरः ॥ २१ ॥ इदमंतरिदंबाह्यमितिनिश्चयवांस्ततः ॥ जीवोभावंयथाधत्तेतत्तथाद्रढयत्यथ ॥ २२ ॥ रश्मिजालमिवेंदोर्यदात्मनःप्रतिभासनम् ॥ बाह्यस्पर्शतयातेनतदेवाशूररीकृतम् ॥ २३ ॥ मरिचस्येवयत्तैक्ष्ण्यंशून्यत्वमिवखस्ययत् ॥ आत्मनोवेदनंयच्चतदेवान्यदिवस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इन्ही पंचतन्मात्रसे बाह्यपंचभूत उत्पन्नहुये हैं और इन्द्रियरूपद्वारोंसे अन्यपदार्थोंको अन्यके समान ऐसे देखती है जैसे अंकुर शतशाखाको ॥ २१ ॥ यह आभ्यंतर मन बुद्धिआदि है यह बाह्य घटपट आदिहै ऐसा निश्चययुक्त जीव जैसी वासना ग्रहण करताहै वैसीही शीघ्र दृढ करताहै ॥ २२ ॥ चंद्रमाके किरणके समान अपना जो प्रतिभास अर्थात् आत्मसुख है उसको बाह्यविषयसुख करके शीघ्र ग्रहण करताहै ॥ २३ ॥ जैसे मरिचकी तीक्ष्णता है आकाशकी शून्यता है ऐसेही आत्माका जो अनुभव है वही अन्य घटपटआदिरूपसे स्थितहै ॥ २४ ॥

अत्रैवनिश्चयंबद्धानियमःसुदृढीकृतः ॥ अनेनेत्थमनेनेत्थंभाव्यमित्यवखंडितम् ॥ २५ ॥ स्वभावेतरनामासौस्वसंकल्पमयात्मकः ॥ कश्चित्कदाचिद्भवतिस्वभावेनैवनान्यथा ॥ २६ ॥ आत्मनैवेदमखिलंसंपन्नंद्वैतमद्वयम् ॥ खंडोमधुरसेनेवमृदेवचमहाघटः ॥ २७ ॥ संन्निवेशविकारादिदेशकालादिसंभवात् ॥ संभवत्यत्रनत्वीशेदेशकालाद्यसंभवात् ॥ २८ ॥

अर्थ—और इसी सांसारिकविषयभोगोमें पुरुषार्थका अंत समझके दृढनिश्चयकरके इस लौकिककर्मसे यह होगा इस वैदिककर्मसे यह होगा ऐसा दृढनिश्चयकरके अखंडितरूपसे धारणकियाहै ॥ २५ ॥ उन नियमोंमेंसे एक तो स्वाभाविक रागादिकृत और दूसरा शास्त्रकृत है, दोनों यह संकल्पमयहैं उनमेंसे कदाचित् कोई स्वाभाविक-प्रयत्नसेही एक दूसरेको जीतकर होताहै अन्यथा नहीं ॥ २६ ॥ इसप्रकार यह सब द्वैत आत्माहीसे विवर्तरूपसे ऐसे सिद्ध है जैसे मधुररसमें शर्करा वा मृत्तिकामे महाघट ॥ २७ ॥ मधुररस और मृत्तिकामें तो रचनाविशेष तथा विकारआदि देशकालके संभवसे होतेहैं वह परमात्मामें देशकाल आदिके असंभव होनेसे नहीं होते ॥ २८ ॥

इतःपुष्पमितःपत्रमहमित्युदितोयथा ॥ खंडेस्वात्मनिनिःसत्तारसोऽद्वित्वेद्वितांवहन् ॥ २९ ॥ इतःपटइतःकुड्यमहमित्यादितस्तथा ॥ सर्वात्मनात्मनिब्रह्मविद्धित्वंद्वित्वमाहरत् ॥ ३० ॥ अर्ध्यांकुरोहमद्यार्करुगहंत्वद्यवारिदः ॥ यथेतितिष्ठत्यंभोदस्तथात्मासदसद्वपुः ॥ ३१ ॥ इतिभाव्यमनेनेदमित्थंसर्वेश्वरेततम् ॥ क्रमंखंडयितुंलोकेकस्यनामास्तिशक्तता ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे बनके खंडमें वृक्षमें बसंतऋतुसे प्रविष्ट रस कहीं पत्र, कहीं पुष्पकी महिमासे अभ्युदयको प्राप्तहोताहै ऐसे हमलोगोंके सिद्धांतमें आत्मामें सत्तारूपसे प्रसिद्ध अद्वितीयब्रह्मभी द्वैतताको धारणकरताहुआ ॥ २९ ॥ कहीं पट, कहीं कुड्य, और अहंकाररूप सब जगत् आकारसे स्थितहै ऐसा तुम जानो ॥ ३० ॥ अथवा जैसे मेघ ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी किरणरूपसे अभेद धारणकरके स्थित रहताहै और वर्षाऋतुमें जलदरूपसे स्थित रहताहै तथा पृथिवीमें प्रवेश करके अंकुर जल आदिरूपसे स्थित रहताहै ॥ ३१ ॥ इस वस्तुको इसप्रकार होना-चाहिये जैसे अग्निको उष्ण जलको शीत, इस ब्रह्मकल्पित नियमकोभी इसलोकमें किसीको अन्यथा करनेकी शक्ति नहीं है ॥ ३२ ॥

आदर्शस्वच्छआकाशेनैवस्वःप्रतिबिंबति ॥ व्यतिरेकासंभवतःकचत्येवहिकेवलम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मणित्वात्मनात्मैवस्थितःकचतिबिंबति ॥ द्वैतीभवत्यदेहोपिचिन्मयत्वात्स्वभावतः ॥ ३४ ॥ यद्यथैवात्मकचनंवेत्तितंभवतात्मना ॥ असत्यमपितत्रेहव्यभिचारीकदाचन ॥ ३५ ॥ हेमत्वकटकत्वेद्वेसत्यासत्यस्वरूपिणी ॥ हेम्निभांडगतेयद्वच्चित्त्वाचित्त्वेतथात्मनि ॥ ३६ ॥

अर्थ—दर्पणके समान स्वच्छआकाशमें आकाशका निजभाग वा उसका कार्य्य प्रतिबिंबित नहीं होता किंतु आकाशमें वा आकाशके कार्यमें आकाशके अभावके न होनेसे आकाश प्रतिबिंबरहित दर्पणके उदरके समान

केवल शोभित होताहै ॥ ३३ ॥ और ब्रह्ममें तो आत्मा आत्मारूपसे स्थितहै जीवरूपसे प्रतिबिंबित होताहै और चिन्मयस्वभाव होनेसे देहरहितभी द्वैतभावको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ और सृष्टिकी आदिमें वस्तुके स्वभावसे जैसा आत्माका स्फुरण हुवा है उस असत्यस्वभावको सत्य आत्मासे सत्य जानताहै इसलिये सृष्टिके आदिका नियम कदाचित व्यभिचारी नहीं होता ॥ ३५ ॥ जैसे सुवर्णके पात्रमें सुवर्णत्व और कटकत्व दोनों सत्यअसत्य रूपसे हैं ऐसे आत्मामे चित्त्व और अचित्त्व दोनों हैं ॥ ३६ ॥

सर्वगत्वाच्चितेश्चित्त्वंनित्यंमनसिविद्यते ॥ हेमत्वंकटकस्येवजडभावःस्थितोन्यदा ॥ ३७ ॥ चित्त्वजाड्यात्मकंचित्तंदृढंभावयतिस्वयम् ॥ यथायदैवयद्भावंतथाभवतितत्तदा ॥ ३८ ॥ कालेकालेचिताजीवस्त्वन्योन्योभवतिस्वयम् ॥ भाविताकारवानंतर्वासनाकलिकोदयात् ॥ ३९ ॥ स्वप्नेदृष्टोयथाग्रामोयातिसत्तान्यतेक्षणात् ॥ देहाद्देहंतथायातिदेहोयंप्रतिभात्मकः ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्के सर्वगामी होनेसे चित्के प्रथमकार्य्य मनमें चित् जड उभयरूपता है परंतु नित्य होनेसे चिदंश ऐसे सत्यहै जैसे कटक (कडे) का सुवर्णत्व ॥ ३७ ॥ चित्त्व जडात्मक चित्त दृढभावनासे जब जैसी स्थावर आदि भेदसे भावना करताहै तब वैसाही अनुभव करताहै ॥ ३८ ॥ चेतनसे आभ्यंतरमें वासनारूप कलियोंके निकालसे विचित्र आकारयुक्त होके यह जीव कालभेदसे अन्य २ प्रकारका होजाताहै ॥ ३९ ॥ जैसे स्वप्नमें देखाहुआ ग्राम वन आदिके सत्ताके अवलोकनसे क्षणमेंही बनआदिरूप होजाताहै ऐसेही देहभूत यह जीवभी एकदेहसे दूसरेमें जाताहै क्योंकि स्वप्नके समान यहभी प्रतिभासरूपही है ॥ ४० ॥

प्रतिभासोयथास्वप्नेनरःकुड्यंपटोभवेत् ॥ भवत्यसत्यमेवेदंदेहांतरमिदंस्वतः ॥ ४१ ॥ असत्यमेवम्रियतेत्वसत्यंजायतेपुनः ॥ जीवःस्वप्रतिभासेनस्वप्नवत्स्वान्यरूपवत् ॥ ४२ ॥ कालेनैतादृशंरूपमिदंनान्यत्वमेतिवै ॥ प्रकृतंनिश्चयारूढंभ्रमंत्येतेभवःस्वतः ॥४३ ॥ वस्तुदृष्टमदृष्टंचस्वप्नेसमनुभूयते॥जीवस्वप्नेजगद्रूपंविद्धिवेद्यविदांवर ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे स्वप्नमें प्रतिभासरूप (भासमान) मनुष्य कभी भित्ति होजाताहै, कभी पट होजाताहै ऐसेही असत्यही यह स्वयं देहांतरको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ स्वप्नमें अन्यरूपके समान यह जीव असत्यही अपने प्रतिभाससे मरताहै और असत्यही पुनः उत्पन्न होताहै ॥ ४२ ॥ कालपाके यह वर्तमान देह अन्यभावको नहीं प्राप्त होता क्योंकि वही यह देह है यह प्रत्यभिज्ञा निश्चयरूपसे आरूढ रहती है, और भूत, भावी देहको प्रत्यभिज्ञाके न होनेसे अन्य है वा अन्य नहीं है इस भ्रांतिको प्राप्त होते हैं इसलिये उन देहोंमें जीवन रहतेही वासनाकी उत्पत्ति होती है उसी वासनाके अनुसार उनको अन्य २ शरीर मिलताहै ॥ ४३ ॥ हे वेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारकी वस्तु स्वप्नमें अनुभूत होती हैं इसीसें जीवके स्वप्नमें तुम जगत्‌रूप जानो ॥ ४४ ॥

अजाग्रदृष्टिदृष्टोयःस्वाभिधानादिनेरितः ॥ नस्वप्नोविद्यतेतस्मादच्छात्माचितिमात्रकम् ॥ ४५ ॥ अद्यापूर्वाभिधंस्वप्नेयथापश्यतिनान्यथा ॥ अग्रदृष्टंतथैवार्थंचेतनंचित्प्रपश्यति ॥ ४६ ॥ प्राक्तनीवासनाद्यापिपौरुषेणावजीयते ॥ ह्यःकुकर्माद्ययत्नेनप्रयातिहिसुकर्मताम् ॥ ४७ ॥ मोक्षादृतेनशाम्यंतिजीवतांचक्षुरादयः ॥ उन्मज्जंतिनिमज्जंतिकेवलंदेशकालतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और “ यःशिव मद्वैतं चतुर्थंमन्यते ” जो तुरीयावस्था वा समाधिकी दृष्टिसे परमात्मा देखाजाताहै और अपने स्वरूपसे कहागयाहै उस तुरीयावस्थामें दृष्ट परमात्मा पूर्वोक्त कोई स्वप्न नहीं है क्योंकि जाग्रत्‌अवस्थामें उसके शुद्धरूपका अनुभव कभी नहीं होता इसलिये वह स्वच्छ चिन्मात्र है ॥ ४५ ॥ वही चिदात्मा जीव होके आजही अपूर्व वर्तमानपदार्थको अपने चित्स्वभावसे जैसे देखताहै न कि अन्यथा ऐसेही अग्रे (पूर्व) दृष्ट वस्तुकोभी देखताहै ॥ ४६ ॥ और इससमयके प्रबलपौरुषसे पूर्वकालकी दृढवासनाभी ऐसे जीतीजाती है जैसे कल सायंकालका कियाहुआ कुकर्म (अजीर्णादि)आजके यत्नसे सुकर्मताको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ मोक्षके बिना प्राणियोंके नेत्रआदि इन्द्रियां कदापि नहीं शांत होती किंतु देशकालके भेदसे उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं ॥ ४८ ॥

चितःस्वकलनात्तस्यदेहोग्रइवतिष्ठति ॥ पंचात्माभावितोसत्योमहायक्षःशिशोरिव ॥ ४९ ॥ मनोबुद्धिरहंकारस्तथातन्मात्रपंचकम् ॥ इतिपुर्यष्टकंप्रोक्तंदेहोसावातिवाहिकः ॥ ५० ॥ अमूर्तएवाचित्तात्मास्त्वमस्यातिपीनता ॥ वाततास्यमहागुल्मोदेहतास्यसुमेरुता ॥ ५१ ॥ विरजस्त्वक्रमेणैवनिरवस्थस्तुमुक्तिभाक् ॥ सुषुप्ततैकावस्थास्यजडाःक्रोडीकृतायथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह पांचभौतिकभावनासिद्ध देह चित्तकी कलनासे मोक्षपर्य्यन्त आगेही ऐसे स्थित रहताहै जैसे बालकके लिये सत्य महा यक्ष ॥ ४९ ॥ और मन, बुद्धि, अहंकार और पंचतन्मात्रा इन आठोंको पुर्य्यष्टक कहते हैं और यही सूक्ष्म शरीर है ॥ ५० ॥ यह चित्तात्मा अमूर्तही है और पंचीकृत आकाशत्व इसकेलिये अतिस्थूल है और वायुरूपता तो महावृक्षकेतुल्य अत्यन्त असम्भवित है ऐसे स्थूल भूतोंकेही अत्यंत असंभव होनेसे परमाणुसेभी अतिसूक्ष्म इसकेलिये देहताका ऐसे असम्भव है जैसे परमाणुको सुमेरुता ॥५१॥ और देहआदि सब प्रपंच मनोमात्र है इसलिये वैराग्यआदिके अभ्याससे मनके राग आदि शून्य होनेसे शम, दम आदि सम्पत्ति होनेपर अवस्थारहित यह जीव मोक्षभागी होताहै, और सुषुप्तिरूप अवस्था सब देहादि प्रपंचको अपनेमें उपसंहार करके स्थित है ॥ ५२ ॥

स्वप्नाम्नीतथावस्थादेहप्रत्ययशालिनी ॥ आमोक्षंभ्रमतीहायमितिस्थावरजंगमैः ॥ ५३ ॥ कदाचिद्धि सुषुप्तस्थःकदाचित्स्वप्नवत्स्थितः ॥ आतिवाहिकदेहोयंसर्वस्यैवावतिष्ठते ॥ ५४ ॥ यदासुषुप्तभाव स्थोभाविदुःस्वप्नवेधितः ॥ तदाकालानलसमस्तिष्ठत्यनुदिताकृतिः ॥ ५५ ॥ स्थावराद्यास्ववस्थासुक ल्पवृक्षदशासुच ॥ भवत्येवसुषुप्तस्थोघनमोहशिलाघनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—और इसीप्रकार देहके भानमात्रसे शोभित स्वप्नाम्नी जो जिसकी अवस्था है ऐसा यह सूक्ष्मदेह मोक्षपर्य्यन्त दृश्यमान स्थावरजंगमआदि आकारोंसे भ्रमण किया करता है ॥ ५३ ॥ कदाचित् यह सुषुप्तअवस्थामें स्थित रहताहै और कदाचित् स्वप्नके समान स्थित यह अतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर सब स्थित रहताहै॥५४॥ जब यह सुषुप्तअवस्थामें स्थित रहताहै तब वासनारूपसे अन्तमें प्रविष्ट भावी दुष्टस्वप्नोंसे वेधित स्मृतिशून्य अनुदित आकारवान् यह सूक्ष्मदेह चित्के प्रतिबिंबसे खचित होनेसे तथा जगत्का अपने स्वरूपमें उपसंहार करनेसे कालाग्निके समान प्रदीप्त स्थित रहताहै ॥ ५५ ॥ स्थावरआदि अवस्थाओंमें तथा अधिकपुण्यसे कल्पवृक्षादिदशा-ओंमें पाषाणकी शिलाकी समान घनीभूत तमोयुक्त सुषुप्तअवस्थामें स्थित रहताहै ॥ ५६ ॥

सुषुप्ततास्यंजडतास्वप्नोत्थेयंहिसंसृतिः ॥ यःप्रबोधोस्यसामुक्तिस्तज्जाग्रद्यातुतुर्यता ॥ ५७ ॥ जीवप्रबो धान्मुक्तिर्हिप्रबोधात्परमात्मताम् ॥ सोभ्येतिक्षालितमलंताम्रंकनकतामिव ॥ ५८ ॥ जीवप्रबोधान्मु क्तिर्यासाचेहद्विविधोच्यते ॥ एकाजीवन्मुक्ततेतिद्वितीयादेहमुक्तता ॥ ५९ ॥ जीवन्मुक्तिर्हितुर्यत्वंतुर्याती तंपदंततः ॥ बोधोजीवःप्रबोधोयंसचबुद्धिप्रयत्नतः ॥ ६० ॥

अर्थ—सुषुप्तअवस्थामें इसकी जडता दशा रहतीहै और स्वप्नावस्थासे उत्पन्न यह संसार है, और जो चित्त-त्वका ज्ञान है वही मुक्ति है, और तुरीयावस्था है वही जाग्रत् है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! जीवके तत्वज्ञानसेही मुक्ति होती है और तत्वज्ञानसेही यह जीव परमात्मरूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे पूर्णरीतिसे मलको क्षालन करनेसे ताम्र सुवर्णताको ॥ ५८ ॥ जीवके तत्वज्ञानसे जो मुक्ति है वह दोप्रकारकी कहीगई है एक जीवन्मुक्ति और दूसरी देह-पातसे कैवल्यमुक्ति ॥ ५९ ॥ जीवन्मुक्ति तुरीयावस्था है उसके परे तुरीयातीत पद है और उत्तम ज्ञान होनेसे जीव चिन्मात्र ब्रह्मरूपही है वह बोध वा ज्ञान बुद्धिके यत्नसे होताहै ॥ ६० ॥

ज्ञातप्रमाणोजीवोंतर्योजानातीहतन्मयः ॥ पश्यतीमंभयंचैवसुदीर्घस्वप्नविभ्रमम् ॥ ६१ ॥ मिथ्योदितः स्वहृदयेस्वस्थएवशिलीकृते ॥ जीवानामंतरेत्वन्यन्नकिंचिच्चित्कलांविना ॥ ६२ ॥ तामेवान्यतयापश्य न्मुधैवपरिशोचति ॥ जीवाणोरंतरेत्वन्यन्नकिंचित्परमाहृते ॥ ६३ ॥ यत्रतत्रजगद्दृष्टमहोमायाविजृंभि तम् ॥ स्थाल्यंतःक्थदंबूनांयथानानाभ्रमोदयः ॥ ६४ ॥

अर्थ—तत्वसे जितना और जिसरूपका जीवहै इसप्रकार ज्ञात प्रमाण और आभ्यंतरमें सबके मन आदिका जो प्रकाशकहै वही साक्षी है इसको जो जानताहै वहभी साक्षीरूप होजाताहै और जो अज्ञातप्रमाण जीवहै वहभी यथार्थमें तो स्वस्थ ब्रह्महीहै परंतु अज्ञानसे शिलाके समान अपने दृढहृदयमें अतिदीर्घ इससंसारके भ्रमको दे-खताहै ॥ ६१ ॥ पाषाणके तुल्य दृढ अपने हृदयमें यह संसारका भ्रम मिथ्याही उदित हुआहै क्योंकि जीवोंके आ-भ्यंतर चित्कलाके सिवाय और कुछ नहीं है ॥६२॥ और उसी कलाको अन्यरूपसे देखताहुआ मिथ्या शोच करताहै, क्योंकि जीवरूप परमाणुके भीतर परब्रह्मको छोडके और कुछ नहीं है ॥६३॥ जहां तहां यह जगत् उसमें देखपडताहै यह मायाकाही प्रतापहै, जैसे वटलोहीके भीतर जलते हुये जलमें भ्रमका उदय हो ॥ ६४ ॥

जीवाणुनांतथैवांतर्मिथ्यासंसरणोदयः ॥ बंधोस्यवासनाबंधोमोक्षःस्याद्वासनालयः ॥ ६५ ॥ वासनां तोस्यसौषुप्तीस्वप्नेविस्फुरतिस्थितिः ॥ घनवासनमोहोयंजीवःस्थावरतादिभाक् ॥ ६६ ॥ मध्यस्थवास

नस्तिर्यक्पुरुषस्तनुवासनः ॥ यदांतर्जीवितेनांतोबहिर्जाताघटादयः ॥ ६७ ॥ जीवैक्याडुभयोःसत्ताग्राह्यग्राहकयोस्तदा ॥ आत्मानात्मसमालीढोबहिरंतर्यदाचिता ॥ ६८ ॥

अर्थ—ऐसेही जीवपरमाणुके भीतर मिथ्याही संसारका उदय होताहै, और वासनाका बंध इस जीवका बंधन है और वासनाका लय मोक्ष है ॥ ६५ ॥ इस जीवकी सुषुप्तिकी स्थिति वासनाओंके अंततक रहती है, और यह जीव स्वप्नमें विचित्रतासे स्फुरित होताहै, और जब जीवकी वासना और अज्ञान घनीभूत रहताहै तब स्थावरयोनिका भागी होताहै ॥ ६६ ॥ मध्यम वासनाओंसे तिर्यग्योनि और सूक्ष्मवासनाओंसे मनुष्य, देव, गंधर्वादियोनि प्राप्त होती हैं, सुषुप्तिके विच्छेदकाल (गाढी निद्राके अंत) में जब जीवको यह बोध होताहै कि प्राणका संचार जिसमें इतना यह शरीरमात्र मैं हुं तभी बाह्य घटआदि सिद्ध होजाते हैं ॥ ६७ ॥ और उससमय नेत्रआदि द्वारसे निकले- हुये अंतःकरणद्वारा निकलेहुये वृत्तिअवच्छिन्न जीवसे घटकी व्याप्ति होनेपर मैं घटको जानताहुं ऐसा ग्राह्यग्राहक- भावकी वासनारूप सत्ता उदित होती है, और अंतःस्थित आत्मा जीव जब अनात्मविषयमें आरूढ होताहै तब चित्के द्वारा ग्राह्यग्राहकभावकी वासना ॥ ६८ ॥

तदाग्राह्यग्रहणधीर्मृगतृष्णेवसोदया ॥ नेहसंत्यज्यतेकिंचिन्नेहकिंचिन्नगृह्यते ॥ ६९ ॥ बाह्यांतरकलाकारश्चिदात्मैकःप्रकाशते ॥ त्रिजगच्चिच्चमत्कारस्त्वलंभेदविकल्पनैः ॥ शोभिताःस्मश्चितिचिरात्स बाह्याद्यंनविद्यते ॥ ७० ॥ अब्धिर्यथाजलमपास्तसमस्तभेदःखादच्छमेवसकलंद्रवमेकशुद्धम् ॥ सर्वं तथेदमपहस्तितभेदजातमाद्यंपरंपदमनामयमेवबुद्धम् ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इंद्रियार्थोपलंभविचारो नामैकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—मृगतृष्णामें जलकी बुद्धिके सदृश उदय होती है, यथार्थमें तो न इससंसारमें किंचित् त्यागाजाय न लियाजाय ॥६९॥किंतु बाह्य तथा आभ्यंतर कलाके आकाररूप केवल एक चिदात्मा प्रकाशमान होरहाहै यह तीनोंलोक चित्का चमत्कारमात्र है इसमें भेदकी कल्पना व्यर्थ है, हम लोग चिरकालसे तत्वज्ञानसे विराजमान हैं क्योंकि बाह्य तथा आभ्यंतर जगत् तीनोंकालमेंभी नहीं है ॥ ७० ॥ जैसे विचारसे देखनेसे तरंग बुद्बुद आदि समस्तभेदोंको दूर करके समुद्र आकाशसेभी स्वच्छ केवल जलरूपही है ऐसेही तत्वदृष्टिसे जानाहुआ यह जगत्भी वासना अवस्था आदि भेदसमूहोंको त्यागकर केवल निरामय परमपद है ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे इन्द्रियार्थोपलंभविचारो नामैकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

यह जगत् जीवका स्वप्नमात्रहै इसमें आसक्ति न करनेसे इसका नाश होताहै इसकेलिये अर्जुनके आख्यानका अवतरण इस ५२ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ योजीवस्यादितःस्वप्नोनानाकलनकोमलः ॥ तमिमंविद्धिसंसारंनसत्यंनाप्यसन्मयम् ॥ १ ॥ नपुंसइवजीवस्यस्वप्नःसंभवतिक्वचित् ॥ तेनैतेजाग्रतोभावाजाग्रत्स्वप्नकृतोत्थिह ॥ २ ॥ जीवस्वप्नमिमंदीर्घंक्षिप्रताप्रतिभासतः ॥ असत्यमप्यवस्तुत्वाद्विद्धिवेद्यविदांवर ॥ ३ ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरमिवगच्छंतोजीवजीवकाः ॥ असत्यमेवपश्यंतिघनसत्यतयानघ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! समष्टिजीव (हिरण्यगर्भ) का जो नानाकल्पनाओंसे कोमल स्वप्नहै उसीको तुम हमारा जाग्रत् कल्पित यह संसार जानो, न यह सत्यहै न असत्यहै ॥ १ ॥ आदिपुरुष हिरण्यगर्भके समान जीवको स्वप्नका कदाचित् संभव नहीं है इसलिये हमारे ये जाग्रत्के पंचमहाभूतादि पदार्थ उसके जाग्रत् स्वप्न दोनोंके स्थानमें उदय किये हैं और स्वप्नसे भिन्न नहीं हैं ॥ २ ॥ हे जाननेवालोंमें श्रेष्ठ रामजी ! असत्य तथा अवस्तु होनेसे इस संसारको तुम जीवका दीर्घस्वप्न समझो, भेद इतनाही है कि इसका बाध शीघ्र नहीं भासता ॥ ३ ॥ हे पापरहित रामजी ! समष्टिके अंशभूत व्यष्टि जीव एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें जातेहुयेके तुल्य असत्यही देखतेहैं ॥ ४॥

अजडेजडतातातजडेचाजडतोदिता ॥ असत्येसत्यताजीवजीवानुभवमोहतः ॥५॥ भानोरप्यंतरखिलं पश्यंतस्त्रिजगद्भ्रमम् ॥ भ्रमंतिस्वप्नसंभ्रांताइवजीवाभिदालिभिः ॥ ६ ॥ सर्वगत्वादनंतत्वात्स्वस्यजी

वस्यजीवतः ॥ यद्भावयंतिचेतंतितदेवाश्वितिसत्यवत् ॥ ७ ॥ पुंडरीकाक्षनिर्दिष्टामसंसक्तिगतिंशुभाम् ॥ यामालिंग्यमहाबाहोजीवन्मुक्तोमहामुनिः ॥ ८ ॥

अर्थ—जडतारहित ब्रह्ममें जडता और अहंकारसे लेकर देहपर्य्यन्त जड पदार्थमें आत्माभिमानरूप अजडता तथा असत्यमें सत्यता समष्टिजीवके एकदेश व्यष्टिजीवके अज्ञान और मोहसे उदित हुई है ॥ ५ ॥ सूर्य्यकी किरणसे जो त्रसरेणु उडते हैं उनमेंभी संपूर्ण तीनोंलोकका भ्रम देखतेहुये स्वप्नकेसमान संभ्रांत सबजीव भेदकी कल्पनाकी परंपराओंसे भ्रमण कियाकरतेहैं ॥ ६ ॥ व्यष्टि होनेसे समष्टि जीवसे अतितुच्छभी अपनेको परमार्थसें सर्वगामी अनंत अपरिच्छेद्य होनेसे जो २ भावना करतेहैं वही २ शीघ्र उसकी आसक्ति स्वसत्तारोपसे सत्यकेसमान देखतेहैं ॥७॥ श्रीकृष्णने कहीहुई अनासक्तिसे जो शुभगति होती है उसको तुम सुनो. हे महाबाहो ! जिस गतिका आलिंगन करनेसे यह प्राणी जीवन्मुक्त और महामुनि होजाताहै ॥ ८ ॥

पंडोःपुत्रोर्जुनोनामसुखंजीवितमात्मनः ॥ क्षिपयिष्यतिनिर्दुःखंतथाक्षेपयजीवितम् ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भविष्यतिकदाब्रह्मन्सोर्जुनःपांडुनंदनः ॥ कीदृशींचहरिस्तस्यकथयिष्यत्यसक्तताम् ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्तिसन्मात्रमात्मेतिपरिकल्पितनामकम् ॥ स्थितमात्मन्यनाद्यंतेनभसीवमहानभः ॥ ११ ॥ दृश्यतेविमलेतस्मिन्नयंसंसारविभ्रमः ॥ कटकादियथाहेम्नितरंगादियथांभसि ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! पांडुका पुत्र अर्जुन नाम सुखसे जैसे अपने जीवनको वितावेगा ऐसेही तुमभी अपना जीवन विताओ ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! यह पंडुका पुत्र अर्जुन कब उत्पन्न होगा और विष्णु भगवान् उसको किसप्रकारकी असक्तताको कहेंगे ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कल्पितनामवाला सन्मात्र आत्मा अपनी आदिअंतशून्य महिमामें ऐसे स्थित है जैसे आकाशमें महाकाश ॥ ११ ॥ उस विमल परमात्मामें यह संसारका विभ्रम ऐसे देखपडताहै जैसे सुवर्णमें कटक और जलमें तरंग ॥ १२ ॥

चतुर्दशविधाभूतजातयःप्रस्फुरंत्यलम् ॥ तस्मिन्संसारजालेस्मिञ्जालेशकुनयोयथा ॥ १३ ॥ तत्रैतेयमचंद्रार्कशक्राद्याःशंसितक्रमाः ॥ भूतपंचकसंसारलोकपालत्वमागताः ॥ १४ ॥ इदंपुण्यमुपादेयंहेयंपापमिदंत्विति ॥ तैःस्वसंकल्पघटिताद्वेदनात्स्थापितास्थितिः ॥ १५ ॥ तस्याद्ययावदनघप्रवाहपतितेनिजे ॥ कर्मण्यचलसंकाशस्थिरंचित्तमवस्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उस दृश्यमान संसारजालमें चतुर्दशभुवनोंमें ये चौदह प्रकारकी प्राणियोंकी जाति ऐसे स्फुरित होतीहै जैसे जालमें पक्षी ॥ १३ ॥ उनमेंसे श्रुतिस्मृति आदिसे जिनके चरित्र वर्णनकियेगयेहैं ऐसे ये चंद्र सूर्य्य और इन्द्रआदि देव पंचभूतरचित इस संसारमें लोकपालपदवीको प्राप्तहुये हैं ॥ १४ ॥ यह पुण्य है इसलिये ग्राह्य है और यह पाप है इसलिये त्याज्य है इस मर्यादाको उन्होंने अपने अधिकारके अनुकूल ज्ञानसे स्थापित कियाहै ॥ १५ ॥ वक्ष्यमाण यमका मन कल्पके आरंभसे आजतक अपने अधिकारकर्ममें अचल ज्यों का त्यों स्थितहै ॥१६॥

भगवान्सयमःकिंचिद्गतेप्रतिचतुर्युगे ॥ तपःप्रकुरुतेभूतदलनात्पातशंकया ॥ १७ ॥ कदाचिदष्टौवर्षाणिदशद्वादशवापिच ॥ कदाचित्पंचसप्तादिकदाचित्षोडशापिच ॥ १८ ॥ उदासीनवदासीनेतस्मिन्नियमसंस्थितौ ॥ नहिनस्तिजगज्जालेमृत्युर्भूतानिकानिचित् ॥ १९ ॥ तेननीरंध्रभूतौघनिःसंचारंमहीतलम् ॥ भवतिप्रावृषिस्वेदीकुंजरोमशकैरिव ॥ २० ॥

अर्थ—वह भगवान् यम प्रतिचतुर्युगमें कुछ काल बीतनेपर प्राणियोंको पीडा देनेमें पापकी आशंकासे कदाचित् तप करताहै ॥ १७ ॥ कभी आठवर्षतक, कभी दश, कभी बारह (१२) कभी पांच, कभी सात और कभी १६ वर्षतक करतेहैं ॥ १८ ॥ उदासीनतासे उस नियमकी मर्यादामें यमके स्थित रहते इस ब्रह्मांडसमूहमें मृत्यु किसी प्राणियोंको नहीं मारताहै ॥ १९ ॥ उस हिंसाके अभावसे यह भूतल अधिकप्राणियोंसे व्याप्त संचारके अयोग्य ऐसे होजाताहै जैसे वर्षाकालमें मशकोंसे खेदयुक्त हाथी ॥ २० ॥

अथैतानिविचित्राणिभूतानिबहुयुक्तिभिः ॥ क्षिपयंतिसुरारामभुवोभारनिवृत्तये ॥ २१ ॥ एवंयुगसहस्राणिव्यवहारशतानिच ॥ समतीतान्यनंतानिभूतानिचजगतिच ॥ २२ ॥ वैवस्वतोव्रतुयमोयएषपवित्रनायकः ॥ अनेनत्वधुनासाधोपरिक्षीणेषुकेषुचित् ॥ २३ ॥ युगेष्वघविघातायवर्षाणिद्वादशात्मना ॥ व्रतचर्येहकर्तव्यादूरास्तजनकर्षणा ॥ २४ ॥

अर्थ—जब यह भूतल अधिक प्राणियोंके भारसे आक्रांत होजाताहै तब उन चित्रविचित्र प्राणियोंको ये रामकृष्णआदि देवता पृथिवीके भारकी निवृत्तिकेलिये अनेक युक्तियोंसे नाश करतेहैं ॥ २१ ॥ इसप्रकारके व्यवहार

करतेहुये सहस्रोंयुग अनंत प्राणी और जगत् बीतगये ॥ २२ ॥ हे साधो रामजी ! अब इससमय पितरों (मृतकों) का नायक वैवस्वत नाम यम है और अब इसको कुछ युगोंके बीतनेपर ॥ २३ ॥ पापोंके नाशकेलिये मनुष्योंकी पीडाओंको दूर त्यागकर व्रत (समाधिरूप) करना होगा ॥ २४ ॥

तेनेयमुर्वीनीरंध्राभूतैर्मर्त्यैरमृत्युभिः ॥ दीनाप्रपन्नागुल्मेवभारभूतैर्भविष्यति ॥ २५ ॥ भूभारपरिभूतांगीहरिंशरणमेष्यति ॥ कांतादस्युपराभूतादीनापतिमिवप्रिया ॥ २६ ॥ हरिर्देहद्वयेनाथमहीमवतरिष्यति ॥ देवांशैरखिलैःसार्द्धंनरनारायणंगतैः ॥ २७ ॥ वसुदेवसुतस्त्वेकोवासुदेवइतिश्रुतः ॥ देहोभविष्यतिहरेर्द्वितीयःपांडवोर्जुनः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस व्रतके कारण यह दीन पृथिवी मृत्युरहित प्राणियोंसे व्याप्तहोजायगी जैसे बन तथा गुल्म लतादिसे व्याप्त ॥ २५ ॥ तब भारसे पीडित यह भूमि विष्णुके शरणमें ऐसे आवैगी जैसे दुष्टचोरोंसे पीडित दीन अतिप्रिय कांता अपने पतिके ॥ २६ ॥ उसके पश्चात् नर तथा नारायणके अनुगामी संपूर्ण देवताओंके साथ विष्णु भगवान् दो देहोंसे भूमिपर अवतार लेंगें ॥ २७ ॥ उन दोनोंमेंसे एक तो वसुदेवका पुत्र वासुदेव इस नामसे प्रसिद्ध हरिका देह होगा और दूसरा पांडुका पुत्र अर्जुन नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥

युधिष्ठिरइतिख्यातोधर्मपुत्रोभविष्यति ॥ अंभोधिमेखलाभूपःपांडोःपुत्रःसधर्मवित् ॥ २९ ॥ दुर्योधनइतिख्यातस्तस्यभ्रातापितृव्यजः ॥ भविष्यतिद्दढद्वंद्वोभीमोबभ्रूरहेरिव ॥ ३० ॥ अन्योन्यंहरतोरुर्वीतयोःसंग्रामलोलयोः ॥ अष्टादशात्राक्षौहिण्योघटिष्यंत्यत्रभीषणाः ॥ ३१ ॥ तत्क्षयेणविभारत्वंभुवोविष्णुःकरिष्यति ॥ राघवार्जुनदेहेनबृहद्गांडीवधन्वना ॥ ३२ ॥

अर्थ—और चारों समुद्र जिसकी मेखलाहै ऐसी पृथिवीके राजा, और धर्मके पुत्र युधिष्ठिर इस नामसे प्रसिद्ध वह पांडुनंदन धर्म वेत्ता होगा ॥ २९ ॥ और उसका पितृव्यज (चचाका) पुत्र दुर्योधन इस नामसे प्रसिद्ध होगा, और दुर्योधनका प्रतिद्वंद्वी योद्धा भीम ऐसा होगा जैसे सर्पका नकुल ॥ ३० ॥ और परस्पर पृथिवीको हरनेवाले तथा संग्राममें चंचल उन दोनो (भीम आदि पांडुके पुत्र और दुर्योधन आदि धृष्टराष्ट्रके पुत्रों) के लिये महाभारतके युद्धमें १८ अक्षौहिणी सेना एकत्र होगी ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! महान्गांडीव जिसका धनुष है ऐसे अर्जुनके देहसे विष्णुभगवान् उनका नाश करके भूमिका भार उतारेंगे ॥ ३२ ॥

विष्णोरर्जुननामादौप्राकृतंभावमास्थितः ॥ हर्षामर्षान्वितोदेहोनरधर्माभविष्यति ॥ ३३ ॥ सेनाद्वयगतान्दृष्ट्वास्वजनान्मरणोन्मुखान् ॥ विषादमेष्यत्युद्योगंयुद्धायनकरिष्यति ॥ ३४ ॥ तमर्जुनाभिधंदेहंप्राप्तकार्यैकसिद्धये ॥ हरिर्बुद्धेनदेहेनबोधयिष्यतिराघव ॥ ३५ ॥ नजायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावानभूयः ॥ अजोनित्यःशाश्वतोयंपुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे ॥ ३६ ॥

अर्थ—विष्णुभगवान् अर्जुननाम शरीर आरंभमें प्राकृतभावमें स्थित, और हर्षशोकयुक्त मनुष्यधर्मा होगा ॥ ३३ ॥ और वह अर्जुन दोनों सेनामें प्राप्त और मरनेको उद्यत अपने बंधुओंको देखकर विषादको प्राप्त होंगे और युद्धके लिये यत्न नहीं करेंगे ॥ ३४ ॥ उसके अनंतर हे रामजी ! उस अर्जुननाम अपनी देहको प्राप्तकार्य्य (युद्ध) की सिद्धिके लिये विष्णुभगवान् आत्मज्ञानसंपन्न कृष्णके देहसे उपदेश करेंगे ॥ ३५ ॥ यह आत्मा न उत्पन्न होताहै, न मरताहै, न कभी यह भूतकालमें उत्पन्न हुआ और न आगे होगा ॥ ३६ ॥

यएनंवेत्तिहंतारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥ उभौतौनविजानीतोनायंहंतिनहन्यते ॥ ३७ ॥ अनंतस्यैकरूपस्यसतःसूक्ष्मस्यखादति ॥ आत्मनःपरमेशस्यकिंकथंकेननश्यति ॥ ३८ ॥ अनंतमव्यक्तमनादिमध्यमात्मानमालोकयसंविदात्मन् ॥ संविद्वपुःस्फारमलब्धदोषमजोसिनित्योसिनिरामयोसि ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्यानेनरनारायणावतारकथनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त स्वभावसहित आत्माको जो कोई हंता मानताहै वा जो माराहुआ जानताहै वे दोनों आत्माको नहीं जानते ॥ ३७ ॥ क्योंकि अनंत, एक रूप, विद्यमान और आकाशसेभी सूक्ष्म होनेसे सबके स्वामी आत्मा क्या कैसे और किससे नष्ट होगा ॥ ३८ ॥ हे ज्ञानस्वरूप रामजी! अपरिच्छिन्न, अनंत, अव्यक्त, और आदि अंत तथा मध्यशून्य आत्माको देखो क्योंकि महान् दोषरहित, नित्य और निर्विकार आत्मा तुमही हो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे अर्जुनोपाख्याने नरनारायणावतारकथनंनाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

अहंकारका त्याग, संग त्याग आदिका लक्षण, और दशाओंके भेदसे व्यवस्थित उपास्य तथा ज्ञेयका स्वरूप इस ५३ के सर्गमें कहेंगे ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अर्जुनत्वंनहंतात्वमभिमानमलंत्यज॥जरामरणनिर्मुक्तःस्वयमात्मासिशाश्वतः॥१॥ यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥ हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥ २ ॥ यैवसंजायते संविदंतःसैवानुभूयते ॥ अयंसोहमिदंतन्मइत्यंतःसंविदंत्यज ॥ ३ ॥ अनर्थैवचयुक्तोस्मिनष्टोस्मीति चभारत ॥ अभितःसुखदुःखाभ्यामवशःपरितप्यसे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवान्‌जी बोले–हे अर्जुन! तुम हंता नहींहो और मारनेवाला देहइंद्रियादिसंघात मैं हुं इस अभिमानको सर्वथा त्यागो, तुम जरामरणसे मुक्त नित्य आत्माही हो ॥१॥ जिस पुरुषकी मारते समय देहादिमें अहंभावना नहीं है और उत्तरकालमेंभी जिसकी बुद्धि हर्ष शोक आदिसे नहीं युक्त होती वह संपूर्ण संसारकोभी मारकर न किसीको मारता है और मरताहै ॥२॥ अंतःकरणमें जैसी बुद्धिकी वृत्ति होती है उसकोही अनुभव करताहै, इसलिये यह कार्यकारणसंघात देह, वह हंता, यह देहादि संबंधी गृह आदि मेरे हैं इस वृत्तिको त्यागो ॥ ३ ॥ हे भारत! इसी पूर्वोक्त हंता आदि बुद्धिसे मैं युक्त हुं और बंधुनाश आदि अनर्थोंसें नष्ट हुं इत्यादि भ्रांतिसे सुखदुःखके कारण क्यों अवश होके क्यों पीडित होतेहो ॥ ४ ॥

स्वात्मांशैःक्रियमाणानिगुणैःकर्माणिभागशः ॥ अहंकारविमूढात्माकर्ताहमितिमन्यते ॥ ५ ॥ चक्षुः पश्यतुकर्णश्चशृणोतुत्वक्स्पृशत्विदम् ॥ रसनाचरसंयातुकात्रकोहमितिस्थितिः ॥ ६ ॥ कलनाकर्मणि रतेमनस्यपिमहात्मनः ॥ नकश्चिदत्राहमितिक्लेशभागेकएवते ॥ ७ ॥ बहुभिःसमवायेनयत्कृतंतत्रभा रत ॥ एकोभिमानदुःखेनहासायैवहिगृह्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्माके अंशके समान विभाजक और सत्व आदि गुणोंके विकारभूत देह तथा इन्द्रिय आदि जो कर्म करते हैं उनका कर्ता अहंकारसे मूढात्मा अपनेको मानताहै ॥ ५ ॥ नेत्र देखे, कान सुने, त्वचा स्पर्श करै और जिव्हा इन्द्रिय रसका स्वाद ले, परंतु इस नेत्रआदिके समुदायमें हम कौन और इसमें अहंकारकी स्थितिका क्या प्रयोजन ॥ ६ ॥ मनके कल्पना आदि कर्ममें निरत होनेपरभी, इस मन आदि अंतःकरणसमुदायमें अहंकारका विषय कोई नहीं है ऐसा देखनेवाले महात्मारूप तुमारा क्लेशका भागी कौनहै जिसकेलिये तुम शोचतेहो ॥ ७ ॥ हे भरतवंशमें उत्पन्न अर्जुन! अनेकने मिलकर जो कार्य कियाहो और एकही उसके करनेके अभिमानसे दुःखी हो तो यह वार्ता केवल हास्यके लिये है ॥ ८ ॥

कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिंद्रियैरपि ॥ योगिनःकर्मकुर्वंतिसंगंत्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ९ ॥ अहंत्वविषचूर्णे नयेषांकायोनमारितः ॥ कुर्वतोपिहरंतोपिनचतेनिर्विषूचिकाः ॥ १० ॥ नक्वचिद्राजतेकायोममतामेध्य दूषितः ॥ प्राज्ञोप्यतिबहुज्ञोपिदुःशीलइवमानवः ॥ ११ ॥ निर्ममोनिरहंकारःसमदुःखसुखःक्षमी ॥ यः सकार्यमकार्यंवाकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—योगीलोग संगको त्यागकर शरीरसे, मनसे, बुद्धिसे और केवल इन्द्रियोंसेभी आत्माकी शुद्धिकेलिये कर्म करते हैं ॥ ९ ॥ हे अर्जुन! अहंकाररूप विषके चूर्णसे जिन्होंने अपने शरीरको मृत्युके हेतु विषयभोगकी लंपटतामें नहीं लगाया वे लौकिक तथा शास्त्रीय कर्म करते और उनके फलोंको भोगतेभी मानो नहीं करते और नहीं भोगतेहैं ॥ १० ॥ लौकिक वा शास्त्रीयव्यवहारमें ममतारूप अपवित्रतासे दूषित यह शरीर ऐसे नहीं शोभितहोता जैसे पंडित और बहुज्ञाता होनेपरभी दुःशील मनुष्य ॥ ११ ॥ जो प्राणी ममता तथा अहंकारसे शून्यहै वह अवश्यकर्तव्य शास्त्रीय कर्म और अनावश्यक लौकिककर्म करताहुआभी लिप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

इदंचतेपांडुसुतस्वकर्मक्षात्रमुत्तमम् ॥ अपिक्रूरमतिश्रेयःसुखायैवोदयायच ॥१३॥ अपिकुत्सितमप्य न्यदप्यधर्ममयक्रमम् ॥ श्रेष्ठंतेस्वंयथाकर्मतथेहामृतवान्भव ॥ १४ ॥ मूर्खस्यापिस्वकर्मैवश्रेयसेकिमु सन्मतेः ॥ मतिर्गलदहंकारापतितापिनलिप्यते ॥ १५ ॥ योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय ॥ निःसंगस्त्वंयथाप्राप्तकर्मवान्ननिबध्यसे ॥ १६ ॥

अर्थ—और यह क्षत्रियोंका युद्धसे न भागना जो शास्त्रोक्त धर्म है वह यद्यपि बंधु आदिका वध करनेसे क्रूर है तथापि चित्तकी शुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानादिरूप सुखकेलिये और धर्म, यश, राज्य तथा स्वर्गआदि अभ्युदयकेलिये है,

इसलिये तुमारा अतिकल्याणरूपही है ॥ १३ ॥ यद्यपि पूजनीयजनोंके ऊपर शस्त्र उठाना यह निंदित और अधर्ममय क्रम भान होताहै तथापि जिस सत्यशास्त्रीय प्रमाणसे यह युद्धकर्म तुमारेलिये श्रेष्ठ है उसीसे तुम इस युद्धमें विजयी होओ ॥ १४ ॥ जब अपना कर्म मूर्खकोभी कल्याणके लिये होताहै तब तत्वज्ञानींको क्या कहना, क्योंकि अहंकारसेरहित बुद्धि पतितताके हेतु महापातक आदिसे बंधनमें नहीं आती ॥ १५ ॥ हे अर्जुन ! तुम कार्यकी सिद्धि तथा असिद्धिकी समतारूप योगमें स्थित होके कर्मोंको करो, क्योंकि जब तुम निःसंग होके यथाप्राप्त कर्मोंको करोगे तब बंधनमें नहीं आओगे ॥ १६ ॥

शांतब्रह्मवपुर्भूत्वाकर्मब्रह्ममयंकुरु ॥ ब्रह्मार्पणसमाचारोब्रह्मैवभवसिक्षणात् ॥ १७ ॥ ईश्वरार्पितसर्वार्थईश्वरात्मानिरामयः ॥ ईश्वरःसर्वभूतात्माभवभूषितभूतलः ॥ १८ ॥ सन्यस्तसर्वसंकल्पःसमःशांतमनामुनिः ॥ संन्यासयोगयुक्तात्माकुर्वन्मुक्तमतिर्भव ॥ १९ ॥ अर्जुनउवाच ॥ संगत्यागस्यभगवंस्तथाब्रह्मार्पणस्यच ॥ ईश्वरार्पणरूपस्यसंन्यासस्यचसर्वशः ॥ २० ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! तुम स्वयं शान्त ब्रह्मस्वरूप होके और कर्मकोभी ब्रह्मरूप जानके तथा ब्रह्मकी प्रसन्नताकेलिये यदि कर्म करोगे तो क्षणमेंही ब्रह्मरूप होजाओगे ॥ १७ ॥ सबपदार्थ ईश्वरमेंही अर्पित हैं और निरामय ईश्वर सर्वभूतात्मा है ऐसी बुद्धि करके संसारके भूषण बनो ॥ १८ ॥ अथवा हे अर्जुन ! सब संकल्पोंको त्यागके तथा सम, शांतचित्त मुनिरूप होके और संन्यासयोगमें अपने आत्मामें लगाके मुक्तबुद्धि होजाओ ॥ १९ ॥ अर्जुनजी बोले—कि हे भगवन् ! संगत्याग, ब्रह्मार्पण, ईश्वरार्पण, और संन्यासका लक्षणपूर्वक भेद कहिये ॥ २० ॥

तथाज्ञानस्ययोगस्यविभागःकीदृशःप्रभो ॥ क्रमेणकथयैतन्मेमहामोहनिवृत्तये ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वसंकल्पसंशांतौप्रशांतघनवासनम् ॥ नकिंचिद्भावनाकारंयत्तद्ब्रह्मपरंविदुः ॥ २२ ॥ तद्व्योगंविदुर्ज्ञानंयोगंचकृतबुद्धयः ॥ ब्रह्मसर्वंजगदहंचेतिब्रह्मार्पणंविदुः ॥ २३ ॥ अंतःशून्यंबहिःशून्यंपाषाणहृदयोपमम् ॥ शांतमाकाशकोशाच्छंनदृश्यंनदृशःपरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हे प्रभो ! ज्ञान और योगकाभी भेद क्या है यह महामोहकी निवृत्तिकेलिये क्रमसे मुझे कहिये ॥ २१ ॥ श्रीभगवान्जी बोले—कि हे अर्जुन ! सब संकल्पोंके शान्त होनेपर वासनारहित सच्चिन्मात्र जो स्वरूप है उसीको परब्रह्मरूप कहतेहैं ॥ २२ ॥ और अज्ञाननिवृत्तिपूर्वक पूर्वोक्त ब्रह्माकार चित्तवृत्तिको ज्ञान तथा योग कहते हैं, और सब जगत् तथा मैं ब्रह्मरूपही है इसको पंडितजन ब्रह्मार्पण कहतेहैं ॥ २३ ॥ बाह्य तथा आभ्यन्तरसे शून्य तथापि चेतनरूपसे पाषाणके समान ज्ञानघन, शान्त, आकाशके समान निर्मल और दृश्यसे भिन्न ज्ञानमात्रको ब्रह्म कहते हैं ॥ २४ ॥

ततईषद्यदुत्थानमीषदन्यतयोदितम् ॥ सजगत्प्रतिभासोयमाकाशमिवशून्यता ॥ २५ ॥ भावोहमितिकोप्येषप्रत्येकमुदितश्चितेः ॥ कोटिकोट्यंशकलितःकइवेनंप्रतिग्रहः ॥ २६ ॥ अपृथग्भूतएवैषपृथग्भूतइवस्थितः ॥ पृथक्त्वंहिनपर्यंतोनाहमित्यवगच्छति ॥ २७ ॥ यथेहाहंतथेहास्तिघटादीहापिमर्कटः ॥ स्वमीहैवंतथांभोधिःकिमहंताप्रतिग्रहः ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार ब्रह्मसे जो भिन्नरूपसे किंचित् स्फुरण है वह जगत्का प्रतिभास ऐसे है जैसे आकाशकी शून्यता ॥ २५ ॥ और ब्रह्मके कोटि २ अंशसे कल्पित प्रत्येक जीवको जो उसमें अहंकारका अध्यास है उसमें क्या आग्रह ? अर्थात् अध्यासके मिथ्या होनेसे ब्रह्ममात्रही सत् है ॥ २६ ॥ यह जीवका अहं अध्यास अपने अधिष्ठान ब्रह्मसे अभिन्नरूपही है परन्तु उससे भिन्न व तुल्य भान होताहै क्योंकि ब्रह्मका अन्त नहीं है और ब्रह्ममें अविद्यमान यह नहीं कहसकता कि मैं नहींहुं ॥ २७ ॥ जैसे अहंभाव साक्षीचेतनसे भिन्न नहीं है ऐसेही घट आदिमें ममतारूप मर्कटभी उसमे भिन्न नहीं है इसलिये अहं तथा मम दोनोंप्रकारका अहंभावरूप समुद्रके समान पूर्ण ब्रह्महीहै तो अहंकारमें आग्रह क्यों ॥ २८ ॥

विकल्पभेदेस्फुरितेसंवित्सारमयात्मनि ॥ वैचित्र्येणविचित्रेपिकिमेकत्वेपिनोग्रहः ॥ २९ ॥ इतिज्ञातविभागस्यबुद्धौतस्यपरिक्षयः ॥ कर्मणांयःफलत्यागस्तंसंन्यासंविदुर्बुधाः ॥ ३० ॥ त्यागःसंकल्पजालानामसंसंगःसकथ्यते ॥ समस्तकलनाजालस्येश्वरत्वैकभावना ॥ ३१ ॥ गलितद्वैतनिर्भासमेतदेवेश्वरार्पणम् ॥ अबोधवशतोभेदोनान्नैवैषांचिदात्मनि ॥ ३२ ॥

अर्थ—और विषयोंकी विचित्रतासे अहं तथा ममतारूप अनेक विकल्पोंके भेद जब स्फुरित होतेहैं तब उन २ विकल्पोंकी सत्ताकी स्फूर्तिके निमित्त तथा तीनों अवस्थामें अनुगत साक्षीचेतनमें एकत्वभी स्फुरित होताहै उसमें

अहंताका ग्रहण क्यों नहीं ॥ २९ ॥ इसप्रकार विचार करके सार असार जाननेवाले पुरुषकी बुद्धिमें अहंताममताके नाशसे जो कर्मोंके फलोंका त्याग है उसीको पंडितलोग संन्यास कहतेहैं ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण कल्पनासमूहोंके त्यागको असंग वा आसक्तिका अभाव कहतेहैं और द्वैतभावके त्यागपूर्वक सबकल्पनाजालको ईश्वरमय भावनाको ईश्वर पूर्ण कहतेहैं क्योंकि सबपदार्थोंका भेद आत्मामें अज्ञानसे नाममात्रको है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

बोधात्माकिलशब्दार्थोजगदेकंनसंशयः ॥ अहमाशाजगदहंस्वमहंकर्मचाप्यहम् ॥ ३३ ॥ कालोहमहमद्वैतंद्वैतंचाहमहंजगत् ॥ मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥ मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः ॥ ३४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ द्वेरूपेतवदेवेशपरंचापरमेवच ॥ कीदृशंतत्कदारूपंतिष्ठाम्याश्रित्य सिद्धये ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सामान्यंपरमंचैवद्वेरूपेविद्धिमेनघ ॥ पाण्यादियुक्तंसामान्यंशंखचक्रगदाधरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह सबब्रह्मांड और उसके अन्तर्गत सबपदार्थोंके शब्द तथा अर्थ ज्ञानरूपही हैं, और सबदिशा तथा जगत् मैं हुं, कर्म तथा उसका आश्रयभी मैं हुं ॥३३॥ काल मैं हुं, अद्वैत मैं हुं, द्वैत मैं हुं, जगत् मैं हुं, इसलिये मेरे भक्त और मेरे पुजारी तुम बनो और मुझेही नमस्कारभी तुम करो, इसप्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके अन्तमें मुझमें मिलोगे ॥ ३४ ॥ अर्जुन बोले—हे भगवन् ! पर और अपर ये दोनोंरूप आपके हैं सो मुक्तिकी सिद्धिकेलिये किससमय कैसे रूपका आश्रय लेके मैं स्थित रहुं ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानूजी बोले—हे पापरहित अर्जुन ! सामान्य तथा पर दोप्रकारका मेरा रूप तुम समझो उनमें हस्तपादादिसंयुक्त तथा शंख चक्र तथा गदाधारी सामान्यरूप सबके जानने योग्य है ॥ ३६ ॥

परंरूपमनाद्यंतंयन्ममैकमनामयम् ॥ ब्रह्मात्मपरमात्मादिशब्देनैतदुदीर्यते ॥ ३७ ॥ यावदप्रतिबुद्धस्त्वमनात्मज्ञतयास्थितः ॥ तावच्चतुर्भुजाकारदेवपूजापरोभव ॥ ३८ ॥ तत्क्रमात्संप्रबुद्धस्त्वंततोज्ञास्यसितत्परम् ॥ ममरूपमनाद्यंतंयेनभूयोनजायते ॥ ३९ ॥ यदिवावेद्यविज्ञातोभावस्तदरिमर्दन ॥ तन्ममात्मानमात्मानमात्मनश्वाशुसंश्रय ॥ ४० ॥

अर्थ—और आदिअंतरहित तथा निर्विकार मेरा पर, अशुद्धचित्तवालोंसे दुर्बोध जो है वह ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा इत्यादि शब्दोंसे कहाजाताहै ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! जबतक तुम अज्ञानी अनात्मज्ञ होके स्थित हो तबतक चतुर्भुज देवकी पूजामें तत्पर रहो ॥ ३८ ॥ और जब क्रमसे तुम ज्ञानी होओगे तब आदिअन्तरहित मेरा वह पररूप जानोंगे जिसके जाननेसे प्राणी पुनः संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ ३९ ॥ और हे शत्रुनाशक यदि तुमारा चित्त ज्ञेयपदार्थ जानगयाहै तो तुम शोधित तत् तथा त्वं पदार्थकी एकताको जानकर उसीमें तत्पर रहो ॥ ४० ॥

इदंचाहमिदंचाहमितियत्प्रवदाम्यहम् ॥ तदेतदात्मतत्त्वंतुभ्यंह्युपदिशाम्यहम् ॥ ४१ ॥ मन्येसाधु विबुद्धोसिपदेविश्रांतवानसि ॥ संकल्पैरवमुक्तोसिसत्यैकात्ममयोभव ॥ ४२ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि ॥ पश्यत्वंयोगयुक्तात्मासर्वत्रसमदर्शनः ॥ ४३ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानंभजत्येकत्वमात्मनः ॥ सर्वथावर्तमानोपिनसभूयोभिजायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—और यह आकाशादि तथा दिशा आदि संसार मैं हुं यह जो मैं तुमसे कहताहुं सो यह आत्मतत्वका उपदेश तुमसे मैं करताहुं ॥ ४१ ॥ यह मैं मानताहुं कि मेरे उपदेशसे तुम संकल्पोंसे मुक्त, ज्ञानवान् होके परमपदमें विश्रांतहो और अब तुम सच्चिदात्मरूप होके स्थित रहो ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन ! तुम अपने आत्माको योगमें लगाके तथा सर्वत्र समदर्शी होके सबभूतोंमें अधिष्ठानरूपसे अनुगत आत्माको और आत्मामें सबभूतोंको अध्यस्त देखो ॥ ४३ ॥ जो प्राणी सबभूतोंमें एक आत्माको भजता अर्थात् देखताहै वह चाहै समाधिमें वा व्यवहारमें वर्तमानभी हो परंतु पुनः इस संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ ४४ ॥

एकत्वंसर्वशब्दार्थएकशब्दार्थआत्मनः ॥ आत्मापिचनसन्नासद्वतोयस्याशुतस्यतत् ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यचेतसामंतरालोकोयःप्रकाशकः ॥ अनुभूतिमुपारूढःसोहमात्मेतिनिश्चयः ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यपयसामंतर्योरसानुभवःस्थितः ॥ गव्यानामब्धिजानांचसोयमात्मेतिभारत ॥ ४७ ॥ अंतःसर्वशरीराणां यःसूक्ष्मोनुभवःस्थितः ॥ मुक्तोनुभवनीयेनसोयमात्मास्तिसर्वगः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सबभूतोंमें एकआत्माको भजताहै वहांपर सबशब्दका अर्थ अधिष्ठान, और एकशब्दका अर्थ आत्मा है वह जिसको स्थूल तथा सूक्ष्मभूतोंसे विलक्षण ज्ञात है उसकेलिये वह आनंदघन है ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यके चि-

त्तोंका आभ्यंतरसे प्रकाशक तथा ज्ञानियोंके अनुभवमें साक्षीरूपसे जो आरूढहै वही अहंपदका लक्ष्य आत्मा है ॥ ४६ ॥ तथा त्रैलोक्यके जलोंके, दुग्धादिके, समुद्रसे उत्पन्न लवण आदिके तथा इक्षु (ईख) से उत्पन्न शर्करादिके रसोंका जिव्हाके अग्रभागमें जो अनुभवहै वही आत्मा है ॥ ४७ ॥ अनुभवयोग्य विषयोंके समूहोंसे विनिर्मुक्त, सर्वव्यापी, सबशरीरोंमें सूक्ष्म अनुभवरूपसे जो स्थितहै वही आत्मा है ॥ ४८ ॥

समग्रपयसामंतर्यथाघृतमिवस्थितम् ॥ तथासर्वपदार्थानांदेहानांसंस्थितःपरः ॥ ४९ ॥ सर्वाभोनिधिरत्नानांसबाह्याभ्यंतरेयथा ॥ तेजस्तथास्मिदेहानामसंस्थितइवस्थितः ॥ ५० ॥ यथाकुंभसहस्राणां सबाह्याभ्यंतरेनभः ॥ जगत्त्रयशरीराणांतथात्माहमवस्थितः ॥५१॥ मुक्ताफलशतौघानांतंतुःप्रोतवपुर्यथा ॥ तथायंदेहलक्षाणांस्थितआत्मास्त्यलक्षितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे सबप्रकारके दुग्धोंमें घृत स्थितहै ऐसेही सबपदार्थोंमें अधिष्ठानरूपसे और देहोंमें प्रकाशकरूपसेभी आत्मा स्थितहै ॥ ४९ ॥ जैसे सबरत्नोंका अंतर्गत तेज बाहरभी प्रकाश करताहै ऐसेही देहोंके बाहर भीतर प्रकाशक तेज मैं स्थित रहतेभी अविद्यमानकेतुल्य भान होताहुं ॥ ५० ॥ जैसे सहस्रों घटोंके बाहर भीतर आकाश स्थितहै ऐसेही तीनोंलोकके शरीरोंके बाहर भीतर मैं चिदात्मा स्थितहुं॥५१॥जैसे सहस्रों मोतियोंके मध्यमें गूंथा हुआ सूत्र उनको धारण करताहै ऐसेही लक्षों शरीरोंके मध्य अंतर्यामीरूपसे अलक्षित स्थित मैं उनको धारण करताहुं ५२

ब्रह्मादौतृणपर्यंतेपदार्थनिकुरंबके ॥ सत्तासामान्यमेतद्यत्तमात्मानमजंविदुः ॥ ५३ ॥ तदीषत्स्फुरिताकारंब्रह्मब्रह्मैवतिष्ठति ॥ अहंतादिजगत्तादिक्रमेणभ्रमकारिणा ॥ ५४ ॥ आत्मैवेदंजगद्रूपंहन्यतेहंतिवाबकिम् ॥ शुभाशुभैर्जगद्दुःखैःकिमस्यार्जुनलिप्यते ॥५५॥ प्रतिबिंबेष्विवादर्शसमंसाक्षिवदास्थितम् ॥ नश्यत्सुनविनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति ॥ ५६ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे लेके तृणपर्यन्त पदार्थसमूहमें जो सत्तासामान्य है उसीको अजन्मा आत्मा कहते हैं ॥ ५३ ॥ किंचित् स्फुरित आकार ब्रह्मही ब्रह्ममें भ्रमदायक अहंता तथा जगत्ताआदि क्रमसे स्थितहै ॥ ५४ ॥ शुभ तथा अशुभ जगत्के दुःखोंसे यह जगत्रूप आत्माही माराजाताहै और दूसरोंको मारताहै परंतु इसका कुछ किसीमें लिप्त नहींहोता ॥ ५५ ॥ जैसे प्रतिबिंबोंके नष्ट होनेसे दर्पण नहीं नष्ट होता ऐसेही साक्षीके तुल्य विनश्वरपदार्थोंमें अविनाशी आत्माको जो देखताहै वही देखताहै ॥ ५६ ॥

इदंचाहमिदंनेतिइतीदंकथ्यतेमया ॥ एवमात्मास्मिसर्वात्मामामेवंविद्धिपांडव ॥ ५७ ॥ इमाःसर्वाः प्रवर्ततेसर्गप्रलयविक्रियाः ॥ आत्मन्यहंताचित्तस्थाःपयःस्पंदाइवांबुधौ ॥ ५८ ॥ यथोपलत्वंशैलानां दारुत्वंचमहीरुहाम् ॥ तरंगाणांजलत्वंचपदार्थानांतथात्मता ॥ ५९ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥ यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ ६० ॥

अर्थ—सब देहइन्द्रियआदिमें चिदंशरूप मैं हुं और जड नहीं हुं यह कथन दर्पणोंमें प्रतिबिंबोंके समान चिदंशमात्र ऐसे सर्वत्र अनुगत आत्मा मैं हुं इस बातके बोध करानेकेलिये है. और हे पांडव ! अधिष्ठानरूपसे मुझे तुम सर्वात्मा जानो ॥ ५७ ॥ आत्मामें अहंकारसहित चित्तमें स्थित सृष्टि प्रलय तथा अन्यविकार ऐसे होतेहैं जैसे समुद्रमें जलके स्पंद ॥ ५८ ॥ जैसे सबपर्वत पाषाणमय, सबवृक्ष काष्ठमय, और सबतरंग जलमय हैं ऐसेही सबपदार्थ आत्ममय हैं ॥ ५९ ॥ जो आत्मामें सबभूतोंको और सबभूतोंमें स्थित तथा अकर्ता आत्माको देखताहै वही देखताहै ॥ ६० ॥

नानाकारविकारेषुतरंगेषुयथापयः ॥ कटकादिषुवाहेमभूतेष्वात्मातथार्जुन ॥ ६१ ॥ नानातरंगवृंदानि यथालोलानिवारिणि ॥ कटकादीनिवाहेम्नि भूतान्येवंपरात्मनि ॥ ६२ ॥ पदार्थजातंभूतानिबृहद्ब्रह्मचभारत ॥ एकमेवाखिलंविद्धिपृथक्त्वंनमनागपि ॥ ६३ ॥ किंतद्भावविकाराणांगम्यमस्तिजगत्त्रये ॥ क्वतेवापिजगत्किंवाकिंमुधापरिमुह्यसि ॥ ६४ ॥ इतिश्रुत्वाभयंत्वंतर्भावयित्वासुनिश्चितम् ॥ जीवन्मुक्ताश्चरंतीहसंतःसमरसाशयाः ॥ ६५ ॥ निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाःपदमव्ययंतत् ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनोपदेशो नाम त्रिपंचाशःसर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जैसे नानाप्रकारके आकार तथा विकारमय तरंगोंमें जल वा कटकादिमें सुवर्ण है वैसेही सबभूतोंमें आत्माहै ॥ ६१ ॥ जैसे नानाप्रकारके चंचल तरंगसमूह जलमें हैं और कटककेयूरआदि सुवर्णमें हैं ऐसेही सब भूत

आत्मामें हैं ॥ ६२ ॥ हे अर्जुन ! संपूर्ण पदार्थसमूह और सब भूत तथा महत्‌ब्रह्म इन सबको तुम एकही जानो, इसमे भेद किंचित्‌भी नहीं है ॥ ६३ ॥ जब निर्विकार एक ब्रह्मही सबकुछ है तब त्रिलोकीमें जन्मादिविकारोंका आश्रय कौन है, तुमारे बंधुवधादिभी कहां हैं, और जगत्‌भी क्या है ? अर्थात् सब मिथ्याहै, तुम व्यर्थ क्यों मोहमें पडे हो ॥ ६४ ॥ इस पूर्वोक्त उपदेशको सुनकर और निश्चयपूर्वक ब्रह्मका अपने अंतःकरणमें अनुभवकरके समदर्शी जीवन्मुक्त महात्माजन इस संसारमें विचरते हैं ॥६५॥ मानमोहसे रहित, संगके दोषोंसे वर्जित, नित्य अपने आत्मामें रमण करनेवाले, और सुखदुःखसंज्ञक द्वंद्वोंसे विनिर्मुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी आत्मपदको प्राप्तहोतेहैं ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनोपदेशोनाम त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

सुखदुःखादिके संबंधमें हेतु, उनके त्यागका क्रम और जिसके आलंबसे सुखदुःखका त्याग होताहै यह सब इस ५४ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमेपरमंवचः ॥ यत्तेहंप्रीयमाणायवक्ष्यामिहितकाम्यया ॥ १ ॥ मात्रास्पर्शाहिकौंतेयशीतोष्णसुखदुःखदाः ॥ आगमापायिनोनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ॥ २ ॥ तेतु नैकात्मनश्चान्येकातोदुःखंकवासुखम् ॥ अनाद्यंतेनवयवेकुतःपूरणखंडने ॥ ३ ॥ संस्थितास्पर्शमात्रा व्यामात्रास्पर्शभ्रमात्मकः ॥ समदुःखसुखोऽधीरःसोऽमृतत्वायकल्पते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवान्‌जी बोले-प्रीतिपूर्वक सुननेवाले तुमारे हितके लिये जो पुनः मैं उत्तम बचन कहताहुं उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ हे कौन्तेय ! इन्द्रिय तथा उनके विषय शीतोष्णादिके अनुभवद्वारा सुखदुःखदायी और उत्पत्तिविनाशशील हैं इसलिये उनको तुम त्यागो ॥ २ ॥ वे इन्द्रियविषय (शब्दादि) तथा सुखदुःखादि तथा अन्यपदार्थभी अद्वय पूर्णानन्दरूप आत्मासे अन्य नहीं हैं इस ज्ञानसे सुखदुःख कहां है और आदि अन्त तथा अवयव शून्य आत्मामें पूर्णता वा खंडन कैसे होसकताहै ॥ ३ ॥ जिसको विषय तथा इन्द्रियोंमें सत्यताप्रतीति नष्ट होगई है, तथा सुखदुःख जिसको समान है वह धीरपुरुष मोक्ष पानेको समर्थ है ॥ ४ ॥

सर्वत्वादात्मनश्चैतेसुभेदाःसंस्थिताइव ॥ असद्रूपास्त्वसद्रूपंकथंसोढुंनशक्यते ॥ ५ ॥ मनागपिनविद्यंतेसुखदुःखेतुसर्वशः ॥ सर्वत्वादात्मतत्त्वस्यसत्ताकथमनात्मनः ॥ ६ ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ नास्त्येवसुखदुःखादिपरमात्मास्तिसर्वगः ॥ ७ ॥ सत्वासत्वमतीत्यक्त्वाचैतयोर्जगदात्मनोः ॥ त्यक्त्वानकिंचिन्मध्येचशेषेबद्धपदोभव ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्माके सर्वरूप होनेसे सुखदुःख आदिभी पुत्रधनादिके समान स्थित रहतेहैं, प्रतिकूल वेदनीयतामें असत्‌रूप होनेसे सहनके योग्य हैं ॥ ५ ॥ आत्माके सर्वरूप होनेसे सुखदुःख किंचित्‌भी नहीं हैं क्योंकि आत्मवस्तुकी सत्ता कैसे रहसकती ॥ ६ ॥ असत्‌पदार्थकी सत्ता नहीं है और सत्‌पदार्थका अभाव नहीं है इसलिये सर्वगामी सत् परमात्माही है और असत् दुःखादि नहीं है ॥ ७ ॥ जगत्‌की सत्यता और आत्माकी असत्यता बुद्धिको त्यागके और तुच्छ मनकोभी त्यागके शेष आत्मामें स्थित रहो ॥ ८ ॥

नहृष्यतिसुखैरात्मादुःखैर्ग्लायतिनोऽर्जुन ॥ दृश्यदृक्चेतनात्मापिशरीरांतर्गतोपिसन् ॥ ९ ॥ जडंचित्तादिदुःखस्यभाजनंदेहतांगतम् ॥ नचैतस्मिन्क्षतेक्षीणेकिंचिदेवात्मनःक्षतम् ॥ १० ॥ जडंदेहादिदुःखादेर्यदिदंभोक्तृसंस्थितम् ॥ तन्मायाभ्रममेवांगविद्धयबोधवशोत्थितम् ॥ ११ ॥ नकिंचिदेवदेहादिन चदुःखादिविद्यते ॥ आत्मनोयत्पृथग्भूतंकिंकेनातोनुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! यह साक्षी चेतन आत्मा शरीरके भीतर स्थित रहनेपरभी न सुखोंसे प्रसन्न होताहै और न दुःखोंसे ग्लानिको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ जड चित्तादिदुःखका पात्र देहरूपताको प्राप्त है, इस चित्तादिके नष्ट होनेसे आत्माका क्या नष्ट होताहै ॥ १० ॥ हे प्रिय अर्जुन ! चित्तादिसहित जीव जो सुखदुःखादिका भोक्ता भानहोताहै यह मायाके वशसे भ्रममात्र है ॥ ११ ॥ देह तथा दुःखादि कुछ नहीं है क्योंकि आत्मासे जो भिन्न है उसका अनुभव किसने और कब कियाहै ॥ १२ ॥

यदिदंकथयाम्यत्रतेनैवातोविनश्यति ॥ भ्रांतिर्दुःखमबोधोत्थासम्यग्बोधेनभारत ॥ १३ ॥ यथारज्ज्वा मह्हिभयंबोधान्नश्यत्यबोधजम् ॥ तथादेहादिदुःखादिबोधान्नश्यत्यबोधजम् ॥ १४ ॥ विष्वग्विश्वमजं ब्रह्मननश्यतिनजायते ॥ इतिसत्यंपरंविद्धिबोधःपरमएषसः ॥ १५ ॥ ब्रह्मांबुधौतरंगत्वंकिंचिद्भूत्वावि लीयते ॥ ब्रह्मावर्त्तेस्फुरस्यत्रब्रह्मैवासिनिरामयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो कुछ दुःख है वह भ्रांतिसे उत्पन्नहोताहै और भ्रांति ज्ञानसे नष्टहोसकती है, इस विषयमें तुमसे दृष्टांत कहताहुं ॥१३॥ जैसे रज्जुमें सर्पका भय अज्ञानसे उत्पन्नहोताहै और ज्ञानसे नष्ट होताहै ऐसेही अज्ञानसे उत्पन्न देहादिका दुःख ज्ञानसे नष्ट होताहै ॥ १४ ॥ यह संसार पूर्णब्रह्महीं है, और यह ब्रह्म न उत्पन्न होताहै, न नष्ट होताहै, यही सत्य है, इसी ज्ञानको परमबोध कहतेहैं ॥ १५ ॥ ब्रह्मरूप समुद्रमें जगत् जीवादि तरंग उत्पन्न हो २ कर नष्ट होजातेहैं और ब्रह्मरूप आवर्तमे स्फुरित होरहे हो तथा ज्ञानोदय कालमें निर्विकार ब्रह्महीं हो ॥ १६ ॥

यावत्कालक्रियादेशास्त्वमहंसैनिकाइव ॥ ब्रह्मणिवपरिस्पंदानात्रस्तःसदसद्भ्रमौ ॥ १७ ॥ जहिमानंम दंशोकंभयमीहांसुखासुखे ॥ द्वैतमेतदसद्रूपमेकःसद्रूपवान्भव ॥ १८ ॥ पुरुषाक्षौहिणीनांचक्षयेणानु भवात्मना ॥ ब्रह्मणाबृंहितंशुद्धंब्रह्मब्रह्ममयंकुरु ॥ १९ ॥ असंविदन्सुखंदुःखंलाभालाभौजयाजयौ ॥ शुद्धब्रह्मैकतांगच्छब्रह्माब्धिस्त्वंहिभारत ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे जलमें परिस्पंद होतेहैं ऐसेही सैनिकके तुल्य संपूर्ण देश, काल, क्रिया आदि ब्रह्ममें स्फुरित होतेहैं क्योंकि इस ब्रह्ममें भावअभावका विकल्प नहीं है ॥ १७ ॥ हे अर्जुन ! अभिमान, मद, शोक, भय, चेष्टा तथा सुख-दुःखको त्यागो क्योंकि यह सब द्वैत और असत्रूप हैं, तुम तो एक अद्वैतरूप होजाओ ॥ १८ ॥ अनेक अक्षौहिणी मनुष्योंके क्षय करनेवाले तुमारे रूपधारी ब्रह्मनेही इस ब्रह्मांडको बढायाहै इसलिये अनुभवरूप ब्रह्मसे शुद्ध ब्रह्मकोही ब्रह्ममय करो ॥ १९ ॥ हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सुखदुःख, लाभालाभ, तथा जयपराजयका ध्यान न करके शुद्धब्र-ह्मके साथ एकताको प्राप्त होजाओ ॥ २० ॥

लाभालाभसमोभूत्वाभूत्वानूनंनकिंचन ॥ खंडवातइवास्पंदीप्रकृतंकार्यमाचर ॥२१॥ यत्करोषियदश्ना सियज्जुहोषिददासियत् ॥ यत्करिष्यसिकौंतेयतदात्मेतिस्थिरोभव ॥२२॥ यन्मयोयोभवत्यंतःसतदाप्नो त्यसंशयम् ॥ ब्रह्मसत्यमवाप्तुंत्वंब्रह्मसत्यमयोभव ॥ २३ ॥ अनपेक्षफलंब्रह्मभूत्वाब्रह्मेतिभावितम् ॥ क्रियतेकेवलंकर्मब्रह्मज्ञेनयथागतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे अर्जुन! लाभालाभमें समान होके और तत्वज्ञानसे न्यून देहादि न होके गुहासे परिच्छिन्न वायुके तुल्य संचलनरहित होके यथाप्राप्त कार्य करो ॥२१॥ हे कौंतेय ! जो कुछ करतेहो, खातेहो, हवन करतेहो, देतेहो और जो कुछ करोगे वह सब आत्मा है इसप्रकार सबकुछ ब्रह्मार्पण करके स्थिर रहो ॥ २२ ॥ जिस विषयमें जो चित्त लगाताहै वह निःसन्देह उसको पाताहै, सत्यब्रह्म प्राप्त होनेके योग्यहै इसलिये तुम सत्यब्रह्मके ध्यानसे सत्यब्रह्ममय होजाओ ॥ २३ ॥ ब्रह्मज्ञानी पुरुष सबकर्मफलोंकी आकांक्षाको त्यागकर और स्वयं परमपुरुषार्थरूप ब्रह्म होके यथाप्राप्त कर्मोंको करताहै ॥ २४ ॥

कर्मण्यकर्मयःपश्यत्यकर्मणिचकर्मयः ॥ सबुद्धिमान्मनुष्येषुसचोक्तःकृत्स्नकर्मकृत् ॥२५॥ माकर्मफलहे तुर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि ॥ योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय ॥ २६ ॥ कर्मासक्तिमनाश्रित्यत थानाश्रित्यमूढताम् ॥ नैष्कर्म्यमप्यनाश्रित्यसमस्तिष्ठयथास्थितम् ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाकर्मफलासंगंनि त्यतृप्तोनिराश्रयः ॥ कर्मण्यभिप्रवृत्तोपिनैवकिंचित्करोतिसः ॥ २८ ॥

अर्थ—पूर्वोक्तरीतिपूर्वक कर्ममें जो पुरुष निष्क्रिय ब्रह्म देखताहै और ब्रह्ममेंही सब अवश्य कर्तव्यकर्म देखताहै वही सब मनुष्योंमें बुद्धिमान् और संपूर्ण कर्मोंका कर्ता है ॥ २५ ॥ हे अर्जुन ! तुम फलकी अभिलाषासे कर्मोंमें न प्रवृत्तहोओ किंतु कर्तव्य समझके, और कर्मोंके न करनेमेंभी तुमारी आसक्ति नहो किंतु योगमें स्थित हो संगको त्यागके कर्म करो ॥ २६ ॥ कर्मोंमें आसक्तिका, तत्त्वज्ञानके प्रमादका और निष्कर्मताकाभी आश्रय न करके समानरूपसे जैसे हो वैसे यथाप्राप्त कर्मोंको करतेहुये स्थित रहो ॥ २७ ॥ कर्मोंके फलोंकी आसक्तिको त्यागकर नित्यतृप्त और निराश्रय ज्ञानीपुरुष कर्मोंमें प्रवृत्तभी कुछ नहीं करता ॥ २८ ॥

आसक्तिमाहुःकर्तृत्वमकर्तुरपितद्भवेत् ॥ मौर्ख्येस्थितेहिमनसितस्मान्मौर्ख्यंपरित्यजेत् ॥ २९ ॥ परं तत्त्वज्ञमाश्रित्यनिरासक्तेर्महात्मनः ॥ सर्वकर्मरतस्यापिकर्तृतोदेतिनक्वचित् ॥ ३० ॥ अकर्तृत्वादभो

कृत्वमभोक्तृत्वात्समैकता ॥ समैकत्वादनंतत्वंततोब्रह्मत्वमाततम् ॥ ३१ ॥ नानातामलमुत्सृज्यपरमात्मैकतांगतः ॥ कुर्वन्कार्यमकार्यंचनैवकर्तात्वमर्जुन ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनमें मूर्खता अर्थात् तत्वज्ञानमें प्रमाद स्थिर होनेसे कर्ममें सत्यबुद्धिसे आसक्तिकोही कर्तृता कहतेहैं वह कर्म न करनेवालेकोभी होतीहै इसलिये मूर्खताको सर्वथा त्यागनाचाहिये ॥ २९ ॥ परमज्ञानमें आश्रित और आसक्तिरहित महात्माके सबकामोंमें तत्परहोनेपरभी कहींभी कर्तृता नहीं उदितहोती ॥ ३० ॥ अकर्ता होनेसे अभोक्ता होताहै, अभोक्ता होनेसे समताके साथ एकता होतीहै और समताकेसाथ एकतासे अनंतता प्राप्त होतीहै और उसके पश्चात् व्यापक ब्रह्मरूपता प्राप्त होतीहै ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन ! तुम सर्वथा अनेकताको त्यागकर परम एकताको प्राप्त होके विहित तथा प्रमादसे निषिद्धभी कर्म करतेहुयेभी तुम कर्ता नहीं हो ॥ ३२ ॥

यस्यसर्वेसमारंभाःकामसंकल्पवर्जिताः ॥ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणंतमाहुःपंडितंबुधाः ॥ ३३ ॥ समःसौम्यःस्थिरःस्वस्थःशांतःसर्वार्थनिस्पृहः ॥ यस्तिष्ठतिससव्यग्रोप्यलमव्यग्रतांगतः ॥ ३४ ॥ निर्द्वंद्वोनित्यसत्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥ यथाप्राप्तानुवर्तीत्वंभवभूषितभूतलः ॥ ३५ ॥ कर्मेंद्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन् ॥ इंद्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते ॥ ३६ ॥ यस्त्विंद्रियाणिमनसानियम्यारभतेर्जुन ॥ कर्मेंद्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ॥ ३७ ॥ आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापःप्रविशंतियद्वत् ॥ तद्वत्कामायंप्रविशंतिसर्वेसशांतिमाप्नोतिनकामकामी ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने आत्मज्ञानोपदेशो नाम चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—काम तथा संकल्पसे वर्जित सब आरंभ जिस पुरुषके समान हैं और ज्ञानरूप अग्निसे सब कर्म जिसके दग्ध होगयेहैं उसको ज्ञानीजन पंडित कहतेहैं ॥ ३३ ॥ सम, सौम्य, स्थिर, स्वस्थ, शान्त और सबपदार्थोंमें निस्पृह जो स्थितहै वह सक्रियभी अक्रिय है ॥ ३४ ॥ निर्द्वन्द्व, नित्य सत्वमें स्थित, तथा अलब्धकी प्राप्ति और लब्धकी रक्षाकी चिंतासे शून्य, आत्मज्ञानी, और यथाप्राप्त व्यवहार करनेवाले संसारके भूषण तुम बनो ॥ ३५ ॥ जो पुरुष कर्मेंद्रियोंसे विषयोंको त्यागके मनसे उनका स्मरण करताहै वह पाखंडी कहाताहै न कि संन्यासी ॥ ३६ ॥ हे अर्जुन ! जो मनसहित इन्द्रियोंको अपने वशमें करके और शास्त्रके अनुकूल कर्मेन्द्रियोंसे फलकी अभिलाषासे रहित व्यवहार करताहै वह उत्तम संन्यासी है ॥ ३७ ॥ जैसे सर्वथा पूर्ण समुद्रमें नदियां प्रवेश करके उसीका रूप होजाती हैं ऐसेही अचलब्रह्ममें प्रतिष्ठित जिस संन्यासीमें संपूर्ण कामना आत्मरूप होजाती हैं वही शांतिको प्राप्त होताहै न कि कामनावाला ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने आत्मज्ञानोपदेशो नाम चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

देहके नाश होनेसेभी अविनाशी आत्मा मूढ तथा तत्वज्ञानीकेलिये समान है, और मूढ भ्रमसे जन्मादिका भागी होताहै और ज्ञानी नहीं इस बातका वर्णन इस ५५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ नकुर्याद्भोगसंत्यागंनकुर्याद्भोगभावनम् ॥ स्थातव्यंसुसमेनैवयथाप्राप्तानुवर्तिना ॥ १ ॥ अनात्मन्यात्मतांदेहेमाभावयभवात्मनि ॥ आत्मन्येवात्मतांसत्येभावयाभवरूपिणि ॥ २ ॥ देहनाशेमहाबाहोनकिंचिदपिनश्यति ॥ आत्मनाशेहिनाशःस्यान्नचात्मानश्यतिध्रुवः ॥ ३ ॥ नहिशीर्यत्यचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ कर्मण्यभिप्रवृत्तोपिनैवकिंचित्करोतिसः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवान्जी बोले–हे अर्जुन ! देहधारणके हेतु अन्नपानआदि भोगोंका त्याग नहीं करनाचाहिये और भोगोंकी उत्तमताकेलिये चिंताभी न करनी चाहिये किंतु यथाप्राप्त भोगोंको भोगतेहुये समतासे रहनाचाहिये ॥ १ ॥ हे अर्जुन ! जन्मादिविकारयुक्त देहमें आत्मभावना न करो किंतु जन्मादिविकारशून्य सत्य आत्माहीमें आत्मभावना करो ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! देहके नाश होनेसे कुछभी नहीं नष्ट होता, आत्माका नाशही नाश होसकताहै परंतु नित्य आत्मा तो कदाचित् नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ देहादि अभिमानशून्य आत्मा कदाचित् नष्ट नहीं होता और युद्धादिकर्ममें प्रवृत्तभी वह कुछ नहीं करता ॥ ४ ॥

आसक्तिमाहुःकर्तृत्वमकर्तुरपितद्भवेत् ॥ मौर्ख्यस्थितेहिमनसितस्मान्मौर्ख्यंपरित्यजेत् ॥ ५ ॥ परंतत्त्व ज्ञमाश्रित्यनिरासक्तेर्महात्मनः ॥ सर्वकर्मरतस्यापिकर्तृतोदेतिनकाचित् ॥ ६ ॥ अविनाशमनाद्यंतमात्मा नमजरंविदुः ॥ नश्यत्यात्मेतिदुर्बोधोमातवास्त्विहदुःखदः ॥ ७ ॥ नतथापरिपश्यंतिविदितात्मानउत्त माः ॥ पश्यंत्यनात्मनात्मानंस्वमात्मन्यात्ममानिनः ॥ ८ ॥

अर्थ—मनमें अज्ञान रहनेसे कर्मोंमें आसक्तिहीको कर्तता कहतेहैं जो कि न करनेवालेकोभी होती है इसलिये मूर्खता त्यागना चाहिये ॥ ५ ॥ परमतत्वज्ञानका आश्रय लेके संगरहित महात्माके सब कामोंमें तत्पर रहनेपरभी कर्तता कहीं नहीं होती ॥ ६ ॥ अविनाशी, आदिअंतशून्य और अजर आत्माको कहतेहैं, और आत्मा नष्ट होता है ऐसा दुःखदायी अज्ञान तुमको न हो ॥ ७ ॥ उत्तमज्ञानी महात्मा देहादिमें आत्माको नहींदेखते क्योंकि आत्माहीका आत्मा देखतेहैं ॥ ८ ॥

अर्जुनउवाच ॥ एवंचेत्रिजगन्नाथमूढानामपिमानद ॥ देहनाशेसमुत्पन्नेइष्टंनष्टंनकिंचन ॥ ९ ॥ श्रीभग वानुवाच ॥ ॥ एवमेतन्महाबाहोनकिंचिन्नश्यतिक्वचित् ॥ आत्मैवास्त्यविनाशात्माकिंतस्यक्वविनश्यति ॥ १० ॥ इदंनष्टमिदंयुक्तमितिमोहभ्रमादृते ॥ अन्यत्तथानपश्यामिवंध्यास्त्रीतनयंयथा ॥ ११ ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ उभोरपिदृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—अर्जुनजी बोले—हे त्रिलोकीनाथ ! ऐसा माननेसे मूढोंके देहनाश होनेपरभी आत्माका नाश न होनेसे कौनसा प्रियपदार्थ नष्टहुआ ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि—हे महाबाहो अर्जुन ! यथार्थमें ऐसाही है, कहीं किसीका कुछ नष्ट नहीं होता, क्योंकि आत्मा अविनाशी है उसका कहां क्या नष्ट होसकताहै ॥ १० ॥ और यह नष्ट हुआ, यह प्राप्तहुआ इत्यादि मोहभ्रमके सिवाय और कुछ मैं ऐसे नहींदेखता जैसे वंध्यास्त्रीका पुत्र ॥ ११ ॥ क्योंकि असत्पदार्थका भाव और सत्का अभाव नहीं है, सत् सत्ही है और असत्‌असत्ही है, इन दोनोंका निर्णय तत्वज्ञानियोंने देखाहै न कि मूढोंने ॥ १२ ॥

अविनाशितुतद्विद्धियेनसर्वमिदंततम् ॥ विनाशमव्ययस्यास्यनकश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ अंतवंतइमेदे हानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ॥ अनाशिनोप्रमेयस्यतस्माद्युद्धयस्वभारत ॥ १४ ॥ आत्माचैकोस्तिनद्वित्व मसतःसंभवःकुतः ॥ अविनाशस्त्वनंतोसौसतोनाशोनविद्यते ॥ १५ ॥ द्वित्वैकत्वपरित्यागशेषंयत्परि शिष्यते ॥ शांतंसदसतोर्मध्यंतदस्तीहपरंपदम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जिससे सबजगत् व्याप्त है उस आत्माको तुम अविनाशी सत्‌रूप जानो क्योंकि इस अव्ययका कोई नाश नहीं करसकता ॥ १३ ॥ इस देहवान् तथा नित्य अविनाशी और प्रमाणरहित आत्माके देह तो अंतवाले देखेगयेहैं इसलिये तुम युद्ध करो ॥ १४ ॥ आत्मा एक है न कि दो क्योंकि असत् द्वित्वका संभव कहां, यह आत्मा तो नाशरहित अनंत है क्योंकि सत्का नाश नहीं होता ॥ १५ ॥ एकत्व कारण और द्वित्वकार्यको त्यागके सत्‌असत्के मध्यमें जो अधिष्ठानमात्र है वह परमपद आत्मा है ॥ १६ ॥

अर्जुनउवाच ॥ तन्मृतोस्मीतिभगवन्किंकृतातुनृणांस्थितिः ॥ कथंस्थितौचलोकानांतौस्वर्गनरकौप्रभो ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भूमिरापोनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥ एतत्तन्मात्रजालात्माजीवोदेहेषु तिष्ठति ॥ १८ ॥ सकृष्यतेवासनयारज्ज्वेवपशुपोतकः ॥ सतिष्ठतिशरीरांतःपंजरेविहगोयथा ॥ १९ ॥ सकालदेशतोदेहाज्जर्जरत्वमुपागतात् ॥ वासनावशतोयातिप्लक्षपर्णाद्रसोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—अर्जुन बोले—कि जब अपरिच्छिन्न आत्माके मरण आदि नहीं होते तो मैं मृतकहुं यह मनुष्योंकी स्थिति किसकारणसे होती है और स्वर्गनरकभी कैसे होतेहैं ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि हे अर्जुन ! पंचभूतोंके अंशोंसें रचित मनबुद्धिआदिसहित व्यष्टिसमष्टिदेहोंमें भ्रमसे अभेदबुद्धिसे चेतन जीवदशाको प्राप्तहोके स्थित रहताहै येही जीवदशा जन्ममरण सुखदुःखादि भ्रमका निमित्त कारणहै. ॥ १८ ॥ वह जीव वासनासे ऐसे खींचाजाताहै जैसे रज्जुसे वत्स, और वह जीव देहपंजरमें ऐसे स्थित रहताहै जैसे पिंजरेमें पक्षी ॥ १९ ॥ वासनाके वशसे देशकालके द्वारा जर्जरदेहसे जीव ऐसे निकलजाताहै जैसे वटवृक्षके पत्तेसे रस ॥ २० ॥

श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनंचरसनंघ्राणमेवच ॥ गृहीत्वैतानिसंयातिवायुर्गंधानिवाशयात् ॥ २१ ॥ वासनावत्त्व मेवास्यदेहोनेतरयुक्तिजः ॥ क्षीयतेवासनात्यागेक्षीणेभवतितत्पदम् ॥ २२ ॥ वासनावान्परापुष्टोभूत्वा भ्राम्यतियोनिषु ॥ जीवोभ्रमभराभारोमायापुरुषकोयथा ॥ २३ ॥ अक्षस्वभावानखिलाञ्छरीराद्वासना वशः ॥ जीवोगृहीत्वासंयातिपुष्पाद्गंधमिवानिलः ॥ २४ ॥

अर्थ—इन्द्रियोंको ग्रहण करके एक देहसे दूसरे देहमें जीव ऐसे जाताहै जैसे पुष्पसे गंधको ग्रहण करके वायु ॥ २१ ॥ वासनाके कारणसे भ्रमसे इसका देहधारण होताहै न कि अन्ययुक्तिसे, और वासनाके त्यागसे देहभी क्षीण होजाताहै, और उसके क्षीण होनेसे परमपद स्वयं प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ वासनायुक्त तथा आत्मभूत अन्नपानादिसे पुष्ट यह जीव भ्रमका भार धारणाकिये नानायोनियोंमें ऐसे भ्रमण करताहै जैसे मायासे इन्द्रजालका पुरुष आकाशमें ॥२३॥ वासनाके वशसे शब्दादिग्रहणकी शक्तियोंको ग्रहण करके ऐसे जाताहै जैसे पुष्पसे गंधको वायु॥२४

देहोनिस्पंदतामेतिजीवेकौंतेयनिर्गते ॥ निस्पंदावयवाभोगःशांतवातइवद्रुमः ॥ २५ ॥ अचेष्टंछेदभेदादिदोषैरायात्यदृश्यताम् ॥ मृतइत्युच्यतेतेनदेहोविगतजीवितः ॥ २६ ॥ सजीवःप्राणमूर्तिःखेयत्रयत्रावतिष्ठते ॥ तंतंस्ववासनाभ्यासात्पश्यत्याकारमाततम् ॥२७॥ अयंदेहोहिजीवेनत्वसन्नेवावलोकितः ॥ अस्यनाशेत्वमप्येवंपश्यमावासुषुप्तवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे कौंतेय! देहसे जीवके निकलजानेसे देह ऐसे चेष्टारहित होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे वृक्ष ॥ २५ ॥ जब छेदनभेदनादिदोषोंसे चेष्टा भान नहिं होती है तब जीवरहित देहको मृत (मरा) कहतेहैं ॥ २६ ॥ वह प्राणमूर्ति जीव चिदाकाश वा भूताकाशमें जिस २ देह तथा देशकाल भोग्यादि आकारमें रहताहै उसी २ विशाल आकारको अपने वासनाके अभ्याससे देखताहै ॥ २७ ॥ इस देहको जीवने तो मिथ्याही देखाहै, इसके नाश होनेसे तुमभी इसको असत्यही देखो, अथवा सुषुप्तके तुल्य इसके नाश वा असत्यताकोभी न देखो अर्थात् सुषुप्तको जैसे कुछ नहीं भानहोता ऐसेही तुमभी इसका कुछ न देखो ॥ २८ ॥

यथैवपश्यत्याकारांस्तेषांनाशांस्तथैवसः ॥ आदिसर्गेभावनयाकिलैष्वेवंविभावतः ॥ २९ ॥ झटित्युद्भवकालेहियद्यथादृश्यतेपुरः ॥ आनिपातंतदेवास्याअविनाभाविसंविदः ॥ ३० ॥ प्राक्तनंवासनामूलं पुरुषार्थेनजीयते ॥ यत्नेनाद्यतनेनाशुह्यस्तनायतनंयथा ॥ ३१ ॥ यएवपुरुषार्थेनदृष्टोबलवताक्षणात् ॥ पूर्वोत्तरविशेषांशःसएवजयतिस्फुटम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आदिसृष्टिमें ब्रह्माजीने पूर्वसृष्टियोंकी वासनासे जो कुछ अनुभव कियाहै वैसाही गोआदिके आकारोंको वासनासे रचके देखतेहैं ॥ २९ ॥ सृष्टिकालके प्रथमक्षणमें सत्य वा मिथ्या देह, घट आदिके रूप जैसे देखपडतेहैं वैसेही अपने नाशक वे बने रहतेहैं क्योंकि उनकी अधिष्ठानभूत संवित्में वैसाही भान हुआहै ॥ ३० ॥ इस जन्मके पुरुषार्थसे पूर्वजन्मका वासनासमूह ऐसे नष्ट होताहै जैसे इससमयके दाहादिसे पूर्वकालरचित गृह ॥ ३१ ॥ दो पुरुषार्थों (भोग वा मोक्ष) में जो प्रबल होताहै वही चाहै पूर्वका हो वा उत्तरका हो विजयी होताहै ॥ ३२ ॥

अपिस्फुटतिविंध्याद्रौवातिवाप्रलयानिले ॥ पौरुषंहियथाशास्त्रमतस्त्याज्यंनधीमता ॥ ३३ ॥ नरकस्वर्गसर्गादिवासनावशतोभितः ॥ प्रपश्यतिचिराभ्यस्तंजीवोजरठमोहधीः ॥ ३४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ नरकस्वर्गसर्गादिसंभ्रमेषुजगत्पते ॥ किमस्यकारणंब्रूहिजीवस्यजगतःस्थितेः ॥३५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वप्नोपमानातेनेहश्रेयसेवासनाक्षयः ॥ चिराभ्यासवशात्प्रौढासंसारभ्रमकारिणी ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसलिये विंध्याचलके फूटने वा प्रलयके वायु वहनेपरभी बुद्धिमान्को शास्त्रानुकूल पुरुषार्थको न त्यागना चाहिये ॥ ३३ ॥ चारोओरकी वासनाजालके वशसे अनादिकालके अज्ञानसे मूढबुद्धि यह जीव नरक स्वर्ग तथा सृष्टिआदि देखताहै ॥ ३४ ॥ अर्जुन बोले कि—हे भगवन्! जगत्का स्थितिनिमित्तभूत इस जीवके स्वर्ग नरक वा सृष्टिआदिके संभ्रममें क्या कारणहै सो कहिये ॥ ३५ ॥ अनादिकालके अभ्याससे स्वप्नकेतुल्य प्रौढवासनाही संसारके भ्रमदायिनी है इसलिये तत्वज्ञानके अभ्याससे मूलसहित वासनाका नाशही कल्याणकेलिये होताहै ॥ ३६ ॥

अर्जुनउवाच ॥ किमुत्थादेवदेवेशक्षीयतेवासनाकथम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मौर्ख्यमोहसमुत्थानात्वनात्मन्यात्मभावना ॥ आत्मज्ञानान्महाबोधाद्विलयंयातिवासना ॥ ३७ ॥ भावितात्मासिकौंतेयसत्यं विज्ञातवानसि ॥ अयंसोहंजनाएतेममेतित्यजवासनाम् ॥ ३८ ॥ अर्जुनउवाच ॥ वासनाविलयेजीवो विलीनोभवतिस्वयम् ॥ योहियत्सत्तयोच्छूनस्तन्नाशात्सविलीयते ॥ ३९ ॥ जीवेविलयमायातेदेशकालान्यथाकृतौ ॥ कोसौभाजनतामेतिजन्मनोमरणस्यच ॥ ४० ॥

अर्थ—अर्जुनजी बोले कि—हे देवदेवेश ! यह वासना कहांसे निकली और इसका नाश कैसे होताहै, श्रीभगवान्जी बोले कि—हे अर्जुन ! तत्वज्ञानके प्रमादरूप मूर्खतासे जनित अनात्मा देहादिमें आत्मभावनारूप यह वासना आत्मज्ञानरूप महाबोधसे नष्ट होजाती है ॥ ३७ ॥ हे कौंतेय ! तुम पवित्रात्मा हो और सत्यको जानलियाहै इसलिये यह देह वह धन और ये मेरे बन्धुआदिजन इत्यादि वासनाको त्यागो ॥ ३८ ॥ अर्जुनजी बोले कि—वासनाके ना-

शसे जीव स्वयं नष्ट होजाताहै क्योंकि जो जिसकी सत्तासे बढताहै वह उसके नाशसे नष्ट होताहै ॥ ३९ ॥ देशकालके वशसे शुद्धरूपसे अन्यथा आकारधारी जीवके विलय होनेपर जन्म वा मरणका पात्र कौन होसकताहै ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ स्वयंकल्पितसंकल्पमात्मरूपंयदाविलम् ॥ तदेववासनाकारंजीवंविद्धिमहामते ४१ अनायत्तमसंकल्पमात्मरूपंयदव्ययम् ॥ प्रबोधाद्वासनामुक्तंतन्मोक्षंविद्धिभारत ॥ ४२ ॥ जीवन्नेवमहाबाहोतत्त्वंप्रेक्षयथास्थितम् ॥ वासनावागुरोन्मुक्तोमुक्तइत्यभिधीयते ॥ ४३ ॥ योननिर्वासनोनूनंसर्वधर्मपरोपिसः ॥ सर्वज्ञोप्यभितोबद्धःपंजरस्थोयथाखगः ॥ ४४ ॥ दुर्दर्शनस्यगगनेशिखिपिच्छिकेवसूक्ष्मापरिस्फुरतियस्यतुवासनांतः ॥ मुक्तःसएवभवतीहहिवासनैवबंधोनयस्यननुतत्क्षयएवमोक्षः ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने जीवतत्त्वनिर्णयो नाम पंचपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—श्रीभगवानजी बोले कि–हे महामते ! अपनेही संकल्पसे जब आत्माका रूप कलुषित होताहै उसी वासनामय आकारको तुम जीव जानो ॥ ४१ ॥ अपने अधीन संकल्पके अभावसे ज्ञानद्वारा वासनासे मुक्त अविनाशी जो आत्माका रूप है उसीको तुम मोक्ष जानो ॥ ४२ ॥ हे महाबाहो ! वासनाको त्यागके उस आत्मरूप यथास्थित मोक्षको तुम अपने इसी जीवमें देखो क्योंकि वासनाके जालसे जो विनिर्मुक्त है वही मुक्त कहाजाताहै ॥ ४३ ॥ और जो वासनासे विनिर्मुक्त नहीं है वह सबधर्ममें तत्पर और सर्वज्ञ होनेपरभी चारोंओरसे ऐसे बद्ध है जैसे पिंजरेमें पक्षी ॥ ४४ ॥ अपनी मायासे आच्छादित होनेसे जिस परमात्माकी वेदांतप्रमाणके बिना नानाप्रकारकी भ्रमदायिनी सूक्ष्मवासना जगदाकारसे स्फुरित होती है वही जीव अधिकारी शरीरमें तत्वज्ञानसे वासनाके क्षयसे मुक्त होताहै क्योंकि वासनाही बंध है और उसका नाशही मोक्ष है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे अर्जुनोपाख्याने जीवतत्त्वनिर्णयो नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

जीवन्मुक्तिकी प्रतिष्ठाका अर्जुनके लिये उपदेश तथा चिन्मात्र यह जगत्‌का रूप तथा विस्तारसे मनरूप चित्र इस ५६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इतिनिर्वासनत्वेनजीवन्मुक्ततयार्जुन ॥ अंतःशीतलतामेत्यबंधुदुःखमलंत्यज ॥१॥ जरामरणनिःशंकआकाशविशदाशयः ॥ त्यक्तेष्टानिष्टसंकल्पोवीतरागोभवानघ ॥ २॥ प्रवाहपतितंकार्यमिदंकिंचिद्यथागतम् ॥ कुरुकार्याणिकर्माणिनकिंचिदिहनश्यति ॥ ३ ॥ प्रवाहपतितंकर्मस्वमेवक्रियतेतुयत् ॥ जीवन्मुक्तस्वभावोयंसाजीवन्मुक्ततातथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवान्‌जी बोले कि–हे अर्जुन ! इसप्रकार वासनारहित तथा जीवन्मुक्त होके अन्तःकरणमें शीतल होके बन्धुवधादि दुःखोंको सर्वथा त्यागदो ॥ १ ॥ हे अर्जुन ! जरामरणसे निःशंक, आकाशके समान विशाल अंतःकरण और इष्टानिष्टके संकल्पोंके त्यागी तुम बीतराग होजाओ ॥ २ ॥ और शिष्टोंके व्यवहारोंकी परम्परासे आवश्यक यागादि तथा युद्धआदि कार्योंको करो इसमें तुमारे ज्ञानकी कुछ हानि नहीं होगी ॥ ३ ॥ अपने वर्णाश्रमके अनुसार प्रवाहपतित कार्योंका करना जीवन्मुक्तका स्वभाव है और यही जीवन्मुक्तता है ॥ ४ ॥

इदंकर्मत्यजामीदमाश्रयामीतिनिर्णयः ॥ मूढस्यमनसोरूपंज्ञानिनस्तुसमास्थितिः ॥ ५ ॥ प्रवाहपतितंकर्मकुर्वतःशांतचेतसः ॥ जीवन्मुक्ताःसुषुप्तस्थाःस्फुरंत्यत्रसुषुप्तवत् ॥ ६ ॥ स्थिरांसंस्थितिमायांतिकूर्मांगानीवसर्वशः ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्योहृदियस्यस्वभावतः ॥ ७ ॥ विश्वात्मनितथाविश्वंकालत्रयमयोदितम् ॥ अभित्तित्रिजगच्चित्रंकुरुतेचित्तचित्रकृत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इस कर्मको मैं त्यागताहुं इसको ग्रहण करताहुं ऐसा मूढके मनका रूपहै, और ज्ञानीके मनकी तो समान स्थिति रहती है ॥ ५ ॥ शांतचित्त जीवन्मुक्त पुरुष प्रवाहपतित कर्मोंको करतेहुये सुषुप्तके समान इस संसारमें स्थित रहतेहैं ॥ ६ ॥ और जीवन्मुक्तकी इन्द्रियां विषयोंसे विनाही प्रयत्न ऐसे निवृत्त होजाती हैं जैसे किंचित् विक्षेपसे कूर्मके अंग, और हृदयमें स्थित परमात्मामें मनकेसाथ एकरस होके स्थिरस्थितिको प्राप्तहोती हैं ॥ ७ ॥

और चित्तरूप चित्रकार संपूर्ण जगत्के अधिष्ठान परमात्मामें अनेक विचित्रतासे जगत्रूप चित्र तीनोंकालमें बिना-भित्तिके रचनाकरता है ॥ ८ ॥

व्योम्निव्योमात्मकमपिप्रस्फुटंवृत्तिवर्तिभिः ॥ चित्तचित्रकरेणादौचित्रंचित्रंवितानितम् ॥ ९ ॥ पश्चाद्भित्तिःकृताव्योमरूपाचासावहोभ्रमः ॥ अपूर्वैवातिमायेयंतृणकुड्यमयीशुभा ॥ १० ॥ नमनागपिभेदोस्तिस्फुटमप्युपलब्धयोः ॥ इमायाउपलक्ष्यंतेभित्तयश्चित्तचित्रजाः ॥ ११ ॥ व्योम्नःशून्यतमाविद्धितास्तामरसलोचन ॥ क्षणेनचेतसियथाभ्रांतौलोकक्षयोदयौ ॥ १२ ॥

अर्थ—अज्ञानाकाशमें अज्ञानमात्र तथा अनिर्वचनीय इस जगत्रूप विचित्र चित्रका विस्तार आभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप वर्तियोंसे कियाहै ॥ ९ ॥ हे अर्जुन ! समष्टिमनसे सत्यसंकल्पसे संकल्पकालमेंही जगत्रूप चित्रको रचा, अनंतमूर्तिरहित आकाशरूपको उसकी भित्ति कल्पित की, अहो ! यह कैसा भ्रम है कि यह अतिप्रबल विचित्र माया तृणके कुड्यकेसमान तुच्छ होनेपर भ्रमसे शुभ भान होतीहै ॥ १० ॥ प्रसिद्ध चित्र और उनके आधार भित्तिआदिमें भेद रहताहै परंतु ये चित्तरूप चित्रकारसे उत्पन्न आकाशआदि भित्ति तथा उसके आधेय (चित्र) में किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ११ ॥ हे कमलनेत्र अर्जुन ! मनरूपचित्रकारकी रचनाओंको तुम सर्वथा ऐसे अत्यंत असत् समझो जैसे क्षणमेंही स्वप्नमें संसारकी उत्पत्ति और नाश ॥ १२ ॥

आत्माजगत्तथैवेदंसबाह्याभ्यंतरंनभः ॥ चिरंतनमनोराज्यंयत्तस्मात्किलसत्यता ॥ १३ ॥ किंत्वनालोकितेपिस्यात्सत्यंनास्त्येवविभ्रमे ॥ क्रमेणालोकतःसत्यमालोकेनविलीयते ॥ १४ ॥ दृश्यमानमपिक्षामंशरदीवाभ्रमंडलम् ॥ चित्तचित्रकृतश्चित्रेसंस्थिताश्चित्रपुत्रिकाः ॥ १५ ॥ भित्त्यभावादनाकाराबहिस्त्रिभुवनादिकाः ॥ नताःसंतिनवासित्वंकिंकेनपरिरोध्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—यह मन तथा इसका कार्य संपूर्ण बाह्य आभ्यंतर जगत् आकाशके समान शून्य और स्वप्नके पदार्थके तुल्य असत् है और उसकी सत्यताकी प्रतीति चिरकालके मनोराज्यकी अनुवृत्तिसे है ॥ १३ ॥ हे अर्जुन ! भ्रांतिसे कल्पित पदार्थोंमें सत्यता जो तीनोंकालमें नहींहै वह क्या तत्वज्ञानसे प्रथम होसकती है नहीं और वह वसंतआदि कालक्रमसे और बाल्यआदि अवस्थाक्रमसे आलोकन करनेसे और तत्वदर्शनरूप प्रकाशसे ऐसे नष्ट होजातीहै जैसे शरत्कालमें सूर्यके प्रकाशसे दृश्यमान मेघमंडल, इसीप्रकार चित्तरूप चित्रकारसे रचित त्रिभुवनआदि पुतली जो भान होतीहै वह भित्तिके अभावसे आकाररहित होनेसे यथार्थमें नहीं है, और न शरीरधारी तुम हो और कौन किसको मारताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

रोध्यरोधकसंमोहंत्यक्त्वाखेविमलोभव ॥ प्रवृत्तिरेवनव्योम्नःप्रवृत्तिश्चैवखात्मिका ॥ १७ ॥ अतःकालक्रियाकुड्यकलादिविमलंनभः ॥ चित्तसंस्थंयथाचित्रंसरूपमखिलात्मकम् ॥ १८ ॥ व्योम्नःशून्यतमंविद्धितथेदमखिलंजगत् ॥ चित्तभित्तौकृतंचित्रंयच्चित्रकरेणतत् ॥ १९ ॥ सर्वशून्यतयाव्योम्नोमनागपिनभिद्यते ॥ यथाप्रकचतश्चित्तेजगन्निर्माणसंक्षयौ ॥ २० ॥

अर्थ—तुम वध्यघातकभावके शोकको त्यागके चिदाकाशमें निर्मल स्थितरहो क्योंकि चिदाकाशकी वधादिमें प्रवृत्तिही नहीं होती और जो प्रातिभासिक प्रवृत्ति होती है वह ब्रह्माकाशरूपही है ॥ १७ ॥ इसलिये काल क्रिया जगत् और इनके रचनेकी कुशलतादि सब चिदाकाशरूपही है और यह सब जगत्का चित्र मनोराज्यके समान चित्तमेंही स्थित है ॥ १८ ॥ और अज्ञात चित्तरूप चित्रकारने चित्तरूप भित्तिमें जो जगत्रूप चित्र रचाहै वह आकाशके समान सर्वथा शून्य होनेसे किंचित्भी छेदित नहीं होता और क्षणभरकेलिये मनोराज्यमें जैसे चित्तमें जगत्की उत्पत्ति और नाशका भान होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

क्षणेनैवतथैवेमौभुविस्थाविततिविद्धिहे ॥ अद्यक्षीणामनोराज्येनानानुभवनात्मनि ॥ २१ ॥ क्षणभावितमोहेनकल्पनापरिकल्पिता ॥ असदेवमनोराज्यंकर्तुंशक्तंयथामनः ॥ २२ ॥ क्षणस्यकल्पीकरणेतथैवबलवन्मनः ॥ क्षणंकल्पीकरोत्येतत्तच्चाल्पंकुरुतेबहु ॥२३॥ असत्सत्कुरुतेक्षिप्रमितीयंभ्रांतिरुत्थिता॥ क्षणेनैवमनोराज्यंप्रतिभातंस्वभावतः ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही पृथिवीपर स्थित जगत्की उत्पत्ति और नाशको तुम जानो, और नानाब्रह्मांडमय तुमारे मनोराज्यमें क्षणमात्रकेलिये उत्पन्न मोहसे कल्पित वध्यघातकभावादि कल्पना आज मेरे उपदेशसे क्षीणहुई, और यह मन जैसे असत्को सत् करताहै वैसेही क्षणको कल्प करनेमेभी समर्थ है, और क्षणका कल्प और असत्की उत्पत्ति यह इस मनका अतिआश्चर्य नहीं है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्योंकि यह असत् (जगत्) कोभी सत् करके

दर्शाताहै, यह जगत्‌की भ्रांति इसी मनसे आविर्भूत है क्योंकि इसके स्वभावसेही क्षणभरमें यह जगत्‌रूप मनोराज्य कल्पित है ॥ २४ ॥

यद्विचित्रात्मतदिदंजगज्जालमितिस्थितम् ॥ सर्गेनिर्वाणनिष्ठत्वान्निमेषमयमुत्थितम् ॥ २५ ॥ प्रतिभा मात्रतोत्रैवकल्पितावज्रसारता ॥ प्रतिभासविपर्यासमात्रंह्यविदिताकृतेः ॥ २६ ॥ प्रवृत्तौवानिवृत्तौवा केवसावज्रसारता ॥ चित्तचित्रकृतश्चित्स्थंजगच्चित्रंकदास्थितम् ॥ २७ ॥ अकुड्यमप्यरंगाढ्यमिदं स्फारमिवाग्रतः ॥ अहोनुचित्रनिर्भित्तिचित्रमुज्ज्वलमुत्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और आत्मामें नित्य अध्यस्त यह जगज्जाल क्षणमात्रकेलिये जो आविर्भूत है इस जगत्‌को न जाननेवालोंने वज्रसारता कल्पित की है परन्तु यह अज्ञात आत्माका अन्यथा आभासमात्र है क्योंकि ऐसे जगत्‌के अध्यारोप वा बाधमें वज्रसारता क्या होसकती है क्योंकि चित्ररूप शिल्पीसे रचित जगत्‌रूप चित्र चेतनमें अपने रूपसे कब स्थितरहा ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अहो! यह कैसा आश्चर्य है कि यह जगत्‌रूप चित्र भित्ति तथा रंग लेखनी आदिसे रहितभी कैसा उज्ज्वल स्फुरित होरहाहै ॥ २८ ॥

सुरंजनंजगदितिस्फुटंदृष्टिविलोभनम् ॥ नानातमोमषीलेखंनानातेजोंशुरंजनम् ॥ २९ ॥ नानाकल्पांगा वयवंनानारागानुरंजितम् ॥ नानादृष्टिविलासाढ्यंनानानुभवलोचनम् ॥ ३० ॥ नानाग्रहोग्रकचनंनाना काराग्रपश्चिमम् ॥ व्योमनीलसरःफुल्लताराचंद्रार्कपंकजम् ॥ ३१ ॥ विचित्ररचनोद्युक्तमेघालीपत्रमं जरि ॥ प्रकोष्ठकाभिलिखितसुरासुरनृपुत्रिकम् ॥ परमालोकमंकोलयुवताकाशकुड्यकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह जगत्‌रूप चित्र सबको अपनेमें लुभानेवाला, मन तथा अन्य इन्द्रियोंका वशीकारक नानाप्रकारके तमरूप मषीलेखोंसे युक्त तथा नानाप्रकारके तेजरूप रंगोंसे सबका रंजक है ॥ २९ ॥ और नानाप्रकारके कल्प और सत्ययुग आदि उनके अंगसहित, नानाप्रकारके राग रूप रंगनेकी सामग्रीसहित नानाप्रकारकी दृष्टियोंके विलासोंसे पूर्ण और नानाप्रकारके अनुभवरूप नेत्रसहित है ॥ ३० ॥ पुनः इस जगत्‌रूप चित्रमें नानाप्रकारके ग्रह शोभित होरहेहैं और सूर्यके उदय तथा अस्तसमयमें पूर्व तथा पश्चिमदिशा इसमें नानाप्रकारका रूप धारणकरतीहैं, और इस जगत्‌रूप चित्रमें नील आकाशरूप तडाग, विकसित तारागण, चन्द्र तथा सूर्यरूप कमलोंसे शोभित होरहाहै ॥३१॥ और शरदादि कालभेदसे विचित्र रचनाओंसे युक्त मेघोंकी पंक्तिरूप लता और मंजरी है जिसमें और तीनोंलोकरूप प्रकोष्ठों (गृहों) में सुर, असुर तथा मनुष्योंकी प्रतिमा चारोओरसे जिसमें लिखित हैं और परमशोभायुक्त चन्द्र सूर्यादिके प्रकाशरूप सफेतीसे नूतन निर्मितके समान जिसकी शोभा है ऐसा आकाश जिसमें भित्ति है ॥ ३२ ॥

आकाशएवरचिताप्रतिमैकरंगासुग्धाजगत्त्रयमनोहरपुत्रिकेयं ॥ चिन्मात्रचक्रपरिरंजितसर्वलोकालीला कुलाचपलचित्तकचित्रकर्त्रा ॥३३॥ हेमाचलांगलतिकाघनकेशपाशाचंद्रार्कलोचनविचालनदृष्टलोका॥ धर्मार्थकामविनियंत्रितशास्त्रवस्त्रापातालजालचरणोन्नतभूनितंबा ॥ ३४ ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रहरिबाहुचतुष्टयो ग्रासत्वावृतोन्नतकुचस्फुरदंगयष्टिः ॥ सुव्यालवेष्टितमहीतलपद्मपीठापत्रीकृताचलमहाभुवनोदरीच ॥ ३५ ॥ रात्र्यंधकारचपलत्वहराक्षिचेष्टातागकरालपुलकापविदंतपंक्तिः ॥ चंचच्चतुर्दशविधातुलभूत जातरोमांचनाप्रलयवादकदंबपुष्पा ॥ ३६ ॥ जीवान्वितागगनएवकृताविचित्राव्योमात्मिकाचिरविल क्षणचित्रकर्त्रा ॥ चित्तेनचित्रपरिकर्मविदात्रिलोकीनानाविलासवलितावरपुत्रिकेति ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने चित्तवर्णनं नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—नित्य नूतन कल्पना करनेवाली बुद्धिरूप नृत्यशालामें नृत्य करनेवाली, चक्रके सदृश परिवर्तनशील बुद्धिकी वृत्तियोंसे साक्षी चेतनको सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाली तथा नृत्य हावभाव आदि लीलाओंसे व्याकुल त्रिलोकीरूप मुग्ध मनोहर नटीको चित्तरूप चंचल चित्रकारने चिदाकाशमें रचाहै ॥ ३३ ॥ सुवर्णमय ब्रह्मांडरूप अंगलताको धारण करनेवाली, मेघरूप केशपाशसंयुक्त, चंद्रसूर्यरूप नेत्रोंके संचालनसे सबलोकोंको देखनेवाली, धर्म, अर्थ तथा कामकेलिये चेष्टायुक्त प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप दो वस्त्रोंको धारणकरनेवाली, सप्तपातालोंके समूहरूप चरणधारिणी और उच्च पृथिवीरूप नितंबधारिणी यह त्रिलोकीरूप नटी है ॥ ३४ ॥ तथा ब्रह्मा, इंद्र, रुद्र और विष्णुरूप, चार भुजाओंसे अति समर्थ, सत्वगुणरूप कंचुकीसे आच्छादित, महाविवेक तथा वैराग्यरूप दो कुचोंसे शोभायमान अंगलताको धारणकियेहुये, शेष आदि उत्तम व्यालोंसे वेष्टित महीतलरूप पद्मासनपर स्थित, और तिलकस्थानापन्न नानाप्रकारके वर्णयुक्त हिमालय तथा अंजनादि पर्वतयुक्त महाभुवनरूप उदर धारणकिये यह त्रिलोकीरूप

देवनटी है ॥ ३५ ॥ सूर्यचंद्ररूप नेत्रोंकी चेष्टासे मेरुको प्रदक्षिणा करनेवाले रात्रिके अंधकारको दूर करनेवाली ताराणरूप करालपुलकसंयुक्त, विद्युत्‌रूप दंतकी पंक्तियोंसे शोभित, चंचल चौदहप्रकारके प्राणिसमूहरूप रोमांचधारिणी और भूत भुवन तथा पर्वतादिके प्रसिद्ध प्रलयवातरूप कदंबपुष्पधारिणी यह त्रिलोकीरूप देवनटीहै ॥३६॥ समष्टिव्यष्टिरूप जीवसंयुक्त, विचित्ररूप, आकाशके सदृश शून्यरूप, और नानाप्रकारके विलासोंसे पूर्ण त्रिलोकीरूप इस श्रेष्ठ प्रतिमा (तसबीर) को चित्रकी सामग्रीरूप विचित्र वासनाकामकर्मसंयुक्त चित्तरूपचित्रकारने अपने अधिष्ठानभूत चिदाकाशमें खींचाहै ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने चित्तवर्णनं नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

जिस दृष्टिसे मन शीघ्र वासनारहित होताहै और जिससे सुखस्वरूप अद्वैत आत्माकी स्थिति होती है उस दृष्टिका वर्णन इस ५७ के सर्गमें कियाहै ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इदंविद्धिमहाश्चर्यमर्जुनेहहियत्किल ॥ पूर्वसंजायतेचित्रंपश्चाद्भित्तिरुदेतिहि ॥१॥ अभितावुत्थितेचित्रेदृश्यतेभित्तिराता ॥ अहोविचित्रामायेयंमग्नंतुंबशिलाप्लुता ॥ २ ॥ चित्तस्थचित्रसदृशेव्योमात्मनिजगत्त्रये ॥ व्योमात्मनस्तेकिमियमहंताव्योमतोदिता ॥ ३ ॥ सर्वव्योमकृतंव्योम्ना व्योम्निव्योमविलीयते ॥ भुज्यतेव्योमनिव्योमव्योमव्योमनिचाततम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवान्‌जी बोले कि-हे अर्जुन! इससंसारके विषयमें बडा आश्चर्य यह समझो कि प्रथम यह जगत्‌चित्र और पश्चात् उसकी आधार भित्ति उदित होती है ॥ १ ॥ विनाभित्तिकेही यह जगत्‌चित्र देखपडताहै और उसके अनंतर यह विशाल भित्ति आविर्भूत हुई, अहो यह कैसी विचित्र माया है कि जैसा स्वप्नमें अथवा इन्द्रजालमें तुंबा डूबगया और पाषाण तरने लगा ऐसा विचित्र प्रकार भासमान होताहै ऐसीही मायाभी असंभावित प्रकार करनेवाली है ॥ २ ॥ चित्तमें स्थित चित्रके सदृश आकाशके तुल्य तीनोंलोकमें चिद्रूप तुमारी अहंता कैसे उदित हुई ॥ ३ ॥ यह सब कुछ चिदाकाशसे चिदाकाशमेंही रचा गयाहै और चिदाकाशरूप यह जगत् चिदाकाशमेंही लीन होताहै, तथा चिदाकाशमें चिदाकाशही भोक्ताहै, और चिदाकाशमें चिदाकाशही व्याप्तहै ॥ ४ ॥

वेष्टितंवासनारज्ज्वादीर्घसंसृतिदामवत ॥ वासनोद्वेष्टनेनैवतदिहोद्वेष्ट्यतेऽर्जुन ॥ ५ ॥ प्रतिबिंबंयथादर्शेतथेदंब्रह्मणिस्वयम् ॥ अगम्यंछेदभेदादेराधारानन्यतावशात् ॥ ६ ॥ अनन्यच्छेदभेदादिब्रह्मणिब्रह्मणांबरम् ॥ किंकथंकस्यकेनैवच्छिद्यतेवाक्भिद्यते ॥ ७ ॥ तेनेहवासनाभावोबोधात्संपन्नएवते ॥ योननिर्वासनोनूनंसर्वधर्मपरोपिसन् ॥ ८ ॥

अर्थ—दीर्घसंसार जिसमें भ्रमण है ऐसा यह जगत्‌चित्र वासनारूप रज्जुसे वेष्टित है इसलिये इस जगत्‌में चिदाकाशका दर्शन वासनाके छोडनेसे होताहै ॥ ५ ॥ जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब है ऐसेही यह जगत् ब्रह्ममें स्थितहै और ब्रह्मरूप आधारसें अभिन्न होनेसे यह छेदनभेदनादिक्रियाके अगम्य है ॥ ६ ॥ छेदनभेदनादिव्यवहार ब्रह्ममें प्रतिभासमान जगत्‌मेंहै और जब जगत् ब्रह्मसे अभिन्न सच्चिदाकाशरूपही है तब कौन किसका छेदन भेदन करसकताहै, और कौन कहां कैसे छिन्नभिन्न होसकताहै ॥ ७ ॥ इसलिये वासनाका उच्छेद ज्ञानसेही होसकताहै, और जो वासनासहित है वह चाहै सबधर्मोंमें तत्परभी हो ॥ ८ ॥

सर्वज्ञोप्यतिबद्धात्मापंजरस्थोयथाहरिः ॥ यस्यास्तिवासनाबीजमत्यल्पंचितिभूमिगम् ॥९॥ बृहत्संजायतेतस्यपुनःसंसृतिकाननम् ॥ अभ्यासाद्दृढरूढेनसत्यसंबोधवह्निना ॥ निर्दग्धंवासनाबीजंनभूयःप्ररोहति ॥१०॥ दग्धंतुवासनाबीजंननिमज्जतिवस्तुषु ॥ सुखदुःखादिषुस्वच्छंपद्मपत्रमिवांभसि ॥११॥ शांतात्माविगतभयोज्झितामिताशोनिर्वाणोगलितमहामनोविमोहः॥ सम्यक्त्वंश्रुतमवगम्यपावनंतत्तिष्ठात्मन्यपहतिरेकशांतिरूपः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—और सर्वज्ञभी हो परंतु वह पिंजरेके सिंहके समान बद्धही है, और जिसकी चित्‌रूप भूमिमें किंचित्‌भी वासनाका बीज है ॥ ९ ॥ वह बीज शीघ्रही महान् संसाररूप बन होजाताहै, और अभ्याससे जब हृदयमें सत्य आत्मज्ञानरूप अग्नि प्रज्वलित होताहै तब वासनारूप बीज दग्ध होके पुनः नहीं जमता ॥१० ॥ और जिस मनके बीज दग्ध होगये हैं वह सुखदुःखादिजनक पदार्थोंमें ऐसे नहीं डूबता जैसे जलमें कमलपत्र ॥ ११ ॥ हे अर्जुन ! तुम संपूर्ण आशाओंको त्यागकर उस परमपवित्र भगवद्गीतारूप उपदेशको अच्छीतरह जानके मनके महामोह तथा बंधुओंके क्लेशादिसे रहित होके वासनासे शून्य, निर्भय, शांतचित्त, ब्रह्मरूप मुक्त होके स्थित रहो ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

तत्वज्ञानसे अविद्यासहित वासनाका नाश और अर्जुनकी कृतार्थता इस ५८ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

अर्जुनउवाच ॥ ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥ स्थितोस्मिगतसंदेहःकरिष्येवचनं तव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृत्तयोयदिबोधेनसंशांताहृदयेस्फुटम् ॥ तच्चित्तंशांतमेवांतर्विद्धिसत्व मुपागतम् ॥ २ ॥ अत्रतच्चेत्यरहितंप्रत्यक्चेतननामकम् ॥ यत्त्वशेषविनिर्मुक्तंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥३॥ नकेचनविदंत्येतेतत्पदंजागतादयः ॥ भूतलाद्गगनोड्डीनंविहंगममिवोन्नतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—अर्जुनजी बोले-कि हे भगवन् ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्टहुआ और आत्मज्ञानकी स्मृति प्राप्त-हुई, अब संदेहरहित मैं स्थितहुं आपकी आज्ञा पालन करूंगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले--कि हे अर्जुन ! यदि रागद्वेषादिकी वृत्तियां नष्ट होगई तो समझो कि चित्त वासनारहित दशाको प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ और इस निर्वासना-रूप सत्वअवस्थामें सब व्यवहारोंमें अनुस्यूत सर्वरूप जो साक्षी चेतन तथा विषयरहित है उसीको तुम ब्रह्म समझो ॥ ३ ॥ इस साक्षीचेतनको नेत्रआदि इन्द्रियां तथा अज्ञानीजन ऐसे नहीं जानते जैसे भूतलसे ऊंचे आकाशमें उडे-हुये पक्षीको ॥ ४ ॥

प्रत्यक्चेतनमाभासंशुद्धंसंकल्पवर्जितम् ॥ अगम्यमेनमात्मानंविद्धिदूरंदृशामिव ॥ ५ ॥ सर्वातीतंयद त्यच्छंविनाशुद्धंस्ववासना ॥ नशक्नोतिपदंद्रष्टुंजनदृष्टिरणूनिव ॥ ६ ॥ यत्प्राप्तौसर्वएवेमेक्षीणाघटपटा दयः ॥ वराकीवासनातत्रकिंकरोतुपरेपदे ॥ ७ ॥ यथानलगिरिंप्राप्यहिमलेशोविलीयते ॥ शुद्धमासाद्य चित्तत्वमविद्यालीयतेतथा ॥ ८ ॥

अर्थ—महाभूत तथा मन इन्द्रियादिके प्रकाशक, शुद्ध और सब संकल्पोंसे वर्जित साक्षी चेतनको तुम मन वाणी तथा अन्य इन्द्रियोंका अविषय ऐसे जानो जैसे दूर देश दृष्टियोंका ॥ ५ ॥ वासनासहित प्राणी सबसे अति-शुद्ध आत्माको ऐसे नहीं देखसकता जैसे मनुष्योंकी दृष्टि परमाणुओंको ॥ ६ ॥ जिसकी प्राप्तिमें घटपटादि स्थूलप-दार्थभी क्षीण होगये उस पदकी प्राप्ति सूक्ष्म तथा दीन वासना क्या करसकती है ॥ ७ ॥ जैसे अग्निके पर्वतपर जाके हिमका कण क्षीण होजाताहै वैसेही शुद्ध चित्‌को प्राप्त होकर अविद्या लीन होजाती है ॥ ८ ॥

क्ववराकीरजस्तुच्छावासनाभोगबंधनम् ॥ क्वपूरितजगज्जालश्चित्तत्वविपुलानिलः ॥ ९ ॥ तावत्स्फुर त्यविद्येयंनानाकारविकारिणी ॥ यावन्नसंपरिज्ञातःशुद्धःस्वात्मायमात्मना ॥ १० ॥ सर्वादृश्यदृशःक्षी णाःस्वच्छतैवोदितातथा ॥ नभसीवपदेतस्मिन्स्वात्मन्यखिलपूरणे ॥ ११ ॥ समग्राकाररूपंतत्सम ग्राकारवर्जितम् ॥ वागतीतंपरंवस्तुकेननामोपमीयते ॥ १२ ॥

अर्थ—कहां तो तुच्छ रजःकणके समान तुच्छ वासनाका भोगबंधन! और कहां अनेक ब्रह्मांडसमूहको पूर्ण करनेवाला चेतनरूप महान्‌वायु ॥ ९ ॥ यह नानाप्रकारके आकारोंसे विकारवती अविद्या तभीतक स्फुरित होती है जबतक कि आत्मासे मनसे यह शुद्ध आत्मा नहीं जानाजाता ॥ १० ॥ आकाशके समान सबको अपने उदरमें रखनेवाले उस आत्मपदमें सब दृश्यकी दृष्टि क्षीणहै उसमें केवल स्वच्छता मात्रहै ॥ ११ ॥ संपूर्ण आकाररूप, तथा सब आकारोंसे वर्जित और वाणीसे परे उस परमवस्तु (ब्रह्म) की उपमा किससेकी जाय ॥ १२ ॥

विषयविषविषूचिकामतस्त्वंनिपुणमहंस्थितिवासनामपास्य ॥ अभिमतपरिहारमंत्रयुक्त्याभवविभवो भगवान्भियामभूमिः ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिगदितवतित्रिलोकनाथेक्षणमिवमौनमुपस्थिते

पुरस्तात् ॥ अथमधुपइवासिताब्जखंडेवचनमुपैष्यतितत्रपांडुपुत्रः ॥ १४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ परिगलितसमस्तशोकभारापरमुदयंभगवन्मतिर्गतेयम् ॥ ममतववचनेनलोकभर्तुर्दिनपतिनापरिबोधिताब्जिनीव ॥१५॥ इत्युक्त्वोत्थायगांडीवधन्वासहरिसारथिः ॥ अर्जुनोगतसंदेहोरणलीलांकरिष्यति ॥१६॥ करिष्यतिक्षतगजवाजिसारथिद्रुतक्षरद्रुधिरमहानदींभुवम् ॥ शरोत्करप्रसरमहारजःस्थलीतिरोहितद्युमणिविलोचनांदिवम् ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनकृतार्थतानामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्जुनोपाख्यानंसमाप्तम् ।

अर्थ—हे अर्जुन! तुम पूर्णात्मदर्शनसे इष्टपदार्थोंकी निवृत्तिरूप मंत्रकी युक्तिसे, विषयरूप विषविषूचिका, अहंकारकी स्थिति और वासनाको निपुणतासे त्यागके संसारके बंधनसे रहित, और सब अनर्थोंके अविषय साक्षात् भगवान्रूप तुम होजाओ ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी! त्रिलोकके स्वामी श्रीकृष्णभगवान् इतना कहके मौन धारण करके जब संमुख स्थित होंगे अनंतर पांडुपुत्र अर्जुन वचनको ऐसे धारण करैंगे जैसे कमलके खंडको भ्रमर ॥ १४ ॥ अर्जुनजी बोले—कि हे भगवन्! आपके वचनसे समस्त शोकभारोंको त्यागके मेरी मति परम उदयको ऐसे प्राप्त हुई जैसे सूर्यके उदयसे कमलिनी ॥ १५ ॥ ऐसा कहके गांडीवधनुषधारी कृष्ण है जिसका सारथी ऐसे संदेहरहित अर्जुनजी रणकी लीला करैंगे ॥ १६ ॥ और जिसमें घायल गज वाजि तथा सारथि आदि शीघ्र बहैंगे ऐसी बहतेहुये रुधिरकी नदीसंयुक्त पृथिवीको तथा बाणोंके प्रवाहसे महारजसे निर्मित स्थलीसे अंतर्हित सूर्ययुक्त दिवसकोभी करैंगे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनकृतार्थतानामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्जुनोपाख्यानं समाप्तम् ।

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

जीवन्मुक्तके पदमें जिस दृष्टिसे निश्चल स्थिति होती है उस दृष्टिका वर्णन इस ५९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यराघवाघविनाशिनीम् ॥ तिष्ठनिःसंगसंन्यासब्रह्मार्पणमयात्मकः ॥ १ ॥ यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयःसर्वंसर्वतश्चयः ॥ यश्चसर्वमयोनित्यमात्मानंविद्धितंपरम् ॥ २ ॥ दूरस्थमप्यदूरस्थंसर्वगंतत्स्थमेवच ॥ तत्स्थःसत्तामवाप्नोषितदेवास्यस्तसंशयः ॥ ३ ॥ यत्संवेद्यविनिर्मुक्तंसंवेदनमनिर्मितम् ॥ चेत्यमुक्तंचिदाभासंतद्विद्धिपरमंपदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे राघव ! तुम सर्वपापनाशिनी इस दृष्टिका आश्रय लेके असंगतारूप संन्यासमें ब्रह्मार्पणमय (तत्त्वंपदार्थके शोधनसे सच्चिदानंदरूप) होके स्थितरहो ॥ १ ॥ जिसमें सब स्थित है, जिससे सब उत्पन्न है, संहारसमयमें जो सर्वरूप है और जो तीनोंकालमें है तथा जो नित्यरूप सबसे परे है उसीको तुम आत्मा जानो ॥ २ ॥ दूर होनेपरभी आत्मा समीपस्थ है, आकाशवत् सर्वगामी होनेसेभी जातिके तुल्य सबमें पर्याप्त है, तुम परिच्छिन्नरूपसेभी उसीमें सत्ता पातेहो इसलिये निःसंदेह तद्रूप हो ॥ ३ ॥ जो संवेद्य (ज्ञेय) से विनिर्मुक्त, अकृत्रिम ज्ञानस्वरूप और विषयसे वर्जित चिदाभासरूप है उसीको तुम परमपद जानो ॥ ४ ॥

सापरापरमाकाष्ठासादृशांदृगनुत्तमा ॥ सामहिम्नांचमहिमागुरूणांसातथागुरुः ॥ ५ ॥ सआत्मातच्चविज्ञानंसशून्यंब्रह्मतत्परम् ॥ तच्छ्रेयःसशिवःशांतःसाविद्यासापरास्थितिः ॥ ६ ॥ योयमंतश्चितेरात्मासर्वानुभवरूपकः ॥ यत्रस्वदंतेसर्वाणिस्वात्मद्रव्याणिसत्तया ॥ ७ ॥ सजगत्तिलतैलात्मासजगद्गृहदीपकः ॥ सजगत्पादपरसःसजगत्पशुपालकः ॥ ८ ॥

अर्थ—वही विषयादिसे शून्य चित् सर्वोत्तम परमकाष्ठा है, वही सबदृष्टियोंमें उत्तम दृष्टि है, वही सब महत्वोंकी महिमा है, और वही सर्वमान्य ऋषि मुनि आदिकी गुरु है ॥ ५ ॥ वही आत्मा है, और वही विज्ञान है, वही सबसे शून्य परब्रह्म है, वही सर्वश्रेष्ठ कल्याण है, वही शांत शिव है, वही विद्या है, और वही सर्वोपरि स्थिति है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जो सब पदार्थोंका अनुभवरूप चेतन आत्मा है और जिसमें सब द्रव्य अपनी सत्तासे स्वादिष्ट प्र-

तीत होतेहैं वही परब्रह्म है ॥ ७ ॥ वही आत्मा जगत्‌रूप तिलका तैल है, वही जगत्‌रूप गृहका दीपक है, वही जगत्‌रूप वृक्षका रस है, तथा वही जगत्‌रूप पशुओंका पालक है ॥ ८ ॥

सतंतुर्भूतमुक्तानांपरिप्रोतहृदंबरः ॥ सभूतमरिचौघानांपरमातीक्ष्णतातथा ॥ ९ ॥ सपदार्थेपदार्थत्वं सतत्वंयदनुत्तमम् ॥ ससतोवस्तुनःसत्त्वमसत्त्वंवासतःस्वतः ॥ १० ॥ यःस्ववित्तिविचित्रेणस्वयमात्मावलभ्यते ॥ सर्वएवजगद्भावाअविचारेणचारवः ॥ ११ ॥ अविद्यमानाःसद्भावाविचारविशरारवः ॥ अहमादौजगज्जालमिथ्याभ्रमभरात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—सब प्राणीरूप मोतियोंका हृदयाकाशमें गूंथा सूत वही है, और प्राणीरूप मरिचसमूहोंकी परम तीक्ष्णता वही है ॥ ९ ॥ सबपदार्थोंमें पदार्थत्व वही आत्मा है, सर्वोत्तम तत्व वही है, असद्वस्तुकी उत्तमता वही है, और असत्वस्तुकी असत्ताभी वह स्वयं है ॥ १० ॥ जो अपने २ स्वरूपके यथार्थज्ञानसे आपही प्राप्तहोताहै वही आत्मा ब्रह्म है, और सब जगत्‌के भाव अविचारसे उत्तम प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ यथार्थमें सब पदार्थ अविद्यमानही भान होते हैं और विचारसे नष्ट होजातेहैं, क्योंकि मिथ्या भ्रमसमूहरूप इस जगत्‌जालमें मैं कौन होके प्रथम आस्था करताहुं और असंग तथा अद्वैतरूप मुझे बुद्धि कैसे प्राप्तहुई, और आदि अंत तथा मध्यादिपरिच्छेदसहित संकल्पोंकी कल्पनाभी मैंही हुं इससे मेरी इयत्ता नहीं होसकती ॥ १२ ॥ १३ ॥

कोनुभूत्वानुबभ्रामित्रत्तिकथमवापधीः ॥ आद्यमध्यांतमानानिसंकल्पकलनान्यहम् ॥ १३ ॥ ब्रह्माकाशमनाद्यंतंकेवेयत्ताममात्मनः ॥ इतिनिश्चयवानंतःसम्यग्व्यवहृतिर्बहिः ॥ १४ ॥ उदयास्तमयोन्मुक्तस्थितिरंतःससर्वदा ॥ नास्तमेतिनचोदेतिमनःसमसमस्थितम् ॥ १५ ॥ यस्यखस्येवशून्यत्वंसमहात्मेहतद्वपुः ॥ भावाद्वैतपदारूढःसुषुप्तपरयाधिया ॥ १६ ॥

अर्थ —मैं तो आदि अंत तथा मध्यशून्य चिदाकाशरूपही हुं, मुझ आत्मारूपकी इयत्ता (इतनापन) कहां ऐसा अन्तःकरणमें निश्चय करनेसे और बाहरसे संपूर्ण व्यवहार होनेपरभी आत्माकी स्थितिमें भेद नहीं है ॥ १४ ॥ जिसका मन समसेभी सम ब्रह्ममें स्थित है उस महात्माके अन्तःकरणकी स्थिति सदा उदयअस्तसे शून्य रहतीहै, क्योंकि यह भावना (नकि व्यवहार) से सुषुप्तिमें तत्परबुद्धिद्वारा आत्मरूपपदमें आरूढ है ॥ १५ ॥ १६ ॥

व्यवहार्यपिसंक्षोभंनैत्यादर्शनरोयथा ॥ आदर्शपुरुषस्येवव्यवहारवतोपिच ॥ १७ ॥ नयस्यहृदयोल्लेखो मनागपिसमुक्तिभाक् ॥ अविभागमिवादर्शेचिन्मणौप्रतिबिंबति ॥ १८ ॥ चितेःपरमनैर्मल्याद्व्यवहारोयथागतः ॥ चिच्चमत्कृतिरेवेयंजगदित्यवभासते ॥१९॥ नेहास्त्यैक्यंनचद्वित्वंममादेशोपितन्मयः ॥ वाच्यवाचकशिष्येहागुरुवाक्यैश्चमत्कृतैः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मज्ञानी पुरुष व्यवहार करताहुआभी व्यवहार करतेहुये दर्पणके पुरुषके समान क्षोभको नाहिं प्राप्त होता ॥ १७ ॥ जिस ज्ञानीपुरुषके हृदयमें मान तथा अपमानजनित कुछ सुखदुःख नहीं होता वह मुक्तिका भागी है, और दर्पणमें दृश्यमान मनुष्योंका व्यवहार दर्पणकी विचित्रताका विभाग न करके दर्पणमें जैसे प्रतिबिंबित होताहै ऐसेही ॥१८॥ चेतनरूप मणिमें उसकी अतिनिर्मलतासे यथाप्राप्त जगत्‌का व्यवहार प्रतिबिंबित होताहै और यह चित्‌काही चमत्कारहै जो इसप्रकार जगत् भासताहै ॥१९॥ इस चित्‌में न तो एकत्व है न द्वित्व है किंतु केवल चिन्मात्रही है और वाच्यवाचकशब्दार्थ शिष्यकी चेष्टासे गुरुके वाक्यके चमत्कारोंसे तुमारेलिये मेरा उपदेशभी चिन्मात्रही है ॥ २० ॥

आत्मनात्मनिशांतैवचिच्चमत्कुरुतेचिति ॥ चित्प्रस्पंदोहिसंसारस्तदस्पंदःपरंपदम् ॥ २१ ॥ चित्स्पंदशमनेनेयंपरिशाम्यतिसंस्तिः ॥ महाचित्तेनतेर्थोंशभावायोभावनाक्षयः ॥ २२ ॥ असन्नपिस्वभावंतत्संवित्स्पंदउदाहृतम् ॥ शून्यत्वमजडंयत्तत्परमाहुश्चितेर्वपुः ॥ २३ ॥ तत्त्वेनभावनायत्तासंस्तिःसानुभूयते ॥ अभावनामात्रलयात्साचनिःसाररूपिणी ॥ २४ ॥

अर्थ—और अपने आत्मामें आत्मासे चित् चित्‌मेंही चमत्कार करती है, चित्‌का स्पंदही यह संसार है और चित्‌के स्पंदका अभावही परमपद है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! चित्‌के स्पंदके शांत होनेसे यह संसार शांत होताहै, और चित्तके अपरिच्छिन्न ब्रह्माकारमें परिणत होनेपर जीव अंशका जो बाध है वही तुमारा परमपुरुषार्थ मोक्षहै और वही वासनाका क्षयभी है ॥ २२ ॥ यथार्थमें असत्‌भी संवित्स्पंद जड जगत्‌को बनाताहै इसलिये स्पंद शून्य जडतारहित महाचित्‌का रूपहै ॥ २३ ॥ आत्माका अज्ञानरूप संसार आत्मभिन्न जगत्‌की यथार्थभावनासे अनुभूत होताहै उस भावनाके न करनेसे संसार निःसार भान होताहै ॥ २४ ॥

केवलंकेवलीभावातद्रूपासैवशिष्यते ॥ चित्स्पंदमेवसंसारचक्रप्रवहणंविदुः ॥ २५ ॥ मातृमानप्रमेयादिकटकादीवहेमनि ॥ पृथगस्तिनचस्पंदश्चितेर्यासंसृतिर्भवेत् ॥ २६ ॥ चित्तमेवचितिस्पंदस्तदबोधोहिसंसृतिः ॥ अबोधमात्रेचित्स्पंदःकटकत्वमिवोत्थितम् ॥ २७ ॥ बोधमात्रविलीनेस्मिञ्छुद्धाचिद्रामशिष्यते ॥ स्वभावबोधमात्रेणक्षीयतेभोगवासना ॥ २८ ॥

अर्थ—और जीवन्मुक्तिमें निस्पंद चिन्मात्र होनेसे वह चिद्रूपही शेष रहताहै इसलिये चित्का स्पंदही प्रमाता प्रमाणादिरूप संसारचक्रका बहनाहै ॥ २५ ॥ और जैसे कटक आदि सुवर्णसे भिन्न नहींहैं इसीप्रकार प्रमाता, प्रमाण तथा प्रमेय आदिरूप चित्का स्पंद चित्से भिन्न नहीं है तो संसार क्या होसकताहै ॥ २६ ॥ चित्तही चित्का स्पंद है उस चित्का अज्ञानही संसार है, और अपने आत्मतत्वके अज्ञानसे चित्का स्पंद ऐसे प्रादुर्भूत है जैसे सुवर्णमें कटकत्व ॥ २७ ॥ हे रामजी! आत्माके ज्ञानमात्रसे शुद्ध चित् शेष रहजाती है और आत्मतत्वके बोधमात्रसे भोगकी वासना क्षीण होजातीहै ॥ २८ ॥

भोगाभावनमेवेहपरमंज्ञत्वलक्षणम् ॥ इतोनाभिमताःसर्वेज्ञस्यभोगाःस्वभावतः ॥ २९ ॥ भवंतिकोतितृप्तोहिकुरन्नंकिलवांछति ॥ एतदेवपरंविद्धिज्ञत्वस्यापरलक्षणम् ॥ ३० ॥ स्वभावेनैवभोगानांयत्किलानभिवांछनम् ॥ चित्तत्स्पंदैवसर्वात्मरूपिण्यस्तीतिनिश्चयः ॥ ३१ ॥ योंतःप्ररूढःस्वभ्यासोज्ञत्वशब्देनसस्मृतः ॥ योनभुंक्तेभुज्यमानानपिभोगान्सबुद्धिमान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—भोगोंकी भावना न करनाही परम ज्ञानी (जीवन्मुक्त) का लक्षण है, इसलिये स्वभावसेही ज्ञानीको सब भोग नहीं प्रिय लगते ॥ २९ ॥ क्योंकि कौन अत्यंततृप्त जन कदन्न (खराब अन्न) चाहताहै, और ज्ञानीका एक दूसरा लक्षण समझो कि ॥ ३० ॥ स्वभावसे उसको भोग नहीं रुचते, और हमारी आत्मचित्ही भोक्ता भोग्य तथा भोगाकार होकर चेष्टा करती है इस रीतिसे यही चित् सर्वरूप है ऐसा उत्तम अभ्याससे अंतःकरणमे दृढ किया जाय जो निश्चय ॥ ३१ ॥ वही परमज्ञानका लक्षण है, और जो भुज्यमान भोगोंको यथार्थमें नहीं भोगता वही बुद्धिमान् तत्ववेत्ता है ॥ ३२ ॥

लोकानुरोधसिद्ध्यर्थंसहंतिलगुडैर्नभः ॥ विनाकृत्रिमयाबुद्ध्यानसिद्धिरवगम्यते ॥ ३३ ॥ क्वचिदात्मावलोकेचस्वांगावदलनैरपि ॥ चिच्चेत्यंचेत्यकोटिस्थातावत्पश्यतिविभ्रमम् ॥ ३४ ॥ इदंयावदबोधात्मास्पंदतेस्पंदरूपिणी ॥ सम्यग्बोधोदयेंतःस्यात्स्पंदास्पंददशाक्रमः ॥ ३५ ॥ कापियातिचसंशांतदीपवत्साभिधानकः ॥ चितःप्रशांतरूपायादीपिकायाःस्वभावतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और लोकके अनुरोधसे उसकी क्रियायें आकाशके ताडनके सदृश होती हैं. और हे रामजी! कृत्रिम व्यावहारिकबुद्धिको भ्रांतिरूप माने विना निरतिशय आनंदरूप आत्मतत्वकी प्राप्तिरूप सिद्धि नहीं प्राप्तहोसकती ॥ ३३ ॥ और आत्माके दर्शनमें स्वाभाविक बुद्धि (ज्ञान) के विना अपने अंगोंके छेदनादि क्रियाओंसेभी सिद्धि नहीं होसकती, क्योंकि यह चित् जबतक अज्ञानसे आच्छादित है तबतक स्वप्रकाश्य बुद्धि आदिमें मिलकर और स्वयं स्पंदरूप होके बाह्यविषयोंको चलाती है इसीसे भ्रमको देखती है ॥ ३४ ॥ और जब अंतःकरणमें उत्तम बोधका उदय होताहै तब स्पंददशाका क्रम ॥ ३५ ॥ अपने नामके साथ शांत दीपके समान न जाने कहां चलाजाताहै स्वभावसेही प्रशांतरूप दीपिकाके समान चित्की ॥ ३६ ॥

स्पंदास्पंदमयीनेहकथैवास्तिमनागपि ॥ यदस्पंदस्यमरुतोनसन्नासन्नमध्यगम् ॥ ३७ ॥ रूपंतदेवासंवित्तिस्पंदायाःप्रशमंचितेः ॥ अभिन्नःस्याच्चितःस्पंदःशुद्धचित्स्फाररूपधृक् ॥ ३८ ॥ नबंधायनमोक्षायस्थितआत्मनिकेवलम् ॥ चिच्चेन्निरर्थसंवित्तिनिर्वाणेनचविंदते ॥ ३९ ॥ तद्बंधमोक्षपक्षादेर्नामापीहनविद्यते ॥ मोक्षोस्त्वित्येवबोधोंतःपूर्णताक्षयकारणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—स्पंदास्पंदमयी कोईभी कथा नहीं है, और निश्चल पवनका सत् असत् वा अनिर्वचनीयभी जो रूप नहीं है ॥ ३७ ॥ वही अज्ञानरहित निश्चल चित्का मोक्षनामक रूपहै, और जब चित्का स्पंद शुद्धब्रह्माकार विशालरूप धारणकरताहै ॥ ३८ ॥ उससमय न बंधके लिये है और न मोक्षके लिये है, किंतु केवल अपने आत्मामें स्थित रहता है, और यह चित् यदि व्यर्थ चित्ताकार तथा उसकी शांतिरूप दोनों दशाओंको न धारण करै ॥३९॥ तब इसमें बंधमोक्षादिका नामभी नहीं है, और मोक्ष है ऐसा बोधही पूर्णताके नाशका कारण है ॥ ४० ॥

समास्त्वित्यपिबंधस्तेश्रेयोऽसंवेदनंपरम् ॥ यदनाभासमजडंतद्विद्धिपरमंपदम् ॥ ४१ ॥ चितःस्वरूपंसंस्थानमचेत्योन्मुखतात्मकम् ॥ यःसंकल्पनशब्दार्थरूपःस्पंदोमहाचितः ॥ ४२ ॥ बंधमोक्षादिका

हींसौप्रेक्ष्यमाणःप्रणश्यति ॥ प्रेक्षणादेवसंशांतेत्वहंभावेनिरास्पदे ॥ ४३ ॥ नविद्मःकेनकिंकस्यबध्य तेवाथमुच्यते ॥ संकल्पएवरचितेबुधश्चेदविभागवान् ॥ ४४ ॥

अर्थ—वह मोक्ष मुझको न हो इस ज्ञानसेभी तुमको बंधन होगा इसलिये बंधमोक्षका स्मरण न करनाही तुमारा कल्याणकारी है ॥ ४१ ॥ और स्वयंप्रकाश चेतनस्वरूप सर्वाश्रय और विषयसे वर्जित चित्को तुम परमपद जानो ॥ ४२ ॥ संकल्पके शब्द तथा अर्थरूप जो महाचित्का स्पंद है वही बंधमोक्षका अधिकारी है और वह स्पंदके देखनेहीसे नष्ट होजाताहै ॥ ४३ ॥ देखनेहीसे अहंकारके शांत और आश्रयरहित होनेपर न जाने किसका क्या और किससे बांधा जाताहै और क्या मुक्त होताहै ॥ ४४ ॥

तदसंकल्पमस्पंदंसर्वजातमवारितम् ॥ स्पंदेस्पंदमयेवातेतन्मयत्वात्सदाचिता ॥ ४५ ॥ संक्षीणेनच संसारोनिस्पंदेचिद्घनेस्थिते ॥ चित्तेजएवचित्स्पंदइतिबुद्धेनिरंतरम् ॥४६ ॥ व्यतिरिक्तश्चितःस्पंदोन किंचिदवशिष्यते ॥ अस्मिन्दृश्यमयेदीर्घस्वप्नेस्वप्नांतरंव्रजन् ॥ नज्ञोमोहमुपादत्तेसर्वगत्वात्स्वसंविदः ॥ ४७ ॥ यत्रोदेतिप्रसभमनिशंसर्गसंवित्तिसत्तायस्मिन्नेतेसकलकलनाकारपंकागलंति ॥ उद्यंत्येतेस्व दनसुभगंयत्रसर्वोपलंभाध्यानेनैवंतमवगमयप्रत्यगात्मानमंतः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे प्रत्यगात्मावबोधोनामैकोनषष्ठितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—और विवेकी पुरुष अपने रचित संकल्पमेंही यदि इसको मैंने संकल्पा इसको नहीं इसप्रकार पूर्वापरके विचारसे विभागको त्यागताहै तो अपने किये संकल्पको मिथ्या देखताहै इससे वह कृतसंकल्पभी सर्वथा स्पंदरहित तथा नहींके तुल्य है और इसप्रकार प्रबुद्धचेतनसे स्पंद तथा स्पंदमय पवनके क्षीण होनेपर तन्मूलक संसारभी क्षीण होजाताहै ॥ ४५ ॥ चिद्घनमात्रके स्थित होनेसे चित्का तेजही चित्तस्पंदरूप होताहै ऐसा निरंतर बोध होने-पर चित्तके स्पंदसे उत्पन्न संसार आपही नष्ट होताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी! चेतनका प्रकाशही चित्स्पंद है ऐसा ज्ञान निरंतर होनेपर चित्प्रकाशसे भिन्न कोईभी चित्का स्पंद शेष नहीं रहता, और ज्ञानी इस दृश्यमय दीर्घस्वप्नसे अन्यस्वप्नमें प्राप्त होतेहुयेके समान अपने संचलनआदि भ्रमको नहीं धारणकरता क्योंकि वह निज आत्माको सर्व-व्यापी जानताहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी! जिस परमात्मामें निरंतर बलात्कारसे सब जगदाकारकी प्राप्ति तथा उससे प्रीतिपूर्वक आनंदके आस्वादके अनुभव उत्पन्न होतेहैं और जिसमें सब सृष्टियोंकी सत्ताकी स्थिति उदय होती है उस अपने साक्षीरूप आत्माको ध्यानसे अंतःकरणमें देखो ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे प्रत्यगात्मावबोधोनामैकोनषष्ठितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अद्वितीय तथा शुद्धपरमात्माकी निजमायासे विभूतियोंके द्वारा सर्वाकारसे स्थितिका वर्णन इस ६० के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमाद्यंपरंतत्त्वंचिद्घनंपरमंपदम् ॥ तत्स्थाएतेमहारूपाब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ १ ॥ विभूतिभिःस्फुरंत्युच्चैर्जनास्तुष्टानृपाइव ॥ आकाशगमनाद्याभिःक्रीडाभिःक्रीड्यतेचिरम् ॥ २ ॥ तत्स्थे नैवजनेनेहस्वर्गेस्वर्गौकसायथा ॥ तत्प्राप्यांगनम्रियतेतत्प्राप्यांगनशोच्यते ॥ ३ ॥ तत्प्राप्यजीव्यतेनां गतत्प्राप्यांगनरुध्यते ॥ अपारपरमाकाशरूपिणःपरमात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी! इसप्रकार सबका आदि चिन्मात्र परमतत्वरूप पदही स्थित है और ब्रह्मा, विष्णु, तथा महादेव आदि ये महारूप परमपदमें स्थित होके मनुष्यके परमानन्दसे पूर्ण राजाओंकेसमान महा-शोभाको प्राप्त होतेहैं, और उस ब्रह्ममें स्थित न्यूनाधिक आनन्दयुक्त मनुष्य गंधर्वादि जन आकाशगमन आदि क्री-डाओंसे चिरकालतक ऐसे क्रीडा करताहै जैसे स्वर्गनिवासी स्वर्गमें, और हे रामजी! मनुष्यसे लेके ब्रह्मा विष्णु म-हेशादिके आनन्दोंकी पराकाष्ठारूप ब्रह्मको प्राप्त होके यह प्राणी न मरता और न शोच करताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ हे रामजी! उस ब्रह्मको प्राप्त होके यह जीव प्राणधारण करके क्षुधापिपासादिसे नहीं पीडित होता और भित्तिआदिसे उसकी रुकावट नहीं होती है और उस परमात्माकी ॥ ४ ॥

सत्तासामान्यरूपंचेन्मनागपिविभाव्यते ॥ तत्त्वंनिमेषमात्रेणजंतुर्मुक्तमनामुनिः ॥ ५ ॥ कुर्वन्संसार कर्माणिनभूयःपरितप्यसे ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तंयत्रक्षयंगतम् ॥ सत्तासामान्यमा भातंमनस्वीसकिमुच्यते ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यद्ब्रह्मसर्वेदेहस्थंभुंक्तेपिबतिवल्गति ॥ आदत्तेवि निहंत्यंतःसंवित्संवेद्यवर्जितम् ॥ ७ ॥ तत्सर्वगतमाद्यंतरहितंस्थितमर्जितम् ॥ सत्तासामान्यमखिलं वस्तुतत्त्वमिहोच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—सत्ताके सामान्यरूप (सर्वव्यापी चिन्मात्र) को यदि जीवभी किंचित् जानलेताहै तो वह निमेषमात्रमें मुक्तचित्त होजाताहै, और संसारके कार्योंको करताहुआभी पुनः संतापको नहीं प्राप्त होता ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! जिसमें मन, बुद्धि, अहंकार आदि सब लीन होतेहैं उसको निर्विशेष चिन्मात्र सत्तासामान्य कहतेहो वा मन आदि सब विशेषयुक्त कहते हो ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी बोले–कि सविशेष निर्विशेषसे कुछ तात्पर्य नहीं है किंतु जो ब्रह्म सबप्रकारके जीवभावोंमें, ईश्वरभावमें तथा मुक्तिमेंभी गूंथा है, सब खाता पीता और व्यवहार करताहै, ग्रहण करताहै, सुषुप्ति तथा प्रलयमें त्यागता है, और वृत्तिसे वेद्य विषयसे वर्जित है ॥ ७ ॥ वही सर्वव्यापी, आदिअंतरहित, विस्मृत कंठगत मणिके सदृश ज्ञानसे प्राप्त, सत्तासामान्य, सर्वरूप, ब्रह्मतत्वका उपदेश यहांपर कियागयाहै ॥ ८ ॥

तत्स्थितंखतयाव्योम्निशब्देशब्दतयास्थितम् ॥ स्पर्शेस्थितंस्पर्शतयात्वचितत्त्वक्तयास्थितम् ॥ ९ ॥ रसेलीनंरसतयारसनायांतुतत्तया ॥ रूपेरूपतयादृष्टंनेत्रेलीनंचदृक्तया ॥ १० ॥ घ्राणेघ्राणतयादृष्टंगंधे गंधतयोदितम् ॥ पुष्टंकायतयाकायेभूमावपिचभूतया ॥ ११ ॥ पयस्तयाचपयसिवायौवायुतयास्थित म् ॥ तेजस्तयातेजसिचबुद्धौबुद्धितयागतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वही आत्मा ब्रह्म आकाशमें आकाशरूपसे, शब्दमें शब्दरूपसे, स्पर्शमें स्पर्शरूपसे और त्वगिन्द्रियमें त्वचारूपसे स्थित है ॥ ९ ॥ तथा घ्राणमें घ्राण (नासिका) रूपसे, गंधमें गंधरूपसे प्रकट है और वही आत्मा शरीरमें पुष्ट है, और पृथिवीमें पृथिवीरूप वही आत्मा स्थित है ॥ १० ॥ ११ ॥ तथा जलमें जलरूपसे, वायुमें वायुरूपसे, तेजमें तेजरूपसे, और बुद्धिमें बुद्धिरूपसे स्थित है ॥ १२ ॥

मनस्तयामनस्यंतरहंकृत्याप्यहंकृतौ ॥ रूढंसंविदिसंवित्त्याचित्तेचित्ततयोत्थितम् ॥ १३ ॥ वृक्षेवृक्षत यालग्नंपटेपटतयोदितम् ॥ घटेघटतयारूढंवटेवटतयोत्थितम् ॥ १४ ॥ स्थावरेस्थावरत्वेनजंगमत्वेनजं गमे ॥ पाषाणत्वेनपाषाणेचेतनत्वेनचेतने ॥ १५ ॥ अमरेष्वमरत्वेननरत्वेननरेषुच ॥ तिर्यक्त्वेनचति र्यक्षुक्रिमित्वेनक्रिमिस्थितौ ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा मनमें मनरूपसे, अहंकारमें अहंकाररूपसे, और संवित् (बुद्धि) में संविद्रूप आविर्भूत है चित्तमें चित्तरूपसे ॥ १३ ॥ वृक्षोंमें वृक्षरूपसे, पटमें पटरूपसे, घटमें घटरूपसे, और वटमें वटरूपसे आविर्भूत है ॥ १४ ॥ और स्थावरमें स्थावररूपसे, जंगममें जंगमरूपसे, पाषाणमें पाषाणरूपसे, और चारप्रकारके प्राणियोंमें चेतनरूप वही परमात्मा आविर्भूत है ॥ १५ ॥ और देवताओंमें देवतारूपसे, मनुष्योंमें मनुष्यरूपसे, तिर्यग्योनिमें तिर्यग् (पशु) रूपसे, और कृमि (कीट) में कीटरूपसे स्थित है ॥ १६ ॥

कालक्रमेकालतयाऋतावृतुतयातथा ॥ त्रुटिक्षणनिमेषादौसंस्थितस्तत्तयाविभुः ॥ १७ ॥ शुक्लेशुक्ल तयाजातंकृष्णेकृष्णतयास्थितम् ॥ क्रियासुस्पंदरूपेणनियतौनियमेनच ॥ १८ ॥ संस्थितःसंस्थितौ स्थित्यानाशेनाशतयास्थितः ॥ उत्पत्तिरूपेणोत्पत्तावास्थितःपरमेश्वरः ॥ १९ ॥ बाल्येनबाल्येविश्रां तोयौवनेयौवनेनच ॥ जरसाचजरारूपेमरणेमरणेनच ॥ २० ॥

अर्थ—वर्ष तथा युगआदिमें ऋतु (वसंतादि) भेदसे और क्षणनिमेषादिमें क्षणनिमेषादिरूपसे वही परमात्मा स्थित है ॥ १७ ॥ वही परमात्मा शुक्लपदार्थोंमें शुक्लरूपसे तथा कृष्णमें कृष्णरूपसे स्थितहै, क्रियाओंमें क्रिया (चेष्टा) रूपसे, और नियतिमें नियमरूपसे स्थितहै ॥ १८ ॥ और स्थितिमें स्थितिरूपसे, नाशमें नाशरूपसे, और उत्पत्तिमें उत्पत्तिरूपसे वही परमेश्वर स्थितहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! बाल्यमें बालकरूपसे, यौवनमें यौवनरूपसे, वृद्ध अवस्थामें वृद्धतारूपसे और मरणमें मृत्युरूपसे वही परमात्मा स्थितहै ॥ २० ॥

इतिसर्वपदार्थानामभिन्नःपरमेश्वरः ॥ कल्लोलसीकरोर्मीणामब्धाविवपयोभरः ॥ २१ ॥ नानातैषांत्व सत्यैवसत्येनानेनचैवहि ॥ कल्पिताचित्स्वभावेनवेतालःशिशुनायथा ॥ २२ ॥ सर्वत्रसंस्थितिमतावि

(१) यदि निर्विशेष है तो उसकी विभूतिका वर्णन अयुक्त है और सविशेषमें जंतुके सर्वथा कहीं तापका अभाव नहीं होसकता ॥

गतामयेनव्याप्तंमयेदमखिलंविविधैर्विलासैः ॥ चिद्रूपिणैवकलनाकलितात्मनेतिमत्वोपशांतमतिरास्व सुखंमहात्मन् ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमि नोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विभूतियोगोपदेशो नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—इस रीतिसे जैसे समुद्रमें तरंगादिसे जल अभिन्नरूप है ऐसेही सब पदार्थोंसे अभिन्नरूप है ॥ २१ ॥ और इन पदार्थोंमें जो अनेकताका भान होताहै वह असत्यहै और उस अनेकताको इसी सत्य चित्स्वभावने ऐसे कल्पित कियाहै जैसे बालक वेतालको ॥ २२ ॥ हे महात्मन् रामजी ! सर्वत्र स्थित चिद्रूप मैंने आपही इस जगत्की कल्पना की है, इस सब ब्रह्मांडको मैनेहीं अपने अनेक विलासोंसे व्याप्त कियाहै, और यह सब मेरीही विभूति है, मुझसे भिन्न कुछभी नहीं है ऐसा निश्चय करके और शांतचित्त होके तुम अपनी महिमामें स्थित रहो ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकजी बोले कि–हे अरिष्टनेमिराजन् ! वसिष्ठमुनिके इतना कहनेपर दिनका अंत होगया और सूर्यभी सायंकालकी विधि करनेके लिये अस्त होगये, और संपूर्ण सभाभी परस्पर नमस्कार करके स्नानसंध्यावंदनादि कृत्य करनेको गई, और रात्रिके बीतनेपर सूर्यकी किरणोंके साथ पुनः आके प्राप्तहुई ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे विभूतियोगोपदेशो नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

षोडशो दिवसः १६.

एकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

इस ६१ के सर्गमें स्वप्नके तथा मायाके सदृश यह जगत् सिद्ध कियागयाहै और भ्रमसे अविरोधतापूर्वक सर्वत्र सबकुछ होसकताहै यह वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ यथास्माकंमुनेस्वप्नपुरपत्तनमंडलम् ॥ तथैवपद्मजादीनांयदिदेहपरिग्रहः ॥ १ ॥ तथै वेदंचसंजातंयदिसर्वमसन्मयम् ॥ तदस्माकंदृढतरःप्रत्ययःकथमुत्थितः ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मत्सर्गवदाभातिपूर्वसर्गःप्रजापतेः ॥ आजीवप्रतिभासात्माविद्यतेनतुवास्तवः ॥ ३ ॥ सर्वगत्वा चितेःसर्वजीवःसर्वत्रसंसृतिः ॥ साचासम्यग्दर्शनोत्थासम्यग्दर्शननाशिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे मुने! जैसे हम लोगोंके स्वप्नमें ग्राम नगर तथा मंडलादि है ऐसेही यदि ब्रह्मा आदिकें देहका धारणहै ॥ १ ॥ और उसीप्रकार असत्यमय यह संसार उत्पन्न हुआहै तो हम लोगोंको इस संसारमें सत्यताका दृढ विश्वास कैसे हुआ यदि यह कहो कि दीर्घकालकी अनुवृत्तिसे हमको संसार सत्य भानहोताहै तो हमसेभी बहुत अधिक दोपरार्द्ध वर्षोंतक शरीर धारणकरनेवाले ब्रह्मादिको दृढतर सत्य भान होनाचाहिये ॥२॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! हमारी इस समयकी सृष्टिके तुल्य उपासकदशामें ब्रह्माजीकोभी उससमयकी सत्यता भान होतीथी परंतु अब ज्ञानदशामें चारप्रकारके जीवसे लेके संपूर्ण संसार प्रतिभासरूपही है न कि वास्तविक ॥३॥ चेतनके सर्वगामी होनेसे जबतक अज्ञान हैं तबतक सब कुछ जीव है और सर्वत्र संसारहै, वह संसार अज्ञानसे उत्पन्न होताहै और ज्ञानसे नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

स्वप्नाभःप्रतिभासोस्ययएषसमुपस्थितः ॥ अहंताप्रत्ययैकात्मासएवातिदृढःस्थितः ॥५॥ स्वप्नेक्षिप्रवि नाशित्वंयथापुंसानदृश्यते ॥ सर्वस्वप्नेतथैवैतद्ब्रह्मणामिहलक्ष्यते ॥ ६ ॥ स्वप्नोयंपुरुषस्यास्यप्रतिभास स्ययोभवेत् ॥ रामास्मदादिसर्वात्माभवेत्तादृशएवच ॥ ७ ॥ यत्स्वप्नपुरुषाज्जातंतत्स्वप्नपुरुषात्मकम्॥ भवतीत्यनुभूतंहियद्बीजंतत्फलंयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—इस प्रजापतिको तत्वज्ञानसे बाधित स्वप्नके तुल्य यह प्रपंच जो आविर्भूतहै वही अज्ञ हम लोगोंकी दृष्टिमें अहंकारसे घनीभूत होके अति दृढ होगयाहै ॥ ५ ॥ जैसे स्वप्नदशामें यह प्राणी स्वप्नके पदार्थोंकी शीघ्र विनाशिता नहीं अनुभव करता ऐसेही समष्टिस्वप्न जगत्में प्रजापतियोंकोभी शीघ्र विनाशिताका अनुभव नहीं होता ॥ ६ ॥ हे रामजी! शयनस्थ पुरुषको जैसे यह प्रसिद्ध स्वप्नका प्रतिभास है ऐसेही समष्टिरूप प्रजापतिकाभी है ॥ ७ ॥ जो स्वप्नके पुरुषसे उत्पन्न हुआहै वह स्वप्नके पुरुषरूपही है क्योंकि जैसे बीज है वैसाही फल है यह वार्ता अनुभूतहै॥८

असत्यमेवतद्विद्धियदसत्येनसाध्यते ॥ असत्यैर्थैःसमर्थैतिनयुक्तंभावनंघनम् ॥ ९ ॥ येनतेनपरित्याज्य मसद्भावनभावनम् ॥ दृढप्रत्ययितंस्वप्नपुरुषाद्यत्समुत्थितम् ॥ १० भवत्यात्मनिसर्गादिदृढप्रत्ययमेव तत् ॥ निमेषमात्रःपौरोयंसर्गस्वप्नःपुरःस्थितः ॥ ११ ॥ तस्मिन्निमेषएवास्मिन्कल्पतापरिकल्प्यते ॥ सुदीर्घस्वप्नखंडोयंयथोदेतिप्रजापतेः ॥ १२ ॥

अर्थ—जो असत्य मनरूप पुरुषसे सिद्धकियाजाताहै उसको तुम असत्यही जानो इसलिये जन्मांतर स्वर्गनरकादि असत्य पदार्थके साधनमें समर्थ रहतेभी उसमें सत्यत्वभावना योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ इसकारणसे दृढ विश्वास रहतेभी स्वप्नके पुरुषसे जो प्रादुर्भूत है उस असत्भावनाको त्यागना योग्यहै ॥ १० ॥ और दृढप्रत्ययसंयुक्त स्वप्नके पुरुषसे जो उत्पन्नहै वह स्वप्नादिदशामें हमकोभी सत्यही भानहोताहै न कि मिथ्या, और यथार्थमें तो वर्षाके जलके प्रवाहके समान एकनिमेषमात्रमेंही यह सृष्टिरूप स्वप्न दीर्घकालतक हरिश्चंद्रको रात्रिमें १२ वर्षके समान भासताहै ॥ ११ ॥ और जैसे ब्रह्माजीको अपने दीर्घस्वप्नरूप सृष्टिमें सत्यताका विश्वास है ऐसे प्रत्येकप्राणीको अपने २ स्वप्नमें सत्यताका विश्वासहै ॥ १२ ॥

सर्गाख्यःसर्वभूतानांप्रत्येकमुदितस्तथा ॥ चित्तत्वस्यैवभावेनसर्गवर्गपरंपरा ॥ १३ ॥ स्फुरत्यंभोद्रव त्वेनयथावर्तविवर्तनैः ॥ यथास्वप्नात्मिकैवेयंसर्गलक्ष्मीर्नवास्तवी ॥ १४ ॥ तदासंभवतीदंवैतत्पदंप्र लयंगतम् ॥ यद्यथायादृशंदृष्टंतत्तादृग्विद्यतेतथा ॥ १५ ॥ नहिपर्यनुयोक्तव्याःस्वप्नविभ्रमरीतयः ॥ न तदस्तिजगत्यस्मिन्यन्नसंभवतिभ्रमे ॥ १६ ॥

अर्थ—और चेतनकेही प्रभावसे यह सृष्टियोंकी परंपरा ऐसे स्फुरित होती हैं जैसे द्रवता तथा आवर्तोंके परिवर्तनसे जल ॥ १३ ॥ और जैसे स्वप्नरूप यह सृष्टिकी शोभा सत्य नहीं है ऐसेही ब्रह्माजीका पदभी अत्यंत असत्है, और जो वस्तु इससंसारमें जैसी देखपडती है वह उसीप्रकार है क्योंकि स्वप्नकी रीतिमें कुछ शंका नहीं करनीचाहिये, इससंसारमें ऐसा कुछभी नहीं है कि जो भ्रममें न होसकै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

विचित्रास्त्रिषुलोकेषुदृश्यंतेवस्तुसृष्टयः ॥ जलमध्येज्वलत्यग्निर्यथाब्धौवडवानलः ॥ १७ ॥ नगराण्यंबरे संतियथावैमानिकाश्रयाः ॥ शिलास्वब्जानिजायंतेहेमाद्राविवपादपाः ॥ १८ ॥ एकांतेसर्वपुण्यानिसंतिकल्पतरौयथा ॥ शिलाःफलंतिफलिवद्यथारत्नगुलुच्छकाः ॥ १९ ॥ शिलांतःप्राणिनःसंतिभेकाइव शिलांतरे ॥ दृषदोवारिनिर्यातिचंद्रकांतोपलादिव ॥ २० ॥

अर्थ—देखो तीनोंलोकमें विचित्र वस्तुसृष्टि देखपडती है, जलके मध्यमें अग्नि जलताहै जैसे समुद्रमें वडवानल ॥ १७ ॥ आकाशमें नगर हैं जैसे विमानोंके आश्रयमें देवता हैं और पाषाणकी चट्टानोंमें कमल होतेहैं जैसे मृत्तिकारहित हेमाद्रिमें वृक्ष ॥ १८ ॥ एकांतमें पुण्यप्राप्य सब अभिलाष सिद्ध होतेहैं जैसे कल्पवृक्षमें, वृक्षके समान शिला फलती है जैसे रत्नोंमें चिंतामणिगुच्छें ॥ १९ ॥ पाषाणोंके भीतर प्राणी रहते हैं जैसे शिलाओंमें मेंडक, पाषाणोंसे जल निकलताहै जैसे चंद्रकांतमणिके पाषाणसे ॥ २० ॥

निमेषेणघटोयातिपटतांस्वापसंविदि ॥ असत्यमपिबुध्येतस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ २१ ॥ आकस्मिकंजलं व्योम्निध्रियतेभूतगंयथा ॥ वितानमिवखेवारितिष्ठतिस्वर्णदीयथा ॥ २२ ॥ उड्डीयंतेशिलाःस्थूलाःपक्ष वंतोयथाद्रयः ॥ शिलांतःप्राप्यतेसर्वंननुचिंतामणेरिव ॥ २३ ॥ चिंतितानिफलंत्याशुदेवोद्यानांतरे ष्विव ॥ तान्येवनफलंत्याशुमोक्षादीनांचराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वप्नमें क्षणमेंही घटका पट होताहै, अत्यंत असत्वस्तुकाभी ज्ञान होताहै जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ २१ ॥ अकस्मात् आकाशमें जल रहताहै जैसे वायुमें, और चांदनीके समानभी आकाशमें जल रहताहै जैसे आकाश गंगा (मंदाकिनी) ॥ २२ ॥ मोटी २ शिलायें आकाशमें उडती है जैसे पक्षसहित पर्वत और पाषाणसे सब कुछ मिलताहै जैसे चिंतामणिसे ॥ २३ ॥ और अभिलषित शीघ्र फलीभूत होते हैं जैसे नन्दनबनमें, और मोक्ष उत्पन्नहो, ब्रह्म नष्टहो, प्रपंच सत्य हो, भोग सदा रहैं, मर्य्यादा भंग हो. वेद अप्रमाण हो इत्यादि मनोरथ नहीं सिद्ध होते ॥ २४ ॥

अचेतनोपिकुरुतेकर्मयंत्रपुमानिव ॥ एवमाद्यास्तथान्येचविचित्रारंभविभ्रमाः ॥ २५ ॥ दृष्टाःशंबरगंधर्वविलासैरप्यसंभवाः ॥ देशकालक्रियाद्रव्यरत्नसंचरणीयजाः ॥ २६ ॥ अर्थागंधर्वजनिताअनंताःसत्यसंभवाः ॥ असंभवःसंभवोयमपिभाव्युपपद्यते ॥ २७ ॥ संभवोऽसंभवःसम्यक्सिद्धयेस्वप्नविभ्रमः ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयन्मृषा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अचेतनभी कार्य करताहै जैसे यंत्रका पुरुष, इत्यादि तथा अन्य विचित्रकार्योंके असंभवभी आरम्भ शंबरगंधर्वादिकोंके मायाविलासोंसे ॥ २५ ॥ देखेगये हैं, और गंधर्वनगरादिकें विलासोंसे देश, काल, द्रव्य, क्रिया, रत्न, तथा प्रेतादिकोंसे असम्भवभी विचित्र कार्य देखेगये हैं ॥ २६ ॥ गंधर्वनगरादिसे उत्पन्न असम्भवितभी कितने पदार्थ देखेगयेहैं, और इससमय असंभवभी ब्रह्मांडका नाशादि भविष्यत्में संभव है ऐसा संभव उत्पन्नहोताहै ॥ २७ ॥ और इसीप्रकार इससमय संभवभी सृष्टिरूप स्वप्नका भ्रम, प्रलय तथा तत्वज्ञान होनेपर तत्वमें विश्रामकेलिये होताहै तात्पर्य इसका यह है कि ब्रह्मात्मरूप दर्शनसे किंचित् वस्तुभी असत्य नहीं है और जगदात्मरूप दर्शनसे तो किंचित्भी सत्य नहीं है यह फलित हुवा ॥ २८ ॥

सर्वसर्वेणसर्वत्रस्वप्नेसर्गाभिधानके ॥ स्वप्नेनिमग्नधीर्जंतुःपश्यतिस्थिरतांयथा ॥ २९ ॥ सर्गस्वप्नेमग्नबुद्धिःपश्यतिस्थिरतांतथा ॥ भ्रमाद्भ्रमांतरंगच्छन्स्वप्नात्स्वप्नांतरंव्रजन् ॥ अतिस्थिरप्रत्ययभागिहजीवो विमुह्यति ॥ ३० ॥ श्वभ्रांतरंश्वभ्रनिपातदोषात्संप्राप्नुवन्मुग्धमृगःप्रयाति ॥ मोहंयथापातमयैकरूपंजीवस्तथासंसृतिपातमूढः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जगत्स्वप्नकथनं नाम एकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सृष्टिरूप स्वप्नमें सबसे सबकुछ होताहै, और स्वप्नमें निमग्नबुद्धि प्राणी जैसे पदार्थोंकी स्थिरता देखताहै ऐसेही सृष्टिरूप स्वप्नमें मग्नबुद्धि प्राणी पदार्थोंकी स्थिरता देखताहै ॥ २९ ॥ एक भ्रमसे दूसरे भ्रममें एकस्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें जातेहुयेके समान यह जीव अतिस्थिरताको देखके मोहित होताहै ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जैसे मृग्धमृग गर्तमें गिरानेवाले अपने मोहसे एकगर्त (गढे) से दूसरे गढेमें गिराताहै ऐसेही संसारमें गिरानेवाले रागादिदोषोंसे मूढ यह जीव एक संसारसे दूसरे संसारमें गिराताही रहताहै ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे जगत्स्वप्नकथनं नामैकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्ठितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस ६२ के सर्गमें जीवटके आख्यानमें विचित्रवासनाओंके योगसे नानादेहप्राप्तिका विभ्रम और भिक्षुका मानसचेष्टित वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रराघववक्ष्येहमितिहासमिमंशृणु ॥ यद्वृत्तंकस्यचिद्भिक्षोःकिंचिन्मननशालिनः ॥ १ ॥ आसीत्कश्चिन्महाभिक्षुःसमाध्यभ्यासतत्परः ॥ नित्यंस्वव्यवहारेणक्षिपयत्यखिलंदिनम् ॥ २ ॥ समाध्यभ्यासशुद्धंतत्तस्यचित्तंक्षणेनयत् ॥ चिंतयत्याशुतद्भावंगच्छत्यंब्विववीचिताम्॥३ कदाचित्ससमाधानविरतोतिष्ठदेकधीः ॥ किंचित्संचिंतयामासस्वासनस्थःक्रियाक्रमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यहांपर कुछ मनन करनेवाले भिक्षुका जो वृत्तांत हुआ है वह मैं तुमसे कहूंगा ॥१॥ समाधिके अभ्यासमें तत्पर एक संन्यासी था जो कि अपने आश्रमके योग्य श्रवण मननादिव्यवहारोंसे अपना संपूर्ण समय व्यतीत करताथा ॥ २ ॥ हे रामजी ! समाधिके अभ्याससे शुद्ध उसका चित्त क्षणमेंही जो चिंतन करताहै वह शीघ्र ऐसे होजाताहै जैसे जल तरंगरूप ॥ ३ ॥ किसीसमय वह संन्यासी समाधिसे विरत होके एकाग्रचित्त होके स्थितहुआ और अपने आसनपर स्थित होके कुछ क्रियाक्रमकी चिन्ता की ॥ ४ ॥

तस्यचिंतयतोजाताप्रतिभेयमितिस्वतः ॥ भावयाम्याशुलीलार्थंसामान्यजनवृत्तिताम् ॥ ५ ॥ इतिसंचिंत्यचेतोस्यस्थितंकिंचिन्नरांतरम् ॥ स्पंदसंस्थानसंत्यागमात्रेणावर्त्तनेंब्विव ॥ ६ ॥ तेनचित्तनरेणाथकृतंनामात्मवांछया ॥ जीवटोस्मीतिसहसाकाकतालीयवंत्स्थितम् ॥ ७ ॥ जीवटोविजहाराथसस्वप्रपुरुषश्चिरम् ॥ स्वप्ननिर्माणनगरेकस्मिंश्चित्पुरवीथिषु ॥ ८ ॥

अर्थ—उसके चिन्ता करतेसमय यह चिन्ता स्वयं हुई कि मैं लीलाकेलिये सामान्य (शास्त्रसंस्कारसे हीन) जनकी वृत्तिकी भावना करूं ॥ ५ ॥ ऐसी चिन्ता करनेके अनंतरही उसका चित्त संन्यासीके धर्मसे रहित पामरपुरुषका रूप धारणकरके ऐसे स्थितहुआ जैसे जल आवर्तन करनेसे अपने पूर्वप्रवाहके त्यागमात्रसे आवर्त (नाभ्याकार)

रूपताको ॥ ६ ॥ उस चित्तने अपने नामकी स्वेच्छासे कल्पना की कि मैं जीवट हुं और काकतालीयन्यायकेसदृश शीघ्र ऐसा होके स्थितरहा ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् वह स्वप्नका पुरुष जीवट किसी स्वप्नरचित नगरमें नगरकी गलियोंमें विचरनेलगा ॥ ८ ॥

तत्रपानंपपौमत्तोभृंगःपद्मरसंयथा ॥ लीलयैवहृष्टहृष्टःसुष्वापघननिद्रया ॥ ९ ॥ स्वप्नेददर्शविप्रत्वंपाठानुष्ठानतुष्टिमत् ॥ प्रतिभामात्रसंपन्नंचित्तेदेशांतराप्तिवत् ॥ १० ॥ कदाचित्सद्विजश्रेष्ठस्त्वहर्व्यापारनिष्ठया ॥ सुष्वापांतर्व्यवहृतिर्बीजतायामिवद्रुमः ॥ ११ ॥ द्विजोपश्यत्स्वयंस्वप्नेसामंतत्वमथात्मनि ॥ ससामंतःकृताहारःकदाचिद्घननिद्रया ॥ १२ ॥

अर्थ—वहांपर मद्य पीकर ऐसा मत्त (मतवाला) हुआ जैसे कमलरसको पीकर भ्रमर और अतिमदोन्मत्त होकर गाढीनिद्रासे सोगया ॥ ९ ॥ और स्वप्नमें वेदादिके अध्ययन तथा सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे सन्तुष्ट, तथा बुद्धिसंपन्न अपनेको ब्राह्मणरूप ऐसे देखा जैसे चित्तकी अन्य देशमें प्राप्ति ॥ १० ॥ इसके अनन्तर किसीसमय वह ब्राह्मण दिनके व्यापारसे श्रांत होके संस्काररूपसे सब व्यवहारोंको अन्तःकरणमें ऐसे लीन करके सोगया जैसे वृक्षको बीज ॥ ११ ॥ और उस ब्राह्मणने स्वप्नमें अपनेको किसी मंडल (जिले) का राजा देखा और उस राजाने भोजन करके गाढी निद्रामें ॥ १२ ॥

अपश्यद्राजतांस्वप्नेककुब्वलयपालिनीम् ॥ लालितांभोगपूगेनपुष्पौघेणलतामिव ॥ १३ ॥ सकदाचिन्नृपःस्वस्थःसुष्वापास्तमितेहितः ॥ पुरोभाविनिजाचारःस्वकार्यमिवकारणे ॥ १४ ॥ अपश्यत्स्वात्मनिस्वप्नेसुरस्त्रीत्वमनिंदितम् ॥ वृक्षकोशरसोल्लासोमंजरीत्वमिवोदितम् ॥ १५ ॥ सासुरस्त्रीरतिश्रांतानिद्रांगाढामुपागता ॥ मृगीत्वमात्मनिस्वैरमावर्तत्वमिवांबुता ॥ १६ ॥

अर्थ—आके स्वप्नमें दिशाओंके कंकणको पालन करनेवाली, तथा पुष्पोंके समूहोंसे लताकेसदृश भोगोंके समूहसे वेष्टित अपनी राजता देखी ॥ १३ ॥ वह राजा कदाचित् स्वस्थ, तथा सब चेष्टासे रहित, और भविष्यत्में फलदानकेलिये उपस्थित है स्त्रीमें आसक्तिरूप आचार जिसका ऐसे सोगया जैसे बीज आदि कारणमें कार्य ॥ १४ ॥ अनन्तर अपने आत्मामें अनेकपुरुषोंके भोगनेपरभी निन्दारहित देवांगना (अप्सरा) रूप ऐसे देखा जैसे वृक्षके कोशमें रसका उल्लास अपने आत्मामें आविर्भूत मंजरीरूपताको ॥ १५ ॥ और उस देवांगनाने सुरतसे श्रांत होके गाढनिद्राको प्राप्त दीर्घनेत्रकी वासनासे अपने आत्मामें मृगीरूपताको ऐसे देखा जैसे जल आवर्तरूपताको ॥ १६ ॥

सामृगीलोलनयनाकदाचिन्निद्रयाहृता ॥ स्वप्नेददर्शवल्लीत्वंस्वाभ्यासादृढमात्मनि ॥ १७ ॥ तिर्यञ्चोपिप्रपश्यंतिस्वप्नंचित्तस्वभावतः ॥ दृष्टानांचश्रुतानांचचेतःस्मरणमक्षतम् ॥ १८ ॥ साबभूवलतापुष्पफलपल्लवशालिनी ॥ वनदेवीवनोद्यानलतागृहविलासिनी ॥ १९ ॥ बीजांतस्थांकुराकाररूपयेहाधिरूढया ॥ सापश्यदंतःसंवित्त्यास्फुटंलवनमात्मनः ॥ २० ॥ कंचित्कालंसुषुप्तस्थंकलयाजडतांघनाम् ॥ अनुभूयददर्शाथस्वात्मानंभ्रमरंस्थिरम् ॥ २१ ॥

अर्थ—अनन्तर वह चंचलनेत्रा मृगीने किसीसमय गाढीनिद्रामें निमग्नहोके अपने दृढअभ्याससे आत्माको स्वप्नमें लतारूपताको देखा ॥ १७ ॥ तिर्यग्योनिके प्राणीभी चित्तके स्वभावसे स्वप्न देखतेहैं क्योंकि दृष्ट तथा श्रुत पदार्थोंको चित्त पूर्णरूपसे स्मरणकरताहै ॥ १८ ॥ वह लता फल पुष्प तथा पल्लवसे शोभायमान, और वनदेवियोंके बनमें लतागृहके समान विलास करनेवाली हुई ॥ १९ ॥ वह लता साक्षीचेतनकेद्वारा कुछकालतक निद्राकी जडतारूप सुषुप्तिका अनुभव करके बीजके भीतर स्थित भावी अंकुराकारबुद्धिकेतुल्य रूप धारणकरनेवाली अपना छेदन देखतीभई तथा स्वप्नकी ओर उन्मुखबुद्धिसे अपनेको स्थिर भ्रमररूप देखतीहुई ॥ २० ॥ २१ ॥

षट्पदोविजहाराथवनेवनलतास्वसौ ॥ पद्मिनीषुचफुल्लासुतरुणीष्विववल्लभः ॥ २२ ॥ प्रियाबिंबाधरस्वादुरसवत्कौसुमंमधु ॥ भ्रमत्कुसुमसंघासुमुक्तावल्लीविलासिषु ॥ २३ ॥ सबभूवसरोजिन्यांव्यसनीबिसनालगः ॥ क्वचिदेवरतिर्ह्येतिचेतोजडमतेरपि ॥ २४ ॥

अर्थ—अनन्तर उस भ्रमरने बनकी लताओंमें तथा विकसित कमलिनियोंमें ऐसे विहार किया जैसे युवतियोंमें उनका प्रिय ॥ २२ ॥ पुष्पोंके समूहसे युत विलासवती मुक्ताकी लताओंमें भ्रमण करतेहुये उस भ्रमरने प्रियाके अधरकेसमान स्वादयुक्त पुष्पोंके रसका पान किया ॥ २३ ॥ कमलकी नालमें संलग्न वह भ्रमर एककमलिनीमें अतिआसक्त हुआ क्योंकि जडबुद्धिकाभी चित्त कहीं न कहीं आसक्त होजाताहै ॥ २४ ॥

तामाजगामनलिनींपरिलोलयितुंगजः ॥ रम्यवस्तुक्षयायैवमूढानांजृंभतेपदम् ॥ २५ ॥ नलिनीमर्दितासै वसमंतेनसषट्पदः ॥ गतोदंतांतरंत्रीहिरिवचूर्णत्वमाययौ ॥ २६ ॥ भ्रमरोवारणालोकाद्वारणालोकभावनात् ॥ ददर्शात्मानमामोदमत्तहस्तितयोदितम् ॥ २७॥ शुष्कसागरगंभीरेगजःखातेपपातह ॥ तमोघनघनेशून्येसंसारइवजीवकः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस कमलिनीको नष्ट करनेकेलिये कोई गज आया, क्योंकि रमणीय वस्तुको क्षय करनेके अर्थ मूढोंकी इच्छा बढती है ॥ २५ ॥ उस भ्रमरके साथ उस कमलिनीको गजने मर्दित करडाली, और दांतोंके मध्यमें प्राप्त अन्नके समान वह भ्रमर चूर्ण होगया ॥ २६ ॥ वह भ्रमर हस्तीके देखनेसे और हस्तीके आकारकी भावनासे अपनेको मत्त हांथीरूप देखताहुआ ॥ २७ ॥ अनन्तर शुष्कसागरके समान एक गंभीर खन्दकमें वह हस्ती ऐसे गिरा जैसे अज्ञानसे शृंखलादिके बंधनसेभी कठोर शून्य संसारमें यह जीव ॥ २८ ॥

बभूववल्लभोराज्ञोमहापरबलांतकः ॥ सदामदबलक्षीबोघूर्णोतीवनिशाचरः ॥ २९ ॥ कदाचिदसिनिस्त्रिंशच्छिन्नःसोस्तमुपाययौ ॥ विवेकानिलनिर्लूनरूपोजीवइवात्मनि ॥ ३० ॥ पश्यन्गजघटाकुंभस्थलाग्रोच्चलितानलीन् ॥ गंडस्थभ्रमराभ्यासाद्गजोभूयोप्यभूदलिः ॥ ३१ ॥ सेवमानोवनलतांपुनरायात्सपद्मिनीम् ॥ दुस्त्यजोहिदुरभ्यासोवासनानामबोधिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—शत्रुओंकी महासेनाका नाशक, रात्रिके युद्धमें निपुण, राक्षसके सदृश सदा मद (मदस्राव) से मदोन्मत्त वह हस्ती राजाको अतिप्रिय हुआ ॥ २९ ॥ वह किसीसमय रात्रिके युद्धमें खड्गसे छिन्न होके ऐसे अस्त (मृत्युको प्राप्त) होगया जैसे विवेकरूपी वायुसे छिन्न आत्मामें जीव ॥ ३० ॥ और हस्तियोंके समूहके मस्तकके अग्रभागमें उडतेहुये भ्रमरोंको देखनेसे गंडस्थलके भ्रमरोंकी स्थितिके चिरकालके अभ्याससे वह हांथी पुनः भ्रमर होगया ॥ ३१ ॥ अनंतर बनकी लताओंको सेवनकरताहुआ वह पुनः कमलिनीपर आया क्योंकि अज्ञानीजीवका पूर्ववासनाओंका चिरकालका अभ्यास सर्वथा दुस्त्याज्य है ॥ ३२ ॥

तत्रहस्तिखुराक्रांतःपुनःसंचूर्णतांययौ ॥ पार्श्वस्थहंससंवित्त्याबभूवकलहंसकः ॥ ३३ ॥ कलहंसश्चिरतरंयोनिष्वन्यासुसँल्लुठन् ॥ कदाचिद्बहुभिर्हंसैःसंगतोविजहारह ॥ ३४ ॥ ब्राह्महंसात्मिकासंवित्सशब्दार्थवतीमनाक् ॥ तत्रपुष्टास्यतस्यांतःप्रागंडरसबर्हिवत् ॥३५॥ सतच्चिंतांचरन्मृतोहंव्याधिघुणाहतः ॥ तत्संवित्त्यनुसंधानाजातःपद्मजसारसः ॥ ३६ ॥ तत्रातिसंततविवेकवतोविलासैःसंबोधितोविगतलौकिकवस्तुदृष्टिः ॥ मुक्तःस्थितोननुयुगांतविधौविदेहमुक्तेनतेनकिमुभाविविभाव्यमेतत् ॥३७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवटोपाख्याने स्वप्नशतरुद्रीये भिक्षुसंसारोदाहरणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥

अर्थ—उस भ्रमरजन्ममें हांथीके खुरसे कुचलाहुआ चूर्ण होगया और समीपस्थ हंसोंके दर्शनकी वासनासे पुनः वह मधुरभाषी हंस हुआ ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! वह मधुरभाषी हंस चिरकालतक अन्य योनियोंमेंभी भ्रमण करताहुआ किसी जन्ममें बहुत हंसोंमें मिलकर विहरनेलगा ॥३४॥ उस हंसोंकी सभामें ब्रह्माके गुण आकारआदिके वर्णनके श्रवणसे शब्द तथा उसके नाम और आकाररूप अर्थसहित वासना (मैंभी ब्रह्माका हंस होजाऊं यह वासना) उस भिक्षुको हंसके जन्ममें ऐसे पुष्ट हुई जैसे पूर्ववर्णित अंडके रसमें स्थित मोर ॥ ३५ ॥ और वह उसी ब्रह्माके हंसोंकी चिंतामें तत्पर अंतिमव्याधिरूप घुणसे पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्तहुआ और ब्रह्माके हंसकी वासनाके संस्कारसे ब्रह्माका वाहन हुआ ॥३६॥ उस जन्ममें ब्रह्माजीके विवेक वैराग्य तथा तत्वज्ञानादिके उपदेशरूपविलासोंसे भलीभांति बोधित होनेसे संसारके संपूर्ण भोगोंसे विरक्त तथा जीवन्मुक्त होके स्थितहै, और दोपरार्द्धके अंतमें ब्रह्माजीके साथ वह विदेहमुक्त होगा, अब बुद्धिमान् जन विचारें कि इससे उत्तम गति उस हंसकी क्या होसकती है ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे जीवटोपाख्याने स्वप्नशतरुद्रीये भिक्षुसंसारोदाहरणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

रुद्रस्वरूपको प्राप्त उस हंसको पूर्वदेहोंका ज्ञान, और उनकी शतरुद्रता तथा एकरूपता इस ६३ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सकदाचिद्ददर्शाथरुद्रंरुद्रपुरेखगः ॥ वैरिंचनलिनीनाललीलालाभेनलीलया ॥ १ ॥ तत्रबुद्धिरभूत्तस्यरुद्रोहमितिनिश्चिता ॥ प्रतिबिंबवदादर्शेद्रागित्येवहिबिंबिता ॥ २ ॥ रुद्रभूतवपुस्तत्रतनुंतत्याजतामसौ ॥ गंधःपवनतांगच्छन्कुसुमस्तबकंयथा ॥ ३ ॥ सरुद्रोरुद्रभवनेविजहारयथेच्छया ॥ तैस्तैःशिवपुराचारैर्गणकोटिगरिष्ठया ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ब्रह्माके आसन कमलिनीके नालकी क्रीडाके लाभ (ब्रह्माजीके वाहन प्राप्ति) से अनायासही किसी समय ब्रह्माजीकेसाथ रुद्रपुरमें जाके महादेवजीको देखा ॥ १ ॥ वहांपर मैं रुद्र हुं ऐसी बुद्धि इस हंसको ऐसे हुई जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब ॥ २ ॥ रुद्रशरीर धारणकरके उसने पूर्वशरीरको ऐसे त्यागा जैसे गंध पवनरूपताको प्राप्त होताहुआ पुष्पके गुच्छको ॥ ३ ॥ उस रुद्रने रुद्रके नगरमें गाणपत्यपदकी प्राप्तिसे श्रेष्ठ अपनी इच्छापूर्वक उन २ शिवपुरके आचारोंसे विहार किया ॥ ४ ॥

रुद्रस्त्वनुत्तमज्ञानविलासैकतयातया ॥ स्वमशेषंचवृत्तांतमपश्यत्प्राक्तनंधिया ॥ ५ ॥ निरावरणविज्ञानवपुःसभगवांस्तदा ॥ उवाचस्वयमेकांतेस्वस्वप्नशतविस्मितः ॥ ६ ॥ अहोनुचित्रामायेयंततविश्वविमोहिनी ॥ असत्यैवापिसद्रूपामरुभूमिषुवारिवत् ॥ ७ ॥ इतिप्रथममाज्ञातंचिद्योहंचित्ततांगतः ॥ सर्वसंपन्नसर्वज्ञगगनादिविभावनात् ॥ ८ ॥

अर्थ—रुद्रने सर्वोत्तमज्ञानके विलाससे यथाप्रसिद्ध रुद्रगणकी समतासे पूर्वकालके संपूर्ण वृत्तांतको स्मरणकिया ॥ ५ ॥ आवरणरहित ज्ञानमात्रशरीरधारी अपने स्वप्नसे विस्मित उस भगवान्‌ने एकांतमें अपनेआप यह कहा ॥ ६ ॥ अहो यह माया कैसी विचित्र तथा संसारको मोहनेवाली है, और असत्य होनेपरभी मरुभूमिमें जलकेसमान सत्य भासती है ॥ ७ ॥ पारमार्थिकस्थितिसे जो मैं चिन्मात्र था, अनंतर वही चिद्रूप मैं मायासे चित्तदशाको प्राप्तहुआ, और उसप्रकारके संकल्पसे मैं सर्वरूप होताहुआ चिदंशमें सर्वज्ञ और जडांशमें आकाशादि विभागयुक्त इत्यादि मैंने अब स्मरणकिया ॥ ८ ॥

यदृच्छयास्थितोजीवोभूततन्मात्ररंजितः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्सर्गेभिक्षुरक्षुभितोभितः ॥ ९ ॥ तेनावयवबंधेनबहिःस्वैरविहारिणी ॥ लीलाविलुलिताकारायदारम्येतिभावतः ॥ १० ॥ सर्वभावोपमर्देनतदभ्यासवशात्तदा ॥ तामेवसोन्वभूद्भिक्षुस्त्यक्त्वान्यंमननोदयम् ॥ ११ ॥ चमत्कृतिश्चेतसियारूढासैवविजृंभते ॥ वल्लीत्यजतिनैदाघीपीतमप्यंबुमाधवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् स्थूल तथा सूक्ष्मतामें और उन २ देहोंमें अभेदाध्याससे तथा उनकी वासनाकी विचित्रतासे चित्रपटके समान रंजित जीव होके मैं स्थित था, और जीव किसी सर्गमें वैराग्यआदिकी परिपक्वताद्वारा विषयोंसे सर्वथा अक्षोभित संन्यासी हुआ ॥ ९ ॥ पद्मासनकी स्थिरतायुक्त उस भिक्षुने हस्तपादादि अंग तथा प्राण इंद्रियादिके निरोधसे यह रमणीय है इस भावनासे जिससमय जो लीलाका आरंभकिया उससमय अपनी समाधिकी प्रवीणतासे अन्य सब विरोधीभावोंको दबाके उसी लीलाका अनुभव किया ॥ १० ॥ ११ ॥ क्योंकि चित्तमें जो चमत्कृति प्रौढ होजाती है वह पूर्वचमत्कृतिको दबाके आपही ऐसे प्रकाशित होती है जैसे निदाघ (ग्रीष्मऋतु) की उष्णतासे व्याप्त लता वसंतकालके हरिद्भावके चमत्कारको ॥ १२ ॥

सभिक्षुर्जीवटोभूत्वाजंतुर्जरठवासनः ॥ तेषुदेहेषुबभ्रामरंध्रेष्विवपिपीलिका ॥ १३ ॥ आत्मनिद्विजभक्त्वात्सोपश्यद्द्विजतामथ ॥ भावाभावविपर्यासेबलवानेववर्धते ॥ १४ ॥ सामंततामवापासौविप्रःसंततचिंतिताम् ॥ सातत्येनरसःपीतःफलतामेतिपादपे ॥ १५ ॥ राज्यार्थधर्मकार्याणांकर्तृत्वात्सोभवनृपः ॥ सकामुकतयाराजासुरस्त्रीत्वमवापह ॥ १६ ॥

अर्थ—देखो शास्त्रविरुद्धवासनायुक्त पामर पुरुष होके उस भिक्षुने उन २ देहोंमें ऐसे भ्रमणकिया जैसे छिद्रोंमें पिपीलिका (चेंटी) ॥ १३ ॥ इसके अनंतर ब्राह्मणका भक्त होनेसे उसने अपनेको ब्राह्मणरूप देखा, क्योंकि प्रबल और अप्रबलके विरोधमें जो प्रबल वासनासमूह है वही बढताहै ॥ १४ ॥ और निरंतर चिंता करनेसे उस ब्राह्मणने मंडलाधीशपदवीको ऐसे प्राप्तकिया जैसे निरंतर रस पीनेसे वृक्ष फलदशाको ॥ १५ ॥ राज्यकेलिये धर्मकार्योंके करनेसे वह ब्राह्मण राजा हुआ ॥ १६ ॥

लोलालोचनलोभेनसामृगीरसशालिनी ॥ बभूववासनामोहश्चाहोदुःखायजंतुषु ॥ १७ ॥ मृगीसाबतचित्तस्थाबभूवविपिनेलता ॥ अवश्यंभाविलवनंलतिकानुबभूवह ॥ १८ ॥ अंतःसंज्ञाचिराभ्यस्तंभ्रम

रत्वमथात्मनि ॥ सापश्यत्सावमर्द्दनसदातद्भावभाविता ॥ १९ ॥ सवारणखुरक्षोदमनुभूयाथभावितम् ॥ भूयोभूयःप्रबभ्राममहासंसृतिसंभ्रमान् ॥ २० ॥

अर्थ—मृगीके सदृश चंचल तथा सुंदरनेत्रके लोभसे वह चपल मृगी होगई, अहो! जीवोंमें वासनाजनित अज्ञान दुःखकेलिये होताहै ॥ १७ ॥ और बनमें लताकी भावनासे उस मृगीने लतारूप धारणाकिया, और उस लताने अवश्यभावी अपना छेदन अनुभव किया ॥ १८ ॥ उस लताने छेदन तथा मर्दनसहित अपने देहमें चिरकालसे अपने आत्मामें अभ्यस्त भ्रमररूपताको देखा ॥ १९ ॥ उस भ्रमरने निजचिंतित हस्तीके खुरके आघातका अनुभवकरके पुनः २ संसारके भ्रममें भ्रमणकिया ॥ २० ॥

संसारशतपर्यंतेरुद्रःसोहमहंस्थितः ॥ अस्मिन्संसारसंरंभेस्वमनोमात्रसंभ्रमे ॥ २१ ॥ एवमत्यंतचित्रासुसंसाराराण्यभूमिषु ॥ बह्वीष्वहमतिभ्रांतस्त्वशून्यास्विवभूरिशः ॥ २२ ॥ कस्मिंश्चिदभवंसर्गेत्वहंजीवटनामकः ॥ कस्मिंश्चिद्ब्राह्मणश्रेष्ठःकस्मिंश्चिद्वसुधाधिपः ॥ २३ ॥ हंसःपद्मवनेभूत्वाविंध्यकच्छेचवारणः ॥ हरिणोदेहयंत्रादौदशामहमिमांगतः ॥ २४ ॥

अर्थ—अपने मनसेही कल्पित इस संसाररूप संभ्रममें सौ जन्म धारणकरके वही भिक्षु मैं रुद्ररूप होके स्थितहुआ ॥ २१ ॥ इसप्रकार अतिविचित्र संसाररूपी अरण्यकी भूमियोंमें मैंने अनेकवार भ्रमणाकिया ॥ २२ ॥ किसी जन्ममें तो जीवटनामका महापामर जीवथा, किसी जन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण, और किसी जन्ममें राजा हुआ ॥ २३ ॥ कमलोंके बनमें हंस और विंध्याचलपर हस्ती होके तथा हरिण आदिके देहरूप यंत्रमें प्राप्तहोके इस पूर्वोक्त-दशाको मैं प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥

अत्रवर्षसहस्राणिचतुर्युगशतानिच ॥ समतीतान्यनंतानिदिनर्त्तुचरितानिच ॥ २५ ॥ ममप्रथममेवप्रा क्चलितस्यपरात्पदात् ॥ तत्त्वज्ञानितयारूढोभिक्षुत्वेयोग्यताक्रमः ॥ २६ ॥ भूयोभूयोप्यतिक्रम्यगतश्चब्रह्महंसताम् ॥ सएवप्राक्तनोभ्यासःफलितःसंगमोदयात् ॥ २७ ॥ दृढाभ्यासोयएवास्यजीवस्योदेत्यविघ्नतः ॥ सोत्यंतमरसेनापितमेवाश्वनुधावति ॥ २८ ॥

अर्थ—मेरे प्रथमजन्मसे जबसे मैं चिदेकरस परमपदसे चलित हुआ तबसे आजतक १०० चतुर्युगी और हजार वर्ष तथा अनंत दिन ऋतुके चरित व्यतीत हुए ॥ २५ ॥ मैं भिक्षुदशामें तत्त्वज्ञानी होनेयोग्य श्रवण मनन आदिके अभ्यासरूप प्रौढभी जिस योग्यताके क्रमको प्रमादसे उल्लंघन करके पुनः २ जन्मकी परंपरासे इस ब्रह्माके हंसदशाको प्राप्त हुआ वही अभ्यास महादेवजीके समागमसे अब फल देनेको उदितहुआहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ जो जीवका शास्त्रीय दृढ अभ्यास निर्विघ्नतापूर्वक उदितहोताहै वह सहस्रों नीरसजन्मोंके व्यवधान होनेपरभी उसी जीवके पीछे दौडताहै ॥ २८ ॥

काकतालीययोगेनकदाचित्साधुसंगमात् ॥ अशुभोभावनाभ्यासोजीवस्यविनिवर्तते ॥ २९ ॥ संगत्यधिगतंचैषकेवलंस्वोदयंप्रति ॥ प्राक्तनोवासनाभ्यासोहातुरुद्यममीक्षते ॥ ३० ॥ यच्चेहाभ्यस्यतेजस्रंयच्चदेहांतरेपिच ॥ जाग्रत्स्वप्नेष्वसदपितत्सदित्यनुभूयते ॥ ३१ ॥ तत्तदर्थक्रियाकारिदुःखायचसुखायच ॥ उदेतिभावनंतस्माद्भावनाभावनंजयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—काकतालीयन्यायसे कभी महात्माओंके समागमसे जीवका अशुभभावनाका अभ्यासभी निवृत्त होजाताहै ॥ २९ ॥ दुष्ट वासनाजालको त्याग करनेवाले पुरुषका पूर्वकालका सद्वासनाका अभ्यास उत्तमपुरुषके प्रयत्नकी इच्छा अवश्य रखताहै ॥ ३० ॥ जो इस देहमें तथा अन्यदेहमें जाग्रत्स्वप्नादिमें देवोपासनादि निरंतर अभ्यस्त कियाजाताहै वह असत् होनेपरभी सत्‌रूपसे अनुभूत होताहै ॥ ३१ ॥ उन २ मनुष्यदेवतादि शरीर तथा भोगादिरूप अर्थ क्रियाको करनेवाली अनात्मवस्तुकी चिंता दुःख तथा सुखकेलिये उदितहोतीहै इसलिये अनात्मवस्तुकी चिंता न करनाही जय (परमकल्याण) है ॥ ३२ ॥

भावनैवस्वमात्मानंदेहोयमितिपश्यति ॥ असत्तामात्रविस्तारंगुल्मकत्वमिवांकुरः ॥ ३३ ॥ भावनाप्रेक्ष्यमाणैषानकिंचिदिहशिष्यते ॥ नचविद्यतएवेतितद्भ्रमेणालमस्तुनः ॥ ३४ ॥ भ्रमस्यजागतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ असंवेदनमात्रैकंमार्जनायालमस्तुनः ॥ ३५ ॥ असन्मयीस्वरूपैषापरंसत्तैवलालनी ॥ वर्ततेचेद्दिनोदायकिंचित्सानकरिष्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह भावनाही अपने २ आत्माको मिथ्या देहादिरूप देखती है जैसे अंकुर लतागुल्मादिविस्तारको ॥ ३३ ॥ यदि इस भावनाको देखो तो कुछभी शेष नहीं रहजाती क्योंकि यह यथार्थमें कुछ नहीं है इसलिये यह

हमारा श्रम व्यर्थ है ॥ ३४ ॥ आकाशके वर्णके समान इस जगत्के भ्रमकी निवृत्तिकेलिये इस जगत्का विस्मरण हमारेलिये हो ॥ ३५ ॥ अपने स्वरूपसे असन्मयी अधिष्ठानरूप यह जगदाकारभावना तत्वज्ञानसे बाधित होनेसे यदि प्रातिभासिकरूपसे रहै तो वह कुछभी नहीं करैगी किंतु विनोदकेहीलिये होगी ॥ ३६ ॥

तत्तान्सर्वान्स्वसंसारानुत्थायालोकयाम्यहम् ॥ सम्यगालोकदानेनतेभ्यएकीकरोम्यहम् ॥ ३७ ॥ इति संचिंत्यरुद्रोसौतंसर्गंप्रजगामह ॥ यत्रभिक्षुर्विहारस्थःसुप्तःशवइवस्थितः ॥ ३८ ॥ बोधयित्वाथतंभिक्षुंचेतसाचेतनेनच ॥ योजयामाससस्मारभिक्षुरप्यात्मनोभ्रमम् ॥ ३९ ॥ रुद्रमात्मानमालोक्यजीवटादिमयंतथा ॥ बोधादविस्मयार्होपिसभिक्षुर्विस्मयंययौ ॥ ४० ॥

अर्थ—इसलिये उस अपने संसारोंको जाके देखताहुं और उनको ज्ञानरूप प्रकाशके संप्रदानसे उन उपाधियोंसे पृथक्भूत अपने आत्माको एक करताहुं ॥ ३७ ॥ हे रामजी! ऐसा विचार करके वह रुद्र अपनी उस सृष्टिके निकटगया जहां विहारमें स्थित वह भिक्षु शयनमें मृतकके समान स्थितथा ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् उस भिक्षुको जाग्रत करके उसको निज अंशभूत चित्त तथा चिदाभासरूप तत्वज्ञ जीव करके संयुक्त किया ॥ ३९ ॥ अपनेको रुद्र तथा जीवट आदिमय देखके ज्ञानसे विस्मयके अयोग्यभी वह भिक्षु विस्मयको प्राप्तहुआ ॥ ४० ॥

अथरुद्रस्तथाभिक्षुर्द्वाविवोत्थायजग्मतुः ॥ क्वापिजीवटसंसारंचिदाकाशैककोणगम् ॥ ४१ ॥ तत्रतद्भुवनंगत्वातद्वीपंतच्चमंडलम् ॥ विषयंतत्पुरंतच्चतंचपाणावसिग्रहम् ॥ ४२ ॥ सुप्तंददृशतुर्नष्टसंज्ञजीवटकं शवम् ॥ स्थापयित्वावपुर्भावंप्रभांतंभवभूमिषु ॥ ४३ ॥ तंप्रबोध्यनियोज्याशुचेतसाचेतनेनच ॥ एकरूपास्त्रिरूपास्तेरुद्रजीवटभिक्षुकाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर रुद्र और भिक्षु दोनों ऊठके कहीं चिदाकाशके कोणेमें जीवटके संसारमें गये ॥ ४१ ॥ वहांपर उस जीवटके ब्रह्मांडमें जाके उसी द्वीप, उसी मंडल, उसी देश और उसी नगरमें हस्तमें खड्ग धारणकियेहुये ॥ ४२ ॥ चेतनारहित, तथा सोतेहुयेकेतुल्य जीवटका मृतकशरीर देखा और जीवटकी संसारभूमिमें अपनी रुद्ररूपता तथा भिक्षुका देह तथा जीवटके बोधनके अभिप्राय, और रुद्रकी कोटिसूर्यकी प्रभा (प्रकाश) को अंतर्धानशक्तिके द्वारा गुप्त करके ॥ ४३ ॥ उस जीवटकोभी पूर्वोक्तरीतिसे जगाया और उसकोभी चित्त तथा चिदाभासरूप तत्वज्ञ जीवसे संयुक्तकिया और वे रुद्र, जीवट तथा भिक्षुक बाहरसे तीन प्रतीतहोतेथे परंतु भीतरसें एक थे ॥ ४४ ॥

बोधवंतोप्यबुद्धाभाविस्मिताअप्यविस्मिताः ॥ बभुस्तूष्णींस्थिताश्चित्रकृताकाराइवक्षणम् ॥ ४५ ॥ अथजग्मुश्चतेसर्वेक्वचिद्व्योमनिसंस्थितम् ॥ विप्रसंसारमारब्धंपरिभूतसघुंघुमम् ॥ ४६ ॥ तेतत्रभुवनंगत्वातद्वीपंतच्चमंडलम् ॥ विषयंतच्चतंग्रामंप्रापुस्तंब्राह्मणालयम् ॥ ४७ ॥ विप्रंतेददृशुःसुप्तंकलत्रवलितंगृहे ॥ कंठेगृहीतंब्राह्मण्याबहिर्जीवमिवस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—और वे तीनों ज्ञानयुक्तभी तथा अज्ञानीके सदृश विस्मितभी अविस्मितकेतुल्य भान होतेथे, और क्षणभर चित्रलिखितके समान स्थित रहे ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् कहीं चिदाकाशमें स्थित, तथा चारोओर प्राणियोंके घुंघु शब्दसहित ब्राह्मणके संसारको देखा ॥ ४६ ॥ वे सब उस ब्रह्मांडमें जाके उसी द्वीप, उसी मंडल, उसी राज्य तथा उसी ग्राममें प्राप्त होके उस ब्राह्मणके स्थानमें पहुंचे ॥ ४७ ॥ वहांपर कुटुम्बसे घिरेहुये कंठमें ब्राह्मणीसे गृहीत और बाह्यदेशमें उस ब्राह्मणीके प्राणके तुल्य स्थित तथा निद्रामें स्थित, उस ब्राह्मणको देखा ॥ ४८ ॥

तंप्रबोध्यनियोज्याशुचेतसाचेतनेनच ॥ तत्स्थास्तेबहवोप्यन्येसविस्मयविविस्मयाः ॥ ४९ ॥ अथजग्मुश्चिदाकाशकचितंचेतितंचितेः ॥ सामंतंनृपसंसारंभ्रमणाभोगसुंदरम् ॥ ५० ॥ ततस्तेभुवनंप्राप्तास्तद्वीपंतच्चमंडलम् ॥ सामंतंददृशुर्मत्तंसुप्तंपर्यंकपंकजे ॥ ५१ ॥ हेमावदातंहेमांग्यानिहितंकुचकोटरे॥ भ्रमर्येवान्वितंपद्मकोशसुप्तंमधुव्रतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—उसकोभी जगाके और शीघ्र चित्त तथा तत्वचिदाभास (जीव) संयुक्त करके वहांपर वे सब तथा अन्यभी बहुत विस्मयकेसाथ स्थितहुये॥४९॥इसके पश्चात् चिदाकाशमें शोभित, चित्के परिणारूप, और भ्रमणशील, भोगोंसे रमणीय मंडलाधीश उस राजाके संसारमें गये ॥५०॥ वहांपर वे सबनें उसी राजाके भुवनमें उसी द्वीप, उसी मंडल और उसी देशमें उस राजाको शय्यारूप कमलमें शयन करतेहुये देखा ॥ ५१ ॥ सुवर्णके तुल्य दैदीप्यमान और सुवर्णके सदृश गौरांगी राणीके कुचोंके कोटर (मध्य) में स्थित उस राजाको ऐसे देखा जैसे पद्मके कोशमें भ्रमरीसंयुक्त सुप्त भ्रमरको ॥ ५२ ॥

कांताभिरभ्यावलितंमंजरीभिरिवद्रुमम् ॥ दीपजालकमध्यस्थंरत्नौघइवकांचनम् ॥ ५३ ॥ तंप्रबोध्यनियोज्याशुचेतसाचेतनेनच ॥ तत्स्थास्तेबहवोप्येकेसविस्मयविविस्मयाः ॥ ५४ ॥ अथतेराजसंसारंजग्मुस्तत्रविबोध्यतम् ॥ चेतसैवमथान्यासुभ्रेमुःसंसारभूमिषु ॥ ५५ ॥ प्राप्यतांब्रह्महंसेहांरुद्रतांसर्वएवते ॥ समाजग्मुर्विरेजुश्चरुद्राणामुत्तमंशतम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—पुनः वह राजा अनेक सुंदरीस्त्रियोंसे ऐसे वेष्टित था जैसे लताओंसे वृक्ष, और अनेकद्वीपोंके समूहमें ऐसे स्थित था जैसे रत्नोंके समूहमें सुवर्ण ॥ ५३ ॥ अनंतर उस राजाकोभी पूर्वोक्तरीतिसे जगाके और चित्त तथा चिदाभाससहित करके वहांपर सविस्मयभी विस्मयराहित स्थितहुये ॥ ५४ ॥ इसके पश्चात् वे सब (रुद्र, भिक्षु, जीवट, ब्राह्मण,) उसको जगाके सूक्ष्मशरीरसे अन्य संसारभूमियोंमें भ्रमणकरतेभये ॥ ५५ ॥ वे सब ब्रह्माके हंसरूप चित्तकी परिणतिसे आदि लेके रुद्रके शरीरतक प्राप्त होके ज्ञानैश्वर्यादि संपन्न होनेसे रुद्रके सौ शरीर आकारसे शोभितहुये ॥ ५६ ॥

एकसंविद्भिन्नतनुचित्रचेष्टितवेष्टितम् ॥ एकरूपमनेकाभंरूपंतत्पारमेश्वरम् ॥ ५७ ॥ रुद्राणांतच्छतमथनिरावरणचिन्मयम् ॥ सर्वसंसारसंबंधिस्थितंसर्वजगत्स्थितम् ॥ ५८ ॥ शतरुद्रशतानीहसंतिराममहांतिहि ॥ एतदेकादशंविद्धिसंसारंप्रतिसंस्थितम् ॥ ५९ ॥ योयोभितःसजीवस्यसंसारःसमुदेति हि ॥ तत्राप्रबुद्धाजीवौघाःपश्यंतिनपरस्परम् ॥ ६० ॥

अर्थ—वह रुद्ररूप परमेश्वरका शरीर एक ज्ञान और भिन्नशरीरसे चित्रविचित्रचेष्टाओंसे वेष्टित एकरूपभी अनेकके समान भान होताहै ॥ ५७ ॥ और रुद्रोंका वह शत (सौ रुद्र) अज्ञानरूप आवरणसे शून्य, चिन्मय, सब संसारका आधार तथा संपूर्ण जगत्में अंतर्यामीरूपसे स्वयं स्थितहै ॥५८॥ हे रामजी ! भिक्षु तथा रुद्रकलिपत सौ ब्रह्मांडोंके मध्यमें इसको तुम ग्यारहवां ब्रह्मांड जानों जो तुमको तथा मुझे अनुभूत होरहाहै ॥ ५९ ॥ पूर्वोक्त जो २ संसार जीवको चारोओर उदितहोतेहैं उन २ संसारोंमें अज्ञानीजीव परस्पर एक दूसरेको नहीं देखते ॥ ६० ॥

मिलंतिहिमनोबुद्धास्तरंगाइववारिधौ ॥ अप्रबुद्धास्तुतन्मात्रनिष्ठालोष्ठवदास्थिताः ॥ ६१ ॥ यथाद्रवत्वाद्वीच्यंबुत्वन्योन्यंसंमिलत्यलम् ॥ तथाप्रबुद्धाजीवौघामिथश्चित्त्वान्मिलंत्यलम् ॥ ६२ ॥ प्रत्येकमुदितेचैतेसंसारेजीवराशयः ॥ चिद्धातोःसर्वगत्वेनत्वसत्याःसत्यवत्स्थिताः ॥ ६३ ॥ यद्यदाखन्यतेभूमेस्तत्तत्रामयथानभः ॥ सर्वगायाश्चितेर्यद्यदुह्यतेतत्तथैवचित् ॥ ६४ ॥

अर्थ—ज्ञानयुक्त मन (तत्ववेत्ता) समुद्रमें तरंगके समान जीवोंकेसाथ मिलतेहैं और अज्ञानी अपनेही अधिकरणमें पाषाणकेसमान डूब जातेहैं ॥ ६१ ॥ जैसे द्रवशील होनेसे तरंगका जल पूर्णरीतिसे परस्परमें मिलताहै ऐसेही ज्ञानी जीवसमूह चिन्मात्र होनेसे परस्पर मिलतेहैं ॥ ६२ ॥ प्रत्येक जीवके अर्थ संसारका उदय होनेसे और चिन्मात्रसार ब्रह्मके सर्वव्यापी (सर्वजीवके चेतनरूप) होनेसे ये सब जीवराशि असत्यही सत्यके समान स्थितहै ॥ ६३ ॥ जैसे पृथिवीमें जो २ स्थान खनाजाताहै वह २ आकाशरूपही रहजाताहै ऐसेही सर्वव्यापी सत्य चित्से जिस २ असत्यरूपका ज्ञानसे अपलाप होताहै वह २ केवल चिन्मात्र शेष रहजाताहै ॥ ६४ ॥

सर्वप्रपंचभूतानियथानुभवसीहहि ॥ तथेहसर्वभूतात्मचित्त्वंसर्वत्रविद्यते॥६५॥ यच्छालभंजिकावृक्षेशैलेश्वभ्रेगतंतकम् ॥ प्रेक्ष्यतेतद्वदेकात्मातथाचितिजगत्स्थितम् ॥ ६६ ॥ अवेदनेपरेशुद्धेवेदनंयज्जगत्स्थितम् ॥ अकारणमचैतन्यंशून्यत्वेनयथानभः ॥ ६७ ॥ विद्यतेवेदनंदृश्यबंधोमोक्षस्त्ववेदनम् ॥ यदेवरुचिरंतेस्यात्तदेवाशुदृढीकुरु ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे पंचभूतसहित तथा विभागरहित सब प्रपंचोंका सर्वत्र तुम अनुभव करतेहो इसीप्रकार सर्वभूतात्मा चित्भी सर्वत्र है ॥ ६५ ॥ जैसे वृक्ष वा काष्ठमें खोदनेपर अभिलषित देवता मनुष्य आदिकी विचित्र प्रतिमा देखपडती हैं ऐसेही सर्वाकार एकात्मा चेतनमें यह जगत् ज्ञानसे देखपडताहै ॥ ६६ ॥ इन्द्रियादिके अविषय परमात्मामें जो अन्यथाज्ञान है वही जगत्का रूप है, और चिन्मात्र ब्रह्ममें जो जगदाकार जडताहै वह कारणरहित आकाशके तुल्य शून्यके समान स्थितहै ॥ ६७ ॥ ब्रह्मसे भिन्न दृश्यका ज्ञान बंधन है और ब्रह्मरूपसे मोक्ष है, अब जो तुमको उत्तम जान पडे वही शीघ्रतासे दृढ करो ॥ ६८ ॥

सर्गासर्गौबंधमोक्षौवेदनावेदनात्मकौ ॥ अभिन्नौबोधनाचोभौयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६९ ॥ असंवित्तेस्तुयन्नास्तितत्राशेकाकदर्थना ॥ तूर्ष्णींभावेनयत्प्राप्यंप्राप्तमेवाशुविद्धितत् ॥ ७० यद्वेवेदनमात्रात्मतदंगावेदनक्षयम् ॥ तद्वेदनंवेदनायायदिष्टंतत्समाचरेत् ॥७१॥ वीचिर्यथांभसःस्पंदोजगच्चैवतथाचितौ ॥ एतावन्मात्रएवात्रभेदोयद्रघुनंदन ॥ ७२ ॥

अर्थ—सर्ग (सृष्टि) तथा सर्गका अभाव, बंध, मोक्ष, ज्ञान और ज्ञानाभाव, इनके साक्षीके ज्ञानसे दोनों अभिन्नरूपही हैं अब तुमारी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ६९ ॥ हे रामजी! जो अनर्थ (संसार) विस्मरणमात्रसे नष्ट होताहै उसके नाश होनेमें कौनसा प्रयास है, और जो वस्तु मौन होनेसे सुलभ है उसकोभी विनापरिश्रम शीघ्र प्राप्तही जानो ॥ ७० ॥ हे प्रिय रामजी! जो जगत्का रूप ब्रह्मसे भिन्न ज्ञानमात्रसे सिद्धहै उसका नाश विस्मरणमात्रसे होताहै, और इस जगत्के ज्ञानका जो साक्षी चेतन है उसको तुम प्राप्तही समझो, इसमें जो तुमको इष्टहो वह करो ॥ ७१ ॥ हे रघुनंदन! जैसे जलका स्पंद (किंचित् चलन) तरंग है ऐसेही चित्में जगत् है, और जल तथा तरंगमें जो भेद है इतनाही ब्रह्म तथा जगत्में है ॥ ७२ ॥

देशकालस्वरूपेषुसत्सुवीच्यादितांभसि ॥ जगदादौतुदेशाद्याअसंतोजगतीक्षिताः ॥ ७३ ॥ आभास्वरंत्रिजगदित्यतिभातिभास्वत्स्वंवेदनंविदनमेवचितेःस्वरूपम् ॥ वाचिस्थितंभवतिचैतदुपोहभेदक्लिष्टंप्रशांतवचनस्तुशिवःपरात्मा ॥ ७४ ॥ संवेदनंसर्वइतीहशब्दादर्थादभिन्नौनकदाचिदेतौ ॥ वीच्यंभसीद्वेइतिनोचितोक्तिर्यस्याज्ञतायांत्विदमेवयुक्तम् ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवटोपाख्याने स्वप्नशतरुद्रीयकथनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

अर्थ—देशकालके स्वरूप विद्यमान जलमें तरंगरूपता होती है और जगत्के विवर्त उपादानकारण ब्रह्ममें प्रथम देश काल आदि न रहते पीछे आरोपसे कार्यरूप जगत्कोटिमें देखेगये हैं ॥ ७३ ॥ हे रामजी! स्वयंप्रकाश आत्माही अविद्यारूप आवरणसे अपने शुद्धरूपका उल्लंघन करके किंचित् प्रकाशसहित त्रिलोकीरूप होजाताहै और चिद्रूप उसका यथार्थरूप तो ज्ञानही है, तथा पृथिवीका जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशकाभी आत्मामें लयकरके वाणीमात्रमें स्थित और भेदसे अनर्थकारक त्रिलोकका उपसंहार करो, और जो वाणीकाभी विषय नहीं है वही शिव परमात्मा है ॥ ७४ ॥ आत्मचेतनही संपूर्ण जगत्रूप है इस शब्द तथा अर्थसे ब्रह्म तथा जगत् अभिन्नरूप हैं,और कदाचित्भी ये दोनों भिन्नरूप नहीं हैं क्योंकि जल और तरंग दोनों भिन्नरूप हैं यह कथन युक्त नहीं है किंतु अज्ञानदशामेंही इनका द्वैतकथन युक्त होसकताहै ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे जीवटोपाख्याने स्वप्नशतरुद्रीयकथनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

भिक्षुके संकल्पसे जनित उन २ देहोंका शेषभोगोंका वर्णन अनन्तर रुद्रके गणपदवीकी प्राप्ति और संकल्पकी स्थिरता इस ६४ के सर्गमें कीगई है ॥

श्रीरामउवाच ॥ जीवटब्राह्मणादीनांहंसादीनांमुनीश्वरः ॥ भिक्षुस्वप्नशरीराणांसंपन्नंकिमतःपरम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रुद्रेणसहसंभूयप्रबुद्धाःसर्वएवते ॥ मिथश्चदृष्टसंसारारुद्रांशाःसुखिनःस्थिताः ॥ २ ॥ तेनरुद्रेणतांमायामवलोक्ययथोदिताम् ॥ स्वांशास्तामेवसंसारस्थितिंतेप्रेषिताःपुनः ॥ ३ ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ गच्छताशुनिजंस्थानंतत्रभुक्त्वाकलत्रकैः ॥ कंचित्कालंसमंभोगान्मत्सकाशमुपैष्यथ

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे मुनीश्वर भगवन्! भिक्षुके स्वप्नसे उत्पन्न जीवटब्राह्मणसे आदि लेके रुद्रपर्यन्त शरीरोंका क्या हुआ अर्थात् स्वप्नके शरीरके समान उनका बाध हुआ वा भविष्यत्में व्यवहारभी हुआ ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! वे सब रुद्रके अंश जीवटादि रुद्रके साथ मिलनेसे सब ज्ञानयुक्त हुये और परस्पर एक दूसरेके पूर्वोत्तर संसारके देखनेसे कृतार्थ होके सुखपूर्वक रहतेहुये ॥२ ॥ कौतुक देखनेकेलिये प्रवृत्त प्रथम रुद्रने पूर्वोक्तमायाको देखके अपने अंशभूत जीवटादिको उनकीही संसारस्थितिमें पुनः भेजदिया ॥ ३ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि—हे जीवटादि! तुम अपने २ स्थानको जाओ वहांपर अपने कुटुंबोंके साथ अनेकभोगोंको भोगकर मेरे निकट पुनः आओगे ॥ ४ ॥

भविष्यथमदंशायेगणामत्पुरभूषणाः ॥ ततोमहाप्रलयतोयास्यामस्तत्परंपदम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तेषांसोंतरधीयत ॥ अंत्यसंसारसंख्यानंरुद्राणांमध्यमाययौ ॥ ६ ॥

प्रययुःस्वास्पदंतेपिजीवटब्राह्मणादयः ॥ स्वकलत्रैःसमंदेहंक्षपयित्वाथकालतः ॥ ७ ॥ रुद्रलोकंसमासाद्यभविष्यंतिगणोत्तमाः ॥ कदाचिद्व्योम्निदृश्यंतेतारकाकारकारिणः ॥ ८ ॥

अर्थ—और मेरे अंशभूत तथा पुरके भूषण गण होओगे, और महाप्रलयके पश्चात् हम सब उस परमपदको प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ श्रीवासिष्ठजी बोले—हे रामजी ! रुद्रभगवान् इतना कहके अन्तर्धान होगये और उन रुद्रके अंतिमरुद्रका जो साक्षी चेतन था वह जीवट आदि प्रत्येकके संसारमें प्राप्त हुआ अर्थात् सबके स्वप्नका साक्षी जागररूप होगया ॥ ६ ॥ वे जीवट ब्राह्मण आदिभी अपने २ स्थानको गये और अपने कुटुंबोंके साथ अपनी आयु बिताके अनंतर काल पाके ॥ ७ ॥ रुद्रलोकमें पहुंचके उन उत्तमगणोंमें उत्पन्न होंगे, जो कभी २ तारागणके आकाररूप आकाशमें देखपडतेहैं ॥ ८ ॥

श्रीरामउवाच ॥ भिक्षुसंकल्परूपास्तेजीवटब्राह्मणादयः ॥ कथंसत्यत्वमायाताःसंकल्पार्थेकसत्यता ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्पसत्यतात्वंशेत्यजसंकल्पसत्यताम् ॥ तत्रयन्नास्तितन्नास्तियतःसर्वात्मतत्पदम् ॥ १० ॥ यत्स्वप्नेदृश्यतेयच्चसंकल्पैरवलोक्यते ॥ तत्तथाविद्यतेतत्रसर्वकालंतदात्मकम् ॥ ११ ॥ तद्देशकालात्मतयागत्वादेशांतरंयथा ॥ देशाद्देशांतरंयद्वन्नगत्यात्मादिकंविना ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! भिक्षुके संकल्परूप जीवट ब्राह्मण आदि कैसे सत्य हुये क्योंकि संकल्पजनित अर्थकी सत्यता कहां ? ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—संकल्पजनित पदार्थकी सत्यता अधिष्ठान चिदंशमेंही है और अध्यस्त अंशमें संकल्पजनित पदार्थकी सत्यताको त्यागो क्योंकि सदसत्मिलित संकल्पजनित पदार्थमें जो सत्भिन्नरूप पूर्वोत्तरकालमें नहीं है वही नहीं है, और अधिष्ठानरूप तो सर्वात्मरूपसे व्याप्त है इसलिये वही है और उसीकी सत्तासे संकल्पजनित पदार्थमें क्रियासामर्थ्य है ॥ १० ॥ जो स्वप्न तथा संकल्पमें देखपडताहै वह सबकालमें सद् अधिष्ठानरूप होके उस देश तथा कालरूप होके वहां सदा है ॥ ११ ॥ उन २ देशकालरूप होनेसे दैशिक तथा कालिकसंबंधसे पाटलिपुत्र (पटना) आदि देश नगर वहां विद्यमानभी परंतु मथुरादिदेशसे गमन, स्वस्थचित्त, और नेत्रआदिकी कुशलताविना नहीं प्राप्त होता ॥ १२ ॥

नलभ्यतेतथास्वप्नोविनातत्रनलभ्यते ॥ सर्वमस्तिचितःकोशेयद्यथालोकयत्यसौ ॥ १३ ॥ चित्तथातदवाप्नोतिसर्वात्मत्वादविक्षतम् ॥ संकल्पःस्वप्नकस्त्वंगययाचदशयाप्यते ॥ १४ ॥ परमभ्यासयोगाभ्यांविनात्वेतन्नलभ्यते ॥ येषांतुयोगविज्ञानदृष्टयःफलिताःस्थिताः ॥ १५ ॥ सर्वसर्वत्रपश्यंतितेयतःशंकरादयः ॥ इदमग्रगतंवस्तुतथासंकल्पितंमया ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसेही स्वप्नभी जाग्रत, सुषुप्ति, वा अन्यस्वप्नमें नहीं प्राप्तहोता, और चित्के कोशमें सबकुछ है परंतु जिसको वह जैसे देखती है ॥१३॥ वैसेही सर्वरूप होनेसे उसको पूर्णरूपसे प्राप्त होती है. और हे प्रिय रामजी ! संकल्प तथा स्वप्नके पदार्थ जिसरीतिसे प्राप्तहोतेहैं वह रीति तुम सुनो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! अभ्यासयोगके विना संकल्पितार्थकी प्राप्ति कदापि नहीं होती और जिनकी अभ्यासद्वारा योगविज्ञानकी दृष्टि फलीभूत होगई है ॥ १५ ॥ वे एकाग्रचित्त शंकरआदि सबकुछ सर्वत्र देखतेहैं, और जो कुछ एकाग्रतासेरहित होके अग्रगत वस्तु मैंने संकल्पित किया है ॥ १६ ॥

नाप्यंयतोभयभ्रंशंसप्राप्नोत्युभयाश्रयात् ॥ सर्वह्यभिमतंकार्यमेकनिष्ठस्यसिद्ध्यति ॥ १७ ॥ दक्षिणांककुभंगच्छन्कःप्राप्नोत्युत्तरांदिशम् ॥ संकल्पार्थपरैरेवसंकल्पार्थोविगम्यते ॥ १८ ॥ अग्रस्थार्थपरैरग्रेसंस्थितोर्थोविगम्यते ॥ अग्रस्थेबुद्धिसंस्थेयःसंकल्पंप्राप्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ तदासावेकनिष्ठत्वाभावात्तन्नाशयेद्द्वयम् ॥ तस्मादेकार्थनिष्ठत्वाद्भिक्षुर्जीवेनरुद्रताम् ॥ २० ॥

अर्थ—उसको कभी नहीं प्राप्त करसकता क्योंकि चित्त संकल्पित तथा अन्यपदार्थका आश्रित होनेसे दोनोंसे भ्रंशकोही प्राप्तकरताहै इसलिये सब अभिलषित कार्य्य एकाग्रचित्तवालेकाही सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥ ऐसा कौन जन है जो उत्तरदिशामें जाताहुआ दक्षिणदिशामें पहुचै, जो संकल्पित अर्थमें एकाग्रचित्तसे तत्पर होतेहैं वेही संकलिपत अर्थको पातेहैं ॥ १८ ॥ देखो जो संमुखस्थित वस्तुमें तत्पर हैं वेही संमुखकी वस्तु पातेहैं और जिसकी बुद्धि संमुखके पदार्थमें स्थित है और वह अन्य संकलिपत पदार्थको चाहताहै ॥ १९ ॥ तो यह एकपदार्थमें तत्पर न होनेसे दोनोंको नष्टकरैगा, इसकारणसे भिक्षु जीवने समाधिके अभ्याससे एकपदार्थमें निष्ठ होनेसे रुद्रपदवीको ॥ २० ॥

प्राप्यसर्वात्मनालब्धंतथासर्वंतथास्थिते ॥ भिक्षुसंकल्पजीवास्तेप्रत्येकंतज्जगत्पृथक् ॥ २१ ॥ पश्यंतिचैतेनान्योन्यंरुद्रज्ञानादृतेततः ॥ अप्रबुद्धाःप्रजायंतेजीवाजीवांतबोधिनः ॥ २२ ॥ तदिच्छयाश्रुतद्

पाबहुरूपाश्चतेइह ॥ इहविद्याधरोहंस्यामहंस्यामिहपंडितः ॥ २३ ॥ इत्येकध्यानसाफल्यंदृष्टांतोस्यां क्रियास्थितौ ॥ एकत्वंचबहुत्वंचमौर्ख्यपांडित्यमेववा ॥ २४ ॥ देवत्वंमानुषत्वंचदेशकालक्रियाक्रमैः॥ तुल्यकालमलंकर्तुंधारणाध्यानयत्नतः ॥ २५ ॥

अर्थ—प्राप्त करके प्रसिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वात्म रुद्ररूप होके सबकुछ प्राप्तकिया क्योंकि रुद्रकी कृपासे भिक्षुभी वैसाही होगया, और भिक्षु तथा रुद्रके मध्यमें भिक्षुके संकल्पसे ९८ जीव पृथक् २ स्थित और उनके जगत्भी पृथक् २ हैं ॥२१॥ इसलिये रुद्रके ज्ञानके विना एकदूसरेके संसारको नहीं देखते, और जीवोंके संसारभेदको जाननेवाले रुद्रकी इच्छासे वे अज्ञानी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ और रुद्रकी इच्छाहीसे रुद्ररूप तथा रुद्रभिन्न अनेकरूप उत्पन्न होतेहैं, और यहां मैं विद्याधर होऊं, यहां पंडित होऊं इसप्रकार प्रत्येकके संसारदशामें अपनी इच्छासे वे होते हैं ॥ २३ ॥ इसप्रकार अन्यजीवोंकी क्रियाकी स्थितिमें यही भिक्षुके ध्यानकी सफलता (संकलपसे सृष्टिकी रचना) दृष्टांत है, और यह जीव धारणा ध्यानरूप यत्नसे देश काल क्रियाके क्रमोंसे वा एकहीकालमें एकत्व, बहुत्व, पांडित्य तथा मूर्खता, देवत्व, और मनुष्यादि करनेको समर्थहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

सर्वशक्त्यःस्वरूपत्वाज्जीवस्यास्त्येकशक्तता ॥ अनंतश्चांतदृक्तश्चस्वभावोस्यस्वभावतः ॥ २६ ॥ स विकासःससंकोचोऽहिंस्रस्तेनचिदात्मनः ॥ यदिच्छतितदस्यांगजंतुःसंपद्यतेस्वयम् ॥ २७ ॥ स्वयं संपादितैरेभिर्देशकालक्रियाक्रमैः ॥ योगिन्योयोगिनश्चेहतिष्ठंत्यन्यत्रयत्रच ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि यह जीव परमार्थमें अनंत है इसलिये इसमें सब शक्ति हैं और एक २ देहके अभिमानसे परिच्छिन्नभी है इसलिये इसमें केवल एकही कार्य करनेकी शक्ति होती है ॥ २६ ॥ और इसीसे प्राणियोंके कर्मके अनुसार स्वर्गनरकादिरूप अनर्थयुक्त अनेक ब्रह्मांड रचनेसे विकाससहित, और प्रलयमें सब प्राणीके संहारसे संकोचसहित जगदीश्वर हिंसायुक्त वैषम्य तथा नैर्घृण्यदोषसे शून्य है क्योंकि यह जीवसमूह अपने कर्मानुसार जो कुछ चाहताहै वही स्वेच्छानुसार चिदात्मा जगदीश्वरके संकल्पसे सिद्ध होताहै वह किसीका कुछभी अनिष्ट नहिं करता ॥ २७ ॥ स्वयं उपार्जित देश काल तथा क्रियाके क्रमोंसे योगिनी तथा योगीजन अपने गृहमें तथा अन्यत्र एक वा अनेक देह धारणकरके स्थित रहते हैं ॥ २८ ॥

इहवामुत्रभोगेनदृष्टमेतदनेकशः ॥ कार्तवीर्योगृहेतिष्ठन्सर्वेषांभयदोभवत् ॥ २९ ॥ विष्णुःक्षीरोदधौ तिष्ठन्जायतेपुरुषोभुवि ॥ पश्चर्ययांतितिष्ठंत्योयोगिन्योयोगिनीगणे ॥ ३० ॥ शक्रःस्वर्गासनेतिष्ठन्यातियज्ञार्थमुर्विकां ॥ सहस्रमेकंभवतितथाचास्मिञ्जनार्दनः ॥ ३१ ॥ नृणांशतानिभक्तानांमानुष्यंयाति तन्नतैः ॥ एकःसहस्रंभवतितथाचैषजनार्दनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—योगीजन ऐहिक और आमुष्मिक (स्वर्गके) भोग एकहीकालमें भोगतेहैं ऐसा अनेकबार देखागयाहै. कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) राजा अपने घरमें रहताहुआ सब चौरादिके निकट प्राप्त होनेसे उनको भयकारी था ॥ २९ ॥ हे रामजी! योगिराज विष्णुभगवान् क्षीरसागरमें स्थित संसारमें मनुष्यजन्म धारणकरके व्यवहार करतेहैं, योगिनीजन स्वर्गलोकमें योगिनीयोंके मध्यमें रहतेहैं और पशुओंके पीनेयोग्य उपहार ग्रहण करनेको पृथिवीपर जातेहैं ॥ ३०॥ इन्द्र स्वर्गके सिंहासनपर स्थित रहतेहुयेभी यज्ञकेलिये पृथिवीपर आते हैं और रामावतारमें जनस्थानमें चतुर्दशसहस्र राक्षसोंके वधके अर्थ एकभी विष्णुभगवान् सहस्र स्वरूप धारण करके पुनः एक होगये ॥ ३१ ॥ और इसीप्रकार येही जनार्दन (विष्णु) भक्तोंके नमस्कार आदिसे सैकडों भक्तमनुष्योंके ऊपर अनुग्रहार्थ यदुकुल आदिमें मनुष्यजन्म धारण करतेहैं और कौरवोंकी सभामें दुर्योधनादिके व्यामोहके अर्थ एकही सहस्ररूप धारण करतेहैं ॥ ३२ ॥

अंशावतारलीलाभिःकुरुतेजागतींस्थितिम् ॥ एकःकांतासहस्राणितुल्यकालंनिमेषवत् ॥३३॥ एवंतेभिक्षुसंकल्पाजीवटब्राह्मणादयः ॥ रुद्रविज्ञानवशतःस्वसंकल्पपुरींगताः ॥ ३४ ॥ तत्रभुक्त्वाचिरंभोगान्प्राप्यरुद्रपुरंततः ॥ गणतामावसंतस्तेस्थास्यंतिसपरिच्छदाः ॥३५॥ नित्यंप्रफुल्लनवकल्पलतालयेषु रुद्रेणसाकमुरुरत्नगुलुच्छकेषु ॥ नानाजगत्सुचतदाशिवपत्तनेषुविद्याधरीष्वमरमौलिधराश्चरेजुः ॥३६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे गणत्वप्राप्तिर्नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ—यही विष्णुअंशसे अवतार धारणकी लीलाओंसे जगत्की स्थिति करते हैं, और एकही सोलहसहस्र ललनाओंका अनेकरूप धारण करके एकहीकालमें भोग ऐसे करते हैं जैसे राजर्षि निमि विदेहदशाको प्राप्त होके सब प्राणियोंके नेत्रोंमें रहकर एककालमें निमेष (संचालन) करते हैं ॥ ३३ ॥ इसीरीतिसे भिक्षुके संक-

रूपसे उत्पन्न जीवट ब्राह्मणआदि रुद्रकी आज्ञासे अपने संकल्पकी पुरीमें प्राप्तहुये ॥३४॥ वहांपर चिरकालतक अनेक भोगोंको भोगकर रुद्रपुरीमें प्राप्तहोके रुद्रके गण होके अपने कुटुंबसहित रहेंगे ॥३५॥ और वहांपर देवताओंसे नमस्कृत वे रुद्रगण महादेवजीके साथ अनेकप्रकारके रत्नोंके गुच्छोंसहित विकसित तथा नूतन कल्पलतागृहोंमें, नानाप्रकारके भुवनोंमें और कैलास, वैकुंठ तथा ब्रह्मलोकादि नगरोंमें गान और वाद्यमें कुशल विद्याधरियोंके साथ विहार करतेहुये शिवस्वरूप होके शोभाको प्राप्त होंगे ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे गणत्वप्राप्तिर्नाम चतुःषष्ठितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्ठितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

सब जीवोंमें भिक्षुन्यायकी समानता, रात्रिमें भिक्षुके खोजनेका विचार, और सभाका उत्थान इस ६५ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ईषद्दृष्टोयथातेनभिक्षुणाचेतसिभ्रमः ॥ भूतंप्रयत्नमेवैषपृथक्कृत्वासुपश्यति ॥ १ ॥ सर्वस्याभासजीवस्यमृतिजन्ममयीस्थितिः ॥ भवत्येवचिदाकाशरूपिण्येवाकृतिंगता ॥ २ ॥ पृथक्कृत्यैक्यमभ्येतिस्वात्मासंसारखंडकम् ॥ सर्वएवमृतोजंतुःपृथक्स्वप्ननिभात्मकम् ॥३॥ एवंतत्तत्स्वरूपोपिदेहीचामोक्षमाकुलः ॥ जीवयूथंमयातुभ्यंकथितंकथयानया ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जैसे उक्तरीतिसे भिक्षुने अपने चित्तमें जो किंचित् भ्रम देखा उसी भ्रमको इसने अपने पूर्वकालके भूत शुभाशुभकर्मरूप प्रयत्नकोही फलावस्थामें अपनेसे पृथक्केसमान भलीभांति देखा ॥ १ ॥ हे रामजी! सब आभासजीवोंकी मृत्यु तथा जन्ममयी स्थिति चिदाकाशरूपही अन्यआकारके समान होतीहै ॥ २ ॥ सब जीव मरणअवस्थामें स्मरण किये अपने कर्मकोही स्वप्नके सदृश जगत्‌रूपसे आत्मासे पृथक् करके देखताहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! भिक्षुके आत्माके समान सब जीव अपरिच्छिन्नरूप होनेपरभी देहसे परिछिन्न जीवके समान मोक्षपर्यन्त व्याकुलतापूर्वक देखताहै यह मैंने भिक्षुककी कथासे तुमको जीवसमूहका वर्णन कियाहै ॥४॥

परात्प्रस्पंदितात्मेतिनभिक्षूरामकेवलम् ॥ मोहान्मोहांतरंयातिजीवोहरहरेवनः ॥ ५ ॥ पर्वताग्रपरिभ्रष्टोह्यधोधउपलोयथा ॥ परमात्मपरिभ्रष्टोजीवःस्वप्नमिमंदृढम् ॥ ६ ॥ पश्यत्यस्मादपिस्वप्नाद्यातिस्वप्नांतरंपुनः ॥ स्वप्नात्स्वप्नेविनिपतन्मृषैवेदंदृढंकिल ॥ ७ ॥ परिपश्यतिजीवोंतर्मायया जर्जरीकृतः ॥ क्वचित्केनचिदेवेहकदाचिदपिवास्वयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! पूर्णस्वरूप परमात्मासे प्रस्पंदित केवल भिक्षुही नहीं परन्तु सब जीव एकमोहसे दूसरे मोहमें उक्तरीतिसे प्राप्त होताहै यह वार्ता प्रतिदिनके स्वप्नमें हमलोगोंको अनुभवसिद्ध है ॥ ५ ॥ जैसे पर्वतके ऊपर गिराहुआ पाषाणका ढेला बराबर नीचेही गिरताजाताहै ऐसे परमात्मासे प्रच्युत यह जीव इस जन्मादिस्वप्नको दृढतापूर्वक ॥ ६ ॥ देखताहै और इस स्वप्नसे पुनः अन्यस्वप्नको प्राप्त होताहै और पुनः इस स्वप्नसे मिथ्याही दृढतापूर्वक ॥७॥ मायासे जर्जरीभूत यह मायासे अपने अन्तःकरणमें दूसरे स्वप्नको किसी अन्यनिमित्त वा स्वयं देखताहै ॥८

देहनाम्नोहमित्यंतोमुच्यतेस्वंप्रपद्यते ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुविषमोमोहोजीवस्यास्योपजायते ॥९॥ यथासुप्तस्यस्तोकेननानाकारविकारया ॥ मिथ्याज्ञानोग्रयामिन्यामाययानिपतत्यलम् ॥ १० ॥ अहोनुखलुवैषम्यंभीमंनिजवदुच्यते ॥ भगवन्सर्वदासर्वंसर्वदैवजगत्स्थितौ ॥ ११ ॥ त्वयासंभवतीत्युक्तंयथा तच्चानुभूयते ॥ एवंगुणविशिष्टात्मातन्मोहात्मासभिक्षुकः ॥ १२ ॥

अर्थ—देह मैं हुं यह अभिमानही जीवकेलिये बंधन है और आत्माकी प्राप्तिही मोक्ष है. श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! अहो यह कैसा भयंकर मोह जीवको उत्पन्नहोताहै ॥ ९ ॥ हे भगवन्! जैसे अल्प मादकवस्तु आदिके निमित्तसे सुप्त प्राणिका मन नानाप्रकारके विकारसंयुक्त मिथ्या अज्ञानयुक्त भयंकर रात्रिके मायासे अति विषमसंकटमें गिरताहै और उसको अपना सत्य करके मानताहै यही दशा इस जीवकी है, यह कैसे आश्चर्यकी वार्ताहै और इस जगत्की स्थिति सदासर्वत्र सबकुछ संभवहै ॥ १० ॥ ११ ॥ यह जो आपने कहाहै वहभी मुझे अनुभूत है. हे भगवन्! जीवटादिके जन्मरूप मोहमें गिरनेवाला भिक्षु जो आपने वर्णन कियाहै ॥ १२ ॥

क्वचिदस्तिनवास्त्यंतरालोक्यकथयाशुमे ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अद्यरात्रौसमाधिस्थस्त्रिलोकीमठिकामिमाम् ॥१३॥ भिक्षुरेकोस्तिनास्तीतिप्रेक्ष्यप्रातर्वदाम्यम् ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ मुनौचैवंकथयतिबह्निर्मध्याह्नडिंडिमः॥१४॥ उदभूत्प्रलयक्षुब्धघनगर्जितमांसलः॥ तत्यजुःपादयोस्तस्यपुष्पांजलिपरंपराः ॥ १५ ॥ नृपाःपौराविटपिनःपुष्पंवातधुताइव ॥ पूजयित्वामुनिश्रेष्ठानुदतिष्ठन्स्वविष्टरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—सो वह कहीं है वा नहीं यह समाधिद्वारा देखके मुझे शीघ्र कहिये. श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! आजरात्रिको समाधिस्थ होकर इस त्रिलोकीरूप मठीको ॥ १३ ॥ देखकर प्रातःकाल तुमसे कहुंगा कि जैसा भिक्षु मैंने तुमसे कहा वैसा है वा नहीं है. श्रीवाल्मीकिमुनि राजा अरिष्टनेमिसे बोले कि–जब श्रीवसिष्ठमुनि रामचंद्रजीसे इतना कहचुके तब मध्यान्हकालका सूचक नगाडेका शब्द ॥ १४ ॥ ऐसा हुआ जैसे प्रलयकालका संक्षुब्ध-मेघका शब्द, और उससमय श्रीवसिष्ठजीके चरणोंपर पुष्पोंकी श्रेणी ॥ १५ ॥ राजालोग तथा नगरनिवासियोंने ऐसे छोडी जैसे वायुसे कंपित वृक्ष पुष्पोंको, और सब राजा तथा अन्यजन मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रादिकी पूजा करके अपने २ आसनसे उठे ॥ १६ ॥

सभातदनुसोत्तस्थौसप्रणामपरंपरा ॥ क्रमेणह्यस्तनेनैवजग्मुःखेचरभूचराः ॥ १७ ॥ स्वास्पदेषुयथाशास्त्रमहर्व्यापारमादृताः ॥ सर्वेसंपादयामासुर्निजधर्मक्रमोचितम् ॥ १८ ॥ चिंतयंतोमुनिप्रोक्तंमहीचरनभश्वराः ॥ ज्ञानंक्षपांक्षणमिवनिन्युःकल्पमिवापिच ॥ १९ ॥ प्रातःपुनःप्रस्तुतकार्यपरंपरेस्मिन्जातेजनेखचरभूचरभूतसंघः ॥ आख्यानलोकरचनेनतथैवतस्थावन्योन्यसंवदनपूजितपूज्यलोकः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे विद्योत्तरविस्मयवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—और उसके पश्चात् सब सभा आपसमें प्रणाम करके उठ खडीहुई और गतदिवसके अनुसार सब आकाशचारी तथा पृथिवीचारी अपने २ निवासस्थानको गये ॥ १७ ॥ और अपने आश्रमोंमें शास्त्रके अनुसार अपने धर्मके अनुकूल आन्हिक कृत्य संपादन किया ॥ १८ ॥ और सब महीचर तथा आकाशचारी गण वसिष्ठमुनिसे कथित ज्ञानका चिंतन करतेहुये क्षणकेसमान तथा प्रश्नकी अभिलाषासे कल्पकेसमान रात्रिको व्यतीत करतेहुवे ॥ १९ ॥ और सब आकाशचारी तथा भूमिचारीगण रात्रिको बिताकरके प्रातःकालमें जब सब प्राणी अपने २ कर्ममें तत्परहुये तब दशरथकी सभामें आके परस्पर नमस्कार करके आख्यानके श्रवणकी रीतिसे बैठगये ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे विद्योत्तरविस्मयवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

रात्रिमें प्रयत्नसे देखनेसे भिक्षुका दर्शन तथा अन्य भूतभविष्यमुनियोंका दर्शन इस ६६ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ वसिष्ठमुनिसंयुक्ताविश्वामित्रादिसंयुताः ॥ स्थिताःखेचरसिद्धौघाविश्रांतानृपनायकाः ॥ १ ॥ सरामलक्ष्मणासैवतथैवाथसभाबभौ ॥ सौम्यासमसमाभोगाशांतवातेवपद्मिनी ॥२॥ अनवेक्ष्यवचःप्रश्नमुवाचाथमुनीश्वरः ॥ बोधयंतिबलादेवसानुकंपाहिसाधवः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ राजन्रघुकुलाकाशशशांकरघुनंदन ॥ ह्योमयाज्ञाननेत्रेणसभिक्षुःप्रेक्षितश्चिरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–हे राजन् ! वसिष्ठ तथा विश्वामित्रादिसहित देव, सिद्धसमूह, और श्रेष्ठ राजा-गण तथा सामंतादि क्रमसे उस सभामें बैठे ॥१॥ और रामलक्ष्मणसहित सौम्य तथा समानआकारवाली वह सभा ऐसे शोभित हुई जैसे शांतवायुसे कमलसंयुक्त सरसी ॥ २ ॥ इसके पश्चात् प्रश्नकी प्रतीक्षा न करके मुनीश्वर वसिष्ठजी बोले क्योंकि कृपालु साधु बलात्कार बोधन करतेहैं ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रघुकुलाकाशके चंद्र राजन् रामजी ! गतदिनमें मैंने ध्यानके नेत्रसे उसप्रकारके भिक्षुको देखा ॥ ४ ॥

ध्यानेनाहंचिरंभ्रांतस्तादृग्भिक्षुदिदृक्षया ॥ द्वीपानिसप्तविपुलांकुलशैलसपर्वताम् ॥ ५ ॥ यावत्कुतश्चिदप्येवंभिक्षुर्लब्धोनतादृशः ॥ कथंकिलमनोराज्यंबहिरप्युपलभ्यते ॥ ६ ॥ ततस्त्रिभागशेषायांरात्र्यांपुनरहंधिया ॥ उत्तराशांतरंयातोवेलावातइवार्णवम् ॥ ७ ॥ जिननामैषतत्रास्तिश्रीमान्जनपदोमहान् ॥ वाल्मीकोपरितत्रास्तिविहारोजनसंश्रयः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! ध्यानके नेत्रसे उसप्रकारके भिक्षुके दर्शनकी इच्छासे सप्तद्वीपवती कुलपर्वतादिसहित इसी पृथिवीपर मैंने चिरकालतक भ्रमण किया ॥ ५ ॥ जबतक वैसा भिक्षु नहीं मिला तबतक मनोराज्य बाहर कैसे मिलताहै इस विचारसे मैं भ्रमण करताही रहा ॥ ६ ॥ इसके अनंतर तृतीयांश रात्रि शेष रहगई तब ध्यानसे मैं पुनः उत्तरदिशामें ऐसे गया जैसे समुद्रतटका वायु समुद्रमें ॥ ७ ॥ वहांपर वल्मीक जनपदके आगे जिननामसे प्रसिद्ध जनपद है उस जनपदमें विहारनाम बहुत मनुष्योंका आश्रय देश है ॥ ८ ॥

तस्मिन्विहारेस्वकुटीकोशेकपिलमूर्धजः ॥ भिक्षुर्दीर्घदृशोनामस्थितएवसमाधये ॥ ९ ॥ एकविंशतिरात्रंचतस्यैवंस्थितिशालिनः ॥ दृढार्गलंगृहंध्यानभंगभीताविशंतिनो ॥ १० ॥ भृत्याःप्रियाःकिलतथासंतिष्ठतिसभिक्षुकः ॥ अद्यैवतस्यसंवेत्तुंनियतेरीदृशीस्थितिः ॥ ११ ॥ रात्रयोध्याननिष्ठस्यगतास्तस्यैकविंशतिः ॥ सप्तवर्षसहस्राणितथाचित्तेनभूतवान् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस विहारमें कपिल (पिंगलवर्ण) हैं बाल जिसके ऐसा दीर्घदृष्टि नाम एक भिक्षु अपनी कुटीके कोशमें समाधिमें स्थितहै ॥ ९ ॥ इसप्रकार समाधिमें बैठे उस भिक्षुको आज २१ रात्रि बीतगई और उसके ध्यानके भंगके भयसे प्रियभृत्यभी उसकी कुटीमें जहां वह समाधिस्थ है प्रवेश नहीं करते ॥१०॥ और आज उस भिक्षुको विदेहकैवल्यप्राप्तिकेलिये यह अंतिम साक्षात्कार है क्योंकि उसकी आयुके विधाताकी स्थिति ऐसीहीहै ॥ ११ ॥ उस भिक्षुको ध्याननिष्ठ हुये केवल इक्कीस (२१) रात्रि बीतीहै परंतु उसने अपने चित्तमें सहस्रों वर्ष अनुभव किये ॥ १२ ॥

कस्मिंश्चित्प्राक्तनेकल्पेभिक्षुरेवंपुराभवत् ॥ अद्यत्विहद्वितीयोस्मिंस्तृतीयोनोपलभ्यते ॥ १३ ॥ मयातुपुनरन्विष्यचेतसाचतुरात्मना ॥ तादृग्भिक्षुस्तृतीयोन्योजगत्पद्मोदरालिना ॥ १४ ॥ अस्मात्सर्गात्तुतोलब्धस्तृतीयस्तादृशाशयः ॥ अथान्येलीलयासर्गामयासंप्रेक्षितास्ततः ॥ १५ ॥ यावत्तस्मिंश्चिदाकाशकोशशायिनिसर्गके ॥ तृतीयोविद्यतेभिक्षुर्ब्राह्मश्चसदृशक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—पूर्ववर्णित रीतिसे ऐसा भिक्षु किसी कल्पमें हुआहै और इस कल्पमें तो यह द्वितीय भिक्षु है, उस कल्पमें मुझे कोई तृतीय नहीं मिला ॥ १३ ॥ हे रामजी! जगत्‌रूप कमलके कोशमें चित्तसे भ्रमरके समान भ्रमण करतेहुये मैंने वैसा तीसरा भिक्षु नहीं पाया ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् लीलासे इस सृष्टिके अन्यजगत्‌की सृष्टियोंको मैंने देखा तो उसमें वैसाही तृतीय भिक्षु मैंने पाया ॥ १५ ॥ हे रामजी! चिदाकाशके कोणमें स्थित उस सृष्टिमें तीसरा भिक्षु वैसाही है और वहांके ब्रह्मासे रचित भुवनका क्रमभी इसी भुवनके समानहै ॥ १६ ॥

एवंतेनैवतेनैवसन्निवेशेनभूरिशः ॥ भविष्यंत्यभवन्सर्वेपदार्थाःसर्गसंततौ ॥ १७ ॥ अस्यांसभायामपियेमुनयोब्राह्मणास्तथा ॥ भाव्यमेवंसमाचारैस्तैरन्यैरप्यनेकशः ॥ १८ ॥ नारदेनामुनाभाव्यंपुनरन्येनचामुना ॥ एवंकलनकर्मभ्यांयुक्तेनान्येनभूरिशः ॥ १९ ॥ एवंजन्मादिनाभाव्यंव्यासेनापिशुकेनच ॥ शौनकेनपुनर्भाव्यंक्रतुनापुलहेनच ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार सृष्टिके समूहमें उसी २ रचनाके अनुसार भिन्न ब्रह्मांडोंमेंभी भिक्षु आदि अनेक पदार्थसमानही हुये ॥ १७ ॥ और इस सभामेंभी जो मुनि ब्राह्मण हैं वे सब उसी भिक्षुके समान तथा भिन्न आचारवालेभी अनेकबार होंगे ॥ १८ ॥ हे रामजी! ये नारद जो हैं सो इसीप्रकार ज्ञान तथा कर्मसे संयुक्त पुनः नारद होंगे तथा अन्यभी होंगे ॥ १९ ॥ और व्यास, शुक, शौनक, क्रतु और पुलह पुनः इसीप्रकार (नारदादिरूप) जन्म धारण-करेंगे और अन्यप्रकारकेभी ॥ २० ॥

अगस्त्येनपुलस्त्येनभृगुणांगिरसापिच ॥ एतएवतथान्येचएवंरूपक्रियास्पदम् ॥ २१ ॥ चिराच्चिराद्भविष्यंतिमायेयंविततायतः ॥ सदृशाचारजन्मानस्तएवान्येचभूरिशः ॥ २२ ॥ भूयोभूयोविवर्तंतेसर्गेष्वप्स्विववीचयः ॥ अत्यंतसदृशाःकेचित्केचिदर्धसमक्रमाः ॥ २३ ॥ केचिदीषत्समाःकेचिन्नकदाचित्पुनस्तथा ॥ एवमेषातिवितताममहतामपिमोहिनी ॥ २४ ॥

अर्थ—और अगस्त्य, पुलस्त्य, भृगु तथा अंगिरा ये सब इसीप्रकार रचना क्रिया तथा ज्ञानके स्थान ॥२१॥ चिरकालके अनन्तर होंगे, क्योंकि यह परमात्माकी माया अतिविशाल है इसमें समान आचार तथा जन्मधारी और भिन्न २ आचार तथा जन्मधारी वेही तथा अन्यभी अनेकवार होंगे ॥ २२ ॥ हे रामजी ! जलमें तरंगके समान पुनः २ उसीप्रकारके प्राणी आतेजाते रहतेहैं, इनमें कोई अत्यंतसदृश, कोई अर्द्धसदृश क्रमके होतेहैं ॥ २३ ॥ कोई तो किंचित् सदृश होते हैं और कोई कदाचित् किंचित्‌भी सदृश नहीं होते, यह परमेश्वरकी विशाल माया बडोंबडोंकोभी मोहित करलेती है ॥ २४ ॥

क्षणेनेहास्तिनोकर्मप्रतिपत्तिर्हिजृंभते ॥ कैकविंशत्यहोरात्राअनंताकृतयोनघ ॥ २५ ॥ क्वतासामुपलंभोलमहोभीमामनोगतिः ॥ प्रतिभामात्रमेवेदमित्थंविकसितंस्थितम् ॥ २६ ॥ नानाकलहकल्लोलंजले प्रातरिवांबुजम् ॥ जातंसंवेदनादेवशुद्धादिदमशुद्धिमत् ॥ संसारजालमखिलंसार्चिर्वह्निकणादिव ॥२७॥ प्रत्येकमेवमुदितःप्रतिभासुखंडःखंडांतरेष्वपिचतस्यविचित्रखंडः ॥ सर्वेस्वयंननुचतेपिमिथोनमिथ्या सर्वात्मनिस्फुरतिकारणकारणेस्मिन् ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे जीवटोपाख्याने भिक्षुसंसृतिकथनं नाम षट्षष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! निरवयव कालरूप आत्मामें मानसचेष्टाभी नहीं होसकती तो उसमें देहधारण आदि क्रिया कैसे होसकती है, देखो कहांतो उस भिक्षुको २१ रात्रिदिन और कहां जीवट आदि रुद्रपर्यंत अनेक आकार यह सब भ्रांतिमात्र विकसित होरही है ॥ २५ ॥ और कहां उतने समय उन आकारोंकी प्राप्ति. अहो ! यह मनकी गति कैसी भयंकर है, यह केवल प्रतिभामात्र इस रूपसे विकसित होरहा है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जैसे नानाप्रकारके भ्रमरोंके कलह तथा कल्लोलसंयुक्त कमल प्रातःकाल जलमें विकसित होताहै ऐसेही यह सब है, और शुद्ध ज्ञानमात्र परमात्मासे अशुद्ध यह सम्पूर्ण जगज्जाल ऐसे उत्पन्नहोताहै जैसे अग्निके कणमात्रसे ज्वालाविशिष्ट महान् अग्नि ॥ २७ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्तरीतिसे भिक्षुके मनके समान प्रत्येक सब जीवोंके मनोंमें यह संसारखंड उदित है, और उन २ उदित जीवोंके मनोंमेंभी विचित्र यह संसारखंड उदित है, और सबकारणोंके कारण इस परमात्माके स्फुरित रहतेही ये सब संसारखंड परमात्मरूपसे सत्य है और अपने रूपसे किंचित्‌भी सत्य नहीं है ॥२८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे जीवटोपाख्याने भिक्षुसंसृतिकथनं नाम षट्षष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्ठितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

समाधिमें युक्त भिक्षुके देहका नाश तथा भिक्षुकी भ्रांतिके समान अन्यजीवोंकोभी बंध और ज्ञानसे मोक्ष होताहै यह विषय ६७ के सर्गमें वर्णित है ॥

दशरथउवाच ॥ मुनिनायकतंभिक्षुंगत्वासंबोधयंत्वमी ॥ नरामत्प्रहिताःशीघ्रंचानयंतुकुटीगतम् ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ राजंस्तस्यमहाभिक्षोःसदेहःप्राणवर्जितः ॥ क्लेदोवैवर्ण्यमायातोनासौजीवितभाजनम् ॥ २ ॥ तस्यभिक्षोस्तुजीवोसौभूत्वापद्मजसारसः ॥ जीवन्मुक्तःस्थितोभूयोनासौसंसृतिभाजनम् ॥ ३ ॥ तद्गृहेमासपर्यंतेबलान्निष्कासितार्गलाः ॥ अंतरालेतुतिष्ठंतिभृत्याभिक्षुदिदृक्षवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदशरथजी बोले कि–हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे भेजेहुये मनुष्य जाके कुटीमें प्राप्त उस भिक्षुको जगावें और शीघ्र यहां लावें ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राजन् ! उस महाभिक्षुका वह देह प्राणसे वर्जित है और उसके प्राणोंका धारक अन्नरसका भाग सूख जानेसे कुरूप होगयाहै इसलिये वह जीवनका भागी नहीं है ॥ २ ॥ और उस भिक्षुका यह जीव कमलतडागका सारसपक्षी हुआहै और अब जीवन्मुक्त होके स्थित है इसलिये यह पुनः संसारका पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ और उस भिक्षुकी समाधिके अंतिमदिनमें भिक्षुकी आज्ञासे उसके भृत्य बलात्कार अर्गला खोल्के उसके गृहके बाहरको उसे देखनेकी इच्छासे द्वारपर स्थितहैं ॥ ४ ॥

ततोनष्टांगसंधानंकायंनिष्काल्यतेजले ॥ त्यक्ष्यंत्यन्यंकरिष्यंतिभिक्षुमक्षुण्णमानसम् ॥ ५ ॥ अनेनैवंसदेहेनभिक्षुर्मुक्तोव्यवस्थितः ॥ कथंप्रबोध्यतेनष्टंतद्विहारेशरीरकम् ॥ ६ ॥ एषागुणमयीमायादुर्बोधेन दुरत्यया ॥ नित्यंसत्यावबोधेनसुखेनैवातिवाह्यते ॥ ७ ॥ असत्येवकृतारंभाहेम्नःकटकतायथा ॥ प्रतिभासविपर्यासमात्रकारणकोदया ॥ ८ ॥

अर्थ—और अब मासके अंतमें शरीरके संधानसे रहित उस भिक्षुके शरीरको निकालके जलमें फेंकदेंगे और भक्तिसे पूजाआदिकी प्रवृत्तिकेलिये प्रतिमारूप दूसरा भिक्षु स्थापनकरेंगे ॥ ५ ॥ इसरीतिसे वह भिक्षु देहसे मुक्त होके स्थितहै इसलिये प्राणादिकी चेष्टामें मृतक उसको आपके भृत्य कैसे जगावेंगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार हे राजन् ! अज्ञानसे यह गुणमयी माया नाश करनेको कठिन है और सत्य आत्माका ज्ञान होनेसे इस मायाका सुखपूर्वक निरास

कियाजाताहै. ॥ ७ ॥ असत्यही यह जगत्‌रूपकार्यका आरंभ करतीहै और सुवर्णकी कटकताके तुल्य अन्यथाभावमात्रसे इसका उदय है ॥ ८ ॥

परमात्मनिवाचेयमित्थंमायानुमीयते ॥ तरंगालीवपयसिप्रेक्षामात्रविनाशिनी ॥ ९ ॥ ज्ञोहिदृश्यमया द्दीर्घस्वप्नात्स्वप्नांतरंव्रजेत् ॥ एवंजीवत्वमायातिविवेकात्सर्वमात्मदृक् ॥ १० ॥ योयस्यप्रतिभासःस्या दात्मैवसस्वबोधतः ॥ सएवोदेतिसंसारःकरंजवनगुल्मदृक् ॥ ११ ॥ प्रत्येकंभूतमुदितंकृतंसंसारमं डलम् ॥ भिक्षोःस्वप्नांतरइवपरांभंगिमिवांभसः ॥ १२ ॥

अर्थ —" वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम् " (वाणीका विषय घट शरावआदि विकार नाममात्र है किंतु मृत्तिकाही सत्य है) इस दृष्टांतरूप श्रुतिवाक्यसे दार्ष्टांतभूत मायाभी परमात्मामें असत्यही भान होती है, और जलमें तरंगकी पंक्तिके समान विचारमात्रसे यह नष्टहोतीहै ॥ ९ ॥ और इसप्रकार अपने अविवेकसे परमात्माही दृश्यरूप स्वप्नसे दूसरे स्वप्नकेतुल्य जीवदशाको प्राप्तहोताहै और विवेकसे आत्माका द्रष्टा होनेसे सब आत्मामात्रही होजाताहै ॥ १० ॥ और ज्ञानसे जिसवस्तुका प्रतिभास होताहै वह आत्माही होजाताहै, और अज्ञानसे वही करंजके बनमें गुल्मकी दृष्टिके सदृश संसाररूपसे उदित होताहै ॥ ११ ॥ भिक्षुके एकस्वप्नसे दूसरे स्वप्नके तथा जलसे तरंगकी पंक्तिके सदृश प्रत्येक जीवके प्रति यह दीर्घ संसारमंडल उदितहै ॥ १२ ॥

प्रस्तुतःपद्मजादेवजगत्स्वप्नोयथोदितः ॥ तथैवास्वच्छचित्तोत्थोरूढःसर्वजनंप्रति ॥ १३ ॥ पितामहव दाभातिसर्गःस्वप्नविलासवत् ॥ प्रत्येकमुदितस्तेनब्रह्मांडानीवकोटिशः ॥ १४ ॥ स्फुरन्यथातथावा स्मिञ्जीवःपश्यतिविभ्रमम् ॥ हृदयेयंसमर्थंचस्वप्नवद्दीर्घमांतरम् ॥ १५ ॥ चित्सत्तामात्रमासाद्यप्रती तिच्युतमात्रतः ॥ जरामरणदुःखानांकचिद्भाजनतांगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे ब्रह्मासे यह जगत्‌रूप स्वप्न उदयको प्राप्त है ऐसेही कलुषितचित्तसे यह संसार सब जीवके प्रति उदितहै ॥ १३ ॥ पितामहके स्वप्नविलासके तुल्य असत्यही यह संसार चारोंओरसे भानहोताहै इससे निश्चितहै कि प्रत्येक जीवकेलिये कोटि २ ब्रह्मांड उदितहैं ॥ १४ ॥ व्यष्टि वा समष्टिप्रपंचरूपसे अथवा साधारणप्रपंचरूपसे वा प्रत्येक असाधारणप्रपंचरूपसे वा चाहै जिसप्रकारसे यह जीव स्फुरितहो परंतु हृदयमें जो प्रतिभानके समर्थ दीर्घ भ्रमको देखताहै वह स्वप्नके तुल्य मिथ्याही है ॥ १५ ॥ यथार्थस्वरूपसे पतित यह जीव चित्‌सत्ताका आश्रय लेके किसी देव मनुष्य वा पशुआदिके देहमें जरामरणादिके दुःखोंका भागी हुआहै ॥ १६ ॥

पातालंब्रह्मलोकंवाचित्तत्सुकृतशालिनी ॥ चित्तांशस्पंदमात्रेणकृत्वाकृत्वेवसंस्थिता ॥ १७ ॥ चित्स्पं दरूपिणीजीवनामरूपंगतात्मनि ॥ अन्यत्रचविलुठतिगत्वासंभ्रमहारिणी ॥ १८ ॥ चित्तेतिपरमात्मा नपरमात्मानवानकिम् ॥ जीवदेहादिनाम्नोस्यप्रतिबिंबादिवार्हता ॥१९॥ ब्रह्मण्येवपरंब्रह्मजगद्दृष्टयैवसं स्थितम् ॥ शुद्धाकाशमिवाकाशेजलेजलमिवामलम् ॥ २० ॥

अर्थ—उस २ स्वप्नमें विचित्रसुकृतोंसे शोभायमान चित् अपने चित्तअंशके स्पंदमात्रसे अधोभागमें पातालादिलोकको वा ऊर्ध्वभागमें ब्रह्मलोकादिको रच २ के उनके भोगोंको भोगतीहुई स्थितहै ॥ १७ ॥ परमात्मचेतनही प्राणकी कल्पनासे उसके अधीन स्पंदरूप होके उसके द्वारा जीवके नामरूपको प्राप्त होतीहुई आत्मामें देहाकारभ्रमको और अन्यत्र जाके विषयाकार संभ्रमकी हारिणी होके इधर उधर लुढकतीहै ॥ १८ ॥ और यह साक्षीचेतन चित्तरूप उपाधिकी भ्रांतिसे क्या परमात्मा वही नहीं है? और परमात्मा (ब्रह्म) साक्षी चेतन नहीं है? और दर्पणके मुखके प्रतिबिंबके समान इस परब्रह्मकी औपाधिक जीवके देवदत्तादिशरीरके और नेत्रादि इंद्रियोंके नामकी योग्यता क्या नहींहै ॥ १९ ॥ जैसे आकाशमें शुद्धाकाश है और जलमें निर्मल जल है ऐसेही जगत्‌की दृष्टिसेभी ब्रह्ममें ब्रह्मही स्थितहै ॥ २० ॥

लोकोब्रह्मणएवायंजगद्रूपेषुतिष्ठति ॥ बिभेत्यन्यतयाबोधात्प्रतिबिंबादिवार्भकः ॥ २१ ॥ स्पंदेस्पंदी कृतेचेहस्वतःसंज्ञाविलीयते ॥ साप्यलंपरिणामेनलीयतेग्नौघृतंयथा ॥ २२ ॥ चित्स्पंदएवचित्स्पंदेस वर्त्मनिविजृंभितः ॥ स्पंदास्पंदौजृंभणादिकल्पितंनात्रवास्तवम् ॥ २३ ॥ नस्पंदोस्तीहनास्पंदोनैकता वापिनद्विता ॥ शुद्धंचिन्मात्रसर्वस्वंयथैवास्तितथास्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और यह जीवलोक तो निजआत्मभूत ब्रह्मकेही मूर्तामूर्त जगत्‌के रूपोंमें जगत्‌के रूपोंमें स्थितहै और अज्ञानसे उसको अपनेसे भिन्न जानके ऐसे डरताहै जैसे अपने प्रतिबिंबसे बालक ॥ २१ ॥ और समाधिके अभ्याससे बुद्धिके स्पंदके स्पंदरहित होनेपर बुद्धिगत भेदरूप संज्ञा स्वयं बुद्धिमें लीन होजातीहै और आत्मसाक्षात्कार-

परिणामसे वह बुद्धिमेंभी अग्निमें हुत घृतके समान ब्रह्ममें लीन होजातीहै ॥ २२ ॥ सर्वात्मरूप चित्स्पंदमें चित्स्पंदही विकसित होरहाहै क्योंकि स्पंद तथा उसका अभावादि सब कल्पित है न कि वास्तविक ॥२३॥ हे राजन्! इस परमात्मामें न तो स्पंदहै और न उसका अभावहै, न एकताहै, न द्वैतताहै, किंतु सर्वथा चिन्मात्र जैसाहै वैसा स्थितहै२४

सारेणतुविचारेणसर्वशब्दार्थयोःसमे ॥ चिन्मात्रमेवज्ञातेऽयंनास्तीत्यपिनविद्यते ॥ २५ ॥ भेदवेदन योदेतिभेदःप्रकृतिलांछनम् ॥ अभेदबोधादखिलेगलितेशिष्यतेपरम् ॥ २६ ॥ नानातैवास्यबोधेनसबोधस्त्वनवेक्षणात् ॥ पृच्छकंचैवमस्त्येवतस्मान्निःशंकतापरा ॥ २७ ॥ ततःस्वप्नोनजागर्तिर्नसुषुप्तिर्नतुर्यता ॥ नबंधोस्तिनमोक्षोस्तिनान्यथाकल्पनात्मकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और उत्तमविचारसे सर्व शब्द तथा उसके अर्थके एकस्वभाव ज्ञात होनेपर चिन्मात्रही शेष रहजाताहै; और इस दशामें अभावरूपभी यह प्रपंच नहींहै ॥ २५ ॥ भेदके ज्ञानसे प्रकृतिका लांछन भेद उदितहोताहै और अभेदके ज्ञानसे सब प्रपंच गलित होनेपर परब्रह्ममात्र शेष रहजाताहै ॥ २६ ॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानसेही नानारूप हो इस अज्ञानके अदर्शनसे तुम पूर्ण चिद्रूपही हो इस विषयको चाहो जिससे पूंछो, परमार्थ ऐसाही है इसलिये तुमारी मेरी तथा अन्यकी निःशंकता सिद्धहै ॥ २७ ॥ इससे यहभी सिद्धहुआ कि यथार्थमें न स्वप्न है, न जाग्रत् न सुषुप्ति है, न तुरीयावस्थाहै, न बंध है, न मोक्ष है, और न अन्यथाकल्पना है ॥ २८ ॥

शांतिरेकाजगन्नाम्नीशांतिरेवमवस्थिता ॥ अबोधोऽसत्यएवातःक्वद्रष्टृदृश्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्पंदोप्यस्पंदएवस्यान्निःसंकल्पतयाचते ॥ नस्पंदास्पंदयोर्भिन्नासंकल्परहितेवचित ॥ ३० ॥ द्वैतैक्यविकलारूपसंकल्पश्चिदभावनात् ॥ सचभावनमात्रेणगतोब्रह्मैवशिष्यते ॥ ३१ ॥ चिच्चंद्रबिंबसंकल्पकलंकःस्फुरतीवयः ॥ नासौकलंकस्त्वद्विद्धिचिद्घनस्यघनंवपुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अज्ञानसेही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन है और वह अज्ञान असत्य है तो शुद्धात्मरूप शांतिही सर्वत्र व्याप्तहै इसमें द्रष्टा दृश्य और दर्शनकी सत्ता कहां ॥ २९ ॥ स्पंदका अभावभी तुमारे निःसंकल्प होनेसे सिद्ध होताहै क्योंकि स्पंद तथा उसके अभावसे अभिन्न संकल्परहितही चित् है ॥ ३० ॥ और चित्के अदर्शनसे द्वैतता तथा एकतारूप संकल्प उदित होताहै तथा उसके दर्शनसे वह संकल्प नष्ट होताहै तो द्वैतता तथा एकतादिरहित चिद्ब्रह्मही शेष रहजाताहै ॥ ३१ ॥ चित्रूप चंद्रबिंबमें जो संकल्पसे कलंकके तुल्य स्फुरित होताहै वह कलंक नहीं है किंतु चिद्घनका शरीर है ॥ ३२ ॥

चिद्घनस्यनसन्नासन्स्थीयतांयत्ततेपदे ॥ इत्यदोषमहाबोधसारसंग्रहणंकृतम् ॥३३ ॥ चिच्चंद्रबिंबासंकल्पकलंकामृतविग्रहः ॥ त्वयाभव्येनसंस्पृष्टोभावाभावक्षयात्मना ॥ ३४ ॥ भावाभावादिकलनांनीत्वाचिन्मयतांचितः ॥ समोल्लासविलासांतःसमाश्वसयथासुखम् ॥ ३५ ॥ स्पंदात्पंदौकल्पनाकल्पनावाचित्ताभ्रायोविद्धिनामाब्धिनाम्ना ॥ सर्वाकारानिर्वृतिःशांतिसत्तापूर्णापूर्णेह्येकमेवास्थितेति ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम चिद्घनके व्यापक पदमें पूर्णरूप स्थित रहो क्योंकि पूर्णरूपसे स्थित रहनेसे संकल्पादि तुमारा रूप होनेसे पृथक् सत्य नहीं और तुमारे रूप सत्य है इस युक्तिसे सब वस्तुओंका आत्मस्वभावसंपादक दोषरहित बोधके सारका अवलंबन करो ॥ ३३ ॥ हे चिद्रूप चन्द्रबिंब, हे असंकल्प कलंक भावाभावक्षयरूप भव्य तुमसे स्पृष्ट सब पदार्थ अमृतरूप होजाताहै. अहो कैसा तुमारा माहात्म्य है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! तुम चित्की भावाभावमयी कल्पनाको चिन्मय करके चित्के समान उल्लास विलासके अन्तरमें पूर्णरीतिसे सुखपूर्वक विश्राम करो ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! तुम आनन्दसमुद्रनामक स्वरूपसे स्थित होके स्पंद तथा स्पंदके अभावको और संकल्पादि जितने चित्तकी भ्रांतिका भेद है वह सब सर्वाकार सुखैकशांतिसत्ताही स्थित है और ये पूर्णापूर्ण दोनों दशा एकही मेरा रूप है ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

लक्षणोंसे चारप्रकारका मौन उनमेंभी सुषुप्तिसम्बन्धी तुर्यातीतपदही प्रतिष्ठित है इस विषयका वर्णन इस ६८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सुषुप्तमौनवान्भूत्वात्यक्त्वाचित्तविलासिताम् ॥ कलनामलनिर्मुक्तस्तिष्ठावष्टभ्य तत्पदः ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वाङ्मौनमक्षमौनंचकाष्ठमौनंचवेद्म्यहम् ॥ सुषुप्तमौनंमौनेशब्रह्मन्ब्रूहि किमुच्यते ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्विविधःप्रोच्यतेराममुनिर्मुनिवरैरिह ॥ एकःकाष्ठतपस्वीस्याज्जी वन्मुक्तस्तथेतरः ॥ ३ ॥ अभावितायांशुष्कायांक्रियायांबद्धनिश्चयः ॥ हठाज्जितेंद्रियग्रामोमुनिः स्यात्काष्ठतापसः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सुषुप्त मौनी होकर, और चित्तके विलासको त्यागकर, तथा कल्पनारूप मलसे विनिर्मुक्त होके उस परमपदका आश्रय लेके स्थित रहो ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! वाङ्मौन इन्द्रियमौन, और काष्ठमौन तो मैं जानताहुं, परंतु हे मौनवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! सुषुप्तमौन किसको कहतेहैं सो कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! एक काष्ठतपस्वी और दूसरा जीवन्मुक्त ऐसे दोप्रकारके मुनि श्रेष्ठमुनियोंने कहेहैं न कि अन्य ॥ ३ ॥ आत्मतत्वपर्यालोचनसे शून्य शुष्कक्रिया (आत्मानुभवरसशून्य कृच्छ्रचांद्रायणादि) में बद्धनिश्चय, और हठसे सब इंद्रियोंको जीतनेवाले मुनिको काष्ठतपस्वी कहतेहैं ॥ ४ ॥

यथाभूतमिदंबुद्ध्वाभावितात्मात्मनिस्थितः ॥ लोकोपमोपितृप्तोंतर्यःसमुक्तमुनिःस्मृतः ॥ ५ ॥ एतयो र्योभवेद्भावःशांतयोर्मुनिनाथयोः ॥ चित्तनिश्चयरूपात्मामौनशब्देनसस्मृतः ॥ ६ ॥ चतुष्प्रकारमाहु स्तंमौनंमौनविदोजनाः ॥ वाङ्मौनमक्षमौनंचकाष्ठंसौषुप्तमेवच ॥ ७ ॥ वाङ्मौनंवचसांरोधोबलादिंद्रि यनिग्रहः ॥ अक्षमौनंपरित्यागश्चेष्टानांकाष्ठसंज्ञकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और इससंसारको यथार्थ जानकर आत्माके ज्ञानसे अपने आत्मामें स्थित, और व्यवहारमें अन्यतपस्वियोंके तुल्य होनेपरभी परंतु निरतिशयानंदसे तृप्त जो है उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ५ ॥ इन दोनों शांत तथा श्रेष्ठमुनियोंका चित्तनिश्चयरूप जो भाव है उसको मौनशब्दसे कहतेहैं ॥ ६ ॥ मौनवेत्तालोगोंने उस मौनको चारप्रकारका कहाहै, वाङ्मौन, इन्द्रियमौन, काष्ठमौन, और सुषुप्तमौन ॥ ७ ॥ वचनोंके निरोधको वाङ्मौन, हठसे इन्द्रियोंके निग्रहको इन्द्रियमौन और चेष्टाओंके त्यागको काष्ठमौन कहतेहैं ॥ ८ ॥

मनोमौनंपंचमंचतन्मृतौकाष्ठतापसे ॥ भावेसुषुप्तमौनाख्यंजीवन्मुक्तोनुजीवति ॥ ९ ॥ त्रिषुमौनविशे षेषुविषयःकाष्ठतापयोः ॥ सुषुप्तमौनावस्थायांसातुर्यासैवमुक्तधीः ॥ १० ॥ वाङ्मौनंमौनमित्येतत्सि द्धंतचमनःकिल ॥ मलिनंजीवबंधायतत्रस्थःकाष्ठतापसः ॥११॥ अस्मत्संस्मरणंवापिदृश्यंवाङ्मयम स्पृशन् ॥ अपश्यन्नेवपश्यन्हिकाष्ठमौनीतुतिष्ठति ॥ १२ ॥

अर्थ—मरण, मूर्च्छा, सुषुप्ति और केवल काष्ठतापसमें मनोमौनभी संभव है परंतु उसकी गणना नहीं किया, और आत्मतत्वके अनुसंधानमें जो जीवन्मुक्त रहताहै उसको सुषुप्तमौन कहतेहैं ॥ ९ ॥ वागादि तीनों मौनमें काष्ठतापसका विषय है और सुषुप्तमौनावस्थाको तुर्य्यावस्था तथा मुक्तबुद्धि कहतेहैं ॥ १० ॥ वागादिमौनोंमें जो मौनत्व है वह मलिनमनका दृढनिश्चयरूप है इसलिये काष्ठताप सजीवके बंधकेलिये है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! काष्ठमौनी मुनि समाधिमें हठसे इन्द्रियोंके निग्रहसे आभ्यंतर अहंभावके अनुसंधानको न स्पर्श करताहुआ और बाह्य दृश्यप्रपंचको तथा अज्ञानावृत आत्माको न देखताहुआ सुषुप्तिके सदृश साक्षी चेतनके प्रकाशको देखताहुआ स्थितरहताहै ॥१२॥

प्रस्फुरच्चित्तकलनमेतन्मौनत्रयंस्मृतम् ॥ भवंतिमौनिनस्तत्रनतज्ज्ञास्तत्स्थलीलया ॥ १३ ॥ नात्रोपादे यताज्ञानमेतन्मौनत्रयेकिल ॥ लीलयाकथितंतेनतज्ज्ञाःकुप्यंतुवानवा ॥ १४ ॥ इदंसुषुप्तमौनंतुजीवन्मु क्तमितिस्थितम् ॥ अपुनर्जन्मनोजंतोःशृणुश्रवणभूषणम् ॥ १५ ॥ नात्रसंयम्यतेप्राणस्त्रिविधोनापियो ज्यते ॥ नोल्लस्यंतेनग्लायंतेसमस्तेंद्रियसंविदः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! व्युत्थानकालमें चित्तका चलन वागादि तीनों मौनका लक्षण है उस दशामें वेही पूर्वोक्त मौनी रहतेहैं और उसके जाननेवाले तो चित्तके बाध होनेसे वहांके निरोध व्युत्थानादिकी लीलामें नहींरहते ॥ १३ ॥ और पूर्वोक्त तुच्छ मौनत्रय बंधरूप होनेसे त्याज्यहै इसलिये उनमें कोप करैं वा चिदानंदका विलास होनेसे न कोप करैं परंतु उनमें उनको ग्राह्यबुद्धि नहीं है ॥ १४ ॥ और हे रामजी ! यह सुषुप्तमौन जीवन्मुक्तरूपही स्थितहै इसमें

प्राणीका पुनर्जन्म नहींहोता तथा यह श्रवणका भूषण है इसको आप सुनिये ॥ १५ ॥ हे रामजी ! इस सुषुप्तमौनमें नतो तीनप्रकारके प्राणोंका निरोध होताहै और न वे युक्त कियेजातेहैं, और सब इन्द्रियां इसमें विषयकी प्राप्तिसे प्रसन्न होतीहैं और न निरोधसे ग्लानिको प्राप्तहोतीहैं ॥ १६ ॥

नानाताकलनेयंचनवल्गतिनशाम्यति ॥ चेतोनचेतोनचितोनसन्नासन्नचेतरत् ॥ १७ ॥ अविभागमनभ्यासंयदनाद्यंतमास्थितम् ॥ ध्यायतोऽध्यायतश्चैतत्सौषुप्तंमौनमुच्यते ॥ १८ ॥ यथाभूतमिदंबुद्ध्वा जगन्नानात्वविभ्रमम् ॥ यथास्थितमसंदेहंसौषुप्तंमौनमेवतत् ॥ १९ ॥ अनेकसंविद्रूपात्मशिवेनैवेदमाततम् ॥ इत्यास्थितमनंतंयत्सौषुप्तंमौनमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और इसमें अनेकतारूप कल्पना न गर्जती है, न शांत होती है, और इस दशामें चित्त बाधित होनेसे न चित्त रहताहै, न अचित्त रहताहै, तथा न सत् न असत् वा उससे अन्यरूप रहताहै ॥ १७ ॥ विभागकरनेवाले विकल्पके नाशसे विभागशून्य, अभ्यासकी अपेक्षासे रहित, तथा ध्यान करते वा न करतेहुये जो अनादि अनंत आत्मरूप स्थित है उसीको सौषुप्तमौन कहतेहैं ॥ १८ ॥ जगत्रूप अनेकतारूप भ्रमके अधिष्ठानभूत यथार्थ आत्माको जानकर संदेहरहित जो स्थितहै वही सौषुप्तमौन है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! अनेकप्रकारके इंद्रियोंके ज्ञानके आत्मभूत शिवरूप परमात्मासे पूर्ण जो स्थिति है वही सौषुप्तमौन है ॥ २० ॥

आकाशंनैवचाकाशंसर्वमस्तिचनास्तिच ॥ इतिचित्तंसमंशांतंयत्तन्मौनंसुषुप्तवत् ॥ २१ ॥ सर्वशून्यंनिरालंबंशांतिविज्ञप्तिमात्रकम् ॥ नसन्नासदितियस्यामासितंमौनमुत्तमम् ॥ २२ ॥ भावाभावदशादेशविशेषैर्वितत्तोत्थितैः ॥ संविदोयदनाभासस्तन्मौनंपरमंविदुः ॥ २३ ॥ अत्यंतसमतैवांतश्चेतसाऽवृत्तिरूपिणा ॥ यदनावर्तनंसंविद्वृत्तेस्तन्मौनमक्षयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—सबका आश्रय होनेसे आकाशरूप, चिद्घन होनेसे आकाशभिन्न, सर्वरूप तथा सबसे भिन्न इसप्रकार जो शांत चित्त है वही सौषुप्तमौन है ॥ २१ ॥ सर्वशून्य, आलम्बरहित, शांत, केवल ज्ञानमात्र तथा जिस जीवन्मुक्तदशामें सत् असत्भी नहीं है उस स्थितिको उत्तम मौन कहतेहैं ॥ २२ ॥ वितर्कोंसे आविर्भूत भावाभावादिदशा तथा देशविशेषोंसे जिस दशामें चिद्रूप संवित्का परिवर्तन नहींहोता उसको उत्तममौन कहतेहैं ॥ २३ ॥ चित्तके बाधित होनेसे आभ्यन्तरकी जो अत्यन्त समता है तथा वृत्तिरहित चित्तसे जो संविद्वृत्तिका अपरिवर्तन है उसको अक्षयमौन कहतेहैं ॥ २४ ॥

नाहमस्मिनचान्योऽस्तिनमनोनचमानसम् ॥ इतिसंविदसंवित्तिरविच्छिन्नातिमौनिता ॥ २५ ॥ अहमस्मिजगत्यस्मिन्स्वस्तिशब्दार्थमात्रकम् ॥ सत्तासामान्यमेवेतिसौषुप्तंमौनमुच्यते ॥ २६ ॥ यस्मात्संविदमेवस्यात्स्वान्यादिकलनाकुतः ॥ अनंतमेवसौषुप्तंसर्वंमौनमतस्ततम् ॥ २७ ॥ सुषुप्तमौनमेवेदमनंतत्वात्प्रबोधवत् ॥ तुर्यमेवामलंविद्धितुर्यातीतमथापिच ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस दशामें न अहं है, न अन्य है, न मन है, और न मनका विकल्प है, इसप्रकार बाधित चित्तका जो संवित्से निरंतर अप्रतिभास है उसको उत्तममौनिता कहतेहैं ॥ २५ ॥ और इस जगत्में अनामय, शब्दार्थमात्र, सर्वसत्तासामान्य मैंही हुं इसको सौषुप्तमौन कहतेहैं ॥ २६ ॥ यह आत्मसंवित् सर्वबाधक स्वाकार अंतिमवृत्तिकी प्रभाका ग्रास करती है तो उसमें अपनी अन्यकी वा भेदकी कल्पना कहां ! इसलिये सबकुछ व्याप्त अनन्त मौनही है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! अनंत होनेसे उत्तमज्ञानयुक्त इस सौषुप्तमौनहीको तुरीय अथवा तुरीयातीत पद समझो ॥२८॥

सौषुप्तैकसमाधानस्तथातुर्यसमाधिकः ॥ तुर्यातीतसमाधिर्वाजाग्रत्यपिभवंतिवै ॥ २९ ॥ तुर्यस्थएवसकलामलशांतिवृत्तिर्जाग्रत्यपिव्यवहरन्निपुणंसमंतात् ॥ नित्यंसदेहउतवापिविदेहएवब्रह्मन्नभोभवतएवकिलास्तिसाधो ॥ ३० ॥ अस्मित्युदस्तभववासनमेकमास्वनत्वंनचाहमपिनान्यदिहास्तिसत्यम् ॥ सर्वंचविद्यतइतीहकिलांतराभंज्ञस्तिष्ठचिद्गगनकोशकलैकनिष्ठः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे महामौनयत्नोपदेशो नामाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सुषुप्तिरूपसमाधि, तुरीयसमाधि, और तुरीयातीतसमाधि, जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थामेंभी स्थित तत्ववेत्ताको क्रमसे होती हैं ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मरूप साधो रामजी ! तुम चारोओरके सब व्यवहारोंको करतेरहो वा त्यागदो, समाधिस्थ हो वा न हो, सदेह रहो वा विदेह, परंतु शांत सकलनिर्मलवृत्तियुक्त, नित्य तुम तुरीयस्थ

विदेहही हो. और हे आकाशवत् विशाल रामजी ! यह स्थिति आपकेही सदृश जनकी है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! तुम ओंकार विराट् आदि तीन पादोंको चतुर्थमें लीन करके तथा संसारकी वासनाको त्यागकर एक तुरीय होजाओ, और इस संसारमें न तुम न हम और न अन्यवस्तु सत्य है, और सबकुछ है यह जो प्रसिद्धि है उसके नाडीके भीतर अनुभूयमान स्वप्नके तुल्य जानके चिदाकाशरूप कोशमें निष्ठ जीवन्मुक्त होके स्थितरहो ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे महामौनयत्नोपदेशो नामाष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

गणोंकीभी रुद्ररूपता, मुक्तजनोंकी इच्छानुसार संसारमें स्थिति, योगसे प्राणोंका लय और मरणसे पुनः उत्पत्ति इत्यादि विषय ६९ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ कुतःशतत्वमायातंरुद्राणांमुनिनायक ॥ येगणास्तेतुयेरुद्राउतनेतिवदाशुमे ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्नानांभिक्षुणादृष्टंशतंशतशरीरकम् ॥ सर्वमुद्देशतोज्ञातंततउक्तंनतन्मया ॥ २ ॥ यआकाराश्चतेस्वप्नेतत्तद्गणशतंस्मृतम् ॥ तदेतद्रुद्रशतकंरुद्राअपिगणाविधौ ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एकस्माद्भगवंश्चित्तात्कथंचित्तशतंकृतम् ॥ तत्स्वप्नकृतरुद्रेणदीपाद्दीपशतंयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने पूर्व भिक्षुप्रसंगमें कहाथा कि वे भिक्षुके स्वप्नके जीव क्रमसे रुद्र होगये सो सौ (१००) रुद्र वे कैसेहुये क्या जिनको आपने गण कहाथा उनको रुद्रभी कहाथा वा नहीं इसका निर्णय शीघ्र मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भिक्षुने शतशरीररूप शत (१००) स्वप्न देखाथा उसको उपदेशरूपसे तुमने जानलियाथा इसलिये विशेषरूपसे मैंने नहीं कहा ॥ २ ॥ भिक्षुके स्वप्नमें जो आकार देखे-गयेथे वेही शतगण कहेगयेहैं और वेही भोग तथा ऐश्वर्यादिके रुद्रके सदृश होनेसे तथा रुद्रांश होनेसे रुद्र कहलाये, और पूर्वसिद्ध ईश्वर रुद्रकी सेवा करनेमें गणही कहेगये ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! भिक्षुके स्वप्नकृत रुद्रसे एकदीपसे शतदीपकेतुल्य एकचित्तसे शत (१००) चित्त कैसे होगये !

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ निरावरणसद्भावाद्यथाकल्पयंतिहि ॥ तत्तथानुभवंत्येवरसावरणसंविदः ॥५॥ सर्वात्मनःसर्वगत्वाद्यद्यथायत्रभाव्यते ॥ तथानुभूयतेतत्रतत्तथाज्ञतयाधिया ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कपालमालाभरणोभस्मशालीदिगंबरः ॥ श्मशाननिलयोब्रह्मन्कामुकश्चकिमीश्वरः ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महेश्वराणांसिद्धानांजीवन्मुक्तशरीरिणाम् ॥ नक्रियानियमोस्तीहसह्यज्ञस्यैवकल्पितः ॥८॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ज्ञानैश्वर्यसे आवरणशून्य, तथा योगके ऐश्वर्यसे सत्यसंकल्प महाजन जो कुछ संकल्प करतेहैं उसको वैसाही संकलिपत अर्थके लाभकेलिये भूमानंदको स्वीकारकरनेवाली मायाप्रतिबिं-बित संवित्के बलसे अनुभव करतेहैं ॥ ५ ॥ सर्वात्मरूप आत्माके सर्वगामी होनेसे जो वस्तु जैसे जहांपर भावना करताहै उस वस्तुको वैसेही वहांपर जीवन्मुक्तबुद्धिसे अनुभवकरताहै ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! कपा-लमालाधारी, भस्मलिप्तदेह, दिगंबर, स्मशाननिवासी तथा अतिकामी महादेवजी क्यों हैं, ऐश्वर्य रहते शुभकल्पना क्यों नहींकरते ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! महेश्वर सिद्ध और जीवन्मुक्तशरीरवालोंकी क्रियाका नियम नहीं है क्योंकि वह अज्ञानीहीकेलिये कल्पित है ॥ ८ ॥

अज्ञस्तुदितचित्तत्वात्क्रियानियमनंविना ॥ गच्छन्न्यायेनमात्स्येनपरंदुःखंप्रयातिहि ॥ ९ ॥ सुज्ञास्त्विष्टेष्वनिष्टेषुननिमज्जंतिवस्तुषु ॥ यतेंद्रियत्वाद्बुद्धत्वान्निर्वासनतयातथा ॥ १० ॥ काकतालीयवद्रूढांक्रियांकुर्वंतितेसदा ॥ नकुर्वंत्यपिवैकिंचिन्नैषांकाचिदपिग्रहः ॥ ११ ॥ काकतालीयतोविष्णुरेवंकर्मोदितः पुरा ॥ एवंकर्मात्रिनयनएवंकर्माबुजोद्भवः ॥ १२ ॥

अर्थ—और अज्ञानी तो रागद्वेषादि अनेकदोषोंसे खंडितचित्त होनेसे क्रियाके नियमविना चलताहुआ मात्स्यन्यायसे (दुर्बल मत्स्य प्रबलसे ग्रसित होनेकी रीतिसे) जन्मपरंपराजनित नरकादि अनेक दुःख पाताहै ॥९॥ और ज्ञानीपुरुष तो जितेंद्रिय ज्ञानी तथा वासनारहित होनेसे इष्टवस्तुओंमें न निमग्न होतेहैं और अनिष्टवस्तुओंसे उद्विग्नभी नहींहोते ॥ १० ॥ काकतालीयन्यायसे अकस्मात् प्राप्त क्रियाको वे सदा करतेहैं और नहींभी करते

क्योंकि इनका किसीमें आग्रह नहींहै ॥ ११ ॥ काकतालीयन्यायसे विष्णुने मनुष्ययोनिके अनुकूल पूर्वमें कर्म कियाथा, महादेवने कपालादिधारणके योग्य कर्म किया और ब्रह्माजीने वैसाही कियाथा ॥ १२ ॥

नर्निद्यमस्तिनानिंद्यंनोपादेयंनहेयता ॥ नचात्मीयंनचपरंकर्मज्ञविषयंक्वचित् ॥ १३ ॥ अग्न्यादीनांयथौष्ण्यादिसर्गादौरूढिमागतम् ॥ हरादीनांतथाकर्मद्विजातीनांचजातयः ॥ १४ ॥ सर्गेप्ररूढिमायातेसंकेतवशतःपृथक् ॥ अनुभूतिफलाश्र्वर्याःकल्पिताःकल्पिताःस्वयम् ॥ १५ ॥ विदेहमुक्तविषयंतुर्यमौनमतोमया ॥ नोक्तंतवपरंमौनंसदेहस्यरघूद्वह ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! ज्ञानीकेलिये कहीं कोई कर्म न निंद्य न अनिंद्य, न हेय न उपादेय, न आत्मीय और न परकीय है ॥ १३ ॥ हे रामजी! जैसे सृष्टिके आदिमें अग्निआदिमें उष्णताका नियम प्रसिद्धताको प्राप्तहुआहै ऐसेही महादेवादिके कर्मका तथा ब्राह्मणादिकी जातिके उचित कर्मका नियम दृढताको प्राप्तहै ॥ १४ ॥ सृष्टिके प्रौढ होनेपर ब्राह्मणादिसे वर्णविभागके संकेतवशसे पृथक् २ ऐहिक तथा पारलौकिक सुखदुःखादि फल देनेवाली क्रियाओंको प्राणियोंने स्वयं कल्पितकियाहै ॥ १५ ॥ हे रामजी! सदेह तुमको चतुर्विधमौनसे परे तुर्यमौन विदेहमुक्तका विषय है इसलिये मैंने नहींकहा अब तुम उसको सुनो ॥ १६ ॥

खादप्यतितरामच्छमात्माकाशंचिदात्मकम् ॥ तत्प्राप्तिःपरंश्रेयःसाकथंप्राप्यतेशृणु ॥ १७ ॥ सम्यग्ज्ञानावबोधेननित्यमेकसमाधिना ॥ संख्ययैवावबुद्धायेतेस्मृताःसांख्ययोगिनः ॥ १८ ॥ प्राणाद्यनिलसंशांतौयुक्त्यायेपदमागताः ॥ अनामयमनाद्यंतंतेस्मृतायोगयोगिनः ॥ १९ ॥ उपादेयंतुसर्वेषांशांतंपदमकृत्रिमम् ॥ तत्केचित्संख्ययाप्राप्ताःकेचिद्योगेनदेहतः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी! आकाशसेभी अतिस्वच्छ चिद्रूप आत्माकाशहै उस आत्मभावकी प्राप्तिही मोक्ष है वह कैसे प्राप्त होतीहै सो तुम सुनो ॥१७॥ उत्तमज्ञानके बोधसे और नित्य एकसमाधिसे विवेकविचारप्रेरित राजयोगसे जो ज्ञानी हुयेहैं वे सांख्ययोगी कहलातेहैं ॥ १८ ॥ प्राणादिवायुके शांत होनेपर हठरूप योगयुक्तिसे जो अनामय तथा अनादि अनंत परमपदको प्राप्तहुयेहैं वे योगयोगी कहलातेहैं ॥ १९ ॥ सबप्रकारके योगियोंको उपादेय वही शांत अकृत्रिम परमपद है उस पदको किसीने राजयोगसे और किसीने हठयोगसे इसी देहसे प्राप्तकिया ॥ २० ॥

एकंसांख्यंचयोगंचयःपश्यतिसपश्यति ॥ यत्सांख्यैःप्राप्यतेस्थानंपरंयोगैस्तदेवहि ॥ २१ ॥ यत्रप्राणमनोवृत्तिरत्यंतंनोपलभ्यते ॥ वासनावागुरोत्क्रांतातद्विद्धिपरमंपदम् ॥ २२ ॥ वासनांचित्तमेवाहुःकारणंतद्धिसंसृतेः ॥ तदकारणतामेतिविलीयोभयकर्मसु ॥ २३ ॥ मनःपश्यतिवैदेहंबालोवेतालकंयथा ॥ स्वात्मानंविलयंनीत्वानभूयस्तंप्रपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—सांख्य और योग (राजयोग तथा हठयोग) को जो एक देखताहै वही देखता (पंडित) है क्योंकि जो स्थान सांख्यसे प्राप्तहोताहै वही योगसेभी होताहै ॥ २१ ॥ जहां प्राण और मनोवृत्तिका सर्वथा लय है और वासनाजालसे जो स्थितिकी निर्मुक्ति है उसीको तुम परमपद जानो ॥ २२ ॥ हे रामजी! वासनाहीको चित्त कहतेहैं और वही संसारका कारण है, और सांख्य तथा योगकी क्रिया (राज तथा हठयोगक्रिया) में लीन होकर संसारका कारण नहींहोता ॥ २३ ॥ मन देहको ऐसे देखताहै जैसे बालक वेतालको, और अपना लय (नाश) करके पुनः वह देहको नहिं देखताहै ॥ २४ ॥

मनोसुधैवाभ्युदितमसदेवानवेक्षणात् ॥ स्वप्नेस्वमरणाकारंप्रेक्ष्यमाणंनविद्यते ॥ २५ ॥ मनोभवस्तुसंसारःक्रममाहंकसंततिः ॥ उपदेश्योपदेशादिबंधमोक्षौचतत्कुतः ॥ २६ ॥ एकतत्वघनाभ्यासःप्राणानांविलयस्तथा ॥ मनोविनिग्रहश्र्वेतिमोक्षशब्दार्थसंग्रहः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ यदिहिप्राणविलयोमुनेमोक्षस्यकारणम् ॥ मृताएवविमुच्यंतेतन्मन्येसर्वजंतवः ॥ २८ ॥

अर्थ—यह असत् मन न देखनेसे मिथ्याही उदित है और देखनेसे स्वप्नमें अपने मरणके समान नहींरहता ॥ २५ ॥ हे रामजी! यह संसार मनसेही उत्पन्न है और ज्ञानसे मनका बाध होनेपर ममता; अहंकार, संसार, उपदेश्य, उपदेश, बंध और मोक्ष ये सब कहां और किससे होसकतेहैं ॥ २६ ॥ एकतत्व (ब्रह्म) का दृढ अभ्यास प्राणोंका लय और मनका निग्रह यह सब मोक्षशब्दार्थका संग्रह है ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने! यदि प्राणोंका नाशही मोक्षका कारण है तौ प्राणके नाशसे सब मृतकजीव मुक्त होजातेहैं ऐसा मैं मानताहुं ॥ २८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ त्रिष्वेतेषुप्रयोगेषुमनःप्रशमनंवरम् ॥ साध्यंविद्धितदेवाशुयथाभवतितच्छिवम्२९॥ यदानिर्वाणनंप्राणास्त्यजंतीदंशरीरकम् ॥ तदानुभूयतन्मात्रैर्यातिव्योमनिसंगमम् ॥ ३० ॥ वासना

सात्मकान्येवविद्धितन्मात्रकाणिवै ॥ तदात्मकैर्मनोवद्भिः प्राणैःश्लिष्यंतिनेतरैः ॥ ३१ ॥ सवासनास्त्वपद्यंतेप्राणामुंचंतिदेहकम् ॥ तद्व्योमवायुसंश्लेषंयांतिद्रुःखायगंधवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पूर्वोक्त तीनों उपायोंसे मनके निग्रहकोही तुम उत्तम साध्य जानो, वह (मनका निग्रह) शीघ्र जैसे कल्याणकारी हो वैसा करो ॥२९॥ जिससमय घुर्घुरशब्दरहित इस तुच्छशरीरको प्राण त्यागतेहैं उससमय वासनाकामकर्मसे उपस्थापित भावीदेहके आकारको अनुभव करके बाहर आकाशमें उसी देहके आरम्भक पंचभूतोंके साथ मिलतेहैं नकि नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥ और जिन पंचभूतोंकी मात्राओंसे प्राण संयुक्त होतेहैं वेभी वासनासहित होती हैं इसलिये उन्ही २ वासना तथा मनसहित प्राणोंसे वे मिलतीहैं नकि अन्यसे ॥ ३१ ॥ पूर्वदेहकी वासनासहितही प्राण अन्यदेहमें उत्पन्न होतेहैं और भावीदेहकी वासनासहितही पूर्वदेहको त्यागते हैं, और अन्यदेहमें उसके हृदयस्थ आकाश तथा उसके अंतर्गत वायुसे ऐसे मिलतेहैं जैसे पुष्पोंका गंध तिलमें प्रवेश करता-हुआ तिलके अंतर्गत तैलसे ॥ ३२ ॥

मनःसांबुरिवांभोधौनशाम्यतिसवासनम् ॥ नामनस्काःसंभवंतिप्राणाःसूर्यइवत्विषः ॥ ३३ ॥ नजहातिमनःप्राणान्विनाज्ञानेनकर्हिचित् ॥ तृणांतरेणैवविनातृणांगमिवतित्तिरिः ॥ ३४ ॥ ज्ञानादवासनीभावंस्वनाशंप्राप्नुयान्मनः ॥ प्राणात्स्पंदंचनादत्तेततःशांतिर्हिशिष्यते ॥ ३५ ॥ ज्ञानात्सर्वपदार्थानामसत्वंसमुदेत्यलम् ॥ ततोंगवासनानाशाद्वियोगःप्राणचेतसोः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और जैसे जलसहित घट समुद्रमें डूबाहुआ मनुष्योंकी दृष्टिमें अदृश्य होनेपरभी नाशको प्राप्त नहीं होता ऐसेही वासनासहित मन मरणसे शान्त नहीं होता, और मनरहित प्राण ऐसे नहीं होते जैसे दीप्तिरहित सूर्य॥३३॥ जैसे तित्तिरिनाम पक्षी एकतृणके ग्रहण कियेबिना अन्यतृणको नहीं त्यागता ऐसेही ज्ञानकेबिना मनभी प्राणोंको कदापि नहीं त्यागता ॥ ३४ ॥ ज्ञानसे वासनाका क्षय होनेसे मनका नाश होताहै और प्राणसे गतिकोभी नहीं धारण-करता इससे शांतही होजाताहै ॥ ३५ ॥ हे प्रिय रामजी ! ज्ञानसे सबपदार्थोंकी असत्यता पूर्णरूपसे उदित होती है उससे वासनाके नाशसे मन और प्राणोंका वियोग होताहै ॥ ३६ ॥

ततोनपश्यतिमनःप्रशांतंदेहतांपुनः ॥ स्वनाशेनपदंप्राप्तंवासनैवमनोविद्रुः ॥ ३७ ॥ चेतोहिवासनामात्रंतदभावेपरंपदम् ॥ तत्त्वंसंपद्यतेज्ञानंज्ञानमाहुर्विचारणम् ॥ ३८ ॥ इत्यस्याःसंसृतेरामपर्यंतःसंप्रवर्तते ॥ स्वयंविवेकमात्रेणरज्जुसर्पभ्रमाकृतेः ॥ ३९ ॥ एकार्थाभ्यसनप्राणरोधचेतःपरिक्षयाः ॥ एकस्मिन्नेवसंसिद्धेसंसिद्ध्यंतिपरस्परम् ॥ ४० ॥

अर्थ—मन तथा प्राणके वियोगसे अनंतर मन देहको नहीं देखता क्योंकि अपने नाशसे वह परमपदको प-हुंचचुका इसलिये वासनाहीको मन कहतेहैं ॥३७॥ यह चित्त वासनामात्रही है और वासनाके अभावमें परमपद है, और वह ज्ञान वासनासहित सबप्रपंचका बाध करके आत्मतत्वरूप होजाताहै और वह आत्मतत्वभी अचलज्ञान ज्ञानरूपही है ऐसा अनुभवी महात्मा कहतेहैं ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार रज्जुके सर्पके भ्रमाकार इस संसारका विवेकमात्रसे स्वयं नाश होजाताहै ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! एकतत्वका अभ्यास, प्राणका निरोध और चित्तका क्षय इन तीनोंमेंसे एकके भी सिद्ध होनेपर परस्पर तीनों सिद्ध होजातेहैं ॥ ४० ॥

तालवृंतस्यसंस्पंदेशांतेशांतोयथानिलः ॥ प्राणानिलपरिस्पंदेशांतेशांतंतथामनः ॥ ४१ ॥ प्राणःशरीरविलयेप्रयातिव्योमवायुताम् ॥ यथावासितमेवेदंसर्वंपश्यतितत्रवा ॥ ४२ ॥ यथाविदेहाःपश्यंतिप्राणाव्योमनिदेहकम् ॥ समनस्कास्तथाचारंसर्वंचानुभवंतिते ॥ ४३ ॥ शांतेवातपरिस्पंदेयथागंधःप्रशाम्यति ॥ तथाशांतेमनःस्पंदेशाम्यंतिप्राणवायवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे स्पंदसहित तालके पत्रके शांत होनेपर वायु शांत होताहै ऐसेही प्राणरूप वायुके परिस्पंदके शांत होनेपर मन शांत होजाताहै ॥ ४१ ॥ और शापच्छेदादिसे शरीरके नाश होनेपर प्राण बाह्याकाशवायुका रूप हो-जाताहै और बाह्याकाशमें अपनी वासनाके अनुकूल सब प्रपंच देखताहै ॥ ४२ ॥ जैसे देहरहित और मनसहित प्राण आकाशमें पुनः अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यादिदेहको देखतेहैं उसीप्रकारके आचारकाभी अनुभव करतेहैं ॥ ४३ ॥ जैसे वायुके परिस्पंदके शांत होनेपर गंध शांत होजाताहै ऐसेही मनके स्पंदके शांत होनेपर प्राण-वायु शांत होजातेहैं ॥ ४४ ॥

अविनाभाविनीनित्यंजंतूनांप्राणचेतसी ॥ कुसुमामोदवन्मिश्रेतिलतैलेइवस्थिते ॥ ४५ ॥ मनसःस्पंदनंप्राणःप्राणस्यस्पंदनंमनः ॥ एतौविहरतोनित्यमन्योन्यंरथसारथी ॥ ४६ ॥ आधाराधेयवच्चैतावेका

भावेविनश्यतः ॥ कुरुतश्चस्वनाशेनकार्यंमोक्षाख्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ एकतत्वघनाभ्यासाच्छांतंशाम्य त्यलंमनः ॥ तल्लीनत्वात्स्वभावस्यतेनप्राणोपिशाम्यति ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे पुष्प और उसके गंध तथा तिल और तैल सदा मिलेरहतेहैं ऐसेही प्राणियोंके प्राण और चित्त मिलेरहतेहैं ॥ ४५ ॥ मनका स्पंद (गति) प्राण है और प्राणका मन है ये दोनों परस्पर एक दूसरेके स्पंदको ऐसे सिद्ध करतेहैं जैसे रथ और सारथी ॥ ४६ ॥ अग्नि और उष्णताके समान एकके अभावमें ये दोनों नष्टहोजातेहैं और अपने अभावमें मोक्षरूप उत्तम कार्य करतेहैं ॥ ४७ ॥ एकतत्वके दृढ अभ्याससे द्वैतकी वासनाके बाधित होनेसे पूर्णरीतिसे मन शांत होजाताहै और प्राणस्वभावके मनमें लीन होनेसे प्राणभी शांत होजाताहै ॥ ४८ ॥

विचार्ययदनंतात्मतत्वंतन्मयतांनय ॥ मनस्ततस्तल्लयेनतदेवभवतिस्थिरम् ॥ ४९ ॥ यदेवातितरांश्रेयोनुपलंभोपलंभयोः ॥ द्वयोरप्यसतोस्तत्रशेषेवापिस्थिरोभव ॥ ५० ॥ एकस्मिन्सुदृढेतत्वेतावद्भावं विभावयेत् ॥ भावोभावत्वमायातिस्वभ्यासाद्यावदाततम् ॥ ५१ ॥ प्रत्याहारवतांचेतःस्वयंभोग्यक्षयादिव ॥ विलीयतेसहप्राणैःपरमेवावशिष्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी! अनंत आत्मतत्वका विचार करके मनको तन्मय करो क्योंकि मनका आत्मतत्वमें लय करनेसे आत्मतत्वही स्थिर होताहै ॥ ४९ ॥ निवृत्तरूप इन दोनों अनुपलंभ और उपलंभके पश्चात् चिन्मात्र शेष रहजाताहै उसमें तुम स्थिर रहो ॥ ५० ॥ एकतत्वके अभ्यासके सुदृढ होनेपर सदाकारवृत्तिकी धाराकी भावना तबतक करै जबतक वह वृत्तिकी धारा अंतिमसाक्षात्कारसे पुष्ट होकर अपने अभ्याससे अभावरूपताको प्राप्तहो ॥ ५१ ॥ हे रामजी! प्रत्याहार करनेवालोंका चित्त भोग्य आहारादिके क्षयसे प्राणोंके साथ देहमेंही लीन होजाताहै तब परम आत्मतत्वही शेष रहजाताहै ॥ ५२ ॥

यदेकतानंभवतिचेतस्तद्भवतिक्षणात् ॥ शांताशेषविशेषौघंचिराभ्यासस्वभावतः ॥ ५३ ॥ अविद्येयं तुनास्तीतिबुद्ध्यायुक्तियुतंधिया ॥ ज्ञानादेवपरावाप्तिस्तदभ्यासस्ततःपरम् ॥ ५४ ॥ चित्तेशांतेशाम्य तीयंसंसारमृगतृष्णिका ॥ जरासुपगतेमेघेमिहिकातन्मयीयथा ॥ ५५ ॥ चित्तमात्रमविद्येतिकुरुतेनैव तत्क्षयम् ॥ तद्रूपंरामचित्तात्मानाभावोहिपरंपदम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी! धारणा, ध्यान और समाधिरूप अंगके चिरकालके अभ्याससे ब्रह्मके साथ जब एकताको प्राप्तहोताहैं तब क्षणभरमेंही संपूर्ण विशेषोंकी शांततापूर्वक तद्रूप (ब्रह्मरूप) होजाताहै ॥ ५३ ॥ यह द्वैत अविद्यारूपहै और वह अविद्या अभावरूपही है, परमतत्वकी प्राप्ति ज्ञानसेही होतीहै ऐसा शास्त्रीययुक्तियुक्तबुद्धिसे जानकर धारणाध्यानादिद्वारा ज्ञानका अभ्यास करनाचाहिये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! चित्तके शांत होनेसे यह संसाररूप मृगतृष्णा ऐसे नष्ट होजातीहै जैसे शरदृऋतुमें मेघके नष्ट होनेपर उससे प्राप्त कुहिरा ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! चित्तमात्र अविद्या है इसलिये ब्रह्माकारमें परिणत चित्तसे चित्तका क्षय करो और चित्तके क्षयका रूप उसका अधिष्ठानभूत आत्माही है क्योंकि आत्माका अभाव परमपद नहींहोसकता ॥ ५६ ॥

मुहूर्तमेवनिर्वाणंयदिचेतःपरेपदे ॥ तत्तत्परिणतंविद्धितत्रैवास्वादमागतम् ॥ ५७ ॥ यदिसांख्येनविश्रांतंचेतोयोगेनवापिते ॥ क्षणंतत्सत्वतांयातंनभूयइहजायते ॥ ५८ ॥ चेतोविगलिताविद्यंसत्वशब्दे नकथ्यते ॥ दग्धसंसारबीजंतन्नददात्यंतरंपुनः ॥५९॥ कश्चिद्विगलिताविद्यःसत्वस्थःशांतवासनः ॥ परंशून्योपमंसद्योज्योतिःपश्यतिशाम्यति ॥ ६० ॥ विगलितात्मपदंविगलन्मनःसुभगसत्वमितीहहि कथ्यते ॥ नपुनरेतिकलामलिनंपदंकनकतामिवताम्रमुपागतम् ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे प्राणमनःसंयोगविचारणंनामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—एकमुहूर्तभी यदि परमपदमें चित्त विश्राम करै तो उसको ब्रह्मरूपमें तुम परिणतही जानो, और उस ब्रह्ममें आस्वाद प्राप्तकरनेसे उससे पृथक् होना नहींचाहता ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! यदि राजयोगसे वा हठयोगसे तुमारा चित्त क्षणभरकेलियेभी विश्रांत हुआ तो वह उसी क्षणमें सत्वरूपताको प्राप्तहुआ और पुनः वह इस संसारमें उत्पन्न नहिंहोता ॥५८॥ अविद्यासे रहित चित्तको सत्वशब्दसे कहतेहैं और वह संसाररूप बीजके दग्ध होजानेसे ब्रह्मभावके विच्छेदको पुनः कदापि नहींदेता ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! कोई विरलाही जन अविद्या तथा वासना शांत होनेसे सत्वमें स्थित होताहै और अज्ञानीकी दृष्टिमें शून्यके समान और ज्ञानीकी दृष्टिमें परमज्योतिको देखताहै और शांत होजा-

ताहै ॥ ६० ॥ हे सुभग रामजी ! उक्त त्रिविधउपायोंके अभ्याससे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप भ्रांति तथा उससे जगत्के दर्शनपदसे शून्य तथा स्वयं बाधित होनेसे दग्धपटके समान प्रतिभासमात्र शिष्ट मन जीवन्मुक्तिदशामें सत्त्व कहा-जाताहै वह रागद्वेषादिसे मलिन संसारपदमें ऐसे नहीं आता जैसे पारसमणिके संगसे सुवर्णदशाको प्राप्त ताम्र पुनः ताम्रतादशाको ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे प्राणमनःसंयोगविचारणं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

मायासे भ्रांति और अनवस्थिति चिदात्माकी परिशुद्धिकेलिये वेताल और राजाके संवादरूप शुभकथाका उदाहरण इस ७० के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवोजीवोभवत्याशुयातिचित्तमचित्तताम् ॥ विचारादित्यविद्यांतोमोक्षइत्याभिधीयते ॥ १ ॥ मृगतृष्णाजलमिवमनोहंतादिदृश्यते ॥ असदेवमनागेवतद्विचारात्प्रलीयते ॥ २ ॥ संसृतिस्वप्नविभ्रांतौवेतालोदाहृतानिमान् ॥ प्रश्नानाकर्णयशुभान्प्रसंगात्स्मृतिमागतान् ॥ ३ ॥ अस्ति विंध्यमहाटव्यांवेतालोविपुलाकृतिः ॥ सकिंचिन्मंडलंगर्वादाजगामजिघांसया ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! विचारसेही जीव अजीव तथा चित्त अचित्तदशाको शीघ्र प्राप्तहोजाताहै इसप्रकार कार्य्यकारणरूप अविद्याके नाशको मोक्ष कहतेहैं ॥ १ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान असत्रूपही मन तथा अहंता आदि देखपडतेहैं और किंचित् विचारसेही सब नष्टहोजातेहैं ॥ २ ॥ संसाररूप स्वप्नकी भ्रांतिके विषयमें प्रसंगसे स्मृत वेतालसे कथित इन शुभप्रश्नोंको तुम सुनो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! विंध्याचलके महाजंगलमें विशाल आकारवाला वेताल रहताथा वह वधयोग्य अज्ञजनोंमें अनादरसे मारनेकी इच्छासे किसी राज्यमें आया ॥ ४ ॥

सवेतालोवसत्पूर्वंकस्मिंश्चित्सज्जनास्पदे ॥ बहुबल्युपहारेणनित्यतृप्ततयासुखी ॥ ५ ॥ निर्निमित्तंनिरागस्कंपुरोप्यभ्यागतंनसः ॥ क्षुधितोपिनरंहंतिसंतोहिन्यायदर्शकाः ॥ ६ ॥ सकालेनाटवीगेहोजगाम नगरांतरम् ॥ न्याययुक्त्याजनंभोक्तुंक्षुधासमभिचोदितः ॥ ७ ॥ तत्रप्रापसभूपालंरात्रिचर्याविनिर्गतम् ॥ तमाहघनघोरेणशब्देनोग्रनिशाचरः ॥ ८ ॥

अर्थ—किरातके राज्यमें कर्कटीकेतुल्य सज्जनराजाके स्थानमें राजाने कियेहुवे बहुवधजनोंकी भेटपूजादिसे नित्यतृप्त वह सुखपूर्वक रहताथा ॥ ५ ॥ अतिक्षुधितभी वह निशाचर बिनानिमित्त तथा बिनाअपराध समीप प्राप्तभी किसी मनुष्यको नहीं मारताथा क्योंकि सज्जन न्यायदर्शी होतेहैं ॥ ६ ॥ यह बहुतकाल वध्य (अज्ञ) प्राणियोंके अलाभसे क्षुधासे पीडित होके अरण्यरूप गृहसे न्यायपूर्वक जीवोंको भोजन करनेकेलिये किसी अन्यनगरमें गया ॥७॥ वहांपर दुष्टजनोंके निग्रहार्थ रात्रिमें बाहर निकलेहुये राजासे वह भयंकर निशाचर मिला और घोरशब्दसे बोला ॥८॥

वेतालउवाच ॥ राजन्लब्धोसिभीमेनवेतालेनमयाधुना ॥ क्गच्छसिविनष्टोसिभवभोजनमद्यमे ॥९॥ राजोवाच ॥ हेरात्रिचरनिर्न्याय्यंमांचेदत्सिबलादिह ॥ तत्तेसहस्रधामूर्धास्फुटिष्यतिनसंशयः ॥ १० ॥ वेतालउवाच ॥ नत्वामद्म्यहमन्याय्यंन्यायोयंहिमयोच्यते ॥ राजासिसकलाशाश्वपूरणीयास्त्वयार्थिनाम् ॥११॥ ममैतामर्थितांराजन्संभवार्थांप्रपूरय ॥ प्रश्नानिमान्मयोक्तांस्त्वंसम्यगाख्यातुमर्हसि ॥१२॥

अर्थ—वेताल बोला कि–हे राजन् ! इससमय मुझ भयंकर जीवको तुम मिलेहो कहां जातेहो अब तुम नष्ट-हुये, आज हमारा भोजन तुम हो ॥९॥ राजा बोला कि–हे निशाचर ! यदि अन्यायपूर्वक तुम मुझे बलात्कार मारतेहो तो तुमारे शिरके सहस्र खंड होजायंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ वेताल बोला–हे राजन् ! अन्यायसे मैं तुमको नहीं मारूंगा परन्तु धर्मशास्त्रमें प्रसिद्ध न्याय मैं कहताहुं कि तुम राजा हो इसलिये अर्थियोंकी संपूर्ण अभिलाषायें तुमको पूर्ण करनीचाहिये ॥ ११ ॥ हे राजन् ! अबाधितअर्थयुक्त मेरी इस प्रार्थनाको आप पूर्ण करने योग्य हो कि मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर आप पूर्णरीतिसे देनेयोग्य हैं ॥ १२ ॥

कस्यसूर्यस्यरश्मीनांब्रह्मांडान्यणवःकशाः ॥ कस्मिन्स्फुरंतिपवनेमहागगनरेणवः ॥ १३ ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरंगच्छञ्छतशोथसहस्रशः ॥ त्यजन्नत्यजतिस्वच्छंकःस्वरूपंप्रभास्वरम् ॥ १४ ॥ रंभास्तंभोयथा पत्रमात्रमेवंपुनःपुनः ॥ अंतरंतस्तथांतश्चतथाकोणुःसएवहि ॥ १५ ॥ ब्रह्मांडाकाशभूतौघसूर्यमंडल

मेरवः ॥ अपरित्यजतोणुत्वंकस्याणोःपरमाणवः ॥ १६ ॥ कस्यानवयवस्यैवपरमाणुमहागिरेः ॥ शिलांतर्निबिडैकांतरूपमज्जाजगत्रयी ॥ १७ ॥ इतिकथयसिचेन्नमेदुरात्मंस्तदिहनिगीर्यभवंतमात्मघातिन् ॥ फलमिवतवमंडलंग्रसेहंप्रसभमुपेत्यजगद्यथाकृतांतः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालप्रश्नो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—हे राजन्! किस सूर्यकी किरणोंकी ये ब्रह्मांडरूप लघु रेणु हैं और किस पवनके स्फुरित होनेपर महाकाशरूप रेणु उडतेहैं ॥ १३ ॥ एकस्वप्नसे शतशः तथा सहस्रशः स्वप्नमें प्राप्तहोताहुआ तथा उनको त्यागताहुआभी अपने स्वच्छ और भास्वरस्वरूपको कौननहीं त्यागता ॥ १४ ॥ हे राजन्! जैसे केलेका स्तंभ भीतर २ तथा उसके भीतरभी पत्रमात्रही रहताहै ऐसेही आभ्यंतर २ तथा उसकेभी आभ्यंतर वही चिद्घनरूप कौनसा अणु है ॥ १५ ॥ अनेक ब्रह्मांड तथा आकाशादि भूतसमूह (चतुर्दश भुवन) सूर्य्यमंडल और मेरु अपने अणुत्व (सूक्ष्म स्वभाव) को न त्यागतेहुये किस अणुके परमाणु हैं ॥ १६ ॥ घनतर सत्तारूप सारवाली त्रिलोकी किस अवयवरहित परमाणुरूप महागिरिकी शिला है ॥ १७ ॥ इन छ प्रश्नोंका उत्तर यदि नहींदेतेहो तो हे दुष्ट देहादिमें आत्मबुद्धिधारिन् तथा आत्मघातिन्! उसी अपराधसे तुमको फलकेसमान निगलके तुमारे राज्यके सब मनुष्योंकोभी ऐसे ग्रास करजाऊंगा जैसे काल जगत्का ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे वेतालप्रश्नोनाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अनंतकोटि ब्रह्मांड, फल और वृक्षादिकी कल्पनाओंसे प्रथम प्रश्नका उत्तर विस्तारसे इस ७१ सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तवतिवेतालेवक्तुंप्रश्नान्विहस्यसः ॥ उवाचवचनंराजादंतांशुधवलांबरः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ आस्तेकदाचिच्चेदंहिब्रह्मांडमजरंफलम् ॥ उत्तरोत्तरंदशगुणभूतत्वक्परिवेष्टितम् ॥ २ ॥ तादृशानांसहस्राणिफलानियत्रसंतिहि ॥ अत्युच्चैस्तादृशीशाखाविपुलाचलपल्लवा ॥ ३ ॥ तादृशानां सहस्राणिशाखानांयत्रसंत्यथ ॥ तादृशोस्तिमहावृक्षोदुर्लक्ष्योविपुलाकृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! वेतालके इतना कहनेपर दांतोंकी किरणोंसे वस्त्र और आकाशको धवल करताहुआ राजा प्रश्नोंका उत्तर देनेको हंसकर बोला ॥ १ ॥ कि हे वेताल! कदाचित् कहीं अज्ञानियोंकी दृष्टिमें अजर हमलोगोंका आश्रम ब्रह्मांडरूप फल है जो कि उत्तरोत्तर दशगुण पृथिवी जल आदि आवरणरूप चर्मसे घिराहै ॥ २ ॥ और वैसेही वहांपर सहस्रों (अनंत) फल हैं और वैसीही विशाल भुवनरूप चंचलपल्लवयुक्त अतिऊंची उसकी शाखा है ॥ ३ ॥ और वहांपर वैसी शाखाभी सहस्रों हैं, और वैसी अनेक शाखाओंको धारणकरनेवाला, विशाल आकारसहित तथा दुर्लक्ष्य महावृक्ष है ॥ ४ ॥

तादृशानांसहस्राणियत्रसंतिमहीरुहाम् ॥ तादृशंवनमत्युच्चैरनंततरुगुल्मकम् ॥ ५ ॥ तादृशानांसहस्राणिवनानांयत्रसंत्यथ ॥ तादृगस्तिबृहच्छृंगमत्युच्चैर्भरिताकृति ॥ ६ ॥ तादृशानांसहस्राणिशृंगाणांयत्र संत्यथ ॥ तादृशोस्त्यतिविस्तीर्णोदेशोविपुलकोटरः ॥ ७ ॥ तादृशानांसहस्राणिदेशानांयत्रसंत्यथ ॥ तादृगस्तिबृहद्द्वीपंमहाह्रदनदीयुतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जहांपर वैसे सहस्रों वृक्ष हैं, और जहांपर उसीप्रकारके अनंत वृक्ष तथा लतादिसंयुक्त वन है ॥५॥ और जहांपर पूर्वोक्तवनके सदृश सहस्रों वनोंसहित एक विशाल तथा अतिऊंचा पर्वत है ॥ ६ ॥ और पूर्वोक्त पर्वतके समान सहस्रोंपर्वतसंयुक्त अतिविस्तीर्ण तथा विपुलकोटरवाला एक देश है ॥ ७ ॥ और जहांपर पूर्वोक्तदेशके सदृश तथा अनेक महाह्रद नदी आदिसे संयुक्त सहस्रों देश हैं ऐसा एक महाद्वीप है ॥ ८ ॥

तादृशानांसहस्राणिद्वीपानांयत्रसंत्यथ ॥ तादृगस्तिमहीपीठंविचित्ररचनान्वितम् ॥ ९ ॥ तादृशानांसहस्राणिपृथ्वीनांयत्रसंत्यथ ॥ तादृगस्तिमहास्फारंमहाभुवनडंबरम् ॥ १० ॥ तादृशानांसहस्राणिजग

तांयत्रसंत्यथ ॥ तादृगस्तिमहच्चांडंचंडमंबरपीठवत् ॥११॥ तादृशानांसहस्त्राणियत्रांडानिकरंडकाः ॥ तादृशोस्तिगतस्पंदोविपुलाब्धिश्वसागरः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा जहांपर पूर्वोक्त द्वीपके समान सहस्रों द्वीप हैं ऐसा विचित्ररचनासे युक्त एक महीतल है ॥ ९ ॥ पूर्वोक्त पृथिवीतलके सदृश सहस्रों पृथिवीतल जहां हैं ऐसा महाविशाल भुवन है ॥ १० ॥ और जहांपर पूर्वोक्त जगत्के सदृश सहस्रों जगत् हैं ऐसा एक महान् ब्रह्मांडपीठ है ॥ ११ ॥ और जहांपर पूर्वोक्त ब्रह्मांडके सदृश सहस्रों ब्रह्मांड करंडके सदृश हैं ऐसा एक महान् विशाल निश्चल समुद्र है ॥ १२ ॥

तादृक्सागरलक्षाणितरंगोयत्रपेलवः ॥ तादृशःस्वविलासात्मानिर्मलोस्तिमहार्णवः ॥ १३ ॥ तादृगब्धिसहस्राणियस्योदरजलान्यथ ॥ तादृशोस्तिपुमान्कश्चिदत्युच्चैर्भरिताकृतिः ॥ १४ ॥ तादृशानांनृणांलक्षैर्यस्यमालोरसिस्थिता ॥ प्रधानंसर्वसत्तानांतादृशोस्तिपरःपुमान् ॥ १५ ॥ तादृशानांसहस्राणिपुरुषाणांमहात्मनाम् ॥ स्फुरंतिमंडलेथस्यस्वतनूरुहजालवत् ॥ १६ ॥ तादृशोस्तिमहादित्यःशतमन्यासुदृष्टिषु ॥ याएताःकलनाःसर्वास्ताएतास्तस्यदीप्तयः ॥ १७ ॥

अर्थ—और हे वेताल ! पूर्वोक्त समुद्रके सदृश लाखों समुद्र जिसमें तरंगके सदृश हैं ऐसा तरंगसे रमणीय अपने स्वरूपमें बिलास करनेवाला और निर्मल महासमुद्र है॥१३॥और पूर्वोक्त महासमुद्रके सदृश सहस्रों महासमुद्र जिसके उदरमें हैं ऐसा महान् आकारयुक्त एक पुरुष अर्थात् विष्णु है॥१४॥और पूर्वोक्तपुरुषके सदृश सहस्रों पुरुषोंकी माला अपने वक्षस्थलमें धारण कियेहुये तथा सब सत्ताओंका प्रधान परपुमान् अर्थात् रुद्र है ॥ १५ ॥ और पूर्वोक्त परपुरुषके सदृश सहस्रों महात्मापुरुष (रुद्र) जिसके मण्डलमें रोमसमूहके समान स्फुरित होते हैं ऐसा एक महा आदित्य हैं और जो रुद्रसे आदिलेके असंख्य ब्रह्मांड प्रतिभासते हैं ये सब उस महाआदित्यकी दीप्ति हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

अस्यादित्यस्यदीप्तीनांब्रह्मांडास्त्रसरेणवः ॥ मयाचित्सूर्यइत्युक्तःसर्वमेतत्तपत्यसौ ॥ १८ ॥ विज्ञानात्मैवपरमोभास्करोभाविताशयः ॥ इमेयेभुवनाभोगास्तस्यैवत्रसरेणवः ॥ १९ ॥ विज्ञानपरमार्कस्यभासाभांतिभवंतिच ॥ इमाजगदहर्लक्ष्म्यःक्वचिल्लक्ष्म्यौरवेरिव ॥ २० ॥ विज्ञानमात्रकचितात्मनिजंतुजातेत्रैलोक्यमंडपमणेरविकासभाजि ॥ चिज्जन्मनोभ्र्वनसंभ्रमतावलेखाःसंतीहरेनहिमनागपिशांतमास्स्व ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालप्रथमप्रश्नोत्तरवर्णनं नामैकसप्ततितमः सर्गः॥ ७१ ॥

अर्थ—हे वेताल ! इसी महाआदित्यकी दीप्तियोंके त्रसरेणु अनंत ब्रह्मांड हैं, इसप्रकार तुमारे प्रश्नका उत्तर मैंने चित्रूप सूर्य कहा क्योंकि यही चित्रूप सूर्य्य सबका प्रकाश करताहै ॥ १८ ॥ हे वेताल ! यह विशालआकारयुक्त परमभास्कर विज्ञानरूप आत्माही है और ये सब ब्रह्मांड उसीकी दीप्तिके त्रसरेणु हैं ॥ १९ ॥ कहीं २ प्रसिद्ध सूर्यकी लक्ष्मीके समान उसी विज्ञानरूप परमभास्करकी दीप्तिसे ये सब ब्रह्मांडकी लक्ष्मी प्रकाशित तथा उत्पन्न होती हैं ॥ २० ॥ अरे वेताल ! पूर्वोक्त मायाशबलित ब्रह्मरूप त्रैलोक्यरूप मण्डपमणिके मुख्य अधिकारियोंमें शास्त्रजनित अखण्डाकार साक्षात्कारमात्रसे निजात्मरूपसे प्रकाशित तथा अनधिकारी जन्तुमात्रमें अव्यक्तरूपसे प्रकाशित रहते इस साक्षीचेतनमें अग्निके स्फुलिंगके समान जीवजगत्की पृथक् सत्ताके तथा कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप असंख्य भ्रमोंके उल्लेखहैं और परमार्थदृष्टिसे कुछ नहीं है इसलिये तुम प्रश्नाडंबरको शांत करके स्थिरतरहो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे वेतालप्रथमप्रश्नवर्णनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस ७२ के सर्गमें शेष पांचोंप्रश्नोंका उत्तर क्रमसे सावधान वेतालको राजाने भलीभांतिसे दिया ॥

राजोवाच ॥ कालसत्तानभःसत्तास्पंदसत्ताचचिन्मयी ॥ शुद्धचेतनसत्ताचसर्वमित्यादिपावनम् ॥१॥ परमात्ममहावायौरजःस्फुरतिचंचलम् ॥ कुसुमांगइवामोदस्तदतद्रूपकंस्वतः ॥ २ ॥ जगदाख्येमहस्वप्रेस्वप्नात्स्वप्नांतरंव्रजन् ॥ रूपंत्यजतिनोशांतंब्रह्मशांतत्वबृंहणम् ॥ ३ ॥ रंभास्तंभोयथापत्रमात्रमेवांतरांतरम् ॥ अंतरंतस्तथेदंहिविश्वंब्रह्मविवर्त्यपि ॥ ४ ॥

अर्थ—और किस पवनके स्फुरित होनेपर महदाकाशादिरूप रेणु स्फुरित होते हैं इस प्रश्नका उत्तर यहहै कि कालसत्ता, आकाश सत्ता, स्पंदशक्तिप्रधान सूत्रात्माकाशसत्ता अनेकविकाररूप तथा जीवाकाशसत्तारूप निर्दोष रेणुरूप परमात्मरूप महावायुमें चंचलतापूर्वक ऐसे स्फुरित होतेहैं जैसे पुष्प स्वयं अपनेही स्वरूपमें सुगंधतारूप भेदकी कल्पनासे स्थितहै ॥ १ ॥ २ ॥ और ज्ञानसे ब्रह्मानंदकी शांतिको बढानेवाला यही आत्मा जगत्‌रूप महास्वप्नमें एकस्वप्नसे अनेकस्वप्नमें प्राप्तहुआभी अपने शांतरूपको कदापि नहींत्यागता ॥ ३ ॥ केलेका खंभ जैसे ज्यों २ भीतरसे खोलो त्यों २ पत्रमात्रही है ऐसेही इस ब्रह्ममें विवर्तनशील यह विश्व है ॥ ४ ॥

सद्ब्रह्मात्मादिभिःशब्दैर्यदेताभिर्विगीयते ॥ शून्यमव्यपदेशंतेनतत्किंचिच्चकिंचन ॥ ५ ॥ यायाविभाव्यतेसत्तासासानुभवनिर्मितान् ॥ रंभास्तंभवदेतावच्चिन्मात्रममलंततम् ॥ ६ ॥ सूक्ष्मत्वादप्यलभ्यत्वात्परमात्मापरोणुकः ॥ अनंतत्वादसावेवप्राप्तोमेर्वादिमूलताम् ॥ ७ ॥ अणोरप्यत्यनंतस्यपुंसोस्य जगदाद्यपि ॥ परमाणुवदाभातिप्रतीतत्वादरूपवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जगत् वर्द्धन तथा विवर्तनशील होनेसे वह परमात्मा ब्रह्म, आत्मा, सत् आदि शब्दोंसे कहाजाताहै इसलिये किंचित्‌रूप है, और सबधर्मोंसे रहित होनेसे वह कुछ नहीं है ॥ ५ ॥ इसलिये पटकी सत्ता सूत्रकी सत्तामें सूत्रकी कार्पासकी सत्तामें कार्पासकी सत्ता उसके फलकी सत्तामें और फलकी लता बीज मृत्तिका जलआदिकी सत्तामें जाके समाप्तहोती हैं इत्यादि क्रमसे जो २ सत्ता भान होतीहैं वे २ उनके अनुभवसे रचित आकारोंको त्यागकर केलेके स्तंभकेतुल्य अनुभवरूप चेतनमें समाप्तहोतीहैं, और यही अनुभवरूप चिन्मात्र निर्मलपद जगदाकारसे विस्तृतहै ॥ ६ ॥ सूक्ष्म तथा अलभ्य होनेसे यही परमात्मा परमाणुरूप है और अनंत होनेसे यही मेरु आदि पर्वतोंकाभी मूल है ॥ ७ ॥ यह परमात्मा अणुस्वरूपभी तथापि अनंत है और ब्रह्मांडादि सब भूतपंचक स्वप्नके जगत्‌के समान चित्‌कणसे परिच्छेद्य होनेसे रूपरहित है ॥ ८ ॥

परोणुरेषोऽलभ्यत्वात्पूरकत्वान्महागिरिः ॥ सर्वावयवरूपोपिनिरस्तावयवःपुमान् ॥ ९ ॥ अस्यवैज्ञप्तिमात्रस्यमज्जामात्रंजगत्रयी ॥ विज्ञानमात्रमध्यंहिसाधोविद्धिजगत्रयम् ॥ १० ॥ विज्ञानमात्रकलनाकलितंजगंतिशांतस्वभावसुकुमारमनंतरूपम् ॥ वेतालबालकपदंतदलंघनीयमेवंस्वयंसमनुभावयशांतमास्स्व ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालप्रश्नभेदो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह परमात्मा सूक्ष्म और अलभ्य होनेसे परमाणुरूप है और सर्वव्यापी होनेसे महापर्वत है और मायासर्वरूप होनेसेभी यह आत्मा पुरुष यथार्थमें अवयवरहित है ॥ ९ ॥ हे साधो ! ज्ञानमात्र परमात्माही इस त्रिलोकीका सार है क्योंकि यह आकाशादि सब त्रिलोक उस विज्ञानघन परमात्माके आभ्यंतरमेंही स्थितहैं ऐसा तुम जानो॥१०॥ हे वेतालबालक! इन सब अनेकब्रह्मांडोंको तुम विज्ञानरूप परमात्माकी कलाओंसे कल्पित जानो और वह शांतस्वभाव अनंत आत्मपद तुमारे सदृश वेतालबालकोंसे अलंघनीय है, इस मेरे कथनके अनुसार तुम उस आत्माका अनुभव करो और गर्वको शांत करके स्थितरहो ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे वेतालप्रश्नभेदो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस ७३ के सर्गमें वेतालके प्रश्नोंके निर्णयकी स्थितिका वर्णन करके राजा भगीरथका वृत्तांतभी वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिराजमुखाच्छ्रुत्वावेतालःशांतिमाययौ ॥ भावितात्मतयातत्रविचारोचितयाधिया ॥ १ ॥ उपशांतमनाभूत्वामत्वैकांतमनिंदितम् ॥ बभूवाविचलध्यानीविस्मृत्यविषमांक्षुधम् ॥ २ ॥ एतद्रामसयोक्तंतेवेतालप्रश्नजालकम् ॥ एवंक्रमेणचिदणौतेनेदंसंस्थितंजगत् ॥ ३ ॥ चिदणोःकोशगंविश्वंविचारेणविलीयते ॥ कायोवेतालकस्येवशिष्यतेयत्पदंतुतत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार राजाके मुखसे श्रवण करके राजाको तत्त्वज्ञानी जानकर विचारके अनुकूल बुद्धिसे वह वेताल शांतिको प्राप्तहुआ ॥ १ ॥ अनन्तर शांतचित्त होके और अनिंदित आत्माका मनन (चिंतन) करके घोर क्षुधाको भूलकर समाधिस्थ होगया ॥ २ ॥ हे रामजी ! यह मैंने तुमसे वेतालके प्रश्न-समूहको कहदिया, और इस राजाके कथनानुसार यह सब जगत् चित्तरूप परमाणुमें स्थित है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! चित्तरूपपरमाणुके कोशमें स्थित यह विश्व विचारसे ऐसे नष्टहोजाताहै जैसे बालकसे कल्पित वेतालका शरीर, और जो शेष रहजाताहै वही आत्मपद है ॥ ४ ॥

संहृत्यसर्वतश्चित्तंस्तिमितेनांतरात्मना ॥ स्वभावापतितंकुर्वन्निरिच्छंतिष्ठशांतधीः ॥ ५ ॥ आकाशविशदंकृत्वामनसैवमनोमुने ॥ तिष्ठैकशमशांतात्मासर्वत्रसमदर्शनः ॥ ६ ॥ स्थिरबुद्धिरसंमूढोयथाप्राप्तानुवर्तिनः ॥ राज्ञोभगीरथस्येवदुःसाध्यमपिसिद्धयति ॥ ७ ॥ संपूर्णशांतमनसःपरितृप्तवृत्तेर्नित्यंसमे सुखमयात्मनितिष्ठतोंतः ॥ सिद्धयंतिदुर्लभतराअपिवांछितार्थागंगावताराइवसागरखातवस्तु ॥ ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे वेतालाख्यानंनामत्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥

अर्थ—हे रामजी ! निश्चलमनसे अपने चित्तको चारोंओरसे खींचकर परमात्माको समर्पण करके सब कार्य करतेहुयेभी इच्छानुसार हित और शान्तबुद्धिसे स्थितरहो ॥ ५ ॥ हे विचारशील रामजी ! अपने मनसेही मनको आकाशकेतुल्य विशाल करके और एक आत्मवस्तुमें सब वृत्तियोंको लीन करके सर्वत्र आत्मदर्शी स्थिरबुद्धि और मूढतारहित होके स्थितरहो ॥ ६ ॥ ऐसा करनेसे यथार्थ व्यवहार करनेवाले राजा भगीरथके समान दुःसाध्यभी कार्य्य सिद्ध होतेहैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जैसे सगर अंशुमान् तथा दिलीपादिको अतिदुर्लभभी समुद्रकी वस्तु संजीवनीमणिके समान श्रीगंगाजीका अवतार शांत तथा पूर्णचित्त, सर्वथा तृप्त और सर्वव्यापी आत्मामें नित्य स्थित राजा भगीरथको अनायास सिद्धहुआ है ऐसे इसप्रकारके सब प्राणियोंके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे वेतालोपाख्यानं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

इस ७४ के सर्गमें राजा भगीरथके गुण, विचारसे उत्पन्न चिंता, त्रितलकेसाथ संवाद और त्यागकी इच्छा वर्णन कीगई है ॥

श्रीरामउवाच ॥ यथाचित्तचमत्कृत्याराज्ञोगंगावतारणम् ॥ भगीरथस्यसंपन्नंतन्मेकथयभोप्रभो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असीद्भगीरथोनामराजापरमधार्मिकः ॥ भुवःससुद्रयुक्तायामंडलीतिलकोपमः ॥ २ ॥ संकल्पानंतरंप्राप्तायथाभिमतमर्थिनः ॥ चंद्रप्रसन्नवदनादस्माच्चिंतामणेरिव ॥ ३ ॥ साधूनांयोव्यवस्थार्थधनान्यविरतंददौ ॥ तृणमात्रमुपादत्तेकचिच्चिंतामणिर्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! पूर्णचित्तके चमत्कारसे राजा भगीरथको जैसे गंगाजीकी प्राप्ति हुई वह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अपने कोशलदेशमें तिलकके समान समुद्रांतपृथिवीका राजा भगीरथ परमधार्मिक था ॥ २ ॥ दानके उत्साहसे सदा चन्द्रमाके समान प्रसन्नमुख इस राजासे अर्थीगण अपने संकल्पके अनुसारही अभिलषित पदार्थ ऐसे पातेथे जैसे चिन्तामणिसे ॥ ३ ॥ वह राजा सत्पात्रोंको निरन्तर धन दियाकरताथा और अपने धर्मसे प्राप्त आय (आमदनी) के स्थानमें कामधेनुके सदृश तृणमात्रभी ले लेताथा ॥ ४ ॥

वज्रसारमिवप्रोतमुज्ज्वलन्नेमियोभिनत् ॥ अधोमणिरयोयंत्रंसर्वदुर्जनचेष्टितम् ॥ ५ ॥ अधूमवह्निदेहश्रीःश्रांतोपिदैन्यमप्यलम् ॥ तमोहरन्नृणांनैशंद्युमणिर्वेश्मनामिव ॥ ६ ॥ किरन्नग्निकणासारमभितः स्वप्रतापजम् ॥ मध्याह्नसूर्यकांताग्निरिवज्वलतियोरिषु ॥ ७ ॥ मृदुशीतलसंस्पर्शोयस्समाह्लादयन्मनः ॥ सुज्ञानांद्रवतिस्निग्धस्येंदोरिंदुमणिर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे लोहके यंत्रमें प्रदीप्त चक्राकार भ्रमण करताहुआ वज्रवेधक मणि अपने नीचे गूंथेहुये वज्र (हीरे) को वेधकर गुण (सूत्र) के योग्य करदेताहै ऐसेही राजा भगीरथने दुष्टोंके ऊपर आक्रमण करके उनके देशादिको लेकर अपने चरणके अधोभागमें स्थापनद्वारा उनकी दुष्टचेष्टाओंको नष्टकरके उन्हे गुणी बनादिया ॥ ५ ॥ निर्धूम

अग्निकेसमान प्रज्वलितशरीर वह राजा प्रजापालनके परिश्रमसे श्रांतभी मनुष्योंके अधर्ममें प्रवृत्तिके कारण सब गृहके दैन्यादि अन्धकारको ऐसे हरताथा जैसे रात्रिके अन्धकारको सूर्य ॥ ६ ॥ अपने प्रतापजनित अग्निकी धाराकी वृष्टि अपने शत्रुओंके ऊपर करताहुआ मध्यान्हकालमें सूर्यकांतमणिसे उत्पन्न अग्निकेसमान वह राजा प्रज्वलित रहताथा ॥ ७ ॥ मृदु तथा शीतलस्पर्शवाले चन्द्रमाकेसमान तत्वज्ञानियोंके मनको प्रसन्न करताहुआ ऐसे द्रवीभूत होताथा जैसे चन्द्रके संनिधानसे चन्द्रकांतमणि ॥ ८ ॥

जगद्यज्ञोपवीतस्यस्वर्गपातालवाहिनः ॥ गंगावाहस्ययेनास्यांतृतीयःपूरितोगुणः ॥ ९ ॥ अगस्त्यशोषितोंभोधिर्गंगापूरेणपूरितः ॥ येनदुष्पूरभूतोपिमहासार्थोर्थिनामिव ॥ १० ॥ गंगासोपानपद्धत्यायेन पातालवासिनः ॥ योजिताब्रह्मणोलोकेबांधवालोकबंधुना ॥११॥ ब्रह्माणंशंकरंजह्नुतपसाराधयंश्चयः ॥ भूयोभूयोययौखेदमशून्याध्यवसायिनः ॥ १२ ॥

अर्थ—जगत्के यज्ञोपवीतके समान स्वर्ग तथा पातालमें वहनेवाले गंगाजीके प्रवाहके तृतीयगुणको इस पृथिवीपरभी उस राजाने पूर्ण करदिया ॥ ९ ॥ और जैसे दुष्पूर अर्थियोंके महान् समूहको धनसे उसने पूर्णकिया वैसेही गंगाजीके प्रवाहसे अगस्त्यमुनिसे शोषित समुद्रको पूर्णकिया ॥ १० ॥ और संसारके बन्धु उस राजाने जगत्के प्राणीके द्रोह तथा ब्रह्मशापसे भस्म हुये पातालनिवासी अपने बन्धुओं (सगरके पुत्रों) को गंगारूप सिद्धिसे स्वर्गमें प्राप्तकिया ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी तथा शंकरजीको तपसे प्रसन्न करताहुआ निरन्तर दृढनिश्चय रखनेवाले अपने मनसे वह पुनः २ खिन्नहुआ ॥ १२ ॥

यौवनेवर्तमानस्यतस्यभूमिपतेरपि ॥ प्रविचारयतोलोकयात्रांपर्याकुलामिमाम् ॥ १३ ॥ सुविरागचमत्कारविचारकणिकोदभूत् ॥ वयस्यपिचतारुण्येदैवाद्वल्लीमराविव ॥ १४ ॥ एकांतेचिंतयामासमहीपतिरसाविति ॥ जगद्यात्रामिमांनित्यमसमंजसमाकुलम् ॥१५॥पुनर्दिनंपुनःश्यामादानादानशतंपुनः॥ तदेवभुक्तविरसंलक्ष्यतेकर्मकुर्वताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—आपके समान युवावस्थामें वर्तमान इस संसारकी स्थितिको विचारतेहुये उस राजाके चित्तसे उत्तम वैराग्य तथा चमत्कारविचारकी कणिका ऐसे उत्पन्नहुई जैसे मरुस्थलमें लता ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे रामजी ! एकसमय एकांतमें अयोग्यतासे आकुलतापूर्वक नित्यप्राप्त इस जगत्की स्थितिको इस राजाने ऐसे चिंतन किया कि ॥ १५ ॥ पुनः दिन पुनः वही रात्रि, पुनः वही सैकडों दान तथा ग्रहण, और सब प्राणियोंके पुनः वही नीरस तथा भुक्त पूर्वकर्म देखपडतेहैं न कि कुछ अपूर्व परमपुरुषार्थरूप ॥ १६ ॥

येनप्राप्तेनलोकेस्मिन्नप्राप्यमवशिष्यते ॥ तत्कृतंसुकृतंमन्येशेषंकर्मविषूचिका ॥ १७ ॥ पुनःपुनःपर्युषितंकर्म्मकुर्वन्नलज्जते ॥ मूढबुद्धिरबुद्धिस्तुकःकुर्यात्किलबालवत् ॥ १८ ॥ अथैकदोद्विग्नमनाःकदाचित्रितलंगुरुम् ॥ एकांतंसंस्तुतेभीतःसमपृच्छद्भगीरथः ॥ १९ ॥ भगीरथउवाच ॥ अंतःशून्यासुसुचिरंभ्रमत्संसारवृत्तिषु ॥ अरण्यानीषुचैतासुभृशंखिन्नावयंविभो ॥ २० ॥

अर्थ—जिसके प्राप्तहोनेसे कुछ प्राप्य शेष नहींरहता उसी कृतको मैं सुकृत मानताहुं और अन्यकर्म विषूचिका (दुःखफलजनक) है ॥ १७ ॥ पुनः २ कियेहुये वही विषयआदि कर्म करताहुआ बुद्धिरहित मूढ प्राणी बालकके समान लज्जित नहींहोता ॥ १८ ॥ इस चिंतनके अनंतर संसारसे अत्यंत भयभीत और उद्विग्न होके राजा भगीरथने एकांतमें त्रितलगुरुसे यह पूंछा कि ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! आभ्यंतरसे शून्य तथा भ्रमण करनेवाले जीवोंकेलिये रागद्वेषादिसहित संसारके व्यवहाररूप स्वर्गनरकादिरूपजंगलोंमें हम लोग अत्यंत खिन्न हैं ॥ २० ॥

जरामरणमोहादिरूपाणांभवकारिणाम् ॥ भगवन्सर्वदुःखानांकथमंतःप्रजायते ॥ २१ ॥ त्रितलउवाच ॥ चिरसाम्यात्मनोत्थेननिर्विभागविलासिना ॥ राजन्ज्ञेयावबोधेनपूर्णेनभरितात्मना ॥ २२ ॥ क्षीयंतेसर्वदुःखानित्रुट्यंतिग्रंथयोभितः ॥ संशयाःसमतांयांतिसर्वकर्माणिचानघ ॥ २३ ॥ ज्ञेयंविदुरथात्मानंसंशुद्धंज्ञप्तिरूपिणम् ॥ सचसर्वगतोनित्यंनास्तेमेतिनचोदयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जरा मरण तथा मोहादिरूप संसारके दुःखोंका अंत कैसे होताहै ॥ २१ ॥ त्रितलऋषि बोले—हे पापरहित राजन् ! श्रवणमननादि उपायोंसे चिरकालसे अभ्यस्त निर्विकल्पसमाधिसे उत्पन्न ज्ञेयरूप पूर्णात्माके बोधसे सब दुःख नष्टहोजातेहैं, चारोओरसे ग्रंथियां टूटजातीहैं, और सब संशय तथा कर्मभी अस्त होजातेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ और शुद्ध ज्ञानरूप आत्माहीको महात्माजन ज्ञय कहतेहैं, और ज्ञेय आत्मा नित्य सर्वत्र प्राप्तहै न उसका अस्त होताहै न उदय होताहै ॥ २४ ॥

भगीरथउवाच ॥ ॥ चिन्मात्रंनिर्गुणंशांतमस्तिनिर्मलमच्युतम् ॥ देहादिनेतरत्किंचिदितिवेद्मिमुनी श्वर ॥ २५ ॥ किंतत्रप्रतिपत्तिर्मेस्फुटतामेतिनेतरा ॥ एतावन्मात्रसंवित्तिःस्यामहंभगवन्कथम् ॥ २६ ॥ त्रितलउवाच ॥ ज्ञानेनज्ञेयनिष्ठत्वमेतिचेतोहृदंबरे ॥ ततःसर्ववपुर्भूत्वाभूयोजीवोनजायते ॥ २७ ॥ असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ २८ ॥

अर्थ—भगीरथ बोले–हे मुनीश्वर ! चिन्मात्र, निर्गुण, शांत, अमल और अच्युत आत्मा है और देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अविद्यापर्यन्त कुछभी आत्मा नहीं है यह मैं जानताहूं ॥ २५ ॥ परंतु इस सद्असत्विवेकके मध्यमें शुद्ध आत्माके बोधमात्रमें मेरी स्पष्टस्थिति नहींहोती सो शुद्ध ज्ञानरूप आत्मामात्र मैं कैसे होऊं ॥ २६ ॥ त्रितल बोले–हे राजन् ! अमानिता और उसके पश्चात् यह जीव पूर्ण आत्मस्वभाव होके पुनः उससे नहीं गिरता ॥ २७ ॥ पुत्र, स्त्री, तथा गृहादिमें ममता तथा उनमें अहंभावसे राहित्य और इष्ट अनिष्ट वस्तुमें समचित्तता ॥ २८ ॥

आत्मनोनन्ययोगेनतद्भावनमनारतम् ॥ विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ २९ ॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥ एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंतदतोन्यथा ॥ ३० ॥ रागद्वेषक्षयाकारंसंसारव्याधिभेषजम् ॥ अहंभावोपशांतौतुराजन्ज्ञानमवाप्यते ॥ ३१ ॥ भगीरथउवाच ॥ शरीरेस्मिंश्चिरारूढोगिरौतरुरिवस्वके ॥ अहंभावोमहाभागवदमेत्यज्यतेकथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और अनन्यभावसे आत्माका निरंतर चिंतन, एकांतदेशमें निवास, अधिक जनसमूहमें अप्रीति ॥२९॥ आत्मज्ञानप्रतिपादक शास्त्रोंका नित्य अवलोकन और आत्मज्ञानके अर्थका विचार इसको ज्ञान कहाहै और इससे भिन्न अज्ञान है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! रागद्वेषका नाशही संसाररूप व्याधिका औषध है और ज्ञानके प्रतिबंधक अहंकारके शांत होनेसे ज्ञान प्राप्तहोताहै ॥ ३१ ॥ भगीरथजी बोले–हे महाभाग ! पर्वतपर वृक्षके समान चिरकालसे इस देहमें आरूढ अहंकार कैसे त्यागाजाताहै सो कहिये ॥ ३२ ॥

त्रितलउवाच ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनत्यक्त्वाभोगौघभावनाम् ॥ गत्वाविकसितांसत्तामहंकारोविलीयते॥३३ यंत्रणापंजरंयावद्बद्धमंलज्जादिनाखिलम् ॥ अकिंचनत्वशेषेणस्फुटातावदहंकृतिः ॥ ३४ ॥ सर्वमेतद्धियात्यक्त्वायदितिष्ठसिनिश्चलः ॥ तदहंकारविलयेत्वमेवपरमंपदम् ॥ ३५ ॥ शांताशेषविशेषणोविगतभीःसंत्यक्तसर्वैषणोगत्वानूनमकिंचनत्वमरिषुत्यक्त्वासमग्रांश्रियम् ॥ शांताहंकृतिरस्तदेहकलनस्तेष्वेवभिक्षामटन्मामप्युज्झितवानलंयदिभवस्युच्चैस्त्वमुच्चैरसि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भगीरथोपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—त्रितल बोले–हे राजन् ! पौरुषरूप यत्नसे भोगसमूहकी भावनाको त्यागकर और कामनाओंके अभावसे शुद्धआत्माकारसे स्थित पुरुषका अहंकार नष्ट होजाताहै ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! मैं राजा हुं राज्य त्यागनेसे मेरी प्रतिष्ठा लोग न करैंगे, शत्रुलोग मुझे हंसेंगे, सबके दाता होके भिक्षाटन कैसे करूंगा, और कदन्नका भोजन कैसे होगा इत्यादि चिन्ताजनित लज्जा अभिमानादिसे पूर्वके समान गृहमें आसक्तिरूप पिंजरा जबतक सर्वथा नहीं टूटता तबतक प्रत्यक्षरूपसे अहंकार गर्जताहै ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यदि बुद्धिसे इस सब राज्यादिके अभिमानको त्यागके निश्चल होके स्थित रहोगे तो अहंकारके नष्ट होनेसे परमपद तुमही हो ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! संपूर्ण राज्यादिविशेषणोंसे रहित, भयशून्य सबप्रकारकी इच्छाओंसे वर्जित, अकिंचन होके सम्पूर्ण लक्ष्मीको शत्रुओंके विषे त्यागकर अहंकारसे वर्जित, उन्हीं शत्रुओंके यहां भिक्षाटन करतेहुये मुझेभी सर्वथा त्यागदोगे तो मुमुक्षुओंके गुणोंसे सम्पन्न सर्वोत्तम ब्रह्मरूप तुमही हो ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भगीरथोपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

यज्ञके मिषसे राजाका सर्वस्वत्याग, भिक्षाटन और किसीपर्वतपर त्रितलके साथ स्थिति इस ७५सर्गमें वर्णन कीगईहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतस्यगुरोर्वक्त्रादित्याकर्ण्यभगीरथः ॥ मनस्याहितकर्तव्यःस्वव्यापारपरोभवत् ॥ १ ॥ ततःकतिपयेष्वेववासरेषुगतेषुसः ॥ अग्निष्टोममखंचक्रेसर्वत्यागैकसिद्धये ॥ २ ॥ गोभूम्यश्व

हिरण्यादिददौधनमशेषतः ॥ द्विजेभ्योनिजबंधुभ्योगुण्यगुण्यविचारयन् ॥ ३ ॥ दिवसत्रयमात्रेणसर्व मेवपरित्यजन् ॥ असुमात्रावशेषोसावासीद्राजाभगीरथः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले--हे रामजी ! गुरुमुखसे राजा भगीरथ वैसा श्रवण करके और अपना कर्तव्य मनमें निश्चय करके अपने व्यापारमें तत्पर हुआ ॥ १ ॥ इसके पश्चात् कुछदिन बीतनेपर सर्वत्यागकी सिद्धिकेलिये अग्निष्टोमादि यज्ञ किये ॥ २ ॥ गौ, भूमि, अश्व, तथा हिरण्यादि सब धन ब्राह्मणोंको तथा अपने बंधुओंको गुणी तथा गुणरहितका विचार न करके निरन्तर दिया ॥ ३ ॥ तीन दिनमेंही सर्वस्वका त्याग करके राजा भगीरथ प्राणमात्रसे शेष रहगया ॥ ४ ॥

अथसर्वार्थरिक्तंतत्खिन्नप्रकृतिपौरकम् ॥ सीमांतिनेतृणमिवराज्यंस्वमरयेददौ ॥ ५ ॥ आक्रांतेद्विषताराज्येमुनिःसत्रनिमंडले ॥ अधोवासोवशेषोसौनिर्जगामस्वमंडलात् ॥ ६ ॥ यत्रनज्ञायतेनाम्नायत्रनज्ञायतेमुखात् ॥ यत्रग्रामेष्वरण्येषुदूरेषूवासधैर्यवान् ॥ ७ ॥ इत्यल्पेनैवकालेनप्रशांतसकलैषणः ॥ परमेणशमेनासावापविश्रांतिमात्मनि ॥ ८ ॥

अर्थ—सबधनसे रहित, खिन्न मंत्रि तथा नगरनिवासी आदि प्रजासहित अपने राज्यको सीमाके समीपस्थ शत्रुको तृणके समान देदिया ॥ ५ ॥ जब शत्रुओंने राज्य लेलिया तब कौपीनमात्र शेष वह राजा अपने राज्यसे निकला ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जहांपर कोई उसे भगीरथनामसे जानतेथे और जहां वह भगीरथ इस नामको किसीके मुखसे नहीं सुनसकताथा ऐसे ग्राम तथा जंगलोंमें उस धैर्य्यवान् राजाने निवास किया ॥ ७ ॥ इसप्रकारसे वर्तमान और सम्पूर्ण अभिलाषाओंसे रहित उस राजाने परमशांतिसे आत्मामें विश्राम पाया ॥ ८ ॥

भ्रमन्द्वीपानिभूपीठेकदाचित्कालयोगतः ॥ अवशःशत्रुणाक्रांतंस्वमेवप्रापतत्पुरम् ॥ ९ ॥ नानागारांश्वतत्रासौप्रवाहपतितांश्वतान् ॥ पौरांश्वमंत्रिणश्चैवशमीभिक्षामयाचत ॥ १० ॥ विविदुस्तेनृपंपौरा मंत्रिणश्चभगीरथम् ॥ पूजयामासुरथतंसविषादाःसपर्यया ॥ ११ ॥ प्रभोराज्यंगृहाणेतिप्रार्थितोप्यरिणामुनिः ॥ नादत्तेनाद्दताशेषस्तृणमप्यशनादृते ॥ १२ ॥

अर्थ—इस भूमण्डलपर अनेकद्वीपोंपर भ्रमणकरताहुआ वह राजा कदाचित् कालके योगसे अवश होके शत्रुओंसे आक्रांत अपनेही नगरमें प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ क्रमसे प्राप्त नगरनिवासी तथा मंत्रियोंके तथा अन्यलोगोंके नानास्थानोंमें इस शांतपुरुषने भिक्षाटन किया ॥ १० ॥ वहांपर नगरनिवासी तथा मंत्रीगणने राजा भगीरथको जानलिया और इसके अनन्तर विषादसहित सभोंने पूजाकी सामग्रीसे उसकी पूजा की ॥ ११ ॥ शत्रुने प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप अपना राज्य लीजिये परन्तु इस मुनिने तो भोजनके सिवाय सब वस्तुओंका अनादर करके किसी पदार्थकोभी नहीं ग्रहण किया ॥ १२ ॥

कतिचिद्दिवसांस्तत्रनीत्वान्यत्रजगामसः ॥ भगीरथोयंहाकष्टमितिलोकेनशोचितः ॥ १३ ॥ अथान्यत्रोपशांतात्मापरिविश्रांतधीःसुखी ॥ आत्मारामंकदाचित्तुसप्राप्तत्रितलंगुरुम् ॥ १४ ॥ स्वमेवस्वागतंकृत्वातेनसार्धंभगीरथः ॥ कंचित्कालमुवासाद्रौवनेग्रामेपुरेजने ॥ १५ ॥ समतामुपयातौतौगुरुशिष्यौसमौस्थितौ ॥ कलयामासतुःस्वस्थौविनोदंदेहधारणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कुछ दिवस वहां निवास करके वह राजा अन्यत्र चलागया और हा ! भगीरथ ! ऐसा सब लोगोंने उसके विषयमें शोक किया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय शांतमन, विश्रामचित्त और सुखी वह राजा आत्माराम त्रितलनाम अपने गुरुके निकट प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ अपने गुरुको प्रणामादि करके उनके साथ राजा भगीरथने कुछकालतक पर्वत, बन, ग्राम तथा नगरादिमें निवास किया ॥ १५ ॥ समताको प्राप्त सर्वव्यापी परब्रह्ममें स्थित और स्वस्थ वे दोनों गुरुशिष्योंने विनोदमात्रकेलिये शरीरको धारणकिया ॥ १६ ॥

किमयंधार्यतेदेहःकिंवानेनोज्झितेननः ॥ यथाक्रमंयथाचारंतिष्ठत्वेषयथास्थितम् ॥ १७ ॥ इतिनिश्चित्यतिष्ठंतौतौवनाद्वनगामिनौ ॥ अनानंदंपरानंदंनासुखंनचमध्यमम् ॥ १८ ॥ धनानिवाजिविभवाद्यैश्वर्यंचाष्टधोदितम् ॥ सिद्धैरप्यर्पितंतुष्टैर्मेनातेजर्जरंतृणम् ॥१९॥ स्वकर्मणैवदेहोयंयावत्सत्वमनिच्छया ॥ धारणीयइतिस्वेनकर्मणैवाथतस्थतुः ॥ २० ॥ अभिनंदतुरागतमुत्तमौनिजसमाचरणक्रमजंमुनी ॥ सुखमसौख्यमभीप्सितवर्जितौसमसमेतिसमौशमिनौस्वतः ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भगीरथनिर्वाणं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—इसके धारण तथा त्यागसे हम् लोगोंको क्या, यह शास्त्रोक्तक्रम तथा वृद्धोंके आचारको पालन करते हुये स्थितरहे ॥ १७ ॥ ऐसा निश्चय करके वे दोनों एक बनसे दूसरे बनमें भ्रमण करतेहुये विषयसुख तथा दुःखसे रहित ब्रह्मानन्दमें प्राप्त स्थितरहे ॥ १८ ॥ धन तथा अश्वादिके विभवको और ब्रह्मादिसे दियेहुये अणिमा आदिके आठप्रकारके ऐश्वर्यको जर्जर तृणके समान जानके त्यागदिया ॥ १९ ॥ अपने प्रारब्धकर्मसे यह शरीर जबतक स्थित रहै तबतक धारण करना चाहिये ऐसा निश्चय करके वे स्थित रहे ॥ २० ॥ इच्छासे रहित वे दोनोंमुनि अपने आचारसे प्राप्त सुख तथा दुःखसे प्रसन्न होतेथे क्योंकि वे जितेंद्रिय सब ब्रह्ममें स्वयं एकरस होके स्थित थे ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे भगीरथ निर्वाणंनाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

इस ७६ के सर्गमें भगीरथराजाकी राज्यप्राप्ति तथा ब्रह्मा महादेवादिकी आराधनासे गंगाजीका उतरना वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैकदापुरेश्रेष्ठेकस्मिंश्चिन्मंडलांतरे ॥ अनपत्यंनृपंमृत्युरहन्मत्स्यइवामिषम् ॥ १ ॥ तत्रप्रकृतयःखिन्नानष्टदेशक्रमानृपम् ॥ अन्विष्यंतिस्मसंयुक्तंगुणलक्ष्म्याविशालया ॥ २ ॥ तं भगीरथमासाद्यस्थिरंभिक्षाचरंमुनिम् ॥ परिज्ञायसमानीयसैन्येचक्रुर्महीपतिम् ॥ ३ ॥ भगीरथःक्षणे नैवप्रावृषीवांबुनासरः ॥ वलितःसेनयागुर्व्याझटित्याशिश्रियेगजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसके पश्चात् भगीरथके राज्यसे किसी अन्य राज्यके नगरमें पुत्ररहित राजाको मृत्युने ऐसा ग्रास करलिया जैसे मांसको मत्स्य ॥ १ ॥ प्रजापालनकी मर्य्यादाके अभावसे खिन्न वहांके प्रजागण प्रजापालनसमर्थ राजाको अन्वेषण करतेथे ॥ २ ॥ भिक्षाटन करतेहुये राजा भगीरथको प्रजापालनके संपूर्ण गुणोंसे संपन्न देखकर लेआये और उनको अपना राजा बनाया ॥ ३ ॥ जैसे वर्षाकालमें जलसे सरोवर पूर्ण होताहै ऐसे बडीसेनासे पूर्ण राजा भगीरथ शीघ्र गजपर आरूढ हुआ ॥ ४ ॥

भगीरथोजगन्नाथोजयतीतिजनारवैः ॥ नीरंध्रतामुपाजग्मुर्गिरींद्राणांमहागुहाः ॥ ५ ॥ तत्रतंपालयंतं तद्राज्यंराजानमादृताः ॥ आजग्मुःप्राक्प्रकृतयःप्राहुरित्थंनृपाधिपम् ॥ ६ ॥ प्रकृतयऊचुः ॥ राजन्नस्माकमधिपोयस्त्वयासपुरस्कृतः ॥ मृत्युनाविनिगीर्णोसौमत्स्येनेवामिषंमृद्ध ॥ ७ ॥ तत्तत्पालयितुंराज्यंप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ अप्रार्थितोपयातानांत्यागोर्थानांचनोचितः ॥ ८ ॥

अर्थ—संपूर्ण जगत्का स्वामी भगीरथका जयजयकारहो ऐसे मनुष्योंके शब्दोंसे पर्वतोंकी कंदरा पूर्ण होगईं ॥ ५ ॥ जिससमय राजा भगीरथ उस राज्यको पालन करतेथे उससमय कोशलराज्यके मंत्रीआदि प्रजागण उनके निकट आके इसप्रकार बोले ॥ ६ ॥ कि हे राजन्! जिसको आपने अपना राज्य देदियाथा उस हमारे राजाको मृत्यु ऐसे निगलगया जैसे मत्स्य मांसको ॥ ७ ॥ इसलिये उस राज्यको पालन करनेकेलिये आप कृपा करनेके योग्यहैं क्योंकि बिना इच्छाके प्राप्त पदार्थोंका त्याग उचित नहीं है ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंप्रार्थितोराजातदंगीकृत्यतद्वचः ॥ सप्तसागरचिह्नायाःसबभूवभुवःपतिः॥९ समःशांतमनामौनीवीतरागोविमत्सरः ॥ प्राप्तकार्यैककरणःसतिरोहितविस्मयः ॥ १० ॥ पातालतलनष्टानांसागराकारकारिणाम् ॥ पितामहानांगंगांबुशुश्रुवेतारणक्षमम् ॥ ११ ॥ तदाकिलस्वर्गनदीव हतिस्मनभूतले ॥ पितॄणांभूतविख्योभूत्तेनगंगाजलांजलिः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसप्रकार उनकी प्रार्थनासे उनके बचनको अंगीकार करके सप्तसमुद्रमेखलावाली पृथिवीका भगीरथ राजाहुआ ॥ ९ ॥ समदर्शी, शांतचित्त, प्रयोजनमात्रके अर्थ सत्यवक्ता, बीतराग, प्राप्तकार्यका कर्ता और बडे कौतुकके कार्यमेंभी आश्चर्यबुद्धिसे रहित वह राजाथा ॥ १० ॥ अश्वमेधयज्ञके अश्वके खोजनेकेलिये समुद्रके समान गर्त (गढा) खननेवाले तथा कपिलमुनिके शापसे पातालमें दग्ध अपने पितामहोंके तरनेका उपाय गंगाजीका जल उन्होंने सुना ॥ ११ ॥ उससमय स्वर्गनदी गंगाजी इस भूतलपर नहीं वहतीथी, उस भगीरथकेही द्वारा गंगाजीके जलसे जलांजलि (मृतकको तिलांजलि) देना अन्यपितरोंकेलियेभी प्रसिद्धहुआ ॥ १२ ॥

भगीरथेनचमहीमवतारयितुंदिवः ॥ गंगांगृहीतोनियमस्ततःप्रभृतिभूभृता ॥ १३ ॥ ततोराज्यंपरित्यज्यमंत्रिणांभूपतिःशमी ॥ तपसेकार्यकार्येहोजगामविजनंवनम् ॥ १४ ॥ तत्रवर्षसहस्रैश्चसमाराध्यपुनःपुनः ॥ ब्रह्माणंशंकरंजह्नुंभुविगंगामयोजयत् ॥ १५ ॥ ततःप्रभृत्यमलतरंगभंगिनीजगत्पतेःशशिविभृदंगसंगिनी ॥ नभस्तलान्निपततिगांत्रिमार्गगामहात्मनामिवबहुपुण्यसंततिः ॥ १६ ॥ स्फुरत्तरंगभंगिनीस्वफेनपुंजहासिनीप्रसन्नपुण्यमंजरीयुतेवधर्मसंततिः ॥ भगीरथेमहीपतौयशःप्रचारवीथिकातदाहिसात्रिमार्गगामहीतलेबभूवह ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे गंगावतरणं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

अर्थ—उसीसमयसे लेके राजा भगीरथने गंगाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर उतारनेका नियम किया ॥१३॥ उसके अनन्तर शमयुक्त राजाने मंत्रियोंको राज्य सौंपकर गंगाजीको पृथिवीपर लानेके अर्थ तप करनेकेलिये विजनबनमें गया ॥ १४ ॥ वहांपर सहस्रोंवर्ष ब्रह्मा, महादेव तथा जन्हुऋषिकी पुनः २ आराधना करके गंगाजीको लाके पृथिपर नियुक्त किया ॥ १५ ॥ हे रामजी ! उसीसमयसे लेके निर्मल तरंगोंकी माला धारण करनेवाली तथा जगत्पति श्रीशिवजीके शिरकी संगिनी त्रिमार्गगामिनी श्रीगंगाजी आकाशसे ऐसे गिरतीहै जैसे स्वर्गनिवासी पुण्यवान् महात्माओंके पुण्यकी श्रेणि (पंक्ति) ॥ १६ ॥ हे रामजी ! चंचलतरंगोंकी माला धारण कियेहुई; अपने फेनके पुंजसे हसनेवाली, प्रसन्नतायुक्त, पुण्यकी लताके समान, तथा धर्मकी पंक्तिरूप और त्रिमार्गगामिनी श्रीगंगाजी राजा भगीरथके यशकी बीथिका (सडक) के समान भूतलपर स्थित हुई ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे गंगावतरणं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

कथित अर्थकी दृढताकेलिये चूडालाख्यानका अवतरण और शिखिध्वजका माहात्म्य तथा विवाहके क्रीडनका क्रम इस ७७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतामवष्टभ्यदृशंभगीरथधियाधृताम् ॥ समःस्वस्थोयथाप्राप्तंकार्यमाहरशांतधीः॥१ इदंपूर्वंपरित्यज्यक्रोडीकृत्यमनःखगम् ॥ शांतमात्मनितिष्ठत्वंशिखिध्वजइवाचलः ॥ २ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कोसौशिखिध्वजोनामकथंवालब्धवान्पदम् ॥ एतन्मेकथयब्रह्मन्भूयोबोधविवृद्धये ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्वापरेभवतांपूर्वमिदानींचभविष्यतः ॥ तेनैवसंनिवेशेनदंपतीस्निग्धतांगतौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भगीरथने पीछे राज्यकालमें जिस दृष्टिको धारण कियाथा उसी दृष्टिका अवलम्बन करके सम, स्वस्थ तथा शांतबुद्धिहोकर यथाप्राप्त कार्य करो ॥ १ ॥ इस सब विभवसमूहको प्रथम त्यागकर और मनरूपी पक्षीको अपने हृदयमें रोककर शांततापूर्वक शिखिध्वजके समान अपने आत्मामें अचल होके स्थित रहो ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! यह शिखिध्वज कौन था और कैसे परमपदको पाया यह मुझे अधिकज्ञानकी वृद्धिकेलिये कहिये ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! तुमारे पूर्वज पूर्वकल्पके द्वापरमें शिखिध्वज स्त्रीपुरुष हुयेथे और अठाईसवें चतुर्युगके द्वापरमेंभी स्नेहको प्राप्त वह दोनों उसी रूपसे होंगे ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ यत्पूर्वमासीद्भगवंस्तदिनानींतथैवहि ॥ भविष्यतिकिमर्थंवैवदमेवदतांवर ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगन्निर्माणनियतेरस्याब्रह्मादिसंविदः ॥ ईदृश्यवस्थितिर्नित्यमनिर्यस्वभावजा ॥६॥ यदन्यद्बहुशोभूत्वापुनर्भवतिभूरिशः ॥ अभूत्वैवभवत्यन्यःपुनश्चनभवत्यलम् ॥ अन्यत्प्राक्संनिवेशाद्व्यंसादृश्येनविवल्गति ॥ सदृशाविषमाश्चैवयथासरसिवीचयः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जो प्रथमथा वही आगेभी क्यों होगा यह मुझे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—ब्रह्मादिके ज्ञानरूप जगत्की रचनारूप नियतिके नित्यस्वभावसे उत्पन्न ऐसी व्यवस्थाहै इसको कोई निवारण नहीं करसकता ॥ ६ ॥ जैसे एक आम्रके वृक्षमें और २ फल बहुतसे होके पुनः २ वैसाही होतेहैं और उसके कंधेपर वटका वृक्ष न होकर होताहै और उसके काटनेपर पुनः वैसा नहीं होता ॥ ७ ॥ और जैसे बहुतसे पदार्थ पूर्वकी रचनाके अनुसारही होतेहैं, और जैसे तडागमें सदृश तथा विपरीतभी तरंगे होतीहैं ॥ ८ ॥

ताएवान्याश्चदृश्यंतेव्यवस्थाःसंस्तौतथा ॥ तस्माद्राजेवभूयोपिवक्ष्यमाणकथेश्वरः ॥ ९ ॥ भविष्यति महातेजास्तद्वृत्तांतमिमंशृणु ॥ द्वापरेपूर्वमभवदतीतेसप्तमेमनौ ॥ १० ॥ चतुर्युगेचतुर्थेतुसर्गेस्मिन्कुरुणांकुले ॥ जंबूद्वीपेप्रसिद्धस्यविंध्यस्यादूरसंस्थिते ॥ ११ ॥ मालवानांपुरेश्रीमाञ्छिखिध्वजइतीश्वरः॥ धैर्यौदार्यदशायुक्तःक्षमाशमदमान्वितः ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही संसारमेंभी बहुतसी व्यवस्था सदृश तथा विरुद्धभी होतीहैं इसकारण शिखिध्वजके समान वक्ष्यमाण कथाका नायकभी ॥ ९॥ महातेजस्वी होगा उसका यह वृत्तांत तुम सुनो, सप्तम मनुके बीतनेपर इस कल्पकी चतुर्युगीके द्वापरमें कौरवोंके कुलमें जंबुद्वीपमें प्रसिद्ध विंध्याचलके समीप मालवादेशकी उज्जयिनीनगरीमें, धैर्यऔदार्य्यादिगुणोंसे युक्त, शम, दम तथा क्षमा आदिगुणोंसे भूषित और शोभावान् शिखिध्वजनामसे प्रसिद्ध राजा उत्पन्नहुआ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

शूरःशुभसमाचारोमौनीगुणगणाकरः ॥ आहर्त्तासर्वयज्ञानांजेतासर्वधनुष्मताम् ॥ १३ ॥ कर्त्तासकलकार्याणांभर्त्तापूर्ववपुर्भुवः ॥ पेशलस्निग्धमधुरोविदग्धःप्रीतिसागरः ॥ १४ ॥ सुंदरःशांतसुभगःप्रतापीधर्मवत्सलः ॥ वदिताविनयार्थानांदातासकलसंपदाम् ॥ १५ ॥ भोक्तासत्संगसहितःसुश्रोता सकलश्रुतेः ॥ वेदासौमाननाशून्यःस्त्रैणंतृणवदस्पृशन् ॥ १६ ॥

अर्थ—वह राजा शुभआचारमें निरत अनेकप्रकारके गुणोंका आकार (उत्पत्तिस्थान) सब यज्ञोंका कर्ता, तथा सब धनुषधारियोंको जीतनेवालाथा ॥ १३ ॥ वापीकूप तडागादि कार्योंका कर्ता, भूमण्डलका स्वामी, कोमल और मधुरभाषी लोकशास्त्रमें प्रवीण, तथा प्रीतिका सागर वह राजाथा ॥ १४ ॥ और सुन्दर, शांत, सुभग, प्रतापी, धर्मका प्रेमी, शत्रुओंकेलियेभी विनयशिक्षादिवाक्योंका वक्ता, और सब सम्पत्तियोंका दाता वह राजाथा ॥ १५ ॥ तथा सज्जनोंकेसाथ ऐश्वर्योंका भोक्ता, सब वेदांतोंका उत्तम श्रोता, सब वेदादिशास्त्रोंका ज्ञाता होनेपरभी ज्ञानीके अभिमानसे वर्जित और स्त्रियोंके व्यसनादिसे रहित वह शिखिध्वजथा ॥ १६ ॥

पितरिस्वर्गमापन्नेबालएवोत्तमौजसा ॥ कृत्वाषोडशवर्षाणिस्वयंदिग्विजयंवशी ॥ १७ ॥ नूनंसाम्राज्यसंपत्त्याभूमंडलमयोजयत् ॥ अतिष्ठद्विगताशंकंपालयन्धर्मतःप्रजाः ॥ १८ ॥ सधीमान्मंत्रिभिःसार्धं यशसाशुक्लयन्दिशः ॥ अथगच्छत्सुवर्षेषुवसंतेप्रोल्लसत्यलम् ॥ १९ ॥ पुष्पेषुजृंभमाणेषुस्फुरत्सुशशिरश्मिषु ॥ मंजरीजालदोलासुविटपान्तःपुरांतरे ॥ २० ॥ रजःकर्पूरधवलेवलद्दलकपाटके ॥ आमोदविलसत्पुष्पगुलुच्छकवितानके ॥ २१ ॥ गायत्सुगहनेषूच्चैर्मिथुनेष्वलिनांमिथः ॥ आवातिमधुरेवायौशशिशीकरशीतले ॥२२॥ कदलीकंदलीकच्छतलपल्लवलास्विनि ॥ कांतांप्रतिबभूवास्यवसच्चेतःसमुत्सुकम् ॥ २३ ॥ क्षीबंकुसुमसंभारसौगंध्यामधुरासवैः ॥मनोनान्यास्पदंचक्रेसवसंतमिवोदितम् ॥२४ ॥

अर्थ—पिताके स्वर्ग जानेपर इसने अपने उत्तम बाहुबलसे १६ वर्षतक दिग्विजय करके स्वयं सबको वशमें करलिया ॥ १७ ॥ और पिताके मांडलिक होनेपरभी अपने भूमंडलको इसने साम्राज्यकी संपत्तिसे युक्तकिया तथा शंकारहित होके प्रजाओंका धर्मसे पालन करताथा ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् वह बुद्धिमान् शिखिध्वज मंत्रियोंके साथ प्रजापालन करतेहुये अपने यशसे सब दिशाओंको शुक्लवर्ण करताथा, हे रामजी ! पश्चात् जिससमय आनंदसे वर्ष बीततेथे और वसंतऋतु पूर्णरूपसे शोभित होरहाथा ॥ १९ ॥ और जब पुष्प विकसित होरहेथे चंद्रमाकी किरणें खिल रहीथीं, और जब पुष्पपरागरूप कर्पूरसे धवल, मुकुलित पुष्पदलरूप कपाटसंयुक्त तथा सुगंधित पुष्पोंके गुच्छेरूप चांदनीसे शोभित शाखारूपी अंतःपुरमें लतासमूहरूप झूलाओंपर भ्रमरोंके जोडे गा रहेथे, और जब चंद्रमाके किरणोंसे शीतल और केले तथा अन्यलताओंके पल्लवोंपर नृत्यशील वायु वह रहाथा उससमय इस शिखिध्वजका चित्त चूडालानाम्नी कांतामें अनुरक्त हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे सौगन्ध्यरूप मधुरमद्यसे मत्त रागरूप पल्लवसंयुक्त वसंतसहित बनके समान इस राजाका मन चूडालाकांताकेसिवाय अन्यस्थानमें नहींजाताथा॥२४

उद्यानवनदोलासुलीलाकमलिनीषुच ॥ कदाप्रणयिनींमुग्धांहेमाब्जमुकुलस्तनीम् ॥ २५ ॥ करिष्येकामिनीमंकेपर्यंकेकुंकुमांकिताम् ॥ कदाकमलवल्लीनांदोलास्वलिरिवालिनीम् ॥ २६ ॥ आलोलांतांनिवेक्ष्यामिबालांभुजलतानुगाम् ॥ मृणालहारकुंदेंदुवृंदवलयभिलाषिणी ॥ २७ ॥ मत्कृतेमदनातप्ताकदा स्यादिंदुसुंदरी ॥ इतिचिंतापरोभूत्वाकुसुमावचयोन्मुखः ॥ २८ ॥

अर्थ—उद्यान तथा बनके झूलाओंपर, तथा क्रीडाकी कमलिनियोंमें, सुवर्णके मुकुलित कमलके समान स्तन धारिणी उस कांताको पर्य्यंकपर अंकमें कब धारण करूंगा और कमलोंकी लताओंके झूलाओंमें भ्रमरीको भ्रमरके समान

भुजारूप लताकी अनुगामिनीवाला तथा चंचल उस प्रियाके संग में कब विवाह करूंगा और कमलके हार तथा कुंद और चन्द्रमाके समान पुष्पित लतागृहोंमें मेरेलिये वह चन्द्रमुखीभी कब अभिलाषिणी होगी, ऐसी चिंतामें तत्पर होके पुष्पके चुन्नेकी इच्छासे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

विजहारवनांतेषुकुसुमोपवनेषुच ॥ वनोपवनलेखासुलीलाकमलिनीषुच ॥ २९ ॥ वल्लीवलयगेहेषुविविधोद्यानभूमिषु ॥ वनोपवनविन्यासवर्णनावलितासुच ॥ ३० ॥ शृंगाररसगर्भासुकथास्वरमतोन्मनाः ॥ हृदिहारलसत्कायविलोलालकवल्लरीः ॥ ३१ ॥ कुमारीःपूजयामाससुवर्णकलशस्तनीः ॥ एतन्मन्येविदुर्भव्यामंत्रिणोनृपनिश्चयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—बनोंमें, पुष्पवाटिकाओंमें, बन उपवनोंकी पंक्तियोंमें और लीलाकी कमलिनियोंमें भ्रमण करने लगा ॥ २९ ॥ लतागृहोंमें, नानाप्रकारकी उद्यानभूमियोंमें, और बन उपबनके गुणवर्णनकी कथाओंमें ॥ ३० ॥ तथा शृंगाररससे पूर्ण कथाओंमें उदास चित्त होके वह राजा रमण कियाकरताथा और वक्षस्थलमें हारसे शोभित, चंचल अलकरूप लताको धारण कियेहुये तथा सुवर्णके घटकेसमान स्तनसे शोभित कुमारियोंकी अधिक पूजा करताथा, इस राजाके निश्चयको चतुर मंत्रीगण जानगये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इंगिताकारवेदित्वमेवमंत्रिपदंपरम् ॥ अथतस्यविवाहायमंत्रिवर्गोविचारयन् ॥ ३३ ॥ सुराष्ट्राधिपतेःकन्यांययाचेयौवनान्विताम् ॥ वनयौवनसंपन्नांभार्यात्वेविधिनोत्तमाम् ॥ ३४ ॥ उपयेमेसतामात्मासदृशींप्रतिमामिव ॥ चूडालेतिभुविख्यातानाम्नानृपतिसुंदरी ॥ ३५ ॥ सातंभर्त्तारमासाद्यरेजेफुल्लेवपद्मिनी ॥ नीलनीरजनेत्रांतांचूडालांसशिखिध्वजः ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्योंकि चेष्टा तथा आकारसे आभ्यन्तरके अभिप्रायको जानलेना यही श्रेष्ठ मंत्रीका परमपद है, इसके पश्चात् उस राजाके विवाहकेलिये मंत्रियोंने विचार किया ॥ ३३ ॥ और अनेक युवतियोंके समूहसहित, तथा नूतन यौवनसे सम्पन्न और अतिसुंदरी सुराष्ट्र (गुजरात) देशके राजाकी कन्याको उस राजाके विवाहकेलिये मांगा ॥ ३४ ॥ और अपनी प्रतिमाके सदृश उस कन्याके साथ राजाने विवाह किया, वह राजाकी सुन्दरी संसारमें चूडालानामसे प्रसिद्धथी ॥ ३५ ॥ वह चूडाला उस राजाको अपना पति पाकर विकसित कमलिनीके समान शोभित हुई नेत्रधारिणी तथा उस चूडालाको स्नेहसे शिखिध्वजने ऐसे विकसित किया ॥ ३६ ॥

स्नेहाद्विकासयामाससूर्योदेवोयथाब्जिनीम् ॥ अवर्धततयोःप्रीतिरन्योन्यार्पितचेतसोः ॥ ३७ ॥ हावभावविलासाढ्यैरंगैर्नवलतेवसा ॥ सुमंत्र्यर्पितसर्वार्थःससुखीसुस्थितप्रजाः ॥ ३८ ॥ राजहंसइवाब्जिन्यारेमेदयितयातया ॥ अंतःपुरेषुदोलासुलीलाकमलिनीषुच ॥ ३९ ॥ उद्यानेषुविहारेषुलतापुष्पगृहेषुच ॥ कदंबवनलेखासुचंदनागुरुवीथिषु ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे कमलिनीको सूर्य्यभगवान्, और परस्पर चित्तके लगनेसे उन दोनोंकी प्रीति बढ़तीहीगई ॥३७॥ हावभावादि शृंगारचेष्टाओंके विलासोंसे पूर्ण रंगोंसे लताके समान वह चूडाला शोभितहुई, और उसके उत्तम धर्मात्मा मंत्रियोंने सब अर्थियोंके अभिलाषको पूर्ण किया इससे उसकी प्रजा सुखी थी अतएव सुखसे अपनी प्रियाके साथ वह राजा रमण करताथा ॥ ३८ ॥ जैसे राजहंस कमलिनीके साथ विहार करताहै ऐसेही उस प्रियाके साथ उस राजाने अन्तःपुरोंमें, झूलामें तथा क्रीडाकी कमलिनियोंमें विहार किया ॥ ३९ ॥ और वाटिकाओंमें, विहारके स्थान लता तथा पुष्पके गृहोंमें, कदंबोंके बनकी पंक्तियोंमें और चन्दन तथा अगर आदिसे सुगंधित मार्गोंमें उस प्रियाके साथ रमण किया ॥ ४० ॥

मंदारदामलोलासुकदलीकंदलीषुच ॥ पुरांतेषुवनांतेषुदिगंतेषुसरस्सुच ॥ ४१ ॥ जंगलेषुजनांतेषुजंबूजंबीरजातिषु ॥ वभूवाह्लादकंसर्वंतयोरन्योन्यचेष्टितम् ॥४२॥ सद्वर्षयोर्धुरवैर्युभूम्योरिवकांतयोः ॥ नित्यमेवावियुक्तत्वात्प्रियत्वाच्चेष्टितस्यच ॥ ४३ ॥ मिथःकलाकलापस्यकोविदौतौबभूवतुः ॥ स्वरूपमेकमेवैतौदधतुर्मित्रतांगतौ ॥ ४४ ॥

अर्थ—और मन्दार (कल्पवृक्ष) की मालाओंमें, कदली आदिके बनोंमें, नगर तथा बनके समीपस्थानोंमें, दिगंतोंमें उत्तमसरोवरोंमें, और जम्बूजम्बीरादिके जंगलोंमें उसके साथ विहारकिया, और उनकी सब चेष्टा परस्पर आनन्ददायक थीं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ परस्पर आनन्ददायक चेष्टा ऐसे थी जैसे श्रेष्ठ बलीवर्दोंसे जो ते खेतोंमें उत्तम वृष्टिकारी आकाश पृथिवीके नित्य मिलित होनेसे तथा एक दूसरेके प्रियचेष्टित होनेसे वे दोनों एक दूसरेके कलासमूहके पंडित होगये, और सबगुणोंमें समता होनेसे मित्रतामें प्राप्त मानों दोनों एकही स्वरूप धारणकरतेथे॥४४॥

अन्योन्यहृदयस्थत्वादिवसंक्रांतमक्षतम् ॥ सर्वशास्त्रार्थवैदग्ध्यांचित्राद्यपिमुखात्प्रभोः ॥ ४५ ॥ बालः कालादिवागृह्यसासीत्सर्वार्थपंडिता ॥ नृत्यवाद्यादियावच्चचूडालावदनादसौ ॥ ४६ ॥ अशिक्षतबभूवाथकलानामतिकोविदः ॥ अमावास्यामिवेंद्वर्कावन्योन्यविलसत्कलौ ॥ ४७ ॥ मिथोहृदयसंस्थौतौ द्वावप्यैक्यमुपागतौ ॥ तौसंस्थितावेकरसावन्योन्यंदयितावुभौ ॥४८॥पुष्पामोदाविवाभिन्नौभूतलस्थौ शिवाविव ॥ वैदग्ध्यसुंदरमतीसर्वशास्त्रार्थपंडितौ ॥ ४९ ॥

अर्थ—और परस्परके हृदयमें स्थित होनेसे दोदेहमें प्रतिबिंबित एकही जीवस्वरूप उन दोनोंकोथा, और चूडाला सब शास्त्रोंका पांडित्य, तथा चित्रकारी आदि कलाकुशलताभी अपने स्वामीके मुखसे ग्रहणकरके सब अर्थोंमें ऐसे पंडिता होगई जैसे ब्रह्मचारी नियतकाल विद्याध्ययन करनेसे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और चूडालाके मुखसे नृत्यवाद्यादि सीखकर यह राजाभी सब कलाओंमें कोविद होगया, और एक दूसरेके गुणसे शोभित तथा एक दूसरेके हृदयमें स्थित होनेसे ऐसे एकताको प्राप्तहुये जैसे अमावाश्याको चन्द्र सूर्य, परस्पर प्रिय वे दोनों मिलेहुये दुग्धजलके समान एकरस होके स्थित थे ॥ ४७ ॥ और पुष्प तथा उसके सुगन्धके समान अभिन्नरूप वे दोनों पृथिवीपरके शिवपार्वतीके समान विदग्धमति और सब शास्त्रोंमें पंडित थे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

कार्यार्थंचभुवंप्राप्तौकमलाकमलाधवौ ॥ स्नेहात्प्रसन्नमधुरौसमविज्ञातवादिनौ ॥५०॥ अनुवृत्तिपरावास्तांलोकवृत्तांतताद्विदौ ॥ कलाकलापसंपन्नौलसद्रसरसायनौ ॥ शीतलस्निग्धमुग्धांगौशशांकौद्वाविवोदितौ ॥५१॥ रेजेलसच्चरतिभोगविलासकांतमंतःपुरेषुमिथुनंतदनुत्तमश्रि ॥ ब्रह्मांडखंडकुहरोष्विवराजहंसयुग्मंविकासिमदमन्मथमंदचारि ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्यानेशिखिध्वजविलासकथनंनामसप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—संसारके कार्यकेलिये लक्ष्मीनारायणके समान भूतलपर प्राप्त, स्नेहसे प्रसन्न तथा मधुरभाषी, और सन्दिग्धविषयके पूंछनेपर एककालमेंही जानते तथा भाषण करतेथे ॥ ५० ॥ और परस्पर प्रियहित तथा विनयआदि आचारोंमें तत्पर लोकशास्त्रके वृत्तांतमें निपुण, कलासमूहमें प्रवीण, शृंगार वीर, करूणा आदि नवरसरूप रसायनसे सम्पन्न, शीतल तथा सुन्दरशरीरसहित मानो दोचन्द्रमाके समान उदित थे ॥ ५१ ॥ रतिके भोगके विलाससे रमणीय तथा सबसे उत्तम शोभायुक्त वे दोनों स्त्रीपुरुष अन्तःपुरमें ऐसे शोभित थे जैसे ब्रह्मांडके एकदेशभूत सत्यलोकके सरोवरोंमें विकसित तथा कामदेवके मदसे मन्दगति राजहंसका युग्म (जोडा) ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजविलासकथनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

उन दोनोंका क्रमसे वैराग्य, सत्शास्त्रके अभ्यासमें तत्परता और चूडालाको विवेक तथा ज्ञानकी प्राप्ति इस ७८ के सर्गमें वर्णनकीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंबहूनिवर्षाणिमिथुनंनिर्भरस्पृहम् ॥ रेमेयौवनलीलाभिरमंदाभिर्दिनेदिने ॥ १ ॥ अथयातेषुबहुषुवर्षेष्वावृत्तिशालिषु ॥ शनैर्गलिततारुण्येभिन्नकुंभादिवांभसि ॥ २ ॥ तरंगनिकराकारभंगुरव्यवहारिणि ॥ पातःपक्वफलस्येवमरणंदुर्निवारणम् ॥ ३ ॥ हिमाशनिरिवांभोजेजरानिपतनोन्मुखी ॥ आयुर्गलत्यविरतंजलंकरतलादिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार दृढप्रेमसहित वे दोनों स्त्रीपुरुष प्रतिदिन बढतीहुई यौवनकी लीलाओंसे बहुत वर्षतक रमण करतेरहे ॥ १ ॥ इसके अनंतर जब पुनः २ आगमनशील अनेक वर्ष बीतगये और फूटे घटसे जलकेसमान यौवन अवस्थाभी धीरे २ नष्ट होनेलगी ॥ २ ॥ तब उनको यह विचार उत्पन्नहुआ कि तरंगके समूहकेसमान नाशमान व्यवहारवाले इस जीवमें पकेफलके पातकेतुल्य मृत्यु दुर्निवारहै ॥ ३ ॥ क्योंकि, कमलकेऊपर हिमके वज्रकेसमान वृद्धावस्था आनेहीपर है, और हस्ततलसे जलकेसदृश आयु निरंतर नष्टहोतीजाती है ॥४॥

प्रावृषीवलतातुंबीतृष्णैकादीर्घतांगता ॥ शैलनद्यारयइवसंप्रयात्येवयौवनम् ॥ ५ ॥ इंद्रजालमिवासत्यं जीवनंजीर्णसंस्थिति ॥ सुखानिप्रपलायंतेशराइवधनुश्च्युताः ॥ ६ ॥ पतंतिचेतोदुःखानितृष्णागृध्रइवामिषम् ॥ बुद्‌बुदःप्रावृषीवाप्सुशरीरंक्षणभंगुरम् ॥ ७ ॥ रंभागर्भइवासारोव्यवहारोविचारगः ॥ सत्वरंयुवतायातिकांतेवाप्रियकामिनः ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा वर्षाकालके तुंबीकी लताकेसमान एक तृष्णा बढती जाती है और पहाडी नदीके वेगकेतुल्य यौवन चलाजाता है ॥ ५ ॥ तथा इंद्रजालकेतुल्य यह जीर्णजीवन असत्य है और धनुष्से गिरेहुये बाणकेसदृश सुख भगे चलेजाते हैं ॥ ६ ॥ तथा आधिदैहिक और आधिदैविक आदिदुःख तथा तृष्णा चित्तमें ऐसे वेगसे गिरके पीडित करती है जैसे गृध्रमांसकी ओर, और वर्षाके बुद्‌बुदकेतुल्य यह शरीर क्षणभंगुरहै ॥ ७ ॥ विचार करनेसे केलेके खंभके गर्भके तुल्य संसारका व्यवहार असार है, और यौवन अवस्था ऐसे शीघ्र जातीहै जैसे (सपत्नी) मे प्यार करनेवाले अपातिसे प्रिय स्त्री ॥ ८ ॥

बलादरतिरायातावैरस्यमिवपादपम् ॥ तदिहस्याच्छुभाकारंस्थिरंकिमतिशोभनम् ॥९॥ यदासाद्यपुनश्चेतोदशासुनविदूयते ॥ इतिनिर्णीययुग्मंतत्संसारव्याधिभेषजम् ॥ १० ॥ चिरंविचारयामासशास्त्रमध्यात्मसंमतम् ॥ आत्मज्ञानैकमात्रेणसंसृत्याख्याविषूचिका ॥ ११ ॥ संशाम्यतीतिनिश्चित्यतावास्तांतत्परायणौ ॥ तच्चित्तौतद्गतप्राणौतन्निष्ठौतद्विदाश्रयौ ॥ १२ ॥

अर्थ—इष्टपदार्थोंके न मिलनेसे चित्तमें उदासीनता ऐसे बलात्कार आतीहै जैसे वृक्षमें नीरसता, इसलिये इस संसारमें स्थिर तथा अतिउत्तम वस्तु क्या है ॥ ९ ॥ जिसको पाकर जन्ममरणादि दशाओंमें चित्त दुःखी नहो, इसप्रकार संसाररूपी रोगका औषध ॥ १० ॥ अध्यात्मशास्त्रको निर्णय करके दोनों स्त्रीपुरुषने उसीका चिरकालतक विचार किया, और आत्मज्ञानमात्रसेही संसाररूपी विषूचिका॥११॥ शांत होती है ऐसा निश्चय करके उसीमें परायण, उसीमें दत्तचित्त, उसीमें अर्पित प्राण, उसीमें निष्ठ, और आत्मज्ञानीहीके शरणमें आश्रित वे दोनों होगये ॥ १२ ॥

तदातदर्चनपरौतदीहौतौविरेजतुः ॥ तत्रैवातिघनाभ्यासौबोधयंतौपरस्परम् ॥ १३ ॥ तत्प्रीतौतत्समारंभावन्योन्यंतौबभूवतुः ॥ अथसाविरतंरामरमणीयपदक्रमान् ॥ १४ ॥ श्रुत्वाध्यात्मविदांवक्त्राच्छास्त्रार्थांस्तारणक्षमान् ॥ इत्थंविचारयामासस्वमात्मानमहर्निशम् ॥ १५ ॥ अव्यापृताव्यापृतावाधियाधवलयेद्धया ॥ प्रेक्षेतावत्स्वमात्मानंकिमहंस्यामितिस्वयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और उसीकी पूजामें तत्पर, उसीमें परायण, उसी आत्मज्ञानके दृढअभ्यासी तथा उसीको परस्पर बोधन करनेवाले वे दोनों होगये ॥ १३ ॥ उसी आत्मज्ञानमें प्रसन्न और उसीकेलिये परस्पर श्रवणमननादि आरंभ करनेवाले वे हुये, हे रामजी ! इसके पश्चात् रमणीय पदक्रमसंयुक्त, और संसारसे पार उतारनेमें समर्थ शास्त्रके अर्थोंको अध्यात्मशास्त्रके वेत्ताओंके मुखसे उस चूडालाने निरंतर सुनके अपने आत्माका रात्रिदिन इसप्रकार विचार किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ शरीरोंके व्यापारोंसे रहित वा सहित शुद्धबुद्धिसे अपने आत्माको देखूं कि मैं स्वयं क्याहुं॥१६॥

कस्यायमागतोमोहःकथमभ्युत्थितःक्वा ॥ देहस्तावज्जडोमूढोनाहमित्येवनिश्चयः ॥ १७ ॥ आबालमेतत्संसिद्धंमतौचैवानुभूयते ॥ कर्मेंद्रियगणश्चास्मादभिन्नावयवात्मकः ॥ १८ ॥ अवयवावयविनोर्नभेदोजडएवच ॥ बुद्धींद्रियगणोप्येवंजडएवेतिदृश्यते ॥ १९ ॥ प्रेर्यतेमनसायस्माद्यष्टयेवभुविलोष्टकः ॥ मनश्चैवंजडंमन्येसंकल्पात्मकशक्तियत् ॥ २० ॥

अर्थ—यह मोह किसको प्राप्त है और कैसे आविर्भूत है, देह तो जड और मूढ है अहंपदका विषय आत्मा नहीं होसकता यह निश्चित है ॥ १७ ॥ मैं स्थूल हुं, गौर हुं इत्यादि अनुभव बुद्धिहीमें होताहै न कि शुद्ध आत्मामें, और कर्मेंद्रिय गण (हस्त पादादि) इस देहका अवयव है इससे अभिन्न जडरूपही है ॥ १८ ॥ अवयवअवयवीका भेद नहींहै इसलिये यह कर्मेन्द्रियगण जडही है यह पंडित तथा पामरोंको अनुभूत होताहै ॥ १९ ॥ पृथिवीपर यष्टि (छडी) से ढेलेकेसमान यह जडदेह प्रेरित होताहै इसलिये जडदेहका प्रेरक संकल्पात्मक मनभी जड है ऐसा मैं मानतीहुं ॥ २० ॥

क्षेपणैरिवपाषाणःप्रेर्यतेबुद्धिनिश्चयैः ॥ बुद्धिर्निश्चयरूपैवंजडासत्तैवनिश्चयः ॥ २१ ॥ खातेनेवसरिन्नूनंसाहंकारेणवाह्यते ॥ अहंकारोपिनिःसारोजडएवशवात्मकः ॥ २२ ॥ जीवेनजन्यतेयक्षोबालेनेवभ्रमात्मकः ॥ जीवश्चचेतनाकाशोवातात्माहृदयेस्थितः ॥ २३ ॥ सुकुमारोंतरन्येनकेनापिपरिजीवति ॥ अहोनुज्ञातमेतेनचेत्योल्लेखकलंकिना ॥ २४ ॥

अर्थ—रज्जु (यंत्रसे) पाषाणके तुल्य बुद्धिकी निश्चित वृत्तियोंसे देहादि जडवस्तु प्रेरित होतेहैं इसलिये निश्चयात्मक बुद्धिभी जडस्वभावही है यह निश्चय है ॥ २१ ॥ दो तटके मध्यमें निम्नदेशके द्वारा जैसे नदी वहती है ऐसेही अहंकारसे प्रेरित जडबुद्धिभी अपने कार्योंको करती है इसलिये सार शून्य अहंकारभी मृतकके तुल्य जडस्वभावही है ॥ २२ ॥ बालकसे यक्षके तुल्य प्राणावच्छिन्न चिदाभाससे यह जीवभी अध्यस्तहै इसलिये प्राणोपाधिक चेतनाकाशरूप हृदयमें स्थित यह जीवभी अध्यस्तही है ॥ २३ ॥ अतिसुकुमाररूप स्वांतर्यामी बिंब चैतन्यसे परिपूर्ण होकरही यह जीव जीताहै अहो! विषयप्रकाशरूप कलंकसे दूषितकेसमान साक्षीचेतनने इसको जानलिया ॥ २४ ॥

जीवोजीवतिजीर्णेनचिद्रूपेणात्मरूपिणा ॥ चेत्यभ्रमवताजीवश्चिद्रूपेणैवजीवति ॥ २५ ॥ आमोदःपव नेनेवखातेनेवसरिद्वयः ॥ असत्यजडचेत्यांशचयनाच्चिद्वपूर्जडम् ॥ २६ ॥ महाजलगतोह्यग्निरिवरूपंस्व मुज्झति ॥ सद्वासद्वायदाभातिचित्समाधौसतिस्वतः ॥ २७ ॥ स्वरूपमलमुत्सृज्यतदेवभवतिक्षणात् ॥ एवंचिद्रूपमप्येतच्चेत्योन्मुखतयास्वयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अनादि, अनंत, चिन्मात्र, अपने आत्मरूपहीसे यह जीव जीताहै, विषयके भ्रमसहित चिद्रूपसे यह जीव अपनी सत्ता ऐसे धारण करताहै ॥ २५ ॥ जैसे पवनसे सुगंध तथा निम्नदेशसे नदीका वेग, और असत्य जड तथा विषयरूप देहादिमें अभेद अध्याससे चित्स्वरूपभी जडकेसमान होरहाहै ॥ २६ ॥ जैसे समुद्रमें प्राप्त अग्नि अपने स्वरुपको त्यागदेताहै, और जैसे किसी विषयके ध्यानमें जो सद्रूपहो वा असद्रूपहो अपने स्वरूपको सर्वथा त्यागकर क्षणमेंही ध्येयाकार होजाताहै इसीप्रकार चिद्रूपभी विषयकी ओर अभिमुख होनेसे ॥ २७ ॥ २८ ॥

जडंशून्यमसत्कल्पंचैतन्येनप्रबोध्यते ॥ इतिसंचिंत्यचूडालाकेनैषाचित्प्रचेतनी ॥ २९ ॥ इतिसंचिंत यामासचिरायेत्थंव्यबुद्ध्यत ॥ अहोनुचिरकालेनज्ञातंज्ञेयमनामयम् ॥ ३० ॥ यद्वैविज्ञेयतांकृत्वानक श्चिद्धीयतेपुनः ॥ एतेहिचिद्विलासांतामनोबुद्धींद्रियादयः ॥ ३१ ॥ असंतःसर्वएवाहोद्वितीयेंदुपद स्थिताः ॥ महाचिदेकैवास्तीहमहासत्तेतियोच्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—अविद्याके अध्याससे स्वयं जडकेसमान होके मूल अविद्यारूप आवरणके भंगसे प्रबोधित होताहै ऐसा विचार करके चूडालाने यह विचारा कि यह चित् किसकेद्वारा चेतन है अर्थात् स्वयं है वा किसीके द्वारा ॥ २९ ॥ हे रामजी! ऐसा विचार चिरकालतक किया तब इसप्रकार आत्मतत्वको जानगई कि अहो! चिरकालसे निर्विघ्नतापूर्वक ज्ञेयवस्तुको मैनें जानलिया ॥ ३० ॥ जिस आत्माको ज्ञेय करने (जानने) से कोईभी पुरुषार्थ मनुष्यका नष्ट नहीं होती और मन बुद्धि तथा इंद्रियादि ये सब चिद्विलासमात्रही हैं ॥ ३१ ॥ ये सब मन बुद्धि इन्द्रिय आदि असत् होकेभी दृष्टिदोषसे द्वितीयचन्द्रमाकेसमान भासते हैं, यथार्थमें तो एक महाचित्ही है जिसको कि महासत्ता कहतेहैं ॥ ३२ ॥

निष्कलंकासमाशुद्धानिरहंकाररूपिणी ॥ शुद्धसंवेदनाकाराशिवंसन्मात्रमच्युतम् ॥ ३३ ॥ सकृद्वि भाताविमलानित्योदयवतीसदा ॥ साब्रह्मपरमात्मादिनामभिःपरिगीयते ॥ ३४ ॥ चेत्यचेतनचित्ता दिनास्याभिन्नंनमानतः ॥ तयैषाचेत्यतेचिच्छ्रीःसैषाद्याचिदितिस्मृता ॥ ३५ ॥ अचेत्यंयदिदंचित्त्वंत त्स्यारूपमक्षतम् ॥ मनोबुद्धींद्रियाद्यर्थरूपैःसैवविजृंभते ॥ ३६ ॥

अर्थ—वह महाचित् निष्कलंक सर्वत्र समानरूप, शुद्ध अहंकारसे वर्जित, शुद्ध ज्ञानमात्रस्वरूपवाली, शिव, सन्मात्र तथा अच्युतरूपहै ॥ ३३ ॥ मूल अविद्यारूप आवरणके भंग होनेसे एकबार ज्ञात होनेसे पुनः आवृत नहीं होती इसीसे अध्यात्मशास्त्रमें सदा नित्यउदयवाली ब्रह्म परमात्मा इत्यादि नामोंसे कहीगई है ॥ ३४ ॥ और चेत्य चेतन और चित्त यह त्रिपुटी इस महाचित्से भिन्न नही है क्योंकि यह त्रिपुटी इसी साक्षी चित्से भासित होतीहै और प्रमाणसे स्वतःसिद्ध नहींहैं, और यह महाचित् त्रिपुटीके प्रथमभी स्वयंसिद्ध है इसलिये यह चित् आद्या कही गई है ॥ ३५ ॥ विषयरहित जो चित् यही इसका शुद्ध अक्षतरूपहै, और यही चित् मन बुद्धि इन्द्रिय तथा विषयरूपसे परिवर्तित होती है ॥ ३६ ॥

तरंगकणकल्लोलकलनेयंचिदात्मनि ॥ जगद्रूपपदार्थानांसत्तास्फुरतिमातरि ॥ ३७ ॥ यदिदंतत्परंरूपंत क्ष्याःखलुमहाचितेः ॥ शुद्धचिन्मणिवत्साहिसेयंसमसमोदिता ॥ ३८ ॥ अनन्ययैवयाशक्त्याजगज्जृंभि कयास्थिता ॥ सतामायातिरेकेनान्यासंभवतीहहि ॥ ३९ ॥ विचित्रतेवभांडानांननुहेमतयायथा ॥ सातथोदेतितद्रूपमात्मानंचेततिस्वयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—मन बुद्धि तथा इन्द्रियादि विवर्तरूपसे चिदात्माके प्रमातारूप होनेहीपर समुद्रके तरंगकल्लोलादिके समान जगत्रूप भूत भौतिकपदार्थोंकी सत्ता स्फुरित होती है ॥ ३७ ॥ और यह जो जगत्का प्रसिद्धरूप है वहभी उसी चित्का रूपांतर है क्योंकि यह शुद्धचित् स्फटिकमणिके समान असंगरूपसे जगत्के प्रतिबिंबको धारण करती है और यह जगत् सत्ताती व्यवहारिक तथा प्रतिभासिक विषयोंमें अपने २ अधिष्ठानके अनुसार उदित है ॥ ३८ ॥ जगत्रूपसे विवर्तनशील निजअधिष्ठानशक्तिहीके द्वारा इस जगत्की सत्ता स्थित है इसलिये मायासे पृथक् इस जगत्की सत्ताका सम्भव नहीं है ॥ ३९ ॥ जैसे सुवर्णके पात्रोंके नष्ट होनेपर उनकी सत्ता सुवर्णरूपसे रहती है ऐसेही प्रलयमें जगत्के नष्ट होनेपर मायाशबलित ब्रह्मरूपसेही जगत्की सत्ता रहती है, और मायाके बाध होनेसे सच्चिदानन्दमात्र आत्मा आप स्वयं अनुभव करताहै ॥ ४० ॥

स्वचितेनद्रवत्वेनतरंगादित्वमंबुषु ॥ महाचितौजगच्चिताद्दुदेतीवानुदेत्यपि ॥ ४१ ॥ तदात्मेवयथा यातोरूपवान्जलधौद्रवात् ॥ एवंचिन्मात्रमेवाहमनहंभावमाततम् ॥ ४२ ॥ नतस्यजन्ममरणेनतस्य सदसद्गती ॥ ननाशःसंभवत्यस्यचिन्मात्रनभसःक्वचित् ॥ ४३ ॥ अच्छेद्योयमदाह्योयंचिदादित्यो तिनिर्मलः ॥ अहोनुचिरकालेनशांतास्मिपरिनिर्वृता ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्न इन्द्रजालादिमें देवतारूपसे परिणत अपने चित्तसे सिद्ध समुद्रादिके जलमें तरंगादि उदित न होतेहुयेभी उदित होते हैं ऐसेही समष्टिचित्तसे जगत्का रूप उदित न होताहुआभी ब्रह्ममें उदित भान होताहै॥४१॥ जैसे स्वभावादि चिन्मात्र आत्माही समुद्रमें द्रवशील जलरूप होके तरंगादिरूपसे भासताहै ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी चिन्मात्रहीमें जगत्रूपसे व्याप्तहुं, अर्थात् आत्मासे भिन्न किसी दशामें अन्य कहीं कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥ उस चिदाकाश आत्माके न जन्ममरण है, न स्वर्गनरकादि गति हैं और न कहीं उसके नाशका सम्भव है ॥ ४३ ॥ यह निर्मलचिदादित्य न शस्त्रसे छेदन करने योग्य है और न अग्निसे जलाने योग्य है, अहो चिरकालसे मैं स्वस्थ हुईहुं ॥४४॥

निर्वामिभ्रमनिर्मुक्तमासेनिर्भंदराब्धिवत् ॥ असदाभासमत्यच्छमनंतमजमच्युतम् ॥ ४५ ॥ आत्माकाशमनाबाधममलंपरमंचिरम् ॥ अनंतमिदमाकाशंफलौघाश्चफलादिकाः ॥ ४६ ॥ सुरासुरयुतं विश्वमेतन्मयमकृत्रिमम् ॥ पुंस्त्वकर्ममयीसेनासर्वमृन्मात्रकंयथा ॥ ४७ ॥ द्रष्टृदृश्यमयीसत्ताचिन्मात्रैक्यमयीतथा ॥ इदमैक्यमिदंद्वित्वमहंनाहमितीतिच ॥ ४८ ॥

अर्थ—भ्रमसेरहित इससमय मैं चारोओरसे सुखीहुं, मन्दराचलसे शून्य समुद्रके तुल्य मैं शान्त स्थितहुं, यह आत्मतत्व दृश्यके आभाससे शून्य, अत्यन्तस्वच्छ, अनन्त और अच्युतरूप है ॥ ४५ ॥ यह आकाश तीनोंकालमें बाधारहित, निर्मल तथा देशकालके परिच्छेदसे शून्य है, और ब्रह्मासे लेके प्राणी, उनके कर्मफल तथा उनके साधनके व्यापारादि, और निष्फल चेष्टादिभी आत्माकाशरूपही है ॥ ४६ ॥ यह सुरासुरसहित संपूर्ण स्वाभाविक संसार इस आत्ममय है तथा जैसे कुलाल आदि पुरुषरचित मृतिकाकी सेना मृतिकामय है ॥४७॥ ऐसेही द्रष्टा तथा दृश्यमयी इस जगत्की सत्ता तथा यह ऐक्य है, यह द्वित्व है, यह है, यह नहीं है इत्यादि सत्ता चिन्मात्रमयी है॥४८॥

क्वइवभ्रमसंमोहःकथंकस्यकुतःक्वा ॥ स्वमनंतमनायासमुपशांतास्मिसंस्थिता ॥ ४९ ॥ निर्वाणपरिनिर्वाणगतमासेगतज्वरम् ॥ अचेतनंचेतनंवायोयमा भातिचेतति ॥ ५० ॥ भासमानात्मतद्रूपंखंमहा चितिसंस्थितम् ॥ नेदंनाहंनचान्यश्चनभावाभावसंभवः ॥ शांतंसर्वंनिरालंबंकेवलंसंस्थितंपरम् ॥ ५१ ॥ इत्थंविचारणपरापरमप्रबोधाद्बुद्धायथास्थितमिदंपरमात्मातत्त्वम् ॥ संशांतरागभयमोहतमो विलासाशांताबभूवशरदंबरलेखिकेव ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालाप्रबोधो नाम अष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—यह अहंताममतादिमय मोह कैसा किसप्रकार किसको और कहांसे हुआ ? मैं स्वयं अपने परमार्थिक स्वरूपको पाकर अनन्तस्वभाव सिद्ध शांत स्थितहुं ॥ ४९ ॥ मोक्षसुखमें सर्वथा तृप्त, संसारके तापसे रहित, विस्मृतकंठमणिके तुल्य प्राप्त अपने स्वरूपमें स्थितहुं; जो यह चेतन तथा इसका भोक्ता यह दोनों जो भासताहै, यह सब ॥ ५० ॥ महाचित् आकाशरूपही स्थितहै, न यह जगत्है, न हम हैं, न अन्यहै, और न भाव अभावका संभवहै

(१) द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं चेत्यादि वेदमें लिखाहै ॥

किंतु शांत निरालंब केवल परब्रह्महि स्थितहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारमें तत्पर वह चूडाला परमज्ञानके उदयसे यथास्थित आत्मतत्त्वको जानकर राग, द्वेष, भय, मोह, तम आदि अविद्याके बिलासोंके शांत होनेसे ऐसे शांत होगई जैसे शरत्कालमें आकाशकी लेखा ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपाये भाषानुवादे चूडालाप्रबोधोनामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अपूर्व शोभावती अपनी चूडालाकी शोभा देखकर राजाने पूंछा तब अपने शोभाका कारण आत्मज्ञान उसने वर्णन किया इस विषयका वर्णन इस ७९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दिनानुदिनमित्येषास्वात्मारामतयातया ॥ नित्यमंतर्मुखतयाबभूवप्रकृतिस्थिता ॥१॥ नीरागानिरुपासंगानिर्द्वंद्वानिःसमीहिता ॥ नजहातिनचादत्तेप्रकृताचारचारिणी ॥२॥ परितीर्णभवांभोधिःशांतसंदेहजालिका ॥ परमात्ममहालाभपरिपूर्णांतरात्मना ॥ ३ ॥ विश्रांतासुचिरंश्रांताघनलब्धपदांतरे ॥ सर्वोपमातीततयाजगामाव्यपदेश्यताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! प्रतिदिन यह चूडाला अपनी प्रसिद्ध स्वात्मारामतासे तथा अन्तर्मुख वृत्तिसे अपनी स्वाभाविक आत्मप्रकृतिमें स्थितहुई ॥ १ ॥ राग द्वेष तथा संगरहित, निर्द्वंद्व, इच्छारहित और यथाप्राप्त आचारको करनेवाली न कुछ त्यागतीथी न ग्रहण करतीथी ॥ २ ॥ संसाररूप समुद्रके पारंगत, सन्देहरूप जालसे शून्य, और परमात्माके ज्ञानके लाभसे परिपूर्णचित्तसे ॥ ३ ॥ ज्ञानसे प्राप्त परमपदमें चिरकालतक उस चूडालाने विश्राम किया, और सब उपमासे परे होनेसे वह अनिर्बचनीय होगई ॥ ४ ॥

इतिसाभामिनीतस्यचूडालावरवर्णिनी॥ स्वल्पेनैवहिकालेनययौविदितवेद्यताम् ॥ ५ ॥ यथायमागतः कश्चिज्जागतःस्पंदविभ्रमः ॥ तथाविलीयतेसर्वंतत्त्वज्ञानवतिस्वयम् ॥ ६ ॥ अदृष्टसकलेशांतेपदेविश्रांतिमेत्यसा ॥ रराजशरदच्छाभ्रमालेवगतसंभ्रमा ॥ ७ ॥ अनाकुलासमालोकमसंबंधात्मनात्मनि ॥ जरद्गवीवशैलाग्रंसतृणंप्राप्यसंस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—इसप्रकार श्रेष्ठवर्णवाली उस राजाकी पत्नी चूडाला अतिअल्पकालमेंही आत्मज्ञानसे संयुक्त होगई॥५॥ जैसे अज्ञानीमें अकस्मात यह संसारका भ्रम आयाहै ऐसेही ज्ञानीमें शीघ्रही यह सम्पूर्ण नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ सर्वदा द्वैतरहित शान्त आत्मपदमें विश्रामको प्राप्त होकर भ्रमरहित चूडाला शरत्कालकी स्वच्छ मेघमालाके समान शोभितहुई ॥ ७ ॥ जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें एक प्रकाशरूप साक्षीरूप आत्मतत्वको जाग्रदादि अवस्थासे असंबद्ध आत्मस्वभाव द्वारा प्राप्त करके उसी आत्मतत्वमें व्याकुलतारहित ऐसे स्थितहुई जैसे हरिततृण तथा उदकसहित ऊंचे पर्वतको पाकर वृद्ध गौ ॥ ८

स्वविवेकघनाभ्यासवशादात्मोदयेनसा ॥ शुशुभेशोभनापुष्पलतेवाभिनवोद्गता ॥ ९ ॥ अथतामनवद्यांगींकदाचित्सशिखिध्वजः ॥ अपूर्वसोभामालोक्यस्मयमानउवाचह ॥ १० ॥ भूयोयौवनयुक्तेवमंडितेवपुनःपुनः ॥ अधिकंराजसेतन्विजगद्राजवतीयथा ॥ ११ ॥ प्रतीतामृतसारेवलब्धालभ्यपदेवच ॥ आनंदापूरपूर्णेवराजसेनितरांप्रिये ॥ १२ ॥

अर्थ—अपने विवेकके दृढ अभ्यासद्वारा पूर्णानंद स्वरूपके आविर्भावसे चूडाला ऐसे शोभितहुई जैसे नूतन पुष्पकी लता ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् किसी समयमें अनिंदित शरीरधारिणी तथा अपूर्व शोभायुक्त अपनी प्रियाको देखकर मुसकियाते हुये राजा शिखिध्वज बोला ॥ १० ॥ कि—हे कृशांगि ! पुनः यौवनसे संपन्नके समान पुनः २ भूषितके तुल्य तुम ऐसे अधिक शोभित होरहीहो जैसे पूर्ण चंद्रमासे संयुक्त पृथिवी ॥ ११ ॥ हे प्रिये ! अमृत पान कियेके सदृश, अलभ्यपदको प्राप्तकेतुल्य और आनंदप्रवाहसे पूर्णके समान तुम अत्यंत शोभित होरहीहो ॥ १२ ॥

उपशांतंचकांतंचदधानासुंदरंवपुः ॥ अभिभूयेंद्रमायासिश्रियंकामपिकामिनि ॥१३॥ आभेगकृपणंशांतमूर्जितंसमतांगतम् ॥ गंभीरंचप्रशांतंचचेतःपश्यामितेप्रिये ॥ १४ ॥ तृणीकृत्यत्रिभुवनंपीताखिलजगद्रसम् ॥ अनंतोड्डामरंसौम्यंमनःपश्यामितेप्रिये ॥ १५ ॥ नकेनचिन्महाभागेविभवानंदवस्तुना ॥ चेतस्तवतुलामेतिमरुक्षीराब्धिसुंदरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे कांते ! शांत, प्रिय और सुंदर शरीरको धारण करतीहुई तुम चंद्रमाकी शोभाकोभी जीतकर अपूर्व- शोभाको प्राप्त हो ॥ १३ ॥ हे प्रिये ! भोगकी कृपणतासे रहित, शांत, विवेकसे बली, समताको प्राप्त, गंभीर तथा प्रशांत तुमारा चित्त मैं देखताहुं ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! त्रिभुवनको तृण करके जगत्के रसायनको पीनेवाला, अनंत उच्चतायुक्त, तथा सौम्य तुमारा मन मैं देखताहुं ॥ १५ ॥ हे महाभागे ! निर्जलतासे मरुस्थल, और पूर्णतासे क्षीर- सागरके तुल्य तुमारा चित्त किसी विभव वा आनंददायक वस्तुसे तुलनाको नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

तैरेवबालकदलीमृणालांकुरकोमलैः ॥ अंगैःस्थितिमनुप्राप्तैर्वृद्धियातेवलक्ष्यसे ॥ १७ ॥ तथातेनैवतेनै वसन्निवेशेनसंस्थिता ॥ अन्यतामुपयातासिलतेवऋतुपर्यये ॥ १८ ॥ किंत्वयापीतममृतंप्राप्तंसाम्राज्य मेववा ॥ अमृत्युमेवसंप्राप्तप्रयोगायोगयुक्तितः ॥१९॥ राज्याच्चिंतामणेर्वापित्रैलोक्याद्वात्वयाधिकम् ॥ अप्राप्तंकिमनुप्राप्तंनीलोत्पलविलोचने ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रिये ! नूतन केलेके तथा कमलके अंकुरके समान उन्ही पूर्वको अंगोंसे तेजकी अधिकतासे वृद्धिको प्राप्तके समान भान होती हो ॥ १७ ॥ और हे प्रिये ! उसी पूर्वकालके अंगोंकी रचनासे संयुक्तभी तुम अन्यके समान ऐसे लक्षित होती हो जैसे शिशिरऋतुके वीतनेपर लता ॥ १८ ॥ हे प्रिये ! क्या तुमने अमृत पान किया, अथवा साम्राज्य पाया, अथवा रसायन, मंत्रादिके प्रयोगसे वा हठराजयोगादि युक्तियोंसे मृत्युरहित पदको तो नहीं प्राप्त किया ॥ १९ ॥ हे नील कमलके तुल्य नेत्रधारिणी ! प्रिये राज्यसे, चिंतामणिसे, और त्रैलोक्यसेभी अधिक कौनसी अप्राप्त वस्तु तुमने पाया ॥ २० ॥

चूडालोवाच ॥ नाकिंचित्किंचिदाकारमिदंत्यक्त्वाहमागता ॥ नकिंचित्किंचिदाकारंतेनास्मिश्रीमती स्थिता ॥ २१ ॥ इदंसर्वपरित्यज्यसर्वमन्यन्मयाश्रितम् ॥ यत्तत्सत्यमसत्यंचतेनास्मिश्रीमतीस्थिता ॥२२॥ यत्किंचिद्यन्नकिंचिच्चतज्जानामियथास्थितम् ॥ यथोदयंयथानाशंतेनास्मिश्रीमतीस्थिता ॥२३॥ भोगैरभुक्तैस्तुष्यामिभुक्तैरिवसुदूरगैः ॥ नहृष्यामिनकुप्यामितेनास्मिश्रीमतीस्थिता ॥ २४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली कि-हे प्रिय ! इस मूढजन प्रसिद्ध शरीरात्मभावको त्यागकर संपूर्ण आकारसेरहित ब्रह्मात्मभावको ज्ञानसे मैं प्राप्तहुं इसलिये शोभायुक्त स्थितहुं ॥ २१ ॥ इस सब परिच्छिन्न पदार्थको त्यागकर जो त्रिकालाबाधित तथा मूर्तामूर्त प्रपंचसेरहित अपरिच्छिन्न ब्रह्महै उसको प्राप्तहुं इसलिये शोभायुक्त स्थितहुं ॥ २२ ॥ जो आत्म द्रष्टाओंकी दृष्टि किंचित् सर्वात्मक आकारसे युक्तहै और यथार्थमें निराकारहै उसको यथा स्थितरूपसे मैं जानतीहुं इसलिये शोभायुक्त स्थितहुं ॥२३॥ दूर देशमें स्थित अभुक्त भोगोंसे मैं ऐसे संतुष्ट हुं जैसे भुक्त भोगोंसे और उनकी प्राप्ति अप्राप्तिसे मैं प्रसन्न होऊं और न रूष्टहोउं इसलिये शोभायुक्त स्थित हुं ॥ २४ ॥

एकैवाकाशसंकाशेकेवलेहृदयेरमे ॥ नरमेराजलीलासुतेनास्मिश्रीमतीस्थिता ॥ २५ ॥ आत्मन्येवहि तिष्ठामिह्यासनोद्यानसद्मसु ॥ नभोगेषुनलज्जासुतेनाहंश्रीमतीस्थिता ॥ २६ ॥ जगतांप्रभुरेवास्मिनाकिं चिन्मात्ररूपिणी ॥ इत्यात्मन्येवतुष्यामितेनाहंश्रीमतीस्थिता ॥ २७ ॥ इदंचाहमिदंनाहंसत्याचाहंन चाप्यहम् ॥ सर्वमस्मिनकिंचिच्चतेनाहंश्रीमतीस्थिता ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशके समान विशद केवल हार्द ब्रह्ममें मैं एकाकिनी रमण करती हुं, और राज लीलाओंमें नहीं रमण करती इसलिये शोभायुक्त स्थित हुं ॥ २५ ॥ पद्मस्वस्तिकादि आसनरूप वाटिका गृहोंमें अपने आत्माहीमें मैं स्थित हुं न कि भोगोंमें वा उनके अलाभसे जनित लज्जाओंमें इसलिये शोभायुक्त स्थित हुं ॥ २६ ॥ कुछ आकार न धारण करतेभी मैं अनेक ब्रह्मांडोंकी स्वामिनी हुं इसलिये आत्माहीमें संतुष्ट हुं इसलिये शोभायुक्त स्थितहुं ॥२७॥ हे प्रिय ! अधिष्ठानदृष्टिसे यह देहादि तथा देहके योग्यभी मैं हुं और अपवाद दृष्टिसे मैं कुछ नहीं हुं, अधिष्ठान दृ- ष्टिसे मैं सत्यहुं और अपनी शरीरात्म दृष्टिसे सत्य नहीं हुं, किंबहुना सब कुछ मैंही हुं और कुछभी नहीं हुं इस दृष्टि शोभासहित स्थितहुं ॥ २८ ॥

नसुखंप्रार्थयेनार्थंनानर्थंनेतरांस्थितिम् ॥ यथाप्राप्तेनहृष्यामितेनाहंश्रीमतीस्थिता ॥ २९ ॥ तनुविद्वेषरा गाभिःप्रज्ञाभिःशास्त्रदृष्टिभिः ॥ रमेसहवयस्याभिस्तेनाहंश्रीमतीस्थिता ॥ ३० ॥ पश्यामियन्नयनर श्मिभिरिंद्रियैर्वाचित्तेनचेहहितदंगनकिंचिदेव ॥ पश्यामितद्विरहितंतुनकिंचिदंतःपश्यामिसम्यगिति नाथचिरोदयास्मि ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्यानेचूडालात्मलाभो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ— न सुख चाहती हुं न अर्थ चाहती हुं और न अनर्थको त्यागना चाहती हुं, न अन्य स्थिति चाहती हुं, किंतु यथा प्राप्त वस्तुसे संतुष्ट हुं इससे शोभायुक्त स्थित हुं ॥ २९ ॥ जिनमें रागद्वेष न्यून होगयेहैं ऐसी अपनी बुद्धि तथा शास्त्र दृष्टिरूप सखियोंके साथ मैं रमण करती हुं इसलिये शोभायुक्त स्थित हुं ॥ ३० ॥ हे स्वामिन्! इस जगत्में नेत्रकी ज्योतियोंसे वा अन्य इन्द्रियोंसे अथवा मनबुद्धिसे जो कुछ मैं देखती वा अनुभव करती हुं वह सब मिथ्यारूप है, और इन्द्रिय मन आदिसे वियुक्त होकर तो निष्प्रपंचवस्तुको आभ्यंतर देखती हुं, और बाहर भीतर इस अबाधित आत्मवस्तुको भलीभांति देखनेसे चिरकालके लिये अभ्युदय तथा शोभायुक्त मैं स्थित हुं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने चूडालात्मलाभो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अङ्गराजाने उसके वाक्यका असंबंधत्व वर्णन किया आकाशगमनादि सिद्धियोंका बीज इत्यादि विषयका वर्णन इस ८० के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमात्मनिविश्रांतांवदंतींतांवराननाम् ॥ अबुत्ध्वातद्गिरामर्थविहस्योवाचभूपतिः ॥ १ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ असंबद्धप्रलापासिबालासिवरवर्णिनि ॥ रमसेराजलीलाभीरमस्वावनिपात्मजे ॥ २ ॥ किंचित्त्यक्त्वानकिंचिद्योगतोप्रत्यक्षसंस्थितम् ॥ त्यक्तप्रत्यक्षसद्रूपःसकथंकिलशोभते ॥ ३ ॥ भोगैरभुक्तैस्तुष्टोहमितिभोगान्जहातियः ॥ रुषेवासनशय्यादीन्सकथंकिलशोभते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार कहते हुये आत्मामें विश्रांत श्रेष्ठमुखवाली उस चूडालाके अभिप्रायको न जानकर हंसकर राजा बोला कि ॥ १ ॥ हे श्रेष्ठमुखि! तुम अभीवाला हो इसलिये असंबद्ध प्रलाप करती हो हे राजपुत्रि तुम राजलीलाओंमें रमण करती हो उसीमें रमण करो ॥ २ ॥ देखो जो आकारको त्यागकर अप्रत्यक्ष स्थितिमें प्राप्त है वह प्रत्यक्ष सत्रूपको त्यागनेवाला कैसे शोभित होसकताहै ॥ ३ ॥ अभुक्त भोगोंसे मैं सन्तुष्ट हुं यह कहनेवाला क्रोधितके समान शय्या आसनादिको त्यागताहै वह कैसे शोभित होताहै ॥ ४ ॥

भोगाभोगेपरित्यज्यखेशून्येरमतेतुयः ॥ एकएवाखिलंत्यक्त्वासकथंकिलशोभते ॥ ५ ॥ वसनाशनशय्यादीन्सर्वान्संत्यज्यधीरधीः ॥ यस्तिष्ठत्यात्मनैवैकःसकथंकिलशोभते ॥ ६ ॥ नाहंदेहोन्यथाचाहंनकिंचित्सर्वमेवच ॥ एवंप्रलापोयस्यास्तिसकथंकिलशोभते ॥ ७ ॥ यत्पश्यामिनपश्यामितत्पश्याम्यन्यदेवयत् ॥ प्रलापइत्यसन्यस्यसकथंकिलशोभते ॥ ८ ॥

अर्थ—अपना निजका भोग तथा मित्र भृत्यादिरूप आभोग और उनके साधनभूत धनादिको त्यागकर एकाकी पिशाचके तुल्य आकाशमें रमण करताहै यह तुमारा कथन कैसे संगत होसकताहै ॥ ५ ॥ अतिक्रोधसे अपनी धीरताके बलसे जो धीरबुद्धिपुरुष वस्त्र भोजन और शय्या आदिको त्यागकर दुःख सहते हुये न स्थित रहै वह कैसे शोभित होसकताहै? ॥ ६ ॥ मैं देह नहीं हुं किंतु अन्यहुं कुछ नहीं और सबकुछ हुं इसप्रकारका जिसका कथन है वह भला कैसे शोभित होसकताहै ॥ ७ ॥ जो नेत्रादि इन्द्रियोंसे देखतीहुं वह मिथ्या है और जो देखती हुं वह औरही कुछ है ऐसा असत् जिसका प्रलाप है वह कैसे शोभित होसकताहै ॥ ८ ॥

तस्माद्बालासिमुग्धासिचपलासिविलासिनि ॥ नानालापविलासेनक्रीडामिक्रीडसुंदरि ॥ ९ ॥ प्रविहस्याट्टहासेनशिखिध्वजइतिप्रियाम् ॥ मध्याह्नेस्नातुमुत्थायनिर्जगामांगनागृहात् ॥ १० ॥ कष्टंनात्मनिविश्रांतोमद्वचांसिनबुद्धवान् ॥ राजेतिखिन्नाचूडालास्वव्यापारपराभवत् ॥ ११ ॥ तदातथांगतत्राथताद्दगाशययोस्तयोः ॥ ताभिःपार्थिवलीलाभिःकालोबहुतिथोययौ ॥ १२ ॥

अर्थ—हे विलासिनिसुंदरी इसकारणसे तुम बाला तथा मुग्धा (अप्रौढबुद्धि) हो, आओ नानाप्रकारके आलाप विलापोंसे मैं क्रीडा करताहुं तुमभी मेरे साथ क्रीडा करो ॥ ९ ॥ हे रामजी! इसप्रकार शिखिध्वज जोरसे अपनी प्रियाको हंसकर मध्यान्हसमयमें स्नान करनेलिये अपनी प्रियाके गृहसे चला ॥ १० ॥ और उसके पश्चात् चूडालाने मनमें कहा अहो! खेदकी बात है कि राजा आत्मामें विश्रांत नहीं हुआ और मेरे बचनको नहीं समुझा, इसकारण खिन्न होकर अपने आत्मचिंतन व्यापारमें पुनः तत्पर हुई ॥ ११ ॥ हे प्रियरामजी! इसप्रकार आशययुक्त उन दोनोंका राजाओंके योग्य उन लीलाओंसे बहुतकाल बीतगया ॥ १२ ॥

एकदानित्यतृप्तायानिरिच्छायाअपिस्वयम् ॥ चूडालायाबभूवेच्छालीलयाखगमागमे ॥ १३ ॥ खगमाग मसिद्ध्यर्थमथसानृपकन्यका ॥ सर्वभोगाननादृत्यसमागम्यचनिर्जनम् ॥ १४ ॥ एकैवैकांतनिरता स्वासनावस्थितांगिका ॥ ऊर्ध्वगप्राणपवनचिराभ्यासंचकारह ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ यदिदंदृश्य तेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ स्पंदच्युतंक्रियानाम्नःकथमित्यनुभूयते ॥ १६ ॥

अर्थ—एकसमय जब राजा शत्रुओंको जीतनेकेलिये दो तीन वर्षको विदेशमें चलागया तब नित्य तृप्त और इच्छारहितभी चूडालाको स्वयं प्रारब्धकर्मके बलसे लीलार्थ देवताओंके तुल्य आकाशगमनकी इच्छा हुई ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर उस राजपुत्रीने आकाशगमन सिद्धिकेलिये सब भोगोंको त्यागकर निर्जनस्थानमें जाकर ॥ १४ ॥ एकाकिनी एकांतवासमें निरत आसनपर अंगोंको दृढ करके ऊर्ध्वगामी प्राण पवनका भ्रूमध्यादिमें दृष्टिआदिके द्वारा चिरकालतक अभ्यास किया ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् यह जो स्थावर जंगमात्मक जगत् है वह सब क्रियासे सिद्ध देखपडताहै तो क्रिया नाम स्पंदकी सिद्धि किससे होती है यदि सक्रियसे कहो तो आत्माश्रय अनवस्थादि दोष आवैंगे, और द्वितीयपक्षमें व्याघात दोष है ॥ १६ ॥

कस्यस्पंदविलासस्यघनाभ्यासस्यमेवद ॥ ब्रह्मन्खगमनाद्येतत्फलंयत्नैकशालिनः ॥ १७ ॥ आत्मज्ञो वाप्यनात्मज्ञःसिद्ध्यर्थंलीलयाथवा ॥ कथंसंसाधयत्येतद्यथातद्वदमेप्रभो ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ त्रिविधंसंभवत्यंगसाध्यंवस्त्विहसर्वतः ॥ उपादेयंचहेयंचतथोपेक्ष्यचराघव ॥ १९ ॥ आत्मभूतंप्रयत्ने नउपादेयंचसाध्यते ॥ हेयंसंत्यज्यतेज्ञात्वाउपेक्ष्यंमध्यमेतयोः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन् किस क्रियाके बिलासवाले तथा अति प्रयत्नशील आकाश गमनादि फलहैं यह मुझसे कहिये ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मूर्ख वा ज्ञानी सिद्धिके लिये वा लीलार्थ कैसे आकाश गमनादि फल सिद्ध करताहै यहभी कृपा करके कहिये ॥ १८ ॥ हे राघव ! इससंसारमें सबप्रकारसे साध्यवस्तु तीनप्रकारकी होती है एक उपादेय, दूसरा हेय, और तीसरा उपेक्ष्य ॥ १९ ॥ आत्माके अनुकूल जो वस्तु प्रयत्नसे सिद्धकी जाती है उसको उपादेय कहतेहैं, आत्माके प्रतिकूल प्रयत्नसे जो त्यागा जाताहै उसको हेय कहतेहैं और उपेक्ष्य इन दोनोंके मध्यको कहतेहैं२०

यद्यदाह्लादनकरमादेयंतच्चसन्मते ॥ तद्विरुद्धमनादेयमुपेक्ष्यंमध्यमंविदुः ॥ २१ सन्मतेर्विदुषोज्ञस्यस र्वमात्ममयंयदा ॥ त्रयएतेतदापक्षाःसंभवंतिनकेचन ॥ २२ ॥ केवलंसर्वमेवेदंकदाचिल्लीलयातया ॥ उपेक्षापक्षनिक्षिप्तमालोकयतिवानवा ॥ २३ ॥ ज्ञस्योपेक्षात्मकंनाममूढस्यादेयतांगतम् ॥ हेयंस्फारवि रागस्यशृणुसिद्धिक्रमःकथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जो २ सुखकारक पदार्थ हैं वे उदादेयहैं और जो इसके विरूद्धहैं वे त्याज्यहैं और जो दोनोंसे रहितहैं वे उपेक्ष्यहैं ॥ २१ ॥ और सद्बुद्धि ज्ञानीपुरुषको जब सब आत्ममयहै तब ये तीनोंपक्ष नहीं सम्भवहैं ॥ २२ ॥ज्ञानी कदाचित् लीलासे इन तीनोंपक्षोंको उपेक्षापक्षमें देखताभी है और नहीं भी ॥२३॥ जो ज्ञानीको ऊपेक्ष्यहै वही मूढको उपादेयहै और विशाल वैराग्यवालोंको वही हेयहै अब इनकी सिद्धिका क्रम तुम सुनो ॥ २४ ॥

देशकालक्रियाद्रव्यसाधनाःसर्वसिद्धयः ॥ जीवमाह्लादयंतीहवसंतइवभूतलम् ॥ २५ ॥ मध्येचतुर्णामे षांक्रियाप्राधान्यकल्पना ॥ सिद्ध्यादिसाधनेसाधोतन्मयास्तेयतःक्रमाः ॥ २६ ॥ गुटिकांजनखड्गादि क्रियाक्रमनिरूपणम् ॥ तत्रास्तांचदोषोत्रविस्तारःप्रकृतार्थहा ॥ २७ ॥ रत्नौषधितपोमंत्रक्रियाक्रमनि रूपणम् ॥ आस्तामेवकिलैषोपिविस्तारःप्रकृतार्थहा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यथोचित् देशकाल क्रिया तथा द्रव्यरूप साधनसे सब सिद्धियां जीवको ऐसे प्रसन्न करती हैं जैसे वसन्तऋतु भूतलको ॥ २५ ॥ हे साधोरामजी ! देशादि चारोके मध्यमें श्रीशैलादि उत्तम देश तथा कालादिकी उत्तमतामें क्रियाकी उत्तमताकी कलपना होती है और उत्तमफलकी सिद्धिभी उत्तम क्रियाओंसेही होती हैं ॥ २६ ॥ हे रामजी ! आकाशगमनादि सिद्धिके साधन सिद्धगुटिका, सिद्धांजन, सिद्धखड्ग और सिद्धपादुका आदि जो उड्डामर तंत्र, तथा योगिनी कल्पादिमें प्रसिद्धहैं उनकी क्रियाओंका निरूपण करना यदि आपके प्रश्नका आशय है तो उन सिद्धियोंके विषयमें जिज्ञासुओंसे भिन्न अज्ञानियोंकी और तुमसे भिन्न श्रोताओंकी दैव इच्छासे अभिलाषा होनेसे यदि उनमें प्रवृत्ति हो तो महान् दोष होगा और उनका विस्तार प्रकृत अर्थ (ज्ञाननिरूपण) का हानिकारक होगा ॥ २७ ॥ और इसीप्रकार मणिमंत्र औषधि आदिकी सिद्धिके क्रियाक्रमके निरूपणका विस्तारभी प्रकृत अर्थका हानिकारक होगा ॥ २८ ॥

श्रीशैलेसिद्धदेशेचमेर्वादौवानिवासतः ॥ सिद्धिरित्यपिविस्तारःकृतार्थप्रकृतार्थहा ॥ २९ ॥ तस्मा च्छिखिध्वजकथाप्रसंगपतितामिमाम् ॥ प्राणादिपवनाभ्यासक्रियांसिद्धिफलांशृणु ॥ ३० ॥ अतस्था ह्यखिलास्त्यक्त्वासाध्यार्थेतरवासनाः ॥ गुदादिद्वारसंकोचान्स्थानकादिक्रियाक्रमैः ॥ ३१ ॥ भोजना सनशुद्धयाचसाधुशास्त्रार्थभावनात् ॥ स्वाचारात्सुजनासंगात्सर्वत्यागात्सुखासनात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और ऐसेही श्रीपर्वत, सिद्धदेश वा मेरूआदि देशोंकी सिद्धियोंकी क्रियाके निरूपणका विस्तारभी प्रकृत अर्थका हानिकारी होगा ॥ २९ ॥ इसलिये शिखिध्वजकी कथाके प्रसंगमें प्राप्त प्राणादिपवनके निरुद्धके सफल क्रियाकी सिद्धिको तुम सुनो ॥ ३० ॥ हे सुव्रतरामजी ! साध्य अर्थसे अन्य सब वासनाओंको त्यागकर गुदा आदि नवद्वारके संकोज सिद्धादि आसन शिरग्रीवादि आदिकी समता, तथा निश्चलतापूर्वक नासिकाके अग्रभागके दर्शनादि क्रियाक्रमोंसे ॥ ३१ ॥ भोजन आसनकी शुद्धिसे, उत्तम शास्त्रार्थकी भावनासे, उत्तम आचारसे, सज्जनोंके संग और सुखासनसे पूरक कुम्भक तथा रेचकप्राण आज्ञाकारी होजाते हैं ॥ ३२ ॥

प्राणायामघनाभ्यासाद्रामकालेनकेनचित् ॥ कोपलोभादिसंत्यागाद्भोगत्यागाच्चसुव्रत ॥ ३३ ॥ त्यागा दाननिरोधेषुभृशंयांतिविधेयताम् ॥ प्राणाःप्रभुत्वातज्ज्ञस्यपुंसोभृत्याइवाखिलाः ॥ ३४ ॥ राज्यादिमो क्षपर्यंताःसमस्ताएवसंपदः ॥ देहानिलविधेयत्वात्साध्याःसर्वस्यराघव ॥ १५ ॥ परिमंडलिताकाराम र्मस्थानंसमाश्रिता ॥ आन्त्रवेष्टनिकानामनाडीनाडीशताश्रिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—और कुछ कालतक प्रणायामके दृढ अभ्याससे कोप लोभादिके त्यागसे, ज्ञानीपुरुषके सब प्राण पूरक कुंभक और रेचक क्रियामें ऐसे आज्ञाकारी होते हैं जैसे भृत्य ॥३३॥३४॥ हे राघव ! राज्यसे आदि लेके मोक्षपर्य्यंत संपूर्ण संपत्ति देहके वायुके आज्ञाकारी होनेसे सबको सुखसाध्य होजाती हैं ॥३५॥ चारोओरसे मांडलित आकारयुक्त मर्मस्थानमें आश्रित शतशः नाडियोंका आश्रय आंतोंके वेष्टनसे वेष्टित सुषुम्ना नाम नाडी है ॥ ३६ ॥

वीणाग्रावर्त्तसदृशीसलिलावर्त्तसन्निभा ॥ लिप्यार्धोंकारसंस्थानाकुंडलावर्त्तसंस्थिता ॥ ३७ ॥ देवासु रमनुष्येषुमृगनक्रखगादिषु ॥ कीटादिष्वब्जजांतेषुसर्वेषुप्राणिषूदिता ॥ ३८ ॥ शीतार्तसुप्तभोगींद्रभो गवद्बद्धमंडला ॥ सिताकल्पाग्निविगलदिंदुवद्बद्धकुंडली ॥ ३९ ॥ ऊरोर्भ्रूमध्यरंध्राणिस्पृशंतीवृत्तिचंचा ला ॥ अनारतंचसस्पंदापवमानेनतिष्ठति ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा वीणके मूलभागमें रेखामय आवर्तके सदृश, लिखनेमें ओंकारके उत्तरार्द्धके समान, और कुंडल वा आवर्तके समान वह नाडी है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! देव असुर मनुष्य मृग मगर तथा पक्षि यादिमें और कीट पतंग तथा जलजंतुओंमें और अन्य सबप्रकारके प्राणियोंमेंभी वह नाडी उदितहै ॥ ३८ ॥ और शीतसे पीडित तथा सुप्तसर्पके शरीरके समान बद्धमंडल, और शुभ्र तथा प्रलयाग्निसे विगलित चंद्रमाके सदृश कुंडलाकार वह नाडी है ॥ २९ ॥ और गुदासे लेके भ्रूमध्य (भौंह) पर्य्यंत सब छिद्रोंको स्पर्श करनेवाली, मनकी वृत्तियोंसे आभ्यंतरमें चंचल और बाहर प्राणादिसे स्पंदसहित वह सुषुम्नानाडी स्थितहै ॥ ४० ॥

तस्यास्त्वभ्यंतरेतस्मिन्कदलीकोशकोमले ॥ यापराशक्तिःस्फुरतिवीणावेगलसद्गतिः ॥ ४१ ॥ साचो क्ताकुंडलीनाम्नाकुंडलाकारवाहिनी ॥ प्राणिनांपरमाशक्तिःसर्वशक्तिजवप्रदा ॥ ४२ ॥ अनिशंनिःश्वस द्रूपारूषितेवभुजंगमी ॥ संस्थितोर्ध्वीकृतमुखीस्पंदनाहेतुतांगता ॥ ४३ ॥ यदाप्राणानिलोयातिहृदिकुंड लिनीपदम् ॥ तदासंविद्धदेत्यंतर्भूततन्मात्रबीजभूः ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस कुंडलीके आभ्यंतर अर्थात् मूलाधारमें जो कदलीके कोशके समान कोमलहै उसमें वीणाके वेगके तुल्य शोभायुक्त शब्द ब्रह्मरूप पराशक्ति स्फुरित होतीहै ॥ ४१ ॥ कुंडलाकार बहनेसे उस नाडीको कुंडलीभी कहते हैं और वह सब प्राणियोंकी परमा (चैतन्यप्रद) शक्तिहै तथा सब प्राण इंद्रिय मन बुद्धिआदि शक्तियोंकी प्रवृत्तिका निमित्त होनेसे सबको वेगप्रद वही है ॥ ४२ ॥ वही अपने ऊर्ध्व कृत मुखसे प्राणवायुको ऊपर अपानको नीचे फेंकतीहुई स्पंदका हेतुभूत श्वास लेतीहुई सर्पिणीके समान स्थितहै ॥ ४३ ॥ और जिस समय हृदयमें स्थित प्राण कुंडलिनीसे आकृष्ट होकर अपान वृत्तिसे कुण्डलिनी पदको प्राप्त होताहै उससमय अपंचीकृत पंचभूतोंसे जनित अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाली जीव संवित् उदयको प्राप्त होतीहै ॥ ४४ ॥

यथाकुंडलिनीदेहेस्फुरत्यब्जइवालिनी ॥ तथासंविद्धदेत्यंतर्मृदुस्पर्शवशोदया ॥ ४५ ॥ स्पर्शनंमृदुनान्यो न्यालिंगिकात्त्रयंत्रयोः ॥ यथासंविद्धदेत्युच्चैस्तथाकुंडलिनीजवात् ॥ ४६ ॥ तस्यांसमस्ताःसंबद्धाना

ड्योहृदयकोशगाः ॥ उत्पद्यंतेविलीयंतेमहार्णवइवापगाः ॥ ४७ ॥ नित्यंपातोत्सुकतयाप्रवेशोन्मुखया तथा ॥ सासर्वसंविदांबीजंह्येकासामान्युदाहृता ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्राण तथा बुद्धिको ज्ञान और क्रिया शक्तिको देनेवाली और विषय संनिकर्षवाले इन्द्रियोंके वश उदय होती हुई कुंडलिनी कमलमें भ्रमरीके तुल्य देहमें जैसे २ स्फुरित होती है वैसे २ अंतःकरणमें इंद्रिय संवित् अर्थात् इंद्रियोंकी अर्थ विशेषमें स्फूर्ति उदय होतीहै ॥ ४५ ॥ जैसे २ वेगसे कुंडलिनी स्फुरित होतीहै वैसेही वैसे चक्षुष् आदि इन्द्रियोंके साथ विषय स्पर्श, तथा कार्य्यकारणरूप यंत्रका प्रेरक प्रमाताका और घटादि विषयोंकी स्पष्ट संवित् (अनुभव) भी उदित होतीहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! उस कुंडलिनी नाडीमें हृदय कोशकी संपूर्ण नाडी संमिलितहैं, और समुद्रमें नदियोंके समान उसीसे उत्पन्न होतीहैं तथा उसीमें लीनभी होतीहै ॥ ४७ ॥ प्राणरूपसे ऊर्ध्वपातकी ओर अपानरूपसे अधःपातकी ओर उन्मुख होनेसे सब कुंडलिनी सब इंद्रियोंके ज्ञानोंकी धारण अर्थ बीज कहीगई है ॥ ४८ ॥

श्रीरामउवाच ॥ आकल्पादनवच्छिन्नाचित्संवित्सर्वमस्तिहि ॥ तस्मात्कुंडलिनीकोशात्केनार्थेनोदयः स्फुटः ॥ ४९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वत्रसर्वदासर्वचित्संविद्विद्यतेनघ ॥ किंत्वस्याभूततन्मात्रवशा दभ्युदयःक्वचित् ॥ ५० ॥ सर्वत्रविद्यमानापिदेहेषुतरलायते ॥ सर्वगोप्यातपःसौरोभित्यादौविजृं भते ॥५१॥ क्वचिन्नष्टंक्वचित्स्पष्टंक्वचिदुच्छन्नतांगतम् ॥ वस्तुवस्तुनिदृष्टंतत्तत्संद्भावैर्विजृंभितत् ॥५२

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! देशकाल तथा वस्तुसे अपरिच्छिन्न चितही सब कुछ है तब उसी कुंडलिनी कोशसेही सब प्रकारकी संवित् (ज्ञान) का उदय कैसे और क्यों होताहै ॥ ४९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे पापरहित रामजी ! यद्यपि सर्वत्र तथा सदा चित् संवित् मात्रही है परंतु भूत तन्मात्राओंके कारणसे उसका अभ्युदय कहीं २ होताहै ॥ ५० ॥ सर्वत्र देहोंमें विद्यमानभी चेतनता बुद्धिमें अतिचंचलतासे ऐसे भासती है जैसे सूर्यका आतप (प्रकाश) दर्पण भित्ति आदिमें अधिक भासताहै ॥ ५१ ॥ चिद्वस्तु कहीं मृतिका पाषाणादिमें (अप्रकट) है देव मनुष्यादिमें स्पष्ट रीतिसे भासतीहै, और कहीं अर्थात् वृक्षादिमें इष्टानिष्टके विवेकसे रहितहै, और सामान्य सत्तामात्रसे उन २ पदार्थोंके रूपसे सर्वत्र प्रकट है ॥ ५२ ॥

एतद्भूयःक्रमेणाहंशृणुवक्ष्यामितेनघ ॥ देहेस्वेचयथोदेतिभृशंसंविन्मयक्रमः ॥ ५३ ॥ चेतनाचेतनंभूतजातंव्योमतथाखिलम् ॥ सर्वचिन्मात्रसन्मात्रंशून्यमात्रंयथानभः ॥ ५४ ॥ तद्धिचिन्मात्रसन्मात्रम विकारंस्वनामयम् ॥ क्वचित्स्थितंसंविदेवभूततन्मात्रपंचकम् ॥५५॥ तत्पंचधागतंद्वित्वंलक्ष्सेत्वंस्व संविदम् ॥ अंतर्भूतविकारादिदीपाद्दीपशतंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे अनघ रामजी ! मनुष्य तथा पशु स्थावरादि देहोंमें संवित्के उदयका क्रम मैं पुनः तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ ५३ ॥ यह चेतन अचेतनमात्र संपूर्ण संसार जो भासताहै वह सब शून्य आकाशके तुल्य असंग और सूक्ष्म चिन्मात्रही है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! वह सन्मात्र तथा चिन्मात्र विकाररहित चित् स्थितहै उसमेंही मायासे कल्पित एक देशमें आकाशादि सूक्ष्म भूतोंके अध्याससे भूत तन्मात्ररूपसे स्थित है ॥ ५५ ॥ और वही पंचभूत तन्मात्र प्राण, मन, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, और ज्ञानेन्द्रिय इस पंचप्रकारको प्राप्त लिंगशरीरमें प्रतिबिंबरूपसे प्रवेश करके अंतर्भूतजन्मादि विकार तथा जाग्रद्आदि अवस्था भेदवाला जीवभावसे लक्षित होताहै जैसे एकहीरूपसे शतदीप।५६

स्वसत्तामात्रकेणैवसंकल्पलवरूपिणा ॥ पंचकानिव्रजंतीहदेहत्वंतानिकानिचित् ॥ ५७ ॥ कानिचित्तिर्यगादित्वंहेमादित्वंचकानिचित् ॥ कानिचिद्देशतादित्वंद्रव्यादित्वंचकानिचित् ॥ ५८ ॥ एवंहिपंचकस्पंदमात्रंजगदितिस्थितम् ॥ चित्संविदत्रसर्वत्रविद्यतेरघुनंदन ॥ ५९ ॥ केवलंपंचकवशाद्देहादौ चेतनाभिधा ॥ जडस्पंदाभिधाक्वापिस्थावरादौजडाभिधा ॥ ६० ॥

अर्थ—लिंगशरीरके आरंभसे शेष कोई तन्मात्र पंचक देव मनुष्यादिके आकारकी वासनानुसारी संकलपसहित अपनी सत्ता मात्रसे पंच कारणद्वारा जीवके स्थूल देह भावको प्राप्त होतीहैं ॥ ५७ ॥ और कोई तन्मात्र पंचक पशुपक्षीआदि तिर्यग् शरीर भावको प्राप्त होते हैं कोई स्थावरादि शरीर भावको, कोई देशादि भावको और कोई द्रव्यादि भावको प्राप्त होतेहैं ॥ ५८ ॥ हे राम ! इसप्रकार यह सब जगत् पंचतन्मात्रहीकी चेष्टा है, और अधिष्ठान चित्सत्तामात्रसे सर्वत्र है और प्रकटरूपसे नहीं ॥ ५९ ॥ केवल प्राणादि पंचक (प्राण मन, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय) के कारणसे लिंगशरीरकी प्रधानताद्वारा मनुष्यादि देहोंमें मुख्य चेतनता और तिर्यग्आदि देहोंमें लिंग तथा

स्थूल शरीरकी समता होनेसे जडचेतनता, और स्थावरआदि लिंगशरीरसे केवल अन्तर्ज्ञानमात्र होनेसे और बाहर चेतनताकी प्रकटता न होने जडता प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥

यथास्तब्धःस्थितोवीचिरिवस्थलमिवास्थितः ॥ पंचकेषुतथैतच्चिल्लोलरूपाजडान्विता ॥ ६१ ॥ इतः सौम्यइतोलोलःकिमब्धिरितिनोयथा ॥ विकल्पादौतथैवैतत्पंचकंहिजडाजडम् ॥ ६२ ॥ देहादिपंचकं जीवःस्पंदःशैलादिकंजडम् ॥ स्थावराद्यनिलस्पंदिस्वभाववशतोनघ ॥ ६३ ॥ वाचःपर्यनुयोक्तव्याः स्वभावाद्रघुनंदन ॥ शीतोष्णादिहिमाग्न्यादिवाक्चेतिपरिदृश्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे द्रवीभूत घृतका समुद्र सायंकालमें शीतल पवनके स्पर्शसे तटपर घनीभावसे निश्चल स्थित होकर द्रवीभूत स्थानमें तरंगके समान चंचल किंचित् घनीभूत स्थलमें किंचित् चंचल और अत्यंत घनीभूत स्थलमें अचल स्थित रहताहै ऐसेही यह चित्भी मनुष्य तिर्यक् और स्थावरादि देहरूप पंचकमें क्रमसे चंचल किंचित् चंचल और अत्यंत जडरूपसे स्थितहै ॥ ६१ ॥ जैसे कहीं शांत, कहीं चंचल और कहीं किंचित् चंचल होनेपरभी यह समुद्र नहीं है ऐसा विकल्प नहीं होता किंतु सर्वत्र समुद्ररूपताका कथन होताहै ऐसेही मनुष्य पशु स्थावरादिमें चंचलताका न्यूनाधिकभाव होनेपरभी चेतनरूपता सर्वत्र है ॥ ६२ ॥ हे पापरहित रामजी ! देहादिरूपमें परिणत पंचक (पंचतत्त्व) प्राण धारणके अधीन चेष्टा तथा चैतन्यसे जीव चेतनहै पाषाणादिक जडहैं और स्थावरादिक बाहरके पवनसे चेष्टावान् और आभ्यंतरमें स्वभावकेही वशसे चेतनहैं ॥ ६३ ॥ हे रघुनंदन ! यदि यह आक्षेप करो कि स्व (अपना) भावविरुद्ध विकल्परूप कैसे होसकताहै तो वाणीके विषयमें क्यों नहीं आक्षेप करते क्योंकि चिद् जड शब्दरूप वाणी अपनी पुनरूक्ति दोषकी व्यावृत्ति करतीहुई विरुद्ध स्वभाव चित् तथा जडका भान कराती हैं और इसीप्रकार शीत उष्ण हिम अग्निआदिको प्रतिपादन करनेवाली सब वाणीविरुद्ध स्वभाव सर्वत्र देखपडती है ॥ ६४ ॥

गृहीतवासनांशानांपुष्टाभावविकारिणाम् ॥ स्थितयःपंचकानांहियोज्याःपर्यनुयोजने ॥ ६५ ॥ वासनास्तुविपर्यस्ताइतोनेतुमितश्चताः ॥ पुंसाप्राज्ञेनशक्यंतेसुखंपर्यनुयोजितुम् ॥ ६६ ॥ अशुभेवाशुभेवापितेनपर्यनुयोज्यते ॥ प्रबुद्धवासनंचान्यत्पंचकंसुप्तवासनम् ॥ ६७ ॥ यत्रपर्यनुयोगस्यफलंसमनुभूयते ॥ तत्रतंसंप्रयुंजीतनाकाशंमुष्टिभिःक्षिपेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—अथवा वासनाके अंशसहित तथा विरुद्ध विकल्पभावसे विकारी पंचतत्त्वोंकी स्थितिके ऊपर आक्षेप क्यों नहीं करते क्योंकि वाणी तो पंचतत्त्वोंके पराधीन है ॥ ६५ ॥ अथवा पंचतत्त्वोंकी स्थितिकाभी कोई अपराध नहीं है किंतु चित्तको इधर उधर ले जानेमें समर्थ और चारोओरमें विस्तृत वासनाओंकेही ऊपर सुखसे बुद्धिमान् पुरुषको आक्षेप करना चाहिये ॥ ६६ ॥ देवादि शुभभावमें प्रबुद्धवासनासहित और तिर्यक् स्थावरादि अशुभभावमें सुप्तवासनासहित प्राणादि पंचक स्थित रहताहै ॥ ६७ ॥ और वासनाके विषयमें आक्षेप करनेसे उसके क्षयरूप फल अनुभूत होताहै इसलिये उसी विषयमें आक्षेप करना चाहिये न कि स्वभावादिके विषयमें क्योंकि आकाशमें धूलि फेकनेसे कुछ फल नहीं है ॥ ६८ ॥

तृणाग्रनिष्ठामेर्वाद्याःपंचकानांहिराशयः ॥ विवेकनिष्ठाःकीटाद्याएतेस्थावरजंगमाः ॥ ६९ ॥ प्रसुप्तवासनाःकेचिद्यथास्थावरजातयः ॥ प्रबुद्धवासनाःकेचिद्यथानरसुरादयः ॥ ७० ॥ सवासनाविलाःकेचिद्यथैतेतिर्यगादयः ॥ प्रक्षिप्तवासनाःकेचिद्यथैतेमोक्षगामिनः ॥ ७१ ॥ अथस्वास्वेवसंवित्सुमनोबुद्ध्यादिकाःकृताः ॥ हस्तपादादिसंयुक्तैःसंज्ञाःपंचकराशिभिः ॥ ७२ ॥

अर्थ—और वासनाके क्षयसे सुमेरु आदि सुवर्णकी राशिभी तृणके लेशके समान तुच्छ भान होती हैं और विवेकपूर्वक देवादिके ये सब स्थावर जंगम भोगभी कीट पतंगादिके समान तुच्छ भासते हैं ॥६९॥ और इनमें कोई२ जैसे स्थावरादि जाति सुप्तवासनावाले हैं और कोई २ जैसे देव मनुष्यादि प्रबुद्धवासनासहित हैं ॥ ७० ॥ और पशु पक्षी आदि कलुषितवासनासहित हैं और मोक्षगामी वासनाके त्यागी हैं ॥ ७१ ॥ और वासनाहीकी विचित्रतासे देव मनुष्यादि पंचतत्वराशि आकाश तथा भूमिपर गमनके योग्य हस्तपादादि कर्मेन्द्रियादिसे प्रेरित देव मनुष्यादि पंचक राशियोंसे अपनी २ संवित्में मनुष्यादि व्यवहारके योग्य मन बुद्धि अहंकार चित्त, तथा नेत्र, कर्ण, घ्राण, रसना, त्वक् आदि अन्तर्बाह्य करणरूप संज्ञा प्रति प्राणीके विचित्र देखपडतेहैं ॥ ७२ ॥

तिर्यगादिभिरप्यन्यैरन्याःसंज्ञाःप्रकल्पिताः ॥ स्थावरादिभिरप्यन्यैरन्यान्याःसंविदःकृताः ॥ ७३ ॥ इतिसाधोस्फुरंतीमेचित्राःपंचकराशयः ॥ रूपैराद्यंतमध्येषुचलाचलजडाजडैः ॥ ७४ ॥ एषामेकोभि

संकल्पःपरमाणुर्महीपते ॥ बीजमाकाशवृक्षाणांसर्गाणांतेविमानितु ॥ ७५ ॥ इंद्रियाणिचपुष्पाणिवि षयामोदवर्तिहि ॥ इच्छाभ्रमर्योराजंत्योमंजर्यश्चंचलक्रियाः ॥ ७६ ॥

अर्थ—पशुआदिने तिर्यग्जातियोंने अन्यही संज्ञा अर्थात् चार पैर शृंग तथा पुच्छ, स्थावरोंने अन्य (पाद) संज्ञा कल्पित की है ॥ ७३ ॥ हे साधो रामजी ! इसप्रकार आदि अंत तथा मध्यमें विकारी और चंचल जडरूपोंसे और अधिष्ठानकी अपेक्षा सत् चिद्रूपोंसे पंचप्राणादिककी राशियां स्फुरित होरही हैं ॥ ७४ ॥ हे राजन् ! इनमेंसे सर्वत्र व्याप्त संकल्परूप परमाणु सृष्टिरूप आकाश वृक्षोंका बीज है और इनमें ॥ ७५ ॥ विषयरूप सुगंधमें व्यवहार करनेवाली इंद्रियांपुष्प हैं, इच्छारूप भ्रमरी हैं और चंचल इंद्रियोंकी क्रिया मंजरी हैं ॥ ७६ ॥

लोकांतराणिस्वच्छानिगुल्मामूलंसमेरवः ॥ पल्लवानीलजलदालतालोलादिशोदश ॥ ७७ ॥ वर्त्तमाना निभूतानिभविष्यंतिचयानितत् ॥ जयंतितान्यसंख्यानिफलानिरघुनंदन ॥ ७८ ॥ पंचबीजास्तएतेहि रामपंचकपादपाः ॥ स्वयंस्वभावाज्जायंतेस्वयंनश्यंतिकालतः ॥ ७९ ॥ स्वयंनानात्वमायांतिचिरंजाड्या त्स्फुरंतिच ॥ स्वविविक्ताःशमंयांतितरंगाइववारिधौ ॥ ८० ॥ इतोयांतिसमुत्सेवमितोयांतिशमंस्वय म् ॥ एतेजाड्यविवेकाभ्यांतरंगाइवतोयधौ ॥ ८१ ॥ येविवेकवशमालयंगतारामपंचकविलासराशयः ॥ तेनभूयइहयांतिसंस्थितिंप्रभ्रमंतिजगतीतरेमुहुः ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालात्मलाभेपंचकविलासोनामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—निर्मल स्वर्गादि अन्यलोक नानाप्रकारके विटप हैं, मेरुसहित सब पर्वत मूल हैं, नीलमेघ पल्लव हैं, और दशोदिशा चंचल लता हैं ॥७७॥ हे रघुनन्दन ! वर्तमान भूत तथा भविष्यत् चारप्रकारके अनन्त जो शरीर हैं ये सब उस वृक्षके उत्तम फल हैं ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ये पंचबीज तथा पंचक वृक्षबीज विवेकसे शून्यआत्मासे उत्पन्न होतेहैं और कालपाके स्वयं नष्ट होजातेहैं ॥ ७९ ॥ ये सब स्वयं नानाभावको प्राप्त होतेहैं जडतासे स्फुरतेहैं और आत्मासे विवेक दृष्टिसे दृष्ट होनेसे ऐसे शांत होजातेहैं जैसे समुद्रमें तरंग ॥ ८० ॥ हे रामजी ! जैसे समुद्रतरंग एक ओर उत्पन्न होते हैं और दूसरी ओर नष्ट होजाते हैं ऐसेही बहिर्मुख दृष्टिजनके लिये जडतासे उन्नतिको प्राप्त होतेहैं और अन्तर्मुख दृष्टिजनके लिये विवेकसे स्वयं शांत होजातेहैं ॥ ८१ ॥ हे रामजी ! जो पंचक विलासकी राशियां निर्वासन पर्यन्त विवेकके वशमें प्राप्त होगई हैं वे इस संसारमें पुनः स्थितिको नहीं प्राप्त होती और अन्य निरन्तर इस संसारमें भ्रमण किया करती हैं ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे पंचकविलासोनामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

कुण्डलिनीके प्रसंगसे रोगोंकी उत्पत्ति तथा उनके उपशमके क्रम, और आकाशगमनादि सिद्धि और सिद्धोंके दर्शनके उपाय आदि यह सब इस ८१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्पंचकबीजंतुकुंडलिन्यांतदंतरे ॥ प्राणमारुतरूपेणतस्यांस्फुरतिसर्वदा ॥ १ ॥ सांतःकुंडलिनीस्पंदस्पर्शसंवित्कलामला ॥ कलोक्ताकलनेनाशुकथिताचेतनेनचित् ॥ २ ॥ जीवनाज्जी वतांयातामननाच्चमनःस्थिता ॥ संकल्पाच्चैवसंकल्पाबोधाद्बुद्धिरितिस्मृता ॥ ३ ॥ अहंकारात्मतांया तासैषापुर्यष्टकाभिधा ॥ स्थिताकुंडलिनीदेहेजीवशक्तिरनुत्तमा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! स्थूलशरीरके मूलाधारमें कुंडलिनीके भीतर इस प्राणादि पंचकका बीजप्राण वायुरूपसे सदा स्फुरताहै ॥ १ ॥ हे रामजी ! वह कुंडलिनी प्राणरूपसे स्फुरित होके प्राणवायुके तथा निजरूपसे स्पंद, स्पर्श, और संवित् इस तीनरूपसे कल्पित होके शीघ्रसंकल्प करनेसे कला, और चेतने चित् कही गई है ॥ २ ॥ और जीवनसे वही कुंडलिनी जीव, मननसे मन, संकल्प करनेसे संकल्प तथा बोधसे बुद्धि कही गई है ॥ ३ ॥ और अहंभावनासे अहंकार रूपताको प्राप्त हुई है, इस रीतिसे यह कुंडलिनी पुर्य्यष्टकनामसे कथितहै और देहमें यही सर्वोत्तम जीव शक्तिरूपसे स्थितहै ॥ ४ ॥

अपानतामुपागत्यसततंप्रवहत्यधः ॥ समानानाभिमध्यस्थाउदानाख्योपरिस्थिता ॥ ५ ॥ अधस्त्वपानरूपैवमध्येसौम्मैवसर्वदा ॥ पुष्टाप्युदानरूपैवपुंसस्त्वस्थैवतिष्ठति ॥ ६ ॥ सर्वयत्नमधोयातियदियत्नान्नधार्यते ॥ तत्पुमान्मृतिमायातितयानिर्गतयाबलात् ॥ ७ ॥ समस्तैवोर्ध्वमायातियदियुक्त्यानधार्यते॥ तत्पुमान्मृतिमायातितयानिर्गतयाबलात् ॥ ८ ॥

अर्थ—और अपानवायुरूपको प्राप्त होके निरंतर अधोदेशमें वहती है नाभिके मध्यमें स्थित होनेसे समान, और उदान नामसे ऊर्ध्वदेशमें स्थितहै ॥ ५ ॥ अधोदेशमें बहनेसे अपानरूप है और मध्यदेशमें सदा निश्चलरूपही रहतीहै और अपान तथा समानसे पुष्ट होनेपरभी ऊर्ध्वदेशमें बहनेसे उदानरूपही स्थित रहतीहै ॥ ६ ॥ हे रामजी! यदि समान वृत्ति न धारण करै तो सब प्रयत्नसे अपानवृत्तिसे जीव संवित् अधोमार्गसेही बाहर जातीहै और बलसे उसके बाहर निकलनेसे पुरुष मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ और ऐसेही यदि समान वृत्तिसे धारण न की जाय तो जीव संवित् सब प्रयत्नसे ऊपर जातीहै और बलसे उसके बाहर निकलनेसे पुरुष मरणको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

सर्वथात्मनितिष्ठेच्चेत्त्यक्त्वोर्ध्वाधोगमागमौ ॥ तज्जंतोर्हीयतेव्याधिरंतर्मारुतरोधतः ॥ ९ ॥ सामान्यनाडीविधुर्यात्सामान्यव्याधिसंभवः ॥ प्रधाननाडीविधुर्यात्प्रधानव्याधिसंभवः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ किंविनाशाःकिमुत्पादाःशरीरेस्मिन्मुनीश्वर ॥ आधयोव्याधयश्चैवयथावत्कथयाशुमे ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आधयोव्याधयश्चैवद्वयंदुःखस्यकारणम् ॥ तन्निवृत्तिःसुखंविद्यात्तत्क्षयोमोक्षउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और सर्वथा प्राण अपानवृत्तिके निरोधद्वारा ऊपर नीचेके गमनको त्यागकर समान वृत्तिसे यदि जीव संवित् आत्मामें स्थित रहै तो प्राणीकी संपूर्ण व्याधि नष्ट होजाती है और मृत्युभी जीता जाताहै ॥ ९ ॥ सामान्य नाडियोंके व्यापारका अभाव होनेसे अन्न रसकी अपरिपक्वतासे सामान्य रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै और प्रधान नाडियोंके अभावसे प्रधान रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥१०॥ श्रीरामजी बोले–हे मुनीश्वर ! इस शरीरमें आधि तथा व्याधि (शारीरिक तथा मानसी रोग) किससे नष्ट होतेहैं और किससे उत्पन्न होतेहै यह शीघ्र मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! आधि तथा व्याधि ये दोनों दुःखके कारण हैं और औषधादिसे इनकी निवृत्तिसे सुख होताहै और ज्ञानसे इनके समूल नाश होनेसे मोक्ष होताहै ॥ १२ ॥

मिथःकदाचिज्जायेतेकदाचित्समयेवच ॥ पर्यायेणकदाचिच्चआधिव्याधीशरीरके ॥ १३ ॥ देहदुःखंविदुर्व्याधिमाध्याख्यंवासनामयम् ॥ मौर्ख्यमूलेहितेविद्यात्तत्त्वज्ञानेपरिक्षयः ॥ १४ ॥ अतत्त्वज्ञानवशतःस्वेंद्रियाक्रमणंविना ॥ हृतितानवमुत्सृज्यरागद्वेषेष्वनारतम् ॥ १५ ॥ इदंप्राप्तमिदंनेतिजाड्याद्वाघनमोहदाः ॥ आधयःसंप्रवर्ततेवर्षासुमिहिकाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—शरीरमें आधि तथा व्याधि कदाचित् परस्पर एक दूसरेके कारण होनेसे होतीहैं, कदाचित् साथही होतीहैं और कदाचित् सुखके अनंतर क्रमसे होतीहैं ॥ १३ ॥ देहके दुःखको व्याधि कहतेहैं और वासनासे मनके दुःखको आधि कहतेहैं, अज्ञान इन दोनोंका मूल कारण हैं और तत्वज्ञानसे इनका क्षय होताहै ॥ १४ ॥ तत्वज्ञान और इन्द्रिय निग्रहके अभावसे चित्तमें निश्चल वायुके सदृश आरोग्यताके कारण सूक्ष्मताको त्यागकर निरंतर रागद्वेषमें आसक्तिसे ॥ १५ ॥ तथा अमुक पदार्थ प्राप्त किया अमुक नहीं इत्यादि जडतासे महामोह देनेवाली आधि (मानसी व्यथा) ऐसे प्रवृत्त होतीहैं जैसे वर्षाकालमें मिहिका ॥ १६ ॥

भृशंस्फुरंतीष्विच्छासुमौर्ख्येचेतस्यनिर्जिते ॥ दुरन्नाभ्यवहारेणदुर्देशाक्रमणेनच ॥ १७ ॥ दुष्कालव्यवहारेणदुष्क्रियास्फुरणेनच ॥ दुर्जनासंगदोषेणदुर्भावोद्भावनेनच ॥ १८ ॥ क्षीणत्वाद्वाप्रपूर्णत्वान्नाडीनांरंध्रसंततौ ॥ प्राणेविधुरतांयातेकायेतुविकलीकृते ॥ १९ ॥ दौस्थित्यकारणंदोषाद्व्याधिर्देहेप्रवर्तते ॥ नद्याःप्रावृण्निदाघाभ्यामिवाकारविपर्ययः ॥ २० ॥

अर्थ—और अति इच्छाओंके बार २ स्फुरित होनेसे, मुर्खतासे, चित्के न जीतनेसे, दुष्ट अन्नके भोजनसे तथा दुष्ट देशके निवाससे देहमें व्याधि प्रवृत्त होतीहै ॥ १७ ॥ और दुष्टकाल अर्थात् अर्द्धरात्रि तथा प्रदोषादि कालोंमें भोजन तथा मैथुनादि व्यवहारसे, दुष्कर्मसे, दुर्जनके संगसे, और विष सर्प तथा व्याघ्र तस्करादिकी मनमें शंका करनेसे व्याधि होतीहै ॥ १८ ॥ और अन्न रसके न प्रवेश करनेसे नाडियोंके छिद्रके क्षीण होनेसे वा अन्नरसके द्विगुण प्रवेश करनेसे नाडियोंके छिद्रके अधिक पूर्ण होनेसे, कफ पित्तादिके कोपसे प्राणके व्याकुल होनेसे और आघात (चोट) आदिसे अंगके विकल होनेसे अनेक दोषोंके द्वारा अस्वस्थताके कारण तथा देहके आकारका विपर्ययरूप व्याधि ऐसे उत्पन्न होती है जैसे बर्षा और उष्णतासे नदीके आकारका ॥ १९ ॥ २० ॥

प्राक्तनीचैहिकीवापिशुभाव्याप्यशुभामतिः ॥ यैवाधिकासैवतथातस्मिन्योजयतिक्रमे ॥ २१ ॥ आधव्याधयश्चैवंजायंतेभूतपंचके ॥ कथंशृणुविनश्यंतिराघवाणांकुलोद्वह ॥ २२ ॥ द्विविधोव्याधिरस्तीहसामान्यःसारएवच ॥ व्यवहारस्तुसामान्यःसारोजन्ममयःस्मृतः ॥ २३ ॥ प्राप्तेनाभिमतेनैवनश्यंतिव्यावहारिकाः ॥ आधिक्षयेणाधिभवाःक्षीयंतेव्याधियोप्यलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! पूर्वजन्मकी वा इस जन्मकी शुभ वा अशुभमति जो अधिक होती है वही उस व्याधिके क्रममें नियुक्त करती है ॥ २१ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! इसप्रकार भूतपंचकमें आधि तथा व्याधि उत्पन्न होती हैं अब कैसे वे नष्ट होती हैं इस क्रमको तुम सुनो ॥ २२ ॥ हे रामजी ! दो प्रकारकी व्याधि होती हैं एक सामान्य (अल्प) और दूसरी सार अर्थात् दृढतर इनमेंसे क्षुधा तृष्णा स्त्री पुत्र तथा लालसा आदि व्यवहारसे उत्पन्न सामान्य व्याधि कहाती है और जन्मादि विकारका मूलसार (दृढतर) व्याधि कहाती है ॥ २३ ॥ इष्टपदार्थके प्राप्त होनेसे क्षुधा तृष्णा तथा स्त्रीपुत्रादि जनित व्यवहारिक व्याधि, और आधिके क्षयसे आधि (मानसीपीडा) से उत्पन्न व्याधिभी भलीभांति क्षीण होजाती हैं ॥ २४ ॥

आत्मज्ञानंविनासारोनाधिर्नश्यतिराघव ॥ भूयोरज्ज्ववबोधेनरज्जुसर्पोहिनश्यति ॥ २५ ॥ आधिव्याधिविलासानांरामसाराधिसंक्षयः ॥ सर्वेषांमूलहाप्रावृण्नदीवतटवीरुधाम् ॥ २६ ॥ अनाधिजाव्याधयस्तु द्रव्यमंत्रशुभकर्मैः ॥ चिकित्सकादिशास्त्रोक्तैर्नश्यंत्यन्यैरिहाथवा ॥ २७ ॥ स्नानमंत्रौषधोपायावक्तुश्चाधिगतानिच ॥ त्वयाचिकित्साशास्त्राणिकिमन्यदुपदिश्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राघव ! आत्मज्ञानके बिना सार अर्थात् जन्मादि विकारका मूल आधि नहीं नष्ट होती क्योंकि पूर्णरीतिसे रज्जुके ज्ञानके बिना रज्जुका सर्प नष्ट नहीं होता ॥ २५ ॥ हे रामजी ! सब आधिव्याधिके विलासोंका मूलसे नाशक सार (जन्मादि विकार) रूप आधिका क्षय ऐसे है जैसे वर्षाकी नदीतटके वृक्षोंका ॥ २६ ॥ सामान्य व्याधि तो वैद्यकशास्त्रोक्त औषधि मंत्रादि शुभकर्मोंसे अथवा वृद्धोंकी परम्परासे कथित औषधोंसे नष्ट होती हैं ॥ २७ ॥ हे रामजी ! लोलार्कादि पवित्र तीर्थोंमें स्नान मंत्र औषधि आदि उपाय वृद्धोंके औषध तथा वैद्यकशास्त्रोक्त औषध तुम स्वयं जानतेहो इनसे अन्य तुमारेलिये क्या उपदेश कियाजाय ॥ २८ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ आधेःकथंभवेद्व्याधिःकथंचसविनश्यति ॥ द्रव्यादितरयायुक्त्यामंत्रपुण्यादिरूपया ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तेविधुरितेदेहःसंक्षोभमनुयात्यलम् ॥ तथाहिरुषितोजंतुरग्रमेव नपश्यति ॥ ३० ॥ अनवेक्ष्यपुरोमार्गममार्गमनुधावति ॥ प्रकृतंमार्गमुत्सृज्यशरार्त्तोहरिणोयथा ॥३१॥ संक्षोभात्साम्यमुत्सृज्यवहंतिप्राणवायवः ॥ देहेगजप्रविष्टेनपयांसीवसरित्तटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! आधिसे उत्पन्न व्याधि औषधसे भिन्न मंत्र पुण्यादि रूप युक्तिसे कैसे नष्ट होती है ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! मानसी पीडाओंसे चित्तके व्याकुल होनेपर देह अति व्याकुल होजाताहै क्योंकि क्रोधी जीव अपने संमुखकेही पदार्थको नहीं देखता ॥ ३० ॥ और संमुख मार्गको न देखके कुमार्गकी ओर दौडताहै जैसे बाणसे पीडित हरिण अपने उपस्थित मार्गको त्यागकर अन्य मार्गकी ओर ॥ ३१ ॥ इसीप्रकार मानसी पीडाओंसे व्याकुल प्राणवायु अपनी ममताको त्यागकर देहमें अन्य मार्गसे ऐसे बहतेहैं जैसे नदीमें गजके प्रवेशसे नदीका जल तटकी ओर ॥ ३२ ॥

असमंवहतिप्राणेनाड्योयांतिविसंस्थितिम् ॥ असम्यक्संस्थितेभूपेयथावर्णाश्रमक्रमाः ॥ ३३ ॥ काश्चिन्नाड्यःप्रपूर्णत्वंयांतिकाश्चिचरिक्तताम् ॥ प्राणाविधुरितेदेहेसर्वतःसरितोयथा ॥ ३४ ॥ कुजीर्णत्वमजीर्णत्वमतिजीर्णत्वमेववा ॥ दोषायैवप्रयात्यन्नंप्राणसंचारदुष्क्रमात् ॥ ३५ ॥ यथाकाष्ठानिनयतिप्राचीदेशंसरिद्रयः ॥ तथान्नानिनयत्यंतःप्राणवातःस्वमाश्रयम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और प्राणके विषम बहनेसे नाडियां ऐसे विषम होजाती हैं जैसे राजाके अव्यवस्थित होनेसे वर्णाश्रमकी रीति ॥ ३३ ॥ प्राणवायुके विषमताद्वारा शरीरके विव्हल होनेसे नदीके श्रोतके तुल्य कोई नाडियां तो अधिक पूर्ण होजाती हैं और कोई रिक्त (खाली) होजाती हैं ॥ ३४ ॥ प्राणके संचारके विरोधसे भोजन कियाहुआ अन्न कुजीर्णता वा अजीर्णता अथवा अतिजीर्णतारूप दोषकोही प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ समान नामा प्राणवायु भुक्त अन्नोंको रस बनाके सब शरीरमें अपने २ स्थानमें ऐसे प्राप्त करताहै जैसे नदी काष्ठोंको पूर्वदिशामें ॥ ३६ ॥

यान्यन्नानिनिरोधेनतिष्ठंत्यंतःशरीरके ॥ तान्येवव्याधितांयांतिपरिणामस्वभावतः ॥ ३७ ॥ एवमाधेर्भवेद्व्याधिस्तस्याभावाचनश्यति ॥ यथामंत्रैर्विनश्यंतिव्याधयस्तत्क्रमंशृणु ॥ ३८ ॥ यथाविरेकंकुर्वीतिह

रीतक्यःस्वभावतः ॥ भावनावशतःकार्यंतथायरलवादयः ॥ ३९ ॥ शुद्धयापुण्ययासाधोक्रिययासाधुसेवया ॥ मनःप्रयातिनैर्मल्यंनिकषेणेवकांचनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—निरोधसे जो अन्न शरीरकेभीतर स्थित रहताहै वही धातुकी विषमतारूप परिणाम स्वभाव वशसे व्याधिताको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार आधिसे व्याधि होतीहै और आधिके अभावसे व्याधिभी नष्ट होजाती हैं और जैसे मंत्रादिसे व्याधि नष्ट होती है वह रीति तुम सुनो ॥ ३८ ॥ जैसे हरीतकी (हर्रै) के फल विरेचन (जुलाब) रूप कार्य अपने स्वभाव वशसे करते हैं ऐसेही वायु अग्नि पृथिवी तथा जलादिके बीजरूपपर लव-आदि मंत्रके वर्णभी मांत्रिककी भावनाके स्वभावसे नाडियोंमें रोगाकार परिणत अन्नरसके पानादि कार्य करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे साधो रामजी ! शुद्ध, पवित्र साधु सेवनरूप क्रियासे मन ऐसे निर्मलताको प्राप्त होताहै जैसे कसौटीसे सुवर्ण ॥ ४० ॥

आनंदोवर्धतेदेहेशुद्धेचेतसिराघव ॥ पूर्णेंदावुदितेह्यत्रनैर्मल्यंभुवनेयथा ॥ ४१ ॥ सत्वशुद्ध्यावहंत्येते क्रमेणप्राणवायवः ॥ जरयंतितथान्नानिव्याधिस्तेनविनश्यति ॥ ४२ ॥ आधिव्याध्योरितिप्रोक्तौनाशोत्पत्तिक्रमौत्वयि ॥ कुंडलिन्याःकथायोगादधुनाप्रकृतंशृणु ॥ ४३ ॥ पुर्यष्टकपराख्यस्यजीवस्यप्राणनामिकाम् ॥ विद्धिकुंडलिनीमंतरामोदस्येवमंजरीम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! शुद्ध चित्तमें आनंद ऐसे बढताहै जैसे पूर्णचंद्रमाके उदयसे इस संसारमें प्रकाश ॥ ४१ ॥ अंतःकरणकी शुद्धिसे प्राणवायु अपने क्रमसे बहते हैं और अन्नको परिपक्व करते हैं इससे सब व्याधि नष्ट होजातीहैं ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! कुंडलिनीकी कथाके प्रसंगसे आधिव्याधिके नाश तथा उत्पत्तिका क्रम मैंने तुमसे इसप्रकार कहदिया अब तुम प्रकृत प्रसंगको सुनो ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! पुर्य्यष्टक नाम जीवकी आधारभूत कुंडलिनीको तुम ऐसे जानो जैसे सुगंधकी पुष्पलता ॥ ४४ ॥

तांयदापूरकाभ्यासादापूर्यस्थीयतेसमम् ॥ तदेतिमेरवत्स्थैर्यंकायस्यापीनतातथा ॥ ४५ ॥ यदापूरकपूर्णांतरायतप्राणमारुतम् ॥ नीयतेसंविदेवोर्ध्वंसोढ्वंधर्मक्लमंश्रमम् ॥ ४६ ॥ सर्पीवत्वरितैवोर्ध्वयातिदंडोपमांगता ॥ नाडीःसर्वाःसमादायदेहबद्धालतोपमाः ॥ ४७ ॥ तदासमस्तमेवेदमुत्प्लावयतिदेहकम् ॥ नीरंध्रंपवनापूर्णं भस्त्रेवांबुततांतरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—उस कुंडलिनीमें पूरक प्राणायामके अभ्याससे समरूपसे जब प्राणी स्थित रहताहै तब मेरुके समान स्थिरता तथा शरीरकी गुरुतारूप सिद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ४५ ॥ जिससमय पूरकसे पूर्णशरीरको मूलाधारसे लेके ब्रह्म-रंध्रपर्य्यन्त सीधी करके प्राणके आकर्षण पूर्वक शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम सहनेकेलिये कुंडलिनी संवित् ऊपर प्राप्त की जाती है ॥ ४६ ॥ उससमय प्राणके आकर्षणसे दंडके तुल्य दीर्घताको प्राप्त होके वह कुंडलिनी सब नाडिं-योंको अपनेसाथ लेके देहमें बंधीहुई लताकेसमान शीघ्र ऊपरको जातीहै ॥ ४७ ॥ उससमय वायुसे पूर्ण छिद्ररहित इस शरीरको कुंडलिनी संवित् ऊपर ऐसे लेजातीहै जैसे खींचीहुई भाथी अपने भीतर प्रविष्ट जलको यही योगीका आकाशगमनहै ॥ ४८ ॥

इत्यभ्यासविलासेनयोगेनव्योमगामिना ॥ योगिनःप्राप्नुवंत्युच्चैर्दीनाइंद्रदशामिव ॥ ४९ ॥ ब्रह्मनाडीप्रवाहेणशक्तिःकुंडलिनीयदा ॥ बहिरूर्ध्वंकपाटस्यद्वादशांगुलमूर्द्धनि ॥ ५० ॥ रेचकेनप्रयोगेणनाड्यंतरनिरोधिना ॥ मुहूर्त्तंस्थितिमाप्नोतितदाव्योमगदर्शनम् ॥ ५१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ दर्शनंकीदृशंब्रह्मन्नयनांशुगणंविना ॥ अदिव्यानामिंद्रियाणांतत्त्वमेवंकथंभवेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसप्रकार अभ्यासके विलासरूप आकाशगामी योगसे अर्थात् कार्य आकाशके संबंधरूपसे योगीजन ऊपर ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे दीन जन इंद्रपदवीको ॥ ४९ ॥ और जिससमय अन्य नाडियोंके व्यापारके निरोधक रेचक प्राणायामके प्रयोगसे कुंडलिनी शक्ति ब्रह्म (सुषुम्ना) नाडीके भीतर प्राणके प्रवाहसे शिरके दोनों कपाटाकी संधिरूप कपाट (केवाड) के बारह अंगुल बाहरके शांतनामक स्थानमें एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहतीहै उससमय आकाशगामी सिद्धोंका दर्शन होताहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हमलोगोंकी अदिव्य इंद्रियोंके रहतेभी दिव्य इंद्रिय (नेत्र) के प्रकाशके विनाके शांत स्थानमें नाडीकी स्थिति मात्रसे सिद्धोंका दर्शन कैसे होताहै इसका तत्व कहिये ॥ ५२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नकेचनमहाबाहोभूचरेणनभस्वतः ॥ अदिव्येनाश्रिताज्ञानैर्दृश्यंतेपुरुषेंद्रियैः ॥ ५३ ॥ विज्ञानादूरसंस्थेनबुद्धिनेत्रेणराघव ॥ दृश्यंतेव्योमगाःसिद्धाःस्वप्नवत्स्वार्थदाअपि ॥ ५४ ॥ स्वप्नावलो

कनंयद्वत्तद्वत्सिद्धावलोकनम् ॥ केवलोथविशेषोयंसिद्धप्राप्तौस्थिरार्थता ॥ ५५ ॥ मुखाद्बहिर्द्वादशांतेरे चकाभ्यासयुक्तितः ॥ प्राणेचिरंस्थितिंनीतेप्रविशत्यपरांपुरीम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे महाबाहो रामजी ! भूमिचारी जन मलिन, और अज्ञानके आश्रित पुरुषकी इंद्रियोंसे वायुरूप आकाशगामी सिद्धोंको कदापि नहीं देखते ॥ ५३ ॥ किंतु विज्ञान अर्थात् योगाभ्याससे शुद्ध दूर स्थित बुद्धिरूप नेत्रसे आकाशचारी सिद्ध देख पडते हैं और स्वप्नके तुल्य स्वार्थदायकभी होतेहैं ॥ ५४ ॥ स्वप्नके दर्शनके तुल्य सिद्धोंका दर्शनभी होताहै केवल विशेष इतनाही है कि सिद्धोंकी प्राप्तिमें वरदानादि फलरूप पदार्थोंकी स्थिरता रहतीहै ॥ ५५ ॥ रेचकके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखसे बारह अंगुलबाहर प्राणके चिरकालतक स्थित रखनेसे योगी अन्य शरीरमें प्रवेश करसकताहै ॥ ५६ ॥

श्रीरामउवाच ॥ वदस्वभावस्यकथंब्रह्मन्नचलसंस्थितिः ॥ वक्तारःसानुकंपाहिदुष्प्रश्नेपिनखेदिनः॥५७ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शक्तिर्यातुस्वभावाख्यायथास्फुरतिचात्मनः ॥ सर्गादिषुतथैवासौस्थितिंयातीति निश्चयः ॥५८॥ अवस्तुत्वादविद्यायावस्तुशक्तिरपिक्वचित् ॥ भिद्यतेदृश्यतेह्यंगवसंतेशारदंफलम्॥५९ सर्वमेवभिदंब्रह्मनानानानातयास्थितम् ॥ जृंभतेव्यवहारार्थंकेवलंकथितस्थिति ॥ ६० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! पूर्वप्रसंगमें आपने अनेकबार यह कहाहै कि यह मायामय जगत् अनियत स्वभावहै सो एकस्वभाकी चिरकालतक स्थिति कैसे रहती है यह कृपाकरके कहिये क्योंकि वक्ता महात्माजन दुष्ट प्रश्नोंसेभी शिष्योंके ऊपर कृपाही करते हैं न कि खेद ॥ ५७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सत्यसंकल्प परमात्माकी स्वभाव वा नियति नामिका शक्ति कल्पादिमें जो स्फुरित होती है वह कल्पपर्यंत स्थित रहती है यह निश्चयहै ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! अविद्याके अवस्तु होनेसे वस्तु शक्तिभी कहीं २ अर्थात् कामरूप देशादिमें भिन्न ऐसे देखपडती है जैसे शरदृऋतुका फल बसन्तमें ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! एक तथा अनेकरूप तथा अनियतस्वभावसे स्थित यह सब जगत् ब्रह्मरूपही है और प्राणियोंके कर्म तथा उनके फल भोग व्यवहारके लिये केवल अज्ञात ब्रह्मही कुछकालके अर्थ नियत स्थिति धारण करके विकसित होरहाहै ॥ ६० ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ सूक्ष्मच्छिद्रादिगत्यर्थंपूरणार्थंचखस्यवा ॥ अणुतांस्थूलतांवापिकायोयंनीयतेक थम् ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काष्ठक्रकचयोःश्लेषाद्यथाच्छेदःप्रवर्तते ॥ द्वयोःसंघर्षणादग्निःस्वभा वाज्जायतेतथा ॥ ६२ ॥ मांसंकुयंत्रजठरेस्थितंश्लिष्टमुखंमिथः ॥ ऊर्ध्वाधःसंमिलत्स्थूलद्वयंभःस्थैरिववे तसम् ॥ ६३ ॥ तस्यकुंडलिनीलक्ष्मीर्निलीनांतर्निजास्पदे ॥ पद्मरागसमुद्रस्यकोशेमुक्तावलीयथा ॥६४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! सूक्ष्मछिद्रमें गमनके लिये इस देहको अणुताको और आकाश पूर्ण करनेके लिये स्थूलताको योगीजन कैसे प्राप्त करते हैं ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जैसे काष्ठ तथा आरेके संघर्षणसे काष्ठ दो भाग होजाताहै ऐसेही प्राण अपानके संघर्षण (रगड) से स्वभावसेही जठराग्नि उत्पन्न होती है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! इस देहरूपयंत्रके उदर प्रदेशमें नाभिके ऊपर तथा नीचे परस्पर मिलतेहुये मुखवाला दो भस्त्रा (भाथी) के सदृश स्थूलमांस ऐसे कांपताहुआ स्थितहै जैसे नीचे जलसे और ऊपर वायुसे खींचाहुआ वेतोंका कुंज ॥ ६३ ॥ उस भाथी मांसके भागके अधोभागमें अर्थात् मूलाधाररूप अपने स्थानमें सबको प्राणप्रद होनेसे लक्ष्मीके तुल्य कुंडलिनी ऐसे स्थितहै जैसे मूंगेकी पेटारीमें मुक्तावली ॥ ६४ ॥

आवर्त्तफलमालेवनित्यंसलसलायते ॥ दंडाहतेवभुजगीसमुन्नतिविवर्तिनी ॥ ६५ ॥ द्यावापृथिव्योर्म ध्यस्थाक्रियेवस्पंदधर्मिणी ॥ संविन्मधुविबोधार्कोहृत्पद्मपुटषट्पदी ॥ ६६ ॥ तत्सर्वशक्तिपद्मादिबाह्ये नाभ्यंतरैस्तया ॥ हृदिव्याधूयतेवातैःपत्रवृंदमिवाभितः ॥ ६७ ॥ यद्वद्व्योमस्फुरत्यंगस्वभावात्तत्रवायवः॥ बलवन्मृदुयत्किंचिद्दृशंकवलयंतितत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—और फिरतीहुई रुद्राक्षकीमालाके तुल्य वह सदा सरसराती है और दंडसे ताडित सर्पिणीके तुल्य ऊर्ध्वमुखसे परिवर्तनशीलहै ॥ ६५ ॥ और आकाश तथा पृथिवीके मध्यमें प्राणियोंकी ऊर्ध्व तथा अधोगतिका निमित्त जैसे शास्त्रोक्त और निषिद्ध क्रियाहै ऐसेही प्राण अपानकी ऊर्ध्व और अधोगतिका कारण होनेसे संचलनशीलहै, तथा चाक्षुषादि ज्ञान और रूपादि विषयोंके आस्वादके बोधके लिये सूर्यके समान, और हृदयरूप कमलकी भ्रमरी तुल्य वह कुंडलिनी स्थितहै ॥ ६६ ॥ और ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियोंकी शक्तियां, हृदय कमल और नाडीसमूह आभ्यन्तरके वायुद्वारा वह ऐसे कंपाती है जैसे बाहरके वायुसे वृक्षोंके पत्रसमूह ॥ ६७ ॥ हे प्रियरामजी ! विशाल-

रूपसे यह बाह्यकाश जो स्फुरित होरहाहै उसमें जैसे वायु बलवान् काष्ठ पाषाणादिको और कोमल तृणादिको जीर्ण करताहै ऐसेही आभ्यन्तर हृदयाकाशमें प्राणवायु भुक्त अन्नादिको जीर्ण (परिपक्व) करताहै ॥ ६८ ॥

वातैराहन्यमानंतत्पद्मादितरलायते ॥ हृद्यन्यान्येतिकार्येणपल्लवादियथातरोः ॥ ६९ ॥ देहेष्वाजरणं सर्वरसानांपवनोन्वहम् ॥ जनयत्यग्निमन्योन्यसंघर्षाद्वनवेणुवत् ॥ ७० ॥ स्वभावशीतवातात्मादेहस्ते नौष्ण्यमेत्यथ ॥ उदितेनससर्वांगेभुवनंभानुनायथा ॥ ७१॥ सर्वतोविचरेदस्मिंस्तत्तेजस्तारकाकृति ॥ हृत्पद्महेमभ्रमरोयोगिनांचिंत्यतांगतम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हृदयपद्म तथा नाडी आदि प्राण पवनसे ताडित होकर लोहकारकी भाथीके तुल्य कंपित होताहै और उसके कम्पित होनेसे हृदयमें प्रविष्ट अन्न प्रथम रस होताहै और रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे त्वक्, त्वचासे मेदा, मेदासे मज्जा, मज्जासे अस्थि, और अस्थिसे शुक्र, इस विचित्र रीतिसे अन्यपदार्थकी अन्यमें परिणति ऐसे होती है जैसे वसन्तमें वृक्षके भीतर प्रविष्टभूमिके रसकी पल्लव पुष्प तथा फलादिमें ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! देहमें प्राण पवन सब रसोंके अन्तिमधातु शुक्रपर्य्यंत परिणामके लिये प्रतिदिन अग्नि ऐसे उत्पन्न करताहै जैसे परस्परके संघर्षसे बनका वांस ॥ ७० ॥ हे रामजी ! सब शरीरमें प्रदीप्त जठराग्निसे शीत बात स्वभाववाला यह देह उष्णताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे सूर्यसे त्रिभुवन ॥ ७१ ॥ तारागणके समान आकारधारी, हृदयकमलमें सुवर्णके भ्रमरके तुल्य तथा योगियोंके उपास्यदशाको प्राप्त वह तेज इस शरीरमें चारोंओर विचारताहै ॥ ७२ ॥

तत्प्रकाशमयंज्ञानंचितितंसत्प्रयच्छति ॥ येनयोजनलक्षस्थंवस्तुनित्यंहिदृश्यते ॥ ७३ ॥ तस्याग्नेर्वाडव स्येवजलंसंशुष्कमिंधनम् ॥ मांसपंकजखंडाढ्यंहृत्सूरःकोशवासिनः ॥ ७४ ॥ यदच्छंशीतलत्वंचतद स्यात्मेंदुरुच्यते ॥ इतींदोरुत्थितःसोग्निरग्नीषोमौहिदेहकः ॥ ७५ ॥ सर्वंतूष्णात्मकंकिंचित्तेजोर्काग्न्य भिधंविदुः ॥ शीतात्मकंतुसोमाख्यमाभ्यामेवकृतंजगत् ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मांसरूपकमलके खंडोंसे पूर्ण हृदयरूप तडागके कोशमें निवासी उस जठराग्निका शरीर सम्बन्धी अन्न जलादि शुष्क इंधन ऐसे है जैसे समुद्रका जल वडवाग्निका ॥ ७४ ॥ और शरीरमें जो स्वच्छता और शीतलताहै वह इसका चन्द्रमाहै इसप्रकार चन्द्रमासे वह अग्नि प्रकटहै क्योंकि यह देह अग्नि तथा चन्द्रमयहै ॥७५॥ और बाह्य यह सब जो कुछ उष्णरूप जगत्है वह सूर्य वा अग्निका तेजरूपही है और शीत सब जगत् चन्द्रमारूपहै क्योंकि इन्ही दोनोंने इस जगत्को रचाहै ॥ ७६ ॥

विद्याविद्यास्वरूपेणसर्वंसदसदात्मना ॥ जगद्वायेननिर्वृत्तंतदेवैवंविभज्यते ॥ ७७ ॥ संवित्प्रकाशंवि द्यादिसूर्यमग्निंविदुर्बुधाः ॥ अतज्जाड्यंतमोविद्याद्याद्वःसोमंमनीषिणः ॥ ७८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वह्निर्वा य्वात्मनःसोमाद्वदेतीतिमुनीश्वर ॥ सोमस्योत्पत्तिमधुनावदमेवदतांवर ॥ ७९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अग्नीषोमौमिथःकार्यकारणेचव्यवस्थिते ॥ पर्य्यायेणसमंचैतौप्रजीवेतेपरस्परम् ॥ ८० ॥

अर्थ—सम्वित् (ज्ञान) प्रकाश, तथा विद्या (आत्मज्ञान) आदिको बुद्धिमान् पंडित सूर्य वा अग्नि कहते हैं और असत् जडता तथा तम अविद्यादिको सोम कहते हैं ॥७८॥ श्रीरापजी बोले कि–हे मुनीश्वर वायुरूप सोमसे अग्निकी उत्पत्ति होती है यह आपने कहा सो मैंने जाना अब सोमकी उत्पत्ति कहिये॥७९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अग्नि और चन्द्रमा परस्पर कार्य करनेको व्यवस्थितहैं, और क्रमसे तथा एककालमें एक दूसरेके उपजीवकहैं ॥ ८० ॥

जन्मांगबीजांकुरवत्तथादिवसरात्रिवत् ॥ स्थितिश्छायातपसमाकेवलासैतयोर्भवेत् ॥ ८१ ॥ तुल्यका लोपलंभासावित्थंछायातपस्थितिः ॥ केवलैकोपलंभाढ्यास्थितिर्दिवसरात्रिवत् ॥ ८२ ॥ कार्यकारण भावश्चद्विविधःकथितोनयोः ॥ सद्रूपपरिणामोत्थोविनाशपरिणामजः ॥ ८३ ॥ एकस्माद्द्वितीयस्य संभवोंकुरबीजवत् ॥ कार्यकारणभावोसौसद्रूपपरिणामजः ॥ ८४ ॥

अर्थ—और इनकी उत्पत्ति एक दूसरेके उपादानसे बीज और अंकुरके तुल्य और रात्रिदिनके सदृश परस्परके निमित्तसे है, और छाया तथा आतपके समान इनकी स्थिति एक दूसरेकी प्रतिघातिनी है ॥ ८१ ॥ एककालमें पृथक् देशमें इनकी प्राप्ति छाया तपके समान स्थितिहै और क्रमसे केवल एककी प्राप्ति रात्रिदिनके समान स्थिति है ॥ ८२ ॥ एक सद्रूप परिणामसे उत्पन्न और दूसरा विनाशरूप परिणामसे उत्पन्न यह दोप्रकारका इनका कार्य कारणभाव है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

एकनाशेद्वितीयस्ययद्भावोदिनरात्रिवत् ॥ कार्यकारणभावोसौविनाशपरिणामजः ॥ ८५ ॥ सद्रूपपरि णामस्यमृद्धटक्रमसंस्थितेः ॥ अक्षोपलंभादितरत्प्रमाणंनोपयुज्यते ॥ ८६ ॥ विनाशपरिणामस्यदिनरा

त्रिक्रमस्थितेः ॥ अभावोप्येकवस्तुस्थोगतोमुख्यप्रमाणताम् ॥ ८७ ॥ अनास्थानास्तिकर्तृत्वमित्याद्या युक्तिवादिनः ॥ अवज्ञयाबहिष्कार्याःस्वानुभूत्यपलापिनः ॥ ८८ ॥

अर्थ—मृत्तिकासे घट और अंकुरसे बीजकेके सदृश जो कार्य कारण सद्रूप परिणामसे उत्पन्न है ॥ ८५ ॥ मृत्तिकासे घटके क्रमकी स्थितिरूप सद्रूप परिणामका प्रत्यक्षसे अन्य प्रमाणयुक्त नहीं हैं ॥ ८६ ॥ और दिनके क्रमकी स्थितिरूप विनाश परिणाममें दिनमें रात्रिके न मिलनेसे एक वस्तु निष्ठ अभाव वा अनुपलब्धिरूप प्रमाण है॥८७॥ और प्रकाशमात्रसे उपक्षीण दिनकी रात्रिकी रचनामें आस्थान होनेसे और मृत्तिकाके अचेतन होनेसे घटकी रचनेमें कर्तृता नहीं है इत्यादि युक्ति वादियोंका तिरस्कारसे बुद्धिमानोंको बाहर करना चाहिये क्योंकि उनके मतमें अनास्थादिबुद्धि अकर्तृत्वबुद्धिको उत्पन्न करती है ॥ ८८ ॥

प्रत्यक्षवदभावोपिप्रमैवरघूनंदन ॥ अग्न्यभावोपिशीतस्यप्रमाणंसर्वजंतुषु ॥ ८९ ॥ अग्निर्धूमतयाभागाद्यांप्रयातिपयोदताम् ॥ सद्रूपपरिणामेनतदग्निःसोमकारणम् ॥ ९० ॥ अग्निर्नष्टतयाशैत्यादसावेवप्रयातियत् ॥ विनाशपरिणामेनतदग्निःसोमकारणम् ॥९१॥ सप्तांबुधिपयःपीत्वाधूमोद्गारेणवाडवः ॥ पयोदतांप्रयातेनतदेवजनयत्यलम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—और हे रघुनंदन! प्रत्यक्षके तुल्य अभावभी प्रमाणही है क्योंकि तेजका अभाव शीतकी अनुमितिमें सबको प्रमाणहै ॥ ८९ ॥ और अग्नि धूमभागसे जो मेघरूपताको प्राप्त होताहै उसमें सद्रूप परिणामसे अग्नि सोम (चंद्र) कारण है ॥ ९० ॥ और अग्नि नष्ट होकर शीततासे जो वायुरूपताको प्राप्त होताहै वह अग्निविनाश परिणामसे सोम (चंद्रमा) का कारणहै ॥ ९१ ॥ और वडवानल धूमके उद्गारसे सातो समुद्रके जलको पीकर मेघरूप धारण करके पुनः जलरूप चंद्रमाको पूर्णरीतिसे उत्पन्न करताहै ॥ ९२ ॥

अर्कःपीत्वानिशानाथमामावास्यंपुनःपुनः ॥ उद्गिरत्यमलेपक्षेमृणालमिवसारसः ॥ ९३ ॥ पीत्वामृतोपमंशीतंप्राणःसोममुखागमे ॥ अभ्रागमात्पूरयतिशरीरंपीनतांगतः ॥ ९४ ॥ जलमप्युदपांभोगेप्रयात्यर्कस्यरश्मिताम् ॥ सद्रूपपरिणामेनतज्जलंवह्निकारणम् ॥ ९५ ॥ नाशात्मकतयातोयमौष्ण्यत्वादेतिह्यग्निताम् ॥ विनाशपरिणामेनततोयंवह्निकारणम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—और सूर्यरूप तेज अमावास्यापर्यन्त चंद्रमाको सर्वथा पीकर पुनः शुक्लपक्षमें उसे ऐसे उगिलता है जैसे सारस कमलदंडको ॥ ९३ ॥ और मुखके तुल्य शोभायुक्त चंद्रमासहित वसंतमें उष्मासहित वायु पृथिवीके अमृतके तुल्य शीत जलको पीकर और वर्षाऋतुमें मेघके आगमनसे स्थूल होकर जल वा रसरूप चंद्रकी वृष्टिसे जगत्‌के शरीरको पूर्ण करताहै ॥ ९४ ॥ यदि सूर्यकी किरणोंसेही जलपान किया जाताहै तो इस कल्पनासेभी जल सद्रूप परिणामसे सूर्यकी किरणदशाको प्राप्त होनेसे जलरूप चंद्रमा अग्निका कारण हुआ ॥ ९५ ॥ नाशद्वारा उष्णताके कारण जलभी अग्निरूपताको प्राप्त होताहै इसलिये विनाश परिणामसे वह जल अग्निका कारणहै ॥ ९६ ॥

अग्नेर्विनाशेसद्रूपपरिणामोनिशाकरः ॥ इंदोर्विनाशेसद्रूपपरिणामोहुताशनः ॥ ९७ ॥ हुताशोनाशमागत्यसोमोभवतिवैतथा ॥ दिवसोनाशमागत्यरात्रिर्भवतिवैयथा ॥ ९८ ॥ तमःप्रकाशयोश्छायातपयोर्दिनरात्रयोः ॥ मध्येविलक्षणंरूपंप्राज्ञैरपिनलभ्यते ॥ ९९ ॥ संधिरप्यविलोपःस्यादेतयोरेवतद्वपुः ॥ भावाभावैर्यथैकास्थानिष्ठावेतौतथैवहि ॥ १०० ॥

अर्थ—और अग्निके नाशमें सद्रूप चंद्रमा है और चंद्रमाके नाशमें सद्रूप परिणाम अग्नि है ॥ ९७ ॥ जैसे दिवस नाशको प्राप्त होकर रात्रिरूप होताहै ऐसेही अग्नि नष्ट होकर चंद्रमारूप होताहै ॥९८॥ और तम तथा प्रकाश, छाया तथा आतप और दिन तथा रात्रिके मध्यमें विलक्षण सद्रूप ब्रह्म बुद्धिमानोंकोभी इदंतारूपसे नहीं भान होता ॥ ९९ ॥ और इन दोनोंकी संधिभी अशून्यरूपही है क्योंकि यह संधि इन दोनोंका रूपहै और भावअभावरूपसे जैसे ये दोनों एक वस्तुरूपहैं ऐसेही संधिमेंभी हैं ॥ १०० ॥

द्वाभ्यांचैतन्यजाड्याभ्यांभूतानिप्रस्फुरंतिहि ॥ यथातमःप्रकाशाभ्यामहोरात्रामहीतले ॥ १०१ ॥ चिद्रूपजडरूपाभ्यामारब्धेयंजगत्स्थितिः ॥ जलामृताभ्यांमिश्राभ्यांशीतातनुरिवैंदवी ॥ १०२ ॥ प्रकाशमनलंसूर्यंचिद्रूपंविद्धिराघव ॥ जडात्मकंतमोरूपंविद्धिसोमशरीरकम् ॥ १०३ ॥ चित्सूर्येनिर्मलेदृष्टेनाम नश्येद्भवोदयम् ॥ व्योमसूर्येबहिर्दृष्टेयथाकृष्णनिशातमः ॥ १०४ ॥

अर्थ—जैसे पृथिवीपर तम और प्रकाशसे दिन रात्रि होतेहैं ऐसेही चित् तथा जडसे इस जगत्‌के संपूर्ण प्राणी स्फुरित होरहे हैं जैसे मिलेहुये जल तथा अमृतसे चन्द्रमाकी शरीर शीतल है ऐसेही चिद्रूप और जडरूपसे यह

जगत्की स्थिति रचीगई है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ हे रामजी ! अग्नि वा सूर्य्य तथा प्रकाशको तुम चिद्रूप जानो और जड तथा तमोरूप चन्द्रमाको ॥ १०३ ॥ जैसे बाह्याकाशमें सूर्य्यके दृष्ट होनेपर कृष्णवर्ण रात्रिका अन्धकार दूर होताहै ऐसेही निर्मल चित् सूर्य्यके दृष्ट होनेपर संसारका उदय नष्ट होजाताहै ॥ १०४ ॥

सोमदेहेजडेदृष्टेचिन्निजेसत्यवद्भवेत् ॥ निशीथेविलसत्यब्जेयथासौरप्रभाभरः ॥ ५ ॥ सोमंप्रकटयत्य ग्निश्चिद्देहस्यचिरंप्रभाम् ॥ स्वसंविन्मयमिद्धश्चिदेहस्थंरूपमर्कजम् ॥ ६ ॥ चिन्निष्क्रियात्वनामासाके वलानोपलभ्यते ॥ आलोकइवदीपेनदेहेनैवावगम्यते ॥ ७ ॥ चितश्चेत्योन्मुखत्वेनलाभःसैवचसंसृतिः॥ निश्चेत्यायाःशुभोलाभोनिर्वाणंवातदेवहि ॥ ८ ॥

अर्थ—जडदेहमें निजप्रत्यगात्मा दृष्ट होनेसे उसमें अभिन्नरूपसे स्फुरित होतीहुईभी चित् अपनी सत्तासे असत्के तुल्य ऐसे भासती है जैसे अर्द्धरात्रिमें चन्द्ररूपसे विलसित सूर्यका प्रकाश ॥ १०५ ॥ चन्द्रमंडलमें प्रविष्ट सूर्यकाप्रकाशरूप अग्नि जलमय चन्द्रबिंब स्फुरितरूप करताहै और देहमें जीवरूपसे प्रविष्ट चिद्रूप अग्नि आयुपर्य्यन्त अहंभावनाकी प्रथाको प्रकाशित करताहै इसप्रकार परस्परके मिलनेसे अभेदाध्याससे सूर्य्यसे उत्पन्न प्रभामंडल चन्द्रमा होताहै और चित् निजसंविन्मय मैं मनुष्यहुं चेतनहुं इत्यादि अपने अनुभवके अनुसार देहस्थरूप होती है ॥ १०६ ॥ और क्रिया तथा उपाधिके बिना केवल चित्का भान नहीं होता किन्तु दीपकसे प्रकाशके सदृश देहद्वाराही चित्का भान होताहै ॥ १०७ ॥ हे रामजी ! अज्ञानसे आवृत चित्की विषयका ओर झुकनाही संसाररूप अनर्थकी प्राप्ति है और विषयरहित चित्ही शुभ लाभ वा मोक्ष है ॥ १०८ ॥

अन्योन्यलब्धसद्भाव्यावेवंकुड्यप्रकाशवत् ॥ अग्नीषोमाविमौज्ञेयौसंपृक्तौदेहदेहिनौ ॥ ९ ॥ अतिशायि निर्निर्वाणेजाड्येचैवातिशायिनि ॥ अग्नीषोमस्यचैवांगस्थितिर्भवतिकेवला ॥ १० ॥ प्राणोग्निरुष्णप्रकृति रपानःशीतलःशशी ॥ छायातपवदित्येतौसंस्थितौमुखमार्गगौ ॥ ११ ॥ अपानेशीतलेसत्तामेत्युष्णः प्राणपावकः ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शेसचतस्मिंस्तथैवहि ॥ १२ ॥

अर्थ—इस प्रकाश भित्ति तथा सूर्यके प्रकाशके तुल्य परस्पर मिलेहुये ये देह तथा देही (चित्) अग्नि तथा चन्द्ररूपहैं ॥ १०९ ॥ हे प्रियरामजी ! उपाधिकी निवृत्तिसे आत्यन्तिक (अन्तशून्य) आनन्दके प्रकट होनेसे अग्निकी ओर जडताके अधिक होनेसे चन्द्रमाकी केवल स्थिति होती है ॥ ११० ॥ उष्ण प्रकृतिप्राण अग्निरूपहै और शीतलप्रकृति अपान चन्द्ररूपहै और छाया तथा आतपके तुल्य ये मुखरूप मार्गमें स्थित रहतेहैं ॥ १११ ॥ आपानके शीतल होनेपर प्राणरूप उष्ण अग्निसत्ताको प्राप्त होताहै और दर्पणमें प्रतिबिंबके समान प्राणके उष्ण होनेपर वैसाही अपानभी सत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ११२ ॥

चिदग्निःपद्मपत्रस्थंसोमंवाचात्मकंत्विषा ॥ जनयत्यनुभूत्येहकुड्यालोकंयथाबहिः ॥ १३ ॥ संसृत्या दौयथाकाचित्सविच्छीतोष्णरूपिणी ॥ अग्नीषोमाभिधांप्राप्तासैवसर्गेनृणामिह ॥ १४ ॥ यत्रसोमक लाग्रस्ताक्षणंसूर्येणषोडशी ॥ मुखाद्वितस्तिमात्रंस्यात्तत्रबद्धपदोभव ॥ १५ ॥ नूनंसूर्यपदंप्राप्तोयत्रसो मोहृदंबरे ॥ नूनंकेवलयास्थित्यातत्रबद्धपदोभव ॥ १६ ॥

अर्थ—मूलाधारसे लेके कण्ठपर्य्यंत चतुर्दलकमलमें स्थित, और परासे लेके वैखरीपर्य्यंत बाणीरूप चंद्रमाको अर्थ प्रकाशनरूप शक्ति तथा अनुभवसे चिद्रूप अग्नि ऐसे उत्पन्न करताहै जैसे बाह्य भित्ति आदि प्रकाशको सूर्य्य ॥ ११३ ॥ जैसे कल्पकी आदिमें माया शबलित ब्रह्म सम्वित् शीतोष्णरूप ब्रह्मांडकारसे अग्नि और चन्द्रमानामको प्राप्तहुई है ऐसेही प्राणियोंके व्यष्टि देहमेंभी शीतोष्णरूपसे है ॥ ११४ ॥ मुखसे बाहर एक वितस्ति (वित्ते) पर चंद्रमा (अपान) की शोलहवींकला सूर्य्य (प्राण) से होती है वहां अर्थात् प्राण अपानकी सन्धिमें तुम स्थिर होओ ॥ ११५ ॥ जहां हृदयकाशमें सूर्यके स्थानमें (प्राणपवनकी समाप्तिमें) सोम (अपानवायु) केवल अपनी स्थितिसे प्राप्त होताहै वहां तुम स्थित होओ ॥ ११६ ॥

उष्णमग्निश्चिदादित्यःशैत्यंसोमउदाहृतम् ॥ यत्रैतौप्रतिबिंबस्थौतत्रबद्धपदोभव ॥ १७ ॥ शरीरेसोम सूर्याग्निसंक्रांतिज्ञोभवानघ ॥ तत्रसंक्रांतिकालाहिबाह्यास्तृणसमाःस्मृताः ॥ १८ ॥ संक्रांतिमुत्तरमथा

(१) यथार्थमें सूर्यकेही प्रकाशसे चन्द्रमा प्रकाशित रात्रिमें चन्द्ररूपसे सूर्य प्रकाशित है न कि अपने रूपसे ॥

यनमंगसम्यक्कालंतथाविषुवतीयदिदेहवातैः ॥ अंतर्बहिष्ठमिववेत्सियथानुभूतंतच्छोभसेत्रनपुनःपर मभ्युपेतः ॥ ११९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० अग्नीषोमविचारणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! चिदादित्य उष्ण तथा अग्निरूपहै और सोम (चन्द्र) रूप कहा गयाहै, जहांपर अर्थात् अर्द्ध रेचक और अर्द्धपूरकके अन्तरालमें ये दोनों अग्नि चन्द्र वा प्राण अपान प्रतिबिंबमें स्थितहैं वहां तुम स्थिर होओ ॥११७॥ हे पापरहित रामजी ! जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा तथा शरदृऋतुओंमें शीतलताका उष्णतासे ग्रास होताहै वहां सोमकी अग्नि संक्रांति होती है और शरद् हेमन्त तथा शिशिरऋतुओंमें उष्णताका शीतसे ग्रास होताहै वहां अग्निकी सोम संक्रांति होती है और इनकी सन्धियोंमें सूर्यकी मेषादि संक्रांति होती हैं ऐसेही इस शरीरमेंभी जब अपानकी शीतताका जठराग्निसे ग्रास होताहै तब सोमकी अग्नि संक्रांति होती है और प्राणकी उष्णताका जब बाह्य शीततासे ग्रास होताहै तब अग्निकी सोमसंक्रांति होती है सो तुम शरीरमें सोमसूर्य्य और अग्निकी इन संक्रांतियोंको जाननेवाले हो क्योंकि मुख्य संक्रांति काल येही हैं और बाह्य तो तृणके तुल्य हैं ॥ ११८ ॥ हे प्रिय रामजी ! बाह्य प्रदेशमें स्थित संक्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायन, वर्षात्मककाल और विषुवत्रेखा आदिको यदि देहके प्राण अपानवायुके द्वारा आभ्यन्तरमेंभी स्थित तुम जानते हो तो योगियोंकी सभामें शोभितहो अन्यथा नहीं ११९

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अग्निषोमविचारणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

योगीकी देहकी अणुता स्थूलताके उपाय, परकाय प्रवेश तथा भोगादि इस ८२ के सर्गमें युक्तियोंसे वर्णन कियागयाहै॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अणुतांस्थूलतांवापियथागच्छतियोगिनाम् ॥ देहोनामतथासम्यग्वक्ष्यमाणमिदं शृणु ॥ १ ॥ हृद्यब्जचक्रकोशोर्ध्वंप्रस्फुरत्यानलःकणः ॥ हेमभ्रमरवत्सांध्यविद्युल्लवइवांबुदे ॥ २ ॥ स प्रवर्द्धनसंवित्त्यावात्ययेवाशुवर्द्धते ॥ संविद्रूपतयानूनमर्कवद्भातिचोदयम् ॥ ३ ॥ संध्याभ्रप्रथमार्काभो वृद्धिमभ्यागतःक्षणात् ॥ गालयत्यखिलंसांगंदेहंहेमयथानलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! योगियोंका देह जिसप्रकार अणुता वा स्थूलताको प्राप्त होताहै वह सब उत्तम रीतिसे मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ हृदय कमल चक्र कोशके ऊपर अग्निकण ऐसे चमकताहै जैसे सुवर्णका भ्रमर वा संध्याकालमें मेघमें विद्युत्की लेखा ॥ २ ॥ वह अग्निकण प्रवर्द्धनके उपायभूत ज्ञानसे महावायु (आंधी) के सदृश शीघ्र बढता और ज्ञानरूपसे देहमें सूर्यके समान प्रकाश करताहै ॥ ३ ॥ प्रातःकालमें आकाशमें सूर्य्यके समान क्षणमेंही वृद्धिको प्राप्त होकर वह अग्निका कण सब देहको ऐसे गला देताहै जैसे अग्नि सोनेको ॥ ४ ॥

जलस्पर्शासहोयुत्त्यागलयेत्प्रपदादपि ॥ बाह्यएवानलस्पर्शास्वांतेवस्तुविशेषतः ॥ ५ ॥ सशरीरद्वयंप श्चाद्विधूयकापिलीयते ॥ विक्षोभितेनप्राणेननीहारोवात्ययायथा ॥ ६ ॥ आधारनाडीनिर्हीनाव्योमस्थैवा वशिष्यते ॥ शक्तिकुंडलिनीवह्नेर्धूमलेखेवनिर्गता ॥ ७ ॥ क्रोडीकृतमनोबुद्धिमयजीवाद्यहंकृतिः ॥ अंतः स्फुरच्चमत्काराधूमलेखेवनागरी ॥ ८ ॥

अर्थ—जलके स्पर्शको न सहनेवाला वह अग्नि पादपर्य्यंत देहको योगकी युक्तिसे गला देताहै और अपना उष्णताद्वारा द्रवके उपसंहाररूप योगकी युक्ति जलकोभी सुखा देतीहै और इसप्रकार देहसे पृथक् मनरूप सूक्ष्म देहमें स्थित रहताहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार पार्थिव तथा जलमय दोनों शरीरोंको गलाकर विक्षोभित प्राणके द्वारा आपभी कहीं ऐसे लीन होजाताहै जैसे वायुसे नीहार ॥ ६ ॥ उससमय कुंडलिनी शक्तिभी सुषुम्ना नाडिसे हीन होकर सुषुम्नाके संस्कारसे शोभित देहाकाशमें ऐसे स्थित रहती है जैसे अग्निसे निकली हुई धूमकी लेखा ॥ ७ ॥ मन बुद्धि और जीवादिसहित सूक्ष्मशरीरमें अहंकारको प्रविष्ट करनेवाली तथा आभ्यंतरमें स्वेच्छा विहाररूप चित् चमत्कारसहित वह ऐसे शोभित होती है जैसे नगरकी धूम लेखा ॥ ८ ॥

बिसेशैलेतृणेभित्तावुपलेदिविभूतले ॥ सायथायोज्यतेयत्रतेननिर्यात्यलंतथा ॥ ९ ॥ संवित्तिःसैवया त्यंगरसाद्यंतंयथाक्रमम् ॥ रसेनापूर्णतामेतितंत्रीभारइवांबुना ॥ १० ॥ रसापूर्णायमाकारंभावयत्याशु

तत्तथा ॥ धत्तेचित्रकृतोबुद्धौरेखारामयथाकृतिम् ॥ ११ ॥ दृढभाववशादंतरस्थीन्याप्नोतिसाततः ॥ मातृगर्भनिषण्णेषुसुसूक्ष्मेवांकुरस्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—और कमलदंड पर्वत, तृण, भित्ति, पाषाण, स्वर्ग तथा भूतलादिमें जहां प्राप्त होनेको नियुक्त की जाती है वहांही निकलकर पूर्णरीतिसे जाती है ॥ ९ ॥ और वही कुंडलिनी शक्ति पूर्वकालमें अग्निमें उपसंहार किये रसभागको जब त्यागती है तब पुनः स्थूलभावनासे क्रमसे रससे ऐसे पूर्ण होजाती है जैसे कूपमें छोडा हुआ चर्मका पात्र (मोट वा चरसा) जलसे ॥ १० ॥ और रससे पूर्ण होकर जिस आकारकी भावना करती है उसी आकारको ऐसे शीघ्र धारण करती है जैसे चित्रकारकी बुद्धिमें रेखा ॥ ११ ॥ और अनंतर वही कुंडलिनी दृढ भावनाके वशसे अस्थि (हड्डी) आदिको ऐसे प्राप्त होती है जैसे माताके गर्भमें स्थित सूक्ष्म बीजशक्ति हस्तपादादि अंकुरकी स्थितिको ॥ १२ ॥

यथाभिमतमाकारंप्रमाणंवेत्तिराघव ॥ जीवशक्तिरवाप्नोतिसुमेर्वादितृणादिच ॥ १३ ॥ श्रुतंत्वयायोग साध्यमणिमाद्यर्थसाधनम् ॥ ज्ञानसाध्यमिदानींत्वंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ १४ ॥ एकंचिन्मात्रमस्तीहशुद्धंसौम्यमलक्षितम् ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंशांतंनजगन्नजगत्क्रिया ॥ १५ ॥ तच्चिनोत्यात्मनात्मानंसंकल्पोन्मुखतांगतम् ॥ यदातदाजीवइतिप्रोक्तमाविलतांगतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् यथाभिलषित सुमेरुआदिके तुल्य महान् वा तृणादिके तुल्य लघुप्रमाण आकारको वह जीवशक्ति प्राप्त करती है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! योगसे साध्य अणिमादिपदार्थका साधन तुम सुन चुके अब श्रवणका भूषण ज्ञानसाध्य क्रम तुम सुनो ॥ १४ ॥ एक, शुद्ध, सौम्य, अलक्षित सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म और शांत चिन्मात्र वस्तु इस संसारमें हैं और न यह जगत् न उसकी क्रिया है ॥ १५ ॥ वह चिन्मात्र जब अध्याससे अपनेको आपही संकल्पकी ओर उन्मुख करताहै उससमय कलुषताको प्राप्त जीव ऐसा कहाजाताहै ॥ १६ ॥

असत्यमेवसंकल्पभ्रमेणेदंशरीरकम् ॥ जीवःपश्यतिमूढात्माबालोयक्षमिवोद्धतम् ॥ १७ ॥ यदातुज्ञान दीपेनसम्यगालोकआगतः ॥ संकल्पमोहोजीवस्यक्षीयतेशरदभ्रवत् ॥ १८ ॥ शांतिमायातिदेहोयंसर्वसंकल्पसंक्षयात् ॥ तदाराघवनिःशेषंदीपस्तैलक्षयेयथा ॥ १९ ॥ निद्राव्यपगमेजंतुर्यथास्वप्नंनपश्यति ॥ जीवोहिभावितेसत्येतथादेहंनपश्यति ॥ २० ॥

अर्थ—और वही जीव असत्यही भावना वशसे अपने स्थूलशरीरको ऐसे देखताहै जैसे मूढबालक उद्धत यक्षको ॥ १७ ॥ और जब ज्ञानदीपसे सम्यक् प्रकाशमें प्राप्त होताहै तब इस जीवका शरत्कालके मेघके समान संकल्पका मोह क्षीण होजाताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! संकल्पके क्षयसे यह स्थूलदेह सर्वथा ऐसे शान्त होजाताहै जैसे तैलरहित दीपक ॥ १९ ॥ जैसे निद्राके नष्ट होनेपर प्राणी स्वप्न नहीं देखता ऐसेही सत्यके जाननेसे यह जीव देहको नहीं देखता२०

अतत्त्वेतत्त्वभावेनजीवोदेहावृतःस्थितः ॥ निर्देहोभवतिश्रीमान्सुखीतत्त्वैकभावनात् ॥ २१ ॥ अनात्मनिशरीरादावात्मभावनमंगयत् ॥ सूर्याद्यालोकदुर्भेदंहार्दंतद्दारुणंतमः ॥ २२ ॥ आत्मन्येवात्मभावेनसर्वव्यापिनिरंजनम् ॥ चिन्मात्रममलोस्मीतिज्ञानादित्येननश्यति ॥ २३ ॥ अन्येचविदितात्मानो भावयंतियथैवयत् ॥ तत्तथैवाशुपश्यंतिदृढभावनयातया ॥ २४ ॥

अर्थ—अतत्व देहादिमें तत्वकी भावनासे यह जीव देहसे युक्त स्थित रहताहै और एकतत्व ब्रह्मकी भावनासे देहरहित सुखी रहताहै ॥ २१ ॥ हे प्रियरामजी ! अनात्मा शरीरादिमें जो आत्माकी भावना है वह भयंकर तम सूर्य्यादिके प्रकाशसे नहीं जासकता ॥ २२ ॥ किंतु आत्मामें आत्मभावनासे सर्वव्यापी निरंजन और निर्मल चिन्मात्र मैं हुं इस ज्ञानरूपी सूर्य्यसेही नष्ट होताहै ॥ २३ ॥ अन्य आत्मज्ञानी सत्यसंकल्प महात्माजन जैसी भावना करतेहैं वे अपनी उस दृढभावनासे शीघ्र वैसाही देखतेहैं ॥ २४ ॥

दृढभावानुसंधानाद्विमूढाअपिराघव ॥ विषंनयंत्यमृततामम्रतंविषतामपि ॥ २५ ॥ एवंयथायदेवेहभाव्यतेदृढभावनात् ॥ भूयतेहितदेवाशुतदित्यालोकितंमुहुः ॥ २६ ॥ सत्यभावनदृष्टोयंदेहोदेहोभवत्यलम् ॥ दृष्टस्त्वसत्यभावेनव्योमतांयातिदेहकः ॥ २७ ॥ अणिमादिपदप्राप्तौज्ञानयुक्तिरितिश्रुता ॥ भवतासाधुनारामयुक्तिमन्यामिमांशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दृढभावनाके अनुसंधानसे अतिमूढभी विषको अमृतके तुल्य भोजन करते हैं और अमृतके समान दुग्ध अन्नादिको विषकी भावनासे विष बनालेतेहैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार दृढभावनासे जिस पदार्थकी जब जैसी भावना की जाती है तब वैसाही शीघ्र होजाताहै यह वार्ता संसारमें अनेकवार दृष्ट है ॥ २६ ॥ सत्यकीभाव-

नासे दृष्ट यह देह देहहोजाताहै और असत्यभावसे दृष्ट ब्रह्माकाशरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! अणिमादि पदकी प्राप्तिमें साधु स्वरूप तुमने ज्ञानयुक्ति इसप्रकारसे सुनी अब तुम अन्य युक्ति सुनो ॥ २८ ॥

रेचकाभ्यासयोगेनजीवःकुंडलिनीगृहात् ॥ उद्धृत्ययोज्यतेयावदामोदःपवनादिव ॥ २९ ॥ त्यज्यतेविरतस्पंदोदेहोयंकाष्ठलोष्ठवत् ॥ देहेपिजीवेपिमतावासेचकइवादरः ॥ ३० ॥ स्थावरेजंगमेवापियथाभिमतयेच्छया ॥ भोक्तुंतत्संपदंसम्यग्जीवोंतर्विनिवेश्यते ॥ ३१ ॥ इतिसिद्धिश्रियंभुक्त्वास्थितंचेतद्वपुः पुनः ॥ प्रविश्यतेस्वमन्यद्वायद्यतातविरोचते ॥ ३२ ॥ देहादयस्तथाबिंबान्व्याप्तवत्याखिलानथ ॥ संविदाजगदापूर्यसंपूर्णस्थीयतेथवा ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वासदाभ्युदितमुज्झितदोषमीशोयद्यद्यथासमभिवांछतिचित्प्रकाशः ॥ प्राप्नोतितत्तदचिरेणतथैवरामसम्यक्पदंविदुरनावरणत्वमेव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने अणिमादिलाभयोगोपदेशो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! रेचकके अभ्याससे कुंडलिनीरूप गृहसे निकालके जब जीवको अन्य देहमें ऐसे नियुक्त करताहै जैसे पवनमें संलग्न सुगंधको घ्राणमें ॥ २९ ॥ तब चेष्टारहित इस देहको काष्ठ पाषाणके तुल्य त्याग देताहै और दूसरेकी संपत्ति भोगनेके लिये उसके देह जीव तथा बुद्धिमें स्थावर वा जंगममें अपने जीवको अपनी इच्छानुसार ऐसे प्रविष्ट करताहै जैसे सींचनेवाला जिस वृक्ष वा लताको सींचना चाहताहै उसीको आदरसे सींचताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसप्रकार योगी अन्यकी शरीरमें सिद्धिकी संपत्तिको भोग करके यदि अपना शरीर बना रहताहै तो उसीमें पुनः प्रविष्ट होताहै अथवा अन्य जो इसको रुचती है उसीमें प्रविष्ट होताहै ॥ ३२ ॥ अथवा योगीजन अन्य शरीरमें भोगके पश्चात् स्थावरजंगमादि सब प्रतिबिंबभूत उपाधियोंको और बिंबभूत सब जीवोंको तथा जगत् अपनी व्याप्तिसे पूर्ण करके स्थित रहताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! योगके ऐश्वर्य्यसे संपन्न चित्प्रकाश सदा दोषरहित, नित्य उदयको प्राप्त अपने स्वरूपको जानकर जो २ चाहताहै वह २ शीघ्रही प्राप्त करताहै, परंतु तत्वज्ञानी इन अल्प सिद्धियोंको बहुत नहीं समझता किंतु निरतिशय आनंदरूप अपने आत्माकोही अधिक मानताहै ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे अणिमादिलाभयोगोपदेशो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चूडालाकी सिद्धिके विभव, राजाका अज्ञान, और गुरुके उपदेशकी सफलतामें किराट्काख्यान इस ८३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अणिमादिगुणैश्वर्ययुक्तासानृपभामिनी ॥ एवंबभूवचूडालाघनाभ्यासवतीसती॥१ जगामाकाशमार्गेणविवेशांबुधिकोटरम् ॥ चचारवसुधापीठंगंगेवामलशीतला ॥ २ ॥ क्षणमप्यगता भर्त्तुर्वक्षसश्चेतसस्तथा ॥ सर्वेषूवासराज्येषुलक्ष्मीरिवजगत्सुच ॥ ३ ॥ आकाशगामिनीश्यामाविद्युत्प्रारंभभूषणा ॥ बभ्राममेघमालेवगिरिमालामहीतले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! पूर्वोक्तरीतिसे प्राणधारणादि दृढअभ्याससे राजाकी स्त्री वह चूडाला अणिमादि सिद्धियोंके गुणोंसे सम्पन्न हुई ॥ १ ॥ मोहकी कलुषता तथा तीनों तापके नाशसे गंगाके समान निर्मल और शीतल वह चूडाला कभी तो आकाशमार्गसे जाती, कभी समुद्रके कोटरमें प्रवेश करती और कभी इस भूमंडलपर भ्रमण करतीथी ॥ २ ॥ उस सिद्धिकेद्वारा अपने पतिके वक्षस्थल तथा चित्तसे क्षणभरकेलियेभी वियुक्त नहीं होतीथी और सब राज्योंमें तथा सब लोकोंमें लक्ष्मीके समान वह निवास करतीथी ॥३॥ विद्युत्के समान प्रकाशमान आभूषणोंसे शोभित वह आकाशमार्गसे गमन करतीहुई ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे पर्वतोंसे संयुक्त भूतलमें मेघमाला ॥४

काष्ठंतृणोपलंभूतंखंवातमनलंजलम् ॥ निर्विघ्नमविशत्सर्वंतंतुर्मुक्ताफलंयथा ॥५॥ मेरोरुपरिशृंगाणिलोकपालपुराणिच ॥ दिग्व्योमोदरंध्राणिविजहारयथासुखम् ॥ ६ ॥ तिर्यग्भूतपिशाचाद्यैःसहनागामरासुरैः ॥ विद्याधराप्सरःसिद्धैर्व्यवहारंचकारसा ॥ ७ ॥ यत्नेनतंचभर्तारमात्मज्ञानामृतंप्रति ॥ बहुशो बोधयामासचूडालानविवेदसः ॥ ८ ॥

अर्थ—काष्ठ, तृण, पाषाण, भूत, आकाश, वायु, अग्नि और जल आदि सबमें निर्विघ्नतापूर्वक उसने ऐसे प्रवेश किया जैसे सूत्र मुक्ताफल (मोती) में ॥ ५ ॥ मेरुके शिखरोंपर, लोकपालोंके नगरोंमें, और दिशा तथा आकाशके अन्तरालोंमें उस चूडालाने सुखपूर्वक विहार किया ॥ ६ ॥ पशु पक्षी आदि, पिशाचादि तथा नाग देव और दैत्योंके साथ, और विद्याधर, अप्सरा तथा सिद्धोंके साथ उसने भाषणादि व्यवहार किया ॥ ७ ॥ और अनेकबार बहुत यत्नसे अपने पतिको चूडालाने ज्ञानामृतका उपदेश दिया परन्तु उसको ज्ञान नहीं हुआ ॥ ८ ॥

कलाविदग्धामुग्धाचबालेयंगृहिणीमम ॥ इत्येवंकेवलंराजासचूडालांविवेदताम् ॥ ९ ॥ एतावतापि कालेनतामेवंगुणशालिनीम् ॥ बालोविद्यामिवनृपश्चूडालांनविवेदसः ॥ १० ॥ साप्यलब्धात्मविश्रां तेस्तांसिद्धिश्रियमात्मनः ॥ दर्शयामासनोराज्ञःशूद्रस्येवमखक्रियाम् ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ महत्याः सिद्धयोगिन्यास्तस्याअपिशिखिध्वजः ॥ यत्नेनप्रापनोबोधंबुद्ध्यतेन्यःकथंप्रभो ॥ १२ ॥

अर्थ— सब कलाओंमें प्रवीण, मुग्धा तथा बाला यह मेरी गृहिणी है केवल ऐसा ही उस चूडालाको राजा जानता था ॥ ९ ॥ इतने कालमें और ऐसे अनेक सिद्धि आदि गुणोंसे संपन्न उस चूडालाको राजाने ऐसे नहीं जाना जैसे बालक विद्याको ॥ १० ॥ आत्मामें विश्राम न पानेवाले उस राजाको चूडालानेभी अपनी सिद्धि की श्री ऐसे नहीं देखलाया जैसे शूद्रको यज्ञ की क्रिया ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! यदि उस महासिद्ध योगिनीकीभी राजा शिखिध्वजको बडे प्रयाससे उपदेश देनेमें शक्ति न हुई तो अन्य गुरूओंकी कैसे हो सकती है ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उपदेशक्रमोरामव्यवस्थामात्रपालनम् ॥ ज्ञप्तेस्तुकारणंशुद्धाशिष्यप्रज्ञैवराघव ॥१३॥ नश्रुतेननपुण्येनज्ञायतेज्ञेयमात्मनः ॥ जानात्यात्मानमात्मैवसर्पःसर्पपदानिव ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच॥ एवंस्थितेवाथमुनेकथमेतज्जगत्स्थितौ ॥ क्रमोगुरूपदेशाख्यःस्वात्मज्ञानस्यकारणम् ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्यंतकृपणःकश्चित्किराटोधनधान्यवान् ॥ अस्तिविंध्यटवीकक्षेकुटुंबीब्राह्मणोयथा ॥१६

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! उपदेशका क्रम केवल शास्त्रकी मर्य्यादा " तद्विज्ञानार्थं स गुरूमेवाभिगच्छेत् " (आत्माके जाननेकोलिये गुरूकेही निकट जाना चाहिये इसमर्य्यादा) को पालनेके अर्थ है और ज्ञानकेलिये तो शुद्ध शिष्यकी बुद्धिहि कारण है ॥१३॥ वेदांतसे भिन्न अन्यशास्त्रके पठन तथा पुण्यसेभी आत्माका ज्ञेय नहीं जानाजाता किंतुआत्माही आत्माको ऐसे जानता जैसे सर्प सर्पके पादोंको ॥ १४ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो इस जगत्में गुरूका उपदेश आत्मज्ञानमें कैसे कारण है ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजीबोले—हे रामजी ! विंध्याचलके प्रदेशमें धनधान्यसे संपन्न तथा अति कृपण कोई किराट (बहेलिया) ऐसे रहता था जैसे कुटुंबी ब्राह्मण ॥ १६ ॥

तस्यैकदानिपतितागच्छतोविंध्यजंगले ॥ एकावराटिकारामतृणजालकसंवृते ॥ १७ ॥ कार्पण्यात्सप्र यत्नेनसर्वतृणतुषादिकम् ॥ कपर्दिकार्थमभितोद्धावदिवसत्रयम् ॥१८॥ कपर्दिकाःस्युर्भवताचत्वारो ष्टौचकालतः ॥ ततःशतंसहस्रंचसहस्रेचेतिचेतसा ॥ १९ ॥ कलयन्जंगलेदीनोरात्रिंदिवमतंद्रितः ॥ जनहासंसहस्राणिबुबुधेनपरंतुसः ॥ २० ॥

अर्थ— एक समय विंध्याचलके जंगलमें जाते समय उसकी एक कौडी तृणसमूहमें गिरगई ॥ १७ ॥ कृपणताके कारणसे उस कौडीके लिये सब तृण तथा घास आदिको तीनतक चारोओर ढूंढतारहा ॥ १८ ॥ यदि यह कौडी मेरे हस्तमें आजातीतो पुनः उनके क्रयविक्रयसे आठ होती इसी प्रकार उनसे शतसहस्र वा दो सहस्र होती ऐसे चित्तसे ॥ १९ ॥ उस कृपणने रात्रिदिन आलस्यरहित होकर विचार करतेहुये मनुष्योंके सहस्रों हास्यपर ध्यान नहीं दिया ॥ २० ॥

ततोदिनत्रयस्यांतेतेनतस्माच्चजंगलात् ॥ पूर्णेंदुबिंबप्रतिमोलब्धश्चिंतामणिर्महान् ॥ २१ ॥ तंप्राप्यतुष्ट हृदयःसमागम्यगृहंसुखम् ॥ प्राप्ताखिलजगद्भूतिःशांतसर्वतयास्थितः ॥ २२ ॥ एवंयथाकिराटेनकप र्दान्वेषणेनतत् ॥ रत्नंलब्धंजगन्मूल्यमहोरात्रमखेदिना ॥२३॥ तथाश्रुतोपदेशेनस्वात्मज्ञानमवाप्यते ॥ अन्यदन्विष्यतेचान्याल्लभ्यतेहिगुरुक्रमात् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् तीन दिनके परिश्रमके अन्तमें उस जंगलमें पूर्णचन्द्रमाके बिम्बकेसमान महान् चिन्तामणि उसने पाया ॥ २१ ॥ उस मणिके पानेसे प्रसन्न चित्त सुखपूर्वक अपने गृहमें आकर संसारके सब ऐश्वर्य

भोगादिके पानेसे और सब दरिद्रता आदि अनर्थोंकी शांतिसे सुखपूर्वक स्थितरहा ॥ २२ ॥ इसप्रकार जैसे खेद रहित किराटने कौडीके खोजनेमें जगत्का मूल्य चिंतामणि पाया ॥ २३ ॥ ऐसेही शास्त्रके उपदेशसेभी आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है गुरुके उपदेशसे शब्दजन्य परोक्षका आवेषण होताहै और नित्य अपरोक्ष आत्मज्ञान प्राप्त होताहै २४

ब्रह्मसर्वेंद्रियातीतंश्रुतार्दीद्रियसंविदः ॥ तेनोपदेशादनघनात्मतत्त्वमवाप्यते ॥ २५ ॥ गुरूपदेशंचवि नानात्मतत्वागमोभवेत् ॥ केनचिंतामणिर्लब्धःकपर्दान्वेषणंविना ॥ २६ ॥ तत्त्वस्यास्यमहार्थस्यगुरू पकथनंगतम् ॥ अकारणंकारणतांमणेरिवकपर्दकः ॥२७॥ पश्यराघवमायेयंमोहनीमहतामपि ॥ अन्य दन्विष्यतेयत्नादन्यदासाद्यतेफलम् ॥ २८ ॥ अन्यत्कारीतिपुरुषःफलमन्यदेवप्राप्नोतियत्रिषुजगत्स्वव लोक्यतेच ॥ तस्मादनंतरभवस्यजगद्भ्रमस्यश्रेयोतिवाहनमसंगमनिच्छयैव ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० किराटोपाख्यानं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! ब्रह्म सब इंद्रियोंके ज्ञानसे परे है और शब्दके श्रवणसे शाब्दबोधद्वारा इंद्रियोंकी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं उनमें अति स्वच्छ शिष्यकी बुद्धिमें आत्मतत्वका स्फुरण होताहै इसलिये आत्मतत्व उपदेशसे नहीं प्राप्त होता ॥ २५ ॥ और गुरुके उपदेश बिना आत्मतत्वकी प्राप्तिभी नहीं होती क्योंकि कपर्दिका (कौडी) की खोज बिना चिंतामणि किसको मिलाहै ॥ २६ ॥ इस महान् अर्थरूप तत्वका गुरुका उपदेश कारण न होकरभी ऐसे कारण होगयाहै जैसे कपर्दिकाका अन्वेषण चिन्तामणिका ॥ २७ ॥ हे रामजी ! देखो यह माया महात्माओंकोभी मोहित करलेती है कि यत्नसे अन्यवस्तुका अन्वेषण करते अन्य फल प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ हे रामजी ! पुरुष अन्य कार्य यत्नसे करताहै और अन्य फल प्राप्त होताहै इसप्रकार तीनोंलोकमें देखा और सुनाजाताहै इसलिये आत्मज्ञानके लाभके पश्चात् शेषप्रारब्धसे प्राप्त जगत्के भ्रमको असंग तथा अनिच्छासे बीताना यही कल्याणदायकहै२९

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे किराटोपाख्यानं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

शिखिध्वजका वैराग्य, और बनमें चूडालाका आश्वासन और रात्रिमें शिखिध्वजका गमन तथा मन्दराचलपर स्थिति इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततःशिखिध्वजोराजातत्त्वज्ञानपदंविना ॥ आजगाममपरंमोहंतमोंधत्वमिवाप्रजाः॥१ दुःखाग्निदीपितमनामनागपिविभूतिषु ॥ तास्वभीष्टोपनीतासुनरेमेग्निशिखास्विव ॥ २ ॥ एकांतेषुदि गंतेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ आजगामरतिंजंतुर्मुक्तेषुव्र्याधतोयथा ॥ ३ ॥ राघवत्वमिवाशेषाःसांत्वानुनय बोधनैः ॥ प्रार्थितःकार्यतेभृत्यैर्महीपोदिवसक्रियाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर शिखिध्वजराजा तत्वज्ञानके बिना महामोहमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे पुत्ररहित मनुष्य महा अन्धताको ॥ १ ॥ हे रामजी ! दुःखाग्नि सन्तप्त चित्त वह राजा अभीष्ट पदार्थोंको प्राप्त करनेवाली राज्यकी विभूतियोंमें किंचित्भी ऐसे नहीं रमण करताथा जैसे अग्निकी ज्वालाओंमें ॥ २ ॥ एकांत स्थानोंमें, दिगंतोंमें, झरनोंमें तथा कन्दराओंमें उसकी प्रीति ऐसे हुई जैसे बाणके छोडनेपर व्याधसे मृग आदिकी॥३॥हे रामजी ! तुमारे समान धैर्य्यपूर्वक बोधनसे भृत्योंकी प्रार्थनासें वह राजा दैनिक क्रियाओंको करताथा॥४

नित्यमुद्दामवैराग्यःपरिव्राडिवशांतधीः ॥ खिद्यतेचमहाभोगान्सभोक्तुंचश्रियंस्थितः ॥ ५ ॥ ददाव तितरांदानंगोभूमिकनकादिकम् ॥ देवेभ्योब्राह्मणेभ्यश्चस्वजनेभ्यश्चमानद ॥ ६ ॥ चचारचतपःकर्तुं कृच्छ्रचांद्रायणादिकम् ॥ परिबभ्रामतीर्थानिवनान्यायतनानिच ॥ ७ ॥ सतथापिविशोकत्वंनमनाग पिलब्धवान् ॥ अनिधानांखनन्भूमिंनिधानार्थीनिधिंयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—नित्य प्रबल वैराग्यवान् और संन्यासीके तुल्य शांतबुद्धि राजा शिखिध्वज महाभोगोंको तथा राज्यकी लक्ष्मीको भोगनेमें खेदित होताथा ॥ ५ ॥ हे मानद रामजी ! देवताओंको ब्राह्मणोंको और आत्मीयजनोंको गौ, भूमि, तथा सुवर्ण आदिका बहुत दान दिया ॥ ६ ॥ तप करनेके लिये कृच्छचांद्रायण आदि व्रतोंको किया, तथा बन तथा

पवित्रस्थानोंमें भ्रमण किया ॥ ७ ॥ तथापि शोकके अभावको किंचित्भी ऐसे नहीं पाया जैसे निधिका अर्थी निधानरहित भूमिको खोदनेसे निधिको ॥ ८ ॥

रात्रिंदिवंमहानेषशुष्यत्येवकृशानुना ॥ चिंतयाचिंतयामाससंसारव्याधिभेषजम् ॥ ९ ॥ चिंतापरवशो दीनोराज्यंस्वस्यविषोपमम् ॥ महाविभवमप्यग्रेनापश्यत्खिन्नयाधिया ॥ १० ॥ अथैकदैकांतगतांचूडालामंकमागताम् ॥ इदंमधुरयावाचासमुवाचशिखिध्वजः ॥ ११ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ भुक्तंराज्यंचिरंकालंभुक्ताविभवभूमयः ॥ अधुनास्मिविरागेणयुक्तोगच्छामिकाननम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह महानुभाव राजा रात्रि दिन चिंतारूप अग्निसे सूखता जाताथा और संसाररूप व्याधिका औषध चिंतन किया ॥ ९ ॥ चिंतासे परवश दीन राजा अपने राज्यको विषके समान देखताथा और संमुख महाविभवकोभी खिन्नबुद्धिसे नहीं देखताथा ॥ १० ॥ इसके पश्चात् एकसमय एकांतस्थानमें अंकमें स्थित चूडालासे राजा शिखिध्वज मधुर वाणीसे यह बोला ॥ ११ ॥ राजा शिखिध्वज बोला—हे प्रिये! चिरकालतक राज्य भोगा और अनेक विभवभी भोगे अब वैराग्यसे युक्तहुं और बनको जाताहुं ॥ १२ ॥

नसुखानिनदुःखानिनापदोनचसंपदः ॥ क्रोडीकुर्वंतितन्वंगिमुनिंवननिवासिनम् ॥ १३ ॥ नदेशभंगसंमोहोनसंग्रामेजनक्षयः ॥ राज्यादप्यधिकंमन्येसुखंवननिवासिनाम् ॥ १४ ॥ स्तबकस्तनधारिण्योरक्तपल्लवपाणयः ॥ मंजरीजालहारिण्योलोलशुभ्राब्दांशुकाः ॥ १५ ॥ स्वपरागांगरागिण्यःकृतकौसुममंडनाः ॥ आसेव्यकांचनशिलानितंबतटशोभिताः ॥ १६ ॥ तरंगमौक्तिकप्रोतसरिन्मुक्तालतावृताः ॥ लतावयस्यावलितामुग्धमुग्धमृगात्मजाः ॥ १७ ॥

अर्थ—हे सूक्ष्मांगि! बननिवासी मुनिको न दुःख, न सुख, न आपत्ति तथा न संपत्ति मोहित करसकती हैं ॥ १३ ॥ और बननिवासी मुनिको देशके भंगका मोह और संग्राममें मनुष्योंका नाश नहीं देखना पडता और मैं तो बननिवासियोंका सुख राज्यसेभी अधिक मानताहुं ॥ १४ ॥ हे बरानने! पुष्पोंके गुच्छेरूप स्तनको धारण करनेवाली, रक्त पल्लवरूप हस्तधारिणी बनकी वीथियां (गैलियां) तुमारे समान मुझे रमण कराती हैं ॥ १५ ॥ अपने अंगरागसे रागिणी, पुष्पोंके आभूषणोंसे शोभित, और सेवन करनेयोग्य सुवर्णकी शिलारूप नितंबतटसे शोभायुक्त तरंगरूपी मोतियोंके समूहसे गूंथी हुई नदीरूप मुक्ता लताओंसे आच्छादित, लतारूप सखियोंसे घिरी हुई और मुग्ध मृगरूप बालकोंसे युक्त बनकी गलियां तुमारे समान मुझे रमण कराती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्वभावोद्दामसौगंध्यावितीर्णफलभोजनाः ॥ षट्पदश्रेणिनयनाःपुष्पापूरलतांगिकाः ॥ १८ ॥ आस्वाद्यस्यंदतांयाताःशीतलामलगात्रिकाः ॥ रमयंतित्वमिवमांवनवीथ्योवरानने ॥ १९ ॥ यथाविविक्तमेकांतमनोभवतिनिर्वृतम् ॥ नतथाशशिबिंबेषुनचब्रह्मेंद्रसद्मसु ॥ २० ॥

अर्थ—स्वभावसेही उग्र सुगंधधारिणी भ्रमरोंकी पंक्तिरूप नेत्रधारिणी, क्षुधार्तोंको फलरूप भोजन देनेवाली, पुष्पोंसे पूर्ण लतारूप अंगवाली, तुमारे अधरामृतके समान आस्वाद्य झरनोंसे युक्त और शीतल तथा निर्मल अंगवाली बनकी श्रेणी मुझे रमण कराती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे प्रिये! एकांत वनस्थानमें मन जैसा सुखी होताहै वैसा न चंद्रबिंबमें न ब्रह्मा वा रुद्रके स्थान (कैलास वा ब्रह्मलोक) में सुखी नहीं होता ॥ २० ॥

अस्मिन्सन्मंत्रणेतन्विनविघ्नंकर्तुमर्हसि ॥ भर्तुर्विघटयंतीच्छांनस्वप्नेपिकुलस्त्रियः ॥ २१ ॥ चूडालोवाच ॥ प्राप्तकालंकृतंकार्यंराजतेनाथनेतरत् ॥ वसंतेराजतेपुष्पंफलंशरदिराजते ॥ २२ ॥ जराजरठदेहानांयुक्तोवनसमाश्रयः ॥ नयूनांत्वादृशामेवतेनैतन्मेनरोचते ॥ २३ ॥ यौवनेनमहाराजनयावद्वयमुज्झिताः ॥ पुष्पौघेणेवतरवस्तावच्छोभामहेगृहे ॥ २४ ॥

अर्थ—हे प्रिये! इस बनगमनरूप उत्तम विचारमें तुम विघ्न करने योग्य नहीं हो क्योंकि कुलबधू (सतीस्त्री) जन अपने पतिकी इच्छाके प्रतिकूल नहीं करती ॥ २१ ॥ चूडाला बोली—हे प्राणनाथ! समयके अनुकूलही कार्य्य शोभा देताहै न कि अन्य, क्योंकि वसन्तके पुष्प वसन्तमेंही शोभते हैं न कि शरद्में ॥ २२ ॥ हे प्रिय! वृद्धावस्थासे ग्रस्त देहवालोंकाही बन निवासयुक्त है न कि तुमारे सदृश युवा पुरुषोंको इसलिये अभी आपका बनगमन इष्ट नहीं है ॥ २३ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे वृक्षोंके समान जबतक हम लोग युवावस्थासे व्यक्त नहीं तब तक गृहमें निवास करेंगे ॥ २४ ॥

(१) राजाके वैराग्यकी दृढता जाननेके लिये चूडाला विषयासक्तिकीही प्रशंसा करतीहै यथार्थमें बनगमनमें उसकीअनुमतीहै ॥

पुष्पधानापुष्पमितजरसासहकाननम् ॥ समंगृहाद्रमिष्यामोहंसाइवसरोवरात् ॥ २५ ॥ अप्राप्तकालं नृपतेप्रजापालनमुज्झतः ॥ राजन्यस्यैवरंध्रस्यमहदेनोभविष्यति ॥ २६ ॥ अप्राप्तकारिणंभूपंरोधयंतिच वैप्रजाः ॥ रोधयंतिह्यकार्येभ्यःप्रभुंभृत्याःपरस्परम् ॥ २७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ अलमुत्पलपत्राक्षिवि घ्नेनाभिमतस्यमे ॥ विद्धिमांगतमेवेतोदूरमेकांतकाननम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! जब २ वे पुष्पयुक्त लताओंके समान हमलोग अपने शिरपर केश धारण करैंगे तब बनमें चलैंगे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! बिना समयके प्रजापालन त्यागनेवाले राजाके राज्यछिद्रका बडा पाप होताहै ॥ २६ ॥ हे प्रिय ! समय प्राप्तहुए बिना कार्य करनेवाले राजाको प्रजागण रोकतेहैं, क्योंकि अकार्य्य करनेसे भृत्युगण परस्पर अपने स्वामीको रोकतेहैं ॥ २७ ॥ शिखिध्वज बोला कि–हे कमलनेत्रे ! इस मेरे अभीष्टकार्यमें तुम विघ्न न करो क्योंकि मुझे अब दूर एकांत बनमें प्राप्तही समझो ॥ २८ ॥

बालात्वमनवद्यांगिनागंतव्यंवनंत्वया ॥ पुंसामपिहिमृद्वंगिदुर्विगाह्योवनाश्रयः ॥ २९ ॥ समर्थानवना वासेयोषितःकठिनाअपि ॥ काननेपुष्पमंजर्यःसोढुंशस्त्रालिमक्षमाः ॥ ३० ॥ भवत्यापालयंत्येहराज्ये स्थातव्यमुत्तमे ॥ कुटुंबभारोद्वहनंपत्यौयातेव्रतंस्त्रियः ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वादयितांरा जाताभिंदुवदनांवशी ॥ उत्तस्थौस्नातुमखिलंदिनंकार्यंचकारच ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे अनिंदित शरीरवाली ! तुम अभी बाला हो तुमको बनमे नहीं आना चाहिये क्योंकि बनका निवास पुरुषोंको अतिकष्टसाध्यहै ॥ २९ ॥ हे कोमलांगि ! कठोर अंगवाली स्त्रियांभी बन निवासके ऐसे असमर्थ हैं जैसे बनमें उत्पन्नभी पुष्पलता शस्त्रोंकी पंक्तिसहन करनेमें ॥३०॥ हे शोभने ! इस राज्यका पालन करतीहुई तुम राज्यमें स्थित रहना क्योंकि पतिके चले जानेपर कुटुंब वा राज्यका पालन करना स्त्रियोंका व्रत हैं ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जितेन्द्रिय राजचन्द्रवदनी अपनी प्रियासे राजा इतना कहके स्नान करनेको उठा और अपना आन्हिक सब कार्य्य किया ॥ ३२ ॥

अथोज्झितप्रजाचेष्टोरविरस्ताचलंययौ ॥ शिखिध्वजोवनमिवसमस्तजनदुर्गमम् ॥ ३३ ॥ संहृत्यविततं रूपंतमेवानुययौप्रभा ॥ नाथंभवननिष्क्रांतंचूडालेवानुरागिणी ॥ ३४ ॥ आययौयामिनीश्यामाभुवनं भस्मधूसरम् ॥ धृतव्योमापगंशर्वंसंश्लेषायमुनेवसा ॥ ३५ ॥ दिक्षुसंध्याब्ददंतासुस्थितासुकृतमंडलम् तमालबालकांकासुज्योत्स्नाहासोदयांकितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सब प्रजाओंकी चेष्टाओंको त्यागकर सूर्य्यभगवान् अस्ताचलको ऐसे गये जैसे राजा शिखिध्वज समस्त प्रजाजनोंसे दुर्गमबनको ॥ ३३ ॥ अपने व्यापकरूपका उपसंहार करके प्रभा सूर्यके पीछे ऐसे गई जैसे राजभवनसे निकलेहुये अपने स्वामीके पीछे अनुरागिणी चूडाला ॥ ३४ ॥ भस्मसे धूसरके तुल्य भुवनमें रात्रि ऐसे आई जैसे विभूति तथा गंगाजीको धारण करनेवाले महादेवजीको आलिंगन करनेवाली यमुना ॥ ३५ ॥ सन्ध्याकालमें मेघरूप दन्तधारिणी, तथा तमाल बालकोंको अंकमें लियेहुई चन्द्रचन्द्रिकारूपी हास तथा मण्डलाकार जिससमय सब दिशा स्थित थीं उससमय तारागण देखपडा ॥ ३६ ॥

गच्छतोरपरंपारंदंपत्योर्मेरुवंपदम् ॥ देवोद्यानमयंरंतुदिनश्रीदिननाथयोः ॥ ३७ ॥ आगच्छतोरिदंपारं ह्यघतीक्ष्णकरोज्झितम् ॥ निशानिशानायकयोर्दंपत्योर्मेरुवंपुनः ॥ ३८ ॥ तारागणोथददृशेविकीर्णोव्यो मकुट्टिमे ॥ मुक्तोमंगललाजानांदिग्वधूभिरिवांजलिः ॥३९॥ चंद्राननातमःश्यामाश्रांताकुसुमहासिनी॥ यामिनीयौवनंप्रापसरोजमुकुलस्तनी ॥ ४० ॥

अर्थ—और दिनकी शोभा तथा सूर्यरूप स्त्रीपुरुष जब देवताओंके उद्यानमय मेरुके दुसरेपारमें रमणकरनेको जातेथे उससमय तारागण देखपडा ॥ ३७ ॥ और धर्मरूप तीक्ष्णकरोंसे व्यक्त मेरूके इसपार जब निशा तथा निशानायक (चंद्र) रूप स्त्रीपुरुष रमणकरनेको आतेथे उससमय आकाशरूप अटारीपर दिशारूप स्त्रियोंसे फेंकेहुये मंगललाजा (लावा) केसमान तारागण देखपडा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और चंद्ररूपमुखसे शोभित अंधकारसे श्यामवर्ण, अपने प्रियके खोजनेमें श्रांतके तुल्य कुमुद आदि पुष्पोंसे हास्ययुक्त और रात्रिकमलरूपस्तनसे शोभित रात्रि योवनको प्राप्त हुई ॥ ४० ॥

कृतसंध्यासमाचारःसहचूडालयेष्टया ॥ सुष्वापशयनेभूयोमैनाकइवसागरे ॥ ४१ ॥ अथार्धरात्रसमये देशेनिःशब्दतांगते ॥ घननिद्राशिलाकोशनिलीनेसकलेजने ॥ ४२ ॥ सतस्यांसंप्रसुप्तायांशयनेकोमलां

शुके ॥ भृशंनिद्राविमूढायांभ्रमर्यामिवपंकजे ॥ ४३ ॥ तत्याजदयितांसुप्तामंकाद्राजाशिखिध्वजः ॥ स्वैरंस्वैरंमुखंराहोर्दिशंचांद्रप्रभामिव ॥ ४४ ॥

अर्थ—उससमय संध्यादि कार्यको करके अपनी प्रिया चूडालाके शयनस्थानमें ऐसे सोगया जैसे पुनः समुद्रमें मैनाकपर्वत ॥ ४१ ॥ इसकेपश्चात् अर्धरात्रिके समयमें जबदेश शब्दरहित होगया, और जब घनीभूत निद्रारूप पाषाणकी शिलामें संपूर्ण जन लीनहोगयेथे उससमय वह ॥४२॥४३॥ राजा शिखिध्वजने अपनी सोईहुई प्रियाको ऐसे त्यागा जैसे पूर्वदिशामें राहुका मुख धीरे २ चंद्रमाकी प्रभाको ॥ ४४ ॥

उत्तस्थौशयनाल्लीनवधूकार्धचलांशुकात् ॥ सलक्ष्मीकांतिलोलोर्मेर्हरिःक्षीरार्णवादिव ॥ ४५ ॥ वीरक्रमार्थयामीतितत्रैवानुचरव्रजम् ॥ योजयित्वाजगामासौपुरान्निर्गत्यपूर्णधीः ॥ ४६ ॥ राज्यलक्ष्मिनमस्तुभ्यमित्युक्त्वामंडलाद्गतः ॥ विवेशोग्रामरण्यानीमेकोनदइवार्णवम् ॥ ४७ ॥ घनांधकारगुल्माढ्या क्षुद्रभूतौघकर्कशा ॥ सारण्यानीनिशासार्धसमंतेनातिवाहिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिसमें अर्द्धभागमें प्रिया शयनकरतीथी ऐसे चंचलवस्त्रयुक्त शयनस्थानसे राजा ऐसे उठा जैसे लक्ष्मीकी शोभासहित चंचलतरंगयुक्त क्षीरसागरसे विष्णुभगवान् ॥ ४५ ॥ और दुष्टचोर आदिके निग्रहके लिये रात्रि भ्रमणरूप वीरोंकेकार्यके अर्थ मैं जाताहुं ऐसा कहके अपने सेवकसमूहको वहांही नियुक्त करके वह निस्पृह राजा नगरसे निकला ॥ ४६ ॥ हे राज्यलक्ष्मी आपको नमस्कार है ऐसा कहके वह अपने राज्य-महलसे चला और एक भयंकर महाजंगलमें ऐसे प्रविष्टहुआ जैसे नद महासमुद्रमें ॥ ४७ ॥ घनीभूतअंधकार तथा लताओंसे पूर्ण, और क्षुद्रजंतुओंसे कर्कश उस महाजंगल तथा रात्रिको उसने पार किया ॥ ४८ ॥

प्रातःशून्यामरण्यानींसनीत्वाविततंदिनम् ॥ सममर्केणकस्यांचिद्विशश्रामवनावनौ ॥ ४९ ॥ भानावदृश्यतांयातेतत्रस्नानादिपूर्वकम् ॥ किंचित्फलादिकंभुक्त्वातांनिनायतमस्विनीम् ॥ ५० ॥ पुनःप्रातःपुराण्युच्चैर्मंडलानिगिरीन्नदीः ॥ जवाद्विलंघयामासराजाद्वादशशर्वरीः ॥ ५१ ॥ ततोमंदरशैलस्यतटस्थंजनदुर्गमम् ॥ प्रापकाननमत्यंतदूरस्थजनतापुरम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—और प्रातःकाल होनेपर संपूर्ण विशाल दिनभर महाजंगलमें चलतारहा और जब सूर्य्य भगवान् अस्ताचलको विश्राम करनेगये तब उसनेभी किसी वनकी भूमिमें विश्रामकिया ॥ ४९ ॥ सूर्यके अदृश्य होनेपर वहां स्नानसंध्यादि कार्य्यकरके और कुछ फलभोजन करके उस रात्रिको विताया ॥ ५० ॥ पुनः २ प्रातःकाल होनेपर बडे २ नगरोंको मंडलोंको, पर्वतोंको तथा नदियोंको वेगसे चलतेहुये राजानें वारहदिनमें उल्लंघन किया ॥ ॥ ५१ ॥ उसके अनंतर जिससे मनुष्योंके निवास अतिदूरथे ऐसे मंचराचलके तटपर स्थित तथा मनुष्योंसे दुर्गमजंगलमें प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥

रटत्प्रणालसलिलवापीबलितपादपम् ॥ शीर्णवेद्यालयज्ञातभूतपूर्वद्विजाश्रमम् ॥ ५३ ॥ क्षुद्रप्राणिविनिर्मुक्तसिद्धसेव्यलतालयम् ॥ आपूर्णपादपलतंप्राणवृत्तिकरैःफलैः ॥ ५४ ॥ तत्रैकस्मिन्समेशुद्धेस्थले सलिलमालिते ॥ शीतलेशाद्वलश्यामेस्निग्धेसफलपादपे ॥ ५५ ॥ समंजरीभिर्वल्लीभिःसचकारोटजालयम् ॥ प्रावृट्कालःसविद्युद्भिर्नीलाभ्रैरिवपंजरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिनमें शब्दपूर्वक जल बहताथा ऐसा वापियों (बावलियों) से वृक्षसहित, तथा प्राचीन वेदियोंसे पूर्वकालके ब्राह्मणोंके आश्रमोंको जतानेवाला वह बन था ॥ ५३ ॥ और क्षुद्रजीवोंसे रहित, सिद्धोंसे सेवनीय लतागृहोंसे युक्त तथा प्राणियोंकी जीविका करनेवाले फलोंसे नीचेसे ऊपरतक लदेहुये वृक्षोंसे पूर्ण वह जंगल था ॥५४॥ वहांपर जलसे वेष्टित, शुद्ध, शीतल, हरित घासोंसे श्यामवर्ण मनोहर और फलसहित वृक्षोंसे युक्त एक स्थानमें॥५५॥ नूतन पल्लवसहित लताओंकी उस राजानें एक पर्णशाला ऐसे बनाई जैसे बर्षाकालमे विद्युतसहित मेघोंसे पंजर॥५६॥

मसृणंवैणवंदंडंफलभोजनभाजनम् ॥ अर्धपात्रंपुष्पभांडमक्षमलांकमंडलुम् ॥५७॥ कंथांशीतापनोदाय बृसींचैवमृगाजिनम् ॥ आनीयायोजयत्तस्मिन्मठिकामंदिरेनृपः ॥ ५८ ॥ यत्किंचिदन्यद्वावस्तुयोग्यंतापसकर्मणि ॥ तत्तत्रस्थापयामासजगतीवक्रमंविधिः ॥ ५९ ॥ संध्यापूर्वंजपंप्रातःप्रहरेसतदाकरोत् ॥ पुष्पोच्चयंद्वितीयेतुस्नानंदेवार्चनंततः ॥ ६० ॥ पश्चाद्वनफलंकिंचिद्वनकंदंबिसादिच ॥ भुक्त्वाजप्यपरोभूत्वानिनायैकोनिशांवशी ॥ ६१ ॥ इतिदिवसमखेदंमंदरोपांतकच्छेविरचितउटजेंतर्मालवेशोनिनाय॥ नवनृपतिविलासंतंनसस्मारकंवास्फुरतिहृदिविवेकेराज्यलक्ष्म्योहरंति ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० शिखिध्वजप्रव्रज्या नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—और चिक्कण बांसका दंड, फल, भोजनके पात्र, अर्घपात्र, पुष्पपात्र, कमंडलु, रुद्राक्षकी माला, शीतसे रक्षाके लिये कंथा, यज्ञपात्र, और मृगचर्म इन सब पदार्थोंको लाके राजाने अपनी मठीमें स्थापित किया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ औरभी जो कुछ तपस्वियोंके कर्मके योग्य वस्तु हैं उन सबको राजाने उस कुटीमें ऐसे स्थापित किया जैसे ब्रह्मा अपने जगत्के व्यवहारकी वस्तु ॥ ५९ ॥ उस राजाने दिनके प्रथम प्रहरमें प्रातःकाल सन्ध्यापूर्वक जप, द्वितीय प्रहरमें पुष्पादिका संचय, और अनन्तर तृतीय प्रहरमें पुनः स्नान देवार्चनादि कार्योंको किया ॥ ६० ॥ और पश्चात् चतुर्थ प्रहरमें बनके फल, कंदमूल तथा कमलदंडादि कुछ भोजन करके जपमें तत्पर होके रात्रिको बिताया ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मन्दराचलके तटपर रचीहुई पर्णशालामें स्थित मालवदेशका स्वामी शिखिध्वजने खेदरहित होके जपादि करते हुये बहुत दिन बिताया, और अपने नूतन राज्यके विलासोंको कुछभी नहीं स्मरण किया क्योंकि हृदयमें विवेकके स्फुरित होनेपर राज्यकी लक्ष्मी किस दरिद्रीके चित्तकोभी हरण करसकतीहै ६२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडा० शिखिध्वजप्रव्रज्या नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

जागीहुई रानी चूडालाका राजाको खोजना मार्गमें उसको देखना राजाके भावीअर्थका देखना तथा काल पाके उसको बोध करना इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंशिखिध्वजःपूर्णमठिकायांवनेस्थितः ॥ इदानींशृणुचूडालासाकिंकृतवतीगृहे ॥ १ ॥ तत्रार्द्धरात्रसमयेदूरंयातेशिखिध्वजे ॥ हरिणीग्रामसुप्तेवचूडालाबुबुधेभयात् ॥ २ ॥ अपश्यत्पतिनिर्हीनाशयनंशून्यतांगतम् ॥ अभास्करमपूर्णेन्दुशांतशोभमिवांबरम् ॥ ३ ॥ उत्तस्थौकिंचिदाम्लानवदनाखेदशालिनी ॥ कुसिक्तेवमहावल्लीनिरुत्साहांगपल्लवा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार राजा शिखिध्वज सब वस्तुओंसे पूर्ण अपनी बनकी कुटीमें स्थितरहा अब चूडालाने अपने गृहमें क्या किया सो तुम सुनो ॥ १ ॥ वहांपर अर्द्धरात्रिके समयमें जब राजा शिखिध्वज दूर चलागया तब ग्राममें सोईहुई हरिणीके तुल्य भयसे रानी जागी ॥ २ ॥ पतिसे त्यागीहुई चूडालाने शयन स्थानको ऐसे शून्य देखा जैसे सूर्यसे शून्य तथा अपूर्ण चन्द्रमायुक्त शोभारहित आकाशको ॥ ३ ॥ कुछ म्लानमुख खेदयुक्त और उत्साहरहित अंगरूपपल्लवोंसेयुक्त शयनस्थानसे ऐसे उठी जैसे क्षार वा कर्दमआदिसे सींचीहुई महालता ४

नप्रसन्नानविमलाबभूवाकुलतांगता ॥ दिनश्रीरिवनीहारधूसरासाव्यतिष्ठत ॥ ५ ॥ क्षणंशय्योपविष्टेव चिंतयामासचिंतया ॥ कष्टंराज्यंप्रभुस्त्यक्त्वावनंयातोगृहादिति ॥ ६ ॥ तन्मयेहाद्यकिंकार्यंतत्समीपं व्रजाम्यहम् ॥ भर्त्तैवगतिरुद्दिष्टाविधिनाप्रकृतास्त्रियः ॥ ७ ॥ इतिसंचिंत्यभर्त्तारमनुगंतुंसमुत्थिता ॥ चूडालावातरंध्रेणनिर्गत्यांबरमाययौ ॥ ८ ॥

अर्थ—व्याकुलताको प्राप्त वह न प्रसन्नथी न विमल थी किंतु कुहिरेसे मलिन दिनकी शोभाके समान स्थित रही ॥ ५ ॥ और क्षणभर अपनी शय्यापर बैठीहुई चिंतासे ग्रस्त यह चिंतन किया कि अहो खेद है कि मेरे स्वामीने राज्य त्यागदिया ॥ ६ ॥ इसलिये मुझे यहां क्या करनाहै मैं भी अपने पतिके निकट चलूं क्योंकि शास्त्रमें पतिही स्त्रीका प्रथम शरणस्थान विधान कियागयाहै ॥ ७ ॥ ऐसा बिचार करके पतिके निकट जानेको चूडाला उठी झरोंखेके मार्गसे निकलकर चूडाला आकाशमें प्राप्तहुई ॥ ८ ॥

बभ्रामांबरमार्गेणवातरकंधेनयोगिनी ॥ कुर्वतीसिद्धसार्थस्यमुखेनान्येंदुविभ्रमम् ॥ ९ ॥ ददर्शाथयथा यातंरात्रौखड्गधरंपतिम् ॥ भ्रमंतमेकमेकांतेवेतालसमयोदितम् ॥ १० ॥ तादृशंपतिमालोक्यस्थित्वाग गनकोटरे ॥ भविष्यच्चिंतयामाससर्वभर्त्तुरखंडितम् ॥ ११ ॥ यथायेनयदायत्रयावत्कार्यंयथोदयम् ॥ यथाचनिर्वृतिःस्फारागंतव्यातेनराघव ॥ १२ ॥

अर्थ—सिद्धसमूहको द्वितीय चन्द्रमाकी भ्रांति करतीहुई वायुमें होके उस योगिनीने आकाशमार्गमें भ्रमण किया ॥ ९ ॥ और रात्रिमें खड्गधारी जातेहुये तथा निर्जनस्थानमें बेतालके समान भ्रमण करतेहुये अपने पतिको

देखा ॥ १० ॥ आकाशके कोशमें स्थित होकर उसप्रकार अपने पतिको देखकर पूर्णरूपसे उसके भविष्यत्को चिन्तन किया ॥ ११ ॥ हे रामजी ! जैसे, जिस निमित्तसे, जिस देशकालमें, जितने कार्यका अभ्युदय और जिसप्रकार उसको निरतिशय ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होगी. यह सब योगबलसे उसने देखा ॥ १२ ॥

अवश्यंभवितव्यंतद्भर्तुर्दृष्ट्वापुरःस्थितम् ॥ तदेवसंवादयितुंगमनात्सान्यवर्त्तत ॥ १३ ॥ आस्तांममाद्यगमनंकालेनातिचिरेणहि ॥ मयास्यपार्श्वेगंतव्यंनियतेरेषनिश्चयः ॥ १४ ॥ इतिसंचिंत्यचूडालाप्रविश्यांतःपुरंपुनः ॥ सुष्वापशयनेशंभोःशिरसींदवीकला ॥ १५ ॥ केनचित्कारणेनासौगतःसंप्रतिभूपतिः ॥ इतिपौरंजनंसर्वमाश्वास्यातिष्ठदंगना ॥ १६ ॥

अर्थ—योगबलसे प्रत्यक्षके समान स्थित अवश्य भवितव्य अपने पतिका उसने जो देखा उसके अनुकूल आचरण करनेके लिये वह गमनसे निवृत्तहुई ॥ १३ ॥ मेरा गमन इससमय न हो किन्तु चिरकालमें मुझे पतिके निकट जाना चाहिये ऐसा ईश्वरकी नियतिका निश्चय है ॥ १४ ॥ ऐसा विचार करके चूडालाने अपने अन्तःपुरमें पुनः प्रवेश किया और अपने शयनस्थानमें ऐसे सोगई जैसे शंभुके शिरमें चन्द्रमाकी कला ॥ १५ ॥ किसी विशेष कारणसे राजा प्रवासमें गये हैं, इसप्रकार नगरनिवासी तथा सब प्रजाजनोंको धैर्य्य देकर वह बाला स्थित रही ॥ १६ ॥

राज्यंररक्ष भर्तुस्तत्क्रमेणसमदर्शनात् ॥ यथाकालेनकेदारंपक्वकलमगोपिका ॥ १७ ॥ तयोस्तदवहत्कालोदंपत्योःस्थितयोस्तथा ॥ अदृष्टान्योन्यमुखयोराज्यकाननपालयोः ॥ १८ ॥ जगामाथदिनंपक्षोमासोथऋतुवत्सरः ॥ शिखिध्वजस्यविपिनेचूडालायाःस्वमंदिरे ॥ १९ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनवर्षाण्यष्टादशांगना ॥ चूडालोवाससदनेवनगुच्छेशिखिध्वजः ॥ २० ॥

अर्थ—समदृष्टिसे उसने अपने पतिके क्रमसे राज्यकी ऐसे रक्षा की जैसे कालसे परिपक्वधानके खेतको उसकी रक्षा करनेवाली ॥ १७ ॥ हे रामजी! एक दूसरेके मुखको न देखनेवाले तथा क्रमसे राज्य और जंगलको पालन करनेवाले उन दोनों स्त्रीपुरुषका काल बीतताथा ॥ १८ ॥ राजा शिखिध्वजका बनमें और चूडालाका अपने मंदिरमें दिन, पक्ष, मास, ऋतु, तथा बर्षरूप काल बीतता चलाजाताथा ॥ १९ ॥ हे रामजी ! यहां अधिक कथन निष्प्रयोजन है अठारह बर्षपर्य्यन्त चूडालाने अपने स्थानमें निवास किया और राजा शिखिध्वज बनके समूहमें ॥ २० ॥

अथयातेषुबहुषुवर्षेषुजरसावृते ॥ शिखिध्वजेमहाशैलतटकोटरवासिनि ॥ २१ ॥ भर्तुःकषायपाकंतदालक्ष्यपालितंचिरात् ॥ तदातस्याथयातेषुवर्षेषुजरसावने ॥ २२ ॥ तदातस्यात्मकार्यस्यभवितव्यतयातथा ॥ भर्तुःसमीपगमनेममकालोयमित्यथ ॥ २३ ॥ संचिंत्यमंदरोपांतंगंतुंबुद्धिंचकारसा ॥ चचारांतःपुराद्रात्रौततारनभसःपथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर जब बहुत बर्ष बीतगया, और वृद्धावस्थासे ग्रस्त राजा शिखिध्वज महापर्वतके कोटरमें निवास करताथा ॥ २१ ॥ उससमय जबतक पतिके रागद्वेषादि कषाय नहीं परिपक्व हुये तबतक उसने प्रतीक्षा की, इसके पश्चात् जब वृद्धावस्थासे युक्त राजा शिखिध्वजके बनमें बहुत बर्ष बीतगये ॥ २२ ॥ उससमय पतिके बोधनरूप उसप्रकार आत्मकार्यकी भवितव्यतासे उसका विचार हुआ पतिके समीप जानेका यह मेरा समय है॥२३॥ ऐसा विचार करके मंदराचलके बनमें जानेकी बुद्धि उसने की और रात्रिमें अंतःपुरसे चलके आकाशमार्गमें उडी॥२४

जगामवातस्कंधेनगच्छंतीखेददर्शसा ॥ कल्पवृक्षांशुकच्छन्नरत्नस्तबकभूषिताः ॥ २५ ॥ नंदनोद्याननिलयारक्ताःसिद्धाभिसारिकाः ॥ परामृष्टेंदुशकलान्प्रालेयकणवर्षिणः ॥ सिद्धोत्तमात्तसौगंध्यान्स्पर्शयामासमारुतान् ॥ चंद्रबिंबामृतांभोधेर्महावीचिपरंपराम् ॥ २७ ॥ अपश्यन्निर्मलज्योत्स्नामंबरांतरतांगता ॥ मेघांतरेणगच्छंतीमेघलग्नाश्चविद्युतः ॥ २८ ॥ अवियुक्ताःस्वभर्त्रासाभूयोभूयोव्यलोकयत् ॥ उवाचचात्मनैवाहोयावज्जीवंशरीरिणाम् ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वायुमंडलमें होकर वह गई और आकाशमार्गसे जाते हुये उसने कल्पवृक्षके वस्त्रसे आच्छादित तथा रत्नके गुच्छोंसे भूषित, नंदनके बनकी निवासिनी तथा अपने प्रियोंमें अनुरक्त सिद्धोंकी अप्सराओंको देखा, और चंद्रखंडको स्पर्श करनेवाले, हिम कणके वर्षी, और उत्तम सिद्धोंसे मंदारमाला, हरिचंदन, तथा कस्तूरी आदिकी सुगंधताको ग्रहण करनेवाले वायुपटलको उसने स्पर्श किया, और चंद्रबिंबरूप अमृतके समुद्रकी महातरंगोंकी पंक्तियोंसहित ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ निर्मलचंद्र चंद्रिकाको आकाशके मध्यमें होकर उसने देखा और मेघमंडलमें जाती हुई उसने मेघमें संलग्न और अपने मेघपंक्तिसे अवियुक्त विद्युन्मालाको उसने पुनः २ देखा, और अपने मनमें बोली कि—अहो जीवनपर्य्यन्त प्राणियोंका ॥ २८ ॥ २९ ॥

नस्वभावःशमंयातिममाप्युत्कंठितंमनः ॥ कदामृगेंद्रस्कंधतंप्रणयप्रवणंपुनः ॥ ३० ॥ पश्यामिकांताम त्युत्कंममाप्युत्कंठतेमनः ॥ मंजरीजालवलितास्तरुंवल्लयःस्वकंपतिम् ॥ ३१ ॥ नमुंचंतिक्षणमितिममा प्युकंठतेमनः यथेयमग्रजाकांतमेतिसिद्धाभिसारिका ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्वभाव नहीं शांत होता कि मेराभी मन उत्कंठित हुआ, अहो! प्रेममें निमग्न सिंहके समान स्कंध-युक्त॥३०॥ अपने प्राणप्रियको पुनः कब देखूंगी, अहो! विवेकादिसे बोधित मेरा मन ऐसा उत्कंठित होताहै, अहो! कलियोंके समूहसे वेष्टित लता अपने पतिको ॥ ३१ ॥ क्षणभरभी नहीं त्यागती इसलिये मेराभी मन उत्कंठित हो-ताहै कि जैसे यह देवयोनिकी अप्सरा अपने पतिके निकट जाती है ॥ ३२ ॥

तथाकदाहमेष्यामिममापीतिमनःस्थितम् ॥ इमेमंदाश्वमरुतएतेचशशिनःकराः ॥ ३३ ॥ वनराजय एताश्वमामप्युत्कंठयंत्यहो ॥ हेचित्ताज्ञमुधैवांतःकिंत्वंतांडवितंस्थितम् ॥ ३४ ॥ साव्योमनिर्मलासा धोकतेयाताविवेकिता ॥ अथवाचित्तभर्तारंस्वंप्रत्युत्कंठसेसखे ॥ ३५ ॥ तिष्ठोत्कंठाभिवलितकिंसमु त्कंठितेनमे ॥ किंवृथोत्कंठसेवामेभर्त्तायातोजरांभवेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऐसेही मैंभी अपने पतिके निकट कब प्राप्त होऊंगी, ये मंद २ पवन, ये चंद्रकिरण, ॥ ३३ ॥ और वे बनकी पंक्ति मेरे मनको उत्कंठित करती है, अहो! हे अज्ञ चित्त! व्यर्थ आडंबरयुक्त होके तूं क्यों स्थित है ॥ ३४ ॥ हे साधो! चित्त वह आकाशकेसमान निर्मल तुमारी विवेकिता कहांगई, अथवा हे सखे चित्त! तुमारा दोष नहीं है क्योंकि तुम अपने पतिके लिये उत्कंठित होरहे हो ॥ ३५ ॥ हे चित्त! तुम उत्कंठित होके स्थित होके स्थित रहो परंतु तुमारे उत्कंठित होनेसे मेरा क्या! हे स्त्रीशरीर! तुम व्यर्थ क्यों उत्कंठित होरहेहो जिसके आलिंगनके लिये तुम उत्कंठित होरहीहो वह तुमारा पति अब वृद्ध होगया होगा ॥ ३६ ॥

तपस्वीकृशगात्रश्वभवेन्निर्वासनस्तथा ॥ मनोराज्याद्यभोगेभ्योमन्येस्यामूलतांगतम् ॥ ३७ ॥ वासना लतिकाप्रावृण्नदीनदगतायथा ॥ एकांतरतएकात्मनीरसःशांतवासनः ॥ ३८ ॥ मन्येभवतिमेभर्त्ताशु ष्कवृक्षसमस्थितिः ॥ तथापिचित्तकोत्कंठाभवतोत्कंठयान्वितम् ॥ ३९ ॥ मतिमुद्बोध्ययोगेनश्लेषयि ष्याम्यहंपतिम् ॥ प्रभृष्टकलनंभर्तुःसमीकृत्यमनोमुनेः ॥ ४० ॥

अर्थ—और तपस्वी कृशशरीर तथा वासनारहित होगा, और मैं समुझतीहुं कि उसका मन राज्यके भोगके लिये निर्मूल होगया होगा ॥ ३७ ॥ और जैसे क्षुद्र वर्षाकी नदी महानदमें मिलकर उससे भिन्न नहीं भान होती ऐसेही उसकी वासनारूप लता आत्मासे भिन्न नहीं होगी, वह मेरा पति एकांतमें आसक्त एकात्मा तथा इच्छारहित होगा ॥ ३८ ॥ मैं संभावना करतीहुं कि मेरा पति शुष्क वृक्षकेसमान स्थित होगा, यद्यपि ऐसा होगा तथापि मैं उसको तुमारे साथ उत्कंठित करूंगा ॥ ३९ ॥ हे चित्त वा शरीर! मैं योगबलसे अपने पतिको तत्व-ज्ञानी करके और उस मुनिके मनको संकल्पकी ओर झुकाके अपने पतिको आलिंगन करूंगी ॥ ४० ॥

राज्यएवनियोक्ष्यामिनिवत्स्यावःसुखंचिरम् ॥ अहोनुचिरकालेनमनोरथमिमंशुभम् ॥ ४१ ॥ अहमा सादयिष्यामियद्वर्त्तासमचिंतितः ॥ समग्रानंदवृंदानामेतदेवोपरिस्थितम् ॥ ४२ ॥ यत्समानमनोवृत्ति संगमास्वादनेसुखम् ॥ इतिचिंतयतीव्योम्नाचूडालोल्लंघ्यपर्वतान् ॥ ४३ ॥ देशानब्दान्दिगंतांश्वप्राप मंदरकंदरम् ॥ अदृश्यैवनभःस्थैवप्रविवेशवनांतरम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और प्रारब्धके शेषसे पुनः उसको राज्य पालनमें नियुक्त करूंगी, और सुखसे चिरकालतक दोनों नि-वास करेंगे, अहो! चिरकालसे यह मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ कि मेरे समान तत्वज्ञानी तथा बाह्य आ-भ्यन्तरमें समान विचारयुक्त अपने पतिको मैं प्राप्त करूंगी, क्योंकि समान मनकी वृत्तियोंके संगमके आस्वादनेमें जो सुख होताहै वह सब आनन्दसमूहोंके ऊपर स्थितहै ऐसा चिंतन करती हुई चूडाला आकाशमार्गसे पर्वतोंको, देशोंको, मेघोंको तथा दिगंतोंको उल्लंघन करके मन्दराचलकी कन्दरामें प्राप्त हुई और ऐसे अदृश्यरूपसे आकाशमें स्थित होकर दूसरे बनमें प्रविष्ट हुई ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वात्येवपादपलतास्पंदवेद्यगमागमा ॥ वनैकदेशेकस्मिंश्चित्स्कृतपर्णोटजेपतिम् ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वायोगेनबु बुधेदेहांतरमिवास्थितम् ॥ हारकेयूरकटककुंडलादिविभूषितः ॥ ४६ ॥ अभवन्मेरुकांतिर्यस्तमेवात्र ददर्शसा ॥ कृशांगंकृष्णवर्णंचजीर्णपर्णमिवस्थितम् ॥ ४७ ॥ कज्जलांबुभरस्नातंभृंगीशमिवनिस्पृहम्॥ चीरांबरधरंशांतमेकाकिनमवस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे वृक्षलतादिकी चेष्टासे अनुमीयमान गमनागमनवाली वायुमंडली, और वहांपर बनके किसी कोनेमें पर्णशाला रचेहुये अपने पतिको ॥ ४५ ॥ देखके समाहित चित्तसे अन्य देहमें स्थितके समान जाना. हे रामजी ! जो प्रथम हार केयूर कट और कुंडल आदिसे भूषित ॥ ४६ ॥ सुवर्णके समान शोभायमानथा उसीको यहां कृशशरीर, कृष्णवर्ण और जीर्ण पत्तेके समान उसने देखा ॥ ४७ ॥ कज्जलमय जलमें स्नान कियेके समान इच्छारहित महादेवके प्रसिद्धगण भृंगीशके सदृश स्थित, वल्कल वस्त्रधारी, शांत एकाकी विराजमान अपने पतिको देखा ॥ ४८ ॥

स्थलीनिषण्णंपुष्पाणिग्रथयंतंजटांकितम् ॥ तमालोक्यानवद्यांगीचूडालापीवरस्तनी ॥ ४९ ॥ किंचिज्जातविषादैवमुवाचात्मनिचेतसा ॥ अहोनुविषमंमौर्ख्यंतदनात्मज्ञतात्मकम् ॥ ५० ॥ एवंविधाःसमायांतिदशांमौर्ख्यप्रसादतः ॥ अयंसराजालक्ष्मीवान्यतोमेतिप्रियःपतिः ॥ ५१ ॥ हृदिमोहघनक्षुण्णामिमामभ्यागतोदशाम् ॥ तदवश्यमिहाद्यैवनाथंविदितवेद्यताम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—और बनमें खडेहुये पुष्पोंकी माला गूंथनेवाले, तथा जटा मुकुटसे चिन्हित उस अपने पतिको देखकर आनंदित शरीरवाली तथा स्थूल स्तन धारिणी चूडाला ॥ ४९ ॥ कुछ उदाससी होके अपने चित्तसे बोली—कि अहो अज्ञानसे यह मूर्खता कैसी भयंकर है ॥ ५० ॥ मूर्खताके प्रसादसे प्राणी ऐसीही दशाको प्राप्त होते हैं क्योंकि यह लक्ष्मीवान् राजा मेरा अतिप्रियपति ॥ ५१ ॥ हृदयमें अज्ञानसे अभ्यस्त इस दशाको प्राप्तहुआ, इसलिये मैं इसी अपने पतिकी कुटीमें अपने प्राणनाथको आत्मज्ञानी बनाऊंगी ॥ ५२ ॥

नयाम्यत्रनसंदेहोभोगमोक्षश्रियंतथा ॥ इदंरूपंपरित्यज्यरूपेणान्येनकेनचित ॥ ५३ ॥ सकाशमस्यगच्छामिबोधंदातुमनुत्तमम् ॥ बालेयंममकांतेतिमद्वक्तंनकरोत्यलम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्तापसरूपेणबोधयामिपतिंक्षणात् ॥ भर्ताकषायपाकेनपरिपक्वमतिःस्थितः ॥ ५५ ॥ चेतस्यस्याद्यविमलेस्वंतत्त्वंप्रतिबिंबति ॥ इतिसंचिंत्यचूडालाबभूवद्विजदारकः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिससे भोग तथा मोक्ष दोनोंकी श्रीको यह प्राप्त होगा, इस रूपको त्यागकर किसी अन्य रूपसे॥५३॥ अपने पतिको सर्वोत्तम ज्ञान देनेके अर्थ इनके समीप जाऊंगी, यदि मैं अपनेही रूपसे जाऊं तो बाला वही मेरी प्रियाहै ऐसा जानकर मेरा कथन पूर्णरूपसे नहीं मानेगा ॥ ५४ ॥ इसलिये तपस्वीके रूपसे एकक्षण अपने पतिको बोधन करूं, क्योंकि अब मेरा पति राग द्वेषादिकी परिपाकतासे परिपक्व बुद्धि स्थितहै ॥ ५५ ॥ इसके निर्मल चित्तमें आत्मतत्व भलीभांति प्रतिबिंबित होगा ऐसा विचार करके चूडाला ब्राह्मणका कुमार बनगई ॥ ५६ ॥

ईषद्ध्यानाद्वतान्यत्वंक्षणादंबुतरंगवत् ॥ पपातविपिनेतस्मिन्द्विजपुत्रकरूपिणी ॥ ५७ ॥ भुर्तुरध्याजगामाग्रंमंदस्मितलसन्मुखी ॥ ददर्शद्विजपुत्रंतंपुरोयातंशिखिध्वजः ॥ ५८ ॥ वनांतराद्वपायातंतपोमूर्तिमिवास्थितम् ॥ द्रवत्कनकगौरांगंमुक्ताहारविभूषितम् ॥ ५९ ॥ शुक्लयज्ञोपवीतांगंशुक्लांबरयुगावृतम् ॥ कमंडलुधरंकांतंपुरोयातंशिखिध्वजः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! पूर्वोक्त अग्नि चंद्रकी धारणारूप किंचित् ध्यानसे पुरुषका रूप क्षणमेंही ऐसे धारण किया जैसे जलतरंगरूपताको और उसी बनमें ब्राह्मणके पुत्रका रूप धारण करके शीघ्र जा गिरी ॥ ५७ ॥ मंदस्मित (मुसकियान्) से शोभित मुख चूडाला अपने पतिके समीप देशमे आई और शिखिध्वजने अपने सन्मुख प्राप्त ब्राह्मणके पुत्रको देखा ॥ ५८ ॥ अन्य बनसे आके मूर्तिमान् तपके समान स्थित, द्रवीभूत सुवर्णके तुल्य गौरांग मोतियोंके हारोंसे शोभित ॥ ५९ ॥ शुक्ल यज्ञोपवीत तथा शुक्ल दो वस्त्र पहिने हुये, कमंडलुधारी और अति शोभायुक्त उस ब्राह्मणकुमारको शिखिध्वजने देखा ॥ ६० ॥

व्याप्तप्रकोष्ठद्विगुणेनाक्षसूत्रेणचारुणा ॥ भूमावलग्नगात्रेणकिष्कुमात्रेणचस्थितम् ॥ ६१ ॥ कुंतलव्याप्तमूर्धानंसालिमालमिवांबुजम् ॥ भासयंतंप्रदेशंतंशारीरैर्दीप्तिमंडलैः ॥ ६२ ॥ कुंडलाभूषितमुखंनवमर्कमिवोदितम् ॥ शिखासंप्रोतमंदारंशृंगस्थंद्रुमिवाचलम् ॥६३॥ कांतोपशांतवपुषमूर्जितंविजितेंद्रियम् ॥ हिमाभभस्मतिलकंभूषितालोकसुंदरम् ॥ ६४ ॥ मेरुहेमतटीलीनपूर्णेंदुमिवचंचलम् ॥ तमालोक्य द्विजसुतंसमुत्तस्थौशिखिध्वजः ॥ ६५ ॥

अर्थ—मणिबन्धसे द्विगुण बाह्यदेशको व्याप्त करनेवाले, पृथिवीमें असंलग्न, हस्तप्रमाण और सुन्दर अक्षमालासेयुक्त उस ब्राह्मणकुमारको देखा ॥ ६१ ॥ धानकी मालासे कमलके समान जटासे आवृत्त मस्तक और शरीरके दीप्तिमण्डलोंसे उस देशको प्रकाशित करनेवाले ब्राह्मणपुत्रको देखा ॥ ६२ ॥ कुण्डलसे भूषित मुख, नूतन-

सूर्यके सदृश उदित, शिखामें मन्दारपुष्प गूंथेहुये, शिखरमें चन्द्रसहित पर्वतके तुल्य स्थित ब्राह्मणपुत्रको शिखिध्वजने देखा ॥ ६३ ॥ सुन्दर तथा शांत शरीरधारी, बलवान् जितेंद्रिय, हिमके समान भस्मधारी, भूषित प्रकाशसे सुन्दर तथा सुमेरूकी सुवर्णकीतटीमें लीनगंगा प्रबाहमें प्रतिबिंबित पूर्णचन्द्रमाके समान चंचल उस ब्राह्मणकुमारको देखके राजा शिखिध्वज उठ खडाहुआ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

देवपुत्रागमधियासंपरित्यक्तपादुकः ॥ देवपुत्रनमस्कारइदमासनमास्यताम् ॥६६॥इत्यस्यदर्शयामास पाणिनापत्रविष्टरम् ॥ ददौचद्विजपुत्रस्यपुष्पमुष्टिंकरोत्करे ॥ ६७ ॥ चंद्रःकुमुदखंडस्यप्रालेयमिवपल्लवे ॥ हेराजर्षेनमस्तुभ्यमितिद्विजसुतोवदत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—देवपुत्रके आगमनकी बुद्धिसे अपने चरणपादुकाको त्यागकर राजा बोला—कि हे देवपुत्र ! आपको नमस्कारहै यह आपके लिये आसनहै ॥ ६६ ॥ ऐसा कहके हांथसे उसको पत्रका आसन दिखलाया, और उस ब्राह्मणके करतलमें पुष्पकी मुष्टि ऐसे दी ॥ ६७ ॥ जैसे कुमुदके खण्डके पल्लवमें चन्द्रमा हिमका कण और ब्राह्मणके पुत्रने कहा कि हे राजर्षे ! आपको नमस्कार है ॥ ६८ ॥

गृहीत्वाकुसुमान्यस्माद्विवेशपत्रविष्टरे ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ देवपुत्रमहाभागकुतआगमनंकृतम् ॥ दिवसःसफलोमन्येयत्त्वामद्यास्मिदृष्टवान् ॥ ६९ ॥ इदमर्घ्यमिदंपाद्यंपुष्पाणीमानिमानद ॥ इमाप्रग्र थितामालागृह्यंतांभद्रमस्तुते ॥ ७० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥इत्युक्त्वापाद्यमर्घ्यंचमालांपुष्पाणिचानघ ॥ शिखिध्वजस्तद्दिष्टयैददौदेव्यैयथाखिलम् ॥ ७१ ॥ चूडालोवाच ॥ सुबहूनिपरिभ्रांतोभूतलायतनान्यहम् ॥ त्वत्तःपूजायथाप्राप्तामयेयंनतथान्यतः ॥ ७२ ॥

अर्थ—और राजासे पुष्पोंको लेकें पत्रके आसनपर बैठगया, शिखिध्वज बोला—कि हे देवपुत्र ! आपका आगमन कहांसे हुआ, मैं आपके दर्शनसे आजका दिन सफल मानताहुं ॥ ६९ ॥ हे मानद ! यह अर्घ्य, यह पाद्य, ये पुष्प, ये गुंथीमाला आप लीजिये आपका कल्याणहो ॥ ७० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे पापरहितरामजी ! ऐसा कहके शिखिध्वजने अर्घ्य, पाद्य, माला और पुष्पादि शास्त्रोक्त विधिसे विप्ररूपधारी अपनी प्रियाको दिया ॥ ७१ ॥ चूडाला बोली—हे राजर्षे ! इस पृथिवीपर अनेकस्थानोंमें मैंने भ्रमण कियाहै परन्तु जैसी पूजा मैंने तुमसे पाई वैसी अन्यत्रसे नहीं ॥ ७२ ॥

पेशलेनानुरूपेणप्रश्रयेणामुनानघ ॥ मन्येहंनूनमत्यंतचिरंजीवीभविष्यसि ॥ ७३ ॥ शांतेनमनसोदार माराद्उन्मुक्तकल्पनम् ॥ निर्वाणार्थंतपःसाधोकच्चित्संभृतवानसि ॥ ७४ ॥ असिधारासमंसौम्यशांत व्रतमिदंतव ॥ स्फीतंयद्राज्यमुत्सृज्यमहावननिषेवणम् ॥ ७५ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ जानासिभगव न्सर्वदेवस्त्वंकोत्रविस्मयः ॥ श्रियैवलोकोत्तरयाज्ञायसेचिन्हरूपया ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे पापरहित ! इस कोमल अपने अनुरूप विनयसे मैं समझताहूं कि तुम चिरंजीवी होओगे ॥ ७३ ॥ हे साधो ! क्या शांतमनसे जिसमें फलके संकल्प दूर त्यक्तहैं ऐसे उदारतपको मोक्षके लिये तुमने संचय कियाहै॥७४॥ हे साधो ! यह जो विशाल राज्यको त्यागकर आपने महाबनका सेवन कियाहै वह क्रोधरहित वानप्रस्थोंका व्रत खड्गकी धाराके तुल्य है ॥ ७५ ॥ शिखिध्वज बोला—हे भगवन् ! आप देवहैं सब कुछ जानते हो इसमें क्या विस्मय है, लोकोत्तर चिन्हयुक्त शोभासे आप कोई महा प्रभावशाली विदित होते हो ॥ ७६ ॥

एतान्यंगानितेचंद्राद्घटितानीतिमेमतिः ॥ अथवाकिंसमालोकादमृतेनेवसिंचसि ॥ ७७ ॥ अस्तिमेद यिताकांतापातिमद्राज्यमद्यतत् ॥ तवेवतस्यादृष्टानितान्यंगानीहसुंदर ॥ ७८ ॥ उपशांतंचकांतंचवपु रापादमस्तकम् ॥ शृंगंशुभ्रांबुदेनेवपुष्पेणाच्छादयामुना ॥ ७९ ॥ निष्कलंकेंदुसंकाशमंगमादित्यतेज सा ॥ मन्येतेग्लानिमायातिसुमनःपत्रपेलवम् ॥ ८० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! मेरी बुद्धिमें ये आपके सब अंग अमृतमय चन्द्रमासे रचित हैं, अथवा अधिक कथन व्यर्थ है, आप अपने दर्शनसे मानो अमृतसे सिंचन करतेहो ॥ ७७ ॥ हे सुन्दर ! मेरी प्रिया पत्नी है जो मेरे राज्यको इससमय पालन करतीहै उसके सदृश इससमय तुमारेही अंग देखपडे हैं ॥७८॥ हे ब्रह्मन् ! शिरसे लेके पादपर्य्यन्त यह आपका शान्त तथा रमणीय है इसको मेरी दीहुई मालासे ऐसे आच्छादन करो जैसे शुभ्र मेघसे मेरूके शिखर ॥ ७९ ॥ निष्कलंक चन्द्रमाके समान तथा पुष्प दलके तुल्य कोमल यह तुमारा अंग सूर्यके तेजसे ग्लानिको प्राप्त होरहाहै ॥ ८० ॥

देवार्चनायोपचितमिदमित्थंसितंमया ॥ अंगत्वदंगसंगेनतत्प्रयातुकृतार्थताम् ॥ ८१ ॥ जीवितंयाति साफल्यंस्वमभ्यागतपूजया ॥ देवादप्यधिकंपूज्यःसतामभ्यागतोजनः ॥ ८२ ॥ तत्कस्त्वंकस्यपुत्र स्त्वंकिमायातोस्यनुग्रहात् ॥ एतन्मेसंशयंछिंधिविमलेंदुसमानन ॥ ८३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ राजन्मे शृणुवक्ष्यामियथाष्टष्टमखंडितम् ॥ कोनामपरिपृच्छंतंविनीतंवंचयेत्पुमान् ॥ ८४ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! यह श्वेत पुष्पकी माला देवपूजाकेलिये मैंने रची है सो आपके अंगके संगसे सफलताको प्राप्त हो ॥ ८१ ॥ अपने समीप प्राप्त अभ्यागतकी पूजासे जीवन सुफल होताहै क्योंकि सज्जनोंको अभ्यागतजन देवसेभी अधिक पूज्य है ॥ ८२ ॥ हे चन्द्रतुल्य मुखधारिन् ! मेरी दीहुई पूजा ग्रहण करनेके पश्चात् आप मेरे इस संशयको दूर कीजिये कि आप किसके पुत्र हो और इस जनपर अनुग्रह करके कहांसे तथा किस प्रयोजनसे आयेहो ॥ ८३ ॥ ब्राह्मणरूप धारिणी चूडाला बोली–हे राजन् ! आपके प्रश्नके अनुकूल सम्पूर्ण मैं कहूंगा, क्योंकि नम्र प्रष्टाको कौन पुरुष बंचना (धोखा) करसकताहै ॥ ८४ ॥

अस्त्यस्मिञ्जगतीकोशेशुद्धात्मानारदोमुनिः ॥ पुण्यलक्ष्म्यामुखेकांतेकर्पूरातेलकोपमः ॥ ८५ ॥ सक दाचिन्मुनिर्देवोगुहायांध्यानमास्थितः ॥ तत्रहेमतटेगंगावहत्युरुतरंगिणी ॥ ८६ ॥ मेरुलक्ष्म्यांस्फुर द्रूपाभातिहारलतायथा ॥ एकदानारदमुनिर्ध्यानांतेसस्सरित्तटे ॥ ८७ ॥ ध्वनद्वलयमश्रौषीलीलाकलक लारवम् ॥ किमेतदित्यसौकिंचिज्जातप्रायकुतूहलः ॥ ८८ ॥

अर्थ—धर्मकी लक्ष्मीके रमणीय मुखमें सुगंधित कर्पूरके तिलकके समान तथा शुद्धात्मा नारदमुनि इस पृथिवीके कोशमें हैं ॥ ८५ ॥ वे देवमुनि (देवर्षि) गुहामें किसीसमय ध्यानमें स्थितथे, वहां सुवर्णके तटपर विशाल तरंगवाली श्रीगंगाजी बहती हैं ॥ ८६ ॥ मेरुकी शोभामें देदीप्यमान वह गंगाजी ऐसे प्रकाशती है जैसे द्वारकी लता, एक समय उस नदीके तटपर ध्यानके अन्तमें नारदमुनिने ॥ ८७ ॥ कडोंके शब्दसहित जलक्रीडाकी कोलाहल ध्वनिको सुना और यह क्या है ऐसा किंचित् कौतुक उनको उत्पन्न हुआ ॥ ८८ ॥

हेलयालोकयन्नत्रामपश्यल्ललनागणम् ॥ रंभातिलोत्तमाप्रायंनिर्यातंजललीलया ॥ ८९ ॥ क्रीडंतंत्यक्तव सनंदेशेपुरुषवर्जिते ॥ कांचनांभोजमुकुलसंकाशैःस्तनमंडलैः ॥ ९० ॥ परिवेल्लितमन्योन्यंफलकांत द्रुमंयथा ॥ द्रुतहेमरसापूरनिर्भराभोगभासुरैः ॥ ९१ ॥

अर्थ—लीलासे उस नदीकी ओर देखतेहुये रंभा तिलोत्तमा आदि जिसमें प्रधानथी ऐसे अप्सरासमूहको जलमें क्रीडा करते जातेहुये देखा ॥ ८९ ॥ सुवर्णके कमलकी कलिकाके सदृश स्तनमंडलोंसे भूषित पुरुषरहित देशमें क्रीडा करतेहुये स्त्रीसमूहको देखा ॥ ९० ॥ परस्पर एक दूसरेके आच्छादित कियेहुये वह अप्सराओंका समूह द्रवीभूत सुवर्णके रसके प्रवाहके तुल्य कांति रचनासे प्रकाशशील ॥ ९१ ॥

कुर्वंतमुरुभिःकाममंदिरस्तंभसंचयम् ॥ निर्मलीकृतचंद्रेणव्याप्तांव्योमविलासिनीम् ॥ ९२ ॥ लाव ण्यरसपूरेणतर्जयंतमिवापगाम् ॥ प्रकारैरमरोद्यानरथचक्रैर्मनोभुवः ॥ ९३ ॥ उत्पथार्पितगंगांबु नितंबतटसेतुभिः ॥ सर्वत्रदृष्टसर्वांगंविश्वरूपमिवस्थितम् ॥ ९४ ॥ प्रतिबिंबितसर्वांगमन्योन्यादर्श तांगतम् ॥ कालकल्पतरोर्वर्षविटपात्पक्षपल्लवात् ॥ ९५ ॥ विविधर्तुलताजालाद्दिनश्रीकलिकाकुलात् ॥ आलोकपुष्परजसोजाताद्गगनकानने ॥ ९६ ॥

अर्थ—जंघाओंसे कामके मन्दिरकेलिये मानों खंभोंका संचय करताथा और अपने जलसे प्रतिबिंबित चन्द्रमाकोभी निर्मल करनेवाली सर्वत्र व्याप्त आकाश गंगाकोभी अपनी सुन्दरतारूप रसप्रवाहसे वह स्त्रीसमूह तिरस्कार करताथा, और कामदेवके नन्दनबनमें क्रीडाके समय अपने नितम्बरूप रथके चक्ररूप सेतुओंसे जलके रोकनेसे गंगाजीके जलकोभी अन्यमार्गमें वह स्त्रीसमूह चलाताथा, और सबके अंग सबमें देखपडनेसे कालरूप परमात्मासे उत्पन्न विश्वरूपके समान वह स्त्रीसमूह स्थित था ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ और सर्वथा स्वच्छ होनेसे सबके अंग सबमें प्रतिबिंबित होनेसे परस्पर अदर्शनताको प्राप्त था, वर्षरूप विटप तथा शाखारूप पल्लवसे शोभित ॥ ९५ ॥ नानाप्रकारके ऋतुरूप लताजालोंसे आवृत्त, दिनकी शोभारूप कलिकाओंसे व्याप्त, प्रकाश पुष्पपरागसे संयुक्त अव्यक्ताकाशरूप बनमें उत्पन्न ॥ ९६ ॥

स्फुरज्जलखगप्रोतात्संप्राप्ध्येकालवाडकात् ॥ स्तनस्तबकवृंदेषुस्पर्धयातिरसान्वितम् ॥ ९७ ॥ उद्धृत्यो द्धृत्यसंपूर्णदलितांभोजपल्लवम् ॥ आलोलालककेशाक्षितारकादिमधुव्रतम् ॥ ९८ ॥ अमृतापद्दिधाताय

कोशसंचयकारिभिः ॥ दुष्प्रापेभूतसंघानांविकसत्कनकांबुजे ॥ ९९ ॥ पद्मिनीपल्लवाच्छिन्नेगुप्तेमेरोर्गुहांतरे ॥ शीतलेस्वर्धुनीतीरेतोयोन्मृष्टमलेसुरैः ॥ १०० ॥

अर्थ—चंचल जलपक्षियोंसे पूर्ण और सप्तसमुद्ररूप आलबास (थाला) से वेष्टित कालरूप कल्पवृक्ष भगवान्से उत्पन्न वह स्त्रीसमूह विश्वरूपके सदृशथा तथा स्तनरूप कमलके केलियोंमें सुन्दरताकी समताके दशरूप स्पर्धासे युक्त ॥ ९७ ॥ होनेके कारण नालसे उखाड २ कमलपल्लवोंको वह स्त्रीसमूह दलित करताथा, और मुखरूप कमलोंमें दीर्घ केश नेत्रकी कृष्णपुतली तथा ललाटमें गूंथेहुये नीलमणिरूप भ्रमरोंसे शोभित वह अप्सरासमूह था ॥ ९८ ॥ और अमृतके कोशके संचय करनेवाले देवताओंने अमृतके हरनेवाले राहु आदि आपत्तियोंके नाशार्थ प्राणियोंके समूहसे दुष्प्राप, शोभायमान सुवर्णकमलोंसे विभूषित, कमलिनियोंके पल्लओंसे आच्छन्न शीतल मन्दाकिनीके जलसे शुद्ध तथा अतिसुरक्षित मेरुकी गुहामें मानों चन्द्रकलाके प्रवाहको स्थापित कियाहै, ऐसा वह ललनाओंका समूह भान होताथा ॥ ९९ ॥ १०० ॥

चंद्रबिंबकलापूरमेकत्रैवोपसंहृतम् ॥ स्त्रैणमालोक्यतत्कांतंसहसैवमनोमुनेः ॥ १०१ ॥ अनाश्रितविवेकांशंबभूवानंदितंस्फुरत् ॥ आनंदवलितेचित्तेक्षुब्धेप्राणानिलेस्थिते ॥ १०२ ॥ बभूवतस्यहृष्टस्यमदनस्खलितंतदा ॥ फलंरसापूर्णमिवग्रीष्मांतइवतोयदः ॥ १०३ ॥ प्रत्यग्रपादपश्छिन्नलतावृंतइवोत्तम ॥ अवश्यायकणस्पंदीशशांकइववामुनिः ॥ १०४ ॥

अर्थ—इसप्रकार रमणीय स्त्रीसमूहको देखके अकस्मात् नारदमुनिका मन विवेकरहित तथा प्रमत्त होगया, और चित्तके प्रमत्त और प्राणवायुके क्षुब्ध होनेपर ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ उस प्रमत्तमुनिका मदन ऐसे स्खलित हुआ जैसे रससे पूर्णफल वा ग्रीष्मके अन्तमें मेघ ॥ १०३ ॥ हे सुन्दर राजन् ! शाखा मूलके छिन्न होनेसे वृक्षके अथवा जलकणवर्षी चन्द्रमाके समान, वा दोखंडमे तत्कालके विभक्त कमल दंडके समान वे मुनि गलितसार होगये ॥१०४॥

बिसंद्विधापातमिवगलत्साररसोभवत् ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ तादृशोपिबहुज्ञोपिजीवन्मुक्तोप्यसौमुनिः ॥ १०५ ॥ निरिच्छोपिनिरागोपिनकिंचिदुपमोप्यलम् ॥ सबाह्याभ्यतरंनित्यमाकाशविशदोपिच ॥ १०६ ॥ नारदोपिकथंब्रह्मन्मदनस्खलितोभवत् ॥ चूडालोवाच ॥ सर्वस्याएवराजर्षेभूतजातेजगत्त्रये ॥ १०७ ॥ देवादेरपिदेहोयंद्वयात्मैवस्वभावतः ॥ अज्ञमस्त्वथतज्ज्ञंवायावत्स्वांतंशरीरकम् ॥१०८॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला–हे विप्रकुमार ! उसप्रकार बहु ज्ञाता, जीवन्मुक्त, राग तथा इच्छारहित, अनुपम, और बाह्य तथा आभ्यंतर आकाशके तुल्य विशद होकर भी नारदमुनि च्युतवीर्य्य कैसे होगये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ चूडाला बोली–हे राजर्षे ! इस त्रैलोक्यमें उत्पन्न प्राणियोंकी जातिके ॥ १०७ ॥ किंतु देवजातिकेभी यह देह दो प्रकारका स्वभावसे स्थितहै अज्ञहो वा ज्ञानसहित हो अपने नाशपर्यंत यह शरीर ॥ १०८ ॥

सर्वमेवजगत्यंगसुखदुःखमयंस्मृतम् ॥ तृप्त्यादिनापदार्थेनकेनचिद्वर्धतेसुखम् ॥ १०९ ॥ आलोकइव दीपेनमहांबुधिरिवेंदुना ॥ क्षुधादिनापदार्थेनदुःखंकेनचिदेवहि ॥ ११० ॥ तमोमेघपटेनेवस्वभावोह्यत्र कारणम् ॥ स्वरूपेनिर्मलेसत्येनिमेषमपिविस्मृते ॥ १११ ॥ दृश्यमुल्लासमाप्नोतिप्रावृषीवपयोधरः ॥ अनारतानुसंधानादप्युन्मेषमविस्मृते ॥ ११२ ॥

अर्थ—सब प्राणियोंका सुखदुःखमय है, और तृप्तिकारक पदार्थोंसे सुख ऐसे बढताहै ॥ १०९ ॥ जैसे दीपकसे प्रकाश वा चंद्रमासे महासमुद्र, और क्षुधा आदिसे दुःख, अथवा ॥ ११० ॥ जैसे मेघपटलसे अंधकार, और ऐसा होनेमें स्वभावही कारण है, हे रामजी ! अपने सत्य निर्मल स्वरूपके एक क्षणभी विस्मृत होनेसे ॥ १११ ॥ यह दृश्य ऐसे उल्लासको प्राप्त होताहै जैसे वर्षाकालमें मेघ, और निरंतर आत्माका अनुसंधान (समाधि) करनेसे और क्षणकी संधिकालमेंभी विस्मृत न होनेसे ॥ ११२ ॥

स्वरूपेनोल्लसत्येषचित्तेदृश्यपिशाचकः ॥ यथातमःप्रकाशाभ्यामहोरात्रौस्थितिंगतौ ॥ ११३ ॥ तथैव सुखदुःखाभ्यांशरीरंस्थितिमागतम् ॥ एवंहिसुखदुःखेद्वेजन्मकारणदर्शनात् ॥ ११४ ॥ अज्ञस्यगाढतां यातेपटेकुंकुमवद्दृढम् ॥ तज्ज्ञस्यत्वंगलगतोमनागपिनतद्वशात् ॥ ११५ ॥ यथाशुभाशुभौरागादिनाक्रांततरौमणेः ॥ पुरःस्थवस्तुभावेनरंजनास्फटिकोयथा ॥ ११६ ॥

अर्थ—यह दृश्य पिशाच चित्तमें ऐसे उल्लसित होताहै जैसे तम और प्रकाशसे रात्रि दिन स्थितिको प्राप्तहैं ॥ ११३ ॥ उसीप्रकार सुख और दुःखसे शरीर स्थितिको प्राप्तहै, इसप्रकार देहादिमें आत्मभावके दर्शनसे सुख

तथा दुःख दोनों ॥ ११४ ॥ अज्ञानीके ऐसे गाढ होगये हैं जैसे श्वेतपटमें कुंकुमका रंग, और ज्ञानीको तो तत्वज्ञानके वशसे किंचित्भी ऐसे स्पर्श नहीं करते ॥ ११५ ॥ जैसे स्फटिकमणिको शुभ वा अशुभ रंग, और स्फटिकमणि तो जपा कुंकुमादिके समीप आनेसे तत्कालके लिये रंगयुक्त होजाताहै परंतु जीवन्मुक्त मुनि तो तत्वज्ञानसे किंचित्भी सुखदुःखसे नहीं रंजित होता, और मूढवस्तुकी संनिधिमात्रसे अतिही रंजित होजाताहै ॥ ११६ ॥

तज्ज्ञस्तथानैतिबोधाज्जीवन्मुक्तमतिर्मुनिः ॥ वस्तुनःश्लेषमात्रेणघनरंजितमेतिधीः ॥ ११७ ॥ गतेपिव स्तुनिदृढंबुद्धिर्यापरितापिता ॥ गतेपिकुंकुमेवस्त्रंतदीयमनुरंजनम् ॥ ११८ ॥ नजहातियथामूढस्तथावि षयरंजनम् ॥ अनेनैवक्रमेणैतौबंधमोक्षौव्यवस्थितौ ॥ ११९ ॥ भावनातानवंमोक्षोबंधोहिदृढभावना ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ स्वोत्पत्तिकारणप्राप्तौकथंदुःखंसुखंचवा ॥ १२० ॥

अर्थ—वस्तुके नष्ट होनेपरभी मूर्खकी बुद्धि ऐसे परितप्त रहती है जैसे कुंकुमके जानेपरभी वस्त्र अति रंजनायुक्तही रहताहै ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ और वस्त्र जैसे कुंकुमके रंगको नहीं त्यागता ऐसेही मूढ विषयरंगको नहीं त्यागता. हे राजर्षे! इसी क्रमसे बंध मोक्ष बुद्धिमेंही व्यवस्थित हैं ॥ ११९ ॥ हे राजर्षे! विषयभावनाकी सूक्ष्मताही मोक्ष है और दृढ विषयकी भावनाही बंध है ॥ १२० ॥

अभ्युदेतीतिवदमेदूरस्थानामपिप्रभो ॥ अत्युदारमतीवाच्छंबह्वर्थंवचनंतव ॥ १२१ ॥ श्रोतुंतृप्तिंनग च्छामिमयूरोभ्ररवेष्विव ॥ चूडालोवाच ॥ स्वोत्पत्तिकारणंहृद्यंलब्ध्वाकायाक्षिपाणिभिः ॥ १२२ ॥ सु खसंविदियंबालानूनमुल्लासतिस्वतः ॥ हृद्गताक्षोभमायाताजीवंकुंडलिनीगतम् ॥ १२३ ॥ जीवस्यनिय तानाड्यःपृथग्देहेस्थितिंगताः ॥ प्राणावपूरितानाडीर्जीवआक्रामतिस्फुरन् ॥ १२४ ॥

अर्थ—राजा शिखिध्वज बोला–हे प्रभो! समीपस्थ वा दूरस्थ पुत्र राज्यादिके लाभ अथवा नाशकी उत्पत्तिके कारणमें प्राप्त होनेसे उसके अभिमानी जीवको सुख वा दुःख किस क्रमसे होते हैं सो कृपा करके कहिये क्योंकि आपके उदार, अतिस्वच्छ और विशाल अर्थयुक्त बचनको ॥ १२१ ॥ सुननेसे मैं ऐसे तृप्त नहीं होता जैसे मयूर (मोर) मेघके शब्दोंसे, चूडाला बोली–हे राजर्षे! दूरस्थ विषयमें शरीर, नेत्र तथा हस्तादिसे, और दूरस्थ विषयमें शब्द तथा अनुमान प्रमाणादिसे अनुकूल पदार्थको पाके ॥ १२२ ॥ अनंत आत्मतत्वको न जाननेसे हृदयस्थवाला यह सुखसंवित् क्षुब्ध होकर कुंडलिनी नाडीमें स्थित भोक्ता जीवके प्रति स्वयं प्रकट होती है ॥ १२३ ॥ हे राजर्षे! हृदयमें स्थित जीवके भोगके लिये देहमें पृथक् २ नाडियां स्थित हैं और प्राणसे पूरित नाडियोंको जीव स्फुरित होता हुआ आक्रमण करताहै ॥ १२४ ॥

संस्पर्शैकप्रबुद्धात्मारसोद्रुमलताइव ॥ सुखप्रबोधसंचारेदुःखबोधागमेतथा ॥ १२५ ॥ जीवस्यनियता नाड्यःपृथग्देहस्थितिंगताः ॥ सुखिनःप्रस्फुरत्येषाधीरताशुनदुःखिनः ॥ १२६ ॥ येहिमार्गाःसुवेषस्य कुवेषस्यनतेशुभाः ॥ यावत्प्रमाणंजीवोयंसंशाम्यत्यपरिस्फुरन् ॥ १२७ ॥ तावत्प्रमाणमेवैनंमुक्तंमुक्तम वेहिवै ॥ यावत्प्रमाणमधिकंस्फुरतिक्षुब्धमारुतम् ॥ १२८ ॥

अर्थ—और स्पर्शमात्रसे जाग्रत यह जीव सुख तथा दुःखके अनुभव करनेको सब शरीरमें ऐसे प्रवेश करताहै जैसे वृक्षके मूलमें सींचनेसे सब वृक्ष तथा लताओंमें रस ॥ १२५ ॥ और सुखादिके अनुभवके लिये देहमें पृथक् २ नाडियां स्थित हैं क्योंकि सुखके अनुभवके लिये प्रवृत्त जीवको स्वस्थता शीघ्र स्फुरित होती है न कि दुःखके अनुभववालेको ॥ १२६ ॥ हे राजर्षे! उत्तम वेषधारी भोगमें प्रवृत्त राजादिको सुखदायक कर्पूर चंदनादिसे सींचे हुये मार्ग प्रसिद्ध हैं और निंदित वेषधारी नीचके लिये वे मार्ग नहीं हैं इसलिये जबतक यह जीव अतिचंचल नाडीमें प्रविष्ट नहीं रहता किंतु शांत रहताहै ॥ १२७ ॥ तबतक इसको तुम मुक्तही जानो और जब चंचल नाडीमें प्रविष्ट होके प्राण वायु क्षुभित रहताहै ॥ १२८ ॥

तावत्प्रमाणमेवैनंबद्धंबद्धमवेहिमे ॥ सुखदुःखकलास्पंदोबंधोजीवस्यनेतरः ॥ १२९ ॥ तदभावेहिमो क्षःस्यादितिद्वेधाव्यवस्थितिः ॥ सुखदुःखदशेयावदानीतेनेंद्रियैःशनैः ॥ १३० ॥ तावत्सुखसमःसौम्यो जीवस्तिष्ठतिशांतवत् ॥ सुखमालोक्यवादुःखमक्षातीतश्चलद्वपुः ॥ १३१ ॥ समुल्लसतिजीवोंतर्दृष्ट्वेंदु मिवतोयधिः ॥ जीवःक्षुभ्यतिदृष्टेनसंविदांगसुखादिना ॥ १३२ ॥

अर्थ—तबतक इसको तुम बद्ध जानो, हे राजर्षे! विषयके सुखदुःखकी कलाकी चेष्टाकी स्फुरणही जीवके लिये बंधहै अन्य नहीं ॥ १२९ ॥ और दुःख तथा विषयके सुखके अभावमें मोक्ष होताहै इसप्रकार दुःख तथा वि-

षय सुखकी सत्तामें बंध और उसके अभावमें मोक्ष यह दो प्रकारकी स्थिति है और दुष्ट इन्द्रियोंसे विषयके सुख तथा दुःखकी दशा नहीं प्राप्त होती ॥ १३० ॥ तबतक यह जीवात्मा शांत चित्त सुख तथा दुःखमें समान स्थित रह-ताहै और सुख वा दुःखको देखके स्वप्रकाश आत्मा ऐसे चंचल शरीर होके उल्लासको प्राप्त होताहै ॥ १३१ ॥ जैसे चंद्रमाको देखके समुद्र, और सुख तथा उसके साधनीभूत धनादिके रागसे जीव ऐसे क्षोभको प्राप्तहै ॥ १३२ ॥

आमिषेणेवमार्जारोमौर्ख्यमेवात्रकारणम् ॥ शुद्धेनबोध्यबोधेनस्वात्मज्ञानमयात्मना ॥ १३३ ॥ सुखदुःखादिनास्तीतितेनासौयातिसौम्यताम् ॥ नतत्सुखादिनोतन्मेमुधाचायमहंस्थितः ॥ १३४ ॥ इतिजीवःप्रबुद्धोहिनिर्वाणंयातिशाम्यति ॥ सुखाद्यवस्त्वतद्रूपमित्यंतर्बोधसंविदा ॥ १३५ ॥ नतदुन्मुखतांयातिजीवःशाम्यतिकेवलम् ॥ सर्वमेवचिदाकाशंब्रह्मेतिघननिश्चये ॥ १३६ ॥

अर्थ—जैसे मांसके रागसे मार्जार, इसप्रकार जीवकी दशामें केवल मूर्खताही कारणहै, और स्वात्मज्ञानमय शुद्ध बोधसे ॥ १३३ ॥ सुखदुःख नहीं है ऐसी भावनासे जीव विश्राम पाताहै और संसारके सुखादि मुझ शुद्धरूपमें नहीं है यह विषयके सुखादिको अपनेमें व्यर्थ मानता हुआ स्थितहुं ॥ १३४ ॥ इसप्रकारसे प्रबुद्ध जीव मोक्षको प्राप्त होताहै और विषयजनित सुखादि अवस्तु हैं ऐसे आभ्यंतरके ज्ञानसे ॥ १३५ ॥ यह उनकी ओर नहीं झुकता किंतु केवल शांत होजाताहै, और सब कुछ चिदाकाश ब्रह्महै ऐसे दृढ निश्चयके ॥ १३६ ॥

स्थितिंयातेशमंयातिजीवोनिःस्नेहदीपवत् ॥ दीपवच्छममायातिसुखादिस्नेहसंक्षये ॥ ३७ ॥ सर्वमेवमितिज्ञानाज्जीवोऽद्वित्वविभावनात् ॥ सर्वमाकाशमेवेतिबुद्ध्वाक्षोभंनगच्छति ॥ ३८ ॥ जीवस्यानेनशून्यस्यकःकिलक्षोभविभ्रमः ॥ जीवेनेदृग्विधेनैवयथाप्रथमसर्गतः ॥ ३९ ॥ स्वयंसंविदितोमार्गस्तेनैवाद्यापिगच्छति ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ सुखसंचारयोग्यासुजीवेसरतिनाडिषु ॥ १४० ॥

अर्थ—स्थिर होनेपर रागादि रहित जीव ऐसे शमताको प्राप्त होताहै जैसे तैलरहित दीपक और सुखादि संबंधी रागादिके नाश होनेपर तैलरहित दीपकके समान शांत होजाताहै ॥ १३७ ॥ सब कुछ चिदाकाश ब्रह्मही है ज्ञानसे जीवकी ब्रह्मकेसाथ एकताकी भावनासे, और सब जगत् शून्यमात्र है ऐसे ज्ञानसे यह जीव क्षोभको नहीं प्राप्त होता ॥ १३८ ॥ हे राजर्षे ! इसप्रकार ब्रह्मकेसाथ एकतासे जीवको क्षोभ तथा विभ्रम कहां, और प्रथम सृष्टिसे कल्पित हिरण्यगर्भरूप जीव मैं होके संसारमें भ्रमण करूंगा और तत्वबोधसे मुक्त होऊंगा इस कल्पनासे बंध मोक्षहै ॥ १३९ ॥ शिखिध्वज बोला—हे देव ! पुत्र सुखसे संचारके योग्य नाडियोंमें जीव जब चलताहै उससमय उसके वीर्य्यका पतन कैसे होताहै ॥ १४० ॥

देवपुत्रभवत्येवतद्वीर्यच्यवनंकथम् ॥ चूडालोवाच ॥ जीवःक्षोभयतिक्षुब्धःप्राणादिपवनावलिम् ॥४१॥ संविदाज्ञांशमात्रेणसेनामिवमहीपतिः ॥ वातस्पंदेनमेदोंतर्मज्जासारश्चसंस्थितः ॥ ४२ ॥ त्यजत्याशुप्रसौगंध्यंरजःपत्रफलादिकम् ॥ चलितंतत्त्वधोयातिगर्जादिवघनादिखे ॥ ४३ ॥ देहनाडीप्रणालेनयातिशुक्रंबहिःस्वतः ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ देवपुत्रमहाज्ञोसिवेत्सिपूर्वांजगस्थितिम् ॥ १४४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली कि—हे राजर्षे ! जब स्त्रीके स्वरूपको यह जीव देखताहै उससमय रागकी बासनाके उद्बोधसे जीव स्वयं क्षुब्ध होके प्राण आदि पवनकी पंक्तिको ऐसे क्षोभित करताहै ॥ १४१ ॥ जैसे राजा अपनी आज्ञासे सेनाको उससमय प्राणकी चेष्टासे मेदाके अंतर्गत सार और मज्जाका सार जो स्थित रहताहै ॥ १४२ ॥ वह अपने सुगंधयुक्त रजको ऐसे त्यागताहै जैसे चोंपेसे गिराहुआ फल अपने अंतर्गत रसको, और वह चलायमान रज शुक्ररूपसे नाडीद्वारा अधोभागमें स्वभावसेही बाहर ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वायुकी प्रेरणासे आकाशस्थ जल पृथिवी-आदि अधोभागमें ॥ १४३ ॥ राजा शिखिध्वज बोला—हे देवपुत्र ! आप आत्मज्ञानी हो इससे पूर्वकालकी संसारकी स्थितिको जानते हो ॥ १४४ ॥

ज्ञायसेवचनादेवस्वभावोहिकिमुच्यते ॥ चूडालोवाच ॥ आद्यसर्गेयथासद्यःस्फुरितंब्रह्मब्रह्मणि॥४५॥ घटावटपटाद्यात्मतथैवाद्यव्यवस्थितम् ॥ काकतालीयवद्वारिबुद्बुदोत्पत्तिनाशवत् ॥ घुणाक्षरवदुच्छूनंतंस्वभावंविदुर्बुधाः ॥ ४६ ॥ अस्मिन्स्वभाववशतोजगतिप्ररूढेदेहाभ्रमंतिपरितोविविधाविकाराः ॥ प्रक्षीणवासनतयानभवंतिकेचिद्भूयोभवंतिचपुनस्त्वितरेघनास्थाः ॥ १४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू०सुखविचारयोगोपदेशो नाम पंचाशीतितमःसर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—आप अपने बचनसेही मुझे ज्ञानी भान होतेहो सो स्वभाव शब्दका क्या अर्थ है यह मुझसे कहिये, चूडाला बोली–कि हे राजन् ! सृष्टिके आदिमें प्राणियोंके कर्मके अनुसार ब्रह्म जिस २ प्रकारके धर्मसे और जिस २ पदार्थरूपसे अपने आत्मामें स्फुरित होके स्थितहै ॥ १४५ ॥ वही घटपट वृक्षादि पदार्थरूपसे अबभी स्थितहै इसीका नाम स्वभाव है अथवा काकतालीय न्यायके समान, वा जलके बुद्बुदकी उत्पत्ति नाशके तुल्य अथवा घुणाक्षर न्यायके सदृश मायामात्र होनेसे आकस्मिक जिस २ धर्मसे (जैसे अग्नि उष्ण और जल शीतल) युक्तहै उसीको पंडित जन स्वभाव कहते हैं ॥ १४६ ॥ हे राजन् ! स्वभावकेही कारण इस महावृद्धिको प्राप्त जगत्में नानाप्रकारके विकारयुक्त देह भ्रमण करते हैं और उनमेंसे कितने क्षीणवासनासे ज्ञानयुक्त होके पुनः इस संसारमें नहीं आते और अज्ञानी देह तो विषयभोगमें दृढभाव होनेसे पुनः इस संसारमें आते जाते हैं ॥ १४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे सुखविचारयोगोपदेशोनाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

इस ८६ के सर्गमें कुंभ (घट) में कुम्भजऋषिका जन्म, ब्रह्माके समागमसे उसकी वृद्धि और उससमय शिष्यकी सर्वज्ञता इत्यादि विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

चूडालोवाच ॥ आत्मस्वभाववशतोजातंजगदिदंमहत् ॥ स्थितिंवासनयाभ्येत्यधर्माधर्मवशेस्थितम् १॥ वासनाह्रासमानीयधर्माधर्मैर्नगृह्यते ॥ ततोनजायतेजंतुरितिनोदर्शनंमुने ॥ २ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ अत्युदारंमहार्थंचवक्षित्वंवदतांवर ॥ अनुभूतिमुपारूढंगूढंचपरमार्थवत् ॥ ३ त्वद्वाक्यविभवेनाद्यश्रुतेनानेनसुंदर ॥ पीतेनेवामृतेनाहमंतर्यातोस्मिशीतताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली–कि हे राजन् ! आत्माके स्वभावसे यह जगत् उत्पन्न हुआहै और वासनासे स्थितिको प्राप्त होके धर्म अधर्मके वशमें स्थितहै ॥ १ ॥ हे मुने ! वासनाके क्षयसे धर्म अधर्मके बंधनमें यह जीव नहीं आता और पुनः इस संसारमें नहीं उत्पन्न होता यह हमारा अनुभव है॥२॥शिखिध्वज बोला–कि हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! अति उदार महान् अर्थ संयुक्त, अनुभवके योग्य गूढ और परमार्थ साधक बचन आप कहतेहैं ॥ ३ ॥ हे सुन्दर आज इस आपके बचनके विभवके सुननेसे आभ्यंतरसे मैं ऐसे तृप्त और शांत होगयाहुं जैसे अमृतपानसे ॥ ४ ॥

तत्समासेनतांतावदात्मोत्पत्तिंवदाशुमे ॥ ततःश्रोष्यामियत्नेनज्ञानगर्भांगिरंतव ॥५॥ तेनपद्मजपुत्रेण मुनिनानारदेनतत् ॥ क्कृतंवीर्यमार्येणकथयाद्ययथास्थितम् ॥ ६ ॥ चूडालोवाच ॥ ततोनिबद्धतातेन मनोमत्तमतंगजम् ॥ विवेकविपुलालानेशुद्धयाधीवरत्रया ॥ ७ ॥ तद्वीर्यंकल्पकालाग्निगलितेंदुद्रवोपमम् ॥ रसानांपारदादीनांदिव्यानामनुरंजनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये संक्षेपसे अपनी उत्पत्ति मुझसे कहिये उसके पश्चात् आत्मज्ञानसे पूर्ण आपकी बाणीको सावधान होके सुनुंगा ॥ ५ ॥ उस ब्रह्माके पुत्र नारदने अपने वीर्यको कहां और कैसे स्थापन किया ॥ ६ ॥ चूडाला बोली–कि हे राजर्षे ! उन अप्सराओंको देखनेके पश्चात् मनरूप मत्त मतंगजको विवेकरूपी विशालगज बन्धनके स्तम्भमें बुद्धिरूप चर्मकी रज्जु (रस्सी) से नारदमुनिने बांधा ॥ ७ ॥ और प्रलयकालकी अग्नि तथा द्रवीभूत चंद्रमाके तुल्य और पारद आदि दिव्य रसोंके सदृश उस अपने चलितवीर्यको ॥ ८ ॥

मुनिनापार्श्वगेकुंभेस्फाटिकेविलसद्रुचौ ॥ अद्भुतेविद्रुताकारंचंद्रेचंद्रइवार्पितम् ॥ ९ ॥ तत्रशैलेबृहत्कांतेस्थूलःपार्श्वेषुचाभितः ॥ गंभीरकुक्षिःसुदृढश्चोपलाहननक्षमः ॥ १० ॥ संकल्पितेनक्षीरेणसकुंभस्तेनपूरितः ॥ अमृतापूरभिन्नेनविधिनेवामृतार्णवः ॥ ११ ॥ तत्रमासाद्गतोवृद्धिंमुनिमंदाह्रइतिक्रमः ॥ अमृताब्धौशुभोगर्भइंदोरिंदुरिवानुजः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्फटिक मणिसे रचित, शोभायमान, और अद्भुत अपने समीपस्थ घटमें नारदमुनिने ऐसे स्थापित किया जैसे द्रवीभूत चंद्रमाको चंद्रमामें ॥ ९ ॥ उस महान् तथा रमणीय मेरुपर्वतपर, चारोओरसे विशाल, गंभीर उदरयुक्त और पाषाणसेभी फुटनेके अयोग्य उस घटको ॥ १० ॥ नारदऋषिने अपने संकलपसे रचित दुग्धसे ऐसे पूर्ण किया जैसे अपने संकलपसे रचित अमृतके प्रवाहसे समुद्रको ब्रह्माजी ॥ ११ ॥ उस घटमें दुग्धके पानसे मुनिको वहनादि क्रियामें शिथिल करनेवाला वह वीर्य मासमें ऐसे वृद्धिको प्राप्तहुआ जैसे अमृतके समुद्रमें सुंदर चंद्रमाका प्रतिबिंब १२

इंदुंमासइवापूर्णकालेनसुषुवेघटः ॥ गर्भकमलपत्राक्षंप्रसूनमिवमाधवः ॥ १३ ॥ परिपूर्णसमस्तांगःकुंभाद्भोविनिर्ययौ ॥ इंदुःसूक्ष्मादिवांभोधेरपरःक्षयवर्जितः ॥ १४ ॥ दिनैःकतिपयैरेववृद्धिमभ्याजगामसः ॥ अप्रमेयांगसौंदर्यःशुक्लपक्षेशशीयथा ॥ १५ ॥ सर्वसंस्कारसंपन्नेसतस्मिन्नारदोमुनिः ॥ भांडाद्भांडइवाशेषंविद्याधनमयोजयत् ॥ १६ ॥

अर्थ—कालपाके उस घटने कमलके सदृश नेत्रधारी बालकको ऐसे उत्पन्न किया जैसे पूर्णमास चंद्रमाको वा विष्णुभगवान् कमलको ॥ १३ ॥ उस घटसे संपूर्ण अंगोंसे पूर्णगर्भ ऐसे निकला जैसे घटपरिमित सूक्ष्म समुद्रसे नाशरहित चंद्रमा ॥ १४ ॥ अपार सुंदरतायुक्त वह बालक कुछ दिनोंमेंही ऐसे बुद्धिको प्राप्तहुआ जैसे शुक्ल पक्षमें चंद्रमा ॥ १५ ॥ जातकर्म तथा उपनयनादि संस्कारोंसे युक्त उस पुत्रको नारदमुनिने अपने अंतःकरणसे निकालके विद्यारूपी धनसे ऐसे पूर्ण किया जैसे एक अक्षय वर्तनके धनसे दूसरे वर्तनको ॥ १६ ॥

दिनैःकतिपयैरेवविज्ञाताशेषवांङ्मयम् ॥ चकारैनंमुनिवरःप्रतिबिंबमिवात्मनः ॥ १७ ॥ तेनाराजतपुत्रेणमुनिनामुनिनायकः ॥ रत्नाद्रौप्रतिबिंबेनसंध्योदितइवोडुराट् ॥ १८ ॥ अथैनंपुत्रमादायब्रह्मलोकंसनारदः ॥ जगामाथस्वपितरंब्रह्माणंचाभ्यवादयत् ॥ १९ ॥ कृताभिवंदनंब्रह्मापौत्रमादायतंतदा ॥ अभिवादितवेदादिस्वयमंकेन्यवेशयत् ॥ २० ॥

अर्थ—गिनेहुये दिनोंमेंही संपूर्ण विद्याओंको जाननेवाले उस पुत्रको श्रेष्ठ मुनि नारदजीने अपने प्रतिबिंबके समान बना लिया ॥ १७ ॥ हे राजर्षे ! उस ऋषिरूप पुत्रसे श्रेष्ठमुनि नारदसे ऐसे शोभितहुये जैसे संध्याकालमें स्फटिकाचलपर उदयको प्राप्त पूर्ण चंद्रमा ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् उस पुत्रको लेके नारद मुनि अपने पिता ब्रह्माजीके निकट गये और उनसे बोले ॥ १९ ॥ प्राणके पश्चात् वेदादि विद्यामें परीक्षा देनेवाले उस अपने पौत्रको ब्रह्माजीने गोदमें बैठालिया ॥ २० ॥

अथाशीर्वादमात्रेणसर्वज्ञंज्ञानपारगम् ॥ पौत्रंतंकुंभनामानंचकारकमलोद्भवः ॥ २१ ॥ साधोसोहमयंकुंभःपौत्रोहंपद्मजन्मनः ॥ पुत्रोहंनारदमुनेःकुंभनामास्मिकुंभजः ॥ २२ ॥ निवसाम्यब्जजपुरेपित्रासहयथासुखम् ॥ चत्वारःसुहृदोवेदाममलीलाविलासिनः ॥ २३ ॥ मातृष्वसामेगायत्रीममामातासरस्वती ॥ ब्रह्मलोकेममगृहंपौत्रस्तत्रास्मिसुस्थितः ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् आशीर्वाद मात्रसे सब विद्यामें पारंगत (तत्वज्ञानी) तथा सर्वज्ञ उस अपने पौत्रको ब्रह्माजीने बनाया और कुंभ उसका नामकरण किया ॥ २१ ॥ सो हे साधो ! वही कुंभसे उत्पन्न नारदमुनिका पुत्र और ब्रह्माका पौत्र कुंभनामा मैंहुं ॥ २२ ॥ और ब्रह्मासे रचित नगरमें अपने पिताकेसाथ सुखपूर्वक रहताहुं और चारोवेद मेरे क्रीडाके विलासी मित्रहैं ॥ २३ ॥ मेरी मौसी (माताकी भगिनी) गायत्री है, मातासरस्वती है ब्रह्मलोकमें मेरा गृह इसप्रकार ब्रह्माकापुत्र मैं सुखसे स्थित हुं ॥ २४ ॥

यथाकाममशेषेणजगंतिविहराम्यहम् ॥ लीलयापरिपूर्णत्वान्नतुकार्येणकेनचित् ॥ २५ ॥ धरांपततिमेपादौपततोनमहीतले ॥ रजःस्पृशंतिनांगानिग्लानिंनायातिमेवपुः ॥ २६ ॥ अद्याकाशमथागच्छन्द्रष्टवांस्त्वामहंपुरः ॥ इहतेनागतोस्म्यंगसर्वंकथितवानिति ॥ २७ ॥ एषोहमित्यखिलमेवयथानुभूतंतेवर्णितंननुमयावनवासतज्ज्ञ ॥ संतोहिसंकथनमार्यजनोत्तमेषुनिर्मात्यलंसुभगसंव्यवहारदक्षाः ॥ २८ ॥ श्रीवाल्मीकिउवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने कुंभजननकथनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ—और लीलासे पूर्ण होनेसे बिना किसी कार्यके सब ब्रह्मांडोंमें सुखपूर्वक विहार करताहुं ॥ २५ ॥ जब मैं पृथिवीपर चलना चाहताहुं तो मेरे अंग पृथिवीको नहीं छूते, पृथिवीके रेणु मेरे किसी अंगको स्पर्श नहीं करते और मेरा शरीरभी कभी ग्लानिको नहीं प्राप्त होता ॥ २६ ॥ इससमय आकाशमार्गसे जातेहुये मैंने संमुख तुमको देखके

(१) पतिके हितार्थ चूडालाका मिथ्या भाषणका पाप नहीं लगा अथवा ब्रह्मज्ञानी होनेसे सर्वरूप चूडाला है इसलिये कुंभऋषिकाभी आत्म वही था इसलिये मिथ्या भाषण नहीं हुआ ॥

यहां आयाहुं यह अपना सम्पूर्ण वृत्तांत मैंने तुमसे कहदिया ॥ २७ ॥ हे चित्तशुद्धि आदि वनवासके गुणोंको जाननेवाले राजर्षे यह मैंने अपने जन्मादि आपको यथामति वर्णन करदिया क्योंकि श्रेष्ठजनोंके पूछनेपर महात्माजन निपुणतासे उत्तर देनेमें तत्पर रहते हैं ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे कुम्भजननकथनंनाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

दिवस १८

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इस ८७ के सर्गमें कुंभऋषिकी प्रशंसा, राजाके दुःखका निवेदन, उपदेशके लिये शिष्यत्वका अंगीकार और विश्वास इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ शिखिध्वजउवाच ॥ सर्गैस्फुरद्भिर्मत्पुण्यैर्मन्येसंप्रेषितोभवान् ॥ अलक्ष्यैःसंभृतैरद्रौबृहद्वातैरिवांबुदः ॥ १ ॥ अद्यतिष्ठाम्यहंसाधोधन्यानांधुरिधर्मतः ॥ अमृतस्यंदिवचसायत्त्वयास्मिसमागतः ॥ २ ॥ नकेचनतथाभावाश्चेतःशीतलयंतिमे ॥ राज्यलाभादयोप्येतेयथासाधुसमागमः ॥ ३ ॥ निर्गलरसो यत्रसामान्येनविजृंभते ॥ मुक्तरागादिमननंतत्कल्पनसुखावहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—राजा शिखिध्वज बोला कि–हे देवर्षे ! इस संसारमें मेरे अलक्ष्य तथा देदीप्यमान पुण्योंसे आप इस पर्वतपर ऐसे भेजेगये हैं जैसे महावायुसे मेघ ॥ १ ॥ हे भगवन् ! इस समय मैं भाग्य मानोंमें अग्रणी स्थितहुं क्योंकि अमृतश्रावी वचन भाषण करनेवाले आपके साथ मेरा समागम हुआ ॥ २ ॥ हे भगवन् ! राज्यलाभादि कोईभी पदार्थ मेरे चित्तको ऐसे नहीं शीतळ करसकते जैसे आपके समान महात्माओंका समागम ॥ ३ ॥ क्योंकि साधुसमागममें रागादिकी रहिततापूर्वक अपरिच्छिन्न ब्रह्मानन्द दरिद्रादि सर्वसाधारणकोलिये प्रकाशित होरहाहै और राज्यादि लाभ तो कल्पनामात्रसे तुच्छ सुखदायक है ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंवादिनिसैवास्यवाक्यमाक्षिप्यभूपतेः ॥ भूयःप्रोवाचचूडालामुनिदारकरूपिणी ॥ ५ ॥ चूडालेवाच ॥ आस्तामेषाकथातावत्सर्वंतेवर्णितंमया ॥ त्वंमेकथयहेसाधोकस्त्वमद्रौक रोषिकिम् ॥ ६ ॥ कियत्पर्यवसानेयंभवतोवनवासिता ॥ सत्यंकार्यंचनोसत्यंवक्तुंजानंतितापसाः ॥ ७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ देवपुत्रोसिजानासिसर्वमेवयथास्थितम् ॥ लोकवृत्तांततज्ज्ञोसिकिमन्य त्कथयाम्यहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार कहते हुये शिखिध्वजके वाक्यको रोककर मुनिसे बालकरूपिणी चूडाला बोली ॥ ५ ॥ अब इस कथाको तो रहने दीजिये, मैंने अपने जन्मादि सब आपको कहदिया अब तुम यह कहो कि इस पर्वतपर क्या करतेहो ॥ ६ ॥ और यहभी कहो कितने कालतक यह तुमारा बनका निवास है और इस बनवाससे क्या कार्य आपको साध्य है इस विषयमें सत्य २ कहिये क्योंकि तपस्वीलोग सत्य भाषण करतेहैं नकि असत्य ॥ ७ ॥ शिखिध्वज बोला कि–हे देवपुत्र ! आप संसारके वृत्तांतके ज्ञाताहो सबकुछ यथास्थित जानतेहो और मैं क्या कहुं ॥ ८ ॥

संसारभयभीतत्वान्निवसामिवनांतरे ॥ जानतोपिहिमामार्यकथयाम्येवतेमनाक् ॥ ९ ॥ शिखिध्वजोहं भूपालस्त्यक्त्वाराज्यमिहास्थितः ॥ भृशंभीतोस्मितत्त्वज्ञसंसृतौजन्मतःपुनः ॥ १० ॥ सुखंपुनःपुनर्दुःखंपुनर्मरणजन्मनी ॥ भवतस्तेनतप्येहंतत्त्वज्ञवनवीथिषु ॥ ११ ॥ भ्रमन्नपिदिगंतेषुचरन्नपिपरंतपः ॥ नासादयामिविश्रांतिमेकांनिधिमिवाधनः ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारके भयसे भीत होके मैं बनमें स्थितहुं, हे श्रेष्ठ भगवन् ! मुझे जानतेभी हैं तथापि आपकी आज्ञासे कुछ कहताहुं ॥ ९ ॥ हे आत्मज्ञ मैं शिखिध्वजराजाहुं मैं संसारमें पुनः २ जन्ममरणसे अत्यन्त भयभीतहुं इसलिये राज्यको त्यागके तपमें स्थितहुं ॥ १० ॥ हे तत्वज्ञ ! इस संसारमें सुखदुःख तथा जन्ममरण पुनः २ होते हैं इसलिये मैं बनके मार्गोंमें तप करताहुं ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! दिगंतोंमें भ्रमण करता हुआ तथा उग्र तप करता हु आभी एक विश्रांतिको ऐसे नहीं पाता जैसे निर्धन निधिको ॥ १२ ॥

अयत्नोप्यफलोप्येकोह्यपूर्णोप्यस्तसंगतिः ॥ शुष्याम्यत्रवनेसाधोघुनक्षुण्णइवद्रुमः ॥ १३ ॥ इमामखं डितांसम्यक्क्रियांसंपादयन्नपि ॥ दुःखाद्दुःखामिदुःखौघममृतंमेविषंस्थितम् ॥ १४ ॥ चूडालोवाच ॥ पितामहमहंपूर्वंकदाचित्पृष्टवानिदम् ॥ यत्क्रियाज्ञानयोरेकंश्रेयस्तद्ब्रूहिमेप्रभो ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञानंहिपरमंश्रेयःकैवल्यंतेनवेत्त्यलम् ॥ कालातिवाहनायैवविनोदायोदिताक्रिया ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो ! प्रयत्न, फल तथा सहायतारहितभी मैं इस बनमें ऐसे शुष्क होरहाहुं जैसे काष्ठके कीडोंसे भक्षित वृक्ष ॥ १३ ॥ इस अतिथि पूजादि अखंडित तपकी क्रियाको करता हुआभी एक दुःखसे मैं दूसरे दुःख समुद्रमें प्राप्त होताहुं और अमृतके तुल्य वेदोक्त कर्मसमुचित उपासना मुझे विश्राम न देनेसे विष होरहाहै ॥ १४ ॥ चूडाला बोली—पूर्वकालमें किसीसमय ब्रह्माजीसे मैंने यह पूंछा कि—हे प्रभो ! ज्ञान और क्रिया इन दोनोंमें कल्याणकारी क्या है ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि—हे वत्स ! ज्ञानही परमश्रेय है उसीसे यह प्राणी पूर्णरीतिसे मोक्षका भागी होताहै और क्रिया केवल स्वर्गादि भोगके विनोदके लिये श्रुतिमें कहीगई है ॥ १६ ॥

अलब्धज्ञानदृष्टिनांक्रियापुत्रपरायणम् ॥ यस्यनास्त्यंबरंपट्टंकंबलंकित्यजत्यसौ ॥ १७ ॥ वासनामात्र सारत्वादज्ञस्यसफलाःक्रियाः ॥ सर्वाएवाफलाज्ञस्यवासनामात्रसंक्षयात् ॥ १८ ॥ सर्वाहिवासनाभा वेप्रयांत्यफलतांक्रियाः ॥ अशुभाःफलवंत्योपिसेकाभावेलताइव ॥ १९ ॥ ऋत्वंतरेयथायातिविलयंपू र्वमार्त्तवम् ॥ तथैववासनानाशेनाशमेतिक्रियाफलम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिनको ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है उनका आश्रय क्रियाही है क्योंकि जिनको पीतांबर नहीं मिलता वे क्या कंबलको त्यागतेहैं ॥ १७ ॥ वासनामात्रके सार होनेसे अज्ञानीकी सब क्रिया सफल होती हैं और वासनाओंके क्षयसे ज्ञानीकी सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ १८ ॥ फलोंको देनेमें आरब्धभी क्रियामें वासनाके अभावसे ऐसे निष्फलताको प्राप्त होती हैं जैसे जलके सिंचन बिना फलसहित लता ॥ १९ ॥ जैसे शरदृतुमें वर्षाऋतुके मेघादि नाशको प्राप्त होजाते हैं ऐसेही वासनाके नाशसे क्रियाओंके फलभी नष्ट होजाताहै ॥ २० ॥

नस्वभावेनफलतियथाशरलताफलम् ॥ क्रियानिर्वासनापुत्रफलंफलतिनोतथा ॥ २१ ॥ सयक्षवासतो बालोयक्षंपश्यतिनान्यथा ॥ सदुःखवासनोमूढोदुःखंपश्यतिनान्यथा ॥ २२ ॥ आकारभासुराप्युच्चैर्नद दातिफलंक्रिया ॥ शुभाशुभावातज्ज्ञस्यफुल्लाशरलतायथा ॥ २३ ॥ वासनाचेहनास्त्येवसाहंकारादि रूपिणी ॥ असत्यैवोदितामौर्ख्यान्मरुभूमाविवांबुधिः ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वभावहीसे जैसे काशकी लतामें फल नहीं होता ऐसेही बासनारहित फलको नहीं देती ॥ २१ ॥ जैसे प्रेतादिकी बासनासहित बालक भूत प्रेतादि देखताहै अन्यथा नहीं ऐसेही सुखदुःखकी वासनासहित मूढही मुख तथा दुःखको देखताहै न कि अन्य ॥ २२ ॥ महान् आकारोंसे प्रकाशमान बडीभी शुभ वा अशुभ क्रिया ज्ञानीको फल ऐसे नहीं देती जैसे विकसित काशकी लता ॥ २३ ॥ और वास्तविकमें अहंकारादिरूपिणी वासना कोई वस्तु नहीं है वह असत्यही मूर्खतासे इसप्रकार उदयको प्राप्त है जैसे मरुभूमिमें समुद्र ॥ २४ ॥

यस्यमौर्ख्यंक्षयंयातंसर्वंब्रह्मेतिभावनात् ॥ नोदेतिवासनातस्यप्राज्ञस्येवांबुधिर्मरौ ॥ २५ ॥ वासनामा त्रसंत्यागाज्जरामरणवर्जितम् ॥ पदंभवतिजीवोंतर्भूयोजन्मविवर्जितम् ॥ २६ ॥ सवासनंमनोज्ञेयंज्ञानं निर्वासनंमनः ॥ ज्ञानेनज्ञेयमभ्येत्यपुनर्जीवोनजायते ॥ २७ ॥ चूडालोवाच ॥ ज्ञानमेवपरंश्रेयइतिब्रह्मा दयोपिते ॥ प्राहुर्महांतोराजर्षेत्वंकिमज्ञानवान्स्थितः ॥ २८ ॥

अर्थ—सब कुछ ब्रह्महीं है इस भावनासे जिसकी मूर्खता नष्ट होगई है उस ज्ञानीको वासना उदय ऐसे नहीं होती जैसे मरूभूमिमें समुद्र ॥ २५ ॥ हे राजर्षे ! वासनामात्रके त्यागसे जरा मरणसे बर्जित और पुनर्जन्मसे शून्य परमार्थ वस्तु इस जीवको प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ वासनासहित मनका रूपहै और वासनाके अभावमें यह ज्ञानरूप होजाताहै और ज्ञानसे ज्ञेय वस्तुकी प्राप्ति होती है जिससे कि जीव पुनः जन्म नहीं लेता ॥ २७ ॥ चूडाला बोली—हे राजर्षे ! ब्रह्मादिक महात्माओंने ज्ञानकोही परमश्रेय कहाहै सो तुम अज्ञानीके तुल्य क्यो स्थितहो ? ॥ २८ ॥

इतःकमंडलुरितोदंडकाष्ठमितोबृसी ॥ इत्यनर्थविलासेस्मिन्रमसेकिंमहीपते ॥२९॥ कोहंकथमिदंजा तंकथंशाम्यतिचेतिभो ॥ राजन्नावेक्षसेकस्मात्किमज्ञइवतिष्ठसि ॥ ३० ॥ कथंबंधःकथंमोक्षइतिप्रश्ना नुदाहरन् ॥ पारावारविदांपादान्कस्माद्राजन्नसेवसे ॥ ३१ ॥ दुःस्पंदसंविदाशैलकोटरेक्रिययानया ॥ जीवितंक्षिपयन्किंत्वंशिलाकीटवदास्थितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—यहां दंड, यहां कमण्डलु, और यहां आसन इत्यादि तपरूप अनर्थके विलासमें तुम क्यों रमण करतेहो ॥ २९ ॥ मैं कौनहुं और कैसे यह संसार उत्पन्न हुआहै और किसप्रकारसे शांत होताहै. हे राजन्! इत्यादि बातोंको तुम क्यों नहीं बिचारते और अज्ञानीके तुल्य क्यो स्थितहो ॥ ३० ॥ बंध कैसे है और मोक्ष कैसे होताहै इत्यादि प्रश्नोको करतेहुये शोधित " तत्त्वम् " पदके अखंड वाक्यार्थको जाननेवाले महात्माके चरणोंकी सेवा क्यों नहीं करते ॥ ३१ ॥ बहिर्मुख वृत्तिरूप दुःखदायी इस तपके कार्यमे पाषाणके कीटके तुल्य इस पर्वतकी कन्दरामें अपना जीवन नष्ट करतेहुये क्यों स्थितहो ॥ ३२ ॥

साधूनांसमदृष्टीनांपरिप्रश्नेनसेवया ॥ संगमेनचसायुक्तिर्लभ्यतेमुच्यतेयया ॥ ३३ ॥ साधुनैवसमंग्रासंभुंजानोवनकोटरे ॥ तिष्ठावष्टब्धदुःश्चेष्टोधराविवरकीटवत् ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कांतयादेवरूपिण्यातयैवंप्रतिबोधितः ॥ अश्रूपूर्णमुखोवाक्यंशिखिध्वजउवाचह ॥ ३५ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ अहोनुबोधितोरस्म्यद्यचिरात्सुरसुतत्वया ॥ मौर्ख्यादार्यसमासंगंमुक्त्वाहमवसंवने ॥ ३६ ॥

अर्थ—समदृष्टि साधु महात्माओंसे प्रश्न करनेसे तथा उनकी सेवा और उनके समागमसे ज्ञानरूपयुक्ति प्राप्त होती है जिससे यह जीव मुक्त होजाताहै ॥ ३३ ॥ अपने गुरूके साथ आहार भोजन करतेहुये क्लेशदायक बहिर्मुख वृत्तियोंको निरोध करके गुरूके उपदेशमें पृथिवीकें कीडेके समान निश्चल स्थित रहो ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! देवरूपिणी अपनी स्त्रीसे इसप्रकार बोधित होनेपर राजा शिखिध्वज अश्रु पूर्णमुख होके यह बात बोला—हे देवपुत्र ! अहो चिरकालसे आज आपने मुझे यह ज्ञान दिया मैंने अपनी मूर्खतासे श्रेष्ठ पुरुषोंका समागम त्यागके इस बनमें निवास किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अहोनुमेक्षयंयातंमन्येपापमशेषतः ॥ यत्त्वमेवसमागत्यसंप्रबोधयसीहमाम् ॥ ३७ ॥ गुरुस्त्वंमेपितात्वंमेमित्रंत्वंमेवरानन ॥ शिष्योनमस्करोम्यद्यपादौतवकृपांकुरु ॥ ३८ ॥ यद्वदारतमंवेत्सियस्मिन्ज्ञातेनशोच्यते ॥ भवामिनिर्वृतोयेनतद्ब्रह्मोपदिशाशुमे ॥ ३९ ॥ घटज्ञानादयोज्ञानेविभागाःसंत्यनेकशः ॥ ज्ञानानांपरमंज्ञानंकतरत्तारकंभवेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—अहो ! मैं यह मानताहुं कि मेरा सम्पूर्ण पाप नष्ट होगया, क्योंकि आप स्वयं आके मुझे ज्ञान दे रहेहो ॥३७॥ हे श्रेष्ठमुख ! मेरे तुम गुरू, पिता तथा मित्र भी हो मैं आपका शिष्य आपके चरणोंको नमस्कार करताहूं आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥ ३८ ॥ जिसको आप सबसे श्रेष्ठ मानतेहो जिसके जाननेसे यह प्राणी पुनः शोच नहीं करता, और जिससे मैं सुखस्वरूपमें विश्रांत होऊं उस ब्रह्मका उपदेश मुझे शीघ्र दीजिये ॥ ३९ ॥ ज्ञानोंमें घटपटादि अनेक ज्ञान हैं सो संसारसे पार उतारनेवाला कौन ज्ञान है ॥ ४० ॥

चूडालोवाच ॥ यद्युपादेयवाक्योहंराजर्षेतद्वदामिते ॥ यथाज्ञानमिदंकिंचिन्नवक्षेस्थाणुकाकवत् ॥४१॥ अनुपादेयवाक्यस्यवक्तुःपृष्टस्यलीलया ॥ व्रजंत्यफलतांवाचस्तमसीवाक्षसंविदः ॥ ४२ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ यद्वक्षितद्रुपादेयंमयाविधिरिवश्रुतेः ॥ अविचारितमेवाशुसत्यमेतद्वचोमम ॥ ४३ ॥ चूडालोवाच ॥ यथाबालःपितुर्वाक्यंमुक्तहेतूपपादनम् ॥ आदत्तेहितयैवत्वंगृहाणैतद्वचोमम ॥ ४४ ॥ श्रवणानंतरंबुद्ध्याशुभमित्येवभावयन् ॥ शृणुगीतमिवत्यक्त्वाहेत्वार्थित्वंवचोमम ॥ ४५ ॥ स्वचरितसदृशंतथोदयंत्याश्चिरसमयेनविबोधनंचबुद्धेः ॥ भवभवसुतरंमहामतीनांशृणुकथयामिकथाक्रमंमनोज्ञम् ४६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजावबोधोनाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—चूडाला बोली—हे राजर्षे! यदि मेरे वाक्यमें तुम श्रद्धा करतेहो तो मैं तुमारे प्रश्नके अनुकूल उत्तर कहूं क्योंकि बिना श्रद्धाके स्थाणुके संमुख काकके शब्दके तुल्य मैं ज्ञानोपदेश नहीं कहूंगा ॥ ४१ ॥ लीलासे प्रश्न किये हुये अश्रद्धेय वाक्यवाले वक्ताकी वाणी ऐसे निष्फल होजाती हैं जैसे अंधकारमें नेत्रके संनिकर्ष ॥ ४२ ॥ शिखिध्वज बोला कि—हे भगवन्! आपके बचनको बिना विचारे वेदकी विधिके समान मैं शीघ्र ग्रहण करूंगा, यह बचन मैं आपसे सत्य कहताहुं ॥ ४३ ॥ चूडाला बोली—हे राजन्! जैसे बालक पिताके वाक्यको विना हेतु पूंछे ग्रहण करलेताहै ऐसेही मेरे इस बचनको तुम ग्रहण करो ॥ ४४ ॥ और श्रवणके अनंतर मेरा हितकारक है ऐसी भावना करते हुये गानके समान प्रीतिपूर्वक कारणको त्यागके मेरे बचनको सुनो ॥ ४५ ॥ हे राजर्षे! तुमारेही च-

रितके सदृश, मंदमतियोंकी बुद्धिकोभी चिरकालमें विचारद्वारा बोधकारक और मतियोंको शीघ्रही संसारके भयसे पार उतारनेमें रमणीय कथाके क्रमको मैं कहताहुं सो तुम सुनो ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधोनाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

चिरकालकी तपस्यासे किसीने चिंतामणिको पाया और मूर्खतासे उसे त्यागकर काचको ग्रहण करलिया यह कथा इस ८८ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

चूडालोवाच ॥ अस्तिकश्चित्पुमान्श्रीमान्स्थानंनित्यविरुद्धयोः॥गुणलक्ष्म्योरशेषेणयथाब्धिर्वाडवांबुनोः ॥ १ ॥ कलवानस्त्रकुशलोव्यवहारविचक्षणः ॥ सर्वसंकल्पसीमांतोनतुजानातितत्पदम् ॥ २ ॥ अनंतयत्नसंसाध्येसचिंतामणिसाधने ॥ प्रवृत्तोवाडवोवह्निरब्धिसंशोषणेयथा ॥ ३ ॥ तस्ययत्नेनमहता कालेनाध्यवसायिनः ॥ सिद्धश्चिंतामणिःकिंवानसिध्यत्युद्यतात्मनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली—हे राजर्षे! कोई धनाढ्यपुरुष परस्पर नित्य विरुद्ध औदार्यादि गुण तथा लक्ष्मीका निवासस्थान इसप्रकार था जैसे समुद्र जल तथा वडवानलका ॥ १ ॥ और वह पुरुष कलाओंमें कुशल अस्त्र विद्यामें निपुण, व्यवहारमें कुशलथा, परंतु परमपदको नहीं जानताथा ॥ २ ॥ अनेक यत्नोंसे साध्य चिंतामणिके प्राप्तिके लिये तप करनेमें ऐसे प्रवृत हुआ जैसे समुद्रके शोषण करनेमें वडवानल ॥ ३ ॥ उस उद्योगीके महान् प्रयत्नसे कालपाके चिंतामणि सिद्ध हुआ क्योंकि उद्योगियोंको क्या पदार्थ नहीं सिद्ध होता ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिमुद्यमंप्रज्ञांप्रयुंक्तेचेदखेदवान् ॥ अकिंचनापिशक्तत्वंसमवाप्नोत्यविघ्नतः ॥ ५ ॥ मणिमग्रेस्थितप्रायंहस्तप्राप्यंददर्शसः ॥ मेरावुदयशृंगस्थोमुनिरिंदुमिवोदितम् ॥ ६ ॥ बभूवमणिराजेंद्रेनतुनिश्चयवानसौ ॥ राज्येद्रागितिसंप्राप्तेसुदीनइवपामरः ॥ ७ ॥ इदंसंचितयामासमनसास्मयशालिना ॥ संप्राप्तोपेक्षयादीर्घदुःखसंभ्रमशालिना ॥ ८ ॥

अर्थ—जो प्राणी बुद्धिका आश्रय लेके यदि खेदरहित होके उद्यममें प्रवृत्त रहताहै तो दरिद्र होकेभी निर्विघ्नतासे सामर्थ्यको प्राप्त होताहै ॥५॥ उसने संमुख स्थित हस्तसे प्राप्त होनेयोग्य मणिको ऐसे देखा जैसे मेरुके शिखरपर स्थित कोई जन उदित चंद्रमाको ॥ ६ ॥ परंतु उस मणिमें उसको निश्चय ऐसे नहीं हुआ जैसे शीघ्र प्राप्त राज्यमें अति दरिद्रको ॥ ७ ॥ विस्मय उपेक्षा, अति दुःख तथा संभ्रमयुक्त मनसे उसने यह विचारा ॥ ८ ॥

अयंमणिर्मणिर्नायंमणिश्चेत्तद्भवेन्नसः ॥ स्पृशामिनस्पृशाम्येनंकदाचित्स्पर्शतोव्रजेत् ॥ ९ ॥ नैतावतैवकालेनमणींद्रःकिलसिद्धयति ॥ यत्नेनजीवितांतेनसिद्धयतीत्यागमक्रमः ॥ १० ॥ कृपणःकूणितेनाक्षणालोलालातलतोपमम् ॥ रत्नालोकंप्रपश्यामिद्विचंद्रत्वमिवभ्रमात् ॥ ११ ॥ कुतएतावतीस्फीताभाग्यसंपन्ममागता ॥ अधुनैवयदाप्नोमिमणींद्रंसर्वसिद्धिदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कि क्या यह मणि है वा नहीं है यदि मणि होता तो हमारे प्रत्यक्ष न होता इसको मैं स्पर्श करूं वा न करूं, ऐसा नहो कि मेरे स्पर्श करते यह चिंतामणि कहीं लुप्त होजाय ॥ ९ ॥ और इतने कालमें चिंतामणि नहीं सिद्ध होता क्योंकि जन्मभरके महान् यत्नसे सिद्ध होताहै ऐसा लोग कहते हैं ॥ १० ॥ मैं अति कृपण अपनी कृपणताके कारण भ्रांतिसे संकुचित नेत्रसे चंचल आलातचक्रसे कल्पित रत्नके प्रकाशको दो चंद्रकी भ्रांतिके तुल्य देख रहाहुं ॥ ११ ॥ अभी इतनेही कालमें इतना स्वच्छ मेरा भाग्योदय कैसे होगया, अभी सर्व सिद्धिदायक मणिराज (चिंतामणि) मुझे कैसे होगया ॥ १२ ॥

केचिदेवमहांतस्तेमहाभाग्याभवंतिहि ॥ येषामल्पेनकालेनभवंत्याभिमुखाःश्रियः ॥ १३ ॥ अहमल्पतपाःसाधुवराकोमानुषःकिल ॥ सिद्धयःकथमायांतिमामभाग्यैकभाजनम् ॥ १४ ॥ एवंविकल्पसंकल्पैश्चिरमज्ञःपरामृशन् ॥ नमणिग्रहणेयत्नमकार्षीन्मौर्ख्यमोहितः ॥ १५ ॥ नयदायेनलब्धव्यंनततत्प्राप्नोत्यसौतदा ॥ चिंतामणिरवाप्तोपिदुर्धियाहेलयोज्झितः ॥ १६ ॥

अर्थ—कोई २ महा भाग्यशाली महात्मा ऐसे होते हैं जिनको अल्पकालमेंही लक्ष्मी प्राप्त होतीहैं ॥ १३ ॥ मैं अल्प तपवाला दीन मनुष्यहूं मुझ अभागेको भला सिद्धि कैसे प्राप्त होसकतीहैं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकारसे उस अज्ञानीने अनेक संकल्पविकल्पोंसे विचार करताहुआ मूर्खतासे मोहित होके मणिके ग्रहण करनेमें प्रयत्न नहीं किया ॥ १५ ॥ क्योंकि जिससमय जिसको जो वस्तु नहीं मिलनी होती वह उससमय उसको नहीं पाता देखो इस दुर्बुद्धिने चिंतामणिको पाकरभी दुर्बुद्धितासे अनादर पूर्वक त्यागदिया ॥ १६ ॥

इतितस्मिन्स्थितेयातोमणिरुड्डीयसिद्धयः ॥ त्यजंतिह्यवमंतारंशरोगुणमिवोज्झितः ॥ १७ ॥ हत्वाप्राज्ञ पदंपुंसःसंयांतिकिलसिद्धयः ॥ आगताःसंप्रयच्छंतिसर्वंयांत्यसहत्यलम् ॥ १८ ॥ पुमान्भूयःक्रियाय त्नंचक्रेरत्नेंद्रसाधने ॥ नोद्विजंतेस्वकार्येषुजनाअध्यवसायिनः ॥ १९ ॥ ददर्शाथकचद्रूपंकाचखंडमखं डितम् ॥ हसद्भिर्वंचकैःसिद्धैःपुरस्कृतमलक्षितैः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार उसके स्थित होनेपर चिंतामणि उडकर कहीं चलागया क्योंकि अनादर करनेवालोंको सिद्धि ऐसे त्यागती हैं जैसे धनुषकी डोरीसे त्यागाहुआ उस डोरीको बाण त्यागताहै ॥ १७ ॥ और सिद्धि जब मनुष्यके निकट आती हैं उससमय उसको बुद्धिमताके पदको देती है और जो पुरुष उन सिद्धियोंकी उपेक्षा करताहै तो वे उसके बुद्धिमत्ताआदि गुणोंका नाश करके चली जाती हैं ॥ १८ ॥ उस पुरुषने मणिराज (चिंतामणि) की सिद्धिकेलिये पुनः यत्न किया क्योंकि उद्योगी जन अपने कार्य्योंके करनेमें उद्विग्न नहीं होते ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् हंसतेहुये वंचक सिद्धोंसे संमुख स्थापित विकसितरूप एक अखंडित कांच उसने देखा ॥ २० ॥

अयंचिंतामणिरितिमूढस्तस्मिन्सवस्तुताम् ॥ बुबुधेमोहितोह्यज्ञोमृदंहेमेतिपश्यति ॥ २१ ॥ अष्टौषष्ठ द्विषंमित्रंरज्जुंसर्पंस्थलंजलम् ॥ चंद्रौद्वौकुरुतेचित्तगतोमोहोऽमृतंविषम् ॥ २२ ॥ तंदग्धमणिमादाय प्राक्तनींचश्रियंजहौ ॥ सर्वंचिंतामणेरस्मात्प्राप्यतेकिंधनैरिह ॥ २३ ॥ देशोयमसुखोरूक्षोजनैःपापिभि रावृतः ॥ किंतद्देहंगतप्रायंकिनाममबंधवः ॥ २४ ॥

अर्थ—यह चिंतामणि है ऐसा जानके उस वस्तुमें उस मूढने ग्राह्य बुद्धि की क्योंकि मूर्खतासे मोहित मूढ मृत्तिकाको भी सुवर्णके तुल्य जानताहै ॥ २१ ॥ चित्तगत मोह कदाचित् आठमें छ, शत्रुको मित्र, रज्जुको सर्प, स्थलको जल, एक चंद्रमें दो चंद्रमा तथा अमृतमें विषकी भ्रांति करताहै ॥ २२ ॥ उस नष्ट कांचमणिको पाकर अपनी पूर्व कालकी सब लक्ष्मीको त्यागदिया क्योंकि उसने विचारा कि इस चिंतामणिसे सब कुछ प्राप्त होताहै धनधान्यादि संपत्तिसे क्या प्रयोजनहै ॥ २३ ॥ तुमारा देश सुख तथा स्नेही जनोंसे शून्य है और पापियोंसे घिराहै, उस नष्ट गृहसे मुझे क्या प्रयोजनहै और मेरे बंधुभी कौन है ॥ २४ ॥

दूरंगत्वायथाकामंसुखंतिष्ठामिसंपदा ॥ इत्यादायमणिंमूढःशून्यकाननमाययौ ॥ २५ ॥ तत्रकाचकणे नासौतेनतामापदंययौ ॥ कज्जलाद्रेरिवनिभामौर्ख्यस्यैवांगयासमा ॥ २६ ॥ दुःखानिमौर्ख्यविभवेनभवं तियानिनैवापदोनचजरामरणेनतानि ॥ सर्वापदांशिरसितिष्ठतिमौर्ख्यमेकंकृष्णंजनस्यवपुषामिवकेश जालम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० मणिकाचोपाख्यानं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

अर्थ—दूर जाके अपनी इच्छानुकूल सुखपूर्वक स्थित रहूं ऐसा विचार करके वह मूढ उस कांचखंडको लेकर शून्यबनमें गया ॥ २५ ॥ उस कांचके टुकडेसे वह मूढ ऐसी आपत्तिमें प्राप्त हुआ जो कज्जलाचलके समान नील मूर्खताके अनुकूल (मृत्युरूप) थी ॥ २६ ॥ हे राजन्! मूर्खतासे जो आपत्तियां वा दुःख मनुष्यको होते हैं वे वृद्धावस्था वा मरणसे नहीं होते, क्योंकि सब आपत्तियोंके शिरपर मूर्खता ऐसे स्थित है जैसे मनुष्योंके शरीरोंपर कृष्णकेशसमूह ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्यानं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

बंधे हुये विंध्याचलके गजेंद्रका बंधन तोडना और अपने शत्रु हस्तिपक (पीलवान्) के प्राप्त होनेपरभी उसको न मारकर खंदकमें उसका गिरना वर्णन किया गयाहै ॥

चूडालोवाच ॥ अथेममपरंरम्यंवृत्तांतंशृणुभूमिप ॥ परंप्रबोधनंबुद्धेःसाधोसदृशमात्मनः ॥ १ ॥ अस्तिविंध्यवनेहस्तीमहायूथपयूथपः ॥ आगस्त्याशुद्धयाबुद्धयाविंध्येनेवोदितःस्वतः ॥ २ ॥ वज्रार्चिर्विषमौदीर्घौतस्यास्तांदशनौसितौ ॥ कल्पानलशिखातुल्यौसुमेरून्मूलनक्षमौ ॥ ३ ॥ सबद्धोलोहजालेनहस्तिपेनकिलाभितः ॥ मुनींद्रेणेवविंध्याद्रिरुपेंद्रेणेववाबलिः ॥ ४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली–हे साधो राजन्! अब तुम बुद्धिको परम प्रबोधदायक और अपने सदृश इस रमणीय दूसरे वृत्तांतको सुनो ॥ १ ॥ विंध्याचलके बनमें महायूथपोंकाभी यूथप एक हस्ती ऐसी मानो अगस्त्यऋषिकी शुद्ध बुद्धिद्वारा विंध्याचलने स्वतः प्रकट कियाहै ॥ २ ॥ वज्रकी ज्वालाके समान तीक्ष्ण, अतिदीर्घ, श्वेतवर्ण, प्रलयकालकी अग्निकी ज्वालाके तुल्य, और सुमेरुके उखाडनेमेंभी समर्थ उसके दो दांतथे ॥ ३ ॥ उसको लोहमय शृंखलासे हस्तिपकने चारोओरसे ऐसे बांधाथा जैसे अगस्त्यभगवान् विंध्याचलको वा बामनभगवान् बलिको ॥ ४ ॥

निबद्धोयंत्रणामापशस्त्रकुंभार्दितोगजः ॥ तांजगामव्यथांधीरोनवाग्नौपुरमेतियाम् ॥ ५ रिपौहस्तिपके दूरादपश्यतिसवारणः ॥ अयःसमुद्रकेयस्मिन्निनायदिवसत्रयम् ॥ ६ ॥ खेदान्निगडनिर्भेदेयत्नवान्स मतंगजः ॥ चकारकिंकिणीकाणंमुखोद्घातैरथान्यदा ॥ ७ ॥ दंताभ्यांयत्नतस्ताभ्यांमुहूर्तद्वितयेनसः ॥ बभंजशृंखलाजालंस्वर्गार्गलमिवासुरः ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर बंधा हुआ शस्त्रोंसे गंडस्थलमें पीडित उस गजने बडी पीडा पाया, वह उस व्यथाको प्राप्त हुआ जो अपूर्व हरशराग्निसे दह्यमान त्रिपुरासुर पायाथा ॥ ५ ॥ रिपुनाम हस्तिपकके दूर रहनेसे न देखनेके कारण लोहमयजालके संपुटमें उस गजने तीन दिन उसी व्यथामें बिताया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् दुःखी होके उस बंधनके तोडनेमें यत्नवान् होके मुखके आघातोंसे उसने शृंखलाके शब्द किये ॥ ७ ॥ चार घडीमें यत्नपूर्वक अपने दोनों दांतोंसे शृंखलाके जालको ऐसे तोडडाला जैसे स्वर्गके द्वारको असुर बलि ॥ ८ ॥

तंतस्यनिगडच्छेदमपश्यद्दूरतोरिपुः ॥ बलेःस्वर्गावदलनंहरिर्मेरुतलादिव ॥ ९ ॥ तस्यविच्छिन्नपाश स्यमूर्ध्नितालतरोरिपुः ॥ पपातक्रमतःस्वर्गेहरिर्मेरोर्बलेरिव ॥ १० ॥ सपतन्पादपद्माभ्यामप्राप्यकरिणः शिरः ॥ पपातोर्व्यांफलंपक्कंवाताहतमिवाकुलः ॥ ११ ॥ तंपुरःपतितंदृष्ट्वामहेभःकरुणांययौ ॥ स्फुर त्स्फारगुणाःसंतःसंतितिर्यग्गतावपि ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके बंधनके छेदनको दूरसे रिपुने ऐसे देखा जैसे स्वर्गसे बलिका अधःपतन मेरुतलसे विष्णु ॥ ९ ॥ उस बंधन तोडनेके पश्चात् तालवृक्षपर चढके उस हस्तीके मस्तकपर हस्तिपक ऐसे गिरा जैसे तृतीयपाद भूमिकी पूर्तिकेलिये बलिके मस्तकपर विष्णुभगवान् ॥ १० ॥ वह अपने चरणकमलोंसे गिरता हुआ हस्तीके शिरको न पाकर व्याकुल होके पृथिवीपर ऐसे गिरा जैसे वायुसे ताडित परिपक्व फल ॥ ११ ॥ उसको सन्मुख गिराहुआ देखके महा मतंगज करुणासे पूर्ण होगया, क्योंकि तिर्यग्योनिमें देदीप्यमान विशाल गुणवाले महात्मा हैं ॥ १२ ॥

पतितंदलयामीतिकिंनाममममपौरुषम् ॥ वारणोपीतिकलयन्नजघानसतंरिपुम् ॥ १३ ॥ केवलंनिगडव्यूहंविदार्याभिजगामह ॥ विततंसेतुमुत्सार्यविपुलौघइवांभसः ॥ १४ ॥ दयामाश्रित्यमातंगोभंक्त्वाजालंजगामह ॥ विदार्यमेघसंघातंनभसीवदिवाकरः ॥ १५ ॥ गतेगजेसमुत्तस्थौहस्तिपःस्वस्थदेहधीः॥ गजेनैवसमंतस्यव्यथादूरतरंगता ॥ १६ ॥

अर्थ—इस गिरे मनुष्यको हस्ती होके मैं मर्दित करदूं तो हमारे पुरुषार्थको लोग क्या कहैंगे ऐसा विचारता हुआ उस रिपुको उसने नहीं मारा ॥ १३ ॥ किंतु चारो ओरसे बन्धनजालको तोडके ऐसे चलागया जैसे बडे भारी सेतु (पुल) को तोडके जलका महान् प्रवाह ॥ १४ ॥ वह मातंग दयाका आश्रय लेके बन्धनजालको तोडके ऐसे चलागया जैसे आकाशमें मेघसमूहको विदीर्ण करके सूर्य ॥ १५ ॥ गजके चलेजानेसे देह और बुद्धिके स्वस्थ होनेसे वह हस्तिपक उठ खडा हुआ क्योंकि उस मातंगके साथही उसकी पीडा अतिदूर चलीगई ॥ १६ ॥

प्रोच्चलत्तालशिखरात्सतथापतितोपिसन् ॥ नभेदमापदुर्भेदामन्येदेहादुरात्मनाम् ॥ १७ ॥ वर्धतेप्रावृषीवाभ्रंकुकार्येष्वसतांबलम् ॥ आसीदधिकमुत्साहीसचचंक्रमणेतदा ॥ १८ ॥ वारणारिरसिद्धांगोगते भोइःक्षमाययौ ॥ आगत्योपगतेंतर्धिनिधानइववर्धनः ॥ १९ ॥ सोन्वियेषगजंयत्नाद्गुल्मकांतररितंवने॥ पयोदपिंडितंभोकुंराइरिद्वुमिवांबरे ॥ २० ॥

अर्थ—अतिऊंचे तालवृक्षके ऊपरसे गिरनेपरभी उसके हस्तपादादि अंगोंका भंग नहीं हुआ इससे मैं मानताहूं कि दुष्टोंके अंग अतिकठिन होते हैं ॥ १७ ॥ निन्दित कार्योंके करनेमें दुष्टोंका बल वर्षाके मेघके समान बढताहै

क्योंकि वह दुष्ट तालसे गिरनेपरभी पैरोंसे चलनेमें अधिक उत्साही हुआ ॥१८॥ उपायके न सिद्ध होनेसे हस्तीके चले जानेसे वह ऐसे दुःखी हुआ जैसे आके पुनः धनके चलेजानेपर वर्द्धन वैश्य ॥ १९ ॥ लतागुल्मोंमें छिपके उस बनमें यत्नपूर्वक उसने उस हांथीको ऐसे खोजा जैसे आकाश मेघमें आच्छन्न चन्द्रमाको खानेके लिये राहु ॥ २० ॥

चिरेणालभतेभेंद्रंकस्मिंश्चित्काननेस्थितम् ॥ विश्रांतंतंतरुतलेसमरादिवनिर्गतम् ॥ २१ ॥ अथयत्र स्थितोनागस्तत्रतद्वंधनक्षमम् ॥ परयाराजसामग्र्यामजलंपटभूमया ॥ २२ ॥ सखातवलयंचक्रेहस्तिपः काननेभितः ॥ सर्वदिक्कंविधिर्भूमौसमुद्रवलयंयथा ॥२३॥ उपर्यस्थगयद्वाललतौघेनसतंशठः ॥ शून्य तातंतुजालेनशरत्कालइवांबरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—समरसे निकले हुयेके समान वृक्षके नीचे विश्राम करते हुये किसी बनमें स्थित उस गजेंद्रको चिरकालमें उसने पाया ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् जहां वह गजेन्द्र स्थित था वहांपर हांथीके लोभी राजाओंकी अधिक सामग्रीसे ॥ २२ ॥ उस हांथीके बन्धनके योग्य उस हस्तिपकने चारोंओरसे ऐसी खन्दक बनाई जैसे भूमिपर ब्रह्माजी समुद्ररूप कंकण ॥ २३ ॥ उस खन्दकके ऊपर कोमल लता जालोंसे ऐसे आच्छादन किया जैसे शरत्कालमें आकाशको मेघजाल ॥ २४ ॥

दिनैःकतिपयैरेववारणोविहरन्वने ॥ तस्मिन्निपतितःखातेशुष्काब्धाविवपर्वतः ॥ २५ ॥ वज्रन्पर्याकृतौकूपेपातालतलभीषणे ॥ खातशुष्काब्ध्यधोभागेगजरत्नसमुद्गके ॥ २६ ॥ इतिभूयोदृढंबद्धस्तेनहस्तिपकेनसः ॥ तिष्ठत्यद्यापिदुःखेनभूसद्मनियथाबलिः ॥ २७ ॥ अहनिष्यत्पुरैवासौयद्यग्रेपतितंरिपुम् ॥ तन्नालप्स्यत्ततोदुःखंगजःखातनिबंधनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कुछ दिनोंमेंही उस बनमें विहरताहुआ वह गजेन्द्र उस खन्दकमें ऐसे गिरा जैसे सूखे समुद्रमें पर्वत ॥ २५ ॥ वलयाकार उस समुद्रकी शूखी खन्दकके अधोभागमें चलता हुआ वह गजेन्द्र पुनः गजेन्द्रोंकी शृंखलामें बंधगया ॥ २६ ॥ इसप्रकार उस हस्तिपकसे दृढतापूर्वक बांधा हुआ वह हांथी इस समयभी ऐसे स्थित है जैसे पातालमें बलि ॥ २७ ॥ यदि प्रथमही उस अपने हस्तिपक शत्रुको मारडालता तो वह गज खन्दकके बन्धनका दुःख न पाता ॥ २८ ॥

मौर्ख्यादागामिनंकालंवर्त्तमानक्रियाक्रमैः ॥ अशोधयन्नरोदुःखंयातिविंध्यगजोयथा ॥२९॥ मुक्तोस्मिशत्रुनिगडादितितुष्टोहिवारणः ॥ दूरस्थोपिपुनर्बद्धोमौर्ख्यंकचनबाधते ॥ ३० ॥ मौर्ख्यंहिबंधनमवेहिपरं महात्मन्बद्धोनबद्धइतिचेतसितद्विमुक्त्यै ॥ आत्मोदयंत्रिजगदात्ममयंसमस्तंमौर्ख्येस्थितस्यसहसानुसर्वभूमिः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने हस्तिकोपाख्यानं नाम एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अर्थ—वर्तमानके कर्मोंसे जो मनुष्य अपनी मूर्खताके कारण आगामी कालका शोधन नहीं करता वह ऐसे दुःख पाताहै जैसे विंध्याचलका गजेन्द्र ॥ २९ ॥ शत्रोंके बंधनसे मैं मुक्तहुं इस ज्ञानसे वह गजेंद्र संतुष्टहुआ दूर देशमें स्थितभी वह गज पुनः बन्धनमें आया क्योंकि मूर्खता कहां नहीं दुःखकी बाधा देती है ॥ ३० ॥ हे महात्मन् ! इस मूर्खताहीको तुम परम बन्धन जानो और मैं बद्ध नहीं हुं यही मुक्तिके लिये है इसलिये त्रिविध (अध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक) बन्धनके परिच्छेद भूत जगत्को आत्मरूपही जानो और मूर्खतामें स्थित जीवका आत्माही बन्धनका क्षेत्र है ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपाख्याने हस्तिपकोपाख्यानं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

इस ९० के सर्गमें कुम्भऋषिरूपिणी चूडालाने राजाके संमुख मणि और कांचके शुभाख्यानका निरूपण विस्तारसे कियाहै ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ मणिसाधकविंध्येभबंधनाद्यमरात्मज ॥ सूचितंयत्कथाजालंपुनर्मेप्रकटीकुरु ॥१॥ चूडालोवाच ॥ वाक्यार्थदृष्टेर्निष्पत्त्याहृद्दृहेचित्तभित्तिषु ॥ शृणुस्वयंकथांचित्रांचित्रमुन्मीलयामिते२॥

योसौशास्त्रार्थकुशलस्तत्त्वज्ञानेत्वपंडितः ॥ रत्नसंसाधकःप्रोक्तःसत्वमेवमहीपते ॥ ३ ॥ तज्ज्ञोभवसि शास्त्रेषुरविर्मेरुतटेष्विव ॥ तत्त्वज्ञानेतुविश्रांतोनत्वंदृषदिवांभसि ॥ ४ ॥

अर्थ—राजा शिखिध्वज बोला-हे देवपुत्र ! मणिके साधक तथा विंध्याचलके बंधेहुये गजेंद्रके कथाजालकी सूचना जो आपने पूर्वप्रसंगमें की है उसके तात्पर्यको पुनः मेरेको निरूपण कीजिये ॥ १ ॥ चूडाला बोली-हे राजन् ! तुमारे हृदयरूप गृह तथा चित्तरूप भित्तिमें जो विचित्र कथाकी रेखा खींचीथी अब उस चित्रको मैं विस्तारसे प्रकट करताहुं तुम सावधान होके सुनो ॥ २ ॥ हे राजन् ! जो शास्त्रमें कुशलथा परंतु तत्वज्ञानमें असमर्थ था वह रत्नका साधक तुमही कहे गयेहो ॥ ३ ॥ जैसे सूर्यभगवान् मेरूके तटपर विश्रांतहैं ऐसेही शास्त्रज्ञानमें तुम कुशलहो परन्तु तत्व (ब्रह्म) ज्ञानमें तुम ऐसे नहीं विश्रांतहो जैसे जलमें पाषाण ॥ ४ ॥

विद्धिचिंतामणिंसाधोसर्वत्यागमकृतिमम् ॥ तमंतंसर्वदुःखानांत्वंसाधयसिशुद्धधीः ॥ ५ ॥ सर्वत्यागे नशुद्धेनसर्वमासाद्यतेनघ ॥ सर्वत्यागोहिसाम्राज्यंकिंचिंतामणितोभवेत् ॥ ६ ॥ सिद्धःसर्वपरित्यागः साधोसंसाध्यतस्तव ॥ खर्वीकृतजगद्भूतिर्विद्यास्वात्मोदयस्तथा ॥ ७ ॥ संत्यक्तंभवताराज्यंसदारधन बांधवम् ॥ ब्रह्मणेवजगत्सर्गव्यापारःस्वनिशागमे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे साधो ! सब दुःखोंके नाशक स्वाभाविक सबत्यागको तुम चिंतामणि जानो, और उसी चिंतामणिको तुम शुद्धबुद्धि होके सिद्ध करतेहो ॥ ५ ॥ हे पापरहित राजन् ! शुद्ध सर्वत्यागसे सब कुछ मिलसकताहै हे साधो ! सर्वत्यागही साम्राज्यहै चिंतामणिसे क्या होताहै ॥ ६ ॥ हे साधो ! ब्रह्माके पदके ऐश्वर्यकोभी तुच्छ करनेवाला तथा विद्यारूप निरतिशयानन्द आत्मज्ञानका उदयकारक वह सर्वपरित्याग तुमारा सिद्ध होगया ॥ ७ ॥ स्त्री धन तथा बांधवसहित अपने राज्यको तुमनेऐसे त्यागदिया जैसे रात्रिके आगमनमें ब्रह्मा अपनी सृष्टिकेव्यापारको॥८

स्वदेशस्यातिदूरस्थमागतोसिममाश्रमम् ॥ भुवोंतमिवविश्रांत्यैवैनतेयःसकच्छपः ॥ ९ ॥ केवलंसर्व संत्यागेशेषिताहंमतिस्त्वया ॥ मृष्टाखिलकलंकेनस्वसत्तेवानिलेनखे ॥ १० ॥ मनोमात्रेहृदस्त्यक्तेजगदा यातिपूर्णताम् ॥ त्यागात्यागविकल्पैस्त्वंखमंभोदैरिवावृतः ॥ ११ ॥ नायंसपरमानंदःसर्वत्यागोमहो दयः ॥ कोप्युच्चैरन्यएवासौचिरसाध्योमहानिति ॥ १२ ॥

अर्थ—और तुमारे देशके अति दूरस्थ मेरे आश्रमपर तुम ऐसे आये हो जैसे कच्छपसहित गरुडजी पृथिवीके अंतको ॥ ९ ॥ तुमने इस सर्वस्वत्यागसे केवल अहंबुद्धिमात्रको ऐसे शेष रखछोडाहै जैसे सब कलंकोंको नष्ट करनेवाला शरदृऋतुका वायु आकाशमें अपनी सत्ताको ॥ १० ॥ हे साधो ! हृदयसे मनोमात्रके त्यागनेसे संपूर्ण जगत् पूर्णानंद ब्रह्मरूप होजाताहै और तुमतो त्याग तथा अत्यागरूप विकल्पोंसे ऐसे आवृत हो जैसे मेघोंसे आकाश इसी हेतुसे ब्रह्मानंद नहीं भासता यथार्थमें इस त्यागरूप आत्मानंदरूप चिंतामणिके सिवाय और कोई चिंतामणि नहीं है ॥ ११ ॥ तुम यह समझ रहे हो कि यह सर्वत्यागरूप महोदय ब्रह्मानंद नहीं है किंतु चिरकाल साध्य महान् वह कुछ अन्यही है ॥ १२ ॥

चिंतयेतिगतेवृद्धिंसंकल्पग्रहणेशनैः ॥ वात्ययेववनस्पंदेत्यागःप्रोड्डीयतेगतः ॥ १३ ॥ त्यागितास्यात्कु तस्तस्यचिंतामप्यावृणोतियः ॥ पवनस्पंदयुक्तस्यनिःस्पंदत्वंकुतस्तरोः ॥ १४ ॥ चिंतैवचित्तमित्याहुः संकल्पेतरनामकम् ॥ तस्यामेवस्फुरंत्यांतुचित्तंत्यक्तंकथंभवेत् ॥ १५ ॥ चित्तेचिंताग्रहीतेतुत्रिजगज्जा लकेक्षणात् ॥ कथमासाद्यतेसाधोसर्वत्यागोनिरंजनः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस चिंतासे धीरे २ संकल्प ग्रहणके बढ जानेपर तुमारा सर्वत्याग उडके ऐसे चलगया जैसे महान् वायुसे बनके वृक्षोंके अति संचलित होनेसे पक्षीआदिकी निश्चलता ॥ १३ ॥ जो चिंतासे पूर्ण है उसका त्याग कैसे होसकताहै क्योंकि महान् वायुके वहनेसे वृक्षकी निश्चलता कैसे होसकतीहै ॥ १४ ॥ जिसका दूसरा नाम संकल्प है ऐसी चिंताहीको चित्त कहते हैं उस चिंताके स्फुरित होते चित्तका त्याग कैसे होसकताहै ॥ १५ ॥ हे साधो ! तीनों जगत्के जालके आधारभूत चित्तके क्षणमेंही चिंतासे ग्रस्त होनेपर निरंजन सर्वत्याग कैसे मिल सकताहै ॥ १६ ॥

संकल्पग्रहणेनांतस्त्यागःप्रोड्डीयतेगतः ॥ शब्दसंश्रवणेनांगयथाग्रामविहंगमः ॥ १७ ॥ निश्चितत्वंपरं सर्वत्यागआदायतेगतः ॥ आमंत्र्यापूजितोजंतुःसदुःखंनकरोतिकिम् ॥ १८ ॥ सर्वत्यागमणावेवंगते कमललोचन ॥ तपःकाचमणिर्दृष्टस्त्वयासंकल्पचक्षुषा ॥ १९ ॥ त्वयातस्मिंस्तपस्येवदुःखेदृष्टिभ्रमो दिते ॥ ग्राह्यैकभावनाबद्धाजलेन्दौशशिनोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—अंतःकरणके संकल्पमात्रके ग्रहणसे तुमरा त्याग उडके ऐसा कहीं चलागया जैसे शब्दके सुननेसे ग्रामके कपोतादि ॥ १७ ॥ बडे आदरके साथ प्राप्त त्याग निरादर करनेसे तुमारी निश्चितता लेके चलागया क्योंकि निमंत्रण करके पूज्यको न पूजनेसे जीव दुःख अवश्य देताहै ॥ १८ ॥ इसप्रकार सर्वत्यागरूप चिंतामणिके चले-जानेपर तुमने संकल्परूप नेत्रसे तपरूप कांचमणि देखा ॥ १९ ॥ तुमने उस दुःखके हेतु तपमें ग्राह्य भावना ऐसे बांधी है जैसे जलमें प्रतिबिंबित चंद्रमामें दृष्टिके भ्रमसे सत्य चंद्रमाकी भावना ॥ २० ॥

अवासनमनासक्त्याकृतानंतासवासना ॥ आद्यंतमध्यविषमादुःखायैवतपःक्रिया ॥ २१ ॥ अमितानंद मुत्सृज्यसुसाध्यंयःप्रवर्तते ॥ मितवस्तुनिदुःसाध्येस्वात्महासशठःस्मृतः ॥ २२ ॥ सर्वत्यागंसमारभ्य नचैषसाधितस्त्वया ॥ तथादुःखैकताज्ञानबद्धेनवनसद्मनि ॥ २३ ॥ राज्यबंधाद्विनिष्क्रम्यप्रसरद्दुःखपू रितात् ॥ वनवासाभिधेस्साधोबद्धोसिदृढबंधनैः ॥ २४ ॥

अर्थ—पूर्वमें वासनाकी रहितता पूर्वक तथा सर्वत्यागरूप अनासक्ति पूर्वक जो तपकी क्रियाकी वह अंतमें अनंत वासनादायिनी है और आदिमें गृह धन तथा स्त्रीआदिके त्यागसे अंतमें फलकी आसक्तिसे और मध्यमें बनवासके शीतादि सहनरूप दुःखसे अति भयंकर होनेसे व्यर्थही तुमने की है ॥ २१ ॥ हे साधो! अपरिमित आत्मानंददायक तथा सुसाध्य सर्वत्यागको छोडके जो परिमित तप आदिमें प्रवृत्त होताहै वह शठ आत्महा कहा जाताहै ॥ २२ ॥ सुख तथा दुःखोंके साथ एकताजनक अज्ञानसे बनरूप स्थानमें बंधेहुये तुमने सर्वत्यागका आरंभ करके इसे सिद्ध नहीं किया ॥ २३ ॥ हे राजन्! दुःखोंसे पूर्ण राज्यरूप बंधनसे निकलके अब तुम बनवासरूप दृढ बंधनोंसे बंधेहो ॥ २४ ॥

द्विगुणाएवतेचिंताःशीतवातातपादयः ॥ बंधनादधिकंमन्येवनवासमजानताम् ॥ २५ ॥ चिंतामणिर्म याप्राप्तइत्यलंबुद्धवानसि ॥ नलब्धवान्भवान्साधोस्फटिकस्यापिखंडिकाम् ॥ २६ ॥ इत्येतदंगमणिय त्कथासमानंसम्यङ्मयाप्रकथितंतवपद्मनेत्र ॥ तद्बोध्यमेवममलंस्वयमेवबुध्यायद्वेत्सितत्परिणतिंनय चित्तकोशे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने चिंतामणिसाधकवृत्तांतविवरणंनामनवतितमःसर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—हे राजन्! शीत वात आतप आदिकी तुमको द्विगुण चिंताहै इसलिये पूर्वकालसे अनुभव करनेवाले सुकुमार पुरुषोंके लिये बंधनसेभी अधिक मैं बनबासके बंधनको समझताहुं ॥ २५ ॥ मैंने चिंतामणि पाया ऐसी पूर्णबुद्धि तुमको है परंतु तुमने स्फटिककाभी टुकडा नहीं पाया ॥२६ ॥ हे कमलनेत्र राजन्! इसप्रकार काचमणिकी कथाके समान तुमारी कथा मैंने यत्नसे प्रकट की सो तुम मेरे कथनके अनुसार स्वयमेव अपनी बुद्धिसे तप वा चिंता-मणिको जिसे निर्दोष समझो और उसे अपने चित्तरूप कोशमें रखके फलपर्य्यन्त उसका विधान करो ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिसाधकविवरणं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस ९१ के सर्गमें राजाके चरितका दार्ष्टांत बोधपर्यंत त्यागकी सिद्धिके लिये वर्णन किया गयाहै ॥

चूडालोवाच ॥ इदानींराजशार्दूलवस्तुसंप्रतिपत्तये ॥ शृणुविंध्येभवृत्तांतविवृतिंस्मयकारिणीम् ॥ १ ॥ योसौविंध्यवनेहस्तीसोस्मिन्भूमितलेभवान् ॥ यौवैराग्यविवेकौतौद्वौतस्यदशनौसितौ ॥ २ ॥ यश्चा सौवारणाक्रांतितत्परोहस्तिपःस्थितः ॥ तदज्ञानंतवाक्रांतितत्परंतवदुःखदम् ॥ ३ ॥ अतिशक्तोप्यश केनदुःखादुःखंभयाद्भयम् ॥ हस्तीहस्तिपकेनेवराजन्मौर्ख्येणनायसे ॥ ४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली—हे राजन्! अब तुम वस्तु (आत्म) के बोधके लिये विस्मयकारक विंध्याचलके गजे-न्द्रके वृत्तान्तका विवरण सुनो ॥ १ ॥ हे राजन्! विंध्याचलके बनके हस्तीके तुल्य इस पृथिवीपर तुमहो और जो उसके श्वेत दो दांत हैं वेही तुमारे वैराग्य और विवेक हैं ॥ २ ॥ और जो उस हस्तीके पकडनेवाला हस्तिपक है वह तुमारा शत्रुरूप दुःखदायक अज्ञानहै ॥ ३ ॥ और हे राजन्! तुम हस्तीके समान अतिप्रबलभी होके मूर्खतारूप ह-स्तिपकसे एक दुःखसे दूसरे दुःखमें तथा एक भयसे दूसरे भयमें प्राप्त किये जातेहो ॥ ४ ॥

यल्लोहवज्रसारेणवारणःपरियंत्रितः ॥ तदाशापाशजालेनभवानापदमावृतः ॥ ५ ॥ आशाहिलोहरज्जुभ्योविषमाविपुलाद्दढा ॥ कालेनक्षीयतेलोहंतृष्णातुपरिवर्धते ॥६॥ यद्वद्वेप्रेक्षतेवैरीगजमारादलक्षितः ॥ प्रेक्षतेत्वांतदज्ञानंक्रीडार्थबद्धमेककम् ॥ ७ ॥ यद्वभंजगजःशत्रोःशृंखलाजालबंधनम् ॥ तत्तत्याजभवान्भागभूमिराज्यमकंटकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जो शृंखलासे वह हांथी बांधाहै सो तुम उसके स्थानमें आशाकी फांसीसे चरणसे लेके मस्तक पर्यंत बंधेहो ॥ ५ ॥ हे राजन्! आशा तो लोहकी शृंखलासेभी विशाल और दृढहै क्योंकि कालपाके लोहकी शृंखला तो नष्ट होजाती है परंतु आशा बढतीही जाती है ॥ ६ ॥ और जो एकांतस्थानमें छिपके हांथीका शत्रु देखताहै वह तुमारा अज्ञान एकांतमें बंधे हुये क्रीडार्थ तुमको देख रहाहै ॥ ७ ॥ जो शत्रुकी शृंखलाको गजेन्द्रने तोडडालाथा वह तुमारा पृथिवीपर अकंटक राज्यका त्यागनाहै ॥ ८ ॥

कदाचित्सुकरंशस्त्रशृंखलाबंधभेदनम् ॥ नत्वस्यमनसस्साधोभोगाशाविनिवारणम् ॥ ९ ॥ यदिभेपाटयत्युच्चैर्बंधंहस्तिपकोपतत् ॥ त्वयित्यजतितद्राज्यमज्ञानपतितंकृतम् ॥१०॥ यदाविरक्तःपुरुषोभोगाशांत्यक्तुमिच्छति ॥ तदाप्रकंपतेऽज्ञानंछेद्येवृक्षेपिशाचवत् ॥ ११ ॥ यदाविवेकीपुरुषोभोगान्संत्यज्यतिष्ठति ॥ तदापलायतेऽज्ञानंछिन्नेवृक्षेपिशाचवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—और कदाचित् उस हांथीने जो शस्त्रोंकी शृंखलाको तोडडालीथी वह तुमारा भोगोंका त्यागनाहै न कि मनसे भोगोंकी आशाका निवारणहै ॥ ९ ॥ और जो हांथीको महान् बंधन तोडतेसमय हस्तिपक गिरगयाथा वह राज्यके त्यागनेके समय तुमारे अज्ञानका गिरनाहै ॥ १० ॥ हे राजन्! जब विरक्त पुरुष भोगोंकी आशाको त्यागना चाहताहै उससमय अज्ञान ऐसे कांपताहै जैसे कटनेवाले वृक्षपर पिशाच ॥ ११ ॥ और जब विवेकी पुरुष भोगोंको त्यागके स्थित होताहै उससमय अज्ञान ऐसे भागताहै जैसे वृक्षके काटनेपर पिशाच ॥ १२ ॥

भोगौघेनूनमुन्मुक्तेपतत्यज्ञानसंस्थितिः ॥ पादपेक्रकचच्छिन्नेकुलायस्तद्गतोयथा ॥ १३ ॥ यदावनंप्रयातस्त्वंतदाज्ञानंक्षतंत्वया ॥ पतितंसन्ननिहतंमनस्त्यागमहासिना ॥ १४ ॥ तेनभूयःसमुत्थायस्मृत्वापरिभवंकृतम् ॥ तपःप्रपंचखातेस्मिन्गहनेत्वंनियोजितः ॥ १५ ॥ तदैवाघातयिष्यस्त्वंयद्यज्ञानंतथागतम् ॥ राज्यत्यागविधौनत्वांनाहनिष्यत्क्षयंगतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—निश्चयपूर्वक भोगोंके समूहके त्यागनेपर अज्ञानकी स्थिति ऐसे गिरती है जैसे आरासे वृक्षके काटनेसे उसके अंतर्गत खुंथे आदि ॥ १३ ॥ जिससमय तुम बनको चले उससमय अज्ञानको शिथिल किया परंतु किसी महात्मासे ज्ञान प्राप्त करके मनके त्यागरूप महाखड्गसे तुमने उसको मार नहीं डाला ॥ १४ ॥ इसकारण पुनः उठके उसने तुमरा पराजय करके तुमको इस तपरूप गहन खंदकमें डालदिया ॥ १५ ॥ हे राजन्! यदि राज्य त्यागनेके समय प्राप्त अज्ञानको ज्ञान प्राप्त करके अपनी भावनासे उसका समूल नाश करडाले होते तो वह नष्ट पुनः तुमको न मारता ॥ १६ ॥

यत्खातवलयस्तेनवैरिणाहस्तिनःकृतः ॥ तत्तपोदुःखमखिलमज्ञानेनतवार्पितम् ॥ १७ ॥ यातस्यराजराजश्रीर्गजारेर्नृपसत्तम ॥ सात्वमज्ञाननृपतेश्चिंताभ्यंतरसारिणी ॥ १८ ॥ त्वंगजेंद्रस्त्वयंसाधोदीर्घवनेऽगजोपिसन् ॥ अज्ञानवैरिणातेननिक्षिप्तस्तरसाभितः ॥ १९ ॥ यत्खातवलयोबाललताभिरवगुंठितः ॥ आवृतंतत्तपोदुःखमीषत्सज्जनवृत्तिभिः ॥ २० ॥इत्यद्यापितपःखातेदुःखेह्यस्मिन्सुदारुणे ॥ स्थितोसिपातालतलेनृपबद्धोयथाबलिः ॥ २१ ॥ गजस्त्वमाशानिगडानिवैरीमोहोनिखातःपुनरुग्रबंधः ॥ महीतलंविंध्यउदंतइत्थंत्वदीयउक्तःकुरुयत्करोषि ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने हस्तिकाख्यानतात्पर्यविवरणंनामैकनवतितमःसर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—जो उस हांथीके शत्रुने खंदकका घेरा बनायाथा वह तुमारे अज्ञानने तपरूप संपूर्ण दुःखके घेरेमें तुमको डालदियाहै ॥ १७ ॥ हे श्रेष्ठ राजन्! जो उस हस्तीके शत्रुकी राजलक्ष्मी है वह तुमारे अज्ञानरूप राजाकी चारोओरसे अंतःकरणमें चलनेवाली चिंता है ॥ १८ ॥ हे साधो! तुम गज न होकेभी अज्ञानरूप शत्रुके द्वारा गजके समान क्षणमेंही इस बनमें तपरूप खंदकमें फेके हुये पडेहो ॥ १९ ॥ जो वह खंदकका घेरा कोमल लताओंसे घिराहै वह तुमारा तपका दुःख किंचित् शांति आदि सज्जनकी वृत्तियोंसे आवेष्टित है ॥ २० ॥ इसप्रकार अतिदारुण तपरूप खंदकमें तुम अबतक ऐसे पडेहो जैसे पातालमें राजा बलि ॥ २१ ॥ हे राजन्! इसप्रकार हस्ती

तुमहो, आशा शृंखलाहै, मोह शत्रु है उग्रतपमें आग्रह खंदक है, और यह महीतल विंध्याचल है इसप्रकार हस्ती तथा हस्तिपकके आख्यानद्वारा तुमारा वृत्तान्त मैंने कहदिया इसको जानके जो उचितहो उसे करो ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे हस्तिकाख्यान तात्पर्य्यविवरणं नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस ९२ के सर्गमें कुंभजऋषिरूपिणी चूडालाके बचनको सुनकर राजाने सर्वत्यागमें तत्पर होके बनादिक त्यागकर अपने यज्ञके सम्पूर्ण पात्रादिको अग्निमें भस्म करदिये ॥

चूडालोवाच ॥ यदुक्तंनयशालिन्यातयाविदितवेद्यया ॥ तदाचूडालयाज्ञानंतत्कस्मान्नोररीकृतम् ॥ १ ॥ साहितत्त्वविदांमुख्यायद्वक्तिकरोतिच ॥ तत्सर्वंसत्यमेवांगतमनुष्ठेयमादरात् ॥ २ ॥ अथचेद्वचनं तस्यास्त्वयानानुष्ठितंनृप ॥ तत्सर्वसंपरित्यागःकस्मान्ननिपुणीकृतः ॥ ३ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ राज्यंत्यक्तंगृहंत्यक्तंदेशस्त्यक्तस्तथाविधः ॥ दारास्त्यक्तास्तथाप्यंगसर्वत्यागोनकिंकृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—चूडाला बोली–कि नीतिनिपुण तथा आत्मज्ञानसंपन्न चूडालाने उससमय जो कुछ ज्ञान कहाथा उसेही तुमने क्यों नहीं स्वीकारकिया ॥ १ ॥ क्योंकि वह चूडाला आत्मज्ञानियोंमें मुख्य है वह जो २ कहती और करती है वह सब सत्य और आदरसे अनुष्ठान करनेके योग्य था ॥ २ ॥ यदि स्त्री जानके तुमने उसका बचन नहीं माना तो निज बिचारित सर्वत्यागही (मन अहंकारादि त्यागही) क्यों न सिद्ध किया ॥ ३ ॥ राजा शिखिध्वज बोला–कि हे प्रभो ! मैंने राज्य, गृह उसप्रकारका उत्तम देश, तथा प्राणप्रिया स्त्री इन सबको त्याग दिया क्या इस सबसे सर्व त्याग नहीं किया ॥ ४ ॥

चूडालोवाच ॥ धनंदारागृहंराज्यंभूमिश्छत्रंचबांधवाः ॥ इतिसर्वंनतेराजन्सर्वत्यागोहिकस्तव ॥ ५ ॥ तवास्त्येवापरित्यक्तःसर्वस्माद्भागउत्तमः ॥ तंपरित्यज्यनिःशेषमायास्यसिविशोकताम् ॥ ६ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ राज्यंचेन्ममनोसर्वंतत्सर्वंवनमेवमे ॥ शैलवृक्षादिगुल्माढ्यंतदप्येतत्त्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिरामवदन्नेवकुंभवाक्यप्रणोदितः ॥ निमेषांतरमात्रेणवशीवीरःशिखिध्वजः ॥८॥

अर्थ—चूडाला बोली–हे राजन् ! धन, राज्य,गृह भूमि, छत्र और बन्धु ये सब तुमारे नहीं हैं तो तुमारा सर्व त्याग क्या हुआ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुमने अपना सबसे उत्तम भाग (मन वा अहंकार) अभी नहीं त्यागा उसको त्यागके शोककी रहितताको तुम प्राप्त होओगे ॥६॥ शिखिध्वज बोला–हे भगवन् ! यदि इससमय राज्यादि मेरे नहीं हैं तो बनही सब कुछ मेरा अब है सो पर्वत लतादिसे पूर्ण इस बनकोभी मैं त्यागताहुं ॥ ७ ॥ वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! कुंभजके वाक्यसे प्रेरित जितेन्द्रिय वीर राजा शिखिध्वज क्षणभरमेंही ॥ ८ ॥

प्रममार्जवनास्थांतांकृतःसुदृढनिश्चयः ॥ प्रावृडोघस्तटगतांरजोलेखामिवात्मना ॥ ९ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ सवृक्षाद्रिवनश्वभ्राद्विपिनादपिवासना ॥ परित्यक्तामयानूनंपरित्यागःस्थितोमम ॥ १० ॥ कुंभउवाच ॥ अद्रेस्तटंवनंश्वभ्रंसलिलंपादपस्थलम् ॥ इत्यादितवनोसर्वंसर्वत्यागःकथंतव ॥ ११ ॥ तवास्त्येवापरित्यक्तःसर्वस्माद्भागउत्तमः ॥ तंपरित्यज्यनिःशेषंपरामायास्यशोकताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—दृढनिश्चय करके अपने बनके निवासकी आस्था (प्रीति) को ऐसे धो डाला जैसे वर्षाका प्रवाह तटमें प्राप्त धूलिकी लेखाको ॥ ९ ॥ शिखिध्वज बोला–हे भगवन् ! बन वृक्ष तथा उत्तम गर्तादिसहित इस बनकी वासनाकोभी मैंने त्यागा अब तो मेरा सर्व त्याग सिद्धहुआ ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सबसे उत्तम भाग तुमने अपना अभी नहीं त्यागा उसको त्यागके अशोकताको प्राप्त होओगे ॥ १२ ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ एतच्चेन्ममनोसर्वंतत्सर्वंस्वश्रमोमम ॥ वापीस्थलोटजयुतस्तमेवाशुत्यजाम्यहम् ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिरामवदन्नेवकुंभवाक्यप्रबोधितः ॥ निमेषध्यानमात्रेणवशीवीरःशिखिध्वजः ॥१४॥ प्रममार्जाश्रमास्थांतांसंविदाशुद्धयाहृदि ॥ स्फुरंतींस्फुरणेनैवरजोलेखामिवानिलः ॥१५॥ शिखिध्वजउवाच ॥ सवृक्षोटजवीरुत्काद्वासनास्वाश्रमादपि ॥ परित्यक्तामयानूनंसर्वत्यागःस्थितोमम

अर्थ—हे प्रभो ! यदि यह बनादि मेरा नहीं है तो वापीकुटी आदि सहित यह आश्रय मेरा है सो उसकोभी शीघ्र त्यागताहुं ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ऐसा कहतेहुये कुंभके वाक्यसे बोधित जितेन्द्रिय तथा वीरराजा

शिखिध्वजने क्षण भरके ध्यानसे ॥ १४ ॥ हृदयमें स्फुरित आश्रमकी प्रीतिको ऐसे त्यागा जैसे किंचित् स्फुरणसे धूलिकी लेखाको वायु ॥ १५ ॥ राजा शिखिध्वज बोले—वृक्ष, कुटी तथा लताआदि सहित अपने आश्रमसेभी बासनाको मैंने त्यागदी अब तो निश्चयरूपसे मेरा सर्वत्याग सिद्धहुआ ॥ १६ ॥

कुंभउवाच ॥ वृक्षोवापीस्थलंगुल्मम्उटजंव्रततीवृतिः ॥ इतिकिंचिन्नतेसर्वंसर्वत्यागःकुतस्तव ॥ १७ ॥ तवास्त्यन्योपरित्यक्तःसर्वस्माद्भागउत्तमः ॥ तंपरित्यज्यनिःशेषंपरामायास्यशोकताम् ॥ १८ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ एतच्चेन्ममनोसर्वंतत्सर्वंभाजनादिमे ॥ चर्मकुड्यकुटीरादितत्तावत्संत्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाससमुत्तस्थावविक्षुब्धमतिःशमी ॥ विष्टरादवदातात्माशृंगादिवशरद्घनः

अर्थ—कुंभऋषि बोले—हे राजन् ! यह वृक्ष, कुटी, वापी, (बाउली) स्थल, गुल्म तथा लतादि ये कुछभी तुमारे नहीं हैं तो तुमारा सर्वत्याग कैसे हुआ ॥ १७ ॥ तुमारा अन्य अहंकार वा मन त्यागनेके योग्य पदार्थोंमें सबसे उत्तम भाग अभी नहीं त्यागागयाहै उसको (मन वा अहंकारको) त्यागके तुम अशोकताको प्राप्त होओगे ॥ १८ ॥ राजा शिखिध्वज बोला कि—हे प्रभो ! यदि ऐसा है तो सब मैं अपने यज्ञके पात्रादि चर्म तथा कुटी आदि सब त्यागताहुं ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इतना कहके वह शांत, शुद्धचित्त तथा जितेंद्रिय राजा अपने आसनसे ऐसे उठ खडा हुआ जैसे पर्वतके शिखरसे शरद्ऋतुका मेघ ॥ २० ॥

कुंभस्त्वालोकयन्नेवतत्क्रियाःसस्मितःस्वयम् ॥ आसनेलोककार्येषुस्वस्यंदनइवांशुमान् ॥ २१ ॥ यत्करोतिकरोत्वेतदस्यैतत्पावनंपरम् ॥ इतितूष्णींस्थितःकुंभःशिखिध्वजमवैक्षत ॥ २२ ॥ शिखिध्वजस्तुतत्सर्वंभांडोपस्करमाश्रमात् ॥ एकत्रैवानयामासभुवोवार्यब्धिभूरिव ॥ २३ ॥ तत्संस्थाप्येंधनैःशुष्कैर्ज्वालयामासपावकम् ॥ करैःसंचारवानर्कःसूर्यकांतपदंयथा ॥ २४ ॥

अर्थ—और कुभऋषि (चूडाला) उसकी क्रियाओंको अपने आसनसे देखताथा जैसे जगत्की क्रियाओंको अपने रथसे सूर्य्य ॥२१॥ जो यह करताहै करने दो क्योंकि यही इसके लिये परमपावन है ऐसा विचार करके कुंभ चुपचुप स्थित होके शिखिध्वजको देखतारहा ॥ २२ ॥ राजा शिखिध्वजने तो अपने सब यज्ञादिके पात्रादि सामग्रीको आश्रमसे लाके ऐसे एकत्र किया जैसे समुद्रकी नीची भूमि पृथिवीके जलको ॥ २३ ॥ उन सबको एकत्र करके अग्निको ऐसे प्रज्वलित किया जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सूर्यकांतमणिको ॥ २४ ॥

भांडोपस्करजालंतदग्नौत्यक्त्वाविवेशसः ॥ ध्वंसिकायांजगद्धुत्वामेरुशृंगेयथारविः ॥ २५ ॥ एतावंतं मयाकालंव्रतायत्त्वंपतिप्रिये ॥ अजातबुद्धिभेदेनतेनैवकृतमस्तुते ॥ २६ ॥ भ्रांतौतुविनिवर्तिन्यांनाघुनोपकरोषिमाम् ॥ मंत्राटव्यांचिरंभ्रांतविहतंकार्यवर्त्मसु ॥ २७ ॥ दृष्टानिधर्मस्थानानिविश्राम्याम्यधुनासखि ॥ इत्यक्षमालांज्वलनेचिक्षेपोक्त्वाशिखिध्वजः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस सब पात्रादिको अग्निमें जलाके अपने आसनपर ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे सूर्यभगवान् मन्वन्तरकी संधिमें निजप्रज्वलित अग्निमें जगत्का हवन करके मेरूके शृंगपर ॥ २५ ॥ और अक्षमालिके इसप्रकार बोला कि—हे स्वामिभक्त स्वार्थसाधनमें तत्पर मैंने इतने कालतक तुमको श्रम दिया तो तुमारी सेवा अब समाप्त हुई ॥ २६ ॥ अब तप जपादिकी कर्तव्यता भ्रांतिके निवृत्त होनेसे मेरा उपकार कुछ नहीं करोगी, और तुमारे साथ मन्त्ररूपी महाजंगलमें अनेक कार्य्योंके मार्गोंमें मैंने भ्रमण किया ॥ २७ ॥ और तुमारे साथ अनेक धर्मके स्थान अर्थात् तपोवनादि सिद्धियोंके क्षेत्रोंको देखाहै हे प्रियसखि ! अक्षमालिके मैं विश्राम करूंगा सो तुमभी विश्राम करो, हे राम ! शिखिध्वज इतना कहके अपनी स्फटिककी अक्षमालाको अग्निमें ऐसे फेका ॥ २८ ॥

कल्पांताग्नाविवव्योमतारालीपवनोमलाम् ॥ मयानरमृगेनत्वंचिरंवनमृगाच्युतम् ॥ २९ ॥ अबोधेनधृतंवृस्यामिदमेवमृगाजिन ॥ इदानींगच्छतुच्छायपंथानःसंतुतेशिवाः ॥ ३० ॥ वह्निनाव्योमतांगच्छतस्तारंव्योमतेसमम् ॥ तद्वस्यंगात्कराभ्यांसधृत्वाचर्माजहादिति ॥ ३१ ॥ नृपोग्रावंबुधेर्वातोदववाह्नविवाचलात् ॥ महावृत्तेनभवतात्वयावारिधृतंमम ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे कल्पांतकी अग्निमें तारागणोंकी पंक्तिको पवन और मृगचर्मसे बोला—हे मृगचर्मन् ! मनुष्यरूप मृग मैंने बनके मृगसे प्राप्त तुमको ॥ २९ ॥ अज्ञानसे इस कुशासनपर धराथा अब तुम अपने कारणमें जाके लीन होजाओ तुमारा मार्ग तुमको सुखदायकहो ॥ ३० ॥ अथवा तुमारे श्वेतबिंदु होनेसे तुम तारासहित आकाशके तुल्यहो

(१) मन वा अहंकार तुमाराहै इस ऋषिके अभिप्रायको राजा नहीं समझके पुनः कहताथा ॥

सो तुम अग्निके द्वारा आकाशदशाको प्राप्त होजाओ इतना कहके उसे राजाने कुशासनपरसे मृगचर्मको दोनों हांथासे उठाके अग्निमें ऐसे छोडदिया जैसे मलयाचलका वायु समुद्रसे पर्वतोंको खींचकर दावाग्निमें, अनन्तर कमंडलुसे बोला–हे साधो कमंडलो ! वर्तुलाकार तुमने मेरे लिये जल उत्तम प्रकारसे धारण किया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

साधोकमंडलोसम्यङ्नतेप्रतिकृतंकृतम् ॥ सौहृदस्यमनोज्ञस्यसौजन्यस्यस्थिरस्यच ॥ ३३ ॥ साधुत्व स्यचसर्वस्यत्वमेवपरमास्पदम् ॥ येनैववह्निनादेहंसंशोध्याभ्यागतोसिताम् ॥ ३४ ॥ तेनैवगच्छहेमि त्रपंथानस्संतुतेशिवाः ॥ इत्युक्त्वाश्रोत्रियायैवकमंडलुमदात्तदा ॥ ३५ ॥ अग्नयेमहतेवापिदातव्यंसा धुयद्भवेत् ॥ मूर्खस्येवमतिर्गुप्तेनित्यमेवपतत्स्यधः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सो इस तुमारी उत्तम मित्रताका तथा स्थिर सुजनताका कुछ प्रत्युपकार नहीं किया ॥ ॥ ३३ ॥ हे प्रिय जलपात्र ! सब साधुताके परम आस्पद तुमही हो, सो जिस अग्निकेद्वारा तुम अपने देहको शुद्ध करके मेरे निकट आये हो ॥ ३४ ॥ हे मित्र ! उसी अग्निकेद्वारा अपनी देह शुद्ध करके जाओ, तुमारे मार्ग कल्याण दायक हों ऐसा कहके अग्निमें शुद्ध करके उस कमंडलुको जिस श्रोत्रिय ब्राह्मणसे लिया था उसकोही देदिया ॥ ३५ ॥ जो पात्रादि साधुके ग्रहणके योग्य उसे अग्नि वा महात्माको दे देनाचाहिये, अब कुशासनसे बोला–हे आसन ! जैसे मूर्ख जनकी बुद्धि नित्य पाप करनेको अधो देशमें जाती है ॥ ३६ ॥

उचितातेगतिःसैवबृसिकेभस्मतांव्रज ॥ इत्युक्त्वादायबृसिकामग्नावेवसमृद्धिकाम् ॥ ३७ ॥ शुद्धयर्थ मासनार्थंवैचिंतितत्याजभासुरे ॥ यत्त्याज्यमचिरेणैवत्यक्तव्यंकिलतत्सदा ॥ ३८ ॥ विस्तरःक्रियतेस द्भिरुपादेयेइतिस्थितिः ॥ शीघ्रमग्नाविदंसर्वंभांडजातंत्यजाम्यहम् ॥ ३९ ॥ एकवारंदहत्याग्निर्दाह्यंभ वतितुष्टये ॥ साधोक्रियोपकरणंनिष्क्रियायत्यजाम्यहम् ॥ नखेदस्तत्रकर्तव्योनन्वयोग्यंबिभर्त्तिकः ॥ ४७ ॥ इत्युक्तवान्झटितिभोजनभाजनाद्यंसर्वंजुहाववनवासविलासयोग्यम् ॥ तद्ब्रांडजालमनलेसममे वराजाकल्पांततेजसिजगज्ज्वलतीवकालः ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने सर्वत्यागकरणंनामद्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२ ॥

अर्थ—वही गति तुमारी उचितहै सो हे आसन तुम भस्म होजाओ ऐसा कहके उसने अपने कोमल आसनको अग्निमें छोण दिया ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! चेतन ब्रह्ममें शुद्धि और विश्रांतिकेलिये जो कुछ त्यागनेके पदार्थ थे सबको शीघ्र प्रज्वलित अग्निमें छोड दिया ॥ ३८ ॥ क्योंकि उपादेय वस्तुमें सज्जनलोग विस्तार करते हैं यह संसारकी स्थिति है इसलिये मैं सब पदार्थोंको अग्निमें शीघ्र डालताहुं ॥ ३९ ॥ क्योंकि जो दाह्य (जलानेके योग्य) पदार्थ उनको यदि अग्नि एकसाथही जलावै तो मेरी प्रसन्नता हो, हे साधो देव पुत्र ! मैं निष्क्रिय होनेलिये यह सब पात्रादिको अग्निमें त्यागताहुं इसमें आप खेद न करना क्योंकि कौन बुद्धिमान् अयोग्य पदार्थोंको धारण करसकताहै ॥ ४० ॥ हे रामजी ! शिखिध्वजने इतना कहके संपूर्ण भोजनादिके पात्रादिको शीघ्रही एकही कालमें प्रदीप्त अग्निमें ऐसे हवन करदिया जैसे कल्पांतकी प्रज्वलित अग्निमें जगत्को काल ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे सर्वत्यागकरणं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

सब सामग्रीको जलाके राजा शिखिध्वज अपने देहको जब अग्निमें हवन करनेको उद्यत हुआ तो कुंभने निवारण किया और चित्तके त्यागार्थ बोधन किया इत्यादि विषय इस ९३ के सर्गर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथोत्थायददाहासौशुष्कंतत्तृणमंदिरम् ॥ अज्ञेनस्वेनमनसाव्रथासंकल्पकल्पि तम् ॥ १ ॥ शिष्टंयत्किंचिदभवत्तत्सर्वंसशिखिध्वजः ॥ असंरब्धमनामौनीक्रमेणसमयाधिया ॥ २ ॥ ददाहचसचिक्षेपतत्याजचबभंजवा ॥ भांडजातंस्ववसनंभोजनाद्यपितुष्टवत ॥ ३ ॥ सबभूवाश्रमस्त स्यदृष्टनष्टजनस्थितिः ॥ वीरभद्रबलध्वस्तदक्षयज्ञाश्रमोपमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके पश्चात् उठके राजाने अज्ञ मनके संकल्पसे ममता करके कल्पित उस शुष्क तृणके मंदिरकोभी जलादिया ॥ १ ॥ और जो कुछ शेष पदार्थ रहगया था उस सबकोभी,

शांतचित्त और मौनी राजा शिखिध्वजने क्रमसे ॥ २ ॥ जलादिया, फेकदिया और तोड डाला, यहांतक कि प्रसन्न चित्त होके अपने भोजनके पदार्थ पात्र और अपने चीरवलकलादि वस्त्रभी जला दिये ॥ ३ ॥ जिसमें प्रथम अनेक जन दृष्ट थे और अब लुप्त होगये ऐसा वह राजाका आश्रम ऐसे शोभित हुआ जैसे वीरभद्रके बलसे ध्वस्त दक्षके यज्ञका आश्रम ॥ ४ ॥

आश्रमात्तेमृगगणास्त्यक्तरोमंथमुद्ययुः ॥ साग्निदाहात्पुरवराद्भीतभीतजनाइव ॥ ५ ॥ भांडजातंदह त्यग्नौसहशुष्कैंधनेनतत् ॥ केवलाकृतिरस्नेहस्तुष्टिमानाहभूपतिः ॥ ६ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ वासनां तत्रसंत्यज्यसर्वत्यागीस्थितोह्यहम् ॥ अहोनुचिरकालेनदेवपुत्रप्रबोधितः ॥ ७ ॥ संपन्नःकेवलःशुद्धः सुखेनोद्बोधवाहनम् ॥ किंनामकिलवस्त्वेतद्भवेत्सांकल्पिकक्रमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस आश्रमसे चर्बित घासादिका पुनः चर्वण करते हुये मृगादि पशु ऐसे भाग निकले जैसे अग्निके दाहसहित श्रेष्ठनगरसे भयभीत मनुष्य ॥ ५ ॥ जब शुष्क इंधनके द्वारा सम्पूर्ण पात्रादिको अग्नि जला रहाथा उस-समय केवल स्नेह शून्य शरीरमात्र शेष तथा प्रसन्नचित्त राजा शिखिध्वज बोला—हे देवपुत्र ! अहो चिरकालसे आपने मुझे यह ज्ञान दिया अब सब पदार्थोंमें ममताको त्यागकर मैं सर्वत्यागी स्थितहुं ॥ ७ ॥ अब मैं केवल शुद्ध सुखपूर्वक ज्ञानवान्हुं, यह संसारके सब पदार्थ ममतासे कल्पित तुच्छ हैं ॥ ८ ॥

यावद्यावत्प्रहीयंतेविविधाबंधहेतवः ॥ तावत्तावत्समायातिपरमांनिर्वृतिमनः ॥ ९ ॥ शाम्यामिपरिनि र्वामिसुखितोस्मिजयाम्यहम् ॥ विबंधाःप्रक्षयंयाताःसर्वत्यागोमयाकृतः ॥ १० ॥ दिगंबरोदिक्सदनो दिक्समोयमहंस्थितः ॥ देवपुत्रमहात्यागात्किमन्यदवशिष्यते ॥ ११ ॥ कुंभउवाच ॥ सर्वमेवनसंत्य क्तंत्वयाराजन्शिखिध्वज ॥ सर्वत्यागपरानंदेमामुधाभिनयंकुरु ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस २ प्रकारसे अनेक बन्धनके हेतु नष्ट होते हैं उसी २ प्रकारसे मन परमशांतिको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! अब मैं शांतहुं सर्वथा तृप्तहुं और सबसे अधिक सुखीहुं क्योंकि मेरे अनेक प्रकारके बन्धन नष्ट होगये, अब मैंने सर्वत्याग किया ॥ १० ॥ हे देवपुत्र ! अब मैं दिगंबर, दिग्भवन और दिशाके तुल्य यह स्थितहुं अब आपबताईये इस महात्यागसे और क्या शेष है ॥ ११ ॥ कुंभ बोले—हे राजन् ! शिखिध्वज तुमने सब कुछ नहीं त्यागा सर्वत्यागसेही परमानन्द होताहै व्यर्थही यह सर्वत्यागका अभिमान मत करो ॥ १२ ॥

तवास्त्येवापरित्यक्तःसर्वस्माभागउत्तमः ॥ यंपरित्यज्यनिःशेषंपरामायास्यशोकताम् ॥ १३ ॥ श्रीव सिष्ठउवाच ॥ इतिश्रुतवत्तातेनकिंचित्संचिंत्यभूभृता ॥ इदमुक्तंमहाबाहोरामराजविलोचन ॥ १४ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ इंद्रियव्यालसंघातोरक्तमांसमयाकृतिः ॥ शिष्यतेसर्वसंत्यागेदेहोमेदेवतात्मज ॥१५ ॥ तदुत्थायपुनर्देहंभृगुपातादविघ्नतः ॥ विनाशात्मकतांनीत्वासर्वत्यागीभवाम्यहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अभी सबसे उत्तम भाग तुमारा त्यागनेको है जिसको सर्वथा त्यागके तुम परमानन्दको प्राप्त होओगे ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे कमलनेत्ररामजी ! इतना श्रवण करनेके पश्चात् उस राजाने कुछ विचार करके यह कहा ॥ १४ ॥ शिखिध्वज बोला—हे देवपुत्र ! इन्द्रियरूपी व्यालोंके समूह सहित, और रक्त मांसादिमय आकारवाला यह मेरा शरीरमात्र अब शेष है ॥ १५ ॥ इसलिये उठकर निर्विघ्नता पूर्वक इस शरीरको अग्निपातके द्वारा भस्म करके मैं सर्वत्यागी होजाऊंगा ॥ १६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वादेहमग्रस्थेश्वभ्रेत्यक्तुमसौजवात् ॥ करोतियावदुत्थानंतावत्कुंभोप्युवाच ह ॥ १७ ॥ कुंभउवाच ॥ राजन्किमितिदेहंत्वंनिरागस्कंमहावटे ॥ त्यजस्यज्ञोहिवृषभःकुपितोहंतितर्ण कम् ॥ १८ ॥ जडोवराकोमूकात्मातपस्वीदेहकोह्ययम् ॥ नकश्चनतवैतस्मिन्मासुधैवतनुंत्यज ॥ १९ ॥ आत्मन्येवैषमूकात्माध्यानवानवतिष्ठते ॥ संचाल्यतेपरेणैवतरंगेणैवकाष्ठकम् ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि इतना कहके जब संमुख स्थित अग्निकुंडमें गिरनेके लिये उठके वेगसे चला इतनेहीमें कुम्भऋषि बोला—॥ १७ ॥ हे राजन् ! तुम इस निरपराधी देहको क्यों महान् अग्निमें डालते हो यह तुमारा कार्य्य ऐसा है जैसे अज्ञानी वृषभ (बैल) क्रुद्ध होके अपने बछडेकोही मारे ॥ १८॥ जड, दीन, मूक और तपस्वी यह बिचारा देहहै इसने तुमारा कुछ अपराध नहीं किया व्यर्थ इस देहको मत त्यागो ॥ १९ ॥ यह देह तो अपने आत्माहीमें मूक होके स्थित रहताहै और दूसरेके द्वारा ऐसे संचालित होताहै जैसे तरंगसे काष्ठ ॥ २० ॥

क्षीभयत्यन्यएवैनंनिग्रहार्होमुहुर्बलात् ॥ तपस्विनंयथैकांतंसंस्थितंमत्ततस्करः ॥ २१ ॥ सुखदुःखादि भूत्याहिनापराधिशरीरकम् ॥ नात्मनःफलवानात्मास्पंदेवृक्षोपराधवान् ॥ २२॥ वातःफलंशिरःपुष्पपा

तनंकुरुतेस्फुरन् ॥ तरुणासाधुनासाधोरपराद्धंकिमात्मनः ॥ २३ ॥ त्यक्तेनापिशरीरेणकिलतामरसेक्षण ॥ सर्वत्यागोनतेयातिनिष्पत्तिंविषमोहिसः ॥ २४ ॥

अर्थ—इस देहको दंडको दंडके योग्य दूसराही कोई बार २ ऐसे क्षोभित करताहै जैसे एकांतनिवासी तपस्वीको मत्त चोर ॥ २१ ॥ हे राजन्! सुखदुःखकी उत्पत्तिका स्थानमात्र होनेसे शरीर ऐसे अपराधी नहीं है जैसे फलवान् वृक्षका वायुद्वारा स्पंद होनेसे फलादि गिरने उसका अभिमानी वृक्ष अपराधी नहीं है ॥ २२ ॥ हे साधो! जैसे चलते हुये वायुने वृक्षके फल पुष्प तथा पात्रादिके गिरानेसे वही अपराधी है न कि दीन वृक्ष ऐसे यहांभी शरीरको चलानेवाला अपराधी है न कि शरीर ॥ २३ ॥ हे कमलनेत्र साधो! शरीरके त्यागनेपरभी सर्वत्याग नहीं प्राप्त होसकता क्योंकि मरणके पश्चात् ज्ञानके अधिकारी देहकी प्राप्ति की दुर्लभतासे सर्वत्याग जन्मांतरमेंभी दुःसाध्यहै२४

भृगौकेवलमेतत्त्वंनिरागस्कंशरीरकम् ॥ मुधाक्षिपसिनोदेहत्यागेतत्त्यागिताभवेत् ॥ २५ ॥ येनायंक्षोभ्यतेदेहोमत्तेभेनेवपादपः ॥ तत्संत्यजसिचेत्पापंतन्महात्यागवान्भवान् ॥ २६ ॥ तस्मिंस्त्यक्तेभवेत्त्यक्तंसर्वंदेहादिभूपते ॥ नोचेन्निमग्नमप्येतद्भूयोभूयःप्ररोहति ॥ २७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ केनायंचाल्यतेदेहःकिंबीजंजन्मकर्मणाम् ॥ कस्मिंस्त्यक्तेपरित्यक्तंसर्वंभवतिसुंदर ॥ २८ ॥

अर्थ—केवल अग्निमें इस अपने निरपराधी देहको व्यर्थ त्यागतेहो इसके त्यागनेसेभी तुमारी सर्व त्यागिता नहीं होसकती ॥ २५ ॥ मत्तहांथी जैसे वृक्षको कंपाताहै ऐसेही जिससे यह क्षुभित होताहै उस पापको यदि त्यागो तो तुमारा सर्वत्याग महात्यागहो ॥ २६ ॥ हे राजन्! उसके त्यागनेसे यह देहादि पुनः नहीं उत्पन्न होते, और उसको तुम न त्यागोगे तो जल वा अग्नि आदिमें इस शरीरका नाश करनेपरभी यह पुनः उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ शिखिध्वज बोला—हे सुंदर देवपुत्र! यह देह किससे संचालित होताहै और जन्मकर्मका बीज क्या है और किसके त्यागनेसे सब कुछ त्यागा जाताहै ॥ २८ ॥

कुंभउवाच ॥ साधोनदेहत्यागेननराज्यत्यजनेनच ॥ नचोटजादिशोषेणसर्वत्यागोभवेन्नृप ॥ २९ ॥ यत्सर्वंसर्वतोयच्चतस्मिन्सर्वैककारणे ॥ सर्वस्मिन्संपरित्यक्तेसर्वत्यागःकृतोभवेत् ॥ ३० ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ सर्वंसर्वगतंसर्वहेयंत्याज्यंचसर्वदा ॥ सर्वंकिमुच्यतेब्रूहिसर्वतत्त्वविदांवर ॥ ३१ ॥ कुंभउवाच ॥ साधोसर्वगताकारंजीवप्राणादिनामकम् ॥ नजडंनाजडंभ्रांतंचित्तंसर्वमितिस्मृतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कुंभज बोला—हे साधो! देह त्यागनेसे वा राज्यादिके त्यागनेसे अथवा कुटी आदिके जलानेसे सर्वत्याग नहीं होता ॥ २९ ॥ किंतु जो सब कुछ है जो चारोओर है जो सबका कारण है (मन वासना वा अहंकार) उस सबके त्यागनेसे सर्वत्याग होताहै ॥ ३० ॥ शिखिध्वज बोला—हे प्रभो! हे सर्व वेत्ताओंमें श्रेष्ठ! सर्वरूप सर्वगत और सर्वदा त्याज्य क्या है सो मुझसे कृपा करके कहिये ॥ ३१ ॥ कुंभ बोला—हे साधो! सर्वगताकार, जीव प्राणादि नामधारी न जड, न चित् और भ्रमशील यह चित्तही सबकुछ कहा गयाहै ॥ ३२ ॥

चित्तमेवभ्रमंविद्धिविद्धिचेतोनरंनृप ॥ चित्तंविद्धिजगज्जालंचित्तंसर्वमितिस्मृतम् ॥ ३३ ॥ राज्यादेरथदेहादेराश्रमादेर्महीपते ॥ सर्वस्यैवमनोबीजंतरुबीजंतरोरिव ॥ ३४ ॥ सर्वस्यबीजेसंत्यक्तेसर्वंत्यक्तंभवत्यलम् ॥ संभवासंभवाद्भूपसर्वत्यागोभवेदिति ॥ ३५ ॥ सर्वधर्माप्यधर्मावाराज्यादिविपिनादिवा ॥ सचित्तस्यपरंदुःखंनिश्चित्तस्यपरंसुखम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे राजन्! चित्तकोही तुम भ्रम जानो, चित्तकोही तुम जगत्जालभी समझो यह चित्तही सब कुछ कहा गयाहै ॥ ३३ ॥ हे राजन्! राज्यादि, देह आदि तथा आश्रमादि सबका कारण वा बीज यह मन ऐसे है जैसे वृक्षका कारण वृक्षका बीज ॥ ३४ ॥ उस मनरूप सबके त्यागनेसे पूर्णरीतिसे सबकुछ त्यक्त होजाताहै उसके त्यागनेसेही सर्वत्यागका संभवहै और उसके न त्यागनेसे सर्वत्यागका असंभवहै ॥ ३५ ॥ हे राजन्! संपूर्ण धर्म वा अधर्मादि, वा राज्यादि अथवा बन तपश्चर्य्यादिक चित्तसहितको केवल दुःखही हैं और चित्तरहितको ये सब सुखरूपही हैं ॥ ३६ ॥

इदंविवर्त्ततेसर्वंचित्तमेवजगत्तया ॥ देहाद्याकारजालेनबीजंवृक्षतयायथा ॥ ३७ ॥ पादपःपवनेनेवभूकंपेनेवपर्वतः ॥ भस्त्राभस्त्राभरेणायंदेहश्चित्तेनचाल्यते ॥ ३८ ॥ सर्वभूतोपभोगानांजरामरणजन्मनाम् ॥ महामुनीनांसुदृढंचित्तंविद्धिसमुद्रकम् ॥ ३९ ॥ इदंप्रवर्ततेसर्वंचित्तमेवजगत्तया ॥ देहाद्याकारजालेनचित्तंजीवोमनोमयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—सब जगत् तथा देहादिके समूहरूपमें यह चित्त ऐसे परिणत होताहै जैसे बीज वृक्षादिरूपमें ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जैसे पवनसे वृक्ष, भूकंपसे पर्वत, और लोहारसे भाथी संचालित होती है ऐसेही चित्तसे यह शरीर संचा-

लित होताहै ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके भोगोंकी देहके जरामरणआदि धर्मोंकी तथा मुनियोंके शमदमादि धर्मोंकी पेटारी चित्तकोही तुम जानो ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जगत् तथा देहादि आकारसे यह मनही परिणत होताहै किंबहुना यह जीवही मनोमयहै ॥ ४० ॥

बुद्धिर्महदहंकारः प्राणाश्चेत्यादिभिर्मुने ॥ क्रियानुरूपैरभिधाव्यापारैः शांतमुच्यते ॥४१॥ चित्तंसर्वमितिप्राहुस्तस्मिंस्त्यक्तेमहीपते ॥ सर्वाधिव्याधिसीमांतः सर्वत्यागः कृतोभवेत् ॥ ४२ ॥ चित्तत्यागंविदुः सर्वत्यागंत्यागविदांवर ॥ तस्मिन्सिद्धेमहाबाहोसत्यंकिंनानुभूयते ॥ ४३ ॥ चित्तेत्यक्तेलयंयातिद्वैतमैक्यंचसर्वतः ॥ शिष्यतेपरमंशांतमच्छमेकमनामयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे मुने ! वही चित्त क्रियाके अनुरूप व्यापारोंसे अन्तःकरण, बुद्धि, महत्, अहंकार, प्राण, और जीवात्मा इत्यादि नामोंसे कहा जाताहै ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! चित्त सबकुछ कहा गयाहै उसीके त्यागनेसे संपूर्ण आधि व्याधिकी सीमाका अन्त सर्वत्याग होताहै ॥ ४२ ॥ हे त्यागवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजन् ! चित्तके त्यागको सर्वत्याग कहते हैं. हे महाबाहो ! उसके सिद्ध होनेपर क्या परमानन्दरूप सत्यपदार्थका अनुभव नहीं होता (अवश्य होता) है ॥ ४३ ॥ चित्तके त्यागनेपर द्वैत कार्यके विभागकी परंपरा तथा ऐक्य अर्थात् कारणमें तिरोभावका क्रमभी सब ओरसे लयको प्राप्त होताहै और केवल परमशांत, स्वच्छ तथा अनामय एक परमात्मा शेष रहजाताहै ॥ ४४ ॥

अस्याश्चित्तंविदुःक्षेत्रंसंसृतेःसस्यसंततेः ॥ क्षेत्रेत्वक्षेत्रतांयातेशालेःकइवसंभवः ॥ ४५ ॥ चित्तमेव विचित्रेहंभावाभावविलासिना ॥ विवर्ततेर्थभावेनजलमूर्मितयायथा ॥ ४६ ॥ चित्तोत्सादनरूपेणसर्वत्यागेनभूपते ॥ सर्वमासाद्यतेसम्यक्साम्राज्येनेवसर्वदा ॥ ४७ ॥ सर्वत्यागस्यविषयोयथैवान्योस्तिते तथा ॥ त्वमप्यन्यस्यभवसित्यागिन्गृह्णासिवैनृप ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस संसाररूप अन्नकी सन्ततिका क्षेत्र इस चित्तकोही कहते हैं उस क्षेत्रकेही नष्ट होनेपर शालि (चावल) की उत्पत्ति किससे होगी ॥ ४५ ॥ विचित्रप्रकारकी चेष्टा करनेवाला, तथा भाव और अभावरूपसे विलासी यह चित्तही अनेक पदार्थाकारसे ऐसे परिणत होताहै जैसे जलतरंगोंमें ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! चित्तके त्यागरूप सर्व त्यागसे सर्वत्र सदा सबकुछ ऐसे प्राप्त होताहै जैसे साम्राज्यसे ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! जैसें परिच्छिन्न तुमारे सर्व त्यागका विषय अन्य है ऐसेही किसी तुमारे त्यागनेवालेको त्यागीके त्यागका विषय तुमभी हो तो तुम त्यागे हुये पदार्थकोही अपना करके समझ रहेहो इससे सर्वत्याग नहीं होता ॥ ४८ ॥

सूत्रंमुक्ताफलेनेवजगज्जालंत्रिकालकम् ॥ सर्वमंतःकृतंतेनयेनसर्वंसमुज्झितम् ॥ ४९ ॥ येनसर्वंपरित्यक्तंतस्मिञ्छून्येपिसंस्थितम् ॥ जगत्सर्वंत्रिकालस्थंतंतौमुक्तावलीयथा ॥ ५० ॥ अस्नेहेनवदीपेनयेनसर्वंसमुज्झितम् ॥ सस्नेहेनेवदीपेनतेनसर्वंप्रकाशितम् ॥ ५१ ॥ स्थितंसर्वंपरित्यज्ययःशेतेऽस्नेहदीपवत्॥ सराजतेप्राकाशात्मासमःसस्नेहदीपवत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे मुक्ताफल अपने भीतर सूत्रको धारण करताहै ऐसेही त्रिकालमें स्थित इस जगत्जालको जिसने अपने अपरिच्छिन्न आत्मरूपके भीतर करलिया उसने मानो सबकुछ त्यागदिया ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जिसने सब कुछ त्यागदिया उस शून्यरूपमेंभी यह त्रिकालस्थ संपूर्ण जगत् ऐसे स्थितहै जैसे सूत्रमें मुक्ताओंकी पंक्ति ॥ ५० ॥ स्नेहरहित दीपकके समान जिसने सबकुछ त्यागदिया उसने स्नेहरहित दीपकके समान सबकुछ प्रकाशित किया ॥ ५१ ॥ जो स्नेहरहित दीपकके सदृश चित्तसे जनित स्थित पदार्थोंका परित्याग करके सोताहै वह सर्वत्यागरूप प्रकाश आत्मा स्नेहसहित दीपकके तुल्य प्रकाशताहै ॥ ५२ ॥

समस्तवस्तुनिष्कासेयथात्वमवशिष्यसे ॥ सर्वत्यागेकृतेताहग्विज्ञानमवशिष्यते ॥ ५३ ॥ समस्तवस्तुदाहेपियथात्वंनेतरोनृप ॥ सर्वत्यागतएवांगतथानिर्वाणमुच्यते ॥ ५४ ॥ सर्वत्यागोहिशून्यात्माआश्रयःसर्वसंविदाम् ॥ अनंतानामुदाराणांखमिवेदंदिवौकसाम् ॥ ५५ ॥ सर्वत्यागरसापानेजरामरणभीतयः ॥ नकाश्चनप्रबाधंतेखस्येवव्योमलेखिकाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे राजन्! जैसे राज्य तथा अन्य सब सामग्रीको त्यागनेपरभी तुम अकेले शेषहो ऐसेही सर्वत्यागनेपरभी ज्ञानरूप आत्मा शेष रहजाताहै ॥ ५३ ॥ हे राजन्! जैसे वस्तुओंके जलानेपरभी तुम शेषहो ऐसेही सर्वत्यागसे निर्वाण प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ सर्व प्रपंचके त्यागनेसे शून्यात्मा चित्स्वरूप सबप्रकारके ज्ञानोंका आश्रय इसप्रकार है जैसे अनेक महान् आकाश सूर्य चंद्रादिका शून्य आकाश ॥५५ ॥ हे राजन्! सर्वत्यागरूप रसायनके पीनेसे जरामरणके कोईभी भय ऐसे नहीं बाधा करते जैसे असंग तथा उदासीन आकाशको टांकीके अघात ॥ ५६ ॥

सर्वत्यागोमहत्वस्यकारणंनिर्मलद्युतेः ॥ सर्वत्यजसिचेद्यस्माद्बुद्धिस्थैर्यंबृहत्तमम् ॥५७॥ सर्वत्यागः परानंदोदुःखमन्यत्सुदारुणम् ॥ इत्योमित्युररीकृत्ययदिच्छसितदाचर ॥ ५८ ॥ सर्वंत्यजतियस्तस्य सर्वमेवोपतिष्ठते ॥ यथैवांबुविशत्यग्नौतथैवायातिवारिधौ ॥ ५९ ॥ सर्वत्यागांतरेवास्तिज्ञानमात्मप्रसादकम् ॥ यच्छून्यंकिलभांडस्यतत्ररत्नादितिष्ठति ॥ ६० ॥

अर्थ—हे राजन्! सर्वत्यागही महान् निर्मल प्रकाशका कारण है क्योंकिं सर्वत्यागसेही तुमारी बुद्धिकी स्थिरता और सर्वोत्तमताहै ॥ ५७ ॥ हे राजन्! सर्वत्यागही परमानंद है और उससे भिन्न सब दारुण दुःखही है यह विचार करो और ओम् इस पदके अर्थको अंगीकार करके जैसी इच्छाहो वैसा करो ॥ ५८ ॥ जो सब कुछ त्यागताहै वह प्रारब्धद्वारा सबकुछ ऐसे पाताहै जैसे समुद्रमें वडवानलमें जल ज्यों २ प्रवेश करताहै त्यों २ नदी आदिसे आताहै ॥ ५९ ॥ चित्त तथा उसके कार्यादि सब पदार्थोंके त्यागनेके पश्चात् आत्मप्रसादक ज्ञान ऐसे रहताहै जैसे पात्रके शून्यस्थानमें रत्नादि ॥ ६० ॥

सर्वत्यागवशादेवहतकालेकलावपि ॥ शाक्येनविगताशंकंमुनिनामेरुवत्स्थितम् ॥ ६१ ॥ सर्वत्यागो महाराजसर्वसंपत्समाश्रयः ॥ नगृह्णातिहियत्किंचित्सर्वंतस्मैप्रदीयते ॥ ६२ ॥ कृत्वासर्वपरित्यागंशांतःस्वस्थोवियत्समः ॥ सोम्योभवसियद्रूपस्तद्रूपोभवभूपते ॥ ६३ ॥ सर्वपरित्यज्यमहास्वभावत्यजस्वयोयेनचतद्विहाय ॥ त्यागाभिमानंचमलंविमुच्यविमुक्तरूपोभवभूमिपाल ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजावबोधनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

अर्थ—देखो सर्वत्यागकेही कारण अतिपापिष्ठ कलिकालमेंभी वेद बाह्य शाक्यमुनि मेरुके समान स्थितथा ॥६१॥ हे राजन्! सर्वत्याग संपूर्ण संपत्तियोंका आश्रय है क्योंकि जो कुछ नहीं लेता उसको सबकुछ दिया जाताहै ॥६२॥ हे राजन्! सर्वपरित्याग करके शान्त, स्वस्थ और आकाशके तुल्य जो रूप तुम होतेहो वही (शुद्धआत्मारूप) होजाओ ॥ ६३ ॥ हे महानुभाव राजन्! तुम सब त्यागकर जिस मनके द्वारा सबकुछ त्यागतेहो उसको त्यागके तथा अभिमानरूप मल अहंकारकोभी त्यागकर मुक्तरूप होजाओ ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिखिध्वजावबोधनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

इस ९४ के सर्गमें चित्तके त्यागनेके लिये उसके मूलका परिशोधन और देहादि वेद्य पदार्थके त्यागसे शेष पूर्णचिन्मात्रका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंवदतिवैकुंभेचित्तत्यागंमुहुर्मुहुः ॥ अंतर्विचारयन्सौम्योराजावचनमब्रवीत् ॥१ शिखिध्वजउवाच ॥ हृदयाकाशविहगोहृदयद्रुममर्कटः ॥ भूयोभूयोनिरस्तंहिसमभ्येत्येवमेमनः ॥ २ ॥ जानामिचैतदादातुंमत्स्यंजालइवाकुलम् ॥ त्यागमत्स्यनजानामिचित्तंद्रव्यमिवोत्तम ॥३॥ चित्तस्यादौ स्वरूपंमेयथावद्भगवन्वद ॥ ततश्चित्तपरित्यागंयथावद्वदमेप्रभो ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—ऐसा जब कुंभमुनि कह रहे थे उससमय सौम्यराजा चित्तके त्यागनेका उपाय बार २ शोचता हुआ यह वचन बोला ॥ १ ॥ हे भगवन्! हृदयाकाशका पक्षी, और अन्तःकरणरूप वृक्षका मर्कट यह मन मेरे बार २ त्यागनेपरभी पुनः निकट आताहै ॥ २ ॥ हे सुन्दर! जैसे मत्स्य जालको पकडताहै ऐसेही इसका ग्रहण करना तो मैं जानताहुं परन्तु मूर्तिमत् द्रव्यके समान इसको त्यागना नहीं जानता ॥ ३ ॥ हे प्रभो! आप मुझसे चित्तका स्वरूप कहो और पीछे यथावत् इसके त्यागकी विधि कहना ॥ ४ ॥

कुंभउवाच ॥ वासनैवमहाराजस्वरूपंविद्धिचेतसः ॥ चित्तशब्दस्तुपर्यायोवासनायाउदाहृतः ॥ ५ ॥ त्यागस्तस्यातिसुकरःसुसाध्यःस्पंदनादपि ॥ राज्यादप्यधिकानंदःकुसुमादपिसुंदरः ॥ ६ ॥ मूर्खस्य दुमनस्त्यागोनूनंदुःसाध्यतांगतः ॥ पामरस्येवसाम्राज्यंतृणस्येवसुमेरुता ॥ ७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ स्वरूपंवेद्मिचित्तस्यवासनामयमाकुलम् ॥ त्यागःसमन्येदुःसाध्योवज्रनिर्गिलमादपि ॥ ८ ॥

अर्थ—कुंभ बोला कि-हे महाराज ! बासनाही इसका स्वरूप जानो बासनाका पर्य्याय चित्तशब्द लोकमें कहागयाहै ॥ ५ ॥ और तृणके संचालनसेभी इसका त्याग सरल है तथा राज्यसेभी अधिक सुखदायक और पुष्पसे अधिक रमणीय है ॥ ६ ॥ और पामरके साम्राज्य तथा तृणकी मदृताके तुल्य मूर्खके लिये इस मन वा वासनाका त्याग दुःसाध्य होगयाहै ॥ ७ ॥ शिखिध्वज बोला-हे भगवन् ! आपके वचनसे वासनामय तथा आकुल चित्तकारूप तो समझताहुं परन्तु इसका त्याग वज्रके निगलनेसेभी कठिन समझताहुं ॥ ८ ॥

संसृत्यामोदपुष्पस्यदुःखदाहानलस्यच ॥ जगदब्जमृणालस्यमोहमारुतखस्यच ॥ ९ ॥ शरीरयंत्रवाहस्यहृत्पद्मभ्रमरस्यच ॥ अयत्नाच्चेतसस्त्यागोयथाभवतितद्वद ॥ १० ॥ कुंभउवाच ॥ सर्वनाशोस्ययःसाधोचेतसःसंसृतिक्षयः ॥ सएवचित्तसंत्यागइत्युक्तंदीर्घदर्शिभिः ॥ ११ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ चित्तत्यागादहंमन्येचित्तनाशःसुसिद्धये ॥ अभावःशतशोव्याधेःकथमस्यानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—संसाररूप सुगन्धयुक्त पुष्प, दुःखरूप दाहजनक अग्नि, जगत्‌रूप कमलका तंतु, मोहरूपी वायुका आकाश ॥ ९ ॥ शरीररूप पत्रका वाहक और हृदयरूप कमलका भ्रमर यह चित्त है, हे प्रभो ! इसका त्याग बिना यत्न जैसे हो वह उपाय कहिये ॥ १० ॥ कुंभ बोला-हे साधो ! पल्लवशाखादिसहित समूल इस चित्तका जो नाश है वही संसारकाभी क्षय है और वही चित्तकाभी त्याग है ऐसा दीर्घदर्शी (अपरिच्छिन्न आत्मदर्शी) महात्माओंने कहाहै ॥ ११ ॥ शिखिध्वज बोला-हे भगवन् ! चित्तके त्यागसे इसका नाशही मैं उत्तम समझताहुं परन्तु शरीरादि सैकडों रोगोंके मूलभूत इस चित्तका अभाव कैसे अनुभूत होताहै सो कहिये ॥ १२ ॥

कुंभउवाच ॥ अहंबीजश्चित्तद्रुमःसशाखाफलपल्लवः ॥ उन्मूलयसमूलंतमाकाशहृदयोभव ॥ १३ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ चेतसःकिंमुनेमूलंकोंकुरःकोस्यसंभवः ॥ काःशाखाःकेचवास्कंधाःकथमुन्मूल्यतेचसः ॥ १४ ॥ कुंभउवाच ॥ अहमर्थोदयोयोयंसचित्तावेदनात्मकः ॥ एतच्चितद्रुमस्यास्यविद्धिबीजंमहामते ॥१५॥ परमात्मपदंक्षेत्रंक्षेत्रंमायामयस्यतत् ॥ एतस्मात्प्रथमोद्भिन्नादंकुरोनुभवाकृतिः ॥१६

अर्थ—कुंभ बोला-हे राजन् ! शाखापल्लवादिसहित इस चित्तरूपी वृक्षका अज्ञानही बीज है उसको मूलसहित उखाडनेके लिये आकाशके तुल्य हृदययुक्त तुम होजाओ ॥ १३ ॥ शिखिध्वज बोला कि-हे मुने ! इस चित्तका मूल क्या है, और इसका अंकुर क्या है, इसका उत्पत्तिस्थान कोनसा है तथा इसकी शाखा और डालियां कौन हैं और कैसे यह समूल उखाडा जाताहै सो कहिये ॥ १४ ॥ कुंभ बोला-हे मते ! अज्ञानसे उदय होनेवाले इस चित्तरूपी वृक्षका अभिमानी ज्ञाताही मूल है ॥ १५ ॥ और परमात्माके आश्रित मायाही इसका क्षेत्र है क्योंकि सर्व प्रपंचका वही क्षेत्र है, पूर्व उत्पन्न इस परिच्छिन्नसे अहं निश्चयरूप चिदाभास इसका अंकुर है ॥ १६ ॥

निश्चयात्मानिराकारोबुद्धिरित्येवसोच्यते ॥ अस्यबुद्ध्यभिधानस्यांकुरस्यप्रपीनता ॥ १७ ॥ संकल्परूपिणीतस्याश्चित्तनाममनोभिधा ॥ जीवोमिथ्योपलंभात्माशून्यात्माह्युपलोपमः ॥ १८ ॥ स्तंभःकायोयमेतस्यस्नाय्वस्थिरसरंजितः ॥ देशांतरेंकुरोहेशेकालस्पंदोस्यवासना ॥ १९ ॥ शाखायाश्चितवृक्षस्यदीर्घादूरगतास्तताः ॥ इंद्रियाण्यल्पभोगाश्चभावाभावात्मयोनयः ॥ २०

अर्थ—और इसके निश्चयात्मक निराकारको बुद्धि कहतेहैं, और इस बुद्धिमान अंकुरकी जो स्थूलताहै वह संकल्परूप होनेसे चित्त मन इत्यादि नामसे कहा जाताहै और यथार्थमें निर्विकार अनाशरूप चेतन इस चित्तके धर्मोंसे संबंध माननेसे जीव कहलाताहै वही इसका वृक्षहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ और नाडी, अस्थि, तथा रुधिरादिसे रंजित यह शरीर इसका स्तंभ अर्थात् मूलसे लेके शाखा पर्यंत इसका मध्यप्रदेश है, और उन २ पदार्थोंकी वासना इस अंकुर देशसे अन्य देश वा कालमें उडानेके रस हैं ॥ १९ ॥ और इस चित्तरूप वृक्षकी दूर २ जानेवाली शाखा इंद्रियां हैं और जन्ममरणादि अनेक अनर्थोंके कारणभूत इंद्रियोंके भोग जो कि अनेक अशुभ कलोंसे पूर्ण हैं वे इसके महान् अवांतर शाखा समूह हैं, इसप्रकार इस चित्तरूपी दुष्ट वृक्षका प्रतिक्षण ॥ २० ॥

विटपौघामहांतोस्यशुभाशुभफलाकुलाः ॥ ईदृशस्यास्यचित्तस्यदुर्वृक्षस्यप्रतिक्षणम् ॥ २१ ॥ शाखाविलवनंकुर्वन्मूलकाषेभरंकुरु ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ चित्तद्रुमशाखादेःकुर्वाणोहंविकर्तनम् ॥ २२ ॥ कथंकरोमिमूलस्यनिःशेषकषणंमुने ॥ कुंभउवाच ॥ वासनाविविधाःशाखाःफलस्पंदादिनान्विताः ॥२३॥ अभाविताभवंत्यंतर्लूनाःसंविद्दलेनते ॥ असंसक्तमनामौनीशांतवादविचारणः ॥ २४ ॥

अर्थ—विषयभोगोंमें आसक्तिरूप शाखाओंको काटतेहुये असंग अद्वितीय आत्माके दर्शनसे इसको समूल नाश करनेको अधिक यत्न करो ॥ २१ ॥ शिखिध्वज बोला-हे मुने ! इस चित्तरूप वृक्ष शाखादिको काटतेहुये

॥ २२ ॥ इसके मूलका छेदन मैं कैसे करूं कुंभ बोला–हे राजन् ! फल और चेष्टासे संयुक्त विविध प्रकारकी वासनारूप जो इस चित्तरूपी वृक्षकी शाखा ये हैं ॥ २३ ॥ उनमें आसक्ति न करनेसे तथा अंतर्मुख वृत्तिसे विचार करनेसे वे (विषयभोगोंकी आसक्ति) कट जाती हैं और इसप्रकार आसक्तिको मनसे त्यागकर मौन तथा शान्त हो सब प्रकारके वादोंको त्यागकर आत्माके विचारमें तत्पर हो ॥ २४ ॥

संप्राप्तकारीयःसोंतर्छिनश्चित्तलतोभवेत् ॥ चित्तद्रुमलताजालंपौरुषेणविकर्तयन् ॥ २५ ॥ यस्तिष्ठतिस मूलस्ययोग्योनिकषणे भवेत् ॥ गौणंशाखाविलवनंमुख्यंमूलविकर्तनम् ॥ २६ ॥ चित्तवृक्षस्यतेनत्वंमूल काषपरोभव ॥ मुख्यत्वेनमहाबुद्धेमूलदाहमलंकुरु ॥ २७ ॥ चित्तकंटकखंडस्यभवत्येवमचित्तता ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ अहंभावात्मनश्चित्तद्रुमबीजस्यहेमुने ॥ २८ ॥

अर्थ—जो यथा प्राप्त कार्योंको करताहै वह चित्तरूप वृक्षकी लता जालोंको काटता हुआ जो स्थित रहताहै ॥ २५ ॥ वह समूल इस चित्तरूप वृक्षके छेदनमें समर्थ होताहै और इस वृक्षको समूल छेदनमेंही अधिक उद्योगी होनाचाहिये क्योंकि शाखाका छेदन गौण है और मूल छेदन प्रधान है ॥ २६ ॥ हे महाबुद्धे ! इसलिये तुम-समूल इस चित्तरूप वृक्ष उखाडनेमें तत्पर हो क्योंकि मुख्य चित्तरूप वृक्षको तुम पूर्ण रीतिसे मूलसे भस्म करो ॥ २७ ॥ हे साधो ! इसप्रकार आत्मविचारमें परायण होके तुम चित्तरूप कंटक वनका नाश करो तो तुमको अचित्तता दशा प्राप्त होगी. शिखिध्वज बोला–हे मुने ! अहंकाररूप इस चित्तरूप वृक्षको जलानेके लिये कौनसी अग्नि उपयोगी होगी ॥ २८ ॥

कुंभउवाच ॥ राजन्स्वात्मविचारोयंकोहंस्यामितिरूपधृक् ॥ चित्तदुर्द्रुमबीजस्यदहनेदहनःस्मृतः ॥२९॥ शिखिध्वजउवाच ॥ मुनेमयास्वयाबुद्ध्याबहुशःप्रविचारितम् ॥ यावन्नाहंजगन्नोर्वीवनमंडलमंडितम् ३० नाद्रेस्तटंनविपिनंनपर्णस्पंदनादिच ॥ जडत्वान्नचदेहादिनमांसास्थ्यसृगादिच ॥ ३१ ॥ कर्मेंद्रियाण्य पिनचनचबुद्धींद्रियाणिच ॥ नमनोनापिचमतिर्नाहंकारश्चजाड्यतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—कुंभ बोला–हे राजन् ! मैं कौनहुं इसप्रकार आत्मविचारसे शुद्ध साक्षात्काररूपधारी आत्माही इस चित्तवृक्षको जलानेके लिये अग्नि कहागयाहै ॥ २९ ॥ शिखिध्वज बोला कि–हे मुने मैंने अपनीही बुद्धिसे अनेकवार यह विचारा है कि मैं जगत्, पृथिवी, वा बनमंडलोंसे शोभित पर्वतोंका तटहुं, न पत्रादिका पतनहुं और जड होनेसे देहादि नहींहुं, न मांसहुं, न हड्डीहुं, और न रुधिरहुं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ न कर्मइन्द्रियहुं, न ज्ञानइन्द्रियहुं, न मन हुं न बुद्धि हुं, और जड होनेसे अहंकारभी नहीं हुं ॥ ३२ ॥

कटकत्वंयथाहेम्नितथाहंत्वंचिदात्मनि ॥ जडंत्वसद्रूपतयातेनतन्नास्तिहेमुने ॥ ३३ ॥ सन्निवेशनिवा सात्मासर्वार्थादिःपरेपदे ॥ विद्यतेनान्यदन्यत्वान्न भंसीवमहाद्रुमः ॥ ३४ ॥ जानन्नपीतिभगवन्नहंत्वं मलमार्जनम् ॥ अंतर्यज्ज्ञंनजानामितेनतप्येचिरंमुनी ॥ ३५ ॥ कुंभउवाच ॥ एतावन्मात्रकंत्वंदंयदिनत्वं महीपते ॥ जडवत्तन्महाबुद्धेयोसितद्वदमेनघ ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! जैसे सुवर्णमें पृथक्‌रूपसे कटक कोई वस्तु नहीं हैं ऐसेही चिद्‌आत्मामें जड अहंकार पृथक्‌रूपसे कुछ नहीं हैं, और जड शुक्तिरुप्य तथा मृगतृष्णाका जल असत् प्रसिद्धही है इसलिये जड अहंकारभी असत् है ॥ ३३ ॥ और चतुर्दशभुवनोंका तथा शब्दविषयोंका आदि कारण प्रकृतिभी चिदात्मामें पृथक्‌रूपसे ऐसे नहीं हैं जैसे आकाशमें महान् वृक्ष ॥ ३४ ॥ हे मुने ! इसप्रकार मैं अहंकाररूपी मलका मार्जन जानता हुआभी परंतु उस आनंदैक साक्षीचेतनको नहीं जानता किंतु अहंकारमेंही आत्मभ्रांति होजाती है इस हेतु विश्राम नहीं पाता ॥ ३५ ॥ कुंभ बोला–हे पापरहित राजन् ! यदि तुम शरीरसे लेके अहंकारपर्यंत दृश्यसमूह नहीं हो तो जो हो सो मुझसे कहो ३६

शिखिध्वजउवाच ॥ चिन्मात्रमहमच्छात्मवेदनंविद्वपांधर ॥ यत्रभावाःस्वदंतेतेनिर्णीयंतेचयेनवा ॥ ३७ ॥ एवंरूपस्यमेलग्नंनूनंमलमकारणम् ॥ सकारणंवाहमितियत्पदंचनवेद्म्यहम् ॥ ३८ ॥ असदेतद नात्मीयंप्रमार्ष्टुमलमात्मनः ॥ मुनेयदानशक्नोमितेनतप्येसुदारुणम् ॥ ३९ ॥ कुंभउवाच ॥ ब्रूहिकिंत न्महाबाहोलग्नंतवमलंमहत् ॥ स्थितोसियेनखंसारीसतावाप्यथवासता ॥ ४० ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला–हे विद्वानोंमें श्रेष्ठ ! जिसमें आनंद वा जडरूप शब्दादि विषय अनुभूत होतेहैं अथवा बुद्धि वृत्तिमें उपारूढ होके जिसके द्वारा इन सबका विभाग होताहै वह शुद्ध चिन्मात्र साक्षी चेतन मैं हुं ॥ ३७ ॥ परंतु इसप्रकार शुद्ध मेरोको यह देह अहंकार आदि जो आत्माभिमानरूप मल किसीकारणसे संलग्नहै

वा निष्कारणसे यह मैं नहीं जानता और जो ब्रह्मपद है उसेभी नहीं जानता ॥ ३८ ॥ हे मुने! इस असत् आत्मासे भिन्न आत्माके मलको मार्जने मैं नहीं करसकता इसलिये संतप्त होताहुं ॥ ३९ ॥ हे महाबाहो! जो महान् मल तुममें संलग्नहै और जिसके द्वारा तुम संसारी बने स्थितहो वह सत् है वा असत् है यह मुझसे तुम कहो ॥ ४० ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ चित्तद्रुमस्ययद्बीजमहंभावश्चमेमलम् ॥ तच्चत्यक्तंनजानामित्यक्तंत्यक्तमुपैतिमाम् ॥ ४१ ॥ कुंभउवाच ॥ कारणाज्जायतेकार्ययत्तत्सर्वत्रसंभवेत् ॥ अन्यत्त्वसद्विचंद्राभंदृष्टमेतन्नविद्यते ॥४२॥ कारणाज्जायतेकार्यमहंभावाद्भवांकुरः ॥ इतिकारणमन्विष्यकथयस्वममाधुना ॥ ४३ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ मुनेहमितिदोषस्यवेदनंवेद्मिकारणम् ॥ तद्यथोपशमंयातितन्मेवदमुनीश्वर ॥ ४४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला–हे भगवन्! वह सत् है वा असत् यह मैं नहीं जानता और चित्त वृक्षका तथा अहंभावका जो बीज है उसको मैं विशेषरूपसे नहीं जानता और त्यागनेका उपायभी नहीं जानता, यदि किसीप्रकारसे त्यागताभी हुं तो वह पुनः आजाता है ॥ ४१ ॥ कुंभ बोला–हे भगवन्! जो कारणसे कार्य्य उत्पन्न होताहै वह दो चंद्रकी सत्ताके समान नहीं है और वह जगत्में असत्है ॥ ४२ ॥ जैसे अहंभावरूप कारणसे मन आदि जगत्का अंकुर उत्पन्न हुआहै ऐसे अहंकार किसकारणसे उत्पन्न हुआहै यह अपनी बुद्धिसे विचारके कहिये ॥ ४३ ॥ शिखिध्वज बोला–हे मुने! मुझे तो देहादि दृश्यपदार्थोंकी स्फुरणा होनाही इस अहंकाररूप दोषका कारण भान होताहै सो जिसप्रकार यह शांतहो वह कृपा करके कहिये ॥ ४४ ॥

चितश्चेत्योन्मुखत्वेनदुःखायायमहंस्थितः ॥ चेत्योपशमनंब्रूहिमुनेतदुपशांतये ॥ ४५ ॥ कुंभउवाच ॥ कारणंकारणज्ञोसिबेदनस्यवदाशुमे ॥ ततस्त्वांबोधयिष्यामिकारणाकारणक्रमम् ॥ ४६ ॥ वेद्यवेदनरूपस्यचेत्यसंचेतनस्यमे ॥ अकारणंकारणतांयद्यातंतवतद्वद ॥ ४७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ चेत्यचेतनरूपस्यवेद्यसंवेदनाकृतेः ॥ इयंपदार्थसत्तेहदेहादिःकारणंमुने ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे भगवन्! चित्तके विषयकी ओर उन्मुख होनेसे यह अहंकार दुःखकेलिये स्थित है सो इसकी जिसप्रकार शांति हो वह उपाय कहिये ॥४५॥ कुंभ बोला–हे राजन्! यदि वेदनका वेद्य (विषय) की ओर उन्मुख होनाही कारण है ऐसे कारणको तुम जानते हो तो मुझे अपना अभीष्ट कहो तब मैं तुमसे कारणका क्रम कहुंगा॥४६॥ सामान्यरूपसे वेद्य वेदनका और विशेष चेत्यचेतनका मिथ्यारूप वेद्य अकारण होकेभी कारणताको प्राप्तहै यह जैसा आपको अभिप्रेत है वैसाही मुझसे कहो ॥ ४७ ॥ शिखिध्वज बोला–हे मुने! वेद्य वेदन अर्थात् विषय तथा उसके ज्ञानाकार चेत्यचेतनका बाह्य तथा आभ्यंतर देहादि पदार्थोंकी सत्ताही कारण है ॥ ४८ ॥

शरीरादितयोदेतिवेदनंवस्तुसत्तया ॥ असत्याभासयास्पंदोयथापवनलेखया ॥ ४९ ॥ असत्तांवस्तुसत्तायानावगच्छाम्यहंयथा ॥ अहंत्ववेदनंचित्तबीजंसमुपशाम्यति ॥ ५० ॥ कुंभउवाच ॥ विद्यतेयदि देहादिवस्तुसत्तातदस्तिते ॥ अभावाद्देहसत्तादेःकिंनिष्ठंतववेदनम् ॥ ५१ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ यस्योपलभ्यतेकिंचित्स्वरूपंकलनात्मकम् ॥ असद्रूपंकथंतत्स्यात्प्रकाशःस्यात्कथंतमः ॥ ५२ ॥

अर्थ—शरीरआदि वस्तुकी सत्तासे उसका ज्ञान ऐसे उदय होताहै जैसे असत्यके समान भासमान वायुकी लेखासे वृक्षादिमें संचलन॥४९॥हे मुने! देहादि वस्तुओंकी सत्ताका अभाव मैं नहीं जानता जिससे अहंकारका स्फुरणरूप चित्तका बीज शांत होताहै ॥ ५० ॥ कुंभ बोला–यदि देहादि पदार्थोंकी सत्ता यथार्थमें होतो उनके ज्ञानका कारण उनकी (देहादिकी) सत्ता हो यदि देहादि हैही नहीं तो तुमारा ज्ञान किं निष्ठहुआ ॥ ५१ ॥ हे मुने! जिस वस्तुका स्वरूप प्रत्यक्ष उपलब्ध होताहै वह असत्रूप कैसे है भला प्रकाशकभी तमरूप होसकताहै ॥ ५२ ॥

हस्तपादादिसंयुक्तःक्रियाफलविलासवान् ॥ सदानुभूयमानोयंदेहोनास्तिकथंमुने ॥ ५३ ॥ कुंभउवाच ॥ कारणंयस्यकार्यस्यभूमिपालनविद्यते ॥ विद्यतेनेहतत्कार्यंतत्संवित्तिस्तुविभ्रमः ॥ ५४ ॥ कारणेनविनाकार्यंशरीरंनकदाचन ॥ विद्यतेयस्यनोबीजंतद्रव्यंकेवजायते ॥ ५५ ॥ अकारणंतुयत्कार्यंसदिवाग्रेनुभूयते ॥ तद्द्रष्टुर्विभ्रमाद्विद्धिमृगतृष्णाजलोपमम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने! हस्त पाद आदि सहित तथा क्रिया, फल और विलासादि संयुक्त यह देह कैसे नहीं है ॥ ५३ ॥ कुंभ बोला कि–हे राजन्! जिस वस्तुका कारण नहीं है उसका ज्ञान तो भ्रमही होगा ॥ ५४ ॥ कारणके विना यह शरीररूप कार्य नहीं होसकताहै ॥ ५५ ॥ जो कार्य विना कारणके सत्के समान संमुख अनुभूत होताहै उसको मृगतृष्णाके जलके समान तुम द्रष्टाके भ्रमसेही समझो ॥ ५६ ॥

अविद्यमानमेवत्वंविद्धिमिथ्याभ्रमोदितम् ॥ नातियत्नवतोप्येतन्मृगतृष्णांबुलभ्यते ॥ ५७ ॥ शिखिध्व जउवाच ॥ असतोर्द्वींदुबिंबादेर्नयुक्तंकारणेक्षणम् ॥ वंध्यातनयसर्वांगमंडनंकस्यराजते ॥ ५८ ॥ कुंभ उवाच ॥ कारणेनविनाकार्यंशरीराद्यस्थिपंजरम् ॥ अविद्यमानमेवेदंविद्ध्यसंभवतोनृप ॥ ५९ ॥ शिखि ध्वजउवाच ॥ हस्तपादादियुक्तस्यशरीरस्यमुनीश्वर॥ नित्यमालक्ष्यमाणस्यपिताकस्मान्नकारणम्॥६०

अर्थ—इस शरीर आदि दृश्यके असत् मिथ्या भ्रमसे उदित समझो क्योंकि अति यत्नवालेकोभी मृगतृष्णाका जल नहीं मिलता ॥ ५७ ॥ शिखिध्वज बोला–हे मुने ! असत् दो चंद्रमाके विंवादिका कारण तो युक्त नहीं है क्योंकि वंध्यापुत्रके सर्वांगमें भूषण किसे अच्छा लगताहै ॥ ५८ ॥ कुंभ बोला–हे राजन् ! शरीर आदि अस्थिपंजररूप कार्य कारणके विनाही अनुभूत होताहै इसलिये इसको तुम असत् रूपही समझो ॥ ५९ ॥ शिखिध्वज बोला–हे मुनीश्वर ! नित्य प्रत्यक्षरूपसे दृश्यमान हस्तपादादि सहित इस देहका पिता क्यों नहीं कारण होसकता ॥ ६० ॥

कुंभउवाच ॥ कारणाभावतोराजन्पितानामनविद्यते ॥ असतोयत्तुसंजातमसदेवतदुच्यते ॥ ६१ ॥ पदार्थानांचकार्याणांकारणंबीजमुच्यते ॥ संभवत्यंगजगतिनबीजेनविनांकुरः ॥ ६२ ॥ तस्मान्नकारणं यस्यकार्यस्येहोपपद्यते ॥ बीजाभावेहितन्नास्तितत्संवित्तिस्तुविभ्रमः ॥ ६३ ॥ अवश्यंखलुयन्नास्तिनि बीजंतन्मतिभ्रमः ॥ द्वींदुत्वमरुभूम्यंबुवंध्यापुत्रदशासमम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—कुंभ बोला–हे राजन् ! यथार्थमें पिताभी कारण शून्य असत् है तो असत्से जो उत्पन्न हुआ वहभी असत् है ॥ ६१ ॥ हे प्रिय राजन् ! पदार्थों और कार्य्योंके कारणको बीज कहते हैं क्योंकि इस संसारमें बीजके विना अंकुरका संभव नहीं है ॥ ६२ ॥ इसलिये जिस कार्यका कारण नहीं है वह नहीं है क्योंकि बीजके अभावमें उसका अंकुरभी नहीं है इसलिये उसका ज्ञान होना भ्रम है ॥ ६३ ॥ अवश्य जो वस्तु निर्वीज है वह नहीं है और उसका ज्ञानभी दो चंद्र, मृगतृष्णाके जलके और वन्ध्यापुत्रके समान मतिका भ्रमहै ॥ ६४ ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ पितामहानांपुत्राणांपितॄणांचजगत्रये ॥ आद्यःपितामहःकस्मात्पूर्वोत्पत्तौनकार णम् ॥ ६५ ॥ कुंभउवाच ॥ आद्यःपितामहोयःस्यात्सोपिनास्त्येवभूपते ॥ कारणाभावतोनित्यंयदा भावोनकस्यचित् ॥ ६६ ॥ कारणस्यस्वबीजस्यनित्याभावात्पितामहः ॥ अन्यःसदृश्यमानोपिभ्रमाद न्योनविद्यते ॥ ६७ ॥ मृगतृष्णांबुवद्भ्रांतिरूपएवावभासते ॥ पितामहार्थकारित्वमपितस्यभ्रमात्मक म् ॥ ६८ ॥ पितामहोदरेतस्यमिथ्याप्रत्ययतःस्थितिः ॥ घनातवनिवृत्तैवमार्जयिष्याम्यथेतरत् ॥ ६९ ॥ तस्माच्चिदात्मकतयात्मनिचित्ततोयंनित्यंस्वयंकचतिभूमिपदेवदेवः ॥ तेनैवपद्मजइतिस्वयमात्मनात्मा प्रोक्तःस्वरूपइतिशांतमिदंसमस्तम् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० शिखिध्वजावबोधनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला कि–हे देवपुत्र ! इस तीनोंलोकमें प्रजाओंके स्रष्टा दक्ष मरीचि आदि ऋषियोंके तथा उनके पुत्रादि और पिता आदिके ब्रह्मांडकी उसके प्रथम आदि पितामह अर्थात् हिरण्यगर्भ क्यों नहीं कारण हैं ॥ ६५ ॥ कुंभ बोला–हे राजन् ! कारणके अभावसे आदि पितामहभी नहीं हैं क्योंकि कारणके अभावसे किसी पदार्थका भाव नहीं होसकता ॥ ६६ ॥ अपने कारणरूप बीजकी नित्यताके अभावसे पितामह (हिरण्यगर्भ) मायाशबलित ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे अन्यके तुल्य भान होतेहुयेभी ब्रह्मसे अन्य नहीं है क्योंकि अविद्यारूप मायाका विद्यासे बाध होनेसे ब्रह्माका अन्य होना भ्रमसे भान होताहै ॥ ६७ ॥ इस कारणसे पितामहकी सृष्टि आदिकी रचनारूप क्रियाभी भ्रमात्मक मृगतृष्णाके जलके समान भ्रांतिरूपही भासती है ॥ ६८ ॥ इसप्रकार पितामहके उदरमें तुमारे पितामहादिकी शरीरआदि कार्य्योंकी सत्यताकी दृढप्रतीति जो हृदयमें स्थितरही वह निवृत्त हुई अब प्रतिभासमात्रसे जो स्थित है उसकोभी तत्वसाक्षात्कारपर्यन्त उपदेशसे निवृत्त करूंगा ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! उक्तरीतिसे चित्से भिन्न पदार्थोंके असत् होनेसे सब देवोंका देव ईश्वर जो हिरण्यगर्भसे लेके तृणपर्यन्त कार्योंकी परम्परारूपसे विकसित होरहाहै वह अपने आत्मामें आपही हिरण्यगर्भादि नामसे प्रसिद्ध होरहाहै इसलिये यह समस्त द्वैतसमूह शांत ब्रह्मरूपही है ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिखिध्वजावबोधनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

राजा शिखिध्वजके दृढ अज्ञानताकी सूक्ष्मतासे अविद्याके नाशका क्रम तथा बोधसे विश्रांति इस ९५ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंयद्यदयंभासतेभ्रमः ॥ अर्थक्रियासमर्थश्चतत्कथंदुःखकारणम् ॥ १ कुंभउवाच ॥ एवंजगद्भ्रमस्यास्यभावनंतावदाततम् ॥ शिलीभूतस्यशीतेनसलिलस्येवरूक्षता ॥ २ ॥ अज्ञानंशिथिलीभूतमेवंनष्टंविदुर्बुधाः ॥ ननाशेनविनोदेतिपूर्वसंस्थानविच्युतिः ॥ ३ ॥ तनुत्वंसर्वबोधस्ययत्तदेवहिकारणम् ॥ सर्गोपशमसंपत्तौप्रतिपन्नेपरेपदे ॥ ४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला—हे भगवन् ! यदि ब्रह्मासे लेके स्तंब (तृण) पर्य्यन्त जगत् मृगतृष्णाके जलके समान मिथ्या भासताहै तो इस जगत्के पदार्थोंमें अर्थक्रियासामर्थ्य (जैसे अन्नजलादिसे क्षुधापिपासादिकि शांति) कैसे और ये पदार्थ दुःखके कारण कैसे हैं ॥ १ ॥ कुंभ बोला—मायारचित देवासुर संग्राममें अस्त्रशस्त्र सेनादिके तुल्य वा स्वप्नकी स्त्रीके सदृश ईश्वरकल्पित इस जगत्के पदार्थोंमेंभी अर्थक्रियासामर्थ्य ऐसे होती है जैसे शीतसे पाषाणरूप जलमें रुक्षता ॥ २ ॥ और अज्ञानके शिथिल होनेसे यह जगत्भी क्रमसे शिथिल होके मूल अज्ञानके नाशके साथ यहभी नष्ट होजाताहै क्योंकि अज्ञानके नाशके बिना जगत्की स्थितिका बाध नहीं होता ॥ ३ ॥ और निरोधके अभ्यासते बाह्याकार वृत्तिकी सूक्ष्मता अज्ञानके शिथिल होनेमें कारण है और बाह्याकार वृत्तिकी सूक्ष्मता बढते २ ज्ञानकी उत्पत्तिके क्रमसे ईश्वरमें आरोपित सृष्टि और महासृष्टिकी शांतिकाभी कारण है ॥ ४ ॥

तानवंदृश्यतेयस्यतस्यानुक्रमतःस्वयम् ॥ पूर्वसंस्थानविगमात्प्रशमोप्युपपद्यते ॥ ५ ॥ अनेनैवक्रमेणैवंत्वमादिपुरुषोनृपः ॥ भ्रमाकारोदयंविद्धिमृगतृष्णांबुवत्स्थितम् ॥ ६ ॥ एषापितामहाभावेप्यसतीभूतसंततिः ॥ नकदाचनतत्सिद्धंयदसिद्धेनसाध्यते ॥ ७ ॥ अयंभूतोपलंभोहिमृगतृष्णांबुवोदितः ॥ विचाराद्विलयंयातिशुक्तौरजतधीरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—इससंसारमेंभी जिस वस्तुकी सूक्ष्मता क्रमशः होती है उसके पूर्वस्थितिके नाशसे सर्वथा नाशभी होताहै ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसी अज्ञानकी शिथिलताके क्रमसे शरीरादि सब दृश्यपदार्थोंका बाध होनेसे शुद्धचिन्मात्र आदि पुरुष तुम्ही शेष रहजातेहो और चित्से भिन्न जो जगत् स्थित है वह भ्रमाकार मृगतृष्णाके जलके समान उदित है ॥ ६ ॥ ब्रह्माके अभावसे यह प्राणियोंका समूहभी असत्है क्योंकि जो स्वयं असिद्ध उससे कदापि कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥ और यह प्राणियोंकी प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्ति जो मृगतृष्णाके जलके समान उदित है वह विचारसे शुक्तिके रजतके सदृश नष्ट होजाती है ॥ ८ ॥

कारणाभावतःकार्यमभूत्वाभवतीतियत् ॥ मिथ्याज्ञानादृतेतस्यनरूपमुपपद्यते ॥ ९ ॥ मिथ्यादृष्टिप्रेक्षितंतुनकदाचनविद्यते ॥ मृगतृष्णांभसाकेनघटकाःपरिपूरिताः ॥ १० ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ स्रष्टुरस्यपरमंब्रह्मकस्मान्नकारणम् ॥ अनंतमजमव्यक्तमंबरंशांतमच्युतम् ॥ ११ ॥ कुंभउवाच ॥ हेतुत्वाभावतोब्रह्मकार्यत्वाभावतस्तथा ॥ अद्वैतेनातिगंतात्मानचकार्यंनकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और कारणके विना न होकर जो कार्य भान होताहै उसका रूप मिथ्या अज्ञानके सिवाय युक्त नहीं है ॥ ९ ॥ वह मिथ्या अज्ञान सिद्ध पदार्थ यदि मिथ्या दृष्टिसे देखा जाय तो कदापि नहीं रहसकता क्योंकि मृगतृष्णाके जलसे घडे किसने पूर्ण किये हैं ॥ १० ॥ शिखिध्वज बोला—हे ब्रह्मन् ! तो अज, अव्यक्त शांत और अच्युत परब्रह्मही आदि स्रष्टा ब्रह्माका कारण क्यों नहीं होसकता ॥ ११ ॥ कुंभ बोला—राजन् ! "तदेतद्ब्रह्मा पूर्वमनपरम्" (ब्रह्म कार्यकारणसे शून्य है) इत्यादि श्रुतिसे ब्रह्मकार्यकारणभावसे रहित है क्योंकि कूटस्थ ब्रह्म अपरिणामी होनेसे कार्यकारणसे परे हैं ॥ १२ ॥

अकर्तृकर्मकरणमकारणमबीजकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयब्रह्मकर्तृकथंभवेत् ॥ १३ ॥ अकारणत्वात्कार्यत्वरहितंतज्जगद्भवेत् ॥ अद्वैतैक्यमनाद्यंतंतदाद्यमुपलंभनम् ॥ १४ ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयंयच्छिवंशांतमव्ययम् ॥ तत्कथंकस्यकेनैवकर्तृभोक्तृकदाभवेत् ॥ १५ ॥ अतोनेदंकृतंकिंचिज्जगदादिनविद्यते ॥ नकर्तासिनभोक्तासिसर्वंशांतमजंशिवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कर्ता, कर्म करणादिकारकसे रहित, निमित्त और उपादान कारणसे वर्जित अप्रतर्क्य तथा भिन्नरूपसे अविज्ञेय ब्रह्म कर्ता कैसे होसकताहै ॥ १३ ॥ यदि यह कहो धर्म शून्य होनेसे अकारणसे और अकार्यत्व इन धर्मों-

सेभी ब्रह्मरहित है तो कार्यकारणयुक्त जगत्की संभावना होसकती है तो तुम जगत्के द्वैतता एकता लक्षणसे तथा देशकाल और वस्तुकृत परिच्छेदसे शून्य ब्रह्मकीही संभावना क्यों नहीं करते ॥ १४ ॥ हे साधो! जो अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, शिव, शान्त, और अव्यय ब्रह्म है वह कैसे किसका कर्ता भोक्ता होसकताहै ॥ १५ ॥ इसलिये यह जगत् आदि किसीका कृतकार्य नहीं है तुमभी किसीके कर्ता भोक्ता यथार्थमें नहीं हो किंतु सर्वथा शांत अज शिवरूपहो॥१६

कारणाभावतःकार्यंनकस्यचिदिदंजगत् ॥ अकारणत्वात्कार्यत्वंभ्रमाद्धिद्धित्विदंजगत् ॥ १७ ॥ अकार्यत्वचनास्त्येतत्सर्गइत्थंनविद्यते ॥ यदानकस्यचित्कार्यंकारणस्यजगत्तदा ॥ १८ ॥ पदार्थाभावसंसिद्धिस्तत्सिद्धौकस्यवेदनम् ॥ एवंतुवेदनाभावेनास्त्यहंत्वस्यकारणम् ॥ १९ ॥ अतःशुद्धोविमुक्तोसिकैवोक्तिर्बंधमोक्षयोः ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ बुद्धोस्मिभगवन्युक्तियुक्तमुक्तंत्वयोत्तमम् ॥ २० ॥

अर्थ—कारणके अभावसे जगत् किसीका कार्य नहीं है, इसलिये बिनाकारण जगत्रूप कार्य भ्रमसेही सिद्ध है ॥ १७ ॥ किसीका कार्य न होनेसे यह आविर्भूत सृष्टिभी नहीं है और जब किसीकारणका कार्य जगत् नहीं है तो ॥ १८ ॥ पदार्थोंका अभाव यथार्थमें सिद्ध हुआ, और पदार्थोंके अभाव सिद्धिमें किसका स्फुरण वा ज्ञान होसकताहै इसप्रकार ज्ञानके अभावसे अहंकारका कारण वेद्य विषय नहीं है ॥ १९ ॥ इसलिये तुम शुद्ध तथा विमुक्त आत्माहो बंधमोक्षकी क्या कथा शिखिध्वज बोला—हे भगवन् ! मैं शुद्धबुद्ध आत्माही हुं आपने युक्तियुक्त उत्तम कथन किया ॥ २० ॥

कारणाभावतःकर्तृनेदंब्रह्मेतिवेद्म्यहम् ॥ कर्त्रभावाज्जगन्नास्तितेननास्तिपदार्थदृक् ॥ २१ ॥ नातश्चित्तादितद्बीजंनातोहंतादिकिंचन ॥ एवंस्थितेविशुद्धोस्मिविबुद्धोस्मिशिवोस्मिवा ॥ २२ ॥ नमोमह्यंपरंचेत्यंनकिंचिदितिबोधितः ॥ पदार्थवेदनादित्थमसदेवावभासते ॥ अहमाद्यंतमेतेनशांतमासेखकोशवत् ॥ २३ ॥ जगत्पदार्थप्रविभागदृष्टिःसदेशदिक्कालकलाक्रियौघा ॥ अहोनुकालेनचिरेणशांताब्रह्मैवशांतंस्थितमव्ययात्म ॥ २४ ॥ शाम्यामिनिर्वामिपरिस्थितोस्मिनयामिनोदेमिनचास्तमेमि ॥ तिष्ठामितिष्ठस्वयथास्थितात्माशिवंशुभंपावनमौनमस्मि ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजविश्रांतिर्नाम पंचनवतितमःसर्गः ॥ ९५ ॥

अर्थ—कारणके अभावसे यह आत्मा ब्रह्मकर्ता नहीं है और कर्ताके अभावसे यह जगत् नहीं है इसीसे नामरूपकी सृष्टि यथार्थ नहीं है ॥ २१ ॥ और इसीसे उसके बीज चित्तादि तथा अहंतादिभी कुछ नहीं है इस जगत् चित्त तथा अहंकारादिके अभावसे मैं शुद्ध विशुद्ध और शिवरूपहुं ॥ २२ ॥ चित्से परे कोई विषयसमूह नहीं है ऐसा आपने मुझे बोध कराया इस तुमारी कथित युक्तिसे पदार्थोंके विचार करनेसे अध्यारोप तथा अपवादसे जगत्से लेके अहंकार पर्यन्त सब पदार्थ असत्ही भासताहै इस रीतिसे सबका बाध होनेसे आकाशके कोशके सदृश मैं विक्षेप शून्य स्थितहुं इसलिये मुझे मेरा नमस्कार है ॥ २३ ॥ अहो ! देशकाल तथा क्रियाओंके समूह सहित यह पदार्थोंकी दृष्टि आज मेरी चिरकालसे नष्टहुई, अब शांत अविनाशी, निर्विकार ब्रह्ममात्र स्थित हुं ॥ २४ ॥ शांतहुं तृप्तहुं, सर्वत्र स्थितहुं, न जाताहुं न उदय होताहुं, और न अस्त होताहुं, किंतु जैसा हुं वैसा स्थितहुं तुमभी उसी आनंदवन आत्मामें स्थितहो मैं तुमारा आत्मारूपही शुद्ध शिव, पावन और मौनरूप स्थितहुं ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिखिध्वज विश्रांतिर्नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

ज्ञानयुक्त राजाकी दृश्य सत्ताका निःशेष मार्जन जिसप्रकार होताहै वह विषय इस ९६ के सर्गमें कुंभने वर्णन किया॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिब्रह्मणिविश्रांतिमवाप्यसशिखिध्वजः ॥ मुहूर्तमासीत्संशांतमनानिर्वातदीपवत् ॥ १ ॥ निर्विकल्पसमाधानपरेणाशुविविक्षितम् ॥ स्वलीलयेतिकुंभेनझटित्येवप्रबोधितः ॥ २ ॥ कुंभउवाच ॥ राजन्नज्ञाननिद्रातःप्रबुद्धोसिशिवःस्थितः ॥ कार्यंनास्तमयेनैवनचानस्तमयेनते ॥ ३ ॥ सकृदेवविभातात्मानष्टानिष्टपदात्मकः ॥ कलाकलननिर्मुक्तोजीवन्मुक्तोंगसांप्रतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार अखंडाकार वृत्तिके उदयसे विश्रांतिको पाकर राजा शिखिध्वज दो घडी पर्यन्त शान्त चित्त होके निर्वात स्थानमें स्थित दीपके समान निश्चल होगया ॥ १ ॥ उससमय राजा शीघ्रही निर्विकल्प समाधिमें प्रविष्ट होनेको अभिमुख हुआथा कि कुंभरूप धारिणी चूडालने शीघ्रही उसको बोधित किया ॥ २ ॥ कुंभ बोला कि–हे राजन् ! अब तुम अज्ञानकी निद्रासे प्रबुद्ध होकर शिवरूप स्थितहो तुमको निर्विकल्प समाधिसे इस दृश्यको अस्तवान अस्त करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥ हे प्रिय ! एकवारही आत्माके दर्शनसे तुमारे अनिष्ट सब नष्ट होगये, सब कल्पनाओंसे निर्मुक्त तुम जीवन्मुक्त हो ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुंभेनबोधितस्त्वेवंसबभूवावबोधवान् ॥ विनिर्गतोरराजोच्चैर्महामोहसमुद्गकात् ॥ ५ ॥ विश्रांतधीःक्षणेनैवपश्यन्दृश्यस्यवस्तुनः ॥ असत्तामेवमुक्तात्मालीलयासमुवाचह ॥ ६ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ ज्ञातप्रायमपीदंतुयत्पृच्छामितदुच्यताम् ॥ भूयोनिपुणबोधायममानदमोदद ॥७॥ शिवेशांतेनिराभासेपदेनुल्लसितात्मनि ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्याख्योविश्वात्माप्रत्ययःकुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–कुंभके ऐसा कहनेपर बोधयुक्त राजा महामोहके बन्धनसे निकलकर अतिशोभित हुआ ॥ ५ ॥ क्षणमेंही विश्रांत चित्त तथा मुक्त आत्मा राजा दृश्यवस्तुकी असत्ताको देखता हुआ लीलापूर्वक कुंभसे यह बोला ॥ ६ ॥ हे प्रतिष्ठा तथा आनन्दके दायक ! यद्यपि यह मुझे ज्ञातकेही तुल्य है तथापि दृढबोधके लिये जो कुछ आपसे पूंछताहुं उसे कहिये ॥ ७ ॥ शिव शान्त, निराभास तथा अविद्यासे आवृत्त आत्मामें द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यरूप संसारकी प्रतीति कहांसे होतेहो ॥ ८ ॥

कुंभउवाच ॥ साधुदृष्टंमहाराजराजसेवाथभास्वरः ॥ एतदेवहितेशिष्टंज्ञातुंयतदिदंशृणु ॥ ९ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यंकल्पांतेतद्विनश्यति ॥ १० ॥ ततःस्तिमितगंभीरंनतेजोनतमस्ततम् ॥ महाकल्पविलासांतेसत्सारमवशिष्यते ॥ ११ ॥ चिन्मात्रममलंशांतमाभातंपरमंनभः ॥ समस्तकलनोन्मुक्तंयुक्तंपरमयाधिया ॥ १२ ॥

अर्थ—कुंभ बोला–हे महाराज ! अब ज्ञानकी प्राप्तिसे तुम शोभित होरहेहो अब तुमको यही जाननेको शेष है उसकोभी सुनो ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सबप्रकारके पदार्थोंसे पूर्ण जो कुछ यह स्थावरजंगमरूप जगत् देखपडताहै वह कल्पके अन्तमें सब नष्ट होजायगा ॥ १० ॥ उस कल्पांतके पश्चात् निश्चल, गम्भीर, न तेज, न अन्धकार, किन्तु व्याप्तरूप सन्मात्र शेष रहजाताहै ॥ ११ ॥ वह चिन्मात्र अमल, शान्त, प्रकाशमय अतिसूक्ष्म चिदाकाश, निजस्वरूपको साक्षात्कार करनेवाली बुद्धिसे संयुक्त ॥ १२ ॥

यदेकोदितमत्यच्छंशांतमाततमुज्ज्वलम् ॥ परमात्मात्मकंतेजस्तिमितंज्ञप्तिमात्रकम् ॥ १३ ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयंसमंशिवमनिंदितम् ॥ ब्रह्मनिर्वाणमापूर्णमापूर्णोदितसंविदा ॥ १४ ॥ अणीयसामणीयश्च स्थविष्ठंचस्थवीयसाम् ॥ गरीयसांगरिष्ठंचश्रेष्ठंचश्रेयसामपि ॥ १५ ॥ ईदृशंतत्परंसूक्ष्मंतस्याग्रेयदिदंनभः ॥ अणोःपार्श्वेमहामेरुरिवस्थूलात्मलक्ष्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जो एक अतिस्वच्छ, शान्त, सर्वत्रव्याप्त उज्वलरूप ज्ञप्तिमात्र, परमात्ममय तेज रहताहै ॥ १३ ॥ पुनः वह परमात्मा ब्रह्मतर्क करनेके अयोग्य, अविज्ञेय सर्वत्र एकरस, शिव, अनिंदित, निर्वाणरूप, और चारो ओरसे उदित निजबोधसे पूर्ण रहताहै ॥ १४ ॥ वह ब्रह्मसूक्ष्मतर पदार्थोंसेभी सूक्ष्मतम, स्थूलतरोंसे स्थूलतम, गुरुतरोंसेभी गुरुतम, और श्रेष्ठोंसेभी श्रेष्ठतम है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! वह आत्मा ब्रह्म ऐसा सूक्ष्म है कि जिसके सम्मुख अतिसूक्ष्म यह आकाशभी स्थूल लक्षित होताहै जैसे परमाणुके सन्मुख महामेरू ॥ १६ ॥

ईदृशंतत्परंस्थूलंयस्याग्रेयदिदंजगत ॥ परमाणुवदाभातिक्वचिदेवनभातिच ॥ १७ ॥ विश्वात्मकचनंनामपदेसंभववेधसः ॥ तदहंवेदनंविद्धिविराडात्माजगत्स्थितम् ॥ १८ ॥ वातस्यवातस्पंदस्ययथाभेदोनविद्यते ॥ शून्यत्वखत्वोपमयोश्चिन्मात्राहंत्वयोस्तथा ॥ १९ ॥ जलेस्तिदेशकालांतेयथोर्म्यादिसकारणम् ॥ परेऽस्त्यदेशकालांतेतथाजगदकारणम् ॥ २० ॥

अर्थ—और वह आत्मा ब्रह्म स्थूलभी इतना है कि जिसके संमुख यह संपूर्ण ब्रह्मांडभी परमाणुके तुल्य भान होताहै और कहीं नहींभी भान होता ॥ १७ ॥ इसप्रकार माया शबलित अधिष्ठानरूप ब्रह्मपदमें पूर्वकालके जगत्के संस्कारसे उद्बुद्ध उन २ प्राणियोंके अनुसार जो अध्याससे संसारकी स्फुरणा होती है उसीको तुम परमात्मासे उत्पन्न ब्रह्माका अहंभावरूप ज्ञानाध्यास जानो और उसी ब्रह्माके अहंभावमें विषयरूपसे यह जगत् स्थितहै और उसी जगत्की स्थितिको विराट्रूप विषयाध्यास कहतेहैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार वायु तथा उसकी

गतिका वा शून्य और आकाशकी भेद नहीं है इसी प्रकार चिन्मात्र और अहंभावरूप स्फुरणा (हिरण्यगर्भ) का भी भेद नहीं है ॥ १९ ॥ जैसे देशकालसे परिच्छिन्न जलमें तरंगादि सकारण अभिन्नरूपहैं ऐसे ही देशकाल तथा वस्तुसे अपरिच्छिन्न परमात्मामें अकारण यह जगत् है ॥ २० ॥

हेम्न्यस्तिदेशकालांतेकटकादिसकारणम् ॥ ब्रह्मण्यदेशकालांतेतथाजगदकारणम् ॥ २१ ॥ ईदृशंतद्द रिष्ठंचजगद्राज्यंतदक्षतम् ॥ नद्वैतममलंशांतंजगत्तृणलवायते ॥ २२ ॥ ईदृशंतत्परंश्रेयस्तस्मिन्सतिय दीश्वरे ॥ जगत्पदार्थसार्थश्रीःसासत्तामेतिवेदनात् ॥ २३ ॥ तत्सारमेकमेवेहविद्यतेभूपतेततम् ॥ ए कमेकांतचित्कांतंनैकमप्यद्वितावशात् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जैसे देशकालसे परिच्छिन्न सुवर्णमें सकारण कटकादि है ऐसेही देशकाल तथा वस्तुसे अपरिच्छिन्न ब्रह्ममें यह जगत् है ॥ २१ ॥ इसप्रकारके जगत्रूप राज्यका वह ब्रह्म महाराज है और उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मके संमुख यह जगत् तृणके समान तुच्छ भान होताहै ॥ २२ ॥ इसप्रकार परम कल्याणरूप उस ब्रह्मके रहतेही इस जगत्के पदार्थोंकी शोभा स्फुरण मात्रसे सत्ताको प्राप्त होतीहै ॥ २३ ॥ हे राजन् ! निरतिशय प्रेमका स्थान, और द्वैतापत्तिके कारण एकत्व संख्याका भी अनाश्रय चिन्मात्रही सार है ॥ २४ ॥

तस्माद्द्वितीयाकलनाकाचिन्नामनविद्यते ॥ आत्मतत्त्वमलंभातंतदेवापूर्णमक्षयम् ॥ २५ ॥ संस्थितंस र्वदासर्वंसर्वाकारमिवोदितम् ॥ अदृश्यत्वादलभ्यत्वान्नतत्कार्यंनकारणम् ॥ २६ ॥ प्रत्यक्षादेरगम्य त्वात्किमप्येवतदुत्तमम् ॥ सर्वंसर्वात्मकंसूक्ष्ममच्छानुभवमात्रकम् ॥ २७ ॥ आख्यानाख्यास्वरूप स्यनिराभासप्रभादृशः ॥ सतोवाप्यसतोवाथकथंकारणताभवेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! इसलिये द्वितीय कल्पना कुछ भी नहीं है किंतु सर्वथा पूर्ण अक्षय आत्मतत्वही प्रकाश कररहाहै ॥ २५ ॥ वह सर्वरूप सर्वाकारके समान उदयको प्राप्त स्थितहै और नेत्रआदि इन्द्रियोंसे अदृश्य तथा हस्तादिसे अलभ्य होनेसे वह न कार्य है न कारण है ॥ २६ ॥ लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका अविषय, सर्वश्रेष्ठ, सर्वरूप, सर्वात्मक तथा अतिसूक्ष्म, वह अनुभवमात्र है ॥ २७ ॥ शब्द तथा उसके अर्थमात्रके आधार, दृग्मात्र परमार्थ दृष्टिमें सत् और व्यवहार दृष्टिमें असत्के तुल्य भासमान उस ब्रह्मकी कारणता कैसे होसकती है ॥२८॥

यद्वैनकस्यचिद्बीजमनाख्यत्वान्नकारणम् ॥ नकिंचिज्जायतेतस्मात्प्रमाणादिततात्मनः ॥ २९ ॥ अकर्तृ कर्मकरणंसत्यंचिद्घनमक्षतम् ॥ आत्मरूपमनाभासंस्वयंवेदनमक्षतम् ॥ ३० ॥ तस्मान्नजायतेकिंचि त्परस्माद्ब्रह्मणोमुने ॥ कथंकिलभ्यतेकेनयथोर्म्यादिसकारणम् ॥ ३१ ॥ परेऽस्त्यदेशकालांतेतथाजगद कारणम् ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ जलादौयत्तरंगादितत्सकारणमस्तिहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—वह नामरूपसे रहित होनेसे किसीका बीज वा कारण नहीं है क्योंकि व्यापकरूप उस परमात्मासे प्रमाणप्रमेयरूप यह जगत् नहीं उत्पन्न होता ॥ २९ ॥ कर्ता, कर्म तथा करणादि कारकसे शून्य, सत्य अविनाशी, चिद्घनमात्र, वह आत्मरूप स्वयं अनुभवमात्र है ॥ ३० ॥ इसलिये हे मुने ! उस ब्रह्मसे कुछ भी नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि जलसे सकारण उत्पन्न तरंगादि हैं उनकोभी जलसे भिन्न कुछ नहीं पावोगे, और ब्रह्मसे निष्कारण उत्पन्न जगत् किसको भिन्नरूपसे मिल सकता है ॥ ३१ ॥ और जगत् तो देशकालादिसे अपरिच्छिन्न ब्रह्ममें रहताहै यह प्रथम कह चुके हैं, शिखिध्वज बोला कि–हे मुने ! जालादिमें तरंगादि तो सकारण है ॥ ३२ ॥

परेजगदहंतादिनाकारणमवैम्यहम् ॥ कुंभउवाच ॥ इदानींतत्वतोज्ञातमेतत्सत्यंमहीपते ॥ ३३ ॥ इ दंजगदहंतादिनेहकिंचिन्नविद्यते ॥ जगच्छब्दार्थरहितंजगदस्तिशिवात्मकम् ॥ ३४ ॥ व्योम्न्येवनिर्मि तंशांतंव्योम्नासूक्ष्मतरेणच ॥ यथानभसिशून्यत्वंतथेदंजगदीश्वरे ॥ ३५ ॥ सदृशंस्वस्वरूपेणनवारू पेणकेनचित् ॥ एवंरूपंजगदिदंसम्यग्ज्ञातंशिवंभवेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और ब्रह्ममें जगत् अहंतादि अकारण हैं इस विषयमें दृष्टांतको मैं नहीं समझता कुंभ बोला कि–हे राजन् ! पंचीकृत जलादि समुद्रका कारण हैं और बाह्य वायुआदि सहकारी कारणसे समुद्रका कार्य होनेसे जलके परिणाम तरंगादि सकारण हैं और ब्रह्मका कारण अप्रसिद्ध होनेसे तथा सहकारी कारणके अभावसे उसका परिणाम जगत् नहीं होसकता विषम दृष्टांत देनेमें यही मेरा अभिप्राय है परंतु यह बात तत्वज्ञानके विना मूर्ख जन नहीं जानते और तुमतो यथार्थरूपसे सत्यको जानलिया इसलिये तुमसे ऐसा कहागया ॥३३॥ हे राजन् ! यह जगत् तथा अहंताआदि परमात्मामें कुछ नहीं है किंतु जगत्के शब्दार्थसे रहित शिव (परमात्मा) रूपही यह जगत् उसमें है ॥३४॥

जैसे मायाकाशसे निर्मित आकाशसेभी सूक्ष्म गंधर्व नगरादि वा शून्यता आकाशमें आकाशरूपसे है ऐसेही यह जगत् ईश्वरमें है ॥३५॥ हे राजन् ! यह जगत् चेतनरूपसे वा शून्यरूपसे भलीभांति ज्ञात होनेसे ब्रह्मरूपही होजाताहै ॥३६॥

सम्यग्ज्ञानप्रभावेणविषमप्यमृतायते ॥ असम्यग्ज्ञातमशिवंजगद्दुःखप्रदंपरम् ॥ ३७ ॥ विषबुद्ध्यामृतमपिभुक्तंविषरसायते ॥ ईदृशश्च्यथावेत्तियद्यदेषचिदीश्वरः ॥ ३८ ॥ तत्तथैवाशुभवतितादृग्रूपतया शिवः ॥ यथाऽज्वालाभ्रमाज्जाताविचित्राकारविभ्रमैः ॥ ३९ ॥ तिष्ठत्यनन्यरूपैवब्रह्मसत्तातथैवहि ॥ यत्परंचित्स्वरूपेणस्थितमात्मनिमंथरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और सम्यग् ज्ञानके प्रभावसे विषभी अमृतके तुल्य होजाताहै और असम्यग् ज्ञानसे यह जगत् अकल्याणमय और परम दुःखदायी ऐसे होताहै ॥ ३७ ॥ जैसे विषबुद्धिसे अमृतका भोजन भी विषका कार्य करताहै, इसप्रकार माया शबलित ईश्वर जो २ अनुभव करताहै ॥ ३८ ॥ शीघ्र उसी २ पदार्थकारूप होजाताहै, और जैसे ज्वाला वा तिमिरआदि नेत्रके दोषोंसे आकाशमें केश तथा मोतियोंके विचित्राकार होनेपरभी वह सब ॥ ३९ ॥ आकाशरूपही स्थित रहते हैं ऐसीही स्फुरित भी यह जगत् ब्रह्मसत्ताहीसे स्थित रहताहै, और चित्स्वरूपसे आत्मामें स्थित ब्रह्म अपने स्वरूपके ज्ञानमें शिथिल होताहै ॥ ४० ॥

तत्तेनदेहदेह्यादिर्जगदादीवलक्ष्यते ॥ केवलंपरमेवेत्थंपरमंभासतेशिवम् ॥ ४१ ॥ अतोजगदहंतादिप्रश्नएवेतिनोचितः ॥ यद्वस्तुविद्यमानंसत्प्रश्नस्तत्रविराजते ॥ ४२ ॥ प्रेक्षितंयत्तुनास्त्येवप्रेक्षाप्रश्नेनतत्र किम् ॥ सन्निवेशंविनासत्तायथाहेम्नोनविद्यते ॥ ४३ ॥ तथाजगदहंभावंविनानेशस्यसंस्थितिः ॥ अकारणत्वान्नास्तीदंब्रह्मैवेत्थंविजृंभते ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसीसे वह देह देही आदि जगत्स्वरूपसे लक्षित होताहै और अपने स्वरूपके ज्ञानके दृढ होनेपर तो परम शान्त शिवरूपही है ॥ ४१ ॥ इसलिये जगत् अहंताआदि ब्रह्म कैसे हैं यह तुमारा प्रश्नही अनुचित है क्योंकि जो वस्तु विद्यमानहैं उसीका प्रश्न शोभित होताहै ॥ ४२ ॥ जो वस्तु विचार करनेसे नहीं है उसके विचार और प्रश्नसे क्या प्रयोजन है और जैसे आकार रचनाके विना सुवर्ण नहीं है ऐसेही जगत् तथा अहंभावके विना उसके प्रश्नकी योग्यता ईश्वरमें नहीं है और कारणके अभावसे जगत् तो यथार्थ रीतिसे नहीं है इसलिये ब्रह्मही जगत्रूपसे विकसित होरहा है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अजृंभमाणमेवेदंजगत्त्वेनेवसंस्थितम् ॥ यन्मयाएवतेनैवमिथःसंप्रेरिताशयम् ॥ ४५ ॥ चमत्कुर्वंत्यमी भावाःपंचकेमिथुनौघवत् ॥ चिन्मात्रएवचिन्मात्रंचिन्मात्रेणावधीयते ॥ ४६ ॥ नानात्मनैवनानेवस्वात्मज्ञानात्मनात्मवत् ॥ पूर्णात्पूर्णान्युद्धरंतिपूर्णात्पूर्णानिचक्रिरे ॥ ४७ ॥ भवंतिपूर्णात्पूर्णानिपूर्णमेवावशिष्यते ॥ चिन्मात्रमेवकचतियच्चिन्मात्रमयात्मनि ॥ ४८ ॥

अर्थ—वह ब्रह्म अपने स्वरूपका परिणाम न करके जगत्रूपसे स्थितहै और उसी माया शबलित ईश्वरकी प्रेरणासे परमेश्वरमय परस्पर प्रेरित होके ॥ ४५ ॥ संपूर्ण पदार्थ मिलके पंचभूतात्मक शरीरमें ऐसे चमत्कार करतेहैं जैसे कामसे प्रेरित स्त्रीपुरुष पुत्रकी उत्पत्ति, इसलिये अविद्यासे आवृत चिन्मात्र आत्माही मायाशबलित चिन्मात्र आत्माके द्वारा ॥ ४६ ॥ नानारूप धारण करके उन २ कार्यरूपसे परिच्छिन्न होताहै यथार्थमें पूर्णसे मायासे पूर्णका उद्धार होताहै और ऐहिक कर्मभी पूर्णसेही मायासे पूर्णही उत्पन्न किये जातेहैं ॥ ४७ ॥ और तत्वज्ञानसे जो मुक्त होते हैं वे भी पूर्ण परमात्माहीसे मायाके नाशसे पूर्णरूपही होते हैं और भेद भ्रमके साथ मायाके नष्ट होनेपर पूर्ण आत्माही शेष रहजाताहै और जो चिन्मात्र आत्मामें सृष्टि रचनेका अहंभाव स्फुरितहुआ चिन्मात्रमय आत्मामें४८

अकचित्वैवतन्नामकचितंसर्गवेदनम् ॥ अहंचिताचिदेवादौभवतीवस्वयंततः ॥ ४९ ॥ अभवंत्येवरूपंस्वमत्यजंतिनिरामयम् ॥ तेजोमयमनाद्यंतंमनोरूपमनंतकम् ॥ ५० ॥ सम्राट्संसारमाभास्विभवतीवस्वयंवपुः ॥ पश्यत्यथसदेवेदंस्वरूपत्वात्सदेववा ॥ भावनाद्भूततामेतिदृश्यंभवतिचक्षणात् ॥५१॥ शांतंजगत्प्रसररूपतयास्वभावशब्दार्थमुक्तमिदमव्यपदेश्यमेकम् ॥ वस्तुस्थितंनिजचमत्करणावलोकरूपंजगत्स्वरहितानुभवात्मतत्वम् ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजावबोधनं नाम षण्णवतितमःसर्गः ॥ ९६ ॥

अर्थ—विनाही स्फुरण चिन्मात्रही वैसा भानहुआ, और सृष्टिकी आदि स्वयं साक्षात् चेतन ॥ ४९ ॥ अपने निरामय, तेजोमय, तथा आदि अंतरहित चित्स्वरूपको न त्यागतेहुये नानाप्रकारके समान मनोरूपधारण करताहै ॥ ५० ॥ वही परमात्मा स्थूलकी कल्पनासे भास्वर शील होके स्वयं विराट्का वा ब्रह्माकारूप धारण करताहै और व्याष्टि जीवभावसे इस जगत्के सत्के वा अधिष्ठान चित्के समान देखताहै तथा भावनाँकी दृढतासे जरायुज अंड-जादि चारप्रकारकी जीवता और दृश्यरूपताको क्षणमेंही प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इस शांत ब्रह्मही नामरूपसे कहागया इसी हेतुसे यह जगत् अनिर्वचननीय है, क्योंकि यथार्थमें प्रकाश तथा अनुभवरूप एक वस्तु परमात्माही अपनी मायासे निजचमत्कार द्वारा जगत्के समान दृश्यदर्शनरूप होके स्थितहै ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे शिखिध्वजावबोधो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

पूर्वसर्गमें दृश्यकी अकारणता तथा उसका न होना वर्णन किया अब इस ९७ के सर्गमें दृश्यजगत्का मार्जन तथा उसकी चिद्रूपता वर्णन कीगई है ॥

॥ कुंभउवाच ॥ हेम्न्यतिदेशकालांतेइत्थंजन्यजनिक्रमः ॥ नकिंचिज्जायतेशांतान्नकिंचित्प्रविलीयते ॥ ॥ १ ॥ स्वसत्तयांस्थितंब्रह्मनबीजंनचकारणम् ॥ शुद्धानुभवमात्रंतत्तस्मादन्यन्नविद्यते ॥ २ ॥ किंचिज्जगदहंतादितदेवानंतमस्तिहि ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ शिवेजगदहंतादिमुनेनास्तीतिवेद्म्यहम् ॥ ३ ॥ सर्गवेदनमाभातिकथमेतद्वदाशुमे ॥ कुंभउवाच ॥ विस्तारंतदनाद्यंतंतत्संविदिवतिष्ठति ॥ ४ ॥

अर्थ—कुंभ बोला—हे राजन् ! इसप्रकार जैसे देशकालसे परिच्छिन्न सुवर्णमें कटकादि सकारण है ऐसेही निस्कारण परमात्मामें यह जगत्का जन्यजनकभावका क्रम है क्योंकि शान्तपरमात्मासे न कुछ उत्पन्न और न उसमें कुछलयहो ॥ १ ॥ अपनी सत्तामें ब्रह्म स्थित है न वह किसीका बीज है न कारण है किन्तु शुद्ध अनुभवमात्र है उससे भिन्न कुछभी ॥ २ ॥ जगत् तथा अहंभाव आदि नहीं है वही अनन्त सबकुछ है शिखिध्वज बोला—हे ब्रह्मन् ! पर-मात्मामें जगत् अहंतादि नहीं है यह आपके कथनसे मैं समझताहुं ॥ ३ ॥ परन्तुयह सृष्टिका ज्ञान कैसे भान होता है वह मुझसे शीघ्र कहिये कुंभ बोला महाराज इस सृष्टिका विस्तार करनेवाला अधिष्ठान सन्मात्र जो अनादि तथा अनन्त है वही सृष्टिके ज्ञानके समान भान होताहै ॥ ४ ॥

तत्तद्भुवनमत्यच्छंतत्तन्मात्रंजगद्वपुः ॥ नविज्ञानमयोर्थोस्तिनबाह्योनापिशून्यता ॥ ५ ॥ वेदनामात्रसारत्वाद्यथाचित्सारउच्यते ॥ द्रवत्वंसलिलस्येवचिदचित्त्वमकारणम् ॥ ६ ॥ स्वात्मनीशमनंतंतद्यथास्थितमवस्थितम् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदाभावतःसत्वभावयोः ॥ ७ ॥ असत्वात्तेनपरमेस्वच्छभावव्यवस्थता ॥ यदिकारणतापत्तियोग्यंशांतंपदंभवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसी हेतुसे अध्यस्त भुवनादि अधिष्ठान सच्चिन्मात्रही रहते जगत्के शरीरसे कहेजातेहैं इसलिये वि-ज्ञानवादीके मतके अनुसार केवल बौद्धपदार्थोंकी सत्ता गौत्तमकणादि आदिके मतमें बाह्य पृथिव्यादि पंचभूतोंकी सत्ता माध्यमिकके मत्तमें शून्यकी सत्ता जगद्रूप भान होती है यह कथन युक्त नहीं है ॥ ५ ॥ क्योंकि सब वादियोंके मत्तमें ज्ञानही मुख्य है यदि ज्ञान न होतो वस्तुका साक्षात्कार किसको हो इसलिये सब वस्तुओंमें चित् (ज्ञानमात्र) ऐसे सार है जैसे जलमें द्रवत्व और चित्का जो जड जगद्रूपसे भान होताहै वह शुक्तिके रजतके समान कारणरहित अर्थात् अनिर्वचनीय है ॥ ६ ॥ और सत्व तथा उसके विरुद्ध भावके प्रतियोगी और व्यवच्छेदके अभावसे अनन्त-चिन्मात्र परमात्मा अपने आत्मामें जगत्के आकारसे तथा चिन्मात्ररूपसे भान होनेमें समर्थ होकरभी वह जैसा है वैसाही चिन्मात्र अपने स्वरूपमें स्थितहै ॥ ७ ॥ चिद् विरुद्ध असत्व और अस्वच्छत्वके असत्य होनेसे चिन्मात्र परम पदकी स्वच्छभावना व्यवस्थित है और यदि अस्वच्छ जगद्रूपसे भान होनेसे शांतपद चिद्रूपको जगत्का कारण मानोगे ॥ ८ ॥

अनिंगितमनाभासमप्रतर्क्यंकथंभवेत् ॥ अतोनकारणंनैवबीजंब्रह्मकदाचन ॥ ९ ॥ कार्यस्यकस्यचिन्नामतेनसर्गोनविद्यते ॥ नचान्यथोपपत्तिर्हिसर्गस्यास्योपपद्यते ॥ १० ॥ चिन्मात्रकाद्दतेनस्माज्जडस

गोंनविद्यते ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचित्तच्चिद्घनमिवोत्थितम् ॥ ११ ॥ अहंभावजगशब्दशब्दार्थरसरंजनम् ॥ कार्यनकारणाभावात्पदार्थेषूपपद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—तो श्रुति स्मृति तथा विद्वानोंके अनुभवमें चेष्टा तथा स्फुरणारहित, और अप्रतर्क्य अविज्ञेयादि चिन्मात्रको कहाहै वह कैसे बनैगा, इसलिये ब्रह्म न किसी कार्यका कारणहै न बीजहै इसीकारणसे यह सृष्टिभी यथार्थमें है, क्योंकि चित्तमें अध्यासके सिवाय इस सृष्टिकी ओर कोई युक्ति नहीं है ॥ ९ ॥ १० ॥ हे साधो! चिन्मात्रको छोडकर यह जड सृष्टि कुछभी नहीं है और अहंभाव तथा जगत् शब्दार्थ जो यह देखपडताहै यह चिद्घन परमात्माही अहंता तथा जगत्रूपसे आविर्भूतके सदृश भान होताहै और यदृच्छावादीके मतके अनुसारकार आकस्मिक यह जगत् नहीं हैं क्योंकि कारणके विना पदार्थोंमें कोई कार्य नहीं होसकता ॥ ११ ॥ १२ ॥

द्वित्वैवाक्याद्यात्मकंव्योमपुष्पवत्स्वानुभूतितः ॥ वस्तुनाशैकनिष्ठत्वान्नवाज्ञमुपपद्यते ॥ १३ ॥ उपलंभकरोनाशोजन्मनस्तस्यवाकुतः ॥ अथचैनंसदासंतंनित्यंनष्टंचवेत्सिवा ॥ १४ ॥ पदार्थौघंतदेवेत्थमेकरूपेपिकिंव्यथा ॥ उपलंभस्तुयश्चायमेषाचित्तचमत्कृतिः ॥ १५ ॥ चित्तत्त्वमात्रसत्तास्तिद्वित्वमैक्यं चकास्त्यलम् ॥ अतःपदार्थसत्तायाअभावेसतिभूपते ॥ १६ ॥

अर्थ—और चित्तथा जड जगत्रूपसे सन्मात्र परमात्मा तो आकाश पुष्पके तुल्य भान होताहै और नश्वर स्वभाव होनेसे ज्ञानीके प्रति चिद्रूप यह जगत् नहीं भासता ॥ १३ ॥ यदि चिद्रूपकाही नाश कहो तो चित्के नाश वा जन्मका प्रकाशक कौन होगा क्योंकि चित्के नाश वा जन्मका अनुभव चित्के बिना किसको होगा, और यदि तुम श्रुति और विद्वानोंके अनुभव विरुद्ध इस चित्को नित्य उत्पन्न वा नष्ट मानतेहो तो एकरस चित्को सबका अधिष्ठान क्यों नहीं मानते ॥ १४ ॥ और यह संसारके अनेक पदार्थोंकी प्राप्ति जो होती है यह चित्की चमत्कृति है ॥ १५ ॥ हे राजन्! केवल चिन्मात्रकी सत्ताहै द्वित्व और ऐक्य सर्वथा नहीं है इसलिये यथार्थमें पदार्थोंकी सत्ताका अभाव है ॥ १६ ॥

असंभवाद्भावनस्यनाहंताभावनास्तिते ॥ अहंभावासंभवतश्चित्तमन्यत्किमुच्यते ॥ १७ ॥ इतिचित्तमहंरूपंनास्त्यतोनचभिन्नता ॥ निर्वासनःशांतमनामौनीपरनभोमयः ॥ १८ ॥ सदेहोवाविदेहोवाभावस्थोप्यचलोपमः ॥ संबंधाच्छुद्धचिद्दृष्टेःपदार्थाभावसिद्धितः ॥ १९ ॥ भावनाभावतश्चित्तेनास्त्येवाहमितिस्वयम् ॥ एवंब्रह्मेतिवेदार्थभावनादनुभूतितः ॥ चेतितथैकसत्यत्वाच्चिंतानामकविद्यते ॥ २० ॥ तेनासिनिर्मलमकारणमादिमुक्तंनद्ब्रह्मशाश्वतमशेषमनेकमेकम् ॥ शून्यंनिरामयमसत्सदनादिमध्यंसर्वंजगच्चिदपिब्रह्मयथास्थितंतत् ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजप्रबोधनंनामसप्तनवतितमःसर्गः ॥ ९७ ॥

अर्थ—और पदार्थोंके असंभवकी भावनासे तुमको अहंतादि कुछ नहीं है और पदार्थोंके असंभवसे चित्से भिन्न तुम किसको कहतेहो ॥ १७ ॥ इसलिये जीव ब्रह्मका भेद चिद्चित्का भेद, तथा दृश्य और अनुभवका भेद नहीं है इसकारणसे वासनारहित, शान्त मन, मौनी तथा चिदाकाशमय तुम आत्मामात्र शेषहो ॥ १८ ॥ शुद्धचित् दृष्टिके लाभसे, और जड पदार्थोंके अभाव सिद्ध होनेसे सदेहहो वा विदेहहो, और सब पदार्थोंमें स्थितहो वा उनसे भिन्नहो तुम अचलके सदृश शुद्ध आत्माहो ॥ १९ ॥ चित्तमें भावनाके अभावसे अहंभाव नहीं है और वेदार्थकी भावनासे तथा विद्वानोंके अनुभवसे सत्यज्ञान अनंत और आनंद स्वरूप ब्रह्महीं शेष है और चिंतनीय (ब्रह्म) ही सत्य है इस विज्ञानसे चिंताके बाधित होनेसे चिंता भी कहां है ॥ २० ॥ हे राजन्! इसकारणसे निर्मल, अकारण, सबका आदि, मुक्त, नित्य, अनेक रूप होकेभी एकरूप, शून्य, निरामय, असत् पदार्थोंका अधिष्ठान, और सर्व जगत्रूप होकेभी अविकृत जो श्रुति प्रतिपाद्य ब्रह्म है वह तुमहीहो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे शिखिध्वज प्रबोधनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

चित्त नहीं है इस बोधके दृढ करनेकेलिये विस्तारसे विषयकी असत्यतासे वही ब्रह्मसत्है इस विषयका वर्णन इस ९८ के सर्गमें किया गयाहै ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ चित्तंनास्तीतिमेबोधोयथायुक्त्यास्फुटंभवेत् ॥ तामन्यामथवाब्रूहिबुद्धंननिपुणंमया ॥ १ ॥ कुंभउवाच ॥ चित्तंनास्त्येवहेराजन्कदाचित्किंचनक्वचित् ॥ यच्चेदंचित्तवद्भातितद्ब्रह्माभिधमव्ययम् ॥ २ ॥ अतोऽज्ञानात्मकंयत्तज्जगदेवनविद्यते ॥ तत्राहंत्वंतदित्यादिकल्पिताःकलनाःकुतः ॥ ॥ ३ ॥ नास्त्येवजगदेवेदंयच्चेदंकिंचनोदितम् ॥ ब्रह्मैवास्तीहसकलंकेनतद्बुध्यतेकथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला—हे भगवन् ! चित्त नहीं है यह मेरा बोध जिस युक्तिसे दृढहो उस पूर्वोक्त युक्तिको वा अन्ययुक्तिको विस्तारसे मुझे कहिये क्योंकि मैंने चित्तका अभाव दृढतासे नहीं जाना ॥ १ ॥ कुंभ बोला—हे राजन् ! चित्त किसी देशकाल वा किस वस्तुरूपसे नहीं है जो कुछ यह चित्तके तुल्य भान होताहै वह अविनाशी ब्रह्महै ॥ २ ॥ जब ज्ञानसे अज्ञानरूप यह जगत्ही नहीं है तो तुम, हम, तथा वह इत्यादि कल्पित कल्पना कहांसे होसकती हैं ॥ ३ ॥ यह जगत् यथार्थमें नहीं है और जो कुछ यह उदितके समान भासताहै वह सब ब्रह्महीहै इस ज्ञानके पश्चात् किसको भान होसकताहै क्योंकि जिस दशामें सब ब्रह्मही भासताहै उस दशामें किसको कौन जान सकताहै ॥ ४ ॥

महाप्रलयसर्गादावेवेदंनोदितंजगत् ॥ निर्देशस्त्विदमित्यत्रत्वद्बोधायमयाकृतः ॥ ५ ॥ उपादानात्मकादीनांकारणानामभावतः ॥ अकारणंचभावानामशेषाणांत्वसंभवात् ॥ ६ ॥ एवमज्ञानबुद्ध्यात्मजगत्तस्मान्नविद्यते ॥ तस्माद्यदिदमाभातिभासनंब्रह्मनेतरत् ॥ ७ ॥ अनाख्येनाकृतौदेवेकरोतीदमितित्वसत् ॥ भाषितंनोपपत्त्यात्मनसत्यंनानुभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—और महाप्रलयके पश्चात् सृष्टिके आदिमें यथार्थमें यह नहीं उत्पन्न हुआहै और चित्तके समान यह जो भाव होताहै इत्यादि मेरा कथन तुमारे बोधके लिये है ॥ ५ ॥ और उपादान कारणोंके अभावसे तथा शेष (निमित्त कारणरूप) पदार्थोंके असंभवसे कारणरहित ॥ ६ ॥ अज्ञानरूपबुद्धि चित्तात्मक यह जगत् नहीं है इसलिये जो कुछ यह जगदाकार भासताहै वह ब्रह्महीहै अन्य नहीं ॥ ७ ॥ और नामरूप रहित परमात्माके विषयमें "एकोवशी सर्वभूतांतरात्मा एकं रूपं बहुधायःकरोति" (सबका स्वामी तथा सबका अन्तरात्मा परमात्मा एक बीजको अनेक करताहै) इत्यादि कथन मायाशबलित ईश्वरके विषयमें अर्थवाद मात्र है यथार्थमें युक्ति शून्य होनेसे "निष्कलं निष्क्रियम्" इस श्रुतिके प्रमाणसेभी सत्य नहीं है और विद्वानोंके अनुभवसेभी यह विरुद्ध है ॥ ८ ॥

अनाख्योप्रतिघःस्वात्मानिराकारोयईश्वर ॥ सकरोतिजगदितिहासायैववचोऽधियाम् ॥ ९ ॥ अनेनैवप्रयोगेणराजंश्चित्तंनविद्यते ॥ जगदेवनसत्साधोकुतश्चित्तादितद्गतम् ॥ १० ॥ चेतोहिवासनामात्रंवास्येतुसतिवासना ॥ वास्यंजगत्तदेवासदतचित्तास्तिताकुतः ॥ ११ ॥ यदिदंकचतिब्रह्मस्वयमात्मात्मनात्मनि ॥ कृतंतस्यैवतेनैवचित्तमित्यादिनामकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और यथार्थमें शीतवातादि द्वंद्व शून्य नामरूपरहित और निराकार जो ईश्वर है वह जगत्की रचना करताहै इत्यादि तात्पर्य शून्य अर्थवादके बचन केवल हास्यकेहीलिये हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इसीप्रकारसे चित्त नहीं है क्योंकि जब यथार्थमें जगत्की सृष्टि नहीं तो उसके अन्तर्गत चित्तादि कहां ॥ १० ॥ चित्त वासनारूपही है जब वासनाका कर्म (विषय) भूतजगत्ही नहीं है तो चित्तकी सत्ता कैसे होसकती है ॥ ११ ॥ और जो कुछ जगत् तथा चित्तादिरूपसे अनुभूत होताहै वह मायाशबलित ब्रह्मने अपने आत्मामें आपही चित्तादिनाम समूहको रचाहै ॥ १२ ॥

जगदृश्यमिदंवास्यंतदेवोत्पन्नमेवनो ॥ कारणाभावतःपूर्वमेवातश्चित्तताकुतः ॥ १३ ॥ अतश्चिद्व्योममात्रात्मपरमाकाशनामकम् ॥ स्फारंवेदनमेवेदंकचत्यस्तिकुतोजगत् ॥ १४ ॥ यत्किंचित्परमाकाशेईषत्कचकचायते ॥ चिदादर्शेनजातत्वान्नचित्तंनोजगत्क्रिया ॥ १५ ॥ अहंत्वंजगदित्येषाप्रतिपत्तिर्नवास्तवी ॥ मिथ्यास्वप्नइवाभातिनूनंमेऽशेषकारिणी ॥ १६ ॥

अर्थ—वासनाका विषय यह दृश्य जगत् नहीं उत्पन्न हुआ इसलिये कारणके अभावसे चित्तता कहां ॥ १३ ॥ इसलिये केवल चिदाकाशही जिसका दूसरा नाम परमाकाश (परब्रह्म) है वह विशालरूपसे अनुभूत होताहै और यह जगत् कहां है ॥ १४ ॥ और चित्स्वरूप दर्पणमें जो कुछ अनिर्वचनीयरूपसे किंचित् भान होताहै वह चिदाका-

शही है क्योंकि यथार्थमें न चित्त न यह जगत्की क्रिया उत्पन्नहुई ॥ १५ ॥ सब अनर्थोंका कारक हम, तुम, यह जगत् इत्यादि बोध यथार्थ नहीं है किंतु मुझ साक्षीको मिथ्या स्वप्नके तुल्य भान होरहाहै ॥ १६ ॥

वास्यस्यजगतोऽभावाद्यतोनास्त्येववासना ॥ अतस्तदात्मकंचित्तंकीदृशंककुतःकथम् ॥ १७ ॥ अप्रबुद्धैरवगतंचित्तंदृश्यमिदंजगत् ॥ असच्चित्तंनिराकारंपूर्वमुत्पन्नमेवनो ॥ १८ ॥ नोत्पन्नंकारणाभावात्सर्गादावेवसर्वदा ॥ लोकशास्त्रानुभवतोनचदृश्यस्यवस्तुनः ॥ १९ ॥ अनादित्वमजत्वंवास्थैर्यंवाप्युपपद्यते ॥ साकारस्यास्यजगतःस्थलस्यप्रतिघाकृतेः ॥ २० ॥

अर्थ—वासनाके विषयभूत जगत्के अभावसे वासना नहीं है इसलिये वासनारूप चित्त कैसा, कहां और कैसे होसकताहै ॥ १७ ॥ और मूर्खजनोंने चित्त और जगत् दृश्य इत्यादिरूपसे जिसको जानाहै वह असत् तथा निराकार चित्त प्रथमही नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ और कारणके अभावसे सृष्टिकी आदिमें सदा यथार्थमें यह जगत् नहीं उत्पन्न हुआ और लोकशास्त्र तथा अनुभवसे दृश्य जगत्रूप वस्तुको ॥ १९ ॥ जो साकार, स्थूल और प्रतिघातके योग्य आकारवान् है उसको अनादि, अजन्मा वा स्थिर कहना यहभी युक्त नहीं है ॥ २० ॥

समस्तकारणाभावाल्लोकशास्त्रानुभूतिभिः ॥ युज्यंतेचनिराकर्तुंनमहाप्रलयादयः ॥ २१ ॥ शास्त्रानुभववेदार्थसिद्धांतैस्तेत्रयोपिवा ॥ प्रलयाश्वनसंतीतिवक्त्युन्मत्तकएवच ॥ २२ ॥ लोकःशास्त्राणिवेदाश्व प्रमाणंयस्यनोमतेः ॥ असद्भ्योह्यतिमूढःसंसज्जनस्तंनसंश्रयेत् ॥ २३ ॥ नचसप्रतिघस्यास्यदृश्यस्याप्रतिघंकचित् ॥ कारणंभवितुंशक्तंसाकारस्यनिराकृति ॥ २४ ॥

अर्थ—और सबकारणोंके अभावसे लोकशास्त्र तथा अनुभवके द्वारा महाप्रलय आदिकाभी सर्वथा निराकरण नहीं करसकते ॥ २१ ॥ क्योंकि शास्त्र अनुभव और वेदार्थोंके सिद्धान्तोंसे प्रलय नहीं होती वा लोक वेद तथा अनुभव ये तीनों नहीं हैं ऐसा जो कहताहै वह भी उन्मत्तही है ॥ २२ ॥ और जिस बुद्धिमें लोकशास्त्र तथा वेदप्रमाण नहीं है वह लोकप्रमाण चार्वाकोंसेभी अति नीच है और सज्जन मनुष्यको उसका आश्रय न करना चाहिये ॥ २३ ॥ और साकार तथा प्रतिघातके योग्य इस दृश्यजगत्का कारण निराकार ब्रह्मकार भी नहीं होसकता ॥ २४ ॥

इत्थमालक्ष्यमाणंतत्तदेवंसततंमुने ॥ नचनार्थक्रियाकारिभवेन्नेत्थमिदंजगत् ॥ २५ ॥ तस्मादिदंनिरंशस्यचिद्व्योम्नोप्रतिघाकृते ॥ निराकृतेरनंतस्यपूर्वातपूर्वनिरंशतः ॥ २६ ॥ ब्रह्मणःसर्वरूपस्यशांतस्यात्तस्ययत्समम् ॥ स्वतएवात्मकचनंसर्गप्रलयरूपधृक् ॥ २७ ॥ स्वकंवपुश्वतेनैवज्ञातंजगदिवक्षणात्॥ क्षणांतरानुबुद्धंसद्ब्रह्मैवास्तेनिरात्मनि ॥ २८ ॥ ब्रह्मैवेदमतःसर्वंकचिन्नजगदादिधीः ॥ क्वचित्तादिक्वचित्तादिक्वद्वैतैक्यादिकल्पना ॥ २९ ॥ सर्वंनिरालंबमजंप्रशांतमनादिरित्यात्मयथास्थितंसत् ॥ इदंतुनानेवनचाप्यनानायथास्थितंतिष्ठसुकाष्ठमौनम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजावबोधनं नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे मुने! इसप्रकार परमार्थमें ब्रह्मदृष्टिसे अलक्ष्यमाण यह जगत् व्यवहारदृष्टिसे इसकी साकारता होनेसे अर्थक्रियामें यह समर्थ होताहै ॥ २५ ॥ इसलिये अंशशून्य चिदाकाश, प्रतिघातके योग्य आकारसे शून्य, निराकार अनन्त सबसे पूर्वभागरहित ॥ २६ ॥ पूर्णस्वभाव, शांत, तथा सर्वत्र वर्तमान उसका निजशरीरही सृष्टि तथा प्रलयादिरूप धारण करताहै ॥ २७ ॥ और आत्माका शरीर अज्ञानदशामें क्षणभरकेलिये जगत्रूपसे भासताहै और दूसरे क्षणमें "तत्वमसि" इत्यादि वाक्योंसे ज्ञान होनेसे ब्रह्मरूपही भासताहै ॥ २८ ॥ इसलिये शास्त्रीयज्ञान होनेसे यह सब ब्रह्महो है जगत् आदिकी बुद्धि कहां? कहां चित्त आदि? कहां अचित्तादि और कहां द्वैत अद्वैतादिकी कल्पना? ॥ २९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार ज्ञान होनेसे यह सम्पूर्ण जगत् शान्तरूप होकर निराधार तथा अजन्मा यथास्थित ब्रह्महो है और अज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह जगत् अत्यन्त असत् होनेसे नाना तथा अनानारूप है इसलिये तुम व्यवहारदृष्टिसे यथाप्राप्त व्यवहार करो और तत्वदृष्टिसे काष्ठवत् मौन होकर स्थितरहो ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे शिखिध्वजावबोधनं नामाष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

इस ९९ के सर्गमें ज्ञानप्राप्त भी राजाको स्थूणाखनन न्यायसे बोधकी दृढताकेलिये पुनः बोध कुंभने कराया.

शिखिध्वजउवाच ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादान्महामुने ॥ स्थितोस्मिगतसंदेहोविश्रांतमतिरात्मवान् ॥१॥ ज्ञातज्ञेयोमहामौनीतीर्णमायामहार्णवः ॥ शांतोहमनहंरूपोज्ञःस्थितोस्मिनिरामयः ॥२॥ अहोनुसुचिरंकालंप्रभ्रांतोहंभवांबुधौ ॥ स्थानमक्षयमक्षुब्धमधुनाप्राप्तवानहम् ॥ ३ ॥ एवंस्थितेमुनेनास्तिसाहंतादिजगत्रयम् ॥ मूर्खबुद्धमिदंभातियत्तद्ब्रह्मेतिवेद्म्यहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला कि–हे महामुने ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्टहुआ, और आत्मस्वरूपका स्मरणहुआ अब संदेहरहित आत्मामें विश्रांत होकें स्थितहुं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! मैने ज्ञेय पदार्थ जानलिया, और मायारूप महासमुद्रको पार किया तथा अब मैं शान्त, अहंकार शून्य, आत्मज्ञान संपन्न, तथा विकाररहित स्थितहुं ॥ २ ॥ अहो ! अति दीर्घ कालतक संसाररूप समुद्रमें मैने भ्रमण किया, इससमय शोकरहित अक्षयस्थानमें प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ हे मुने ! मूर्खोंसे ज्ञात अहंकारसहित यह त्रिलोक नहीं है और जो कुछ भान होताहै उसको मैं ब्रह्महो जानताहुं ॥ ४ ॥

कुंभउवाच ॥ जगदेवनयत्रास्तेतत्राहंत्वंविभासनम् ॥ इत्थमंबरसंसारःक्कुतःकीदृशःकथम् ॥ ५ ॥ यथास्थितव्यवहृतिर्मौनीशांतमनामुनिः ॥ सौम्यार्णवोदरावर्तपरिस्पंदवदास्वभो ॥ ६ ॥ ब्रह्मरूपमिदंशांतमित्थमस्तियथास्थितम् ॥ अहंजगदिदंचेतिशब्दार्थात्मनभोमयम् ॥ ७ ॥ इदमाद्यंतरहितंसर्वसंसारनामकम् ॥ चिच्चमत्कृतिनामात्मनभःकचकचायते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जिसप्रकार आप कहते हैं यह सत्य है जब यह जगत्ही नहीं है तो अहंताका भान कैसे होसकताहै, इसीप्रकार गंधर्व नगरके व्यवहारके सदृश यह जगत् कहां किस निमित्तसे और कैसे सत्य होसकताहै ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुम यथाप्राप्त व्यवहार करतेहुये, शांतमन, होके शांत समुद्रमें शांत आवर्तके समान स्थित रहो ॥ ६ ॥ यह सब यथास्थित ब्रह्मस्वरूपही है और अहं जगत् तथा यह इत्यादि शब्दार्थ स्वरूप आकाशरूपही है ॥ ७ ॥ यह सब संसारआदि अंतरहित चेतनका चमत्कार चिदाकाश मात्रही अपने चाकचिक्यसे दीपित होरहाहै ॥ ८ ॥

सन्निवेशदृशःशांतौतदस्तिकनकंयथा ॥ जगदाद्यर्थसंशांतौब्रह्मेदंविद्यतेतथा ॥ ९ ॥ यथास्वयंभूःसंकल्पःस्वयंनामतथैवहि ॥ एतौस्ववेदनायत्तौबंधमोक्षौव्यवस्थितौ ॥ १० ॥ अहमित्येवसंकल्पोबंधायातिविनाशिने ॥ नाहमित्येवसंकल्पोमोक्षायविमलात्मने ॥ ११ ॥ यद्बंधमोक्षसंकल्पशब्दार्थानांसदासताम् ॥ स्वरूपवेदनंतत्स्यात्केवलत्वंचकथ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे कटक कुंडलादि आभूषणोंकी रचनाके आकारके नष्ट होनेपर केवल सुवर्णमात्र शेष रहताहै ऐसेही जगत्के नामरूप शांत होनेपर यह सब ब्रह्ममात्रही है ॥ ९ ॥ जैसे समष्टिके अहंकारमात्र ब्रह्मा संकल्परूपही हैं ऐसेही व्यष्टिके अहंकारमात्रके संकल्पसे बंध और उसके परित्यागसे मोक्ष व्यवस्थितहै ॥ १० ॥ देहादि संघात मैंहुं ऐसा संकल्पही सब नाशकारी बंधकेलिये होताहै और देहादि मैं नहीं हुं ऐसा संकल्पही निर्मल मोक्षके लिये होताहै ॥ ११ ॥ हे साधो ! सदा पर्य्यायसे विद्यमान बंधमोक्ष तथा संकल्पादि शब्दार्थोंका साक्षीभूत जो आत्मा है उसके स्वरूपका साक्षात्कार ज्ञानही सद् ब्रह्मकैवल्य वा मोक्ष कहलाताहै ॥ १२ ॥

अनहंवेदनंसिद्धिरहंवेदनमापदः ॥ सोहमेवानहमितिशुद्धबोधोभवात्मवान् ॥ १३ ॥ असंकल्पनमात्रेणसम्यग्ज्ञानोदयात्मना ॥ संकल्पःक्षीयतेसिद्धयैस्वयमेवासदात्मकः ॥ १४ ॥ अप्रतर्क्यस्वरूपेहिनास्तिकारणताशिवे ॥ कारणाभावतःकार्यपदार्थोपिनविद्यते ॥ १५ ॥ पदार्थाभावसंसिद्धौवेदनंनोपपद्यते ॥ कारणाभावतोनित्यमहंभावस्यनोदयः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राजन् ! अहंकारके ज्ञानका अभावही मोक्षहै और उसका ज्ञानही बंधरूप आपत्ति है इसलिये तुम अहंकारको त्यागकर शुद्ध बोधयुक्त होजाओ ॥ १३ ॥ सम्यग् ज्ञानका उदयकारक संकल्पके त्यागमात्रसेही मोक्षसिद्धि असद्रूपसंकल्प आपही नष्ट होताहै ॥ १४ ॥ अप्रतर्क्य स्वरूप परमात्मामें कारणता नहीं बनसकती और कारणके अभावसे कार्य पदार्थभी नहीं है और पदार्थोंके अभावसे उनका ज्ञानभी नहीं सिद्ध होसकता, कारणके अभावसे अहंभावका भी उदय नहीं होसकता ॥ १५ ॥ १६ ॥

अहंभावानुदयतःसंसारःकस्यकीदृशः ॥ संसाराभावतःसर्वंपरमेवावशिष्यते ॥ १७ ॥ यदिदंभासते तत्सत्परमेवात्मनिस्थितम् ॥ परंपरेपरापूर्णसममेवविजृंभते ॥ १८ ॥ तेननिस्तिमितंसर्वंशिलाकीर्णमि

वाचलम् ॥ विद्धिरश्मिमयाकारमिवब्रह्मजगत्स्थितम् ॥ १९ ॥ पुरःसंकल्पकेनष्टेसंकल्पनगरस्ययत् ॥ रूपंतद्विद्धिजगतःखादच्छंसदसन्मयम् ॥ २० ॥

अर्थ—और अहंभावके न उदय होनेसे यह संसार कैसे और किसको होसकताहै, और संसारके अभावसे सब केवल परब्रह्ममात्र शेष रहजाताहै ॥ १७ ॥ हे राजन् ! ज्ञानके पूर्व यह जगदाकारसे भासताहै वह परब्रह्मही अपने आत्मामें स्थितहै ज्ञानसे केवल अपने स्वभावमें परमात्मासे पूर्ण परमात्माही प्रकट होताहै ॥ १८ ॥ इस हेतुसे वज्रशिलाके उदरके समान निश्चल सब स्थितहै और परमात्मामें स्थित जगत्को वज्रमणिकी किरणसमूहके तुल्य तुम समझो ॥ १९ ॥ संकल्पके नष्ट होनेसे संकल्पके नगरका जो स्वरूप होताहै वही आकाशसेभी स्वच्छ सदसन्मय इस जगत्का स्वरूप है ॥ २० ॥

छायापुरुषवत्स्पंदिशांतंनिर्मननंजगत् ॥ जगच्छब्दार्थरहितंयःपश्यतिसपश्यति ॥ २१ ॥ रूपालोकमनस्कारानीरसागमभावना ॥ सम्यग्ज्ञानावबोधस्यनिर्वाणंवैविदुर्बुधाः ॥ २२ ॥ यथास्तिवातोनिःस्पंदो यथास्तिखगतोपिवा ॥ यथाहेमासन्निवेशमस्तिब्रह्मजगत्तथा ॥ २३ ॥ नीरसाअसदाभासाजगत्प्रत्ययकारिणः ॥ रूपालोकमनस्काराःसंतीमेब्रह्मरूपिणः ॥ २४ ॥

अर्थ—वज्रशिलामें प्रतिबिंबित स्पंदमात्र, शांत मननरहित और शब्दार्थसे रहित इस जगत्को जो देखताहै वही देखताहै ॥ २१ ॥ हे राजन्! सम्यग् ज्ञानके उदयसे बाह्यरूपा लोक तथा आंतरिक मनकी कल्पना सब निःसार भान होने लगती हैं इसीको पंडितजन निर्वाण मोक्ष कहतेहैं ॥ २२ ॥ जैसे गतिरहित वायु, दीपादि आकारके बिना आकाशका प्रकाश, और कटकादि आकारसे विनिर्मुक्त सुवर्ण है ऐसेही आकारके बिना जगत्भी ब्रह्मही है ॥ २३ ॥ सारता शून्य, असत् होकेभी भासमान जगत्का विश्वास करानेवाले ये सब रूप प्रकाशादि ब्रह्मके रूपही हैं ॥ २४ ॥

ऊर्मिशब्दार्थरहितंयादृगंबुबह्वन्यपि ॥ सर्वशब्दार्थरहितंतादृग्ब्रह्मनिसर्गवत् ॥ २५ ॥ सर्गएवपरंब्रह्म परंब्रह्मैवसर्गदृक् ॥ सर्गशब्दार्थरहितोवाक्यार्थस्त्वेषशाश्वतः ॥ २६ ॥ ब्रह्मशब्दार्थसंपत्तौसर्वशब्दार्थधीःकृता ॥ सर्गशब्दार्थसंसिद्धौब्रह्मशब्दार्थधीःकृता ॥ २७ ॥ समस्तशब्दशब्दार्थभावनाभावनोदयम् ॥ शुद्धंतिष्ठतिचिद्व्योमब्रह्मशब्देनकथ्यते ॥ २८ ॥ सम्यग्दर्शनसंसिद्धावुभयोरत्त्यवेदने ॥ यच्छिष्टमजरंशांतंततोवाग्विनिवर्त्तते ॥ २९ ॥ सशांतसर्वात्मकवेदनौघमस्तीदमेकात्मकस्वस्वरूपम् ॥ यथास्थितंसर्वजगत्स्वरूपंपाषाणरूपंचपरंब्रह्मरूपम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजावबोधनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें अनेक भी तरंगके शब्द तथा अर्थसे रहित केवल जलमात्रही हैं ऐसेही सृष्टिके शब्दार्थसे रहित अनेक सृष्टि ब्रह्मरूपही हैं ॥ २५ ॥ सृष्टिके शब्द तथा अर्थसे रहित यह सृष्टिही ब्रह्म है और ब्रह्मही सृष्टि है यही "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (सब यह ब्रह्मही है) इस श्रुतिका नित्य वाक्यार्थ है ॥ २६ ॥ अन्नपानादिद्वारा सबको बढानेवाला इस ब्रह्म शब्दके अर्थ ज्ञान होनेसे लोकमें सर्ग (सृष्टि) शब्द तथा अर्थकी बुद्धि की गई है इसीप्रकार सर्ग (अर्थात् नामरूपके त्याग) शब्दार्थके सिद्ध होनेसे ब्रह्मशब्दार्थकी बुद्धिकृत है अर्थात् दोनोंका एकही अर्थ है ॥ २७ ॥ संपूर्ण शब्दोंके अर्थ, उनकी भावना, और भावनाका उदय इत्यादि सर्वरूपसे शुद्ध चिदाकाश जो स्थित है वह ब्रह्मशब्दसे कहाजाताहै ॥ २८ ॥ सम्यग्दर्शन सिद्ध होनेपर जगत् शब्द तथा ब्रह्मशब्द वाच्यार्थके निवृत्त होनेसे लक्षणवृत्तिसे जो शिष्ट अजर अमर और शान्त आत्मा है उससे वाणी निवृत्त होजाती है ॥ २९ ॥ हे राजन्! जो कुछ यह यथास्थित जगत् है वह अति दृढ होनेसे वज्र पाषाणरूप ब्रह्मही है; और जब अज्ञानसे संपूर्ण आत्मज्ञान शान्त है उससमय भी एकात्मक ब्रह्मही है ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे शिखिध्वजावबोधो नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

ब्रह्मके सदृश जगत्की सत्ताका ब्रह्मकी सत्तासे निवारण, और जन्मादि विकारसे अस्पृष्ट ब्रह्मही सर्वहै इस विषयका वर्णन इस १०० के सर्गमें कियाहै ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ एवंचेत्तन्महाबुद्धेयादृशंकारणंपरम् ॥ कार्यंतादृशमेवेदंजगदित्येववेद्म्यहम् ॥ १॥ ॥ कुंभउवाच ॥ यत्रकारणतातस्यकार्यतद्रुपपद्यते ॥ यन्नकारणमेवादौतस्मात्कार्यंकुतोभवेत् ॥ २ ॥ नेहास्तिकारणंकिंचिन्नचकार्यंकदाचन ॥ विद्यमानमिदंसर्वंसर्वंशांतमजंजगत् ॥ ३ ॥ जायतेकारणात्कार्ययत्तत्कारणवद्भवेत् ॥ यन्नजायतएवेहतस्मिन्सदृशताकुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—राजा शिखिध्वज बोला कि—हे महाबुद्धे! यदि ब्रह्म तथा जगत्की एकही सत्ताहै तो जैसा परब्रह्म कारण है वैसाही जगत्रूप कार्यभी यह मैं जानताहुं ॥ १ ॥ कुंभ बोला—हे राजन्! जिस मायाशबलित ब्रह्ममें जगत्की कारणता है उसीमें कार्य होसकताहै और निर्गुण शुद्ध ब्रह्ममें कारणताही नहीं है उसमें कार्य कैसे होसकताहै॥२॥ हे राजन्! निर्विशेष ब्रह्ममें न तो मायाशबलित ब्रह्म कारण न उसका कार्य जगत् है क्योंकि माया दृष्टिसेही यह कार्य कारण भावका स्वीकार है यथार्थमें तो यह सब विद्यमान जगत् शांत अज ब्रह्मरूपही है ॥ ३ ॥ जो कारणसे कार्य उत्पन्न होताहै वह कारणके तुल्य होताहै और जो उत्पन्नही नहीं हुआ वहां सादृश्यभाव कहां ॥ ४ ॥

बीजमेवनयस्यास्तितत्कथंवदजायते ॥ अप्रतर्क्यमनाख्यंचयत्तस्यक्वेबीजता ॥ ५ ॥ देशकालवशात्सर्वेहेतुमंतःप्रमाणगाः ॥ अकर्तृब्रह्मविषयःप्रमाकारणयोःकथम् ॥ ६ ॥ अकर्तृकर्मकरणेनास्तिकारणताशिवे ॥ तस्मात्तत्कारणंनास्तिजगच्छब्दार्थवेदनम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मैवत्वंस्वरूपंसद्यत्स्थितंधारयस्वतत् ॥ असम्यग्दर्शिविषयंतदेवजगदाचितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसका बीजही नहीं है कहो वह कैसे उत्पन्न होसकताहै अतर्क्य तथा नामरूप रहितमें बीजता कहां ॥ ५ ॥ देशकाल तथा वस्तुके वशसे सब कारण प्रमाण सिद्ध होते हैं और अकर्ता ब्रह्म प्रमाण तथा कारणका विषय कैसे होसकताहै ॥ ६ ॥ कर्ता कर्म और करण शून्य परब्रह्ममें कारणता नहीं है इसलिये जगत् शब्दार्थके अनुभवमें कारण नहीं हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! शुद्ध आकाशके समान निर्विशेष जो वस्तु है वही तुमहो ऐसा हृदयमें तुम धारण करो और अज्ञानियोंकी दृष्टिमें वही ब्रह्म जगत्रूपसे व्याप्तहै ॥ ८ ॥

चिन्मात्रमजरंशांतंयदेकंतत्प्रमीयते ॥ तेनैवायंजगद्ब्रह्मसच्छांतंबुद्ध्यतेवपुः ॥ ९ ॥ अन्यथैवचयोभावश्चेतसःपृथिवीपते ॥ सएवनाशःकथितःस्वानुभूतश्चपंडितैः ॥ १० ॥ चित्तंनाशस्वभावंतद्विद्धिनाशात्मकंनृप ॥ क्षणनाशोयतःकल्पश्चित्तशब्देनकथ्यते ॥ ११ ॥ असंकल्पनमात्रेणसम्यग्ज्ञानोदयात्मना ॥ संकल्पःक्षीयतेसिद्ध्यैस्वयमेवासदात्मकः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! चिन्मात्रप्रमासे यह जगत् ब्रह्मभावसे प्रमाणित कियाजाताहै और ब्रह्म ब्रह्माकारवृत्तिसे शून्य मनकी भ्रांतिसे जगत्रूपसे निश्चित होताहै ॥ ९ ॥ हे राजन् ! चित्तके अन्यथाभावकोही पंडितोंने अनुभवसे ब्रह्मरूपकी हानि कही है ॥ १०॥ हे राजन् ! चित्तको तुम नाश स्वभाव समझो और क्षणभरकेलियेभी आत्मस्वरूपका विस्मरण कल्पकालपर्यन्त चित्तशब्दसे कहाजाताहै ॥ ११ ॥ सम्यग्ज्ञानका उदयकारक असंकल्पमात्रसे असत् संकल्परूप चित्त मोक्षसिद्धिकेलिये होजाताहै ॥ १२ ॥

नाम्नैवांगीकृताभावंयदिविश्वंहिकथ्यते ॥ विद्यमानंकथंतत्स्यान्नुतामरसेक्षण ॥ १३ ॥ हस्तावुत्क्षिप्ययोब्रूतेशूद्रोस्मीतिभृशंगिरा ॥ कथंसविप्रोभवतिविप्रत्वंतस्यकीदृशम् ॥ १४ ॥ विवृत्तधातुरत्युच्चैर्मृतोस्मीतिविरौतियः ॥ मृतिमेवागतंविद्धिजीवनंतस्यसंभ्रमः ॥ १५ ॥ भ्रमाकृतियदस्तीहदृश्यतेऽलातचक्रवत् ॥ मृगतृष्णाद्विचंद्रादिबालवेतालकादिवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र राजन्! अपने अधिष्ठान ब्रह्ममें प्रवेश करनेवाला यह विश्व शब्दका अर्थ है सो यदि अपने नामहीसे यह विश्व अपना अभाव स्वीकार करताहै तब यह विद्यमान कैसे होसकताहै ॥ १३ ॥ हे राजन्! दोनों हाथ उठाके बार २ जो यह कहताहै कि मैं शूद्रहुं वह ब्राह्मण कैसे होसकताहै और उसका ब्राह्मणत्वभी कैसा ॥१४॥ हे राजन्! संनिपातादिसे कुपित धातुवाला पुरुष बार २ उच्च स्वरसे यह चिल्लाताहै कि मैं मरा उसको तुम मराही जानो और उसका जीवन केवल भ्रममात्र है ॥ १५ ॥ और अलातचक्रके समान जो भ्रमाकार जगत् चित्तादि भान होताहै वह सब मृगतृष्णाके जल, दो चंद्रकी भ्रांति और बालक कल्पित वेतालादिके सदृशहै ॥ १६ ॥

तत्कथंकिलनामस्यात्सत्यंभ्रमभरात्मकम् ॥ अज्ञानभ्रांतिरेवांतश्चित्तमित्येवकथ्यते ॥ १७ अज्ञानमुच्यतेचित्तमसत्सदिवसंस्थितम् ॥ असंवेदनमज्ञानंज्ञानंसंवेदनंभवेत् ॥ १८ ॥ अज्ञानसत्वसंवित्तेर्ज्ञानात्संवेदनात्क्षयः ॥ जलज्ञानंमुधाभ्रांतिःसाधोमरुमरीचिषु ॥ १९ ॥ नैतज्जलमितिज्ञानात्संवित्तिःप्रविलीयते ॥ इदंचित्तमितिप्रौढंयदज्ञानमलंहृदि ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजन्! जो सर्वथा भ्रम पुंजही है वह सत्य कैसे होसकताहै अज्ञानजनित भ्रमही अंतःकरण तथा चित्तादि शब्दोंसे कहा जाताहै ॥ १७ ॥ सत्के समान स्थित असत् अज्ञानकोही चित्त शब्दसे कहते हैं, और ब्रह्मका अनुभव वह ज्ञान कहाजाताहै और उसका अभाव अज्ञान कहाजाताहै ॥ १८ ॥ हे साधो! अज्ञानकी सत्ताके अनुभवका ज्ञानके अनुभवमात्रसे नाश होजाताहै क्योंकि मृगतृष्णामें जलका ज्ञान व्यर्थ भ्रांति है ॥ १९ ॥ जैसे जल नहीं है इस ज्ञानसे मृगतृष्णाके जलका भ्रम नष्ट होजाताहै इसीप्रकार यह चित्त है यह हृदयका दृढ अज्ञानरूप मल ॥ २० ॥

नास्तिचित्तमितिज्ञानात्तत्समूलंविनश्यति ॥ यथारज्ज्वां भुजंगत्वमज्ञानभ्रमसंभवम् ॥ २१ ॥ नसर्पोयमितिज्ञानाद्धृदिरूढात्प्रणश्यति ॥ तथात्मनिमनोभूतमज्ञानभ्रमसंभवम् ॥ २२ ॥ चित्तंनास्तीतिविज्ञानाद्धृदिरूढाद्विनश्यति ॥ चित्तंमनोहमित्यंतर्यावदज्ञानसंभवम् ॥ २३ ॥ नचित्तमस्तिनोचैवमहंकारादिसंयुतम् ॥ किंचिदेवजगत्यस्मिन्संविदेकांतनिर्मलः ॥ २४ ॥

अर्थ—यह सर्प नहीं है इस हृदयके दृढज्ञानसे नष्ट होजाताहै ऐसेही आत्मामें भ्रमसे उत्पन्न मन वा चित्तरूप अज्ञान ॥ २२ ॥ चित्त नहीं है इस हृदयमें आरूढ दृढज्ञानसे नष्ट होजाताहै चित्त, मन, अहंकार इत्यादि अज्ञानसे उत्पन्न पदार्थ ॥ २३ ॥ इस जगत्में अहंकारादि संयुक्त चित्त वा मन कुछभी नहीं है किंतु शुद्ध केवल एक ब्रह्म संवित् मात्रहै ॥ २४ ॥

तयासंकल्पचित्तादिकृतमासीद्विमूढया ॥ अद्यासंकल्पतःसर्वंपरित्यक्तंप्रबुद्धया ॥ २५ ॥ संकल्पेनयदायातित्वसंकल्पेनगच्छति ॥ पवनेनमहाबाहोज्वालाजालमिवानले ॥ २६ ॥ आत्मतत्त्वैकघनयाततयाब्रह्मसत्तया ॥ जगत्सर्वमितिव्याप्तंसमुद्रइववारिणा ॥ २७ ॥ नाहमस्मिनचान्योस्तिनत्वंनैतेनचित्तकम् ॥ नेंद्रियाणिनचाकाशमात्मात्वेकोस्तिनिर्मलः ॥ २८ ॥

अर्थ—अज्ञानयुक्त चिन्मात्र संवित्ने संकल्प चित्तादिका निर्माण कियाहै परंतु इससमय ज्ञानयुक्त संवित्ने संकल्पके अभावसे सबकुछ त्याग दियाहै ॥ २५ ॥ हे महाबाहो ! जैसे पवनसे ज्वालाका समूह अग्निमें उत्पन्न होताहै और उसके अभावमें नष्ट होताहै ऐसेही संकल्पसे जो आताहै वह उसके अभावसे नष्ट होताहै ॥ २६ ॥ आत्मतत्त्वसे घनीभूत उस ब्रह्मसत्तासे जगत् ऐसे व्याप्तहै जैसे जलसे समुद्र ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इससंसारमें न हमहै, न अन्यहै, न तुमहो, न चित्तहै, न इंद्रियां हैं और न आकाशहै किंतु केवल एक निर्मल आत्मामात्रहै ॥ २८ ॥

घटाद्याकाररूपेणसएवायंविलोक्यते ॥ इदंचित्तमयंचाहमितिकैवकुकल्पना ॥ २९ ॥ नजायतेनम्रियतेकिंचिदस्मिञ्जगत्त्रये ॥ केवलोयंचिदुल्लासःसदसद्भावनात्मना ॥ ३० ॥ सर्वमात्मापरंब्रह्मसकृत्प्रकटमाततम् ॥ द्वित्वैकत्वेनविद्येतेनभ्रांतिर्नचसंभ्रमः ॥ ३१ ॥ सर्वेंद्रियगणाकारेसन्नेवासिसखेततः ॥ नदह्यसेमहाबुद्धेनचक्कचनलिप्यसे ॥ ३२ ॥

अर्थ—वह आत्मा घटादि आकाररूपसे दृष्ट होताहै यह चित्तहै यह मैंहुं इत्यादि क्या कुकल्पनाहै ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस त्रैलोक्यमें न कुछ मरताहै न जन्मताहै किंतु सदसत् भावनारूप यह केवल चित्का विलासमात्रहै ॥ ३० ॥ एककालमें यह सर्वरूपसे परब्रह्मआत्माही प्रकट हुआहै और द्वित्व एकत्व भ्रम तथा मृत्यु आदिका भ्रम कुछभी नहीं है ॥ ३१ ॥ हे महाबुद्धे ! तुम सम्पूर्ण इंद्रिय समूहमें तथा इंद्रियोंके ग्राह्य अग्नि आदिके आकारमें सत्तामात्रसे व्याप्तहो इसलिये तुम न दग्ध होसकते हो और न किसीमें लिप्तहो सकतेहो ॥ ३२ ॥

नतेविनश्यतिसखेनचकिंचिद्विवर्धते ॥ निर्मलाकाशरूपस्यकैवल्यानंतरूपिणः ॥ ३३ ॥ इच्छानिच्छात्मिकेशक्तीयेतरापित्वमेवच ॥ नह्यंशुव्यतिरेकेणशशांकउपलभ्यते ॥ ३४ ॥ अजमजरमनाद्यजस्वभावं सकृदमलंविलसत्सदैकरूपम् ॥ विगलितकलनंकलाख्यलीलंसदुदितमाद्यमजंतदात्मतत्त्वम् ॥३५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजपरमावबोधनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

अर्थ—हे सखे ! आपके निर्मल तथा कैवल्य आकारका न कुछ नष्ट होताहै और न बढताहै ॥ ३३ ॥ हे प्रिय ! इच्छा अनिच्छा तथा और क्रियादि शक्तिभी तुमही हो क्योंकि किरणसे भिन्न चन्द्रमाका कुछभी उपलब्ध नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! अजन्मा, अजर अनादि, वृद्धि परिणामादि विकार शून्य, सदा निर्मल तथा प्रकाश-

रूप, कल्पनारहित, अपने स्वरूपके परिचयकेलिये लीलाधारी होके सन्मात्रसे उदित और सर्व व्यवहारोंमें पूर्वसिद्ध जो आत्मवस्तुहै वही सर्वत्र व्याप्तहै ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे शिखिध्वज परमावबोधनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

ज्ञानकी दृढतासे राजाकी कृतकृत्यता और जीवन्मुक्तिमें अचित्तता और तत्वकी स्थिति इस १०१ के सर्गमें वर्णित कीया गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिकुंभवचोराजा भावयंस्तदकृत्रिमम् ॥ स्वयमात्मपदेतस्मिन्क्षणंपरिणतो भवत् ॥ १॥ बभूवामीलितमनोलोचनःशांतवाङ्मुनिः॥शिलातलादिवोत्कीर्णोनिस्पंदावयवाकृतिः॥२॥ ततोमुहूर्तमात्रेणप्रबुद्धंस्फुरितेक्षणम् ॥ तमुवाचमहाबाहोचूडालाकुंभरूपिणी ॥ ३ ॥ कुंभउवाच ॥ कच्चिदस्मिन्पदेस्फारेशुद्धेविततनिर्मले ॥ सुतल्पेनिर्विकल्पानांसुखंविश्रांतवानसि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार राजा शिखिध्वज कुंभके उस अकृत्रिम वचनको विचारते हुये क्षणमेंही स्वयं अपनी नानावस्थाको त्यागकर शुद्धआत्मपदमें परिणत हुआ ॥ १ ॥ मन तथा नेत्रके व्यापारसे रहित, और वाणीके व्यापारसे शून्य वह मुनिराज ऐसे चेष्टारहित होगया जैसे पाषाणतलमें खुदी हुई प्रतिमा ॥ २ ॥ उसके पश्चात् दोघडीमें विकसित नेत्र प्रबुद्ध उस राजासे कुंभरूपधारिणी चूडाला बोली ॥ ३ ॥ कि हे राजन् ! महान् शुद्ध व्यापक निर्मल, और योगियोंके उत्तम शय्याके समान निरतिशय आनन्ददायक इस आत्मपदमें क्या तुमको विश्राम मिला ? ॥ ४ ॥

कच्चिदंतःप्रबुद्धोसिकच्चिद्भ्रांतिस्त्वयोज्झिता ॥ कच्चिज्ज्ञेयंपरिज्ञातंदृष्टंद्रष्टव्यमेववा ॥ ५ ॥ शिखिध्वज उवाच ॥ भगवंस्त्वप्रसादेनमहाविभवभूमिका ॥ महतीपदवीदृष्टासर्वस्योर्ध्वेस्थितामया ॥ ६ ॥ स तांविदितवेद्यानामहोबतमहात्मनाम् ॥ अपूर्वैकामृतमयःसंगःसारफलप्रदः ॥ ७ ॥ जन्मनापिमयाल ब्धंयन्नामनमहामृतम् ॥ तदद्यत्वत्समासंगात्तेनैवासादितंस्वयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—क्या तुमारे अन्तःकरणमें बोध हुआ, क्या तुमने अपनी भ्रांति त्यागी, क्या तुमने ज्ञेयवस्तुको जाना वा द्रष्टव्यको देखा ॥ ५ ॥ शिखिध्वज बोला—हे भगवन् ! आपकी कृपासे महाविभव अर्थात् निरतिशयकी भूमिका प्राप्त की, महाआत्मपदवीको देखा, और ब्रह्मापर्य्यन्तके विषयानन्दके ऊपरकी दशामें मैं स्थितहुं ॥ ६ ॥ अहो ! वेद्यपदार्थको जाननेवाले आपके सदृश महात्माओंका संग अपूर्व अमृतमय फलका दायक होताहै ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! जिस महाअमृतको मैंने जन्मभरमें नहीं प्राप्त कियाथा वह आज आपके समागमसे स्वयं प्राप्त किया ॥ ८ ॥

अनंतमाद्यममृतंचैतत्कमललोचन ॥ कथंनासादितमभूत्पूर्वमात्मपदंमया ॥९॥ कुंभउवाच ॥ मनस्यु पशमंयातेत्यक्तभोगैषणेस्थिते ॥ कषायपाकेनिर्वृत्तेसर्वेंद्रियगणस्यच ॥ १० ॥ यांतिचेतसिविश्रांतिंवि मलादेशिकोक्तयः ॥ यथासितांशुकेशुद्धेबिंदवःकुंकुमांभसः ॥ ११ ॥ कषायाणामनंतानांसंभृतानांशरी रकैः ॥ स्ववासनास्वरूपाणामद्यपाकस्तवोदितः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र अनन्त सब वस्तुओंसे पूर्वसिद्ध इस आत्मपदको मैंने प्रथमही क्यों नहीं प्राप्त किया ॥ ९ ॥ कुंभ बोला कि—मनके शांत होनेपर और सब इंन्द्रिय तथा मनके भोगोंके कषायोंके निवृत्त होनेपर ॥ १० ॥ चित्तमें उपदेशकी उक्ति ऐसे विश्राम करती है जैसे विमल तथा शुद्ध वस्त्रपर कुंकुमजलके बिंदु ॥ ११ ॥ हे राजन् ! संचित तुमारे अनंत कषायोंका परिपाक आज उदय हुआहै ॥ १२ ॥

देहान्मलानिसर्वाणिकालेनकमलेक्षण ॥ साधोवृक्षात्फलानीवपाकेनविगलंत्यधः ॥ १३ ॥ वासनात्म सुयातेषुमलेषुविमलंसखे ॥ यद्वक्तिगुरुरंतस्तद्विशतीषुर्यथाबिसे ॥ १४ ॥ कषायपाकेसंपन्नेत्वंमयाद्य विबोधितः ॥ तेनाद्यैवतवाज्ञानक्षयोजातोमहामते ॥ १५ ॥ अद्यपक्वकषायस्त्वमद्यैवज्ञानसंकथाम् ॥ अद्येहसोपदेशस्त्वमद्यैवासिप्रबुद्धवान् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र राजन्! लिंगदेह रागद्वेषादि तथा पापरूप सब मल तप आदिसे कालपाके ऐसे गिर-जातेहैं जैसे परिपाकसे वृक्षसे फल ॥ १३ ॥ हे सखे! जब वासनाआदिरूप मल निकल जातेहैं तब निर्मल अन्तः-करणमें जो वाक्य गुरू कहताहै वह ऐसे प्रवेश करताहै जैसे कमलके दंडरूप लक्ष्यमें बाण ॥ १४ ॥ हे महामते! तपद्वारा तुमारे कषायके परिपाक सिद्ध होनेपर इससमय मैंने तुमको बोधन किया इसलिये तुमारा अज्ञान नष्ट हो-गया ॥ १५ ॥ हे राजन्! इसीसमय तुमारे कषाय परिपक्व हुये, इसीसमय ज्ञानकी कथा तुमको रुची, इसीसमय उपदेश दिये अर्थोंको हृदयमें धारण करके तुम उपदेशयुक्त हुये और इसीसमय आत्माके साक्षात्काररूप ज्ञानसे तुम युक्त हुयेहो ॥ १६ ॥

शुभाशुभांनासर्वेषांकर्मणामद्यसंक्षयः ॥ सत्संगव्यपदेशेनतवनिष्पत्तिमागतः ॥ १७ ॥ यावदस्यदिन स्यैषपूर्वभागोमहीपते ॥ तावच्चेतोहंममेतितवाज्ञानंबभूवह ॥ १८ ॥ इदानींमद्वचोबोधाच्चेतसिक्षयमा गते ॥ हृदयात्संपरित्यक्तेसंप्रबुद्धोसिभूपते ॥ १९ ॥ हृदियावन्मनःसत्तातावदज्ञानसंस्थितिः ॥ चित्ते चितत्तयात्यक्तेज्ञानस्याभ्युदयोभवेत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजन्! सत्संगके व्याजसे आज तुमारे शुभ अशुभ कर्मोंका क्षय सिद्ध हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन्! इस दिनके मध्यान्हकालतक तुमारे चित्त अहंममताआदि अज्ञानकी सत्ता रहीहै इसको मैंने निश्चित किया ॥ १८ ॥ और अब दिनके उत्तरभागमें मेरे बचनके ज्ञानसे हृदयसे परित्यक्त चित्तके क्षय होनेपर तुम आत्म-ज्ञानसे संयुक्तहुये ॥ १९ ॥ हे राजन्! हृदयमें जबतक मनकी सत्ता रहती है तबतक अज्ञानकी स्थिति होती है और चित्तरूपसे चित्तके त्यागनेपर ज्ञानका उदय होताहै ॥ २० ॥

द्वित्वैकत्वदृशौचित्तंतदेवाज्ञानमुच्यते ॥ एतयोर्योलयोदृष्टेस्तज्ज्ञानंसापरागतिः ॥ २१ ॥ प्रबुद्धोसिवि मुक्तोसित्यक्तंचित्तंत्वयानृप ॥ सदसत्तामयत्वंहित्वयात्यक्तमसत्पदम् ॥ २२ ॥ वीतशोकोनिरायासो निस्संगोनन्यआत्मवान् ॥ महोदयोमुनिर्मौनीस्वरूपेतिष्ठनिर्मले ॥ २३ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ एवंहि भगवन्जंतोर्मूर्खस्यैवास्तिचित्तभूः ॥ प्रबुद्धस्यनतज्ज्ञस्यचित्तंनामकिलप्रभो ॥ २४ ॥

अर्थ—द्वित्व तथा एकत्वकी दृष्टिही चित्त है और उसीको अज्ञान कहते हैं, परमात्माके साक्षात्कार होनेसे इन दोनोंका नाशही ज्ञान है और वही परागति है ॥ २१ ॥ हे राजन्! तुम प्रबुद्ध हो तुम मुक्त हो क्योंकिं तुमने सदा सन्मय तथा असत् जगत्की कल्पनाके स्थानभूत चित्तको त्यागदिया ॥ २२ ॥ हे राजन्! अब तुम शोक तथा परिश्रमसे रहित संगशून्य, अद्वैत आत्माके ज्ञानसे संपन्न, महान् उदययुक्त मुनि तथा मौन होकर अपने निर्मल आत्मस्वरूपमें स्थित रहो ॥ २३ ॥ शिखिध्वज बोला कि-हे भगवन् इस आपके कथन तथा अनुभवके अनुसार मूर्खकेही वास्ते चित्तकी भूमिहै और यदि ज्ञानीकेलिये चित्त नहीं है ॥ २४ ॥

जीवन्मुक्तास्तदेतेहिविहरंतिकथंवद ॥ अविद्यमानमनसोयुष्मदाद्यास्तथानराः ॥ २५ ॥ इतिमेकथया शेषमन्यैःस्ववचनांशुभिः ॥ हार्दंतमोमेनिपुणमेवंप्रायैःप्रमार्जय ॥ २६ ॥ कुंभउवाच ॥ यथावदसित त्वज्ञतत्तथैवहिनान्यथा ॥ चित्तंहिजीवन्मुक्तानांनास्त्यंकुरइवाश्मनाम् ॥ २७ ॥ पुनर्जननयोग्यायावा सनाघनवासना ॥ साप्रोक्ताचित्तशब्देननसातज्ज्ञस्यविद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—तो वे सब आपसे आदि लेके मनशून्य जीवन्मुक्त मनुष्य इस संसारमें कैसे विहार करतेहैं सो कहिये ॥ २५ ॥ हे भगवन्! मुझसे यह विषय पूर्ण रीतिसे कहिये, और अन्य मनुष्योंसे दुर्लभ अपने वचनरूप किरणोंसे मेरे हृदयके अज्ञानरूप अंधकारको कुशलतापूर्वक दूर कीजिये ॥ २६ ॥ कुंभ बोला- हे राजन्! तुम सत्य कहतेहो पाषाणोंके अङ्कुरके समान, जीवन्मुक्तोंको चित्त नहीं है ॥ २७ ॥ पुनः २ उत्पन्न होनेके योग्य घनीभूत जो वासना है वही चित्तशब्दसे कहीगई है और वह ज्ञानीको नहीं है ॥ २८ ॥

ययावासनयातज्ज्ञाविहरंतीहकर्मसु ॥ तांत्वंसत्वाभिधांविद्धिपुनर्जननवर्जिताम् ॥ २९ ॥ जीवन्मुक्ताम हात्मानःसत्वस्थाःसंयतेंद्रियाः ॥ विहरंतिगतासंगंनचित्तस्थाःकदाचन ॥ ३० ॥ मूढंचित्तंचित्तमाहुः प्रबुद्धंसत्वमुच्यते ॥ अप्रबुद्धाहिचित्तस्थाःसत्वस्थास्तुमहाधियः ॥ ३१ ॥ भूयःप्रजायतेचित्तंसत्वंभू योनजायते ॥ अप्रबुद्धस्यबंधोस्तिनप्रबुद्धस्यभूपते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे राजन्! जिस वासनासे तत्वज्ञानी जन इस संसारमें विहार करतेहैं उसको भुनेहुये अन्नके तुल्य पुनः जमनेके अयोग्य सत्व नामिका तुम जानो ॥ २९ ॥ हे राजन्! जीवन्मुक्त, सत्वमें. और जितेंद्रिय महात्मा जन

संगको त्यागकर नहीं विहरते ॥ ३० ॥ मूढ चित्तको चित्त कहतेहैं और ज्ञानयुक्त चित्तको सत्व कहतेहैं अज्ञानीजन चित्तमें स्थित रहतेहैं और ज्ञानयुक्त महाबुद्धिमान् ॥ ३१ ॥ हे राजन्! चित्त पुनः २ उत्पन्न होताहै और सत्व नहीं तथा अज्ञानीको बंध होताहै और ज्ञानीको नहीं ॥ ३२ ॥

सत्ववानसिसंजातोमहात्यागीस्थितोभवान् ॥ अशेषेणत्वयाचित्तंत्यक्तमद्येतिवेद्म्यहम् ॥ ३३ ॥ समस्तवासनोन्मुक्तोराजन्नद्यैवराजसे ॥ आकाशसाम्यमायातंमन्येतवमुनेमनः ॥ ३४ ॥ शमंप्राप्तोसिपरमंसिद्धःसमसमस्थितिः ॥ अयंहिसमहात्यागःसर्वंयत्तत्समुज्झितम् ॥ ३५ ॥ स्वर्गापवर्गवित्तादितपोदानफलाद्यपि ॥ प्रबुद्धमेधयासाधोधियापरमबोधया ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे राजन्! आपभी महात्यागी होके सत्वयुक्त स्थितहो, क्योंकि तुमने अब चित्तको पूर्णरीतिसे त्यागदियाहै यह मैं जानताहुं ॥ ३३ ॥ हे राजन्! तुम समस्त वासनाओंको त्यागकर इससमय शोभित होरहेहो, और हे मुने! इससमय तुमारा मन आकाश रचित् आकाशकी सदृशताको प्राप्त है ॥ ३४ ॥ हे साधो! तुम समताको प्राप्तहो यही तुमारा वह महात्याग है कि तुमने सर्वरूप चित्तको त्यागा ॥ ३५ ॥ हे साधो! स्वर्ग अपवर्ग, धन आदि तथा तपदानादिके फलादिभी परमज्ञानयुक्त बुद्धिसे तुमने त्यागदिया ॥ ३६ ॥

तपोनामकियन्मात्रदुःखक्षयकरंभवेत् ॥ क्षयातिशयनिर्मुक्तंयत्सुखंसमतामयम् ॥ ३७ ॥ तत्सद्वस्तुतत्किंचिन्नतुस्वर्गादिभंगुरम् ॥ भावाभावैरुपारूढंस्थितावेिगतवेदनम् ॥ ३८ ॥ स्वर्गोनामकिमानंदःसोपिसंदेहसंस्थितः ॥ अप्राप्तस्वात्मसंसिद्धेःक्रियाकांडःशुभोभवेत् ॥ ३९ ॥ येननासादितंहेमरीतिंकिंसपरित्यजेत् ॥ चूडालादिसमासंगाद्भवेज्ज्ञत्वंसुखेनते ॥ ४० ॥

अर्थ—हे राजन्! तपदानादि कितना दुःखनाशक होसकताहै क्योंकि मनके त्यागरूप समतासे क्षय तथा अतिशयसे रहित जो सुख है वह अनंत है ॥३७॥ हे राजन्! ज्ञानसे उत्पन्न फल सत्य वस्तु है और स्वर्गादिरूप फल क्षणभंगुर उत्पत्ति तथा नाशसे ग्रस्त और स्वप्नके पदार्थके तुल्य केवल वर्तमानकालमें वह अनुभूत है ॥३८॥ हे राजन्! स्वर्गका सुख अति तुच्छ है वहभी अनेक अपराधोंसे नाशके योग्य होनेसे संदेहग्रस्तही है और जिसको आत्मज्ञानकी सिद्धि नहीं है उसको कर्मकाण्ड तथा उसके फल शुभ होतेहैं ॥ ३९ ॥ जिसको सुवर्ण नहीं मिलता वह पीतलकोभी क्यों त्यागै और तुमको चूडाला आदिके समागमसे ज्ञान सुखपूर्वक होसकताथा ॥ ४० ॥

तत्किमर्थमनर्थेस्मिन्निमग्नस्त्वंतपोमये ॥ आश्रमादिविकल्पांशसाध्यस्याद्यकुकर्मणः ॥ ४१ ॥ आद्यंतावस्यसुमतेमध्यएवसुखंस्मभोः ॥ यतस्तेसमयोजातोयस्मिन्परिणमंतिच ॥ ४२ ॥ तपोरूपाविकल्पांशास्तत्रबद्धपदोभव ॥ चिद्व्योम्नोनभसोत्यच्छात्सर्वेभावाःसमुत्थिताः ॥ ४३ ॥ तथैवपरिदृश्यंतेतत्रैवविलयंगताः ॥ इदंकार्यमिदंनेतिसंकल्पाब्रह्मबिंदवः ॥ ४४ ॥ वंध्यंशिखिध्वजत्यक्त्वापूर्णमेवसमाश्रयः ॥ इष्टंमेप्रार्थयस्वेतियथैवप्रार्थ्यतेसखे ॥ ४५ ॥

अर्थ—तो तुम वानप्रस्थ आश्रमके योग्य कठिन तप अनर्थमें अपनेको क्यों निमग्न किया ॥ ४१ ॥ हे सुबुद्धे राजन्! इस तपके आदि अंतमें अर्थात् आचरण काल तथा फलके क्षयकालमें सुख नहीं है किंतु केवल भोगकालहीमें सुख है सो जिस तपसे तुमारे कषाय परिपक्व हुयेहैं और जिस आत्मज्ञानमें अनेक तपरूप विकल्प स्फुरित होतेहैं और जिसके फलसे फलवान् होतेहैं उसी आत्मज्ञानमे स्थिर होओ, और संपूर्ण पदार्थ उसी अति स्वच्छ चिदाकाशसे आविर्भूत होके ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ देख पडतेहैं और उसीमें लीनभी होतेहैं उसीको तुम जानो, और हे शिखिध्वज! यह इष्ट है यह अनिष्ट है इत्यादि विकल्प ब्रह्म समुद्रके निष्फल बिंदु हैं उसको त्यागकर तुम पूर्णसमुद्रका आश्रय ऐसे करो जैसे पतिशून्य स्त्री किसी अन्यसे यह प्रार्थना करती है कि हमारा मनोरथ सिद्ध करो४४॥४५

स्त्रियातथैवसकथंदयितःप्रार्थ्यतेस्वयन् ॥ संकल्परचितानेतान्भावानापदभासुरान् ॥ ४६ ॥ गृह्णंतिनमहात्मानःप्राज्ञाजलरवीनिव ॥ स्वर्गमोक्षादिफलदंयत्किंचित्सर्वमेवतत् ॥ ४७ ॥ त्यक्त्वासमसमाभासोयोस्यसावेवंभव ॥ सत्त्वंसत्त्वेननाशेननाश्यंहिविगतस्पृहः ॥ ४८ ॥

अर्थ—वह स्वयं ऐसे पतिके लिये क्यों न प्रार्थना करै कि जिससे संपूर्ण मनोरथ सिद्ध होजाँयँ, हे शिखिध्वज! संकल्पसे रचित और विपत्तिके समान अरमणीय इन सांसारिक पदार्थोंको महात्माजन ऐसे नहीं ग्रहण करते जैसे बुद्धिमान् प्रतिबिंबके सूर्यको इसलिये स्वर्ग मोक्षफलदायक जो कुछ कर्म हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उन सबको त्यागकर सर्वत्र समानरूपसे भासमान जो आत्मा है उसीका रूप तुम होजाओ, क्योंकि बुद्धिमान्को सदंशसत् स्वरूपसे असदंशनाशरूपसे ग्रहण करना चाहिये इसलिये तुम इच्छारहित होके ॥ ४८ ॥

पदार्थौघमिमंगृह्णंस्तिष्ठास्पंदितचित्तभूः ॥ अपरिस्पंदचित्तस्यसंसृतिर्नेहधावति ॥ ४९ ॥ पौरुषप्रभवासाधोविपत्तिर्हिमतीयथा ॥ यानियानीहदुःखानिप्रस्फुरंतिजगत्त्रये ॥ ५० ॥ चेतश्चापलजान्येवतानितानिमहीपते ॥ स्थिरंशातंगतस्पंदंयस्यचितमचापलम् ॥ सदैवसमहानंदसाम्राज्यस्यसभाजनम्॥५१ अथचेतसितत्त्वज्ञस्पंदास्पंदौत्वमेकताम् ॥ नीत्वातिष्ठयथाकाममैक्यमागत्यशाश्वतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस सब पदार्थ समूहको अचंचल चित्तसे ग्रहण करते स्थितरहो क्योंकि अचंचल चित्तवालेके निकट यह संसार ऐसे नहीं दौडता ॥ ४९ ॥ जैसे विवेक ज्ञानके उदय होनेसे स्वाभाविक प्रवृत्तिरूप पुरुष अपराधसे उत्पन्न विपत्ति नहीं दौडती. हे राजन् ! जो २ दुःख इस संसारमें देखपडतेहैं ॥ ५० ॥ वे सर्व चित्तकी चंचलताहीसे उत्पन्न हुयेहैं इसलिये जिसका चित्तधीर, शांत चेष्टारहित और अचंचलहै वही सदा महानन्दका भागी है ॥५१ ॥ हे तत्वज्ञ राजन् ! तुम चेष्टा तथा उसके अभावको साक्षीकेसाथ एक करके नित्य एकतामें प्राप्त पूर्णकाम होके स्थितरहो॥५२॥

शिखिध्वजउवाच ॥ कथमैक्यंविभोयातःस्पंदास्पंदाविमावुभौ ॥ सर्वसंशयविच्छेदकारिन्नेतद्वदाशुमे ॥ ५३ ॥ कुंभउवाच ॥ एकंवस्तुजगत्सर्वंचिन्मात्रंवारिवांबुधि ॥ तदेवस्पंदतेधीभिःश्रुद्धवारीववीचिभिः ॥ ५४ ॥ ब्रह्मचिन्मात्रममलंसत्त्वमित्यादिनामकम् ॥ यद्वीतंतदिदंमूढाःपश्यंत्यंगजगत्तया॥५५॥ चित्स्पंदएवसर्वस्वंसर्गेतस्माद्विसंसृतिः ॥ परिस्पंदोहिविंध्यादिशब्दस्पंदसमंपरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला—हे सर्व संशय विच्छेदकारिन् ब्रह्मन् ! चेष्टा तथा उसका अभाव कैसे एकताको प्राप्त होतेहैं यह मुझसे शीघ्र कहिये ॥ ५३ ॥ कुंभ बोला—हे राजन् ! जैसे तरंगादिरूपसे भेद रहते भी जलमात्रसे समुद्र अभिन्नहै ऐसेही अधिष्ठान चिन्मात्रसे सब एकही वस्तु है वही अधिष्ठान चिन्मात्र बुद्धिकी वृत्तियोंसे ऐसे चेष्टा करताहै जैसे तरंगोंसे समुद्र ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जिसको सत्यज्ञान अनन्त इत्यादि नामोंसे वेदोंमें कहाहै वही निर्मल चिन्मात्र ब्रह्म सब कुछ है उसीको मूढजन जगत्‌रूपसे देखतेहैं ॥ ५५ ॥ चित्‌का स्फूरणही सृष्टिकासर्वस्व है इसलिये विंध्याचल आदि संसार उसके द्वितीय स्पन्द वा स्फुरणरूपसे भासताहै ॥ ५६ ॥

चितःसएवचेतत्स्पंदस्तथास्पंदश्चभावितः ॥ एकरूपतयानामतत्रेदममलंशिवम् ॥ ५७ ॥ सर्गश्चित्स्पंदमात्रात्मासम्यग्दृष्टौविलीयते ॥ उदेत्यसम्यग्दृष्टीनांरज्ज्वांसर्पभ्रमोयथा ॥ ५८ ॥ सस्पंदाचित्तदभिधानिःस्पंदात्वियमातता ॥ तुर्यातीतपदारूढावाचावक्तुंनपार्यते ॥ ५९ ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कसंतताभ्यासयोगतः ॥ कालेनामलतांयातेचेतसींदाविवोदिता ॥ ६० ॥ एतत्केवलमाभातंस्वानुभूतिभिराततम् ॥ कथ्यतेस्वानुभूतेषुस्वयंस्वंरूपमात्मना ॥ ६१ ॥ प्राप्तोसिसारंस्वमनादिमध्यमत्रैवतिष्ठस्वपदेनिविष्टः ॥ नोरूपनिर्भेदमहाचिदात्माजातोसिसाधोखलुवीतशोकः ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० शिखिध्वजबोधनं नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थ—चित्‌का स्पन्द (चेष्टा वा स्फुरण) तथा उसका अभाव यदि चित् साक्षीरूपसे निश्चित कियाजाय तो केवल शिवमात्र शेष रहजाय ॥ ५७ ॥ चित्‌का स्पन्द चित् साक्षीमात्र है इस सम्यग्दृष्टिसे उसीमें लीन होजाताहै क्योंकि साक्षीमें असम्यक् दृष्टियोंको यह सृष्टि ऐसे उदय होती है जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम ॥ ५८ ॥ और स्पन्दसहित चित् सृष्टिनामसे कही जाती है और स्पन्द (चेष्टा) रहित चित् तो तुरीयातीत पदका विषय है उसको बाणीसे नहीं कहसकते ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! शास्त्र तथा ज्ञानियोंके संगके निरंतर अभ्याससे कालपाके चित्तके निर्मल होनेपर साक्षीकेसाथ सबकी एकता ऐसे उदित होती है जैसे नेत्रके तिमिरादि दोषोंके दूर होनेपर चन्द्रमाकी एकता ॥ ६० ॥ हे राजन् ! यह साक्षी चित्‌के साथ सबकी एकता केवल अपने अनुभवमात्रसे भान होती है और जिन्होंने अपने स्वरूपका अनुभव करलियाहै उन्हींसे अपने अपना स्वरूप अपने आत्मासे आपही कहा जाताहै ॥ ६१ ॥ हे साधो ! तुम अब सबका सारभूत तथा आदि मध्यरहित अपने स्वरूपको प्राप्तहो मेरे बचनसे उसीपदमें दृढ होके स्थितरहो शरीरादिके भेदको मिथ्या जाननेसे तुम महा चित्स्वरूप सिद्ध होगयेहो इसीसे अब शोक मोहादिरहित हो ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजबोधनं नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

आज्ञा लेके कुंभऋषिके अन्तर्ध्यान होनेपर विस्मित राजाकी चिरकालतक विचार करके समाधिमें विश्रांति इस १०२ के सर्गमें वर्णित कीगई है ॥

॥ कुंभउवाच ॥ इतितेकथितंसर्वंशिखिध्वजमहीपते ॥ यथेदमुत्थितंसर्वंयथाचप्रविलीयते ॥ १ ॥ एतच्छ्रुत्वाचबुध्द्वाचमत्वाचमुनिनायक ॥ यथेच्छसितथातिष्ठदृष्टेस्पष्टेपरेपदे ॥ २ ॥ स्वर्गंगच्छाम्यहंपर्वकालेस्मिन्नारदोमुनिः ॥ ब्रह्मलोकात्समायातोभवत्यमरसंसदि ॥ ३ ॥ नमांपश्यतिचेत्तत्रतत्कोपमुपगच्छति ॥ नोद्वेजनीयाभव्येनगुरवोहिकदाचन ॥ ४ ॥

अर्थ—कुंभऋषि बोला—हे राजन् ! इसप्रकार यह संसार उत्पन्न होताहै और जैसे लीन होताहै वह सब अध्यारोप तथा अपवाद क्रमसे मैंने तुमसे कहदिया ॥ १ ॥ हे मुनिनायक ! इसको सुनकर जानकर और मननकरके स्पष्टरूपसे दृष्ट परमपदमें जैसे चाहो वैसे स्थित रहो ॥ २ ॥ और मैं तो इससमय स्वर्गको जाताहुं क्योंकि इस पर्वकालमें ब्रह्मलोकसे नारदमुनि इन्द्रकी सभामें आये होंगे ॥ ३ ॥ यदि वे मुझे नहीं देखेंगे तो कोपको प्राप्त होंगे और कल्याणेच्छुकको गुरुओंको क्रुद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

त्यक्तसंकल्पलेखेननकिंचिदभिवांछता ॥ त्वयास्सैदेववस्तव्यंदृष्टिरेषैवपावनी ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतियावत्प्रतिवचःपुष्पहस्तःशिखिध्वजः ॥ प्रणामायददात्येषतावदंतर्धिमाययौ ॥ ६ ॥ प्रतिभानगतंवस्तुयथैवांतेनदृश्यते ॥ नदृष्टवांस्तथाकुंभमग्रेराजाशिखिध्वजः ॥ ७ ॥ गतेकुंभेमहीपालःपरंविस्मयमाययौ ॥ तमेवचिंतयंश्चित्रंचित्रार्पितइवाभवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—और तुम सदा संकल्प तथा इच्छाको त्यागकर मुझसे कहीहुई इसी पवित्र आत्मदृष्टिमें स्थित रहना ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके पश्चात् राजा शिखिध्वजने प्रतिवचनसहित प्रणाम करनेको पुष्पांजलि ग्रहण किया उसके पूर्वही कुंभरूपधारिणी चूडाला अन्तर्धान होगई ॥ ६ ॥ जैसे स्वप्नादिमें प्राप्त धनादि अंतमें नहीं देखपडता इसीप्रकार राजा शिखिध्वजने अपने सन्मुख कुंभको न देखा ॥ ७ ॥ कुंभके जानेपर राजा अतिविस्मित हुआ और उसीका ध्यान करता हुआ चित्रलिखितके समान होगया ॥ ८ ॥

इदंसंचिंतयामासचित्रंविलसितंविधेः ॥ यत्कुंभव्यपदेशेनबोधितोस्मिचिरोदयम् ॥ ९ ॥ क्वनारदसुतःकुंभःक्वाहंनामशिखिध्वजः ॥ केवलंकालयुक्त्यैवसोहंसंपरिबोधितः ॥ १० ॥ अहोनुसम्यक्कथितंदेवपुत्रेणयुक्तिमत् ॥ अहोनुसंप्रबुद्धोस्मिमोहनिद्राकुलश्चिरात् ॥ ११ ॥ क्वाहमासंविनिर्मग्नःक्रियाजालकुकर्दमे ॥ इदंकार्यमिदंनेतिमिथ्याविभ्रमचक्रके ॥ १२ ॥

अर्थ—और विधिके विचित्र विलासको इसप्रकार चिंतन किया कि कुंभके व्याजसे सदा प्रकाशरूप ब्रह्मका मुझे उपदेश दियागया ॥ ९ ॥ कहां तो नारदका पुत्र और कहां राजा शिखिध्वज केवल यह भाग्योदयके संयोगसे मुझे यह उपदेश दियागया ॥ १० ॥ अहो ! देवपुत्रने कैसा उत्तम यह युक्तियुक्त उपदेश दिया है, अहो ! मोहनिद्रामें चिरकालसे व्याकुल मैं अब प्रबुद्ध हुआहुं ॥ ११ ॥ यह करना चाहिये यह नहीं इत्यादि मिथ्या भ्रममय चक्रयुक्त क्रियाजालरूप दुष्ट कीचडमें कहां तो मैं फंसाथा ॥ १२ ॥

अहोनुशीतलाशुद्धाशांतेयंपदवीनिजा ॥ रसायनोद्भवाकारास्त्वंशीतयतीहमे ॥ १३ ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिसुखमासेचकेवलम् ॥ तृणाग्रमपिनेच्छामिसंस्थितोस्मियथास्थितम् ॥ १४ ॥ एवंसंचिंतयन्राजानूनंनिर्वासनाशयः ॥ शैलादिवसमुत्कीर्णोमौनमेवावतस्थिवान् ॥ १५ ॥ तस्मिन्नेवततोमौनेनिःसंकल्पेनिराश्रये ॥ प्रतिष्ठांनिश्चलांप्राप्यसतस्थौगिरिशृंगवत् ॥ १६ ॥ सतत्रसंशांतभयोऽचिरेणचिरेणविश्रांतमतिःसमात्मा ॥ चिरेणसंप्राप्तनिजामलात्मायोगेनसुष्वापततोदितात्मा ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजसमाधानंनामद्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

अर्थ—और कहां यह रसायनसे उत्पन्न आकार धारण कियेहुई शीतल तथा शुद्ध साक्षात्कृत निजआत्माकी साम्राज्यपदवी जो वासनारहित मेरे मनको शुद्ध कररही है ॥ १३ ॥ अहो ! मैं शांतहुं तृप्त हुं केवल सुखपूर्वक स्थित

---

(१) प्रणामके पूर्व अन्तर्धानसे होनेका यह तात्पर्य है कि सती स्त्रियोंको पतिका नमस्कार नहीं लेना चाहिये ॥

हुं तृणका लेशभी अब मैं नहीं चाहता जैसाहुं वैसा अपने स्वरूपमें स्थितहुं ॥ १४ ॥ वासनारहित अन्तःकरणवाला राजा इसप्रकारसे चिन्तन करता हुआ पाषाणमें खुदीहुई प्रतिमाके समान मौन होकर समाधिस्थ होगया ॥ १५ ॥ उसी संकल्प तथा आश्रयरहित मौनसमाधिमें अचल प्रतिष्ठाको पाकर पर्वतके शिखरके समान वहां स्थितरहा ॥१६॥ वह राजा उस समाधिमें समरस अपने निर्मल आत्मस्वरूपके पानेसे चिरकालसे विश्रान्त चित्त होकर शीघ्र निर्भय होके चिरकालसे प्रवृत्त योगके द्वारा पूर्णस्वभावसे सुषुप्तिके समान विश्राम किया ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज समाधानं नाम द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चूडाला अपने स्थानको जाकर तीन दिनके पश्चात् पुनः अपने पतिसे मिली और यत्न पूर्वक पतिको समाधिसे उठाया इस विषयका वर्णन इस १०३ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ निर्विकल्पसमाधानात्काष्ठकुड्योपमस्थितिः ॥ एवंशिखिध्वजोराजाचूडालामधुनाशृणु ॥ १ ॥ शिखिध्वजंतंभर्तारंकुंभवेषेणतेनसा ॥ प्रबोध्यांतर्धिमागत्यततारतरसानभः ॥ २ ॥ देवपुत्राकृतिंव्योम्निजहौमायाविनिर्मिताम् ॥ विदग्धमुग्धमाकारंस्त्रैणंजग्राहसुंदरम् ॥ ३ ॥ नभसास्वपुरंप्रापविवेशांतःपुरंक्षणात् ॥ दृश्याबभूवलोकस्यनृपकर्मचकारच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! निर्विकल्प समाधिमें स्थित होनेसे राजा शिखिध्वज तो काष्ठ पाषाणके समान स्थित रहा अब तुम चूडालाको सुनो ॥ १ ॥ कुंभका वेष धारण करनेवाली वह चूडाला अपने पति राजा शिखिध्वजको उपदेश देके और अंतर्धान होके वेगसे आकाशमार्गसे उडी ॥ २ ॥ और आकाशमें जाके माया रचित देवपुत्रके आकारको त्यागदिया और सुंदर स्त्रीके आकारको ग्रहण किया ॥ ३ ॥ और आकाशमार्गसे अपने नगरमें प्रवेश करके क्षणभरमें अन्तःपुरमें प्रविष्ट होकर राज्यका काम किया ॥ ४ ॥

वासरत्रितयेनाथपुनरंबरमेत्यसा ॥ बभूवकुंभोयोगेनशिखिध्वजवनंययौ ॥ ५ ॥ तथातत्रैवतंभूपमपश्यद्वनभूमिगा ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थंसमुत्कीर्णमिवद्रुमम् ॥ ६ ॥ अहोनुखल्वभोदिष्ट्याविश्रांतोयमिहात्मनि ॥ स्थितःस्वस्थःसमःशांतइत्युवाचपुनःपुनः ॥ ७ ॥ तदेनंतावदेतस्माद्बोधयामिपरात्पदात् ॥ इदानीमेवकिंदेहत्यागमेषकरोतिवै ॥ ८ ॥

अर्थ—और तीन दिनके पश्चात् पुनः आकाशमें आके कुंभका शरीर धारण करके शिखिध्वजके बनमें गई ॥ ९५ ॥ और वहां बनकी भूमिमें प्राप्त होकर चित्रके वृक्षके समान निर्विकल्प समाधिमें स्थित वैसाही अपने पतिको देखा ॥ ६ ॥ और यह सौभाग्य है कि स्वस्थ तथा समदृष्टि होके यह आत्मामें विश्राम कररहाहै ऐसा पुनः २ बोली ॥७॥ इसलिये इसको इस परम पदसे बोधित करूं क्योंकि अभी प्रारब्ध कर्म शेष रहते यह देह क्यों त्याग करै ॥८॥

किंचित्कालंस्फुरत्वेषराज्येनविपिनेनवा ॥ सममेवगमिष्यावस्त्यक्तदेहाविमौसमौ ॥ ९ ॥ तस्योपदेशोविषमःपरिणामंनगच्छति ॥ अनेनाभ्यासयोगेनतावदाबोधयाम्यहम् ॥ १० ॥ इतिसंचिंत्यचूडालासिंहनादंचकारसा ॥ भूयोभूयःप्रभोरग्रेवनेचरभयप्रदम् ॥ ११ ॥ नचचालशिलेवाद्रैयदानादेनतेनसः ॥ भूयोभूयःकृतेनापितदासातंव्यचालयत् ॥ १२ ॥

अर्थ— कुछकालतक राज्यकार्यमे वा बनमें चेष्टा करै और देहत्यागकर दोनों साथही विदेह मुक्तिको प्राप्त होगे ॥ ९ ॥ इससमय देह त्यागसे मेरा उपदेश कहीं सप्तम भूमिकाके परिणाममें न प्राप्तहो इसलिये इस समाधिके अभ्याससे जाग्रत करूं ॥ १० ॥ ऐसा चिंतन करके चूडालाने बनचरोंकोभी भयप्रद पुनः २ सिंहनाद अपने प्रभुके संमुख किया ॥ ११ ॥ जब पुनः २ उस सिंहनादसेभी पर्वतकी शिलाके समान चलायमान नहीं हुआ तब उसने हांथसे उसको संचालित किया ॥ १२ ॥

चालितःपातितोप्येषयदानबुबुधेनृपः ॥ तदासंचिंतयामासचूडालाकुंभरूपिणी ॥ १३॥ अहोपरिणतःसाधुःस्वपदेभगवानयम् ॥ तदेनंहिकयायुक्त्यासांप्रतंबोधयाम्यहम् ॥ १४ ॥ अथवैनंमहात्मानंकिमर्थंबोधयाम्यहम् ॥ विदेहंबोधमासाद्यतिष्ठत्वेषयथासुखम् ॥ १५ ॥ अहमप्यंगनादेहमिमंत्यक्त्वापरंपदम् ॥ अपुनर्जननायैवगच्छामीहहिकिंसमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जब हांथसे चलाने और गिरानेपरभी राजा समाधिसे जाग्रत नहीं हुआ तब कुंभरूप धारिणी चूडालाने विचार किया ॥ १३ ॥ अहो ! यह साधु भगवान् सप्तमभूमिका पर्यन्त अपने आत्म वेदमें परिणत हुआहै इसलिये इसको क्रियायुक्तिसे बोधित करूं ॥ १४ ॥ अथवा इस महात्माको समाधिसे क्यों जाग्रत करूं विदेह मुक्तिको पाकर सुखपूर्वक इसमें स्थित रहै ॥ १५ ॥ मैं भी इस स्त्री शरीरको त्यागकर पुनर्जन्म न धारण करनेकेलिये अपने पतिके साथ परमपदको प्राप्त होऊं ॥ १६ ॥

इतिसंचित्यदेहंस्वंत्यक्तुमभ्युद्यतासती ॥ पुनःसंचिंतयामासचूडालासामहामतिः ॥ १७ ॥ आलोकयामिचैतावदेनंदेहंमहीपतेः ॥ यद्यस्यसत्त्वशेषोस्तिबोधबीजंहृदंतरे ॥ १८ ॥ तत्कालेनैषभगवान्संप्रबोधमुपैष्यति ॥ मूलकोशरसालीनंपुष्पजालमिवद्रुमे ॥ १९ ॥ तदेवंविहरन्जीवन्मुक्तएवभवत्यलम्॥ मुक्तोभवत्यथयदिमन्येगच्छामितत्समम् ॥ २० ॥

अर्थ—ऐसा विचार करके जब देह त्याग करनेको उद्यतहुई तब महा बुद्धिमती चूडालाने अवश्य भोक्तव्य उसके शेष प्रारब्धको देखकर पुनः विचार किया ॥ १७ ॥ प्रथम देखूं कि इस राजाके देहमें इसके अन्तःकरणके भीतर जाग्रत बीजभूत मनका शेष है कि नहीं ॥१८ ॥ मनके शेष रहनेपर यह भगवान् ऐसे जाग्रत होगा कि जैसे वृक्षके मूल कोशमें रसरूपमें लीन पुष्पसमूह ॥ १९ ॥ सो जाग्रत् होके पूर्णरीतिसे जीवन्मुक्त होके विहार करै और यदि यह विदेहमुक्त होगा तो इसीके साथ मैं भी जाऊंगी ॥ २० ॥

इतिसंचिंत्यचूडालास्पर्शेनेननयेनच ॥ पतिमालोक्यसाशंकमुवाचवरवर्णिनी ॥ २१ ॥ अस्त्येवसत्त्वशेषोस्यहृदिसंबोधकारणम् ॥ संबोधहेतूदयनेसत्वशेषंव्यबुध्यत ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भृशंसंशांतचित्तस्यकाष्ठलोष्टसमस्थितेः ॥ सत्वशेषःकथंब्रह्मन्ज्ञायतेध्यानशालिनः ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रबोधकारणंयस्यदुर्लक्ष्याणुवपुर्हृदि ॥ विद्यतेसत्वशेषोंतर्बीजेपुष्पफलंयथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार विचार करके स्पर्शसे तथा नीतिसे श्रेष्ठ वर्णवाली उस चूडालाने आशंकासहित पतिके देहको देखकर बोली कि ॥ २१ ॥ जाग्रत्का कारणभूत इसके देहमें मनका शेषहै इसप्रकार जाग्रतके उष्णता आदि चिन्होंसे उसने मनका शेष जानलिया ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! शांतचित्त तथा काष्ठ लोष्टके समान स्थित ध्यानस्थ प्राणीका मनका शेष कैसे जानपडताहै ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सूक्ष्म तथा ज्ञानदृष्टिसे लक्ष्य हृदयमें बोधका कारण शेषमन ऐसे जानपडताहै जैसे बीजके भीतर पुष्प तथा फल ॥ २४ ॥

चित्तस्पंदवियुक्तस्यतस्यास्पंदितसच्चितः ॥ दित्वैकत्वविहीनस्यसमस्याचलसंस्थितेः ॥ २५ ॥ कायःसमसमाभोगोनग्लायतिनहृष्यति ॥ नास्तमेतिनचोदेतिसममेवावतिष्ठते ॥ २६ ॥ द्वित्वैकत्वादियुक्तस्ययस्यप्रस्पंदतेमनः ॥ तस्यदेहोन्यतामेतिनास्पंदस्यकदाचन ॥ २७ ॥ चित्तस्पंदोहिसर्वेषांकारणंजगतःस्थिते ॥ रामभावविकाराणांकुसुमानांयथामधुः ॥ २८ ॥

अर्थ—चित्तकी चेष्टासेरहित सच्चित आत्मस्वरूपमें अचलायमान निर्विकल्प समाधिमें स्थित समरूप और अचलके समान स्थित पुरुषका ॥ २५ ॥ पूर्वके तुल्य आकारवाला यह देह न ग्लानिको प्राप्त होताहै न प्रसन्न होताहै न अस्त होताहै और न उदय होताहै किंतुसमानरूपसे स्थित रहताहै ॥२६॥ द्वैतज्ञानमें युक्त जिस पुरुषका मनचेष्टा करताहै उसका देह वृद्धिक्षय आदि अन्यथा भावको प्राप्त होताहै और समाधिमें स्थित पुरुषका कदापि नहीं ॥२७॥ हे रामजी ! संपूर्ण भाव विकारोंकी जगत्की स्थितिका कारण चित्तकी चेष्टाही है ऐसे है जैसे पुष्पोंका वसंत ॥२८॥

अस्मिन्प्रयास्यतोदेहेचेतसोहिमुहुर्मुहुः ॥ हर्षःकोपोनसंमोहोवशमेतिरघूद्वह ॥ २९ ॥ चित्तेप्रशममायातिकायोयःसत्ववर्जितः ॥ बाधतेनांबरस्येवतस्यभावविकारभूः ॥ ३० ॥ वीच्यादिनयथोदेतिसमायाजलसंततेः ॥ तथानदृश्यतेदोषःसमायासत्वसंततेः ॥ ३१ ॥ सत्त्वस्यानुपलंभोस्तिनतस्योपशमादृते ॥ यावद्भातिसमंतत्त्वंकालाच्छाम्यतिकेवलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसीसे पुनर्जन्मके बीजभूत चित्तके शेष रहते जब एक देहसे दूसरे देहमें यह चित्त जाताहै तब बार २ निगृहीत्त होनेपर हर्ष शोकके वशमें नहीं आता ॥ २९ ॥ और चित्तके शांत होनेपर चित्तके प्रति संधानसे त्यक्त विकारका स्थान यह देह उस पुरुषको ऐसे नहीं बाधा करसकता जैसे आकाशको ॥ ३० ॥ जैसे समान जलकी स्थितिमें तरंगादि नहीं उठते ऐसेही समान चित्तकी स्थितिमें वृद्धिक्षय आदि विकार तथा रागादि दोष नहीं देखपडते ॥ ३१ ॥ जब शांति नहीं होती तबतक सत्वका अभाव कभी नहीं होता और प्रारब्ध कर्मके निवृत्त होनेसे वह सर्वथा नष्ट होजाताहै ॥ ३२ ॥

देहेयस्मिंस्तुनोचित्तंनापिसत्त्वंचविद्यते ॥ सतापेहिमवद्रामपंचत्वेनविलीयते ॥ ३३ ॥ शिखिध्वजस्य देहोसौनिश्चित्तस्तेजसोर्जितः ॥ सत्वांशेनचसंयुक्तस्तेननग्लानिभाजनम् ॥ ३४ ॥ तंतथाभूतमालोक्यभर्तुर्देहंवरांगना ॥ अनुज्झितवतीदेहंचिंतयामाससत्वरम् ॥ ३५ ॥ चित्तत्वंसर्वगंशुद्धंप्रविश्याबोधयाम्यहम् ॥ भविष्यद्बोधनंकांतमथतत्रहिसंस्थिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी! जिस (अज्ञानीके) देहमें न चित्त है और न (ज्ञानीके) सत्व है वह मृत्युसे ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे घाममें हिम ॥ ३३ ॥ और यह शिखिध्वजका देह तो चित्तसे यद्यपि रहित है तथापि तेजसे और सत्वसे संयुक्त है इसलिये ग्लानिको नहीं प्राप्त होता ॥ ३४ ॥ उस श्रेष्ठ अंगनाने उसप्रकार अपने पतिके देहको देखकर अपनी देहको न त्यागती हुई यह चिंतन न किया ॥ ३५ ॥ सर्वव्यापि तथा शुद्ध चित्त प्रवेश करके और वहां स्थित होकर अधिक कालमें समाधिसे उठनेवाले अपने पतिको अभी बोधित करूं ॥ ३६ ॥

नबोधयामियद्येनंचिरात्तद्बुध्यतेस्वयम् ॥ किमेकैवावतिष्ठेहमित्येवंबोधयाम्यहम् ॥ ३७ ॥ इतिसंचिंत्य चूडालादेहंकारणपंजरम् ॥ संत्यज्यप्रापचित्तत्वेस्थितिमाद्यंतवर्जिते ॥ ३८ ॥ तत्रसाचेतनास्पंदंकृत्वा सत्ववतःप्रभोः ॥ स्वंविवेशपुनर्देहंस्वंनीडमिवपक्षिणी ॥ ३९ ॥ कुंभाकृतिरथोत्थायनिविष्टाकुसुमस्थले ॥ सामगातुंप्रवृत्तासाभ्रमरीवृंदनिःस्वना ॥ ४० ॥

अर्थ—यदि मैं न बोधित करूंगी तो कालपाके यह स्वयं जाग्रत होंगे परंतु अकेली क्यों स्थित रहूं इसलिये समाधिसे इनको जाग्रत करूं ॥ ३७ ॥ ऐसा विचार करके चूडालाने इन्द्रिय पंजरभूत अपनी देहको त्यागकर आदि अंतवर्जित शुद्ध चित् सत्वमें स्थितिको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ वहां जाकर सत्वयुक्त अपने स्वामीकी निर्विकल्प समाधिमें जल दुग्धके समान चित्के साथ एकरसभूत उसीकी बुद्धिके पृथक् २ स्फुरण होनेकी चेष्टा करके अपने देहमें पुनः ऐसे प्रवेश किया जैसे अपने खुंथेमें पक्षिणी ॥ ३९ ॥ और कुंभका वेष धारण करके पुष्पोंके विस्तरेपर बैठगई और भ्रमरीके समूहको शब्दरहित करनेवाली वह सामके गानमें प्रवृत्त हुई ॥ ४० ॥

तंसामस्वनमाकर्ण्यचित्सत्वगुणशालिनी ॥ बुबुधेभूपतेर्देहेवसंतइवपद्मिनी ॥ ४१ ॥ दृशंविकासयामासतांतदार्कइवाब्जीनम् ॥ गृहीतसत्त्वसंपत्तिःशिखिध्वजमहीपतिः ॥ ४२ ॥ अपश्यत्कुंभमग्रस्थंसामगायनतत्परम् ॥ परेणवपुषायुक्तंसामवेदमिवापरम् ॥ ४३ ॥ अहोबतवयंधन्याःपुनःप्राप्तोमुनिःस्वतः ॥ इत्येवोदाहरन्राजाकुंभायकुसुमंददौ ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस सामके शब्दको सुनकर सत्वगुणसे शोभित चित् राजाके देहमें ऐसे प्रबुद्ध हुई जैसे वसंतमें कमलिनी ॥ ४१ ॥ और सत्वकी संपत्तिको ग्रहण करनेवाले राजा शिखिध्वजने समाधिमें मुंदी हुई अपनी दृष्टिको ऐसा खोला जैसे सूर्य कमलिनीको ॥ ४२ ॥ और दिव्य शरीरयुक्त दूसरे मूर्तिधारी सामवेदके समान अपने संमुख स्थित उसी कुंभऋषिको देखा ॥ ४३ ॥ अहो हम धन्य है कि यह मुनि स्वयं पुनः यहां प्राप्त हुआ ऐसा कहते हुये राजाने कुंभको पुष्पप्रदान किया ॥ ४४ ॥

दिष्ट्योदिताःस्मोभगवंस्तवचेतसिपावने ॥ केनामवामहासत्वाःप्रसादेष्वंगनोस्थिताः ॥ ४५ ॥ अस्मत्पवित्रीकरणमेवागमनकारणम् ॥ नचेत्किंचागमेब्रूहिद्वितीयंकारणंभवेत् ॥ ४६ ॥ कुंभउवाच ॥ यतःप्रभृतियातोस्मित्वत्सकाशादनिंदितः ॥ ततःप्रभृतिचत्तोमेत्वय्यैवेहसमंस्थितम् ॥ ४७ ॥ रम्येस्वर्गे नतिष्ठामिसमीपेतवसांप्रतम् ॥ अभीष्टमुद्यदेवांगरम्याणांतत्पुरःस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह सौभाग्यकी वार्ता है कि आपके पवित्र चित्तमें हम पुनः उदित हुये अथवा मेरे भाग्यसे क्या महात्माजन दूसरोंके उपकारकेलिये स्वयं उद्यत रहते हैं ॥४५॥ हे भगवन् ! हमको पवित्र करनेहीके अर्थ आपका यह आगमन है इसके सिवाय कहिये आपके आगमनका अन्य कारण क्या है ॥ ४६ ॥ कुंभ बोला—हे अनिंदनीय जिससमयसे मैं आपके निकट गया तबसे मेरा चित्त तुमारे साथ यहांही स्थितरहा ॥ ४७ ॥ रमणीयस्वर्गमें न रहसका और तुमारे निकट अब सुखसे स्थितहुं क्योंकि हे प्रिय ! रमणीय वस्तुओंके मध्यमें चित्तको जो प्रिय होताहै वह यत्नके विना भी संमुख देखपडताहै ॥ ४८ ॥

त्वादृशोबंधुराप्तश्चसुहृन्मित्रंतथासखा ॥ विश्वास्योवापिशिष्यश्चमन्येजगतिनास्तिमे ॥ ४९ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ अहोनुफलितंपुण्यपादपैर्नःकुलाचले ॥ यस्माद्भवानसंगोपिवांछत्यस्मत्समागमम् ॥५० इदंवनमिमेवृक्षाभृत्योयमहमादृतः ॥ रोचतेतेनचेत्स्वर्गस्तदिहस्थीयतांप्रभो ॥ ५१ ॥ भवद्वितीर्णयायोगयुक्त्याविश्रांतवाहनम् ॥ यथासाधोतथामन्येस्वर्गेविश्रमणंकुतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे साधो! यह मैं मानताहुं कि तुमारे समान बंधु, आप्त (श्रेष्ठ) सुहृद, मित्र, सखा, विश्वासपात्र अथवा शिष्य इस जगत्में मेरा कोई नहीं है ॥ ४९ ॥ शिखिध्वज बोला—हे भगवन्! अहो इस पर्वतपर पवित्र वृक्षोंसे मेरा पुण्य फलीभूत हुआ कि आप असंग होकरभी मेरा समागम चाहतेहो ॥ ५० ॥ यह उत्तम बनहै, ये रमणीय वृक्ष हैं और यह सत्कार करनेवाला मैं आपका सेवकहुं, हे प्रभो! यदि स्वर्ग नहीं रूचता तो यहांही निवास कीजिये ॥ ५१ ॥ हे साधो! मैं यह विश्वास करताहुं कि आपकी बताई हुई योगकी युक्तिसे जैसा मैंने विश्राम किया वह विश्राम स्वर्गमें कहां? ॥ ५२ ॥

तामेवसंस्थितिंस्वच्छामवलंब्यप्रकाशिनीम् ॥ विहरेहयथाकामंस्वर्गेभूमितलेतथा ॥५३॥ कुंभउवाच॥ परेपदेमहानंदेकच्चिद्विश्रांतवानसि ॥ इदंभेदमयंदुःखंकच्चित्संत्यक्तवानसि ॥ ५४ ॥ कच्चिदापातरम्ये भ्यःसंकल्पेभ्योरतिर्भृशम् ॥ निर्मूलतांगताराजन्भोगनीरसमेवते ॥ ५५ ॥ हेयादेयदशातीतंशांतंशम समस्थिति ॥ यथाप्राप्तेष्वनुद्वेगंकच्चितवमनःस्थितम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—उसी स्वच्छ और प्रकाशयुक्त स्थितिका आश्रय लेके यहां विहार करो स्वर्गमें अथवा भूमिपर ॥५३॥ कुंभ बोला—हे राजन्! क्या महान् परमपदमें तुम विश्रांत हुये और दुःख पूर्णभेदमय इस संसारको क्या तुमने त्यागा ॥ ५४ ॥ क्या बिना विचारे रमणीय संकल्पोंसे भोगोंकी नीरसत्तापूर्वक तुमारी अत्यंत प्रीति निर्मूल हुई? ॥ ५५ ॥ हेय तथा आदेय दशासे परे, शांत तथा समान स्थितिवाला तुमारा चित्त यथाप्राप्त वस्तुओंमें बिना उद्वेगके क्या स्थिर हुआ ॥ ५६ ॥

॥ शिखिध्वजउवाच ॥ त्वत्प्रसादेनभगवन्दृष्टादृश्यातिगागतिः ॥ प्राप्तःसंसारसीमांतोलब्धोलब्धव्य निश्चयः ॥ ५७ ॥ चिरादतिचिरेणैवविश्रांतोस्मिनिरामयः ॥ लब्धंलब्धव्यमखिलंतृप्तःसंस्थिरसंस्थितः ॥ ५८ ॥ नोपदेष्टव्यमस्माकंकिंचिदप्युपयुज्यते ॥ सर्वत्रैवातितृप्तोस्मिसंस्थितोस्मिगतज्वरः ॥ ॥ ५९ ॥ ज्ञातमज्ञातमप्राप्तंत्यक्तंत्यक्तव्यमाश्रितम् ॥ तत्त्वंपरत्वंसत्वंमेस्वस्यैवास्तिनाकिंचन ॥ ६० ॥ निःसंसृतिर्विगतमोहभयोनिरागोनित्योदितःसमसमाशयसर्वसौम्यः ॥ सर्वात्मकःसकलसंकलनांवि युक्तआकाशकोशविशदःसममास्थितोस्मि ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने कुंभपुनरागमनंनामत्र्यधिकशततमःसर्गः ॥ १०३ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला—हे भगवन्! आपकी कृपासे दृश्यसे परे गतिको मैंने देखा, संसारकी सीमाका अंत पाया, और प्राप्त होनेके योग्य निश्चित पदार्थ पाया ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! बहुतकालके पश्चात् तीनतक निर्विघ्नतापूर्वक विश्राम किया और प्राप्त होनेके सब कुछ पाया अब तृप्त होके स्थितहुं ॥ ५८ ॥ अब कुछ उपदेशका उपयोग मुझे नहीं है किंतु सबओरसे सर्वथा तृप्त होके संतापरहित स्थितहुं ॥ ५९ ॥ अज्ञातको जाना और अप्राप्तको प्राप्त किया त्याज्यको त्यागा, और मेरा वासनारहित मन आत्माकेही परत्वका आश्रय लियाहै मुझे अपने आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता ॥ ६० ॥ संसार, मोह, भय, तथा रागादि दोषोंसे रहित, नित्य उदयरूपसम, समान अंतःकरणयुक्त, सर्वथा सौम्य, सर्वरूप, सब कल्पनासे विनिर्मुक्त आकाश कोशके तुल्य विशाल और सर्वत्र एकरूप अब मैं स्थितहुं ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने कुंभपुनरागमनं नाम त्र्यधिक शततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

कुंभके रमणसे राजाकी संभोगेच्छा और स्वर्गके व्याजसे नगर जाना और खिन्न होके पुनः आगमन इत्यादि विषय इस १०४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्यध्यात्मविचित्राभिःकथाभिस्तौपरस्परम् ॥ आसातेवेद्यवेत्तारौमुहूर्तत्रितयं वने ॥ १ ॥ ततउत्थायकस्मिंश्चित्सानौरससरसे ॥ सरोवरेवनेचैवविहृतौनंदनेवने ॥ २ ॥ तेनाचारेणताभिश्चकथाभिस्तौवनेततः ॥ नीतवंतौदिनान्यष्टौतासुकाननवीथिषु ॥ ३ ॥ अथकुंभउवाचान्यद्वनंयावोगिराविति ॥ तदोमितिनृपोमत्वाताबुभौप्रविचेरतुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार विचित्र अध्यात्मकी कथा परस्पर कहतेहुये वे दोनों ज्ञानी उस बनमें तीन मुहूर्ततक रहे ॥ १ ॥ इसके अनन्तर वहांसे उठकर रागमुक्त सारस पक्षियोंके जोडोंसे शोभित, तडागयुक्त, फलादिसे रक्षा करनेवाले तथा नन्दनवनके समान आनन्ददायक किसीपर्वतके शिखरपर जाके बिहार करनेलगे ॥ २ ॥ उस अपूर्व आचारसे और उन विचित्र कथाओंसे उन दोनोंने बनके कुंजोंमें आठदिन बिताया ॥ ३ ॥ इसकेअनन्तर कुंभने कहा चलो दुसरे पर्वतकेबनमें चलें और राजाने उस बचनको अंगीकार किया तब दोनों चलदिये॥४

वनान्यनेकरूपाणिजंगलानितटानिच ॥ सरांसिगुल्मजालानिशृंगाणिगहनानिच ॥ ५ ॥ नदीर्देशांस्त थाग्रामान्नगराणिवमानिच ॥ मंजुघोषान्गिरीन्कुंजांस्तीर्थान्यायतनानिच ॥ ६ ॥ सममेवसमस्नेहौस मवेतौस्थितावुभौ ॥ समसत्वौसमोत्साहौशंसंतौतस्थतुःसदा ॥ ७ ॥ आनर्चतुःपितॄन्देवान्बुभुजाते चराघव ॥ समंतप्तेचसिक्तेचसमबुद्धीबभूवतुः ॥ ८ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारके बन, तट, तडाग, कुंज तथा रमणीय शिखरोंपर उन्होंने जाकर बिहार किया ॥ ५ ॥ अनेकप्रकारकी नदियां देश, ग्राम, नगर, बन, कोमलशब्दसहित पर्वत तथा तीर्थाश्रमोंमें जाकर वे दोनों बिहार करतेथे ॥ ६ ॥ वे दोनोंसाथही समान स्नेहयुक्त, समान धैर्य तथा उत्साहवाले और एक दूसरेकी प्रशंसा करते सदा स्थित रहतेथे ॥ ७ ॥ हे रामजी ! साथही वे दोनों देवता तथा पितरोंकी पूजा करतेथे साथही भोजन करतेथे और तप्त तथा शीतल स्थानमें दोनों समान बुद्धि रहतेथे ॥ ८ ॥

तमालवनखंडेषुमंदारागहनेषुच ॥ दंपतीस्निग्धहृदयौसुहृदौतौविरेजतुः ॥ ९ ॥ इदंगेहमिदंनेतिविक ल्पकलनामनः ॥ नजहारतयोरामवात्येवविबुधाचलम् ॥ १० ॥ विचेरतुस्तौसुहृदौक्वचिद्धूलिविधूस रौ ॥ क्वचिच्चंदनदिग्धांगौक्वचिद्भस्मानुरंजितौ ॥ ११ ॥ क्वचिद्दिव्यांबरधरौचित्रांबरधरौक्वचित् ॥ क चित्पल्लवसंछन्नौक्वचित्कुसुममंडितौ ॥ १२ ॥

अर्थ—तमालोंके बन खंडोंमें और मन्दारके कुंजोंमें स्नेहयुक्त वे दोनों स्त्री पुरुष मित्ररूपमें बिहार करतेथे ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह गृह है यह नहीं है इत्यादि कल्पना उनके मनको ऐसे न हरसकी जैसे प्रबल पवन सुमेरूको ॥ १० ॥ हे रामजी ! वे दोनों मित्र कभी तो धूलिसे लिप्त शरीर कभी चन्दनसे भूषितांग और कभी भस्मसे ग्रस्त बिहार करतेथे ॥ ११ ॥ और कभी दिव्यवस्त्रधारी, कभी चित्रविचित्र वस्त्रधारी, कभी पत्तोंसे शरीरको आच्छा- दित कियेहुये और कभी पुष्पोंसे भूषित होके बिहार करतेथे ॥ १२ ॥

दिनैःकतिपयैरेवसमचित्ततयातया ॥ सत्वोदात्ततयाचैवराजाकुंभवदाबभौ ॥ १३ ॥ अथतंसुरगर्भा भंचूडालासाशिखिध्वजम् ॥ दृष्ट्वाशोभामुपगतंचिंतयामाससमानिनी ॥१४॥ अयंपतिरदीनात्मारम्याश्च वनभूमयः ॥ इयंस्थितिरनायासायानकामेनवंचिता ॥१५॥ जीवन्मुक्तधियांभोगंयथाप्राप्तमतिष्ठताम् ॥ एकाग्रहात्मिकातुच्छामूढतैवोदिताभवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! कुछ दिनोंमेंही समान चित्त होनेसे तथा मनकी उत्तमतासे राजा कुंभके समान शोभित हुआ ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् देवपुत्रके समान शोभाको प्राप्त राजा शिखिध्वजको उस मानिनी चूडालाने देखके म- नमें बिचार किया ॥ १४ ॥ यह उदार मेरा पति है और रमणीय ये बनकी भूमि हैं यह स्थिति बिना परिश्रम प्राप्तहै जो कि रागसे वंचित नहीं है ॥ १५ ॥ यथा प्राप्त भोगोंसे अनिवृत्त दशावाले जीवन्मुक्तोंको एकही और आग्रह करना अर्थात् भोगोंको न भोगना यह मूर्खताहीका उदय होनाहै ॥ १६ ॥

निजःपतिरुदारात्मानिराधिश्वनवंवयः ॥ गृहाणिपुष्पजालानिसाहतायानकामिनी ॥ १७ ॥ वनपुष्प लतागेहेस्वायत्तेभर्तरिप्रिया ॥ रमतेयाननिर्दुःखासाहतैवदुरंगना ॥ १८ ॥ रम्यंविवाहितंकांतंप्रतिमा साद्यनिर्जने ॥ स्त्रीसतीयानरमतेतांधिगस्तुदुरंगनाम् ॥ १९ ॥ समुज्झतायथाप्राप्तमपिवेद्यविदासदा ॥ अनिंद्यंसमुदारार्थंकिंतज्ज्ञेनकृतंभवेत् ॥ २० ॥

अर्थ—यह उदार आत्मयुक्त मेरा पति व्याधिरहित तथा उत्तम नूतन अवस्थायुक्तहै और पुष्पों पूर्ण लताकी कुंज गृह हैं ऐसे अवस्थामें जिस स्त्रीने अपने पतिसे भोग न चाहा वह यदि अज्ञानिनी है तो पतिके भोगके बिघातके पापसे नष्टहै ॥ १७ ॥ बनके पुष्प तथा लताके गृहोंमें अपने आधीन पतिकेसाथ जो सुखसे नहीं रमण करती वह दुष्टअंगना नष्टही है ॥ १८ ॥ रमणीय निर्जनस्थानमे अपने विवाहित पतिको प्राप्त होके जो स्त्री रमण नहीं क- रती उस दुष्टस्त्रीको धिक्कार है ॥ १९ ॥ अनिंद्य तथा उदार पदार्थ संयुक्त यथा भोगको त्याग करनेवाले ज्ञानीपुरुष वे अपने ज्ञानका अधिक फल क्या प्राप्त किया ॥ २० ॥

तत्किंचिद्रचयाम्याशुप्रपंचंप्रेक्षयावने ॥ येनायंभूपतिर्भर्त्तारमतेमयिमानदः ॥ २१ ॥ इतिसंचिंत्यचूडालाकुंभवेषधरापतिम् ॥ प्राहकाननगुल्मस्थाकोकिलंकोकिलायथा ॥ २२ ॥ कुंभउवाच ॥ चैत्रमासस्य शुक्लोयंप्रतिपद्दिवसोमहान् ॥ अद्यास्थानंमहारंभंस्वर्गेभवतिवैहरेः ॥ २३ ॥ सन्निधानंमयातत्रकर्तव्यं पितुरग्रतः ॥ यथास्थिताहिनियतिर्नसंत्याज्याकदाचन ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये अपनी बुद्धिसे इस वनमें कुछ रचना करूं जिससे कि यह मान देनेवाला मेरा पति मुझसे रमण करै ॥ २१ ॥ ऐसा चिंतन करके कुंभवेषधारिणी तथा कुंजमें चूडाला अपने पतिसे ऐसे बोली जैसे कोकिला कोकिलसे ॥ २२ ॥ कुंभ बोला—हे राजन्! चैत्रमासके शुक्लपक्षका प्रतिपद आज यह महान् दिवस है आज स्वर्गमें इंद्रकी महासभा होगी उसमें देवता तथा ऋषियोंका बडा समागम है ॥ २३ ॥ वहां पिताजीके सन्मुख मुझे अवश्य जाना चाहिये क्योंकि यथास्थित मर्यादाको कभी त्यागना नहीं चाहिये ॥ २४ ॥

प्रतिपालयितव्यंमेत्वयेहचवनावनौ ॥ क्रीडतानवपुष्पायांसमुद्वेगमगच्छता ॥ २५ ॥ आगच्छामिदिनांतेद्यनिर्विकल्पंनभस्तलात् ॥ सर्गादतितरामेवत्वत्संगोममतुष्टये ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वामंजरींकुंभोददौमित्रायकौसुमीम् ॥ प्रीतयेस्वामिवप्रीतिंकांतांनंदनवृक्षजाम् ॥ २७ ॥ आगंतव्यंत्वयाशीघ्रमेवंवदतिभूपतौ ॥ पुप्लुवेथवनाद्व्योमशरन्मुखपयोदवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—नूतन पुष्पोंसे युक्त इस बनकी भूमिमें विहार करते हुये तुम उद्वेगको त्यागकर मेरी प्रतीक्षा करना॥२५॥ सायंकालमें आकाशसे मैं अवश्य तुमारे निकट आऊंगा क्योंकि स्वर्गसेभी अधिक प्रसन्नता तुमारे संगसे मुझे होती है ॥ २६ ॥ ऐसा कहके कल्पवृक्षके पुष्पकी मंजरी कुंभने राजाकी प्रसन्नताकेलिये अपनी प्रीतिके सदृश दिया ॥ २७॥ हे मित्र! तुम यहां शीघ्र आना ऐसा जब राजा कहरहाथा तभी वह कुंभरूपधारिणी चूडाला उस बनसे आकाशको ऐसे उडी जैसे शरदृतुका निर्जल मेघ ॥ २८ ॥

पुष्पांजलिंजहौव्योमव्रजन्कुसुमदामजम् ॥ विसारिवनवातेनहिमंहैमइवांबुदः ॥ २९ ॥ शिखिध्वजोव्रजंतंतंददर्शाऽऽदर्शनंतदा ॥ उन्निद्रोऽब्दंयथाबर्हीधीमत्प्रीतिर्हिदुस्त्यजा ॥ ३० ॥ शिखिध्वजदृशामंतेव्योम्निकुंभवपुर्जहौ ॥ शांतावर्त्तेववारिश्रीर्मुग्धास्वंरूपमाययौ ॥ ३१ ॥ प्रापमंजरिताकारकल्पवृक्षोपमंपुरम् ॥ स्फुरत्पताकमात्मीयंस्वर्गरम्यंदिवःपथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—आकाशमें जातेहुये बनके वायुसे चारोंओर फैलते हुये पुष्पोंके मालाकी पुष्पांजलि ऐसे छोडा जैसे हिमका मेघ हिमकी पुष्पांजलि ॥ २९ ॥ कुंभको जातेहुये राजा शिखिध्वजने जहांतक दृष्टिगई वहांतक गला उठाके ऐसे देखा जैसे मोर मेघको क्योंकि बुद्धिमानोंकी प्रीति दुस्त्याज्य है ॥ ३० ॥ राजा शिखिध्वजकी दृष्टिके बहर जब हुई तब कुंभके स्वरूपको त्यागके अपने चूडालारूपको वह ऐसे प्राप्त हुई जैसे आवर्तके शान्त होनेपर जल अपनी पूर्व शोभाको ॥ ३१ ॥ आकाशमार्गसे जातीहुई लताओंसे वेष्टित कल्पवृक्षके समान उडती पताकाओंसे स्वर्गके तुल्य रमणीय वह अपने नगरमें प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥

अंतःपुरमदृश्यैवविवेशललनाकुलम् ॥ मधुमासमहालक्ष्मीर्लसल्लतमिवद्रुमम् ॥ ३३ ॥ राजकार्याणिसर्वाणितत्रसंपाद्यसत्वरम् ॥ शिखिध्वजस्यपुरतःपपातफलपुष्पवत् ॥ ३४ ॥ तत्रकालद्युतिमुखंचकाराखिन्नमानसा ॥ इंदुंसनीहारमिवश्यामाखिन्नमिवांबुजम् ॥ ३५ ॥ तंदृष्ट्वातादृशाकारंसमुत्तस्थौशिखिध्वजः ॥ बभूवखिन्नचेताश्चसमुवाचेदमादृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—वह अदृश्य होके अंगनाओंसे व्याप्त अपने अन्तःपुरमें ऐसे गई जैसे वसन्तकी लक्ष्मी लताओंसे वेष्टित वृक्षको ॥ ३३ ॥ वहांपर सब राज्यके कार्य शीघ्र करके शिखिध्वजके सन्मुख फलके समान आके गिरी ॥ ३४॥ मध्ययुवाअवस्थामें प्राप्त खिन्न चित्त चूडालाने पतिके सन्मुख अपने मुखचन्द्रकी दीप्तिको ऐसे कृष्णवर्ण करलिया जैसे तुषार चन्द्रमा खिन्न कमलको ॥ ३५ ॥ उसको उसप्रकार आकारयुक्त देखकर राजा शिखिध्वज उठ खडा हुआ और खिन्न चित्त होके आदरपूर्वक उससे बोला ॥ ३६ ॥

देवपुत्रनमस्तेस्तुविमनाइवलक्ष्यसे ॥ कुंभत्वंत्यजसंरंभमिदमासनमास्यताम् ॥ ३७ ॥ संतोविदितवेद्यायेतेहिहर्षविषादजाम् ॥ नाश्रयंतिस्थितिंस्वस्थाःपद्माइवजलार्द्रताम् ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तेनक्ष्मापतिनेत्युक्तेकुंभआहासनेविशन् ॥ गिराविषण्णयाशीर्णवंशस्वनसमानया ॥ ३९ ॥ यावद्देहमवस्थासुसमचित्ततयैवये ॥ कर्मेंद्रियैर्नतिष्ठंतिनतेतत्त्वविदःशठाः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे देवपुत्र तुम उदाससे जान पडते हो तुम कुंभहो अपने मनके संतापको त्यागो और इस आसनपर बैठो ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन्! जैसे कमल जलकी आर्द्रता (गिलाई) को नहीं स्वीकार करते ऐसेही आपके सदृश

तत्ववेत्ता जन हर्ष विषादसे उत्पन्न स्थितिका आश्रय नहीं लेते ॥ ३८ ॥ उस राजाके ऐसा कहनेपर पुराने बांसके शब्दके समान आंसुसे कंठरुद्ध वाणीसे आसनपर बैठतेहुये बोला ॥ ३९ ॥ जबतक प्रारब्ध कर्म है तबतक देहकी अवस्थाओंमें समचित्त होके कर्म इंद्रियोंसे यथा भोगोंके नहीं भोगते वे शठ हैं तत्वज्ञ नहीं हैं ॥ ४० ॥

येह्यतत्त्वविदोमूढाराजन्बालतयैवते ॥ अवस्थाभ्यःपलायंतेगृहीताभ्यःस्वभावतः ॥ ४१ ॥ यावत्तिलं यथातैलंयावद्देहंतथादशा ॥ योनदेहदशामेतिसच्छिनत्यसिनांबरम् ॥ ४२ ॥ एषदेहदशादुःखपरित्या गोह्यनुत्तमः ॥ यत्साम्यंचेतसोयोगान्नतुकर्मेंद्रियस्थितेः ॥४३॥ यावद्देहंयथाचारंदशास्वंगविजानता ॥ कर्मेंद्रियैर्हिस्थातव्यंनतुबुद्धींद्रियैःक्वचित् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जो तत्ववेत्ता मूढ है वे शरीरके स्वभावसे प्राप्त अवस्थाओंसे अपनी मूर्खताहीसे भागते हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! जैसे जबतक तिल है तबतक तेलहै ऐसेही जबतक यह शरीरहै तबतक हर्षशोकादि कर्म इन्द्रियोंकी अवस्थायें भी हैं और जो कर्म इन्द्रियोंकी अवस्था तोडताहै वह मानो खड्गसे आकाशको काटताहै ॥ ४२ ॥ इन देहकी दशाओंमें जो दुःख होतेहैं उनको समाधिआदिसे न देखना यही उत्तम है न कि कर्मेन्द्रियोंको रोककर दुःख सहना ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जबतक देहकी दशाये हैं तबतक कर्मेंद्रियोंसे यथाप्राप्त विषयोंको भोगतेहुये ज्ञानीकोभी स्थित रहना और मनआदि ज्ञानइन्द्रियोंसे तो सदासमानही रहना चाहिये ॥ ४४ ॥

परमेष्ठिप्रभृतयःसर्वएवोदिताशयाः ॥ देहावस्थासुतिष्ठंतिनियतेरेषनिश्चयः ॥ ४५ ॥ अज्ञतत्त्वज्ञ भूतानिहश्यजातमिदंहियत् ॥ तत्सर्वमेवनियतिंधावत्यंबुयथांबुधिम् ॥ ४६ ॥ तज्ज्ञाबुद्ध्यादिसाम्येन पाण्यादिचलनेनच ॥ नियतिंयापयंतीमांयावद्देहमखंडिताम् ॥ ४७ ॥ अज्ञास्तुसर्वक्षोभेणसुखदुःखद शाहताः ॥ नियतिंयापयंत्यंगदेहलक्षैर्विखंडिताम् ॥ ४८ ॥ इत्थंसुखेषुननुदुःखदशासुचेत्थंस्थातव्य मित्यधिगतंयदिहांगजीवैः ॥ अज्ञज्ञभूतनिवहस्फुरितस्तदेवंदुर्लंघ्यएषनियतोनियतेर्विलासः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चू० जीवन्मुक्तव्यवहारप्रतिपादनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे आदि लेके सब महात्माजन देहकी अवस्थाओंसे स्थित रहते हैं यह ईश्वरकी नियतिका नियम है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! अज्ञानी हो वा ज्ञानी सब जगत्के प्राणीमात्र ईश्वरकी नियति प्रारब्ध कर्मको भोगाती है उसकी ओर ऐसे दौडते हैं जैसे जल समुद्रकी ओर ॥ ४६ ॥ ज्ञानीजन बुद्धि आदिकी समानतासे हस्त पादादि कर्मइंद्रियोंसे कार्य करतेहुये देहकी स्थिति पर्यन्त ईश्वरकी नियतिको पूर्ण रीतिसे पालन करतेहैं ॥ ४७ ॥ हे प्रिय ! और अज्ञानी जन तो सर्वथा क्षोभ संयुक्त सुखदुःखकी दशाओंसे मारेहुये लाखों शरीर धारण करके देहकी स्थिति पर्यन्त अपूर्ण रीतिसे स्थितिका पालन करते हैं ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्राणीको सुखकी दशाओंसे इसप्रकार और दुःखकी दशाओंमें इसप्रकार रहना होगा इसप्रकार जीवोंने अपने प्रारब्ध कर्मके अनुसार ललाटमें लिखित प्राप्त किया है उस विषयमें चाहे ज्ञानीहों वा अज्ञानीहों परंतु नियतिके प्रारब्ध कर्मका विलास सबके उल्लंघन करनेके अयोग्यहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालो० जीवन्मुक्तव्यवहार प्रतिपादनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

ऋषि दुर्वासाके शापसे कुंभको स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा परस्परके समाधानसे प्रीतिपूर्वक उन दोनोंकी उस दशामें स्थितिका वर्णन इस १०५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

शिखिध्वजउवाच ॥ एवंस्थितेमहाभागकथमुद्वेगमीदृशम् ॥ लब्धवानसिदेवोपिवदवेद्यविदांवर ॥१॥ कुंभउवाच ॥ शृणुकार्यमिदंचित्तंमदीयंवसुधाधिप ॥ कथयामितवाशेषंसर्गेयद्वृत्तमद्यमे ॥ २ ॥ सुहृद्यावेदितंदुःखंपरमायातितानवम् ॥ घनंजडंकृष्णमपिमुक्तवृष्टिरिवांबुदः ॥ ३ ॥ सुहृदापृच्छतासाधुचे तोयातिप्रसन्नताम् ॥ स्वच्छतोपगतेनाशुकतकेनजलंयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला–हे महाभाग! हे वेद्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इसप्रकार नियतिके अनुसार सब प्राणी समूहके स्थित रहनेपर आप देवपुत्र होके भी ऐसे क्षोभको कैसे प्राप्तहुये ॥ १ ॥ कुंभ बोला–हे राजन् ! चित्त लगाके मेरी दशाको सुनो ! आज स्वर्गमें जो कुछ वृत्तांत हुआहै वह तुमसे पूर्ण रीतिसे कहुंगा ॥ २ ॥ क्योंकिं मित्रसे कहाहुआ दुःख अति न्यूनताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वृष्टिके अनंतर अति कृष्ण भी मेघ श्वेतरूपताको ॥ ३ ॥ हे साधो ! निष्कपट मित्रके पूंछनेसे चित्त ऐसे प्रसन्नताको प्राप्त होताहै जैसे कतकसे जल ॥ ४ ॥

अहंतावदितोयातोभवतेपुष्पमंजरीम् ॥ दत्वागगनमुल्लंध्यसंप्राप्तश्चत्रिविष्टपम् ॥ ५ ॥ ततःपित्रामहेंद्रस्यसभास्थानेयथाक्रमम् ॥ स्थित्वोत्थायतथोत्थानकालेपित्राविसर्जितः ॥ ६ ॥ इहागंतुमहंत्यक्त्वा स्वर्गसंप्राप्तवान्नभः ॥ दिवाकरहयैःसार्धवहाम्यनिलवर्त्मनि ॥ ७ ॥ अथैकत्रगतोभानुरेकेनान्येनव र्त्मना ॥ आगच्छाम्यहमाकाशंसागरापतिताकृतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! मैं आपको पुष्पकी लता देके यहांसे गया आकाशको उल्लंघन करके स्वर्गमें पहुचा ॥ ५ ॥ उसके अनंतर सभास्थानमें पिताकेसाथ बैठा सभाके कृत्यके पश्चात् उठनेके समय पितासे बिदाहुआ ॥ ६ ॥ यहां आनेके अर्थ स्वर्गको त्यागकर मैं आकाशमार्गमें प्राप्तहुआ और सूर्यके तुरंगोंके साथ वायु मार्गसे चला ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् सूर्य भगवान् अपने अन्यमार्गसे गये और मैं समुद्रमें तैरतेहुयेके तुल्य अन्य मार्गसे चला ॥ ८ ॥

अथाग्रेवारिपूर्णानांमेघानांमध्यवर्त्मना ॥ अपश्यंमुनिमायांतमहंदुर्वाससंजवात् ॥ ९ ॥ पयोधरपटच्छन्नंविद्युद्वलयभूषितम् ॥ अभिसारिकयातुल्यंधाराधौतांगचंदनम् ॥ १० ॥ स्थितांसुतरुसुच्छायामापगांवसुधातले ॥ वेगेनाभिसरंतंतांतपोलक्ष्मीमिवप्रियाम् ॥ ११ ॥ तस्यकृत्वानमस्कारमुक्तंखेवहता मया ॥ मुनेनीलाभ्रवस्त्रस्त्वमभिसारिकयासमः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनंतर जलसे मेघोंके मध्यमार्गसे दुर्वासा ऋषिको वेगसे जातेहुये देखा ॥ ९ ॥ मेघपटलसे आच्छन्न विद्युत्रूप कंकणसे भूषित, अभिसारिका (नील मेघपटलके आच्छादनसे व्यभिचारिणी स्त्री) के तुल्य और जलकी धारासे सब अंगोंमें चंदनसे रहित वे दुर्वास मुनि थे ॥१०॥ उत्तम तटके वृक्षोंकी छाया संयुक्त पृथिवीतलमें स्थित गंगाजीके निकट वेगसे ऐसे जातेथे मानो अपनी तपोलक्ष्मीरूप प्रियाके निकट ॥ ११ ॥ आकाशमें जातेहुये मैंने उनको नमस्कार करके कहां कि हे मुने ! आप नीलमेघरूपी वस्त्र धारण करनेसे ऐसे भान होतेहो जैसे अभिसारिका (व्यभिचारिणी) स्त्री ॥ १२ ॥

इत्याकर्ण्यमुमोचासौमयिमानदशापकम् ॥ स्तनकेशवतीकांताहावभावविलासिनी ॥ १३ ॥ गच्छानेनदुरुक्तेनरात्रौयोषाभविष्यसि ॥ इतिश्रुत्वाऽशुभंवाक्यमुत्थितंजर्जरद्विजात् ॥ १४ ॥ विमृशामिमनाग्यावत्तावदंतर्हितोमुनिः ॥ इत्युद्वेगमनाःसाधोसंप्राप्तोहंनभस्तलात् ॥ १५ ॥ एतत्तेकथितंसर्वसंपन्नोस्मिनिशांगना ॥ अतिवाह्यंदिनांतेषुस्त्रीत्वमेतन्मयाकथम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मानद ! इस वचनको सुनके उन्होंने मुझे शाप दिया कि स्तनके शादिसंयुक्त हावभावसे विलासवती ॥ १३ ॥ स्त्री प्रतिरात्रिमें इस दुर्वाक्यके कहनेसे तू होगी ऐसा अशुभ शाप मैंने वृद्ध दुर्वासा ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ सुना ॥ १४ ॥ जबतक मैं कुछ विचार करूं इतनेहीमें वे मुनि अंतर्धान होगये हे साधो ! इस कारण उदास चित्त मैं आकाशसे यहां प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! यह सब मैंने आपसे कहां अब मैं सब रात्रियोंमें स्त्रीरुपको प्राप्तहुई सो दिनोंके अंतमें स्त्रीरूपको कैसे बिताऊंगा ॥ १६ ॥

योषित्स्तनवतीरात्रौवक्तव्यंकिंमयापितुः ॥ संस्तौभवितव्यानामहोनुविषमागतिः ॥ १७ ॥ अहमप्ययहैवायूनामामिषतांगतः ॥ कष्टंमदपहारेणकलहोजायतेधुना ॥ १८ ॥ दिविदेवकुमाराणांकामाकुलधियामिह ॥ गुरुदेवद्विजातीनांलज्जापरवशात्मना ॥ १९ ॥ कथमग्रेमयासम्यग्वस्तव्यंयामिनीस्त्रिया ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाक्षणमेकंसातूष्णींस्थित्वामुनिस्थितौ ॥ २० ॥

अर्थ—रात्रिमें स्तन केशादि स्त्रीरूप धारण करके अपने पितासे क्या कहुंगी अहो ! संसारमें होनेवाले प्राणियोंकी भयंकर गति है ॥ १७ ॥ अहो ! मैं भी युवापुरुषोंके अमिषभावको प्राप्तहुआ, अहो ! मेरे हरनेकेलिये युवापुरुषोंमें अब कलह होगा ॥ १८ ॥ स्वर्गमें देव कुमारोंके गुरू, देवता तथा द्विजातियोंके संमुख ॥ १९ ॥ लज्जामें परवश मैं कैसे रहूंगी श्रीवसिष्टजी बोले कि–ऐसा कहके एक क्षण पर्य्यन्त वह मौन स्थित रही ॥ २० ॥

धर्माश्रित्यकुंभोत्रपुनराहरघूद्वह ॥ किमज्ञइवशोचामिकिंममक्षतमात्मनः ॥ २१ ॥ यथागतमयंदेहो मत्तोन्योनुभविष्यति ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ परिदेवनयाकोर्थोदेवपुत्रतथैतया ॥ २२ ॥ यदायातितदा

यातुदेहस्यात्मानलिप्यते ॥ कानिचिद्यानिदुःखानिसुखानिविहितानिच ॥ २३ ॥ तानिसर्वाणिदेहस्यदे हिनोनतुकानिचित् ॥ यदित्वमपिकार्याणामखेदार्होपिखिद्यसे ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह कुंभरूपधारिणी चूडाला ऐसा कहके धैर्यका अवलंबन करके पुनः बोली कि-अज्ञानीके तुल्य मैं क्यों शोच करती हुं स्त्रीरूप होनेसे मेरे आत्माकी क्या हानि हुई ॥ २१ ॥ प्रारब्धकर्मसे प्राप्त स्त्रीधर्मको मुझसे भिन्न यह शरीरही अनुभव करेगा, शिखिध्वज भी बोला—कि हे देवपुत्र ! इस तुमारे विलापसे क्या प्रयोजन ॥ २२ ॥ देहको जो चाहै सो आवै इससे आत्माका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है जो कुछ सुख वा दुःख नियतिसे विधान किये गये हैं ॥ २३ ॥ वे सब देहकेही लिये हैं न कि आत्माके यदि तुम संसारके कार्योंके खेदके अयोग्य होकर भी खेद करते हो ॥ २४ ॥

तदन्येषामुपायःस्यात्कइवागमभूषणः ॥ खेदेखेदोचितंवाच्यमितिकिंचित्त्वमुक्तवान् ॥ २५ ॥ इदानीं समतामेत्यतिष्ठाखिन्नोयथास्थितम् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तावेवमादिभिर्वाक्यैरन्योन्याश्वासनंस्व यम् ॥ २६ ॥ कृत्वास्थितौवनस्निग्धौसुहृदौखेदिनौमिथः ॥ अथार्कोप्यस्यकुंभस्यस्त्रीत्वमुत्पादयन्निव ॥ जगामास्तंजगद्दीपोदीपःस्नेहक्षयादिव ॥ व्यवहारभरैःसार्धंपद्माःसंकोचमाययुः ॥ २८ ॥

अर्थ—तो अन्यजनोंकेलिये तुमारे सदृश शास्त्रमें निपुण कौन शरण होसकताहै इसलिये खेद होनेपर उसके उचित कहना चाहिये इसलिये तुमने कुछ कहा ॥ २५ ॥ इससमय समताको प्राप्तहो और खेदरहित होके यथाप्राप्त स्थितरहो श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इत्यादि वाक्योंसे उन दोनोंने परस्पर समाधान करके ॥ २६ ॥ स्नेहयुक्त और परस्पर खिन्न चित्त उस बनमें स्थितरहे, इसके अनन्तर जगत्के सूर्यभगवान् भी कुंभके स्त्रीत्वधर्मको उत्पन्न करते हुयेके समान ॥ २७ ॥ अस्ताचलको ऐसे प्राप्तहुये जैसे स्नेह (तेल)के नाशसे दीप, और व्यवहारोंके समूहके साथ कमलगण संकुचित होगये ॥ २८ ॥

मार्गाश्चपथिकैःसार्धंपांथस्त्रीहृदयानिच ॥ दाशवद्विहगान्सर्वान्कुर्वदेकत्रसंचितान् ॥ २९ ॥ कारका रत्नजालाढ्यंभुवनंसाम्यतांययौ ॥ खंहसदिवताराढ्यंविकासिकुमुदाकरम् ॥ ३० ॥ ययावुन्नादचक्राह भ्रमद्भ्रमरपेटककम् ॥ सुहृदौतावथोत्थायसंध्यामुद्यन्निशाकराम् ॥ ३१ ॥ वंदयित्वातथाकृत्वाजप्यंगु ल्मांतरेस्थितौ ॥ ततःकुंभःशनैस्तत्रस्त्रैणमभ्याहरन्वपुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और पथिकोंके उनके मार्ग तथा पथिकोंकी स्त्रियोंके हृदय भी संकोचको प्राप्त हुये, और दाशवर्गोंके समान सब पक्षियोंके एक स्थानमें संचय करते हुये के समान ॥ २९ ॥ ताराक्रूप रत्नोंके समूहसे पूर्ण भुवनमण्डल भी समताको प्राप्त हुआ, और चक्रपक्षी तथा भ्रमणशील भ्रमरोंका समूह विकसित कमलोंको हंसते हुयेके समान ताराओंसे पूर्ण आकाशमण्डलको उडा, इसके पश्चात् दोनों मित्र उदय होतेहुये चन्द्रमासंयुक्त सन्ध्याको ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ वंदना करके और सायंकालकी जप करके लतागुल्मके मध्यमें स्थितरहे, इसके अनन्तर कुंभ भी स्त्रीरूपको धीरे २ प्रकट करतेहुये ॥ ३२ ॥

शिखिध्वजंपुरःसंस्थंप्रोवाचगलदक्षरम् ॥ पतामीवस्फुरामीवद्रवामीवांगयष्टिभिः ॥ ३३ ॥ लज्जयैवच तेराजन्मन्येस्त्रीत्वंव्रजाम्यहम् ॥ पश्येमेपरिवर्धंतेराजन्ममशिरोरुहाः ॥ ३४ ॥ प्रस्फुरत्तारकामालादि नांततिमिराइव ॥ पश्येमौममजायेतेप्रोन्मुखावुरसिस्तनौ ॥ ३५ ॥ कोरकाविवपद्मिन्यावसंतेगगनोन्मु खौ ॥ आगुल्फमेवलंबानिसंपद्यंतेबराणिमे ॥ ३६ ॥

अर्थ—गदगदस्वरसे संयुक्त मुख स्थित राजा शिखिध्वजसे बोला-हे राजन् ! लज्जाहीसे मैं मानों गिरतीहुं, संचलित होतीहुं, अंग लताओंके साथ डालती जातीहुं ॥ ३३ ॥ तुमारे संमुखही स्त्रीरूपको प्राप्त होतीहुं, हे राजन् ! देखो मेरे केश ऐसे बढते जातेहैं ॥ ३४ ॥ जैसे दिनके अन्तमें स्फुरित तारागणरूप मालायुक्त अन्धकार देखो दोनों मेरे कुच ऐसे उठे ऊपरको मुख किये चलेजातेहैं जैसे वसन्तऋतुमें आकाशकी और मुख किये कमलिनीकी दो कलिकायें और एँडीपर्यंत लम्बे मेरे वस्त्र होते जातेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

देहादेवसखेपश्यस्त्रियाइवशनैःशनैः ॥ भूषणान्युत्तरत्नानिमाल्यानिविविधानिच ॥ ३७ ॥ पश्येमान्यं गजायंतेस्वांगेभ्योवृक्षपुष्पवत् ॥ पश्यायंस्वयमेवाद्यचंद्रांशुकरशोभनः ॥ ३८ ॥ मूर्ध्निपट्टांशुकोजातो नीहारोद्राविवांगमे ॥ सर्वाणिकांतालिंगानिजातानिममानद ॥ ३९ ॥ हाधिकृष्टंविषादोमेकिंकरोम्यं गनास्म्यहम् ॥ हाधिकष्टमहोसाधोस्थितएवाहमंगना ॥ ४० ॥

अर्थ—हे मित्र! देखो मेरी देहमेंही स्त्रीके योग्य सब आभूषण रत्न और अनेकप्रकारकी मालायें निकली आती हैं ॥ ३७ ॥ हे मित्र! देखो मेरे अंगसेही सब पदार्थ ऐसे निकलरहे हैं जैसे वृक्षसे पुष्प, देखो यह चन्द्रमाके किरणके समान शोभायमान ॥ ३८ ॥ यह पट्ट वस्त्र मेरे अंगसे स्वयं जैसे पर्वतसे हिम, हे मान देने हारे, बहुत कहनेसे क्या स्त्रीके संपूर्ण चिन्ह मेरे होगये ॥३९॥ हा! धिक्! हे साधो! अहो बडे कष्टकी वार्ता है अब तो मैं स्त्रीरूप होगई ॥ ४० ॥

संविदानुभवाम्यंतर्नितंबजघनेत्विमे ॥ विपिनेकुंभइत्युक्त्वातूष्णींखिन्नोबभूवह ॥ ४१ ॥ राजापिचत मालोक्यतथैवासीद्विषण्णधीः ॥ मुहूर्तमात्रेणोवाचशिखिध्वजइदंवचः ॥ ४२ ॥ कष्टंसोयंमहासत्वःसं पन्नावरवर्णिनी ॥ साधोविदितवेद्यस्त्वंजानासिनियतेर्गतिम् ॥ ४३ ॥ अवश्यभाविन्यर्थेस्मिन्माखिन्न हृदयोभव ॥ आपतंतिदशास्तास्तास्तासुधियांदेहमात्रके ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन्! मैं अपने अन्तःकरणमें अनुभव करती हूं कि यह मेरा नितम्ब, ये जघये कुच और यह उपस्थ इंद्रिय है ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके उस बनमें कुंभ खिन्न होगया और एक मुहूर्तके पश्चात् शिखिध्वजने इस वचनको कहा ॥ ४२ ॥ अहो! कष्टकी वार्ता है कि यह महाबुद्धिमान् उत्तम अंगना होगया हे साधो! तुम तो आत्मवेत्ता हो और नियतिकी गतिको जानतेहो ॥ ४३ ॥ अवश्य भावीवस्तुमें तुमको खिन्नचित्त नहीं होना चाहिये, और ये सुखदुःखादिकी दशा बुद्धिमानोंके शरीरमात्रमें आके पडती हैं ॥ ४४ ॥

नचेतस्यधियांत्वेताश्चित्तंयांतिनदेहकम् ॥ कुंभउवाच ॥ एवमस्त्वनुतिष्ठामियामिनीस्त्रीत्वमात्मनः ॥ ॥ ४५ ॥ नखेदमनुगच्छामिनियतिःकेनलंघ्यते ॥ इतिनिर्णयितौखेदंतंनीत्वातनुतामिव ॥ ४६ ॥ एकत ल्पेनिशांतूष्णींनीतवंतौचिरेणताम् ॥ अथप्रभातेतत्स्त्रैणंवपुरुत्सृज्ययौवनम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—न कि चित्तमें और मूर्खोंके चित्तमेंभी प्रवेश करती हैं न कि केवल देहमेंही कुंभ बोला कि–हे साधो! ऐसाही हो रात्रियोंमें मैं अपना स्त्रीत्व धारण करूंगा ॥ ४५ ॥ और खिन्न चित्त नहीं होऊंगा क्योंकि ईश्वरकी नियतिका उल्लंघन कौन करसकताहै ऐसा निर्णय करके उन दोनोंने उस खेदको सूक्ष्मके समान करदिया ॥ ४६ ॥ और एकही शय्यापर चुपचाप दोनों चिरकालमें उस रात्रिको बिताया और प्रातःकाल होनेपर युवाऽवस्थायुक्त उस स्त्रीशरीरको त्यागकर ॥ ४७ ॥

बभूवकुंभःकुंभाभःकुचप्रोज्झितमूर्तिमान् ॥ इतिसाराजमहिषीचूडालावरवर्णिनी ॥ ४८ ॥ कुंभत्व मास्थिताभर्तुःपश्चात्स्त्रीत्वमुपागता ॥ विजहारवनांतेषुकुमारीधर्मिणीनिशि ॥ कुंभरूपधराचाह्निभर्त्रा मित्रेणसंयुता ॥ ४९ ॥ कैलासमंदरमहेंद्रसुमेरुसह्यसानुष्वविस्खलितयोगगमागमासा ॥ साकंप्रि येणसुहृदाभवतायथेच्छंस्रग्दामहारवलिताविजहारनारी ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने कुंभस्यस्त्रीत्वलाभोनामपंचाधिकशततमःसर्गः ॥ १०५ ॥

अर्थ—वह कुंभ जिसके कुच प्रथम रात्रिमें मूर्तिमान् कलशके समान थे पुनः कुंभरूप होगया, हे रामजी! इसप्रकार वह राजाका पटरानी श्रेष्ठवर्णयुक्त चूडाला प्रथम कुंभरूप धारण किया पश्चात् अपने पतिके लिये स्त्रीरूप धारण किया, वह सदा रात्रिमें अविवाहित कन्याके धर्मको पालन करती हुई और दिनमें कुंभके रूपको धारण करती हुई अपने पतिका मित्र होके बनोंमें भ्रमण करतीथी ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ और कैलास, मन्दराचल, महेंद्र, सुमेरु, और सह्यआदि पर्वतोंके शिखरोंपर अनिरुद्ध गमनागमनवाली तथा अनेकप्रकारके पुष्पोंके हारोंसे वेष्टित उस स्त्रीने अपने प्रियपतिके साथ इच्छापूर्वक विहार किया ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने कुंभस्य स्त्रीत्वलाभो नाम पंचाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस १०६ के सर्गमें महेंद्रपर्वतपर अग्निको साक्षी देकर उनका विवाह और सुवर्णकी गुफामें पुष्पकी शय्यापर उन दोनोंका समागम वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततःकतिपयेष्वेवदिवसेषुगतेषुसा ॥ इदंप्रोवाचभर्तारंकुंभरूपधरासती ॥ १ ॥ राजन्राजीवपत्राक्षममेदंवचनंशृणु ॥ निशायांप्रत्यहंतावत्स्थितएवामहमंगना ॥ २ ॥ तदिच्छाम्यंगनाथर्मंनिपुणीकर्तुमीदृशम् ॥ भर्त्रेकस्मैचिदात्मानंविवाहेनददाम्यहम् ॥ ३ ॥ तद्भवानेवमेमर्त्तारोचते भुवनत्रये ॥ गृहाणमांविवाहेनभार्यात्वेनिशिसर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! कुछ दिनोंकेही जानेपर कुंभरूप धारण करनेवाली उस चूडालाने अपने पतिसे यह वचन बोली ॥ १ ॥ हे राजन्! हे कमलपत्राक्ष! मेरे इस बचनको सुनो कि मैं प्रत्येक रात्रिमें उत्तम स्त्रीका रूप धारण करतीहुं ॥ २ ॥ इसलिये अपने इसप्रकार उत्तम स्त्रीरूपको सफल करना चाहतीहुं किसी पतिको विवाहमें अपनेताई अर्पण करदूं ॥ ३ ॥ सो तीनोंलोकमें आपही मुझे पति अच्छे लगतेहो सो सर्वदा रात्रिके लिये मेरा पाणिग्रहण (विवाह) करके ग्रहण करें ॥ ४ ॥

अयत्नोपनतंसाधोप्रियेणसुहृदासह ॥ स्त्रीसुखंभोक्तुमिच्छामिमामेविघ्नकरोभव ॥ ५ ॥ क्रमप्रवृत्तमासृष्टेःसुखंसाध्यंमनोरमम् ॥ प्रकृतंकुर्वतःकार्यंदोषःकइवजायते ॥ ६ ॥ इच्छानिच्छेफलेत्यक्त्वासमंतात्सर्ववस्तुषु ॥ वयंनसेच्छानानिच्छाःकुर्मस्तेनेदमीप्सितम् ॥ ७ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ कृतेनानेनकार्येण नशुभंनाशुभंसखे ॥ पश्यामितन्महाबुद्धेयथेच्छसितथाकुरु ॥ ८ ॥

अर्थ—हे साधो! सो बिना परिश्रमसे प्राप्त प्रियमित्रके साथ मैं स्त्रीका सुखभोग करना चाहतीहुं इसलिये आप अनंगीकार करके मेरे विघ्नकारक न हों ॥ ५ ॥ हे राजन्! सृष्टिके आरंभसे आजतक क्रम प्राप्त यह विवाहरूप कार्यको इच्छा अनिच्छा तथा उनके फलको त्याग करते हुये हमलोगोंको क्या दोषहै, और हम दोनों तो इच्छा तथा अनिच्छा दोनोंसे रहित हैं इसलिये यह अभीष्ट कार्य करैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ शिखिध्वज बोला—हे महाबुद्धे मित्र! इस कार्यके करनेसे मैं न कुछ शुभ देखताहुं न अशुभ इसलिये तुमारी जो इच्छाहो सो करो ॥ ८ ॥

समतांसंप्रयातेनचेतसेदंजगत्त्रयम् ॥ स्वरूपमेवपश्यामियथेच्छसितदाचर ॥ ९ ॥ कुंभउवाच ॥ यद्येवंतन्महीपाललग्नमद्यैवशोभनम् ॥ राकेयंश्रावणस्यास्यह्यःसर्वंगणितंमया ॥ १० ॥ रात्रावद्योदितेचंद्रेपरिपूर्णकलामले ॥ जन्यत्रोनौमहाबाहोद्वयोरेवभविष्यति ॥ ११ ॥ महेंद्राद्रिशिरःशृंगसानावद्यमनोरमे ॥ रत्नदीपप्रकाशाढ्येमणिकंदरमंदिरे ॥ १२ ॥

अर्थ—क्योंकि चित्तमें समता आनेपर तीनोंजगत्को मैं समानही देखताहुं इसलिये जैसी तुमारी इच्छाहो वैसा करो ॥ ९ ॥ कुंभ बोला कि हे राजन्! यदि ऐसा है तो आजही उत्तम लग्नहै आज यह श्रावणकी पूर्णिमाहै और कल मैंने विवाहका लग्नगणित करके शुद्ध करलियाहै ॥ १० ॥ हे राजन्! आज रात्रिमें निर्मल तथा परिपूर्णचंद्रमाके उदय होनेपर हम दोनोंका गांधर्वविवाह होगा ॥ ११ ॥ हे राजन्! रत्नरूपी दीपोंके प्रकाशोंसे पूर्ण मणिमय कंदरारूप गृहोंसे संयुक्त, तथा अति मनोरम महेन्द्र पर्वतके शिखरपर हमारा विवाह रात्रिमें अपने पति चंद्रमाके साथ ताराणरूप स्त्रियां देखें ॥ १२ ॥

पुष्पभारानतोत्तुंगवृक्षराजिविराजिते ॥ वनपुष्पलतालास्यनारीनृत्यमनोहरे ॥ १३ ॥ निशिव्योमगतास्ताराभर्तापूर्णेंदुनासह ॥ आवयोःपरिपश्यंतुकर्णांतागतलोचन ॥ १४ ॥ उत्तिष्ठात्मविवाहार्थंकुर्वःकाननकोटरात् ॥ राजंश्चंदनपुष्पादिसंभारंरत्नसंयुतम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाकुंभउत्थायसहतेनमहीभृता ॥ कुसुमावचयंचक्रेतथारत्नादिसंचयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और पुष्पोंके भारोंसे झुके हुये ऊंचे वृक्षोंकी पंक्तियोंसे शोभित और बनके पुष्प तथा लतारूपी स्त्रियोंके नृत्यसे मनोहर शिखरपर हे दीर्घ नेत्र! हम दोनोंका विवाह सब देखैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन्! उठो अपने विवाहके लिये इस बनमेंसे रत्नसहित चंदन पुष्प आदि सामग्री एकत्र करैं ॥ १५ ॥ ऐसा कहके उस उस राजाके साथ वह कुंभ उठके पुष्प तथा रत्न आदि पदार्थोंको एकत्र किया ॥ १६ ॥

ततोमुहूर्त्तमात्रेणरत्नसानौसमेशुभे ॥ समालंभनपुष्पाणांताभ्यांवैराशयःकृताः ॥ १७ ॥ हारांबरमणींद्रादिराशयस्त्वपरेजिरे ॥ सौभाग्यस्येवकामेनकोशाःकालेनसंभृताः ॥ १८ ॥ तथाजन्यत्रसंभारंकृत्वा कांचनकंदरे ॥ ययतुस्तौमहामित्रेस्त्रातुंमंदाकिनींनदीम् ॥ १९ ॥ तत्रैनंस्त्रापयामासमहाराजंमहादरात् ॥ गजकुंभोपमस्कंधंकुंभोमंगलपूर्वकम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् एक मुहूर्तमेंही समान तथा सुंदर भूमिसहित रत्नके शिखररूपी अंगणमें अनेकप्रकार देवताओंके पूजनेके पुष्पोंकी राशियां उन दोनोंने एकत्र करदिया ॥ १७ ॥ और रत्नोंके हारमणि तथा वस्त्रादि अन्य

शिखरपर ऐसे एकत्र किया जैसे सौभाग्यसे सुकृतके परिपाकसे भोगानेवाला काल एकत्र करै ॥ १८ ॥ और उस सुवर्णकी कंदरामें विवाहकी सामग्री एकत्र करके दोनों महामित्र मंदाकिनी (गंगा) जी स्नान करनेको गये ॥१९॥ वहांपर जाके गजके कुंभके समान कंधेवाले इस महागजको कुंभने मंगलपूर्वक स्नान कराया ॥ २० ॥

भविष्यद्दयितारूपांभविष्यद्दयितोंगनाम ॥ चूडालांस्नापयामासकुंभरूपधरांप्रियाम् ॥ २१ ॥ पूजयामासतुःस्नातौतत्रदेवान्पितॄन्मुनीन् ॥ यथाक्रियाफलेनिच्छौक्रियात्यागेतथैवतौ ॥ २२ ॥ नित्यज्ञानरसात्तृप्तौव्यवस्थायांजगत्स्थितेः ॥ चक्रातेभोजनंभव्यंतावन्योन्यसमीहितम् ॥ २३॥ कल्पवृक्षद्दुकूलानिपरिधायसितानितौ ॥ फलानिभुक्त्वाजन्यत्रस्थानमाययतुःक्रमात् ॥ २४ ॥

अर्थ—और भविष्यत्कालमें प्रियादपिताका रूप धारण करनेवाली कुंभरूप धारिणी चूडालाको राजाने भी स्नान करवाया ॥ २१ ॥ स्नान करके उन दोनोंने वहांपर देवता पितर तथा ऋषियोंकी पूजा की क्योंकि वे दोनों जैसे क्रियाके फलमें इच्छारहित थे ऐसेही क्रियाके त्यागमें इच्छारहितथे ॥ २२ ॥ नित्य ज्ञानरूपरससे तृप्त दोनों जगत्की मर्य्यादाके लिये परस्परकी सिद्धिसे कल्पित उत्तम अन्न दोनोंने भोजन किया ॥ २३ ॥ कल्पवृक्षसे प्राप्त उत्तम स्वच्छ वस्त्रोंको धारण करके और फलको भोजन करके शास्त्रोक्तरीतिसे दोनों विवाहकी वेदीके समीप आये ॥ २४ ॥

एतावताथकालेनतयोर्जन्यत्रसोत्कयोः ॥ प्रियंकर्तुमिवास्ताद्रिंद्रागित्येवाविशद्रविः ॥ २५ ॥ अथसंध्याक्रमेवृत्तेकृतेजप्यागमर्षणे ॥ विवाहदर्शनायैवताराजालेखमागते ॥ २६ ॥ मिथुनैकसखीयामाकुमुदोत्करहासिनी ॥ प्रालेयजालप्रकरंविकिरिंतीसमाययौ ॥ २७ ॥ रत्नदीपान्बहून्सानौकुंभःसम्यगयोजयत् ॥ ज्योतींषींद्वर्कयुक्तानिपद्मोद्भवइवांबरे ॥ २८ ॥

अर्थ—इतनेकालमें विवाहके लिये अति अभिलाषा युक्त उन दोनोंका प्रिय करनेके लिये मानो सूर्यभगवान् शीघ्रही अस्ताचलको गये ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् सन्ध्यावन्दनविधि तथा अघमर्षण जपके समाप्त होनेपर मानो विवाहके कौतुक देखनेके लिये तारागण आकाशमें प्रगट हुये ॥ २६ ॥ और पुष्पोंके समूहसे हास्यधारण किये हुये स्त्री पुरुषोंके प्रधान सखीरात्रि हिमकणोंकी वर्षा करती हुई आके प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ अनेक प्रकारके प्रकाशमान रत्नोंके दीपोंको पर्वतके शिखर कुंभने ऐसे नियुक्त किया जैसे सूर्यचन्द्रमासहित नक्षत्रगणोंको आकाशमें ब्रह्माजी २८

भूषयामासराजानंस्त्रीत्वंगच्छन्निशागमे ॥ चंदनागुरुकर्पूरपूरैर्मृगजकुंकुमैः ॥ २९ ॥ हारकेयूरकटकैस्तथाकल्पलतांशुकैः ॥ स्त्रगुद्दामावतंसैश्चमाल्यैश्चविविधोचितैः ॥ ३० ॥ तथाकल्पलतागुच्छैर्मंदारैःपारिजातकैः ॥ संतानैर्बहुरत्नैश्चमौलिनाचंद्ररूपिणा ॥ ३१ ॥ एतावताथकालेनवधूत्वंकुंभआययौ ॥ घनस्तनभराक्रांतोबभूवाशुविलासवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और रात्रिमें स्त्रीरूप धारण करते हुये कुंभने चंदन कर्पूर तथा केसरआदिसे राजाको भूषित किया ॥२९॥ हारविजायट कडे कल्पवृक्षसे लब्ध अनेक सूक्ष्मवस्त्रोंसे अनेक प्रकार शिरोभूषण तथा योग्यमालाओंसे राजाको शोभित किया ॥ ३० ॥ और कल्पलताके गुच्छोंसे, मंदार, पारिजात, तथा संताननामक कल्पवृक्षके पुष्पोंसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे और चन्द्रमाके चूडामणि (मुकुट) से राजाको सुसज्जित किया ॥ ३१ ॥ इतने समयमें घटके सदृश स्तनको धारण किये हुये और स्त्रियोंके योग्य अनेक प्रकारके विलासयुक्त पूर्ण स्त्रिकारूप कुंभनेभी धारण किया

इदंसंचिंतयामाससंपन्नोयमहंवधूः ॥ कामायात्मामयादेयःकार्यकालोचितंकिल ॥ ३३ ॥ इयमस्मिवधूःकांताभर्त्तात्वंमेपुरःस्थितः ॥ गृहाणकाममामेहिकालोयंतवहृच्छय ॥ ३४ ॥ इतिसंचिंत्यभर्त्तारमग्रस्थगहनस्थितम् ॥ उदयंतमिवादित्यंरतिःकाममिवाभ्यगात् ॥ ३५ ॥ अहंमदनिकानामभार्यास्मितवमानद ॥ पादयोस्तेप्रणामोयंस्त्रेहंक्रियतेमया ॥ ३६ ॥

अर्थ—और यह विचार किया कि अब मैं पूर्ण स्त्रीरूप होगया अब समयके अनुसार कामरूपवरको अपनेको देना चाहिये ॥ ३३ ॥ और बोली कि—हे हृदयमें निवास करनेवाले स्वामिन् ! यह मैं उत्तम अंगना आपकी हुं और आप मेरो पतिसंमुखहैं आइये और इच्छापूर्वक मेरा पाणि ग्रहण कीजिये यह आपका समयहै ॥ ३४ ॥ ऐसा विचार करके संमुख बनमें स्थित वेदीके स्थानमें उदय होते हुये सूर्यके सदृश प्रकाशमान अपने पतिके निकट वह ऐसे गई जैसे कामदेवके निकट रति ॥ ३५ ॥ और बोली कि—हे मानदस्वामिन्! यह मदनिकानाम मैं आपकी स्त्रीहुं प्रीतिपूर्वक आपके चरणोंमें मेरा प्रणाम है ॥ ३६ ॥

इत्युक्त्वासानवद्यांगीलज्जावनमितानता ॥ लोलालकेनशिरसाप्रणनामलसत्पतिम् ॥ ३७ ॥ उवाचेदं चहेनाथत्वंमांभूषयभूषणैः ॥ क्रमेणाग्निंचसंज्वाल्यमत्पाणिग्रहणंकुरु ॥ ३८ ॥ राजसेतितरांराजन्मां करोषिस्मरातुराम् ॥ रतेर्विवाहेमदनमभिभूयाधितिष्ठसि ॥ ३९ ॥ इंदोरिवांशुजालानिराजन्माल्यांनिता निते ॥ मेरुगंगाप्रवाहाभांधत्तेहारस्तवोरसि ॥ ४० ॥

अर्थ—अनिंदित शरीरवाली और लज्जोंसे नम्रीभूत उस चूडाने इतना कहके चंचल केशपासयुक्त शिरसे अपने शोभायमान पतिको प्रणाम किया ॥ ३७ ॥ और बोली कि–हे नाथ! अब अलंकारोंसे तुम मुझे भूषित करो और क्रमसे अग्निको प्रज्वलित करके मेरा पाणि ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! तुम अति शोभायमान जान पडतेहो और मुझे कामसे पीडितकर रहेहो और रतिके विवाहमें कामदेवकोभी पराजय करके स्थितहो ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! चंद्रमाके किरणके समान तुमारे गलेमें ये मालायें पडी हैं तुमारे वक्षस्थलका हार सुमेरूपर्वपर प्रसिद्ध गंगाजीके प्रवाहकी शोभा धारण कररहाहै ॥ ४० ॥

मंदारकुसुमप्रोतैःकुंतलैर्नृपराजसे ॥ कनकाब्जमिवोल्लोलैर्भृंगैःखचितकेसरैः ॥ ४१ ॥ रत्नांशुजालैःकुसुमैःश्रियास्थैर्येणतेजसा ॥ रत्नस्थानंविभोमेरुमभिभूयावतिष्ठसे ॥ ४२ ॥ एवमादिवदंतौतौभविष्यन्नव दंपती ॥ प्रच्छन्नपूर्वदांपत्यौमिथस्तुष्टौबभूवतुः ॥ ४३ ॥ महाराज्ञींमदनिकांमहाराजःशिखिध्वजः ॥ कांचनोपलपर्यंकेनिविष्टोभूषयत्स्वयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! मंदारके पुष्पोंसे गूंथेहुये केशोंसे ऐसे शोभित होरहेहो जैसे पुष्पोंके केसरोंसे चित्रित चंचल भृंगोंसे सुवर्णका कमल ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् ! रत्नोंकी किरणके समूहोंसे, पुष्पोंसे, शोभासे, और स्थिर तेजसे रत्नोंकी भूमि मेरूकोभी पराजय करके आप स्थित हैं ॥ ४२ ॥ पूर्वकालके स्त्रीपुरुषभावके छिपायेहुये इसप्रकार एकदूसरेकी शोभाको वर्णन करतेहुये वे दोनों भविष्य नूतन दंपति एकदूसरेसे अति प्रसन्नहुये ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! महारानी मदनिकाको महाराज शिखिध्वजने सुवर्णके, आसनपर बैठकर स्वयंभूषित किया ॥ ४४ ॥

अवतंसैस्तथामाल्यैर्मणिरत्नविभूषणैः ॥ वस्त्रैर्विलेपनैःपुष्पैरुचिरस्थानकार्पितैः ॥ ४५ ॥ साबभौभूषितातन्वीमदनीमददायिनी ॥ गिरिजेवविवाहोत्काकामकांतेवकामिनी ॥ ४६ ॥ महाराजोमहाराज्ञींभूषयित्वेदमाहताम् ॥ राजसेमृगशावाक्षिलक्ष्मीरिवनवोदिता ॥ ४७ ॥ शक्रेणसहयच्छच्यायल्लक्ष्म्याहरिणासह ॥ यद्गौर्याःशंभुनासार्धंतत्तेभवतुमंगलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—शिरके भूषणोंसे, मालाओंसे, रत्नोंके भूषणोंसे, वस्त्रोंसे लेपन द्रव्योंसे और भूषणोंके योग्य स्थानोंमें अर्पित पुष्पोंसे ॥ ४५ ॥ भूषित वह मदको देनेवाली सूक्ष्मांगी ऐसे शोभित हुई जैसे विवाहकेलिये उत्कंठित पार्वती वा कामकी कांता रति ॥ ४६ ॥ महाराज शिखिध्वज उसको भूषित करके उससे यह बोले कि–हे मृगशावक नेत्रे ! तुम नूतन आविर्भूत लक्ष्मीके समान शोभित होरहीहो ॥ ४७ ॥ और हे भद्रे ! इंद्रकेसाथ इंद्राणीका, और विष्णु भगवान्के साथ लक्ष्मीका, और महादेवके साथ पार्वतीका जैसा मंगलहुआ है वैसाही मंगल मेरे साथ तुमाराहो॥४८॥

पद्मकोशांकुरदृढालोलनीलोत्पलेक्षणा ॥ आमोदशुभझांकारास्वास्थितापद्मिनीवसा ॥ ४९ ॥ सुरक्तपल्लवकरास्तनस्तबकधारिणी ॥ त्वामनेकफलामन्येकामकल्पतरोर्लता ॥ ५० ॥ हिमशीतावदातांगीज्योत्स्नाप्रसरहासिनी ॥ पूर्णेंदुश्रीरिवोद्युक्ताह्लेवाह्लादयस्यलम् ॥ ५१ ॥ तदुत्तिष्ठवरारोहेवेदींवैवाहिकीं स्वयम् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तत्रपुष्पलताजालैःकांडप्रतिशिलांकितैः ॥ ५२ ॥ मुक्ताकुसुमजालानांप्रकरैःस्तबकोपमैः ॥ चतुर्दिक्कंचतुर्भिश्वनालिकेरमहाफलैः ॥ ५३ ॥ पूर्णकुंभैस्तथागंगावारिपूर्णैःप्रकल्पितैः ॥ ज्वालयामासतुस्तस्यामध्येचंदनदारुभिः ॥ ५४ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! पद्मके कोशके अंकुरके सदृश स्तनोंको वक्षस्थलपर धारण कियेहुये, चंचल नील कमलके समान नेत्रधारिणी, और सुगंधित पदार्थोंसे उत्तम भ्रमरोंके झंकार शब्दयुक्त स्वस्थ स्थित पद्मिनीके समान वह शोभितहुई ॥ ४९ ॥ राजा शिखिध्वज बोला कि–हे प्रिये ! उत्तम रक्त हस्तरूप पल्लवधारिणी तथा स्तनरूप पुष्पोंके गुच्छोंसे शोभित, और अनेक फलको देनेवाली कल्पवृक्षकी लता मैं तुमको समझताहुं ॥ ५० ॥ हे प्रिये ! हिमके समान शीतल तथा शुद्ध अंगधारिणी, और चंद्रचंद्रिकाके सदृश हास्यवाली तुम केवल अपने दर्शनमात्रसे मुझे मुदित करती हो ॥ ५१ ॥ सो हे उत्तमांगि ! उठो और विवाहकी वेदीको स्वयं अलंकृत करो श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! वहां पुष्पोंके समूहोंसे और प्रतिकांडमें फल तथा गुच्छोंके आकारके लता न नूतन रत्नोंकी

शिलाओंसे चिन्हित द्रव्योंसे, मोती तथा गुच्छोंके तुल्य पुष्पोंके समूहोंसे, चारोओर चार नारियरके फलोंसे और गंगाजलसे पूरित कल्पित कलशोंसे उस वेदीको दोनोंने अलंकृत किया, और उस वेदीके मध्यमें चंदनके काष्ठोंसे अग्नि प्रज्वलित किया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ज्वलनंज्वालितज्वालंदक्षिणस्थंप्रदक्षिणम् ॥ पूर्वाभिमुखमेवाग्नेरग्रेपल्लवविष्टरे ॥ ५५ ॥ नियोज्यदंपती कांतौतयोर्विविशतुःस्वयम् ॥ सहुत्वातिललाजानिपावकायशिखिध्वजः ॥ ५६ ॥ उत्थायोत्थायकां तांसपाणिभ्यांस्वयमाददे ॥ अन्योन्यंशोभमानौतौभवाविववनेशिवौ ॥ ५७ ॥ चक्रतुर्दंपतीतस्यपाव कस्यप्रदक्षिणम् ॥ स्वदायंज्ञानसर्वस्वंहृदयंप्रेमचापलम् ॥ ५८ ॥ ददतुस्तौमिथोन्योन्यस्मितकांतमुख श्रियौ ॥ प्रदक्षिणत्रयंकृत्वालाजांस्त्यक्त्वाथवह्नये ॥ ५९ ॥ भार्यावरौसमंतुष्टौकरौतत्यजतुःक्रमात् ॥ स्मयमानमुखौकांतौचंद्राविवनवोदितौ ॥ ६० ॥

अर्थ—और प्रज्वलित अग्निको प्रदक्षिणा करके और पूर्वाभिमुख होके अग्निदेवके संमुख पल्लवके आसनपर दोनों सुंदर स्त्रीपुरुष बैठे और राजा शिखिध्वज अग्निमें तिल तथा घीसे हवनकरके ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तथा उठ २ कर दोनों हांथोंसे प्रियाको ग्रहण किया, उस बनमें महादेवपार्वतीके समान शोभायमान तथा मंगलरूप दोनों स्त्री-पुरुष ॥ ५७ ॥ अग्निकी प्रदक्षिणा करके संपूर्ण ज्ञानसे पूर्ण, तथा प्रेमसे चंचल अपने हृदयको विवाहमें परस्पर दानकिया ॥ ५८ ॥ और मंदहास्ययुक्त सुंदर मुखकी शोभाको धारण करनेवाले स्त्रीपुरुष पुनः अग्निकी प्रदक्षिणा करके और मंगलके लाजे (खीले) अग्निमें छोडके ॥ ५९ ॥ कन्यावर समान संतुष्ट होके एकदूसरेके हस्तको क्रमसे छोडदिया, और नूतन चंद्रमाके समान उदित मंदहासयुक्त मुखधारी अति सुंदर दोनों स्त्रीपुरुष ॥ ६० ॥

पूर्वापरचितेपुष्पतल्पेविविशतुर्नवे ॥ एतस्मिन्नंतरेचंद्रश्चतुर्भागंनभस्तलात् ॥ ६१ ॥ शनैराक्रमयामा सशोभांद्रष्टुमिवानयोः ॥ तस्मिश्चललनाछिद्रंद्रष्टुंदृष्टिरिवाभितः ॥ ६२ ॥ लोलःसंचारयामासकरान्नि इर्लताग्रहे ॥ तैस्तैर्नवकथालापैरिदावभ्युदितेत्वथ ॥ ६३ ॥ तावासांचक्रतुःकांतौदंपतीसुमुहूर्तकम् ॥ अथोत्थायज्वलद्रत्नदीपांकांचनकंदराम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—पूर्वकालमेंही रचित शय्यापर जाके विराजे, इसीसमय चंद्रभगवान् आकाशके चतुर्थांशको ॥ ६१ ॥ मानो विवाहका कौतुक देखनेकेलिये धीरे २ आक्रमण किया और उस दंपतिकी लता गृहकेभीतर उत्तम शय्यापर चारोओरसे चंचल चंद्रमाने अपनी किरणोंको ऐसे फेका जैसे ललनाका छिद्र देखनेकेलिये कामी अपनी दृष्टिको इसके पश्चात् नूतन २ वार्तालापोंको करतेहुये भलीभांति चंद्रमाके उदय होनेपर ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ समागमके उत्तम मुहूर्तकी प्रतीक्षा करतेहुये उस आसनपर कुछ कालतक विराजे इसके अनंतर उठके प्रदीप्त रत्नमय दीप संयुक्त किसी गुप्त कंदरामें ॥ ६४ ॥

स्वयंपूर्वापरचितांगुप्तांविविशतुःप्रियौ ॥ ददर्शतुर्नवंतत्रतल्पंकुसुमकल्पितम् ॥ ६५ ॥ परितोव्याप्तमु त्कीर्णैर्हैमपंकजराशिभिः ॥ मंदरादिभिरन्यैश्चपुष्पैर्ग्लानिविवर्जितैः ॥ ६६ ॥ उच्चकैःसुप्रमाणेननिर्मि तैःकुसुमैःसमैः ॥ दीर्घेंदुबिंबप्रतिमैस्तुषारस्थलशीतलैः ॥ ६७ ॥ क्षीरोदजलधाराभंज्योत्स्नासंपिंडसुं दरम् ॥ प्रतिबिंबमनंगस्यनतंभित्ताविवस्थितम् ॥ ६८ ॥ सुगंधमुन्नतंकांतंचिरादन्यतयोत्थितम् ॥ मि थुनंपुष्पराशौतन्न्यषीदत्परितोऽमले ॥ तस्मिन्समसमाभोगेक्षीरोदेमंदरोयथा ॥ ६९ ॥ तैस्तैर्मिथःप्रण यपेशलवाग्विलासैस्तत्कालकार्यसुभगैःप्रणयोपचारैः ॥ सत्कांतयोर्नवनवेनतयोःसुखेनदीर्घामुहूर्तइ वसारजनीजगाम ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने लीलाविवाहो नाम षडुत्तरशततमःसर्गः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जो प्रथमहीसे नियतकी गईथी दोनों स्त्रीपुरुष प्रविष्ट हुये और उस कन्दरामें नूतनपुष्प रचित श-य्याको देखा ॥ ६५ ॥ और मदनिकाके सत्यसंकल्पसे कल्पित चारोंओर सुवर्णकमलकी राशियोंसे व्याप्त और वि-कसित मन्दार आदि तथा अन्यपुष्पोंसे व्याप्त उस शय्याको देखा ॥ ६६ ॥ और उत्तम शय्याके प्रमाण समान पु-ष्पोंसे रचित तथा दीर्घचन्द्रमाके प्रतिबिंबके सदृश तथा तुषारके समान पुष्पोंसे व्याप्त वह शय्याथी ॥ ६७ ॥ और क्षीरसागरके जलकी धाराके सदृश, चन्द्र चन्द्रिकाके पिंडके समान सुन्दर उस शय्यापर कामके प्रतिबिंबके तुल्य भित्तिमें संक्रांत ॥ ६८ ॥ उत्तम सुगन्धयुक्त, चिरकालमें अन्य स्त्रीपुरुषके समान आविर्भूत वह स्त्रीपुरुषका जोडा उस विशाल तथा निर्मल पुष्पकी राशिपर ऐसे स्थित हुआ जैसे क्षीरसागरमें मन्दराचल ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! उन २

उत्तम तथा कोमल प्रणयके वाग्विलासोंसे उस कालके उचित सुभग प्रणयके उपचारोंसे और नूतन २ सुखोंसे उस उत्तम स्त्रीपुरुषकी वह रात्रि एक मुहूर्तके समान बीतगई ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपाख्याने लीलाविवाहोनाम षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

नानाप्रकारके बिहार तथा मायाके इंद्रका दर्शन और असंशक्तिकी परीक्षाकेलिये स्वर्गादिका आव्हान इस१०७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसूर्याख्यरंगेणरंजितेभुवनोदरे ॥ शिखिध्वजांगनाप्रातर्मदनीकुंभतांययौ ॥ १ ॥ एवंमहेंद्रदर्यातावुभौकुंभशिखिध्वजौ ॥ स्वयंविवाहिताविष्टौसंपन्नौदेवदंपती ॥ २ ॥ विलेसतुर्विचित्रासुप्रत्यहंवनराजिषु ॥ प्रपक्कफलभारासुपुष्पपल्लविनीषुच ॥ ३ ॥ दिवाप्रीततरौमित्रेयामिन्यामिष्टदंपती ॥ प्रभादीपाविवाश्लिष्टौनवियुक्तौबभूवतुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! रात्रि बीतनेपर जब सूर्य रूपरंगसे ब्रह्मांडका उदर रंजित (प्रकाशित) हुआ तब प्रातःकालमें वह शिखिध्वजकी अंगना कुंभरूपको प्राप्तहुई ॥ १ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उस महेन्द्रकी गुफामें स्वयं विवाहित और अतिप्रेमयुक्त शिखिध्वज तथा कुंभ संकलिपत भोगोंके प्राप्त होनेसे वे स्त्रीपुरुष देवरूप होगये ॥ २ ॥ और परिपक्क फलोंसे पूर्ण, तथा पुष्प पल्लवादिसे शोभित चित्र विचित्र बनकी पंक्तियोंमें वे दोनों प्रतिदिन बिहार करतेथे ॥ ३ ॥ वे दोनों दिनमें तो प्रियमित्र और प्रतिरात्रिमें प्रिय स्त्रीपुरुष होजातेथे और दीप तथा उसकी शिखाके समान सदायुक्त रहतेथे कभी वियुक्त नहीं होतेथे ॥ ४ ॥

रमातेवनकुंजेषुगुहासुचमहीभृताम् ॥ तमालजालखंडेषुमंदारगहनेषुच ॥ ५ ॥ सह्यदर्दुरकैलासमहेंद्रमलयेषुच ॥ गंधमादनविंध्याद्रिलोकालोकतटेषुच ॥ ६ ॥ दिनैस्त्रिभिस्त्रिभिर्गत्वानिद्रांगतवतिप्रिये ॥ चूडालाराजकार्याणिकृत्वास्वभ्याययौपुनः ॥ ७ ॥ तौदिवासुहृदौमित्रेदंपतीकुंभभूमिपौ ॥ नानाकुसुमसंवीतौतस्थतुर्मुदितौमिथः ॥ ८ ॥

अर्थ—बनके कुंजोंमें, पर्वतोंकी कन्दराओंमें तमालके खण्डोंमें और मन्दरोंके गहन बनोंमें वे दोनों रमण करतेथे ॥ ५ ॥ सह्य, दर्दुर, कैलास, महेन्द्र, मलय, गंधमादन, विंध्याचल, और लोकालोक आदि पर्वतोंपर वे रमण किया करतेथे ॥ ६ ॥ और प्रियके सो जानेपर तीन २ दिनके अनन्तर चूडाला अपने नगरमें जाके राज्यके कार्योंको करके पुनः अपने पतिके निकट आजातीथी ॥ ७ ॥ दिनमें अति प्रियमित्र कुंभ तथा राजा नानाप्रकारके पुष्पोंसे भूषित होके अति प्रसन्न होतेथे ॥ ८ ॥

मासमेकंमहेंद्राद्रौरम्येसरलसंकुले ॥ रत्नकुड्येगुहागेहेपूजितौसुरकिंनरैः ॥ ९ ॥ हस्तलभ्योदितामोघमंदारवनमालिते ॥ एवंशुक्तिमतःपृष्ठेपक्षंकल्पलतागृहे ॥ १० ॥ मासद्वयंपक्षवतोगिरेर्दक्षिणदिक्तटे ॥ पारिजातवनेदेवपुष्पस्तबकमंडपे ॥ ११ ॥ जंबूखंडतलेमेरोःपादेजंबूनदीतटे ॥ जांबूनदमयेमासंजंबूफलरसासवे ॥ १२ ॥

अर्थ—सरलके वृक्षोंसे व्याप्त, रत्नमय भित्ति संयुक्त गुहारूपी गृहोंसे पूर्ण तथा अति रमणीय महेन्द्र पर्वतपर वे दोनों एकमासतक रहे ॥ ९ ॥ हस्तोंसे लभ्य अमोघ फलादि सहित, कल्पवृक्षोंसे वेष्टित तथा लता गृहोंसे शोभित शुक्तिमान् पर्वतके पृष्टपर वे दोनों एक पक्षतक रहे ॥ १० ॥ पारिजाताके बनोंसे व्याप्त, देवोंके भोगने योग्य पुष्पमण्डपोंसे पूर्ण मैनाकनाम पर्वतके दक्षिणभागमें वे स्त्रीपुरुष दो मासतक रहे ॥ ११ ॥ मेरूके दक्षिणभागमें जंबूवृक्षोंके बनमें जांबूनद (सुवर्ण) जंबूनदीके तटपर रोग पिपासादि नाशक उस जंबू (जामुन) के रसरूप मदिराका पान करते हुये एक मासतक रहे ॥ १२ ॥

दशोत्तरकुरूणांचमंडलेदिवसानिता ॥ कोसलेपूत्तरस्थेषुसप्तविंशतिवासरान् ॥ १३ ॥ एवमन्येषुदेशेषुविचित्रेषुमहीभृताम् ॥ स्थितवंतौमहाभागौसुहृदौनिशिदंपती ॥ १४ ॥ ततोयातेषुमासेषुशनैःक

तिपयेषुसा ॥ चूडालाचिंतयामासदेवपुत्रकरूपिणी ॥ १५ ॥ सुरूपभोगभारेणपरीक्षेहंशिखिध्वजम् ॥ माकदाचनचेतोस्यभोगेषुरतिमेष्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—और दशदिन उत्तरकुरूमें तथा सताइस दिनतक उत्तर कोशलमें वे दोनों रहे ॥ १३ ॥ इसप्रकार अन्य विचित्र २ राजाओंके देशोंमें दिनमें मित्र और रात्रिमें स्त्रीपुरुष वे दोनों बिहार करतेथे ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् कितनेक मासोंके बीतनेपर देवपुत्र रूपधारिणी चूडालाने यह चिंतन किया ॥ १५ ॥ कि उत्तम २ भोगोंके समूहोंसे मैं इनकी परीक्षा तो करूं कदाचित् इसका चित्त भोगोंमें आसक्त न होजाय ॥ १६ ॥

इतिसंचिंत्यचूडालामाययाविपिनावनौ ॥ आगतंदर्शयामाससमुराप्सरसंहरिम् ॥ १७ ॥ इंद्रमभ्याग तंदृष्ट्वापरिवारसमन्वितम् ॥ यथावत्पूजयामासवनसंस्थःशिखिध्वजः ॥ १८ ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ आत्मनाकिंकृतादूरादभ्यागमकदर्थना ॥ देवराजयथातन्मेप्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ इंद्रउवाच ॥ इ मेवयमिहायातास्त्वद्गुणातिशयेनखात् ॥ हृदिलग्नेनसूत्रेणखगावनगताइव ॥ २० ॥

अर्थ—ऐसा विचार करके चूडालाने उस बनकी भूमिमें अपनी मायासे देवता तथा अप्सरा गणोंके साथ प्राप्त इन्द्रका दर्शन कराया ॥ १७ ॥ परिवारसहित इन्द्रको आप देखके बनमें स्थित राजा शिखिध्वजने विधिपूर्वक पूजा की ॥ १८ ॥ और राजा शिखिध्वज बोला—कि हे देवराजइन्द्र ! आपने स्वयं इतनी दूरसे आनेका परिश्रम क्यों किया जो कुछ आगमनका प्रयोजन हो वह कृपाकरके मुझसे कहिये ॥ १९ ॥ इन्द्र बोला—हे राजन् ! तुमारे गुणकी अ-धिकतासे स्वर्गसे यहांपर हम सब ऐसे प्राप्त हुये हैं जैसे हृदयमें लगेहुये सूत्रमें बनके पक्षी ॥ २० ॥

उत्तिष्ठस्वर्गमागच्छतत्रसर्वेत्वदुन्मुखाः ॥ त्वद्गुणश्रवणाश्चर्याःस्थितादेवांगनागणाः ॥ २१ ॥ पादु कागुटिकाखड्गरसादीदमथापिच ॥ गृहीत्वासिद्धमार्गेणस्वीकुरुस्वर्गमंडलम् ॥ २२ ॥ आगत्यविवि धाभोगास्त्वयाविबुधसद्मनि ॥ जीवन्मुक्तेनभोक्तव्यास्तेनत्वामहमागतः ॥ २३ ॥ विमानयंतिसंप्राप्तां न तिरस्करणैःश्रियम् ॥ नाभिवांछंतिनप्राप्तांत्वादृशाःसाधुसाधवः ॥ २४ ॥

अर्थ—उठिये चलिये स्वर्गको चलें वहांपर आपसे उत्कंठित तथा आपके गुणानुवादसे आश्चर्ययुक्त देव तथा देवांगना आपकी वाट देखतीहैं ॥ २१ ॥ सिद्धपादुका, गुटिका खड्ग वा रसादिको ग्रहण करके सिद्धमार्गसे आप स्वर्ग मण्डलका गमन स्वीकार कीजिये ॥ २२ ॥ वहां चलके देवताओंके स्थानमें अनेकप्रकारके दिव्य भोगोंको जीवन्मु-क्तरूपसे तुम भोग करो इसलिये तुमारे आव्हानके अर्थ मैं यहां आयाहुं ॥ १३ ॥ आपके सदृश महात्माजन स्वयं प्राप्त लक्ष्मीका अस्वीकार द्वारा न तो तिरस्कार करते हैं और न अप्राप्त लक्ष्मीको चाहते हैं ॥ २४ ॥

अविघ्नमागतेनाद्यसुखंविहरतात्वया ॥ स्वर्गःपवित्रतांयातुहरिणेवजगत्त्रयम् ॥२५॥शिखिध्वजउवाच ॥ सर्वस्वर्गसमाचारंवेद्मिदेवाधिनायक ॥ किंतुसर्वत्रमेस्वर्गोनियतोनतुकुत्रचित् ॥ २६ ॥ सर्वत्रैवहितु ष्यामिसर्वत्रैवरमेप्रभो ॥ अवांछनत्वान्मनसःसर्वत्रानंदवानहम् ॥ २७ ॥ नियतंकिंचिदेकत्रस्थितंस्व र्गकमीदृशम् ॥ शक्रगंतुंनजानामित्वदाज्ञांनकरोम्यहम् ॥ २८ ॥

अर्थ—निर्विघ्नतापूर्वक जाके तथा सुखपूर्वक तुमारे विहार करनेसे स्वर्ग ऐसे पवित्रको प्राप्तहो जैसे विष्णुसे ती-नोंलोक ॥ २५ ॥ शिखिध्वज बोला—हे देवनायक ! मैं सब स्थानोंको स्वर्गकेही समान जानताहुं और हमारा स्वर्ग (चिदात्मा) सर्वत्रहै किंतु वह परिच्छिन्न (एकदेश) में नहीं है इसलिये हे प्रभो ! मैं सर्वत्र संतुष्टहुं और सर्वत्र रमण करताहुं और मनके इच्छारहित होनेसे मैं सर्वत्र आनन्दवान्हुं ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे इन्द्र नियत एक देशस्थ तुच्छ स्वर्गमें मैं जाना नहीं चाहता इसलिये इस अनुचित आपकी आज्ञाको मैं नहीं करूंगा ॥ २८ ॥

॥ शक्रउवाच ॥ साधोविदितवेद्यानांपरिपूर्णधियांसमम् ॥ सज्जनाचरितंयुक्तंमन्येभोगोपसेवनम् ॥ ॥ २९ ॥ देवेशेप्रोक्तेवत्येवंतुष्णीमेवस्थितेनृपे ॥ किमितोनापयास्येषत्वमितिप्रोक्तवान्हरिः ॥ ३० ॥ नाहमद्यैवकालेनवदतीतिशिखिध्वजे ॥ कल्याणंतेस्तुकुंभेतिवदन्नंतर्धिमाययौ ॥ ३१ ॥ तद्देववृंदमखिलं त्रिदशेशयुक्तंतत्क्षणादलमदृश्यमभूद्द्वितीयम् ॥ कल्लोलराशिरिववारिनिधौप्रशांतेवातेस्फुरन्मकरफेन नफणींद्रवृंदम् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शक्रगमनंनामसप्तोत्तरशततमःसर्गः ॥ १०७ ॥

अर्थ—इन्द्र बोला कि–हे साधो ! आपके सदृश विदित बेद्य तथा पूर्णबुद्धिवाले महात्माजनोंको भोगोंका सेवन तथा असेवन दोनों तुल्य हैं तथापि सज्जनोंको प्रारब्ध कर्मका नाश करनेके लिये भोगोंका सेवनही मैं योग्य मानताहुं ॥ २९ ॥ देवेन्द्रके इतना कहनेके पश्चात् राजाके मौन स्थित होनेपर इन्द्र पुन: बोले कि यदि तुम स्वर्गसे निरपेक्ष हो तो क्या मैं भी यहांसे जाऊंगा ॥ ३० ॥ इससमय नहीं कालपाके मैं भी आऊंगा इतना जब शिखिध्वज कह रहाथा इतनेहीमें हे कुंभ ! तुमारा कल्याणहो ऐसा कहते हुये इन्द्र अन्तर्धान होगये ॥ ३१ ॥ इन्द्रके अन्तर्धान होनेपर दूसरा देवताओंके समूहयुक्त देवताओंका वृंदभी क्षणमेंही ऐसे लोप होगया जैसे समुद्रमें वायुके शांत होनेपर चंचलमकर, फेनसर्पादि सहित तरंगराशि शांत हो ॥ ३२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपरव्याने शक्रगमनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

क्रोधकी परीक्षाके लिये महारानीने मायासे अपना व्यभिचारी पुरुषका समागम और पाकसे अपना रूपभी राजाको दिखलायाहै इस विषयका वर्णन इस १०८ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तांमायांशममानीयचूडालासमचिंतयत् ॥ दिष्ट्याभोगेच्छयानायंह्रियतेवसुधाधिपः ॥ १ ॥ शांतःसमसमाभोगएवंशक्रसमागमे ॥ असंरंभमहेलंचकृतवान्व्यावहारिकम् ॥ २ ॥ भूयएवप्रपंचेनविमृशाम्येवसादरम् ॥ रागद्वेषप्रधानेनकेनचिद्बुद्धिहारिणा ॥ ३॥ इतिसंचिंत्यासरात्रा विंदावभ्युदितेवने ॥ गृहीतमंगनारूपंकांतामदनिकासती ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! चूडालाने उस इन्द्रकी मायाका उपसंहार करके यह विचारा कि यह सौभाग्यकी वार्ता है कि राजाका मन भोगोंकी इच्छासे वशीभूत नहीं होता ॥ १ ॥ इन्द्रके आगमनमें आकाशके समान शांत रहा और क्षोभरहित होके शिष्टोंके समान इन्द्रके पूजनादि व्यवहारादि कर्मको किया ॥ २ ॥ अब पुनः रागद्वेष प्रधानबुद्धिको क्षोभकारक किसी प्रपंचसे इसकी परीक्षा आदरपूर्वक करूं ॥ ३ ॥ ऐसा बिचार करके रात्रिमें चन्द्रमाका उदय होनेपर मदनिका प्रियाका रूप धारण करके ॥ ४ ॥

वातेवहतिफुल्लाढ्येमधुरामोदमांसले ॥ संध्याजप्यपरेनद्यास्तीरसंस्थेशिखिध्वजे ॥ ५ ॥ संतानकलतागेहंनीरंध्रैःपुष्पगुच्छकैः ॥ शुद्धांतंवनदेवीनांप्रविवेशमदान्विता ॥ ६ ॥ तत्रसंकल्पितेपुष्पशयनेमाल्यमालिता ॥ कंठेसंकल्पितंकांतंखिंगमादायसंस्थिता ॥ ७ ॥ आगत्यान्विष्यकुंजात्सप्रददर्शशिखिध्वजः ॥ लतागेहेमदनिकांकंठेखिंगंमनोहरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिससमय शीतल मंद सुगंद वायु बहरहाथा, और नदीके तटपर राजा शिखिध्वज सन्ध्याके जपमें तत्पर थे ॥ ५ ॥ उससमय सघनपुष्पोंके गुच्छोंसे कल्पवृक्षके लतारूप ग्रहसंयुक्त बनदेवियोंके शुद्धअन्त:पुरमें मदसहित मदनिकाने प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वहांपर संकल्परचित पुष्पकी शय्यापर संकल्परचित व्यभिचारीपुरुषको करमें लेके और मालाओंसे वेष्टित होके मदनिका लेट गई ॥ ७ ॥ इतनेमें कुंभ कुंजोंमें खोजके आके लताग्रहमें मदनिका तथा उसके कंठमे संलग्न एक व्यभिचारी पुरुषकोभी देखा ॥ ८ ॥

कुंतलावलितस्कंधंसमालब्धंचचंदनैः ॥ शयनावृत्तिनिक्षेपपर्याकुलितशेखरम् ॥ ९ ॥ हेमाभेद्विगुणाकारबालाबाहूपधानके ॥ संसक्तश्रवणापांगकपोलतलकुंतलम् ॥ १० ॥ मिथुनंतद्ददर्शाथमिथःप्रहसिताननम् ॥ अन्योन्यवदनासक्तंछन्नंकल्पलतांशुकैः ॥ ११ ॥ आलोलमाल्यशयनंमदनातुरमाकुलम् ॥ अंगलग्नच्छलेनात्मरागमन्योन्यमर्पयत् ॥ १२ ॥

अर्थ—मदका तथा निजकेशोंसे वेष्टित स्कंध, चन्दनसे लिप्तदेह, शय्यापर इधर उधरके परिवर्तनोंसे अस्तव्यस्त शिरोभूषणयुक्त उस व्यभिचारीपुरुषको शिखिध्वजने देखा ॥ ९ ॥ सुवर्णके समान शोभायमान मदनिकाके द्विगुणित भुजाकी तकिया लगाये, और श्रवण तथा कपोलतलमें आसक्त मदनिकाके केशपाससे शोभित उस पुरुषको देखा ॥ १० ॥ परस्पर हास्ययुक्त मुखसहित, एक दूसरेके मुखसे संलग्न और कल्पलताके सूक्ष्मवस्त्रोंसे आच्छादित उस स्त्री पुरुषके जोडेको राजाने देखा ॥ ११ ॥ चंचल मालायुक्त शय्यापर स्थित, कामदेवसे व्याकुल, अंगोंके समर्पणसे एकदूसरेके अपने प्रेमको अर्पण करते हुये उस जोडेको देखा ॥ १२ ॥

अभ्युन्मुखंसमानंदमुद्दाममदमंथरम् ॥ परस्पराहतंपुष्पैर्वक्षोभ्यांपीडितस्तनम् ॥ १३ ॥ तदालोक्या विकारेणचेतसालंतुतोषसः ॥ अहोसुखंस्थितौखिगावित्याहसशिखिध्वजः ॥१४॥ तिष्ठतांगयथाकामं सुखंखिगौयथास्थितम् ॥ विघ्नंमाकरवंभीतावित्युक्त्वानिर्जगामसः ॥ १५ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेणप्रपंचंत मुपेक्ष्यसा ॥ निर्ययौदर्शयंतीस्वंरतिफुल्लाकुलंवपुः ॥ १६ ॥

अर्थ—एकदूसरेकी ओर अभिमुख, आनन्दयुक्त, प्रबल कामदेवकी वासनासहित, पुष्पोंसे परस्पर ताडन करते हुये, और दोनों भुजाओंसे स्तनोंको पीडित करनेवाले उस स्त्रीपुरुषको देखा ॥ १३ ॥ उस मिथुनको देखकर अविकारी चित्तसे शिखिध्वज अतिप्रसन्न हुआ, और कहा कि अहो! ये व्यभिचारी स्त्रीपुरुष कैसे सुखी हैं ॥ १४ ॥ और यहभी कहा कि प्रिय तुम दोनों सुखसे स्थित रहो मुझे देखकर भयभीत न हो, मैं तुमारा विघ्नकारक न होऊं ऐसा कहके वह चलागया ॥ १५ ॥ उसके पश्चात् उस माया प्रपंचको एक मुहूर्तमें वटोरके व्यभिचारी पुरुषके समागमसे प्रसन्न तथा आकुल मुखको दर्शाती हुई राजाके निकट प्राप्त हुई ॥ १६ ॥

उपविष्टंददर्शैनंनृपंहेमशिलातले ॥ समाधिसंस्थमेकांतेमनाग्विकसितेक्षणम् ॥ १७ ॥ तंप्रदेशमुपाग म्यलज्जावनमितानना ॥ तूष्णीमासीत्क्षणंखिन्नाम्लानामदनिकांगना ॥ १८ ॥ क्षणाच्छिखिध्वजोध्या नाद्विरतस्तामुवाचह ॥ अत्यंतमधुरंवाक्यमिदमक्षुब्धयाधिया ॥ १९ ॥ तन्विकिंशीघ्रमेवत्वंविघ्नितानं दमागता ॥ आनंदायैवभूतानियतंतेयानिकानिचित् ॥ २० ॥

अर्थ—एकांतमें शिलातलपर स्थित समाधिमें तत्पर, तथा किंचित् विकसितनेत्रसहित राजाको देखा ॥ १७ ॥ लज्जासे नम्र तथा म्लानमुखवाली मदनिका उस स्थानमें आके क्षणभर चुपचाप स्थित रही ॥ १८ ॥ क्षणभरके पश्चात् जब राजा शिखिध्वज समाधिसे विरतहुआ तब क्षोभरहित बुद्धिसे अत्यन्त मधुर यह बचन बोला ॥१९॥ कि हे सूक्ष्मांगि! क्या शीघ्रही किसीने तुमारे कार्यमें विघ्न तो नहीं किया और तुमको आनंद तो प्राप्त हुआ क्योंकि सब प्राणी आनन्दकेही लिये प्रयत्न कर रहे हैं ॥ २० ॥

भूयस्तोषयतंगच्छकांतंप्रणयवृत्तिभिः ॥ परस्परेप्सितस्नेहोदुर्लभोहिजगत्रये ॥ २१ ॥ अहमेतेनचार्थेन नोद्वेगंयामिमानिनि ॥ यद्दिष्टतमंलोकेतत्तदेवंविजानता ॥ २२ ॥ अहंकुंभश्चतन्वंगिवीतरागाविहेत रा ॥ दुर्वासःशापजाबालात्वंयदिच्छसितत्कुरु ॥ २३ ॥ मदनिकोवाच ॥ एवमेषमहाभागस्त्रीस्वभा वोहिचंचलः ॥ कामोह्यष्टगुणःस्त्रीणांनंकोपंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

अर्थ—जाकर प्रणयकी वृत्तियोंसे पुनः उस अपने प्रियको संतुष्ठ करो क्योंकि तीनोंलोकमें परस्परका स्वाभाविक स्नेह अतिदुर्लभ है ॥ २१ ॥ हे मानिनि! मैं इस तुमारे कार्यसे क्रुद्ध वा क्षुभित नहींहूं, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषको यह जानना चाहिये कि तुमारे सदृश संसार जो २ प्रियवस्तु है वह २ सबके भोगकेही लिये है ॥ २२ ॥ हे तन्वंगि! हम और कुंभ तो वीतराग मित्र हैं और तुम तो दुर्वासाके शापसे उससे भिन्नहीवालाहो इससे जो चाहो सो निःशंक होकर करो ॥ २३ ॥ मदनिका बोली कि—हे महाराज! आप यथार्थ कहते हैं यह स्त्रीका स्वभाव अति चंचल है और स्त्रियोंको पुरुषका अष्टगुण काम होताहै इसलिये आपको कोप करना योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

अबलाहमनेनास्मिरात्रौगहनकानने ॥ त्वयिसंध्याजपपरेकिंकरोमिवराकिका ॥ २५ ॥ अबलावाकुमा रीवाजारेणरतिरोधनम् ॥ करोतिपरिखिंगेनन्नांगेस्वेविनिवेशितम् ॥ २६ ॥ स्त्रियःसुंदरतांयाताःपुरःपुं सामसंगमे ॥ मन्युर्निषेधआक्रंदःसतीत्वंकिंकरिष्यति ॥ २७ ॥ अबलास्त्रीतथाबालामूढाहमपराधिनी॥ क्षंतुमर्हसिनाथत्वंक्षमावंतोहिसाधवः ॥ २८ ॥

अर्थ—जब आप सन्ध्याकालके जपमें तत्परथे तब इस गहनबनमें इस कामीपुरुषने मुझसे प्रार्थनाकी उससमय मैं दीनअबला क्या करसकतीथी ॥ २५ ॥ चाहै विवाहिता स्त्री हो वा कुमारीहो परन्तु जब एकांतमें उसे जारपुरुष गया तब वह रतिका अवरोध नहीं करसकती ॥ २६ ॥ पुरुषोंके असमागम होनेमें केवल स्त्रियोंकी कुरूपताही न कि सतीत्व और जब स्त्रियां सुन्दरताको प्राप्त हुईं तब क्रोध, निषेध, वा आक्रन्द उनके समागमको नहीं रोकसकता ॥ २७ ॥ मैं अबला विवाहिता स्त्री अपराधिनीहुं आप क्षमाकरने योग्यहैं क्योंकि साधुजन क्षमाशील होते हैं ॥ २८ ॥

॥ शिखिध्वजउवाच ॥ मन्युर्ममनबालेतर्विद्यतेखइवद्रुमः ॥ केवलंसाधुनिंद्यत्वान्नेच्छामित्वामहंबधूम् ॥ २९ ॥ सुहृत्त्वेनवनांतेषुपूर्ववत्सुखमंगने ॥ वीतरागतयानित्यंसममेवरमावहे ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठउ वाच ॥ एवंसमतयातत्रस्थितेतस्मिञ्छिखिध्वजे ॥ चूडालाचिंतयामासतत्स्त्वेनोदिताशया ॥ ३१ ॥ अहोबतपरंसाम्यंभगवानयमागतः ॥ वीतरागतयाऽक्रोधोजीवन्मुक्तोवतिष्ठते ॥ ३२ ॥

अर्थ—शिखिध्वज बोला-कि हे बाले ! आकाशमे वृक्षके समान मेरे अन्तःकरणमें क्रोध नहीं है केवल साधुजनोंमें निंदित अब तुमको मैं अपनी भार्या नहीं चाहता ॥ २९ ॥ हे बाले ! पूर्वके समान बनोंमें बीतराग मित्र होके हम दोनों साथही रमण करैंगे ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार उस शिखिध्वजके समान रूपसे स्थित होनेपर उसके परीक्षित रागद्वेष वासनासे शून्य स्वभावसे प्रसन्न चित्त चूडालाने यह विचार किया ॥३१॥ अहो ! यह मेरा पति भगवान् पूर्ण समताको प्राप्तहुआ, बीतराग होनेसे यह क्रोधरहित अब जीवन्मुक्त स्थितहै ॥३२॥

नैनंहरंतितेभोगानमहत्योपिसिद्धयः ॥ नसुखानिनदुःखानिनापदोनचसंपदः ॥ ३३ ॥ चिंतिताःसकलाएकंप्रयांत्येनमनिंदिताः ॥ मन्येमहर्धयःकांतानारायणमिवापरम् ॥ ३४ ॥ आत्मवृत्तांतमखिलंतमेनंस्मारयाम्यहम् ॥ कुंभरूपमिदंत्यक्त्वाचूडालैवभवाम्यहम् ॥ ३५ ॥ इतिसंचित्यचूडालाचूडालावपुरक्षता ॥ दर्शयामासतत्राशुत्यक्त्वामदनिकावपुः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बडे वे भोग, तथा महा सिद्धियां, सुख, दुःख, आपत्ति, तथा संपत्ति इसके चित्तको नहीं हरसकतीं ॥ ३३ ॥ मेरी चिंतित शांति धैर्य, क्षमा, तथा तृप्ति आदि संपूर्ण ऋद्धि एकइस पुरुषमें आके ऐसे रहती हैं जैसे नारायणमें सबकांता ॥ ३४ ॥ इसलिये इसको मैं अपना सब वृत्तान्त स्मरण कराऊं अब मैं कुंभके रूपको त्यागकर चूडालाहीका रूप धारण करूं ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके चूडालाने शीघ्र मदनिकाका रूप त्यागकर पूर्ण अपना चूडालाका स्वरूप दिखलाया ॥ ३६ ॥

तस्मान्मदनिकादेहाचूडालानिर्गतेवसा ॥ बभावस्यपुरोयुक्तानिर्गतेवसमुद्रकात् ॥ ३७ ॥ तांददर्शानवव्यांगींपुनःप्रणयपेशलाम् ॥ कांतांमदनिकामेवचूडालांदयितांस्थिताम् ॥ ३८ ॥ समुदितामिवमाधवपद्मिनीमुपगतामिवभूमितलाच्छ्रियम् ॥ प्रकटितामिवरत्नसमुद्रकात्परिददर्शनिजांदयितांनृपः ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने चूडालास्वरूपदर्शनंनामअष्टोत्तरशततमःसर्गः ॥ १०८ ॥

अर्थ—उस मदनिकाके शरीरसे निकली हुईके तुल्य राजाके संमुख चूडाला ऐसे शोभितहुई जैसे योगकी धारणावती पेटारीसे ॥ ३७ ॥ अनिंदित शरीरवाली तथा पतिके चित्तके प्रसन्न करनेमें चतुर उसी मदनिकाको अपनी प्रिया चूडालारूपसे स्थित देखा ॥ ३८ ॥ जैसे भूमितलसे कमल हस्तमें लियेहुये सीतारूप लक्ष्मीको श्रीरामचन्द्रजीने देखाथा ऐसेही रत्नकी पेटारीसे निकलीके तुल्य उस अपनी प्रिया चूडालाको राजाने देखा ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे चूडालोपाख्याने चूडालास्वरूपदर्शनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

देखकर, पूंछकर और ध्यानसे सबकुछ देखकर राजाशिखिध्वज अति विस्मित हुआ, और प्रसन्न होकर चूडालाकी अति प्रशंसा की तथा उसको आलिंगन करके रात्रि उसी स्थानपर बिताया इस विषयका वर्णन इस १०९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतांदयितांदृष्ट्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ शिखिध्वजउवाचेदमाश्चर्याकुलयागिरा ॥ १ ॥ कात्वमुत्पलपत्राक्षिकुतःप्राप्तासिसुंदरि ॥ किमिहासिकियत्कालंकिमर्थमिहतिष्ठसि ॥ २ ॥ अंगेनव्यवहारेणस्मितेनानुनयेनच ॥ ममजायाविलासेनतत्कलेवोपलक्ष्यसे ॥ ३ ॥ चूडालोवाच ॥ एवमेवप्रभोविद्धिचूडालास्मिनसंशयः ॥ अकृत्रिमेणदेहेनलब्धोस्ययमयास्वयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके पश्चात् अपनी प्रियाको देखकर विकसित नेत्रराजा शिखिध्वज आश्चर्य्यसे पूर्ण वाणीसे यह वचन बोला ॥१॥ हे सुंदरि ! हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो, कहांसे यहां प्राप्तहुई और कितने कालसे किस प्रयोजनसे यहां रहतीथी ? ॥ २ ॥ शरीरकी शोभासे, व्यवहार, मुसकिरानसे, और नम्रतासे मेरी प्रियाकी मूर्तिके तुल्य तुम लक्षित होतीहो ॥ ३ ॥ चूडाला बोली कि-हे प्रभो ! यह ऐसाही है मैं चूडालाहुं इसमें संदेह नहीं है आज तुम मेरे स्वाभाविक देहसे प्राप्तहुयेहो ॥ ४ ॥

कुंभादिदेहनिर्माणैस्त्वांबोधयितुमेवमे ॥ प्रपंचःशतशाखत्वामिहयातोवनांतरे ॥ ५ ॥ यदाराज्यंपरित्यज्यमोहेनतपसेवनम् ॥ त्वमागास्तत्प्रभृत्येवत्वद्बोधायाहमुद्यता ॥ ६ ॥ अनेनकुंभदेहेनमयैवत्वंविबोधितः ॥ कुंभादिदेहनिर्माणंत्वांबोधयितुमेवमे ॥ ७ ॥ माययानतुकुंभादिकिंचित्सत्यंमहीपते ॥ अथो विदितवेद्यस्त्वंध्यानेनैतदखंडितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तुमको बोध करानेकेलिये कुंभादि शरीर धारण करके मेरा प्रपंच इस बनमें शैकडों शाखायुक्त होगया ॥ ५ ॥ जब राज्यको त्यागकर मोहसे तपकेलिये आप आये उसीसमयसे लेके तुमको बोध करानेको मैं उद्यत हुईहुं ॥ ६ ॥ इस कुंभशरीरसे मैंने तुमको बोध कराया, मेरी यह कुंभादि देहकी रचना तुमारे बोध करानेहीकेलिये थी ॥ ७ ॥ हे राजन्! यह कुंभादि देहकी रचना माया मात्रथी इसमें सत्य कुछभी नहीं है, अब तो तुमभी विदित वेद्य (ज्ञानी) हो इस सबको अखण्डितरूपसे ॥ ८ ॥

सर्वंपश्यसितत्त्वज्ञध्यानेनाश्ववलोकय ॥ अथचूडालयेत्युक्तोबद्ध्वापरिकरंनृपः ॥ ९ ॥ आत्मोदंतंविशेषेणध्यानेनामलमैक्षत ॥ अभिराज्यपरित्यागाच्चूडालादर्शनावधि ॥ १० ॥ सर्वंमुहूर्त्तध्यानेनचात्मोदंतंददर्शसः ॥ आराज्यसंपरित्यागाद्वर्त्तमानक्षणक्रमम् ॥ ११ ॥ सर्वमालोक्यभूपालोविररामसमाधितः ॥ समाधिविरतोहर्षविकासिनयनांबुजः ॥ १२ ॥

अर्थ—ध्यानद्वारा शीघ्र देखो, चूडालाके इतना कहनेपर उस धारणाके योग्य आसन बांधकर राजाने ॥ ९ ॥ राज्य त्यागसे लेके चूडालाके दर्शनपर्य्यन्त अपने सब निर्मल अखंडित वृत्तान्तको ध्यानसे देखा ॥ १० ॥ केवल एक मुहूर्तके ध्यानसे अपने राज्यके त्यागसे लेके वर्तमान क्षणपर्य्यन्त अपना सब वृत्तान्त राजाने ॥ ११ ॥ सबकुछ देखकर राजा समाधिसे विरतहुआ, और समाधिसे विरत होनेपर हर्षसे विकसित नेत्रयुक्त राजा ॥ १२ ॥

विसार्यतरसाबाहूपुलकोज्ज्वलतांगतौ ॥ गलदंगंघनस्नेहंमुंचद्बाष्पंस्फुरत्स्पृहम् ॥ १३ ॥ आलिलिंगचिरंकांतांनकुलोनकुलीमिव ॥ तयोरालिंगनेतस्मिंस्तत्रभावोबभूवयः ॥ १४ ॥ नसवासुकिजिह्वाभिर्वक्तुंहर्षेणशक्यते ॥ दिविस्थाविवपंकेनकृताविवमिलत्तनू ॥ १५ ॥ शैलाविवसमुत्कीर्णौश्लिष्टावास्तांचिरंप्रियौ ॥ मुहूर्त्तेनगलद्धर्मजलौपुलकपीवरौ ॥ १६ ॥

अर्थ—पुलकित होनेसे उज्वलताको प्राप्त दोनों भुजाओंको शीघ्र फैलाके अति स्नेह तथा अभिलाषापूर्वक आनंदके आँशु त्यागतेहुये ॥ १३ ॥ चिरकालतक अपनी प्रियाको ऐसे आलिंगन किया जैसे नकुल नकुलीको, वहां उन दोनोंके आलिंगनके समय जो परस्परके अनुरागरूपस्थायी भाव उत्पन्न हुआहै ॥ १४ ॥ उसको शेषभगवान्‌भी अपनी सहस्र जिव्हाओंसे नहीं वर्णन करसकते और वे दोनों अमावश्याको आकाशमें मिलित शरीर सूर्य चन्द्रमाके समान रोमांचसे आर्द्रशरीर होगये ॥ १५ ॥ प्रस्वेद तथा पुलकित शरीरवाले चिरकालतक दोनों स्त्रीपुरुष ऐसे मिलेरहे जैसे एक शिलापर खुदीहुई पाषाणकी मूर्ति ॥ १६ ॥

बाहूविश्लथतामीषन्निन्यतुस्तौशनैःप्रियौ ॥ अमृतापूर्णहृदयौसंशून्यहृदयोपमौ ॥ १७ ॥ उन्मुक्तभुजमास्तांतावलक्ष्यस्थितलोचनम् ॥ घनानंदक्षणंस्थित्वातूष्णींप्रणयपेशलम् ॥ १८ ॥ कांतांचिबुकसंलग्नकरःप्रोवाचभूपतिः ॥ अत्यंतमधुरस्निग्धःकांतःस्वकुलयोषिताम् ॥ १९ ॥ पुण्यश्चरतिनिष्पंदःस्वादुर्नामामृतादपि ॥ कियत्प्रमाणस्तन्वंग्यात्वयाबालेंदुमुग्धया ॥ २० ॥

अर्थ—अमृतसे पूर्ण हृदय तथा अधिक आनन्दसे मनके जड होनेसे शून्य चित्तकेसमान दोनों प्रियोंने धीरे२ अपनी भुजाओंको शिथिल किया ॥ १७ ॥ अति प्रेमपूर्वक भुजाबंधनको छोडकर अस्थिर नेत्रसे कुछ कालतक मौन स्थित रहकर ॥ १८ ॥ अपनी कुलबंधुओंके लिये अति मधुरभाषी, स्नेहयुक्त राजा अपनी प्रियाकी ढोडीमें हांथ लगाके यह बोला ॥ १९ ॥ कि हे प्रिये ! पवित्र और अमृतसे भी अति स्वादिष्ट यह अनुरागका प्रवाह तुम मुग्ध बालाने कितना विस्तृत किया ? ॥ २० ॥

अनुभूतश्चिरंक्लेशोभर्त्तुरर्थेनदारुणः ॥ एवंदुरुत्तरात्तस्मात्संसारकुहरादहम् ॥ २१ ॥ उत्तारितोययाबुद्ध्यासाहिकेनोपमीयते ॥ अरुंधतीशचीगौरीगायत्रीश्रीःसरस्वती ॥ २२ ॥ समस्ताःपेलवायंतेतवतन्व्यागुणश्रिया ॥ धीःश्रीःकांतिःक्षमामैत्रीकरुणाद्यास्तुसुंदरि ॥ २३ ॥ कांतास्वाकारकांतासुप्रथमेवाभिलक्ष्यसे ॥ परेणाध्यवसायेनत्वयाहमवबोधितः ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे प्रिये ! पतिकेलिये चिरकालतक कैसा दारूण क्लेश तुमने सहा, और ऐसे दुस्तर इससंसाररूप गर्तसे ॥ २१ ॥ जिस बुद्धिसे तुमने मुझे निकाला उस बुद्धिकी उपमा किसके साथ दीजाय, हे प्रिये ! अरुंधती,

शची, गौरी, गायत्री, लक्ष्मी और सरस्वती ॥ २२ ॥ ये सब तुमारे गुणकी शोभासे तुच्छही भान होती हैं, और सुन्दरी धी, श्री, कांति, क्षमा, मैत्री और करूणा आदि ॥२३॥ ये सब सुन्दरतादि गुणोंमें सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ प्रसिद्ध हैं परंतु तुम इन सबमें प्रथमही भान होती हो, कैसे महा उद्योगसे तुमने मुझे ज्ञान दियाहै ॥ २४ ॥

केनप्रत्युपकारेणपरितुष्यतितेमनः ॥ मोहादनादिगहनादनंतगहनादपि ॥ २५ ॥ पतितंव्यवसायिन्य स्तारयंतिकुलस्त्रियः ॥ शास्त्रार्थगुरुमंत्रादितथानोत्तरणक्षमम् ॥ २६ ॥ यथैताःस्नेहशालिन्योभर्तृणांकु लयोषितः ॥ सखाभ्रातासुहृद्भृत्योगुरुर्मित्रंधनंसुखम् ॥२७॥ शास्त्रमायतनंदासःसर्वंभर्तुःकुलांगनाः ॥ सर्वदासर्वयत्नेनपूजनीयाःकुलांगनाः ॥ २८ ॥

अर्थ—वह कौनसा प्रत्युपकारहै जिससे कृतार्थ तुमारा मन सन्तुष्टहो, अनादि अनन्त मोहसागरमें गिरेहुये अपने पतिको उद्योगशालिनी कुलांगना तारती हैं शास्त्रार्थ, तथा गुरूमंत्र उस मोहसागरसे पारकरनेमें इतने समर्थ नहीं हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ जैसे कि स्नेहसे पूर्ण ये कुलांगनाजन, हे प्रिये ! कुलांगना अपने पतिके सखा, भ्राता, सुहृद, भृत्यु, मित्र, धन, सुख, ॥ २७ ॥ शास्त्र, गृह, और दास सब कुछहैं, इसलिये सदा, सबप्रकारके यत्नसे कुलांगनाओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

लोकद्वयसुखंसम्यक्सर्वंयासुप्रतिष्ठितम् ॥ निरिच्छायाःप्रयातायाःपारंसंसारवारिधेः ॥ २९ ॥ कथम स्योपकारस्यकरिष्येतेप्रतिक्रियाः ॥ मन्येकुलांगनांलोकेलोकेसर्वास्त्वयाधुना ॥ ३० ॥ नारीसौजन्यच र्चासुव्यपदेश्याभविष्यसि ॥ त्वांनिर्मितवतोधातुर्गुणजालातिशायिनीम् ॥ ३१ ॥ मन्येप्रकुपितानूनम रुंधत्यादिकाःस्त्रियः ॥ सतीत्वंरूपसौजन्यगुणरत्नसमुद्गिके ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिन सती स्त्रियोंमें दोनों लोकका सुख निर्भरहै उनका सत्कार सबप्रकारसे करना योग्यहै, इच्छारहित तथा संसारसमुद्रके पारंगत ॥ २९ ॥ तुमारे इस उपकारका प्रत्युपकार मैं कैसे करूंगा, मैं तुमको संसारमें पतिव्रता मानताहुं, और संसारमें प्रसिद्ध जितनी पतिव्रताहैं उन सबको तुमने अब जीतलिया ॥ ३० ॥ हे प्रिये ! स्त्रियोंके सुजनतादि गुणोंकी चर्चासे तुमारा नाम प्रथम लियाजायगा, सब गुणोंके समूहमें अधिक शोभायमान तुमको रचनेवाले ब्रह्माजीके ऊपर ॥ ३१ ॥ अरूंधती आदि कुलस्त्रियां निश्चय करके कुपित हुई होंगी ऐसा मैं मानताहुं, हे सौजन्य आदि गुणरत्नोंकी मंजूषे (पेटारी) तुमही सतीहो ॥ ३२ ॥

एहिमेत्वद्गुणोत्कस्यपुनरालिंगनंकुरु ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षींचूडालांतांशिखि ध्वजः ॥ ३३ ॥ आलिलिंगपुनर्गाढंनकुलोनकुलीमिव ॥ चूडालोवाच ॥ देवशुष्कक्रियाजालपरेत्वय्याकु लात्मनि ॥ ३४ ॥ भूयोभूयोभृशमहंत्वदर्थंदुःखिताभवम् ॥ तेनत्वदवबोधात्मा स्वार्थएवोपपादितः३५ मयातदत्रकिंदेवकरोषिममगौरवम् ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ त्वयायथावरारोहेस्वार्थःसंपाद्यतेशुभः३६॥ तमिदानींतथासर्वाःसाधयंतुकुलांगनाः ॥ चूडालोवाच ॥ बुध्यसेकांतविश्रांतोजगज्जालतटेविभो॥३७॥

अर्थ—तुमारे गुणोंसे मैं उत्कंठित होरहाहुं, आओ मुझे पुनः आलिंगन करो, श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! शिखिध्वज इतना कहके उस मृगनेत्रा चूडालाको ॥ ३३ ॥ पुनः दृढतापूर्वक ऐसे आलिंगन किया जैसे नकुल नकुलीको, चूडाला बोली—कि हे देव ! जब व्याकुल होके शुष्क क्रियाजलमें तुम तत्पर हुये ॥ ३४ ॥ तब तुमारे लिये बार २ मैं अति दुःखितहुई, इसलिये तुमके बोध देनेसे मैंने अपनाही स्वार्थ सिद्ध किया ॥ ३५ ॥ अब वैसाही अन्य सब कुलांगना सिद्ध करैं, चूडाला बोली—हे प्रिय ! इस जगत् समुद्रके पारके तटपर विश्रांत होके तत्वपदार्थको तो जानते हो ॥ ३७ ॥

अद्यतंप्राक्तनंकिंचिन्मोहंसमनुपश्यसि ॥ इदंकरोमिनेदंतुप्राप्नोमीदमितिस्थितिम् ॥ ३८ ॥ अंतर्हससि तांकच्चिद्दशापेलवतांधियः ॥ तास्तुच्छतृष्णाकलनास्ताःसंकल्पकुकल्पनाः ॥ ३९ ॥ त्वयिनाद्यावलो क्यंतेदेवव्योम्नीवपर्वताः ॥ किंत्वमद्यांगसंपन्नःकिंनिष्ठोसिकिमीहसे ॥ ४० ॥

अर्थ—और अब पूर्वकालके मोहकाभी कुछ ध्यान करतेहो, और इसे करूं न इसे करूं, इसे प्राप्त करूं इत्यादि जो पूर्वकालकी स्थिति है ॥ ३८ ॥ क्या अंतर्दृष्टिसे उस तुच्छ बुद्धिको कभी हंसते भी हो, और वे पूर्वकालकी तुच्छ तृष्णा तथा कुकल्पनाये ॥ ३९ ॥ अब तुममें ऐसे नहीं हैं जैसे आकाशमें पर्वत, हे प्रिय ! अब तुम कैसे होगये, किसमें तुमारी निष्ठाहै और क्या तुम चेष्टा करतेहो ॥ ४० ॥

कथंपश्यसिपाश्चात्यंदेहचेष्टाक्रमंविभो ॥ शिखिध्वजउवाच॥ सुमनःपूर्णनीलाब्जमालासारविलोचने॥ ॥ ४१ ॥ त्वमेवयस्ययस्यांतस्तत्तस्याहमुपास्थितः ॥ निरीहोस्मिनिरंशोस्मिनभःस्वच्छोस्मिनिस्पृहः॥

॥ ४२ ॥ शांतोहमर्थरूपोस्मिचिरायाहमहंस्थितः ॥ तांदशामुपयातोस्मियतश्चित्तैकवर्त्मनि ॥ ४३ ॥ प्रतिषेधंतिसहसानयांहरिहरादयः ॥ नकिंचिन्मात्रचिन्मात्रनिष्ठोस्मिस्वस्थआस्थितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! पूर्वकालके देहकी क्रियाको अब कैसे देखतेहो, शिखिध्वज बोला कि–हे पुष्पोंसे पूर्ण नीलकमलकी मालाके सदृश नेत्र धारिणी ॥४१॥ हे प्रिये ! मोह, विवेक वा तत्व दर्शनके भीतर प्रकाशरूपसे जैसे तुम स्थितहो वैसाही मैं भी उस २ में प्रकाशक साक्षीरूपसे स्थितहुं, हे प्रिये ! अब मैं निरीहहुं, निरंशहुं, निस्पृहहुं, और आकाशके सदृश स्वच्छहुं॥४२॥शांतहुं, परमार्थ सद्रूपहुं, चिरकालसे देहादिमें अहंभ्रमको त्यागकर जो मैं (चिदात्मा) हुं उसी रूपसे स्थितहुं, और चित्तके एक मार्गमें स्थित मैं उस दशाको प्राप्तहुं जिसका निषेध सहसा हरिहरादिक भी नहीं करते ॥ ४३ ॥ और कुछ नहीं केवल चिन्मात्र निष्ठ अपने स्वभावमें स्थितहुं ॥ ४४ ॥

भ्रमेणाहंविमुक्तोस्मिसंसारेणालिलोचने ॥ नतुष्टोस्मिनखिन्नोस्मिनायमस्मिनचेतरत् ॥ ४५ ॥ नस्थूलोस्मिनसूक्ष्मोस्मिसत्यमस्मिचसुंदरि ॥ तेजोबिंबात्प्रयातेनभित्तावपतितेनच ॥ ४६ ॥ क्षयातिशयमुक्तेनप्रकाशेनास्मिवैसमः ॥ शांतास्मिसाम्यनेतास्मिस्वस्थोस्मिविगताशयः ॥ ४७ ॥ परिनिर्वाणएवास्मिसदृशोस्मिपतिव्रते ॥ यत्तदस्मितदेवास्मिवक्तुंशक्तोमिनेतरत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे कृष्णनेत्रे ! मैं इस संसारके भ्रमसे निर्मुक्तहुं न मैं प्रसन्नहुं न उदास हुं, और न मैं कार्य दृश्य वर्गहुं और न कारणहुं ॥४५॥ हे सुंदरि ! मैं न स्थूलहुं न सूक्ष्म किंतु सत्यरूपहुं, तेजके बिंबसे निस्सृत, भित्तिपर अपत्तित तथा क्षय और अतिशयसे विनिर्मुक्त प्रकाशके समान मैंहुं शांतहुं, जगत्की सब विषमताको त्यागकर साम्य भावको प्राप्तहुं और मनसे रहितहुं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे पतिव्रते ! सर्वथा निर्वाणरूप मैं अब तेरे समान हुं मैं जो कुछहुं वह हुं इसके सिवाय और कुछ नहीं कह सकता ॥ ४८ ॥

तरंगतरलापांगेगुरुस्त्वंमेनमोस्तुते ॥ प्रसादेनविशालाक्ष्यास्तीर्णोस्मिभवसागरात् ॥ ४९ ॥ पुनर्मलंनगृण्हामिशतध्मातसुवर्णवत् ॥ शांतःस्वस्थोमृदुर्यत्तोवीतरागोनिरंशधीः ॥ ५० ॥ सर्वातीतःसर्वगश्चखमिवायमहंस्थितः ॥ चूडालोवाच ॥ एवंस्थितेमहासत्वप्राणेशहृदयप्रिय ॥ ५१ ॥ किमिदानींप्रभोब्रूहिरोचतेतेमहामते ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ प्रतिषेधंनजानामिनजानाम्यभिवांछितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे चंचल तरंगके सदृश अपांग धारिणी ! तुम मेरी गुरूहो तुमको नमस्कार है तुमारी कृपासे मैं भवसागरसे पारहुआ ॥ ४९ ॥ हे प्रिये ! अग्निमें शतवार तपाहुये सुवर्णके तुल्य मैं अब पुनः मल नहीं धारण करूंगा, और शांत, स्वस्थ, कोमल, जितेंद्रिय, बीत तथा वासनारहित अब मैं हुं ॥ ५० ॥ हे सबसे अतीत और सर्वव्यापी आकाशके तुल्य यह मैं स्थितहुं, चूडाला बोली कि–हे महासत्व ! हे प्राणेश ! हे हृदयप्रिय ! जब ऐसा है ॥ ५१ ॥ तो हे महामते आपको इससमय क्या रूचताहै ! शिखिध्वज बोला हे प्रिये मैं प्रतिषेध तथा अभिलाषित नहीं जानता

यदाचरसितन्वित्वंकदाचिद्वेद्मितत्तथा ॥ यद्यन्मतंतेसकलंतथास्त्वविकलंप्रिये ॥ ५३ ॥ नकिंचिदनुसंधातुंजानाम्यंबरसुंदरः ॥ यदेवकिंचिज्जानासितदेवकुरुसुंदरि ॥ ५४ ॥ तदेवधारयिष्यामिप्रतिबिंबंयथामणिः ॥ चेतसागलितेच्छेनयथाप्राप्तमनिंदितम् ॥ ५५ ॥ नस्तौमिनचनिंदामियदिच्छसितदाचर ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ यद्येवंतन्महाबाहोसमाकर्णयमन्मतम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! जो कुछ तुम करतीहो वह समाधिके व्युत्थान कालमें जानताहुं, जो कुछ तुमको अभिमत हो वह पूर्णरूपसे हो ॥ ५३ ॥ हे सुंदरि ! मैं निर्लेपता तथा उदासीनता, कुछ भी अनुसंधान करना नहीं जानता, जो कुछ तुम जानतीहो सो करो ॥ ५४ ॥ इच्छारहित चित्तसे अनिंदित यथा प्राप्त वस्तुको ऐसे धारण करूंगा जैसे मणि प्रतिबिंबको ॥ ५५ ॥ न तो मैं किसीकी स्तुति करताहुं न निंदा करताहुं जो तुम चाहतीहो सो करो, चूडाला बोली–हे महाबाहो ! यदि ऐसा है तो मेरा अभिमत सुनो ॥ ५६ ॥

आकर्ण्यजीवन्मुक्तात्मंस्तदेवाहर्तुमर्हसि ॥ सर्वत्रैक्यावबोधेनमौर्ख्यक्षयभुवान्विताः ॥ ५७ ॥ निरिच्छास्तावदाकाशविशदाःसंस्थितावयम् ॥ यादृगेषणमस्माकंतादृशंतदनेषणम् ॥ ५८ ॥ यत्प्राणानैषणेकोत्रचिन्मात्रोभ्यसतेहिकः ॥ तस्मादाद्यंतमध्येषुयेवयंपुरुषोत्तम ॥ ५९ ॥ शेषमेकंपरित्यज्यतएवेमेस्थितावयम् ॥ राज्येनसांप्रतेनेमंकालंनीत्वाक्रमेणवै ॥ ६० ॥

अर्थ—और सुनकर वही करनेके योग्य आप हैं, और सर्वत्र एकताके ज्ञानसे हम लोग मूर्खतासे रहित हैं ॥ ५७ ॥ तथा इच्छारहित आकाशके समान स्वच्छ हमलोग स्थितहैं और हमको राज्यादि भोगोंकी अपेक्षा

और अनपेक्षा समान हैं ॥ ५८ ॥ क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियोंके अपने २ योग्य विषयोंके सेवन करनेसे चिन्मात्र आत्मामें क्या विशेषता होती है, और आसक्तिपूर्वक तो कौन तत्वज्ञानी विषयोंका अभ्यास करताहै, इसलिये हे पुरुषोत्तम! आदि अन्त तथा मध्यमें हम दोनों जिस स्वभावसे हैं उसी स्वभावसे ॥ ५९ ॥ शेष प्रारब्धकर्मको भोगसे नाश करके स्थित रहेंगे, इससमय प्राप्त राज्यसे शेष आयुको क्रमसे बिताकर ॥ ६० ॥

विदेहतांप्रयास्यामःप्रभोकालेनकेनचित् ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ वयमाद्यंतमध्येषुकीदृशास्तरलेवद ॥ ॥ ६१ ॥ शेषमेकंपरित्यज्यतिष्ठामःकथमेववा ॥ चूडालोवाच ॥ वयमाद्यंतमध्येषुराजानोराजसत्तम ॥ ॥ ६२ ॥ मोहमेकंपरित्यज्यभवामःपुनरेवते ॥ स्वएवनगरेराजाभवत्वंस्वासनेस्थितः ॥ ६३ ॥ ललामोनन्नुकांतानांमहिषीतेभवाम्यहम् ॥ सनृपामत्तवास्तव्यानृत्यन्नवनवांगना ॥ ६४ ॥

अर्थ—किसी समय विदेह मुक्तिको प्राप्त होंगे, शिखिध्वज बोला—हे प्रिये! आदि अन्त तथा मध्यमें हम कैसे हैं ॥ ६१ ॥ और शेष प्रारब्धको भोगकर कैसे रहैंगे सो कहो, चूडाला बोली—हे राजाओंमें श्रेष्ठ! आदि अन्त मध्यमें हम राजा हैं ॥ ६२ ॥ और एक मोहको त्यागकर पुनः वही होंगे, हे स्वामिन्! अपनेही नगरमें अपने राज्यासनपर स्थित आप राजा हों ॥ ६३ ॥ और अन्तःपुरकी सब स्त्रियोंके भूषणरूप मैं आपकी राजमहिषी हूंगी, और राजासहित होनेसे अति प्रसन्न प्रजासहित, नाचती हुई नूतन उत्तम अंगनाओंसे युक्त ॥ ६४ ॥

सपताकाध्वनत्तूर्यापुष्पप्रकरिणीपुरी ॥ लसद्वल्लयासमंजर्यारणत्पुष्पालिमालया ॥ ६५ ॥ मधुमासलतालक्ष्म्याचिराद्भवतुसासमा ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिचूडालयाप्रोक्तोविहस्यसशिखिध्वजः ॥ प्रोवाचमधुरंवाक्यमक्षुब्धंविगतज्वरः ॥ ६६ ॥ एवंचेत्तद्विशालाक्षिस्वायत्तानस्त्रिविष्टपे ॥ सिद्धभोगश्रियस्तासुनिवसामिनकिंप्रिये ॥ ६७ ॥ चूडालोवाच ॥ नराजन्ममभोगेषुवांछानापिविभूतिषु ॥ स्वभावस्यवशादेवयथाप्राप्तेनमेस्थितिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—तथा पताकाओंसे शोभित तथा तुरही नगाडोंके शब्दोंसे घोषित, और शोभायमान लतामंजरीसे वेष्टित भ्रमरोंके शब्दसे पूर्ण पुष्पोंकी मालासहित वसन्तकी शोभासे युक्त वह नगरी चिरकालसे पुनः अपनी पूर्व शोभाको प्राप्त हो ॥ ६५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! चूडालाके इतना कहनेपर सन्तापरहित राजा शिखिध्वज क्षोभ त्यागपूर्वक मधुर वाक्य बोले ॥ ३६ ॥ हे विशालनेत्रे! यदि ऐसा है तो हम दोनों स्वर्गमें रहनेकोभी स्वतंत्र हैं, हे प्रिये! जहां सिद्ध देवताओंके भोगोंकी लक्ष्मी है उन्हीमें क्यों न निवास करें ॥ ६७ ॥ चूडाला बोली हे राजन्! मेरी न भोगोंमें इच्छाहै और संसारकी विभूतियोंमें, किन्तु स्वभाववशसे यथाप्राप्त वस्तुमेंही मेरी स्थिती है

नसुखायममस्वर्गोनराज्यंनापिचक्रिया ॥ यथास्थितमविक्षुब्धंतिष्ठामिस्वस्थचेष्टिता ॥ ६९ ॥ इदंसुखमिदंनेतिमिथुनेक्षयमागते ॥ सममेवपदेशांतेतिष्ठामीहयथासुखम् ॥ ७० ॥ शिखिध्वजउवाच ॥ युक्तमुक्तंविशालाक्षित्वयैतत्समयाधिया ॥ कोवार्थःकिलराज्यस्यग्रहेत्यागेपिवाभवेत् ॥ ७१ ॥ सुखदुःखदशाचिंतांत्यक्त्वाविगतमत्सरम् ॥ यथासंस्थानमेवेमौतिष्ठावःस्वस्थतांगतौ ॥ ७२ ॥

अर्थ—न तो स्वर्ग मेरे सुखके लिये है और न राज्य न क्रिया, किन्तु क्षोभरहित स्वस्थचित्तसे यथास्थित विद्यमानहुं ॥ ६९ ॥ यह सुखहै यह नहीं है ये दोनों द्वंद्व मेरे नाशको प्राप्त होगये समानरूपसे शांतपदमें सुखपूर्वक स्थितहुं ॥ ७० ॥ शिखिध्वज बोला कि—हे प्रिये! तुमने समबुद्धिसे योग्य कहा हमको राज्यके ग्रहण वा त्यागसे क्या प्रयोजन ?॥ ७१ ॥ सुखदुःखकी दशाओंकी चिंताको त्यागकर, तथा मत्सररहित होके, और स्वस्थतामें प्राप्त यथास्थितही रहैं ॥ ७२ ॥

इतितत्रकथालापकथनेनतयोर्द्वयोः ॥ कांतयोश्चिरदंपत्योर्वासरस्तनुतांययौ ॥ ७३ ॥ अथोत्थायदिनाचारंयथाप्राप्तमनिंदितौ ॥ सोत्कंठावप्यनुत्कंठौचक्रतुःकार्यकोविदौ ॥ ७४ ॥ स्वर्गसिद्धिमनादृत्यतस्थुतुःपूर्णचेतसौ ॥ एकस्मिन्नेवशयनेतैस्तैःप्रणयचेष्टितैः ॥ साव्यतीयायरजनीतयोर्जीवद्विमुक्तयोः ॥ ॥ ७५ ॥ तद्भोगमोक्षसुखमुत्तमयोःस्वयंसमाशंसतोःप्रणयवाक्यविलासगर्भम् ॥ उत्कंठतांप्रणयिनोर्धियमानयंतीदीर्घामुहूर्त्तवदसौरजनीजगाम ॥ ७६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने चूडालाप्रकटीकरणंनामनवाधिकशततमःसर्गः ॥ १०९ ॥

अर्थ—हे रामजी! उन दोनों प्रिय स्त्रीपुरुषोंके इसप्रकारके वार्तालापसे वह दिन बीतगया ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर निंदारहित कार्य्यमें प्रवीण, भोगमें अति उत्कण्ठा सहित होनेपरभी वासनारहित होनेसे उत्कण्ठारहित दो-

नोंने उठकर सायंकालकी सन्ध्या की ॥ ७४ ॥ स्वर्गकी प्राप्तिका अनादर करके पूर्णचित्त ज्योंके त्यों स्थित रहे, एकही शय्यापर स्थित उन दोनों जीवन्मुक्त स्त्रीपुरुषकी वह रात्रि व्यतीत होगई ॥ ७५ ॥ प्रणयके वाक्योंके विलाससे पूर्ण स्वयं अनुभूत भोग तथा मोक्षके सुखको वर्णन करते हुये उन दोनों प्रेमियोंकी उत्कंठाकी बुद्धिको बढाती हुई दीर्घभी वह रात्रि एक मुहूर्तके समान बीतगई ॥ ७६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपाख्याने चूडालाप्रकटीकरणं नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

संकल्पकी सेना तथा हांथीके साथ दोनों अपने नगरमें गये जीवन्मुक्त होकर चिरकालतक राज्य करके विदेहमुक्त हुये इस विषयका वर्णन इस ११० के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततःसमुदितेसूर्येवितमस्यंबरेस्थिते ॥ समुद्गकादिवजगन्मणौतस्मिन्विनिर्गते॥ ॥ १ ॥ विकसत्यरुणोपांतेचक्षुषीवांबूजाकरे ॥ आचारेष्विवलोकेषुप्रसृतेष्वर्करश्मिषु ॥ २ ॥ दंपती तौसमुत्थायकृतसंध्याक्रमौस्थितौ ॥ पत्रासनेमृदुस्निग्धेकांतौकांचनकंदरे ॥ ३ ॥ अथोत्थायात्रचूडालारत्नकुंभंपुरःस्थितम् ॥ कांतासंकल्पयामासपूर्णसप्ताब्धिवारिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! रात्रि बीतनेपर, पेटारीसे माणिके तुल्य निर्गत जगत्के मणि सूर्यके उदय होनेसे आकाश जब अन्धकारसे रहित होगया और रक्तवर्ण नेत्रके समान कमलवन विकसित, होगया. और कर्मोंमें जगत्के प्राणियोंके सदृश सूर्यकी किरणों जब प्रसृत हुई ॥१॥२॥ उस समयतक उठकर प्रातःकालके सन्ध्याक्रमको समाप्त करके दोनों प्रिय स्त्रीपुरुष कांचनकी कन्दरामें पत्रके कोमल तथा चिक्कण आसनपर बैठे ॥ ३ ॥ उसके अनन्तर चूडाला राजाकी प्रिया पत्नी सन्मुख स्थित रत्नके कलश, सातोंसमुद्रके जलसे पूर्ण हो ऐसा संकल्प किया ॥४॥

तेनमंगलकुंभेनतंपूर्वाभिमुखंस्थितम् ॥ भार्याभर्तारमेकांतेस्वराज्येऽभिषिषेचसा ॥ ५ ॥ संकल्पोपगतेहैमेस्वभिषिक्तंस्वविष्टिरे ॥ स्थितंप्रोवाचतन्वीसाचूडालादेवरूपिणी ॥ ६ ॥ केवलंमौनमुत्सृज्यतेजःशांतमिदंप्रभो ॥ अष्टानांलोकपालानांतेजस्त्वंभर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ चूडालयेतिसंप्रोक्तोवनेराजाशिखिध्वजः ॥ वदन्नेवंकरोमीतिमहाराजत्वमाययौ ॥ ८ ॥

अर्थ—सातोंसमुद्रोंके जलसे पूर्ण उस मंगलके घटसे अपने पतिराजाका अपने प्रियराज्यका उस रानीने अभिषेक किया ॥ ५ ॥ संकल्पसे प्राप्त सुवर्णके सिंहासनपर बैठे हुये पूर्णरीतिसे अभिषिक्तराजासे सूक्ष्मांगी तथा देवरूपिणी चूडाला बोली ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! मुनियोग्य शांत तेजको त्यागकर शासन करनेके योग्य इन्द्रादि आठों लोकपालोंके तेजको आप धारण करनेके योग्य हैं ॥ ७ ॥ चूडालाके इतना कहनापर बनमें राजा शिखिध्वजने कहा ऐसाही करूंगा, और उसने महाराजपदवीको धारण किया ॥ ८ ॥

अथप्रतीहारपदेतिष्ठंतीमाहमानिनीम् ॥ अद्यदेवीपदेराज्ञीत्वांकरोम्यभिषेकिनीम् ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वासरसिस्नाप्यमहादेवीपदेतथा ॥ अभिषिक्तांनृपःकृत्वासतामाहनिजांप्रियाम् ॥ १० ॥ प्रियेकमलपत्राक्षिक्षणात्संकल्पसंभवम् ॥ महाविभवमुद्दामसैन्यमाहर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ इतिकांतवचःश्रुत्वाचूडालावरवर्णिनी ॥ सैन्यंसंकल्पयामासप्रावृड्घनमिवोद्धटम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अनन्तर द्वारपालके स्थानमें बिनयसे स्थित उस मानिनी प्रियासे राजा बोला-कि हे प्रिये ! आज तुमको राज्यमें अभिषिक्त महाराणीके पदमें स्थापित करताहूं ॥ ९ ॥ ऐसा कहके तडागमें स्नानकरके महादेवीके पदमें अपनी प्रियाको अभिषिक्त करके राजा यह बोला ॥ १० ॥ कि-कमलपत्र सदृश नेत्रधारिणी प्रिये क्षणभरमें अपने सत्यसंकल्पसे उत्पन्न तथा विभवयुक्त बडीभारी सेना इससमय प्राप्त करनेके योग्य तुमहो ॥ ११ ॥ उत्तम वर्णधारिणी चूडाला अपने पतिके उस बचनको सुनके महा सैन्यका संकल्प ऐसे किया जैसे वर्षाऋतु महान् मेघका ॥ १२ ॥

सैन्यंददृशतुस्तत्तौवाजिवारणसंकुलम् ॥ पताकापुरिताकाशंनीरंध्रीकृतकाननम् ॥ १३ ॥ तूर्यारवध्वनच्छैलगुहागहनकोटरम् ॥ मौलिरत्नमहोद्योतविचूर्णिततमःपटम् ॥ १४ ॥ तत्रगंधद्विपवरेकृतपार्थिवमं

डले ॥ रक्षितेहृष्टसामंतैरारूढौनृपदंपती ॥ १५ ॥ ततःशिखिध्वजोराजामहिष्यासममिष्टया ॥ पदाति रथसंबाधंकर्षन्नतिबलोबलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् हांथी घोडोंसे व्याप्त, पताकाओंसे आकाशको पूर्ण करनेवाली, तथा बनको अवकाश रहित कारिणी सेनाको उन दोनोंने देखा ॥ १३ ॥ तथा नगाडे आदिके प्रतिशब्दोंसे पर्वत तथा कन्दराओंके गहन कोटरोंको पूर्ण करनेवाली, और मुकुटके रत्नोंके प्रकाशसे अन्धकार नाशिनी उस सेनाको देखा ॥ १४ ॥ उस सेनामें राजाओंके मण्डल विद्यमान तथा प्रसन्न सामन्तोंसे रक्षित मद गंधयुक्त श्रेष्ठ हांथीपर दोनों स्त्रीपुरुष आरूढ (सवार) हुये ॥ १५ ॥ उसके पश्चात् महा बलीराजा शिखिध्वज अपनी प्रिया रानीकेसाथ पैदल तथा रथादिसे व्याप्त उस बडी सेनाको खींचता हुआ ॥ १६ ॥

चचालाचलचालिन्यासेनयासततोवनात् ॥ भिंदन्निवरसाशैलंवात्ययेवाशुभौमया ॥ १७ ॥ तस्मान्महे द्रशैलेंद्राच्चलितःसमहीपतिः ॥ पथिपश्यन्गिरीन्देशान्नदीग्रामान्सजंगलान् ॥ १८ ॥ दर्शयन्स्वप्रिया यास्तमात्मवृत्तांतसंचयम् ॥ प्रागल्पेनैवकालेनस्वांपुरींस्वर्गशोभनाम् ॥ १९ ॥ तत्रतेतस्यसामंतास्त दागमनमाहृताः ॥ विविदुर्जयशब्देननिर्जग्मुश्चोदिताशयाः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा अचलके समान चलनेवाली सेनासे पर्वतोंको ऐसे भेदन करतेहुये शीघ्रचले जैसे भूमिसे निःसृत पवन ॥ १७ ॥ उस महेंद्र पर्वतसे मार्गमें पर्वत, देश, नदी तथा बनसहित ग्रामोंको देखताहुआ राजा चला ॥ १८ ॥ और राज्यसे निकले समय अपने पूर्व वृत्तांतसमूहको अपनी प्रियाको देखलाता हुआ अलपकालमेंही स्वर्गके सदृश शोभायमान अपनी पुरीमें पहुंचगया ॥ १९ ॥ वहांपर उसके मंत्रिगण तथा करदेनेवाले छोटे २ राजाओंने जयके शब्दोंसे उसके आगमनको जाना, और आदरयुक्त तथा प्रसन्न होके उसकी अगवानीकेलिये नगरसे निकले ॥ २० ॥

एकतांसंप्रयातेनतारतूर्यनिनादिना ॥ बलद्वयेनतेनासौविवेशनगरंनृपः ॥ २१ ॥ लाजपुष्पांजलिव्रातैरा वृष्टःपौरयोषिताम् ॥ वणिग्मार्गमसौपश्यन्परंपरमनुत्तमम् ॥ २२ ॥ पताकाध्वजसंबाधंमुक्ताजालमनो रमम् ॥ नृत्यगेयपरस्त्रीकंस्वभूमावचलस्थितम् ॥ २३ ॥ प्रविश्याथगृहंतैस्तैःसंयुतंनृपमंगलैः ॥ सम्य क्संमानयामासप्रणतंप्रकृतिव्रजम् ॥ २४ ॥

अर्थ—नगाडे आदिके उच्चशब्द करनेवाली एकताको प्राप्त उस दोनों सेनाके साथ राजाने नगरमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ नगरकी स्त्रियोंकी लाजा (लावा) तथा पुष्पांजलियोंकी वृष्टिसे आच्छादित वह राजा उत्तरोत्तर अति उत्तम व्यापारियोंके मार्गको देखताहुआ राजा गया ॥ २२ ॥ पताका तथा ध्वजाओंसे व्याप्त, मुक्ताओंके समूहोंसे मनोरम, उत्तम अंगनाओंके नृत्य तथा गानसे पूर्ण, अपनी भूमिपर कैलासके समान उच्च स्थित ॥ २३ ॥ और राजाओंके योग्य मंगलोंसेयुक्त अपने राजभवनमें प्रवेश करके नम्रीभूत मंत्री आदि प्रकृति मण्डलका राजाने पूर्ण रीतिसे सन्मान किया ॥ २४ ॥

पुरोत्सवंभृशंकृत्वादिनसप्तकमुत्तमम् ॥ अकरोद्राजकार्याणिस्वानिस्वांतःपुरेनृपः ॥ २५ ॥ दशवर्षस हस्राणिराज्यंकृत्वामहीतले ॥ सहचूडालयारामविरतोदेहधारणात् ॥ २६ ॥ देहमुत्सृज्यनिर्वाणमस्नेह इवदीपकः ॥ अपुनर्जन्मनेरामजगामेतिमहामतिः ॥ २७ ॥ दशवर्षसहस्राणिसमदृष्टितयातया ॥ राज्यं तयारमय्यापिनिर्वाणंपदमाप्तवान् ॥ २८ ॥ विगतभयविषादोमानमात्सर्यमुक्तःप्रकृतसहजकर्माभुक्तनी रागबुद्धिः ॥ इतिसमसमदृष्टिर्मृत्युमार्योथजित्वादशशिशिरसहस्राण्यैकराज्यंचकार ॥ २९ ॥ भुक्त्वा भोगाननेकान्भुविसकलमहीपालचूडामणित्वेस्थित्वावैदीर्घकालंपरममृतपदंप्राप्तवान्सत्वशेषः ॥ एवं रामागतंत्वंप्रकृतमनुसरन्कार्यजातंविशोकस्तिष्ठोत्तिष्ठस्वयंवाप्रसभमनुभवन्भोगमोक्षादिलक्ष्मीः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चूडालोपाख्याने शिखिध्वजनिर्वाणंनामदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११० ॥

॥ चूडालोपाख्यानंसमाप्तम् ॥

अर्थ—सात दिनपर्यंत नगरमें महान् उत्सव करके राजाने राज्यकार्योंको तथा अपने अन्तःपुरमें समाधि भोगादि कार्य्योंको किया ॥ २५ ॥ दशसहस्रवर्ष भूमण्डलपर राज्य करके चूडालाके साथ राजा इस देहके धारणसे विरक्त हुआ ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इस देहको त्यागकर पुनर्जन्म न धारण करनेकेलिये वह महामति पूर्वोक्त रीतिसे तेज रहित दीपके तुल्य कैवल्य मुक्तिमें प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ ॥ दशसहस्र वर्ष पर्यंत समदृष्टिसे राज्य करके और उस अपनी प्रियाको भी रमण कराके निर्वाणपदको प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ हे रामजी ! भय, विषाद, मान तथा मात्सर्य्यसे

रहित, प्राप्त सहज कर्मोंका कर्ता, समवर्तियोंसे अधिक समदृष्टि उस आर्य्य राजा शिखिध्वजने मृत्युको जीतकर जंबूद्वीपमें दशसहस्रवर्ष राज्य किया ॥ २९ ॥ राजा शिखिध्वज इसपर दीर्घकालतक महीपालोंके चूडामणिके पदपर स्थित होके अनेक भोगोंको भोगकर चिन्मात्र शेष परम अमृतपदको प्राप्तहुआ, हे रामजी ! तुम भी इसीप्रकार प्रारब्धके अनुसार यथाप्राप्त कार्य्यसमूहोंको करते हुये समाधिमें स्थितरहो वा भोग मोक्षादिकी लक्ष्मीको अनुभव करते हुये व्यवहारमें स्थितरहो ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे चूडालोपाख्याने शिखिध्वज निर्वाणंनाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

चूडालोपाख्यानं समाप्तम्।

एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

जैसे चूडालाने राजाको सर्वस्व त्याग करायाथा इसीप्रकार पितासे कचका सर्वस्व त्याग कराया गया, अन्तमें अहंकारको त्यागकर कच पूर्णरूप होगया यह विषय इस १११ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंशिखिध्वजकथानकम् ॥ अनेनगच्छन्मार्गेणनकदाचनखिद्यसे ॥ १ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यरागद्वेषविनाशिनीम् ॥ नित्यंनीरागयाबुद्ध्यातिष्ठावष्टब्धतत्पदः ॥२॥ यथा शिखिध्वजोराज्यंकृतवानेवमीदृशम् ॥ रामव्यवहरन्राज्येभोगमोक्षमयोभव ॥ ३ ॥ शिखिध्वजक्रमेणैवयथाबोधमवाप्तवान् ॥ कचोबृहस्पतेःपुत्रस्तथाबुध्यस्वराघव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह सब शिखिध्वजकी सब कथा मैंने तुमसे कहदी, इस मार्गसे चलते हुये तुम कभी खिन्न नहीं होओगे ॥ १ ॥ इसी रागद्वेष विनाशिनी दृष्टिको नित्य रागरहित बुद्धिसे दृढतापूर्वक अवलंबन करके स्थितरहो ॥ २ ॥ हे रामजी ! शिखिध्वजने जैसे राज्य कियाहै ऐसेही तुम भी व्यवहार करते हुये भोग तथा मोक्षसे पूर्ण होजाओ ॥ ३ ॥ हे रामजी ! शिखिध्वजकी रीतिसे जैसे बृहस्पतिका पुत्र कचने ज्ञान प्राप्त किया ऐसेही तुम भी ज्ञानयुक्त होजाओ ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ बृहस्पतेर्भगवतःपुत्रोसौभगवान्कचः ॥ यथाप्रबुद्धोभगवन्समासेनतथावद ॥ ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्कथांश्रीमाञ्छिखिध्वजवदेवसः ॥ प्रबोधंपरमंयातोदेवदेशिकजःकचः ॥ ६ ॥ बालभावात्ससुत्तीर्णःसंसारोत्तरणोन्मुखः ॥ कचःपदपदार्थज्ञोबृहस्पतिमभाषत ॥ ॥ ७ ॥ कचउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञकथंसंसृतिपंजरात् ॥ अस्मान्निर्गम्यतेब्रूहिजंतुनाजीवतंतुना ॥ ८॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! भगवान् बृहस्पतिके पुत्रने जैसे ज्ञान प्राप्त किया वह मुझसे संक्षेपसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! शिखिध्वजकेही सदृश जैसे देवगुरूका पुत्र श्रीमान् कच ज्ञानयुक्त हुआ वह कथा तुम सुनो ॥ ६ ॥ हे रामजी ! बाल्यावस्थासे पार होके युवावस्थामें प्राप्त मात्र संपूर्ण विद्याओंमें प्रवीण कच संसारसे पार उतरनेकी इच्छासे बृहस्पतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि–हे सर्व धर्मज्ञ ब्रह्मन् ! जीवनरूप तंतुसे बंधाहुआ यह जीव संसारसागरसे कैसे पार होसकताहै सो कहो ॥ ८ ॥

॥ बृहस्पतिउवाच ॥ अनर्थमकरागारादस्मात्संसारसागरात् ॥ उड्डीयतेनिरुद्वेगंसर्वत्यागेनपुत्रक॥९॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्याकर्ण्यकचोवाक्यंपितुःपरमपावनम् ॥ सर्वमेवपरित्यज्यजगामैकांतकाननम् ॥ १० ॥ बृहस्पतेस्तद्गमनंनोद्वेगायबभूवह ॥ संयोगेचवियोगेचमहांतोहिमहाशयाः ॥ ११ ॥ अथवर्षेषुजातेषुत्रिषुपंचसुसोनघ ॥ पुनःप्रापमहारण्येकस्मिंश्चित्पितरंकचः ॥ १२ ॥

अर्थ—बृहस्पतिजी बोले कि–हे प्रिय पुत्र ! अनर्थरूप मकरोंके स्थानरूप इस संसारसे पार सर्वत्याग करनेसे बिना उद्वेगही होजाताहै ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अपने पिताके इस परमपवित्र वाक्यको सुनकर कच सर्वस्व त्यागकर एकांत बनमें गया ॥ १० ॥ वह पुत्रका गमन बृहस्पतिके उद्वेगकेलिये नहीं हुआ क्योंकि महात्माजन संयोग तथा वियोगमें मेरूके तुल्य स्थिर बुद्धिसहित होतेहैं ॥ ११ ॥ हे पापरहित रामजी ! इसके पश्चात् आठ वर्ष बीतनेपर किसी महा बनमें कचके पिता मिले ॥ १२ ॥

परिपूज्याभिवाद्यैनंसमालिंगितपुत्रकम् ॥ अपृच्छद्वाक्पतिंभूयःसकचःकांतयागिरा ॥ १३ ॥ कचउवाच ॥ अद्येदमष्टमंवर्षंसर्वत्यागःकृतोमया ॥ तथापितातविश्रांतिंनाधिगच्छाम्यनिंदिताम् ॥ १४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमार्त्तवचस्तस्मिन्कचेवदतिकानने ॥ सर्वमेवत्यजेत्युक्त्वावाक्पतिर्दिवमुद्ययौ ॥ १५ ॥ गतेतस्मिन्कचोदेहाद्वल्कलाद्यप्यथात्यजत् ॥ गतंद्वभ्रार्कतारेणशरद्व्योम्नासमोभवत् ॥१६॥

अर्थ—पूजा तथा प्रणामादिके पश्चात् पिताने पुत्रको आलिंगन किया तब पुनः कोमल बाणीसे कचने बृहस्पतिजीसे यह पूंछा ॥ १३ ॥ कच बोला कि—हे पूज्य पितः! आज मुझे सर्वत्याग किये आठ वर्ष बीतगये परंतु निन्दारहित विश्रांतिको मैं नहीं प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! पुत्रके इस दीन बचनके कहनेपर सब कुछ त्यागो यह कहके बृहस्पति स्वर्गको चलेगये ॥ १५ ॥ बृहस्पतिके जानेपर कचने चीरवल्कलादिको भी त्यागकर सूर्योदयके समय चंद्रमा तथा तारागणसे रहित शरत्कालके आकाशके तुल्य होगया ॥ १६ ॥

पुनर्वर्षत्रयेणैषकस्मिंश्चित्काननांतरे ॥ तत्याजांबुदवर्षादिशरदीवनभस्तलम् ॥ १७ ॥ उवासैकोदिगंतेषुशांतशून्यवपुःश्वसन् ॥ दूयमानमनाःप्रापतमेवपितरंगुरुम् ॥ १८ ॥ कृतपूजाक्रमोभक्त्यासमालिंगितपुत्रकम् ॥ अपृच्छत्सकचोभूयःखेदगद्गदयागिरा ॥ १९ ॥ कचउवाच ॥ तातसर्वपरित्यक्तंकंथावेणुलताद्यपि ॥ तथापिनास्तिविश्रांतिःस्वपदेकिंकरोम्यहम् ॥ २० ॥

अर्थ—पुनः तीन वर्षपर्य्यन्त कचने किसी बनमें गुहाके आश्रयसे मेघवृष्टिआदिका परिहार किया ॥ १७ ॥ एकांत दिशाके अंतमें दिगंबररूप खिन्न चित्त होके एकाकी रहता था वहांपर पुनः अपने उसी पितागुरुको पाया ॥ १८ ॥ भक्तिपूर्वक पूजाके क्रमको करके पुत्रको आलिंगन करनेवाले बृहस्पतिसे कचने खेदयुक्त गद्गद वाणीसे पुनः पूंछा ॥ १९ ॥ कच बोला कि—हे तात! मैंने कंथा, दंड तथा मृगचर्मादि सब कुछ त्यागा तथापि आत्मपदमें मेरी विश्रांति नहीं है ॥ २० ॥

॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ चित्तंसर्वमितिप्राहुस्तत्त्यक्त्वापुत्रराजसे ॥ चित्तत्यागंविदुःसर्वत्यागंसर्वविदोजनाः ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वावाक्पतिःपुत्रंपुप्लुवेतरसानभः ॥ अन्विवेषकचश्चित्तंपरित्यक्तुमखिन्नधीः ॥ २२॥ चिंतयन्नप्यसौचित्तंनयदावेदकानने ॥ तदासंचिंतयामासधियैवपितरंययौ ॥ २३ ॥ पदार्थवृंदंदेहादिनचित्तमितिकथ्यते ॥ तदेतत्किंकवाव्यर्थनिरागस्कंत्यजाम्यहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बृहस्पति बोले—हे पुत्र! चित्तको सब कुछ कहतेहैं उसको त्यागकर तुम शोभित होओगे, क्योंकि चित्तके त्यागकोही सर्ववेत्तालोग सर्वत्याग कहतेहैं ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह कहके बृहस्पति वेगसे आकाशमें उडगये और कच सावधान होकर चित्तको त्यागनेकेलिये ढूंढा ॥ २२ ॥ उस बनमें चित्तको चिंतन करतेहुये जब उसने नहीं जाना तब बुद्धिसे अपने पिताको चिंतन किया ॥ २३ ॥ पदार्थ समूह इस देहादिको तो चित्त नहीं कहते सो व्यर्थ अपराधरहित देहादिको मैं क्यों त्यागूं ॥ २४ ॥

पितुःसकाशंगच्छामिज्ञातुंचित्तंमहारिपुम् ॥ ज्ञात्वातत्संत्यजाम्याशुततस्तिष्ठामिविज्वरः ॥ २५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥इतिसंचिंत्यसकचउज्जगामत्रिविष्टपम् ॥ वाक्पतिंप्राप्यसस्नेहंववंदेप्रणनामच॥२६॥ अपृच्छच्चैनमेकांतेकिंचित्तंभगवन्वद ॥ स्वरूपंब्रूहिचित्तस्ययेनतत्संत्यजाम्यहम् ॥ २७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ चित्तंनिजमहंकारंविदुश्चित्तविदोजनाः ॥ अंतर्योयमहंभावोजंतोस्तच्चित्तमुच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—महाशत्रु चित्तको जाननेके अर्थ पिताके निकट जाऊं उसको जानकर शीघ्र त्यागूं कि जिससे संतापरहित स्थित रहूं ॥ २५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—ऐसा विचार करके वह स्वर्गमें गया, और अपने पिताको स्नेहपूर्वक वंदना तथा प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और एकांतमें अपने पितासे पूंछा कि हे भगवन्! चित्त क्या है उसका स्वरूप कहिये जिससे कि मैं उसे त्यागूं ॥ २७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि—हे पुत्र! चित्त जाननेवाले अपने अहंकारको चित्त कहते हैं, जीवके अन्तःकरणमें जो अहंभाव है उसीको चित्त कहते हैं ॥ २८ ॥

कचउवाच ॥ त्रयस्त्रिंशन्महाकोटिप्रमाणस्यमहामते ॥ गुरोगीर्वाणवृंदस्यकथमेतद्वदेतिमे ॥ २९ ॥ मन्येस्यदुष्करस्त्यागोनसिद्धिमुपगच्छति ॥ कथमेषकिलत्यक्तुंशक्यतेयोगिनांवर ॥ ३० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अपिपुष्पावदलनादपिलोचनमीलनात् ॥ सुकरोहंकृतेस्त्यागोनक्लेशोत्रमनागपि ॥ ३१ ॥ यथैतदेवंतनयतथाशृणुवदामिते ॥ अज्ञानमात्रसंसिद्धंवस्तुज्ञानेननश्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—कच बोले—हे तेतीसकोटि देवसमूहोंके गुरो! हे महामते! यह अहंभाव कैसे चित्त है सो आप कहिये ॥ २९ ॥ मेरी बुद्धिमें इसका त्याग दुष्कर जानपडताहै वह सिद्ध नहीं होसकता, हे योगियोंमें श्रेष्ठ! यह आत्मारूप अहंकार कैसे त्यागा जासकताहै ॥ ३० ॥ बृहस्पतिजी बोले—हे पुत्र! साक्षीके जाननेपर पुष्पके मर्दन और नेत्र

मूंदनेसेभी चित्तका त्याग सरल है इसमें किंचिद्भी क्लेश नहीं है ॥ ३१ ॥ हे पुत्र! ऐसे यह वार्ता जैसे है सो सुनो मैं कहताहूं, साक्षीके अज्ञान मात्रसे सिद्ध जो वस्तु है वह उसके ज्ञानसे नष्ट होती है ॥ ३२ ॥

वस्तुतोनास्त्यहंकारःपुत्रमिथ्याभ्रमोयथा ॥ असन्सन्निवसंपन्नोबालवेतालवत्स्थितः ॥ ३३ ॥ यथारज्ज्वांभुजंगत्वंमरावंबुमतिर्यथा ॥ मिथ्यावभासःस्फुरतितथामिथ्याप्यहंकृतिः ॥ ३४ ॥ असदेवयथाद्वित्वंमोहादिंदौविलोक्यते ॥ तथास्फुरत्यहंकारोनसत्योवाप्यसन्नच ॥ ३५ ॥ एकमाद्यंतरहितंचिन्मात्रममलांतरम् ॥ खादप्यतितरामच्छंविद्यतेसर्ववेदनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पुत्र! जैसे मिथ्या भ्रम कुछ नहीं है ऐसेही अहंकारभी यथार्थमें कुछ नहीं है, यह असत् सत्के समान ऐसे सिद्ध होके स्थितहै जैसे बालककी बुद्धिमें वेताल ॥ ३३ ॥ जैसे रज्जुमें सर्प तथा मरुस्थलमें जलकी बुद्धि मिथ्या भासती है ऐसेही यह अहंकारभी मिथ्या है ॥ ३४ ॥ अज्ञानसे चंद्रमामें द्वित्वका भान होताहै ऐसेही सत्असत्से विलक्षण अहंकारभी भासताहै ॥ ३५ ॥ आदि अंत शून्य, आकाशसेभी अति स्वच्छ, और सबका अनुभवरूप केवल एकचिन्मात्र आत्मा सत्है ॥ ३६ ॥

सर्वत्रसर्वदासर्वप्रकाशंसर्वजंतुषु ॥ तदेवैकंकचत्यंबुविलोलास्वब्धिवीचिषु ॥ ३७ ॥ अत्रकोयमहंभावः कुतोवाकथमुत्थितः ॥ क्वाप्सुजातोरजोराशिःक्वानलाद्वुत्थितंजलम् ॥ ३८ ॥ अयंसोहमितिव्यर्थप्रत्ययं त्यजपुत्रक ॥ तुच्छंपरिमिताकारंदिक्कालविवशीकृतम् ॥ ३९ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नंस्वच्छंनित्योदितं ततम् ॥ सर्वार्थमयमेकार्थचिन्मात्रममलंभवान् ॥ ४० ॥ फलकुसुमदलानांसर्वदिक्संस्थितानांरसइव जगतांत्वंसंस्थितःसर्वदैव॥विमलतरचिदात्मानित्यमेवास्यनंतःकइवकचतवाहंनिश्चयोभावमूर्त्तेः ४१

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे कचोपाख्याने कचप्रबोधो नामैकादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १११ ॥

अर्थ—सर्वत्र सर्वदा सब जीवोंमें प्रकाशरूप वही एक ऐसे स्फुरित होरहाहै जैसे चंचल समुद्रकी तरंगोंमें जल ॥ ३७ ॥ इस आत्मामें अहंभाव कैसे और कहांसे किस रूपसे उत्पन्न हुआ यह दुर्वच है, जलमें धूलिकी राशि कैसे तथा कहां उत्पन्नहुई और अग्निसे जल कहां उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ हे प्रिय पुत्र! देश तथा वस्तुसे परिच्छिन्न तुच्छ और परिमित आकारवान् "यह वह" इस विश्वासको त्यागो ॥ ३९ ॥ देशकालादिके परिच्छेदेसे रहित, स्वच्छ, नित्य उदितरूप, सबके अधिष्ठान, और चिन्मात्र निर्मल आत्मा तुमही हो ॥ ४० ॥ हे कच! जैसे चारोओर स्थित पुष्प, फल तथा पत्रादिका सारभूत वृक्षके अन्तर्गत रस है ऐसे है सब ब्रह्माण्डोंके आधार वा सारभूत तुमही हो इसलिये निर्मल नित्यानंदरूप चिदात्मा तुमही हो, अखंड अद्वयरूप परमात्माका तुमारा परिच्छिन्न निश्चय कुछ नहीं है ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे कचोपाख्याने कचप्रबोधोनामैकादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

कचके आख्यानसे प्रबुद्ध श्रीरामचंद्रजीके प्रश्नसे मिथ्यापुरुषका आख्यान, और उसकी आकाश रक्षाकावर्णन इस ११२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिप्राप्यपरंयोगमुपदेशमनुत्तमम् ॥ जीवन्मुक्तोबभूवासौततोदेवगुरोःसुतः ॥१॥ निर्ममोनिरहंकारश्छिन्नग्रंथिःप्रशांतधीः ॥ कचोयथास्थितोरामतथातिष्ठाविकारवान् ॥ २ ॥ अहंकारमसद्विद्धिमैनमाश्रयमात्यज ॥ असतःशशशृंगस्यकिलत्यागग्रहौकुतः ॥ ३ ॥ असंभवत्यहंकारेक्वतेमरणजन्मनी ॥ नभःक्षेत्रेतथाव्युप्तंकेनसंगृह्यतेफलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसप्रकार देवगुरुकापुत्र परमात्माका निश्चायक तथा सर्वोत्तम उपदेशको पाकर जीवन्मुक्त होगया ॥ १ ॥ हे रामजी! ममता तथा अहंकारसे शून्य, संदेहरहित, और शांतचित्त जैसे कच स्थितरहा ऐसेही तुमभी रहो ॥ २ ॥ इस अहंकारको तुम असत् जानो, इसको न आश्रय दो न त्यागो; क्योंकि मिथ्या शशशृंगका ग्रहण वा त्याग कहां होताहै ॥ ३ ॥ अहंकारके असंभव होनेपर मन्ममरण कहां, क्योंकि आकाशमें बीजवोके किसका फूल मिलताहै ॥ ४ ॥

निरंशंशांतसंकल्पंसर्वभावात्मकंततम् ॥ परमादप्यणोःसूक्ष्मंचिन्मात्रंत्वमनोमयम् ॥ ५ ॥ यथांभस स्तरंगादियथाहेम्नोंगदादिच ॥ तदेवातदिवाभासंतथाहंभावभावितः ॥ ६ ॥ अबोधेनजगत्सर्वमायाम यमिवस्थितम् ॥ बोधेनसकलंब्रह्मरूपंसंपद्यतेनघ ॥ ७ ॥ द्वित्वैकत्वमतीत्यक्त्वाशेषस्थःसुखितोभव ॥ माडुःखितोभवव्यर्थंत्वंमिथ्यापुरुषोयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—अंशरहित, शांतसंकल्प सबपदार्थरूप, व्यापक और परमाणुसेभी सूक्ष्म मनोरथ चिन्मात्र तुमहीहो॥५॥ ॥ जैसे जलकेतरंगादि, तथा सुवर्णके अंगदादिहैं ऐसेही तुम चिन्मात्र होकेभी अहंभावरूपसे भावित हुयेहो ॥ ६ ॥ हे पापरहित रामजी ! अज्ञानसे यह मायामय जगत् ज्योंका त्यों स्थित रहताहै और ज्ञानसे सब ब्रह्मरूप होजाताहै ॥ ७ ॥ द्वित्व तथा एकत्व बुद्धिको त्यागकर शेषमें स्थित होकर सुखी रहो, और मिथ्यापुरुषके समान व्यर्थ दुःखी मत होवो ॥ ८ ॥

मायेयमतिदुष्पारासांसारीगाढतांगता ॥ शरदामिहिकेवाशुबोधेनायातितानवम् ॥९॥ श्रीरामउवाच॥ परमामागतोस्म्यंतस्तृप्तिंज्ञानामृतेनते ॥ अवग्रहभयाक्रांतःस्वासारेणेवचातकः ॥ १० ॥ अमृतेनेवसि क्तोहमंतर्गच्छामिशीतताम् ॥ उपर्यपिसमस्तानांतिष्ठाम्यतुलसंपदाम् ॥ ११ ॥ नतृप्तिमनुगच्छामिव चांसिवदतस्तव ॥ ऐंदवीनांमरीचीनांचकोरस्तृषितोयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—यह संसारकी दुष्पारमाया दृढताको प्राप्त होगई है; वह बोधसे शीघ्र ऐसे नाशको प्राप्त होतीहै जैसे शरदऋतुसे मेघपटल ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आपके ज्ञानरूप अमृतसे मैं आभ्यंतरमें ऐसी तृप्तिको प्राप्तहुं जैसे वृष्टिके प्रतिबंधके भयसे ग्रस्तचातक दैवसे प्राप्तवृष्टिसे॥१०॥ हे भगवन् ! अमृतसे सिंचेहुयेकेतुल्य अंतःकरणमें शीतलताको प्राप्त होरहाहुं और समस्त अतुल्य संपत्तियोंके ऊपर अब स्थितहुं ॥ ११ ॥ परंतु आपके वचनोंसे ऐसे नहीं तृप्त होताहुं जैसे चंद्रमाकी किरणोंसे तृषित चकोर ॥ १२ ॥

तृप्तोपिभूयःपृच्छामित्वांप्रश्नमिममीश्वरः ॥ कोनामतृप्तोप्यग्रस्तंनपिबत्यमृतासवम् ॥ १३ ॥ किमुच्य तेमुनिश्रेष्ठमिथ्यापुरुषनामकम् ॥ वस्त्ववस्तुकृतंजगद्वस्तुजातंवदाशुमे ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मिथ्यापुरुषबोधायशृणुराघवशोभनाम् ॥ इमामाख्यायिकांहासजननींमदुदीरिताम् ॥ १५ ॥ अस्तिक श्चिन्महाबाहोमायायंत्रमयःपुमान् ॥ बालपेलवधीमूढोगूढोमौर्ख्येणकेवलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तृप्तभी आपसे यह प्रश्न करताहुं क्योंकि कौन ऐसा है कि तृप्त भी अमृतपान न करै॥१३॥ हे भगवन् ! वह मिथ्या पुरुष कौन है जिसने वस्तुको अवस्तु किया, और अवस्तुजगत्को वस्तुरूप कियाहै ॥१४॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव! मिथ्यापुरूषके बोधकेलिये हास्यजनक मुझसे कहीहुई इस शोभन आख्यायिकाको तुम सुनो ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! मायाका मंत्ररूप, बालके तुल्य मूढमति, और मूर्खतासे आवृत्त एक पुरूषहै ॥१६ ॥

सएकांतेकचिज्जातःशून्येतत्रैवतिष्ठति ॥ केशोंडूकमिवव्योम्निमृगतृष्णेववामरौ ॥ १७ ॥ तस्मादन्यत्र तत्रास्तियदस्तिचसएवतत् ॥ यच्चान्यत्तत्तदाभासंनचपश्यतिदुर्मतिः ॥ १८ ॥ संकल्पस्तस्यसंजात स्तत्रवृद्धिमुपेयुषः ॥ खस्याहंखमहंखंमेखंरक्षामीतिनिश्चलः ॥ १९ ॥ खंस्थापयित्वारक्षामिवस्त्विष्टंस्व यमादरात् ॥ इतिसंचितयन्व्योमरक्षार्थंसोकरोद्गृहम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह आकाशमें केशसमूह वा मरूस्थलमें मृगतृष्णाके जलकेसमान कहीं एकांतमें उत्पन्न हुआ और वहांही एकांतमें स्थितहै ॥ १७ ॥ वहांपर उस मिथ्यापुरूषकेसिवाय और कोई नहीं है और जो कुछ है वही है, और जो कुछ उसकेसमान भासताहै उसको वह दुर्बुद्धि नहीं देखता ॥ १८ ॥ वहांपर जब वह बढा तो उसको यह संकल्प हुआ कि मैं आकाशकाहुं, आकाश मेराहै, इसलिये निश्चल होके आकाशकीही रक्षा करूं ॥ १९ ॥ आकाशको किसी उपाधिमें रखकर आदरसे उसकी रक्षा करूं ऐसा विचार करता हुआ आकाशकी रक्षाके लिये उसने गृह बनाया ॥ २० ॥

तस्यकोशेबबंधास्थांरक्षितंखंमयेत्यसौ ॥ गृहाकाशेनसंतुष्टस्ततःसरघुनंदन ॥ २१ ॥ अथकालेनतत्त स्यगृहंनाशमुपाययौ ॥ ऋत्वंतरेणाब्दइववातेनेवतरंगकः ॥ २२ ॥ हागृहाकाशनष्टंत्वंहाक्वयातमसिक्षण णात् ॥ हाहाभग्नमसिस्वच्छमित्येवैतच्छुशोचसः ॥ २३ ॥ इतिशोकशतंकृत्वापुनस्तत्रैवदुर्मतिः ॥ कूपंचक्रेखरक्षार्थंकूपाकाशपरोभवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रघुनंदन ! उस गृहके अंतभागके आकाशमें उसने विश्वास किया की मैंने आकाशकी रक्षा की, और उससे वह संतुष्ट हुआ ॥ २१ ॥ इसके अनंतर कालपाके उसका वह गृह ऐसे नष्ट हुआ जैसे शरदृऋतुसे पूर्व वर्ष वा

वायुसे तरंग ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् हा! गृहाकाश? तुम नष्ट होगये, हा क्षणभरमें तुम कहां चले गये, हा? ऐसे स्वच्छ तुम नष्ट होगये, इसप्रकार उसने शोक किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार अनेक शोक करके उस दुर्मतिने आकाशकी रक्षाके लिये उसी स्थानपर एक कूप बनाया, और उस कूपाकाशकी रक्षामें तत्पर हुआ ॥ २४ ॥

ततोनाशंसकालेनतीतःकूपोपितस्यवै ॥ कूपाकाशेगतेशोकनिमग्नोसौततोभवत् ॥ २५ ॥ कूपाकाशप्रलापांतेकुंभंशीघ्रमथाकरोत् ॥ कुंभाकाशपरोभूत्वास्वयंनिर्वृतिमाययौ ॥ २६ ॥ कुंभोपितस्यकालेननाशंनीतोरघूद्वह ॥ यामेवदिशमादत्तेदुर्भगःसाहिनश्यति ॥२७॥ कुंभाकाशप्रलापांतेखरक्षार्थंचकारसः ॥ कुंडंतथैवतेनासौकुंडाकाशपरोभवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् मृत्तिका धूलिआदिसे वह कूप पूर्ण होनेसे नष्ट होगया तब वह कूपाकाशके जानेपर वह दुर्बुद्धिभी शोकसागरमें निमग्न हुआ ॥२५॥ कूपाकाशके शोकके अंतमें उसने शीघ्र एक घट बनाया, और उस घटाकाशकी रक्षामें तत्पर होके उसमें ममत्वके अभिमानसे वह सुखी हुआ ॥ २६ ॥ हे रामजी! कालपाके वह घटभी नष्ट होगया, वह अभागा जिस दिशाका अवलंब लेता है वही नष्ट हो जाती है ॥ २७ ॥ घटाकाशके नाशके विलापके अंतमें उसने आकाशकी रक्षाके लिया एक कुंड बनाया, और उसी प्रकार उस कुंडाकाशकी रक्षामें तत्पर हुआ ॥ २८ ॥

कुंडमप्यस्यकालेनकेनचिन्नाशमाययौ ॥ तेजसेवतमस्तेनकुंडाकाशंशुशोचसः ॥ २९ ॥ कुंडाकाशस्यशोकांतेखरक्षार्थंचकारसः ॥ चतुःशालंमहाशालंतदाकाशमयोभवत् ॥ ३० ॥ तदप्यस्यजहाराशुकालःकवलितप्रजः ॥ जीर्णपर्णंयथावाततस्तःशोकपरोभवत् ॥३१ ॥ सचतुःशालशोकांतेखरक्षार्थंचकारह ॥ कुसूमलंबुदाकारंतदाकाशपरःस्थितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वह भी कालपाके नष्ट होगया तब उसके लिये भी उसने विलाप किया ॥ २९ ॥ उस कुंडाकाशके शोकके अंतमें उसने चार शालायुक्त महागृह बनाया, और उस आकाशमें आसक्ति करनेसे वह तन्मय होगया॥३०॥ सब प्रजाओंका ग्रास करनेवाले कालने उस गृहको भी शीघ्रही ऐसे नष्ट करदिया जैसे प्राचीन पत्तेको उससे वह शोकपरायण हुआ ॥ ३१ ॥ उस चार शालायुक्त गृहाकाशके शोकके अंतमें उसने आकाशकी रक्षाके लिये मेघाकार एक कुसूल (अन्न रखनेका कुठिला) बनाया और उस कुसूलाकाशकी रक्षामें तत्पर हुआ ॥ ३२ ॥

तदप्यस्यजहाराशुकालोवातइवांबुदम् ॥ कुसूलनाशशोकेनतेनासौपर्यतप्यत ॥ ३३ ॥ एवंगृहचतुःशालकुंभकुंडकुसूलकैः ॥ तस्यापर्यवसानात्माकालोयमतिवर्तते ॥ ३४ ॥ एवंस्थितःसविवशोगगनंगुहायांगृण्हन्गृहेणगहनेनकिलात्मबुद्ध्या ॥ दुःखांतराद्घनतराद्घनदुःखजातमायातियातिचगतागतिसंगमूढः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मिथ्यापुरुषोपाख्याने आकाशरक्षणं नाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

अर्थ—उस कुसूलको भी कालने शीघ्र ऐसे हरलिया जैसे पवन मेघको और उस कुसूलाकाशके नाशसे वह अत्यंत शोकग्रस्त हुआ ॥ ३३ ॥ हे रामजी! इसप्रकार ग्रह चतुःशालगृह घट कुंभ तथा कुसूलादिसे आकाशकी रक्षा करते हुये उस मिथ्यापुरूषका यह अनंतकाल बीतता चलाजाताहै ॥ ३४ ॥ हे रामजी! इसप्रकार वह मिथ्या पुरूष गृहकूप, तथा कुंड आदिके भीतर आकाशको ग्रहण कर्ता उनके गमनागमनमें, तथा उनकी रचना और क्षणमें कठिनसे भी कठिन दुःखको प्राप्त होताहै और कभी उससे निकल भी जाताहै ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे मिथ्या पुरुषोपाख्याने आकाशरक्षणं नाम द्वादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

आख्यायिकाके तात्पर्य्यके वर्णनसे मिथ्या पुरुषशब्दादिका अर्थ स्पष्टरीतिसे ११३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै॥

श्रीरामउवाच ॥ मिथ्यानरप्रसंगेनकिंमायापुरुषःप्रभो ॥कथितोयंत्वयाव्योमरक्षणंचकिमुच्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामयथाभूतमेतत्प्रकटयामिते ॥ मिथ्यापुरुषवृत्तांतकथायाकथिताधुना ॥ २ ॥ मायायंत्रमयःप्रोक्तोयःपुमान्रघुनंदन ॥ एनंत्वंतमहंकारंविद्धिशून्याबरोत्थितम् ॥ ३ यस्मिन्नाकाशकोशेस्मिन्साधोजगदिदंस्थितम् ॥ तदनंतमसच्छून्यंसर्गादौभवतिस्वयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! इस मिथ्यापुरूषके प्रसंगसे क्या आपने मायापुरूष कहाहै ? और आकाशकी रक्षासे क्या तात्पर्य है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामजी ! मिथ्यापुरूषकी कथा जो तुमसे मैंने कहा है उसका यथार्थ वृत्तान्त अब प्रकट करताहुं तुम सुनो २ ॥ हे रघुनंदन ! यह माया यंत्रमय पुरूष जो मैंनें कहाहै उसको शून्य आकाशमें आविर्भूत अहंकार आप जानो ॥ ३ ॥ हे साधो ! जिस आकाशकेकोशमें यह जगत् स्थितहै वह अनंत भान होताहै परंतु सृष्टिके पूर्व यह स्वयं असत् तथा शून्यहै ॥ ४ ॥

अंतःस्थितसुदुर्लक्ष्यब्रह्मव्योम्नोथशब्दवत् ॥ तस्मादुदेत्यहंकारःपूर्वस्पंदइवानिलात् ॥ ५ ॥ वृद्धियातः सगगनेकल्पयत्यात्मतांगतः ॥ अनात्मात्माभिधानेनतेनासौयततेततः ॥ ६ ॥ अनात्मात्मैकरक्षार्थंदेहान्नानाविधानसौ ॥ भूयोभूयोविनाशेपिसृजत्याकुलतांगतः ॥ ७ ॥ सएवमायापुरुषोमिथ्यापुरुषएवसः ॥ असदेवोदितोव्यर्थोप्यहंकारोहिमायया ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस मायाकाशसे यह अहंकार उत्पन्न है उसके भीतर अतिदुर्लक्ष्य अधिष्ठानरूपसे ब्रह्म-स्थितहै उसी चिदाकाशमें अध्यस्त मायाकाशसे यह अहंकार ऐसे उदय होताहै जैसे वायुसे स्पंद ॥ ५ ॥ अनात्मा होकर भी आत्मताको प्राप्त यह उसी मायाकाशमें वृद्धिको प्राप्तहुआ, और यह इष्टहै यह अनिष्टहै इत्यादि असंख्य कल्पना करताहै, और उस कल्पित अहंकार नामसे यह इष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टके परिहारके लिये प्रयत्न करताहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! अनात्मा भूतदेहको आत्मा मानकर उसकी रक्षाकेलिये व्याकूल होकर पुनः नानाप्रकारके देहको यह बनाताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ; वही अहंकार मायापुरूषहै और वही मिथ्यापुरूषहै असत् होकर भी मायासें व्यर्थ उदितहै ॥ ८ ॥

कूपकुंडचतुःशालकुंभादीन्देहकानसौ ॥ कृत्वारक्षितआत्मेतियातितद्व्योम्निभावनम् ॥ ९ ॥ अहंकारस्यतस्यास्यनामानीमानिराघव ॥ शृणुयैर्जगदाकारविभ्रमैर्मोहयत्यसौ ॥ १० ॥ जीवोबुद्धिर्मनश्चित्तंमायाप्रकृतिरित्यपि ॥ संकल्पःकलनाकालःकलाचेत्यपिविश्रुतैः ॥ ११ ॥ एवमाद्यैस्तथान्यैश्चनामभिर्बहुतांगतैः ॥ सहस्ररूपोहंकारःकल्पितार्थैर्विजृंभते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! कुप, कुंड, चतुःशाल ग्रह तथा घट आदिरूप देहोंको बनाकर और उसी शरीरावच्छिन्न आकाशको मायासे आत्मा मान उसकी रक्षा यह करताहै ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जिन २ क्रियोपाधिक जगदाकार विभ्रमोंसे यह अहंकार आत्माको मोहित करताहै उन नामोंको तुम सुनो ॥ १० ॥ जीव, बुद्धि, मन, चित्त, माया, प्रकृति, संकल्प, कल्पना, काल और कला इत्यादि प्रसिद्ध ॥ ११ ॥ तथा अन्य (कामसंल्पादि) नामोंसे अनेकताको प्राप्त सहस्रोरूप धारणकरके यह अहंकार अपने कल्पित पदार्थोंसे अपने रूपका विकाश करताहै ॥ १२ ॥

भूताकाशेततेशून्येजगन्निर्भित्तिनिश्चितम् ॥ सुखदुःखान्यनुभवन्मिथ्यैवपुरुषःस्थितः ॥ १३ ॥ यथैवमिथ्यापुरुषोरक्षन्व्योमात्मशंकया ॥ घटाकाशादिषुक्लिष्टएवंमाक्लेशवान्भव ॥ १४ ॥ आकाशादपिविस्तीर्णःशुद्धःसूक्ष्मःशिवःशुभः ॥ यआत्मासकथंकेनगृह्यतेरक्ष्यतेथवा ॥ १८ ॥ हृदयाकाशमात्रस्यशरीरक्षयसंक्षये ॥ व्यर्थंभूतानिशोचंतिनष्टआत्मेतिशंकया ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! पूर्णब्रह्ममें यह अहंकाररूप मिथ्या पुरुष भूताकाशकी कल्पना करके उस शून्य विस्तृत आकाशमें बिना भित्तिके वायु आदि जगत् रचनाका निश्चय करके नानाप्रकारके सुखदुःखोंको अनुभव करता हुआ स्थितहै ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जैसे मिथ्या घटाकाशादिमें आत्मीय शंकासे आकाशकी रक्षा करता हुआ क्लेशका भागी हुआ; ऐसे तुम न होओ ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आकाशसेभी विस्तृत शुद्ध, सूक्ष्म; शिव और शुभ जो आत्मा है उसकी भला, कैसे कोई ग्रहण वा रक्षा करसकताहै ॥ १५ ॥ हृदयाकाशमात्र शरीररूप निवासस्थानके नष्ट होनेपर व्यर्थही आत्मा नष्ट होगया इस शंकासे लोग शोचते हैं ॥ १६ ॥

घटादिषुप्रणष्टेषुयथाकाशाद्यखंडितम् ॥ तथादेहेषुनष्टेषुदेहीनित्यमलेपकः ॥ १७ ॥ शुद्धचिन्मात्रआत्मायमाकाशादप्यणोरणुः ॥ स्वानुभूत्यंशमात्रंहिखवद्रामननश्यति ॥ १८ ॥ नजायतेनम्रियतेकचित्किंचित्कदाचन ॥ जगद्विवर्त्तरूपेणकेवलंब्रह्मजृंभते ॥ १९ ॥ सत्यमेकंपदंशांतमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ भावाभावविनिर्मुक्तमितिमत्वासुखीभव ॥ २० ॥ सर्वापदांनिलयमध्रुवमस्वतंत्रमासन्नपातमविवेकमनार्यमज्ञम् ॥ बोधादहंकृतिपदंसकलंविमुच्यशेषेसुबद्धपदमुत्तमतांप्रयासि ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मिथ्यापुरुषोपाख्यानं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

अर्थ—जैसे घट आदिके नष्ट होनेपर आकाश अखंडितही रहताहै ऐसेही देहोंके नष्ट होनेपरभी यह आत्मा नित्य लेपरहित अविनाशी रहताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! शुद्धचिन्मात्र, आकाशसेभी सूक्ष्म, और अपना अनुभवमात्र जो आत्मा है वह आकाशके तुल्य नष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ कभी किसी स्थानपर आत्मा न मरै न उत्पन्नहो, किंतु जगत्के विवर्तरूपसे वही २ विकसित होताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! सत्व, शांत, आदि, मध्य तथा अन्त शून्य, और भावाभावसे विनिर्मुक्त एक वह आत्मपद है ऐसा जान सुखी होओ ॥२०॥ हे रामजी! सब आपत्तियोंका स्थान, ध्रुव, अस्वतंत्रता जनक, विवेकका विरोधी, निंद्य, अज्ञानसहित और अभिमानकी विषय देहइन्द्रियादिरूप सब कलाओंसे सहित इस अहंकारको बोधसे त्यागकर शेष आत्मपदमें तुम दृढ स्थितियुक्त होओ ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मिथ्यापुरुषाख्यानं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

अनेक दृष्टांतोंसे सद्असद्रूपका विचार करके, असत्के निराकरणद्वारा तद्रूपमें स्थिति इस ११४ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परस्माद्ब्रह्मणःपूर्वमनःप्रथममुत्थितम् ॥ मननात्मकमाभोगित्तस्थमेवस्थितिंगतम् ॥ १ ॥ पुष्पकोशइवामोदोमहोर्मिरिवसागरे ॥ रश्मिजालमिवादित्येमनोब्रह्मणिराघव ॥ २ ॥ तस्यादृश्यात्मतत्त्वस्यविस्मृत्यैवगतंस्थितिम् ॥ नान्यस्मादागतंरामजगद्रज्जुभुजंगवत् ॥ ३ ॥ आदित्यव्यतिरेकेणयोभावयतिराघव ॥ रश्मिजालमिदंह्येतत्तस्यान्यदिवभास्वतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! सृष्टिके आदिकालमें, मननात्मक और विशाल रचनाका निमित्त यह मनही परमात्मासे उत्पन्न हुआ, और उस परमात्मामें रहकरही अन्य कल्पनाओंका निमित्त होकर अधावधि स्थित है ॥ १ ॥ हे राघव! यह ब्रह्ममें ऐसे है जैसे पुष्पके कोशमें सौगंध्य, समुद्रमें महातरंग, और सूर्यमे किरणसमूह ॥ २ ॥ हे रामजी! उस अदृश्य आत्मतत्वको विस्मृत होकर जब जगत्की कल्पनाका मूल होकर यह स्थितहै. और रज्जुके सर्पके तुल्य यह मन अन्यत्रसे नहीं आयाहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! जो सूर्यकी किरणोंको सूर्यसे पृथक् भावना करताहै उसको वे सूर्यसे भिन्नके सदृश भान होती है ॥ ४ ॥

कनकव्यतिरेकेणकेयूरंयेनभावितम् ॥ केयूरमेवतत्तस्यनतस्यकनकंहितत् ॥ ५ ॥ आदित्याव्यतिरेकेण रश्मयोयेनभाविताः ॥ आदित्यएवतेतस्यनिर्विकल्पःसउच्यते ॥ ६ ॥ सलिलव्यतिरेकेणतरंगोयेनभावितः ॥ तरंगबुद्धिरेवैकास्थितातस्यनवारिधीः ॥ ७ ॥ सलिलाव्यतिरेकेणतरंगोयेनभाव्यते ॥ अंबुसामान्यताबुद्धिर्निर्विकल्पःसउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसने सुवर्णसे पृथक् केयूर अंगूठी आदि आभूषणोंकी भावना की है उसको वह केयूर वा अंगूठीही भान होती है न कि सुवर्ण ॥ ५ ॥ और सूर्यकी किरणोंको जिसने सूर्य्यसे अभिन्नरूप भावनाकी है उसको भी निःसन्देह सूर्यरूपही है ॥६॥ जिसने जलसे पृथक् तरंगबुद्धिकी भावना की है उसके लिये वह तरंगहीहै न कि जलबुद्धि॥७॥और जलसे अभिन्नरूप जिसने तरंगको ग्रहण कियाहै वह निःसन्देह बुद्धियुक्त तरंगको जलही कहताहै॥८

कनकाव्यतिरेकेणकेयूरंयेनभाव्यते ॥ कनकैकमहाबुद्धिर्निर्विकल्पःसउच्यते ॥ ९ ॥ पावकव्यतिरेकेण ज्वालालीयेनभाविता ॥ तस्याग्निबुद्धिर्गलतिज्वालाधीरेवतिष्ठति ॥ १० ॥ ज्वालाजालाभ्रलेखेवरंजिता सातथास्थितिः ॥ तामेवास्थांसमादत्तेतद्गतान्याकुलामतिः ॥ ११ ॥ पावकाव्यतिरेकेणज्वालालीयेन भाव्यते ॥ तस्याग्निबुद्धिरेकास्तिनिर्विकल्पःसउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और इसीप्रकार जिसने सुवर्णसे अभिन्नरूप केयूरादिको जानाहै वह सुवर्णके विकारोंमें सुवर्ण इस महाबुद्धियुक्त विकल्प (सन्देह) रहित कहा जाताहै ॥ ९ ॥ अग्निकी ज्वालामें अग्निसे पृथक् बुद्धिकी जिसने भावना की है उसको अग्नि बुद्धि नहीं होती, किंतु ज्वालाहै यह बुद्धि स्थित रहती है ॥ १० ॥ और हे रामजी ! जिसने अग्निकी ज्वालामें मेघलेखाकी कल्पना की है उसको वैसाही भान होती है, और ज्वालागत ऊर्ध्व वक्रगमनादिको मेघगतही व्याकुलबुद्धि होकर ग्रहण करताहै ॥ ११ ॥ और जिसने अग्निकी ज्वालामें अग्निसे अभिन्नरूप भावना की है उसको ज्वाला तथा अग्निमें एक अग्निबुद्धि है और पुरुष निर्विकल्प कहलाताहै ॥ १२ ॥

योनिर्विकल्पःसमहान्सोसंक्षीणमहामतिः ॥ प्राप्तव्यंतेनसंप्राप्तंनासौवस्तुषुमज्जति ॥ १३ ॥ नानाताम खिलांत्यक्त्वाशुद्धचिन्मात्रकोटरे ॥ संवेद्येनविनिर्मुक्तेसंवितत्त्वेस्थितोभव ॥ १४ ॥ स्वयमेवात्मनैवा त्माशक्तिसंकल्पनामिकाम् ॥ यदाकरोतिस्फुरतास्पंदशक्तिमिवानिलः ॥ १५ ॥ तदापृथगिवाभासंसं कल्पकलनामयम् ॥ मनोभवतिविश्वात्माभावयन्स्वाकृतिंस्वयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो निर्विकल्पहै वही महान् क्षीण संदेह महामति है, उसने प्राप्तव्य पदार्थको पालिया क्योंकि वह विकल्पसे सिद्धपदार्थोंसे सत्यबुद्धिसे नहीं निमग्न होता ॥ १३ ॥ हे रामजी ! मन आदिकी सब अनेकताको त्यागकर, ज्ञेयसे विनिर्मुक्त, तथा साक्षीरूप, शुद्धचिन्मात्र आभ्यन्तर वस्तुमें स्थितहो ॥ १४ ॥ जैसे वायु अपनेमें स्पन्दशक्तिको प्रकट करताहै, ऐसेही यह आत्मा जब स्वयं अपने प्रकाशसे संकल्पात्मक शक्तिकी कल्पना करताहै ॥ १५ ॥ तब अपनेसे पृथक्के समान भासमान, असंकल्पकी कल्पनामय, और संसाररूप यह मन अपनी आकृतिकी भावना करताहुआ स्वयं उत्पन्न होजाताहै ॥ १६ ॥

तत्संकल्पात्मकंचेतोयथेदमाखिलंजगत् ॥ संकल्पयतिसंकल्पैस्तथैवभवतिक्षणात् ॥ १७ ॥ कीटत्व मब्जजत्वंचमेरुत्वंमरुतांतथा ॥ मनोजीवमहंकारबुद्धिचित्तादिनामकम् ॥ १८ ॥ संकल्पतोद्वितैकत्व मेत्यचेतोजगत्स्थितिम् ॥ तनोतितस्यांतदनुनानातांगच्छतिस्वयम् ॥ १९ ॥ संकल्पमयमेवेदंजगदा भोगिदृश्यते ॥ नसत्यंनचमिथ्यैवस्वप्नजालमिवोत्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह विश्वाकार संकल्पात्मक हिरण्यगर्भरूप चित्त इससंपूर्ण जगत्का जैसा संकल्प करताहै वैसा अपने संकल्पोंके अनुसार क्षणभरमें होजाताहै ॥ १७ ॥ कीटत्व, ब्रह्मापन; मेरूता, मन, जीवबुद्धि अहंकार, तथा चित्त इत्यादि नाम वह अपने संकल्पसे धारण करताहै ॥ १८ ॥ संकल्पसे यह चित्त एकत्व द्वित्वरूप जगत्की स्थितिको प्राप्त होकर उसके पश्चात् उसमें स्वयं अनेकताको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! संकल्पसेही यह विशाल जगत् देख पडताहै न तो यह सत्य है और न मिथ्याही है किंतु स्वप्नजालके तुल्य अनिर्वचनीय रूपसे आविर्भूतहै ॥ २० ॥

जंतोर्यथामनोराज्यंविविधारंभभासुरम् ॥ ब्राह्मंतथेदंविततंमनोराज्यंविराजते ॥ २१ ॥ यथाभूतार्थभा वित्वात्तदेतत्प्रविलीयते ॥ परमार्थेनदृष्टंचेत्तदिदंनैवकिंचन ॥ २२ ॥ दृश्यंत्वपरमार्थेनप्रयातिशतशाख ताम् ॥ जलमूर्मितरंगादिकलनाहैपरिस्फुरन् ॥ २३ ॥ यथांबुद्धिर्वपुर्धत्तेस्वभावेनतथाचितः ॥ कुर्वन्क र्मसहस्राणिह्यणुचित्स्पंदनादृते ॥ २४ ॥ नापूर्वंकुरुतोकिंचित्किंचिद्भेदमतस्त्यजन् ॥ गच्छन्शृण्वन् स्पृशन्जिघ्रन्वदन्व्यवहरन्स्वपन् ॥ २५ ॥

अर्थ—जैसे जीवका मनोराज्य विविधकार्यके आरंभसे प्रकाशशील भासताहै, ऐसेही ब्रह्माका मनोराज्य प्रकाशित होरहाहै ॥ २१ ॥ यथार्थरूपसे भावना करनेसे मायारूपसे यह लीन होजाताहै क्योंकि ब्रह्मरूप देखनेसे यह कुछभी नहीं रहजाता ॥ २२ ॥ हे रामजी ! यह दृश्य अपरमार्थ दृष्टि अनेक शाखारूपताको ऐसे प्राप्तहै जैसे समुद्र जलमात्र होकर भी उर्मी, तरंगादि नानाकल्पना रूपसे स्फुरित होता हुआ ॥ २३ ॥ यथार्थमें अपना समुद्ररूप धारण करताहै ऐसेही यह जीव सहस्रों कर्मोंको करतेहुये चिदाभासयुक्त मनकी चेष्टा विना कूटस्थ चित्के अपूर्व किंचिद्भी विकार नहीं करता, ऐसेही किंचिद् भेदको त्यागते हुये, तुम भी चलते, फिरते, सोते जागते, सुनते, स्पर्श करते, सूंघते, बोलते तथा अन्य व्यवहार करतेहुये भी ॥ २४ ॥ २५ ॥

नापूर्वंविद्यतेकिंचित्सत्यमित्येवभावयन् ॥ यद्यत्करोषितद्विद्धिचिन्मात्रममलंततम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मप्रबृंहि ताकारंतस्मादन्यन्नविद्यते ॥ पदार्थजातेसर्वस्मिन्संवित्सारमयेस्थिते ॥ २७ ॥ संविदेवेदमखिलंजग न्नान्यास्तिकल्पना ॥ संवित्स्फुरणमात्रेस्मिन्जगज्जालकनामनि ॥ २८ ॥ इदमन्यदिदंचान्यदितिमिथ्या ग्रहःकुतः ॥ संभवादखिलाकारेष्वेकस्याएवसंविदः ॥ संवेद्यमपिनास्त्येवबंधमोक्षावतःकथम् ॥ २९ ॥ मोक्षोयमेषखलुबंधइतिप्रसह्यचिंतांनिरस्यसकलांविफलाभिमानाम् ॥ मौनीवशीविगतमानमदोमहा त्माकुर्वन्स्वकार्यमनहंकृतिरेवतिष्ठ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थोपदेशो नाम चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपमें कुछ भी अपूर्वता नहीं होती, और सत्यकी भावना करतेहुये जो २ तुम करते या, देखतेहो वह सब निर्मल तथा व्याप्त चिन्मात्रही जानो ॥ २६ ॥ सबके सारभूत सच्चिद्रूप सब पदार्थ समूहके स्थित होनेपर उससे भिन्न कुछ नहीं है जो कुछ विशाल रूपसे भासताहै वह ब्रह्मही है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण

जगत् संविन्मात्रही है इसमें अन्य कल्पना नहीं है इस जगत्जाल नामवाले संवित् स्फुरणमात्रमें ॥ २८ ॥ यह अन्य है, यह अन्य है इत्यादि मिथ्याग्रह कहांसे होसकताहै संपूर्ण आकाशमें एकही संवित्का संभव होनेसे, संवेद्य (ज्ञेय) भी कुछ नहीं है इससे सम्बन्ध मोक्ष भी कहासे होसकता है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! यह बंध है यह मोक्ष है इत्यादि मिथ्या अभियुक्त चिंताको सब प्रयत्नसे त्याग कर, वाणी आदि सब इन्द्रियोंको जीतकर मौनी, वशी, मान तथा मद आदिसे रहित होकर यथाप्राप्त राज्यादि अपने व्यवहारोंको करते हुये अहंकार रहित महात्माहोके तुम इस संसारमें स्थित रहो ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

महाकर्ता आदि शब्दोंकी व्याख्याओंसे श्रीमहादेवजीने जीवन्मुक्तोंके लक्षण जिज्ञासु भृंगीको इस ११५ के सर्गमें वर्णन किये है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाकर्त्तामहाभोक्तामहात्यागीभवानघ ॥ सर्वाःशंकाःपरित्यज्यधैर्यमालंब्यशाश्वतम् ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमुच्यतेमहाकर्त्तामहात्यागीकिमुच्यते ॥ किमुच्यतेमहाभोक्तासम्यक्कथयमेप्रभो ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतद्व्रतत्रयंरामपुराचंद्रार्धमौलिना ॥ भृंगीशायतसंप्रोक्तंयेनासौविज्वरःस्थितः ॥ ३ ॥ सुमेरावुत्तरेशृंगेपूर्वंशशिकलाधरः ॥ अतिष्ठदग्निसंकाशेसमग्रपरिवारवान्॥४॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! सब शंकाओंको त्यागकर तथा कूटस्थ आत्मभावका अवलंबन करके तुम महाकर्ता महात्यागी और महाभोक्ता बनो ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! महाकर्ता तथा महात्यागी किसको कहते हैं, और महाभोक्ता भी किसको कहते हैं सो मुझसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इन तीनों (महाकर्तादि) व्रतोंको पूर्वकालमें शिवजीने भृंगीशको कहाथा कि जिससे वे सन्तापरहित स्थितहुये ॥ ३ ॥ अग्निके समान देदीप्यमान सुमेरूके उत्तर शिखरपर सम्पूर्ण परिवारसहित शशिकलाधारी श्रीशंकरजी पूर्वकालमें रहतेथे ॥ ४ ॥

तमपृच्छन्महातेजास्तनुविज्ञानवान्स्थितः ॥ भृंगीशःप्रणतोरामबद्धांजलिरुमापतिम् ॥ ५ ॥ भृंगीशउवाच ॥ भगवन्देवदेवेशसर्वज्ञपरमेश्वर ॥ यदहंपरिपृच्छामिकृपयातद्वदाशुमे ॥ ६ ॥ संसाररचनांनाथतरंगतरलामिमाम् ॥ अवलोक्यविमुह्यामितत्त्वविश्रांतिवर्जितः ॥ ७ ॥ कमंतर्निश्चयंकांतसुररीकृत्यसुस्थितम् ॥ अस्मिन्जगज्जीर्णगृहेतिष्ठामिविगतज्वरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उनसे मन्द आत्मज्ञानसहित और महातेजस्वी भृंगीशने हांथ जोडके पूंछा ॥ ५ ॥ भृंगीश बोले—कि हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे सर्वज्ञ ! तथा हे परमेश्वरशंकरजी ! जो कुछ मैं आपसे पूंछताहुं वह कृपाकरके मुझे शीघ्र कहिये ॥ ६ ॥ हे स्वामिन् ! तरंगके समान चंचल इस संसारकी रचनाको देखकर तत्वमें विश्रांति शून्य मैं मोहित होताहुं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! वह कौनसी उत्तम प्रियवस्तु है जिसको अन्तःकरणमें निश्चय करके इस जगत्रूप जीर्णगृहमें मैं सन्तापरहित स्थितरहुं ॥ ८ ॥

ईश्वरउवाच ॥ सर्वाःशंकाःपरित्यज्यधैर्यमालंब्यशाश्वतम् ॥ महाभोक्तामहाकर्त्तामहात्यागीभवानघ ॥ ९ ॥ भृंगीशउवाच ॥ किमुच्यतेमहाकर्त्तामहाभोक्ताकिमुच्यते ॥ किमुच्यतेमहात्यागीसम्यक्कथयमेप्रभो ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ धर्माधर्मैर्महाभागशंकाविरहिताशयः ॥ यःकरोतियथाप्राप्तौमहाकर्त्तासउच्यते ॥ ११ ॥ रागद्वेषौसुखंदुःखंधर्माधर्मौफलाफले ॥ यःकरोत्यनपक्षेणमहाकर्त्तासउच्यते ॥१२॥

अर्थ—श्रीशंकरजी बोले—हे पापरहित भृंगीश ! सब शंकाओंको त्यागकर, तथा नित्य धैर्य्य (कूटस्थभाव) का अवलंबन करके तुम महाकर्ता, महाभोक्ता, और महात्यागी बनो ॥ ९ ॥ भृंगीश बोले—हे भगवन् ! महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं यह मुझसे पूर्णरीतिसे कहिये ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि—हे महाभाग ! आत्मामें कर्तृत्वादि धर्म नहीं है इस निश्चयसे युक्त प्रारब्ध प्राप्त धर्माधर्मको शंकारहित होके जो कर्ता है वह महाकर्ता कहलाताहै ॥ ११ ॥ रागद्वेष, सुखदुःख, धर्मअधर्म, तथा इष्ट अनिष्टकर्मोंको जो निष्काम मनसे केवल लोकसंग्रहके लिये कर्ता है वह महाकर्ता कहलाताहै ॥ १२ ॥

मौनवान्निरहंभावोनिर्मलोमुक्तमत्सरः ॥ यःकरोतिगतोद्वेगंमहाकर्त्तासउच्यते ॥ १३ ॥ शुभाशुभेषुकार्येषुधर्माधर्मःकुशंकया ॥ मतिर्नलिप्यतेयस्यमहाकर्त्तासउच्यते ॥ १४ ॥ सर्वत्रविगतस्नेहोयःसाक्षिवदवस्थितः ॥ निरिच्छंवर्त्ततेकार्येमहाकर्त्तासउच्यते ॥ १५ ॥ उद्वेगानंदरहितःसमयास्वच्छयाधिया ॥ नशोचतेयोनोदेतिमहाकर्त्तासउच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—मुनियोंके मननयोगका करनेवाला, अहंकाररहित, निर्मल, और मत्सरादिसे शून्य पुरुष जो उद्वेगरहित होके कर्मोंको करताहै वह महाकर्ता कहाताहै ॥ १३ ॥ देवप्राप्त शुभअशुभ कार्य्योंमें धर्माधर्मकी कुशंकासे जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ १४ ॥ सर्वत्र स्नेहरहित साक्षीके तुल्य जो स्थितहै, और बिना इच्छाके दैव प्राप्त कार्य्योंमें जो प्रवृत्त होताहै उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ १५ ॥ सम तथा स्वच्छबुद्धिसे उद्वेग तथा आनंदसे राहितहोके जो इष्टानिष्टमें न शोचही करताहै और न प्रसन्नही होताहै उसको महाकर्ता कहते है ॥ १६ ॥

यथार्थकालेमतिमानसंसक्तमनामुनिः ॥ कार्यानुरूपवृत्तस्थोमहाकर्तासउच्यते ॥ १७ ॥ उदासीनःकृतांचकर्माकर्माचरंश्चयः ॥ समंयात्यंतरत्यंतंमहाकर्त्तासउच्यते ॥ १८ ॥ स्वभावेनैवयःशांतःसमतांनजाहातिवै ॥ शुभाशुभंह्याचरन्योमहाकर्तासउच्यते ॥ १९ ॥ जन्मस्थितिविनाशेषुसोदयास्तमयेषु च ॥ सममेवमनोयस्यमहाकर्तासउच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—प्रारब्धसे प्राप्त कार्य करनेमें यथोचित चेष्टा करनेवाला, असंसक्त चित्त और मननशील जो है उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ १७ ॥ उदासीन, देवसे प्राप्त विहित निषिद्ध कर्मोंका आचरण करते हुये, उस कर्तृताको अन्य प्रेरित जानकर अन्तःकरणमें जो समभावको प्राप्त होताहै उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ १८ ॥ जो स्वभावसेही शांतहै, और प्रारब्ध प्राप्त शुभाशुभ कर्मोंको करतेहुये अपनी समताको जो नहीं त्यागता उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ १९ ॥ जन्म, स्थिति, वृद्धि, ऱ्हास तथा विनाशरूप पंचविकारमय शरीरादि पदार्थोंमें जिसका मन समान है उसको महाकर्ता कहते हैं ॥ २० ॥

नकिंचनद्वेष्टितथानकिंचिदभिकांक्षति ॥ भुंक्तेचप्रकृतंसर्वंमहाभोक्तासउच्यते ॥ २१ ॥ नादत्तेप्याददानश्चनाचरत्याचरन्नपि ॥ भुंजानोपिनयोभुंक्तेमहाभोक्तासउच्यते ॥ २२ ॥ साक्षिवत्सकलंलोकव्यवहारमखिन्नधीः ॥ पश्यत्यपगतेच्छंयोमहाभोक्तासउच्यते ॥ २३ ॥ सुखैर्दुःखैःक्रियायोगैर्भावाभावैर्भ्रमप्रदैः ॥ यस्यनोत्क्रामतिमतिर्महाभोक्तासउच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे भृंगीश! जो न किसीसे द्वेष करताहै, और न किसीकी आकांक्षा करताहै किंतु प्रारब्धसे प्राप्त सब भोगोंको भोक्ताहै उसको महाभोक्ता कहते हैं ॥ २१ ॥ जो सब इंद्रियोंसे विषयोंका ग्रहण करते हुयेभी असंग आत्मबुद्धिसे कुछ नहीं ग्रहण करता, और सब विषयोंको भोगते हुयेभी, नित्य तृप्त आत्मदृष्टिसे कुछ नहीं भोक्ता उसको महाभोक्ता कहते हैं ॥ २२ ॥ साक्षीके तुल्य इच्छारहित अखिन्नबुद्धिसे जो संपूर्ण लोक व्यवहारोंको देखताहै उसको महाभोक्ता कहते हैं ॥ २३ ॥ सुख तथा दुःखदायक जय पराजय आदि क्रिया योगोंमें, तथा भ्रमदायक लाभ और व्यय (खर्च) के कार्योंमें जिसकी बुद्धि विक्षिप्त नहीं होती उसको महाभोक्ता कहते हैं ॥ २४ ॥

जरामरणमापच्चराज्यंदारिद्र्यमेवच ॥ रम्यमित्येवयोवेत्तिमहाभोक्तासउच्यते ॥ २५ ॥ महांतिसुखदुःखानियःपर्यांसीवसागरः ॥ समंसमुपगृण्हातिमहाभोक्तासउच्यते ॥ २६ ॥ अहिंसासमतातुष्टिश्चंद्रबिंबादिवांशवः ॥ नोपयस्माच्चोपयातामहाभोक्तासउच्यते ॥ २७ ॥ कट्वम्ललवणंतिक्तममृष्टंमृष्टमुत्तमम् ॥ अधमंयोऽत्तिसाम्येनमहाभोक्तासउच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—जरा, मरण, आपत्ति, राज्य तथा दरिद्रताकोभी ब्रह्म दृष्टिसे जो रमणीयही जानताहै उसको महाभोक्ता कहते हैं ॥ २५ ॥ जैसे समुद्र सब प्रकारके जलोंको अपनेमें ग्रहण करताहै, ऐसेही महासुख तथा दुःखोंको जो तुल्य वृत्तिसे भोगके लिये ग्रहण करताहै उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥२६॥ जैसे चंद्रबिंबसे स्वभावसे किरणें निकलती हैं ऐसेही जिससे अहिंसा, समता, तथा प्रसन्नता आदि गुणस्वभावसेही निकले और वह नहींके समान अनुभव करै उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥ २७ ॥ कटु, आमिल, लवण, तिक्त, मीठा वा निकृष्ट अन्नभी जो समतासे भोजन करलेताहै उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥ २८ ॥

सरसंनीरसंचैवसुरतंविरतंतथा ॥ यःपश्यतिसमंसौम्योमहाभोक्तासउच्यते ॥ २९ ॥ क्षारेखंडप्रकारे चशुभेवाप्यशुभेतथा ॥ समतासुस्थिरायस्यमहाभोक्तासउच्यते ॥ ३० ॥ इदंभोज्यमभोज्यंचेत्येवं त्यक्त्वाविकल्पितम् ॥ गताभिलाषंयोभुंक्तेमहाभोक्तासउच्यते ॥ ३१ ॥ आपदंसंपदंमोहमानंदमपरं परम् ॥ योभुंक्तेसमयाबुद्ध्यामहाभोक्तासउच्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—रसरहित वा नीरस, सुरत, अथवा रतिके विघातको जो सौम्य महात्मा समदृष्टिसे समान देखताहै उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥ २९ ॥ क्षार (खार) अथवा शक्कर आदि मिलित स्वादयुक्त भोजनमें जिसकी समता दृढ है उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥ ३० ॥ यह भक्ष्य है यह अभक्ष्य है इस विकल्पको त्यागकर, अभिलाषारहित होकर जो भोजन करताहै वह महाभोक्ता कहाताहै ॥ ३१ ॥ आपत्ति, संपत्ति, मोह, आनंद, उत्तम तथा निकृष्ट अन्नको भी जो खाताहै उसको महाभोक्ता कहतेहैं ॥ ३२ ॥

धर्माधर्मौसुखंदुःखंतथामरणजन्मनी ॥ धियायेनेतिसंत्यक्तंमहात्यागीसउच्यते ॥ ३३ ॥ सर्वेच्छाःसकलाःशंकाःसर्वेहाःसर्वनिश्चयाः ॥ धियायेनपरित्यक्तामहात्यागीसउच्यते ॥ ३४ ॥ देहस्यमनसोदुःखेरिंद्रियाणांमनःस्थितेः ॥ नूनंयेनोज्झितासत्तामहात्यागीसउच्यते ॥ ३५ ॥ नमेदेहोनजन्मापियुक्तायुक्तेनकर्मणी ॥ इतिनिश्चयवानंतर्महात्यागीसउच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे भृंगीश! धर्म, अधर्म, सुख, दुःख मरण और जन्मकी प्रथाको मिथ्या जानकर जिसने त्यागदियाहै उसको महात्यागी कहतेहैं ॥ ३३ ॥ सब इच्छाओंको, सब शंकाओंको, सब वाणी मन तथा शरीरकी चेष्टाओंको और सब निश्चयोंको जिसने विषयोंका बाधा जानकर सर्वथा त्यागदियाहै उसको महात्यागी कहतेहैं ॥ ३४ ॥ उन २ दुःखोंके साथ देह, मन, तथा इंद्रियोंकी सत्ताको जिसने निश्चयरूपसे त्यागदियाहै उसको महात्यागी कहतेहैं ॥३५॥ मेरे न देह है, न जन्म है, और विहित निषिद्ध अथवा इष्टानिष्ट कर्म हैं, अंतःकरणमें जो ऐसा निश्चययुक्त है उसको महात्यागी कहतेहैं ॥ ३६ ॥

येनधर्ममधर्मंचमनोमननमीहितम् ॥ सर्वमंतःपरित्यक्तंमहात्यागीसउच्यते ॥ ३७ ॥ यावतीदृश्यकलनासकलेयंविलोक्यते ॥ सायेनसुष्ठुसंत्यक्तामहात्यागीसउच्यते ॥ ३८ ॥ इत्युक्तंदेवदेवेनभृंगीशायपुरानघ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यतिष्ठरामगतज्वरः ॥ ३९ ॥ नित्योदितंविमलरूपमनंतमाद्यंब्रह्मास्तिनेतरकलाकलनंहिकिंचित् ॥ इत्येवभावयनिरंजनतामुपेतोनिर्वाणमेहिसकलामलशांतवृत्तिः ॥ ४० ॥

अर्थ—जिसने शारीरिक धर्म अधर्म, तथा मानसिक मनचेष्टादि सबकुछ अंतःकरणसे त्यागदियाहै उसको महात्यागी कहते हैं ॥ ३७ ॥ जो यह दृश्यकी कल्पना सम्पूर्ण देखपडती है इसको जिसने ज्ञानसे मिथ्या जानकर त्यागदियाहै उसको महात्यागी कहते हैं ॥ ३८ ॥ हे पापरहित रामजी! यह पूर्वकालमें श्रीशिवजीने भृंगीशसे कहाहै इस दृष्टिका अवलम्बन करके तुम सन्तापरहित स्थित रहो ॥ ३९ ॥ हे रामजी! तुम अन्नमयादि पंचकोश तथा तीनों अवस्थाओंसे विनिर्मुक्त निरंजनरूपताको प्राप्त होकर यह भावना करो कि नित्य उदित तथा विमलरूप ब्रह्मही सब कुछ है अन्य कुछ नहीं है, ऐसी भावना करते हुये सम्पूर्ण कल्पनारूप मलसे शान्तवृत्ति होके निर्वाणपदको प्राप्त करोगे ॥ ४० ॥

अनामयंब्रह्मसमस्तकल्पकार्यैकबीजंपरमात्मरूपम् ॥ बृहच्चतद्बृंहितसर्वभावंखमस्तिभातीहयदंगकिंचित् ॥ ४१ ॥ अन्यत्क्वचित्किंचिदिदंकदाचिन्नसंभवत्येवसदप्यसच्च ॥ इत्येवसाधोदृढनिश्चयोंतःस्थित्वागताशंकविलासमास्व ॥ ४२ ॥ अंतर्मुखःसन्सततंसमस्तंकुर्वन्बहिष्ठंखलुकार्यजातम् ॥ नखेदमायासिकदाचिदेवनिराकृताहंकृतितामुपैषि ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे व्रतत्रयनिरूपणंनामपंचदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११५ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी! जो कुछ यह भान होताहै वह समस्त कल्पोंमें प्रसिद्ध कार्योंका बीजभूतत परब्रह्मही है, और जो कुछ वृद्धिको प्राप्त सृष्टि भेदोंसे यह पदार्थसमूह भान होताहै वह महान् चिदाकाशही है ॥ ४१ ॥ हे साधो! ब्रह्मसे भिन्न सत् वा असत् कहीं कुछभी सम्भव नहीं है, ऐसा निश्चय करके शंकाओंको त्यागकर तुम विलासपूर्वक स्थित रहो ॥ ४२ ॥ हे साधो रामजी! तुम यदि अन्तर्मुख होके निरहंकारताको प्राप्त होओगे तो ब्रह्म समस्त कार्य्योंको करतेहुयेभी कदापि खेदकी नहीं प्राप्त होओंगे ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे व्रतत्रयनिरूपणं नाम पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

चतुर्थआदि भूमियोंमें गलतेहुये तथा गलीभूत चित्तके लक्षण पुरुषके आश्रयसे इस११६के सर्गमें वर्णन कियेगये है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञचित्तेहंकारनामनि ॥ गलितेवागलद्रूपेलिंगंसत्वस्यकिंभवेत् ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बलादपिहिसंजातानलिंपंत्याशयंसितम् ॥ लोभमोहादयोदोषाःपद्मांसीवसरोरुहम् ॥ २ ॥ मुदिताद्याःश्रियोवक्त्रंकनमुंचंतिकदाचन ॥ गलत्यहंकारमयेचित्तेगलतिदुष्कृते ॥३ ॥ वासनाग्रयथाश्छिन्नाइवत्रुट्यंत्वलंशनैः ॥ कोपस्तानवमायातिमोहोमांद्यंहिगच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे सर्वधर्मज्ञ भगवन् ! जब चित्त नाम अहंकार गलित होजाताहै, वा गलने गलाताहै तब वासनारहितं चित्तके क्या लक्षण होते हैं ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जब अहंकार नामक चित्त गलने गलताहै, और ज्ञानाग्निसे पाप नष्ट होने लगताहै उससमय परीक्षाके अर्थ प्राप्त कियेहुयेभी लोभमोहादि शुद्धचित्तको ऐसे नहीं छेदन करते जल कमलको और प्रसन्नता, मैत्री, करुणादि उसके मुखकी शोभाको कदापि नहीं त्यागती ॥ २ ॥ ३ ॥ और चित्तके गलते समय वासनाओंकी ग्रन्थियां छिन्नभिन्नके समान धीरे २ टूट जाती हैं, कोप सूक्ष्म होताहै, मोह मन्दताको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

कामःक्रमंगच्छतिचलोभःक्वापिपलायते ॥ नोल्लसंतींद्रियाण्युच्चैःखेदःस्फुरतिनोचकैः ॥ ५ ॥ नदुःखान्युपबृंहंतिनवल्गंतिसुखानिच ॥ सर्वत्रसमतोदेतिहृदिशैत्यप्रदायिनी ॥ ६ ॥ सुखदुःखादयस्त्वेतेदृश्यंतेयदिवामुखे ॥ दृश्यंतएवतुच्छत्वान्नानुलिंपंतितेमनः ॥ ७ ॥ चित्तेगलतिगीर्वाणगणस्यस्पृहणीयताम् ॥ साधुर्गच्छत्युदेत्यस्यसमताशीतचंद्रिका ॥ ८ ॥

अर्थ—कामभी शिथिल होजाताहै, लोभ न जाने कहां भाग जाताहै इंद्रियां प्रबल होके दुःख नहीं देतीं और खेदभी अधिक नहीं होता ॥ ५ ॥ न दुःख बढके पीडाजनक होते हैं, और न सुखही उमडके अभिमानी करतेहैं, किंतु त्रिविधताप निवारिणी समता सर्वत्रसे उदित होती है ॥ ६ ॥ यदि कदाचित् सुखदुःखादिके चिन्ह मुखपर भान होते हैं तो वे अल्पकालहीतक देखपडतेहैं, अनन्तर उनमें मिथ्या बुद्धि होनेसे मनको वे छेदन नहीं करसकते ॥ ७ ॥ हे रामजी ! चित्तके गलित होतेसमय यह मनुष्य देववृंदोंकाभी स्पृहणीय होजाताहै और समतारूप शीतल चन्द्रचन्द्रिका इसके अन्तःकरणमें उदय होती हैं ॥ ८ ॥

उपशांतंचकांतंचसेव्यमप्रतिरोधिच ॥ निभृतंचोर्जितंस्वच्छंवहतीत्थंमहद्वपुः ॥ ९ ॥ भावाभावविरुद्धोपिविचित्रोपिमहानपि ॥ नानंदायनखेदायसतांससृंतिविभ्रमः ॥ १० ॥ बुद्ध्यालोकेनसाध्येस्मिन्वस्तुन्यस्तमितापदि ॥ प्रवर्ततेनयोमोहात्तंधिगस्तुनराधमम् ॥ ११ ॥ विश्रांतिमाप्तुमुचितांचिरमंगदुःखरत्नाकरंजननसागरमुत्तितीर्षोः ॥ कोहंकथंजगदिदंचपरंचकिंस्यात्किंभोगकैरितिमतिःपरमोभ्युपायः १२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे गलितचित्तलक्षणकथनं नाम षोडशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११६ ॥

अर्थ—शांत, प्रिय, सेवनीय, अन्यके अविरोधी, नम्र, तेजस्वी, तथा स्वच्छ महान् इस शरीरको स्वभावसेही गलित चित्त प्राणीधारण करताहै ॥ ९ ॥ विभव तथा दरिद्रतासे भयंकर, विचित्र तथा महान्भी यह संसारका भ्रम, अहंकाररहित महात्माओंके न आनंदकेलिये है और न खेदकेलिये है ॥१०॥ संपूर्ण आपत्तियोंके नाशक तथा बुद्धिके प्रकाशमात्रसे साध्य इस आत्मज्ञानमें मोहसे जो नहीं प्रवृत्त होता उस अधम मनुष्यको धिक्कारहै ॥ ११ ॥ हे प्रिय रामजी ! चिरकालसे उचित आत्मामें विश्रांति पानेकेलिये, दुःखों की तथा जन्ममरणरूप संसार समुद्रसे पारजानेवाले इच्छावान् पुरुषको, मैं कौनहूं, यह संसार क्या है, तथा आत्मतत्त्व कैसा है, और तुच्छ भोगोंसे क्या होताहै, इत्यादि विचार वैराग्य विषयक बुद्धिही सबसे उत्तम प्रथम उपायहै ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे गलितचित्तलक्षणकथनं नाम षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

मैं कौनहूं और यह जगत् क्या है इस विषयमें दृष्टांत मनुजीसे कहा हुआ इक्ष्वाकुका विवेक ११७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भवतामादिपुरुषइक्ष्वाकुर्नामभूपतिः ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवोयथामुक्तस्तथाशृणु ॥१॥ इक्ष्वाकुर्नामभूपालःस्वराज्यंपरिपालयन् ॥ कदाचिदेकांतगतोमनसासमचिंतयत् ॥ २ ॥ जरामरण संक्षोभसुखदुःखभ्रमस्थितेः ॥ अस्यदृश्यप्रपंचस्यकोहेतुःस्यादितिस्वयम् ॥ ३ ॥ जगतोनविवेदासौ कारणंचिंतयन्नपि ॥ अथैकदापृच्छदसौब्रह्मलोकागतंमनुम् ॥ ४ ॥ पूजितंस्वसभासंस्थंभगवंतंप्रजा पतिम् ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ मांयोजयतिधाष्टर्येनभगवन्करुणानिधे ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न रामजी ! तुमारे आदि पुरुष इक्ष्वाकु नाम राजा जैसे मुक्तहुये वह वृत्तांत सुनो ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु नाम राजा अपना राज्य पालन करतेहुये कभी एकांतमें जाके मनसे यह चिंतन किया ॥ २ ॥ वृद्धअवस्था, मृत्यु, तथा संक्षोभादि अनेक दुःख तथा सुखके भ्रमोंके स्थानभूत इस दृश्य प्रपंचका क्या करण होसकताहै, ऐसा इक्ष्वाकुने स्वयं विचारा ॥ ३ ॥ बिचार करतेहुये भी जब जगत्के कारणको इक्ष्वाकुने नहीं जाना तब एकसमय ब्रह्मलोकसे प्राप्त तथा सभामें स्थित और पूजिति अपने पिता मनुजीसे पूंछा ॥ ४ ॥ ५ ॥

भवत्प्रसादएवायंभवंतंप्रष्टुमंजसा ॥ कुतःसर्गोयमायातःस्वरूपंचास्यकीदृशम् ॥ ६ ॥ कियदेतज्जग त्कस्यकदाकेनेतिकथ्यते ॥ अहंकथंचविषमादस्मात्संसृतिविभ्रमात् ॥ ७ ॥ विमुच्येयघनास्तीर्णाज्जा लादिवविहंगमः ॥ मनुरुवाच ॥ अहोनुचिरकालेनविवेकेसुविकासिनि ॥ ८ ॥

अर्थ—इक्ष्वाकु बोले–हे करुणानिधे भगवन् ! आपकी कृपाही धृष्टतासे मुझे यह पूछनेको नियुक्त करती है कि यह सृष्टि कहांसे आई, और इसका स्वरूप क्या है ॥ ६ ॥ और इसकी संख्या तथा परिमाण कितनाहै, और कब किसने इसको रचा, और मैं इस भयंकर संसारसे कैसे इसप्रकार मुक्त होऊं ॥७॥ जैसे विस्तीर्ण जालसे पक्षी, मनुजी बोले–अहो ! चिरकालसे प्रकाश युक्त विवेकमें ॥ ८ ॥

वितथानर्थविच्छेत्तासारःप्रश्नस्त्वयाकृतः ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचितत्नास्तिनृपकिंचन ॥ ९ ॥ यथागंध र्वनगरंयथावारिमरुस्थले ॥ यत्तुनोदृश्यतेकिंचित्तत्रकिंचिदिवास्थितम् ॥ १० ॥ मनःषष्ठेंद्रियातीतंय त्स्यादपिनकिंचन ॥ अविनाशंतदस्तीहतत्सदात्मेतिकथ्यते ॥ ११ ॥ इयंतुसर्वदृश्याढ्याराजन्सर्गपरं परा ॥ तस्मिन्नेवमहादर्शेप्रतिबिंबमुपागता ॥ १२ ॥

अर्थ—महान् अनर्थोंका छेदन करनेवाला सारभूत प्रश्न यह तुमने किया, हे राजन् ! यह जो कुछ देख पडताहै वह यथार्थमें कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ यह गंधर्व नगर वा मरुस्थलमें मृगतृष्णाके जलके तुल्य, और जो यथार्थमें साक्षी चेतन वा इंद्रियोंसे न देख पडे वह अपने उपादान कारणसे नहीं स्थित है ॥ १० ॥ और जो कुछ है वह नष्ट मन तथा अन्य इंद्रियोंसे अतीतहै, और अविनाशी सद्रूप आत्मा कहाता है ॥ ११ ॥ और हे राजन् ! यह दृश्योंसे पूर्ण सृष्टियोंकी परंपरा तो उसी चिदात्मरूप महादर्पणमें आके प्रतिबिंबित हुई है ॥ १२ ॥

भाःस्वभावसमुत्पन्नाब्रह्मस्फुरणशक्तयः ॥ काश्चिद्ब्रह्मांडतांयांतिकाश्चिद्गच्छंतिभूतताम् ॥ १३ ॥ अ न्यास्त्वन्यत्वमायांतिभवत्येवंजगत्स्थितिः ॥ नबंधोस्तिनमोक्षोस्तिब्रह्मैवास्तिनिरामयम् ॥ नैक्यमस्ति नचद्वित्वंसंवित्सारंविजृंभते ॥ १४ ॥ एकंयथास्फुरतिवारितरंगभंगैरेवंपरिस्फुरतिचित्रचकिंचिदेव ॥ त्वंबंधमोक्षकलनेप्रविमुच्यदूरेस्वस्थोभवाऽभवभयोऽभयसारएव ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अर्थ—उस परमात्माके स्वभावसे उत्पन्न कोई स्फुरणशील चिदाभास तो ब्रह्मांडरूप होगये हैं और कोई भूतरूपताको प्राप्तहै ॥ १३ ॥ और अन्य चिदाभास अन्य चतुर्विध प्राणी समूहरूपताको प्राप्त होते हैं यही जगत्की स्थिति है, इसमें न बंधहै, न मोक्षहै, किंतु निर्विकार ब्रह्महीहै इसमें न ऐक्यहै और न द्वैत है, किंतु संवित् आत्माही इस रूपसे विकसित होरहाहै ॥ १४ ॥ हे इक्ष्वाको ! जैसे एकही जल अनेक तरंग भेदोंसे स्फुरित होताहै, ऐसेही एक ब्रह्म जगत्‌रूप तरंग भेदोंसे स्फुरित होरहाहै, तुम बंधमोक्षको दूर त्यागकर संसारके भयसे रहित सारभूत ब्रह्मस्वरूपही होजाओ ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे इक्ष्वाकूमनुसंवादे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

कहांसे सृष्टि होती है और किससमय किसने रची इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर तथा आत्माके दर्शनकेउपाय मनुजीने इस ११८ सर्गमें कहा है ॥

मनुरुवाच ॥ संकल्पोन्मुखतांयाताःसत्यश्चिन्मात्रसंविदः ॥ आपस्तरंगत्वमिवयांतिभूमिपजीवताम् ॥ १ ॥ तेजीवाःसंसरंतीहसंसारेपूर्वमुत्थिते ॥ सुखदुःखदशामोहोमनस्येवास्तिनात्मनि ॥ २ ॥ अदृश्योदृश्यतेराहुर्गृहीतेनयथेंदुना ॥ तथानुभवमात्रात्माद्दृश्येनात्मावलोक्यते ॥ ३ ॥ नशास्त्रैर्नापिगुरुणादृश्यतेपरमेश्वरः ॥ दृश्यतेस्वात्मनैवात्मास्वयासत्वस्थयाधिया ॥ ४ ॥

अर्थ—मनुजी बोले–हे राजन् ! संस्कारोंसे विचित्र अविद्यामें प्रतिबिंबित चिन्मात्र संवित् संकल्पकी ओर संमुख होकर जीवके बीजभावको ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे जल तरंगरूपताको ॥ १ ॥ वे जीव, पूर्वही आविर्भूत इस संसारमें भ्रमण करते हैं, और यथार्थमें जीवोंकी सुखदुःख दशाका मोह मनमेंही है न कि आत्मामें ॥ २ ॥ जैसे अदृश्यभी राहु चंद्रमाके ग्रहण करनेसे देखपडताहै, ऐसेही अदृश्य अनुभवमात्रभी आत्मा, परमात्माके साक्षात्कार करनेमें आभिमुख अंतःकरणसे देखपडताहै ॥ ३ ॥ यह परमेश्वर न शास्त्रोंसे न गुरुओंसे देखपडताहै, किंतु अहंकार ममतासे रहित बुद्धिसे अपने आत्माही द्वारा देखपडताहै ॥ ४ ॥

पथिकाःपथिदृश्यंतेरागद्वेषविमुक्तया ॥ यथाधियातथैवेतेद्रष्टव्याःस्वेंद्रियादयः ॥ ५ ॥ एतेषुनादरःकार्यःसतानैवावधीरणम् ॥ पदार्थमात्रताविष्टास्तिष्ठंत्वेतेयथासुखम् ॥ ६ ॥ पदार्थमात्रंदेहादिधियासंत्यज्यदूरतः ॥ आशीतलांतःकरणोनित्यमात्ममयोभव ॥७॥ देहोहमितियाबुद्धिःसासंसारनिबंधनी ॥ नकदाचिदियंबुद्धिरादेयाहिमुमुक्षुभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे मार्गमें पथिक जन रागद्वेष रहित बुद्धिसे देखे जाते हैं, ऐसेंही निरहंकारी बुद्धिसे अपने इंद्रियादिकको भी देखना चाहिये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान्को न देह इंद्रियादिमें आदर करना चाहिये और न उपवासादिसे अनादर, किंतु यथा प्राप्त पदार्थमें जैसे हैं वैसे सुख पूर्वक स्थित रहैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! साधारण पदार्थके समान देह इन्द्रियादिको बुद्धिसे दूर करके सर्वथा शीतल अंतःकरणयुक्त आत्मामय होजाओ ॥ ७ ॥ मैं देहहुं यह बुद्धि संसारमें बंधन करनेवाली है, इसलिये मुमुक्षुओंको ऐसी बुद्धि कदापि न करनी चाहिये ॥ ८ ॥

नकिंचिन्मात्रचिन्मात्ररूपोस्मिगगनादणुः ॥ इतियाशाश्वतीबुद्धिस्सानसंसारबंधनी ॥ ९ ॥ यथाविमलतोयानांबहिरंतश्चभावनम् ॥ तेजस्तिष्ठतिसर्वत्रतथात्मासर्ववस्तुषु ॥ १० ॥ सन्निवेशांशवैचित्र्यंयथाहेम्नोंगदादिता ॥ आत्मनस्तदतद्रूपातथैवजगदादिता ॥ ११ ॥ विनाशवाडवाकांतंभीमंकाममहार्णवम् ॥ जगज्जालतरंगिण्योयांतिभूततरंगिकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—मैं और कुछ नहीं हुं किंतु आकाशसेभी सूक्ष्म चिन्मात्रहुं, यह जो नित्य बुद्धि है वह संसारदायिका नहीं है, किंतु मुक्तिका हेतुहै ॥ ९ ॥ जैसे निर्मल जलके भीतर तथा बाहर सूर्य्यका तेज रहताहै ऐसेही आत्मा सब वस्तुके बाहर भीतरहै ॥ १० ॥ जैसे सुवर्णके अंगद कटकादि आभूषणोंमें सुवर्ण सर्वत्र है केवल रचनामात्रसे आकारोंमें विचित्रताहै, ऐसेही जगत्में सर्वत्र आत्माही है, केवल मायारचित उनके आकारमात्रमें भेदहै ॥ ११ ॥ विनाशरूप वडवानलसे युक्त कालपुरुष कालरूप महासमुद्रमें प्राणीरूप तरंगधारिणी जगत्समूहरूप नादियां जाके प्राप्त होती हैं १२

तथाप्यव्याप्यपूर्णस्ययःपाताकालवारिधेः ॥ तमात्मानंमहागस्त्यंराजन्भावयसर्वदा ॥ १३ ॥ अनात्मन्यात्मतामस्मिन्देहादौदृश्यजालके ॥ त्यक्त्वासत्वमुपारूढोगूढस्तिष्ठयथासुखम् ॥ १४ ॥ कुचकोटरसंसुप्तंविस्मृत्यजननीसुतम् ॥ यथारोदितिपुत्रार्थंतथात्मार्थमयंजनः ॥ १५ ॥ अजरामरमात्मानमबुद्धापरिरोदिति ॥ हाहतोहमनाथोहंनष्टोस्मीतिवपुर्व्यये ॥१६॥ यथावारिपरिस्पंदान्नानाकारंविलोक्यते ॥ तथासंकल्पवशतश्चिद्ब्रह्मपरिबृंहति ॥ १७ ॥ संस्थाप्यसंकल्पकलंकमुक्तंचित्तंत्वमात्मन्युपशांतकल्पः॥ स्पंदेप्यसंस्पंदमिवेहतिष्ठस्वस्थःसुखीराज्यमिदंप्रशाधि ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे अष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! तथापि अवावधि जगज्जालके भक्षणसे अतृप्तकालरूप समुद्रकाभी पान करनेवाले महाअगस्तिरूप तम आत्माको जानो ॥ १३ ॥ हे राजन् ! अनात्मरूप देहादि दृश्यसमूहमें आत्मबुद्धि त्यागकर, निर्वासनी

भावपर उपारूढ होके सुखपूर्वक गूढरूपसे स्थित रहो ॥ १४ ॥ जैसे कुचके कोट (काचुलीके भीतर) में सोते हुये बालकको भूलकर पुत्रके लिये माता रोती है, ऐसेही अंतःकरणमेंही नित्य प्राप्त आत्माको भ्रांतिसे भूलकर उसके लिये यह प्राणी रहताहै ॥ १५ ॥ अजर अमर इस आत्माको न जानकर, देहके नष्ट होनेपर यह प्राणी रोताहै कि हा ! मैं मारागया, मैं अनाथ हुं, नष्ट हुआ ॥ १६ ॥ जलके परिस्पंद होनेपर वह तरंगादि नानारूपसे देखपडताहै, ऐसेही संकल्पके वशसे चिद्ब्रह्महीही नानाकार्योंकी परंपरासे बुद्धिको प्राप्तहै ॥ १७ ॥ हे पुत्र! तुम शांत संकल्प होके संपूर्ण कलंकोंसे युक्त आत्मामें चित्त लगाके, व्यवहारके लिये शरीरादिकी चेष्टा होनेपरभी उसका आत्मासे असंबंध होनेसे स्वस्थ तथा सुखी होके प्राप्त राज्यका इस संसारमें पालन करो ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे इक्ष्वाकुमनुसवाद नाम अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विद्या अविद्यारूप आत्माकी शक्तियोंसे सत्यासत्यका निश्चय होजानेसे बंध मोक्षके विषयमें पुरुषकी स्वतंत्रताका वर्णन इस ११९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

मनुरुवाच ॥ सर्गात्मभिर्विभुःस्पंदैःक्रीडतेबालवत्स्वयम् ॥ संहारात्मकशक्त्याथसंहृत्यात्मनितिष्ठति ॥ १ ॥ स्वयमस्यतथाशक्तिरुदेत्याबध्यतेयया ॥ स्वयमस्यतथाशक्तिरुदेत्युन्मुच्यतेयया ॥ २ ॥ चंद्रार्कवह्नितप्तायोरत्नादीनांयथार्चिषः ॥ यथापत्रादिवृक्षाणांनिर्झराणांयथाकणाः ॥ ३ ॥ तथेदंब्रह्मणिस्फारे जगद्बुद्ध्यादिकल्पितम् ॥ दुःखप्रदमतज्ज्ञानांतदेवातदिवस्थितत् ॥ ४ ॥

अर्थ—मनु बोले—हे पुत्र ! परमात्मा प्रसवधर्मिणी अपनी अविद्या शक्तिसे सृष्टिरूप चेष्टाओंसे अज्ञदृष्टिसे बालकके समान स्वयं क्रीडा करताहै और विद्यारूप संहाररूप शक्तिसे ज्ञानदृष्टिसे इसका संहार करके सदा अपने आत्मामेंही स्थित रहताहै ॥ १ ॥ स्वयं इसकी ऐसी शक्ति उदय होती है जिसके कारण यह वह बंधनमें आताहै, और स्वयं ऐसीभी इसकी उदय होती है जिससे कि यह मुक्त होजाताहै ॥ २ ॥ हे राजन्! जैसे चंद्रसूर्य, अग्निसे संतप्त लोहके गोलों, और रत्नादि प्रभा उनसे पृथक् कल्पित की गई है वृक्षोंसे पत्रादि, झरनोंके जलोंसे उनके कण, पृथक् कल्पित किये गयेहैं ॥ ३ ॥ ऐसेही विशाल ब्रह्ममें जगत् तथा बुद्धि आदि पृथक् कल्पित किये गयेहैं यह सब ब्रह्म होकेभी उससे भिन्नके समान स्थित अज्ञानियोंके लिये दुःखप्रदहै ॥ ४ ॥

अहोनुचित्रामायेयंतातविश्वविमोहिनी ॥ सर्वांगप्रोतमप्यात्मायदात्मानंनपश्यति ॥ ५ ॥ चिदादर्शमयंसर्वंजगदित्येवभावयन् ॥ यस्तिष्ठत्युपशांतेच्छंसब्रह्मकवचःसुखी ॥६॥ अहमर्थविमुक्तेनभावेनाभावरूपिणा ॥ सर्वंशून्यंनिरालंबंचिद्रूपमितिभावयेत् ॥ ७ ॥ इदंरम्यमिदंनेतिबीजंतेदुःखसंततेः ॥ तस्मिन्साम्याग्निनादग्धेदुःखस्यावसरःकुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—अहो कैसी संसारको मोहित करनेवाली यह विचित्र मायाहै, कि सर्वांग व्याप्त भी आत्माको यह प्राणी नहीं देखता ॥ ५ ॥ चिदादर्शमय यह सम्पूर्ण जगत्है ऐसी भावना करताहुआ जो अभिलाषाको शांत करके स्थित रहताहै मोहसे अभेद्य वह कवचयुक्त प्राणी सुखी है ॥ ६ ॥ अहंकारसे विमुक्त सब वस्तुओंके अभावरूपभावसे सब शून्य, निरालंब ब्रह्मही है ऐसी भावना करै ॥ ७ ॥ यह रम्यहै, यह नहीं है इत्यादि विषमताकी कल्पनाही तुमारे दुःखसमूहका बीजहै, समतारूप अग्निसे उस बीजके भस्म होनेपर दुःखका अवसर कहां ? ॥ ८ ॥

राजन्नभावनास्त्रेणरम्यारम्यविभागिता ॥ पौरुषातिशयेनाशुस्वेनैवांतर्विलूयताम् ॥ ९ ॥ अभावनेनभावनंविलूयकर्मकाननम् ॥ परंसमेत्यतानवंविशोकएवतिष्ठभोः ॥ १० ॥ भरितभुवनाभोगोभूत्वाविभागबहिष्कृतोगलितकलनाभासोविवेकविलासवान् ॥ अधिगतपरानंदस्पंदश्चिरायनिरामयःशमसमासितस्वच्छाभोगोभवाभयचिद्वपुः ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे एकोनविंशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११९ ॥

अर्थ—हे राजन् ! समाधिके अभ्यासरूप अस्त्रसे रम्यारम्यके विभागकी कल्पनाको, अति पुरुषार्थ द्वारा शीघ्रही अपने अन्तःकरणमें छेदन करडालो ॥ ९ ॥ हे राजन् ! समाधिरूप अभावनासे कर्मरूपी बनकी भा-

वनाको छेदन करके, आकाशसे भी अतिसूक्ष्म ब्रह्ममें प्राप्त होके शोकरहित स्थितरहो ॥ १० ॥ हे पुत्र ! तुम प्रथम विवेकरूप विलाससे युक्त होओ, अनन्तर ज्ञानद्वारा संपूर्ण संसारमें व्याप्त शरीर होके, अनन्तर विभागसे पृथक्, कल्पनाके आभासके उल्लाससे शून्य, परमानन्दको प्राप्त, चिरकालके लिये संसाररूपी रोगसेरहित, तथा सम एकरस और स्वच्छ शरीर, जगत्के भयसे शून्य चिन्मात्र शरीर होजाओ ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे इक्ष्वाकुमनुसंवादे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

मुमुक्षुको प्रथम तीन भूमिका, मुक्त होनेवालेको चतुर्थभूमिका; तथा मुक्तके लिये आगेकी तीनों भूमिका, इस प्रकार सातों भूमिकाओंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ मनुरुवाच ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कैःप्रज्ञामादौविवर्धयेत् ॥ प्रथमाभूमिकैषोक्तायोगस्यैवचयोगिनः ॥१॥ विचारणाद्वितीयास्यात्तृतीयासंगभावना ॥ विलापनीचतुर्थीस्याद्वासनाविलयात्मिका ॥ २ ॥ शुद्धसं विन्मयानंदरूपाभवतिपंचमी ॥ अर्धसुप्तप्रबुद्धाभोजीवन्मुक्तोत्रतिष्ठति ॥ ३ ॥ स्वसंवेदनरूपाचषष्ठी भवतिभूमिका ॥ आनंदैकघनाकारासुषुप्तसदृशस्थितिः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनुजी बोले–हे पुत्र ! प्रथम शास्त्रके अभ्यास तथा सज्जन ज्ञानी महात्माओंके संगसे अपनी बुद्धिको बढावे, यह योग तथा योगीकी प्रथम भूमिकाहै ॥ १ ॥ इस रीति विचारणा (मनन) तीसरी असंगआत्माकी भावना (निदिध्यासन) और जिसमें वासनाओंके आश्रयभूत अविद्याका लय होताहै वह चतुर्थी विलापिनी अवस्था कहाती है ॥ २ ॥ और शुद्ध चिन्मात्र संवित् जिसमें रहती है वह आनन्दरूपा पांचवी भूमिकाहै, अर्द्धसुप्त तथा अर्द्ध जाग्रत्के समान जीवन्मुक्तयोगी इस भूमिकामें रहताहै ॥ ३ ॥ स्वभावसेही निरतिशय आनन्दमय ब्रह्माकार, और सुषुप्तके समान स्थितिवाली, स्वयं वेदनरूपा षष्ठी (छठीं) भूमिकाहै ॥ ४ ॥

तुर्यावस्थोपशांताथमुक्तिरेवेहकेवलम् ॥ समतास्वच्छतासौम्यासप्तमीभूमिकाभवेत् ॥ ५ ॥ तुर्यातीतातुयावस्थापरानिर्वाणरूपिणी ॥ सप्तमीसापरिप्रौढाविषयःस्यान्नजीवताम् ॥ ६ ॥ पूर्वावस्थात्रयंत्वत्रजाग्रदित्येवसंस्थितम् ॥ चतुर्थीस्वप्नइत्युक्तास्वप्नाभंयत्रवैजगत् ॥ ७ ॥ आनंदैकघनीभावात्सुषुप्ताख्यातुपंचमी ॥ असंवेदनरूपाथषष्ठीतुर्यपदाभिधा ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब वृत्तिभी क्षीण होजाती है शांत तुरीयावस्थासहित, केवल मुक्तिरूप समता तथा स्वच्छतामय यह सौम्या सप्तमीभूमिका है ॥ ५ ॥ और तुरीयातीत जो अवस्था है वह परानिर्वाणरूपिणी है, यह सप्तमभूमिकाही अतिप्रौढावस्था है, और जीवित योगियोंका विषय यह नहीं है, (किंतु कैवल्य प्राप्त योगियोंका विषय है) ॥ ६ ॥ पूर्वतीनो अवस्था ये तो जाग्रत्रूपही हैं, और चतुर्थी स्वप्नरूप है जिसमें कि यह जगत् स्वप्नके समान भासताहै ॥ ७ ॥ आनन्द घनरूप आत्माके साथ एकीभाव होनेसे पंचम भूमिका सुषुप्तरूप है, और अन्य पदार्थोंके ज्ञानसे शून्य केवल स्वरूपमात्रमें स्थिति होनेसे छठी तुर्य्यपदा कहलाती है ॥ ८ ॥

तुर्यातीतपदावस्थासप्तमीभूमिकोत्तमा ॥ मनोवचोभिरग्राह्यास्वप्रकाशपदात्मिका ॥ अंतःप्रत्याहृतिवशाच्चेत्यंचेन्नविभावितम् ॥ मुक्तएवास्यसंदेहोमहासमतयातया ॥ १० ॥ यद्भोगसुखदुःखांशैरपरामृष्टपूर्णधीः ॥ सशरीरोऽशरीरोवाभवत्येवंमतिःपुमान् ॥ ११ ॥ नम्रियेनचजीवामिनाहंसन्नाप्यसन्नयम् ॥ आत्मारामोनरस्तिष्ठेत्तन्मुक्तत्वमुदाहृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—तुरीयातीत पदावस्था सप्तमी भूमिका कहाती है, यह स्वप्रकाशरूप होनेसे मन तथा वाणीसे अग्राह्य है ॥ ९ ॥ और जब अन्तःकरणमें सबका लय होनेसे विषय कुछभी भान नहीं होते, उस सप्तम भूमिकारूप महासमतासे योगी मुक्तही है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ उससमय भोगजनित सुखोंसे वा दुःखोंसे योगीकी परिपूर्ण बुद्धि किंचित्भी स्पृष्ट नहीं होती, और योगीपुरुष उससमय ऐसी बुद्धिसहित होताहै कि शरीर चाहै रहै वा न रहै ॥ ११ ॥ न हम मरते हैं, न जीते हैं, न सत् हैं न असत् है, इसप्रकार जब आत्माराम योगीपुरुष स्थित रहताहै, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १२ ॥

व्यवहार्युपशांतोवागृहस्थोवाथवैकक: ॥ अहंनकिंचिचिदितिमत्वाजीवोनशोचति ॥ १३ ॥ अलेपतो हमजरोनीराग:शांतवासनः ॥ निर्मलोस्मिचिदाकाशमितिमत्वानशोचति ॥ १४ ॥ अहमंतादिरहितः शुद्धोबुद्धोऽजरामरः ॥ शांत:समसमाभासइतिमत्वानशोचति ॥ १५ ॥ तृणाग्रेष्वंबरेभानौनरनागाम रेषुच ॥ यत्तदस्तितदेवेतिमत्वाभूयोनशोचति ॥ १६ ॥

अर्थ—व्यवहारीहों, वा शान्त व्यवहार रहैं, गृहस्थ रहैं; अथवा यति रहैं, मै अन्य कुछ नहीं किंतु चि-न्मात्रहुं, ऐसा मानकर योगी कुछ पुरुष शोच नहीं करता ॥ १३ ॥ संसारके लेपसेरहित, अजर, तथा राग द्वे-षशून्य, वासनारहित और निर्मल चिदाकाशमात्र हम हैं ऐसा जानकर योगी शोक नहीं करता ॥ १४ ॥ आदि अन्तरहित, शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, शान्त और सर्वत्र एकरससे भासमान हम हैं, ऐसा जानकर योगी शोक नहीं करता ॥ १५ ॥ अतितुच्छ तृणोंके अग्रभागोंमें, आकाशमें, सूर्य्यमें, मनुष्य नाग तथा देवताओंमें जो सन्मात्र है, वही प्रत्यक् चिन्मात्र मैं हुं, ऐसा अखंड वाक्यार्थ जानकर योगी शोच नहीं करता ॥ १६ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधस्तान्मेव्यापकोमहिमाचितः ॥ तस्यानंतविलासस्यज्ञात्वेतिकइवक्षयी ॥ १७ ॥ बद्धवास नमर्थोय:सेव्यतेसुखयत्यसौ ॥ यत्सुखायतदेवाशुवस्तुदु:खायनाशतः ॥ १८ ॥ अविनाभावनिष्ठत्वंप्र सिद्धंसुखदु:खयोः ॥ तनुवासनमर्थोय:सेव्यतेवाविवासनम् ॥ १९ ॥ नासौसुखायतेनासौनाशकालेन दु:खदः ॥ क्षीणवासनयाबुद्धयायत्कर्मक्रियतेनघ ॥ २० ॥

अर्थ—मुझ चित्‌रूपकी महिमा तिर्यक्, ऊपर, तथा नीचे सर्वत्र व्याप्त है, इसप्रकार अनंत विलास परमा-त्माकी महिमा जानकर कौन मरणादि दु:खका भागी होसकताहै ॥ १७ ॥ जो वासनारहित होके पदार्थका सेवन किया जाताहै वही ज्ञानीपुरुषको सुखदायी होताहै क्योंकि अज्ञानी वासनावान्‌को जो पदार्थ सुखके लिये होताहै वही नाश होनेसे उसके दु:खके लिये शीघ्र होताहै ॥ १८ ॥ सुख और दु:खकी साथही स्थिति है, (अर्थात् जिससे सुख, उसके अभावमें दु:खभी होताहै) सूक्ष्मवासनासे वा वासनारहित होके जो पदार्थोंका भोग होताहै वह न सुखके लिये होताहै और नाशसे दु:खही देताहै, क्योंकि क्षीण वासनायुक्तबुद्धिसे जो कर्म किया जाताहै॥१९॥२०॥

तद्दग्धबीजवद्भूयोनांकुरंप्रविमुंचति ॥ देहेंद्रियादिनाकर्मकरणौघेनकल्प्यते ॥ २१ ॥ एक:कर्त्ताचभो क्ताचकइवांगोपपद्यते ॥ भावनांसर्वभावेभ्य:समुत्सृज्यसमुत्थितः ॥ २२ ॥ शशांकशीतल:पूर्णोभा तिभासेवभास्करः ॥ क्रियमाणाकृताकर्मतूलश्रीर्देहशाल्मलेः ॥ २३ ॥ ज्ञानानिलसमुद्भूताप्रोड्डीयका पिगच्छति ॥ सर्वैवहिकलाजंतोरनभ्यासेननश्यति ॥ २४ ॥ एषाज्ञानकलात्वंत:सकृज्जातादिनेदिने ॥ वृद्धिमेतिबलादेवसुक्षेत्रेव्युप्तशालिवत् ॥ २५ ॥ एक:स्फुरत्यखिलवस्तुषुविश्वरूपआत्मासरस्सुजलधि ष्विवतोयमच्छम् ॥ संशांतसंकलनभूरिकलापमेकंसत्तांशमात्रमखिलंजगदंगविद्धि ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसं० सप्तभूमिकाविभागो नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२०॥

अर्थ—वह दग्ध बीजके तुल्य पुन: नहीं जमता, क्योंकि देह इन्द्रियादि समूहसे कर्मकी कल्पना होती है ॥ २१ ॥ हे प्रिय पुत्र! उन इन्द्रियादि समूहमें एक शुद्ध चेतन कर्ता भोक्ता कैसे होसकताहै, वह चेतन तो सर्व प-दार्थोंमें अहंता अभ्यासको त्यागकर पृथक् स्थित है ॥ २२ ॥ वह पूर्ण शीतल चंद्रमाके समान, तथा सूर्य्यके तुल्य अपनी चिन्मयी दीप्तिसे स्वयं प्रकाश करताहै क्रियमाण तथा की हुई कर्मरूपी तूल (रुई) की राशि शरीररूपी शेमरके वृक्षसे ॥ २३ ॥ ज्ञानरूपी वायुसे न जाने कहां उडके चलीजाती है, और पुनः २ अभ्यास न करनेसे सब प्रकारकी प्राणियोंकी कला कुशलता कालपाके नष्ट होजाती है ॥ २४ ॥ परंतु यह ज्ञानकी कल्पना यदि एकबार अंत:करणमें उत्पन्न होगई तो वह दिन २ ऐसे वृद्धिको प्राप्त होती है जैसे उत्तम क्षेत्रमें बोये हुये धान ॥ २५ ॥ हे प्रिय पुत्र! जैसे सब तडाग तथा समुद्रोंमें एकही स्वच्छ जल स्फुरित होरहाहै, ऐसेही सब पदार्थोंमें एकही विश्वरूप आत्मा स्फुरित होरहाहै, इसलिये संपूर्ण विचित्र कल्पनाओंसे रहित सत्तांश चिन्मात्रही इस जगत्‌को तुम जानो॥२६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे सप्तभूमिका विभागो नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

जिससे खिंचा हुआ यह जीव संसारमें फंस जाताहै, और जिससे इससे मुक्त होताहै उन दोनों भावनाओंको इस १२१ के सर्गमें मनुजीने वर्णन कियाहै ॥

मनुरुवाच ॥ यावद्विषयभोगाशाजीवाख्यातावदात्मनः ॥ अविवेकेनसंपन्नासाप्याशाहिनवस्तुतः॥१॥ विवेकवशतोयाताक्षयमाशायदातदा ॥ आत्माजीवत्वमुत्सृज्यब्रह्मतामेत्यनामयः ॥ २ ॥ ऊर्ध्वादधस्त थाधस्तात्पुनरूर्ध्वंव्रजंश्चिरम् ॥ मासंसारारघट्टस्यचिंतारज्ज्वांघटीभव ॥ ३ ॥ इदंममाहमस्येतिव्यव हारघनभ्रमम् ॥ येमोहात्परिसेवंतेअधस्ताद्यांत्यधःशठाः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनुजी बोले—हे पुत्र! जबतक विषयभोगोंकी आशाहै तभीतक आत्माकी जीवदशाहै, और वह विषय-भोगोंकी आशाभी अविवेकसे प्राप्तहै न कि यथार्थमें ॥ १ ॥ और जिससमय विवेकसे भोगोंकी आशा शांत होगई उसीसमय यह आत्मा अपनी जीवदशाको त्यागकर अनामय ब्रह्मरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ हे पुत्र! ऊपरसे नीचे तथा नीचेसे ऊपर पुनः २ चिरकालतक भ्रमण करते हुये संसारके भोगरूप अरघट्ट (अरहठ) की चिंतारूप रज्जुमें पटके समान बद्ध तुम न होओ ॥ ३ ॥ यह मेराहै, इसका मैं हुं इत्यादि महाघनीभूत भ्रमको जो मोहसे सेवन करते हैं वे महामूर्ख नीचेसेभी और नीचे गिरतेहैं ॥ ४ ॥

अस्याहमेषमेसोयमहमेवंतुयैःकिल ॥ मोहोबुद्धयापरित्यक्तऊर्ध्वादूर्ध्वंप्रयांतिते ॥ ५ ॥ स्वप्रकाशंस्व मात्मानमवलंब्याविलंबितम् ॥ आस्वसंपूरिताकाशंजगंतिनृपपश्यहे ॥ ६ ॥ यदैवैवंचितोरूपंततंबुद्ध मखंडितम् ॥ तदैवतीर्णःसंसारःपरमेश्वरतांगतः ॥ ७ ॥ ब्रह्मेंद्रविष्णुवरुणाद्यद्यत्कर्तुंसमुद्यताः ॥ तद हंचिद्वपुःसर्वंकरोमीत्येवभावयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसका मैंहुं, यह मेराहै, तथा यह शरीर मैंहुं इत्यादि मोहके जिन्होंने ज्ञानसे त्यागदियाहै, वे महात्मा जन उपरसेभी उपर जाते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! शीघ्र अपने स्वप्रकाशरूप आत्माका अवलम्बन करके सब जगत्को व्याप्त करनेवाले चिदाकाशकोही देखो ॥ ६ ॥ जिससमय इसप्रकार व्याप्त तथा अखंडित चित्कारूप देखागया उसी-समय संसारसागरसे पार होके यह जीव परमेश्वर रूपताको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु महेश तथा वरुणादि जो २ करनेको उद्यत हैं, वह २ सब मैं चित् शरीरसे करताहुं ऐसी भावना करनी चाहिये ॥ ८ ॥

येषुयेषुयदायद्यद्दर्शनेषुनिगद्यते ॥ सर्वमेवांगतत्सत्यंचिद्विलासोह्यनंकुशः ॥ ९ ॥ चिन्मात्रत्वंप्रयात स्यतीर्णमृत्योरचेतसः ॥ योभवेत्परमानंदःकेनासावुपमीयते ॥ १० ॥ नाप्यशून्यंनशून्यंचनाचिद्रूपंन चिन्मयम् ॥ नात्मरूपंनान्यरूपंभुवनंभावयन्भव ॥ ११ ॥ एतत्स्वरूपमासाद्यप्रकृतिःपरिशाम्यति ॥ नदेशोमोक्षनामास्तिनकालोनेतरास्थितिः ॥ १२ ॥ अहंकृतेर्विमोहस्यक्षयेणेयंविलीयते ॥ प्रकृतिर्भावं नानाम्नीमोक्षःस्यादेषएवसः ॥ १३ ॥ प्रशांतशास्त्रार्थविचारचापलोनिवृत्तनानारसकाव्यकौतुकः ॥ नि रस्तनिःशेषविकल्पविप्लवःसमःसुखंतिष्ठतिशाश्वतात्मकः ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसं० एकविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे प्रिय पुत्र ! जिन २ शास्त्रोंमें जब २ कहागया है वह २ सब सत्य है क्योंकि चिद् विलास अंकु-शरहित है ॥ ९ ॥ चिन्मात्र दशाको प्राप्त मृत्युसे पारंगत तथा गलित चित्त योगीको जो परमानंद प्राप्त होताहै उसकी उपमा भला किसकेसाथ होसकती है ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस जगत्को शून्य न अशून्य न चिद्रूप, न अचिद्रूप, न आत्मरूप न अनात्मरूप (किंतु अनिर्वचनीयरूप) भावना करतेहुये ईश्वररूप होजाओ ॥ ११ ॥ इसप्रकार अपने आत्माका साक्षात् पारमार्थिक स्वरूप प्राप्त होनेसे प्रकृति शांत होजाती है, यही मोक्षहै, और न मोक्ष किसी देशका नामहै, न कालका, और न उसकी अन्य (आत्मारूप प्राप्तिके सिवाय) कोई स्थिति है ॥ १२ ॥ अहंकार-रूप मोहके नाशसे संसारकी प्रकृति नष्ट होजाती है, और आत्मस्वरूपकी साक्षात्कार भावनाही मोक्ष कहाती है ॥ १३ ॥ अनेक शास्त्रार्थोंकी जिज्ञासारूप चपलतासे रहित नानाप्रकारके काव्य नाटकादिके कौतुकसे शून्य, और शांत संपूर्ण विकल्पोपद्रव जीवन्मुक्त पुरुष सुखपूर्वक इस संसारमें सच्चिदानंदरूपसे स्थित रहताहै ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुमनुसंवादे एकविंशत्याधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

सुदृढ आत्मबोधसे युक्त, और तुरीयातीतपदमें स्थित यतिकी दिनचर्य्या लक्षणोंसे मनुजीने १२२ के सर्गमें वर्णन की है ॥

॥ मनुरुवाच ॥ येनकेनचिदाच्छन्नोयेनकेनचिदाशितः ॥ यत्रक्कचनशायींचससम्राडिवराजते ॥ २ ॥ वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयंत्रेणयोज्झितः ॥ निर्गच्छतिजगज्जालात्पंजरादिवकेसरी ॥ २ ॥ वाचामतीत विषयोविषयाशादशोज्झितः ॥ कामप्युपगतःशोभांशरदीवनभस्तलम् ॥ ३ ॥ गंभीरश्चप्रसन्नश्चगि राविवमहाहृदः ॥ परानंदरसाक्षुब्धोरमतेस्वात्मनात्मनि ॥ ४ ॥

अर्थ—मनुजी बोले–हे राजन् ! जिस किसीके द्वारा वस्त्रोंसे आच्छादित, जिस किसीसे भोजन कराया हुआ; तथा स्वेच्छा अनुसार जहांचाहै वहां शयनशील जीवन्मुक्त पुरुष चक्रवर्ती राजाके समान शोभित होताहै ॥ १ ॥ वर्णाश्रमके आचारसे रहित, तथा शास्त्ररूपी यंत्रोंसे भी पृथक् वह सन्यासी इस जगज्जालसे ऐसे बाहर निकलजाताहै, जैसे पिंजरेसे सिंह ॥ २ ॥ वाणीसे परे निरतिशय आत्मानंदको प्राप्त, अतएव विषयोंकी दशाओंसे त्यक्त, शरत्कालके आकाशके तुल्य निर्मल वह योगी किसी अनिर्वचनीय शोभाको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ पर्वतपर महाहृदके समान गंभीर तथा निर्मल, और निरंतर आत्मानंदके आस्वादनसे अप्रच्युत वह योगी अपने आत्माहीमें सदा रमण करताहै ॥ ४ ॥

सर्वकर्मफलत्यागीनित्यतृप्तोनिराश्रयः ॥ नपुण्येननपापेनलिप्यतेनेतरेणच ॥ ५ ॥ स्फटिकःप्रतिबिंबे नयथायातिनरंजनम् ॥ तज्ज्ञःकर्मफलेनांतस्तथानायातिरंजनम् ॥ ६ ॥ विहरञ्जनतावृंदेदेहकर्त्तनपूज नैः ॥ खेदाह्लादौनजानातिप्रतिबिंबगतैरिव ॥७॥ निस्तोत्रोनिर्विकारश्चपूज्यपूजाविवर्जितः ॥ संयुक्तश्च वियुक्तश्चसर्वाचारनयक्रमैः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब कर्मोंके फलोंका त्यागी नित्यतृप्त और निराश्रय वह महात्मा न पुण्य न पाप तथा न हर्ष शोकादिसे लिप्त होताहै ॥ ५ ॥ जैसे प्रतिबिंब स्फटिक रूपांतर नहीं धारण करता ऐसेही प्रारब्ध कर्मके फलरूप प्राप्त सुखदुःखादिसे ज्ञानीपुरुष अपने स्वभावसे च्युत नहीं होता ॥ ६ ॥ जनसमूहमें विहरते हुये मनुष्योंके द्वारा देहके खंडन वा पूजाओंसे वह हर्ष शोक ऐसे नहीं प्राप्त होताहै जैसे प्रतिबिंबोंसे ॥ ७ ॥ पूजित होनेपरभी स्तुतिशून्य, अपूजित होनेपरभी विकाररहित, तथा सब आचार तथा नीतियोंसे संयुक्त और वियुक्तभी वह रहताहै ॥ ८ ॥

तस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचसः ॥ रागद्वेषभयानंदैस्त्यज्यतेपिचयुज्यते ॥ ९ ॥ प्रमेयेकस्य चिदपिनरोहतिमहाशयः ॥ प्रमेयीक्रियतेचापिबालेनाप्युद्धराशयः ॥१०॥ तनुंत्यजतुवातीर्थेश्वपचस्यगृ हेपिवा ॥ माकदाचनवाराजन्वर्त्तमानेपिवाक्षणे ॥ ११ ॥ ज्ञानसंप्राप्तिसमयेमुक्तोसौविगताशयः ॥ अ हंभ्रांतिर्हिबंधायमोक्षोज्ञानेनतत्क्षयः ॥ १२ ॥

अर्थ—न तो उस पुरुषसे संसारको भय होताहै और न वह संसारसे भयभीत होताहै तथा प्रारब्धके वशसे कभी रागद्वेषादिके विषयोंसे युक्त होताहै और वियुक्तभी होताहै ॥ ९ ॥ और महाबुद्धिमानभी उसका थाह नहीं पा सकते हैं, और व्यवहार शुद्धचित्तवाले बालकेभी वशमें होजाते हैं ॥१०॥ वह चाहै किसी तीर्थमें अपने शरीरको त्यागै वा चाण्डालके गृहमें त्यागै, वह अपनी शरीरको कभी न त्यागै, वा वर्तमान क्षणमेंही त्यागदे, इसमें विशेषता नहीं है ॥ ११ ॥ वह शुद्धाशयतो ज्ञानप्राप्तिके क्षणमें मुक्त होचुका, क्योंकि अहंकारका भ्रम बंधनके लिये है और ज्ञानसे अहंकारका नाश और मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

सपूजनीयःसस्तुत्योनमस्कार्यःसयत्नतः ॥ सनिरीक्ष्योभिवाद्यश्चविभूतिविभवैषिणा ॥ १३ ॥ नयज्ञती र्थैर्नतपःप्रदानैरासाद्यतेतत्परमंपवित्रम् ॥ आसाद्यतेक्षीणभवामयानांभक्त्यासतामात्मविदांयदंग ॥ ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवान्मनुर्ब्रह्मगृहंययौ ॥ इक्ष्वाकुरपितांदृष्टिमवष्टभ्यस्थि रोभवत् ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे इक्ष्वाकुमनुसंवादे इक्ष्वाकुप्रबोधनं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२२॥

---

(१) यह दृष्टांत तथा पामरोंकी दृष्टिसे दियागया है क्योंकि जीवन्मुक्तका आनंद तो ब्रह्मादिके आनंदसे भी ऊपर है ॥

अर्थ—जिसको संसारमें ऐश्वर्य्यका मन हो वह उस जीवन्मुक्त पुरुषकी पूजा, स्तुति, नमस्कार, दर्शन और वंदना प्रयत्नसे करै ॥ १३ ॥ हे प्रियपुत्र ! जो परमपवित्र फल जीवन्मुक्त महात्माओंकी भक्तिसे प्राप्त होताहै, वह यज्ञ, तीर्थ, तप तथा दानादिसे नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले--हे रामजी ! मनुभगवान् इतना कहके ब्रह्माके भवनमें गये, और इक्ष्वाकुभी उस दृष्टिका दृढरूपसे अवलम्बन करके स्थिर चित्त होगये ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे इक्ष्वाकुप्रबोधनं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

अज्ञ सिद्धोंकी अपेक्षा ज्ञानीके सर्वथा पूर्ण होनेसे आकाशचारिता तथा अणिमादि सिद्धियोंकी इच्छा नहीं होती है यह विशेषता इस १२३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेहि भगवञ्जीवन्मुक्तस्यसन्मतेः ॥ अपूर्वोतिशयःकोसौभवत्यात्मविदांवर ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञस्यकस्मिंश्चिदेवांशेभवत्यतिशयेनधीः ॥ नित्यतृप्तःप्रशांतात्मासआत्मन्येवतिष्ठति ॥ २ ॥ मंत्रसिद्धैस्तपःसिद्धैस्तंत्रसिद्धैश्चभूरिशः ॥ कृतमाकाशयानादिकातत्रस्यादपूर्वता ॥ ३ ॥ अणिमाद्यपिसंप्राप्तंताद्दशैरेवभूरिशः ॥ यत्नेनसाधितत्त्वात्तैर्नेतरेणात्मदर्शिना ॥ ४ ॥ एष एवविशेषोस्यनसमोमूढबुद्धिभिः ॥ सर्वत्रास्थापरित्यागान्नीरागममलंमनः ॥ भवेत्तस्यमहाबुद्धेर्नासौवस्तुषुमज्जति ॥ ५ ॥ एतावदेवखलुलिंगमलिंगमूर्तेःसंशांतसंसृतिचिरभ्रमनिर्वृतस्य ॥ तज्ज्ञस्ययन्मदनकोपविषादमोहलोभापदामनुदिनंनिपुणंतनुत्वम् ॥ ६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अज्ञादेर्ज्ञस्यविशेषकथनं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२३ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे आत्मवेताओंमें श्रेष्ठभगवन् ! इसप्रकार स्थित होनेसे सन्मति जीवन्मुक्तका कुछ अपूर्व अतिशयहै कि नहीं ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ज्ञानीपुरुषकी सांसारिक सिद्धिके विषयमें कुछ अधिक आग्रह नहीं रहता, वह तो नित्य तृप्त शांतचित्त अपने आत्माहीमें रमण करताहै ॥२॥ मंत्रोंसे सिद्धोंने तपसे सिद्धोंने और तंत्रसे सिद्धोंने अनेक आकाशगमनादि सिद्धियां प्राप्त की है, इन सबमें ज्ञानी अपनाही रूप, वा निरर्थक देखताहै इसलिये इनके प्राप्त होनेसे उसको अपूर्वता क्या होगी अणिमादि सिद्धियोंको भी यत्नसे साधन करनेसे मंत्रादिके प्राप्त कियाहै, और आत्मदर्शीयोगीने उन सिद्धियोंके लिये साधन नहीं किया ॥ ४ ॥ उसमें यही विशेषता है कि वह बुद्धियोंके सदृश नहीं होता सर्वत्र आस्थाके त्यागसे उस महाबुद्धिका मन सर्वदा निर्मल रहताहै, और वह वस्तुओंमें निमग्न नहीं होता ॥ ५ ॥ हे रामजी ! अलिंगमूर्ति. शांतचित्त और निवृत्त संसार भ्रम ज्ञानीका यही चिन्ह है कि उसकी काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा शोकादि जनित आपत्तियां प्रतिदिन क्षीण होजाती है ॥ ६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे अज्ञादेर्ज्ञस्प विशेष कथनं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

जीवोंकी निष्कारणता, ग्राह्य विषयोंके रागसे बन्धन, जीवोंके स्वरूप अवस्था, तुर्य्यावस्था तथा मृगव्याधकी गाथा इत्यादि विषय इस १२४ के सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथासत्वमुपेक्ष्यस्वंशनैर्विप्रोद्गरीहया ॥ अंगीकरोतिशूद्रत्वंतथाजीवत्वमीश्वरः॥१॥ भूतानिद्विविधान्येवप्रतिसर्गंस्फुरंतिवै ॥ आद्यविस्पंदजातानितानिनिष्करणानिवै ॥ २ ॥ ईश्वरात्समुपागत्यपुनर्जन्मांतराणिच ॥ भूतान्यनुभवंत्यंगस्वकृतैरेवकर्मभिः ॥ ३ ॥ कार्यकारणभावोयमीदृशो जन्मकर्मणोः ॥ अकारणमुपायांतिसर्वेजीवाःपरात्पदात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जैसे कोई ब्राह्मण दुष्ट चेष्टासे शूद्रामें आसक्त होके अपने सात्त्विक ब्राह्मणधर्मको त्यागकर शूद्रत्व अंगीकार करताहै, ऐसेहि ईश्वर भी भोगकी आशासे पूर्णानन्दको त्यागकर जीवत्व अंगीकार करताहै ॥ १ ॥ हिरण्यगर्भके प्रथम स्पन्दसे उत्पन्न भोग्य तथा भोक्ता ये दो प्रकारके भूत प्रतिसर्गमें गंधर्व नगरके शदृश स्फुरित होते हैं ॥ २ ॥ प्रथम ईश्वरसे आके अपनेही कर्मोंसे सब जीव शुभाशुभ जन्मान्तरोंका अनुभव करते हैं ॥३॥ जीवोंके जन्मकर्मका ऐसाही कार्य कारणभावहै कि प्रथम सब जीव परमपदसे निष्कारण आतेहैं ॥ ४॥

पश्चात्तेषांस्वकर्माणिकारणंसुखदुःखयोः ॥ आत्मज्ञानात्समुत्पन्नःसंकल्पःकर्मकारणम् ॥ ५ ॥ संकल्पित्वंहिबंधस्यकारणंतत्परित्यज ॥ मोक्षस्तुनिःसंकल्पित्वंतदभ्यासपरोभव ॥ ६ ॥ सावधानोभवत्वंचग्राह्यग्राहकसंभ्रमे ॥ अजस्रमेवसंकल्पदशाःपरिहरञ्छनैः ॥ ७ ॥ माभवग्राह्यभावात्माग्राहकात्माचमाभव ॥ भावनामखिलांत्यक्त्वायच्छिष्टंतन्मयोभव ॥ ८ ॥

अर्थ—पश्चात् जीवोंके कर्म उनके सुखदुःखके कारण होते हैं, अपने मनुष्यादिमें देहात्मज्ञानसे उत्पन्न संकल्पही कर्मकारणहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! संकल्पसहित होनाही बंधका कारणहै, और संकल्परहित होनेसे मोक्ष होता है, इसलिये तुम उसीके अभ्यासमें तत्पर होओ ॥ ६ ॥ निरन्तर संकल्पोंकी दशाओंको धीरे २ त्यागते हुये ग्राह्य ग्राहकके भ्रममें सावधान रहो ॥ ७ ॥ न तो तुम ग्राह्य (विषय) होओ, किंतु सब भावनाको त्यागकर शेष साक्षीरूप होजाओ ॥ ८ ॥

अजस्रंयंयमेवार्थपतत्यक्षगणोनघ ॥ बद्धयतेतत्ररागेणतत्रारागेणमुच्यते ॥ ९ ॥ किंचिद्यद्रोचतेतुभ्यंतद्बद्धोसिभवस्थितौ ॥ नकिंचिद्रोचतेचित्तेतन्मुक्तोसिभवस्थितौ ॥ १० ॥ तस्मात्पदार्थनिचयात्सहस्थावरजंगमात् ॥ तृणादेर्देवकायांतान्माकिंचित्तवरोचताम् ॥ ११ ॥ यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ॥ नकर्त्तासिनभोक्तासितत्रमुक्तमतिःशमी ॥ १२ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! निरंतर जिन २ पदार्थोंमें यह इन्द्रियसमूह गिरताहै, उन २ में राग करनेसे बंधनमें आताहै, और रागरहित होनेसे मुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥ यदि तुमको कोई वस्तु रूचती है तो उसमें राग होनेसे बद्ध होते हो, और यदि तुमको कोई पदार्थ नहीं रूचता तो तुम मुक्तहो ॥ १० ॥ इसलिये इस पदार्थके समूहमें स्थावर तृणादिसे लेके और ब्रह्माकी शरीरपर्य्यंत तुमको कुछ न अच्छा लगै ॥ ११ ॥ जो कुछ तुम करतेहो, खातेहो, हवन करतेहो, और दानादिदेतेहो, उन सबमें तुम अभिमानरहित आत्मनिष्ठहो, तो तुम न कर्ताहो और न भोक्ताहो॥१२

संतोतीतंनशोचंतिभविष्यच्चिंतयंतिनो ॥ वर्तमानंचगृह्णंतिकर्मप्राप्तमखंडितम् ॥ १३ ॥ मनेसिग्रथिताभावास्तृष्णामोहमदादयः ॥ मनसैवमनोरामच्छेदनीयंविजानता ॥ १४ ॥ विवेकेनातितीक्ष्णेनबलादयइवायसा ॥ मनसैवमनश्छिधिसर्वभ्रमस्यशांतये ॥ १५ ॥ क्षालयंतिमलेनैवमलंक्षालनकोविदाः ॥ वारयंत्यस्त्रमस्त्रेणविषंप्रतिविषेनच ॥ १६ ॥

अर्थ—ज्ञानी महात्माजन अतीतकी न शोच करते हैं और न भविष्यत्की चिंता करते हैं, किंतु प्रारब्धकर्मसे प्राप्त पूर्णरूपसे वर्तमानका ग्रहण करते हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! तृष्णा मोह तथा मद आदि विकार मनमेंही गूंथे हैं, बुद्धिमान्को उचितहै कि मनसेही उनका छेदन करै ॥ १४ ॥ सब भ्रमकी शांतिके लिये हे रामजी ! तीव्रविवेक युक्त मनसेही मनका ऐसे छेदन करो जैसे लोहेसे लोहका ॥ १५ ॥ चतुरलोग क्षारमलादिसेही मलको धोते हैं, और अस्त्रका प्रतीकार अस्त्रसे होताहै तथा विषसे विषका ॥ १६ ॥

जीवस्यत्रीणिरूपाणिस्थूलसूक्ष्मपराणिच ॥ तत्रास्ययत्परंरूपंतद्भजद्वेपरित्यज ॥ १७ ॥ पाणिपादमयोयोयंदेहोभोगायवल्गति ॥ भोगार्थमेतज्जीवस्यरूपंस्थूलमिहास्थितम् ॥ १८ ॥ स्वसंकल्पमयाकारंयावत्संसारभावियत् ॥ चित्तंतद्विद्धिजीवस्यरूपंरामातिवाहिकम् ॥ १९ ॥ आद्यंतरहितंसत्यंचिन्मात्रंनिर्विकल्पकम् ॥ यतद्विद्धिपरंरूपंतृतीयंविश्वरूपकम् ॥ २० ॥

अर्थ—जीवके स्थूल, सूक्ष्म और पर तीनरूप होते हैं, सो तुम स्थूल सूक्ष्मको त्यागकर पर (चेतन) रूपको ग्रहणकरो ॥ १७ ॥ हे रामजी ! हस्तपादादिमय यह देह जो भोगके लियेगर्ज रहाहै, इस संसारमें जीवका स्थूलरूप स्थितहै ॥ १८ ॥ और हे रामजी ! अपने संकल्पके अनुसार जो सम्पूर्ण संसार होनेवाले हैं वह चित्तहै उसी चित्तको तुम सूक्ष्मरूप जानो ॥ १९ ॥ और जो आदि अन्तरहित, सत्य चिन्मात्र निर्विकल्प और संसारको सत्ता देनेवाला है उसको तुम पर तृतीयरूप जानो ॥ २० ॥

एतत्तुर्यपदंशुद्धमत्रबद्धपदोभव ॥ संपरित्यज्यपूर्वेद्वेमातत्रात्ममतिर्भव ॥ २१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुस्थितंत्रिष्वप्यलक्षितम् ॥ तुर्यंब्रूहिविशेषेणविविच्यमुनिनायक ॥२२॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहंभावानहंभावौत्यक्त्वासदसतीतथा ॥ यदसक्तंसमंस्वच्छंस्थितंतत्तुर्यमुच्यते ॥ २३ ॥ यास्वच्छासमताशांताजीवन्मुक्तव्यवस्थितिः ॥ साक्ष्यवस्थाव्यवहृतौसातुर्यकलनोच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! पूर्व दोनोंको त्यागकर इसी तुर्य्य (चित्) पदमें तुम दृढतापूर्वक आत्मबुद्धि करके स्थित रहो और पूर्व दोनोंमें आत्मबुद्धि मतकरो ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले-हे मुनिनायक ! जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्त इन तीनोंमें अलक्षितरूपसे स्थित तुर्य्यरूपको पृथक् करके वर्णन कीजिये ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अहंभाव और अनहंभाव थ । सत् असत्का त्यागकरके जो किसीमें सक्त नहीं है तथा जो स्वच्छ और समरूपसे स्थित (शुद्धचित्) है उसीको तुर्य्य कहते हैं ॥ २३ ॥ जीवन्मुक्तोंकी जो स्वच्छ सम और शान्तावस्था है और व्यवहारमें जो साक्षीकी अवस्था है वही तुर्यपदहै ॥ २४ ॥

नैतज्जाग्रन्नचस्वप्नंसंकल्पानामसंभवात् ॥ सुषुप्तभावोनाप्येतदभावाज्जडतास्थिते ॥ २५ ॥ शांतंसम्यक्प्रबुद्धानांयथास्थितमिदंजगत् ॥ विलीनंतुर्यमेवाहुरबुद्धानांस्थिरंस्थितम् ॥ २६ ॥ अहंकारकलात्यागेसमतायाःसमुद्भवे ॥ विशरारीकृतेचित्तेतुर्यावस्थोपतिष्ठते ॥ २७ ॥ अथेमंशृणुदृष्टांतंकथ्यमानंमयाधुना ॥ प्रबुद्धोपियथाबोधमुपैषिविबुधोपम ॥ २८ ॥

अर्थ—संकल्पोंके असम्भवसे यह शुद्धचेतनावस्था न जाग्रत् है न स्वप्न है, और जडता न रहनेसे यह सुषुप्तभी नहीं है ॥ २५ ॥ ज्ञानियोंके लिये सम्यग्रीतिसे शान्त तथा विलीन इस जगत्की स्थितिको तुर्य्यक कहते हैं, और अज्ञानियोंके लिये यह जगत् स्थिररूपसे स्थित है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! अहंकारकी कल्पनाके त्याग होनेपर, समताके उत्पन्न होनेपर, और चित्तके गलित होनेपर तुरीयावस्था प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ हे देवतुल्य रामजी ! अब मुझसे कथित यह दृष्टान्त तुम सुनो, जिससे कि प्रबुद्धभी तुम अधिक बोधको प्राप्त होओगे ॥ २८ ॥

कस्मिंश्चित्काननाभोगेमहामौनंव्यवस्थितम् ॥ दृष्ट्वाद्भुतमिदंकिंचिन्मुनिंपप्रच्छलुब्धकः ॥ २९ ॥ पश्वादुपगतोबाणभिन्नंमृगमभिद्रुतम् ॥ मुनेमदीयबाणेनविद्धोमृगइहागतः ॥ ३० ॥ क्वप्रयातोमृगइतिप्रत्युवाचसतंमुनिः ॥ समशीलावयंसाधोमुनयोवनवासिनः ॥ ३१ ॥ नास्माकमस्त्यहंकारोव्ययाहारेषुयःक्षमः ॥ सर्वाणींद्रियकर्माणिकरोतिहिसखेमनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—किसी बनमें महा मौन धारण किये हुये मुनिको आश्चर्यके सदृश स्थित देखके बाणसे वेधित मृगके पीछे दौडतेहुये एक व्याधने मुनिसे यह पूंछा ॥ २९ ॥ कि हे मुने ! मेरे बाणसे विद्ध मृग यहां आया ॥ ३० ॥ तो वह मृग कहां गया; इसको सुनके मुनि उससे बोले कि हे साधो ! हम बनके निवासी मुनि समशील होते हैं ॥ ३१॥ व्यवहारोंमें समर्थ जो अहंकार है, वह हम लोगोंमें नहीं है और हे सखे ! सब इन्द्रियोंके कार्य्योंको मन करताहै ॥६२॥

अहंकारमयंतन्मेनूनंप्रगलितंचिरम् ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यादशावेभिनकाश्चन ॥ ३३ ॥ तुर्यएवहितिष्ठेहंतत्रदृश्यंनविद्यते ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वामुनिनाथस्यराघव ॥ ३४ ॥ लुब्धकोर्थमविज्ञायजगामाभिमतांदिशम् ॥ अतोवच्मिमहाबाहोनास्तितुर्येतरादशा ॥ ३५ ॥ निर्विकल्पाहिचित्तुर्यंतदेवास्तीहनेतरत् ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यंत्रयंरूपंहिचेतसः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सो अहंकारसे पूर्ण मेरा मन चिरकालसे गलित होगयाहै, जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तदशाओंको मैं नहीं जानता ॥ ३३ ॥ जिसमें यह दृश्य नहीं है उसी तुर्यअवस्थामें मैं स्थितहुं. हे रामजी ! श्रेष्ठमुनिके ऐसे वचन सुनिके वह लुब्धक उसके अर्थको न जानके अपनी अभिमतदिशाको चलागया इसलिये मैं तुमसे कहताहुं कि तुर्य्यदशामें अन्य दशा नहीं है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ विकल्परहित शुद्धचित्तही तुर्य्य है, अन्य नहीं, क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्त ये तीनों चित्तके रूप हैं ॥ ३६ ॥

घोरंशांतंचमूढंचआत्मचित्तमिहास्थितम् ॥ घोरंजाग्रन्मयंचित्तंशांतंस्वप्नमयंस्थितम् ॥ ३७ ॥ मूढंसुषुप्तभावस्थंत्रिभिर्हीनंमृतंभवेत् ॥ यच्चचित्तंमृतंतत्रसत्वमेकंस्थितंसमम् ॥ तदेवयोगिनःसर्वेयत्नात्संपादयंतिहि ॥ ३८ ॥ समस्तसंकल्पविलासमुक्ततुर्यपदेतिष्ठनिरामयात्मा ॥ यत्रस्थिताःसाधुसदैवमुक्ताःप्रशांतभेदामुनयोमहांतः ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे मृगव्याधीयं नाम चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

अर्थ—घोर, शान्त, और मूढ इस तीनरूपसे अपना चित्त स्थित है, और इन तीनोंसेरहित मृतचित्त कहताहै और जो मृत्तचित्त है उसीमें भस्ममें शुक्लताके तुल्य सत्व स्थित है, इसी मृतचित्तको योगीजन यत्नसे उपार्जन करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण संकल्पोंके विलासोंसे विनिर्मुक्त तुर्य्यपदमें निरामय आत्मा होके तुम स्थित रहो, यहां स्थित होनेसे शान्त भेद महात्मा मुनिजन सदा मुक्त होगये हैं ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे मृगव्याधीयं नाम चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

जहां वादियोंको भ्रम होताहै ऐसे सबके अपलाप भूत तथा सिद्धान्त तुर्य्यपदमें स्थिरताके लिये उपाय इस १२५ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सिद्धांतोध्यात्मशास्त्राणांसर्वापह्नवएवहि ॥ नाविद्यास्तीहनोमायाशांतंब्रह्मेदमक्रमम् ॥ १ ॥ शांतएवचिदाभासेस्वच्छेसमसमात्मनि ॥ समग्रशक्तिखचितेब्रह्मेतिकलिताभिधे ॥२॥ निर्णायकेचिच्छून्यत्वंकेचिद्विज्ञानमात्रताम् ॥ केचिदीश्वररूपत्वंविवदंतेपरस्परम् ॥ ३ ॥ सर्वमेवपरित्यज्यमहामौनीभवानघ ॥ निर्वाणवान्निर्मननःक्षीणचित्तःप्रशांतधीः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अध्यात्मशास्त्रोंके सिद्धान्तमें सबका अपलाप है, यहां न तो अविद्या है, और न माया है, किन्तु वाणीआदिके क्रमका अविषय एकशान्त ब्रह्महि है ॥ १ ॥ शान्त, चिदाभासरूप, स्वच्छ, सम, सर्वात्मरूप, तथा सब शक्तियोंसे पूर्णब्रह्म नामक वस्तुमेंही ॥ २ ॥ अपनी २ बुद्धिके अनुसार सिद्धान्त कल्पित करके कोई शून्य, कोई विज्ञानमात्र और कोई ईश्वररूप कहते हुये परस्पर विवाद करते हैं ॥ ३ ॥ हे पापरहित रामजी ! तुम तो सब विवादके स्थानभूत समूहको त्यागकर, मनसे वर्जित शान्तचित्त और निर्वाणयुक्त महामौनी होके अपने आत्माहीमें स्थितरहो ॥ ४ ॥

आत्मन्येवास्वशातात्मामूकांधबधिरोपमः ॥ नित्यमंतर्मुखोभूत्वास्वात्मनांतःप्रपूर्णधीः ॥ ५ ॥ जाग्रत्येवसुषुप्तस्थःकुरुकर्माणिराघव ॥ अंतःसर्वपरित्यागीबहिःकुरुयथागतम् ॥ ६ ॥ चित्तसत्तापरंदुःखंचित्तासत्तापरंसुखम् ॥ अतश्चित्तंचिदेकात्मानयक्षयमवेदनात् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वारम्यमरम्यंवास्थेयंपाषाणवत्समम् ॥ एतावतात्मयत्नेनजिताभवतिसंसृतिः ॥ ८ ॥ संवेदनीयंनसुखंनासुखंनचमध्यमम् ॥ एतावतात्मययत्नेनदुःखांतोनंतआप्यते ॥ ९ ॥ आपीनमंडलशशांकवदंतरेवश्रीमद्रसायनमयःसुखमेतितज्ज्ञः ॥ विज्ञातसर्वभुवनत्रयवस्तुसारःकुर्वन्ननामकुरुतेपरमभ्युपेतः ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे तुर्येस्थैर्योपायकथनं नाम पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

अर्थ—अंध बधिरके तुल्य, नित्य अंतर्मुख, और आत्माहीसे पूर्णचित्त होके शांतरूपसे अपने आत्माहीमें स्थित रहो ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जाग्रत्अवस्थाही सुषुप्तके समान स्थित तुम कर्मोंको करो, अर्थात् भीतरसे सबके त्यागी रहते बाहरसे यथाप्राप्त सब कामोंको करो ॥ ६ ॥ चित्तकी सत्ताही परम दुःख है, और उसका अभाव सुख है, इसलिये चिद्रूप होकर, प्रिय तथा द्वेष्यका चिंतन न करके चित्त क्षय करो ॥ ७ ॥ रमणीय तथा अरमणी वस्तुको देखके पाषाणके समान स्थित होना चाहिये, बश, इतनेही यत्नसे यह संसार जीता जाताहै ॥ ८ ॥ सुख दुःख तथा उनके साधनकी चिंता नहीं करनी चाहिये, इतनेही यत्नसे अनंत सुख प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ तीनोंलोकोंके सारका ज्ञाता, सब ओरके प्रकाशसे शोभायमान् निरतिशय ब्रह्मानंदरूप अमृतमय, तथा पूर्णचंद्रमण्डलके समान शीतल जीवन्मुक्त पुरुष सुखको प्राप्त होताहै, और परमात्मस्वरूपको प्राप्त वह बाहरसे सब कार्योंको करते हुयेभी आभ्यंतरसे कुछ नहीं करता ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देव० मो० नि० प्र० भाषाऽनुवादे तुर्य्यस्थैर्योपायकथनं नाम पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

योगभूमियोंके अभ्यास तथा क्रमके लक्षण, और मध्यमें मृत्युहो जानेसे भोग, तथा जन्मांतरमें जप इत्यादि विषयोंका वर्णन इस १२६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ सप्तानांयोगभूमीनामभ्यासःक्रियतेकथम् ॥ कीदृशानिचचिह्नानिभूमिकांप्रतियोगिनः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रवृत्तश्चनिवृत्तश्चभवतिद्विविधःपुमान् ॥ स्वर्गापवर्गोन्मुखयोःशृणु लक्षणमेतयोः ॥ २ ॥ कियत्तन्नामनिर्वाणंवरंसंसृतिरेवमे ॥ इतिकर्तव्यकर्तायःसप्रवृत्तइतिस्मृतः ॥३॥ चलार्णवयुगच्छिद्रकूर्मग्रीवाप्रवेशवत् ॥ अनेकजन्मनामंतेविवेकीजायतेपुमान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! सप्तभूमिकाओंका अभ्यास कैसे किया जाताहै और भूमिकाओंमें योगियोंके चिन्ह कैसे हुआ करतेहैं ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! प्रवृत्त स्वर्गका अभिलाषी, निवृत्त मोक्षका अभिलाषी, इसप्रकार वेदमतानुयायी दोप्रकारके मनुष्य होतेहैं अब तुम इनके लक्षण सुनो ॥ २ ॥ विषयशून्य निर्वाण क्या पदार्थ है, अनेक प्रकारके भोगों करके संयुक्त संसारही उत्तम है; यह समझके वेदविहित यागादि कर्मोंको जो करताहै उसको प्रवृत्त कहतेहैं ॥ ३ ॥ जैसे क्षारसमुद्रमें स्थित कूर्मकी ग्रीवा (गला) सदा क्षारजलकेही स्वादमें निमग्न रहती है, युगके अंतमें जब कभी क्षारसमुद्र तथा क्षीरसमुद्रके जलसे विरक्त होता है ऐसेही अनेक जन्मोंके अंतमें वेदांत श्रवणद्वारा यह पुरुष विवेकी होकर संसारसे विरक्त होताहै ॥ ४ ॥

असाराबतसंसारव्यवस्थालंममैतया ॥ किंकर्मभिःपर्युषितैर्दिनैस्तैरेवनीयते ॥ ५ ॥ क्रियातिशयनिर्मुक्तंकिंस्याद्विश्रमणंपरम् ॥ इतिनिश्चयवान्योंतःसनिवृत्तइतिस्मृतः ॥ ६ ॥ कथंविरागवान्भूत्वासंसाराब्धितराम्यहम् ॥ एवंविचारणपरोयदाभवतिसन्मतिः ॥ ७ ॥ विरागमुपयात्यंतर्भावनास्वनुवासरम् ॥ क्रियासूदाररूपासुक्रमतेमोदतेन्वहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उससमय उसको यह विवेक होताहै कि संसारकी व्यवस्था असारहै, मुझे इससे कुछ प्रयोजन नहीं है अनुचित परिणामवाले कर्मोंसे हम अपने दिनोंको क्यों बीताते हैं ॥ ५ ॥ उत्पत्ति तथा प्राप्ति आदि क्रियाओंकी अधिकतासे निर्मुक्त विश्रामका परमस्थान क्या होसकताहै ऐसा निश्चययुक्त पुरुष निवृत्त कहता है ॥ ६ ॥ किसप्रकार वैराग्यवान् होके संसारसमुद्रके पार मैं होऊंगा; इसप्रकारके विचारमें तत्पर जब सद्बुद्धि प्राणी होताहै ॥ ७ ॥ तब भोग साधनीभूत चिन्ताओंसे प्रतिदिन उसको वैराग्य उत्पन्न होताहै, और चित्त शुद्धिमें साधनभूत जप ईश्वराराधनादि क्रियाओंमें तत्पर होताहै, उनसे तृष्णाका क्षय होनेसे प्रतिदिन प्रसन्न होताहै ॥ ८ ॥

ग्राम्यासुजडचेष्टासुसततंविचिकित्सति ॥ नोदाहरतिमर्माणिपुण्यकर्माणिसेवते ॥ ९ ॥ मनोनुद्वेगकारीणिमृद्वकर्माणिसेवते ॥ पापाद्बिभेतिसततंनचभोगमपेक्षते ॥ १० ॥ स्नेहप्रणयगर्भाणिपेशलान्युचितानिच ॥ देशकालोपपन्नानिवचनान्यभिभाषते ॥ ११ ॥ तदासौप्रथमामेकांप्राप्तोभवतिभूमिकाम् ॥ मनसाकर्मणावाचासज्जनानुपसेवते ॥ १२ ॥

अर्थ—ग्राम्यजड चेष्टाओंसे वह घृणा करता है, दूसरोंके गुप्त भेदोंको कदापि नहीं करता, और पुण्य कर्मोंका सेवन करताहै, ॥ ९ ॥ अन्य वा अपने मनको क्षोभ करनेवाले कर्मोंको वह सेवन करताहै, पापसे सदा डरता है, और भोगोकी इच्छा नहीं करता ॥ १० ॥ स्नेह तथा प्रीतिसे पूर्ण कोमल, उचित, और देशकालके योग्य वचनको वह बोलताहै ॥ ११ ॥ हे रामजी! जब ऐसा होजाताहै तब प्रथम (शुभेच्छा नाम) भूमिकामें प्राप्त होताहै, और मन कर्म तथा वाणीसे सज्जनोंकी सेवा करताहै ॥ १२ ॥

यतःकुतश्चिदानीयज्ञानशास्त्राण्यवेक्षते ॥ एवंविचारवान्यःस्यात्संसारोत्तारणंप्रति ॥ १३ ॥ सभूमिकावानित्युक्तःशेषःस्वार्थइतिस्मृतः ॥ विचारनाम्नीमितरामागतोयोगभूमिकाम् ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारधारणाध्यानकर्मणाम् ॥ मुख्ययाव्याख्ययाख्याताञ्छ्रयतेश्रेष्ठपंडितान् ॥ १५ ॥ पदार्थप्रविभागज्ञःकार्याकार्यविनिर्णयम् ॥ जानात्यधिगतश्चयोगृहंगृहपतिर्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जहां कहींसे लाके ज्ञानवर्द्धक शास्त्रोंहीको देखताहै, इसप्रकार संसारकेपार उतरनेमें जो कटिबद्ध होताहै ॥ १३ ॥ वही भूमिकामें स्थित कहा जाताहै और शेष अपने स्वार्थ साधकहैं इसके पश्चात् योगी विचार नाम्नी द्वितीय भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ उससमय श्रुति, स्मृति, तथा सदाचारोंसे साध्ययम, नियम, आसन प्रत्याहर तथा धारण ध्यान समाधिके अनुष्ठान तथा अनुष्ठापनमें पूर्ण रीतिसे प्रसिद्ध पंडितोंके शरणमें वह जाताहै॥१५

व्याकरण आदि शास्त्रोंको पढकर पदपदार्थोंके विभागको जानकर और गुरुके मुखसे श्रवणके पदार्थको सुनकर कर्तव्य तथा अकर्तव्यका निर्णय जानताहै ॥ १६ ॥

मदाभिमानमात्सर्यमोहलोभातिशायिताम् ॥ बहिरप्याश्रितामीषत्यजत्यहिरिवत्वचम् ॥ १७ ॥ इत्थं भूतमतिःशास्त्रगुरुसज्जनसेवनात् ॥ सरहस्यमशेषेणयथावदधिगच्छति ॥ १८ ॥ असंसंगाभिधाम न्यांतृतीयांयोगभूमिकाम् ॥ ततःपतत्यसौकांतःपुष्पशय्यामिवामलाम् ॥ १९ ॥ यथावच्छास्त्रवाक्यार्थेमतिमाधायनिश्चलाम् ॥ तापसाश्रमविश्रामैरध्यात्मकथनक्रमैः ॥ २० ॥

अर्थ—और लोकमर्य्यादाके अनुसार बाहरसे किंचित् आश्रितभी मद, अभिमान, मात्सर्य्य, लोभ तथा मोहादिको वह ऐसे त्यागताहै जैसे सर्प केचुलको ॥ १७ ॥ हे रामजी! ऐसी बुद्धिसहित पुरुष शास्त्र, सज्जन तथा गुरुकी सेवासे शास्त्रोंके मर्मको यथार्थ रीतिसे जानताहै ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् असंगनामिका तीसरी योगभूमिमें ऐसे प्रवेश करताहै जैसे कांत अपनी प्रियाकी निर्मल शय्यापर ॥ १९ ॥ और वेदांत वाक्यों (तत्त्वमसि तथा अहंब्रह्मास्मि इत्यादि वाक्यों) में निश्चलतापूर्वक अपनी बुद्धिको स्थापन करके तपस्वियोंके आश्रमोंमें विश्रामोंसे, अध्यात्मशास्त्रोंके कथनादि क्रमोंसे ॥ २० ॥

संसारनिंदकैस्तद्वैराग्यकरणक्रमैः ॥ शिलाशय्यासमासीनोजरयत्यायुराततम् ॥ २१ ॥ वनवासविहारेणचित्तोपशमशोभिना ॥ असंगसुखसौम्येनकालंनयतिनीतिमान् ॥ २२ ॥ अभ्यासात्साधुशास्त्राणांकरणात्पुण्यकर्मणाम् ॥ जंतोर्यथावदेवेयंवस्तुदृष्टिःप्रसीदति ॥ २३ ॥ तृतीयांभूमिकांप्राप्यबुधोनुभवतिस्वयम् ॥ द्विःप्रकारमसंसंगंतस्यभेदमिमंशृणु ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा संसारकी निन्दा और वैराग्यके साधनक्रमोंसे पाषाण वा भूमिशय्यापर स्थित रहकर सम्पूर्ण आयुको बिताताहै ॥ २१ ॥ और चित्तके उपशमसे शोभित तथा असंगताके सुखसे सौम्य बनवासके बिहारसे वह बुद्धिमान् अपने कालको बिताताहै ॥ २२ ॥ सत्शास्त्रोंके अभ्याससे, तथा पूर्ण कर्मोंके निमित्तसे इसप्रकार आत्मदृष्टि जीव प्रसन्न होताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! तीसरी भूमिकामें पहुंचकर यह बुद्धिमान् दो प्रकारके असंगका स्वयं अनुभव करताहै उनके भेद तुम अब सुनो ॥ २४ ॥

द्विविधोयमसंसंगःसामान्यःश्रेष्ठएवच ॥ नाहंकर्तानभोक्ताचनबाध्योनचबाधकः ॥ २५ ॥ इत्यसंजनमर्थेषुसामान्यासंगनामकम् ॥ प्राक्कर्मनिर्मितंसर्वमीश्वराधीनमेवच ॥ २६ ॥ सुखंवायदिवादुःखंकैवात्रममकर्तृता ॥ भोगाभोगामहारोगाःसंपदःपरमापदः ॥ २७ ॥ वियोगायैवसंयोगाआधयोव्याधयोधियः ॥ कालःकवलनोद्युक्तःसर्वभावाननारतम् ॥ २८ ॥

अर्थ—दोप्रकारका यह असंसंग है एक सामान्य, और दूसरा श्रेष्ठ, अपने देहके क्रियाओंका तथा फलोंका न मैं कर्ताहुं न भोक्ताहुं, और अन्यकी क्रिया फलोंका मैं बाध्य बाधकभी नहीं हुं ॥ २५ ॥ इसप्रकार पदार्थोंमें संसक्त न होनाही सामान्य असंग कहलाताहै, और सबकुछ पूर्वकर्म रचित तथा ईश्वराधीन है ॥ २६ ॥ सुखहो वा दुःखहो इसमें मेरी कर्तृता नहीं है, भोग महारोग हैं, और संपत्ति परम आपत्ति है ॥ २७ ॥ सब संयोग वियोगोंहीके लिये हैं, मानसी चिंतायें बुद्धिकी व्याधिरूपही हैं, क्योंकि काल सब पदार्थोंका ग्रास करनेको उद्यत है ॥ २८ ॥

अनास्थयेतिभावानांयदभावनमांतरम् ॥ वाक्यार्थलग्नमनसःसामान्योसावसंगमः ॥ २९ ॥ अनेनक्रमयोगेनसंयोगेनमहात्मनाम् ॥ वियोगेनासतःमंतःप्रयोगेणात्मसंविदाम् ॥ ३० ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनसंतताभ्यासयोगतः ॥ करामलकवद्वस्तुन्यागतेस्फुटतांदृढम् ॥ ३१ ॥ संसारांबुनिधेःपारेसारेपरमकारणे ॥ नाहंकर्तेश्वरःकर्त्ताकर्मवाप्राक्तनंमम ॥ ३२ ॥ कृत्वादूरतरेनूनमितिशब्दार्थभावनम् ॥ यन्मौनमासनंशांतंतच्छ्रेष्ठासंगउच्यते ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार वाक्यार्थमें दत्तचित्तपुरुषकी अवस्थासे जो सब पदार्थोंकी प्रभावना है उसको सामान्य असंग कहते है॥२९॥ इसरीतिसे महात्माओंके समागमसे, दुष्टोंके त्यागसे, श्रवणमननादिके प्रयोगसे॥३०॥ निरंतरके अभ्यासद्वारा अपने पुरुषार्थके प्रयत्नसे, संसाररूपी समुद्रके पार, सबके सार परमकारणभूत आत्मवस्तुके हस्तामलकवत् अपरोक्ष होनेपर, मैं कर्ता नहीं हुं, किंतु ईश्वर कर्ता है, मेरे पूर्वजन्मके वा क्रियमाणभी कर्म नहीं है, इत्यादि शब्दार्थकी भावनाकोभी दूर करके जो शांत मौनस्थितिहै उसको श्रेष्ठ असंग कहते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥३३॥

यत्रान्तर्नबहिर्नाधोनोर्ध्वनाशासुनांबरे ॥ नपदार्थेनापदार्थेनजडेनचचेतने ॥ ३४ ॥ असितंभासनंशांतमभासंनभसासमम् ॥ अनाद्यंतमजंकांतंतच्छ्रेष्ठासंगउच्यते ॥ ३५ ॥ संतोषामोदमधुरःसत्कार्यामलपल्लवः ॥ चित्तजलाग्रसंलीनोविघ्नकंटकसंकटः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसका चित्त न भीतर, न बाहर, न ऊपर, न नीचे, न दिशाओंमें, न आकाशमें, न पदार्थोंमें, न अपदार्थोंमें, न जडमें और न चिदाभासमें स्थितहै ॥ ३४ ॥ किंतु जिसका प्रकाश शांत, आकाशके तुल्य एकरस गंभीर, आदि अंतरहित और स्वाभाविक सुंदर ब्रह्ममयहै उसको श्रेष्ठ असंग कहतेहैं ॥ ३५ ॥ संतोषरूप सुगंधसे रमणीय, निष्काम उपासनादि कर्मरूप पल्लवसंयुक्त और चित्तरूप मृडालमें छिपे हुये रागादिकी वासनासे उत्पन्न अनेक विघ्नरूप कंटकोंसे दुष्प्राप ॥ ३५ ॥ तथा अंतर्विचाररूप सूर्य्यसे विकसित यह विवेकरूपी कमल जब अंतःकरणमें दृढ होजाताहै तब असंग नाम्नी तृतीयभूमिका रूप फल फलताहै ॥ ३६ ॥

विवेकपद्मोरूढांतर्विचारार्कविकासितः ॥ फलंफलत्यसंसंगांतृतीयांभूमिकामिकाम् ॥ ३७ ॥ समवायाद्विशुद्धानांसंचयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ काकतालीययोगेनप्रथमोदेतिभूमिका ॥ ३८ ॥ भूमिःप्रोदितमात्रैतरमृतांकुरिकेवसा ॥ विवेकेनांबुसेकेनरक्ष्यापाल्याप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ येनांशेनोल्लसत्येषाविचारेणोदयंनयेत् ॥ तमेवानुदिनंयत्नात्कृषीवलइवांकुरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—शुद्ध अन्तःकरणयुक्त महात्माओंके समागमसे, तथा अनेक जन्मोंके पुण्योंके संचयसे दैवयोगसे शुभेच्छानाम प्रथम भूमिका उदय होती है ॥ ३८ ॥ यदि यह प्रथम भूमिका अंकुरित होगई तो अंकुरयुक्त भूमिके तुल्य विवेक उपदेशादिरूप जल सिंचनसे प्रयत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ साधनचतुष्टयमेंसे वैराग्य वा जिस अंशसे प्रथम भूमिकाका अंकुर उदयहो उसीको करना उचित है, और उदय होजानेपर प्रतिदिन यत्नसे उसकी ऐसे रक्षा करै जैसे किसान धान्यके अंकुरकी ॥ ४० ॥

एषाहिपरिमृष्टांतरन्यासांप्रसवैकभूः ॥ द्वितीयांभूमिकांयत्नात्तृतीयांप्राप्नुयात्ततः ॥ ४१ ॥ श्रेष्ठासंसंगताद्येषातृतीयाभूमिकात्रहि ॥ भवतिप्रोज्झिताशेषसंकल्पकलनःपुमान् ॥ ४२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मूढस्यासत्कुलोत्थस्यप्रवृत्तस्याधमस्यच ॥ अप्राप्तयोगिसंगस्यकथमुत्तरणंभवेत् ॥ ४३ ॥ एकामथद्वितीयांवातृतीयांचेतरांचवा ॥ आरूढस्यमृतस्याथकीदृशीभगवन्गतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यदि यह अन्तःकरणमें दृढ होगई तो अन्य भूमियोंकी उत्पत्तिका स्थान होजाती है, इसीसे द्वितीय तथा तृतीय भूमिकाको भी यत्न करनेसे साधक प्राप्त करसकताहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! यह मैंने तृतीय श्रेष्ठभूमिका कही, इस भूमिकामें स्थितपुरुष सम्पूर्ण संकल्पकी कल्पनाओंसे रहित होजाताहै ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन् ! मूढ नीच कुलमें उत्पन्न भोगरागादिमें प्रवृत्त अधम और जिसको योगियोंका संग नहीं मिला उसका उद्धार कैसे होसकताहै ॥ ४३ ॥ और हे भगवन् ! प्रथम, अथवा द्वितीय तृतीय वा अन्यभूमिकामें प्राप्त होकर यदि उसका शरीर छूट जाय तो उसकी कैसी गति होती है ॥ ४४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मूढस्यारूढदोषस्यतावत्संसृतिरातता ॥ यावज्जन्मांतरशतैःकाकतालीययोगतः ॥ ४५ ॥ अथवासाधुसंगत्यावैराग्यंनाभ्युदेतिहि ॥ वैराग्येभ्युदितेजंतोरवश्यंभूमिकोदयः ॥४६॥ ततोनश्यतिसंसारइतिशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ योगभूमिकयोत्क्रांतजीवितस्यशरीरिणः ॥ ४७ ॥ भूमिकांशानुसारेणक्षीयतेपूर्वदुष्कृतम् ॥ ततःसुरविमानेषुलोकपालपुरेषुच ॥ ४८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जो मूढ दोषकीही ओर आरूढ है उसको अनेक जन्मोंमें अपनेही विचारसे वा साधुओंके समागमसे जबतक वैराग्य नहीं उदय होता तबतक यह घनीभूत संसार अवश्य होताहै और वैराग्यके उदय होनेपर भूमिकाका उदय अवश्य होताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और वैराग्यसे भूमिकाके उदय द्वारा संसार नष्ट होताहै यह शास्त्रोंका सिद्धांतहै, और यदि योगकी दो वा तीन भूमिकामें आरूढ योगियोंका देहपात होगया तो ॥ ४७ ॥ योगकी भूमिकाके अनुसार उसका पूर्वकालका पाप नष्ट होजाताहै, उसके पश्चात् देवताओंके विमानोंमें, इन्द्रादि लोकपालोंके नगरोंमें ॥ ४८ ॥

मेरूपवनकुंजेषुरमतेरमणीसखः ॥ ततःसुकृतसंभारेदुष्कृतेचपुराकृते ॥ ४९ ॥ भोगजालेपरिक्षीणेजायंतेयोगिनोभुवि ॥ शुचीनांश्रीमतांगेहेगुप्तेगुणवतांसताम् ॥ ५० ॥ जनित्वायोगमेवैतेसेवंतेयोगवासिताः ॥ तत्रप्राग्भावनाभ्यस्तयोगभूमिक्रमंबुधाः ॥ स्मृत्वापरिपतंत्युच्चैरुत्तरंभूमिकाक्रमम् ॥ ५१ ॥ भूमिकात्रितयंत्वेतद्रामजाग्रदितिस्मृतम् ॥ यथावद्भेदबुद्ध्येदंतज्जाग्रदितिदृश्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—तथा मेरूके शीतल कुंजोंमें, वह अप्सराओंके साथ रमण करताहै, उसके अनन्त पुण्यसमूह वा पूर्वकालके दुष्कृतके ॥ ४९ ॥ भोगजालोंसे क्षीण होनेपर वे लोग संसारमें योगी होते हैं, शुद्ध, श्रीमान्, गुणवान् तथा

सज्जनों गृहमें ॥ ५० ॥ उत्पन्न होकर योगकी वासनासे पुनः वे योगहीका सेवन करते हैं, और पूर्वके अभ्याससे वे बुद्धिमान् योगभूमिके क्रमको स्मरण करके उत्तरोत्तर भूमिकाओंमें वे चढते चले जाते हैं ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! ये तीनों भूमिका जाग्रत् कही गई हैं, क्योंकि इनमें यथावत् भेद बुद्धिसे जाग्रत्केही तुल्य सब व्यवहार देखपडताहै ५२

उदेतियोगयुक्तानामत्रकेवलमार्यता ॥ यांदृष्ट्वामूढबुद्धीनामभ्युदेतिमुमुक्षुता ॥ ५३ ॥ कर्त्तव्यमाचरन्काममकर्त्तव्यमनाचरन् ॥ तिष्ठतिप्राकृताचारोयःसआर्यइतिस्मृतः ॥ ५४ ॥ यथाचारंयथाशास्त्रंयथाचित्तंयथास्थितम् ॥ व्यवहारमुपादत्तेयःसआर्यइतिस्मृतः ॥ ५५ ॥ प्रथमायामंकुरितंद्वितीयायांविकासितम् ॥ फलीभूतंतृतीयायामार्यत्वंयोगिनोभवेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—योगयुक्त पुरुषोंकी इस अवस्थामें सर्वथा पूज्य (श्रेष्ठ) होनेकी सामग्री उदय होती है, जिसे देखकर मूढोंको भी मोक्षकी इच्छा होती है ॥ ५३ ॥ सब कर्तव्य नित्य नैमित्तिक कर्मोंको करतेहुये, और अकर्तव्योंको न करते हुये जो प्राकृत आचारमें स्थित रहताहै उसको आर्य्य (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ ५४ ॥ अपने पूर्वजोंके आचारोंके अनुकूल, शास्त्रोक्त तथा सर्वदा चित्तको तृप्तिकारक व्यवहारोंको जो ग्रहण करताहै उसको आर्य्य कहते हैं ॥ ५५ ॥ योगीको आर्यत्व प्रथम भूमिकामें आर्यत्व अंकुरित द्वितीयमें विकसित और तृतीयमें फलसंयुक्त होजाताहै ॥ ५६ ॥

आर्यतायांमृतोयोगीशुभसंकल्पसंभृतान् ॥ भोगान्भुक्त्वाचिरंकालंयोगवाञ्जायतेपुनः ॥ ५७ ॥ भूमिकात्रितयाभ्यासादज्ञानेक्षयमागते ॥ सम्यग्ज्ञानोदयेचित्तेपूर्णचंद्रोदयोपमे ॥ ५८ ॥ निर्विभागमनाद्यंतंयोगिनोयुक्तचेतसः ॥ समंसर्वंप्रपश्यंतिचतुर्थीभूमिकामिताः ॥ ५९ ॥ अद्वैतेस्थैर्यमायातेद्वैतेप्रशममागते ॥ पश्यंतिस्वप्नवल्लोकांश्चतुर्थीभूमिकामिताः ॥ ६० ॥

अर्थ—इस आर्य्यता (तृतीय अवस्था) दशामें मृतयोगी संकल्पसे धृतभोगोंको चिरकालतक भोगकर पुनः योगी होताहै ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! इन तीनों भूमिकाओंके अभ्याससे अज्ञानके नष्ट हो जानेसे, सम्यग्ज्ञानके उदय होनेपर, और पूर्णचंद्रोदयके सदृश चित्तके पूर्ण शांत होनेपर ॥ ५८ ॥ चतुर्थभूमिकामें प्राप्तयुक्त चित्त योगिजिन संपूर्णजगत्को विभागरहित अनादि अनंत आनंदस्वरूप देखतेहैं ॥ ५९ ॥ अद्वैत स्थिर होनेपर, तथा द्वैतके सर्वथा शांत होनेपर चतुर्थभूमिकामें प्राप्त योगीजन संसारको स्वप्नवत् देखतेहैं ॥ ६० ॥

भूमिकात्रितयंजाग्रच्चतुर्थीस्वप्नउच्यते ॥ विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयंप्रविलीयते ॥ ६१ ॥ सत्तावशेषएवास्तेपंचमींभूमिकांगताः ॥ पंचमींभूमिकामेत्यसुषुप्तपदनामिकाम् ॥ ६२ ॥ शांताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके ॥ गलितद्वैतनिर्भासमुदितोंतःप्रबुद्धवान् ॥ ६३ ॥ सुषुप्तघनएवास्तेपंचमींभूमिकामितः ॥ अंतर्मुखतयातिष्ठन्बहिर्वृत्तिपरोपिसन् ॥ ६४ ॥

अर्थ—तीनभूमिकाको जाग्रत् कहते हैं, चतुर्थको स्वप्न कहते है, और जहांपर शरत्कालके विच्छिन्न मेघके समान सब व्यापार लीन होजाते हैं ॥ ६१ ॥ ऐसे इस सुषुप्तनाम पंचमी भूमिका प्राप्त होकर योगी केवल चित्तकी सत्तामात्र शेष रहजाताहै ॥६२॥ द्वैतभावके गलित होनेसे अतिप्रसन्न तथा ज्ञानयुक्त योगी संपूर्ण विशेषोंके शांत होनेसे अद्वैत ब्रह्ममें सदा स्थित रहताहै ॥ ६३ ॥ इस पंचमीभूमिकामें प्राप्त योगी बाह्य व्यापार तत्परभी सुषुप्तघन (आनन्दघन) अंतर्मुखही रहताहै ॥ ६४ ॥

परिशांततयानित्यंनिद्रालुरिवलक्ष्यते ॥ कुर्वन्नभ्यासमेतस्यांभूमिकायांविवासनः ॥ ६५ ॥ षष्ठींतुर्याभिधामन्यांक्रमात्क्रामतिभूमिकाम् ॥ यत्रनासन्नसद्रूपोनाहंनाप्यनहंकृतिः ॥ ६६ ॥ केवलंक्षीणमननमास्तेद्वैतैक्यनिर्गतः ॥ निर्ग्रंथिःशांतसंदेहोजीवन्मुक्तोविभावनः ॥ ६७ ॥ अनिर्वाणोपिनिर्वाणश्चित्रदीपइवस्थितः ॥ अंतःशून्योबहिःशून्यःशून्यःकुंभइवांबरे ॥ ६८ ॥

अर्थ—इस अवस्थामें प्राप्त वासनारहित योगी अभ्यास करते हुये सर्वथा शांतिके कारण अन्य जनोंको निद्राग्रस्तके समान जानपडताहै ॥ ६५ ॥ इसीप्रकार क्रमसे तुर्य्यानाम छठीभूमिकामें योगी प्राप्त होताहै इस भूमिमें न सत् न असत्, न अहंकार और न उसके अभावहीका भान होताहै ॥ ६६ ॥ मनन तथा द्वैत अद्वैतके वितर्कसे रहित, ग्रन्थि तथा सब संदेहोंसे बर्जित, और भावनाओंसे शून्य केवल जीवन्मुक्तरूप स्थित रहताहै ॥ ६७ ॥ प्रारब्धसे शरीरधारीभी तथापि मुक्तरूप, चित्रगत दीपके तुल्य, जड जगत्के स्वभावसे बाहर भीतरसे शून्य, और आकाशमें शून्यघटके सदृश स्थित रहताहै ॥ ६८ ॥

अंतःपूर्णोबहिःपूर्णःपूर्णकुंभइवार्णवे ॥ किंचिदेवैषसंपन्नस्त्वथवैषनकिंचन ॥ ६९ ॥ षष्ठ्यांभूम्यामसौस्थित्वासप्तमींभूमिमाप्नुयात् ॥ विदेहमुक्ततातूक्तासप्तमीयोगभूमिका ॥ ७० ॥ अगम्यावचसांशांता

स्वासीमाभवभूमिषु ॥ कैश्चित्साशिवमित्युक्ताकैश्चिद्ब्रह्मेत्युदाहृता ॥ ७१ ॥ कैश्चित्प्रकृतिपुंभावविवेकइतिभाविता ॥ अन्यैरप्यन्यथानानाभेदैरात्मविकल्पितैः ॥ ७२ ॥

अर्थ—सर्वथा आनंदरूप होनेसे बाहर भीतरसे पूर्ण, आकाशस्थ पूर्ण घटके सदृश, अपूर्वरूप प्राप्तके समान, यथार्थमें किंचित्भी न प्राप्त करके अपने शुद्धरूपमें स्थित रहताहै॥ ६९ ॥ छठीभूमिकामें आकर योगी सातवीभूमिकामें प्राप्त होताहै और सातवी योगभूमिका विदेहमुक्तताको कहते हैं ॥ ७० ॥ हे रामजी ! संसारकी भूमियोंकी सीमा वह सातवींभूमि वाणियोंका विषय नहीं है, कोई तो उसको शिव कहते हैं, और कोई ब्रह्म कहते हैं ॥ ७१ ॥ कोई प्रकृति पुरुषके पार्थक्य ज्ञानरूप विवेक कहते हैं औरभी अन्य जनोंने निज कल्पित नानाभेदोंसे कोई स्वर्ग कोई वासुदेव तथा कोई महेश्वर आदि नामोंसे कहते हैं ॥ ७२ ॥

नित्यमव्यपदेश्यापिकथंचिदुपदिश्यते ॥ सप्तैताभूमिकाःप्रोक्तामयातवरघूद्वह ॥ ७३ ॥ आसामभ्यासयोगेननदुःखमनुभूयते ॥ अस्त्यत्यंतमदोन्मत्तामृदुमंथरचारिणी ॥ ७४ ॥ करिणीविग्रहव्यग्रामहादशनशंसिनी ॥ साचेन्निहन्यतेनूनमनंतानर्थकारिणी ॥ ७५ ॥ तदेतासुसमग्रासुभूमिकासुनरोजयी ॥ करिणीमदमत्तासायावन्नविजितौजसा ॥ ७६ ॥

अर्थ—यद्यपि वह सदा कथनके योग्य नहीं है तथापि किसीप्रकार उपदेश कियाजाताहै ये तुमको मैंने सात भूमिकायें कही ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! इनके अभ्याससे दुःखका अनुभव नहीं होता, परन्तु हे रामजी ! एक मंदगामिनी, मदोन्मत्त ॥ ७४ ॥ विग्रहमें तत्पर, महादांतोंसे चिंग्घार करनेवाली, और अनन्त अनर्थोंको करनेवाली एक हस्तिनी (हथिनी) है, यदि वह मारीजाय ॥ ७५ ॥ तब मनुष्य इन सब भूमिकाओंमें विजयी होताहै और जबतक वह मदोन्मत्त हंथिनी पराक्रमसे नहीं जीती जाती ॥ ७६ ॥

कोनामसुभटस्तावत्संपत्समरभूमिषु ॥ श्रीरामउवाच ॥ कासौप्रमत्ताकरिणीकाश्चतारणभूमयः॥७७॥ कथंनिहन्यतेचैषाक्चैषारमतेचिरम् ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामेच्छानामकरिणीइदंमेस्त्वितिरूपिणी ॥ ७८ ॥ शरीरकाननेमत्ताविविधोल्लासकारिणी ॥ मत्तेंद्रियोग्रकलभारसनाकलभाषिणी ॥७९॥ मनोगहनसंलीनाकर्मदंतद्वयान्विता ॥ मदोस्यावासनाव्यूहःसर्वतःप्रसरद्वपुः ॥ ८० ॥

अर्थ—तबतक कौन बीर संसारकी सम्पत्तिरूप समरभूमियोंमेंभी प्रवेश करनेमें समर्थ है श्रीरामजी बोले कि हे भगवन् ! कौन वह मत्त हथिनी है, और वे रणकी भूमि कौन हैं ॥ ७७ ॥ और कैसे यह मारी जाती है तथा कहां यह चिरकालतक रमण करती है. वसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! यह मुझे मिले ऐसी इच्छाही हंथिनी है ॥ ७८ ॥ और शरीररूप वनमें अनेकप्रकारका उल्लास वह करती है, मत्त उग्र इंद्रियरूपी उसके बच्चे हैं, और जिव्हासे वह मधुर भाषण करती है ॥ ७९ ॥ मनरूप भयंकर स्थानमें वह लीन रहती है, और शुभाशुभकर्मरूप दोनों दांतोंसे युक्त है और चारो ओर अपने देहको फैलाये हुये वासनाओंका समूहही इसका मद है ॥ ८० ॥

संसारदृष्टयोरामतस्याःसमरभूमयः ॥ भूयोयत्रानुभवतिनरोजयपराजयौ ॥ ८१ ॥ इच्छानागीनिहंत्येषाक्रूपणान्जीवसंचयान् ॥ वासनेहामनश्चित्तंसंकल्पोभावनंस्पृहा ॥ ८२ ॥ इत्यादिनिवहैर्नाम्नामस्यास्त्वाशयकोशगः ॥ धैर्यनाम्नावरास्त्रेणप्रस्तुतामवहेलया ॥ ८३ ॥ नागींसर्वात्मिकाकामेतामिच्छांसर्वात्मनाजयेत् ॥ यावद्वस्त्विदमित्येवमियमंतर्विजृंभते ॥ ८४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारकी दृष्टियां इसकी समरभूमि हैं, जहांपर कि मनुष्य पुनः २ जय और पराजयका अनुभव करताहै ॥ ८१ ॥ यह इच्छारूपी हंथिनी जीवसमूहोंको निरंतर मारती है, और वासना, चेष्टा, मन, चित्त संकल्प, भावना, तथा स्पृहा ॥ ८२ ॥ इत्यादि चित्तरूपी कोशमें रहनेवाले इसके नामके समूह हैं; सो धैर्य्यरूप उत्तम अस्त्रसे अनादरसे फैली हुई ॥ ८३ ॥ सर्वपदार्थसे इस इच्छाको सब प्रकारसे जीतना चाहिये, संसारके सब वस्तुरूपसे जबतक यह अन्तःकरणमें विकसित रहती है ॥ ८४ ॥

तावदुग्राकुसंसारमहाविषविषूचिका ॥ एतावानेवसंसारइदमस्त्वितियन्मनः ॥ ८५ ॥ अस्यतूपशमोमोक्षइत्येवंज्ञानसंग्रहः ॥ प्रसादकारिणीस्वच्छानिरिच्छेविमलाकृतौ ॥ ८६ ॥ तैलबिंदुरिवादर्शेविश्राम्यत्युपदेशवाक् ॥ असंवेदनमात्रेणनोदेतीच्छाभवांकुरः ॥ ८७ ॥ मनागभ्युदितैवेच्छाछेत्तव्यानर्थकारिणी ॥ असंवेदनशस्त्रेणविषस्येवांकुरावली ॥ ८८ ॥

अर्थ—तबतक महाभयंकर संसारकी विषरूप विषूचिका बनी रहती है, हे रामजी ! यह मुझे मिले, ऐसा जो मन है वही संसार है ॥ ८५ ॥ और इच्छासहित इस मनका शांत होनाही मोक्ष है, यही ज्ञानका संग्रह है. हे रामजी !

इच्छारहित निर्मल आकारयुक्त पुरुषमें ॥८६॥ आदर्शमें तैलबिंदुके समान उपदेशकी वाणी विश्राम करती (सफल होती) है, और विषयोंके स्मरण न करनेमात्रसे इच्छारूप संसारका अंकुर नहीं उदय होता ॥८७॥ किंचित्‌भी उदय होतेही इस अनर्थकारिणी इच्छाको विषयोंके विस्मरणरूप शस्त्रसे ऐसे छेदन करना चाहिये जैसे विषके अंकुरोंकी पंक्ति॥८८॥

इच्छाविच्छुरितोजीवोविजहातिनदीनताम् ॥ स्वसंवेदनयत्नस्तुतूष्णीमेवांतरासनम् ॥ ८९ ॥ अवधान विनिर्मुक्तंसुप्तंशवशतंयथा ॥ तांप्रत्याहारबडिशेनेच्छामत्सींनियच्छत ॥ ९० ॥ इदंमेस्त्वितिसंवेगमा हुःकल्पनमुत्तमाः ॥ अर्थस्याभावनंयत्तत्कल्पनात्यागउच्यते ॥ ९१ ॥ स्मरणंविद्धिसंकल्पंशिवमस्म रणंविदुः ॥ तत्रप्रागनुभूतंचनानुभूतंचभाव्यते ॥ ९२ ॥

अर्थ—इच्छासे व्याप्त जीव कभी दीनताको नहीं त्यागता और विषयोंकी इच्छाके विस्मरण (प्रत्याहार) रूप यत्नमें तत्पर प्राणी तो मौन होके आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ ८९ ॥ वह प्रत्याहार अभ्यास दशामें सावधानतासे होताहै. और परिपाक दशामें सुप्त वा मृतकके तुल्य स्वतः मनका निग्रहकारक होताहै, सो हे रामजी ! इस प्रत्याहाररूप वंशीसे इच्छारूप मत्सी (मछली) का निग्रह करो ॥ ९० ॥ यह मुझे मिले इस तीव्र इच्छाहीको विद्वान् कल्पना कहते है, और पदार्थोंके विस्मरणको कल्पनाका त्याग कहते हैं ॥ ९१ ॥ संकल्पकोही तुम स्मरण जानो, और विस्मरण शिवरूप है, संकल्पमें पूर्व अनुभूत तथा अननुभूत दोनोंकी भावना होतीहै ॥ ९२ ॥

अनुभूतांनानुभूतांस्मृतिंविस्मृत्यकाष्ठवत् ॥ सर्वमेवाशुविस्मृत्यगूढस्तिष्ठमहामतिः ॥ ९३ ॥ ऊर्ध्वबा हुर्विरौम्येषनचकश्चिच्छृणोतितत् ॥ असंकल्पःपरंश्रेयःसकिमंतर्नभाव्यते ॥ ९४ ॥ किलतूष्णींस्थि तेनैवतत्पदंप्राप्यतेपरम् ॥ परमंयत्रसाम्राज्यमपिरामतृणायते ॥ ९५ ॥ गम्यदेशैकनिष्ठस्ययथापांथस्य पादयोः ॥ स्पंदोविगतसंकल्पस्तथास्पंदःस्वकर्मसु ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अनुभूत वा अननुभूत दोनोप्रकारकी स्मृतिको शीघ्रही काष्ठके तुल्य विस्मरणकरके गूढ तथा महामति होके स्थित रहो ॥ ९३ ॥ यह मैं हाथ उठाके बार २ उच्च स्वरसे कहताहुं परंतु मेरी कोई सुनता नहीं कि असंकल्पही परम कल्याण कारक है, उसकी भावना तुम अंतःकरणमें क्यों नहीं करते ॥ ९४ ॥ हे रामजी ! सब इंद्रियोंके तथा मनके व्यापारसे रहित होके केवल मौन स्थित होनेपर वह परमपद प्राप्त होताहै, जहांपर ब्रह्माके सम्राज्यका सुखतृणके तुल्य भान होताहै ॥ ९५ ॥ जैसे अपने गृहकी ओर चलनेवाले पथिकके पाद निरंतर चलजाते हैं, ऐसेही संकल्परहितभी योगीकी प्रकृति अपने अनिषिद्ध कर्मोंमें होती है ॥ ९६ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनसंक्षेपादिदमुच्यते ॥ संकल्पनंपरोबंधस्तदभावोविमुक्तता ॥ ९७ ॥ सर्वमेवमजंशांत मनंतंध्रुवमव्ययम् ॥ पश्यन्भूतार्थचिद्रूपंशांतमास्वयथासुखम् ॥ ९८ ॥ अवेदनंविदुर्योगंशांतमासित मक्षयम् ॥ योगस्थःकुरुकर्माणिनिर्वासनोथमाकुरु ॥ ९९ ॥ अवेदनंविदुर्योगंचित्तक्षयमकृत्रिमम् ॥ अत्यंतंतन्मयोभूत्वातथातिष्ठयथासिभो ॥ १०० ॥ शिवंसर्वगतंशांतंबोधात्मकमजंशुभम् ॥ तदेकभा वनंरामसर्वत्यागइतिस्मृतः ॥ भावयञ्छश्वदंतःस्वंकार्यंकर्मसमाचार ॥१०१॥ अहंममेतिसंविदन्नदुःख तोविमुच्यते ॥ असंविदन्विमुच्यतेयदीप्सितंसमाचार ॥ १०२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थस्वरूपवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

अर्थ—अथवा हे रामजी ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन संक्षेपसे तुमको यह कहताहुं कि संकल्पही परम बंधन है, और उसका अभावही मोक्षहै ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! सब संसारको, अज, शांत, अनन्त, ध्रुव, अविनाशी, सत्य, तथा चिद्रूप देखतेहुये स्थित रहो ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! इस संसारको विस्मृत होके अक्षय शांतरूपसे स्थित होनेको योग कहते हैं, सो तुम वासनाको त्यागकर योगमें स्थित होकर यथाप्राप्त कर्मोंको करो ॥ ९९ ॥ इस संसारमें अहंममके अध्यासके विस्मरणकोही स्वाभाविक चित्तका क्षय, तथा जीव ब्रह्मका योग कहतेहैं, इसलिये तुम सर्वथा तन्मय होके जैसे हो वैसे स्थित रहो ॥१००॥ हे रामजी ! शिव, सर्वगत, शांत, बोधरूप, अजन्मा, और कल्याणरूप परमात्माके साथ एकत्वभावनाही सर्वत्याग कहागयाहै उस भावनाको निरंतर अपने अंतःकरणमें करतेहुये, अपने कर्तव्यकर्मोंको करो ॥ १०१ ॥ हे रामजी ! अहंमम (यह मैं, यह मेरा) इत्यादि भावनासे जीव दुःखसे नहीं छूटता, और इस भावनाके त्यागनेसे मुक्त होजाताहै, अब जो तुमारेको इष्ट हो सो करो ॥ १०२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे परमार्थस्वरूपवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

इस १२७ के सर्गमें रामचंद्रजीकी विश्रांति, उत्कंठायुक्त भरद्वाजजीका कथन, जाग्रद् आदिके लक्षण तथा तुरीयाऽवस्थाका वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीभरद्वाजउवाच ॥ इतिवरमुनिनोक्तंज्ञानसारंपुराणंसकलमनुनिशम्यश्रीरघूणांकुलाग्र्यः ॥ विमलमतिरपृच्छत्किंचिदन्यत्स्वयंवासमसुखपरिपूर्णःपूर्णबोधस्थितोसौ ॥ १ ॥ सखलुपरमयोगीविश्ववंद्यस्सुरेशोजननमरणहीनःशुद्धबोधस्वभावः ॥ सकलगुणनिधानंसन्निधानंरमायाखिजगदुदयरक्षानुग्रहाणामधीशः ॥ २ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इतिश्रुत्वावसिष्ठस्यवाक्यंवेदांतसंग्रहम् ॥ विदिताखिलविज्ञानोरामःकमललोचनः ॥ ३ ॥ शक्तिपातवशोन्मेषप्रकटामलचिद्घनः ॥ मुहूर्त्तमासीद्बुद्धश्चैतन्यानंदसागरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभरद्वाजजी वाल्मीकिजीसे बोले कि–हे भगवन्! रघुकुलतिलक तथा विमलमति रामचंद्रजी श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठजीसे कथित यह प्राचीन इतिहाससहित ज्ञानतत्वको सुनकर कुछ और पूंछा वा इतनेहीसे परमसुखसे पूर्णबोधमय होके स्थित रहे सो मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे भगवन्! रामचंद्रजी तो परमयोगी, संसारके वंदनीय, देवताओंके ईश, जन्ममरणसे रहित, शुद्ध बोधरूप, सकल गुणनिधान, लक्ष्मीके पति, और तीनोंलोकोंकी उत्पत्ति, रक्षा और अनुग्रहादिके स्वामीथे ॥ २ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–हे भरद्वाज इस वेदांतोंके संग्रहरूप वसिष्ठमुनिके वाक्यको सुनकर संपूर्ण ज्ञानके ज्ञाता कमलनेत्र रामजी! ॥ ३ ॥ चित्तकी वृत्तिमें अखंडाकार वाक्यजनित निरतिशय आनन्दके वशीभूत तथा विकसित नेत्रसे प्रकट आनंदके चिन्हयुक्त होके एक मुहूर्त्त तक अपने स्वरूपमें विकसित होगये ॥ ४ ॥

प्रश्नोत्तरविभागादिपरिपाटीविवर्जितः ॥ आनंदामृतपूर्णासुरोमकंटकितांगकः ॥ ५ ॥ महासामान्यरूपत्वाच्चिद्व्यापकतयास्थितः ॥ नित्यमष्टगुणैश्वर्यतृणप्रायमनोरथः ॥ ६ ॥ नकिंचिदूचेसंपन्नःशिवेपरिणतःपदे ॥ श्रीभरद्वाजउवाच ॥ अहोखलुममाश्चर्यरामःप्राप्तोमहत्पदम् ॥ ७ ॥ कथमेतादृशीप्राप्तिरस्माकंमुनिनायक ॥ मूर्खाःस्तब्धाश्चकिंचिज्ज्ञामादृशाःक्वचपापिनः ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रश्नोत्तरसे वर्जित, आत्मानंदरूप अमृतसे पूर्ण होनेसे पुलकित शरीर होगये ॥ ५ ॥ चित्रूपसे सर्वत्र व्यापक होनेसे महासामान्यरूपसे सर्वत्र स्थित, अष्टगुण ऐश्वर्य्योंसे युक्त होनेसे संपूर्ण मनोरथ तृणवत् तुच्छ उनको भान होतेथे ॥ ६ ॥ निरतिशय आनंदमय ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त रामचंद्रजी उससमय कुछ न बोलसके श्रीभरद्वाजजी बोले कि–हे भगवन् अहो! कैसा आश्चर्य्य है कि रामचन्द्रजी परममहत्पदको प्राप्त होगये ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! हमारी ऐसे पदकी प्राप्ति कैसे होसकती है, कहां तो हमारे समान मूर्ख स्तब्ध तथा पापी ॥ ८ ॥

क्वचब्रह्मादिभिःप्रार्थ्यादुर्लभारामसंस्थितिः ॥ अहोमुनीश्वरगुरोकथंविश्राम्यतेमया ॥ दुष्पारस्यभवांभोधेस्तीर्यतेतद्वदाशुमे ॥ ९ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ श्रीरामवृत्तांतमशेषमादितोवसिष्ठवाक्यानुगतंनिरूपितम् ॥ धियाविचार्यानुभवरामृशप्रभोमयापितादृक्कथनीयमत्रते ॥ १० ॥ अविद्यायाःप्रपंचोयंनास्तिसत्यमिहाण्वपि ॥ विवेचयंतिविबुधाविवदंत्यविवेकिनः ॥ ११ ॥ नास्तिभिन्नंचितःकिंचित्किंप्रपंचेनरुध्यसे ॥ अभ्यासेनरहस्यानांवयस्यविशदोभव ॥ १२ ॥

अर्थ—और कहां ब्रह्मादि देवोंसेभी प्रार्थनीय, तथा दुर्लभ रामजीकी स्थिति, और मुनीश्वर मुझे कैसे विश्राम मिले, और इस दुष्पार संसाररूप समुद्रके पार मैं कैसे होऊं, सो शीघ्र मुझे कहिये ॥ ९ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–हे शिष्य! वसिष्ठजीके वाक्यके अनुसार रामजीका संपूर्ण वृत्तान्त आदिसे मैंने तुमसे कहदिया, इसको बुद्धिसे विचारकर अपने अनुभवमें आरूढ करो, मैंभी जिसप्रकार तुमारे अनुभवमें आवै वैसाही तीनों अवस्थादिका कथन करूंगा ॥ १० ॥ यह संपूर्णजगत् अविद्याका प्रपंच हैं इसमें किंचित्भी सत्य नहीं है, इसका विवेचन पंडितलोग करते हैं और अज्ञानी इसमें विवाद करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रपंचमें चित्से भिन्न कुछ नहीं हैं इससे तुम क्यों रुकेहो, हे प्रिय! तुम प्रणव महावाक्यादि रहस्यके अभ्याससे शुद्धचित्त होजाओ ॥ १२ ॥

---

(१) इस सबके कहनेका भरद्वाजका यह आशयहै कि वे तो ईश्वरथे इसलिये उनके कल्पित अज्ञानकी शीघ्र शांति हुई परंतु मेरी अभी नहीं हुई ॥

प्रपंचविषयावृत्तिर्जाग्रन्निद्रेतिकीर्तिता ॥ संप्रबुद्धस्तुयस्यांतश्चित्प्रदीपोनिरंजनः ॥ १३ ॥ शून्यमूलःप्रपं चोयंशून्यताशिखरःसखे ॥ सारशून्यतयामध्येप्यनास्थासन्मनीषिणाम् ॥ १४ ॥ अनदिवासनादोषा दसन्नेवायमीक्ष्यते ॥ गंधर्वनगराकारःसंसारोबहुविभ्रमः ॥ १५ ॥ त्वमनभ्यस्यकल्याणींचैतन्यामृत कंदलीम् ॥ संमुह्यसिकिमध्यास्यवासनाविषवीरुधः ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रपंचविषयकी आवृत्ति जाग्रत्‌मेंही निद्रारूपसे कहीगई है इसके भीतर निरंजन चित्तरूप प्रदीप जागता है अर्थात् इसका साक्षी है ॥ १३ ॥ हे सखे ! इस प्रपंचके आदि अन्त तथा मध्यमें मिथ्या शून्य अज्ञानही कारणहै इसलिये सज्जनपंडितोंकी इसमें आस्था नहीं है ॥ १४ ॥ अनादि वासनाके दोषसे गन्धर्वनगराकार और अनेक भ्रमदायक असत् भी यह संसार सत्‌के समान देखपड़ताहै ॥ १५ ॥ सर्वथा कल्याणरूप चैतन्यामृतवल्लीका अभ्यास न करके वासनारूप विषवल्लीका आश्रय करके तुम क्यों मोहको प्राप्त होरहे हो ॥ १६ ॥

जाग्रदेतन्नपतितंज्ञानालंबग्रहादधः ॥ नसंत्युपरिसर्वेषांयेनिरालंबसंविदः ॥ १७ ॥ तावद्दृढासुधाकाररसासंविन्महानदी ॥ नयावदात्मरूपेणनिपुणैरवगाह्यते ॥ १८ ॥ प्राङ्नास्तिचरमेनास्तिवस्तुसर्वमिदं सखे ॥ विद्धिमध्येपितन्नास्तिस्वप्नवृत्तमिदंजगत् ॥ १९ ॥ अविद्यायोनयोभेदाःसर्वेमीबुद्बुदाइव ॥ क्षणमुद्भूयगच्छंतिज्ञानैकजलधौलयम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! निरालंब ज्ञानालंबके परिग्रहसे पूर्व अज्ञानावस्थाही यह जाग्रत् प्रपंच आके उपस्थित होताहै, और जो तुरीयावस्थामें प्राप्तहैं उनको ये जाग्रदादि तीनों अवस्था नहीं हैं ॥ १७ ॥ सुधाके समान रसमय प्रवाहवाली इस माया रचितनदीको जबतक बुद्धिमान्‌जन आत्मरूपसे नहीं देखते तभीतक इसमें जगत्‌रूपी तरंगोंका भान होताहै ॥ १८ ॥ हे सखे ! यह जगत्‌के पदार्थ आदि अन्तमें नहीं है तो मध्यमें भी नहीं है इसलिये इस प्रपंचको तुम स्वप्नकेही तुल्य जानो ॥ १९ ॥ अविद्यासे उत्पन्न होनेसे ये सब पदार्थोंके भेद बुद्बुदोंके समान ज्ञानरूपसमुद्रमें जाके लीन होजाताहै ॥ २० ॥

सुशीतलोदकनदींविदित्वाथविगाह्यताम् ॥ बहिर्भ्रांतिनिदाघास्तेनिर्यांतुकलितासुखम् ॥ २१ ॥ एकश्वा ज्ञानजलधिर्जगदाप्लाव्यतिष्ठति ॥ ज्येष्ठोयमहमित्यूर्मिरविद्यावातसंभवः ॥ २२ ॥ चित्तस्खलनभेदाली रागाद्याश्चप्रकल्पिताः ॥ ममतोत्कलितावर्तःस्वतःस्वैरंप्रवर्तते ॥ २३ ॥ रागद्वेषावतिग्राहौगृहीतसम नंतरः ॥ ततश्चानर्थपातालप्रवेशःकेनवार्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! सुन्दर शीतलजलवाली आत्मारूपनदीको जानकर उसमें स्नान करो तो क्लेशदायक बाह्य भ्रांतिरूप तुमारी उष्णता सब चली जायगी ॥ २१ ॥ अज्ञानरूप एक यह महा क्षारसमुद्र सम्पूर्ण अपने विकारोंमें व्याप्त होके स्थितहै, उसमें अविद्या (अनादिवासना) रूप वायुसे उत्पन्न अहंकाररूप प्रथम तरंगहै ॥ २२ ॥ और चित्तके अनेक विषयोंमें प्रवृत्तिके हेतु रागादि इस समुद्रमें क्षुद्र तरंगहै, और ममतारूप आवर्त (भवँरेह) सर्वत्र स्वयं प्रवृत्त होताहै ॥ २३ ॥ रागद्वेषरूपी महाबली इसमें ग्राहहैं वे जब तुमको पकडलेंगे तब अनर्थदायक पातालरूप मृत्युके मुखमें तुमारा प्रवेश कौन रोकसकताहै ॥ २४ ॥

प्रशांतामृतकल्लोलेकेवलामृतवारिधौ ॥ मज्जमज्जसिकिंद्वैतग्रहक्षाराब्धिवीचिषु ॥ २५ ॥ कस्तिष्ठतिगतः कोवाकस्यकेनकिमागतम् ॥ किंनुमज्जसिमायायांपतमात्वमतंद्रितः ॥ २६ ॥ तत्त्वमेकंयदात्मेतिजग देतत्प्रचक्षते ॥ ततोन्यःकस्तवातीतोयस्तातविषयःशुचाम् ॥ २७ ॥ बालान्प्रतिविवर्त्तोयंब्रह्मणस्सक लंजगत् ॥ अविवर्त्तितमानंदमास्थिताःकृतिनस्सदा ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि समुद्रमेंही डूबनेकी इच्छाहै तो शांत अमृतमय तरंगोंसे शोभित शुद्ध अद्वैत आत्मानन्दसमुद्रमें शीघ्र डूबो और द्वैतरूप क्षारसमुद्रकी तरंगोंमें क्यों गोते खातेहो ॥ २५ ॥ हे भरद्वाज ! जो तुम कहतेहो कि रामचन्द्रजीका संसार तो ज्ञानसे चलागया मेराहै, सो किसका कौन संसार गया, और कौन आया, तुम आलस्यरहित विवेकी होके मायामें क्यों डूबते हो ॥ २६ ॥ सब वेदांतके ग्रंथ एकमत होके जब यह कहते हैं कि यह जो कुछ जगत्‌है वह सब आत्माही है तब उससे अन्य क्या गया और शोचका विषय क्या है ॥२७॥ अविवेकी बालकोंकेलिये ब्रह्मकाही यह जगदाकार विवर्त है, और धर्मात्माज्ञानी तो सदा अपरिवर्तित आनन्दमें स्थितहै ॥ २८ ॥

अविविक्तोजनःशोचत्यकस्माच्चप्रहृष्यति ॥ तत्त्वविनुहसन्नास्तेतस्यमोहोविडंबनम् ॥ २९ ॥ तच्चसू क्ष्ममिदंतत्त्वंतिरोहितमविद्यया ॥ यथास्थलेषुलोकानांजलेष्वात्मसुसंशयः ॥ ३० ॥ पृथिव्यादिमहा

भूतपरमाणुमयंजगत् ॥ स्थितंयदातदापीहकोगतोयोनुशोच्यते ॥ ३१ ॥ असतस्संभवोनास्तिनास्त्य भावस्सतस्सखे ॥ आविर्भावतिरोभावासंस्थानानाममीपरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अविवेकी जनतो अकस्मात् शोचत तथा प्रसन्नभी होताहै, परन्तु तत्त्वज्ञानी हंसता रहताहै उसका शोचादि मोह तो किंचित् कालके लिये अज्ञानीका अनुकरणमात्र है ॥ २९ ॥ यह सूक्ष्म आत्मतत्व अविद्यासे ऐसे छिपा है (अनात्म मन आदिमें भ्रमसे भान होताहै) जैसे अज्ञानियोंके जलमें स्थलकी भ्रांति और मरूस्थलमें जलकी ॥ ३० ॥ पृथिव्यादि महाभूत परमाणुरूप यह जगत् स्थित है इस परमाणुवादीके मतमेंभी देहादिसे भिन्न आत्मा होनेसे देहादिके नाशसे क्या गया जिसका शोच कियाजाताहै ॥ ३१ ॥ हे सखे ! असत् पदार्थकी उत्पत्ति नहीं है और सत्का नाश नहीं है केवल ये सब पदार्थोंके रूपोंका आविर्भाव तथा तिरोभावमात्र होतारहताहै ॥ ३२ ॥

किंत्वनेकपुरोत्साहाद्विषतामुपगच्छति ॥ भजसंभरिताभोगंपरमेशंजगद्गुरुम् ॥ ३३ ॥ दुरितानिसमस्तानिपच्यंतेद्यापिनध्रुवम् ॥ कृतमेवास्यदेवस्यपाशाविश्रवतांगताः ॥ ३४ ॥ साकारंभजतावत्त्वंयावत्सत्त्वंप्रसीदति ॥ निराकारेपरेतत्त्वेततःस्थितिरकृत्रिमा ॥ ३५ ॥ इमामुद्दामतमसोजित्वासत्वबलाद्ध्रुवम् ॥ यमस्यानुसराध्वानंविश्वस्तेनांतरात्मना ॥ ३६ ॥

अर्थ—किंतु पूर्वसंचित अनेक पुण्यपापादिरूप हेतु विषके समान मरणादि अनेक अनर्थ मायासे देते हैं उनके नाशार्थ भक्तानुग्रहार्थ अर्धनारी रूपधारी श्रीशंकरजीकी जगद्गुरू सगुणब्रह्मकी उपासना करो ॥ ३३ ॥ हे भरद्वाज ! अभीतक तुमारे पुण्यपाप क्षीण नहीं हुये हैं, और प्राणियोंके किये शुभ अशुभ कर्महीं इस पशुपतिदेवके प्राणियोंके बंधनार्थ श्रुतिसिद्ध पाशरूपताको प्राप्त हुये हैं ॥३४॥ जबतक तुमारा चित्त शुद्ध न हो तबतक तुम साकार श्रीशंकरजीके रूपका ध्यान करो, क्योंकि उनके साकाररूपके भजन और ध्यानसे निराकार ब्रह्ममें तुमारी स्वाभाविक स्थिति होजायगी ॥ ३५ ॥ सगुण ईश्वरके उपासनासे शुद्ध सत्वके बलसे इस प्रचंड अज्ञानकी व्यामोह शक्तिको जीतकर गुरु और शास्त्रके उपदेशमें विश्वस्तमनसे इन्द्रियसहित मनके निग्रहरूप यमके मार्गका अनुसरण करो ॥ ३६ ॥

समाधायक्षणंपश्यप्रत्यगात्मानमात्मना ॥ इयंविभातुसाव्यक्तंप्राग्बुद्धिरजनीतव ॥ ३७ ॥ कृतंपुरुषकारेणकेवलेनचकर्मणा ॥ महेशानुग्रहादेवप्राप्तव्यंप्राप्यतेनरैः ॥ ३८ ॥ नाभिजात्यंनचारित्र्यंननयोनचविक्रमः ॥ बलवंतिपुराणानिसखेकर्माणिकेवलम् ॥ ३९ ॥ अप्रतर्क्यात्प्रतीकारात्किमेवमवसीदसि ॥ नलुंपतिललाटस्थामीश्वरोप्यक्षरावलीम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् क्षणभरके लिये मनको स्थिर करके साक्षीचेतनको देखो जिससे कि तमोगुणसे आच्छादित यह तुमारी रात्रिरूप बुद्धि प्रातःकाल (प्रकाश) रूपताको प्राप्त हो ॥ ३७ ॥ भक्तिरहित केवल पुरुषार्थ वा कर्मोंके अनुष्ठानसे कुछ नहीं होगा किन्तु केवल महादेवके अनुग्रहसेही मनुष्योंको प्राप्तव्य वांछित फल मिलताहै ॥ ३८ ॥ हे प्रिय भरद्वाज ! ईश्वरके अनुग्रह बिना कुलीनता, सदाचार, तप, पराक्रमादि कुछ नहीं करते, क्योंकि पूर्वोपार्जित कर्म अनन्त हैं उनके जीतनेके लिये तप सदाचारादिकी प्रबलता ईश्वरकी भक्तिकी सहायता बिना नहीं होसकती ॥ ३९ ॥ समूल अज्ञान नाशक ज्ञानके बिना केवल उपासनारूप पुरुषार्थके बलसे ईश्वरभी ललाट लिखित कर्मका नाश अपने हस्तसे नहीं करता इसलिये यमनियमादिद्वारा उपासनासे ज्ञानभी सम्पादन करना चाहिये॥४०॥

क्वचिद्वक्ताक्वैदग्ध्यंक्वचेयंमोहवल्लरी ॥ अचिंतनीयानियतिर्यदियंद्वंद्वमाहिता ॥ ४१ ॥ हेभरद्वाजमोहंत्वंविवेकेनजहिस्फुटम् ॥ असामान्यमिदानींत्वंज्ञानंप्राप्स्यस्यसंशयम् ॥ ४२ ॥ दूरमुत्सहतेराजामहासत्त्वोमहापदि ॥ अल्पसत्त्वोजनःशोचत्यल्पेपिहिपरिक्षते ॥ ४३ ॥ बोधःपुण्यपराधीनःप्रथतेबहुजन्मभिः ॥ अनुमीयेतधीरेषुजीवन्मुक्तेषुकार्यतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कहां तो मन तथा वाणीसे अगम्य चिद्ब्रह्मका वक्ता गुरू, कहां उसके जाननेकी शिष्यकी निपुणता, और कहां शमदमादि क्रमसे अपने विनाशके लिये परिणत यह मोहरूप लता, जिससे यह सब सामग्री मिलित हुई हैं, वह ईश्वरकी इच्छारूप नियति अति चिंतनीय है ॥ ४१ ॥ हे भरद्वाज ! तुम विवेकसे इस मोहको स्पष्टरूपसे नष्ट करो तो असाधारण ज्ञान तुमको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥ महान् आशय तथा धन सेनादि सामग्री संपन्न राजा महाविपत्ति पडनेपरभी अन्यके मनोरथोंसे दूर प्रजापालन तथा दुष्टोंके निग्रह करनेमें समर्थ होताहै, और अल्प सामग्रीयुक्त राजा शोकको प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ केवल ईश्वरकी उपासनादिके आधीन आत्माका बोध अनेक जन्मोंमें प्रकट होताहै, पुण्यवान् धीर पुरुषोंमें भविष्यत्कालमें उस बोधका अनुमान होताहै, और जीवन्मुक्तोंमें उनके कार्य्योंसे उसका अनुमान होताहै ॥ ४४ ॥

द्विषद्भूतेनयेनैवकर्मणाबंधईदृशः ॥ सुहृद्भूतेनतेनैवमोक्षमाप्स्यसिपुत्रक ॥ ४५ ॥ सतांसत्कर्मसंवेगः पुराणंप्रणुदत्त्रयम् ॥ वर्षौघइवभूतानांदवानलमसेचयत् ॥ ४६ ॥ सखेसंन्यस्यकर्माणिब्रह्मणःप्रणयी भव ॥ नेष्यसेयदिसंसारचक्रावर्त्तभ्रमःशमम् ॥ ४७ ॥ तावदेतद्विकल्पोत्थमिदंयाबद्बहिर्ग्रहः ॥ प्रति कूलोब्धिरुल्लोलेकेवलंनिश्चलेजले ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! विषयोंमें राग रहनेसे शत्रुरूप पुण्य कर्मोंसे बंधन होताहै, और राग न रहनेसे मित्रभूत पुण्य कर्मोंसे मोक्ष पावोगे ॥ ४५ ॥ रागरहित सज्जनोंका सत्कर्म पूर्वसंचित पातकादिको नष्ट करता हुआ प्राणी-योंके त्रिविध तापोंको ऐसे शांत करताहै जैसे वर्षाका समूह दावानलको ॥ ४६ ॥ हे प्रिय भरद्वाज ! यदि संसारचक्ररूपी आवर्तके भ्रममें कल्याण इष्ट नहीं तो अन्य सब कर्मोंको त्यागकर ब्रह्ममें आसक्त होजाओ ॥ ४७ ॥ जबतक बाह्य विषयोंमें चित्त चंचलहै तभीतक यह विकल्पजाल ऐसे है जैसे जबतक समुद्र संक्षुब्ध है तभीतक चंचलताहै और निश्चल जलमें शांत रहताहै ॥ ४८ ॥

अयंकिमंधकरणस्त्वयाशोकोवलंब्यते ॥ निर्वाहयतुसैवत्वांप्रज्ञायष्टिरभंगुरा ॥ ४९ ॥ नजातुतेविगण्यं तेगणनासुगरीयसाम् ॥ येतरंगैस्तृणानीवह्रियंतेहर्षशोकयोः ॥ ५० ॥ समारूढंदशादोलामहोरात्रमि दंजगत् ॥ क्रीड्यतेषड्भिः प्रैंखैःसखेकिमितिखिद्यते ॥ ५१ ॥ सूतेसंहरतिक्षिप्रंपुनःसृजतिहंतिच ॥ ज गंतिबहुपर्यायैःकालएवकुतूहली ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस विवेक दृष्टिके आच्छादक शोकका अवलंबन तुम क्यों करते हो, इस शोकांध दशामें अकुंठित बुद्धिरूप यष्टि (छडी) तुमारा निर्वाह करै ॥ ४९ ॥ जो लोग हर्ष शोककी शुभअशुभ तरंगोंके कारण तृणके समान इस संसारमें वहते हैं वे लोग बडे महात्माओंकी गणनामें कभी नहीं गिने जाते ॥ ५० ॥ हे सखे ! यह सम्पूर्ण सं-सार हर्षशोकादि दशारूप दोला (झूला) पर आरूढहै इसके साथ काल छः ऋतु वा कामक्रोध लोभमोहादिरूप छः यंत्रोंसे क्रीडा करताहै इसमें तुम क्यों खिन्न होतेहो ॥ ५१ ॥ यह क्रीडा कौतुकी काल अनेकरूपसे अनेक सं-सारोंको उत्पन्न पालन और संहार करताहुआ क्रीडा करताहै ॥ ५२ ॥

नविशेषग्रहःकश्चिन्नचकश्चिन्नकश्चन ॥ जंतुष्वभ्यवहार्येषुप्राक्रम्यकालभोगिनः ॥ ५३ ॥ काकथामर्त्य पिंडानांनिमेषांतरवासिनाम् ॥ अपिदेवनिकायायेतेपिदुष्कालगोचराः ॥ ५४ ॥ स्वयंनृत्यसिकिंप्रीतो विपत्तौविकलेंद्रियः ॥ क्षणंनिश्चलमासीनःपश्यसंसारनाटकम् ॥ ५५ ॥ अस्यानेकतरंगस्यजगतःक्ष णभंगिन' ॥ नविषीदतिमनस्वीभरद्वाजमनागपि ॥ ५६ ॥

अर्थ—आक्रमण करके भोगी कालके भक्ष्य जीवोंमें न कोई विशेष दृष्टिहै न कोई विषयहै और न विशेष धर्मी है, किन्तु सबको समानरूप वह भक्षण करताहै ॥ ५३ ॥ अल्पकालस्थायी मनुष्य शरीरोंकी क्या कथाहै, दीर्घकालस्थायी देवताओंके शरीरभी इस दुष्टकालके अन्नहैं ॥ ५४ ॥ धनादिके नाशमें स्वयं व्याकुल इंद्रिय होके इसमें तुम नाचते हो, तुम तो क्षणभर शांत साक्षीरूपसे स्थित होके इस संसार नाटकको देखो ॥ ५५ ॥ हे भरद्वाज ! क्षणभंगी अनेक तरंगयुक्त इस संसारके लिये विवेकी जीव किंचित् भी शोक नहीं करताहै ॥ ५६ ॥

त्यजशोकममंगल्यंमंगलानिविचिंतय ॥ चिदानंदघनंस्वच्छमात्मानंचविभावय ॥ ५७ ॥ देवद्विजगुरु श्रद्धाभरबंधुरचेतसाम् ॥ सदागमप्रमाणानांमहेशानुग्रहोभवेत् ॥ ५८ ॥ भरद्वाजउवाच ॥ ज्ञातंतव प्रसादेनसर्वमेतदशेषतः ॥ नवैराग्यात्परोबंधुर्नसंसारात्परोरिपुः ॥ ५९ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिवसि ष्ठनापेपोदितम् ॥ ज्ञानसारमशेषेणग्रंथेनोक्तंपदात्मना ॥ ६० ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! अमंगलके योग्य शोकको तुम त्यागो, आत्मदर्शनके साधन मंगलोंका चिंतन करो, और चिदानन्द, घन तथा स्वच्छ आत्मस्वरूपको विचारो ॥ ५७ ॥ देव, ब्राह्मण, और गुरुओंमें श्रद्धारूप मंगलसे जिनका चित्त पूर्ण है तथा जो सदा आगम प्रमाण मानते हैं उनको महेशका अनुग्रहरूप परममंगल शीघ्र होताहै॥५८॥ भरद्वाजजी बोले–कि हे भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने यह सब ज्ञान लिया कि वैराग्यसे बढके कोई बन्धु नहीं है और संसारसे बढके कोई शत्रु नहीं है ॥ ५९ ॥ हे गुरो ! अब मैं वसिष्ठजीने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थमें जो कुछ कहाहै उस ज्ञानसार जानना चाहताहुं ॥ ६० ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ भरद्वाजशृणुष्वेदंमहाज्ञानंविमुक्तिदम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणभवाब्धौननिमज्जसि ॥ ६१ ॥ संहृतिस्थितिसंभूतिभेदैर्योनेकधास्थितः ॥ एकोपिसन्नमस्तस्मैसच्चिदानंदमूर्तये ॥ ६२ ॥ कृ तेप्रपंचविलयेयथातत्त्वंप्रकाशते ॥ तवोपायंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपाच्छ्रुतिशासनात् ॥ ६३ ॥ पूर्वापरविचारा

र्हाकथंनष्टातवस्मृतिः ॥ तयैवज्ञायतेसर्वंकरामलकवत्स्वयम् ॥ ६४ ॥ (स्वयंविचार्यस्वयमेवचेतसा तत्प्राप्यतेयेननशोचतेपुनः ॥ सत्संगसच्छास्त्रविवेकतःपुनर्वैराग्ययुक्तेनविभाव्यमेतत्) ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे भरद्वाजानुशासनं नाम सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि हे भरद्वाज ! इस मुक्तिदायक ज्ञानको तुम सुनो, जिसके श्रवणमात्रसे तुम संसारसमुद्रमें पुनः नहीं डूबोगे ॥ ६१ ॥ जो परमात्मा एक होके भी संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और पालनके भेदोंसे अनेकरूप होके स्थितहै उस सच्चिदानन्द मूर्तिको नमस्कारहै ॥६२ ॥ इस संसारका इसके कारणमें लय करनेसे आत्मतत्त्व जिससे प्रकाशताहै वह उपाय श्रुतिप्रमाणसे मैं तुमको संक्षेपसे कहताहूं ॥ ६३ ॥ हे भरद्वाज ! पूर्वापर विचारके योग्य तुमारी प्रसिद्ध स्मृति कैसे नष्ट होगई, उसी स्मृतिसे सब कुछ हस्तामलकवत् भान होसकताहै ॥६४॥ हे भरद्वाज ! अपने जित्तसे स्वयं विचार करनेसे वह वस्तु प्राप्त होती है जिससे कि पुनः यह जीव शोच नहीं करता, और वैराग्ययुक्त प्राणी सत्संग, सत्शास्त्र, और विवेकसे उस आत्मवस्तुका विचार करसकताहै ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे भरद्वाजानुशासनं नाम सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२८॥

इस १२८ के सर्गमें प्रविलापनक्रमसे भरद्वाजकी तृप्तार्थता और ज्ञानियोंके कर्तव्यसे रामचन्द्रजीके व्युत्थापनके क्रमसे वर्णन किये गये हैं ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ शांतोदांतश्चोपरतोनिषिद्धात्काम्यकर्मणः ॥ विषयेंद्रियसंश्लेषसुखाच्चश्रद्धयान्वितः ॥ १ ॥ मृद्वासनेसमासीनोजितचित्तेंद्रियक्रियः ॥ ओमित्युच्चारयेत्तावन्मनोयावत्प्रसीदति॥२॥ प्राणायामंततःकुर्यादंतःकरणशुद्धये ॥ इंद्रियाण्याहरेत्पश्चाद्विषयेभ्यःशनैःशनैः ॥ ३ ॥ देहेंद्रियमनोबुद्धिक्षेत्रज्ञानांचसंभवः ॥ यस्माद्भवतितज्ज्ञात्वातेषुपश्चाद्विलापयेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे भरद्वाज ! शांत, दांत, तथा निषिद्ध, और काम्यकर्मोंसे, और विषयोंके सम्बन्धसे इन्द्रियजनित सुखसे विरक्त, और श्रद्धायुक्त, ॥ १ ॥ और कोमल आसनपर बैठकर और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको जीतकर, जबतक मन न प्रसन्नहो तबतक ओंकारशब्दका उच्चारण करे ॥ २ ॥ इसके पश्चात् अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये प्राणायाम करे, और पश्चात् धीरे २ इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाले ॥ ३ ॥ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा क्षेत्र जिस (आत्मा) से उत्पत्ति है उसको जानके पश्चात् उसीमें सबका लय करे ॥ ४ ॥

विराजिप्रथमंस्थित्वातत्रात्मनिततःपरम् ॥ अव्याकृतेस्थितःपश्चात्स्थितःपरमकारणे ॥ ५ ॥ मांसादि पार्थिवंभागंपृथिव्यांप्रविलापयेत् ॥ आप्यंरक्तादिकंचाप्सुतैजसंतेजसिक्षिपेत् ॥ ६ ॥ वायव्यंचमहावायौनाभसंनभसिक्षिपेत् ॥ पृथिव्यादिषुविन्यस्यचद्रियाण्यात्मयोनिषु ॥ ७ ॥ श्रोत्रादिलक्षणोपेतांकर्तुं भोगप्रसिद्धये ॥ दिक्षुन्यस्यात्मनःश्रोत्रंत्वचंविद्युतिनिक्षिपेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रथम आकारवाच्य विराट्में अहंभावना करे, इसके अनंतर उकारवाच्य भूत सूक्ष्मके समष्टिरूप हिरण्यगर्भमें विराट्का लय करके उसमें अहंभावना करके पश्चात् मकारवाच्य अव्याकृतमें हिरण्यगर्भकाभी लय करके उसमें अहंभावना करके स्थित रहै, इसके पश्चात् अव्याकृतकोभी अर्द्धमात्रावाच्य परमकारण शुद्धब्रह्ममें लय करके उसमें स्थित रहै ॥ ५ ॥ उसका क्रम यह है देहके मासादि पार्थिवभ गको पृथिवीतन्मात्रामें लय करै जलके विकार रक्तादिको जलतन्मात्रामें, तैजसभागको तेजतन्मात्रामें लय करै ॥ ६ ॥ वायुके भागको वायुतन्मात्रामें और शरीरस्थ आकाशके भागको आकाशतन्मात्रामें लय करै, इसीप्रकार प्राण आदि इन्द्रियोंको उनके कारण पृथिवी आदिके उपहित देवताओंमें लीन करै ॥ ७ ॥ जीवात्माके भोगकी प्रसिद्धिके लिये श्रोत्र आदि इंद्रियरूपधारी देवताओंको क्रमसे उन देवताओंमेंही लय करै, जैसे अपने श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रियको दिशाओंमें लय करै, त्वक्इंद्रियके विद्युतमें लय करै ॥ ८ ॥

चक्षुरादित्यबिंबेचजिह्वामप्सुविनिक्षिपेत् ॥ प्राणंवायौवाचमग्नौपाणिमिंद्रेविनिक्षिपेत् ॥ ९ ॥ विष्णौतथात्मनःपादौपायुंमित्रेतथैवच ॥ उपस्थंकश्यपेन्यस्यमनश्चंद्रेनिवेशयेत् ॥ १० ॥ बुद्धिंब्रह्मणिसंयच्छे

देताःकरणदेवताः ॥ इंद्रियव्यपदेशेनव्यादिश्यंतेचदेवताः ॥ ११ ॥ श्रुतिवाक्यमनुस्मृत्यनस्वतःप्रक टीकृताः ॥ एवंन्यस्यात्मनोदेहंविराडस्मीतिचिंतयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—नेत्रइंद्रियको सूर्य्यमंडलमें लय करै, रसना इन्द्रियको जलके देवता वरुणमें लय करै, प्राणको वायुमें वाणीको अग्निमें, और हस्तइंद्रियको इन्द्रमें लय करै ॥ ९ ॥ और अपने पादइन्द्रियको विष्णुमें, गुदाइन्द्रियको मित्रमें, उपस्थको कश्यपमें, और मनको चंद्रमामें लीन करै ॥ १० ॥ इसीप्रकार बुद्धिको हिरण्यगर्भमें लीन करै हे भरद्वाज ! इन्द्रियोंके मिषसे ये सब इन्द्रियरूप देवताही ॥ ११ ॥ मैंने श्रुतिके वाक्यको स्मरण करके तुमसे कहाहै इसप्रकार अपने देहको उसके कारणमें लीन करके मैं विराट् हूं ऐसा चिंतन करै ॥ १२ ॥

ब्रह्मांडांतःस्थितोयोसावर्धनारीश्वरःप्रभुः ॥ आधारःसर्वभूतानांकारणंतदुदाहृतम् ॥ १३ ॥ सयज्ञस्त्विरूपोसौजगद्वृत्तौव्यवस्थितः ॥ द्विगुणांडाद्बहिःपृथ्वीपृथिव्याद्विगुणंजलम् ॥ १४ ॥ सलिलाद्विगुणं तेजस्तेजसोद्विगुणोनिलः ॥ वायोर्द्विगुणमाकाशमूर्ध्वमेकैकशःक्रमात् ॥ १५ ॥ व्यस्तेनचसमस्तेनव्यापिनाग्रथितंजगत् ॥ क्षितिंचाप्सुसमावेश्यसलिलंचानलेक्षिपेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो कि अर्द्धांगनारी रूपधारी ब्रह्मांडके भीतर प्रभु स्थित है वही सब भूतोंका आधार और कारण गयाहै ॥ १३ ॥ वह यज्ञ तथा सृष्टिरूपसे जगत्के व्यवहारमें स्थितहै, इस ब्रह्मांडके घेरे हुये इससे द्विगुण पृथिवी है और पृथिवीसे द्विगुण जलहै ॥ १४ ॥ जलसे द्विगुण तेज है, तेजसे द्विगुण वायुहै और वायुसे द्विगुण आकाशहै इसप्रकार उत्तरोत्तर क्रमसे एक दूसरेसे द्विगुणहै ॥ १५ ॥ हे भरद्वाज ! पंचीकृत तथा अपंचीकृत इन भूतोंसे यह संसार व्याप्तहै, इसलिये पृथिवीको उसके कारण जलमें लय करै और जलको तेजमें ॥ १६ ॥

अग्निवायौसमावेश्यवायुंचनभसिक्षिपेत् ॥ नभश्चमहदाकाशेसमस्तोत्पत्तिकारणे ॥ १७ ॥ स्थित्वातस्मिन्क्षणंयोगीलिंगमात्रशरीरधृक् ॥ वासनाभूतसूक्ष्माश्चकर्माविद्येतथैवच ॥ १८ ॥ दशेंद्रियमनोबुद्धिरेतल्लिंगंविदुर्बुधाः ॥ ततोधौंडाद्बहिर्यातस्तत्रात्मास्मीतिचिंतयेत् ॥ १९ ॥ चतुर्मुखोग्रकेचायंभूतसूक्ष्मव्यवस्थितः ॥ लिंगमव्याकृतेसूक्ष्मेन्यस्याव्यक्तेचबुद्धिमान् ॥ २० ॥

अर्थ—और अग्निको वायुमें, और वायुको आकाशमें, और आकाशकोभी सबके उत्पत्तिके कारण हिरण्यगर्भाकाशमें लिन करै ॥ १७ ॥ उस हिरण्यगर्भाकाशमें, लिंगशरीरधारी योगी क्षणभर स्थित रहै और बासना, सूक्ष्मभूत, कर्म, अविद्या, दश इंद्रिय तथा मन और बुद्धि इनको पंडितजन लिंगशरीर कहते हैं ॥ १८ ॥ इसप्रकार स्थूल उपाधिके विलयसे अर्द्धरूपके सदृश होके ब्रह्मांडके अभिमानसे बाह्य होके सूक्ष्मभूत लिंग समष्टिके अधिष्ठानरूप हिरण्यगर्भ आत्मभावना करै ॥ १९ ॥ यही समष्टिभूत सूक्ष्मका अभिमानी प्रथम चतुर्मुखरूपसे व्यवस्थित हुआ, और इसप्रकार लिंगशरीरकोभी उससे सूक्ष्म तथा उसके कारण अव्याकृतमें बुद्धिमान् पुरुष लीन करै ॥ २० ॥

नामरूपविनिर्मुक्तंयस्मिन्संतिष्ठतेजगत् ॥ तामाहुःप्रकृतिंकेचिन्मायामेकेपरेत्वणून् ॥ २१ ॥ अविद्यामपरेप्राहुस्तर्कविभ्रांतचेतसः ॥ तत्रसर्वंलयंगत्वातिष्ठंत्यव्यक्तरूपिणः ॥ २२ ॥ निःसंबंधानिरास्वादाःसंभवंतिततःपुनः ॥ तत्स्वरूपाहितिष्ठंतियावत्सृष्टिःप्रवर्तते ॥ २३ ॥ आनुलोम्यात्स्मृतासृष्टिः प्रातिलोम्येनसंहृतिः ॥ अतःस्थानत्रयंत्यक्त्वातुरीयंपदमव्ययम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् रहताहै वह अव्याकृत वा अव्यक्तनामरूपसे विनिर्मुक्त है, उसीको कोई प्रकृति, कोई माया, और कोई परमाणुभी कहते हैं ॥ २१ ॥ और कोई (बौद्ध) तर्कसे भ्रान्तचित्त संवृत्तिरूप अविद्या कहते हैं, प्रलयमें लीन होके उसीमें सब अव्यक्तरूपसे रहते हैं इसलिये उसको अव्यक्त कहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक सृष्टि नहीं होती तबतक उसी अव्यक्तमें सब भूत परस्परके सम्बन्धसे शून्य तथा चित्के भोगरूप आस्वादरहित स्थित रहते हैं और पुनः उसी अव्याकृत प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ अनुलोमक्रमसे सृष्टि होती है और प्रतिलोमक्रमसे उसीमें सबका लय होताहै, इसलिये तीनों स्थान अर्थात् विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत; वा स्थूल, सूक्ष्म कारण अथवा जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिको त्यागकर अविनाशी तुरीयपदका ॥ २४ ॥

ध्यायेत्तत्प्राप्तयेलिंगंप्रविलाप्यपरंविशेत् ॥ भूतेंद्रियमनोबुद्धिवासनाकर्मवायवः ॥ २५ ॥ अज्ञानंचप्रतिष्ठाःस्युर्लिंगमव्याकृतेसति ॥ भरद्वाजउवाच ॥ इदानींलिंगनिगडान्मुक्तोहंसर्वथायतः ॥ २६ ॥ चिदंशत्वात्प्रविष्टोहंचैतन्यानंदसागरे ॥ अभेदात्परमात्मास्मिसर्वोपाधिविवर्जितः ॥ २७ ॥ कूटस्थःकेवलोव्यापीचिदचिच्छक्तिमानहम् ॥ घटाभावेघटाकाशकलशाकाशयोर्यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—ध्यान करै, और लिंगकारणकोभी शुद्धमें लय करके उसी परब्रह्ममें प्रवेश करै, और सब भूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वासना, और प्राणवायु ॥ २५ ॥ इन सबकी प्रतिष्ठा अज्ञानही है क्योंकि शुद्ध ब्रह्मके अज्ञानरूप आवरणके रहनेहीसे अव्याकृत होनेसे सूक्ष्मभूत लिंग उत्पन्न होताहै, इसलिये उसी शुद्धको जानना चाहिये, भरद्वाज बोले कि–हे भगवन् ! अब मैं इस लिंगरूप बेडीसे मुक्त हुआ ॥ २६ ॥ क्योंकि मैं चिदंश होनेसे चिद्रूप सागरमें प्रविष्ट हुआ और उसके साथ अभेद होनेसे मैं सब उपाधिसे वर्जित परमात्मरूपही हूं ॥ २७ ॥ जैसे घटके नष्ट होनेपर घटाकाश वा कलशाकाश दोनोंही महदाकाशरूप होजातेहैं ऐसेही उपाधिके लयसे मैं सर्वव्यापक, चित् अचित् शक्तियुक्त केवल कूटस्थरूप इस समयहूं ॥ २८ ॥

तमाहुःश्रुतयोबह्व्यएवमैक्यमादरात् ॥ यथाग्निरग्नौसंक्षिप्तःसमानत्वमनुव्रजेत् ॥ २९ ॥ तदाख्यस्तन्मयोभूत्वागृह्यतेनविशेषतः ॥ यथातृणादिकंक्षिप्तंरुमायांलवणंभवेत् ॥ ३० ॥ अचेतनंजगत्न्यस्तंचैतन्येचेतनीभवेत् ॥ यथावैलवणग्रंथिःसमुद्रेसैंधवोयथा ॥ ३१ ॥ नामरूपाद्विनिर्मुक्तःप्रविश्यैतिसमुद्रताम् ॥ यथाजलेजलंन्यस्तंक्षीरेक्षीरंघृतेघृतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—एकताके आदरसे उसी कूटस्थ आत्माको अनेक श्रुतियां कहती हैं, अग्निमें फेंकाहुआ उसकी समानताको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ और तन्मय होनेसे उसी (अग्नि) के नामसे वह कहाजाताहै, कुछ विशेषरूपसे उसका ग्रहण नहीं होता, और जैसे लवणके समुद्रमें फेंकेहुये तृण काष्ठादिभी लवणरूपही होजाताहै; ऐसेही अचेतन जगत्भी चेतनमें लय कियाहुआ चेतनही होजाताहै, अथवा जैसे लवणको ढोंका लवण समुद्रमें फेंकाहुआ समुद्ररूप होजाताहै, अथवा सैंधव समुद्रमें ॥३०॥३१॥ प्रवेश करके अपने नामरूपसे विनिर्मुक्त होके समुद्ररूप होजाताहै और जैसे जलमें प्रक्षिप्त जल जलरूप, दुग्धमें फेंका हुआ दुग्ध दुग्धरूप, और घृतमें घृत घृतरूप होजाताहै ॥३२॥

अविनष्टाभवंत्येतेगृह्यंतेनविशेषतः ॥ तथाहंसर्वभावेनप्रविष्टश्चेतनेसति ॥ ३३ ॥ नित्यानंदेसमस्तज्ञेपरेपरमकारणे ॥ नित्यंसर्वगतंशांतंनिरवद्यंनिरंजनम् ॥३४॥ निष्कलंनिष्क्रियंशुद्धंतद्ब्रह्मास्मिपरंपरम् ॥ हेयोपादेयनिर्मुक्तंसत्यरूपंनिरिंद्रियम् ॥ ३५ ॥ केवलंसत्यसंकल्पंशुद्धंब्रह्मास्म्यहंपरम् ॥ पुण्यपापविनिर्मुक्तंकारणंजगतःपरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे ये सब जलादि नष्ट होके तद्रूप होजाते हैं और विशेष रूपसे गृहीत नहीं होते, इसीप्रकार मैं सर्वथा सत्स्वरूप चेतनमें प्रविष्टहूं ॥ ३३ ॥ नित्य आनंदरूप, सर्वसाक्षी, परम कारण ब्रह्ममें मैंभी नित्य, सर्वगत, शांत, सर्वथा निंदादि दोषरहित निरंजन ब्रह्मरूपही हूं ॥ ३४ ॥ निष्कल, निष्क्रिय, हेय उपादेयसे शून्य, इन्द्रियरहित, सत्यरूप, और शुद्ध ब्रह्म मैंही हूं ॥ ३५ ॥ सत्य संकल्प, पुण्य पापसे वर्जित, और जगत्का परम कारण, केवल शुद्ध ब्रह्म मैं हूं ॥ ३६ ॥

अद्वितीयंपरंज्योतिर्ब्रह्मास्म्यानंदमव्ययम् ॥ एवमादिगुणैर्युक्तंसत्वादिगुणवर्जितम् ॥ ३७ ॥ प्रविष्टंसकलंब्रह्मसदाध्यायेत्स्वकर्मकृत् ॥ एवमभ्यसतःपुंसोमनोऽस्तंयातितत्रवै ॥ ३८ ॥ मनस्यस्तंगतेतस्यस्वयमात्माप्रकाशते ॥ प्रकाशेसर्वदुःखानांहानिःस्यात्सुखमात्मनि ॥ ३९ ॥ स्वयमेवात्मनात्मानमानंदंप्रतिपद्यते ॥ नमत्तोस्त्यपरःकश्चिच्चिदानंदमयःप्रभुः ॥ ४० ॥

अर्थ—अद्वितीय, अविनाशी, प्रकाश तथा आनंदरूप ब्रह्म मैं हूं, पूर्वोक्त सत्य संकलपादि गुणोंसे युक्त, और मायिक सत्वादि गुणोंसे वर्जित ॥ ३७ ॥ सर्वरूप सर्वव्यापक ब्रह्मको अपने वर्णाश्रम धर्मका तथा गुरुआदि शुश्रूषा करनेवाला साधक ध्यान करै, ऐसा आपने मुझे साधन अवस्थामें कहा था इसप्रकार ब्रह्मको अभ्यास करनेवाले पुरुषका मन उसी ब्रह्ममें अस्त होजाताहै ॥ ३८ ॥ और मनके अस्त होनेपर आत्मा स्वयं प्रकाशताहै, और प्रकाश होनेपर आत्मामें सब दुःखोंका नाश होजाताहै ॥ ३९ ॥ और उससमय स्वयं आत्मा अपने आनंदरूपको प्राप्त होताहै, हे गुरो ! मुझे अन्य कोई सच्चिदानंद प्रभु नहीं है ॥ ४० ॥

अहमेकःपरंब्रह्मइत्यात्मांतःप्रकाशते ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ सखेसंन्यस्यकर्माणिब्रह्मणःप्रणयीभव ॥ ४१ ॥ नेष्यसेयदिसंसारचक्रावर्त्तभ्रमःशमम् ॥ भरद्वाजउवाच ॥ त्वयोक्तंसर्वमेवेदंज्ञानंबुद्धंमयागुरो ॥ ४२ ॥ बुद्धिश्चनिर्मलाजातासंसारोनविलंबते ॥ इदानींज्ञातुमिच्छामिज्ञानिनःकर्मकीदृशम् ॥ ४३ ॥ प्रवृत्तंवानिवृत्तंवाकर्त्तव्यंचनवाप्रभो ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥तस्माद्यत्नकृतेदोषस्तत्कर्तव्यंमुमुक्षुभिः ४४

अर्थ—मैं एक परब्रह्महूं ऐसा आत्मा भीतरसे प्रकाशताहै. श्रीवाल्मीकि मुनि बोले कि–हे सखे ! सर्व कर्मोंको त्यागकर केवल ब्रह्ममें प्रवेश होनेका उद्योग करो ॥ ४१ ॥ यदि इस संसाररूप चक्रावर्तमेंही सुख नहीं मानते हो,

भरद्वाज बोले कि–हे गुरो ! आपने जो ज्ञान कहा वह सब मैंने जानलिया ॥ ४२ ॥ आपकी कृपासे मेरी बुद्धि निर्मल होगई है और संसारके भ्रम जानेमें भी अब कोई विलंब नहीं है अब मैं यह जानना चाहताहूं कि ज्ञानीके कर्म कैसे होते हैं ॥ ४३ ॥ हे प्रभो ! ज्ञानीके प्रवृत्त वा निवृत्त कर्म कौन है और उनका कर्तव्याकर्तव्य क्या है, श्रीवाल्मीकिजी बोले–हे भरद्वाज ! सब त्यागकर अभ्यासही संसारके भ्रमका निवर्तक है इसलिये जिस कर्मके करनेमें कोई दोष नहीं है वही मुमुक्षुओंको कर्तव्य है ॥ ४४ ॥

काम्यंकर्मनिषिद्धंचनकर्तव्यंविशेषतः ॥ यदाब्रह्मगुणैर्जीवोयुक्तस्त्यक्त्वामनोगुणान् ॥ ४५ ॥ संशांत करणग्रामस्तदास्यात्सर्वगःप्रभुः ॥ देहेंद्रियमनोबुद्धेःपरस्तस्माचयःपरः ॥ ४६ ॥ सोहमस्मियदाध्या येत्तदाजीवोविमुच्यते ॥ कर्तृभोक्तादिनिर्मुक्तःसर्वोपाधिविवर्जितः ॥ ४७ ॥ सुखदुःखविनिर्मुक्तस्तदा नींविप्रमुच्यते ॥ सर्वभूतेषुचात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥ ४८ ॥

अर्थ—काम्य तथा निषिद्ध कर्म मुमुक्षुओंको विशेष करके नहीं करनाचाहिये, और जब यह जीव मनके गुणोंको त्यागकर ब्रह्मके गुणोंसे युक्त होताहै ॥ ४५ ॥ तब संपूर्ण इन्द्रियोंके शांत होनेसे यह सर्वव्यापी प्रभु होजाताहै, और देह इंद्रिय, मन, बुद्धि, अर्थात् अन्नमयादि चारों कोशोंसे परे जो आनंदमय कोश है उससेभी परे जो ब्रह्महै ॥ ४६ ॥ सो मैं हूं ऐसा जब यह जीव ध्यान करताहै तब यह मुक्त होताहै तथा जब कर्तृत्व भोक्तृत्वादि और सब उपाधियोंसेभी रहित होताहै ॥ ४७ ॥ और विषयके सुख तथा दुःखोंसेभी विनिर्मुक्त होताहै तब पूर्णरूपसे मुक्त होताहै, और जब सब भूतोंमे आत्माको तथा आत्मामें सब भूतोंको ॥ ४८ ॥

यदापश्यत्यभेदेनतदाजीवोविमुच्यते ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यंहित्वास्थानत्रयंयदा ॥ ४९ ॥ विशेत्तुरी यमानंदंतदाजीवोविमुच्यते ॥ जीवस्यचतुरीयाख्यास्थितिर्यापरमात्मनि ॥ ५० ॥ अवस्थाबीजनिद्रादि निर्मुक्ताचित्सुखात्मिका ॥ योगस्यसेयंवानिष्ठासुखसंवेदनंमहत् ॥ ५१ ॥ मनस्यस्तंगतेपुंसांतदन्यन्नो पलभ्यते ॥ प्रशांतामृतकल्लोलेकेवलामृतवारिधौ ॥ ५२ ॥

अर्थ—देखताहै तब यह जीव मुक्त होताहै, तथा जब जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनोंस्थानोंको त्यागकर ॥४९॥ तुरीय आत्मारूप आनन्दमें प्रवेश करताहै तब जीव मुक्त होताहै और परमात्मामें स्थितिरूप जीवकी तुरीयावस्थाहै वही जाग्रत्स्वप्नके बीज वासनासहित कर्म अज्ञानसे शून्य और सुषुप्तिसे भी रहित सुखरूपहै, और यही योग तथा महासुखके अनुभवकी पराकाष्ठा वा समाप्ति है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ शांततरंग आत्मारूप अमृतके समुद्रमें मनके अस्त होनेपर पुरुषोंको आत्माके सिवाय और कुछ नहीं प्राप्त होता ॥ ५२ ॥

मज्जमज्जसिकिंद्वैतग्रहक्षाराब्धिवीचिषु ॥ भजस्वंभरिताभोगंपरमेशंजगद्गुरुम् ॥ ५३ ॥ इतितेवर्णितंस र्ववसिष्ठस्योपदेशनम् ॥ अनेनज्ञानमार्गेणयोगमार्गेणपुत्रक ॥ ५४ ॥ भरद्वाजमहाप्राज्ञसर्वंज्ञास्यसि निश्चितम् ॥ परामर्शेनशास्त्रस्यगुरुवाक्यार्थबोधनात् ॥ ५५ ॥ अभ्यासात्सर्वसिद्धिःस्यादितिवेदानु शासनम् ॥ तस्मात्त्वंसर्वमुत्सृज्यकुर्वभ्यासेस्थिरंमनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—उसी आत्मरूप अमृतके समुद्रमें तुम डूबो; क्यों द्वैतरूप खारीसमुद्रमें क्यों डूबतेहो, हे भरद्वाज ! इस ज्ञानकी सिद्धिके लिये तुम सर्वथा पूर्ण जगद्गुरु श्रीशंकरजीको भजो ॥ ५३ ॥ हे प्रियपुत्र ! इसप्रकार वसिष्ठका सम्पूर्ण उपदेश मैंने तुमसे वर्णन किया इस ज्ञान तथा योगमार्गसे तुम ॥ ५४ ॥ निश्चयरूपसे सबकुछ जानजाओगे, क्योंकि शास्त्रोंके विचारसे, गुरुके वाक्योंके तात्पर्य्यके जाननेसे ॥ ५५ ॥ और अभ्याससे सबकार्योंकी सिद्धि होती है ऐसी वेदोंकी आज्ञाहै, इसलिये तुम सब त्यागके अभ्यासमेंही मन स्थिर करो ॥ ५६ ॥

॥ भरद्वाजउवाच ॥ रामःप्राप्तःपरंयोगंस्वात्मनात्मनिहेमुने ॥ कथंवसिष्ठदेवेनव्यवहारपरःकृतः ॥५७॥ इतिज्ञात्वाहमप्येवमभ्यासार्थयतेयथा ॥ तथैवव्यवहारोपिव्युत्थानेमेभविष्यति ॥ ५८ ॥ श्रीवाल्मीकि रुवाच ॥ यदापरिणतःसाधुःस्वस्वरूपेमहामनाः ॥ विश्वामित्रस्तदोवाचवसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ॥ ५९ ॥ श्रीविश्वामित्रउवाच ॥ हेवसिष्ठमहाभागब्रह्मपुत्रमहानसि ॥ गुरुत्वंशक्तिपातेनतत्क्षणादे वदर्शितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—भरद्वाजजी बोले–कि हे मुने ! श्रीरामचन्द्रजी तो अपने आत्माहीसे परमयोग (समाधिसे ब्रह्मकेसाथ एकता) को प्राप्तहुये पुनः वसिष्ठजीने उनको व्यवहारमें कैसे लगाया ॥ ५७ ॥ इसको जानके अभ्यासमें मैं भी प्रयत्न करूंगा, और समाधिके उत्थानमें मेरा भी व्यवहार होगा ॥ ५८ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि हे भरद्वाज ! जब महामनस्वी और शुभाचरणशील रामचन्द्रजी अपने आत्मस्वरूपमें प्रतिष्ठितहुये तब ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे विश्वा-

मित्रजी बोले ॥ ५९ ॥ हे वसिष्ठ ! हे ब्रह्माकेपुत्र ! आप महान्हो, आपने अनुग्रहसे शिष्यमें ब्रह्मज्ञानकी शक्तिके संप्रदान अपना गुरुत्व शीघ्रही हम लोगोंको दर्शा दिया ॥ ६० ॥

दर्शनात्स्पर्शनाच्छब्दात्कृपयाशिष्यदेहके ॥ जनयेद्यःसमावेशंशांभवंसहिदेशिकः ॥ ६१ ॥ रामेप्ययं विशुद्धात्माविरक्तःस्वात्मनैवहि ॥ विश्रांतिमात्राकांक्षीचसंवादात्प्राप्तवान्पदम् ॥ ६२ ॥ शिष्यप्रज्ञैव बोधस्यकारणंगुरुवाक्यतः ॥ मलत्रयमपक्वंचेत्कथंबुद्धयतिपक्ववत् ॥ ६३ ॥ ज्ञानंप्रत्यक्षमेवेदंगुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ उभावपियतोयोग्यौसर्वेषामीदृशामपि ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो अपने दर्शन, स्पर्श तथा वाक्य प्रयोगसे शिष्यके देहमें शिवरूप परमात्माका समावेश (प्रवेश) उत्पन्नकरदे वही गुरु है ॥ ६१ ॥ आपके शिष्य श्रीरामचन्द्रजी भी स्वयं विरक्तथे केवल आत्मामें विश्राममात्रके आकांक्षी थे सो आपके संवादसे परमपदको प्राप्त हुये ॥ ६२ ॥ गुरूके वाक्यसे शिष्यकी बुद्धिही ज्ञानका मुख्य कारण है, और यदि देह मन तथा बुद्धिके मल नष्ट नहीं हुयें तो वह कैसे जानसकताहै ॥ ६३ ॥ यह आपका कहा प्रत्यक्ष ज्ञान गुरू तथा शिष्य दोनोंके प्रयोजन क्या है, यदि गुरूशिष्य दोनों योग्य होते हैं तो ऐसे मुक्तिके उपयोगी ज्ञानोंके वे पांच होते हैं ॥ ६४ ॥

इदानींकृपयारामव्युत्थानंकर्त्तुमर्हसि ॥ पदेपरिणतस्त्वंहिकार्याविष्ठावयंयतः ॥ ६५ ॥ स्मरन्कार्यंमम विभोयदुद्दिश्याहमागतः ॥ प्रार्थितश्चातिकष्टेनराजादशरथःस्वयम् ॥ ६६ ॥ तद्वृथामाकृथाःसर्वंशुद्धेन मनसामुने ॥ देवकार्यंचरामान्यदवतारप्रयोजनम् ॥ ६७ ॥ सिद्धाश्रमंमयानीतोरामोराक्षसमर्दनम् ॥ करिष्यतिततोऽहल्यामुक्तिंचजनकात्मजाम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब हमलोगोंके ऊपर कृपा करके रामचन्द्रजीका समाधिसे उत्थापन करने योग्य आप हैं क्योंकि आप तो परमपदमें कृतकृत्यहैं परन्तु हमलोग संसारी कार्यमें प्रविष्टहैं ॥ ६५ ॥ हे विभो ! जिस कार्य्यके लिये मैं यहां आयाहूं तथा जिसके लिये राजा दशरथसे बडे कष्टसे मैं प्रार्थना की है उसको स्मरण करके रामचन्द्रजीको आप समाधिसे उठानेके योग्यहैं ॥ ६६ ॥ सो हे मुने ! उस कार्यको आप शुद्धमनसे वृथा न करें, और रामचन्द्रजीके समाधिसे उठनेपर अन्य भी अवतारके प्रयोजन देवकार्य्यको हम सबलोग सिद्ध करेंगे ॥ ६७ ॥ जब रामचन्द्रजीको सिद्धाश्रममें ले जाऊंगा तो वहां दुष्टराक्षसोंका वध करें और अनन्तर अहल्याकी मुक्ति करेंगे ॥ ६८ ॥

परिणेष्यतिकोदंडभंगेनकृतनिश्चयः ॥ रामस्यजामजभ्यस्यकर्तानष्टांगतिंध्रुवम् ॥ ६९ ॥ पित्र्यंपैतामहं राज्यंविगतोभयनिस्पृहः ॥ वनवासच्छलेनेहदंडकारण्यवासिनः ॥ ७० ॥ उद्धरिष्यतितीर्थानिप्राणिनोविविधानिहि ॥ सीताहरणदौर्गत्यच्छलेनभुविशोच्यताम् ॥७१॥ दर्शयिष्यतिसर्वेषांरावणादिवधादपि ॥ स्त्रीसंगिनामथास्वास्थ्यंवानरादेःपरावृत्तिम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् निश्चय करके महादेवजीके धनुषको तोडकर श्रीजानकीजीको व्याहैंगे, और जमदग्निके पुत्र परशुरामकी गतिको भंग करेंगे ॥ ६९ ॥ अनंतर भय तथा स्पृहासे रहित होके पितृपैतामहिक राज्यके अधिकारी होंगे और पुनः वनवासके मिषसे दंडकारण्य निवासियोंको ॥ ७० ॥ तथा अनेक तीर्थ और प्राणियोंको पवित्र करेंगे, और पुनः श्रीसीताजीके हरणके मिषसे इस संसारमें ॥ ७१ ॥ स्त्रियोंमें आसक्तजनोंकी दीनता दर्शावेंगे, और इन्द्रके वरदानसे युद्धमें मृत वानर तथा भालुओंका पुनः जीवन दर्शावेंगे ॥ ७२ ॥

सीताविशुद्धिमन्विच्छँल्लोकानुमतिमात्मनः ॥ जीवन्मुक्तोनिस्पृहोपिक्रियाकांडपरायणः ॥ ७३ ॥ भविष्यतिगतिंद्रष्टुंज्ञानकर्मसमुच्चयौ ॥ यैर्दृष्टोयैःस्मृतोवापियैःश्रुतोबोधितस्तुयैः ॥ ७४ ॥ सर्वावस्थागतानांतुजीवन्मुक्तिप्रदास्यति ॥ इतिकार्यमशेषेणत्रैलोक्यस्यममापिहि ॥ ७५ ॥ अनेनरामचंद्रेणपुरुषेण महात्मना ॥ नमोस्मैजितमेवैतेकोप्येवंचिरमेधताम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—और अग्निमें प्रवेश करके सीताजीकी शुद्धिकी इच्छासे शिष्टजनोंमें अपने उत्तम चरितकी माननीयता दर्शावेंगे, इसके पश्चात् राज्यमें अभिषिक्त होके जीवन्मुक्त तथा निस्पृह होकेभी क्रियाकांडमें परायण होके ॥ ७३ ॥ उपासना तथा कर्मके अधिकारियोंको ब्रह्मलोकादि प्राप्ति दर्शानेके लिये उपासना कर्मका समुच्चय करेंगे और जो इनका दर्शन करेंगे, वा इनके चरितको स्मरण करेंगे, वा सुनेंगे, अथवा दूसरोंको समझावेंगे ॥ ७४ ॥ उन भक्तोंको सदा सब अवस्थामें जीवन्मुक्ति देंगे, इसप्रकार त्रिलोकीका तथा मेराभी ॥ ७५ ॥ कार्य इस महात्मा रामचंद्रजीके द्वारा होगा, हे सभ्यजन! तुम सब कोई इन महात्मा श्रीरामचंद्रजीको नमस्कार करो केवल इनके

नमस्कारमात्रसे तुम सबको जीतोगे, अर्थात सब पुरुषार्थ सिद्ध करोगे, और तुमसे श्रेष्ठ पुरुष रामजीके समान जीवन्मुक्त होकर चिरकालतक सुखी रहै ॥ ७६ ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इतिश्रुत्वाचतेसर्वेविश्वामित्रेण भाषितम् ॥ सिद्धाश्चवरयोगींद्रावसिष्ठप्रमुखाः पुनः ॥ ७७ ॥ रामांघ्रिपद्मरजसामादरस्मरणस्थिताः ॥ दूरश्रुतोत्तरकथाःकथयामैथिलीपतेः ॥ ७८ ॥ नसंतुतोषभगवान्वसिष्ठोन्येमहर्षयः ॥ गुणान्गुणनिधेस्तस्यब्रुवन्नाकर्णयञ्छुतम् ॥ ७९ ॥ विश्वामित्र मुनिंप्राहवसिष्ठोभगवानृषिः ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ब्रूहिविश्वामित्रमुनेरामोराजीवलोचनः ॥ कोयमभूद्बुधःकिंवामनुष्योवाथराघवः ॥ ८० ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि हे भरद्वाज ! इसप्रकार विश्वामित्रजीके कथनको सुनके सिद्ध तथा वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ योगींद्रजन श्रीरामचंद्रजीके चरणकमल रजकी उपासनामें आदरयुक्त हुये, और वसिष्ट तथा अन्य ऋषिगणभी श्रीजानकीरमण रामचन्द्रजीकी इस दुर्लभ कथाको तथा गुणके निधि श्रीरामके गुणोंको सुनके तृप्त न हुए ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ भगवान् श्रीवसिष्ठऋषि विश्वामित्रजीसे बोले कि–हे मुने! सब श्रोताओंके जाननेके अर्थ यह कहिये कि कमलनेत्र रामचंद्रजी इस जन्मके पूर्व देव वा मनुष्यथे ॥ ८० ॥

श्रीविश्वामित्रउवाच ॥ अत्रैवकुरुविश्वासमयंसपुरुषःपरः ॥ विश्वार्थमथितांभोधिर्गंभीरागमगोचरः ॥ ८१ ॥ परिपूर्णपरानंदःसमःश्रीवत्सलांछनः ॥ सर्वेषांप्राणिनांरामःप्रदातासुप्रसादितः ॥ ८२ ॥ अयंनिहंतिकुपितःसृजत्ययमसत्सकान् ॥ विश्वादिर्विश्वजनकोधाताभर्त्तामहासखः ॥ ८३ ॥ अयंव्युत्क्रांतनिःसारमृद्रसंसारधूर्त्तकैः ॥ आनंदसिंधुर्विततोवीतरागैर्विगाह्यते ॥ ८४ ॥

अर्थ—विश्वामित्र बोले कि–हे जनसमूह ! तुम लोग इन्हीमें विश्वास करो कि जिन्होंने समुद्र मथन कियाथा तथा जिनको सब श्रुतियां प्रतिपादन करती हैं वह परमपुरुष साक्षात् वासुदेव यही हैं ॥ ८१ ॥ परिपूर्ण आनन्दरूप, श्रीवत्समणिके चिन्होंसे शोभित ये श्रीरामचन्द्रजी भक्तिसे पूर्णरीतिसे प्रसन्न कियेहुये सब प्राणियोंको सब पुरुषार्थोंके दाता हैं ॥ ८२ ॥ कोप करके यही श्रीरामचन्द्रजी सबका संहारकारक हैं और मिथ्यापदार्थोंको रचना यही करते हैं, संसारकी आदि तथा उसके जनक, धाता, पालक, और महासखाभी यही है ॥ ८३ ॥ जिन्होंने निःसार संसारके कार्य्य कारणका आत्मामें बाध किया है, ऐसे संसारके जीतनेवाले बीतराग महात्मा इन्हीमें प्रवेश करतेहैं८४

क्वचिन्मुक्तइवात्मस्थःक्वचित्तुर्यपदाभिधः ॥ क्वचित्प्रणीतप्रकृतिःक्वचित्तत्स्थःपुमानयम् ॥ ८५ ॥ अयंत्रयीमयोदेवस्त्रिगुण्यगहनातिगः ॥ जयत्यंगैरयंषड्भिर्वेदात्मापुरुषोद्भूतः ॥ ८६ ॥ अयंचतुर्बाहुरयंविश्वस्रष्टाचतुर्मुखः ॥ अयमेवमहादेवःसंहर्त्ताचत्रिलोचनः ॥ ८७ ॥ अजोयंजायतेयोगाज्जागरूकःसदामहान् ॥ बिभर्तिभगवानेतद्विरूपोविश्वरूपवान् ॥ ८८ ॥

अर्थ—यही कहीं ज्ञानसे मुक्त, कहीं तुर्यपदमें स्थित नित्यमुक्त कहीं मायाके नियन्ता और कहीं मायासे बद्धके समान भान होते हैं ॥ ८५ ॥ वेदमय शरीरधारी यही है, त्रिगुणसे परे अति गहन यही है; शिक्षा कल्पादि षट्अंगोंसे शोभित सर्वोपरि विचित्र वेदात्मा पुरुष यही हैं ॥ ८६ ॥ संसारके पालक चतुर्भुज विष्णु यही हैं संसारके रचयिता चतुर्मुख ब्रह्मा यही हैं, और संहार कर्ता त्रिलोचन श्रीमहादेवजीभी यही हैं ॥ ८७ ॥ यह अजन्मा हैं मायाके बंधसे ये अवतारण करते हैं, मोहरूप निद्राको आवरण न होनेसे ये महात्मा सदा जागरूप हैं, रूपरहित होकेभी विश्वरूप यही भगवान् सबका धारण करते हैं ॥ ८८ ॥

विजयोविक्रमेणेवप्रकाशइवतेजसा ॥ प्रज्ञोत्कर्षःश्रुतेनेवसुपर्णेनायमुह्यते ॥ ८९ ॥ अयंदशरथोधन्यःसुतोयस्यपरःपुमान् ॥ धन्यःसदशकंठोपिचिंत्यश्चित्तेनयोमुना ॥ ९० ॥ हास्वर्गममुनाशून्यंहापातालादिहागतः ॥ तस्यागमादयंलोकोमध्यमःश्रेष्ठतांगतः ॥ ९१ ॥ रामइत्यवतीर्णोयमर्णवांतःशयःपुमान् ॥ चिदानंदघनोरामःपरमात्मायमव्ययः ॥ ९२ ॥

अर्थ—जैसे पराक्रमसे विजयका तेजसे प्रकाशक तथा उत्तम शास्त्रोंके पठनादिसे बुद्धिका अनुमान होताहै ऐसे गरुडके तुल्य सब बातोंकी उत्तमतासे इनके श्रेष्ठ पुरुष होनेका निश्चयहै ॥८९॥ ये राजा दशरथभी धन्य हैं जिनके पुत्र साक्षात् परमपुरुष हुये, वह दशकंठ रावणभी धन्यहै जिसको यह शत्रुरूपसे स्मरण करैंगे और वह इनका स्मरण करैगा ॥ ९० ॥ हा ! इस स्वर्ग तथा पाताल इस मूर्तिधारी विष्णुसे शून्य होनेसे शोचनीय है और इनके अवतारसे यह मध्य भूलोक श्रेष्ठताको प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ क्षीरसमुद्रशायी विष्णुभगवान्ने रामावतार धारण किया, यही रामचंद्रजी चिदानंदघन अविनाशी परमात्माहैं ॥ ९२ ॥

निगृहीतेंद्रियग्रामारामंजानंतियोगिनः ॥ वयंत्ववरमेवास्यरूपंरूपयितुंक्षमाः ॥ ९३ ॥ रघोरघोच्छेदकरोभगवानितिशुश्रुमः ॥ वसिष्ठकृपयात्वंहिव्यवहारपरंकुरु ॥ ९४ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वावस्थितूष्णींविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ वसिष्ठस्तुमहातेजारामचंद्रमभाषत ॥ ९५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामराममहाबाहोमहापुरुषचिन्मय ॥ नायंविश्रांतिकालोहिनाकानंदकरोभव ॥ ९६ ॥

अर्थ—इंद्रियसमूहको जीतने योगीगण रामचंद्रजी यथार्थ जानते हैं, और हमलोग यही मूर्तिधारी इनका स्वरूप देखने वा निरुपण करनेके योग्य हैं ॥ ९३ ॥ श्रीराजारघुके (रघुके वंश) पापनाशक येही भगवान् हैं ऐसा हमने शास्त्रोंसे सुनाहै, सो हे वसिष्ठजी! कृपा करके इनको व्यवहारमें तत्पर करो ॥ ९४ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि—हे भरद्वाज! महामुनि विश्वामित्रजी इतना कहके मौन होगये, तब महातेजस्वी वसिष्ठजी रामचंद्रजीसे बोले ॥ ९५ ॥ कि–हे राम! हे राम! हे महाबाहो! हे चिन्मय महापुरुष! यह आत्मामें विश्राम करनेका समय नहीं है किंतु इस संसारको आनंदकारक होओ ॥ ९६ ॥

यावल्लोकपरामर्शोनिरूलोनास्तियोगिनः ॥ तावद्रूढसमाधित्वंनभवत्येवनिर्मलम् ॥ ९७ ॥ तस्माद्राज्यादिविषयान्पर्यालोक्यविनश्वरान् ॥ देवकार्यादिभारांश्वभजपुत्रसुखीभव ॥ ९८ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तोपियदारामःकिंचिन्नोचेलयंगतः ॥ तदासुषुम्नयासोपिविवेशहृदयंशनैः ॥ ९९ ॥ शक्तिंप्राणमनःप्रसक्तिकरणोजीवःप्रकाशात्मकोनाडीरंध्रसुपुष्टसर्वकरणःप्रोन्मील्यनेत्रेशनैः ॥ दृष्ट्वोत्कृष्टवसिष्ठमुख्यविदुषोनिर्मुक्तसर्वेषणःकृत्याकृत्यविचारणादिरहितःसर्वान्प्रतीक्ष्यस्थितः ॥ १००॥

अर्थ—जबतक अधिकारका साधनरूप परामर्शी योगीका सिद्ध नहीं होता तबतक निर्मल समाधियुक्त नहीं है ॥ ९७ ॥ हे पुत्र! इसका कारण विनाशी राज्यादि विषयोंको कुछ कालतक अनुभव करके और देवताओं कार्य्योंको समाप्त करके पश्चात् समाधिद्वारा सुखी होओ ॥ ९८ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि इसप्रकार वसिष्ठजीके कहनेपर भी निर्विकल्प समाधिमें ब्रह्म एकताको प्राप्त श्रीरामचन्द्रजी जब कुछ न बोले–तब योगाभ्याससे सुषुम्ना नाडीद्वारा वसिष्ठजीने रामचन्द्रजीके हृदयमें धीरेसे प्रवेश किया ॥ ९९ ॥ तब प्रथम प्राणादिके बीजरूप आधारशक्तिमें क्रम प्राण तथा मनका आविर्भाव हुआ इसके पश्चात् प्रकाशरूप जीवप्राण नाडीद्वारा सब छिद्रोंमें प्रविष्ठ होके सबज्ञान तथा कर्म इन्द्रियोंको पुष्ठ किया, पश्चात् धीरेसे नेत्र खोलके श्रीवसिष्ठादि विद्वानोंको देखकर सब अभिलाषाओंसे रहित तथा कृत्याकृत्यके विचारसे शून्य होके उनके बचनके सुननेकी प्रतीक्षासे स्थितरहे ॥ १०० ॥

श्रुत्वावसिष्ठवचनंगुरुवाक्यमितिस्वयम् ॥ श्रुत्वाप्रोवाचभगवान्रामचंद्रःसमाहितः ॥ १०१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ नविधेर्ननिषेधस्यत्वत्प्रसादादयंप्रभुः ॥ तथापितववाक्यंतुकरणीयंहिसर्वदा ॥ १०२ ॥ वेदागमपुराणेषुस्मृतिष्वपिमहामुने ॥ गुरुवाक्यंविधिःप्रोक्तोनिषेधस्तद्विपर्ययः ॥ १०३ ॥ इत्युक्त्वाचरणौतस्यवसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ शिरसाधार्यसर्वात्मासर्वान्प्राहघृणानिधिः ॥ १७४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्वेशृणुतभद्रंवोनिश्चयेनसुनिश्चितम् ॥ आत्मज्ञानात्परंनास्तिगुरोरपिचतद्विदः ॥ १०५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हे राम राम! हे महा! इस वसिष्ठके वचनको सुनके तथा गुरुका वाक्य अनुल्लंघनीय हैं इस पिता भ्राता आदिकी प्रार्थनाकोभी सुनके सभाहित रामचंद्रजी बोले ॥ १०१ ॥ कि–हे भगवन्! आपकी कृपासे यह जीव विधि निषेधका पात्र नहीं हैं और स्वयं साक्षात्प्रभु (ब्रह्म) रूप होगयाहै तथापि आपका वाक्य सदा करणीय है ॥ १०२ ॥ हे महामुने! वेदशास्त्र स्मृति, तथा पुराणोंमें गुरुका वाक्य विधि है और इसके विरुद्ध करनेका निषेध है ॥ १०३ ॥ ऐसा कहके श्रीरामचंद्रजी गुरुवसिष्ठजीके चरणोंको शिरसे धारण किया, और कृपानिधि श्रीरामचंद्रजी यह बोले–हे सभ्यगण! तुमारा कल्याणहो यह निश्चयसे सुनिश्चित वार्ता सुनो कि–आत्मज्ञानसे तथा उसके गुरुसे उत्तम इस संसार और कुछ नहीं है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

श्रीसिद्धादयऊचुः ॥ रामैवमेवसर्वेषांमनसिस्थितिमागतम् ॥ त्वत्प्रसादाचसकलंसंवादेनदृढीकृतम् ॥१०६॥ सुखीभवमहाराजरामचंद्रनमोस्तुते ॥ वसिष्ठेनाप्यनुज्ञातागच्छामोयथागतम् ॥१०७॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच॥एवमुक्त्वागताःसर्वेरामसंस्तवनेरताः ॥ रामचंद्रस्यशिरसिपैष्पीवृष्टिःपपातह ॥१०८॥

अर्थ—सिद्धलोग बोले–कि हे रामचंद्रजी! जैसा आप कहतेहैं वह आपकी कृपासे सबके मनमें स्थित होगया और आपके संवादसे दृढ होगया ॥ १०६ ॥ हे महाराज रामचंद्रजी! आप सुखीहो आपको नमस्कार है वसिष्ठजीसेभी आज्ञा लेके जहांसे आयेथे वहां जाते हैं ॥ १०७ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–हे भरद्वाज! ऐसा कहके रामचंद्रजीकी करते हुये अपने २ स्थानपर सब गये और रामचंद्रजीके शिरपर पुष्पोंकी वृष्टि हुई ॥ १०८ ॥

एतत्तेसर्वमाख्यातंरामचंद्रकथानकम् ॥ अनेनक्रमयोगेनभरद्वाजसुखीभव ॥ १०९ ॥ इतिरघुपतिसिद्धिःप्रोदितायामयातेवरमुनिवचनालीरत्नमालाविचित्रा ॥ निखिलकविकुलानांयोगिनांसेव्यरूपापरम गुरुकटाक्षान्मुक्तिमार्गंददाति ॥ ११० ॥ यइमंशृणुयान्नित्यंविधिंरामवसिष्ठयोः ॥ सर्वावस्थोपिश्रवणान्मुच्यतेब्रह्मगच्छति ॥ १११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यांसंहितायां बालकांडे मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे ब्रह्मदर्शनेरामव्युत्थानं नाम अष्टाविंशत्युत्तरशततमस्सर्गः ॥ १२८ ॥

॥ निर्वाणप्रकरणपूर्वार्धसमाप्तम् ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! यह रामचन्द्रजीका सब आख्यान कह दिया इसी क्रमसे तुम भी सुखी होजाओ ॥१०९॥ हे भरद्वाज ! यह रामचन्द्रजीकी सिद्धि जो तुमसे मैंने कही सो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठके वचनोंकी पंक्तिरूप रत्नोंकी विचित्र मालाहै और सब कविकुल तथा योगियोंके सेवन करनेके योग्यहैं और परमगुरूकी कृपासे मोक्षमार्गको देती है ॥ ११० ॥ जो कोई इस वसिष्ठ तथा रामचन्द्रजीके संवाद विधिको प्रतिदिन श्रवण करैगा वह श्रवणमात्रसे सब दोषोंसे मुक्त हो जायगा, और अनन्तर शांति आदि गुणोंके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त होगा ॥ १११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपायेषु श्रीनचईप्रसादात्मजाचार्य्योपाधिधारि ठाकुरप्रसादशर्म्म विरचित भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्द्धे रामव्युत्थानं नाम अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

निर्वाणप्रकरणपूर्वार्द्ध समाप्तम् ।

सर्व पुस्तकें इसी पतेपर मिलेंगी

पण्डित श्रीधर शिवलालजी

" ज्ञानसागर " छापाखाना,

(मुंबई.)

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ षष्ठं निर्वाणप्रकरणं उत्तरार्द्ध प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥

श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥

गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।

जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे॥२ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

ममता, मान, अहंकार तथा संकलपकी कल्पनाओंसे रहित जीवन्मुक्त पुरुष जैसे जीते और चेष्टा करते हैं वह युक्ति इस १ के सर्गमें कही गई है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ नैष्कर्म्यात्कल्पनात्यागात्तनुःपततिदेहिनः ॥ कथमेतदतोब्रह्मन्संभवत्याशुजीवतः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवतःकल्पनात्यागोयुज्यतेनत्वजीवतः ॥ रूपमस्ययथातत्त्वंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ २ ॥ असंभावनमेवाहुःकल्पनंकल्पनाविदः ॥ नभोर्थभावनंतस्यसंकल्पत्यागउच्यते ॥ ३ ॥ पदार्थरसमेवाहुःकल्पनंकल्पनाविदः ॥ नभोर्थभावनंतस्यसंकल्पत्यागउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे गुरो ! निष्कर्मता तथा देहादिमें अहंकारादिकी कल्पनाके त्यागसे जीवका शरीर शीघ्र गिरजाताहै तब आपसे कहेहुये उसके जीवनके व्यवहार कैसे होंगे ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जीवित पुरुषही कल्पनाको त्याग सकताहै न कि आजीवित, और श्रवणका भूषण इस कल्पना त्यागके रूपको तुम सुनो ॥ २ ॥ परिच्छिन्न देहादिमें अहंभावना करनेहीके कल्पनाके वेत्ताओंने कल्पना कहा है, और अपरिच्छिन्न ब्रह्माकाशकी भावनाको कल्पना त्याग कहते हैं ॥ ३ ॥ तथा परिच्छिन्न पदार्थोंकी पृथक् भावनाको संकलप कहते हैं, और सर्वत्र एक ब्रह्माकाशकी सत्ताकी भावनाको संकलपत्याग कहतेहैं ॥ ४ ॥

इदंवस्त्वितिसंवेगमाहुःकल्पनमुत्तमाः ॥ नभोर्थभावनंतस्यसंकलपत्यागउच्यते ॥ ५ ॥ स्मरणंविद्धि संकल्पंशिवस्मरणंविदुः ॥ तच्चप्रागनुभूतंचनानुभूतंचभाव्यते ॥ ६ ॥ अनुभूतांनानुभूतांस्मृतिंविस्मृत्यकाष्ठवत् ॥ सर्वमेवाशुविस्मृत्यगूढस्तिष्ठमहामते ॥ ७ ॥ सर्वास्मरणमात्रात्मातिष्ठायातेषुकर्मसु ॥ अर्द्धसुप्तशिशुस्पंदइवाभ्यस्तोपपत्तिषु ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा यह देहादि परिच्छिन्न दृश्य वस्तु यथार्थमें सत्य है इस अभिमानको विद्वान्जन संकलप कहते हैं, और उन वस्तुओंको भूतोंका विकारमात्र असत्य जानना और सबको ब्रह्माकाशमात्रकी भावनाको संकलपत्याग कहते हैं ॥ ५ ॥ पदार्थोंके अनुराग पूर्वक स्मरणको संकलप कहते हैं, और वह स्मरण (विषयका ध्यान) भूत तथा

भावी दोनों विषयोंका होताहै, ॥ ६ ॥ सो हे रामजी ! अनुभूत तथा अननुभूत दोनों प्रकारके पदार्थोंके ध्यानको विस्मरण करके, तथा ब्रह्मसे अन्य वृत्तियोंकोभी शीघ्र विस्मृत करके, ब्रह्माकार वृत्तिमें लीन होके काष्ठके तुल्य अचल स्थित रहो ॥ ७ ॥ सब पदार्थोंके विस्मरणके अभ्यासमात्रसे यथाप्राप्त अभ्यस्त व्यवहारोंमें ऐसे स्थित होके चेष्टा करो जैसे अर्द्धसुप्त बालक स्तनपान आदिमें चेष्टा करता है ॥ ८ ॥

निःसंकल्पप्रवाहेणचक्रंप्रस्पंदतेयथा ॥ स्पंदस्वकर्मस्वनघप्राक्संस्कारवशात्तथा ॥ ९ ॥ अविद्यमान चित्तस्त्वंसत्त्वसंस्कारमागतः ॥ प्रवाहपतितेष्वेवस्पंदस्वस्वेषुकर्मसु ॥ १० ॥ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषनच कश्चिच्छृणोतिमे ॥ असंकल्पःपरंश्रेयःसकिमंतर्नभाव्यते ॥ ११ ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यंयदयंसर्वदुःखहा ॥ चिंतामणिर्विचाराख्योहृत्स्थोपित्यज्यतेजनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! सदा निःसंकल्पके प्रवाहसे कुलालके चक्रके समान पूर्वकालके संस्कारोंके वशसे कर्मोंमें चेष्टा करो ॥ ९ ॥ चित्तकी क्षीणतासहित, तथा निर्वासनारूप संस्कारमें प्राप्त होके प्रवाहपतित कर्मोंमें चेष्टा करो ॥ १० ॥ भुजा उठाके यह मैं कहता हूं परंतु मेरी कोई नहीं सुनता कि असंकल्पही परम कल्याण है उसको अंतःकरणमें क्यों नहीं धारण करते ॥ ११ ॥ अहो ! यह मोहकी कैसी महिमाहै कि सब दुःखोंका नाशक विचार नाम चिंतामणि जो सबके हृदयमें स्थित है उसको लोग क्यों त्यागते हैं ॥ १२ ॥

अवेदनमसंकल्पस्तन्मयेनैवभूयताम् ॥ एतावत्परमंश्रेयःस्वयमेवानुभूयताम् ॥ १३ ॥ किलतूष्णींस्थितेनैवतत्पदंप्राप्यतेपरम् ॥ परमंयत्रसाम्राज्यमपिरामतृणायते ॥ १४ ॥ गम्यदेशैकनिष्ठस्ययथापांथस्य पादयोः ॥ स्पंदोविगतसंकल्पस्तथास्पंदस्वकर्मसु ॥१५॥ सर्वकर्मफलाभोगमलंविस्मृत्यसुप्तवत् ॥ प्रवाहपतितेकार्येस्पंदस्वगतवेदनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—दृश्य तथा दर्शनसे रहित आत्मतत्वही असंकल्प है तन्मय मुमुक्षुको होनाचाहिये, और यही परम कल्याण है इसका अनुभव स्वयं करलो ॥ १३ ॥ संकल्पकी चेष्टासे रहित होके स्थित होनेसे वह परमपद प्राप्त होताहै जहांपर यह संपूर्ण ब्रह्मांडका साम्राज्यभी तृणके समान भान होताहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! जैसे प्राप्य देशमें जानेमें तत्पर पथिकके चरणोंकी चेष्टा विना संकल्पके होती है ऐसेही तुम संकलपरहित होके यथाप्राप्त कर्मोंमें चेष्टा करो ॥ १५ ॥ सब कर्मके फलोंके अनुभवको सुप्तके समान पूर्ण रीतिसे भूलकर, यथाप्राप्त कार्य्योंमें संकलपरहित होके चेष्टा करो ॥ १६ ॥

स्पंदस्वाकृतसंकल्पंसुखदुःखान्यभावयन् ॥ प्रवाहपतितेकार्येचेष्टितोन्मुक्तशष्पवत् ॥ १७ ॥ रसभावनमंतस्तेमालंभवतुकर्मसु ॥ दारुयंत्रमयस्येवपरार्थमिवकुर्वतः ॥ १८ ॥ नीरसाएवतेसंतुसमस्तेंद्रिय संविदः ॥ आकारमात्रसंलक्ष्याहेमंततालताइव ॥ १९ ॥ बोधार्कपीतरसयास्पंदनषड्वर्गसत्तया ॥ यंत्र स्पंदोपमस्तिष्ठवल्लयेवशिशिरेद्रुमः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे स्वतः मुक्त तृणवायुआदिके प्रवाहसे अन्य तृणादिसे संयोगवियोगरूप चेष्टा करताहै ऐसेही तुम संकल्प रहित होके सुखदुःखादिकी भावना न करतेहुये प्रवाह पतित कार्य्योंमें चेष्टा करो ॥ १७ ॥ हे रामजी ! परार्थ कार्य्य करतेहुये काष्ठकी पुतलीके समान कर्मोंमें शृंगारादिर सोंकी भावना तुमको न हो ॥ १८ ॥ हे रामजी ! सब इंद्रियोंसे विषयोंके अनुभव तुमको नीरसही प्रतीयमान हो, और आकार मात्रसे ऐसे लक्षित होते हैं जैसे वसंतऋतुमें लता ॥ १९ ॥ बोधरूपी सूर्य्यके रसको पान करनेवाली पंचकोश संवलित चिदाभास, मनसहित प्राणवर्ग, ज्ञानेंद्रि वर्ग, कर्मेंद्रियवर्ग ज्ञानकर्मेन्द्रिय सहित अन्तःकरणवर्ग, तथा शरीरवर्ग इन षड्वर्गोंकी सत्तासे यंत्रके तुल्य ऐसे स्थित रहो जैसे शिशिर ऋतुमें लतासे वेष्टित वृक्ष ॥ २० ॥

चिदांतररसान्येवप्रवृत्तान्यपिधारय ॥ स्वयत्नेनेंद्रियाण्याशुहेमंतर्तुस्तरूनिव ॥ २१ ॥ सरसेंद्रियवृत्ते स्तेकुर्वतोऽकुर्वतस्तथा ॥ संसारानर्थसार्थोयंनकदाचनशाम्यति ॥ २२ ॥ निःसंकल्पमरुज्ज्वालायंत्रांबुस्पंदवद्यदि ॥ स्पंदसेतदनंतायश्रेयसेपरिकल्पसे ॥ २३ ॥ एतदेवपरंधैर्यंजन्मज्वरनिवारणम् ॥ यद वासनमभ्यस्तांनिजकर्मसुकर्तृता ॥ २४ ॥

अर्थ—अपने स्वभावसे बाह्य विषयरसके आस्वादमें प्रवृत्त इंद्रियोंके आस्वादके पोषक चित्को ऐसे समझो जैसे वृक्षोंके आन्तरी रसका हेमन्तऋतु ॥ २१ ॥ यदि इन्द्रियजन्य विषयोंके रसमें तुमारी वृत्ति अनुरक्त होजायगी तो तुम विषयभोग करो वा न करो परन्तु संसारके अनर्थोंका समूह कदापि शांत न होगा ॥ २२ ॥ संकल्प रहित होके यदि वायु, अग्निकी ज्वाला, यंत्र और जलके समान तुम चेष्टा करोगे तो परम कल्याणकेलिये समर्थ होओगे

॥ २३ ॥ हे रामजी! जन्मरूप ज्वरके निवारणार्थ यही परमोत्तम उपाय है कि निजकर्मोंमें कर्तृताका अभ्यास वासना रहित हो ॥ २४ ॥

अवासनमसंकल्पंयथाप्राप्तानुवृत्तिमाम् ॥ शनैश्चक्रभ्रमाभोगइवस्पंदस्वकर्मसु ॥ २५ ॥ माकर्मफलबुद्धिर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि ॥ उभयंवात्यजैतत्त्वमुभयंवासमाश्रय ॥ २६ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनसंक्षेपादिदमुच्यते ॥ संकल्पनंमनोबंधस्तदभावोविमुक्तता ॥ २७ ॥ नेहकार्यंनवाकार्यमस्तिकिंचिन्नकुत्रचित् ॥ सर्वंशिवमजंशांतमनंतंप्राग्वदास्यताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी! वासना तथा संकलपके त्यागपूर्वक चक्रके भ्रमके तुल्य निज कर्मोंमें चेष्टा करतेहुये धीरे २ उपशम शील होजाओ ॥ २५ ॥ कर्मके फलोंमें तुमारी आसक्ति न हो, और कर्मोंके त्यागमेंभी उनके फलमे तुमारी आसक्ति न हो, इन दोनोंको त्यागो वा आश्रय करो अर्थात् फलमें आसक्तिके अभावमें और कर्मकरके फलके त्यागमें कुछ विशेषता नहीं है ॥ २६ ॥ हे रामजी! अब इस विषयमें अधिक कहनेका कुछ प्रयोजन नहीं है संक्षेपसे यही कहते हैं कि संकलपही मनका बंध है, और उसका अभावही मुक्ति है ॥ २७ ॥ हे रामजी! इस संसारमें न कुछ कहीं ग्राह्य है और न ताज्यहै किंतु सब अज, शान्त, शिव तथा अनंत ब्रह्मरूपही है, इसलिये जिसरूपसे उसी आत्मस्वरूपसे सर्वत्र स्थित रहो ॥ २८ ॥

पश्यन्कर्मण्यकर्मत्वमकर्मणिचकर्मताम् ॥ यथाभूतार्थचिद्रूपःशांतमास्वयथासुखम् ॥ २९ ॥ अवेदनंविदुर्योगंचित्तक्षयमकृत्रिमम् ॥ अत्यंतंतन्मयोभूत्वातथातिष्ठयथासिभोः ॥ ३० ॥ समेशांतेशिवेसूक्ष्मे द्वैतैक्यपरिवर्जिते ॥ ततेऽनंतेपरेशुद्धेकिंकेनकिलखिद्यते ॥३१॥ नोदेतुत्वयिसंकल्पोमरुभूमाविवांकुरः॥ इच्छानोदेतुभवतिलतिकेवोपलोदरे ॥ ३२ ॥

अर्थ—संसारके सब काय्योंमें निष्क्रिय ब्रह्मरूपता तथा अनिष्क्रिय ब्रह्मरूपता स्थितिमें अवश्यकर्तव्यताको देखते हुये अपने यथार्थ चिद्रूपमें शान्त होके सुखपूर्वक स्थित रहो ॥ २९ ॥ असंवेदन अर्थात् दृश्यदर्शनरहित आत्मतत्वका अनुसंधानही स्वाभाविक चित्तका क्षययोग है, इसलिये हे रामजी! सर्वथा आत्ममय होके स्थित रहो ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण, शान्त, शिव, सूक्ष्म, द्वैत तथा ऐक्यसे वर्जित व्यापक, अनन्त, सबसे परे और शुद्धआत्मरूपमें किसलिये कौन खेद करसकताहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी! मरूभूमिमें अंकुरके समान तुममें संकलपका उदय न हो, और पाषाणके भीतर लताके तुल्य तुममें इच्छाभी न हो ॥ ३२ ॥

अवेदनस्यशांतस्यजीवतोवाप्यजवितः ॥ नेहकिंचित्कृतेनार्थोनाकृतेनापिकश्चन ॥ ३३ ॥ यत्कर्माकर्म शांतेऽतःशाश्वताभेदरूपिणी ॥ नकर्मणिचकर्माणिनकर्त्तर्यपिकर्तृता ॥ ३४ ॥ अहंममेतिसंविदन्त्वद्वःखतोविमुच्यसे ॥ असंविदन्विमुच्यसेयदीप्सिततंतदाचर ॥ ३५ ॥ अहंममेतिनास्त्यलंयदस्तिततच्छिवंपरम् ॥ परात्परंत्विदंशिवादशब्दमर्थरूपकम् ॥ ३६ ॥ यदृश्यतेजगदिदंखलुकिंचिदेतद्धेम्नोऽगदत्वमिवभातिनविद्यमानम् ॥ अस्यक्षयंविदुरवेदनमेवपश्चात्सत्यंतदेवपरमार्थमथावशिष्टम् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे इच्छादिचिकित्सायोगोपदेशो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—संकलपरहित शान्त पुरुषको जीवित रहते वा न रहते इस संसारमें कोई काय्यं करने वा न करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३३ ॥ कर्म तथा अकर्म जिसमें शांत हैं, इसीसे दोनों दशामें निरन्तर सदा अभिन्न तुम आत्मामें प्रतिभास कर्मरूपसे विवर्तमान होनेपर न तुममें कर्म हैं और न प्रतिभासिक कर्तारूप होनेसे कर्तृता है ॥ ३४ ॥ देहादिमें अहंममका अभिमान होनेसे दुःखोंसे कभी नहीं छूटोगे, और देहादिमें आत्माभिमान न होनेसे छूटोगे, अब इनमेंसे जो तुमको इष्ट हो सो करो ॥ ३५ ॥ हे रामजी! यह अहंमम सर्वथा नहीं है, और जो है वह केवल शिवरूपही है क्योंकि आनन्दघन शिवपरमात्मासे भिन्न यह दृश्यजगत् अनिर्वचनीय अवस्तु है ॥ ३६ ॥ हे रामजी! यह जो कुछ जगत् देख पडताहै वह सुवर्णसे पृथक् जैसे कटक अंगद आदि अविद्यमान है, ऐसे आत्मासे भिन्न रूपसे अविद्यमान है, और आत्मासे भिन्न इसका अनुभव न करनाही इसका नाश है, और इसके बाधका अधिष्ठान जो शेषरूप है वह परमार्थ सत्यरूप है ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे इच्छादि चिकित्सायोगोपदेशो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस २ के सर्गमें प्रथम जगत्की शिवाचिन्मयरूपता और पश्चात् कर्मके बीजका अन्वेषण करके उसका समूल निवारण वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अद्वैतैक्यंविमननंशांतमात्मन्यवस्थितम् ॥ यथापंकमयंसैन्यंतथाशिवमयंजगत् ॥१॥ मनोहंकारबुद्धयादिचित्तमेवचतन्मयम् ॥ कालाकारक्रियाशब्दशक्तिसंदर्भसंयुतम् ॥ २ ॥ शिवपंकमयाएवरूपालोकमनःक्रमाः ॥ तन्मयत्वादनंतत्वादतःकिंकेनचेत्यते ॥ ३ ॥ मातृमेयप्रमाणादिदेशकालौदिगादिच ॥ भावाभावविवर्त्तादिशिवपंकमयात्मकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अद्वैतता तथा एकतासे शून्य, मननरहित और शान्त आत्माही अपने आत्मामें तत्वदृष्टिसे स्थित है, और जैसे मृत्तिकाकी सेना मृत्तिकामय है ऐसेही यह जगत् सब शिवमय है ॥ १ ॥ काल, आकार, क्रिया, और शब्दकी शक्तिके संदर्भसहित मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार सब चित्प्रकाश्य होनेसे चिन्मय है ॥ २ ॥ तथा बाह्यरूप, रस, गंध, स्पर्शादि बुद्धि और उनके विषयरूपादिभी अनचित् भास्य होनेसे शिवपंचकरूपही हैं, इसलिये कौन किसे प्रकाशित होताहै ॥ ३ ॥ प्रमाता, प्रमेय तथा प्रमाण, देश, काल, दिशादिभाव और अभाव आदि विवर्त यह सब शिवरूपही है ॥ ४ ॥

अहंममेत्यतःसारान्नेतरत्परमेश्वरात् ॥ असंसक्तमतिस्तिष्ठहाशिलोदरमौनवत् ॥५॥ श्रीरामउवाच ॥ अहंममेत्यसद्रूपंज्ञस्याभावयतःप्रभो ॥ अशुभंकर्मणांत्यागादनुष्ठानाच्चकिंशुभम् ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पृच्छामियदहंतत्त्वंकथयाशुममानघ ॥ यदिजानासितत्त्वेनकर्मतावत्किमुच्यते ॥ ७ ॥ विस्तारःकर्मणःकीदृङ्मूलंतस्यचकिंभवेत् ॥ नाशनीयंचनिपुणंकथंकथयनाश्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसकारण सारभूत परमेश्वर भिन्न अहंमम इत्यादि विवर्त कुछ नहीं है इसलिये असंसक्त बुद्धि होके शिलाके उदरके समान मौन स्थित रहो ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! जो ज्ञानी अहंमम इत्यादि दृश्यसमूहको असत्‌रूपसे भावना करताहै उसको कर्मोंके त्यागसे क्या अशुभ और उनके करनेसे शुभ क्या होगा ॥६॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पापरहित रामजी ! जो मैं तुमसे पूंछताहूं उसे शीघ्र कहो, यदि यथार्थरूपसे जानतेहो तो कहो कर्म क्या वस्तु है ॥७॥ कर्मका विस्तार कैसा है उसका मूल क्या है और कुशलतासे उसका नाशनीय अंश कहो ॥८॥

श्रीरामउवाच ॥ यन्नाशनीयंनिपुणंतन्नूनंचविनाश्यते ॥ मूलकाषेणभगवन्नशाखादिविकर्त्तनैः ॥ ९ ॥ शुभाशुभंनाशनीयंस्वकर्मखलुधीमता ॥ मूलकाषविनाशेनतच्चनष्टंभवत्यलम् ॥ १० ॥ कर्मवृक्षस्यवक्ष्यामित्रह्मन्मूलानिमेशृणु ॥ यन्निकाषेणनिर्मूलोनसभूयःप्ररोहति ॥ ११ ॥ देहस्तावदयंब्रह्मन्कर्मवृक्षःससमुत्थितः ॥ रूढःसंसारविपिनेविचित्रांगलतांचितः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! जो नाशनीय है उसको मूलसेही नष्ट करना चाहिये न कि शास्त्रादिके छेदनोंसे ॥ ९ ॥ बुद्धिमान्‌को उचित है कि वह अपने शुभ अशुभ कर्मोंको नष्ट करै, और पूर्णरीतिसे मूलके नाशसे वह नष्ट होसकताहै ॥ १० ॥ हे भगवन् ! इस कर्मरूप वृक्षके मूल मैं आपसे कहताहूं आप सुनिये, जिन मूलोंके छेदनसे यह निर्मूल होके पुनः नहीं जमता ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! यह देहही कर्मरूप वृक्ष प्रकट हुआ है, और विचित्र अंगुली आदि लताओंसे शोभित संसाररूप बनमें यह दृढ होरहाहै ॥ १२ ॥

कर्मबीजंतरोरस्यसुखदुःखफलावलेः ॥ क्षणतारुण्यकांतस्यजराकुसुमहासिनः ॥ १३ ॥ मुहूर्त्तप्रतिकालोग्रमर्कटध्वंसिताकृतेः ॥ निद्राहेमंतजठरलीनस्वप्नदलोद्गतेः ॥ १४ ॥ स्ववार्धकशरच्छांतशीर्णेहापर्णसंततेः ॥ जगज्जंगलजातस्यकलत्रोपतृणावलेः ॥ १५ ॥ पल्लवावयवाहस्तपादपृष्ठादयोऽरुणाः ॥ पत्राणितनुवृत्तानिसुरेखाणिचलानिच ॥ १६ ॥

अर्थ—सुखदुःख फलोंकी पंक्तिको देनेवाले इस वृक्षका कर्मही बीज है और अल्पकालके युवावस्थासे यह रमणीय भान होताहै और शीघ्र वृद्धावस्थारूपी पुष्पोंसे हंसताहै ॥ १३ ॥ और अतिभयंकर कालरूपी मर्कट इस आकृतिको नष्ट करताहै, तथा निद्रारूप हेमन्तऋतुके गर्भमें स्वप्नरूप इस वृक्षके पत्र संकुचित वा लीन रहतेहैं ॥ १४ ॥ जगत्‌रूप जंगलमें उत्पन्न, और पालनीय स्त्रीपुत्रादि प्ररूढ तृणोंकी पंक्तिसहित इस शरीररूप वृक्षकी वृद्धावस्थारूप शरत्कालमें सब चेष्टापत्रोंका समूह शान्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ और हस्तपादादिके पृष्ठभाग तथा ओष्ठादि इस वृक्षके अरुण कोमल पल्लव हैं और किंचित् कठोर हस्तपादादिके उत्तम रेखासहित तल वृक्षके कठोर पत्ते हैं ॥ १६ ॥

अरुणाःपवनालोलामृद्वयोमसृणमूर्त्तयः ॥ स्नाय्वस्थिदिग्धसरसाअंगुल्योबालपल्लवाः ॥ १७ ॥ मृद्वयो मसृणतीक्ष्णाग्रावृत्तारूढाःपुनःपुनः ॥ द्वितीयेंदुकलाकाराःकलिकानखपंक्तयः ॥ १८ ॥ कर्मणःपरिफुल्लस्यदेहरूपतयेतिहि ॥ कर्मेंद्रियाणिमूलानिदुष्टानिग्रंथिमंतिच ॥ १९ ॥ स्थिरास्थिग्रंथिनद्धानिपंकमग्नात्मकानिच ॥ वासनारसपीतानिनिजरक्तरसानिच ॥ २० ॥

अर्थ—और भीतरसे नाडी तथा हड्डियोंसे आर्द्र कोमल तथा रक्तवर्ण अंगुलियां वायुसे कंपित इसके बाल पल्लव हैं ॥ १७ ॥ कोमल, चिक्कण, तीक्ष्णाग्र भागसहित, काटनेपरभी पुनः जमनेवाली और द्वितीय कलाके तुल्य नखकी पंक्तियां इसकी कलियां हैं ॥ १८ ॥ हे भगवन्! देहरूपसे विकसित तथा प्ररूढ इस कर्मरूप वृक्षके दुष्ट तथा ग्रंथिसहित कर्मइंद्रिय मूल हैं ॥ १९ ॥ पुनः दृढअस्थियोंकी ग्रन्थि ग्रन्थिसे बद्ध, वासनारूप रसको पान करनेवाली अपने रक्तरूप रससे सरस ॥ २० ॥

गुल्फवंतिदृढांगानिसुत्वंचिमसृणानिच ॥ तेषामपिचमूलानिविद्धिबुद्धींद्रियाणिहि ॥ २१ ॥ सुदूरमपि जातानिपंचस्तंबानितानितु ॥ वासनापंकमग्नानिरसवंतिमहांतिच ॥ २२ ॥ तेषांमूलंबृहत्स्तंभंमनोव्याप्तजगत्रयम् ॥ पंचस्रोतःशिराकृष्टमुक्तानंतरसद्रवम् ॥ २३ ॥ तस्यमूलंविदुर्जीवंचेत्योन्मुखचिदात्मकम्॥ चेत्यस्यचेतनंमूलंसर्वमूलैककारणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—गुल्फ (पादकी ग्रन्थि) सहित, दृढांग, उत्तम त्वचासहित और चिक्कण उन कर्मेंद्रियोंकेभी मूल ज्ञानइन्द्रिय हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि निजविषयरूप दूर देशमें वे ज्ञानइन्द्रिय जानेवाली हैं तथापि नेत्र, नासिका, कर्णादि पांच स्थानोंमें आश्रित हैं और अपने २ विषयरूप पंकमें निमग्न, रागसहित, तथा निग्रह करनेमें कठिन हैं ॥ २२ ॥ पंचज्ञानेंद्रियोंके स्रोतरूप नाडियोंसे आकृष्ट तथा भोगके पश्चात् मुक्त अनन्तरूपादि रससहित, तीनोंलोकमें व्याप्त और महान् स्तंभरूप यह मन उन ज्ञानेंद्रियोंकाभी मूल है ॥ २३ ॥ और चेत्यकी ओर झुकाहुआ चिदाभासरूप जीव उस मनकाभी मूल है उसमें चेत्यांशका मूल मायाशबलित चित् है ॥ २४ ॥

चितेस्तुब्रह्ममूलंयत्तस्यमूलंनविद्यते ॥ अनाख्यत्वादनंतत्वाच्छुद्धत्वात्सत्यरूपिणः ॥ २५ ॥ सर्वेषांकर्मणामेवंवेदनंबीजमुत्तमम् ॥ स्वरूपंचेतयित्वांतस्ततःस्पंदःप्रवर्त्तते ॥ २६ ॥ मुनेचेतनमेवाद्यंकर्मणां बीजमुच्यते ॥ तस्मिन्सतिमहाशाखोजायतेदेहशाल्मलिः ॥ २७ ॥ एतच्चेतनशब्दार्थभावनावलितंयदि॥ तत्कर्मबीजतामेतिनोचेत्सत्परमंपदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और उस मायाशबलित चित्का भी मूल सब मूलोंका कारण ब्रह्महै, और मन बाणीका अविषय, अनन्त, शुद्ध, तथा सदसत्य एकरस होनेसे उस ब्रह्मका अन्यमूल नहीं है ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! सब कर्मोंका मूल विषयकी ओर उन्मुख चित्है, और वह चित् अहंकारके साथ अभिन्न तथा क्रियारूप स्पन्द होकर उसके फलके लिये प्रवृत्त होती है ॥ २६ ॥ हे मुने ! सब कर्मोंका आदि बीज जीव चेतनही है, क्योंकि उसके रहनेहीपर महाशाखायुक्त यह देहरूप शाल्मलि (सेमरका वृक्ष) उत्पन्न होताहै ॥ २७ ॥ यह जीव चेतन जब जीवचेतन अहंकारादिसे मिलित मैं चेतन कर्ताहूं, इसप्रकारकी भावनासे युक्त होताहै तब कर्मोंका बीज है इसके अभावमें वह सत् परमपद रूपही है ॥ २८ ॥

चितिश्चेतनशब्दार्थभावनावलितायदि ॥ तत्कर्मबीजतामेतिनोचेदाद्यंपरंपदम् ॥ २९ ॥ तस्माद्वेदनमेवेहकर्मकारणमाकृतेः ॥ यदेतत्कर्मणांप्रोक्तंत्वयैवोक्तंमुनीश्वर ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यराघवसूक्ष्मस्यकर्मणोवेदनात्मनः ॥ कस्त्यागःकिमनुष्ठानंयावद्देहमितिस्थितम् ॥ ३१ ॥ यच्चेत्यतेनुतेनाशु बहिरंतश्चभूयते ॥ सत्याकारमसत्यंवाभवत्वाहितविभ्रमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अर्थात् यह जीव चेतन अहंकारसे अभिन्न रहताहै तब वह कर्मोंकी बीजताको प्राप्त होताहै, और अहंकारसे भिन्न शुद्ध चिद्रूप भावना करनेसे आदि परमपदरूपही है ॥ २९ ॥ इसलिये हे भगवन् ! देहादिके अहंभाव की भावनाही कर्मोंका कारणहै, और हे मुनीश्वर ! जो मैंने कर्मोंका मूल कहाहै सो आपने जो मुझे उपदेश दियाथा उसके अनुसारही है ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे राघव ! जबतक यह देहरूप उपाधि है तबतक इस अहंकारके साथ जीवचेतनका अभेद भावनारूप इस सूक्ष्म कर्मका त्याग क्या है और क्या अनुष्ठान है ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर सत्य वा भ्रमसहित जिस दृश्यकी ओर यह जीवचेतन चेतताहै उसीका अनुभव करताहै ॥३२॥

नचेत्यतेचेत्तदलंभ्रमादस्माद्विमुच्यते ॥ भ्रमःसत्योस्त्वसत्योवाकिंविचारणयानया ॥ ३३ ॥ एतच्चेतनमेवांतर्विकसत्युद्भवभ्रमैः ॥ वासनेच्छामनःकर्मसंकल्पाद्यभिधात्मभिः ॥ ३४ ॥ प्रबुद्धस्याप्रबुद्धस्यदे

हिनोदेहगेहके ॥ आदेहंविद्यतेचित्तंत्यागस्तस्यनविद्यते ॥ ३५ ॥ जीवतांतस्यसंत्यागःकथंनामोपप द्यते ॥ केवलंकर्मशब्दार्थभावनाभावनेसति ॥ ३६ ॥

अर्थ—और यदि दृश्यको नहीं चेतता तो इस संसारभ्रमसे मुक्त होजाताहै वह भ्रम सत्यहो वा असत्य इस विचारसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! यह जीवचेतनही वासना, इच्छा, मन, कर्म तथा संकल्पादि नामधारि उत्पन्न भ्रमोंसे संसाररूपसे अपने भीतर विकसित होताहै ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! ज्ञानी हो वा अज्ञानी हो जब तक यह देह है तबतक चित्तका त्याग नहीं होसकता ॥३५॥ क्योंकि प्राणधारियोंका चित्तका त्याग कैसे होसकताहै किंतु यथाप्राप्त व्यवहारकालमें भी असंग अद्वितीय कूटस्थ चिन्मात्र मैं हूं, मैं शुद्ध चिद्रूप कुछ नहीं करता, इसप्रकार निष्क्रिय आत्मस्वभावकी स्थितिसे कर्मके शब्दार्थकी भावनाके न उत्पन्न होनेपर ॥ ३६ ॥

कर्माकर्मत्वमुत्सृज्यस्वयमेवभवत्यजम् ॥ असंभवतिसंत्यागेकर्मणोयःकरोतिहि ॥ ३७ ॥ इदंकर्त्तव्य तात्यागंनकिंचित्तेनतत्कृतम् ॥ बोधादिदंतासंवित्तेःस्वयंविलयनात्तुयत् ॥ ३८ ॥ जगतस्तंविदुस्त्या गमसंगंमोक्षमेवच ॥ वेदनंसतिसंवेद्येसर्गादावेववेद्यदृक् ॥ ३९ ॥ नोत्पन्नाविद्यतेनैवतस्मात्किंकेववे दनम् ॥ वेद्योन्मुखत्वंसंत्यज्यरूपंयद्वेदनस्यवै ॥ ४० ॥

अर्थ—कर्मअकर्मके विकल्पको त्यागकर जविचेतन स्वयं अज ब्रह्मरूप होजाताहै और कर्माकर्मके विकल्पके न त्यागनेपर ॥ ३७ ॥ जो शरीरमात्रसे विहित कर्मका त्याग करताहै उससे कुछ भी कर्मका त्याग नहीं किया और ज्ञानसे जो दृश्य प्रतिभासका स्वयमेव लय होनेसे ॥ ३८ ॥ जो जगत्का अत्यन्ताभाव होताहै उसीको असंग त्याग और मोक्ष भी कहते हैं और चिदाभास चेतनचेत्य (विषय) रहतेही रहताहै वेद्य (चेत्य) दृष्टि ॥ ३९ ॥ सृष्टिकी आदिमेंही यथार्थमें नहीं उत्पन्नहुई तब क्या और कहां वेदनहै औरवेद्य उन्मुखताको छोडकर शुद्ध जो ज्ञानका रूपहै ४०

नवेदनंतन्नोकर्मतच्छांतंब्रह्मकथ्यते ॥ चेतनंप्रोच्यतेकर्मसंसृत्याभ्रविकासितम् ॥ ४१ ॥ अचेतनंविद्व मोक्षंज्ञंप्रत्येवोपदेशगीः ॥ त्यागोहिकर्मणांतस्मादादेहंनोपपद्यते ॥ ४२ ॥ यैस्तुसंपूज्यतेकर्मतन्मूलंतै र्नमुच्यते ॥ मूलंस्वकर्मणःसंविन्मनसोवासनात्मनः ॥ ४३ ॥ साचादेहंसमुच्छेत्तुमृतेबोधान्नशक्यते॥ रामकेवलमेषांतःकर्ममूलकरापरा ॥ ४४ ॥

अर्थ—वह ज्ञान क्रियारूप नहीं है किंतु शांत ब्रह्मही है, और चिदाभास चेतन जो क्रियारूप (जाननेवाला) कहां यह बुद्धि आदिके व्यापारसे जलादिमें मेघके समान उन प्रतिबिंबित होके विकसित होरहाहै ॥ ४१ ॥ और यथार्थमें अनुभवीजन चिदाभास शून्यही चिद्रूपकी सत्ताको मोक्ष कहते हैं, और उनका उपदेश विवेकी शिष्यकेप्रति होताहै इसलिये हे रामजी ! जबतक यह देह है तबतक कर्मोंका त्याग नहीं होसकता, और ज्ञानसे उसका त्याग होनेसे सुखपूर्वक व्यवहार भी होताहै ॥ ४२ ॥ जो कर्मको पूजते हैं वे उसके मूलको नहीं त्यागते, और अपने कर्मका मूल वासनामय मनसंबंधि चिदाभासरूप चिद्है ॥ ४३ ॥ उस चिदाभास संवित्का उच्छेद जबतक देहहै तबतक ज्ञानके बिना कदापि नहीं होसकता; हे रामजी ! यही चिदाभास सम्वित् अन्यकर्मोंके मूल काम तथा वासना करनेमें तत्पर और श्रेष्ठहै ॥ ४४ ॥

सूक्ष्मसंविदसंवित्त्यास्वयत्नेननिकृंत्यते ॥ येनसंविदसंवित्त्यांस्वयत्नेनविचार्यते ॥ ४५ ॥ तेनसंसृतिवृ क्षस्यमूलकाषोवितन्यते ॥ ४६ ॥ अचेतनाकाशमनन्यदेकंतदेवमस्तित्विदमर्थहीनम् ॥ तद्व्योमरूपं यतएतदेवंनिरामयंचेतनसारमाहुः ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे कर्मबीजदाहयोगोपदेशो नाम द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—इसलिये जो जन आत्मज्ञान विचारसे चिद्रूपतत्वको चिदाभासको उसके स्वरूप च्युत करके शुद्ध चिद्रूप जानताहै, वह उस सूक्ष्म चिदाभास संवित्का प्रतिसंधान न करनेसे काटताहै ॥ ४५ ॥ और जो सर्वत्र चिदाभासको शुद्ध आत्मदृष्टिसे देखताहै वही संसाररूप वृक्षका मूलसे नाश करताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! जो चिदाभाससे रहित सजातीय विजातीय तथा स्वगतभेद शून्य दृश्यादि पदार्थोंसे रहितहै वही निरामय चिदाकाश ब्रह्म हम सब चेतनोंका सारहै ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे कर्मबीजदाहयोगोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

वेद्य (विषय) के सर्वथा बाधित होनेपर चिदाभास निष्क्रिय ब्रह्म जैसे विद्वानोंको अनुभूत होताहै वह उपदेश इस ३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ अवेदनंवेदनस्यमुनींद्रक्रियतेकथम् ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ यदातदैवसुकरंवेदनावेदनंस्वयम् ॥२॥ एतौवेदनशब्दार्थौरज्जुसर्पभ्रमोपमौ ॥ असत्याबुदितौविद्धिमृगतृष्णांभसासभौ ॥ ३ ॥ अबोधस्त्वन योःश्रेयान्बोधोदुःखायतेतयोः ॥ तस्मात्सदेवबुद्धयस्वमाऽसद्बुद्धयस्वराघव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! अवेदन (ज्ञानरहित) वेदन (ज्ञान) को कैसे कहते हो, क्योंकि असत्का भाव नहीं, और सत्का अभाव नहीं है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी! जब असत्का भाव नहीं है और सत्का अभाव भी नहीं है यह सिद्धांतहै तभी तो वेदनका अवेदन होना सुकरहै ॥ २ ॥ हे रामजी! वेदन शब्द तथा उसके अर्थके रज्जुमें सर्प वा मृगतृष्णामें जलके समान असत्य उदित समझो ॥ ३ ॥ हे रामजी! इन दोनोंका विस्मरण परम कल्याणहै, और उनका ज्ञानही दुःखके लिये है, अर्थात् यथार्थमें विषयका बाध होनेसे जब चेत्य वा वेद्य ज्ञेयरूप विषय न रहा तब उसका आत्माको चेतन, वेदन, वा ज्ञान भी नहीं कहसकते इसलिये तुम सत्को सत् जानो असत् न जानो ॥ ४ ॥

जंतोर्वेदनशब्दार्थबोधोदुःखकरःपरः ॥ निष्कृत्यज्ञप्तिशब्दार्थबोधंतिष्ठयथास्थितम् ॥ ५ ॥ सर्वविबो धावसरेज्ञप्तिशब्दार्थयोरिह ॥ निर्वाणोदयइत्येवपरमोमितिशाम्यताम् ॥ ६ ॥ शुभाशुभात्मकर्मस्वंना शनीयंविवेकिना ॥ तन्नास्तीत्यवबोधेनतत्त्वज्ञानेनसिध्यति ॥ ७ ॥ कर्ममूलनिकाषेणसंसारःपरिशाम्य ति ॥ सुविचारितमन्विष्टंयावत्कर्मनविद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—वेदनशब्द तथा उसके अर्थका ज्ञान जीवके दुःखके लिये है इसलिये केवल ज्ञप्ति शब्दार्थको समूल छेदन करके सुखपूर्वक स्थितरहो ॥ ५ ॥ हे रामजी! सबप्रकारके ज्ञान ज्ञाता तथा ज्ञेयके अवसरमें अर्थात् सब व्यवहारोंमें ज्ञप्तिशब्द तथा उसके अर्थसे ओम् कूटस्थ चिन्मात्रको लक्षित करके यही शुद्धआत्मा निर्वाणका उदयहै ऐसा निश्चय करके शांत स्थित होके सब व्यवहार करो ॥ ६ ॥ विवेकीको अपने शुभअशुभ कर्म नष्ट करना चाहिये, वह यथार्थमें नहीं है इस तत्वज्ञानसे सिद्ध होताहै ॥ ७ ॥ मूलसहित कर्मके शांत होनसे यह संसार शांत होजाताहै, और यह पूर्ण विचारसे देखा गयाहै कि फल, पुष्प, शाखा तथा उपशाखासहित कर्मवृक्ष नहीं है ॥ ८ ॥

चिद्रूपोबिल्वमज्ञांतश्चित्तसंज्ञांयदात्मनि ॥ करोतितद्यथाबिल्वान्नस्वल्पमपिभिद्यते ॥ ९ ॥ नयथास न्निवेशांतःसन्निवेशस्ततःपृथक् ॥ तथानभोर्थादिपृथङ्नपरस्मान्मनागपि ॥ १० यदेवांभस्तदेवांतर्द्र वत्वमपृथग्यथा ॥ चित्त्वमेवतथाचित्तंतद्रूपत्वात्तदर्थयोः ॥ ११ ॥ यथाद्रवत्वंपयसियथालोकश्चतेज सि ॥ तथाब्रह्मण्यतद्भावंचित्त्वंचित्तंचविद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और जिसप्रकार वेलका गूदा अपने भीतर बीजादिकी रचना करताहै और वे बीजादि उस विल्व (बेल) से किंचित् भी भिन्न नहीं है ऐसेही चिद्रूप बिल्वभी अपने आत्मामेंही चित्त संज्ञावाली क्रियाकारक आदि त्रिपुटी रचताहै वह उनसे किंचित् भी भिन्न नहीं है ॥ ९ ॥ और जैसे भूलोककी रचनाके अन्तर्गत जंबूद्वीपादि भूलोकसे भिन्न नहीं है ऐसे चिदाकाशकी सत्तासे भिन्न भुवनादि भी कुछ नहीं है ॥ १० ॥ जैसे जलके भीतर द्रवत्व उससे अभिन्न है ऐसेही चित्तादि भी चिद्रूपही है ॥ ११ ॥ जैसे जलमें द्रवत्व है और तेजमें प्रकाशहै ऐसेही ग्राहकत्व और स्मर्तृत्वादि धर्म शून्य चित्त भी ब्रह्ममें है ॥ १२ ॥

चेतनंकर्मतत्स्वांतर्न्निर्मूलंभ्रमयक्षवत् ॥ उदेत्यहेतुकंतच्चेन्नोदितंतन्नविद्यते ॥ १३ ॥ चेतनंकर्मतचैतद्बा तिस्पंदइवानिलः ॥ अहेतुकंयदात्मैतद्बहिरंतश्चसार्थधीः ॥ १४ ॥ विस्तारःकर्मणांदेहःसोहंतात्मास संस्तृतिः ॥ अचेतनानहंत्वेनशाम्यत्यस्पंदवातवत् ॥ १५ ॥ अचेतनादनंतात्माभूत्वाज्ञोप्युपलोपमः ॥ संसारमूलकषणंकुरुक्रोडमुखाग्रवत् ॥ १६ ॥

---

(१) प्रथम ४२ के श्लोकमें "अचेतनं विदुर्मोक्षम्" ऐसा वसिष्ठजीने कहाहै उसमें चेतन वा ज्ञानरहित इस अर्थको समझके रामजीका प्रश्नहै और चिदाभास रहित चेतन वसिष्ठजीका तात्पर्यहै ॥

अर्थ—चेताने अर्थात् पदार्थोंको प्रकाश करनेवाला यह चेतन शब्दका अर्थ निष्क्रिय कूटस्थमें भ्रमसिद्ध मिथ्या यक्षके समान है, और जो बिना हेतु उदय होताहै वह नहीं है ॥ १३ ॥ चेतनकी प्रकाशनरूप क्रिया वायु और उसके संचलनके समान अभिन्न हैं, इसकारण बाह्यअभ्यन्तर अर्थात् जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्तिमें जो पदार्थोंकी बुद्धि है वह आत्मरूपही है ॥१४॥ कर्मोंका विस्तार यह देह है वह अहंकारात्मक देह और यह संसार चिदाभासको छोडके शुद्धआत्माके ज्ञानसे ऐसे शान्त होजाताहै जैसे वायुका संचलन ॥ १५ ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिदाभासका उच्छेद करके अनंत निश्चल ब्रह्मरूप होके मूलसहित संसारका ऐसे उच्छेद करो जैसे वाराहके मुखका अग्रभाग मोथ आदिका ॥ १६ ॥

कर्मबीजकलाकोशत्यागएवंकृतोभवेत् ॥ नान्यथाराघवांतस्तेशांतमस्तुसदास्थितम् ॥ १७ ॥ कर्मबीजकलात्यागेत्वेतस्मादितरात्मनि ॥ अविद्यमानेजीवस्यतज्ज्ञैर्विदितवस्तुभिः ॥ १८ ॥ शांतैर्नगृह्यतेकिंचिन्नचसंत्यज्यतेपिच ॥ त्यागादानेनजानंतिततस्तैःशांतमानसम् ॥ १९ ॥ आकाशशून्यहृदयैर्ज्ञैर्यथास्थितमास्यते ॥ क्रियतेचयथाप्राप्तंनाप्येतैःक्रियतेपिच ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी! उक्तरीतिसेही कर्मबीज कलाके कोशका त्याग होताहै, अन्यथा नहीं इसलिये तुमारा अंतःकरण चिदाभासका उच्छेद करके सदा शांत स्थित रहै ॥ १७ ॥ इसप्रकार कर्मबीज कलाके त्याग होनेपर ब्रह्मसे भिन्न चिदाभास तथा इस दृश्यप्रपंचके मिथ्या होनेपर तत्वज्ञानी तथा शांत महात्माजन ॥ १८ ॥ न तो कुछ ग्रहण करते हैं और न त्यागते हैं क्योंकि वे त्याग और ग्रहणका अनुभव नहीं करते किंतु शांत चित्त ॥ १९ ॥ आकाशके तुल्य अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं, और प्रवाहपतित कार्य्योंको करतेहुये भी वे कुछ नहीं करते॥ २० ॥

प्रवाहपतितंसर्वस्पंदतेशांतमानसम् ॥ तेषांकर्मेंद्रियाण्येवमर्द्धसंसुप्तबालवत् ॥ २१ ॥ रसेनिर्वासनेलब्धेरसाअप्यतिनीरसाः ॥ नांतस्तिष्ठंतिनबहिरज्ञाननिपुणाइव ॥ २२ ॥ कर्मणोवेदनंत्यागःसचसिद्धःप्रबोधतः ॥ अवस्तुनेतरेणार्थःकिंकृतेनाकृतेनवा ॥ २३ ॥ अवेदनमसंवेद्यंयदवासनमासितम् ॥ शांतंसममनुल्लेखंसकर्मत्यागउच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—और जैसे नदीके प्रवाहमें पतित तृणादि चलते हैं ऐसेही अर्द्धसुप्त बालकके तुल्य उनकी कर्मेन्द्रियां मनके विकारके विना भी चेष्टा करती हैं ॥ २१ ॥ निरतिशय आनंदरूप ब्रह्मके प्राप्त होनेपर भोगकी ओर झुकी हुई करण इन्द्रियां निज २ विषयोंके प्रकाश करनेमें असमर्थके तुल्य होके न बाहर स्थित रहती हैं और न भीतर ॥ २२ ॥ पूर्वोक्त ज्ञानही कर्मका त्यागहै और ब्रह्मके ज्ञानसे शुद्ध होताहै और उससे भिन्न जीवनके अदृष्टसे प्राप्त शरीर इन्द्रियादि की चेष्टा करने वा न करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥२३॥ चिदाभास तथा विषयज्ञानसे रहित, शांत तथा कृत अकृतके प्रतिसधानसे रहित जो वासना रहित शुद्ध आत्माकी स्थितिहै उसीको कर्मत्याग कहतेहैं ॥ २४ ॥

अपुनःस्मरणंसम्यक्चिरविस्मृतकर्मतत् ॥ स्थितंस्तंभोदरसमंसकर्मत्यागउच्यते ॥ २५ ॥ अत्यागंत्यागमितियेकुर्वतेव्यर्थबोधिनः ॥ साभुंक्तेतान्पशूनज्ञान्कर्मत्यागपिशाचिका ॥ २६ ॥ समूलकर्मसंत्यागेनैवयेशांतिमास्थिताः ॥ नैवतेषांकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ २७ ॥ समूलमलमुद्धृत्यकर्मबीजकलामिति ॥ नित्यमेकसमाधानास्तज्ज्ञास्तिष्ठंत्यतःसुखम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसमें चिरकालके कियेकर्मके समान संसारके पदार्थोंका स्मरण न हो ऐसी पाषाणके खंभेके उदरके सदृश निश्चल आत्माकी जो स्थिति है वही कर्मत्याग कहाताहै ॥ २५ ॥ जो जन मूलत्यागके विना केवल कर्मेन्द्रियोंका संयममात्र त्याग करते हैं उन अज्ञ पशुओंको कर्मत्यागरूप पिशाचिका खा जाती है ॥ २६ ॥ जो समूल कर्मत्यागसे यथाप्राप्त व्यवहार करतेहुये शांत हैं नउके इस संसारमें कोई कर्म करने वा न करनेसे कुछभी प्रयोजन नहीं है ॥ २७ ॥ विवेकी जन मूलसहित कर्म बीजकलाको त्यागकर एक आत्मामें समाहित होकर सुख पूर्वक स्थित रहते हैं ॥ २८ ॥

प्रवाहपतितेकार्येईषत्स्पंदाअतन्मयाः ॥ घूर्णमानाइवक्षीबायंत्रसंचारिताइव ॥ २९ ॥ मोक्षलक्ष्म्याविलासिन्याव्यसनोपहताइव ॥ अर्द्धसुप्तप्रबुद्धाभाःकामप्यवनिमागताः ॥ ३० ॥ यत्समूलंपरित्यक्तंतस्यकर्मितिकथ्यते ॥ अमूलकापस्त्यागोयःसशाखालवनोपमः ॥ ३१ ॥ अकृष्टमूलशाखाग्रलवनःकर्मपादपः ॥ पुनःशाखासहस्रेणद्रुःखायपरिवर्धते ॥ ३२ ॥

अर्थ—और यथा प्राप्त वर्णाश्रमके कार्योंकी उनमें आसक्त न होकर मदोन्मत्त वा यंत्रसे संचालित काष्ठादिकी प्रतिमाके तुल्य ॥ २९ ॥ मोक्षकी लक्ष्मीरूप विलासिनी स्त्रीसे युक्त, व्यसनोंमें अनासक्त, तथा अर्द्धसुप्त बालकके

सदृश चेष्टा करतेहुये पंचमादि भूमिकामें प्राप्त विवेकी जन स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ जो मूलसहित त्याग है उसीको त्याग कहते है, और मूलके बिना जो त्याग है वह शाखा छेदनके तुल्य है ॥ ३१ ॥ मूलके उच्छेद बिना शाखाके अग्रभागमें छिन्न यह कर्मरूप वृक्ष पुनः सहस्त्रों शाखाओंसे दुःखके लिये बढताहै ॥ ३२ ॥

अवेदनात्मनातेनकर्मत्यागोंगसिद्ध्यति ॥ क्रमेणतेतरेणातएतदेवाहरन्भव ॥ ३३ ॥ येत्वेवंकर्मसंत्यागमकृत्वान्यत्प्रकुर्वते ॥ अत्यागंत्यागरूपात्मगगनंमारयंतिते ॥ ३४ ॥ बोधात्मकतयाकर्मत्यागःसंपद्यतेस्वयम् ॥ दग्धबीजानिरिच्छोच्चैरक्रियैवभवेत्क्रिया ॥ ३५ ॥ बुद्धींद्रियेहितंकर्मसफलंरसभावनात् ॥ वेष्टितव्यंकुदाम्नेवस्पंदोन्योनिष्फलोंगजः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! चिदाभासके उच्छेदसे कर्मका त्याग सिद्ध होताहै, इसलिये पूर्वोक्त कर्मसेही तुम अभ्यास करते हुये स्थित रहो ॥ ३३ ॥ जो इसप्रकारके कर्म त्यागको न करके अन्य हठादि इन्द्रिय आदि संयममात्र करते हैं वे अत्यागको त्यागरूप जानकर मानो आकाशका ताडन करते हैं ॥ ३४ ॥ आत्मज्ञान होनेसे यथार्थ कर्म त्याग होताहै, क्योंकि वासनारहित जीवन्मुक्तोंकी महान् आरंभवाली क्रिया अक्रियाहीके तुल्य है ॥ ३५ ॥ बुद्धिसहित इंद्रियोंसे भोगकी आसक्तिमें रसकी भावनासे कर्म सफल ऐसे होताहै जैसे रज्जुसे वेष्टित कूपके काष्टसे जलके निःसारणसे धान्यादिकी संपत्ति ॥ ३६ ॥

कर्मत्यागेस्थितेबोधाज्जीवन्मुक्तोविवासनः ॥ गृहेतिष्ठत्वरण्येवाशाम्यत्वभ्येतुवोदयम् ॥ ३७ ॥ गेहमेवोपशांतस्यविजयंदूरकाननम् ॥ अशांतस्याप्यरण्यानीविजनासजनापुरी ॥ ३८ ॥ परिशांतमतेर्ज्ञस्य स्वप्रेप्यप्राप्तमानवा ॥ निर्मलावितताहृद्याहृद्येववनभूमिका ॥ ३९ ॥ ज्ञस्यनिर्वाणदृश्यस्यनिस्पंदार्थानि भोमयी ॥ शांताशेषविशेषार्थाजगदेवमहाटवी ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्ञानसे कर्मोंके त्याग होनेसे वासनारहित जीवन्मुक्त पुरुष गृहमें रहै वा बनमें, धनादिसे युक्त हो वा राहित हो परन्तु वह समानहीं है ॥ ३७ ॥ ज्ञानद्वारा शांत पुरुषको गृहही दूरस्थवनहै, और अशांत पुरुषके लिये जन शून्य महावनस्थली भी अनेक जन संयुक्त नगरी है ॥ ३८ ॥ शांत बुद्धि ज्ञानीके लिये स्वप्रभी मनुष्य समागमसे शून्य, निर्मल, विशाल और अति रमणीय बनकी भूमि हृदयमेंही विद्यमानहै ॥ ३९ ॥ ज्ञानाग्निसे शांत दृश्यवाले ज्ञानी पुरुषके यह जगत्ही पदार्थोंकी चेष्टासे शून्य आकाश (चिदाकाश) मयी, और संपूर्ण विशेष पदार्थोंकी शांतिसहित महाटवी है ॥ ४० ॥

अनंतसंकल्पवतोहृदयस्थजगत्स्थिते ॥ हृद्येवावर्त्ततेभूमिरज्ञस्याखिलसागरा ॥४१॥ जनस्याज्ञस्यदीनस्यविविधद्वंद्वसंकटा ॥ सारंभाविविधाकाराहृद्येवग्राममंडली ॥ ४२ ॥ विविधकार्यविकारदशामयीस पुरपत्तनमंडलपर्वता ॥ मुकुरकोशइवप्रतिबिंबिताहृदिभवत्यमलामलिनेमही ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दृशोपशमयोगोपदेशो नाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—अनेक संकल्पयुक्त, तथा हृदयमें जगत्की स्थितिको धारण करनेवाले अज्ञानी पुरुषके हृदयमेंही सब समुद्रोंसहित पृथिवी विद्यमान है ॥ ४१ ॥ तथा अज्ञानी दीन जनके लिये विविधप्रकारके सुखदुःखादि द्वंद्वोंसे व्याप्त, अनेक कार्य्योंके आरंभसहित, तथा अनेक प्रकारके आकारोंसे संयुक्त ग्रामोंकी मंडली हृदयमेंही है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! मलिन हृदयमें विविधप्रकारके अवश्य कर्तव्य कार्योंके विकारसहित दशामयी, नगर, महा नगर अनेक देश देशांतर तथा पर्वतोंसहित यह निर्मल पृथिवी ऐसे प्रतिबिंबित होती है जैसे दर्पणके कोशमें ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दृश्योपशमयोगोपदेशो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस ४ के सर्गमें अहंताही संसारका मूलहै, और आत्मज्ञानसे अनहंभावना करनेसे उसका त्याग होताहै इत्यादि विषय वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साहंतादिजगच्छांतौबोधेसंवित्कलात्मनि ॥ संशांतदीपसंकाशस्त्यागःसिद्ध्यति नान्यथा ॥ १ ॥ नत्यागःकर्मसंत्यागोबोधस्त्यागइतिस्मृतः ॥ ॥ अजगत्प्रतिभैकात्मायोनहंतादिर

व्ययः ॥ २ ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिनिःस्नेहदीपवत् ॥ शांतेपरमनिर्वाणेप्रबोधात्मेतिशिष्यते ॥ ३ ॥ अयंसोहमिदंतन्मेशांतमित्येवयस्यनो ॥ नज्ञानंतस्यनोशांतिर्नत्यागोनचनिर्वृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! बोधरूप संवित् कलाके उदयसे अहंतासहित जगत्के शांत होनेसे स्नेहरहित निर्वाण दीपके तुल्य त्यागसहित होताहै अन्यथा नहीं ॥ १ ॥ हे रामजी ! बोधही मुख्य त्याग है न कि कर्मत्याग और जगत् प्रतिमा शून्य शेष एक अविनाशी तथा अहंतारहित आत्मा मोक्ष है ॥ २ ॥ यह दृश्य देह मैं हूं और शरीरसम्बन्धी गृहधनादि मेरा है, इत्यादि जगत्के तैलरहित दीपके समान शान्त होनेपर परम निर्वाण बोधरूप आत्माही शेष रहताहै ॥ ३ ॥ और यह शरीर मैं हूं वह गृहादि मेरा है इत्यादि संसार जिसका नहीं शांत है उसको न ज्ञान है, न शांति है, न त्याग है और न मोक्षरूप सुख है ॥ ४ ॥

ममेदमयमेवाहमित्येतावतियःक्षयः ॥ बोधात्माशिवमाशांतंतस्मादन्यन्नविद्यते ॥ ५ ॥ अहमंशेविदा क्षीणेसर्वमेवक्षयंगतम् ॥ नकिंचिच्चकचित्क्षीणंनिर्वाणैकघनंस्थितम् ॥ ६ ॥ अहंविदनहंविस्वादेवशा म्यत्यविघ्नतः ॥ एतावन्मात्रसाध्येयंकिमियंकदर्थना ॥ ७ ॥ अहंनाहमितिभ्रांतिर्नचचित्त्वाद्दतेस्तिसा चित्त्वंचाकाशविशदमतःकैषाभ्रमस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह धन पुत्रादि मेरा, यह शरीर इंद्रियादि मैं इत्यादि जगत सब शान्त होगया, तब बोधरूप, सर्वथा शान्त आत्माही शेष रहताहै उससे पृथक् और कुछ नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! तत्वबोधसे अहम् (देहाभिमान) अंशके शान्त होनेपर सब ममताका स्थान शान्त होजाताहै, और यथार्थमें कुछभी कहीं नष्ट नहीं हुआ क्योंकि सर्वत्र निर्वाणघन एक आत्माही स्थित है ॥ ६ ॥ हे रामजी अहंकारकी भावना करनेवाला जीव अनहंभावनामात्रसे निर्विघ्न शान्त होजाता है, और इतनेही साधनसे मुक्ति सिद्ध होती है इसके लिये अन्य साधनोंका क्लेश क्यों ॥ ७ ॥ मैं देहादि नहीं किंतु सिद्धचिन्मात्रहूं इस बुद्धिकोभी अध्यासमात्रसे यदि द्वैत भ्रम बुद्धि कहो तो वह चित्से भिन्न नहीं है, क्योंकि चित्स्वरूप आकाशवत् विशाल और निर्लेप है उसमें यह भ्रांति कहां रहसकती है ॥ ८ ॥

नभ्रमोभ्रमणंनैवनभ्रांतिर्भ्रामकोस्तिवा ॥ अनालोकनमेवेदमालोकान्नेदमस्तिते ॥ ९ ॥ विद्धिचिन्मात्र मेवेदमसद्रूपोपमंततम् ॥ तेनालंमौनमास्वैवंसर्वंनिर्वाणमात्रकम् ॥ १० ॥ येनैवाशुनिमेषेणत्वहमित्ये वचेतति ॥ तेनैवनाहमित्येवचेतित्वाशुनशोच्यते ॥ ११ ॥ अहंभावनभोर्थेननिर्वाच्यारूढबाणवत् ॥ अजस्रमाशुवाक्षीणंतिष्ठावष्टब्धतत्पदः ॥ १२ ॥

अर्थ—यथार्थमें न भ्रम है, न भ्रमण है, न भ्रांति है और न भ्रामक है, यह सब अज्ञानसे सिद्ध है ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होनेपर कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! तुम असत्रूपके समान व्याप्त चिद्रूपही सब जानो, सब निर्वाण आत्ममात्र जानके मौन स्थित रहो ॥ १० ॥ जिस २ क्षणमें शरीरआदिमें अहंबुद्धि उदय होती है शीघ्र उसी २ क्षण यह मैं नहीं हूं इस अनहंभावनासे यह जीव पुनः नहीं शोचता ॥ ११ ॥ हे रामजी ! निरन्तर अनहंभावनाके अभ्याससे अहंभावनाको आकाशके पुष्पके तुल्य सवथा मिथ्या करके रणमें सदा अपराङ्मुख अर्जुनके बाणके तुल्य दृढतापूर्वक ब्रह्मपदका अवलम्बन करके स्थित रहो ॥ १२ ॥

सनभोर्थामहंतांत्वंचेतन्नेवमनारतम् ॥ सर्वभावैरनारूढोभवतीर्णभवार्णवः ॥ १३ ॥ स्वभावमात्रवि जयेस्वयंयस्यनवीरता ॥ तस्योत्तमपदप्राप्तौपशोर्ब्रूहिकथैवका ॥ १४ ॥ षड्वर्गोनिर्जितःपूर्वंयेनोत्तमवि दास्वतः ॥ भाजनंसमहार्थानांनेतरोनरगर्दभः ॥ १५ ॥ यस्यस्वांतर्मनोवृत्तिर्जीयमानाजिताथवा ॥ वि षयःसविवेकानांसपुमानितिकथ्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अहंभावनाको निरन्तर आकाशके पुष्पके तुल्य जानते हुये सबसे अप्राप्य तुम संसारसमुद्रके पार होजाओ ॥ १३ ॥ स्वभाव सिद्ध अहंकारमात्रके जीतनेमें जिसकी वीरता नहीं हैं, कहो उस पशुकी परमपदकी प्राप्तिकी क्या कथा होसकती है ॥१४॥ जिस उत्तम ज्ञानीने कामक्रोधादि अपने छः शत्रुओंको जीतलिया है वह मुक्ति आदि महान् अर्थोंका पात्र है न कि अन्य मनुष्यरूप गर्दभ ॥१५॥ जिसके अन्तःकरणमें मनकी वृत्तिके जीतनेका उपाय होरहा है अथवा जिसने उसे जीतलिया है वही विवेकादिका पात्र है, और पुरुष कहानेके योग्य है१६

अर्थोद्दषदिवांभोधौयोयआपततित्वयि ॥ तस्मादेवपलायस्वनाहमित्येवभावयम् ॥ १७ ॥ नाहमस्तीति बुध्वापिसोपपत्तिकमप्यलम् ॥ जानानोज्ञप्तिमात्रंचकिमज्ञइवमुह्यसि ॥ १८ ॥ नज्ञेयमर्थतोस्तीहहेम्नीव कटकादिता ॥ भ्रांतिमात्राद्दतेसाचशाम्यत्यस्मरणेनते ॥ १९ ॥ योयोभावउदेत्यंतस्त्वयिस्पंदइवानि ले ॥ नाहमस्मीतिचिद्दृत्त्यातमनाधारतांनय ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे आकाश वा समुद्र अपनेमें फेंके हुये पदार्थोंमें असंग रहताहै ऐसेही अनहंभावना करते हुये तुम सबमें असंग रहो ॥ १७ ॥ शरीरादि मैं नहीं हूं इस अनहंभावनाको जानकर, और उपपत्ति सहित चिद्रूप सुखको अनुभव करतेहुये भी तुम क्यों मोहको प्राप्त होते हो ॥ १८ ॥ सुवर्णमें कटकादिके तुल्य आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ तुमको ज्ञेय नहीं है, यह सब केवल भ्रांति है वह भी उनके विस्मरण अर्थात् आत्मज्ञानसे शांत होजायगी ॥ १९ ॥ हे रामजी ! वायुमें संचलके तुल्य जो २ वृत्ति तुमारे अन्तःकरणमें उदय हो, चिदाकार वृत्तिसे वह २ मैं नहीं हूं इसप्रकार भावनासे उसे निराधार कर दो ॥ २० ॥

लोभोलज्जामदोमोहोयेनादावितिनोजिताः ॥ निरर्थकमनर्थेस्मिन्सकिमर्थप्रवर्त्तते ॥ २१ ॥ अहंत्वंपव नेस्पंदइवयस्त्वयिसंस्थितम् ॥ परमात्मनितन्नान्यदेतत्स्पंदइवानिले ॥२२॥ असर्गसंविदासर्गःपरेऽस्तो तिविराजते ॥ संनिवेशविशेषेणङ्गस्थौपिहिशोभते ॥ २३ ॥ परमात्मातुनोदेतिनास्तंयातिकदाचन ॥ नचास्मादन्यदस्तीतिकोभावोऽभावएववा ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! लोभ, लज्जा, मोह तथा क्रोधादिको जिसने प्रथमही नहीं जीतलिया उस शठका इस अध्यात्मज्ञानमें मनोरथ निरर्थक है वह यथेष्टा चरणादि अनर्थ करनेमें क्यों प्रवृत्त होताहै ॥ २१ ॥ हे रामजी ! पवनमें संचलके तुल्य जो तुममें अहंता स्थितहै वह जब तुम बोधसे अपनेको परमात्मा समझोगे तब तुमसे ऐसे नहीं भान होगी जैसे वायुसे उसका संचलन ॥ २२ ॥ कूटस्थ अद्वैत आत्माके ज्ञानसे परमात्मामें लीन यह सृष्टि ऐसे शोभित होती है जैसे कण्ठमें धारित पुष्पमालामें रचित सर्पादि ॥२३॥ परमार्थमें परमात्मामें यह संसार न कभी उदय हो और न अस्त हो क्योंकि सबके बाधके अधिष्ठानरूप परमात्मासे भिन्न यह संसार नहीं है तब भावअभावकी क्या कथा२४

परंपरेपूर्णपूर्णेशांतंशांतेशिवंशिवे ॥ इत्येवमात्रंविततंनाहंनचजगन्नधीः ॥ २५ ॥ अनिर्वाणेविनिर्वाणं शांतंशांतेशिवेशिवम् ॥ निर्वाणमप्यनिर्वाणंसनभोर्थंनवापितत् ॥ २६ ॥ शस्त्रघाताःप्रसह्यंतेसह्यंतेव्या धिवेदनाः ॥ नहमित्येवमात्रस्यसहनेकाकदर्थना ॥ २७ ॥ जगत्पदार्थसार्थानामहमित्यक्षयोंकुरः ॥ तस्मिन्निर्मूलतांयातेजगन्निर्मूलतांगतम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पर, पूर्ण, शांत, तथा शिवमात्र रूपही है उसमें अहं तथा जगत्की बुद्धि कहां ? ॥ २५ ॥ अन्धकार शून्य सूर्यमें रात्रिकी निवृत्तिके तुल्य निर्वाण रहित शांत तथा शिवरूप ब्रह्ममें यह निर्वाणरहित, शांत तथा शिवरूप अविद्यासहित जगत्का बाधहै इससे ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्तिरूप निर्वाणसे द्वैत नहीं सिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ मनुष्य शस्त्रोंके आघात तथा व्याधियोंकी पीडा सहते हैं तो शरीर इंद्रियादि मैं नहीं हूं इस अनहंभावनामात्रके सहनमें उसको कौनसा क्लेश है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जगत्के सम्पूर्ण पदार्थ समूहोंका देहादिमें अहंकारही अविनाशी अंकुर है सो बोधसे उसके निर्मूल होनेपर यह संसार आपही निर्मूलताको प्राप्त है ॥ २८ ॥

बाष्पेणेवाहमर्थेननिःसारेणापिसारवत् ॥ व्यामलःपरमादर्शस्तच्छांतौसंप्रसीदति ॥ २९ ॥ अहमर्थः परेवायौस्पंदस्तत्प्रशमेतुतत् ॥ अनिर्देश्यमनाभासमनंतमजमव्ययम् ॥ ३० ॥ अहमर्थःपुरोद्रव्यप्रति बिंबप्रदश्चिति ॥ तच्छांतौसानिराभासमनंतमजमव्ययम् ॥ ३१ ॥ अहमर्थांबुदेक्षीणेपरमार्थशरन्नभः॥ परयानंतयालक्ष्म्यास्वच्छयाच्छंविराजते ॥ ३२ ॥

अर्थ—परमात्मारूप स्वच्छदर्पण अहंकाररूप मुखके निःसारभी बाष्परूप मलसे व्याप्त भान होताहै; और उस अंहकाररूप निसार बाष्पके शांत होनेसे स्वच्छआत्मा प्रसन्न होताहै ॥२९॥ परमात्मारूप वायुमें अहंकाररूप स्पन्द है उसके शांत होनेपर अनिर्देश, चिदाभासरहित, अज, और अविनाशी चिदाकाशमात्र शेष रहताहै ॥ ३० ॥ अहंकार संमुख स्थित पदार्थोंका चेतनमें प्रतिबिंब देताहै उसके शांत होनेपर, वह चित् अनंत अविनाशी परमात्मरूपहै ॥३१॥ हे रामजी ! अहंकारार्थरूप मेघके शांत होनेपर आत्मारूप शरत्कालका आकाश मोक्षरूप स्वच्छ लक्ष्मीसे शोभित होताहै ३२

अहमर्थमलोन्मुक्तमव्यक्तंताम्रमंगचेत् ॥ तत्परंपरमाभाससंपन्नंहेमकांतिमत् ॥ ३३ ॥ यथानिरभिधा र्थश्रीभजत्यव्यपदेश्यताम् ॥ तथानहंताहंतेयंब्रह्मत्वमधिगच्छति ॥ ३४ ॥ अस्त्यहंत्वेस्थितंब्रह्मसना मेवपदार्थवत् ॥ शांतवत्सदिवाभासंतद्वत्सव्यपदेशवान् ॥ ३५ ॥ अहमर्थोजगद्बीजंयदिदग्धमभाव नात् ॥ तदहंत्वंजगद्बंधइत्यादेःकलनैवका ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! जैसे ताम्रमलसे विनिर्मुक्त यह जीव अपने परमप्रकाशमय ब्रह्मरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ जैसे समुद्रमें लीन सैंधवादि पदार्थोंकी शोभा अनिर्वचनीय समुद्ररूपताको प्राप्त होती है, ऐसेही ब्रह्ममें लीन अहंता और अनहंता ब्रह्मरूपताको प्राप्त होती हैं ॥ ३४ ॥ अहंता अचित् आदि अल्पपदार्थोंकी निवृत्तिके लिये

नामयुक्त पदार्थोंके सदृश ब्रह्मचित् इत्यादि कल्पित नामवाला शांत प्रकाशमय वह आत्मा अहंतामें स्थितहै ॥ ३५ ॥ यदि भावनामूल अज्ञानके नाशसे अहमर्थरूप जगत्का बीज दग्ध होगया तो जगत्, तथा बंध इत्यादिकी कल्पनाही क्या ३६

सद्ब्रह्मशिवमात्मेतिपरेनामकलंकिता ॥ उदेत्यहंताकुंभत्वादिवमृद्धातुविस्मृतिः ॥ ३७ ॥ अहमर्थादियं बीजात्सत्ताबिंबलतोत्थिता ॥ यस्यांजगंत्यनंतानिफलान्यायांतियातिच ॥ ३८ ॥ साद्रयब्ध्युर्वीनदीसेयंरूपालोकैषणादिका ॥ अहमर्थस्यमरिचबीजस्यांतश्चमत्कृतिः ॥ ३९ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ इत्यामोदोहमर्थोग्रकुसुमस्यविकासिनः ॥ ४० ॥

अर्थ—सत्, ब्रह्म, शिव, आत्मा, (अर्थात् त्रिकालाबाध्य, अपरिच्छिन्न, निरतिशय आनन्दमय, और अपरोक्ष चित् इत्यादि स्वभावयुक्त आत्मामें पूर्वोक्त स्वभावसे संकुचित नामसे कलंकित अहंता ऐसे उदय होती है जैसे परिच्छिन्न घटाकारसे मृत्तिकाकी विस्मृति ॥ ३७ ॥ इस अहमर्थरूप बीजसे यह दृश्यकी सत्तारूप बिंबित लता आविर्भूत है, उसमें अनन्त जगत्रूप फल उत्पन्न और नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥ इस अहमर्थरूप मरिचके बीजके भीतर, पर्वत, समुद्र, पृथिवी, नदियोंसहित, तथा विषय सहित बाह्य आभ्यन्तर इंद्रियादियुक्त चमत्कृति उदय होतीहै॥३९॥ अंतरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, और सब दिशा, ये सब अहंतारूप विकसित पुष्पके सुगंधहैं॥४०॥

अहमर्थःप्रविसृतःप्रकटीकुरुतेजगत् ॥ सद्रूपालोकमननंप्रवृत्तइववासरः ॥ ४१ ॥ प्रवृत्तेनदिनेनार्थः प्रकटीक्रियतेयथा ॥ असज्जगदहंत्वेनक्षणान्निर्मीयतेतथा ॥ ४२ ॥ अहमित्यर्थदुस्तैललवोब्रह्मणिवारिणि ॥ प्रसृतोयत्तदाश्वेतत्रिजगच्चक्रकंस्थितम् ॥ ४३ ॥ उन्मेषमात्रेणाहंताजगंत्यनुभवत्यहो ॥ ननिमेषेणदृगिवसत्यानीत्यप्यसंत्यलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—आत्मामें समष्टि अहंकार उदय होतेही जगत्को ऐसे रचताहै जैसे दिवस आरंभ होतेही रूपादिका प्रकाश करताहै ॥ ४१ ॥ जैसे दिन आरंभ होतेही पदार्थोंको प्रकट करताहै, ऐसेही अहंकार भावनामात्रसे क्षणभरमें जगत्को रचताहै ॥ ४२ ॥ ब्रह्मरूपजलमें अहंकाररूप दुष्ट तैलका बिंदु पडतेही विस्तृत होके शीघ्र त्रिलोकी चक्राकारसे स्थित होताहै ॥ ४३ ॥ उन्मेषमात्रसे यह अहंता मिथ्या भी अनन्त जगत्को ऐसे अनुभव करती है जैसे खुला (न कि मून्दा) दुष्टनेत्र ॥ ४४ ॥

अहमर्थेप्रविसृतेसंसारोह्यनुभूयते ॥ नांतर्भूयपरिक्षीणेलोचनस्येवतारके ॥ ४५ ॥ अहमंशेनिरंशत्वंनीतेशाश्वतसंविदा ॥ शाम्यतीयमशेषेणसंसारमृगतृष्णिका ॥४६॥ स्वसंविद्भावनामात्रसाध्येऽस्मिन्वरवस्तुनि ॥ सिद्धमात्रात्मनिस्वैरंमाखेदंगच्छमाभ्रमीम् ॥ ४७ ॥ स्वयत्नमात्रसंसाध्यादसहायादिसाधनात् ॥ अनहंवेदनान्नान्यच्छ्रेयःपश्यामितेनघ ॥४८॥ विस्मृत्याहंत्वमास्वप्रविसृतविभवःपूरिताशेषविश्वो विष्वक्शैलांतरिक्षक्षितिजलधिमरुन्मार्गरूपोमलात्मा ॥ स्वस्थःशांतोविशोकःकरणमलककावर्जितो निष्प्रपंचोनिःसंचारश्चरात्मासकलमसकलंचेतिसिद्धांतसारः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहंतानिरासोनामचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—जैसे फैली हुई नेत्रोंकी ज्योति पदार्थोंको देखती है ऐसेही विस्तृत होनेसे यह अहंकार संसारका अनुभव करताहै ॥ ४५ ॥ नित्य परमात्माके ज्ञानसे अहंकारके सर्वथा नष्ट होनेपर यह संसाररूप मृगतृष्णा सर्वथा शांत होजाती है ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! स्वप्रकाश चिन्मात्रकी भावनामात्रसे साध्य स्वतः सिद्ध आत्मरूप श्रेष्ठवस्तुकी प्राप्तिमें खेद वा अहंभावनादि भ्रमको न प्राप्तहो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! अन्य सहायक साधनके बिनाही निज यत्न मात्रसे अनहं (ब्रह्म) भावनासे अन्य तुमारा कल्याणकारक मैं नहीं देखता ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! प्रथम व्यष्टि अहंभावको विस्मृत होके, चारोओरसे पर्वत, अन्तरिक्ष, पृथिवी, समुद्र, वायु तथा उसके मार्ग आकाश होके, इसप्रकार निज निर्मल सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त समष्टि भावसे स्थितरहो, इसके पश्चात् चराचर सब जगत् ब्रह्मरूपही है, इसप्रकार सब प्रपंचका बाध करके निष्प्रपंच, स्वस्थ, शान्त, शोकरहित, और अन्तःकरणके मलोंसे वर्जित शुद्ध आत्मरूपसे स्थितरहो, क्योंकि अध्यारोप तथा अवादन्यायसे शेष शुद्धआत्माका ज्ञानही सब वेदान्तोंका सिद्धान्त सारहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहंता निरासोनाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

जितेन्द्रिय पुरुषोंमे वेदान्तादिशास्त्रोंका अध्ययन सफल होताहै न कि अजितेन्द्रियों इसी विषयमें वसिष्ठजी भुशुंडकी कही हुई कथा कहाहै यह विषय इस ५ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वभावंस्वंविजित्यादाविंद्रियाणांसचेतसाम् ॥ प्रवर्त्ततेविवेकेयःसर्वंतस्याशुसिध्यति ॥ १ ॥ स्वभावमात्रंयेनांतर्नजितंदग्धबुद्धिना ॥ तस्योत्तमपदप्राप्तिःसिकतातैलदुर्लभा ॥ २ ॥ शुद्धेऽल्पोप्युपदेशोहिनिर्मलेतैलबिंदुवत् ॥ लगत्युत्तानचित्तेषुनादर्शइवमौक्तिकम् ॥ ३ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ ममपूर्वंभुशुंडेनकथितंमेरुमूर्द्धनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे राम! विषयोंकी ओर दौडनेवाली मनसहित सब इन्द्रियोंके स्वभावको जीतकर जो शास्त्रमें प्रवृत्त होता उसका सबकुछ शीघ्र सिद्ध होताहै ॥ १ ॥ जिस नष्ट बुद्धिने प्रथम अपने स्वभावको नहीं जीता उसको परमपदकी प्राप्ति ऐसे दुर्लभहै जैसे वालूमें तैल ॥ २ ॥ शुद्ध निर्मल चित्तवाले मनुष्यमें अल्पभी उपदेश स्वच्छ वस्त्रमें तैलके बिन्दुके समान प्रविष्ट होजाताहै, और साधन चतुष्टयसे शून्य चित्तोंमें ऐसे नहीं प्रवेश करता जैसे उलटे दर्प्पणमें मोतियोंका प्रतिबिंब ॥ ३ ॥ इसी विषयमें प्राचीन इतिहास, जो भुशुंडजीने मेरुके शिखरपर मुझसे कहाथा तुमसे कहताहूं ॥ ४ ॥

पुराभुशुंडःकस्मिंश्चित्पृष्टआसीत्कथांतरे ॥ मयाकदाचिदेकांतेमेरोःशिखरकोटरे ॥ ५ ॥ मुग्धबुद्धिमनात्मज्ञंकंत्वंसुचिरजीवितम् ॥ स्मरसीतिमयापृष्टेनोक्तंतेनेदमंगमे ॥ ६ ॥ भुशुंडउवाच ॥ आसीद्विद्याधरःपूर्वमनात्मज्ञःसुखेदितः ॥ लोकालोकांतरशृंगेशुष्कआर्योविचारवान् ॥ ७ ॥ तपसाबहुरूपेणयमेनानियमेनच ॥ अक्षीणायुरतिष्ठत्सपुराकल्पचतुष्टयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्वकालमें मेरुके शिखरकी किसी कन्दरारूप एकान्तस्थानमें विराजमान भुशुंडजीसे अध्यात्मकी कथाओंके प्रसंगमें मैंने यह पूंछा ॥ ५ ॥ कि–हे प्रिय! भुशुंडजी मुग्ध, आत्मज्ञानसे रहित तथा दीर्घकाल जीनेवाले किस प्राणीको आप स्मरण करतेहो ऐसा मेरे पूंछनेपर उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ श्रीभुशुंडजी बोले कि–हे ब्रह्मन्! लोकालोकांतर पर्वतके शिखरपर बिना जीती हुई इन्द्रियोंसे विदित; शुष्क अर्थ तथा विचारवान् कोई विद्याधर पूर्वकालमें रहताथा ॥ ७ ॥ अनेक प्रकारके तपसे, यम तथा नियमसे अक्षीण आयु चार कल्पतक वह स्थित रहा ॥ ८ ॥

ततश्चतुर्थेकल्पांतेविवेकस्तस्यचोदभूत् ॥ विदूरस्येववैदूर्यमौचित्याज्जलदोदयात् ॥ ९ ॥ पुनर्मृतिःपुनर्जन्मजरामेतिविभावयन् ॥ लज्जेऽहंतत्किमेकंस्यात्स्थिरमित्यवमृश्यसः ॥ १० ॥ मामाजगामसंप्रष्टुमष्टादशमयींपुरीम् ॥ स्वासुपोह्यविरक्तात्मासंसाराररसतांगतः ॥ ११ ॥ समस्तसमीपमागत्यकृतोदारनमस्कृतिः ॥ मत्पूजितोवसरतउवाचेदमनिंदितम् ॥ १२ ॥ विद्याधरउवाच ॥ मृदूनिपरितापीनिदृषदृढबलानिच ॥ छेदेभेदेचदक्षाणिस्वशस्त्राणींद्रियाणिच ॥ १३ ॥ पर्याकुलानिमलिनानिविपत्प्रदानिद्वःखोर्मिमंतिगुणकाननपावकत्वात् ॥ हार्दांधकारगहनानितमोमयानिजित्वेंद्रियाणिसुखमेतिचकिंममार्थैः ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने विद्याधरप्रश्नो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ— इसके पश्चात् चतुर्थ कल्पके अंतमें चिरकालकी तपस्याके अभ्याससे विवेक उसको ऐसे उत्पन्न हुआ जैसे मेघके उदयसे विदूरनाम भूमिमें वैदूर्य्यमाणि ॥ ९ ॥ पुनः २ जन्म पुनः २ मृत्यु तथा पुनः २ वृद्धाअवस्था मुझे न हो, क्योंकि इनका विचार करते हुये मैं लज्जित होताहूं इसलिये जहां ये न हों ऐसा एक स्थिर वस्तु क्या होसकताहै ॥ १० ॥ पंचप्राण, दशइन्द्रियां, मन, बुद्धि तथा स्थूलदेह इन अष्टादश (१८) अवयवयुक्त अपनी पुरीको चिरकालतक धारण करनेसे श्रांत, और संसारके रससे विरक्त वह महात्मा मेरे निकट पूंछनेको आया ॥ ११ ॥ मेरे निकट आके आदरके साथ उसने नमस्कार किया, मैंनेभी प्रतिष्टासे बैठाया अनंतर प्रश्नका अवसर पाके इस अनिंदित वचनको कहा ॥ १२ ॥ विद्याधर बोला कि–हे भगवन्! निज २ विषयोंमें शीघ्र प्रवेश करनेसे कोमल, पश्चात् संताप देनेवाली, अपने विषयोसे न हटनेसे पाषाणोंसेभी अति दृढ और छेदनमें अति निपुण, अपने इन्द्रिय तथा शस्त्रोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ १३ ॥ हे भगवन्! हृदयमें रूढ अन्धकारमय बनके तुल्य कामादि मर्कटोंसे व्याप्त

विपत्तिप्रद दुःखरूप तरंगोंसे पूर्ण तथा गुणरूपी बनके जलानेसे दाहप्रद इन इन्द्रियोंके जीतनेहीसे प्राणी सुखी होसकताहै, सो मुझे विद्याधरके भोगोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है, अर्थात् इनसे विरक्त होके उपदेशके लिये आपके शरणमें आयाहूं ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विद्याधरोपाख्याने विद्याधरप्रश्नो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

दिव्यभोगोंमें आसक्त तथा अपनेसे चिरकालतक परीक्षित इन्द्रिय और विषयोंकी दुष्टता विद्याधरने इस ६ के सर्गमें वर्णन किया है ॥

विद्याधरउवाच ॥ यद्दुदारमनायासंक्षयातिशयवर्जितम् ॥ पदंपावनमाद्यंतरहितंतद्वदाशुमे ॥ १ ॥ एतावंतमहंकालंसुप्तआसंजडात्मकः ॥ इदानींसंप्रबुद्धोस्मिप्रसादादात्मनोमुने ॥ २ ॥ मनोमहामयोत्तप्तं क्षुब्धमज्ञानवृत्तिषु ॥ मामुद्धरदुरंतेहंमोहादहमितिस्थितात् ॥ ३ ॥ श्रीमत्यपिपतंत्याशुशातनाःकातरा दयः ॥ गुणवत्युग्रपत्रेपितुहिनानीवपंकजे ॥ ४ ॥

अर्थ—विद्याधर बोला कि-हे भगवन् ! सब दुःखोंसे वर्जित स्वाभाविक आनंदरूप क्षय तथा अतिशयसे रहित, और आदि अन्तरहित परमपावन जो पदहै उसका उपदेश मुझे शीघ्र कहो ॥ १ ॥ हे मुने ! इतने कालतक जडतासे मैं सुप्तथा अब मनकी तीव्र वैराग्यरूप प्रसन्नतासे जाग्रत हूं ॥ २ ॥ हे भगवन् ! मनके महान्रोगरूपी कामसे संतप्त; अज्ञानकी वृत्तियोंमें क्षुब्ध, और दुरुच्छेद्य कर्मसंयुक्त मुझे अनात्मामें आत्मा निर्मान करानेवाले मोहसे निकालिये ॥ ३ ॥ अनेक ऐश्वर्य्योंसे सम्पन्न तथा गुणोंसे युक्तभी विद्याधरोंमें अजितेन्द्रियताके कारण आत्मज्ञानसे शून्य होनेसे अनेक दुःखोंकी पीडा ऐसे गिरती हैं जैसे उत्तम पत्रवाले कमलपदवाला ॥ ४ ॥

जायंतेचम्रियंतेचकेवलंजीर्णजंतवः ॥ नधर्मायनमोक्षायमशकाइवपंकजे ॥ ५ ॥ भावैस्तैस्तैरेवतैरेवतुच्छालंभविडंबनैः ॥ चिरेणपरिखिन्नाःस्मोविप्रलंभाःपुनःपुनः ॥ ६ ॥ नांतोस्त्यस्यनचस्थैर्यावस्थाऽविश्रांतमानसम् ॥ भ्रमंतोभोगभंगेषुमरुभूमिष्विवाध्वनः ॥ ७ ॥ आपातमधुरारंभाभंगुराभवहेतवः ॥ अचिरेणविकारिण्योभीषणाभोगभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—कमलमें मच्छरोंके देवयोनिकेभी जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं बेविषय लंपट होनेसे न धर्मके लिये प्रयत्न करैं न मोक्षके लिये ॥ ५ ॥ तुच्छ विषय इन्द्रियोंके स्पर्श जनित सुख देनेवाले, अनेक पुनः भुक्त उन्ही शब्दादि विषयोंसे हमलोग ठगे गये हैं ॥ ६ ॥ मनकी विश्रान्ति रहित क्षणभंगुर भोगोंमें भ्रमण करते हुये मेरे इससंसारमार्गका न तो अन्त है और न स्थिरता है ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! क्षणहीमें रमणीय क्षणभंगुर शीघ्रही विकारयुक्त और भयंकर ये भोगकी भूमि हैं ॥ ८ ॥

मानावमानपरयादुरहंकारकांतया ॥ नरमेवामयातातहतविद्याधरश्रिया ॥ ९ ॥ दृष्टाश्चैत्ररथोद्यानभुवः कुसुमकोमलाः ॥ कल्पवृक्षलतादत्तसमस्तविभवश्रियः ॥१०॥ विहृतंमेरुकुंजेषुविद्याधरपुरेषुच ॥ विमानवरमालासुवातस्कंधस्थलीषुच ॥ ११ ॥ विश्रांतंसुरसेनासुकांताभुजलतासुच ॥ हारिहारविलासासुलोकपालपुरीषुच ॥ १२ ॥

अर्थ—हे मुने ! मान तथा अपमानमें तत्पर, दुष्ट अहंकारिजनोंको प्रिय, तथा विवेकियोंके प्रतिकूल इस विद्याधरकी श्रीके साथ मैं रमण करना नहीं चाहता ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! पुष्पोंसे कोमल नन्दनबनकी भूमियोंको मैं देखचुका, और कल्पवृक्षोंकी लताओंसे सबप्रकारके ऐश्वर्य्योंको भी प्राप्त किया ॥ १० ॥ हे भगवन् ! मेरुके कुंजोंमें, विद्याधरोंके नगरोंमें, श्रेष्ठ विमानोंकी मालाओंमें, और उत्तम वायुके पटलयुक्त भूमियोंमें भी पूर्णरीतिसे विहार करचुका ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! देवताओंकी सेनाओंमें, बिलाससे मनको हरनेवाली स्त्रियोंकी भुजरूप लताओंपर, और लोकपालोंकी नगरियोंमें चिरकाल विश्रामभी किया ॥ १२ ॥

नकिंचिदुचितंसाधुसर्वमाधिविषोष्मणा ॥ दग्दंभस्मायतेतातविज्ञातमधुनामया ॥ १३ ॥ रूपालोकनलोलेनवनितानगृध्नुना ॥ सावभासेनदोषायदुःखंनीतोस्मिचक्षुषा ॥ १४ ॥ इदंगुणावहंनेदमितिसु

क्त्वाविकल्पनम् ॥ रूपमात्रानुसारित्वादवस्तुन्यपिधावति ॥ १५ ॥ तावदायातिविरतिंनवशंयावदा पदाम् ॥ नानाबंदपरंचेतःपरानर्थेहितोन्मुखम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय! इससमय मैंने यह जाना कि इनमें कोई भी योग्य सुखदायक नहीं है, किन्तु मानसी व्यथारूप विषकी उष्णतासे दग्ध होकर सबकुछ भस्मके समान मुझे भान होताहै ॥ १३ ॥ हे भगवन्! रूपके ग्रहण करनेमें चंचल, स्त्रियोंके मुख देखनेमें अति लोभी, तथा बाह्य और आभ्यन्तर प्रकाशसहित इस नेत्रमेंयुक्त दुःखही प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ हे भगवन्! स्त्रीके मुखमें वस्त्र आभूषणादि शोभादायकहैं, न कि रक्त मांसआदि इस विवेकके विनाही केवल रूपमात्रके पीछे तुच्छ वस्तुमें भी यह नेत्र दौडताहै ॥ १५ ॥ नानाप्रकारके वध बंधनादिके दायक कर्मोंमें तत्पर, और दुसरोंके अनिष्ट चिन्तनेमें आसक्त यह चित्त जबतक नरकादि आपत्तियोंके वशमें नहीं आता तबतक विषयोंसे विरक्त नहीं होता ॥ १६ ॥

घ्राणमेतदनर्थायधावच्चैवाभितःस्फुटम् ॥ ननिवारयितुंतातशक्नोमीहहयंयथा ॥ १७ ॥ गंधोदकप्रणाले नमुखश्वासानुपातिना ॥ वैरिणेवातिदोषेणघ्राणेनास्मिन्नियोजितः ॥ १८ ॥ चिरंरसनयाचाहमनयान यहीनया ॥ गजगोमायुगुप्तेषुदुःखाद्रिष्वलमाहतः ॥ १९ ॥ निरोद्धुंनचशक्नोमिस्पर्शलंपटतांत्वचः ॥ ग्रीष्मकालसमिद्धस्यतापमंशुमतोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने! यह घ्राणइन्द्रिय जो चारोओर प्रत्यक्ष अनर्थोंके लिये दौड रहाहै इसको मैं ऐसे नहीं निवारण करसकता जैसे दुष्ट अश्वको ॥ १७ ॥ हे भगवन्! दुर्गन्धजल (नाक) की नालीरूप इस घ्राणइन्द्रियसे इसके बिलमें बलात् मैं ऐसे नियोजित हूं जैसे किसी अति प्रबल शत्रुसे दुर्गन्धयुक्त स्थानमें ॥ १८ ॥ हे मुने! भक्ष्याभक्ष्य नीतिशून्य इस जिह्वाइन्द्रियसे भी मैं शृगालकीटादिसे रक्षित दुःखरूपी पर्वतोंमें फेका गयाहूं ॥ १९ ॥ त्वकूइन्द्रियकी कोमल स्पर्श लम्पटताको मैं ऐसे नहीं रोकसकता जैसे ग्रीष्मकालमें प्रदीप्त सूर्य्यके तापको ॥ २० ॥

शुभशब्दरसार्थिन्योमुनेःश्रवणशक्तयः ॥ मांयोजयंतिविषमेतृणेच्छाहरिणंयथा ॥ २१ ॥ प्रणताःप्रियकारिण्यःप्रह्वभृत्यसमीरिताः ॥ वाद्यगेयरवोन्मिश्राःशुभशब्दश्रियःश्रुताः ॥ २२ ॥ श्रियःस्त्रियोदिशश्चैव तटाश्चांभोधिभूभृताम् ॥ दृष्टाविभवहारिण्यःप्रकणन्मणिभूषणाः ॥ २३ ॥ चिरमास्वादिताःस्वादु चमत्कारमनोरमाः ॥ प्रह्वकांताजनानीताःषड्सागुणशालिनः ॥ २४ ॥

अर्थ—सुखदायक शब्दके रसके आस्वादमें अनुरागिणी श्रवणकी शक्तियां मुझे भयंकर स्थानमें ऐसे नियुक्त करती हैं जैसे कोमलतृणके अभिलाषी हरिणको ॥ २१ ॥ हे भगवन्! प्रियकरनेवाली नम्रीभूत स्त्री भृत्यादिसे उच्चरित वाद्य तथा गानशब्दोंसे मिलित अनेक शुभशब्दोंकी शोभाको मैं सुनचुकाहूं ॥ २२ ॥ हे मुने! शब्दयुक्त मणियोंके भूषणोंको धारण करनेवाली तथा अपने ऐश्वर्य्योंसे मनको हरनेवाली अनेक शोभायुक्त स्त्रियोंको दिशाओंको समुद्र तथा नदी पर्वतादिके तटोंको मैं देखचुकाहूं ॥ २३ ॥ हे मुने! अपने स्वादके चमत्कारसे मनोरम, नम्रीभूत स्त्रियोंसे अनीत तथा पाकादिकी चतुरतारूप गुणोंसे शोभायमान षट्रसोंका स्वाद मैंने चिरकालतक लिया॥२४॥

कौशेयकामिनीहारकुसुमास्तरणानिलाः ॥ निर्विघ्नमभितःस्पृष्टाभृशमाभोगभूमिषु ॥ २५ ॥ वधूमुखौषधीपुष्पसमालंभनभूमयः ॥ अनुभूतामुनेगंधामंदानिलसमीरिताः ॥ २६ ॥ श्रुतंस्पृष्टंतथादृष्टंभुक्तं घ्रातंपुनःपुनः ॥ संशुष्कविरसंभूयःकिंभजामिवदाशुमे ॥ २७ ॥ भुक्त्वावर्षसहस्राणिद्वभोगपटली मिमाम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंनतृप्तिरुपजायते ॥ २८ ॥

अर्थ—कोमलरेशम, स्त्री, पुष्पोंके हार, बिछोनों, और सुगन्ध शीतल तथा मन्द पवनको भोगोंकी भूमियोंमें मैंने निर्विघ्नता पूर्वक स्पर्श किया ॥ २५ ॥ हे मुने! उत्तम स्त्रियोंके मुखोंको चन्दन उशीर आदि औषधियोंको पुष्पोंको, कर्पूर कस्तुरी आदिकी भूमियोंको, और मन्दवायुसे प्रेरित अनेक प्रकारके सुगन्धोंको मैं अनुभव करचुका हूं ॥ २६ ॥ हे भगवन्! शब्द, स्पर्श, रूप, रसादि विषयोंको पुनः २ सुना, स्पर्शकिया, देखा, खाया, और सून्घा परंतु अब शुष्कली रस भान होते हैं, इसलिये मुझे शीघ्र कहिये मैं किसका सेवन करूं ॥ २७ ॥ हे भगवन्! सहस्रों वर्षपर्य्यन्त ब्रह्माकी आयुतकभी इन विषयोंको भोगनेपर भी तृप्ति नहीं होती ॥ २८ ॥

साम्राज्यंसुचिरंकृत्वातथाभुक्त्वावधूगणम् ॥ भुंक्त्वापरबलान्युच्चैःकिमपूर्वमवाप्यते ॥ २९ ॥ येषां विनाशनंनासीद्यैर्भुक्तंभुवनत्रयम् ॥ तेपितिष्ठ्यचिरेणैवसमंभस्मपदंगताः ॥ ३० ॥ प्राप्तेनयेननोभूयःप्राप्तव्यमवशिष्यते ॥ तत्प्राप्तीयत्नमातिष्ठेत्कष्टयापिहिचेष्टया ॥ ३१ ॥ येनकांताश्चिरंभुक्ताभोगास्तस्येह जंतुभिः ॥ दृष्टोनकस्यचिन्मूर्ध्नितरुर्व्योमल्लवश्ववा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! चिरकालतक उत्तम चक्रवर्तीराज्यको तथा अनेक ललना गणोंका भोग करके और शत्रुओंके बलोंको पूर्णरूपसे भंजन करके भी कहो यह जीव अपूर्व पदार्थ क्या प्राप्त करताहै ॥ २९ ॥ जिन (हिरण्यकशिपु आदि) का नाश नहीं विदित था, और जिन्होंने तीनोलोकका भोग किया, वे भी शीघ्रही भस्मपदको प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ हे मुने ! कष्ट चेष्टासे भी उस पदार्थकी प्राप्तिमें प्रयत्न करना चाहिये जिसके प्राप्त होनेसे पुनः प्रापणीय पदार्थ शेष नहीं रहता ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जिन प्राणियोंने चिरकालतक स्त्रियोंको तथा अन्य अनेक विषयोंको भोगाहै उनके शिरपर कल्पवृक्ष; वा गुदामें आकाशमें उडनेवाले विमानको किसीने नहीं देखा ॥ ३२ ॥

चिरमासुदुरंतासुविषयारण्यराजिषु ॥ इंद्रियैर्विप्रलब्धोस्मिधूर्तबालैरिवार्भकः ॥ ३३ ॥ अद्यत्वेतेपरिज्ञतामयास्वविषयारयः ॥ कष्टाइंद्रियनामानोवंचयित्वातुमांपुनः ॥ ३४ ॥ संसारजंगलेशून्येदग्धंनरमृगंशठाः ॥ आश्वास्याश्वास्यनिघ्नतिविषयेंद्रियलुब्धकाः ॥ ३५ ॥ विषमाशीविषैरेभिर्विषयेंद्रियपन्नगैः येनदग्धानदृष्टास्तेद्वित्राएवजगत्यपि ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! दुःखसे त्याज्य इन विषयरूप महाबनकी पंक्तियोंमें धूर्तइन्द्रियोंसे चिरकालतक मैं ऐसे ठगा गया, जैसे धूर्तबालकोंसे सुशील साधुबालक ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! शब्दादिरूप भूतोंहीको मनसे बाहर निकालकर अपने २ भोगार्थ श्रोत्र आदि नामोंसे स्थित और कष्टदायक इन विषयरूप अपने शत्रुओंको आज मैंने जाना, और ये विषयरूप शठ व्याध मुझे मनुष्यरूप मृगको ठगकर संसाररूप भस्मीभूत जंगलमें फेक दियाहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे मुने ! इन भयंकर विषय तथा इन्द्रियरूप सर्पोंसे जो न देखेगये और जलागये हैं ऐसे पुरुष इस संसारमें दो या तीनही (अति अल्प) भान होते हैं ॥ ३६ ॥

भोगभीमेभवलितांतृष्णातरलवागुराम् ॥ लोभोग्रकरवालाढ्यांकोपकुंतकुलांकिताम् ॥ ३७ ॥ द्वंद्वजालरथव्याप्तामहंकारानुपालिताम् ॥ चेष्टातुरंगमाकीर्णांकामकोलाहलाकुलाम् ॥ ३८ ॥ शरीरसीमांतगतांदुरिंद्रियपताकिनीम् ॥ येजेतुमुत्थितास्ताततएवेहहिसद्भटाः ॥ ३९ ॥ सुसाध्यःकरटोद्भेदोमत्तैरावतदंतिनः ॥ नोत्पथप्रतिपन्नानांस्वेंद्रियाणांविनिग्रहः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे मुने ! भोगरूपी भयंकर हस्तियोंसे वेष्टित, तृष्णारूप चंचल पाशसहित, लोभरूप तीव्र तरवारोंसे पूर्ण, कोपरूपी बर्छियोंके समूहसे चिन्हित शीतोष्णादि द्वन्द्वसमूहोंसे व्याप्त, अहंकाररूपी सेनापतिसे पालित, चेष्टारूपी चंचल तुरंगोंसे पूर्ण, कामरूपी कोलाहलसे युक्त, शरीररूपी नगरकी सीमाको आक्रमण करके स्थित और विषय तथा इन्द्रियरूप पताकाओंसे युक्त सेनाके जीतनेके लिये जो सनद्धहैं वेही इस संसारमें उत्तम वीरहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ हे मुने ! मत्त ऐरावत हांथीके कुंभ (गंडस्थल) का विदारण करना सरलहै, परन्तु कुमार्गमें प्रवृत्त अपनी इन्द्रियोंका निग्रह करना सरल नहीं है ॥ ४० ॥

पौरुषस्यमहत्त्वस्यसत्वस्यमहतःश्रियः ॥ इंद्रियाक्रमणंसाधोसीमांतोमहतामपि ॥ ४१ ॥ तावदुत्तमतामेतिपुमानपिदिवौकसाम् ॥ कृपणैरिंद्रियैर्यावत्तृणवन्नापकृष्यते ॥ ४२ ॥ जितेंद्रियामहासत्वायेतएवनराभुवि ॥ शेषानहमिमान्मन्येमांसयंत्रगणांश्चलान् ॥ ४३ ॥ मनःसेनापतेस्सेनामिमामिंद्रियपंचकम् ॥ जेतुंचेदस्तिमेयत्नोजयामितदलंमुने ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे साधो ! तत्ववेत्ताओंकेभी पौरुषकी, महत्वकी, महाधैर्य्यकी और विश्रामके संपत्तिकी सीमाका अन्त अपने इन्द्रियोंका विजय करना है ॥ ४१ ॥ यह पुरुष देवताओंकेभी मानका पात्र तभीतकहै जबतक कृपण इन्द्रियोंसे तृणके समान नहीं खींचा जाता ॥ ४२ ॥ हे मुने ! जो महात्मा जितेन्द्रिय हैं वेही संसारमें मनुष्यहैं, और शेषों (अजितेन्द्रियों) को मैं चंचल मांसका यंत्र समझताहूं ॥ ४३ ॥ हे मुने! यदि मनरूप सेनापतिकी पांचो इन्द्रियरूपी सेनाको जीतनेका कोई उपायहै तो मैं उनको पूर्णरूपसे जीत सकताहूं ॥ ४४ ॥

इंद्रियोत्तमरोगाणांभोगाशावर्जनादृते ॥ नौषाधानिनतीर्थानिनचमंत्राश्चशांतये ॥ ४५ ॥ नीतोस्मिपरमंखेदमभिधावद्भिरिंद्रियैः ॥ एकएवमहारण्येतस्करैःपथिकोयथा ॥ ४६ ॥ पंकवंत्यप्रसन्नानिमहादौर्भाग्यवंतिच ॥ गंधिशैवलतुच्छानिपल्वलानींद्रियाणिच ॥ ४७ ॥ दुरतिक्रमणीयानिनीहारगहनानिच ॥ जनितातंकजालानिजंगलानींद्रियाणिच ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे मुने! मैंने तो यह निश्चय कियाहै इन्द्रियरूप भयंकर रोगोंकी शांतिकेलिये केवल भोगोंकी आशाके त्यागके सिवाय न कोई औषध है, न तीर्थ हैं और न मंत्र हैं ॥ ४५ ॥ हे भगवन्! चारोओर दौडनेवाली इन इन्द्रियोंसे मैं ऐसे खेदितहूं जैसे महाजंगलमें अकेला पथिक तस्करोंसे ॥ ४६ ॥ कीचडोंसे पूर्ण मलिन, महादौर्भाग्य-

युक्त, तथा दुर्गन्ध और शैवाल तृणोंसे अतिनिन्दित अल्प जलाशय (गढे) और इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ४७ ॥ तथा पार करनेमें अति कठिन जडता तथा हिमसे भयंकर और अनेक भयको उत्पन्न करनेवाले जंगल और इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ४८ ॥

पंकजानिसरंध्राणिसुदुर्लक्ष्यगुणानिच ॥ ग्रंथिमंतिजडांगानिमृणालानींद्रियाणिच ॥ ४९ ॥ रूक्षाणिरत्नलुब्धानिकल्लोलवलितानिच ॥ दुर्ग्रहग्राहघोराणिक्षारांबूनींद्रियाणिच ॥ ५० ॥ बांधवोद्वेगदायीनिदेहांतरकराणिच ॥ करुणाक्रंदकारीणिमरणानींद्रियाणिच ॥ ५१ ॥ अविवेकिष्वमित्राणिमित्राणिचविवेकिषु ॥ गहनानंतशून्यानिकाननानींद्रियाणिच ॥ ५२ ॥

अर्थ—पंक वा मलसे उत्पन्न, छिद्रसहित अतिदुर्लक्ष्य सूत्र वा वासनासहित, ग्रंथियुक्त, और जड देहमय कमलकी दंडी और इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ४९ ॥ रुक्ष, रत्नोंके लोभी, कामक्रोधादि तरंगोंसे पूर्ण, और दुर्ग्रहग्राहोंसे भयंकर समुद्रके खारी जल तथा इन्द्रियासमानही हैं ॥ ५० ॥ बान्धवोंसे वियोग करानेवाली, अन्य देहमें प्राप्तिके कारण, और करुणासे रोदन करानेवाली इन्द्रियां तथा मरणसमानही हैं ॥ ५१ ॥ अविवेकियोंके शत्रु, और विवेकियोंके मित्र गहन तथा जनशून्य वन और इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ५२ ॥

घनास्फोटान्यसाराणिमलिनानिजडानिच ॥ विद्युत्प्रकाशान्येतानिभीमाभ्राणींद्रियाणिच ॥ ५३ ॥ क्षुद्रप्राणिगृहीतानिवर्जितानिकृतात्मभिः ॥ रजस्तमोभिभूतानिस्वेंद्रियाण्यवटानिच ॥ ५४ ॥ पातनैकांतदक्षाणिदोषाशीविषवंतिच ॥ रूक्षकंटकलक्षाणिश्वभ्राग्राणींद्रियाणिच ॥ ५५ ॥ आत्मंभरीण्यनार्याणिसाहसैकरतानिच ॥ अंधकारविहारीणिरक्षांसिस्वेंद्रियाणिच ॥ ५६ ॥

अर्थ—महाशब्दसहित असार, मलिन, जड और विद्युतके प्रकाशके समान क्षणभरके लिये सुखदायक भयंकर मेघ और इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ५३ ॥ क्षुद्रमनुष्य तथा कीटादिसे आश्रित, महात्माओंसे वर्जित, और रजोगुण तथा तमोगुणसे व्याप्त इन्द्रियां औगटे समानहैं ॥ ५४ ॥ नीचे गिरानेमें निपुण, दोष तथा सर्पोंसे पूर्ण, और अनेक रुक्ष कांटोंसे युक्त जीर्णमुखवाले गढे तथा इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ५५ ॥ अपने उदर पोषणमात्रमें प्रवीण, नीच साहसमें निरत, और अन्धकारमें विहार करनेवाले राक्षस तथा निज इन्द्रियांसमानही हैं ॥ ५६ ॥

अंतःशून्यान्यसाराणिवक्राणिग्रंथिमंतिच ॥ दहनैकार्थयोग्यानिदुर्दारूणींद्रियाणिच ॥ ५७ ॥ घनमोहप्रबंधीनिदुष्कूपगहनानिच ॥ महावकरतुच्छानिकुपुराणींद्रियाणिच ॥ ५८ ॥ अनंतेषुपदार्थेषुकारणानिघटादिषु ॥ सभ्रमाणिसपंकानिचक्रकाणींद्रियाणिच ॥ ५९ ॥ आपन्निमग्नमिममेवककिंचनंत्वंमामुद्धरोद्धरणशीलदयोदयेन ॥ येनामकेचनजगत्सुजयंतिसंतस्तत्संगमंपरमशोकहरंवदंति ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने वैराग्यवर्णनं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—भीतरसे शून्य तथा साररहित, कुटिल, ग्रन्थियुक्त, और जलानेमात्रके योग्य जीर्ण बांस तथा इंद्रियां समानही हैं ॥ ५७ ॥ घनीभूत मोह अर्थात् द्यूत कलहादि प्रबन्धमें तत्पर, दुष्टकूपोंसे भयंकर तथा महाधूलीसे निन्दित दुष्टोंके नगर और इन्द्रियां समानही हैं ॥ ५८ ॥ अनन्त अनर्थदायक पदार्थोंके तथा घटादिके कारण, भ्रम तथा पंकसहित कुंभारके चक्र और इन्द्रियां तुल्यही हैं ॥ ५९ ॥ हे भगवन्! इन्द्रियजनित आपत्तिरूप समुद्रमें निमग्न मेरा उद्धार कृपाकरके कीजिये, क्योंकि आपके सदृश सबसे उत्तम जो ज्ञानी महात्मा हैं उनके समागमको सब शास्त्र तथा सज्जन सकल शोकहारक कहते हैं ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने वैराग्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

सब ब्रह्मही है जगत् कुछ नहीं है, और अज्ञानसे यह जगत् दुःखोंसे व्याप्त है, तथा अहंकाररूप बीजसे यह जगद्रूप वृक्ष बढाहै यह विषय इस ७ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

भुशुंडउवाच ॥ ततस्तस्यमयाब्रह्मंस्तच्छ्रुत्वापावनंवचः ॥ इदमुक्तंयथादृष्टंसुस्पष्टपदयागिरा ॥ १ ॥ साधुविद्याधराधीशदिष्ट्याबुद्धोसिभूतये ॥ भवांधकूपकुहराच्चिरेणोत्थानमिच्छसि ॥ २ ॥ पावनीयंत

वमतीराजतेघनरूपिणी ॥ विवेकेनानलेनेवकनकद्रवसंततिः ॥ ३ ॥ उपदेशगिरामर्थमादत्तेहारिहेलया॥ मुकुरेनिर्मलेद्रव्यमयत्नेनैवबिंबति ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले कि–हे ब्रह्मन् ! तब मैंने उसके इस पवित्र वचनको सुनके उनके प्रश्नके अनुसार स्पष्ट पदयुक्त वाणीसे यह कहा ॥ १ ॥ हे विद्याधराधीश ! तुम आत्मज्ञानरूप ऐश्वर्यके लिये भाग्योदयसे जो जागृत हुये हो यह उत्तम है, तुम अब चिरकालसे संसाररूप अन्धकूपसे निकलना चाहते हो ॥ २ ॥ विवेकसे पूर्ण तुमारी बुद्धि ऐसे शोभित होरही है जैसे अग्निसे व्याप्त सुवर्णके द्रव (रस) की पंक्ति ॥ ३ ॥ इसीसे मेरे उपदेशकी वाणियोंके अर्थ बिना प्रयासही ग्रहण करेगी, क्योंकि निर्मल दर्पणमें पदार्थोंका प्रतिबिम्ब बिना यत्नही पडताहै ॥ ४ ॥

यदिदंवच्मितत्सर्वमोमित्यादातुमर्हसि ॥ अस्माभिश्चिरमन्विष्टंनात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥ यत्किंचित्स्वदतेऽतस्तेबुध्यस्वाबोधमुत्सृजन् ॥ नासित्वंचिरमप्यंतःप्रेक्षितोपिनलभ्यसे ॥ ६ ॥ नाहंत्वमस्ति नजगदितिनिश्चयिनस्तव ॥ सर्वमस्तिशिवंतन्नदुःखायसुखायते ॥ ७ ॥ किमज्ञत्वाज्जगज्जातंज्जगतोथ किमज्ञता ॥ विचार्यापीतिनोविद्मएकत्वादलमेतयोः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो कुछ मैं कहूंगा उसे अंगीकार बुद्धिसे तुम ग्रहण करनेके योग्यहो, क्योंकि हम लोगोंने चिरकालतक विचारके इसका निश्चय कियाहै इसमें तुमको कुछभी विचार न चाहिये ॥ ५ ॥ तुम अपने अज्ञानको त्यागकर यह समझो कि अहंकारादि दृश्य प्रपंच जो कुछ तुमारे अन्तःकरणमें अनुभूत होताहै वह तुम नहीं हो, क्योंकि दृश्यवर्गोंमें चिरकालतक ढूंढनेपरभी आत्मा तुमको न प्राप्त होगा, अर्थात् तुम सबके साक्षीचेतनमात्र हो ॥ ६ ॥ न मैं हूं, न तुम हो, और न यह जगत् सत्य है किन्तु सब परब्रह्ममय है, यह तुमारा निश्चय सुखकेही लिये होगा, न कि दुःखके ॥ ७ ॥ क्या सुषुप्तिमें अहंकार आदिसे प्रसिद्ध अज्ञानसे यह जाग्रत् तथा स्वप्नरूप जगत् उत्पन्न हुआ है अथवा जाग्रत् जगत्से यह सुषुप्तिकाल कालका अज्ञान उत्पन्न हुआ इस व्यवस्थाको विचार करनेपरभी हम नहीं जानते, इसलिये इन दोनों दशाओंके अज्ञानरूप होनेसे इनका विचार व्यर्थ है ॥ ८ ॥

मृगतृष्णांबुवद्विश्वमवस्तुत्वात्सदप्यसत् ॥ यच्चेदंभातितद्ब्रह्मनकिंचित्किंचिदेववा ॥ ९ ॥ मृगतृष्णांबुवद्विश्वंनास्तित्वमथवास्तिच ॥ प्रतिभासोपिनास्त्यत्रतदभावादतःशिवम् ॥ १० ॥ विश्वबीजमहंत्वंत्वं विद्धितस्माद्विजायते ॥ साद्रयब्ध्युर्वीनदीशादिजगज्जरठपादपः ॥ ११ अहंत्वबीजादणुतोजायतेसौजगद्द्रुमः ॥ तस्येंद्रियरसाढ्यानिमूलानिभुवनानिहि ॥ १२ ॥

अर्थ—सत्के तुल्य भासनेपरभी मृगतृष्णाके जलके समान यह सम्पूर्ण जगत् अवस्तु और असत् है, और जो कुछ भान होताहै वह सब ब्रह्मही है इसलिये उससे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान इस विश्वका अस्तित्व नास्तित्व कुछ नहीं है और अभाव होनेसे इसका प्रतिभासभी नहीं है, इसलिये सब शिवब्रह्मरूपही है ॥ १० ॥ हे विद्याधर ! इस संसारका बीज तुम अहंकारकोही जानो, उसीसे पर्वत, समुद्र, पृथिवी तथा नदी आदिसहित यह जगत्रूप प्राचीन वृक्ष उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥ सूक्ष्मअहंकाररूप बीजसे यह जगत्रूपी वृक्ष उत्पन्न होताहै, और इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्तिरूपी रससे पूर्ण नीचेके भुवन इस वृक्षके मूल हैं ॥ १२ ॥

तारकाजालकलिकाऋक्षौघःकोरकोत्करः ॥ वासनागुच्छविसराःपूर्णचंद्रःफलालयः ॥ १३ ॥ स्वर्गादयोबृहद्वर्गामहाविटपकोटराः ॥ मेरुमंदरसह्यादिगिरयःपत्रराजयः ॥ १४ ॥ सप्ताब्धयोग्रसुतयःपातालंमूलकोटरम् ॥ युगानिघुणवृंदानिपर्वाणिगुणपंक्तयः ॥ १५ ॥ अज्ञानमुत्पत्तिमहीनराविहगकोटयः॥ उपलंभोबृहत्स्तंभोदवोनिर्वाणनिर्वृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—और अश्विनी आदि सत्ताईस तारे इस जगत् वृक्षकी प्रधान कलियां हैं, अन्य नक्षत्रोंका समूह इसकी अन्य कलियोंका समूह हैं वासना इसके पुष्पोंके गुच्छे हैं और पूर्ण चन्द्रमा फलका गुच्छाहै ॥ १३ ॥ और महाजनोंके स्वर्गजन, तप तथा सत्य आदि लोकसमूह इसकी शाखाहैं, तथा मेरू, मन्दर और सह्यआदि पर्वत इसके पत्रोंकी पंक्तियां हैं ॥ १४ ॥ और अतल, वितल, तथा सुतलादि नीचेके लोक इसके चारोओरके थाले हैं, पाताल इसका मूलकोटरहै, सत्युग तथा त्रेताआदि चारोयुग इसके घुणके समूहहैं, और उन २ युगोंके वर्ष, अयन, मास तथा ऋतुआदि इस वृक्षके पोरहैं ॥ १५ ॥ अज्ञानही इस जगत् वृक्षकी उत्पत्ति भूमि है सब जीव इसमें असंख्य पक्षी हैं, भ्रमरूप ज्ञानही इसका महास्तंभ अर्थात् सबका आधार मध्यभागहै, और ज्ञानसे इसका बाधही इसके भस्म करनेके लिये बनकी अग्नि है ॥ १६ ॥

रूपालोकमनस्काराविविधामोदवृत्तयः ॥ वनंविपुलमाकाशंशुक्तिजालंमुखत्वचः ॥ १७ ॥ विचित्रशाखाऋतवउपशाखादिशोदश ॥ संविद्रसमहापूरोवातस्पंदोनिवर्त्तनः ॥ १८ ॥ चंदार्करुचयोलोलामज्जनोन्मज्जनोन्मुखाः ॥ रम्याःकुसुममंजर्यस्तिमिरंभ्रमरभ्रमः ॥ १९ ॥ पातालमाशागणमंतरिक्षमापूर्यतिष्ठत्यसदेवसद्वत् ॥ तस्यानहंताग्निहतेहमर्थबीजेपुनर्नास्तिसतोपिरोहः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने जगद्वृक्षबीजवर्णनं नाम सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—इन्द्रियोंसे विषयोंका साक्षात्कार तथा मनसे संकल्प विकल्पादि इसके अनेक प्रकारके गन्धहैं विशाल आकाश इसके लिये महान् वनहै, और मुख, त्वच, नेत्र, ओष्ट तथा हास्य आदि इसके फलके बन्धनहैं ॥ १७ ॥ सबऋतु इसकी विचित्र शाखाहैं, दशोदिशा उपशाखाहैं, आत्मसंबित् इसके जीवनके लिये रसकी धाराहै, सूत्रात्मा इसका वायुपटलहै ॥ १८ ॥ प्रतिदिन उदय अस्तमें तत्पर सूर्य्य तथा चन्द्रमाके प्रकाश इसकी रमणीय चंचल पुष्पलताहैं, और भ्रमण करताहुआ अन्धकारही इसके भ्रमरोंका भ्रमणहै ॥ १९ ॥ इसप्रकार यह संसाररूपी वृक्ष असत् होनेपरभी अपने मूलसे पातालको, मध्यभागसे दिशाओंके समूहको और अग्रभागसे अन्तरिक्ष स्वर्गको व्याप्त करके स्थितहै, और आत्मज्ञानरूप अनहंभावनामय अग्निसे अहंकाररूप इसके बीजके भस्म होनेपर विद्यमान रहते भी पुनः यह नहीं जमसकता ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरो जगद्वृक्ष बीजवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस ८ के सर्गमें संसारवृक्षका उच्छेद, और संकल्पके मंडपके सदृश संसारका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ भुशुंडउवाच ॥ विद्याधरधराधारोगिरिकंदरमंदिरः ॥ दिगंतरांबराचारचारसंचारचंचुरः ॥ १ ॥ ईदृशोयंजगद्वृक्षोजायतेहंत्वबीजतः ॥ बीजेज्ञानाग्निनिर्दग्धेनैवकिंचनजायते ॥ २ ॥ प्रेक्ष्यमाणंचतन्नास्तिकिलाहंत्वंकदाचन ॥ एतावदेवतज्ज्ञानमनेनैवप्रदह्यते ॥ ३ ॥ अहंत्वभावाचाहंत्वमस्तिसंसारबीजकम् ॥ नाहंत्वभावान्नाहंत्वमस्तीतिज्ञानमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुण्डजी बोले—कि हे विद्याधर ! जिसका मूल नीचे सातोलोकसहित पृथिवी जिसकी लोकालोकांत पर्वतों कन्दरा वेदी, हैं, और दिशाओंके अंतराल तथा आकाशके विस्तारसे चंचल ॥ १ ॥ यह संसाररूपवृक्ष अहंकाररूप बीजसे उत्पन्न होताहै, और जब ज्ञानरूप अग्निसे वह बीज भस्म होजाताहै तब कुछ नहीं उत्पन्न होता ॥२॥ हे विद्याधर ! तत्वदृष्टिसे विचारके सब ब्रह्ममात्र निश्चय करनेसे अहंकार कदापि कहीं नहीं रहता बश यही ज्ञानहै, और इसीसे अहंकार दग्ध होताहै ॥ ३ ॥ देहादिमें अहंभावना करनेसे संसारका बीज अहंकारहै, और सर्वत्र ब्रह्म भावना करनेसे वह नहीं रहता यही उत्तम ज्ञानहै ॥ ४ ॥

सर्गादावेवसर्गस्यकिलास्याभावयोगतः ॥ कुतोहंत्वंकुतस्त्वंत्वंकुतोद्वित्वैक्यविभ्रमः ॥ ५ ॥ समाकर्ण्यगुरोर्वाक्यंयतंतेयेस्वयत्नतः ॥ संकल्पत्यागमामूलंपदप्राप्तौजयंतिते ॥ ६ ॥ रंधनाज्जयमाप्नोतिस्वशास्त्रेसूपकृत्कृते ॥ विवेकीस्वविवेकित्वंयतनादेवनान्यथा ॥७॥ चिच्चमत्कारमात्रंत्वंजगद्विद्धीहनेतरत् ॥ नाशासुनबहिर्नांतरेतत्कचनविद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब सृष्टिकी आदिमेंही इस सृष्टिहीका यथार्थमें अभावहै तब कहां अहंता और कहां त्वंता, और कहां द्वैत तथा एकत्वका भ्रम ॥ ५ ॥ जो पुरुष गुरुके वाक्य श्रद्धासे सुनकर मूलसे संकल्प त्यागनेके लिये तथा आत्मपद प्राप्त करनेके लिये गुरुसे कथितक्रमद्वारा स्वयं प्रयत्न करतेहैं वेही संकल्परहित उस आत्मपदको जीततेहैं ॥ ६ ॥ जैसे पाककर्ता (रसोई बनानेवाला) पाकशास्त्रका अभ्यास करके पुनः उत्तम रीतिसे स्वयंपाक बनानेसे राजाओंके यहां सन्मान प्राप्त करताहै ऐसेही विवेकी गुरुसे श्रवण करके पुनः स्वयं अपने प्रयत्नसेही कैवल्यपदको प्राप्त करताहै अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥ चित्का चमत्कारमात्रही इससंसारको तुम जानो, उससे भिन्न न यह दिशाओंमें है न बाहर है और न भीतरहै ॥ ८ ॥

संकल्पोन्मेषमात्रेणजगच्चित्रंविलोक्यते ॥ तदनुन्मेषविलयिचित्रकृच्चितचित्रवत् ॥ ९ ॥ मंडपोस्तिम हास्तंभोमुक्तामणिविनिर्मितः ॥ बहुयोजनलक्षाणिकांतकांचनचित्रितः ॥ १० ॥ मणिस्तंभसहस्त्रेणवृ तोग्रेप्रोतमेरुणा ॥ इंद्रायुधसहस्त्राढ्यकल्पसंध्याभ्रसुंदरः ॥ ११ ॥ स्त्रीबालपुरुषादीनांवास्तव्याना मितस्ततः ॥ क्रिडार्थस्थापितायत्रनानारचनयांतरे ॥ १२ ॥

अर्थ—संकल्पके आविर्भाव मात्रसे यह संसाररूप चित्र देखपडताहै, और उसके अभावसे ऐसे लीन हो-जाताहै जैसे चित्रकारके चित्तमें चित्र ॥ ९ ॥ हे विद्याधर ! मुक्ता तथा मोतियोंसे रचित, महान्स्तंभों (खंभो) से स-ज्जित तथा उत्तम सुवर्णसे चित्रित यह संसाररूपी संकल्परचित महामण्डप है ॥ १० ॥ और अग्रभाग मेरुसहित स-हस्त्रों मणिके स्तंभोंसे यह घिराहै, कहीं इन्द्रके अनेक अस्त्रोंसे व्याप्तहै, और कहीं कल्पांतकी संध्याके मेघसे सुंदरहै ॥११॥ और इधर उधर इसके निवासी स्त्री बालक तथा पुरुषोंके क्रीडार्थ मध्य२में नानाप्रकारकी रचनाओंसे ॥१२॥

भूतबीजपरापूर्णास्तमोरिपुसघुंघुमाः ॥ तमःप्रकाशचित्राख्यालोकांतरसमुद्रकाः ॥ ११३ ॥ आमोद सुभगालोलजलदावलिपल्लवाः ॥ लीलापद्माकरेस्त्रीणांविल्लनाःकल्पपादपाः ॥ १४ ॥ बालनिःश्वासच लिताःकंबुकानिकुलाचलाः ॥ संध्यांबुदाःकर्णपूराश्चामराःशरदंबुदाः ॥ १५ ॥ कल्पांतकालजलदा स्तालवृंतपदंगताः ॥ भूतलंद्यूतफलकंवितानंतारकांबरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पाताल स्वर्ग तथा अन्य लोकोंके आकारकी पेटारी स्थापित की गई है वे पेटारियां कहीं तो प्राणी तथा उनके भोग्यपदार्थरूपी बीजोंसे पूर्ण है, कहीं अन्धकारनाशक सूर्य्यचन्द्रादिसे व्यवहार प्रवृत्त होनेसे शब्दयुक्त हैं, और कहीं अन्धकार तथा प्रकाशसे उनका विचित्र नामहै ॥ १३ ॥ और क्रीडारूप लक्ष्मीके आकर (खानि) रूप उस मंडपमें, सुगंधसे रमणीय, चंचल मेघरूप पल्लवोंसे शोभित, और स्त्रियोंके मंडनार्थ अनेक आभूषणोंको देने-वाले कल्पवृक्षहैं ॥ १४ ॥ जिस मंडपमें बालकोंके श्वाससेभी कंपित कुलाचल आदि पर्वत कंदुक हैं, जहां दिशारूप अंगनाओंके कर्णभूषण संध्याकालके मेघहैं और शरत्कालके मेघ चमरके सदृश हैं ॥ १५ ॥ और जिस मंडपमें कल्पांतके मेघ व्यजनरूप हैं, जहां यह भूतल पाशा खेलनेका मेज है, जहां नक्षत्रोंसहित आकाश चांदनी है ॥ १६ ॥

भूतशारपरावर्त्तद्यूतेक्षाःशशिभानवः ॥ व्योमाजिरेजगद्वासपणेगृहनिवासिनाम् ॥ १७ ॥ इतिसंक ल्पएवांतश्चिरभावनयायथा ॥ अग्रस्थदृश्योपमयासत्यतामिवगच्छति ॥ १८ ॥ तथैवायंजगद्रूपःसं कल्पैस्सुसमुत्थितः ॥ चिच्चमत्कारमात्रात्माचित्रकृच्चित्तचित्रवत् ॥ १९ ॥ असत्यमेवस्फुरतिसर्वम स्तिचनास्तिच ॥ असदुत्थितएवायंकुतोपीवसमुत्थितः ॥ २० ॥

अर्थ—जिस मण्डपके आकाशरूप आंगनमें संसारके आविर्भाव तिरोभावरूप पण (दांव) हैं और जिस द्यूत (जुआ) में गृहके निवासी स्वामी ब्रह्मादिक तथा चारप्रकारके प्राणियोंके पुनः जन्ममरणरूप दावमें सूर्य्यच-न्द्रमा आदि नवग्रह पांशे हैं ॥ १७ ॥ इसप्रकारका संकल्पमण्डप संकल्प करनेके अन्तःकरणमें चिरकालकी भा-वनासे जैसे संमुख स्थित दृश्यके तुल्य सत्यताको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ ऐसेही यह जगत् भी संकल्पोंसे प्रकट चित्का चमत्कार मात्र ऐसे हैं जैसे चित्रकारके चित्तमें चित्र ॥ १९ ॥ असत् आविर्भूत मायाके हस्ती आदिके तुल्य प्रति-भासरूपसे सत्य, और यथार्थमें असत्यही यह जगत् स्फुरित होरहाहै ॥ २० ॥

हेम्नीवकटकादित्वंसंसारोदरकोटरः ॥ चिच्चमत्कारएवायमविकल्पनसंक्षयः ॥ २१ ॥ अत्यंतमेवस्वाय त्तोयथेच्छसितथाकुरु ॥ यश्चान्नपानदानादावनादरमुपेयिवान् ॥ तस्येदंपश्चिमंजन्मनसकर्मसमुज्झ ति ॥ २२ ॥ प्राप्तोविवेकपदवीमसिपावनात्मन्पुण्यांपविचित्रितजगत्रितयांद्वितीयाम् ॥ नाथःपतिष्यसिपु नर्ममसामुनेतिजानामिमौनममलंपदमुत्सृजत्वम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वि० मायामंडपवर्णनं नाम अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णमें कटकादि हैं, ऐसेही अपने उदरकोटरमें संसारको धारण कियेहुये चित्का चमत्कारही यह सबहै, और संकल्प विकल्प न करनेसे इसका नाश होताहै ॥ २२ ॥ इसप्रकार इस जगत्का नाश तथा उत्पत्ति सर्वथा अपने आधीनहै अब जैसी तुमारी इच्छाहो वैसा करो, और जो पुरुष इस लोक तथा परलोकके कर्मफलोंकी इच्छासे रहित है उसका यह अन्तिमजन्महै, और वही कर्मोंको त्यागताहै ॥ २२ ॥ हे शुद्धबुद्धे विद्याधर ! तुम

पतनका हेतुभूत अविवेकपदवी उल्लंघन करके, तीनोंलोकको पवित्र करनेवाली तथा अतिपवित्र विवेकपदवीको प्राप्त हुये हो, इस विवेकयुक्त मनसे तुमारा अधःपात नहीं होगा, इसलिये तुम मनबाणीसे परे चिन्मात्र निर्मलपदका अवलम्बन करके मन आदि दृश्य समूहका त्यागो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे वि० मायामण्डपवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें चित्के अधीन जगत्का उदय, ध्वंस, सत्ता, स्फूर्ति, तथा परिवर्तनहै, और चित्का स्फुरणमय चिन्मात्रही यह विश्वहै यह वर्णन कियाहै ॥

भुशुंडउवाच ॥ अबुद्धयमानश्चेत्यादिचिद्रूपमपिचानघ ॥ शांतचिद्घनएवास्वनिर्मलाप्स्वंतरंशुवत् ॥ ॥ १ ॥ अचेतनंचेतनांतश्चेतनादेवविद्यते ॥ स्वेऽसादृश्येपिसदृशंपयोराशौयथानलः ॥ २ ॥ सचेत नाचेतनयोर्हेतुश्चित्त्वात्तथैवचित् ॥ विनाशोत्पादयोर्वह्निज्वालायाःपवनोयथा ॥ ३ ॥ नाहमस्तीतिचिद्रूपंचितिविश्रांतिरस्तुते ॥ ततोयथायादृशेनभूयतेतादृशोभव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभुशुंडजी बोले–कि हे विद्याधर! विषय, उसकी क्रियागुणदोषादि तथा उसके प्रकाशक चिदाभासको भान स्मरण करते हुये, शांत चिद्घनमात्र ऐसे स्थितरहो जैसे निर्मल जलमें प्रविष्ट तापरहित प्रकाशमात्र सूर्य्यकी किरण ॥ १ ॥ अचेतन जड दुःखादिरूप जगत्का यद्यपि चित्के साथ विरोध भान होताहै तथापि वह चित्के भीतर चिद्रूप ऐसे है जैसे समुद्रमें अग्नि ॥ २ ॥ चित् अपनी चेतनाशक्तिसे अचेतन तथा चेतन पदार्थोंका हेतु ऐसे है जैसे अग्निकी ज्वालाके बिनाश तथा उत्पत्तिका कारण पवन ॥ ३ ॥ मैं चिद्रूप भी नहीं हूं इसप्रकार अहंकार अंशको बाधकर चिद्रूपमें तुमारा स्थिति हो पुनः अहंकारके नष्ट होनेपर जो स्वरूप (चिन्मात्र) तुमको अनुभूत होताहै उसी रूपसे स्थितरहो ॥ ४ ॥

चिद्रूपःसर्वभावानामंतर्बहिरसिस्थितः ॥ प्रसन्नांबुभरस्यांतर्बहिश्चैवयथापयः ॥ ५ ॥ नाहमस्तीति चिद्रूपंचितौचेल्लग्नमंगते ॥ नचान्यच्चेतितंब्रह्मरूपंकेनोपमीयते ॥ ६ ॥ ससुरासुरपातालभूविष्टपमिवोषितम् ॥ नानाभावाजवीभावक्रियाकालमिवाकुलम् ॥ ७ ॥ यथारंगमयंकुड्येजगन्मौनमिवस्थितम् ॥ तथाचिच्चित्रकचितंखेकुड्येचात्मसंस्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे स्वच्छ जलसमूहके बाह भीतर जलमात्रही है ऐसेही सब पदार्थोंके बाहर भीतर चिन्मात्र स्थित है ॥ ५ ॥ हे प्रिय! मैं चिद्भी नहीं हूं इस अहंकारको त्यागकरके अखण्ड चिद्रूपमें यदि तुम हुये तो अन्य प्रकाशसे रहित उस चिन्मात्र स्थितिकी उपमा भला किसके साथ दी जासकती है ॥ ६ ॥ हे विद्याधर! जैसे प्रीति, हर्ष, क्रोध, युद्ध जय तथा पराजय आदिसे पलायन तथा धावनादि नानाप्रकारके क्रियाकालादि भावोंसे व्याप्त सुर असुर सहित पाताल, भूलोक तथा स्वर्गलोकादिको कोई रंगमय चित्रमें लिखै, ऐसेही यह जगत्रूप चित्र चित् रूप चित्रकारसे चिदाकाशरूप भित्तिमें लिखाहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

तेनैवभूयतेभूरियच्चित्तंकचित्तंस्वतः ॥ अचेतनंचेतनंवायथेच्छसितथाकुरु ॥ ९ ॥ चिच्चमत्कृतयोव्योम्निस्फुरंत्येताजगत्तया ॥ अर्कांशुवदरोधिम्यःस्वच्छाविदितवेदिनाम् ॥ १० ॥ तिमिराक्रांतदृष्टीनांयथा केशोड्डकादिखे ॥ स्फुरत्येवंजगद्रूपमनात्मन्येवतिष्ठताम् ॥ ११ ॥ एवंजगत्त्वमहमित्यवबोधरूपमाभासमात्रमुदितंनचनोदितंच ॥ अर्कांशुजालरचनानगराभमत्रकुड्यादिसत्यमिदमस्तिनखेलतेव ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने चित्कचनयोगोपदेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—अचेतन जगत् जो चित्तमें चित्रित है यह सब चेतन स्वयं होजाताहै अब चाहो तुम चिद्रूपमें समाधि लगाओ वा उससे विरक्त रहो ॥ ९ ॥ हे विद्याधर! जैसे मरुभूमिमें सूर्य्यकी किरणरूप मृगतृष्णाकी नदियां मरुभूमिके जाननेवालोंकोही हानि नहीं पहुंचाती किन्तु स्वच्छ किरणरूप भासती हैं ऐसे तत्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें जगत्रूपसे आकाशमें चित्के चमत्कारही स्फुरित होते हैं ॥ १० ॥ जैसे तिमिरसे दृष्टिहो दृष्टिवाले जनोंको आकाशमें केशादि

भान होते हैं ऐसेही केवल संसारमें स्थित अज्ञानीजनोंको आत्मासे भिन्न यह जगत् भान होताहै ॥ ११ ॥ इस-प्रकार गंधर्वनगरके तुल्य यह जगत् बोधरूप चिन्मात्रही है, अज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह उदितहै न कि ज्ञानियोंकी, और व्यवहारदशामें जो कुछ यह जगत् है वह भी आकाशकी लताके तुल्य है ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे उत्तरार्धे विद्याधरो० चित्कचनयोगोपदेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

सत्यकारण शून्य तथा निराकार ब्रह्मही यह सब स्थित है, यह जगत् कभी कहीं नथा न है यह विषय इस १० के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

भुशुंडउवाच ॥ विद्धित्वंचेतनादेवचेतनेतरचेतनम् ॥ जलेऽग्निरिवचिज्जाड्येनातोभिन्नेमनागपि ॥ १ ॥ तद्वेदनावेदनयोरभेदात्स्वस्थमास्यताम् ॥ निर्यंत्रमेवचित्रस्थज्ञप्तिवद्व्योममध्यवत् ॥ २ ॥ ब्रह्मण्यशेष शक्तित्वादचित्त्वंविद्यतेतथा ॥ अक्षुब्धेविमलेतोयेभाविफेनलवोयथा ॥ ३ ॥ नकारणंविनोदेतिजलात्फेनलवोयथा ॥ नकारणंविनोदेतिसर्गादिब्रह्मणस्तथा ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले-हे विद्याधर! चेतनसे भिन्न जो जगत् भान होताहै उसका स्फुरण तुम चेतनसेही चिद्रूप जानो, क्योंकि स्फुरण चित्काही होताहै, और जैसे जलमें प्रतिबिंबित अग्नि जलसे भिन्न नहीं, ऐसेही चित्तमें प्रतिबिंम्बित जगत् भी उससे भिन्न नहीं है, इसलिये चित् जड किंचित्भी भिन्न नहीं है ॥ १ ॥ इसलिये ज्ञानाज्ञानका अभेद होनेसे परिच्छेद शून्य चित्रकारके स्थित ज्ञान, वा गंधर्वनगरके अधिष्ठान आकाशके तुल्य स्वस्थ स्थित रहो ॥ २ ॥ और मायाशबलित ब्रह्ममें अनंत शक्ति होनेके कारण असत् अचित् जगत् प्रलयावस्थामें उसमें ऐसे रहताहै जैसे शांत जलमें भावीफेन ॥ ३ ॥ जैसे कारण बिना जलमें फेनका लेशभी नहीं होता ऐसेही कारण बिना ब्रह्मसे सृष्टिभी नहीं होती ॥ ४ ॥

नचकारणमस्त्यत्रसर्गवृत्तावकारणे ॥ नातःसंजायतेकिंचिज्जगदादिर्ननश्यति ॥ ५ ॥ अत्यंतंकारणाभावान्नकिंचिज्जायतेजगत् ॥ मरावंभ्धिवनास्त्येवदृष्टमप्यग्रतोजगत् ॥ ६ ॥ ब्रह्मानंतमजंशांतमतोस्तीदंनसर्गधीः ॥ कारणाभावतस्तेनब्रह्मैवेदमखंडितम् ॥ ७ ॥ अतःशिलोदराभोऽसिव्योमकोशोपमोपि च ॥ ब्रह्मैकघनरूपत्वादजोनवयवोसिच ॥ ८ ॥

अर्थ—और सृष्टिकी रचनामें अकारण ब्रह्ममें कोई कारण नहीं है, इसलिये न यहसृष्टि उत्पन्नहो न नष्टहो॥५॥ मरुस्थलमें जलके समान संमुख स्थितभी जगत् कारणके अत्यंताभावसे कुछ नहीं उत्पन्न होता ॥ ६ ॥ कारणके अभावसे सृष्टि नहीं है इसलिये अज, शांत, अनंत और अखंडित ब्रह्मही यह सब है ॥ ७ ॥ इसलिये तुम शिलाके उदरके समान, वा आकाशके कोशके तुल्य, और अवयवरहित केवल ब्रह्मरूपही हो ॥ ८ ॥

ज्ञोसिकिंचिन्नकिंचिद्वानिःशंकमलमास्यताम् ॥ अचेतनाचिदाभासेशाम्यतामात्मनात्मनि ॥ ९ ॥ नित्यानंदतयाजस्यकारणंनास्तिकार्यकृत् ॥ सर्गाद्यसंभवेतस्माद्यदस्तितदजंशिवम् ॥ १० ॥ अजोयेषां तुचिद्रूपोनास्तिमौर्ख्यविलासिनाम् ॥ सर्गनाशेसमुत्पन्नेकिंतेषांप्रविचार्यते ॥ ११ ॥ यत्रयत्रपरंब्रह्मतत्र संतिजगंतिहि ॥ जगच्छब्दार्थरूपेणमुक्तान्येवंविधानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—हे विद्याधर! तुम ज्ञानरूपहो सब रूप होनेसे किंचिद्रूपहो सबका बाध होनेसे कुछ नहींहो, इस बुद्धि तथा चिदाभास शून्य आत्मामें निःशंक स्थित रहो ॥ ९ ॥ अजन्मा परमात्माके स्वाभाविक नित्यानन्द स्वरूप होनेसे फलजनक कोई कारण नहीं है इसलिये सृष्टि आदि कार्य्यके असंभव होनेसे जो कुछ है वह अज शिवरूपही है ॥ १० ॥ मूर्खतामें विलासी जिन जीवोंकी दृष्टिमें अजन्मा चिद्रूप नहीं है उनके लिये सृष्टिके नाश वा उत्पत्तिके विषयमें विचार व्यर्थ है, अर्थात् उनकी मुक्ति कदापि न होगी ॥ ११ ॥ जहां २ परब्रह्म है वहां २ जगत्के शब्दार्थसे रहित (मिथ्या) जगत् है ऐसे विचारवाले अर्द्धप्रबुद्धहैं ॥ १२ ॥

तृणेकाष्ठेजलेकुड्येसर्वत्रैवपरंस्थितम् ॥ सर्वत्रैवचसगौंघःपरिप्रोतःस्थितोमिथः ॥ १३ ॥ ब्रह्मणःकः स्वभावोसाविति वक्तुंनयुज्यते ॥ अनंतेपरमेतत्त्वेस्वत्वास्वत्वात्यसंभवात् ॥ १४ ॥ अभावसव्यपेक्षस्य

भावस्यासंभवादपि ॥ पदंबभ्रंतिनानंतेस्वभावाद्युरुक्तयः ॥ १५ ॥ अस्वत्वाभावयोर्नित्येनंतेत्यंतम संभवात् ॥ स्वत्वभावेषुसिद्धेषुस्वभावोक्तिर्नतिष्ठति ॥ १६ ॥

अर्थ—तृण, काष्ठ, जल और भित्ति आदिमें सर्वत्र परब्रह्म स्थितहै और सर्वत्र सृष्टिका समूह उसमें परस्पर गुथा हुआ स्थितहै ॥ १३ ॥ ब्रह्मका यह क्या स्वभावहै यह नहीं कहसके क्योंकि अद्वैत अनंत ब्रह्ममें निजस्वभाव तथा परस्वभावका अत्यंत असंभव है ॥ १४ ॥ अभावकी अपेक्षा रखनेवाले स्वभावके असंभव होनेसे परब्रह्ममें स्वभाव आदि दुष्ट उक्ति नहीं ठहर सकती ॥ १५ ॥ नित्य अनंत सर्वरूप परब्रह्ममें अस्वत्व तथा अभाव होनेसे, स्वयं व्यावर्तक पदार्थोंमें स्वभावका कथन नहीं बन सकता ॥ १६ ॥

नाहंत्वंलभ्यतेसाधोबुद्धयोलोकेनिरीक्षितम् ॥ असदेवकुतोप्येतद्बालयक्षइवोदितम् ॥ १७ ॥ मुक्तंत्वहं त्वशब्दार्थैर्लभ्यतेयच्चतत्परम् ॥ युक्तंत्वहंत्वशब्दार्थैःप्रेक्ष्यमाणंविलीयते ॥ १८ ॥ भेदोजगद्ब्रह्मद्दशोरभेदःपर्यायशब्दार्थविलासतुल्यः ॥ संकल्पमात्रंकथितोनसत्योयथानयोर्वैकटकत्वहेम्नोः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने सर्गापवर्गप्रतिपत्तियोगोपदेशो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—हे साधो! विचारसे देखनेपर ब्रह्ममें अहंता कहीं लब्ध होती है, इसलिये बालकको वेतालके तुल्य यह असत्यही कहींसे प्रकट हुई है ॥ १७ ॥ अहंताके शब्दार्थसे मुक्त जो ब्रह्मकी उपलब्धि होती है उसमें जो अहंताका योग संभव होताहै वह शास्त्र तथा आचार्य्यके अनुभवसे देखा जाय तो नष्ट होजाताहै ॥ १८ ॥ जगत तथा ब्रह्म शब्दका जो भेद है, यथार्थमें वह अभेद है जगत् तथा ब्रह्म ये दोनों शब्द पर्य्यायके विलासके तुल्य हैं, राहुका शिर वा सुवर्णका कटक जैसे इनका भेद विकल्पमात्र है, ऐसे विद्वानोंने जगत् ब्रह्मका भेदभी विकल्पमात्रसे कहाहै वह सत्य नहीं है ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्गापवर्गप्रतिपत्तियोगोपदेशो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस ११ के सर्गमें इन्द्रियोंको जीतकर निर्विकार आत्मामे मनकी स्थिति करनी चाहिये, और देहादि दृश्यकी अभावनाको स्थिर करना चाहिये यह विषय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ भुशुंडउवाच ॥ शस्त्राणिदयितांगानिलग्नान्यंगेनिरंबरे ॥ योबुध्यमानःसुसमःसपरस्मिन्पदेस्थितः॥ ॥ १ ॥ तावत्पुरुषयत्नेनधैर्येणाभ्यासमाहरेत् ॥ यावत्सुषुप्ततोदेतिपदार्थोदयनंप्रति ॥ २ ॥ यथाभूतार्थतत्त्वज्ञमाधयोग्रगताअपि ॥ नमनागपिलिंपंतिपयांसीवसरोरुहम् ॥ ३ ॥ शस्त्रांगनानभांस्यंगलग्नान्यलमसंविदम् ॥ अलग्नानीवशांतात्मायःपश्यतिसपश्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले कि—हे विद्याधर ! शस्त्रोंके आघात, तथा स्त्रीके कोमल अंगवस्त्ररहित शरीरमें लगे, और उन दोनोंका अनुभव करते हुये भी जिसकी विकाररहित समान स्थिति है वही जितेन्द्रिय पुरुष परमपदमें स्थित है ॥ १ ॥ इन्द्रियोंके जीतनेका अभ्यास तबतक धैर्य्यसे करना चाहिये जबतक शस्त्र वा स्त्रियोंके अंग अपनी शरीरमें लगनेपर उनको मिथ्या वा विरस जानके जाग्रत्मेंही सुषुप्तिकी दशा न होजाय ॥ २ ॥ यथार्थ परमात्माको जाननेवाले पुरुषको साक्षात् प्राप्त भी मानसीव्यथा ऐसे नहीं किंचित् लिप्त होती जैसे कमलमें जल ॥ ३ ॥ शस्त्र तथा उत्तम ललनाओंके कोमलअंगोंके शरीरमें लगनेपरभी आकाशसमान न लगे हुये जो दखताहै वही शांत महात्मा यथार्थमें देखताहै ॥ ४ ॥

विषंयथास्वांतरेवद्दुर्घुणीभवतिस्वयम् ॥ नचद्दुर्घुणतानामविषादन्यास्तिकाचन ॥ ५ ॥ स्वरूपमजहत्त्वेवंजीवतामधितिष्ठति ॥ तथात्मतत्परिज्ञानमात्रैकप्रविलापिनीम् ॥ ६ ॥ जीवोभवतिदुर्घूणोऽमृत्यात्मैवयथातथा ॥ अत्यजंतीनिजंरूपंचिज्जडंरूपमृच्छति ॥ ७ ॥ ब्रह्मण्यनन्योप्यन्याभोद्दुर्घुणःक्वचिद्दुस्थितः ॥ तत्स्थःसएवासइवाप्यतत्स्थइवसर्गकः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे विष अपनेंही स्वरूपमें दुष्ट घुणआदि कीटरूपताको प्राप्त होताहै और वह कीटरूपता विषसे अन्य कोई वस्तु नहीं है, ऐसेही आत्मा ब्रह्म अपने स्वरूपको न त्यागते हुये जीवरूपताको प्राप्त होताहै; और आ-

त्माके ज्ञानमात्रसे वह जीवरूपता नष्ट होजाती है, अर्थात् जीवता ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥ जैसे अमरण स्वभाव जड विष काष्ठादि अपने स्वभावको न त्यागते हुये मरणस्वभाव कीटरूपताको प्राप्त होताहै ऐसेही चिद्ब्रह्म भी अपने स्वभावको न त्यागताहुआ जडरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ विषमें कीटके समान, ब्रह्ममें ब्रह्मसे अभिन्न उससे भिन्नके समान भासमान यह सृष्टिरूप दुष्ट घुण भी कहींसे आविर्भूतहै, यद्यपि यह उसीमें स्थित उसीका रूपहै तथापि उससे भिन्न और उसमें न स्थितके सदृश भासताहै ॥ ८ ॥

विषंविषत्वमजहद्यथास्वांतःकृमिःक्रमात् ॥ नजायतेनम्रियतेम्रियतेपिचजायते ॥ ९ ॥ स्वेनैवसंविदर्थे नपदार्थामग्नरूपिणा ॥ तीर्यतेगोष्पदमिवनतुदैवाद्भवार्णवः ॥ १० ॥ सर्वभावांतरावस्थासर्वभावाति शायिनी ॥ अंतःशीतलतायस्मिंस्तस्मिन्किमिवहेलनम् ॥ ११ ॥ जगत्पदार्थसत्तांतःसमान्येनाशुभा विते ॥ मनोहंकारबुद्ध्यादिकःकलंकोमलात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे विष अपने स्वभावको न त्यागकर क्रमसे कीट होताहै और विष दृष्टिसे वह न जन्मताहै न मरता और कीट दृष्टिसे जन्मता मरताहै ऐसेही आत्मा ब्रह्मदृष्टिसे जन्ममरण रहितहै, और जीवदृष्टिसे उनके सहितहै ॥ ९ ॥ देह इन्द्रियादिमें ममताके अभावसे, तथा श्रवण मनन आदि प्रयत्नसे आत्माका साक्षात करनेसे इससंसार सागरसे गौके खुरके समान पार होजाताहै ॥ १० ॥ सब प्रियपदार्थोंकी सारभूत, सब संसारी सुखोंसे परमोत्तम, ज्ञानावस्थारूप शीतलता जब अन्तःकरणमें आती है तब दरिद्रजनमें भी किस पदार्थका अनादर होसकता है ॥ ११ ॥ मन, बुद्धि और अहंकारादिरूप सम्पूर्ण जगत्के पदार्थोंकी सत्ता सन्मात्र ब्रह्ममें शीघ्र लीन होनेसे निर्मल ब्रह्ममें कलंककी क्या संभावनाहै ॥ १२ ॥

यथाघटपटाद्यर्थान्पश्यस्येवंशरीरकम् ॥ तथाहंत्वमनोबुद्धिवेदनाद्यपिपश्यहे ॥ १३ ॥ जगत्पदार्थसा र्थौघमनोबुद्ध्यादिसंस्थितम् ॥ ज्ञएवासंविदंस्तिष्ठपरिनिष्ठितनिष्ठया ॥ १४ ॥ नकेनचित्कस्यचिदेवक श्चिद्दोषोनचैवेहगुणःकदाचित् ॥ सुखेनदुःखेनभवाभवेननचास्तिभोक्तानचकर्त्तृताच ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरो० यथाभूतार्थ वेदनं नामैकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे विद्याधर ! जैसे घटपटादि पदार्थोंको उदासीनरूपसे देखतेहो, ऐसेही अहं अभिमानको त्यागकर शरीर मन बुद्धि आदिकोभी देखो ॥ १३ ॥ उसके पश्चात् साक्षीरूपसे बाह्य जगत्के पदार्थ समूहोंके और अभ्यंतर मन बुद्धिको अनुभव न करतेहुये अपनी स्वाभाविक चित् स्थितिसे स्थितरहो ॥ १४ ॥ उस ज्ञानरूप दशामें संपत्ति वा विपत्ति; और उनसे उत्पन्न सुख वा दुःखसे गुण वा दोषसे किसीको कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि शुद्धआत्मामें कर्तृता भोक्तृता नहीं है ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे यथाभूतार्थ वेदनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस १२ के सर्गमें भ्रांतिमात्र अहंकार, जगत्का भ्रम चित्का विवर्तमात्रहै उसके मूलभूत अविद्याके नाशकी रीति इत्यादि विषय वर्णितहैं ॥

॥ भुशुंडउवाच ॥ खएवव्योमसंपन्नमितिसंकल्पनंयथा ॥ भ्रांतिमात्रमसद्रूपंतथाहंभावभावनम् ॥१॥ खेखंजातमितिभ्रांतेरहंकल्पयितायथा ॥ तथानिर्व्यपदेश्यात्मसदस्त्यसदिवाततम् ॥ २ ॥ खेखात्मैवा स्तिचिद्रूपंतत्स्वकंबुद्ध्यतेवपुः ॥ भासतेयदिदंत्वेननाहमस्मिनचानहम् ॥ ३ ॥ ततश्चिद्रूपमस्तीदृग्य त्रस्थूलंखमप्यलम् ॥ अणाविवमहामेरुस्तत्संवित्तिर्हिखादिता ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले—कि हे विद्याधर ! जैसे आकाशमें दूसरे महान् आकाशकी उत्पत्तिका संकल्पहो; ऐसेही आत्मामें भ्रांतिमात्र असद्रूप अहंभावकी संभावनाहै ॥ १ ॥ आकाशमें आकाश उत्पन्न हुआ इस भ्रमके कल्पकके समान आत्मामें अहंभावका कल्पक अविद्यासे आच्छन्न अनिर्वचनीय असत्के तुल्य सत्आत्माही है ॥ २ ॥ जैसे आकाशमें आकाश हुआ इस कल्पनामें अन्य आकाशकल्पके चित् स्वरूपसे भिन्न नहीं है ऐसेही अद्वैत आत्मामें अहंभावको कल्पक अपने चित्स्वरूपकोही अविद्यामानकर अहं, इदम्, (मैं यह) इत्यादि कल्पना करके स्वयं

भासताहै, इसलिये अज्ञानके सिवा अहं वा अन्य प्रपंच कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये परमाणुमें महा मेरुके तुल्य सर्वत्र व्याप्त सब कल्पनाका अधिष्ठान चिद्रूप परम सूक्ष्महै जहां आकाश भी अति स्थूलहै, उसी अति सूक्ष्म चित्की कल्पना आकाशादि जगत्रूपहै ॥ ४ ॥

घनस्ततोऽचिदाभासःखादप्यतितरामणुः ॥ जानातियत्स्वभावंतदेतत्सर्गतयास्थितम् ॥ ५ ॥ अहं ताखादिताद्यात्मविदःप्रसरणंजगत् ॥ अंभोद्रवप्रसरणंयथावर्त्तादिवेष्टनम् ॥ ६ ॥ अचित्प्रसरणंशांत मस्पंदीवजलद्रवः ॥ निस्पंदपवनाकारमाकाशहृदयोपमम् ॥ ७ ॥ नदेशकालादिजगत्प्रसरेषुचयुज्यते॥ घनाच्छून्यान्निराभासाच्चिन्मात्रविसराहते ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मचित्से अतिस्थूल और आकाशसें अतिसूक्ष्म अनादि अज्ञानरूप विर्वत है, क्योंकि पर सूक्ष्म-चेतन अनादि अहम् इदम् (अनादि मैं, यह) इत्यादि रूप वासनासे उत्तरोत्तर स्थूल अपने स्वभाव कल्पनासे सबको जानताहै, यही चित्की कल्पना सृष्टिरूप रूढ है ॥ ५ ॥ आत्मचेतनका अहंता तथा आकाशादि जगत् ऐसे विवर्त है जैसे जलका तरंगादि ॥ ६ ॥ और चित्के विवर्तका अभावही शांत जल, निश्चल पवन वा आकाशके तुल्य शुद्धचित्की स्थिति जगत्का प्रलय है ॥ ७ ॥ इसप्रकार देशकालादि जगत् तथा उसके अवांतर अन्य सहस्रों कार्य्य घन अविद्याभाससे शून्य चित्के विवर्तके सिवाय अन्य कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

चिन्मात्रेप्रसृतेकालेव्योम्निनाविजलेस्थले ॥ निद्रायांजाग्रतिस्वप्नेभवेज्जगदिवोदितम् ॥ ९ ॥ प्रसरणाप्रसरणेनचसंभवतोविदः ॥ खादप्यत्यंतस्वच्छत्वादक्षोभादेःसदैवहि ॥ १० ॥ ज्ञश्चेततिनभोगादिनचैवात्मन्यसावहम् ॥ द्रवत्वमंभसीवांतरद्वितीयःपरेस्थितः ॥ ११ ॥ धीह्रीःश्रीर्भीःस्मृतिःकीर्तिःकांतिरित्यादिकंगणम् ॥ नपश्यतिविसंकल्पस्तमसीवपदान्यहेः ॥ १२ ॥

अर्थ—चिन्मात्रके विवर्त विवर्त विस्तार होनेसे आकाश, देशकाल, नौका, जल, स्थल, जाग्रत मनोराज्य तथा स्वप्नमें यह जगत् उदितके समान भासताहै ॥ ९ ॥ परंतु आकाशसेभी अतिसूक्ष्म होनेसे तथा संचलन आदि सर्व विकारोंसे शून्य होनेसे चित्का वास्तविक विस्तार तथा संकोचका असंभव है इसीसे जगत्की उत्पत्ति तथा नाश अज्ञान सिद्ध है ॥ १० ॥ ज्ञानमात्र आत्मा विषयजनित सुख वा दुःखादिका अनुभव नहीं करता, और न इस आत्मामें यह तथा मैं इत्यादि व्यवहार है किंतु जलमें द्रवत्वके तुल्य अद्वितीय आत्मा अपने कूटस्थ स्वभावमें स्थित है ॥ ११ ॥ संकल्परहित आत्मा चिन्ता, लज्जा, हर्ष, भय, स्मृति, कीर्ति तथा इच्छादि मनोवृत्तियोंको ऐसे नहीं देखता जैसे अन्धकारमें सर्पके पद ॥ १२ ॥

ब्रह्मेंदुबिंबस्फुरितचिज्ज्योत्स्नांशामृतद्रवः ॥ दिक्कालासंभवात्सर्गोनेश्वरादतिरिच्यते ॥ १३ ॥ आधिमान्यःस्फुरत्येवंपरेस्फुरतिभासुरम् ॥ जगदाद्यात्मकंचित्तंचक्रौघत्वमिवांभसि ॥ १४ ॥ मज्जनोन्मज्जनारवैर्विवर्त्तावर्त्तवेष्टनैः ॥ अच्छिन्नानुपदंक्षीणाभातिसर्गसरिच्चिरम् ॥ १५ ॥ यथावर्त्तैःपयोभातिधूमो भातियथानघः ॥ तथाजडात्मकतयात्रृतीयःसर्गएतयोः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे विद्याधर! ब्रह्मरूप चन्द्रबिंबसे स्फुरित जीव चिदाभासरूप चन्द्रिकाके अंशरूप चाक्षुष आदि ज्ञानमय अमृतरस यह जगत् देशकालसे अस्पृष्ट परमात्मासे भिन्न नहीं हैं ॥ १३ ॥ इस रीतिसे परमात्मामें निजस्वरूपसे अभिन्न प्रकाशमय जगत्के स्फुरित होनेपरभी किसी देहादिमें जो मानसी चिन्ता पूर्ण अहंकाररूपसे स्फुरित होताहै यह सब जीव बन्धनादिरूप सब जगत्रूपसे कल्पित भ्रांत चित्त आत्मामें ऐसे हैं जैसे जलमें आवर्त्तसमूह ॥ १४ ॥ मज्जन तथा उन्मज्जनके शब्दोंसे तथा विस्तृत आवर्तोंसे पूर्ण यह सृष्टिरूप नदी आत्माके साक्षात्कारमात्रसे चिरकालके लिये ऐसे क्षीण होजाती है जैसे मरुभूमि साक्षात्कारसे मृगतृष्णाकी नदी ॥ १५ ॥ जैसे आवर्तोंसे जल वा दूरसे धूमसमूह सघन मेघरूपसे भासताहै ऐसे ब्रह्मरूप मनसे यह सृष्टि जड तथा अजडरूपसे भासती है ॥ १६ ॥

दारुणिक्रकचच्छेदेयथावर्त्तादिकंतथा ॥ अदिगादौपरेसर्गस्तदतद्रूपवानयम् ॥ १७ ॥ संसारकदलीस्तंभाद्विनासंकल्पपल्लवम् ॥ मृदुनोपिदृषत्क्रूरान्नकिंचिल्लभतेतरम् ॥ १८ ॥ सहस्रखुरमूर्द्धाक्षिकरवत्केहितोहितम् ॥ नानाद्रितनुदिग्देशसरित्प्रादेशमात्रकम् ॥ १९ ॥ अंतःशून्यमसारात्मबहुरागोपरंजितम् ॥ स्फुरद्विरागविहितमार्जनामात्रतर्जनम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे आरीसे काष्ठके फाडनेपर उस आवर्त काष्ठसे भिन्न तथा अभिन्नरूपसे भासते हैं ऐसे देशकालादि शून्य परमात्मामें यह सृष्टि जड तथा अजडरूपसे भासती है ॥ १७ ॥ मिथ्या होनेसे निजस्वरूपसे अति कोमल और अधिष्ठान सत्तासे पाषाणसे भी अतिदृढ इस संसाररूपी स्तंभ तथा स्फटिक शिलामें प्रतिबिंबित केलाके स्तं-

भमें संकल्पोंसे कल्पित पल्लवके सिवाय कुछभी भेद नहीं उपलब्ध होता ॥ १८ ॥ सहस्रों शिर, पद, नेत्र, हस्त, मुख तथा इनके चेष्टा तर्कादि सहित और नानाप्रकारके पर्वत, प्राणियोंके शरीर, दिशायें तथा नदीआदि सहित यह संपूर्ण जगत् परमात्माके स्वरूपमें अंगुष्टमात्रके समान परिच्छिन्न है ॥ १९ ॥ अनेक प्रकारके कामादिरूप रंगोंसे रंजित, भीतरसे शून्य तथा असार यह जगत् केवल तीव्र वैराग्यमात्रसे मार्जित होसकताहै ॥ २० ॥

ससुरासुरगंधर्वविद्याधरमहोरगम् ॥ जडात्मपवनस्पंदिपरचेतनचेतितम् ॥ २१ ॥ पटेचित्रमहाराज्य मिवभासुरसुंदरम् ॥ परामर्शासहंचारुविकल्पस्फूर्जितंजगत् ॥ २२ ॥ स्पंदात्मनिविकल्पांशेपतिताऽ सत्यरूपिणि ॥ संवित्प्रसरतिभ्रांतौतैलबिंदुरिवांभसि ॥ २३ ॥ हल्लेखाजालविसरैःसर्वावर्तविवर्त्तनैः॥ विसरत्स्नेहसंमिश्रजडानुदयचर्वणैः ॥ २४ ॥

अर्थ—सुर, असुर, विद्याधर, गंधर्व, तथा महोरगादि सहित सम्पूर्णजगत् जडपवनसे वा सूत्रात्मासे संचलशील है, और परब्रह्म वा द्रष्टाचेतनसे चेतितहै ॥ २१ ॥ विकल्पसे स्फुरित यह रमणीय जगत् प्रकाशशील तथा सुन्दर महाराज्य (महावर) के चित्रके तुल्य आत्मविचार वा उपमर्दसे नष्ट होताहै ॥ २२ ॥ संचलनशील तथा असत्यशील विकल्पांशमें प्रतिबिंबित संवित् ऐसे विस्तृत होती है जैसे जलमें तैलका बिंदु ॥ २३ ॥ हृदयको क्षोभ करानेवाले वासना कामादि जालसमूहोंसे बद्ध, तथा स्त्रीपुत्रादिमें विसरणशील स्नेहसे मिलीत शब्द स्पर्शआदि विषयरसोंके आवर्तरूप तरंगोंसे जो संवित्का विस्तार है यही महाराज्यरूपसे वर्णित संसार है ॥ २४ ॥

अहमित्यादिचिद्रूपेविकल्पेनोन्मुखीसती ॥ नपराद्व्यतिरिक्तैषाजलत्वादिवतोयता ॥ २५ ॥ चिदादित्यःस्वआत्मैवसर्गइत्याभिधीयते ॥ भूत्वाहमितितेनान्योनसर्गोस्तिनसर्जकः ॥ २६ ॥ स्पंदात्मिकायांसत्तायांयथास्पंदोजलद्रवः ॥ तथाचिदात्मव्योमत्वेनव्योमत्वादिवेत्तिहि ॥ २७ ॥ देशकालादिनिर्माणपूर्वकंवेदनंविदः ॥ सर्गात्मकत्वात्तेनांबुद्रवसाम्यंनदूरगम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यह आदिचित् अहंभाव आदि विकल्पोंसे बाह्य मुख होके जीव दशाको प्राप्तके तुल्य भान होती है वह परमात्मासे ऐसे अभिन्नरूप है जैसे जलता ॥ २५ ॥ यह चित्रूप सूर्यही उपाधिमें प्रवेशकेद्वारा अहम् इत्यादि नाम होके सृष्टि कहाजाताहै, और यथार्थमें चेतनसे अन्य न कोई सृष्टि है न स्रष्टा है ॥ २६ ॥ जैसे जलकी स्पन्दरूप सत्तामें यथार्थमें जल द्रव स्पन्दरहितही है ऐसेही आकाशादि प्रपंचकी रचनामें चिदात्मा न आकाशादिरूपसे स्थितहै न उनका कर्ता है और न अपने भिन्न आकाशादिको जानताहै ॥ २७ ॥ व्यवहार वा सृष्टिदशामें देशकालके निर्माणपूर्वकही आकाशादि पंचभूतकी रचनारूपसे स्फुरणही सृष्टिरूप है इसलिये जलद्रवकी समतारूप दृष्टांत विषम नहीं है ॥ २८ ॥

मनोहंभावबुद्ध्यादिर्यत्किंचित्रामवेदनम् ॥ अविद्यांविद्धियत्नेनपौरुषेणाशुनश्यति ॥ २९ ॥ अर्द्धमिथः संकथयाभागःशास्त्रविचारणैः ॥ आत्मप्रत्ययतःशिष्टमविद्यायानिवर्त्तते ॥ ३० ॥ चतुर्भागात्मनिकृते इत्यविद्याक्षयेक्रमात् ॥ समकालाच्चयच्छिष्टंतदनामार्थसन्मयम् ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अर्द्धमिथः संकथयाभागःशास्त्रविचारणैः ॥ आत्मप्रत्ययतोभागःकथंतस्यानिवर्त्तते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे साधो ! मन, अहंभाव बुद्धि तथा देशकालादिके अनुभवादि विकल्पको तुम अविद्याही जानो और आत्मज्ञानरूप पौरुषसे नष्ट होती है ॥ २९ ॥ अविद्याका अर्द्धभाग दान, मान, तथा प्रणामादिसे तुष्ट तत्ववेत्ताओंसे वार्तालाप करने तथा शास्त्रोंके विचारसे नष्ट होताहै और शेष आधा आत्माके साक्षात्कारसे नष्ट होताहै॥३०॥ देहादिमें आत्माभिमान, स्त्रीपुत्रादिमें सत्यबुद्धिसे ममता, विक्षेप तथा आवर्ण शक्तिरूप इन छ भागमें विभक्त अविद्याका उत्तरोत्तर भूमिकामें चढनेसे नाश होनेसे उसी कालमें तथा क्रमसे भी नामादिरहित सचिन्मात्र शेष आत्मा ज्ञातहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले कि--हे भगवन् ! अविद्याका अर्द्धभाग विद्वानोंसे प्रश्नोत्तरसे और अर्द्धआत्माके साक्षात्कारसे कैसे नष्ट होताहै सो कहिये ॥ ३२ ॥

समकालेक्रमाच्चेतिमुनिनाथकिमुच्यते ॥ तदनामार्थसच्चेतिसच्चासच्चेतिकिंवद ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सुजनेनविरक्तेनसंसारोत्तरणार्थिना ॥ सहचाप्यात्मविदुषासंसृतिंप्रविचारयेत् ॥ ३४ ॥ यतः कुतश्चिदन्विष्यसविरागममत्सरम् ॥ जनंसज्जनमात्मज्ञंयत्नेनाराधयेद्बुधः ॥ ३५ ॥ संपन्नेसंगमेसाधोरविद्यार्थक्षयंगतम् ॥ विद्धिवेद्यविदांश्रेष्ठज्येष्ठश्रेष्ठदशोदयात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और हे मुनिश्रेष्ठ ! समकाल तथा क्रमसे इस कथनका क्या अभिप्रायहै, और नामार्थ रहित सन्मय शेष रहताहै, यहां सन्मय शब्दमें मयट् प्रत्ययसे असत् अंशका भी भान होताहै सो उसमें असत् अंश कितनाहै

सो कहिये ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे प्रिय ! संसारके पार जानेवाले विरक्त सज्जनपुरुषोंको आत्मवेत्ता तथा अन्य मुक्षुके साथ यह विचारना चाहिये कि यह संसार क्या है, इसका परिणाम, मूल तथा सार क्या है, और कैसे मनुष्य इसके पार जासकताहै ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान्‌को उचितहै कि जहां कहींसे विरक्त, मत्सररहित तथा आत्मज्ञ सज्जनमनुष्यको ढूंढकर उसको दानमानादिसे संतुष्ट करै ॥ ३५ ॥ हे वेत्ताओंमें श्रेष्ठरामजी ! साधुपुरुषका समागम होनेपर सब भूमिकाओंमें ज्येष्ठ, तथा साधन चतुष्टयकी संपत्तिसे श्रेष्ठ प्रथम शुभेच्छा नाम प्रथम भूमिकाके उदयसे अविद्याका अर्द्धभाग नष्ट हुआ तुम समझो ॥ ३६ ॥

अर्द्धंसज्जनसंपर्कादविद्यायाविनश्यति ॥ चतुर्भागस्तुशास्त्रार्थैश्चतुर्भागंस्वयत्नतः ॥ ३७ ॥ एकोभिलाषउत्पन्नोभोगेभ्यश्चनिवार्यते ॥ तत्क्षयेयात्यविद्यायाश्चतुर्थांशःस्वयत्नतः ॥ ३८ ॥ साधुसंगमशास्त्रार्थस्वयत्नैःक्षीयतेमलम् ॥ एकैकेनाथसर्वैश्चतुल्यकालंक्रमादपि ॥ ३९ ॥ यदविद्याक्षयैकात्मनकिंचित्किंचिदेवच ॥ शिष्यतेतत्परंप्राहुरनामार्थमसच्चसत् ॥ ४० ॥ ब्रह्मेदंघनमजराद्यनंतमेकंसंकल्पस्फुरणमविद्यमानमेव ॥ बुद्धैवंव्यपगतमानमेयमोहोनिर्वाणंपरिविहरन्विशोकमास्व ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने संकल्पसर्गयोरैक्यप्रतिपत्तिर्नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मुमुक्षुपुरुष अविद्याके अर्द्धभागको सज्जनोंके समागमसे, और एक चतुर्थांशको शास्त्रोंके विचारसे, और दूसरे चतुर्थांशको आत्मसाक्षात्काररूप अपने प्रयत्नसे नष्ट करै ॥ ३७ ॥ केवल एक तीव्रमोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न हो तो वह वैराग्यादि संपत्तिसे जीवको भोगोंसे तथा उसके साधनोंसे विरक्त करदेती है, और भोगोंके नष्ट होनेसे अविद्याका चतुर्थांश अपने यत्नसे नष्ट होताहै ॥ ३८ ॥ साधुसमागम, शास्त्रोंके विचार और अपने प्रयत्न, इन सबके एकसाथ मिलनेपर एकही कालमें, तथा एक २ के मिलनेसे क्रमसे अविद्यारूप मल क्षीण होताहै ॥ ३९ ॥ और अविद्याके क्षय होनेसे परमार्थ सदसत् शेष कहागयाहै, उसका यह अभिप्रायहै कि अर्थक्रियामें व्यवहारके अयोग्य होनेसे वह असत्‌के तुल्यहै और अबाध्य परमपुरुषार्थ होनेसे सद्रूपहै ॥ ४० ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शेष आत्मवस्तु आनन्दघन, अनन्त तथा जराआदि विकारोंसे शून्यहै, और जीव तथा जगद्रूप तो संकल्पका स्फुरणमात्र असत्‌है, ऐसा जानकर तुम प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता, तथा मोहादिसे रहितहोकर, निर्वाणरूपसे बिहार करतेहुये शोकसे शून्य स्थितरहो ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे संकल्पसर्गयो रैक्यपतित्तिर्नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

मायाके कार्य्यमें देशकालके उदरका अभाव, तथा इन्द्रके सूक्ष्म उरमें राज्यकी कल्पनाका विस्तार इस १३ के सर्गमें वर्णितहै ॥

भुशुंडउवाच ॥ जगत्प्रसररूपस्यनदेशउपयुज्यते ॥ नकालोधारणेस्तंभआलोकस्यांबरेयथा ॥ १ ॥ मनोमननिर्माणमात्रमेतज्जगत्रयम् ॥ शांतंतनुलघुस्वच्छंवातांतःसौरभादपि ॥ २ ॥ चिच्चमत्कृतिमात्रस्यसाधोजगदणोःकिल ॥ वातांतःसौरभंमेरुरन्यानुभवयोगतः ॥ ३ ॥ यंप्रत्युदेतिसर्गोयंसएवैनंहि चेतति ॥ पदार्थःसन्निवेशंस्वमिवस्वप्नंपुमानिव ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले—कि इस मायिक जगत्‌के विस्तार धारण करनेमें देश तथा कालकी अपेक्षा ऐसे नहीं है जैसे आकाशमें एककालमें फैलेहुये प्रकाशकाशको धारण करनेके लिये स्तम्भ (खंभे) की ॥ १ ॥ आत्मामें मनके मननकी रचनामात्र शांत, और पवनके भीतर प्रकाश वा सुगन्धसे अति सूक्ष्म, लघु और स्वच्छ यह त्रैलोक्यहै ॥२॥ हे साधो ! चित्‌के चमत्कारमात्र इस जगत्‌रूप अणुकी अपेक्षा वायुके अन्तर्गत तेज वा सुगन्ध भी मेरुके समान स्थूलहै, क्योंकि वायुके भीतरके प्रकाश अथवा सुगन्धको तो अन्य पुरुष भी नेत्र वा नासिकादि इन्द्रियोंसे अनुभव करते हैं ॥ ३ ॥ और यह जगत्‌की सृष्टि तो जिस पुरुषके मनमें उदय होती है वही ऐसे अनुभव करताहै जैसे मनोराज्य वा स्वप्नके पदार्थको मनोराज्य वा स्वप्नका द्रष्टा ॥ ४ ॥

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ यद्वृत्तंदेवराजस्यत्रसरेणूदरेपुरा ॥ ५ ॥ क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चित्किंचित्कल्पद्रुमेभवत् ॥ कस्यांचिद्युगशाखायांफलंजगदुडुंबरम् ॥ ६ ॥ ससुरासुरभूतौघमशकाहितघुंघुमम् ॥ शैलमांसलपातालद्युभूम्युग्रकपाटकम् ॥ ७ ॥ चिच्चमत्कृतिचारूच्चैर्वासनारसपीवरम् ॥ विविधानुभवामोदंचित्तास्वादमनोहरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसी विषयका इन्द्रको त्रसरेणुके भीतर जो अनुभूत हुआथा उस इतिहासको वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥ कभी किसी कल्पवृक्ष (सब कल्पनाओंके आधार माया शबलित ब्रह्म) में किसी युगकी संधिरूप शाखामें जगत्-रूप गूलरका फल उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ वह फल सुर असुर आदि प्राणियोंके समूहरूप मच्छरोंसे शब्दयुक्त था तथा पर्वतादिसहित दृढ पाताल, स्वर्ग और भूलोक आदिरूप दुधर्ष कपाटोंसे संयुक्त होनेसे वह फल अन्य फलोंसे विलक्षण था ॥ ७ ॥ चेतनकी चमत्कृतिरूप विचित्र रचनासे रमणीय, महान्, वासनारूप रससे स्थूल, अनेक शब्दादि विषयोंके अनुभवरूप सुगन्धयुक्त और चित्तके आस्वादसे मनोहर वह फल था ॥ ८ ॥

बृहद्ब्रह्मतरुप्रौढसत्तावततिकोटिगम् ॥ अहंकारमहावृंतंसमालोकसमुज्ज्वलम् ॥ ९ ॥ मोक्षद्वारविकास्यास्यंसरिदब्धिशिरावृतम् ॥ मात्रापंचककोशस्थंतरत्तारकसीकरम् ॥ १० ॥ कल्पावसानजरठंकाककोकिलगाम्यथ ॥ पतितंशांतिमायातंक्वाप्यंतावासनंगतम् ॥ ११ ॥ तत्राभूदमराधीशःशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ क्षौद्रकुंभनिषण्णानांक्षुद्राणामिवनायकः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा पूर्वोक्त महान् ब्रह्मरूप कल्पवृक्षमें आविर्भूत अनेक ब्रह्मांडके अन्तर्गत वह फल था, तथा अहंकाररूप महाफलोंके गुच्छोंसे संयुक्त और साक्षीचेतनसे उज्ज्वल वह फल था ॥ ९ ॥ तथा मोक्षद्वार ज्ञानसे विकसित मुखसहित अनेक नदी सद्रूपी नाडियोंसे पूर्णभूत तन्मात्रारूपी कोशमें स्थित, और उर्ध्वगामी नक्षत्ररूपी रंसोंसे पूर्ण वह फल था ॥ १० ॥ और महाकल्पके अन्तमें परिपक्व होके गिरनेमें तत्पर, अनंतर मुर्खरूपी काकों वा विवेकी जनरूपी कोकिलोंसे ग्रसित, और कहीं अन्तर्वासनामात्र शेष वासनारहित होनेसे ब्रह्मभावको प्राप्त होनेवाला वह फल था ॥ ११ ॥ और तीनोंलोकका स्वामी, देवताओंका अध्यक्ष इन्द्र उस गूलरमें ऐसे रहताथा जैसे मधुमक्षियोंके कुम्भ (छाति) मे स्थित मधुमक्षिकाओंका स्वामी ॥ १२ ॥

गुरूपदेशस्वाभ्यासात्सक्षीणावरणोभवत् ॥ महात्माभावितांतात्मापूर्वापरविदांबरः ॥ १३ ॥ नारायणादिषुततःकदाचिद्वीर्यशालिषु ॥ क्वचिदेवनिलीनेषुसत्स्वेकस्ससुराधिपः ॥ १४ ॥ शस्त्रज्वालानलोद्गारैरयुध्यतमहासुरैः ॥ विजितस्तैर्महावीर्यैरतोव्यद्रवदाद्रुतम् ॥ १५ ॥ दिशोदशसुवेगेनद्रुद्रावाभिद्रुतोरिभिः ॥ नविश्रमास्पदंप्रापपरलोकइवाधमः ॥ १६ ॥

अर्थ—कभी सब संकल्पोंके त्यागनेसे शुद्धान्तःकरण पूर्वापर वेत्ताओंमें श्रेष्ठ वह इन्द्रगुरुके उपदेश तथा अपने अभ्याससे अविद्यारूप आवरणसे रहित होगया ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् पराक्रमसे शोभित नारायणआदि जब कहीं क्षीरसागरमें शयन करतेथे तब अकेलाही उस देवनायकने ॥ १४ ॥ शस्त्रोंकी ज्वालारूपी महान् अग्निको धारण करनेवाले महाअसुरोंके साथ युद्ध किया, और महापराक्रमी उन असुरोंसे पराजित होनेपर शीघ्र भागा ॥१५॥ अतिवेगसे दशोदिशाओंमें भागतेहुये उसने कहीं विश्रामके स्थान ऐसे नहीं पाया जैसे अधमजन उत्तम परलोक॥१६॥

तद्भ्रांतदृष्टिष्वरिषुमनाक्छिद्रमवाप्यसः ॥ प्रशमंकायसंकल्पंनीत्वासंस्वांतरेबहिः ॥ १७ ॥ कमप्यर्कांशुकोशस्थंत्रसरेणुंविवेशसः ॥ संविद्रूपतयापद्मकोशंमधुकरोयथा ॥ १८ ॥ सतत्राशुविशश्रामचिरादाश्वासमाययौ ॥ अथविस्मृतसंग्रामोनिवृत्तिसमुपागमत् ॥ १९ ॥ कल्पितंसद्मतत्राथसक्षणादनुभूतवान् ॥ तस्मिन्सद्मनिपद्मांतरेमेस्वइवविष्टिरे ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् जब उसके शत्रु, भ्रान्तदृष्टि हुये तब किंचित् छिद्रको पाकर अपने शरीरके स्थूलाकार संकलपको अपने अन्तःकरणमेंही सूक्ष्मभूतमें लय करके बाह्यदेशमें ॥ १७ ॥ सूर्य्यके किरणरूप कोशमें स्थित त्रसरेणुमें अपने सूक्ष्म संकलपसे ऐसे प्रवेश किया जैसे कमलके कोशमें भ्रमर ॥ १८ ॥ उसने वहां शीघ्र विश्राम किया, क्योंकि चिरकालसे शांतको प्राप्त हुआ इसके पश्चात् संग्राम तथा बाहर निकलनेको भूलकर परमशांतिको पाया ॥ १९ ॥ वहांपर स्थानकी कल्पना किया और क्षणमेंही उसका अनुभव किया, और उस कल्पित स्थानमें पद्मासन-पर बैठके ऐसे रमण किया जैसे निजस्वर्गमें ॥ २० ॥

गृहस्थःसददर्शाथकल्पितंनगरंहरिः ॥ मणिमुक्ताप्रवालादिकृतप्राकारमंदिरम् ॥ २१ ॥ नगरांतर्गतोपश्यत्ततोजनपदंहरिः ॥ नानाद्रिग्रामगोवाटपत्तनारण्यराजितम् ॥ २२ ॥ तादृग्रतिश्चेतितवान्सशक्रो

भुवनंततः ॥ साद्रयब्ध्युर्वीनदीशांतंसक्रियाकालकल्पनम् ॥ २३ ॥ ताद्दग्रतिश्चेतितवान्सशक्रस्त्रिजगत्ततः ॥ सपातालमहीव्योमविष्टपार्कादिपर्वतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उस गृहमें स्थित इन्द्रने मणिमुक्ता तथा मूगोंकी भित्तियोंसे रचित अनेक मंदिरोंसे शोभित नगर देखा ॥ २१ ॥ और उस नगरके अन्तर्में स्थित इन्द्रने नानाप्रकारके ग्राम, नगर, गोव्रज, तथा जंगलोंसे शोभित नगर देखा ॥ २२ ॥ इसके अनंतर उसी संकल्पसे युक्त इंद्रने पर्वत, नदी, समुद्र, पृथिवी, उन राजा तथा राज्योंकी सीमासहित, और क्रिया कालादिकी कल्पना सहित भुवन देखा ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् उसी संकल्पसे युक्त इन्द्रने पाताल, पृथिवी, आकाश; स्वर्ग, तथा सूर्य्यपर्वतादि सहित तीनों लोकोंका अनुभव किया ॥ २४ ॥

तत्रातिष्ठत्सुरेशत्वेस भोगभरभूषितः ॥ पुत्रोबभूवतस्याथकुंदोनामाथवीर्यवान् ॥ २५ ॥ ततोजीवितपर्यंतेत्यक्त्वादेहमनिंदितः ॥ निर्वाणमाययौशक्रोनिःस्नेहइवदीपकः ॥ २६ ॥ कुंदस्त्रैलोक्यराजोभूज्जनयित्वासुतंनिजम् ॥ कालेनजीवितस्यांतेजगामपरमंपदम् ॥ २७ ॥ तत्पुत्रोपितथैवाथकृत्वाराज्येसुतंनिजम् ॥ जगामजीवितस्यांतेपावनंपरमंपदम् ॥ २८ ॥ एवंपौत्रसहस्त्राणिसमतीतानिसुंदर ॥ तत्राद्यापिसुरेशस्ययेषांराज्येस्थितोंशकः ॥ २९ ॥ इत्यद्ययावदमरेश्वरवंशएवसंकल्पितेजगतिशक्रपदंविधत्ते ॥ तस्मिन्क्षतेपिगलितेपिहतेपिनष्टेकाप्यंबरेदिनकरातपपावनाणौ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्यानांतर्गतेंद्रोपाख्याने त्रसरेण्वंतरसर्गसंघवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अनेक प्रकारके भोगोंसे पूर्ण इन्द्रदेवलोकमें देवता अधीश होके रहनेलगा, और अनन्तर अति पराक्रमी कुन्दनाम इन्द्रके पुत्र हुआ ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् जीवनके अन्त निन्दारहित इन्द्रने शरीरको त्यागकर निर्वाण (मोक्ष) को ऐसे प्राप्तहुआ जैसे तैल रहित दीपक ॥ २६ ॥ उसका पुत्र कुन्द तीनोंलोकका राजा हुआ और पुत्र उत्पन्न करके जीवनके अन्तमें परमपदमें प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ उसका पुत्र भी चिरकालतक राज्य करके अपने पुत्रको राज्यपर बैठाकार परमपावन मोक्षपदको प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ इसप्रकार उसके सहस्रों पौत्रादि होगये और हे सुन्दर ! अब भी उस इन्द्रके राज्यमें अंशकनामका राजा वर्तमानहै ॥ २९ ॥ हे साधो ! इसप्रकार सूर्य्यकी किरणसे पवित्र उस त्रसरेणुके आकाश देशमें कहीं नष्ट होनेपर भी इंद्रसे संकल्पित उस राज्यमें उसके वंशका पुरुष अवभी इन्द्रका राज्य पालन करताहै ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्यानान्तर्गतेन्द्रोपाख्याने त्रसरेण्वन्तरसर्गसंवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस १४ के सर्गमें उस कुलमें इन्द्रकी कमलकी दंडीमें जगत्की रचना, तथा ब्रह्मसे सबकी आकाशकी इन्द्रताका वर्णन कियागयाहै ॥

भृशुंडउवाच ॥ तस्यशक्रस्यकुलजःकश्चिदासीत्सुराधिपः ॥ तत्रोत्तमगुणःश्रीमान्पाश्चात्यायस्यसातनुः ॥ १ ॥ अथेंद्रकुलपुत्रस्यतस्यतत्रबभूवह ॥ प्रतिभाज्ञानसंप्राप्तिर्बृहस्पतिगिरोदिता ॥ २ ॥ ततोविदितवेद्योसौयथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ॥ चकारजगतांराज्यमाज्यपानामधीश्वरः ॥ ३ ॥ युयुधेदानवैः सार्द्धमजयत्सर्वशात्रवान् ॥ शतंचकारयज्ञानामज्ञानोत्तीर्णमानसः ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले कि—उसी इन्द्रके कुलमें उत्तम गुणोंसे पूर्ण, श्रीमान् वैराग्यादिकी सम्पत्तिसे अन्तिम शरीरधारी कोई इन्द्र हुआ ॥ १ ॥ इसके अनन्तर उस इन्द्रके कुलके उस पुत्रको बृहस्पतिके उपदेशसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई ॥ २ ॥ इसके अनन्तर वेदवस्तुको जाननेवाले तथा प्राप्त कार्योंको करनेवाले उस राजाने देवताओंका राज्य किया ॥ ३ ॥ उसने दानवोंसे युद्ध किया, शत्रुओंको जीता; और अज्ञानसे पारंगत उस राजाने शत (१००) अश्वमेधयज्ञभी किया ॥ ४ ॥

उवासकार्यवशतोबिसबालांतरेचिरम् ॥ अन्यान्यपिचवृत्तांतशतान्यनुबभूवह ॥ ५ ॥ कदाचिदासीत्तस्येच्छाप्रबोधबलशालिनः ॥ ब्रह्मतत्त्वमवेक्षेहंयथावद्ध्यानवानिति ॥ ६ ॥ सोपश्यत्प्रणिधानेनततए

कांतसंस्थितः ॥ सबाह्याभ्यंतरेऽशेषकारणत्यागशांतधीः ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिपरंब्रह्मसर्ववस्तुमयंततम्॥ सर्वथासर्वदासर्वंसर्वैःसर्वत्रसर्वगम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और किसी कार्य्यके वशसे उसने कमलदण्डके सूत्रके भीतर निवास किया और वहांपर उसने युद्धमें जय पराजय तथा अन्यभी अनेके कार्य्योंका अनुभव किया ॥ ५ ॥ उत्तम ज्ञान संपन्न उस देवनामकको कदाचित् यह इच्छा हुई कि मैं ध्यानमें स्थित होके मायाशबलित ब्रह्मका स्वभाव देखूं ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् बाह्य तथा आभ्यन्तरके सम्पूर्ण कारणोंको त्यागसे शांतबुद्धि, और एकांतमें स्थितध्यानसे उसने, सर्व शक्तियुक्त, सर्ववस्तुमय, व्याप्त, सर्वदा सब प्रकारसे सर्वरूप, और सर्वगामी परब्रह्मको देखा ॥ ७ ॥ ८ ॥

सर्वतःपाणिपादांतंसर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्त्यसंस्थितम् ॥ ९ ॥ सर्वेंद्रिय गुणैर्मुक्तंसर्वेंद्रियगुणान्वितम् ॥ असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच ॥ १० ॥ बहिरंतश्चभूतानामचरं चरमेवच ॥ सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत् ॥ ११ ॥ सर्वत्रचंद्रार्कमयंसर्वत्रैवधरामयम् ॥ सर्वत्रपर्वतमयंसर्वत्राब्धिमयंतथा ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक हस्तपाद सहित, अनंतनेत्र, शिर तथा मुखधारी, और अनेक कर्ण इन्द्रियुक्त सब लोकोंको व्याप्तकरके स्थित परमेश्वरको उसने देखा ॥ ९ ॥ सब इन्द्रियोंके गुणोंसे वर्जित, तथापि रूपादिके ग्रहण करनेकी शक्तियोंसे युक्त, परमार्थमें सबसे पृथक् व्यवहारमें सबके धारण करनेवाले, निर्गुण तथा व्यवहारमें गुणोंके भोगनेवाले परमात्माको उसने देखा ॥ १० ॥ सब भूतोंके बाहर भीतर स्थित अचर, तथाचर, सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय, अज्ञानसे दूर, और ज्ञानसे अति निकट आत्मरूप परमात्माको उसने देखा ॥ ११ ॥ सर्वत्र चन्द्रसूर्य्यमय, सर्वत्र पृथिवीमय, सर्वत्र पर्वतमय, और सर्वत्र समुद्रमय, परमात्माको उसने देखा ॥ १२ ॥

सर्वत्रसारगुरुकंसर्वत्रैवनभोमयम् ॥ सर्वत्रसंसृतिमयंसर्वत्रैवजन्मयम् ॥ १३ ॥ सर्वत्रैवचमोक्षात्मस र्वत्रैवाद्यचिन्मयम् ॥ सर्वत्रसर्वार्थमयंसर्वतःसर्ववर्जितम् ॥ १४ ॥ घटेपटेवटेकुड्येशकटेवानरेनरे ॥ धाम्निव्योम्नितरावद्रावनिलेसलिलेनले ॥ १५ ॥ नानाचारविचाराणिविविधावृत्तिमंतिच ॥ परमाण्वंश मात्रेपित्रिजगंतिददर्शसः ॥ १६ ॥

अर्थ—सर्वत्र चित्सार गुरुरूप, सर्वत्र आकाशमय, और सर्वत्र जगत्के पदार्थ तथा जगन्मय परमात्माको उसने देखा ॥ ११ ॥ सर्वत्र मोक्ष तथा चिन्मय, सर्वत्र सर्वपदार्थमय, तथा सर्वत्र सबसे रहित परमेश्वरको उसने देखा ॥ १४ ॥ घट, पट, वृक्ष, शकट, गृह, वानर, मन्दिर, आकाश, पर्वत, वायु, जल तथा अग्निआदि सब पदार्थोंमें परमात्माको उसने देखा ॥ १५ ॥ और नानाप्रकारके आचार विचार, संयुक्त, तथा स्वर्गनरकादिमें गमनागमनादि क्रियायुक्त, तीनोंलोकोंका एक परमाणुके अंशमात्रमें भी उसने देखा ॥ १६ ॥

मरिचस्यांतरेतैक्ष्ण्यंशून्यत्वमिवचांबरे ॥ त्रिजगत्सत्यसतिचविद्यतेचिन्मयात्मनि ॥ १७ ॥ इत्येवंभा वयन्मुक्तभावयाशुद्धसंविदा ॥ शक्रःक्रमेणतेनैवतथैवध्यानवानभूत् ॥ १८ ॥ ध्यानेनसर्वमेकत्रपश्यं श्चिरमुदारधीः ॥ ददर्शममसौसर्गमस्मदीयंमहामतिः ॥ १९ ॥ ततोस्मिन्विचरन्सर्गेशक्रांतेशक्रतांग तः ॥ चकारजगतांराज्यंवृत्तांतशतशोभितम् ॥ २० ॥

अर्थ—मरिचमें तीक्ष्णता, तथा आकाशमें शून्यताके तुल्य, तीनोंलोक, आविर्भाव तथा तिरोभाव कलामय परमात्मामें है ॥ १७ ॥ इसप्रकार जीवभावसे वर्जित शुद्धज्ञानसे देखता हुआ वह इन्द्र उसी शरीरमें क्रमसे ध्यानवान् होगया ॥ १८ ॥ उस उदार तथा महाबुद्धिने ध्यानसे सब ब्रह्मांडोंको एक परमात्मामें देखते हुये, इस हमारे तुमारे (हम सबसे अनुभूयमान) ब्रह्मको देखा ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर इस सृष्टिमें विचरता हुआ इसलोकके इन्द्रके निकट गया, और पूर्वकृत सौ (१००) अश्वमेधके संस्कारसे तथा इन्द्रमें अहंभावना करनेसे वह इन्द्र रूपताको प्राप्त हुआ और अनेक वृत्तान्तोंसे शोभित अनेक लोकोंका राज्यभी किया ॥ २० ॥

विद्याधरकुलाधीशइत्यद्यैवसदेवराट् ॥ तस्येंद्रस्यकुलोत्पन्नइतिविद्धियथास्थितम् ॥ २१ ॥ ततोहृदयबी जस्थप्राङ्मुख्याभ्यासयोगतः ॥ बिसबालनिवासादिवृत्तांतमनुभूतवान् ॥ २२ ॥ यथैषशक्रःकथित स्त्रसरेणुदरास्पदाः ॥ बिसबालास्पदश्चैतत्कुलजःकांतिमानथ ॥ २३ ॥ तथाशतसहस्राणितत्रेतश्चा न्यतश्चखे ॥ तादृशव्यहाराणिसमतीतानिसंतिच ॥ २४ ॥

अर्थ —हे विद्याधर ! इसप्रकार उसी त्रसरेणुके इन्द्रके कुलमें उत्पन्न देवताओंका राजा अबभी इस ब्रह्मांडमें स्थित है यह तुम जानो ॥ २१ ॥ इस लोकको इन्द्रपदवी प्राप्त होनेके पश्चात् हृदयमें बीजके सदृश स्थित

पूर्वकालके अभ्यस्त योगसे कमलदंडके सूत्रके भीतर अपने निवासादि सब वृत्तान्तोंका स्मरण किया ॥ २२ ॥ हे विद्याधर ! जैसे त्रसरेणुके भीतर इन्द्रके कुलमें उत्पन्न यह शोभावान् हमारे इन्द्र कहागया है ॥ २३ ॥ ऐसे हम इधरउधर अनेक इन्द्र तथा ऐसेही बीतेहुये अनेक व्यवहारभी चिदाकाशमें हैं ॥ २४ ॥

वहतीयमविच्छिन्नाचिरायैवंतरंगिणी ॥ तावद्दृश्यसरित्प्रौढारूढारूढेचतत्पदे ॥ २५ ॥ इतिमायेयमा दीर्घाप्रसृताप्रत्ययोन्मुखी ॥ सत्यावलोकमात्रातिविलयैकविलासिनी ॥ २६ ॥ यतःकुतश्चिन्मायेयंय त्रकचनवानघ ॥ यथाकथंचित्संपन्नमात्रैवपरिदृश्यते ॥ २७ ॥ अहंभावचमत्कारमात्राद्वृष्टिरिवांबु दात् ॥ जायतेमिहिकेवाशुप्रेक्षामात्रविनाशिनी ॥ २८ ॥ येनायताभिमतदर्शनद्रष्टृदृश्यमुक्तस्वभावम वभासनमात्मतत्त्वम् ॥ सर्वार्थशून्यमतएवचशून्यरूपमेकंस्वमात्रमिवमात्रविकल्पमेव ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्यानांतर्गतेंद्राणवाख्यानेसर्गसंकल्पयो रैक्यप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे साधो ! जबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं होता तबतक यह प्रबल दृश्यरूप नदी निरंतर चिरकालसे वहती रहतीहै, और चतुर्थ भूमिकासे लेके षष्टभूमिकामें पहुंचकर उस ब्रह्मपदमें अर्द्धआरूढ तथा अर्द्ध अनारूढ होनेपर ॥ २५ ॥ इस पूर्वोक्त अतिदीर्घमायाका अनुभव होताहै, और सत्य परमात्माके साक्षात्कारमात्रसे यह विलासित माया लीन होजातीहै ॥ २६ ॥ हे साधो ! जिस किसी हेतुसे उत्पन्न, जहां कहीं यथा कथंचित् यह माया अनुभवमात्रमें आती है, माया होनेसे इसकी बिचित्रताओंकी चिंता वा शंका न करनी चाहिये ॥ २७ ॥ मेघसे वृष्टिके तुल्य अहंभावरूप चमत्कारमात्रसे कुहिराके तुल्य यह उत्पन्न होती है, और आत्मदर्शनमात्रसे शीघ्र नष्ट भी होजाती है ॥ २८ ॥ इस मयामय जगत्के निजरूपसे मिथ्या होनेसे सब विकल्पोंसे रहित, अहंकारके कारण विस्तृत मानस विकल्पोंसे तथा द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इस त्रिपुटीरूप इन्द्रियजनित विकल्पोंसे वर्जित, बासनामय स्वप्नके पदार्थोंसे रहित, सुषुप्तिके अज्ञानसे युक्त, और सवार्थ शून्य, एक चिदाकाशरूपही साक्षीस्वरूप आत्माहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वालमीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्यानान्तर्गतेन्द्राणवाख्यानेसर्गसंकलपरैक्य प्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस १५ के सर्गमें जगत्की भ्रांतिका अहंभाव बीज तथा उसका रूप, उसके मार्जनसे जगत् अभाव द्वारा शुद्ध शेषआत्माकी प्राप्तिसे कृतार्थता वर्णितहै ॥

॥ भुशुंडउवाच ॥ यत्राहंत्वंजगत्तत्रपूर्वमागत्यतिष्ठति ॥ पराण्वतरपींद्रस्यत्रसरेणूदरेयथा ॥ १ ॥ भ्रम स्यजागतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत ॥ अहंभावोभिमंतात्मामूलमाद्यमुदाहृतम् ॥ २ ॥ वासनारस संसिक्तादहंबीजकणादयम् ॥ ब्रह्माद्रौव्योमविपिनेजायतेत्रिजगद्द्रुमः ॥ ३ ॥ तारकापुष्पनिकरोविली नाचलपल्लवः ॥ सरित्सारशिरापूरोवासनासारतत्फलः ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले—कि हे साधो ! जहां अहंभाव तथा त्वंभावहै वहां जगत् प्रथमसेही आके ऐसे स्थित होताहै जैसे त्रसरेणुके भीतर इन्द्रका राज्य आदि प्रपंच ॥ १ ॥ आकाशके वर्णके तुल्य आविर्भूत इस जगत्के भ्रमका अभिमन्तारूप अहंभावही आदिभूत कहागयाहै ॥ २ ॥ वासनारूपी रससे सींचे हुये अहंभावरूप बीजकणसे ब्रह्मरूपी पर्वतपर अव्याकृत आकाशरूप जंगल त्रिलोकीरूप वृक्ष उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ तारागणरूपी पुष्पोंके समूहसे युक्त, मेघरूप वनोंसे अच्छादित पर्वतरूपी पत्रसहित, गंगा आदि नदीरूप नाडियोंके प्रवाहसे पूर्ण, और वासनारूप दृढ बीजवाले फलोंसे शोभित वह त्रिलोकीरूप वृक्षहै ॥ ४ ॥

अहंत्वसलिलस्येदंजगत्स्पंदउदाहृतः ॥ चिच्चमत्करणस्वादुर्वासनाविसरद्रवः ॥ ५ ॥ तारकासीकरा सारोनभोनंतनिखातवान् ॥ भावाभावमहावर्त्तोनानागिरितरंगकः ॥ ६ ॥ त्रिलोकीविलिखल्लेखोविलो लालोकफेनिलः ॥ ब्रह्मांडबुद्बुदोद्भेदःकवाटापीडपीवरः ॥ ७ ॥ भूपीठदृढडिंडीरपिंडश्चिद्घनमद्गुमान्॥ चित्राजवंजवीभावमज्जनोन्मज्जनात्मकः ॥ ८ ॥

अर्थ—विषयके सुखरूपी मधुरतायुक्त, दुष्ट वासनारूपी विस्तृत द्रवतासहित यह जगत्‌रूपी स्पन्द अहंभाव रूप जलका विलासहै ॥ ५ ॥ और तारागणरूपी वृष्टिके कणसहित, आकशरूपी आपार सरोवर संयुक्त, पदार्थोंके आविर्भाव तिरोभावरूपी महा अवर्त सहित, तथा नानाप्रकारके पर्वतरूपी तरंगोंसे शोभित यह जगत्‌रूपी जलका विलासहै ॥ ६ ॥ चित्रकी लेखाके समान त्रिलोके जनरूप रेखासहित, सूर्य्य चन्द्रादिके प्रकाशरूप फेन संयुक्त, ब्रह्मांडरूपी बुद्बुदोंसहित तथा मोक्षद्वारके अबरोधक मोहरूपरूपी पुलके केवाडोंसे स्थूल यह जल विलासहै ॥ ७ ॥ तथा पृथिवीके पीठरूप दृढसमुद्रके फेन पिंडसहित, अनेक जीवरूपी काकसहित, और उनकाकोंके वेगसे नीचे ऊपर भ्रमणरूप मज्जन तथा उन्मजनोंसे शोभित यह जगत् अहंकाररूपी जलका विलासहै ॥ ८ ॥

जरामरणमोहादिवीचीचयचमत्कृतिः ॥ उत्पन्नध्वंसिदेहादिबिंदुवृंदैकबंधुरः ॥ ९ ॥ अहंत्वपवनस्पंदोजगदित्यवगम्यताम् ॥ अहंत्वपद्मसौगंध्यंजगदित्यवबुध्यताम् ॥ १० ॥ नाहंत्वजगतीभिन्नेपवनस्पंदवत्सदा ॥ पयोद्रवत्वमिवचवह्नेरौष्ण्यमिवपिच ॥ ११ ॥ जगदस्त्यहमर्थेंतरहमस्तिजगद्धृदि ॥ अन्योन्यभाविनीत्वेतेआधाराधेयवत्स्थिते ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा जरामरण और मोहादिरूपी तरंगोंके समूहरूप चमत्कार संयुक्त, और उत्पत्ति विनाशशील देहादि पदार्थरूपी बिन्दुओंके वृंदसे शोभित यह जलविलासहै ॥ ९ ॥ हे साधो! अहंकाररूपी पवनका स्पंद, वा अहंकाररूपी कमलका सुगन्ध इस जगत्‌को तुम जानो ॥ १० ॥ पवन तथा उसका स्पंद, जल और द्रवत्व, तथा अग्नि और उसकी उष्णताके समान अहंकार तथा जगत् सदा अभिन्नरूप है ॥ ११ ॥ हे साधो! अहंकारके भीतर जगत् और जगत्‌के भीतर अहंकार है, ये दोनों परस्पर एक दूसरेको उत्पन्न करनेवाले, तथा परस्पर एक दूसरेके आधीन स्थितिवाले हैं ॥ १२ ॥

जगद्बीजमहंत्वंयोमार्ष्टिबोधादवेदनात् ॥ अलंचित्रंजलेनेवतेनधौतंजगन्मलम् ॥ १३ ॥ अहंत्वंनामतत्किंचिद्विद्याधरनविद्यते ॥ अकारणमवस्तुत्वाच्छशशृंगमिवोदितम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मण्यतिततेऽनंतेसंकल्पोल्लेखवर्जिते ॥ अहंत्वकारणाभावान्नकदाचनसन्मयम् ॥ १५ ॥ अवस्तुन्येतिसर्गादौनसंभवतिकारणम् ॥ अतोहंत्वादिनास्त्येववंध्यासुतइवक्कचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो! जो जन जगत्‌के बीज इस अहंकारको अनहंभावरूप ज्ञानसे नष्ट करताहै, उसने मानो ज्ञानरूपी जलसे जगत्‌रूपी मलको पूर्णरीतिसे धो डाला ॥ १३ ॥ हे विद्याधर! परमार्थमें यह अहंभाव कुछ नहीं है तुच्छ होनेसे विनाकारण यह शशके शृंगके समान आविर्भूत है ॥ १४ ॥ मन इन्द्रियादिसे परे, अनंत और संकल्पोंके विकारोंसे रहित परमात्मामें अहंकारका कारण न होनेसे वह कदाचित् सत् नहीं है ॥ १५ ॥ मिथ्या सृष्टि आदिमें कारणका संभव नहीं है, इसलिये वंध्यापुत्रके तुल्य अहंभावादि कहीं नहीं है ॥ १६ ॥

तदभावाज्जगन्नास्तिचित्त्वंजगदभावतः ॥ शिष्टंनिर्वाणमेवातःशांतमास्वयथासुखम् ॥ १७ ॥ अभावादुपपत्तिस्थादेवंजगदहंत्वयोः ॥ रूपालोकमनस्कारःशांतस्तवनचेतरत् ॥ १८ ॥ यन्नास्तितत्तुनास्त्येवशेषंशांतमसिध्रुवम् ॥ संप्रबुद्धोसिमाभूयोनिर्मूलांभ्रांतिमाहर ॥ १९ ॥ व्यपगतकलनाकलंकशुद्धः शिवमसिशांतमसीश्वरोसिनित्यः ॥ खमपि भवतिपर्वतोपमानंजगदपिवापरमाणुरूपमेव ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरनिर्वाणं नाम पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—और अहंकार बीजके अभावसे उसका कार्य्य जगत्‌भी नहीं है, जगत् जीवादिके अभावसे शेष चिद्रूप निर्वाण स्वरूपमें शांत सुखपूर्वक स्थित रहो ॥ १७ ॥ इसप्रकार यथार्थमें अहंकार और जगत्‌का अभाव होनेसे बाह्यरूप प्रकाशादि संसार तथा आभ्यंतर मानस संसार सब तुमारे शांत (ब्रह्म) रूपही हैं अन्य नहीं ॥ १८ ॥ हे साधो! जो नहीं है वह नहीं है, इसलिये तुम दुःख विक्षेपादि रहित शांत ब्रह्मरूपही हो, अब तुम प्रबुद्धहो पुनः निर्मूल भ्रमको मत धारण करो ॥ १९ ॥ हे विद्याधर! तुम बाह्य तथा आभ्यंतर कलंकोंसे वर्जित, शुद्ध शांत, शिव, तथा नित्य ब्रह्मरूपही हो, और अध्यारोप बुद्धिसे तो आकाश भी पर्वतके तुल्य, और महान् संसार भी परमाणुके तुल्य होसकताहै ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधर निर्वाणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस उपदेशको सुनके विद्याधरकी समाधि, और अनहंभावकी प्रशंसासे कथाकी समाप्ति इस १६ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ भुशुंडउवाच ॥ कथयत्येवमप्येवंसविद्याधरनायकः ॥ आसीत्संशांतसंवित्तिःसमाधिपरिणामवान् ॥ १ ॥ प्रबोध्यमानोपिमयाभूयोभूयस्ततस्ततः ॥ नपपातपुरोदृश्येपरंनिर्वाणमागतः ॥ २ ॥ सप्रापपरमंस्थानंतावन्मात्रप्रबोधवान् ॥ केनचिन्नाधिकेनांगयत्नेनातिशयैषिणा ॥ ३ ॥ अतउक्तंमयारामयदिशुद्धेविचेतसि ॥ उपदेशःप्रसरतितैलबिंदुरिवांभसि ॥ ४ ॥

अर्थ—भुशुंडजी बोले कि–हे मुने! जब ऐसा कहरहाथा तब वह विद्याधरोंका दृश्याकार वृत्तियोंके शांत होजानेसे समाधिनिष्ठ होगया ॥ १ ॥ बार २ इधर उधरसे मैंने उसको जगाया परंतु परम निर्वाण दशाको प्राप्त वह पुनः शब्दादि विषयोंकी ओर न गिरा ॥ २ ॥ हे प्रिय! वह मेरे उतनेही उपदेशसे उस परमपदको प्राप्त होगया जो कि श्रवण मनन तथा विदिध्यासनादिसे भी शीघ्र नहीं प्राप्त होता ॥ ३ ॥ हे रामजी! इसीलिये मैंने प्रथम कहाथा कि शुद्ध चित्तमें उपदेश ऐसे फैलताहै जैसे जलमें तैलका बिंदु ॥ ४ ॥

नाहमित्यस्तितेनांतर्मैनंभावयशांतये ॥ एतावदुपदेशोक्तिःपरमानेतरास्तिहि ॥ ५ ॥ एषैवाभव्यमनसिपतिताप्रविलीयते ॥ उत्तानेमस्तृणादर्शेमुक्ताफलमिवामलम् ॥ ६ ॥ भव्येतुशांतमनसिलगत्यभ्येत्यविच्युतिम् ॥ प्रविश्यांतर्विचाराख्यामर्चिरर्कमणौयथा ॥ ७ ॥ अहंभावनमेवोच्चैर्बीजंदुःखाख्यशाल्मलेः॥ ममेदंतद्वदादीतिशाखाप्रसरकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तुमारे साक्षीरूपमें यह अहंकार नहीं है इसलिये शांतिके अर्थ इस असत्य अहंकारकी भावना न करो, बस परमोत्तम उपदेशका कथन इतनाही है अन्य नहीं ॥ ५ ॥ यही उक्ति अविचारी (संसारमें रत) पुरुषोंके मनमें पडने परभी ऐसे नहीं प्रतिबिंबित होती जैसे उलटे मलिन दर्पणमें मोती ॥ ६ ॥ और विचारवान् भव्य शांत मनमें तो उपदेशकी उक्ति आके चुभजाती है और प्रवेश करके मोहादिरूप जंगलको जलानेके अर्थ विवेकरूप अग्निको ऐसे उत्पन्न करती है जैसे सूर्य्यकांत मणिमें सूर्य्यकी किरण ॥ ७ ॥ इस जगत्के दुःखरूपी सेमर वृक्षका महान् बीज अहंकारही है, और उसी अहंकारके तुल्य ममताभी इस वृक्षके मूलका आदि शरीर है क्योंकि इसी वृक्षकी सब शाखायें फैलती हैं ॥ ८ ॥

अहमादौममेत्यंतस्तइच्छाप्रवर्त्तते ॥ इदमर्थशतानर्थकारिणीभवभारिणी ॥ ९ ॥ एवंविधामुनिश्रेष्ठमूढाअपिचिरायुषः ॥ भवंत्यनियमोह्यंगदीर्घायुष्यस्यकारणम् ॥ १० ॥ अंतःशुद्धमनस्कायेसुचिरायाभयप्रदम् ॥ मनागप्युपदिष्टास्तेप्राप्नुवंतिपरंपदम् ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मेरुमूर्द्धनिमामेवमुक्त्वा सविहगाधिपः ॥ तूष्णींबभूवमुक्तात्माऋष्यमूकइवांबुदः ॥ १२ ॥ अहमाप्टच्छ्यतंसिद्धंविद्याधरमथो पुनः ॥ प्राप्तआत्मास्पदंराममुनिमंडलमंडितम् ॥ १३ ॥ एतत्तवाद्यकथितंबलिभुक्कथितंविद्याधरोपशमनंलघुबोधनोत्थम् ॥ अस्मिन्भुशुंडविहगेंद्रसमागमेमेचैकादशेहहिगतानिमहायुगानि ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्यानेविद्याधरनिर्वाणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—आदिमें अहं बीज है, और ममता (यह मेरा) वृक्ष है, उसके पश्चात् इदमर्थरूप अनेक अनर्थ तथा संसारको देनेवाली इच्छा होती है ॥ ९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इसप्रकार विषयलंपट मूढभी कभी २ चिरजीवी होते हैं, परंतु उस चिरजीवनका मुख्य कारण तत्वज्ञानही है ॥ १० ॥ चिरकालके अभ्याससे जिनका अन्तःकरण शुद्ध होगयाहै वे पुरुष अल्प उपदेशसेही परमपद प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! मेरुके शिखरपर वह पक्षियोंका राजा मुझसे इतना कहके ऐसे मौन होगया जैसे ऋष्यमूक पर्वतपर मेघ ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् सिद्ध भुशुंडजीसे आज्ञा लेके पुनः मैं उस विद्याधरके निकट उस संवादके पूंछनेके लिये गया, उसके पश्चात् मुनियोंके मण्डलसे शोभित अपने आश्रमको गया ॥ १३ ॥ हे रामजी! इस काकभुशुंडजीसे कथित अल्प उपदेशसे विद्याधरकी शांतिरूप कथाको मैंने तुमसे वर्णन किया, और भुशुंडजीके समागमको इस कल्पसे ग्यारह (११) दिव्ययुग बीतगये ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने विद्याधरनिर्वाणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस १७ के सर्गमें अनहंभाव भावरूप अग्निसे अहंकार बीजके दग्ध होनेसे देहादि संसारका पूर्ण रीतिसे बाध होनेपर मिथ्यात्ववर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनहंवेदनादेवंशुभाशुभफलप्रदा ॥ संसारफलिनीनूनमिच्छांतरुपशाम्यति ॥ ॥ १ ॥ अनहंवेदनाभ्यासात्समलोष्टाश्मकांचनः ॥ भूत्वाशांतभवापीडोननरःपरिताम्यति ॥ २ ॥ अहंतापुटकोड्डीनपरबोधबलेरितः ॥ अहमित्यर्थपाषाणोनजानेकाशुगच्छति ॥ ३ ॥ अहंतापुटकोड्डीनब्रह्मवीरबलेरितः ॥ अहमित्यर्थपाषाणोनजानेकाशुगच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! इसप्रकार अनहंभावनाके ज्ञानसे शुभअशुभ फलदायिनी, तथा संसाररूप फलसे पूर्ण इच्छा अन्तःकरणमेंही शांत होजाती है ॥ १ ॥ हे रामजी ! अनहंभावके अभ्याससे पाषाण तथा सुवर्णको समान जाननेवाला पुरुष संसारकी पीडासे शांत होके पुनः शोक नहीं करता ॥ २ ॥ श्रवणआदिके अभ्याससे प्रमातारूप यंत्रकी पेटारीसे अग्निकी ज्वालाके तुल्य आविर्भूत ब्रह्मज्ञानके बलसे फेंकाहुआ अहंकाररूप पाषाण न जाने उडके शीघ्र कहां चलाजाताहै ॥ ३ ॥ प्रमातारूप पेटारीसे निःसृत ब्रह्मसाक्षात्रूप वीरके बलसे फेंकाहुआ अहंभावरूप पाषाण न जाने शीघ्र कहां चलाजाताहै ॥ ४ ॥

अहंतापुटकोड्डीनोब्रह्मवीरबलेरितः ॥ शरीरयंत्रपाषाणोनजानेकाशुगच्छति ॥ ५ ॥ अहमर्थहिमंत्वतरनहंताचिदर्चिषा ॥ उड्डीयेवविलीनंसन्नजानेकाशुगच्छति ॥ ६ ॥ अहंरसोविलीनोंतरनहंताचिदर्चिषा॥ शरीरपर्णाद्वर्णान्नजानेकाशुगच्छति ॥ ७ ॥ शरीरपर्णान्निष्पीतस्त्वहंभावरसासवः ॥ अनहंतार्कमार्गेणपरतामधिगच्छति ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रमातारूप पेटारीसे आविर्भूत ब्रह्मरूपी वीरके बलसे फेंका हुआ शरीर यन्त्ररूप पाषाण न जाने कहां चलाजाताहै ॥ ५ ॥ अनहंभाव चित्रूप अग्निसे अहंकाररूप हिम गलके शीघ्र न जाने कहां चलाजाताहै ॥ ६ ॥ अनहंभावनारूप चित्की ज्वालासे पांडुरवर्णदशाको प्राप्त शरीररूप पत्रसे अहंभावरूप रस न जाने कहां चलाजाताहै ॥७॥ अनहंभावरूप सूर्य्यके किरणसे पान किया हुआ अहंकाररूप रस अपने पूर्वआकार ब्रह्मरूपताको प्राप्त होताहै८॥

शयनेकर्दमेशैलेगृहेव्योम्निस्थलेजले ॥ स्थूलासूक्ष्मानिराकारारूपांतरगतापिच ॥ ९ ॥ यत्रतत्रस्थिता सुप्ताप्रबुद्धाभस्मतांगता ॥ धृतानीतानिमग्नाचदूरस्थानिकटासती ॥ १० ॥ शरीरवटधानांतःस्थिताहंत्वनवांकुरा ॥ शाखाजालंतनोत्याशुसंसाराख्यमिदंक्षणात् ॥ ११ ॥ अहंत्ववटधानांतःस्थितदेहबृहद्द्रुमः ॥ संसारशाखानिवहंयत्रतत्रतनोत्यलम् ॥ १२ ॥ शाखाशतेद्धदलपुष्पफलद्रुमोस्तिबीजोदरेनुदृशापरिदृश्यतेसौ ॥ देहोस्त्यहंत्वकणिकांतरशेषदृश्यसंवित्परीतइतिबुद्धिदृशैवदृष्टम् ॥ १३ ॥ देहादहंत्वमनवाप्तवतोविचारैश्चिद्व्योममात्रवपुषोवपुषोऽथवांचैः ॥ नाहंत्वबीजजठरादसतोभ्युदेतिसंसारवृक्षइहबोधमहाग्निदग्धात् ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहंत्वासत्तायोगोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—और ज्ञानके बिना तो शय्या, कर्दम, पर्वत, गृह, आकाश, जल, तथा स्थलमें सूक्ष्म, स्थूल, निराकार, वा रूपान्तरको प्राप्त, किसी स्थानमें स्थित सुप्त जागृत भस्मदशाको प्राप्त, धृत कहीं आनीत, निमग्न, दूरस्थ वा निकटस्थ किसी दशामेंभी स्थित शरीररूप वटकी धाना (बीज) हो, उसमें अहंकाररूप नूतन अंकुर स्थितही है, वह अवसर पाके क्षणमेंही इस संसाररूप शाखासमूहका विस्तार करताही है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ इसीप्रकार ज्ञानके अभावमें जिस किसी दशामें अहंकाररूप वटके बीजमें शरीररूपी महान् वृक्ष स्थित हो वह संसाररूप शाखासमूहका विस्तार करताही है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! जैसे वट बीजमें अनेक शाखाओंसे तथा पुष्पफलादिसमूहोंसे संयुक्त वृक्ष है तभी उसको अंकुरआदिरूपसे प्रत्यक्ष निकलते हुये सब लोग देखते हैं, ऐसेही अहंकाररूप सूक्ष्मबीजके भीतर सम्पूर्ण दृश्यकी वृत्तियोंसहित यह देह है इस बातको विवेकियोंने सूक्ष्मदृष्टिसे देखा है ॥ १३ ॥ और श्र-

वणादि विचारोंसे ज्ञानद्वारा चिन्मात्रशरीरधारी जीवन्मुक्तके, अहंकार शून्यशरीर विद्यमान रहते वा कैवल्यदशामें नित्य निरतिशयानन्दरूपमें स्थित पुरुषके लिये तो ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध असद्रुम अहंकारके उदरसे पुनः यह संसाररूप वृक्ष नहीं निकलता ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहंत्वासत्ता योगोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस १८ के सर्गमें आकाशमें पवनद्वारा सर्वत्र वाहित, तथा मृत जीवके मनमें स्थित अनेक जगत् वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मरणंसर्वनाशात्मनकदाचनविद्यते ॥ स्वसंकल्पांतरस्थैर्यंमृतिरित्यभिधीयते ॥ ॥ १ ॥ पश्यमेपुरउह्यंतवइवमंदरमेरवः ॥ अरूढाअपिदिग्वातैःसरिद्बिंबितशैलवत् ॥ २ ॥ उपर्युपर्यंतरंतःकदलीदलपीठवत् ॥ श्लिष्टाश्लिष्टस्वरूपाःखेमिथःसंसृतयःस्थिताः ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ पश्यमेपुरउह्यंतइतिवाक्यार्थमक्षतम् ॥ नकिंचिदवगच्छामियथावन्मुनिनायक ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ज्ञानके बिना मन बुद्धि अहंकारादि सर्व नाशरूप मरण कदाचित् नहीं होता किंतु ज्ञानसे सब कर्मों तथा संकल्पोंका अभावही मरण है ॥ १ ॥ देखो उन २ जीवोंके संकल्पसे कल्पित नदीमें प्रतिबिंबित पर्वतोंके समान मेरे सन्मुख मेरु मन्दराचलादि दिशाओंके पवनोंसे अन्य स्थानोंमें प्रापित होरहे हैं यह मैं देखताहूं तुमभी देखो ॥ २ ॥ केलेके खम्भेमें दलके समान एक दूसरेके ऊपर, समान अदृष्टवाले जीवोंके मिथ्या मिलित और अन्यके भिन्न अनेक संसार आकाशमें देखपडते हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! देखो मेरे सन्मुख मेरुमन्दराचलादि उडाये जातेहैं इत्यादि पूर्ण वाक्यार्थको मैंने यथावत् नहीं समझा सो कृपा करके कहिये ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ प्राणस्याभ्यंतरेचित्तंचित्तस्याभ्यंतरेजगत् ॥ विद्यतेविविधाकारंबीजस्यांतरितद्रुमः ॥ ५ ॥ मृतेपुंसिनभोवातैर्मिलंतिप्राणवायवः ॥ सरिज्जलैरिवांभोधिजलान्यात्मद्रुतानिहि ॥ ६ ॥ इतश्चेतश्चयांतीवतेषामंतर्जगंत्यलम् ॥ व्योमवातविलुन्नानांसंकल्पैकात्मकान्यपि ॥ ७ ॥ सप्राणवातैःपवनैःस्फुरत्संकल्पगर्भितैः ॥ सर्वाएवदिशःपूर्णाःपश्यामीमाःसमंततः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! मृतपुरुषोंके प्राण निकलते हैं सो प्राणोंके भीतर चित्तहै और चित्तके भीतर विविधाकार जगत् ऐसे है जैसे बीजके भीतर वृक्ष ॥ ५ ॥ हे रामजी ! मनुष्यके मरनेके पश्चात् उसके प्राणवायु बाह्य आकाश वायुमें ऐसे मिलते हैं जैसे द्रवस्वभाव होनेसे नदियोंके जल समुद्रके जलमें ॥ ६ ॥ इसी कारणसे आकाश वायुसे प्रेरित प्राणोंके भीतर संकल्परूपसे स्थित अनेक जगत् इधर उधर भ्रमण करते हैं ॥ ७ ॥ देदीप्यमान संकल्पोंसे पूर्ण प्राण पवनोंके सहित पवनोंसे चारोओरसे दिशाओंको मैं पूर्ण देखताहूं तुमभी देखो ॥ ८ ॥

अत्रैतेपश्यपश्यामिसंकल्पजगतांगणे ॥ बुद्धिदृष्ट्यासमुह्यंतेपुरोमंदरमेरवः ॥ ९ ॥ खवातैर्मृतप्राणाःप्राणानामंतरेमनः ॥ मनसोंतर्जगद्विद्धितिलेतैलमिवस्थितम् ॥ १० ॥ खवातैःखमसाःप्राणायथोह्यंतेमनोमयाः ॥ उह्यतेवैतथेतानितदंगानिजगंत्यपि ॥ ११ ॥ सभूतान्यंबरोर्व्यादिवृंदानित्रिजगंत्यपि ॥ उह्यंतेचाप्यरूढानिपुरःसर्वत्रगंधवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—यहां मैं देखताहूं कि संकल्पजनित अनेक संसारोंके अंगणमें मेरे संमुख अनेक मन्दराचल और सुमेरुपर्वत उडरहे हैं तुमभी बुद्धि दृष्टिसे देखो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! आकाशमें विद्यमान पवनमें मृतमनुष्योंके प्राणहैं, उन प्राणोंमें उनका मनहै, और उसी मनमें जगत्को तुम ऐसे जानो जैसे तिलमें तैल ॥ १० ॥ जैसे आकाशवायुके द्वारा आकाशवायुके समान मनोमय प्राण वाहित होते हैं ऐसेही मनके अंगभूत अनेक जगत् भी वाहित होते (बहाये जाते) हैं ॥ ११ ॥ चारप्रकारके प्राणियोंके समूह तथा आकाश पृथिवी आदि भूतोंसहित अप्रातिष्ठित तीनोंलोक ऐसे एक देशसे दूसरे देशमें वहाये जाते हैं जैसे गन्ध ॥ १२ ॥

तानिबुद्ध्यैवदृश्यंतेनदृष्ट्याराघुनंदन ॥ पुरःसंकल्परूपाणिस्वस्वप्नपुरपूरवत् ॥ १३ ॥ सर्वत्रसर्वदासंतिसुसूक्ष्माण्येवखादपि ॥ कल्पनामात्रसारत्वान्नचोह्यंतेमनागपि ॥ १४ ॥ तान्येवदृढभावत्वात्स्वेषु

लोकेषुतेष्वलम् ॥ सत्यान्येवचिदंशस्यसर्वगत्वाद्भवानिव ॥ १५ ॥ प्रतिबिंबपुराणीवपुरःप्राणसरिद्रये॥ अरूढान्यपिचोह्यंतेरूढान्यपिचनैवच ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने स्वप्नके नगरसमूहके तुल्य संकल्परूप जगत् बुद्धिरूप दृष्टिहीसे देखपडते हैं न कि प्रसिद्ध चर्म नेत्रसे ॥ १३ ॥ हे रामजी ! आकाशसे भी सूक्ष्म संकल्पजनित मनोमय जगत् सर्वदा और सर्वत्रहै, और कल्पना मात्र रूप होनेसे यथार्थमें कहीं भी नहीं वाहित होते ॥ १४ ॥ परंतु चिदंशके सर्वगामी होनेसे उन २ जीवोंके भोग्य स्वर्ग नरक तथा भूलोकादिमें दृढभावना होनेसे वे संकल्पमय जगत् सुखदुःखादि भोगक्रियाके देनेमें समर्थ होनेसे ऐसे सत्यहैं जैसे मेरे सन्मुख तुम ॥ १५ ॥ सन्मुख स्थित प्राणरूपनदीके वेगसे प्रतिबिंबके नगरोंके तुल्य आविर्भूत तथा प्रच्छन्न सत् तथा असत् अनेक जगत् वाहित होरहे हैं ॥ १६ ॥

सौरभाणिसमुह्यंतेवातांगस्थानिराघव ॥ जगंतिप्राणसंस्थानिव्योमात्मकमयानितु ॥ १७ ॥ कुंभेदेशांत रंनीतेयथांतर्व्योम्निनान्यता ॥ स्पंदनादिमयेचित्तेतथैवत्रिजगद्भ्रमे ॥ १८ ॥ इत्थंनसज्जगद्भ्रांतिरसत्यैवो दितेवते ॥ नविनश्यतिनोदेतिकेवलंब्रह्मरूपिणी ॥ १९ ॥ यदिवाप्युदितेवातैस्तत्तदस्यानलक्ष्यते ॥ तदंतःसंस्थितैःस्पंदोनाविकोशगतैरिव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे वायुमें स्थित सौगन्ध वाहित होते हैं, ऐसेही प्राणवायुमें स्थित आकाशमय (सूक्ष्म) जगत्भी वाहित होतेहैं ॥ १७ ॥ जैसे घटको अन्य देशमें लेजानेपरभी घटके अन्तर्गत आकाशमें कोई (महदाकाशसे) भेद नहीं है, ऐसेही स्पंदनमय चित्त तथा उसके स्थित तीनोंलोकका भ्रम होनेपरभी आत्मामें स्पन्द वा भ्रम नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! जैसे मृतमनुष्योंके प्राणमें स्थित संकल्पमय जगत् कल्पनामात्र हैं ऐसेही इस तुमारे जगत् भ्रांतिभी असत्यही उदित है, और यथार्थमें यह भ्रांतिभी न उदय हो न नष्ट हो किंतु केवल ब्रह्मरूपहीहै ॥१९॥ यदि व्यवहारदशामें यह पृथिवी उदित है तो उस पृथिवी स्थित हमलोगोंको वायुसे प्रेरित इसकी गति ऐसे नहीं भान होती जैसे नौकामें स्थितजनोंको नौकाकी गति ॥ २० ॥

यथास्पंदेंगलग्नायांनाव्यंतःसंस्थितैरपि ॥ नलक्ष्यतेतथापृथ्व्यांतत्संस्थैस्तन्मयैरपि ॥ २१ ॥ यथायो जनविस्तीर्णलघौसद्मानुभूयते ॥ यत्तस्यपादपस्तंभेपरमाणौयथाजगत् ॥ २२ ॥ वस्त्वल्पमप्यतिबृह ल्लघुसत्वोहिमन्यते ॥ भूषिकाःस्वांजलिद्रव्यंनवपंकमिवार्भकाः ॥ २३ ॥ असत्येवस्वरूपेस्मिन्जगदा ख्येविदोभ्रमे ॥ लोकांतराधर्ममयीसाब्रह्मंगस्यभावना ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अंगमें संलग्नही नौकामें स्थित जनोंको उसकी गति नहीं लक्षित होती ऐसेही पृथिवीमें स्थित तन्मयजनोंको इस पृथिवीकी भी गति नहीं लक्षित होती ॥ २१ ॥ जैसे अनेक योजनोंतक विस्तीर्ण स्थान छोटेसे खंभेमें चित्रकारकी बुद्धिसे अल्प कल्पनाहीमें अनुभूत होताहै ऐसेही मनसे कल्पित परमाणुमें जगत् भी है ॥ २२ ॥ जैसे रत्नोंके भंडारमें प्रविष्ट मूषिका रत्नोंको तुच्छ और अंजुलीमात्र प्राप्त अन्नको बहुत मानती है वा बालक अपने सुवर्णादिके आभूषणको तुच्छ और मृत्तिका रचित आभूषणोंको अधिक मानते हैं ऐसेही तुच्छ विचारवान् जन अल्प परमाणु) कोभी बृहत् मानते हैं ॥ २३ ॥ अज्ञानसे आवृत चेतनके इस जगत्रूप भ्रममें असत्य पदार्थमें जीवितको यह लोक मृतको परलोक तथा उसके धर्माधर्मादिमयी जो कल्पना है वह वृद्धिदशाको प्राप्त चित्तको संकल्परूप भावनाही है ॥ २४ ॥

इदंहेयमुपादेयमिदमित्यंतरज्ञता ॥ यस्यतस्यभवायास्तिसर्वज्ञस्यापिमूढता ॥ २५ ॥ सचेतनोह्यवयवी चेतत्यवयवान्यथा ॥ स्वांतरेवततंजीवस्त्रिजगद्बुध्यतेतथा ॥ २६ ॥ संविदात्मपराकाशमनंतमजमव्य यम् ॥ व्योम्नोवयवरूपाणितस्येमानिजगंतिभोः ॥ २७ ॥ सचेतनोयःपिंडोंतःक्षुरसूच्यादिकंयथा ॥ बुद्ध्यतेबुद्ध्यतेतद्वज्जीवोन्तस्त्रिजगद्भ्रमम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यह त्याज्यहै यह ग्राह्य है इत्यादि ममतायुक्त चित्तवालेकी अज्ञता है और ज्ञानीकोभी प्रारब्ध कर्मके नाशपर्य्यन्त व्यवहारके लिये यह अज्ञता है ॥ २५ ॥ जैसे चेतनसहित लौकिक व्यष्टिपुरुष अपने हस्तपादादि अवयवोंको अपने मनमेंही अनुभव करताहै ऐसे समष्टि जीव हिरण्यगर्भ अपने अंतःकरणमेंही तीनोंलोकका अनुभव करताहै ॥ २६ ॥ हे रामजी! ईश्वर चेतन अनंत अव्यय तथा अजरूपहै, उसी माया शबलित चिदाकाशके अवयवरूप ये सब जगत् हैं ॥ २७ ॥ जैसे लोहेका गोला यदि चेतन हो तो वह अपने भीतर भावी छूरा, सूची कतर्नी आदि अपने भीतर देखे, ऐसेही प्रलयदशामें ईश्वर तीनोंलोकके भ्रमको देखताहै ॥ २८ ॥

अचिच्चिद्वापिमृत्पिंडःशरावोदंचनादिकम् ॥ यथांगमनुतेजीवस्तथांगमनुतेजगत् ॥ २९ ॥ चिदचिद्वां कुरोदेहेवृक्षत्वंमन्यतेयथा ॥ वृक्षशब्दार्थरहितंब्रह्मेदंत्रिजगत्तथा ॥ ३० ॥ चिद्वाचिद्वायथादर्शोबिंबितं वाप्यबिंबितम् ॥ नगरंवेत्तिनोवापितथाब्रह्मजगत्त्रयम् ॥ ३१ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यमात्रमेवजगत्त्रयम् ॥ अहंत्वजगतोस्तेनभेदोनास्त्येतदात्मनोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अधिष्ठानरूपसे चित् निजरूपसे जड मृत्तिकाका पिंड जैसे शराव (सकोरे) घट आदिको अपना अंग मानताहै ऐसेही ईश्वर जगत्को अपना अंग मानताहै ॥ २९ ॥ जैसे चिद् वा जडरूप अंकुर अपने देहमें वृक्षत्व मानताहै ऐसेही वृक्ष शब्दार्थसे रहित ब्रह्म तीनोंलोकोंको अपना अंग मानताहै ॥ ३० ॥ जैसे चिद् वा जड दर्पण प्रतिबिंबितनगरको अपने भीतर जानताहै और अप्रतिबिंबितको नहीं, ऐसे जीव ईश्वर उपाधि उपहित दृष्टिसे ब्रह्म तीनोंलोकको अपने भीतर जानताहै और शुद्ध दृष्टिसे नहीं जानता ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यरूपही तीनोंलोक हैं, और अहंकारभी देश, कालादिमें अभेद अभिमान रखताहै इसलिये देशकालादिरूप अहंकार तथा जगत्का भेद नहीं है ॥ ३२ ॥

कल्पितेनोपमानेनयदेतदुपदिश्यते ॥ तत्रोपमैकदेशेनउपमेयसधर्मता ॥ ३३ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ असुंचतःपराणुत्वंजीवस्यैतत्स्मृतंवपुः ॥ ३४ ॥ सर्वसंवेदनत्यागेशुद्धसंस्पंददेपदे ॥ नमनागपिभेदोस्तिनिःसंगोपलकोशवत् ॥ ३५ ॥ योयोनामविकल्पांशोयत्रयत्रयथायथा ॥ यदा यदायेनयेनदीयतेसतथैवचित् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कल्पित जड लोह, तथा मृत्पिंडादिको मैंने तथा श्रुतिने जो उपमानरूपसे दृष्टान्त दिये हैं वहां केवल एकअंशमें उपमेयके साथ समानता जानना ॥ ३३ ॥ जो कुछ यह चर अचर जगत् अनुभूत होताहै वह सब अपने सूक्ष्म ब्रह्मभावको न त्यागते हुये चेतनका विवर्तमात्र शरीर है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! ज्ञानसे सब विवर्तका बाध होनेसे शुद्ध निःसंग आत्मपदमें जीव जगत्का किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ३५ ॥ और अबाधदशामें जहां २ जिस २ प्रकारसे, जब २ जिस २ से जो २ नाम विकल्पांश मूढोंसे दियाजाताहै उस २ रूपसे चेतनही विवर्तदशाको प्राप्तहै ३६

अचित्त्वान्नास्तिमनसिसंकल्पःखइवांकुरः ॥ चित्त्वात्तुचेतसोविद्धिचितिरेवेहकल्पनम् ॥ ३७ ॥ यायोदेतिविकल्पश्रीरप्रबुद्धाशयंप्रति ॥ सर्वगत्वादनंतत्वाच्चिद्व्योम्नःसानसन्मयी ॥ ३८ ॥ यथोदेतिविकल्पश्रीःप्रबुद्धेनोदितैवसा ॥ सर्वगत्वादनंतत्वाच्चिद्व्योम्नःसानसन्मयी ॥ ३९ ॥ सर्गसंकल्पकलनासत्ये त्याबालमक्षतम् ॥ स्वाप्नादावनुभूतोंतरर्थःकेनापिलभ्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्के बिना मनमें संकल्प ऐसे नहीं होसकता जैसे आकाशमें अंकुर, और चेतनसे अधिष्ठित होनेहीसे चित्तको संकल्पादि सामर्थ्य है इसलिये सब संकल्पना चेतनहीकी है ॥ ३७ ॥ अज्ञानीके अन्तःकरणमें जो २ विकल्पकी शोभा उदय होती है वह २ सर्वगामी तथा अनन्त चिदाकाशहीका विवर्त है तन्मयी नहीं है ॥ ३८ ॥ और ज्ञानीके अन्तःकरणमें जो विकल्पकी शोभा उदय होती है उसको वह चिदाकाशके देश काल तथा वस्तुसे अपरिछिन्न होनेसे मिथ्याही जानताहै न कि सन्मयी ॥ ३९ ॥ यदि सब जाग्रत्की कल्पना बालकसे लेके वृद्धपर्य्यन्तको सत्य भासती है तो स्वप्नादिमें अनुभूत गज रजतादि पदार्थोंको कौन पाता (सत्यरूप) है ॥ ४० ॥

संकल्पोवासनाजीवस्त्रयोर्थालिखिताश्चिता ॥ सोनुभूतोप्यसत्यःस्यादसत्वस्यैवनोसतः ॥ ४१ ॥ असत्यताभिधंसत्यंमुक्तएवभवेच्छिवः ॥ सातिवाहिकदेहैकपरिक्षयविकासवान् ॥ ४२ ॥ जगंतिवातैरुह्यंतेव्योम्निशाल्मलितूलवत् ॥ नोह्यंतेचोपलानीवनचसंत्येवकल्पनात् ॥ ४३ ॥ इत्यस्मिन्नखिलपदार्थसार्थकोशेव्योमन्यप्यतिविततेजगंतिसंति ॥ अन्योन्यंपरिमिलितानिकानिचिच्चनान्योन्यंपरिमिलिता निकानिचिच्च ॥ ४४ ॥

अर्थ—जाग्रत् स्वप्नरूप संकल्प वासनामात्र सुषुप्ति, तथा इन दोनोंमें प्रतिबिंबित भोक्ताजीव, इन तीनों पदार्थोंको कूटस्थ चेतननें अपने स्वरूपमें चित्रके समान लिखे हैं इसलिये यह चित्रका संसार अधिष्ठानकी सत्तासे सत्यरूपसे अनुभूत भी जीवकीही दृष्टिमें सत्य भान होतेहैं क्योंकि चित्र प्रतिबिंब तथा स्वप्नके पदार्थ चित्र स्वप्रादिके पुरुषोंहीके लिये सत्य हैं न कि सत्यपुरुषके लिये ॥ ४१ ॥ सबसे मुक्त सत्यपरमात्माही असत्य जगत्रूप धारण करताहै, क्योंकि बोधसे सूक्ष्मशरीरके नष्ट होनेपर वह प्रकाशशिवरूप शेष रहताहै, ॥ ४२ ॥ इसलिये सेमरकी रुईके समान आकाशमें जगत्प्राण वायुमें बाहित होतेहैं यह कथनभी अज्ञानियोंके लिये है, यथार्थमें तो कल्पनामय होनेसे पाषाणके तुल्य नहीं उडाये जाते और न हैं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार अज्ञात होनेसे सब पदार्थ समू-

होंके कोशरूप यथार्थमें सर्वत्र व्याप्त, तथा शून्यआकाशके तुल्य चिदाकाशमेंही कोई परस्पर मिलित कोई भिन्न अनेक ब्रह्मांड हैं ॥ ४४ ॥

सर्वत्वात्परमचितेरनंतरूपाण्यारंभप्रचुरदिगंतसंभृतानि ॥ लोलांबूदरपुरबिंबभंगुराणिस्वांतःस्थाविरलमहापुरोपमानि ॥ ४५ ॥ सस्थैर्याण्यपिसततंक्षणक्षयाणिव्यक्ताक्षाण्यपिसततंनिमीलितानि ॥ सालोकान्यपिपरितस्तमोवृतानिचिद्रूपार्णवलहरीविवर्त्तनानि ॥ ४६ ॥ पृथक्स्थितान्यपिमिश्रिता निजलानिचैवांबुनिधौनदीनाम् ॥ तारार्कचंद्रग्रहमंडलानांसमोदितानांनभसीवभासः ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगज्जालकोशसाधर्म्ययोगोपदेशोनामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—परब्रह्मके शक्तिमान होनेके कारण ये सब संसार अनन्तरूप, अनेक कार्योंके आरम्भसहित दिगंतोंमेंभी स्थितजनोंसे पूर्ण चंचल मेघके भीतर नगरके प्रतिबिंबके समान क्षणभंगुर, इसीसे अपने अंतःकरणमें स्थित सर्व सामग्रीसे पूर्ण देवगंधर्व नगरके तुल्य ये सब ब्रह्मांड है ॥ ४५ ॥ स्थिर होनेपरभी क्षणभंगुर, जाग्रतआदिमें प्रकट होनेपरभी अप्रकट और प्रकाशयुक्त होनेपरभी अज्ञानरूप अन्धकारसे आच्छादित ये जगत् चिद्रूप समुद्रके तरंगके विवर्तके समान हैं ॥ ४६ ॥ पृथक् २ स्थितभी आत्मामें ये सब ब्रह्मांड एकरूप ऐसे हैं जैसे समुद्रमें नदियोंके जल, और आकाशमें समकालमें उदित तारागणोंका प्रकाश ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगज्जालकोश साधर्म्ययोगोपदेशो नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

जीवका स्वरूप तथा उसका तत्व, और स्थान करणके भेदसे समष्टि और व्यष्टि शरीरोंकी कल्पना तथा उनका भोग इस १९ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ मुनेजीवस्ययद्रूहमाकृतिग्रहणंतथा ॥ यथाचपरमात्मत्वंस्थानंयच्चास्यतद्वद ॥ १॥ ॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वसंकल्पेनचेत्योक्तंचिदित्यपरनामकम् ॥ अतंतंचेतनाकाशंजीवशब्देनकथ्यते॥ ॥ २ ॥ नापराणुर्नचस्थूलंनशून्यंनचकिंचन ॥ चिन्मात्रंस्वानुभूत्यात्मसर्वगंजीवउच्यते ॥ ३ ॥ अणीयसामणीयांसंस्थविष्ठंचस्थवीयसाम् ॥ नकिंचिन्मात्रकंचैवसर्वंजीवंविदुर्बुधाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! जीवका व्यावहारिक तथा शास्त्रीयरूप, व्यवहारका द्वार स्थूलशरीरका ग्रहण तथा उसके परमात्मरूपकी प्राप्ति कृपाकरके कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! अनन्त चिदाकाशही अपने संकल्पसे विषयमें विवर्तित होके नेत्रादि इन्द्रियद्वारा विषयोंका अनुभव करनेसे चित् इस दूसरे नामसहित, प्राणधारण जीव इस नामसे कहाजाताहै ॥ २ ॥ और परमार्थमें न वह सूक्ष्म, न स्थूल न शून्य, और न किसी वस्तुका रूप, जो सर्वत्र व्याप्त चिन्मात्र है वही अपने अनुभवसे जीव शब्दसे कहाजाताहै ॥ ३ ॥ सूक्ष्मपदार्थोंसेभी सूक्ष्मतम स्थूलोंसेभी अतिस्थूल, अकिंचिन्मात्र और सबकुछ जो ब्रह्महै उसीको पंडितजन जीव कहतेहैं॥४

यस्ययस्यपदार्थस्ययोभावस्तेनतत्रतम् ॥ स्थितंविद्धितदाभासंतदात्मैकांतवेदनात् ॥ ५ ॥ सचेतति यथायत्रयद्यदाशुतदेवहि ॥ तथातत्रतदाराम भवत्यनुभवात्मकम् ॥ ६ ॥ पवनस्ययथास्पंदश्चेत्यंजीवस्यैवतथा ॥ स्वसंविन्मात्रनिर्णेयंनोपदेशामयक्षवत् ॥ ७ ॥ यथैवास्पंदनाद्वातःसन्नेवेत्यसदात्मताम् ॥ तथैवाचेतनाज्जीवोजीवन्नेतिपरांगतिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस २ पदार्थका जो २ असाधारण गुणरचनादिरूप है वहां २ उसी २ रूपसे स्थित उस जीवचित्को तुम जानो, क्योंकि उसके दर्शनसे सब पदार्थोंका भान उसी आत्मरूपसे होताहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! समष्टिजीव जहां जैसा चेतताहै वहां वैसाही होजाताहै, और व्यष्टिजीव जहां जैसा होताहै वहां वैसाही चेतता (अनुभव करता) है ॥ ६ ॥ जैसे वायुका स्पंद स्वभाव है ऐसेही समष्टिजीवका विचित्र सृष्टिरूप स्वभाव है नकि बालकको यक्षके समान उपदेशसे है, इस बातको अपने ज्ञानसे निर्णय करना चाहिये इसमें उपदेशकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥ जैसे संचलन न होनेसे विद्यमानही वायु असद्रूपताको प्राप्त होताहै, ऐसेही संसार तथा उसके अन्तर्गत पदार्थोंका अनुभव करनेसे विद्यमानही जीव ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

जीवश्चिद्घनरूपत्वादहमित्येवचेतनात् ॥ देशकालक्रियाद्रव्यशक्तीर्निर्माययितिष्ठति ॥ ९ ॥ देशकालकियाद्रव्यचर्चिताचर्चितांस्वयम् ॥ असत्यांसत्यवत्स्फारांतावन्मात्रशरीरिकाम् ॥ १० ॥ चेतसाह्यसदाकारांप्रालेयपरमाणुताम् ॥ पश्यत्यात्मन्यथात्मत्वेस्वप्नेस्वमरणोपमाम् ॥ ११॥ स्वप्नस्वावयवान्यत्वसदृशींतांविभावयन् ॥ विस्मृत्यचेतनांसत्तांतत्तामेवाशुगच्छति ॥ १२ ॥

अर्थ—यह समष्टि जीव चिद्घनरूप होनेसे "अहं" इस अहंकारमात्रकी स्फुरणासे देश, काल, क्रिया, तथा द्रव्यआदि अनेक शक्तियोंको रचके स्थित होताहै ॥ ९ ॥ देश, कालक्रिया तथा द्रव्यादिसे सूक्ष्मसे आविर्भूत, स्थूलरूपसे अनाविर्भूत, असत्य सत्यके तुल्य भासमान, असत्य आकारवाली, अति सूक्ष्म होनेसे हिमकणके तुल्य तथा स्वप्नमें निजमरणके समान अपने अभिलषित शरीरको अपने समष्टि चित्तभावसे अपनेही स्वरूपमें देखताहै ॥ १० ॥ ११ ॥ स्वप्नमें अपने अंगोंको अन्यके सदृश समष्टि चित्त विष्णुरूपकी भावना करते हुये अपनी आनन्द स्वरूप ब्रह्मरूपताको भूलकर परिछिन्न जडजगत्रूपताको शीघ्र प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

एवंरूपोबुद्ध्यमानःप्रोच्छूनत्वमथात्मनि ॥ पश्यत्याशुस्वमात्मानंचंद्रबिंबमिवद्रुतम् ॥ १३ ॥ आत्मन्यथेंदुबिंबात्मन्यसौसंवित्तिपंचकम् ॥ काकतालीयवद्भिन्नमुदितंचेततिस्वयम् ॥ १४ ॥ पंचानांसंविदांपंचभिन्नान्यंगान्यसावथ ॥ बुद्ध्यतेतानितद्रूपरंध्राण्यनुभवत्यपि ॥ १५ ॥ सपंचावयवःपश्चाद्राजतेपुरुषोविराट् ॥ अनंताकारसंवित्तिरव्यक्तात्मानिरामयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार चेतता हुआ पंचीकरण द्वारा महा विराट्रूपताको प्राप्त होताहै, और अपने आत्मामेंही द्रवीभूत स्वभाववाले समष्टि मनको चन्द्रबिंबके समान देखताहै, यही इसकी हिरण्यगर्भरूपताहै ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् चन्द्रबिंबरूप अपने आत्मामें यह शीघ्र पंचज्ञान इन्द्रियोंको अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ और पांचो इंद्रियोंके पांच भिन्न छिद्रसहित स्थानोंको तथा रूपादि भोगद्वारोंको भी अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ इस रीतिसे अव्यक्तरूप निरामय अनन्त आकारके ज्ञानोंसेयुक्त पंचइन्द्रियरूप अवयवसहित विषयोंको भोगतेहुये विराट्पुरुष शोभित होताहै १६

मनोमयोसावुदितःपरस्मात्प्रथमोत्थितः ॥ आकाशविशदःशांतोनित्यानंदविभामयः ॥ १७ ॥ सचाप्यपंचभूतात्मापंचभूतात्मकोपमः ॥ विराडात्मैकपुरुषःपरमःपरमेश्वरः ॥ १८ ॥ स्वयमेवाशुभवति स्वयमेवविलीयते ॥ स्वयमेवप्रसरतिस्वयंसंकोचमेतिच ॥ १९ ॥ स्वसंकल्पकृतेनासौकल्पौघेनक्षणे नच ॥ यदृच्छयोदेतिपुनःपुनर्भूत्वोपशाम्यति ॥ २० ॥

अर्थ—यह मनोमय हिरण्यगर्भ परब्रह्मसे प्रथम आविर्भूत, आकाशके समान विशद, शांत, और नित्य आनन्द तथा प्रकाशमय शोभित होताहै ॥ १७ ॥ वह पंचभूत न होतेहुये भी पंचभूतात्माके समान भासमान, सब प्राणियोंका समष्टिरूप एक विराट्पुरुष परम परमेश्वररूपही है ॥१८॥ वह सर्व शक्तिमान् होनेसे स्वयं शीघ्र आविर्भूत होताहै, स्वयं लय होजाताहै, स्वयं विस्तारको प्राप्त होताहै और स्वयं संकुचितभी होताहै ॥१९॥ अपने संकल्पसे कल्पित कल्पोंके समूहोंमें तथा क्षणभरमें अपनी इच्छासे उत्पन्न होताहै, और उत्पन्न होके शांत भी होजाताहै ॥२०॥

मनोमात्रैकरूपात्माप्रकृतेर्देहएषसः ॥ एषपुर्यष्टकंप्रोक्तःसर्वस्यैवातिवाहिकः ॥ २१ ॥ सूक्ष्मःस्थूलोंबरात्मैषव्यक्तोव्यक्तोंतवर्जितः ॥ सर्वस्यबहिरंतश्चनकिंचित्किंचिदेवच ॥ २२ ॥ अंगानिरामतस्याष्टौ मनःषष्ठानिपंचच ॥ साहंभावानींद्रियाणिभावाभावमयानिच ॥ २३ ॥ तेनगीताइमेवेदाःसहशब्दार्थकल्पनाः ॥ नियतिःस्थापितातेनतथाद्यापियथास्थिता ॥ २४ ॥

अर्थ—केवल मनोमात्र देहधारी यही सर्वोपादान ईश्वर प्रकृतिका देहहै, और यही व्यष्टिरूपसे सब जीवोंका पुर्य्यष्टकर सूक्ष्म देह भी है ॥ २१ ॥ यही अव्यक्त तथा अनन्त आकाशरूप परमात्मा सूक्ष्म शरीरोंमें सूक्ष्म, स्थूलोंमें स्थूल भी है, सब पदार्थोंके बाहर तथा भीतर भी स्थितहै, परमार्थमें कुछ नहीं है और व्यवहारदृष्टिसे परिच्छिन्नरूप भी है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! भाव तथा अभावरूप पंचज्ञानेन्द्रिय, कर्मेंद्रिय, सहित प्राण, मन तथा अहंकार ये आठ इस पुरुषके अंगहैं ॥ २३ ॥ इसी स्वयंभूने अपने चारोंमुखोंसे शब्दार्थकी कल्पनासहित चारोंवेदोंको कहाहै इसी पुरुषने शास्त्रीय मर्य्यादाको स्थापित कियाहै जो आजतक व्यवस्थितहै ॥ २४ ॥

अनंतमूर्ध्वंमूर्द्धास्यतथाधःपादयोस्तलम् ॥ अपराकाशमुदरमिदंब्रह्मांडमंडपम् ॥ २५ ॥ लोकांतराण्यनंतानिपार्श्वकाःक्षतजंपयः ॥ मांसपेश्यःक्षितिधराःसरितःसंतताःशिराः ॥ २६ ॥ रक्ताधाराजलधयो द्वीपान्येवांत्रवेष्टनम् ॥ बाहवःककुभःस्फारास्तारकारोमसंततिः ॥ २७ ॥ पंचाशदनिलस्कंधाएकोनाः प्राणवायवः ॥ मार्तंडमंडलंचंडंपित्तंजठरपावकः ॥ २८ ॥

अर्थ—अनन्त आकाश इस पुरुषका शिरहै, पृथिवी पादतलहै, मध्यआकाश उदरहै, और यह ब्रह्मांडमंडप शरीरहै ॥ २५ ॥ अनन्तलोक इस विराट्पुरुषके पार्श्वके अवयवहैं, जलरुधिरहै, सब पर्वत मांसपेशी(गर्भके अवयव) हैं, और नदियां नाडी हैं ॥ २६ ॥ समुद्ररक्तके स्थानहैं, सप्तद्वीप षट्कोशके वेष्टनहैं, विशाल दिशाबाहु हैं, और तारे रोमसमूहहैं ॥ २७ ॥ ओनचास (४९) पवन प्राणवायु हैं, सूर्य्यमंडलनेत्रहैं, तथा वडवानल जठराग्निहै ॥ २८ ॥

शशांकमंडलंजीवःश्लेष्माशुक्रंसितंबलम् ॥ मनःसंकल्पकोशात्मसारात्मापरमामृतम् ॥ २९ ॥ मूलंश रीरवृक्षस्यबीजंकर्मद्रुमस्यच ॥ प्रसवत्सर्वभावानामिंदुरानंदकारणम् ॥ ३० ॥ यदिंदुमंडलंनामसस म्राड्जीवउच्यते ॥ शरीरकर्ममनसांबीजंमूलंचकारणम् ॥ ३१ ॥ अस्मादिंदुविराड्जीवात्प्रसरंतिजग त्त्रये ॥ जीवामनांसिकर्माणिसुखान्यत्रामृतानिच ॥ ३२ ॥

अर्थ—चन्द्रमण्डलही इस पुरुषका जीव श्लेष्मा, वीर्य्य, बल, मज्जा संकल्पकोशात्मक मनहै, और परब्रह्मही इस पुरुषका सार आत्माहै ॥ २९ ॥ और चन्द्ररूप मनही, शरीररूपी वृक्षका मूल; कर्मरूपी वृक्षका बीज, सब पदार्थोंकी उपत्तिका हेतु, और अन्नादिसे तृप्त करनेसे आनन्दका कारण भी है ॥ ३० ॥ यह जो चन्द्रमण्डलहै, यही अन्नादिका हेतु होनेसे विराट्पुरुषमें जीव है और यही व्याष्टि शरीरोंका उनके कर्म तथा प्राण और मनोंका बीज तथा मूलकारण भी है ॥ ३१ ॥ इसी चन्द्रमारूप विराट् जीवसे तीनोंलोकमें; सब जीव, कर्म, मन, विषय सुख तथा मोक्षको भी प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

विराजएतेसंकल्पाब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ तस्यचित्तचमत्काराःसुरासुरनभश्चराः ॥ ३३ ॥ चित्स्वभा वोबुद्ध्यमानःप्रालेयपरमाणुताम् ॥ यदादौभावयत्याशुतदातत्रैवतिष्ठति ॥ ३४ ॥ तेनैतदेवजीवस्यस्था नंविद्धिरघूद्वह ॥ पंचावयवमेतत्तच्छरीरमनुभूयते ॥ ३५ ॥ विराड्जीवाच्चंद्रमसोजीवभूतानिदेहिनाम्॥ प्रसरंत्यन्नजातानिप्रालेयविसरात्मना ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस चन्द्ररूप विराट्पुरुषके संकल्परूप, ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवआदिदेवहैं, उसीके चित्तके चमत्कार सब सुर असुर तथा पक्षीगण भी हैं ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! चित्स्वभाव सृष्टिकी आदि सूक्ष्म अमृतकलाका अनुभव करताहुआ चन्द्ररूप और देव आकारकारका संकल्प जब करताहै तब शीघ्र प्रजापतिरूपसे स्थित होताहै ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इसकारण पंचीकृत भूतरूप अवयव सहित जो जाग्रत्में सब प्राणियोंको अनुभूत होताहै इसी चन्द्रमण्डलको तुम समष्टि विराट्जीवका शरीर जानो ॥ ३५ ॥ इसी चन्द्रमारूप विराट् जीवसे हिमरूपसे प्रासार द्वारा सम्पूर्ण व्याष्टि जीवोंके अन्न आदि जीव साधन सब लोकोंमें विस्तृत होते हैं ॥ ३६ ॥

तान्येवदेहिदेहेषुजीवाजीवंतिजीविषु ॥ मनोभूत्वाविचेष्टंतकर्मजन्मसुकारणम् ॥ ३७ ॥ एवंविराट्स हस्राणिमहाकल्पशतानिच ॥ गतान्यथभविष्यंतिनानाचाराणिसंतिच ॥ ३८ ॥ सर्वतोनुभवरूपया नयासत्तयोत्तमपदादभिन्नया ॥ अंतवर्जितमाहांगसंगयातिष्ठतीतिपुरुषःपरोविराट् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विराडात्मवर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—वेही चंद्रमंडल उत्पन्न अन्नादि प्राण धारण करके प्राणियोंके देहमें जीव होके जीते हैं, और मन होके जन्म तथा कर्मोंके मुख्य कारण होके चेष्टा करतेहैं ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनेक आचारसहित असंख्य विराट् शरीर तथा असंख्य महाकल्प बीतगये होंगे, और अबभी हैं ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मपदसे अभिन्नरूप, सबओरसे अनुभव पूर्ण, अंतरहित समष्टि तथा व्यष्टि देहोंसे संबंध रखनेवाली अधिष्टान सत्ताहीसे विराट् पुरुष माया उपहित ब्रह्ममें स्थितहै ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विराडात्म वर्णनं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

इस २० के सर्गमें वासना कर्म तथा कामनाओंके अनुरूप सृष्टियोंसे समष्टि जीवकी समता व्यष्टि जीवोंके साथ वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ संकल्पपुरुषस्त्वेषयद्यत्कल्पयतिस्वयम् ॥ तत्तथातादृशंपंचभूतात्माभवति स्वयम् ॥ १ ॥ सर्वरामजगज्जातंतत्संकल्पंविदुर्बुधाः ॥ तादृग्रूपंपंचकात्मविषयोन्मुखमाततम् ॥ २ ॥

जगत्पदार्थसार्थस्यविराट्सर्वस्यकारणम् ॥ कारणेनसमान्येवकार्याणिचभवंत्यतः ॥ ३ ॥ यथैषस विराडेवंविराट्प्रत्येकमात्मनि ॥ स्वसंविदिप्रसरतिबोधवान्नत्वबोधवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–यह पंचभूतात्मा सत्यसंकल्प विराट्पुरुष जिस २ वस्तुको जैसा २ संकल्प करताहै वैसाही वैसा चिदाकाश ब्रह्मभी विवर्तभावको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ हे रामजी! सर्व जगत्समूहको विराट्का संकल्परूपही पंडितजन कहते हैं क्योंकि प्रथम उपासनासंयुक्त वासनासे ब्रह्म पंचभूतात्मक विराट्रूप होके पंचभूतात्मक समष्टिरूप भोगकी उन्मुखताको प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ सब जगत्के पदार्थसमूहका कारण विराट्पुरुषही है, इसलिये कारणके समानही जगत् जीवरूप कार्य्यभी होते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये यह विराट्पुरुष निज मनकी वृत्तिके अनुसार अपने अनुभवके बाह्य आभ्यन्तर विषयाकारसे प्रसरित होनेहीपर जैसे ज्ञान होताहै ऐसेही प्रत्येक आत्मामें व्यष्टिजीवभी होताहै ॥ ४ ॥

आसरीसृपमारुद्रमेवमभ्युदितोभ्रमः ॥ अणावप्यद्रिविस्तारोबीजकोशइवद्रुमः ॥ ५ ॥ आसरीसृप मारुद्रविराट्प्रत्येकमात्मनि ॥ पराणावप्यनंतात्मबोधतोनत्वबोधतः ॥ ६ ॥ यादृगेवविराडात्मन्येषविस्तारआगतः ॥ तादृगेवेहसर्वस्मिन्नणुमात्रोपिभूतके ॥ ७ ॥ परमार्थेननस्थूलंनसूक्ष्मंकिंचनक्कचित् ॥ यद्यथावितंतयत्रतत्तथाश्वनुभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—कीट पतंगसे लेके रुद्रपर्य्यन्त जगदाकार भ्रम है यही सृष्टिरूपसे उदित है, और इस सृष्टिमें बीजमें वृक्षके समान एक परमाणुमेंभी अनंतपर्वतोंका विस्तार होताहै ॥ ५ ॥ परमाणुमेंभी अनंतात्मा परमात्माके बोधसे न कि अबोधसे पिपीलिकादि कीट पतंगोंसे लेके रुद्रपर्य्यन्त प्रत्येक आत्मामें विराट् (स्रष्टा) है इसलिये समष्टि व्यष्टिकी समताहै ॥ ६ ॥ जैसे यह सब जगत् विस्तार विराट्के आत्मामें प्राप्त हुआहै ऐसेही अणुमात्र मच्छरादि सब शरीरमें प्राप्त हुआहै ॥ ७ ॥ परमार्थमें तो यह आत्मा न स्थूल न सूक्ष्म है और न कहीं किंचित्रूप है, किंतु भ्रांतिसे जहां जैसा विस्तारित है वहां वैसाही शीघ्र अनुभव करताहै ॥ ८ ॥

मनश्चंद्रमसोजातंमनसश्चंद्रउत्थितः ॥ जीवाज्जीवोथवैकैषासत्ताद्रवजलांगवत् ॥ ९ ॥ शुक्रसारंविदुर्जीवंप्रालेयकणसंनिभम् ॥ आनंदोचलसंदोहस्ततएवप्रवर्तते ॥ १० ॥ तंचेततितदाभासंपूर्णमात्मस्थमात्मना ॥ तत्रतन्मयतांधत्तेतेनतन्मयरूपिणी ॥ ११ ॥ जीवसंविदथैषांतर्यद्रुपायातिपंचताम् ॥ न तत्रकारणंकिंचिद्विद्यतेनचकार्यता ॥ १२ ॥

अर्थ—अथवा जैसे चन्द्रमासे मन उत्पन्न हुआ और मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, ऐसेही जलद्रवके समान जीवसे जीव उत्पन्न हुआ यह समष्टि तथा व्यष्टिकी एकही सत्ता है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! पुनः हिमके कणके तुल्य वीर्य्यको जीवका सार कहते हैं, क्योंकि वीर्य्य उपहित जीवसे मातापिताके समागमकालमें भोगाकार वृत्तिमें चित्तकी एकाग्रतासे ब्रह्मका प्रतिबिंब पडनेसे आनन्द होताहै ॥ १० ॥ उस समय ब्रह्मानन्दकोही वीर्य्य उपहित जीवचेतन अपनेमें स्थित वीर्य्य स्वभावसे अनुभव करताहै और वीर्य्यजनित आनन्दको अनुभव करताहूं यही आनन्द मैं हूं इसप्रकार तन्मय होजाताहै ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् यही जीव संवित् (गर्भस्थ वीर्य्योपहित चित्) गर्भमें अभेदके अध्याससे पांचभौतिक देहरूपताको प्राप्त होती है, वहांपर विराट् वा अन्य कोई कार्य्य कारण नहीं है ॥ १२ ॥

प्रतियोगिव्यवच्छित्तेरभावात्स्वस्वभावयोः ॥ स्वभावोक्तिर्नचैवात्र भवत्यर्थानुसारिणी ॥ १३ ॥ जीवो जीवत्वमेवस्वजीवत्वादेवचस्वतः ॥ अंतस्त्वेनबहिष्ट्वेनदृश्यतेनचवायुवत् ॥ १४ ॥ नीहारेणेवसंवीतश्वेत्यवस्तुपरायणः ॥ जात्यंधइवपंथानंमारुतात्मानपश्यति ॥ १५ ॥ जगज्जृंभिकयाजीवःस्वमैक्यंद्वित्वमास्थितः ॥ स्पंदशक्त्येवपवनआवृतात्मानपश्यति ॥ १६ ॥ अज्ञानस्यमहाग्रंथेर्भिथ्यावेद्यात्मनोस्तः ॥ अहमित्यर्थरूपस्यभेदोमोक्षइतिस्मृतः ॥ १७ ॥ व्यपगतघनचेतनस्समंतादहमितिनूनमबुध्यमानआस्व ॥ अनभिघघनचेतनैकरूपःक्षितसदसत्सदसत्सदोदितश्च ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—यहां परब्रह्मका स्वभाव कारण है यह उक्ति सार्थक नहीं है, क्योंकि यदि स्वशब्द शुद्ध अद्वैतब्रह्मका वाचक है तो उसका प्रतियोगी वा व्यावर्तक न होनेसे उसके स्वभावका अभाव है ॥ १३ ॥ यदि उपहित जीवपरक स्वशब्द मानो तो भी उसका स्वभाव नहीं बनसकता क्योंकि वायुके सदृश अदृश्य जीव बाहर भीतर एकरूप है इसलिये जीवत्व तथा जीव स्वयं एकवस्तु है ॥ १४ ॥ प्राणके साथ अभेददशामें प्राप्त, तुषारके तुल्य संकुचित् तथा जन्मांधके तुल्य जीव उस अविद्यादशामें अपने स्वरूपको नहीं देखता ॥ १५ ॥ स्पन्दशक्तिसे पवनके तुल्य जगत् आ-

कारवाली माहाशक्तिसे आच्छादित जीव अपने एकत्वस्वरूपकोही दृश्य द्रष्टा आदि द्वैतरूपको देखताहै, और अपने शुद्धरूपको नहीं देखता ॥ १६ ॥ इसलिये ज्ञानसे अहंकाररूप अज्ञान ग्रन्थिका भेद नहीं मोक्ष कहागयाहै ॥ १७ ॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानरूप मेघसे वर्जित, नामरूप शून्य, मूर्त, अमूर्त, तथा उनके मूल अज्ञानके बाधसहित, और सदा चिन्मात्र प्रकाशरूप, अहंकारको विस्मृत होके आनन्दपूर्वक स्थित रहो ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे भाषानुवादे उत्तरार्धे जीवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

इस २१ के सर्गमें शुभ ग्राह्य, अशुभ अग्राह्य दोप्रकारकी ज्ञानबन्धुता लक्षणोंसे वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञानिनैवसदाभाव्यंरामनज्ञानबंधुना ॥ अज्ञातारंवरंमन्येनपुनर्ज्ञानबंधुताम् ॥१॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमुच्यतेज्ञानबंधुर्ज्ञानीचैवकिमुच्यते ॥ किंफलंज्ञानबंधुत्वेज्ञानित्वेपिचकिंफलम् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ व्याचष्टेयःपठतिचशास्त्रंभोगायशिल्पिवत् ॥ यततेनत्वनुष्ठानेज्ञानबंधुः सउच्यते॥३॥कर्मस्पंदेषुनोबोधःफलितोयस्यदृश्यते ॥ बोधशिल्पोपजीवित्वाज्ज्ञानबंधुःसउच्यते॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सदा मनुष्यको ज्ञानी होनाचाहिये, न कि ज्ञानका बन्धु, क्योंकि मैं ज्ञानके बन्धुसे अज्ञानीको उत्तम समझताहूं ॥१॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! ज्ञानका बन्धु किसे कहते हैं, और ज्ञानी कौन है, तथा ज्ञानका बन्धु होनेमें क्या फल है और ज्ञानी होनेमें क्या फल है ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जो शास्त्रको केवल भोगके लिये पढता तथा उसका व्याख्यान करताहै, और स्वयं उसके अनुसार अनुष्ठान करनेका यत्न नहीं करता उसको ज्ञानबन्धु कहते हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी ! जिसको शास्त्रके अभ्यासे प्राप्तशब्दोंका बोध उसकी नित्यकी चेष्टाओंमें वैराग्यादि फलसे युक्त नहीं किन्तु तत्वकी कथाओंसे शिल्पीके तुल्य अपनी जीविकामात्र उपार्ज्जन करताहै वह ज्ञानबन्धु है ॥ ४ ॥

वसनाशनमात्रेणतुष्टाःशास्त्रफलानिये ॥ जानंतिज्ञानबंधूंस्तान्विद्याच्छास्त्रार्थशिल्पिनः ॥ ५ ॥ प्रवृत्तिलक्षणेधर्मेवर्ततेयःश्रुतोचिते ॥ अदूरवर्तिज्ञानत्वाज्ज्ञानबंधुःसउच्यते ॥ ६ ॥ आत्मज्ञानंविदुर्ज्ञानंज्ञानान्यन्यानियानितु ॥ तानिज्ञानावभासानिसारस्यानवबोधनात् ॥ ७ ॥ आत्मज्ञानमनासाद्यज्ञानांतरलवे नये ॥ संतुष्टाःकष्टचेष्टंतेतेऽमृताज्ञानबंधवः ॥ ८ ॥ ज्ञानादितज्ज्ञेयविकाशशांत्याविनानसंतुष्टधियेहभाव्यम् ॥ त्वंज्ञानबंधुत्वमुपेत्यरामरमस्वमाभोगभवामयेषु ॥ ९ ॥ अत्राहारार्थंकर्मकुर्यादनिंद्यंकुर्यादाहारंप्राणसंधारणार्थम् ॥ प्राणाःसंधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थंतत्त्वंजिज्ञास्यंयेनभूयोनदुःखम् ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ज्ञानविचारो नामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—जो भोजन वस्त्रादिसे संतुष्ट होके भोजनादिके लाभकोही शास्त्र पठनका फल जानते हैं उन शास्त्रार्थ शिल्पियोंको ज्ञानबंधु जानना चाहिये, (यह ज्ञान बंधुता त्याज्यहै) ॥ ५ ॥ और जो शास्त्रोक्त अग्निहोत्रादि प्रवृत्तिरूप धर्ममें निष्काम होके प्रवृत्त होताहै, वहभी आत्मज्ञान निकटवर्ती होनेसे ज्ञानबंधु कहाताहै (यह ज्ञानबंधुता ग्राह्य है) ॥ ६ ॥ आत्मज्ञानही मुख्य ज्ञानहै, और अन्यपदार्थोंका ज्ञान जगत् तथा जीवके अधिष्ठान ब्रह्मके न जाननेसे ज्ञानाभासहैं ॥ ७ ॥ और आत्मज्ञानको न पाकर अन्य ज्ञानलेशके प्राप्त होनेसे स्वर्गादि प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं वे अशुभ ज्ञानबंधु हैं ॥८॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यंतरकी अनेक वृत्तिरूप ज्ञान, वृत्तियोंका कारण प्रमाता, तथा प्रमाताके ज्ञेय शब्दादि विषय, और विषयोंका अनुभव, इन सबकी निरतिशय आनंदस्वरूप ब्रह्मके साथ एकतारूप शांतिके बिना अन्य भूमिकामें मुमुक्षुको कदापि संतुष्ट न होना चाहिये, इसलिये हे रामजी ! तुम ज्ञानबंधु होके रोगरूपी संसारके भोगोंमें रमण न करो ॥ ९ ॥ इस संसारमें मुमुक्षुपुरुषको भोजन वस्त्रादिके लिये शास्त्रानुकूल अनिंद्यकर्म करना चाहिये, प्राण धारणमात्रके अर्थ आहार करना चाहिये ब्रह्मतत्व जाननेके लिये प्राणोंका धारण करना उचित है, और ब्रह्मतत्व अवश्य जानना चाहिये जिसमें पुनः संसारमें जन्ममरणादि दुःख न हो ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ज्ञानविचारो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस २२ के सर्गमें प्रथम युक्तियोंसे ज्ञानीके लक्षण, और उसमें जीव, जगत् तथा ब्रह्मतत्वकाभी वर्णन कियागयाहै

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञानेनज्ञेयनिष्ठत्वाद्येचित्तंचित्तमेवच ॥ नबुध्यतेकर्मफलंसज्ञानीत्यभिधीयते ॥१॥ ज्ञात्वासम्यगनुज्ञानंदृश्यतेयेनकर्मसु ॥ निर्वासनात्मकंज्ञस्यसज्ञानीत्यभिधीयते ॥ २ ॥ अंतःशीतल तेहासुप्राज्ञैर्यस्यावलोक्यते ॥ अकृत्रिमैकशांतस्यसज्ञानीत्यभिधीयते ॥ ३ ॥ अपुनर्जन्मनेयःस्याद्बोधः अज्ञानशब्दभाक् ॥ वसनाशनदाशेषाव्यवस्थाशिल्पजीविका ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जो भूमिकाओंमें आरोहण क्रमसे ज्ञेय चिन्मात्र ब्रह्मनिष्ठ होनेसे चित्तसे भिन्न शब्दादि विषयसमूहको तथा कर्मफलको चित्तरूपही जानताहै और उनको सत्य नहीं जानता वह ज्ञानी है ॥ १ ॥ तथा जो ज्ञानसे प्रत्येक नेत्रादि इन्द्रियजनित ज्ञानोंमें चिन्मात्र परमात्माको जानकर और कर्मोंमें निर्वासनारूप होनेसे दृश्यको बाधितरूपसे देखै उसको ज्ञानी कहते हैं ॥ २ ॥ स्वाभाविक एक आत्मलाभसे संतुष्ट तथा शांत जिस पुरुषकी व्यवहारोंमें अन्तःकरणकी शीतलता सब बुद्धिमानोंको लक्षित होती है उसको ज्ञानी कहते हैं ॥ ३ ॥ जो ज्ञानमूल अज्ञानका नाशक होनेसे पुनर्जन्म नहीं देता वही ज्ञान है, और शेषज्ञानकी चातुरी वस्त्र भो-जनादि देनेवाली शिल्प जीविका है ॥ ४ ॥

प्रवाहपतितेकार्येकामसंकल्पवर्जितः ॥ तिष्ठत्याकाशहृदयोयःसपंडितउच्यते ॥ ५ ॥ अकारणंप्रवर्त्तंत इवभावाअकारणात् ॥ अविद्यमानाअप्येतेविद्यमानाइवस्थिताः ॥ ६ ॥ आविर्भावतिरोभावैर्भावाभा वभवाभवैः ॥ पश्चात्कारणतांयांतिमिथःकारणकर्मभिः ॥ ७ ॥ असतःशशशृंगादेर्मृगतृष्णांभसोय था ॥ आलोकनादलभ्यस्यकीदृक्स्यात्किलकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वर्णाशुभके अनुकूल यथाप्राप्त कार्य्योंमें कामसंकल्पादिसे वर्जित, शरद्के आकाशके तुल्य शुद्ध हृद-ययुक्त जो पुरुष प्रवृत्त होताहै वह पंडित है ॥ ५ ॥ हे रामजी! जगत्के अविद्यमानभी विद्यमानके तुल्य स्थित विनाकारणही उत्पन्न हुयेके तुल्य भान होतेहैं, यथार्थमें उत्पन्न नहीं होते ॥ ६ ॥ सृष्टिकी आदिमें अविद्यासे उ-त्पन्न होके पश्चात् आविर्भावितसे भाव, भाव अभाव, तथा उत्पात्ति और नाशोंकेद्वारा कारणके व्यापारोंसे परस्पर कारणताको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ शशशृंग तथा मृगतृष्णाके तुल्य, ज्ञानरूप प्रकाशसे अलभ्य इस असत् जग-त्की कारणता कैसे होसकती है ॥ ८ ॥

असतःशशशृंगादेःकारणंमार्गयंतिये ॥ वंध्यापुत्रस्यपौत्रस्यस्कंधमासादयंतिते ॥ ९ ॥ असत्यप्रतिभा सानामेतदेवाशुकारणम् ॥ यदनालोकनंनामसमालोकक्षणक्षयम् ॥ १० ॥ परमात्मायतेजीवोबुध्यमा नस्त्वचेतनम् ॥ चेतनंबुध्यमानस्तुजीवएवावतिष्ठते ॥ ११ ॥ परमात्मैवजीवोयंबुध्यमानस्त्वचेतनम् ॥ आम्रएवरसापत्तेःप्रयातिसहकारताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—असत् जगत् तथा शशशृंगादिके कारणको जो ढूंढते हैं वे बंध्याके पुत्रपौत्रादि कन्धेपर चढते हैं ॥९॥ असत्य तथा भासमान पदार्थोंका अज्ञानही कारणहै, और ज्ञानरूप प्रकाश शीघ्र उनका नाश भी होताहै ॥ १० ॥ यह जीव अचेतन अहंकार देहादिको आत्मासे भिन्न जानता हुआ उसी क्षणमें परमात्मा होजाताहै और उनको आ-त्मारूप जानता हुआ जीवरूपसेही स्थित रहताहै ॥ ११ ॥ यह जीव अचेतन पदार्थोंको चित्से भिन्न वा अधिष्ठान चित्रूप आत्मा जानता हुआ परमात्माको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे आम्रही बसन्तऋतुमें सहकारताको ॥ १२ ॥

चेतनंबुध्यमानस्तुजीवएवावतिष्ठते ॥ जीवोजीवितजीर्णेषुजातिजन्मसुजर्जरः ॥ १३ ॥ येपरांदृष्टिमाया ताविद्धितेषामपामिव ॥ अरूपालोकमननंस्पंदमस्पंदनंसदा ॥ १४ ॥ येपरांदृष्टिमायातादृश्यश्रीपारद र्शिनः ॥ नविद्यमानमप्यस्तितेषांवेदनमाततम् ॥ १५ ॥ येपरांदृष्टिमायाताविद्धितेषामपामिव ॥ स्पंद मस्पंदनंसर्वमवेदनवशादिह ॥ १६ ॥

अर्थ—और अहंकार देहादिको आत्मा जाननेसे जीवरूपही रहताहै, और नानाप्रकारकी योनियोंमें जन्म लेते २ जर्जर होजाताहै ॥ १३ ॥ और जो ब्रह्मदृष्टिको प्राप्त हुये हैं उनकी चेष्टा अभिमान शून्य प्रारब्ध कर्मके क्षयपर्यंत ऐसे चलती है जैसे नीचेकी ओर जल ॥ १४ ॥ तथा जो दृश्यके पारदर्शीज्ञानदशाको प्राप्त हुये हैं, उनको विद्यमान भी दृश्यका दर्शन बाधित होनेसे ब्रह्मरूपही है ॥ १५ ॥ तथा जो ब्रह्मदृष्टिको प्राप्त हुये हैं उनकी चेष्टा भी अभिमान न होनेसे नहीं के तुल्य ऐसी है जैसे जलकी ॥ १६ ॥

अरूपालोकमननवेष्टितामुक्तदामवत् ॥ बुधाःकर्मसुचेष्टंतेवृक्षपत्रेष्विवानिलः ॥ १७ ॥ येपरांदृष्टिमाया ताःसंसृतेःपारदर्शिनः ॥ नतेकर्मप्रशंसंतिकूपंनद्यांवसन्निव ॥ १८ ॥ येबद्धवासनामूढाःकर्मशंसंतिते नघ ॥ श्रुतिस्मृत्युचितंतेनविनाबोधंप्रयांतिते ॥ १९ ॥ इंद्रियाणिपतंत्यर्थेभ्रष्टंगृध्रइवामिषम् ॥ तानिसं यम्यमनसायुक्तआसीततत्परः ॥ २० ॥

अर्थ—बंधनोंसे मुक्त वृषभादिके तुल्य, अहंकार इन्द्रियादिके अभिमानसे रहित, ज्ञानीजन यथा प्राप्त कर्मोंमें ऐसे चेष्टा करते हैं जैसे वृक्षोंके पत्रोंमें पवन ॥ १७ ॥ जो संसारके पारदर्शी ब्रह्मदृष्टिको प्राप्त हुये हैं वे कर्मकी प्रशंसा ऐसे नहीं करते जैसे गंगातटका निवासी कूपकी ॥ १८ ॥ हे पापरहित रामजी ! वासनामें बद्ध मूढ पुरुष कर्मकी प्रशंसा करते हैं, और ज्ञानके अभावसे श्रुति तथा स्मृतिके अनुसार उस कर्मके फलभोगको पाते हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानियोंकी इंद्रियां नीचेकी ओर ऐसे गिरती हैं, जैसे नीचे गिरे मांसपर गृध, इसलिये बुद्धिमानको उचितहै कि मनसे इंद्रियोंका निग्रह करके आत्मामें तत्पर होके स्थितरहै ॥ २० ॥

नासन्निवेशंहेमास्तिनासर्गंब्रह्मविद्यते ॥ किंतुसर्गादिशब्दार्थमुक्तंयुक्तमतेःशिवम् ॥ २१ ॥ एकांधकारे संपन्नेव्यवहारोयुगक्षये ॥ निर्विभागोनिराभासोयथाब्रह्मघनेतथा ॥ २२ ॥ अभ्रोदरेभ्रमांगानांस्पंदास्पं दमयीयथा ॥ स्वसंविदात्मिकासत्ताभूतानामीश्वरीतथा ॥ २३ ॥ जालस्यांतर्जलांशानांद्वैताद्वैतमयोय था ॥ स्वसंविदात्मासुस्पंदस्तथाब्रह्मणिभूतदृक् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे कटक आदि आभुषणोंकी रचना बिना सुवर्ण नहीं है ऐसेही सृष्टिके बिना ब्रह्म भी नहीं है, परन्तु ज्ञानीको सृष्टिके शब्दार्थसे रहित वह सृष्टि शिव ब्रह्मरूपही भान होती है ॥ २१ ॥ जैसे कल्पके अन्तमें प्रलयके अन्धकारमें मायाशबलित ब्रह्ममें निर्विभाग तथा निराभास विद्यमान भी जगत् सृष्टिके शब्दार्थसे शून्य रहताहै, ऐसे विवेकी दृष्टिमें अब भी भान होताहै ॥ २२ ॥ जैसे चंचल मेघमें मेघके अवयवोंका विभाग होनेसे उनको सत्ता स्पन्दमयी और अविभाग होनेसे अस्पन्दमयी निज अनुभवरूपही विरुद्ध धर्मसे एककालमें संभावित होती है ऐसेही प्रलयमें ईश्वरी स्पन्दसत्ता प्राणियोंकी संभावित होती है ॥ २३ ॥ जैसे तडागादिके शांत जलका और उसके अंशोंका भेद अनिर्वचनीयहै ऐसे ब्रह्ममें स्थित ब्रह्मसंविद्रूप जीवाभासोंका भेद भी अनिर्वचनीयहै ॥ २४ ॥

यथांबरेंबरांशानांद्वैताद्वैतकृतात्मनि ॥ अनन्यासृष्टिराभातितथानवयवेशिवे ॥ २५ ॥ जगतोंतरहंसरू पमहंरूपांतरेजगत् ॥ स्थितमन्योन्यवलितंकदलीदलपीठवत् ॥ २६ ॥ रूपालोकनमस्कारैरंध्रैर्बहिरि वस्थितम् ॥ सृष्टिंपश्यतिजीवोंतःसरसीमिवपर्वतः ॥ २७ ॥ जीवोजगतयात्मानंपश्यत्ययमकारणम् ॥ हेमेवकटकादित्वंतदपश्यन्नपश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—अवयवरहित ब्रह्ममे जीव जगत् सृष्टि ऐसे अभिन्न भासती है जैसे आकाशमें दिशाकृत आकाशके अंशोंका ॥ २५ ॥ इसी रीतिसे जगत्के भीतर अहंकार और अहंकारके भीतर जगत् परस्पर ऐसे वेष्टित हैं जैसे केलेके दल ॥ २६ ॥ यह जीव अपने अन्तर्गत सृष्टिकोही मन तथा इन्द्रियोंकी वृत्तियोंसे बाह्य स्थित ऐसे देखताहै जैसे हिमालयपर्वत अपने छिद्रोंसे निकलेहुये जलको बाहर मानससरोवरादिरूपसे ॥ २७ ॥ जैसे सुवर्णमें कटक कुंडल आदि भूत तथा भावी आकार देखपडते हैं, और सुवर्णमात्रकी दृष्टिमें नहीं देखपडते ऐसे जीव अपनेही स्वरूपको विना कारण जगत्‌रूपसे देखताहै ॥ २८ ॥

जीवंतोपिनजीवंतिम्रियंतेनमृताअपि ॥ संतोपिचनसंतीवपारावारविदःशुभाः ॥ २९ ॥ प्रबुद्धःसर्वक र्माणिकुर्वन्नपिनपश्यति ॥ गृहकर्माणिगेहस्थोगोष्ठभांडमनाइव ॥ ३० ॥ विराड्हृदियथाचंद्रःप्रतिदेहं यथास्थितः ॥ जीवोहिमकणाकारःस्थूलेस्थूलोलघौलघुः ॥ ३१ ॥ अहमात्मात्रिकोणत्वमुपगच्छति कल्पनम् ॥ असदेवसदाभासंमन्यतेचेतनाद्वपुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—संसारके पारावारदर्शी जीवन्मुक्त महाजन प्राणधारण करते हुये यथार्थ नहीं धारण करते, मृत्युरहित भी मरते हुयेके सदृश भासते हैं, और शरीररहितभी शरीरधारीके तुल्य विद्यमान भासते हैं ॥ २९ ॥ ब्रह्ममें आसक्त ज्ञानीजन शरीरयात्रा आदि कर्म करते हुयेभी उनको ऐसे नहीं देखते जैसे गृहमें स्थितभी गोशाला आदिमें आसक्त चित्त पुरुष गृहके कर्मोंको ॥ ३० ॥ जैसे ब्रह्मांडके हृदयमें (समष्टिशरीरमें) विराट्जीव चन्द्रमा स्थित है एसेही प्रत्येक व्यष्टिशरीरमें हिमके कणके तुल्य वीर्य्यरूप जीव स्थूलमें स्थूलरूपसे लघुमें लघुरूपसे स्थित है ॥ ३१ ॥ पिताके शरीरमें वीर्य्यरूपसे स्थित अहंकाररूप जीव माताकी त्रिकोणाकारयोनिमें पडनेसे त्रिकोण परिच्छिन्न कल्प-

नाको प्राप्त होताहै, और योनिके रक्तसे मिलके कलल बुद्बुद तथा पिंडादि क्रमसे आविर्भूत असत्शरीरमें चेतना अहं अभिमानमानताहै ॥ ३२ ॥

कर्मकोशेत्रिकोणेचशुक्रसारेऽवतिष्ठते ॥ देहेजीवोहमित्यात्मास्वामोदःकुसुमेयथा ॥ ३३ ॥ अहमित्ये वशुक्रस्थासंविदापादमस्तकम् ॥ विसरत्यखिलेज्योत्स्नायथाब्रह्मांडमंडपे ॥ ३४ ॥ अक्षरंध्रप्रणालेनवि सृतंवेदनोदकम् ॥ व्याप्नोतित्रिजगद्धूमोवियन्मेघतयायथा ॥ ३५ ॥ देहेयद्यप्यशेषेस्मिन्बहिरंतश्ववेद नम् ॥ विद्यतेतत्तथाप्यत्रशुक्रेस्तिघनवासना ॥ ३६ ॥

अर्थ—त्रिकोणाकार माताके गर्भमें, अपने कर्मसे रचित वीर्य्यमात्र क्षारमात्र देहमें यह जीव आत्माभिमान करके ऐसे स्थित रहताहै जैसे पुष्पमें सुगन्ध ॥ ३३ ॥ वीर्य्यमें स्थित चन्द्रकलारूप संवित् (ज्ञान) पदसे लेके मस्तकपर्य्यन्त सम्पूर्ण देहमें अहंभावरूपसे ऐसे व्याप्त होजाती है जैसे चन्द्रमाकी चन्द्रिका सम्पूर्ण ब्रह्मांडमंडपमें ॥ ३४ ॥ इन्द्रियोंके छिद्रोंके मार्गसे निःसृत ज्ञानरूप जल तीनोंलोकमें ऐसे व्याप्त होताहै जैसे धूम्र आकाशमें मेघ-रूपसे ॥ ३५ ॥ यद्यपि सम्पूर्ण शरीरमें बाहर भीतर अहंकाररूप ज्ञान है तथापि हृदयमें स्थित वीर्य्यमें अधिक अहं अभिमान है ॥ ३६ ॥

जीवःसंकल्पमात्रात्मायत्संकल्पोवतिष्ठते ॥ हृदिभूत्वासएवाशुबहिःप्रसरतिस्फुटम् ॥ ३७ ॥ यथास्थि तांचनिश्चित्तांवर्जयित्वास्थिरोपमाम् ॥ नकयाचिदपिस्थित्याशाम्यत्यहमितिभ्रमः ॥ ३८ ॥ चिंतानु चिंत्यमानापिभावनीयांबरोपमा ॥ अहंभावोपशमनेशमनेनक्रमेणते ॥ ३९ ॥ तज्ज्ञाव्यवहरंतीहभाव्य भावनवर्जितम् ॥ अरूपालोकमननंमौनंदारुनराइव ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी कारणसे संकल्परूप जीव हृदयमें जो कुछ संकल्प करताहै शीघ्र उसी रूपसे बाहर स्थित होताहै ॥ ३७ ॥ इसी हेतुसे स्वभावसिद्ध, चित्तवर्जित ब्रह्मके साथ अभेद ज्ञानरूप दशाको छोडकर अन्य किसी उपायसे अहंकाररूप भ्रम शान्त नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! तुमको अहंभावको सर्वथा शान्त करनेके लिये श्रवण मनन निदिध्यासनादि क्रमसे आकाशके तुल्य निश्चल स्थितिपर्य्यन्त ब्रह्मचिन्ता सम्पादन करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ ज्ञानीजन इस संसारमें बाह्य तथा मानसिक दृश्य तथा दर्शनके अभिमानरहित होके ऐसे व्यवहार करते हैं जैसे काष्ठके मनुष्य ॥ ४० ॥

अकिंचिद्भावनोयःस्यात्समुक्तइतिकथ्यते ॥ जीवन्नाकाशविशदोबंधशून्यइवस्फुटम् ॥ ४१ ॥ अहमि त्येवशुक्रस्थासंविदापादमस्तकम् ॥ विसरत्यखिलेदेहेब्रह्मांडेर्कप्रभायथा ॥ ४२ ॥ दृङ्नेत्रंरस्वदनंजिह्वा श्रुतिःश्रोत्रंभवत्यसौ ॥ इत्याद्यावासनाःपंचबद्ध्वातासुनिमज्जति ॥ ४३ ॥ चिद्भावोक्षतयोदेतिमनोभू त्वैकदेशतः ॥ सर्वगोपिरसोभूमौयथांकुरतयामधौ ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसको सर्वदा ब्रह्मकी भावनाहै वह जीतेही आकाशवत् विशाल तथा बंधनरहित मुक्त कहलाताहै ॥ ४१ ॥ वीर्यमें स्थित जीव संवित् पदसे लेके मस्तकपर्य्यन्त सब शरीर इंद्रिय आदिमें अहंभावरूपसे ऐसे फैल जाती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा सम्पूर्ण ब्रह्मांडमें ॥ ४२ ॥ और नेत्र, जिव्हा; तथा श्रवण आदि इंद्रियोंके छिद्रोंमें वीर्य्यकी संवित् प्रविष्ट होती है और उनमें अहंभावरूप वासनासे बद्ध होके स्त्री आदिके दर्शन स्पर्शन तथा श्रवण आदिमें इंद्रियोंके द्वारा कामके उद्दीपनसे निमग्न होजाती है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! अज्ञानसे आवृत चेतनही प्रथम मन होके वीर्य्यमें अहंभावनारूप एक देश द्वारा पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें ऐसे उदय होताहै जैसे पृथिवी सर्व-गामीभी रस वसन्तमें अंकुररूपसे उदय होताहै ॥ ४४ ॥

योभावयतिभावेषुनेहरूढेष्वभावताम् ॥ तस्यायत्नवतोदुःखमनंतंनोपशाम्यति ॥ ४५ ॥ येनकेनचिदा च्छन्नोयेनकेनचिदाशितः ॥ यत्रक्वचनशायीहससम्राडिवराजते ॥ ४६ ॥ वासनाभिरुपेतोपिसमग्रा भिरवासनः ॥ अंतःशून्योप्यशून्यात्माखमिवश्वसनान्वितः ॥ ४७ ॥ आसनेशयनेयानेस्थितोयत्नैर्नबो ध्यते ॥ निद्रालुरिवनिर्वाणमनोमननिर्वृतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे राम ! जो पुरुष मन अहंकार तथा देह आदिसे रुढ जगत्के रूपोंमें ब्रह्म भावनारूप अनहंभाव-नासे भावना नहीं करता उस यत्नरहित पुरुष गर्दभका अनंत संसारका दुःख कदापि शांत नहीं होता ॥ ४५ ॥ और ज्ञानरूप अमृतसे तृप्त जन तो चाहै जैसा (कंथा वा दुशाला) वस्त्र धारण करै, चाहै जो कुछ अन्यसे लब्ध अन्न भोजन करै, और जहां चाहै शयन करै, परंतु वह सर्वोत्तम सुख अनुभव करता हुआ चक्रवर्तीराजाके तुल्य शो-भित होताहै ॥ ४६ ॥ ब्रह्मवासना, वा संस्कार प्रारब्धमात्र जगत्की वासनाओंसे युक्तहो, परंतु वह वासनारहितही

है, अन्तःकरणमें संसारकी वृत्तियोंसे शून्यभी वह अशून्य चिन्मात्र आकाशके तुल्य प्राणवायुसे युक्तहै ॥ ४७ ॥ मानासिक चिंताओंसे रहित षष्ट आदि भूमिकामें आरुढ, आसन, शयन, वा यानमें स्थित निर्वाणदशाको प्राप्त निद्रालुके समान यत्नोंसेभी वह ज्ञानी बोधित नहीं होता ॥ ४८ ॥

संविन्मात्रंहिपुरुषःसर्वगोपिसतिष्ठति ॥ स्फुटसारेशरीरस्ययथागंधोब्जकेसरे ॥ ४९ ॥ संविन्मात्रंविदुर्जंतुंतस्यप्रसरणंजगत् ॥ आत्मनिष्ठत्वमजगत्परमेत्युपदेशभूः ॥ ५० ॥ नीरसोभवभावेषुसर्वेषुविभवादिषु ॥ पाषाणंहृदयंकृत्वायथाभवसिभूतये ॥ ५१ ॥ साधोहृदयसौषिर्यंभिवास्तुते ॥ अचिरत्ववपुषोचित्वाद्दपलस्येवराघव ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सर्व व्यापी भी संवित् मात्र पुरुष शरीरके सारभूत वीर्य्यमें ऐसे स्थित रहताहै जैसे कमलके कोशमें गंध ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! संविन्मात्रही जीवहै, उसीका विस्तार यह जगत्‌है, और आत्मनिष्ठ होनेसे जगत् रहित परमपदको प्राप्त होताहै वस यही उपदेशकी पराकाष्ठाहै ॥ ५० ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण संसारके विभवमें वैराग्यवान् होके तथा पाषाणके तुल्य इच्छादि रहित हृदयको करके ज्ञानरूप ऐश्वर्य्यकी प्राप्तिके लिये सनद्ध होजाओ ॥ ५१ ॥ हे साधोरामजी ! संसारी वासनाओंके लिये छिद्र न देनेके अर्थ छिद्रयुक्त तुमारा हृदय छिद्ररहित ऐसे होजाय जैसे जड पाषाणका ॥ ५२ ॥

तज्ज्ञाज्ञयोरशेषेषुभावाभावेषुकर्मसु ॥ ऋतेनिर्वासनत्वात्तुनविशेषोस्तिकश्चन ॥ ५३ ॥ सतैवैषाविदो यत्साभवत्युन्मिषिताजगत् ॥ परंतत्त्वंनिमिषिताद्दगिवानामकंततम् ॥ ५४ ॥ दृश्यंविनश्यत्यखिलंविनष्टंजायतेपुनः ॥ यन्ननष्टंनचोत्पन्नंतत्सद्भवतितद्भवान् ॥ ५५ ॥ भावज्ञप्तिर्हिनिर्मूलाभावितापिनविद्यते॥ सलिलंमृगतृष्णेवनददातिभवांकुरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—ज्ञानी तथा अज्ञानियोंके सब भाव अभावरूप कर्मोंके व्यवहारमें कोई विशेष नहीं है, किन्तु भेद इतनाही है कि ज्ञानी उन पदार्थों और कर्मोंमें सत्यवासना नहीं करता ॥ ५३ ॥ चेतनकी सत्ताही वासनाओंसे स्फुरित होनेसे जगत्‌रूप होजाती है, और वासनाओंके अभावसे शान्त होके अपरिच्छिन्न नामरूपरहित मोक्षरूप होजाती है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! यह सम्पूर्ण दृश्यजगत् नष्ट होजाताहै, और नष्ट होके पुनः उत्पन्न होताहै, इसलिये जो न तो उत्पन्न हुआ और न नष्ट हुआ वही सत् है और वही सद्रूप तुम हो ॥ ५५ ॥ अन्वेषण करनेपर निर्मूल यह जगत्‌की भ्रांति लब्ध नहीं होती, क्योंकि मृगतृष्णाका जल अंकुर नहीं उत्पन्न करता ॥ ५६ ॥

यथाभूतार्थसंदर्शच्छिन्नाहमितिभावना ॥ दृष्टापिनकरोत्यंतदग्धंबीजमिवांकुरम् ॥ ५७ ॥ कर्मकुर्वन्न कुर्वन्वावीतरागोनिरामयः ॥ निर्मनानित्यनिर्वाणःपुमानात्मनितिष्ठति ॥ ५८ ॥ चित्तोपशांतौसंशांताः शांतायेभोगबंधवः ॥ नस्वभावपरिक्षीणाश्चित्तमेषांकिलाकरः ॥ ५९ ॥ अधनःकेवलालोकोब्रुधोजीवः परायते ॥ सएवान्योप्यनन्योंतरपराह्णइवातपः ॥ ६० ॥

अर्थ—आत्मपदार्थके देखनेसे छिन्न मूल अहंभावना दृष्ट होनेपरभी अन्तःकरणमें संसारको ऐसे नहीं रचती जैसे दग्धबीज अंकुरको ॥ ५७ ॥ बीतराग, तथा मनके विकारोंसे रहित ज्ञानीपुरुष कर्म करै वह सदा मनरहित तथा नित्य निर्वाणरूप अपने आत्मामें स्थित रहताहै ॥ ५८ ॥ जिन्होंने अपने चित्तको शान्त किया है वेही शान्त हैं, और जिन्होंने भोगोंमें बांधनेवाली वासनाओंको मूल चित्तासहित नहीं नष्ट किया वे शान्त नहीं है क्योंकि सबकी खानि उनका चित्त विद्यमान है ॥ ५९ ॥ चित्त देहादिमें अहंभावरूप धनसे रहित जीव केवल चिन्मात्र परमात्माही होजाताहै, और उनमें अहंभाव होनेसे ऐसे ताप संयुक्त होजाताहै जैसे मध्यान्हके सूर्य्य ॥ ६० ॥

एकदेशस्थितात्पुंसोदूरायातस्यचेतसः ॥ यद्रूपंसकलंमध्येतद्रूपंपरमात्मनः ॥ ६१ ॥ चारुचिद्व्योमकर्पूरंयच्चमत्कुरुतेस्वयम् ॥ अनंतमंतरव्यक्तंजगदित्येववेत्तितत् ॥ ६२ ॥ गतभवभ्रमभासुरमक्षयंशममुपेतमुपेक्षितदीपवत् ॥ स्थितमपीहजनंजगदीश्वराऽनुगतंननुभातिमुदाचखे ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सुखयोगोपदेशो नाम द्वाविंशतितमःसर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—देशमें स्थित पुरुषका जो सूर्य्यचंद्रमंडल आदिमें चित्त जाताहै उन (पुरुष तथा सूर्य्य) के बीचके देशमें जो चित्का स्फुरण है वही परमात्माका रूप है ॥ ६१ ॥ चिदाकाशरूप कर्पूर जो स्वयं चमत्कार करताहै उसीको अपनेही स्वरूपमें जगत्‌रूपसे जानताहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीजनको यह जगत् भ्रमरहित, प्रकाशशील

और अक्षय ब्रह्मरूपही भासताहै, और अज्ञानीको तो परमात्माकी व्यवस्थासे तथा भोगादियुक्त परमार्थरूपसे आकाशके उदरमें स्थितभी उस रूपसे नहीं भासता ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सुखयोगोपदेशो नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इस २३ के सर्गमें मरुस्थलके महावनमें तत्वजिज्ञासु मंकिनाम ब्राह्मणके साथ वसिष्ठजीका समागम और वैराग्यसे उनको उपदेश देना वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विरागवासनापास्तसमस्तभववासनः ॥ उत्थायगच्छप्रकृतेरस्यामंकिरिवांकितः १ मंकिर्नामाभवत्पूर्वंब्राह्मणःसंशितव्रतः ॥ सकथंशृणुनिर्वाणमाप्तवान्मद्विबोधितः ॥ २ ॥ अहंकदाचिदाकाशकोशादवनिमागतः ॥ भवत्पितामहार्थेनकेनाप्युपनिमंत्रितः ॥ ३ ॥ विरहनभूतलंगच्छंस्त्वत्पितामहपत्तनम् ॥ प्राप्तोस्मिकांमप्यादीर्घामरण्यानींमहातपाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! मंकिके सदृश संपूर्ण संसारकी वासनासे रहित होके तत्वबोधसे इससंसारसे निकलके आत्मपदको प्राप्त होओ ॥ १ ॥ प्राचीनसमयमें उत्तम व्रतयुक्त मंकिनाम एक ब्राह्मण हुये उन्होंने मेरे उपदेशसे किसप्रकार मोक्ष पाया सो तुम सुनो ॥ २ ॥ तुमारे पितामह अजसे किसी यज्ञके कार्य्यसे निर्मंत्रित होके मैं किसी समय आकाशके कोशसे पृथिवीपर आया ॥ ३ ॥ तुमारे पितामहके नगर अयोध्याजीके आते हुये पृथिवीपर विचरते हुये महाआतपसंयुक्त किसी महाजंगलमें प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

पांसुप्रतर्दनहतांप्रकचत्तप्तसैकताम् ॥ अदृष्टापारपर्यंतांकचिद्रामकिलांकिताम् ॥ ५ ॥ अक्षुब्धखानिलालोकजलभूशांतिशालिनीम् ॥ ततांशून्यांमहारंभांब्रह्मसत्तामिवामलाम् ॥ ६ ॥ अविद्यामिवसंमोहमृगतृष्णांगतांभ्रमात् ॥ जडतामाततांशून्यांदिङ्मोहमिहिकाकुलाम् ॥ ७ ॥ अथतस्यामरण्यान्यांयावत्प्रविहराम्यहम् ॥ तावत्पश्यामिपुरतोवदंतंपथिकंश्रमात् ॥ ८ ॥

अर्थ—धूलिके विस्तारसे धूसर, संतप्तबालूसे पूर्ण, अपार और कहीं २ दुष्ट ग्रामोंसे चिन्हित वह महाअरण्यानीथी ॥ ५ ॥ क्षोभरहित आकाश, वायु आतप तथा जलकी शांति (अभाव) से अपूर्व शोभायुक्त विशाल, शून्य, तथा दुर्गम होनेसे पथिकके महान् आरंभयुक्त निर्मल ब्रह्मसत्ताके सदृश वह अरण्यानीथी ॥ ६ ॥ मोहदायक मृगतृष्णासे अविद्याके समान, भ्रमसे जडताको प्राप्त, अति विशाल, जन शून्य, और दिग्भ्रमरूप कुहिरासे युक्त वह अरण्यानीथी ॥ ७ ॥ उस महाबनमें जब मैं भ्रमण कररहाथा, इतनेहीमें भ्रमसे यह कहते हुये एक पथिकको देखा॥८॥

पांथउवाच ॥ अहोनुपरिखेदायप्रौढप्रायातपोरविः ॥ परितापायपापोयंदुर्जनेनेवसंगमः ॥ ९ ॥ सुगलंतीवमर्माणिस्फुरतीवाग्निरातपे ॥ संकुचत्पल्लवापीडास्ताप्यंतेवनराजयः ॥ १० ॥ तत्तावदेवमग्रस्थंग्रामकंप्रविशाम्यहम् ॥ श्रममत्रापनीयाशुवहाम्यध्वानमाशुगः ॥ ११ ॥ इतिसंचिंत्यसोग्रस्थंकिरातग्रामकंयदा ॥ प्रवेष्टुमिच्छतितदामयाप्रोक्तमिदंवचः ॥ १२ ॥

अर्थ—पथिक बोला कि–अहो! जैसे पापी और दुर्जनका समागम केवल परितापके लिये होताहै ऐसेही महाप्रचंड आतपयुक्त यह सूर्य्य खेदकेही लिये है ॥ ९ ॥ सब अंग गिरेसे जातेहैं, धर्ममें अग्निसी प्रदीप्त होरही है, वृक्षोंके पत्ते संकुचित होरहेहैं, और सब बनकी पंक्ति संतापित होरही हैं ॥ १० ॥ इसलिये इस संमुख स्थित छोटे ग्राममें प्रवेश करूं यहांपर कुछ श्रम दूर करके पुनः शीघ्र अपने मार्गमें चलूं॥ ११ ॥ ऐसा विचार करके जब उसने किरातोंके ग्राममें प्रवेश करनेकी इच्छा की इतनेहीमें मैंने उससे यह बचन कहा कि ॥ १२ ॥

अपरिज्ञातनीरागमार्गमित्रशुभाकृते ॥ मरुमार्गमहारण्यपांथस्वागतमस्तुते ॥ १३ ॥ चिरंमनुष्यदेशेस्मिन्निर्जनग्राममध्वनि ॥ अधराध्वगविश्रांतिंविश्रांतोपिनलप्स्यसे ॥ १४ ॥ ग्रामेविश्रमणंनैववर्त्ततेपामरास्पदे ॥ तृड्वैलवणपानेनभूयएवाभिवर्धते ॥ १५ ॥ एतेग्रामैकशरणाःपल्लवाःस्पंदभीरवः ॥ अयथापथसंचाराहरिणाइवजंतवः ॥ १६ ॥

अर्थ – हे शुभाकृते! हे नीरागोंके मार्गके ज्ञानसे रहित! हे मरुस्थलके महाअरण्यके पांथ! तुमारा शुभागमनहो ॥ १३ ॥ हे पांथ! पूर्वग्रामोंमें कुछ विश्राम पानेपरभी अतिथिके सत्कारीजनसे रहित ग्राममें इस मनुष्य देश

(देह) में चिरकालतक विश्राम न पाओगे ॥ १४ ॥ पामरोंके निवासस्थान ग्राम (देव मनुष्यादि देह) में विश्राम नहीं मिलता, क्योंकि लवणके पीने (विषयसेवन) से तृष्णा (विषयेच्छा) अधिक बढती है ॥ १५ ॥ ये जंगलके पुरवोंमें रहनेवाले, महात्माजनके समागमसे भीरु, और अशास्त्रीमार्गमें चलनेवाले व्याध (कामादि) ऐसे हैं जैसे पशु ॥ १६ ॥

नस्फुरंतिविचारेषुप्रज्वलंत्यनुभूतिषु ॥ नत्रस्यंतिदुराचारादश्मयंत्रमयाइव ॥ १७ ॥ कामार्थरागसद्वेष परिनिष्ठितपौरुषाः ॥ कर्मण्यापातमधुरेरमंतेदग्धबुद्धयः ॥ १८ ॥ आभिजात्याततोदाराशीतलारसशा लिनी ॥ नेहविश्वसितिप्रज्ञामेघमालामराविव ॥ १९ ॥ वरमंदगुहाहित्वंशिलांतःकीटतावरम् ॥ वरं मरौपंगुमृगोनग्राम्यजनसंगमः ॥ २० ॥

अर्थ—ये लोहकी प्रतिमाके तुल्य विचारमें मूढ होतेहैं, ऐश्वर्य्य (अनुभव) में जलने लगतेहैं, और दुराचारमें कभी भय नहीं करते ॥ १७ ॥ काम तथा अर्थके लिये रागद्वेषमेंही इनका पुरुषार्थ समाप्त होताहै और बिना विचारे रमणीय कर्ममेंही ये नष्टबुद्धि रमते हैं ॥ १८ ॥ दोनों कुलकी विशुद्धिसे पूर्ण, शीतल शांतिरस (ब्रह्मानंद) से शोभित बुद्धि ऐसे जनमें ऐसे नहीं विश्वास करती जैसे मरुस्थलमें मेघमाला ॥ १९ ॥ अंधकारयुक्त गुहामें अजगर होना उत्तम है, पाषाणमें कीट होना श्रेष्ठ है, और मरुभूमिमें पंगुल हरिण होना अच्छा है परंतु ग्रामीण (अज्ञानी) जनका समागम श्रेष्ठ नहीं है ॥ २० ॥

निमेषास्वादमधुराःक्षणांतरविरागिणः ॥ मारणैकांतनिरताग्राम्याविषकणाइव ॥ २१ ॥ वांतिभस्मक णाकीर्णाजीर्णाःसंशीर्णसद्मसु ॥ तृणपर्णवनव्यग्राग्राम्याधार्मिकवायवः ॥ २२ ॥ एवमुक्तेनतेनाहमिद मुक्तस्ततोनघ ॥ मद्वाक्येनसमाश्वास्यस्नातेनेवामृतांभसा ॥ २३ ॥ पांथउवाच ॥ भगवन्कोसिपूर्णा त्मामहात्माकथमात्मवान् ॥ पश्यस्यनाकुलोलोकंग्रामयात्रामिवाध्वगः ॥ २४ ॥

अर्थ—निमिषमात्रके आस्वादमें मधुर, क्षणमेंही बिगाड करनेवाले और सदा वधमें तत्पर ग्रामीणजन ऐसे हैं जैसे विषसे मिश्रित मिठाई आदिका कण ॥ २१ ॥ धूलिके कणोंसे व्याप्त, जीर्ण, और तृण पत्र, तथा बनमें व्यग्र ये अधार्मिकजनरूप प्रचंड पवन अतिजीर्ण स्थानोंमें संचार करतेहैं ॥ २२ ॥ हे पापरहित रामजी ! इसप्रकार मेरे वाक्यसे उपदिष्ट धैर्य्यको प्राप्त तथा अमृतमय जलमें स्नान कियेहुयेके समान उसने यह कहा ॥ २३ ॥ पांथ बोला कि–हे भगवन् ! आप कौन हैं? आप पूर्णात्मा ज्ञानीमहात्मा भान होतेहो, क्योंकि व्याकुलरहित मार्ग (ब्रह्ममार्ग) में स्थित ग्रामयात्राको देखतेहो ॥ २४ ॥

किंत्वयापीतममृतंकिंत्वंसम्राड्विराडथ ॥ सर्वार्थरिक्तोपिचिरंसंपूर्णइवराजसे ॥ २५ ॥ शून्योसिपरिपू र्णोसिघूर्णोसीवस्थिरोसिच ॥ नसर्वमपिसर्वंचनकिंचित्किंचिदेवच ॥ २६ ॥ उपशांतंचकांतंचदीप्तमप्र तिघातिच ॥ निवृत्तंचोर्जितंतादृग्रूपंकिमितितेमुने ॥ २७ ॥ भूसंस्थोपिसमस्तानांलोकानामुपरीवसे ॥ संस्थितोसिनिरास्थोसिघनास्थोसीवलक्ष्यसे ॥ २८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! क्या आपने अमृत पान कियाहै, अथवा सर्वलोकेश्वर हैं, वा विराट् पुरुष हैं, क्योंकि आप सब पदार्थोंसे रहितभी पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभित होरहे हैं ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! आप संसारके दोषोंसे शून्य हो, निरतिशय ब्रह्म तथा जीवन्मुक्तोंके गुणसे परिपूर्ण हो, देहादिकाभी सन्धान न होनेसे मदोन्मत्तके तुल्यहो, अपवाददृष्टिसे कुछ नहीं, और अध्यारोपदृष्टिसे सबकुछ आप भान होतेहो ॥ २६ ॥ हे मुने ! शान्त रमणीय, प्रदीप्त, प्रतिघात शून्य, सबसे निवृत्त, और सब सामर्थ्यसहित जो रूप है, वैसाही आपका रूप मुझे भान होताहै ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! भूलोकमें स्थितभी आप सब लोकोंके ऊपर आकाशमें स्थितके तुल्य भासतेहो, हे भगवन् ! यद्यपि आपकी स्थिति कहीं नहीं है तथा मेरे सदृश जनोंके उद्धारार्थ स्थितके तुल्य भासते हो ॥ २८ ॥

प्रसृतंनपदार्थेषुनपदार्थात्मनास्तिवै ॥ तवेंदोरिवशुद्धस्यमनोमृतमयंस्थितम् ॥ २९ ॥ कलावानकलं कांतःशीतलोभास्वरःसमः ॥ रसायनभरापूर्णःपूर्णेंदुरिवराजसे ॥ ३० ॥ त्वदिच्छायांतुसदसद्भावं पश्यामितेचिति ॥ संसारमंडलमिदंस्थितंफलमिवांकुरे ॥ ३१ ॥ अहंतावदयंविप्रशांडिल्यकुलसंभ वः ॥ मंकिर्नाममहाभागतीर्थयात्राप्रसंगतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका मन चन्द्रकिरणके तुल्य पदार्थोंमें विस्तृत होके क्षीण नहीं है इसलिये शुद्ध तथा परिपूर्ण अमृतमय स्थित है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आप सब कलाओंसे पूर्ण, अकलंक आभ्यन्तरसे शीतल तथा प्रकाशमय, सर्वत्र सदा समान, और रसायनके प्रवाहसे पूर्ण, पूर्णचन्द्रमाके समान शोभित होरहेहो ॥ ३० ॥

हे भगवन् ! आपकी इच्छाहीमें अर्थात् चिद्रूपमें यह संसारके मण्डलका सदसद्भाव ऐसे स्थित है जैसे अंकुरमें फल ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! मैं शांडिल्यगोत्रमें उत्पन्न मंकि नाम ब्राह्मणहूं, तीर्थयात्राके अर्थ ॥ ३२ ॥

गत्वासुदूरमध्वानंदृष्ट्वातीर्थानिसंप्रति ॥ चिरकालेनसदनमात्मीयंगंतुमुद्यतः ॥ ३३ ॥ नचमेगंतुमुद्योगोविरक्तमनसोगृहम् ॥ दृष्ट्वातडित्सकाशानिभूतानिभुवनोदरे ॥ ३४ ॥ भगवन्सत्यमात्मानंकथयेहानुकंपया ॥ गंभीराणिप्रसन्नानिसाधुचेतःसरांसिहि ॥ ३५ ॥ दर्शनादेवमित्रत्वंकुर्वतांमहतांपुरः ॥ कमलानीवभूतानिविकसंत्याश्वसंतिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—बहुत दूर गयाथा, मैंने अनेक तीर्थ देखे, अब चिरकालसे अपने गृहको जानेके लिये उद्यतहूं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मांडके उदरमें विद्युत्के प्रकाशके तुल्य सब भूतोंको देखके वैराग्ययुक्त मेरे चित्तमें गृह जानेकी इच्छा नहीं होती ॥३४॥ हे भगवन् ! कृपाकरके सत्यआत्माको (वा सत्य निजनामको) कहिये क्योंकि महात्माओंके चित्त गम्भीर तथा निर्मल तडागके तुल्य होते हैं ॥ ३५ ॥ आपके सदृश महात्माजन दर्शनसेही सबको मित्र करलेते हैं, और सब प्राणियोंको ऐसे विकसित तथा आश्वासित करते हैं जैसे सूर्य्य कमलोंको ॥ ३६ ॥

ममेदंचमनोमोहात्संसारभ्रमसंभवम् ॥ मन्येहातुंनसमर्थंसत्वंबोधानुकंपितैः ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वसिष्ठोस्मिमहाबुद्धेमुनिरस्मिनभोगृहः ॥ केनाप्यर्थेनराजर्षेरिमंमार्गमुपस्थितः ॥ ३८ ॥ मागाविषादंपंथानमागतोसिमनीषिणाम् ॥ प्रायःप्राप्तोसिसंसारसागरस्यपरंतटम् ॥ ३९ ॥ वैराग्यविभवोदारामतिरुक्तिरपीदृशी ॥ आकृतिःशांतरूपाचनभवत्यमहात्मनः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! किंचित् विवेक युक्त यह मेरा मन कृपालु गुरुके उपदेशके बिना संसारके भ्रमसे उत्पन्न दुःखको समूल नाश करनेमें समर्थ नहीं है ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे महाबुद्धे ! ब्रह्मलोकनिवासी मैं वसिष्टमुनि हूं राजर्षि अजके किसी कार्य्यसे इस मार्गमें प्राप्त हुआहूं ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम शोक न करो बुद्धिमानोंके मार्गमें प्राप्त हो, क्योंकि तुम संसारसागरके दूसरे किनारेपर आगयेहो ॥ ३९ ॥ और ज्ञानाधिकारप्राप्तिके भाग्यसे हीन पुरुषकी वैराग्यके विभवसे उदार ऐसी बुद्धि उक्ति, तथा शांतरूप आकृति नहीं होसकती ॥ ४० ॥

मणिर्मधुरकाषेणयथैतिविमलात्मताम् ॥ तथाकषायपाकेनचित्तमेतिविवेकिताम् ॥ ४१ ॥ किंज्ञातुमिच्छसिकथंसंसारंहातुमिच्छसि ॥ उपदिष्टमहंमन्येसंपादयतिकर्मभिः ॥ ४२ ॥ विमलवासनउत्तममानसःपरिविविक्तमतिर्जनतेजसा ॥ पदमशोकमलंखलुयुज्यतेजनितितीर्षुमतेरिदमुच्यते ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिनिर्वाणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसे शाणपर चढनेपर हीरा विमल होजाताहै, ऐसेही कषायोंके परिपाकसे चित्त विवेकताको प्राप्त होते है ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम क्या जानना चाहते हो, और कैसे संसारको त्यागने चाहते हो, क्योंकि शिष्य गुरुसे उपादिष्ट अर्थको पुनः २ प्रश्नोत्तर आदि कर्मोंसे सफल करताहै ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मण ! रागादिसे रहित निर्मल वासनायुक्त, वैराग्यादि साधनोंसे उत्तममनसहित, तथा नित्यानित्यके विवेक करनेवाली बुद्धिसहित जो पुरुष है वही गुरुके उपदेशरूपी तेजसे शोकरहित आत्मा प्राप्त करनेके योग्य होताहै, इस हेतुसे जन्ममरणादि दुःखोंसे पार होनेवाले अधिकारी तुमको जानकर मैं कहूंगा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिनिर्वाणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

इस २४ के सर्गमें देह, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि आदिके दोषोंके सहित संसारके दुःख समूहको मंकीने विस्तारसे वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ममेत्युक्तवतोमंकिर्विनिपत्यसपादयोः ॥ उवाचानंदपूर्णाक्षमिदंमार्गवहन्वचः ॥१॥ मंकिरुवाच ॥ भगवन्भूरिशोभ्रांतादिशोदशदृशोयथा ॥ मयानद्यपुनःसाधुर्लब्धःसंशयनाशकृत् ॥२॥

समस्तदेहसाराणांसारस्याद्यफलंमया ॥ खिन्नोस्मिभगवन्पश्यन्दशाःसंसारदोषदाः ॥ ३ ॥ पुनर्जा तंपुनर्नष्टंसुखदुःखभ्रमःसदा ॥ अवश्यंभाविपर्यंतदुःखत्वात्सकलान्यपि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! मेरे इतना कहनेपर आनंदसे पूर्ण नेत्रादिको धारण कियेहुये मंकि मार्गमें मुझसे यह बोला ॥१॥ मंकि बोला कि-उपदेश देनेवाले गुरुको ढूंढनेकेलिये दशोंदिशाओंमें मैंने ऐसे भ्रमण किया जैसे दृष्टि, परंतु संशयका नाशक कोई महात्मा न मिला ॥ २ ॥ परंतु आज आपके दर्शन समस्त देहोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण शरीरका फल मैंने पाया, हे भगवन् ! दोष देनेवाली संसारकी दशाओंको देखते २ मैं खिन्न होगयाहूं ॥ ३ ॥ पुनः २ जन्म, पुनः २ मरण रूप संसार सदा दुःख भ्रमसहित हैं, और अंतमें अवश्य दुःखदायी होनेसे सम्पूर्ण संसारके ॥४॥

सुखान्येवातिदुःखानिवरंदुःखान्यतोमुने ॥ दृढदुःखवदंतत्वादुःखयंतिसुखानिमाम् ॥ ५ ॥ तथागमय थादुःखमेवमेसुखतांगतम् ॥ वयोदशनलोमांत्रैःसहजर्जरतांगताम् ॥ ६ ॥ उच्चैःपदेपातपराबुद्धिर्नाध्यव सायिनी ॥ सुप्रवालंकुसंकल्पाद्गहनंनप्रकाशते ॥ ७ ॥ मनःपिप्पलपल्यूलैरिवकुग्रामकोटरम् ॥ वास नांगवहैर्गृध्रैर्नित्यंपापीयसीस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुखभी दुःखरूपही हैं, इस हेतुसे हे मुने ! मैं संसारके सुखसे दुःखोंको उत्तम मानताहूं क्यों अंतमें दृढ दुःखदायी होनेसे ये सुख मुझे ऐसे दुःखी करतेहैं ॥ ५ ॥ कि हे रमणीय वसिष्ठजी ! दुःखही मुझे सुख भासता है, और दांत केशादिसहित मेरी अवस्था अब जर्जर होगई ॥६॥ परंतु उत्तरोत्तर भोगोंमें तत्पर बुद्धि परम पुरु- षार्थ साधनमें नहीं लगती, और मनभी उत्तरोत्तर रागरूप पल्लवोंसे बद्ध पल्लवित तथा दुष्ट संकल्पोंसे विवेकसे शून्य है इसीसे साक्षी चेतनके विवेक प्रकाश नहीं करता ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! मेरा मन पिप्पलके सूखे पत्तोंके सदृश दुष्ट पदार्थोंके संचयों दुष्ट ग्रामके मध्यके समान होगयाहै, और गृध्रोंके तुल्य दुष्ट वासनारूप दुर्गंधोंके धारण करनेवाली इन्द्रियोंसे मेरी स्थिति दुष्ट ग्रामके तुल्य महापापमयी होगई है ॥ ८ ॥

कंटकद्रुमवल्लीवकरालकुटिलामतिः ॥ आयुरायासशालिन्यायामिन्येवतमोघयाः ॥ ९ ॥ अक्षीवानाग तालोकंक्षीणंसंततचिंतया ॥ नकिंचिद्रसमादत्तेनष्टैवापिननश्यति ॥१०॥ नपुष्पितानफलितातृष्णाशुष्क लतेवनः ॥ कर्मकर्मणिनिर्मग्नंवासनाख्यमकर्मणे ॥ ११ ॥ जीवितंचजनेजीर्णनैवोत्तीर्णोभवार्णवः ॥ दि नानुदिनमुच्छूनाभोगाशाभयदायिनी ॥ १२ ॥

अर्थ—कांटोकी लताके तुल्य मेरी बुद्धि भी महाभयंकर तथा कुटिलहै, और अज्ञानान्धकारसे आवृत्त नि- रन्तर विषयकी चिंतासे ब्रह्मप्रकाशके बिनाही अपनी आयु मैंने ऐसे व्यर्थ बिताया जैसे दीपादिके प्रकाशसे रहित अन्धकारमयी रात्रिको नेत्र, हे भगवन् ! सूखी लताके तुल्य यह तृष्णा कुछ भी आनन्दरूप रस नहीं ग्रहण करती इसलिये नष्ट भी यह नष्ट नहीं होती ॥ ९ ॥ १० ॥ और यह मेरी तृष्णा विवेक आदि पुष्पलतासे नहीं संयुक्त हुई, और नित्यनैमित्तिककर्म भी पूर्वके कर्मराशिमें निमग्न होगया, और भोगवासनारूप बीज उत्तरोत्तर कुकर्ममेंही प्रवृत्त करताहै ॥ ११ ॥ और पुत्र कलत्र बन्धु तथा भृत्यादि जनमें आसक्त यह जीवन भी जीर्ण होगया, परन्तु मैं संसार सागरके पार न हुआ, और भयदायिनी भोगोंकी आशा दिन २ बढती जाती है ॥ १२ ॥

पूर्णापूर्णात्मनिक्षीणाःश्वभ्रकंटकवृक्षवत् ॥ चिंताज्वरविकारिण्योलक्ष्म्याःखलुमहापदः ॥ १३ ॥ संप न्नमक्षतंसापिविप्रलंभनजृंभते ॥ अंतःस्फुरितलोभंभास्वरंवांधकोटरम् ॥ १४ ॥ कल्लोलकलिलंशून्यंचे तःशुष्काब्धिदुर्भगम् ॥ मामिंद्रियार्थैकपरंनदर्शंतिविवेकिनः ॥ १५ ॥ सकंटकममेध्यस्थंश्लेष्मातक मिवद्रुमम् ॥ असदवमहारंभंचलदर्जुनवातवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! धन पुत्र कलत्र मित्र तथा पशुआदिसे कभी पूर्ण कभी अपूर्ण गर्तमें उत्पन्न कंटक युक्त वृक्षके तुल्य गृहमें चिंतारूपी ज्वरोंसे विकारदायिनी लक्ष्मीसे उत्पन्न महाआपत्तियोंको तो मैंने क्षीण किया ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! यह लक्ष्मी तो अधिक धनादिसे सम्पन्न, तथा शस्त्रादिके आघातरहित पुरुषको भी पुनः लोभ देके ऐसे नष्ट करनेको विकसित होती है जैसे सर्प मणिके प्रकाशसे युक्त और आभ्यन्तरमें अन्धकारमय कोटरमणिके लोभी पुरुषको अपने भीतर ले जाके ॥ १४ ॥ अनेक आशारूप तरंगोंसे दूषित तथा सर्वत्र दौडनेपर भी अर्थशून्य यह मेरा चित्तहै, इसीसे शुष्कसमुद्रके समान दुष्पूर, हतभाग्य, और इन्द्रियोंके वशीभूत मुझे विवेकी जन समीप नहीं आने देते ॥ १५ ॥ कंटक युक्त, अपवित्र स्थानमें संलग्न भीलावांके वृक्षके समान असत् होके भी अनेक महाकर्मोंके आरंभ सहित और वातरोगके समान अति चंचल ॥ १६ ॥

मनोमरणमप्राप्तंशून्यंदुःखायवल्गति ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कचंद्रतारकधारिणी ॥ १७ ॥ अहंभावोल्लसद्य क्षाक्षीणानाज्ञानयामिनी ॥ अज्ञानध्वांतमत्तेभसिंहःकर्मतृणानलः ॥ १८ ॥ उदितोनविकारार्कोवासना रजनीक्षयः ॥ अवस्तुवस्तुवद्बुद्धमत्तश्चित्तमतंगजः ॥ १९ ॥ इंद्रियाणिनिकृंतंतिनजानेकिंभविष्यति ॥ शास्त्रदृष्टिरपिप्राज्ञैर्नाश्रितातरणायया ॥ २० ॥ साप्यदृष्टिरिवांध्यायवासनावेशकारिणी ॥ तदेवमतिसं मोहेयत्कार्यमिहदारुणे ॥ उदर्कश्रेयसेताततन्मेकथयपृच्छते ॥ २१ ॥ शाम्यंतिमोहमिहिकाःशरदीव साधोप्राप्ते भवंतिविमलाश्र्वतथाखिलाशाः ॥ सत्येतिवाग्भवतुसाधुजनोपगीतामद्बोधनेनभवताभवशां तिदेन ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिवैराग्यं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—यह मन मेरे अनेकवार मरनेपर भी केवल दुःखके अर्थ गर्जताहै, और हे भगवन्! शास्त्र सज्जनोंके समागमरूप चन्द्रतारागणधारिणी, और अहंकाररूप कल्पित यक्षयुक्त यह मेरी अज्ञानरूपी रात्रि क्षीण नहीं हुई, क्योंकि अज्ञानान्धकाररूप मत्त हांथीके लिये सिंहके समान, और कर्मरूपी तृणके लिये आग्नि तथा वासनारूप रात्रिका नाशक विवेकरूपी सूर्य्य नहीं उदय हुआ, इसीसे चित्तरूपी मत्तमतंगजने अवस्तुको वस्तु मानलियाहै ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे मुने! इन्द्रियां मुझे छेदित करती हैं न जाने क्या होगा, और सेवादिरूप उपायोंसे वशीकृत बुद्धिमानोंसे शास्त्रदृष्टिका आश्रय जो भवसागरसे पार होनेके अर्थ न किया ॥ २० ॥ इसलिये वह शास्त्रदृष्टि भी वासनामें आसक्त करानेवाली होके मेरी अन्धताहीके अर्थ है, इसप्रकार मोहमें निमग्न मुझे मोक्षके लिये जो कर्तव्य हो सोकहिये ॥ २१ ॥ हे भगवन्! आप सदृश महात्मा गुरूके मिलनेसे शिष्यके चित्तकी मोहरूपी कुहिरा ऐसे शांत होती है जैसे शरत्कालके आकाशकी ओर दिशाओंके तुल्य सब मनोर्थ रागरहित होजाते हैं, यह साधुजनोंसे कथित बाणी संसारके शांतिदायक आपके उपदेशसे मेरे लिये सत्यहो ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिवैराग्यं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

देहादिमें अहंकारादि रूप अविद्यासे जनित चारप्रकारके बंधनके बीज, और आत्मज्ञानरूप बिद्या उसका नाश करती है यह विषय २५ के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संवेदनंभावनंचवासनाकलनेतिच ॥ अनर्थायेहशब्दार्थोविगतार्थोविजृंभते ॥ १ ॥ वेदनंभावनंविद्धिसर्वदोषसमाश्रयम् ॥ तस्मिन्नेवापदःसंतिलतामधुरसेयथा ॥ २ ॥ संसारमार्गेगहने वासनावेशवाहिनः ॥ उपयातिविचित्रौघैर्वृत्तवृत्तांतसंततिः ॥ ३ ॥ विवेकिनोवासनयासहसंसारसंभ्र मः ॥ क्षीयतेमाधवस्यांतेशनैरिवधरारसः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे ब्राह्मण! इन्द्रियोंसे विषयोंका भोगरूप अनुभव, विषयके न रहनेपर उनकी पुनः भावना, चित्तमें विषयोंकी दृढवासना, और पुनर्जन्म देनेके लिये मरणकालमें विषयोंकी स्मृति, यह चार प्रकारकी मिथ्या अविद्या अनर्थकेही लिये संसारमें विकसित होरही है ॥ १ ॥ विषयोंका भोग तथा उनकी भावनाको तुम सब दोषोंका आश्रय जानो विषयोंकी भावनामें सब आपत्तियां ऐसे रहती हैं जैसे वसन्तऋतुसे जनित रसमें पुष्पफलादिसहित लता ॥ २ ॥ इससंसारके भयंकर मार्गमें वासनाके संभारयुक्त चलने पुरुषके निकट चित्रविचित्र अनर्थोंके समूह उपस्थित होते हैं ॥ ३ ॥ और ब्रह्म चिंता निमग्न विषय दोषदर्शी पुरुषका संसारका भ्रम वासनासहित ऐसे क्षीण होजाताहै जैसे चैत्रके अंतमें पृथिवीका रस ॥ ४ ॥

अस्याःसंसारसल्लक्यावासनोत्सेधकारिणी ॥ कदल्यावनजालिन्यारसलेखेवमाधवी ॥ ५ ॥ संसारां ध्यतयोदेतिवासनात्मारसश्चितौ ॥ यथावनतयातस्थौमधुमासरसःक्षितौ ॥ ६ ॥ चिन्मात्रादमलाच्छू न्याद्दतेकिंचिन्नविद्यते ॥ नान्यत्किंचिदपर्यंतेखेशून्यत्वेतरद्यथा ॥ ७ ॥ वेदनात्मानसोस्त्यन्यइतियाप्र तिभास्थिरा ॥ एषाविद्याभ्रमस्त्वेषसचसंसारआततः ॥ ८ ॥

अर्थ—इससंसाररूप कंटकयुक्त लताको बढानेवाली वासना ऐसे है जैसे बनमें केलेकी जाल फैलानेवाले वसंतके रसकी लेखा ॥ ५ ॥ अविद्यासे आवृत्त चेतनमें वासनारूपसे संसाररूपिणी अंधता ऐसे उदय होती है जैसे पृथिवीमें उत्पन्न वृक्षोंमें बनरूपसे वसंतऋतुका रस ॥ ६ ॥ और यथार्थमें इससंसारमें अद्वैत निर्मल चिन्मात्र ब्रह्मसे भिन्न आदि अंतमें कुछ ऐसे नहीं है जैसे शून्यतासे भिन्न आकाशमें ॥ ७ ॥ चिन्मात्रसे भिन्न मन देहइन्द्रियादिरूपसे जो स्थिर अनादि भ्रम बुद्धि जो स्थित है यही आवरण विक्षेप शक्तिरूप अविद्या भ्रम व्याप्त संसार है ॥ ८ ॥

अनालोकनसंसिद्धआलोकेनैवनश्यति ॥ असदात्मासदाभासोबालवेतालवत्क्षणात् ॥ ९ ॥ सर्वदृश्यदृशोबाधेबोधसारतयैकताम् ॥ यांत्यशेषमहीपीठसरित्पूराइवार्णवे ॥ १० ॥ मृन्मयंतुयथाभांडंमृच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ चिन्मयादितयाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ११ ॥ बोधावबुद्धंयद्वस्तुबोधएवतदुच्यते ॥ नाबोधंबुद्ध्यतेबोधोवैरूप्यत्तिननान्यता ॥ १२ ॥

अर्थ—असत्स्वरूप सत्के समान भासमान यह जगत् परमात्माके अज्ञानसेही सिद्ध है, और परत्माके ज्ञानरूप प्रकाशसे ऐसे क्षणभरमेही नष्ट होताहै जैसे बालकको वेताल ॥ ९ ॥ और आत्मज्ञानसे सब दृश्यकी दृष्टियोंका बाध होनेसे एक बोधमय आत्मरूपता ऐसे होती है जैसे पृथिवीकी नदियां समुद्रमें जाके समुद्ररूपताको ॥ १० ॥ जैसे मृत्तिकाके पात्रोंमें मृत्तिकाके सिवाय और कुछ नहीं उपलब्ध होता ऐसेही संसाररूप विषयोंमें सचिन्मात्र परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ ११ ॥ ज्ञानसे जो वस्तु जानी जाती है वह ज्ञानरूपही होजाती है क्योंकि विरुद्धरूपका बोध नहीं होता इसलिये ज्ञेय तथा ज्ञानकी एकताहै ॥ १२ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्येषुप्रत्येकंबोधमात्रता ॥ सारस्तेनतदन्यत्वंनास्तिकिंचित्खपुष्पवत् ॥ १३ ॥ सजातीयः सजातीयेनैकतामनुगच्छति ॥ अन्योन्यानुभवस्तेनभवत्वेकत्वनिश्चयः ॥ १४ ॥ यदिकाष्ठोपलादीनां नभवेद्बोधरूपता ॥ तत्सदानुपलंभःस्यादेतषामसतामिव ॥ १५ ॥ यदात्वेषानुदृश्यश्रीर्बोधमात्रैकरूपिणी ॥ तदान्येवाप्यनन्यैवसतीबोधेनबोध्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रष्टा, दर्शन, और दृश्यमें केवल ज्ञानही सार है, इसलिये उससे भिन्न आकाशके पुष्पके तुल्य कुछ नहीं है ॥ १३ ॥ सजातीय (जलादि) पदार्थ सजातीय (जलादि) में मिलताहै इस जगत्‌चित्‌से अनुभवरूप एकता होनेसे परस्पर एकताहै ॥ १४ ॥ यदि काष्ठ पाषाण आदि पदार्थोंकी यदि सद्रूप बोधरूपता न हो तो असत् आकाश पुष्प आदिके तुल्य इनका भान भी न हो ॥ १५ ॥ और जब बोधज्ञानसे सब दृश्यकी शोभा केवल बोधरूप होजाती है तब अन्यके तुल्य भासती हुईभी बोधरूपही है क्योंकि बोध (ज्ञान) से बोधित होती है ॥ १६ ॥

सर्वजगद्गतंदृश्यंबोधमात्रमिदंततम् ॥ स्पंदमात्रंयथावायुर्जलमात्रंयथार्णवः ॥ १७ ॥ मिश्रीभूताअपि ह्येतेजतुकाष्ठादयोयथा ॥ मिथोऽननुभवेमिश्राऐक्यंह्यनुभवेमिथः ॥ १८ ॥ अन्योन्यानुभवोह्यैक्यमैक्यं त्वन्योन्यवेदनम् ॥ यथांभसोःक्षीरयोर्वानकाष्ठजतुनोरिव ॥ १९ ॥ अहमित्येवबंधायनाहमित्येवमुक्तये ॥ एतावन्मात्रकेबंधेस्वायत्तेकिमशक्तता ॥ २० ॥

अर्थ—यह सब जगत्‌रूप दृश्य बोधमात्र ऐसे है जैसे स्पन्दमात्र वायु और जलमात्र समुद्र ॥ १७ ॥ यद्यपि काष्ट और लाख आदि समवाय संयोगादि सम्बन्धसे मिलित भासते हैं परन्तु विचारसे समवाय आदिकी असिद्धि है, और बोधमें तो सब एक हैं ॥ १८ ॥ काष्ठ तथा लाखका संयोगमात्रसे एकता है वैसी एकता द्रष्टा तथा दृश्यकी नहीं है किंतु जैसे दो गौके दुग्धोंकी वा दो नदीके जलोंके सदृश ज्ञानमें पदार्थोंकी एकताहै ॥ १९ ॥ देहादिमें अहंभावना बंधनके लिये है, और उनमें अनहंभावना मुक्तिके लिये हैं तो अपने आधीन इसी अनहंभावनासे जब बंधनसे मुक्ति है तो आशक्तता कौनसी है ॥ २० ॥

चंद्रद्वयप्रत्ययवन्मृगतृष्णांबुबुद्धिवत् ॥ किमनुत्थितएवायमसदेवाहमुत्थितः ॥ २१ ॥ ममेदंभिति बंधायनाहमित्येवमुक्तये ॥ एतावन्मात्रकेवस्तुन्यात्मायत्तेकिमज्ञता ॥ २२ ॥ यःकुंडबदरन्यायोयोघटाकाशयोःस्थितिः ॥ ससंबंधोपिनैवान्यमैक्यंह्यन्योन्यवेदनम् ॥ २३ ॥ अन्योन्यावेदनंत्वैक्यंभागशोगतमप्यलम् ॥ अजडंवाजडंवापिनैकंरूपंविमुंचति ॥ २४ ॥

अर्थ—दो चन्द्रमाकी बुद्धि वा मृगतृष्णामें जल बुद्धिके समान जो असत् अहंभाव आविर्भूत है उसको नदीके तुल्य है ॥ २१ ॥ शरीर, गृह, स्त्री, पुत्र, तथा आदिमें ये सब मेरे हैं यही बुद्धि बंधनके लिये है, और इनमें ममताका अभावही मुक्ति है तो इस स्वाधीन पदार्थमें कौनसी है ॥ २२ ॥ और कुंडबदरन्यायसे असत्य अहंकार सत् आत्माका तिरोधान, तथा घटाकाशकी स्थितिसे परिच्छिन्न आत्माका संभव भी नहीं है क्योंकि कुंड (कूंडा)

बदर (बेर) का संयोग और घटआकाशका समवाय संबन्ध अविद्या कल्पितहै, और यहां अनुभवमात्रमें सबकी एकताहै ॥ २३ ॥ और जो जैनिके मतानुयायी वास्तवमें जडबोधकी एकरूपता मानते हैं अर्थात् आत्माको जड रूप मानते हैं और ज्ञान उसका गुण मानते हैं यह उनका यथार्थ जडरूपसे आत्माका एक मानना जडांशगत जड रूपही है ज्ञानांशमें अजड है इसमें किसी रूपको नहीं त्याग सकता क्योंकि आत्माको सर्वथा जड मानो तो उसका भानहीं न हो, और चिदंशमात्र भान होनेपर भी निर्विषय होजायगा, इसलिये परस्पर ज्ञानरूपही एकता है न कि जडरूपता ॥ २४ ॥

नाजडंजडतामेतिस्वभावाह्यनपायिनः ॥ यच्चाजडंजडंदृष्टंद्वैतितत्रास्तिनैकता ॥ २५ ॥ वासनावेशवलिताःकुविकारशतात्मभिः ॥ व्रजंत्यधोधोधावंतंशिलाःशैलच्युताइव ॥ २६ ॥ व्यूढानांवासनावातैर्नृतृणानामितस्ततः ॥ तान्यापतंतिदुःखानितत्रवक्तुंनपार्यते ॥ २७ ॥ भ्रांत्वाभृशंकरतलाहतकंदुकाभंलोकाः पतंतिनिरयेषुरसेनरक्ताः ॥ क्लेशेनतत्रपरिजर्जरतांप्रयाताःकालांतरेणपुनरन्यनिभाभवंति ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिबोधनं नाम पंचविंशतितमःसर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—स्वभावके नित्य होनेसे अजड जड नहीं होसकता, और जो तुमने अजडको जडांशके अन्तर्गत जाना वह जडसे भिन्नही है इसलिये जडबोधकी ज्ञानरूपमें एकताहै ॥ २५ ॥ और वासना तथा अहंकारसे आच्छादित होके जो अनेकात्म बादी हैं वे पर्वतसे गिरेहुये पाषाणके डेलाके समान सदा नीचेहीको चलेजातेहैं ॥ २६ ॥ इसलिये वासनारूप वायुसे भ्रमणशील मनुष्यरूप तृणोंके ऊपर नानाप्रकार योनियोंके जो जन्ममरण तथा नरकादि दुःख आके गिरते हैं उनकी गणना नहीं होसकती ॥ २७ ॥ नारीके हस्तसे फेकेहुये कन्दुक (गेंद) के समान अपनी २ वासना तथा अभिमानके अनुसार राग आदि रसमें अनुरक्तजन अनेक योनियोंमें भ्रमण करके पुनः नरकोंमें गिरते हैं, और नरकोंमें अनेक क्लेशोंमें जर्जर होके यदि कालान्तरमें वहांसे निकले भी तो स्थावर वा कृमि कीटआदि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं, अर्थात् पुनः मनुष्यजन्म दुर्लभ होजाताहै ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंकिबोधनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस २६ के सर्गमें राग द्वेषादि पूर्ण भावना अनर्थोंकी उत्पत्ति और आत्मज्ञानरूपी विवेकसे भावनाकी शांतिसे अनर्थोंकी शांति वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संसारमार्गगहनेपतितस्यापतंतिहि ॥ वृत्तवृत्तांतलक्षाणिकीटाइवघनागमे ॥ १ ॥ सर्वएवत्विमेभावाःपरस्परमसंगिनः ॥ अटव्यामुपलानीवभावनैतेषुशृंखला ॥ २ ॥ चित्तमांध्यायवृत्तांतदुमैर्गहनवत्स्थितम् ॥ रसरंजनयालोकेवसंतइवकाननम् ॥ ३ ॥ अहोबतविचित्राणिवासनावशतो वशैः ॥ भूतकैरनुभूयंतेसुखदुःखानिजन्मसु ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे ब्राह्मण ! इसप्रकार भयंकर संसारके मार्गमें स्थावर तथा कीट आदि योनिमें गिरेहुये जीवके ऊपर छेदन, भेदन, दहन, तथा क्षुधा तृष्णा और जन्म मरण आदि अनेको दुःख ऐसे आके गिरते हैं जैसे वर्षाऋतुमें कीट पतंगादि ॥ १ ॥ बनमें पाषाणके तुल्य सब पदार्थ परस्पर असंगी हैं परन्तु भावनारूप शृंखला (जंजीर) इनके बंधनका हेतु है ॥ २ ॥ अनेक रागद्वेषादि रससे रंजित तथा पूर्वकालके अनेक वृत्तान्तयुक्त वासनासे ग्रथित चित्त उस भावनाका मूल ऐसे है जैसे वनके प्रफुल्लित होनेका वसन्तऋतु ॥ ३ ॥ अहो ! यह कैसे खेद तथा आश्चर्यकी वासनाओंसे वेष्टित प्राणी कैसे २ विचित्र सुख तथा दुःखोंका अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

अहोबतातिविषमावासनायद्वशाज्जनैः ॥ अविद्यमानैरेवायंभ्रमोंतरनुभूयते ॥ ५ ॥ आह्लादिनोमृतवतः शुद्धस्यालोककारिणः ॥ शीतलस्याखिलार्थसुहृस्येंदोश्चकिमंतरम् ॥ ६ ॥ पूर्वापरमनालोच्ययत्किंचिदभिवांछतः ॥ निर्मर्यादस्यमूढस्यबालस्यचकिमंतरम् ॥ ७ ॥ लब्धप्रमाणपर्यंतंशुभाशुभमनुज्झतोः ॥ आमिषंकोविशेषोस्तिवदमारकमूढयोः ॥ ८ ॥

अर्थ—अहो ! यह बासना कैसी भयंकर है कि जिसके प्रतापसे सब प्राणीगण, मिथ्याभूत त्रिपुटीसे इस जगत्के भ्रमका अनुभव करते हैं ॥ ५ ॥ अहो ! आत्मानन्दसे प्रसन्न नित्य आत्मानन्दरूप अमृतसे तृप्त, प्रकाशक तथा सब पदार्थोंमें शीतल ज्ञानीपुरुष तथा चन्द्रमामें क्या भेद है ॥ ६ ॥ और पूर्वापरके बिना विचारे अनुचित पदार्थोंके चाहनेवाले तथा शास्त्रीय मर्य्यादासे शून्य मूढ पुरुष तथा बालकमें क्या भेद है ॥ ७ ॥ विषयरूप मांस वा वंशीमें लगेहुये मांसको प्राणदानपर्य्यन्त न त्यागनेवाले मूढ मनुष्योंमें तथा मत्स्यों (मछलियों) में क्या भेद है ॥८॥

सर्वएवत्विमेभावादेहदारधनादयः ॥ क्षिप्रमाशुष्कसिकताशरावविशरारवः ॥ ९ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंत मपियोनिशतेषुते ॥ आकल्पंभ्रमतश्चित्तशांतिर्नास्तिशमादृते ॥ १० ॥ पर्यालोचनमात्रेणबंधगंधोनबाधते ॥ गच्छतोमार्गवैषम्यमिवालोकनकारिणः ॥ ११ ॥ तवनावहितंचित्तंकामःकवलयिष्यति ॥ सावधानस्यबुद्धस्यपिशाचःकिंकरिष्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देह, इन्द्रिय, स्त्री तथा पुत्रादिपदार्थ वालूसे रचित शकोरोंकी भांति शीघ्रही नाशवान् हैं ॥९॥ चींटीसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्त अनेक योनियोंमें भ्रमणशील जीवके चित्तकी शांति शमके बिना कदापि नहीं है ॥ १० ॥ विवेकमात्रसे बन्धका लेशभी प्राणीको ऐसे नहीं बाधा करसकता जैसे पादके नीचे देखकर चलनेवालेको मार्गकी ऊंची नीची भूमि ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मण ! तुमारे असावधान चित्तको काम ग्रासकर जायगा और ज्ञानीके सावधान चित्तका कामरूप पिशाच क्या करैगा ॥ १२ ॥

यथेक्षणप्रसरणंरूपालोकनमात्रकम् ॥ संवित्प्रसृतिमात्रात्मतथासाहंजगत्स्थितम् ॥ १३॥ यथाक्षिसंवृतिःसर्वरूपालोकशमोरिहन् ॥ संवित्संवरणंनामसर्वदृश्यशमस्तथा ॥ १४ ॥ असदेवजगत्साहंशुद्धासंवित्तनोतिखे ॥ ईषत्प्रसरणेनाशुस्पंदनंपवनोयथा ॥ १५ ॥ सदिवासत्यमेवेदमकुर्वत्यन्यमेधते ॥ मृदाहेम्नेवकुंभत्वमपृथग्लभ्यमात्मगम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे मनमें रूपादिके देखनेकी इच्छामात्रही नेत्रादि इन्द्रियोंका अपने विषयकी ओर चलनाहै ऐसेही विवेक रहित असावथान संवित्की स्फुरणमात्रही अहंकारसहित यह जगत् स्थितहै ॥ १३ ॥ हे कामादि शत्रुओंके नाशक ! जैसे नेत्रका मून्दनाही मात्र सबरूप ज्ञानकी शांति है ऐसेही बहिर्मुख चेतनका अन्तर्मुख होके आत्माकी ओर लगनाही सब दृश्यकी शांति है ॥ १४ ॥ हे प्रिय ! शुद्ध चेतनही किंचित् स्फुरणमात्रसे अहंकार सहित सब असत् जगत्का अपने अविद्यासे आवृत चिदाकाशमें ऐसे विस्तार करताहै जैसे पवन संचलनको ॥ १५ ॥ यथार्थमें ब्रह्मसंवित् अपने भिन्न कुछ भी न रचतेहुये सत्य जगत्के रूपसे भासती है, परन्तु आत्मासे भिन्न जगत्को अन्यत्र ऐसे नहीं पासकते जैसे सुवर्ण वा मृत्तिकाके पात्र उनसे भिन्न ॥ १६ ॥

शून्यमात्रंयथाव्योमस्पंदमात्रंयथानिलः ॥ जलमात्रंयथोर्म्यादिसंविन्मात्रंतथाजगत् ॥ १७ ॥ अव्यवच्छिन्ननिर्भागसंविन्मात्रंजगत्त्रयम् ॥ विद्धिशांतंतथाव्योमयथावारिणिपर्वतम् ॥ १८ ॥ निर्वाणस्योपशांतस्यज्ञस्यसोदेतिशीतता ॥ अंतर्यत्रेंदवोप्येतेदीप्तज्वलनबिंदवः ॥ १९ ॥ किंकेनकथमेकांतशांतात तशिवात्मनि ॥ निरालोकोपरालोकःशून्येजगतिजन्यते ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे शून्यमात्र आकाश स्पंदमात्रवायु; और जलमात्र तरंगआदि हैं ऐसेही चिन्मात्र यह जगत् है ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद शून्य ब्रह्म सविन्मात्रही शांत सब जगत्को तुम ऐसे जानों जैसे जलमें प्रतिबिंबित पर्वत वा तरंगआदि जलरूप ॥१८॥ इसप्रकार जगत्तत्व जाननेवाले मुक्त ज्ञानी पुरुषके अन्तःकरणमें ऐसी अपूर्व शीतलता उदय होतीहै जहां चन्द्रमाभी अग्निके बिन्दुके समान ज्ञात होताहैं ॥१९॥ हे प्रिय ! सर्वथा शांत,, व्यापक तथा प्रकाशरूप ब्रह्ममात्र इस जगत्में अन्य प्रकाशको कौन किस साधनसे वा किस क्रियासे और कैसे करसकताहै ॥ २० ॥

यासत्ताब्रह्मशब्दाख्यारूपंसर्वस्यतन्निजम् ॥ नयत्रकाचिद्बाधास्तिसर्वंतन्मयमव्ययम् ॥ २१ ॥ यदिदंतुपदार्थत्वंयत्रबाधानुभूयते ॥ यच्चबाधनंप्रेक्ष्यतत्रविद्यःखपुष्पवत् ॥ २२ ॥ ज्ञएवापगतस्वांतंशांतमास्वमहाश्मवत् ॥ असौनमननंमानमनंतमजमव्ययम् ॥ २३ ॥ आकाशकल्पेस्वेभावेतिष्ठतोंगानिवेदनम् ॥ भवत्यभ्यासदार्ढ्येनविनास्वप्नविकारवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! ब्रह्मशब्दसे वाच्य जो चेतनकी सत्ता है वही सब पदार्थोंका अबाध्यरूप है, क्योंकि सब चिन्मय होनेसे उस स्वरूपमें कहीं भी बाधा नहीं है ॥ २१ ॥ जो कुछ पदार्थोके नामरूपहैं वा उनके विकारहैं जहां

बाधा तथा उसके साधनका अनुभव होताहै उस नामरूपको भलीभांति विचारनेसेभी नहीं जानते क्योंकि वह सब आकाशके पुष्पके तुल्य मिथ्या हैं ॥ २२ ॥ हे प्रिय ! मनको नष्ट करके महापाषाणके तुल्य ज्ञानरूपसे स्थित रहो और यह ज्ञानरूपता मनके विकल्प तथा इंद्रियादिसे रहित, अनंत, अज, और अविनाशी ब्रह्मरूप शेष रहताहै ॥ २३ ॥ हे प्रिय ! आकाशके तुल्य शुद्ध आत्मरूपसे स्थित रहते ज्ञानीको नामरूपका भान नहीं होता, और समाधिके अभ्यासकी दृढताके विना स्वप्नके विकारके सदृश शरीर यात्रादि कार्य्यके लिये मनका तथा नामरूपका भान होताहै ॥ २४ ॥

निरुपादानसंभारमभित्तावेवचेतति ॥ ब्राह्मंकर्तृजगच्चित्रंनकश्चिद्वानाकिंचन ॥ २५ ॥ तनोतियत्तदात्मैवतस्यतत्रतथास्थितम् ॥ दृश्याभावादसदृश्यंतेनकःक्ककरोतिकिम् ॥ २६ ॥ अहंसुखीतिसुखिताअहंदुःखीतिदुःखिता ॥ सर्वएवस्वरूपस्थाव्योमात्मानोपिपार्थिवाः ॥ २७ ॥ सर्वेषामेवभावानांचिदाकाशात्मनामपि ॥ मिथ्यैवस्वप्नशीलानामिवपार्थिवतास्थिता ॥ २८ ॥

अर्थ— ब्रह्माका मनही उपादान तथा निमित्त कारणके विनाही निराश्रय जगत्रूपी चित्रको रचताहै इसलिये मनके सिवाय न कोई कर्ता न कार्य्य है ॥ २५ ॥ और जो कुछ मन रचताहै वहां उस पदार्थरूपसे आत्माही स्थित रहताहै तब यथार्थ दृश्यके अभावसे कौन कहां और किसे रचताहै ॥ २६ ॥ इसलिये मैं सुखी हूं वा दुःखी हूं यह सुख वा दुःख रूपता तथा शब्द स्पर्शादि विषय आत्मास्वरूपही हैं ॥ २७ ॥ सब पदार्थोंके चिदाकाशरूप स्थित रहते जो पार्थिव रूपता भान होतीहै वह मिथ्या स्वप्नके पर्वत आदिके तुल्य है ॥ २८ ॥

अहंत्वोल्लेखतःसत्ताभ्रमभावविकारिणी ॥ तद्रभात्स्वभावैकनिष्ठताशमशालिनी ॥ २९ ॥ हेम्नःकटकशब्दार्थोव्यतिरिक्तोयथास्तिते ॥ व्यतिरिक्तातथासत्यानाहंतास्तिशमात्मनः ॥ ३० ॥ निर्वाणोनिर्मनामौनीकर्त्ताऽकर्त्ताचशीतलः ॥ ज्ञएवशांतएवास्तेशून्यएवाभिपूरितः ॥ ३१ ॥ निर्वासनास्पंदपरोयंत्रपुत्रकगात्रवत् ॥ सयथास्थितमेवास्तेज्ञःसंव्यवहरन्नपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—अहंकारके स्फुरणमात्रकी भ्रममय पदार्थोंके विकारसे युक्त है, और अहंकारके न रहते शांतिसे शोभित केवल आत्माके स्वभावरूप सत्ता रहती है ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्णसे भिन्न कटक शब्दके अर्थकी लता मिथ्या है, ऐसे शमआत्मरूप तुमसे भिन्न अहंकारकी सत्ता मिथ्याही है ॥ ३० ॥ मोक्ष स्वरूप, मन रहित, क्रिया शून्य, कर्ता तथा अकर्ता शांत और शीतल ब्रह्मही सर्वत्र चारोओरसे पूर्ण है ॥ ३१ ॥ जैसे चलायमान पालनेमें झूलतेहुये बालकके हस्त, पादआदि नहीं हिलते ऐसे व्यवहार करते हुयेभी ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूपमेंही स्थित हैं ॥ ३२ ॥

यथामंचकसंस्थस्यस्पंदंतेनैववाशिशोः ॥ अंगानिस्वानुसंधानंविनैवंविदितात्मनः ॥ ३३ ॥ निःसंबोधैकबोधस्यनिराशेर्हेषणाशिषः ॥ शांतानंतात्मरूपत्वादनुसंधानताकुतः ॥ ३४ ॥ अद्रष्टुरपदृश्यस्यादृग्रूपस्यापरूपिणः ॥ कुतःकिलानुसंधानमनपेक्षस्यपश्यतः ॥ ३५ ॥ अपेक्षैवघनोबंधउपेक्षैवविमुक्तता ॥ सर्वशब्दान्वितातस्यांविश्रांतेनकिमीक्ष्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे हिलतेहुये पालनेमें स्थित बालकके अंग नहीं संचलित होते ऐसेही शरीरआदिके अनुसंधानसे रहित ज्ञानीको अंगोंकी चेष्टा नहीं भान होती ॥ ३३ ॥ चित्तकी वृत्तियोंके अंतर्मुख होनेसे अखंड बोधरूप, अप्राप्त विषयोंकी आशा तथा प्राप्तमें स्नेहसे रहित शांत तथा अनंतरूप होनेसे ज्ञानीको शरीरआदिका अनुसंधान कैसे होसकताहै ॥ ३४ ॥ द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यरूपसे वर्जि, स्वयं निराकार, तथा अभिमान शून्य संसारको देखतेहुये ज्ञानीको शरीरआदिका अनुसंधान कहां ॥ ३५ ॥ पदार्थोंकी अभिलाषाही बंधन है, और सब पदार्थोंकी इच्छाका अभाव वही मुक्ति है, और पूर्णकाम आत्मरूपमें विश्राम करनेवाला ज्ञानी भला किस पदार्थकी इच्छा करसकताहै ॥ ३६ ॥

पार्थिवत्वेशरीरेस्मिन्स्वस्वप्नांगइवासति ॥ भ्रममात्रात्मनिकुतःक्कस्यकिमपेक्षणम् ॥ ३७ ॥ उपशांतसमस्तेहंविगताखिलकौतुकम् ॥ निरस्तवेदनंज्ञेनविदाकेवलमास्यते ॥ ३८ ॥ मंकिनेतिश्रुतवतातततोमोहामहानपि ॥ अशेषेणपरित्यक्तस्तन्वैवत्वगिवाहिना ॥ ३९ ॥ प्रवाहापतितंकार्यंकुर्वतापास्तवासनम् ॥ तेनवर्षशतस्यांतेस्थितमद्रौसमाधिना ॥ ४० ॥ तत्राद्ययावत्पाषाणसमधर्मास्तितिष्ठतिः ॥ संशांतकरणोयोगीबोध्यमानःप्रबुद्ध्यते ॥ ४१ ॥ एतेनराघवविवेकपदेनशांतिमासादयोदयवतामनलाविहर्तुं ॥ मादीनतांव्रजतुरागमयीमतिस्तेक्षीणाक्षणादसलिलेवशरद्घनाली ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिनिर्वाणसमाप्तिर्नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! भ्रममात्रसे सिद्ध इस पार्थिव शरीरका ज्ञानसे स्वप्नके शरीरके तुल्य बाध होनेपर, किस लिये, कौन, कहांपर और किस पदार्थकी इच्छा करै ॥ ३७ ॥ संपूर्ण अभिलाषा तथा कौतुकसे रहित, और देहादिके अभिमानसे शून्य ज्ञानी महात्मा केवल अपने आत्मामें स्थित रहताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जब मंकि ब्राह्मणने इतना मेरा उपदेश सुना उसी समय महान्‌भी संसारके मोहको सर्वथा उसी स्थानपर ऐसे त्यागदिया जैसे सर्प केचुलीको ॥३९॥ वासनारहित होके यथाप्राप्त कार्य्योंको करतेहुये उस ब्राह्मणने सौ (१००) वर्षके उपरान्त पर्वतपर जाके समाधि लगाया ॥४०॥ मन इन्द्रिय आदिकी शांतियुक्त वह योगी ब्राह्मण पाषाणके तुल्य समाधिमें निमग्न होके इस समयतक वहीं स्थित है, और कोई जगावे तब समाधिसे जागताहै ॥४१॥ हे रामजी !‌ इस मंकिसे धारण कियेहुये उपायसे ज्ञानमें उत्साहयुक्त मनसे विवेकद्वारा स्वात्मानंदमें विहार करनेके लिये शांति उपार्जन करो, और तुमारी बुद्धि रागमयी होके जलरहित शरत्कालके मेघोंकी पंक्तिकेतुल्य क्षणमेंही विवेकसे क्षीण होके दीनताको न प्राप्तहो ४२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मंक्युपाख्याने मंकिनिर्वाणं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस २७ के सर्गमें चित्तके संचलित होनेसे चित्के संचलनके भ्रमसे संसाररूप सब विभूति होती हैं, और चित्तकी शांति द्वारा संसारकी शांतिसे स्वात्मरूपमें स्थिति होती है यह विषय वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ निर्वाणोभवशांतात्मायथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ॥ सन्नेवासत्समःसौम्यस्फटिकादिव निर्मितः ॥ १ ॥ एकस्मिन्नेवसर्वस्मिन्संस्थितेवितताात्मनि ॥ नैकस्मिन्नचसर्वस्मिन्नाताकलनाकुतः ॥ ॥ २ ॥ आद्यंतरहितंसर्वंव्योमचित्तत्त्वनिर्भरम् ॥ शरीरोत्पत्तिनाशेषुकाचित्तत्त्वस्यखंडना ॥ ३ ॥ स्फुरंतिहिजडक्रीडाश्चिचमत्कारचापलात् ॥ अचापलात्प्रतीयंतेतरंगाइववारिणि ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! स्फटिक मणिसे रचित प्रतिमाके तुल्य शरीरसे विद्यमानभी असत्के समान यथाप्राप्त कार्य्योंको करतेहुये शान्त निर्वाणरूप होजाओ ॥ १ ॥ आत्मज्ञानके पूर्वभी एकव्यापक आत्माहीके सब पदार्थरूपसे स्थित होनेसे, और ज्ञानोत्तर समष्टिव्यष्टि शरिर बाध होनेसे न आत्मा एकमें न सर्वमें किंतु चिद्रूपमें स्थितहै तो उसमें अनेकताकी कल्पना कैसे होसकती है ॥ २ ॥ हे रामजी ! चिद् वस्तुआदि अंतरहित चिदाकाश अविनाशीरूप है; तब शरीरोंकी उत्पत्ति तथा नाशसे चित् तत्त्वका क्या बिगडा और क्या बना ॥ ३ ॥ चित्के चमत्काररूप मनकी चंचलतासे जड सृष्टिआदि क्रीडा स्फुरित होती हैं, और मनकी शांतिसे सब सृष्टि आत्मामें ऐसे भान होती हैं जैसे जलमें तरंग ॥ ४ ॥

यथाशुभ्रांबुदेवस्त्रशंकानफलभागिनी ॥ देहोयमहमित्येषातथाशंकानवास्तवी ॥ ५ ॥ मावस्तुनिनिमग्न स्त्वंभवभूरिभवप्रदे ॥ वस्त्वनंतसुखायाद्यंभव्यंभावयभूतये ॥६॥ चिद्व्योमानंतमेवास्मिन्नेयत्तास्तिस मात्मनः ॥ इत्येवपरमंवस्तुवस्तुतत्परमस्तुते ॥७॥ एवंनिश्चयवान्नामत्वमेवासिनिरंजनः ॥ ध्याताध्येयं तथाध्यानंसत्यंचापिनकिंचन ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे श्वेतमेघमें वस्त्रकी आशंका योग्य नहीं है, ऐसेही देहमें यह आशंकाभी यथार्थ नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! अनेक संसाररूप ऐश्वर्य्यको देनेवाले मिथ्या देहादिमें अहंभावनासे निमग्न न होओ, किन्तु अन्त सुखदायक मोक्षके लिये नाशरहित आत्मवस्तुकी भावना करो ॥ ६ ॥ चिदाकाशआत्मा अनंत है, इस सर्वत्र समरूप आत्माकी इयत्ता (सीमा) नहीं है, यही परम आत्मवस्तु है, इस परमवस्तुमें तुमारा मन तत्पर हो ॥ ७ ॥ ऐसा निश्चययुक्त होनेसे निरंजनआत्मा तुमहीं हो, क्योंकि ध्याता ध्यान और धेय ये कोईभी सत्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

द्रष्टाद्दश्यंदर्शनंचचित्तएवविभूतयः ॥ अतत्तत्संविदोनान्यदध्यानंध्येयमस्तिच ॥ ९ ॥ उद्यतिप्रतिपच्चंद्रेवहतिप्रलयानिले ॥ आत्मतत्त्वंसमंसौम्यंनक्षुभ्यतिनशाम्यति ॥ १० ॥ यथानौयायिनःस्थाणुतरुशैलादिवेपनम् ॥ यथाशुक्तौरजतधीस्तथादेहादिचेतसः ॥ ११ ॥ यथादेहादिचित्तस्यतथादेहस्यचित्तकम् ॥ तथैवजीवःपरमेपदेद्वैतमतःकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ - द्रष्टा, दर्शन और दृश्य ये सब चित्तकी विभूति हैं, क्योंकि जडवस्तु चित्के बिना कहीं अनुभूत नहीं है, और धेय चिद्रूपतो ध्यानके बिनाभी स्फुरित होताहै ॥ ९ ॥ जैसे समुद्र प्रतिपदके चन्द्रोदयसे संक्षुब्ध होताहै

और प्रलयका वायु बहनेसे शुष्क होजाताहै, ऐसा सदा एकरूप आत्मतत्त्व नहीं है, वह न कभी संक्षुब्ध होताहै और न शान्त होताहै ॥ १० ॥ जैसे नौकापर चलनेवालेको वृक्ष, पर्वत, आदिका चलना दृष्टिके भ्रमसे भान होताहै और जैसे शुक्तिमें रजतबुद्धि होती है ऐसेही चित्स्वरूपमें देहादिका भान होना चित्तका भ्रममात्र है ॥ ११ ॥ जैसे चित्तसे देहादि कल्पित हैं ऐसेही देहकी दृष्टिसे चित्तभी कल्पित है और देह चित्तकी दृष्टिसे जीव कल्पित है, और जीवसे वे दोनों कल्पित हैं, तो परमपदमें द्वैत कहां ॥ १२ ॥

सर्वमेकमिदंशांतंब्रह्मबृंहितवेदनात् ॥ नकिंचिज्जगदाद्यस्तिभ्रांतिरन्यानविद्यते ॥ १३ ॥ नविद्यतेयथा व्योम्निवनंस्नेहश्चसैकते ॥ विद्युच्छशांकबिंबेचतथादेहादिचेतसि ॥ १४ ॥ अविद्यमानएवास्मिन्माबि भीहिजगद्भ्रमे ॥ एतदेवपरंसत्यंविद्धिसत्यविदांवर ॥१५॥ जगदस्तिनसत्तेतियासीद्भ्रांतिस्तवाद्यसा ॥ शांतामदुपदेशेनकिमन्यद्बंधकारणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और सबको सत्ता देनेवाले ब्रह्मदृष्टिसे यह सब संसार शान्त एकब्रह्मरूपही, ये जगत् आदि कुछ नहीं है और न अन्य भ्रम है ॥ १३ ॥ जैसे आकाशमें बन नहीं है, वालूमें तेल नहीं है और चन्द्रबिंबमें विद्युत्की छटा नहीं है ऐसेही तत्त्वदृष्टिमें देहादि पदार्थ नहीं हैं ॥ १४ ॥ हे सत्यके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ रामजी! मिथ्या इस जगत्के भ्रममें तुम भयभीत न होओ, यथार्थमें जगत् नहीं है इसीको तुम सत्य मानो ॥ १५ ॥ जगत्कीही सत्ता है अद्वैत ब्रह्मकी नहीं यह जो तुमारी भ्रांति थी वह मेरे उपदेशसे शांत होगई, अब इससे भिन्न बन्धका और क्या कारण है ॥ १२ ॥

स्थाल्युदंचनकुंभादियथामृन्मात्रकंतथा ॥ चित्तमात्रंजगदिदंक्षीणंतच्चविचारणात् ॥ १७ ॥ आपत्सु संपत्सुभवाभवेषुशांतैषणाहर्षविषादसंवित् ॥ सौम्यादहंभावविदाविमुक्तोयथास्थितंतिष्ठविलीय मास्व ॥ १८ ॥ यथास्थितंवस्त्वधिगम्यरामस्थितोसिचेद्वास्वकुलांबरेंदो ॥ तद्धर्षशोकैषणदूषणादिवि मुच्यवातिष्ठयथेच्छमास्व ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मुख्ययोगोपदेशो नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—हांडी, सकोरे तथा घट आदि जैसे मृत्तिकामात्र हैं ऐसेही चित्तमात्रही यह जगत् है, और विचारसे वह चित्तभी क्षीणही है ॥ १७ ॥ हे रामजी! मेरे शान्त उपदेशसे तुम अहंकारसे मुक्त होके सम्पात्ति, विपात्ति, तथा संसारके पदार्थोंकी उत्पत्ति और नाशमें हर्ष वा बिषादयुक्त न होओ, किन्तु सम आत्मारूपसे स्थित रहो, और मेरे उपदेशको विस्मृत होके आत्मस्वरूपकी स्थितिको लयकरके न स्थित रहो ॥ १८ ॥ हे रघुकुलचन्द्र रामजी! यथार्थ आत्मस्वरूपको जानकर हर्ष शोकदायक कार्य्योंको त्यागकर स्थित रहो वा उन कर्मोंको करते रहो तुमारी कैवल्यमुक्तिमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मुख्ययोगोपदेशो नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

पुनः २ जन्ममरणके हेतु, देवशब्द तथा उसके अर्थसेयुक्त, और बीजअंकुरके समान पुरुष तथा उसके कर्मोंका तत्त्व पुनः इस २८ के सर्गमें वर्णितहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ बीजांकुराणांपुरुषकर्मणांजन्मकारिणाम् ॥ दैवशाब्दार्थयुक्तानांतत्त्वंवदविभोपुनः॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दैवकर्मादिपर्यायंघटादिघटतावधि ॥ संवित्स्पंदनमेवेदंलोकेपुरुषतांग तम् ॥ २ ॥ संवित्स्पंदाद्दतेपुंस्त्वंकर्मवाकीदृशंभवेत् ॥ घटावटपटाद्यात्मह्येतेनैवजगत्कृतम् ॥ ३ ॥ प्रवर्त्ततेजगल्लक्ष्मीःसंवित्स्पंदात्सवासनात् ॥ निवर्त्ततेहिसंसारःसंवित्स्पंदादवासनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—कि हे प्रभो! बारंबार जन्ममरण करानेवाले, दैवशब्द तथा उसके अर्थसेयुक्त, तथा बीजअंकुरके सदृश पुरुष तथा उनके अर्मोंका तत्त्व पुनः कृपाकरके कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी! दैव कर्म तथा घटपटत्वादिपर्य्यन्त सबकार्य्य, और पुरुषरूपताको सब लोकोंमें चित्स्पन्दही प्राप्तहै, अर्थात्

दैवका तत्व कर्म, कर्मका तत्व पुरुष, और पुरुषका तत्व मनोमय चेतनकी स्फुरणाहै ॥ २ ॥ चेतनके स्पन्द (स्फु- रणा) विना पुरुष वा कर्मके क्या होसकताहै; इसी चेतननेही घटपटादिरूप सब जगत् रचाहै ॥ ३ ॥ वासना सहित चेतनके स्पन्दसे जगत्की शोभा उत्पन्न होती है, और वासनारहित चेतनके स्पन्द (शुद्धआत्माकार ज्ञान) से संसार शांत होजाताहै ॥ ४ ॥

अवासनंहिसंवित्तेःस्पंदमस्पंदनंविदुः ॥ सस्पंदोप्यस्फुरत्स्पंदोयेनावर्त्तादिनोह्यते ॥ ५ ॥ मनागपिन भेदोस्तिसंवित्स्पंदमयात्मनोः ॥ कल्पनांशाहृतेरामसृष्टौपुरुषकर्मणोः ॥ ६ ॥ जलवीच्योर्यथाद्वित्वं संकल्पोत्थंनवास्तवम् ॥ तथेहचित्परिस्पंदरूपयोर्जंतुकर्मणोः ॥७॥ कर्मैवपुरुषोरामपुरुषस्यैवकर्मता॥ एतेह्यभिन्नेविद्धित्वंयथातुहिनशीतते ॥ ८ ॥

अर्थ—वासना शून्य संवित्के स्पन्दको अस्पन्दही कहते हैं, क्योंकि चंचल भी समुद्रके तरंग समुद्रदृष्टिसे शांतसमुद्ररूपही समझे जातेहैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इस सृष्टिमें कल्पनामात्रके सिवाय संवित् (चेतन) तथा उसके स्पन्दरूप पुरुष तथा उसके कर्ममें किंचित् भी भेद नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे जल और तरंगमें भेद संकल्पमात्रकाहै न कि यथार्थ, ऐसेही चेतनके स्पन्दरूप जीव कर्मोंका भी भेद है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! कर्महीं पुरुषहै, और पुरुषकीही कर्मता है, पुरुष और कर्म दोनों ऐसे अभिन्न है जैसे तुषार और शीतलता ॥ ८ ॥

हिमंयत्तद्यथाशैत्यंयच्छैत्यंतद्यथाहिमम् ॥ यत्कर्मासौतथाजंतुर्योजंतुःकर्मतत्तथा ॥ ९ ॥ संवित्स्पंदर सस्यैवदैवकर्मनरादयः ॥ पर्यायशब्दानपुनःपृथक्कर्मादयःस्थिताः ॥ १० ॥ स्पंदात्संविज्जगद्बीजमस्पं दायात्यबीजताम् ॥ अंकुरश्चवतदेवांतःस्थितत्वादंकुरश्रियः ॥ ११ ॥ चित्त्वंचक्वचिदस्पंदंक्वचित्स्पंदं स्वभावतः ॥ अनंतमेकार्णववद्दिक्कालक्रमसंस्थितं ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे जैसा हिम है वैसीही शीतता है, और जैसी शीतता है वैसाही हिम है, ऐसेही जैसा कर्म है वैसाही वह जीव है, और जैसा जीव है वैसाही उसका कर्म है ॥ ९ ॥ चेतनके स्पन्दरूपरसके अन्यनाम दैव, कर्म, तथा म- नुष्य आदि हैं, और चेतनके स्पन्दसे भिन्न कर्मादि कहां हैं ॥ १० ॥ स्पन्द (स्फुरण) सहित होनेसे चेतन जगत्का बीज है, और शांत होनेसे बीज नहीं हैं, क्योंकि बीजही जल मृत्तिका आदि सामग्रीसे अंकुररूपमें स्फुरित होताहै॥ ११ अनन्त महासमुद्रके तुल्य यह चेतन देशकाल क्रमसे स्थित स्पन्दको निजस्वभावसे कहीं धारण करताहै और कहीं नहीं धारण करता ॥ १२ ॥

संवित्स्पंदोवासनावानिहबीजमकारणम् ॥ भूत्वाकारणतामेतिदेहादेरंकुरावलेः ॥ १३ ॥ तृणवल्लील तागुल्मबीजांतरगतेरपि ॥ बीजंसंवित्स्पंदएवतस्यबीजंनविद्यते ॥ १४ ॥ नबीजांकुरयोर्भेदोविद्यते ग्न्यौष्ण्ययोरिव ॥ बीजमेवांकुरंविद्धिविद्धिकर्मैवमानवम् ॥ १५ ॥ चित्स्फुरंतीभूमिकोशेकरोतिस्थाव रांकुरम् ॥ स्थूलान्सूक्ष्मान्मृदुक्रूरान्पयोबुद्बुदकानिव ॥ १६ ॥

अर्थ—अकारणभी चित्का स्पन्द वासनासहित होके देह इन्द्रि आदिरूप अंकुरोंकी पंक्तिका कारण होताहै ॥ १३ ॥ तृण, लता, गुल्म तथा वृक्षादिके बीजोंके व्यवस्थित अंकुरादि कार्य्यमें प्रवृत्ति बीजका चेतनका स्पन्दही है, और उस चेतनका अन्य कोई बीज नहीं है ॥ १४ ॥ अग्नि तथा उष्णताके तुल्य बीज तथा अंकुरमें कोई भेद नहीं है, हे रामजी ! बीजकोही तुम अंकुर जानो और कर्मकोही मनुष्य ॥ १५ ॥ पृथिवी जल आदि कोशमें स्फुरती हुई चित् स्थावरोंके अंकुरोंको कहीं स्थूल, कहीं सूक्ष्म, कहीं कोमल और कहीं कठोर ऐसे अपने स्वरूपमें रचती है जैसे जल बुद्बुदोंको ॥ १६ ॥

चिताविनाधराकोशादत्यंतपरिपेलवात् ॥ अंकुरान्वज्रसारांश्चकलउल्लासयितुंक्षमः ॥ १७ ॥ प्राणिवी र्यरसांतस्थासंविज्जंगममाततम् ॥ तनोतिलतिकांतस्थोरसःपुष्पफलंयथा ॥ १८ ॥ यदिसर्वगतासं विद्भवेन्नातिबलीयसी ॥ तत्कउल्लासनेशक्तःस्याद्देवासुरभूभृताम् ॥ १९ ॥ जंगमानांस्थावराणामेतदा द्यंचबीजकम् ॥ संविद्विस्फुरणामात्रमस्यबीजंनविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! चेतनके बिना पृथिवीके कोशसे अति कोमल अंकुरसे बज्रके सदृश मूंगे आदिको कौन नि- कालनेको समर्थ है ॥ १७ ॥ प्राणीके वीर्य्यमें स्थित चेतन जंगमजीवरूप लताका ऐसे विस्तार करताहै जैसे रस पुष्प फलादिको ॥ १८ ॥ यदि सर्वव्यापी चेतन अति बलवान् न होता तो असुररूपी पर्वतोंके निकालनेमें कौन समर्थ होता ॥ १९ ॥ सब जंगम तथा स्थावर पदार्थोंका आदि बीज चेतनकी स्फुरणाही है, और उस चेतनका अन्य बीज नहीं है ॥ २० ॥

बीजांकुरविकल्पानांक्रियापुरुषकर्मणाम् ॥ ऊर्मिवीचितरंगाणांनास्तिभेदोनवस्तुनि ॥ २१ ॥ द्वित्वंनृक र्मणोर्यस्यबीजांकुरतयातयोः ॥ विपश्चिप्पशवेतस्मैमहतेस्तुसदानमः ॥ २२ ॥ संवित्तेर्जन्मबीजस्य योंतस्थोवासनारसः ॥ सकरोत्यंकुरोल्लासंतमसंगाग्निनादह ॥ २३ ॥ कुर्वतोकुर्वतश्चैवमनसायदम ज्जनम् ॥ शुभाशुभेषुकार्येषुतदसंगंविदुर्बुधाः ॥ २४ ॥

अर्थ—विकल्पमय बीजअंकुरका, क्रिया, पुरुष तथा दैवका, ऊर्मि, वीचि तथा तरंगाका किंचित् भी भेद नहीं है, और न इनके अधिष्ठान चेतनमें भेद है ॥ २१ ॥ पुरुष तथा कर्मका और बीज तथा अंकुरका जिसक मतमें भेद है उस बुद्धिमान् मनुष्यरूप पशुको सदा नमस्कार है ॥ २२ ॥ जन्मके बीजभूत चेतनमे जो बासनारूप रस है वही अंकुरको प्रकट करताहै, उस वासनारूप रसको असंगतारूप अग्निसे भस्म करो ॥ २३ ॥ करते हुये वा न करते हुये प्राणीकी शुभअशुभ कार्य्योंमें मनकी जो अनासक्ति है उसीको पंडित असंग कहतेहैं ॥ २४ ॥

अथवावासनोत्सादएवासंगइतिस्मृतः ॥ ययाकयाचिद्युक्त्यांतःसंपादयतमेवहि ॥ २५ ॥ ययैववेत्सि ततयायुक्त्यापुरुषयत्नतः ॥ वासनांकुरनिर्मूलमेतदेवपरंशिवम् ॥ २६ ॥ पौरुपेणप्रयत्नेनयथाजानासि वातथा ॥ निवारयाहंभावांशमेषोसौवासनाक्षयः ॥२७॥ नास्त्येवपौरुषादन्यासंसारोत्तरणेगतिः ॥ निरहंभावरूपेस्मिन्वासनाक्षयनामनिः ॥ २८ ॥

अर्थ—अथवा वासनाका नाशही असंग कहागयाहै, इसलिये जिस किसी उपायसे असंग उपार्जन करो ॥ २५ ॥ हे रामजी! पूर्वोक्त राजयोग वा हठयोग युक्ति जिससे तुम उत्तम समझो; उसीसे अपने पुरुषार्थद्वारा वासनाके अंकुरको निर्मूल करो, क्योंकि इस वासनाका त्यागही परमकल्याण है ॥ २६ ॥ जिस रीतिसे तुम जानतेहो अपने पुरुषार्थसे अहंभावका नाश करो, यही वासनाका नाश है ॥ २७ ॥ निरहंभाव तथा वासनाके क्षयरूप संसारसे पार उतरनेमें निज पुरुषार्थके सिवाय और कोई उपाय नहीं है ॥ २८ ॥

आद्यैवसंविदस्तीहसोंकुरोबीजमस्तितत् ॥ तत्कर्मतच्चपुरुषस्तद्दैवंतच्छुभाशुभम् ॥ २९ ॥ नबीजमा दावस्त्यन्यन्नांकुरोनचवानरः ॥ नकर्मनचदैवादिकेवलंचिद्धदेतिहि ॥ ३० ॥ नोबीजमस्तिनकिलांकुर कोपिवास्तिनाप्यस्तिकर्मपुरुषश्चनवास्तिसाधो ॥ एकंतुचित्स्वमुदितंह्यनयाभिधानलक्ष्म्यानटःसुरनरा सुरशोभयेव ॥ ३१ ॥ इत्येवनिश्चयमनामयभावयित्वात्यक्त्वाभृशंपुरुषकर्मविचारशंकाम् ॥ निर्वास नःसकलसंकलनाविमुक्तःसंविद्वपुर्ननुयथाभिमतेच्छमास्व ॥ ३२ ॥ प्रशांतसर्वेच्छमशंकमच्छचिन्मा त्रसंस्थोखिलकार्यकारी ॥ आत्मैकरामःपरिपूर्णकामोभवाभयोरामशमाभिरामः ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शंकातत्त्वसिद्धांतप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—अनादि अनंत साक्षीचेतनही अंकुर है, वही बीज है, वही कर्म है, वही पुरुष है, और वही शुभाशुभ दैव (अदृष्ट) है ॥ २९ ॥ सृष्टिकी आदिमें चित्से अन्य न बीज है, न अंकुर है, न मनुष्य है, न कर्म है, और न दैव आदि हैं; किंतु चेतनही सर्वरूपसे प्रकट होताहै ॥ ३० ॥ हे साधो! न बीज है, न अंकुर है, न कर्म हैं और न पुरुष है, किंतु एक चेतन सुरअसुर, तथा मनुष्यादि वेषधारिणी इस जगत्के नामरूप शोभासे युक्त उदित होके नटके समान नृत्य करताहै ॥ ३१ ॥ हे कल्याणमय रामजी! इसप्रकार संदेहरहित सर्वरूप ब्रह्मकी भावना करके पुरुष कर्मादिके विचारकी आशंकाको सर्वथा त्यागदो, और संपूर्ण कल्पना तथा वासनाओंसे विनिर्मुक्त चिन्मात्र शरीरधारी होके, चाहै समाधिमें स्थित रहो वा व्यवहार करो ॥ ३२ ॥ हे रामजी! संपूर्ण इच्छा तथा शंकाओंसे रहित केवल चिन्मात्र स्थित होके सब कार्य्योंको करो, और केवल आत्माराम परिपूर्ण काम, शांतिसे अभिराम तथा निर्भय स्थित रहो ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शंकातत्वप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

इस २९ के सर्गमें रामचंद्रजीको वसिष्ठजीने व्यवहारमें यथाप्राप्त कार्य्योंको करनेका और सदा आत्मस्वरूपमें सदा स्थिर रहनेका उपदेश दिया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नित्यमंतर्मुखस्तिष्ठवीतरागोविवासनः ॥ चिन्मात्रममलंशांतंकर्मसर्वत्रभावयन् ॥ १ ॥ आकाशविशदःप्राज्ञश्चिन्मात्रैकघनस्थितिः ॥ समःसौम्यःसमानंदःसब्रह्मावृंहिताशयः ॥२॥ शोकेष्वापत्सुघोरेषुसंकटेष्ववटेषुच ॥ यथाप्राप्तेषुसर्वेषुखर्वेषून्नतिमत्सुच ॥ ३ ॥ यथाक्रमंयथादेशंकुरुदुःखमदुःखितः ॥ बाष्पक्रंदादिपर्यंतंद्वंद्वयुक्तसुखानिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीबसिष्ठजी बोले–हे रामजी! शत्रु मित्र तथा उदासीन पुरुषोंमें यथायोग्य कर्मोंको करते हुये भी अन्तर्मुख, वीतराग, और वासनारहित होके निर्मल, चिन्मात्र तथा शांत आत्मरूपसे स्थित रहो ॥ १ ॥ हे रामजी! आकाशवत् विशाल, प्राज्ञ, चिन्मात्र आत्मामें सदा स्थित, सम सौम्य, समान आनंदसहित, और ब्रह्मरससे महान् अन्तःकरणयुक्त तुम होओ ॥ २ ॥ हे रामजी! यथाप्राप्त अल्प वा महान् कार्य्योंमें, शोकमें, विपत्तियोंमें तथा भयंकर संकटोंमें, आभ्यंतरसे दुःखरहित होके देशकाल तथा धर्मके अनुसार यथाक्रम अश्रुमोचन पर्य्यंत रोदनादि अथवा शीतोष्णादि द्वन्द्वसहित वस्त्र, चंदनमाल्य आदि सुखभोगोंको करो ॥ ३ ॥ ४ ॥

समागमेषुकांतानामुत्सवेषूदयेषुच ॥ आनंदंभजसौम्यात्मावासनाक्रांतमूढवत् ॥ ५ ॥ भूतानिमृत्युकार्येषुसंग्रामादिषुनिर्दह ॥ दावानलस्तृणानीववासनाक्रांतमूढवत् ॥ ६ ॥ क्रमागतेष्वखिन्नोर्थंबकवच्चितयार्जय ॥ अर्थोपार्जनकार्येषुवासनाक्रांतमूढवत् ॥ ७ ॥ बलाद्विदलयाशेषानरीनीरनिषूदन ॥ वातोरिक्तानिवांभोदान्वासनाक्रांतमूढवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! कांताओंके समागममें उत्सवोंमें और अभ्युदयके कार्य्योंमें वासनासे ग्रस्त मूढजनोंके समान तुम भी आभ्यंतर सौम्य होके आनंद भोगो ॥ ५ ॥ और वासनाओंसे ग्रस्त मूढजनोंके तुल्य तुम भी अधार्मिक दंडनीय जनोंको संग्राम आदिमें ऐसे भस्म करो जैसे दावानल तृणोंको ॥ ६ ॥ तथा धर्मसे अविरुद्ध धनादि उपार्जनके कार्य्योंमें वासनाओंसे आच्छादित मूढजनोंके तुल्य तुम भी धनका उपार्जन करो ॥ ७ ॥ हे शत्रुनाशक! वासनाग्रस्त मूढके सदृश सब अपने शत्रुओंको बलात् ऐसे दलन करो जैसे जलसे रहित मेघोंको पवन ॥ ८ ॥

जनेषुकरुणार्हेषुधैर्यंकुरुमहात्मसु ॥ आत्माराममनामानीवासनाक्रांतमूढवत् ॥ ९ ॥ मुदितोभवहर्षेषुदुःखेषुभवदुःखितः ॥ करुणांकुरुदीनेषुभववीरेषुवीर्यवान् ॥ १० ॥ अंतर्मुखःसदानंदःस्वात्मारामतयान्वितः ॥ यःकरोतिशमोदारस्तत्रकर्त्तासिनानघ ॥ ११ ॥ आत्मभावनयासाधोनित्यमंतर्मुखस्थितेः ॥ वज्रधारापितेरामपतितायातिकुंठताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! आत्माराम तथा अभिमानसे रहित होके वासनासे पूर्णमूढके सदृश तुमभी करुणाके योग्य दीनजनोंमें तथा महात्माओंमें उदारता और धीरता आदि दर्शाओ ॥ ९ ॥ हे रामजी! हर्षके स्थान प्रसन्न, दुःखोंके कार्य्योंमें दुःखी, दीनोंमें करुणायुक्त, और वीरोंमें पराक्रमी होओ ॥ १० ॥ हे रामजी! अंतर्मुख, सदा आत्मानंदयुक्त और स्वात्मारामताके सहित शमतासे पूर्ण होके जो कार्य्य करतेहो उसमें कर्ता नहीं हो ॥ ११ ॥ हे साधो रामजी! आत्माकी भावनासे जिसकी वृत्ति अन्तर्मुख है उसके ऊपर इन्द्रसे प्रेरित वज्रकी धाराभी निष्फल होजाती है १२

संकल्पकलनोन्मुक्तेस्वसंविन्मात्रकोटरे ॥ यस्तिष्ठत्यात्मनिस्वैरमात्मारामोमहेश्वरः ॥ १३ ॥ नतंभिंदंतिशस्त्राणिनदहंतिहुताशनाः नक्लेदयंतिवारीणिशोषयंतिनमारुताः ॥ १४ ॥ सुस्तंभमजमालिंग्यस्वात्मानमजरामरम् ॥ तिष्ठावष्टभ्यधीरात्मासुस्तंभमिवमंदिरम् ॥ १५ ॥ जगद्वृक्षपदार्थौघपुष्पामोदश्रियंपराम् ॥ संविदंसंविदःस्वस्थामास्वांतर्मुखमच्युतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! संकल्पोंकी कल्पनाओंसे विनिर्मुक्त और चिन्मात्र हार्दाशमें जो आनंदपूर्वक स्थित रहताहै वही आत्माराम महेश्वरहै ॥ १३ ॥ उस चिन्मात्रनिष्ठ आत्मारामको न शस्त्र छेदन करसकतेहैं, न अग्नि भस्म करसकती है, न जल भिगो सकताहै, और न वायु शुखा सकताहै ॥ १४ ॥ हे रामजी! चित्तके बंधनके स्तंभके तुल्य अज, अजर, अमर तथा अविनाशी आत्माका दृढपूर्वक अवलम्ब करके और धीरात्मा होके दृढ स्तंभयुक्त मंदिरके तुल्य अचल स्थित रहो ॥ १५ ॥ हे रामजी! जगत्‌रूपी वृक्षके पदार्थोंके समूहरूपी पुष्पोंके सारभूत सुगंधके समान और सर्वथा शांत ब्रह्म संवित्‌का आश्रय लेके और संपूर्ण बाह्य वृत्तियोंके निरंतर अंतर्मुख करके आनंदसे स्थित रहो ॥ १६ ॥

अंतर्मुखतयानित्यंकार्यमाहरतांबहिः ॥ जीवतामपिनोदेतिवासनाद्दषदामिव ॥ १७ ॥ पुनःप्रसरणोन्मुक्तमंतःसुप्तंमनःकुरु ॥ कुर्वन्सर्वाणिकर्माणिकूर्मांगवदवृत्तिमान् ॥ १८ ॥ अंतर्वृत्तिविहीनेनबहिर्वृत्तिम

तेवच ॥ सुप्तप्रबुद्धप्रायेणकार्यमाचरचेतसा ॥ १९ ॥ बालमूकादिविज्ञानवदंतस्त्यक्तवासनम् ॥ भव तःकुर्वतःकार्यखवच्चितंनलिप्यते ॥ २० ॥

अर्थ—जो अन्तर्मुख (आत्मपरायण) होके बाहरसे यथाप्राप्त कार्य्योंको करते हैं उन प्राणधारियोंको भी वासनाका उदय ऐसे नहीं होता जैसे पाषाणको ॥ १७ ॥ संसारके पदार्थोंमें पुनः २ निमग्न इस मनको अन्तर्मुख करके कूर्मके अंगके सदृश अन्तमुख होके बाहरसे सबकार्य्योंको करो ॥ १८ ॥ हे रामजी ! आभ्यन्तरमें संसारकी वृत्तियोंसे शून्य, और बाहरसे वृत्तियों सहित अर्द्धजाग्रतके समान चित्तसे संसारके कार्य्योंको करो ॥ १९ ॥ बालमूकादिके विज्ञानके समान और आभ्यन्तरसे वासना त्यागपूर्वक तुमको कार्य्य करनेसे संसारमें चित्त ऐसे नहीं लिप्त होगा जैसे आकाश ॥ २० ॥

वृत्तित्यागविलीनेनकिंचित्प्रसरताबहिः ॥ अंतरत्यंतसुप्तेनचेतसातिष्ठविज्वरः ॥ २१ ॥ असंकल्पकलं कायांज्ञानाच्चितक्षयोदये ॥ शुद्धायांसंविदिस्थित्वाकुरुमाकुरुवानघ ॥ २२ ॥ सुषुप्तसमयावृत्त्याजाग्र द्व्यवहरन्व्रजन् ॥ गृहाणमाकिंचिदपिमावाकिंचित्परित्यज ॥ २३ ॥ जाग्रत्यपिसुषुप्तश्चेज्जागर्षिचसु षुप्तके ॥ जाग्रत्सुषुप्तयोरैक्यात्तदस्त्यसिनिरामयः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा निर्विकल्प समाधिके अभ्याससे बाधित, दग्धपटके समान आभासमात्र किंचित् जगत् विस्तृत और आभ्यन्तरसे अत्यन्त सुप्तचित्तसे तुम सन्तापरहित स्थितरहो ॥ २१ ॥ हे पापरहितरामजी ! ज्ञानसेचित्तका क्षय होनेपर संकल्परूपी कलंकसे वर्जित शुद्ध ब्रह्मचेतनमें स्थित होके चाहै व्यवहार करो वा समाधि करो ॥ २२ ॥ हे रामजी ! तुम जागते, व्यवहार करते, चलते फिरतेहुये भी सुषुप्तमय वृत्तिसे आसक्त होके किसी इष्टपदार्थको न ग्रहण करो और न अनिष्टको त्यागो ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जाग्रतअवस्थामें यदि स्थूल सूक्ष्म उपाधिके बाधासे तुम सुषुप्तहो तो सुषुप्तिमें भी अज्ञानरूप आवरणके अभावसे तुम जाग्रत् हो, और इसप्रकार जाग्रत् सुषुप्तिके भेदक अज्ञान तथा उसके कार्य्योंका बाधहोनेसे दोनोंकी एकता होनेपर दोनोंसेपरे निर्विकार साक्षी सच्चिन्मात्र तुमहो॥२४

एवमाद्यंतरहितमभ्यासेनशनैःशनैः ॥ पदमासादयाद्वंद्वमतीतंसर्ववस्तुनः ॥ २५ ॥ नचद्वैतंनचैवैक्यं जगदित्येवनिश्चयी ॥ परमामेहिविश्रांतिमाकाशविशदाशयः ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ यद्येवंमुनिशा र्दूलतदहंप्रत्ययात्मकः ॥ भवानेवेहकिंतावद्वसिष्ठाख्यःस्थितोवद ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ राघ वेगदतित्वेवंवसिष्ठोवदतांवरः ॥ तूष्णीमेवमुहूर्तार्द्धमतिष्ठत्स्पष्टचेष्टितः ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार अभ्याससे धीरे २ आदि अन्तरहित द्वन्द्व वर्जित और सबवस्तुसे परे आत्मपदको प्राप्त करो॥ २५॥ हे रामजी ! न द्वैत है, न एकत्व है, और न यह जगत् है इसप्रकार निश्चय सहित, और आकाशके तुल्य विशाल अन्तःकरणयुक्त परम विश्रांतिको प्राप्त होओ ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! यदि सबवस्तु मिथ्याहै तो अहं प्रत्यय सहित मैं राम कहां, और वसिष्ठ नाम आप भी क्या हैं सो कहिये, अर्थात् सर्वथा सबको मिथ्या माननेसे प्रश्नोत्तर आदि व्यवहार भी नहीं होसकता ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–हे भरद्वाज ! रामचन्द्रजीके इतना कहनेपर वक्ताओंमें श्रेवसिष्ठजीनें एकघडीपर्य्यन्त स्पष्ट मौनै धारण करलिया ॥ २८ ॥

तस्मिंस्तूष्णींस्थितेकिंस्यादितिसभ्येमहाजने ॥ पतितेसंशयांभोधौरामःपुनरुवाचह ॥ २९ ॥ किमर्थं भगवंस्तूष्णींभवानहमिवस्थितः ॥ नसोस्तिजगतांन्यायःसतांयोनोत्तरक्षमः ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ नमेवक्तुमशक्तत्वाद्युक्तिक्षयउपस्थितः ॥ किंतुप्रश्नस्यकोट्यास्यतूष्णीमेवानघोत्तरम् ॥ ३१ ॥ द्विविधो भवतिप्रष्टातत्त्वज्ञोज्ञोथवापिच ॥ अज्ञस्याज्ञतयादेयोज्ञस्यतुज्ञतयोत्तरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वसिष्ठजीके मौन होनेपर अब क्या होगा इस हेतुसे सब सभाके महात्माजन संशयरूप समुद्रमें निमग्न होगये तब रामचन्द्रजी पुनः बोले ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आप मेरे सदृश मौन क्यों हैं क्योंकि संसारमें रमें ऐसा कोई नहीं है जिसका उत्तर विद्वान् गुरुजन न दे सकें ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे पापरहितरामजी ! कथनमें मेरी असमर्थतासे यहांपर युक्तिका अभाव नहीं उपस्थित हुआ, किन्तु इस प्रश्नकी परमावधि होनेसे मौनही उत्तरहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! अज्ञानी तथा ज्ञानी दो प्रकारके प्रश्नकर्ता होतेहैं, सो अज्ञानीको अज्ञानतासे उत्तर देना चाहिये और ज्ञानीको ज्ञानितासे ॥ ३२ ॥

---

(१) वसिष्ठजीके मौन धारणका तात्पर्य यहथा कि यथार्थमें वसिष्ठजी अहंभावना नहीं हैं किन्तु मेरे श्रोताओंकी अज्ञान दृष्टिसे यह कल्पितहै और श्रोताओंके ज्ञानी होनेपर मौनही उचितहै ॥

एतावंतमभूत्कालंभवानज्ञाततत्पदः ॥ भाजनंसविकल्पानामुत्तराणांमहामते ॥ ३३ ॥ तत्त्वज्ञस्त्वधुनाजातोविश्रांतःपरमेपदे ॥ योग्योनसविकल्पानामुत्तराणामसिस्फुटम् ॥ ३४ ॥ यावान्कश्चित्किलोल्लेखोवाङ्मयोवदतांवर ॥ सूक्ष्मार्थःपरमार्थोवाबहुरल्पतरोपिवा ॥ ३५ ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यातीतादिभिर्भ्रमैः ॥ सचसर्वोन्वितःसाधोभाइवत्रसरेणुभिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे महामते रामजी ! इतने कालतक तुम आत्मपदको नहीं जानते थे, इसलिये विकल्पसहित उत्तरोंके पात्रथे ॥ ३३ ॥ और अब तुम परमपदमें विश्रांत तत्वज्ञानी हो, इसलिये सर्वथा विकल्पसहित उत्तरोंके योग्य नहीं हो ॥ ३४ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! जो कुछ वाणीका विषय है चाहै वह सूक्ष्मार्थ हो, परमार्थ हो, अधिक हो वा न्यून हो परन्तु सब वह निरूपक, व्यावृत्ति, संख्या, परमार्थ तथा उसके साधन प्रमाणादिके भ्रमरूप कलंकोंसे ऐसे व्याप्त है जैसे जलके अन्तर्गत सूर्य्यकी किरण त्रसरेणुओंसे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

उत्तरंसकलंकंचतज्ज्ञोनार्हतिसुंदर ॥ नाकलंकाचवागस्तित्वंचतज्ज्ञतरःस्थितः ॥ ३७ ॥ यथाभूतंचवक्व्यंज्ञस्यांतेबासिनोमया ॥ यथाभूतंविदुःकाष्ठमौनमंतविवर्जितम् ॥ ३८ ॥ अविचारात्ससंकल्पंमौनमाहुःपरंपदम् ॥ तदेवतवतज्ज्ञस्यदत्तःसुंदरउत्तरः ॥ ३९ ॥ यन्मयोहिभवत्यंगपुरुषोवक्तितादृशम् ॥ ज्ञेयमात्रमयश्चाहंवागतीतेपदेस्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे सुन्दरज्ञानी ! कलंकसहित उत्तरका पात्र नहीं है, और वाणी विकल्परूप कलंकसे रहित नहीं है, और तुम तो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अब विद्यमान हो ॥ ३७ ॥ ज्ञानी शिष्यके निकट यथाभूत सत्यपदार्थ मुझे कहना चाहिये, और यथाभूत वस्तु (सत्यआत्मा) परिच्छेदरूप कलंकसे रहित काष्ठवत् मौन है ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! ज्ञानोदयके पूर्व तो वाणीके व्यवहाररूप संकलपमय विषय है, और विचारसे ज्ञात होनेसे तो परमपद वाणी अविषय मौनही है इसलिये वही सुन्दर मौन उत्तर तुम ज्ञानीको मैंने दिया ॥ ३९ ॥ हे प्रिय ! जैसा पुरुष होताहै वैसाही कहताहै, और वाणीसे परे आत्मपदमें स्थित मैं ज्ञेयमात्रही हूं ॥ ४० ॥

वागतीतपदस्थोहिकथंगृह्णातिवाङ्मलम् ॥ अवाच्यंवच्मिनोतेनवाग्घिसंकल्पनांकिता ॥ ४१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ वाचियेयेप्रवर्तंतेताननादृत्यदोषकान् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदिपूर्वकान्वदकोभवान् ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंस्थितेराघवहेयथाभूतमिदंशृणु ॥ कस्त्वंकोहंजगद्वाकिमितितत्त्वविदांवर॥४३॥ अहंतावदयंतातचिदाकाशोनिरामयः ॥ चेत्यसंवेद्यरहितःसर्वसंकल्पनातिगः ॥ ४४ ॥

अर्थ—वाणीसे अतीत आत्मपदमें स्थित वाणीरूप मलको कैसे धारण करेगा, इसलिये मैं अवाच्य नहीं कहता, क्योंकि वाणी अनेक विकलपरूप कलंकोंसे युक्त हैं ॥ ४१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! निरूपक तथा व्यावृत्तआदि दोष जो २ वाणीके विषय हैं उनको त्यागकर भाग त्याग लक्षणासे कहिये आप कौन हैं ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! यदि ऐसा पूंछते हो तो तुम, मैं तथा यह जगत् क्या है इसका परमार्थ सुनिये ॥ ४३ ॥ हे तात ! विषयसे वर्जित, सब कल्पनाओंसे परे निर्विकार चिदाकाशरूपही मैं हूं ॥ ४४ ॥

स्वच्छंचिदाकाशमहंभवानाकाशमेवच ॥ जगच्चाकाशमखिलंसर्वमाकाशमात्रकम् ॥ ४५ ॥ शुद्धज्ञानैकरूपात्माशुद्धज्ञानमयात्मनि ॥ अन्यसंविद्दृशोन्मुक्तःस्वान्यद्दृक्तुंनवेद्म्यहम् ॥ ४६ ॥ स्वपक्षोद्भावनपराअहंतात्मैकवर्द्धनम् ॥ मोक्षार्थमप्युद्यमिनोनयंतिशतशाखताम् ॥ ४७ ॥ जीवतोप्युपशांतस्यव्यवहारवतोपिच ॥ शववद्यदवस्थानंतदाहुःपरमंपदम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हम तथा तुम स्वच्छ चिदाकाशरूपही हैं, और यह संपूर्ण जगत्भी चिदाकाशमात्रही है ॥ ४५ ॥ शुद्धज्ञानरूप आत्मामें शुद्धज्ञानरूप मैं साक्षीचेतनसे भिन्न अणुमात्र भी नहीं कहसकता ॥ ४६ ॥ और शिष्यके मोक्षार्थ तथा वादियों विजयके लिये अपने अद्वैत पक्षके स्थापनमें तत्पर उद्योगी विद्वान् बाधितभी अहंकारको वृद्धि करते हुये उसको अनेक शाखामय करते हैं ॥ ४७ ॥ ज्ञानीपुरुष शांत हो वा व्यवहारमें तत्पर हो परन्तु अभिमान रहित जो मृतकके तुल्य उसकी स्थिति है वही परमपद है ॥ ४८ ॥

अबहिःसाधनंशांतमनंतःसाधनंसमम् ॥ नसुखंनासुखंनाहंनान्यदित्यादितंशिवम् ॥ ४९ ॥ सुक्तायाअहंतेयमभावोभावनंकच ॥ तयैवान्विष्यतेसेतिज्ञात्यंघश्चित्रमीक्षते ॥ ५० ॥ स्पंदनेऽस्पंदनेचैवयत्पाषाणवदासितम् ॥ अजडस्यैवतद्विद्धिनिर्वाणमजरंपदम् ॥ ५१ ॥ तच्चनान्योविजानातिस्वयमेवानुभूयते ॥ लोकैषणाविरक्तेनज्ञेनज्ञत्वमिवात्मनि ॥ ५२ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तरके साधनोंसे शून्य, शांत, अनन्त, सुख दुःख अहंता तथा अन्यपदार्थोंसे रहित केवल शिवरूपही हम हैं ॥ ४९ ॥ यह अहंता मुक्तिका अभाव है, भला उस अहंतासे मुक्तिकी भावना कहां, इसलिये अहंभावनासे जो मुक्ति ढूंढताहै वह मानो जन्मान्ध होके चित्र देखताहै ॥ ५० ॥ हे रामजी! चेष्टा वा उसके अभावमें चेतनकी पाषाणवत् जो शांत स्थिति है उसीको तुम निर्वाण अजरपद जानो ॥ ५१ ॥ उस चिद्रूप स्वप्रकाशमय आत्माको लोकैषणा तथा वित्तैषणासे निर्मुक्त ज्ञानीपुरुषही अपने आत्मामें ऐसे अनुभव करताहै जैसे अज्ञानी घटआदि ज्ञानके स्फुरणरूप फलको ॥ ५२ ॥

तत्राहंतानचत्वत्तानानहंतानचान्यता ॥ केवलंकेवलीभावोनिर्वाणममलंशिवम् ॥ ५३ ॥ चेत्योन्मुखत्वमेवाहुश्चेतनस्यास्यचेतनम् ॥ एषएवचसंसारोबंधःक्लेशायभूयसे ॥ ५४ ॥ चेतनस्याचेतनत्वमचेत्योन्मुखतात्मकम् ॥ मोक्षंविद्धिपरंशांतंपदमव्ययमेवच ॥ ५५ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नेशांतेशांतात्मनिस्थिते ॥ चेत्यंनसंभवत्येवकःकिंचेतयतेकथम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—उस आत्मपदमें न अहंता है, न त्वत्ता है, न अनहंताहै और न अन्यता है, किंतु केवल केवलीभाव निर्वाणस्वरूप निर्मल शिवरूप आत्मा है ॥ ५३ ॥ विषयको प्रकाश करनाही इस चेतनकी विषयोंमें व्याप्तिरूप क्रिया कही गई है, वही संसार और वही महान् क्लेशके लिये बन्धन है ॥ ५४ ॥ और इस चेतनका विषयोंमें उन्मुख न होनाही परमशान्त अव्ययपद मोक्ष है ॥ ५५ ॥ और देशकालादिसे अपरिच्छिन्न, शांत, निज शांतस्वरूपमें स्थित चेतनमें विषयका सम्भव नहीं है तब उस परमार्थदशामें कौन किसका प्रकाश करताहै ॥ ५६ ॥

संकल्पःस्वप्नदृश्येतःसंविन्मात्रात्मतांविना ॥ यथान्यवद्धवेद्रूपास्तथैवास्मिन्बहिर्गते ॥ ५७ ॥ मनोबुद्धयादयश्चैतेसंविन्मात्रानुरूपिणः ॥ मनोबुद्धयादिशब्दार्थभावितास्तुजडात्मकाः ॥ ५८ ॥ संविन्मात्रेसमेस्वच्छेसबाह्याभ्यंतरेतते ॥ अभिन्नेभेदबुद्धिर्वाकिमनर्थायजृंभते ॥ ५९ ॥ संविन्मात्रस्यशुद्धस्यशून्यस्यचकिमंतरम् ॥ यच्चांतरंतद्विबुधाविदंत्येतिनवाग्गतिम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे श्रोतगण भूपसमूह! जैसे स्वप्नके जगत् चेतनही अपने अन्तर्गत वासनासे संकल्पमय अन्यके तुल्य सब रचताहै, ऐसेही यह आत्मा बहिर्मुख होके स्वयं अपने आत्मामें अन्यके समान सब जडजगत् प्रपंच जाग्रत् अवस्थामें भी रचताहै, यथार्थमें उससे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ५७ ॥ और चेतनके बहिर्मुख होनेसेही ये सब मन बुद्धि आदि जडात्मक भान होते हैं, और चेतनके अन्तर्मुख होनेपर मन बुद्धि आदि सब चिद्रूप होजातेहैं ॥ ५८ ॥ बाहर भीतर सर्वत्र निर्मल स्वच्छ तथा अभिन्न चेतनमात्रके व्याप्त रहते, जो बहिर्मुखतारूप भेद बुद्धि कीजाती है वह अनर्थहीके लिये विकसित होरही है ॥ ५९ ॥ शुद्धसंवित् चेतनमात्र तथा शून्य जडरूपमें जो भेद है उसको विद्वान् जन अपने आत्माहीमें अनुभव करते हैं उसमें बाणीकी गति नहीं है कि उस नित्य निरतिशय आनन्दको कहैं ॥६०॥

सदसद्रूपआभासोयथाकिमपिलक्ष्यते ॥ तमसीक्षितयत्नेनब्रह्मणीदंतथाजगत् ॥ ६१ ॥ अयमाकाशमेवाहंयदिशाम्याम्यवासनम् ॥ वासनांतुनबध्नासिस्थितएवासिचिन्नभः ॥ ६२ ॥ इतिनिश्चयवानंतस्तज्ज्ञोज्ञइवसंज्ञया ॥ चिद्वपुर्विद्यमानोपिशाम्यत्यसदिवस्वयम् ॥ ६३ ॥ जीवानांज्ञप्तिगुप्तेनज्वलन्नज्ञानवायुना ॥ अविद्याग्निःप्रबुद्धानांपुनस्तेनैवशाम्यति ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे अन्धकारमें नेत्रके प्रणिधानरूप यत्नसे कुछ सदसद्रूप आभास लक्षित होताहै ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् भी है ॥ ६१ ॥ वासनारहित, शांत यह मैं चिदाकाशरूपही हूं, तुमभी यदि वासनाको न धारण करो तो चिदाकाशरूपही हो ॥ ६२ ॥ मैं यह शुद्ध चिदाकाशमात्रहूं ऐसा निश्चययुक्त अन्यपुरुष भी चिद्रूपही है, व्यवहार दृष्टिसे देहादि सहित विद्यमान भी चिन्मात्र शरीरधारी है, और उसके देहादि सब शांत होजाते हैं ॥ ६३ ॥ मैं अज्ञहूं जीवोंकी यह संसाररूप अग्नि साक्षीचेतनसे रक्षित अज्ञानवायुसे प्रज्वलित रहते भी पुनः “ अहंब्रह्मास्मि ” (मैं ब्रह्महूं) इस आत्माके साक्षात्कार वृत्तिमें परिणत साक्षीचेतनसे रक्षित अज्ञानरूप पवनके झकोरेसे वह संसाररूप अग्नि शांत होजाती है ॥ ६४ ॥

अजडानांयदज्ञानंस्थाणूनामिवशाम्यताम् ॥ तमाहुर्मोक्षमक्षुब्धमासितंपदमक्षयम् ॥ ६५ ॥ ज्ञत्वेनज्ञत्वमासाद्यमुनिर्भवतिमानवः ॥ अज्ञत्वादज्ञतामेत्यप्रयातिपशुवृक्षताम् ॥ ६६ ॥ अहंब्रह्मजगच्चेदमित्यविद्यामयोभ्रमः ॥ असत्यःप्रेक्षयाध्वांतंदीपेनेवनलभ्यते ॥ ६७ ॥ समग्रकरणग्रामोप्यसंकल्पोविवेदनः ॥ नकिंचिदप्यनुभवत्यंतर्बाह्येचशांतधीः ॥ ६८ ॥

अर्थ—नित्य निरतिशय आनन्दरूप स्थाणुओंके सदृश शान्त मुक्त पुरुषोंकी संसारिक ज्ञानसे शून्य, और दुःखके क्षोभसे वर्जित जो आत्मामें स्थिति है उसको अक्षय मोक्षपद कहतेहैं ॥६५॥ आत्माके ज्ञानसे आत्मरूपताको

प्राप्त होके मनुष्य साक्षात् मुनि होजाताहै, और आत्माको न जाननेसे अज्ञानदशामें प्राप्त होके पशु तथा वृक्षादि योनिमें जाताहै ॥ ६६ ॥ मैं, ब्रह्म, और यह जगत् इत्यादि मिथ्या अविद्यामय भ्रम अविद्या आत्माके दर्शनमात्रसे ऐसे नष्ट होजातीहै जैसे दीपकसे अन्धकार ॥ ६७ ॥ सम्पूर्ण नेत्र आदि इन्द्रिय समूहको अहंकार तथा वासनारहित जीवन्मुक्त पुरुष अन्तःकरणमें कुछ नहीं अनुभव करता अर्थात् मिथ्या वा आत्मरूप जानताहै, और बाह्यपदार्थोंको भी मिथ्या जानकर शांतचित्त रहताहै ॥ ६८ ॥

सुषुप्तत्वइवस्वप्नःसमाधौप्रविलीयते ॥ दृश्यंसर्वंज्ञबोधेंतःपुनःस्वात्मैवलक्ष्यते ॥ ६९ ॥ नीलत्वंचयथाव्योम्नितथापृथ्व्यादिताशिवे ॥ भ्रांतिमात्राहृतेनान्यद्यथाव्योमतथाशिवः ॥ ७० ॥ वासनाभिरुपेतोपि समस्ताभिरवासनः ॥ भवत्यसावसत्सर्वमिदमित्येवयस्यधीः ॥ ७१ ॥ संकल्पेष्वद्भुतंभव्यस्वप्नमायेंद्रजालकम् ॥ यद्वत्संसृतयस्तद्वदृष्टेप्यास्थाकिमत्रवै ॥ ७२ ॥

अर्थ—ज्ञानीको एकबारभी समाधि आत्मसाक्षात्कार होनेसे उसी आत्मामें सम्पूर्ण दृश्यसमूह ऐसे लीन होजाताहै जैसे सुषुप्तिमें जाग्रत् तथा स्वप्न, और पुनः व्युत्थानदशामें जो जगत् भासताहै वह उसको आत्मरूपही भासताहै ॥ ६९ ॥ जैसे भ्रमके सिवाय आकाशमें नीलता कुछ पदार्थ नहीं है ऐसे ब्रह्ममें पृथिवी आदि पदार्थ भ्रमसेही सिद्ध हैं ॥ ७० ॥ जिसकी यह बुद्धि है कि यह सम्पूर्ण जगत् असत् है वह सम्पूर्ण वासनाओंसे युक्त होनेपरभी वासनारहितही है ॥ ७१ ॥ हे कल्याणरूप रामजी ! जैसे स्वप्न, संकल्प तथा इन्द्रजाल आदिमें सब विचित्र सृष्टि मायामय असत् है, ऐसेही यह संसारभी है, इसमें विवेकियोंकी आस्था होसकती है ॥ ७२ ॥

नदुःखमस्तिनसुखंनपुण्यंनचपातकम् ॥ नकिंचित्कस्यचिन्नष्टंकर्त्तुर्भोक्तुरसंभवात् ॥ ७३ ॥ सर्वंशून्यं निरालंबंममताप्रत्ययोप्ययम् ॥ द्विचंद्रस्वप्नपुरवद्यस्यासौसोपिनास्तिनः ॥ ७४ ॥ केवलोव्यवहारस्थः काष्ठमौनगतोथवा ॥ काष्ठपाषाणवत्तिष्ठन्ब्रह्मतामधिगच्छति ॥ ७५ ॥ शांतस्वेचितत्वेनानानानात्मनीहशिवे ॥ अत्तयविनोवयवित्वेत्विहयुक्तिर्विद्यतेनान्या ॥ ७६ ॥

अर्थ—परमार्थमें कर्त्ता भोक्ताका असम्भव होनेसे न दुःख है, न सुख है, न पुण्य न पाप है, और न किसीका कुछ नष्ट हुआ न उत्पन्न हुआ ॥ ७३ ॥ सब जगत् शून्य, तथा निराधार आत्मारूपही है, क्योंकि जिस अहंकारको यह ममता प्रतीति होती है वहभी दो चन्द्र वा स्वप्नके नगरके समान सत् नहीं है ॥ ७४ ॥ द्वैतवासनासे शून्य तत्वज्ञानी चाहै व्यवहारमें रहै वा काष्ठ पाषाणादिके तुल्य मौन समाधिनिष्ठ हो, वह सर्वथा ब्रह्मरूपताहीको प्राप्त है ॥ ७५ ॥ इसप्रकार निर्विकार कूटस्थ ब्रह्म जगत्का कारण निश्चित होनेपर सृष्टिकी रचनाके अनुकूल चित्तत्वमें, एक अनेकरूप सम्पूर्ण ब्रह्मांडके प्रपंचमें तथा उसके अन्तर्गत पृथिवी आदिके अवयवी होने विवर्तवादके सिवाय अन्य कोई युक्ति नहीं है अर्थात् जैसे रज्जु अज्ञानसे सर्पादिरूप भासती है ऐसेही बिना ज्ञान ब्रह्म जगत्रूप भासताहै॥७६॥

अर्थागतस्वभावस्यचनैवचसंभवादमले ॥ एतस्मिन्सर्वगतेब्रह्मणिनास्तिस्वभावोक्तिः ॥ ७७ ॥ नच नास्तिकोपलंभात्संवित्तेरस्तिताचनैवाजे ॥ ग्राह्यग्राहकदृष्टेरसंभवादस्तिकिंचिदपि ॥ ७८ ॥ शममम लमहार्यमार्यजुष्टंशिवमजमक्षयमासितंसमंयत् ॥ तदवितथपदंतदास्वशांतंपिबललभुंक्ष्वभवानयंहि नास्ति ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भावनाप्रतिपादनं नामैकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—इस सर्वव्यापक निर्मल ब्रह्ममें अन्य पदार्थसे प्राप्त स्वभावका असम्भव होनेसे स्वभावकी उक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि सर्वरूपमें स्वभाव किसका व्यापक होगा ॥ ७७ ॥ प्रकाश्य जगत्के मिथ्या माननेसे प्रकाशक चेतनकी नास्ति होनेसे शून्यवाद नास्तिक सिद्धान्त होगया, सो नहीं क्योंकि सबका अभाव करनेवाला नास्तिकका आत्मा विद्यमानहै इसलिये जहां ग्राह्यग्राहकदृष्टिका असम्भव नास्तिक कहताहै वह सब निषेधोंका अवधिभूत आत्मा उसकोभी मानना पडेगा ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मज्ञानियोंसे सेवित, अन्यके अपहरणके अशक्य, शान्त निर्मल, अज, सत्य तथा नित्यसिद्ध शिवरूप होके स्थित रहो, और व्यवहारदशामें अन्य जनके तुल्य तुमभी खानपान क्रीडादि करो तथापि मुक्तही हो, क्योंकि यह दृश्यरूप बन्धन तुमारी दृष्टि सत्य नहीं है ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भावनाप्रतिपादनं नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

जिस दृष्टिसे अहंभावनारूप अविद्यासे उत्पन्न नानाप्रकारकी भ्रांतिकी शांति होनेसे धीरपुरुष ब्रह्ममें स्थिर होताहै वह दृष्टि इस ३० के सर्गमें वर्णितहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहंतैवपराविद्यानिर्वाणपदरोधिनी ॥ तथैवान्विष्यतेमूढैस्तदित्युन्मत्तचेष्टितम् ॥ १ ॥ अहंतैवालमज्ञानादज्ञत्वस्यनिदर्शनम् ॥ नहितज्ज्ञस्यशांतस्यममाहमितिविद्यते ॥ २ ॥ अहंतामलमुत्सृज्यनिर्वाणःखमिवामलः ॥ सदेहमपदेहंवाज्ञस्तिष्ठतिगतज्वरः ॥ ३ ॥ नतथाशरदाकाशं नतथास्तिमितोर्णवः ॥ पूर्णेन्दुमध्यंनतथायथाज्ञःपरिराजते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह अहंताही सबकार्य्य अविद्याओंका मूल और मोक्षपदका आचरण है, और उस अहंतासे जो मुक्ति ढूंढते हैं वह उन्मत्त चेष्टितहैं ॥ १ ॥ अज्ञानसे उत्पन्न यह अहंताही अज्ञानी होनेमें पूर्ण हेतु, क्योंकि शांत ज्ञानीको "मम अहम्" (मैं मेरा) यह अभिमान नहीं है ॥ २ ॥ इस अहंतारूप मलको सर्वथा त्यागकर निर्मल चिदाकाश मोक्षरूप ज्ञानीपुरुष सन्तापरहित स्थित रहताहै चाहै वह देहधारी वा उससे रहित हो ॥ ३ ॥ जैसे अहंतासे रहित ज्ञानीपुरुष शोभित होताहै वैसा न शरत्कालका आकाश, न शान्तसमुद्र, अथवा न पूर्ण चन्द्रमण्डल शोभित होताहै ॥ ४ ॥

चित्रसंगरयुद्धस्यसैन्यस्याक्षुब्धतायथा ॥ तथैवसमताज्ञस्यव्यवहारवतोपिच ॥ ५ ॥ निर्वाणैकतया ज्ञस्यवासनैवनवासना ॥ लेखादामोपमात्वब्धेरूर्म्यादिनजलेतरत् ॥ ६ ॥ तरत्तरंगोजलधिर्जलमेवय थाखिलम् ॥ दृश्योच्छूनमपिब्रह्मतथाब्रह्मैवनेतरत् ॥ ७ ॥ अतस्तरंगतोऽक्षुब्धोबहिरस्तंगतःशमी ॥ विद्यतेचोदितोयस्यसमुक्तइतिकथ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे चित्रमें लिखित युद्ध करतीहुई सेनाको क्षोभ नहीं होता ऐसेही व्यवहारमें निमग्नभी ज्ञानीपुरुषकी सदा समरूपताही रहती है ॥ ५ ॥ आत्माके साधन एक होनेसे वा दग्धरज्जुके लिखा तुल्य बाधित होनेसे ज्ञानी-पुरुषकी वासना ऐसे नहीं है जैसे समुद्रके जलसे भिन्न तरंग आदि अन्य नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे चंचल तरंगयुक्त समुद्र सब जलही है ऐसेही दृश्य जगत्‌रूपसे विवर्तित ब्रह्म ब्रह्मही है न कि अन्य ॥ ७ ॥ जैसे तरंगोंसे बाहर क्षुब्धभी समुद्र भीतरसे शांतही रहताहै ऐसेही बाहरसे क्षुब्धके तुल्य भान होते हुये भी आभ्यन्तरसे जो शान्तहै वह मुक्तही कहा जाताहै ॥ ८ ॥

अहंत्वसर्गरूपेणसंवित्संविन्मयेपरे ॥ स्फुरत्यंभोंभसीवातोनानातेयंकिमात्मिका ॥ ९ ॥ धूमस्यस्फुर तोव्योम्नियथागजरथादयः ॥ व्यूहाधूमान्नतेभिन्नास्तथासर्गाःपरेपदे ॥ १० ॥ संविद्भ्रांतिविचारेणभ्रां त्यलाभविलासिनः ॥ विजयध्वंविषादंमागताज्ञास्तज्ज्ञताहिवः ॥ ११ ॥ अंकुरोनुभवत्यंतर्वृक्षपत्रफलं यथा ॥ तथाजगदहंत्वेज्ञःस्वात्मास्वात्मखमप्यलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे जलमें तरंगरूप जल स्फुरताहै ऐसेही अज्ञान आत्मामें अहंकार आदि सृष्टिरूपसे चेतनके स्फुरित रहते यह पदार्थोंकी अनेकता क्या (मिथ्या) है ॥ ९ ॥ जैसे आकाशमें मेघरूपसे धूमके स्फुरतेहुये जो गजरथादिके आकारकी रचना भान होती है वह धूमसे भिन्न नहीं है ऐसेही परमपदसे सृष्टि भी भिन्न नहीं है ॥ १० ॥ हे श्रोता-गण ! तुम सब विषादको न प्राप्त होओ, किंतु मेरे कथनके अनुसार भ्रांतिके मिथ्या बिचारसे उस (भ्रांति) के अलाभसे बिलास करते हुये सबसे ऊपर विराजमान होओ, क्योंकि मेरे उपदेशसे तुम सब ज्ञानी हो न कि अज्ञ ॥ ११ ॥ जैसे अंकुर अपने भीतर वृक्षपत्र फलादिका अनुभव करताहै ऐसेही अज्ञानीजन अपने आत्माके आकाशके सदृश निर्मल तथा विशाल होनेपर भी उसको जगत् तथा अहंकाररूपसे अनुभव करताहै ॥ १२ ॥

रूपालोकमनःसत्ताज्वालार्चिष्विवदंडता ॥ सत्योपिचनसंत्येताभ्रांतेश्चित्ताबलाइव ॥ १३ ॥ यथासु खंयथारंभंयथानाशंयथोदयम् ॥ यथादेशंयथाकालमजराःशांतमास्यताम् ॥ १४ ॥ इष्टानिष्टेफलंभेषु शांतोव्यवहरन्नपि ॥ शववन्नान्यतामंतर्निर्वाणोनुभवत्यलम् ॥ १५ ॥ अमनोवासनाहंताधत्तेयच्चजगच्चि रम् ॥ जीवतोजीवतश्चैवचिज्जीवःसपरंपदम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे भ्रमणशील आलातकी ज्वालामें दंडचक्रादिरूप वा कामीके चित्तसे कल्पित कामिनी अपने स्वरूपसे सत्य नहीं हैं, ऐसेही बाह्यरूप आलोकआदिकी सत्ता; और आभ्यन्त मनआदिकी सत्ता अधिष्ठानरूपसे सत्य रहतेभी अपने स्वरूपसे सत्य नहीं है ॥ १३ ॥ हे श्रोताजन ! यह पूर्ण जगत् जैसे उत्पन्न होताहै, जैसे स्थितहै,

जैसे अपने कार्य्योंका आरंभ करता है, जैसे सुखदुःखको देताहै, जैसे नष्ट होताहै और जैसे इसके देशकाल हैं, इन सब बातोंको उत्पत्तिआदि प्रकरणोंमें कथित युक्तियोंसे मिथ्या निश्चय करके अजर अमर तथा शांतरूपसे स्थित रहो ॥ १४ ॥ जो जीवन्मुक्त इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें मृतकके समान शांत है वह व्यवहार करतेहुयेभी भिन्नताका अनुभव नहीं करता ॥ १५ ॥ मन तथा वासनासे रहित जीवन्मुक्तोंकी अहंता देहपात पर्य्यन्त जो जगत्‌को धारण करती है, और जो भोक्ता जीव उतने कालतक प्राणधारण करताहै यह दोनों परमपद चिद्रूपही हैं ॥ १६ ॥

सत्तैवजडवाहेनदुःखभारायकेवलम् ॥ नृणांपाशावबद्धानांपोतकानामिवार्णवे ॥ १७ ॥ मोक्षसत्ताश्रयतितंनाज्ञानानुभवादिव ॥ मृतेनयत्किलप्राप्यंजीवन्प्राप्नोतितत्कथम् ॥ १८ ॥ यद्यत्संकल्प्यतेतत्तत्संकल्पादेवनाशभाक् ॥ नसंभवतियत्रैतत्तत्सत्यंपदमक्षयम् ॥ १९ ॥ नान्योनचाहमस्मीतिभावनान्निर्भयोभव ॥ सत्यंयुक्तंभवत्येतद्विषमप्यमृतंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे जलमें बहतीहुई नौका केवल भार लेजानेके अर्थ है ऐसेही वासना अहंताआदि पाशमें बंधेहुये मनुष्योंको जीव जगत्‌की जड प्रवाहरूपसे सत्ता केवल दुःखरूपी भारकेलिये है ॥ १७ ॥ अज्ञ जनको अज्ञान-(जडत्व) को अनुभवरूप अपराधसे मोक्षकी सत्ता ऐसे नहीं आश्रय करती जैसे पर्वतके शिखरआदिसे गिरके मरनेवाले जीवितपुरुष स्वर्गआदि ॥ १८ ॥ जो २ पदार्थ संकल्पसे सिद्ध होताहै वह २ संकल्पसेही नष्ट भी होताहै, इसलिये जहां संकल्पका संभव नहीं है वही अक्षय मोक्षपद है ॥ १९ ॥ न मैं हूं और न अन्य है इस अनहंभावनासे निर्भय होजाओ, यद्यपि यह अज्ञानीकी दृष्टिसे ग्रहण करनेके अयोग्य है तथापि ज्ञानीको परमार्थ सत्य अमृतरूप ग्रहण करनेके योग्यहै ॥ २० ॥

जडंदेहादिचित्तांतंविचार्यसकलंवपुः ॥ लभ्यतेनाहमस्मीतितस्मान्नास्मीतिसत्यता ॥ २१ ॥ शांताशेषविशेषाणामहंतांताविचारणात् ॥ केवलंमुक्ततोदेतिनतुकिंचिद्विनश्यति ॥ २२ ॥ भोगत्यागविचारात्मपौरुषान्नान्यदत्रहि ॥ उपयुज्यतइत्यज्ञाःस्वात्मैवाशुप्रणम्यताम् ॥ २३ ॥ निर्वासनंमननमेवमुदाहरंतिमोक्षंविनाभवतितन्नचजातुबोधात् ॥ सन्नोजगद्भ्रमइतीहपरःप्रबोधोनप्रत्ययोत्रयदतःसुचिरायबंधः ॥२४॥ जगदहमसदित्यवेत्यसम्यग्जनधनदारशरीरनिर्व्यपेक्षः ॥ भवतिहिसचेतनस्वरूपःपरिमितखंखलुनान्यथास्तिमुक्तिः ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थोपन्यासयोगो नाम त्रिंशस्सर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—देहसे लेके चित्तपर्य्यंत विचारसे देखनेसे अहंकारका लक्ष्य नहीं है इसलिये जड देहादि मैं नहीं हूं यह सत्य है ॥ २१ ॥ जिन पुरुषोंके विचारसे चित्त आदि सब शांत होगये हैं उनकेलिये अहंताकोभी नष्ट करनेवाली केवल मुक्तता उदय होती है, और यथार्थमें कुछ नष्ट नहीं होता ॥ २२ ॥ हे मुमुक्षु अज्ञजन ! इस मुक्तिकी प्राप्तिमें भोगका त्याग, विचार अपने इन्द्रिय मन आदिके निग्रहरूप पुरुषके सिवाय और किसीका उपयोग नहीं है इसलिये सब अनात्म वस्तुको त्यागकर शीघ्र अपने आत्माहीके शरणमें जाओ ॥ २३ ॥ वासनारहित मनकी ब्रह्मरूपसे स्थितिको विद्वान् तथा सब श्रुति मोक्ष कहती हैं, और वह मोक्ष तत्त्वज्ञानके विना कदापि नहीं होता, और मोक्षशास्त्रमें उत्तम ज्ञान यही है कि जगत् भ्रम है और आत्मा सत् है, इस ज्ञानमें दृढ विश्वास नहीं होता इसीलिये चिरकालतक जीवोंको बंधन है ॥ २४ ॥ जगत् तथा अहंता असत् है इसको उत्तमतासे जानके जन, धन, गृह, स्त्री तथा शरीरादिमें ममतारहित यह परिच्छिन्न जीव चेतन चिदाकाश ब्रह्मरूपही जाताहै, यही जीवकी मुक्ति है, इस ज्ञानसे अन्य कोई उपाय मुक्तिकेलिये नहीं है ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थोपन्यासयोगोपदेशो नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

असत् वा सत् अचिद्रूप चित्‌के अंतर्गत है इसलिये कुछ नष्ट नहीं होता यही निर्वाणकी स्थिति ३१ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वात्मनिचिदाभासेतदेवाश्वनुभूयते ॥ संवेद्यतेयदेवांतरसत्यंवस्त्ववस्तुवा ॥ ॥ १ ॥ तदेवाभ्यासतःपूर्वंबाह्यार्थानुभवात्मना ॥ स्फुरतीवबहिष्ट्वेनस्वस्वप्नोत्रनिदर्शनम् ॥ २ ॥ चिद्रूपंसर्वमेतच्चचिदच्छागगनादपि ॥ चिच्छिनोतिचिदेवातोनैतत्किंचनकुत्रचित् ॥ ३ ॥ ननाशोनास्तिनानार्थोनजन्ममरणेनखम् ॥ नशून्यताननानास्तिसर्वंब्रह्मैवनैवच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! सर्वरूप चेतन सत् वा असत् वस्तु जो कुछ अपने आत्मामें संकल्प करताहै वही शीघ्र अनुभव करनेलगताहै ॥ १ ॥ वही बाह्य पदार्थोंके अनुभवरूप दृढ अभ्याससे बाहर जगत्के आकारमें स्फुरित होताहै, इसमें अपना स्वप्नही दृष्टांत है ॥ २ ॥ यह सब जगत् चित्काही कल्पितरूप है, और चित् आकाशसेभी निर्मल है इसलिये घृतकी कठिनताके तुल्य चित्ही यह सब अपने आत्मामें रूप धारण करती है इसलिये सब चिद्रूपही है ॥ ३ ॥ न नाश है, न अनेक पदार्थ है न जन्ममरण है, न आकाश है, न शून्यता है और न अनेकता है किंतु अधिष्ठानरूपसे सब ब्रह्मही है और पदार्थोंके रूपसे नहीं है ॥ ४ ॥

नाशेजगदहंत्वादेर्नकिंचिदपिनश्यति ॥ असतःकिलनाशोपिस्वप्नादेःकिंनुनश्यति ॥ ५ ॥ मिथ्यावभासेसंकल्पनगरेकैवनष्टता ॥ तथाजगदहंत्वादौनाशोनासतिविद्यते ॥ ६ ॥ कुतोजगदुपालंभइतिचेत्तदवस्तुनि ॥ ननिर्णयःसंभवतिखपुष्पाणांकिमुच्यते ॥ ७ ॥ निर्णयएषएवात्रयदशेषमभावयन् ॥ यथास्थितंयदाचारंपाषाणइवतिष्ठसि ॥ ८ ॥

अर्थ—और असत् जगत् तथा अहंता आदिके नाशसे यथार्थमें कुछ नष्ट नहीं होता, क्योंकि स्वप्नादिमें पदार्थोंके नाशसे क्या नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ जैसे मिथ्या भासमान संकल्पके नगर आदिके नाशमें क्या नष्टता (मिथ्या) है, ऐसेही असत् जगत् अहंता आदिकाभी यथार्थमें नाश नहीं है ॥ ६ ॥ यदि यह कहा कि असत् जगत्की त्यागनेके अर्थ निन्दा तथा शास्त्रसे उसका निर्णय भी क्यों किया जाताहै, सो सत्य है, क्योंकि आकाशके पुष्पोंके तुल्य असत् वस्तुकी निन्दा वा निर्णय क्या होसकताहै ॥ ७ ॥ परन्तु शास्त्रोंमें जगत् निन्दा तथा निर्णय असत्कोभी सत्के समान कल्पना करके इसलिये किया जाताहै शास्त्र, आचार तथा संप्रदाय आदिके अनुकूल इसको जानकर सबको मिथ्या समझते हुये पाषाणके तुल्य क्षोभ तथा वासनादि रहित स्थित रहो ॥ ८ ॥

जगत्संकल्पमात्रात्मतत्रतेर्थयुतंक्षणात् ॥ शाम्यत्यशेषेणेत्येवनिर्णयःसर्गविभ्रमे ॥ ९ ॥ सर्गेनर्गलएवायंब्रह्मात्मकतयाक्षयः ॥ अन्यथातुनसर्गोयमस्तिनास्तिचसंतिवा ॥ १० ॥ येषांचविद्यतेसर्गःस्वप्नपुंसामिवासताम् ॥ ससर्गःपुरुषास्तेचमृगतृष्णांबुवीचिवत् ॥ ११ ॥ असतामेवसद्भावमिवयेषामुपेयुषाम् ॥ नवयंनिर्णयंविद्मोवंध्यापुत्रगिरामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—इसी सृष्टिके निर्णय करनेका फल यही है कि सांसारिक पुरुषार्थके आससेयुक्त संकल्पमात्र तुमारा यह जगत् संपूर्णरूपसे शीघ्रही शांत होजाय ॥ ९ ॥ और इस सृष्टिका पुनः न उत्पन्न होगा मूलच्छेदन ब्रह्मके ज्ञानसेही होताहै, और इस विरुद्ध सुषुप्ति प्रलय आदिके क्षयमें यह जगत् बीजरूपसे रहताहै कार्य्यरूपसे नहीं रहता, अथवा ऐन्दवके उपाख्यानकी रीतिसे अनेक ब्रह्मांड बने रहतेहैं ॥ १० ॥ और स्वप्नके पुरुषके तुल्य जिन असत् पुरुषोंकी दृष्टिमें यह सृष्टि है, वह सृष्टि तथा वे पुरुष मृगतृष्णाके जलके तरंगके समान हैं अर्थात् प्रलयके संकल्प करनेवालेकी दृष्टि वे मिथ्या हैं क्योंकि अपने संकल्पित जगत्का नाश होनेसे प्रलय व्यवहारहै ॥ ११ ॥ और जो असत् पदार्थोंकाही सद्भाव मानतेहैं, वन्ध्यापुत्रकी वाणीके समान हमलोग उनका निर्णय नहीं जानते अर्थात् जीव जगत् आदि पदार्थ अनिर्वचनीय हैं ॥ १२ ॥

परिपूर्णार्णवप्रख्याकाप्यपूर्वैवपूर्णता ॥ तज्ज्ञानांद्रष्टृदृश्यांशदृष्टौनह्निपतंतिते ॥ १३ ॥ अचलाइवनिर्वातादीपाइवसमत्विषः ॥ साचारावानिराचारास्तिष्ठंतिस्वस्थमेवते ॥ १४ ॥ आपूर्णैकामिवप्रख्याकाप्यंतःपूर्णतोदिता ॥ अंतःशीतलताज्ञस्विज्ञस्यापूर्वैवलक्ष्यते ॥ १५ ॥ वासनैवेहपुरुषःप्रेक्षितासानविद्यते ॥ तांचनप्रेक्षतेकश्चित्ततःसंसारआगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—परिपूर्ण समुद्रके समान चिदानन्दकी अपूर्व पूर्णता ज्ञानियोंकी रहती है क्योंकि वे द्रष्टा तथा दृश्यकी दृष्टियें नहीं गिरते ॥ १३ ॥ पर्वतके तुल्य अकंपनीय, निर्वात स्थानके दीपके तुल्य सदा सम प्रकाशमय तथा आचाररहितभी आचारसहितके समान ज्ञानीजन सदा स्वस्थही रहते हैं ॥ १४ ॥ ज्ञानीके हृदयमें पूर्णसमुद्रके समान अपूर्व पूर्णता, तथा ज्ञानरूप शीतलता उदय होती है ॥ १५ ॥ और अज्ञानी पुरुष तो वासनारूपही है, और विचारसे देखनेमें वासना नहीं रहती, उसको कोई नहीं देखता इसलिये संसार उपस्थित हुआ ॥ १६ ॥

अनालोकनसिद्धंयत्तदालोकान्नविद्यते ॥ कृष्णाद्यनुपलंभोत्रदृष्टांतःस्पष्टचेष्टितः ॥ १७ ॥ भूतानिदेह मांसादितच्चासद्विभ्रमोजडः ॥ बुद्ध्यअहंकारचेतांसितन्मयान्येवनेतरत् ॥ १८ ॥ भूतादिमयतांत्य क्त्वाबुद्ध्यअहंकारचेतसाम् ॥ अत्यंतंस्थितिरभ्येतियदितन्मुक्ततोदिता ॥ १९ ॥ चिदूश्लिष्टाचेत्यनि ष्टत्वात्ताद्दृश्येवात्रकास्तिता ॥ तस्मात्केवकुतःकुत्रवासनाकिंस्वरूपिणी ॥ २० ॥

अर्थ—जो वस्तु प्रकाश (आत्मप्रकाश) के बिना भान होती है वह प्रकाशसे नहीं रहती, इसमें प्रत्यक्ष दृष्टान्त दिनमें अन्धकार तथा पक्षादिका अभावही है ॥ १७ ॥ देह मांस आदि स्थूलशरीर पंचीकृत भूतमय हैं और मन बुद्धि आदि सूक्ष्म शरीरभी अपंचीकृतमय तथा असद् जडरूप हैं ॥ १८ ॥ बुद्धि अहंकार तथा चित्तकी भूतादि-रूपताको त्यागकर अर्थात् मिथ्या निश्चय करके अत्यन्त स्वप्रकाश चिन्मात्रमें यदि स्थितिको प्राप्त करै तो उसकी मुक्ति होचुकी ॥ १९ ॥ विषयकी ओर उन्मुक्त चित् लिंगशरीररूप उपाधिमें यदि मिलित है तो उसकी वासनाभी शरीरके सदृश मिथ्या है सो मुक्तिदशामें उसका बाध होनेसे कैसी, कहांसे, कहांपर और किसप्रकारकी वासना हो-सकती है ॥ २० ॥

यस्यचैषभ्रमःसोसन्प्रेक्षयासन्नलक्ष्यते ॥ मृगतृष्णांबुवत्तेनसंसारःकस्यकःकुतः ॥ २१ ॥ तदेवंतर्हि तस्यस्यादितिचित्तोदयोहियः ॥ पुनःसएवसंसारविभ्रमःसंप्रवर्तते ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वमनाश्रित्य व्योमवत्समुपास्यताम् ॥ अपुनःस्मरणंश्रेयइहविस्मरणंपरम् ॥ २३ ॥ नेहद्रष्टानभोक्तास्तिनास्तितान चनास्तिता ॥ यथास्थितमिदंशांतमेकंस्पंदिसदाब्धिवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस जीवको यह संसारका भ्रम है वही असत् है और विचारदृष्टिसे मृगतृष्णाके जलके सदृश नहीं भान होता तब यह संसार किसको ॥ २१ ॥ इसलिये आत्मज्ञानके लिये प्रवृत्त यदि विषयका स्मरण करने लगा तो पुनः उसके चित्तका जो उदय होगा तब वही संसारका भय पुनः प्रवृत्त होजायगा ॥ २२ ॥ इसलिये सबको त्या-गकर आकाशवत् निर्मल आत्माकी उपासना करनी चाहिये क्योंकि पुनः स्मरण न होनेके लिये जो संसारका वि-स्मरण है उसीको मोक्षके लिये सिद्ध करना उचित है ॥ २३ ॥ न द्रष्टा है, न भोक्ता है, न अस्तिता है, तथा न नास्तिता है किंतु समुद्रके तुल्य पूर्ण, प्रारब्धसे प्राप्त बाधिततत्त्व वहांका निमित्त, तथा केवल आत्माही है ॥ २४ ॥

सर्वंदृश्यंजगद्ब्रह्मसदित्यवगतेस्फुटम् ॥ जलशोषादिवोदेतिबिंबबिंबिक्षयेशिवम् ॥ २५ ॥ शांतताव्यव हारोवारागद्वेषविवर्जितः ॥ विश्रांतस्यपरेतत्त्वेदृश्यतेसमदर्शिनः ॥ २६ ॥ अथवाशांततैवास्यनिर्वाण स्यावशिष्यते ॥ निर्वासनःकिलमुनिःकथंव्यवहरत्यसौ ॥ २७ ॥ यावत्त्वस्यनिर्वाणंपरिपोषमुपाग तम् ॥ तावद्व्यवहरत्यस्तरागद्वेषभवादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—सब दृशजगत् सत्ब्रह्मरूपही है ऐसा स्पष्टज्ञान होनेसे चिदाभास तथा उपाधि दोनों नाशसे शिवरूपता ऐसे उदय होती है जैसे जलके सूखनेपर प्रतिबिंबादिके नाशसे बिंबरूपता ॥ २५ ॥ परंपदमें विश्रांत तत्वज्ञानीको समाधि वा व्यवहार दोनों रागदेषसे रहित भान होतेहैं ॥२६॥ अथवा सप्तमभूमिकामें प्राप्त ज्ञानीकी शांत रूपताही शेषरहती है क्योंकि वासनारहित मुनि कैसे व्यवहार करसकताहै ॥ २७ ॥ जबतक सप्तम भूमिकामें विश्रांतिकी दृढता नहीं प्राप्त होती तबतक रागद्वेष तथा राहित ज्ञानी व्यवहार करताहै ॥ २८ ॥

वीतरागभयक्रोधोनिर्वाणःशांतमानसः ॥ शिलेवाप्यशिलीभूतोमुनिस्तिष्ठतिनित्यशः॥२९॥ कोशेऽस्ति पद्मबीजस्ययथासर्वाब्जिनीतथा ॥ अनन्यास्वप्नविभ्रांतिरात्मन्यस्तिनबाह्यता ॥ ३० ॥ बाह्यताभा वनाद्बाह्यमात्मैवात्मत्वभावनात् ॥ भवतीदंपरेतत्त्वेभावनंतत्तदेवहि ॥३१॥ यांतःस्वप्नादिविभ्रांतिःसैवे यंबाह्यतोदिता ॥ मनागप्यन्यतानात्रद्विभांडपयसोरिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—सप्तमभूमिकामें प्राप्त ज्ञानी राग द्वेष तथा क्रोधसे वर्जित, मोक्षरूप तथा शांतमन, मुनि चिद्रूप होनेपर भी पाषाणके समान नित्य निश्चल स्थित रहताहै ॥ २९ ॥ जैसे कमलके बीजमें सम्पूर्ण कमलिनी उससे अभिन्न रूपसे है ऐसेही स्वप्नकी भ्रांतिरूप यह जगत्की बाह्यरूपता आत्मामें अन्यरूपसे नहीं है ॥ ३० ॥ आत्माही बाह्य रूपताकी भावनासे बाह्यरूप होजाताहै और आत्माकी भावना करते आत्माही रहताहै, इसलिये ब्रह्ममें भावनाही बाह्यत्व तथा अभ्यन्तरत्व है ॥ ३१ ॥ जो अन्तःकरणमें स्वप्नकी भ्रांति है वही बाह्य जगत्रूपसे उदित है, दोपात्रोंमें स्थित दुग्धके समान स्वप्न तथा जाग्रत्में किंचित् भी भेद नहीं है ॥ ३२ ॥

स्थैर्यास्थैर्यंतथैवात्रभ्रांतिमात्रमयेतते ॥ आधाराधेयतेतेद्वेयथाजलतरंगते ॥ ३३ ॥ स्वप्नादावात्मनोन्य त्वज्ञानादन्यत्ववेदनम् ॥ अनन्यतावबोधेतुतदनन्यन्नचोदयि ॥ ३४ ॥ कलनारहितंशांतंयद्रूपंपरमा

त्मनः ॥ भवत्यसौतत्तद्भावादतद्भावान्नतद्भवेत् ॥ ३५ ॥ स्वप्नादिज्ञानसंशांतौयद्रूपंशुद्धमैश्वरम् ॥ नतदस्तिनतन्नास्तिनवाग्गोचरमेवतत् ॥ ३६ ॥ आत्यंतिकभ्रांतिलयेयुक्तएवावगच्छति ॥ स्वरूपंनोपदेशस्यविषयोविदुषोहितत् ॥ ३७ ॥ शांतंनिरस्तभयमानविषादलोभमोहात्मदेहमनइंद्रियचित्तजाड्यम् ॥ त्यक्त्वाहमक्षयमपास्तसमस्तभेदंनिर्वाणमेकमजमासितुमेवयुक्तम् ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणयुक्त्युपदेशवर्णनंनाम एकत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—और जाग्रत्‌के पदार्थोंकी स्थिरता और स्वप्नके पदार्थों की अस्थिरता भासती है वह भी भ्रांतिमात्रही है, और स्वप्नके शरीर आदि जाग्रत् आधार और स्वप्न आधेय है यह आधार तथा आधेयता जल तथा तरंग तुल्य अभिन्न है ॥ ३३ ॥ जैसे स्वप्नके पदार्थ आत्माके अज्ञानसेही भासते हैं, और आत्माके जाननेसे तो शीघ्र जाग्रत् होनेसे उनकी आत्मरूपताही शेष रहती है, ऐसेही शुद्धआत्माके ज्ञानसे जाग्रत्‌के पदार्थ भी आत्मरूप होजातेहैं ॥३४॥ कल्पनाओंसे रहित, और शान्त परमात्माकारूपही उन २ पदार्थोंकी भावनासे उन २ रूपमें होजाताहै, और भावना करनेसे उनका रूप नहीं होता ॥३५॥ स्वप्नादि ज्ञानके शांत होनेपर जो शुद्ध ईश्वरका रूप है उसको निरूपक देशकालके अभावसे अस्ति नहीं कहसके और स्वरूपका अबाध होनेसे नास्ति भी नहीं कहसकते इसलिये वह बाणीका विषय नहीं है॥३६॥ सर्वथा भ्रमके नाशको समाधिमें युक्त योगीही जानताहै, क्योंकि सर्व भ्रमका आत्मसाक्षात्कार उपदेशका विषय नहीं है यह कांताके संभोगके सुखके समान विद्वान्‌के अनुभवकाही विषय है उसमें शिष्यकी बुद्धिका प्रवृत्त करना उपदेशका फल है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! अहंकारको त्यागकर भय, मान, विषाद, लोभ मोह, देहइन्द्रिय मन तथा चित्तादि जडतासे रहित, शांत, और समस्त भेद शून्य निर्वाण ब्रह्मस्वरूप होके समाधिमें स्थित रहना योग्य है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे युक्त्युपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

साधु समागम, और सत्‌शास्त्रोंके विचार तथा उसके अनुसार अभ्यासमें तत्पर पुरुषका स्वाधीन मोक्ष अवश्य होगा यह विषय इस ३२ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदाचितिःप्रसरतितदाहंताजगद्भ्रमः ॥ असदवाभ्युदेतीवस्पंदादपिचवायुता॥१॥ उदितोपिनखेदायब्रह्मरूपत्ववेदनात् ॥ परमायत्वनर्थायजगच्छब्दार्थभावनात् ॥ २ ॥ रूपानुभवमादत्तेचक्षुःप्रसरणाद्यथा ॥ चितिःप्रसरणात्तद्वज्जगद्विभ्रममास्थिता ॥ ३ ॥ यासौप्रसरतिव्यर्थंचेत्याभावान्नसासती ॥ असत्कथंप्रसरतिवंध्यापुत्रःक्वनृत्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जब अविद्यासे आवृत्त चित् विषयोंमें व्याप्त होता है तब असद्रूपही अहंता आदि जगत्‌का भ्रम ऐसे उदय होताहै जैसे स्पन्दसे वायु ॥ १ ॥ उदित भी जगत्‌का भ्रम ब्रह्मरूपभावनासे दुःखके लिये नहीं होता, और जगत्‌के शब्द तथा अर्थरूपसे भावना करनेसे परम अनर्थके लिये होताहै ॥ २ ॥ जैसे नेत्रइन्द्रिय स्फुरणमात्रसे रूपके अनुभवको ग्रहण करती है ऐसेही चेतन स्फुरणमात्रसे जगत्‌के भ्रमरूपसे स्थित होती है ॥ ३ ॥ और जो चित् विषयकी ओर जाता है यह ज्ञान यथार्थ कूटस्थ चित्‌का गमनागमन होनेसे तथा यथार्थ विषयोंके अभावसे असत् है, क्योंकि बंध्याका पुत्र कहां नाचताहै ॥ ४ ॥

अयंत्वनुभवादेवमुधैवानुभवन्स्थितः ॥ असदेवाननुभवन्स्वयमर्भकयक्षवत् ॥ ५ ॥ अहंभावोपिदुःखार्थमहमित्येववेदनात् ॥ अवेदनान्नाहमतःस्वायत्तेबंधमुक्तते ॥ ६ ॥ तद्ध्यानंससमाधिर्वायदवेदनमासितम् ॥ अजडानांजडमिवसमंशांतमनामयम् ॥ ७ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्वाक्यसंदर्भविभ्रमैः ॥ माविषीदतदुःखायविबुधाअबुधाइव ॥ ८ ॥

अर्थ—यह चित्‌का प्रसरण अनुभवसेही सिद्ध है और वह अनुभव विद्यासे बाधित होनेसे तथा असत् पदार्थके अनुभवके अभावसे बालकके यक्षके अनुभवके तुल्य मिथ्याही स्थित है ॥५॥ इसीप्रकार आभ्यंतर अहंकारके

अनुभवसे अहंभाव दुःखकेही लिये होताहै और अनहंभावनासे अहंभाव नहीं होता, इसलिये बंध मोक्ष अपने स्वाधीन हैं ॥ ६ ॥ अजड मन, बुद्धि आदि पदार्थोंकी जड पाषाणके तुल्य बेध वेधनभावसे निर्मुक्त होके चिद्रूपमें एक होके स्थितिकोही ध्यान वा समाधि कहतेहैं ॥ ७ ॥ हे विद्यामानी पंडितजन! तुम मूर्खके समान द्वैत अद्वैत आदि वाणीके भ्रम कलहोंसे दुःखके लिये अपने कंठका शोषण करो, किंतु शुद्ध चिद्रूपमें स्थित रहो ॥ ८ ॥

असदाश्रयतेदुःखंस्वप्नवद्घनवासनः ॥ रूपालोकमनस्कारान्संकल्परचितानिव ॥ ९ ॥ दुःखसदेवना श्नातिसुप्तवत्तनुवासनः ॥ रूपालोकमनस्कारान्संकल्परहितानिव ॥ १० ॥ अत्यंततनुतामेत्यवासनैवैतिमुक्तताम् ॥ देशकालक्रियायोगात्पदार्थेभावनामिव ॥ ११ ॥ अत्यंततनुतांयातावासनैवैतिमुक्तताम् ॥ पराणुपरिणामेनखताखेभ्रादिकायथा ॥ १२ ॥

अर्थ—घनीभूत वासनासे ग्रस्त जीव संकल्प रचित स्वप्नके तुल्य बाह्य आभ्यंतर विषयोंको अनुभव करनेमें असत् दुःखको भोक्ताहै ॥ ९ ॥ सूक्ष्म वासनायुक्त जो संकल्परहित बाह्य आभ्यंतर विषयोंको मिथ्या जानकर प्रारब्ध कर्मसे प्राप्त विद्यमान दुःखकोही ऐसे नहीं अनुभव करता जैसे सुप्तपुरुष मच्छर आदिके दंशको ॥ १० ॥ देशकाल तथा क्रियाके योग (अभ्यास) से अति सूक्ष्म वासनाही मुक्तता दशाको ऐसे प्राप्त होती है जैसे पदार्थमें भावना ॥ ११ ॥ अत्यंत सूक्ष्म होनेसे वासनाही मुक्तिरूपताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे आकाशमें मेघ धूलि आदि अति सूक्ष्म परमाणुरूप होनेसे आकाशरूपताको ॥ १२ ॥

अहंभावनयाबोधेवासनाघनतानवा ॥ विपश्चित्संगमाभ्यासात्पांडित्यमिवमूढता ॥ १३ ॥ नाहमस्तीहमयुक्त्यानिश्चयोंतःशमात्मकः ॥ जीवतोजीवतश्चास्तिरूढबोधइतिस्मृतः ॥ १४ ॥ वायौद्वंद्वमिवात्रेदंजगदादिचभासते ॥ कोहंकथमिदंचेतिविचारेणैवशाम्यति ॥ १५ ॥ नाहमित्येवनिर्वाणंकिमेतावतिमूढता ॥ सत्संगमविचाराभ्यामेतदाश्ववगम्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—ब्रह्ममें अहंभावनाके अभ्याससे वासना सूक्ष्म होते २ मुक्तिरूप ऐसे होजाती है जैसे बुद्धिमान् पंडितसे विद्याका अभ्यास करते २ मूढता पांडित्यरूप ॥ १३ ॥ मैं शुद्ध साक्षी ब्रह्मरूपही हूं इस अभ्यस्तयोगसे शरीरधारी वा कैवल्यदशामें प्राप्त योगीको जब यह निश्चय होजाय कि अहं शब्दार्थ जीव नहीं तब शांतिरूप दृढ बोध कहाजाताहै ॥ १४ ॥ वायुमें संचलनके तुल्य जो यह द्वन्द्वरूप जगत्जीव भासताहै वह मैं कौनहूं और कैसे यह जगत् हुआ इत्यादि विचारसे शांत होजाताहै ॥ १५ ॥ मैं शरीर मन अहंतादिरूप नहीं हूं किंतु निर्वाण आत्माहूं, इतना जाननेमें कौनसी मूढताहै, क्योंकि सत् समागम और शास्त्रोंके विचारसे यह ज्ञान शीघ्रही होताहै ॥ १६ ॥

क्षीयतेतत्त्ववित्संगादहमित्येवबंधनम् ॥ आलोकेनेवतिमिरंदिवसेनेवयामिनी ॥ १७ ॥ कोहंकथमिदंदृश्यंकोजीवःकिंचजीवनम् ॥ इतितत्त्वज्ञसंयोगाद्यावज्जीवंविचारयेत् ॥ १८ ॥ जीवितंभुवनंभातिततोहमितिनश्यति ॥ तत्वमेकेनतज्ज्ञार्कसेवनात्सनिषेव्यताम् ॥ १९ ॥ योयोबोधातिशयवांस्तंतंपृथगुपास्वभो ॥ संगमेकथयोदेतितेषांवादपिशाचिका ॥ २० ॥

अर्थ—तत्वज्ञानी महात्माके समागमसे अहंभावरूप बंधन ऐसे क्षीण होजाताहै जैसे प्रकाशसे अंधकार वा दिवससे रात्रि ॥ १७ ॥ मैं कोनहूं, यह दृश्य कैसे है, जीव क्या है, और उसके प्राणोंका धारणभी क्या है इत्यादि विचार तत्वज्ञानीके संगसे जीवन (मोक्ष) पर्य्यन्त विचारना चाहिये ॥ १८ ॥ प्रथम तत्वज्ञानीरूप सूर्य्यके समागमसे ज्ञानद्वार यह संसार चेतनके सदृश भासताहै, पुनः अहंभावरूप अंधकार नष्ट होताहै अनंतर क्षणमेंही आत्मवस्तुका प्रकाश होताहै, इसलिये तत्वज्ञानीरूप सूर्य्यकी सेवा करनी चाहिये ॥१९॥ जो २ तत्वज्ञानी हों उन्हींको पृथक् करके सेवन करना चाहिये क्योंकि नैयायिक आदिके समागममें परस्पर विरुद्ध कथासे वादरूप पिशाचिका उदय होती है ॥ २० ॥

वादयक्षेप्यभ्युदितेबालस्येवविपश्चितः ॥ युक्तियुक्तमलंमुख्यमुदेत्यहमितिभ्रमः ॥ २१ ॥ अतःप्रत्येकमेकांतेप्राज्ञःसेवेतपंडितम् ॥ एकीकृत्यतदुक्तांस्तानर्थान्बुद्ध्याविचारयेत ॥ २२ ॥ विचारयेत्तदुक्त्यर्थंबुद्ध्याबुद्धिविवृद्धये ॥ सर्वसंकल्पमुक्त्यर्थंयत्तत्सत्तन्मयतांव्रजेत् ॥ २३ ॥ विपश्चित्संगमैर्बुद्धिंनीत्वापरमतीक्ष्णताम् ॥ अज्ञानलतिकासैकाकणशःक्रियतामलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और बालकके सदृश पंडितको भी वादरूप पिशाच उदय होनेसे श्रुतिविरुद्ध भी तर्कयुक्तिसे प्रतिपादित अहंप्रत्ययका विषय आत्मा मैं हूं ऐसा भ्रम उदय होताहै जिससे कि अन्धगोलांगुल न्यायसे अनर्थही प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ इसलिये बुद्धिमान्को उचितहै कि एक २ तत्वज्ञानी विद्वान्को सेवासे प्रसन्न करके एकांतमें उनसे प्रश्न

करै, और उनके कहे हुये अर्थोंको एकत्र करके बुद्धिसे विचारै ॥ २२ ॥ बुद्धिकी शुद्धिके लिये उनके कथित अर्थको शृति, युक्ति निज अनुभव तथा अन्य विद्वानोंके संवादसे विचारै, और पश्चात् निदिध्याससे सर्व संकल्पोंसे मुक्त ब्रह्मतन्मय होजाय ॥ २३ ॥ हे रामजी ! बुद्धिमान्को उचितहै कि विद्वानोंके समागमसे बुद्धिको तीक्ष्ण करके अज्ञानरूप लताको कण २ करडालै ॥ २४ ॥

एषोर्थःसंभवत्येवतेनेदंकथयाम्यहम् ॥ स्वानुभूतंवयंबालानासमंजसवादिनः ॥२५॥ व्योम्नोंबुवाहादि विजृंभयेवतरंगभंग्येवमहाजलस्य ॥ नयुज्यतेनापिचनश्यतीहनाशोदयौनिर्मननस्यकिंचित् ॥ २६ ॥ इदंहिसर्वंमृगतृष्णिकांबुवन्निरामयेब्रह्मणिशांतआतते ॥ विचारितेनाहमितीहविद्यतेकुतःककस्मान्म ननादिविभ्रमः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यावबोधनोपदेशो नाम द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—विद्वानोंके संगसे यह ज्ञानप्राप्तिरूप अर्थको संभव है इसलिये निजअनुभूत यह विषय मैं कहताहूं, क्योंकि हमलोग असंगतवादी बालक नहीं हैं ॥ २५ ॥ जैसे मेघ कुहिरा वा आतपआदिसे आकाशको और तरंगआदिसे समुद्रको अनिष्टकी प्राप्ति वा इष्टका नाश नहीं होता इसप्रकार ज्ञानीको जगत्के व्यवहारोंसे अनिष्टकी प्राप्ति वा इष्टका नाश नहीं होता ॥ २६ ॥ हे रामजी ! निरामय, पूर्ण शांत और सर्वव्यापक ब्रह्मके ज्ञानसे मृगतृष्णाके जलके समान यह सब जगत् जीवआदि पृथक् नहीं भासता, इसलिये तत्वज्ञानीको मननआदिका भ्रम कैसे होसकताहै

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यावबोधनोपदेशो नाम द्वात्रिंशः सर्गः ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

भ्रांतिकी कल्पना तथा प्रतिकल्पना, और चित्के स्फुरणके निरोधसे परलोकका उपाय इस ३३ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वपौरुषेणस्वधियासत्संगमविकासया ॥ यदिनानीयतेज्ञत्वंतदुपायोस्तिनेतरः॥१॥ स्वंकल्पितंकल्पितंचप्रतिकल्पनयास्वया ॥ तदेवान्यत्वमादत्तेविषत्वममृतंयथा ॥ २ ॥ कल्पनाचाकल्पनांतासुक्तायदकल्पनम् ॥ एतच्चभोगसंत्यागपूर्वंसिध्यतिनान्यथा ॥ ३ ॥ वचसामनसाचांतःशब्दार्थावविभावयन् ॥ यआस्तेवर्द्धतेतस्यकल्पनोपशमःशनैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यदि अधिकार योग्य शरीर पाकर पुरुषने अपने पुरुषार्थ तथा सत्संगद्वारा शुद्धबुद्धि आत्मज्ञान प्राप्त किया तो उसका उपाय अन्यथा नहीं है ॥ १ ॥ योगीकी शास्त्रीय प्रतिकल्पनेसे अशास्त्रीय तथा सब कल्पित वासना अविद्या आदि जगत् बंधन हेतुताको त्यागकर मोक्ष हेतुताको ऐसे धारण करताहै जैसे वैद्यक शास्त्रकी प्रतिकल्पनासे विष मरण हेतुताको त्यागकर अमृतरूपताको ॥ २ ॥ प्रतिकल्पना तबतक करनी चाहिये जबतक सब अल्पनाओंका सर्वथा अन्त न होजाय, और सब कल्पनाओंका अभाव भोगोंके त्यागके पूर्व नहीं सिद्ध होसकता ॥ ३ ॥ आत्मतत्वको जानकर मन तथा वाणी शब्दार्थकी अभावना प्रतिकल्पना करते मन वाणीका निरोध करते हुये जो अभ्यास करताहै उसके कल्पनाकी शांति धीरे २ बढती है ॥ ४ ॥

वर्जयित्वाहमित्येवनाविद्यास्तीतरात्मिका ॥ शांतेत्वभावनादस्मिन्नान्योमोक्षोस्तिकश्चन ॥ ५ ॥ अहंभावमथादेहंकिंचिच्छ्रयसिनश्यसि ॥ जगदादिरुचिस्तस्मिंस्त्यक्तेशाम्यसिसिध्यसि ॥ ६ ॥ अचेतनादिदंसर्वंसदेवासदिवस्थितम् ॥ शांतंयस्योपलस्येवनमस्तस्मैमहात्मने ॥ ७ ॥ अचेतनादिदंसर्वमुपलस्येवशाम्यति ॥ शून्याख्यातःपरालीनचित्तस्याचिरभावनात् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अनहंभावकी यह प्रतिकल्पना करना क्योंकि अहंभावसे अन्य अविद्या नहीं है और सब कल्पनाओंके आत्मसाक्षात्कार होनेसे अहंभावकी शांति होनेसे अन्य मोक्षपदार्थ नहीं है ॥ ५ ॥ और आत्मसाक्षात्कारके पश्चात्भी यदि पूर्वकालके जगत् जीवादिमें प्रीतियुक्त होके स्थूलदेहपर्यन्त किंचित् अहंभावका आश्रय करोगे तो नष्ट होजाओगे, और अहंकारको त्यागरूप प्रतिकल्पना करोगे तो शांत और सिद्ध होजाओगे ॥ ६ ॥ बहिर्मुख वृत्तिका अदर्शनरूप प्रतिकल्पनासे जिसको यह जगत् असत् तथा पाषाणके तुल्य शांत स्थितहै उस महा-

त्माको नमस्कार है ॥ ७ ॥ परब्रह्म लीन शून्यके समान चित्तकी बहिर्मुखता न होनेसे, तथा अभ्यन्तरसे चित्की भावनासे पाषाणके तुल्य यह जीव जगत्आदि सब प्रपंच शांत होजाताहै ॥ ८ ॥

इदमस्त्वथवामास्तुचेतितंदुःखवृद्धये ॥ अचेतितंसुखायांतरचेतनमचेतनात् ॥ ९ ॥ द्वौव्याधीदेहिनोघोरावयंलोकस्तथापरः ॥ याभ्यांघोराणिदुःखानिभुंक्तेसर्वैर्हिपीडितः ॥ १० ॥ इहलोकेयतंतेज्ञाव्याधौभोगैदुरौषधैः ॥ आजीवितंयथाशक्तिचिकित्सानापरामये ॥ ११ ॥ परलोकमहाव्याधौप्रयतंतेचिकित्सनम् ॥ शमसत्संगबोधाख्यैरमृतैःपुरुषोत्तमाः ॥ १२ ॥

अर्थ—यह मेरे लियेहो यह न हो यह कल्पना दुःखकी वृद्धिके लिये है और ब्रह्माकारभावनासे चित्तके निरुधरूप आभ्यंतरकी प्रतिकल्पना सुखके लिये है ॥ ९ ॥ यहलोक तथा परलोकरूप महाघोर व्याधि हैं जिनसे पीडित सब लोक महादुःख भोगताहै ॥ १० ॥ इसलोकके क्षुधा तृषा आदि व्याधिके लिये अन्नपान आदि दुष्ट औषधोंसे जीवनपर्य्यंत लोग यथाशक्ति यत्न करतेहैं, परंतु जन्ममरण और नरकादिरूप व्याधिके यत्न नहीं करते क्योंकि भोगादि उसके औषध नहीं है ॥ ११ ॥ और तत्वज्ञानी उत्तम पुरुष शम, सत्समागम तथा ज्ञानरूप अमृत तुल्य औषधोंसे परलोकरूप महाव्याधिके लिये यत्न करतेहैं ॥ १२ ॥

परलोकचिकित्सायांसावधानाभवंतिये ॥ मोक्षमार्गमहेच्छायांशमशक्त्याजयंतिते ॥ १३ ॥ इहैवनरकव्याधेश्चिकित्सांनकरोतियः ॥ गत्वानिरौषधंस्थानंसरुजःकिंकरिष्यति ॥ १४ ॥ इहलोकचिकित्साभिर्जीवितंयातुमाक्षयम् ॥ आत्मज्ञानौषधैरज्ञाःपरलोकश्चिकित्स्यताम् ॥ १५ ॥ आयुर्वायुचलत्पत्रलवांबुकणभंगुरम् ॥ परलोकमहाव्याधिर्यत्नेनाशुचिकित्स्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो जन भोगरूप कुपथ त्यागकर सत्समागमरूप औषधमें सावधान हैं वे शमरूप औषधकी शक्तिसे मोक्षमार्गकी महाइच्छामें विजय पातेहैं ॥ १३ ॥ जो इसी मनुष्यशरीरमें नरक आदि परलोककी औषध नहीं करता वह सत्संग तथा शास्त्रादि औषधसे शून्य नरक वा स्थावर आदि स्थानोंमें रोगसहित जाके क्या करेगा ॥ १४ ॥ हे अज्ञजन! इसलोककी क्षुधा तृषादिरूप व्याधिकी भोगादि चिकित्साओंमें अपने जीवनको नष्ट न करो, किंतु आत्मज्ञानरूप औषधोंसे परलोककी चिकित्सा करो ॥ १५ ॥ यह आयु चंचल पत्रके ऊपर जल कणके समान भंगुर है. इसलिये सत्संग आदि यत्नोंसे परलोकरूप महाव्याधिकी शीघ्र चिकित्सा करो ॥ १६ ॥

परलोकमहाव्याधौयत्नेनाशुचिकित्सिते ॥ इहलोकमयोव्याधिःस्वयमाशूपशाम्यति ॥ १७ ॥ संविन्मात्रंविदुर्जंतुंतस्यप्रसरणंजगत् ॥ परमाणूदरेप्यस्तितच्छैलशतविस्तरम् ॥ १८ ॥ यत्संविदःप्रसरणंरूपालोकमनांसितत् ॥ व्योमन्येवानुभूयतेनातःसत्योजगद्भ्रमः ॥ १९ ॥ प्रलयेष्वपिदृष्टेषुजगद्दृश्याख्यविभ्रमः ॥ ननश्यतिनजायेतभ्रांतिमात्रैकरूपिणः ॥ २० ॥

अर्थ—यत्नसे परलोकरूप महाव्याधिकी शीघ्र चिकित्सा होनेपर इसलोककी व्याधि आपही शीघ्र शांत होजाती है ॥ १७ ॥ चेतनमात्रही जीव है उसका स्फुरणही जगत् है, और वह चेतन परमाणुके भीतर भी अनेक पर्वत आदिके विस्तारसहित है ॥ १८ ॥ चित्का जो स्फुरण है वही बाह्यपदार्थ तथा मानसिक काम संकल्प आदि रूपसे चिदाकाशमें अनुभूत होतेहैं, इसलिये जगत्का भ्रम सत्य नहीं है ॥ १९ ॥ प्रलयमेंभी अन्यके संकल्पसे दृश्य जगत्का भ्रम रहताहै इसलिये भ्रांतिमात्र रूपवाले इस जगत्का प्रलयोंसे न कुछ नाश हो और सृष्टियोंसे न कुछ उत्पन्न हो ॥ २० ॥

भोगपंकार्णवेमग्नआत्मानोत्तार्यतेयदि ॥ स्वपौरुषचमत्कृत्यातदुपायोस्तिनेतरः ॥ २१ ॥ अजितात्माजनोमूढोरूढोभोगैककर्दमे ॥ आपदांपात्रतामेतिपयसामिवसागरः ॥ २२ ॥ जीवितस्ययथाबाल्यंदृष्टंप्राथमकल्पिकम् ॥ निर्वाणस्यतथाभोगसंत्यागोरागशांतिदः ॥ २३ ॥ तज्ज्ञस्यजीवितनदीसकल्लोलाप्यसंभ्रमा ॥ समंवहतिसौम्यैवचित्रसंस्थेवनीरसा ॥ २४ ॥

अर्थ—भोगरूप पंकके समुद्रमें डूबे हुये अपने आत्माका उद्धार जो अपने पुरुषार्थके चमत्कारसे नहीं करता उसके लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ २१ ॥ अजितेंद्रिय, और भोगरूपी कीचडमें निमग्न मूढजन सब आपत्तियोंका पात्र ऐसे होता जैसे अनेक नदीके जलोंका समुद्र ॥ २२ ॥ जैसे आयुका प्रथम कल्प बाल्यअवस्था है, ऐसेही रागोंकी शांतिका दायक भोगोंका त्याग निर्वाणका प्रथम कल्प है ॥ २३ ॥ ज्ञानीके लिये यह जीवनरूप नदी अनेक कामक्रोधादि तरंगोंसे युक्त होनेपरभी संभ्रमरहित, तथा नीर सचित्रमें लिखितके समान सौम्यरूपसे वहती है ॥ २४ ॥

अज्ञजीवितनद्यास्तुरसनात्यंतभीषणाः ॥ आवर्त्तावृत्तिविक्षोभकल्लोलाःसहवाहिनः ॥ २५ ॥ सर्गवर्गाःप्रवल्गंतिसंवित्प्रसरलेशकाः ॥ द्विचंद्रबालवेतालमृगांबुस्वप्नमोहवत् ॥ २६ ॥ संविद्दारितरंगो

घाभातिसर्गाःसहस्रशः ॥ विचारितास्त्वसत्यास्तेसत्यास्त्वनुभवभ्रमात् ॥ २७ ॥ जगंत्याकाशको शेपिसंवित्प्रसरणभ्रमात् ॥ संतीवाप्यनुभूयंतेनतुसत्यानितानितु ॥ २८ ॥

अर्थ—और अज्ञानीके जीवनकी नदीके साथ तो आक्रंदध्वनिसे भयंकर कामादि वृत्तिरूप आवर्तोंके विक्षोभमय तरंग वहतेहैं ॥ २५ ॥ और अज्ञानीके लिये चेतनके किंचित् स्फुरणरूप सृष्टियोंके समूह भ्रमसे ऐसे विस्तारको प्राप्त होतेहैं जैसे दो चन्द्रका भ्रम बालकके भूतादि, मृगतृष्णाका जल और स्वप्नके मोह ॥ २६ ॥ चेतनरूप समुद्रके तरंगोंके समूह जो अनेक सृष्टि भान होती है वे विचारसे असत्य हैं, और अनुभवके भ्रमसे सत्य भान होते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रसिद्ध भूताकाशमें चेतनके स्फुरणसे गंधर्वनगर आदि जगत् सत्यके समान अनुभूत होतेहैं परन्तु यथार्थमें वे सत्य नहीं हैं ॥ २८ ॥

संविद्विकासपयसोबुद्बुदःसर्गविभ्रमः ॥ अहमित्यादिसद्भावविकाराकाररूपवान् ॥ २९ ॥ संविन्निर्वाणमजगत्संविदुन्मीलनंजगत् ॥ नांतर्नबाह्यंनासत्यंनसत्यंसर्वमेवतत् ॥ ३० ॥ चिद्रूपमजमव्यक्तमेकमव्ययमीश्वरः ॥ स्वत्वभावत्वरहितंब्रह्मशांतात्मखादपि ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणोनिःस्वभावस्यसर्गसंवेदनेस्वतः ॥ स्पंदनेपवनस्येवकारणंनोपयुज्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—अहंभाव आदि पदार्थोंके विकारसे रूपवान् यह सृष्टिका भ्रम चेतनके स्फुरणरूप जलका बुद्बुद है ॥ २९ ॥ चेतनकी अन्तर्मुखताही सम्पूर्ण जगत्की निवृत्तिरूप निर्वाण है, और चेतनका बहिर्मुख होनाही यह जगत् है, यथार्थमें चेतन न आभ्यन्तर है, न बाह्य है, न असत्य है, और सबकुछ है ॥३०॥ चित, अज, अव्यक्त, अद्वितीय, अविनाशी, सब करनेमें समर्थ, मन बुद्धि आदि रहित, शांत, और आकाशसे भी निर्मल ब्रह्महै ॥ ३१ ॥ स्वभाव रहित ब्रह्मके स्वतः सृष्टिरूप स्फुरणमें वायुके संचलनके तुल्य कोई कारण नहीं है ॥ ३२ ॥

स्वप्नानुभववद्भ्रांतिर्ब्रह्माब्धौब्रह्मवीचयः ॥ सर्गतावस्तुतस्त्वत्रनस्वप्नेनचसर्गता ॥ ३३ ॥ एकमेवनिराभासमचित्त्वमजडंसमम् ॥ नसन्नासन्नसदसदिदमव्ययमद्वयम् ॥ ३४ ॥ यथास्थितस्यैवसतोयस्यासंवेदनात्मकम् ॥ संवित्प्रशमनंजातंतमाहुर्मुनिसत्तमम् ॥ ३५ ॥ सतोपिमृन्मयस्येवयस्यासंवेदनात्मकम् ॥ साहंजगद्विगलितंतमाहुर्मुनिसत्तमम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्वप्नके अनुभवके तुल्य ब्रह्मसमुद्रमें अनेक सर्ग (सृष्टि) रूप तरंग भ्रांतिरूपही हैं, और यथार्थमें न स्वप्न है न सृष्टि है ॥ ३३ ॥ एक आसरहित चित्तके भ्रमसे शून्य, जडतारहित, सर्वत्र समानरूप, न सत्, न असत्, और न सदसत् यह अविनाशी परमात्मा ब्रह्म है ॥ ३४ ॥ जिसकी स्थिति पूर्वोक्त ब्रह्मरूपसे है, उसीकी चित्तकी अन्तर्मुखता हुई, और वही श्रेष्ठमुनि है ॥ ३५ ॥ विद्यमान मृत्तिकाकी मूर्तिके सदृश चेष्टा रहित जिस पुरुषकी दृष्टिमें अनहंभावनासे अहंभाव सहित सब जगत् गलित होगयाहै उसको उत्तम मुनि कहतेहैं ॥ ३६ ॥

यथाशाम्यत्यसंकल्पात्संकल्पनगरंतथा ॥ वेदनोत्थंजगदहंचितिशाम्यत्यवेदनात् ॥ ३७ ॥ स्वभाववर्जैशब्दार्थाःसर्वएवसहेतुकाः ॥ स्वभावस्यतुयोहेतुर्मुक्तिस्तदनुभावनम् ॥ ३८ ॥ नकस्यचित्पदार्थस्यस्वभावोस्तीहकश्चन ॥ महाचिदंबुद्रवताःसर्वाएवानुभूतयः ॥ ३९ ॥ महाचिदनिलस्पंदाएताएवानुभूतयः ॥ एतास्ताब्रह्मगगनशून्यताइतिबुद्ध्यताम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे संकल्पसे उत्पन्न नगर संकल्पके अभावसे शांत होजाताहै, ऐसेही अहंभावसे उत्पन्न जगत् अनहंभावनारूप प्रतिकल्पनासे चेतनमेंही शांत होजाताहै ॥ ३७ ॥ सब वस्तुओंमें अनुगत स्वभावरूप जडता मूल अविद्या है, उसको छोडके सब नाम रूप पदार्थ सहेतुक हैं, और उस स्वभावकाभी जो हेतु अर्थात् साक्षीरूपसे जो साधक है उस साक्षीरूपसे स्थिति जीवकी मुक्ति है ॥ ३८ ॥ यथार्थमें किसी पदार्थका कोई स्वभाव नहीं है, किंतु महाचिद्रूप समुद्रकी द्रवता सब अनुभव हैं ॥ ३९ ॥ महाचिद्रूप वायुके स्पन्दमें सब जगत् आदि अनुभव हैं, इन सबको ब्रह्मरूप आकाशमें शून्यके समान जानो ॥ ४० ॥

वातस्पंदाविवाभिन्नौब्रह्मसर्गौविभिन्नता ॥ तयोस्त्वसत्यास्वभ्रांतौस्वप्नेस्वमरणोपमा ॥ ४१ ॥ भ्रांतिस्तुतावत्तत्त्वार्थविचारोयावदस्फुटः ॥ विचारेतुस्फुटेभ्रांतिर्ब्रह्मतामेवगच्छति ॥ ४२ ॥ भ्रांतिस्त्वसत्यावस्त्वेवप्रेक्षयातोनलभ्यते ॥ शशशृंगवदत्यच्छमतोब्रह्मैवशिष्यते ॥ ४३ ॥ अनादिमध्यामनंतमच्छंसमंशिवंशाश्वतमेकमेव ॥ सर्वाजरामोहविकारभ्रांतिविमुच्यांबरभावमेहि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यार्थोपन्यासयोगो नाम त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—पवन तथा उसके संचलनके तुल्य ब्रह्म और सृष्टि अभिन्नरूप है, और उनका भेद स्वप्नमें निज मरणके समान भ्रांतिरूप मिथ्या है ॥ ४१ ॥ और जब आत्मतत्वका विचार स्पष्ट नहीं होता तबतक यह भ्रांति रहती है, और आत्माका साक्षात्काररूप विचार स्पष्ट होनेपर भ्रांतिभी ब्रह्मरूप होजाती है ॥ ४२ ॥ भ्रांतिमें जो सत्ताकी स्फूर्तिरूप अंश है वही ब्रह्मरूपताको प्राप्त होताहै उससे भिन्न शशशृंगके तुल्य अवस्तु विचारसे नहीं उपलब्ध होताहै इसलिये निर्मल ब्रह्महो शेष रहताहै ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! तुम देहके सम्बन्धसे प्राप्त जरामोहादि विकाररूप भारमय भ्रांतिको त्यागकर आदि अंत तथा मध्यरहित, निर्मल, सम, शिव, नित्य तथा एकब्रह्माकाश भावको प्राप्त होओ ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यार्थोपदेशयोगो नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुःस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

दृष्टि सृष्टिमात्र जगत् है, उसका विचारसे नाश होताहै, इस प्रचलित विषयमें युक्तियोंका वर्णन इस ३४ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्राप्तेषुसुखदुःखेषुयोनश्यतिसनश्यति ॥ योननश्यत्यनाशोसावलंशास्त्रोपदेशनैः ॥ १ ॥ यस्यचेच्छोदयस्तस्यसंत्यवश्यंसुखादयः ॥ तेचेत्सम्यक्चिकित्स्यंतेपूर्वमिच्छैवमुच्यताम् ॥ २ ॥ अहंजगदिदंभ्रांतिर्नास्त्येवपरमेपदे ॥ इदंशांतमनालंबंसर्वनिर्वाणमव्ययम् ॥ ३ ॥ अहंब्रह्मजगच्चेतिशब्दसंभ्रमविभ्रमः ॥ सर्वस्मिञ्छांतआकाशेकेननामोपकल्पितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! प्राप्त सुखदुःखोंमें अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप त्रिपुटीमें जो नष्ट नहीं होता वह कदापि नष्ट नहीं होता, जो साक्षीरूपसे एकरूप सदा विद्यमान एकरूप आत्मा नष्ट नहीं होता यही त्रिपुटीसे भिन्न अविनाशी आत्मा है, इससे अधिक शास्त्रोंके उपदेश व्यर्थ हैं ॥१॥ जिसको विषयकी इच्छाका उदय होताहै उसको सुखदुःख अवश्य हैं न कि शुद्धआत्माकी यदि उनकी चिकित्सा करनी है तो सबसे पूर्वइच्छाहीको त्यागो ॥ २ ॥ और शुद्धपरमपदमें अहंजगत् तथा इच्छादि भ्रम नहीं है यह तो सर्वथा शान्त, निराधार, और अविनाशी पूर्ण निर्वाणरूप है ॥ ३ ॥ अहम् ब्रह्म, तथा यह जगत् इत्यादि शब्दोंका भ्रम सर्वथा शान्त चिदाकाशआत्मामें किसने कल्पित कियाहै ॥ ४ ॥

नेहास्त्यहंनचजगन्नचब्रह्मादिशब्दकाः ॥ शांतस्यैकस्यसर्वत्वात्कर्त्ताभोक्तेहकःकुतः ॥५॥ उपदेश्यातिशायित्वात्सर्वापह्नवएवच ॥ कुतोयंसचसत्यात्मातएवाहंविशिष्यते ॥ ६ ॥ अग्रस्थसिद्धसंचारोज्ञायतेनापिदारुणः ॥ यथैकपार्श्वसंसुप्तनरःस्वप्नाभ्रगर्जितम् ॥ ७ ॥ ज्ञप्तौनास्तियतस्तेनसिद्धाचारोनलक्ष्यते ॥ स्वभावइतिसर्वेणज्ञप्तिस्थोह्यनभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—न इस आत्मामें अहंभाव है, न जगत् है और न ब्रह्मआदि शब्दकी प्रवृत्ति है तो सर्वरूप आत्मामें कर्तृता भोक्तृता कैसी और कहांसे होसकती है ॥ ५ ॥ सबके अल्पलाभसे जो उपदेश साक्षी तथा सत्यब्रह्म सब मिथ्या पदार्थोंसे पर होनेसे शेष रहताहै ॥ ६ ॥ और अदर्शनमात्रसे जगत् ऐसे नहीं भान होता जैसे सन्मुख स्थित सिद्धोंका वा पिशाचोंका दारुण संचार, अथवा शय्याके एकभागमें सुप्तमनुष्यको स्वप्नमें मेघकी गर्जना ॥ ७ ॥ अपने ज्ञानमें नहीं है इसलिये सिद्ध आदिका संचार नहीं भान होता, क्योंकि सब द्रष्टा अपने ज्ञानमें स्थित पदार्थोंकोही अनुभव करताहै यह स्वभाव प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

ज्ञप्तिरप्यात्मभूतैवसर्वभातिहितन्मयम् ॥ तस्मात्साहंजगत्सर्वमभिन्नंपरमात्मनः ॥ ९ ॥ ज्ञप्तिर्जगत्तयाभातिसंकल्पस्वप्नयोरिव ॥ अनानावयवोदेतिजलमूर्मितयायथा ॥ १० ॥ एकात्मैवोदयेज्ज्ञप्तेर्नानातामिवचागतः ॥ अज्ञानात्सत्त्ववस्तुत्वात्प्रेक्षितोनोपलभ्यते ॥ ११ ॥ यथास्वावयवानेवसर्वानवयवीभवेत् ॥ नित्यानवयवंशांतंब्रह्मैवेदंतथाजगत् ॥ १२ ॥

अर्थ—यथार्थमें ज्ञप्ति (ज्ञान) आत्मरूपही है क्योंकि सबकुछ ज्ञानमय भासताहै, इसलिये अहंकार आदि सब जगत् परमात्मासे अभिन्नरूपही है ॥ ९ ॥ संकल्प वा स्वप्नके तुल्य ज्ञानही अनेकतारहितभी जलतरंगवत् नानाअवयवसहित जगत्‌रूपसे भासताहै ॥ १० ॥ एकआत्माही ज्ञानरूपसे अज्ञात होनेसे अनेकरूपमें प्राप्तके सदृश

भासताहै, परन्तु वह नानारूप विचारदृष्टि देखनेसे नहीं उपलब्ध होता ॥११॥ जैसे निरवयवभी जीव स्वप्न मनोरथ आदिमें हस्तपाद आदि निज अवयवोंकी कल्पना करता हुआ अवयवी बनजाताहै ऐसेही ब्रह्मभी जगत्‌रूप होजाताहै १२

भांडलक्षाणिधत्तेताश्चिद्रूपकनकोष्ठिका ॥ यदेवसाचेतयतेजगदादीववेत्तितत् ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवकचतीवेदंसत्तयाच्छजगत्तया ॥ चिद्रूपत्वाद्द्रवात्मत्वात्तरंगादितयाब्धिवत् ॥ १४ ॥ यद्यच्चेतयतेतत्स्तुजगदादीवपश्यति ॥ अरूपमपिरूपंस्वंयन्नचेतयतेननतत् ॥ १५ ॥ चेतनाचेतनत्वोक्तीतस्येशत्वात्स्वदेहगे ॥ उपदेशार्थमेवोक्तेनसद्विषयमर्थतः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चिद्रूपा कुंभकारी अनेक जगत्‌रूप पात्रोंको अपने आत्माधार करती है उनमेंसे जो स्मरण करती है उसको अनुभव करती है ॥ १३ ॥ चिद्रूप होनेसे ब्रह्मही अपनी स्वच्छ सत्तादि जगत्‌रूपसे ऐसे भासताहै जैसे द्रवरूप होनेसे समुद्र तरंगरूपसे ॥ १४ ॥ रूपरहित भी चेतन जिस २ जगत्‌आदि वस्तुका स्मरण करताहै उसी २ को देखताहै और जिसका स्मरण नहीं करता उसको नहीं देखता ॥ १५ ॥ और मायाशबलित ब्रह्मके सर्वशक्ति युक्त मायारूप देहमें चेतनत्व तथा अचेतनत्व कथन मैंने उपदेशकेही लिये किये हैं और यह कथन शुद्धआत्माके विषयमें नहीं है ॥ १६ ॥

नजगत्सन्नचैवासद्भासतेचेतनाचिति ॥ अचेतनान्नकचतिकइवार्थग्रहोत्रनः ॥ १७ ॥ अचेतनंचेतनंचस्पंदास्पदवदात्मनः ॥ स्वायत्तेनकदर्थस्थेस्वस्थपाषाणवत्स्थिते ॥ १८ ॥ यस्येक्षितस्यनोसत्तानाधारोनचकारणम् ॥ सोहमित्येवयोयक्षोनजानेकुतउत्थितः ॥ १९ ॥ यस्याहमितियक्षस्यसत्तैवास्तिनसत्यतः ॥ अहोनुचित्रंतेनेमेभवंतोविवशीकृताः ॥ २० ॥

अर्थ—यह जगत् न सत् न असत् है, चेतनकी स्फुरणसे भासताहै और चेतनकी स्फुरण न होनेसे नहीं भासता, तो इस मिथ्या जगत्‌में क्या आस्था करनी चाहिये? ॥ १७ ॥ चित् आत्मामें स्फुरण तथा अस्फुरण परिश्रम साध्य ऐसे नहीं है जैसे निश्चल स्फटिकमणिमें प्रतिबिंबोंका ॥ १८ ॥ विचारदृष्टिसे जिसे देखनेसे न सत्ता न आधार और न कारण भासताहै वह अहंकाररूपी पिशाच न जाने कहांसे आविर्भूत है ॥ १९॥ जिस अहंकाररूप पिशाचकी यथार्थमें सत्ता नहीं है उसीने आप सबको विवश करादिया है यह आश्चर्य्य है ॥ २० ॥

काकतालीयवद्भ्रांतमहंब्रह्मणिभासते ॥ स्वमेवरूपंदृग्भ्रांतत्तौकेशोंड्रकमिवांबरे ॥ २१ ॥ ब्रह्मैवाहंजगच्चात्रकुतोनाशसमुद्भवौ ॥ अतोहर्षविषादानांकिंत्वेवकथमास्पदम् ॥ २२ ॥ सर्वेश्वरत्वादीशस्यविभातीदंप्रचेतितम् ॥ अचेतितंचनोभातितेनाचेतितमस्तुते ॥ २३ ॥ काकतालीयवच्चित्वाज्जगतोभातिब्रह्मखम् ॥ स्वप्नसंकल्पपुरवत्तत्तस्माद्विद्यतेकथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अकस्मात् भ्रमसे ब्रह्ममें अपनाही रूप अहंभाव न होके ऐसे भासताहै जैसे दृष्टिका भ्रम होनेसे आकाशमें केशआदि ॥ २१ ॥ सबकुछ ब्रह्मही है तब इसमें अहंभाव जगत् तथा उसका नाश और उत्पत्ति कैसे कहांसे होसकती हैं, इसलिये हर्ष शोकादिका क्या विषय है ॥ २२ ॥ परमात्माके सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् होनेसे उसके स्मरणमात्रसे यह सब विचित्रजगत् भासताहै, और न स्मरण करनेसे नहीं भासता, इसलिये तुमको इसका विस्मरण हो ॥ २३ ॥ यथार्थमें जगत्‌भी चिद्रूप होनेसे चिदाकाशही स्वसंकल्प रचित नगरादिके तुल्य जगत्‌रूपसे भासताहै तो इसकी विद्यमानता कैसे होसकती है ॥ २४ ॥

यथोर्म्यादिजलेवृक्षेयथावाशालभंजिका ॥ यथाघटादयोभूमौतथाब्रह्मणिसर्गता ॥ २५ ॥ अनाकृतावसंस्थानेस्वच्छेयदनुभूयते ॥ तत्तदेवातउदितंकिंनामाहंजगंतिकिम् ॥ २६ ॥ मरुतःस्पंदवैचित्र्यंसत्तयैवयथातथा ॥ ब्रह्मणोनिःस्वभावस्यजगदाद्यहमादिच ॥२७॥ यथाभ्रेलक्ष्यतेवृक्षगजवाजिमृगादिता ॥ असन्निवेशाकृतिनिसर्गाहंतेतथापरे ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे जलमें तरंगआदि, काष्ठमें मूर्ति और भूमिमें घटआदि हैं ऐसेही ब्रह्ममें यह सृष्टि है ॥ २५ ॥ अवयवशून्य निर्मल ब्रह्ममें जो जगत्‌का अनुभव होताहै वह ब्रह्मही उस रूपसे उदित है, तब अहंकार वा जगत् क्या (मिथ्या) हैं ॥ २६ ॥ जैसे पवनकी सत्ताही स्पन्दकी विचित्रता भासताहै, ऐसेही अविद्याआदि स्वभावशून्य ब्रह्मकी सत्तासेही अहंभाव तथा जगत्‌आदि प्रपंच भासताहै ॥ २७ ॥ जैसे वृक्षादिके आकारसे शून्य मेघपटलमें वृक्ष, गज, अश्व, तथा मृगआदिके आकार भासतेहैं, ऐसेही आकारशून्य ब्रह्ममें सृष्टि तथा अहंकारादि भासतेहैं ॥ २८ ॥

सर्गोवयववद्भातिसर्वएवपरेशिवे ॥ एवंतद्रूपमांविद्धिकार्यकारणवद्यथा ॥ २९ ॥ अंतःशांतमनायासम नुपाधिगतभ्रमम् ॥ जगत्यसंभवादेवव्योमवत्सममास्यताम् ॥ ३० ॥ नभवंतोनचवयंनजगंतिनखा दयः ॥ संतिशांतमशेषेणब्रह्मेदंनिर्भरंस्थितम् ॥ ३१ ॥ अशेषेष्वविशेषेषुशांताशेषविशेषता ॥ सत्या सैवाहमित्याशुत्यक्त्वामोक्षायभाव्यताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी! जैसे सूक्ष्म वट आदिके बीजसे वृक्षशाखादि भासतेहैं ऐसेही परम सूक्ष्म शिवरूप परमात्मामें यह जगत् भासताहै ॥ २९ ॥ हे रामजी! आत्मरूपसे भिन्न जगत्का असंभव होनेसे अन्तमें शांत, अनायास और उपाधि तथा भ्रमसे रहित आकाशवत् स्थित रहो ॥ ३० ॥ हे सभ्यगण ! यथार्थमें न आप सब हैं, न हम हैं, न ये जगत् हैं, और न आकाशादि हैं, किंतु सर्वथा शांत और पूर्णब्रह्मही यह सबकुछ है ॥ ३१ ॥ चित्से भिन्न सब पदार्थोंका निरुपण नहीं होसकता इसलिये सब पदार्थोंमें विशेष भ्रमको त्यागकर मोक्षके अर्थ शांत सर्व विशेषता तथा सत्य चिद्रूप मैं हूं ऐसी भावना करो ॥ ३२ ॥

वेदनंबंधनंविद्धिविद्धिमोक्षमवेदनम् ॥ यथास्थितंयथाचारंभवशांतमवेदनम् ॥ ३३ ॥ द्रष्टानदृश्यतांया तिचितिर्नायातिचेत्यताम् ॥ चेत्याभावादजगतिकःकिंचेतयतेकथम् ॥ ३४ ॥ द्रष्टृदृश्यदशाभावाज्जाग्र त्येवसुषुप्तिवत् ॥ शरदाकाशकोशाभमसत्तोपममास्यताम् ॥ ३५ ॥ तथैकब्रह्मचिद्रूपेपवनस्पंदनेयथा॥ अत्राचिद्बोधतासर्गोमोक्षोब्रह्मैकबोधता ॥ ३६ ॥

अर्थ—जगत्के स्मरणको बन्धन और उसके विस्मरणको मोक्ष जानो इसलिये विद्वानोंके आचारके अनुसार भूमिकाओंके अभ्याससे जगत्को विस्मरण करके शांत ब्रह्मरूप होजाओ ॥ ३३ ॥ द्रष्टा दृश्यरूप नहीं होसकता, और चेतन जड विषयरूप नहीं होसकता तब विषयके अभावसे जगत्रहित शुद्धचित्में कौन और किसको बिताताहै ॥ ३४ ॥ द्रष्टा तथा दृश्यकी दशाके अभावसे जाग्रत्मेंही सुषुप्तिके समान, शरत्कालके आकाशके तुल्य निर्मल और शून्यके सदृश शुद्ध आत्मरूपसे स्थित रहो ॥ ३५ ॥ एक चेतनमें वायुके स्पंदके तुल्य भेददृष्टि है, और इस जगत्में चिदचित्का भेद ज्ञानही सृष्टि है और जगत् जीवादि पदार्थोंका ब्रह्ममें एकता ज्ञान मोक्ष है ॥ ३६ ॥

चित्स्पंदोब्रह्ममरुतोयत्रसर्गइतिस्मृतः ॥ नात्रचित्स्पंदनंयत्स्यान्निर्वाणंतदुदाहृतम् ॥ ३७ ॥ बीजमंतर्य थावेत्तिस्वरूपंपल्लवादिकम् ॥ तथामहाचिदंतस्थंस्वरूपंवेत्तिसर्गताम् ॥ ३८ ॥ पत्रादिवेदनाद्बीजंय थापत्रादितिष्ठति ॥ पराचित्सर्गसंवित्तिस्तथाभवतिसर्गता ॥ ३९ ॥ यथाभावविकाराभाश्चित्पराःस र्गतास्तथा ॥ सर्वेबीजानिदृष्टांतास्तद्रूपाएवतन्मयाः ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मरूप पवनमें जहां चित् स्पंद है वहांही सृष्टि है और चित्का स्पंद न होनाही निर्वाण कहागयाहै ॥ ३७ ॥ जैसे बीज अपने भीतर हो निजरूपको पल्लवआदिरूपसे अनुभव करताहै ऐसेही महाचित् अपने आभ्यंतररूपको सृष्टिरूपसे अनुभव करताहै ॥ ३८ ॥ जैसे बीज पत्र आदिका अनुभव करनेसे पत्रआदिरूपसे स्थित होताहै ऐसेही महाचित् सृष्टिका अनुभव करनेसे सृष्टिरूपसे स्थित होती है ॥ ३९ ॥ जैसे बीजके वृक्षरूपमें उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि तथा अपक्षय आदि षट्विकार भासतेहैं ऐसेही चित्के विवर्तरूप सृष्टिमें हैं, और दृष्टांतभूत बीज भी उनके आकारमें चित्केही स्थित होनेसे सब बीजादि सृष्टि चिन्मय ॥ ४० ॥

निर्विकारपरब्रह्ममयंसर्वमिदंजगत् ॥ निर्विकारमनाद्यंतमेवंविद्धिनिरामयम् ॥ ४१ ॥ निजसंकल्पमा त्रात्मानिजसंकल्पनात्क्षयी ॥ द्वैताद्वैतविकारोयंसंकल्पनगरंयथा ॥ ४२ ॥ शून्यत्वाकाशयोर्भेदोयादृ शोवगतस्त्वया ॥ भेदंनिरात्मकंविद्धितादृशंब्रह्मसर्गयोः ॥ ४३ ॥ महाचिद्रूपिणीशांतायासत्ताब्रह्मणः पुरा ॥ स्वतःसेयमहंत्वंचमानवोस्मीत्यबोधतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी! निर्विकार परब्रह्ममय यह सब जगत् है, इसलिये इसको भी आदि अंत शून्य, निर्विकार तथा निरामय ब्रह्मरूपही जानो ॥ ४१ ॥ संकल्पके नगरके तुल्य यह द्वैतअद्वैतके विकारमय जगत् अपने संकलपमात्रसे सिद्ध है और संकल्पके अभावसे विनाशी है ॥ ४२ ॥ जैसे शून्यता और आकाशका भेद स्वरुपरहित तुमने निश्चय कियाहै ऐसेही सृष्टि तथा ब्रह्मका भी भेद स्वरुपरहित तुम जानो ॥ ४३ ॥ जो पूर्वसिद्ध महाचित्रूपिणी ब्रह्मकी सत्ता है, वही ब्रह्मके अज्ञानसे मैं मनुष्य हूं इस आकारसे अहंता तथा संसारता रूपसे स्थित है ॥ ४४॥

ब्रह्मण्यस्मिन्जगद्रूपेनकिंचिदपिजायते ॥ जातमप्यथनष्टंचननश्यत्यंबुवीचिवत् ॥ ४५ ॥ पदार्थब्रह्म रूपेणब्रह्मैवात्मनितिष्ठति ॥ अवयवीवावयवेस्वेस्वंवारीववारिणि ॥ ४६ ॥ निमेषादर्धभागेनदेशाद्देशात

रस्थितौ ॥ यद्रूपंसंविदोमध्येसस्वभावउपास्यताम् ॥ ४७ ॥ संक्षुब्धमक्षुब्धमितिद्विरूपंसंवित्स्वरूप प्रवदंतिसंतः ॥ श्रेयःपरंयेनसमीहसेत्वंतदेकनिष्ठोभवमाऽमतिर्भूः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—ब्रह्मरूप इस जगत्में उत्पन्न यथार्थ कुछ उत्पन्न नहीं होता और नष्ट भी कुछ ऐसे नष्ट नहीं होता जैसे जलमें तरंग ॥ ४५ ॥ पदार्थरूपसे वा ब्रह्मरूपसे स्थित ब्रह्म अपने स्वरूपमें अविकृतरूपसे ऐसे स्थित रहताहै जैसे वृक्ष अपने अवयवमें, आकाश आकाशमें और जल जलमें ॥ ४६ ॥ निमेषके अर्द्धभागमे भूतलसे सूर्य्यमण्डल आदि देशमें जो ज्ञानकी सत्ता जाती है उन दोनों (भूतल तथा सूर्य्य) के मध्य जो निर्विषयज्ञानका रूप है उसकी उपासना करो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! विवेकी जन अज्ञानियोंके अनुभवसे सिद्ध विवर्त जगत्‌रूपसे संक्षुब्ध, और विवर्त शून्य कूटस्थ क्षुब्ध, यह दोप्रकारका ब्रह्मकारूप कहतेहैं, इन दोनोंमें जिससे तुम अपना परम कल्यान समझो उसीमें तत्पर होजाओ, परन्तु विना परीक्षा किये ग्रहण करनेवाले अविवेकी न होओ ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

प्रपंच सहित तथा प्रपंच रहित ब्रह्मतत्वकी अखण्ड एक दृष्टिके लिये सत्य तथा असत्य उभयरूपसे अभासमान ब्रह्मका स्वरूप इस ३५ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देशाद्देशांतरंदूरंप्राप्तायाःसंविदःक्षणात् ॥ यद्रूपममलंमध्येपरंतद्रूपमात्मनः ॥ १ ॥ गच्छञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्हसन् ॥ नूनंनिरामयत्वायनित्यमेतन्मयोभव ॥ २ ॥ तत एवनिराभासात्सत्यान्निर्वासनैषणात् ॥ यथास्थितंयथाचारमचलामरशैलवत् ॥ ३ ॥ एतद्रूपमविद्यायाःप्रेक्षितायन्नलभ्यते ॥ प्रेक्षितालभ्यतेचेत्सातद्विद्यैवपराभवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! क्षणमेंही क्रमसे एक देशसे दूसरे अत्यन्त दूर देश (भूतलसे चन्द्रादिमण्डल) में प्राप्त ज्ञानका दोनों देशोंके मध्यमें जो निर्मल तथा निर्विषय स्वरूप है वही परमात्माका रूप है ॥१ ॥ हे रामजी ! निर्वाणकी प्राप्तिके अर्थ चलते, सुनते, स्पर्श करते, सूंघते; जागते तथा हंसते हुये तुम इसी निर्विषय चिद्रूपमें तन्मय होजाओ ॥ २ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तिमें स्थित अपने कुलके अनुसार व्यवहार करते हुये भी इस निराभास, सत्य, तथा वासना इच्छादि शून्य चित्स्वरूपसे सुमेरुके समान कदापि चलायमान न होओ ॥ ३ ॥ हे रामजी ! अविद्याका यही स्वरूप है प्रमाणोंसे विचार करनेसे उपलब्ध न हो, और विचारसे जो उपलब्ध हो वह पराविद्याही है ॥ ४ ॥

अविद्यासंभवाच्चैत्यचित्त्वेसंभवतःक्वकिम् ॥ चेत्यतेकथमेवांतःशांतिरेवबलोदिता ॥ ५ ॥ सत्यंब्रह्म जगच्चैकंस्थितमेकमनेकवत् ॥ सर्वंवासर्ववद्भातिशुद्धंचाशुद्धवत्ततम् ॥ ६ ॥ अशून्यंशून्यमिवचशून्यं वाशून्यवत्स्फुटम् ॥ स्फारमस्फारमिवतदस्फारंस्फारसन्निभम् ॥ ७ ॥ अविकारंविकारीवसमंशांतम शांतवत् ॥ सदेवासदिवादृश्यंतदेवातदिवोदितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अविद्याका असंभव होनेसे चेत्य (विषय) तथा विषय प्रकाशका चित्के भेदका संभव कहां ? भेदके अभावसे केवल अपने स्वरूपमें किसको प्रकाशित करै, इसलिये शांत विषय रहित चिन्मात्र स्थिति बलात उदित है ॥ ५ ॥ यथार्थमें शुद्ध पूर्णब्रह्म तथा जगत् एकही है, परन्तु अज्ञानसे अशुद्ध अपूर्ण तथा अनेक रूपके समान भासताहै ॥ ६ ॥ अशून्य होनेपर भी प्रलयमें शून्यके तुल्य, सर्व रहित होनेपर भी सृष्टिकालमें सर्व पदार्थरूप देशकालसे अपरिच्छिन्न होनेपर भी परिच्छिन्नके सदृश, और विशाल देशकालादि रूपरहित होनेपर भी विशाल देशकालके समान ब्रह्म स्थित है ॥ ७ ॥ अविकारी होनेपर भी विकारवान्‌के सदृश, शांत समरूप होनेपरभी अज्ञानसे अशांत तथा असमके तुल्य भासमान, सत होनेपर भी नेत्रादिसे देखनेके अयोग्य होनेसे असत्‌के तुल्य ब्रह्म व्याप्त है ॥ ८ ॥

अविभागंविभागीवनिर्जाड्यंजडवद्गतम् ॥ अचेत्यंचेत्यभावीवनिरंशंसांशशोभनम् ॥ ९ ॥ अनहंसोह मिवतनाशमिवनाशवत् ॥ अकलंकंकलंकीवनिर्वेद्यंवेद्यवाहिवत् ॥ १० ॥ आलोकिध्वांतघनवन्नववच्च पुरातनम् ॥ परमाणोरपितनुगर्भीकृतजगद्गणम् ॥ ११ ॥ सर्वात्मकमपित्यक्तदृष्टंकष्टेनभूयसा ॥ अ जालमपिजालाढ्यंचाशेषवदनेकधा ॥ १२ ॥

अर्थ—निर्विभाग होनेपर भी भागसहितके तुल्य, चिद्रूप होनेपरभी जडके सदृश, विषय शून्य भी विषयके समान, और निरंशभी अंशसहितके सदृश शोभायमान ब्रह्म स्थित है ॥ ९ ॥ अहंकाररहितभी अहंकारके सदृश, अविनाशी, नाशवानके तुल्य, अकलंकभी कलंकीके तुल्य और विषयरहितभी विषयसे हितके समान ब्रह्म स्थित है ॥ १० ॥ स्वप्रकाशभी भूत अहंकारके सदृश, पुरातनभी नूतनके तुल्य, परमाणुसेभी सूक्ष्म तथा अनेक ब्रह्मांडोंको अपने उदरमें धारण किये हुये ब्रह्म स्थित है सर्वरूपभी तब वैराग्यादिसे दृश्यवर्गका त्यागी, प्रपंचरहितभी प्रपंचपूर्णके समान, और अनेकरूपसे स्थितभी द्वितीयसे शून्य ब्रह्म है ॥ १२ ॥

निर्मायमपिमायांशुमंडलामलभास्करम् ॥ ब्रह्मविद्धिविदांनाथमपामिवमहोदधिम् ॥ १३ ॥ जगद्रत्नम हाकोशंतुलायांतूलकाल्लघु ॥ मायामरीचिशशिनमपिनेक्षणगोचरम् ॥ १४ ॥ अनंतमपिनिष्पारंनचक्व चिदपिस्थितम् ॥ आकाशेवनविन्यासनगनिर्माणतत्परम् ॥ १५ ॥ अणीयसामणीयांसंस्थविष्ठंचस्थ वीयसाम् ॥ गरीयसांगरिष्ठंचश्रेष्ठंचश्रेयसामपि ॥ १६ ॥

अर्थ—मायारहितभी मायाके किरणमंडलका निर्मल सूर्य्य, शुद्ध ज्ञानमात्रभी सर्वज्ञरूप ब्रह्म स्थित है॥१३॥ जगत्‌रूप रत्नोंका महाकोश अर्थात् गुरुतमभी विवेककी तुलापर तोलनेसे रुईके कारणसेभी लघु, और मायारूपी किरणजालका चन्द्रमा होनेपरभी दृष्टिका अविषय ब्रह्म स्थित है ॥ १४ ॥ देशकालसे अपार तथा अनंत होनेपरभी, किसीएक देशकालमें स्थितिशून्य, और शून्यस्थानमेंभी वन तथा पर्वतआदिकी रचनामें तत्पर ब्रह्म स्थित है ॥ १५ ॥ सूक्ष्मतरसेभी सूक्ष्मतम, स्थूलतरसेभी स्थूलतम, गुरुतरसेभी गुरुतम, तथा श्रेष्ठोंसेभी अतिश्रेष्ठ ब्रह्म स्थित है ॥१६॥

अकर्तृकर्मकरणमकारणमकारकम् ॥ अंतःशून्यतयैवैतच्चिरायपरिपूरितम् ॥ १७ ॥ जगत्समुद्गकमपि नित्यंशून्यमरण्यवत् ॥ अनंतशैलकठिनमप्याकालशवान्मृदु ॥ १८ ॥ प्रत्येकंप्रत्यहंप्रायःपुराणंपेलवंन वम् ॥ आलोकमंधकाराभंतमस्त्वालोकमाततम् ॥ १९ ॥ प्रत्यक्षमपिदुर्लक्ष्यंपरोक्षमपिचाग्रगम् ॥ चि द्रूपमेवचजडंजडमेवचिदात्मकम् ॥ २० ॥

अर्थ—कर्ताकर्म करणरहित,कारणशून्य, अकारक और अन्तःशून्य होनेपरभी चिरकालसे कर्ताआदि करणोंसे पूर्णब्रह्म स्थित है ॥ १७ ॥ जगत्‌रूपी रत्नोंकी पेटारीरूप होनेपरभी नित्य अरण्यकी समान शून्य, और अनन्त पर्वतोंके तुल्य कठिन होनेपरभी आकाशके लेशसेभी कोमल ब्रह्म स्थित है ॥१८॥ प्रत्येक वस्तु तथा कालरूपभी सबसे रहित, पुरान होनेपरभी नूतन, स्वप्रकाशरूप होनेपरभी अन्धकारके समान भासमान, तथा जगत्‌का तिरोभावरूप तम होनेपरभी प्रकाशमय व्याप्त ब्रह्म स्थित है ॥१९॥ साक्षीरूपसे प्रत्यक्ष होनेपरभी नेत्रोंसे दुर्लक्ष्य इन्द्रियोंसे परोक्षभी साक्षीरूपसे सन्मुख स्थित, चिद्रूपभी जड जगत्‌रूपसे विवर्तित, और जड जगत्‌आदि रूपसे भासमानभी यथार्थमें शुद्धचिन्मात्र ब्रह्म स्थित है ॥ २० ॥

अहमेवानहंभावमनहंवाहमेवच ॥ अन्यदेवतदेवाहमहमेमान्यदेवतत् ॥ २१ ॥ अस्यपूर्णार्णवस्यांत रिमेत्रिभुवनोर्मयः ॥ स्फुरंतइवतिष्ठंतिस्वभावद्रवतात्मकाः ॥ २२ ॥ बिभर्त्तिसर्वमंगस्थंतुषारमिवशु क्तताम् ॥ भातिसर्गस्त्वनेनैवतुषारेणेवशुक्तता ॥ २३ ॥ अदेशकालावयवोप्येषदेवोदिवानिशम् ॥ अस जगत्तनोतीवयथावारितरंगकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अनहंभाव होनेपरभी अहंभावसे भासमान, तथा अहंभावरूपसे भासनेपरभी अनहंभावरूप, इदमर्थका विषय होनेसेभी आत्मरूप, और आत्मरूपभी अन्यके सदृश भासमान वह ब्रह्म स्थित है ॥ २१ ॥ इस पूर्णचिद्रूपसमुद्रके भीतर त्रिभुवनरूपी तरंगें द्रवतारूप स्वभावसे स्फुरित होरही हैं ॥ २२ ॥ अपने भीतर यह चेतनसृष्टिको ऐसे धारण करताहै जैसे तुषार (बर्फ) की सत्तासे शुक्तता ॥ २३ ॥ देशकालादि अवयवोंसे रहितभी यह चिद्रूपदेव रात्रिदिन असत् जगत्‌का ऐसे विस्तार करता रहताहै जैसे जल तरंगोंका ॥ २४ ॥

एतस्मिन्विकसंतीमाविपुलाकाशकानने ॥ जगज्जरठमंजर्यःप्रसरत्पत्रपंचकाः ॥ २५ ॥ एषत्वप्रतिबिंब स्यस्वयमालोकनेच्छया ॥ अत्यंतनिर्मलाकारःस्वयंमुकुरतांगतः ॥ २६ ॥ व्योमवृक्षफलस्यास्यस्वेच्छा

वयवउज्ज्वलाः ॥ सर्गोपलंभउद्यच्चमत्कुर्वतिसंविदि ॥ २७ ॥ अंतस्थेनबहिष्ठेननानानानातयात्मनि ॥ एषसोंतर्बहिर्भातिभावाभावविभावया ॥ २८ ॥

अर्थ—इस चिदाकाशरूप महाबनमें पंचभूतरूप पत्रसहित ये जगत्‌रूपी प्राचीन लता विकसित होरहीं हैं ॥ २५ ॥ यह चिद्रूपपरमात्मा पूर्वोक्त जीव जगत्‌रूप अपने आकारान्तर प्रतिबिंबके देखनेकी इच्छासे स्वयं निर्मल दर्पण रूपताको प्राप्त है ॥ २६ ॥ अपरिच्छिन्न ब्रह्मसंवित् (चेतन) में आकाश वृक्षके फलके सदृश ब्रह्मांडके अपनी इच्छासे कल्पित त्रैलोक्यरूप अवयवमें देदीप्यमान सूर्य्य आदिसे उत्पन्न नेत्र आदि इन्द्रिय जीवरूप आत्माके रूपादि दर्शनमें उपकरणरूपसे चमत्कार कहते हैं ॥ २७ ॥ हे रामजी! आभ्यंतर वासनामय प्रपंचसे, और बाह्य जगत् प्रपंचसे जाग्रत् स्वप्नमें नानारूपसे और सुषुप्तिमें एक अविद्यारूपसे आविर्भाव तथा तिरोभावरूप भावनासे स्वयं अपने आत्मामें भासताहै ॥ २८ ॥

एतद्रूपापदार्थश्रीरेतस्मिन्नेतदिच्छया ॥ चमत्करोत्येतदर्थंजिह्वेवस्वास्यकोटरे ॥ २९ ॥ अस्यांभसोद्रवत्वंयत्तदिदंजगदुच्यते ॥ संवित्स्वादूपलंभांगंभुवनावर्त्तवृत्तिमत् ॥ ३० ॥ शाम्यत्यत्रपदार्थश्रीःसर्वासामेवभास्वति ॥ एतस्मादेवचोदेतिस्वालोकइवतेजसः ॥ ३१ ॥ इदमेवजगत्सर्वंशुक्लत्वंतुहिनेयथा ॥ अतएताःप्रवर्तंतेविदइंद्रोरिवांशवः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चिद्रूपआत्मामें चित्‌कीही इच्छासे चिद्रूप पदार्थोंकी शोभा ऐसे चमत्कार कररही है जैसे जिव्हा निजमुखरूप कोटरमें ॥ २९ ॥ इस चिद्‌रूप जलका संवित्‌से अनुभूतरूप रसादिरूप अंगसहित, और भुवनरूप आवर्तयुक्त जो द्रवत्व (स्फुरण) है उसीको जगत् कहतेहैं ॥ ३० ॥ सूर्य्य चंद्र तथा नेत्रादि प्रकाशोंकी रूपादि पदार्थोंकी शोभा इसी चिद्‌रूप महासूर्य्यमें सुषुप्ति तथा प्रलयमें शांत और जाग्रत् स्वप्नमें इसी उदय ऐसे होतीहै जैसे सूर्य्य आदिके तेज प्रभामंडल ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्म सब जगत् ऐसे है जैसे तुषारमें शुक्लता, और इसी ब्रह्मसे सब पदार्थोंकी शोभा ऐसे विस्तृत होती हैं जैसे चन्द्रमासे किरण ॥ ३२ ॥

एतस्माद्रंगतोनंगाज्जगच्चित्रमिदंस्थितम् ॥ विद्धयभावविकारादिशांतमेतन्मयंततम् ॥ ३३ ॥ अस्माद्वनतरोरेताःस्वरूढागगनांगणे ॥ दृश्यशाखाःप्रवर्तंतेजगज्जालगुलुच्छकाः ॥ ३४ ॥ व्ययोदयवती नूनमत्रदृश्यतरंगिणी ॥ नानातानंतकुसुमावहत्यविचलाचले ॥ ३५ ॥ अस्मिन्व्योमात्मकेरंगेभुवनाभिनयभ्रमैः ॥ नृत्यत्यविरतारंभंवारैर्नियतिनर्त्तकी ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी! अवयवरहित इसी चेतनरूप रंजक द्रव्यसे यह जगत्‌रूप चित्र स्थित है, इसलिये जन्म आदि विकारोंसे शून्य तथा शांत चिन्मय इस जगत्‌को तुम जानो ॥ ३३ ॥ इसी चित्‌रूप बनके महावृक्षसे आकाशरूप आंगनमें उत्पन्न, और अनेक जगत्‌रूपी गुच्छोंसे शोभित ये सब दृश्यरूप शाखा विस्तृत होती हैं ॥ ३४ ॥ इसी ब्रह्मरूपी अचल पर्वतपर वृद्धि तथा क्षययुक्त और अनेकतारूप अनंत पुष्पोंसे शोभित यह दृश्यरूप नदी बह रही है ॥ ३५ ॥ इसी चिदाकाशरूप रंगभूमि (नाट्यशाला) में जगत्‌की रचनारूप अभिनयके भ्रमोंसे युक्त तथा अनेक कार्य्योंके आरंभसहित नित्य उत्सवके दिनोंसे नियति (मर्यादा) रूपिणी नटी नृत्य करती है ॥ ३६ ॥

जगत्कोटिमहाकल्पकल्पोन्मेषनिमेषणः ॥ वितानेनाट्यतेभूयोजन्यतेकालबालकः ॥ ३७ ॥ उद्यत्स्वपिजगत्स्वेषशांतमेवावतिष्ठते ॥ अनिच्छएवमुकुरःप्रतिबिंबशतेष्विव ॥ ३८ ॥ भूतानांवर्त्तमानानांसर्गाणांसंभविष्यताम् ॥ एषोकारणकंबीजंसर्गाणामिवकारणम् ॥ ३९ ॥ अस्योन्मेषोजगल्लक्ष्मीर्निमेषःप्रलयागमः ॥ अनुन्मेषनिमेषोसावात्मन्येवावतिष्ठते ॥ ४० ॥ उद्यंत्यसूनिशुबहूनिमहामहांतिसर्गागमप्रलयजन्मदशाजगंति ॥ सर्वाणितान्ययमपारस्वरूपएवप्रस्पंदनानिमरुदेवयथास्वशांतम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अनेक ब्रह्मोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयरूप नेत्रोंके संकोच विकासयुक्त कालरूपी बालकको ब्रह्मरूपी मायाके मंडपमें नियतिरूप नर्तकी पुनः उत्पन्न तथा उपसंहारके नाचती है ॥ ३७ ॥ अनेक ब्रह्मांडोंके उत्पन्न होते हुये भी यह ब्रह्मइच्छादि विकार शून्य ऐसे शांत स्थित रहताहै जैसे अनेक प्रतिबिंबोंके उदय होते हुये दर्पण ॥ ३८ ॥ स्वयं कारणरहित यह परमात्मा भूतभविष्य तथा वर्तमान सृष्टियों ऐसे बीज कारण है जैसे स्थूल पंचभूतोंका सूक्ष्म पंचभूत ॥ ३९ ॥ माया शबलित इस ब्रह्मकी स्फुरणही जगत्‌की शोभा है, और स्फुरणका अभावही प्रलय है, यथा-

थेमें यह दोनों दशामें समान अपने स्वरूपमेंही स्थित रहताहै ॥ ४० ॥ हे रामजी ! उत्पत्ति, प्रलय, जन्ममरण तथा हानि लाभ आदि दशासहित अनेक महा महाब्रह्मांड जो उत्पन्न होतेहैं वे सब चित्‌रूप ब्रह्म ऐसे हैं जैसे वायु और स्पंद, ऐसा जानकर तुम शांत स्थित रहो ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इच्छादि रहित पुरुषको मिथ्या भोग बन्धनके लिये नहीं है, इच्छाही बन्धन है और उसका त्याग मुक्ति है यह विषय ३६ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चमत्कुर्वंत्यथानर्थाआवर्त्ताइववारिणि ॥ एकस्वभावाःसकलायथावारितरंगकाः॥१॥ सर्वस्यैवास्यविश्वस्यनिर्ज्ञेयज्ञेयरूपिणी ॥ परमाकाशतारूपंपरोपशमसंश्रया ॥ २ ॥ बालचिंतापुरो व्योम्निकिंचिदपिमेयथा ॥ तथेदंतत्त्वतोविश्वंसत्यंतुशिशुचेतसि ॥ ३ ॥ अरूपालोकमननंशिलापुत्र कसैन्यवत् ॥ रूपालोकमनस्काराभांतिकेवात्रविश्वता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! जलमें तरंगके समान एकब्रह्मके समान भी सब पदार्थ अनेक रूपसे जो भ्रमका चमत्कार करतेहैं वे अनर्थकेही लिये हैं ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस संपूर्ण विश्वकी एकरूपिणी सबमें व्याप्त सबसे पृथक्, केवल ज्ञेयमात्र, तथा समाधिसे लक्ष्य शांतरूपही सत्ता है ॥ २ ॥ हे रामजी ! बालककी चिंतासे कल्पित यक्षके तुल्य चिदाकाशमें संसार सत्य भान होताहै और विद्वान्‌की दृष्टिमें तो यह विश्व कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ अज्ञानीकी दृष्टिसे बाह्य तथा आभ्यन्तर यह जगत् भासताहै और बाह्य तथा आभ्यन्तर निरोध करनेसे ज्ञानीकी दृष्टिमें पाषाणमें खुदीहुई चित्रगत सेनाके तुल्य यह संसार भासताहै ॥ ४ ॥

रूपालोकमनस्कारसारश्चिन्मात्रतांविना ॥ नलभ्यतेसावपरंव्योमेवात्रकविश्वता ॥ ५ ॥ विदोवित्त्वं जगद्भ्रांतिरवित्त्वंतुनविभ्रमः ॥ वित्त्वावित्त्वेत्वदायत्तेचित्ताचित्तेयथातव ॥ ६ ॥ परमाकाशरूपत्वाचि द्व्योम्नोविततात्कृतेः ॥ नस्वभावविपर्यासःकश्चित्संभवतिक्वचित् ॥ ७ ॥ तन्मयस्यास्यविश्वस्यनस्वभा वविकारिता ॥ विद्यतेप्रेक्ष्यमाणापिकिमुसास्यभविष्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—और विचारसे बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंका सार चिन्मात्रही है, क्योंकि चिदाकाशसे भिन्न यह उप· लब्ध नहीं होता, इसलिये यह संसारता कहां रही ॥ ५ ॥ ज्ञातापुरुषका जगत्‌को जाननाही जगत्‌की भांति है और उसको जगत्‌रूपसे न जानना सब भ्रमकी शांति है, अब स्मरणसे विस्मरणके तुल्य जगत्‌को जानना तथा न जानना तुमारे आधीन हैं ॥ ६ ॥ व्यापक चिदाकाश परमाकाश (शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म) रूप होनेसे उसके स्वभावका परिवर्तन कहीं किसी प्रकार नहीं होसकता, क्योंकि चित् कदापि जड नहीं और आकाश मूर्तिमान् नहीं होता ॥ ७ ॥ चिन्मय इस विश्वकी विकारता कुछ भी नहीं है क्यों विचारदृष्टिसे जब वह नहीं देखपडती तो क्या होसकती है ॥ ८ ॥

सर्वंचिद्व्योमचैवेदंनसत्त्वमहमित्यपि ॥ विकारायस्तिनज्ञप्तावज्ञप्तिंनलभेक्वचित् ॥ ९ ॥ सर्वंशांतंशि वंशुद्धंत्वमहंतादिविभ्रमम् ॥ नकिंचिदपिपश्यामिव्योमजंकाननंयथा ॥ १० ॥ संविदाकाशशून्यत्वंय त्त्विद्धिवचोमम ॥ इदंत्वत्संविदाकाशेस्वयमात्मनितिष्ठति ॥ ११ ॥ पदमाहुःपरंसद्यदनिच्छोदयमा सितम् ॥ पाषाणपुरुषस्येवचित्रस्थस्येवचासनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो कुछ यह संसार है वह चिदाकाशमात्रही है, इस ज्ञानस्वरूपमें अहंकार आदि विकार कुछ भी नहीं है, और ज्ञानसे भिन्न पदार्थकी कहीं उपलब्धि नहीं हैं ॥ ९ ॥ त्वत्ता तथा अहंता आदि सब विभ्रमशांतशिव तथा शुद्धब्रह्मरूपही है, आकाशसे उत्पन्न बनके सदृश चेतनसे भिन्न कुछ नहीं देखते ॥ १० ॥ हे रामजी ! इस मेरे उपदेशमय बचनको भी शुद्ध, शून्य चिदाकाशरूप जानो, क्योंकि यह बचन भी तुमारे चिदाकाश आत्माहीमें स्थित रहताहै न कि जडमें ॥ ११ ॥ चित्रगत पाषाणके पुरुषके तुल्य इच्छादिसे रहित जो चेतनकी स्थिति है उसीको परमपद कहतेहैं ॥ १२ ॥

सविश्रांतमनामौनीयस्यप्रकृतकर्मसु ॥ स्पंदोदारुनरस्येवविगतेच्छमनाकुलम् ॥ १३ ॥ अंतःशून्यंब हिःशून्यंविरसंगतवासनम् ॥ जगद्वेणोरिवज्ञस्यजीवतोभातिजीवनम् ॥ १४ ॥ यस्यनस्वदतेहृदयमह

इयंस्वदतेहृदि ॥ सबाह्याभ्यंतरंशांतःसवितीर्णोभवार्णवात् ॥ १५ ॥ उच्यंतांशब्दजालानिवंशवद्गतवासनम् ॥ रसेनानंगलग्नेनप्रकृतानन्यचोदनैः ॥ १६ ॥

अर्थ—वही विश्रांतचित्त जीवन्मुक्त मुनि है जिसकी चेष्टा यथाप्राप्त व्यवहारके कर्मोंमें इच्छा तथा व्याकुलता रहित काष्ठकी पुतलीके तुल्य होती है ॥ १३ ॥ जीवन्मुक्त ज्ञानीको बाहर भीतरसे शून्य निरस वासनारहित बांशकी नलीके तुल्य इस जगत्का जीवन भासताहै ॥ १४ ॥ जिसको यह दृश्यसंसार नहीं रुचता, और चिन्मात्र अदृश्य ब्रह्म रुचताहै, वह बाह्य तथा आभ्यन्तरसे शांतमुनि मानो संसारसागरसे पार होचुका ॥ १५ ॥ हे श्रोतागण ! प्रारब्धकर्मके नाशार्थ अनुपयोगी शब्दोंके उच्चारणसे रहित व्यवहारोंमें देहादिमें अहंममता आदि संबंधसे रहित चिदानन्दरूपी मधुररससे वासना त्यागपूर्वक मुरलीके शब्दके तुल्य बाणीसे शब्दोंको उच्चारण करो ॥ १६ ॥

स्पृश्यंतांस्पर्शनीयानियथाप्राप्तान्यवासनम् ॥ कूटागारवदक्षुब्धमनिच्छममनोदयम् ॥ १७ ॥ स्वाद्यंतां रसजालानिविगतेच्छाभयैषणम् ॥ अपरागाभिलषणंयथाप्राप्तानिदर्वीवत् ॥ १८ ॥ दृश्यंतांरूपजाला निपुनःप्राप्तान्यवासनम् ॥ अरसंनिर्मनोमानमगर्वंचित्रनेत्रवत् ॥ १९ ॥ जिघ्रयंतांगंधपुष्पाणिविगतेच्छमवासनम् ॥ स्पंदबंधोपलग्नानित्यागायवनवातवत् ॥ २० ॥

अर्थ—नट भट तथा वेश्या आदिके निवासगृहके सदृश इच्छा आदिसेरहित होकर यथाप्राप्त स्पर्श करनेके माला चन्दन आदि पदार्थोंको स्पर्श करो ॥ १७ ॥ इसीप्रकार राग तथा इच्छा आदिसे रहित होकर दर्वीके तुल्य अनेकप्रकारके रसोंकाभी आस्वाद लेओ ॥ १८ ॥ चित्रके नेत्रके सदृश वासना तथा अभिमानसेरहित राग त्यागपूर्वक प्राप्त रूप समूहोंको नेत्र इन्द्रियसे देखो ॥ १९ ॥ और इच्छा तथा वासनाओंसे रहित होकर घ्राणइन्द्रियसे प्राप्त पुष्प आदिके सुगन्धको बनके वायुके सदृश त्यागके लिये ग्रहण करो ॥ २० ॥

इतिचेद्विरसत्वेनबोधयित्वाचिकित्सिताः ॥ नभोगरोगास्तद्वच्चशांत्यैनास्तिकथैवच ॥ २१ ॥ यःस्वादयन्भोगविषंरतिमेतिदिनेदिने ॥ सोग्नौस्वमूर्तिंज्वलितेकक्षमक्षयमुज्झति ॥ २२ ॥ निरिच्छत्वंसमाधानमाहुरागमभूषणाः ॥ यथाशाम्येन्मनोनिच्छंनोपदेशशतैस्तथा ॥ २३ ॥ इच्छोदयोयथादुःखमिच्छाशांतिर्यथासुखम् ॥ तथाननरकेनापिब्रह्मलोकेनुभूयते ॥ २४ ॥

अर्थ—इसी रीतिसे कर्मइन्द्रियोंसे तथा ज्ञानइन्द्रियोंसे प्राप्त विषयोंमें मनको निरसता बोध न करके यदि भोगरूपी रोगोंकी चिकित्सा न कीगई तो जीवकी शांतिकी क्या आशा है ॥ २१ ॥ और जो प्राणी भोगरूपी विषका आस्वाद लेते हुये प्रतिदिन प्रसन्न होताहै वह मानो प्रज्वलित अग्निमें अपनी मूर्तिके ऊपर निरन्तर तृणसमूह फेकताहै ॥ २२ ॥ भोगोंकी इच्छाके त्यागकोही वेदशास्त्रके ज्ञाताओंने परम समाधी कहाहै, क्योंकि इच्छाके अभावसे मन जैसा शान्त होताहै वैसा अनेक उपदेशोंसेभी नहीं होता ॥ २३ ॥ हे रामजी ! इच्छाओंके उदय होनेसे जो दुःख होतेहैं वे नरकमेंभी नहीं होते और इच्छाकी शांतिसे जो सुख होताहै वह ब्रह्मलोकमें नहीं होता ॥ २४ ॥

इच्छामात्रंविदुश्चित्तंतच्छांतिर्मोक्षउच्यते ॥ एतावंत्येवशास्त्राणितपांसिनियमायमाः ॥ २५ ॥ यावती यावतीजंतोरिच्छोदेतियथायथा ॥ तावतीतावतीदुःखबीजमुष्टिःप्ररोहति ॥ २६ ॥ यथायथेच्छातनुतां यातिजंतोर्विवेकतः ॥ तथातथोपशाम्यंतिदुःखचिंताविषूचिकाः ॥ २७ ॥ यथायथेच्छाघनतांयातिलोकस्यरागतः ॥ तथातथाविवर्धंतेदुःखचिंताविषोर्मयः ॥ २८ ॥

अर्थ—इच्छामात्रको दुःखदायक चित्त कहतेहैं, और इच्छाकी शांतिकी शान्तिकोही मोक्ष कहतेहैं, इसी इच्छाकी शांतिमें सब शास्त्र, तप, यम और नियमोंकाभी तात्पर्य है ॥२५॥ जितनी २ और जिस २ प्रकारसे जीवकी उदय होतीहै उतनीही उतनी दुःखोंके बीजकी मुष्टि बढतीहै ॥ २६ ॥ और जैसे २ विवेकद्वारा जीवकी विषयभोगकी सूक्ष्म होतीजाती है उसी २ प्रकारसे दुःखोंके चिन्तारूप महामारीभी शान्त होती है ॥ २७ ॥ और जैसे २ मनुष्यकी भोगकी इच्छा सघन होजातीहै उसी २ प्रकारसे दुःखोंकी चिन्तारूपी तरंगें बढती हैं ॥ २८ ॥

इच्छाचिकित्स्यतेव्याधिर्नस्वयत्नौषधेनचेत् ॥ तदत्रबलवन्मन्येविद्यतेनौषधांतरम् ॥ २९ ॥ इच्छोपशमनंकर्तुंयदिकृत्स्नंनशक्यते ॥ स्वल्पमप्यनुगंतव्यंमार्गस्थोनावसीदति ॥ ३० ॥ यस्त्विच्छातानवेयत्नं नकरोतिनराधमः ॥ सोंधकूपेस्वमात्मानंदिनानुदिनमुज्झति ॥ ३१ ॥ दुःखप्रसरवशालिन्याबीजमिच्छैवसंस्तुतेः ॥ सम्यग्ज्ञानाग्निदग्धासानभूयःपरिरोहति ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि धैर्य्यसे मनके निग्रहरूपी पुरुषके प्रयत्नरूप औषधसे इच्छारूप व्याधिकी चिकित्सा नहीं कीगई तो इससे उत्तम अन्य कोई औषध इसकी शांतिके लिये नहीं है ॥ २९ ॥ यदि एककालमें सब इच्छाओंका त्याग

न होसके तो किंचित् २ उसका त्याग करना चाहिये क्योंकि सन्मार्गमें चलनेवाला प्राणी दुःखी नहीं होता ॥ ३० ॥ जो मनुष्योंमें अधम अपनी भोगेच्छाको सूक्षम करनेमें प्रयत्न नहीं करता वह मानो अपनेको प्रतिदिन अन्धकूपमें फेंकताहै ॥ ३१ ॥ दुःखरूपी पुष्पफलादिसे शोभित संसाररूपी लताका बीज इच्छाही है वह उत्तम आत्मज्ञानरूप अग्निसे दग्ध होनेपर पुनः नहीं जामती ॥ ३२ ॥

इच्छामात्रंहिसंसारोनिर्वाणंतदवेदनम् ॥ इच्छानुत्पादनेयत्नःक्रियतांकिंवृथाभ्रमैः ॥ ३३ ॥ शास्त्रोपदेशगुरवःप्रेक्ष्यंतेकिमनर्थकम् ॥ किमिच्छाननुसंधानसमाधिर्नाधिगम्यते ॥ ३४ ॥ यस्येच्छाननुसंधानमात्रेदुःसाध्यतामतेः ॥ गुरुपदेशशास्त्रादितस्यनूनंनिरर्थकम् ॥३५॥ इच्छाविषविकारिण्यामंतएवनृणामलम् ॥ दुःखप्रसरकारिण्याहरिण्याजन्मजंगले ॥ ३६ ॥

अर्थ—इच्छामात्रही यह संसार है, और इच्छाका अभावही निर्वाण है इसलिये भोगोंकी इच्छाके न उत्पन्न न होनेमें यत्न करो अन्य वृथायत्नोंसे क्या प्रयोजन ॥ ३३ ॥ यदि भोगोंकी इच्छाके अभावसे चित्तकी शांति न प्राप्त हुई तो शास्त्र तथा गुरूओंकी व्यर्थ प्रतीक्षा क्यों करते हो ॥ ३४ ॥ जिसको अपने विवेकसे भोगेच्छाके अभाव करनेमें दुःसाध्यताहै उसके लिये गुरूओंके उपदेश तथा शास्त्र आदि सब निरर्थक हैं ॥ ३५ ॥ दुःखोंके विस्तारसे पूर्ण इच्छारूपी विषविकारसे युक्त इस संसारमें मनुष्योंकी मृत्यु ऐसे निश्चित है जैसे व्याघ्र आदिसे व्याप्त जंगलमें हरिणीकी ॥ ३६ ॥

नबालीक्रियतेत्विषदात्मज्ञानायचेदसौ ॥ इच्छोपशांतिःक्रियतांतयालंतदवाप्यते ॥ ३७ ॥ निरिच्छतैवनिर्वाणंसेच्छतैवंहिबंधनम् ॥ यथाशक्तिजयेदिच्छांकिमेतावतिदुष्करम् ॥ ३८ ॥ जरामरणजन्मादिकरंजखदिरावलेः ॥ बीजमिच्छासदैवांतर्दह्यतांशमवह्निना ॥ ३९ ॥ यतोयतोनिरिच्छत्वंमुक्ततैवततस्ततः ॥ यावद्गतियथाप्राणंहन्यादिच्छांसमुत्थिताम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यदि इच्छासे यह मनुष्य बालकके सदृश चंचल न होजायतो उसको आत्मज्ञानके लिये अल्पही यत्न करना पडताहै इसलिये इच्छाकी शांतिके यत्न करै उसीसे वह परंपदज्ञान प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ इच्छाका अभावही निर्वाण है, और इच्छाही बंधन है, इसलिये इच्छाको यथाशक्ति विजय करै, और इसके करनेमें कौनसी दुःसाध्यताहै ॥ ३८ ॥ जरा, जन्म तथा मरण आदिसे व्याप्त कंटक युक्त वृक्षोंकी पंक्तिका बीज इच्छाही है उसको सदा अभ्यस्त शमरूप अग्निसे भस्म करो ॥ ३९ ॥ जहां २ भोगकी इच्छाका अभाव है वहां २ मुक्ति विद्यमान है, इसलिये जबतक विवेक वैराग्य आदि न प्राप्त हों तबतक यथाशक्ति यथाबल उठी हुई इच्छाको नष्ट करै ॥ ४० ॥

यतोयतश्चसेच्छत्वंबंधपाशास्ततस्ततः ॥ पुण्यपापमयादुःखराशयोविततात्तयः ॥ ४१ ॥ इच्छानिरासरहितेगतेसाधोःक्षणोपिच ॥ दस्युभिर्मुषितस्येवयुक्तमाक्रंदितुंचिरम् ॥ ४२ ॥ यथायथास्यपुंसोंतरिच्छासमुपशाम्यति ॥ तथातथास्यकल्याणंमोक्षायपरिवर्धते ॥ ४३ ॥ आत्मनोनिर्विवेकस्ययदिच्छापरिपूरणम् ॥ संसारविषवृक्षस्यतदेवपरिषेचनम् ॥४४॥ हृद्वृक्षजाःस्वसुखदुःखकुबीजकोशावैरादिवाश्रयकृतादशुभाशुभाच ॥ आसाद्यदुष्कृतकृशानुशिखाःशितांताइच्छाच्छमच्छमितिपुंस्पशुमादहंति ॥४५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे संसारबीजकथनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जहां २ इच्छा है वहां २ पुण्यपापमय दुःखोंकी राशि तथा निरंतर रोदनसे युक्त बंधनके पास विद्यमान हैं ॥ ४१ ॥ भोगकी इच्छाके अभावके विना यदि साधुजनका एक क्षणभी बीतगयातो चोरोंसे सर्वस्व अपहृत जनके समान चिरकाल कालतक रोदनही है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इस पुरूषकी जैसे २ इच्छा शांत होती जाती है उसी २ प्रकारसे मोक्षके लिये कल्याणदायक साधनचतुष्टय इसका बढता जाताहै ॥ ४३ ॥ आत्माके निर्विवेकसे भोगोंके द्वारा जो इच्छाका पूर्ण करनाहै वही संसाररूपी विषके वृक्षका सींचनाहै ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्षसे उत्पन्न तीक्ष्ण अग्रभागधारिणी भोग इच्छारूप दुष्कृत अग्निकी ज्वाला जीवके आश्रय हृदयमें कृत शुभ अशुभरूप कर्मोंके वैरसे जीवको मोहरूप पाशसे बांधके उसके सुखदुःखके बीजके पात्ररूप अंडकोशोंको चारोंओरसे भस्म करते हैं ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे संसारबीजकथनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशतमः सर्गः ॥ ३७ ॥

जिससे भोगकी इच्छा उत्पन्नही नहो, वा उत्पन्न हो तो ब्रह्मरूप समझी जाय वह ज्ञानयोग युक्तियोंसे इस ३७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इच्छाविषविकारस्यवियोगंयोगनामकम् ॥ शांतयेशृणुभूयोपिपूर्वमुक्तमपिस्फुटम् ॥ १ ॥ आत्मनोव्यतिरिक्तंचेद्विद्यतेतदिहेच्छया ॥ इष्यतामसतित्वेतत्स्वात्मान्यत्वंकिमिष्यते ॥ २ ॥ निर्भागावयवासूक्ष्माव्योम्नःशून्यतरैवचित् ॥ सैवाहंजगदाकारासतीकिंतत्तयेष्यते ॥३॥ साव्योमरूपा व्योमैवव्योमात्मवेद्यवेदिका ॥ व्योमात्मजगदाभासमत्रेच्छाविषयोस्तिकः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इच्छारूप विषविकारके वियोगके लिये पूर्व पूर्वप्रसंगमें स्पष्टरूपसे कथित भी सर्वयोगसर्वथा इच्छाके शांतिके लिये तुम पुनः सुनो ॥ १ ॥ यदि आत्मासे भिन्न कुछ पदार्थ होतो उसके लिये इच्छा करो और जब नहीं है तब आत्मासे अन्य किसकी इच्छा करते हो, अर्थात् आत्माके अज्ञानसे विषयोंकी इच्छा होती है ॥२॥ त्रिपुटीके भागरूप अवयवसे रहित, और आकाशसे सूक्ष्म तथा शून्य जो चित् हैं वही अहंभाव तथा जगत्के आकाशसे स्थित और सत्य है तो उससे अन्य किसकी इच्छा करते हो ॥ ३ ॥ वह चित् आकाशरूप है, आकाशरूपही विषय तथा उसका उसकाज्ञाता है, और आकाशरूपही यह जगत् आभास भी है, तब इसमें इच्छाका विषय क्या है ॥ ४ ॥

ग्राह्यग्राहकसंबंधःकुतश्चिदितितन्नः ॥ विद्यतेसौप्रशांतानांयेषामस्तिनवेद्मितान् ॥ ५ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधःस्वनिष्ठोपिनलभ्यते ॥ असतस्तुकथंलाभःकेनलब्धोसितःशशी ॥ ६ ॥ एषैवग्राहकादीनांसत्तायन्नात्मनिष्ठता ॥ स्वभावावेक्षयासत्यानजानेक्वप्रयांतिते ॥ ७ ॥ एषएवस्वभावोयद्द्रष्टृदृश्यक्षयोखिलः ॥ ज्ञात्वासत्याविनिर्वाणमहंतात्मनिगच्छति ॥ ८ ॥

अर्थ—और शांत चित्त हमलोगोंके लिये अज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह ग्राह्यग्राहकभाव संबंध किसी प्रमाणसे नहीं है, और जिनकी दृष्टिमें है उनको भी आत्मासे पृथक् मैं नहीं जानता ॥ ५ ॥ आत्मनिष्ठ भी ग्राह्यग्राहकसंबंध उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि असत्का लाभ कैसेहो, चंद्रमाको श्यामवर्ण किसने देखाहै ॥ ६ ॥ अज्ञानसे आत्मामें परायण न होना यही ग्राह्य तथा ग्राहक आदिकी सत्ता है, अशास्त्रीय दृष्टिसे वे सब सत्य भासतेहैं और शास्त्रीय विचारसे न जानै कहां जातेहैं ॥ ७ ॥ और आत्मज्ञानका यही स्वभाव है कि असत्य अहंता आदि शास्त्रसे आत्मतत्वके ज्ञानसे आत्मामेंही लीन होजातेहैं, यही द्रष्टा दृश्य आदिका सर्वथा क्षयरूप निर्वाण है ॥ ८ ॥

निर्वाणेनास्तिदृश्यादिदृश्यादौनास्तिनिर्वृतिः ॥ मिथोनयोरनुभवोनच्छायातपयोरिव ॥ ९ ॥ उभेस्ते मिथोऽसत्येअसत्येचननिर्वृतिः ॥ यतोनिर्वाणमजरमदुःखमनुभूयते ॥ १० ॥ भ्रमभूतंचदृश्यादि नित्यंनात्रसुखप्रदम् ॥ असच्चतद्भाव्यतांमानिर्वाणेस्थीयतामजे ॥ ११ ॥ शुक्तिकारूप्यसदृशंप्रेक्षितंयन्नलभ्यते ॥ अर्थकार्यपितन्नास्तिकिमत्रापह्नवेनच ॥ १२ ॥

अर्थ—निर्वाणमें दृश्य आदि नहीं है, और दृश्यमें शांतिरूप निर्वाण नहीं है, छाया तथा आतपके सदृश इन दोनों (निर्वाण तथा दृश्य) का परस्पर अनुभव (सहभाव) नहीं होता ॥ ९ ॥ यदि इन दोनोंका सहभाव हो तो परस्पर बाधित होनेसे दोनों असत्य होजाय, असत्यमें शांति नहीं है, क्योंकि विद्वानोंको निर्वाण अजर तथा दुःख शून्य अनुभूत होताहै ॥ १० ॥ दृश्यादि सदा दुःखदायक और भ्रमरूप है, इसलिये असत् दृश्यकी भावना न करो, और अज निर्वाणमें स्थित रहो ॥ ११ ॥ शुक्तिके रूपके समान विचारसे जो नहीं लब्ध होता, वह पुरुषके किसी अर्थका नहीं है, तो ऐसे दृश्यके मिथ्या जाननेसे क्या हानि है ॥ १२ ॥ ॥

तत्सद्भावान्महद्दुःखमसद्भावान्महत्सुखम् ॥ अभावःसोपपत्तिस्तुदृढतांयातिभावनात् ॥ १३ ॥ त त्किमात्मनिबंधायविदग्धंनसुमाधमाः ॥ स्पष्टएवोपचयादेर्वस्तुन्यस्तमिताऽपदे ॥ १४ ॥ कार्यकारण भावादिब्रह्मैवसकलंयदा ॥ तदातुकाऽप्रताह्यस्मिन्संविन्मात्रात्मकेतते ॥ १५ ॥ मार्गयंतिप्रबोधायतैर्मृगैरलमस्तुनः ॥ व्योमरूपेकिलैकस्मिन्सर्वात्मनिततेसति ॥ १६ ॥

अर्थ—दृश्यके सद्भावमें महादुःख है और असद्भावमें महासुख है, और आत्माके मननसहित निदिध्यासनसे दृश्यका अभाव दृढ होजाताहै ॥ १३ ॥ हे मनुष्योंमें अधम अज्ञानीजन! उत्पत्ति आदि विकारोंके अविषय स्वप्रकाशरूप आत्माके स्पष्ट स्फुरित रहते उसका दर्शन क्यों नहीं करते, और निजबंधनके हेतु दृश्यसमूहको ज्ञानरूप अ-

भिसे क्यों नहीं भस्म करते ॥ १४ ॥ जब कार्य्य कारणभाव सब ब्रह्महो है तब देहादि परिच्छन्न पदार्थोंके बोधसे तब वित्तारको चिन्मात्र साक्षीचेतनमें ब्रह्मता सिद्ध है ॥ १५ ॥ और आकाशरूप सर्वात्म तथा पूर्णब्रह्ममें कार्य्य कारण आदि दृश्यकी सत्ताको मानकर जो ब्रह्मज्ञानके साधन ढूंढते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ है ॥ १६ ॥

कार्यकारणताढ्यानामुक्तीनामेवकःक्रमः ॥ योहेतुःस्पंदनेवायोर्द्रवत्वेसलिलस्यच ॥ १७ ॥ शून्यत्वेन भसःसौम्यसर्गादित्वेचिदात्मनः ॥ कार्यकारणभावादिब्रह्मैवसकलंयदा ॥ १८ ॥ तदाब्रह्मणिसर्गा णांकारणार्थाविलज्जता ॥ नदुःखमस्तिनसुखंशांतंशिवमयंजगत् ॥ १९ ॥ नास्तिचिन्मात्रतान्यत्वमत इच्छोदयःकुतः ॥ मृद्देहयोधसेनायांनमृन्मात्रेतरद्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—और कार्य्यकारणसे पूर्णउक्तियोंमें अविद्याके सिवाय और क्या क्रम है, हे रामजी! जो वायुके स्पंदमें, जलके द्रवत्वमें ॥ १७ ॥ तथा आकाशकी शून्यतामें वही चिदात्मासे सृष्टि होनेमें हेतु है, क्योंकि जब कार्य्यकारण सब ब्रह्मरूपही है तब ॥ १८ ॥ ब्रह्ममें सृष्टियोंकी कारणता कहना निर्लज्जताहै, इसलिये दुःखसुखरहित शांत शिवमय यह जगत् है ॥ १९ ॥ जैसे मृत्तिकाके योधाओंकी सेनामें मृत्तिकासे अन्य कुछ नहीं है ऐसेही जब इस जगत्में चिन्मात्रसे भिन्न कुछ नहीं है तब इच्छाका उदय कहांसे और कैसे होसकताहै ॥ २० ॥

नसज्जगदहंतादौदृश्येब्रह्मेतरत्तथा ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तदुदेत्विच्छामावोदेतुमुनीश्वर ॥ २१ ॥ सातुब्रह्मैवकोर्थःस्यादस्याविधिनिषेधने ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञातायांसंप्रबुद्धायामिच्छाब्रह्मैवनेतर त् ॥ २२ ॥ यथासंबुद्धवान्रामतत्सत्यंकिंत्विदंशृणु ॥ यदायदाज्ञतोदेतिशाम्यतीच्छातदातदा ॥२३॥ वस्तुस्वभावादुदयत्यादित्येयामिनीयथा ॥ शाम्यत्येवनदूदेतिज्ञप्ताविच्छादितत्तथा ॥ २४ ॥

अर्थ—जगत् तथा अहंता आदि दृश्यमें ब्रह्मसे भिन्न कुछ भी सत् नहीं है श्रीरामजी बोले—कि हे मुनीश्वर ! यदि ऐसा है तो इच्छा उदयवानहो ॥ २१ ॥ क्योंकि सब ब्रह्मरूप होनेसे इच्छा भी ब्रह्मरूपही है इसके विधि वा निषेधसे क्या प्रयोजन है ? श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! आत्मज्ञान उदय होनेपर इच्छा ब्रह्महो अन्य नहीं ॥२२॥ जैसे तुमने समझा वह सत्य है किन्तु यह सुनो कि जब आत्मज्ञान उदय होताहै तब इच्छा शांत होजाती है॥ २३॥ क्योंकि आत्मज्ञानका यह स्वभाव है, जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे रात्रि शांत होजाती हैं ऐसेही ज्ञानके उदय होनेपर इच्छादि सब शांत होजातेहैं ॥ २४ ॥

यथायथोदयोज्ञप्तेद्वैतशांतिस्तथातथा ॥ वासनाविलयश्चैवकथमिच्छोदयोभवेत् ॥ २५ ॥ तस्याविद्यो पशांतेयंनिर्मलामुक्ततोदिता ॥ अशेषदृश्यवैरस्याद्यस्येच्छोदेतिनक्वचित् ॥ २६ ॥ विरक्तताऽस्यनोदृश्ये नोदेत्यत्रास्यरक्तता ॥ केवलंद्रष्टृदृश्यश्रीःस्वदतेनस्वभावतः ॥ २७ ॥ काकतालीययोगेनपरप्रेरणया नया ॥ यदिकिंचित्कदाचिच्चसम्यगिच्छतिवानवा ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे २ ज्ञानका उदय होताहै वैसे २ द्वैतकी शांति और वासनाका लय होताहै तब इच्छाका उदय कैसेहो ॥ २५ ॥ जिस पुरुषको सब दृश्यपदार्थोंमें वैराग्य होनेसे कदाचित् भी इच्छाका उदय नहीं होता उसकी यह संसारकी अविद्या शांत हुई, और निर्मलमुक्ति उदय हुई ॥ २६ ॥ न तो इसको दृश्यपदार्थोंमें न राग होताहै और न द्वेष उदय होताहै, केवल स्वभावहीसे द्रष्टा तथा दृश्यकी शोभा नहीं रुचती ॥ २७ ॥ आकस्मिक घटनासे वा अन्यकी प्रेरणा शास्त्रोंसे अनिषिद्ध पदार्थोंकी इच्छा करता भी है और नहीं करता ॥ २८ ॥

तदस्यसेच्छानेच्छावाब्रह्मैवात्रनसंशयः ॥ इच्छानजायतेज्ञस्यावश्यमेवानुवानवा ॥ २९ ॥ ज्ञताचेदुदि ताजंतोस्तदिच्छास्योपशाम्यति ॥ नैतयोःस्थितिरेकत्रप्रकाशतमसोरिव ॥ ३० ॥ प्रतिषेधविधीनांतुत ज्ज्ञोनविषयःक्वचित् ॥ शांतसर्वैषणेच्छस्यकोऽस्यकिंवक्तिकिंकृते ॥ ३१ ॥ एतदेवज्ञताचिह्नंयदिच्छास्व तितानवम् ॥ ह्लादनंसर्वलोकानामथानुभवएववा ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसलिये इस आत्मज्ञानीकी इच्छा वा अनिच्छा दोनों ब्रह्मरूपही हैं, अथवा ज्ञानीको नूतन विषय भोगकी इच्छा अवश्य नहीं उदय होती ॥ २९ ॥ और जीवको जब आत्मज्ञान उदय होताहै तब विषयभोगकी इच्छा शांत होजाती है क्योंकि और आतपके सदृश इन दोनोंकी एकत्र स्थिति नहीं होसकती ॥ ३० ॥ शास्त्रोंके विधिनिषेधका विषय ज्ञानी नहीं है, क्योंकि जिसकी सब एषणा तथा इच्छा शांत होगई उनको कौन, किसलिये और क्या कहसकताहै ॥ ३१ ॥ इच्छाओंकी न्यूनता, अभयदानसे सब लोगोंको प्रसन्न करना, और आत्मानन्दके अनुभवसे तृप्त रहना यही आत्मज्ञानका चिन्ह है ॥ ३२ ॥

दृश्यंविरसतांयातंयदानस्वदतेकाचित् ॥ तदानेच्छाप्रसरतितदैवचविमुक्तता ॥ ३३ ॥ बोधादनैक्यम द्वैतंयःशांतमवतिष्ठते ॥ इच्छानिच्छादयःसर्वेभावास्तस्यशिवात्मकाः ॥ ३४ ॥ बोधादस्तमितद्वैतमद्वै तैक्यविवर्जितम् ॥ यःस्वच्छोविगतव्यग्रःशांतआत्मन्यवस्थितः ॥ ३५ ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेने हकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जब दृश्यपदार्थ निरस होके नहीं रुचता तब भोगकी इच्छा नहीं होती तभी मुक्ति उदय होती है ॥ ३३ ॥ आत्मज्ञानसे ऐक्य वा द्वैतसे रहित शांतरूप जो स्थित रहताहै उसके लिये इच्छा अनिच्छा आदि सब पदार्थ ब्रह्मरूपही हैं ॥ ३४ ॥ जो द्वैत, अद्वैत तथा ऐक्य आदिके अभावपूर्वक स्वच्छ, व्याकुलता शून्य, और शांत अपने आत्मामें स्थित है ॥ ३५ ॥ उसको इस संसारमें कार्य्य करने वा न करनेसे कुछ अर्थ नहीं है, और न सब भूतोंमें इसको कुछ प्रयोजन लाभ है ॥ ३६ ॥

नानिच्छयानेच्छयाथनसतानासतासदा ॥ नैवात्मनानचान्येननैतैर्मरणजीवितैः ॥ ३७ ॥ इच्छाचत स्यनोदेतिनिर्वाणस्यप्रबोधिनः ॥ यदिचोदेतितस्येच्छाब्रह्मशाश्वतमेवसा ॥ ३८ ॥ नदुःखमस्तिनसुखं शांतंशिवमजंजगत् ॥ इतियोंतःशिलेवास्तेतंप्रबुद्धंविदुर्बुधाः ॥ ३९ ॥ दुःखंसुखंभावनयाकुर्वन्विषमि वामृतम् ॥ इतिनिश्चित्यधोरात्माप्रबुद्धइतिकथ्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—इस ज्ञानीको इच्छा, अनिच्छा, सत्, असत्, आत्मा, अन्य, और इन जीवन मरणआदिसे भी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३७ ॥ और निर्वाणस्वरूप इस ज्ञानीको इच्छाभी नहीं उदय होती, और कदाचित् प्रारब्धकर्मसे उसको इच्छा उदय होती है तो वह नित्य ब्रह्मरूपही है ॥ ३८ ॥ न सुख है, न दुःख है किन्तु शांत शिवमय यह जगत् है, इसप्रकार अन्तःकरणयुक्त जो है उसको पंडितजन आत्मज्ञानी कहतेहैं ॥ ३९ ॥ संसारके सुख वा दुःखरूपी विषको पूर्वोक्त ब्रह्मकी भावनासे जो अमृतमय करता हुआ धीरचित्त स्थितहै वह ब्रह्मज्ञानी कहाजाताहै ॥ ४० ॥

तत्स्थितंव्योमनिव्योमशांतेशांतंशिवेशिवम् ॥ शून्येशून्यंसतिचसद्ब्रह्मणिजगत्स्थितम् ॥ ४१ ॥ अ संवेदनसंवित्खेततेऽविश्वमितिस्थिते ॥ सौम्येसमसमेशांतेशिवेहंताभ्रमःक्षयी ॥ ४२ ॥ यदिदंदृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ तत्सर्वंशांतमाकाशंपरचितापुरोपमम् ॥ ४३ ॥ परचितापुरोमध्येगतवि घ्नंगमागमौ ॥ यथांतस्तवशून्यत्वात्तथैवास्मिन्जगद्भ्रमे ॥ ४४ ॥

अर्थ—आकाशरूप, शान्त, शिव शून्य और सत्ब्रह्ममें जो आकाशमय, शान्त, शिव, शून्य तथा सत्रूपसे जगत्की स्थितिही वही ज्ञानकी पराकाष्ठा है ॥ ४१ ॥ इसप्रकार निज व्यापकरूप आत्मके जगत्के बोधपूर्वक स्थित होनेपर सौम्य, शांत सम तथा शिवरूप ब्रह्ममें अहंता आदि सब भ्रम क्षयरूपही है ॥ ४२ ॥ जो कुछ मनोराज्यके नगरके सदृश यह स्थावरजंगमरूप जगत् भासताहै वह सब शान्तचिदाकाशरूपही है ॥ ४३ ॥ जैसे अन्य पुरुषके मनोराज्यसे कल्पित नगरीके मध्यमें तुमारा गमनागमन निर्विघ्न सिद्ध है ऐसेही इस जगत्रूप भ्रममें तत्वज्ञानीको है४४

अब्धिपृथ्वीनदीशैलशोभाशून्यतरात्मनि ॥ जृंभतेद्रष्टृकरणंमृगतृष्णांबुवीचिवत् ॥ ४५ ॥ स्वप्ननिर्माण पुरवद्बालवेतालतालवत् ॥ यदिदंदृश्यतेतत्रकिंकिलासत्यतेतरत् ॥ ४६ ॥ असत्यमेवाहमितिभासते सत्यमेवच ॥ भ्रांतिभाजंविनैवेयंभ्रांतिःस्फुरतिसासती ॥ ४७ ॥ नसन्नासन्नसदसत्किमपीदमतींद्रि यम् ॥ आवाच्यंजगदित्येवभात्यवक्षुभितंखवत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—क्योंकि समुद्र, पृथिवी, नदी तथा पर्वत आदिकी शोभा अतिशून्य आत्मामें द्रष्टाका अन्तःकरणरूप ऐसे है जैसे तृषित तथा श्रांतजनके नेत्ररूप मृगतृष्णाके जलका तरंग ॥ ४५ ॥ स्वप्नके नगरकी रचना अथवा बालके भूत प्रेतादिके तुल्य जो यह जगत् देखपडताहै इसमें असत्यतासे भिन्न और क्या है ॥ ४६ ॥ क्योंकि सत्य ब्रह्मही है और अहंता आदिरूप जो जगत् असत्यही भासताहै इसलिये यह भ्रांति भ्रांतिके पात्र बिना जो स्फुरती है वह असत्य है ॥ ४७ ॥ न सत्, न असत् और न सत् असत् उभयरूप यह जगत् है किन्तु अनिर्वचनीय गन्धर्वनगर वा अक्षुब्ध आकाशके तुल्य भासताहै ॥ ४८ ॥

इहेच्छानिच्छतेज्ञस्यशाम्यतांयदलंसमे ॥ तथाभिश्रेयसेमन्येनन्वनिच्छोदयंस्फुटम् ॥ ४९ ॥ अहंजग दितिज्ञप्तिःखेखस्येवेयमास्थिता ॥ चिदात्मनोयथावायोःस्पंदोनात्रास्तिकारणम् ॥ ५० ॥ चितश्चेत्यो न्मुखत्वंयत्तच्चितंसैवसंसृतिः ॥ सेच्छातन्मुक्ततामुक्तिर्युक्तिज्ञात्येतिशाम्यताम् ॥ ५१ ॥ इच्छाभवत्व निच्छावासर्गोवाप्रलयोथवा ॥ क्षतिर्नकस्यचित्काचिन्नचकिंचिदिहास्तिहि ॥ ५२ ॥

अर्थ—ज्ञानीके तत्वबोधदशामें विषयोंके शान्त होनेसे इच्छा अनिच्छा यद्यपि समान हैं तथापि निर्विक्षेप जीवन्मुक्तिके सुखरूप कल्याणके लिये इच्छाका उदय न होनाही मैं उत्तम मानताहूं ॥४९॥ जैसे अविकृत चिदाकाशमें-

आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि इत्यादि क्रमसे अहंता तथा जगत्‌रूपसे चेतन स्थित है ऐसेही वायुके स्पन्दके सदृश चिदात्माको यह जगत् स्थित है ॥५०॥ हे रामजी ! चित्‌की विषयकी अभिमुख होनाही चित्त इच्छा तथा संसार है, और इच्छासे मुक्त होना मुक्ति है, इस युक्ति जानकर इच्छाके अभावसे शान्त होजाओ ॥ ५१ ॥ इच्छा हो वा अनिच्छा हो, सृष्टि हो वा प्रलय हो, परन्तु आत्मज्ञानीकी इसमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि जगत् सत्य नहीं है॥५२॥

इच्छानिच्छेसदसतीभावाभावौसुखासुखे ॥ इत्यत्रकलनाव्योम्निसंभवंतिनकाश्चन ॥ ५३ ॥ इच्छानां तानवंयस्यदिनानुदिनमागतम् ॥ विवेकशमतृप्तस्यतमाहुर्मोक्षभागिनम् ॥ ५४ ॥ इच्छाक्षुरिकयाविद्धेहृदिशूलंप्रवर्त्तते ॥ जयंतियत्रनैतानिमणिमंत्रौषधानिच ॥ ५५ ॥ यान्कार्यकरणव्यूहान्कृतवान्पूर्वमेवतान् ॥ संप्रेक्षयानपश्यामिमिथ्याभ्रमभराद्दते ॥ ५६ ॥

अर्थ—आत्मज्ञानीरूप चिदाकाशमें इच्छा अनिच्छा, सत् असत्, भाव अभाव तथा सुखदुःख आदिरूप कोईभी कल्पना नहीं होसकती ॥ ५३ ॥ विवेक तथा शांतिसे तृप्त जिस पुरुषकी इच्छाओंकी शांति प्रतिदिन होती जाती है उसको मोक्षभागी कहते हैं ॥ ५४ ॥ इच्छारूपी छूरीसे हृदयके वेधित होनेपर कामक्रोधादि वेदनारूप शूल प्रवृत्त होताहै, जिस शूलके निवृत्त करनेमें लोक प्रसिद्ध मणि मंत्र औषधआदि सब निश्चल होजाते हैं ॥ ५५ ॥ विधाताने जिन मणिमंत्र औषध आदिको जीवको चिकित्साके लिये रचाहै उनको मिथ्या भ्रमसे पूर्णपुरुषकी चिकित्साके समर्थ मैं नहीं देखता क्योंकि पूर्वही उनकी परीक्षा करचुकाहूं ॥ ५६ ॥

भ्रमभूतेनकुर्मश्चेद्व्यवहारमवस्तुना ॥ तत्कस्मात्परचित्ताद्रिःकंबलत्वंननीयते ॥ ५७ ॥ असताव्यवहारश्चेत्प्रेक्षामात्रविनाशिना ॥ क्रियतेशशशृंगेणतत्कथंछाद्यतेनखम् ॥ ५८ ॥ अहंभावाच्चिदाकाशोजाड्यातिशयतःक्षणात ॥ पाषाणतांजलमिवमनस्त्वाद्यातिदेहताम् ॥ ५९ ॥ चित्त्वादनुभवत्येतामसत्यामेवदेहिताम् ॥ अविनष्टैवचिच्छक्तिःस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ६० ॥

अर्थ—और यदि भ्रमरूप मिथ्या किसी उपायसे भ्रमका चिकित्सारूप व्यवहार होजाय तो अन्यके चित्त वा संकल्पसे कल्पित पर्वत आदि हमारे मनोरथसे कल्पित अनेक योजनके मुखसे ग्रसि क्यों नहीं होजाता ॥ ५७ ॥ यदि विचारमात्रसे विनाशी असत् पदार्थसे दुःखनिवारणरूप व्यवहार हो तो खरगोशके शृंग (सींग) से आकाशको क्यों नहीं आच्छादित करते ॥ ५८ ॥ जैसे अधिक शीतसे जल क्षणमेंही पाषाणरूपताको प्राप्त होताहै, ऐसेही चिदाकाश देहादिमें अहंताके अभिमानसे मनरूपसे देहाकारमें प्रकट होताहै ॥ ५९ ॥ देहरूप होनेपर भी इसकी चित्‌शक्ति अक्षत है इसीसे देहादिके यह चित् ऐसे अनुभव करती है जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ६० ॥

व्योम्न्यासत्यमवस्तुत्वात्सत्यंचानुभवाद्यथा ॥ नीलत्वंतद्वदीशेस्मिन्सर्गोनासन्नसन्मयः ॥ ६१ ॥ यथाशून्यत्वनभसोर्यथास्पंदनभस्वतोः ॥ भेदोनास्तितथासर्गब्रह्मणोरेकरूपयोः ॥ ६२ ॥ नेहसंजायते किंचिज्जगदादिननश्यति ॥ स्वप्नोनिद्रागतस्येवकेवलंप्रतिभासते ॥ ६३ ॥ अविद्यमानेपृथ्व्यादौप्रतिभामात्ररूपिणि ॥ सर्गेकइवसंरंभस्त्यागादानेश्चिदंबरे ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें नीलता अवस्तु होनेसे असत् है, अनुभवसे सत्यभी नहीं है किंतु अनिर्वचनीय है, ऐसेही परमात्मामें यह सृष्टि भी नसत् और असन्मय है ॥ ६१ ॥ जैसे आकाश तथा शून्यता, वा पवन और स्पंदका भेद नहीं है ऐसेही एकरूप ब्रह्म तथा सृष्टिकाभी भेद नहीं हैं ॥ ६२ ॥ इस परमात्मामें जगत् आदि यथार्थमें न उत्पन्न हो और न नष्ट हो किंतु निद्राग्रस्त प्राणीके स्वप्नके तुल्य भासताहै ॥६३॥ पृथिवी आदिके अविद्यमान रहते, और सृष्टिके प्रतिभासमात्र सिद्ध होनेपर चित्‌रूप आकाशमें त्याग तथा ग्रहण आदिमें आग्रह क्यों ॥ ६४ ॥

नदेहःप्रतिभातोस्तिपृथ्व्यादिकारणान्वितः ॥ केवलंब्रह्मचिन्मात्रमेवात्मन्येवसंस्थितम् ॥६५॥ बुद्ध्यादेःकारणत्वंचद्वैतैक्यासंभवान्नसत् ॥ अनेनेदंक्रियतइत्यस्यार्थयातिसंभवात् ॥ ६६ ॥ अहेतुरक्रमंभातिचितिकल्पक्रियागणः ॥ क्षणेनैवयथास्वप्नेमृतिजन्मादिसत्वराः ॥ ६७ खमेवपृथ्वीखंशैलाःखमेवहृभित्तयः ॥ खमेवलोकाःस्पंदःखंसर्गसंवेदनंचितेः ॥ ६८ ॥

अर्थ—पृथिवी आदि कारणसहित यह देहभी नहीं है प्रतिभासमात्र है, केवल चिन्मात्र ब्रह्महो अपने आत्मामें स्थित है ॥ ६५ ॥ द्वैत तथा ऐक्यके असंभवसे बुद्धि नेत्रआदि करणताभी नहीं होसकती, क्योंकि सब ब्रह्मरूप होनेसे इससे यह किया जाताहै वह व्यवहार असत् है, इसलिये सब परमार्थरूपहीको प्राप्त होताहै ॥ ६६ ॥ इस चेतनमें कल्प महाकल्प, और उनके सब क्रियासमूह अक्रम तथा अहेतुक ऐसे हैं जैसे स्वप्नमें शीघ्र जन्ममरण

आदि ॥ ६७ ॥ चेतनके स्वरूपमेंही सृष्टिका अनुभव होनेसे पृथिवी, पर्वत, अतिदृढ भित्ति तथा सब लोकआदि चिदाकाशरूपही हैं ॥ ६८ ॥

व्योमभित्तौजगच्चित्रंचिद्रंगमयमाततम् ॥ नोदेतिनास्तमायातिनशाम्यतिनताम्यति ॥ ६९ ॥ चिद्वारिणिजगत्तुंगतरंगद्रवरूपिणि ॥ किंनुवाकथमुत्पन्नंकिंशांतंचकदाकथम् ॥ ७० ॥ शांतेमहाचिदाकाशेजगच्छून्यत्वशालिनि ॥ चेत्यासंभवतःसंतिनोदयास्तमयौकुतः ॥ ७१ ॥ पर्वतागगनायंतेगगनंपर्वतायते ॥ संवेदनप्रयोगेणब्रह्मणःसर्गतास्थितौ ॥ ७२ ॥

अर्थ—चिदाकाशरूप भित्तिमें जगत्‌रूप चित्र चिद्रूप रंजकमय व्याप्त है, न तो यह उदय हो, न अस्त हो, न शांत हो और न म्लान हो ॥ ६९ ॥ चेतनरूप द्रवशील जलमें जगत्‌रूप महातरंग भासतेहैं तब क्या तथा कैसे कब उत्पन्न और शांत हुआ ॥ ७० ॥ जगत्‌की शून्यतासे शोभित चिदाकाशके सर्वथा शांत होनेपर और विषयका यथार्थमें असंभव होनेसे चित्‌रूपसे जगत्‌के उदय अस्त कैसे होसकतेहैं ॥ ७१ ॥ और मायाशबलित ब्रह्मके सृष्टिरूपमें विवर्तित होनेपर वासनाके अनुसार संकल्पसे तो पर्वतभी आकाशरूप होसकतेहैं और आकाश भी पर्वत होसकताहै ॥ ७२ ॥

संविच्चूर्णप्रयोगेणनिमेषार्द्धेनयोगिनः ॥ कुर्वंतिजगदाकाशमाकाशंत्रिजगंतिच ॥ ७३ ॥ सिद्धसंकल्पनगराण्यसंख्यानियथांबरे ॥ तथासर्गसहस्राणिसंतितानितुचिन्नभः ॥ ७४ ॥ महार्णवेयथावर्त्ताअन्योन्यमपिमिश्रिताः ॥ पृथगेवावतिष्ठंतेपयसोन्येचनैवते ॥ ७५ ॥ महाचितिमहासर्गाअन्योन्यमपिमिश्रिताः ॥ पृथगेवावतिष्ठंतेव्यतिरिक्तानतेततः ॥ ७६ ॥

अर्थ—और संवित्‌रूप सिद्ध चूर्णके प्रयोगसे तो योगीजन जगत्‌को आकाशरूप और आकाशको त्रिलोकरूप निमेषके अर्द्धभागमें करसकतेहैं ॥ ७३ ॥ जैसे सिद्धोंसे कल्पित अनेक नगर आकाशमें गुप्त और परस्पर अमिलित हैं ऐसेही ब्रह्ममें असंख्य ब्रह्मांड हैं ॥ ७४ ॥ जैसे महासमुद्रमें अनेक आवर्त परस्पर मिलित तथा पृथक्‌भी स्थित हैं परन्तु वे जलसे भिन्न नहीं हैं ॥ ७५ ॥ ऐसेही महाचेतनमें असंख्य ब्रह्मांड परस्पर मिलित तथा पृथक्‌भी स्थित हैं परन्तु वे महाचेतनसे पृथक् नहीं हैं ॥ ७६ ॥

सर्गात्सर्गांतरालोकेयाप्रबुद्धस्ययोगिनः ॥ सिद्धलोकांतरेप्राप्तिःसैवेतिविबुधोक्तयः ॥ ७७ ॥ अविनाशिनिभूतानिस्थितानिपरमेशिवे ॥ व्योम्नीवशून्यतोल्लासाःसर्गवर्गानिरर्गलम् ॥ ७८ ॥ परमार्थनिजामोदाःसहजाःसर्गविभ्रमाः ॥ नोद्यंतिनोपशाम्यंतिलेखाइवशिलोदरे ॥ ७९ ॥ अन्योन्यंकुसुमामोदामिलिताअप्यमीलिताः ॥ व्योमरूपास्तथासर्गाअन्योन्यंसिद्धभूमयः ॥ ८० ॥

अर्थ—और तत्वज्ञानी योगीकी इच्छासे परस्पर गुप्तभी सिद्धोंके लोकमें जो अपनी उपाधिको मूल चेतनमें लीन करके प्राप्ति है उसीको एक सृष्टिसे दूसरी सृष्टिमें प्राप्ति विद्वान् कहतेहैं ॥ ७७ ॥ परब्रह्ममें अधिष्ठानरूपसे ये सब भूत अविनाशी स्थित हैं चिदाकाशमें निर्विघ्न अनेक सृष्टिरूप शून्यताके विलास ऐसे हैं जैसे स्फटिकपाषाणकी शिलामें रेखा ॥ ७८ ॥ परमार्थ चेतनके निज आमोद (क्रीडा) रूप स्वाभाविक ये सृष्टिके विभ्रम हैं, वे स्फटिकमणिके भीतर शिलाकी रेखाके समान न उदय हों न अस्त हों ॥ ७९ ॥ पुष्पोंके सुगन्ध तथा सिद्धोंकी भूमि जैसे परस्पर मिलितभी अमिलित रहतेहैं ऐसेही चिदाकाशरूप ये सृष्टिभी हैं ॥ ८० ॥

संकल्पाकाशरूपत्वात्सर्वानुभववत्स्थितेः ॥ तनुसंकल्पमोहानांसत्याश्वमननोक्तयः ॥ ८१ ॥ नज्ञानवादितासत्यानबाह्यानर्थवादिता ॥ यथावेदनमेतानिवेदनानिफलंतिवः ॥ ८२ ॥ चितिचिस्त्वंयदस्त्यंतर्जगदित्येवभाविते ॥ भेदोद्रवत्वपयसोरिवनात्रोपपद्यते ॥ ८३ ॥ कालोजगंतिभुवनान्यहमक्षवर्गस्त्वंतानितत्रचतथेतिचसर्वमेकम् ॥ चिद्व्योमशांतमजमव्ययमीश्वरात्मरागादयःखलुनकेचनसंभवंति॥८४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दृश्योपदेशयोगो नाम सप्तत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस जगत् प्रपंचके विषयमें जिन पामरोंको स्थूल संकल्प और मोह है उनकी दृष्टिमें इसकी स्थूल स्थिति है और जिन योगियोंको सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, तथा सूक्ष्मतम संकल्प और मोह है उनकी दृष्टिमें क्रमसे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम इसकी स्थिति है, इसप्रकार अपने २ अनुभवके अनुसार सबका कथन सत्य है, ॥ ८१ ॥ और यथार्थ न बिज्ञानवादीके मतमें इस प्रपंचकी न आभ्यन्तर विज्ञानमात्रता सत्य है और नवैशे-

षिकके मतमें द्रव्य गुण तथा कर्मआदि सत्त बाह्य पदार्थता सत्य है किन्तु तुमलोगोंके संकल्पके अनुसार ये सब प्रपंच फलीभूत होतेहैं ॥ ८२ ॥ और यथार्थमें चेतनमें जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय यह प्रकाश करनेकी शक्ति है वही जगत्‌रूपसे भासती है इसलिये चेतन और जगत्‌में जल और द्रवत्वके तुल्य भेदयुक्त नहीं है ॥ ८३ ॥ हे रामजी ! सर्वाधार काल, उसके अन्तर्गत ब्रह्मांड, ब्रह्मांडोंके अन्तर्गत चतुर्दश भुवन भुवनोंके अन्तर्गत अहंता तथा त्वंता आदि भोक्ता भोक्ताओंके उपकरण इन्द्रियसमूह, शब्द स्पर्श रूप रस आदि भोग्यविषय, और उनमें विचित्र भोग, यह सब मायाशबलित सर्वज्ञ सर्व तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी शक्तिसे सिद्ध है इसलिये सब शान्त, अज तथा एकचिदाकाशरूपही है, ऐसा निश्चय होनेपर कोई राग आदिका संभव नहीं है ॥ ८४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दृश्योपदेशयोगो नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस ३८ के सर्गमें चित् चेत्य सृष्टिके भेदके भ्रमकी निराक्षतापूर्वक चिन्मात्रही जगत् है इस विषयका वर्णन उत्तम तर्कोंकेद्वारा कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्पश्यतिजगन्मिथ्यास्ववेदनविबोधिता ॥ व्योम्निमायांजनासिक्ताद्दगिवाचलतां तरम् ॥ १ ॥ ब्रह्मसर्गश्चित्तसर्गौद्वावेतौसदृशौमतौ ॥ परमार्थस्वरूपत्वादक्षुब्धत्वात्सदैवच ॥ २ ॥ ज्ञानरूपतयाबाह्यंबाह्यंचानुभवात्तथा ॥ सत्यरूपमतःसत्यांविद्धिबाह्यार्थरूपताम् ॥ ३ ॥ बाह्यार्थवादविज्ञानवादयोरैक्यमेवनः ॥ वेदनात्मैकरूपत्वात्सर्वदासदसंस्थितेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह चेतन अपने स्वरूपके जीव अन्तःकरण आदि मिथ्या भ्रमसे विक्षिप्त होकर जगत्‌को ऐसे देखताहै जैसे मायाके अंजनसे लिप्त नेत्र आकाशमें पर्वत शिखर तथा बनआदिको देखताहै ॥१॥ यह ब्रह्मकी सृष्टि तथा चित्तसे संकल्पित सृष्टि दोनों सदृश हैं, और परमार्थमें सदा दोनों क्षोभरहित हैं ॥ २ ॥ जैसे भित्तिमें कल्पित चित्रकी सृष्टि यथार्थमें भित्तिरूप है, और भ्रमसे बाह्यरूपसे भासती है ऐसेही ज्ञानमें कल्पित जगत्‌रूप सृष्टि ज्ञानरूप है, भ्रांत अनुभवसे बाह्यरूप भासताहै इसलिये बाह्य पदार्थरूपको तुम सत्यरूपही जानो ॥ ३ ॥ सर्वदा चेतनसे भिन्न अविज्ञात असत् बाह्य प्रपंचकी स्थिति न होनेसे और दोनोंके चेतनकी स्फूर्ति मात्र होनेसे बाह्यार्थ वाद तथा विज्ञान वाद हमारे मतमें एकही हैं ॥ ४ ॥

अक्षुब्धखानिलालोकजलभूशांतिशालिनी ॥ तताशून्यामहारंभाब्रह्मसत्तैवसर्वतः ॥५॥ तस्मैसर्वततः सर्वतत्सर्वसर्वतश्चतत् ॥ तच्चसर्वमयंनित्यंतस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ६ ॥ चिन्मयत्वाद्यदाचेत्यमेतिद्रष्टृ चितैकताम् ॥ तदादृश्यांगयैवैतच्चेत्यतेनान्यथाचिता ॥ ७ ॥ यदाचिन्मात्रमेवेयंद्रष्टृदर्शनदृश्यदृक् ॥ तदानुभवनंतत्रसर्वस्यफलितंस्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सब पदार्थ चिद्रूप होनेसे क्षुब्ध आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवीकी सत्ता क्षोभरहित, शांतिमय, व्यापक, महा आरंभयुक्त सर्वत्र ब्रह्मकीही सत्ताहै ॥ ५ ॥ उसी परमात्माके लिये सबकुछहै, उसीसे सर्व है, वही सब ओरसे और सर्वरूप है, इसलिये उस सर्वरूप परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ सब चिन्मय होनेसे जब अन्तःकरण अब छिन्न अर्थात् द्रष्टा चेतन चाक्षुषवृत्तिद्वारा घटआदि विषय देशमें एकरूप होताहै तब घटआदि दृश्यको अपना अंग बनाके प्रकाशित करताहै अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥ जब द्रष्टा, दर्शन, तथा दृश्यकी सिद्धि चिन्मात्रके विना नहीं होसकती तब अनुभवमात्रही सब है यह फलित हुआ ॥ ८ ॥

द्रष्टृदृश्येनयद्येकमभविष्यच्चिदात्मके ॥ तद्दृश्यास्वादमज्ञःस्यान्नाद्दृष्ट्वेक्षुमिवोपलः ॥ ९ ॥ चिन्मयत्वाच्चितौचेत्यंजलमप्स्विवमज्जति ॥ तेनानुभूतिर्भवतिनान्यथाकाष्ठयोरिव ॥ १० ॥ सजातीयैकताभावाद्यद्वत्काष्ठंनचेतते ॥ दारुतद्वदपिद्रष्टादृश्यंनाज्ञास्यदाजडम् ॥ ११ ॥ यादृक्सत्तानिकाष्ठानितादृग्रूपंत्व चेतनम् ॥ जानंतिनेतरत्तस्मादृश्यंचिद्दृश्यचेतनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यदि द्रष्टा तथा दृश्य साक्षीचेतनमें एकरूप न हो तो इक्षु (ईख) को देखकर उसके चूषनेमें प्रवृत्त पुरुष उसके आस्वादमें पाषाणके तुल्य अनुभवरहित होजाय, क्योंकि जडरसका अनुभव नहीं करसकता, और

न जडरस उसके प्रति स्फुरित होसकताहै ॥ ९ ॥ जैसे जलमें जलका बिंदु एकरूप होजाताहै ऐसेही चिन्मय होनेसे विषय चेतनमें एकरूप होजाताहै, इसीसे मैं अमुक रस वा रूपका आस्वाद लेताहूं इसप्रकार अनुभव होताहै, अन्यथा नहीं जैसे एककाष्टका दूसरे काष्टको अनुभव नहीं होता ॥ १० ॥ जैसे एककाष्ट दूसरे काष्टको सजातीय एकता होनेपरभी चित्के साथ एकताके अभावसे नहीं जानता ऐसेही दृश्य यदि चित्की एकतासे शून्य सर्वथा जडरूप हो तो द्रष्टा उसे कदापि नहीं जानसकता ॥ ११ ॥ काष्ट आदि दृश्यपदार्थोंकी जो स्थिति है, उस अचेतनरूपको तो सब जानतेहैं, परन्तु उससे विलक्षण जो चेतनरूप सर्वत्र व्याप्त जो स्थितहै उसको नहीं जानते इसलिये पूर्वोक्त युक्तिसे द्रष्टा तथा दृश्य चेतनरूप है ॥ १२ ॥

महाचिदात्मनैवास्तिजलानिलधराश्मतम् ॥ नैतेषुस्पंदबुद्ध्यादिप्राणजीवाद्यभावतः ॥ १३ ॥ प्राणबुद्ध्यादयःसत्तांभावनावशतोगताः ॥ भावनाचिच्चमत्कारःसयथेच्छमुदेतिच ॥ १४ ॥ जगत्तयाशांततयाब्रह्मसत्तावतिष्ठते ॥ पुंस्तयागतएवात्मारेतोवटकबीजयोः ॥ १५ ॥ सर्वाग्राणुमयेबीजेयोस्मादग्रगतोणुकः ॥ ससतत्तद्भवत्यग्रंबीजंस्वात्मनिखंस्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—जल, वायु, पृथिवी तथा पाषाण आदि पदार्थ सब महा चित्रूपही हैं, क्योंकि इनमें स्पन्द, बुद्धि प्राण जीव आदि नहीं हैं ॥ १३ ॥ और प्राणबुद्धि तथा जीव आदि कल्पनाके बशसे सत्ताको प्राप्त हुये हैं, और भावनाचेतनका चमत्कारहै, वह उसकी इच्छापूर्वक उदय होताहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मसत्ताही जाग्रत स्वप्नमें जगत्रूपसे और प्रलय तथा सुषुप्तिमें शांतरूपसे ऐसे स्थित रहती है जैसे वीर्य्य तथा वटके बीजमें आत्मा पुरुष शक्तिसे तथा वृक्षशक्तिसे युक्त रहताहै ॥ १५ ॥ समग्र बीजमें जो २ सार पदार्थ हैं वही परमात्मा है और वही अंकुर तथा शाखा आदि रूपमें होकर पुनः बीजरूप होताहै ॥ १६ ॥

ब्रह्मसर्वपराण्वात्मायोयस्मादर्थतोणुकः ॥ ससतत्तद्भवेद्वस्तुवस्तुब्रह्मैवतिष्ठति ॥ १७ ॥ द्रव्यमेवयथाद्रव्यंतिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ सर्वमेवतथाब्रह्मयेनतेनयथातथा ॥ १८ ॥ हेमत्वमेवनान्यत्वंहेमरूपशते यथा ॥ शांतत्वमेवशांतस्यसर्गाहंत्वगणेतथा ॥ १९ ॥ पार्श्वस्थस्वप्नमेघौघायथातवनकाश्चन ॥ सर्गप्रलयसंरंभास्तथाखात्मानएवमे ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्म सबसे अति सूक्ष्म परमाणुरूप है, इसलिये बीजादिमें जो २ सूक्ष्म कारणसे प्रसिद्ध है वह ब्रह्म हैं और स्थूल कार्य्य मायामय मिथ्या है इससे यह सिद्ध है कि सर्वत्र सारवस्तु ब्रह्मही स्थित है ॥ १७ ॥ जैसे घट आदि पदार्थोंमें नीचे ऊपर तिरछां जहांसे देखो घट आदि पदार्थ है ऐसेही जगत्में मूलसे लेके शाखाके अग्रभागतक जिस २ पुरुषने परीक्षा करके देखा है उसको २ ब्रह्मरूपही सब देख पडताहै ॥ १८ ॥ जैसे अनेक सुवर्ण आभूषण आदि आकारोंमें सुवर्णही हैं, ऐसेही जगत् तथा जीव आदि समूहमें सर्वत्र ब्रह्मही है अन्य कुछ नहीं ॥ १८ ॥ जैसे तुमारे स्वप्नके मेघ आदिके समूह आत्मासे अन्य कुछ नहीं है, ऐसेही सृष्टि तथा प्रलयके समारंभ आत्मस्वरूपही हैं ॥ २० ॥

पंकताकल्पिताव्योम्नोयापुत्रकपताकिनी ॥ सायथाशांततामात्रंखमेवेदंतथाजगत् ॥ २१ ॥ संकल्पभ्रमएवांतःपुष्पीभूयजगत्स्थितम् ॥ जलावनितलक्लिन्नबीजंकल्पइवद्रुमः ॥ २२ ॥ अनहंतात्मनोज्ञस्यसतएकत्वमासतः ॥ जरत्तृणलवायंतेननुनामाणिमादयः ॥ २३ ॥ त्रैलोक्येतन्नपश्यामिसदेवासुरमानुषम् ॥ एकरोमांशविश्वस्ययल्लोभायमहात्मनां ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें कल्पित मलिनता वा गंधर्वोंकी सेना आकाशमात्रही है ऐसेही यह संपूर्ण जगत् शांत चिदाकाशमात्रही है ॥ २१ ॥ संकल्पही अंतःकरणमें पुष्परूप होके बाहर जगत्रूप फलके आकारमें ऐसे आविर्भूत होताहै जैसे पृथिवीतलपर जलसे सिक्त वट आदिका बीज प्राणियोंको छायाआदि देनेमें समर्थ वृक्षरूप होजाताहै ॥ २२ ॥ अहंकाररहित, निरतिशय आनंदरूप ब्रह्ममें एकताको प्राप्त ज्ञानीकी दृष्टिमें अणिमा लघिमा आदि सिद्धियां जीर्ण तृणके लेशके तुल्य तुच्छ जानपडती हैं ॥ २३ ॥ जिसके एक रोमके लेशके सदृश संपूर्ण विश्व है ऐसी ज्ञानी महात्माके लुभानेके अर्थ त्रिलोकमें किसी देव, असुर वा मनुष्यको मैं नहीं देखता ॥ २४ ॥

यथातथास्थितस्यापियन्नतत्रगतस्यच ॥ द्वैतसंकल्पसंदोहानसंत्यधिगतात्मनः ॥ २५ ॥ विश्वमेवनभोयस्यशून्यंसर्वमहात्मनः ॥ कुतःकस्यकथंतस्यभवत्विच्छानिरात्मनः ॥ २६ ॥ शांताशेषविशेषस्यनिरेषणविशेषतः ॥ सत्तामसत्तांसदृशौकआकलयितुंक्षमः ॥ २७ ॥ मारैर्नकिंचिन्म्रियतेजीवैःकिंचिन्नजीवति ॥ शुद्धसंविन्मयस्यास्यसमालोकस्यस्वस्यच ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस किसीप्रकारसे चाहे जहां स्थित ज्ञानको द्वैत तथा संकल्पके संदेह होतेहीं नहीं ॥ २५ ॥ जिस महात्माकी दृष्टिमें संपूर्ण विश्व शून्य आकाशमय है उसको स्वरूपरहित भोग आदि हेतुसे इच्छा कहांसे और कैसे होसकती है ॥ २६ ॥ जिसके संपूर्ण विशेष तथा वित्त आदि एषणा (इच्छा) शांत है, और जो विभव तथा दरिद्रताको समान देखताहै उस महात्माकी महिमा कौन कहसकताहै ॥ २७ ॥ जो न मरणके हेतुओंसे मरताहै, और न जीवनके हेतुओंसे जीताहै उस शुद्ध ज्ञानमय, स्वप्रकाशरूप आकाशके तुल्य व्याप्त महात्माकी महिमाको कौन कहसकताहै ॥ २८ ॥

मिथ्यालोकस्यकचतोभ्रांत्यामरणजन्मनी ॥ असत्यपिभ्रांतिभाजिमृगतृष्णानदीतटे ॥ २९ ॥ सम्यक्परीक्षितंयावन्नभ्रांतिर्नपरीक्षकाः ॥ ननामजन्मरणेकेवलंशांतमव्ययम् ॥ ३० ॥ दृश्याद्योविरतिंयातआत्मारामःशमंगतः ॥ सन्नेवासदाभासःपरितीर्णभवार्णवः ॥ ३१ ॥ दीपनिर्वाणनिर्वाणमस्तंगतमनोगतिम् ॥ आत्मन्येवशमंयातंसंतमेवामलंविदुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अज्ञानीजनकी दृष्टिमें मृगतृष्णाकी नदीके तटके तुल्य ये जन्ममरण भ्रममय चित्तमें मिथ्याही विकसित होरहेहैं ॥ २९ ॥ उत्तम रीतिसे परीक्षा करनेके पश्चात् न भ्रांति है, न परीक्षक हैं, और न जन्ममरण हैं किंतु केवल एक, शांत और अविनाशी परमात्माही है ॥ ३० ॥ जो शांत आत्माराम महात्मा दृश्यसे उपरामको प्राप्त है संसारसागरसे पार होगयाहै वह ब्रह्मरूपसे विद्यमान भी परंतु देहइन्द्रियआदि सहित परीक्षकरूपसे असत्केही समान है ॥ ३१ ॥ जिसके मनकी गति अस्त है, और आत्माहीमें जो शांत है उसके ब्रह्मरूपसे वर्तमान रहते भी दीपके निर्वाणके तुल्य निर्मल निर्वाण कहतेहैं ॥ ३२ ॥

आबुध्यादिजगद्दृश्यंयस्मैनस्वदतेस्वतः ॥ आकाशस्येवशांतस्यतमाहुर्मुक्तमुत्तमाः ॥ ३३ ॥ अहमस्त्यविचारेणविचारेणाहमस्तिनो ॥ अभावादहमर्थस्यक्वजगत्क्वचसंसृतिः ॥ ३४ ॥ संवित्संवेदनादेवबुद्ध्याद्याकारवत्स्थितम् ॥ रूपालोकमनोरूपंजगद्वेत्तिचिदंबरम् ॥ ३५ ॥ सर्वार्थरिक्तमनसःसतःसर्वात्मनस्तव ॥ सर्वथासर्वदासर्वंसर्वमाचरणंशिवम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिसको बुद्धिसे आदिलेके सम्पूर्ण जगत्रूप दृश्य नहीं रुचता उस आकाशके तुल्य शांत महात्माको उत्तमजन मुक्त कहते हैं ॥ ३३ ॥ और अविचारसेही मैं वसिष्ठरूपसे भासताहूं, विचारसे नहीं, अहंभावके अर्थके अभावसे कहां यह जगत् कहां जन्ममरण आदि ॥ ३४ ॥ यथार्थमें चिदाकाशही अपने स्वरूपके अन्यथा ज्ञानसे बुद्धिआदि आकारमें स्थितहै, और वही बाह्य तथा आभ्यन्तर जगत्को जानताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! मेरे सदृश जब तुमाराभी मन सब पदार्थोंसे शून्य होजायगा तब तुमको भी सदासर्वथा यह सब जगत् तथा आचरण शिवरूपही भासेगा ॥ ३६ ॥

यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ॥ यत्तपस्यसिहंस्येषितत्सर्वंशिवमव्ययम् ॥ ३७ ॥ यदहंयत्त्वमाशायद्यत्क्रियाकालखादयः ॥ यल्लोकालोकगिरयस्तच्चिद्व्योमशिवंततम् ॥ ३८ ॥ यद्रूपालोकमननंयत्कालत्रितयंजगत् ॥ यज्जरामरणार्त्यादितन्महाचिन्नभःशिवम् ॥ ३९ ॥ निश्चिकित्सोनिराभासोनिरिच्छोनिर्मनामुनिः ॥ भूत्वानिरात्मानिर्वाणस्तिष्ठसंतिष्ठसेयथा ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो कुछ तुम करते हो, खाते हो, होम करते हो, देते हो, तप करते हो, और मारते हो वह सब अविनाशी ब्रह्मरूपही है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! हम, तुम, दिशा, इच्छा, क्रिया, काल, आकाशआदि पंचभूत, और लोकालोकादि पर्वत तथा अन्य जो कुछ है सब व्याप्त चिदाकाशरूपही है ॥३८ ॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर जगत्का जो अनुभव है, तीनोंकाल, सब ब्रह्मांड तथा जो जरामरणआदि हैं वह सब महा चिदाकाश शिवरूपही है ॥३९ ॥ हे रामजी ! दुःखके शमनके उपायसे शून्य निराभास इच्छारहित तथा मनसे रहित जैसे निर्वाण मुनि स्थित रहताहै ऐसेही तुम भी स्थित रहो ॥ ४० ॥

गतेच्छमननंशांतमनंतस्थमभावनम् ॥ व्यवहारोस्तुतेमावास्पंदास्पंदैर्यथानिलः ॥ ४१ ॥ निर्वासनानिष्कलनाशांतापुरुषतास्तुते ॥ शास्त्रेणयंत्रवाहेनवाह्यादारुमयीयथा ॥ ४२ ॥ भूतालोकस्तुमास्नेहोमावास्नेहश्चबाह्यगः ॥ अनिर्देशधरालोकश्चित्रदीपवदास्यताम् ॥ ४३ ॥ निर्वासनस्यविरसस्यनिरेषणस्यशास्त्राहतेकइवतत्त्वविनोदहेतुः ॥ शास्त्रार्थसज्जनमतोप्यमलस्यतस्यसंवेदनेष्वनभिसंधिमतःस्वरूपम् ॥४४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनंनामाष्टत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इच्छा तथा मननसे रहित, शांत, अनन्तब्रह्ममें स्थित, और भावनारहित वायुके स्पंद और उसके अभावके सदृश तुमारा व्यवहार हो वा न हो ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! शास्त्ररूपी यंत्र वाहककेद्वारा वासना तथा कल्पनासे शून्य पुरुषके उचित तुमारी चेष्टा ऐसे हो जैसे काष्ठकी मूर्तिकी ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! बाह्य माता-पिता तथा बन्धुजन आदि संबंधी तुमारा व्यवहार न तो अतिस्नेह युक्त हो और न स्नेहरहित हो, किन्तु अन्यजनोंसे अनिर्वचनीय चित्रस्थ दीपके प्रकाशके तुल्य तुमारी स्थिति हो ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! वासना शून्य वर्तमानभोगोंके स्वादसे रहित, और भावीभोगोंमे इच्छारहित ज्ञानीको सत्शास्त्रोंके सिवाय आत्मसुखमें विश्रामका हेतु और क्या है, इसलिये निर्मल तत्वज्ञानीका संवेदनपूर्वक व्यवहारोंमें शास्त्र तथा अपने वर्ण आश्रमके अनुसार फलकी इच्छा त्यागपूर्वक वर्तनाही असाधारण चिन्ह है ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनं नामाष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

प्रबुद्ध तथा आत्मामें विश्रांत ज्ञानीका और उसकी दृष्टिमें जो जगत्का रूप है वह स्पष्टरीतिसे इस ३९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संजाताकृत्रिमक्षीणसंसृतिप्रत्ययःपुमान् ॥ असंकल्पोनसंकल्पंवेत्ति तेनासदेवसः ॥ १ ॥ श्वासान्म्लानिरिवादर्शेकुतोप्यहमितिस्थिता ॥ विदिसाऽकारणंदृष्टानश्यंत्याशुनलभ्यते ॥ २ ॥ यस्यक्षीणावरणताशांतसर्वेहतोदिता ॥ परमामृतपूर्णात्मासत्तयैवसराजते ॥ ३ ॥ सर्वसंदेहदुर्ध्वांतमिहिकामातरिश्वना ॥ भातिभास्वद्धियादेशस्तेनपूर्णेंदुनेवखम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! संसारके प्रपंचसेरहित संकल्पशून्य, तथा स्वाभाविक आत्मसाक्षात्कार युक्त पुरुष शास्त्रानुसार चलनेपरभी संकल्प नहीं जानता इसलिये उसका संकल्पभास असत्केही तुल्य है ॥ १ ॥ श्वाससे दर्पनकी मलिनताके तुल्य किसी अनिर्वचनीय कारणसे जो संकल्पका बीज अहंता आविर्भूत है वह तत्वज्ञानीमें शीघ्र नष्ट होजाताहै, और ढूंढनेपरभी नहीं मिलता ॥ २ ॥ जिस पुरुषको अज्ञानवरणकी क्षीणतायुक्त, और सब चेष्टाओंकी शांतियुक्त परम अमृतमय आत्मानन्दकी पूर्णता उदित है वह सब कामनाओंसेरहित उसी निरतिशय आनन्दमयी आत्मसत्तासे शोभित होताहै ॥ ३ ॥ सबके सन्देहरूप अन्धकाररूप कुहिराके नाशार्थ पवनके समान, तथा प्रकाशमयी बुद्धिसे युक्त ज्ञानीपुरुष देश (जहां रहता वा जाताहै वह देश) ऐसे प्रकाशित होताहै जैसे पूर्णचन्द्रमासे आकाश ॥ ४ ॥

विसंसृतिर्विसंदेहोलब्धज्योतिर्निरावृतिः ॥ शरदाकाशविशदोज्ञेयोविज्ञायतेबुधः ॥ ५ ॥ निःसंकल्पो निराधारःशांतःस्पर्शात्पवित्रताम् ॥ अंतःशीतलआधत्तेब्रह्मलोकादिवानिलः ॥ ६ ॥ असद्रूपोपलंभा नामियंवस्तुस्वभावता ॥ यत्स्वर्गवेदनंस्वप्नवंध्यापुत्रोपलंभवत् ॥ ७ ॥ अविद्यमानमेवेदंजगद्यदनुभूयते ॥ असद्रूपोपलंभस्यसैषावस्तुस्वभावता ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारके मोहसे तथा सन्देहसे रहित, आत्मप्रकाशमय तथा अज्ञानरूप आवरणसे वर्जित विशाल शरत्ऋतुके आकाशके समान ज्ञानीपुरुष चिदात्मारूपही जानपडताहै ॥ ५ ॥ संकलपरहित, निराधार और शान्त ज्ञानीपुरुष दंडवत् शुश्रुषाआदिसे समागम करनेवाले प्राणियोंके अन्तःकरणमें ऐसे शीतलता स्थापित करताहै जैसे ब्रह्मलोकके प्राप्त वायु ॥ ६ ॥ असत् पदार्थोंके रूपोंकी प्राप्तिमें यही वस्तुकी स्वभावताहै जैसे स्वप्नमें स्वर्गका अनुभव और वन्ध्यापुत्र दर्शन ॥ ७ ॥ असत् पदार्थकी प्राप्तिका यही वस्तुस्वभाव है कि स्वप्नमें वंन्ध्याके पुत्रके सदृश अविद्यमानभी इस जगत्का अनुभव होताहै ॥ ८ ॥

असत्येष्वेवसंसारेष्वास्तामर्थःकुतोभवेत् ॥ सर्गापवर्गयोःशब्दावेववंध्यासुतोपमौ ॥ ९ ॥ जगद्ब्रह्मतयासत्यमनिर्मितमभावितम् ॥ अनिष्ठितंचान्यथात्वनाहंनावगतंचतत् ॥ १० ॥ आत्मस्वभावविश्रांतेरियंवस्तुस्वभावता ॥ यदहंतादिसर्गादिदृःखाद्यनुपलंभता ॥ ११ ॥ क्षणाद्योजनलक्षांतंप्राप्तेदेशांतरेचितः ॥ चेतनेयस्यतद्रूपंमार्गमध्येनिरंजनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—असत्य संसारमें जब सृष्टिबन्ध तथा अपवर्गके शब्दभी वन्ध्याके पुत्रके सदृश हैं तब उनके अर्थकी सिद्धि कहांसे होसकती है ॥ ९ ॥ रचना, भावना तथा आधाररहित यह जगत् ब्रह्मरूपसे सत्य है, और ब्रह्मरूपता न माननेसे हम नहीं जानते कि यह कैसाहै ॥ १० ॥ आत्मामें विश्रामरूप वस्तुका यह स्वभाव है कि अहंत तथा सृष्टि आदि दुःखोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ११ ॥ क्षणभरमें एक देशसे दूसरे देशमें लाखो योजन प्राप्त जो चेतन है उन दोनों देशोंके मध्यमें जो चित्का रूप है वही निरंजन आत्माका रूप है ॥ १२ ॥

अस्पंदवातसदृशंखकोशाभत्सचिन्मयम् ॥ अचेत्यंशांतमुदितंलताविकसनोपपम् ॥ १३ ॥ सर्वस्यजंतुजातस्यतत्स्वभावंविदुर्बुधाः ॥ सर्गोपलंभोगलतितत्रस्थस्यविवेकिनः ॥ १४ ॥ सुषुतेस्वप्नधीर्नास्ति स्वप्नेनास्तिसुषुप्तधीः ॥ सर्गनिर्वाणयोर्भ्रांतीसुषुप्तस्वप्नयोरिव ॥ १५ ॥ भ्रांतिवस्तुस्वभावोसौस्वप्नसुषुप्तता ॥ नसर्गोनचनिर्वाणंसत्यंशांतमशेषतः ॥ १६ ॥

अर्थ—स्पन्द शून्य आकाशके कोशके तुल्य निर्मल चिन्मय, विषयशून्य, शांत तथा विकसित लताके समान आविर्भूत, भूतल तथा चन्द्रआदि देशके मध्यमें जो चित्का रूप है उसीको सब जीवसमूहका प्रसिद्धस्वभाव तत्वज्ञानीजन कहते हैं, और उस शुद्धचित्स्वरूपमें स्थित विवेकीको सृष्टिका भान नहीं होता ॥ १३ ॥ १४ ॥ सुषुप्तिमें स्वप्नकी बुद्धि नहीं रहती, और स्वप्नमें सुषुप्तिकी बुद्धि नहीं रहती, और चित् साक्षीरूपसे सर्वत्र है, यथार्थमें सुषुप्ति तथा स्वप्नके समान सृष्टि और प्रलयभी भ्रमरूपही है ॥ १५ ॥ यथार्थमें सुषुप्ति तथा स्वप्न भ्रमका स्वभाव है ऐसेही सृष्टि और प्रलयभी भ्रमरूपही है किन्तु सर्वथा शांत चिन्मात्रही सत्य है ॥ १६ ॥

भ्रांतिस्त्वसन्मात्रमयीप्रेक्षिताचेन्नलभ्यते ॥ शुक्तिरूप्यमिवासत्यांकिलसंप्राप्यतेकथम् ॥ १७ ॥ यन्नलब्धंचतन्नास्तितेनभ्रांतेरसंभवः ॥ स्वभावाद्उपलंभोन्योनास्तिकस्यनकस्यचित् ॥ १८ ॥ स्वभावएव सर्वस्मैस्वदतेकिलसर्वदा ॥ अनानैवहिनानेवकिंवादैस्संविभाव्यताम् ॥ १९ ॥ अस्वभावेमहदुःखंस्वभावेकेवलंशमः ॥ इतिबुद्ध्याविचार्यांतर्यदिष्टंतद्विधीयताम् ॥ २० ॥

अर्थ—यह भ्रांति असत्यरूपहै विचारपूर्वक देखनेसे नहीं मिलती, शुक्तिके रूपके सदृश असत्यको कैसे और कौन पासकताहै ॥ १७ ॥ जो वस्तु उपलब्ध नहीं होती वह नहीं है, इसलिये भ्रांति असंभवहै, और भ्रांतिसे अन्यकी उपलब्धि प्रभारूपही होगी वह साक्षीस्वभावसे पृथक् नहीं है ॥ १८ ॥ एकरूप चित्स्वभावही नानारूपके समान सब जीवोंको परमप्रेमरूपसे भान होताहै, इसी चित् साक्षीरूपकी भावना करो, और व्यर्थ वाद निष्फल है ॥ १९ ॥ चित्स्वभावसे विरुद्ध कल्पना महा दुःखहै, और अकल्पित साक्षी चित्स्वभावमें स्थिति परमशांत कैवल्य ऐसा बुद्धिसे विचार करके जो इष्टहो उसको ग्रहण करो ॥ २० ॥

सूक्ष्मेबीजेस्त्यगःस्थूलोदृष्टमित्युपपद्यते ॥ शिवेमूर्त्तंजगन्मूर्त्तमस्तीत्युत्तमसंकथा ॥ २१ ॥ रूपालोकमनस्कारबुद्ध्याहंतादयःपरे ॥ स्वरूपभूताःसलिलेद्रवत्वमिवखात्मकाः ॥ २२ ॥ मूर्त्तोयथास्वसदृशैःकरोत्यवयवैःक्रियाः ॥ आत्मभूतैस्तथाभूतैश्चिदाकाशमकर्तृसत् ॥ २३ ॥ आत्मस्थादहमित्यादिरस्मदादेरसंस्तेः ॥ शब्दोर्थभावमुक्तोयःपटहादिषुजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे सूक्ष्म बीजमें महान् स्थूल वृक्ष है ऐसेही अमूर्त शिवरूपब्रह्ममें सब मूर्तिमान् ब्रह्मांड है, यही तत्वज्ञानी तथा वेदोंका उत्तम कथन है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तरके विषय तथा बुद्धि और अहंता आदि परब्रह्ममें चिदाकाशरूप ऐसे हैं जैसे जलमें द्रवत्व ॥ २२ ॥ जैसे मूर्तिमान् पुरुष अपने आत्मभूत हस्तपाद आदि अवयवोंसे क्रियाओंका कर्ताहै ऐसेही अकर्ता तथा सत्रूप चिदाकाश निजआत्मरूप पंचभूतोंसे जगत्की उत्पत्ति आदि क्रिया करताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! आत्मासे अधिष्ठित देहसे जिव्हा आदि इन्द्रियेंसेही शब्द आदि व्यवहार ऐसे होते हैं जैसे नर्तकके ताल आदि अभिप्रायको जाननेवाले वादक पुरुषसे अधिष्ठित नगारे आदिमें शब्द ॥ २४ ॥

यद्भातंप्रेक्षयानास्तितत्रास्त्येवनिरंतरम् ॥ जगद्रूपमरूपात्मब्रह्मब्रह्मणिसंस्थितम् ॥ २५ ॥ येषामस्ति जगत्स्वप्नस्तेस्वप्नपुरुषामिथः ॥ नसंतिह्यात्मनिमिथोनास्मास्वंबरपुष्पवत् ॥ २६ ॥ मयिब्रह्मैकरूपंतेशांतमाकाशकोशवत् ॥ वायोःस्पंदैरिवाभिन्नैर्व्यवहारैश्चतन्मयि ॥ २७ ॥ अहंतुसन्मयस्तेषांस्वप्नःस्वप्नतामिव ॥ तेतुनूनमसंतोमेसुषुप्तस्वप्नकाइव ॥ २८ ॥

अर्थ—जो बिना विचारे भासताहै और विचारसे नहीं भासता वह सर्वदा नहीं है, इसलिये अविचार सिद्ध जगत्का जडरूपस्वरूप शून्य ब्रह्मरूपही है, और ब्रह्म अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थितहै ॥ २५ ॥ जिन अज्ञानियोंको यह

जगत्‌रूप स्वप्न है, वे स्वप्नके पुरुष अन्यके स्वप्न वा जाग्रत्‌में अथवा अपनेही अन्य स्वप्नमें नहीं हैं, और सर्वदा ब्रह्मभूत हमलोगोंकी दृष्टिमें तो वे आकाशके पुष्पके तुल्य सर्वथा नहीं हैं ॥ २६ ॥ वायुके स्पन्दके तुल्य अपनेसे अभिन्न व्यवहारों सहित वे पुरुष अधिष्ठानरूपसे मुक्त ब्रह्ममें विद्यमानही हैं क्योंकि वे पुरुष तथा उनके व्यवहार यथार्थमें शान्त ब्रह्मरूपही हैं और ब्रह्म मुझ साक्षीरूपही है ॥२७॥ और स्वप्न द्रष्टाओंके स्वप्नके समान उन अज्ञपुरुषोंकी दृष्टिमें मैं वसिष्ठरूपसे सत्यहूं, और उनका शरीर मेरी दृष्टिमें ऐसे असत्य है जैसे सुप्त पुरुषको स्वप्नके पुरुष २८

तैस्तुयोव्यवहारोमेतद्ब्रह्मब्रह्मणिस्थितम् ॥ तेयत्पश्यंतिपश्यंतुतत्तैरलमलंमम ॥ २९ ॥ अहमात्मनिनेवास्मिब्रह्मसत्तेयमातता ॥ त्वदर्थंसमुदेतीवतथारूपैववागियम् ॥ ३० ॥ अविरुद्धविरुद्धस्यशुद्धसंविन्मयात्मनः ॥ नभोगेच्छानमोक्षेच्छाहृदिस्फुरतितद्विदः ॥ ३१ ॥ स्वभावमात्रायत्तेस्मिन्बंधमोक्षक्रमे नृणाम् ॥ कदर्थनेत्यहोमोहाद्गोष्पदेप्युदधिभ्रमः ॥ ३२ ॥

अर्थ—उनके साथ जो मेरा उपदेश आदि व्यवहार हैं उनको न सत्य दृष्टिसे देखें परंतु मेरी दृष्टिमें वे ब्रह्मरूप हैं और ब्रह्ममेंही स्थित मुझे उनसे कुछभी प्रयोजन नहीं है ॥ २९ ॥ मैं इस वसिष्ठदेहसे ब्रह्मभावसे नहीं हूं किन्तु इस रूपसे ब्रह्मसत्ताही व्याप्त है और ब्रह्मरूपही यह वाणी उपदेश आदि तुमारे लिये उदित है ॥ ३० ॥ जिस तत्वज्ञानीको विरुद्ध दुःख आदि सब अविरुद्ध शुद्ध सच्चिदानंदरूप हैं उसके हृदयमें न भोगोंकी इच्छा और मोक्षकी इच्छा स्फुरित होती है ॥ ३१ ॥ अहो ! निज आधीन ब्रह्मस्वभावमात्रमें स्थिति बन्धनसे मुक्तिकी प्राप्तिमें मोहसे पीडा होरही है, यह गौके खुरमें उनको समुद्रका भ्रम होरहाहै ॥ ३२ ॥

स्वभावसाधनेमोक्षेभावोपशमरूपिणि ॥ नधनान्युपकुर्वंतिनमित्राणिनचक्रियाः ॥ ३३ ॥ तैलबिंदुर्भवत्युच्चैश्वक्रमप्पतितोयथा ॥ तथाशुचेत्युसंकल्पेस्थिताभवतिचिज्जगत् ॥ ३४ ॥ जाग्रतिस्वप्नवृत्तांतस्थितिर्यादृगसास्मृतौ ॥ तादृग्रसाहंत्वजगज्जालसंस्थाविवेकिनः ॥ ३५ ॥ तेनैवाभ्यासयोगेनयातितत्तनुतांतथा ॥ यथानाहंनसंसारःशांतमेवावशिष्यते ॥ ३६ ॥ यदायदास्वभावार्कःस्थितिमेतितदा तदा ॥ भोगांधकारोगलतिनसन्नप्यनुभूयते ॥ ३७ ॥ मोहमहत्तारहितःस्फुरतिमृतौभवतिभासतेच तथा ॥ बुद्ध्यादिकारणनिकरोयस्माद्दीपादिवालोकः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वसिष्ठगीतासुखभावविश्रांतियोगोपदेशो नाम एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—असत् दुःखोंके शान्तिमय ब्रह्मस्वभावमात्रमें स्थितिरूप इस मोक्षके साधनमें न धन, न मित्र और न कोई क्रिया उपकारी होतीहै ॥ ३३ ॥ जैसे तैलका बिन्दु जलमें गिरनेसे नानाचक्राकार होजाताहै ऐसेही विषयके संकल्पमात्रसे शीघ्रही चित् जगत्‌रूपसे स्थित होता है ॥ ३४ ॥ जैसे जाग्रत् अवस्थामें मनुष्यकी स्मृतिमें स्वप्नका वृत्तान्त मिथ्या भासताहै ऐसेही तत्त्वज्ञानीको यह जगत्‌जाल सदा भासताहै ॥३५॥ उसी पूर्वोक्त ब्रह्मस्वभावमात्रमें स्थितिरूप योगाभ्याससे विवेकीको यह जगत्‌जाल ऐसे सूक्ष्म होजाताहै कि उसको न तो अहंभाव और न यह संसार भासताहै, किंतु शांत ब्रह्मरूपही शेष रहताहै ॥ ३६ ॥ जब २ ब्रह्मस्वभावरूप सूर्य्यका उदय होताहै तब २ यह मोहगरूप अन्धकार नष्ट होजाताहै, और त्रिकालमें भोग सत् नहीं है ऐसा अनुभव होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! मोरूपी अंधकारके नष्ट होनेसे बुद्धि आदि इन्द्रियोंसे, स्थूलदेहादि अभ्याससे तथा मोहरूप आवरणसे रहित यह जीव प्रकाशताहै और ब्रह्माकारवृत्तिसे देदीप्यमान बोधरूप प्रकाशसे स्फुरताहै, और दीपसे निःसृत प्रकाशके सदृश उस ब्रह्ममय प्रकाशसे सर्वत्र व्याप्त होकर ब्रह्ममें एक होकर प्रकाशता है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वसिष्ठगीतासुखभाव विश्रांतियोगोपदेशो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

न संसारमें ब्रह्मका भान होताहै और न ब्रह्ममें संसारका भान होताहै, परंतु जीवन्मुक्त पुरुषमें क्रमसे संसार तथा ब्रह्मकाभी भान होताहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ रूपालोकमनस्कारबुद्ध्यादींद्रियवेदनम् ॥ स्वरूपंविद्धिरम्लानमस्वभावस्यवस्तुनः ॥ १ ॥ अस्वभावतनुत्वेनस्वभावस्थितिराततता ॥ यदोदेतिसदासर्गोभ्रमाभः प्रतिभासते॥ २ ॥

यदास्वभावविश्रांतिःस्थितिमेतिशमात्मिका ॥ जगद्दृश्यंतदास्वप्रःसुषुप्तइवशाम्यति ॥ ३ ॥ भोगाभवमहारोगाबंधवोदृढबंधनम् ॥ अनर्थायार्थसंपत्तिरात्मनात्मनिशाम्यताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! बाह्य तथा आभ्यंतर विषय, और बुद्धि आदि इन्द्रियोंका अनुभव यह सब निर्विकार चेतनवस्तुकाही रूप ॥ १ ॥ जब अविद्याके सूक्ष्म होनेसे ब्रह्मस्वभावकी व्याप्त स्थिति उदय होती है तब यह सृष्टि भ्रमके सदृश भासती है ॥ २ ॥ जब आत्मस्वरूपके ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूपमें शांतिरूप विश्राम प्राप्त होताहै तब यह जगत्‌रूप दृश्य ऐसे शांत होजाताहै जैसे सुषुप्तिमें स्वप्न ॥ ३ ॥ हे रामजी! भोगरूप संसारमें महारोग है, बंधु दृढबंधन हैं, और धनकी संपत्ति अनर्थके लिये है, इसलिये आत्मामें शांत स्थित रहो ॥ ४ ॥

अस्वभावात्मतासर्गःस्वभावैकात्मताशिवः ॥ भूयतांपरमव्योम्नाशाम्यतांमेहताम्यताम् ॥ ५ ॥ नात्मानमवगच्छामिनदृश्यंचजगद्भ्रमम् ॥ ब्रह्मशांतंप्रविष्टोस्मिब्रह्मैवास्मिनिरामयः ६ ॥ त्वमेवपश्यसित्वंत्वंसत्वंशब्दार्थजृंभितम् ॥ पश्यामिशांतमेवाहंकेवलंपरमंनभः ॥ ७ ॥ ब्रह्मण्येवपराकाशेरूपालोकमनोमयाः ॥ विभ्रमास्तवसंजातकल्पाःस्पंदाइवानिले ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मस्वरूपसे विरुद्धभावना करना सृष्टि है, और ब्रह्मस्वरूपमें स्थिति कल्याण ब्रह्मरूप है इस हेतुसे तुम चिदाकाशरूप हो और इस संसारमें ग्लानिको न प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ हे रामजी ! मैं अपने वसिष्ठशरीरमें अधिष्ठित जीवको नहीं जानता, और न दृश्य तथा उस जगत्‌के भ्रमको जानताहूं, किन्तु शांतब्रह्ममें प्रविष्टहूं, और मैं निर्विकार ब्रह्मस्वरूपही हूं ॥ ६ ॥ हे रामजी ! तुम वसिष्ठ हो इस त्वम् शब्दके अर्थसे वृद्धिको प्राप्त त्वम् शब्दार्थको तुमभी वैसे हो इसलिये तुम देखते हो और मैं तो शांत केवल चिदाकाशरूपही सब देखताहूं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! चिदाकाश परब्रह्ममें तुमको जो ये शब्दार्थ भान होते हैं वे वायुमें स्पंदके तुल्य उत्पन्न हुयेके सदृश भासमान मनोमय भ्रममात्र हैं ॥ ८ ॥

ब्रह्मात्मावेत्तिनोसर्गंसर्गात्माब्रह्मवेत्तिनो ॥ सुषुप्तोवेत्तिनोस्वप्नंस्वप्नस्थोनसुषुप्तकम् ॥ ९ प्रबुद्धोब्रह्मजगतोर्जाग्रत्स्वप्नदृशोरिव ॥ रूपंजानातिभारूपंजीवन्मुक्तःप्रशांतधीः ॥ १० ॥ यथाभूतमिदंसर्वंपरिजानातिबोधवान् ॥ संशाम्यतिचशुद्धात्माशरदीवपयोधरः ॥ ११ ॥ स्मृतिस्थःकल्पनस्थोवायथाख्यातश्चसंगरः ॥ सदसद्भ्रांततामात्रस्तथाहंत्वजगद्भ्रमः ॥ १२ ॥ आत्मन्यपिनास्तिहियाद्रष्टायस्यानविद्यतेकश्चित् ॥ नचशून्यंनाशून्यंभ्रांतिरियंभासतेसेति ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वसिष्ठगीतासुआत्मविश्रांतिकथनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे सुषुप्तिमें स्थित प्राणी स्वप्नको नहीं जानता और स्वप्नमें स्थित सुषुप्तिको नहीं जानता, ऐसेही ब्रह्मस्वरूपमें स्थित सृष्टिको नहीं जानता और सृष्टिमें लीन ब्रह्मस्वरूपको नहीं जानता ॥ ९ ॥ जीवन्मुक्त तथा शांतचित्त ज्ञानीपुरुष ब्रह्मस्वरूपको जाग्रत् और जगत्‌को स्वप्नके तुल्य देखताहै, इसलिये स्वप्नवत् उसकी उपदेश आदिमें प्रवृत्ति होती है ॥ १० ॥ ज्ञानवान् शुद्धात्मा पुरुष इस पूर्णजगत्‌को सत्य परमात्मारूप जानताहै, और शरत्‌के मेघके सदृश शांत होजाता ॥ ११ ॥ जैसे स्मृति वा कल्पनामें स्थित संग्रामका वृत्तान्त भासताहै ऐसेही विवेकीको सदसत्‌की भ्रांतिमात्र अहंताआदि जगत् भ्रम भासताहै ॥ १२ ॥ जो जगत्‌की माया परमार्थ आत्मामें नहीं है और जिसका द्रष्टा कोई जीव भी नहीं है ऐसे शून्य तथा अशून्यसे विलक्षण यह जगत्‌की भ्रांति भासती है ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वसिष्ठगीतासुआत्मविश्रांतिकथनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अविद्यामय जगत्‌के स्वभावसे त्रिलोकी रूप नर्तकीका नृत्य, और ब्रह्मस्वभावसे निर्वाणकी प्राप्ति इस ४१ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्वभावस्वभावोयंसर्वेहंतादिवेदनः ॥ स्वभावैकस्वभावेननिर्वाणिक्रियतांस्वयम् ॥ १ ॥ यत्रादित्योभवेत्तत्रयथालोकस्तथाभवेत् ॥ परंविषयवैरस्यंतत्रयत्रप्रबुद्धधीः ॥ २ ॥ अकर्तृ

कर्मकरणमदृश्यद्रष्टृदर्शनम् ॥ जगदग्राह्यसंभारमभित्तौचित्रमुत्थितम् ॥ ३ ॥ नचोत्थितंकिंचनवाशांतेशांतंयथास्थितम् ॥ अनामयंपरंब्रह्मसत्यमव्ययमेवतत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अविद्याके स्वभावसे आत्माही अहंताआदि जगत्‌रूप होके त्रिलोकीरूप नर्तकीके नृत्यको जानताहै, उसको शास्त्रीय उपायसे उत्पन्न विद्यासे आविर्भूत पूर्णानन्द आत्माके स्वभाव स्वयं निर्वाणरूप करो ॥ १ ॥ जैसे जहां सूर्य्यभगवान् हैं वहां प्रकाश स्वयं होताहै ऐसेही जहां विषयोंसे पूर्ण वैराग्य है वहां आत्मज्ञान विद्याका प्रकाश उदय होताहै ॥ २ ॥ कर्ता कर्म तथा करणआदि सामग्रीसे रहित, द्रष्टा दर्शन तथा दृश्यसे शून्य और ग्रहणके अयोग्य यह जगत्‌रूप चित्र बिना भित्तिआदि आधार (ब्रह्ममें) आविर्भूत है ॥ ३ ॥ न कभी उदित न अस्त, अपने शान्त स्वभावमें यथास्थित निर्विकार सत्य, तथा अविनाशी वह ब्रह्महि है ॥ ४ ॥

चिच्चमत्कारमात्रात्मकल्पनारंगरंजनाः ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेखेजगच्चित्रपुत्रिकाः ॥ ५ ॥ रसभावविकाराढ्यंनृत्यंत्यभिनयैर्नवैः ॥ परमाणुप्रतिप्रायःखेस्फुरंत्यंबरात्मिकाः ॥ ६ ॥ सर्वर्तुशेखरधरादिग्बाहुलतिकाकुलाः ॥ पातालपादलतिकाब्रह्मलोकशिरोधराः ॥ ७ ॥ चंद्रार्कलोलनयनास्तारोत्करतनूरुहाः॥ सप्तलोकांगलतिकाःपरितोच्छांबरांबराः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चित्‌के चमत्कारमात्र जीवोंकी कल्पनामय नृत्यके मंडपमें शृंगारादि नानारसोंसे पूर्ण जगत् चित्रकी पुतलियां जो चिदाकाशमें नृत्य करती हैं उनकी गणना कौन करसकताहै ॥ ५ ॥ शृंगारआदि भावों, स्थायीभावआदि विकारोंसे, और कंप स्वेदआदि संचारीभावोंसे पूर्ण, तथा वस्तुओंके आकार व्यंजक चेष्टाओंसे युक्त,आकाशरूप त्रिलोकीरूप अनेक पुतलियां प्रत्येक परमाणुमें विद्यमान चिदाकाशमें नृत्य कररही हैं ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण ऋतुरूप शिरके भूषणसहित दिशारूप बाहुलतासे शोभित पातालरूप लतायुक्त और ब्रह्मलोकरूप कंधेसे शोभित त्रिलोकीरूप नटी नाचरही हैं ॥ ७ ॥ चन्द्र तथा सूर्य्यरूप चंचल नेत्रधारिणी, तारागणरूप रोम समूह युक्त सप्तलोकरूप अंगलता सहित, और चारोंओरसे आकाशरूपी स्वच्छ वस्त्र धारण कियेहुई त्रिलोकीरूप नटी नाचरही हैं ॥ ८ ॥

द्वीपांबुराशिवलयालोकालोकाद्रिमेखलाः ॥ भूतभारचलजीवप्रवहत्प्राणमारुताः ॥ ९ ॥ वनोपवनविन्यासहारकेयूरभूषिताः ॥ पुराणवेदवचनाःक्रियाफलविनोदनाः ॥ १० ॥ त्रिजगत्पुत्रिकानृत्यंयदिदंदृश्यतेपुरः ॥ ब्रह्मवारिद्रवत्वंतत्तद्ब्रह्मानिलवेपनम् ॥ ११ ॥ अस्वभावस्थितैवास्यकारणंकारणात्मकम् ॥ असुषुप्तस्थितास्वापेस्वाप्नस्येवसतीवसा ॥ १२ ॥

अर्थ—द्वीप तथा समुद्ररूप कंकणयुक्त लोकालोक आदि पर्वतरूप मेखलाधारिणी, और प्राणियोंके शरीरोंके धारण पोषणादि निमित्तसे चंचलजीवरूप प्राणवायुसहित त्रिलोकीरूप नटी नाचती हैं ॥ ९ ॥ अनेक बन तथा उपवनोंकी रचनारूप हार केयूर आदिसे भूषित, वेद तथा पुराणोंकी रचना करनेवाली और उन २ क्रियायोंके फलभूत सुख तथा दुःखरूप विलाससहित त्रिलोकीरूप नटी नाचरही हैं ॥ १० ॥ यह जो त्रिलोकीरूप नटीका नृत्य देखपडताहै वह ब्रह्मरूपी जलके द्रवत्व अथवा ब्रह्मरूपी वायुका संचलन है ॥ ११ ॥ इस त्रिलोकीरूप ललनाके नृत्यका कारण मायाशबलित ऐसे है जैसे निद्रादशामें असुप्त पुरुषमें स्थित स्वप्नका कारण होता है ॥ १२ ॥

असुषुप्तसुषुप्तस्थःस्वभावंभावयन्भव ॥ जाग्रत्यपिगतव्यग्रोमास्वप्नमिदमाश्रय ॥ १३ ॥ यज्जाग्रतिसुषुप्तत्वंबोधादरसवासनम् ॥ तंस्वभावंविदुस्तज्ज्ञामुक्तिस्तत्परिणामिता ॥ १४ ॥ अकर्तृकर्मकरणमदृश्यद्रष्टृदर्शनम् ॥ अरूपालोकमननंस्थितंब्रह्मजगत्तया ॥ १५ ॥ कांतेकांतंप्रकचतिपूर्णेपूर्णव्यवस्थितम् ॥ द्वित्वैक्यरहितेभातिद्वित्वैक्यपरिवर्जितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम जगत्‌की व्याकुलताको त्यागकर ब्रह्मस्वभावकी भावना करते हुये जाग्रद्दशामें सुषुप्तके तुल्य तुरीपदमें स्थित होओ, और इस जगत्‌रूपी स्वप्नका आश्रय न करो ॥ १३ ॥ राग तथा वासनाकी शून्यतापूर्वक ज्ञानसे जो जाग्रत्‌मेंही सुषुप्तअवस्था प्राप्त होती है उसीको ब्रह्मस्वभाव कहते हैं और उसमें निष्ठ होनेसे मुक्तिरूप परिणाम होताहै ॥ १४ ॥ कर्ता कर्म करण, तथा द्रष्टा दर्शन और दृश्यसे शून्य, और बाह्य तथा आभ्यंतर विषयसे रहित ब्रह्महि जगद्रूपसे स्थित है ॥ १५ ॥ द्वैत तथा एकत्वसे रहित, कान्त और पूर्ण साक्षी चेतनमें द्वित्व एकत्वसे वर्जित कान्त तथा पूर्ण परब्रह्म प्रकाश कररहाहै ॥ १६ ॥

सत्यंसत्येस्थितंशांतंसर्गात्मन्यात्मनिस्वयम् ॥ आकाशकोशसदृशंशिलाजठरसंनिभम् ॥ १७ ॥ सुरक्षजठराकारंघनमप्यंबरोपमम् ॥ प्रतिबिंबमिवक्षुब्धमप्यक्षुब्धमसच्चसत् ॥ १८ ॥ भविष्यन्नवनिर्माणं

चेतसीवस्थितंपुरम् ॥ ब्रह्मबृंहितभारूपमभेदीकृतमानसम् ॥ १९ ॥ यथासंकल्पनगरंसंकल्पान्नैव भिद्यते ॥ तथायंजगदाभासःपरमार्थान्नभिद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—सृष्टिरूपमें स्थितभी आकाशके कोशके सदृश विशाल और पाषाणके उदरके तुल्य चिद्घनरूप आत्मा अपने सत्यस्वरूपमें स्वयं स्थित है ॥ १७ ॥ उत्तम रत्नके गर्भके तुल्य प्रकाशमय घनभी आकाशवत् शुद्ध-जगत्के प्रतिबिंबसे संक्षुब्धभी यथार्थमें अक्षुब्ध तथा जगत्रूपसे असत् भासमानभी सत्स्वरूपही आत्मा स्थित है ॥ १८ ॥ चित्तमें भविष्यत् नूतन निर्माणके समान सन्मुख स्थित, महाप्रकाशरूप, और मनको अपने स्वरूपमें अभिन्नरूपसे धारण किये हुये ब्रह्म स्थित है ॥ १९ ॥ जैसे संकल्पका नगर संकल्पसे भिन्न नहीं है ऐसेही यह जगत्का आभासभी परब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २० ॥

हेमपीठमिवानेकभविष्यत्सन्निवेशवत् ॥ लक्ष्यमाणमपिस्फारंशांतमव्ययमास्थितम् ॥ २१ ॥ अजस्र नाशोत्पादाढ्यमेकरूपमनामयम् ॥ अनाशोत्पादमजरमनेकमिवकांतिमत् ॥ २२ ॥ ब्रह्मैवशांतिघन भावगतंविभातिसर्गोदयेनविगतास्तमयोदयेन ॥ व्योमेवशून्यविभवेनगलत्स्वभावलाभंप्रतिप्रसभमेवनुप्रबुद्धे ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे स्वरूपविश्रांत्यर्थमुपदेशकरणं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—सुवर्णकी शिलाके समान भविष्यत् नूतन रचना सहित, नानाविस्तारों सहित लक्ष्यमाणभी शांत अविनाशी आत्मा निजस्वरूपमें स्थित है ॥ २१ ॥ निरन्तर नाश तथा उत्पत्तिसे पूर्ण भी निर्विकार एकरूप, नाश उत्पत्तिसे रहित, अजर अमर कांतिमय तथा अनेकरूप भी एकरूपसे ब्रह्म स्थितहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! ज्ञान उदय होनेपर अद्वैत स्वभावके बलसे अस्तउदय शून्यतासे आकाशके तुल्य सृष्टिरूप अपने विभवसे शांतिमय घनभाव सहित ब्रह्मही भासताहै ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे स्वरूपविश्रांत्यर्थमुपदेशकरणं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

पुनः जगत् तथा परमात्माकी एकता, और विवेक निजआत्माभूत परमेश्वरकी पूजा इस ४२ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तवत्कचनंशांतेयत्तत्तस्मान्नभिद्यते ॥ अव्याकृतामलतयाक्वातस्सर्गादिसंभवः ॥ १ ॥ चित्तदीपेगतेयांतिभ्रांतिवद्भ्रांतिखेस्थिते ॥ रूपालोकमनस्कारसंविदोंबुद्रवोर्मयः ॥ २ ॥ निरस्तकरणापेक्षंमरुतःस्पंदनंयथा ॥ यथाविसरणंभासस्तथाजगदिदंपरे ॥ ३ ॥ द्रवत्वमिवकीलाले शून्यत्वमिवचांबरे ॥ स्पंदत्वंमरुतीवेदंकिमप्यात्ममयंपरे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शांत परमात्मामें जो चित्तरूपसे जगत् स्फुरणहै वह परमात्मासे भिन्न नहीं है और परमात्माके निर्मल या अव्याकृत होनेसे सृष्टि आदिका सम्भव कहां है ॥ १ ॥ बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंके अनुभव रूप जलके तरंग शांतिमय चिदाकाशमें मृगतृष्णाकी भ्रांतिके सदृश भासती हैं वे भ्रांति चित्तरूप सूर्य्यके अस्त होनेपर आपही अस्त होजाती हैं ॥ २ ॥ बिना किसी सामग्रीके वायुका स्पन्द वा सूर्य्यकी दीप्तिकी विस्तार जैसे होताहै ऐसेही परमात्मामें यह जगत्है ॥ ३ ॥ जैसे जलमें द्रवत्व, आकाशमें शून्यता और वायुमें स्पन्दहै ऐसेही परमात्मामें उसका विवर्तरूप अनिर्वचनीय यह जगत्भी है ॥ ४ ॥

महाचितिमहाकाशेयदिदंभासतेजगत् ॥ तच्चित्त्वमेवकचतिनिर्मलत्वंमणाविव ॥ ५ ॥ यथाद्रवत्वंपयसियथाशून्यत्वमंबरे ॥ यथाप्रस्पंदनंवायौमहाचितितथाजगत् ॥ ६ ॥ वेत्तिवायुर्यथास्पंदंतथावेत्ति जगच्चितिः ॥ नद्वैतैक्यादिभेदानांमनागप्यत्रसंभवः ॥ ७ ॥ अविवेकविवेकाभ्यांभासुरंभंगुरंजगत् ॥ बोधेसदैवसद्रूपमभासुरमभंगुरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—महा चित्रूप महाकाशमें यह जो जगत् भासताहै वह चेतनही मणिमें निर्मलताके तुल्य स्फुरित हो रहाहै ॥ ५ ॥ जैसे जलमें द्रवत्व, आकाशमें शून्यता और वायुमें संचलनहै ऐसेही महाचित्में यह जगत्है ॥ ६ ॥

वायु जैसे स्पन्द रूपताको प्राप्त होताहै ऐसेही चेतन जगत् विवर्त रूपताको प्राप्त होताहै, इसलिये द्वित्व एकत्वादि भेदोंका किंचित् भी संभव नहीं है ॥ ७ ॥ अविवेकसे यह जगत् प्रकाशशील और विवेकसे बिनाशशीलहै, और परमात्माका बोध होनेपर तो दोनों अस्त होकर सत्य ब्रह्मरूपही होजाते हैं ॥ ८ ॥

ज्ञप्तिमात्राहतेशुद्धादादिमध्यांतवर्जितात् ॥ नान्यदस्तीहनिर्णीतंमहाचिन्मात्ररूपिणः ॥ ९ ॥ तत्कस्य चिच्छिवंशांतंकस्यचिद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ कस्यचिच्छून्यतामात्रंकस्यचिज्ज्ञप्तिमात्रकम् ॥ १० ॥ तदनं तात्मचिद्रूपंचेत्यतामिवभावयत् ॥ स्वसंस्थमेवज्ञेयत्वमज्ञत्वमिवगच्छति ॥ ११ ॥ चित्तयानास्तिस त्ताचचित्ततानास्तितांविना ॥ विनाविनायथावायोर्यथास्पंदेषुकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आदिअन्त तथा मध्यशून्य, ज्ञानमात्र और शुद्ध महा चिन्मात्रसे भिन्न कुछ नहीं है इसबातको विवेकियोंने निर्णय किया है ॥ ९ ॥ उस महाचित् परमात्माकी कोई शांत शिवरूप, कोई नित्य ब्रह्मरूप, कोई शून्यमात्र और कोई ज्ञानमात्र मानताहै ॥ १० ॥ ज्ञेयरूपसे अपने स्वरूपसे स्थित भी आत्मा अनंत आत्मचेतन विषयरूपसे भावना करताहुआ अज्ञानीके तुल्य होजाताहै ॥ ११ ॥ जैसे शून्य कूटस्थ आकाशके बिना वायुका कारण नहीं है, और वायुके बिना स्पन्दका कोई कारण नहीं है ऐसेही ज्ञेयकी सत्ता चित्तके बिना नहीं है, और उस सत्ताके बिना चित्तकी चित्तता भी नहीं है ॥ १२ ॥

तथामहाचितोच्छायाःसर्गसंवित्तिवृत्तिषु ॥ नित्यंसत्वमसत्वंवाहेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ १३ ॥ इत्यत्रा र्थोभविष्यत्सद्वित्वैकत्वास्तितावशात् ॥ कोत्रकल्पयिताद्वित्वमेकत्वंवामहांबरे ॥ १४ ॥ विश्वग्विश्व मपरैकपरमाकाशकोशता ॥ यथास्पंदानिलद्वित्वंशाब्दमेवनवास्तवम् ॥ १५ ॥ विश्वविश्वेश्वरद्वित्वंतथै वासन्मयात्मकम् ॥ सदेवासंभवद्वित्वंमहाचिन्मात्रकंचयत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार ब्रह्मकी सत्ताके आधीन सृष्टिरूप भ्रांतियोंमें भी अन्य कारणकी अपेक्षा न रहनेसे अधिष्ठानरूपसे जगत्की नित्य सत्यता और अपने रूपसे नित्य असत्यता है ॥ १३ ॥ चित् जडका द्वैत वा एकत्वरूप अर्थ तब प्रसिद्ध होता जब अद्वैत कूटस्थ महाचिदाकाशमें अन्य कोई कल्पक होता ॥ १४ ॥ जैसे वायु और उसके स्पंद भेद कल्पनामात्र है न कि यथार्थ ऐसेही इस संपूर्ण संसार तथा परम चिदाकाश परमात्माका भी है ॥ १५ ॥ जैसे आकाश तथा उसकी शून्यताका द्वैत असन्मय है ऐसेही इस विश्व और विश्वेश्वरका भी है, और द्वैत असंभव होनेसे सत्स्वरूप महाचिन्मात्रही है ॥ १६ ॥

विश्वाभासंतदेवेदंनविश्वंसन्नविश्वता ॥ देशकालादिमत्त्वेनकदाचिद्धेम्निसत्यता ॥ १७ ॥ कटकत्वस्य भिन्नस्यविश्वस्यचतथापरे ॥ द्वित्वैक्यासंभवेचात्रकार्यकारणताकुतः ॥ १८ ॥ स्याच्चेतत्कल्पनामात्र मेवैतन्नान्यवस्तुता ॥ शून्यतानभसीवात्रद्रवत्वमिवचांभसि ॥ १९ ॥ खेखलेखाप्यभिन्नेवकिलास्ति जगदादिता ॥ यद्रूपंब्रह्मतद्रूपंजगत्कात्रद्वितैकते ॥ २० ॥

अर्थ—संसारके सदृश भासमान परमात्माही है, इसलिये देशकालादियुक्त होनेसे संसार तथा संसारता दोनो सत् नहीं हैं ॥ १७ ॥ जैसे सुवर्णसे भिन्न कटक आदिमें कदाचित् सत्यता नहीं हैं ऐसेही परमात्मासे भिन्न विश्वकी सत्यता नहीं है, इसलिये द्वित्व और एकत्वके अभावसे परमात्मामें कार्य्यता तथा कारणता कैसे होसकती है ॥ १८ ॥ यदि कल्पनामात्रसे सत्यता मानो तो परमात्मासे भिन्न अन्य वस्तुता ऐसे नहीं हैं जैसे आकाशसे शून्यताकी वा जलसे द्रवत्वकी ॥ १९ ॥ यदि अत्यन्त अभेदमें भी आकाशमें आकाशकी लेखाके तुल्य भेद मानो तो ऐसेही परमेश्वरसे जगत्रूपका भी भेद अज्ञानीकी दृष्टिमें रहै, और यथार्थमें तो जो ब्रह्मका रूप है वही जगत्का भी है तब इसमें द्वित्व एकत्व कहां है ॥ २० ॥

यद्रूपंव्योमतद्रूपमेवंशून्यंकिलाखिलम् ॥ एकात्मनिततेस्वच्छेचिन्मात्रेसर्वरूपिणि ॥ २१ ॥ शिलापुत्र कसेनायांपाषाणत्वइवास्थिते ॥ कार्यकारणवैचित्र्यंकथंसंभवतिकवा ॥ २२ ॥ कथमव्योमताव्योम्नि द्वितीयासंभवाद्भवेत् ॥ प्रतिभात्मैवभारूपोभातिसर्गोमहाचिति ॥ २३ ॥ पुत्रिकेवोपलोत्कीर्णातन्म यत्वात्तदात्मिका ॥ साधोयथास्थितस्यैवंबुद्धाविश्वंप्रलीयते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे आकाश और शून्यका रूप है ऐसेही ब्रह्म और जगत्का भी है तब एक निर्मल चिन्मात्र तथा सर्वरूप ॥ २१ ॥ पाषाणमें खुदी हुई सेनाके सदृश जगत्रूप केवल ब्रह्मके स्थित रहते कार्य्य कारणकी विचित्रता

कैसे और कहां संभव होसकती है ॥ २२ ॥ चिदाकाशमें द्वितीयका असंभव होनेसे उससे विरुद्ध अन्य पदार्थकी संभावना नहीं होसकती, और महाचेतनमें ब्रह्मरूपही यह सृष्टि ब्रह्मरूपसे ऐसे भासती है ॥ २३ ॥ जैसे पाषाणमें खुदी हुई पाषाणमय प्रतिमा इस हेतुसे हे साधो! यथार्थ ब्रह्मके जाननेसे यह संसार गलित होजाताहै ॥ २४ ॥

काष्ठमौनदशाभासंसंसारमवशिष्यते ॥ यथानिमीलिताक्षस्यरूपालोकामनोभ्रमः ॥ २५ ॥ स्वप्नेजाग्रत्यनग्रस्थोप्यसन्नेवास्तिभावनात् ॥ तथैवोन्मीलिताक्षस्यरूपालोकमनोभ्रमः ॥ २६ ॥ स्वप्नेजाग्रत्यनग्रस्थोप्यसन्नेवास्तिभावनात् ॥ भावनोपशमंकृत्वाशिलीभूययथास्थितम् ॥ २७ ॥ अशिलीभूतमेवांतस्वभावंसममास्यताम् ॥ अविवेकोपहारेणयथाप्राप्तार्थपूजनैः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी! भावनाके त्यागसे बाह्य तथा आभ्यंतर विषय शून्य दशासे संपूर्ण संसार भ्रमको नष्ट करके केवलमय ब्रह्महीशेष रहजाताहै ॥ २५ ॥ जैसे जाग्रत्में वृक्ष आदिके अग्रभागमें अविद्यमान भी भावनासे वैसा भान होताहै ऐसेही संसारकी ओर दृष्टि तथा भावना करनेसे बाह्य तथा आभ्यंतर विषय भासताहै ॥ २६ ॥ भावनाहीसे जगत्में असत् भी आकाश गमनादि स्वप्नमें यह जीव अनुभव करताहै इसलिये भावनाको शांत करके पाषाणवत् निश्चल यथास्थित आत्मामें स्थित रहना चाहिये ॥ २७ ॥ पूर्ण विवेक विवेकरूप भेंटसे यथाप्राप्त अर्थोंसे पूजनद्वारा पाषाणसे विलक्षण घनीभूत सच्चिदानंद आत्मस्वभावका अवलम्बन करके स्थित रहना चाहिये ॥ २८ ॥

बोधायपूज्यतांबुद्ध्यास्वभावःपरमेश्वरः ॥ विवेकपूजितःस्वात्मासद्यःस्फारवरप्रदः ॥ २९ ॥ रुद्रोपेंद्रादिपूजात्रजरत्तृणलवायते ॥ विचारशमसत्संगबलिपुष्पैकपूजितः ॥ ३० ॥ सद्योमोक्षफलःसाधोस्वात्मैवपरमेश्वरः ॥ सत्यालोकनमात्रैकपूजितोऽनुत्तमार्थदः ॥ ३१ ॥ यत्रास्त्यात्मेश्वरस्तत्रमूढःकोन्यंसमाश्रयेत् ॥ सत्संगशमसंतोषविवेकापूजितात्मनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अपनी बुद्धिसे विवेक वैराग्यआदि साधनद्वारा बोधके लिये परमात्माकी पूजा करनी चाहिये, और विवेकसे पूजित परमात्मा सद्यः निरतिशय आनन्दरूप वरदान देताहै ॥ २९ ॥ इस परमात्माकी पूजामें रुद्र उपेन्द्रआदिकी पूजा गलिततृणके लेशके सदृश भासती है, क्योंकि विचार शम और सत् संगरूपी भेंट तथा पुष्पोंसे पूजित परमेश्वर तत्काल मोक्षरूप फलको देताहै, हे साधो ! सत्यपरमात्माके दर्शनमात्रसे यह आत्मा सबसे उत्तम फल देताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जब सत्संग, शम और संतोषसे पूर्णरीतिसे पूजा करनेवालेको आत्माही सब फल देनेवाला है तब कौन मूढ ऐसा है जो अन्यका आश्रय करैगा ॥ ३२ ॥

शिरीषकुसुमायंतेशस्त्राहिविषवह्नयः ॥ देवार्चनतपस्तीर्थदानान्यतिकृतान्यपि ॥ ३३ ॥ भस्मायंतेनिरर्थत्वादविवेकामहात्मनाम् ॥ एतान्यपिविवेकेनक्रियंतेसफलानिचेत् ॥ ३४ ॥ विवेकएवतत्कस्मात्स्फुटमंतर्नसाध्यते ॥ यथाभूतार्थविज्ञानाद्वासनोपरमेपरे ॥ ३५ ॥ यत्नेविवेकशब्दाख्योभवत्यात्मप्रसादतः ॥ तथातथाविवेकोंतर्वृद्धिंनेयःशमामृतैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और आत्माके पूजकको शस्त्र, विष, तथा अग्नि भी शिरीषके पुष्पके तुल्य भान होते हैं, और अविवेकसे दुर्जन मनुष्योंसे किये हुये देवपूजा, तप तथा दानादि निरर्थक होनेसे भस्मके तुल्य होजाते हैं, और विवेकसे कृत यदि देवपूजादि सफल होते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तो वासनाके त्यागपूर्वक सत्यपदार्थके ज्ञानसे विवेकहीको स्पष्टरूपसे अन्तःकरणमें क्यों नहीं धारण करते ॥३५॥ और निष्काम तप तथा दानादिसे साध्यचित्तकी प्रसन्नतारूप यत्नही विवेक कहलाताहै, सो उस विवेकको शम संतोषआदि रूप अमृतसे अन्तःकरणमें ऐसे बढाना चाहिये ॥ ३६ ॥

यथायथापुनःशोषमुपयातिनविभ्रमैः ॥ देहसत्तामनादृत्ययथाभूतार्थदर्शनात् ॥ ३७ ॥ लज्जाभयंविषादेर्ष्येसुखंदुःखजयेत्समम् ॥ जगदादिशरीरादिनास्त्येवादौकुतोद्यतत् ॥ ३८ ॥ कार्यंचेत्कारणस्यैतत्तथापिब्रह्ममात्रकम् ॥ प्रतिभामात्रमेवाच्छंनतुज्ञप्तेर्घटादिसत् ॥ ३९ ॥ ज्ञानात्मिकैवप्रतिभाज्ञप्तिरेत्राखिलंजगत् ॥ ज्ञप्तिरप्यात्मतत्त्वश्रीःपरिज्ञातोपशाम्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—कि वह विषयोंके भ्रमोंसे पुनः नष्ट नहो, और आत्माके ज्ञानसे देहकी सत्ताको मिथ्या समझके ॥ ३७ ॥ लज्जा, भय, विषाद, ईर्षा तथा सुखदुःखआदिको जीतना चाहिये, क्योंकि जब जगत् उसका कारण अविद्या तथा शरीरआदि प्रथमही नहीं हैं तो अब वे कहांसे सत्य होसकते हैं ॥ ३८ ॥ यदि ब्रह्मरूप कारणका यह जगत्कार्य्य कहो तो ब्रह्ममात्रही सब है, क्योंकि घटआदि पदार्थ ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न सत् नहीं है, ये निर्मल

ब्रह्ममात्रही हैं ॥ ३९ ॥ और पदार्थोंके विकल्पकी प्रतिमाभी चिदाभास ज्ञानरूपही है; और वही ज्ञप्ति सम्पूर्ण जगत् है, और चिदाभासरूप ज्ञप्तिभी दर्पणमें मुखके शोभाके तुल्य आत्मतत्वकी विभूति है, और साक्षी चित्के ज्ञानसे वहभी शांत होजाती है ॥ ४० ॥

ज्ञेयाभावेत्वनिर्वाच्याशिष्यतेशाश्वतंशिवम् ॥ अशरीराद्यविश्वात्मसर्वंशांतमिदंततम् ॥ ४१ ॥ ज्ञानज्ञेयज्ञाप्तिमुक्तंहृषन्मौनमिवस्थितम् ॥ शांतांतःकरणाःस्वस्थाःशिलापुत्रककोशवत् ॥ ४२ ॥ चलंतश्चालयंतश्चव्रज्ञरूपाएवतिष्ठत ॥ अज्ञेयज्ञत्वसद्रूपाःसदसत्सारूपिणः ॥ ४३ ॥ आकाशकोशविशदाभवताभवभूमयः ॥ यथास्थितंचतिष्ठंतिगच्छंतश्चयथागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और ज्ञेयके मिथ्या होनेसे वह ज्ञप्ति अनिर्वचनीय होजाती है, इसप्रकार सब शरीर तथा विश्वका अभाव होनेसे ज्ञान ज्ञेय तथा ज्ञातासे रहित मौन पाषाणके तुल्य नित्य शांत ब्रह्मही शेष रहताहै ॥ ४१ ॥ इसलिये तुम सब पाषाणकी प्रतिमाके कोशके तुल्य अन्तःकरणमें शांत ॥ ४२ ॥ संसारके व्यवहार करते तथा कराते हुये स्थित रहो, और त्रिपुटीसे भिन्न सद्रूप, सदसत्के सारभूत ॥ ४३ ॥ आकाशके समान विशालरूप, और संसारसे परे तुम होजाओ ॥ ४४ ॥

यथाप्राप्तैककर्माणःसंपद्यंतेबुधाःपरम् ॥ अथवासर्वसंत्यागशांतांतःकरणोज्वलाः ॥ ४५ ॥ एकांतेष्वेवतिष्ठंतुचित्रकर्मार्पिताइव ॥ संकल्पशांतौसंकल्पपुरवत्सर्वदाखिलम् ॥ ४६ ॥ स्वप्नवच्चप्रबुद्धस्यसदैवास्तंगतंजगत् ॥ सनेत्ररूपानुभवंजातितोंधइवभ्रमैः ॥ ४७ ॥ निर्वाणंवर्णयन्नज्ञस्ताप्यतेतंतर्नशाम्यति ॥ कल्पनांशोपदेशेनलोकोविद्यामयात्मना ॥ ४८ ॥

अर्थ—क्योंकि ज्ञानीजन अपनी इच्छापूर्वक चाहै एकस्थानमें स्थित रहते वा सुखपूर्वक भ्रमण करतेहैं, परन्तु वे यथाप्राप्त व्यवहार करते हुये भी परमात्माहीमें स्थित रहतेहैं, अथवा सब त्यागके शांत तथा निर्मल अन्तःकरण होके ॥ ४५ ॥ चित्र लिखितके तुल्य समाधिमेंही ज्ञानीजन स्थित रहतेहैं, क्योंकि सब संकल्पोंके शांत होनेपर ॥ ४६ ॥ गंधर्वनगर वा स्वप्नके तुल्य अस्त यह संपूर्ण जगत् उनको भासताहै, और उनको निर्वाणका साक्षात्कार प्रबोध ऐसा होना चाहिये जैसे नेत्रसहितको रूपका, क्योंकि अज्ञजन निर्वाणको वर्णन करते हुये जन्मान्धके तुल्य संतप्त होताहै न कि शांतिको पाताहै, अज्ञजन असत् अविद्यामय ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

येनकेनचिदज्ञत्वात्कृतार्थोस्मीतिमन्यते ॥ अकृतार्थःकृतार्थत्वंजानन्मौर्ख्यविमोहितः ॥ ४९ ॥ विज्ञास्यत्यकृतार्थत्वंक्षणांतरकदर्थनैः ॥ उपायंकल्पनात्मानमनुपायंविदुर्बुधाः ॥ ५० ॥ दुःखदत्वान्निमेषेण भावाभावेषणभ्रमैः ॥ जगद्भ्रमंपरिज्ञाययदवासनमासितम्॥विरसाशेषविषयंतद्धिनिर्वाणमुच्यते॥५१॥ आख्यायिकार्थप्रतिभानमेत्यसंवेत्स्यचिद्वारिभराद्रवात्मा ॥ अवेद्यचिद्रूपमशेषमच्छंपश्यन्विनिर्वासिजगत्स्वरूपम् ॥ ५२ ॥ जात्यंधरूपानुभवानुरूपंयदागमैर्बुद्धमबोधरूपम् ॥ अधस्पदीकृत्यतदंतरेस्मिन्बोधेनिपत्यानुभवोभवाभूः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणोपदेशो नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिस किसी उपदेशसे कृतार्थ न होनेपर भी मूर्खतासे मोहित होके मैं कृतार्थ ज्ञानी हूं ऐसा मानता है॥४९॥ और ज्ञानीके संमुख प्रश्नोत्तर होनेपर क्षणभरमेंही उसको अपनी अकृतार्थता विदित होजाती है, इसलिये भाव अभाव तथा इच्छादि भ्रमोंसे क्षणमेंही काल्पनिक ज्ञानके दुःखदायी होनेसे ज्ञानीजन उसको निर्वाणका उपाय नहीं कहतेहैं ॥ ५० ॥ इसलिये जगत्को मिथ्या जानकर सब विषयोंसे विरक्त होके वासना त्यागपूर्वक जो आत्मामें स्थिति है उसीको निर्वाण कहतेहैं ॥ ५१ ॥ इसलिये हे रामजी! मेरे पूर्वोक्त उपदेशको लौकिक वा पुराणकी कथाके तुल्य परोक्षरूपसे जाननेसे कृतार्थ नहीं होओगे, किंतु, वासनाके प्रवाहमें बहते हुये अचित् जलरूप जगत्को देखोगे, और अपरोक्ष दृष्टिसे अवेद्य, स्वच्छ तथा चित्स्वरूप संपूर्ण जगत्को साक्षात् अनुभव करते हुये विश्रांतिको प्राप्त होओगे ॥ ५२ ॥ इसकारण जन्मांधके रूपके अनुभवके तुल्य उपदेश वाक्यसे बहिर्मुख परोक्ष ज्ञानको त्यागकर इस अपरोक्ष नित्य सिद्ध आत्मबोधमें निमग्न होके जन्मादिरहित निर्वाणरूप होजाओ ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणोपदेशो नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

मनरूपी गंधर्वनगरमें अज्ञानसे कल्पित जगत्का बोधसे लय होनेसे केवल एक ब्रह्मकी स्थिति रहती है यह विषय इस ४३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहंतादिजगच्चेदंपरिज्ञानादसत्यताम् ॥ यातिसानुभवोमोहात्सत्यमेवान्यथाधियाम् ॥ १ ॥ अज्ञानज्वरमुक्तस्यबोधशीतलितात्मनः ॥ एतदेवभवेच्चिह्नंयद्भोगांन्नरोचते ॥ २ ॥ अल मन्यैःपरिज्ञानैर्वाच्यवाचकविभ्रमैः ॥ अनहंवेदनामात्रंनिर्वाणंतद्विभाव्यताम् ॥ ३ ॥ परिज्ञातायथास्व प्नेपदार्थारसयंतिनो ॥ नचसंतितथैवास्मिन्नहंजगदिदंभ्रमे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! भोगके तत्वज्ञानसे आभ्यन्तर अहंकार आदि तथा बाह्य यह जगत् असत्य भान होताहै क्योंकि भोक्ताका भोग्यवस्तुके साथ संबधका अनुभवकी भोगहै उसीसे मूढोंके अज्ञानसे आत्मा भोग सहित भासताहै, यथार्थमें तो वह सत्य ब्रह्महीं है ॥ १ ॥ अज्ञानरूपी ज्वरसे मुक्त और ज्ञानरूप शीतलतायुक्त पुरुषका यही चिन्हहै कि उसको भोग नहीं रुचते ॥ २ ॥ और वाच्यवाचक शब्दजाल भ्रम व्यर्थ है, केवल भोगोंसे विरक्त होके भोक्तामें अहंकारसे रहित होनेसे निर्वाण सिद्धहै सो उसीकी भावना करनी चाहिये ॥ ३ ॥ जैसे जागनेपर स्वप्नके पदार्थ नहीं रुचते ऐसेही, तत्वज्ञानीको अहंता तथा जगत्रूपी भ्रममें दृष्टपदार्थ नहीं रुचते ॥ ४ ॥

यथास्वभावनायक्षस्तरौसस्वजनंपुरम् ॥ पश्यत्यसत्यमेवैवंजीवःपश्यतिसंसृतिम् ॥५॥ विभ्रमात्माय थायक्षोयक्षलोकश्चवर्तेमिथः ॥ सद्रूपौसुस्थितौमिथ्यातथाहंत्वजगद्भ्रमौ ॥ ६ ॥ अनावरणतोरण्येयक्षा विभ्रमरूपिणः ॥ यथास्फुरंतिभूतानितथेमानिचतुर्दश ॥ ७ ॥ भ्रममात्रमहंमिथ्यैवेतिबुद्धाविभाव यन् ॥ यक्षोऽयक्षत्वमायातिचितंचित्तत्वतामिदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे प्रेत विद्यमें निपुण मनुष्य अपनी भावनासे प्रेतके शरीरमें स्थित होकर स्वजन सहित नगर देखताहै ऐसेही अविद्यासे जीव संसारको देखताहै ॥ ५ ॥ जैसे प्रेत तथा उसका लोक दोनों भ्रम सिद्ध कल्पित होनेपर भी अर्थ क्रिया करते हैं ऐसेही मिथ्या अहंता और जगत्का भ्रमभी है ॥ ६ ॥ जैसे बनमें यक्ष प्रेतादि भ्रम सिद्धहैं ऐसेही आवरण रहित साक्षीचेतनमें चतुर्दश (१४) भुवन अध्याससे सिद्धहैं ॥ ७ ॥ जैसे बिचारसे प्रेत तथा उसके नगर आदि अभावको प्राप्त होते हैं ऐसेही आत्माको जानकर अहंता जगत् आदि मिथ्याहैं ऐसा निश्चय होनेपर चित्तभी यथार्थ चैतनरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

निरस्तकलनाशंकंत्यागग्रहणवर्जितम् ॥ अविसारिसमस्तेच्छंशांतमास्वयथास्थितम् ॥ ९ ॥ असत्ता संभवंदृश्यंद्रष्ट्रात्मकमिदंततम् ॥ अथवानैवद्रष्ट्रात्मसदवाच्यंकिमास्यते ॥ १० ॥ वसंतरसपूरस्यय थाविटपगुल्मता ॥ स्वरूपमात्रभरितसंविदःसर्गतातथा ॥ ११ ॥ यदिदंजगदाभासंशुद्धंचिन्मात्रवे दनम् ॥ कात्रैकताद्विताकावानिर्वाणमलमास्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये हे रामजी ! सम्पूर्ण कल्पना तथा आशंकाओंसे रहित त्याग तथा ग्रहणसे रहित, सम्पूर्ण इच्छाओंसे शून्य, और शांत होके स्थितरहो ॥ ९ ॥ स्वतः सत्ताशून्य यह दृश्य द्रष्टा रचित् रूपही है, अथवा द्रष्टारूपभी नहीं किंतु अनिर्वचनीय तुच्छरूपहै, क्योंकि असत्की स्थिति कैसे की जाय ॥ १० ॥ जैसे बसन्तऋतुके रसका प्रबाहही वृक्ष लता आदि रूपहै ऐसेही आत्म संवित् सृष्टिरूपहै ॥ ११ ॥ यह जो जगत्का आभासहै वह सम्पूर्ण शुद्ध चिन्मात्रहै, इसमें द्वित्व तथा एकत्व क्या होसकताहै, इसलिये पूर्ण निर्वाणरूपसे स्थित रहो ॥ १२ ॥

भूयतांचिन्मयव्योम्नापीयतांपरमोरसः ॥ स्थीयतांविगताशंकंनिर्वाणानंदनंदने ॥ १३ ॥ किमेतास्व तिशून्यासुसंसारारण्यभूमिषु ॥ मानवावातहरिणाभ्रमथोभ्रांतबुद्धयः ॥ १४ ॥ जगत्त्रयमरीच्यंबुविप्र लब्धांधबुद्धयः ॥ माधावतगतव्यग्रमाशयोपहताशयाः ॥ १५ ॥ रूपालोकमनस्कारमृगतृष्णांबुपायि नः ॥ व्यर्थमायासमायूंषिमामाक्षपयतैणकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे सब सज्जनगण ! चिदाकाशरूप होओ, और निर्वाणरूप नंदनबनमें निरतिशय आत्मानन्द पान करते हुये सब शंकाओंसे रहित होके स्थितरहो ॥ १३ ॥ हे मनुष्यों ! इससंसाररूप महाजंगलकी मृगतृष्णारूप भूमिओंमें भ्रांतबुद्धिहरिणोंके तुल्य क्यों भ्रमतेहो ॥ १४ ॥ त्रिलोकीरूपी मृगतृष्णाके जलसे वंचितबुद्धि और आशासे नष्टचित्त

तथा धैर्य्य शून्य होके तुम लोग न भागो ॥ १५ ॥ हे बाह्य तथा आभ्यन्तरके भोगरूप मृगतृष्णाके जलको पीनेवाले हरिणरूपमनुष्यो ! तुम संसारके परिश्रमोंमें अपनी आयु व्यर्थ न बीताओ ॥ १६ ॥

जगद्गंधर्वनगरगुरुगर्वेणनश्यथ ॥ सुखरूपाणिदुःखानिनाशनायैवपश्यथ ॥ १७ ॥ जगत्केशोंड्रकभ्रांत्यैमामहांबरमध्यगम् ॥ अवलोकयताभ्रांतेस्वरूपेपरिणम्यताम् ॥ १८ ॥ मानवावातलोलोचपत्रप्रांतांबुभंगुर ॥ मानवासुनचास्वंधगर्भशय्यासुसुप्यताम् ॥ १९ ॥ अविराममनाद्यंतेस्वभावेशांतमास्यताम् ॥ द्रष्टृदृश्यदशादोषादस्वभावाद्विनश्यताम् ॥ २० ॥

अर्थ—जगत्रूपी गन्धर्वनगरके महागर्वसे तुम नष्ट न होओ, क्योंकि संसारके सुखोंके नाशकारक दुःखरूपही देखो ॥ १७ ॥ और आकाशकी भी लताके सदृश ब्रह्माकाशमें यह जगत्रूप अज्ञानको देखो किन्तु निजआत्मरूपमें विश्राम करो ॥ १८ ॥ हे मनुष्यों ! पिप्पलके वृक्षके ऊपरके पत्तेपर स्थित और वायुसे चंचल ओसके बूंदके सदृश विनाशशील मनुष्योंके जीवनसहित इन संसाररूप अन्धगर्भ शय्याओंपर शयन मत करो ॥ १९ ॥ आदिअन्त शून्य अखंडित आत्मस्वभावमें शांत होके स्थित रहो, और द्रष्टा तथा दृश्यआदि दशारूप दोषमें पडके नष्ट न होओ

अज्ञावबुद्धःसंसारःसहिनास्तिमनागपि ॥ अवशिष्टंचयत्सत्यंतस्यनामनविद्यते ॥ २१ ॥ त्रोटयित्वातृष्णायःशृंखलावलितंबलात् ॥ संसारपंजरंतिष्ठसर्वस्योर्ध्वंमृगेंद्रवत् ॥ २२ ॥ आत्मात्मीयग्रहभ्रांतिशांतिमात्राविमुक्तता ॥ यथातथास्थितस्यापिसास्वसत्तैवयोगिनः ॥ २३ ॥ निर्वाणतावासनतापरापतापताज्ञता ॥ संसाराध्वनिखिन्नस्यशांताविश्रामभूमयः ॥ २४ ॥

अर्थ—यह संसार अज्ञानीको सत्य भासताहै, आत्मज्ञानी वह किंचित्भी नहीं हैं संसारके बाधसे शेष शुद्ध आत्मवस्तुमें इसका नामभी नहीं है ॥ २१ ॥ तृष्णारूपी लोहेकी संकरीसे रचित संसाररूपी पिंजरेके आत्मज्ञानरूपी बलसे तोडके सिंहके सदृश सबके ऊपर स्थित रहो ॥ २२ ॥ यह मैं और मेरा धनआदि इत्यादि भ्रमसे रहित होके शांतिपूर्वक जो स्थितिहै वही मुक्ति है, और चाहै जिस रूपसे स्थित योगीकी वह मुक्ति आत्मसत्ताही है ॥ २३ ॥ संसाररूप मार्गमें खिन्नप्राणीके लिये, वासनारहितता निर्वाणता, और त्रिविधताप शून्यता ये तीनों शांत विश्रामकी भूमिका हैं ॥ २४ ॥

तज्ज्ञज्ञातोनमूर्खाणांमूर्खज्ञातोनतद्विदाम् ॥ विद्यतेजगदर्थोसावावाच्यार्थमयोमिथः ॥ २५ ॥ विश्वताभ्रांतिसंशांतौसंस्थितैवनलभ्यते ॥ महार्णवांबुवलितापुत्रिकेवपयोमयी ॥ २६ ॥ भ्रांतिशांतौप्रबुद्धस्यविनिर्वाणस्यविश्वता ॥ यथास्थितैवगलिताविद्यतेचयथास्थितम् ॥ २७ ॥ निर्दग्धतृणभस्मालीक्वापियातितथानिलैः ॥ सतांस्वभावविश्रामैःक्वापियातितथाजगत् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसा तत्वज्ञानी इस जगत् को (मिथ्या) जानताहै वैसा मूर्ख नहीं जानता, और जैसा मूर्ख (सत्य) जानते हैं वैसा तत्वज्ञानी नहीं जानता, यह परस्पर कथनके अयोग्य है, और ज्ञानीको सुख और अज्ञानीको दुःखमय है ॥ २५ ॥ भ्रमके शांत होनेपर विद्यमानभी यह संसारता ऐसे उपलब्ध नहीं होता जैसे महासमुद्रसे वेष्टित गंगा, गोदावरी और नर्मदाआदि नदीमयी मूर्त्ति समुद्रनिवासियोंको ॥ २६ ॥ भ्रमके शांत होनेपर जीवन्मुक्त ज्ञानीके लिये यह संसारता अपने रूपसे विद्यमानभी उपलब्ध नहीं होती ॥ २७ ॥ जैसे भस्मीभूत तृण समूहोंकी पवनके प्रवाहोंसे न जाने कहां चली जाती है ऐसेही आत्मस्वभावमें विश्राम करनेवाले सज्जनोंके लिये यह जगत् न जाने कहां चला जाताहै ॥ २८ ॥

जगद्ब्रह्मपदार्थस्यसन्निवेशःसदुत्तमः ॥ ब्रह्मशब्दार्थरूपात्मानजगच्छब्दकार्यभाक् ॥ २९ ॥ अविज्ञातस्यबालस्यपदार्थायादृशाइमे ॥ विदुषस्तादृशाएवतिष्ठतःक्षीणवासनम् ॥ ३० ॥ यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्त्तिसंयमी ॥ यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥ ३१ ॥ स्थितमेवाऽबिरामीयजाग्रदस्यसुषुप्तवत् ॥ चित्रावलोकितइवजाग्रत्योस्यरसैषणाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वर्द्धनशील ब्रह्मशब्दका आकाररूप निरतिशय आनन्दमय जगत् शब्दका उत्तम अर्थ है, और षड्विधा विकारोंसे गमनशील उत्तम नहीं है ॥ २९ ॥ जैसे चिंताआदिसे शून्य विशेष ज्ञानसे रहित बालककी दृष्टिमें ये जगत्के पदार्थ हैं ऐसेही वासना शून्य आत्मज्ञानीको भी हैं ॥ ३० ॥ जिस आत्मज्ञानरूप रात्रिमें संसारके सब साधारण प्राणी सोते हैं उसमें आत्मज्ञानी जागता (सावधान) है और जिस संसार शब्दआदि दशामें मूर्ख प्राणी

जागते (सावधान) हैं वह आत्मज्ञानी मुनिके लिये रात्रिरूप है अर्थात् शब्दआदि संसारकी चिंता ज्ञानी नहीं करता ॥ ३१ ॥ क्योंकि मूर्खोंके लिये अज्ञान अन्धकारसे आवृत सुषुप्तके तुल्य स्थित आत्मवस्तु ज्ञानीके लिये विरामशून्य सदा जाग्रत्‌रूप है इसलिये ज्ञानीका उसमें जागना कहा गया है, और मूर्खोंके लिये जाग्रत्‌रूपसे प्रसिद्ध शब्दादि विषयोंका ज्ञानी चित्रलिखितके तुल्य देखताहै ॥ ३२ ॥

जात्यंधरूपानुभवसमंभुवनवेदनम् ॥ भ्रांतप्रायमसद्रूपंज्ञस्यभातिनभातिच ॥ ३३ ॥ विमूढदुःखंत्रिजगद्विमूढविषयंनसत् ॥ स्वप्नेस्वप्नतयाज्ञातेरूपालोकमनःक्रियाः ॥ ३४ ॥ नस्वदंतेयथातद्वज्जाग्रत्स्वप्नेस्फुरंतुमा ॥ निर्विभागःसमाश्वस्तोऽविरोधंपरमागतः ॥ ३५ ॥ आशीतलांतःकरणोनिर्वाणोज्ञोवतिष्ठते ॥ तज्ज्ञस्याकृष्टमुक्तस्यसमंध्यानंविनास्थितिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ज्ञानीकों यह जगत् जन्मांधके रूपके अनुभवके तुल्य रात्रीके स्वप्नके सदृश कभी भान होताहै, और कभी रात्रिकी सुषुप्तिके तुल्य नहींभी भासता ॥ ३३ ॥ मूढोंके लिये दुःखदायी यह जगत् मूढोंकाही विषय है न कि ज्ञानियोंका क्योंकि यह सत् नहीं है, और जैसे जाग्रत् पुरुषको स्वप्नरूपसे ज्ञात वा बाह्य तथा आभ्यन्तर विषय ॥ ३४ ॥ नहीं रुचते, ऐसे जाग्रत् स्वप्नके भोग ज्ञानीको स्फुरितहो वा न हो, परन्तु विभागशून्य, सर्वथा स्वस्थ तथा परमअविरोधको प्राप्त ॥ ३५ ॥ निर्वाण ज्ञानीपुरुष सदासर्वथा शीतल अन्तःकरण (अतितृप्त) ही रहताहै, क्योंकि भोगोंकी वासनाओंसे चित्तके बाह्य आकर्षणसे वर्जित ज्ञानीकी स्थिति ध्यानके बिनाभी समानही रहती है ॥ ३६ ॥

निम्नंविनैवतोयस्यनसंभवतिकाचन ॥ अर्थएवमनस्कारोमनएवार्थरंजनम् ॥ ३७ ॥ एषएवैषआभासः सबाह्याभ्यंतरात्मकः ॥ आसमुद्रंनदीवाहशतसंघमयात्मकम् ॥ ३८ ॥ यथैकश्लेषपिंडात्मवहत्यंबुतरंगिणाम् ॥ सबाह्याभ्यंतराकारमर्थानर्थमयात्मकम् ॥ ३९ ॥ मनएवस्फुरत्यर्थनिर्भासंव्याततंतथा ॥ नास्त्यर्थमनसोर्द्वित्वंयथाजलतरंगयोः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे बंधे हुये तडाग आदि जलके प्रवाह आदि क्रिया नीची नाली आदि बनाये बिना नहीं होती ऐसेही वासना बिना ज्ञानीका चित्तभी अन्यत्र नहीं जाता, क्योंकि पदार्थ मन और मनही पदार्थोंका रंजक है ॥३७॥ जैसे नदियोंके जल जबतक समुद्रमें नहीं जाते तबतक प्रवाह आदि अनेक आकारमें भासते हैं और समुद्रमें एक होनेपर एक जलरूपही भासताहै ऐसेही बाह्य तथा आभ्यन्तर अर्थ तथा अनर्थोंका समुदाय जो भासताहै यह सब व्याप्त मनही स्फुरताहै, और जैसे जलतरंगमें भेद नहीं है ऐसेही मन तथा जगत्‌के पदार्थोंमेंभी नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥४०॥

एकाभावेद्वयोःशांतिःपवनस्पंदयोरिव ॥ नूनमेकोपशांत्यैवनिःसारेपरमार्थतः ॥ ४१ ॥ एकत्वादर्थमनसीसममेवाशुशाम्यतः ॥ अर्थःसंकल्परूपात्मानेहितव्योविजानता ॥ ४२ ॥ मनश्चसम्यग्ज्ञानेन शांतिरेवंभवेत्तयोः ॥ अनष्टेनश्यतश्चैतेज्ञस्यार्थमनसीस्वतः ॥ ४३ ॥ मृन्मयेद्विषतिज्ञानाद्विषद्भावभयेयथा ॥ यथासंस्थंस्थितेएवज्ञस्यार्थमनसीसदा ॥ ४४ ॥

अर्थ—मन तथा जगत् इनमेंसे एकके अभावसे दोनोंकी शांति ऐसे होती है जैसे पवन तथा उसके संचलनकी इसलिये तत्वज्ञानसे जगत्‌की निःसारता जाननेसे मनकीभी निश्चयरूपसे शांति होजाती है ॥ ४१ ॥ मन और जगत्‌के पदार्थ एक होनेसे साथही शीघ्र शांत होजाते हैं इसलिये संकल्परूप पदार्थोंकी मनकीभी इच्छा बुद्धिमानको नहीं करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ इसप्रकार सम्यक्‌ज्ञानसे दोनोंकी शांति होजाती है, इसलिये ज्ञानीको स्वप्नके व्याधके तुल्य अनष्टभी मन और पदार्थ स्वयं नष्ट होतेहैं ॥ ४३ ॥ जैसे भ्रमसे कल्पित मृत्तिकाकी प्रतिमारूप शत्रुमें ज्ञान होनेपर शत्रुकी विद्यमानतामेंभी शत्रुता नष्ट होजाती है ऐसेही यथास्थितही जगत् और मन ब्रह्मस्वभावके होनेपर ज्ञानीके लिये नष्ट होजाते हैं ॥ ४४ ॥

किमप्यपूर्वमेवान्यत्संपन्नेभावरूपिणि ॥ संहितार्थजगत्कालोप्यज्ञोज्ञविषयोप्यसत् ॥ ४५ ॥ पार्श्वसुप्तनरस्वप्नइवक्लीवाग्रयक्षवत् ॥ ज्ञस्यसाज्ञंजगन्नास्तिवीरस्येवपिशाचधीः ॥४६॥ ज्ञमज्ञोभावयत्यज्ञंचिरंवंध्यापिवर्द्धते ॥ विनैवज्ञातशब्दार्थमर्थभावमिवागतम् ॥ ४७ ॥ स्थितंबोधमनाद्यंतंस्वभावंसर्गगं विद्धः ॥ मनःशब्दार्थरहितंविभागान्तविवर्जितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—संसारकी दशासे विलक्षण भावरूप पूर्णानन्द प्राप्त होनेपर तत्वज्ञानीकी दृष्टिमें कार्य्यकारणसहित जगत्‌के पदार्थ संयुक्त संसारकाल कालकृत जन्मादि विकार उनका भोक्ता अज्ञानी तथा उसके विषय शब्द स्पर्श रूपादि

विषय सब ऐसे असत् भान होतेहैं ॥ ४५ ॥ जैसे समीपमें सुप्त मनुष्यके स्वप्न, वा बालकसे कल्पित पक्ष, और ज्ञानीकी दृष्टिमें अज्ञानीसहित जगत् ऐसे नहीं है जैसे बुद्धिमान् वीरपुरुषकी दृष्टिमें पिशाचकी बुद्धि ॥ ४६ ॥ अज्ञानी अपनी बुद्धिसे ज्ञानीकोभी अज्ञानी समझताहै, और उसकी दृष्टिसे वन्ध्याभी पुत्रपौत्रआदिसे बढती है, और ज्ञानीपुरुषतो ज्ञानके विषयसे शून्य, जगत्के पदार्थाकारसे स्थित अनादि अनन्त मनके शब्दार्थसे रहित तथा विभागादिसे वर्जित बोधमय ब्रह्मस्वभावही सृष्टिरूपसे स्थित है ऐसा देखताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

बोधवारिमनोबुद्धितरंगमिव निर्मलम् ॥ कसंभवतएवांतःकेवार्थमनसीकिल ॥ ४९ ॥ निरर्थैकैवविभ्रांतिःस्वभावमयमास्यताम् ॥ शुद्धबोधस्वभावस्थैराकाशमिवशारदैः ॥ ५० ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तांतैर्मनस्त्वंनानुभूयते ॥ विधूयानंतनानात्वमसद्भावमनामय ॥ ५१ ॥ ज्ञेयंरज्जुरिवाशेषंस्वभावेतिष्ठचिद्घन ॥ ज्ञप्तिरेवांतरंबाह्यंचार्थत्वमधितिष्ठति ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी! बोधरूपी जलमें मन बुद्धि निर्मल तरंगरूपसे स्थित हैं, क्योंकि शुद्ध आत्मामें जगत्के पदार्थ तथा मनका संभव कहां ॥ ४९ ॥ यह मन तथा जगत्का भ्रम व्यर्थही है, इसलिये ब्रह्मस्वभावमें स्थित रहो, क्योंकि आकाशमें प्रकाशमय नक्षत्रोंके तुल्य ब्रह्मस्वभावमें स्थित मनुष्योंको ॥ ५० ॥ जाग्रत् स्वप्न, और सुषुप्तिरूप कल्पित अवस्थाओंसे मनका अनुभव नहीं होता किंतु सब अवस्थाओंमें साक्षीरूपसे स्थित निजआत्माही सर्वत्र अनुभूत होताहै इस हेतुसे अनंतरूपमय संपूर्ण ज्ञेयपदार्थको मिथ्यारूपसे बाध करके चिद्घनरूप आत्मस्वभावमें ऐसे स्थित रहो जैसे सर्पके बाधसे रज्जु, क्योंकि ज्ञप्ति, बुद्धि, वृत्ति, बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थोंका रूप ऐसे धारण करती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

बीजंशाखाफलानीवक्कातोर्थमनसीवद ॥ ज्ञेयासंभवतोज्ञप्तिरप्यनाख्यंपदंगता ॥ ५३ ॥ शांताशेषविशेषात्मातेनशेषोस्तिसत्स्वभाः ॥ अर्थएवमनस्कारःसचाभावात्मकोभ्रमः ॥ ५४ ॥ मनएवार्थसंस्कारःसचाभावात्मकोभ्रमः ॥ सर्वात्मत्वादजस्यैतदप्यकारणकंमनः ॥ ५५ ॥ भ्रमानुभवतोर्थश्चमिथ्यैवास्तीवभासते ॥ अकारणकमेवार्थनिर्भासंभासतेमनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे बीज शाखा तथा फल आदिरूपको तब कहो पदार्थ और मन कहां रहे, और ज्ञेयके असंभवसे ज्ञप्ति (बुद्धिवृत्ति) भी अनिर्वचनीय पदको प्राप्त है ॥ ५३ ॥ इसलिये सब विशेषोंसे रहित स्वप्रकाश आत्माही शेष है, और मन तथा जगत्रूप अर्थ परस्पर एक दूसरेके अधीन होनेसे दोनों अभावरूप भ्रमही हैं ॥ ५४ ॥ मनही जगत् पदार्थरूपसे परिणत होताहै, और वह भी भ्रमरूप है अज परमात्माके सर्वरूप होनेसे मनरूपसे भी वही भासताहै ॥ ५५ ॥ जैसे भ्रमके अनुभवसे बिनाकारण ब्रह्म मनरूपसे भासताहै ऐसेही मनभी निष्कारण जगत्रूपसे भासताहै ॥ ५६ ॥

विद्युद्विलसिताकारमस्थिरंतरलायते ॥ त्वंमनस्कारमात्रात्मासंसृतौविभ्रमायसे ॥ ५७ ॥ स्वभावैकपरिज्ञानान्नासिनापिभ्रमायसे ॥ मनसैवहिसंसारआत्मबोधेनशाम्यति ॥ ५८ ॥ शुक्तिरूप्यभ्रमाकारोजनोमिथ्यैवताम्यति ॥ अभावभावस्तुपरंबोधरूपमसंसृतिः ॥ ५९ ॥ निर्वाणादितरासत्ताइःखायाहमितिभ्रमः ॥ मृगतृष्णांबुरूपोहमसच्छून्यस्वरूपकः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी! विद्युत्के विलासके तुल्य यह मन और जगत् अस्थिर तथा चंचल है, और बाह्य तथा आभ्यंतर विषयरूपसे इससंसारमें तुमकोभी भ्रम होताहै ॥ ५७ ॥ हे रामजी! और आत्मस्वभावके जाननेसे न तुम अज्ञ हो और न तुमको भ्रम होताहै, क्योंकि आत्माके ज्ञानसे मनसे यह संसार शांत होजाताहै ॥ ५८ ॥ शुक्तिमें रूपेके भ्रमके तुल्य इस जगत्के भ्रममें मिथ्याही मनुष्य दुःखी होताहै और परमात्माका यथार्थरूप ज्ञानही संसारका अभाव है ॥ ५९ ॥ निर्वाण अर्थात् शांत आत्मासे भिन्न अहं यह भ्रमरूप सत्ता दुःखकेही लिये है, इस मृगतृष्णाके जलके सदृश यह अहंकारका रूप शून्य और असत्रूप है ॥ ६० ॥

इत्येवात्मपरिज्ञानादहमित्येवशाम्यति ॥ ज्ञात्वाज्ञानमयोभूत्वासबाह्याभ्यंतरार्थताम् ॥ ६१ ॥ गतंस्वमत्यजद्रूपंतरंगत्वंयथापयः ॥ मूलशाखाग्रपर्यंतासत्ताविटपिनोयथा ॥ ६२ ॥ निर्विकारमलंब्रह्मज्ञेयांतैकैवभासते ॥ यथायोजनलक्षाभमेकमेवामलंनभः ॥ ६३ ॥ एकमेवतथाज्ञानंज्ञेयांतंभात्यखंडितम् ॥ शून्यत्वादेकममलंयथासर्वगमेवखम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इत्यादि रूपसे शुद्ध आत्माके ज्ञानसे यह अहंकार शांत होजाताहै, क्योंकि सृष्टिकी आदिमें ज्ञानमय ब्रह्मा सब रचनीय पदार्थोंको आत्मरूपही जानके अपने शुद्ध आत्मरूपको न त्यागते हुये बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थरूपताको ऐसे प्राप्त हुये जैसे तरंगरूपताको जल, इससे यह सिद्ध भया कि जैसे मूलसे लेके शाखाके अग्रभागपर्य्यंत वृक्षकी एकही सत्ताहै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ऐसेही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप जगत्‌में निर्विकार एक ब्रह्मकीही सत्ता भासती है, और जैसे लक्षों योजनपर्य्यन्त यही एक निर्मल आकाश है ॥ ६३ ॥ ऐसेही एक ज्ञानरूप परमात्मा सम्पूर्ण ज्ञाता ज्ञान और रूप त्रिपुटीमें अखंडरूपसे भासताहै, और जैसे शून्यताके कारण निर्मल आकाश सर्वगत है ॥ ६४ ॥

तथैकममलंज्ञात्वाज्ञानज्ञेयदशास्वपि ॥ घृतेनात्माघनीभूयपाषाणीक्रियतेयथा ॥ ६५ ॥ चिताचेत्यतयात्मैवस्वचित्तीक्रियतेतथा ॥ देशकालंविनैवात्माबोधाबोधेनचित्तताम् ॥ ६६ ॥ अबुद्धोनीयतेन्यायैरेकमेवैषसुस्थितः ॥ अत्रयद्यप्यबोधादेःसंभवोनास्तिकश्चन ॥ तथापिकल्प्यतेत्रैवबोधनायपरस्परम् ॥ ६७ ॥ महानुभावाविगताभिमानाविमूढभावोपशमेगलंति ॥ निर्भ्रांतयोनंततयैवशांतानित्यंसमाधानमयाभवंति ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मैकतानतोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ऐसेही ज्ञान ज्ञेय आदि दशामें एक निर्मल आत्मा सर्वत्र व्याप्तहै, और जैसे घृतभूत होके अपनेको पाषाणरूप करलेताहै ॥ ६५ ॥ ऐसेही चेतन विषयरूप होके अपनेको चित्तरूप करताहै, और देशकाल आदिके बिनाही यह आत्मा अपने यथार्थ स्वरूपके न जाननेसे अज्ञ चित्तरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ६६ ॥ एकही आत्मा अपने स्वरूपमें स्थितही अविद्यासे अज्ञ दशाको प्राप्त होताहै, और यद्यपि शुद्धआत्मामें अज्ञान आदिका संभव नहीं है तथापि इसी अविद्या दशामें परस्पर बोधके लिये चित्त आदिकी कल्पना की जाती है ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! ज्ञानमूल अविद्याके शांत होनेपर अभिमान रहित महानुभाव अपने स्वरूपमेंही गलित (आत्मामें एकरूप) होते हैं, और अनन्त आत्मानन्दसे पूर्ण होकर शांतरूपसे समाधिमें तत्पर होतेहैं ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मैकतानतोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस ४४ के सर्गमें समाधिरूप कल्पवृक्षकी वृद्धि जीवके मनरूपी मृगके विश्रामके लिये वर्णनकी गई है ॥

श्रीरामउवाच ॥ क्रमात्समाधानतरोराजीवफलशालिनीम् ॥ सलताकुसुमांब्रूहिसत्तांविश्रांतिदामुने ॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आजीवमुद्यदुत्सेधंविवेकिजनकानने ॥ पत्रपुष्पफलोपेतंसमाधानतरुंशृणु ॥ २ ॥ यथाकथंचिदुत्तितंदुःखेनस्वयमेवच ॥ संसारवननिर्वेदंबीजमस्यविदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ शुभजालहलाकृष्टंरससिक्तमहर्निशम् ॥ प्रवहच्छ्वसनाकुल्यक्षेत्रमस्यविदुर्बुधाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! समाधिरूप वृक्षकी लता पुष्प आदि सहित, विवेकीजनोंके लिये उत्तम फलोंसे शोभायमान, और बिश्रामको देनेवाली स्थितिको क्रमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! विवेकी जनरूपबनमें उन विवेकियोंके सर्वथा जीवनमूल, अति बिशाल और पत्र पुष्प तथा फल आदि सहित समाधिरूप वृक्षको तुम सुनो ॥ २ ॥ शत्रुओंके अपमान, साधुओंके उपदेश, अथवा अन्य किसी दुःख आदिसे उत्पन्न जो संसाररूपीबनमें परम वैराग्यहै उसीको पंडितजन इस समाधिरूप वृक्षका बीज कहते हैं ॥ ३ ॥ और शुभकर्म रूप हलोंसे पूर्णरीति आकृष्ट (जोताहुआ) शांति आदि रसोंसे अहर्निश सिंचित् और निरंतर प्राणायाम रूप नहरसे युक्त चित्तको इस समाधिके बीजका क्षेत्र कहते हैं ॥ ४ ॥

समाधिबीजंसंसारनिर्वेदःपततिस्वयम् ॥ चित्तभूमौविविक्तायांविवेकिजनकानने ॥ ५ ॥ स्वचित्तभूमौपतितंध्यानबीजंमहाधिया ॥ सेकैरमीभिर्यत्नेनसंसेक्तव्यमखेदिना ॥ ६ ॥ शुद्धैःस्निग्धैःपवित्रैश्च

धुरैरात्मनोहितैः ॥ सत्संगमनवक्षीरैरैंदवैरमृतैरिव ॥ ७ ॥ अंतःशून्यप्रदैःपूर्णैःस्वच्छैरमृतशीतलैः ॥ विस्तैरमृताकुल्याशास्त्रार्थवरवारिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—वह संसारका पर वैराग्यरूप समाधिका बीज विवेकजनरूप बनमें विवेकसे शोधित चित्तरूप भूमिमें आपही आके गिरताहै ॥ ५ ॥ और निजचित्तरूप भूमिपतित वैराग्यरूपी समाधिके बीजको बढानेके लिये दृढ महा बुद्धिसे युक्त तथा खेदरहित पुरुष उसको निम्नलिखित प्रयत्नरूपी जलोंसे सदा सींचे ॥ ६ ॥ शुद्ध पवित्र स्नेहयुक्त मधुर और आत्माको हितदायक, चन्द्रमाके अमृतके सत्समागमरूप नूतनक्षीरसे समाधिके बीजको प्रथम सिंचनकरै ॥ ७ ॥ पश्चात् संसारकी शून्यतापूर्वक आत्मानन्ददायक, पूर्ण, अतिनिर्मल, अमृतके तुल्य स्वादु तथा शीतल, गुरूके हृदयमें वर्तमान ब्रह्मरूप सरोवरसे व्याख्याद्वारा निःसृत, और अमृतके प्रवाहमय नदीके सदृश शास्त्रोंके श्रवण मनन आदि जलोंसे समाधिके बीजको सिंचन करै ॥ ८ ॥

स्वचित्तभूमौपतितंपरिज्ञायमहाधिया ॥ बीजंसंसारनिर्वेदोरक्ष्यंध्यानस्ययत्नतः ॥ ९ ॥ तपःप्रकारदाने नपदार्थघटनेशितैः ॥ तीर्थायतनविश्रांतिवृत्तिविस्तारकल्पनैः ॥ १० ॥ कर्तव्योंकुरितस्यास्यरक्षिता शिक्षिताशयः ॥ संतोषनामाप्रिययानित्यंमुदितयान्वितः ॥ ११ ॥ पश्चात्सिताशाविहगान्परप्रणयप क्षिणः ॥ अस्मादापततःकामगर्वगृध्रान्निवारयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—निज चित्तरूपी भूमिमें गिरे हुये संसारके वैराग्यरूपी समाधिके बीजको यत्नसे रक्षा करनी चाहिये ॥९॥ कायिक वाचिक, तथा मानसिक तप और दानसे और अभिमान राहित्यआदि पदार्थोंसे समर्थ पवित्र तीर्थोंमें निवासरूप वृत्तियोंकी कल्पना यत्नोंसे समाधिके बीजकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १० ॥ इसप्रकार अंकुरदशामें प्राप्त इस बीजका रक्षक अतिकुशल, और मुदितारूप पत्नीसे संयुक्त संतोषनामक पुरुषको नियत करना चाहिये ॥ ११ ॥ और इसके पश्चात् पूर्ववासनाओंसे आविर्भूत, धन पुत्रआदिमें अनुरागयुक्त ध्यानरूप अंकुरके विघातक आशारूप पक्षियोंको तथा कामक्रोधआदि गृध्रोंको इस संतोषपुरुषको निवारण करना चाहिये ॥ १२ ॥

मृद्वभिःसत्क्रियाकुंतैर्विवेकार्कातपैरपि ॥ अचिंत्यालोकदैरस्मान्मार्जितव्यंरजस्तमः ॥ १३ ॥ संपदः प्रमदाश्चैवतरंगाभोगभंगुराः ॥ पतंत्यशनयस्तस्मिन्दुष्कृताभ्रसमीरिताः ॥ १४ ॥ धैर्योदार्यदयामंत्रै र्जपस्नानतपोदमैः ॥ विनिवारयितव्यास्ताःप्रणवार्थत्रिशूलिना ॥ १५ ॥ इतिसंरक्षितादस्माद्ध्यानबी जात्प्रवर्त्तते ॥ आभिजात्योन्नतःश्रीमान्विवेकाख्योनवांकुरः ॥ १६ ॥

अर्थ—और अहिंसा प्रधान यम, नियम आसन तथा प्राणायामआदि मार्जनीके पुलोंसे तथा अचिंत्य ब्रह्मलोकप्रद विवेकरूपी सूर्य्यके प्रकाशसे इस अंकुरके क्षेत्रसे रजोगुणरूपी अन्धकारको दूर करना चाहिये ॥ १३ ॥ और पापरूपी मदसे उत्पन्न संपत्ति स्त्रियां और तरंगके तुल्य विशी भोगरूपी वज्र इस अंकुरपर गिरते हैं॥१४॥ इसलिये प्रणवके अर्थरूप त्रिशूलको धारण करके धैर्य्य, औदार्य्य तथा दयाआदि मंत्रोंसे तथा जप, तप, स्नान और दमआदिके द्वारा उन वज्रपातोंको निवारण करना चाहिये ॥ १५ ॥ इसप्रकारसे रक्षित इस ध्यानके बीजसे, पुष्टि तथा सुन्दरताकी अधिकता उन्नत, और शोभायुक्त विवेकरूपी नूतनअंकुर उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥

तेनसाचित्तभूर्भातिसप्रकाशाविकासिनी ॥ भवत्यालोकरम्याचखंयथाभिनवेंदुना ॥ १७ ॥ तस्मादं कुरतःपत्रेउभौविकसतःस्वयम् ॥ एकंशास्त्राभिगमनंद्वितीयंसाधुसंगमः ॥ १८ ॥ स्तंभमेषनिबध्नाति स्थैर्यंनामससमुन्नतिम् ॥ संतोषत्वग्विवलितंवैराग्यरसरंजितम् ॥ १९ ॥ वैराग्यरसपुष्टात्माशास्त्रार्थ प्रावृषान्वितः ॥ स्वल्पेनैवस्वकालेनपरामेतिसमुन्नतिम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस विवेकरूपी अंकुरसे आत्मप्रकाश अति शोभायुक्त चित्तरूप भूमि ऐसे रमणीय भान होती है जैसे चन्द्रमासे आकाश ॥ १७ ॥ और इस अंकुरसे वेदांतशास्त्रोंका विचार और साधुसमागमरूपी दो पत्र स्वयं निकलते हैं ॥ १८ ॥ पुनः संतोषरूपी त्वचासे वेष्टित, और वैराग्यरूपी रससे रंजित यह अंकुर शाखा, दृढमूलता और उंचाईकी ग्रहण करताहै ॥ १९ ॥ शास्त्ररूपी वर्षारूपी रससे संयुक्त, और वैराग्यरूप रससे पुष्ट यह अंकुर अति अल्पकालमेंही परम उन्नतिको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

शास्त्रार्थसाधुसंपर्कवैराग्यरसपीवरः ॥ रागद्वेषकपिक्षोभैर्नमनागपिकंपते॥२१॥ अथतस्मात्प्रजायंतेवि ज्ञानालंकृताकृतेः ॥ लतारसविलासिन्यइमावितंतदेशगाः ॥ २२ ॥ स्फुटतासत्यतासत्ताधीरतानिर्वि कल्पता ॥ समताशांततामैत्रीकरुणाकीर्तिरार्यता ॥ २३ ॥ लताभिर्गुणपत्राभिःसध्यानतरुरूर्जितः ॥ यशःपुष्पाभिरेताभिःपारिजातायतेयतेः ॥ २४ ॥

अर्थ—शास्त्रोंके विचार साधुसमागम और वैराग्यरूप रससे पुष्ट यह ध्यान विवेकरूपी वृक्ष रागद्वेषरूपी मर्कटोंके क्षोभोसें किंचित्‌भी कंपित नहीं होता ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् ज्ञानसे शोभित आकारवाले उस विवेकसे आत्मरससे शोभित विशाल आत्मदेशमें गामिनायें लक्ष्यमाण लतायें उत्पन्न होतीहै ॥ २२ ॥ आत्मनिष्ठ प्रत्यक्ष सत्यता, स्थिति धीरता, निर्विकल्पता, समता, मैत्री, करुणा कीर्ति और आर्य्यतारूप लता उस अंकुरसे उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥ यशरूप पुष्प तथा शांति आदि शाखासहित इन लताओंसे पुष्ट ध्यानरूप वृक्ष योगीके लिये कल्पवृक्ष होजाताहै ॥ २४ ॥

इत्यसौज्ञानविटपीलतापल्लवपुष्पवान् ॥ भविष्यज्ज्ञानफलदोदिनानुदिनमुत्तमः ॥ २५ ॥ यशःकुसुमगुच्छाढ्योगुणपल्लवलासवान् ॥ वैराग्यरसविस्तारीप्रज्ञामंजरिताकृतिः ॥ २६ ॥ सर्वाःशीतलयत्याशाःप्रावृषीवपयोधरः ॥ सर्वातपंशमयतिसूर्यतापमिवोडुपः ॥ २७ ॥ प्रतनोतिशमच्छायांछायामिवघनागमः ॥ निरोधमास्फारयतिशमोनिलइवांबुदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार लता, पल्लव तथा पुष्पोंसे शोभित यह समाधिरूप वृक्ष भविष्यत्‌में मूल अज्ञानका नाशक तथा सप्तमभूमिका पर्वत विश्रामदायक ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञानका दाता होताहै ॥ २५ ॥ यशरूपी पुष्पोंके गुच्छोंसे पूर्ण, शांति उदारतादि गुणरूपी पत्रादिसे भूषित, वैरागरूपी रससे विस्तृत, और बुद्धिरूप लतासे अतिशोभित यह समाधिरूप वृक्ष होताहै ॥ २६ ॥ यह वृक्ष सब दिशाओंको ऐसे शीतल करताहै जैसे वर्षामें मेघ, और संसारके तापको ऐसे शांत करताहै जैसे सूर्य्यके तापको चन्द्रमा ॥ २७ ॥ मेघके सदृश शमताकी छायाका विस्तार करताहै, और शमचित्तकी स्थिरताको ऐसें बढाताहै जैसे पूर्वदिशाका वायु मेघको ॥ २८ ॥

निबध्नात्यात्मनापीठंकुलाचलइवस्थितम् ॥ फलस्यरचयत्यूर्ध्वंघटिकामंगलादिताम् ॥ २९ ॥ विवेककल्पवृक्षेतुवर्द्धमानेदिनेदिने ॥ छायावितानवलितेपुंसोहृदयकानने॥३०॥प्रवर्त्ततेशीतलतातलतापापहारिणी ॥ अभ्युल्लसन्मतिलताद्गुषारोदरसुंदरी ॥ ३१ ॥ यस्यामवांतरश्रांतोविश्राम्यतिमनोमृगः ॥ आजन्मजीर्णपथिकःपथिकोलाहलाकुलः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कुलाचलके सदृश आत्मज्ञानके मूलको दृढ करताहै तथा कैवल्यरूप फलकी दात्री मंगलकी शोभाको रचताहै ॥ २९ ॥ पुरुषके हृदयरूपी बनमें छायाके वितानसे वेष्टित इस बिवेकरूपी कल्पके प्रतिदिन बढनेपर ॥ ३० ॥ शोभायमान बुद्धिरूप लतायुक्त, तुषारके गर्भके सदृश सुन्दर और चित्तरूप भूमिके आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक रूप तीनों तापोंको हरनेवाली शीतलता फैलती है ॥ ३१ ॥ अनेकजन्मोंके दुःखोंसे जीर्ण, दैवसंयोगसे सन्मार्ग मिलनेपर नानावादियोंके कोलाहलसे मार्गसे भ्रंशित, और अनेक संसार भूमियोंमें श्रांत यह मनरूपी पथिक मृग इस वृक्षकी शीतल छायामें आकर विश्राम करताहै ॥ ३२ ॥

सत्तामात्रात्मशारीरचर्मार्थंप्रेक्षितोगिभिः ॥ नानातासारसाकारगोपयज्जर्जरोन्मुखः ॥ ३३ ॥ संसारारण्यविसरद्वासनापवनेरितः ॥ अहंतातापसरितासर्वदाविप्रदारदी ॥ ३४ ॥ दीर्घादरीदूरचितसारसंचारजर्जरः ॥ पुत्रपौत्रपगमर्शप्रतापात्पतितोऽवटे ॥३५॥ लक्ष्मीलताविलुठनात्संकटैःकुंठितांगकः॥ तृष्णाश्रीसरितंगृह्णन्कल्लोलैर्दूरमाहतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और सत्तामात्र शरीरनिवासी पुरुषरूपी चर्मके अपहरणार्थ कामक्रोध आदि व्याधोंसे अनुगत, और असार अनेकताकार शरीररूप कंटकोंके कुंजोंमें जर्जरीभूत मुखसहित यह मनरूपी मृग है ॥ ३३ ॥ और वासना पवनसे प्रेरित संसाररूप बनमें दौडता हुआ, और अहंतारूप मृगतृष्णाकी नदीकी ओर सदा दौडनेसे अन्तःकरणमें तृष्णारूपी विषके दाहसे सदा व्याकुल यह समरूपी मृग है ॥ ३४ ॥ बडे भोगोंमें आदरयुक्त दूरदेशमेंभी प्राप्यविषयोंकी ओर दौडनेसे शिथिलशरीर और पुत्रपौत्र आदि विषयोंके पालनसे त्रिविधतापसे अनर्थरूप गर्भमें पतित यह मनरूप मृग है ॥ ३५ ॥ तथा सम्पत्तिरूप लताओंमें पादके वेष्टित होनेसे अनेक संकटोंसे कुंठित शरीर, और तृष्णारूप नदीको ग्रहण करते हुये क्षुधा, तृषा तथा शोक मोहादि तरंगोंसे दूर प्रक्षिप्त यह मनरूपी मृग है ॥ ३६ ॥

व्याधिदुर्व्याधवैधुर्यपलायनपरायणः ॥ अशंकितविधिर्व्याधपातादिवकृताकृतिः ॥ ३७ ॥ ज्ञेयास्पदसमायातदुःखसायकशंकितः ॥ वैरिविद्रवणव्यग्रोद्दषदाहरणांकितः ॥ ३८ ॥ उन्नतानतसंपातपातेनातिविघूर्णितः ॥ विकारोपलनिर्घातैःपारंपर्येणचूर्णितः ॥ ३९ ॥ तृष्णाचारुलताजालप्रवेशवशविक्षतः॥ स्वप्रज्ञारचिताचारःपरमायास्वक्षिशितः ॥ ४० ॥

अर्थ—अनेक व्याधिरूप दुष्ट व्याधोंके दुःखोंसे पलायनमें परायण दैवकी संभावनासे रहित, इसीसे व्याधोंके आगमनसे संकुचित आकारयुक्त यह मनरूपी मृग है ॥ ३७ ॥ ज्ञानइन्द्रियोंके शब्द आदि विषयोंसे उत्पन्न दुःखरूपी बाणोंसे शंकित, कामक्रोधादि शत्रुओंके उपद्रओंसे व्यग्र, और पाषाणोंके प्रहारोंके तुल्य पूर्वकालके दुःखोंके संस्कारोंसे युक्त यह मनरूपी मृग है ॥ ३८ ॥ स्वर्ग नरक आदि ऊंचे नीचे स्थानोंमें संपात और निपातसे चकित, और कामक्रोधादिरूप पाषाणोंके प्रहारोंसे निरंतर चूर्णित यह मनरूप मृग है ॥ ३९ ॥ तृष्णारूप उत्तम लताजालोंमें प्रवेशके निमित्तसे विद्ध शरीर अपनी बुद्धिसे रचित अनेक आचारसहित, और परमात्माकी मायासे अनभिज्ञ यह मनरूप मृग है ॥ ४० ॥

इंद्रियग्राममागत्यप्रपलायनतत्परः ॥ सद्दुर्ग्रहगजेंद्रोग्रविस्फूर्जनविमर्दितः ॥ ४१ ॥ विषयाजगरोदारविषफूत्कारमूर्छितः ॥ कामुकःकामिनीभूमौरसात्प्रायोविपोथितः ॥ ४२ ॥ कोपदावानलप्लुष्टपृष्ठविस्फोटदाहवान् ॥ सदागतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान् ॥ ४३ ॥ स्वात्मलग्नाभिलाषांशदंशदोषैरुपद्रुतः ॥ भोगलोभलसन्मोदशृगालचिरविद्रुतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इन्द्रियरूपी ग्राममें आके भागनेमें तत्पर, अति दुःसाध्य भयंकर कामरूपी गजेन्द्रकी गर्जनासे मर्दित यह मनरूपी मृग है ॥ ४१ ॥ और विषयरूपी अजगरोंके महाविषरूपी फुफकारसे मूर्च्छित, और कामिनीरूपी भूमिमें अभिलाषी विषयरूपी रससे मर्दित यह मनरूपी मृग है ॥ ४२ ॥ कोपरूपी दावानलसे दग्ध, इसीसे पृष्ठपर अनेक फोडोंसे युक्त, और विषयोंमें बार २ भ्रमण करनेसे अनेक चिंतारूपी दीर्घ दुःखोंसे अन्तःकरणमें दाहयुक्त यह मनरूप मृग है ॥ ४३ ॥ आत्मामें संलग्न अनेक अभिलाषारूप मच्छरोंसे उपद्रवयुक्त, तथा भोगोंके लोभमें सुंदर प्रमोदरूपी शृगालोंसे चिरकालसे खेदित यह मनरूपी मृग है ॥ ४४ ॥

स्वकर्मकर्त्तृतोद्भ्रांतदारिद्र्यद्वीप्यनुद्रुतः ॥ व्यामोहमिहिकांधत्वकूटावटलुठत्तनुः ॥ ४५ ॥ मानसिंहसमुल्लासहृदयोत्कंपनातुरः ॥ मरणेनरणेयेनत्र्कपुष्पमिवेक्षितः ॥ ४६ ॥ गर्वेणगिरणायाशुदूरतोजनसेवितः ॥ कामैःसमंवतोदंतवितानितयवांकुरः ॥ ४७ ॥ तारुण्यनारीसुहृदाक्षणमालिंग्यवर्जितः ॥ दुःसंचारेषूपवनैःकुपितैरिववर्जितः ॥ ४८ ॥ कदाचिन्निर्वृतिंयातिसशमंचतरौक्वचित् ॥ मनोहारिणकोराजन्नाजीवमिवभास्वति ॥ ४९ ॥ तालीतमालबकुलादिकवृक्षगुल्मविश्रांतिषु प्रचुरपुष्पविलासहासैः॥ नामापियस्यनविदंतिसुखस्यमूढाःप्राप्नोतितच्छमतरोःस्वमनोमृगोवः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोमृगविपद्वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अपने कर्मसे उत्पन्न दरिद्रतारूप व्याघ्रसे पीडित, और पुत्र कलत्र आदि मोहरूपी कुहिरासे अन्धा होकर नीचकृत्यरूपी गर्तोंमें गिरनेसे भग्न शरीर यह मनरूपी मृग है ॥ ४५ ॥ और मानरूपी सिंहके उल्लाससे भययुक्त और मृत्युरूपी प्रसिद्ध व्याघ्रसे सुखसे विदीर्ण करनेके योग्य पुष्पके सदृश दृष्ट यह मनरूपी मृग है ॥ ४६ ॥ तथा शून्य बनमें गर्वरूपी अजगरसे शीघ्र निगलनेके चिरकालसे सेवित, और अनेक कामनाओंको सिद्ध करनेके लिये दीनता तथा यांचा आदिसे दांतरूपी यवके अंकुरोंको फैलाये हुये यह मनरूपी मृग है ॥ ४७ ॥ और तरुणअवस्थाका लोभी स्त्रीरूप मित्रसे क्षणभर आलिंगित होनेसे पुनः त्यक्त, और झंझा पवनोंके सदृश इन्द्रियोंसे दुर्गम नरक आदि स्थानोंमें प्राक्षिप्त (फेका हुआ) यह मनरूपी मृग है ॥ ४८ ॥ हे राजन्! इसप्रकारका यह मनरूपी मृग अनेक जन्मोंके पुण्यसे कभी अधिकारी शरीरमें शम दम आदि साधनोंसे युक्त होनेपर इस पूर्वोक्त समाधिरूपी वृक्षके नीचे विश्रामको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे रात्रिमें अंधकार तथा शीतसे पीडित मनुष्य सूर्य्यके उदय होनेपर ॥ ४९ ॥ हे श्रोतागण! तालीतमाल आदि वृक्षोंके मूलोंमें विश्रामोंके सदृश भूलोकसे लेके सत्यलोकपर्य्यंतके निवासोंमें पुष्पोंके विलासोंके तुल्य अनित्य भोगोंमें आत्मज्ञानसे रहित जन जिस सुखका नाम भी नहीं जानते उस निरतिशय आत्मसुखको तुम्हारा मनरूपी मृग इस समाधिरूपी वृक्षके नीचे आनेसे पा सकताहै ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोमृगविपद्वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस ४५ के सर्गमें मनके समाधिरूपी वृक्षपर चढनेका क्रम, और चढते समय उत्तरोत्तर भूमिकाओंमें सुखकी अधिकताका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिविश्रांतवानेषमनोहरिणकोरिहन् ॥ तत्रैवरतिमायातिनयातिविटपांतरम् ॥ १॥ एतावताऽथकालेनसविवेकद्रुमःफलम् ॥ अंतस्थंपरमार्थात्मशनैःप्रकटयत्यलम् ॥ २ ॥ ध्यानद्रुमफलं पुण्यंतदसौस्वमनोमृगः ॥ अधःस्थितप्रांतगतंतस्यपश्यतिसत्तरोः ॥ ३ ॥ आरोहतिनरोवृक्षंतदास्वा दयितुंफलम् ॥ अन्यवर्गपरित्यागोवितताध्यवसायवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे शत्रुनाशकरामजी ! इसप्रकार ध्यानरूपी वृक्षके नीचे प्राप्त विश्राम यह मनरूपी मृग उसी ध्यानरूपी वृक्षमेंही प्रीतियुक्त होजाताहै और अन्य वृक्षके नीचे नहीं जाता ॥ १ ॥ हे रामजी ! इतने समयमें विवेक सहित ध्यानरूपी वृक्ष पंचकोशरूपी पुष्पोंके गुच्छाके अन्तमें स्थित पारमार्थिक आत्मस्वरूपको धीरे२ भूमिका क्रमसे पूर्णरूपसे प्रगट करताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! ध्यानरूपी वृक्षके नीचे स्थित यह मनरूपी मृग कुछकालमें आत्माका साक्षात्कार रूप फल उस वृक्षकी शाखाके अग्रभागमें देखताहै ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् निरन्तर ध्यानमें उद्योगयुक्त, और अन्य पदार्थोंसे विरक्त मनुष्य[1] वृक्षके फलका स्वाद लेनेके लिये इसपर चढताहै ॥ ४ ॥

विवेकवृक्षपात्रामवृत्तीस्त्यजतिभूगताः ॥ उन्नतंपदमासाद्यभूयोनाधःसमीहते ॥ ५ ॥ तेनोत्तमफलार्थेनसंस्कारान्प्राक्तनानसौ ॥ विवेकपादपारूढस्त्यजत्यहिरिवत्वचम् ॥ ६ ॥ हसत्युच्चैःपदारूढमात्मानमवलोकयन् ॥ एतावंतमहंकालंकृपणःकोऽभवंत्विति ॥ ७ ॥ करुणादिषुतेष्वस्यभ्रमञ्छाखांतरेषुसः ॥ लोभव्यालमधःकुर्वन्सम्राडिवविराजते ॥ ८ ॥

अर्थ—विवेकयुक्त ध्यानरूपी वृक्षपर दृढतासे प्रतिष्ठित होकर संसाररूपी भूमिपर देह आदिमें अहं ममता आदि वृत्तियोंको त्याग देताहै और इस उन्नतपदको पाकर पुनः संसाररूपी नीचेके पदार्थोंके लिये चेष्टा नहीं करता ॥ ५ ॥ इस विवेकयुक्त ध्यानरूप वृक्षपर आरूढ होकर आत्माका साक्षात्काररूप उत्तम फलके मिलनेसे पूर्वकालके सब संस्कारोंको ऐसे त्याग देताहै जैसे सर्पकेंचुलीको ॥ ६ ॥ इस उच्चपदपर आरूढ होकर आत्मानन्दका अनुभव करते हुये संसारी मनुष्योंको हंसताहै और यह कहताहै कि इतने कालतक भोग आदिकी प्रार्थनामें कैसा दीन था ॥ ७ ॥ और समाधिके व्युत्थानकालमें इस वृक्षकी मैत्री करुणा आदि शाखाओंमें भ्रमण करताहुआ, तथा लोभ आदि व्यालोंको नीचे करताहुआ पूर्णकाम सम्राट्के सदृश शोभित होताहै ॥ ८ ॥

हृदयेंदोर्गलश्रेणीदुःखाब्जतिमिरावलिः ॥ कृष्णायःशृंखलातृष्णादिनानुदिनमुज्झति ॥ ९ ॥ उपेक्षतेन संप्राप्तंनाप्राप्तमभिवांछति ॥ सोमसौम्योभवत्यंतःशीतलःसर्ववृत्तिषु ॥ १० ॥ शास्त्रार्थपल्लवेष्वेवनिषण्णात्मावतिष्ठते ॥ उन्नतावनतायाताअधःपश्यञ्जगद्गतीः ॥ ११ ॥ भीमदूमलतोत्कीर्णपुष्पप्रकरदंतुराः ॥ प्राक्तनीःस्वाःस्थलीःपश्यन्हसत्यंतर्वराकताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उत्तम बुद्धिरूप चन्द्रमाके क्षयके लिये अमावास्या, तथा अनेक चन्द्रदर्शन आदि भ्रमोंकी पंक्तिरूप लोहकी शृंखलामय तृष्णाको प्रतिदिन त्यागताहै ॥ ९ ॥ प्राप्त पदार्थोंकी न तो उपेक्षा करताहै और न अप्राप्तकी इच्छा करताहै, किंतु सब वृत्तियोंमें चन्द्रमाके समान स्वस्थ तथा शीतल अन्तःकरण युक्त रहताहै ॥ १० ॥ संसारकी उन्नत और अवनत दशाओंको अज्ञानदशामेंही देखता हुआ अध्यात्मशास्त्रके विषय शम संतोषआदि रूप इस वृक्षके पल्लवमें रमण करताहै ॥ ११ ॥ भयंकर विषकी लताओंसे पूर्ण, विषयरूपी विषमय पुष्पोंके समूह दंतयुक्त पूर्वकालकी सप्त अज्ञानकी भूमिकाओंको देखता हुआ, उस दीनदशाको हंसताहै ॥ १२ ॥

तेषुतत्स्कंधदेशेषुतथोड्डीनविडीनया ॥ हारिण्याविहरञ्चाल्याराजेवपरिराजते ॥ १३ ॥ पुत्रदारसमग्राणिमित्राणिचधनानिच ॥ जन्मांतरकृतानीवस्वप्नजानीवपश्यति ॥ १४ ॥ रागद्वेषभयोन्मादमानमोहमहत्तया ॥ नटस्येवास्यदृश्यंतेशीतलामलचेतसः ॥ १५ ॥ उन्मत्तचेष्टिताकाराहसत्यपिपुरोगताः॥ तरंगभंगुराधाराःसंसारसरितोगतीः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस वृक्षके शाखाओंमें अर्थात् उत्तरोत्तर भूमिकाओंमें आरूढ मनोहारिणी वृत्तिसे सम्राट्के तुल्य शोभित होती है ॥ १३ ॥ पुत्र, स्त्री, मित्र तथा धनआदि सब पदार्थोंको अन्य जन्मके वा स्वप्नके सदृश देखताहै

---

(१) मनरूपी मृगका वृक्षपर चढना अयोग्यहै इसलिये यहां उसको मनुष्य शब्दसे वर्णन कियाहैं ॥

॥ १४ ॥ शीतल तथा निर्मल चित्तवाले ज्ञानीको राग, द्वेष, भय, मोह तथा मानआदिकी महत्तासे संसारके व्यवहार नटके सदृश देख पडते हैं ॥ १५ ॥ उन्मत्तके चेष्टितके समान सन्मुख प्राप्तभी तरंगके समान क्षणभंगुर संसाररूप मृगतृष्णाकी गतिको मिथ्या जानकर हंसताहै ॥ १६ ॥

नसचेतयतेकाश्चिल्लोकदारधनैषणाः ॥ अपूर्वपदविश्रांतोजीवन्नेवयथाशवः ॥ १७ ॥ केवलंकेवलेशुद्धेबोधात्मनिमहोन्नते ॥ दत्तदृष्टिःफलेतस्मिन्परंसमधिरोहति ॥ १८ ॥ स्मृत्वास्मृत्वापदःपूर्वसंतोषामृतपोषितः ॥ अर्थानामप्यनर्थानांनाशेषुपरितुष्यति ॥ १९ ॥ व्यवहारेषुकार्येषुभोगसंपादकेष्वपि ॥ परमुद्वेगमायातिसनिद्रइवबोधितः ॥ २० ॥

अर्थ—अपूर्व आत्मपदमें विश्रांत जीतेही मृतकके तुल्य वह योगी पुत्र स्त्री धनआदि किसी पदार्थकी चिंता नहीं करता ॥ १७ ॥ किन्तु केवल शुद्ध बोधमय, महाउन्नत आत्मज्ञानरूप फलमें दत्तचित्त होकर पंचमभूमिकाआदि स्थानोंमें आरूढ होताहै ॥ १८ ॥ अज्ञानदशाकी आपत्तियोंको स्मरण करके सन्तोषरूप अमृतसे पुष्ट अनर्थरूपी धनोंके नाशमेंभी संतुष्ट होताहै ॥ १९ ॥ अन्य जनोंसे बोधित भोगदायक आवश्यक व्यवहारके कार्य्योंमें भी ऐसे उद्विग्न होताहै जैसे निद्रासे जगाया हुआ पुरुष ॥ २० ॥

दीर्घाध्वगइवोदारामनारतमबाधिताम् ॥ चिरंमौर्ख्यश्रमाक्रांतोविश्रांतिमभिवांछति ॥ २१ ॥ निःश्वासबोधितोप्यग्निरनिंधनइवात्मनि ॥ श्वासमात्रसमोप्यंतरतिष्ठन्नेवशाम्यति ॥ २२ ॥ आपतंतींबलादेव पदार्थेष्वरतिंशनैः ॥ नशक्नोतिनिराकर्तुंदृष्टिमत्रच्युतामिव ॥ २३ ॥ तांमहापदवींगच्छन्परमार्थफलप्रदाम् ॥ भूमिकामप्युपायातिवचसामप्यगोचराम् ॥ २४ ॥

अर्थ—दीर्घमार्गगामीके तुल्य चिरकालकी जन्ममरणआदि परंपरासे अतिश्रांत यह पुरुष निरंतर सदा अति उदार आत्मकी विश्रांतिकोही चाहताहै ॥ २१ ॥ प्राणधारणमात्रसे अन्य मनुष्योंके तुल्य भी अहंकार आदिसे रहित होनेसे पूर्णआत्मामें ऐसे शांत होजाताहै जैसे बिना इंधनकी अग्नि ॥ २२ ॥ अभ्यासके बलसे धीरे २ स्वयं प्राप्त बाह्य पदार्थोंकी विरक्ति यथाप्राप्त भोगकी दृष्टिके समान निराकरण नहीं करताहै ॥ २३ ॥ परमार्थरूप फलदायिनी उस महापदवीपर चलता हुआ वाणीके भी अगोचर षष्ठभूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

कुतोप्यचेष्टितेष्वेसंप्राप्तेषुविधेर्वशात् ॥ भोगेष्वरतिमायातिपांथोमरुमहीष्विव ॥ २५ ॥ घूर्णःक्षीणइवानंदीसुप्तःसंसारवृत्तिषु ॥ अंतःपूर्णमनामौनीकामपिस्थितिमृच्छति ॥ २६ ॥ सताहृग्रूपतामेत्यपरमार्थफलस्यतत् ॥ क्रमान्निकटमाप्नोतिखगोगपदवीमिव ॥ २७ ॥ ततस्तदखिलांबुद्धिंविहायवियतासमः ॥ गृह्णात्यथास्वादयतिभुंक्तेऽथपरितृप्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—दैवसंयोगसे बिना निजके यत्नसे अन्यके प्रयत्नसे प्राप्त भोगोंमें ऐसे वैराग्यवान् होताहै जैसे पथिक मरूस्थलकी भूमियोंसे ॥ २५ ॥ संसारकी वृत्तियोंमें सुप्तआत्मानन्दसे मदोन्मत्तके सदृश, और आभ्यन्तरमें पूर्ण यह मुनि किसी अनिर्वचनीय दशाको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ इस दशाको प्राप्त होके क्रमसें मोक्षरूप परमार्थ फलके निकट ऐसे प्राप्त होताहै जैसे सिद्धयोगी मेरूके शिखरपर ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् सप्तभूमिकामें प्राप्त आकाशके तुल्य विशालरूप योगी सबप्रकारकी बुद्धि वासनाओंको त्यागताहै, और निरतिशय आनन्दमय ब्रह्मभावरूप फलको ग्रहणके आस्वाद लेताहै और उसीसे तृप्त होताहै ॥ २८ ॥

संकल्पार्थपरित्यागाद्दिनानुदिनमातता ॥ शुद्धस्वभावविश्रांतिःपरमार्थाप्तिरुच्यते ॥ २९ ॥ भेदबुद्धिर्विलीनार्थाभेदएवावशिष्यते ॥ शुद्धमेकमनाद्यंतंतद्ब्रह्मेतिविदुर्बुधाः ॥ ३० ॥ लोकैषणाविरक्तेनत्यक्तदारैषणेनच ॥ धनैषणाविमुक्तेनतस्मिन्विश्रम्यतेपदे ॥ ३१ ॥ परेणपरिणामेनमिथश्चित्परमार्थयोः ॥ तापेनहिमलेखेवभेदबुद्धिर्विलीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संकल्पित पदार्थोंके परित्यागसे प्रतिदिन जो बिशाल शुद्ध आत्मस्वभावमें विश्रांति है उसीको परमार्थकी प्राप्ति कहते हैं ॥ २९ ॥ जब त्रिपुटीकी भेदबुद्धिसे शून्य, अनादि, और अनन्त साक्षीचेतनमात्र शेष रहजाताहै उसीको पंडितजन ब्रह्मभाव कहते हैं ॥ ३० ॥ हे रामजी ! लोकएषणा स्त्रीएषणा और धनएषणा (अभिलाषा) से रहित जो पुरुषहै वही उस ब्रह्मपदमें बिश्राम पाताहै ॥ ३१ ॥ दृश्य तत्वके शोधनसे सन्मात्र परमार्थ और द्रष्टाके तत्वके शोधनसे चिन्मात्र परमार्थकी अखण्ड आत्म साक्षात्कार वृत्तिके परिणामसे भेद बुद्धि ऐसे नष्ट होजाती जैसे तापसे हिमकी लेखा ॥ ३२ ॥

तज्ज्ञस्याकृष्टमुक्तस्यस्वभावेषूपमांविना ॥ स्थितिःस्रग्दामकस्येवनसंभवतिकाचन ॥ ३३ ॥ यथाऽप्रकटितांगांतःसंस्थिताशालभंजिका ॥ नसतीनासतीस्तंभेतथाविश्वस्थितिःपरे ॥ ३४ ॥ ध्यानंनशक्यतेकर्तुंनचैतदुपयुज्यते ॥ अबोधेनविबुद्धस्तुस्वयमत्रैवतिष्ठति ॥३५॥ आत्यंतिकींविरसतायस्यदृश्येषुदृश्यते ॥ सबुद्धोनाप्रबुद्धस्यदृश्यत्यागेहिशक्तता ॥ ३६ ॥

अर्थ—आत्मसाक्षात् कारवान् योगीके चित्तोंकीकोमलपुष्प मालाके तुल्य होती है न कि कठोर धनुषके तुल्य जो कि खींचके छोडनेके पश्चात् ज्योंका त्यों होजाताहै ॥ ३३ ॥ जैसे पाषाण वा काष्टके स्तम्भमें अप्रकटित अंगवाली मूर्ति न सत्है न असत्है ऐसेही संसारकी स्थिति परमात्मामें है ॥ ३४ ॥ अज्ञानदशामें प्रपंच सहित ब्रह्ममें प्रपंचरहित ब्रह्मके अज्ञानसे उसका ध्यान नहीं होसकता, और ब्रह्मका ज्ञान होनेपर तो स्वयं ब्रह्मस्वभाव होके इसी ब्रह्ममें स्थित रहताहै ॥ ३५ ॥ दृश्य वस्तुमें जिसका सर्वथा वैराग्य देखपडताहै वही ज्ञानी है, क्योंकि अज्ञानी दृश्यके त्यागमें समर्थ नहीं है ॥ ३६ ॥

दृश्यस्यबोधताबोधोयोबोधादपरिक्षयः ॥ ससमाधानशब्देनप्रोच्यतेसुसमाहितैः ॥ ३७ ॥ द्रष्टृदृश्यैकतारूपःप्रत्ययोमनसोयदा ॥ सतदेकसमाधानेतदाविश्राम्यतिस्वयम् ॥ ३८ ॥ स्वभावोदृश्यवैरस्यमेवतत्त्वविदोनिजः ॥ दृश्यस्पंदनमेवाहुरतत्त्वज्ञत्वमुत्तमाः ॥ ३९ ॥ अतज्ज्ञायैवविषयाःस्वदंतेनतुतद्विदः ॥ नहिपीतामृतायांतःस्वदतेकटुकांजिकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—दृश्यका साक्षीरूपसे जो बोधहै वही यथार्थ स्वरूपमें उत्तम स्थितिके कारण समाधि शब्दसे कहा जाताहै ॥ ३७ ॥ जब मनकी वृत्ति द्रष्टा आदि त्रिपुटीकी लय होनेसे एक अखण्ड आत्माकारमें स्थिति होती है तब एक आत्मसमाधिमें यह स्वयं विश्रांत होताहै ॥ ३८ ॥ दृश्यके जडता आदि दुःखोंके त्यागपूर्वक जो चिदानन्दरूपसे स्थिति है वही ब्रह्मज्ञानीका निजब्रह्म स्वभावहै, और दृश्यकी ओर चेष्टा करनेकोही ज्ञानीजन अज्ञानता कहते हैं ॥ ३९ ॥ संसारके विषय अज्ञानीकोही स्वादिष्ट भासते हैं न कि ज्ञानीको, क्योंकि अमृत पीनेवालेको कटु मद्य नहीं रुचता ॥ ४० ॥

वितृष्णस्यात्मनिष्ठत्वादेषणात्रयमुज्झतः ॥ ज्ञस्याप्यनिच्छतोध्यानमर्थायातंप्रवर्त्तते ॥ ४१ ॥ बोधःस्फुरतितृष्णायाःसैवयस्यनविद्यते ॥ तस्यस्वरूपमुत्सृज्यकासौतिष्ठतिकःकथम् ॥ ४२ ॥ ज्ञस्यानाराधकोध्येयबोधोनयतुयोभवेत् ॥ अनंतासावितृष्णस्यनिर्विभागोदितःस्वयम् ॥ ४३ ॥ अनंतमपतृष्णस्यस्वयमेवप्रवर्त्तते ॥ ध्यानंगलितपक्षस्यसंस्थानमिवभूभृतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तृष्णारहित, आत्मनिष्ट तथा तीनों एषणाको त्यागनेवाले योगीकी ध्यान इच्छाके अभावमेंभी स्वयं होताहै ॥ ४१ ॥ तृष्णाके होनेसे आत्मस्वरूपके अनुसंधानरूप बोध चलायमान होताहै, और जिस तत्व ज्ञानीको तृष्णाही नहीं है उसके स्वरूपके सिवाय दृश्य, द्रष्टा और दर्शनरूप त्रिपुटी कहां रह सकती है ॥ ४२ ॥ अथवा ज्ञानीकी तृष्णाभी अनंत है क्योंकि यह स्वयं विभागरहित अनंत आत्मस्वरूपसे उदित है, इसलिये इसका चिंतनीय बाह्य पदार्थका बोध जैसा हो उसको चाहै वह समाधिमें लगावै वा व्यवहारमें परंतु वह बाह्य पदार्थका ध्याता नहीं हो सकता क्योंकि उसीकी दृष्टिमें सब आत्मरूपही है ॥ ४३ ॥ पक्षरहित पर्वतकी स्थितिके बाह्य पदार्थोंमें तृष्णारहित योगीका अनंत आत्म ध्यानविना यत्नही होताहै ॥ ४४ ॥

शुद्धबोधात्मनिज्ञत्वादसमाहिततोदिता ॥ नजातुसुसमिद्धेग्नौघृतबिंदोरवस्थितिः ॥ ४५ ॥ परंविषयवैतृष्ण्यंसमाधानमुदाहृतम् ॥ आहृतंयेनतन्नूनंतस्मैनृब्रह्मणेनमः ॥ ४६ ॥ नूनंविषयवैतृष्ण्येपरिप्रौढिमुपागते ॥ नशक्नुवंतिनिर्हर्तुंध्यानंसेंद्राःसुरासुराः ॥ ४७ ॥ परंविषयवैतृष्ण्यंवज्रध्यानंप्रसाध्यताम् ॥ भेदेविगलितेज्ञानादन्यध्यानतृणेनकिम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—शुद्ध बोधरूप आत्माके साक्षात् अनुभूत होनेपर समाधिके यत्नकी अनावश्यकता महात्माओंने कहीहै क्योंकि प्रदीप्त अग्निमें घृतका बिंदु कदापि नहीं रह सकता ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! तृष्णाके सर्वथा नाशकोही समाधि कहतेहैं, उस संसारसे परम वैराग्यको जिसने संपादन कियाहै उस ब्रह्मस्वरूप मनुष्यको नमस्कार है ॥ ॥ ४६ ॥ निश्चयरूपसे विषयोंसे वैराग्यके परम दृढ होनेपर मनुष्यके आत्मध्यानको इन्द्रसहित सब देवताभी नहीं हटा सकते ॥ ४७ ॥ वज्रके सदृश दृढ पर वैराग्यसे ध्यानकोभी वज्रके समान दृढ संपादन करो क्योंकि आत्मज्ञानसे भेदके नष्ट होनेसे तृणके तुल्य अन्य पदार्थोंके ध्यानसे क्या प्रयोजन ॥ ४८ ॥

मूर्खस्थोविश्वशब्दार्थोनामूर्खविषयस्तथा ॥ तज्ज्ञाज्ञयोस्तयोश्चैवविश्वविश्वेशयोस्तथा ॥४९॥ यत्रैकीभूय कचनंतत्रविश्राम्यतांबुधाः ॥ बोधभूमिषुसिद्धानामर्थानांवाविवेकिनाम् ॥ ५० ॥ सत्तासत्तेद्वयैक्येच निर्णीतिनेहकेनचित् ॥ उपायएकःशास्त्रार्थोद्वितीयोज्ञसमागमः ॥ ५१ ॥ ध्यानंतृतीयंनिर्वाणेश्रेष्ठस्तत्रो त्तरोत्तरः ॥ जीवादर्शान्मिथोरूपंगृह्णात्येषामहद्वपुः ॥ ५२ ॥

अर्थ—संसारका शब्दार्थ मूर्खकेही लिये है न कि ज्ञानीके लिये, इसलिये हे बुधजनो ! जिस निरतिशय आनंदरूप ब्रह्ममें मूर्ख ज्ञानी, तथा संसार और परमेश्वरका एक (अभिन्न) रूपसे भान होताहै उसीमें विश्राम करो, क्योंकि मन आदि बोध भूमियोंमें आरुढ होनेवाले विवेकियोंमें वा आत्मासाक्षात्कार भूमियोंमें आरुढ सिद्धोंमेंसे आत्माके अतिरिक्त सत्ता वा असत्ता द्वैतता वा एकताका निर्णय किसीने नहीं किया है, और इस स्वरूपमें विश्रामके लिये प्रथम उपाय निरन्तर अध्यात्म शास्त्रका अभ्यास और द्वितीय साधुसमागम है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ और ध्यान इस निर्वाणके लिये तृतीय उपाय है, इनमेंसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ उपायहैं, और यही नित्य अपरोक्ष ब्रह्मचित् जीवके प्रतिबिंबके दर्पणरूप अंतःकरणरूप उपाधिके कारणसे परस्पर भिन्नरूपको ग्रहण करती है ॥ ५२ ॥

जगत्युदेतिसंघट्टादाविशेषंसमेसमे ॥ ज्ञातपूर्वापराशेषजगदष्टापदस्थितेः ॥ ५३ ॥ एकसिद्धौद्वयोसि द्धिर्बोधवैतृष्ण्यदीपयोः ॥ मतिवात्याधुताव्योम्निदग्धोज्ञानाग्निनाखिलः ॥ ५४ ॥ जगत्तूलःपरेशांतेन जानेकाशुगच्छति ॥ चित्राग्निनेवबोधेनतेनजाड्यंनशाम्यति ॥ ५५ ॥ निर्मूलापिजगद्भ्रांतिर्येनाशुनविली यते ॥ यथाज्ञस्यजगज्ज्ञप्तिरपज्ञानात्प्रदीप्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रिय तथा अप्रिय विषयोंमें रागद्वेषके कारणके संघट्टसे तृणसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्त जगत्में अविशेषरूपसे अपने २ कर्मोंकी विचित्रतासे शमविषम शरीरमें यह चित् उदय होती है ॥ ५३ ॥ शास्त्रके अभ्यास तथा महात्माओंके संयोगसे जिसने जगत्रूपी पाश क्रीडाको जानलिया है उसको ज्ञान वैराग्यमेंसे एकसिद्ध होनेपर दोनों सिद्ध होजाते हैं ॥ ५४ ॥ और ज्ञानरूपी अग्निसे भस्मीभूत जगत्रूपी तुल (रुई) बुद्धिरूपी वायुसे शान्त परमात्मामें न जाने उडके कहां चलाजाताहै ॥ ५५ ॥ और ऊपरीज्ञानसे जगत्की निर्मूलभी भ्रांति ऐसे नहीं नष्ट होती जैसे चित्रकी अग्निसे वस्त्र नहीं जलता ॥ ५६ ॥

तथाज्ञस्यपरिज्ञानात्तदज्ञप्तिःप्रदीप्यते ॥ तज्ज्ञस्याज्ञजगज्ज्ञप्तिशब्दार्थरहितास्थिता ॥ ५७ ॥ यथास्थि तैवत्रिजगज्ज्ञप्तिश्चित्रइवोदिता ॥ शून्यत्वेनैवरचितासुप्तत्वेनेवनिर्मिता ॥ ५८ ॥ भासतेभामयीवांछा जगज्ज्ञप्तिर्ज्ञचेतसि ॥ नूनंबोधेविमूढस्यनाहंतानजगत्स्थितिः ॥ ५९ ॥ भासतेपरमाभासरूपिणःका प्यवस्थितिः ॥ बोधाबोधात्मकंचित्तंभातिशुष्कार्द्रकाष्ठवत् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे अज्ञानीकी मूर्खतासे जगत्का भ्रम प्रतिदिन बढता जाताहै ऐसेही ज्ञानीके ज्ञानसे अज्ञान भस्म हो जाताहै ॥ ५७ ॥ ज्ञानीकेलिये अज्ञकी जगत् स्थिति जगत्के शब्दार्थसेरहित; चित्रमें उदितके तुल्य, सुप्तपुरुषसे शून्यमें रचितके तुल्य भासती है ॥ ५८ ॥ ज्ञानीके हृदयमें जगत्की स्थिति तथा तृष्णा आदि चित् प्रकाशरूपही भासती है, क्योंकि ज्ञानीके बोध होनेपर न अहंकार रहताहै और न जगत्की स्थिति रहती है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीको तो विलक्षण परम प्रकाशरूप जगत्की स्थिति भासती है, और अर्द्ध ज्ञानीका चित्त तो शुष्क तथा आर्द्र (गीला) दोनो स्वभावयुक्त काष्ठके तुल्य भासताहै ॥ ६० ॥

बोधादेकंजगद्भावैर्जाड्यान्नात्मत्वमागतम् ॥ मिथोबोधाद्विवदतिमैत्रींभजतिबोधतः ॥ ६१ ॥ यएवास्या धिकोभागस्तन्मयत्वेनतिष्ठति ॥ बुधःसतत्त्वंनावैतिजगतोऽभावभावयोः ॥ ६२ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ता नांस्वभावमिवतुर्यगः ॥ वासनैवमनःसेयंस्वविचारेणनश्यति ॥ ६३ ॥ अवस्तुत्वादतोमोक्षोनात्मना शेप्रवर्त्तते ॥ ६४ ॥ ध्यानद्रुमात्स्वयमुपोहमनल्पपाकात्कालेनबोधमुपयातवतःक्रमेण ॥ भुक्त्वारसाय नफलंपरबोधमाद्यमिच्छन्मनोहरिणकोनिगडाद्विमुक्तः ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोहरिणकोपाख्यानं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—अर्द्धबुद्ध पुरुष कुछ ज्ञान होनेपर जगत्में मैत्री दया आदि करताहै और अज्ञान अंश जगत्में परस्पर विवाद आदि व्यवहार करताहै ॥ ६१ ॥ ज्ञान अज्ञानमेंसे जो भाग इसका प्रबल होताहै तन्मय होके रहताहै, और परिपक्व ज्ञानी तो जगत्के भाव अभावको यथार्थताको ऐसे नहीं जानताहै ॥ ६२ ॥ जैसे सप्तमभूमिकामें तुरीयाव-

स्थामें आरूढ योगी जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिके स्वभावको नहीं देखता, क्योंकि यह मन रूप मृगवासनारूपहीसे अपने विचारसे नष्ट होताहै ॥ ६३ ॥ इस मनके अवस्तु (माया वा अविद्या) मय होनेसे इसकी विद्यमानतामें मोक्ष नहीं होता और इसके नाश होनेसे होताहै ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मुमुक्षु मनरूपी हरिण कालसे पूर्ण परिपक्वदशामें प्राप्त इस पूर्वोक्त ध्यान वृक्षसे परम रसायन बोधरूपी फलको आस्वादन करके संसाररूपी बंधनसे मुक्त होताहै, अर्थात् विवेक वैराग्य आदि साधनयुक्त ध्यानसे मनका नाशही मोक्षप्राप्ति है ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोहरिणकोपाख्यानं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

ध्यानरूपी वृक्षके फलके आस्वादन करनेमें मनकी जैसे स्थिति होती है, और विषयोंसे जो दृढ वैराग्य होताहै वह इस ४६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमार्थफलेज्ञातेमुक्तौपरिणतिंगते ॥ बोधोप्यसद्भवत्याशुपरमार्थोमनोमृगः ॥ १ ॥ कापिसामृगतायातिप्रक्षीणस्नेहदीपवत् ॥ परमार्थदशैवास्तेतत्रानंतावभासिनी ॥ २ ॥ ध्यानद्रुमफल प्राप्तौबोधतामागतंमनः ॥ वज्रसारांस्थितिंधत्तेछिन्नपक्षइवाचलः ॥ ३ ॥ मनस्ताकापिसंयातितिष्ठत्य च्छैवबोधता ॥ निर्बाधानिर्विभागाचसर्वाखर्वात्मिकासती ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ध्यानसे परमार्थ फलके साक्षात् अनुभूत होनेपर तथा मुक्तिकी दृढता होनेपर अन्तिम आत्मसाक्षात्कार वृत्तिरूप बोध अज्ञानके बोधसे असत्के तुल्य होजाताहै और मनरूपी मृगभी परमार्थ आत्मारूपही होजाताहै ॥ १ ॥ पूर्वकालके विषयोंके ध्यानरूप मनकी मृगरूपता तेलरहित दीपके सदृश न जाने कहां जाती है, केवल अनन्त आत्मप्रकाशिनी परमार्थ दशाही शेष रहजाती है ॥ २ ॥ ध्यानरूप वृक्षके परमार्थ फल प्राप्त होनेपर बोधरूपताको प्राप्त मन वज्रके स्थिर स्थितिको ऐसे धारण करताहै जैसे पक्षरहित पर्वत ॥३॥ विषयरूपी तृणको ढूंढनेवाली मनकी मृगरूपता न जाने कहां जाती है, और निर्बाध, विभागशून्य, और सर्वथा विशालरूप निर्मल बोधरूपताही शेष रहती है ॥ ४ ॥

सुविविक्तयाचित्तसत्ताबोधतयोदिता ॥ अनाद्यंताभवत्यच्छप्रकाशफलदायिनी ॥ ५ ॥ स्वयमेवत तस्तत्रनिरस्तसकलैषणम् ॥ अनाद्यंतमनायासंध्यानमेवावशिष्यते ॥ ६ ॥ यावन्नाधिगतंब्रह्मनविश्रां तंपरेपदे ॥ तावत्तन्मननत्वेननध्यानमवगम्यते ॥ ७ ॥ परमार्थैकतामेत्यनजानेक्मनोगतम् ॥ क्वास नाक्वकर्माणिक्वहर्षामर्षसंविदः ॥ ८ ॥

अर्थ—और पूर्वकालमें देहादिके अविवेक जडके तुल्य जो चित्तकी सत्ता थी, वह अब निर्मल परमार्थ प्रकाशरूप फलको देनेवाली, अनादि और अनन्त बोधरूपसे उदय होती है ॥ ५ ॥ उस दशामें समस्त इच्छाओंको त्यागपूर्वक अनादि अनन्त आत्मध्यान बिना प्रयास स्वयं सिद्ध होताहै ॥ ६ ॥ जबतक ब्रह्मको नहीं जाना और परमपदमें विश्रांत नहीं हुआ तबतक विषयके मननसे आत्माका ध्यान नहीं प्राप्त होता ॥ ७ ॥ परमार्थरूप होनेपर तो मन न जाने कहां जाताहै, और वासना, कर्म, तथा हर्ष शोकादिकी वृत्तियां भी न जाने कहां चली जातीहैं ॥ ८ ॥

केवलंदृश्यतेयोगीगतोध्यानैकनिष्ठताम् ॥ स्थितोवज्रसमाधानेविपक्षइवपर्वतः ॥ ९ ॥ विरसाखिल भोगस्यप्रशांतेंद्रियसंविदः ॥ नीरसाशेषदृश्यस्यस्वात्मारामस्ययोगिनः ॥ १० ॥ क्रमेणविगलद्वृत्तेर्ब लाद्विश्रांतिमीयुषः ॥ अर्थायातंसमाधानंकेननाम्विचार्यते ॥ ११ ॥ तावद्विषयवैरस्यंभावयंत्युचिता शयाः ॥ नपश्यंत्येवतान्यावद्भोगांश्चित्रनरोयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—इस दशामें योगी केवल ध्यानमें निष्ठ देख पडताहै और वज्रके समान दृढ समाधिमें ऐसे स्थिर होताहै जैसे पक्षरहित पर्वत ॥ ९ ॥ सब प्रकारके भोगोंसे विरक्त, सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंकी शान्तिसे युक्त, सब दृश्य पदार्थोंमें अरुचि करनेवाले, केवल आत्मामें रमण करनेवाले, क्रमसे गलित वृत्ति, तथा बिना प्रयास विश्रांति युक्त योगीकी समाधि स्वयं सिद्ध होती है, क्योंकि जब सर्वथा ब्रह्मरूपही होगया तब कौन किसका ध्यान करै ॥१०॥ ॥ ११ ॥ योगीजन विषयके वैराग्य तबतक संपादन करते हैं जबतक कि भोगोंको चित्रलिखित मनुष्यके सदृश नहीं देखते ॥ १२ ॥

अपश्यञ्जागतानर्थान्निर्वासनतयात्मवान् ॥ बलाद्वज्रसमाधानेत्वन्येनेवनिवेश्यते ॥ १३ ॥ प्रावृषीव नदीपूरोयःसमाधिरुपस्थितः ॥ बलादेवतमायातंभूयश्चलतिनोमनः ॥ १४ ॥ सर्वार्थशीतलत्वेनबला द्ध्यानेयदागतम् ॥ ज्ञानाद्विषयवैरस्यंससमाधिर्हिनेतरः ॥ १५ ॥ दृढंविषयवैरस्यमेवध्यानमुदाहृतम् ॥ तदेवपरिपाकेनवज्रसारंभवत्यलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मज्ञानी वासनाके अभावसे जगत्के पदार्थोंको न अनुभव करते हुये बलात् समाधिमें नियत किया जाताहै ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुमें नदीके प्रवाहके समान प्रथम जो समाधि उपस्थित हुई उसके आस्वाद लेनेपर वस्तु स्वभावसे मन उससे कदापि चलायमान नहीं होता ॥१४॥ ज्ञानके द्वारा सर्वथा शीतल स्वस्थचित्तमें जो बलात् विषयोंसे वैराग्य होताहै वही समाधि है न कि रागादिसे संतप्तचित्त ॥ १५ ॥ दृढ विषयोंसे वैराग्यही ध्यान है, परिपक्वतासे वही ध्यान वज्रके समान दृढ होजाताहै ॥ १६ ॥

तदेतद्भोगवैतृष्ण्यंध्यानमंकुरितंहितत ॥ तदेवपीठबंधेनबद्धंभवतिबंधुरम् ॥ १७ ॥ सम्यग्ज्ञानंसमुच्छूनंसदैवोज्झितवासनम् ॥ ध्यानंभवतिनिर्वाणमानंदपदमागतम् ॥ १८ ॥ अस्तिचेद्भोगवैतृष्ण्यंकिमन्यद्ध्यानदुर्धिया ॥ नास्तिचेद्भोगवैतृष्ण्यंकिमन्यद्ध्यानदुर्धिया ॥ १९ ॥ दृश्यस्वदनमुक्तस्यसम्यग्ज्ञानवतोमुनेः ॥ निर्विकल्पंसमाधानमविरामंप्रवर्त्तते ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार भोगोंसे वैराग्यरूपी बीज अंकुरित होके ध्यान होजाताहै और वही दृढ मूल होनेपर समाधि होजाताहै ॥ १७ ॥ और साक्षात्कार वृत्तिसे आविर्भूत ब्रह्मही अज्ञानका नाशक होनेसे ज्ञानहै, वासनाके उच्छेदसे वही ध्यान है, तथा सर्व दुःखनाशक होनेसे वही ब्रह्म निर्वाण पदभी है ॥ १८ ॥ यदि भोगोंसे वैराग्य है तो ध्यानसे क्या प्रयोजन, और जो भोगोंसे वैराग्य नहीं तोभी ध्यानरूप दुष्टबुद्धिसे क्या प्रयोजन है, अर्थात् वैराग्य होनेसे ध्यान स्वयं होगा और न होनेपर कदापि न होगा ॥ १९ ॥ दृश्यके आस्वादसे रहित, और उत्तम ज्ञानयुक्त मुनिकी निर्विकल्प समाधि निरंतर स्वयं प्रवृत्त होती है ॥ २० ॥

यस्मैनस्वदतेदृश्यंससंबुद्धइतिस्मृतः ॥ नस्वदंतेयदाभोगाःसम्यग्बोधस्तथोदितः ॥ २१ ॥ यस्यस्वभावविश्रांतिःकथंतस्यास्तिभोगिता ॥ अस्वभावोहिभोगित्वंतत्क्षयेतत्कथंकुतः ॥ २२ ॥ श्रुतपाठजपांतेषुसमाधिनिरतोभवेत् ॥ समाधिविरतःश्रांतःश्रुतपाठजपाञ्छ्रयेत ॥ २३ ॥ निर्वाणमासीतनिरस्तखेदंसमस्तशंकास्तमयाभिरामम् ॥ सुषुप्तसौम्यंसमशांतचित्तंशरद्घनाभोगविशुद्धमंतः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे साम्यावबोधनो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जिसको दृश्यके पदार्थ नहीं रुचते वही उत्तम ज्ञानी कहाताहै क्योंकि जब भोग नहीं रुचते तभी उत्तम ज्ञानका उदय होताहै ॥ २१ ॥ जिसको ब्रह्मस्वभावमें विश्राम प्राप्त हुआहै उसको भोगोंमें रुचि कैसी ? क्योंकि ब्रह्मस्वभाव विरुद्ध अज्ञानमेंही भोग रुचते हैं जब ज्ञानसे अज्ञानका नाश हुआ तब भोगोंमें रुचि कहां ? ॥ २२ ॥ साधकको उचितहै कि शास्त्रके अभ्यास और जपादिके अन्तमें समाधिमें तत्पर हो और जब समाधिसे उत्थित हो तो पुनः शास्त्र पाठ और जपादिमें लगे ॥ २३ ॥ हे रामजी ! सब खेदोंसे तथा संपूर्ण शंकाओंसे शून्य, अति रमणीय, सुषुप्तिके तुल्य सौम्य, सम, शान्तचित्त, और शरत्कालके मेघके सदृश शुद्ध निर्वाणरूप समाधिमें स्थितरहै ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे साम्यावबोधनो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

पुनः विस्तारसे मुक्तिके साधनके क्रमके वर्णनके प्रस्तावमें दृढ वैराग्यकी प्राप्ति इस ४७ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संसारभारसुश्रांतःसंकटेषुलुठत्तनुः ॥ योभिवांछतिविश्रांतिंतस्यक्रममिमंशृणु ॥ १ ॥ पूर्वविवेककणिकायदास्वहृदिजायते ॥ संसारनिर्वेदमयीकारणाद्वाप्यकारणात् ॥ २ ॥ तदाश्रयंतिसच्छायान्साधुत्वसुविशालिनः ॥ अध्वश्रमहरांस्तापतप्तामार्गतरूनिव ॥ ३ ॥ दूरेपरिहरत्यज्ञान्यज्ञयूपानिवाध्वगः ॥ स्नानदानतपोयज्ञान्करोतिविबुधानुगः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! जो संसारके भारसे श्रांतहै, और मरण मूर्छा आदि संकटोंमें जर्जर शरीर होके आत्मामें विश्राम चाहताहै उसके क्रमको सुनो ॥ १ ॥ जब पूर्वजन्म वा इस जन्मके जप तपादि कारणसे संसारसे वैराग्यमयी विवेककी कणिका (अंकुर) अपने हृदयमें उत्पन्न हो ॥२॥ तब परोपकारसे शोभित महात्माओंका आश्रय ऐसे ले जैसे तापसे सन्तप्तजन उत्तम छायायुक्त और मार्गके श्रमके हरनेवाले वृक्षोंका ॥ ३ ॥ और अज्ञानियोंको दूरसेही ऐसे त्यागे जैसे बटोही यज्ञके खंभोंको और विद्वानोंकी सम्मतिके अनुसार स्नान, दान, तपजपादिको करै ॥ ४ ॥

पेशलंचानुरूपंचव्यवहारमकृतिमम् ॥ लोक्यमाह्लादनंधत्तेचंद्रबिंबमिवामृतम् ॥ ५ ॥ परप्रज्ञानुगोभव्यःपरार्थपरिपूरकः ॥ पवित्रकर्मरसिकःकोपिसौम्यप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ नवनीतस्थलीवाच्छास्निग्धामृद्वी मनोहरा ॥ जनंसुखयतिस्वाद्वीतदीयानवसंगतिः ॥ ७ ॥ शीतलानिपवित्राणिचरितानिविवेकिनः ॥ इंदोरिवांशुजालानिजनंशीतलयंत्यलम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोमल, अपने योग्य, स्वभाविक, संसारको हितदायक तथा आनन्दकारक व्यवहारको ऐसे धारण करै जैसे चन्द्रबिंब अमृतको ॥ ५ ॥ हे रामजी! अन्य बुद्धिमानोंके मतका अनुगामी, सर्वजन प्रिय, परोपकार साधक, और शास्त्रसंमत पवित्रकर्मोंका प्रेमी कोई सबसे श्रेष्ठजन व्यवहार करताहै ॥ ६ ॥ नवनीत (मक्खन) की स्थलीके समान निर्मल, चिक्कण, कोमल, मनोहर और स्वादयुक्त उस पुरुषकी नूतन संगति सब प्राणियोंको सुख देती हैं ॥ ७ ॥ उस विवेकी जनके शीतल और पवित्र चरित्र सबके अन्तःकरणोंको चन्द्रमाके किरणके समान पूर्ण रीतिसे शीतल करते हैं ॥ ८ ॥

नतथोद्यानखंडेषुपुष्पप्रकरहारिषु ॥ विश्राम्यतेवीतभयंयथासाधुसमागमे ॥ ९ ॥ मंदाकिनीपयांसीवसंगतानिविवेकिनाम् ॥ प्रक्षालयंतिपापानिप्रयच्छंतिविशुद्धताम् ॥ १० ॥ विवेकिषुविरक्तेषुसंसारोत्तरणार्थिषु ॥ जनःशीतलतामेतिहिमहारगृहेष्विव ॥ ११ ॥ ननुनामरतोदारायाविवेकिनिविद्यते ॥ सुरगंधर्वकन्यासुमानवीषुनविद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—पुष्पोंके समूहोंसे मनोहर उद्यानमण्डलोंमें भयरहित वैसा विश्राम नहीं प्राप्त होता जैसा साधुमहात्माओंके समागममें ॥ ९ ॥ श्रीगंगाजीके जलके सदृश विवेकियोंकी संगति पापोंको नष्ट करती है और शुद्धताको देती है ॥ १० ॥ विरक्त विवेकी, और संसारसे पार उतरनेवाले महात्माओंके निकट मनुष्य ऐसे शीतलताको प्राप्त होते है जैसे हिम और पुष्पोंके हार पूर्ण गृहोंमें ॥ ११ ॥ जो उदार रति (प्रीति) विवेकी पुरुषमें है वह देव गंधर्वादि कन्याओंमें नहीं है ॥ १२ ॥

प्रज्ञाप्रसादमायातिक्रमाद्रुचितकर्मणः ॥ अंतःकरोतिशास्त्रार्थमर्थंमुकुरभूरिव ॥ १३ ॥ सत्प्रज्ञोन्नतिमायातिशास्त्रार्थरसशालिनी ॥ विवेकिनिविलासेनकदलीवमहावने ॥ १४ ॥ अंतरेवानुभवतिसर्वार्थान्प्रतिबिंबितान् ॥ आदर्शवदशेषेणप्रज्ञानैर्मल्यशालिनी ॥ १५ ॥ साधुसंगमशुद्धात्माशास्त्रार्थपरिमार्जितः ॥ प्राज्ञोभात्युद्धृतंवह्नेरग्निशौचमिवांशुकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—शास्त्रोक्त निष्काम कर्मसे बुद्धिकी प्रसन्नता प्राप्त होती है, और वह प्रसन्न बुद्धि गुरुके मुखसे श्रुत शास्त्रके अर्थको अपने भीतर ऐसे धारण करती है जैसे शुद्ध दर्पण तल प्रतिबिंबको ॥ १३ ॥ विवेकयुक्त हृदयमें शास्त्रके अर्थरूपी रससे शोभित उत्तम बुद्धि मूलके विस्तारसे ऐसे उन्नतिको प्राप्त होती है जैसे महाबनमें कदली (केला) ॥ १४ ॥ निर्मलतासे शोभित बुद्धि संपूर्ण अर्थोंको अपने भीतर ऐसे धारण करती है जैसे प्रतिबिंबित पदार्थोंको दर्पण ॥ १५ ॥ साधुसमागमसे शुद्ध चित्त तथा अध्यात्मशास्त्रके अर्थसे शोधित विवेकी बुद्धिमान् जन ऐसे प्रकाशित होतेहैं जैसे अग्निसे निःसृत पवित्र सिद्ध वस्त्र ॥ १६ ॥

कचत्कांचनकांतेनविमलालोककारिणा ॥ भुवनंभास्करेणेवभातिसाधुःस्वतेजसा ॥ १७ ॥ तथानुगच्छतिप्राज्ञःशास्त्रसाधुसमागमौ ॥ यथात्यंतानुषंगेणतावेवानुभवत्यसौ ॥ १८ ॥ क्रमात्सज्जनतामेत्यशास्त्रार्थभरभावितः ॥ भातिभोगानधःकुर्वन्पंजरादिवनिर्गतः ॥ १९ ॥ भोगाभिगमदौर्भाग्यंदिनानुदिनमुज्झता ॥ तेनतत्कुलमाभातिताराचक्रमिवेंदुना ॥ २० ॥

अर्थ—प्रदीप्त सुवर्णके समान रमणीय तथा निर्मल प्रकाशकारक अपने तेजसे साधु ऐसे प्रकाशित होताहै जैसे सूर्य्यसे संसार ॥ १७ ॥ विवेकी पुरुष शास्त्रके अभ्यास और साधुसमागमका इतना अनुसरण करताहै कि स्वप्नमें भी उन्ही दोनोंको अनुभव करताहै ॥ १८ ॥ शास्त्रके अर्थसे पवित्रजन रागद्वेषादिके क्षय तथा मैत्री आदि गुणके

संपादन क्रमसे सज्जनताको प्राप्त होकर भोगोंका तिरस्कार करते हुये ऐसे शोभित होताहै जैसे पिंजरेसे निकला हुआ सिंह ॥ १९ ॥ प्रतिदिन भोगोंका अनुसरणरूप दौर्भाग्यको त्यागनेवाले विवेकी पुरुषसे वंश और समाज ऐसे शोभताहै जैसे चंद्रमासे तारामंडल ॥ २० ॥

अभोगकृपणाकापिनचैवास्यप्रवर्त्तते ॥ मुखेकांतिरपूर्वैवचंद्रेराहुमृतेयथा ॥ २१ ॥ तृणीकृतत्रिजगतां महतामभिधेयताम् ॥ सयातिकल्पविटपीनभसीवदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ भोगानांद्वेषणेनांतर्लज्जमानो मनस्यपि ॥ भोगानामप्यसंपत्त्यापरमंपरितुष्यति ॥ २३ ॥ स्वाएवोपहसत्यंतस्तरुणीस्तरलक्रियाः ॥ खेदस्मेरमुखोजातीर्जातिस्मरइवाधमः ॥ २४ ॥

अर्थ—भोगोंकी दीनतासे रहित कांति विवेकीके मुखपर ऐसे शोभित होती है जैसे राहुसे मुक्त पूर्णचंद्रमामें ॥ २१ ॥ तीनोंलोकोंको तृणके सदृश समझनेवाले महात्माओंके बीचमें विवेकीजन ऐसे प्रशंसनीय होतेहैं जैसे स्वर्गमें देवताओंके मध्यमें कल्पवृक्ष ॥ २२ ॥ प्राप्त भोगोंके त्यागसे संतुष्ट भी भोगोंके द्वेषसे मुझे क्या प्रयोजन ऐसा विचार करके मनमें लज्जित होताहै और भोगोंकी अप्राप्तिसे अति संतुष्ट होताहै ॥ २३ ॥ पूर्वकालकी अपनी राग आदि प्रौढ तथा चंचल क्रियाओंको स्मरण करता हुआ खेदसे नीचे मुख करके ऐसे हंसता है जैसे दैवसंयोगसे जाति स्मरण सिद्धिसे युक्त चांडाल आदि अपनी जातिको स्मरण करके ॥ २४ ॥

अथतंद्रष्टुमायांतिसौहार्देनैवसाधवः ॥ भूमाविवोदितंचंद्रंविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ २५ ॥ नित्यानादृतभोगोसौततोप्युचितयाधिया ॥ प्राप्तमप्युचितारंभंभोगंनबहुमन्यते ॥ २६ ॥ पूर्वंसंसृतिवैरस्यमं तरेवोदितात्मनः ॥ जायतेजीर्णजाड्यस्यपाकादिवशरत्तरोः ॥ २७ ॥ ततःसज्जनसंपर्कमुदर्कश्रेयसे स्वयम् ॥ करोतिस्वस्थताग्रृध्नुर्भिषगाश्रयणंयथा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् पृथिवीपर उदित चंद्रमाके सदृश उस पुरुषको मित्रता देखनेके अर्थ विस्मयसे विकसित नेत्र सिद्ध महात्मा आतेहैं ॥ २५ ॥ नित्य भोगोंका अनादर करनेवाला यह विवेकी उन सिद्धोंसे शास्त्रसे अनिषिद्ध भोगोंको भी अपनी उदारबुद्धिसे आदर नहीं करता ॥ २६ ॥ जडता शून्य विवेकीके उदार हृदयमें प्रथमही संसारसे वैराग्य ऐसे होताहै जैसे शुष्क वृक्षकी फलकी परिपाकतासे ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् विवेकीजन भावी कल्याणके लिये स्वयं सज्जनोंके समागमका आश्रय ऐसे करताहै जैसे आरोग्यका अभिलाषी वैद्यका ॥ २८ ॥

तेनोदारमतिर्भूत्वाशास्त्रार्थेषुनिमज्जति ॥ महान्महाप्रसन्नेषुसरःस्विवमहागजः ॥२९॥ सज्जनोहिसमुत्तार्यविपद्भ्योनिकटस्थितम् ॥ नियोजयतिसंपत्सुस्वालोकेष्विवभास्करः ॥ ३० ॥ परस्वादानविरतिः पूर्वमेवप्रवर्त्तते ॥ विवेकिनोनिजार्थेषुसंतोषश्चोपजायते ॥ ३१ ॥ परस्वादान्विरतःसंतोषामृतनिर्भरः॥ विवेकीक्रमशःस्वार्थानप्युपेक्षितुमिच्छति ॥ ३२ ॥

अर्थ—सज्जनोंके संगसे उदार बुद्धि होके शास्त्रोंके अर्थोंमें ऐसे निमग्न होताहै जैसे महागज निर्मल तडागोंमें ॥ २९ ॥ सज्जन महात्मा अपने निकट स्थितजनको विपत्तियोंसे निकालके सम्पत्तियोंमें ऐसे नियुक्त करताहै जैसे सूर्य अन्धकारसे निकालके अपने प्रकाशोंमें ॥ ३० ॥ विवेकीको पराये धनसे अरुचि प्रथमही उत्पन्न होतीहै, और अपने प्राप्त धनमें संतोष उत्पन्न होताहै ॥ ३१ ॥ पराये धनसे विरक्त, और सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त विवेकीजन क्रमसे अपने धनोंकोभी त्यागना चाहताहै ॥ ३२ ॥

ददातिकणपिण्याकशाकाद्यपिहियाचते ॥ तेनैवाभ्यासयोगेनस्वमांसानिददात्यसौ ॥ ३३ ॥ नूनंविलयचित्तानांविवेकमनुधावताम् ॥ मौर्ख्यंलघुत्वमायातिधावतामिवगोष्पदम् ॥ ३४ ॥ परार्थादानविरतिंपूर्वमभ्यस्ययत्नतः ॥ आहर्त्तव्याविवेकेनततःस्वार्थेष्वरक्तता ॥ ३५ ॥ ततोभोगनिरासेनसहस्वार्थनिराकृतिः ॥ परमायैसुविश्रांत्यैक्रियतेकृतिभिःक्रमात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने निकट कण शाकादिभी हो यदि कोई उनको मांगे तो देदेताहै, यहांतक कि दान वा त्यागके अभ्याससे याचकको अपना मांसभी देदेताहै ॥ ३३ ॥ क्रमसे क्षीण चित्त विवेककी और अनुगामीजनोंकी मूर्खता ऐसे न्यूनताको प्राप्त होतीहै जैसे दौडनेवालेको गौका खुर ॥ ३४ ॥ प्रथम यत्नसे परकीय धनसे वैराग्यका अभ्यास करके पुनः अपने धनसे विरक्तताका अभ्यास करना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् विवेकीजन आत्मामें परम विश्रांतिके लिये क्रमसे भोगोंके त्यागके साथही अपने धनसेभी वैराग्य सम्पादन करतेहैं ॥ ३६ ॥

नतादृशंजगत्यस्मिन्दुःखंनरककोटिषु ॥ यादृशंयावदायुष्कमर्थोपार्जनशासनम् ॥ ३७ ॥ आसनेशयनेयानेगमनेरमणेजने ॥ आधिचिंतापराएवननुमूढाविदंतताम् ॥ ३८ ॥ नन्वर्थावितताऽनर्थाःसंपदः

संततापदः ॥ भोगाभवमहारोगाविपरीतेनभाविताः ॥ ३९ ॥ तावन्नायातिवैरस्यंचिंताविषयजृंभणैः ॥ यावदर्थमहानर्थोनकदर्थार्थमर्थ्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—इस संसारमें तथा करोडों नरकोंमेंभी वैसा दुःख कहीं नहीं है जैसा कि जीवनभर धनके उपार्जनरूप दंडमें है ॥ ३७ ॥ सोते जागते उठते बैठते चलते फिरते, क्रीडामें आसक्त तथा समाजमें स्थितभी मूर्खजन मानसी चिन्तामें तत्पर रहते हैं परन्तु उस चिन्ताको स्मरण नहीं करते ॥३८॥ अहो यदि विवेकसे विचारे जांय तो अर्थ (धन) महा अनर्थ हैं, सम्पत्ति निरन्तर विपत्ति हैं, और भोग संसारमें महारोग हैं ॥ ३९ ॥ जबतक अपनी दीनताके लिये अर्थरूपी अनर्थकी अभिलाषा यह प्राणी नहीं करता तबतक विषय चिन्तारूपी सन्तापोंसे तापित नहीं होता ॥४०॥

अनुत्तमसुखंयस्मैचिरायपरिरोचते ॥ जगत्तृणशिखाद्दृष्ट्यासोर्थंपश्यतुशाम्यतु ॥ ४१ ॥ भूरिभावविकाराणांजरामरणकर्मणाम् ॥ दैन्यदौरात्म्यदाहानामर्थःसार्थइतिस्मृतः ॥ ४२ ॥ अस्मिन्जगतिजंतूनांजरामरणशालिनाम् ॥ अजरामरणंकर्तुंसंतोषोस्तिरसायनम् ॥ ४३ ॥ वसंतोनंदनोद्यानमिंदुरप्सरसःस्मृताः ॥ इत्येकतःसमुदितंसंतोषामृतमेकतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस पुरुषको सर्वोत्तम मोक्षसुख चिरकालके लिये रुचताहै वह धनको जगत्‌रूपी प्राचीन तृणके कणके तुल्य देखताहै और आत्मामें शान्त रहताहै ॥ ४१ ॥ अनेक शोक मोहादि भाव विकारोंका जरामरण तथा दीनता आदि दुष्कर्मोंका समूह धनही कहागयाहै ॥ ४२ ॥ इस संसारमें जरा तथा मरणादि रोगोंसे पूर्ण जीवोंको जरा तथा मरण आदिसे मुक्त करनेके लिये परम रसायन सन्तोष है ॥ ४३ ॥ वसन्तऋतु, नन्दनवन, चन्द्रमा, अप्सरागण सब मिलकेभी सन्तोषरूपी अमृतके तुल्य नहीं होसकते ॥ ४४ ॥

सरसःप्रावृषेवांतःसंतोषेणैवपूर्णता ॥ गंभीरांशीतलांहृद्याप्रसन्नांरसशालिनीम् ॥ ४५ ॥ साधुरोजस्वितामेत्यसंतोषेणैवराजते ॥ सुपुष्पितवनाकारोवसंतेनेवपादपः ॥ ४६ ॥ पादपीठपरामर्शपिष्टकीटवदीहते ॥ दीनप्रकृतिरर्थार्थीदुःखादुःखांतरंव्रजेत् ॥ ४७ ॥ कल्लोलविकलाःक्षुब्धसमुद्रपतिताइव ॥ नाप्नुवंतिस्थितिंस्वस्थांविकृताकृतयोर्थिनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे वर्षासे तडाग पूर्णताको प्राप्त होताहै ऐसेही सन्तोषसे पुरुष पूर्ण होताहै गम्भीर शीतल मनोहर प्रसन्न और आत्मानन्दरससे शोभित तेजरूपताको साधु सन्तोषसे प्राप्त होकर ऐसे शोभित होताहै जैसे वसन्तऋतुसे पुष्पित वृक्षसहित वन ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ चरणतलसे मर्दित कीटके समान जो दीन प्रकृतिमनुष्य धनका अभिलाषी है वह एक दुःखसे अनेक दुःखोंमें प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ संक्षुब्धसमुद्रमें पतित और तरंगोंसे व्याकुल जीवोंके तुल्य उदासीन मुख धनके अर्थी जन कदापिभी शान्तस्थितिको नहीं पाते ॥ ४८ ॥

संपदःप्रमदाश्चैवतरंगोत्तुंगभंगुराः ॥ कस्तास्वहिफणच्छत्रच्छायासुरमतेबुधः ॥ ४९ ॥ अर्थोपार्जनरक्षाणांजानन्नपिकदर्थनाम् ॥ यःकरोतिस्पृहांमूढोनृपशुंतंनसंस्पृशेत् ॥ ५० ॥ मनसोबाह्यमारंभमांतरंचलुनातियः ॥ समंवैतृष्ण्यदात्रेणतस्यक्षेत्रंप्रकाशते ॥ ५१ ॥ जगत्त्वमज्ञसंबुद्धंज्ञोविदन्नसदेवयत् ॥ सतीवतत्रस्फुरतितदनभ्यासजृंभितम् ॥ ५२ ॥ संसारनिर्वेदशामुपेत्यसत्संगमंशास्त्रमुपेत्यतेन ॥ शास्त्रार्थभावेननिरस्यभोगान्वैतृष्ण्यदार्ढ्यात्परमार्थमेति ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मुमुक्षुप्रथमोपक्रमो नाम सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—संपत्ति तथा ललनागण उच्च तरंगके समान क्षणभंगुर हैं, सर्पके फणरूपी छत्रकी छायाके तुल्य कौन बुद्धिमान् उनमें रमण कर सकताहै ॥ ४९ ॥ धनके उपार्जन तथा रक्षाके दुःखोंको जानता हुआभी जो मूढ उसकी इच्छा करताहै उस मनुष्यपशुको नहीं छूना चाहिये ॥ ५० ॥ मनके बाह्य विषयोंकी ओर अनुसरणको तथा आभ्यंतरके संकल्पादिको जो विवेकी वैराग्यरूपी दात्र (हंसिया) से साथ काट डालता उसका हृदयरूपी क्षेत्र आत्मज्ञानके लिये प्रकाशित होताहै ॥ ५१ ॥ अज्ञानियोंकी बुद्धिमें जो जगत्‌की विचित्रताहै उसको साक्षीचेतनमें असत्‌रूपसे जानते हुये भी ज्ञानीको जो सत्‌रूपसे भासती है वह अनभ्यासका कारण है ॥ ५२ ॥ प्रथम विवेकी संसारसे वैराग्यको प्राप्त करै, अनन्तर सत्समागम और शास्त्रका अभ्यास करै, अनन्तर अध्यात्मशास्त्रकी भावनासे भोगोंको त्यागकर दृढ वैराग्यसे परमार्थ मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मुमुक्षुप्रथमोपक्रमो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

परवैराग्यके दृढ होनेपर जिन लक्षणोंसे पुरुषकी स्थिति तथा जिनसे ज्ञानकी प्रतिष्ठा होती है उन लक्षणोंको विस्तारसे इस ४८ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रूढेसंसारनिर्वेदेस्थितेसाधुसमागमे ॥ शास्त्रार्थेभावितेबुद्ध्याभोगवैतृष्ण्यआगते ॥ १ ॥ जातेविषयवैरस्येसज्जनत्वेतथोदिते ॥ प्रकाशेसोन्मुखीभूतेहृदयेकलितोदये ॥ २ ॥ घनानिनाभिवांछ्यंतेतमांसीवविवेकिना ॥ त्यज्यंतेविद्यमानानिसंशुष्कामेध्यपर्णवत् ॥ ३ ॥ भारायपांथदृष्टयेवदृश्यंतेदारबंधवः ॥ यथाशक्तियथाकालमुपचर्यंतएवच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! संसारसे दृढ वैराग्य, साधुसमागम, शास्त्रार्थकी दृढभावना, और बुद्धिसे भोगोंकी अरुचि सिद्ध होनेपर ॥ १ ॥ तथा विषयोंकी नीरसता, और सज्जनताके उदय होनेपर, तथा हृदयरूपी कलीके विकसित होनेपर ॥ २ ॥ विवेकी पुरुष धनकी अभिलाषा नहीं करता, और विद्यमान धनादि पदार्थोंको भी ऐसे त्यागताहै जैसे गृहसे अपवित्र उच्छिष्ट पत्तोंको ॥ ३ ॥ तथा स्त्री बन्धुआदिको ऐसे भाररूप देखता है जैसे पथिक आवश्यक पदार्थोंकोभी और यथाशक्ति यथाकाल उनको त्यागता जाताहै ॥ ४ ॥

इंद्रियेष्वपिसंलग्नाइंद्रियार्थाःपुनःपुनः ॥ नभोगाअनुभूयंतेनूनंशांतमनस्तया ॥ ५ ॥ एकांतेषुदिगंतेषुसरःसुविपिनेषुच ॥ उद्यानेपुण्यदेशेषुनिजेष्वेवगृहेषुवा ॥ ६ ॥ सुहृत्केलिविलासेषुशुभोद्यानाशनादिषु ॥ शास्त्रतर्कविचारेषुनतथास्थीयतेस्थिरम् ॥ ७ ॥ उपशांतेनदांतेनस्वात्मारामेणमौनिनः ॥ ज्ञातैवान्विष्यतेज्ञेवविज्ञानैकांतवादिना ॥ ८ ॥

अर्थ—और शांतचित होनेसे इन्द्रियोंमें पुनः २ संलग्नभी विषयभोग उसको नहीं रुचते ॥ ५ ॥ एकांतदिशाओंमें, तडागोंमें, जंगलोंमें, वाटिका तथा पवित्र देशोंमें वा अपने उत्तम गृहोंमें विवेकी नहीं रमता ॥ ६ ॥ तथा मित्रोंके क्रीडासहित विलासोंमें, उत्तम वाटिआदिके शयनोंमें तथा तर्कशास्त्रके विचारोंमें इस प्रकार स्थिरतासे विवेकी नहीं रमता जैसे आत्मामें ॥ ७ ॥ शांत दांत (जितेन्द्रिय) आत्माराम तथा सर्वदा विज्ञाननिष्ट मुनि तत्वज्ञानी वा अपने साक्षीचेतनके अन्वेषणमें लगा रहताहै ॥ ८ ॥

एवमभ्यासवशतःपरेविश्रम्यतेपदे ॥ निम्नेवांभसिशांतेनस्वयमेवविवेकिना ॥ ९ ॥ सबाह्याभ्यंतरंशांताज्ञतैवार्थतयोदिता ॥ नसंभवतिभिन्नोर्थइत्येवपरमंपदम् ॥ १० ॥ नार्थोपलब्धिर्नोशून्यमस्तिबोधात्मतांविना ॥ इत्यंतरनुभूतिस्थमाहुस्तत्परमंपदम् ॥ ११ ॥ एकबोधातिसंबंधपरिणामात्रबोधता ॥ नशून्यतानार्थतेतिविद्धितत्परमंपदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार अभ्याससे शांत विवेकी परमपदमें स्वयं ऐसे विश्राम पाताहै जैसे सन्तप्त मनुष्य शीतल जलमें ॥ ९ ॥ जहां बाह्य तथा आभ्यन्तरकी अज्ञानता शांत होकर आत्मरूपसे उदय होती है, और जहांपर किसी भिन्न पदार्थका सम्भव नहीं है वही परमपद (ब्रह्म) है ॥ १० ॥ जहां केवल बोधके सिवाय अन्य पदार्थोंकी न उपलब्धि है और न शून्यरूपताहै ऐसे निजअनुभवकोही परमपद कहते हैं ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण पदार्थोंका एकबोधरूपमें परिणाम होनेसे जहां न ज्ञानताहै, न शून्यता है, न पदार्थता है उसीको तुम परम पद जानो ॥ १२ ॥

स्वसंविन्मात्रविश्रामवतामनसांसताम् ॥ नस्वदंतेहिविषयाःपयांसिदृषदामिव ॥ १३ ॥ निरोधपदमापन्नोनिर्मनामौनमंथरः ॥ स्वभावेस्थितएवास्तेचित्रेकृतइवात्मवान् ॥ १४ ॥ सर्वार्थमर्थरहितंमहदेवपुराणुवत् ॥ अशून्यमेवशून्यात्महृदयंवेद्यवेदिनः ॥ १५ ॥ अहंत्वंजगदीहादिदिक्कालकलनादिच ॥ ज्ञस्यज्ञानादिशून्यादिस्थितमेवनविद्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—केवल आत्मामात्रमें विश्रांत और मनरहित महात्माओंको विषय ऐसे नहीं रुचते जैसे पाषाणोंको दुग्ध ॥ १३ ॥ सर्वथा विरोधदशामें प्रात, मनशून्य, शरीरके कार्य्योंमेंभी शिथिल आत्मज्ञानी मुनि चित्रलिखितके समान अपने आत्मस्वभावमें स्थित रहताहै ॥ १४ ॥ आत्मज्ञानीका हृदय सब पदार्थयुक्त होनेपरभी पदार्थरहित, विशालरूप होते हुये परमाणुके सदृश, और अशून्य होनेपरभी शून्यके सदृश भासताहै ॥ १५ ॥ अहंकार, जगत् चेष्टा, देशकालादिकी कल्पना, ज्ञानादि त्रिपुटी तथा शून्यआदि विद्यमानभी ज्ञानीकी दृष्टिमें मिथ्या होनेसे नहीं हैं ॥ १६ ॥

ज्ञेनामलपदस्थेनदीपेनेवनिरस्यते ॥ तमोहार्दंतथाबाह्यंरागद्वेषभयादिच ॥ १७ ॥ रजोरहितसर्वाशंसत्वात्पारमुपागतम् ॥ असंभवत्तमोरूपंप्रणमेत्तंनृभास्करम् ॥ १८ ॥ भेदप्रविलयेजातेचित्तेचाद्दश्य

तांगते ॥ यास्थितिःप्राप्तबोधस्यनवाग्गोचरमेतिसा ॥ १९ ॥ ददात्येतन्महाबुद्धेनिर्वाणंपरमेश्वरः ॥ अहर्निशंपरमयाचिरंभक्त्याप्रसादितः ॥ २० ॥

अर्थ—निर्मल आत्मपदमें स्थित ज्ञानी हृदयस्थ रागद्वेषसे भयआदि अन्धकारको ऐसे दूर करताहै जैसे दीपक ॥ १७ ॥ सर्वथा रजोगुणसे रहित, शुद्ध सत्वगुणसे तमोगुणरूपी समुद्रमें पारंगत, और अनान्धकारसे सदा शून्य मनुष्यरूपी सूर्य्यको सदा प्रणाम करना चाहिये ॥ १८ ॥ भेदके लय होनेपर तथा चित्तके भी अदृश्य होनेपर आत्मज्ञानीकी जो स्थिति होती है वह वाणीका विषय नहीं है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! अहर्निश चिरकालकी परम भक्तिसे प्रासादित परमेश्वर महाबुद्धिमान् विवेकीको यह पूर्वोक्त निर्वाणपद देताहै ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ ईश्वरःकोमुनिश्रेष्ठकथंभक्त्याप्रसाद्यते ॥ एतन्मेतत्त्वतोब्रूहिसर्वतत्त्वविदांवर ॥२१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ईश्वरोनमहाबुद्धेदूरेनचसुदुर्लभः ॥ महाबोधमयैकात्मास्वात्मैवपरमेश्वरः ॥ २२॥ तस्मैसर्वततःसर्वंससर्वंसर्वतश्चसः ॥ सोंतःसर्वमयोनित्यंतस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ २३ ॥ तस्मादिमाः प्रसूयंतेसर्वप्रलयविक्रियाः ॥ अकारणंकारणतोगतयःपवनादिवः ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे सर्व तत्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! परमेश्वर कौन हैं, और कैसे वे भक्तिसे प्रसन्न किये जाते हैं यह मुझे कृपाकरके कहिये ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे महाबुद्धे रामजी ! परमेश्वर न दूर है और न दुर्लभ है किन्तु महाबोधस्वरूप अपना आत्माही परमेश्वर है ॥ २२ ॥ उसी परमेश्वरके लिये सबकुछ है, उसीसे सब उत्पन्न हुआ है, सर्वरूप वही है, वह सर्वत्र व्याप्त तथा सब शक्तिमान् है और वह सर्वमय सब घट २ में व्याप्त है, उस सर्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है ॥ २३ ॥ उसी परमेश्वरसे सब सृष्टि प्रलय आदि विक्रिया उत्पन्न होती हैं स्वयं वह कारणरहित है, सब कारणोंमें व्याप्त है, और तुमारे प्राण आदिकी गति उसीसे होती हैं ॥ २४ ॥

अनिशंपूजयंत्येताःसर्वाःस्थावरजंगमाः ॥ यथाभिमतदानेनसर्वेतेभूतजातयः ॥ २५ ॥ सुबह्वन्येषजन्मानियथाभिमतयेच्छया ॥ यदासंपूजितस्तेनप्रसादमधिगच्छति ॥ २६ ॥ प्रसन्नःसमहादेवःस्वयमात्मामहेश्वरः ॥ बोधायप्रेरयत्याशुदूतंपूतंशुभेहितैः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मनापरमेशेनको दूतःप्रेर्यतेमुने ॥ सदूतोबोधनंवापिकरोतिवदमेकथम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अभिमत पदार्थोंके देनेसे सम्पूर्ण स्थावरजंगम प्राणियोंकी जाति निरन्तर उसीकी पूजा करती हैं॥२५॥ यथेष्ट रुचिके अनुसार अनेक जन्मोंमें जब यह परमात्मा पूजित होताहै तब प्रसन्न होताहै ॥ २६ ॥ और शुभकर्मोंसे यह स्वयं आत्मा महेश्वर महादेव प्रसन्न होकर बोधके लिये शीघ्र अपने पवित्र दूतको प्रेरणा करताहै ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे मुने ! आत्मारूप परमेश्वर किस दूतको प्रेरणा करताहै, और वह दूत कैसे बोधन करताहै यह मुझसे कहिये ॥ २८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ आत्मसंप्रेरितोदूतोविवेकोनामनामतः॥ हृद्गुहायांसदानंदस्तिष्ठतींदुरिवांबरे॥२९॥ सएषवासनात्मानंजंतुंबोधयतिक्रमात् ॥ संसारसागरादस्मात्तारयत्यविवेकिनम् ॥ ३० ॥ बोधात्मैषातेंरात्मैवपरमःपरमेश्वरः ॥ अस्यैववाचकोनामप्रणवोवेदसंमतः ॥ ३१ ॥ जपहोमतपोदानपाठयज्ञक्रियाक्रमैः ॥ एषप्रसाद्यतेनित्यंनरनागसुरासुरैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! परमेश्वरसे प्रेरित विवेक नाम दूत हृदयरूपी गृहोंमें आके आनंदरूप ऐसे स्थित होताहै जैसे आकाशमें चन्द्रमा ॥ २९ ॥ और यह वासनामय जीवको क्रमसे बोधन करताहै, और अविवेकी जीवको इस संसारसागरसे पार करताहै ॥ ३० ॥ और बोधस्वरूप यह अन्तरात्माही परम परमेश्वरहै, और इसी परमेश्वरका वाचक प्रणव वेदसंमत नामहै ॥ ३१ ॥ देवता, मनुष्य, नाग तथा असुर आदि सब तप, जप, होम, दान, पूजापाठ तथा यज्ञ आदि क्रमसे नित्य इसी परमेश्वरको प्रसन्न करते हैं ॥ ३२ ॥

द्यौर्मूर्द्धापृथिवीपादौतारकारोमराजयः ॥ भूतान्यस्थीनिहृदयंव्योमास्यपरमेश्वरः ॥ ३३ ॥ सर्वत्रैषचिदात्मत्वाद्यातिजागर्तिपश्यति ॥ तेनैषसर्वतोलक्ष्यकरकर्णाक्षिपादभृत् ॥ ३४ ॥ विवेकदूतमुद्बोध्याहत्वाचित्तपिशाचकम् ॥ आत्मनःपदवींस्फारांजीवःकामपिनीयते ॥ ३५ ॥ त्यक्त्वासर्वविकल्पौघान्विकारानर्थसंकरान् ॥ पौरुषेणात्मनैवात्मास्वयमेवप्रसाद्यताम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अन्तरिक्ष इस परमात्माका शिरहै, पृथिवीपादहै, तारागण रोमोंकी पंक्ति हैं, सब प्राणी अस्थि (हड्डियां) हैं, और आकाश हृदयहै ॥ ३३ ॥ चित्स्वरूप होनेसे यह सर्वत्र जाताहै, सदा जागता रहताहै, और

सबको देखताहै इसी हेतुसे सर्वत्र लक्ष्य हस्तपाद तथा कर्ण नेत्र आदि इन्द्रियोंको धारण करताहै ॥ ३४ ॥ यह परमात्मा विवेकरूपी दूतको उद्बोधन करके और चित्तरूपी पिशाचको मारकर जीवको अनिर्वचनीय अपनी महा पदवीको प्राप्त करताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! सब विकल्प समूहोंको तथा अनर्थयुक्त सब विकारोंको त्यागकर निज पौरुषसे अपने आत्माहीसे आत्मभूत परमेश्वरको प्रसन्न करो ॥ ३६ ॥

भ्रमन्मनःपिशाचेस्मिन्कल्लोलजलदाकुले ॥ संसाररात्रितिमिरेस्वात्मैवापूर्णचंद्रमाः ॥ ३७ ॥ अगाधमरणावर्त्तकल्लोलाकुलकोटरे ॥ तृष्णातरंगतरलेस्वमनश्वंडमारुते ॥ ३८ ॥ महाजडलवाधारेसंसारविषमार्णवे ॥ इंद्रियग्रामगहनेविवेकःपोतकोमहान् ॥ ३९ ॥ पूर्वंयथाभिमतपूजनसुप्रसन्नोदत्वाविवेकमिहपावनदूतमात्मा ॥ जीवंपदंनयतिनिर्मलमेकमाद्यंसत्संगशास्त्रपरमार्थपरावबोधैः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विवेकमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—भ्रमणशील मनरूपी पिशाच सहित, और कामक्रोधादि षट् ऊर्मिरूपी मेघोंसे व्याप्त इस संसाररूपी रात्रिके अन्धकारमें स्वात्मा परमेश्वरही आनन्दयुक्त पूर्णचन्द्रमा प्रकाशकहै ॥ ३७ ॥ अगाध, मरण आदि आवर्त्त युक्त, कामक्रोधादिसे व्याप्त कोटर सहित, तृष्णारूप तरंगोंसे चंचल, मनरूपी प्रचंड महा पवनयुक्त, इन्द्रियोंके समूहरूपी मकर आदिसे भयंकर तथा महा स्थावर जंगम आदि सब प्राणीरूप जलके आधारभूत इस संसाररूपी महासमुद्रमें विवेकही महा नौकाहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! प्रथम यथापूजनोंसे प्रसन्न परमेश्वर अपने पवित्र विवेकरूपी दूतको देकर सत्समागम, शास्त्रोंके अभ्यास तथा परमार्थ बोधनके द्वारा जीवको एक अद्वितीय निर्मल तथा आद्य परमपदको प्राप्त करताहै ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विवेकमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

दृढ विवेकी जनोंकी महिमा जैसी होती है, और जैसा संसार उनको भासताहै यह सब बिस्तारसे ४९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परिपुष्टविवेकानांवासनामलमुज्झताम् ॥ महत्तामहतामंतःकाप्यपूर्वैवजायते ॥१॥ औदार्योदारमर्यादांमतिंगांभीर्यसुंदरीम् ॥ महतांनावगाहंतेभुवनानिचतुर्दश ॥ २ ॥ चित्तभ्रांतिर्जगदितिप्ररूढेप्रत्ययेसताम् ॥ बाह्यश्वांतश्वरन्नक्रग्रहोमोहश्वशाम्यति ॥ ३ ॥ द्वींदुवत्तापजलवत्केशोंडूकवदंबरे ॥ विस्फुरंत्यांजगद्भ्रांतौवासनाप्रत्ययःकुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! दृढ विवेक युक्त तथा वासनारूपी मलको पूर्णरूपसे त्यागनेवाले महात्माओंका महत्व संसारसे विलक्षण होताहै ॥ १ ॥ औदार्य तथा महत्वकी अवधिभूत, और गंभीरतासे अतिसुंदर विवेकी महात्माओंकी बुद्धिको चौदहभुवन, उनके प्राणीसमूह तथा उनकी सब संपत्ति नहीं लुभा सकतीं, और न पूर्णरूपसे उसका वर्णन कर सकतीं हैं ॥ २ ॥ यह जगत् चित्तकी भ्रांतिमात्र है, ऐसा सज्जनोंका दृढ विश्वास होनेपर बाह्य शब्दादि विषयोंमें तथा आभ्यन्तर संकल्पादि रूपसे भ्रमणशील मनसहित इन्द्रियोंका समूहरूप मकर तथा उसका मूल अज्ञान मोहादि सब शांत होजाताहै ॥ ३ ॥ दो चन्द्र, मृगतृष्णाके जल, और आकाशमें केशादिकी नीलताके समान जगत्की भ्रांति स्फुरित होनेपर विवेकीको वासनाकी वृत्ति कहांसे होसकती है ॥ ४ ॥

वासनाप्रत्ययेशून्येशून्यंव्योमैवशिष्यते ॥ साप्यवस्थामनोऽसत्वेकुतस्त्याज्याविवेकिना ॥ ५ ॥ त्रयमेतत्तुयावस्थात्रयेणानेनवर्जिता ॥ पश्यंतीवाप्यपश्यंतीसावस्थापरमोच्यते ॥ ६ ॥ विचित्ररत्नरश्म्योघइवनानात्मकंजगत् ॥ आभासमात्रंनत्वात्मानघनंनचपार्थिवम् ॥ ७ ॥ रूपालोकनमात्रंहिशून्यमेवजगत्स्थितम् ॥ खेविचित्रमणिव्यूहकरजालमिवोत्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वासनाकी वृत्ति नष्ट होनेपर शून्य चिदाकाशही शेष रहताहै, और वासनाकी शून्याऽवस्था मनके अभावमें विवेकीको प्राप्त होती है तो उसको यह कैसे त्यागसकताहै ॥ ५ ॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन प्रसिद्ध

तीनों अवस्थाओंसे वार्जित विवेकीकी जो सप्तम भूमिकामें तुरीयाअवस्थाहै वह जीवनके अदृष्टसे अन्यकी दृष्टिमें भासते हुये भी योगीकी दृष्टिमें परमअवस्थाही कहलाती है ॥ ६ ॥ सप्तभूमिकामें स्थित विवेकियोंकी दृष्टिमें यह जगत् समाधिके अभावमें नहीं भासता, और आत्मा न घन और न पार्थिवआदि विकार सहित भासताहै, किन्तु प्रजापुंज आभासमात्र भासताहै ॥ ७ ॥ और यह जगत् भी रूपका दर्शनमात्र आकाशमें प्रकट मणिसमूहके तुल्य शून्यरूपही विवेकियोंकी दृष्टिमें स्थितहै ॥ ८ ॥

नेहसत्यानिभूतानिनजगत्तानशून्यता ॥ इदंब्रह्माख्यरत्नेशप्रभाजालंविजृंभितम् ॥ ९ ॥ सृष्टयोऽसृष्टयोब्राह्मयोनानाताचननाशता: ॥ अमूर्त्तएवभासंतेकल्पनार्कगणाघना: ॥ १० ॥ एवंतावद्घनीभूत: पिंडग्राहोनविद्यते ॥ संकल्पतेचव्योम्नीवशून्यतैवावगम्यते ॥ ११ ॥ तस्यामवस्तुभूतायांकथंभात्र निबंधनम् ॥ भविष्यदाकाशतरौविश्रांत:कोविहंगम: ॥ १२ ॥

अर्थ—न तो यह संसारकी भूतजाती सत्य है, न जगत् है और न शून्यताहै, किन्तु सब शक्तिमान् ब्रह्मरूपी रत्नकी प्रभाजालका यह सब विलासमात्र है ॥ ९ ॥ अनेकताके अभावसे ब्रह्मकी सृष्टिभी नहीं है, और नाशताके अभावसे प्रलय भी नहीं है, किन्तु मूर्ति रहित कल्पनारूपी सूर्यकी किरणमात्रही भासरही है ॥ १० ॥ इसप्रकार कल्पनाही मूर्तिमान् जगत्‌रूपसे भासतीहै इसमें यथार्थ पिंड नहीं है, क्योंकि संकल्प सिद्ध मनोराज्यादिमें आकाशके तुल्य शून्यताही विदित होती है ॥ ११ ॥ इस शून्यतारूप जगत्‌की स्थितिमें विवेकीका रागद्वेषादि भाव केसे हो क्योंकि भविष्यत आकाशरूपी वृक्षमें किस पक्षीने विश्राम किया है ॥ १२ ॥

पिंडित्वंनास्तिभूतानांशून्यताचनविद्यते ॥ चित्तमप्यतएवास्तंशेषंसत्तन्नचास्थिति ॥ १३ ॥ अनानासममेवास्तेनानारूपोविबोधवान् ॥ अंतर्गलीननानार्थोयथाकनकपिंडक: ॥ १४ ॥ यथास्थितस्यसाहंत्वं विश्वंचित्तंविलीयते ॥ ज्ञस्यावाच्यमचित्त्वंसत्स्वरूपमवशिष्यते ॥ १५ ॥ क्लिश्यतेकेवलंबुद्धिरुत्तराधरदर्शनैः ॥ स्तोकयाभ्यस्तयायुक्त्यासत्योर्थोह्यवगम्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—सब जगत् तथा प्राणियोंकी यथार्थमूर्ति नहीं है, और न शून्यरूपता है, चित्तभी अस्तरूपही है, और जो शेष सन्मात्र आत्मा है वह अभावरूप नहीं है॥ १३ ॥ यह नानारूप तथा नामसहित जगत् एकआत्मारूपही है, क्योंकि सब नानापदार्थ इसी एकआत्मामें ऐसे अन्तर्गत हैं जैसे सुवर्णके सब आभूषण सुवर्ण पिंडमें ॥ १४ ॥ यथास्थित चित्स्वभावमें स्थित ज्ञानीकी दृष्टिमें अहंकारसहित सब जगत् लीन होजाताहै इसलिये उसकी अचित्स्वरूपता नहीं कहसकते, किन्तु सत्‌चिन्मात्रही शेष रहताहै ॥ १५ ॥ ऊंच नीच विषयोंकी ओर दौडनेसे बुद्धि क्लेशित होती है इस हेतु सत्‌रूप आत्मा नहीं भासता, किंचित् युक्तिका अभ्यास करनेसे सत्य अर्थ विदित होताहै ॥ १६ ॥

विराडोजोविरहितंकार्यकारणतादिभि: ॥ भूतभव्यभविष्यस्यजगदंगस्यसंभवम् ॥ १७ ॥ येनबोधात्मनाबुद्धंसत्यज्ञअभिधीयते ॥ अद्वैतस्योपशांतस्यतस्यविश्वंनविद्यते ॥ १८ ॥ पूर्वोक्ता:सर्वएवैतेउपदेशाविशेषणा: ॥ ज्ञस्यानुभवमायांतिसत:साधुकथाइव ॥ १९ ॥ पिंडत्वंनास्तिभूतानांशून्यत्वंचाप्यसंभवात् ॥ अतएवमनोनास्तिशेषंसत्तत्तवस्थिति: ॥ २० ॥

अर्थ—जो भूतभविष्य तथा वर्तमान जगत्‌के जन्मादि हेतु है, और जो स्वयं सूक्ष्म तथा स्थूलप्रपंचसे रहित है इसप्रकार परमात्माको जिसने यथार्थ जानलियाहै वही ज्ञानी है, और उस अद्वैत ब्रह्ममें शान्त पुरुषकी दृष्टिमें यह संसार नहीं है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्त सब उपदेश विवेकयुक्त ज्ञानीके अनुभवमें ऐसे आते हैं जैसे सज्जनको उत्तम कथा ॥ १९ ॥ न तो प्राणियोंकी मूर्ति है और न असम्भव होनेसे शून्यताहै इसीसे मनभी नहीं है, इस कारण जो शेष सन्मात्र है वही स्थित है ॥ २० ॥

चेत्योन्मुखत्वमेवांतश्चेतनस्यास्यचेतनम् ॥ उदितंतदनर्थायश्रेयसेनुदितंभवेत् ॥ २१ ॥ उदितंबाह्यतामेतितत्रगच्छतिपिंडताम् ॥ स्वयंसंवेदनादेवजाड्यदंब्विवशैलताम् ॥ २२ ॥ स्वप्नाद्यर्थवदादत्तेबोधोऽबोधेनपिंडताम् ॥ तद्ग्राहकतयाचित्तंभूत्वाबभ्रातिदेहकम् ॥ २३ ॥ एतावतीश्चवस्थासुबोधस्योदेतिनान्यता ॥ शब्दकल्पनयाभेद:केवलंपरिकल्पित: ॥ २४ ॥

अर्थ—इस साक्षीचेतनका विषयकी ओर उन्मुख होनाही संसारका ज्ञान अनर्थके लिये है और संसारका ज्ञान न होना कल्याण है ॥ २१ ॥ ससारको स्वयं बोधमात्रसे बाह्यदशाको प्राप्त होकर साकार पिंड दशाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे जडतासे जल जमके पर्वतरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ चित्‌स्वरूप आत्मा अपने स्वरूपके अज्ञानसे स्वप्नके समान मूर्तिमान् पदार्थको धारण करताहै, और उस पदार्थको ग्राहक चित्तरूप होके शरीर धारण करताहै

॥ २३ ॥ इन सब अवस्थाओंमें चित् अपने स्वरूपसे अन्य भावको किंचित् भी नहीं प्राप्त होता, किंतु शब्दमात्रकी कल्पनासे यह भेद कल्पित किया गया है ॥ २४ ॥

बहिरंतश्चबोधस्यभात्यात्मैवार्थदृष्टिभिः ॥ अंतस्त्वेनबहिष्ट्वेननैवास्यमनसोयथा ॥ २५ ॥ बोधस्याकाशकल्पत्वात्कालाकाशादितद्वपुः ॥ पदार्थाश्चैवखा मानःस्वप्नवन्नार्थरूपिणम् ॥ २६ ॥ बाह्यार्थतानांतरत्वंतद्द्बोधवशाद्व्रजेत् ॥ नासादृश्यहिबोधस्यं तुः स्जडंक्वचित् ॥ २७ ॥ बोधोदृश्यदशानिप्राप्तोवापिचतांस्थितिम् ॥ सयथास्थितमेवास्तेमनागप्येतिनान्यताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और जैसे मनसे स्वप्नदर्शनमें मनही बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयरूपमें विकृत होताहै ऐसे बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थरूपसे भासते हुये आत्मामें कुछ विकार नहीं होता ॥ २५ ॥ चिदात्मा बोध आकाशरूप होनेसे आकाश तथा कालके सदृश सदा वह अविकृतरूप रहताहै, और सब पदार्थ स्वप्नके पदार्थके तुल्य चिदाकाशरूपही हैं, और चिदाकाश पदार्थरूपसे प्राणीभी नहीं है ॥ २६ ॥ चेतन बाह्य वा आभ्यन्तर पदार्थके आकारमें विकृत नहीं होसकता, क्योंकि सर्वथा असदृश जड कहीं जा नहीं सकता ॥ २७ ॥ चिदात्मा विवर्तभावसे दृश्य जड स्थितिको प्राप्त भी जड भावको कभी नहीं प्राप्त होता, वह सब दशामें अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित रहताहै, किंचित्भी अन्य रूपताको नहीं प्राप्त होता ॥ २८ ॥

अत्यर्थशुद्धबोधैकपरिणामेकृतोदये ॥ बोधाबोधार्थशब्दानांश्रुतिरप्यस्तमेष्यति ॥ २९ ॥ आतिवाहिकदेहानांचित्तानामेवजायते ॥ आधिभौतिकताबोधोदृढभावनयास्वया ॥ ३० ॥ आकाशविशदैश्चित्तैर्भावितैषातिवाहिकैः ॥ आधिभौतिकतामिथ्यानटैरिवपिशाचता ॥ ३१ ॥ भ्रांतिरभ्रमणाभ्यासात्प्रज्ञातैषोपशाम्यति ॥ नोन्मत्तोस्मीतिसंबोधाच्छाम्यत्युन्मत्तताकिल ॥ ३२ ॥

अर्थ - सप्तम भूमिकामें सर्वथा शुद्ध बोधरूप आत्माके उदय होनेपर बोध और अबोध शब्दार्थकी श्रुतिभी अस्त होजायगी ॥ २९ ॥ चित्तकी दृढभावनाही सूक्ष्म शरीरकी स्थूल दशा होजाती है और निज दृढभावनासेही चित्की आधिभौतिक रूपता होतीहै ॥ ३० ॥ आकाशके तुल्य विशाल सूक्ष्म चित्तोंनें यह मिथ्या भौतिकरूप ऐसे धारण कियाहै जैसे नट पिशाचरूपता ॥ ३१ ॥ सत्यके अभ्याससे ज्ञात होनेसे यह देह जगत् आदिकी भ्रांति ऐसे शांत होजाती है, जैसे मैं उन्मत्त नहीं हूं ऐसा ज्ञान होनेसे उन्मत्तता शांत होजाती है ॥ ३२ ॥

भ्रांतःस्वयंपरिज्ञानाद्वासनाविनिवर्त्तते ॥ स्वप्नेस्वप्नतयाबुद्धेकस्यस्यात्किलभावना ॥ ३३ ॥ वासनातानवेनैवसंसारउपशाम्यति ॥ वासनैवमहायक्षिण्येतच्छेदपराबुधाः ॥ ३४ ॥ अज्ञानोन्मत्ततापुंसांयथाभ्यासेनभाविता ॥ तथैवबोधात्स्वभ्यासात्साकालेनोपशाम्यति ॥ ३५ ॥ आतिवाहिकदेहोयमाधिभौतिकतांयथा ॥ नीयतेभावनातज्ज्ञैर्बोधसत्ताप्रसादतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—भ्रांतिका ज्ञान होनेसे जगत्के सत्य पदार्थकी भावना स्वयं निवृत्त होजाती है, क्योंकि स्वप्नको स्वप्नरूपसे जाननेपर उसमें सत्य भावना किसको होसकती है ॥ ३३ ॥ वासनाके शांत होतेही यह संसार स्वयं शांत होजाताहै, यह वासनाही महापिशाची है, विवेकी जन इसके उच्छेदमें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥ अज्ञानसे पुरुषोंके अभ्याससे जैसे उन्मत्तता उत्पन्न हुई है ऐसेही ज्ञानके अभ्याससे कालपाके वहभी शांत होजायगी ॥ ३५ ॥ जैसे भावनासे सूक्ष्म शरीर स्थूल रूपको प्राप्त होती है, ऐसेही विवेकी जन ज्ञानके प्रतापसे ॥ ३६ ॥

आतिवाहिकदेहोपिनीत्वाजीवपदंतथा ॥ दृढेनबोधाभ्यासेननेतव्योब्रह्मतामपि ॥ ३७ ॥ स्ववस्तुवच्चेदुत्पत्तिर्बुध्यतेबोधरूपिणी ॥ तदातिवाहिकीबुद्धिःकथमित्यपिबुध्यते ॥ ३८ ॥ नोचेत्तत्प्रतिवाक्यार्थात्तद्ग्रंथिर्विनिवर्त्तते ॥ भूतोत्सादनसूत्रस्यप्रतिपत्तृपदंयथा ॥३९॥ जगद्बोधैकतांबुद्धाबोद्धव्यातावदत्रणम् ॥ अत्यंतपरिणामेनयावत्सापिनबुद्ध्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—सूक्ष्म शरीरको जीव पदको प्राप्त करतेहैं, और पुनः दृढभावके अभ्याससे उस जीवको ब्रह्मरूपताको प्राप्त करतेहैं ॥ ३७ ॥ जब सब पदार्थोंकी उत्पत्ति कूटस्थ बोधमात्र रूपिणी ज्ञात हो तब सूक्ष्म शरीरभी क्या (मिथ्या) है यह निश्चय हो ॥ ३८ ॥ और इसके सिवाय भूत उतारनेके मंत्रोंमें जैसे हुं फट् इत्यादि अनर्थक वाक्योंसे केवल भूतोंका उतारना होताहै ऐसेहीं वाक्यार्थके बलसे आपततः संसारकी ग्रंथिकी निवृत्ति कल्पनामात्र होती है ॥ ३९ ॥ प्रथम जगत् तथा उसके कारण चित्स्वरूप ईश्वरकी एकताको जानकर त्वंपदार्थके शोधनार्थ तबतक साक्षी चेतनका श्रुतिके अनुसार दृढ ज्ञान संपादन करना चाहिये जबतक कि तत्त्वंपदार्थका अखंड बोध न हो ॥ ४० ॥

सबाह्याभ्यंतरेचित्तेशांतेभातिस्वभावता ॥ शीतलांव्योमनिर्भासांतामेवाश्रित्यशाम्यताम् ॥ ४१ ॥ ज्ञानवान्ज्ञानयज्ञस्थोध्यानयूपंविरोपयन् ॥ जगद्विजित्यजयतिसर्वत्यागैकदक्षिणः ॥ ४२ ॥ पतत्यंगारवर्षेचवातिवाप्रलयानिले ॥ भूतलेव्रजतिव्योम्निसममास्तेज्ञआत्मनि ॥ ४३ ॥ वैतृष्ण्यशांतमनसोनिरोधमलमेयुषः ॥ स्थितिर्वज्रसमाधानंविनानान्योपपद्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यंतर चित्तके सर्वथा शांत होनेपर अपना साक्षीरूप चित्स्वभाव प्रकाशताहै, और आकाशके तुल्य निर्मल तथा शीतल उसी अपने चित्स्वभावका आश्रय करके शांत होना चाहिये ॥ ४१ ॥ ज्ञानी ज्ञानरूप यज्ञमें स्थितहोके ध्यानरूपी दृढ तथा उच्च यज्ञस्तंभको गाडताहै ॥ और सर्वत्यागरूप मुख्य दक्षिणा देके तथा सबको जीतके सबसे उत्कृष्ट होके निवास करता है ॥ ४२ ॥ अंगारकी वृष्टि हो, वा प्रलयका वायु बहै, अथवा यह भूतल उडके आकाशमें चलाजाय परंतु ज्ञानी अपने स्वरूपमें एकरूपसे स्थित रहताहै ॥ ४३ ॥ वैराग्यसे सर्वथा शांत, और पूर्ण निरोध दशाको प्राप्त पुरुषके सिवाय अन्य पुरुषकी समाधिमें वज्रके सदृश दृढ स्थिति नहीं होसकती ॥ ४४ ॥

यथाबाह्यार्थवैतृष्ण्येनोपशाम्यत्यलंमनः ॥ नतथाशास्त्रसंदर्भैर्नोपदेशतपोदमैः ॥ ४५ ॥ मनस्तृणस्य सर्वार्थवैतृष्ण्याग्निर्विबोधितः ॥ सर्वत्यागानिलैःसंपदत्यापदिति भावनात् ॥ ४६ ॥ बहिरंतश्चमोहश्च पिंडग्राहोर्थवेदनम् ॥ ज्ञप्तिरेवेतिकचतिज्ञात्वामणिरिवात्मनि ॥ ४७ ॥ नरनागासुरागारगिरिगह्वरदृष्टिभिः ॥ चितिरेवेतिविस्तताधूमोंबुदतयेवखे ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे बाह्य पदार्थोंके त्यागसे पूर्णरीतिसे मन शांत होताहै ऐसे शास्त्रोंके विचार उपदेश तप वा इंद्रियोंके निग्रहसे नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! संपत्ति, सर्वथा आपत्ति है इस भावनासे मनरूपी महातृण समूहके मध्यमें सर्व त्यागरूप पवनसे प्रबोधित सब पदार्थोंसे वैराग्यरूप अग्निके अन्तिम ब्रह्म साक्षात्कार ज्वालारूपसे प्रदीप्त होनेसे बाह्य तथा आभ्यन्तरका अज्ञानान्धकार, उससे उत्पन्न चौर पिशाचादिके तुल्य ब्रह्मांडका साकारज्ञान, और नेत्रादि इन्द्रियोंसे रूपरसादि पदार्थोंका अनुभव सब अखण्ड अद्वैत चिदात्मारूपसे ऐसे प्रकाशित होताहै जैसे प्रतिबिंबित पदार्थ सहित ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ देव, मनुष्य, असुर तथा नाग आदि, उनके स्थान, पर्वत तथा कन्दरा आदिरूपसे चेतनही अनेक विचित्रताको ऐसे प्राप्तहै जैसे आकाशमें मेघरूपताको धूम ॥ ४८ ॥

वेपंतेचिद्द्रवत्वेनब्रह्मांडजडभांडगाः ॥ स्वविवर्त्ततरंगिण्योजीवशक्त्यापतद्रसाः ॥ ४९ ॥ जीवकाजीर्णशफरीव्योमवारिविहारिणी ॥ मोहजालेनवलितानस्मरत्यात्मनिस्थितिम् ॥ ५० ॥ घनीभूताघनत्वेन चिद्घनागगनांगणे ॥ नानापदार्थरूपेणस्फुरतिस्वात्मनात्मनि ॥ ५१ ॥ सर्वएवसमाजीवावासनामंतरेणच ॥ शुष्कपर्णवदुड्डीनाजडाःश्वसनवेणवः ॥ ५२ ॥ आहृत्यपौरुषबलान्यवजित्यतंद्रीमुत्थायतर्जितसमर्जितवासनौघम् ॥ संसारपाशघनपंजरमंजसैवभंक्त्वाभ्युदेयमतिनाज्ञसमेनभाव्यम् ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्वोपशांतिर्नामैकोनपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—चित्रूप द्रव (जल) ताके कारणसे ब्रह्मांडरूप जडपात्र गामिनी, और प्राण शक्तिसे सरस आत्म विवर्तरूप सब प्राणीमात्रके शरीररूप नदियां संचलित होती हैं ॥ ४९ ॥ चिदाकाशरूप जलमें बिहारिणी जीवरूपा जीर्ण सफरी (सहरी मछली) मोहरूपीजालमें बद्ध होनेसे अपनी स्वात्मामें स्थितिको नहीं स्मरण करती ॥ ५० ॥ आकाशमें मेघके तुल्य यही चित् निजरूपमें घनीभूत होके पृथिवी स्वर्ग आदि अनेक साकार पदार्थ रूपसे स्फुरित होरही है ॥ ५१ ॥ वासनाके न्यून अधिक वैचित्र्यके सिवाय, अन्य अंशमें समान सब जीवहैं, और प्राणरूप पवनके सहारेसे जड बाँसके तुल्य शब्द करते हैं तथा शुष्कपत्रके सदृश स्वर्ग नरक आदिमें उडते फिरते हैं ॥ ५२ ॥ इसलिये हे रामजी ! प्रथम पुरुषार्थसे साधनचतुष्टयका संपादन करके, पश्चात् आसन प्राणायामादिके अभ्याससे ध्यानमें विघ्नभूत तन्द्राको जीतकर संप्रज्ञात समाधिसे उठकर निर्विकल्प समाधिमें प्रवेशके द्वारा पूर्वसंचित वासना समूहको भगाकर और संसाररूपी घनीभूत पिंजडेको तोडकर सर्व ओरसे पूर्णानन्द एकरस ब्रह्मरूपसे तुमको उदित होना चाहिये, और न कि अज्ञानीके सदृश ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्वोपशांतिर्नामैकोन पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

वासनाकी दृढता तथा शिथिलताके भेदकी विचित्रतासे कल्पित जीवोंके सात भेद बोधके लिये ५० के सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इमेयेजीवसंघाताहृश्यंतेदशदिग्गताः ॥ नरनागसुरागेंद्रगंधर्वाद्यभिधानकाः ॥ ॥१॥ तेस्वप्नजागराःकेचित्केचित्संकल्पजागराः ॥ केचित्केवलजाग्रत्स्थाश्चिरजाग्रत्स्थिताःपरे ॥२॥ घनजाग्रत्स्थिताश्चान्येजाग्रत्स्वप्नास्तथेतरे ॥ क्षीणजागरकाःकेचिज्जीवाःसप्तविधाःस्मृताः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एतेषांभगवन्भेदोबोधायममकथ्यताम् ॥ जीवानांसप्तरूपाणांजलानामर्णवेष्विव॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! नर, नाग, सुर, अग तथा गन्धर्वादि नामधारी दशोदिशामें प्राप्त ये जो जीवके समूह देख पडते हैं ॥ १ ॥ इनमेंसे कोई स्वप्न जाग्रत्अवस्थामें हैं, कोई संकल्प जाग्रत्में, कोई केवल जाग्रत्में, कोई चिर जाग्रत्में ॥२॥ कोई घन जाग्रत्में, कोई जाग्रत्स्वप्नमें, और कोई क्षीणजाग्रत्में हैं, इसप्रकार सप्तभेद सब प्राणियोंके हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! समुद्रमें अनेक प्रकारके जलके सदृश इन सप्तविध जीवोंके भेद मुझे बोधके लिये कहिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कस्मिंश्चित्प्राक्तनेकल्पेकस्मिंश्चिज्जगतिक्वचित् ॥ केचित्सुप्ताःस्थितादेहैर्जीवा जीवितधर्मिणः ॥ ५ ॥ येस्वप्नमभिपश्यंतितेषांस्वप्नमिदंजगत् ॥ विद्धितेहिखलूच्यंतेजीवकाःस्वप्नजागराः ॥ ६ ॥ क्वचिदेवप्रसुप्तानांयःस्वप्नःस्वयमुत्थितः ॥ विषयःसोयमस्माकंतेषांस्वप्ननरावयम् ॥७॥ तेषांचिरतयास्वप्नःसजाग्रत्वमुपागतः ॥ स्वप्नजागरकास्तेतुजीवास्तेतद्गताःस्थिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! किसी कल्प तथा किसी जगत्में कोई जीव देह धारण करके शयनमें स्थित थे ॥ ५ ॥ जो कि स्वप्न देखते हैं, उन्हींका स्वप्नरूप यह जगत् है और वे जीव स्वप्नजागर कहलाते हैं ॥ ६ ॥ किसी जगत्में सुप्तजीवोंका आविर्भूत स्वप्न प्रपंच, यदि समान कर्म वासनादिके वशसे हमारे विषय होताहै तब हम सब उनके स्वप्नके नर हैं ॥ ७ ॥ उनका चिरकालका स्वप्न जाग्रत्रूपमें प्राप्त है इसलिये उस अवस्थामें स्थित वे जीव स्वप्नजागर कहलाते हैं ॥ ८ ॥

सर्वज्ञत्वात्सर्वगस्यसर्वंसर्वत्रविद्यते ॥ येनस्वप्नवतांतेषांवयंस्वप्ननराःस्थिताः ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ येषुकल्पेषुतेजाताःक्षीयंतेकल्पकल्पनाः ॥ यदितास्तत्कथंतेषांप्रबुद्धानामवस्थितिः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इहस्वप्नभ्रमांतेतेमुच्यंतेवाविनिद्रताम् ॥ प्राप्यसंकल्पतोदेहांस्तथैवान्यान्श्रयंत्यलम् ॥११॥ तथैवान्यंप्रपश्यंतिजगत्कल्पंचकल्पितम् ॥ कल्पनाभासनभसोनहिसंकटताभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—परमात्माके सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होनेसे सर्वव्यापी तथा सर्वसत्ताप्रद ईश्वरके लिये सर्वत्र सब कुछ है, इस हेतुसे उन स्वप्नयुक्त पुरुषोंके हम सब स्वप्न पुरुष हैं ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हम लोगोंके स्वप्न प्रपंचके द्रष्टा जो पूर्वकल्पमें उत्पन्न हुये तो उन लोगोंके कल्पोंकी कल्पना यदि वर्तमानकल्पमें क्षीण होजाय तो पूर्वकल्पमें जाग्रद्दशामें ज्ञानदशामें प्राप्त उन जीवोंकी स्थिति कैसे होसकती है, अर्थात् पूर्व कल्पकालमें वर्तमानकल्पकभी नहीं रह सकता ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यदि हमारे स्वप्न प्रपंचमें उनको ज्ञान प्राप्त होगया तो मुक्त होजाते हैं, और यदि निद्रासे उठे तब अपने संकल्पके अनुसार व्यवहार करते हैं वा अन्य देहोंका आश्रय लेते हैं (क्योंकि उनका कल्प अभी समाप्त तो हुआही नहीं) ॥ ११ ॥ पूर्वके अनुसार अन्य कल्पित जगत् कल्पको वे देखते हैं क्योंकि कल्पनाके प्रकाशमान आकाशमें कोई संकेत नहीं है ॥ १२ ॥

संकल्पनात्मकजगज्जीर्णोडुंबरकीटकाः ॥ स्वप्नजागरकाःप्रोक्ताःशृणुसंकल्पजागरात् ॥ १३ ॥ कस्मिंश्चित्प्राक्तनेकल्पेकस्मिंश्चिज्जगतिक्वचित् ॥ अनिद्रालवएवांतःसंकल्पैकपराःस्थिताः ॥ १४ ॥ ध्यानाद्विलुठितावाथमनोराज्यवशानुगाः ॥ संकल्पदार्ढ्यमापन्नागलितात्रानुभूतयः ॥ १५ ॥ संकल्पएवजाग्रत्त्वंयेषांचिरतयांशतः ॥ तत्रास्तमितचेष्टानांतेहिसंकल्पजागराः ॥ १६ ॥

अर्थ—संकल्पात्मक जीर्ण जगत्रूपी चन्द्रके कीटकके तुल्य जागर जीव कहे गयें अब संकल्पजागर जीवोंको सुनो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! किसी कल्प तथा किसी ब्रह्मांडमें इन्दुके पुत्रोंके सदृश निद्राको त्यागकर सर्वथा संकल्पमेंही तत्पर वे जीव स्थितहैं ॥ १४ ॥ अथवा ध्यानसे चलित होके जीवटोपाख्यानके भिक्षुके सदृश मनोराज्यके वशमें स्थित संकल्पकी दृढतासे पूर्व अवस्थाके अनुसंधानसे वे रहितहैं ॥ १५ ॥ जिनका संकल्प चिरकाल स्थिर होनेसे जाग्रत्रूप होगया है उनको संकल्प जागर कहते हैं ॥ १६ ॥

संकल्पोपशमेभूयस्तमन्यंवाश्रयंतिते ॥ देहेतेषांवयमिमेसंकल्पपुरुषाःस्थिताः ॥ १७ ॥ संकल्पजागराःप्रोक्ताएतेसंकल्पशायिनः ॥ जीवाजीवितगालोकाःशृणुकेवलजागरान् ॥ १८ ॥ प्राथम्येनावतीर्णास्तेब्रह्मणोबृंहितात्मनः ॥ प्रोक्ताःकेवलजागर्याःप्रागुत्पत्त्यविकाशिनः ॥ १९ ॥ भूयोजन्मांतरगतास्त एवचिरजागराः ॥ कथ्यंतेप्रौढिमायाताःकार्यकारणचारिणः ॥ २० ॥

अर्थ—उस संकल्पके शान्त होनेपर पुनः उसी वा अन्य संकल्पका आश्रय वे लेते हैं, उनके संकल्पमय देहमें ये सब हमलोग संकल्प पुरुष हैं ॥ १७ ॥ संकल्पमें रहनेसे ये जीव संकल्प जागर कहलाते हैं अब तुम केवल जागरको सुनो ॥ १८ ॥ दाम, व्याल तथा कटकके सदृश पूर्वमें उत्पत्तिसे रहित, और वृद्धिशील ब्रह्मसे प्रथम शरीर धारी जो हैं उनको केवल जागर कहते हैं ॥ १९ ॥ और वेही पुनः जन्म पानेसे जाग्रत्स्वप्नरूप कार्य्य तथा सुषुप्तिरूप कारणमें संचरणशील और प्रौढताको प्राप्त होनेसे चिर जाग्रत् कहलातेहैं ॥ २० ॥

तएवदुष्कृतावेशाज्जडस्थावरतांगताः ॥ घनजाग्रत्तयाप्रोक्ताजाग्रत्सुघनतांगताः ॥ २१ ॥ येतुशास्त्रार्थतत्संगबोधिताबोधमागताः ॥ पश्यंतिस्वप्नवज्जाग्रज्जाग्रत्स्वप्नाभवंतिते ॥ २२ ॥ येतुसंप्राप्तसंबोधाविश्रांताःपरमेपदे ॥ क्षीणजाग्रत्प्रभृतयस्तेतुर्यांभूमिकांगताः ॥ २३ ॥ इतिसप्तविधोभेदोजीवानांकथितस्तव ॥ समुद्राणामिवमयाबुद्धाश्रेयःपरोभव ॥ २४ ॥ भ्रांतिंपरित्यजजगद्गणनात्मिकांत्वंबोधैकरूपघनतामलमागतोसि ॥ शून्यत्ववर्जितमशून्यतयाचमुक्तंतेनद्वयैक्यकविमुक्तवपुस्त्वमाद्यम् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवसप्तकप्रकारवर्णनं नाम पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—और वेही जीव दुष्कर्मके वशसे घनीभूत जाग्रतदशामें प्राप्त होनेसे घन जाग्रत् कहे गये हैं ॥ २१ ॥ और जो जीव शास्त्र तथा सज्जन महात्माओंसे बोधित होनेसे बोध (ज्ञान) को प्राप्त होगये हैं और जाग्रत्को स्वप्नवत् देखते हैं वे स्वप्न जाग्रत् कहलाते हैं ॥ २२ ॥ और जो पूर्णज्ञानको प्राप्त होनेसे परमपदमें विश्रांत हैं, और चतुर्थ पंचम तथा षष्ट भूमिकामें स्थित हैं वे क्षीण जाग्रत् कहेगयेहैं ॥ २३ ॥ हे रामजी! समुद्रोंके जलके तुल्य जीवोंके सातप्रकारके भेद मैंने तुमसे कहे, इनको जानकर उत्तरोत्तर श्रेष्ठ भूमिकाओंमें तुम तत्पर होओ ॥ २४ ॥ हे रामजी! जगत्की द्वैतबुद्धिरूप भ्रांतिको त्यागो, क्योंकि अब तुम पूर्ण बोधरूपको प्राप्त हो, इस हेतुसे द्वितीय आदिके अभावसे उससे व्यावृत्त ऐक्यके भी असंभव होनेसे द्वैत और ऐक्य, तथा शून्यता और अशून्यता धर्मसे भी वर्जित, तथा सब कल्पनाओंसे प्रथम अधिष्ठानभूत सन्मात्रही तुम शेष हो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवसप्तकप्रकारवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

ब्रह्मदृष्टिसे उत्पत्तिरहित, आत्मदृष्टिसे मिथ्या उत्पन्न, और ज्ञानसे निराकार जगत् जैसे भासताहै वह विषय ५१ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ कथंकेवलजाग्रत्त्वमकारणमनर्थकम् ॥ पराद्विकसतिब्रह्मन्गगनादिवपादपः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अकारणंमहाबुद्धेनकार्यमुपलभ्यते ॥ तज्जाग्रतःकेवलस्यनकश्चिदिहसंभवः ॥ २ ॥ तस्यातोसंभवादन्येजीवभेदाःसजीवकाः ॥ सर्वेनसंभवंत्येवकारणाभावविक्षताः ॥ ३ ॥ नेहप्रजायते किंचिन्नेहकिंचननश्यति ॥ उपदेश्योपदेशार्थंशब्दार्थकलनोदयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! आकाशसे वृक्षके तुल्य परब्रह्मसे विनाकारण और निरर्थक केवल जाग्रत् शरीरधारी जीव प्रथमही कैसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबुद्धे रामजी! तुम सत्य कहते हो विनाकारण कार्य्य नहीं होसकता तो केवल जाग्रत्की उत्पत्तिका कारण नहीं है ॥ २ ॥ उसके असंभव होनेसे कारणसे रहित सब अन्य भी जीवोंके भेद नहीं होसकते ॥ ३ ॥ हे रामजी! यथार्थमें इस ब्रह्ममें न कुछ उत्पन्न हो, और न नष्ट हो, किंतु शिष्यके उपदेशके लिये यह शब्द अर्थकी कल्पनाका उदय है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ कःकरोतिशरीराणिमनोबुद्ध्यादिचेतनैः ॥ कोमोहयतिभूतानिस्नेहरागादिबंधनैः ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नकश्चिदेवकुरुतेशरीराणिकदाचन ॥ नमोहयतिभूतानिकश्चिदेवकदाचन ॥ ६ ॥

अनाद्यंतावभासात्माबोधआत्मनिसंस्थितः ॥ नानापदार्थरूपेणकमूर्म्यादितयायथा ॥ ७ ॥ बाह्यंनविद्यतेकिंचिद्बोधःस्फुरतिबाह्यवत् ॥ उदेतिबोधहृदयाद्बीजादिवबरद्रुमः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! मनबुद्धि तथा चेतनके द्वारा भोगके साधन शरीरोंको कौन रचताहै और यह रागादि बंधनोंसे प्राणियोंको मोहित कौन करताहै ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! न तो कोई कभी शरीरोंको रचताहै और न कभी कोई प्राणियोंको मोहित करताहै ॥ ६ ॥ किंतु अनेक पदार्थरूपसे अनादि अनन्त बोधरूप परमात्मा अपने स्वरूपमें ऐसे स्थितहै जैसे जलतरंग आदि रूपसे ॥ ७ ॥ बाह्य पदार्थ कुछ नहीं है किंतु बोधही बाह्यरूपसे स्फुरित होताहै, आभ्यन्तरीय बोधरूप हृदयसे बोधमें बाह्य पदार्थ ऐसे उदय होताहै जैसे बीजसे वृक्ष ॥ ८ ॥

बोधस्यांतरिदंविश्वंस्थितमेवरघूद्वह ॥ स्तंभस्यांतर्यथाशालभंजिकाप्रकटीकृता ॥ ९ ॥ सबाह्याभ्यंतरात्मैकमनंतंदेशकालतः ॥ बोधामोदप्रसरणंजगदेवप्रबुद्ध्यताम् ॥ १० ॥ अयमेवपरोलोकोभाव्यतांवासनाक्षयः ॥ शाम्यतांपरलोकस्थंकाःकिलायांतिवासनाः ॥ ११ ॥ देशकालक्रियालोकरूपचित्तात्मसत्पदम् ॥ देशकालादिशब्दार्थरहितंनचशून्यकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रघुकुलतिलक रामजी ! बोधके भीतर यह संसार ऐसे स्थितहै जैसे खम्भेके भीतर प्रतिमा ॥ ९ ॥ देशकालसे अनन्त जो बोधहै उसके सुगन्धके बिस्तारके इस बाह्य तथा आभ्यन्तर जगत्को जानो ॥ १० ॥ वासनासे सिद्ध अन्य ब्रह्मलोक आदि इस परमात्माके भीतरही हैं, इसलिये वासनाके क्षयकी भावना करो, क्योंकि शांत ज्ञानियोंके हृदयमें परलोक आदिरूपसे यहांही स्थित आत्मामें परलोककी वासना नहीं आती ॥ ११ ॥ वह सत् आत्मपद देशकाल क्रिया, प्रकाशरूप तथा चित्तादि सहित, तथा देशकालादिके शब्दार्थसे रहितभी है परन्तु शून्य रूप नहीं है ॥ १२ ॥

पदेपदविदामेवतस्मिन्बोधगतिर्भवेत् ॥ द्रष्टॄणांशांतदृश्यानामेवान्येषांनराघव ॥ १३ ॥ येवैतरलगंभीरमहंतागर्त्तमाश्रिताः ॥ पश्यंतितेतमालोकंनकदाचनकेचन ॥ १४ ॥ चतुर्दशविधानंतभूतजातसुघुंघुमा ॥ जगद्दृष्टिरियंज्ञस्यशरीरावयवोपमा ॥ १५ ॥ कारणाभावतःसृष्टिर्नोदितानचशाम्यति ॥ यादृशंकारणंवास्यात्तादृग्भवतिकार्यकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिनकी दृष्टिमें दृश्य शांतहै ऐसे तत्ववेत्ता द्रष्टाओंकीही इस आत्मपदमें बोधकी गति है न कि अन्य की ॥ १३ ॥ और जो चंचल तथा गंभीर अहंकाररूप गढेमें गिरे हैं वे कदाचित् भी उस आत्मप्रकाशको नहीं देखसकते ॥ १४ ॥ चतुर्दश प्रकारके प्राणियोंके समूहसे घुंघुम शब्द सहित यह जगत् दृष्टि ज्ञानीके अपने देहके अवयवके समान भासती है ॥ १५ ॥ कारणके अभावसे ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सृष्टि न उदय होती है और न नष्ट होती है, अथवा जैसे सत् चित् निराकार रूप कारणहै वैसाही जगत्का कार्य्य भी है ॥ १६ ॥

यदिस्यात्कारणेकार्यंस्थितंकारणतास्यका ॥ कार्यमेवोपलंभात्तदसद्धेमवेदनात् ॥ १७ ॥ सौम्यस्यांतर्यथांभोधेरूर्म्यावर्तादयःस्थिताः ॥ ब्रह्मण्यसंभवक्षोभेजगच्चित्तादयस्तथा ॥ १८ ॥ सर्वात्मैवामलंब्रह्मपिंडएकइवस्थितम् ॥ नानाभांडात्महेमैवयथांतःस्थितरूपकम् ॥ १९ ॥ स्वप्नकालेस्वप्नएवजाग्रद्दयग्रापरिग्रहात् ॥ जाग्रत्कालेजाग्रदेवस्वप्नःसत्यावबोधतः ॥ २० ॥

अर्थ—यदि कारणमें कार्य्य उसी रूपसे स्थितहै तो इसकी कारणता क्या रही, क्योंकि कुण्डलआदि कार्य्यमें सुवर्णमात्रकी प्राप्ति होनेसे कार्य्य असतहै ॥ १७ ॥ जैसे शांत समुद्रके भीतर तरंग आवर्त्त आदि स्थितहैं; ऐसेही क्षोभरहित ब्रह्ममें जगत् तथा चित्त आदि स्थितहैं ॥ १८ ॥ जैसे नानाप्रकारके पात्र रूपमें एक मृत्पिंड और नानाप्रकारके आभूषणोंमें एक सुवर्णपिंड स्थितहै ऐसेही अनेकरूप जगत्में सब रूप एक निर्मल ब्रह्मपिंड स्थितहै ॥ १९ ॥ जैसे मृत्पिंड देशामें घटभी पिंडरूप और घटदशामें पिंडभी घटरूपसे एकही दर्शनहै, ऐसेही ज्ञानियोंको मनके अपरिग्रहसे इस जगत् प्रपंचके स्वप्नकालमें जाग्रत्स्वप्न, और जाग्रत्कालमें स्वप्न जाग्रत्रूपसे जगत् सत्यके ज्ञानसे भासताहै ॥ २० ॥

चित्तमात्रतयाबुद्धंमृगतृष्णांबुवत्स्थितम् ॥ जाग्रत्स्वप्नत्वमायातिविचारविकलीकृतम् ॥ २१ ॥ सम्यग्ज्ञानेनभूतानिज्ञस्यदेहतयासह ॥ पीठबंधंविमुंचंतिगतकालइवांबुदाः ॥ २२ ॥ यथागलितुमारब्धोघनोगगनतामियात् ॥ तथासत्यावबोधेनशाम्येत्स्वात्मग्रहंजगत् ॥ २३ ॥ शरदभ्रवदालूनामृगतृष्णांबुवत्तथा ॥ पुनःसंस्पृश्यमानैवबोधाद्गलतिदृश्यता ॥ २४ ॥

अर्थ—ज्ञानसे मर्दित, और मृगतृष्णाके समान स्थित जाग्रत् चित्तमात्र रूपसे ज्ञात होनेपर स्वप्नके समान होजाताहै ॥ २१ ॥ और आत्माका सम्यक् ज्ञान होनेसे ज्ञानीके लिये देहसहित सम्पूर्ण भूत अपने कारण चित्तकोभी ऐसे त्यागते हैं जैसे वर्षाकालके बीतनेपर मेघ ॥ २२ ॥ जैसे नाशदशामें प्राप्त मेघ आकाशरूपताको प्राप्त होते हैं ऐसेही सत्यके ज्ञानसे अहंकारसहित जगत्भी शांत होजाताहै ॥ २३ ॥ आत्माके ज्ञानसे पुनः स्पर्श आदिसे अनुभव करनेपर यह दृश्यता ऐसे गलित होती है जैसे शरत्कालका मेघ वा मृगतृष्णाका जल ॥ २४ ॥

यथादीप्तानलेलीनंसुवर्णंघृतमिंधनम् ॥ एकतांयातिविज्ञानेतथाभुवनचित्तदृक् ॥ २५ ॥ बोधेनतनुता मेतिपिंडबंधोजगत्त्रये ॥ पिशाचबुद्धिःसदनेबोधितस्ययथाशिशोः ॥ २६ ॥ बोधस्यानंतरूपस्यस्वय मेवात्मनात्मनि ॥ जगच्चित्तादिताभातापिंडबंधःकिलात्रकः ॥ २७ ॥ बोधाबोधनमेवेदंजगच्चित्तमिवो दितम् ॥ तदेवास्तंगतंबोधात्पिंडबंधस्यकास्तिता ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे प्रदीप्त अग्निमें लीन सुवर्ण, तथा घृत और इन्धन एकरूप होजाते हैं ऐसेही सत्यज्ञानमें यह संसार और जगत्आदिकी दृष्टि ॥ २५ ॥ जैसे ज्ञानयुक्त बालककी गृहमें पिशाच बुद्धि नष्ट होजाती है ऐसेही ज्ञानसे तीनों लोकका पिंडबन्ध (साकारता) सूक्ष्म होजाती है ॥ २६ ॥ अनन्तरूप इस बोधका निजस्वरूपमें स्वयं जगत् चित्तआदि रूप भान होताहै, तब इस बोधरूपमें साकाररूपता कहां है ॥ २७ ॥ आत्माका अज्ञानही जगत् चित्तआदि रूपसे उदित है जब आत्मज्ञानसे अज्ञानही नष्ट होगया तब इस साकाररूपकी आस्तिता कहां रही ॥ २८ ॥

जहातिपिंडकाठिन्यंजाग्रत्स्वप्नावबोधतः ॥ परांपेलवतामेतिहेमद्रुतमिवाग्निना ॥ २९ ॥ यथास्थितंबो धएवघनतामिवगच्छति ॥ विनैवदेशकलाभ्यांतोविनिर्मायिहेमवत् ॥ ३० ॥ जाग्रत्येवंविचारेणस्वप्ना भेपेलवेस्थिते ॥ क्षीयमाणेशरत्कालेइवैतितनुतांरसः ॥ ३१ ॥ परांपेलवतांयातादृश्यलक्ष्म्यःस्थिता अपि ॥ स्वप्नाइवपरिज्ञातानस्वदंतेविवेकिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नदशामें जाग्रत् अपनी कठिनताको त्यागताहै अग्निसे सुवर्ण अति सूक्ष्मताको प्राप्त होताहै ऐसेही ज्ञानदशामें यह जगत् सूक्ष्म होजाताहै ॥२९॥ बोधरूप आत्मा देशकालके बिना जाग्रत् और स्वप्नको रचकर ऐसे घनरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार विचारसे स्वप्नके तुल्य जाग्रत्के स्थित होनेपर भोगोंमें अनुराग ऐसे सूक्ष्म होजाता है जैसे शरत्कालके बीतनेपर जल ॥ ३१ ॥ और विवेकी जनकी दृष्टिमें विद्यमानभी दृश्यकी शोभा तुच्छ होजाती है, और परिज्ञात स्वप्नके तुल्य दृश्यपदार्थ उसको नहीं रुचते ॥ ३२ ॥

क्वकिलस्वात्मविश्रांतिःक्वैतद्विषयवेदनम् ॥ सुषुप्तजाग्रतोरैक्यंभ्रांताभ्रांतात्मनोर्भवेत् ॥ ३३ ॥ चित्त मात्रेभ्रांतिमात्रेस्वप्नमात्रात्मनिस्थिते ॥ जगतीहपदार्थेभ्यःसत्यबुद्धिर्निवर्त्तते ॥ ३४ ॥ कस्यस्वदंतेऽ सत्यानिकथमेवमहामते ॥ मृगतृष्णाजलानीवदृश्यान्यपिपुरःस्थितैः ॥ ३५ ॥ सत्यबुद्धौविलीनायांज गत्पश्यतिशांतधीः ॥ जालदीपांशुजालाभमपिंडात्मांबरात्मकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कहां तो आत्मसुखमें विश्रांति और कहां विषयोंका स्वाद, यदि तत्वज्ञानीकोभी विषयोंमें प्रीति हो तो जाग्रत् और सुषुप्ति तथा ज्ञानी और अज्ञानीकी भी एकता होजाय ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जगत्के चित्तमात्र सिद्ध होने तथा स्वप्नके तुल्य आत्मामें स्थित होनेपर पदार्थोंमें सत्यता बुद्धि नष्ट होजाती है ॥ ३४ ॥ हे महामते रामजी ! मृगतृष्णाके जलके समान सन्मुख स्थित भी असत्य दृश्यपदार्थ किस विवेकीको और कैसे स्वादिष्ट होसकते हैं ॥ ३५ ॥ सत्यता बुद्धि नष्ट होनेपर शांत चित्त विवेकी इस जगत्को झरोखेमें प्रविष्ट दीपकी किरणके सदृश प्रकाशरूप होनेपर भी आकाशरूपही देखताहै ॥ ३६ ॥

जाग्रतोवस्तुतःशून्यात्परिज्ञातान्निवर्त्तते ॥ चित्तभ्रमात्मनोभ्रांतिरूपास्वादनभावना ॥ ३७ ॥ यदव स्त्विविज्ञातंतत्रोपादेयताकुतः ॥ केनस्वप्नंपरिज्ञायस्वप्नहेमाभिगम्यते ॥ ३८ ॥ स्वप्नादिवपरिज्ञाता द्रसोदृश्यान्निवर्त्तते ॥ द्रष्टृदृश्यदशादोषग्रंथिच्छेदःप्रवर्त्तते ॥ ३९ ॥ नीरसःशांतमननोनिर्वाणाहंकृ तिःकृती ॥ वीतरागोनिरायासःशांतस्तिष्ठतिबुद्धधीः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे जाग्रत् पुरुषकी स्वप्नके पदार्थोंसे आस्वादकी भावना निवृत्त होजाती है ऐसेही चित्तके भ्रममात्रसे सिद्ध जगत्के पदार्थोंमेंसे भ्रमरूप स्वादकी भावना ज्ञानीकी निवृत्त होजाती है ॥ ३७ ॥ जो वस्तु मिथ्या ज्ञात होजाती है उसमें ग्राह्य बुद्धि कैसे होसकती है, क्योंकि स्वप्नमय जानके स्वप्नके सुवर्णको कौन लेना चाहताहै ॥ ३८ ॥ परिज्ञात स्वप्नके तुल्य दृश्य पदार्थोंसे ज्ञानीकी रागबुद्धि निवृत्त होजाती है और द्रष्टा तथा दृश्य दशाके दोषोंकी ग्रन्थियोंका उच्छेद उसका आरंभ होताहै ॥ ३९ ॥ स्त्री,पुत्र आदिमें स्नेहरहित, शांत चित्त, अहंकारसे रहित, विषयोंमें अनुरागरहित और सांसारिक प्रयत्न शून्य ज्ञानीपुरुष स्थित रहताहै ॥ ४० ॥

रसेनीरसतांयातेवासनाप्रविलीयते ॥ शिखायांप्रविलीनायांप्रदीपस्यांशवोयथा ॥ ४१ ॥ बोधाद्दीपांशु जालाभमघनंव्योमदृश्यते ॥ भ्रांतिरूपंजगत्कृत्स्नंगंधर्वनगरंयथा ॥ ४२ ॥ नैवात्मानंनचाकाशंनशून्य नचवेदनम् ॥ अत्यंतपरिणामेनपश्यन्पश्यतितत्पदम् ॥ ४३ ॥ यत्रनात्मानशून्यंचनजगत्कलनानच ॥ नचित्तदृश्योदयधीःसर्वंचास्तियथास्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे शिखाके नष्ट होनेपर दीपकी किरण नहीं रहती, ऐसेही भोगोंके नीरस होनेपर वासना निवृत्त होजाती है ॥ ४१ ॥ ज्ञानसे यह सब जगत् दीपके किरणके समान सूक्ष्म आकाशवत् तथा भ्रम सिद्ध गन्धर्वनगरके तुल्य देख पडताहै ॥ ४२ ॥ सप्तभूमिकामें सर्वथा शुद्ध आत्मरूपमें परिणत परमपदको देखता हुआ ज्ञानी न अपनेको, न आकाशको, न शून्य और न किसी पदार्थके ज्ञानको अनुभव करताहै ॥ ४३ ॥ जिस परमपदमें न जीव है, न शून्य है, न जगत्की कल्पना है, और न चित्त तथा दृश्यके उदयकी बुद्धि है, किन्तु सब कुछ यथास्थित ब्रह्मरूपही है ॥ ४४ ॥

भूम्यादिताज्ञसंबुद्धाज्ञानादस्तमुपागता ॥ ज्ञस्यशून्यैवसंपन्नासंस्थितापिनविद्यते ॥ ४५ ॥ भवत्येक समाधानसौम्यात्माव्योमनिर्मलः ॥ तिष्ठत्यपगतासंगःस्थितएवाप्यसत्समः ॥ ४६ ॥ अस्तंगतमना मौनीनिरोधपदवीगतः ॥ तीर्णःसंसारजलधेःकर्मणामंतमागतः ॥ ४७ ॥ तनुभुवनगगनगिरिगणकर णपरंपरममज्ञानम् ॥ विगलतिगलितेतस्मिन्सकलमिदंविद्यमानमपि ॥ ४८ ॥ संशांतांतःकरणोग लितविकल्पःस्वरूपसारमयः ॥ परमशमामृततृप्तस्तिष्ठतिविद्वान्निरावरणः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांतियोगोपदेशोनामैकपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—अज्ञानीको साकारसिद्ध पृथिवी आदि ज्ञानसे बाधरूपताको प्राप्त होतेहैं, विद्यमान भी भूमिआदि ज्ञानीको शून्यरूपही सिद्ध है ॥ ४५ ॥ आकाशवत् निर्मल ज्ञानी केवल एक आत्मामें समाधिष्ठ होताहै, और संगरहित सत्भी असत्के तुल्य स्थित रहताहै ॥ ४६ ॥ मनसे वर्जित, मौन, निरोधदशाको प्राप्त, संसारसमुद्रसे पारंगत और सब कर्मोंके अन्तको प्राप्त ज्ञानीपुरुष स्थित रहताहै ॥ ४७ ॥ अण्डज, पिंडजआदि चारोंप्रकारके शरीर, उनके आधार चतुर्दशभुवन, उनके भी आधार आकाश सबके विहारस्थान पर्वतआदि, तथा सब साधनोंके भी उपादान कारण भूत अज्ञानही है उस अज्ञानके नष्ट होनेपर यह सब शरीर भुवनआदि अज्ञानीकी दृष्टिमें विद्यमानभी ज्ञानीके अर्थ अविद्यमानही हैं ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सब विकल्पोंसे शून्य, शांतअन्तःकरण, स्वरूपकी सारतामय, और परम अमृतमय आत्मानन्दसे सदा तृप्त ज्ञानीपुरुष अपने भूमानन्दमें स्थित रहताहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांतियोगोपदेशो नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस ५२ के सर्गमें नैयायकोंके तर्कोंके खण्डनोंसे कूटस्थ परमात्माका अनिर्वचनीय जगद्भाव समर्थन किया गया है ॥

श्रीरामउवाच ॥ बोधोजगदिवाभातिमुनेयेनक्रमेणह ॥ तंक्रमेणक्रमंब्रूहिभूयोभेदनिवृत्तये ॥ १ ॥ श्री वसिष्ठउवाच ॥ वृक्षस्येवविमूढस्ययदृष्टंतत्स्वचेतसि ॥ यन्नदृष्टेनतच्चित्तेभवत्यल्पतरस्मृतेः ॥ २ ॥ भव्यःपश्यतिशास्त्रार्थमेवपूर्वापरान्वितम् ॥ नदृष्टिविषयंवस्तुयत्पश्यतिकरोतितत् ॥ ३ ॥ भावानुष्ठा ननिष्ठःसन्शास्त्रार्थैकमनामुनिः ॥ भूत्वोपदेशंत्वमिमंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे मुने! बोधरूप चिदात्मा जिस क्रमसे जगत्के सदृश भासताहै उस क्रमको भेदकी निवृत्तिके लिये पुनः कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! मूलवृक्षके पत्र पुष्प फलादि नानाआकारोंसे युक्तके तुल्य अज्ञआत्माकी दृष्टिमें जो है वही उसके चित्तमें भी है और जो दृष्टिमें नहीं वह चित्तमें भी नहीं है अतएव जिसकी न्यूनतर दृष्टि है उसकी स्मृत्ति भी न्यूनतर है ॥ २ ॥ और जो विवेकी है वह पूर्वापरशास्त्रके अनुसारही देखता और करताहै, और शास्त्रोंसे निषिद्ध नेत्रके समीपस्थ विषयको भोग्यरूपसे नहीं देखता और न उसके लिये कुछ करताहै ॥ ३ ॥ इसीलिये तुमभी अपने चित्तकी शुद्धिके अनुकूल कर्मोंमें तत्पर तथा शास्त्रोंके अनुकूल चित्त होके श्रवण भूषण इस वृत्तान्तको सुनो ॥ ४ ॥

इयंदृश्यभरभ्रांतिर्नन्वविद्येतिचोच्यते ॥ वस्तुतोविद्यतेनैषातापनद्यांयथापयः ॥ ५ ॥ उपदेश्योपदेशार्थमेनांमद्उपरोधतः ॥ सत्यमिवक्षणंतावदाश्रित्यश्रूयतामिदम् ॥ ६ ॥ कुतएषाकथंचेतिविकल्पाननुदाहरन् ॥ नेदमेषानचास्तीतिस्वयंज्ञास्यसिबोधतः ॥ ७ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वसर्वप्रकाराढ्यंकल्पांतेतद्विनश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—इस दृश्य समूहकी भ्रांतिको अविद्या कहते हैं और यथार्थमें मृगतृष्णाकी नदीमें जलके सदृश यह अविद्या भी नहीं है ॥ ५ ॥ उपदेश्य तथा उपदेशके अर्थ मेरे अनुरोधसे इसको क्षणभरके लिये सत्यमानके इस बातको सुनो ॥ ६ ॥ यह कैसे है और कहांसे है इत्यादि विकल्प न करतेहुये मेरे वक्ष्यमाण उपदेशको सुनो, पश्चात् जैसे यह जगत् और अविद्या नहीं है इस वार्ताको तुम स्वयं जान जाओगे ॥ ७ ॥ जो कुछ यह सब स्थावरजंगमरूप जगत् सब प्रकारसे पूर्ण देखपडताहै यह सब कल्पके अन्तमें नष्ट होताहै ॥ ८ ॥

अस्यभागविभागात्मानाशोवश्यमवारितः ॥ बिंदुनाबिंदुनाबोधेउद्धृतस्यास्तिहिक्षयः ॥ ९ ॥ एवंस्थितेद्रव्यनाशेब्रह्मणस्तन्मयत्वतः ॥ नानंतत्वंनचास्तित्वंनचैवसंभवत्यलम् ॥ १० ॥ मदशक्तिरिवज्ञानमितिनास्मासुसिद्ध्यति ॥ देहोविज्ञानतोस्माकंस्वप्नवन्नतुतत्त्वतः ॥ ११ ॥ नश्यत्येवचदृश्यश्रीःसैवनान्यैवनैवच ॥ इत्थंभवेत्समुचितंकृतंशास्त्रंचनान्यथा ॥ १२ ॥

अर्थ—इस जगत्के भूलोक आदि भागोंके विभाग करनेसे नाश अवश्य है क्योंकि एक २ बिंदु निकालनेसे घटके जलका नाश अवश्य होताहै ॥ ९ ॥ ऐसा होनेपर द्रव्यका नाश होनेसे तन्मय ब्रह्मका अनन्त और अस्तिताभी नहीं होसकती, इस चिन्मात्र तथा निरवयव ब्रह्मका अवयव जगत् नहीं बन सकता ॥ १० ॥ और मदिराकी शक्तिके समान ज्ञान पृथिवी आदि तथा हम लोगोंके देहोंमें नहीं सिद्ध होसकता क्योंकि स्वप्नके सदृश हमारा देह ज्ञानकेही आधीन है न कि वास्तविक ॥ ११ ॥ यह दृश्यकी शोभा वही है वा अन्य है यह नहीं कह सकते, किन्तु यह अनिर्वचनीय अविद्या सिद्ध नष्ट अवश्य होती है इसी प्रकार अविद्याके बाधद्वारा जगत्के बाधमें शास्त्र सफल होताहै अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

सैवेतीत्यसमुल्लेखंकथंनष्टस्यसंभवः ॥ तद्रूपान्येतियुक्तंस्यादनुभूतानुगावयम् ॥ १३ ॥ सैवव्योमतयैवासीदित्यसत्सैवसाकथम् ॥ तथैवव्योमसंस्थाचेन्नाशंतर्हिनसागता ॥ १४ ॥ कार्यकारणयोरेकरूपतैवंयदातदा ॥ कार्यकारणताभावादैक्यमेवास्मदागमः ॥ १५ ॥ शून्यत्वमुपलंभत्वंयद्गतंनष्टमेवतत् ॥ अन्यस्तर्हिभवेन्नाशःकीदृशःकिलकथ्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पूर्वकल्पमें जो संसारकी शोभा नष्ट हुई वही पुनः प्रकट होती तो वही है वा अन्य है यह कथन होता परंतु नष्टकी उत्पत्ति केवल अनुभवके अनुगामी हम नहीं मानसकते, क्योंकि नष्टकी उत्पत्ति कैसे होसकती है ॥ १३ ॥ साकार जगत्की शोभा प्रलयमें आकाशरूपथी यह असत् है, क्योंकि निराकार साकार कैसे होसकताहै, और यदि आकाशमें स्थित पूर्व साकाररूपताको प्राप्त हुई तो उसका नाश नहीं होसकता ॥ १४ ॥ और यदि सृष्टिमें प्रलय स्वीकारसे कार्य्य कारणकी एकता माननेसे प्रलयस्थ अव्याकृत कारण और सृष्टिरूप कार्य्यकी एकता होगई, क्योंकि कार्य्यका कारण भाव होनाही हमारे सिद्धान्तमें एकता है ॥ १५ ॥ और जो दृष्टिगत होके भी शून्यरूप हो वही नाश है और यदि इससे विलक्षण नाश हो तो कहो व कैसे होसकताहै ॥ १६ ॥

नष्टंभूयस्तदुत्पन्नमितियत्प्रत्ययेतिकः ॥ नश्यत्यवश्यंतेनेदंपुनरन्यत्प्रवर्त्तते ॥ १७ ॥ मध्येमध्येयदुत्सेधफलाद्यवयवैर्विकिका ॥ आदेहंबीजसत्तास्तिकार्यकारणताकुतः ॥ १८ ॥ देशकालक्रियात्मैकंयदिदमिहस्थितम् ॥ बीजमेवैककर्मातोनघटःपटकार्यकृत् ॥ १९ ॥ सर्वदर्शनसिद्धांतेनास्तिभेदोनवस्तुनि ॥ परमार्थमयेतेनविवादेनकिमत्रनः ॥ २० ॥

अर्थ—और वह नष्ट होके पुनः उत्पन्न होताहै इसको कौन मानेगा, इसलिये यह अवश्य नष्ट होताहै और पुनः पुनः अन्य प्रवृत्त होताहै ऐसा कहो ॥ १७ ॥ और यदि यह कहो कि जैसे एक वृक्षमें पत्र, पुष्प तथा शाखा आदिका मध्य २ में भेद रहनेपर भी मूलसे लेके अग्रभागपर्य्यन्त वृक्ष देहकी सत्ता एकही है ऐसेही उत्पत्ति स्थिति आदि विकारोंके भेद होनेपर प्रलयके पश्चात् पुनः उत्पन्न होनेसे संसारकी सत्ता एकही है सो नहीं, क्योंकि पत्र पुष्प तथा फल शाखा आदि वृक्षमें मूलसे लेके अग्रभागपर्य्यंत एकही बीज सत्ता है अन्यथा कार्य्य कारण भाव नहीं होसकता ॥ १८ ॥ देशकाल तथा क्रियात्मक निजस्वभावमें स्थित एक सन्मात्रही सबका बीज है वही मायासे एक

स्वभावमें स्थित भी सब कार्य्य करताहै द्रव्यादिमेंसे किसीका स्वभाव माननेसे नानाकार्य्य न होंगे क्योंकि घट पटका कार्य्य नहीं करता ॥ १९ ॥ इसलिये सर्व दर्शन सिद्धान्तमें वस्तुकी एकतामें कार्य्य भेद नहीं है और परमार्थ वस्तुमें भी भेद नहीं है, इसलिये सब दर्शनोंसे विरुद्ध वादीके संग विवाद करनेसे हमें क्या प्रयोजन ॥ २० ॥

इदंशांतमनाद्यंतंतद्रूपत्वाद्विचारतः ॥ व्योमाभंबोधतामात्रमनुभूतिप्रमाणतः ॥ २१ ॥ यथैतन्नानुभूतं सद्यथैतदनुभूयते ॥ यथैतत्सिद्धिमाप्नोतितदिदंकथ्यतेक्रमात् ॥ २२ ॥ महाकल्पांतउन्नष्टेसर्वस्मिन् दृश्यमंडले ॥ आमहादेवपर्यंतंसमनोबुद्धिकर्मणि ॥ २३ ॥ व्योमन्यपिशमंयातेकालेप्यकलितस्थितौ ॥ वायावपित्वपगतेतेजस्यत्यंतमस्थिते ॥ २४ ॥

अर्थ—विचार तथा अनुभव प्रमाणसे यह सब शांत अनादि, अनंत और आकाशके तुल्य निर्मल केवल बोधमात्र परमात्माही शेष रहताहै ॥ २१ ॥ जैसे अनुभूत परमात्मा अनुभवमें आताहै, और जैसे इसका अनुभव सिद्ध होताहै वह सब क्रमसे वर्णन करताहूं ॥ २२ ॥ हे रामजी! महाकल्पके अंतमें महादेवपर्य्यन्त, तथा मन बुद्धि और सब कर्मोंसहित इस दृश्य मंडलके नष्ट होनेपर केवल बोधमात्र आत्मा शेष रहताहै ॥ २३ ॥ और आकाश, काल, वायु तथा तेजके सर्वथा शांत होनेपर केवल बोधमात्र आत्मा शेष रहताहै ॥ २४ ॥

तमस्यपिगतेध्वंसंवार्यादौसुचिरंक्षते ॥ अलमंतमनुप्राप्तेसर्वशब्दार्थसंचये ॥ २५ ॥ शिष्यतेशांतबोधात्मसदच्छंबाध्यवर्जितम् ॥ अनादिनिधनंसौम्यंकिमप्यमलमव्ययम् ॥ २६ ॥ अवाच्यमनभिव्यक्तमतींद्रियमनामकम् ॥ सर्वभूतात्मकंशून्यंसदसच्चपरंपदम् ॥ २७ ॥ तन्नवायुर्नचाकाशंनबुद्ध्यादिनशून्यकम् ॥ नकिंचिदपिसर्वात्मकिमप्यन्यत्परंनभः ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा अंधकारके ध्वंस होनेपर, जल, पृथिवी आदिके भी नष्ट होनेपर, और संपूर्ण शब्दार्थके समूहके अंत होनेपर ॥ २५ ॥ आदि अंत रहित, सौम्य, अविनाशी, और बाधसे वर्जित वाणीका अविषय सन्मात्र केवल निर्मल बोधस्वरूप आत्माही शेष रहताहै ॥ २६ ॥ वाणीका अविषय, इन्द्रियोंसे, नामरूप शून्य, सर्वभूतस्वरूप, सबसे रहित, अन्य पदार्थ न होनेसे असत्के तुल्य, और सन्मात्र वह परंपद है ॥ २७ ॥ वह परमात्मा न वायु है, न आकाश है, न मन बुद्धि आदि है न शून्य है कुछ नहीं और सर्वरूप अनिर्वचनीय यह चिदाकाश है ॥ २८ ॥

तद्विदातत्पदस्थेनतन्मुक्तेनानुभूयते ॥ अन्यैःकेवलमाम्नातैरागमैरेववर्ण्यते ॥ २९ ॥ नकालोनमनोनात्मानसंन्नासन्नदेशादिक् ॥ नमध्यमेतयोर्नांतंनबोधोनाप्यबोधितम् ॥ ३० ॥ किमप्येवतदत्यच्छंबुद्ध्यतेबोधपारगैः ॥ शांतसंसारविसरैःपरांभूमिमुपागतैः ॥ ३१ ॥ प्रतिषिद्धामयैतेतुयेर्थाःसर्वत्रतेस्थिताः॥ अस्मद्बुद्ध्यापरिच्छेद्याःसौम्यांभोधेरिवोर्मयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—उस पदका ज्ञाता, सब कल्पनाओंसे मुक्त तत्वज्ञानीही इस आत्माका अनुभव करता है, और अन्य केवल वर्णित आगमोंसे इसका कथनमात्र करते हैं ॥ २९ ॥ यह आत्मा न काल है, न मन है, न जीव है न सत् न असत्, न देश न दिक् न देशकालका मध्य न अंत, न अपने स्वरूपसे भिन्न बोध और न अबोध है ॥ ३० ॥ किंतु बोधके पारंगत, संसारके विस्तारसे रहित, और पंचम षष्टआदि भूमिकामें प्राप्त महात्माजन इस विलक्षण अति निर्मल आत्माका अनुभ करते हैं ॥ ३१ ॥ शांत समुद्रके तरंगके सदृश हमारी बुद्धिसे परिछिन्न और सब श्रुतियोंमें प्रतिषेध्यरूपसे स्थित जो अर्थ हैं उन्हींका निषेध मैंने तुमसे आत्माके बोधके लिये कियाहै ॥ ३२ ॥

यथास्थितंस्थिताःसर्वेभावास्तत्रयथातथा ॥ अनुत्कीर्णामहास्तंभेविविधाःशालभंजिकाः ॥ ३३ ॥ एवंतत्रस्थिताःसर्वेभावाएवंचनस्थिताः ॥ असर्वात्मैवसर्वात्मतदेवनतदेवच ॥ ३४ ॥ पदंयथैतत्सर्वात्मसर्वार्थपरिवर्जितम् ॥ यथातत्रचपश्यंतितत्रैकपरिणामिनः ॥ ३५ ॥ सर्वंसर्वात्मकंचैवसर्वार्थरहितं पदम् ॥ सर्वार्थपरिपूर्णंचतदाद्यंपरिदृश्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—और निजस्वरूपमें स्थित परमात्मामें सब पदार्थ ऐसे स्थितहैं जैसे महास्तंभ (खंभे) में विना खुदी हुई प्रतिमा ॥ ३३ ॥ अधिष्ठानरूपसे सब पदार्थ उसमें स्थित हैं और अपने स्वरूपसे नहीं हैं, वह परमात्मा सर्वरूपभी है और नहींभी है पदार्थरूप भी है और नहीं भी है ॥ ३४ ॥ जैसे जिस पाषाणकी शिलामें प्रतिमा नहीं खुदी हैं उसमें प्रतिमाओंका अस्तिनास्ति दोनों व्यवहार होसकताहै ऐसेही योगीजन अपनी इच्छाके अनुसार सब पदार्थमय और सबसे वर्जितभी देखते हैं ॥ ३५ ॥ योगीजन इस सबके आदि मूल आत्मपदको सर्वरूप, सर्वात्मक, सब अर्थसे रहित, और सब अर्थोंसे पूर्ण भी देखतेहैं ॥ ३६ ॥

तवैतावन्महाबुद्धेसर्वार्थोपशमात्मकम् ॥ नसम्यग्ज्ञानमुत्पन्नंसंशयोत्रनिदर्शनम् ॥ ३७ ॥ यःप्रबुद्धो निराभासंपरमाभासमागतः ॥ स्वच्छांतःकरणःशांतस्तंस्वभावंसपश्यति ॥ ३८ ॥ अयंत्वमहमित्या दित्रिकालगजगद्भ्रमः ॥ तत्रास्तिहेमपिंडांतरिवरूपकजालकम् ॥ ३९ ॥ हेमपिंडाद्यथाभांडजालंनानो पलभ्यते ॥ तथानलभ्यतेभिन्नंपरमार्थघनाज्जगत् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे रामजी ! पूर्वोक्त आपके समाधिकालपर्य्यन्त सम्यक् ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ, इसमें संदेहोंका होनाही प्रमाण है ॥ ३७ ॥ जो ज्ञानी सब दृश्योंके आभाससे रहित परम प्रकाशरूपको प्राप्त है तथा स्वच्छ और शांत अंतःकरण है वह प्रकाशमय शांत आत्मस्वभावको देखताहै ॥ ३८ ॥ यह तुम, मैं इत्यादि त्रिकालका जगत् भ्रम उस परमात्मामें ऐसे है जैसे सुवर्णके पिंडमें आभूषण तथा मुद्राआदिका समूह ॥ ३९ ॥ जैसे सुवर्णके पिंडसे भिन्न उसके आभूषण तथा पात्रआदि नहीं प्राप्त होते ऐसेही परमार्थ घन परमात्मासे भिन्न यह जगत् नहीं उपलब्ध होता ॥ ४० ॥

सर्वदैवहिभिन्नात्मास्वांगभूतोपलंभहृक् ॥ सजगद्वैतमेवेदंहेमेवांगदरूपकम् ॥ ४१ ॥ रिक्तंदेशादि शब्दार्थैर्देशकालक्रियात्मकम् ॥ यथास्थितमिदंतत्रसर्वमस्तिनवास्तिच ॥ ४२ ॥ यथोर्म्यादिसमेतोये चित्रंचित्रकृदीहते ॥ भांडवृंदंमृदःपिंडेतथेदंब्रह्मणिस्थितम् ॥ ४३ ॥ तथैतदत्रनोभिन्नंनाभिन्नंनास्ति चास्तिच ॥ नित्यंतन्मयमेवाच्छंशांतेशांतमिदंतथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—और निजस्वरूपभूत परमात्मा द्वैत मिथ्यानाम रूपमय जगत्से सर्वदा ऐसे भिन्न है जैसे कल्पित अंगदादि आभूषणोंके नामसे सुवर्ण ॥ ४१ ॥ देशकाल क्रिया आदिके शब्दार्थोंसे रहित, तथा देशकाल क्रियामय वह आत्मा है, और यथास्थित ये सब जगत् अधिष्ठानरूपसे उसमें हैं और अपने रूपसे नहीं है ॥ ४२ ॥ जैसे शांत समुद्रमें तरंगआदि और मृत्पिंडमें सब मृत्तिकाके पात्रोंका समूह है ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् है ॥ ४३ ॥ जैसे मृत्तिकाके पिंडमें अभिन्नरूपसे सब पात्रहैं और भिन्नरूपसे नहीं हैं, ऐसेही ज्ञानसे नित्य शांत आत्मामें तन्मय शांत यह जगत्है और पृथक् नहीं है ॥ ४४ ॥

अनिखातैवभातीयंत्रिजगच्छालभंजिका ॥ स्वरसस्यैवदृश्यत्वमिताब्रह्मणिदारुणि ॥ ४५ ॥ निखाता दृश्यतांयांतिस्तंभस्थाःशालभंजिकाः ॥ अस्मिन्नक्षोभ्यएवांतस्तरंगाःसृष्टिदृष्टयः ॥ ४६ ॥ सरस्यति रसेभांतिचिद्घनामृतवृष्टयः ॥ अविभावेविभागस्थाअक्षोभेक्षुभिताइव ॥ अविभाताविभांतीवचिद्घने सृष्टिदृष्टयः ॥ ४७ ॥ परमाणौपरमाणावत्रसंसारमंडलम् ॥ विभातिभासुरारंभंनविभातिचकिंचन ॥ ॥ ४८ ॥ आकाशकालपवनादिपदार्थजातमस्यांगमंगरहितस्यतदप्यनंगम् ॥ सर्वात्मकंसकलभाव विकारशून्यमप्येतदाहुरजरंपरमार्थतत्वम् ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—महास्तंभमें बिना खुदी हुई प्रतिमाके तुल्य यह त्रिलोकी रूप मूर्ति ब्रह्मरूप काष्टमें साक्षीचेतनकी दृष्टिमें भासती है॥४५॥ खंभेमें तो खोदनेसे प्रतिमा दृष्टिमें आती है परन्तु ब्रह्ममें तो उसके शांत क्षोभरहित स्थित रहनेहीपर तरंगरूप सृष्टिके विवर्त दृष्टिगत होते हैं ॥ ४६ ॥ निरतिशय आनन्दरूप जलसे पूर्ण चित्रूपी सरोवरमें चिन्मय मेघकी अमृतमय वृष्टिके तुल्य ये सृष्टिकी दृष्टियां भासती हैं, और विभाजक धर्मोंसे शून्य, तथा क्षोभरहित चिद्घन ब्रह्ममें ये सृष्टियोंके समूह विभक्त तथा क्षुब्धके समान न भासतेहुये भी अविद्यासे भासते हैं ॥ ४७ ॥ इस चिद्घन ब्रह्ममें परमाणु परमाणुमें यह संसारमण्डल प्रकाशमय आरंभसहित भासताहै और यथार्थमें कुछभी नहीं भासता ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! अंगरहित निराकार इस परमात्माके जो आकाशकाल तथा पवनआदिको जो अंगरूपसे वर्णन किया है वहभी मिथ्या और अधिष्ठानमात्र होनेसे निराकारही है, इसप्रकार यह अजर अमर परमार्थमय आत्मतत्व यद्यपि सब भाव विकारोंसे शून्य है तथापि सब पदार्थोंकी अध्यारोप दृष्टिसे सब श्रुतियां इसको सर्वरूप कहती हैं ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

प्रातिभासिक भेदयुक्त अध्यारोपित विषयोंमें जो कुछ सत्ता है वह ब्रह्मरूपही है यह विषय ५३ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीरामउवाच ॥ यथाचेत्येचेतनतायथाकालेचकालता ॥ यथाचव्योमताव्योम्नियथाचजडताजडे ॥१॥ यथावायौचवायुत्वमभूतादावभूतता ॥ यथास्पंदात्मनिस्पंदोयथामूर्तेचमूर्त्तता ॥ २ ॥ यथाभिन्नेच भिन्नत्वंयथानंतेह्यनंतता ॥ यथादृश्येचदृश्यत्वंयथासर्गेषुसर्गता ॥ ३ ॥ एतत्क्रमेणहेब्रह्मन्वदमेवद वदतांवर ॥ आदितःप्रतिपाद्यैवबोध्यंतेह्यल्पबोधिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! जैसे स्मृतिके योग्य पदार्थोंमें स्मरण विषयता कालमें कालता, आकाशमें आकाशता, जडमें जडता, वायुमें वायुता, भूतभविष्यत् तथा वर्तमानमें भूतभविष्यत् तथा वर्तमानता, स्पंदमें स्पंदता, मूर्तमें मूर्तता, भिन्नमें भिन्नता, अनन्तमें अनन्तता, दृश्यमें दृश्यता, और सृष्टियोंमें सृष्टिरूपताहै ॥१॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ यह सब क्रमसे कृपाकरके मुझसे कहिये; क्योंकि अल्पज्ञ शिष्यको गुरुजनआदिसे सब पदार्थोंका प्रतिपादन करके बोधन करते हैं ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तदनंतमहाकाशंमहाचिद्घनमुच्यते ॥ अवेद्यचिद्रूपमयंशांतमेकंसमस्थिति ॥ ५॥ ब्रह्मविष्णवीश्वराद्यंतेमहाप्रलयनामनि ॥ शब्दार्थरूढिमापन्नेयच्छुद्धमवशिष्यते ॥ ६ ॥ सर्गस्यकारणं तत्रनकिंचिदुपपद्यते ॥ मलमाकारबीजादिमायामोहभ्रमादिकम् ॥ ७ ॥ केवलंशांतमत्यच्छमाद्यंतप रिवर्जितम् ॥ तद्विद्यतेयत्रकिलखमपिस्थूलमश्मवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जो सब वस्तुओंकी सत्ताका आधार है, वह अनंत महाकाश, अवेध चिन्मय, शांत, सम, एक सर्वत्र समानरूपसे वर्तमान और महाचिद्घन ब्रह्मही कहा गया है ॥ ५ ॥ महाप्रलयके अंतमें ब्रह्मा विष्णु और महादेवकेभी शांत होनेपर, तथा सब शब्द और अर्थोंकेभी तिरोहित होनेपर जो शुद्ध सन्मात्र शेष रहताहै ॥ ६ ॥ उसमें उत्पत्तिके कारण जो मायामोह भ्रम पापआदि आकारवान् होनेके बीजहैं वे किंचित् कथंचित्भी नहीं हैं ॥ ७ ॥ वह तो केवल शांत अति निर्मल आदि अंत वर्जित सदा सन्मात्र है, जिस शुद्ध सन्मात्र पदमें आकाशभी पाषाणवत् स्थूल भान होताहै ॥ ८ ॥

नचनास्तीतितद्वक्तुंयुज्यतेचिद्वपुर्यदा ॥ नचैवास्तीतितद्वक्तुंयुक्तंशांतमलंतदा ॥ ९ ॥ निमिषेयोजनश तेप्राप्तायामात्मसंविदि ॥ मध्येतस्यास्तुयद्रूपंरूपंतस्यपदस्यतत् ॥ १० ॥ सबाह्याभ्यंतरेशांतेवासना विषयभ्रमे ॥ सर्वचिंताविहीनस्यप्रबुद्धस्यार्द्धरात्रतः ॥ ११ ॥ शांतंनिःसुखदुःखस्यपुरुषस्यैवतिष्ठतः ॥ यदस्पंदिमनोरूपंरूपंतस्यपदस्यतत् ॥ १२ ॥

अर्थ—वह चिन्मात्र शरीर परमात्मा नहीं है यह भी नहीं कहसकते, और जब सर्वथा शुद्ध शांत मल है तब अस्ति (है) इस वाच्य वृत्तिसेभी उसे नहीं कहसकते ॥ ९ ॥ एक निमेषमें शाखासे चन्द्रमाके दर्शनमें सैकडों योजनतक जब प्रमाता चेतन प्राप्त होताहै उससमयमें शाखा और चन्द्रमाके बीचमें निर्विषय जो चेतनकारूपहै वह परमपद परमात्माकारूपहै ॥ १० ॥ और बाह्य तथा आभ्यंतर वासना जाल तथा विषयोंके भ्रमके शांत होनेपर सब चिंताओंसे रहित गाढी निद्रासे अर्द्धरात्रिमें जाग्रत ॥ ११ ॥ और विषयोंके सुख तथा दुःखोंसे रहित शीत स्थित योगीजनोंके निश्चल मन जो समाधिमें रूपहै वही उस आत्म पदका रूपहै ॥ १२ ॥

तृणगुल्मांकुरादीनांसत्तासामान्यमाततम् ॥ यद्वद्बोद्भवंरूपंरूपंतस्यपदस्यतत् ॥ १३ ॥ तस्मिन्पदे जगद्रूपंयदिदंदृश्यतेस्फुटम् ॥ सकारणमिवाकारकरालमिवभेदवत् ॥ १४ ॥ तत्सर्वंकारणाभावान्नजा तंनचविद्यते ॥ नाकारयुक्तंनजगन्नचद्वैतैक्यसंयतम् ॥ १५ ॥ यदकारणकंतस्यसत्तानेहोपपद्यते ॥ स्वयंनित्यानुभूतेर्थैंकोत्रापह्नवशक्तिमान् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तृण, लता, अंकुरादिका उत्पत्तिमें हेतुभूत जो सामान्य सत्ता व्याप्तहै वही आत्मपदका स्वरूपहै ॥ १३ ॥ उस आत्मपदमें यह घटपटआदि साकार और कारणसहित जगत्कारूप देखपडता है ॥ १४ ॥ वह सब जगत् कारणके अभावसे न उत्पन्न हुआ न अकारयुक्त है, और न द्वैत तथा एकत्वसहित है ॥ १५ ॥ जो जगत् कारण शून्य है उसकी सत्ता नहीं होसकती, और अकारण नित्य अनुभवस्वरूप आत्माके अपलाप करनेमें कौन समर्थ है ॥ १६ ॥

नचशून्यमनाद्यंतंजगतःकारणंभवेत् ॥ ब्रह्मामूर्त्तसमूर्त्तस्यदृश्यस्याब्रह्मरूपिणः ॥ १७ ॥ तस्मात्तत्र जगद्रूपंयदाभातंतदेवतत् ॥ स्वयमेवतदाभातिचिदाकाशमितिस्थितम् ॥ १८ ॥ जगच्चिद्ब्रह्मभावाच्चतथाभावोभ्रमादिव ॥ सर्वमेकमजंशांतमद्वैतैक्यमनामयम् ॥ १९ ॥ पूर्णात्पूर्णंविसरतिपूर्णंपूर्णं विराजते ॥ पूर्णमेवोदितंपूर्णेपूर्णमेवव्यवस्थितम् ॥ २० ॥ शांतंसमंसमुदयास्तमयैर्विहीनमाकारमुक्तमजमंबरमच्छमेकम् ॥ सर्वंसदासदसदेकतयोदितात्मनिर्वाणमाद्यमिदमुत्तमबोधरूपम् ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—शून्यभी जगत्का कारण नहीं है और अमूर्त ब्रह्मभी जगत्का कारण नहीं है ॥ १७ ॥ इसलिये कारण शून्य ब्रह्ममें जो जगत्का रूप भासताहै वह स्वयं चिदाकाशही जगत् रूपसे भासताहै ॥१८॥ जगत् चिद्-ब्रह्मरूप होनेसे जो जगत्‌रूपसे भासताहै वह भ्रम सिद्ध है इस कारण सर्वत्र सर्वरूप, एक, अज, शांत, द्वैत तथा एकत्व रहित और अनामय ब्रह्मही स्थित है ॥ १९ ॥ भ्रमके शांत होनेपर पूर्ण परमात्मासे पूर्णरूप जगत् विस्तृत होताहै, पूर्णमें पूर्णही शोभित है, पूर्णमें पूर्ण उदितहै, और पूर्णमें पूर्णही जगत् व्यवस्थितहै ॥२०॥ जो यह अनेकरूप जगत् भासताहै वह सब सदा शांत, उदय अस्त आदि विकारोंसे शून्य, आकाररहित अज तथा निर्मल चिदाकाश-रूप उत्तम बोधमय ब्रह्मही है ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

यह सब जगत् ब्रह्मवस्तु स्वभावमें स्थितहै, विवर्त स्वभावसे क्रियाके भेदार्थ सब द्वैत विकारशून्य सन्मात्रही है यह विषय इस ५४ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगन्नामनभःस्वच्छंसद्ब्रह्मनभसिस्थितम् ॥ नभोनभसिभातीदंजगच्छब्दार्थ इत्यजम् ॥ १ ॥ त्वमहंजगदित्यादिशब्दार्थोब्रह्मब्रह्मणि ॥ शांतंसमसमाभासंस्थितमस्थितमेवसत् ॥२॥ समुद्रगिरिमेघोर्वीविस्फोटमयमप्यजम् ॥ काष्ठमौनवदेवेदंजगद्ब्रह्मावतिष्ठते ॥ ३ ॥ द्रष्टाद्रष्टैवदृश्यस्यस्वभावात्स्वात्मनिस्थितः ॥ कर्त्ताकर्त्तैवकर्त्तव्याभावतःकारणादृते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! यह जगत्‌नामक आकाश ब्रह्मरूप आकाशमें स्थित है, यह जगत् तथा घटपटआदि शब्दार्थ अज आकाशरूप आकाशमेंही विद्यमान है ॥ १ ॥ त्वम्, अहम्, (तुम हम) और जगत् इत्यादि शब्दार्थ शान्त, चिदाकाशकी सत्ताके साथ भासमान, अभिन्नरूपसे स्थित, और सत्‌ब्रह्मरूप है, और ब्रह्म-मेंही स्थित है ॥ २॥ समुद्र, पर्वत, मेघ, विद्युत् तथा पृथिवी आदि सब काष्ठके तुल्य मौन अविनाशी, ब्रह्मही स्थितहै ॥३॥ दृश्यके स्वभावसेरहित द्रष्टा, तथा कर्तव्यक्रियाके अभावसेरहित कर्त्ता चिन्मात्र आत्मस्वभावमेंही स्थितहै॥४॥

नज्ञत्वंनचकर्तृत्वंनजडत्वंनभोक्तृता ॥ नशून्यतानचार्थत्वमिहनापिनभोर्थता ॥ ५ ॥ शिलाजठरवत्सत्वंघनमेकमजंततम् ॥ सर्वंशांतमनाद्यंतमेकंविधिनिषेधयोः ॥ ६ ॥ मरणंजीवितंसत्यमसत्यंचशुभाशुभम् ॥ सर्वमेकमजंव्योमवीचिजालजलंयथा ॥ ७ ॥ विभागएवदृश्यत्वंद्रष्टृत्वंचैवगच्छति ॥ एतच्चकल्पनंस्वप्नपुरादिष्वनुभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—पदार्थोंके अभावसे शुद्धचित्‌स्वरूपमें न ज्ञानिता, न कर्तृता, न जडता, न भोक्तृता, न शून्यता न पदार्थता, और न आकाशरूपताहै ॥ ५ ॥ किंतु पाषाणके उदरके समान सब चिद्घन, सत्य, एक, अज, शांत अ-नादि अनन्त, और विधि निषेधमें समानरूप एक परमात्माही है ॥ ६ ॥ जीवन मरण, सत्य असत्य, और शुभाशुभ सब एक अज चिदाकाशमय ऐसे हैं जैसे समुद्रमें तरंग जाल ॥ ७ ॥ भ्रमसे ब्रह्मका जीव भावसे विभाग होनेपर चेतन-ब्रह्मही चिदंशकी प्रधानतासे द्रष्टा, और चिदंशके तिरोधानसे सत् अंशकी प्रधानतासे दृश्यरूप होजाताहै, और यह कल्पना (चेतनका द्रष्टा तथा दृश्य आदि होना) स्वप्न तथा गन्धर्वनगर आदिमें अनुभूत है ॥ ८ ॥

एवमच्छंपराकाशेस्वप्नपत्तनवज्जगत् ॥ भातिप्रथममेवेदंब्रह्मैवेत्थमतःस्थितम् ॥ ९ ॥ तदिदंतादृशं विद्धिसर्वंसर्वात्मकंचयत् ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौविदोमध्यमनंकितम् ॥ १० ॥ चिद्व्योम्नःशांतशांतस्यम

ध्यमेचैवमास्थितम् ॥ जगत्तथैवसलिलमेवोर्म्यादितयायथा ॥ ११ ॥ यद्वदेत्युदितंयच्चयच्चनोदेतिना दितम् ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौविदोमध्यान्नभेदितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये सृष्टिके प्रथम निर्विकार जो ब्रह्म है वही अपने स्वच्छ चिदाकाशरूपमें स्वप्ननगरादिके तुल्य इस जगत्‌रूपसे स्थित होके भासताहै ॥ ९ ॥ इसलिये सर्वरूप परमात्माको जगत्‌भावमें निर्विकाररूपही जानो; और वह शुद्धरूप एकदेशसे दूसरे देशमें चेतनवृत्तिके प्राप्त होनेपर दोनों देशोंके मध्यमें अनुभूत होताहै ॥ १० ॥ जैसे तरंगके पूर्व, उत्तर तथा मध्यदशामें समुद्र जलरूपही है ऐसे यह जगत्‌के पूर्व, उत्तर, तथा मध्य (वर्तमानता) दशामेंभी ब्रह्म शुद्धरूपही है ॥ ११ ॥ जो कार्य्यरूपसे उदितभी कारणरूपसे नहीं उदित होता, और एक देशसे दूसरे देशमें प्राप्तभी मध्य अर्थात् निर्विषय चित्‌से अभिन्नरूप है ॥ १२ ॥

अतःकिलास्यसर्गस्यकारणंशशशृंगवत् ॥ प्रयत्नेनापिचान्विष्टंनकिंचिदुपलभ्यते ॥ १३ ॥ यदकारण कंभातितदाभातंभ्रमात्मकम् ॥ भ्रमस्यसत्यरूपस्यसत्यताकथमुच्यते ॥ १४ ॥ कारणेनविनाकार्यंकि लकिंनामविद्यते ॥ यदपुत्रस्यसत्पुत्रदर्शनंसभ्रमोनसत् ॥ १५ ॥ यस्त्वकारणकोभातिसस्वभावोविजृं भते ॥ सर्वरूपेणसंकल्पगंधर्वनगरादिवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्‌से अभिन्न होनेसे इस सृष्टिका कारण शशशृंगके समान प्रयत्नसे अन्वेषण करनेपरभी नहीं मिलता ॥ १३ ॥ और जो पदार्थ निष्कारण भान होताहै वह भ्रमरूप नहीं भान होनेके सदृश है, तब इस असत्यजगत् भ्रमकी सत्यता कैसे होसकती है ॥ १४ ॥ कारणके बिना जो कार्य्य है उसकी सत्ता कैसे होसकती है, क्योंकि जे वन्ध्याके पतिको स्वप्नमें पुत्रदर्शन है वह भ्रम है न कि सत्य ॥ १५ ॥ जो बिना कारण भासताहै वह सर्वरूपसे संकल्प वा गंधर्वनगरके तुल्य द्रष्टा चेतनका स्वभावही आविर्भूत है ॥ १६ ॥

देशाद्देशांतरप्राप्तौक्षणान्मध्यंविदोवपुः ॥ स्वरूपमजहत्त्वेवराजतेऽर्थविवर्त्तवत् ॥ १७ ॥ बोधएवकच त्यर्थरूपेणसचखादणुः ॥ दृष्टांतोत्रानुभूतोंतःस्वप्नसंकल्पपर्वतः ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विद्यतेव टबीजांतर्यथाभाविमहाद्रुमः ॥ परमाणौतथासर्गोब्रह्मन्कस्मान्नविद्यते ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यत्रास्तिबीजंतत्रस्याच्छाखाविततरूपिणी ॥ जन्यतेकारणैःसाचविततासहकारिभिः ॥ २० ॥

अर्थ—क्षणमेंही एक देशसे दूसरे देशकी प्राप्तिमें मध्यमें निर्विषय जो चित्‌का स्वरूप है वही अपने स्वरूपको न त्यागते हुये रज्जुके सर्पके तुल्य पदार्थाकार भासताहै ॥ १७ ॥ आकाशसेभी सूक्ष्म बोधरूप चेतनही पदार्थाकारसे शोभित होताहै इसमें अनुभूत दृष्टांत स्वप्न तथा संकल्पका पर्वत है ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! जैसे वटके बीजके भीतर भावी महान् वृक्ष है ऐसेही बोधके भीतर सूक्ष्म जडरूप जगत्‌का प्रपंच भी क्यों नहीं मानते ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! जहां साकार बीज है वहांही मृत्तिका जल आदि सह कारणोंसे विशाल शाखा उत्पन्न होती है ॥ २० ॥

समस्तभूतप्रलयेबीजमाकारिकिंभवेत् ॥ सहकार्यथकिंतस्यजायतेयद्वशाज्जगत् ॥ २१ ॥ यत्तुब्रह्मपरं शांतंकातत्राकारकल्पना ॥ परमाणुत्वयोगोपिनात्रकेवात्रबीजता ॥ २२ ॥ कारणस्येतिबीजस्यसत्या सत्यैककारिणः ॥ असंभवाज्जगत्सत्ताकथंकेनकुतःक्वका ॥ २३ ॥ जगदास्तेपरस्याणोरंतरित्यपिनो चितम् ॥ सार्षपेकणकेमेरुरास्तइत्यज्ञकल्पना ॥ २४ ॥

अर्थ—और जब सब भूतोंका प्रलय होगया तब साकार बीज क्या है तथा साकार सहकारी कारण कौन है जिनसे किलाकार जगत् उत्पन्न हो ॥ २१ ॥ और जो शांत शुद्ध निराकार ब्रह्म है उसमें आकार कल्पना क्या होसकती है, जहां परमाणुका भी संबंध नहीं है वहां भला बीजता कैसे होसकती है ॥ २२ ॥ इसप्रकार सत्यासत्यरूप कारण बीजके असंभवसे जगत्‌की सत्ता कैसे, किस हेतुसे, कहांसे और किसप्रकारकी होसकती है ॥ २३ ॥ परमात्मारूप अणुके भीतर जगत् है यह भी कथन उचित नहीं है, क्योंकि सर्षपके कणमें मेरु है यह अज्ञ कल्पना है ॥२४॥

सतिबीजेप्रवर्ततेकार्यकारणदृष्टयः ॥ निराकारस्यकिंबीजंकजन्यजनकक्रमः ॥ २५ ॥ अतोयत्परमंत त्वंतदेवेदंजगत्स्थितम् ॥ नेहप्रथयतेकिंचिन्नचकिंचिद्विनश्यति ॥ २६ ॥ चिदाकाशश्चिदाकाशेहृदि चित्त्वाज्जगद्भ्रमम् ॥ अशुद्धवदिवाशुद्धेशुद्धंशुद्धेप्रपश्यति ॥ २७ ॥ स्वमेवाभासतेतस्यरूपंस्पंदइवा निले ॥ सर्गशब्दार्थकलनानेहकाश्चनसंततिः ॥ २८ ॥

अर्थ—साकार बीज रहतेही कार्य्य कारण दृष्टि प्रवृत्त होती हैं, निराकार (जगत्) का बीज कैसा और जन्य जनक क्रम कैसा ॥ २५ ॥ इसलिये जो परमतत्व ब्रह्म है वही मायासे जगत्‌रूपसे स्थित है, न तो इस ब्रह्म-

स्वरूपमें उत्पन्न हो और न नष्ट हो ॥ २६ ॥ चिदाकाशमें चिदाकाशही स्थित है, चित्तमें चित्की स्फुरणसे यह जगत्का भ्रम है, अशुद्ध चित्तमें अशुद्ध, और शुद्ध चित्तमें शुद्ध ब्रह्मरूपही देखताहै ॥ २७ ॥ वायुमें स्पंदके तुल्य चिदाकाशही जगत्‌रूपसे भासता है, हमलोगोंके सिद्धान्तमें सृष्टि शब्दार्थकी कल्पना नहीं है ॥ २८ ॥

यथाशून्यत्वमाकाशेद्रवत्वंचयथाजले ॥ अन्यतात्ममयीशुद्धासर्गतेयंतथात्मनि ॥ २९ ॥ भारूपमिद माशांतंजगद्ब्रह्मैवनस्ततम् ॥ अनादिनिधनंसत्यंनोदेतिनचशाम्यति ॥ ३० ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौक्षणा न्मध्येविदोवपुः ॥ यत्तजगदितीवेदंव्योमात्मनिव्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ यथास्पंदोनिलेतोयेद्रवत्वंव्योम्नि शून्यता ॥ तथाजगदिदंभातमनन्याश्लेषमात्मनि ॥ ३२ ॥ संविन्नभोननुजगन्नभइत्यनर्कमात्मन्यव स्थितमनस्तमयोदयंक ॥ तत्त्वंगभूतमखिलंतदनन्यदेवदृश्यंनिरस्तकलनोंबरमात्रमास्व ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अद्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम चतुष्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें शून्यता और जलमें द्रवता है, ऐसेही परमात्मामें विवर्त्तमयी जगत्की शुद्ध भिन्नता है ॥ २९ ॥ हमारे सिद्धान्तमें यह जगत् सर्वथा शांत, व्यापक, और आदि अंत शून्य ब्रह्मही है, न यह उदय हो और न नष्ट हो ॥ ३० ॥ एक क्षणमें शाखादि देशसे चन्द्र आदि देशमें वृत्तिकी प्राप्तिमें दोनों देशके मध्यमें निर्विषय जो शुद्ध चेतनका स्वरूप है उसी रूपसे यह जगत् चिदाकाशमें स्थित है ॥ ३१ ॥ जैसे वायुमें स्पंद जलमें द्रवत्व, और आकाशमें शून्यताहै ऐसेही असंगरूपसे परमात्मामें यह जगत् स्थितहै ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! परमात्मामें स्थित यह जगत् शुद्ध चिदाकाश रूपही है, भूताकाश मात्रनहीं होसकता, क्योंकि सूर्य्य तथा सूर्य्यके उदय अस्तसे रहित आकाश कहां प्रसिद्ध है, सबका सारभूत जो परमात्मा है उसीका अंगभूत यह सब दृश्य है, इसलिये तुमभी सम्पूर्ण दृश्य कल्पनासे रहित होके शुद्ध चिदाकाशमात्रसे स्थित रहो ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अद्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

अन्यकी भावनासे अन्यरूप, और निजस्वरूपकी भावनासे शुद्ध निजरूप इस जगत्को चित् देखती है यह विषय इस ५५ के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचराचराः ॥ आदावेवहिनोत्पन्नाःसर्गादौकारणं विना ॥१॥ नत्वमूर्त्तोहिचिद्धातुःकारणंभवितुंकचित् ॥ स्वात्माशक्तःसमूर्तानांबीजमुर्वीरुहामिव ॥२॥ स्वभावमेवसततंभावयन्भावनात्मकम् ॥ आत्मन्येवहिचिद्धातुःसर्वोनुभववान्स्थितः ॥ ३ ॥ आ स्वादयतियंभावंचिद्धातुर्गगनात्मकः ॥ लब्धःसर्गःप्रलापेनक्षीबःक्षुब्धतयायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सृष्टिकी आदिमेंही कारणके विना, उत्पत्ति नाश, ग्रहण, त्याग, सूक्ष्म स्थूल, तथा स्थावरजंगम यथार्थमें उत्पन्नही नहीं हुये ॥ १ ॥ मूर्तिरहित चेतन किसी साकारको कारण बीज नहीं होसकता, क्योंकि वृक्षोंके बीजके सदृश साकारपदार्थही अन्यका बीज होसकताहै ॥ २ ॥ इसीसे तत्वज्ञानी सदा जगत्को आत्मस्वभावरूप भावना करतेहुये निजआत्मामें स्थित रहताहै ॥ ३ ॥ आकाशस्वरूप चेतन जैसे भावना करता है वैसेही निजरूपमेंही इस जगत् सृष्टिको ऐसे पाता है जैसे मद्यकी भावनासे आत्मामें विक्षिप्तता ॥ ४ ॥

यदासर्वमनुत्पन्नंनास्त्येवापिचदृश्यते ॥ तदाब्रह्मैवविद्धीदंसमंशांतमसत्समम् ॥ ५ ॥ चिन्नभश्चिन्न भस्येवपयसीवपयोद्रवः ॥ चित्त्वात्कचतियत्तेनतदेवेदंजगत्कृतम् ॥ ६ ॥ स्वप्नेतदेवजगदित्युदेति विमलायथा ॥ काचकस्येवकचतितथेत्थंसादिसर्गखे ॥७॥ चित्काचकस्यकचनंयथास्वप्नेजगद्भवेत् ॥ तथैवजाग्रदविधंतत्खमात्रमिदंस्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जब यह सब दृश्य भावनामय है और उत्पन्न नहीं हुआ तब इस मिथ्या जगत्को शांत ब्रह्मरूपही जानो ॥ ५ ॥ जलमें जलकी द्रवताके समान चिदाकाशमें चिदाकाशही स्थितहै और चित्की स्फुरणामात्रसे जो यह जगत् स्फुरित होरहाहै इससे चेतनने जगत् किया यह श्रुतियोंका कथन है ॥ ६ ॥ स्वप्नमें जैसे विमल सृष्टि उदय होती है वा काच दूषित नेत्रसे आकाशमें जैसे केशआदि भासते हैं ऐसेही भ्रमसे यह विचित्र साकार जगत्

चिदाकाशमें भासताहै ॥ ७ ॥ जैसे स्वप्नमें चित्रूप काचकी स्फुरणाही जगत्रूप होजाती है ऐसेही यह जाग्रत् जगत्भी चिदाकाशमात्रही है ॥ ८ ॥

आदिसर्गेहिचित्स्वप्नोजाग्रदित्यभिशब्द्यते ॥ अद्यरात्रौचितेःस्वप्नःस्वप्नइत्यपिशब्द्यते ॥ ९ ॥ पूर्वप्रवृत्तासरितांरूढाद्यापियथास्थिता ॥ तरंगलेखादृष्टीनांपदार्थरचनातथा ॥ १० ॥ यथावारितरंगश्रीःसरितांरचनामिता ॥ तथाचिद्व्योम्निचिद्बीजसत्तांतःसृष्टितामिता ॥ ११ ॥ मृतस्यात्यंतनाशश्चेत्तन्निद्रासुखमेवतत् ॥ भूयश्चोदेतिसंसारस्तत्सुखंनयमेवतत् ॥ १२ ॥

अर्थ—सृष्टिकी आदिमें हिरण्यगर्भरूप समाष्टि चित्के स्वप्नको जाग्रत् कहते हैं, और आज रात्रिमें जो व्यष्टि चित्का स्वप्न है उसको स्वप्न कहते हैं ॥ ९ ॥ नदियोंके तरंगोंकी रेखाकेतुल्य सृष्टिके आदि कालमें पदार्थोंके रचनाकी जो मर्य्यादा है वही अबभी दृढ होरही है ॥ १० ॥ जैसे नदियोंमें जलके तरंगोंकी रचना जल सत्ता भिन्न नहीं है ऐसेही, चिदाकाशमें विवर्तरूप जगत् सृष्टिकी सत्ता चिदाकाशसे भिन्न नहीं है ॥ ११ ॥ और मृत पुरुषका अत्यंत अभाव मानो तो वह निद्राका सुखही हुआ, और यदि मृत्युके वा निद्राके पश्चात् पुनः संसारका उदय होताहै ॥ १२ ॥

कुकर्मभ्यस्तुचेद्भीतिःसासमेहपरत्रच ॥ तस्मादेतेसमसुखेसर्वेषांमृतिजन्मनी ॥ १३ ॥ मरणंजीवितंवास्तुसहजेवासनेतयोः ॥ इतिविश्रांतचित्तोयःसोंतःशीतलउच्यते ॥ १४ ॥ सर्वसंवित्तिविगमेसंविद्रोहतियादृशी ॥ भूयतेतन्मयेनैवतेनात्मामुक्तउच्यते ॥ १५ ॥ अत्यंताभावसंवित्त्यासर्वदृश्यस्यवेदनम् ॥ उदेत्यपास्तसंवेद्यंसतिवासतिसर्गके ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि कुकर्मोंसे दुःखका भय मानो तो वह इस जीवन तथा मृत्युके अनंतर नरकादिमें समानरूपही है, इसलिये सबको जीवन मरण समान सुखदायकहैं ॥ १३ ॥ जीवन हो वा मरण हो इसप्रकार जिसकी वासना दोनोंके विषय स्वाभाविक ब्रह्मस्वरूप होगई है, वह विश्रांत चित्तयोगी अंतः शीतल कहाता है ॥ १४ ॥ सबप्रकारकी वृत्तियोंके नष्ट होनेसे सब दृश्य बधनोंसे मुक्त चिन्मय यह योगी होजाताहै इसलिये मुक्त कहलाताहै ॥ १५ ॥ आत्मज्ञानसे सब दृश्यका सर्वथा बाध होनेसे सृष्टि रहै वा न रहै परन्तु योगीको सब दृश्यके अनुभवसे रहित शुद्ध निर्विषय चित्का अनुभव उदय होताहै ॥ १६ ॥

यन्नचेत्यंनचिद्रूपंयच्चितेरप्यचेतितम् ॥ तद्भावैक्यंगतास्तज्ज्ञाःशांताव्यवहृतौस्थिताः ॥ १७ ॥ चित्काचकाचकच्यंयजगन्नाम्नातदुच्यते ॥ अत्यच्छेपरमाकाशेबंधमोक्षदृशःकुतः ॥ १८ ॥ चित्रभःस्पंदमात्रात्मसंकल्पात्मतयाजगत् ॥ सद्भूतमयमेवेदंनपृथ्व्यादिमयंक्वचित ॥ १९ ॥ नेहदेशोनकालोस्तिनद्रव्यंनक्रियानखम् ॥ सदिवाखिलमुच्छूनंवाप्यनुच्छूनमप्यसत् ॥ २० ॥

अर्थ—जो न विषयरूपहै, विषयके अभावसे न चित् वृत्तिरूपहै और जो चित् वृत्तिसेभी चेतित नहीं होता, उस शुद्ध चित्में एकरूपताको प्राप्त तथा संसारके व्यवहारसे शून्य योगी निजआत्मामें स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ अति निर्मल चिदाकाशमें चित्रूपी काचका निरंतर स्फुरण है उसीको जगत् नामसे कहते हैं तो बंधमोक्षकी कहां रही ॥ १८ ॥ चिदाकाशका स्फुरणमात्र संकल्परूप यह जगत् है, इसलिये चिन्मयहै न कि पृथिवी आदिरूप ॥ १९ ॥ इसमें न देश न काल न क्रिया और न द्रव्य है, यह जगत् प्रतिभासमात्रसे वृद्धिको प्राप्त हो वा न हो, परंतु अपने रूपसे असत् है ॥ २० ॥

भातिकेवलमेवेत्थंपरमार्थघनंघनम् ॥ यन्नशून्यंनवाशून्यमत्यच्छंगगनादपि ॥ २१ ॥ साकारमप्यनाकारमसदेवातिभास्वरम् ॥ अतिशुद्धैकचिन्मात्रस्फारंस्वप्नपुरंयथा ॥ २२ ॥ निर्वाणमेवमिदमाततमित्थमंतश्चिद्व्योम्नआविलमनाविलरूपमेव ॥ नानेवनक्वचिदपिप्रसृतंननानाशून्यत्वमंबरइवांबुनिधौद्रवत्वम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगतःपरमार्थमयत्ववर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—इसप्रकार इस जगत्रूपसे परमार्थ घन आत्माही प्रकाशित हो रहाहै यह आत्मा आकाशसेभी सूक्ष्म न शून्य है और न अशून्यहै ॥ २१ ॥ साकार होतेभी निराकार, अति प्रकाशरूपभी, असत्केतुल्य भासमान, अति

शुद्ध चिन्मात्र, और स्वप्न नगरकेतुल्य अति विशालरूप यह है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिदाकाशका कलुषित यह जगत्रूप यथार्थमें शुद्ध व्याप्त निर्वाणरूपही है, और आकाशमें शून्यता तथा जलमें द्रवताके समान यह जगत् परमात्मारूपही है न कि नानारूपसे विस्तृत ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगतःपरमार्थमयत्ववर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सर्वत्र सबकुछ चिद्रूपही है इसप्रकार शुद्धचित्के दृढ होनेके लिये पाषाण आख्यायिका इस ५६ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वत्रसर्वथासर्वसर्वदाव्योम्निचिन्मये ॥ साधुसंभवतिस्वच्छशून्यत्वंखइवाखिले ॥ १ ॥ यत्रचित्तत्रसर्गश्रीरव्योम्निव्योम्निवास्तिचित् ॥ चिन्मयत्वात्पदार्थानांसर्वेषांनास्त्यचित्क्वचित् ॥ २ ॥ पदार्थजातंशैलादियथास्वप्नेपुरादिच ॥ चिदेवैकंपरंव्योमतथाजाग्रत्पदार्थभूः ॥ ३ ॥ पाषाणाख्यानमत्रेदंशृणुरामरसायनम् ॥ पूर्वंमयैवयद्दृष्टंचित्रंप्रकृतमेवच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! चिदाकाशमें सदासर्वथा सर्वत्र सबकुछ ऐसे असंकोचसे होताहै जैसे आकाशमें शून्यत्व, परन्तु वह सर्वदा अपने स्वरूपमें स्वच्छही है ॥ १ ॥ सब पदार्थोंके चिन्मय होनेसे आकाश वा पृथिवी आदिमें अचित्रूप कहीं नहीं है, और जहां चित् है वहां सृष्टिकी शोभाभी है ॥ २ ॥ स्वप्नमें नगर, पर्वत तथा सब पदार्थसमूह जैसे चिन्मात्र हैं ऐसेही जाग्रत्केभी सम्पूर्ण पदार्थ एक चिदाकाशमात्रही हैं ॥ ३ ॥ हे रामजी! प्रथम मुझसेही दृष्ट, अतिविचित्र, और भ्रमरोगके लिये रसायनरूप इस प्रचलित पाषाण आख्यानको तुम सुनो ॥ ४ ॥

अहंविदितवेद्यत्वात्कदाचित्पूर्णमानसः ॥ त्यक्तुमिच्छुरिमंलोकव्यवहारंघनभ्रमम् ॥ ५ ॥ ध्यानैकतानतामेत्यशनैर्विश्रांतयेचिरम् ॥ त्यक्ताजवंजवीभावएकांतार्थीशमंव्रजन् ॥ ६ ॥ इदंचिंतितवानस्मिकस्मिंश्चिदमरालये ॥ संस्थितोविविधाःपश्यन्भंगुराजागतीर्गतीः ॥ ७ ॥ विरसाखल्वियंलोकस्थितिरापातसुंदरी ॥ नजातुसुखदामन्येकस्यचित्केनचित्क्वचित् ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्वकालमें किसीसमय मैं वेद्यवस्तुके जाननेसे पूर्णचित्त होके व्यवहारसे पूर्ण इस लोकके त्यागनेकी इच्छासे ॥ ५ ॥ चिरकालतक विश्रामके अर्थ धीरे २ ध्यानमें तत्पर होके चंचलताके त्यागपूर्वक एकान्तके अभिलाषी शांतिको प्राप्त होते हुये ॥ ६ ॥ देवलोकमें स्थित होके संसारकी नश्वर अनेक दशाओंको देखते हुये मैंने यह वक्ष्यमाण वार्ताको चिंतन किया ॥ ७ ॥ कि बिना विचारे रमणीय यह संसारकी स्थिति सर्वथा नीरस है, और कभी किसीको किसी उपायसे किसी कालमेंभी सुखदायक नहीं है ॥ ८ ॥

उद्वेगंजनयत्यंतस्तीव्रसंवेगखेदतः ॥ इमादृश्यदृशोद्रष्टुरिष्टानिष्टफलप्रदाः ॥ ९ ॥ किमिदंदृश्यतेकोवाप्रेक्षतेकोहमेववा ॥ सर्वंशांतमजंव्योमचिन्मात्रात्मनिरिंगकम् ॥ १० ॥ तस्मात्समस्तसिद्धेंद्रदेवदैत्यादिदुर्गमम् ॥ सुप्रदेशमितोगत्वासंगोप्यात्मानमात्मना ॥ ११ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांनिर्विकल्पसमाधिगः ॥ समेस्वच्छेपदेशांतेआसेविगतवेदनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इष्ट अनिष्ट फलोंको देनेवाली ये दृश्यकी दृष्टि जीवको अत्यन्त उद्वेग (दुःख) ही सदा उत्पन्न करती हैं ॥ ९ ॥ जब विवेकसे यह विचारा जाय कि यह क्या है, और इसका द्रष्टा मैं कौन हूं तब सब शांत, अज तथा निराकार चिन्मात्रही भासताहै ॥ १० ॥ इस हेतु इस विक्षेपकी शांतिके लिये, सब सिद्ध, देव तथा दैत्य आदिसे दुर्गम किसी उत्तम स्थानमें यहांसे जाके और अपने गुप्त करके ॥ ११ ॥ सब जीवोंसे अदृश्य होके निर्विकल्प समाधिमें तत्पर अति निर्मल तथा शांत पदमें सब प्रकारकी वृत्तियोंको त्यागकर स्थित रहूं ॥ १२ ॥

तस्मात्कोनुप्रदेशःस्यादत्यंतंशून्यतांगतः ॥ यत्रैतानानुभूयंतेपंचबाह्यार्थवेदनाः ॥ १३ ॥ शब्दकाननवार्यब्दभूतौघाभिसमाकुलाः ॥ क्षोभयंत्यथसंक्षुब्धास्तस्मान्मेगिरयोरयः ॥ १४ ॥ नानाविधानगेंद्राणामंतरावलिताजनैः ॥ देशाविषमयाएवनिःशेषाविषयाहिभिः ॥ १५ ॥ जनैर्जलचरैर्व्याप्ताःसागरानीरकुक्षयः ॥ विविधारंभसंक्षुब्धैर्नगराणीवनागरैः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये ऐसा शून्य स्थान कौनहै जहांपर कि बाह्य,अर्थ,शब्द,स्पर्श,रूप आदि पंच विषयोंका अनुभव न हो॥ १३॥ विक्षेपके हेतुभूत शब्द कारक बन, जल, मेघ तथा अनेक प्राणियोंसे व्याप्त, और स्वयं संक्षुब्ध पर्वत तो मुझे शत्रुके तुल्य क्षुब्ध करते हैं॥ १४॥ और नानाप्रकारके पर्वतोंके सब मध्यदेश तो किरात आदि मनुष्योंसे आच्छादित होनेके कारण विषयरूपी सर्पोंसे वेष्टित मेरेलिये विष पूर्ण हैं॥ १५॥ और समुद्रोंके तट तथा आभ्यन्तरके स्थान तो नानाकार्य्योंमें व्यग्र जलचारी जीवोंसे ऐसे पूर्ण हैं जैसे नगरनिवासियोंसे नगर॥ १६॥

तटान्यद्रींबुराशीनांलोकपालपुराणिच॥ भूताकुलानिशृंगाणिपातालकुहराणिच॥ १७॥ गायंत्यनिलभांकारैर्नृत्यंतिलतिकाःकरैः॥ पुष्पैर्हसंत्यगेंद्राणांगुहागहनकोटराः॥ १८॥ मौनिमीनमुनिस्पर्शकंपिनालचलांबुजाः॥ सरस्योविरसाएववार्यावर्त्तविराविताः॥ १९॥ पवनस्पर्शसंक्षुब्धतृणपांसुपताकिनी॥ रटत्यनिलभांकारैर्निर्झरोर्व्यप्यसंयता॥ २०॥

अर्थ—और समुद्र तथा पर्वतोंके समीपके स्थान, लोकपालोंके नगर, पर्वतोंके शिखर और पातालकी कंदरा ये सब प्राणियोंसे पूर्ण हैं॥ १७॥ और पर्वतेन्द्रोंकी सर्पोंसे भयंकर गुहा पवनके भांकार शब्दोंसे गाती हैं, लताओंके समूहोंसे नृत्य करती हैं, और पुष्पोंके समूहोंसे हंसती हैं॥ १८॥ और दक्षिणदेशकी वापी भी मत्स्य, स्नानके अभिलाषी मुनि समूह तथा चंचल कमलोंसे पूर्ण हैं, और जलके आवर्तोंसे शब्द सहित हैं, इस हेतु वे भी मेरेलिये नीरस हैं॥ १९॥ और झरनाओंसे पूर्ण पृथिवी भी पवनोंके स्पर्शसे क्षुभित तृण तथा धूलिरूप पताकाओंसे पूर्ण होनेसे वायुके भांकारशब्दोंसे रटती है, इसलिये वह भी समाधिके विघ्नोंसे पूर्ण है॥ २०॥

तस्मादाकाशमाशून्यंकस्मिंश्विद्दूरकोणके॥ अत्रतिष्ठाम्यवष्टभ्ययोगयुक्तिमनिंदिताम्॥ २१॥ कस्मिंश्विदेककोणेत्रकृत्वाकल्पनयाकुटीम्॥ वज्रोदरदृढंतस्यामंतस्तिष्ठाम्यवासनम्॥ २२॥ इतिसंचिन्त्ययातोहमाकाशमसिनिर्मलम्॥ यावत्तदपिपश्यामिसकलंविततांतरम्॥ २३॥ क्वचिद्भ्रमत्सिद्धगणंक्वचिद्गर्जदंबुदम्॥ क्वचिद्विद्याधराधारंयक्षोत्क्षिप्तक्षयंकचित्॥ २४॥

अर्थ—इसलिये सर्वथा शून्य आकाशके किसी कोनेमें सुन्दर योग युक्तिका आश्रय लेके समाधिकेलिये मैं स्थित होऊं॥ २१॥ इस आकाशके किसी कोनेमें कल्पनासे कुटी बनाके वज्रके तुल्य दृढ चित्त होके और सर्वथा वासनाको त्यागकर समाधिमें परायण होजाऊं॥ २२॥ इस विचार करके तलवारकी धारके समान निर्मल आकाशमें जब मैं गया तब क्या देखताहूं कि समाधिके अनेक विघ्नोंसे इसका अन्तराल व्याप्तहै॥ २३॥ उस आकाशमें कहा तो सिद्ध गण भ्रमण करते हैं, कहीं मेघ गर्जते हैं, कहीं विद्याधर नृत्य करते हैं, और कहीं यक्षसमूह निवास कर रहे हैं॥ २४॥

क्वचिद्भ्रमत्पुरवरंप्रारब्धसमरंकचित्॥ क्वचिद्द्रवज्जलधरंकचिद्वृत्तयोगिनि॥ २५॥ क्वचिद्दैत्यपुरोड्डीनसगंधर्वपुरंकचित्॥ क्वचिद्भ्रमद्ग्रहगणंतारकाकुलितंकचित्॥ २६॥ क्वचित्खेखगसंघुष्टंकचित्क्रुद्धमहानिलम्॥ क्वचिदुत्पातवलितंकचिन्मंडलमंडितम्॥ २७॥ क्वचिदपूर्वभूतौघंनागरावलितकचित्॥ क्वचिदर्करथाक्रांतंकचिदन्यरथोद्धुरम्॥ २८॥

अर्थ—कहीं गंधर्वनगरोंसे पूर्ण, कहीं युद्धके आरंभसे पूर्ण, कहीं वृष्टिसहित मेघोंसे पूर्ण, और कहीं उन्मादयुक्त योगिनियोंसे पूर्ण वह आकाश है॥ २५॥ कहीं समीप वर्ती दैत्योंके नगरोंसे गंधर्वनगरसहित देवताओंके नगर उडते हैं, कहीं ग्रहोंका मंडल भ्रमण करताहै, और कहीं तारागणोंसे वह आकाश व्याप्त है॥ २६॥ कहीं आकाशचारी पक्षियोंके शब्दोंसे पूर्ण, कहीं अति प्रचंड पवनसे पूर्ण, कहीं उत्पातोंसे व्याप्त, और कहीं मेघमंडलोंसे मंडित वह आकाश है॥ २७॥ कहीं विचित्र पिशाच आदि प्राणियोंके समूहोंसे पूर्ण, कहीं नगरोंके समूहसे आच्छादित, कहीं सूर्य्यके रथसे आक्रांत, और कहीं चंद्र आदिके रथोंसे पूर्ण वह आकाश है॥ २८॥

क्वचिदादित्यदाहांतंशशिशैत्यान्वितंकचित्॥ क्वचित्क्षुद्रजनासह्यंकचिदग्न्यौष्ण्यदुर्गमम्॥ २९॥ क्वचिद्वृत्तालवेतालंगरुडोड्डामरंकचित्॥ क्वचित्सप्रलयांभोदंकचित्सप्रलयानिलम्॥ ३०॥ ततोभूतगणांस्त्यक्त्वादूराद्दूरतरंगतः॥ प्राप्तवानहमेकांतंशून्यमत्यंतविस्तृतम्॥ ३१॥ अत्यंतमंदपवनंस्वप्नेप्यप्राप्यभूतकम्॥ मंगलोत्पातरहितमगम्यंविद्धिसंस्तुतेः॥ ३२॥

अर्थ—कहीं द्वादशसूर्य्योंके प्रचंड दाहसंयुक्त, कहीं चन्द्रमाकी शीतलतासे पूर्ण, कहीं भूतप्रेतादि नीचजनोंसे भयंकर, और कहीं अग्निकी उष्णतासे अति दुर्गम वह आकाश है॥ २९॥ कहीं वेतालोंके गणसे शोभित, कहीं

गरुडसे शोभित तथा कहीं प्रलयके मेघ तथा कहीं प्रलयके प्रचंड पवनसे पूर्ण वह आकाश पूर्ण है ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् प्राणियोंके समूहोंको त्यागकर मैं अति दूर विशाल तथा एकांत शून्य देशमें प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ उस देशमें पवन अति मंद है, और स्वप्नमें भी प्राणी नहीं प्राप्त थे, हे रामजी ! उस देशको तुम मंगल तथा अशुभ उत्पातसे भी शून्य, संसारसे अप्राप्य जानो ॥ ३२ ॥

कल्पितांथमयातत्रकुटीप्रकटकोटरा ॥ नीरंध्रकुड्यनिविडापद्मकुड्मलसुंदरी ॥ ३३ ॥ घुणक्षुण्णांगपूर्णेंदुबिंबोदरमनोहरा ॥ कह्लारकुंदमंदारपुष्पश्रीकोशशोभिता ॥३४॥ समस्तभूतागम्यत्वंतत्रसंकल्प्यचेतसा ॥ अगम्येसर्वभूतानामहमासंतदाततः ॥ ३५ ॥ बद्धपद्मासनःशांतमनाःपरममौनवान् ॥ संवत्सरशतांतेनेनिर्णीयोत्थानमात्मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—उस स्थानमें अपने सत्यसंकल्प नीरंध्र तथा कमलके दलके सदृश सुंदर कुटी मैंने रचा ॥ ३३ ॥ घुणोंसे छिद्रयुक्त चंद्रबिम्बके समान मनोहर तथा कमल, कुंद तथा मंदार आदि पुष्पोंके कोशके तुल्य शोभित कुटी मैंने रची ॥ ३४ ॥ अपने चित्तसे संपूर्ण प्राणियोंकी अगम्यताका संकल्प करके, सब भूतोंसे अगम्य समाधिमें मैं समाहित हुआ ॥ ३५ ॥ शतसंवत्सरोंके अंतमें समाधिके उत्थानका संकल्प करके पद्मासनमे स्थित शांत चित्त और मौन होके समाधिमें स्थित हुआ ॥ ३६ ॥

निर्विकल्पसमाधिस्थोनिद्रामुद्रामिवागतः ॥ समःसौम्यनभःस्वस्थःसमुत्कीर्णइवांबरात् ॥ ३७ ॥ चिरंयदनुसंधत्तेचेतःपश्यतितत्क्षणात् ॥ चिरेणचाशापवनव्यक्तिवद्धिततंयदा ॥ ३८ ॥ तदावर्षशतेनात्रबोधबीजंवृतांतरम् ॥ आसीन्मेहृदयक्षेत्रेकालमेकंविकासतः ॥ ३९ ॥ संप्रबुद्धोभवन्मेथजीवःसंबुद्धवेदनः ॥ शिशिरक्षीणगात्रस्यमधाविवरसस्तरोः ॥ ४० ॥

अर्थ—समदर्शी, सौम्य आकाशवत् निर्मल, आकाशमें चित्रितके सदृश, सुषुप्तिके सदृश निर्विकल्प समाधिमें स्थित हुआ ॥ ३७ ॥ चिरकालसे चित्त जिस पदार्थका ध्यान करताहै एक क्षणमेंही देखताहै, इसी हेतुसे आशा तथा पवनके तुल्य विशाल बोधके बीजसहित व्युत्थान ॥ ३८ ॥ जब शतवर्षके पश्चात् मेरे हृदयमें एककालमें आविर्भूत हुआ ॥ ३९ ॥ तब वृत्तिसहित मेरा जीव चेतन ऐसे प्रबुद्ध हुआ जैसे शिशिरऋतुमें क्षीण शरीर वृक्षका रस वसंतऋतुमें ॥ ४० ॥

तच्छतंतत्रवर्षाणांनिमेषमिवमेगतम् ॥ बह्वयोपिकालगतयेभवंत्येकधियोमनाक् ॥ ४१ ॥ विकासमागतोबाह्यंगतोबुद्धींद्रियक्रमः ॥ वासंतःपुष्परूपेणमदस्येवरसोमम ॥ ४२ ॥ मांप्राणपूरितमुपागतसंविदंशमभ्यागतंत्वहमितिप्रसृतःपिशाचः ॥ इच्छांगनाविवलितोथकुतोपिसद्यःप्रोन्नामसन्नमनवायुरिवोग्रवृक्षम् ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने आकाशमंदिरे वसिष्ठसमाधानवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वह शतवर्ष मुझे एक निमिषके तुल्य बीतगया, क्योंकि एकाग्र चित्तवालेको अनेक कालगति अल्पही भान होती हैं ॥ ४१ ॥ इसके अनंतर बाह्य ज्ञानेन्द्रियगण क्रमसे ऐसे विकसित हुए जैसे वसंतऋतुमें पुष्परूपसे रस ॥ ४२ ॥ इसके पश्चात् प्राणोंसे पूर्ण और वृत्तियोंसे युक्त मेरे निकट इच्छारूपी अंगनासे युक्त अहं त्वम् इत्यादि पिशाच ऐसे प्राप्त हुआ, जैसे उच्च वृक्षके अग्रभागमें वृक्ष ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने आकाशमंदिरे वसिष्ठसमाधानवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

ज्ञानी तथा अज्ञानीके अहंकारके विशेष ज्ञानके लिये ज्ञानसे बाधित दृश्यकी चिन्मात्रता इस ५७ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ त्वामप्युदितनिर्वाणमहंकारपिशाचकः ॥ बाधतेकिमितिब्रूहिमुनेसंदेहशांतये ॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहंभावंविनादेहस्थितिस्तज्ज्ञाज्ञयोरिह ॥ आधेयस्यनिराधानसंस्थेहो

पपद्यते ॥ २ ॥ अयंत्वत्रविशेषस्तंशृणुविश्रांतचेतसः ॥ श्रुतेनयेनाहंभावपिशाचःशांतिमेतिते ॥ ३ ॥ अहंभावपिशाचोयमज्ञानशिशुनामुना ॥ अविद्यमानएवांतःकल्पितस्तेनसंस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! निर्वाणके उदयसहित (ज्ञानी) आपकोभी क्या अहंकाररूपी पिशाच बाधा करताहै यह वार्ता सन्देहकी निवृत्तिके लिये मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! अहंकारके बिना ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंके शरीरकी स्थिति नहीं होसकती, क्योंकि निराधार आधेयपदार्थकी स्थिति नहीं होसकती ॥ २ ॥ परन्तु इसमें जो विशेषताहै सो सुनो जिसके सुननेसे चित्तके विश्रान्त होनेसे तुमारा अहंभाव शांत होजायगा ॥ ३ ॥ अविद्यमानही इस अहंभाव पिशाचको अज्ञानरूप बालकने अपने अन्तःकरणमें कल्पित किया है इसीसे यह स्थित है ॥ ४ ॥

अज्ञानमपिनास्त्येवप्रेक्षितंयन्नलभ्यते ॥ विचारिणादीपवतास्वरूपंतमसोयथा ॥ ५ ॥ यथायथाविलोक्यतेतथातथाविलीयते ॥ इहाज्ञतापिशाचिकातथाविचारितासती ॥ ६ ॥ किलसत्यामविद्यायामज्ञतोदेतिशाश्वती ॥ बुद्धिमोहात्मिकायक्षीनिर्देहैवयथानिशि ॥ ७ ॥ सतिसर्गेत्वविद्यायाःसंभवोनान्यतःक्वचित् ॥ सतिद्वितीयेशशिनिद्वितीयोविद्यतेशशः ॥ ८ ॥

अर्थ—ज्ञानी यदि विचारसे देखै तो अज्ञानभी ऐसे नहीं उपलब्ध होता जैसे दीपयुक्त पुरुषको अन्धकार ॥ ५ ॥ जैसे २ विचार करो उसीप्रकारसे विचारित क्रमसे यह अज्ञानरूप पिशाचिका नष्ट होती जाती है ॥ ६ ॥ मूल अविद्याकी विद्यमानतामें यह कार्य्यरूप अज्ञता पिशाचिका ऐसे उदय होती है जैसे बुद्धिके भ्रमसे रात्रिमें देहरहित पिशाचिका ॥ ७ ॥ सृष्टिरूप अविद्याकी विद्यमानताहीमें अविद्याकी सत्ता है अन्यथा नहीं जैसे दूसरे चन्द्रमाके रहतेही दूसरा शशक (खर्गोश) भासताहै ॥ ८ ॥

सर्गस्त्ववयमजातत्वादज्ञज्ञातोनविद्यते ॥ नजा[ति]ःकारणाभावात्पूर्वमेवखवृक्षवत् ॥ ९ ॥ परमाकाशकोशांतरादिसर्गेनिरामये ॥ पृथ्व्यादेरुपलंभस्यभवेकिमिवकारणम् ॥ १० ॥ मनःषष्ठेंद्रियातीतंमनःषष्ठेंद्रियात्मनः ॥ साकारस्यनिराकारंकथंभवतिकारणम् ॥ ११ ॥ बीजात्कारणतःकार्यमंकुरःकिलजायते ॥ नबीजमस्तियत्रास्तितत्रस्यादंकुरःकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—अज्ञानीसे कल्पित यह सृष्टि उत्पत्तिके अभावसे नहीं है, क्योंकि आकाशके वृक्ष तुल्य कारणके न होनेसे प्रथमही यह नहीं उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ जब आदि सृष्टि निर्विकार चिदाकाशमय है तब पृथिवी आदिकी प्राप्ति कैसे हो सकतीहै ॥ १० ॥ मनसहित छ इन्द्रियोंके विषय साकार जगत्का मनसहित छ इन्द्रियोंसे परे परमात्मा कैसे कारण होसकताहै ॥ ११ ॥ बीजरूप कारणसे कार्य्यरूप अंकुर उत्पन्न होताहै, और जहां बीजही नहीं है वहां अंकुरका उदय कैसे हो ॥ १२ ॥

कारणेनविनाकार्यंनचनामोपपद्यते ॥ कदाकइवखेकेनदृष्टोलब्धःस्फुटोद्रुमः ॥ १३ ॥ संकल्पेनांबरेयद्वदृश्यतेविटपादिकम् ॥ ससंकल्पस्तथाभूतोनतत्रास्तिपदार्थता ॥ १४ ॥ एवंयेयंचिदाकाशेसर्गादावनुभूयते ॥ शून्यरूपइवाकाशेसर्गस्थितिरनर्गला ॥ १५ ॥ समएवचिदाकाशःकचत्यात्मनितत्तथा ॥ स्वभावएवसर्गाख्यश्चिरवाचैतन्यमीश्वरः ॥ १६ ॥

अर्थ—कारणके बिना कार्य्य नहीं होसकता, क्योंकि आकाशमें किसने और कब प्रत्यक्ष वृक्ष देखाहै ॥ १३ ॥ जैसे संकल्पसे आकाशमें वृक्ष आदि देखपडतेहैं ऐसेही संकल्पमय यह जगत्भी है इसमें यथार्थ पदार्थरूपता नहीं है ॥ १४ ॥ सृष्टिकी आदिमें यह जो निष्कंटक ब्रह्मांडकी स्थिति अनुभूत होतीहै वहभी शून्य आकाशमें वृक्ष आदिके समान नहीं है ॥ १५ ॥ सृष्टिकी विषमतासे रहित चेतन ईश्वरही अपने आत्मामें सृष्टिरूपसे भासताहै ॥ १६ ॥

स्वप्नसर्गोत्रदृष्टांतःप्रत्यहंयोनुभूयते ॥ स्वयंसंवेदनेस्वप्नेस्फुरत्यद्रिपुराकृतिः ॥ १७ ॥ चित्स्वभावेयथास्वप्नेआस्तेसर्गइवेहयः ॥ असर्गेसर्ववद्भातितथापूर्वमहांबरे ॥ १८ ॥ अवेद्यवेदनंशुद्धमेकंभात्यजमव्ययम् ॥ सर्गादौयदनाद्यंतंस्थितःसर्गःसएवनः ॥ १९ ॥ नेहसर्गोस्तिनैवायंपृथ्व्यादिगणगोलकः ॥ सर्वंशांतमनालंबंब्रह्मैवब्रह्मणिस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रतिदिन जो स्वप्नकी अनुभूत सृष्टि है वही दृष्टान्त है; स्वप्नमें स्वयं चेतनही पर्वत तथा नगर आदि आकारसे स्फुरित होताहै ॥ १७ ॥ जैसे स्वप्नमें चित्के स्वभावमेंही सृष्टि है ऐसेही सृष्टिके अभावमें चिदाकाशमें यह जाग्रत् सृष्टि भासती है ॥ १८ ॥ सृष्टिके पूर्व विषयज्ञानसे रहित, शुद्ध, एक, अज, अनादि और अनन्त

जो परमात्मा है वही हमारी सृष्टिरूपसे स्थित है ॥ १९ ॥ इस परमात्मामें न सृष्टि है; और न पृथिवी आदि लोक हैं, किन्तु सब शांत निरालम्ब ब्रह्महीं ब्रह्ममें स्थित है ॥ २० ॥

सर्वशक्त्यात्मतद्ब्रह्मयथाकचतियादृशम् ॥ रूपमत्यजदेवाच्छंतथाभवतितादृशम् ॥ २१ ॥ यथास्वप्न पुरंजंतोश्चिन्मात्रप्रविजृंभितम् ॥ तथैवसर्गःसर्गादौशुद्धचिन्मात्रजृंभितम् ॥ २२ ॥ स्वच्छेचित्परमाकाशेचिदाकाशोयआस्थितः ॥ स्वभावएवसर्गोसावितितेनैवभावितः ॥ २३ ॥ भाव्यभावकभावादि भूमीनांभावनंभृशम् ॥ सर्वंचिन्नभएवाच्छमात्मनात्मनिसंस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अपनी सर्वशक्तिसे ब्रह्म जैसे सृष्टिरूपसे स्फुरित होताहै, वैसेही वह अपने शुद्धरूपको न त्यागते हुये सृष्टिरूपसे स्फुरताहै ॥ २१ ॥ जैसे स्वप्नका नगर जीवके लिये चिन्मात्रका विलासहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें यह जगत्की रचना चिन्मात्रका विलासही है ॥ २२ ॥ जैसे निर्मल आकाशमें नीलवर्ण आदिकी विचित्रता भासती है ऐसेही शुद्ध चिदाकाशमें उसका स्वभावही चित्की भावनासे सृष्टिरूपसे स्फुरित होताहै ॥ २३ ॥ भाव्य, भावक और भावना इनकी निरंतर उत्पत्ति यह सब चिदाकाशही अपने आत्मामें स्थित होके रचताहै ॥ २४ ॥

एवंस्थितेकुतःसर्गःकुतोविद्याकचाज्ञता ॥ ब्रह्मशांतंघनंसर्वंकाहंकारादयःस्थिताः ॥ २५ ॥ अहंभावस्यसंशांतिरेषासौकथितातव ॥ अहंभावःपरिज्ञातःपिशाचइवशाम्यति ॥ २६ ॥ मयात्वेवमहंभावः परिज्ञातोयदाखिलः ॥ तदामेविद्यमानोपिनिष्फलःशरदभ्रवत् ॥ २७ ॥ चित्राग्निदाहोविज्ञातोयथादाहेषुनिष्फलः ॥ तथाहंभावसर्गादिज्ञातंनिष्फलतामियात् ॥ २८ ॥

अर्थ—ऐसा स्थित होनेपर कहां सृष्टि, कहां अविद्या कहां अज्ञता ? और कहां अहंकार आदि हैं ? सब शांत चिद्घन ब्रह्महीं है ॥ २५ ॥ इसप्रकार अहंकारकी शांति मैंने तुमसे कही, यह अहंकार ज्ञात होनेसे पिशाचके सदृश शांत होजाताहै ॥ २६ ॥ इसप्रकार अहंभाव रूप पिशाचको जब मैं पूर्णरीतिसे जानताहूं तब वह विद्यमान भी मेरेलिये शरत्कालके मेघके तुल्य निष्फल होताहै ॥ २७ ॥ चित्रके अग्निकी दाहक्रिया जैसे निष्फलहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें ज्ञात अहंभावभी निष्फलताको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥

इतिमेहंकृतेस्त्यागेरागेचसमतायदा ॥ तदाव्योम्नइवाव्योम्नःसर्गेसर्गेचमेस्थितिः ॥ २९ ॥ अहंभावस्य नैवाहंनाहंभावोममेतिच ॥ तेनविद्धिचिदाकाशमेवेदमितिनिर्घनम् ॥ ३० ॥ यथाममतथान्येषामपिबोधवतामिह ॥ अग्नित्वमिवचित्राग्नेर्नास्त्ययंबोधविभ्रमः ॥ ३१ ॥ नाहमस्मिनचन्योस्तिसर्वंनास्तीतितिनिश्चये ॥ प्रकृतव्यवहारस्त्वंशिलामौनमयोभव ॥ ३२ ॥ आकाशकोशविशदाकृतिरेवतिष्ठनिर्देशवच्चिरमपन्हुतसर्वभावः ॥ अद्यादितश्चकिलचिन्मयमेवसर्वंनोदृश्यमस्तिशिवमेवमशेषमित्थम् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विदितवेद्याहंकारविचारो नाम सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—इसप्रकार समाधिकाल तथा रागयुक्त व्यवहारकालमें जब अहंकारके त्यागमें मुझे समताहै तब सृष्टिके अभाव तथा भाव दशामें मेरी समान स्थिति ऐसे है जैसे मेघ वायु तथा आतप आदिकी विद्यमानता तथा अविद्यमानतामें आकाशकी ॥ २९ ॥ न तो अहंकारका मैं कोई हूं, और न अहंकार मेरा कुछ है ऐसा जानके इस सम्पूर्ण जगत्को घन चिदाकाशही जानो ॥ ३० ॥ यह अहंभाव आदि भ्रम ज्ञान जैसे मेरी दृष्टिमें नहीं हैं वैसेही अन्य ज्ञानियोंकी दृष्टिमें भी नहीं हैं, क्योंकि चित्रकी अग्निमें अग्नित्व (दाहक्रिया) किसी बुद्धिमान्की दृष्टिमें नहीं है ॥ ३१ ॥ यथार्थमें न मैं हूं, न अन्यहै और न यह सब ब्रह्मांडहै, ऐसा निश्चय करके तुम भी यथाप्राप्त व्यवहार करते हुये शिलाके तुल्य मौन होजाओ ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! चिरकालके सबका बाध करके पाषाणके उदरके सदृश बन और आकाशके तुल्य निर्मल तुम अपने आत्मस्वरूपमें स्थितरहो, क्योंकि इस सृष्टिकालमें और इसके पूर्व सब शिव शांत ब्रह्महीं है, यह दृश्य प्रपंच कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विदितवेद्याहंकारविचारो नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५८ ॥

सृष्टिकी शोभा दृष्टिके भेदसे सर्वत्र है भी और नहीं भी है इसप्रकार पाषाण आख्यायिका तात्पर्य्य इस ५८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै॥

श्रीरामउवाच॥ अहोनविततोदाराविमलाविपुलाचला॥ भवताभगवन्भूत्यैभूयोदृष्टिरुदाहृता॥१॥ सर्वथासर्वदासर्वंसर्वसर्वत्रसर्वदा॥ सदित्येवास्थितंसत्यंसमंसमनुभूतितः॥ २ ॥ अयमस्तिममत्र भ्रन्संशयस्तंनिवारय॥ किमिदंभगवन्नामपाषाणाख्यानमुच्यते॥ ३॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ सर्वत्रस र्वदासर्वमस्तीतिप्रतिपादने॥ पाषाणाख्यानदृष्टांतोमयायंतवकथ्यते॥ ४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–अहो! हे भगवन्! पुनः ज्ञानैश्वर्य्यके लिये आपने यह विमल उदार गंभीर अर्थ-युक्त तथा निश्चल वाणी कही॥ १॥ हे भगवन्! सबदेश और सबकाल, सर्वथा और सबकुछ सत् ब्रह्मरूपही है यह जो आपने कहा, यह विचार और अनुभवसे भी सदा सर्वत्र सर्वथा सब कुछ एक सत् चिन्मात्रही है॥ २॥ हे भगवन्! जो मेरा संदेह है उसे निवारण कीजिये कि यह पाषाण आख्यानसे आपका क्या अभिप्राय है॥ ३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–सर्वत्र सर्वदा सबकुछ है इत्यादि कथनमें पाषाणमें दृष्टान्त है सो मैं तुमसे कहताहूं॥ ४॥

नीरंध्रैकघनांगस्थपाषाणस्यापिकोटरे॥ संतिसर्गसहस्राणिकथयेतिप्रदर्श्यते॥ ५॥ भूताकाशेमहत्य स्मिन्खशून्यत्वमनुज्झति॥ संतिसर्गसहस्राणिकथयेतिप्रदृश्यते॥ ६॥ अंतर्गुल्मांकुरादीनांप्राणिवा य्वंबुतेजसाम्॥ संतिसर्गसहस्राणिकथयेतिप्रदृश्यते॥ ७॥ श्रीरामउवाच॥ कुड्यादौसंतिसर्गौघा इतिचेत्कथ्यतेमुने॥ तत्खेविभांतिसर्गौघाइतिकिंनप्रदृश्यते॥ ८॥

अर्थ—हे रामजी! सर्वथा छिद्र शून्य पाषाणके उदरके सदृश अध्यासके अधिष्ठानरूप परब्रह्मके भीतर अनेक ब्रह्माण्ड हैं यह वार्ता इस कथासे दर्शाते हैं॥५॥ सब पदार्थोंके अभावके अधिष्ठानभूत इस भूताकाशके भी अधिष्ठानरूप चिदाकाशमें अनंत सृष्टि हैं यह विषय इस पाषाणआख्यानसे दर्शाते हैं॥ ६॥ लता, गुल्म, अंकुर, सब प्राणी, आकाश, वायु, जल और अग्निके भीतर भी अनंत सृष्टि हैं यह विषय इस कथासे दिखलाते हैं॥ ७॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने! यदि कुड्य, लता आदिमें भी अनेक ब्रह्मांडोंके समूह हैं यह इस कथाका आशय आप कहते हैं तब शुद्ध चिदाकाशही सब ब्रह्मांडोंके समूहोंका आधार है यही क्यों नहीं कहते॥ ८॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ ॥ एतत्तेवर्णितंराममुख्यमेवमयाखिलम्॥ योयमालक्ष्यतेसर्गःसखएवंखमास्थि तम्॥ ९॥ आदावेवहिनोत्पन्नमद्यापिनचविद्यते॥ दृश्यंयच्चावभातीदंतद्ब्रह्मब्रह्मणिस्थितम्॥ १०॥ नास्तिभूरणुमात्रापिसर्गैर्निर्विवरानया॥ नचकचनविद्यंतेसर्गाब्रह्मखमेवते॥ ११॥ नतेजसोणुरप्य स्तिसर्गैर्निर्विवरोनयः॥ नचकचनसर्गास्तेसंतिब्रह्मखमेवतत्॥ १२॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! तुम सत्य कहते हो यही मुख्य पक्ष है जो कुछ यह सृष्टि देखपडती है वह सब शुद्ध चिदाकाशमेंही स्थित है॥ ९॥ यह दृश्य आदिमेंही न उत्पन्न हुआ और न अब है, जो कुछ यह भासताहै वह सब ब्रह्मरूप ब्रह्महीमें स्थित है॥ १०॥ आरोप दृष्टिसे तो पृथिवीके जो छिद्ररहित देखपडताहै उसके प्रत्येक परमाणुमें सृष्टिके समूह हैं, और अपवाद दृष्टिसे तो यह अणुमात्र भी नहीं है और जो असंख्य पृथिवीकी सृष्टि भासती हैं वे कहीं नहीं हैं किंतु सब ब्रह्ममात्रही है॥ ११॥ इसीप्रकार यह तेज भी आरोप दृष्टिसे सृष्टियोंके समूहोंसे पूर्ण हैं, और यथार्थमें अणुमात्र भी नहीं है, और उसकी सब सृष्टि ब्रह्मरूपही हैं॥ १२॥

नवायोरणुप्यस्तिसर्गैर्निर्विवरोनयः॥ नचकचनविद्यतेसर्गाब्रह्मखमेवतत्॥ १३॥ खंनाणुमात्रमप्य स्तिसर्गैर्निर्विवरंनयन्॥ नचकचनसर्गास्तेसंतिब्रह्मखमेवतत्॥ १४॥ नसामहाभूततास्तिसर्गैर्निर्वि वरानया॥ नचकचनविद्यंतेसर्गाब्रह्मखमेवतत्॥ १५॥ शैलानांनाणुरप्यस्तिससर्गैर्योननिर्घनः॥ नचकचनविद्यंतेसर्गाब्रह्मखमेवतत्॥ १६॥

अर्थ—ऐसेही वायु जल भी अनेक ब्रह्मांड समूहोंसे पूर्ण हैं, और यथार्थमें अणुमात्र भी नहीं हैं, और न कहीं वायु जलकी सृष्टि हैं किंतु सब शुद्ध चिदाकाशही है॥१३॥ अनेक ब्रह्मांड समूहोंसे पूर्ण यह भूताकाश तथा उसकी सृष्टि भी कुछ नहीं है, किंतु ब्रह्ममात्रहीहै॥ १४॥ अनेक सृष्टियोंके समूहोंसे पूर्ण पंचमहाभूतता भी कुछ नहीं

(१) शुद्ध चिदाकाशका ज्ञान शीघ्र नहीं होता इसलिये आकाश आदि उपहित चेतनमें सृष्टिका अध्यास दर्शाते हैं॥

हैं, और न कहीं सृष्टि हैं किंतु सब ब्रह्ममात्रही है ॥ १५ ॥ अनेक सृष्टियोंके समूहोंसे पूर्ण पर्वतोंके समूह भी किंचिन्मात्र नहीं हैं और न कहीं सृष्टि हैं, किन्तु सब ब्रह्ममात्रही है ॥ १६ ॥

ब्रह्मणोनाणुरप्यस्तिसर्गैर्निर्विवरोनयः ॥ नचक्कचनसर्गास्तेसंतिब्रह्मखमेवतत् ॥ १७ ॥ सर्गेषुनाणुरप्यस्तिनब्रह्मात्मैवयःसदा ॥ ब्रह्मसर्गास्तथेत्येषवाचिभेदोनवस्तुनि ॥ १८ ॥ सर्गाएवपरंब्रह्मपरंब्रह्मैवसर्गता ॥ मनागप्यस्तिनद्वैतमत्राग्न्यकाष्ण्ययोरिव ॥ १९ ॥ इमेसर्गाइदंब्रह्मतेऽत्यंतावाच्यदृष्टयः ॥ विदार्यदारुरवव्द्धांत्यर्थपरिवर्जिताः ॥ २० ॥

अर्थ—अनेक ब्रह्मांडोंके रचनेवाले ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) भी कुछ नहीं हैं, और न कहीं उनकी सृष्टि हैं किंतु सब ब्रह्ममात्रही है ॥ १७ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मासे रचित ब्रह्मांडोंमें अणुमात्रभी कुछ नहीं, स्वयं ब्रह्माजी तथा उनकी सृष्टियोंमेंभी ब्रह्मके सिवाय अन्य कुछ नहीं है ब्रह्मा तथा उनके रचित पदार्थोंमें यह जो भेद भासताहै वह वाणीमात्रका भेद है न कि वस्तुमें ॥ १८ ॥ सृष्टिही परब्रह्म है और ब्रह्मही यह सृष्टि है इन दोनोंमें किंचित् भेद ऐसे नहीं है जैसे सूर्य्य और अग्निकी उष्णतामें ॥ १९ ॥ रचना क्रियासे सृष्टि, और वर्द्धन क्रियासे ब्रह्म इन दोनों क्रियाओंमेंभी परस्पर भेदके अभावसे आधार तथा आधेयकी अनिर्वचनीयतासे ये सृष्टि तथा यह ब्रह्म अपने शब्दार्थसे शून्य अभेदरूपसे ऐसे भासते हैं जैसे कुठार आदिसे विदीर्ण करने योग्य काष्ठमें शब्द ॥ २० ॥

द्वैतमैक्यंचयत्रास्तिनमनागपितत्रते ॥ सर्गब्रह्मादिशब्दार्थाःकथंकस्येवभांतुके ॥ २१ ॥ शांतमेकमनाद्यंतमिदमच्छमनामयम् ॥ व्यवहारवतोप्यंगज्ञस्यमौनंशिलाघनम् ॥ २२ ॥ निर्वाणमेवमखिलंनभएवदृश्यंत्वंचाहमद्रिनिचयाश्चसुरासुराश्च ॥ तादृग्जगत्समवलोकययादृगंगस्वप्नेऽथजंतुमनसिव्यवहारजालम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्यानेसर्गब्रह्मत्वप्रतिपादनंनामाष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जिस व्यवहारदशामें द्वैतता तथा एकताका भान होताहै वहांभी यथार्थमें शुद्ध चिन्मात्रकेही विवर्त होनेसे सृष्टि तथा ब्रह्मके शब्दार्थकी चिन्मात्रभी भिन्न नहीं है क्योंकि जब सृष्टि केवल ब्रह्ममात्रही है तब कैसे और किसको सृष्टि तथा ब्रह्मके शब्दार्थ भिन्नरूपसे भासें ॥ २१ ॥ इसलिये व्यवहारमें प्रवृत्तभी ज्ञानीको यह सम्पूर्ण जगत् शिलाके सदृश चिद्घन, शांत, एक, अनादि अनन्त तथा निर्मल ब्रह्ममात्रही भासताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! तुम, हम, पर्वत आदिके समूह तथा सुर असुर आदि सम्पूर्ण दृश्य केवल निर्वाण चिदाकाशमात्रही हैं इसलिये तुम सम्पूर्ण इस जगत्के व्यवहार समूहको ऐसे देखो जैसे जाग्रत्के पश्चात् जीवके मनमें स्वप्नमें दृष्ट जगत् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने सर्गब्रह्मत्वप्रतिपादनं नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

समाधिके विराममें सूक्ष्म ध्वनिका श्रवण, और उसके मूलके अनुसंधानमें अनन्त जगत्की प्रथा यह विषय इस ५९ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनंतरंनभःकोशकुटीकोटरतोमुने ॥ तवध्यानात्प्रबुद्धस्यवृत्तंवर्षशतेनकिम् ॥ १ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोध्यानात्प्रबुद्धोहंश्रुतवांस्तत्रनिःस्वनम् ॥ मृदुव्यक्तपदंहृद्यंनचवाच्यानुगोयतः ॥ २ ॥ स्त्रीस्वभावादिवमृदुमधुरंवानिनादिवा ॥ स्वल्पांगत्वादनिर्ह्रादिमयातद्वाक्यमूहितम् ॥ ३ ॥ इंदिंदिरुताकारंतंत्रीरणितरंजनम् ॥ नरोदनंचपठनंबिसकोशसमस्वनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! आकाशमें कुटीकी कल्पना करके दिव्य सौ (१००) वर्षपर्य्यंन्त समाधिके पश्चात् जब आप जाग्रत हुये तब क्या वृत्तान्त हुआ सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जब समाधिसे मैं जाग्रत हुआ तब किंचित् व्यक्त पदसहित, अतिरमणीय, और वाक्यार्थ बोधनके असमर्थ सूक्ष्म शब्द सुना ॥ २ ॥ स्त्रीके कंठसे निःसृतके तुल्य कोमल, मधुर शब्दकारक तथा समीपके तुल्य उस वाक्यको मैंने अनुमान किया ॥ ३ ॥ भ्रमरके शब्दके सदृश, वीणाके शब्दके समान आनन्दजनक, और न अतिमन्द न मन्द, वह शब्द था, किन्तु कमलके कोशमें भ्रमरके शब्दके सदृश, सुनाई पडताथा ॥ ४ ॥

तदाकर्ण्याशुतत्रेदमहंचिंतितवानथ ॥ शाब्दिकान्वीक्षणात्पश्यन्दिशोदशसविस्मयः ॥ ५ ॥ व्योम्नो यंसिद्धसंचारमार्गशून्यान्यनंतरम् ॥ भागोयोजनलक्षाणिसमतिक्रम्यसंस्थितः ॥ ६ ॥ तदिहेदृग्विध स्यस्यात्कुतःशब्दस्यसंभवः ॥ शाब्दिकंनचपश्यामियत्नेनापिविलोकयन् ॥ ७ ॥ अनंतमिदमाशून्यं पुरोमेनिर्मलंनभः ॥ इहभूतंप्रयत्नेनप्रेक्ष्यमाणनदृश्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—उस शब्दको सुनकर और शब्द करनेवालेके अनुसंधान (खोजने) से विस्मित होके दशोदिशाओंको देखते हुये शीघ्र मैंने यह चिन्तन किया ॥ ५ ॥ कि सिद्धोंके संचारसे भी शून्य लाखों योजनोंको उल्लंघन करके यह आ- शका भाग स्थित है ॥ ६ ॥ सो इसप्रकार स्त्रीके शब्दके सदृश अति मधुर शब्द इस एकान्तस्थानमें कैसे संभव है और दशोदिशाओंको यत्नसे देखते हुये भी शब्द करनेवालेको नहीं देखता ॥ ७ ॥ यह मेरे सन्मुख अनन्त, सर्वथा शून्य तथा निर्मल आकाशही आकाश है, यहां अति प्रयत्नसे भी अन्वेषण करनेपरभी कोई प्राणी नहीं देखपडता॥८॥

यदेतिचिंतयित्वाहंभूयोभूयोविलोकयन् ॥ शब्देश्वरंनपश्यामितदाचिंतितवानिदम् ॥ ९ ॥ आकाशए वभूत्वाहमाकाशेनैकतांगतः ॥ आकाशगुणशब्दार्थानूकरोम्याकाशकोशके ॥ १० ॥ देहाकाशमिह स्थाप्यध्यानेनेहयथास्थितम् ॥ चिदाकाशवपुर्व्योम्नायाम्यैक्यंवारिवांबुना ॥ ११ ॥ चिंतयित्वेत्यहं त्यक्तुंदेहंपद्मासनस्थितः ॥ आसंसमाधिमाधातुंपुनरामीलितेक्षणः ॥ १२ ॥

अर्थ—जब इसप्रकार विचार करके पुनः २ देखनेपर भी, शब्द करनेवालेको मैंने नहीं देखा तब यह चिंतन किया ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् मैं चिदाकाशरूप होके और उसके साथ एकरूपताको प्राप्त होकर यह चिन्तन किया कि आकाशके गुण शब्द तथा उसके अर्थोंको साक्षात्कार करूं ॥ १० ॥ ध्यानसे देहाकाशको यथास्थित यहांही स्थापन करके, और चिदाकाशरूप होकर अव्याकृत आकाशमें ऐसा एकताको प्राप्त होजाऊं जैसे जलकाबिंदुजलमें ॥ ११ ॥ ऐसा विचार करके देह त्यागार्थ पद्मासनपर स्थित हुआ, और समाधि लगानेकेलिये पुनः मैं नेत्रोंको मूंदा ॥ १२ ॥

त्यक्त्वाबाह्यार्थसंस्पर्शानिंद्रियानांतरानपि ॥ चित्ताकाशोहमभवंसंवित्स्पंदमयात्मकः ॥ १३ ॥ क्रमा त्तदपिसंत्यज्यबुद्धितत्त्वपदंगतः ॥ संपन्नोहंचिदाकाशेजगज्जालैकदर्पणः ॥ १४ ॥ ततस्तेनस्वभावे नभूतव्योमैकतामहम् ॥ संप्रयातोंबुनैवांबुसौरभंसौरभेनवा ॥ १५ ॥ संपन्नोथमहाकाशंव्याप्यानंतो थसर्वगः ॥ अनाकारोप्यनाधारःसर्वार्थाधारतांगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—और अनन्तर बाह्य इन्द्रियोंके शब्द आदि विषयोंको तथा आभ्यन्तरीय संकल्प, स्मरण निश्चय आदि विषयोंको भी त्यागकर, संवित्के स्फुरणरूप चित्ताकाशरूप मैं होगया ॥ १३ ॥ क्रमसे उसको भी त्यागकर मैं बुद्धि- रूपताको प्राप्त हुआ और बुद्धिरूपको भी त्यागकर चिदाकाशमें जगत्जालका मैं दर्पणरूप होगया ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् मैं उस स्वभावसे आकाशरूपताको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे नदीआदिका जल समुद्ररूपताको वा अल्प सुगन्ध महासुगन्धरूपताको ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर सबको व्याप्त होकर सर्वव्यापी मैं चिदाकाशरूप होगया, और आकार तथा आधार रहितभी मैं सब पदार्थोंका आधार रूप होगया ॥ १६ ॥

अहंत्रैलोक्यवृंदानिसंसाराणांशतानिच ॥ तत्रब्रह्मांडलक्षाणिपश्याम्यगणितान्यपि ॥ १७ ॥ परस्परम दृष्टानिमिथःखान्यमलानिच ॥ नानाचारविचाराणिशून्यान्येवपरस्परम् ॥ १८ ॥ स्वप्नरूपाणिसुप्ता नांतुल्यकालंनृणामिव ॥ महारंभानुसृष्टानिशून्यानिचपरस्परम् ॥ १९ ॥ जायमानानिनश्यंतिवर्द्धमाना निभूरिशः ॥ वर्त्तमानान्यतीतानिभविष्यंतिचसर्वशः ॥ २० ॥

अर्थ—उस दशामें प्राप्त चिदाकाशमें मैंने, अनेक त्रैलोक्योंके समूह सैकडों जगत् और अगणित लक्ष ब्रह्मां- डोंको देखा ॥ १७ ॥ वे सब ब्रह्मांड परस्परकी दृष्टिमें निर्मल अव्याकृत आकाशमात्र, नानाप्रकारके आचार विचारसे पूर्ण, और परस्पर शून्य तथा अदृष्टरूप थे ॥ १८ ॥ और एककालमें सोतेहुये मनुष्योंके नानाप्रकारके स्वप्नके सदृश, एककी दृष्टिमें महान् आरंभोंसे युक्त और अन्यकी दृष्टिमें शून्यरूप वे सब ब्रह्मांड शून्य तथा अशून्यरूप भी थे ॥ १९ ॥ अनेक ब्रह्मांडोंको उत्पन्न होते हुये, अनेक नष्ट होते हुये, अनेक वृद्धिशील तथा अनेक वर्तमान, अतीत और भविष्य ब्रह्मांडोंको भी मैंने देखा ॥ २० ॥

अनेकचित्रजालानिमहाभित्तीनिखानिच ॥ मनसेवोग्रराज्यानिकृतानिविविधैर्जनैः ॥ २१ ॥ निरावरण रूपाणितथैकावरणानिच ॥ पंचावरणयुक्तानिषडेकावरणानिच ॥ २२ ॥ दशावरणचित्राणिषोडशाव रणानिच ॥ चतुर्विंशत्यावृतानिषट्त्रिंशत्खावृतानिच ॥ २३ ॥ शून्यानिभूतपूर्णानिपंचभूतमयान्यपि ॥ एकपृथ्व्यादिभूतानिचतुःपृथ्व्यादिकानिच ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अनेक मनुष्य मनसे अनेक राज्य करतेहैं ऐसेही अनेक चित्रजालसहित महाभित्तिरूप ब्रह्मांडोंको तथा शून्य आकाशको भी मैंने देखा ॥ २१ ॥ आवरणरहित, एक आवरणसहित, पंचआवरणसहित, तथा सप्त आवरणसहित, ब्रह्मांडोंको मैंने देखा ॥ २२ ॥ पंचीकृत तथा अपंचीकृत पंचभूतरूप दश आवरणसहित, ये दश तथा तन्मात्रा, अहंकार महतत्व और प्रकृति आदि सांख्यमतसे षोडश आवरणसहित, सांख्यमतकेही अनुसार चतुर्विंशतितत्वरूप आवरणसहित और शैवमतके अनुसार छत्तीस तत्वरूप आवरण सहित, ब्रह्मांड चित्रोंको मैंने देखा ॥ २३ ॥ शून्य तथा प्राणियोंसे पूर्ण, पंचभूतमय, पृथिवी आदि एक २ भूतसहित तथा पृथिवी आदि चारभूत ब्रह्मांड चित्रोंको देखा ॥ २४ ॥

त्रिःपृथ्व्यादीनिचान्यानिद्विःपृथ्व्यादीन्यथापिच ॥ तथासप्तमहाभूतान्येकजातिमयानिच ॥ २५ ॥ त्वादृशानुभवाभोगविरुद्धातिदशानितु ॥ तथानित्यांधकाराणिसूर्यादिरहितानिच ॥ २६ ॥ तथामीलितसर्गाणिएकनाथावृतानिच ॥ विलक्षणप्रजेशांशविचित्राचारवंतिच ॥ २७ ॥ तथानिर्वेदशास्त्राणि निःशास्त्राणितथैवच ॥ कृमिक्रमसमारंभदेवादिप्राणिमंतिच ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथिवी जल तेजसहित, पृथिवी जलसहित और पृथिवी आदि पंचभूत तथा दिशा और काल सप्तभूतसंयुक्त तथा एक जातिके प्राणियोंसहित अनेक ब्रह्मांडोंको देखा ॥ २५ ॥ तथा तुमारे सदृश मनुष्योंके अनुभवके विरुद्ध भोगोंकी दशायुक्त और सूर्य्य चन्द्रमा आदिसे रहित नित्य अन्धकारमय ब्रह्मांडोंको देखा ॥ २६ ॥ तथा प्रलय और सुषुप्तिके सदृश सृष्टियुक्त सृष्टिकी आदिमें हिरण्यगर्भ आदि एक २ स्वामियोंसे पूर्ण और विलक्षण प्रजापतियोंके अंशभूत चित्रविचित्र देवताओंके आचार विचारसंयुक्त अनेक ब्रह्मांडोंको देखा ॥ २७ ॥ तथा वैराग्य प्रतिपादक वेदान्त आदि शास्त्रसहित और शास्त्रोंसे शून्य तथा उदुम्बर (गूलर) के कृमियोंके सदृश अनेक समारंभयुक्त देवता आदि अनेक प्राणियोंसे पूर्ण नानाप्रकारके ब्रह्मांडोंको मैंने देखा ॥ २८ ॥

जात्यातुपारंपर्येणसंकेताचारवंतिच ॥ तथानित्यप्रकाशानिज्वलिताग्निमयानिच ॥ २९ ॥ तथाजलैकपूर्णानिपवनैकमयानिच ॥ स्तब्धानिपरमाकाशेवहंतिचतथानिशम् ॥ ३० ॥ जायमानानिपुष्यंतिपरिपुष्टानिचाभितः ॥ तिर्यग्गच्छंतिचान्यानिपूर्णसर्वमयान्यपि ॥ ३१ ॥ देवमात्रैकसर्गाणिनरमात्रमयानिच ॥ दैत्यवृंदमयान्येवकृमिनिर्विवराणिच ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कहीं कलियुगके आरंभमें वेदशास्त्र आदिके उच्छेदसे परंपरासे संकेतित ब्राह्मण आदिके आचारोंसे संयुक्त और कहीं प्रज्वलित अग्नि आदिके प्रकाशोंसे पूर्ण ब्रह्मांडोंको देखा ॥ २९ ॥ कोई ब्रह्मांड केवल जलसेही पूर्ण थे, कोई केवल पवनसे, और कोई चिदाकाशमें निश्चल थे और कोई निरंतर चलायमान थे ॥ ३० ॥ कोई ब्रह्मांड उत्पन्न होरहेथे, कोई बढतेथे कोई सर्वथा चारोंओरसे वृद्धिको प्राप्त थे और कोई संपूर्ण भोगोंसे पूर्ण तिरछे चलतेथे ॥ ३१ ॥ कोई ब्रह्मांड केवल देवतामात्रसे पूर्णथे, कोई मनुष्योंसे कोई दैत्योंसे और कोई कीट पतंग आदिसे पूर्ण थे ॥ ३२ ॥

अंतरंतस्तदंतश्चस्वकोशेप्युणुकंप्रति ॥ जातानिजायमानानिकदलीदलपीठवत् ॥ ३३ ॥ परस्परमदृष्टानिनानुभूतानिवैमिथः ॥ सैनिकस्वप्नजालानिजातानीवमहांत्यपि ॥ ३४ ॥ विविधान्यप्यनंतानिस्वच्छाकाशात्मकान्यलम् ॥ अन्योन्यमन्यवृत्तीनिनमिथोन्यस्थितीनिच ॥ ३५ ॥ मिथश्चान्यान्यशास्त्राणिमिथोनंतानियानिच ॥ अन्योन्यसन्निवेशानिमिथोन्योन्यानियानिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—केलेके दलके सदृश प्रत्येक परमाणुओंके भीतर और पुनः उन परमाणुके भीतर भी अनेक ब्रह्मांड उत्पन्न हो चुकेथे, होतेथे और होनेवालेथे ॥ ३३ ॥ सेनाके योधाओंके स्वप्नके जालके सदृश अनेक महाब्रह्मांड परस्पर अदृष्ट और अननुभूत थे ॥ ३४ ॥ परस्पर पृथक् २ क्रिया तथा स्थितिसहित नानाप्रकारके अनंत ब्रह्मांड होनेपर भी यथार्थमें स्वच्छ चिदाकाशरूपही थे ॥ ३५ ॥ परस्पर शास्त्र ज्ञानसंयुक्त, परस्पर अनंत ब्रह्म स्वभावमें स्थित एक दूसरेके आकारके सदृश, तथा परस्पर सदृश ज्ञानयुक्त अनेक ब्रह्मांड चिदाकाशमें मैंने देखे ॥ ३६ ॥

अन्योन्यंपरलोकानिमिथःखिद्धपुराणिच ॥ अन्यादृशमहाभूतान्यन्यादृग्दिग्गिरीणिच ॥ ३७ ॥ त्वादृशानुभवेहानामगम्याभ्यागतानिच ॥ असमंजसरूपाणिकथ्यमानानिमादृशैः ॥ ३८ ॥ अणुवत्सेष्यमाणानिचिदादित्यांशुमंडले ॥ परमार्थश्रियोव्योम्निरश्मिजालानिकुंडले ॥ ३९ ॥ कानिचित्तानितान्येवभूत्वाभूत्वाभवंत्यलम् ॥ कानिचित्तादृशान्येवजातानिवनपर्णवत् ॥ ४० ॥

अर्थ—परस्पर परलोकगामी, परस्पर अन्तर्धान आदि शक्तिसे सिद्ध नगरोंसे संयुक्त, तथा भिन्न २ प्रकारके महाभूत, और भिन्न २ प्रकारके दिशा तथा पर्वतोंसे सहित अनेक ब्रह्मांड चित्रोंको मैंने देखा ॥ ३७ ॥ तथा तुमारे सदृश मनुष्योंके अनुभव प्रयत्न और चेष्टाओंके अगम्य अति समीपमें प्राप्त, और मुझसे वर्णित भी असमंजस (अनुभवके विपरीत) रूपवाले अनेक ब्रह्मांड मैंने देखे ॥ ३८ ॥ और चित्‌रूपी सूर्य्यके किरणसमूहमें परमाणुओंके तुल्य प्रसिद्ध, और मोक्ष लक्ष्मीके सुवर्णके कुंडलके सदृश अव्याकृत आकाशमें विचित्र रत्नोंके किरणके समान स्थित अनेक ब्रह्मांड मैंने देखे ॥ ३९ ॥ और बनके पत्रोंके सदृश कोई २ उसी रूपसे पुनः २ उत्पन्न हो होकर नष्ट होतेथे और पुनः २ उत्पन्न होतेथे, और कोई २ उन्हींके सदृश पुनः उत्पन्न होतेथे ॥ ४० ॥

अन्योन्यत्वाच्चसदृशान्यन्यानिसदृशान्यपि ॥ कंचित्कालंसुसदृशान्यन्यान्येवचकानिचित् ॥ ४१ ॥ फलानितान्यनंतानिपरमार्थमहातरोः ॥ अनन्यान्येवचान्यानितन्मयान्येववैततः ॥ ४२ ॥ कानिचित्स्वल्पकल्पानिदीर्घकल्पानिकानिचित् ॥ अन्यान्यनियतंभूरिनियतंभूरिकानिचित् ॥ ४३ ॥ अन्यान्यज्ञातकालानियदृच्छावशतःस्वयम् ॥ जायमानानिपृष्ठानिसुस्थिराणिस्थितानिच ॥ ४४ ॥

अर्थ—एक चेतनमें अध्यक्ष होनेसे कोई २ परस्पर सदृश थे कोई अति भिन्नरूपके थे, मायाकी विचित्रतासे कोई तो कुछ कालतक सदृश थे और पुनः भिन्नरूपके ब्रह्मांड थे ॥ ४१ ॥ वृक्षके फलोंके सदृश चिद्रूप महावृक्षके फलरूप अनन्त ब्रह्माण्ड कोई परस्पर समानरूप थे और कोई २ असमानरूप थे ॥ ४२ ॥ कोई २ ब्रह्मांड अल्प कल्प स्थायी थे, कोई दीर्घकल्प स्थायी थे, कोई २ अनियत देशकाल स्थायी भी थे और अनेक ब्रह्मांड नियत देशकाल स्थायी थे ॥ ४३ ॥ सूर्य्यआदिके न होनेसे कितने ब्रह्मांड कालज्ञानसे रहित थे, कितने अकस्मात् उत्पन्न होतेथे, और कितने वृद्धिको प्राप्त स्थिर स्थित थे ॥ ४४ ॥

तानिशून्यत्वजालानिपरमाकाशकोशके ॥ अपरिज्ञातकालानिरूढान्यज्ञातदोषके ॥ ४५ ॥ अब्ध्यर्काशमेर्वादिशैरावलितान्यलम् ॥ चिच्चमत्कारखेस्वप्नजालान्याभांतिचाविलम् ॥ ४६ ॥ अनुभूतेर्भ्रमात्मत्वात्कारणानामभावतः ॥ पृथ्व्यादीनामहेतूनामत्यंतंसंत्यसंतिच ॥ ४७ ॥ मृगतृष्णांबुभरवद्विचंद्रव्योमवर्णवत् ॥ संपन्नानिनसत्यानिसत्यान्यप्यनुभूतितः ॥ ४८ ॥

अर्थ—अज्ञानके दोषसे अनादिकालसे साक्षीचेतनमें अध्यस्त सब ब्रह्मांड चिदाकाशके कोशमें यथार्थमें शून्यरूपही थे ॥ ४५ ॥ असंख्य समुद्र, पृथिवी, सूर्य्य, आकाश तथा मेरुआदि पर्वतोंसे पूर्ण अनन्त ब्रह्माण्ड चिदाकाशमें रजोगुण तमोगुणकी मलिनतासे स्वप्नजालके सदृश भासते हैं ॥ ४६ ॥ कारण रहित पृथिवी आदिका अनुभव भ्रमरूप होनेसे ये सब जगत् अधिष्ठानरूपसे तो हैं और अपने स्वरूपसे नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अनुभवसे सत्य भासमान भी सब ब्रह्मांड मृगतृष्णाके जल, दो चन्द्रका भ्रम और आकाशके वर्णके तुल्य सत्य नहीं हैं ॥ ४८ ॥

चित्संकल्पनभस्येवभासमानानिभूरिशः ॥ वासनावातनुन्नानिविलुठंत्यात्मचेष्टितैः ॥ ४९ ॥ सुरासुरादिमशकाब्रह्मोदुंबरद्रुमे ॥ फलानिरसपूर्णानिघूर्णमानानिमारुतैः ॥ ५० ॥ अभिजातस्वभावस्यसर्गारंभकरस्यच ॥ शुद्धचित्तत्त्वबालस्यसंकल्पनगराणिखे ॥ ५१ ॥ त्वमहंसइदंचेतिधियाबलदृढान्यलम् ॥ संपन्नान्यर्कदीप्त्येवपंकक्रीडनकानिच ॥ ५२ ॥

अर्थ—वासनारूपी पवनसे प्रेरित, भासमान अनेक ब्रह्मांड चित्के संकल्पजनित आकाशमें आत्माकी चेष्टासे इधर उधर भ्रमण कररहे हैं ॥ ४९ ॥ ब्रह्मरूपी उदुम्बर (गूलर) के वृक्षमें अनेक भोगोंकी विचित्रतारूप रससे पूर्ण, सुर, असुर तथा मनुष्यआदि मशकों (मच्छरों) सहित अनन्त ब्रह्मांडरूपी फल वासनारूपी पवनसे इधर उधर लुढक रहे हैं ॥ ५० ॥ ये सब ब्रह्मांड उत्तम स्वभावयुक्त, तथा सृष्टिरूप क्रीडाकारी शुद्ध चित्तत्वरूपी बालकके संकल्प नगर हैं ॥ ५१ ॥ तुम, हम, वह, यह इत्यादि संसार अज्ञानी बालककी बुद्धिसे ऐसे दृढताको प्राप्त हुये हैं जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे गीली मृत्तिकाके खिलौने ॥ ५२ ॥

वृत्तानिरसशालिन्यानियत्यानित्यतृप्तया ॥ वनान्युग्रफलानीववसंतरसलेखया ॥ ५३ ॥ महाकर्तृण्यकर्तृणिनकृतान्येवखानिवा ॥ स्वयंसंपन्नरूपाणिचिद्व्योम्न्येवकृतानिवा ॥ ५४ ॥ परमार्थमयान्येवतदन्यद्वोदितान्यपि ॥ अलब्धान्येवलब्धानिसदाऽसंत्येवसंतिच ॥ ५५ ॥ चतुर्दशदशैकादिविधभूतगणानिच ॥ पुनस्तान्येवतान्यंतरन्यान्यन्यान्यथोबहि ॥ ५६ ॥

अर्थ—सर्वदा तृप्त और रागयुक्त कर्मोंके फलोंको अवश्य देनेवाली नियतिने सब ब्रह्मांडोंको शाखा आदिसे ऐसे संपन्न किया है जैसे वसंतके रसकी रेखा उग्र फलसहित बनोंको ॥ ५३ ॥ परमात्माने पृथिवी तथा स्वर्ग आदि

लोकोंका निर्माण किया इत्यादि अर्थ प्रतिपादक श्रुतियोंके अनुसार सब ब्रह्मांडोंका कर्ता महाचेतन (ब्रह्म) ही है, और शुद्धब्रह्ममें कर्तृता नहीं है इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार सब ब्रह्मांड कर्ता रहित चिदाकाशमें स्वयं सिद्धरूप हैं ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! परमार्थ ब्रह्मस्वरूप होते हुये भी उससे भिन्नके सदृश सब ब्रह्मांड प्रकट होरहे हैं और अप्राप्त भी प्राप्त; तथा सदा असत् भी सत्के तुल्य भासते हैं ॥ ५५ ॥ चतुर्दशभुवनोंकी अपेक्षासे १४ प्रकारके देवताओंकी दश योनिकी संख्यासे १० प्रकारके, तथा मनुष्यआदि जातिकी अपेक्षा एक प्रकारके जीवोंके गणसहित अनेक जगत् पुनः २ वेही होते हैं और अन्य २ भी होते हैं ॥ ५६ ॥

नरकस्वर्गपातालबंधुमित्रमयान्यपि ॥ महारंभमयान्येवशून्यानिपरमार्थतः ॥ ५७ ॥ क्षीरांबुधेर्जलानीवस्नेहसाराणिसर्वतः ॥ तरंगभंगुराण्यंतर्बहिश्चावृत्तिमंतिच ॥ ५८ ॥ आभासमात्ररूपाणितेजस्यात्मविवस्वतः ॥ जातानीवस्वतस्तानिस्पंदनानिनभस्वतः ॥ ५९ ॥ वृक्षरूपाणिपत्राणांबुद्ध्यहंकारचेतसाम् ॥ असतामप्यसंत्येवस्वप्नेन्यस्तनृणामिव ॥ ६० ॥

अर्थ—नरक, स्वर्ग, पाताल, बंधु तथा मित्रादिसे पूर्ण और महाआरंभयुक्त अनेक जगत् यथार्थमें शून्यरूपही हैं ॥ ५७ ॥ और सब जगत् क्षीरसागरके जलके सदृश सर्वत्र स्नेहरूपी सारयुक्त, भीतरसे तरंगोंके सदृश क्षणभंगुर और बाहरसे परिवर्तन (तब्दीलात) युक्तहैं ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! ये सब ब्रह्मांड चेतनरूपी सूर्य्यके तेजमें आभासरूप और वायुके स्पन्दके सदृश स्वयं उत्पन्न हुये हैं ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! ये सब ब्रह्मांड बुद्धि, अहंकार तथा चित्तरूपी पत्रोंके आश्रयभूत वृक्ष तथा स्वप्नमें अपनेसे भिन्न मनुष्योंके दृश्यके तुल्य असतरूपही हैं॥६०॥

पुराणवेदसिद्धांतकल्पनातल्पपालिषु ॥ घननिद्राणिसुप्तानिबिभ्रंतिशवतामिव ॥ ६१ ॥ परमार्थमहारण्येचिद्गंधर्वकृतानिवै ॥ सूर्यदीपकदीप्तानिगृहाणिगहनात्मनि ॥ ६२ ॥ प्रजायमानानिनभस्यनंतेविशीर्यमाणानिचनिर्निमित्तम् ॥ तदात्वहंवैतिमिराक्षदृष्टकेशोंड्रकानीवजगंत्यपश्यम् ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने जगज्जालवर्णनं नामैकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—पुराण तथा वेदोंमें प्रसिद्ध यज्ञ, जप, तप तथा दान आदिके अवश्य भावीफलकी कल्पनारूप स्वप्नोंमें महानिद्रायुक्त अनेक जगत् ब्रह्मज्ञानके अभावसे मानो मृतकदशाको धारण कियाहै ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूप महाजंगलमें माया उपहित चेतनरूप गंधर्वसे रचित और सूर्य्यरूपी दीपकोंसे प्रदीप्त गृहोंके सदृश अनन्त ब्रह्माण्ड शोभित होरहेथे ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! उस समाधिकालमें मैंने अनन्त चिदाकाशमें विनाकारणही उत्पन्न तथा नष्ट होते हुये भ्रममात्रसे सिद्ध अनेक जगत् ऐसे देखे जैसे तिमिर आदि दोषयुक्त नेत्रसे आकाशमें केश आदि ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने जगज्जाल वर्णनं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

समाधिमें शब्द करनेवाली स्त्रीका दर्शन और उसका अनादर करके विचित्र जगत्का दर्शन इत्यादि विषय इस ६० के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोहमभितोभ्रांतस्तादृशंप्रविचारयन् ॥ बहुकालमसंरुद्धसंविदाकाशतांगतः ॥ १ ॥ शब्दंपश्चात्तमश्रौषमहंवीणास्वनोपमम् ॥ क्रमात्स्फुटपदंजातंततआर्यात्वमागतम् ॥ २ ॥ शब्ददेशपतद्दृष्टिर्दृष्टवान्वनितामहम् ॥ पार्श्वेकनकनिष्पंदप्रभायाभासितांबराम् ॥ ३ ॥ आलोलमाल्यवसनामलकाकुललोचनाम् ॥ लोलद्धम्मिल्लवलनामन्यांश्रियमिवागताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! उसके पश्चात् इसप्रकार मैं शब्द करनेवालेको चारोओर खोजते हुये अपरिछिन्न चिदाकाशरूपताको प्राप्त होगया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर उस शब्दको बीणाके शब्दके सदृश मैंने सुना, इसके अनन्तर वह शब्द क्रमसे स्पष्ट होके आर्य्याछन्द (जिसके प्रथम तथा तृतीयपादमें १२ मात्रा द्वितीयमें १८ और चतुर्थमें १५ मात्रा होती हैं) मुझे सुन पडा ॥ २ ॥ जब मेरी योगदृष्टि शब्दकी ओर गई तब मैंने समीपमेंही सुवर्णके प्रकाशके सदृश प्रकाशसे आकाशको भी प्रकाशित करनेवाली एक स्त्रीको देखा ॥ ३ ॥ चंचल वस्त्र तथा हारको धारण किये हुये, लोचनोंके समीपतक व्याप्त केश और चंचल केश बन्धनसे शोभित दूसरी लक्ष्मीके तुल्य उस स्त्रीको मैंने देखा ॥ ४ ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मके हृदयके अज्ञानसे जगत् नष्ट होनेपर भी अनश्वर है, और ब्रह्मज्ञान होनेपर विद्यमानभी जगत् न कभी था, न है और न होगा यह विषय ६१ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ चिदाकाशाच्चिदाकाशेपयसीवपयोरयाः ॥ चित्त्वाज्जीवाःस्फुरंत्येतेएतएवमनांसिनः ॥१॥ विशदाकाशरूपाणितान्येवचमनांसिनः ॥ जगंतितान्यनंतानिसंपन्नान्यभितस्स्वयम् ॥२॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्वभूतगणेमोक्षंमहाकल्पक्षयेगते ॥ पुनःकस्यकथंसर्गसंवित्तिरुपजायते ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयपर्यंतेक्षितिजलपवनहुताशाकाशाशेषविशेषविनाशेआब्रह्मस्थावरांतेषुमुक्तेपरिणतेषुभूयोयथेदंजगदनुभूयतेतथाशृणु ॥ अव्यपदेश्यंयत्परमार्थघनंब्रह्मचिन्मात्रमित्याचक्षते मुनयः तस्यहृदयमिदंजगत्तस्मादव्यतिरिक्तमेव सएवचदेवस्तदात्मीयंहृदयंस्वभावंजगदित्यवगच्छतिचविनोदेनैवनतुवास्तवेनरूपेणजगदितिकिंचिदुपलभामहे ॥ विचारयंतस्तस्मात्किमिवनश्यतिकिमिवजायते यथापरमकारणमविनाशितथातद्धृदयमविनाश्यंच महाकल्पादयश्चतदवयवा एव अपरिज्ञानमात्रमत्रकेवलंभेदायैवतदपिप्रेक्ष्यमाणंनलभ्यतएव ॥ ४ ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! चित्स्वरूपके अज्ञानसे चिदाकाशसे तथा चिदाकाशमें प्राणरूप उपाधिसे परिच्छिन्न चेतनरूप जीव ऐसे स्फुरित होते हैं जैसे जलमें जलके वेग और वेही परिच्छिन्न चेतन उत्तरोत्तर अनेक संकल्प विकल्पोंसे आत्मामें करणभावकी कल्पनासे हमारे मन कहलाते हैं ॥ १ ॥ और वेही महान् चिदाकाशरूप हमारे मन अपने आभ्यन्तर गत जगत्की वासनासे स्वयं अनन्त जगत्के आकारमें परिणत हुये ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन्! महाकल्पके क्षय होनेपर ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) के मुक्त होनेसे उनके अविद्यासे उत्पन्न सब प्राणी समूहके मुक्त होनेपर पुनः सर्ग (सृष्टि) का ज्ञान किसको और कैसे होसकताहै ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—महाकल्पके अंतमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आकाश, तथा इनके अन्तर्गत सब पदार्थोंके नाश होनेपर तथा ब्रह्मासे लेके स्थावरपर्य्यन्त सबके मुक्त होनेपर जैसे यह जगत् अनुभूत होताहै वह सुनो, सब नष्ट होनेपर वाणीका अविषय परमार्थ घन चिन्मात्र ब्रह्म जिसको मुनिजन कहतेहैं वही शेष रहजाताहै और उस ब्रह्मका हृदय स्वरूप यह जगत् उससे अभिन्नरूप है, सो यद्यपि मुक्तकी दृष्टिमें सबकी जीवन्मुक्ति है तथापि एक समयमें सबके ज्ञानोदयका अभाव है सो उनकी दृष्टिमें बंधका अनुभव होताही है, इसलिये वह परमात्मा देव अपने हृदयरूप जगत्को बद्ध दृष्टिसे अनुभव करताहै, मुक्त दृष्टिसे नहीं अनुभव करता, अस्मद् आदि जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें बाधित वा मिथ्यारूपसे विनोदमात्रके लिये अनुभव करताहै, यथार्थमें इस जगत् कुछ रूप नहीं पाते, इसलिये विचार करनेपर इसका क्या नष्ट होताहै और क्या उत्पन्न होताहै जैसे परमकारण जगत् अविनाशी है ऐसेही उसका हृदय जगत् भी अविनाशी है, और महाकल्पादि उसके कल्पित अवयवरूप हैं, अज्ञानमात्रसे केवल भेदमात्रके लिये कल्प महाकल्पादि कल्पना हैं, क्योंकि नित्य ब्रह्मके अनित्य महाकल्पादि कल्पना अवयव नहीं होसकते और नष्ट कल्प भेद पुनः आसकते हैं, इसलिये ब्रह्मस्वरूप विद्यमान कल्पोंका जपमालाके तुल्य परिवर्तन पुनः २ कालचक्ररूपमें होताहै और विचारनेपर वह भी कुछ नहीं है ॥ ४ ॥

तस्मान्नकस्यचित्कदाचिन्नश्यतिकचित् ॥ नचैवजायतेब्रह्मशांतंदृश्यमजंस्थितम् ॥ ५ ॥ आकाशपरमाणुसहस्रांशमात्रेपियाशुद्धचिन्मात्रसत्ताविद्यते ॥ ६ ॥ वपुर्जगदिदंतस्यानन्तुनाममहाचितेः ॥ कथंनश्यत्यनष्टायांतस्यांसाचननश्यति ॥ ७ ॥ संविदोहृदयंस्वप्नेयथाभातिजगत्तया ॥ व्योमात्मैवतथैवादिसर्गात्प्रभृतिभासते ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये कभी किसीका न कुछ नष्ट हो और न उत्पन्न हो, किंतु यह सब दृश्य अज शांत ब्रह्मरूपही स्थित है ॥ ५ ॥ आकाशमें तथा परमाणुके सहस्रांशमात्रमें भी जो शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है वही है ॥ ६ ॥ जब महाचित्का शरीरही यह जगत् है तब उसके विद्यमानतामें यह जगत् कैसे नष्ट होसकताहै ॥ ७ ॥ संवित्का स्वरूपही जैसे स्वप्नमें जगत्रूपसे भासताहै ऐसेही चिदाकाशही सृष्टिसे आदि लेके सब पदार्थरूप भासताहै ॥ ८ ॥

चिद्व्योमावयवःसर्गःसर्गस्यैतादृशाःक्षयाः ॥ उदयाश्चेतिखंसर्वंकिंनाशिकिमनाशिच ॥ ९ ॥ एषाहि परमार्थसंविदच्छेद्याऽदाह्याऽक्लेद्याऽशोष्यासाह्यतीहदामदृश्यातस्यायद्धृदयंतत्तदेवभवतियथासीनन

श्यतितदंतर्वर्तीजगदाद्यनुभवोनजायतेननश्यत्येवेतिकेवलंस्मरणविस्मरणवशेनस्वभावरूपेणानुभवा ननुभवौकल्पयतीव ॥ १० ॥ २ ॥ यद्यद्यदात्मकंतत्त्वंतद्विनाशंविनाऽक्षयि ॥ तस्माद्ब्रह्मात्मकंदृश्यंविद्धिब्रह्मवदक्षयम् ॥ ११ ॥ महाप्रलयादयस्तदवयवाएव ॥ १२ ॥ ३ ॥

अर्थ—चिदाकाशका कल्पित अवयव यह सर्ग (सृष्टि) है और सर्गके ऐसेही कल्पित क्षय और उदय हैं, तब क्या नाशवान् और क्या अनश्वरहै ? ॥ ९ ॥ चित्स्वरूप यह परमार्थ संवित् अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य (गीला करनेके अयोग्य) और अशोष्यहै यह अज्ञानियोंके अनुभवमें नहीं दृष्ट होती, इसी चित्का हृदयरूप यह जगत्है जैसे यह चित् नहीं नष्ट होती ऐसेही उसके अन्तर्गत जगत् तथा उसके कारण अज्ञानको अनुभव भी यथार्थमें न उत्पन्नहो और न नष्टहो किन्तु केवल उसके स्मरण तथा विस्मरणके वशसे निजआत्मस्वभावहीसे जगत्के अनुभव तथा अननुभवको कल्पित करताहै ॥ १० ॥ जो वस्तु जिसका स्वरूपहै वह उसके नाशके विना अक्षय रूपहै, इसलिये ब्रह्मस्वरूप इस दृश्यको ब्रह्मकेही सदृश अक्षय जानो ॥ ११ ॥ और महाप्रलय आदि महाकालनामवाले ब्रह्मके कल्पित अवंयवरूपही हैं ॥ १२ ॥

चिन्मात्रेपरमेव्योम्निकुतएवभवाभवौ ॥ कुतोभावविकारादिःकथंव्योम्निनिराकृते ॥ १३ ॥ महाकल्पादयोभावानामैतानिजगंतिच ॥ ब्रह्मात्मकतयैवास्मिन्संविद्ब्रह्मणिसंस्थितम् ॥ १४ ॥ निराकृत्यच्छचिन्मात्रंदृश्यंसंकल्प्यतद्दशम् ॥ यातियेनैवघटितोयक्षस्तद्धृदयेकिल ॥ १५ ॥ यथावयविनोवृक्षस्य शाखाविटपफलपल्लवपुष्पादयोवयवास्तथापरमार्थघनस्याकाशादप्यच्छरूपस्याव्यपदेश्यस्यप्रलयमहाप्रलयनाशोद्भेदभावाभावसुखदुःखजननमरणसाकारनिराकारत्वादयोवयवाः ॥ यथैवचासाववयव्यनाशोऽव्यपदेश्यश्चतथैवतइति ॥ १६ ॥ ४ ॥

अर्थ—चिन्मात्र परम चिदाकाशमें उत्पत्ति और नाश कहां ? और निराकार चिदाकाशमें पदार्थोंके उत्पत्ति आदि विकार कैसे होसकते हैं ॥ १३ ॥ जैसे स्फटिकमणिमें अनेक प्रतिबिम्बरूपही रहते हैं ऐसेही महाकल्पादि तथा अनेक जगत् ब्रह्मरूपही ब्रह्मसंवित्में स्थितहैं ॥ १४ ॥ चित्के संकल्पमात्रसे उत्पन्न यह जगत् दृश्य निराकार तथा निर्मल चिन्मात्रताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे मनके संकल्पसे कल्पित प्रेत तथा गन्धर्वनगर आदि मनरूपताको ॥ १५ ॥ जैसे अवयवी वृक्षके शाखा, मूल, फल, पत्र तथा पुष्प आदि सब अवयव (अंग) हैं ऐसेही परमार्थ घन, आकाशसेभी अति निर्मल तथा सूक्ष्म और वाणीके अविषय ब्रह्मरूप अवयवीके प्रलय, महाप्रलय, नाश उत्पत्ति, भाव, अभाव, सुख, दुःख, जन्म, मरण, साकार तथा निराकार आदि सब कल्पित अवयव हैं और जैसे यह वाणीका अविषय तथा अविनाशी ब्रह्मरूप अवयवी है ऐसेही प्रलय आदि भी हैं ॥ १६ ॥

अवयवावयविनोर्दृश्ययोर्वाप्यदृश्ययोः ॥ एकात्मनोरेवसदाभेदोस्तिनकदाचन ॥ १७ ॥ यथातरोस्संविन्मूलंतथापरमार्थघनस्यक्वचित्किंचित्त्वं क्वचित्सर्गस्तंबः क्वचिल्लोकांतरविटपाः क्वचिद्व्यवस्थाः शाखाः क्वचित्पदार्थपल्लवाः क्वचित्प्रकाशकुसुमम् क्वचिदंधकारकार्ष्ण्यं क्वचिन्नभःकोटरम् क्वचित्प्रलयगुल्माः क्वचिन्महाप्रलयगुल्माः क्वचिद्धरिहरादिगुलुच्छकाः क्वचिज्जाड्यत्वक् एवमनाकारंव्योमरूपमेवसंविदात्मनिब्रह्मणिब्रह्मसदृशभावादव्यतिरिक्तमेवैतत्स्थितम् ॥ १८ ॥ ५ ॥ इतोभाव्यइतोभावइतःसर्गइतःक्षयः ॥ स्वभावएवानुभवइतिब्रह्माचलंस्थितम् ॥ १९ ॥ एवंमयेपिपरमेब्रह्माकाशेनरंजनाः ॥ काश्चिदेवांगसंतींदुबिंबेविमलतायथा ॥ २० ॥

अर्थ—दृश्यहो वा अदृश्यहो एकस्वरूप अवयव तथा अवयवी कदाचित्भी दृष्ट नहीं है ॥ १७ ॥ जैसे वृक्षकी सत्तामें वृक्षकी संविद्ही मूलहै, ऐसेही परमार्थ घनरूप इस जगत्की सत्तामें भी संवित्ही मूलहै, इस ब्रह्मरूपी वृक्षमें कहीं सृष्टिरूप मध्यकाष्टहै, कहीं भूलोकादि स्कन्ध हैं, कहीं जम्बूद्वीप आदि रूप अवान्तर शाखा हैं, उनमें कहीं पर्वत, नदी तथा जनपद आदि पदार्थ पल्लवहैं, कहीं चन्द्र सूर्य्य आदिके प्रकाशरूप पुष्पहैं, कहीं अन्धकाररूप पत्रोंकी हरियाली हैं, कहीं आकाशरूप कोटरहैं, कहीं महाप्रलय ग्रन्थियोंके भेदहैं, कहीं हरिहर आदि उत्तम देव पुष्पके गुच्छे हैं और कहीं सजलमेघोंकी जडतारूप त्वचाहै इसप्रकार निराकार चिदाकाशरूपही यह जगत् कल्पित आकारोंसे संवित् स्वरूप ब्रह्ममें उस अभिन्नरूपसे स्थितहै ॥ १८ ॥ कहीं भविष्य, कहीं वर्तमान और कहीं भूत काल चक्रका क्रम, कहीं सृष्टि और कहीं प्रलय इत्यादि रूपसे ब्रह्मस्वभावही अचल स्थितहै ॥१९॥ हे प्रियरामजी ! इसप्रकार निर्मल ब्रह्ममें कोईभी सर्ग प्रलय आदि रंजना ऐसे नहीं हैं जैसे चन्द्रबिंबमें निष्कलंकता ॥ २० ॥

निर्मलेपरमाकाशेक्कभावाभावरंजनाः ॥ क्कादिमध्यांतकलनाःक्कलोकांतरविभ्रमाः ॥ २१ ॥ अपरिज्ञान मेवैकंतत्रदोषवद्वुत्थितम् ॥ केवलंतत्परावृत्यप्रेक्षणात्परिशाम्यति ॥ २२ ॥ अज्ञानंज्ञप्तिबोधेनपरामृष्टं प्रणश्यति ॥ येनैवाभ्युदिनस्तेनपवनेनेवदीपकः ॥ २३ ॥ अज्ञानंसंपरिज्ञातंनामीदेवेतिबुद्धयते ॥ अबं धमोक्षंब्रह्मैवसर्वमित्यवगम्यते ॥ २४ ॥ एवबोधादयोराममोक्षउक्ताःस्वसंविदा ॥ विचारयत्नोलभते नात्रकश्चनसंशयः ॥ २५ ॥ इदंजगज्जालमनाद्यजातंब्रह्मार्थमाभातमितीहदृष्ट्वा ॥ विचारदृष्टयाष्टगुणे श्वरत्वंपश्यंस्तृणंस्वात्मनिजीवआस्ते ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० जगदाकाशैकबोधोनामैकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—निर्मल चिदाकाशमें कहां तो भाव अभावके अनुराग, कहां आदि मध्य तथा अन्तकी कल्पना और कहां लोकान्तरके विभ्रम होसकते हैं ॥ २१ ॥ इन सब जगत्के भ्रमोंमें आत्मका अज्ञानही दोषकेसदृश हेतुरूप प्रकट है और केवल साक्षीचेतन आत्माकी ओर दृष्टिकरनेमात्रसे यह सब जगत् शांत होजाताहै ॥ २२ ॥ आत्म-स्वरूपसे उत्पन्न अज्ञान आत्माके बोधमात्रसे दृष्ट ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे पवनसे उत्पन्न दीप पवनसे ॥ २३ ॥ अज्ञान ज्ञानसे बोधित होनेसे नहीं था ऐसा बोध होताहै, तब बन्ध मोक्षकी दशासे वर्जित केवल ब्रह्मही शेष रहताहै यह ज्ञात होताहै ॥ २४ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मोक्षके अर्थ ज्ञानआदि मैंने तुमसे कहे इनको विचाररूपी यत्नवान् कोई अधिकारी पुरुष प्राप्त करताहै ॥ २५ ॥ यह अनादि जगत्जाल कदापि उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु ब्रह्मही अपने स्वरूपके अज्ञानसे भोग तथा मोक्षकी प्रार्थना करताहै और ब्रह्मही जगत् जीवआदिसे प्रकाशित होरहा है, इसप्रकार विवेकदृष्टिसे निश्चय करके अधिकारी जीव अणिमा,गरिमा तथा महिमाआदि अष्टसिद्धि सहित ईश्वरत्वको भी मायामात्र जानकर उसको तृणके तुल्य देखता हुआ निरतिशय आनन्द युक्त अपने आत्मामें स्थिर रहताहै ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० जगदाकाशैकबोधो नामैक षष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

आकाशरूप मुनिको देहके सदृश अनेक ब्रह्मांडोंको दर्शन तथा स्वप्नके तुल्य आकाशके सदृश स्त्रीसे संभाषण इस ६२ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यदेतद्भवतादृष्टंचिद्व्योमवपुषातदा ॥ तदेकदेशसंस्थेनकिंसुतभ्रमतांबरे ॥ १ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संपन्नोहमनंतात्माव्यापीव्योमतदाकिल ॥ स्यातांतस्यामवस्थायांकीदृशौतौग मागमौ ॥ २ ॥ नैकस्थानस्थितमयोनाहंगतिमयोभवम् ॥ तदनेनस्वएवास्मिन्दृष्टेमतन्मयात्मनि ॥३॥ यथांगानिशरीरस्त्वेपश्याम्यापादमस्तकम् ॥ चिन्नेत्रेणाप्यनेत्रेणतथैतदृष्टवानहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! चिदाकाश शरीर होके आपने जो यह जगत्के समूह देखे सो आकाशमें पक्षीके सदृश भ्रमण करते हुये देखा वा एक देशमें स्थित होके देखा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जब मैं अनन्त सर्वव्यापी चिदाकाशरूप होगया तब उस अवस्थामें गमन आगमन कैसे होसकते हैं ॥ २ ॥ हे रामजी ! न तो मैं गतिमय था और न एक देशमें स्थित था किन्तु इसी अपरिच्छिन्न आत्मस्वभावसे नित्य अपरोक्ष आत्मामेंही अनन्त जगत् मैंने देखे ॥ ३ ॥ जैसे देहमें आत्मबुद्धि होनेसे पादसे लेके मस्तकपर्य्यन्त सब अंगोंको देखता हूं ऐसेही इस चर्म नेत्रके बिना भी चिद्रूप नेत्रसे अनेक जगत् मैंने देखे ॥ ४ ॥

अनाकृतेर्निरवयवस्थितेस्तदातथाभवद्विमलचिदंबरात्मनः ॥ जगंतितान्यवयवजालकानिमेयथास्वतो नविगलितानवस्तुता ॥ ५ ॥ प्रमाणमत्रतेस्वप्नदृष्टोभुवनविभ्रमः ॥ स्वप्नेनुभूयतेदृश्यंनचकिंचित्खमे वतत् ॥ ६ ॥ यथापश्यतिवृक्षःस्वंपत्रपुष्पफलादिकम् ॥ स्वसंवेदननेत्रेणतथैतदृष्टवानहम् ॥ ७ ॥ य थांबुधिरनंतात्मावेत्तिसर्वान्जलेचरान् ॥ तरंगावर्त्तफेनांश्चतथैतद्बुद्धवानहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समाधिदशामें निराकार निरवयव शुद्ध चिदाकाशरूपसे मेरे स्थिति होनेपर भी मेरे सत्ताहीसे सत्तावान् होनेसे सब जगत् मेरे अवयव थे जिससे मेरी वस्तु स्वरूपता नष्ट हुई और स्वतः सत्ता शून्य

होनेसे उनमें वस्तुता भी न थी ॥ ५ ॥ इस विषयमें तुमको प्रमाण स्वप्नमें दृष्ट संसारका विभ्रम है, क्योंकि स्वस्वप्न जो दृश्य देखपडताहै, वह चिदाकाशके अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे वृक्षका अभिमानी जीव पत्र, पुष्प, फलादिको निजअंगरूप देखताहै ऐसेही मैंने अपने ज्ञानस्वरूपसे सब जगत्‌को देखा ॥७॥ और जैसे अनंत समुद्रका अभिमानी जीव सब जलचारी जीवोंको तथा तरंग आवर्त और फेन आदिको अपने स्वरूपके भीतर जानताहै ऐसेही मैंने अनेक ब्रह्मांडोंको जाना ॥ ८ ॥

अवयवान्स्वानवयवीयथावेत्तिनिजात्मनि ॥ अनन्यानात्मनःसर्गास्तथैतान्बुद्धवानहम् ॥ ९ ॥ अद्यापितानहंदेहेव्योम्निशैलेजलेस्थले ॥ तथैवसर्गान्पश्यामिरामबोधैकतांगतः ॥ १० ॥ पुरोस्माकमिदंविश्वंगृहस्यांतर्बहिस्तथा ॥ पूर्णमेतज्जगद्वंदैर्वेद्मिबोधैकतांगतः ॥ ११ ॥ यथांभोरसतांवेत्तिशैत्यंवेत्तियथाहिमम् ॥ स्पंदवेत्तियथावायुस्तथैतद्वेत्तिशुद्धधीः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे अवयवी अपने सब अवयवोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे जानताहै ऐसेही सृष्टियोंको मैंने जाना ॥९॥ हे रामजी! बोधरूपताको प्राप्त अब भी मैं उन अनेक सृष्टियोंको उसीप्रकार देह, आकाश, पर्वत, जलमें भी देख रहाहूं ॥ १० ॥ यह संपूर्ण हमारे सन्मुख हैं, और बोधरूप आत्माके साथ एकरूपताको प्राप्त मैं गृहके आभ्यंतर तथा बाह्य देशको अनेक जगत्‌के समूहोंसे पूर्ण देखताहूं ॥ ११ ॥ जैसे जल रसको, हिम शीतताको, और वायु स्पन्दको निजरूप अनुभव करताहै ऐसेही शुद्धबुद्धि ज्ञानी इस जगत्‌को भी जानताहै ॥ १२ ॥

यायोनामविवेकात्माशुद्धबोधैकतांगतः ॥ समएवमयैकात्मावेत्तिस्वात्मानमीदृशम् ॥ १३ ॥ अस्यादृष्टेःपरिणतेर्वेत्तृवेदनवेद्यधीः ॥ नकाचिदस्त्यभ्युदिताविज्ञानात्मैकतायतः ॥ १४ ॥ दिव्यादृगद्रिसंस्थस्यतथायोजनकोटिगान् ॥ भावान्वेत्तिबहिश्चांतरेवंतद्बुद्धवानहम् ॥ १५ ॥ यथाभूमंडलंभावान्निधिधातुरसादिकान् ॥ वेत्त्येवंतन्मयाबुद्धमनन्यद्दृश्यमात्मनः ॥ १६ ॥

अर्थ—न केवल मैंही किंतु जो २ विवेकी बोधस्वरूप आत्माके साथ एकरूपताको प्राप्त हैं उन सबका स्वरूप होके अपने आत्माको इसप्रकार देखताहूं ॥ १३ ॥ इस सर्व आत्मस्वरूप दृष्टिकी परिपक्वता होनेपर वेत्ता, वेद्य तथा वेदन आदि त्रिपुटी कुछ भी नहीं भासती क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्माके साथ सबकी एकता होजाती है ॥ १४ ॥ जैसे योग आदिसे सिद्धि संपन्न पर्वतपर स्थित पुरुषकी दिव्य दृष्टि करोडों योजनपर भी स्थित बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थोंको देखती है ऐसेही मैंने सब लोकलोकांतरोंको देखा ॥ १५ ॥ जैसे भूमंडलका अभिमानी देवता पृथिवीपरके सब धातुरस आदि पदार्थोंको जानताहै ऐसेही मैंने निजसे अभिन्नरूपसे सबको जाना ॥ १६ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्ननुभवत्येवंत्वयितामरसेक्षण ॥ साकिंकृतवतीब्रूहिकांतार्यापाठपाठिनी ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तामेवार्यांपठंतीसातथैवानुनयान्विता ॥ मत्समीपेनभोदेहाव्योम्निदेवीवसंस्थिता ॥ १८ ॥ यथाहमाकाशवपुस्तथैवासीत्खरूपिणी ॥ तेनदृष्टानसापूर्वदेहेनललनामया ॥ १९ ॥ अहमाकाशमात्रात्मासाखमात्रशरीरिणी ॥ जगज्जालंखमात्रंतदितितत्रतदास्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीरामचंद्रजी बोले कि–हे कमलनेत्रधारिन् भगवन्! आपके लिये यह सब संभव है, परंतु उस आर्य्याछन्द पढनेवाली कांताने क्या किया सो कहिये ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! उस आर्य्याको पढती हुई उसीप्रकार प्रीतियुक्त, चिदाकाशमय देहधारिणी वह ललना आकाशमें देवीके सदृश मेरे निकट स्थित हुई ॥ १८ ॥ जैसे मैं आकाश शरीरथा वैसेही वह भी आकाशमय शरीर थी, इसलिये समाधिके पूर्व उस देहसे उसको मैंने नहीं देखाथा ॥ १९ ॥ आकाशमात्र शरीरधारी मैं आकाशमात्रही वह अंगना और आकाशमात्रही संपूर्ण जगत्‌जाल उस समाधिकालमें स्थित थे ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ शरीरस्थानकरणप्रयत्नप्राणसंभवैः ॥ यद्वदेतिवचोवर्णैस्तत्कुतस्तादृशाकृतेः ॥ २१ ॥ रूपालोकमनस्कारःकुतोनामात्मनामिति ॥ ब्रूहिमेभगवंस्तत्त्वंयथावृत्तश्चनिश्चयम् ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रूपालोकमनस्काराःशब्दपाठवचांसिच ॥ यथास्वप्नेनभस्येवसंतितत्रतथांबरे ॥ २३ ॥ रूपालोकमनस्कारैःस्वप्नेचित्रभएवते ॥ यथोदेतितथातत्रतद्दृश्यंखात्मकंस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! शरीरस्थ जिव्हा, तालु, ओष्ठ तथा प्राणोंके प्रयत्नोंसे उत्पन्न वर्णोंसे जो वाक्य उत्पन्न होताहै वह निराकार उस चिदाकाशरूपशरीरवाली स्त्रीसे कैसे उत्पन्न हुआ ॥२१॥ हे भगवन्! बाह्यरूप आदिका तथा आभ्यंतर मानसका अनुभव शुद्ध चिदाकाश आत्मामें कैसे होसकताहै इसलिये आपने जगत्

दर्शन तथा संभाषण आदि व्यवहार जैसे किया उसका तत्व कहिये ॥२२॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जैसे स्वप्नमें बाह्य तथा आभ्यंतरके ज्ञान होतेहैं और जैसे शब्दोंके पाठ आदि होतेहैं ऐसेही उस चिदाकाशमें भी सब होतेहैं ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही बाह्य तथा आभ्यंतरके पदार्थरूपसे उदित होताहै ऐसेही समाधि दशामें दृश्य भी चिदाकाशरूपही स्थित था ॥ २४ ॥

नकेवलंतुतद्दृश्यंयावत्तुविषयंवयम् ॥ जगच्चेदंखमेवाच्छंयथातत्रस्तथाखिलम् ॥ २५ ॥ परमार्थमहाधा तुर्वेद्यनिर्मुक्तचिद्वपुः ॥ एवंनामस्वयंभातिस्वभावस्यैवनिश्चयः ॥ २६ ॥ शरीरस्थानकरणसत्तायांका तवप्रमा ॥ यथैवतेषांदेहादितथास्माकमिदंस्थितम् ॥ २७ ॥ यथैवतत्तथैवेदंतथैवेदंयथैवतत् ॥ अस त्सत्तामिवगतंसच्चासदिवचस्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ —न केवल वही दृश्य चिदाकाशरूप था किन्तु यह जगत्जाल दृश्य हम लोगोंकी बुद्धिका विषय है वह सब निर्मल चिदाकाशरूपही है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जगत् वासनासे उपहित चित्काही स्वरूप परमार्थ चिन्मय, विषय निर्मुक्त यह जगत्रूप निश्चय स्वयं भासताहै ॥ २६ ॥ और शरीरके स्थान करण, जिव्हाआदिकी सत्तामें तुमको क्या प्रमाण है, जैसे स्वप्न चिदाकाशमय देहोंकी सत्ता है ऐसेही यह हमारी भी है ॥ २७ ॥ जैसे स्वप्नादि देहोंकी सत्ता है वैसेही यहभी, और जैसे यह है वैसेही वहभी है, यह असत् जगत् देहादि सत्के समान स्थितहै ॥ २८ ॥

यथास्वप्नेधराध्वाद्रिपृष्ठव्यवहृतिर्नभः ॥ तदाह्यहंचत्वंसाचतदिदंचतथानभः ॥ २९ ॥ यथास्वप्नेनृभि र्युद्धकोलाहलगमागमाः ॥ असंतोप्यनुभूयंतेसंसारनिकरास्तथा ॥ ३० ॥ वक्षिचेत्स्वप्नदृश्यश्रीःक स्मात्तदसमंजसम् ॥ अवाच्यमेतद्धेतुर्हिनान्योस्त्यनुभवस्थितेः ॥ ३१ ॥ कथमालक्ष्यतेस्वप्नइतिप्रष्टुः प्रकथ्यते ॥ यथैवंपश्यसीत्येवहेतुरत्रास्तिनेतरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें पृथिवीपर कृषिआदि, मार्गमें गमनआदि पर्वतआदि गृहोंपर शयनआदि व्यवहार चिदाकाशरूपही हैं, ऐसेही हम, तुम तथा वह स्त्री सब चिदाकाशरूपही हैं ॥ २९ ॥ जैसे स्वप्नमेंमनुष्य अविद्यमान भी युद्धके कोलाहल तथा गमन आगमनको अनुभव करते हैं, ऐसे ही ये सब जगत्के समूह भी हैं ॥ ३० ॥ इसलिये स्वप्नके दृश्यकी शोभाके सदृश कोई असंभावना आदि दोष तुम नहीं कह सकते, क्योंकि स्वप्नके अनुभवको स्थितिके सिवाय इसमें कोई अन्य हेतु अवाच्य है ॥३१॥ जैसे स्वप्न कैसे देख पडताहै ? इस प्रश्न करनेवालेको यही उत्तर कहा जाताहै, कि जैसे तुम देखते हो ऐसेही इस संसारके विषयमें भी अन्य हेतु नहीं है ॥ ३२ ॥

स्वप्नजंतुरिवव्योम्निभातिप्रथमसर्गतः ॥ प्रभृत्येवविराडात्माखेखमेवपरस्परे ॥ ३३ ॥ स्वप्नशब्देनबो धार्थंतवव्यवहराम्यहम् ॥ दृश्यंत्विदंनसन्नासन्नस्वप्नोब्रह्मकेवलम् ॥ ३४ ॥ अथराघवसाकांतामया कांतानुषंगिणी ॥ संविदंतन्मयींकृत्वापृष्टेदंदृश्यरूपिणी ॥ ३५ ॥ व्यवहारोयथोदेतिस्वप्नेस्वप्नजनै स्सह ॥ तथातदातयासार्द्धंव्यवहारोममोदितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सुषुप्तिरूप प्रलयके पश्चात् आकाशमें स्वप्नके जीवके सदृश प्रथम सृष्टिहीसे विराट्रूप चिदाकाशही चिदाकाशमें परस्पर विषय विषयीरूपसे सापेक्ष होके भासताहै ॥ ३३ ॥ और स्वप्नशब्दसे व्यवहार मैं तुमारे बोधके लिये करताहूं यथार्थमें यह दृश्य तथा स्वप्नभी न सत् है न असत् है किन्तु केवल ब्रह्मही है ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् हे रामजी ! प्रेममें तत्पर उस दृश्यरूप स्त्रीसे उसके अभिप्रायको जाननेवाली संवित्का संकल्प करके मैंने पूंछा ॥ ३५ ॥ जैसे स्वप्नमें स्वप्नके प्राणियोंका व्यवहार होताहै ऐसेही उस स्त्रीके साथ मेरा व्यवहार प्रवृत्त हुआ ॥ ३६ ॥

यथैवस्वप्नसंकाशोव्यवहारःखमेवसः ॥ तथैवत्वमिमंविद्धिमामात्मानंजगच्चखम् ॥ ३७ ॥ यथास्वप्नज गद्रूपंखमेवैवमिदंजगत् ॥ जाग्रदादौसहिस्वप्नःसर्गादौजगदुद्भवः ॥ ३८ ॥ स्वप्नोयंजगदाभोगोनकिं चिद्वाखमेवच ॥ निर्मलंज्ञप्तितामात्रमित्थंसन्मात्रसंस्थितम् ॥ ३९ ॥ स्वप्नस्यविद्यतेद्रष्टासाकारोयुष्म दादिकः ॥ द्रष्टातुसर्गस्वप्नस्यचिद्व्योमैवामलंस्वतः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे स्वप्नका व्यवहार चिदाकाशरूपही है ऐसेही मेरे अपने इस व्यवहारको, अपनेको तथा इस जगत्को भी चिदाकाशरूपही जानो ॥ ३७ ॥ स्वप्नका जगत् तथा यह जगत् दोनों चिदाकाशरूप समानही हैं, केवल भेद इतनाही है कि जाग्रत्की आदिमें जो जगत् भान होताहै उसको स्वप्न कहते हैं और सर्गकी आदिमें जो भासताहै उसको जगत् कहते हैं ॥ ३८ ॥ यह सम्पूर्ण जगत्रूप चिदाकाशमात्र है अथवा निजरूपसे मिथ्या है क्योंकि यह सब निर्मल सत् तथा ज्ञप्तिमात्र ब्रह्मही जगत्रूपसे स्थितहै ॥ ३९ ॥ स्वप्नके द्रष्टा तो साकार तुम सब लोग हो, और सृष्टिरूप स्वप्नका द्रष्टा चिदाकाश है ॥ ४० ॥

यथाद्दष्टामलंव्योमद्दश्यंतद्वद्गतंतथा ॥ स्वप्नरूपजगत्युच्चैर्जगत्त्वेनामलंनभः ॥ ४१ ॥ चिद्व्योम्नोऽनाकृतेःस्वप्नोहृदिस्फुरतियःस्वतः ॥ सर्गस्तस्यकुतस्तेनसाकृतित्वंकथंभवेत् ॥ ४२ ॥ साकारस्यैवयत्स्वप्नजगत्तद्व्योमनिर्मलम् ॥ निराकारस्यचिद्व्योम्नःसर्गःस्वप्नःकथंनखम् ॥ ४३ ॥ निरुपादानसंभारमभित्तावेवचिन्नभः ॥ पश्यत्यकृतमेवेमंजगत्स्वप्नंकृतंयथा ॥ ४४ ॥ मृद्व्याचिदाकाशमृदाब्रह्मणाब्राह्मणेनखे ॥ कृतोपिनकृतःसर्गमंडपोक्षगवाक्षकः ॥ ४५ ॥ नोकर्तृतानचजगंतिनभोक्तृतास्तिनास्तीतिनास्तिनचकिंचिदतोबुधःसन् ॥ पाषाणमौनमवलंब्ययथाप्रवाहमाचारमाचरशरीरमिहास्तुमावा॥४६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० चिद्दैक्यं नाम द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नका द्रष्टा तथा उसके अन्तर्गत दृश्य सब निर्मल चिदाकाशरूपही हैं ऐसेही यह महान् जगत् रूप स्वप्नभी चिदाकाशरूपही है ॥ ४१ ॥ निराकार चिदाकाशके स्वरूपमें जो जगत् स्वप्न स्फुरित होताहै उसकी उत्पत्ति और साकारता कैसे होसकती है ॥ ४२ ॥ जब साकार तुम सब प्राणियोंका स्वप्नका जगत् चिदाकाशरूपहै तब निराकार परमात्माका स्वप्नरूप जगत् चिदाकाशरूप क्यों न हो ॥ ४३ ॥ उपादान आदि सामग्रीके बिना तथा भित्ति आदि आधारके बिना चिदाकाश इस स्वप्नरूप जगत्को बिना रचेही रचितके सदृश देखताहै ॥ ४४ ॥ कोमल चिदाकाशरूप मृत्तिकासे हिरण्यगर्भरूप ब्राह्मणने इन्द्रिय आदि झरोंखोंसे शोभित इस देहादि सृष्टिरूप मण्डपको यद्यपि रचाहै तथापि वह अरचितकेही तुल्यहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! न तो जगत्का कर्ता है न ये जगत्हैं, और न भोक्ताहै और न अन्य द्वैतभावहै, किन्तु सब कल्पनाका साक्षी चित्है, इसलिये हे रामजी ! तुम पाषाणवत् मौनभावका अवलंबन करके यथा प्राप्त प्रवाह पतित व्यवहारोंको प्रारब्ध कर्मकी स्थितिपर्य्यंन्त करो, और उसके पश्चात् करो वा न करो ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने चिद्दैक्यं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

अज्ञानीकी दृष्टिमें एक भीतर एक बाह्य इसप्रकार अनन्त सर्गहैं और ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टि चिद्घनमात्र एक ब्रह्मही है यह विषय इस ६३ के सर्गमें वर्णितहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ तवस्त्रियाऽस्वरूपेणदेहेनाभूत्तयाकथम् ॥ कथमुच्चारितास्तत्रवर्णाःकचटतादयः ॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वर्णेषुखशरीराणांवर्णाःकचटतादयः ॥ कदाचनापिनोद्यंतिशवानामिवकेनच ॥ २ ॥ वर्णोच्चारोभविष्यच्चेत्प्रकटार्थस्ततःक्वचित् ॥ स्वप्नेष्वन्वभविष्यत्तंविनिद्रःपार्श्वगोजनः ॥ ॥ ३ ॥ तस्मान्नकिंचित्स्वप्नेषुतत्सत्यंभ्रांतिरेवसा ॥ चिन्मात्राकाशकचनंतत्तथाखेस्वभावजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे मुने ! उस स्त्रीकेसाथ निराकार देहसे आपका संभाषण कैसे हुआ, बिना जिव्हाके क, च, ट, त तथा पकारादि वर्ण आपने कैसे उच्चारण किये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-आकाशवत् शरीरधारी ज्ञानियोंके मतमें क, च, ट, त आदि वर्णके उच्चारण नहीं होते क्योंकि वे कल्पनामात्र हैं और वर्णोच्चारणमें शरीरकी अपेक्षा भी नहीं है क्योंकि स्वप्नमें बिना शरीरही वचनादि व्यवहार होते हैं और मृतकके शरीर रहते भी नहीं होते ॥ २ ॥ और यदि स्वप्नका वर्णोच्चारण सत्य हो तो समीपस्थ जाग्रत् प्राणी उनको सुनै ॥ ३ ॥ इसलिये स्वप्नमें उसकी सत्यता किंचित् भी नहीं है, किन्तु भ्रांतिमात्रही है, निद्रास्वभावसे कल्पित चिदाकाशमात्रका स्फुरण जैसे वहां है ऐसे अविद्यासे यहां भी है ॥ ४ ॥

तदेंदुकाष्ण्यंखतनुशिलागेयादितांगताः ॥ इवाभांतिचिदाकाशास्तथादेहरवादयः ॥ ५ ॥ तच्चिदाकाशकचनंयन्नामस्वप्नवेदने ॥ आकाशमेवनभसःकचनंविद्धिनेतरत् ॥ ६ ॥ यथास्वप्नस्तथैवेदंजाग्रदग्रे व्यवस्थितम् ॥ आकाशमप्यनाकाशंयथैवेदंतथैवतत् ॥ ७ ॥ तथाकचतितच्चारुचेतनंचतुरंतथा ॥ यथास्थितंतदेवेदंसत्यंस्थिरमिवस्फुरत् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे नेत्र दोषसे चंद्रमामें कृष्णता, आकाशमें साकारता और पाषाणमूर्तिके गान आदि प्रवृति भासरूपताको प्राप्त हैं, ऐसेही स्वप्न शरीरोंमे उन देश स्थित चिदाकाशही देह तथा शब्दादि रूपताको प्राप्त हैं ॥ ५ ॥

जैसे आकाशकी साकारताका अनुभव आकाशसे भिन्न नहीं है ऐसेही स्वप्नके ज्ञानमें जो जगत् आदिके आकारसे चिदाकाशका स्फुरण है वह चिदाकाशसे भिन्न नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे स्वप्नका जगत् है ऐसेही हमलोगोंके सन्मुख स्थित जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूपही है और जैसे यह आकाश आदिभूत चिदाकाशरूप है ऐसेही मेरे समाधिका भी है ॥ ७ ॥ यह सब जगत् सत्य तथा स्थिरके तुल्य जो सुंदरता तथा निपुणतापूर्वक स्फुरित होरहाहै वह सब ब्रह्महीका चमत्कार है ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्स्वप्नएवेदंकथंजाग्रदवस्थितम् ॥ असत्यमेवसत्यत्वमिवयातंकथंभवेत् ॥ ९ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुस्वप्नमयान्येवकथंसंतिजगंत्यलम् ॥ नान्यानिनचसत्यानिनस्थिराणिस्थितानिच ॥ १० ॥ अनुभूतानिबीजानिबीजराशाविवांबरे ॥ अन्यान्यन्यानितान्येवसमानिनसमानिच ॥ ॥ ११ ॥ प्रत्येकमंतरन्यानितथैवाभ्युदितानिच ॥ परस्परमदृष्टानिबहूनिविविधानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! स्वप्नरूप यह जगत् जाग्रत्स्वरूप कैसे होगया और असत्य होके भी सत्य नेत्र आदिका विषय कैसे हुआ ?॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जैसे ये संपूर्ण जगत् स्वप्नरूप हैं वह तुम सुनो, स्वप्नकेही समान ये सब जगत् आत्मासे भिन्नरूप नहीं हैं न सत्यहैं, न स्थिर हैं किंतु प्रतिभासरूपसे स्थितहैं ॥ १० ॥ जैसे बीजकी राशिमें अनुभूत बीज स्वप्नमें कोई अन्य २ होते हैं कोई वैसेही होते हैं कोई भिन्नरूपके होते हैं, ऐसेही चिदाकाश प्रलयके अनन्तर जगत् कोई पूर्वसे अन्य, कोई समान और कोई भिन्न होते हैं ॥ ११ ॥ जैसे स्वप्नके अन्तर्गत स्वप्न होते हैं ऐसेही प्रत्येक जगत्के भीतर परस्पर अदृष्ट विविधप्रकारके अनेक जगत् उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

अन्योन्यंतानिसर्वाणिनपश्यंत्येवकिंचन ॥ जडानीवैकराशीनिबीजानीवगलंत्यपि ॥ १३ ॥ व्योमात्मत्वान्नगगनंनविदंतिपरस्परम् ॥ अपिचेतनरूपाणिसुप्तानीवनिरंतरम् ॥ १४ ॥ सुप्ताःस्वप्नजगज्जालमहनिव्यवहारिणः ॥ असुरानिहतादेवैस्तेस्वप्नजगतिस्थिताः ॥ १५ ॥ अज्ञानान्नगतामुक्तिंनजाड्याज्जडतामिताः ॥ नदेहवंतःकिंसंतुविनास्वप्नजगत्स्थितेः ॥ १६ ॥

अर्थ—वे सब जगत् एक दूसरेको कदापि नहीं देखते, और कुसूल (कोठले) में स्थित जड बीजकी राशिके सदृश अभ्यन्तर नष्टभी होते हैं ॥ १३ ॥ चिदाकाशरूप होनेसे गलित होनेपर भी सन्तप्त खर्परपर पतित जलबिंदुके सदृश शून्यरूपताको नहीं प्राप्त होते, न परस्पर एक दूसरेको जानते हैं, चेतनरूप होनेपरभी निरन्तर सुप्तके तुल्य स्वप्नही अनुभव करते हैं ॥ १४ ॥ शयनमें स्थित जीव स्वप्नके जगत्जालको पाकर उसमें कल्पित दिनसे संपूर्ण व्यवहार करते हैं, स्वप्न जगत्में स्थित असुरस्वप्नके देवोंसे घातित होनेपर ॥ १५ ॥ अज्ञानसे न तो मुक्तिको प्राप्त हुये और न जडतासे पाषाणरूपताको प्राप्त हुये और न देहसहितहुये क्योंकि इस दशामें प्राप्त उनकी स्वप्नके जगत्के सिवाय और क्या स्थिति होसकती है ॥ १६ ॥

सुप्ताःस्वप्नजगज्जालेस्वाचारव्यवहारिणः ॥ पुरुषानिहताःपुंभिस्तेतथैवव्यवस्थिताः ॥ १७ ॥ निर्मोक्षानिःशरीरास्तेचेतनावासनान्विताः ॥ दृष्टंस्वप्नजगज्जालंविनाचक्वसंतुते ॥ १८ ॥ सुप्ताःस्वप्नजगज्जालव्यवस्थाचारचारिणः ॥ येहताराक्षसादेवैस्तेयथैवव्यवस्थिताः ॥ १९ ॥ एवंयेनिहतारामकिंतेकुर्वंतिकथ्यताम् ॥ अज्ञत्वान्नगतामुक्तिंचेतनान्नदृषत्स्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ—इसीप्रकार मनुष्यभी अपने २ स्वप्नरूपी जगत्जालमें निज २ आचार तथा व्यवहारको करते हैं और वे स्वप्नके पुरुष यदि अन्यस्वप्नके पुरुषोंसे मारेगये तो पूर्वोक्त असुर जीवोंके सदृश स्वप्नकी परंपराहीमें स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ मोक्षरहित, शरीररहित और चेतना तथा वासनायुक्त वे जीव स्वप्नके सिवाय और कहां बसें ॥ १८ ॥ शयनमें स्थित स्वप्नरूप जगत्जालकी व्यवस्थाके अनुसार आचार करनेवाले राक्षस जो स्वप्नके देवताओंसे मारेगये वे असुरोंके सदृश उसी स्वप्नमेंही व्यवस्थितहैं ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जो स्वप्नमें मारेगये कहिये वे क्या करते हैं, अज्ञानसे मुक्तिको प्राप्त नहीं हुये और चेतन होनेसे पाषाणवत् भी न हुये ॥ २० ॥

साद्र्यब्ध्युर्वीजनंदृश्यमिदंसर्वंयथास्थितम् ॥ चिरायानुभवंत्येतेयथेमेवयमादृताः ॥ २१ ॥ तेषांकल्पजगत्संस्थायथास्माकंतथैवताः ॥ अस्माकंजगतीसंस्थायथातेषांतथैवच ॥ २२ ॥ एतेषांस्वप्नपुरुषास्तएवेमेवयंस्थिताः ॥ येचतेनामसंसारास्तेभ्यएकमिमंविद्धः ॥ २३ ॥ तेस्वप्नपुरुषास्तेषांसत्याएवानुभूतितः ॥ आत्मनोपिपरस्यापिसर्वगत्वाच्चिदात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—पर्वत, समुद्र तथा पृथिवी सहित जन समुदायको और यथास्थित इस सम्पूर्ण दृश्यको चिरकालतक हमारे सदृश वे सत्य मानके अनुभव करते हैं इसलिये उनका स्वप्न हमारे सदृश जाग्रत्रूपही होजाताहै ॥ २१ ॥

हे रामजी ! उनके कल्प तथा जगत्‌की स्थिति हमारे समानही है, और हमारे जगत्‌की स्थितिभी उनके समानही है ॥ २२ ॥ इसप्रकार हमारा अनुभूत यह जगत् तथा उसके अन्तर्गत हम सब यदि उनके स्वप्नमें दृष्ट हैं तो उनके स्वप्नके संसारोंमेंसे एक यह हमारा संसार है और हम सब उनके स्वप्नके पुरुष हैं ॥ २३ ॥ निजआत्माके तथा अन्यके अनुभवसे और चिदात्माके सर्वगामी होनेसे वे स्वप्नके पुरुष सत्य हैं ॥ २४ ॥

यथातेस्वप्नपुरुषाःसत्यमात्मन्यथापरे ॥ तथापिस्वप्नपुरुषाःसत्यमेवतथैवते ॥ २५ ॥ स्वस्वप्नपुरपौरायेत्वयादृष्टास्तथैवते ॥ स्थितास्तत्रतथाद्यापिब्रह्मसर्वात्मकंयतः ॥ २६ ॥ प्रबोधेपिहिभियंतेस्वप्नभावायथास्थिताः ॥ तथास्थित्यानुभूयंतेपरब्रह्मतयाथवा ॥ २७ ॥ सर्वसर्वात्मसर्वत्रसर्वदास्तितथापरे ॥ यथानकिंचिन्नाकाशंनकचिन्नचहन्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे आत्मामें वे स्वप्नपुरुष सत्य हैं ऐसेही मुझसे वा तुमसे प्रतिस्वप्नमें अनुभूत पुरुष सत्य हैं ॥२५॥ निजस्वप्नके नगर तथा नगरनिवासी जैसे तुमने देखे ऐसेही अब भी वे स्थितहैं, क्योंकि सर्वव्यापी ब्रह्म सर्वरूपहै॥२६॥ जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रत्‌अवस्थामें नष्ट होजाते हैं यह अनुभव होताहै, ऐसेही स्वप्नकालमें वे स्थित भी अनुभूत होते हैं तो स्वप्नके बोधके सदृश उसकी सत्ता जो अनुभूत होती है उसका अपलाप नहीं कर सकते, अथवा सब सत्ता ब्रह्म सत्तामय होनेसे किसीका भी अपलाप नहीं कर सकते ॥२७॥ जैसे सब जगत् आकाशका कार्य्य होनेसे आकाशरूपही हैं और आकाशरूपसे किसीका कुछ भी नहीं होता,यही दशा परमात्मामें परमात्मारूप इस जगत् की है॥२८॥

निरंतरेपराकाशेनिरंतेचविनोदये ॥ निरंतेचित्तसंघातेनिरंतेजगतांगणे ॥ २९ ॥ प्रत्याकाशकलाकोशंप्रतिसंसारमंडलम् ॥ प्रतिलोकांतराकारंप्रतिद्वीपंगिरिंप्रति ॥ ३० ॥ प्रतिमंडलविस्तारंप्रतिग्रामंपुरंप्रति ॥ प्रतिजंतुप्रतिगृहंप्रतिवर्षयुगंप्रति ॥ ३१ ॥ यावंतोयेमृताःकेचिज्जीवामोक्षविवर्जिताः ॥ स्थितास्तेतत्रतावंतःसंसाराःपृथगक्षयाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और प्रथम उत्पत्ति शून्य आदि अन्त तथा मध्यरहित, परब्रह्ममें अनन्त चित्तसमूह हैं, उन प्रत्येक चित्तमें असंख्य संसारोंके समूह हैं ॥ २९ ॥ और प्रत्येक जगत्‌के आकाशमें असंख्य जगत् हैं, उन प्रत्येक आकाशके प्रत्येक संसारमण्डलमें भी अनन्त जगत्‌हैं, पुनः ब्रह्मांडके प्रत्येक प्रत्येक भूलोकादिमें असंख्य ब्रह्मा हैं, प्रत्येक लोकके प्रत्येक जंबूआदि द्वीपोंमें अनन्त जगत् मण्डल हैं, और प्रत्येक द्वीपके प्रत्येक पर्वतमें असंख्य संसारहैं॥३०॥ और उसमें प्रत्येक प्रांत (जिले) में असंख्य संसार हैं, प्रत्येक प्रांतके प्रत्येक ग्राममें, प्रत्येक ग्रामके गृह प्रत्येक गृहके प्रत्येक जीवके प्रति असंख्य संसार हैं, और प्रत्येक जीवके भी प्रतिवर्ष तथा युगआदिमें अनन्त संसारमण्डल हैं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! प्रत्येक युग तथा वर्षकालादि मोक्षरहित जो जीव मृतहैं, अथवा जो जीवितहैं उतनेही असंख्य अक्षय संसार स्थितहैं ॥ ३२ ॥

तेषामंतर्जनाःसंतिजनंप्रतिपुनर्मनः ॥ पुनर्मनःप्रतिजगज्जगत्प्रतिपुनर्जनः ॥३३॥ इत्थमाद्यंतरहितएषदृश्यमयोभ्रमः ॥ ब्रह्मैवब्रह्मवित्पक्षेनात्रेयतास्तिकाचन॥३४॥ कुड्येनभस्युपलकेसलिलेस्थलेंतश्चिन्मात्रमस्तिहियतस्तदशेषविश्वम्॥ तद्यत्रतत्रजगदस्तिकुतोत्रसंख्यातज्ज्ञेषुतत्परमथाज्ञमनस्सुदृश्यम्॥३५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० जगत्तत्त्वैक्यप्रतिपादनं नाम त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥

अर्थ—और उन जीवोंके वासनाके आभ्यन्तर अनन्त जीव हैं और उन अनन्त जीवोंके मनमें भी प्रत्येक मनमें असंख्य संसारमण्डल हैं और पुनः उन संसारमण्डलोंके प्रत्येक जीवके प्रत्येक मनमें अनन्त संसार हैं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार आदि अन्त रहित यह दृश्यका भ्रम चलाही जाताहै, इसकी सीमा कदापि नहीं है और ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिमें यह सब ब्रह्मरूपही है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! कुड्य (भित्ति) आकाश, पर्वत, जल तथा स्थल, चिन्मात्र परमात्माही है, और वही सब संसारमण्डल है, इसलिये चित्‌के सर्वव्यापी होनेसे जहां तहां सर्वत्र अनेक संसार हैं, इनकी संख्या नहीं हो सकती और ज्ञानीकी दृष्टिमें यह अनन्त संसार निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्मही है और अज्ञानीके मनमें सब उत्तम दृश्यही है, इसलिये अज्ञानीके अनर्थ परंपराकी शांति नहीं होती ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने जगत्तत्त्वैक्य प्रतिपादनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

वसिष्ठके पूंछनेपर विद्याधरीने अपने गृह जन्म तथा कर्मसे आदि लेके वैराग्यपर्य्यन्त सब वृत्तान्त विस्तारसे कहे यह विषय इस- ६४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततस्तत्कुवलोल्लासिमालतीमाल्यलोचना ॥ ललनाललितालोक्यलीलयालपितामया ॥ १ ॥ कात्वंकमलगर्भाभेकिमर्थमासुपागता ॥ कस्यासिकिंप्रार्थयसेक्कगतासिकिमास्पदा ॥ ॥ २ ॥ विद्याधर्युवाच ॥ मुनेशृणुयथावत्त्वमात्मोदंतंवदाम्यहम् ॥ प्रष्टुमर्हसिविस्रब्धमार्त्ताकरुणयार्थिनीम् ॥३॥ परमाकाशकोशस्यकस्मिंश्चित्कोणकोटरे ॥ युष्माकंसंस्थितंकिंचिदिदंतावज्जगद्गृहम् ॥४

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इसके पश्चात् कमलके सदृश विलासयुक्त और मालतीकी मालाओंके तुल्य विस्तृत लोचनधारिणी उस ललनाको देखकर लीलापूर्वक मैंने यह पूंछा ॥ १ ॥ कि हे कमलके गर्भके समान शोभायुक्त ललने ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या तथा भार्य्याहो, तुमारा स्थान कहां है, कहां तुम गईथी, और किस निमित्तसे मेरे निकट आई हो ? ॥ २ ॥ विद्याधरी बोली-कि हे मुने ! सुनिये मैं अपना वृत्तान्त यथावत् कहतीहूं, क्योंकि संसारके दुःखसे पीडित आपकी कृपाकी अभिलाषिणी मैं हूं, मेरा वृत्तान्त आप पूंछने योग्यहो ॥ ३ ॥ हे मुने ! चिदाकाशके किसी कोणके कोटरमें आपका यह जगत्रूप गृह किंचिन्मात्रहै ॥ ४ ॥

पातालभूतलस्वर्गाइहापवरकास्त्रयः ॥ कल्पनैकाकुमार्यत्रकृताधातृत्वमायया ॥ ५ ॥ तत्रद्वीपैःसमुद्रैश्ववलितंवलयैरिव ॥ पाटलोत्थंजगल्लक्ष्म्याःप्रकोष्ठमिवभूतलम् ॥ ६ ॥ अंतेद्वीपसमुद्राणांसर्वदिक्कमवस्थिता ॥ योजनानांसहस्राणिदशहेममयीमही ॥ ७ ॥ स्वयंप्रकाशसंकल्पफलदांबरनिर्मला ॥ चिंतामणिमयीस्वच्छास्वच्छायाजितविष्टपा ॥ ८ ॥

अर्थ—इस आपके जगत्रूपी गृहमें, पाताल, भूलोक और स्वर्ग, ये अन्तर्गृहके तीन कमरे हैं, इस गृहमें हिरण्यगर्भतारूपमायाने सर्ग आदिकी विचित्रताकी कल्पना नामवाली एक कुमारीको क्रीडाके अर्थ रचाहै ॥ ५ ॥ उस जगत्रूपी गृहमें द्वीप तथा समुद्रोंसे वलयोंके सदृश वेष्टित, पाटल (पटोल) के पुष्पके सदृश तथा उन्नत यह भूतल जगत्रूपालक्ष्मी हस्तके मूलके समान शोभितहै ॥ ६ ॥ सातोद्वीप तथा समुद्रोंके अन्तमें सब दिशामें दश योजनपर्य्यन्त सुवर्णकी पृथिवी है ॥ ७ ॥ रात्रिमें भी स्वयं प्रकाशमान, संकल्पमात्रसे सब कामनाओंके देनेवाली, आकाशकेतुल्य निर्मल, चिन्तामणिरूप, अति स्वच्छ, अपनी शोभासे स्वर्ग आदि लोकोंको जीतनेवाली पृथिवी है ॥ ८ ॥

साप्सरोमरसिद्धानांलीलाविहरणावनिः ॥ संकल्पमात्रसंपन्नसर्वसंभोगसुंदरी ॥ ९ ॥ अंतेतस्याभुवः शैलोलोकालोकोस्तिविश्रुतः ॥ भूपीठस्यप्रकोष्ठस्यवलयावलनांदधत् ॥ १० ॥ क्वचिन्नित्यंतमोव्याप्तो मूढबुद्धेरिवाशयः ॥ क्वचिन्नित्यंप्रकाशात्मामनःसत्त्ववतामिव ॥ ११ ॥ क्वचिदाह्लादजनकःसाधूनामिवसंगमः ॥ क्वचिदुद्वेगजनकोमूर्खैरिवसमागमः ॥ १२ ॥

अर्थ—संकल्पमात्रसे सब भोगोंको प्राप्त करनेवाली, अतिरमणीय वह पृथिवी अप्सरागण, देवता तथा सिद्धोंकी बिहार भूमि है ॥ ९ ॥ और उस पृथिवीके अन्तमें जगत्की लक्ष्मीके हस्तरूप भूमण्डलके कटक (कडे) की शोभाको धारण करनेवाला लोकालोकनाम प्रसिद्ध पर्वतहै ॥ १० ॥ वह पर्वत कहीं तो मूर्खके हृदयके समान सदा अन्धकारसे व्याप्तहै, और कहीं सज्जनोंके मनके सदृश नित्य प्रकाशमयहै ॥ ११ ॥ कहीं साधुओंके समागमके सदृश आनन्दजनकहै; और कहीं मूर्खोंके संगके तुल्य अति दुःखजनकहै ॥ १२ ॥

क्वचित्प्रकटसर्वार्थोमनोमतिमतामिव ॥ क्वचिदत्यंतगहनोमूर्खश्रोत्रियचित्तवत् ॥ १३ ॥ क्वचिदप्राप्तसोमांशुःक्वचिदप्राप्तसूर्यभाः ॥ क्वचिल्लोकमयस्तेनक्वचिदाशून्यदिक्तटः ॥ १४ ॥ क्वचिद्देवपुरव्याप्तः क्वचिद्दैत्यपुरान्वितः ॥ क्वचित्पातालगहनःक्वचिच्छृंगोर्ध्वकंधरः ॥ १५ ॥ क्वचिच्छ्वभ्रभ्रमद्गृध्रःक्वचित्सानुमनोहरः ॥ क्वचिच्छृंगशिखाक्रांतवैरिंचनगरांतरः ॥ १६ ॥

अर्थ—कहीं बुद्धिमानोंके चित्तके सदृश सब पदार्थोंसे पूर्ण है, और कहीं मूर्खश्रोत्रि (केवल वेदपाठी) के चित्तके समान अति गहन है ॥ १३ ॥ कहीं सूर्य्यके प्रकाशसे वर्जित, कहीं चन्द्रप्रकाशसे शून्य, कहीं मनुष्योंसे पूर्ण, और कहीं सर्वथा शून्य दिशासहित वह पर्वतहै ॥ १४ ॥ तथा कहीं देवताओंके नगरोंसे पूर्ण, कहीं दैत्योंके पुरसे युक्त, कहीं पातालके सदृश प्रवेश करनेके अयोग्य, और कहीं महाशिखररूपी उच्च कन्धराको धारण किये हुये वह पर्वतहै ॥ १५ ॥ कहीं महान् गर्तोंमें भ्रमण करते हुये गृध्रोंसे भयंकर, कहीं शिखरोंसे अति मनोहर, और कहीं शिखरोंकी चोटियोंसे ब्रह्मलोकको भी आक्रमण करनेवाला (अति ऊंचा) वह पर्वतहै ॥ १६ ॥

क्वचिच्छून्यमहारण्यवहत्कल्पांतमारुतः ॥ क्वचित्पुष्पवनोद्यानगायद्विद्याधरीगणः ॥ १७ ॥ क्वचित्पातालगंभीरगुहाकुंभांडभीषणः ॥ क्वचिन्नंदनसोदर्यमुन्याश्रममनोरमः ॥ १८ ॥ क्वचिदक्षयमत्ताभ्रःक्वचिद्दुर्लभवारिदः ॥ क्वचिद्दरंभगुहाश्वभ्रगहनोपांतमंडलः ॥ १९ ॥ क्वचित्क्षुब्धजनाक्षेपसमुत्सादितभूतभूः ॥ क्वचिद्वास्तव्यजनतासौजन्याजितविष्टपः ॥ २० ॥

अर्थ—कहीं शून्य महाजंगलोंमें प्रलयकालके प्रचंड पवनसे पूर्ण, और कहीं पुष्पोंकी वाटीकी वाटिका तथा वनोंमें गान करती हुई विद्याधरियोंके गणसे रमणीय है ॥ १७ ॥ कहीं पातालके सदृश गंभीर गुहाओंमें कुभांडनामक राक्षसोंसे अति भयंकर, और कहीं नन्दनवनके सदृश मुनियोंके आश्रमोंसे अति मनोहर वह पर्वतहै ॥ १८ ॥ तथा कहीं निरन्तर स्थित मत्त मातंगके सदृश गर्जनामें मेघमण्डलोंसे पूर्ण, और कहीं गुहाओंके महागर्तोंसे भयंकर उत्पातमण्डलोंसे युक्त वह पर्वतहै ॥ १९ ॥ कहीं राज्यके क्षोभसे संक्षुब्ध मनुष्योंके खड्ग कुठारआदिके प्रहारोंसे राक्षस पिशाचआदिके निवासोंको भी पराजयकारी, और कहीं निवासीजनोंकी सज्जनतासे स्वर्गलोकको भी जीतनेवाला वह पर्वत है ॥ २० ॥

क्वचिन्नित्यंवहद्वाताजातस्थावरजंगमः ॥ क्वचित्सर्वक्षयोन्मुक्तस्थिरस्थावरजंगमः ॥ २१ ॥ क्वचिन्महामरुमरुन्मुक्तभांकारभीषणः ॥ क्वचित्क्वणत्कमलिनीमत्तसारसभूषणः ॥ २२ ॥ क्वचित्सलिलकल्लोलजलदोल्लासघर्घरः ॥ क्वचिन्मत्ताप्सरोदोलाविलासजनितस्मरः ॥ २३ ॥ क्वचित्पिशाचकुंभांडवेष्टिताचेष्टदिक्तटः ॥ क्वचिद्विद्याधरीसिद्धनृत्यगीतसरित्तटः ॥ २४ ॥

अर्थ—कहीं निरन्तर वायुके वहनेसे स्थावरजंगमकी उत्पत्तिसे रहित, तथा कहीं सब प्रकारके रोगोंसे निर्मुक्त होनेसे स्थावरजंगमोंकी स्थिरतासे संपन्न वह पर्वतहै ॥ २१ ॥ कहीं महा मरुस्थलीके प्रचंड पवनसे उत्पन्न भांकार शब्दोंसे अति भयंकर तथा कहीं भ्रमरोंके शब्दोंसे संयुक्त कमलिनियोंसे तथा मत्त हंस सारसआदि पक्षियोंसे मनोहर वह पर्वतहै ॥ २२ ॥ कहीं जलके कल्लोलोंसे, तथा मेघोंके उल्लाससे घर्घर शब्दसहित, और कहीं अप्सराओंके झुलाओंके विलासोंसे कामदेवको उत्पन्न करनेवाला वह पर्वतहै ॥ २३ ॥ कहीं पिशाच तथा राक्षसआदिसे वेष्टित, इसीसे चेष्टारहित दिशाओंसे पूर्ण, तथा कहीं विद्याधरी और सिद्धांगनाओंके नृत्य तथा गानसे क्षोभित वह पर्वतहै२४

क्वचिद्वर्षदंभोदसरिद्बाहुलुठत्तटः ॥ क्वचित्सततगानीतनीतनानाभ्रसत्पटः ॥ २५ ॥ क्वचित्कमलिनीकोशवक्रस्थाध्यानमंडलः ॥ क्वचित्स्वर्गांगनासिद्धसुंदरीदंतमंडनः ॥ २६ ॥ क्वचित्तपद्दिनकरजनताचारसुंदरः ॥ क्वचिन्नैशतमोगेहनृत्यन्मत्तनिशाचरः ॥ २७ ॥ क्वचिद्दुत्पतदुत्पाततयानश्यज्जनावनिः ॥ क्वचित्सौराज्यसंपत्त्याप्रोद्भवत्पुरमंडलः ॥ २८ ॥

अर्थ—कहीं वर्षते हुये मेघोंकी नदीरूप भुजाओंसे तटोंकी भग्नतासे भयंकर, और कहीं वायुकी गतिसे अनीत मेघरूपी वस्त्रोंसे शोभित वह पर्वतहै ॥ २५ ॥ कहीं निज कोशस्थ भ्रमरूपी नेत्रधारिणी ध्यानमें तत्पर कमलिनीमण्डलसे शोभित, तथा कहीं अप्सरा और सिद्धांगनाओंके दांतोंको भूषित करनेवाले ताम्बूलके वनसे अति रमणीय वह पर्वतहै ॥ २६ ॥ कहीं जाज्वल्यमान सूर्य्य तथा जनसमूहके आचारसे अति सुन्दर, और कहीं रात्रिके अन्धकाररूपी गृहमें नृत्य करते हुये मत्त निशाचरोंसे पूर्ण वह पर्वतहै ॥ २७ ॥ कहीं महा उत्पातसे नष्ट होते हुये प्राणियोंके समूहोंसे पूर्ण, और कहीं उत्तम राज्यकी संपत्तिसे नित्य नूतन अनेक नगरोंकी रचनासे संपन्न वह पर्वतहै ॥ २८ ॥

क्वचिदत्यंतनिःशून्यःक्वचिज्जनपदावृतः ॥ क्वचिच्छुभ्रांतगंभीरःक्वचित्पातालभीषणः ॥ २९ ॥ क्वचिद्बृहत्कल्पतरुःक्वचिन्निर्जलजंगमः ॥ क्वचिन्महाकारिकुलःक्वचिन्मत्तहरीव्रजः ॥ ३० ॥ क्वचिन्निर्भूतमुग्धातःक्वचिदुन्मत्तराक्षसः ॥ क्वचित्करंजगहनःक्वचित्तालमहावनः ॥ ३१ ॥ क्वचिद्व्योमोपमसराःक्वचिद्दीर्घमरुस्थलः ॥ क्वचिन्नित्यभ्रमत्पांसुःक्वचित्सर्वर्त्तुकाननः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा हे मुने ! कहीं सर्वथा जन शून्य, कहीं अनेक राज्योंसे पूर्ण, कहीं जल पूर्ण महा ह्रदोंसे शोभित और कहीं शुष्क महागर्तो (गढों) से पातालके समान भयंकर वह पर्वतहै ॥ २९ ॥ कहीं महान् कल्पवृक्षोंसे पूर्ण, कहीं निर्जलस्थानयुक्त, कहीं महामातंगसमूहोंसे पूर्ण, और कहीं मत्तसिंह तथा बानर आदिके समूहोंसे युक्त वह पर्वतहै ॥ ३० ॥ कहीं प्राणियोंकी शून्यतासे वृथा उन्नतियुक्त, कहीं उन्मत्तराक्षसोंसे पूर्ण, कहीं कंटकयुक्त वृक्षोंसे अतिभयंकर, और कहीं तालों (ताडों) के महा बनोंसे पूर्ण, वह पर्वतहै ॥ ३१ ॥ कहीं आकाशके सदृश निर्मल तथा विस्तृत सरोवरोंसे शोभित, कहीं महा मरुस्थलोंसे पूर्ण, कहीं निरन्तर उठतीहुई धूलिसे पूर्ण, और कहीं सब ऋतुओंसे संयुक्त अनेक बनोंसे शोभित वह लोकालोक पर्वतहै ॥ ३२ ॥

शिखरेषुशिलास्तस्यसामान्याचलसन्निभाः ॥ संतिसुस्थितकल्पाभ्ररत्नमय्योंबरामलाः ॥ ३३ ॥ क्षीरोदकार्कगौरीणांवनस्कंधौकसामिव ॥ विश्राम्यंत्यनिशंयासुहरयोहरियोनयः ॥ ३४ ॥ तासामुत्तर दिग्भागेपूर्वशृंगशिलोदरे ॥ निवसाम्यहमक्षीणवज्रसारसमत्वचि ॥ ३५ ॥ विधिनातत्रबद्धास्मिवसा म्युपलयंत्रके ॥ अत्रासंख्यामुनेयातामन्येयुगगणाशम ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! इस पूर्वोक्त पर्वतके शिखरोंपर सह्य मलय आदि पर्वतोंके समान, स्थिर कल्पित मेघके तुल्य और आकाशवत् निर्मल अनेक रत्नकी शिलायें हैं ॥ ३३ ॥ हे मुने ! क्षीरसागर तथा सूर्य्यके समान गौरवर्ण उन शिलाओंपर अपने पुत्रपौत्रादि सहित सिंह तथा बानर आदिके झुण्ड ऐसे बिहार करते हैं जैसे कल्पवृक्षोंकी शाखाओंपर ॥ ३४ ॥ हे मुने ! उन शिलाओंके मध्यमें उस पर्वतके उत्तरदिशाके शिखरके ऊपर जो उत्तम शिलाहै उसके वज्रके समान दृढ उदरमें मैं निवास करती हूं ॥ ३५ ॥ हे मुने ! ब्रह्माकी नियतिसे पाषाण यंत्रमें बन्धीहुई वहांपर मैं रहतीहूं और यहांपर निवास करते मुझे युगोंके समूहके समूह बीतगये ॥ ३६ ॥

नकेवलमहंबद्धायावद्भर्त्तापितत्रमे ॥ बद्धःसायंतनेपद्मकुड्मलेषट्पदोयथा ॥ ३७ ॥ तेनसार्द्धमयाभर्त्रा शिलाकोटरसंकटे ॥ अनुभूताश्चिरंकालमत्रवर्षगणागताः ॥ ३८ ॥ अद्याप्यात्मैकदोषेणनहिमोक्षंल भावहे ॥ चिरंतत्रैवतिष्ठावस्तथैवाबद्धभावनौ ॥ ३९ ॥ पाषाणसंकटेतस्मिन्बद्धावावांनकेवलम् ॥ ब द्धोयावदशेषेणपरिवारोपितत्रनौ ॥ ४० ॥

अर्थ—न केवल मैंही किन्तु वहांपर मेरा भर्ताभी ऐसे बद्धहै जैसे सायंकालमें कमलके कोशमें भ्रमर ॥३७॥ उस अपने पतिके उस शिलाके कोटरके संकटमें मैंने चिरकालतक वर्षोंके समूहोंको मैंने व्यतीत किये ॥ ३८ ॥ हे मुने ! अबभी कामके दोषसे मोक्षको नहीं प्राप्तहुई किंतु दोनोंभावनामें बद्ध होके चिरकालसे निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ हे मुने ! उस पाषाणके संकटमें केवल हम दोनों स्त्री पुरुषही नहीं बद्ध हैं किन्तु हमारा पुत्रपौत्र तथा भृत्य आदि सब परिवार वहांही बद्धहैं ॥ ४० ॥

पुराणपुरुषोबद्धोद्विजस्तत्रास्तिमेपतिः ॥ एकस्थानान्नचलतिजीवन्युगशतान्यसौ ॥ ४१ ॥ आबाल्या द्ब्रह्मचारीचश्रोत्रियःपाठकोलसः ॥ एकांतएकएवास्तेऽजिह्मवृत्तिरचापलः ॥ ४२ ॥ अहंव्यसनिनीभा र्यातस्यवेदविदांवर ॥ ननिमेषंसमर्थास्मितंविनादेहधारणे ॥ ४३ ॥ शृणुतेनकथंब्रह्मन्भार्याहंसमुपा र्जिता ॥ कथंवृद्धिमयंयातःस्नेहोस्माकमकृत्रिमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पुराणपुरुष ब्राह्मण मेरा पति जहां ऐसा बद्ध है कि जीते हुये भी एक स्थानसे वह अन्यत्र नहीं चलायमान होता ॥ ४१ ॥ वह मेरा पति बाल्यअवस्थासे ब्रह्मचारी (परस्त्री समागमसे रहित) वेदोंका ज्ञाता आलसी, कपट तथा इन्द्रियोंकी चपलतासे रहित एकांतमेंही स्थित है ॥४२॥ हे वेद वेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! मैं उसकी व्यसननी भार्य्या उस पतिके विना एक निमेष भी देहधारणमें समर्थ नहीं हूं ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सुनिये कैसे उसने मुझे अपनी भार्य्या किया और कैसे हम दोनोंका यह स्वाभाविक स्नेह वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥

तेनजातेनमद्भर्त्राबालेनैवसतापुरा ॥ किंचिज्ज्ञेनसतैकेनतिष्ठतात्मालयेमले ॥ ४५ ॥ श्रोत्रियत्वानुरू पेणजायामेजन्मशालिनी ॥ कुतःसंभवतीत्येवनिर्णीयचिरचिंतया ॥ ४६ ॥ स्वयमेवानवद्यांगीतेनता मरसेक्षण ॥ उत्पादितास्मिनाथेनज्योत्स्नेवशशिनामला ॥ ४७ ॥ मनसामानसीभार्यामंदारोत्तमसुंदरी॥ ततोवृद्धिप्रयातास्मिवसंतइवमंजरी ॥ ४८ ॥

अर्थ—उत्तम कुलमें उत्पन्न, बाल्यअवस्थायुक्त, सज्जन और किंचित् ज्ञानसंपन्न मेरे पति पूर्वकालमें जब अपने निर्मल स्थानमें निवास करतेथे ॥ ४५ ॥ तब यह विचार किया कि मेरी वेदज्ञत्वके योग्य उत्तम कुल तथा सुन्दरता आदि गुणोंसे शोभायमान् स्त्री कैसे उत्पन्न होसकती है, ऐसी चिंतासे निर्णय करके ॥ ४६ ॥ हे कमलके सदृश नेत्रधारिन् मुने ! अनिंदित शरीरवाली मैं अपने पतिसे स्वयं ऐसे उत्पन्न की गई जैसे चन्द्रमासे निर्मल ज्योत्स्ना (चांदनी) ॥ ४७ ॥ कल्पवृक्षकी लताके समान सुंदरी पतिके मनसे उत्पन्न मानसी भार्य्या मैं उसके पश्चात् ऐसे वृद्धिको प्राप्त हुई जैसे वसन्तऋतुमें लता ॥ ४८ ॥

सहजांबरसंछन्नाभूतानांचित्तहारिणी ॥ पूर्णेंदुबिंबवदनाद्यौरिवामलतारका ॥ ४९ ॥ कोरकोच्चस्तन भरासमग्ररसशालिनी ॥ लतावरवनेनेवकरपल्लवशालिनी ॥ ५० ॥ सर्वस्यजंतुजातस्यनित्यंहृदयहा रिणी ॥ हरिणीतारनयनामदनोन्माददायिनी ॥ ५१ ॥ लीलाविलासैकरताहेलावलितलोचना ॥ गेय वाद्यप्रियानित्यंनचतृप्तानुरागिणी ॥ ५२ ॥

अर्थ—स्वाभाविक वस्त्रसे आच्छादित, सब जीवोंके चित्तको हरनेवाली, पूर्णचन्द्रमाके सदृश मुखधारिणी तथा निर्मल तारागणसहित आकाशके समान मैं वृद्धिको प्राप्त हुई ॥ ४९ ॥ और पुष्पोंके गुच्छेके सदृश उच्च स्तनसे शोभित और सब गुणोंसे ऐसे भूषित हुई जैसे श्रेष्ठ बनसे पल्लवरूप करसे शोभित लता ॥ ५० ॥ हरिणीके सदृश दीर्घ नेत्रधारिणी और कामको भी उन्माद करानेवाली मैं नित्य सब जीवोंके हृदयको हरतीहूं ॥ ५१ ॥ लीलाके विलासोंमें सदा तत्पर कौतुकसे तिर्य्यक् (तिरच्छे) कटाक्षधारिणी, और नित्य गान तथा वाद्यमें प्रीति रखतीहूं, परंतु भोगोंमें अनुरागयुक्त मैं अभीतक तृप्त नहीं हुई ॥ ५२ ॥

सौभाग्यभोगपरमालक्ष्म्यलक्ष्म्योःप्रियासखी ॥ अनन्यामोहजालानामखिन्नासंपदापदोः ॥ ५३ ॥ न केवलमहंगेहंधारयामिद्विजन्मनः ॥ यावत्रैलोक्यसदनमिदमंगबिभर्म्यहम् ॥ ५४ ॥ अहंकुलकरीभार्याकलत्रभरणक्षमा ॥ त्रैलोक्यगृहसंभारधारणैकभरोद्वहा ॥ ५५ ॥ अथाहंतरुणीजातासमुद्भिन्नोन्नतस्तनी ॥ लतोल्लसद्गुलुच्छेवविलासरसशालिनी ॥ ५६ ॥

अर्थ—सौभाग्यरूपी भोगको मुख्य समझनेवाली, समदर्शी पतिकी मनोमयी होनेसे लक्ष्मी तथा दरिद्राकी प्रिया सखीके तुल्य समदर्शिनी इसीसे मोहजालोंसे अभिन्न होनेपर भी संपत्ति तथा आपत्तिमें खेदरहित हूं ॥ ५३ ॥ हे प्रियमुने! मैं केवल अपने ब्राह्मण पतिकेही गृहको नहीं धारण करतीहूं किंतु पतिके मनोमयी होनेसे उनसे कल्पित त्रैलोक्यको धारण करतीहूं॥५४॥ मैं पुत्रपौत्रादिसे कुलको बढानेवाली, पोष्यवर्गके पालनमें समर्थ, तथा त्रैलोक्यरूपी गृहके भारको भी धारण करनेमें समर्थ हूं ॥ ५५ ॥ अब मैं महान् उन्नत स्तनको धारण करनेवाली तरुणअवस्थाको प्राप्त ऐसे शोभित हूं, जैसे फल और पुष्पोंके गुच्छोंसे लता ॥ ५६ ॥

पतिर्मेदीर्घसूत्रत्वाच्छ्रोत्रियत्वात्तपोरतः ॥ कयाप्यपेक्षयाद्यापिनविवाहितवानिमाम् ॥ ५७ ॥ तेनयौवनसंपन्नविलासरसशालिनी ॥ तंविनाव्यसनेनाहंदह्येग्राविवपद्मिनी ॥ ५८ ॥ शीतानिलविलोलासुनलिनीषुनिरंतरम् ॥ अंगदाहमवाप्नोमिपूतांगारस्थलीष्विव ॥ ५९ ॥ उद्यानावनयःसर्वाःपूर्णाःकुसुमवर्षणैः ॥ संपन्नास्तप्तसिकताःशून्यामेमरुभूमयः ॥ ६० ॥

अर्थ—मेरे पति दीर्घसूत्री (आलसी) होनेसे और वेदोंके ज्ञाता होनेसे तपस्यामें तत्पर इस अवस्थामें प्राप्त भी मुझे अभीतक नहीं बिवाहा ॥ ५७ ॥ उसके साथ यौवनसे संपन्न भोगोंकी इच्छावाली मैंने स्वयं अपना पति उनको वरलिया है, और उनको भोगोंके व्यसनसे रहित देखकर मैं ऐसे संतप्त होतीहूं जैसे अग्निमें कमलिनी ॥ ५८ ॥ शीत पवनसे चंचल कमलिनियां निरन्तर ऐसे अंग दाहको प्राप्त होती हूं जैसे भस्मसे रहित शुद्ध अंगारमयी भूमियोंमें ॥ ५९ ॥ पुष्पोंकी वृष्टियोंसे पूर्ण उद्यानकी भूमि मुझे संतप्त वालुकामय मरुस्थली भान होती है ॥ ६० ॥

जलकल्लोलकह्लारकमलोत्करकोमलाः ॥ सरस्यःसारसारावसरसाममनीरसाः ॥ ६१ ॥ अहंपुष्करमंदारकुमुदोत्कारमालिता ॥ भृशंदाहमवाप्नोमिकंटकेष्विवदोलिता ॥ ६२ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारकदलीतल्पपालयः ॥ मदंगसंगमाद्ग्रीष्ममर्मरायांतिभस्मताम् ॥ ६३ ॥ यत्कांतमुचितंस्वादुविचित्रंचित्तहारिच ॥ तदालोक्यभवाम्यंतर्बाष्पपूर्णायतेक्षणा ॥ ६४ ॥

अर्थ—जलके कल्लोलों तथा अनेक प्रकारके कमलोंके समूहोंसे सुखदायक स्पर्श युक्त, और सारसआदि पक्षियोंके शब्दोंसे सरस सरसी (तलाव वा बावली) मुझे नीरस लगती हैं ॥ ६१ ॥ और दाहकी शान्तिके लिये जब सखीजन मुझे कमलमंदारआदि पुष्पमयी शय्यापर लोटा देती हैं तब ऐसे संतप्त होती हूं जैसे कंटकोंमें ॥ ६२ ॥ हे मुने ! कुमुद नील तथा रक्तकमल और केलेकी शय्यायें मेरे अंगके तापसे प्रथमशुष्क होके भस्म होजाती हैं ॥ ६३ ॥जो अति सुन्दर, योग्य, स्वादयुक्त,विचित्र और मनोहर पदार्थ हैं उनको देखके आभ्यन्तरसे अश्रुपूर्णनेत्र होजाती हूं॥६४॥

व्यसनानलसंतप्ताःपतंतोबाष्पबिंदवः ॥ छमच्छमितिमज्जंतीकमलोत्पलपंक्तिषु ॥ ६५ ॥ कदलीकंदलीस्कंधदोलांदोलनलीलया ॥ लालितोद्यानखंडेषुमुखमाच्छाद्यरोदिमि ॥ ६६ ॥ तुषारनिकराकीर्णकदलीदलमंडपम् ॥ पश्याम्यूष्माणमुज्झंतंखदिरांगारभीषणम् ॥ ६७ ॥ नलिनीनालदोलासुसारसींसारसाश्रिताम् ॥ दीनाननाविलोक्यांतर्निंदामिनिजयौवनम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—दुःखरूपी अग्निसे संतप्त छम छम शब्दके साथ गिरते हुये अश्रुके बिन्दुकमलोंकी पंक्तियोंको शुखाकर स्वयं भी शुष्क होजाते हैं ॥ ६५ ॥ हे मुने ! केलोंके दलसे रचित झुलाओंमें सखीजन मुझे झुलाती हैं तो लज्जासे उनको अपना दुःख न कहके मुखको आच्छादन करके रोती हूं ॥ ६६ ॥ तुषारके समूहसे आच्छादित कदली

दलके मण्डपको खदीरके अंगारके समान भयंकर उष्णताको उगिलते हुयेके सदृश देखती हूं ॥ ६७ ॥ कमलिनीके दंडरूपी झुलापर सारससे संयुक्त सारसीको देखकर अति दीन मैं अपने यौवनकी निंदा करती हूं ॥ ६८ ॥

रम्येरोदिमिमध्यस्थेपदार्थेयामिसौम्यताम् ॥ हृष्याम्यशोभनेदीनानजानेकिमहंस्थिता ॥ ६९ ॥ दृष्टा निकुंदमंदारकुमुदानिहिमानिच ॥ मयाकामाग्निदग्धानांभस्मानीवदिशंप्रति ॥७० ॥ आनीलपल्लवमृणाललतोत्पलानांकह्लारकुंदकदलीदलमालतीनाम् ॥ शय्याममांगचलनेनविशोषयंत्याव्यर्थंगतानिनवयौवनवासराणि ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विद्याधरीव्यसनवर्णनं नाम चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ —अति रमणीय पदार्थको देखकर रोती हूं मध्यम पदार्थसे सौम्य होजाती हूं, और मूर्च्छा तथा जडीभाव दशामें प्रसन्न होती हूं क्योंकि उस दशामें मैं कैसे हूं यह नहीं जानती, अर्थात् अहंकारके अभावमें दुःखका अनुभव न होनेसे विश्राम पाती हूं ॥ ६९ ॥ हे मुने ! कुन्द, मन्दार, कुमुद तथा हिमआदि शीतल पदार्थोंको प्रत्येक दिशामें मैंने कामाग्निसे दग्ध जीवोंके भस्मके तुल्य देखे हैं ॥ ७० ॥ अत्यन्त हरित तमालके पल्लव, कमलदण्ड, लता, नील तथा रक्तश्वेतादि कमल, कुन्द, कदलीदल, और मालतीके पुष्पोंसे रचित शय्याओंको निज अंगोंके संचालनसे शुखाते हुये मेरे यौवनके दिन व्यर्थही बीतगये ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विद्याधरीव्यसनवर्णनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

इस ६५ के सर्गमें धारणाके अभ्याससे प्राणको जीतनेवाली विद्याधरीने काल पाके अपने विषाऽनुरागके वैराग्यको वर्णन कियाहै ॥

विद्याधर्युवाच ॥ अथकालेनमहतासोनुरागोविरागताम् ॥ प्राप्तोममशरच्छांतौविरसःपल्लवोयथा॥१॥ वृद्धएकांतरसिकोनीरसःस्नेहवर्जितः ॥ भर्ताऽजिह्ममतिर्मौनीकिंमन्येजीवितेनमे ॥ २ ॥ वरंवैधव्यमाबाल्याद्वरंमरणमेवच ॥ वरंव्याधिरथापद्वानाहृद्यप्रकृतिःपतिः ॥ ३ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यंसौभाग्यमविखंडितम् ॥ रसिकःपेशलाचारोयन्नार्यास्तरुणःपतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—विद्याधरी बोली–कि हे मुने ! इसके पश्चात् बहुतकालमें जैसे शरत्के अन्त और हेमन्तके आरंभमें पल्लव निरस होजाताहै ऐसेही मेरा विषका अनुराग वैराग्यदशाको प्राप्तहुआ ॥ १ ॥ प्रथम मेरे चित्तमें यह विचार हुआ कि मेरा पति वृद्ध, एकांत सेवी, नीरस, स्नेहवर्जित, सरलमति और तपस्यासे मौनव्रत धारण किये हैं इसलिये मेरे जीवनसे क्या फलहै ॥ २ ॥ बाल्यअवस्थासे विधवा होना उत्तमहै, मृत्यु श्रेष्ठ, व्याधिसे पीडित रहनाभी उत्तम है, अथवा सदा आपत्तिमें निमग्न होनाभी उत्तमहै, परंतु अरसिक पति उत्तम नहीं है ॥ ३ ॥ अखंडित सौभाग्य, तथा जन्मकी सफलता यही है कि स्त्रीको रसिक, कोमल प्रकृति और तरुण पति मिले ॥ ४ ॥

हतानीरसनाथास्त्रीहताऽसंस्कारिणीचधीः ॥ हताद्दुर्जनभुक्ताश्रीर्हतावेश्याहृताचह्रीः ॥ ५ ॥ सास्त्रीयानुगताभर्त्रासाश्रीर्यानुगतासता ॥ साधीर्यामधुरोदारासाधुतासमदृष्टिता ॥ ६ ॥ नाधयोव्याधयोनैवनापदोनइरीतयः ॥ कुर्वंतिमनसोबाधांदंपत्योरनुरक्तयोः ॥ ७ ॥ उत्फुल्लाःकुसुमस्थल्योनंदनोद्यानभूमयः ॥ धन्वायंतेकुनाथानांविनाथानांचयोषिताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—नीरस पतियुक्त स्त्री नष्टहै, संस्काररहित बुद्धिभी नष्ट है, दुष्टजनोंसे भुक्तलक्ष्मी व्यर्थ है, सत्कुलके आचार आदिके योग्य पुरुषोंकी लज्जा यदि वेश्याओंने हरलिया तो वहभी नष्टही है ॥ ५ ॥ हे मुने ! वही स्त्री स्त्री है जो पतिकी अनुगामिनी है, वही लक्ष्मी लक्ष्मी है जो सज्जनोंके भोगमें आती है, वही बुद्धि बुद्धि है जो शम दम आदि सम्पत्तिसे मधुर और उदारहै, वही साधुता साधुताहै जो समदृष्टितासे युक्तहै ॥ ६ ॥ हे मुने ! एक दूसरेमें अनुरक्त स्त्री पुरुषके मनको कोई आधि, व्याधि, आपत्ति और अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि आदि कालकी पीडा बाधा नहीं पहुंचासक्ती हैं ॥ ७ ॥ विकसित पुष्पोंकी स्थली, और नन्दनवनकी उद्यानभूमि दुष्टपति सहित तथा अनाथ स्त्रियोंको मरुस्थलके समान सन्ताप पहुंचाती हैं ॥ ८ ॥

सर्वएवजगद्भावायथेच्छंगुणलेशतः ॥ संत्यज्यंतेप्रमादात्तुवर्जयित्वापतिंस्त्रिया ॥ ९ ॥ स्थिरयौवनया दुःखान्येतानिमुनिनायक ॥ भुक्तानिवर्षवृंदानिपश्यदौर्भाग्यजृंभितम् ॥ १० ॥ अथक्रमेणतेनैवसरागो मेविरागताम् ॥ आययौहिमदग्धायानलिन्याइवनीरसः ॥ ११ ॥ विरागवासनास्तेनसर्वभावानुरं जना ॥ तवोपदेशेनेच्छामिमुनेनिर्वाणमात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारके गृह क्षेत्र धन आदि सब पदार्थोंको अल्पगुणके कारणसे तथा प्रमादसे स्त्री त्याग देती है परंतु पतिको नहीं त्याग सकती ॥ ९ ॥ हे मुनिनायक ! मेरे दौर्भाग्यके विलासको देखिये कि स्थिर यौवन सहित मैंने अनेक वर्षपर्य्यन्त इन सब दुःखोंको भोगा ॥ १० ॥ इसके अनन्तर क्रमसे नीरस मेरे भोगोंको अनुराग ऐसे विरागताको प्राप्त हुआ जैसे हिमसे दग्धकमलिनीका रस ॥ ११ ॥ हे मुने ! इसप्रकार विरागकी वासनाको पाकर सब पदार्थोंमें वैराग्ययुक्त मैं अब आपके उपदेशसे अपनी मुक्ति चाहतीहूं ॥ १२ ॥

अप्राप्ताभिमतार्थानामविश्रांतधियांपरे ॥ मरणैरुह्यमानानांजीवितान्मरणंवरम् ॥ १३ ॥ समद्भर्त्तापि निर्वाणमीहमानोदिवानिशम् ॥ राजाराज्ञेवमनसामनोजेतुंप्रबुध्यते ॥ १४ ॥ ब्रह्मंस्तस्यचमद्भर्त्तुर्मम चाज्ञानशांतये ॥ न्यायोपपन्नयावाचाकुरुस्मरणमात्मनः ॥ १५ ॥ यदामामनपेक्ष्यैवसमद्भर्त्तात्मनि स्थितः ॥ तदाविरागोवैरस्यमनयन्मेजगत्स्थितिम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इष्ट पदार्थको न पानेवाले, परब्रह्ममें अविश्रांत बुद्धि, तथा मृत्युके प्रवाह निरन्तर बहनेहुये मेरे सदृश जीवोंके जीवनसे मृत्युही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ और वह मेरा पतिभी इससमय रात्रिदिन निर्वाणकी चेष्टामें तत्पर मनसेही मनको जीतनेमें ऐसे प्रवृत्तहैं जैसे राजाकी सहायतासे दूसरे राजाको जीतनेके अर्थ कोई राजा प्रवृत्त होताहै ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसलिये मेरे पति तथा मेरे अज्ञानकी शांतिकेलिये न्याययुक्तवाणीसे विस्मृत कंठमणिके सदृश आत्माका प्रबोधन कराइये ॥ १५ ॥ जब मेरा पति मेरी अपेक्षा न करके आत्मामें स्थिर हुआ तब मुझे भी जगत्की स्थितिसे वैराग्य प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

संसारवासनावेशवर्जितास्मिततोऽवसम् ॥ निबध्याभिमतांतीव्रांव्योमसंचारधारणाम् ॥ १७ ॥ अर्ज यित्वातयाव्योम्निगतिंधारणयामया ॥ अभ्यस्ताधारणाभूयःसिद्धसंगफलप्रदा ॥ १८ ॥ ततःस्वजग दाधारपूर्वापरनिरीक्षया ॥ स्थिताहंधारणांबद्ध्वासापिसिद्धिंसमागता ॥ १९ ॥ अथस्वजगतोदृष्ट्वाहृदयं तस्यबाह्यगा ॥ अहंदृष्टवतीस्थूलांलोकालोकगिरेःशिलाम् ॥ २० ॥

अर्थ—और पतिके विरक्त होनेही के कारण मैं अवश होके संसारकी वासनासे रहित हूं, और आकाश गमन सिद्धिको देनेवाली खेचरी मुद्रारूप अभिमत धारणाको दृढतासे अवलम्बन किया ॥ १७ ॥ उस धारणसे आकाशगतिको उपार्जन करके पुनः सिद्धोंसे समागम तथा वार्तालाप करानेवाला धारणाका अभ्यास मैंने किया ॥ १८ ॥ उससे निज ब्रह्मांड तथा उसके आकारके पूर्वापर ब्रह्मांडके आकारको शास्त्र तथा योगदृष्टिसे हस्तामलकवत् दर्शनसे तदाकार दृढ भावना करके मैं स्थित हुई, और वह भी मेरी धारणा सिद्ध होगई ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् अपने हृदय अर्थात् अन्तर्गत सब वस्तुको देखकर जब उसके बाहर प्राप्त हुई तब इस स्थूल लोकालोक पर्वतकी शिलाको देखा ॥ २० ॥

एतावतापिकालेनदंपत्योरावयोर्मुने ॥ परंद्रष्टुमभूदिच्छानकाचनकदाचन ॥ २१ ॥ मद्भर्त्ताकेवलंशुद्ध वेदार्थैकांतचिंतया ॥ नचयातंनचायातंवेत्त्यहोविगतैषणः ॥ २२ ॥ तेनासौमत्पतिर्विद्वानपिनप्राप्तवा न्पदम् ॥ अद्यसोहंचवांछावःप्रयत्नेनपरंपदम् ॥ २३ ॥ तदेतामर्थितांब्रह्मन्सफलांकर्त्तुमर्हसि ॥ मह तामर्थिनोव्यर्थानकदाचनकेचन ॥ २४ ॥ भ्रमंतीसिद्धसेनासुसदानभसिमानद ॥ त्वद्दतेनेहपश्यामि घनाज्ञानदवानलम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मन्विनैवकरुणाकरकारणेनसंतोयतोर्थिजनवांछितपूरणानि ॥ कुर्वंति तेनशरणागततामुपेतांमामर्हसीहनतिरस्करणेनयोक्तुम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० विद्याधरीजन्मव्यवहारवर्णनं नाम पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—हे मुने ! इतने समयतक हम दोनों स्त्रीपुरुषको इस पर्वतके देखनेकी वा ब्रह्मज्ञानकी कोई भी इच्छा नहीं हुई ॥ २१ ॥ और मेरा पति केवल वेदप्रतिपाद्य धर्म और परमात्माकी चिन्तासे भूतभविष्यत् तथा वर्तमानकालको भी नहीं जानता, और ब्रह्मज्ञानसे भी शून्य है ॥ २२ ॥ इसीकारण विद्वान् भी मेरे पतिने परमपदको नहीं पाया और अब मैं तथा मेरा पति दोनों बडे यत्नसे परमपदको चाहते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये हे भगवन् ! इस मेरी प्रार्थनाको

आप सफल करनेके योग्य हैं, क्योंकि आपके सदृश महात्माओंके निकट कोई भी अर्थी कभी निष्फल नहीं हुये ॥ २४ ॥ हे भगवन्! सिद्धोंकी सेनामें भ्रमती हुई मैं आपके सिवाय घनीभूत अज्ञानरूपी बनका दावानल नहीं देखती ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन्! आपके सदृश संतजन अर्थियोंके अभिलषितको अपने विना किसी कारणकेही पूर्ण करतेहैं, इसलिये मुझ शरणागतको उपेक्षासे तिरस्कार करनेयोग्य आप नहीं हैं ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विद्याधरीजन्मव्यवहारवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इस ६६ के सर्गमें वसिष्ठजीने विद्याधरीसे पूंछा कि अवकाशरहित शिलाके भीतर तुमारी स्थिति कैसे और गृह भी कैसे हैं, तब उसने जगत्का विस्तार वर्णन किया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथेत्युक्तवतीपृष्टासामयाकल्पितासना ॥ संकल्पितासनस्थेनस्थितेननभसि स्थिता ॥ १ ॥ कथंशिलोदरेबालेत्वद्विधानांभवेत्स्थितिः ॥ कथंसंचलनंतत्रकिमर्थंतत्रचास्पदम् ॥ ॥ २ ॥ विद्याधर्युवाच ॥ मुनेयथेदंभवतांजगत्स्फारंविराजते ॥ तथास्माकंजगत्तत्रसर्गसंसारयुक् स्थितम् ॥ ३ ॥ स्फुरंतिनागाःपातालेतिष्ठंतिभुविपर्वताः ॥ आपश्छलछलायंतेवहंतिव्योम्निवायवः॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! इसप्रकार उस ब्रह्मांडके आकाशमें कल्पित आसनपर स्थित विद्याधरी जब इतना कह चुकी तब उसी आकाशमें कल्पित आसनपर स्थित मैंने उससे पूंछा ॥ १ ॥ कि-हे बाले! तुमारे सदृश देहधारियोंकी शिलाके उदरमें स्थिति कैसे और वहांपर संचलन वा गृहादि कैसे हैं ॥ २ ॥ विद्याधरी बोली कि-हे भगवन्! जैसे आपका यह विशाल जगत् विराजता है ऐसेही शिलाके भीतर संसारकी सब सृष्टिसहित हमारा भी जगत् है ॥ ३ ॥ वहां भी पातालमें नाग तथा पृथिवीपर पर्वत स्फुरित हैं, तथा भूमिपर झलाझल जल और आकाशमें वायु बह रहेहैं ॥ ४ ॥

अर्णवाअर्णसाभांतियांत्यंतःशनकैःप्रजाः ॥ भूतान्यजस्रंजायंतेम्रियंतेविरतंयथा ॥ ५ ॥ वांतिवाताव हंत्यापोभांतिचाभांतिखेसुराः ॥ तिष्ठंत्यगाःसमुद्यंतिग्रहायांतिमहींनृपाः ॥ ६ ॥ देवासुरमनुष्याणां व्यवहारपरंपराः ॥ लोलाःप्रवृत्ताआकल्पमासमुद्रमिवापगाः ॥ ७ ॥ दिनपद्मानिभूलोकसरस्याकल्प मानभः ॥ लोलाभ्रालीनिफुल्लानिमीलितोन्मीलितान्यलम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जलसे पूर्ण समुद्र शोभितहैं, प्रजा सुखपूर्वक गमनागमन करती हैं, और सब प्राणी क्रमसे निरन्तर उत्पत्ति तथा मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ वायु वहते हैं जल वेगसे चलते हैं, आकाश नक्षत्र तथा प्रकाश करते हैं, पर्वत स्थिर हैं, ग्रह चलते हैं, और राजालोग पृथिवीका पालन करते हैं ॥ ६ ॥ देवता और तथा मनुष्योंका चंचल व्यवहार कल्पपर्य्यन्त ऐसे प्रवृतहैं जैसे समुद्रतक नदियोंका गमन ॥ ७ ॥ कल्पपर्य्यन्त काल और आकाशपर्य्यन्त देशमें चंचल मेघरूप भ्रमर सहित दिनरूपी कमल भूलोकरूपी तडागमें कभी विकसित होते हैं और कभी निमीलित होते हैं ॥ ८ ॥

चंद्रश्चर्चाश्चतुर्दिक्कंचंदनेनात्मतेजसा ॥ रचयन्नात्रिरोहिण्योस्तमोहंत्यपिहृद्गतम् ॥ ९ ॥ स्वदशास्वा दनरतावातयंत्रसुचारिता ॥ रोदःसद्मनिसूर्याख्यादीप्यतेदिविदीपिका ॥ १० ॥ ब्रह्मसंकल्पितोरुद्धो वातसंचारचारिभिः ॥ खेनिशंचक्रमृक्षाणांगुणावर्त्तोविवर्त्तते ॥ ११ ॥ भूततंडुलमासृष्टेःपिनष्टिध्रुव कीलकः ॥ नियत्याचलितोरोदःकपाटांभोदघर्घरः ॥ १२ ॥

अर्थ—और चन्द्रमा अपने तेजरूपी चन्दनसे सब दिशाओंमें लेपन करता हुआ, रात्रि तथा रोहिणी (निज पत्नी) के हृदयके अन्धकारको नष्ट करताहै ॥ ९ ॥ और दशोदिशा रूपवतीके स्नेहके भोगमें निरत और वायुरूपी यन्त्रसे चालित सूर्य्यरूप दीपिका अन्तरिक्ष तथा पृथिवीरूपी गृहमें प्रज्वलित होरही है ॥ १० ॥ हे मुने! ब्रह्मके संकल्पसे रचित तथा वायुमें संचारी किरणोंसे घृत गुणोंसे भ्रमणशील नक्षत्रोंका चक्र आकाशमें निरन्तर चक्रीके सदृश भ्रमण करताहै ॥ ११ ॥ और ध्रुवरूपी कीलमें अवरुद्ध, नियतिसे संचालित, और अन्तरिक्ष तथा पृथिवीमें केवाँडके सदृश मेघोंसे घर्घर शब्दयुक्त वह चक्र सृष्टिके आरम्भसे प्राणीरूप तंडुलको पीसताहै ॥ १२ ॥

द्वीपाब्धिशैलैर्भूपीठंविमाननगरैर्नभः ॥ दैत्यदानवनागौघैःपूर्णपातालमंडलम् ॥ १३ ॥ कुंडलंत्रिजगल्लक्ष्म्यानीलंभूतलमंडलम् ॥ स्थितंचंचलमाचारचंचलायाःस्फुरन्मणि ॥ १४ ॥ बुद्ध्यादिरहितांस्पंदसंविदंवायवीमिव ॥ स्थावरंजंगमंचैवसूक्ष्ममादायजायते ॥ १५ ॥ मुनिर्मौनैर्धरावार्भिर्मारुतैःकपिचापलम् ॥ आकाशैरवकाशित्वंतेजोभिर्भासनंश्रितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा हे मुने ! द्वीप, समुद्र और पर्वतोंसे भूतल, विमान तथा गन्धर्वनगरोंसे आकाश, और दैत्य, दानव, तथा नागोंके समूहोंसे पातालमण्डल वहांपर पूर्ण होरहा है ॥ १३ ॥ तथा उस शिलाके भीतर चंचल त्रिलोकीरूप लक्ष्मीका देदीप्यमान मणिके सदृश चंचल कुण्डलके समान नील भूमण्डल शोभित होरहा है ॥ १४ ॥ यहांके समान वहां भी स्थावरजंगम प्राणी समूह बुद्धिआदि बाह्य वायुकी क्रियाके समान आभ्यन्तरीय सूक्ष्मप्राण संविद्को ग्रहण करके जन्मआदि विकारको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ और यहांके सदृश उस शिलामें मुनियोंकी मनन तथा मौनआदि क्रियाओंने मुनिका आश्रय लिया, समुद्रादिके जलने पृथिवीका, वायुने कपिकी चंचलताका, आकाशने अवकाशताका, और तेजने आश्रय लिया है ॥ १६ ॥

वृक्षोर्व्यब्ध्यद्रिखचराःप्राणिनोंतःस्फुरंत्यलम् ॥ मृतिजन्मोन्मुखाःकीटसुरासुरजलौकसः ॥ १७ ॥ ससुरासुरगंधर्वाःकालःकलयतिप्रजाः ॥ दोर्भिःकल्पयुगाब्दैश्वस्वपशूनिवपालकः ॥ १८ ॥ अनंतविपुलागाधगंभीरेकालसागरे ॥ उत्पत्योत्पत्यलीयंतेतेत्वावर्त्तविवर्त्तया ॥ १९ ॥ चतुर्दशविधावातवेल्लिताभूतपांसवः ॥ नाशाकाशेविलीयंतेशरदंभोदलीलया ॥ २० ॥

अर्थ—वहां भी वृक्ष, पृथिवी, समुद्र, पर्वत आकाशचारी वानर, मनुष्य, मत्स्य, मृग पक्षी तथा देवता आदि पूर्णरीतिसे विचरतेहैं ॥ १७ ॥ यहांके सदृश वहां भी सुर असुर गंधर्व तथा मनुष्य आदि प्रजाओंको कालरूप पुरुष वर्ष युग तथा कल्प आदिरूप भुजाओंसे पालन आदिसे ऐसे भोगता है जैसे पशुपालक पशुओंको ॥ १८ ॥ हे मुने ! वहां भी अनंत विशाल गंभीर तथा अगाध कालरूपी सागरमें देवता आदि जलचारी जीवोंके सदृश गमनागमनरूप कालकी गतिसे उत्पन्न हो २ कर पुनः २ लीन होजाते हैं ॥ १९ ॥ वायुसे वेष्टित चतुर्दश (चौदह) प्रकारके प्राणी समूहरूप धूलि नाशके आधारभूत अव्याकृत आकाशमें ऐसे लयको प्राप्त होते हैं जैसे शरत्कालमें मेघ ॥ २० ॥

भुवनंबोधयंतीयौश्चंद्रार्ककरचामरैः ॥ स्थिताकाशांशुकाकल्पतारकोत्करशेखरा ॥ २१ ॥ स्थिताःपवनभूकंपमेघतापसहिष्णवः ॥ स्वंप्रदेशमनुज्झंत्यःककुभःस्तंभिताइव ॥ २२ ॥ उत्पातमेघनिर्ह्रादभूमिकंपग्रहग्रहैः ॥ अज्ञातैरपिविज्ञातैर्भूतानांजायतेगतिः ॥ २३ ॥ सप्तानांजलमब्धीनामौर्वाग्निःपिबतिज्वलन् ॥ लोकांतराणामाकल्पंकालोभूतगणंयथा ॥ २४ ॥ पातालमाविशतियातिनभोबिलंचदिग्मंडलंभ्रमतिभूतगणःसमंतात् ॥ पर्येतिपर्वतमहार्णवमंडलानिद्वीपांतराणिचमरुत्सरणक्रमेण ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० शिलांतरवर्णनं नाम षट्षष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—आकाशरूप वस्त्रधारिणी, तारागणरूप शिरोभूषण सहित, दिवलोक चन्द्र सूर्य्यरूपी चमरोंसे हवा करतीहुई मानो सुप्त संसारको जगाते हुये स्थितहै ॥ २१ ॥ हे मुने ! उस पाषाणशिलामें भी पवन, भूकम्प, वृष्टि तथा आतप आदिको सहनेवाली सब दिशा अपने २ देशको न त्यागती हुई स्थावर प्राणीके स्तंभित होके स्थितहैं ॥ २२ ॥ ज्योतिषियोंसे ज्ञात, और अन्यसे अज्ञात उत्पातके हेतु मेघ, विद्युत्पतन, भूकम्प, तथा ग्रहादिसे प्राणियोंकी इष्ट अनिष्ट दशा वहांभी ज्ञात होती है ॥ २३ ॥ वहांभी सातोंसमुद्रोंके जलको प्रज्वलित वडवानल ऐसे पीताहै जैसे चतुर्दश भुवनोंके प्राणी समूहको काल ॥ २४ ॥ हे मुने ! वहांभी पाताल जानेके योग्य प्राणीसमूह पातालमें जाते हैं, आकाशके आकाशमें, अन्तरिक्षके योग्य अन्तरिक्षमें चारोओरसे भ्रमण करते हैं, और वायुके संचारके क्रमसे पर्वत, समुद्र तथा द्वीपान्तर सर्व भ्रमण कररहे हैं (अर्थात् यहांके सब व्यवहार पाषाणशिलामें भी हैं) ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने शिलान्तर वर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

कौतुकसे उस शिलापर जाकरभी उसके भीतरके जगत्को वसिष्ठजीने जब नहीं देखा तब पूंछनेपर विद्याधरीने अभ्यासके महात्म्यका वर्णन इस ६७ के सर्गमें कियाहै ॥

विद्याधर्युवाच ॥ यावत्तंसर्गमागच्छप्रसादःक्रियतांमुने ॥ आश्चर्येषूपपन्नेषुमहांतोह्यतिकौतुकाः ॥१॥ तथेत्युक्तेमयासार्द्धंगंतुमारब्धमंबरे ॥ वात्यया सौरभेणेवशून्येशून्येनशून्यया ॥ २ ॥ अथाहंदूरमध्वानंशून्यमुल्लंघ्यनाभसम् ॥ नभःस्थंभूतसंघातंतयासार्द्धमवाप्तवान् ॥ ३ ॥ तमुल्लंघ्यचिरेणात्रभूतसंचारमंबरे ॥ लोकालोकशिरोव्योमप्राप्तोस्मिधवलांबुदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—विद्याधरी बोली–कि हे मुने ! यदि आश्चर्य्य मानते हो तो आप कृपा करके चलिये और उस शिलान्तर्गत जगत्‌को देखिये क्योंकि आश्चर्य्ययुक्त, पदार्थोंके देखनेमें अति कौतुकी होते हैं ॥ १ ॥ हे रामजी ! उसके ऐसा कहनेपर उसके साथ आकाशमें गमन मैंने ऐसे आरंभ किया जैसे शून्य महावात्या (आन्धी) के साथ शून्य सुगन्ध ॥ २ ॥ इसके पश्चात् आकाशके दूरमार्गको उल्लंघन करके आकाशमें स्थित अन्य देवादि भूत समूहको पाया ॥ ३ ॥ उस देव आदि प्राणी समूहको आकाशमें उल्लंघन करके धवलमेघवत् लोकालोक पर्वतके ऊपरके आकाशमें मैं प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

उत्तरांशेंदुशुभ्राभ्रपीठान्निर्गत्यतांशिलाम् ॥ आनीतोस्मितयोत्तुंगांतप्तकांचनकल्पिताम् ॥ ५ ॥ यावत्पश्याम्यहंशुभ्रांशिलांतांनचतज्जगत् ॥ कलधौतमयीमुच्चैरग्निलोकतटीमिव ॥ ६ ॥ तदामयोक्तासाकांता कभवत्सर्गभूरिति ॥ क्वरुद्रार्काग्नितारादिक्लोकांतरसप्तकम् ॥ ७ ॥ क्वार्णवाकाशककुभःक्वोन्मज्जननिमज्जने ॥ क्वमहांभोदसंभारःक्वतारांबरडंबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उत्तर दिशाके पूर्वभागमें स्थित चन्द्रमाके सदृश शुभ्र मेघपीठसे निकलकर संतप्त सुवर्णके समान उस ऊंची शिलापर मैं प्राप्त किया गया ॥ ५ ॥ तब मैं सर्वथा शुद्ध और सुमेरुकी तटीके सदृश उस सम्पूर्ण शिलाको देखा परन्तु उसके कहे हुये जगत्‌को नहीं देखा ॥ ६ ॥ तब मैंने उस विद्याधरीसे कहा कि तुमारी सृष्टिकी भूमि कहां है ? तथा रुद्र, सूर्य्य, अग्नि, तारागण, सब दिशा और सातोंलोक कहां हैं ? ॥ ७ ॥ समुद्र आकाश दिशा कहां हैं, प्राणियोंके जन्ममरण कहां हैं, महान् मेघोंका मण्डल कहां, और तारागणतथा आकाशका आडंबर कहां है ? ॥ ८ ॥

क्वशैलशिखरश्रेण्यःक्वमहार्णवलेखिकाः ॥ क्वद्वीपवलयास्सप्तक्वतप्तकनकावनिः ॥ ९ ॥ क्वकार्यकालकलनाःक्वभूतभुवनभ्रमः ॥ क्वविद्याधरगंधर्वाःक्वनरामरदानवाः ॥ १० ॥ क्वर्षिभूपालमुनयःक्वनयापनयक्रमः ॥ क्वपंचयामयामिन्यःक्वस्वर्गनरकभ्रमः ॥ ११ ॥ क्वपुण्यपापकलनाक्वकलाकालकेलयः ॥ क्वसुरासुरवराणिक्वद्वेषस्नेहरीतयः ॥ १२ ॥

अर्थ—पर्वतोंके शिखरोंकी श्रेणी कहां हैं; महासमुद्रोंकी माला कहां हैं, सप्तद्वीपोंके घेरे कहां, और तप्तसुवर्णकी पृथिवी कहां हैं ? ॥९॥ कर्तव्य कर्म तथा कालकी कल्पना कहां, विद्याधर, गन्धर्व, देव, दानव तथा मनुष्यआदि कहां हैं ? ॥ १० ॥ ऋषि, मुनि, राजा, तथा न्याय अन्यायका क्रम कहां हैं, हेमन्तकी रात्रि कहां, तथा स्वर्ग, नरकआदिका भ्रम कहां हैं ? ॥ ११ ॥ पुण्य पापकी कल्पना, तथा कला और कालकी क्रीडा कहां हैं, देवता और असुरका वैर कहां, और द्वेष तथा स्नेहकी रीति कहां हैं ? ॥ १२ ॥

वदत्येवंमयिवचःसोवाचवरवर्णिनी ॥ विस्मयाकुलमालोक्यशिलामलिविलोचना ॥ १३ ॥ विद्याधर्युवाच ॥ पश्याम्यखिलमात्मीयमहंसर्वमिहोपले ॥ मुकुरप्रतिबिंबस्थपुरान्यपुरवज्जनम् ॥ १४ ॥ नित्यानुभवएवात्रदर्शनेकारणंमम ॥ तदभावोमुनेमन्येतेकारणमदर्शने ॥ १५ ॥ अन्यच्चचिरकालैकद्वैतसंकथयानया ॥ शुद्धातिवाहिकैकात्मदेहताविस्मृतावयोः ॥ १६ ॥

अर्थ—मेरे इतना कहनेपर श्रेष्ठ वर्णयुक्त, तथा भ्रमरके समान नेत्रधारिणी वह विद्याधरी विस्मयसे व्याकुल उस शिलाको देखकर बोली ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! मैंभी इस शिलामें अपने जगत्‌को, तथा देव मनुष्यआदि प्राणीसमूह और नगरआदिको दर्पणमें प्रतिबिंबितके सदृश अब देखती हूं ॥ १४ ॥ सो हे मुने ! नित्यका अनुभवही मेरे दर्शनका कारण है, और उसका अभाव आपके अदर्शनका कारण है ॥ १५ ॥ औरभी चिरकालतक एक द्वैतकी कथासे सूक्ष्म अर्थके ग्रहणमें समर्थ शुद्ध सूक्ष्म मनोमात्र देहता हमारी विस्मृत होगई ॥ १६ ॥

ममातिसुचिराभ्यस्तमपिव्योमलतामिव ॥ गतंनिजंजगदिदंयतःपश्यामिनस्फुटम् ॥ १७ ॥ अभूयत्स्वजगत्पूर्वमतिप्रकटमेवमे ॥ तत्पश्यामीदमादर्शइवबिंबितमस्फुटम् ॥ १८ ॥ चिरव्यर्थौत्थयानाथ संकथाव्यथयामिथः ॥ स्वास्थ्यंविस्मृतमात्मीयमवदाततमंततम् ॥ १९ ॥ योभ्यासःप्रकचत्यंतःशुद्धचिन्नभसोरसात् ॥ भवेत्तन्मयमेवांतराबालमिवलक्ष्यते ॥ २० ॥

अर्थ—चिरकालसे अभ्यस्त भी यह जगत् मेरी दृष्टिमें नष्टकेही सदृश है, क्योंकि आकाश लताके सदृश इसको मैं पूर्ववत् स्पष्टरूपसे नहीं देखती ॥ १७ ॥ जो मेरा जगत् प्रथम स्पष्टरूपसे इस शिलामें प्रकट था, उसको मैं दर्पणके प्रतिबिंबके समान अस्पष्ट देखती हूं ॥ १८ ॥ व्यर्थ प्रवृत्त इस पतिकी कथा जनितपीडासे मेरा सूक्ष्म शुद्ध-ज्ञान विस्मृत होगया ॥ १९ ॥ चिदाकाशकी स्फुरणा जो दृढ अभ्यास अन्तःकरणमें प्रकाशताहै तन्मय सब होजाताहै यह वार्ता आबालवृद्ध देखनेमें आती है ॥ २० ॥

नसच्छास्त्रेणसाविद्धिनसन्न्यायेनसाकला ॥ अस्तिनास्त्यमितोद्योगाद्यदभ्यासान्नसिद्ध्यति ॥ २१ ॥ स्वजगत्संतताभ्यासवशतोमांकथाभ्रमः ॥ नूनमाक्रांतवानेषद्वयोर्हिबलवान्जयी ॥ २२ ॥ इष्टवस्त्व र्थिनांतज्ज्ञसूपदिष्टेनकर्मणा ॥ पौनःपुन्येनकरणान्नेतरच्छरणंमुने ॥ २३ ॥ अयमित्थमिहाज्ञानभ्रमः प्रौढोहमात्मकः ॥ शाम्यतिज्ञानचर्चाभिःपश्याभ्यासविजृंभितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जो कला (ब्रह्मज्ञान वा अपूर्व सूक्ष्मज्ञान) के अभ्याससे सिद्ध होती है वह न तो सत्शास्त्रसे सिद्ध हो न उत्तम न्यायसे, और निरन्तर उद्योगरूप अभ्याससे ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो सिद्ध न हो ॥ २१ ॥ और यह असत् वाद कथाका भ्रम तो मुझे निजजगत्के निरन्तर अभ्यासके वशसे जीतलिया क्योंकि दोमेंसे जो बलवान् हो-ताहै वही विजयी होताहै ॥ २२ ॥ इसलिये हे मुने ! इष्ट वस्तुके अर्थियोंको उन वस्तुओंको जाननेवाले उत्तम गुरुके उपदेशके अनुसार पुनः २ अभ्यासके सिवाय अन्य कोई उपाय शरण नहीं है ॥ २३ ॥ हे मुने ! यह संसारका दृढ अहंभाव भी निरन्तर श्रवण मनन आदि ज्ञानकी चर्चाओंसे शांत होजाताहै, देखिये अभ्यासके प्रभावको कि अना-दिकालका अनर्थरूप अहंकार भी शांत होजाताहै ॥ २४ ॥

अहंशिष्याबलाबालापश्यामित्वंनपश्यसि ॥ सर्वज्ञोपिशिलासर्गंपश्याभ्यासविजृंभितम् ॥ २५ ॥ अ ज्ञोपितज्ज्ञतामेतिशनैःशैलोपिचूर्ण्यते ॥ बाणोप्येतिमहालक्ष्यंपश्याभ्यासविजृंभितम् ॥ २६ ॥ इत्थंना मपरिप्रौढामिथ्याज्ञानविषूचिका ॥ शाम्यत्येवविचारेणपश्याभ्यासविजृंभितम् ॥ २७ ॥ अभ्यासेनक टुद्रव्यंभवत्यभिमतंमुने ॥ अन्यस्मैरोचतेनिंबस्त्वन्यस्मैमधुरोचते ॥ २८ ॥

अर्थ—देखिये अभ्यासके प्रभावको कि इसके कारणसे मैं आपकी शिष्याअबला और बाला भी होके इस शिलाके अन्तर्गत जगत्को देखती हूं, और अभ्यास न होनेसे आप सर्वज्ञ गुरु होके भी नहीं देखते ॥ २५ ॥ देखिये अभ्यासके अभावको इससे अज्ञानी भी धीरे २ ज्ञानी होजाताहै पर्वत भी चूर्ण होजाताहै, और अचेतन बाण भी अति सूक्ष्म लक्ष्यमें प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ हे मुने ! अभ्यासके प्रतापको देखिये कि यह संसारकी प्रौढ मिथ्या अज्ञानरूप महामारी विचारके अभ्याससे शांत होजाती है ॥ २७ ॥ हे मुने ! अभ्याससेही कटु (कडुआ) पदार्थ भी इष्ट होजाताहै, इसी अभ्याससे किसीको निंब रुचताहै, और किसीको मधुर ॥ २८ ॥

अबंधुर्बंधुतामेतिनैकट्याभ्यासयोगतः ॥ यात्यनभ्यासतोदूरात्स्नेहोबंधुषुतानवम् ॥ २९ ॥ आतिवा हिकदेहोयंशुद्धचिद्व्योमकेवलम् ॥ आधिभौतिकतामेतिभावनाभ्यासयोगतः ॥ ३० ॥ आधिभौतिक देहोसौधारणाभ्यासभावनात् ॥ विहंगवत्खमभ्येतिपश्याभ्यासविजृंतितम् ॥ ३१ ॥ पुण्यानियांतिवै फल्यंवैफल्यंयांतिमातरः ॥ भाग्यानियांतिवैफल्यंनाभ्यासस्तुकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—निकट निवासके अभ्याससे अबंधु भी बन्धु होजाताहै, और दूर रहनेसे अभ्यासके अभावसे बन्धु-ओंमें भी स्नेह न्यून होजाताहै ॥ २९ ॥ यह शुद्ध चिदाकाशरूप सूक्ष्मशरीर भी भावनाके अभ्याससे आधिभौतिक (स्थूल) ताको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ अभ्यासके प्रभावको देखिये कि यह स्थूलशरीर भी धारणाके अभ्याससे पक्षी-के समान आकाशमें उडने लगताहै ॥ ३१ ॥ कथनआदि रूप अल्प अपराधसे महान्पुण्य भी निष्फल होजाते हैं, निजमाताभी रुष्ट होजाती है, और धन भी निष्फल जाते हैं, परन्तु अभ्यास कदापि नष्ट नहीं जाता ॥ ३२ ॥

दुःसाध्याःसिद्धिमायांतिरिपवोयांतिमित्रताम् ॥ विषाण्यमृततांयांतिसंतताभ्यासयोगतः ॥ ३३ ॥ येनाभ्यासःपरित्यक्तइष्टेवस्तुनिसोधमः ॥ कदाचिन्नतदाप्नोतिवंध्यास्वतनयंयथा ॥ ३४ ॥ यदप्यभिम तंवस्तुस्वभ्यासेनतदर्जनात् ॥ तद्युक्तिपूर्वकंत्याज्यमामृत्योर्जीवितंयथा ॥३५ ॥ इष्टेवस्तुनिनाभ्यासंयः करोतिनराधमः ॥ सोनिष्टेनिष्टमाप्नोतिनरकान्नरकांतरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—निरन्तर अभ्यासके योगसे दुःसाध्य कार्य्य भी सिद्ध होजाते हैं, शत्रु भी मित्र होजाते हैं, और औ-षधके लिये सेवित विष भी अमृतके तुल्य आरोग्यताके हेतु होते हैं ॥ ३३ ॥ जो प्राणी इष्ट वस्तुके प्राप्त होनेके अ-

भ्याको त्याग देताहै वह अधमहै, और वह अपने इष्ट पदार्थको ऐसे कदापि नहीं पाता जैसे बन्ध्या अपने पुत्रको ॥ ३४ ॥ अनेक प्रयत्नसे उपार्जित स्त्री, पुत्रादि अति इष्ट वस्तु भी युक्तिपूर्वक अभ्याससे ऐसे त्यागे जाते हैं जैसे मृत्यु-पर्य्यन्त इष्ट भी जीवनको योगीजन युक्तिसे त्याग देते हैं ॥ ३५ ॥ जो नराधम इष्ट आत्मज्ञानरूप वस्तुमें अभ्यास नहीं करता वह देहादिमें अहंभावरूप अनिष्टमें अनिष्टही और एक नरकसे अन्य नरक कोही पाता चला जाताहै॥३६॥

तरंतिसरितंस्फीतांसंसारासारसेविनः ॥ तएवात्मविचाराख्यमभ्यासंनत्यजंतिये ॥ ३७ ॥ अभ्यास भासोभिमतंवस्तुप्रकटयंत्यलम् ॥ प्रापयंतिचनिर्विघ्नंघटंदीपप्रभायथा ॥ ३८ ॥ यथाकल्पद्रुमलताःस चिंतामणयोयथा ॥ फलंतिशरदश्चैतास्तथैवाभ्यासभूमयः ॥ ३९ ॥ इष्टवस्तुचिराभ्यासभास्वान्भा सयतिप्रजाः ॥ तथेंद्रियाख्यांदेहोर्व्यांरात्रिंपश्यंतिनोयथा ॥ ४० ॥

अर्थ—संसार असार है इस विवेकके सेवी जो पुरुष आत्माके विचाररूप अभ्यासको नहीं त्यागते वेही इस विशाल मायारूप नदीके पार होतेहैं ॥ ३७ ॥ हे मुने! श्रवण मनन आदि अभ्यासकी प्रभा अभिमत आत्मवस्तुको पूर्णरीतिसे प्रकट करके निर्विघ्नतापूर्वक वहां ऐसे पहुंचा देती हैं जैसे दीपकी प्रभा घटार्थीको घट ॥ ३८ ॥ जैसे क-ल्पवृक्ष और चिन्तामणि मनोरथको सफल करतेहैं ऐसेही अभ्यासकी भूमि भी अभिलषित पदार्थको देती है ॥ ३९ ॥ हे मुने! इस देहरूप भूमिपर परम प्रेमके विषयभूत आत्माके विचारका अभ्यासरूप सूर्य्य ऐसा प्रकाश करताहै कि इन्द्रियोंसे उत्पन्न रागद्वेष मोहादि अनर्थरूप निद्राको देनेवाली रात्रिको उत्तम अधिकारी जन नहीं देखते ॥ ४० ॥

सर्वस्यजंतुजातस्यसर्ववस्त्ववभासने ॥ सर्वदैवैकएवोच्चैर्जयत्यभ्यासभास्करः ॥ ४१ ॥ चतुर्दशवि धायास्तुभूतजातेर्नकस्यचित् ॥ सिद्ध्यत्यभिमतंवस्तुविनाभ्यासमकृत्रिमम् ॥ ४२ ॥ पौनःपुन्येनक रणमभ्यासइतिकथ्यते ॥ पुरुषार्थःसएवेहतेनास्तिनविनागतिः ॥ ४३ ॥ दृढाभ्यासाभिधानेनयत्नना म्नास्वकर्मणा ॥ निजवेदनजेनैवसिद्धिर्भवतिनान्यथा ॥४४॥ अभ्यासभास्वतितपत्यवनौवनेचवीरस्य सिद्ध्यतिनयन्नतदस्तिकिंचित्॥अभ्यासतोभुविभयान्यभयीभवंतिसर्वासुपर्वतगुहास्वपिनिर्जनासु४५

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्यानेअभ्यासप्रशंसा नाम सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—सब जीवोंके सब वस्तुओंके प्रकाश करनेमें सर्वदा महान् अभ्यासरूप सूर्य्य सर्वोत्तम है ॥ ४१ ॥ च-तुर्दश भुवनमें स्थित प्राणियोंके मध्यमें किसी प्राणीके अभिमत पदार्थकी सिद्धि सहज अभ्यासके विना कदापि नहीं होती ॥ ४२ ॥ पुनः २ आत्माके विचारको अभ्यास कहते हैं, उसीको वेदान्तशास्त्रमें पुरुषार्थ कहतेहैं, उसके बिना निस्तारके लिये अन्य उपाय नहीं है ॥ ४३ ॥ दृढ अभ्यास तथा निज प्रयत्नरूप कर्मसे जनित विवेकके बिना सिद्धि नहीं होसकती ॥ ४४ ॥ हे मुने! अभ्यासरूपी सूर्य्यके प्रकाशित होनेपर जितेन्द्रिय वीरके लिये भूमि, बन, जल तथा अन्तरिक्ष आदिमें ऐसा कोई भी अभिलषित पदार्थ नहीं है जो सिद्ध न हो, इसी अभ्याससेही सब निर्जन पर्व-तोंकी कंदराओंमें भी सम्पूर्ण भय अभयरूप होजातेहैं ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने अभ्यासप्रशंसा नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस ६८ के सर्गमें स्थूलदेहके भ्रमके नष्ट करनेवाली समाधिसे सत्य सूक्ष्मशरीरकी स्थिति विद्याध-रीने वर्णन किया है ॥

॥ विद्याधर्युवाच ॥ ततःप्राचीनमभ्यासंबोधधारणयामले ॥ कुर्वःप्रकटतांतेनजगदेष्यतिशैलगम् ॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ युक्तियुक्तेतयेत्युक्तेविद्याधर्याधरोरसि ॥ बद्धपद्मासनोथाहंसमाधावुदितो भवम् ॥ २ ॥ सर्वार्थभावनात्यागेचिन्मात्रैकांतभावितः ॥ अत्यजंतमहंपूर्वकथार्थकलनामलम् ॥३॥ अथचिद्व्योमतांप्राप्तःपरांदृष्टिमहंगतः ॥ शरत्समयसंप्राप्तोव्योमनिर्मलतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—विद्याधरी बोली कि—हे मुने! समाधिके दृढ अभ्यासके विना देह आदिमें स्थूलताका भ्रम नहीं नि-वृत्त होताहै और सूक्ष्म भाव भी नहीं प्राप्त होता इसलिये निर्मल परमात्मामें सर्वज्ञता देनेवाली समाधिरूप धारणासे

अपने पूर्व अभ्यासको हम दोनों साक्षात् करें जिससे शिलाके भीतरका जगत् प्रकट होगा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-जब पर्वतके ऊपर उस विद्याधरीने युक्तियुक्त वचन कहा तब मैं पद्मासनमें स्थिर होके समाधिके लिये उद्यत हुआ ॥ २ ॥ और चिन्मात्रमें एकरूप होके बाह्य सब पदार्थोंकी भावनाको त्यागकर पूर्व कथाकी देहादिमें आत्मभावना तथा उसके संस्कारको भी पूर्णरूपसे त्यागदिया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् चिदाकाशरूपताको प्राप्त होनेसे दिव्य दृष्टिताको मैं ऐसे प्राप्त हुआ जैसे शरत्कालमें आकाश निर्मलताको ॥ ४ ॥

ततःसत्यावबोधैकघनाभ्यासेनदेहके ॥ ममाधिभौतिकभ्रांतिर्नूनमस्तमुपागता ॥ ५ ॥ उदयास्तमयोन्मुक्तासततोदयमय्यपि ॥ महाचिद्व्योमतास्वच्छाप्रोदितेवतदाभवत् ॥ ६ ॥ अथपश्याम्यहंयावत्स्वस्यैवामलतेजसा ॥ वस्तुतस्तुनचाकाशंनोपलःपरमेवतत् ॥ ७ ॥ परमार्थघनंस्वच्छंतत्तथाभातिताद्दशम् ॥ तथाभावनयाह्यात्मामदीयोदृष्टवांस्तथा ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सत्यपरमात्माके दृढ अभ्याससे देहमें आधि भौतिकता (स्थूलता) भ्रांति मेरी अस्त होगई ॥ ५ ॥ और उदय अस्तसे रहित नित्य स्वप्रकाशरूप और अति निर्मल चिदाकाशरूपता प्रकट हुई ॥ ६ ॥ और इसके अनन्तर जब मैं निज साक्षीचेतनके निर्मल तेजसे देखनेलगा तो यथार्थमें न वह आकाश और न वह शिला थी, किन्तु सब परमात्मामय देखपडा ॥ ७ ॥ परमार्थ चिद्घन परमात्माही मेरा स्वरूपहै उसीने पाषाण भावनासे शिलाको देखा ॥ ८ ॥

यथास्वप्नेसुमहतीदृष्टागेहगताशिला ॥ व्योमैवकेवलंतद्वत्सुशुद्धंचिन्नभःशिला ॥ ९ ॥ स्वयंस्वप्नान्वितोन्यस्यस्वप्नपुंस्त्वंगतोनरः ॥ स्वप्नेज्ञानप्रबुद्धस्ययाद्दक्ताद्दक्स्वरूपतः ॥ १० ॥ स्वप्नस्थानांशिरश्छिन्नयेषांतेसंस्तौस्थिता ॥ कालेनज्ञानलाभेनविनाकुर्वंतुकिंकिल ॥ ११ ॥ बोधःकालेनभवतिमहामोहवतामपि ॥ यस्मान्नकिंचनाप्यस्तिब्रह्मतत्त्वादृतेक्षयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें चेतन निजरूपकोही बडी भारी शिला निजगृहके भीतर देखे ऐसेही शुद्ध चिदाकाशही वहां शिलारूपसे स्फुरताथा ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नमेंही, अज्ञानसे मैं स्वप्नसे जगा ऐसा माननेवालेके स्वप्न पुरुषताको प्राप्त और स्वयं स्वप्नयुक्त पुरुषका जो रूप होताहै वही दशाथी ॥ १० ॥ जैसे स्वप्नमें जिन पुरुषोंका शिर छेदन हुआ और वे उसदशामें संसारमें स्थित होंतो वे ज्ञानलाभके पूर्व क्या करें, अर्थात् उनको वह स्वप्नही जाग्रत् है ॥ ११ ॥ इसलिये महा मोह (अज्ञानरूपनिद्रा) युक्त पुरुषोंको जो ज्ञानरूप जाग्रत् काल पाके होताहै वही मुख्य जाग्रत् है क्योंकि अक्षय ब्रह्मतत्वके सिवाय जाग्रत् तथा स्वप्नमें भी अन्य कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

अतस्तच्चिद्घनंस्वच्छंब्रह्माकाशंशिलाकृति ॥ दृष्टंमयातथातत्रनतुपृथ्व्यादिसत्क्वचित् ॥ १३ ॥ भूतानामादिसर्गेयच्छुद्धंयत्पारमार्थिकम् ॥ वपुस्तदेवह्येतेषांध्यानलभ्यमवस्थितम् ॥ १४ ॥ ब्राह्मंवपुर्हिभूतानामात्मीयंमत्पुरातनम् ॥ तदेवाद्यमनोराज्यंसंकल्पइतिकथ्यते ॥ १५ ॥ सत्तातिवाहिकोदेहस्तत्परंपरमार्थतः ॥ प्रत्यक्षंपरमंयत्तत्तदाद्यंकचनंचितः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये मैंने निर्मल चिद्घन चिदाकाशहीको शिलाकारमें सत् देखा, और वहांकी पृथिवी आदि सत्‌रूपसे नहीं देखा ॥ १३ ॥ प्राणियोंकी आदि सृष्टिमें जो शुद्ध पारमार्थिक ब्रह्मरूपहै वही योगियोंके ध्यानसे लभ्य इन सब पदार्थोंका शरीरहै ॥ १४ ॥ मनोराज्य वा संकल्पके तुल्य ब्रह्मही सब प्राणियोंका स्वरूपहै उसीको मूढ जन जगत् कहते हैं ॥ १५ ॥ माया शबलित ब्रह्मचित्‌की जगत्‌के संस्कार सहित जो परमार्थरूप सत्ताहै उसीको सूक्ष्म शरीर कहते हैं, और नित्य अपरोक्ष शुद्ध चित्‌के स्फुरणके आदि स्वरूपको प्रकाश कहते हैं ॥ १६ ॥

उद्यत्प्रथममध्यक्षंजीवस्यप्रथमंवपुः ॥ मनःप्रत्यक्षमित्युक्तंतत्तेनाद्यैवबुद्धिया ॥ १७ ॥ योगिप्रत्यक्षमित्युक्तंमनःप्रत्यक्षमित्यपि ॥ तत्स्वमेवचितोरूपंगतमेवान्यतांमुधा ॥ १८ ॥ इदमद्यतनंनामप्रत्यक्षमसदुत्थितम् ॥ असत्प्रत्यक्षमेवेतिविद्धिप्रत्यक्षमंगतत् ॥ १९ ॥ अहोनुचित्रामायेयंप्राक्प्रत्यक्षेपरोक्षता ॥ निर्णीतास्मिन्स्त्वनध्यक्षेप्रत्यक्षकलनागता ॥ २० ॥

अर्थ—और वही चित् सत्तारूप सृष्टिके आकारसे उदय होताहुआ प्रथम अध्यक्ष हिरण्यगर्भ (समष्टि जीवका मन) शरीर होताहै और पुनः समष्टिभावको विस्मृत होनेसे वही सब जीवोंका प्रत्यक्ष मन कहाजाताहै ॥ १७ ॥ इस प्रकार स्वयं वही चित्स्वरूप अज्ञानसे अन्यरूपताको प्राप्त समष्टिरूपसे योगियोंके प्रत्यक्ष, और व्यष्टिरूपसे सब जन प्रत्यक्ष मन कहा गयाहै ॥ १८ ॥ हे प्रियरामजी ! उनमेंसे व्यष्टि स्थूल शरीर संबन्धी जो मनका प्रत्यक्षहै उसको

तुम असत्‌रूपही जानो, और योगियोंको जो समष्टि सूक्ष्म शरीरसंबन्धी मनका प्रत्यक्षहै उसको सत् जानो ॥ १९ ॥ और परमात्माकी कैसी विचित्र मायाहै कि जो साक्षीचेतनकी समष्टि मनकी प्रत्यक्षतामें परोक्षता होरही है और इस कल्पितमनमें प्रत्यक्षताहै ॥ २० ॥

आतिवाहिकदेहत्वंप्रत्यक्षंप्रथमोदितम् ॥ सत्यंसर्वगतंविद्धिमायैवत्वाधिभौतिकम् ॥ २१ ॥ अनुभूतापिनास्त्येवहेम्नःकटकतायथा ॥ तथातिवाहिकस्याधिभौतिकत्वंनविद्यते ॥ २२ ॥ भ्रममभ्रमतांयातमभ्रमंभ्रमतांगतम् ॥ वेत्तिजीवोविचारेणविनाहोनुविमूढता ॥ २३ ॥ आधिभौतिकदेहोयंविचारेणनलभ्यते ॥ आतिवाहिकदेहस्तुकिललोकद्वयेऽक्षयः ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथम चित्‌में स्फुरण होनेसे सूक्ष्मशरीरही प्रत्यक्ष होताहै, उसीको सत्य और सर्वगत समझो, और यह भौतिक स्थूलशरीर तो मिथ्या है ॥ २१ ॥ जैसे अनुभव करनेसे सुवर्णकी कटकरूपता उपलब्ध नहीं होती, ऐसेही सूक्ष्मशरीरकी आधिभौतिक स्थूलशरीरता भी यथार्थ नहीं है ॥ २२ ॥ देखो यह मूढता कैसी है कि अविचारसे यह भ्रमको तो अभ्रम, और अभ्रमको भ्रमरूपताको प्राप्त जानताहै ॥ २३ ॥ विचारदृष्टिसे यह आदि भौतिक स्थूलशरीर नहीं उपलब्ध और सूक्ष्मशरीर तो मोक्षपर्य्यन्त इस लोक तथा परलोकमें भी अक्षय है ॥ २४ ॥

आधिभौतिकचिद्रूढाद्यातिवाहिकदेहके ॥ मरौमरीचिकास्वेवयथामिथ्यैववारिधीः ॥ २५ ॥ जाताधिभौतिकीसंविदातिवाहिकचिक्रमे ॥ देहदृष्टिवशात्प्रौढास्थाणौपुरुषधीरिव ॥ २६ ॥ शुक्तौरजतताताापेजलतेंदौयथाद्विता ॥ आधिभौतिकतातद्वन्माययैवातिवाहिके ॥ २७ ॥ यदसत्तत्कृतंसत्यंयत्सत्यंतदसत्कृतम् ॥ अहोनुमोहमाहात्म्यंजीवस्यास्याविचारजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—सूक्ष्मशरीर उपहित चित्‌में जो स्थूलरूपता प्रकटित है वह मरुस्थलकी मृगतृष्णामें जल बुद्धिके समान मिथ्या है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मशरीरोपहित चित्‌में स्थूलशरीरके दृढ संस्कारसे स्थूलबुद्धि ऐसे प्रौढ होगई है जैसे स्थाणुमें पुरुषबुद्धि ॥ २६ ॥ जैसे शुक्तिमें रजत, मृगतृष्णामें जल, और चन्द्रमामें दो चन्द्रकी बुद्धि मिथ्या है, ऐसेही सूक्ष्मशरीरमें स्थूलबुद्धि मिथ्यामाया है ॥ २७ ॥ अहो! जीवके अविवेकसे उत्पन्न मोहके माहात्म्यको देखो कि उसने असत्‌को सत्, और सत्‌को असत् करके दर्शा रहा है ॥ २८ ॥

योगिप्रत्यक्षमेवास्तिकिंचिदस्तितुमानसम् ॥ यस्माल्लोकद्वयाचारस्ताभ्यामेवप्रसिद्ध्यति ॥ २९ ॥ आद्यंप्रत्यक्षमुत्सृज्ययःसत्येऽस्मिन्कृतस्थितिः ॥ प्रत्यक्षेमृगतृष्णांबुपीत्वासस्सुखमास्थितः ॥ ३० ॥ यत्सुखंदुःखमेवाहुःक्षणनाशानुभूतिभिः ॥ अकृत्रिममनाद्यंतंयत्सुखंतत्सुखंविदुः ॥ ३१ ॥ प्रत्यक्षेणैवमध्यक्षंप्रत्यक्षंप्रविचार्यताम् ॥ यदाद्यंतत्सदध्यक्षंतत्प्रत्यक्षेणदृश्यताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यथार्थमें योगीजनोंका सूक्ष्म प्रत्यक्षही सत्य है, और कथंचित् मानसस्पंद भी है क्योंकि दोनोंलोकोंके व्यवहारकी सिद्धि इन्हीं दोनों (सूक्ष्मशरीरकी स्फुर्ति औरमानसी चेष्टा) से होते हैं ॥२९॥ जो जन इस आदि सूक्ष्मशरीर प्रत्यक्षको त्यागकर इस स्थूलशरीर प्रत्यक्षमें सत्यबुद्धि करके स्थित रहताहै वह मानो मृगतृष्णाका जल पीकर सुखसे स्थितहै ॥ ३० ॥ क्षणभरमेंही नाशके अनुभवसे विवेकी जन विषयसुखको दुःखरूपही कहते हैं, और अकृत्रिम, अनादि अनन्त जो आत्मज्ञानजनित सुख है उसीको मुख्य सुख कहते हैं ॥ ३१ ॥ इस बातको साक्षीचेतनद्वारा प्रत्यक्ष विचारो और अनुभव करके देखो जो सबका आदि साक्षीचित्‌का प्रत्यक्षहै वही यथार्थ सुखहै ॥३२॥

लोकत्रयानुभवदंत्यक्त्वाप्रत्यक्षमैहिकम् ॥ मायात्मकंयोगृह्णातिनास्तिमूढतमस्ततः ॥ ३३ ॥ आतिवाहिकमेवैषांभूतानांविद्यतेवपुः ॥ अत्राधिभौतिकव्याप्तिरसत्यैवपिशाचिका ॥ ३४ ॥ अजातसंकल्पमयंप्रत्यक्षंसत्कथंभवेत् ॥ स्वयमेवनयत्सत्यंतत्स्यात्कार्यकरंकथम् ॥ ३५ ॥ यत्रप्रत्यक्षमेवासदन्यत्किंतत्रसद्भवेत् ॥ कतत्सत्यंभवेद्वस्तुयदसिद्धेनसाध्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—तीनोंलोकके अनुभव देनेवाले जो सूक्ष्म चित् प्रत्यक्षको त्यागकर ऐहिक स्थूल प्रत्यक्षको ग्रहण करताहै उससे अधमजन कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ यथार्थमें सब प्राणियोंकी सूक्ष्मशरीरही सत् है, इसमें स्थूलशरीरकी प्राप्ति असत्य पिशाचिकारूप है ॥ ३४ ॥ जो सर्वथा उत्पत्ति रहित केवल संकल्पमय है उसकी प्रत्यक्ष सत्यता कैसे होसकती है, और जो स्वयं असत् है वह कार्य्यकारी कैसे होसकताहै ॥ ३५ ॥ जबकी प्रत्यक्ष साधक स्थूलनेत्रआदिही योगियोंकी दृष्टिमें असत्‌हैं तब उनसे सिद्ध अन्य पदार्थ कब सत् होसकते हैं, क्योंकि जो वस्तु असत्‌से सिद्ध की जाती है वह सत् कैसे होसकती है ॥ ३६ ॥

प्रत्यक्षएवभावत्वेनष्टेकेवानुमादयः ॥ उह्यंतेवारणायत्रतत्रोर्णायुषुकाकथा ॥ ३७ ॥ अतःप्रमाणसंसिद्धंदृश्यंनास्त्येवकुत्रचित् ॥ अनन्यदिदमस्तीवत्तत्त्द्ब्रह्मघनंघनम् ॥ ३८ ॥ स्वप्नेद्रष्टुःखमेवाद्रिर्गृहेनान्यस्यवैयथा ॥ तथातद्भावनवतोरावयोःसाशिलैवचित् ॥ ३९ ॥ अयंशैलइदंव्योमजगदेतदिदंत्वहम् ॥ इतिचिन्मयआत्मांतःखंचमत्कुरुतेस्वयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जब प्रत्यक्षहीकी सत्ता न सिद्धहुई तब उनके आधीन अनुमान आदिकी क्या कथाहै, क्योंकि जहां बडे २ हाथी बहजाते हैं वहां भेडीकी क्या गति है ॥ ३७ ॥ इसलिये प्रमाण सिद्ध द्वैत कहीं भी नहीं है, और जो कुछ भासताहै वह परमात्मासे अभिन्न चिद्घन ब्रह्महीहै ॥ ३८ ॥ जैसे स्वप्नमें पर्वत देखनेवालेको शून्यही पर्वतहै, क्योंकि उसी गृह और उसी कालमें अन्य शयनस्थान वा जाग्रत्को वह पर्वत नहीं है, ऐसेही शिलाकी भावनायुक्त हम दोनोंको यह दृश्य शिला चिद्रूपही है ॥ ३९ ॥ यह पर्वतहै, यह आकाशहै, यह जगत्‌है, और यह मैं हूं, इत्यादि रूपसे चिन्मय आत्माही अपने स्वरूपमें भासता है ॥ ४० ॥

पश्यत्येतत्प्रबुद्धात्मानाप्रबुद्धःकदाचन ॥ श्रोतुःकथार्थसंवित्तिर्नाश्रोतुर्भवतिक्वचित् ॥ ४१ ॥ अप्रबुद्धमितिभ्रांतिरेवेयंसत्यतांगता ॥ क्षीबस्यसुस्थिराएवनृत्यंतितिरुपर्वताः ॥ ४२ ॥ सर्वत्राप्रतिहतमेकरूपबोधंप्रत्यक्षंशिवमनुबुध्यचित्स्वरूपम्॥प्रत्यक्षांतरमिहपेलवंश्रयंतेयेमूढास्तृणतनुभिःशठैरलंतैः॥४३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने प्रमाणाप्रतिसिद्ध्यादृश्यानुपपत्तिवर्णनं नामाष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—क्योंकि चेतनही इस सबको देखता, और भारतादिकी कथाका ज्ञान सुननेवालेहीको होताहै न कि अचेतन वा अश्रोताको ॥ ४१ ॥ अज्ञानीको यह जगत्‌की भ्रांति ऐसे सत्यको प्राप्तहै जैसे मदिरासे मत्त पुरुषको वृक्ष पर्वत आदिका नृत्य ॥ ४२ ॥ योगियोंके प्रत्यक्ष, सर्वत्र अप्रतिहत, एक बोधरूप चिदानन्दको न जानकर जो तुच्छ जगत् प्रत्यक्षका आश्रय लेते हैं वे मूढ आत्मवंचक तृणके समान तुच्छहैं, उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने प्रमाणाप्रतिसिद्ध्यादृश्याअनुपपत्तिर्नामाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

शिलाके भीतरके ब्रह्मांडमें प्रवेश, वहांके ब्रह्माका दर्शन, और उत्तम प्रकारसे बैठेहुये मुनिका ब्रह्माजीसे संभाषण इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ६९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगदंगमनाभासमदृश्यंदृश्यवत्स्थितम्॥ परयादृश्यतेदृष्ट्यातद्ब्रह्मैवनिरामयम्॥१॥ तत्रशैलसरित्स्रोतोलोकालोकांतरभ्रमाः ॥ भांतितेपरमादर्शेमहाव्योमनिबिंबिताः ॥ २ ॥ साप्रविष्टा ततःसर्गंतमनर्गलचेष्टिता ॥ अहमप्यविशंतत्रसंकल्पात्मातयासह ॥ ३ ॥ यावत्सातत्रवैरिंचंलोकमासाद्यसोद्यमा ॥ उपविष्टाविरिंचस्यपुरःपरमशोभना ॥ ४ ॥

अर्थ—सब ब्रह्मांडोंका अंगरूप, सूर्य्य चन्द्र तथा नेत्र आदिके प्रकाशसे अप्रकाशित, और अदृश्य होकरभी जो दृश्यके समान स्थितहै वह निरामय परब्रह्म केवल समाधिकी दिव्यदृष्टिसे देखपडताहै ॥ १ ॥ उसी परमादर्शरूप महा चिदाकाशमें प्रतिबिंबित अनेक पर्वत, नदी, सोते, और लोकलोकान्तरके भ्रम भासते हैं ॥ २ ॥ उस अनिन्दित चेष्टावाली विद्याधरीने उस शिलाके आभ्यन्तरीय सृष्टिमें प्रविष्टहुई, और संकल्परूप मैंने भी उसीके साथ प्रवेश किया ॥ ३ ॥ उस शिलाके भीतर प्राप्त करनेमें उद्यमवती महा शोभायुक्त विद्याधरी शिलाके भीतर ब्रह्मलोकमें प्राप्त होके ब्रह्माजीके सन्मुख बैठगई ॥ ४ ॥

वक्त्ययंमुनिशार्दूलपतिर्मेपातिमामिमाम् ॥ विवाहार्थमनेनाहंजनितामनसापुरा ॥ ५ ॥ पुराणःपुरुषोप्येषमामप्यजरागताम् ॥ नविवाहितवांस्तेनविरागमहमागता ॥ ६ ॥ विरागमेषोप्यायातोगंतुमिच्छतितत्पदम् ॥ यत्रनद्रष्टृतानैवदृश्यतानतुशून्यता ॥ ७ ॥ महाप्रलयआसन्नोजगत्यस्मिश्चसंप्रति ॥ ध्यानान्नचचलत्येषशैलमौनादिवाचलः ॥ ८ ॥

अर्थ—और बोली—किहे मुनिश्रेष्ठ ! यही मेरे पति हैं, इन्होंनेही बिवाहकेलिये मुझे पूर्वकालमें उत्पन्न कियाहै ॥ ५ ॥ ये पुराणपुरुष अब वृद्धावस्थामें भी प्राप्त मेरे साथ बिवाह नहीं किया इसलिये मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआहै ॥ ६ ॥ और ये मेरे पतिभी अब वैराग्यको प्राप्तहैं, उस पदको प्राप्त करना चाहते हैं जहां न द्रष्टाहै न दृश्यताहै और न शून्यताहै ॥ ७ ॥ और इससमय यद्यपि महाप्रलय समीपहै परन्तु ये अपने ध्यानसे मौनपर्वतके समान नहीं चलायमान होते ॥ ८ ॥

तस्मान्मामेनमपिचबोधयित्वामुनीश्वर ॥ आमहाकल्पसर्गादौपरमेपथियोजय ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वामाम सौतस्यबोधायेदमुवाचह ॥ नाथायंमुनिनाथोद्यसद्मसंप्राप्तवानिदम् ॥ १० ॥ एषोन्यस्मिन्जगद्गेहेब्र ह्मणस्तनयोमुनिः ॥ पूजयैनंगृहायातंगृहस्थगृहपूजया ॥ ११ ॥ बुद्ध्यतामर्घ्यपाद्येनपूज्यतांमुनिपुं गवः ॥ महन्महत्सपर्याभिर्महात्मभ्योहिरोचते ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये हे मुनीश्वर ! मुझे तथा मेरे इस पतिको ज्ञान देके महाकल्पपर्य्यन्त सब सृष्टियोंके मूल ब्रह्म-मार्गमें युक्त करो ॥ ९ ॥ हे रामजी ! ऐसे मुझसे कहके ब्रह्माके बोधनके लिये यह वाणी बोली कि–हे नाथ ! यह मु-नियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी हमारे आश्रममें प्राप्त हुये हैं ॥ १० ॥ ये मुनि अन्य ब्रह्मांडरूपी गृहके स्वामी ब्रह्माके पुत्र हैं इसलिये गृहमें प्राप्त इनकी गृहस्थकी रीतिसे पूजा करो ॥ ११ ॥ इन मुनिको अपना पूज्य जानकर अर्घ, पाद्य आदिसे पूजा करो क्योंकि महात्माओंकी पूजासे जो फल प्राप्त होताहै वह आपके सदृश महात्माओंको रुचता है ॥ १२ ॥

तयेत्युक्तेमहाबुद्धिर्बुबुधेससमाधितः ॥ स्वसंवित्तिद्रवात्मत्वादावर्त्तइववारिधौ ॥ १३ ॥ शनैरुन्मी लयामासनयनेनयकोविदः ॥ मधुःशिशिरसंशांतावनौकुसुमेयथा ॥ १४ ॥ शनैःप्रकटयामासुस्तान्यं गान्यस्यसंविदम् ॥ मधुपल्लवजालानिवानीवनवंरसम् ॥ १५ ॥ सुरसिद्धाप्सरःसंघाःसमाजग्मुः समंततः ॥ यथाहंसालयोलोलाःप्रातर्विकसितंसरः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके इतना कहनेपर अपने ज्ञानमें द्रवीभूत होनेसे वे महाबुद्धि ब्रह्मा समाधिसे ऐसे जाग्रत हुये जैसे समुद्रमें आवर्त ॥ १३ ॥ नीति निपुण ब्रह्माजी अपने दोनों नेत्र कमलोंको ऐसे उद्घाटन किया जैसे शिशिरके वायुसे शान्त पृथिवीपर वसंतऋतु निज पुष्परूपी नेत्रोंको ॥ १४ ॥ उनके सब अंग धीरे २ अपने ज्ञानको ऐसे प्रकट किये जैसे वसंतके पल्लवसमूह निज नूतन रसको ॥ १५ ॥ और देवता सिद्ध तथा अप्सरा आदिके समूह चारोंओरसे ऐसे आके प्राप्त हुये जैसे प्रातःकालमें विकसित कमलसहित तडागमें चंचल हंस ॥ १६ ॥

ददर्शासौपुरःप्राप्तंमांचतांचविलासिनीम् ॥ उवाचाथवचोवेधाःप्रणवस्वरसुंदरम् ॥ १७ ॥ अन्यजग द्ब्रह्मोवाच ॥ करामलकवद्दृष्टसंसारासारसारहे ॥ ज्ञानामृततमहांभोदमुनेस्वागतमस्तुते ॥ १८ ॥ पदवीमसिसंप्राप्तइमामतिदवीयसीम् ॥ दूराध्वसुपरिश्रांतइदमासनमास्यताम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तेतेनभ गवन्नभिवादयइत्यहम् ॥ वदन्मणिमयेपीठेनिविष्टोदृष्टिदर्शिते ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्माजी मुझे तथा उस विलासिनीको अपने सन्मुख प्राप्त देखा और प्रणवसहित सुंदर स्वरसे बोले—अन्य लोकके ब्रह्माजी बोले कि—असारसंसारके सारके सारभूत आत्माको करामलकवत् देखनेवाले हे मुने ! तथा हे ज्ञानरूपी अमृतके महासमुद्र मुने ! आपका यह शुभागम है ॥ १८ ॥ हे मुने ! आप बडे दूर स्थानमें प्राप्त हुये हैं, और दूर मार्गसे श्रांतहो इसलिये इस आसनपर विराजो ॥ १९ ॥ ऐसा उनके कहनेपर मैंने कहा कि—हे भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करताहूं, ऐसा कहता हुआ दृष्टिसे दिखाये हुये मणिमय आसनपर मैं बैठगया ॥ २० ॥

अथामरर्षिगंधर्वमुनिविद्याधरोदिताः ॥ प्रस्तुताःस्तुतयःपूजानतयःस्थितिनीतयः ॥ २१ ॥ ततोमुहूर्त्त मात्रेणसर्वभूतगणोदिते ॥ शांतेप्रणतिसंरंभेतस्योक्तंब्रह्मणोमया ॥ २२ ॥ किमिदंभूतभव्येशयदियं मामुपागता ॥ वक्तिज्ञानगिरास्मांस्त्वंबोधयेतिप्रयत्नतः ॥ २३ ॥ भवान्भूतेश्वरोदेवसकलज्ञानपा रगः ॥ इयंतुकाममूर्खाकिंब्रूतेब्रूहिजगत्पते ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर देव, ऋषि, गंधर्व तथा विद्याधर आदिसे की हुई अनेक स्तुति, पूजा और व्यवहारकी नीति प्रवृत्त हुई ॥ २१ ॥ इसके अनंतर सब प्राणियोंसे कथित स्तुतिके समारंभके शांत होनेपर उन ब्रह्माजीसे मैंने कहा ॥ २२ ॥ कि—हे भूत वर्तमान तथा भविष्यके स्वामिन् ! यह विद्याधरी मेरे निकट आके प्रयत्नसे कहती है कि ज्ञानकी वाणीसे हम दोनोंका प्रबोधन करो, क्या यह उचित है ॥ २३ ॥ क्योंकि आप तो सकल ज्ञान पारंगत सब जीवोंके स्वामी हैं,और यह कामसे अंधी अनाधिकारिणी क्या कहती है सो हे जगत्पते ! मुझे इसका कारण कहिये २४

कथमेषात्वयादेवजायार्थंजनितासती ॥ नेहजायापदंनीतानीताविरसतांकथम् ॥ २५ ॥ अन्यजगद्ब्रह्मोवाच ॥ सुनेशृणुयथावृत्तमिदंतेकथयाम्यहम् ॥ यथावृत्तमशेषेणकथनीयंयतःसताम् ॥ २६ ॥ अस्तितावदजंशांतमजरंकिंचिदेवसत् ॥ ततश्चित्कचनैकांतरूपिणाकचितोस्म्यहम् ॥ २७ ॥ आकाशरूपएवाहंस्थितआत्मनिसर्वदा ॥ भविष्यतिस्थितेसर्गेस्वयंभूरितिनाममे ॥ २८ ॥

अर्थ—और हे भगवन् ! कैसे आपने भार्य्याके लिये इसे उत्पन्न करके पुनः भार्य्याके पदमें नहीं स्थापित किया और वैराग्यदशाको कैसे प्राप्त किया ॥ २५ ॥ अन्य लोकके ब्रह्माजी बोले कि–हे मुने ! सुनिये आरंभसे इस वृत्तान्तको यथार्थ कहताहूं, क्योंकि सज्जनोंको सब वृत्तान्त यथार्थ कहना चाहिये ॥ २६ ॥ हे मुने ! अजन्मा शान्त अजर और अमर चिद्रूप सत्पद है, उसी चित्प्रकाशरूपसे मैं प्रकट हुआहूं ॥ २७ ॥ मैं सर्वदा चिदाकाशरूपही चिदाकाशमें स्थित हूं और उत्पत्तिके अनंतर इस प्रजा सृष्टिके स्थित होनेपर उनकी दृष्टिमें मेरा नाम स्वयंभू होगा २८

वस्तुतस्तुनजातोस्मिनचपश्यामिकिंचन ॥ चिदाकाशश्चिदाकाशेतिष्ठाम्यहमनावृतः ॥ २९ ॥ यदयंत्वंममाहंतेयदिदंकथनंमिथः ॥ तत्तरंगस्तरंगाग्रेरणतीवेतिमेमतिः ॥ ३० ॥ एवंरूपस्यमेकालवशतोऽविशदाकृतेः ॥ साकुमार्याश्चिदाभासमात्रस्यांतस्वभावतः ॥ ३१ ॥ ममानन्यातवान्यस्यचान्येवेहविभातिया ॥ सोदितानुदितेवांतर्ममाहमितिवासना ॥ ३२ ॥

अर्थ—और यथार्थमें मैं न उत्पन्न हूं और न कुछ देखताहूं किंतु जन्मादिरहित चिदाकारूप चिदाकाशमेंही स्थित हूं ॥ २९ ॥ और जो तुम, मैं तथा यह हमारा तुमारा संवाद है यह मेरे सिद्धान्त ऐसे है जैसे तरंगोंसे समुद्रमें शब्द ॥ ३० ॥ इसप्रकार स्थित चिदाभासरूप मेरे अन्तःकरणमें किंचित् स्वरूपके विस्मरणसे समुद्रसे तरंगके तुल्य जो मम अहं यह वासना उदित हुई वह इस कुमारी वा औरोंकी दृष्टिसे भिन्नरूप भासती है, परंतु मेरी दृष्टिमें वह चित्से अभिन्नरूपही भासती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अनाशसत्तानुदितस्त्वहमात्मात्मनिस्थितः ॥ स्वाभावादच्युताकारस्वात्मारामःस्वयंप्रभुः ॥ ३३ ॥ तस्याअहमितिभ्रांतेर्वासनायाजगत्स्थितेः ॥ संपन्नेयमधिष्ठातृदेवतादेहरूपिणी ॥ ३४ ॥ वासनायाअधिष्ठातृदेवतैवमियंस्थिता ॥ नतुमेगृहिणीनापिगृहिण्यर्थंनसत्कृता ॥ ३५ ॥ स्ववासनावेशवशेनभावंगृहिण्यहंब्रह्मणइत्युपेत्य ॥ एषास्वयंव्यर्थमितातिदुःखंयस्मात्किलैषैवहिवासनांतः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने सर्गप्राप्तिर्नामैकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—और मैं अविनाशी चित् सत्तासे प्रकट हुआ हूं इसलिये स्वभावसेही अच्युत आकार स्वात्मा राम तथा स्वयं प्रभु आत्मरूप निज आत्मामें स्थित हूं ॥ ३३ ॥ उस स्मृतिरूप अहं इस भ्रांतिसे जगत्की स्थिति तथा वासनाकी अधिष्ठात्री देवता यह मेरे संकल्पसे देहरूपिणी होगई ॥ ३४ ॥ इस रीतिसे वासनाकी अधिष्ठात्री देवता यह स्थित है और न मेरी गृहिणी है, न गृहिणीकेलिये इसे मैंने उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ यह सब जगत् वासना है इसलिये स्वयं वासना वश होके मैं ब्रह्माकी गृहिणी हूं इस भावसे युक्त होके स्वयं दुःखको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने सर्गप्राप्तिर्नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

वासना देवीके वैराग्यकाकारण जगत्का प्रलय और मिथ्या भ्रमता, इत्यादि विषय इस ७० के सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

अन्यजगद्ब्रह्मोवाच ॥ अथाहंचिन्मयाकाशस्त्वन्याकाशमयींस्थितिम् ॥ परांग्रहीतुमिच्छामितेनेहोपस्थितःक्षयः ॥ १ ॥ महाप्रलयकालेस्मिंस्त्यकुमेषामयाधुना ॥ मुनींद्रनूनमारब्धातेनवैरस्यमागता ॥ २ ॥ आकाशत्वाद्यदाद्योयंपराकाशोभवाम्यहम् ॥ तदामहाप्रलयतावासनायाश्चसंक्षयः ॥ ३ ॥ तेनैषाविरसीभूतामन्मार्गपरिधावति ॥ नानुगच्छतिकोनामनिर्मातारमुदारधीः ॥ ४ ॥

अर्थ—अन्य लोकके ब्रह्माजी बोले कि–द्विपरार्द्धपर्य्यन्त अपनी आयुके पश्चात् चिद्विवर्तरूप मैं अपनी अन्य मुख्य नित्य आनन्दरूप चिदाकाशमयी कैवल्य स्थितिको अब ग्रहण करना चाहताहूं इसलिये मेरी वासनासे कल्पित

इस जगत्में नित्य, नैमित्तिक, दैनिक और आत्यंतिक यह चारोप्रकारका प्रलय उपस्थित हुआ है ॥१॥ और हे मुनींद्र ! इस महाप्रलयकालमें इसको मैं त्यागना चाहताहूं इसलिये यह वैराग्यको प्राप्त हुईहै ॥ २ ॥ इस चित्ताकाशताको त्यागकर जब मैं ब्रह्माकाशरूपताको प्राप्त होताहूं तब महाप्रलय और वासनाका क्षय दोनो उपस्थित होतेहैं ॥ ३ ॥ इसी हेतुसे यह विरक्त होकर मेरे मार्ग (ब्रह्मज्ञान) की ओर दौडती है क्योंकि ऐसा उदार चित्त कौन है जो अपने निर्माताकी ओर न जाय ॥ ४ ॥

इहाद्यायंकलेरंतश्चतुर्युगविपर्ययः ॥ प्रजामन्विंद्रदेवानामद्यैवांतोयमागतः ॥५॥ अद्यैवचायंकल्पांतो महाकल्पांतएवच ॥ ममायंवासनांतोद्यदेहव्योमांतएवच ॥६॥ तेनेयंवासनाब्रह्मन्क्षयंगंतुंसमुद्यता ॥ केवपद्माकराशोषेगंधलेखावतिष्ठताम् ॥ ७ ॥ यथाजडाब्धिलेखायाजायतेलहरीचला ॥ वासनायास्तथैवेच्छामुधोदेत्यपकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! अब यह अन्तिमकलपके अन्तिममन्वन्तरके अन्तके कलियुगका अन्त उपस्थितहै, और सब प्रजा, देवता, मनु तथा इन्द्रआदिकाभी अन्त यह प्राप्त हुआहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसीसमय कल्प तथा महाकलपका अन्तभी उपस्थितहै, और वासना तथा देहाकाशकाभी अन्त यही है ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसी हेतुसे यह वासना अब नष्ट होनेको उद्यतहै क्योंकि पद्माकरके शूखनेपर गन्धकी लेखा कहां रहसकती है ॥ ८ ॥

आभिमानिकदेहायावासनायाःस्वभावतः ॥ अस्याआत्मावलोकेच्छास्वयमेवोपजायते ॥ ९ ॥ आत्मतत्त्वंनुपश्यंत्याधारणाभ्यासयोगतः ॥ दृष्टोनयाभवत्सर्गोवर्गव्यग्रनिरर्गलः ॥ १० ॥ अनयांबरसंचारपरयाद्रिशिरःशिला ॥ दृष्टास्वजगदाधारभूतास्माकंतुखात्मिका ॥ ११ ॥ एतद्यस्मिन्जगद्यत्रतद्दृष्त्वंजगद्गिरौ ॥ अस्मज्जगत्पदार्थेषुसंत्यन्यानिजगंत्यपि ॥ १२ ॥

अर्थ—अभिमानसे देहधारिणी इस वासनाके स्वभावसे आत्माके दर्शनकी इच्छा इसको स्वयं उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥ आत्मतत्वके दर्शनकी इच्छावाली इसने धारणाके अभ्यास योग आपके उस ब्रह्मांडको देखा जहां प्रजा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारोंपुरुषार्थोंके साधनमें नित्य व्यग्रहैं ॥ १० ॥ आकाशगमनमें तत्पर इसने अपने जगत्की आधारभूत लोकालोक पर्वतकी शिलाको देखा और हमारी दृष्टिसे तो वह शिला चिदाकाशरूपही है ॥११॥ जिस पर्वतमें यह जगत् है उसमें भी अन्यपाषाण शिला है और उनमें जगत् तथा पाषाण शिलाहैं और हमारे ब्रह्माके पदार्थोंमें भी अन्य २ असंख्य जगत् हैं ॥ १२ ॥

वयंतानिनपश्यामोभेददृष्टौस्थिताइमे ॥ बोधैकतांगतास्त्वाशुपश्यामस्तानिवीक्षणात् ॥ १३ ॥ घटेपटेवटेकुड्येखेनलेंऽभसितेजसि ॥ जगंतिसंतिसर्वत्रशिलायामिवसर्वदा ॥ १४ ॥ जगन्नाममुधाभ्रांतिःकिलस्वप्नपुरोपमा ॥ मिथ्यैवेयंकनामासौचिद्रूपास्त्यथनास्तिच ॥ १५ ॥ परिज्ञातासतीयेषामेषाचिन्नभसैकताम् ॥ गतातेनविमुह्यंतिशिष्टास्तुभ्रमभाजनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उन अनन्त ब्रह्मांडोंको समाधिसे विरल भेद दृष्टिमें हम लोग नहीं देखसकते, समाधिसे चिद्रूपताको प्राप्त होके तो योगदृष्टिसे शीघ्रही सब देखसकते हैं ॥ १३ ॥ हे मुने ! इसी शिलाके सदृश घट, पट, भित्ति, आकाश, वायु, जल और तेजमें भी अनन्त जगत् सदाहैं ॥ १४ ॥ गन्धर्वनगरके तुल्य यह जगत्नामिका माया मिथ्या भ्रमरूपही है, और जो है वह अधिष्ठान चिद्रूपसेही है अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥ जिन्होंने इस जगत्की मायाको असती जानलियाहै उनके लिये यह चिदाकाशरूपताको प्राप्त होगई, और वे कभी मोहको नहीं प्राप्त होते और शेषप्राणी तो भ्रमके भागी हैं ॥ १६ ॥

अथान्यधारणाभ्यासात्स्वविरागवशोदितम् ॥ साधयंत्याऽर्थमात्मीयंदृष्टस्त्वमनयामुने ॥ १७ ॥ इतिमायेवदुष्पाराचिच्छक्तिःपरिजृंभते ॥ इत्थमाद्यंतरहिताब्राह्मीशक्तिरनामया ॥ १८ ॥ प्रवर्ततेनिवर्ततेनेहकार्याणिकानिचित् ॥ द्रव्यकालक्रियाद्योताचितिस्तपतिकेवलम् ॥ १९ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यमनोबुद्ध्यादिकंत्विदम् ॥ चिच्छिलांगकमेवैकंविद्ध्यनस्तमयोदयम् ॥ २० ॥

अर्थ—और हे मुने ! खेचरी मुद्राके धारणाके अभ्याससे निजवैराग्यके वशसे उदित आत्मज्ञानरूप अपने अर्थके साधनमें भ्रमण करतीहुई इसने तुमको देखा ॥ १७ ॥ इसप्रकार यह चित्शक्तिही जगत्की मायाके सदृश अज्ञानीकेलिये विकसित होरही है, और ज्ञानीकेलिये तो यह सब आदि अन्तरहित निरामय ब्रह्मकी शक्तिही

है ॥ १८ ॥ यहां यथार्थमें कोई कार्य्य न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, किन्तु देश, काल, द्रव्य तथा क्रियादि रूपसे द्योतमान चित् शक्तिही स्फुरित होरही है ॥ १९ ॥ हे मुने ! देश, काल, द्रव्य, मन और बुद्धि आदिको तुम उदय अस्तरहित चित्रूप शिलाकी मूर्तिही जानो ॥ २० ॥

चिदेवेयंशिलाकारमवतिष्ठतिबिभ्रती ॥ अंगमस्याजगज्जालंमरुतःस्पंदनंयथा ॥ २१ ॥ विज्ञानघनमात्मानंजगदित्यवबुध्यते ॥ अनाद्यंतापिसाद्यंताचित्वादितिगतापिचित् ॥ २२ ॥ चिच्छिलेयमनाद्यंतासाद्यंतास्तीतिबोधतः ॥ साकारापिनिराकाराजगदंगेतिसंस्थिता ॥ २३ ॥ यद्वत्स्वप्नेचिदेवस्वंरूपंव्योमैवपत्तनम् ॥ वेत्तितद्वदिदंवेत्तिपाषाणंजगदंगकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस शिलाकारको धारण करती हुई चित्शक्तिही स्थितहै, और अनन्त जगत् समूह इसके ऐसे अंग हैं जैसे वायुका स्पन्द ॥ २१ ॥ आदि अन्तरहित (अपरिच्छिन्न) होके भी परिच्छिन्नताको प्राप्तके सदृश यह चित् विज्ञानघन अपने आत्माको जगत्रूपसे जानती है॥२२॥ आदिअन्त शून्य भी यह चित् शिलाआदि अन्तसहितहै इस बोधसे निराकार भी अनन्त जगत्रूप अंगोंसे साकारके समान स्थितहै॥२३॥ जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही अपनेको नगरआदि रूपसे जानताहै ऐसेही जाग्रत्में चिदाकाशही अपने स्वरूपको जगत्के अंगपर्वत,पाषाणआदिको जानताहै॥२४॥

नसरंतीहसरितोनचक्रंपरिवर्त्तते ॥ नार्थाःपरिणमंत्यंतःकचत्येतच्चिदंबरम् ॥ २५ ॥ नमहाकल्पकल्पांतसंविदःसंविदंबरे ॥ संभवंतिपृथग्रूपाःपयसीवपयोंतरम् ॥ २६ ॥ जगंतिसंत्येवनसंतिशांतेचिदंबरे सर्वगतैकमूर्तौ ॥ नभोंतराणीवमहानभोंतश्चित्संतिसत्तानिपरांबराणि ॥ २७ ॥ वसिष्ठतद्गच्छमुनेजगत्स्वंत्वंचासनेसंप्रतिशांतिमेहि ॥ बुद्ध्यादिरूपाणिपरंव्रजंतुवयंत्वहद्ब्रह्मपदंप्रयामः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० शिलांतर्जगत्पितामहवाक्यानि नाम सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—हे मुने ! न तो ये नदियां वहती हैं और न यह नक्षत्रआदिका चक्र चलताहै, न किसी पदार्थका परिणाम होताहै, किन्तु चिदाकाशही अपने स्वरूपमें इन पदार्थोंके रूपसे विवर्तित होरहा है ॥ २५ ॥ और कल्प तथा महाकल्पोंका ज्ञानभी कुछ नहीं है, किन्तु समुद्रमें तरंगके तुल्य ये चिदाकाशमें पृथक्के समान भासते हैं ॥ २६ ॥ हे मुने ! जैसे घटाकाशादि महदाकाशरूपसे हैं पृथक् निजरूपसे नहीं हैं, ऐसेही अध्यारोपदृष्टिसे चित्सत्तासे चिद्रूप अनन्त जगत् सर्वत्र हैं, और अपवाददृष्टिसे चित्से भिन्न कहीं कुछ भी नहीं है ॥ २७ ॥ इसकारण हे वसिष्ठमुने ! तुम अपने ब्रह्मांडमें जाओ, और वहां पूर्वकल्पित अपने आसन समाधिद्वारा निर्विक्षेप आत्मसुखका अनुभव करो और मेरे कल्पित ये बुद्धिआदि जगत् अव्यक्तरूपताको प्राप्त हों और हमभी अब कैवल्यपदको प्राप्त होतेहैं॥२८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शिलान्तर्गतजगत्पितामहवाक्यानि नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

कल्पनाके हेतु ब्रह्माके संकल्पके शांतिके क्रमसे उनसे कल्पित भूतोंके प्रलयका वर्णन इस ७१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्माब्रह्मलोकजनैःसह ॥ बद्धपद्मासनोनंतसमाधानगतोभवत् ॥ १ ॥ ओंकारार्द्धोर्द्धमात्रांतःशांतनिःशेषमानसः ॥ लिपिकर्मार्पिताकारआसीदाशांतवेदनः॥२॥ तमेवानुसरंतीसातथैवध्यानगासती ॥ वासनासीदशेषांशाशांताचाकाशरूपिणी ॥ ३ ॥ परमेष्ठिन्यसंकल्पेतस्मिंस्तानवमेयुषि ॥ सर्वगानंतचिद्व्योमरूपोपश्यमहंयदा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–भगवान् ब्रह्माजी इतना कहके ब्रह्मलोकके निवासियोंके साथ पद्मासन बांधके पुनः उत्थान न होनेवाली समाधिमें तत्पर हुये ॥ १ ॥ और ॐकारके उत्तरार्द्धको अर्द्धमात्राके अनन्तर नादबिन्दुमें चित्तके लय करनेसे शांतचित् और सब इन्द्रियोंकी शांतिसे सब चित्रलिखितके समान होगये ॥ २ ॥ उन्हीं ब्रह्माजीको स्मरण करती हुई उसी प्रकार ध्यानमें तत्पर विद्याधरीरूप वासना भी सर्वथा शांत होनेसे आकाशरूप होगई ॥ ३ ॥ हे रामजी ! जब संकल्परहित ब्रह्माजी सबको नादबिंदुमें लय करके सूक्ष्मभावको प्राप्त हुये तब मैंने भी समाधिसे सर्वगामी चिदाकाशरूप होके सब रहस्य देखा ॥ ४ ॥

यावत्संकल्पनंतस्यविरसीभवतिक्षणात् ॥ तथैवाशुतथैर्वोर्व्याःसाद्रिद्वीपपयोनिधेः ॥ ५ ॥ तृणगुल्म लताशालिसमुद्भवनशक्तता ॥ समस्तैवास्तमागंतुमारब्धाचशनैःशनैः ॥ ६ ॥ किलतस्यविराडात्मरूप स्यांगैकदेशताम् ॥ साबिभर्तिमहीतेनतदसंवेदनोदयात् ॥ ७ ॥ विचेतनासाविरसाबभूवपरिजर्जरा ॥ मार्गशीर्षांतवल्लीवजराविधुरतांगता ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे २ ब्रह्माजीका संकल्प क्षणमें नाश होने लगा वैसेही वैसे पर्वत, द्वीप तथा समुद्र आदि सहित पृथिवीकी सब तृण, लता तथा धान्य आदिकी उत्पन्न होनेकी शक्ति धीरे २ अस्त होनेको आरंभ होगई ॥ ५ ॥ ६ ॥ विराट्रूप ब्रह्माके अंगका एक देशरूप यह पृथिवी है, इसलिये ब्रह्माके संकल्पकी शांतिके उदय होनेसे चेतनरहित यह पृथिवीभी ऐसे जर्जरीभूत होगई जैसे जीर्णतासे जर्जरीभूत मार्गशीर्ष (अगहन) मासके अन्तमें लता ॥ ७ ॥ ८ ॥

यथास्माकमसंवित्तेरंगालीविरसाभवेत् ॥ तथाविरिंचिसंवित्तेर्धरावैधुर्यमागता ॥ ९ ॥ संपन्नासंहता नेकमहोत्पातभरावृता ॥ दुष्कृतांगारनिर्दग्धनरकोन्मुखमानवा ॥ १० ॥ दुर्भिक्षाकांडदौस्थित्यदैन्य दारिद्र्यदुर्भगा ॥ दुःशीलाशेषवनितानिर्मर्यादनरावृता ॥ ११ ॥ पांसुप्रमंदनीहारधूलिधूसरसूर्यका ॥ द्वंद्विमूर्खमहादुःखिव्यसंनिव्याधिताकुला ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे हम लोगोंकी चित् स्फुरणाके अभावसे अंगोंकी श्रेणी नीरस होजाती हैं, ऐसेही ब्रह्माके समाधिमें चेष्टारहित होनेसे पृथिवी नीरस होगई ॥ ९ ॥ हे रामजी ! एककालमेंही अनेक उत्पातोंसे पूर्ण, तथा पापरूपी अग्निसे भस्मीभूत तथा नरककी ओर चलनेमें उद्यत मनुष्यसहित पृथिवी वहां होगई ॥ १० ॥ दुर्भिक्ष तथा आकस्मिकराज, चोर आदिके उपद्रवोंसे दीनता तथा दारिद्र्य आदिसे दुर्भाग्यवती, शीलरहित स्त्रियोंसे पूर्ण, और मर्य्यादा शून्य मनुष्योंसे आच्छादित पृथिवी होगई ॥ ११ ॥ धूलिके सदृश मलिन नीहार (पाला) तथा धूलि आदिसे धूसर सूर्य्य-सहित, और शीतोष्णादि द्वंद्वोंसे युक्त, महामूर्ख और आधिव्याधिसे व्याकुल प्रजाओंसे पूर्ण पृथिवी होगई ॥ १२ ॥

अग्निदाहजलापूरयुद्धप्रोच्छिन्नमंडला ॥ अवृष्ट्यवग्रहोन्नष्टकष्टचेष्टितपामरा ॥१३॥ अशंकितमहोत्पात पतत्पर्वतपत्तना ॥ शिशुश्रोत्रियमुन्यार्यगुणिनाशरुदज्जना ॥ १४ ॥ अशंकितस्थलीमध्यसंजातागाध कूपका ॥ वर्णसंकरनारीणामासक्तजनभूमिपा ॥ १५ ॥ अट्टशूलाखिलजनाशिवशूलचतुष्पथा ॥ केशै कशूलवनितापात्रशूलजनेश्वरा ॥ १६ ॥

अर्थ—अग्निदाह, जलके प्रवाह तथा युद्ध आदिसे उच्छिन्न मण्डलोंसे पूर्ण, वृष्टिके अभाव तथा अति वृष्टिसे नष्ट चेष्टायुक्त पामरजनोंसे पूर्ण वह पृथिवी होगई ॥ १३ ॥ अकस्मात् उत्पात होनेसे गिरतेहुये पर्वत और नगरादिसे भयंकर तथा बालक, विद्वान् ऋषिमुनि और श्रेष्ठगुणीजनोंके नाशसे रोदनमें तत्पर प्रजासहित पृथिवी उससमय होगई ॥ १४ ॥ अकस्मात् स्थलके मध्यमें उत्पन्न अथाहकूपोंसे पूर्ण, और वर्ण संकरस्त्रियोंमें आसक्त राजाओंसे युक्त पृथिवी होगई ॥ १५ ॥ वर्णाश्रम धर्मकी उल्लंघन करनेवाली संपूर्ण प्रजासहित, चतुष्पदोंमें शृगालादि व्याप्त, भगसे जीविका करनेवाली स्त्रियोंसे पूर्ण, तथा दुःखदायी करसे उपजीवी राजाओंसे व्याप्त पृथिवी उससमय होगई ॥ १६ ॥

दुःखशूलसमाचाराद्वंद्वशूलाखिलप्रजा ॥ अधर्मशूलवनितापानशूलजनेश्वरा ॥ १७ ॥ अधर्मशूलवलि ताकुशास्त्रशतशूलिनी ॥ दुर्जनाखिलवित्ताढ्याविपद्विहतसज्जना ॥ १८ ॥ अनार्यवसुधापालातदनादृत पंडिता ॥ लोभमोहभयद्वेषरागरोगरजोरता ॥ १९ ॥ अप्यन्यगामिपुरुषारुषाभिहतसद्विजा ॥ अना रतपराक्रंदपरापर्यंतपामरा ॥ २० ॥

अर्थ—दुःखोंसे रोदनमय समाचारोंसे पूर्ण, शीतोष्णादि द्वंद्वोंसे पीडित संपूर्ण प्रजासहित, अधर्मसे जीविका करनेवाली स्त्रियोंसे तथा मद्यपानसे पीडित राजाओंसे पूर्ण पृथिवी होगई ॥ १७ ॥ अधर्मसे आक्रन्दनमें तत्पर प्रजा-ओंसे व्याप्त सबके धनोंके अपहरणसे धनाढ्य चोर आदि दुर्जनोंसे पूर्ण, और विपत्तियोंसे नष्ट सज्जनोंसे पूर्ण पृथिवी उससमय होगई ॥ १८ ॥ अनार्य्य राजाओंसे व्याप्त, तथा उन दुष्ट राजाओंसे अनादृत पंडितोंसे युक्त और लोभ मोहमय तथा राग द्वेषादिसे रोगपीडित प्रजासहित पृथिवी उससमय होगई ॥ १९ ॥ अपने धर्मको त्यागकर अन्य धर्मोंके अनुगामी पुरुषोंसे पूर्ण, क्रोधसे सज्जनोंके अनादरसे व्याप्त तथा निरन्तर अन्यजनोंके रोदन करानेमें तत्पर पामर जनोंसे पूर्ण पृथिवी होगई ॥ २० ॥

दस्यूत्सन्नपुरग्रामदेवद्विजसमाश्रया ॥ आपातमधुरारंभदुःखदोदरभंगुरा ॥ २१ ॥ आलस्योल्लास विलसत्कार्यवैधुर्यधर्मिणी ॥ सर्वापद्दुपतापांताक्रमेणोत्सन्नदिग्गणा ॥ २२ ॥ भस्मशेषपुरग्रामानिर्ज नाखिलमंडला ॥ रोरूयमाणभस्माभ्रकुंडलोड्डामरांबरा ॥ २३ ॥ दुर्भगाडंबरारंभरोदनोरुरवोदरी ॥ मुष्टिप्रमाणजनताजनतापानुषंगिणी ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा चौरआदिसे छिन्न भिन्न किये हुये नगर, ग्राम, देवालय और ब्राह्मणोंके स्थानोंसे भयंकर तथा अन्यायके धनसे कुटुम्बपाल करनेवाले किंचित् कालके सुखी और परलोकमें दुःखपानेवाले अल्पआयुवाले मनुष्योंसे पूर्ण पृथिवी उससमय होगई ॥ २१ ॥ आलस्यके विलाससे धार्मिकोंके सन्ध्यावन्दनादि कर्मसे रहित, अन्तमें रोगोंसे पीडित सब जनसहित, और छिन्नभिन्न दिङ्मण्डलोंसे पूर्ण पृथिवी होगई ॥ २२ ॥ नगर ग्रामादिके भस्ममात्र शेष रहनेसे जनरहित सम्पूर्ण मण्डल (जिला) सहित, तथा निरन्तर रोदनमें तत्पर प्रजाओंसे और भस्ममय मेघोंसे भयंकर आकाशसहित पृथिवी होगई ॥ २३ ॥ अभागे मनुष्योंके रोदनसे पूर्ण उदरवाली, चौर्य्यकर्ममें प्रवीण जनसमूहोंसे पूर्ण और मनुष्योंके सन्तापसे संयुक्त पृथिवी होगई ॥ २४ ॥

नीरशासेषदेशांतासर्वर्त्तुगुणवर्जिता ॥ इत्यस्यपार्थिवेधातौब्रह्मणोगतवेदने ॥ २५ ॥ पृथिवीपृथुवैधुर्यासंपन्नासन्ननाशतः ॥ अथतत्संविदुन्मुक्तोजलधातुःक्षयोन्मुखः ॥ २६ ॥ यदाविक्षुभितात्मासीत्तदानियतिलंघनात् ॥ समुत्सार्यार्यमर्यादामर्णवाविद्दृतार्णसः ॥ २७ ॥ प्रवृत्ताविकृतिंगंतुमुन्मत्ताइवराविणः ॥ वीचिविक्षोभविन्यासैर्वेलाविपिनलावकाः ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार इस ब्रह्माके विराट्देहके आरम्भक पार्थिव धातुके चेतन रहित होनेपर, और प्रलयकाल समीप होनेसे वह पृथिवी रस रहित,सर्वथा सब ऋतुओंके गुणोंसे वर्जित महा हतभागिनी होगई, इसके पश्चात् चेतनरहित जल धातुभी क्षयकी ओर अभिमुख हुये ॥ २५ ॥ २६ ॥ जिससमय चैतन्यके अभावसे जल धातु विक्षुब्ध होगये तब नियतिके उल्लंघनसे आर्य्यमर्य्यादाको त्यागकर सब समुद्र विस्तृतजल होगये ॥ २७ ॥ और उन्मत्तोंके समान शब्द करनेवाले, विकारदशामें प्राप्त होनेको प्रवृत सब समुद्र तरंगोंके विक्षोभके विलासोंसे निजतटके जंगलोंको छेदन करने लग गये ॥ २८ ॥

कल्लोलवलनावर्त्तविवर्त्तोद्वित्तिताश्रयाः ॥ महाभ्रभ्रमदुत्तुंगतरंगात्तनभोदिशः ॥ २९ ॥ बृहद्गुलुगुलावर्तगर्जनोद्रवकंदराः ॥ सीकरौघमहारंभघनसंवलिताचलाः ॥ ३० ॥ चलच्चलचलद्वीरमकराघूर्णितांतराः ॥ उल्लसन्मकराक्रांतद्रुमकाननितोदराः ॥ ३१ ॥ दरीविदारणभ्रष्टसिंहाहतजलेचराः ॥ ऊर्म्युदस्तमहारत्नभरतारकितांबराः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और तरंगोंके वेष्टन तथा आर्वतोंसे जलचारी जीवोंको अस्तव्यस्त करनेवाले, और महामेघोंसे तथा उच्चतरंगोंसे आकाश तथा दशोदिशाओंको व्याप्त करनेवाले सब समुद्र होगये ॥ २९ ॥ तथा महान् गुडगुडा शब्द आवर्त्तों (भँवरों) के गर्जनोंसे पर्वतोंकी कंदराओंको भाशब्द सहित करनेवाले, और जलकी धाराओंको आरंभ करनेवाले महामेघोंसे पर्वतोंको डुबानेमें तत्पर समुद्र होगये ॥ ३० ॥ और चलती हुई चंचल तरंगोंसे भी आगे चलनेवाले वीर मकरआदिसे संक्षुब्धगर्भ तथा शोभायमान ग्राहआदिसे महाजंगलोंके उदरोंको भी आक्रमण करनेवाले सब समुद्र होगये ॥ ३१ ॥ कन्दराओंके विदारणसे निकले हुये सिंहोंसे बिनाशित जलचारी जीवोंसहित, तथा तरंगोंसे प्रक्षिप्त महारत्नसमूहोंसे आकाशको तारागणोंसे शोभित करनेवाले सब समुद्र होगये ॥ ३२ ॥

उत्फालमकरच्छन्ननभश्वरबृहद्घनाः ॥ परस्परोर्मिसंघट्टभांकारकटुटांकृताः ॥ ३३ ॥ तरत्तरलमातंगफूत्काराधौतभास्कराः ॥ अन्योन्यवेल्लनव्यग्रप्रविदीर्णाद्रिभित्तयः ॥ ३४ ॥ तटपर्वतलुंटाकतरंगकरमंडलाः ॥ गर्जद्गिरिदरीगेहविशद्धन्मत्तवारयः ॥ ३५ ॥ भूपाःपरपुराक्रांतालग्नाइवहतारयः ॥ तारारवरणद्देहविद्रावितनभश्वराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा उछलते हुये मकरआदिसे आकाशचारी जीवों तथा मेघोंको आच्छादित करनेवाले और तरंगोंके परस्पर संघट्टोंसे भांकारशब्दोंसे कठोर शब्दसहित समुद्र होगये ॥ ३३ ॥ चंचल और उच्चमातंगोंके सदृश ग्राहआदिके फूत्कार सूर्य्यमण्डलको भी धोनेवाले, और परस्पर सुंढनकी व्यग्रतासे पर्वतोंकी भित्तियोंको भी विदीर्ण करनेवाले समुद्र होगये ॥ ३४ ॥ तटके पर्वतोंको चूर्ण करनेवाले तरंगमण्डलों सहित पर्वतोंकी कन्दरारूपी गृहोंमें प्रवेश करनेवाले तथा गर्जना करते हुये उन्मत्त जलसहित समुद्र होगये ॥ ३५ ॥ तथा राजाओंके सदृश दूसरेके नगरोंके आक्रमण करनेवाले, तथा अपने विरोधी दावानल (वनकी अग्नि) को नष्ट करनेवाले, और महाशब्दकारी तरंगोंसे देवलोकसे देवताओंको भगानेवाले सब समुद्र होगये ॥ ३६ ॥

प्रलुंठितवनव्यूहल्लनकाननितांबराः ॥ सपक्षपर्वताकारतरंगापूरितांबराः ॥ ३७ ॥ महारवमरुच्छिन्नकल्लोलाचलचालिताः ॥ चंचत्तीरगिरिव्रातपतत्तटरटज्जलाः ॥ ३८ ॥ उल्लसद्विपुलावर्त्तप्रोत्क्षिप्तमक

रोत्कराः ॥ विमज्जन्निस्तलावर्त्तनिगीर्णगिरिकंदराः ॥ ३९ ॥ दरीदलनसंप्राप्तहषद्दशनदंतुराः ॥ शृंग लंबिदरीप्रांतमग्नवीचिजलेभकाः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा ऊषडके ऊपर प्राप्त किये हुये वनसमूहोंसे आकाशको भी कटे हुये जंगलके समान बनानेवाले, और पक्षसहित पर्वतोंके समान उच्चतरंगोंसे आकाशको पूर्ण करनेवाले सब समुद्र होगये ॥ ३७ ॥ महाशब्द पवन छिन्नभिन्न उच्चतरंगोंसे संचालित पर्वतोंके समान तरत्नोंके प्रकाशोंसे प्रकाशित तथा पर्वतोंके समूहोंसे गिरते हुये शिखरोंसे शब्दायमान जलसे पूर्ण समुद्र होगये ॥ ३८ ॥ तथा शोभायमान महाआवर्त्तोंसे मकर (मगर) आदि जीवसमूहके फेंकनेवाले और अगाध आवर्त्तोंसे अनेक पर्वत और उनकी कन्दराओंके निगलनेवाले समुद्र होगये ॥ ३९ ॥ तथा कन्दराओंके दलनसे प्राप्त स्फटिकमणीरूप दांतोंसे हंसते हुयेके सदृश तथा पर्वतोंके शिखरोंमें लंबायमान दीर्घकन्दराओंमें प्रवृष्ट तरंग और जलचारी जीवसहित समुद्र होगये ॥ ४० ॥

व्यालोलवलनाक्रांतविटपिप्रोतकच्छपाः ॥ यमेंद्रवसुधावादैरुत्कर्णैर्भयविह्वलैः ॥ ४१ ॥ श्रूयमाणपतच्छैलतटीकटकटारवाः ॥ मत्स्यपुच्छच्छटाच्छिन्नमग्नोन्मग्नद्रुताद्रयः ॥ ४२ ॥ लीलालूनवनव्यूहशीतलासारवारयः ॥ प्रज्वलद्वडवावह्निज्वालावलिमिलज्जलाः ॥ ४३ ॥ सरसेनविभोर्नाशैर्विशंकितमहानलाः ॥ मिलच्छिखरिमालाग्रजलमातंगयोधिनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा चंचल तरंगरूप वेष्टनोंसे आक्रान्त वृक्षोंमें गुथे हुये कच्छप सहित तथा भयसे व्याकुल और ऊपर कान उठाये, यम, इन्द्र तथा पृथिवीके वाहन महिष, ऐरावत और दिग्गजोंसे भयंकर समुद्र होगये ॥ ४१ ॥ तथा गिरते हुये पर्वतोंके श्रुयमान कटकटा शब्दोंसे पूर्ण और तिमिंगिल, राघवआदि मत्स्योंके पुच्छोंकी छटासे छिन्न अनेक पर्वत संयुक्त सब समुद्र होगये ॥ ४२ ॥ तथा लीलापूर्वक कटे हुये अनेक वनसमूहोंमें विश्राम करनेवाली शीतल जलधारा सहित, और जाज्वल्यमान वडवानलकी ज्वालाओंकी पंक्तियोंमें मिश्रित जलसंयुक्त सब समुद्र होगये ॥ ४३ ॥ अपने जलसे आश्रयभूत इन्धनके नाशसे भयभीत वडवानल सहित और पर्वतोंकी मालाओंके अग्रभागोंमें स्थलके मातंगोंके साथ मिलनेवाले युद्धके अभिलाषी जलचारी मातंगोंसे व्याप्त सब समुद्र होगये ॥ ४४ ॥

नृत्यंतीवतरंगौघैर्जलावलनवेधिनः ॥ जलाचलाचलान्योन्यसंघट्टस्फोटपंडिताः ॥ ४५ ॥ बृहद्गिरिवनव्रातप्राणिमंडलमंडिताः ॥ उड्डामरवनेभेंद्रभेरीवादनभासुरैः ॥ ४६ ॥ असुरैरिवपातालंकल्लोलैरलमाकुलाः ॥ अथोदपतद्दुन्नासदिङ्गगवदनध्वनिः ॥ ४७ ॥ पातालतलताल्वंतर्विस्फोटामोटनोद्भटः ॥ चंचलाचलकीलोर्वीचचालक्षणचालिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—और जलोंके तथा पर्वतोंके परस्पर संघट्ट तथा स्फोट शब्दोंमें प्रवीण समुद्र मानों तरंगोंके समूहोंद्वारा नृत्य कररहेथे ॥ ४५ ॥ और बडे २ पर्वत और बनोंके समूह तथा प्राणियोंके मंडलोंसे शोभित तथा उडते हुये मृतक बनके गजेन्द्रोंके शरीररूपी नगारोंपर अल्प तरंगोंके अग्रभागके वाजनोंसे शोभायमान ॥ ४६ ॥ महातरंगरूपी असुरोंसे पातालके सभयंकर सब समुद्र उसमय होगये और समुद्रोंके संक्षोभके अनंतर वहांपर बहते और ऊपर सूंड उठाये हुये दिग्गजोंका शब्द सुनाई पडा ॥ ४७ ॥ और पातालरूपी तालुस्थानके विदारण तथा एक पिंड होनेसे वह शब्द अति गंभीर था तथा दिग्गजोंसे धारण की हुई, चंचल समुद्रोंसे लंघित तथा मेरु आदिकीलकी पृथिवी ऐसे चलायमान हुई जैसे चंचल शैवालकी लता ॥ ४८ ॥

लोलाशैवालवल्लीवव्यालोलांभोधिलंघिता ॥ अथदुर्वारनिर्घोषनिर्वातडंबरान्विता ॥ ४९ ॥ पुस्फोटेवपतंतीद्यौर्दिशांप्रतिरवारवैः ॥ आवर्त्तवलनाकाराःकेतवःपेतुरंबरात् ॥ ५० ॥ हेमरत्नमयासुक्ताःसिंदूरभुजगाइव ॥ ककुब्भ्योनभसोभूमेरुदगुर्दग्धदिक्तटाः ॥ ५१ ॥ चलज्वालाजटाटोपाविविधोत्पातपंक्तयः॥ पृथ्व्यादीन्यसुरादीनिब्रह्मोन्मुक्तानिसर्वतः ॥ ५२ ॥ द्विविधानिमहाभूतान्यलंसंक्षोभमाययुः ॥ चंद्रार्कानिलशक्राग्नियमाःकोलाहलाकुलाः ॥ ५३ ॥

अर्थ—और इसके पश्चात् दुर्निवार प्रलयकालके मेघोंके शब्दोंके आडंबरोंसे संयुक्त ॥ ४९ ॥ अन्तारिक्ष, दिशाओंकी प्रतिध्वनिरूप महाशब्दोंसे ऐसा भासनेलगा मानो टूटपडा, और आकाशसे भयंकर आकारधारी, तथा उत्पातके हेतु धूमकेतु गिरनेलगे ॥ ५० ॥ सुवर्ण तथा रत्नके समान वर्णवाले, तथा रक्तवर्ण सर्पोंके तुल्य, दिशाओंके भस्म करनेवाले, और प्रज्वलित महाज्वालासहित अनेकप्रकारकी उत्पातोंकी पंक्तियां सब दिशाओंसे, आकाशसे, और पृथिवीसे निकलीं तथा पूर्वोक्त ब्रह्माके संकल्पसे युक्त, पृथि आदि और असुर आदि, ये दोनों प्रकारके

महाभूत संक्षोभको प्राप्त हुये, और चंद्र सूर्य्य, वायु, इन्द्र, अग्नि तथा यम आदि देवता भी कोलाहलसे व्याकुल होगये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

परिपातपराआसन्ब्रह्मलोकगतेश्वराः ॥ कंपैःकटकटारावपतत्पादपपंक्तयः ॥ ५४ ॥ भूमेरन्वभवन् भूरिदोलांदोलनमद्रयः ॥ भूकंपलोककैलासमेरुमंदरकंदराः ॥ पेतुःकल्पतरून्मुक्तारक्तस्तवकवृष्टयः ॥ ५५ ॥ लोकांतराद्रिपुरवारिधिकाननांतमुत्पातकल्पपवनेनमिथोहतानाम् ॥ कोलाहलैर्जगदभूत्प्रविकीर्णशीर्णपूर्णार्णवेत्रिपुरपूरइवाभिपाती ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने कल्पक्षोभवर्णनं नाम एकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥

अर्थ—और अधःपातमें तत्पर इन सब देवताओंके अपने २ अधिकारके पालनका प्रभाव ब्रह्मलोकमें प्राप्त होगया तथा कंपा और कटकटा शब्दोंके साथ वृक्षोंकी पंक्तियां गिरनेलगीं ॥ ५४ ॥ भूकंपसे चंचल कैलास तथा मेरु आदि पर्वत और उनकी कंदरामें भूमिके महाआन्दोलन (झूले) का अनुभव किया, और कल्पवृक्षोंसे भी रक्तकी वृष्टि हुई ॥ ५५ ॥ हे रामजी! उस प्रलयके पूर्ण महासमुद्रमें लोकलोकान्तर तदन्तर्गत पर्वत, नगर, जल और बनपर्य्यंत उत्पातकारी कल्पान्त पवनसे परस्पर हन्यमान प्राणियोंके कोलाहलोंसे सब जगत् ऐसे छिन्नभिन्न होगया जैसे रुद्रके बाणरूपी अग्निसे संदग्ध पतनशील त्रिपुरको पूर्ण करनेवाला दैत्योंका समूह ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे कल्पक्षोभवर्णनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

ब्रह्माके प्राणके निरोधसे वातस्कन्धकी स्थितिका क्षय और उसके प्रसंगसे पूंछनेपर विराट्की स्थितिका वर्णन इस ७२ के सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाकृष्टवतिप्राणान्स्वयंभुविनभोभुवः ॥ विराडात्मनितत्याजवातस्कंधस्थितः स्थितिम् ॥ १ ॥ तेहितस्यकिलप्राणास्तेनक्रांतेषुतेष्वपि ॥ ऋक्षचक्रेस्थितिंकोन्योधत्तेभूतैकधारिणीम् ॥ २ ॥ वातस्कंधेसमाक्रांतेब्रह्मणाप्राणमारुते ॥ समंगंतुंपरित्यज्यसंस्थितिंक्षोभमागते ॥ ३ ॥ निराधारास्सवाताग्निदाहोल्मुकवदापतन् ॥ व्योम्नस्तारास्तरोःपुष्पनिकराइवभूतले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इसके पश्चात् विराट् ब्रह्माजीने जब प्राणोंका उपसंहार किया तब वायुने ग्रह नक्षत्रादिकी धारणारूप स्थितिको त्याग दिया ॥ १ ॥ क्योंकि वे वातस्कन्ध विराट्रूप ब्रह्माजीके प्राणहैं इसलिये उनके उपसंहृत होनेपर सब भूतोंको धारण करनेवाली नक्षत्रमण्डलमें स्थितिको अन्य कौन धारण करसकता है ॥ २ ॥ इस हेतुसे प्राण वायुस्वरूप वातस्कन्धको जब ब्रह्माजीने उपसंहार किया तब उसके साथही संक्षोभ प्राप्त होनेसे सबने अपनी २ स्थितिको त्यागना आरंभ किया ॥ ३ ॥ और वायुसहित अग्निदाह आरंभ होनेपर उडते हुये उल्मुकके तुल्य निराधार, तारागण आकाश ऐसे गिरनेलगे जैसे वृक्षसे पुष्पसमूह ॥ ४ ॥

कालपाकचलन्मूलाजगत्खंडफलालयाः ॥ प्रशांतपवनाधाराविमानावलयोपतन् ॥ ५ ॥ प्रलयोन्मुखतांयातेब्राह्मेसंकल्पनेंधने ॥ सिद्धानांगतयशेमुरिद्धानामर्चिषामिव ॥ ६ ॥ प्रभ्रमंत्योंबरेकल्पमारुतैस्तनुतूलवत् ॥ स्वशक्त्यपचयेमूकाःसिद्धसंततयोपतन् ॥ ७ ॥ संकल्पद्रुमजालानिसेंद्रादिनगराणिच ॥ पेतुर्भूकंपलोलस्यशिरांस्यभरभूभृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जगत्के खण्डमें उपार्जित सुकृतफलोंके स्थान और कालविपाकसे क्षीणपुण्य विमानोंकी पंक्तियां आकाशसे गिरने लगीं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीके संकल्परूपी इन्धनके प्रलयकी ओर अभिमुख होनेसे सिद्धोंकी गति ऐसे शांत होगई जैसे इन्धनके अभावसे प्रदीप्त अग्निकी ज्वाला ॥ ६ ॥ निजशक्तियोंके नष्ट होनेपर प्रलयके पवनोंसे तुच्छ तूल (रुई) के सदृश आकाशमें भ्रमण करतेहुये बचन व्यापारमें भी असमर्थ सिद्धोंके समूह आकाशसे गिरने लगे ॥ ७ ॥ भूकम्पसे चंचलसुमेरुके संकल्पके जालरूप तथा इन्द्रआदिके नगरोंसहित शिखरगिरने लगे ॥ ८ ॥

श्रीरामउवाच ॥ चितिसंकल्पमात्रात्माविराड्ब्रह्माजगद्वपुः ॥ किमंगंयस्यभूलोकःकिंस्वर्गःकिंरसातलम् ॥९॥ कथमेतानिचांगानिब्रह्मंस्तस्यस्थितानिच ॥ कथंवासौंतरेतस्यस्वस्यैववपुषःस्थितः॥१०॥

ब्रह्मासंकल्पमात्रात्मानिराकृतिरिदंस्थितम् ॥ जगदित्येवजातोमेनिश्चयःकथयेतरत् ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अदौतावदिदंनासन्नसदास्तेनिरामयम् ॥ चिन्मात्रपरमाकाशमाशाकोशैकपूरकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—कि हे भगवन्! चेतनका संकल्पमात्रही जगत् शरीर विराट्स्वरूप ब्रह्माहै, उनका यह भूलोक कौन अंगहै, और स्वर्ग तथा रसातलभी कौन अंगहै, अर्थात् संकल्पमात्र मानासिक शरीरके स्थूलअंग कैसे होसकतेहैं ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन्! ये सब लोक रूप अंग उनके भीतर कैसे स्थितहैं, और वे भी ब्रह्मांडरूप अपने शरीरके भीतर तथा सत्यलोकमें भी कैसे स्थितहैं ॥ १० ॥ हे भगवन्! ब्रह्मा तो संकल्पमात्र निराकारहैं, और यह जगत् तो साकारहै, यह मेरा निश्चयहै, इससे अन्य कोई प्रकार होसो कहिये ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी! सृष्टिकी आदिमें यह जगत् न सत् और न असत् था, किन्तु सब दिशाओंके कोशोंको पूर्ण करनेवाला निरामय परमाकाश तथा चिन्मात्ररूप ब्रह्मही था ॥ १२ ॥

तत्स्वामाकाशतांचैतच्चेत्यमित्यवबुध्यते ॥ स्वरूपमत्यजन्नित्यंचित्वाद्ववतिचेतनम् ॥ १३ ॥ विद्धितच्चेतनंजीवंसघनत्वान्मनःस्थितम् ॥ एतावतिस्थितिजालेनकिंचित्साकृतिस्थितम् ॥ १४ ॥ शुद्धंव्योमैवचिद्व्योमस्थितमात्मनिपूर्ववत् ॥ यदेतत्प्रतिभातंतत्तदन्यन्नशिवात्ततः ॥ १५ ॥ अथतन्मनआभोगिभाविताहंकृतिस्फुरत् ॥ संकल्पात्मकमाकाशमास्तेस्तिमितमक्षयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—वही परमाकाश अपने स्वरूपको न त्यागते हुये, एक चन्द्र द्वितीय चन्द्रके सदृश अपनी चिदाकाशताको अपनेसे पृथक्के तुल्य समझताहै, और वह चिदाकाशता चित् होनेसे चेतन कहाती है ॥ १३ ॥ उस चिदाकाशमें ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप त्रिपुटीके मननसे घनीभावद्वारा समष्टि मनस्वरूपसे स्थित उसी चेतनको तुम जीव जानो, परंतु इतना त्रिपुटीजालके अध्यास होनेपर भी इसमें कुछ साकारता नहीं है ॥ १४ ॥ किंतु त्रिपुटीके पूर्वके सदृश अपने आत्मामें शुद्ध चिदाकाशही स्थित है, और जो कुछ यह भासता है वह शिवरूप परमात्मासे भिन्न नहीं है ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस विशाल संकल्परूप मनमें अभिमानका भावनासे अहंकारकी स्फुर्ति होती है, और यथार्थमें वह उदय अस्तरहित चिदाकाशही है ॥ १६ ॥

तत्संकल्पचिदाभासनभोहमितिभावितम् ॥ असत्तमेवानुभवत्सन्निवेशंखमेवखे ॥ १७ ॥ वेत्तिभावितमाकारंपश्यत्यनुभवत्यपि ॥ संकल्पकात्मकंशून्यमेवदेहइतिस्थितम् ॥ १८ ॥ शून्यमेवयथाकारिसंकल्पनगरंभवान् ॥ पश्यत्येवमजोदेहंखेखमेयानुभूतवान् ॥ १९ ॥ संविदोनिर्मलत्वात्सयावदित्थंतथाविधम् ॥ अनुभूयानुभवनंस्वेच्छयैवोपशाम्यति ॥ २० ॥

अर्थ—और अनंतर संकल्परूप चिदाभास मैं आकाशरूप हूं इस भावनासे चिदाकाशही चिदाकाशमें असत् आकारका अनुभव करताहै ॥ १७ ॥ संकल्परूपही शून्यमें देह आकारवान् देहको जानता और देखताहै ॥ १८ ॥ जैसे शून्यमें तुम संकल्पसे नगर आदि देखतेहो ऐसेही आकाशरूप ब्रह्म भी शून्य आकाशकोही देहरूप देखताहै॥१९॥ ज्ञानकी निर्मलतासे वह परमात्मा अपने संकल्पित जगत्का अनुभव करके अपनी इच्छासे शान्त होजाताहै ॥ २० ॥

यदातत्त्वपरिज्ञानमस्मदादेस्तदाततम् ॥ इदंसंसरणंविद्धिशून्यंसत्यमिवस्थितम् ॥ २१ ॥ यथाभूतपरिज्ञानादत्रशाम्यतिवासना ॥ अद्वैतान्निरहंकारात्ततोमोक्षोवशिष्यते ॥ २२ ॥ एवमेषसयोब्रह्मासएवेदंजगतस्थितम् ॥ विराजोब्रह्मणोरामदेहोयस्तदिदंजगत् ॥ २३ ॥ संकल्पाकाशरूपस्यतस्ययाभ्रांतिरुत्थिता ॥ तदिदंजगदाभातितद्ब्रह्मांडमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और हममेसे भी किसीको जब ब्रह्मतत्वका यथार्थ परिज्ञान होताहै तब इस संसारको सत्य तथा व्याप्त चिदाकाशमात्रही जानो ॥ २१ ॥ अहंकाररहित अद्वैत तथा सत्य परमात्माके ज्ञानसे इसी जन्ममें वासना शांत होजाती है और उसके पश्चात् मोक्षरूप आत्माही शेष रहताहै ॥ २२ ॥ इसप्रकार हे रामजी! चित्स्वरूप जो ब्रह्मा है वही यह जगत् है, और विराट्रूप ब्रह्माका देहही यह जगत् है ॥ २३ ॥ चिदाकाशमात्र संकल्परूप ब्रह्माकी स्थूलशरीरकी जो भ्रांति हुई वही यह जगत्के आकारसे भासती है और उसीको ब्रह्मांड कहतेहैं ॥ २४ ॥

सर्वमाकाशमेवेदंसंकल्पकलनात्मकम् ॥ वस्तुतस्त्वस्तिनजगत्त्वत्तामत्तेचनक्वचित् ॥ २५ ॥ क्वचिन्मात्रेऽमलेव्योम्निकथंवाकेनवाजगत् ॥ किंजायतेकिमत्रास्तिकारणंसहकारियत् ॥ २६ ॥ अतोऽलीकमिदंजातमलीकंपरिदृश्यते ॥ अलोकंस्वदतेऽलोकमेवंपश्यतिशून्यकम् ॥ २७ ॥ जगदादिकयाभासाचिन्मात्रंस्वदतेस्वतः ॥ आत्मनात्मांबरेद्वेतेस्पंदतेनेवमारुतः ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्रह्माका संकल्पमात्र यह सब जगत् चिदाकाशमात्रही है, यथार्थमें न कहीं यह जगत् है और न त्वत्ता अहंता है ॥ २५ ॥ निर्मल निराकार चिदाकाशमात्रमें साकार यह जगत् कैसे और किस निमित्तसे उत्पन्न होसकताहै, और इसके उत्पन्न होनेमें सहकारी कारण आदि क्या है ॥ २६ ॥ इसलिये मिथ्याही यह जगत् उत्पन्न हुआ, मिथ्याही अनुभूत होताहै, और मिथ्याही प्रिय तथा अप्रिय भावसे रुचता है, निष्प्रपंच ब्रह्मही अपनी इच्छासे शून्यकोही जगत्‌रूपसे देखताहै ॥ २७ ॥ चिन्मात्र परमात्मा अपने अद्वैत चिदाकाशरूपमें स्वयं अपने रूपको जगत् तथा उसके उत्पत्ति, नाश, विकारोंको अनुभव करताहै ॥ २८ ॥

इदंकिंचिन्नकिंचिद्वाद्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ चिदाकाशंजगद्विद्धिशून्यमच्छंनिरामयम् ॥ २९ ॥ शांताशेषविशेषोहंतेनराघवसंस्थितः ॥ सन्नेवासन्निवातस्त्वमेवमेवास्वनिर्ममः ॥ ३० ॥ निर्वासनःशांतमना मौनीविगतचापलः ॥ सर्वकुरुयथाप्राप्तंकुरुमावान्नकिंग्रहः ॥ ३१ ॥ अनादिनित्यानुभवोयएकःसएव दृश्यंनतुदृश्यमन्यत् ॥ सत्यानुभूतेननुभूतयोयाःसुविस्तृतादृश्यमहादृशस्ताः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० निर्वा० नाम द्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! द्वैत तथा अद्वैतसे वर्जित यह जगत् अधिष्ठानरूपसे किंचित्‌रूपहै और निजरूपसे कुछ नहीं, यथार्थमें इसको स्वच्छ निरामय चिदाकाशही जानो ॥ २९ ॥ इस हेतुसे हे रामजी ! मेरे सदृश सब विशेषोंकी शान्ततापूर्वक ममतारहित होके तुमभी परमार्थ सच्चिद्रूप और व्यवहार देहधारीके सदृश स्थितरहो ॥ ३० ॥ हे रामजी ! वासनारहित, शांत चित्त, मौन और चंचलतारहित होके समाधिसे जाग्रत्‌दशामें यथा प्राप्त व्यवहारोंको करो, अथवा समाधिस्थ होनेपर कुछ न करो इसमें कोई आग्रह नहीं है ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! सत्यपरमात्माके अनुभूत होनेपर यह भासताहै कि नित्य अनुस्वरूप जो एक अद्वैत परब्रह्महै वही यह जगत् और उस परमात्माके विषयमें जो अज्ञानहैं वेही ये जगत्‌की महादृष्टि हैं ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

बोधकी दृढताके लिये पुनः आरोपक्रम और उसके अनन्तर कैसे ब्रह्माजीके सब अंग होसकते हैं इस प्रश्नका उत्तर, यह विषय इस ७३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ बंधमोक्षजगद्बुद्धिर्नशून्यानापिसन्मयी॥नास्तमेतिनचोदेतिकिमप्याद्यमसौकिल ॥१॥ उपदिष्टमिदंब्रह्मंस्त्वयाबुद्धमलंमया ॥ भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेमृतम् ॥ २ ॥ सर्गादिसंभ्रमदृशःशून्यतादिदृशस्तथा ॥ नकाश्चनविभोसत्याअसत्याश्चनकाश्चन ॥ ३ ॥ एवंस्थितेतुयत्सत्यंतत्सर्वंबुद्धवानहम् ॥ तथापिभूयोबोधायसर्गानुभवउच्यताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे ब्रह्मन् ! यह बन्ध, मोक्ष तथा जगत्‌की बुद्धि न तो शून्य और न सन्मयी है, किंतु मन तथा वाणीका अगोचर सबका आदिभूत ब्रह्मही ॥ १ ॥ का आपने उपदेश किया है, इसको मैंने पूर्णरीतिसे जान लिया, परन्तु इस विषयको पुनः कहिये, क्योंकि आपके वचनरूपी अमृतके सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ हे प्रभो ! सर्गआदि संभ्रमकी दृष्टि, तथा शून्यता आदिकी दृष्टि कोई भी न सत्य हैं और न असत्य हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार मायाशबलित ब्रह्मके सदृश नित्यमुक्त शुद्धब्रह्मको भी आपके अनुग्रहसे मैंने जानलिये, तथापि बोधकी दृढताके लिये प्रपंचके अध्यारोहके अनुभवको पुनः कहिये ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यंदेशकालक्रियादिमत् ॥ ५ ॥ तस्यनाशेमहानाशेमहाप्रलयनामनि ॥ ब्रह्मोपेंद्रमरुद्रुद्रमहेंद्रपरिणामिनि ॥ ६ ॥ शिष्यते शांतमस्यच्छंकिमप्यजमनादिसत् ॥ यतोवाचोनिवर्त्तंतेकिमन्यदवगम्यते ॥ ७ ॥ सर्षपापेक्षयामेरुर्यथातिविततताकृतिः ॥ तथाकाशमपिस्थूलंशून्यंसद्यदपेक्षया ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सब प्रकारसे पूर्ण, और देशकाल क्रियासहित यह सब जो स्थावर, जंगम, जगत् देखपडताहै ॥५॥ उसके स्थूलभूतोंका सूक्ष्मभाव, रूपनाश, सूक्ष्मभूतोंका अव्याकृतमें लयरूप महा-

नाश तथा ब्रह्मा, उपेन्द्र, पवन, रुद्र और महेन्द्रआदिके देहोंके परिणामरूप अन्तिमभाव विकार होनेपर ॥ ६ ॥ शांत, सर्वथा निर्मल, अनादि, अजन्मा और सन्मात्र अनिर्वचनीय ब्रह्म शेष रहताहै, उसके कथनमें सब वाणी भी मूक होकर निवृत्त होजाती हैं, केवल साक्षीरूपसे स्वयं वह अपनेको अनुभव करताहै ॥ ७ ॥ जैसे सर्षप (सरसो) की अपेक्षा मेरु अतिस्थूल है ऐसेही ब्रह्मकी अपेक्षा अति शून्य आकाश भी महास्थूल है ॥ ८ ॥

शैलेंद्रापेक्षयासूक्ष्मायथेमेत्रसरेणवः ॥ तथासूक्ष्मतरंस्थूलंब्रह्मांडंयदपेक्षया ॥ ९ ॥ अमानकलितेसौम्ये कालेपरिणतेचिरम् ॥ शांतेतस्मिन्परेव्योमन्याद्येह्यनुभवात्मनि ॥ १० ॥ असंकल्पोमहाशांतोदिक्का लैरमिताकृतिः ॥ अंतर्महांश्चिदाकाशोवेत्तीवपरमाणुताम् ॥ ११ ॥ असत्यामेकतामंतर्भावयन्स्वप्न वत्स्वतः ॥ ततःसब्रह्मशब्दार्थंवेत्तिचिद्रूपतांतताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और जैसे महापर्वतोंकी अपेक्षायें त्रसरेणु अतिसूक्ष्म है ऐसेही यह अतिस्थूल ब्रह्मांड ब्रह्मकी अपेक्षा सूक्ष्म है ॥ ९ ॥ मानके हेतु सूर्य्यादिके स्पंदआदि उपाधिके प्रलय होनेसे मानरहित, सौम्य द्विपरार्द्धपर्य्यन्त ब्रह्माकी आयुके कालके भी चिरकालतक बीतनेपर और अनुभवरूप सबके आदिभूत उस चिदाकाश परमात्माके शांत स्थित होनेपर ॥ १० ॥ यथार्थमें संकल्परहित महाशांत और देशकालादिसे अपरिच्छिन्न महाचिदाकाश स्वप्नकी ओर अभिमुखके समान अपने स्वरूपमें जगत्के संस्काररूप परमाणुताको मानों अनुभव करताहै ॥ ११ ॥ और असत्यही उस जगत् संस्काररूप परमाणुताको निजस्वरूपमें पर्य्यालोचनसे स्वप्नके तुल्य सबकी वृद्धि करनेसे मैं ब्रह्म इस ब्रह्म-शब्दार्थ तथा सर्वत्र व्याप्त निजचिद्रूपताको जानताहै ॥ १२ ॥

चिद्भावोनुभवत्यंतश्चित्त्वाच्चिदणुतांनिजाम् ॥ तामेवपश्यतीवाथततोद्रष्टेवतिष्ठति ॥ १३ ॥ यथास्वप्ने मृतंपश्यत्येकएवात्मनात्मनि ॥ मृतएवमृतेर्द्रष्टातथाचिदणुरात्मनि ॥ १४ ॥ ततश्चिद्भावएषांतरेकएव द्वितामिव ॥ पश्यन्स्वरूपएवास्तेद्रष्टृदृश्यमिवस्थितः ॥ १५ ॥ चिद्भावशून्यएवातिनिराकारोप्यणुंत नुम् ॥ पश्यन्दृश्यमिवोदेतिद्रष्टेवचदताद्विताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्स्वरूप परमात्मा चिद्रूप होनेसे निजचित्स्वरूप सूक्ष्मताको अनुभव करताहै, और उसीको देखते हुये द्रष्टाके तुल्य स्थित होताहै ॥ १३ ॥ जैसे स्वप्नमें एकही जीवात्मा अपनेही स्वरूपमें अपनेको मृत देखताहै, और जैसे यहां मृतकही मृतकको भिन्नरूपसे द्रष्टाहै ऐसेही चिदाकाश भी निजस्वरूपकोही भिन्नरूपसे देखताहै ॥ १४ ॥ यह चिदाकाश अपने अद्वैत स्वरूपको द्वैतके सदृश अनुभव करते तथा द्रष्टा दृश्य आदिके समान स्थित होतेहुये भी अपने यथार्थ एकरूपसेही स्थितहै ॥ १५ ॥ यह चिदाकाश सर्वथा मूर्ति शून्य निराकार होनेपर भी निज सूक्ष्म स्वरूप देखता हुआ, द्रष्टा तथा दृश्यके तुल्य द्वैतभावको धारण करताहै ॥ १६ ॥

प्रकाशमणुमात्मानंपश्यंस्तदनुभावतः ॥ उच्छूनतांचेतयतेबीजमंकुरतामिव ॥ १७ ॥ देशकालक्रिया द्रव्यद्रष्टृदर्शनदृग्दृशः ॥ अर्थांतरस्वभावेनतिष्ठंत्यनुदिताभिधाः ॥ १८ ॥ चिदणुर्यत्रभातोसौदेशोमि तिमुपागतः ॥ यदाभातस्तदाकालोयद्भानंतक्रियास्मृता ॥ १९ ॥ उपलब्धंविदुर्द्रव्यंद्रष्टृताप्युपलब्धता॥ आलोकनंदर्शनतादृगालोकनकारणम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह मायाशबलित द्रष्टा अपने प्रकाशरूप आत्माको परिच्छिन्नके सदृश देखताहै और उससे वृद्धिको ऐसे अनुभव करता है जैसे बीज अंकुरताको ॥ १७ ॥ देश, काल, क्रिया, द्रव्य, द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यकी दृष्टि अर्थान्तर स्वभावसे आत्मामें अनिर्वचनीय रूपसे स्थित रहती हैं ॥ १८ ॥ जहां चित्का भान होताहै वहां देशकी कल्पना, जब भान होती है वही काल और जो भान है वही क्रिया कहाती है ॥ १९ ॥ जो उपलब्ध ज्ञात होताहै, उसे द्रव्य, वा ज्ञेय, जाननेवालेको द्रष्टा, आलोकनको दर्शन और आलोकनके कारणको दृक् कहते हैं ॥ २० ॥

एवमुच्छूनताभातिमितानंताथवाक्रमात् ॥ असत्यैवनभस्येवनभोरूपंवनिष्क्रमा ॥ २१ ॥ चिदणोर्भा सनंभातंतत्प्रदेशेनदेहगम् ॥ येनपश्यतितच्चक्षुःसंग्रहोक्षदृशामिति ॥ २२ ॥ चिदणुप्रतिभासेतःप्रथ मंनामवर्जितम् ॥ तन्मात्रशब्दमेतेषामेतदाकाशरूपितत् ॥ २३ ॥ चिदणुप्रतिभाकाशपिंडएवघन स्थितिः ॥ अनुसंधानविवशश्चेततींद्रियपंचकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार त्रिपुटीके भेदसे असत्यही चिदाकाशमें चिदाकाशरूप, देशकालादिसे परिमित अथवा आसंख्येय होनेसे अनन्त स्थूलता बिना क्रमके भासती है ॥ २१ ॥ और चेतनजीवको जिस छिद्रसे सूर्य्यआदिके प्रकाशका भान होताहै और जिस इन्द्रियसे वह देखताहै उन दोनोंको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं, यही रीति कर्णआदि सब

इन्द्रियोंकी संक्षेपसे जानना चाहिये ॥ २२ ॥ और श्रोत्रआदि इन्द्रियोंके पूर्व जो भूतोंकी स्थिति है उनको शब्द तन्मात्रा शब्दसे कहते हैं, क्योंकि वह सूक्ष्मतम आकाशरूपही हैं ॥ २३ ॥ इसप्रकार यह जीव चिदाकाशरूप रहते भी स्थूलदेह पिंडसहित होजाताहै और उस देहमें रूपादिके ज्ञानमें विवश होके पांचो इन्द्रियोंका अनुभव करताहै ॥२४॥

एवंचिदणुसंधानंदृश्यपोषमुपैत्यलम् ॥ तदेवज्ञानमित्युक्तंबुद्धिरित्यभिधीयते ॥ २५ ॥ ततोमनस्तदा रूढमहंकारपदंगतम् ॥ देशकालपरिच्छेदइत्यंगीकृतआत्मना ॥ २६ ॥ चिदणोरस्यभावस्यप्रत्ययंयत्र वेदनम् ॥ सतत्रोत्तरकालेनपूर्वाभिख्यांकरिष्यति ॥ २७ ॥ अन्यस्मिन्नेकदेशेसाऊर्ध्वाभिख्यांकरि ष्यति ॥ एवंदिगभिधानादिकल्पयिष्यतिसक्रमात् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार जीवका पुनः २ अनुसंधान पुष्टिको प्राप्त होताहै और इन्द्रियोंसे ग्रहण किये हुये विषयोंके स्मरणदशामें उस ज्ञानकी चित्त और निश्चयदशामें उसी ज्ञानको बुद्धि भी कहते हैं ॥ २५ ॥ और संकल्प विकल्पसे मन, अभिमानसे अहंकारपदको नहीं प्राप्त होताहै और देशकालके परिच्छेदको जीवने इस वक्ष्यमाण रीतिसे किया है ॥ २६ ॥ जिस जीवको जिस देश वा कालमें शब्दआदि विषयोंका ज्ञान होताहै उस देश वा कालको वह जीव उत्तर देशकालकी अपेक्षा पूर्वदेश वा काल नाम देगा ॥ २७ ॥ और उससे अन्य देशकालमें उत्तर यह नाम करेगा और देशके पूर्व पश्चिमआदि प्रतिजीव अपनी २ अपेक्षा अनेक नाम नियत करेगा ॥ २८ ॥

देशकालक्रियाद्रव्यशब्दानामर्थवेदनम् ॥ भविष्यतिस्वयमसावाकाशविशदोपिसन् ॥ २९ ॥ इत्थंस्वा नुभवेनैषव्योम्निव्योमरूपभृत् ॥ आतिवाहिकनामांतर्देहःसंपद्यतेचितेः ॥ ३० ॥ एषएवचिरंकालंतत्र भावनयातया ॥ गृह्णातिनिश्चयंपूर्णमाधिभौतिकमात्मनः ॥ ३१ ॥ व्योम्नाव्योम्न्येवरचितोनिर्मलेनेति विभ्रमः ॥ असतासत्समास्तीर्णस्तापनद्याजलंयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसप्रकार देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यादिके नामोंकी कल्पना करके संकेत ग्रहण करनेवाले पुरुषोंको शब्द सुननेपर अर्थ ज्ञानरूप आत्मा स्वयं आकाशवत् महान् होके भी परिच्छिन्न होजाताहै ॥ २९ ॥ इसप्रकार चेतनका प्रथम सूक्ष्मशरीर, पुनः देशकालादि विभाग अनंतर क्रमसे सब जगत् शरीर होजाताहै, और यथार्थमें चिदाकाशही चिदाकाशरूपसे जगत्को धारण किये है ॥३०॥ हे रामजी! यह जीवही सूक्ष्मशरीरमें चिरकाल स्थूलकी भावनासे अधिक स्थूलरूपका निश्चय करताहै ॥ ३१ ॥ निर्मल चिदाकाशनेही निजस्वरूपमें जगत्को रचा यह कैसा भ्रम है, असत् जगत्के समान ऐसे भासनेलगा जैसे मृगतृष्णाकी नदीका जल ॥ ३२ ॥

संकल्पनासुपादत्तेस्वदेहेगगनाकृतिः ॥ शिरःशब्दार्थदांकांचित्पादशब्दार्थदांकचित् ॥ ३३ ॥ उरः पार्श्वादिशब्दार्थमयींकचिदनाविलाम् ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गशब्दाद्यर्थमयीमपि ॥ ३४ ॥ नियताकार कलनांदेशकालादियंत्रिताम् ॥ विषयोन्मुखतांयातामिंद्रियव्रातवेधिताम् ॥ ३५ ॥ सोणुःपश्यत्यथाका रमात्मनःस्वात्मकल्पितम् ॥ हस्तपादादिकलितंचित्तादिकलनान्वितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—चिदाकाशरूप यह जीव अपने शरीरमेंही शिर शब्दार्थको और पाद शब्दार्थको देनेवाली कल्पना करताहै ॥ ३३ ॥ और कहीं वक्षस्थल, कहीं पार्श्व आदि शब्दार्थमयी कल्पना करताहै, इसीप्रकार यह जीव भाव अभाव ग्रहण तथा त्याग आदि शब्दार्थमयी कल्पनाको भी ग्रहण करताहै ॥ ३४ ॥ गो, अश्व आदि नियत आकार सहित, देशकाल आदि नियमित विषयकी ओर अभिमुख, तथा इन्द्रियोंके समूहसे वेधित कल्पनाको जीव धारण करताहै ॥ ३५ ॥ और इसके पश्चात् यह जीव स्वयं कल्पित हस्त, पाद आदि सहित तथा चित्त आदिकी कल्पनासहित अपने आकारको देखताहै ॥ ३६ ॥

एवंसंपद्यतेब्रह्मातथासंपद्यतेहरिः ॥ एवंसंपद्यतेरुद्रएवंसंपद्यतेकृमिः ॥ ३७ ॥ नचकिंचनसंपन्नंयथा स्थितमवस्थितम् ॥ शून्यंशून्येविलसितंज्ञप्तिर्ज्ञप्तौविजृंभिता ॥ ३८ ॥ प्रतिकंदःशरीराणांबीजंत्रैलोक्य वीरुधाम् ॥ सर्गार्गलप्रदोमुक्तेःसंसारासारवारिदः ॥ ३९ ॥ कारणंसर्वकार्याणांनेताकालक्रियादिषु॥ सर्वाद्यःपुरुषःस्वैरमित्यनुत्थितउत्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—इसीप्रकार संकल्पसेही ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा कृमि आदि भी शरीरधारी सिद्ध होतेहैं ॥३७॥ परंतु यथार्थमें कुछ नहीं उत्पन्न हुआ किंतु यथा चेतन है शून्यमें शून्य, चित्में चिद्विलासमात्र है ॥ ३८ ॥ व्यष्टि शरीरोंके नियत मूल, त्रिलोकीरूपी लताके बीज, मुक्तिके द्वारमें सृष्टिरूप अर्गलाके दाता तथा संसाररूपी धाराओंके मेघ ॥ ३९ ॥ सब कार्य्योंके कारण, देश, काल तथा क्रिया आदिके नायक और सबके आदि विराट्पुरुष भी व्यष्टि जीवके समान स्वयं संकल्पमात्रसे आविर्भूत हुये हैं और यथार्थमें चित्स्वरूपसेही स्थित हैं ॥ ४० ॥

नास्यभूतमयोदेहोनास्यास्थीनिशरीरके ॥ अवष्टब्धुमसौमुष्ट्याशक्यतेनतुकेनचित् ॥ ४१ ॥ तेनाब्धिमेघसंग्रामसिंहगर्जोर्जितात्मना ॥ अपिसुप्तनरेणेवनूनंमौनवतास्थितम् ॥ ४२ ॥ जाग्रतःस्वप्नसंदृष्टयोद्धारभटिवेदनम् ॥ यथास्मृतिगतंनासन्नसत्तद्वदसौस्थितः ॥ ४३ ॥ बहुयोजनलक्षौघप्रमाणोपिबृहद्वपु ॥ परमाण्वंतरेभातिलोमांतस्थजगत्रयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—न तो इनका देह भौतिक है और न इनके शरीरमें अस्थि (हड्डियां) हैं इसलिये इनको कोई हस्तसे नहीं ग्रहण करसकता है ॥४१॥ जैसे स्वप्नमें समुद्रोंकी मेघोंकी संग्रामोंकी तथा सिंहोंकी गर्जनासहित स्वप्नस्थ पुरुष यथार्थमें मौनही रहताहै ऐसेही विराट् भी चित्स्वरूपमें प्रपंचरहित स्थित हैं ॥ ४२ ॥ जैसे स्वप्नमें दृष्ट योद्धाओंके कोलाहलका ज्ञान जाग्रत्में स्मरण दशामें प्राप्त न तो सर्वथा असत् है और न सत् है ऐसेही यह जगत्का प्रपंच है ॥ ४३ ॥ अनेक लक्ष योजनोंके समूहोंतक विस्तृत प्रमाणवाला तथा अति महाशरीर यह त्रैलोक्य, लोमके सूक्ष्म अग्रभागके अन्तमें स्थित मायासे परमाणुके भीतर भी भासताहै ॥ ४४ ॥

कुलशैलगुणौघात्माजगद्वंदात्मकोपिसन् ॥ कुलायंधानकामात्रमपिनोपूरयत्यजः ॥ ४५ ॥ जगत्कोटिशताभोगविस्तीर्णोप्यणुमात्रकम् ॥ वस्तुतोव्याप्तवानेषनदेशंस्वप्नशैलवत् ॥ ४६ ॥ स्वयंभूरेषकथितोविराडेषसउच्यते ॥ ब्रह्मांडात्माजगद्देहोवस्तुतस्तुनभोमयः ॥ ४७ ॥ सनातनइतिप्रोक्तोरुद्रइत्यपिसंज्ञितः ॥ इंद्रोपेंद्रमरुन्मेघशैलजालादिदेहकः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सात महाकुलपर्वतों तथा गुणोंके समूहोंके आधार और अनेक ब्रह्मांडोंके समूहमय होकर भी ब्रह्माजी वटके बीजमात्र छिद्रकोभी नहीं पूर्ण करसकते ॥ ४५ ॥ अनेककोटि जगत्की पूर्णता करनेवाले विशाल आकारधारी होकर भी अणुमात्ररूप अज हैं, यथार्थमें स्वप्नके पर्वतोंके समान ये देशको नहीं घेरते ॥ ४६ ॥ इन्हीको स्वयंभू, विराट्, ब्रह्मांडात्मा और जगत् देहभी कहते हैं, यथार्थमें ये चिदाकाशरूपहैं ॥ ४७ ॥ और यही सनातन पुरुष कहे गये हैं, रुद्र संज्ञाभी इन्हीकी है तथा इन्द्र, उपेन्द्र, पवन, मेघ और पर्वतसमूहोंकी देह यही हैं ॥ ४८ ॥

तेजोणुमात्रंप्रथितंचेतित्वात्प्रथमंवपुः ॥ क्रमेणस्फारसंवितिर्महानहमितिस्थितः ॥ ४९ ॥ स्पंदसंवेदनात्तेनस्पंदइत्यनुभूयते ॥ यःसएवानिलाभिख्योवातस्कंधात्मनास्थितः ॥ ५० ॥ प्राणापानपरिस्पंदोवेदनादनुभूयते ॥ तेनयःसोयमाकाशेवातस्कंधउदाहृतः ॥ ५१ ॥ चित्तायेकल्पितास्तेनबालेनेवपिशाचिकाः ॥ तेजःकणाअसंतोपितएतेधिष्ण्यतांगताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमचित् सबको चेतित करनेसे चित्त शरीर हुई, और वक्रक्रमसे महाज्ञान सहित ब्रह्मांड देह मैं हूं, इसप्रकार जगत् शरीर होगया ॥ ४९ ॥ स्पन्दकी संवित्से वे स्पन्द (प्राणादिके संचलन) को अनुभव करते हैं और जो उनके प्राणहैं वेही पवननामसे वातस्कन्धरूपसे स्थितहैं ॥ ५० ॥ स्पन्द संवित्से जो प्राण अपानके स्पन्दको स्वयंभू अनुभव करते हैं उसी उनके प्राण स्पन्दको हमने वातस्कन्धके नामसे कहाहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! बालकके चित्तसे पिशाचके समान केवल चित्तमात्रसे कल्पित अविद्यमान ये तेजके कण सूर्य्य चन्द्र और नक्षत्रादि रूपताको प्राप्त हुये हैं ॥ ५२ ॥

प्राणापानपरावर्त्तदोलातद्वदरोदिता ॥ वातस्कंधाभिधांधत्तेजगत्तद्धृदयंमहत् ॥ ५३ ॥ प्रतिच्छंदशरीराणांप्रथमंबीजमेषसः ॥ जगद्गतानांसर्वेषामाकल्पव्यवहारिणाम् ॥ ५४ ॥ प्रतिछंदायदेतस्माद्वुत्थिताजगदात्मना ॥ देहास्तदायथाबाह्यमंतरेषांतथास्थितम् ॥ ५५ ॥ चितिस्तस्याद्यबीजस्यपूर्वमेवयथोदिता ॥ तथैवाद्यापिजीवेंतस्तथोदेतितदीहिता ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्राण तथा अपानके परिवर्तकी दोला (झूला) उसकी उदरता वातस्कन्ध इस नामको धारण करती है और उसीको महान् जगत्का हृदयभी कहते हैं ॥ ५३ ॥ जगत्के भीतर कल्पपर्य्यन्त व्यवहार करनेवाले सब जीवोंकी इच्छासे कल्पित व्यष्टि शरीरोंके प्रथम बीज यही स्वयंभू हैं ॥ ५४ ॥ और इनसे उत्पन्न प्रतिजीवोंकी इच्छासे प्रकटित जो अनेक ब्रह्मांडदेह हैं उनके भी बाहर भीतर ये एकरूपसे स्थितहैं ॥ ५५ ॥ जैसे एक आदि बीजसे अनेक वृक्ष तथा बीजोंकी परंपरा प्रकट होती है ऐसेही हिरण्यगर्भरूप चेतनकी इच्छासे प्रत्येक जीवोंसे ब्रह्मांडकी परंपर उत्पन्न होतीहै ॥ ५६ ॥

श्लेष्मपित्तानिलास्तस्यचंद्रार्कपवनास्त्रयः ॥ ग्रहाऋक्षगणास्तस्यप्राणाष्ठीवनसीकराः ॥ ५७ ॥ तस्यास्थीन्यद्रिजालानिमेदसोजातिकाघनाः ॥ शिरःपादौत्वचंदेहान्पश्यामस्तस्यनोवयम् ॥ ५८ ॥ वपु

विराजोजगदंगविद्धीसंकल्परूपस्यहिकल्पनात्म ॥ आकाशशैलावनिसागरादिसर्वंचिदाकाशमतः प्रशांतम् ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० विराडात्मवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

अर्थ—और हिरण्यगर्भके श्लेष्मा, पित्त तथा वायु संसारके चन्द्रसूर्य्य और पवनहैं, और अन्यग्रह तथा नक्षत्रगण, उनके प्राणकेष्टीबनके सीकर अर्थात् श्लेष्माके बिन्दुहैं ॥ ५७ ॥ और पर्वत समूह हिरण्यगर्भकी अस्थि (हड्डी) हैं, मेघसमूह मेदाहैं, और उनके नीचे ऊपरके कपालोंको, ब्रह्मांडोंके आवरणरूपी त्वचाको तथा अन्यदेहोंको भी दूर होनेसे हम नहीं देखते ॥ ५८ ॥ हे प्रियरामजी ! इस जगत्को संकल्परूप विराट्पुरुषका कल्पनामय शरीरही जानो और मनसे कल्पित पदार्थ सत्य नहीं होता इसलिये यह आकाश पर्वत, पृथिवी तथा समुद्र आदि सब जगत् शान्त चिदाकाशही है ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० विराडात्मवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

जो लोक इन ब्रह्माके जैसे पृथक् २ अंग हैं, और जिसप्रकार ये सबके भीतर स्थितहैं, यह सब विषय इस ७४ के सर्गमें वर्णितहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मिन्कल्पेतुसंकल्पेतस्ययद्वपुरास्थितम् ॥ शृणुतत्रव्यवस्थेयंविचित्राचारहारिणी ॥ १ ॥ परमंयच्चिदाकाशंतद्विराडात्मनोवपुः ॥ आद्यंतमध्यरहितंलघुत्वस्यवपुर्जगत् ॥ २ ॥ संकल्परहितोब्रह्मास्वांडंसंकल्पनात्मकम् ॥ वपुषःपरितोभास्वत्पश्यत्याकाशमेवतत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मात्मैषस्वसंकल्पंस्वमंडमकरोद्विधा ॥ तैजसंतैजसाकारःपुष्टःपुष्टंविहंगवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! उस शिलाके भीतर दृष्ट ब्रह्माके कल्पमें जो विराट्पुरुषका संकल्पमय ब्रह्मांडरूप शरीर है, उसमें विचित्र आचारोंसे चित्तको हरनेवाली व्यवस्थाको सुनो ॥ १ ॥ आदि अन्त मध्यरहित परमचिदाकाशही इस विराट्का प्रथम कल्पना रहित शरीर है और उसका कल्पित यह जगत्रूप शरीर तो अति लघु है ॥ २ ॥ उस निज संकल्पित ब्रह्मांड शरीर बाहर संकल्प रहित ब्रह्मा सत्य सिद्ध ब्रह्मांडको अपने चारों ओर देखते हैं और यथार्थमें वह ब्रह्मांड भी प्रकाशमय चिदाकाशही है ॥ ३ ॥ लिंगसमष्टिके अभी तेजोमय चिदाकाशरूप ब्रह्माजीने निजकल्पित सुवर्णरूप ब्रह्मांडका दो ऐसे भाग किया जैसे अपने पुष्ट अंडका पक्षी ॥ ४ ॥

अंडस्यैकंनभोदूरंगतंसंबुद्धवानसौ ॥ भुवोधःसंस्थितंभागंव्यतिरिक्तंचनात्मना ॥ ५ ॥ ब्रह्मांडभागऊर्ध्वस्थोविराजःशिरउच्यते ॥ अधोभागोस्यपादाख्योनितंबोमध्यमात्रखम् ॥ ६ ॥ दूरंविमुक्तयोः संधिःखंडयोरितिविस्तृता ॥ अनंताव्योमलेखासाश्यामाशून्येतिदृश्यते ॥ ७ ॥ द्यौस्तालुविपुलंतस्यतारारुधिरबिंदवः ॥ संविद्वातलवादेहेसुरासुरनरादयः ॥ ८ ॥

अर्थ—ऊपरके एक भागको उन्होंने दूरगामी आकाश कल्पित किया और अधोभाग यह पृथिवी आदि लोक स्थितहै, परन्तु ये सब आत्मासे भिन्न नहीं हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मांडके सबके ऊपरका भाग विराट्पुरुषका शिर है अधोभाग पृथिवी आदि पाद है और दोनोंके मध्यका अन्तरिक्ष आकाश नितंब है ॥ ६ ॥ अति दूर विभक्त अंडके दोनों कपालोंकी मध्य संधि जो अति विस्तृतहै वह अनन्त श्यामवर्ण आकाशकी मनुष्योंके दृष्टि गोचर होती है ॥ ७ ॥ अन्तरिक्ष विराट्पुरुषका विशाल तालु है, तारागण रुधिरके बिंदु हैं और देहमें सुर असुर तथा मनुष्यआदि बुद्धि तथा प्राणकी वृत्तियोंके भेद हैं ॥ ८ ॥

देहांतःक्रमयस्तस्यभूतप्रेतपिशाचकाः ॥ लोकांतराणिरंध्राणिसुषिराण्यस्यदेहके ॥ ९ ॥ ब्रह्मांडखंडमस्याधोविस्तृतंपादयोस्तलम् ॥ जानुमंडलरंध्राणिपातालकुहराण्यधः ॥ १० ॥ जलैश्चलचलायंतीसुषिरानेकरंध्रिका ॥ भूरंतर्मंडलीलोलासमुद्रद्वीपवेष्टना ॥ ११ ॥ जलैर्गुडगुडायंत्योनद्योनाड्यःसरिद्रसः ॥ जंबूद्वीपंहृदंभोजमस्यहेमाद्रिकर्णिकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और भूत प्रेत पिशाचादि इसके देहके कीडे हैं, और अनेक लोक लोकान्तर इनकी देहके छिद्र हैं ॥ ९ ॥ इस भूमण्डलके नीचेका विशाल ब्रह्मांडखण्ड दोनोंपादोंका तल जानुमण्डल है और अनेक छिद्र पातालआदि गर्त हैं ॥ १० ॥ और जलोंसे चलायमान, अनेक छिद्र सहित तथा चंचल समुद्र द्वीपआदि वेष्टन संयुक्त पृथिवी विराट्पुरुषकी मध्यस्थ वस्ति जघन और नितंब मण्डली है ॥ ११ ॥ जलोंसे गुड २ शब्द करनेवाली नदियां उसकी नाडी हैं, नदियोंका जल शरीरका रस है और हेमाद्रि कर्णिका सहित जंबूद्वीप इसका हृदयस्थ कमल है ॥ १२ ॥

कुक्षयःककुभःशून्यायकृत्प्लीहादयोचलाः ॥ मृद्वयःस्निग्धाःपटाकारामेदसोजालिछाघनाः ॥ १३ ॥ चंद्रार्कौलोचनेतस्यब्रह्मलोकोमुखंस्मृतम् ॥ तेजःसोमोस्यकथितःश्लेष्माप्रालेयपर्वतः ॥ १४ ॥ अग्निलोकस्तथौर्वाग्निःपित्तमस्यातिदुःसहम् ॥ वातस्कंधमहावाताःप्राणापानाहृदिस्थिताः ॥ १५ ॥ कल्पद्रुमवनान्यस्यसर्पवृंदानिचक्वचित् ॥ लोमजालान्यनंतानिवनान्युपवनानिच ॥ १६ ॥

अर्थ—शून्य दिशा कुक्षि, पर्वत यकृत् प्लीहादि (पिल्ली) हैं तथा कोमल, चिक्कण और पटाकार मेदा (चर्बी) मेघजाल हैं ॥ १३ ॥ चन्द्र सूर्य्य इसके नेत्र हैं, ब्रह्मलोक मुख हैं वीर्य्य सोम हैं और श्लेष्मा हिमके पर्वतहैं ॥ १४ ॥ अग्नि लोक तथा पृथिवीके भीतरकी अग्नि इसकी दुःसह पित्तहै, और हृदयमें स्थित प्राण अपान वातस्कन्धके भेद महावातहैं ॥ १५ ॥ कल्पवृक्षोंके वन, पातालादिमें प्रसिद्ध सर्पोंके समूह तथा वन और उपवन इस विराट्पुरुषके लोम (रोम) समूह हैं ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वब्रह्मांडखंडंतुसमस्तगुरुमस्तकम् ॥ ब्रह्मांडप्रांतरंध्रार्चिरस्यदीप्ताशिखोत्थिता ॥ १७ ॥ स्वयमेष मनस्तेनमनोनास्योपयुज्यते ॥ आत्मैवभोक्तृतामेतिकिलकस्यकथंकुतः ॥ १८ ॥ स्वयमेवेंद्रियाण्येषते नान्यत्रास्तिताकृता ॥ यतस्तत्कल्पनामात्रमेवेंद्रियगणःकिल ॥ १९ ॥ अवयवावयविनोरिवेहेंद्रियचित्तयोः ॥ नमनागपिभेदोस्तिचैक्यमेकशरीरयोः ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मांडके खंडका समस्त ऊर्ध्वभाग इसका विशाल मस्तक है, और ऊपरके ब्रह्मांडके छिद्रोंमें प्रसिद्ध दीप्ति इसकी प्रदीप्त शिखा (चोटी) है ॥ १७ ॥ समष्टि व्यष्टि मनके आत्मा ब्रह्माजी स्वयं ब्रह्मके मनरूपही हैं इसलिये इनको मनका उपयोग नहीं है, जब आत्माही भोक्तृता दशाको प्राप्त होताहै तब इसमें मनका संभव कैसे हो ॥ १८ ॥ ये स्वयंभू स्वयं सब इन्द्रियरूप हैं इस उनकी अस्तिता अन्यत्र (अस्मदादिमें) की गई है, और यह इन्द्रियगण कल्पमात्रही हैं ॥ १९ ॥ अवयव और अवयवीके सदृश एक शरीरधारी चित्त (मन) तथा इन्द्रियका किंचित् भी भेद नहीं है, किंतु एकता है ॥ २० ॥

तस्यतान्येवकार्याणिजगतांयानिकानिचित् ॥ संकल्पाएवपुंवृत्त्याचलंत्यारुपितद्विताः ॥ २१ ॥ जागते तस्यविज्ञेयेनान्येस्यमृतिजन्मनी ॥ सएवेदंजगत्यस्मत्संकल्पात्मास्यनेतरत् ॥ २२ ॥ तत्सत्तयाजगत्सत्तातन्मृत्यैवजगन्मृतम् ॥ यादृशीस्पंदमरुतोःसत्तैकातादृशीतयोः ॥ २३ ॥ जगद्विराजोःसत्तैका पवनस्पंदयोरिव ॥ जगद्यत्सविराडेवयोविराट्तज्जगत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और जगत्की संपूर्ण क्रिया उसकी क्रिया हैं क्योंकि ब्रह्माके संकल्पही सब जीवोंके रूपसे आरोपित द्वैतसहित जगत्के व्यवहार चलते हैं ॥ २१ ॥ संपूर्ण जगत्की उत्पत्ति तथा नाशको ब्रह्माके जन्ममरण समझना चाहिये न कि प्रत्येकके, क्योंकि अस्मदादिके तथा समष्टिके संकल्परूप वही है न कि अन्य ॥ २२ ॥ उसकी सत्तासे जगत्की सत्ता, और उसके अभावसे जगत्का भी नाश है, जैसे वायु और उसके स्पन्दकी एक सत्ता है ऐसेही ब्रह्मा तथा उनके कल्पित जगत्की भी है ॥ २३ ॥ पवन तथा उसके स्पंदके समान विराट् तथा जगत्की एकसत्ता है, जो जगत् वही विराट् और जो विराट् वही जगत् कहागयाहै ॥ २४ ॥

जगद्ब्रह्माविराट्चेतिशब्दाःपर्यायवाचकाः ॥ संकल्पमात्रमेवैतेशुद्धचिद्व्योमरूपिणः ॥ २५ ॥ श्रीराम उवाच ॥ संकल्पात्सविराडेवस्वमेवाकृतिमागतम् ॥ अस्तुनामस्वदेहांतःकथंब्रह्मैवतिष्ठति ॥ २६ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथाध्यानेनदेहांतस्तिष्ठसित्वंयथास्थितम् ॥ तथास्तेनिजदेहेंतःसंकल्पात्मा पितामहः॥२७॥ नृणांतथाचमुख्यानांजीवोब्रह्मपुरोदरे॥उत्पत्तिपुत्रिकादेहःप्रतिबिंबोपमोस्तिसः॥२८॥

अर्थ—जगत्, विराट् तथा ब्रह्मा ये तीनो ऐकार्थवाची तथा शुद्ध चिदाकाशके संकल्पमात्र चिदाकाशरूपही हैं ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले कि— संकल्पसे चिदाकाशरूपही विराट् साकारताको प्राप्त हुये यह तो मैंने स्वीकार किया परंतु वह ब्रह्मा अपने शरीरके भीतर कैसे रहतेहैं यह कहिये ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! जैसे

मानस पूजाके ध्यानमें हृदयमें कल्पित रत्नमंडपमें स्थित देवमें अपने प्रविष्ट करके उन कटस्थ छत्र, चमर, व्यजन, नैवेद्य दर्पण तथा तांबूलादिसे पूजा करते हुये अपनेको अनुभव करतेहो ऐसेही ब्रह्माजी अपने शरीरके भीतर रहतेहैं ॥ २७ ॥ और विवेकी सब मनुष्योंका जीव स्थूल शरीरके भीतर हृदयकमलमें स्थित रहताहै, यह सबका देह उत्पन्न हुई प्रतिमाकार है उसमें दर्पणके प्रतिबिंबके सदृश ब्रह्माजी हैं ॥ २८ ॥

यत्रत्वमहिदेहांतःकर्तुंशक्तोस्यलंस्थितम् ॥ संकल्पात्माविभुस्तत्रब्रह्माकिंनकरिष्यति ॥ २९ ॥ बीजांतःस्थावरंह्यास्तेपदार्थेयत्रजंगमः ॥ किंनास्तेतत्रदेहेंतर्निजचित्कल्पनात्मिका ॥ ३० ॥ साकारोगगनात्मास्तुनिराकारंखमस्तुवा ॥ आस्तेबहिरथांतश्चभिन्नेबाह्यांतरेबहिः ॥३१॥ आत्मारामःकाष्ठमौनीनजडोपिदृषज्जडः ॥ अहंत्वमित्यादिमयोविराडात्मनितिष्ठति ॥३२॥ आवेष्टितोज्झितलतातृणदारुपुंवद्दुच्छब्दमंबुरयवच्चविरोपितांगः ॥ नानाविधेपिविहरन्नपिकार्यजालेतज्ज्ञःशिलाजठरशांतमनस्कएव ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० विराडात्मवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—जब तुम भी अपने स्थूलदेहके भीतर पूर्णरीतिसे स्थिति करसकते हो तब मल संकल्पमय सर्व शक्तिमान् ब्रह्माजी क्यों न करेंगे ॥ २९ ॥ जब बीजके भीतर स्थावर भी स्थित रहताहै तब प्रकट सब शक्ति चित् कल्पनामय ब्रह्माजी क्यों न रहेंगे ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी ब्रह्मांडरूपसे चाहें साकार रहें, चाहें निराकार चिदाकाशरूपहों परन्तु वे सब पदार्थोंमें बाहर भीतर स्थितहैं, और बाह्य तथा आभ्यन्तरकी कल्पनाही ये दोनों भिन्नहैं यथार्थमें नहीं ॥ ३१ ॥ आत्माराम, काष्ठवत् मौन, जड न होकर भी पाषाणवत् जड और अहं त्वं इत्यादि रूप होकर भी विराट् पुरुष अपने आत्मामें ज्योंके त्यों स्थित रहते हैं ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! न केवल विराट् पुरुष किन्तु सब तत्वज्ञानी लता तृणादिकी प्रतिमाके सदृश प्रथम रज्जु आदिसे बांधनेपर और पुनः मुक्त होनेपरभी क्रोधरहित,मौन रहते हैं और जलके प्रवाहके समान अवरुद्ध तथा छिन्न भिन्न अंग होनेपर भी निज शांत स्थितिको नहीं त्यागते, तथा नानाप्रकारके कार्य्यजालोंमें बिहार करतेहुये पाषाणशिलाके उदरके समान क्रोधादिरहित शांतचित्तही स्थित रहते हैं ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विराडात्मवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

ब्रह्माजीके ध्यानमें तत्पर होनेपर द्वादश आदित्यका संभव और सब जगत्को जलाते हुये प्रलयके पवनका वर्णन इस ७५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाग्रस्थब्रह्मलोकोब्रह्मणिध्यानशालिनि ॥ निक्षिप्ताक्षःशनैर्दिक्षुदृष्टवानहमग्रतः ॥ १ ॥ द्वितीयमर्कमध्याह्नेपश्चादभ्युदितंस्फुटम् ॥ दिग्दाहमिवदिग्वक्त्रेवनदाहमिवाचले ॥ २ ॥ वह्निलोकमिवव्योम्निवडवाग्निमिवार्णवे ॥ ततोपश्यमहंदीप्तंसूर्यंनैर्ऋतदिङ्मुखे ॥ ३ ॥ सूर्ययाम्येककुब्भागेसूर्यमग्निककुब्मुखे ॥ सूर्यमैंद्रककुब्भागेसूर्यमीशानदिङ्मुखे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! जब ब्रह्माजी ध्यानमें तत्पर हुये तब मैंने इन्द्रादिके नगरोंके पात देखनेके पश्चात् धीरेसे दिशाओंकी ओर दृष्टि डाली, तब सन्मुख क्या देखताहूं कि ॥ १ ॥ दिशाओंके मुखमें दाहके समान, और पर्वतपर बनके दाहके तुल्य मध्यान्हके सूर्य्यकी अपेक्षा द्वितीयसूर्य्य पश्चिमदिशामें स्पष्ट उदितहैं ॥ २ ॥ इसके पश्चात् आकाशमें अग्निलोकके समान और समुद्रमें वडवानलके तुल्य प्रदीप्त अन्य सूर्य्य नैऋत्यदिशामें मैंने देखा ॥ ३ ॥ अनन्तर दक्षिणदिशामें अग्निके सदृश प्रज्वलित सूर्य्यको देखा, पुनः पूर्व तथा ईशान (पूर्वोत्तरके कोण) दिशामें भिन्न २ सूर्य्य मैंने देखे ॥ ४ ॥

कुबेरककुभिसूर्यंसूर्यंवायव्यदिक्तटे ॥ सूर्यंवरुणदिग्भागेतेनविस्मयवानहम् ॥ ५ ॥ यावद्विचारयाम्याशुविधिवैधुर्यमाकुलम् ॥ उदभूद्भूतलात्तावदर्कऔर्वइवार्णवात् ॥ ६ ॥ एकादशेखिलार्काणांप्रतिबिंबमिवोत्थितम् ॥ उदभूत्त्रयमर्काणामंतरेदिग्गणांबरे ॥ ७ ॥ तद्विरौद्रंवपुस्तत्रतन्मध्येलोचनत्रयम् ॥ तद्द्वादशपरीमाणंदीप्तंवृंदंविवस्वताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पश्चात् उत्तर, वायव्य (उत्तर पश्चिमके कोण) तथा पश्चिमदिशामें भिन्न २ सूर्य्य देखकर मैं विस्मित होगया ॥ ५ ॥ इतनेमें जब ज्यों मैं व्याकुल होके दैवकी प्रतिकूलताको विचारने लगा त्योंही शीघ्र पृथिवीतलसे

सूर्य्य ऐसे प्रकट हुआ जैसे समुद्रसे वडवानल ॥ ६ ॥ पुनः मध्यआकाशमें जो एकादश सूर्य्यउदय हुआ उसमें सब सूर्य्योंके प्रतिबिंबके समान तीन सूर्य्य और उदय हुये ॥ ७ ॥ वे तीनों सूर्य्य शिवजीके शरीरहैं और उनमें तीन नेत्र थे, अति प्रदीप्त वह द्वादशसूर्य्योंका समूह ॥ ८ ॥

सर्वदिक्कंददाहोच्चैःशुष्कंवनमिवानलः ॥ अथोदभूज्जगत्खंडशोषणग्रीष्मवासरः ॥ ९ ॥ अनग्निरग्निदाहोद्रागदृश्योल्मुकगुल्मकः ॥ अनग्निनाग्निदाहेनतेनतामरसेक्षण ॥ १० ॥ अंगानिदावदग्धानिखिन्नानीवममाभवन् ॥ प्रदेशंतमथत्यक्त्वादूरमारूढवाहनम् ॥ ११ ॥ दृढहस्ततलाघातहतकंदुकवन्नभः ॥ अपश्यंगगनस्थोहमुदितंचंडतेजसम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सब दिशाओंको ऐसे जलाने लगा जैसे सूखे वनको अग्नि और इसके पश्चात् जगत्को शुष्क करनेवाला प्रचंड ग्रीष्मऋतुका दिवस प्रकट हुआ ॥ ९ ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! इसके अनन्तर शीघ्र बिना अग्नि अग्निका दाह और अदृश्य उल्का उत्पन्न हुये, उस अग्निके दाहसे ॥ १० ॥ मेरे अंग दग्धके समान खिन्न होगये, और इसके पश्चात् उस स्थानको त्यागकर दूर आकाशदेशमें मैं आरूढ होगया ॥ ११ ॥ और प्रबल हस्तसे ताडित कन्दुक (गेंद) के सदृश चलके दूर आकाशमें स्थित होके प्रचंड तेजयुक्त उदयको अति प्रदीप्त प्राप्त द्वादश सूर्य्य समूहको मैंने देखा१२

तपंतंद्वादशादित्यगणंदिक्षुदशस्वपि ॥ बृहत्तत्रसतारावज्वालेवभगणंचलम् ॥ १३ ॥ महाकुहकुहाशब्दंक्वथत्सप्ताब्धिडंबरम् ॥ सज्वालोल्मुकनीरंध्रलोकांतरपुरांतरम् ॥ १४ ॥ ज्वालाघनपटाटोपसिंदूरीकृतपर्वतम् ॥ दीप्यमानमहागारस्थिरविद्युत्ककुत्पटम् ॥ १५ ॥ स्फुरत्कटकटाटोपचटत्पत्तनमंडलम्॥ विदधद्भूतलोद्भूतधूमदंडैःशिलाघनैः ॥ १६ ॥ काचस्तंभसहस्राढ्यंभुवनस्थानमंडपम् ॥ क्वथद्भूतमहाभूततारार्कंदातिघर्घरम् ॥ १७ ॥

अर्थ—और उन समूहसे उन दिशाओंमें तारागण सहित आकाशको पूर्ण करनेवाली ज्वालाके समान चंचल वर्तुलाकार नक्षत्र चक्रको मैंने देखा ॥ १३ ॥ हे रामजी ! महाकुह २ शब्दसहित, सप्तसमुद्रको क्वाथ (काढा) करनेवाले तथा ज्वालासहित उल्मुकोंसे लोकलोकान्तर तथा नगरोंको व्याप्त करनेवाले द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ १४ ॥ तथा ज्वालारूपी मेघोंसे रक्तवस्त्रोंके समूहद्वारा पर्वतोंको भी सिंदूरवर्ण करनेवाले और दीप्यमान लोकपालोंके स्थानोंमें स्थिर विद्युत (बिजुली) के सदृश दिशामण्डलको करनेवाले द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥१५॥ तथा प्रकट कटकटा चटचटा शब्दोंसे संयुक्त नगरसमूहोंको करते हुये, शिलाके समान घनीभूत दंडाकार धूमोंसे चतुर्दश भुवनरूप स्थानके मण्डपको सहस्रों काचके स्तंभों (खंभों) से पूर्ण करते हुये और जलते हुये सब प्राणी तथा पृथिवी आदि भूतोंके उच्चरोदनोंसे घर्घरशब्द संयुक्त द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ १६ ॥ १७ ॥

भूतलोकपुरापातस्फुटच्चटचटोद्भटम् ॥ ताराविशरणोद्घातघृष्टरत्नधरातलम् ॥ १८ ॥ सर्वस्थलालयचलद्दह्यमानजनव्रजम् ॥ क्षीणाक्रंदकथद्भूतगणदुर्वासदिक्तटम् ॥ १९ ॥ उत्तप्तांबूदराखिन्नजलेचरमहार्णवम् ॥ सर्वदिक्कानलप्लोषक्षीणाक्रंदपुरांतरम् ॥ २० ॥

अर्थ—सब प्राणीलोक और उनके नगरोंके चारों ओरसे पतनसे चटाचटा शब्दोंसे पूर्ण तथा अश्विनीआदि तारागणोंके पतनके प्रहारोंसे धरातलको वर्षित करते हुये द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ १८ ॥ सब स्थान तथा गृहोंमें सर्वथा भस्म होतेहुये प्राणियोंके समूहोंको भगातेहुये तथा रोदनपूर्वक जलतेहुये मृतक प्राणियोंसे सब दिशाओंको दुर्गन्धयुक्त करनेवाले द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ १९ ॥ अति सन्तप्त समुद्रके जलसे जल जीवोंको व्याकुल करनेवाले और सब दिशाओंमें व्याप्त अग्निके दाहसे प्राणियोंके मरणसे अनेक नगरोंको रोदनसे शान्त करनेवाले द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ २० ॥

विदलद्दग्धदिग्दंतिदंतोत्तंभितभूधरम् ॥ धराधरदरीरंध्रधूममंडलकुंडलम् ॥२१॥ पतत्पर्वतनिष्पिष्टप्लुष्टपत्तनमंडलम् ॥ पचत्पचपचाशब्दशब्दिताद्रींद्रकुंजरम् ॥ २२ ॥ तापतप्तोन्मद्भूतज्वरिताणवपर्वतम्॥ हृदयस्फोटनिःसारपतद्विद्याधरांगनम् ॥ २३ ॥ आक्रंदरोदनश्रांतमूर्द्धनिःसरणामरम् ॥ नागलोकज्वलज्ज्वालापातालोत्तप्तभूतलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—दलित तथा दग्ध दिशाओंके हस्तियोंके दन्तरूपी स्तंभोंसे पृथिवीको अधोभागमें धारण करानेवाले और पर्वतोंकी कन्दराको धूमण्डलसे पूर्ण करनेवाले द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥२१॥ तथा गिरते हुये पर्वतोंसे

जलेहुये नगरोंके समूहोंको चूर्ण करनेवाले और पचपचाशब्दोंकेसा महापर्वत तथा उनके हाथीको भी जलानेवाले द्वादशसूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ २२ ॥ महातापसे सन्तप्त उछलते हुये समुद्र तथा पर्वतोंको ज्वर संयुक्त करनेवाले तथा हृदयकी विदीर्णतासे साररहित विद्याधर और उनकी अंगनाओंको गिराते हुये द्वादश सूर्य्यमण्डलको मैंने देखा ॥ २३ ॥ हे रामजी ! कोई तो उससमय आक्रन्द तथा रोदनसे श्रान्त होगये थे, कोई योगीजन ब्रह्मरंध्रसे प्राणोंके निःसारणसे अमर होगये थे और नागलोकसे जलती हुई ज्वालासे पातालपर्य्यन्त भूतल उस सूर्य्यसे सन्तप्त होगया था ॥ २४ ॥

शुष्कार्णवसदापक्वविवर्तोग्रजलेचरम् ॥ और्वेणाबिंधनाभावात्प्रोड्डीयेवसहस्रधा ॥ २५ ॥ गतेननृत्य तोत्थायगृहीतगगनांगनम् ॥ अथोदभूज्ज्वलज्ज्वालाकिंशुकांशुकशोभितः ॥ २६ ॥ तांडवायेवकल्पाग्निस्तरलोल्मुकमाल्यवान् ॥ तारंपटपटोटीपारटद्वटइवोद्भटः ॥ २७ ॥ ज्वालोद्भुजोधूमकुचोजगज्जीर्ण कुटीनटः ॥ जज्वलुर्वनजालानिपुराणिनगराणिच ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा शुष्क समुद्रोंमें संघट्टनोंसे भयंकर जलचारी जीवोंको क्वथित करनेवाले द्वादश सूर्य्यमंडलको मैंने देखा, तथा जलरूप इंधनके अभावसे अनेकप्रकारसे वडवानलके उडानेसे नृत्य करते हुये अप्सरागणको ग्रहण करनेवाले द्वादश सूर्य्यगणको मैंने देखा इसके पश्चात् जलती हुई ज्वालारूप रक्तवस्त्रसे शोभित ॥ २५ ॥ २६ ॥ चंचल उल्मुकरूप मालाधारी, उच्च पटपटा शब्दोंसे तडकनेवाले वांश आदिसे अनेक वाद्यसहित वीरके समान शोभित॥२७॥ महाप्रज्वलित ज्वालारूप भुजासंयुक्त और धूमरूपी केशोंसे भूषित प्रलयकी अग्निरूप नट मानों जगत्‌रूपी जीर्ण कुटीमें तांडवनृत्य करनेको उद्यत हुआ, उस प्रलयकी अग्निसे बनोंके समूह ग्राम तथा नगर सब जलनेलगे ॥ २८ ॥

मंडलद्वीपदुर्गाणिजंगलानिस्थलानिच ॥ सर्वखानिमहाकाशमाशादशदिवःशिरः ॥ २९ ॥ श्वभ्ररूपा रघट्टाट्टपट्टनोदारदिक्तटः ॥ शृंगाणिसिद्धवृंदानिगिरयःसागरार्णवाः ॥ ३० ॥ सरःसरस्यःसरितोदे वासुरनरोरगाः ॥ आशाःशनशनाशब्दैःपुरुषैश्चशिवार्चिषाम् ॥ ३१ ॥ आसन्क्ष्वेडाकुराक्षस्योज्वा लाजालोज्ज्वलोर्ध्वजाः ॥ भमद्भमितिभांकारैर्भीषणैर्भूरिभस्मभिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा मंडल (जिले वा राज्य) द्वीप, पर्वत, पाताल आदि पृथिवीके छिद्र, पृथिवीके ऊपरका महाकाश, तथा दिवलोकके ऊपरका भाग सब जलनेलगे ॥ २९ ॥ तथा कहीं उत्तम गर्तोंसे शोभित, तथा कहीं अरघट्ट यंत्रोंसे कहीं ऊंची अट्टालिकाओं (अटारियों) से रमणीय दिशाओंका तट पर्वतोंके शिखर, वहांके निवासी सिद्ध आदिके समूह, पर्वत, सागर और महासागर सब जलनेलगे ॥ ३० ॥ तडाग, तलाई, नदी, देवता, असुर, मनुष्य, उरग और पुरुषोंके साथ सब दिशायें शनशना शब्दोंसे युक्त रुद्रके नेत्रोंकी ज्वालाओंसे जलनेलगे ॥ ३१ ॥ तथा ज्वालाओंके जालरूपी ऊर्ध्वकेशधारिणी, भंभंभांकार भयंकर शब्दोंसे परस्पर अधिक भस्म फेंकनेवाली और परस्पर धूलियोंके प्रक्षेप (फेंकने) में तत्पर सब दिशायें दुष्ट राक्षसियोंके समान क्रीडामें निमग्न होगईं ॥ ३२ ॥

ज्वालाःश्वभ्राद्रिभूमीनांगुहाभ्यःपरिनिर्ययुः॥ ज्वालोदरस्थाअरुणाःसमस्ताभूतजातयः॥३३॥ स्थलप द्मोदरालीनामाजग्मुःश्रियमश्रियः ॥ सद्योनिःसृतरक्ताभैःसिंदूरांभोदसुंदरैः ॥ ३४ ॥ धगद्धगितिगा यद्भिर्ज्वालाजालैर्जगद्गतैः ॥ आसीद्रक्तांशुकैःकीर्णसंध्याभ्रैरिववानभः ॥ ३५ ॥ उत्फुल्लकिंशुकवनैरुड्डी नैरिववावृतम् ॥ और्वेणचावृताआसन्फुल्लाशोकवनाइव ॥ ३६ ॥

अर्थ—और गर्तयुक्त भूमियोंकी ज्वाला गुंफाओंसे निकली और ज्वालाके उदरमें स्थित सम्पूर्ण प्राणीमात्र रक्तवर्ण होगये ॥ ३३ ॥ और सम्पत्तिरहित सब दिशाओंने शीघ्र निःसृत रक्तके तुल्य ज्वालाओंके जालस्थल पद्मके उदरके सदृश (रक्तवर्ण) शोभाको धारण किया ॥ ३४ ॥ और धगद् २ शब्दोंसे गातेहुये जगत्के ज्वालाओंके समूहोंसे आकाश सन्ध्याके मेघोंके तुल्य रक्त वस्त्रोंसे आच्छादित होगया ॥ ३५ ॥ पुनः रक्तवर्ण ज्वालाओंसे आकाश ऐसे आच्छादित होगया जैसे विकसित किंशुक (टेसू) के बनोंसे और समुद्र भी वडवानलसे ऐसे आच्छादित होगये जैसे विकसित किंसुकके बन ॥ ३६ ॥

इवस्थलाञ्ज्वलितारराविराइवचार्णवाः ॥ नानावर्णज्वलज्ज्वालाधूमैर्विन्यासबंधवान् ॥ ३७ ॥ रूढंवह्नि भिवाधातुंचित्रसौधलताश्रयम् ॥ अनंतइवविन्यासवनयौवनपावकः ॥ ३८ ॥ उदयास्तमयादिभ्यो विंध्योविधुरतामगात् ॥ अंगारकल्पविटपैर्ज्वालावनविवल्गनैः ॥ ३९ ॥ शनैरीषदिवक्षुब्धैःसह्योस ह्यत्वमाययौ ॥ मध्यमध्यकचत्काष्ण्र्यभ्रमद्भूमालिमालितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—पुनः वे समुद्रस्थल कमलोंसे आच्छादित प्रातःकालके सूर्य्य समूहोंसे व्याप्तके समान भासते थे और यौवन अवस्थाको प्राप्त बनका दावानल चित्रमें लिखित प्रासादतल (कोठेपर) की मिथ्या अग्निको मानों सत्य अग्नि करनेको नानावर्णकी प्रज्वलित ज्वालाओंसे युक्त धूमोंकी पंक्तियोंसे शेषराजके समान विस्तृत होगया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और अनेक सूर्य्योंके उदय अस्तसे विंध्याचल भी विधुरताको प्राप्त हुआ और ज्वालायुक्त बनोंकी गर्जनासहित अंगारके समान संक्षुब्ध वृक्षोंसे ॥ ३९ ॥ दक्षिणदेशस्थ सह्यनाम पर्वत सह्यता (सहनशीलता) को प्राप्तहुआ और मध्य २ में प्रकाशमान कृष्णतायुक्त धूमरूपी भ्रमरोंसे आवृत तथा धूम संयुक्त ज्वालारूपी कमलोंसे वेष्टित आकाश सरोवरके सदृश दृष्टहुआ ॥ ४० ॥

वलज्ज्वालाब्जमलिनंदृष्टंसरइवांबरम् ॥ खेऽद्रीणांशिखरेव्योम्निशिखाशिखरशेखराः ॥ ४१ ॥ ननृतुर्नीरसानाशनर्त्तक्यःकेतुकुंतलाः ॥ तलाहितानलज्वालाब्रह्मांडोर्ध्वकपाटभूः ॥ ४२ ॥ तर्जनप्रोत्पतद्भूतधानौघाभ्राष्ट्रभूमिका ॥ क्वणच्छ्रेणीमृज्जलाग्निर्नानावर्णाननारुणा ॥ ४३ ॥ हृत्प्रकोष्ठेजगलक्ष्म्याःसौवर्णीवाभवत्तदा ॥ शैलाश्चटचटास्फोटैर्वृक्षाःकटकटारवैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा ज्वालारूपी केशपाशोंसे शोभित तथा धूमकेतु नाम कल्पांतरूप कुंतल धारिणी नाशरूप नर्तकी, पर्वतोंकी कंदरा तथा शिखरोंपर और शून्य आकाशमेंभी करुणारससे शून्य होके नाचने लगीं ॥ ४१ ॥ तथा ब्रह्मांडके ऊर्ध्वभागरूपी कपाटयुक्त अधोभागमें अग्निके ज्वालासे व्याप्त तथा क्लेशयुक्त शब्दसहित गिरते प्राणीरूप धाना (भूनेअन्न) से पूर्ण पृथिवी भ्राष्ट्र (भाड) की भूमिके तुल्य हो गई॥४२॥ और उस प्रलयकालमें वक्षस्थल ताडनपूर्वक रोदन करती हुई जगतकी लक्ष्मीके हृदयमें स्थापित हस्तमें अनेक द्वीपोंकी मृत्तिकाओंसे, सप्त समुद्रोंके जलोंसे और उनमें व्याप्त अग्नियोंसे नानावर्णयुक्त यह पृथिवी सुवर्णरचित कंकणोंकी पंक्तिके तुल्य शोभित हुई ॥ ४३ ॥ और उससमयमें सब पर्वत चटचटा शब्दोंके तथा सववृक्ष कटकटाशब्दोंके साथ विशीर्ण होगये ॥ ४४ ॥

देशाहलहलोल्लासैरलंविदलनंययुः ॥ अब्धयःक्वथिताकाराःफेनिलोल्लासमांसलाः ॥ ४५ ॥ वीचीकरतलाघातांश्चकुरर्कमुखेमुखे ॥ अन्योन्यवेल्लितोल्लोलभूतलाकारपर्वतम् ॥ ४६ ॥ जन्हुर्वीचीकरैर्देहेजडाःप्रकुपिताइव ॥ आशाकाशाशिनामेषांगुहागुहगुहारवान् ॥ ४७ ॥ पपाठशब्दआग्नेयोज्वालातटतटोद्भवः ॥ लोकपालपुरापाततप्तांगाराद्रिभित्तयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा सब देश हलहलाशब्दोंके साथ पूर्णरूपसे नष्ट होगये और क्वथित जलसंयुक्त तथा फेनोंके उल्लाससे पुष्ट सब समुद्र ॥ ४५ ॥ निजजलमें प्रतिबिंबित सूर्य्यरूपी तिलकयुक्त, अपने मुखमें तरंगरूपी हाथोंसे ताडन वा रोदन करने लगे और पुनः वे समुद्र परस्पर तरंगोंके आघातसे मृत्तिका पाषाण आदिको एकरूप करनेसे भूतलरूपताको प्राप्त पर्वतोंका तरंगरूप हाथोंसे ऐसे ग्रास करलिया. जडप्राणी और दिशाओंको पूर्ण करनेवाले इन समुद्रोंकी ज्वाला निजमुखसे निःसृत गुह गुह इन शब्दोंको पढतीथी॥ ४६ ॥ ४७ ॥ और कहीं पर्वतोंके तटोंके संघट्टनसे उत्पन्न अग्निके शब्दको वह ज्वाला पढतीथी और उससमय लोकपालोंके नगरोंके गिरनेसे संतप्त अंगारोंसे पूर्ण पर्वतोंकी भित्तिके सदृश दशोदिशा व्याकुलताको प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥

दिशोदशापिवैवश्यंययुरुन्मत्तवृत्तयः ॥ कांचनद्रवसाद्रींद्रद्रुमागारगुहागृहः ॥ ४९ ॥ शनैश्चार्वाकृतिर्मेरुरासीद्धिमइवातपे ॥ क्षणेनैवानलात्तस्माद्धिमवान्जतुवद्द्रुतः ॥ ५० ॥ सर्वांतःशीतलःशुद्धोदुर्जनादिवसज्जनः ॥ तस्यामपिदशायांतुमलयोऽमलसौरभः ॥ ५१ ॥ आसीत्त्यजत्युदारात्माननाशेप्युत्तमंगुणम् ॥ नश्यन्नपिमहान्ह्लादंनखेदंसंप्रयच्छति ॥ ५२ ॥

अर्थ—और कांचनके रसके तुल्य, तथा समीपके अनेक पर्वत, इन्द्र, कल्पवृक्ष और गुहारूपी गृहसहित॥४९॥ तथा आकारयुक्त मेरुपर्वत उससमय ऐसे गलगया जैसे आतपसे हिम और उस प्रलयकी अग्निसे हिमालय तो क्षणमेंही लाहके समान ऐसे लीन होगया ॥ ५० ॥ जैसे सर्वथा आभ्यन्तरसे शीतल और शुद्ध सज्जन दुर्जनके भयसे और उस नाशदशामें भी मलयाचल तो निर्मल सुगन्धयुक्तही रहा ॥ ५१ ॥ क्योंकि उदारचित्त नाशके समयमें भी अपने उत्तम गुणोंको नहीं त्यागता, उत्तम महात्मा नष्ट होते हुये भी प्रसन्न रहताहै न कि खिन्न ॥ ५२ ॥

चंदनंदग्धमप्यासीदानंदायैवजीवताम् ॥ नकदाचनसंयातिवस्तूत्तममवस्तुताम् ॥ ५३ ॥ प्रलयानलनिर्दग्धमपिहेमननष्टवत् ॥ द्वेहेमनभसीतस्मिन्ननष्टेप्रलयानले ॥ ५४ ॥ तयोरेववपुःश्लाघ्यंसर्वनाशेप्य

नाशयोः ॥ नभोविभुतयानाशिहेमाकृष्टतयाक्षयम् ॥ ५५ ॥ सत्वमेकंसुखंमन्येनरजोनचवातमः ॥ चलद्बवनानीवविकीर्णांगारवर्षणः ॥ ५६ ॥

अर्थ—चन्दन दग्ध होनेपर भी जीवोंके आनन्दकेही लिये हुआ, क्योंकि उत्तम वस्तु कभी निकृष्टताको नहीं प्राप्त होती ॥ ५३ ॥ प्रलयकी अग्निसे दह्यमानभी सुवर्ण नष्ट नहीं हुआ, उस प्रलयकी अग्निमें सुवर्ण तथा आकाश ये दो वस्तु नहीं नष्ट हुई ॥ ५४ ॥ सबके नाशमेंभी अविनाशी उन्ही दोनोंका शरीर प्रशंसनीय है, आकाश तो व्यापक होनेसे और सुवर्ण दोषरहित होनेसे अविनाशी है ॥ ५५ ॥ इस कारणसे हे रामजी ! जिसमें रज तथा तम नहीं है ऐसे ब्रह्मानन्ददायक सत्वगुणकोही मैं सुखका सार मानताहूं हे रामजी ! उससमय यह बनकेसमान विखरेहुये अंगारोंकी वृष्टि करनेवाला ॥ ५६ ॥

दग्धाब्दाद्रिर्महाधूमज्वालोभूद्वह्निवारिदः ॥ रसविस्मरणार्तानांशून्यानांस्फारदेहिनाम् ॥ ५७ ॥ शुष्काणांव्योमविटपिपत्राणांपात्ररूपिणाम् ॥ वारिदानांसवारीणांदग्धानांप्रलयार्चिषा ॥ ५८ ॥ ज्ञस्येवांगनदोषाणांदृष्टंभस्मापिनक्वचित् ॥ नलंघयतिकैलासंयावदुल्लसितोऽनलः ॥ ५९ ॥ तावत्तंकल्पकुपितोरुद्रोनेत्राग्निनादहत् ॥ दाहस्फुटद्द्रुमस्थूलशिलाचटचटारवाः ॥ ६० ॥

अर्थ—मेघरूप पर्वतोंको जलानेवाला और महाधूमकी ज्वालासहित प्रलयका अग्नि मेघके समान भान होता था और सबप्रकारके जलके अभावसे अतिदुःखी, इसीसे शून्यके समान महादेहधारी अण्डज आदि चारप्रकारके प्राणियोंका ॥ ५७ ॥ तथा सर्वथा शुष्क होनेसे आकाशके वृक्षके समान शून्यताको प्रलयानलसे दग्धजलसहित मेघोंका ॥ ५८ ॥ भस्मभी कहीं ऐसे नहीं दृष्ट होताथा जैसे ज्ञानीके दोषोंका. और उल्लाससहित उस प्रलयानलने जबतक कैलासपर्वतको नहीं भस्म किया, इतनेहीमें कल्पांतकेलिये कुपित रुद्रजीने उस (कैलास) को नेत्रकीअग्निसे भस्म करदिया और दाहसे तडकतेहुये वृक्षोंके तथा महाशिलाओंके चटचटाशब्दसहित ॥ ५९ ॥ ६० ॥

लकुटोपललोष्टैर्वैरयुद्धयंतेवभूभृतः ॥ ज्वालाघनघटाटोपसावतंसचलांतिमाः ॥ ६१ ॥ बभूवुर्व्योमविकसत्स्थूलपद्मवनाइव ॥ सर्गःकदाचिदेवासीदित्यगात्स्मरणीयताम् ॥ ६२ ॥ कल्पांतःस्मारयन्मूर्खानगादस्मरणीयताम् ॥ तापोपतापपरमाःपरमारणतत्पराः ॥ वह्नयोपह्नवंचक्रुर्जगतामसतामिव ॥ ६३ ॥ ववुरशनिनिपातपीडितांगाःकचदनलोल्मुकगुल्ममंडलाभाः ॥ प्रलयसमयवायवोनलांताद्दलदमरावलयोलयेलिहंतः ॥ ६४ ॥ व्यालोलस्फुटदानलद्रुमवनप्रोद्भूतभस्मोष्मणादत्ताभ्राभ्रमद्दुल्मुकाहतिवहत्सांगारगौरार्चिषः ॥ भ्रश्यत्पावकशृंगमध्यविलसज्ज्वालावलीश्यामलानिःशेषाग्निनिकाशसुस्तवजवावेगेनवातावबुः ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पा० महाकल्पांताग्निवर्णनं नाम पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—सब पर्वत लकुट तथा पाषाणोंसे युद्ध करतेहुएके समान भासतेथे और ज्वालाओंके घनघटाटोपोंसे चंचल शिखरसहित ॥ ६१ ॥ सब पर्वत आकाशमें ऐसे भासनेलगे जैसे विकसित महाकमलोंके बन और कभी सृष्टि रहीहोगी इसप्रकार सब स्मरणीयदशाको प्राप्तहोगया ॥ ६२ ॥ और मूर्खोंको संसारकी असारताको स्मरण करतेहुये कल्पका अन्त प्रत्यक्ष होगया तथा ताप और उपतापमें प्रवीण और सर्वनाशरूप युद्धमें तत्पर प्रलयकी अग्निने सब ब्रह्मांडोंका ऐसे अत्यन्तअभाव करदिया जैसे शशशृंगादिका ॥ ६३ ॥ और विद्युत्पातोंसे प्राणियोंके अंगोंको पीडित करनेवाले और प्रकाशमान अग्निकी ज्वालासे संयुक्त होनेसे लतामंडलके सदृश शोभायमान और देवताओंके विमानोंको दलित करतेहुये प्रलयके पवन अग्निके मध्यसे निकलके दिशाओंको चाटतेहुये बहनेलगे ॥ ६४ ॥ और चंचल ज्वालाओंसे तडकतेहुये अग्निमय वृक्षोंके बनोंसे उत्पन्न भस्मसहित उष्णतासे आकाशको व्याप्त करनेवाले, भ्रमण करतीहुई उल्काओंके अभिघातसे निकलीहुई अंगारसहित, पीत ज्वालाधारी, पावकरूपी पर्वतकी शिखाके मध्यसे विलासपूर्वक गिरतीहुई कज्जलकी पंक्तियोंसे श्यामवर्ण और संपूर्णजगत्के अग्नियोंको प्रकाशित करनेसे प्रशंसाके योग्य वेगधारी प्रचंड पवन वेगसे बहनेलगे ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने महाकल्पांताग्निवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

वरुणदिशा (पश्चिमदिशा) के ऊर्ध्वभागमें पुष्करावर्त्त (प्रलयके मेघों) का उदय तथा दक्षिणदिशामें अग्निकी शांतिका वर्णन इस ७६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथकल्पांतमरुतिवहत्यवधुताचले ॥ बलेनांभोधिकल्लोलैर्नभस्यावर्त्तकारिणि ॥ ॥ १ ॥ समुद्रेषुविमुद्रेषुमर्यादोल्लंघनेघने ॥ अधनेषुधनिष्वंबुदारिद्र्योपद्रवद्रुते ॥ २ ॥ भूतलेभूतलेशांशवर्जितेवह्निभर्जिते ॥ पातालमपिपातालेगतेकिमपिकालतः ॥ ३ ॥ दिविवाविद्यमानायांविशीर्णेसर्गवर्गके ॥ लोकेव्योमगतालोकेशोकौकसिककुब्गणे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! इसके अनंतर जब पर्वतोंको कंपानेवाले प्रचंड पवन वहते थे, उससमय समुद्रोंके तरंगोंसे आकाशमें भी आवर्त्त (भंवरेह) उठते थे ॥ १ ॥ और उस समय मर्य्यादाको लंघन करनेवाले समुद्र भी जलकी दारिद्रतासे ऐसे नष्ट होगये जैसे धनरहित धनीपुरुष ॥ २ ॥ और जब अग्निसे भर्जित भूतल भी भूतलके अंशसे वर्जित होगया और जब पाताल भी काल पाके नष्ट होगया ॥३॥ और जब सृष्टि छिन्नभिन्न होके नष्ट होगई और जब स्वर्गलोक भी आकाशस्थ सूर्य्य प्रकाशमें मिलगया और जब दिशा शोकसे पूर्ण होगई॥४॥

कुतोप्याकाशकुहराद्दृप्तदैत्यगणाइव ॥ पुष्करावर्त्तकामेघाश्चक्रुर्गुलुगुलारवम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मविस्फोटितस्वांडकुड्यविस्फोटनोद्भटम् ॥ अन्योन्यास्फालनोत्फालमत्तार्णवरवाविलम् ॥ ६ ॥ लोकार्णवपुरोद्गीर्णघनकोलाहलोल्बणम् ॥ एतत्कुलाचलस्कंधबद्धोग्ररवघर्घरम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मांडशंखजठरपूरणावर्त्तमंथरम् ॥ स्वर्लोकरोदःपातालतलतोतिसगुल्मकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तब किसी आकाशरूपी गर्तसे निकलके दैत्य समूहके तुल्य पुष्करावर्त्त नामके मेघ गुलगुला शब्द करने लगे ॥ ५ ॥ ब्रह्मासे तोड़े हुये ब्रह्मांडकी भित्तिके शब्दके तुल्य गंभीर और परस्पर एक दूसरेकी ओर उछलते हुये मत्त समुद्रोंके शब्दके तुल्य कलुषित उस शब्दको मैंने सुना ॥ ६ ॥ लोक, समुद्र तथा नगरोंमें प्रतिध्वनि रूपसे व्याप्त कोलाहलोंसे अति दुःसह और पूर्वोक्त कुलपर्वतोंके उग्र दाह शब्दसे मिलनेसे घर्घर शब्दयुक्त वह शब्द सुना ॥ ७ ॥ और ब्रह्मांडरूपी शंखके पूर्ण होनेपर उसके आघातसे अति गंभीर तथा स्वर्गलोक, पृथिवी और पाताल पर्य्यन्त अनेक शाखाओंसे व्याप्त वह शब्द हुआ ॥ ८ ॥

समस्तदूरदिग्भित्तिहेलाहेलनघर्षुलम् ॥ महाप्रलयसंपन्नापानकापानतुर्षुलम् ॥ ९ ॥ प्रसृतप्रलयाख्येंद्रमत्तैरावतबृंहितम् ॥ आकल्पक्षुब्धमेघाब्धिनिर्ह्लादमिवसंभृतम् ॥ १० ॥ महाप्रलयसंक्षुब्धक्षीरोदमथनारवम् ॥ ब्रह्मांडोग्रारघट्टेस्मिन्वार्यंत्रमिवसारवम् ॥ ११ ॥ अथास्मिन्सतिकल्पाग्नौस्थितिमेतिकथंघनः ॥ इतिविस्मितवानस्मिद्दशंदिग्नवकेत्यजम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और अति दूर तथा अपार दिशारूपी भित्तियोंको लीलापूर्वक घिसनेसे घर्षणशील वह शब्द निकला ॥ ९ ॥ और विजयार्थ निकले हुये प्रलयकालीन इन्द्रके मत्त ऐरावतकी गर्जनाके सदृश वृद्धिको प्राप्त और कल्पपर्य्यन्त निरोधसे क्षुब्ध मेघरूपी समुद्रोंका चिर संचित वज्र शब्दके तुल्य वह शब्द सुना ॥ १० ॥ और महाप्रलयसे संक्षुब्ध क्षीरसागरके मंथन शब्दके तुल्य तथा ब्रह्मांडरूपी उग्र घटीयंत्रके स्थानमें शब्दसहित जलधारा यंत्रके समान स्थित उस शब्दको सुना ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् मैंने विचारा कि इस प्रलयाग्निमें मेघोंकी स्थिति कैसे होसकती है, इसप्रकार विस्मित होके अधो दिशासे ऊपरकी ओर जब दृष्टि किया ॥ १२ ॥

यावन्नकचिदेवात्रपश्याम्याशासुकेवलम् ॥ तरंतितरलास्फालमुल्मुकाशनिवृष्टयः ॥ १३ ॥ तेनज्वलनतापेनबहुयोजनकोटिषु ॥ पदार्थाभस्मतांयांतिदूरेदिक्षुदशस्वपि ॥ १४ ॥ अनंतरंक्षणाद्व्योम्निदूरेहमनुभूतवान् ॥ ऊर्ध्वतःशीतलंवातमधस्तादनलोपमम् ॥ १५ ॥ एतावतिनभोमार्गेदूरेकल्पांबुदाःस्थिताः॥ यस्तेषामग्नितापानांविषयोनचसद्दृशाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तब किसी दिशामें मेघोंको न देखा, किंतु विशाल उलका तथा वज्रोंकी वृष्टि देखी ॥ १३ ॥ उस अग्निके उग्र तापसे करोडों योजनपर्य्यंत दूर दिशाओंमें भी सब पदार्थ भस्म होगये ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् दूर आकाश देशमें त्वचा इन्द्रियसे मैंने अनुभव किया तो ऊर्ध्वभागमें शीतल और नीचे अग्निके समान उष्ण वायु भान हुआ ॥ १५ ॥ हे रामजी! आकाशके इतने दूर मार्गमें वे कल्पांतके मेघ स्थित थे कि अधोभागमें विस्तृत अग्निके ताप तथा वहांके जीवित प्राणियोंके दृष्टिके विषय न थे ॥ १६ ॥

अथवारुणदिग्भागादाययौकल्पमारुतः ॥ यस्मिंस्तृणवदुद्यंतेविंध्यमेरुहिमालयाः ॥ १७ ॥ तेनज्वालाचलाःप्रांतोड्डीनांगारविहंगमाः ॥ लोलोल्मुकवनाक्रांताजग्मुरग्निदिशंद्रुतम् ॥ १८ ॥ संध्याभ्रसदृशाकारास्तेरुरंगारवारिदाः ॥ भ्रेमुर्भस्मभराभ्राणिपूतांगाररजांसिखे ॥ १९ ॥ सज्वालविलसद्वातोदुष्टोनलदृशंव्रजन् ॥ हेमाद्रीणांसपक्षाणामनीकद्रवतामिव ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनंतर पश्चिम दिशासे कल्पांतका पवन आके प्राप्त हुआ, जिसमें विंध्य, मेरु और हिमालय आदि महापर्वत भी तृणके समान उडतेथे ॥ १७ ॥ समीपमें उडते हुये अंगाररूपी पक्षियोंसे युक्त और चंचल उल्कारूपी बनोंसे आच्छादित वे अग्निकी ज्वालारूपी पर्वत उस प्रचंड पवनसे दक्षिणदिशामें शीघ्र चलेगये ॥ १८ ॥ उस-समय संध्याकालके मेघके समान अंगाररूपी मेघ उडतेथे और भस्मरूप जल धारण किये हुये प्रदीप्त अंगारोंके तेज आकाशमें भ्रमण करतेथे ॥ १९ ॥ अग्निज्वालाके साथ विलासकारी वह दुष्ट वायु अग्नि दिशाकी ओर ऐसे जाताथा जैसे पक्षसहित हेमाद्रि आदि पर्वतोंका समूह ॥ २० ॥

धराद्रिमंडलाभागेसौम्यांगारभरात्मनि ॥ ज्वालावलिगणेजातेभातेतेजसिभास्वताम् ॥ २१ ॥ अर्णवेष्वनलार्णस्सुक्कथनोत्फालवारिषु ॥ वनेष्वस्मृतपर्णेषुदीप्ताग्नितरुधारिषु ॥ २२ ॥ ब्रह्मलोकस्थनाथेषुब्रह्मलोकपुरेषुच ॥ सांगनाबालवृद्धेषुदग्धेषुनिपतत्सुखम् ॥ २३ ॥ कल्पांतानलपद्मिन्याब्रह्माग्रावसरोवरे ॥ ज्वालापल्लवशालिन्याःसबीजायाःसटोल्मुकैः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी! जब पृथिवी तथा पर्वतोंका उदर ज्वालारहित अंगारोंसे पूर्ण होगया तथा संपूर्ण ज्वालाओंकी पंक्तियोंके समूह द्वादश सूर्य्यके तेजोमय होगये तब कल्पांतका मेघमंडल आके प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ तथा जब अग्निमय तथा क्वथित और उछलते हुये जलसंयुक्त सब समुद्र होगये तथा पत्ररहित और प्रदीप्त अग्निरूपधारी वृक्षसहित सब बन होगये, तब कल्पांतके मेघगण प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ तथा स्त्री, बाल और वृद्धसहित ब्रह्मलोकके स्वामी, ब्रह्मलोक और नगर भस्म होकर आकाशमें गिरनेलगे तब कज्जलके समान श्याम कल्पांतके मेघगण प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ और जब ज्वालारूपी पल्लवोंसे शोभित, बीजसहित और पाषाणरहित ब्रह्मरूपी सरोवरमें दृढताको प्राप्त कल्पान्तके अग्निरूप कमलिनीके केसरके सदृश स्फुलिंगसहित उल्काओंसे ॥ २४ ॥

अनिलात्मसुमूलेषुनागेषुचनगेषुच ॥ आपातालंनिमग्नेषुमहत्यंगारकर्दमे ॥ २५ ॥ उष्ट्रसैन्यमिवालक्ष्यगतिमन्निकटंनभः ॥ आययावंजनश्यामःकल्पांबुदगणःक्वणन् ॥ २६ ॥ स्थिरकल्पानलज्वालातुल्यविद्युन्मयाचलः ॥ एककोणकविश्रांतसप्तार्णवपयोभरः ॥ २७ ॥ भित्तिभासुरनीहारभारनिर्वारदिक्तटः ॥ ब्रह्मांडकुड्यनिबिडमंडलास्फोटपंडितः ॥ २८ ॥

अर्थ—विषमय वायुसे पूर्ण सर्पोंके पर्वतरूपी मूलसहित पाताल पर्य्यन्त नागलोकादि महान् अंगाररूपी कर्दममें निमग्न होगये तब चर्मपात्रमें जल भरे हुये ऊंटोंकी सेनाके समान आकाशमें शीघ्रतासे चलते हुये और कज्जलके समान श्यामवर्ण कल्पांतके मेघगण आके प्राप्त हुये ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्थिर कल्पान्तके अग्निकी ज्वालाके समान विद्युत्मय पर्वत सहित तथा एक कोनेमें सप्त समुद्रोंके जलसमूहको धारण करनेवाला वह (कल्पांत) मेघमंडल था ॥ २७ ॥ तथा भित्तिके समान तुषारसमूहोंसे दिशाओंको पूर्ण करनेवाला और ब्रह्मांडके अन्तपर्य्यन्त भूतलको विदीर्ण करनेमें पंडित वह मेघमंडल था ॥ २८ ॥

कल्पांतक्षुभितांभोधिर्वर्तुलावर्त्तवृत्तिमान् ॥ तडिज्जलचरःसारनिर्ह्रादःखमिवागतः ॥ २९ ॥ मृतोदग्धोनिशानाथस्ततोद्विगुणशीतलः ॥ अन्यमाकारमाश्रित्यपरंलोकमिवागतः ॥ ३० ॥ हेमसंभाररूपेणहिमालयमिवाखिलम् ॥ जाड्यस्तंभितनिःशेषजलकाष्ठाचलंदधत् ॥ ३१ ॥ अथब्रह्मांडविस्फोटकठिनंघटितांबरम् ॥ प्राग्द्रुतोद्भटतौषारकाष्ठावृष्टिःपपातह ॥ ३२ ॥

अर्थ—गोलाकार द्वादश सूर्य्यकी परिधिसे वेष्टित, ताडित् (विजुली) रूप जलचारी जीवसहित और गंभीर शब्दसहित कल्पांतसे क्षुब्ध सप्त समुद्रगणही मानो मेघमंडलके रूपसे आकाशमें प्राप्त हुआ ऐसा भान होता था ॥ २९ ॥ पुनः ऐसा भान होता था मानो मृत तथा दग्ध चन्द्रमा पूर्वसे द्विगुण शीतल मेघमंडलका रूप धारण कर आकाशमें प्राप्त हुआ है ॥ ३० ॥ तथा हेमसमूहके तुल्य विद्युत्मंडलरूप जडतासे काष्ठके समान सब जलसमूहको करनेवाले हिमालयको धारण किये हुयेके समान कल्पांतका मेघमंडल था ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्माके स्फोटन (टूटने) के समान कठिन वज्रपातसे आकाशको पूर्ण करनेवाली तथा दिशाओंको पूर्वही तुषारमयी करनेवाली वृष्टि होने लगी ॥ ३२ ॥

अग्निदाहवनाकाशविद्युदुन्मेषभीषणा॥ चटद्गडगडास्फोटस्फुटद्ब्रह्मांडमंडला ॥ ३३ ॥ प्रथितोत्थित सीत्कारशतक्ष्वेडाक्षयारवा॥ शीतसीकरनीहारभित्तिबंधमयांबरा ॥ ३४ ॥ रोदोमंडपवैदूर्यस्तंभसं भारभासुरैः॥ धारासारैर्धराधुर्यशैलशातकशालिनी ॥ ३५ ॥ धराचटचटास्फोटस्फुरदंगारपत्तना॥ गर्जितोर्जितसंपातपतल्लोकांतराकुला॥ ३६ ॥

अर्थ—बन तथा आकाशमें अग्निदाहके सदृश विद्युत्के प्रकाशसे अति भयंकर और चटचटाहट तथा गड-गडाहटसे ब्रह्मांडमंडलको तोडनेवाली वृष्टि गिरी ॥ ३३ ॥ आविर्भूत अनेक महासीत्कार शब्दोंसे सिंहनादके स-मान तथा अति शीतल जलकण और तुषार समूहसे आकाशको भित्तिमय करनेवाली वृष्टि गिरी ॥ ३४ ॥ तथा पृथिवी आकाशरूपी मंडपके स्तंभों (खंभों) के समान अति स्थूल धाराओंके संपातोंसे टंक प्रहारोंके समान पर्व-तोंको काटनेवाली वृष्टि गिरी ॥ ३५ ॥ तथा पृथिवीको चटचटा शब्दोंके साथ भेदन करनेसे अंगारसमूहधारिणी तथा गर्जनासहित प्रबल जलके संपातोंसे लोकलोकान्तरको गिरानेमें व्यग्र वृष्टि हुई ॥ ३६ ॥

साबभूवाथसांगारजगद्गेहविलासिनी॥ कृतप्रत्युद्गमाबाष्पश्रियाज्वलनयाभुवः॥ ३७ ॥ ज्वालालवो ल्लनडंबरमंबरंतद्व्यूढस्थलाब्जदलजालमिवालमासीत्॥ ज्वालाभ्रमद्भ्रमरपंक्तिनिभास्तदासंस्तत्रस्फु रच्छिशिरसीकरपक्षपुंजाः॥३८॥ उद्यद्बृहच्चटचटारवपूरिताशोभीमोऽभवत्सलिलदानलसन्निपातः॥ दुर्वारवैरिविषमोमहतांबलानांसंग्राम उग्रइवहेतिहतोग्रहेतिः॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० पुष्करावर्त्तडंबरवर्णनं नाम षट्सप्ततितमःसर्गः॥ ७६ ॥

अर्थ—अंगारसहित जगत्रूपी गृहमें विलास करनेवाली वह वृष्टि पृथिवीकी अग्निरहित बाष्प शोभासे मानों सखीके समान आके मिली ॥ ३७ ॥ और उससमय ज्वालाके खंडोंसे पूर्ण आकाश ऐसा भासताथा मानो प्ररूढस्थल कमलोंसे व्याप्त है और उस आकाशमें अति शीतल मेघमंडल ऐसे भासतेथे मानों ज्वालाओंके भीतर भ्रमण करती-हुई भ्रमरोंकी पंक्ति॥ ३८ ॥ तथा हे रामजी! महाचटचटा शब्दोंसे आकाशादि दिशाओंको पूर्ण करनेवाला वह अग्नि तथा मेघोंका भयंकर समागम ऐसे भान होताथा जैसे महासेनाओंके अस्त्रास्त्रोंसे विनाशित भयंकर अस्त्रादियुक्त संग्राम ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पुष्करावर्त्तडंबरवर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः॥ ७७ ॥

पुष्करावर्त्तक मेघसे च्युत वृष्टिकी धारासे जर्जरीभूत तथा सप्तसमुद्रके क्षोभसे निर्धूत जगत्का वर्णन पुनः इस ७७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ अथावनिपयस्तेजःपवनानांयुगक्षये॥ जातेपरमसंक्षोभेबभूवास्मिन्जगत्त्रयम्॥१॥ तापिच्छविपिनोड्डीतिनिभभस्माभ्रभासुरम्॥ महार्णवमहावर्त्तवृत्तिधूमविवर्त्तनम्॥ २ ॥ नीलज्वाला लवोल्लासहेलाटिमिटिमारटि॥ कृतभस्माभ्रसंभारपूर्णलोकांतरांतरम्॥ ३ ॥ उच्छलद्दीर्घरुत्कारैश्छ मच्छममयात्मकैः॥ दूर्यमुन्नमदासारविसारिजयघोषणम्॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! पृथिवी, जल, अग्नि तथा पवन इन चारोंभूतोंके परस्पर जगत्की जो दशा हुई सो सुनिये मैं आपसे कहताहूं ॥ १ ॥ हे रामजी! तमालके बनके सदृश उडते हुए भस्म तथा मेघोंसे प्रकाशमान और महासमुद्रके महावर्त्त (महाभंवरेह) के समान धूमोंके भ्रमणसे संयुक्त जगत् उससमय होगया ॥२॥ आर्द्रपदार्थोंके दाहमें नीलज्वालाके विलासपूर्वक क्रीडासे टिमटिम शब्दयुक्त और भस्म तथा मेघोंके समूहसे सब लोकलोकांतरमें पूर्ण तीनोंलोक होगया ॥ ३ ॥ तथा छम छम शब्द पूर्ण उच्चध्वनिसे चारोंओर प्रसरणशील धाराओंके जयघोष करते हुयेके समान त्रैलोक्य उससमय होगया ॥ ४ ॥

भ्रमद्भस्माभ्रधूम्राभ्रंबृहत्कल्पाभ्रसंभ्रमम्॥ बाष्पाभ्रविभ्रमोद्भ्रांतसीकरोग्राभ्रवृंदवत्॥ ५ ॥ ब्रह्मांडभि त्तिभांकारभीषणैर्मातरिश्वनः॥ प्रसरैरंबरोड्डीनदग्धेंद्रादिपुरोत्करम्॥ ६ ॥ जलानलानिलोल्लासस्फुट त्कोटिगताश्मनाम्॥ प्रविघट्टनटंकारैर्जडीभूताक्षकश्रुति ॥ ७ ॥ नभःस्तंभनिभाबंधधारानीरंध्रवर्ष णैः॥ कर्षणैःकल्पवल्लीनांछमच्छमघनध्वनि॥ ८ ॥

अर्थ—तथा भ्रमण करतेहुये भस्म, मेघ, धूम तथा पवनसे महाकल्पांतके संभ्रमसे युक्त तथा बाष्प और मेघोंके परस्पर विभ्रमसे भ्रमणशील कणोंसे मेघसमूहके तुल्य त्रैलोक्य होगया ॥ ५ ॥ तथा वायुके ब्रह्मांडकी भित्ति (सीमा) पर्य्यन्त भांकार शब्दोंसे भयंकर प्रसारसे आकाशमें उड़ते हुये भस्मीभूत इन्द्रादिके नगर समूहोंसे युक्त त्रैलोक्य होगया ॥ ६ ॥ तथा जल, अग्नि और पवनके परस्पर आघातसे उडते हुये अनेक पर्वतोंके संघट्टन तथा टंकारशब्दोंसे त्वचा तथा श्रोत्र आदि इंद्रियोंके नाशसे पूर्ण त्रैलोक्य होगया ॥ ७ ॥ आकाशके खंभोंके तुल्य स्थूल धाराओंकी घनीभूत वृष्टियोंसे तथा कल्पांतकी अग्नियोंके परस्पर संघर्षणोंसे छम २ ध्वनि संयुक्त त्रैलोक्य होगया॥८॥

गंगातरंगिकायेषांतादृशैःसरितांगणैः ॥ अभ्रैरिवनभोभीमैःपूर्यमाणाखिलार्णवम् ॥ ९ ॥ तापिच्छप त्रवृंदस्थपुष्पगुच्छसमोपमैः ॥ तपद्भिरर्कैरालीढपीठकल्पाभ्रमंडलम् ॥ १० ॥ वहद्भिरिसरिद्व्यूहशिख रिद्वीपपत्तनम् ॥ कल्पानिलघनक्षोभकृतपर्वतकुट्टनम् ॥ ११ ॥ ग्रहतारागणैरुग्रैर्व्यग्रैर्विग्रहदुर्ग्रहैः ॥ पतद्भिर्द्विगुणालातलतामावर्त्तपातिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—और गंगाजीके समान एक २ तरंगधारिणी अनेक महानदियोंके आकाशमें भयंकर मेघोंके सदृश समूहोंसे पूर्ण सब समुद्रयुक्त त्रैलोक्य उससमय होगया ॥ ९ ॥ तथा तमालके पत्रोंके समूहमें स्थित पुष्पोंके गुच्छोंके सदृश सन्तप्त सूर्य्यमण्डलोंसे आस्वादित कल्पान्त मेघमण्डलयुक्त त्रैलोक्य होगया ॥ १० ॥ पर्वतोंकी नदियोंके समूहसे बहते हुये पर्वत शिखर द्वीप तथा नगरसहित और कल्पांतके पवनके प्रबल क्षोभसे चूर्णीभूत पर्वत संयुक्त त्रैलोक्य होगया ॥ ११ ॥ तथा परस्पर विग्रहसे दुर्निवार और समीपमेंही गिरतेहुये ग्रह तथा तारागणोंने पृथिवीकी अपेक्षा आकाशमें द्विगुण आलातचक्रयुक्त त्रैलोक्य होगया ॥ १२ ॥

आवहोत्थजलाद्रींद्रसंघट्टास्फोटघट्टितम् ॥ महाप्रलयपर्यस्तपर्वतप्रांतकुट्टिमम् ॥ १३ ॥ घनसीकृतबा ष्पाभिःकल्पाभ्रैरपिमेदुरैः ॥ अंधीकृतार्कजालांशुतमोनिबिडमंथरम् ॥ १४ ॥ विशीर्णवसुधापीठखंडखं डैर्गलत्तटैः ॥ उह्यमानैर्लुठच्छैलपतनैःसंकटार्णवम् ॥ १५ ॥ ऊर्म्युद्यदुपलच्छिन्नघनैर्घस्मरमारुतैः ॥ समुद्रघोषैर्निर्घातगंभीरैर्भग्नदिक्तटम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा चारोओरसे बहते हुये प्रचंड पवनसे उत्पन्न पर्वताकार जलके तरंगोंके संघट्टोंसे लडते हुये पर्वतोंसे पूर्ण और प्रलयके पवनसे प्रक्षिप्त पर्वतोंको शिखर पर्य्यन्त छेदन भेदनमें व्यग्र त्रैलोक्य होगया ॥ १३ ॥ और घनीभूत जलकण तथा बाष्प संयुक्त श्यामवर्ण प्रलयके मेघोंसे सूर्य्यके किरणोंकोभी तिरोहित करनेसे गंभीर अन्धकारमय त्रैलोक्य होगया ॥ १४ ॥ और छिन्नभिन्न भूतलके खण्डोंसे तथा गलित तटसहित इधर उधर उडते हुये पर्वतोंके पतनसे समुद्रपर्य्यंत पूर्ण त्रैलोक्य होगया ॥ १५ ॥ तथा महातरंगोंसे उत्पन्न अन्य तरंगोंसे प्रक्षिप्त पाषाणोंसे मेघोंको छिन्नभिन्न करनेवाले और समुद्रके समान गंभीर नादयुक्त प्रचंड पवनसे भग्न दिशाओंके तटसे भयंकर त्रैलोक्य होगया ॥ १६ ॥

ब्रह्मांडकुड्यक्रोडाग्रकुट्टकैःकटुटांकृतैः ॥ कल्पाभ्रविटपास्फोटैर्घट्टितैकार्णवारटि ॥ १७ ॥ स्वर्गपाता लभूलोकखंडखंडैर्विमिश्रितैः ॥ यथास्वभावंतिष्ठद्भिर्मरुबभ्रैर्वृतांबरम् ॥ १८ ॥ मृतार्धमृतदग्धार्धदग्धां गैर्देवदानवैः ॥ अन्योन्यदर्शनाद्वातवेल्लितैर्भ्रामितायुधम् ॥ १९ ॥ कल्पांतपवनोद्भ्रांतैर्लोकांतरजरत्तृ णैः ॥ आरब्धार्जुनवाताख्यास्तंभमुद्भूतभस्मभिः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा ब्रह्मांडके वक्षस्थलमें प्रहार करनेवाले और कठोर टंकार शब्दसहित प्रलयकालके मेघमंडलके परस्पर आघातोंसे वक्षस्थल ताडनपूर्वक समुद्रपर्य्यंत रोदनमें व्यग्र त्रैलोक्य होगया ॥ १७ ॥ और अधोभागमें जलके अभावसे मरुस्थलके समान यथाक्रमसे स्थित उडते हुये स्वर्ग, पाताल तथा भूलोकके मिलित खंडोंसे आकाशको आच्छादन करनेवाला त्रैलोक्य होगया ॥ १८ ॥ तथा अर्द्धमृत और अर्द्धदग्ध शरीरसहित देवदानवोंके परस्पर शत्रुदृष्टिसे देखनेसे परस्पर वधके लिये भ्रमणशील शस्त्रास्त्रसहित त्रैलोक्य होगया ॥ १९ ॥ और कल्पांतके पवनसे उडाये हुये लोकलोकांतरके प्राचीन तृणोंने निज उत्पन्न भस्मसे वायुको श्वेत करनेसे अर्जुनवातनामकरोग (जिससे रोगी आकाशमें उडताहै उस) की कथासंयुक्त त्रैलोक्य होगया ॥ २० ॥

उह्यमानशिलाजालप्रहारविलुठत्तटैः ॥ पतल्लोकांतरैःस्फारदुष्कालकटुटांकृतम् ॥ २१ ॥ वातोद्व्यूह गिरिव्रातगुहाभांकारभासुरम् ॥ पतद्भिर्विहितावर्त्तलोकपालपुरीपुरैः ॥ २२ ॥ कृतकर्कशनिर्ह्रादैरसुरै रिवमारुतैः ॥ उह्यमानवनव्यूहप्रोतवातायनैर्वृतम् ॥ २३ ॥ पुरमंडलदैत्याग्निसुरनागविवस्वताम् ॥ नि कुरंबंदधद्व्योम्निमशकानामिवोच्चयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा उडते हुये शिला समूहोंके प्रहारोंसे जर्जर तटसहित गिरते हुये लोकलोकांतरोंसे महादुष्कालजनित कठोर टंकार शब्दसे पूर्ण जगत् होगया ॥ २१ ॥ तथा पवनके संघट्टनोंसे पर्वतोंकी गुहाओंके भांकार शब्दसे प्रकाशमान तथा भ्रमणपूर्वक गिरते हुये लोकपालोंके तथा अन्य नगरोंसे पूर्ण जगत् होगया ॥ २२ ॥ असुरोंके तुल्य कर्कशनाद करनेवाले प्रचंड पवनोंके द्वारा उडते हुये बनोंकी गतिसे अनेक चंचल घोडेसे पूर्णके समान जगत् होगया॥२३॥तथा नगर,अनेक देश, दैत्य,अग्नि,देवता, नाग तथा सूर्य आदिके शब्दयुक्त समूहको आकाशमें त्रैलोक्य ऐसे धारण करताथा जैसे मशकों (मच्छरों) के झुंडको ॥ २४ ॥

नश्यन्नगधराभोगेर्भागैर्भग्नसुरालयैः ॥ आवर्त्तघर्घरारावैर्जलमूर्ध्वमधोनलम् ॥ २५ ॥ कुर्वज्जलाद्रिनिष्पेषैर्दिक्पालपुरकुट्टनम् ॥ निपतद्देवदैत्येंद्रसिद्धगंधर्वपत्तनम् ॥ २६ ॥ कुट्टनंपर्वतादीनांप्रशांतांगाररूपिणाम् ॥ वातैःकुर्वत्पदार्थानामसाररंजसामिव ॥ २७ ॥ पुराण्यमरदैत्यानांभ्रमद्भित्तीनिशातयत् ॥ रत्नैःखणखणायंतिपर्यासीवपयस्वताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—परस्पर टूटनेके घर्घरशब्दसंयुक्त नष्ट होते हुये अनेक पर्वत तथा भग्न देवालयोंके साथ ऊर्ध्वभागमें जल और अधोभागमें अग्नि धारण किये हुये जगत् उससमय दृष्ट हुआ ॥ २५ ॥ जलकी वृष्टिसे पर्वतोंके भी पेषणसे दिक्पालोंके नगरोंका कुट्टन करते हुये तथा देव, दैत्य, इन्द्र तथा सिद्ध आदिके गिरते हुये नगरोंसे पूर्ण त्रैलोक्य होगया ॥ २६ ॥ शांत अंगाररूप पदार्थोंका छेदन वायु ऐसी असारतापूर्वक करताथा जैसे धूलिको ॥ २७ ॥ मेघोंके जलके सदृश रत्नोंके खण २ शब्दयुक्त देव दैत्योंके नगरोंके भेदनमें तत्पर त्रैलोक्य उससमय होगया ॥ २८ ॥

पूर्णांबरंपतल्लोकलोकसप्तकमंदिरैः ॥ चक्रावृत्त्याभ्रमद्भूपैरमरैःसागरैरिव ॥ २९ ॥ डीनोड्डीनैःपरिवृतं विचलद्वातवेल्लितैः ॥ दग्धादग्धैःपदार्थैःखेशीर्णपर्णगणैरिव ॥ ३० ॥ हेमस्फटिकवैदूर्यसुसारमणिमंदिरैः ॥ दिवःपतद्भिराकीर्णमुद्यज्झणझणस्वनैः ॥ ३१ ॥ उत्पेतुर्द्धूमभस्माब्दाःपेतुर्वारापुरोत्कराः ॥ उन्ममज्जुस्तरंगौघाममज्जुर्भूतलाद्रयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा सागरके सदृश चक्राकार भ्रमण करते हुये देवताओं तथा गिरते हुये प्राणी सहित सातों लोकोंके मंदिरोंसे पूर्णाकाश संयुक्त त्रैलोक्य होगया ॥ २९ ॥ तथा चंचल पवनसे वेष्टित उडते तथा गिरते हुये तथा अर्द्धदग्ध पदार्थोंसे आकाशप्रदेशसे त्रैलोक्य ऐसे व्याप्त होगया जैसे जीर्ण पत्रोंसे ॥ ३० ॥ हे रामजी ! महाझन २ शब्द सहित आकाशसे गिरते हुये उत्तम सुवर्ण, स्फटिक तथा वैदूर्य मणिसे रचित मंदिरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त होगया॥ ३१ ॥ जलकी वृष्टिसे धूम, भस्म और मेघोंके समूह तथा नगरोंके समूह और तरंगोंके समूह उठते लगे और पृथिवी तथा पर्वत डूबने लगे ॥ ३२ ॥

आवर्त्तघर्घरारावामिथोविदलनोद्यताः ॥ जुघूर्णुरर्णवाकीर्णपर्णवत्प्रौढपर्वताः ॥ ३३ ॥ कंदच्छिष्टामरगणंचलत्स्वजीवभूतकम् ॥ भ्रमत्केतुशतोत्पातंदुष्प्रेक्ष्यमभवज्जगत् ॥ ३४ ॥ मृतार्धमृतयाभूतसंतत्या निललोलया ॥ अभूत्रीरंध्रमाकाशंजीर्णपर्णसवर्णया ॥ ३५ ॥ जगदासीत्पतच्छृंगस्थूलधारौघनिर्भरम् ॥ वहद्वहद्गिरिपुरवातपूर्णसरिच्छतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आवर्त्तयुक्त घर्घर शब्द सहित और परस्पर विदलमें उद्यत और समुद्रोंसे व्याप्त महा पर्वत ऐसे उडने लगे जैसे जीर्ण पत्र ॥ ३३ ॥ रोदन करते हुये शिष्ट देवगण सहित, किंचित् जीवनयुक्त प्राणियों सहित और भ्रमण करते हुये अनेक केतुओंके उत्पातोंसे पूर्ण जगत् उससमय दर्शनीय होगया ॥ ३४ ॥ पवनमें चंचल जीर्ण पत्रोंके समान अर्द्धमृत तथा सर्वथा मृत प्राणियोंके समूहसे आकाश पूर्ण होगया ॥ ३५ ॥ पर्वतके शिखरके तुल्य स्थूल धाराओंसे व्याप्त तथा पर्वत और नगरादिको भी वहानेवाली अनेक नदियोंसे पूर्ण जगत् उस समय होगया ॥ ३६ ॥

शाम्यच्छमशमाशब्दशतशाखहुताशनम् ॥ चलाब्धिवलनांदोललोलैःशललसत्तटम् ॥३७॥ तृणराशिसरिद्व्यायमिश्रद्वीपार्णवोत्कटम् ॥ अत्यंतदूरचिद्व्योमक्षणज्वालासहावनम् ॥ ३८ ॥ वर्षशाम्यद्भुताशोत्थभस्मामोदपतत्सुरम् ॥ भूतपूर्वजगद्भूतंपरिविस्मृतसर्गकम् ॥ ३९ ॥ निरर्गलोल्लसन्नादंसर्गलोपशमक्रमम् ॥ सर्गलोपोल्लसच्छेषंसर्गलोपविवर्जितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और शान्त शम शब्द सहित अनेक शाखाओंमें विभक्त अग्निसे पूर्ण तथा चलायमान समुद्रोंके आंदोलनसे चंचल पर्वतोंके शोभिततटोंसे व्याप्त जगत् उस समय होगया ॥ ३७ ॥ नदियोंसे संयुक्त समुद्रके तुल्य अनेक द्वीपोंसे पूर्ण तृणकी राशिके समान जगत् अति दूरस्थ चिदाकाशरूपी ज्वालाके सहनेमें असमर्थ था ॥ ३८ ॥ तथा

वृष्टिकी शांतिसे अग्निसे उत्पन्न धूमके द्वारा गिरते हुये सुरगण सहित, पूर्व कालमें चराचर संयुक्त और वर्तमानमें नाश होनेसे सृष्टिकी विस्मृति सहित सब जगत् होगया ॥ ३९ ॥ निरंतर शोभायमान नाद संयुक्त सृष्टिके लोपसे शांतिक्रम युक्त, यथार्थमें सृष्टिके लोप होनेपर भी उत्पत्ति तथा नाशसे रहित सर्वशेष परमात्मासे शोभायमान जगत् होगया॥४०॥

अनारतविपर्यासकारिमारुतनिर्वृतम् ॥ बीजराशिरिवाजस्रंपूर्य्यमाणंपुनःपुनः ॥ ४१ ॥ उल्मुकान्योन्य निष्पेषवह्निचूर्णसुवर्णजैः ॥ रजोभिर्विवृतैर्हेमकुट्टिमाकाशकोटरम् ॥ ४२ ॥ भूमंडलबृहत्खंडैर्भ्रष्टैःसद्वीप सागरैः ॥ पूर्णसप्तमपातालंलुठत्पातालमंडलैः ॥ ४३ ॥ आसप्तमसुतालांतमामहीतलपर्वतम् ॥ आ व्योमैकार्णवीभूतंपूर्णप्रलयवायुभिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—निरन्तर विपर्य्ययकर्ता पवनसे सिद्ध, तथा बीजकी राशिके तुल्य पुनः २ पूर्य्यमाण यह जगत् है ॥४१॥ उल्काओंके परस्पर संघर्षसे अग्नि तथा सुवर्णसे उत्पन्न स्वच्छ धूलियोंसे सुवर्णकी छतके समान आकाशकोटर संयुक्त जगत् होगया ॥ ४२ ॥ लुढकतेहुये अन्य पातालमण्डल सहित तथा अनेक द्वीप समुद्र संयुक्त गिरते हुये भूमंडलके महाखण्डोंसे सप्तमपातालपर्य्यन्त पूर्ण जगत् होगया ॥ ४३ ॥ अधोभागमें सप्तमपातालपर्य्यन्त मध्यभागमें भूतल तथा उसके ऊपरके पर्वतादिपर्य्यन्त और ऊर्ध्वभागमें आकाशपर्य्यन्त त्रैलोक्य प्रलयके प्रचंड पवनोंसे एक महासमुद्रके समान पूर्ण होगया ॥ ४४ ॥

एकार्णवोथवव्रधेशनैःशीघ्रंसरिच्छतैः ॥ भुवनेजलकल्लोलैःकोपोमूर्खाशयेयथा ॥ ४५ ॥ मुसलोपमया पूर्वततःस्तंभनिभांगया ॥ ततस्तालद्रुमाकारधारयासारसारया ॥ ४६ ॥ ततोनदीप्रवाहोग्रजलपातैक पातया ॥ सप्तद्वीपमहीपीठसममेदुरमेघया ॥ ४७ ॥ वह्निर्विदाहकृद्वृष्ट्याशममभ्याययौतथा ॥ शास्त्रस जनसंगत्यागाढमापत्पदंयथा ॥ ४८ ॥ ऊर्ध्वाधरस्थपरिवृत्तपदार्थजातमंतःकणैःखणखणायितशैलम जम् ॥ ब्रह्मांडकोटरमभूद्विधुरंकुबाललीलाविलोलमिवबिल्वफलंविशुद्धम् ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० पुष्करावर्त्तवृष्टिविसंष्टुलजगद्वर्णनं नाम सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—शीघ्रगामिनी अनेक नदियोंके जलके तरंगोंसे संसारमें वह महासमुद्र ऐसे बढा जैसे मूर्खके हृदयमें कोप ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! प्रथम मुशलाकार पश्चात् स्तंभाकार और उसके अनन्तर तालवृक्षके आकार स्थूलधारासे वृष्टिहुई॥४६॥और उसके पश्चात् समग्र भूतलके समान स्थूल तथा श्याममेघोंसे महानदीके उग्रप्रवाहके समान धारासे वृष्टि होनेलगी ॥ ४७ ॥ उस महा वृष्टिसे अति दाहकारक अग्नि ऐसे शान्त होगया जैसे शास्त्र तथा सज्जनोंके समागमसे महाविपत्ति ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! नीचे तथा ऊपर भ्रमणशील पदार्थ समूहसहित तथा आभ्यन्तरके जलकणोंसहित खणखण शब्दपूर्वक पर्वतोंके निमग्नता संयुक्त ब्रह्मांडकोटर ऐसे नष्ट होगया जैसे बालकोंकी दुष्ट लीलाओंसे चंचल शुद्ध बिल्वका फल ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने पुष्करावर्त्तवृष्टिविसंष्टुलजगद्वर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

नदीके प्रमाण स्थूल धाराओंसे आकाशको पूर्ण करतेहुये वृद्धिको प्राप्त प्रलयके एक महासमुद्रका वर्णन विस्तारसे इस ७८ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वातवर्षहिमोत्पातपातभग्नेधरातले ॥ जडवेगोगमद्वृद्धिंकलाविवमहीपतिः ॥ १ ॥ गंगाप्रवाहपतितधारापातविवर्धितः ॥ सरित्सहस्रैःसहसामेरुमंदरभासुरैः ॥ २ ॥ आदित्यपथसंप्रा प्तकंदरोजडमंथरः ॥ एकार्णवःसमुच्छूनआसीन्मूर्खइवेश्वरः ॥ ३ ॥ विपुलावर्त्तवृत्तत्वात्तविवृत्ताद्रिजर त्तृणः ॥ स्फुरत्तुंगतरंगाग्रनिगीर्णादित्यमंडलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! पवन, वर्षा तथा हिम आदिके उत्पातोंसे भूतलके नष्ट होनेपर जलका वेग ऐसे बढा जैसे कलियुगमें दुष्टराजा ॥ १ ॥ गंगाके समान धाराओंके संपातोंसे तथा अनेक नदियोंसे वृद्धिको प्राप्त अकस्मात् उत्पन्न मेरु तथा मन्दराचलके समान प्रकाशमान स्थूल तरंगोंसे पर्वतोंकी कन्दराओंको सूर्य्य मार्गमें

प्राप्त करनेवाला और जलसे अतिगंभीर प्रलयका महासमुद्र ऐसे बढा जैसे मूर्ख राजा ॥ २ ॥ ३ ॥ तथा महा आवर्तोंके द्वारा जीर्ण तृणके समान भ्रमणशील अनेक पर्वतोंको धारण किये हुये और चंचल तथा उच्च तरंगोंके अग्रभागमें सूर्य्यमण्डलकोभी ग्रास करनेवाला महासमुद्र बढा ॥ ४ ॥

मेरुमंदरकैलासविंध्यसह्यजलेचरः ॥ गलितावनिपंकांतर्लीनव्यालमृणालकः ॥ ५ ॥ अर्धदग्धद्रुमवनव्यूहशैवलसंकटः ॥ त्रैलोक्यभस्मसंसृष्टआसीत्कर्दमकुत्सितः ॥ ६ ॥ नभःस्तंबबृहद्द्वानोत्तालभास्करपुष्करः ॥ धाराजालमहांभोदविलीननलिनीदलः ॥ ७ ॥ डिंडीरपर्वतप्रांतनदद्दुन्मत्तवारिदः ॥ भ्रमदिंद्रानिलार्केंदुपुरपत्तनपूरणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा मेरु, मंदर, कैलास, विंध्य और सह्य आदि पर्वतरूप जलजीवोंसे पूर्ण और गलित पृथिवीके पंकमें लीन शेष आदि सर्परूपी कमलदंडसहित महासमुद्र बढा ॥ ५ ॥ तथा अर्द्धदग्ध वृक्षोंसहित बनोंके समूहरूपी शैवालोंसे व्याप्त और त्रैलोक्यके भस्मके मिलनेसे कर्दम (कीचड) से निंदित महासमुद्र बढा ॥ ६ ॥ तथा आकाशरूपी कमलदंडोंमें प्रचंड द्वादश सूर्य्यरूपी कमलोंसे शोभित तथा जलके ऊपर लीन धाराके जालसहित महामेघरूपी कमलिनीदलोंसे भूषित महासमुद्र बढा ॥ ७ ॥ तथा समुद्रफेनके पर्वतोंके समीपमे शब्द करते हुये उन्मत्त मेघोंसे युक्त और भ्रमण करते हुये इन्द्र, वायु, सूर्य्य, चंद्रमा और अनेक ग्राम नगरादिके समूहोंसे व्याप्त महासमुद्र बढा ॥ ८ ॥

काष्ठवत्प्रोह्यमाणोग्रसुरासुरजनोत्करः ॥ शनैःक्रमोच्छूनतयालिहन्नादित्यमंडलम् ॥ ९ ॥ तरत्तारतरारावधाराधरसमुद्भवैः ॥ बुद्बुदैःपरिसंदिग्धप्रोह्यमाणमहाचलः ॥१०॥ भ्रमद्बुद्बुदविश्रांतभ्रांतकल्पांतवारिदः ॥ उत्तालैस्तैरनाधारैःपश्यन्नपरवारिदम् ॥ ११ ॥ महाप्रवाहवार्योघघोषघुंघुमितांबरः ॥ एकप्रवाहमहितसव्योमकुलपर्वतः ॥ १२ ॥

अर्थ—काष्ठके समान वहते हुये भयंकर सुर असुर आदि प्राणियोंके समूहसहित तथा क्रमसे वृद्धिके द्वारा सूर्य्यमंडलकाभी ग्रास करता हुआ महासमुद्र बढा ॥ ९ ॥ महानाद करते हुये चंचल मेघोंसे उत्पन्न बुद्बुदोंके समान वहतेहुये अनेक महापर्वतयुक्त महासमुद्र बढा ॥ १० ॥ भ्रमण करतेहुये बुद्बुदोंपर विश्राम करनेवाले कल्पांतमेघसहित तथा ऊपर पुतलीसहित निराधार उन्ही बुद्बुद (बबूले) रूपी नेत्रोंसे अन्य समीपस्थ मेघमंडलको देखतेहुयेके समान महासमुद्र बढा ॥ ११ ॥ महाप्रवाह है जिसका ऐसे जलके प्रवाहके प्रचंड नादसे आकाशको पूर्ण करनेवाला और एक प्रवाहमें आकाश सहित कुलपर्वतोंको निमग्न करनेवाला महासमुद्र बढा ॥ १२ ॥

चंडवातकृतापूर्वजलौघकुलपर्वतैः ॥ महाघुरघुरारावघर्घरोग्रमहारयः ॥ १३ ॥ ब्रह्मांडखंडसंघट्टपरावृत्तिभिरुद्धतः ॥ कुर्वन्योजनलक्षाणिविततान्युन्नतानिच ॥ १४ ॥ तृणैरिवतरंगेषुदोलांदोलनमद्रिभिः॥ कुर्वद्भिरुपलाघातभग्नभास्करमंडलः ॥ १५ ॥ शून्यब्रह्मांडविपुलजलघातकुलायके ॥ नीलानचलकाकोलान्जहन्सलिलजालकैः ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रचंड पवनके द्वारा उत्पन्न जो अपूर्व जलौघरूप कुलपर्वत तिनकर के उत्पन्न महाघर्घरशब्दयुक्त तथा महावेगसे भयंकर महासमुद्र बढा ॥ १३ ॥ तथा ब्रह्मांड खप्परके परस्पर संघट्टसे उद्धत और अनेक ऊंचे नीचे लाखों-योजनपर्य्यन्त स्थानोंको अपने भीतर करता हुआ महासमुद्र बढा ॥ १४ ॥ तरंगोंमें तृणके समान झूलते हुये पर्वतोंके आघातोंसे सूर्य्यमंडलको भेदन करता हुवा महासमुद्र बढा ॥१५॥ जलसमूहरूपी शून्य ब्रह्मांडरूपी विपुल महाघोसले (खोंथे) में स्थित नीलपर्वतरूप महाकाकोंको जलरूपी जालोंसे हरता हुवा महासमुद्र बढा ॥ १६ ॥

मृतामृतमहद्भूतमज्जनोन्मज्जनाकुलान् ॥ तरंगमकरावर्त्तप्रतिबिंबान्वितानिव ॥ १७ ॥ मृतशिष्टान्पुरभ्रष्टान्फेनाद्रितटिकोटिषु ॥ दधज्जलबलश्रांतांस्त्रिदशान्मशकानिव ॥ १८ ॥ विपुलायतनाकाशविपुलानंबुबुद्बुदान् ॥ सहस्रसंख्यान्कलयन्लोचनानीववासवः ॥ १९ ॥ शरद्व्योमसमाभोगैर्वलद्भिर्बुद्बुदेक्षणैः ॥ पश्यन्निवनदीधारान्मेघानाताम्रपूरकान् ॥ २० ॥

अर्थ—मृतक तथा जीवित अनेक प्राणियोंके मज्जन तथा उन्मज्जनोंसे व्याप्त तथा तरंग और मकाराकार आवर्तोंमे प्रतिबिंबितके सदृश अनेक पर्वतरूपी पक्षियोंको तरंगरूपी जालोंसे हरण करता हुआ महासमुद्र बढा ॥ १७ ॥ वह महासमुद्र फेनरूपी पर्वतोंके शिखरोंपर मरनेसे बचे हुये नगरोंसे भ्रष्ट और जलके बलसे श्रांत देवताओंको ऐसे धारण करताथा जैसे मशकों (मच्छरों) को ॥ १८ ॥ हे रामजी! वह प्रलयका समुद्र इस रूपाके कटाहके समान दृश्यमान

इस विशाल आकाशके सदृश स्थूल बुद्बुदरूपी सहस्र नेत्रोंको ऐसे धारण करताथा जैसे इन्द्र ॥ १९ ॥ शरत्कालके आकाशके समान विशाल बुद्बुदरूपी नेत्रोंसे नदीके सदृश स्थूलधारायुक्त मेघोंको मानो वह प्रलयका समुद्र देखताथा ॥ २० ॥

पुष्करावर्त्तकाभ्राणांबहुभिर्वीचिमंडलैः ॥ कुर्वन्नालिंगनानीवसपक्षाद्रिवदुत्थितैः ॥ २१ ॥ त्रिजगद्ग्रास संतृप्तःप्रगायन्निवघर्घरैः ॥ स्वैर्नृत्यन्निवचोग्राद्रिकटकैर्वीचिदोर्द्रुमैः ॥ २२ ॥ नदीधाराधरैरूर्ध्वमध्येद ग्धैर्धराधरैः ॥ अधोधराधरैर्नागैरधरःपंकगैर्वृतः ॥ २३ ॥ धारात्रिपथगापूरैर्निपतद्भिर्निरंतरम् ॥ मग्नो न्मग्नोह्यमानाद्रिशृंगडिंडीरबुद्बुदः ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा वह प्रलयका समुद्र पक्षसहित पर्वतोंके समान आविर्भूत अनेक तरंगमण्डलोंसे मानो पुष्करावर्त्तक आदि मेघोंको आलिंगन करता था ॥ २१ ॥ पुनः तीनोंलोकके ग्राससे तृप्त प्रलयका महासमुद्र घर्घरशब्दोंसे गातेकेसमान तथा पर्वतरूपी कटकों (कडों) से भूषित तरंगरूपी भुजाओंसे नाचतेहुयेके समान भासताथा ॥२२॥ हे रामजी ! उस महासमुद्रका ऊर्ध्वभाग नदीके समान धारायुक्त मेघोंसे, मध्यभाग दग्धपर्वतोंसे और अधोभाग पंकमें रहनेवाले नागोंसे व्याप्त था ॥ २३ ॥ निरन्तर गंगाजीके प्रवाहके तुल्य धाराओंसे पूर्ण तथा कभी डूबते और कभी उतराते हुये धारण किये हुवे पर्वतोंके शिखरोंके सदृश फेन और बुद्बुदोंसे शोभित वह प्रलयका समुद्र था ॥ २४ ॥

उह्यमानदलत्स्वर्गखंडक्रंदन्नभश्वरः ॥ वहद्विद्याधरीवृंदपद्मिनीसुंदरांतरः ॥ २५ ॥ एकार्णवपयःपूरैर्घ र्घरारावरंहसि ॥ त्रैलोक्यखंडसंहारेप्रोह्यमाणेमहांभसि ॥ २६ ॥ नासीत्कश्चित्परित्राताहंतावीचिव शोषिच ॥ शक्नोतिकःपरित्रातुंकालेनकवलीकृतम् ॥ २७ ॥ नाकाशमासीन्नदिगंतआसीदधोपिनासीन्न तदूर्ध्वमासीत् ॥ भूतंनआसीन्नचसर्गआसीदासीत्परंकेवलमेववारि ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० एकार्णववर्णनं नाम अष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—तथा बहते हुये छिन्नभिन्न स्वर्गके खंडोंमें रोदन करतेहुये आकाशचारी देवतागणसहित तथा बहतीहुई विद्याधरियोंके समूहरूप कमलिनीगणसे आभ्यन्तरमें रमणीय वह प्रलयका समुद्र था ॥ २५ ॥ हे रामजी ! उस प्रलयसमुद्रके जलके महाप्रवाहोंसे जब घर्घरशब्दसहित अतिवेगयुक्त महाजलमें त्रैलोक्यसमूह बहताथा ॥ २६ ॥ तब कोई रक्षक न था और ऐसा भी कोई प्राणी वा पदार्थ नहीं था जो तरंगोंका ग्रास न हो, क्योंकि कालसे कवलीकृत जगत्‌की कौन रक्षा करसकताहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उससमय न आकाश था, न दिशा थीं, न ऊपर, न नीचा, न भूत, न भविष्य और न सृष्टि थी, किंतु केवल जलही जल था ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो०एकार्णववर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

जाग्रत्से स्वप्नके बाधके तुल्य ऋषि तथा देवगणसहित ब्रह्माजीका निर्वाण इस ७९ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेचक्षुर्व्योमस्थोहमथात्यजम् ॥ ब्रह्मलोकेमहालोकेप्रभातेर्कप्रभा मिव ॥ १ ॥ यावद्दृष्टोमयातत्रशैलादिवविनिर्मितः ॥ परमेष्ठीसमाधिस्थःप्रधानपरिवारवान् ॥ २ ॥ समूहश्चैवदेवानांमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ शुक्रोबृहस्पतिश्चैवशक्रोवैश्रवणोयमः ॥ ३ ॥ सोमोथवरु णोग्निश्चतथान्येपिसुरर्षयः ॥ देवगंधर्वसिद्धानांसाध्यानांचविनायकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! जब तपोलोकपर्य्यंत प्रलयके समुद्रसे डूबगया तब सत्यलोकके समीप आकाशमें स्थित मैंने महाप्रकाशयुक्त ब्रह्मलोकमें ऐसें दृष्टि फेकी जैसे प्रातःकालमें सूर्य्य अपनी प्रभाको ॥ १ ॥ इतनेमें सालोक्य मुक्तिको प्राप्त और ब्रह्माजीके साथ कैवल्यपदमें जानेवाले जीवन्मुक्तरूपी कुटुंबसहित समाधिस्थ ब्रह्माजीको पर्वतसे निकले हुयेके समान मैंने देखा ॥ २ ॥ अधिकारी देव तथा मुनियोंका समूह मैंने देखा, शुक्राचार्य्य, बृहस्पति, इन्द्र, कुबेर और यमको मैंने देखा ॥ ३ ॥ चन्द्रमा, वरुण, अग्नि तथा अन्यदेवता और ऋषियोंको तथा देव, गंधर्व, सिद्ध और साध्योंके नायकोंकोभी मैंने देखा ॥ ४ ॥

लिंपिकर्मार्पिताकाराःसर्वेध्यानपरायणाः ॥ बद्धपद्मासनास्तत्रनिर्जीवाइवसंस्थिताः ॥ ५ ॥ अथतेद्वाद शादित्यास्तमेवोद्देशमागताः ॥ बद्धपद्मासनास्तस्थुस्तथैवाशुयथैवते ॥ ६ ॥ ततोमुहूर्त्तमात्रेणदृष्टवा नहमब्जजम् ॥ पुरोविनिद्रतांयातःस्वप्नदृष्टमिवाग्रगम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मलोकजनंसर्वंमहतामिववासनाम् ॥ नापश्यंस्वप्ननगरंबुध्यमानइवाग्रगम् ॥ ८ ॥

अर्थ—चित्रमें लिखितके सदृश, पद्मासनसे स्थित और निर्जीवके समान स्थित सब ध्यानमें परायण थे ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रलयके द्वादश सूर्य्यभी उसी स्थानपर आये और इन देवमुनियोंके सदृश वे भी पद्मासनसे बैठ गये ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् मुहूर्त मात्रमें केवल ब्रह्माजीके सन्मुख, अपनेको केवल ऐसे देखा जैसे स्वप्नसे उठा हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थोंसे शून्य केवल अपने आत्माको ॥ ७ ॥ और महात्माओंकी वासनाके तुल्य अन्तर्धान दशाको ब्रह्मलोकस्थ जनसमूहकोभी मैंने ऐसे नहीं देखा जैसे जाग्रत् पुरुष स्वप्नके पदार्थोंको ॥ ८ ॥

अरण्यशून्यमेवासीत्तद्ब्रह्मभवनंतदा ॥ कठिनाकांडविध्वस्तंपृथिव्यामिवपत्तनम् ॥ ९ ॥ सर्वएवचन क्वापितेतथाताद्दशास्तदा ॥ ऋषयोमुनयोदेवावेदाविद्याधरादयः ॥ १० ॥ ज्ञातंततोवधानेनमयानभ सितिष्ठता ॥ यावन्निर्वाणमापन्नाब्रह्मवत्सर्वएवते ॥ ११ ॥ वासनायांविलीनायामदर्शनमुपागताः ॥ स्वप्नलोकाःप्रबुद्धानामिवस्वंरूपमागताः ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्माजीके अन्तिम आत्मसाक्षात्कारके समय उनके साथही सबकी कैवल्य मुक्ति होनेसे ब्रह्मलोक जनशून्य अरण्यके सदृश ऐसे होगया जैसे आकस्मिक नाशसे पृथिवीके नगर ॥ ९ ॥ वे सब ऋषि, मुनि, देव तथा विद्याधर आदि शून्यरूप होगये, क्योंकि वहांसे वे कहीं गये नहीं ॥ १० ॥ इसके पश्चात् आकाशमें स्थित होके ध्यानसे यह जाना कि ब्रह्माजीके समान नामरूप त्यागकर सब निर्वाणको प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ वासनाके नष्ट होनेपर वे अदर्शनको प्राप्त होके अपने शुद्ध ब्रह्मरूपको ऐसे प्राप्त हुये जैसे स्वप्नसे प्रबुद्ध प्राणी ॥ १२ ॥

आकाशात्मैवदेहोयंभातिवासनयास्फुटः ॥ तदभावात्तुनोभातिस्वप्नोबोधवतोयथा ॥ १३ ॥ अंतरिक्ष गतोदेहोयथास्वप्नेविलोक्यते ॥ बोधेतद्वासनाशांतौनकिंचिदपिलक्ष्यते ॥ १४ ॥ जाग्रत्यपितथैवायंवा सनायाःपरिक्षये ॥ नैवातिवाहिकोनैवलक्ष्यतेत्राधिभौतिकः ॥ १५ ॥ स्वप्नानुभवएषोत्रदृष्टांतत्वेनल क्ष्यते ॥ आबालमेतत्संसिद्धमनुभूतंश्रुतंस्मृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आकाशरूप यह शरीर वासनासे प्रत्यक्ष भासता है और वासनाके अभावमें तो ऐसे नहीं भासता जैसे जाग्रत्को स्वप्न ॥१३॥ जैसे स्वप्नमें आकाशगामी शरीर जाग्रत् होनेपर नहीं देख पडता ऐसेही वासनाके शांत होनेपर यह शरीर आदि कुछ नहीं लक्षित होता ॥ १४ ॥ जाग्रत्मेंही वासनाके नाश होनेसे सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों शरीर नहीं भासतेहैं ॥१५॥ हे रामजी ! बालकपर्य्यन्त अनुभूत,श्रुत तथा स्मृत यह स्वप्नही इसमें दृष्टान्त है॥१६॥

अपन्हुतेचवायोपिस्वमेवानुभवंशठः ॥ सत्याज्यःकोह्यलीकेनसुप्तमुद्बोधयेत्किल ॥ १७ ॥ देहकारण कःस्वप्नेदेहाभावान्नदृश्यते ॥ इतिचेत्तददेहानांपरलोकोपिनास्तिच ॥ १८ ॥ इत्येतदभविष्यच्चेतच्छ रीरकसंक्षये ॥ नाभविष्यदसंसर्गःसचास्त्येवचसर्वदा ॥ १९ ॥ अवयवविभागात्मन्यवश्यंभाविनि क्षये ॥ नकदाचिदनित्थंतज्जगदित्यप्यसंस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो शठ, निज तथा अन्यसिद्ध स्वप्नके बाधकोभी नहीं मानता उस मिथ्या स्वप्नशील जाग्रतको कौन जगा सकता है ॥ १७ ॥ यदि यह कहो कि इसका कारण तो पिता आदिका देह हैं और स्वप्नदेहके कारण पिता नहीं है इसलिये स्वप्नका देहही नहीं है इसलिये दृष्टान्त युक्त नहीं है तो यज्ञ आदि कारणसे उत्पन्न स्वर्ग आदि परलोकके शरीरभी तुमारे मतसे न होनेसे तुम नास्तिक हुये ॥ १८ ॥ और यदि देहके सिवाय अन्य कारणोंसे उत्पन्न देहको सर्वथा असत् मानते हो तो देहसे अनुत्पन्न ब्रह्माजीके शरीरके भी सर्वथा अभाव होनेसे तथा इस कल्पके सब शरीरोंके सर्वथा क्षय होनेपर देहके न होनेसे न कोई शरीर और न यह सृष्टि हो सकती है, और सृष्टि शरीर आदि जो सदा सबके अनुभव सिद्ध हैं ॥ १९ ॥ और पंचभूतोंके संयोगरूप इस जगत्के पदार्थोंके विभागोंसे विनाशशील यह जगत् अवश्य है इसलिये सर्वदा प्रवाहरूप यह जगत् ऐसाही अनादि नित्य है इसका प्रलय नहीं होता यह जैमिनीय मत असंगत है ॥ २० ॥

नकदाचिज्जगन्नाशोदेहोद्भूतगुणादिकम् ॥ मदशक्तिरिवज्ञप्तिरुदेतीतिचवक्षिचेत् ॥ २१ ॥ तत्पुराणे तिहासानांसर्वसंक्षयवादिनाम् ॥ स्मृत्यादीनांसवेदानांवैयर्थ्यमुपजायते ॥ २२ ॥ अप्रमाणतयैतस्मि

त्रर्थेतेषांमहामते ॥ अन्यत्रापिप्रमाणत्वंवंध्यादावपिकिंभवेत् ॥ २३ ॥ नचैतदिष्यतेलोकेजगदुच्छेद कारणात् ॥ अन्यच्चास्तामेतदंगममेदमपरंशृणु ॥ २४ ॥

अर्थ—और इस जगत्कारण पंचभूतोंका नाश नहीं होता और पंचभूतोंका संयोगही देह है उसमें मादक शक्तिके समान चेतन गुण उत्पन्न होताहै आत्मा देहसे भिन्न कुछ नहीं है यदि ऐसा कहते हो तो ॥ २१ ॥ सब वस्तुओंके नाश, चतुर्विध प्रलय, उनके अष्टादश पुराण, भारत आदि इतिहास तथा ऐहिक और पारलौकिक हिता-हित तथा धर्माधर्म प्रतिपादक श्रुति, स्मृति तथा सदाचार सब व्यर्थ तथा अप्रमाण हो जाँयगे ॥ २२ ॥ यदि यह कहो कि देहात्मवादी चार्वाकके मतमें उनका वैयर्थ्य तथा अप्रामाण इष्टही है तब हे विशालबुद्धियुक्त चार्वाक ! यदि ये अनेकशिष्ट संमत थे सब अप्रमाण तो क्या बंध्याते अनेक पुत्र उत्पन्न किये इत्यादि वाक्योंके सदृश आपके वाक्य प्रमाण होंगे ॥ २३ ॥ और हे प्रिय चार्वाक ! जगत्के उच्छेदके कारणसे तुमारा मत इष्ट नहीं है औरभी अपने मतमें तुम दूषण सुनो ॥ २४ ॥

मदशक्त्यात्मनिज्ञानेदृष्टादेशांतरेषुया ॥ प्रमृतानांपिशाचादिदेहतासानसिद्धयति ॥ २५ ॥ अथसापि सुधाभ्रांतिर्यावद्देहंप्रदृश्यते ॥ इतिचेत्तन्मुधानामसत्यमित्येववोभवेत् ॥ २६ ॥ एवंचेत्तत्परोलोकःस त्स्वर्गनरकादिकम् ॥ इत्येषापिनसंवित्किंसत्यतामुपगच्छति ॥ २७ ॥ नपिशाचप्रमासत्यामदशक्ति मतोपिहि ॥ प्रतिभास्यनसत्यास्यात्परलोकात्मिकाकथम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कि मदकी शक्तिके सदृश ज्ञान गुण सहित शरीर शरीरसेही उत्पन्न होताहै ऐसा माननेसे अन्यत्र मृतपुरुषोंके शरीर नष्ट होनेसे उसके गुण ज्ञानके नाश होनेसे पिशाचोंके शरीर, उनके गमनागमन तथा परशरीर आदिमें प्रवेश नहीं सिद्ध होगा ॥ २५ ॥ यदि कहो कि प्रत्यक्षमें बोध होनेसे पिशाचादि शरीर मिथ्या है तो तुमारा वाक्यभी अप्रत्यक्ष होनेसे अप्रमाण क्यों नहीं ॥ २६ ॥ यदि अन्यके बोधार्थ शब्द प्रमाण तो परलोक, स्वर्ग, नरक तथा उनके प्रतिपादक श्रुति, स्मृति आदि शब्द क्यों नहीं सत्य प्रमाण होंगे ॥ २७ ॥ अन्यदेहमें स्थित तथा सबके अनुभव सिद्ध पिशाचग्रस्त पिशाच बुद्धि यदि सत्य नहीं है तो मदकी शक्तिके समान देहमें चेतनगुणकी उ-त्पत्ति कैसे सत्य हो सकती है ॥ २८ ॥

पिशाचोस्तीतिचेत्संवित्सत्यार्थातेनसंविदः ॥ मृतस्यास्तिपरोलोकइत्यस्यांकिंनसत्यता ॥ २९ ॥ काकतालीयवद्देहात्पैशाचीज्ञप्तिरस्तिचेत् ॥ परलोकार्थसंवित्तिःकथंनास्तिसकारणा ॥ ३० ॥ यांतवे त्तियथासंवित्सातथानुभवत्यलम् ॥ वस्तुसत्यमसत्यंवासिद्धमित्यनुभूतितः ॥ ३१ ॥ मृतस्यास्तिप रोलोकोविदित्येवंमयीभवेत् ॥ सतिवासतिदेहेस्मिंस्तेनकिंसदसच्चकिम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और यदि पिशाच है इस बुद्धिको सत्य मानते हो तो मृतपुरुषको परलोक है इसकी सत्यता क्यों नहीं ॥ २९ ॥ यदि आकस्मिक अदृढप्रमाणसिद्ध पिशाचबुद्धि निज अनुभूत होनेसे सत्य है तो दृढ वेदादि प्रमाणसिद्ध परलोकादिबुद्धि क्यों न सत्य हो ॥ ३० ॥ इसलिये जो संवित् जिस वस्तुकी सत्ताको जैसा अपने आभ्यंतर जानती है उसको वैसाही अनुभव करती है चाहै वह सत्य हो वा असत्य हो यह वार्ता अनुभवसिद्ध है ॥ ३१ ॥ इस जीवितदशामें श्रुति आदिके प्रमाणसे और मृतदशामें स्वप्नके तुल्य प्रतिमाके बलसे परलोक है इस रूपकी यदि संवित् होतीहै तब सत्य हो वा असत्य हो उसका अनुभव वह अवश्य करती है ॥ ३२ ॥

तस्मात्स्वभावःप्रथमंप्रस्फुरन्वेत्तिसंविदम् ॥ वासनाकारणंपश्चाद्बध्वासंपश्यतिभ्रमम् ॥ ३३ ॥ तत्क्ष याच्छममायातिद्रष्टृदृश्यदृगामयः ॥ तत्सत्तायामुदेतीयंसंसृत्याख्यापिशाचिका ॥ ३४ ॥ उपलंभउदे त्यादौब्रह्मणोवासनाततः ॥ तच्छांतिंविद्धिनिर्वाणंतत्सत्तांसंसृतिभ्रमम् ॥ ३५ ॥ उत्पन्नैवचसानादौ परब्रह्मण्यसंभवात् ॥ उत्पन्नासमयायासौब्रह्मैवपरमेवसत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसलिये वेदादि प्रमाणसे स्वयं सिद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वप्रकाश होनेसे सब व्यवहारके पूर्व निज-स्वरूप संवित्को प्रथम जानताहै उसके पश्चात् वासनाके कारण सूक्ष्मशरीरको जानकर स्थूलदेहादि संसारके भ्रमको देखताहै ॥ ३३ ॥ और वासनाके नाशसे दृश्य, दर्शन, द्रष्टारूप रोग शान्त होजाताहै और वासनाकी सत्यतासे संसाररूप पिशाचिका उदय होती है ॥ ३४ ॥ हे रामजी! सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मको जगत् रचनाकी इच्छा होती है अनंतर पूर्वकालकी वासनाओंकी जगत्रूपसे उत्पत्ति होती है, इस हेतुसे वासनाकी शान्तिको निर्वाण और उसकी

सत्ताको संसाररूप भ्रम जानो ॥ ३५ ॥ परंतु यथार्थमें अद्वैत कूटस्थ ब्रह्मसे नहीं हुई है किंतु ज्ञानोदयपर्य्यन्त शास्त्रकल्पित सिद्धान्तसे उसको उत्पन्न मानना चाहिये और ज्ञान उत्पन्न होनेपर तो सब जगत् तथा वासना ब्रह्मरूपही होजाती है ॥ ३६ ॥

एतावद्यत्परिज्ञानंतन्निर्वाणंविदुर्बुधाः ॥ यदत्रैवापरिज्ञानंतंबंधंविद्धिराघव ॥ ३७ ॥ विज्ञानघनएवायंकचनाकचनात्मकः ॥ स्वयमेवकचत्यंतर्नकचत्येववास्वयम् ॥ ३८ ॥ संविदंशपरावृत्तिमात्रेपेलवरूपिणि ॥ बंधदृङ्मोक्षदृक्चेतिक्लेशस्तत्साधनंकियत् ॥ ३९ ॥ संविद्बोधनेबंधस्तदनुद्बोधनेशिवम् ॥ असत्सद्वज्जगद्भातिसंविद्बोधनोदरम् ॥ ४० ॥ अजडंवेदनंसुप्तंमोक्षइत्यभिधीयते ॥ प्रबुद्धंबंधइत्याहुर्यदिच्छसितदाहर ॥ ४१ ॥ निर्वाणवासनमनंतमनाद्यमच्छबोधैकतानमपयंत्रणमस्तशंकम् ॥ अद्वैतमैक्यरहितंचनिरस्तशून्यमाकाशकोशविशदाशयशांतमास्व ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपा०वासनाभावप्रतिपादनं नामैकोनाशीतितमःसर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ—इसी ज्ञानको तत्ववेत्ता निर्वाण कहतेहैं और इस ब्रह्मके अज्ञानको तुम बन्ध जानो ॥ ३७ ॥ विज्ञानघन यह आत्मा स्वयंप्रकाश तथा अप्रकाशात्मा है ज्ञात होनेसे स्वयं प्रकाशरूपसे स्फुरता है और अज्ञात होनेसे नहीं स्फुरता ॥ ३८ ॥ मैं बद्ध हूं इस भावनासे बन्ध और नित्य मुक्त हूं इस भावनासे मोक्ष जब केवल संवित्के परिवर्तन मात्रसे आत्माको होताहै तब उसके साधनमें क्या क्लेश है ॥३९॥ हे रामजी! चित्तकी वृत्तिको बहिर्मुख करनेसे बंध और उसको समाधिद्वारा आत्मामें लीन करनेसे मोक्ष होताहै, चित्तकी वृत्तिको बहिर्मुख करनेसेही असत् जगत् सत्के समान भासताहै ॥ ४० ॥ जगत्के प्रपंचसे शून्य शांत चेतनस्वरूपसे स्थितिको मोक्ष कहते हैं और जगत्के प्रपंचसहित स्थितिको बंध कहतेहैं इन दोनोंमेंसे जिसकी इच्छा हो उसका अभ्यास करो ॥ ४१ ॥ हे रामजी! तुम विक्षेपरहित सुखकेलिये वासनाशून्य, अनादि, अनंत, निर्मलबोधरूप, बंधकी शंकासे रहित द्वैतता तथा एकतावर्जित, अशून्यस्वभाव और आकाशके सदृश विशदरूप ब्रह्मस्वरूपसेही स्थित रहो ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वासनाभावप्रतिपादनं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

वैज्ञानिक तत्वदृष्टिकी रीतिसे प्रलयका क्रम वर्णन किया गया, अब प्राकृतयोगीके गम्य उसका क्रम इस ८० के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितेसर्वआयाताब्रह्मलोकनिवासिनः ॥ अदृश्यतामेवगतादीपाःक्षीणदशाइव ॥ १ ॥ अथतेद्वादशादित्याब्रह्मणिब्रह्मतांगते ॥ जगद्ब्रह्मलोकंतमदहन्भास्वरार्चिषः ॥ २ ॥ वैरिंचनगरंदग्ध्वाध्यानंकृत्वाविरंचिवत् ॥ तेपिगीर्वाणमाजग्मुर्निःस्नेहदशदीपवत् ॥ ३ ॥ ततएकार्णवापूरोविरिंचिनगरांतरम् ॥ रात्रौभुवमिवध्वांतंपूरयामाससूर्मिगान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! इसप्रकार प्राप्त सब ब्रह्मलोकनिवासी ऐसे अदृश्यरूपताको प्राप्तहुये जैसे तेल तथा वर्त्तिसे रहित दीप ॥ १ ॥ इसके पश्चात् पूर्वोक्त द्वादश सूर्य्य ब्रह्माके शरीरमें मायाशबलित ब्रह्मरूपताको प्राप्तहुये और भूमि आदिके तुल्य ब्रह्मलोककोभी प्रकाशमयी ज्वालाओंने भस्म करदिया ॥ २ ॥ ब्रह्माके नगरको जलाकर और ब्रह्माके समान ध्यान करके वे सब अग्नि आदि ऐसे शांत होगये जैसे तैल तथा बत्तीसे रहित दीपक ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् विशालतरंगयुक्त महासमुद्रने ब्रह्माके नगरको ऐसे पूर्ण किया जैसे रात्रिमें अंधकार भूमण्डलको ॥ ४ ॥

आब्रह्मलोकमभवज्जगदापूर्णमर्णसा ॥ तुल्यंरसैकपूर्णेनपक्वद्राक्षाफलेनतत् ॥ ५ ॥ तत्तदूर्मिगिरिव्रातखगैरावलिताःखिलाः ॥ विच्छिन्नाःकल्पजलदाजलएवनिलिल्यिरे ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रदृष्टवानहमंबरात् ॥ यावदभ्युदितंभीमंभीतःकिंचिन्नभोंतरात् ॥ ७ ॥ कल्पांतजगदाकारंकृष्णमापूरितांबरम् ॥ आकल्पसंभृतंनैशंदेहेनेवोत्थितंतमः ॥ ८ ॥

अर्थ—रससे पूर्ण परिपक्व अंगूरके फलके समान ब्रह्मलोकपर्यन्त वह ब्रह्मांड जलसे पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ उन २ अनेकप्रकारके तरंगोंसे, तैरतेहुये पक्षी तथा देव आदि शरीरोंसे छिन्न भिन्न कल्पांतके पुष्करावर्त्त आदि मेघसमूह जलमेंही लीन होगये ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर आकाशमें स्थित मैंने आकाशसे निकलता हुवा कुछ भयंकर रूप मैंने देखा और अति भयभीत होगया ॥ ७ ॥ कल्पान्त जगत्के आकारके सदृश और आकाशको पूर्ण करता हुवा कृष्णवर्ण वह रूप ऐसे प्रकट हुआ जैसे कल्पभरका संचित मूर्तिमान् अन्धकार ॥ ८ ॥

तरुणादित्यलक्षाणांतेजसाभास्वरंदधत ॥ आदित्यत्रयसंकाशैःस्थिरविद्युच्चयोल्बणैः ॥ ९ ॥ नेत्रैरा भास्वरमुखंज्वालापुंजसमुद्गिरम् ॥ पंचाननंदशभुजंत्रिनेत्रंशूलपाणिकम् ॥ १० ॥ आयांतमंतमुक्तेपि व्योम्नीवविततात्कृतिम् ॥ खमिवासिघनश्यामंदेहमासाद्यसंस्थितम् ॥ ११ ॥ स्थितमेकार्णवापूर्णाद्ब्र ह्मांडाद्बहिरंबरे ॥ व्योमेवहस्तपादादिसंनिवेशेनलक्षितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—लक्षों तरुण सूर्य्यके समान प्रकाशमय तेज धारण करतेहुये, स्थिर, देदीप्यमान विद्युत्समूह तथा तीन सूर्य्यके सदृश ॥ ९ ॥ तीन नेत्रोंसे प्रकाश पंचमुखसहित दशभुजधारी त्रिनेत्र और हस्तमें त्रिशूलधारी उस रूपको मैंने देखा ॥ १० ॥ अन्तशून्य आकाशके समान विशालरूपधारी, मेघके सदृश मूर्तिमान् आकाशके तुल्य स्थित उस रूपको मैंने देखा ॥ ११ ॥ महासमुद्रसे पूर्ण ब्रह्मांडसे बाहर हस्तपाद आदि अंगोंसे लक्षित उस रूपको मैंने देखा ॥ १२ ॥

घोणानिलपरावृत्तिविधूतैकमहार्णवम् ॥ गोविंदमिवदोर्दंडक्षोभितक्षीरसागरम् ॥ १३ ॥ कल्पार्णव जलापूरंपुंस्त्वेनेवसमुत्थितम् ॥ मूर्तियुक्तमहंकारमस्तकारणमागतम् ॥ १४ ॥ कुलाचलबृहद्वृंदमिवो ड्डयनडंबरैः ॥ पक्षौघैरुत्थितंव्योमसमस्तमभिपूरयत् ॥ १५ ॥ ततस्त्रिशूलनयनैर्मयारुद्रोयमित्यसौ ॥ दूरादेवपरिज्ञायपरमेशोनमस्कृतः ॥ १६ ॥

अर्थ—श्वासवायुके गमनागमनसे महासमुद्रको कंपित करनेवाले तथा विष्णुभगवान्के सदृश भुजदंडसे क्षीरसागरको कंपित करनेवाले उस रूपको मैंने देखा ॥ १३ ॥ तथा पुरुषाकार कल्पान्तसमुद्रके सदृश आविर्भूत और कारणरहित मूर्तिमान् अहंकारके सदृश प्राप्त उस रूपको मैंने देखा ॥ १४ ॥ तथा उडनेमें तत्पर पक्षसमूहोंसे समस्त आकाशमण्डलको पूर्ण करतेहुये सप्तकुलपर्वतोंके महावृन्दके समान प्रकट उस रूपको मैंने देखा ॥ १५ ॥ उसके पश्चात् त्रिशूल तथा तीन नेत्रोंसे यह रुद्र हैं ऐसा जानकर दूरसेही उस परमईशको मैंने नमस्कार किया ॥ १६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ किंसताहृग्विधोरुद्रःकिंकृष्णःकिंमहाकृतिः ॥ किंपंचवदनःकस्माद्दशबाहुःसतिष्ठ ति ॥ १७ ॥ किंत्रिनेत्रःकिमुग्रात्माकिमेकःकिंप्रयोजनः ॥ केनेरितःकिमकरोच्छायासीद्वदकामुने ॥ १८ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काकुत्स्थरुद्रनामासावहंकारतयोत्थितः ॥ विषमैकाभिमानात्मामूर्त्तिरस्यामलं नभः ॥ १९ ॥ व्योमाकृतिःसभगवान्व्योमवर्णोमहाद्युतिः ॥ चिद्व्योममात्रसारत्वादाकाशात्मा सउच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन् ! परमेश्वररुद्र कृष्णवर्ण तथा महाकृति क्यों हैं, पंचमुख तथा त्रिनेत्र भी क्यों धारण करतेहैं, और दशभुजायुक्त भी क्यों हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! त्रिनेत्र कौन हैं ? उग्रात्मा कौन हैं ? एक अद्वैत आत्मा कौन है ? और किस निमित्तसे यह भयंकर रूप धारण करतेहैं और वह रुद्र स्वतन्त्र हैं वा परतंत्र यदि स्वतंत्र हैं तो पूर्णकामकी संहारमें प्रवृत्ति क्यों यदि परतंत्र हैं तो किसकी प्रेरणासे यह कार्य्य करतेहैं और उनकी छायारूप मायाभी क्या थी सो कृपा करके कहिये ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे काकुत्स्थ ! यह परमेश्वरही जगत्की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलयके विषयभूत संकल्प अध्यवसाय आदिके कारणभूत अहंकारतासे सब प्राणियोंके रोदन तथा शरणागत जनोंके सब रोगोंको विद्रावणकेलिये रुद्रनामसे आविर्भूत हैं सो दुष्टजनोंके रोदनमें विषम अभिमानरूप और शरणागतके रोगोंके विद्रावणमें एक अभिमानरूप धारण करताहै और जो मैंने इनकी मूर्ति देखी वह निर्मल आकाशरूपही है ॥ १९ ॥ और यथार्थमें महाप्रकाशमय वह भगवान् चिदाकाशमात्र सार होनेसे आकाशमात्र आकार तथा वर्णधारी हैं ॥ २० ॥

सर्वभूतात्मभूतत्वात्सर्वगत्वान्महाकृतिः ॥ यानितस्यानुषक्तानिपंचज्ञानेंद्रियाण्यलम् ॥ २१ ॥ तानि तस्यमुखान्याहुस्तपद्रूपाणिसर्वतः ॥ कर्मेंद्रियाणिविषयास्तेहितस्यभुजादश ॥ २२ ॥ सर्वभूतनरैःसा र्द्धंब्रह्मणापरमायुषा ॥ यदासौसंपरित्यक्तस्तदास्वांमूर्त्तिमागतः ॥ २३ ॥ सचैकांशैकरूपात्मानास्ति तस्यहिसाकृतिः ॥ तथादृश्यतएवासौभ्रांतिमात्रेणमूर्त्तिमान् ॥ २४ ॥

अर्थ—सब प्राणीरूप तथा सर्वव्यापी होनेसे वह महान्आकारधारी हैं और जो सब प्राणियोंकी पंच ज्ञान इन्द्रिय हैं वेही उस परमात्माके पंच मुख हैं ॥ २१ ॥ और वाक्, पाणी, पाद, गुदा, उपस्थ तथा वचन, आदान, भ्रमण, मलत्याग और आनंद ये पंचविषय दशों मिलके उस महादेवकी दश भुजा हैं ॥ २२ ॥ और सब जीवोंके साथ प्रजापति ब्रह्माजी परमकारण मायाशबल ब्रह्मरूपताको प्राप्त होकर जब प्रलयदशामें इनको भी त्यागा तब अपनी कारणमूर्तिको ये रुद्र भी प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ और सब कार्य्योंके प्रलयके अधिष्टान कारणके अंशमात्रसेही पूर्वोक्त आकारवान् रुद्रभगवान् वर्णन किये गयेहैं, यथार्थमें उनका कोई आकार नहीं है, किंतु अपने भक्तोंकी वासनासे भ्रांतिद्वारा मूर्तिमान् भासतेहैं ॥ २४ ॥

चिदाकाशगतेस्फारेभूताकाशेसतिष्ठति ॥ देहेचसर्वभूतानांनित्यंवायुरिवेश्वरः ॥ २५ ॥ सर्वभूतपरित्यक्तस्तस्मिन्कालेखमूर्त्तिमान् ॥ क्षोभयन्सक्षणंक्षीणःपरमांशांतिमेष्यति ॥ २६ ॥ येगुणाकृतयःकालाश्चित्ताहंकारबुद्धयः ॥ प्रणवस्यचयेवर्णायेचवेदास्तथात्रयः ॥ २७ ॥ रुद्रस्यतस्यतेनेत्रसन्निवेशेनसंस्थिताः ॥ त्रिशूलंतेनत्रैलोक्यंगृहीतंकरकोटरे ॥ २८ ॥

अर्थ—जब व्यापक चिदाकाशरूपताको प्राप्त होताहै तब उसमें तथा सब प्राणियोंके देहोंमें वायुके समान वह परमात्मा नित्य स्थित रहताहै ॥ २५ ॥ और प्रलयके समयमें क्षणभर सबको क्षोभित करके पुनः सब भूतोंसे रहित चिदाकाशमात्र विग्रहधारी परमशान्तिको प्राप्त होंगे ॥ २६ ॥ और सत्व, रजस्, तमस् ये तीनगुणोंके आकार, भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीनोंकाल, चित्त, अहंकार, बुद्धि, अ, उ, म् ये तीनों प्रणवके अक्षर और वेदत्रयी जो हैं ॥२७॥ वेही रुद्रके तीनों नेत्ररूपसे स्थितहैं और अपनी मुष्टि (मूठी)में त्रिशूलरूपी त्रिलोकीको उन्होंने धारण कर रक्खाहै॥२८॥

यस्मात्तद्व्यतिरेकेणसर्वभूतगणेष्वपि ॥ अन्यन्नविद्यतेकिंचिद्देहात्मैवततःस्थितः ॥ २९ ॥ सर्वसत्वोपलंभात्मास्वभावोस्यप्रयोजनम् ॥ ईरितःशिवरूपेणचिन्मात्राकाशरूपिणा ॥ ३० ॥ तेनैवचनिगीर्णःसन्परमांशांतिमेत्यसौ ॥ निर्मलाकाशरूपात्माकृष्णइत्येषईश्वरः ॥ ३१ ॥ कृत्वाकल्पंजगत्सर्वंतत्पीत्वैकार्णवंतदा ॥ सप्रयातिपरांशांतिमभूयःसन्निवृत्तये ॥ ३२ ॥

अर्थ—और सब भूतसमुहोंमें उनसे भिन्न कुछ नहीं है, किन्तु जगत् शरीररूपसे रुद्र भगवान्ही स्थित हैं ॥ २९ ॥ और सब जीवोंको उनके कर्मोके अनुसार विषयफलका तथा अधिकारीको ज्ञान देनेका उस भगवान्का स्वभावही सृष्टि करनेका प्रयोजन है और परम कल्याणमय चिन्मात्र अपने रूपसे प्रेरित होके वे इस कार्य्यमें प्रवृत्त होतेहैं ॥ ३० ॥ और उसी अपने चित्स्वरूपसे प्रलयार्थ प्रेरित होके सब जगत्का संहार करके पुनः शान्तिको प्राप्त होतेहैं और निर्मल चिदाकाशरूप यही परमेश्वर महाकाल रुद्ररूप ॥ ३१ ॥ धारण करके उस प्रलयके महासमुद्रको पान करके पुनः विग्रह न धारण करनेके अर्थ परम शान्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३२ ॥

अनंतरंमयादृष्टस्तत्रासौयावदुद्यमात् ॥ प्रवृत्तःप्राणवेगेनतमाक्रष्टुंमहार्णवम् ॥ ३३ ॥ अथतस्यमुखस्फारंज्वालामालाकुलांतरम् ॥ प्राणाकृष्टोमहांभोधिर्वाडवाग्निमिवाविशत् ॥ ३४ ॥ सएववाडवोभूत्वावह्निराकल्पमर्णवे ॥ अहंकारःपिबत्यंबुरुद्रःसर्वंतुतत्तदा ॥ ३५ ॥ पातालमिवपानीयंसर्पौबिलमिवक्षणात् ॥ पंचवायुरिवाकाशमविशत्तन्मुखंजवात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस महाकाल रुद्ररूपदर्शनके पश्चात् मैंने देखा कि यह परमेश्वर उद्यत होके श्वासके वेगसे उस महासमुद्रको पान करनेमें प्रवृत्त हुये ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् प्राणवायुसे आकृष्ट महासमुद्र ज्वालासमूहसे व्याप्त, उस परमेश्वरके विशाल मुखमें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे वडवानलमें ॥ ३४ ॥ वही अहंकाररूप रुद्र उस समय वडवानल होके उस कल्पांतसमुद्रके जलको पान कर गये ॥ ३५ ॥ जैसे जल पातालमें, सर्प अपने बिलमें और पंच पवन आकाशमें प्रविष्ट होताहै ऐसेही क्षणमेंही महासमुद्र रुद्रके मुखमें प्रवेश कर गया ॥ ३६ ॥

समुपेत्यापिबद्रुद्रःसमुद्रंतेनतत्पयः ॥ कृष्णांगोर्कइवध्वांतंसत्संपर्कइवागुणम् ॥ ३७ ॥ आब्रह्मलोकपातालंशांतंशून्यमथाभवत् ॥ रजोधूमानिलांभोधिभूतमुक्तंसमंनभः ॥ ३८ ॥ केवलंतत्रदृश्यंतेचत्वारोव्योमनिर्मलाः ॥ इमेपदार्थानिस्पंदाःशृणुतान्रघुनंदन ॥ ३९ ॥ एकस्तावदसौमध्येरुद्रःकृष्णांबराकृतिः ॥ निराधारःस्थितोव्योम्निनिस्पंदामोदबिंबवत् ॥ ४० ॥

अर्थ—कालरूप रुद्र भगवान्ने शीघ्र उस जलको ऐसे पान करलिया जैसे सूर्य्य अन्धकारको और सत्संग दोषजालको ॥ ३७ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मलोकसे लेके पाताल पर्य्यन्त ऐसे शान्त तथा शून्य होगया जैसे रज, धूम,

वायु तथा जलसे रहित निर्मल आकाश ॥ ३८ ॥ हे रघुनन्दन ! उस समय आकाशके समान निर्मल तथा चेष्टा-रहित ये चार पदार्थ देख पडते थे उनको तुम सुनो ॥ ३९ ॥ एक तो आकाशके सदृश विशाल, कृष्णवर्ण, निराधार तथा सुगन्धके बिम्बके तुल्य पूर्वोक्त महारुद्र मध्य आकाशमें स्थित थे ॥ ४० ॥

द्वितीयोवस्थितोदूरेपृथ्व्याकाशतलोपमः ॥ भागोब्रह्मांडसदनस्याधःपातालसप्तकात् ॥ ४१ ॥ पाता लभूतलदिवांसशैलेंद्रदिवौकसाम् ॥ व्याप्तःपार्थिवभागेनपंकमात्रात्मनात्मभाक् ॥ ४२ ॥ तृतीयोत्रप दार्थोभूदूर्ध्वंब्रह्मांडभागभूः ॥ दृष्टिक्षयात्सुदूरत्वाद्दुर्लक्ष्यगगनासितः ॥ ४३ ॥ दूरविश्लिष्टयोर्मध्यंय त्तद्ब्रह्मांडखंडयोः ॥ तदाकाशमनाद्यंतंब्रह्मनिर्मलमाततम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और द्वितीय सप्तपातालके अति दूर पृथिवी तथा आकाशके तलके समान ब्रह्माण्डरूपी गृहका अधो-भाग स्थितहै ॥ ४१ ॥ और पर्वत तथा देवता आदि सहित पाताल, भूलोक तथा स्वर्गके भस्म होजानेसे पुनः जलके रुद्रमुखद्वारा शुष्क होनेसे पंकमय पार्थिवभागसे वह ब्रह्मांडका अधोभाग व्याप्तहै ॥ ४२ ॥ और तृतीय ब्रह्मांडका ऊर्ध्वभाग है जो कि अति दूर होनेसे नेत्रकी ज्योतिके न पहुंचनेके कारणसे दुर्लक्ष्य श्याम आकाशके तुल्य स्थितहै ॥ ४३ ॥ अतिदूर विभक्त इन ब्रह्मांडके खण्डोंके मध्यमें अनादि अनन्त तथा सर्वत्र व्याप्त निर्मल ब्रह्माकाश है ॥४४॥

चतुर्थोसौपदार्थस्तुतदासंलक्षितोमया ॥ चतुष्टयादत्रनान्यदेतस्मादेवकिंचन ॥४५॥ श्रीरामउवाच ॥ बहिःकिंविद्यतेब्रह्मन्ब्रह्मसद्मकटाहतः ॥ कास्तत्रावरणाब्रूहिकियत्यःसंस्थिताःकथम् ॥ ४६ ॥ श्रीव सिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मांडखंडयोःपारेततोदशगुणंजलम् ॥ संध्याकाशमनंततद्वर्जयित्वाततःस्थितम्॥४७॥ ततस्तथैवज्वालात्मतेजोदशगुणंस्थितम् ॥ ततस्तथैवपवनःपवनोनिर्मलःस्थितः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और इस ब्रह्म चतुर्थ आकाशके मध्यभागको मैंने देखा, इन चारपदार्थोंके अतिरिक्त अन्यपदार्थ कोई भी दृष्टिगोचर न था ॥ ४५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! इस ब्रह्मांडकटाहके बाहर कौन पदार्थ हैं, कितने और कौन २ आवरण कैसे २ स्थित हैं सो कृपा करके कहिये ॥ ४६ ॥ श्रीवासिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इन ब्रह्मांडखण्डोंके पार इस ब्रह्माण्डका दशगुण अतिविस्तृत जल स्थितहै, इसके अनन्तर अन्तरहित दोनोंखण्डोंकी सन्धिका आकाश है ॥ ४७ ॥ और इसके अनन्तर जलका दशगुण ज्वालामय तेज है, उसके अनन्तर इसका दशगुण निर्मल पवन स्थितहै ॥ ४८ ॥

ततस्तथैवविमलंनभोदशगुणंस्मृतम् ॥ ततःपरममत्यच्छंब्रह्माकाशमनंतकम् ॥ ४९ ॥ अन्यत्रान्यत्र तस्याथदृष्टयोन्यास्तथैवखे ॥ कचंत्यनंतादूरस्थामिथोदृष्टात्मस्पृहयः ॥ ५० ॥ श्रीरामउवाच ॥ ऊर्ध्वं ब्रह्मांडखंडस्यतथाधस्तान्मुनीश्वर ॥ तज्जलादिमहाकारंककथंकेनधार्यते ॥ ५१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सपार्थिवपदार्थानांस्थितःपुष्करपत्रवत् ॥ भागस्तमेवाधावंतितसुतामातरंयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् इस पवनका दशगुण विमल आकाश है और इसके अनन्तर परमपवित्र निर्मल ब्रह्मा-काश है ॥ ४९ ॥ और अन्य २ योगी महेश्वर तथा कपिल आदिके मतके अनुसार मायाशबलित ब्रह्माकाशमें अहंकार महत् तथा प्रकृति आदि दृष्टिकी कल्पभी एक २ से दशगुण अधिक हैं, परन्तु वे विवादग्रस्त हैं इसलिये हमनें उपेक्षा करदिया ॥ ५० ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे मुनीश्वर ! ब्रह्माण्डखण्डके ऊपर तथा नीचे महान्‌आकारयुक्त जलादिको कौन और कैसे धारण करताहै ॥५१॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! कमलदलके समान स्थित पार्थिव पदार्थोंका भाग जो ब्रह्मांड खप्पर है उसकी आकर्षणशक्तिसे ऐसे दौडते हैं जैसे वानरोंके बच्चे अपनी माताकीओर ५२

अतोयदेवनेदीयोब्रह्मांडाख्यंमहावपुः ॥ तत्पदार्थाःप्रधावंतितृषिताःसलिलंयथा ॥ ५३ ॥ अवलंब्यत देवांतःसंस्थितास्तैजसादयः ॥ नस्थितिंप्रविमुंचंतिस्वांयथावयवाइव ॥ ५४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्म न्ब्रह्मांडखंडेतेतिष्ठतःकथमुच्यताम् ॥ किमाकृतीधृतेकेनकथंवापरिनश्यतः ॥५५॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ अधृतंधृतमेवोच्चैरपतच्चैववापतत् ॥ अनाकृत्येवसाकारंजगत्स्वप्नपुरंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—और महाशरीरवाला जो ब्रह्मांड खंड समीप है उसकी ओर वे ऐसे दौडते हैं जैसे तृषित जलकी ओर ॥ ५३ ॥ और आभ्यंतरीय आकर्षणशक्तिको अवलम्बन करके तेज आदि पदार्थ स्थित हैं और हस्तपाद आदि अवयवोंके तुल्य अपनी स्थितिको नहीं त्यागते ॥ ५४ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! वे ब्र-ह्मांड खप्पर कैसे स्थित हैं और क्या उनका आकार है, कौन कैसे उनको धारण करता है और निराधार गिरके वे क्यों कर नष्ट होतेहैं ॥ ५५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! विना धारणकर्ताही परमात्माकी धारणात्मिका शक्तिसे यह धारित है, गिरता हुआ भी नहीं गिरता और स्वप्नके समान निराकारभी यह साकार है ॥ ५६ ॥

किमस्यनामपततिकिंवाकेनास्यधार्यते ॥ यथासंवित्तिकचनंतथैतदवतिष्ठते ॥ ५७ ॥ यथाकेशोंड्रकं व्योम्नियथाचव्योम्निशून्यता ॥ यथावापवनेस्पंदोजगच्चिद्गगनेतथा ॥ ५८ ॥ चितौसंकल्पनगरंब्रह्मांडा ख्यंजगद्गृहम् ॥ खेखमेवाप्यनाकारंप्रत्याकारमिवास्थितम् ॥ ५९ ॥ पातसंवित्समुद्भूतंपतदास्तेदिवा निशम् ॥ गच्छत्यासंविदोद्भूतंगच्छदास्तेदिवानिशम् ॥ ६० ॥

अर्थ—इस मायामय संसारका क्या गिरैगा और कौन तथा कैसे इसे धारण करैगा, यह तो चित्शक्तिकी स्फुरणाके अनुसार प्रकाशित हो रहा है ॥ ५७ ॥ जैसे आकाशमें श्यामता तथा शून्यता भासती है और पवनमें जैसे स्पन्द है ऐसेही चिदाकाशमें यह जगत् है ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! चित्में संकल्पनगरके तुल्य यह ब्रह्मांडरूपी गृह है, चिदाकाशमें निराकार चिदाकाशही नियत आकारधारीके समान स्थित है ॥ ५९ ॥ पतन अध्यासमयी संवित्से उत्पन्न यह जगत् रात्रिदिन पतनमें तत्पर है और गमन अध्यासमयी संवित्से युक्त यह निरंतर गमन कर रहा है ॥ ६० ॥

स्थितसंवित्समुद्भूतंतिष्ठदास्तेदिवानिशम् ॥ उत्पतंत्याचितोद्भूतमुत्पतच्चैवतिष्ठति ॥ ६१ ॥ एतिनाश विदानाशंमहाकल्पादिवेदनैः ॥ जायतेजन्मसंवित्याव्योम्निसर्वादिवेदनैः ॥ ६२ ॥ आभातिमौक्तिक गणःशरदंबरांतर्दृष्टावसत्यउदितोप्यतिसत्यरूपः ॥ भ्रांत्यायथानभसिचस्फुरतांतथैषांसंख्यांविधातु मिहकोजगतांसमर्थः ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भ्रांतिमात्रत्वप्रतिपादनं नामाशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—और धारणामयी संवित्से युक्त यह निरन्तर स्थित है, तथा ऊर्ध्वगमनमयी चित्से युक्त यह निरन्तर ऊपर जाता है ॥ ६१ ॥ नाशसंवित्से युक्त कल्पके अन्तमें यह नष्ट होता है और जन्ममयी संवित्से युक्त सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशमेंही उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जैसे शरत्कालके आकाशकी ओर देखतेहुये पुरुषके दृष्टि असंख्य बेरके समान मोतीके समूह देख पडते हैं ऐसेही चिदाकाशमें स्फुरतेहुये इन ब्रह्माण्डोंके आधार आदिकी गणना करनेमें कौन समर्थ है ॥ ६३ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो०भ्रांतिमात्रत्वप्रतिपादनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

प्रलयमें नृत्य करतेहुये भैरवरुद्र तथा उनकी छाया जगत्‌रूपी अंगधारिणी तथा नृत्य करतीहुई कालरात्रि इस ८१ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथराघवरुद्रंतंतदातस्मिन्महांबरे ॥ प्रवृत्तंनर्त्तितुंमत्तमपश्यंविततात्कृतिम् ॥ १ ॥ व्योमेवाकृतिमापन्नमजहद्व्यापितांनिजाम् ॥ महाकारंघनश्यामंदशाशापरिपूरकम् ॥ २ ॥ अर्केंदुवह्नि नयनंचलद्दशदिगंबरम् ॥ घनदीर्घप्रभाजालमालानंश्यामलार्चिषाम् ॥ ३ ॥ वडवाग्निदृशंलोलभुजोर्मि भरभासुरम् ॥ एकार्णवार्णोद्राग्देहबंधेनेवसमुत्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इसके पश्चात् उस महाकाशमें मत्त और विशालरूपधारी रुद्र-भगवान्‌को नृत्य करनेमें प्रवृत्त मैंने देखा ॥ १ ॥ आकाशके समान महान् आकारधारी, अपनी व्यापकताको न त्यागते हुये और दशदिशाओंके पूरक नृत्यमें प्रवृत्त रुद्रको मैंने देखा ॥ २ ॥ सूर्य्य, चन्द्र तथा अग्निरूप त्रिनेत्र-धारी, चंचल दशोदिशारूप वस्त्र धारण कियेहुये, घन तथा दीर्घ प्रभाजालसहित और नीलज्वालासमूहके बंधन-स्थानके समान नृत्यमें प्रवृत्त भैरवको मैंने देखा ॥ ३ ॥ तथा वडवानलरूपी नेत्र संयुक्त, चंचल भुजारूपी तरंग-समूहसे प्रकाशमान शरीरधारी महासमुद्रके जलके सदृश शीघ्र आविर्भूत नृत्यमें प्रवृत्त रुद्रजीको मैंने देखा ॥ ४ ॥

पश्याम्यनंतरमहंयावत्तस्यशरीरतः ॥ छायेवपरिनिर्यातिनर्त्तनानुविधायिनी ॥ ५ ॥ सूर्येष्वविद्यमानेषु महातमसिचांबरे ॥ स्थिताकथमियंछायाभवेदितिमतिर्मम ॥ ६ ॥ यावद्विचारयाम्याशुतावत्तस्यतदा पुरः ॥ सास्थितापरिनृत्यंतीविस्तीर्णाश्रीत्रिलोचना ॥ ७ ॥ कृष्णाकृशाशिरालांगीजर्जराविततात्कृतिः ॥ ज्वालाकुलानलालोलवनसंभारशेखरा ॥ ८ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर मैं क्या देखताहूं कि रुद्रके नृत्यका अनुकरण करतीहुई छाया उनके शरीरसे निकली ॥५॥ सूर्य्यके न रहते महाअन्धकारमय आकाशमें यह छाया कैसे स्थित है ऐसी आशंका मेरी बुद्धिमें हुई ॥ ६ ॥ जब मैं यह विचार करताथा इतनेमें शीघ्र विशालरूपधारिणी और शोभायमान तीननेत्र युक्त वह नृत्य करतीहुई रुद्रभगवान्के संमुख स्थितहुई ॥ ७ ॥ कृष्णवर्ण, नाडीरूप अंगधारिणी, शिथिल अंगवाली, विशाल आकारयुक्त, ज्वालासे व्याप्त, अग्निमयी और चंचलवनके पुष्प पल्लव आदि शिरोभूषणयुक्त वह थी ॥ ८ ॥

भिन्नांजनतमःश्यामायामिनीवाकृतिंगता ॥ तमःश्रीर्देहयुक्तेवसाकारेवांबरद्युतिः ॥ ९ ॥ अतिदीर्घा करालास्यानभोमातुमिवोद्यता ॥ दीर्घजानुभुजभ्रांत्यामातुकामेवदिङ्मुखम् ॥ १० ॥ कृशाबहूपवासे वपरिनिम्नमहातनुः ॥ कज्जलश्यामलामेघमालेवपवनाकुला ॥ ११ ॥ कृशाशक्तायदास्थातुंसुदीर्घाविधिनातदा ॥ ग्रथितेवशिरारूपैर्दामभिर्दैर्घ्यशालिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—घनीभूत कज्जलके समान श्यामवर्ण तथा आकारधारिणी कृष्णपक्षकी रात्रिके तुल्य, शरीरधारिणी अन्धकारकी शोभाके सदृश तथा साकार श्यामवर्ण आकाशकी दीप्तिके समान वह कालरात्रि थी ॥ ९ ॥ अतिदीर्घ तथा भयंकर मुखधारिणी मानो आकाश मापनेको उद्यत और विशाल जानु तथा भुजाओंसे दिशाओंके मुखको मापनेकी इच्छावाली वह प्रकट हुई ॥ १० ॥ और मानों अधिक उपवाससे कृश, सर्वत्र गर्तसंयुक्त महाशरीरधारिणी, कज्जलके सदृश श्यामवर्ण और पवनव्याप्त मेघोंकी मालाके तुल्य वह थी ॥ ११ ॥ और अतिदीर्घ तथा कृश जब वह खडी होनेमें भी असमर्थ थी तब ऐसा भान होताथा मानो ब्रह्माजीने उसको स्थिरताकेलिये दीर्घनाडीरूपी रस्सियोंसे बांध दियाथा ॥ १२ ॥

तथानामसुदीर्घासायथातस्याःशिरःखुरम् ॥ मयादृष्टंप्रयत्नेनचिरोर्ध्वाधोगमागमैः ॥ १३ ॥ अंत्रांत्रतं त्रीग्रथितशिरःकरखुरोत्करा ॥ आमूलात्सूत्रवलिताकंटकानामिवस्थली ॥ १४ ॥ विश्वरूपमयार्कादि शिरःकमलजालकैः ॥ कृतमालामलालोकवातवह्निमयांचला ॥ १५ ॥ प्रलंबकर्णाल्लुलितनागानृशवकुंडला ॥ शुष्कतुंबीलताम्नीलादीर्घालोलासितस्तनी ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! वह इतनी लम्बी थी कि उसके शिर तथा पादनखोंको मैंने योगबलसे बहुतकाल नीचे ऊपर गमनागमनसे देखा ॥ १३ ॥ शिरसे लेके पादपर्य्यन्त उसके सब अंग नाडियोंके जालसे ऐसे गूंथेथे जैसे कण्टकोंकी भूमि ॥ १४ ॥ और नानावर्णके सूर्य्य आदि देव तथा दानवोंके शिररूपी कमलोंकी माला धारण कियेहुये, तथा पवनसे प्रदीप्त अग्निमय चंचल वस्त्रांचलधारिणी वह थी ॥ १५ ॥ उसके दीर्घ कर्णोंमें चंचल नाग शोभित थे, मृतक मनुष्यरूप कुण्डलधारिणी और शुष्क तुंबीकी लताके समान दीर्घ, चंचल तथा कृष्णवर्ण स्तनोंको जंघापर्य्यन्त लटका रहीथी ॥ १६ ॥

कुमारबर्हिपिच्छौघैर्ब्राह्ममूर्द्धजमंडलैः ॥ लांछितोच्चसुराधीशशिरःखट्वांगमंडला ॥ १७ ॥ दंतेंदुमाला विमलाविमलोद्योतपाततः ॥ तमोर्णवोर्द्धुलेखेवव्रत्तावर्त्तविवर्त्तिनी ॥ १८ ॥ शुष्कतुंबीलतेवोच्चैराकाश तरुसंस्थिता ॥ विलोलावयवाम्नीलावातैःपटपटारवा ॥ १९ ॥ बृहत्तरंगोर्ध्वभुजाश्यामलोल्लासशालिनी ॥ एकार्णवोर्मिमालेवनृत्तावृत्तिविवर्त्तिनी ॥ २० ॥

अर्थ—मयूरोंके पिच्छसमूहोंसे तथा ब्रह्माके केशमण्डलोंसे चिन्हित इन्द्रादिदेवताओंके शिरसमूहसे भूषित शरीरवाली वह थी ॥ १७ ॥ दन्तरूपी चन्द्रमालासे, निर्मल दांतोंकी किरणोंके पतनसे वृद्धिको प्राप्त तथा अन्धकाररूपी समुद्रकी आवर्तयुक्त चंचल लेखासमान वह स्थितथी ॥ १८ ॥ चंचलग्रन्थिसहित और पवनके द्वारा पटपटशब्दोंसे शोभित और आकाशरूपी वृक्षसे उत्पन्न शुष्क महातुम्बीकी लताके समान वह भासतीथी ॥ १९ ॥ महातरंगरूपी भुजाओंकी श्यामतासे शोभायमान तथा नृत्यरूप आवर्त्त (भंवरेह) सहित प्रलयकालके समुद्रके तरंगोंकी मालाके तुल्य वह भासतीथी ॥ २० ॥

क्षणमेकभुजाकाराक्षणंबहुभुजाकुला ॥ अनंतोग्रभुजाक्षिप्तजगन्नर्त्तनमंडपा २१ ॥ क्षिप्रमेकमुखाकारा क्षिप्रंबहुमुखाकृतिः ॥ अनंतोग्रमुखीक्षिप्रंनिर्मुखीचापिचक्षणम् ॥ २२ ॥ एकपादान्विताक्षिप्रंक्षिप्रंपाद शतान्विता ॥ क्षणंचानंतपादाढ्यानिष्पादाकारिणीक्षणम् ॥ २३ ॥ कालरात्रिरियंसेतिमयानुमितदेहिका ॥ कालीभगवतीसेयमितिनिर्णीतसज्जना ॥ २४ ॥

अर्थ—कभी तो वह एक भुजा धारण करती थी, क्षणमेंही कभी अनेक भुजाओंसे व्याप्त होजाती थी और कभी भयंकर अनन्त भुजाओंसे जगत्रूपी नृत्यमण्डप उछालके व्याकुल करदेती थी ॥ २१ ॥ क्षणमेंही वह एक

मुख धारण करती थी, क्षणमेंही शीघ्र बहुत मुखसंयुक्त होजाती थी, शीघ्रही अनन्त भयंकर मुख धारण करती थी, और पुनः क्षणमेंही सर्वथा मुखरहित होजाती थी ॥ २२ ॥ इसीप्रकार क्षणमें एकपाद धारण करती थी, क्षणमें सैकडों पादसंयुक्त, क्षणमें अनन्तपादोंसे पूर्ण और क्षणमें सर्वथा पादोंसे रहित होजाती थी ॥ २३ ॥ मैंने इसके अनुमान सिद्ध देहसे कालरात्रि इसको जाना और अन्य सज्जनोंने भी इसको कालीभगवती निश्चय किया है ॥२४॥

ज्वालापूर्णारघट्टोग्रखाताभनयनत्रया ॥ ज्वलद्धंरंद्रनीलाद्रिसानूपमललाटभूः ॥ २५ ॥ लोकालोकेंद्रनीलोग्रश्वभ्रभीमहनुद्वया ॥ वातस्कंधगुणप्रोततारामुक्ताकलापिनी ॥ २६ ॥ इंद्रनीलाद्रितुल्योच्चतोरणोच्चैःप्रभांबरे ॥ विश्रांतकाचशैलाभभगभीषणवायसी ॥ २७ ॥ नृत्यद्भुजलतापुष्पैर्नखशुभ्राभ्रमंडलैः ॥ पूर्णचंद्रशतानीवभ्रमयंतीनभस्तले ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ज्वालासे पूर्ण अरघट्ट (अरठ) काष्ठके गर्तके तुल्य त्रिनेत्रधारिणी और जाज्वल्यमान पृथिवीसहित इन्द्रनीलपर्वतके शिखरके सदृश ललाटसे शोभित वह भगवती थी ॥ २५ ॥ तथा लोकालोक पर्वतके प्रसिद्ध इन्द्रनीलके गर्तके समान भयंकर दोनों हनु (गालकेऊपरके भाग) को धारण कियेहुये तथा वायुपटलमें गुंथेहुये तारागणरूपी मोतियोंकी मालासे शोभित वह भगवती थी ॥ २६ ॥ तथा इन्द्रनीलादिपर्वतके तुल्य, पञ्जरागादिकी प्रभासे रंजित आकाशमें विश्रान्त काँचके पर्वतके सदृश अधोमुख भगनामके काकसे शोभित वह भगवती थी ॥ २७ ॥ तथा नृत्यमें भ्रमणशील भुजलतारूपी पुष्पोंसे युक्त नखोंकी निर्मल प्रभारूपी मेघमण्डलोंसे आकाशतलमें पूर्ण सैकडों चन्द्रमण्डलको भ्रमाती हुई वह भगवती भान होती थी ॥ २८ ॥

भ्रमद्भिर्व्याप्तदिक्चक्राभुजैःकल्पांबुदैरिव ॥ वर्षद्भिःप्राणिजप्रांततारालेखाबृहत्प्रभाः ॥ २९ ॥ नखपुष्पांगुलीवल्लीजालैर्भ्रांतभुजद्रुमैः ॥ कृष्णैःकाननिताशेषगगनाग्रोग्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥ तमालतालतः स्थूलांभुवंदग्धमहावनैः ॥ विडंबयंतीवलितांजंघासंघेनलोलता ॥ ३१ ॥ अप्यनंतेमहाव्योम्निपारंप्राप्तैः शिरोरुहैः ॥ कुर्वाणेवाततंवासंचरत्तिमिरदंतिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा कल्पांतमेघोंके सदृश गजमुक्ता तथा तारागणकी पंक्तिके तुल्य नखोंकी महाप्रभाको वर्षातेहुये भ्रमणशील भुजाओंसे दिग्मण्डलको व्याप्त कियेहुये वह कालीभगवती शोभित थी ॥ २९ ॥ तथा नखरूपी पुष्पोंसे युक्त अंगुलीरूपी लतासमूहसहित, कृष्णवर्ण तथा भयंकर मूर्तिधारी, भ्रमणशील भुजारूपी वृक्षोंसे वह भगवती संपूर्ण आकाशको वनमय कर रही थी ॥ ३० ॥ और जंघासमूहसे वह भगवती भस्मीभूत तमालादिके महाबनोंसे स्थूल भूमिकाका अनुकरण करती थी ॥३१॥ तथा अनन्त महाकाशमें भी पारंगत कृष्णकेशोंके द्वारा भ्रमणशील अन्धकाररूप हस्तीका निवास आकाशमें सिद्ध करती थी ॥ ३२ ॥

उह्यंतेमेरवोयेनतेननिःश्वासवायुना ॥ घनघुंघुमदिक्चक्रगगनग्रामघोषिणा ॥ ३३ ॥ घनमारुतफूत्कारक्ष्वेडगेयंप्रगायता ॥ नियतानुनयेनेवचलितासानुवृत्तिना ॥ ३४ ॥ ततोनृत्तवशावेशाद्वर्द्धमानशरीरिणी ॥ मयादृष्टावधानेनगगनाभोगभूरिणा ॥ ३५ ॥ यावत्तयावृतादेहेहेलावलनसारया ॥ मालामलयकैलाससह्यमंदरमेरुभिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा प्रबल पवनसे फूत्कारशब्द गानकरनेवाले प्रतिध्वनिसे घनीभूत घुंघुमशब्दपूर्ण दिग्मण्डलसहित आकाशरूपी नगरमें घोषणशील और मेरु आदि पर्वतोंको भी उडानेवाले श्वासपवनके साथ वह भगवती ऐसे चलती थी जैसे नियमपूर्वक अनुगामी नटके ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् नृत्यकारणसे अर्द्धप्रमाण शरीरधारिणी उस भगवतीको आकाशमें स्थित मैंने योगबलसे देखा ॥ ३५ ॥ इतनेमें क्या देखताहूं विलाससे नृत्यमात्रसे प्रयोजन रखनेवाली उसने मन्दर, मेरु, कैलास, सह्य तथा मलय आदि पर्वतोंकी माला धारण करली ॥ ३६ ॥

आसीत्तस्यायुगांताभ्रमालिकापट्टपट्टिका ॥ आदर्शमंडलान्यंगेत्रीणिलोकांतराणिच ॥ ३७ ॥ कर्णयोर्हिमवन्मेरूरूप्यकांचनमुद्रिके ॥ ब्रह्मांडघुंघुमैर्मालामहतीकटिमेखला ॥ ३८ ॥ स्रजःकुलाचलाःशृंगवनपत्तनगुच्छकाः ॥ जरत्पुरवनद्वीपग्रामपेलवपल्लवाः ॥ ३९ ॥ तस्याअंगेषुदृष्टानिपुराणिनगराणिच ॥ ऋतवश्चत्रयोलोकामासाहोरात्रमालिकाः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रलयकालके पुष्कर आवर्त्त आदि मेघमाला उसके वक्षस्थलकी पट्टी (पनवा) नाम आभूषण थी और तीनों लोक उसके जंघा उदर तथा गलेके मणिमय आभूषण थे ॥ ३७ ॥ हिमालय तथा सुमेरु उसके कानकी बाली थीं और घुंघुमशब्दपूर्ण ब्रह्माण्डोंकी माला उसकी महाकटिमेखला (कर्धनी) थी ॥ ३८ ॥ शिखर, वन तथा नगररूपी गुच्छासहित तथा जीर्ण, ग्राम, वन, द्वीप तथा नगरादिरूप कोमल पल्लवोंसे शोभित

सप्त कुलपर्वत उसके गलेकी माला थीं ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! उस भगवतीके अंगोंमें नगर, ग्राम, ऋतु, मास, रात्रि-दिन तथा तीनों लोककी माला मैंने देखी ॥ ४० ॥

मुक्तालतादिकंनद्यःकालिंदीत्रिपथादिकाः ॥ धर्माधर्मौतु भौकर्णभूषणेचान्यकर्णयोः ॥ ४१ ॥ स्तनास्तस्यास्तुचत्वारःस्रवद्धर्मपयोलवाः ॥ वेदाःसकलशास्त्रार्थचतुःसंस्थानचूचुकाः ॥ ४२ ॥ त्रिशूलैःपट्टिशैःप्रासैःशरशक्त्यृष्टिमुद्गरैः ॥ निर्यदायुधजालानिस्रग्दामानिबिभर्तिसा ॥ ४३ ॥ चतुर्दशविधाभूतजातयोयाःसुरादिकाः ॥ तस्याःशरीरशालिन्यास्तालोमावलयःस्थिताः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कालिन्दी तथा गंगा आदि नदियां उसके गलेमें मुक्ताहार थीं और धर्म तथा अधर्म पूर्वोक्त कर्णोंके सिवाय उसके अन्य कर्णोंके भूषण थे ॥४१॥ सकल शास्त्रार्थरूप दुग्धपूर्ण ऋग् आदि चारों वेद धर्मरूपी दुग्ध स्रवते-हुये उसके चारों स्तन थे ॥ ४२ ॥ तथा त्रिशूल, पट्टिश, कुन्त (बरछी) बाण, शक्ति, तरवार तथा मुद्गर आदि सहित तीक्ष्ण अस्त्रसमूहोंकी माला वह धारण करती थी ॥ ४३ ॥ और चतुर्दश (चौदह) प्रकारके देवता आदि प्राणियोंकी जाति शरीरसे शोभायमान उस भगवतीकी लोमोंकी पंक्ति थी ॥ ४४ ॥

तस्याश्चनगरग्रामगिरयोदेहशायिनः ॥ नृत्यंत्यासहनृत्यंतिपुनर्जन्ममुदेवते ॥ ४५ ॥ जंगमात्मैकमेवैतज्जगदस्थावरंतदा ॥ नृत्यतीतिमयाज्ञातंपरलोकेसुखंस्थितम् ॥ ४६ ॥ निगीर्णजगदंगस्थंकृत्वातृप्तिमुपागता ॥ परिनृत्यतिसामत्ताजगज्जीर्णाहिचातकी ॥ ४७ ॥ आदर्शप्रतिबिंबस्थमिवाभात्यखिलंजगत् ॥ तस्यावपुषिविस्तीर्णेस्वरूपिणिसरूपधृक् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा उसके देहमें स्थित नगर, ग्राम और पर्वत आदि मानो पुनर्जन्म पानेके आनन्दसे उसके साथ नृत्य करते थे ॥ ४५ ॥ नष्ट होके उसके शरीररूपी परलोकमें सब स्थावरजंगमरूप जगत्को नृत्य करते हुये मैंने जाना ॥ ४६ ॥ निज अंगमें स्थित जीर्ण जगत्रूपी सर्पको निगलके तृप्तिको प्राप्त वह मत्त मोरनी होके नृत्य करती थी ॥४७॥ दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान स्वरूपधारी संपूर्ण जगत् स्वरूपधारी उसके विशाल शरीरमें भासता था ॥४८॥

साननृत्यतितत्सर्वंसशैलवनकाननम् ॥ जगन्नृत्यतिनानात्ममृत्वापुनरुपागतम् ॥ ४९ ॥ तज्जगन्नर्त्तनंचारुतद्देहादर्शसंस्थितम् ॥ चिरंमयातदादृष्टमविनष्टपुनःस्थितम् ॥ ५० ॥ विचलत्तारकाजालंभ्रमत्पर्वतमंडलम् ॥ मशकव्यूहवद्वातव्याधूतामरदानवम् ॥ ५१ ॥ संग्रामोन्मुक्तचक्राभद्वीपार्णववृतांबरम् ॥ हेलाविवलनावर्त्तप्रौढशैलधरातृणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कदाचित् मैंने ऐसा भी देखा कि वह तो नृत्यसे उपरत है परंतु पुनर्जन्म पाके पर्वत वन आदि सहित सब जगत् नृत्य करता है ॥ ४९ ॥ नष्ट होके भी उसके शरीररूपी दर्पणमें पुनः स्थित उस जगत्के उत्तम नृत्यको मैंने चिरकालतक देखा ॥ ५० ॥ चंचल तारागण सहित भ्रमण करते हुये पर्वतमण्डलसंयुक्त और मच्छरोंके तुल्य देव तथा दानवोंको भ्रमण करानेवाला वह नृत्य था ॥ ५१ ॥ संग्राममें फेंकेहुये चक्रोंके सदृश द्वीप तथा समुद्रोंसे आकाशको आच्छादन किये हुये तथा विलासपूर्वक बवंडर भ्रमणोंसे प्रबलतासे पृथिवी और पर्वतरूपी तृणोंको धारण किये हुये वह नृत्य था ॥ ५२ ॥

नीलमेघांशुकावृत्तिवातघुंघुमितांबरम् ॥ काष्ठास्थ्यादिस्फुटास्फोटपटत्पटपटारवम् ॥ ५३ ॥ जगत्पदार्थैर्व्यामिश्रैरमिश्रैर्मुकुरैर्यथा ॥ व्याप्तमाभोगिभांकारैरंगैरंगभ्रमैस्तथा ॥ ५४ ॥ मेरुर्नृत्यतिलोलोच्चकुलाचलबृहद्भुजः ॥ भ्रमदभ्रपटोपेतनमत्तनुतनूरुहः ॥ ५५ ॥ अत्यजंतःसमुद्राश्चमर्यादामुद्रणंद्रुमाः ॥ भूमेर्नभस्तलंयांतिनभसोयातिभूतलम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—नीलमेघके सदृश भ्रमणशील वस्त्रोंके वायुसे आकाशको घुंघुमशब्दसे पूर्ण किये हुये और अधोभागमें काष्ठ पाषाण आदिके संघट्टनोंसे स्पष्ट पटपटाशब्दयुक्त वह नृत्य था ॥ ५३ ॥ तथा परस्पर संमेलन तथा विभागसे प्रतिक्षण कभी मिलित और कभी विभक्त जगत्के पदार्थसहित अंगोंके भ्रमणोंसे मूर्तिधारी भयसमूहोंसे व्याप्तके समान वह नृत्य भान होताथा ॥ ५४ ॥ चंचल तथा महान् कुलपर्वतरूपी भुजाओंसे शोभित और भ्रमणशील मेघरूपी वस्त्रोंसे आच्छादित सूक्ष्म कल्पवृक्षरूपी रोमसंयुक्त मेरु नृत्य करताथा ॥ ५५ ॥ तथा समुद्र अपने तटकी मर्य्यादाको न त्यागते हुये नाचतेथे और वृक्ष भूतलसे आकाशमें तथा आकाशसे पुनः भूतलमें प्राप्त होतेथे ॥ ५६ ॥

पुराणिघर्घरारावैर्दृश्यंतेलुठितान्यधः ॥ सगृहाट्टालवास्तव्यंनचकिंचिल्लुठत्यधः ॥ ५७ ॥ तस्यांभ्रमंत्यांचतुरंचंद्रार्कदिनरात्रयः ॥ नखाग्रलेखालोकांतर्भातिकांचनसूत्रवत् ॥ ५८ ॥ विभांतिसृष्टयस्तस्याध

र्माणिजलजालिकाः ॥ इवनीहारहारिण्यानीलवारिदवाससः ॥ ५९ ॥ खमेवतस्याःसंपन्नंकबरीमंडलं बृहत् ॥ पातालंचरणौभूमिरुदरंबाहवोदिशः ॥ ६० ॥

अर्थ—और गृह अटारियां तथा गृहोंके सब पदार्थसहित घर्घरशब्दसहित नगर नीचे लुढकतेथे और कभी ऐसा भासताथा कि कुछ नहीं लुढकते ॥ ५७ ॥ हे रामजी! उसके भ्रमण करतेसमय चन्द्र, सूर्य, दिन तथा रात्रि उसके नखोंकी रेखाओंके अन्तर्गत सुवर्णके सूत्रके तुल्य प्रकाशतेथे ॥ ५८ ॥ नीहाररूपी हारसंयुक्त तथा नीलमेघ-रूप वस्त्रधारिणी उस भगवतीके अंगमें मेघरचित जलके कणप्रस्वेद बिंदुके समान भासतेथे ॥ ५९ ॥ हे रामजी! उस भगवतीके आकाशही महान् केशपाश, पाताल चरण, भूमि उदर और दशोंदिशा भुजा थीं ॥ ६० ॥

द्वीपाब्धयोंत्रवलयःपार्श्वकाःसर्वपर्वताः ॥ प्राणापानावलीदोलाःपवनस्कंधशालिकाः ॥ ६१ ॥ तदानु भूतंनृत्यंत्यास्तस्यावपुषिविस्तृते ॥ हिमवन्मेरुसह्याद्यैर्दोलनभ्रममद्रिभिः ॥६२॥ तरदद्रिगुलुच्छास्ता वलयंत्यातयास्त्रजः ॥ पुनःकल्पांतआरब्धइवतांडवहेलया ॥ ६३ ॥ सुरासुरोरगानीकरोमशांगःशरी रकः ॥ निस्पंदंस्थातुमशकन्नसौभ्रमतिचक्रवत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—द्वीप और समुद्र नाडियोंकी पंक्ति, सब पर्वत दोनोंभाग और इधर उधर वायुका बहना उसके प्राण तथा अपानवायुकी झूला थीं ॥ ६१ ॥ नृत्य करतीहुई उस भगवतीके विशाल शरीरमें हिमालय, मेरु, सह्य तथा मंदर आदि पर्वतोंने झूलाके सुखको अनुभव किया ॥ ६२ ॥ उडतेहुये पर्वतरूपी लतासहित पूर्वोक्त ब्रह्मांडमालाको परिवर्तन (इधर उधर) करती हुई उस भगवतीने मानो पुनः तांडवकी लीलासे प्रलय आरंभ किया ॥ ६३ ॥ हे रामजी! सुर असुर तथा उरग आदिके समूहरूपी रोमसहित उसका शरीर चेष्टारहित नहीं रहसकताथा इसलिये यह चक्रके समान भ्रमण करताथा ॥ ६४ ॥

नानाविभवविज्ञानयज्ञत्रयज्ञोपवीतिनी ॥ सासरंतीनभस्यासीद्धनघूत्कारघोषिणी ॥ ६५ ॥ तत्रभूतलमा काशमाकाशमपिभूतलम् ॥ प्रतिकृतिभवत्यंतर्नचकिंचिद्विवर्त्तते ॥ ६६ ॥ बृहन्नासागुहागेहनिर्गताघ नघुंघुमा ॥ तत्रोग्रावायवोवांतिघोरघूत्कारकारिणः ॥ ६७ ॥ नभःकरशतैस्तस्याश्चतुरावृत्तिवर्त्तिभिः॥ भातिचंडानिलोद्धूतैराकीर्णमिवपल्लवैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! नानाप्रकारके कर्मफलरूपी विभव, उनके अनुष्ठानके हेतुभूत विज्ञान तथा विज्ञानके अनुष्ठान रूप यज्ञ इन त्रिसूत्ररूप यज्ञोपवीत धारण किये नृत्यमें तत्पर वह भगवती वेदपाठ करती हुई ब्रह्मचा-रिणीके समान भासतीथी ॥ ६५ ॥ उस नृत्यमें आकाश भूतलमें परिवर्तित होताथा और भूतल आकाशमें परंतु यथार्थमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होताथा, यह सब केवल भ्रान्तिमात्र था ॥ ६६ ॥ उस भगवतीके नासिकागुहा-रूपी गृहसे निकले हुये घनीभूत घुंघुम शब्दसहित तथा भयंकर घूत्कार शब्दकारी प्रचण्ड पवन बहते थे ॥ ६७ ॥ चतुरतासे भ्रमणशील उसके असंख्य हस्तोंसे आकाश प्रचंड पवनसे कम्पित पल्लवोंसे व्याप्तके सदृश भासता था॥६८॥

तदंगजजगद्वस्तुजातभ्रमणसंभवात् ॥ दृष्टिर्धीरापिमेमोहेसत्रासेसेवसंगरे ॥ ६९ ॥ प्रोह्यंतेयंत्रवच्छै लानिपतंतिनभश्चराः ॥ लुठंत्यमरगेहानिवलितेदेहदर्पणे ॥ ७० ॥ मेरवःपर्णवद्धचूडामलयाःपल्लवा इव ॥ हिमाद्रयोहिमकणाइवोर्व्योब्जलताइव ॥ ७१ ॥ सह्यामह्यामिवखगाविंध्याविद्याधराइव ॥ वृक्षा वर्त्तभ्रमंतोताराजहंसाइवांबरे ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसके अंगमें उत्पन्न वस्तुओंके भ्रमणसे धीर भी मेरी दृष्टि ऐसी कुण्ठित होगई जैसे महा-संग्राममें सेना ॥ ६९ ॥ उस देवीके देहरूपी दर्पणके भ्रमित होनेपर यंत्रोंके समान पर्वत संचालित थे, आकाशचारी गिरते थे और देवताओंके गृह इधर उधर लुढ़कते थे ॥ ७० ॥ असंख्य मेरुरूप प्रौढपत्रसहित, अनेक मलयाचल-रूपी नूतन पल्लवोंसे शोभित और अनेक हिमालयरूपी हिमकणसंयुक्त सब पर्वत उस देवीके देहमें पृथिवीसे उत्पन्न कमलकी लहलहाती लताके समान शोभित थे ॥ ७१ ॥ तथा उस भगवतीके देहमें असंख्य सह्य पर्वत पृथिवीपर पक्षीके सदृश अनेक विन्ध्याचल आकाशमें विद्याधरके समान और वृक्ष तथा आवर्त्त राजहंसके सदृश उसके श-रीरमें भ्रमण करते थे ॥ ७२ ॥

द्वीपान्यपितृणानीवसमुद्रावलयाइव ॥ सुरलोकालयःपद्माआसंस्तद्देहवारिणि ॥ ७३ ॥ विशदाकाशसं काशेस्वप्नांजनपुरोपमे ॥ अंगेतस्याबृहज्जंघेपिंडादित्यसमत्विषि ॥ ७४ ॥ विंध्योनृत्यतिकांचनाचलव नेसह्यश्चसह्योगिरिःकैलासोमलयोमहेंद्रशिखरीक्रौंचाचलोमंदरः ॥ गोकर्णोगगनांगणेवसुमतीविद्या धराणांपुरंसर्वेजंगमतांगतावनभुवस्तस्याःशरीरेसदा ॥ ७५ ॥ अब्धिर्नृत्यतिपर्वतेगिरिरपिप्रोच्चैर्नभः

कोटरेव्योमापींडुदिवाकरैःक्वचलितंभूमेरधस्ताद्गतम् ॥ सद्वीपाचलपत्तनोवनगणःप्रोत्कीर्णपुष्पोदिवि व्यालोलंजगदंबुधाविवतृणंदिक्चक्रकेभ्राम्यति ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसके देहरूप सरोवरमें सब द्वीप तृणके सदृश, समुद्रवलयके समान और देवलोक कमलके तुल्य भासते थे ॥ ७३ ॥ आकाशके तुल्य विशाल, स्वप्नमें उत्पन्न महाकज्जलमय नगरके सदृश महाजंघा सहित और पिंडीभूत असंख्य सूर्य्यके समान प्रकाशमान शरीरमें विन्ध्य आदि स्थावर वस्तु जंगमरूपताको प्राप्त हुये ॥ ७४ ॥ हे रामजी ! मेरुके वनमें विन्ध्याचल अपने चिरकालके वैरका बदला लेते हुये के समान नाचताथा, उसको नसहते हुये क्रोधपूर्ण सह्य, कैलास, मलय, महेन्द्र, क्रौंच, मन्दर और गोकर्ण आदि पर्वत आकाशरूपी अंगणमें नाचते थे और इनके पक्षपातसे पृथिवी तथा विद्याधरोंके नगर नृत्य करते थे. इस प्रकार वनकी भूमिरूप उस भगवतीके शरीरमें सब स्थावर जंगमरूप होगये ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! उस काली देवीके शरीरमें यह विलक्षणता और भासती थी कि समुद्र तो पर्वतपर नाचता था, वह पर्वत भी महाआकाशरूपी गर्तमें नाचता था और सूर्य्य तथा चन्द्रमाके साथ वह आकाश भी पृथिवीके नीचे कहां चला गया यह नहीं भान होता था तथा विकसित पुष्पोंसे पूर्ण द्वीप पर्वतादि सहित वनसमूह सूर्य्य आदिके स्थानमें नाचते थे, इसप्रकार चंचल जगत् दिग्मण्डलमें भ्रमण करता था जैसे समुद्रमें तृण ॥ ७६ ॥

व्योम्निभ्रमंतिगिरयोंबुधयोदिगंतेलोकांतराणिपुरपत्तनमंडलानि ॥ नद्यःसरांसिमुकुरांतरिवप्रवृद्धवाताव कीर्णतृणविक्रमणक्रमेण ॥ ७७ ॥ मत्स्याश्चरंतिचमरौवरवारिणीवव्योम्निस्थिराणिनगराणिभुवीवभांति ॥ खेभूधरागगनसंक्षयवारिवाहमुत्पातवातपरिवृत्तगिरिस्थितंतत् ॥ ७८ ॥ ऋक्षोत्करोभ्रमतिदीपसहस्रयंत्रचक्रक्रमेणमणिवर्षणवेगचारुः ॥ अंतर्बहिश्चपरितःप्रणयेनमुक्तंविद्याधरामरगणैरिवपुष्पवर्षम् ॥ ७९ ॥ संहारसर्गनिचयादिनरात्रिभागेबिंदूपमारजतयोर्दिवसोत्कराश्च ॥ कृष्णाःसिताश्चपरितोमलशुक्लकृष्णस्वादर्शमंडलवदाकुलमुल्लसंति ॥ ८० ॥

अर्थ—हे रामजी ! आकाशमें पर्वत तथा दिगंतोंमें समुद्र भ्रमण करते थे, तथा ग्राम, नगर, राज्य, नदी और तडाग आदि दर्पणमें प्रविष्टके समान अन्यलोक लोकान्तरमें जाके ऐसे भ्रमण करते थे जैसे प्रचण्डपवनसे प्रवाहित तृणसमूह ॥ ७७ ॥ उत्तमजलसहित समुद्रके समान मरुभूमिमें मत्स्य विचरते थे, आकाशमें नगर स्थिर ऐसे भासते थे, पृथिवीपर आकाशमें पर्वत शोभित थे और उत्पातके वायुसे भ्रमणशील पर्वतोंपर स्थित आकाश तथा प्रलयके मेघ उस भगवतीके शरीरमें भासते थे ॥ ७८ ॥ तथा मणियोंकी वृष्टिके वेगसे सदृश मनोहर और सहस्रों दीपयंत्रोंके भ्रमणके समान नक्षत्रोंके समूह पृथिवीके बाहर भीतर भ्रमण करतेथे, तथा विद्याधरोंके गण ऐसे पुष्पवृष्टि करते थे जैसे तुमारी सभामें ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! उस भगवतीके देहमें प्रलय और सृष्टिके समूह मलिन तथा शुद्ध रजत (रौप्य) के सदृश रात्रि तथा दिनके समूह तथा श्वेत और नीलमणिके आदर्शमण्डलके तुल्य शुक्ल और कृष्णपक्ष चारोंओरसे शोभित थे ॥ ८० ॥

रत्नानिभास्करनिशाकरमंडलानितारोत्करास्तरलमंडलकांतिहाराः ॥ स्वच्छांबराणिवलितानिमहांबराणिकुर्वंत्यनारतमनल्पमलातलेखाः ॥ ८१ ॥ कल्पांतकालविलुठत्रिजगन्मणीनिव्यावर्त्तनैर्झगितिजातझणज्झणानि ॥ तेजांसिझंकृततयोर्द्ध्वमधश्चयांतिनानाविधानिगुणवंतिविभूषणानि ॥ ८२ ॥ संग्राममत्तभटखड्गमरीचिवीचिश्यामायमानसकलातपवासराणाम् ॥ व्यावृत्तिभिर्विलुठतामपिसुस्थिराणामाकर्ण्यतेकलकलोजनमंडलानाम् ॥ ८३ ॥ ब्रह्मेंद्रविष्णुहरवह्निरवींदुपूर्वादेवासुराःपरिविवृत्तिभिरातपंतः ॥ अन्येन्यएवविविधाउपायांतियांतिवातावधूतमशकाःशनिर्विभ्रमेण ॥ ८४ ॥

अर्थ—तथा हे रामजी ! उस देवीके देहमें सूर्य्य तथा चन्द्रमा रत्न थे, तारागणसमूह चंचल मनोहर हार थे, निर्मल आकाश वेष्टित महावस्त्र थे, और उनमें भ्रमण करतेहुये विद्युत् तथा अग्नि आदि अलातचक्रकी रेखाके सदृश महाप्रकाश करते थे ॥ ८१ ॥ तथा उस भगवतीके नृत्यमें प्रलयकालमें इधर उधर लुढकतेहुये तीनों लोक झण २ शब्दकारी मणि थे, तथा झनकारशब्दके साथ नीचे ऊपर जातेहुये सूर्य्य आदि तैजस पदार्थ अनेकगुणयुक्त नूपुर (पायजेब) आदि आभूषण होगये थे ॥ ८२ ॥ तथा उस देवीके ताण्डवनृत्यमें संग्राममें मत्त वीरोंके खड्ग आदिकी दीप्तियोंसे ग्रीष्मऋतुके दिवसोंको भी श्यामवर्ण करनेवाले तथा नृत्यके भ्रमणोंसे लुढकतेहुये भी अधिष्ठान ब्रह्मकी स्थिरतासे अतिस्थिर वीरजनोंका कोलाहल श्रवणगोचर होताथा ॥ ८३ ॥ तथा भूत भविष्य अनन्तकोटि सृष्टि तथा

प्रलयसहित शरीरधारिणी उस भगवतीके नृत्यमें ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादिदेव तथा असुर अधिकारोंकी प्रवृत्तिसे अन्यर के समान रूप धारणकरके अस्थिरतासे ऐसे आते जातेथे जैसे वायुसे कम्पित मशक तथा विद्युत्का विलास ॥ ८४ ॥

संहारसर्गसुखदुःखभवाभवेहानीहानिषेधविधिजन्ममृतिभ्रमाद्याः ॥ सार्द्धंपृथक्चविलसंतिसदैवस गैंव्यामिश्रतामुपगताअपितत्रभावाः ॥८५॥ भावोद्भवस्थितिविपत्करणभ्रमाणांसंहारसर्गभुवनावनि विभ्रमाणाम् ॥ मिथ्यैवखेप्रकचतांखशरीरकाणांसंलक्ष्यतेत्रनमनागपिनामसंख्या ॥ ८६ ॥ उत्पातशां तिमरणोत्सवयुद्धसाम्यविद्वेषरागभयविश्वसनादितत्र ॥ एकत्रकोशइवरत्नचयोविभातिनानारसाप्रति घसर्गपरंपरंतत् ॥ ८७ ॥ तस्याश्चिदंबरमयेवपुषिस्वभावभूतास्फुटानुभवभावजगद्व्यवस्थाः ॥ सर्व क्षयामलिनदृक्कलितांबरस्थकेशोंड्रकस्फुरणवत्परितःस्फुरंति ॥ ८८ ॥

अर्थ—तथा हे रामजी! उस देवीके शरीरमें भासमान सृष्टिमें यह महान् आश्चर्य्य और था कि परस्पर वि-रुद्ध भी सृष्टि प्रलय, सुख दुःख, भव अभव, चेष्टा अचेष्टा, विधि निषेध तथा जन्ममरण आदि पदार्थ कभी एकसाथ शोभित होतेथे और कभी पृथक् २ ॥८५॥ तथा निर्मल आकाशमात्र उस भगवतीके शरीरमें अधिष्ठानब्रह्मसे उत्पन्न अर्थक्रिया करनेमें समर्थ, मिथ्याभूत प्रलय तथा सृष्टियुक्त चतुर्दशभुवनोंकी संख्या किंचित् भी नहीं होसकतीथी ॥ ८६ ॥ हे रामजी! उस भगवतीके शरीरमें एककोशमें रत्नोंके समूहके सदृश परस्पर विरुद्ध भी उत्पात, शांति, जन्म, मरण, युद्ध तथा उसके अभाव, राग, द्वेष, भय तथा अभय आदि सब शोभित थे, क्योंकि नानारससंपूर्ण भी उसका शरीर परस्पर एकदूसरेके बाधा न करनेवाली सृष्टियोंकी परंपरासे पूर्ण था ॥ ८७ ॥ हे रामजी! यथार्थमें चिदाकाशरूप उस भगवतीके शरीरमें मायारूप आवरणसे प्रत्यक्ष अनुभूत सब जगत्की व्यवस्था तथा प्रलय आदि ऐसे भासतेथे जैसे तिमिररोगसे मलिनदृष्टिवाले पुरुषके आकाशमें केश आदि ॥ ८८ ॥

जगत्संक्षुब्धमक्षुब्धंदृश्यतेस्थितिसंस्थिति ॥ संचाल्यमानमुकुरप्रतिबिंबइवास्थितम् ॥ ८९ ॥ नृत्य स्फुरत्प्रतापांतर्जगदर्थाःप्रतिक्षणम् ॥ स्थितिंत्यजंतिगृह्णंतिबालसंकल्पसर्गवत् ॥ ९० ॥ क्रियाशक्तिः शरीरेंतःपूर्यमाणाअनारतम् ॥ राशीभूयविशीर्यंतेजगन्मुद्गकणोत्कराः ॥ ९१ ॥ क्षणमालक्ष्यतेकिंचि न्नकिंचिदपिसाक्षणम् ॥ क्षणमंगुष्ठमात्रैवक्षणमाकाशपूरिणी ॥ ९२ ॥

अर्थ—अचल अधिष्ठानमें स्थित असंक्षुब्ध भी यह जगत् क्षुब्धदृष्टिसे ऐसे संक्षुभित भासताथा जैसे चला-यमान दर्पणमें अचलपर्वत ॥ ८९ ॥ नृत्यसे जाज्वल्यमान प्रतापधारिणी उस महामायाके शरीरमें प्रविष्ट सब जगत्के पदार्थ परिणामसे पूर्वस्थितिको त्यागकर अन्यस्थितिको ऐसे ग्रहण करतेहैं जैसे बालकके संकल्पकी सृष्टि ॥ ९० ॥ उस भगवतीके शरीरमें निरन्तर क्रियाशक्ति पूर्ण होनेसे जगत्रूपी मूंगकी राशि एकत्र होके पुनः काल पाके सर्वत्र विस्तृत होती हैं ॥ ९१ ॥ परिणामस्वभाव जगन्मयी वह देवी क्षण २ में अन्य २ रूप धारण करतीथी, क्षणमेंही अंगुष्ठमात्ररूप धारण करतीथी और क्षणमेंही आकाशरूप होजातीथी ॥ ९२ ॥

यस्मात्सासकलादेवीसंविच्छक्तिर्जगन्मयी ॥ अनंतापरमाकाशकोशशुद्धशरीरिणी ॥ ९३ ॥ कालत्रय स्थितजगत्त्रितयांतरीहिचित्सातथाकचतितेनयथास्थितेन ॥ रूपेणचित्रकृदुदारमनःस्थचित्रसंसार जालसदृशेनकचजवेन ॥ ९४ ॥ सर्वात्मकैकवपुरेकचिदात्मकत्वात्संशांतखैकवपुरेकचिदात्मत त्वात् ॥ एवंनिमेषणसमुन्मिषितैकरूपंसाबिभ्रतीवपुरनंतमनादिभाति ॥ ९५ ॥ तस्यांविभातितदनं तशिलात्मकोशेलेखाब्जचक्ररचनादिवदेवदृश्यम् ॥ व्योमात्मकंगगनमात्रशरीरवत्यांचित्त्वाद्द्रवजल धिकोशइवोर्मिलेखा ॥ ९६ ॥

अर्थ—वह देवी संवित्के स्फुरणमात्र शक्तिरूप होनेसे संपूर्ण जगन्मयी थी और संवित्की शांतिसे अनन्त शुद्ध चिदाकाशमात्ररूपधारिणी थी ॥ ९३ ॥ वह भगवती त्रिकालमें स्थित परिणामी त्रिलोकीकी आभ्यन्तरीय चि-त्स्वरूप है इसकारणसे चित्रकारपुरुषके विशाल चित्तमें स्थित चित्रजालमय संसारके सदृश उन २ कर्मवासनाओंके परिपाकके अनुसार विचित्र जगत्रूपसे परिणत होके शोभित होती है ॥ ९४ ॥ हे रामजी! वह देवी अविद्यासे आवृत चित्स्वरूप होनेसे सर्व संसारमयी है और विद्यासे अविद्याका बाध होनेसे शुद्ध चिदाकाशरूपही है, इसप्रकार बद्ध तथा मुक्तपुरुषकी दृष्टिसे निमेष तथा उन्मेषसे अविद्या तथा विद्याद्वारा संसारमय तथा शुद्ध चि-न्मय अनादि शरीर धारण करतीहुई प्रकाश करती है ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! आकाशमात्र शरीरधारिणी उस देवीके शरीरमें चिदाकाशमात्र शरीरमात्र यह दृश्यमात्र ऐसे भासताहै जैसे अनंत स्फटिकशिलामें कमलचक्र आदिकी रचना अथवा समुद्रमें तरंगोंकी रेखा ॥ ९६ ॥

महतीभैरवीदेवीनृत्यंत्यापूरितांबरा ॥ तस्यकल्पांतरुद्रस्यसापुरोभैरवाकृतेः ॥ ९७ ॥ शिरोमंदाश्रितो ग्राग्निदग्धस्थाणुविधावनिः ॥ कल्पांतवातव्याधूतावनमालेवनृत्यति ॥ ९८ ॥ कुद्दालोलूखलशूर्पफल कुंभकरंडकैः ॥ मुसलोदंचनस्थालीस्तंभैःस्रग्दामधारिणी ॥ ९९ ॥ एवंविधानांस्रग्दामजालानांकुसु मोत्करम् ॥ किरंतीसंसृजंतीवनृतक्षुब्धंक्षयक्षतम् ॥ १०० ॥ वंद्यमानस्तयासोपितथैवाकाशभैरवः ॥ तथैवविततकारस्तदोच्चैःपरिनृत्यति ॥ १०१ ॥ डिंबंडिंबंसुडिंबंपचपचसहसाझम्यझम्यंप्रझम्यंनृत्यं तीशब्दवाद्यैःस्रजमुरसिशिरःशेखरंतार्क्ष्यपक्षैः ॥ पूर्णरक्तासवानांयममहिषमहाशृंगमादायपाणौपाया द्वोवंद्यमानःप्रलयमुदितयाभैरवःकालरात्र्या ॥ १०२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० कालरात्रिवर्णनं नामैकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—वह महाभयंकर देवी अपने देहसे आकाशको पूर्ण करके, भैरवरूपधारी कल्पान्तरुद्रके सन्मुख नृत्य करती थी ॥ ९७ ॥ कल्पान्तरुद्रके ललाटस्थानमें स्थित प्रबल अग्निसे वनभूमिको भस्म करके स्थाणु शेष करनेवाली और कल्पान्तकी महावात्याके समान वनकी पंक्तिको कंपित करतीहुई वह नृत्य करती थी ॥ ९८ ॥ कुदार, उलूखल, (ओखरी) घर तथा मुसल आदिकी माला धारण किये वह देवी नृत्य करतीथी ॥ ९९ ॥ हे रामजी ! नृत्यमें कम्पित इस प्रकारकी मालाओंके पुष्पोंको क्षण २ में विखेरती तथा नूतन पुष्पोंकी रचना करती-हुई वह भगवती नृत्य करती थी ॥ १०० ॥ इसप्रकार रूप धारिणी इस भगवतीसे वंद्यमान आकाशके तुल्य विशाल रूपधारी भैरव भगवान् भी महानृत्य करते थे ॥ १०१ ॥ हे भगवन् ! स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणशरीरको भक्षण (ज्ञानद्वारा नाश) करके योगभूमिकाओंको परिपक्क करों इसप्रकार डिंब २ तथा झम २ आदि तालके शब्दोंसे, शिरोंकी माला धारण किये और गरुडपक्षसे भूषित मस्तक कालरात्रिसे स्तूयमान तथा हस्तमें रक्तमधसे पूर्ण यमराजके महिषके महाशृंगको धारण किये हुए कालभैरवजी तुह्मारी रक्षा करैं ॥ १०२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने कालरात्रिवर्णनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अज्ञानसे कलासहित और ज्ञानसे कलारहित चित्स्वरूप परमात्माका तत्व शोधन करके इस ८२ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीरामउवाच ॥ किमेतद्भगवन्सर्वनाशेनृत्यतिकेनसा ॥ किंशूर्पफलकुंभाद्यैस्तस्याःस्रग्दामधारणम् ॥ १ किंनष्टंत्रिजगद्भूयःकिंकाल्यादेहसंस्थितम् ॥ परिनृत्यतिनिर्वाणंकथंपुनरुपागतम् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउ वाच ॥ नासौपुमान्नचासौस्त्रीनतन्नृत्तंनतावुभौ ॥ तथाभूतेतथाचारेआकृतीनचतेतयोः ॥ ३ ॥ अनादि चिन्मात्रनभोयत्तत्कारणकारणम् ॥ अनंतंशांतमाभासमात्रमव्ययमाततम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन् ! जब सब कुछ नष्ट होगया तब किन अंगोंसे वह काली देवी नृत्य करती थी और किन शूप, उलूखल, कुंभ आदिकी माला वह धारण करती थी ॥ १ ॥ हे भगवन् ! यह त्रिलोकका क्या नष्ट हुआ और क्या कालीदेवीके शरीररूपसे स्थित रहा और शान्त होकर पुनः साकरताको कैसे प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! यह भैरव परमात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है, न उन्होंने नृत्य किया, न वे काली तथा भैरवरूप थे ॥ ३ ॥ किन्तु अनादि, चिन्मात्र, आकाशरूप सब कारणोंका कारण, अनन्त, शान्त, आ· भासमात्र, अव्यय और सर्वव्यापक जो परमात्मा है वही वे थे ॥ ४ ॥

शिवंतत्सच्छिवंसाक्षाल्लक्ष्यतेभैरवाकृति ॥ तथास्थितोजगच्छांतौपरमाकाशएवसः ॥ ५ ॥ चेतनत्वा त्तथाभूतस्वभावविभवाद्दते ॥ स्थातुंनयुज्यतेतस्ययथाहेम्नानिराकृति ॥ ६ ॥ कथमास्तांवदप्राज्ञचि न्मात्रंचेतनंविना ॥ कथमास्तांवदप्राज्ञमरिचंतिक्तांविना ॥ ७ ॥ कटकादिविनाहेमकथमास्तांविलो च्यताम् ॥ कथंस्वभावेनविनापदार्थस्यभवेत्स्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—निरतिशय आनन्दरूप सद्ब्रह्मही शिव त्रिनेत्र नीलकण्ठ आदि रूपधारण करताहै और उपासकोंकी वासनाके अनुसार वह भैरवाकार स्थितहै और जगत् शान्त होनेपर वह चिदाकाशरूपही है ॥ ५ ॥ और श्रुति

आदिमें सृष्टि, स्थिति तथा संहार चेतनका प्रसिद्ध स्वभाव होनेसे, वह निराकार ऐसे नहीं रहसकता, जैसे कटक आदि रचनामें सुवर्ण ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जैसे मरिच तिक्तताके बिना नहीं रहसकता, ऐसेही चिन्मात्र चेत्य विषयाकार धारण किये बिना कैसे रहसकता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! विचारिये पिंड, कटक आदि आकार धारण किये बिना सुवर्ण कैसे रहसकता है, क्योंकि किसी पदार्थकी अपने स्वभावके बिना कैसे स्थिति होसकती है ॥ ८ ॥

विनातिष्ठतिमाधुर्यंकथयेक्षुरसःकथम् ॥ निर्माधुर्यश्चयस्त्विक्षुरसोनहिसतद्रसः ॥ ९ ॥ अचेतनंयच्चिन्मात्रंनतच्चिन्मात्रमुच्यते ॥ नचचिन्मात्रनभसोनष्टंकचनयुज्यते ॥ १० ॥ स्वसत्तामात्रकादन्यत्किंचित्तस्यनयुज्यते ॥ अन्यत्वमुररीकर्तुंव्योमानन्यमसौकिल ॥ ११ ॥ तस्मात्तस्ययदक्षुब्धंसत्तामात्रंस्वभासनम् ॥ अनादिमध्यपर्यंतंसर्वशक्तिमयात्मकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कहो इक्षुरस (शक्कर) मधुरताके बिना कैसे रहसकता है, जो बिना मधुरताके इक्षुरसकी स्थिति है वह इक्षुरस नहीं है ॥ ९ ॥ बिना किसीका प्रकाश किये चिन्मात्रको चित् नहीं कह सकते और विषयके बिना चिदाकाशका कुछ नाशभी नहीं युक्त है ॥ १० ॥ ब्रह्मकी निज सत्तामात्रसे भिन्न कुछ नहीं है, ब्रह्मही अनेक होनेकी इच्छासे आत्मासे अभिन्नरूप जगत्‌रूप अन्यताको अंगीकार करताहै ॥ ११ ॥ इसलिये आदि, मध्य तथा अन्तशून्य, क्षोभरहित, तथा सर्वशक्तिमय ब्रह्मकी निजसत्तामात्रमें जो स्थिति है ॥ १२ ॥

तदेतत्त्रिजगत्सर्गकल्पांतौव्योमभूर्दिशः ॥ नाशउत्पादनंनामविनानाभासनंनभः ॥ १३ ॥ जननंमरणंमायामोहमांद्यमवस्तुता ॥ वस्तुताचविवेकश्चबंधोमोक्षःशुभाशुभे ॥ १४ ॥ विद्याविद्याविदेहत्वंसदेहत्वंक्षणश्चिरम् ॥ चंचलत्वंस्थिरत्वंवात्वंचाहंचेतरश्चतत् ॥ १५ ॥ सदसच्चाथसदसन्मौर्ख्यंपांडित्यमेवच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यकलनाकेलिकल्पनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—वही इस त्रिलोकीकी सृष्टि तथा कल्पान्त है, वही आकाश है, वही पृथिवी है और वही सब दिशा हैं, क्योंकि आकाशकी नीलताके सदृश अविद्या दृष्टिसेही उत्पत्ति तथा नाश भासते हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! जन्म, मरण, माया, मोह, मूर्खता, अवस्तुता, वस्तुता, विवेक, बन्ध, मोक्ष, शुभ, अशुभ ॥ १४ ॥ विद्या, अविद्या, निराकारता, साकारता, क्षण, चिरकाल, चंचलता, स्थिरता, त्वत्ता, अहन्ता, अन्यता ॥ १५ ॥ सत्, असत्, मूर्खता पाण्डित्य, देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कला, क्रीडा, कल्पना ॥ १६ ॥

रूपालोकमनस्कारकर्मबुद्धींद्रियात्मकम् ॥ तेजोवार्यनिलाकाशपृथ्व्यादिकमिदंततम् ॥ १७ ॥ एतत्सर्वमसौशुद्धचिदाकाशोनिरामयः ॥ अजहद्व्योमतामेवसर्वात्मैवैवमास्थितः ॥ १८ ॥ एतत्सर्वंचविमलंखमेवात्रनसंशयः ॥ अस्मादनन्यत्स्वप्नाद्रिर्दृष्टांतोत्राविखंडितः ॥ १९ ॥ चिन्मयःपरमाकाशोयएवकथितोमया ॥ एषोसौशिवइत्युक्तोभवत्येषसनातनः ॥ २० ॥

अर्थ—नामरूप, बाह्य तथा आभ्यन्तर विषय, कर्मेंद्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और यह सब व्याप्त पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश आदि पदार्थ रूप ॥ १७ ॥ निरामय शुद्ध चिदाकाशही है, वह अपनी शुद्ध चिदाकाशरूपताको न त्यागते हुये सर्वरूप है ॥ १८ ॥ यह सब जगत्‌रूप चिदाकाशही है इसमें सन्देह नहीं है, इस चित्‌से सब अभिन्न हैं इसमें स्वप्नके पदार्थ अखण्डित दृष्टान्त है ॥ १९ ॥ चिन्मय परमाकाश जो मैंने तुमसे कहाहै यही सनातन शिवरूप कहा गयाहै ॥ २० ॥

सएषहरिरित्यास्तेभवत्येषपितामहः ॥ चंद्रोर्केइंद्रोवरुणोयमोवैश्रवणोनलः ॥ २१ ॥ अनिलोजलदांभोधिर्ह्योयद्वस्त्वस्तिनास्तिच ॥ इत्येतेचिन्मयाकाशकोशलेशाःस्फुरंत्यलम् ॥ २२ ॥ एवंविधाभिःसंज्ञाभिर्मुधाभावनयेदृशाः ॥ स्वभावमात्रबोधेनभवंत्येतेतुतादृशाः ॥ २३ ॥ अबोधोबोधइत्येवंचिद्व्योमैवात्मनिस्थितम् ॥ तस्माद्भेदोद्वैतमैक्यंनास्त्येवेतिप्रशाम्यताम् ॥ २४ ॥ तावत्तरंगत्वमयंकरोतिजीवःस्वसंसारमहासमुद्रे ॥ यावन्नजानातिपरंस्वभावंनिरामयंतन्मयतामुपेतः ॥ २५ ॥ ज्ञानेनशांतिंसतथोपयातियथानसोब्धिर्नतरंगकोसौ ॥ यथास्थितंसर्वमिदंचशांतंभवत्यनंतंपरमेवतस्य ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने शिवस्वरूपवर्णनं नाम द्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—यही शिव परमात्मा विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य्य, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर तथा अग्निरूप धारण करता है ॥ २१ ॥ वायु, मेघ, समुद्र, अतीत तथा अनागत पदार्थ और जो वस्तु है तथा नहीं है वह सब परमात्माही है ये वर्णन किये हुये विष्णु, ब्रह्मा आदि पदार्थ जो स्फुरित हो रहे हैं वे सब चिन्मय ब्रह्माकाशकोशके उपाधिद्वारा अंशरूप

हैं ॥ २२ ॥ अन्यथा ग्रहण करानेवाली अविद्यासे पूर्वोक्त हरि, ब्रह्मा इत्यादि नामोंसे परमात्माही कहाजाताहै और परमार्थस्वभावमात्रके बोधसे विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्र तथा सूर्य्य आदि चिन्मात्रही शेष रहते हैं ॥२३॥ हे रामजी ! ब्रह्मही अज्ञदृष्टिसे अबोधरूपसे जीव तथा जगत्स्वरूपसे स्थित है और तत्वदृष्टिसे वही बोध होके चिदाकाशरूपसे स्थित है इस कारण चित्से भिन्न भेद, द्वैत तथा ऐक्य कुछभी नहीं है ऐसा निश्चय करके शान्त होजाओ ॥ २४ ॥ जब तक यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जानता तभीतक इस संसाररूप महासमुद्रमें जन्म, मरण तथा भ्रमण आदि रूप नानातरंगोंकी कल्पना करताहै और अपने परब्रह्मस्वभावके जाननेपर तन्मय होकर निरामय ब्रह्मरूपही होजाता है ॥ २५ ॥ ज्ञान होनेपर यह जीव ऐसे शान्त होजाताहै जैसे तरंगरहित समुद्र और यथास्थित यह संपूर्ण जगत् उसके लिये परम शान्त ब्रह्मरूपही होजाताहै ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० शिवस्वरूपवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चिन्मात्रही वह शिव तथा काली भगवती है, बोधके लिये भैरवाकार शिव तथा काली भगवती भासती है इस विषयका वर्णन ८३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिन्मात्रपरमाकाशएषयःकथितोमया ॥ एषोसौशिवइत्युक्तस्तदारुद्रःप्रनृत्यति१॥ यासौतस्याकृतिर्नासावाकृतिःकृतिनांवर ॥ तच्चिन्मात्रघनंव्योमतथाकचतिताद्दशम् ॥ २ ॥ मयादृष्टा तदाकाशमेवशांतंतदाकृतिः ॥ मयैवतत्परिज्ञातंनान्यःपश्यतितत्तथा ॥ ३ ॥ यथानामसकल्पांतःस रुद्रःसाचभैरवी ॥ मायामात्रंतथासर्वंपरिज्ञातमलंमया ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! यह जो मैंने तुमसे वर्णन कियाहै वह चिन्मात्र ब्रह्माकाशही है,यही शिवरूपसे कहा गयाहै,यही प्रलयके समय रुद्ररूप धारणकरके नृत्य करताहै ॥ १ ॥ हे पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ रामजी ! जो यह भयंकर इनकी आकृति है, यह यथार्थमें इनकी आकृति नहीं है, किन्तु चिद्घन चिदाकाशही उस रूपसे विकसित होरहाहै ॥ २ ॥ तत्वदृष्टिसे मैंने उस आकारको शान्त, चिदाकाशमात्र देखा, मैंनेही उसको यथार्थरूपसे जाना और विवेकदृष्टिसे हीन प्राणी उसको नहीं देखता ॥ ३ ॥ जिस प्रकार वह कल्पान्त; वह रुद्र और वह भैरवी मायामात्र थे वह सब मैंने तत्वदृष्टिसे पूर्णरूपसे जानलिया ॥ ४ ॥

चिद्व्योमैवपरंशून्यंसन्निवेशेनतेनतत् ॥ तथासंलक्ष्यतेनामभैरवाकारतांगतम् ॥ ५ ॥ वाच्यवाचकसंबंधंविनाबोधोनजायते ॥ यस्मात्तस्मात्त्वयिमयादृष्टमेवप्रवर्णितम् ॥ ६ ॥ यदेववाच्युपारूढमेतद्रामस दैवते ॥ रूढाधिभौतिकदृशःक्षणान्मायात्मतांगतम् ॥ ७ ॥ नभैरवीसानैवासौभैरवोनैवसंक्षयः ॥ समस्तमेवतद्भ्रांतिमात्रंचिद्व्योमभासते ॥ ८ ॥

अर्थ—वह सब केवल परमशून्य चिदाकाशही मात्र था, न तो वह आकारथा, न वह नृत्य था, किन्तु उपासकोंकी वासनासे वह भगवान् भैरवाकार लक्षित होताहै ॥ ५ ॥ वाच्यवाचक संबधकी कल्पना बिना बोध नहीं होताहै इसलिये कल्पनासे दृष्ट प्रलय नृत्यादि मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ६ ॥ हे रामजी ! चिरकालके अभ्याससे जगत्में प्रौढ आधिभौतिक दृष्टिवाले तुम्हारी वाणीमें जो कुछ दृढताको प्राप्त है वह सब मायामात्र है भ्रमसे सत्यताको प्राप्तहै ॥ ७ ॥ यथार्थमें न वह भैरवी थी, न भैरव थे और न वह प्रलय था, किन्तु इस सम्पूर्णरूपसे भ्रमसे चिदाकाशही भासताथा ॥ ८ ॥

स्वप्ननिर्माणपुरवत्संकल्परणवेगवत् ॥ कथार्थसार्थरसवन्मनोराज्यविलासवत् ॥ ९ ॥ यथास्वप्नपुरं स्वच्छेव्योम्निमौक्तिकधीर्यथा ॥ यथाकेशोंड्रकंव्योम्नितथाऽचिद्भातिचिद्घने ॥ १० ॥ चिन्मात्राकाशमे वाच्छंकचतिस्वात्मनात्मनि ॥ तथानामयदाभातितदात्मैवजगत्तया ॥ ११ ॥ यथाचिद्व्योम्निकचति सएवात्मातथापटे ॥ तथाकचतितत्तत्रकल्पांतानलनर्त्तने ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वप्नके नगरकी रचनाके तुल्य संकल्पके रणके वेगके समान कथाके अर्थ तथा मनोराज्यके विलासतुल्य चिदाकाशही सब रूपसे भासताहै ॥ ९ ॥ जैसे स्वच्छ आकाशमें स्वप्नके नगर, मुक्तासमूहकी बुद्धि तथा केशादि

भासते हैं ऐसेही चिद्घनमें अचित् भासताहै ॥ १० ॥ जब ज्ञान होताहै तब निर्मल चिदाकाशही जगत्‌रूपसे अपने आत्मामें स्वयं भासताहै ॥ ११ ॥ जैसे चिदाकाशमें आत्मा विकसित होताहै ऐसेही कल्पान्तकी अग्नि तथा नृत्य आदिमें भी वह विकसित होताहै ॥ १२ ॥

शिवयोरेवमाकारोनिराकारोंगवर्णितः ॥ अधुनाशृणुतेवक्ष्येनृत्यस्यानृत्ततास्थितिम् ॥ १३ ॥ चेतनंचेतनाधातोःकिंचित्संस्पंदनंविना ॥ कचित्स्थातुंनशक्नोतिवस्त्ववस्तुतयायथा ॥ १४ ॥ स्वभावाच्चेतनं तस्माद्रुद्रत्वेनतथास्थितम् ॥ हेमेवरूपकत्वेनसंनिवेशविलासिना ॥ १५ ॥ यन्नामचेतनंयत्रतदवश्यं स्वभावतः ॥ स्पंदधर्मिभवत्येववस्तुताहिस्वभावजा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! इसप्रकार शिव तथा भैरवीका निराकारही आकार मैंने तुमसे वर्णन किया,अब उनके नृत्यका मिथ्यात्व वर्णन करताहूं सो तुम सुनो ॥ १३ ॥ जैसे भ्रांतिसे दृश्यमान शुक्ति आदि वस्तु अवस्तु रजत आदि रूपसे भासेविना नहीं रहसकता, ऐसेही चिन्मात्र परमेश्वरकी चेतनताभी स्फुरणाके विना नहीं रहसकती ॥ १४ ॥ जैसे सुवर्ण कटक आदिरूपमें परिवर्तित होताहै ऐसेही चिद्रूप चेतनभी निजस्वभावसे रुद्ररूपसे स्थित है ॥ १५ ॥ जो चेतन है उसमें स्वभावसे स्पन्दधर्म अवश्य होगा, क्योंकि यह अधिष्ठान वस्तुके स्वभाव हैं ॥ १६ ॥

यःस्पंदश्चिद्घनस्यास्यशिवस्यास्यसएवनः ॥ स्ववासनावेशवशान्नृत्यमेवविराजते ॥ १७ ॥ अतःसकल्पांतशिवोरुद्रोरौद्राकृतिर्द्रुतम् ॥ यन्नृत्यतिहितद्विद्धिचिद्घनस्पंदनंनिजम् ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ प्रामाणिकदृशादृश्यमिदंनास्त्येववस्तुतः ॥ यदवास्तवितत्सर्वंकल्पांतेप्रविनश्यति ॥ १९ ॥ तत्कल्पांतमहाशून्येएतस्मिन्परमांबरे ॥ कथंचिन्नामवाचेत्यंचेताचेततिचिद्घनः ॥ २० ॥

अर्थ—जो चिद्घन शिवका स्पन्द है वही अपनी वासनाके अनुसार नृत्य होके विराजता है ॥ १७ ॥ इसलिये वह कल्पान्त रुद्र जो जो भयंकर आकार धारण करके शीघ्र नृत्य करतेहैं वह चिद्घनका निज स्पन्दही जानो ॥१८॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! प्रामाणिकदृष्टिसे तो यह दृश्य है ही नहीं और जो कुछ है वह सब कल्पान्तमें नष्ट होजाताहै ॥ १९ ॥ तो कल्पान्तमें महाशून्य इस चिदाकाशमें चेत्यरहित चित् कैसे रहती है आश्रयके अभावसे चेतयिता कैसे होता है और अपनेसे भिन्न क्रियाके अभावसे चित्में क्रिया कैसे होती है ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एतदेवतदाप्यंगद्वैतैक्यांभोधिशांतये ॥ यदिचिन्मात्रनभसश्चेत्यमस्तिनकिंचन ॥ २१ ॥ नकिंचिच्चेततिततःक्वचित्किंचित्कदाचन ॥ सर्वशांतंदृषन्मौनंविज्ञानघनमंबरम् ॥ २२ ॥ यच्चेदंचेत्यतेनामतत्स्वभावोस्यवल्गति ॥ चित्स्वभावस्यशांतस्यस्वसत्तायामवस्थितेः ॥ २३ ॥ यथा स्वप्नेचिदेवांतःपुरपत्तनवद्भवेत् ॥ पुरादिनतुतत्किंचिद्विज्ञानाकाशमेवतत् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! यदि चिन्मात्र आकाशका प्रलयमें कुछ नहीं है तो तुम द्वैत तथा ऐक्यके सन्देहरूप समुद्रकी शान्तिके लिये यही उत्तर सुनो ॥ २१ ॥ यथार्थमें किसी देशकालमें न कोई चेतयिता है और न चेत्य है, किन्तु सब शान्त पाषाणवत् विज्ञानघन चिदाकाशही है ॥ २२ ॥ और जो कुछ यह चेतित होताहै वह निजसत्तामें स्थित शान्त चित्स्वभावही अज्ञात होनेसे जीव जगत्‌रूपसे प्रथित होता है ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नमें चित्स्वरूपही नगर आदि धारण करता है, वहां चिदाकाशके सिवाय नगर आदि यथार्थमें कुछ नहीं हैं ॥ २४ ॥

आत्मनात्मनिचिच्छून्यंज्ञात्वाचज्ञेयमप्यलम् ॥ तथाचसर्गादारभ्यवेत्तिस्वंकचनंचतत् ॥ २५ ॥ स्वयमंतःकचंतीचित्स्वभावाकाशकोटरे ॥ क्षणकल्पजगद्भ्रांतिंधत्तेकल्पनयास्वया ॥ २६ ॥ स्वयमंतःकचत्कांतिश्चिदाकाशःस्वभावखे ॥ अयंसोहमयंचत्वंकरोतीत्यादिकल्पनम् ॥ २७ ॥ तस्मान्नद्वैतमस्तीह नचैक्यंनचशून्यता ॥ नचेतनाचेतनंवैमौनमेवनतच्चवा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसलिये चित् सब ज्ञेयको जानकरभी अपने आत्मासे आत्मामें वह सदा ज्ञेय शून्य है और सृष्टिसे लेके प्रलयपर्य्यन्त वह सब कुछ अपना स्फुरण जानता है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! यह चित् निजस्वभावरूप कोटरमें विस्तृत होती हुई अपनीही कल्पनासे क्षण, कल्प तथा जगत्‌के भ्रमको धारण करती है ॥ २६ ॥ यह चिदाकाश निज स्वभावमें प्रदीप्त होकर यह, वह, तुम तथा हम इत्यादि कल्पना करता है ॥ २७ ॥ इसलिये न द्वैत है, न ऐक्य है, न चेतना है, न चेतायिता है और न मौन है, किन्तु चिन्मात्रही है ॥ २८ ॥

नचेततिकचित्किंचित्कश्चिच्चेत्यात्मभावतः ॥ तेनचेतापिनास्तीवमौनमेवावशिष्यते ॥ २९ ॥ निर्विकल्पसमाधिर्हिसिद्धांतःसर्ववाङ्मये ॥ तच्चजीवदृषन्मौनंतूष्णीमेवातआस्यताम् ॥ ३० ॥ कुर्वन्निजंप्र

कृतमेवयथाप्रवाहमाचारजालमचलःपरमार्थमौनात् ॥ निर्मानमोहमदभेदमनंगजीवमाकाशकोशवि शदाशयशांतमास्व ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने विश्वरूपदर्शनं नाम त्र्यशीतितमःसर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—चित् स्वयं चेत्यरूप होनेसे उससे भिन्न न कोई चेतना है और न चेत्य है किन्तु मौनमात्र शेष रहता है ॥ २९ ॥ सब वाङ्मय प्रपञ्चमें निर्विकल्प समाधिही सिद्धान्त है और वह समाधि जीवकी पाषाणवत् शान्त अवस्था है, इसलिये तुम मौन स्थित रहो ॥ ३० ॥ हे रामजी तुमभी संसारकी दृष्टिसे पितृपितामहके क्रमसे प्राप्त अपने आचारके अनुसार राज्यका पालन करते हुये निजदृष्टिसे मानमोहादिके त्यागपूर्वक आकाशके समान विशाल होकर शान्त स्थित रहो ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० विश्वरूपदर्शनं नाम त्र्यशीतितमःसर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

विवेक करके शिव तथा शक्तिका निज रूप और सत्यासत्यके विचारसे शूर्प (सूप) आदि मालाकाभी रूप इस ८४ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनंतरंमुनेब्रूहिकालीकिमिवनृत्यति ॥ किंशूर्पफलकुद्दालमुसलादिस्रजावृता ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सभैरवश्चिदाकाशःशिवइत्यभिधीयते ॥ अनन्यांतस्यतांविद्धिस्पंदशक्तिमनोम यीम् ॥ २ ॥ यथैकंपवनस्पंदमेकमौष्ण्यानलौयथा ॥ चिन्मात्रंस्पंदशक्तिश्चतथैवैकात्मसर्वदा ॥ ३ ॥ स्पंदेनलक्ष्यतेवायुर्वह्निरौष्ण्येनलक्ष्यते ॥ चिन्मात्रममलंशांतंशिवइत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! वह काली शूर्प आदिको क्यों धारण करती है तथा किस रूपसे क्यों वह नृत्य करती है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! वह भैरव चिदाकाश शिवरूप हैं उनसे अभिन्न मनोमयी स्पन्दशक्तिरूप उस कालीको तुम जानो ॥ २ ॥ और जैसे वायु तथा स्पन्द और अग्नि तथा उष्णता एक पदार्थ हैं ऐसेही चिन्मात्र तथा उसकी स्पन्दशक्तिभी सदा एक हैं ॥ ३ ॥ जैसे स्पन्दसे वायु और उष्णतासे अग्नि लक्षित होताहै ऐसेही निर्मल चिन्मात्र और शांत वह शिव कहाताहै ॥ ४ ॥

तत्स्पंदमायाशक्त्यैवलक्ष्यतेनान्यथाकिल ॥ शिवंब्रह्मविदुःशांतमवाच्यंवाग्विदामपि ॥ ५ ॥ स्पंदश क्तिस्तदिच्छेदंदृश्याभासंतनोतिसा ॥ साकारस्यनरस्येच्छायथाविकल्पनापुरम् ॥ ६ ॥ करोत्येवशिव स्येच्छाकरोतीदमनाकृतेः ॥ सैषाचितिरितिप्रोक्ताजीवनाजीवितैषिणाम् ॥७॥ प्रकृतित्वेनसर्गस्यस्वयं प्रकृतितांगता ॥ दृश्याभासानुभूतानांकरणात्सोच्यतेक्रिया ॥ ८ ॥

अर्थ—वह स्पन्दरूप मायाशक्तिहीसे ज्ञात होताहै अन्यथा नहीं क्योंकि सब श्रुतियां तथा ब्रह्मवित् शिवकोही ब्रह्म कहतेहैं ॥ ५ ॥ जैसे साकार मनुष्यकी इच्छाही कल्पनामय नगर आदिकी रचना करतीहै ऐसेही शिवकी स्पन्द-शक्ति इच्छारूप वह काली इस दृश्यका विस्तार करती है ॥ ६ ॥ आकारशून्य शिवकी इच्छाही इस जगत्को रचती है तथा सब जीव धारियोंके जीवनका हेतु होनेसे इसीको जीव चैतन्यभी कहते हैं ॥ ७ ॥ जगत्स्वरूपसे परिणत होनेसे यही प्रकृतिरूपता, तथा दृश्य आभासोंमें अनुभूत उत्पत्ति आदि करनेसे क्रियारूपताकोंभी यही प्राप्तहै ॥ ८ ॥

वडवाग्निशिखाकाराच्छोष्याच्छुष्केतिकथ्यते ॥ चंडित्वाच्चंडिकाप्रोक्तासोत्पलोत्पलवर्णतः ॥ ९ ॥ ज याजयैकनिष्ठत्वात्सिद्धासिद्धिसमाश्रयात् ॥ जयंतीचजयाप्रोक्ताविजयाविजयाश्रयात् ॥ १० ॥ प्रोक्ता पराजितावीर्याद्दुर्गादुर्ग्रहरूपतः ॥ ॐकारसारशक्तित्वाद्उमेतिपरिकीर्तिता ॥ ११ ॥ गायत्रीगायनात्म त्वात्सावित्रीप्रसवस्थितेः ॥ सरणात्सर्वदृष्टीनांकथितैवासरस्वती ॥ १२ ॥

अर्थ—वडवानलकी शिखाके समान शुष्कमांस धारणकरनेसे पुराणादिमें यह भगवती शुष्का भी कही गई है और दुष्टोंपर कोप करनेसे चण्डिका तथा नीलकमलवर्ण होनेसे सोत्पलाभी कही गई है ॥ ९ ॥ तथा जयमें प्रवृत्त होनेसे जया, सिद्धियोंका आश्रय होनेसे सिद्धा, विजयका आश्रय होनेसे जया, जयन्ती तथा विजया कही गई है ॥ १० ॥ अतिपराक्रमयुक्त होनेसे अपराजिता, दुर्ग्रहरूपसे दुर्गा तथा अ, उ और म् रूप ओंकारका सार होनेसे

उमाभी यही भगवती कही गई है ॥ ११ ॥ जापकको परमपुरुषार्थ होनेसे गायत्री, सन्ततिकी स्थितिका कारण होनेसे सावित्री और कर्म उपासना तथा ज्ञानदृष्टिकी प्रसर होनेसे सरस्वती कही गई है ॥ १२ ॥

गौरीगौरांगदेहत्वाद्भवदेहानुषंगिणी ॥ सुप्तानामथबुद्धानाममात्रोच्चारणाद्धृदि ॥ १३ ॥ नित्यंत्रैलोक्य भूतानामुमेतींदुकलोच्यते ॥ शिवयोर्व्योमरूपत्वादसितंलक्ष्यतेवपुः ॥ १४ ॥ नभोहिमांसमेताभ्यांदृष्टिकष्टंविलोक्यते ॥ अस्तिनभोनभस्येवतौनभोनभसिस्थितौ ॥ १५ ॥ नभोनिभावभूतांगावच्छैाव्यो म्नइवाग्रजौ ॥ हस्तपादास्यमूर्धौयद्बहुत्वाल्पत्वभेदतः ॥ १६ ॥

अर्थ—गौरांग देह होनेसे गौरी, संसारकी उत्पत्तिके कारण भव (महादेव) के देहकी संगिनी होनेसे भवानी तथा सुप्त और जाग्रत् त्रैलोक्यके प्राणियोंके हृदयमें अकारादि तीन मात्रारूपसे उच्चारित होनेसे इन्द्रकलारूप उमा भी यही है. हे रामजी ! शिव तथा शिवाका आकाशरूप होनेसे इसका शरीर श्याम लक्षित होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ इन दोनोंका आकाशरूप मांसदृष्टिसे कष्टसे जाना जाताहै, आकाश आकाशमेंही है इसलिये आकाशरूप ये दोनों आकाशमेंही स्थितहैं ॥ १५ ॥ सबसे प्रथम ये दोनों निर्मल आकाशरूप अंगधारी हैं और अनेक तथा एकरूपभी होनेसे हस्त, पाद, मुख तथा शिर इनके अनेक हैं तथा एकभी है ॥ १६ ॥

नानात्वंहलशूर्पादिस्रग्धरत्वंचतच्छृणु ॥ साहिक्रियाभगवतीपरिस्पंदैकरूपिणी ॥ १७ ॥ दद्यात्स्नाया द्यजुहुयादित्याद्यग्रशरीरिणी ॥ चितिशक्तिरनाद्यंतातथाभातात्मनात्मनि ॥ १८ ॥ साकाशरूपिणीकां ताद्दश्यश्रीःस्पंदधर्मिणी ॥ देव्यास्तस्याहियाःकाल्यानानाभिनयनर्त्तनाः ॥ १९ ॥ ताइमाब्रह्मणःसर्ग जरामरणरीतयः ॥ क्रियासौग्रामनगरद्वीपमंडलमालिकाः ॥ २० ॥

अर्थ—और वह शूर्पादिकी जो माला धारणकरती है उसका कारण तुम सुनो, यद्यपि वह भगवती अनादि अनन्तचितिशक्तिरूपिणी है तथापि वैदिक दान, स्नान, यागादि क्रिया होनेसे दान स्नान तथा यागादि श्रेष्ठ शरीरधारिणी है, इसलिये उस भगवतीके जो नानाप्रकारके नृत्यके अभिनय हैं वेही ब्रह्मकी सृष्टिकी जरामरणादि रीति हैं और स्वरूपरहितकी क्रिया अप्रसिद्ध है इसलिये कल्पित क्रियारूप यह भगवती ग्राम, नगर, द्वीप तथा मण्डल आदि रूप माला धारण करती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

स्पंदान्करोतिधत्तेतःकल्पितावयवात्मिका ॥ कालीकमलिनीकालीक्रियाब्रह्मांडकालिका ॥ २१ ॥ ध त्तेस्वावयवीभूतांदृश्यलक्ष्मीमिमांहृदि ॥ नकदाचनचिद्देवीनिर्देश्यावयवाक्वचित् ॥ २२ ॥ शिवत्वाव्य तिरेकेणशिवतैवंविदृश्यताम् ॥ यथांगशून्यताव्योम्नःस्पंदनंमातरिश्वनः ॥ २३ ॥ ज्योत्स्नायाश्चेत्यमेवं हिदृश्यमंगंचितेःक्रिया ॥ शिवंशांतमनायासमव्ययंविद्धिनिर्मलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेकार्थ वाची कल धातुसे कालीशब्द सिद्ध होनेसे यह काली भगवती ब्रह्मांडोंके बीजोंको धारण, उत्पत्ति, पालनादि क्रिया करती है और इसीसे यह कल्पित अवयवोंसे कमलकी लताके समान शोभितहै ॥ २१ ॥ यह निजअवयवरूप इस ब्रह्माण्डलक्ष्मीको अपने हृदयमें धारणकरती है और यथार्थमें यह चिद्रूपदेवी कदाचित् कहीं-भी निर्वचनीय अवयव सहित नहीं है ॥ २२ ॥ शिवसे अभिन्नरूप होनेसे इसको शिवरूपही जानो. हे रामजी ! जैसे आकाशकी शून्यता, वायुका स्पन्द और चन्द्रिकाका प्रकाश अंग है ऐसे चितिकी क्रिया यह दृश्य अंग है, यथार्थमें तो स्वभावसिद्ध, शान्त, अविनाशी तथा निर्मल शिवरूपही अंग है ॥ २४ ॥

नमनागपितत्रास्तिस्तैमित्यंस्पंदधर्मता ॥ साक्रियैवतथारूपासतिबोधवशाद्यदा ॥ २५ ॥ व्यावृत्त्यैव तथैवास्तेशिवइत्युच्यतेतदा ॥ चितिशक्तेःक्रियादेव्याःप्रतिस्थानंयदात्मनि ॥ २६ ॥ यथाभूतस्थितेरेव तदेवशिवउच्यते ॥ देव्याःक्रियायाश्चिच्छक्तेःस्वरूपिण्यामहाकृतेः ॥ २७ ॥ कल्पिताकारधारिण्या अनन्यावयवाइमे ॥ सर्गाःसज्जनतावर्गालोकाआलोकभास्वराः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस शिवरूपमें किंचित्भी निश्चलता वा स्पन्दधर्मता नहीं ही है किन्तु अज्ञानसे चित्की क्रिया ही वैसी भासती है और जब बोधसे वह क्रिया स्वभावसे व्यावृत होती है ॥ २५ ॥ तब यह शिवरूपही कही जाती है और इस क्रिया देवी चितिशक्तिकी अपने स्वाभाविकरूपमें स्थिति होती है ॥ २६ ॥ तब इसकी यथार्थस्थिति शिवरूप ही कहाती है और महा आकारवती यह क्रियारूप तथा कल्पित आकारधारिणी इस चितिशक्तिके विद्यमान जनसहित सब सृष्टिप्रकाश लोक अभिन्न अवयव हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

सद्वीपसागराःपृथ्व्यःसवनावनयोद्रयः ॥ सांगोपांगास्त्रयोवेदाःसविद्यास्थानगीतयः ॥२९॥ सविधिप्र तिषेधार्थाःसशुभाशुभकल्पनाः ॥ सदक्षिणाग्नयोयज्ञाःपुरोडाशाद्यशंसिनः ॥३०॥ भूपालोलूखलवृसी

शूर्पयूपादिसंयुताः ॥ संग्रामाःसायुधग्रामाःसशूलशरशक्तयः ॥ ३१ ॥ सभुशुंडीगदाप्रासहयेभभट भास्वराः ॥ ज्ञातयोभूतसंघानांचतुर्दशसुरादिकाः ॥ चतुर्दशाब्धिद्वीपोर्व्यस्तथालोकाश्चतुर्दश ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा समुद्र सहित सब पृथिवी, वनसहित वनकी सब भूमि, सांगोपांग तीनोंवेद, विद्याओंके स्थान सहित सब गीति, विधि प्रतिषेध सहित शुभ अशुभकी कल्पना, दक्षिणाग्नि सहित सब यज्ञ और भक्ष्यरूप पुरोडाश उस चितिरूप देवीके अभिन्न अंग हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ तथा राजसमूह, मुशल, उलूखल, शूर्प, यूपादिसहित सब यज्ञके पात्र तथा शूल, शक्ति, बाण आदि, आयुधसहित सब संग्राम, तथा तोप, बन्दूक, गदा, बर्च्छी, अश्व, हस्ती तथा योधागण, प्राणियोंके समूहोंकी देव आदि चतुर्दश जाति, सब समुद्र, पृथिवी और चतुर्दशलोक उस काली भगवतीके अभिन्न अंग हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ चितेःकल्पाःशरीरिण्याःसर्गायेंगेस्थितास्तथा ॥ तेकिमात्मनितिष्ठंतिउतासत्याव देतिभो ॥३३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामासौकिलचिच्छक्तिस्तयायच्चोदितंतथा ॥ तत्प्रचेतितमेवातःस त्यंचेदमिवाखिलम् ॥३४॥ तत्प्रतिबिंबितंबाह्यान्मुकुरप्रतिबिंबवत् ॥ सत्यंतदंतरेवास्तिचितेर्नासत्यम र्थतः ॥३५॥ चिद्रूपस्यतथाप्यंतःसत्संकल्पपुरंभवेत् ॥ दृढध्यानाद्विशुद्धायाश्चितेर्भवतुसाकथम् ॥३६॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि हे प्रभो ! रुद्र तथा कालीरूप धारिणी चितिके शरीरमे प्रलयसमयमेंभी जो अतीत अनागत अनेक सृष्टि तथा प्रलय आपने वर्णन किये वे क्या यथार्थरूप आत्मामें स्थित रहते हैं, अथवा असत्य हैं यह कहिये ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! यह सत्यसंकल्प चित्शक्ति जीवोंके कर्म तथा वासनाके अनुसार जब जैसे प्रेरणा करती है तब जीव वैसाही सत्य वा असत्य अनुभव करते हैं ॥ ३४ ॥ दर्पणके प्रतिबिंबके समान बाह्य पदार्थ चितिके भीतर सत्यरूपसे ही प्रतिबिंबित हैं न कि असत्यरूपसे ॥ ३५ ॥ चिद्रूपके अनुभवके बलसे सत्यत्व होनेपरभी चिद्रूपके भीतर अचिद्रूपका प्रवेश होना असंभवित है इसलिये वह संकल्पनगरके समान मिथ्याही है इसलिये दृढ ध्यानसे वासनाका क्षय होनेपर उसकी प्रसक्तिही कैसी हो सकती है ॥ ३६ ॥

आदर्शेष्वथवास्वप्नेसर्गःसंकल्पनेस्तुवा ॥ सआत्मन्यर्थकारित्वात्सत्यइत्येवमेमतिः ॥ ३७ ॥ ममना र्थायसइतिवक्षिचेत्तत्कथंभवेत् ॥ देशांतरगताःसर्वेभवंत्यर्थायसंप्रति ॥ ३८ ॥ यथादेशांतरग्रामस्त द्गतस्यार्थकृद्भवेत् ॥ सर्वेतथैवतद्भावंगतस्यार्थविनिश्चयात् ॥ ३९ ॥ यद्यथाभूतसर्वार्थक्रियाकारिप्र दृश्यते ॥ तत्सत्यमात्मनोन्यस्यनैवातत्तामुपेयुषः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे प्रतीतिमात्रसे दर्पणमें प्रतिबिंब, स्वप्न अथवा संकल्पमें सृष्टि अज्ञदृष्टिसे उससमय सत्य भासती है ऐसेही यह सृष्टिभी दृष्टिकालमें आत्मामें कार्य्य करनेमें समर्थ होनेसे सत्यही है ऐसा मेरा सिद्धान्त है ॥ ३७ ॥ यदि यह कहो कि स्वप्न प्रतिबिंब आदिके पदार्थ हमारे बाह्य अर्थ क्रिया करनेमें समर्थ नहीं हैं तो देशान्तरके घट-पटादि पदार्थ तुमारे गृहमें जलानयनादि कार्य्य करनेमें कहां समर्थ हैं ॥ ३८ ॥ जैसे देशान्तरका ग्राम उस देशमें प्राप्त पुरुषकाही अर्थ सिद्ध करताहै, ऐसेही स्वप्न आदिके पदार्थभी स्वप्नादिके द्रष्टादशामें प्राप्त पुरुषके अर्थको सिद्ध करतेहैं यह निश्चय है ॥ ३९ ॥ जो पदार्थ जिस द्रष्टाके अर्थ क्रिया करनेमें समर्थ है वही उसकी दृष्टिमें सत्य है न कि अन्य आत्माकी दृष्टिमें जो उस दशामें नहीं प्राप्तहै ॥ ४० ॥

तस्माच्चिच्छक्तिकोशस्थाःसर्वाःसर्गपरंपराः ॥ सत्यआत्मेतितद्भावंगतस्यान्यस्यनाखिलाः ॥ ४१ ॥ भूतभव्यभविष्यस्थाःसंकल्पस्वप्नपूर्गणाः ॥ सर्वेसत्याःपरंतत्त्वंसर्वात्माकथमन्यथा ॥ ४२ ॥ प्राप्यंते योगसिद्धेनतद्भावंतुगतेनते ॥ अन्येनपर्वताग्रामागत्यादेशांतरेयथा ॥ ४३ ॥ चालितस्ययथागाढनिद्र स्यस्वप्नपत्तनम् ॥ नलुठत्येवलुठितमित्यप्यनुमतंस्फुटम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये चित्रूपकोशमें स्थित सब पदार्थ उस भावमें प्राप्त आत्माकी दृष्टिमें सत्य हैं न कि अन्य आत्माकी ॥ ४१ ॥ भूत, भविष्य तथा वर्तमान, स्वप्न तथा संकलपके नगरादि पदार्थसमूह अपनी २ दशामें सब सत्य हैं क्योंकि यदि ऐसा न हो तो आत्मतत्व सर्वरूप कैसे हो ॥ ४२ ॥ इसीसे योगीजन अन्यके स्वप्नके द्रष्टा तथा अन्यके शरीर आदिमें प्रवेश करके उन २ पुरुषोंके मनोभावको प्राप्त होके उन पदार्थोंको ऐसे भोगते हैं जैसे पुरुष देशान्तरके पर्वत ग्रामादिको वहां जानेसे ॥ ४३ ॥ और जैसे गाढनिद्रामें प्राप्त शय्यामें स्थित पुरुषकी शय्याके धीरेसे अन्यत्र ले जानेपरभी उसके स्वप्नके नगरादि अन्यत्र नहीं प्राप्त होते यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ ४४ ॥

तथाचलंत्यालुठितंतस्यादेहगतंजगत् ॥ नलुठत्येवमुकुरप्रतिबिंबमिवस्थितम् ॥ ४५ ॥ सत्रैलोक्यम हारंभःसत्योपिभ्रांतिमात्रकम् ॥ भ्रांतिमात्रस्यकेनामलुठनालुठनेवद ॥ ४६ ॥ कदास्वप्नपुरंसत्यंकदा

स्वप्नपुरंसुधा ॥ कदास्वप्नपुरंभग्नंकदास्वप्नपुरंस्थितम् ॥ ४७ ॥ भ्रांतित्वंकेवलंसैवदृश्यश्रीर्यावदग्रगा ॥ त्वंविद्धीमामपिभ्रांतिजगल्लक्ष्मीमवास्तवीम् ॥ ४८ ॥ संकल्पनेमनोराज्येस्वप्नेसंकथनेभ्रमे ॥ यथापुरानुभवनंत्रैलोक्यानुभवंतथा ॥ ४९ ॥ अहमितिजगदितिनांतर्भ्रांतिरियंप्रकचतीवचितः ॥ परमाकाशकृशाख्याशाम्यतिनिपुणंपरिज्ञाता ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० शिवशक्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—इसी प्रकार नृत्यमें काली भगवतीके देहके चलित होनेपरभी दर्पणके प्रतिबिंबके सदृश उसके शरीरमें स्थित जगत् नहीं चलित होता ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यका महान् आरंभ उस दशामें पुरुषोंके लिये सत्य होनेपर भी भ्रममात्रही है तब भ्रममात्रका संचलन व अचलन क्या होसकता है सो कहो? ॥ ४६ ॥ कहो स्वप्नका नगर कब सत्य और कब मिथ्या है, और कब वह नष्ट हुआ तथा कब स्थित है ॥ ४७ ॥ जो कुछ यह सन्मुख दृश्यकी शोभा है वह सब भ्रांतिमात्रही है इसलिये हे रामजी ! तुम इस समयकी जगत्की शोभाको भ्रांतिमात्र और अयथार्थ जानो ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! संकल्पमें मनोराज्यमें तथा कथा आदिमें जैसे नगर आदिका अनुभव है वैसाही अब त्रैलोक्यका है ॥ ४९ ॥ यथार्थमें, चित्के भीतर मैं तथा यह जगत् यह व्यवस्था नहीं है किन्तु आकाशकी कृशताके समान यह चिदाकाशमें भ्रांतिमात्र है सो कुशलतासे चित्स्वरूपके जाननेसे यह भ्रांति शांत होजाती है ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० शिवशक्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

इस ८५ के सर्गमें उस प्रकारसे नृत्य करतीहुई देवीका शिवजीको देख तथा स्पर्श करके प्रेमसे उनके अंगमें लीन होनेसे एकीभावका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिनृत्यतिसादेवीदीर्घदोर्दंडमंडलैः ॥ परिस्पंदात्मकैर्व्योमकुर्वाणाघनकाननम् ॥ १ ॥ क्रियासौनृत्यतितथाचितिशक्तिरनामया ॥ अस्याविभूषणंशूर्पकुद्दालपटलादिकम् ॥ २ ॥ शरशक्तिगदाप्रासमुसलादिशिलादिच ॥ भावाभावपदार्थौघकलाकालक्रमादिच ॥ ३ ॥ चित्स्पंदोंतर्जगद्वत्तेकल्पनेवपुरंहृदि ॥ सैववाजगदित्येवकल्पनैवयथापुरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! इसप्रकार परिस्पन्दरूप दीर्घ भुजमण्डलोंसे वह देवी आकाशको भयंकर बन करतीहुई नृत्य करती थी ॥ १ ॥ अज्ञातचिति शक्ति क्रियारूप यह देवी अपने स्वभावसे नृत्य करती थी और शूर्प कुठारादि इस भगवतीके भूषण हैं ॥२॥ शर, शक्ति, गदा, कुन्त, मुशल, शिला आदि भाव तथा अभावरूप पदार्थसमूह, कला और क्षण, घटी, मासादि कालके क्रमभी इस भगवतीके आभूषण थे ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्न, मनोराज्य आदिमें कल्पनासेही हृदयमें नगर आदि जीव आकार धारण करताहै ऐसेही यह भगवती निजकल्पनासे जगत्को रचती है, अथवा वह जगत्रूप ऐसे है जैसे कल्पना स्वयं जगत्रूप होजाती है ॥ ४ ॥

पवनस्ययथास्पंदस्तथैवेच्छाशिवस्यसा ॥ यथास्पंदोनिलस्यांतःप्रशांतेच्छस्तथाशिवः ॥ ५ ॥ अमूर्त्तोमूर्त्तमाकाशेशब्दाडंबरमानिलः ॥ यथास्पंदस्तनोत्येवंशिवेच्छाकुरुतेजगत् ॥ ६ ॥ नृत्यंत्याथयदा तत्रतथातस्मिन्परांबरे ॥ काकतालीययोगेनसंरंभवशतःस्वयम् ॥ ७ ॥ निकटस्थःशिवःस्पृष्टःसमनागभ्रमंतिकम् ॥ वाडवोग्निःस्वनाशायावहंत्येवांबुलेखया ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे वायुमें स्पन्द है ऐसेही शिवकी इच्छारूप वह भैरवी देवी है और जैसे स्पन्द वायुसे अभिन्नरूप है ऐसेही इच्छा शिवसे अभिन्नरूप होनेसे शिवजी सदा शांतरूपही हैं ॥ ५ ॥ जैसे मूर्तिरहितभी वायु आकाशमें शब्द स्पन्द आदि आडम्बर करताहै, ऐसे मूर्तिरहित भी शिवकी इच्छा जगत्का विस्तार करती है ॥ ६ ॥ उस चिदाकाशमें नृत्य करतीहुई काकतालीय न्यायसे प्रेमवशसे निकटस्थ शिवजीके क्रमसे स्पर्शमात्रसे आवरणशक्तिको दूर करके धीरे २ अपनी प्रकृतिरूपताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे वडवानलको स्पर्श करके समुद्रकी लेखा ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्पृष्टमात्रेशिवेतस्मिंस्ततःपरमकारणे ॥ प्रवृत्ताप्रकृतिंगंतुंसाशनैस्तनुतांतथा ॥ ९ ॥ अनंताकारतांत्यक्त्वासंपन्नागिरिमात्रिका ॥ ततोनगरमात्रासौततश्चद्रुमसुंदरी ॥ १० ॥ ततोव्योमसमाकाराशिवस्यै

वाकृतिस्ततः ॥ साप्रविष्टासरिच्छांतसंरंभेवमहार्णवम् ॥ ११॥ एकएवाभवदथोशिवयापरिवर्जितः ॥ शिवएवशिवःशांतआकाशेशमनोभितः ॥ १२ ॥

अर्थ—उस परमकारणसे स्पर्शमात्र शिवके सूक्ष्मता तथा प्रकृतिभावको प्राप्त होनेलगी ॥ ९ ॥ हे रामजी ! अनन्त आकारको त्यागकर वह पर्वताकार होगई, उसके पश्चात् नगराकार और पुनः अतिसुन्दरी वह वृक्षाकार होगई ॥ १० ॥ इसके पश्चात् अव्याकृत आकाशरूपधारिणी वह भगवती शिवके आकारमें ऐसे प्रविष्टहुई जैसे वेगको त्यागकर महासमुद्रमें प्रविष्ट नदी ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् उस रुद्राणीसे रहित, सर्व संहारकारी, शांत, शिव तथा सब भक्तोंके कल्याणकारक अद्वैतरूप एक शिवही रहगये ॥ १२ ॥

श्रीरामउवाच ॥ भगवञ्छिवसंस्पृष्टासाशिवापरमेश्वरी ॥ किमर्थमागताशांतिमितिमेब्रूहितत्त्वतः ॥ ॥१३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साराम प्रकृतिःप्रोक्ताशिवेच्छापारमेश्वरी ॥ जगन्मायेतिविख्यातास्पंदशक्तिरकृत्रिमा ॥ १४ ॥ सपरःप्रकृतेःप्रोक्तःपुरुषःपवनाकृतिः ॥ शिवरूपधरःशांतःशरदाकाशशांतिमान्॥ ॥१५॥ भ्रमतिप्रकृतिस्तावत्संसारेभ्रमरूपिणी ॥ स्पंदमात्रात्मिकासेच्छाचिच्छक्तिःपारमेश्वरी ॥१६॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि हे भगवन् ! शिवका स्पर्शमात्र करनेसे वह परमेश्वरी क्यों शान्त होगई यह मुझे यथार्थ कहिये ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि हे रामजी ! यह स्पन्दशक्ति, परमेश्वरी प्रकृति शिवकी इच्छा तथा आदि जगन्माया इत्यादि नामोंसे कही गई है ॥ १४ ॥ वह सर्वव्यापी, वायुरूप, परमपुरुष शरत्कालके आकाशके सदृश शान्तिरूप, शिवमूर्तिधारी, परमात्मा प्रकृतिसे पर हैं ॥ १५ ॥ हे रामजी ! परमेश्वरकी चित्शक्ति स्पन्दमात्ररूपिणी ऐसी वह परमेश्वरकी इच्छा जब तक है तबतक भ्रमरूप प्रकृति संसारमें भ्रमण करती है ॥ १६ ॥

यावन्नपश्यतिशिवंनित्यतृप्तमनामयम् ॥ अजरंपरमाद्यंतवर्जितंवर्जितद्वयम् ॥ १७ ॥ संविन्मात्रैकधर्मित्वात्काकतालीययोगतः ॥ संविद्देवीशिवंस्पृष्ट्वातन्मयीवभवत्यलम् ॥ १८ ॥ प्रकृतिःपुरुषंस्पृष्ट्वाप्रकृतित्वंसमुज्झति ॥ तदंतरेकतांगत्वानदीरूपमिवार्णवे ॥ १९ ॥ आपगाहिपयोमात्रंसंगेअर्णवएवसा ॥ यदातदातमेवाशुप्राप्यतत्रैवलीयते ॥ २० ॥

अर्थ—जबतक आदि, अन्त तथा द्वैतशून्य अजर, अमर और नित्य तृप्त परमशिवको यह प्रकृति नहीं देखती तबतक भ्रमण करती है ॥ १७ ॥ संविन्मात्ररूप होनेसे वह संवित् देवी शिवके स्पर्श करनेसे काकतालीय न्यायसे अकस्मात् तन्मय होजाती है ॥ १८ ॥ यह प्रकृति पुरुषको स्पर्श करके अपनी प्रकृतिरूपताको त्यागकर उसमें एकरूप ऐसे होजाती है जैसे नदी समुद्ररूप ॥ १९ ॥ जलमात्र नदी जब समुद्रसे संयुक्त होती है तब शीघ्रही उसीमें लीन होकर समुद्ररूप होजाती है ॥ २० ॥

चितिःशिवेच्छासादेवंतमेवासाद्यशाम्यति ॥ जन्मस्थानशिलांप्राप्यतीक्ष्णधारायथायसी ॥ २१ ॥ पुंसश्छायांनिजच्छायाप्रविष्टस्यशरीरकम् ॥ यथाशुप्रविशत्येवप्रकृतिःपुरुषंतथा ॥ २२ ॥ चेतित्वाचित्रिजंभावंपुरुषाख्यंसनातनम् ॥ भूयोभ्रमतिसंसारेनेहतत्तांप्रयातिहि ॥ २३ ॥ साधुर्वसतिचोरौघेतावद्यावदसौनतम् ॥ परिजानातिविज्ञायनतत्ररमतेपुनः ॥ २४ ॥

अर्थ—वह शिवेच्छा रूप चिति उस शिवरूप देवको प्राप्त होकर शांत ऐसे होजाती है जैसे लोहमयी क्षुरकी धारा अपने जन्मस्थानशिलाको प्राप्त होकर तद्रूप होजाती है ॥ २१ ॥ जैसे वन आदिमें प्रविष्ट पुरुषकी छाया जैसे उसके शरीरमें प्रवेश करती है ऐसे ही अपने स्वरूपमें स्थित परम पुरुषमें प्रकृति प्रवेश करती है ॥ २२ ॥ चित्रूप होनेसे चित्प्रकृति अपने सनातन पुरुषको प्राप्त होकर अज्ञानके नाश होनेसे पुनः इस संसारमें नहीं भ्रमण करती ॥ २३ ॥ चौरोंके समूहमें साधु तभीतक रहता है जबतक उनको चोर नहीं जानता और चोर जाननेपर उनमें कदापि नहीं रमता ॥ २४ ॥

द्वैतेतावदसद्रूपेरमतेभ्रमतेचितिः ॥ परंपश्यतिनोयावत्तंदृष्ट्वातन्मयीभवेत ॥ २५ ॥ चितिनिर्वाणरूपंयत्प्रकृतिःपरमंपदम् ॥ प्राप्यतत्तामवाप्नोतिसरिदब्धाविवाब्धिताम् ॥ २६ ॥ तावद्विमोहवशतश्चितिराकुलेषुसर्गेषुसंसरतिजन्मदशाश्रुतासु ॥ यावन्नपश्यतिपरंतमथाशुदृष्ट्वातत्रैवमज्जतिघनंमधूनीवभृंगी ॥ २७ ॥ संप्राप्यकस्त्यजतिनामतदात्मतत्त्वंप्राप्यानुभूयचजहातिरसायनंकः ॥ शाम्यंतियेनसकलानिनिरंतराणिदुःखानिजन्ममृतिमोहमयानिराम ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० प्रकृतिपुरुषक्रमवर्णनं नाम पंचाशीतितमःसर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—असत्रूप द्वैतमें यह चिति तभीतक रमण तथा भ्रमण करती है जबतक परमपुरुषको नहीं देखती और उसको देखकर तन्मय होजाती है ॥ २५ ॥ यह प्रकृति चित् परमपद निर्वाणरूपही है इस हेतुसे उसको प्राप्त होकर उसका रूप ऐसे होजाती है जैसे समुद्रमें प्राप्त होकर नदी समुद्ररूप ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इन व्याकुल अनेक सृष्टियोंमें तथा उन २ दुःखमयी जन्मोंकी दशाओंमें यह चेतन तभीतक मोहके वशसे भ्रमण करताहै जबतक उस परमपुरुषको नहीं देखता और उसको देखनेसे उसमें ऐसे निमग्न हो जाता है जैसे घनीभूत मधुमें भ्रमरी ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उस आत्मतत्वको प्राप्त होकर कौन त्याग सकता है, क्योंकि जिससे सदाके लिये जन्ममरणके सब दुःख शान्त होजाते हैं उस रसायनका अनुभव करके उसे कौन त्याग सकता है ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० प्रकृतिपुरुषक्रमवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

चिदाकाशके अन्तर्गत पाषाणकी शिलामें ब्रह्माण्डखप्परको ग्रास करनेवाले रुद्रके देहका सूक्ष्मतासे तिरोभाव इस ८६ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शृणुरामकथंतत्रमहाकाशेतथास्थितः ॥ देहेभ्रांतिंतुतांत्यक्त्वासरुद्रोप्युपशाम्यति ॥ १ ॥ सरुद्रस्तौजगत्खंडौतदाचित्रइवार्पिताः ॥ निस्पंदाएवतत्रासन्प्रेक्षमाणेस्थितेमयि ॥ २ ॥ ततोमुहूर्तमात्रेणसरुद्रस्तौनभोंतरे ॥ खंडौविलोकयामासदृशार्केणवरोदसी ॥ ३ ॥ ततोनिमेषमात्रेण घोणाश्वासेनखंडकौ ॥ तौसमानीयचिक्षेपपातालांतरिवानने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि रामजी ! उस महाकाशमें स्थित रुद्रभगवान् देहके भ्रमको त्यागकर जैसे शान्त हुये वह तुम सुनो ॥ १ ॥ जिससमय मैं देखता था उस समय वह रुद्रभगवान् तथा नीचे ऊपरके ब्रह्माण्ड-खप्पर ये तीनों चेष्टारहित चित्रलिखितके समान भासतेथे ॥ २ ॥ इसके पश्चात् एक मुहूर्तमात्रमेंही रुद्रभगवान्ने दोनों ब्रह्मांडखंडोंको ऐसे देखा जैसे सूर्य्यरूपी नेत्रसे आकाश तथा पृथिवीको ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् क्षणमात्रमेंही श्वासके वायुसे उन दोनों ब्रह्मांडखडोंको खींचकर पातालके समान अपने मुखमें डाललिया ॥ ४ ॥

अतिष्ठदेकएवासाधेकंखेखमिवाखिले ॥ भुक्तब्रह्मांडखंडोग्रमंडमंडकमंडलः ॥ ५ ॥ ततोमुहूर्तमात्रेण लघुःसोभ्रमिवाभवत् ॥ ततोभवद्यष्टिसमस्ततःप्रादेशमात्रकः ॥ ६ ॥ ततःकाचकणाकारोमयादृष्टः सतादृशः ॥ ततःसोऽणुभवन्दृष्टोमयाखाद्दिव्यदृष्टिना ॥ ७ ॥ परमाणुरथोभूत्वाततस्त्वंतर्द्धिमाययौ ॥ इत्यसौशममायातःशरदंबुदखंडवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस ब्रह्मांडखण्डरूप क्षीर और मंडकों (पक्कान्नविशेष) के मंडलको ग्रास करके एक रुद्रभगवान् ऐसे स्थित रहे जैसे संपूर्ण आकाशमें एक आकाश ॥५॥ इसके अनंतर वे भगवान् मेघके समान लघु होगये, पश्चात् छडीके सदृश और उसके अनंतर अंगुष्ठमात्र लघु होगये ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् मैंने उन रुद्रभगवान्को काचके सूक्ष्म खंडके समान,उसके अनंतर परमाणुरूप होते हुये उनको दिव्यदृष्टिसे मैंने आकाशसे सूक्ष्म देखा ॥७॥ हे रामजी ! इस परमाणु-रूपताको प्राप्त होकर वे भगवान् अन्तर्धान होगये. इसप्रकार शरत्कालके मेघके खंडके समान ॥ ८ ॥

तादृशोपिमहारंभःपुरःपश्यतएवमे ॥ इतिसावरणेतेनतेब्रह्मांडकवाटके ॥ ९ ॥ विनिगीर्णेक्षुधार्तेनहरिणेनेवपर्णके ॥ अथाभून्निर्मलंव्योमशांतंब्रह्मैवकेवलम् ॥ १० ॥ अनादिमध्यपर्यंतंसंविदाकाशमात्रकम् ॥ इत्यहंदृष्टवांस्तत्रकल्पांतमुरुविभ्रमम् ॥ ११ ॥ दर्पणप्रतिबिंबाभंशिलाशकलकोटरे ॥ अथता मंगनांस्मृत्वातांशिलांतच्चविभ्रमम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वह जगदादि रुद्राकार पर्यंत सब महारंभ कार्य मेरे देखते २ शांत होगया, इसतरह श्रीशंकरजी आवरणसहित ब्रह्मांडकवाटको ऐसे निगल गये जैसे क्षुधापीडित हरिण पत्तोंको निगल जाताहै. तत्पश्चात् संपूर्ण आकाश शान्त निर्मल ब्रह्मरूप होगया ॥ ९ ॥ १० ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनेक भ्रमयुक्त महाप्रलयको मैंने आदि अंत तथा मध्यशून्य चिदाकाशमात्रही देखा ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् उस शिलाके खण्डके खोखलमें उस भैरवी देवी उस शीला तथा उस महाविलासको स्मरण करके ॥ १२ ॥

राजद्वारगतोग्राम्यइवाहंविस्मयंगतः ॥ तामालोकितवान्भूयःकलधौतशिलामहम् ॥ १३ ॥ यावत्सर्व त्रसंत्यत्रसर्गाःकाल्याइवांगके ॥ बुद्धिनेत्रेणदृश्यंतेदिव्याक्षणावानतयथा ॥ १४ ॥ सर्वत्रसर्वदासर्वं यदस्त्येवतदातथा ॥ दूरवत्प्रेक्ष्यतेमांसदृशायत्रैवसाशिला ॥ १५ ॥ दृश्यतेतच्छिलैवैकानतुसर्गादि किंचन ॥ सावस्थिताशिलैवैकरूपानिबिडमंडला ॥ १६ ॥

अर्थ—मुझे ऐसा विस्मय प्राप्त हुआ जैसे राजद्वारमें प्राप्त ग्रामीण जनको इसके पश्चात् जिस देशमें उस शुभ्र शिलाको मैंने देखा था उससे अन्यस्थानमें उसको जब देखने लगा ॥ १३ ॥ तब कालीके शरीरमें दिव्यदृष्टिसे जैसे सृष्टि देखपडती थी ऐसेही संपूर्ण शिलामें अनेक सृष्टि देख पडनेलगी ॥ १४ ॥ जैसे दिव्यदृष्टिसे सर्वत्र जो कुछ है वह सदा देख पडता है और मांसदृष्टिसे नहीं ऐसे ही बुद्धिरूप नेत्रसे उसमें सब कुछ था और मांसदृष्टिसे दूरसे केवल एक पाषाणकी शिला भासती है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! सामान्य मांसदृष्टिसे रूप, मण्डल आदिमें बनी-भूत वह यथास्थित शिलामात्र थी सृष्टि आदि कुछ भी न थे ॥ १६ ॥

कलधौतमयीस्फारासंध्याजलदसुंदरी ॥ ततोहंविस्मयाविष्टःप्रविचारितवान्पुनः ॥ १७ ॥ शिलायाम परंभागंतथैवपरयादृशा ॥ यावत्तमपिपश्यामिजगदारंभमंथरम् ॥ १८ ॥ तथैवसुषिराकारइवनानार्थ सुंदरम् ॥ पुनरन्यंतथैवाहंप्रदेशंपरिदृष्टवान् ॥ १९ ॥ सर्गसंरंभवलितंयावत्तमपितादृशम् ॥ यंयंप्रदे शंपश्यामिशिलायास्तत्रतत्रवै ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णमयी, संध्याकालके मेघके समान सुन्दर वर्ण उस शुद्ध शिलाको देखकर आश्चर्य्ययुक्त पुनः मैंने सोचा॥१७॥और शिलाके दूसरे भागमें जब मैंने दृष्टि डाली तो क्या देखताहूं कि अनेक जगत्के आरंभोंसे वह व्याप्त था ॥ १८ ॥ इसीप्रकार अनेक पदार्थोंसे सुन्दर बिलाकार उस शिलाके अन्य प्रदेशको मैंने देखा ॥ १९ ॥ जो कि अनेक सृष्टियोंके आरंभसे पूर्वके समान वेष्टित था और शिलाके जिस २ भागको मैं देखता था वहां २ ॥ २० ॥

जगत्पश्यामिविमलमादर्शइवबिंबितम् ॥ मयातिकौतुकेनाथसर्वास्तस्यगिरेःशिलाः ॥ २१ ॥ अन्वि ष्टाभूमिभागाश्चतृणगुल्मादयस्तथा ॥ यावत्सर्वत्रतत्तादृग्जगदस्तियथास्थितम् ॥ २२ ॥ बुद्ध्यैवदृ श्यतेनाक्षणापरयाविविधाकृति ॥ क्वचित्प्रथमसर्गार्थजायमानप्रजापति ॥ २३ ॥ कल्प्यमानर्क्षचंद्रार्क दिनरात्र्यृतुवत्सरम् ॥ क्वचित्क्वचिन्महीपीठसंपन्नजनमंडलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्मल जगत्को ऐसे देखता था कि जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बको, अनन्तर कौतुकसे मैंने उस पर्वतकी संपूर्ण शिलाओंको देखा ॥ २१ ॥ और सब भूमिभाग तथा तृण, लता आदिकोभी मैंने देखा और सर्वत्र उसीप्रकार अनेक जगत्को पूर्वके समान स्थित पाया ॥ २२ ॥ हे रामजी ! वह अनेक प्रकारके जगत् आधिभौतिक देहभावभ्रांतिसे शून्य सर्वसाक्षीभूत अहंभावबुद्धिसे देख पडते थे न कि इस भौतिक नेत्रसे, उन अनेक जगत्मेंसे कहीं तो प्रथम सर्गके लिये प्रजापति उत्पन्न होरहे थे ॥ २३ ॥ कहीं ब्रह्माजी, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्रमण्डल, रात्रि, दिन, ऋतु तथा संवत्सर आदिकी कल्पना करते थे और किसी २ जगत्में भूतलमें अनेक जनसमूह एकत्र होरहे थे ॥ २४ ॥

क्वचित्किंचिदखातोग्रचतुःसागरखातकम् ॥ क्वचित्किंचिदसंजातसुरसंजातदानवम् ॥ २५ ॥ क्वचि त्किंचित्कृतयुगाचारसज्जनभूतकम् ॥ क्वचित्किंचित्कलियुगाचारदुर्जनभूतकम् ॥ २६ ॥ क्वचित्किं चित्पुरव्यूहदैत्यसंगरदुस्तरम् ॥ २७ ॥ क्वचित्किंचिन्महाशैलजालनिर्विवरावनि ॥ क्वचित्किंचिदसं पन्नसर्गमेकांबुजोद्भवम् ॥ २८ ॥

अर्थ—किसी जगत्में सगरके पुत्रोंने चारों समुद्रोंको पूर्ण रीतिसे नहीं खन पाया था और किसी जगत्में देवता नहिं उत्पन्न हुये थे और दानव उत्पन्न हो चुके थे ॥ २५ ॥ कहीं २ कुछ २ सज्जनोंमें सत्युगके आ-चार प्रवृत्त थे और कहीं २ दुर्जनोंमें कलियुगके आचार प्रवृत्त थे ॥ २६ ॥ कहीं २ नगरोंकी रचना तथा दैत्योंके युद्धोंसे अतिदुस्तर जगत् था ॥ २७ ॥ किसी २ जगत्में पृथिवी पर्वतोंके समूहोंसे पूर्ण थी और कहीं २ केवल ब्रह्माके सिवाय और कोई भी प्राणी नहीं उत्पन्न हुये थे ॥ २८ ॥

क्वचित्किंचिज्जरामृत्यून्मुक्तभूतलमानवम् ॥ क्वचित्किंचिदसंजातचंद्रशून्यशिरःशिवम् ॥ २९ ॥ अ निर्मथितदुग्धाब्धिमृत्युमत्सुरपूरितम् ॥ असंजातामृताश्वेभवैद्यगोकमलाविषम् ॥ ३० ॥ शुक्रामरम हाविद्यानाशनोत्कसुरव्रजम् ॥ क्वचित्किंचिद्गर्भागकर्त्तनोत्कसुरेश्वरम् ॥ ३१ ॥ अपरिम्लानधर्मत्वा त्स्वप्रकाशाखिलव्रजम् ॥ क्वचित्किंचिच्चपूर्वान्यसंनिवेशक्रमस्थिति ॥ ३२ ॥

अर्थ—कहीं २ किसी प्रकारसे वृद्धावस्था तथा मृत्युसे भूतलके प्राणी विनिर्मुक्त थे और कहीं चन्द्रमाके न उत्पन्न होनेसे शिवजी चन्द्रमारूपी शिरोभूषणसे शून्य थे ॥ २९ ॥ कहीं क्षीरसागरका मथन न होनेसे मृत्युग्रस्त देवताओंसे जगत् पूर्ण था और इसी हेतुसे अमृत, उच्चैःश्रवा अश्व, धन्वंतरि, कामधेनु, लक्ष्मी तथा विषभी वहांपर नहीं उत्पन्न हुये थे ॥ ३० ॥ और कहीं शुक्राचार्य्यकी मृतसंजीविनी महाविद्याको उत्पन्न करनेवाली तपस्यामें विघ्न करनेसे देवतागण प्रसन्न होरहेथे और कहीं दितिके गर्भके खंडनसे इन्द्र प्रसन्न होरहेथे॥३१॥ कहीं २ धर्मके नष्ट न होनेसे संपूर्ण प्रजा स्वप्रकाश ब्रह्मज्ञानयुक्त थी और किसी जगत्में पदार्थोंकी रचना पूर्वक्रमसे विलक्षण थी ॥ ३२ ॥

अपूर्ववेदशास्त्रार्थसमाचारविचारणम् ॥ क्वचित्किंचिन्नकल्पांतसंक्षोभमिवसंस्थितम् ॥ ३३ ॥ क्वचित्किंचिद्दैत्यौघविलुंठितसुरालयम् ॥ क्वचित्किंचित्सुरोद्यानगायद्गंधर्वकिन्नरम् ॥ ३४ ॥ क्वचित्किंचित्समारब्धगीर्वाणासुरसौहृदम् ॥ भूतभव्यभविष्यत्स्थजगदाडंबरंमया ॥ ३५ ॥ तदानुभूतंवपुषिमहाविश्वगणात्मनि ॥ एकत्रकल्पविक्षुब्धपुष्करावर्तमंथरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोई जगत् अपूर्व वेदशास्त्रके अर्थके विचारमें निमग्न था और कहीं कल्पांतके संक्षोभसे रहित था ॥ ३३ ॥ कहीं दैत्योंने देवताओंके स्थानोंको कुछ २ लूटलियाथा और कहीं २ देवताओंके नन्दनवनमें गन्धर्व तथा किन्नरगण गान कररहेथे ॥ ३४ ॥ और कहीं २ देवता तथा असुरोंकी मैत्री समुद्रमथनके लिये होरहीथी, इसप्रकार भूत,वर्तमान तथा भविष्य जगत्के आडंबरको ॥ ३५ ॥ उससमय विश्वरूप परमात्माके स्वरूपमें मैंने देखा और पुनः कहीं कल्पान्तके लिये पुष्करावर्त मेघ प्रवृत्त होरहेथे ॥ ३६ ॥

एकत्रसौम्यसकलभूतसंततिसंस्थितम् ॥ एकत्रसमनुक्षुब्धसुरासुरनरेश्वरम् ॥ ३७ ॥ एकत्रासंभवद्भानुनित्याभिन्नतमोघनम् ॥ एकत्रासंभवद्ध्वांतकांतंज्वालोदरोपमम् ॥ ३८ ॥ एकत्रनलिनीनालनिलीनमधुकैटभम् ॥ एकत्रपद्ममंजूषासुप्तबालनवाब्जजम् ॥ ३९ ॥ एकत्रैकार्णवोदग्रवृक्षविश्रांतमाधवम् ॥ एकत्रकल्परजनीनिःशून्यतिमिराकुलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा किसी जगत्में संपूर्ण प्राणी शांतिसे स्थित थे और कहीं प्रलयसे देवता, दैत्य और राजालोक संक्षुब्ध होरहेथे ॥ ३७ ॥ कोई जगत् सूर्य्यके न होनेसे सर्वथा अन्धकारमय और कहीं सूर्य्यके उदयसे अन्धकाररहित, सुंदर और सर्वथा सूर्यकी ज्वालासे पूर्ण था ॥ ३८ ॥ कहीं भगवान्के नाभिकमलमें मधु तथा कैटभ नाम दैत्य लीन थे और कहीं उसी भगवान्के नाभिकमलमें नूतन कमलयोनि बालक ब्रह्माजी शयन कररहेथे ॥ ३९ ॥ कहीं प्रलयके महासमुद्रमें ऊंचे अक्षयवटके वृक्षपर माधव भगवान् शयन करते थे और कहीं कल्पान्तकी रात्रिमें शून्य अन्धकारसे व्याप्त था ॥ ४० ॥

शिलाजठरनिस्पंदंव्योमैवविततात्कृति ॥ सुषुप्तजठराकारमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ ४१ ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयंसुषुप्तमिवसर्वतः ॥ एकत्रपक्षविक्षुब्धशैलकाकाकुलांबरम् ॥ ४२ ॥ एकत्रवज्रनिष्पेषद्रवद्भूधरभासुरम् ॥ एकत्रोद्वृत्तमत्ताब्धिह्रियमाणधराचलम् ॥ ४३ ॥ एकत्रपुरवृत्रांधबलिसंगरसंकुलम् ॥ एकत्रमत्तपातालगजकंपिवसुंधरम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—कहीं पृथिवी आदिकी उत्पत्तिसे रहित होनेसे विशेष चिन्होंसे शून्यताके कारण केवल सुप्त आकाशमात्ररूपसे स्थित ॥ ४१ ॥ तथा कहीं अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय सुषुप्तके सदृश स्थित और कहीं जगत् पक्षयुक्त पर्वतरूपी काकोंसे आकाशदेश व्याप्तथा ॥ ४२ ॥ कहीं वज्रसे चूर्णीभूत इसलिये द्रवीभूत पर्वतोंसे भयानक और कहीं संक्षुब्ध समुद्रसे पृथिवी तथा पर्वत उडे जातेथे ॥ ४३ ॥ कहीं त्रिपुरासुर, वृत्रासुर, अन्धकासुर तथा बलि आदि असुरोंके युद्धोंसे व्याप्त और कहीं पातालके मत्तगजेन्द्रोंसे कम्पित पृथिवीसहित संसार होरहाथा ॥ ४४ ॥

एकत्रशेषशिरसःकल्पांतलुठितावनि ॥ क्वचिदल्पेनरामेणहतरावणराक्षसम् ॥ ४५ ॥ रक्षसारावणेनैवक्वचिद्विहतराघवम् ॥ भूस्थपादेनदेवाद्रिशिरस्थशिरसापरम् ॥ ४६ ॥ पश्याम्यंबरमाक्रांतंक्वचिद्वैकालनेमिना ॥ क्वचिच्चापसुरैर्नित्यंदानवैरेवपालितम् ॥ ४७ ॥ क्वचिच्चभ्रष्टदनुजैरमरैरेवपालितम् ॥ जिष्णुयुक्तेनगुप्तेनविष्णुपांडवकौरवैः ॥ ४८ ॥

अर्थ—कहीं कल्पान्तमें शेषभगवान्के शिरपर पृथिवी लुढकरही है और कहीं सीताजीके हरणसे बाल्यावस्थासम्पन्न रामजीने रावणको माराहै ॥ ४५ ॥ कहीं रावणने सीताके हरणद्वारा रामचन्द्रजीको वंचित किया और कहीं पृथिवीपर चरण तथा सुमेरुके शिखरपर शिर कियेहुये कालनेमिने आकाशकोशको आक्रमण करलियाहै

और कहीं देवताओंको भगाके असुरलोगही जगत्का पालन कररहे हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ कहीं दानवोंको निकालके देवताओंसेही संसार पालित था ॥ ४८ ॥

कचिद्भारतयुद्धेननिहताक्षौहिणीगणम् ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमहंभगवन्पूर्वमभवंकथयेतिमे ॥ ४९ ॥ अभवंचेदनेनैवसंनिवेशेनतत्कथम् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वएवविवर्त्तंतेरामभावाःपुनःपुनः ॥ ५० ॥ पूर्यमाणायथामाषाःक्रमेणान्येनतेनवा ॥ सर्वक्रमसमाःकेचित्तथैवान्येनवामिथः ॥ ५१ ॥ स्फुरंत्यर्थ समाभावाःकेचिदब्धितरंगवत् ॥ पुनस्त्वंपुनरेवाहंपुनःपुनरिमेजनाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—और कहीं कृष्णसे रक्षित अर्जुनसहित पाण्डव और कौरवोंके भारतके युद्धमें अक्षौहिणीके समूहके समूह नष्ट होगये थे. श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! पूर्वकल्पमें मैं कैसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४९ ॥ क्या इसी आकारसे था या अन्य सो कहिये.श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! सम्पूर्ण पदार्थ पुनः पुनः परिवर्तित हुआ करते हैं ॥ ५० ॥ हे रामजी ! माष (उडद) के सदृश सब पदार्थ परस्पर पूर्य्यमाण कभी उसी क्रमसे होते हैं और कभी अन्य २ ॥ ५१ ॥ कोई पदार्थ समुद्रके तरंगके समान कभी समानरूपसेही स्फुरित होते हैं. तुम, हम तथा सम्पूर्ण प्रजा पुनः २ उत्पन्न होती रहती हैं ॥ ५२ ॥

नकदाचननैवान्येसंभवंत्यखिलंपरे ॥ तएवान्येथवांभोधौतरंगाइवनिर्णयः ॥ ५३ ॥ यद्वन्नजायतेतद्वद्भूतानांभ्रमतांभवेत् ॥ आयांतियांत्यनंतानिभूतानीहभवभ्रमैः ॥ ५४ ॥ तान्येवान्यानिचान्यानिसमानि विषमाणिच ॥ आवृत्तिमंतितान्येवतथैवान्यानिचाभितः ॥ ५५ ॥ विद्धिसंसारजालानिभूतानिजगदंबुधेः ॥ वित्तबंधुवयःकर्मविद्याविज्ञानचेष्टितैः ॥ ५६ ॥ तैरेवकेचिज्जायंतेभूयोभूयःशरीरिणः ॥ अर्द्धैस्तैःसदृशाःकेचित्केचित्पादेनतैःसमाः ॥ ५७ ॥ तज्जीवास्तैर्विसदृशाभवंत्यन्यशरीरिणः ॥ सर्वैरेभिःसमाःकेचित्कालेनैवविलक्षणाः ॥ कालेनसदृशाःकेचिदनेनचविलक्षणाः ॥५८॥ कालेनाकुलचेष्टयान्यइवतेगच्छंत्यधोर्द्ध्वंपुनर्देहालेखनखेदितान्यगणितान्यन्यानिचान्यान्यलम् ॥ भूतांबूनिवहंतिसंसृतिमयेयान्यंबुधौचंचलेचक्रावृत्तिमयानिसंकलयितुंशक्नोतिकस्तान्यलम् ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणजगदन्यान्यत्ववर्णनं नाम षडशीतितमःसर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ—इस संपूर्ण आकाशमण्डलमें कभी उसी रूपसे और कभी अन्यरूपसे जैसे समुद्रके तरंग वेही हैं वा अन्य हैं यह निर्णय नहीं होताहै तो यही दशा संसारके पदार्थोंकी है,क्योंकि संसारके भ्रमसे अनंत प्राणी पुनः२ आते तथा जाते रहतेहैं ॥५३॥५४॥ कभी उसी रूपसे, कभी अन्य, कभी समान, कभी विषम, इन पदार्थोंका चक्र चारों-ओर घुमा करताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रके कण इन संपूर्ण प्राणीसमूहोंको तुम जानो, ये संसारके प्राणी कभी तो उन्ही धन, बंधु, अवस्था, कर्म, विद्या, विज्ञान तथा चेष्टासे युक्त पुनः२ उत्पन्न होतेहैं और कभी पूर्वजन्मके धनादिमें अर्द्धसदृश होतेहैं और कभी चतुर्थांश ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कभी वेही जीव उसी शरीरके समान होते हैं, कभी भिन्न, कभी सब पातोंमें समान होते हैं, केवल कालसेही भिन्न और कभी कालसे सदृश और अन्यबातोंमें विलक्षण होतेहैं ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! रागद्वेषसे व्याप्त विचित्र धर्माधर्मकी चेष्टासे ये जीव नाना देह धारण करके नीचे ऊपर स्वर्गनरकादिमें पुनः २ आते जातेहैं, इसकारणसे इस चंचल संसाररूपी समुद्रमें जलके आवर्तके समान वहतेहुये अनंत जीवोंके कौन सदृश है और कौन भिन्न हैं इस बातकी पूर्णरूपसे गणना कौन करसकताहै ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगदन्यान्यत्ववर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

सूक्ष्म अक्षादिकी उत्पत्तिक्रमसे वसिष्ठजीने अपनेहीमें हिरण्यगर्भरूपता तथा अपने शरीरमेंही विश्वकी कल्पना इस ८७ के सर्गमें वर्णन की है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततश्चिदाकाशवपुर्व्याप्यनंतोनिरामयः ॥ दत्तावधानोवपुषितदापश्याम्यहंकचित् ॥ १ ॥ यावदंतर्गतःसर्गःसंस्थितोंकुरितोपमः ॥ कुसूलस्येवबीजस्यसिक्तस्यैवांकुरोहृदि ॥ २ ॥ ऊर्ध्वमुच्छूनएवांतःसेकाद्बीजेयथांकुरः ॥ आकारवत्यनाकारेचित्वाचित्वेतथाजगत् ॥ ३ ॥ यथोन्मिषतिदृश्यश्रीःसुषुप्ताब्दोधमेयुषः ॥ जाग्रद्वाविगतेस्वप्नेचिन्मात्रस्यस्वचेतनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! इसके पश्चात् चिदाकाशमय शरीर निरामय तथा समाहितचित्त होके जब देखनेलगा ॥ १ ॥ तब सींचे हुये बीजमें अंकुरके समान अपने हृदयमेंही सृष्टि देखी ॥ २ ॥ जैसे सिक्तबीजमें अंकुर वृद्धिको प्राप्त होताहै ऐसे आकार आनाकार चेतनाचेतन संपूर्णवस्तुमें यह जगत् है ॥३॥ जैसे सुषुप्तदशासे स्वप्न वा जाग्रत्दशामें प्राप्त चेतनमात्र पुरुषसे स्वचेतनसे स्वाप्न अथवा जाग्रत् दृश्यकी शोभा उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥

तथैवात्मनिसर्गादावनुभूतस्वरूपिणि ॥ हृदिसर्गोदयोनान्यरूपआकाशरूपतः ॥५॥ श्रीरामउवाच ॥ आकाशरूपआकाशेपरमाकाशकथ्यताम् ॥ भूयोनिपुणबोधायकथंसर्गःप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामयथापूर्वंस्वयंभूत्वंमयातदा ॥ अनुभूतमसत्सद्वदिदंस्वप्नपुरोपमम् ॥ ७ ॥ तमालोक्यमहाकल्पसंभ्रमंव्यामरूपिणा ॥ भागेन्यत्रशरीरस्यसंविद्युन्मेषितामया ॥ ८ ॥

अर्थ—ऐसेही सृष्टिकी आदिमें अनुभव कियाहै आत्मस्वरूपका जिसने ऐसे हृदयाकाशके विषे यह सृष्टि उदित होती है वह चिदाकाशसे भिन्नरूप नहीं है ॥५॥ श्रीरामजी बोले कि—हे परमाकाशरूप भगवन्! चिदाकाशरूप आपके स्वरूपमें आकाशरूप यह सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है सो बोधके लिये पुनः कहिये ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! जिसप्रकार स्वप्नके नगरके तुल्य असत् भी सत्के तुल्य स्वशरीरमे सर्व जगत्सर्गकी कल्पना करनेसे ब्रह्माके पदको मैंने अनुभव कियाहै वह तुम सुनो ॥ ७ ॥ चिदाकाशरूप मैंने पूर्वोक्त शिलाकी अनेक सृष्टिको देखकर शरीरके किसी अन्यभागमें स्थित संवित्को सृष्टिके दर्शनके संकल्पसे कौतुकपूर्वक जाग्रत की ॥ ८ ॥

यदैवसामलासंवित्किंचिदुन्मेषितास्थिता ॥ तदैवाहंकचित्तत्वपश्याम्याकाशतामिव ॥ ९ ॥ गतंस्वभावंचिद्व्योमयथात्वंराममनिद्रया ॥ जाग्रद्वास्वप्नलोकंवाविशन्वेत्सिसमंघनम् ॥ १० ॥ दिङ्मात्राकाशमेवादौततोस्मीत्येववेदनम् ॥ तद्घनंकथ्यतेबुद्धिःसाघनामनउच्यते ॥ ११ ॥ तद्वेत्तिशब्दतन्मात्रंतन्मात्राणीतराण्यथ ॥ पंचेंद्रियाणितत्स्थौल्यादितोंद्रियगणोदयः ॥ १२ ॥

अर्थ—जब वह निर्मल संवित् कुछ स्फुरित हुई उसीसमय मैंने आकाशरूपता देखी ॥ ९ ॥ हे रामजी! जैसे तुम चिदाकाशको निद्रादशामें प्राप्त होनेके अनंतर जाग्रत अथवा स्वप्नदशामें प्राप्त होतेहुये घनीभूत देखते हो ऐसा अनुभव किया ॥ १० ॥ अनन्तर उसी आकाशरूपमें दिशाओंका बोध हुआ, उसी आकाश तथा दिङ्मात्र बोधको चित्त कहतेहैं, वह ज्ञानयुक्त मैंहूं इसको अहंकार कहतेहैं, घनीभूत उसी बोधको बुद्धि कहतेहैं और यही संकल्प विकल्पसे घनीभूत होनेसे मन कहलाती है ॥ ११ ॥ अनन्तर शब्दादितन्मात्राओंकी कल्पना हुई, इसके पश्चात् क्रमसे सूक्ष्म और स्थूल पंचेन्द्रियोंके समूहका उदय हुआ ॥ १२ ॥

सुषुप्ताद्विशतःस्वप्नंजगद्दृश्यघनोदयम् ॥ यथातथैवसर्गादौदुःखंभातिनिमेषतः ॥ १३ ॥ तुल्यकालमनंतेस्मिन्दृश्यजालावभासने ॥ कथयंतिक्रमंकेचित्केचिन्नकथयंतिच ॥ १४ ॥ परमाणुकणेकांतेसंपन्नमनुभूतवान् ॥ अहंचेतनमात्मानंवस्तुतोमलमेवखम् ॥ १५ ॥ यथास्वभावतोव्योम्निचलत्येवानिशंमरुत् ॥ तथास्वभावात्सर्वत्रपश्यत्येववपुस्त्विति ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे सुषुप्तिदशासे स्वप्नमें प्रविष्ट होनेसे जगत्रूपी घनीभूत दृश्यका उदय होता है ऐसे ही सृष्टिसे पूर्व दुःखरहित शुद्ध आत्मा जब सृष्टिकी आदिमें सृष्टिकी ओर अभिमुख होता है तब एक निमेषमें ही दुःखका उदय होता है ॥ १३ ॥ इस अनंत परमात्मामें जब एकही कालमें यह सब दृश्यसमूह भासनेलगता है तब कोई तो उसमें क्रमका वर्णन करते हैं और कोई नहीं ॥ १४ ॥ क्षणमें कल्पके समान परमाणुके उदरमेंही ब्रह्माण्डरूप आत्माको मैंने अनुभव किया और यथार्थमें तो वह निर्मल आत्मा चिदाकाश रूपही है ॥ १५ ॥ जैसे स्वभावसेही वायु आकाशमें निरंतर चलताहै ऐसेही आत्मा स्वभावसे मनसे शरीर आदिकी कल्पनाका अनुभव करताहै ॥ १६ ॥

याहशंचेतितंरूपंशक्त्यापरमयातया ॥ तच्छक्नोत्यन्यथाकर्त्तुंनैषायत्नेनभूयसा ॥ १७ ॥ ततःपश्याम्यहंयावत्संपन्नोप्यणुरूपकः ॥ चित्त्वाच्चेतस्तदेवाशुतथाभूतोस्मिसंस्थितः ॥ १८ ॥ ततोहंबुद्धवान्रूपंतनुतेजःकणाकृति ॥ तदेवभावयन्पश्चाद्गतोहंस्थूलतामिव ॥ १९ ॥ प्रेक्षेतावदहंकिंचिदितिबोधाल्लघोस्ततः ॥ मनागालोकनायैवसंप्रवृत्तोनुभूतवान् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रथम मनकी परम शक्तिने जैसे जगत्के रूपादिकी कल्पना की है उसको यह स्वयं बडे प्रयत्नसेभी अन्यथा नहीं करसकती ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् मैंने परिछिन्न होनेपरभी अपनेको अपरिछिन्नरूपसे अनुभव किया, प्रथम चित्रूपसे चित्तरूपमें स्थित हुआ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर चित्के प्रतिबिंबकी व्याप्तिसे तेजके कणके समान

लिंगशरीरका मैंने अनुभव किया और पुनः भावना करनेसे स्थूलशरीरताको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ इसके अनंतर मैं देखूं इस किंचित् बोधसे जब किंचित् आलोकनमें प्रवृत्त हुआ तब नेत्रादि इन्द्रियोंसे मैं संपन्न होगया ॥ २० ॥

यन्नामतत्रतत्किंचित्तस्येहाद्यरघूद्वह ॥ शृणुनामानिमुख्यानिकल्पितानिभवादृशैः ॥ २१ ॥ द्रष्टुंप्रवृत्तो रंध्रेणयेनतच्चक्षुरुच्यते ॥ यच्चपश्यामितदृश्यंदर्शनंतुफलंततः ॥ २२ ॥ यदापश्यामिकालोसौयथाप श्यामिसक्रमः ॥ प्रौढानियतिरित्यस्ययत्रपश्यामितन्नभः ॥ २३ ॥ स्थितोस्मियत्रदेशोसावित्यस्यैषाप्र कल्पना ॥ तदात्वहंचिद्वन्मेषमात्रात्तन्मात्रकारणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जो कुछ उनके नाम आपके सदृश महात्माओंने कल्पित किये हैं उनमेंसे मुख्य नामोंको तुम सुनो ॥ २१ ॥ जिस छिद्रसे देखनेको प्रवृत्त हुआ उसको नेत्र कहते हैं, जिसको देखताहूं वह दृश्य है और दर्शन उसका फल है ॥ २२ ॥ जब देखते हैं यह काल, जैसे देखते हैं यह क्रम, जहां देखते हैं वह आकाश है, यह दृढ नियतिभी इस आत्माकी प्रवृत्त हुई ॥२३॥ जहांपर स्थित हैं वह देश है इत्यादि कल्पना आत्माकी सिद्धहुई, उससमय मैंने यह अनुभव किया कि यह सब चित्का स्फुरणमात्र है और उसका कारण मैं हूं ॥ २४ ॥

पश्यामीतिततस्तत्रमनाग्बोधोममोदभूत् ॥ ततोरंध्रद्वयेनाहमपश्यंयत्तदप्यखम् ॥ २५ ॥ याभ्यामपश्यं रंध्राभ्यांतइमेलोचनेस्थिते ॥ ततःकिंचिच्छृणोमीतिसंविदित्युदितामम ॥ २६ ॥ ततःकिंचिन्मनाग्मा त्रंझंकारंश्रुतवानहम् ॥ प्रध्मातस्येवशंखस्यशब्दंव्योम्नःस्वभावजम् ॥ २७ ॥ याभ्यामहमथाश्रौषंतइमे श्रवणत्रणे ॥ प्रदेशाभ्यांविचरतामरुतावितत्स्वनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जब मैं नेत्ररूप दोनों छिद्रोंसे देखने लगा तब मुझे किंचित् यह बोध हुआ कि जो कुछ मैंने देखा वह चिदाकाशमात्रही है ॥ २५ ॥ जिन छिद्रोंसे देखा वे ये दोनों नेत्र स्थितहैं, उसके पश्चात् मैं कुछ सुनूं यह वृत्ति उदितहुई ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् शंखके नादके समान आकाशके स्वाभाविक झंकारशब्दको मैंने सुना ॥ २७ ॥ गतिशील वायुसहित जिन छिद्रोंसे मैंने सुना वे दोनों श्रवण हैं ॥ २८ ॥

स्पर्शसंवेदनंकिंचिदहमत्रानुभूतवान् ॥ येननामप्रदेशेनतेनसात्वक्चकथ्यते ॥ २९ ॥ येनस्पृष्टमिवांगं तत्तदाहमनुभूतवान् ॥ सत्संवेदनमात्रात्मासोयंवायुरितिस्मृतः ॥ ३० ॥ स्पर्शनेंद्रियतन्मात्रमितिवे दिनिसंस्थितम् ॥ आस्वादसंविद्याभून्मेतदास्वाद्यरसेंद्रियम् ॥ ३१ ॥ प्राणान्मेघ्राणतन्मात्रमुदितं व्योमरूपिणः ॥ इत्थंनकिंचित्संपन्नंसर्वसंपन्नमत्रमे ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् जिस देशसे मैंने स्पर्शज्ञानका अनुभव किया उसको त्वक् कहतेहैं ॥ २९ ॥ जिससे स्पृष्ट अंगोंको मैंने अनुभव किया वह सत् संवेदनमात्र यह पवन कहाताहै ॥ ३० ॥ जब स्पर्शनइन्द्रियका अनुभवकर्ता मैं सिद्ध होगया तब रसके आस्वाद करनेकी इच्छा मुझे हुई, उससमय रससहित रसना इन्द्रिय सम्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ और प्राणके संकल्पसे घ्राण इन्द्रिय उत्पन्न हुई. इसप्रकार मुझ आकाशरूपको सब इन्द्रिय, देह तथा विषयकी सम्पत्ति प्राप्त हुई परन्तु यथार्थमें कुछ नहीं ॥ ३२ ॥

एवमिंद्रियतन्मात्रजालंचेत्तत्रसंस्थितः ॥ यावत्तावद्विदःपंचबलादेवममोदिताः ॥ ३३ ॥ शब्दरूपरस स्पर्शगंधमात्रशरीरिकाः ॥ अनाकारास्तथाभातस्वरूपिण्योभ्रमात्मिकाः ॥ ३४ ॥ एवंरूपमहंजालंभा वयन्यत्तदास्थितः ॥ तदहंकारइत्यस्यकथ्यतेत्वादृशैर्जनैः ॥ ३५ ॥ एषएवघनीभूतोबुद्धिरित्यभिधी यते ॥ साथबुद्धिर्घनीभूतामनइत्यभिधीयते ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार जब सब इन्द्रियसमूह मुझमें स्थित होगये तब यथार्थमें तो आकाररहित और मायासे शब्द, रूप, रस, स्पर्श तथा गंधमात्र शरीरधारी पांचों इन्द्रियोंके भोगका ज्ञान मुझे बलात्कार उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार देह, इन्द्रिय तथा विषयकी भावना करताहुआ उनका अभिमानी मैं स्थित हुआ उसीको आपके सदृश जन अहंकार कहते हैं ॥ ३५ ॥ इन्हीं सबके दृढ अध्यवसायसे विशेष बढकर बुद्धि कहलाताहै और वह घनीभूत बुद्धि संकल्प विकल्पसे मन तथा विषयोंके पुनः २ स्मरणसे चित्तभी कही जाती है ॥ ३६ ॥

अंतःकरणरूपत्वमेवमत्राहमास्थितः ॥ आतिवाहिकदेहात्माचिन्मयव्योमरूपवान् ॥ ३७ ॥ पवनाद्य प्यहंशून्यःकेवलाकाशमात्रकः ॥ सर्वेषामेवभावानांशून्याकृतिररोधकः ॥ ३८ ॥ अथैवभावनाच्चाहंय दातत्रचिरंस्थितः ॥ तदाहंदेहवान्दृष्टइतिमेप्रत्ययोभवत् ॥ ३९ ॥ तेनाहंप्रत्ययेनाथशब्दंकर्तुंप्रवृत्त वान् ॥ शून्यएवयथासुप्तःस्वप्नोड्डीननरोरवम् ॥ ४० ॥

अर्थ—इसप्रकार यथार्थमें चिदाकाशरूप सूक्ष्म शरीरधारी अन्तःकरणरूप मैं यहांपर स्थित हुआ ॥ ३७ ॥ पवनसेभी सूक्ष्म, केवल आकाशमात्र तथा निराकार मैं था इसीसे किसी पदार्थका अवरोधक नहीं था ॥ ३८ ॥

इसप्रकार ब्रह्माके शरीरमें भावना करते हुये जब चिरकालतक मैं स्थित था तब मैं चतुर्मुखदेहधारी हूं ऐसी वृत्ति मुझे हुई ॥ ३९ ॥ उसी वृत्तिसे शून्य आकाशमें उडते हुये स्वप्नस्थ मनुष्यके समान मैंने शब्द करना आरंभ किया ॥ ४० ॥

अथपूर्वंकृतःशब्दोबालेनैवतदोमिति ॥ ततःसएषॐकारइतिनीतःपुनःप्रथाम् ॥ ४१ ॥ ततःस्वप्ननरेणेवयत्किंचिद्गदितंमया ॥ तदेतद्विद्धिवाचंत्वंपश्चाद्गीतांप्रथामिह ॥ ४२ ॥ ब्रह्मैवसोस्मिसंपन्नःस्रष्टेःकर्त्ताजगद्गुरुः ॥ ततोमनोमयेनैवकल्पिताःसृष्टयोमया ॥ ४३ ॥ एवमस्मिसमुत्पन्नोनतुजातोस्मिकिंचन ॥ दृष्टवानास्मिब्रह्मांडंब्रह्मांडांतंनकिंचन ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् बालरूप मैंने जो प्रथम शब्द किया वह संसारमें ओंकाररूपसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर स्वप्नस्थ मनुष्यके शब्दके समान पूर्वकल्पके अभ्यस्त गायत्री वेदादि जो कुछ मैंने कहा उसीको संसारमें वाणीरूपसे प्रसिद्ध जानो ॥ ४२ ॥ इसप्रकार सृष्टिका कर्ता जगद्गुरु मैं ब्रह्माही होगया. इसके पश्चात् मनरूपही मैंने अनेक सृष्टिकी कल्पना की ॥ ४३ ॥ ब्रह्मारूप होकर मैंने निज स्थूलशरीररूप आवरणसहित ब्रह्मांड तथा ब्रह्मांडके बाह्यरूपको देखा और यथार्थमें कुछ नहीं ॥ ४४ ॥

एवंजगतिसंपन्नेममैतस्मिन्मनोमये ॥ नकिंचित्तत्रसंपन्नंतच्छून्यंव्योमकेवलम् ॥ ४५ ॥ इत्थंसंशून्यमेवेदंसर्ववेदनमात्रकम् ॥ मनागपिनसंत्येतेभावाःपृथ्व्यादयःकिल ॥ ४६ ॥ जगन्मृगतृडंबूनिभांतिसंविदिसंविदः ॥ नबाह्यमस्तिनोबाह्येखेतद्व्योमतथास्थितम् ॥ ४७ ॥ मरौनास्त्येवसलिलंसंवित्पश्यतितत्तथा ॥ निर्मूलमंतःसंततास्वसंभ्रमवतीभ्रमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसीप्रकार मनोमय मैं ही जगत्रूप होगया,यथार्थ कुछ नहीं हुआ क्योंकि सब शून्य,केवल चिदाकाशरूप है ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मेरी सृष्टिके सदृश सब कुछ शून्य चिदाकाश मात्र ही है ये पृथिवीआदि पदार्थ कोई भी सत्य नहीं हैं ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! ज्ञानस्वरूप परमात्मामें ज्ञानरूप अनेक जगत् मृगतृष्णाके जलके समान भासते हैं. यह बाह्य जगत् कुछ नहीं है क्योंकि यह सब ब्रह्माकाश ही स्थित है ॥ ४७ ॥ मरुस्थलमें जल नहीं है किन्तु विनाकारणही अन्तःकरणमें संतत होकर बुद्धि ही जलके भ्रमको दखती है ॥ ४८ ॥

नास्त्येवब्रह्मणिजगत्संवित्पश्यतितत्तथा ॥ निर्मूलमेवसंवित्त्वादेवंभ्रांतेश्चसंभ्रमम् ॥ ४९ ॥ असदेवेदमाभातिहृद्येवजगदाततम् ॥ संकल्पनमनोराज्यंयथास्वप्नपुरादिवत् ॥ ५० ॥ पार्श्वसुप्तजनस्वप्नस्तच्चित्तावेशनंविना ॥ यथानकिंचित्तच्चित्तावेशनादनुभूयते ॥ ५१ ॥ तथाजगत्तदृषदंसंप्रविश्यानुभूयते ॥ आदर्शबिंबिताकारंदृष्टमप्यन्यथाप्यसत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—ऐसे ही ब्रह्ममे जगत् नहीं है विनाकारणही अज्ञानसे आवृत संवित्स्वभावसे आत्मा जगत्भ्रमको देखता है ॥ ४९ ॥ संकल्प, मनोराज्य अथवा स्वप्नके नगरादिके तुल्य इस जगत्को अपने हृदयमें व्याप्त देखता है ॥ ५० ॥ जैसे निकटस्थ सोए हुये मनुष्यके स्वप्नको उसके चित्तमें प्रवेश कियेविना कोई कुछ नहीं अनुभवकर सकता ॥ ५१ ॥ इसीप्रकार उस जगत्के अधिष्ठानभूत शिलामें प्रवेश कियेविना दर्पणमें प्रतिबिंबित दृष्ट असत् जगत्को अनुभव नहीं कर सकते ॥ ५२ ॥

आधिभौतिकभावेननेत्रेणयदिलक्ष्यते ॥ तत्तन्नदृश्यतेकिंचिद्गिरिरेवप्रदृश्यते ॥ ५३ ॥ आतिवाहिकदेहेनपरंबोधदृशायदि ॥ प्रेक्ष्यतेदृश्यतेसर्गःपरमात्मैवचामलः ॥ ५४ ॥ सर्वत्रसर्गनिर्वाणंप्रज्ञालोकेनलक्ष्यते ॥ ब्रह्मात्मैवान्यथाचेत्तन्नकिंचिदभिलक्ष्यते ॥ ५५ ॥ यत्पश्यत्यवदाताधीःसोपपत्तिविचारणा ॥ नतन्नेत्रैस्त्रिभिःशर्वोनेंद्रोनेत्रशतैरपि ॥ ५६ ॥

अर्थ—और इस आधिभौतिक नेत्रसे यदि देखो तो वे अनेक ब्रह्मांड नहीं देख पडते किन्तु वही लोकालोकपर्वतही देख पडताहै ॥ ५३ ॥ और आधिदैहिक देहसे यदि परम बोधदृष्टिसे देखा जाय तो वह सृष्टि देख पडती है और वह सृष्टि योगियोंकी दृष्टिमें केवल निर्मल परमात्मारूपही है ॥ ५४ ॥ बोधदृष्टिसे सर्वत्र यह सृष्टि निर्वाण ब्रह्मरूपही है यदि उससे विरुद्ध मानों तो कुछ नहीं है ॥ ५५ ॥ जो शुद्धबुद्धि उपपत्ति तथा विचारसहित देखती है वह तीनों नेत्रोंसे श्रीमहादेवजी तथा शत नेत्रोंसे इन्द्रभी नहीं देख सकते ॥ ५६ ॥

यथाखमात्रंतसगैस्तथाभूरितिबुद्धवान् ॥ तदाहमभवंध्याताधराधारणयान्वितः ॥ ५७ ॥ तयाधराधारणयाधरारूपधरोभवम् ॥ अत्यजन्नेवचिद्व्योमवपुःसम्राडिवाचिरात् ॥ ५८ ॥ धराधारणयाचैवधराधातूदरंगतः ॥ द्वीपाद्रितृणवृक्षादिदेहोहमनुभूतवान् ॥५९॥ संपन्नोस्म्यथभूपीठंनानावनतनूरुहम् ॥ नानारत्नावलीव्याप्तनानानगरभूषणम् ॥ ६० ॥

अर्थ—योगदृष्टिसे जब मैंने यह निश्चय किया कि आकाशके सदृश पृथिवीभी सृष्टियोंसे व्याप्तहै तब पृथिवीकी धारणासे युक्त मैं ध्याता होके स्थित हुआ ॥ ५७ ॥ जैसे चक्रवर्ती राजा अपने देहभावको न त्यागते हुये समस्त भूमंडलमें ममता धारण करताहै ऐसे मैं अपने चित्स्वरूपको न त्यागते हुये उस धरा (पृथिवी) की धारणासे मैं धरारूपधारी होगया ॥ ५८ ॥ पुनः उस धराकी धारणासे मैं पृथिवी अभिमानी जीवरूपताको प्राप्त हुआ और द्वीप, पर्वत, तृण तथा वृक्ष आदिको मैंने अपने शरीरके समान अनुभव किया ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारके वन तथा वृक्षोंसे व्याप्त नानाप्रकारके रत्नोंसे शोभित और नानाप्रकारके नगरोंसे भूषित भूतलरूप मैं होगया ॥ ६० ॥

ग्रामगह्वरपर्वाढ्यंपातालसुषिरोदरम् ॥ कुलाचलभुजाश्लिष्टद्वीपाब्धिवलयान्वितम् ॥ ६१ ॥ तृणौघतनुरोमाढ्यंगिरिखंडकगुल्मकम् ॥ दिग्वारणकटव्यूहधृतंशेषशिरःशतैः ॥ ६२ ॥ ह्रियमाणंमहीपालैःशोभमानेभतंतुभिः ॥ प्राणिभिर्भुज्यमानांगंवर्द्धमानंव्यवस्थया ॥ ६३ ॥ हिमवद्विंध्यसुस्कंधंसुमेरूदारकंधरम् ॥ गंगादिसरिदापूरमुक्ताहाररणत्तनुम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—अनेक ग्रामरूपी गह्वरपर्वोंसे युक्त, पातालबिलरूपी उदरसहित और सप्त कुलपर्वतरूप भुजाओंसे आश्लिष्ट, द्वीप तथा पर्वतरूपी कंकणोंसे वेष्टित भूतलरूप मैं होगया ॥ ६१ ॥ तृणोंके समूहरूप सूक्ष्म रोमोंसे पूर्ण, पर्वतसमूहरूप गुल्मरोगसहित और दिग्गजोंके मस्तक तथा शेषनागके सहस्र शिरसे धारित मैं भूमण्डलरूप होगया ॥ ६२ ॥ शोभायमान हस्ती सेनाजालके तन्तुग्रंथिरूप हैं जिनके ऐसे राजाओंके द्वारा परस्पर युद्धसे ह्रियमाण प्राणियोंसे भुज्यमान शरीर और नगर ग्रामादिकी व्यवस्थासे वृद्धिको प्राप्त मैं भूपृष्ठरूप होगया ॥ ६३ ॥ हिमालय तथा विन्ध्याचलरूपी उत्तम कन्धेसे शोभित सुमेरुपर्वतरूप महाग्रीवासेयुक्त और गंगा, यमुना आदि नदियोंके प्रवाहरूपी मुक्ताहारोंसे शब्दायमान शरीरयुक्त भूमंडलरूप मैं होगया ॥ ६४ ॥

गुहागहनकच्छादिसागरादर्शमंडलम् ॥ मरूषरस्थलश्वेतसुवरांबरसुंदरम् ॥ ६५ ॥ भूतपूर्वःपरापूर्णपरिपूतंमहार्णवैः ॥ अलंकृतंपुष्पवनैःसमारब्धंरजोघनैः ॥ ६६ ॥ नित्यंकृषीवलैःकृष्टंवीजितंशिशिरानिलः ॥ तापितंतपनैस्तप्तंरुक्षितंप्रावृडंबुभिः ॥ ६७ ॥ विपुलाग्रस्थलोरस्कंपद्माकरकृतेक्षणम् ॥ सितासितघनोष्णीषंदशाशोदरमंदिरम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—गुहाओंसे गहन सागररूपी आदर्शमण्डल सहित, मरुदेश तथा ऊषरदेशरूप सुन्दर वस्त्रोंसे शोभित भूमंडल रूप मैं होगया ॥ ६५ ॥ पूर्वकालके प्रलयोंसे पूर्ण, महासमुद्रोंसे पवित्र, पुष्पोंकी वनमालाओंसे अलंकृत और चन्दनकी धूलियोंसे भूतलरूप मैं होगया ॥ ६६ ॥ कृषकोंसे नित्य कर्षित, शीतल पवनोंसे वीजित, सूर्य्यकी किरणोंसे तापित, वर्षाके जलसे सिक्त भूतलरूप मैं होगया ॥ ६७ ॥ विशाल, सम धरातलरूपी वक्षस्थलसहित, कमलोंके वनरूपी नेत्रसे शोभित, सूर्य्यचन्द्ररूपी शिरोवेष्टन (पगडी) से शोभित दशदिशारूपी उत्तम मन्दिरोंसे शोभायमान भूतलरूप मैं होगया ॥ ६८ ॥

लोकालोकमहाखातवलयोग्रास्यभीषणम् ॥ अनंतभूतसंघातपरिस्पंदैकचेतनम् ॥ ६९ ॥ व्याप्तमंतर्बहिश्चैवनानाभूतगणैःपृथक् ॥ देवदानवगंधर्वैर्बहिरंतस्तुकीटकैः ॥ ७० ॥ पातालेंद्रियरंध्रेषुनागासुरकृमिव्रजैः ॥ सप्तस्वर्णवकोशेषुनानाजातिजलेचरैः ॥ ७१ ॥ व्याप्तंनदीवनसमुद्रदिगंतशैलद्वीपाख्यजंतुविषयस्थलजंगलौघैः ॥ नानावलीवलितमंडलकोशखंडवल्लीसरःसरिदरातिगणाब्जखंडैः ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० पार्थिवधात्वंतर्गतजगदानंत्यप्रतिपादनं नाम सप्ताशीतितमःसर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—लोकालोकपर्वतके समीप महाखंदकरूप उग्रमुखसे भयंकर और अनन्त प्राणियोंके समूहकी चेतनतासे चैतन्यसहित भूतल मैं होगया ॥ ६९ ॥ नानाप्रकारके पृथक् प्राणियोंसे बाहर तथा भीतरसे व्याप्त बाह्यप्रदेशमें देव, दानव तथा गंधर्वादिसे और आभ्यन्तर प्रदेशमें कृमिकीटादिसे व्याप्त भूतलरूप मैं होगया ॥७०॥ पातालरूपी इन्द्रियछिद्रोंमें नाग तथा असुररूपी कृमिसमूहोंसे तथा सप्तसमुद्रोंके कोशोंमें जलचरोंसे व्याप्त भूतलरूप मैं होगया ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! नदी, वन, समुद्र, दिगन्त, पर्वत तथा द्वीपादि प्राणियोंके भोग्यस्थल तथा जंगलादिके समूहोंसे और नानाप्रकारके पर्वत, नदी आदिसे वेष्टित मंडलखंडोंसे तथा लता, तडाग, कमलादिसे व्याप्त भूतलरूप मैं होगया॥७२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे पार्थिवधात्वंतर्गत जगदानन्त्यप्रतिपादनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस ८८ के सर्गमें निजदेहरूप भूतलमें वहां २ पर स्थित और कौतुकसे अपनेहीसे दृष्ट विशेषोंका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ भूपीठेनसतातत्रमयातदनुमानव ॥ अनुभूतंनदनदीस्वसंवेदनसंस्थितेः ॥ १ ॥ क्वचिन्मरणसाक्रन्दनारीकरुणवेदनम् ॥ क्वचिद्वृत्ताण्डवस्त्रैणमहोत्सवमहासुखम् ॥ २ ॥ क्वचिद्दुर्वारदुर्भिक्षदुराक्रंन्ददुरीहितम् ॥ क्वचित्सकलसस्यौघसंपन्नघनसौहृदम् ॥ ३ ॥ क्वचिदग्निमहादाहदग्धदेहोग्रवेदनम् ॥ क्वचिज्जलप्लवाप्लूनपुरपत्तनखण्डकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! भूपीठरूपताको प्राप्त (भूमिसमान धर्मा) मैंने नदनदी आदिकी स्थितिसे जो कुछ अनुभव कियाहै वह तुम सुनो ॥ १ ॥ कहीं तो पतिपुत्रादिके मरणसे स्त्रियोंके करुणरोदनसे व्याप्त और कहीं स्त्रियोंके नृत्यगानादि उत्सवोंसे महासुखसहित वह भूपीठथा ॥ २ ॥ कहीं महादुर्भिक्षसे महारोदनसे दुष्टचेष्टापूर्ण और कहीं संपूर्ण धान्योंकी संपत्तियोंसे उत्तम सौहृदसहित वह भूतल होगया ॥ ३ ॥ कहीं अग्निके महादाहसे शरीरोंके दग्ध होनेसे भयंकर पीडासहित और कहीं जलके प्रवाहसे ग्रामनगरादि डूबनेसे अति भयंकर वह भूतल होगया ॥ ४ ॥

क्वचिच्चपलसामन्तकृतलुण्ठनमण्डलम् ॥ क्वचिद्दुद्दामदौरात्म्यरक्षःपैशाचमण्डलम् ॥५॥ क्वचिज्जलाशयोल्लासवेल्लनोत्पुलकाग्रकम् ॥ कन्दरोदरनिष्क्रान्तवातवेल्लितवारिदम् ॥ ६ ॥ संविद्बोधोन्नमत्स्वांगकेशोत्थांकुरलोमकम् ॥ वारिवाहनविक्षोभनतोन्नतलसत्तलम् ॥ ७ ॥ सशृंगभैरवश्वभ्रपुराद्रिवनपत्तनम् ॥ संविन्मंडलसंचाललेखांकमृदुकम्पनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कहीं देशोंको लूटतेहुये चपल सामन्तोंसे भयंकर और कहीं प्रचण्ड राक्षस पीशाचादिकी दुष्ट चेष्टासहित वह भूतल होगया ॥ ५ ॥ कहीं जलाशयोंकी अधिकतासे बाटिका धान्यादिके सींचनेसे उत्तम बाटिकादि सहित और कहीं तो कन्दराओंके भीतरसे निःसृत वायुके द्वारा इषत् कम्पायमान मेघोंसे शोभायमान वह भूपृष्ट होगया ॥ ६ ॥ कहीं हर्षसे पुलकित निजकेशोंके समान अंकुररूपी लोमोंसे भूषित कहीं जलके प्रवाहके विक्षोभसे शोभायमान ऊंचे नीचे धरातल सहित वह भूतल होगया ॥ ७ ॥ कहीं अन्तर्गत शिलाओंसे सशृंगके समान भासमान भयंकर गर्तसहित नगर, ग्राम तथा वनादि युक्त, कहीं नगरनिवासीजनोंके मण्डलके संचालनकी शंकाजनक मृदु कंप सहित वह भूतल था ॥ ८ ॥

क्वचित्सामन्तसंक्षुब्धसैन्यसंहरणंरणे ॥ क्वचित्सौम्यसुखासीनसर्वसामन्तमण्डलम् ॥९ ॥ अरण्यंक्वचिदाशून्यमुल्लसद्वातझंकृति ॥ जंगलंक्वचिदालूनव्युप्तसंपन्नसस्यकम् ॥ १० ॥ हंसकारंडवाकीर्णसरःफुल्लाम्बुजंक्वचित् ॥ क्वचिन्मरुस्थलस्थूलस्तम्भनार्जुनमारुतम् ॥११॥ क्वचिन्नदनदीवाहहेलानिकषघर्घरम् ॥ क्वचिदंकुरकार्यांगसिक्तबीजस्यजृंभणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कहीं छोटे २ राजाओंकी संक्षुब्ध सेनाके रणसंहारसे भयंकर और कहीं सुखमें स्थित सब राजमंडलसे शोभित वह भूतलथा ॥९॥ कहीं वायुके झंकारशब्दसे युक्त और कहीं आसमन्त (सब तरफसे) शून्य अरण्ययुक्त और कहीं प्रथम कटेहुये और पुनः रोपे हुये अनेक प्रकारके धान्यादि सहित बनसे शोभित वह भूतल होगया ॥ १० ॥ कहीं हंस कारंडवआदि पक्षियोंसे व्याप्त तडागोंमें विकसित कमल सहित और कहीं मरुस्थलोंमें आंधीसे उडीहुई धूलिसे स्थूल स्तंभकारी धूसरवर्ण वायुसे भयंकर वह भूतल होगया ॥ ११ ॥ कहीं नदनदी आदिके प्रवाहोंके परस्पर संघर्षसे घर्घर शब्द सहित और कहीं नहर आदिके जलसे सिक्त क्षेत्रके बीजोंकी वृद्धि सहित वह भूतल था ॥ १२ ॥

क्वचिदन्तस्तुकीटास्यमृदुस्पंदनवेदनम् ॥ मांत्वमेवाशुबुद्धेहत्रायस्वेतीवबोधनम् ॥ १३ ॥ शाखापरिकराभोगंमृद्धागांगनिपीडनैः ॥ मूलजालमवष्टभ्यक्वचिद्विटपधारिणम् ॥ १४ ॥ अन्योन्यमलमाक्रम्य दिक्तटांगनिपीडनैः ॥ क्वचिदद्र्यस्थिनिबिडैरर्णवोल्लासवेल्लितम् ॥ १५ ॥ शुष्कपल्लवसंकोचनिबिडांगनिपीडनम् ॥ अमर्षणैःक्रूरैरार्कैःस्वरसाकर्षणंक्वचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—कहीं शिला आदिके संकटमें ग्रस्त मुझे जानकर हे वसिष्ठजी ! शीघ्र मेरी रक्षा करो ऐसे कीटकके विज्ञापन सहितके सदृश स्थित वह भूतल था ॥ १३ ॥ कहीं वटआदिके वनमें शिखाओंके भूमि लगनेसे पृथिवीभागके पीडाजनक शाखाओंसे युक्त और कहीं मूलदेशमें भूमिको अवलंबन करनेवाले वृक्षधारी वह भूतल था ॥ १४ ॥ कहीं परस्परके संघर्षसे दिशाओंको पूर्ण करनेवाले पर्वतकी शिलाओंके समान घनीभूत वृक्षोंसे वह भूतल ऐसे वेष्टित था जैसे समुद्रसे ॥ १५ ॥ कहीं सघन वृक्षोंसे पृथिवीमें निजप्रवेश न होनेसे क्रुद्ध सूर्य्यके किरणोंके द्वारा रसके खींचनेसे शुष्कपल्लव सहित वृक्षोंसे युक्त वह भूतल था ॥ १६ ॥

शृंगमंदिरमातंगप्रहाराशनिभूरुहाम् ॥ निबिडांगोत्कटस्थैर्यपरुषापतनंकचित् ॥ १७ ॥ निमीलिते क्षणानंदतनूनामसमाक्रमम् ॥ कचित्सूक्ष्मतरोल्लेखमंकुरोल्लासनंनवम् ॥ १८ ॥ मक्षिकायूकमशक निवाससदृशंकचित् ॥ कुड्यलेशकुभृंगारिहलहेलानिकर्षणम् ॥ १९ ॥ शीतशीतविशीर्णांगजर्जरत्व ग्विकीर्णवत् ॥ पाषाणीभूतसलिलंकचित्परुषमारुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—कहीं वृक्षोंके दृढ अंगोंपर पर्वतोंके शृंग, मन्दिर, तथा हाथियोंके दंतप्रहाररूप वज्रपातसे भयंकर भूतल मैंने देखा ॥ १७ ॥ कहीं सूक्ष्म तत्वको अनुभव करनेवाले नेत्र मूंदेहुये समाधिनिष्ठ महात्माओंके अपूर्व अंकुरके उल्लासके सदृश रोमांचके सहित भूतल मैंने अनुभव किया ॥ १८ ॥ कहीं मधुमक्षिका, यूक (जुआं) तथा मच्छरोंके समूहके निवासके समान कहीं कमलोंके कोशोंमें सुप्त दुष्ट भृंगोंके शत्रुरूप हस्तियोंके हलके लीलाके समान आकर्षणसे युक्त भूतल देखा ॥ १९ ॥ कहीं हिमालय आदि देशमें शीतसे जर्जर प्राणियोंके अंगोंमें व्याप्त जलको पाषाणवत् करनेवाले तथा रूक्षपवन सहित शीतसे पूर्ण भूतलको अनुभव किया ॥ २० ॥

उद्दालीभूतमृद्वंगमज्जदन्तःकृमिव्रजम् ॥ कचिदुद्भवदंगादिमूलंजलनिमज्जनम् ॥ २१ ॥ शनैरन्तर्निलीना म्बुकृताल्हादंबहिश्वर ॥ सोन्नामांकुररोमौघंकचिद्वर्षविजृम्भितम् ॥ २२ ॥ तनुतरपवनविकंपितकोमल नलिनीदलास्तरणैः ॥ विहरणमिवमेविहितंसरोभिरंगेषुनिर्वाणम् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० भूमण्डलगतविशेषवर्णनं नामाष्टाशीतितमःसर्गः ॥ ८८ ॥

अर्थ—कहीं विदलित कोमल अंगोंमें प्रविष्ट कृमिकीटादिके सहित कहीं उत्पन्न होते हुये अंगादि मूलसहित और कहीं जलमें निमग्न होतेहुये उस भूतलरूप शरीरको मैंने अनुभव किया ॥ २१ ॥ कहीं बीजोंमें वर्षाकी वृद्धिसे धीरे २ अन्तः प्रविष्ट जलसे आनन्दयुक्त और बाह्यप्रदेशमें खडे हुवे अंकुररूप रोमांच समूह सहित भूतल रूप शरीरको मैंने अनुभव किया ॥ २२ ॥ हे रामजी ! कहीं मेरे उस भूतलरूप अंगोंमें तडागोंने सूक्ष्मपवनसे कम्पायमान कोमल कमलोंके दलोंके विस्तारसे निरतिशय आनन्दरूप क्रीडाका विधान कियाथा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे भूमण्डलगतविशेषवर्णनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

इस ८९ के सर्गमें उस धारणासे यह भूमण्डल तथा संपूर्ण जगत् चिदाकाशमें मनोमात्र है यह वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ पार्थिवींधारणांबद्ध्वाजगन्तिसमवेक्षितुं ॥ संपन्नस्त्वमसौभूमिलोकःकिमुतमानसः ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदंचमानसंचाहंसंपन्नःपृथुभूतलम् ॥ नेदंनमानसंनैवसंपन्नोवस्तुतस्त्वहम् ॥२॥ अमानसंमहीपीठंनसंभवतिकिंचन ॥ यत्सद्वेत्सिनयत्सद्वामनोमात्रकमेवतत् ॥३॥ चिदाकाशम हंशुद्धंतस्यमेतत्पदात्मनः ॥ यच्चिन्मात्रात्मकचनंतत्संकल्पाभिधंस्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे गुरो ! अनेक जगत् देखनेके लिये पृथिवीकी धारणा बांधके यही हमलोगोंके दृश्यभूत भूलोकरूप आप होगये अथवा इससे भिन्न मानसिकरूपहो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! कल्पनादृष्टिसे तो मृत्तिका पाषाण आदि रूप प्रसिद्ध वह तुमारा जगत् और महान् भूतलरूप मैं हुआ यह सब मानासिक है और यथार्थमें तो न यह और न मानस भूतलरूप मैं हुआ ॥ २ ॥ मनसे भिन्न किसी भूतलका होना संभव नहीं है जो कुछ सत् अथवा असत् रूप तुम जानते हो वह सब मनोमात्र है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यथार्थ मैं शुद्ध चिदाकाशरूप हूं उस मुझ चिद्रूपका जो स्फुरण है वही परमात्माका संकल्प कहाताहै ॥ ४ ॥

तन्मनस्तन्महीदृष्टंतज्जगत्सपितामहः ॥ संकल्पपुरवद्व्योम्निकचत्येतन्मनोनभः ॥ ५ ॥ एवंसंकल्प मात्रंमेमनोमात्रंतदाततम् ॥ धारणाभ्याससंपुष्टंभूमण्डलमितिस्थितम् ॥ ६ ॥ नेदंभूमण्डलंतद्वैतदन्य द्धिमनोमयम् ॥ आकाशमात्रकचनमचेत्यंकचनंचितेः ॥ ७ ॥ तदेवाकाशमात्रात्मतथाभूतंचिरंस्थि तम् ॥ इदंप्रत्ययलब्धत्वान्मानसत्वंसमुज्झति ॥ ८ ॥

अर्थ—वही चिदात्माका स्फुरण मन है, वही भूतल है, वही जगत् और वही ब्रह्मा है, क्योंकि यह मन चिदाकाश संकल्पके नगरके समान स्फुरित होरहाहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार मेरा संकल्पमात्र, मनोमय और धारणाके अभ्याससे पुष्ट

यह भूमण्डल है ॥ ६ ॥ इस भूमण्डलको जैसा तुम देखते हो ऐसा नहीं है किंतु मनोमात्रहै, क्योंकि यह संपूर्ण जगत् चिदाकाशका स्फुरणमात्र है ॥ ७ ॥ चिदाकाशमात्र होते हुये भी यह जगत् निजरूपसे चिरकालतक स्थितहै और स्वप्नादिमें दृष्ट पृथिवी आदिके सदृश इदं प्रतीतिका विषय होनेपर इसकी मानसरूपता नहीं जासकती है ॥ ८ ॥

इदंस्थिरंसुकठिनंविततंभूमिमंडलम् ॥ अस्तीतिजायतेबुद्धिर्व्योम्नीवचिरवेदनात् ॥ ९ ॥ न्यायेनेदमिवानेननस्थितंवसुधातलम् ॥ इदंचैवैकमेवाद्यसर्गस्याद्यमुपागतम् ॥ १० ॥ यथास्वप्नेपुरत्वेनचिदेवव्योम्निभासते ॥ तथाचिदेवसर्गादाविदंजगदितिस्थितम् ॥ ११ ॥ विद्धिचिद्रूपबालस्यमनोराज्यंजगत्रयम् ॥ महीतलादिकंदृश्यमिदंसर्वंचसर्वदा ॥ १२ ॥

अर्थ—आकाशमें नीलिमाके सदृश चिरकालके अनुभवसे स्थिर, कठिन और विशाल यह भूमण्डल है ऐसी बुद्धि होती है ॥ ९ ॥ यह सब संसार वाणीमात्रका विषय है यथार्थमें कुछ नहीं इस श्रुतिप्रतिपादित न्यायसे अज्ञप्रसिद्ध यह जगत् नहीं है किन्तु मनोमय आदि सृष्टिका जो सूक्ष्मरूप है वही स्थूलताको प्राप्तहै ॥ १० ॥ जैसे स्वप्नमें चेतनही नगर आदिरूपसे भासताहै, ऐसेही सृष्टिकी आदिमें चेतनही जगत्रूपसे स्थित हुआहै ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इस पाताल आदि तीनोंलोक तथा संपूर्ण दृश्यमात्र चिद्रूप बालकका मनोराज्य है ऐसा तुम जानो ॥ १२ ॥

चिद्रूपस्यात्मनोनान्यःसंकल्पस्तन्मयंजगत् ॥ वस्तुतस्तुनसत्यात्मनपिण्डात्मनभासुरम् ॥१३॥ दृश्यमस्त्यपरिज्ञातंपरिज्ञातंनविद्यते ॥ परिज्ञातंतदेवास्यशृणोषियदिदंचिरम् ॥ १४ ॥ सर्वंचिन्मात्रमाशांतंप्रकचत्यात्मनात्मनि ॥ भूमण्डलात्मदृश्यात्मद्वैतैक्याभ्यांविवर्जितम् ॥ १५ ॥ मणिर्यथास्वभावेनशुक्लपीतादिकास्त्विषः ॥ अकुर्वन्नेवकुरुतेचिदाकाशस्तथाजगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—चिद्रूप आत्माका संकल्प उससे भिन्न नहीं है और उसका संकल्पमय यह जगत् है, यथार्थमें न यह सत्य और न भासमान पिंडरूप है ॥ १३ ॥ चिन्मात्रके अज्ञानसे यह जगत् है और परिज्ञानसे नहीं है, ज्ञानसे यह वही (चिद्रूप) है जो मुझसे चिरकालसे सुनते हो ॥ १४ ॥ यह भूमण्डलादि सब दृश्य द्वैत तथा एकत्वसे वर्जित केवल शांत चिन्मात्रही अपने आत्मा आप स्फुरित होरहाहै ॥ १५ ॥ जैसे मणि कुछ व्यापार न करतेहुये भी शुक्लपीत आदि दीप्तियोंको स्वभावसे करताहै ऐसे चिदाकाशभी बिना किसी व्यापारके स्वभावसेही जगत्को रचताहै ॥ १६ ॥

यतोनकिंचित्कुरुतेनचरूपंसमुज्झति ॥ तस्मान्नमानसंनेदंकिंचिदस्तिमहीतलम् ॥ १७ ॥ महीतलमिवाभातिचिद्व्योमैवनिरंतरम् ॥ आत्मन्येवातलंव्योमयथामलतलंस्थितम् ॥ १८ ॥ स्वभावमात्रकचनंतत्तदेवयथास्थितम् ॥ भूमण्डलमिवात्यच्छंखमेवविशतान्तरम् ॥ १९ ॥ इदंभूमण्डलंतच्चद्वयमेतन्महाचितेः ॥ स्वरूपमेवकचतितवस्वप्नपुरंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—परमात्मा न कुछ करताहै और न अपने स्वरूपको त्यागताहै इसलिये यह जगत् उसका मनोमय तद्रूपही है ॥ १७ ॥ चिदाकाशही भूतलरूप ऐसे भासता है जैसे तलसे शून्यभी आकाश निर्मल तलसहित स्थितहै ॥ १८ ॥ स्वभावमात्रका जो स्फुरण है वही अपनेसे भिन्न निर्मल भूतलके समान देखपडताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! यह तुम्हारा भूमण्डल और मेरी धारणासे सिद्ध भूमण्डल दोनों महाचित्का स्फुरणमात्र ऐसे है जैसे तुमारा स्वप्नका नगर ॥ २० ॥

इदमाकाशमात्रात्मतदप्याकाशमात्रकम् ॥ अज्ञानात्मपरिज्ञानाज्ज्ञानान्नेदंनतत्क्वचित् ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यभूतजालानांकालत्रितयभाविनाम् ॥ संभ्रमःस्वप्नसंकल्पोमनोराज्यदशास्थितौ ॥ २२ ॥ भूतान्यथोभविष्यंतिवर्त्तमानानियानिच ॥ भूमण्डलानितान्यंगसत्तासामान्यतांगता ॥ २३ ॥ अहमेवसमग्राणितेषामन्तर्गतान्यपि ॥ तेनतान्यनुभूतानितथादृष्टानिचाखिलम् ॥ २४ ॥ चिन्मात्रमेतदजरंपरमात्मतत्त्वंशुद्धात्मतामजहदंगगतंबिभर्त्ति॥सर्वंयथास्थितमिदंजगदात्तभेदंबुद्धंसदंगनबिभर्त्तिनकिंचनापि॥२५

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० दृश्यमनोमात्रत्वप्रतिपादनं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अर्थ—यह भी चिदाकाशमात्र है और वहभी चिदाकाशमात्रही है, आत्माके अज्ञानसे इसका भान होताहै और ज्ञानसे तो न यह है और न धारणास्थ है ॥ २१ ॥ तीनोंकालमें होनेवाले त्रिलोकीके प्राणियोंकी स्थिति स्वप्नके संकल्पके समान भ्रममात्रही है और वह मनोराज्यकी दशाके समान है ॥ २२ ॥ हे प्रियरामजी ! भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान अनेक जो भूमण्डल हैं उन सबको अधिष्ठान आत्मसत्ता दृष्टिसेही मैंने अनुभव कियाहै ॥ २३ ॥ क्योंकि समस्त ब्रह्मांडरूप और उनके अन्तर्गत मैंही हूं इसलिये मैंने अपने स्वरूपसे देखे और अनुभव किये ॥ २४ ॥ हे रा-

मजी ! परमात्माही अज्ञान दशामें अपने शुद्धरूपको न त्यागते हुये इस संपूर्ण अनेक भेद सहित यथास्थित चराचर जगत् निजरूपताको प्राप्तके समान सत्यवत् धारण करताहै और परमात्माके ज्ञानसे वह कुछ नहीं धारण करताहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे दृश्य मनोमात्रत्व प्रतिपादन नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

पृथिवीके भीतर अनन्त जगत्की दृष्टि और जलकी धारणासे संपूर्ण जलकी लीलाका वर्णन इस ९० के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनन्तरंवदब्रह्मन्जगन्तिभवतातदा ॥ भूमण्डलानांहृदयेकचिद्दृष्टानिनैववा ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परात्मजाग्रत्स्वप्नोर्वीमंडलौघात्मनामया ॥ ततोनुभूतंहृदयेदृष्टंचपरयादृशा ॥ २ ॥ यावत्तथैवसर्वत्रजगज्जालमवस्थितम् ॥ सर्वदृश्यमयंशान्तमपिद्वैतमयात्मकम् ॥ ३ ॥ जगन्तिसन्तिसर्वत्रसर्वत्रब्रह्मसंस्थितम् ॥ सर्वशून्यंपरंशान्तंसर्वमारंभमन्थरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे ब्रह्मन् ! जैसे प्रसिद्ध इस जगत्में स्वर्णशिलादिप्रदेश भेदोंमें अनेकों ब्रह्मांड है उसीतरहसे धारणागत (प्राप्त) भूमंडलोंमें भी हरएक उन्हीं वस्तुओंके भेदहैं या नहीं ये बात मुझे समझाकर कहो, यहां भूमण्डल शब्द प्रदेश विशेषको कहताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! पृथिवीकी धारणासे शुद्ध चिद्रूपको जाग्रत अवस्थागत भूमण्डलरूपसें और स्वप्नगत भूमण्डलरूपसें मैंने उन्ह २ भूमण्डलप्रदेश भेदोंमें ईश्वर साक्षिदृष्टिसे जो उन्हके भीतर देखाहै और जो कुछ मनसे अनुमान कियाहै सो सब आपसे कहूंगा इसमें जो स्वप्नका ग्रहण कियाहै वो स्वप्नगत भूप्रदेश भेदोंमें भी अनंत जगतोंका संभव दिखानेको है मैं जाग्रत् तथा स्वप्न पृथिवीमण्डलके समूहरूप मैंने पृथिवीके उन स्थानरूप हृदयमें ईश्वरसाक्षीदृष्टिसे देखे और विचारपूर्वक अनुभवभी किया ॥ २ ॥ उस पर्वतकी शिलामें जैसे अनेक ब्रह्मांड मैंने देखे थे ऐसे पृथिवी आदिके सब स्थानोंमें अनेक जगत् समूहको स्थित दखा, यथार्थमें तो यह सब दृश्य द्वैतमय होनेपर शान्त परमात्मामय है ॥ ३ ॥ क्योंकि सर्वत्र अनेक जगत् भी हैं और सर्वत्र ब्रह्मभी स्थित है, तथा सब शून्य शांत है और सब कार्य्योंके आरंभमें व्यग्र है ॥ ४ ॥

सर्वत्रैवास्तिपृथ्व्यादिस्थूलंतच्चनकिंचन ॥ चिद्व्योमैवयथास्वप्नपुरंपरमजातवत् ॥ ५ ॥ नेहनानास्तिनोनानाननास्तित्वंनचास्तिता ॥ अहमित्येवनैवास्तियत्रतत्रकुतोस्तिकिम् ॥ ६ ॥ अनुभूतमपीदंसदहमित्यादिरूपकम् ॥ नास्त्येवयदिवाप्यस्तितद्ब्रह्माजमनामयम् ॥ ७ ॥ यत्स्वप्नपुरमेवेदंसर्गादावेवचिन्नभः ॥ अस्तितानास्तितेतत्रकीदृशेककुतःस्थिते ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्वत्र स्थूल पृथिवी आदि है, और यथार्थमें कुछ नहीं किन्तु अनुत्पन्न गन्धर्वनगरके समान सब चिदाकाशही है ॥ ५ ॥ यहांपर न एक है न अनेक हैं न अस्ति है न नास्ति है जहां एक अनेकका कोई अभिमानी वही नहीं है तहां और क्या होसकताहै ॥ ६ ॥ अनुभूतभी अहंपदवाच्य यथार्थमें नहीं है और जो कुछ है वह निरामय अज ब्रह्मरूपही है ॥ ७ ॥ क्योंकि सृष्टिके पूर्व चिदाकाशही है और उसमें दृष्ट भी जगत् चिद्रूपही है, तो उसमें अस्तिता नास्तिता कैसी ! कहां ! और किस हेतुसे हो सकती है ? ॥ ८ ॥

यथाहंदृष्टवांस्तानिजगन्त्यवनिरूपधृक् ॥ तथामयाजलीभूयदृष्टंतादृशमेवतत् ॥ ९ ॥ वारिधारणयावारिभूत्वाजडमिवाजडम् ॥ समुद्रमन्दिरेष्वन्तश्चिरंगुलगुलायितम् ॥ १० ॥ तृणवृक्षलतागुल्मवल्लीनांस्तम्भनादिषु ॥ मृद्वलक्षितमारूढंतवांगेष्विवयूकया ॥ ११ ॥ सर्वोत्थानोपमास्तम्भेतच्छेदेवलयोपमा ॥ मृद्व्याकर्णाहिगत्येवरचनाप्रकृतादरे ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे पृथिवीका रूप धारण करके मैंने अनेक जगत् देखे ऐसेही जलका रूप धारण करके वैसाही देखा ॥ ९ ॥ जलकी धारणासे चिद्रूप होके भी जडजलरूप होके समुद्ररूप मन्दिरोंके भीतर *चिरकालतक अव्यक्त गुडगुड शब्द किया ॥ १० ॥ हे रामजी ! तृण, लता तथा गुल्मादिकोंमें ऐसे अलक्षितरूपसे मैं रहताथा जैसे तुमारे अंगोंमें यूक (जुआं)॥ ११ ॥ उन तृणादिकी ऊर्ध्व स्थिति अथवा उनके पर्वादि भेदोंमें कोमल वलयाकार रचनास्थितिसे मैं रहताथा ॥ १२ ॥

वल्लीतमालतालादिपल्लवेषुफलेषुच ॥ विश्रम्य्पुष्ट्याकृत्यारेखाविरचनंकृतम् ॥ १३ ॥ मुखे*विश्यहृदयमृत्तुवैधर्म्यधारिणा ॥ हृताविधुरिताभुक्ताल्लूनादेहेषुधातवः ॥ १४ ॥ सुसंपल्लवतल्पेषुप्रालेयकणरू

पिणा ॥ तुल्यकालमशेषेषुदिक्षुसर्वास्वखेदिना ॥ १५ ॥ नानाहृदनदीगेहग्राहिणाविरताध्वना ॥ विश्रान्तंसेतुसुहृदःप्रसादेनक्कचित्क्कचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—लता तमालादि वृक्षोंके पत्र पुष्प तथा फलादिमें रसरूपसे विश्राम करके कालसे पुष्ट पत्रादि आकारसे उनमें नाडी (नस) की रेखा भी मैंने रची ॥ १३ ॥ तथा जलपानके समयमें मुखके द्वारा प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके ऋतुयुक्त विषमता रूपधारी मैंने वात पित्त तथा कफादि धातुओंको कहीं धारण किया कहीं विषम किया और कहीं नष्ट किया ॥ १४ ॥ एककालमेंही सब दिशाओंमें खेदरहित मैंने हिमके कणकारूप धारण करके पल्लवरूप शय्याओंपर शयन भी किया ॥ १५ ॥ नानाप्रकारके हृदयरूप नदियोंके गृहोंमें निरन्तर प्रवाहरूप मार्गसे थकित होकर सेतुरूपी मित्रके प्रसाद (उत्तम स्थान) द्वारा कहीं २ विश्राम भी किया ॥ १६ ॥

चिदाचिदनुसंधानाज्जडेनतदनाश्रयात् ॥ जडाशयेषूल्लसितंजलेनावर्त्तवर्त्तिना ॥ १७ ॥ मयादुष्कृतिनेवोर्ध्वशिलास्वस्थेनभूभृताम् ॥ स्वावर्त्तवर्त्तिनाश्वभ्रपातेषुशतधागतम् ॥ १८ ॥ धूमरूपेणनिर्गत्यदारुभ्योगगनार्णवे ॥ कणरत्नेननीलक्ष्मण्यंतर्वर्तिनास्थितम् ॥ १९ ॥ विश्रान्तमभ्रपीठेषुविद्युद्वनितया सह ॥ भिन्नेन्द्रनीलनीलेनशेषांगेष्विवशौरिणा ॥ २० ॥

अर्थ—चैतन्यसे अचिदंशका अनुसंधान न करनेसे जड (ल) रूप मैंने जडा (ला) शयोंमें आवर्तरूप अनेक भ्रमोंमें विलास किया ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तार्थ भृगुपातमें प्रवृत्त पापीके समान मैं पर्वतोंकी शिलाओंसे अस्वस्थतासे चलके गर्तपातोंमें शतधा जीर्ण होगया ॥ १८ ॥ काष्ठोंसे धूम्रवर्णसे निकलकर आकाशरूपी समुद्रमें नीलवर्ण तारागणके भीतर रत्नके कणरूपसे स्थित रहा ॥ १९ ॥ मेघोंके पीठोंमें विद्युतरूपी वनिताके साथ नीलवर्ण मैंने ऐसे विश्राम किया जैसे शामवर्ण भगवान् लक्ष्मीके साथ शेषके अंगोंपर ॥ २० ॥

परमाणुमयेसर्गेपिण्डरूपेष्वलक्षितम् ॥ स्थितमन्तःपदार्थेषुब्रह्मणेवाखिलात्मना ॥२१॥ प्राप्यजिह्वाणुभिःसंगमनुभूतिःकृतोत्तमा ॥ यामात्मनोनदेहस्यमन्येज्ञानस्यकेवलम् ॥ २२ ॥ नमयानचदेहेननान्येनास्वादितात्मयत् ॥ तदन्तर्विवृतंचेत्यमज्ञानायतदप्यसत् ॥ २३ ॥ सर्वर्त्तुरसरूपेणनानामोदानिदिक्ष्वलम् ॥ भुक्तानिपुष्पजालानिप्रोच्छिष्टंददतालये ॥ २४ ॥

अर्थ—पिपीलिकादि अति सूक्ष्म शरीरोंमें उनके नाडी आदि स्थानोंमें अलक्षितरूपसे ऐसे स्थितथा जैसे संपूर्ण पदार्थोंमें ब्रह्म ॥ २१ ॥ मधुररसादि रूपधारी मैंने जिव्हारूप परमाणुके साथ समागम प्राप्त करके उन रसोंके साक्षात्काररूप उत्तम अनुभवको साक्षात्कार किया, जिस अनुभवको मैं केवल ज्ञानरूप आत्माका आकार मानताहूं न कि देहका ॥ २२ ॥ और जो विषयांश दुःख है उसको न मैंने, न देहने और न जीवने आस्वादन किया, क्योंकि चेतनने जिसको दुःख वा विषयरूपसे प्रकाशित किया है वह असत् और जीवोंके व्यामोहके लिये है ॥ २३ ॥ तथा सब ऋतुओंके रसरूपसे दिशाओंमें नानाप्रकारके सुगन्धको अपना उच्छिष्ट भ्रमरको देतेहुये मैंने अस्वादित किया ॥ २४ ॥

चतुर्दशप्रकाराणांभूतानामंगसंधिषु ॥ उषितंचेतनेनेवजडेनाप्यजडात्मना ॥ २५ ॥ सीकरोत्कररूपेणरथमारुह्यमारुतम् ॥ आमोदेनेवविहितंविमलव्योमवीथिषु ॥ २६ ॥ रामतस्यामवस्थायांपरमाणुकणंप्रति ॥ अनुभूतमशेषेणयथास्थितमिदंजगत् ॥ २७ ॥ अजडेनजडेनेवसमयाजालयातया ॥ अन्तःसर्वपदार्थानांज्ञाताज्ञातेनसंस्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—चौदह प्रकारके जीवोंके अंगोंकी सधियोंमें कल्पना करके जड (ल) रूपधारी यथार्थमें चेतन रूपसे मैंने निवास किया ॥ २५ ॥ जलके कणरूपधारी मैंने पवनरूपी रथपर आरूढ होके विमल आकाशरूप राजमार्गोंमें मनुष्योंको सुगन्धसे प्रसन्न करते हुये विहार किया ॥ २६ ॥ हे रामजी ! उस अवस्थामेंभी परमाणुके कणमेंभी संपूर्णरूपसे स्थित इस जगत्को मैंने अनुभव किया ॥ २७ ॥ उस जलकी धारणासे सब पदार्थोंके आभ्यन्तरके ज्ञाता शुद्धरूप होके भी जड (ल) के समान सर्वत्र स्थित था ॥ २८ ॥

जगतांतत्रलक्षाणिनाशोत्पातशतानिच ॥ मयादृष्टानिरूढानिकदलीदलपीठवत् ॥ २९ ॥ एवंजगच्चाजगद्वासाकारंवानिराकृति ॥ चिन्मात्रगगनंसर्वमाकाशाधिकनिर्मलम् ॥ ३० ॥ नकिंचनत्वंचनकिंचनेदंशुद्धःपरोबोधइदंविभाति ॥ सचापिनोकिंचननापिशून्यमाकाशमेवासिविकासमास्व ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० जलजगद्वर्णन नाम नवतितमःसर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—हे रामजी ! केलाके दलके समान वहांपर अनेक ब्रह्मांडको तथा उनके लाखों उत्पात और नाशकोभी मैंने देखे ॥ २९ ॥ इसप्रकार अनेक जगत् वा उसका अभाव, (स्थावर) साकार वा निराकार सब आकाशसेभी निर्मल चिन्मात्र परमात्माही है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! तीनों अवस्था सहित यह तुमारा शरीर तथा यह संपुर्ण बाह्य दृश्य भी कुछ नहीं है, शोधितत्त्वं पदार्थरूप बोध कुछ नहीं है किन्तु बोधरूप परमात्माही सब कुछ है इसलिये तुम सब द्वैतका बाध करके शुद्ध चिदाकाशरूपसे स्थितरहो ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणो० भाषानुवादे जलजगद्वर्णनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस ९१ के सर्गमें तेजकी धारणासे सूर्य्य चन्द्र अग्नि तथा अन्यरत्नादिको वसिष्ठने देखा है उन सबको वर्णन कियाहै॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोहमभवंतेजस्तेजोधारणयेद्धया ॥ चंद्रार्कतारकाग्न्यादिविचित्रावयवान्वितम् ॥ १ ॥ नित्यंसत्वप्रधानत्वात्प्रकाशाकृतिराजगत् ॥ सर्वदृश्यमृतेसर्वचौरध्वान्तप्रतापयुक् ॥२॥ दीपादिभिःशनैःस्निग्धैर्दशाशतविहारिभिः ॥ प्रत्यक्षीकृतसर्वार्थंप्रतिगेहंसुराजवत् ॥ ३ ॥ लोकालोकेचहृषितैश्चन्द्रार्काद्यंशुरोमभिः ॥ परप्रकाशैकरतैर्दूरोत्क्षिप्ताम्बराम्बरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! इसके पश्चात् प्रदीप्त तेजकी बडीहुई धारणासे मैं सूर्य्य, चन्द्र, तारागण तथा अग्नि आदि अनेक विचित्र अवयव युक्त तेज होगया ॥ १ ॥ नित्य सत्वप्रधान होनेसे संपूर्ण जगत्में प्रकाशाकृति और चोररूपी अन्धकारोंमें प्रतापशाली तेजरूपधारी मैं संपन्न हुआ ॥ २ ॥ उत्तम राजाके समान अनेकदशा (बत्ती तथा अवस्था) से बिहारी दीपादिसे संपूर्ण पदार्थोंको प्रत्यक्ष करतेहुये मैं तेजरूप होगया ॥ ३ ॥ अन्यके प्रकाशमें तत्पर इसीसे सब प्राणियोंके प्रकाशमें अति प्रसन्न सूर्य्यचन्द्रादि किरणरूप रोमोंसे आकाशके अन्धकार रूप वस्त्रको दूर फेंकते हुये मैंने तेजरूप धारण किया ॥ ४ ॥

अन्धकारस्यदैन्यस्यसमस्तगुणनाशिनः ॥ दृश्यंसदृश्यमनिशंसर्वस्यगुणशालिनः ॥ ५ ॥ तमस्तमालपरशुःपरशुद्धिकरंपदम् ॥ सुवर्णमणिमाणिक्यमुक्तादिजनजीवितम् ॥ ६ ॥ शुक्लकृष्णारुणादीनांनित्यंज्योत्स्नांगशायिनाम् ॥ पुत्राणामिववर्णानांसर्वेषांदेहदःपिता ॥ ७ ॥ घनस्नेहरसंपृथ्व्यारक्षितानलवेधनम् ॥ गृहंप्रतिघनानन्दैर्वृतदीपकपुत्रकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंको दृष्टिके अविषय करनेवाले और रूपादि गुणोंके नाशक अन्धकाररूप दीनताका सर्वथा निवर्तक तथा उत्तम दृश्य जगत्को प्रत्यक्ष कारक तेजरूप मैंने धारण किया ॥ ५ ॥ अन्धकाररूपी तमालवृक्षके लिये परशुवत् (खंडक) अत्यन्त शुद्धिका स्थान, सुवर्ण, मणि, माणिक्य, तथा मुक्तादिके रूपसे प्राणियोंके जीवनका हेतु ॥ ६ ॥ प्रकाशरूप अंगपर नित्य शयनशील शुक्ल कृष्ण तथा अरुण आदि सब वर्णोंके ऐसे जन्मदाता जैसे पुत्रोंका पिता तेजरूप मैंने धारण किया ॥ ७ ॥ पृथिवीसे घनीभूत रस (प्रीति) युक्त इसीसे पार्थिव भागकी रक्षा करके अन्यको जलानेवाला इसीप्रकार पृथिवीनेभी प्रीतिके कारण प्रतिगृहमें भित्तिप्रासादादिकोंसे वायु आदिके अभिघातसे रक्षित दीपकरूप पुत्रसहित तेजरूप मैंने धारण किया ॥ ८ ॥

दृष्टंपातालकेष्वीषत्तमोरूपेषुपावकम् ॥ अर्धदृष्टंरजोरूपेभूतलेभूतमालिते ॥ ९ ॥ सत्वात्मसुमहास्वंनित्यत्वंदेवसद्मसु ॥ जगज्जीर्णकुटीदीपःकूपोम्भस्तमसोमहान् ॥ १० ॥ दिग्वधूविमलादर्शोनिशानीहारमारुतः ॥ सत्वंचन्द्रार्कवह्नीनांकुंकुमालेपनंदिवः ॥ ११ ॥ केदारंदिनसस्यानांतमोच्छूनामनुग्रहः ॥ नभःकाचबृहत्पात्रक्षालनांबुसमुल्लसत् ॥ १२ ॥

अर्थ—तमोरूप पातालादिलोकोंमें किंचित् प्रकाशक और प्राणियोंसे वेष्टित रजोरूप भूतलमें अर्द्धप्रकाशक तेजरूपको मैंने अनुभव किया ॥ ९ ॥ और सत्वगुणमय देवताओंके स्थानोंमें अति प्रकाशक, जगत्रूप जीर्णकुटीका दीप और अन्धकाररूपी जलका अगाध कूप अर्थात् ग्रास करनेवाला तेजरूप होगया ॥ १० ॥ दिशारूपी स्त्रियोंका विमल दर्पण (प्रकाशक) रात्रिरूप कुहिरेका प्रचंड पवन अर्थात् नाशक, सूर्य्य चन्द्र तथा अग्निका जीवितसर्वस्व और स्वर्गरूप वधूका कुंकुमका अलेप तेजरूप धारण किया ॥११॥ दिनरूपी सस्योंकी क्यारी, क्षेत्र (खेत)अन्धकारसे ग्रस्त रूपादिके ऊपर अनुग्रहकारक, आकाशरूप महान् कांचके पात्रके प्रक्षालनार्थ उत्तम जल तेजोरूप मैंने धारण किया ॥ १२ ॥

सत्ताप्रदतयार्थानांप्रकाशकतयापिच ॥ चिन्मात्रपरमार्थस्यसहोदरइवानुजः ॥ १३ ॥ क्रियाकमलिनीभानुर्भूतलोदरजीवितम् ॥ रूपालोकमनस्कारचमत्कारश्चितेर्यथा ॥ १४ ॥ नभस्तलगतासंख्यनक्षत्रमणिमालितः ॥ दिनर्तुवत्सराबृंह्यवाडवाग्यादिफेनिलः ॥ १५ ॥ चंद्रार्कादितरंगांतरजडंपंकिलो महान् ॥ बृहद्ब्रह्मांडखातस्थोनित्यमेकार्णवोऽक्षयः ॥ १६ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंके सत्ताप्रद तथा प्रकाशक होनेसे चिन्मात्र परमार्थका सहोदर लघु[1] भ्राता ॥ १३ ॥ क्रियारूप कमलिनीके सूर्य्य, भूतलके जीवनका हेतु, वृत्तिमें आरूढ चेतनके समान चाक्षुष विषयोंके आवरक अन्धकारका निवर्तक होनेसे चमत्काररूप तेज मैं सिद्ध होगया ॥ १४ ॥ आकाशस्थ असंख्य नक्षत्ररूप मणियोंसे वेष्टित तथा वृद्धिको प्राप्त दिन, ऋतु, वर्षादिरूप वडवाग्नि आदिके क्षोभसे कणयुक्त ॥ १५ ॥ तथा सूर्य्य चन्द्रादिरूप तरंगोंके आभ्यन्तर विस्तृत धूलियोंसे जलके बिनाभी महान् पंकसहित और महाब्रह्मांडरूपी खन्दकमें स्थित महा अक्षय समुद्र रूप तेज-वेषधारी मैं होगया ॥ १६ ॥

हेमादिषुसुवर्णत्वंनरादिषुपराक्रमः ॥ काचकच्यंचरत्नादौवर्षादिष्ववभासनम् ॥ १७ ॥ ज्योत्स्नामुखेन्दुबिम्बेषुपक्ष्मलेक्षणलक्ष्मसु ॥ स्रवत्स्नेहामृतापूरोहाससौहार्दभासनम् ॥ १८ ॥ कपोलबाहुनेत्राक्षिभ्रूकरालकलासकः ॥ निजोऽजेयतयाजातोविलासःकामिनीजने ॥ १९ ॥ तृणीकृतत्रिभुवनचपेटास्फोटितद्विषाम् ॥ शिरःसुवज्रीकरणंवीर्यंसिंहादिचेतसि ॥ २० ॥

अर्थ—और तेजकी धारणासे धातुओंमें मैं सुवर्ण रूप, मनुष्यादि जीवोंमें पराक्रम रूप, रत्नादिमें अपूर्व कान्ति और वर्षा आदिमें विद्युत्प्रकाशरूप मैं होगया ॥ १७ ॥ पलकलगने वाले नेत्रलक्ष्म (चिन्ह) युक्त मुख सदृश चन्द्रबिंबोंमें चन्द्रिका रूप, तथा मुखलक्षणयुक्त चन्द्रबिंबोंमें चन्द्रिका समान द्रवीभूत स्नेहामृतका प्रकाश मैं होगया ॥ १८ ॥ तथा कामिनी जनोंमें कपोल, बाहु, नेत्र, (भोंह) हस्त तथा केशादिकी सुन्दरताका प्रकाशक और अजेय कामका बिलास हुआ ॥ १९ ॥ त्रिभुवनको तृणके समान समु झनेवालेभी और अपनी चपेटाओंसे निज शत्रुओंको कँपानेवाले वृत्र आदि असुरोंके शिरोंपर वज्रप्रहार तथा सिंह आदिके चित्तमें पराक्रम रूप मैं होगया ॥ २० ॥

कटुकंकटकुट्टाकखड्गसंघट्टटांकृतैः ॥ पटुस्फुटाटोपरटिभटेष्वटनमुद्भटम् ॥ २१ ॥ देवेषुदानवारित्वंसुरारित्वंसुरारिषु ॥ सर्वभूतेषुस्वोजस्त्वमुन्नामःस्थावरादिषु ॥ २२ ॥ अथतेमरुवद्भास्वांस्तत्राहमनुभूतवान् ॥ जगदाकाशकोशेषुतेषुतामरसेक्षण ॥ २३ ॥ दिगंतदशनिस्तीर्णैःकरजालैर्जगत्खगम् ॥ गृह्णदद्र्यंगमर्कत्वंग्रामवद्दृष्टभूतलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और योधाओंमें कठोर लोहमय कवचोंके काटनेवाले तरवारोंके परस्पर संघर्षजनित टंकारशब्दोंसे पराक्रमका वर्द्धक तेजरूप मैं होगया ॥ २१ ॥ देवताओंमें दानवारित्व असुरोंमें सुरारित्व, तथा सब प्राणियोंमें बल और स्थावरोंमें उन्नतरूपता मैं होगया ॥ २२ ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! निजधारणासे कल्पित आकाशके कोशोंमें इस तुमारे प्रसिद्ध मरुस्थलीके सदृश सूर्य्य होके मैंने निजस्वरूपमेंही वक्ष्यमाण पदार्थोंका अनुभव किया ॥ २३ ॥ दशोंदिशाओंमें विस्तृत किरणोंके द्वारा पर्वतादिरूप अंगयुक्त जगत्‌रूपी पक्षीको ग्रहण करनेवाले तथा ग्रामके सदृश अल्पपरिमाणसहित भूतलको देखनेवाले सूर्य्यरूपताका अनुभव मैंने किया ॥ २४ ॥

कामोत्पलेकोशचक्रंवाडवंतिमिरार्णवे ॥ ब्रह्मांडसदनेदीपंवृक्षंदिनफलावलेः ॥ २५ ॥ रसायनह्रदाकारमिंदुत्वंवदनंदिवः ॥ निशानिशाचरीहासंविकासंरजनीविशाम् ॥ २६ ॥ जगल्लावण्यलक्ष्मीणांसर्वासामुपमास्पदम् ॥ रजनीरोहिणीनारीकैरवाणांपरंप्रियम् ॥ २७ ॥ नेत्रवृंदस्यवक्रस्यद्युलतापुष्पजालकम् ॥ स्वर्गौंधमशकव्यूहंतारकापटलंमृडु ॥ २८ ॥

अर्थ—चन्द्रमाके दर्शनके अभिलाषी कमल (कुमुदिनी) के बन्धनके अर्थ चक्र, अन्धकारमय समुद्रमें वडवानल, ब्रह्मांडरूपी स्थानमें दीप और दिनरूपी फलकी पंक्तियोंके वृक्षरूप सूर्य्यत्वका मैंने अनुभव किया ॥ २५ ॥ तथा अमृतके ह्रदाकारधारी, अन्तरिक्षके मुखके समान, रात्रिरूप व्यभिचारिणी स्त्रीके हास्यके समान और रात्रिमें प्रवेशादि व्यवहार करनेवालोंका प्रकाशक चन्द्ररूपताकाभी अनुभव मैंने कियाहै ॥ २६ ॥ संपूर्ण जगत्‌के सुन्दरताकी लक्ष्मियोंके उपमाका स्थान, तथा रात्रि, रोहिणी, स्त्री और कुमुदिनियोंको और सब प्राणियोंके नेत्रसमूहोंका और मुखका आनंदजनक और

---

(१) जडतारूप निकृष्टतासे छोटाभ्राता ।

खिलानेका हेतु होनेसे परमप्रिय चन्द्ररूपताको मैंने अनुभव किया ॥ २७ ॥ तथा आकाशरूपी लताके पुष्पजालके समान और स्वर्गसुखरूप अमृतप्रवाहमें आसक्त मच्छरोंके समूहके सदृश कोमल तारागणरूपताको भी मैंने अनुभव किया॥२८॥

वणिग्मात्रेवणिग्घस्ततुलातोलनदोलितम् ॥ रत्नत्वंजलकल्लोलहस्तान्दोलनमब्धिभिः ॥ २९ ॥ अब्धाब्धौशफरावर्त्तमब्धागोमञ्जरीगणः ॥ अब्दादौदावदहनंवैद्युतंद्योतनंतनौ ॥ ३० ॥ दारुदारणदुर्वारदीप्तंज्वलनमाततम् ॥ यज्ञाग्निदाहकल्याणंविस्फोटकठिनारवम् ॥ ३१ ॥ कचत्कांचनमाणिक्यमुक्तामणिमयंमहः ॥ तपस्तांनीतमाक्षिप्यपाण्डित्यमिवपामरैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा हट्टाओं (बाजारों) में वैश्योंके हांथोंसे कांटाओंसे आन्दोलित (झुलाया) और पर्वकालमें समुद्रोंके तरंगरूप हांथोंसे आन्दोलित (झुलायेहुये) रत्नत्वकाभी अनुभव मैंने किया॥२९॥तथा समुद्रमें जल पीनेवाला वडवानल होकर अपनेसे काया भयभीत मत्स्योंके परिभ्रमणके कौतुक सुर्य्यकिरण होके निजशरीरप्रकाश तथा मेघ, पर्वत आदिमें प्रवेश करके दावानल तथा विद्युत् रूपताको अनुभव किया ॥ ३० ॥ और अग्निरूप होके काष्ठोंके भस्म करनेमें निमित्तभूत दुर्निवार चटचटाशब्दोंके साथ ज्वलनको और यज्ञकी अग्नि होके हविषके दाहरूप कल्याणकाभी अनुभव मैंने कियाहै ॥ ३१ ॥ तथा अग्नि होके दीप्यमान सुवर्ण माणिक्य मुक्ता और मणि आदिके गृहको भस्म करके उनके स्वामिओंको ऐसे शोकयुक्त किया जैसे मूर्ख पण्डितको ॥ ३२ ॥

विश्रान्तंस्तनशृंगेषुमुक्ताहारतयातया ॥ असुरोरगगंधर्वनरनायकयोषिताम् ॥ ३३ ॥ पादाहतिंगतंमार्गेतिलकत्वंवधूमुखे ॥ खद्योतेनमयालब्धंपश्यावस्थासुचापलम् ॥ ३४ ॥ क्वचिद्विद्युत्तयातेषुशफर्याचार्णवेष्विव ॥ खस्थेषुविकृतंचारुवार्यावर्त्तविराविषु ॥ ३५ ॥ क्वचिद्दीपतयानीयकलिकाकोमलांगया ॥ अन्तःपुरेषुकांतानांसुरतालोकनंकृतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—सुर, असुर, उरग,गन्धर्व तथा राजाओंकी स्त्रियोंके स्तनरूपी शृगोंपर मोतियोंके हाररूपताका मैंने अनुभव कियाहै ॥ ३३ ॥ और खद्योतरूप धारण करके मैंने मार्गमें पादप्रहार, तथा स्त्रियोंके मुखपर तिलकत्वको अनुभव किया, स्थानके भेदसे इस अनियत चपलताको देखो ॥ ३४ ॥ जलके आवर्तोंसे शब्दायमान मेघपटलोंमें विद्युत्रूप धारणकरके सुन्दरतापूर्वक मैंने ऐसे चेष्टा की जैसे समुद्रोंमें शफरीनामक मत्स्य ॥ ३५ ॥ कहीं पुष्पकलिकाके सदृश कोमलांग दीपरूपसे अन्तःपुरोंमें स्थापित मैं वे ललनाओंके सुरतका दर्शन भी किया ॥ ३६ ॥

क्वचित्कज्जलजालस्यज्वालाकनकदाकृते ॥ खेदिनाघनकूर्माभंसंगेनैवस्वकोटरे ॥ ३७ ॥ कल्पान्तेषुक्वचित्सर्वजगद्भ्रमघनश्रमात् ॥ खेकज्जलासितेलीनंरुद्रेभइवविद्युता ॥ ३८ ॥ क्वचिदाकल्पमापीयवाडवाग्नितयाजलम् ॥ जगत्सुगगनेष्वन्तेनन्नृतेजलराशिषु ॥ ३९ ॥ क्वचिदुल्मुकदन्तेनमयाज्वालाभुजात्मना ॥ विलोलधूमावर्त्ताग्रकुन्तलेनाकुलौजसा ॥ ४० ॥ पुरपल्लवदाहेषुकवलीकृतजन्तुना ॥ कृताः कृताष्टकाष्ठादिपदार्थाःखादनोचिताः ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्वालारूप सुवर्णको खण्डन करनेवाले आकारयुक्त निजकोटरमें वर्तिकाके अग्रभागमें प्रवृद्ध कज्जलसमूहके संगसे मन्दप्रभायुक्त दीपरूपधारी मैंने ज्वालांदेके संकोचसे कूर्माकाररूप धारण किया ॥ ३७ ॥ कभी कल्पान्तकी अग्निरूपधारी मैं प्रलयमें अनेक जगत्में भ्रमणपूर्वक जलानेके महाश्रमसे कज्जलमें ऐसे लीन होगया जैस इन्द्रके वाहनभूत कृष्णमेघमें विद्युत् ॥ ३८ ॥ कहीं वडवानलरूपमें कल्पान्तपर्य्यन्त जलपान करके शून्यताको प्राप्त जलराशियोंमें अन्तमें नृत्य किया ॥ ३९ ॥ कहीं उल्मुकरूप दन्तयुक्त ज्वालारूपी भुजासे भूषित और चंचल धूमावर्तके अग्रभागरूप कुन्तलसे शोभित अग्निरूपधारी मैंने नगररूप पल्लवोंके जलाते हुये मैंने जन्तुओंका नाश करनेसे काष्ठादि पदार्थोंको भक्षणयोग्य करदिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥

हतेनशस्त्रपाषाणैरयःपिंडादिवासिना ॥ हन्तृदाहार्थमुद्गीर्णाःकणकोपलताःक्वचित् ॥ ४२ ॥ क्वचिन्महाशिलाकोशेपाषाणमणिनामया ॥ समस्तभूतादृश्येनस्थितंयुगशतान्यपि ॥४३॥ श्रीरामउवाच ॥ मुनेतस्यामवस्थायामनुभूतंत्वयासुखम् ॥ उतदुःखमितिब्रूहिबोधायममानद ॥ ४४ ॥

अर्थ—कहीं कमीरकी शालाओंमें लोहपिंडनिवासी मैंने मुद्गर तथा पाषाणोंसे ताडित होकर ताडयिताके दाहार्थ विस्फुलिंग तथा पाषाणखण्डोंको उगिला ॥ ४२ ॥ कहीं पाषाणके खण्डोंमें वज्र वैदूर्य्यादि मणिरूपधारी और समस्त भूतोंसे अदृश्यरूप मैंने सैकडोंयुगपर्य्यन्त निवास किया ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे मुने ! उस पाषाणादिमयी अवस्थामें आपने सुखका अनुभव किया वा दुःखका यह विषय मेरे बोधके लिये कहिये ॥ ४४ ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ यथायातिनरःसुप्तोजडतांचेतनोऽपिसन् ॥ चिद्व्योमगच्छेद्दृश्यत्वंतथाजाड्यंप्रचेतति ॥ ४५ ॥ आत्मानंचेततिब्रह्मपृथ्व्यादीवयदातदा ॥ सुप्तंजडमिवास्तेऽन्तःस्यादस्यनतदन्यथा ॥ ४६ ॥ वस्तुतस्तस्यखोर्व्यादिनासद्रूपंनसन्मयम् ॥ द्रष्टृदृश्यमिवाभातिब्रह्मैवैतत्समंस्थितम् ॥ ४७ ॥ एतत्सत्यपरिज्ञानंयस्योत्पन्नमखण्डितम् ॥ नतस्यपंचभूतानिनदृश्यद्रष्टृविभ्रमः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे चेतनभी मनुष्य शयन अवस्थामें जडताको प्राप्त होताहै ऐसेही चिदाकाशभी दृश्यरूप होके जडताका अनुभव करताहै ॥ ४५ ॥ जिस समयमें ब्रह्म अपनेको पृथिवी आदि रूपसे अनुभव करताहै तब सुषुप्तके समान अन्तःकरणमें रहताहै, उसका कुछ अन्यथाभाव नहीं होता इसलिये उसको दुःखका प्रसंग कहां ॥ ४६ ॥ यथार्थमें तो आकाश, पृथिवी आदि उसके न सत् न असद्रूप हैं किन्तु द्रष्टा तथा दृश्यरूपके सदृश वह अविकाररूपसे भासता है ॥ ४७ ॥ जिसको यह अखण्डित सत्य ज्ञान उत्पन्न हुआहै उसको न पंचभूत हैं और न द्रष्टा दृश्यका भ्रम है ॥ ४८ ॥

तदामयैवंशुद्धेनतत्कृतंब्रह्मरूपिणा ॥ ब्रह्मरूपादृतेकिंचिदेतत्कर्त्तुर्नयुज्यते ॥ ४९ ॥ यदासर्वमिदंदृश्यंजातंब्रह्मनिरामयम् ॥ तदाब्रह्मपदस्थेनमयात्मैवैवमीक्षितः ॥ ५० ॥ यदापुनरहंपंचभूतानीत्येवभासयन् ॥ भवामिजडएवाहंतदाचेतामिकिंकिल ॥ ५१ ॥ सुप्तोस्मीतिदृढंभावंबुद्धवांश्चेतनोपिसन् ॥ नैद्रमेवैत्यलंजाड्यंलसच्चेततिकिंचन ॥ ५२ ॥

अर्थ—उससमय शुद्ध ब्रह्मरूपसे यह सब मैंने किया क्योंकि ब्रह्मरूपके बिना यह कुछ नहीं बन सकता ॥ ४९ ॥ जब यह सब दृश्यसमूह निरामय ब्रह्मरूप होगया उससमय ब्रह्मपदस्थ मैंने अपनेको ऐसा देखा ॥ ५० ॥ ये पंचभूत हैं इसप्रकार प्रकाश करतेहुये अर्थात् मणिआदिरूप अपनेको जानतेहुये यदि मैं सर्वथा जडही होजाऊं तो किसको कैसे अनुभव करसकता हूं ॥ ५१ ॥ मैं सुप्त हूं इस दृढभावको चेतन होकरभी जाना क्योंकि सुषुप्तिकालमेंभी निद्रासमयके अज्ञानको स्वप्रकाश आत्मा जानताही है ॥ ५२ ॥

यस्तुज्ञानप्रबुद्धात्मादेहस्तस्याधिभौतिकः ॥ शाम्यत्युदेतिविमलोबोधात्मैवातिवाहिकः ॥ ५३ ॥ आतिवाहिकदेहेनतेनबोधात्मनाणुना ॥ बृहतावायथाकामंनिर्वाणात्मावतिष्ठते ॥ ५४ ॥ बोधदेहेन हृदयंशिलानामप्यभेदिनाम् ॥ प्रविश्याशुविनिर्यातियातिपातालमम्बरम् ॥ ५५ ॥ तस्मान्मयापुराराम बोधदेहेनतत्तदा ॥ तथाकृतमनन्तेनचिन्मयव्योमरूपिणा ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो ज्ञानसे प्रबुद्ध होजाताहै उसका आधिभौतिक देहान्त होजाताहै और विमलबोधरूप सूक्ष्मशरीरका उदय होताहै ॥ ५३ ॥ उस सूक्ष्म ज्ञानमय अणुरूप शरीरसे अथवा महान् शरीरसे अपनी इच्छाके अनुसार जीवन्मुक्त जीव स्थित रहताहै ॥ ५४ ॥ बोधरूप देहसे घनीभूत पाषाणादिके भीतरभी प्रवेश करके शीघ्र बाहर निकलजाताहै और पातालसे आकाशको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इस कारणसे उससमय चिदाकाश तथा अनन्त ज्ञानरूप मैंने पृथिवी आदिका रूप धारणकियाथा ॥ ५६ ॥

वज्रपाषाणपातालनभोम्बरगमागमान् ॥ कुर्वतस्तादृशस्याशुनविघ्नउपजायते ॥ ५७ ॥ बोधमात्रशरीरेणयावदास्तेजडेष्वसौ ॥ पदार्थेषुतथाभूतस्तावत्तत्रावतिष्ठते ॥ ५८ ॥ स्वेच्छयैवचलित्वाथततोन्यत्रप्रयातिचेत् ॥ तत्तत्रैवस्थितिंयातितत्तथैवागतिर्यथा ॥ ५९ ॥ बोधमात्रंविदुर्देहमातिवाहिकमव्ययम् ॥ इदानींत्वंतमेवेहबुधोनुभवसिस्वयम् ॥ ६० ॥

अर्थ—चित्स्वरूप आत्माको वज्र, पाषाण, पाताल, आकाश तथा स्वर्गादिमें शीघ्र गमनागमन करनेपरभी कोई विघ्न नहीं होताहै ॥ ५७ ॥ बोधमात्र शरीरसे आत्मा जबतक जडपदार्थोंमें रहताहै तबतक वह उसी रूपसे स्थित रहताहै ॥ ५८ ॥ यदि अपनी इच्छासे अन्यत्र जाना चाहताहै तो बिना चलन आदि दुःखसे वहां स्थिति पाताहै क्योंकि उसको गमनागमन तथा स्थिति समानही है ॥ ५९ ॥ बोधमात्रकोही आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर कहतेहैं और यदि तुम चाहो तो धारणासे उक्त शरीरको तथा जगद्भावको अनुभव करसकतेहो ॥ ६० ॥

चिन्मात्रव्योमरूपोस्मीत्यर्कादावितिबोधतः ॥ आत्मैवास्तमुपानीतःसन्नेवासन्निवात्मना ॥ ६१ ॥ स्थितंस्वप्नादिजगतितमसेवासतेवच ॥ आवृतेनेववान्यासामलभ्येनसतादृशम् ॥ ६२ ॥ तरंगलेखयांगारसरितःस्वांगलग्नया ॥ मनोराज्यश्रियेवाशुक्प्रोत्पन्नस्तद्वदेहया ॥ ६३ ॥ कज्जलालिकयावह्निविपिनंपुष्पशोभया ॥ फुल्लस्थलांबुजाकारांकिंशुकाशोकरूपया ॥ ६४ ॥ विततारम्भयाप्युच्चैर्ज्वालाज्वलतये

ह्वया ॥ उपोत्थायांगगलितंखललक्ष्म्येवलोलया ॥ ६५ ॥ तेजस्तयापिपरमाणुकणोदरेपिदृष्टेत्थमेव मिहरामयाजगच्छ्रीः ॥ अन्याचसानचचिदम्बरतःपरस्मात्स्वप्नेपुराचलगणोत्रनिदर्शनंवः ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने तैजसजगद्वर्णनं नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—सूर्य्यादिलोकमें मैं केवल चिद्रूपसे हूं इस बोधसे विद्यमानभी जगत्को असत्के समान प्राप्त करके आत्मामात्रसे स्थापन करनेके योग्य महात्माजन हैं ॥ ६१ ॥ जैसे जाग्रत्पुरुषकी दृष्टिमें विद्यमानभी स्वप्नजगत्में अज्ञानसे आवृत होनेके कारण असत् वा शून्य अथवा अन्यसुप्तपुरुपको अलभ्य स्वप्नके पदार्थादि भासते हैं ऐसेही ज्ञानीकी दृष्टिमें यह जाग्रत्भी असत् है ॥ ६२ ॥ जैसे कोई कौतुकी पुरुष मनोराज्यसे कल्पित अंगारकी नदीके तरंगलेखाके अंगोंमें लगजानेपरभी शोकरहित रहताहै ऐसेही किंचित् इच्छासे पाषाण, मणि आदि रूपसे अपनेको कल्पित करनेपरभी मुझे दुःखादि नहीं हुआ ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अग्निदशामें प्राप्त मैंने कज्जलरूप भ्रमरसमूहसे पूर्ण, तथा किंशुक और अशोकादिरूप पुष्पोंकी ज्वालासे प्रदीप्त अग्निसे व्याप्त बनको स्थलकमलके आकार करदिया ॥ ६४ ॥ तथा हे रामजी ! अतिप्रदीप्त दुष्टकी लक्ष्मीके समान शीघ्र वृद्धिको प्राप्त होके पुनः नष्ट होगया ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तेजरूपधारी मैंने परमाणुके कणमेंभी अनेक जगत्की शोभा देखी, वह जगत् तथा इस आपके जगत्की शोभा परचिदाकाशसे भिन्न नहीं है और इसमें तुमारे स्वप्नके नगर तथा पर्वतगण दृष्टांत है ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पा० भाषानुवादे तैजसजगद्वर्णनंनामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

वायुकी धारणासे वायु होनेपर उसके कर्मका विस्तार और पश्चात् आकाशरूप होके सर्वात्मसे स्थिति इस ९२ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवातमयींकृत्वाजगत्प्रेक्षणकौतुकात् ॥ धारणांधीरयावृत्त्याविततामहमागतः ॥ १ ॥ संपन्नोस्म्यनिलोवल्लीललनालोकलासकः ॥ कमलोत्पलकुंदादिजालकामोदपालकः ॥ २ ॥ सीकरोत्करनीहारहेलाहरणतत्परः ॥ सुरतश्रान्तसर्वांगसमाह्लादनतर्षुलः ॥ ३ ॥ तृणगुल्मलतावल्लीदलताण्डवपण्डितः ॥ लतौषधिफलोल्लासकुसुमामोदमण्डितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! इसके पश्चात् अनेक जगत् देखनेके कौतुकसे वायुकी धारणा करके वायुकी गतिपर्य्यन्त विस्तारताको प्राप्त होके लतारूप ललनाजनोंके विलासके हेतु, तथा कमल कुन्दादिके सुगन्धोंका पालक वायुरूप मैं होगया ॥ १ ॥ २ ॥ जलकण तथा नीहारादिके हरणमें लीलापूर्वक तत्पर और सुरतसे श्रान्त कामिजनोंके सर्वांगके आल्हादनमें लोभी वायुरूप मैं होगया ॥ ३ ॥ तृण, गुल्म तथा लता आदिके ताण्डवनृत्यमें प्रवीण तथा लता औषधि और फलोंके उल्लासों तथा पुष्पोंके सुगन्धसे भूषित वायुरूप मैं होगया ॥ ४ ॥

मृद्वमंगलकालेषुललनालोकलालकः ॥ भीमउत्पातकालेषुपर्णवत्प्रौढपर्वतः ॥ ५ ॥ नंदनेकुंदमंदारमकरंदरजोरुणः ॥ नरकंगारसंभारभूरिनीहारभासुरः ॥ ६ ॥ सागरेसरलावर्त्तलेखानुमितसर्पणः ॥ दिविवारिदसंचारमृष्टामृष्टेंदुदर्पणः ॥ ७ ॥ नक्षत्रक्षत्रसैन्यस्यरथोरंहोविवृंहितः ॥ त्रैलोक्यसिद्धसंचारविमानधरणेहितः ॥ ८ ॥

अर्थ—मंगलसमयमें भावीकल्याणके सूचनार्थ शीतल, मन्द तथा सुगन्धरूप होनेसे ललनाओंको प्रीतिजनक और उत्पातसमयमें भयंकररूप धारण करके दृढपर्वतोंकोभी पत्तोंके समान उडानेवाला वायुस्वरूप मैं होगया ॥ ५ ॥ स्वर्गस्थ नन्दनबनमें कुन्दमन्दारादिके रजसे अरुण और नरकमें अंगारके समूहसे महान् नीहारके तुल्य भासमान वायुरूप मैं होगया ॥ ६ ॥ तथा समुद्रोंमें सरल आवर्तकी लेखाओंसे अनुमित गमन और मेघोंके हटानेसे स्वच्छ और आच्छादन करनेसे मलिनतायुक्त चन्द्रमण्डलको रचनेवाला वायुरूप मैं होगया ॥ ७ ॥ तथा नक्षत्ररूपी राजसेनाके रथको वेगसे बढानेवाला और त्रैलोक्यमें संचारी सिद्धोंके विमानोंको धारण करनेमें अनुकूल वायुरूप होगया ॥ ८ ॥

सहोदरइवक्षिप्रगामित्वादस्यचेतसः ॥ अनंगोपिसमस्तांगःस्पंदानंदनचंदनः ॥ ९ ॥ तुषारसीकरासारजरारोमविजर्जरः ॥ आमोदयौवनोन्मादोमौनमार्दवशैशवः ॥ १० ॥ नंदनामोदमधुरामधुरोदारसंस्रुतिः ॥ चारुचैत्ररथोन्मुक्तोहृतकांतारतश्रमः ॥ ११ ॥ चिरंगंगातरंगांगदोलांदोलनसश्रमः ॥ श्रमस्वरूपाज्ञतयानिवारिततत्तश्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—शीघ्रगामी होनेसे इस चित्तके सहोदर भ्राताके समान, अंगशून्य होनेपरभी समस्तांग तथा संचलनसे चन्दनबनको आनन्ददायक वायुरूप मैंने धारण किया ॥ ९ ॥ तुषारादिके कणरूप वृद्धावस्थाके रोमोंसे वृद्धके समान, पुष्पादिके सौगन्ध्यसे यौवनावस्थाके उन्मादीके तुल्य तथा मौन और मृदुतामें बालकके सदृश पवनरूप मैंने धारण किया ॥ १० ॥ नन्दनके सौगन्ध्यसे उदार तथा मधुर संचरणसहित तथा उत्तम कुबेरके उद्यानसे चलके कान्ताओंके सुरतके श्रमके दूर करनेवाला वायुरूप मैंने धारणकिया ॥ ११ ॥ चिरकालतक गंगाके तरंगरूप दोलाओंके आन्दोलनसे श्रमवान् तथा निजश्रमको विस्मृत होके अन्यजनोंके महापरिश्रमको निवारण करनेवाला वायुरूप मैं होगया ॥ १२ ॥

पुष्पभारानताःस्पर्शैर्वसंतवनितालताः ॥ चिरंचपलयन्लोलदलहस्तालिलोचनाः ॥ १३ ॥ चिरंभुक्त्वेंदुबिंबाग्रंसुधापूर्णाभ्रतल्पके ॥ विधूयकमलानीकमपनीतरतश्रमः ॥ १४ ॥ समस्तरजसामेकोव्योमगामीतुरंगमः ॥ आमोदमदमातंगसमुल्लासमहासुहृत् ॥ १५ ॥ धीरेणाप्यतडिच्छंगंपयोदपशुपालकः ॥ तंतुःसीकरमुक्तानामरिधर्मारजारुजाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा चंचलदलरूप हस्तधारिणी, भ्रमररूपी नेत्रोंसे शोभित और पुष्पोंके भारसे नत, लतारूप बसन्तकी वनिताओंको कोमलस्पर्शोंसे चपल करतेहुये वायुरूप मैं होगया ॥ १३ ॥ चिरकालतक चन्द्रमण्डलके श्रेष्ठ अमृतको पान करके कमलोंके बन कंपित करके तथा मेघशय्यापर शयन करके निज तथा अन्यके सुरतश्रमको दूर किया ॥ १४ ॥ तथा समस्त धूलियोंके लिये एक आकाशगामी तुरंग तथा सौगन्ध्यके मदसे मातंगोंकी क्रीडाकारी महासुहृद वायुरूप मैं होगया ॥ १५ ॥ तडिद्रूपी बाजेको पाकर उसके गंभीरनादसे मेघरूपी पशुओंका पालक जलकणरूपी मुक्ताओंके धारणके लिये सूत्र तथा धूलिके नाशक जलके शोषण करनेसे शत्रुरूप वायु मैं होगया ॥ १६ ॥

आकाशकुसुमामोदःसर्वशब्दसहोदरः ॥ नाडीप्रणालीसलिलंभूतांगोपांगवर्त्तकः ॥ १७ ॥ मर्मकर्मकरैकात्माहृद्गुहागेहकेसरी ॥ नित्यमेकांतपथिकःसारविज्ञातवेदसः ॥ १८ ॥ आमोदरत्नलुंटाकोविमाननगरावनिः ॥ दाहांधकारशीतांशुःशैत्यैंदुक्षीरसागरः ॥ १९ ॥ प्राणापानकलारज्ज्वाप्राणिनांयंत्रवाहकः ॥ अरिर्मित्रंचद्वीपानांद्वीपसंचारणेरतः ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशरूपी पुष्पका गंध, उसके शब्दोंके सहायक होनेसे सहोदर, और सब प्राणियोंके अंग तथा उपांगोंके प्रवर्तक होके नाडी तथा प्रणालियोंमें जलरूप वायु मैं होगया ॥ १७ ॥ इसप्रकार प्राणियोंके हृदयरूप होनेसे सब मर्मस्थानोंका मुख्य आत्मा, हृदयरूपी गुहाका सिंह, नित्य नियतपथिक और अग्निबलका वेत्ता वायुरूप मैं होगया ॥ १८ ॥ सुगन्धरूपी रत्नोंका लुटेरा, विमानरूपी नगरोंकी भूमि, संतापरूप अन्धकारके लिये चन्द्रमा, तथा शीतलतारूपी चन्द्रमाके अर्थ क्षीरसागर (जन्मभूमि) रूपी वायु मैं होगया ॥ १९ ॥ प्राण तथा अपानकी कलारूप रज्जुसे प्राणियोंका यंत्रवाहक, द्वीपोंका तरंगोंसे खण्डन करनेसे शत्रु और धूलियोंसे वृद्धि करनेसे मित्र तथा उनके संचारणमें तत्पर वायुरूप मैं होगया ॥ २० ॥

पुरोगतोप्यदृश्यात्मामनोराज्यपुरोपमः ॥ तालवृंततिलेतैलमालानंस्पंददंतिनः ॥ २१ ॥ एकक्षणलवेनैवचालिताखिलभूधरः ॥ वर्णावलितरंगाणांगंगावाहइवैककृत् ॥ २२ ॥ धूमांबुवाहरजसांमहावर्त्तकृदंभसाम् ॥ द्युनदीवाहवार्योघनभोनीलोत्पलालिकः ॥ २३ ॥ शरीरावेष्टितोन्मुक्तपुराणतृणचोपनः ॥ स्पंदपद्मवनादित्यःशब्दवर्षैकवारिदः ॥ २४ ॥

अर्थ—मनोराज्यके समान संमुख प्राप्तभी अदृश्यरूप तालवृन्तरूप, तिलमें तैलके तुल्य, और स्पन्दरूपी हाथीका बन्धन वायुरूप मैं होगया ॥ २१ ॥ प्रलयकालमें एकक्षणमेंही सब पर्वतोंको उखाडनेवाला तथा गंगाके प्रवाहके समान नानावर्णके धूलिरूपी तरंगोंको मिलाके एक करनेवाला वायुरूप मैं होगया ॥ २२ ॥ आकाशगंगाके प्रवाहरूप पुष्परस और जलसमूहसहित आकाशकमलका भ्रमररूपी वायु मैं होगया ॥ २३ ॥ महापवनसे जनित शरीरके वेष्टनसे निर्मुक्त जीर्णतृणोंके मन्दगतिमें कारण, क्रियासामान्यरूपी पद्मबनको विकसित करनेवाला सूर्य्य और शब्दवृष्टिका मुख्य मेघरूपी वायु मैं होगया ॥ २४ ॥

व्योमकाननमातंगःशरीरगृहगर्गटः ॥ धूलीकदंबविपिनमालालिंगननायकः ॥ २५ ॥ स्त्यानीकरणसंशोषधृतिस्पंदनसौरभैः ॥ सशैत्यैःकर्मभिःषड्भिरलब्धक्षणआक्षयम् ॥ २६ ॥ रसाकर्षणसव्यग्रोनित्यंभ्रातेवतेजसः ॥ हरणादानकर्तॄणामंगानांविनियोगकृत् ॥ २७॥ शरीरनगरेनाडीमार्गैर्गतिनिरर्गलः॥ रसभांडेपरावर्त्तादायुर्मणिमहावणिक् ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा आकाशरूपी बनमें मदोन्मत्त मातंग, शरीररूपी गृहमें गर्गट (जलनिकालनेका रेहेंट) यंत्रके तुल्य सदा शब्दायमान, धूलिरूपी नायिकासमूहके तथा बनमालारूपी नायिकाओंके आलिंगनमें नायक वायु मैं होगया ॥ २५ ॥ तथा घृतादिका पिंडीकरण, जलकर्दमादिका शोषण, मेघादिका धारण, तृण आदिका कंपन, गंधधारण और तापहरण, इन षट् कर्मोंसे प्रलयपर्य्यन्त विश्रामको न पानेवाला वायु मैं होगया ॥ २६ ॥ तेजके भ्राताके समान रसके आकर्षणमें नित्य व्यग्र तथा हरण और आदानादि कर्मोंके करनेवाले हस्तआदि अंगोंका संचालक वायु मैं होगया ॥ २७ ॥ शरीररूपी नगरमें नाडीरूपीमार्गोंसे निर्विघ्न गमनशील तथा अन्नरसमय देहरूपीपात्रमें प्राण अपानरूपसे परावर्तनसे आयुरूप मणिके रक्षण तथा व्ययमें महावैश्यरूप वायु मैं होगया ॥ २८ ॥

शरीरनगरीनाशनिर्माणैकपरायणः ॥ रसकिट्टकलाधातुपृथक्करणकोविदः ॥ २९ ॥ प्रतिसूक्ष्माणुकंदेहे ततोऽद्दंमयाजगत् ॥ तत्रेत्थंरूपवानस्मिस्फुटमाभोगिसुस्थिरम् ॥ ३० ॥ परमाणुप्रतित्वन्नप्रोह्यंतइव सर्गकाः ॥ नचकिंचित्किलोह्यंतेखाकृतेकिमिवोह्यते ॥ ३१ ॥ सचंद्रार्कानिलाग्नींद्रपयवैश्रवणेश्वराः ॥ सब्रह्महरिगंधर्वाविद्याधरमहोरगाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा शरीररूपी नगरीके नाश और रचनामें परायण, तथा रस, मल, सूक्ष्म सारभाग तथा त्वक्, रुधिर वा वात पित्तआदि धातुओंके पृथक्करणमें महाप्रवीण वायुरूप मैं होगया ॥ २९ ॥ हे रामजी उस वायुरूपमेंभी मैंने प्रतिदेहके प्रतिपरमाणुमें अनेक जगत् देखे और उन ब्रह्माण्डोंमेंभी इसीप्रकार विशाल तथा स्थिर पृथिवी आदि रूपधारी मैं था ॥ ३० ॥ यद्यपि प्रत्येक परमाणुमें सृष्टिके समूह चलरहेहैं और यथार्थमें कुछ नहीं चलता क्योंकि शून्याकार परमात्मामें किसका गमनागमन होसकता है ॥ ३१ ॥ चन्द्र, सूर्य्य, वायु, अग्नि, इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्यदेवतासहित ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गंधर्व, विद्याधर तथा महा उरग (सर्प) सहित अनेक सर्ग प्रतिपरमाणुमें वाहित होतेहैं ॥ ३२ ॥

ससागरगिरिद्वीपदिगंतरमहार्णवाः ॥ सलोकांतरलोकेशक्रियाकालकलाक्रमाः ॥ ३३ ॥ सस्वर्गभूमिपातालतललोकांतरांतराः ॥ सभावाभाववैधुर्यजरामरणसंभ्रमाः ॥ ३४ ॥ एवंनामतदारामभूतपंचकरूपिणा ॥ मयाप्रविहृतंतत्रत्रैलोक्यनलिनोदरे ॥ ३५ ॥ रसःपीतोनुभूतश्च क्ष्माजलानिलतेजसाम्॥ मूलजालेनवृक्षाणांप्राणिनांवसतामया ॥ ३६ ॥

अर्थ—समुद्र, पृथिवी, पर्वत, द्वीप, दिगन्त, महासमुद्र, लोक लोकान्तर, इन्द्रादि उनके स्वामी, क्रिया, कालकी कलाके क्रमसहित अनेक जगत् प्रत्येक परमाणुमें वाहित होरहेहैं ॥ ३३ ॥ तथा स्वर्ग, पाताल और बिशाल अन्यलोक लोकान्तर सहित, तथा भाव, अभाव, क्षय, जरा और मरणके विभ्रमसहित अनेक ब्रह्मांड प्रत्येक परमाणुओंमें बाहित होतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इस आकाशादि पंचमहाभूतरूपधारी मैंने त्रैलोक्यरूपी कमलके उदरमें विहार किया ॥३५॥ पृथिवी, जल, वायु तथा अग्निके समवायरूप वृक्षोंके मूलमें निवास करतेहुये मैंने भूमिके रसको पानकिया॥३६॥

रसायनघनांगेषुचंदनद्रवशोभिषु ॥ लुठितंचंद्रबिंबेषुतुषारशयनेष्विव ॥ ३७ ॥ सर्वर्तुवनजालेषुनानामोदानिदिक्ष्वलम् ॥ भुक्तानिपुष्पजालानिप्रोच्छिष्टंददतालये ॥ ३८ ॥ ततोन्नतासुमृद्वीषुस्वास्तीर्णास्वंबराजिरे ॥ सुप्तंशुभ्राभ्रमालासुनवनीतस्थलीष्विव ॥ ३९ ॥ सुमनःपत्रमृद्वषुनीललक्ष्मीविलासिषु ॥ सुरसिद्धांगनांगेषुदूरास्तस्मरवासनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अमृतसे पूर्ण तथा चन्दनके द्रवके समान शैत्यादिगुणसे शोभित चन्द्रबिंबोंमें ऐसे बिहार किया जैसे तुषारके शयनोंमें ॥ ३७ ॥ सब ऋतुके बनसमूहोंमें नानादिशाओंमें अपना भुक्त उच्छिष्ट भ्रमरको देतेहुये नानाप्रकारके सुगन्धयुक्त पुष्पोंको भोगा ॥ ३८ ॥ विशाल, उन्नत, कोमल तथा आकाशरूपी अंगणमें उत्तमतासे बिछीहुई श्वेतमेघोंकी मालारूपी शय्याओंपर ऐसे शयन किया जैसे नवनीत (मक्खन) की स्थलियोंपर ॥ ३९ ॥ शिरीषादिके पुष्पोंसे भी अधिक कोमलांगी तथा नीलकमलकी लक्ष्मीके सदृश बिलासवती, सुरसिद्धादिकी अंगनाओंके देहोंपर कामकी वासनासे रहित होके मैंने शयन किया ॥ ४० ॥

कृतःकुमुदकह्लारकमलेनलिनीवने ॥ कोमलःकलहंसीभिर्लीलाकलकलारवः ॥ ४१ ॥ सरत्सरिच्छिरासारामूलभूमंडलान्विताः ॥ अंगैरूढाःस्फुरद्भूतालोमालयइवाद्रयः ॥ ४२ ॥ खाद्रयःप्रथितादीर्घसरित्सूत्रैःसमुद्रकैः ॥ आदर्शैरिवविश्रांतमंगेषुप्रतिबिंबिभिः ॥ ४३ ॥ भूतसर्गेणविश्रांतंसिद्धविद्याधरादिना ॥ मद्देहेचेतितेनेवमक्षिकायूकरूपिणा ॥ ४४ ॥

अर्थ—कुमुद, कल्हार, कमल तथा कमलनीके बनोंमें मैं मधुरभाषिणी हंसियोंके साथ लीलापूर्वक कोमल तथा मधुर शब्द किया ॥ ४१ ॥ चलायमान नदीरूप उत्तमनाडियोंके मूलभूत भूमण्डलसे संयुक्त तथा देदीप्यमान पर्वतोंको अंगोंसे ऐसे धारण किया जैसे लोमोंकी पंक्ति ॥ ४२ ॥ जगत्में आकाश पर्वतादि प्रसिद्ध हैं उनने दीर्घ नदीरूप सूत्रोंके तथा समुद्रोंके साथ मेरे अंगोंपर ऐसे विश्राम किया जैसे प्रतिबिंबके सहित दर्प्पण ॥ ४३ ॥ सिद्ध, विद्याधर आदि प्राणियोंके समूहने मेरे देहमें परिज्ञात यूक मक्षिकादिके सदृश विश्राम किया ॥ ४४ ॥

मत्प्रसादेनमुदितैर्लब्धमर्कादिभिर्वपुः ॥ कृष्णरक्तसितापीतहरितैर्हरितैरिव ॥ ४५ ॥ समुद्रमुद्रयासप्तद्वीपसप्तात्मरूपया ॥ संस्थयास्थापिताभूमिःप्रकोष्ठेवलयोपमा ॥ ४६ ॥ विद्याधरपुरंध्रीणांपरामृष्टांगयष्टिना ॥ अदृष्टेनैवविहितःपुलकोल्लासआत्मना ॥ ४७ ॥ सरिच्छिरामलस्फाररसानिसुषिराणिच ॥ जगंत्येवास्थिजालानिममासन्संस्थितानिच ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मेरी कृपासे लब्धशरीर, मुदित तथा कृष्ण, रक्त, सित, अतिपीत तथा हरिद्वर्ण सूर्य्य चन्द्रादिने मेरे देहमें ऐसे बिहार किया जैसे हरित वृक्ष अनूपदेशमें ॥ ४५ ॥ सप्तसमुद्रसे वेष्टित सप्तद्वीपवती निजसप्तरूपसे स्थित पृथिवीको मैंने अपनी कलाईमें कटकके समान स्थापित किया है ॥ ४६ ॥ विद्याधरकी अंगनाओंसे स्पृष्ट शरीर मैं उनसे अदृष्ट होकेही उन्हे निज आनन्दसे पुलकित किया ॥ ४७ ॥ नदीरूपी नाडियोंसे निर्मल रसपूर्ण, छिद्रसहित पर्वत आदिसे व्याप्त अनेक जगत् मेरे शरीर अस्थिसमूह तथा मांसादिरूपसे स्थितहैं ॥ ४८ ॥

असंख्यैर्व्योममातंगैश्चन्द्रार्कचलचामरैः ॥ उदुंबरांतर्मशकैरिवमद्धृदयेस्थितम् ॥ ४९ ॥ सर्वपातालपादेनभूतलोदरधारिणा ॥ खमूर्ध्नापितदारामनत्यक्तायपराणुता ॥ ५० ॥ दिक्षुसर्वासुसर्वत्रसर्वदासर्वकारिणा ॥ सर्वात्मनाप्यसर्वेणशून्यरूपेणसंस्थितम् ॥ ५१ ॥ किंचित्त्वंसदकिंचित्त्वंसाकृतित्वंनिराकृति ॥ अनुभूतंसजाड्यंचचेतनत्वमलंमया ॥ ५२ ॥

अर्थ—असंख्य आकाशके ऐरावत आदि मातंग तथा सूर्य्यचन्द्रादि चमर मेरे हृदयरूप स्थानमें ऐसे स्थितहैं जैसे गूलरके भीतर मशक ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सम्पूर्ण पातालरूप पादधारी, भूतलरूप उदरसे शोभित और आकाशरूप शिरसे विभूषितभी मैंने अपनी सूक्ष्म चिन्मात्रताको नहीं त्यागा ॥५०॥ सब दिशाओंमें, सर्वत्र, सर्वदा, सर्वरूप तथा सर्वकार्य्यकारी होनेपरभी मैं असर्व तथा शून्य चिदाकाशमात्रसे रहाथा ॥ ५१ ॥ किंचनता, अकिंचनता, साकारता, निराकारता, जडता तथा चेतनता ऐसे परस्पर विरुद्धधर्मोंकाभी मैंने निजस्वरूपमें अनुभव किया ॥ ५२ ॥

मैनाकमुग्धपीनस्यसागरस्यावनिंप्रति ॥ सन्तिसर्गसहस्राणिस्थाणुभूतान्यथोमया ॥ ५३ ॥ जगन्त्यंगेमयोढानिगूढानिप्रकटान्यपि ॥ प्रतिबिंबपुराणीवमुकुरेणाजडात्मना ॥ ५४ ॥ एवंजलानिलाग्नित्वंभूमित्वंखात्मनामया ॥ कृतंचितेवस्वप्नेषुबतमायाविजृंभितम् ॥ ५५ ॥ अपितस्यामवस्थायांजगंत्याकाशकोशके ॥ मयादृष्टान्यसंख्यानिपरमाणुकणंप्रति ॥ ५६ ॥

अर्थ—तथा मैनाकसमान अन्तर्लीन पर्वतादिसे स्थूल, अतिविशाल सागरके तटपर प्रत्येक स्थानमें मैंने अनेक सृष्टि देखी ॥ ५३ ॥ चिद्रूप मैंने प्रकट तथा गुप्तभी अनेक ब्रह्माण्डोंको ऐसे धारणकिये जैसे दर्पण प्रतिबिंबके नगरोंको ॥ ५४ ॥ इसप्रकार जल, वायु, अग्नि, पृथिवी तथा आकाशरूपताको मैंने ऐसे धारणकिया जैसे स्वप्नमें चेतन, देखो यह मायाका प्रताप ! ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! उस पृथिवी आदि दशाको प्राप्त भी मैंने आकाशके कोशमें प्रत्येक परमाणुमेंभी असंख्य जगत् देखे ॥ ५६ ॥

परमाणुप्रतिव्योमपरमाणुप्रतिस्थितम् ॥ सर्गवृन्दंयथास्वप्नेस्वप्नान्तरयुतंपुरम् ॥ ५७ ॥ स्वमेवाहमभूवंभूमण्डलंद्वीपकुण्डलम् ॥ सर्वात्मनापिनव्याप्तंकिंचनापिमयाक्वचित् ॥ ५८ ॥ समुत्पादयताशेषंलतातरुतृणांकुरम् ॥ भूतलेनरसाःकष्टामयार्थेनैवपुंभृताम् ॥ ५९ ॥ अवदाततमेशुद्धबोधकालमुपेयुषि ॥ जगल्लक्षाणितिष्ठन्तिनातिष्ठन्तिचकानिचित् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रत्येक परमाणुमें ऐसेही व्याप्त आकाश था और उस आकाशस्थ प्रत्येक परमाणुमें सृष्टिके समूह ऐसे थे जैसे स्वप्नमें स्वप्नान्तरयुक्त नगरादि ॥ ५७ ॥ निज अध्यासमात्रसे मैंने भूमण्डलादिरूप धारणकियाथा,

परन्तु सम्पूर्ण जगद्रूप होनेपरभी मैंने कुछभी व्याप्त नहीं किया ॥ ५८ ॥ पुरुष आदि शरीरधारियोंके अर्थ संपूर्ण लता, तृण तथा अंकुर आदिको उत्पन्न करते हुये मैंने भूतलके द्वारा वृष्टिके जलादिको आकर्षणकिया ॥ ५९ ॥ युद्धके सदृश सर्व अज्ञानसंहारक बोधरूप शुद्ध कालको प्राप्त होनेपर मुझमें लक्षों ब्रह्मांड रहते और नहींभी रहतेहैं ॥ ६० ॥

चितियास्तुचमत्कारंचमत्कुर्वन्तियत्स्वतः ॥ स्वचमत्कृतयोंतस्थास्तदेताःसृष्टिदृष्टयः ॥ ६१ ॥ अनुभूतकृतंकष्टंयावत्कचनकिंचन ॥ परमार्थचमत्काराद्दतेनेहोपलभ्यते ॥ ६२ ॥ प्रत्येकंविश्वरूपात्मासर्वकर्तानिरामयः ॥ प्रबुद्धःशुद्धबोधात्मासर्वब्रह्मात्मकंयतः ॥ ६३ ॥ सर्वःसर्वत्रसर्वात्मासर्वगःसर्वसंश्रयः ॥ एतत्प्रबुद्धविषयमप्रबुद्धंनवेद्म्यहम् ॥ ६४ ॥ आकाशकोशविशदात्मनिचित्स्वरूपेयेयंसदाकचतिसर्गपरंपरेति ॥ सांतस्तदेवकिलतापइवान्तरूष्माभेदोपलंभइतिनास्तिसदस्त्यनन्तम् ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा०परमार्थसर्गयोरैक्यप्रतिपादनं नाम द्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२ ॥

अर्थ—चेतनके भीतर स्थित निजआत्मचमत्कृति स्वकीय सत्तास्फूर्तिरूपसे जो चमत्कार करती हैं वेही दृष्टि सृष्टिरूपसे स्थित हैं ॥ ६१ ॥ जो कुछ अनुभव, रचना तथा कष्ट आदि कहीं किया वह सब परमार्थ चित्के चमत्कारके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ ६२ ॥ अध्यारोपदृष्टिसे प्रत्येकमें निजसत्ताके अर्पणसे सर्वरूप कर्ता मैंही हुं, और अपवाददृष्टिसे प्रबुद्ध होनेपर केवल निरामय शुद्ध बोधरूप ब्रह्म हूं ॥ ६३ ॥ अतएव प्रत्येक वस्त्वन्तर्गत ब्रह्ममें जगत्का अध्यास होनेसे सर्व, सर्वात्मा, सर्वगामी, तथा सर्वाश्रय ब्रह्म है यह प्रबुद्धका विषय जगत् है और प्रबुद्धगम्य तो मैं नहीं जानता ॥ ६४ ॥ आकाशकोशके समान व्यापक चित्स्वरूपमें जो यह सर्गकी परंपरा सदा विकसित होती है वह अन्तमें चिद्ब्रह्मरूपही है, तापमें उष्णता है इन दोनों शब्दोंके तुल्य जगत् ब्रह्म शब्दमें भेदकी उपलब्धि नहीं है किन्तु अनंत ब्रह्मही सत् है ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे परमार्थसर्गयोरैक्यप्रतिपादनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

वसिष्ठजीकी कुटीमें ध्यानस्थ सिद्धका दर्शन, कुटीके उपसंहारसे पात और अपने वृत्तान्तका वर्णन इस ९३ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैवंरूपसंवित्तेःपरावृत्त्यप्रयत्नतः ॥ तमंबरकुटीकोशदेशमागतवानहम् ॥ १ ॥ यावत्तत्रनपश्यामिस्वदेहंकचनस्थितम् ॥ पश्यामिकेवलंसिद्धंकमप्यन्यंपुरःस्थितम् ॥ २ ॥ उपविष्टंसमाधाननिष्ठमिष्टंपदंगतम् ॥ सौम्योदयमिवादित्यंदग्धेंधनमिवानलम् ॥ ३ ॥ बद्धपद्मासनंशान्तंसमाधाननिरिंगनम् ॥ गुल्फद्वितयमध्यस्थवृषणंविषयातिगम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! कौतुकसे इस जगद्रूप दर्शनके पश्चात् उसी आकाशस्थ अपने समाधिस्थानकी कुटीमें आया ॥ १ ॥ वहां आके अपने शरीरको कहीं नहीं देखता, किन्तु समाधिस्थ एक अन्य सिद्ध पुरुषको देखता हूं ॥ २ ॥ समाधिमें निमग्न होके स्थित, ब्रह्मपदमें प्राप्त, सौम्य उदययुक्त सूर्य्यके तथा दग्धेन्धन अग्निके समान प्रकाशमान उस पुरुषको देखा ॥ ३ ॥ बद्धपद्मासन, शान्त, इष्टविषयमें चित्तके स्थिर करनेसे निश्चल, दोनों एडियोंसे अंडकोशको दबाये हुये, तथा विषयसे परे परमात्मामें निष्ठ उस पुरुषको देखा ॥ ४ ॥

मृष्टसौम्यसमाभोगस्कन्धबन्धुरकन्धरम् ॥ सुस्थिरोदारविश्रांतस्फारकस्थितिसुन्दरम् ॥५॥ नाभीनिकटगोत्तानपाणिद्वितयदीप्तिभिः ॥ हृदयांभोजतेजोभिर्बहिष्ठैरिवभासितम् ॥ ६ ॥ श्लिष्टपक्ष्मेक्षणंक्षीणसर्वेक्षंस्वच्छतांगतम् ॥ सरोनिमीलितांभोजमिवसुप्तंदिनात्यये ॥७॥ अविक्षुभितमाशान्तमन्तःकरणकोटरम् ॥ दधानंधीरयावृत्त्याशान्तोत्पातमिवांबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—भस्म तथा त्रिपुंड्रकी रेखासे स्पष्ट सुन्दर रचनायुक्त, कन्धरासे समान, शिर तथा ग्रीवासे स्थित, उदार, वस्तुमें अतिस्थिरतासे स्थित होनेसे प्रसन्नमनसे अति रमणीय ॥ ५ ॥ नाभीके निकट प्राप्त उत्तान दोनों हस्तोंकी दीप्तिसे ऐसे भासित थे जैसे बाह्यदेशमें स्थित हृदयकमलके तेजोंसे ॥ ६ ॥ दोनों नेत्रोंके पलक मूंदे हुये, सब इन्द्रियोंके

व्यापारसे रहित, निर्मलतासे ऐसे स्थित थे जैसे दिनके अन्तमें मुकुलितकमल तडाग ॥ ७ ॥ क्षोभरहित, सर्वथा शान्त और शान्त उत्पात आकाशके तुल्य धीरवृत्तिसे अन्तःकरणको धारण करनेवाले ऋषिको मैंने देखा ॥ ८ ॥

अपश्यतानिजंदेहंतंमुनिपश्यतापुरः ॥ इदंमयातदातत्रचिन्तितंचारुचेतसा ॥ ९ ॥ अयंकश्चिन्महासिद्धःसंप्राप्तोस्मिन्दिगंतरे ॥ विचार्याहमिवैकान्तंविश्रामार्थीमिहांबरम् ॥१०॥ समाधियोग्यमेकान्तंलभेयेतीहचिंतया ॥ कुटीदृष्टेयमेतेनसत्यसंकल्पशालिना ॥ ११ ॥ मदागमनमेतेनततोऽचिंतयताचिरम् ॥ तंस्वदेहंशवीभूतमपास्येहकृतास्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—अपनी देहको न देखके और उस ऋषिको देखके शुद्धचित्तसे मैं यह शोचा कि ॥ ९ ॥ यह कोई एकान्तमें मेरेसमान विश्रामका अभिलाषी महासिद्ध महात्मा इस महाआकाशमें आके प्राप्त हुआ है ॥ १० ॥ इस सत्य-संकल्पयुक्त महात्माने समाधिके योग्य एकान्त स्थान पाऊं इस चिन्तासे इस कुटीको देखा ॥११॥ चिरकालतक मेरी उपेक्षासे मेरे शरीरको मृतक जानकर और मेरे आगमनको न विचार करके मेरे शरीरको अन्यत्र फेककर यहां स्थिति किया १२

तदिहास्तमहंयामिस्वंलोकमितिनिश्चयम् ॥ यावद्गन्तुंप्रवृत्तोस्मितावत्संकल्पनक्षयात् ॥ १३ ॥ सानिवृत्ताकुटीतत्रसंपन्नंव्योमकेवलम् ॥ ससिद्धोपिनिराधारःपतितोधःसमाधिमान् ॥ १४ ॥ स्वप्नसंकल्पसंशान्तौस्वप्नसंकल्पपत्तनम् ॥ यदासासुकुटीनष्टामत्संकल्पोपशान्तितः ॥ १५॥ सपपाततत्तोध्यानी जलोत्पीडइवांबुदात् ॥ खादिवानिलनुन्नोद्रिइन्दुबिंबमिवक्षये ॥ १६ ॥

अर्थ—मेरा यह स्थूलशरीर नष्ट होगया, अब मैं अपने सूक्ष्मशरीरसे निज सप्तर्षिलोकमें जाऊं ऐसा विचार करके ज्योंहीं मैं जानेको प्रवृत्त हुआ त्योंहीं संकल्पके क्षयसे ॥ १३ ॥ वह कुटी नष्ट होगई और वहां केवल आकाशमात्रही रहगया और वह समाधिनिष्ठ सिद्धभी निराधार नीचे गिरपडा ॥ १४ ॥ अपने स्वप्नकी शांति होनेपर अपने स्वप्नस्थ नगरके तुल्य मेरे संकल्पकी शान्तिसे जब वह कुटी नष्ट होगई तब ॥१५॥ मेघसे जलकी धारा, आकाशसे वायु प्रेरित मेघ और प्रलयमें चन्द्रबिंबके तुल्य वह ध्यानी गिरा ॥ १६ ॥

वैमानिकइवापुण्यश्छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ खात्त्यक्तइवपाषाणःसपपाततत्तोवनौ ॥ १७ ॥ अहंयावदियंतावत्कुटिकास्त्वितिकल्पने ॥ क्षीणेकुटीक्षयेजातेससिद्धःपतितःक्षणात् ॥ १८ ॥ पततातेनसिद्धेनततः सौजन्यकौतुकः ॥ मनसैवाहमगमंनभसोवसुधातलम् ॥ १९ ॥ सोपतत्पवनस्कंधवलनावर्त्तवृत्तिभिः ॥ सप्तद्वीपसमुद्रान्तेगीर्वाणरमणावनौ ॥ २० ॥

अर्थ—पुण्य क्षीण होनेसे विमानसे देवता, छिन्नमूल वृक्ष, तथा आकाशसे त्यक्त पाषाणके सदृश वह सिद्ध पृथिवीपर गिरा ॥ १७ ॥ जबतक मैं रहूं तबतक यह कुटी रहै, गमनके समयके इस संकल्पके क्षय होतेही उस कुटीके क्षय होनेपर वह सिद्ध क्षणभरमें गिरगया ॥ १८ ॥ सुजनताके कौतुकसे संपन्न मैं मनसेही सूक्ष्मशरीरसे उस सिद्धकेसाथ पृथिवीतलपर आया ॥ १९ ॥ वायुमण्डलके परिवर्तनसे प्रेरित आवर्तोंसे वह सिद्ध सप्तद्वीप तथा सप्तसमुद्रके अन्तमें देवताओंके रमणकी कांचनभूमिपर गिरा ॥ २० ॥

प्राणापानोर्ध्वगामित्वात्खाद्यथास्थितमेवसः ॥ स्पष्टपूर्वोर्ध्वमूर्धोर्व्यांबद्धपद्मासनोपतत् ॥ २१ ॥ नप्रबुद्धोबभूवासौविचरंतमचेतनः ॥ पाषाणदेहइववातूलात्मेवैववालघुः ॥ २२ ॥ मयातदवबोधार्थमथयत्नवतातदा ॥ कृत्वाजलदतांव्योम्निवृष्टंगर्जितमूर्जितम् ॥ २३ ॥ करकाशनिपातेनतेनतस्मिन्दिगन्तरे ॥ मयूरंप्रावृषेवासुंबुद्ध्याबोधितवानसौ ॥ २४ ॥

अर्थ—पृथिवीपर दोनों चरणोंको और ऊपर शिरको स्थापित करनेसे प्राण अपान दोनोंकी ऊर्ध्वगति होनेसे आकाशस्थ कुटीमें जैसे वह स्थित था वैसाही बद्धपद्मासन वह भूमिपर गिरा ॥ २१ ॥ योगके बलसे वज्रके तुल्य वा तूल (रुई) के पिंडके समान लघु होनेसे अचेतनके सदृश वह दूरसे चलायमान होनेपरभी समाधिसे जागृत नहीं हुआ ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर उसके समाधिसे उठनेके अर्थ यत्नयुक्त मैंने आकाशमें संकलपसे मेघ उत्पन्नकरके वृष्टि की और बलपूर्वक गर्जनाभी की ॥ २३ ॥ उस दिशामें बर्फकी वृष्टिकरके मैंने बुद्धिसे उस महात्माको ऐसे बोधित किया जैसे वर्षाऋतु मोरको ॥ २४ ॥

बभूवाभासितांगश्रीर्विकासितविलोचनः ॥ धारानिकरफुल्लात्माप्रावृषीयांबुजाकरः ॥ २५ ॥ प्रबुद्धंसंप्रशान्तायांवृष्टौतमहग्रतः ॥ अपृच्छंस्वच्छयावृत्त्यानिवृत्तंपरमार्थतः ॥ २६ ॥ कस्थितोसिकरोषीदंकिं

चभोमुनिनायक ॥ कस्त्वंकस्मादलंदूरान्नभ्रंशमपिचेतसि ॥ २७ ॥ इत्युक्तोमामसौप्रेक्ष्यसंस्मृत्यप्राक्तनींगतिम् ॥ उवाचवचनंचारुचातकोजलदंयथा ॥ २८ ॥

अर्थ—प्रकाशित अंगोंकी शोभासेयुक्त तथा विकसितनेत्र वह सिद्ध ऐसे शोभित हुआ जैसे वर्षामें धारासे विकसित कमलका वन ॥ २५ ॥ समाधिसे निवृत्त तथा प्रबुद्ध उस महात्मासे मैंने स्वच्छ वृत्तिसे यह पूछा ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप कौनहैं, कहां स्थितहैं और क्या करतेहो और दूरसे अपने पतनकोभी क्यों नहीं जानते ॥२७॥ मेरे इतना कहनेपर मुझे देखकर अपनी पूर्वकालकी गतिको स्मरण करके वह महात्मा मुझसे कोमल वचन ऐसे बोला जैसे चातक मेघसे ॥ २८ ॥

॥ सिद्धउवाच ॥ प्रतिपालयमेयावत्स्ववृत्तान्तंस्मराम्यहम् ॥ कथयिष्यामितेपश्चात्पाश्चात्यंवृत्तमात्मनः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वाचिन्तयित्वाशुसयथावृत्तमक्षतम् ॥ स्मृतवान्सायमह्नीवसमाचरितमात्मनः ॥ ३० ॥ मामथोवाचवचनंचारुचन्द्रांशुशीतलम् ॥ आह्लादनमनिन्द्यंचनिरवद्यंसुखोदयम् ॥ ३१ ॥ ॥ सिद्धउवाच ॥ अधुनात्वंमयाब्रह्मन्परिज्ञातोऽभिवादये ॥ अतिक्रमोयंक्षंतव्यःस्वभावोहिसतांक्षमा ॥ ३२ ॥

अर्थ—सिद्ध बोला कि हे भगवन् ! किंचित् प्रतीक्षा करो तबतक मैं अपना वृत्तान्त स्मरणकरताहूं, पश्चात् अपना सब पूर्वजन्मका वृत्तान्त तुमसे कहूंगा ॥ २९ ॥ हे रामजी ! ऐसा कहके उसने समस्त पूर्वजन्मके वृत्तान्तको शीघ्र चिन्तन करके ऐसे स्मरणकिया जैसे सायंकालमें दिनके चरितको ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् चन्द्रमाके किरणके समान शीतल, आनन्ददायक, अनिन्द्य और परिणाममें सुखदायक सुन्दरवचन मुझसे बोला ॥ ३१ ॥ सिद्ध बोला कि हे भगवन् ! अब मैंने आपको जानलिया और प्रणाम करताहूं और प्रथमदर्शनमें जो नमस्कार नहीं किया उस अपराधको क्षमा कीजिये क्योंकि क्षमा करना सज्जनोंका स्वभाव है ॥ ३२ ॥

मुनेचिरमहंभ्रान्तोदेवोपवनभूमिषु ॥ भोगामोदविमोहेषुषट्पदः पद्मिनीष्विव ॥ ३३ ॥ दृश्यनद्यामथो चित्तजलकल्लोलहेलया ॥ चक्रावर्त्तोह्यमानेनमयोद्विग्नेनचिन्तितम् ॥ ३४ ॥ संसारसागरेदृश्यकल्लोलैरहमाकुलः ॥ कालेनोद्वेगमायातश्चातकोवग्रहेयथा ॥ ३५ ॥ संविन्मात्रैकसारेषुरम्यंभोगेषुनामकिम् ॥ अवतिष्ठेगतोद्वेगसंविद्व्योम्न्येवकेवलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मुने प्रथम भोगरूपी सुगन्धसे मोहदायक देवताओंकी उपवनभूमियोंमें मैंने चिरकालतक ऐसे भ्रमण किया जैसे कमलिनियोंमें भ्रमर ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! चित्तरूपी तरंगोंकी लीलासे इस दृश्य संसाररूपी नदीमें चक्रवत् आवर्तसे भ्रमण करते (बहतेहुये) व्याकुल मैंने यह चिन्तन किया कि ॥ ३४ ॥ इस संसाररूपी सागरमें दृश्यतरंगोंसे व्याकुल होके काल पाके मैं ऐसे उद्विग्न होगया जैसे वृष्टि न होनेसे चातक ॥ ३५ ॥ मैंने शोचा कि ज्ञानमात्र सार इस संसारमें रमणीय क्या वस्तु है इस लिये मैं सब व्याकुलताके हेतु संसारको त्यागकर केवल ज्ञानस्वरूप आकाशमेंही स्थित रहूं ॥ ३६ ॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धमात्राद्दतेपरम् ॥ नेहकिंचननामास्तिकिमेतावत्यहंरमे ॥ ३७ ॥ चिन्मात्राकाशमेवैतत्सर्वंचिन्मात्रमेववा ॥ तत्किमत्रासदाकारेरमेनष्टमतिर्यथा ॥ ३८ ॥ विषयाविषवैषम्यावामाः कामविमोहदाः ॥ रसाःसरसवैरस्याल्लुठन्नेषुनकोहतः ॥ ३९ ॥ जीर्णजीवितजंबालजरच्छफरिकामतिः ॥ कायंद्रुतगतादातुंजरेच्छतिबृहद्बकी ॥ ४० ॥

अर्थ—शब्द, रूप, रस, स्पर्श तथा गंधमात्रसे परे इस संसारमें कोई वस्तु रमणीय नहीं है सो मैं इनमेंहीं क्यों रमूं ॥ ३७ ॥ यह शब्दादि सब विषय चिदाकाशकी सत्ताहीसे हैं अथवा सब चिन्मात्रही है तो मैं असत् आकारवाले इसजगत्में नष्टबुद्धिके सदृश क्यों रमणकरूं ॥ ३८ ॥ शब्दादिविषय विषमय विषकेसमान मरण तथा उन्मादके हेतुहैं, स्त्रियां मोहदायक हैं और राग सरसजनकेभी विरसताके योग्य हैं, इनमें रमण करताहुआ कौन नहीं मारागया ॥ ३९ ॥ तथा जीर्ण और जीवनरूप शैवालमें महाशफरीकी बुद्धिसे प्रवृत्तहोनेवाली यह वृद्धावस्थारूप महाबकी शीघ्र आके शरीरको ग्रहण करना चाहती है ॥ ४० ॥

कायोयमचिरापायोबुद्बुदोंबुनिधाविव ॥ स्फुरन्नेवपुरोन्तर्धियातिदीपशिखायथा ॥ ४१ ॥ विविधाकुलकल्लोलाचक्रावर्त्तविधायिनी ॥ मृतिजन्मबृहत्कूलासुखदुःखतरंगिणी ॥ ४२ ॥ यौवनोल्लासकलिलाजराधवलफेनिला ॥ काकतालीययोगेनसंपन्नसुखबुद्बुदा ॥ ४३ ॥ व्यवहारमहावाहरेखाजडरवाकुला ॥ रागद्वेषघनोल्लासाभूतलालोलदेहिका ॥ ४४ ॥ लोभमोहमहावर्त्तापातोत्पातविवर्त्तनी ॥ ज्ञातप्राजीविताख्येयंनदीनदनशीतला ॥ ४५ ॥

अर्थ—समुद्रमें बुद्बुदके समान शीघ्रविनाशी यह शरीर संमुख स्फुरित होते २ ऐसे अंतर्धान होजाताहै जैसे दीपकी शिखा ॥ ४१ ॥ अनेकप्रकारके विक्षेपरूप कल्लोलोंसे युक्त, चक्रावर्तके तुल्य भ्रमणशील, जन्ममरणरूप महान् दो तटोंसे संयुक्त तथा सुखदुःखरूप तरंगयुक्त, यौवनके उल्लासरूप बुद्बुदोंसे पूर्ण, वृद्धाऽवस्थारूपी श्वेतफेनसहित, काकतालीय संयोगसे प्राप्त, सुखरूप बुद्बुदयुक्त यह जीवनरूप नदी है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ व्यवहाररूपी महाप्रवाहकी रेखासे जडों (जलों) के प्रलापसे व्याप्त, रागद्वेषरूपी मेघोंसे वर्द्धमान, भूतलपर चंचलशरीर, लोभमोहरूपी महाआवर्तयुक्त, पात तथा उत्पातसे विवर्तनशील तथा शब्दमात्रसे शीतल परन्तु वस्तुतः तापत्रयसे तप्त यह जीवनतारूप नदी दुःखकेही लिये है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अपूर्वाण्युपगच्छंतितथापूर्वाणियांत्यलम् ॥ संसारसरिदंबूनिसंगतातिधनानिच ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तायेनिवर्ततेतरलंहतभावकैः ॥ अपूर्वायेप्रवर्त्ततेतेष्वथास्थेहकीदृशी ॥ ४७ ॥ सर्वस्याःसरितोवारिप्रयात्यायातिचाकरात् ॥ देहनद्याःपयस्त्वायुर्यात्येवायातिनोपुनः ॥ ४८ ॥

अर्थ— संसाररूपी नदीके जलके समान धनपुत्रादि पूर्व २ चले जाते हैं और अपूर्व २ आते हैं ॥ ४६ ॥ जो प्रथम प्राप्त हैं वे निवृत्त होतेहैं और जो अपूर्व हैं प्रवृत्त होते हैं. ऐसे नष्ट पदार्थोंसे हमें क्या प्रयोजन और इनमें विश्वास क्या ॥ ४७ ॥ सब नदियोंका जल प्रवाहरूपसे जाताहै और पर्वत तथा मेघादिसे आताभी है परन्तु इस देहरूपी नदीका आयुरूपी जल जाता तो है परन्तु पुनः नहीं आता ॥ ४८ ॥

शतशःपरिवर्त्ततेप्रतिपिंडंक्षणंप्रति ॥ कुलालचक्रकाभावाइवभावाभवांबुधौ ॥ ४९ ॥ चरन्तिचतुराश्चौराविषमाविषयारयः ॥ हरन्तिभावसर्वस्वंजागर्मिस्वपिमीहकिम् ॥ ५० ॥ आयुषःखंडखण्डाश्चनिपतंतःपुनःपुनः ॥ नकश्चिद्वेत्तिकालेनक्षतानिदिवसान्यहो ॥ ५१ ॥ इदमद्यतथेदंचतथेदमिदमस्यमे ॥ एवंकलनयालोकोगतंप्राप्तंनवेत्त्यहो ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसाररूपी समुद्रमें प्रत्येक देहमें क्षण २ में अनेक भोग्यवस्तु ऐसे आती जाती हैं जसे कुम्भकारके चक्रपर आरूढ घट शकोरे आदि पात्र ॥४९॥ भयंकर विषयरूपी शत्रुभूत चतुर चोर चारों ओर विचरते हैं और वे विवेकरूपी सर्वस्वपनको हरलेतेहैं चाहैं हम जागते रहैं वा सोते रहैं. ॥ ५० ॥ प्रतिक्षण आयुके खंड गिरतेहैं. अहो! कैसे खेदका विषय है कि कालने हमारे आयुके दिन काटदिये परन्तु इसको कोई नहीं जानता ॥ ५१ ॥ यह आज मिला, यह कल मिलैगा, यह इसका है, यह मेरा है इत्यादि कल्पनाओंसे संसारी प्राणी अपनी नष्ट आयु तथा प्राप्त मृत्युको नहीं जानता ॥ ५२ ॥

भुक्तंपीतमनंतासुभ्रांतंचवनभूमिषु ॥ दृष्टानिसुखदुःखानिकिमन्यदिहसाध्यते ॥ ५३ ॥ सुखदुःखानुभवनाद्भूयोभूयोविवर्त्तनात ॥ अनित्यत्वाच्चभावानांस्थितानिष्कौतुकावयम् ॥ ५४ ॥ भुक्तानिभोगवृंदानिदृष्टाचानित्यताभृशम् ॥ नोपलभ्यतएवातिविश्रांतिरिहकुत्रचित् ॥ ५५ ॥ भ्रांतमुत्तुंगशृंगासुमेरूपवनभूमिषु ॥ लोकपालपुरीषूच्चैःसंप्राप्तंकिमकृत्रिमम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारकी बनकी भूमियोंमें अगणित पदार्थोंको भोजन पान किया तथा उनमें भ्रमण भी किया, अनेक सुखदुःखभी देखे अब इससे अन्य यहांपर क्या साध्य है ॥ ५३ ॥ सुखदुःखोंके अनुभवसे पुनः २ उन्ही पदार्थोंके भोगनेसे और पदार्थोंके अनित्य होनेसे भोगोंमें हम उत्कंठारहितहैं ॥ ५४ ॥ अनेकभोग भोग बार २ उनकी अनित्यता भी देखी परन्तु सर्वथा विश्रामका स्थल यहां कहीं नहीं मिलता ॥ ५५ ॥ उच्चशिखरवाली मेरुकी उपवनभूमियोंमें तथा लोकपालोंकी महानगरियोंमें मैंने भ्रमणकिया परन्तु स्वाभाविक अपूर्व पदार्थ कुछभी न प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥

सर्वत्रदारुभिर्वृक्षामांसैर्भूतानिभूर्मृदा ॥ दुःखान्यनित्यताचेतिकथमाश्वास्यतेवद ॥ ५७ ॥ नधनानिनमित्राणिनसुखानिनबांधवाः ॥ शक्नुवंतिपरित्रातुंकालेनाकलितंजनम् ॥ ५८ ॥ जनोजीमूतजठरजलवद्गिरिकुक्षिषु ॥ यात्यंतःशून्यएवास्तंपांसूपचयपेलवः ॥ ५९ ॥ नमेमनोरमाःकामानचरम्याविभूतयः॥ इदंमत्तांगनापांगभंगलोलंचजीवितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—सर्वत्र वृक्ष काष्ठोंसे, प्राणीमात्र मांससे, भूमि मृत्तिकासे और सब संसार दुःख तथा अनित्यतासे व्याप्त है तो कहो इनसे कैसे धैर्य हो ॥ ५७ ॥ कालसे कवलित इस जगत्को धन, मित्र, बन्धु, तथा सुख कोईभी रक्षा नहींकर सकते ॥ ५८ ॥ धूलिकी राशिके तुल्य अस्थिर यह प्राणी पर्वतोंपर पडेहुये मेघके उदरगत जलके समान विषयमें लीन होके क्षण २ में क्षीण होके आभ्यंतर पुरुषार्थसे शून्य होकर मरणको प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ स्त्रियां, अन्यकामना, तथा ऐश्वर्य मुझे रमणीय नहीं लगते, क्योंकि यह जीवन मत्तअंगनाके अपांगकेसमान चंचल है ॥ ६० ॥

केवकस्यकथंनामकुतआश्वासनामुने ॥ अद्यश्वोवापदंपापोमृत्युर्मूर्ध्निनियच्छति ॥ ६१ ॥ शरीरंपर्णव द्भंशिजीवितंजीर्णसंस्थिति ॥ धीरधीरतयाग्रस्तारसानीरसतांगताः ॥ ६२ ॥ नीतंमनोरथैरेवनीरसैर्वा युराततम् ॥ नममस्वंचमत्कारकारिकिंचिदर्पीहितम् ॥ ६३ ॥ मोहोद्यमांद्यमायातोदेहोनेहोपयुज्यते॥ अनास्थैवोत्तमावस्थास्थानास्थैवाधमास्थितिः ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे मुने ! कहो कहां कैसे किसका आश्वासन होसकताहै ? क्योंकि आज अथवा कल मृत्यु शिरपर आपत्ति पहुंचानेको उपस्थितहै ॥ ६१ ॥ यह शरीर पत्रकेसमान पतनशील है, जीवन सर्वथा जीर्ण है, बुद्धि अधिरतासे ग्रस्त है और सब रस नीरस हैं ॥ ६२ ॥ नीरसभोग तथा उनके मनोरथोंनेही सब आयु ग्रास लिया और निजआत्माका चमत्कारजनक कोईभी पुरुषार्थ संपादन नहींकिया ॥ ६३ ॥ अब मोहमंदताको प्राप्त हुवा, यह स्थूलदेह यहां कुछ उपयोगी नहीं है, विषयोंमें विश्वास न करना यही उत्तमस्थिति है और जीवनकी आस्था करना यही अधमस्थिति है॥६४॥

आपदापतितैवेयमहोमोहविधायिनी ॥ नित्यमित्येवमंतव्यंसक्तव्यंनेहसंसृतौ ॥ ६५ ॥ विधिभिःप्रतिषे धैश्वशाश्वतैरप्यशाश्वतैः ॥ यथेष्टंनीयतेलोकोजलंनिम्नोन्नतैरिव ॥ ६६ ॥ विवेकामोदसर्वस्वंचेतःकुसु मकोशतः ॥ हृत्वामूर्छांप्रयच्छंतिविषयाविषवायवः ॥ ६७ ॥ असदेवतथानामदृष्टंसत्तामुपागतम् ॥ यथासदेवसद्रूपंसंपन्नमसदेवसत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—बुद्धिमान्को सदा संपत्तिकी प्राप्तिमें यह विचारना चाहिये कि अहो यह मोहकारक आपत्ति आके प्राप्तहुई ऐसा समझके संसारमें आसक्त न होना चाहिये ॥ ६५ ॥ नित्य अनित्य विधि तथा प्रतिबंधोंसे मनुष्य यथेष्ट ऐसे लुढकता फिरताहै जैसे जल ॥ ६६ ॥ विषप्रद विषयरूपी वायु चित्तरूपी पुष्पके कोशसे विवेकरूपी सुगन्धको हरणकरके मूर्च्छा प्राप्त करताहै ॥ ६७ ॥ जैसे सद्रूप परमात्मा मायाकी आवरणशक्तिसे असत् जगत्केसमान भासताहै ऐसेही विक्षेप- शक्तिसे असत् जगत् सत्केसमान भासताहै येही मायाका अवटित घटना पटुत्वहैं ॥ ६८ ॥

दोलायंत्योऽवनौदेहंसागरान्सागरांगनाः ॥ यथाधावंतिधावंतिजनताविषयांस्तथा ॥ ६९ ॥ धावंति विषयान्लक्ष्यमुन्मुक्ताश्चित्तसायकाः ॥ स्पृशंतिनगुणान्भूयःकृतघ्नाःसौहृदंयथा ॥ ७० ॥ उत्पातवा युरेवायुर्मित्राण्येवातिशत्रवः ॥ बंधवोबंधनान्येवधनान्येवातिनैधनम् ॥ ७१ ॥ सुखान्येवातिदुःखानि संपदःपरमापदः ॥ भोगाभवमहारोगारतिरेवपरारतिः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसे दोनोंतटोंकीओर अपने प्रवाहरूपी देहको झूमाती हुई नदियां समुद्रकी ओर दौडती हैं ऐसेही विषयी- जन विषयकी ओर दौडतेहैं ॥ ६९ ॥ छुटे हुये चित्तरूप बाण विषयकी ही ओर दौडते हैं और पुनः विवेक वैराग्यआदि गुण (दोरी) को ऐसे नहीं स्पर्श करते जैसे कृतघ्नप्राणी मैत्रीका ॥ ७० ॥ आयु उत्पातका वायु है, मित्रही स्नेहसे बांधनेसे बडे शत्रु हैं, बन्धु बन्धनहैं और धनही निधन (मरण) के साधनहैं ॥ ७१ ॥ सुखही दुःखहैं, संपत्ति आपत्तिहैं, भोगही संसारमें महारोग हैं और सब पदार्थोंमें रति (आसक्ति) महा अरति अर्थात् परमव्याकुलताहै ॥ ७२ ॥

आपदःसंपदःसर्वाःसुखंदुःखायकेवलम् ॥ जीवितंमरणायैवबतमायाविजृंभितम् ॥ ७३ ॥ बह्वन्काल परावर्त्तानिष्टानिष्टान्सुखंमनाक् ॥ पश्यन्प्रियवियोगांश्चयातिजर्जरतांजनः ॥ ७४ ॥ भोगविषयसंभो गाभोगाएवफणावताम् ॥ दशंत्येवमनाक्स्पृष्टाद्दृष्टानष्टाःप्रतिक्षणम् ॥ ७५ ॥ आयुर्यातिनिरायासपद प्राप्तिविवर्जितैः ॥ उदर्कभंगुराकारैःकरालैःकष्टचेष्टितैः ॥ ७६ ॥

अर्थ—सब संपत्ति आपत्तिरूपहैं, सुख केवल दुःखकेही लियेहैं और जीवन मरणके लिये है, देखो इस मायाका प्रभाव ॥ ७३ ॥ कालके परिवर्तनजनित इष्टानिष्टोंको, किंचित् सुखको और प्रियोंके वियोगोंको देखते हुए यह मन जर्जर होजाताहै ॥ ७४ ॥ विषयोंके संभोग सर्पोंके भोग (फण) हैं किंचित् भी स्पर्श करनेसे काटही लेतेहैं और दृष्ट होतेही क्षमेही नष्ट भी होजाते हैं ॥ ७५ ॥ आयासरहित (आत्म) पदकी प्राप्तिसे वर्जित, परिणाममें कुटिल आकार और भयंकर कष्टदायक चेष्टाओंसे यह आयु व्यर्थ जाती है ॥ ७६ ॥

भोगाशाबद्धतृष्णानामपमानःपदेपदे ॥ आलानमवलीनानांवन्यानामिवदंतिनाम् ॥ ७७ ॥ संपदःप्रम दाश्चैवतरंगोत्संगभंगुराः ॥ कस्तास्वहिफणाछत्रच्छायासुरमतेबुधः ॥ ७८ ॥ सत्यंमनोरमाःकामाः सत्यंरम्याविभूतयः ॥ किंतुमत्तांगनापांगभंगलोलंहिजीवितम् ॥ ७९ ॥ आपातरमणीयेषुरमंतेविषये षुये ॥ अत्यंतविरसांतेषुपतंतिनिरयेषुते ॥ ८० ॥

अर्थ—भोगोंकी आशामें बद्ध तृष्ण प्राणियोंका पद २ पर ऐसे अपमान होताहै जैसे स्नानपान उपवासादिकोंसे कृश बन्धनमें फंसे हुये वनके हस्तियोंका ॥ ७७ ॥ संपत्ति तथा ललनागण तरंगोंकेसमान क्षणभंगुर हैं, सर्पके फणारूप छत्रकी

छायाकेसमान उनमें कौन बुद्धिमान् रमण करसकता है ॥ ७८ ॥ स्त्रियां रमणीय और विभूति मनोहर यथार्थमें यदि कदाचित् मानभी लीजांय परन्तु मत्त अंगनाओंके कटाक्षकेसमान यह जीवनही चंचलहै ॥ ७९ ॥ बिनाविचारे रमणीय और परिणाममें अतिनीरस विषयोंमें जो रमण करते हैं वे नरकमें अवश्य गिरते हैं ॥ ८० ॥

द्वंद्वदोषोपरुद्धानिदुःसाध्यान्यस्थिराणिच ॥ धनान्यभव्यसेव्यानिममजातुनतुष्टये ॥ ८१ ॥ आपातमात्रमधुराद्दुःखपर्यवसायिनी ॥ मोहनायैवलोकस्यलक्ष्मीःक्षणविलासिनी ॥ ८२ ॥ आपातरमणीयानि विमर्दविसराण्यति ॥ दुःखान्यापत्प्रदातॄणिसंगतानिखलैरिव ॥ ८३ ॥ शरदंबुधरच्छायागत्वर्यौयौवनश्रियः ॥ आपातरम्याविषयाःपर्यंतपरितापिनः ॥ ८४ ॥

अर्थ—अर्जनसमयमें शीतोष्ण क्षुधा पीपासादि द्वंद्वोंसे उपरुद्ध, कष्टसाध्य, अस्थिर, अभव्यजनोंसे सेवनीय, धन मेरे संतोषके लिये नहीं है ॥ ८१ ॥ बिनाविचारे प्रिय, अन्तमें दुःखदायिनी, तथा क्षणविलासिनी लक्ष्मी मनुष्योंके मोहनके लिये है ॥ ८२ ॥ आपातरमणीय, शीघ्रविनाशी, दुःख तथा आपत्तिदायक धनादिका संबन्ध ऐसे हैं जैसे खलोंकी मित्रता ॥ ८३ ॥ यौवनकी शोभा शरत्कालके मेघके छायाके तुल्य नश्वरहै और विषय आरंभमें रमणीय और अन्तमें सन्तापदायक हैं ॥ ८४ ॥

अंतकःपर्यवस्थाताजीवितेमहतामपि ॥ चलंत्यायूंषिशाखाग्रलंबांबूनीवदेहिनाम् ॥ ८५ ॥ जीर्यंतेजीर्यतःकेशादंताजीर्यंतिजीर्यतः ॥ क्षीयतेजीर्यतेसर्वंतृष्णैवैकानजीर्यते ॥ ८६ ॥ भोगाभोगातिगहनेसर्वस्मिन्कायकानने ॥ परमुल्लासमायातितृष्णैकाविषमंजरी ॥ ८७ ॥ बाल्यंयौवनधयातियौवनंयातिबाल्यवत् ॥ उपमानोपमेयत्वंभंगुरत्वंमिथोनयोः ॥ ८८ ॥

अर्थ—महात्माओंके जीवनकोभी मृत्यु अवश्य आके हरेगा और प्राणियोंकी आयु ऐसे स्खलित होरही है जैसे शाखाके अग्रभागमें लटकतेहुये जल ॥ ८५ ॥ वृद्धावस्थामें प्राप्त प्राणीके केश तथा दंत जीर्ण होते हैं, सबकुछ क्षीण तथा जीर्ण होताहै, परन्तु केवल एक तृष्णाही तरुण होती जाती है ॥ ८६ ॥ आगे भावीशरीरोंकी परंपरारूप अतिगहन वनमें भोगोंके अर्थ तृष्णारूपी विषकी लता लहलहाती है ॥ ८७ ॥ यौवनके समान बाल्यअवस्था और बाल्यअवस्थाके सदृश यौवन चलाजाताहै, इन दोनोंका सादृश्य तथा क्षणभंगुरता परस्पर समानहै ॥ ८८ ॥

जीवितंगलतिक्षिप्रंजलमंजलिनायथा ॥ प्रवाहइववाहिन्यागतंनविनिवर्त्तते ॥ ८९ ॥ झटित्येवागतो देहःकुतोप्यऋजुनवातवत् ॥ यातिपश्यतएवास्तंतरंगांबुददीपवत् ॥ ९० ॥ रम्येष्वरम्यताद्दष्टास्थिरेष्वस्थिरतापिच ॥ सत्येष्वसत्यतार्थेषुतेनेहविरसावयम् ॥ ९१ ॥ सुखंयदात्मविश्रांतौगतेमनसिसत्त्वताम् ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेतन्नभोगेषुकेषुचित् ॥ ९२ ॥

अर्थ—अंजुलीके जलकेसमान शीघ्र यह जीवन गलित होताहै और नदीके प्रवाहके समान गयाहुआ पुनःनहीं लौटता ॥ ८९ ॥ तरंग, मेघ, दीप तथा वायुकेसमान जो २ देह प्राप्त होताहै वह शीघ्र देखतेही देखते नजानैं नष्ट होजाता है ॥ ९० ॥ रमणीय, स्थिर और सत्यकेसमान भासमान जगत्के पदार्थोंमें अरम्य, अस्थिर तथा असत्यदृष्टिसे हम लोगोंको वैराग्य हुआ है ॥ ९१ ॥ हे प्रभो ! वासनारहित पुरुषोंको आत्मामें विश्राम मिलनेसे जो सुख प्राप्त होता है वह सुख न पातालमें, न स्वर्गमें, न पृथिवीपर और न किसी भोगोंमें प्राप्त होताहै ॥ ९२ ॥

अपिसंपूर्णहृद्यार्थाःपंचापींद्रियवृत्तयः ॥ तावज्जयंतिमामेताभृंगंचित्रलताइव ॥ ९३ ॥ अद्यदीर्घेण कालेननिरहंकृतिनामया ॥ स्वर्गापवर्गवैतृष्ण्यमिदमासादितंधिया ॥ ९४ ॥ चिरमेकांतविश्रांत्यैतेनैतन्नभसःपदम् ॥ त्वमिवागतवानत्रदृष्टवानस्मितांकुटीम् ॥ ९५ ॥ अद्यैतत्संपरिज्ञातंयदेषाभवतः कुटी ॥ आगंतात्वंपुनश्चैतिमयातन्नविचारितम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रिय विषयसहित पाचोंइन्द्रियोंकी वृत्तियां अब वैराग्ययुक्त मुझे ऐसे नहीं जीत सकतीं जैसे चित्रगत लता भृंगकको ॥ ९३ ॥ अब अहंकाररहित होनेसे बुद्धिद्वारा दीर्घकालसे स्वर्ग तथा मोक्षसेभी वैराग्य मैंने प्राप्त किया ॥ ९४ ॥ इसीसे आपके सदृश एकान्तमें चिरकालतक आत्मामें विश्रामके लिये इस आकाशपदको प्राप्त हुआ और इस कुटीको देखा ॥ ९५ ॥ आज यह ज्ञात हुआ कि यह कुटी आपकी है और आप पुनः इसमें आओगे इसको मैंने नहीं विचारा ॥ ९६ ॥

तदात्वत्रमयाज्ञातंकश्चित्सिद्धोयमात्मना ॥ देहंत्यक्त्वेहनिर्वाणंगतइत्यनुमानतः ॥ ९७ ॥ एतन्मेभगवन्वृत्तमेषोस्मीतियथास्थितम् ॥ मयातेकथितंसर्वंयथाजानासितत्कुरु ॥ ९८ ॥ सिद्धैर्नयावदवधा

नपरैर्विचार्यनिर्णीतमुत्तमधियांतरशेषवस्तु ॥ तावत्रिकालकलनंनविदंतिकिंचिदित्यब्जजादिमनसोपि मुनेस्वभावः ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० आकाशमंडपसिद्धसमागमगाथावर्णनं नाम त्रिनवतितमःसर्गः ॥ ९३ ॥

अर्थ—उससमय तो अनुमानसे यही ज्ञात हुआ कि इस कुटीमें कोई सिद्ध रहताथा वह देह त्यागकर कैवल्यपदको प्राप्त हुआ ॥ ९७ ॥ हे भगवन् ! यह मैंने अपना वृत्तान्त आपसे यथार्थ कहदिया, अब इस अपराधमें दण्ड वा अनुग्रह जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ ९८ ॥ हे मुने ! आपकेसमान सिद्धभी एकाग्रचित्त होके जबतक सम्पूर्णपदार्थ समाधिकी दृष्टिसे विचारके निर्णय नहीं करलेते तबतक त्रिकालका ज्ञान नहीं होता, यह स्वभाव ब्रह्मादिके मनकाभी है ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे आकाशमंडपसिद्ध समागमगाथावर्णनं नाम त्रिनवतितमःसर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

वसिष्ठ तथा उस सिद्ध दोनोंका सिद्धलोकमें गमन, पिशाच तथा देवताओंकी मनोमात्रके अनुसार स्थिति इत्यादि विषय इस ९४ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥अथहेममयाकाशविस्तीर्णायांमहाभुवि॥सौहार्दादेवसिद्धस्यतस्येदमहमुक्तवान्॥१॥ त्वयानकेवलंतावन्मयापिनविचारितम् ॥ आव्याप्तिरहितानामनसंभवतिदेहिनाम् ॥ २ ॥ कस्मान्म यातवोदंतंविचार्यासौस्थिरीकृता ॥ नकुटीव्योम्नितेनत्वमभविष्यःस्थिरस्थितिः ॥ ३ ॥ उत्तिष्ठसिद्ध लोकेषुनिवसावोयथास्थितम् ॥ स्वास्पदस्थितयःसौम्याःस्वात्मसिद्धौसुसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे भगवन् ! आकाशके समान विस्तीर्ण इस सुवर्णमयी पृथिवीपर सिद्धकी प्राप्तिको मैत्रीसे मैंने आपसे यह पूंछा ॥ १ ॥ न केवल आपनेही परंतु मैंनेभी एकाग्रबुद्धिसे विचार नहीं किया क्योंकि देहधारी-सिद्धोंको भी धारणाके बिना त्रिकालका ज्ञान नहीं होता यह आपने सत्य कहा ॥ २ ॥ मैंने आपके वृत्तान्तको विचारकरके उस आकाशस्थ कुटीको स्थिर क्यों न किया जिससे कि आपकी स्थिति स्थिर होती इसलिये मेरा अपराध आपभी क्षमा करैं ॥ ३ ॥ इसलिये उठिये चलके दोनों सिद्धलोकोंमें अर्थात् आप नन्दनवनमें और मैं सप्तर्षिलोकमें अपने २ स्थानमें निवास करैं क्योंकि निर्विक्षेप अपनी स्थितिके लिये निज २ स्थानमें निवासही उत्तम होताहै ॥ ४ ॥

इतिनिर्णीयतावुच्चैरुत्पतौतारकोपमौ ॥ सममेकपुरोड्डीनौव्योमयंत्रोपलाविव ॥ ५ ॥ प्रणामपूर्वमन्यो न्यमथकृत्वाविसर्जनम् ॥ गतःसोभिमतंदेशमहंचाभिमतंगतः ॥ ६ इतिवृत्तांतमखिलमुक्तवानस्मि राघव ॥ तवाश्चर्यमयींपश्यसंसृतीनांविचित्रताम् ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवंस्तवदेहोसौपृथिव्या मणुतांगतः ॥ भ्रांतःकेनशरीरेणसिद्धलोकांस्ततोभवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ऐसा निर्णयकरके वह सिद्ध और मैं दोनों आकाशमें ऐसें उडे जैसे एक पत्रालयसे पाषाण यंत्र ॥५॥ इसके पश्चात् परस्पर प्रणामपूर्वक एकदूसरे बिदा होके वह सिद्ध अपने अभीष्ट देशमें गया और मैं अपने ॥ ६ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार निजअनुभूत पाषाणोपाख्यान तथा सिद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त तुमसे मैंने कहदिया, देखो संसारोंकी कैसी आश्चर्यमयी विचित्रता है ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! वह कुटीमें स्थित आपका देह तो धूलिमय होगया तब मनोमय देहसे आपने सिद्धलोकमें जाके अन्यजनोंकेसाथ संभाषण तथा भ्रमणआदि व्यवहार कैसे किया ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आस्मृतंशृणुवृत्तांतंततोममजगद्गृहे ॥ भ्रमतःसिद्धसेनासुलोकपालपुरीषुच॥९॥ अहमिंद्रपुरंप्राप्तोनकश्चित्तत्रदृष्टवान् ॥ मामिमंदेहरहितमातिवाहिकदेहिनम् ॥ १० ॥ अहंकिलतदा रामसंपन्नोगगनाकृतिः ॥ नचाधारोनचाधेयश्चिदाकाशमयात्मकः ॥ ११ ॥ नग्रहीतानचग्राह्यस्त्वादृ शार्थावबोधिनाम् ॥ नचैवदेशकालानांक्वचिदावृत्तिकारकः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! सुनो मुझे स्मरण आगया, कांचनमयीभूमिसे चलके जगत्‌रूपी गृहोंमें सिद्धोंकी सेवाओंमें, तथा लोकपालोंकी नगरियोंमें भ्रमण करतेहुये ॥ ९ ॥ मैं इन्द्रपुरमें प्राप्त हुआ, तब वहां स्थूलदेह

रहित तथा मनोमात्र देहधारी मुझे किसीने न देखा ॥ १० ॥ हे रामजी ! उससमय चिदाकाशमात्ररूप मैं गगनाकार होगया, न तो मेरा कोई आधार था और न आधेय ॥ ११ ॥ न तो मेरा कोई तुमारे सदृश स्थूलपदार्थोंके जाननेवालोंमें-से ग्रहीता और न ग्राह्य था, किंतु कहीं देशकालादि कल्पनाओंका परिवर्तन कर्ता मैं था ॥ १२ ॥

मनोमननमात्रात्मापृथ्व्यादिपरिवर्जितः ॥ संकल्पपुरुषाकारःपदार्थानामरोधकः ॥ १३ ॥ अरुद्धश्च पदार्थौघैःस्वयंस्वानुभवोन्मुखः ॥ व्यवहर्त्तातथाभूतैरेवंपुंभिर्मनोमयैः ॥ १४ ॥ स्वप्नानुभूतयोरामदृष्टांतोत्राविखंडितः ॥ अनुभूत्यपलापंतुयःकुर्यात्तेननतेस्त्वलम् ॥ १५ ॥ यथास्वप्नचरोगेहेव्यवहर्त्तानदृश्यते ॥ तथातदानदृष्टोस्मिपुरस्थोपिनभोगतैः ॥ १६ ॥

अर्थ—मननशील, मनोमात्र, पृथिवी आदिसे रहित, तथा संकल्पके पुरुषके आकार होनेसे मैं किसी स्थूल-पदार्थका प्रतिबन्धक नहीं था ॥ १३ ॥ स्थूलपदार्थोंके समूहोंकी रुकावट रहित, स्वयं निज अनुभवरूप, तथा संकल्प रचित मनोमय पदार्थ तथा प्राणियोंसे व्यवहार करताथा ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इसमें स्वप्नके अनुभव पूर्ण दृष्टान्त हैं और जो अनुभवको प्रमाण नहीं मानते उन (नैयायिक) आदिसे भाषणकाभी कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ १५ ॥ जैसे स्वप्नमें व्यवहार करनेवाले पुरुषको उस गृहके अन्यप्राणी न देखते हैं ऐसेही उससमय आकाशचारी देवगणने मुझे भी नहीं देखा ॥ १६ ॥

अहमन्यान्प्रपश्यामिपार्थिवाकारभासुरान् ॥ मामातिवाहिकात्मानंनकश्चिदपिपश्यति ॥ १७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ नदृश्यतेविदेहत्वाद्भवान्व्योमवपुर्यदि ॥ तत्कथंतेनसिद्धेनदृष्टोसिकनकावनौ ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मदादिर्जनोनामयथासंकल्पकल्पितान् ॥ नासंकल्पितमाप्नोतिसत्यकामवपुर्यतः ॥ १९ ॥ व्यवहारेषुमग्नेनलौकिकेष्वमलात्मना ॥ क्षणाद्विस्मर्यतेपुंसाआतिवाहिकमात्मनः ॥ २० ॥

अर्थ—पार्थिवआकारकेसमान भासमान अन्यप्राणी तथा पदार्थोंको मैंतो देखताथा परंतु मुझे कोई नहीं देखता था ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! देहरहित आकाशमय शरीरधारी आप यदि नहीं देखपडतेथे तो उस सिद्धने आपको कैसे देखा ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! हमारे सदृश सिद्धजन निजसंकल्पसे कल्पितपदार्थोंको देखताहै और सत्यसंकल्पभी असंकल्पि वस्तुको नहीं पाता ॥ १९ ॥ और व्यवहारमें निमग्न सूक्ष्मशरीरधारी निर्मल सिद्धभी क्षणमेंही अपना सूक्ष्मरूप विस्मृत होजाताहै ॥ २० ॥

मयापश्यतुमामेषइतिसंकल्पितंतदा ॥ तेनमांदृष्टवानेषस्वसंकल्पार्थभाजनम् ॥ २१ ॥ जनोजरठभेदत्वान्नसंकल्पार्थभाजनम् ॥ सएवजीर्णभेदत्वात्सत्यकामत्वभाजनम् ॥ २२ ॥ द्वयोस्तुसिद्धयोःसिद्धविरुद्धेप्सितयोर्मिथः ॥ अधिकैकावदातात्माजयीपुरुषयत्नवान् ॥ २३ ॥ भ्रमतःसिद्धसेनासुलोकपालपुरीषुमे ॥ विस्मृताव्यवहारौघैःसातिवाहिकतात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—मैंने उससमय यह संकल्प कियाथा कि यह सिद्ध मेरेको देखे इसलिये मुझे निजसंकल्पसे उस सिद्धने देखा ॥ २१ ॥ जिसको ब्रह्ममें आत्माका भेद दृढ है वह सत्यसंकल्पित पदार्थका भागी नहीं होता और जिसका भेद गलित है वह सत्यसंकल्पका भागी होताहै ॥ २२ ॥ और जब दो सिद्धोंमें परस्पर विरुद्ध अभीष्ट है जैसे एक चाहताहै मैं इसको देखूं और दूसरा चाहता है न देखे तो जिसका आत्मज्ञान प्रबल होताहै वह विजयी होताहै ॥ २३ ॥ सिद्धोंकी सेनाओंमें तथा लोकपालोंकी नगरियोंमें भ्रमण करतेहुये मुझे व्यवहारोंकी अधिकतासे सूक्ष्मरूपता विस्मृत होगई ॥ २४ ॥

यदातदाहमपरैर्व्यवहर्तुंमहांबरे ॥ प्रवृत्तोनचमांकश्चित्तत्रपश्यतिचंचलम् ॥ २५ ॥ अत्यंतमप्यारटतःशब्दोनश्रूयतेमम ॥ केनचित्सुरलोकेषुस्वप्नपुंसइवानघ ॥ २६ ॥ अवष्टब्धुंप्रवृत्तस्यनान्यावष्टब्धयेमम॥ संपद्यतेकिंचिदपिमनोमननदेहिनः ॥ २७ ॥ एवंव्योमपिशाचोहंसंपन्नोरघुनंदन ॥ मयानुभूताकाप्येषादेवागारपिशाचता ॥ २८ ॥

अर्थ—तब मैं अन्यजनोंकेसाथ व्यवहार करनेमें प्रवृत्त हुआ परन्तु उस चंचलरूपयुक्त मुझे कोई नहीं देखता था ॥ २५ ॥ हे अनघरामजी ! मैं अतिशब्द भी करताथा परन्तु मेरे शब्द कोई पुरुष ऐसे नहीं सुनताथा जैसे स्वप्नस्थ पुरुषका ॥ २६ ॥ मननशील मनरूप देहधारी मैं जब अन्यजनोंके ग्रहण अवलम्बन आदि व्यापारमें प्रवृत्त था तब भी मेरे अवलम्बनादिमें कोई नहीं समर्थ था ॥ २७ ॥ हे रघुनन्दन ! इसप्रकार मैं आकाशका पिशाच होगया और देवताओंके स्थानोंमें अनिर्वचनीय पिशाचताका अनुभव मैंने किया ॥ २८ ॥

श्रीरामउवाच ॥ पिशाचाःसंतिलोकेस्मिन्किमाकाराःकिमास्पदाः ॥ किंजातीयाःकिमाचाराःकीदृशाःकीदृशाशयाः ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पिशाचाःसंतिलोकेस्मिन्यादृशास्तादृशान्शृणु ॥

नसभ्योसौनयोवक्तिप्रसंगापतितंवचः ॥ ३० ॥ पिशाचाःकेचिदाकाशसदृशाःसूक्ष्मदेहकाः ॥ हस्तपादादिसंयुक्ताःपश्यंतित्वमिवाकृतिम् ॥ ३१ ॥ छाययाभयदायिन्यात्वन्यत्रभ्रमरूपया ॥ तेचित्ताक्रमणंकृत्वाबोधयंतिनराशयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! संसारमें पिशाच किस आकारके, कैसे आचरण करनेवाले, कैसे किस अभिप्रायसहित, किस जातिके और कहां रहतेहैं ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस लोकमें जैसे पिशाच होते हैं उनको तुम सुनो, जो सभ्य नहीं है और जो प्रसंगके अनुसार वचन नहीं बोलता वह पिशाच है ॥३०॥ हे रामजी ! कोई पिशाच आकाशकेतुल्य सूक्ष्म देहधारी स्वप्नकेसमान कल्पित हस्तपाद आदि संयुक्त होते हैं और तुमारेही सदृश अन्य आकारको देखते हैं ॥ ३१ ॥ अन्यके चित्तमें प्रवेशकरके भ्रमरूप भयदायिनी छायासे आक्रमणकरके नानाप्रकारकी दुःख आदि देनेवाली चेष्टाओंसे मनुष्यके आशयको बोधित करते हैं ॥ ३२ ॥

घ्नंत्यदंतिपिबंत्याशुलघुसत्वबलंजनम् ॥ बलसत्वमथोजीवान्हिंसंत्याक्रम्यचितकम् ॥ ३३ ॥ आकाशसदृशाःकेचित्केचिन्नीहारसन्निभाः ॥ केचित्स्वप्ननराकाराःसाकाराअपिखात्मकाः ॥ ३४ ॥ केचिदभ्रदलप्रख्याःकेचित्पवनदेहकाः ॥ केचिद्भ्रमात्मकाएवसर्वेबुद्धिमनोमयाः ॥ ३५ ॥ ग्रहीतुंनैवयुज्यंतेग्रहीतुंशकुवंतिनो ॥ आकाशशून्यवपुषःपश्यंत्याकृतिमात्मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—उनके मरणके अनुकूल कर्म होनेसे मर्मस्थानमें प्रवेशकरके शीघ्र कोई पिशाच मारते हैं, रुधिर पीते हैं और जीवोंके चित्त आक्रमणकरके बल तेज आदिकाभी नाश करते हैं ॥ ३३ ॥ कोई अतिसूक्ष्म आकाशके तुल्य, कोई कुहिरेकेसमान, कोई स्वप्नके मनुष्यके समान आकारधारी और कोई आकार धारणकरके पुनः आकाशवत् निराकार हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ कोई मेघके समान, कोई वायुके सदृश और कोई भूतग्रस्त प्राणिके भ्रमके अनुसार देहधारी परन्तु सब मनोमय शरीरधारी पिशाच होते हैं ॥ ३५ ॥ और ये पिशाच न ग्रहण करनेके योग्य, न समर्थ हैं किन्तु आकाशकेसमान शून्यशरीरधारी अपने आकारको आपही अनुभव करते हैं और परस्पर देखते हैं ॥ ३६ ॥

शीतातपादिविहितंसुखंदुःखंविदंतिच ॥ पातुमत्तुमवष्टब्धुमीहितुंशकुवंतिनो ॥ ३७ ॥ इच्छाद्वेषभयक्रोधलोभमोहसमन्विताः ॥ मंत्रौषधतपोदानधैर्यधर्मवशीकृताः ॥ ३८ ॥ सत्वावष्टंभयंत्रेणमंत्रेणाराधितेनवा ॥ दृश्यंतेपिचगृह्यंतेकदाचित्केनचित्क्वचित् ॥ ३९ ॥ देवयोनिर्हिंसातेनकेचिद्देवोपमादयः ॥ केचिन्नरसमश्रीकाःकेचिन्नागसमन्वयाः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा शीतोष्णादिजनित सुखदुःखोंको अनुभव करतेहैं और बाहरके जलको पीनेको, भोजन करनेको, किसी पदार्थका अवलम्बन वा यथेष्ट दानआदानादि व्यवहारको नहीं करसकते ॥ ३७ ॥ तथा इच्छा, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ तथा मोहयुक्त रहतेहैं और मंत्र, औषध, तप, दान, धैर्य्य तथा धर्मसे वशीभूत होतेहैं ॥ ३८ ॥ तथा सत्वके अवष्टम्भरूप योगकी धारणा, तथा आराधित मंत्रसे भूतविद्या जाननेवाले पुरुषके वशमें होके कभी सेवा आदिमें नियुक्त कियेजाते हैं ॥ ३९ ॥ पिशाचभी देवयोनिमें हैं इसलिये कोई २ देवतुल्य ऐश्वर्यवान् होतेहैं, कोई मनुष्यके समान श्रीसे संपन्न और कोई सर्पोंके सदृश होतेहैं ॥ ४० ॥

श्वशृगालोपमाःकेचिद्ग्रामजंगलवासिनः ॥ कल्यावकररथ्यासुवसंतिनिरयेषुच ॥४१॥ एतदास्पदमेतेषामित्याकाराःप्रकीर्तिताः ॥ पिशाचाएवमाचाराजन्मैषांश्रूयतामिदम् ॥ ४२ ॥ अचेत्यचिन्मयंब्रह्मसर्वशक्तिस्वभावतः ॥ यत्स्थितंबुद्धमेवांतश्चेत्यंसंकल्पयन्निव ॥ ४३ ॥ तंजीवंविद्धिसप्रौढस्त्वहंकारइतिस्मृतः ॥ सोहंकारःस्मृतःपुष्टोमनइत्युदितात्मभिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कोई कुत्ते शृगालके समान वनमें वसतेहैं और कोई गली, कूडे, मार्ग तथा नरकके समान अपवित्र स्थानोंमें रहतेहैं ॥ ४१ ॥ पिशाचोंका यह स्थान, आकार तथा आचार तुमसे कहदिया, अब इनके जन्म सुनो ॥ ४२ ॥ विषयशून्य, माया शबलित, स्वभावसे सर्वशक्ति ब्रह्म विषयका संकल्प करताहुआ मन पुरुषके समान अपनेको जानकर जिस रूपसे स्थित है ॥ ४३ ॥ उसीको तुम जीव वा प्रथम अंकुर जानो, और वही अभिमानसम्पन्न अहंकार कहाताहै और वही अहंकार पुष्ट होके मन कहागयाहै ॥ ४४ ॥

सएवकथ्यतेब्रह्मासंकल्पाकाशरूपवान् ॥ असदेवासतोबीजंजगतोविगताकृतिः ॥ ४५ ॥ एवंमनःस्थितोब्रह्मासदेहोप्यमलंनभः ॥ तत्स्वप्नपुरुषाकारःसन्नवासद्वपुःसदा ॥ ४६ ॥ पृथ्व्यादिमूर्त्तिरहितत्वातिवाहिकदेहवान् ॥ पृथ्व्यादयःकिलकुतःसंकल्पपुरुषस्यखे ॥ ४७ ॥ भवन्मनोयथाकाशपुरंपश्यतिकल्पितम् ॥ तथामनोविरंचिस्त्वंपश्यत्यात्मनिकल्पितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—समष्टिरूप वही मन संकल्प तथा आकाशरूपधारी ब्रह्मा कहागयाहै. असत् इस जगत्का असत्, आकार शून्य मनही बीज है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार मनही ब्रह्मारूप है, और ब्रह्मा देहवान् होनेपरभी निर्मल आकाशरूपही हैं, निज-स्वप्नके पुरुषके आकारके तुल्य विद्यमान होनेपरभी सदा असत् शरीर हैं ॥ ४६ ॥ पृथिवी आदि पंचभूतोंकी मूर्तिसे रहित सूक्ष्मशरीरधारी ब्रह्मा हैं क्योंकि आकाशमें संकल्प पुरुषके पृथिवी आदि कैसे कहांसे होसकतेहैं ॥ ४७ ॥ हे रामजी! तुमारा मन जैसे आकाशमें कल्पितनगरको देखताहै ऐसेही मन अपनेहीमें कल्पित विरंचिरूपता देखताहै ॥ ४८ ॥

यद्वेत्तिकल्पितंतत्सत्पश्यत्यनुभवत्यपि ॥ योयावन्मात्रकस्तत्सकस्मात्किलनपश्यति ॥ ४९ ॥ सयत्पश्यतितत्तादृक्शून्यात्माशून्यमंबरे ॥ ब्रह्मब्रह्मणिवाब्रह्मातदिदंजगदुच्यते ॥ ५० ॥ तथासंप्रतिभासोस्यचिरकालिकभावनात् ॥ घनीभूतःस्थितःपुष्टःसुदीर्घस्वप्नसुंदरः ॥ ५१ ॥ आतिवाहिकदेहस्यतस्यतच्चिरभावनात् ॥ सर्गानुभवनंभूरिब्रह्मणोब्रह्मरूप्यपि ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसलिये ब्रह्मा जिस २ निजकल्पितको जानतेहैं उस २ को उसी २ पदार्थाकारमें देखते और अनुभव करतेहैं, जो २ जीव है वह सब चिद्रूप सत् है इसलिये ज्ञानशक्तियुक्त होनेसे निज कल्पितको क्यों न देखे ॥ ४९ ॥ शून्यचिदाकाशरूप ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूप आकाशमें जो कुछ देखते हैं वही यह जगत् कहलाताहै ॥ ५० ॥ इस ब्रह्माका प्रतिभास यह जगत्रूपी दीर्घस्वप्न चिरकालकी भावनासे घनीभूत पुष्टहोके स्थितहै ॥ ५१ ॥ मनोमात्र देहधारी ब्रह्माकी चित्भावनासे ब्रह्म होकरभी यह सृष्टिका अनुभव ॥ ५२ ॥

गतंप्रकटतोत्कर्षादाधिभौतिकदेहताम् ॥ तेनैवसर्गइत्युक्तोभेदसंततिभासुरः ॥ ५३ ॥ सब्रह्माब्रह्मात्मात्माब्रह्ममात्रात्मनोस्तयोः ॥ अजातयोरेवसदातदात्मजगतोर्द्वयोः ॥ ५४ ॥ अभिन्नयोरेवभृशंशून्यत्वांबरयोरिव ॥ ऐकात्म्येनैववसतोःपवनस्पंदयोरिव ॥ ५५ ॥ वेत्तिभूतमयत्वंतन्मिथ्यैवनतुवास्तवम् ॥ तथायथात्वंसंकल्पपुरुषस्यसतोसतः ॥ ५६ ॥

अर्थ—आधिकभौतिकरूपसे प्रकट हुआ है इसीसे यह भेद समूहरूपसे भासमान सर्ग (सृष्टि) कहलाता है ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा तथा उनके संकल्पसे उत्पन्न वह जगत् दोनों ब्रह्मरूपही हैं. उत्पत्ति तथा भेदरहित आत्मा तथा जगत् ऐसे एकरूप हैं जैसे आकाश और शून्यता वा पवन और स्पन्द ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! जैसे तुम अपने संकल्प पुरुषके असत् नगरआदिको सत्भूतमयता जानतेहो ऐसेही ब्रह्माजी पृथिवी आदिकी भूतमयता मिथ्याही जानतेहैं न कि वास्तविक ॥ ५६ ॥

ततःशरीरधातूनांतेनपृथ्व्यादिकाःकृताः ॥ अभिधाःपंचचित्पुष्टाजगदित्येवताःस्थिताः ॥ ५७ ॥ यथात्वसत्यएवायंसंकल्पःसत्यएवते ॥ तथासावात्मसंकल्पंसत्यमेवानुभूतवान् ॥ ५८ ॥ सस्वयंचिन्मयाकाशःससंकल्पश्चिदंबरम् ॥ अतःस्वप्नोजगत्सर्वंकृतौनाशोद्भवौस्थितौ ॥ ५९ ॥ यथैवैतन्मनःसत्यंतद्दशाःसत्यमेवते ॥ तथैवतत्कृताश्चंद्ररुद्रार्केंद्रमरीचयः ॥ ६० ॥

अर्थ—ब्रह्मांडरूप अपनी देहकी कठिन तथा द्रवीभूत धातुओंको जो चित्सत्तासे पुष्ट हैं उनकी पृथिवीआदि पांच संज्ञा ब्रह्माजीने की हैं वेही सब मिलके जगत् कहलातेहैं ॥ ५७ ॥ जैसे तुम अपने असत्यही संकल्पस्वप्नादिको उस दशामें सत्यरूपसे अनुभव करतेहो ऐसेही ब्रह्माजीने अपने संकल्पजनित जगत्का सत्यरूपसे अनुभव किया ॥ ५८ ॥ जैसे ब्रह्माजी वैसा उनका संकल्प चिन्मय आकाशरूपहीहै, इसलिये यह संपूर्ण जगत् ब्रह्माजीका संकल्पही है और संकल्पसे कियेहुये इसके नाश और उत्पत्ति स्थितहैं ॥ ५९ ॥ जैसे यह मनरूप ब्रह्मा सत्य हैं ऐसेही उसकी वृत्तिरूप चन्द्र रुद्र सूर्य्यादिभी अर्थक्रिया करनेमें सत्यहीहैं ॥ ६० ॥

एवंस्थितेजगज्जालंतन्मनोराज्यमुच्यते ॥ तच्चशून्यंनिरालंबमाकाशकचनंचिति ॥ ६१ ॥ यथास्वप्नपुरंव्योमसंकल्पाद्रिर्यथानभः ॥ तथाब्रह्मजगच्चैवखमेवाच्छमनाकृति ॥ ६२ ॥ एवमाभासमात्रस्यकचतोनिशमव्ययम् ॥ सर्गादिमध्यांतदशोमुधैवात्रोदिताःस्थिताः ॥ ६३ ॥ किंचिदाकाशकोशस्यतववाममवानघ ॥ जगतोवापिजायेतकिंवानश्यतिमेवद ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसलिये यह संपूर्ण जगज्जाल मनोराज्य है और वह सब चित्में निरालम्ब चिदाकाशरूपही है ॥ ६१ ॥ जैसे स्वप्नके नगर पर्वतादि चिदाकाशरूप हैं ऐसेही यह जगत् निराकार स्वच्छ चिदाकाशरूपही है ॥ ६२ ॥ इसप्रकार आभासमात्रसे सर्वदा स्फुरित इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय मिथ्याही उदितहैं. यथार्थमें तो अविनाशी

ब्रह्महीहै ॥ ६३ ॥ हे पापरहित रामजी ! चिदाकाशरूप हमारा, तुमारा, अन्यका तथा इस जगत्का क्या उत्पन्न होताहै और क्या नष्ट होताहै सो तुम हमसे कहो ॥ ६४ ॥

तत्किमर्थमनर्थायनिरर्थकमपार्थकाः ॥ कस्मादभ्युदिताब्रूहिरागद्वेषभयादयः ॥ ६५ ॥ वस्तुतोंगनसर्गादिर्नसर्गोनाप्यसर्गता ॥ विद्यतेसकृदाभातमिदमित्थंसदैवतत् ॥ ६६ ॥ आशून्येविपुलाभोगेस्वच्छचिज्जलपूरिते ॥ कलनापंककलिलेभविष्यतिचिदंबरे ॥ ६७ ॥ अंतरिक्षाक्षयक्षेत्रेखात्मनोगगनात्मिका॥ तस्माद्वीजादियंजाताभूरिभूतशिलावलिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—इसलिये केवल निरर्थक प्रयोजनशून्य राग द्वेष भय आदि क्यों उदित हुये सो तुम कहो ॥ ६५ ॥ हे प्रिय रामजी! यथार्थ न सृष्टिका कारण है, न सर्गता और न असर्गता है किंतु एकवार भान होनेसे पुनः आवरण न होनेसे यह प्रत्यक् ब्रह्मरूपही है ॥ ६६ ॥ सर्वथा शून्य, विशालरूप, स्वच्छ, चित्स्वरूप जलसे पूर्ण, और कल्पनारूप पंकसे कलंकित होनेपर चिदाकाशमें इस चिदाकाशरूप बीजसे चिदाकाशरूपही अक्षय क्षेत्रमें यह चिदाकाशरूपही अनन्त पंचभूतरूप ब्रह्मांडशिलाओंकी पंक्ति उत्पन्न हुई और आगेभी होगी ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

नास्तिकिंचिदिहक्षेत्रंव्युप्तंनामनकिंचन ॥ नबीजमस्तिनोजातंकिंचित्सर्वंचसंस्थितम् ॥ ६९ ॥ याः शिलावलयस्तत्रपुष्टास्ताविबुधादयः ॥ यास्तुवर्णोज्ज्वलाएताःस्वास्थिताबुद्धबुद्धयः ॥ ७० ॥ यास्त्वर्द्धपक्कास्ताएतानरनागादिजातयः ॥ यास्त्वाश्यानारजोनष्टास्ताःकृमिस्थावरादयः ॥ ७१ ॥ यास्त्वगुर्व्यःफलैर्हीनाःशून्याकाराःक्षयक्षताः ॥ अशरीराःशरीरिण्यस्ताःपिशाचादिकाःस्मृताः ॥ ७२ ॥

अर्थ—यथार्थमें इस चिदाकाशमें न कोई क्षेत्र है, न कुछ बोयागया, न बीज है और न कुछ उत्पन्न हुआ परन्तु उसकी मायासे सब कुछ स्थित हैं ॥ ६९ ॥ इसमें जो शिलाओंकी पंक्ति पुष्ट हैं वे देव हैं, जो तेज तथा बुद्धिके उदय सहित हैं वे देवर्षि आदि हैं ॥ ७० ॥ और जो अर्द्ध उज्ज्वलभूत शिला हैं वे मनुष्य नागादिक हैं, और म्लान रजोगुणसे नष्ट हैं वे कृमि कीट स्थावर आदि हैं ॥ ७१ ॥ और जो भारभूत कांति प्रकाशादि फलोंसेहीन, शून्याकार, हानिमें तत्पर तथा शरीररहितभी शरीर धारण करनेवाली शिला हैं वे पिशाचादि हैं ॥ ७२ ॥

नहिसंकल्पितुःस्वेच्छाक्वचित्पर्यनुयुज्यते ॥ तास्तथेच्छाविरिंचस्यतथानामतथोदिताः ॥ ७३ ॥ सर्वा एवचिदाकाशरूपिण्योभूतजातयः ॥ आतिवाहिकदेहिन्यःपृथ्व्यादिरहितात्मिकाः ॥ ७४ ॥ ताश्चिराभ्यासवशतस्त्वाधिभौतिकसंविदम् ॥ प्राप्तादीर्घानुभवनात्स्वप्नजाग्रद्दशामिव ॥ ७५ ॥ पिशाचाद्यास्तथाएतेतथाभूताधिभौतिकाः ॥ तिष्ठंतितुष्टमनसःस्वसंसारविहारिणः ॥ ७६ ॥

अर्थ—ब्रह्माजीने अपनी इच्छासे देवऋषि आदिकोही क्यों न उत्पन्न किया और पिशाचादि दुष्ट शिलाओंको किया, यह आक्षेप उनकी इच्छापर नहीं करसकते क्योंकि वे ब्रह्माकी इच्छा पूर्व कल्पके प्राणियोंके कर्मवासनादिके अनुसार हुई है ॥ ७३ ॥ यथार्थमें तो सब प्राणियोंकी जाति तथा पंचभूत मनोमात्र देहधारी, पृथिवी आदिसे रहित, चिदाकाशरूपही हैं ॥ ७४ ॥ और चिरकालके अभ्याससे वे सब आधिभौतिकरूपको ऐसे प्राप्त हुये हैं जैसे दीर्घकालकी भावनासे स्वप्न जाग्रद्दशाको प्राप्त हो ॥ ७५ ॥ ये पिशाच आदिभी चिरकालके अभ्याससे आधिभौतिकरूपताको प्राप्त निज संसारमें विहार करते हुये अपनी योनिके योग्य भोगोंसे संतुष्टमन हैं ॥ ७६ ॥

पश्यंतिकाश्चिदन्योन्यंग्राम्याग्राम्येयकानिव ॥ स्वप्नैकलोकवास्तव्याइवैताभूतजातयः ॥ ७७ ॥ काश्चिद्बहुनरप्राप्तस्वप्ननिर्माणलोकवत् ॥ नान्योन्यमपिपश्यंतिनानासंस्थानसंस्थिताः ॥ ७८ ॥ स्थितायथैताजगतिपिशाचाद्याःकुजातयः ॥ प्रायस्तथैताःकुंभांडयक्षप्रेतादयःस्थिताः ॥ ७९ ॥ यथायत्रेहवैनिम्नाजलंतत्रावतिष्ठते ॥ तथायत्रपिशाचाद्यास्तमस्तत्रावतिष्ठते ॥ ८० ॥

अर्थ—स्वप्नलोकके निवासियोंके तुल्य कोई२ पिशाचोंकी जाति परस्पर एक दूसरेको ऐसे देखती हैं जैसे ग्रामीण जन अन्य ग्रामीणको ॥ ७७ ॥ और नानाप्रकारकी रचनायुक्त कोई २ पिशाचजाति बहुधा मनुष्यके स्वप्नके प्राणियोंके तुल्य परस्परभी नहीं देखती ॥ ७८ ॥ हे रामजी ! इस संसारमें जैसे पिशाचादि दुष्ट जाति स्थित हैं प्रायः ऐसेही कुंभांड यक्ष प्रेतादिभी हैं ॥ ७९ ॥ जैसे निम्नस्थानमें जल स्थित रहताहै ऐसेही जहां पिशाचादि रहतेहैं वहांपर उनके पापके तारतम्यसे न्यूनाधिक तमोगुणभी रहताहै ॥ ८० ॥

मध्याह्नेपिपिशाचश्चेदजिरेतिष्ठतिस्वयम् ॥ तत्तस्यांधंतमस्तत्रसंनिधानंकरोत्यलम् ॥ ८१ ॥ ननिहंतिचतद्भानुर्नचान्यस्तत्प्रपश्यति ॥ सएवचानुभवतिपश्यमायाविजृंभितम् ॥ ८२ ॥ अग्नेरादित्यचंद्रादे

स्तैजसंमंडलंयथा ॥ पिशाचादेरजन्यात्मतामसंमंडलंतथा ॥ ८३ ॥ यातितेजस्यनोजस्त्वंतमस्योजः प्रधानताम् ॥ उलूकवत्पिशाचाद्याआश्र्चर्यंतत्स्वभावतः ॥ ८४ ॥ एषापिशाचाजनितस्यजातिःप्रोक्ता मयातेसमयानपेता ॥ पिशाचतुल्यःसुरलोकपाललोकेषुजातोहमितिप्रसंगात् ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पिशाचवर्णनप्रसंगेन जगद्ब्रह्मणोरैक्यप्रतिपादनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

अर्थ—यदि मध्यान्हसमयमेंभी पिशाच आंगन आदि देशोंमें रहे तौ वहांभी अन्धकार उसके संमुख रहताहै ॥ ८१ ॥ उस अन्धकारको सूर्य्य उसके लिये नहीं नष्ट करते और न दूसरा उसको देखताहै किन्तु वह पिशाच स्वयं उसको अनुभव करताहै, देखो मायाका कैसा प्रताप है ॥ ८२ ॥ जैसे हमारे व्यवहारके लिये सूर्य्य, चन्द्रमा तथा अग्निका तेजोमण्डल है ऐसेही पिशाचादिके व्यवहारके लिये रात्रिके अन्धकारका मंडल है ॥ ८३ ॥ उलूकके समान पिशाचादि अपने स्वभावसेही प्रकाशमें निर्बल होजातेहैं और अन्धकारमें प्रबल, देखो यह कैसा आश्चर्य्य है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! लोकपालके नगरोंमें मैं पिशाचके तुल्य होगया इस प्रसंगमें तुमारे प्रश्नके अनुसार यह पिशाचजातीका मैंने अयोग्यस्थलमें वर्णनकिया ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पा० भाषानुवादे पिशाचप्रसंगेन जगद्ब्रह्मणोरैक्यप्रतिपादनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

सत्यसंकल्पके स्मरणसे पुनः प्राणियोंके साथ व्यवहार और अपनी आकाश वसिष्ठादि नामकी प्राप्ति इस ९५ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततश्चिदाकाशवपुर्भूतपंचकवर्जितः ॥ विहरन्नहमाकाशेपिशाचइवसंस्थितः ॥ १ ॥ नमांपश्यंतिचन्द्रार्कशक्राहरिहरादयः ॥ नदेवसिद्धगन्धर्वकिंनरानाप्सरोगणाः ॥ २ ॥ नाक्रामंतिमयाक्रांतानचशृण्वंतिमद्वचः ॥ इत्यहंमोहमापन्नोविक्रीतइवसज्जनः ॥ ३ ॥ अथचिंतितवानस्मि सत्यकामाइमेवयम् ॥ पश्यंतुमांसुरगणास्तेनतस्मिन्सुरालये ॥ ४ ॥ द्रष्टुंप्रवृत्तामामग्रेवास्तव्याःसर्वएवते ॥ झटित्येवपुरंप्राप्तमिंद्रजालद्रुमंयथा ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! उससमय पंचभूतसे वर्जित केवल चिदाकाशमात्र देहधारी पिशाचके तुल्य आकाशमें भ्रमण करता हुआ मैं स्थित था ॥ १ ॥ उससमय मुझे चन्द्र, सूर्य्य, इन्द्र तथा हरिहर आदिदेव और देव, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सरागण कोइभी नहीं देख सकते थे ॥ २ ॥ मैं पादन्यास आदिसे उनके ऊपर आक्रमणभी करताथा परन्तु वे मेरे ऊपर आक्रमण नहीं करसकतेथे, न मेरा वचन सुनतेथे, इसकारण कर्तव्य अकर्तव्यके प्रतिसन्धानसे शून्य मैं मोहको प्राप्त विक्रीत सज्जनके समान होगया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् मैंने यह विचारा कि हम तो सत्यकाम हैं इसलिये संकल्प किया कि सब देवतागण मुझे देखैं तब उस देवालयमें संमुखके निवासी शीघ्र मुझे देखनेमें ऐसे प्रवृत्त हुये जैसे अपने आगे प्राप्त इन्द्रजालके वृक्षको ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथगीर्वाणगेहेषुसंपन्नोव्यवहार्य्यहम् ॥ यथास्थितसमाचारः स्थितोनिःशंकचेष्टितः ॥ ६ ॥ यैरविज्ञातवृत्तांतैर्दृष्टोहमजिरोत्थितः ॥ वसिष्ठःपार्थिवइतिलोकेषुप्रथितोस्मितैः ॥ ७ ॥ व्योमन्यादित्यरश्मिभ्योदृष्टोहंयैर्नभोगतैः ॥ वसिष्ठस्तैजसइतिलोकेषुप्रथितोस्मितैः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् यथेष्ट आचारशील तथा शंकारहित देवताओंके गृहोंमें भाषाआदि व्यवहार मैं करनेलगा ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् जिनको मेरा वृत्तान्त नहीं ज्ञात था उन्होंने देखनेपर इसी अंगणकी पृथिवीसे उत्पन्न हुये हैं इसलिये पार्थिव वसिष्ठ इत्यादि नामोंसे मुझे प्रसिद्ध किया ॥ ७ ॥ आकाशमें सूर्य्यकी किरणोंसे निकलते हुये जिन आकाशनिवासियोंने मुझे देखा उन्होंने तैजस वसिष्ठ ऐसा लोकोंमें प्रसिद्ध किया ॥ ८ ॥

वातात्समुदितोदृष्टोयैरहंगगनास्पदैः ॥ सिद्धैर्वातवसिष्ठाख्यस्तैरहंसमुदाहृतः ॥ ९ ॥ यैरहंसलिलादृष्टःप्रोत्थितस्तैर्मुनीश्वरैः ॥ उक्तोवारिवसिष्ठोहमितिमेजन्मसंततिः ॥ १० ॥ ततःप्रभृतिलोकेहंपार्थिवःप्रथितःक्वचित् ॥ अम्मयःक्वचिदन्येषांतैजसोमारुतःक्वचित् ॥ ११ ॥ अथकालेनमेतत्रतस्मिन्नेवातिवाहिके ॥ आधिभौतिकतादेहेरूढारूढांतरेरिता ॥ १२ ॥

अर्थ—और वायुमंडलसे निकलेहुये मुझे जिन आकाशनिवासी देव सिद्धोंने देखा वे वातवसिष्ठ ऐसा मुझे कहने-लगे ॥ ९ ॥ और जिन मुनीश्वरोंने जलसे निःसृत हुवा मुझे देखा उन्होंने वारिवसिष्ठ मुझे कहा. इसप्रकार अन्य अन्यकल्प-नाओंसे मेरे नाम तथा जन्मकी कल्पना हुई ॥ १० ॥ उससमयसे लोकोंमें कहीं तो मैं पार्थिव, कहीं अम्मय, कहीं तैजस और कहीं मारुतवसिष्ठ करिके प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् काल पाके चिरकालके अभ्याससे परिणत उसी मेरे सूक्ष्मशरीरमें आधिभौतिकता प्रकट हुई और चिरकालके अभ्याससे मनने उसको प्राप्त की ॥ १२ ॥

यदेतदातिवाहित्वमाधिभौतिकताचखम् ॥ द्वयमप्येकदेहात्मतत्तःकचतिमेचितिः ॥ १३ ॥ एवमात्म क्वचिद्व्योमकचनात्माप्यहंनभः ॥ परमेवनिराकारंयुष्मास्वाकारवानपि ॥ १४ ॥ जीवन्मुक्तोव्यवहरं स्तथास्तेब्रह्मखात्मकः ॥ तथैवादेहमुक्तोपितिष्ठतिब्रह्मभात्रकः ॥ १५ ॥ ममनब्रह्मतापेताताद्दग्व्यवह तेरपि ॥ असंभवादन्यद्दशोयुष्मदादिष्वहंत्वहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और मेरी दृष्टिमें आतिवाहिक (सूक्ष्म) तथा आधिभौतिक दोनों देह चिदाकाशरूप हैं इसलिये मेरा चैतन्य आत्मभावसेही स्फुरित होताहै न कि देहात्मभावसे ॥ १३ ॥ इस रीतिसे कहीं आकाशादि पंचभूतरूपसे स्फुरित होनेपरभी मैं निराकार परब्रह्मरूपही हुं और तुमलोगोंके उपदेशादिके लिये साकारभी हुं ॥ १४ ॥ जैसे विदेह-कैवल्यमें प्राप्त तत्वज्ञानी चिदाकाशरूपसे स्थित रहताहै ऐसेही व्यवहार करतेहुये जीवन्मुक्तभी हैं ॥ १५ ॥ ब्रह्मसे अन्य दृष्टिका संभव न होनेसे वैसा व्यवहार करनेपरभी मेरी ब्रह्मरूपता नहीं गई और तुमारे उपदेशादिके लिये मैं वसिष्ठरूपसे स्थितहुं ॥ १६ ॥

यथाज्ञस्यस्वप्ननरेनिर्जन्मनिनिराकृतौ ॥ आधिभौतिकताबुद्धिस्तथामेजगतोपिच ॥ १७ ॥ एवमेवाव भासंतेसर्वएवस्वयंभुवः ॥ सर्गाश्चनतुजायंतेप्रयाताइवचोदिताः ॥ १८ ॥ एषसोहमिहाकाशवसिष्ठः पुष्टतामिव ॥ गतोद्यस्वात्मनाभ्यासाद्भवतांवाभवत्स्थितिः ॥ १९ ॥ आकाशात्मानएवैतेसर्वएवस्वयं भुवः ॥ यथात्वेतन्मनोमात्रमिमेसर्गास्तथैवहि ॥ २० ॥

अर्थ—आकार तथा जन्मरहित स्वप्नके मनुष्यमें जैसे अज्ञानीको आधिभौतिकदृष्टि होतीहै, ऐसेही मेरी जगत् तथा अन्यजनके विषयमें है ॥ १७ ॥ इसप्रकार ब्रह्मासे लेके सब शरीर तथा ब्रह्मासे रचित सब सृष्टि अन्यअज्ञोंकी दृष्टिमेंही आधिभौतिक तथा उत्पन्न भासतेहैं परन्तु यथार्थमें वे उत्पन्न नहीं होते ॥ १८ ॥ यह मैं आकाशज वसिष्ठ निजमनके अभ्याससे वा तुमारी बुद्धिके अनुसार आधिभौतिक देहसे स्थितहुं ॥ १९ ॥ तत्वज्ञ तथा सब ब्रह्माकी दृष्टिमें उनके सब देह चिदाकाशमात्र हैं और जैसे ब्रह्मा हैं वैसेही उनके कल्पित सब सृष्टिभी हैं ॥ २० ॥

अहमादिरयंसर्गस्त्वपरिज्ञानदोषतः ॥ वेतालइवबालानांगतोवोवज्रसारताम् ॥ २१ ॥ परिज्ञातस्तुका लेनस्वल्पेनैवोपशाम्यति ॥ वासनातानवात्स्नेहोबंधौदूरगतेयथा ॥ २२ ॥ घनत्वमहमासाद्यतथासर्ग स्यशाम्यति ॥ परिज्ञातायथास्वप्ननिधेरादेयभावना ॥ २३ ॥ शाम्यंतिसंपरिज्ञाताःसकलादृश्यदृष्ट यः ॥ यथामरुनदीवेगवारिग्रहणबुद्धयः ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञानके दोषसे हमसे आदि लेके यह सब सृष्टि तुम लोगोंकी दृष्टिमें वज्रके समान ऐसे दृढ है जैसे बालकोंकी दृष्टिमें वैताल ॥ २१ ॥ परिज्ञात होनेसे अल्पकालमेंही यह सृष्टिका आधिभौतिकरूप ऐसे शान्त होजाताहै जैसे वासना सूक्ष्म होनेसे दूरगत बन्धुमें स्नेह ॥ २२ ॥ ज्ञान होनेसे अहंकाररूप सृष्टिकी स्थूलता ऐसे शान्त होती है जैसे ज्ञात होनेपर स्वप्नके धनमें ग्रहणकी भावना ॥ २३ ॥ ज्ञान होनेपर सब दृश्यकी दृष्टि ऐसे शान्त होजातीहैं जैसे मरुस्थलकी नदीके वेगमें जलग्रहणबुद्धि ॥ २४ ॥

महारामायणप्रायशास्त्रप्रेक्षणमात्रतः ॥ एतदासाद्यतेनित्यंकिमेतावतिदुष्करम् ॥ २५ ॥ संसारवासना भावरूपेसक्तानुयस्यधीः ॥ मंदोमोक्षेनिराकांक्षीसश्वाकीटोथवाजनः ॥ २६ ॥ भोगाभोगःकिलायंयः सजीवन्मुक्तबुद्धिना ॥ कीदृशोभुज्यमानःस्यात्कीदृक्स्यान्मौर्ख्यसेविना ॥ २७ ॥ महारामायणप्रायशा स्त्रप्रेक्षणमात्रतः ॥ अंतःशीतलतोदेतिपरार्थेषुहिमोपमा ॥ २८ ॥

अर्थ—इस महारामायणके सदृश शास्त्रके दर्शनमात्रसे जीवनमुक्तता प्राप्त होती है, इससे और दुष्कर क्या है ॥ २५ ॥ संसारकी वासनाके वशसे जिसकी बुद्धि अभावरूप देहइन्द्रियोंके भोग्यपदार्थोंमें आसक्त है और मोक्षमें इच्छा-रहित है वह कुत्ता वा कीट है न कि मनुष्य ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तबुद्धिकरके जो भोग भोगाजाता है वह कैसा

(चिद्रूपसे आनन्दप्रद) होताहै ? और मूर्खदृष्टिसे जो भोगाजाताहै वह कैसा (दुःखप्रद) होताहै ॥ २७ ॥ महारामायणके सदृश शास्त्र देखनेसे ज्ञानियोंको सब पदार्थोंमें हिमकेसमान अन्तःकरणमें शीतलता उदय होती है ॥ २८ ॥

मोक्षःशीतलचित्तत्वंबंधःसन्तप्तचित्तता ॥ एतस्मिन्नपिनार्थित्वमहोलोकस्यमूढता ॥ २९ ॥ अयंप्रकृत्याविषयैर्वशीकृतःपरस्परंश्रीधनलोलुपोजनः ॥ यथार्थसन्दर्शनतःसुखीभवेन्मुमुक्षुशास्त्रार्थविचारणादितः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० वसिष्ठशरीरवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

॥ दिवसः १७ ॥ ॥ पाषाणोपाख्यानं समाप्तम् ॥

अर्थ—चित्तकी शीतलता येही मोक्ष है और उसकी संतप्तता बंध है, अहो कैसी संसारकी मूढता है कि चित्तकी शीतलतामेंभी इच्छा नहीं होती ॥ २९ ॥ स्वभावसेही यह प्राणी विषयोंमें वशीभूत है इसलिये युद्ध, चोरी आदिसेभी स्त्री तथा धनादिके उपार्जनमें लोलुप है, और जब संसारसे विरक्त होके मुमुक्षुओंके शास्त्र (वेदान्त) को विचार करके तत्वज्ञानको संपादन करताहै तब सुखी होताहै ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि इतना कहके श्रीवसिष्ठजीमहाराज मौन होगये, सूर्य्यभगवान्भी अस्ताचलको गये, स्नानसंध्यादि कर्मके लिये सभाभी नमस्कारपूर्वक बिदा हुई और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यकी किरणोंके साथ पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्तरार्धे पाषाणोपाख्याने भाषानुवादे वसिष्ठशरीरवर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

सप्तदशो (१७) दिवसः ॥ पाषाणोपाख्यानं समाप्तम् ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

पाषाणोपाख्यानका तात्पर्य्य, चिद्विवर्तमात्रसे जगत्का भ्रम, और चिद्रूप आत्मा ब्रह्मानन्दमय, अजर तथा अमर है इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ९६ के सर्गमें किया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पाषाणाख्यानमेतत्तेकथितंकार्यकोविद ॥ अनयेमाःस्फुरद्दृष्ट्यासृष्टयोनभसिस्थिताः ॥ १ ॥ नचस्थितंकिंचनापिक्वचनापिकदाचन ॥ स्थितंब्रह्मघनेब्रह्मयथास्थितमखंडितम् ॥२॥ ब्रह्मचिन्मात्रकंविद्धितद्यथास्वप्नदृष्टिषु ॥ पुरंभवन्निजाद्रूपान्नकदाचनभिद्यते ॥ ३ ॥ स्वयंभूत्वसमापतौतथादृश्यव्यवस्थितौ ॥ स्वरूपमजहत्त्वेवचिदाकाशमजंस्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे कार्य्यकुशल रामजी ! मैंने यह पाषाणोपाख्यान तुमको वर्णनकिया, इस आख्यानसे चिन्मात्र पूर्णदृष्टिसे सब सृष्टि चिदाकाशमें स्थित हैं यह निश्चय करो ॥ १ ॥ यह जगत् कदाचित् कहींभी स्थित नहीं है किंतु सैन्धव घनके तुल्य चिदेकरसस्वभाव ब्रह्ममें अखंडित ब्रह्मही स्थित है ॥ २ ॥ जैसे स्वप्नमें निज चिद्रूपसे स्फुरित नगरादि चित्स्वभावसे कदाचित्भी भिन्न नहीं होता ऐसेही ब्रह्ममात्र इस जगत्को जानो ॥ ३ ॥ स्वयंभूरूपसे स्थूल जगत्की व्यवस्थिति होनेपरभी अजन्मा चिदाकाश अपने चित्स्वभावको न त्यागता हुआ स्थित है ॥ ४ ॥

नस्वयंभूर्नचजगन्नस्वप्नपुरमस्त्यलम् ॥ स्थितंसंविन्महादृष्ट्याब्रह्मचिन्मात्रमेतया ॥ ५ ॥ यथापुरंभवत्स्वप्नेचिद्रूपंस्वात्मनिस्थितम् ॥ अखण्डमेवमासृष्टेरामहाप्रलयास्थिते ॥ ६ ॥ हेमहेमाश्मनोःस्वप्नपुरचेतनयोर्यथा ॥ भेदोनसंभवत्येवनभेदश्चितिसर्गयोः ॥ ७ ॥ चितिरेकास्तिनोसर्गोहेमास्तिनतदूर्मिका ॥ स्वप्नाचलेचिदेवास्तिनतुकाचनशैलता ॥ ८ ॥

अर्थ—यथार्थमें न ब्रह्मा है, न जगत् है और न स्वप्नके नगरादि हैं किन्तु इस आख्यानसे चिन्मात्र महादृष्टिसे चिद्रूप ब्रह्मही स्थित है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नमें स्फुरित नगर चिद्रूपसे निजआत्माहीमें स्थित है ऐसेही प्रलयपर्य्यन्त सब सृष्टि पूर्ण ब्रह्मरूपसेही स्थित है ॥ ६ ॥ मेरुपर्वतमें सुवर्ण तथा सुवर्णकी शिला और स्वप्ननगर तथा चेतनमें जैसे भेद नहींहै ऐसेही चेतन और इस सृष्टिमेंभी कुछ भेद नहीं है ॥ ७ ॥ जैसे मेरुमें सुवर्णही है न कि पाषाणता और स्वप्नके पर्वतमें केवल चेतनही है न कि शैलता ऐसेही यहांभी केवल एक चेतन है न कि सृष्टि ॥ ८ ॥

चिदेवशैलवद्भातियथास्वप्नेनिरामया ॥ तथाब्रह्मनिराकारंसर्गवद्भातिनेतरत् ॥ ९ ॥ चिन्मात्रमिदमाकाशमनंतमजमव्ययम् ॥ महाकल्पसहस्रेषुनोदेतिनचशाम्यति ॥ १० ॥ चिदाकाशोहिपुरुषश्चिदाकाशोभवानयम् ॥ चिदाकाशोहमजरश्चिदाकाशोजगत्त्रयम् ॥ ११ ॥ चिदाकाशंवर्जयित्वाशवमेवशरीरकम् ॥ अच्छेद्योसावदाह्योसौचिदाकाशोनशाम्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें निर्विकार चेतनही पर्वतकेसमान भासताहै ऐसेही निराकार ब्रह्मही सृष्टिके सदृश भासताहै और कुछ नहीं ॥ ९ ॥ यह संपूर्ण आकाश अज, अविनाशी तथा अनन्त चिदाकाशही है वह सहस्रों महाकल्पोंमें न उदित होताहै न शान्त होताहै किन्तु एकरस रहताहै ॥ १० ॥ जीव चिदाकाशही है, तुमभी चिदाकाश हो, यह मैंभी अजर, अमर, चिदाकाश हुं और यह तीनों लोकभी चिदाकाशही है ॥ ११ ॥ चिदाकाशके विना यह शरीर मृतक है और यह चिदाकाश अच्छेद्य तथा अदाह्य है, तथा कभी शान्त नहीं होताहै ॥ १२ ॥

अतोनकिंचिन्म्रियतेनचकिंचनजायते ॥ चित्वात्तत्श्चित्कचनंजगदित्यनुभूयते ॥ १३ ॥ चिन्मात्रपुरुषोजंतुर्म्रियतेयदिनामवा ॥ ततोमरिष्यत्तत्पुत्रोनिःसन्देहंपितुर्मृतौ ॥ १४ ॥ एकस्मिन्प्रमृतेजंतावमरिष्यंस्तुसर्वदा ॥ सर्वएवजनाःशून्यमभविष्यन्महीतलम् ॥ १५ ॥ नचाद्यापिमृतंरामचिन्मात्रंकस्याचित्क्वचित् ॥ नचशून्यास्थिताभूमिस्तस्माच्चित्पुरुषोऽक्षयः ॥ १६ ॥

अर्थ—चिद्रूप होनेसे न कुछ मरताहै न उत्पन्न होताहै इसलिये चित्का स्फुरणही जगद्रूपसे अनुभूत होताहै॥१३॥ यदि चिन्मात्र जीव मरै तो (आत्मा वै जायते पुत्रः) इस श्रुतिसे पितापुत्रका अभेद होनेसे पिताके मरणसे उसका पुत्रभी मरजायगा ॥ १४ ॥ और "एकएव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः" (एकही जीव सब भूतोंमें रहाहै) इस श्रुतिसे एकके मरनेसे सब संसारके प्राणी मरजांयगे तब यह संसारही शून्य होजायगा ॥ १५ ॥ हे रामजी ! चिन्मात्र कभी किसीका कहींभी मृत्युको नहीं प्राप्तहुआ और न यह भूमि जीवसे शून्य हुई, इसलिये चिन्मात्रजवि सदा अविनाशी है ॥ १६ ॥

एकंचिन्मात्रमेवाहंनशरीरादयोमम ॥ इतिसत्यनुसन्धानेक्वजन्ममरणादयः ॥ १७ ॥ अहंचिन्मात्रममलमित्यात्मानुभवंस्वयम् ॥ अपह्नुत्यात्महन्तारोनिमज्जन्त्यापदर्णवे ॥ १८ ॥ चिदहंगगनादच्छानित्यानंतानिरामया ॥ किंजीवितंमेकिंवापिमरणंवासुखासुखे ॥ १९ ॥ व्योमात्मचेतनमहंकेशरीरादयोमम ॥ इत्यात्महापन्हुतेंतयोंनुभूतंधिगस्तुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—अद्वितीय चिन्मात्र मै हुं, शरीरआदि मेरे नहीं हैं ऐसा विचारनेसे जन्ममरणआदि कहां ॥ १७ ॥ एक चिन्मात्र आत्मा मैं हुं इस अनुभवको जो कुतर्कोंसे खंडन करतेहैं वे आत्महन्ता प्राणी आपत्तिके समुद्रमें डूबतेहैं ॥ १८ ॥ आकाशसेभी स्वच्छ, नित्य, अनन्त तथा निर्विकार चिद्रूप मैं हुं, मेरेलिये जीवन मरण वा सुख दुःख क्या है ॥ १९ ॥ चिदाकाशरूप चेतन मैं हुं शरीर आदि मेरे कौन होसकतेहैं, इस विद्वान्‌के अनुभवको जो अपलाप करताहै उस आत्महन्ताको धिक्कार है ॥ २० ॥

चिदाकाशमहंस्वच्छमनुभूतिरितिस्फुटा ॥ यस्यास्तमागतामूढंतंजीवंतंशवंविदुः ॥ २१ ॥ अहंवेदनमात्रात्माकानिदेहेंद्रियाणिमे ॥ लब्धात्मानमितिस्वच्छंप्रविलुंपंतिनापदः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रंशुद्धमात्मानंयोवलंब्यस्थितःस्थिरः ॥ नाधयस्तंविलुंपंतिमहोपलमिवेषवः ॥ २३ ॥ चित्त्वंस्वभावंविस्मृत्यबद्धास्थायेशरीरके ॥ तैःसुवर्णंपरित्यज्यगृहीतंभस्मवस्तुतः ॥ २४ ॥

अर्थ—मैं स्वच्छ चिदाकाशरूप हुं यह प्रत्यक्ष अनुभव जिसका अस्त होगयाहै उस मूढको ज्ञानीजन जीतेही मृतक कहतेहैं ॥ २१ ॥ मैं अनुभवरूप चिदात्मा हुं, देह, इन्द्रिय आदि मेरे कौनहैं, इसप्रकार अविद्याके नाश होनेपर स्वच्छ, प्राप्त चित्स्वरुप पुरुषको जन्ममरणआदि आपत्ति छेदन नहीं करती ॥ २२ ॥ जो विवेकी चित्स्वभावका अवलम्बन करके दृढतासे स्थित है उसको मानसी व्यथा ऐसे नहीं छेदन करती जैसे महापाषाणको बाण ॥ २३ ॥ निज चित्स्वभावको त्यागकर जिन्होंने शरीरआदिमें आस्था बांधी है उन्होंने मानो सुवर्णको त्यागकर भस्म ग्रहण किया है ॥ २४ ॥

बलंबुद्धिश्चतेजश्चदेहोहमिति भावनात् ॥ नश्यत्युदेत्येतदेवचिदेवाहमितिस्थितेः ॥ २५ ॥ चिदाकाशमहंशुद्धंकेमेमरणजन्मनी ॥ एवंस्थितेस्युःकिनिष्ठालोभमोहमदादयः ॥ २६ ॥ चिदाकाशादृतेदेहान्योन्यत्सारमवाप्नुयात् ॥ तस्मैतद्युज्यतेवक्तुंसंतिलोभादयस्त्विति ॥ २७ ॥ नच्छिद्यतेनचदह्येहंचिन्मात्रंवज्रवच्चिति ॥ नदेहीनिश्चयोयस्यतंप्रत्यंतकरस्तृणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—मैं देह हुं इस भावनासे बल, बुद्धि और तेज नष्ट होतेहैं और मैं चित् हुं इस भावनासे इन तीनोंका अभ्युदय होताहै ॥२५॥ मैं शुद्ध चिदाकाश आत्मा हुं, जन्ममृत्यु मेरे कौन हैं, ऐसा स्थित होनेपर लोभ, मोह तथा मद आदि किसके आश्रयमें रहसकतेहैं ? ॥ २६ ॥ चिदाकाशको त्यागकर जो सूक्ष्मस्थूल देहोंको आत्मबुद्धिसे देखताहै उस मूढको यह कहसकतेहैं कि देहादिमें लोभ मोहादि हैं ॥ २७ ॥ मेरा छेदन वा दाह नहीं होसकता क्योंकि मैं वज्रके समान दृढ चेतन हुं न कि देहवान्, ऐसा निश्चय जिसका है उसके लिये मृत्यु तृणके तुल्य है ॥ २८ ॥

अहोनुमुग्धताज्ञानदृष्टीनांयद्विदंत्यलम् ॥ शरीरशकलाभावेनश्यामइतिमोहिताः ॥ २९ ॥ अहंचित्र भएवेतिसत्येभावेस्थिरेसति ॥ वज्रपातयुगांताग्निदाहाःपुष्पोत्करोपमाः ॥ ३० ॥ चिन्मात्रममरंनाहं यन्नश्यामीतिरोदिति ॥ अनष्टएवतद्देहोजातापूर्वाखरोलिका ॥ ३१ ॥ इदंचेतनमेवाहंनाहंदेहादिदृष्टयः ॥ इतिनिश्चयवान्योंतर्नसमुह्यतिकर्हिचित् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अहो यह पंडितोंकाभी कैसा मोह है कि यह समझतेहैं कि जड शरीरके नाश होनेपर हम नष्ट होंगे॥२९॥ मैं स्वच्छ चिदाकाशरूप हुं इस सत्यभावके दृढ स्थित होनेपर वज्रपात तथा प्रलयकी अग्निके दाहभी पुष्पकी वृष्टिके समान होतेहैं ॥ ३० ॥ मैं चिन्मात्र अजर अमर आत्मा नहींहुं इसलिये नष्ट होऊंगा ऐसा समझके जो आत्माके न नष्ट होतेहुयेभी रोताहै उसका देह विवेकियोंके लिये अपूर्व परिहासजनक क्रीडा है ॥ ३१ ॥ यह नित्य अपरोक्ष चिन्मात्र मैं हुं देहादि दृष्टि मुझमें नहींहैं ऐसा जिसके अन्तःकरणमें निश्चय है वह कभी मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ ३२ ॥

अहंचेतनमाकाशोनाशोमेनोपपद्यते ॥ चेतनेनजगत्पूर्णंकेवसंदेहितान्नवः ॥ ३३ ॥ चेतनंवर्ज्जयित्वान्यत्किंचिद्यूयंजनायदि ॥ यद्रुच्यतांमहामूढाःस्वात्माकिमपलप्यते ॥ ३४ ॥ तच्चेतनंचेन्म्रियतेतज्जनाःप्रत्यहंमृताः ॥ ब्रूतकिंनमृतायूयंतन्मृतंकिलचेतनम् ॥ ३५ ॥ तस्मान्नम्रियतेकिंचिन्नचजीवतिकिंचन ॥ जीवामीतिमृतोस्मीतिचिच्चेततिननश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—मैं चिदाकाशमात्र हुं,मेरा नाश नहीं होसकता और यह जगत् चेतनसेही पूर्ण है इसमें तुमको जन्ममरणका क्या संदेह है ॥३३॥ हम चेतनसे भिन्न हैं ऐसा यदि तुम लोक जानते हो तो हे मूढ ! कहो चेतनसे भिन्न है ऐसा अनुभव करनेवाले अपने आत्माका अपलाप क्यों करतेहो ॥ ३४ ॥ यदि चेतन मरताहै तो प्रतिदिन प्राणी मरतेहैं, तब सबका चेतन एक होनेसे उसके मरनेपर कहो तुम क्यों न मरे ॥ ३५ ॥ इसलिये न कुछ जीताहै, न मरताहै, किन्तु जीताहुं, मरताहुं, इस निजकल्पित भ्रमको चेतनही अनुभव करताहै और स्वयं नष्ट नहीं होता ॥ ३६ ॥

चिच्चेततियथावाय्यत्तत्तथासाशुपश्यति ॥ आबालमेषोनुभवोनक्वचित्साचनश्यति ॥३७॥ परिपश्यति संसारंपरिपश्यतिमुक्तताम् ॥ सुखदुःखानिजानातिस्वरूपात्तन्नभिद्यते ॥ ३८ ॥ अपरिज्ञातदेहात्तुधत्ते मोहाभिधांस्वयम् ॥ परिज्ञातस्वरूपात्तुधत्तेमोक्षाभिधांस्वयम् ॥ ३९ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनकदाचन किंचन ॥ सर्वमेवचचिन्मात्रमाकाशविशदंयतः ॥ ४० ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयन्मृषा ॥ यद्यथायेननिर्णीतंतत्तथातंप्रतिस्थितम् ॥ ४१ ॥ यद्यद्यथाजगतिचेततिचेतनात्मातत्तत्तथानुभवतीत्यनुभूतिसिद्धम् ॥ दृष्टंविषामृतदृशेवपदार्थजातंनातोस्तिसंविदविधेयमितिप्रसिद्धम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अमरत्वप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमःसर्गः ॥ ९६ ॥

अर्थ—यह चित् जैसा चेतती है वैसाही शीघ्र देखती है यह वार्ता वृद्धसे लेके बालकतक अनुभवसे प्रसिद्ध है, इसलिये वह चित् कदापि नष्ट नहीं होती ॥ ३७॥ यह चेतन संसारको देखताहै, मुक्तिको देखताहै और सुखदुःखको जानताहै, परन्तु इन भिन्नदशाओंमेंभी अपने चेतनस्वरूपसे भिन्न नहीं होता ॥ ३८ ॥ निजस्वरूपको न जाननेसे मोहरूपताको और निज शुद्धरूपको जाननेसे मोक्षसंज्ञाको धारण करताहै ॥३९॥ यह सब कुछ विशाल चिदाकाशही है इसलिये कहीं न कुछ उदित होताहै न नष्ट होताहै ॥४०॥ इनसंसारके पदार्थोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो सत्य न हो वा मिथ्या न हो, किन्तु जिसको जिसने जैसा निर्णय किया है उसके लिये वह वैसाही सत्य वा असत्यरूपसे स्थित है॥४१॥ यह चेतनात्मा जगत्में जिस २ वस्तुको जैसा २ चेतता है उसको वैसाही अनुभव करताहै यह वार्ता अनुभवसे प्रसिद्ध है, क्योंकि एकही पदार्थ देशकालभेदसे कहीं किसीको विष और कहीं अमृतरूप होती है इसलिये सब पदार्थ चित्के अनुभवके अनुसार हैं यह प्रसिद्ध है॥४२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अमरत्वप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

परमात्माकी सर्व शक्तितासे सब वादियोंकी उक्तिकी सत्यता, भोगोंमें सबकी आसक्ति तथा अल्पतत्वज्ञानियोंकी स्थिति यह विषय इस ९७ के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संविन्मयत्वाज्जगतःस्वप्नस्यपरमात्मनः ॥ ब्रह्माकाशतयासर्वंब्रह्मैवेत्यनुभूयते॥१॥ भ्रमस्यचातिदृश्यत्वाददृश्यत्वान्महाचितेः ॥ मदशक्तिवदात्मेतिसत्यतास्यापियुज्यते ॥ २ ॥ असत्वादृश्यविश्रांतेरलभ्यत्वान्महाचितेः ॥ उपलब्धुरभावाच्चशून्यनाम्नीवसत्यपि ॥ ३ ॥ चिन्मात्रंपुरुषोकर्त्तासमेत्यव्यक्ततोजगत् ॥ एवंदृष्टेःसत्यमेतदेवमर्थानुभूतितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! परमात्माके स्वप्न संवित्‌मय इस सब जगत्‌के होनेसे, तथा सब कुछ ब्रह्माकाशरूपसे होनेसे सब कुछ ब्रह्मरूप जो अनुभूत होताहै यह सत्यही है ॥ १ ॥ जगत्‌रूप भ्रमके दृश्य होनेसे और अधिष्ठान महाचेतनके अदृश्य होनेसे तो परमात्माकी मदशक्तिके तुल्य कार्य्यरूपसे इस जगत्‌की सत्यता युक्त है ॥ २ ॥ बंधकालमें दृश्यकी विश्रान्तिके कारण सब दृश्यके उपरामरूप मोक्षकेभी न होनेसे और उसकेविना महाचतेनकेभी अलभ्य होनेके कारण मुक्तिकालमें उपलब्धाकेभी अभावसे सब जगत्‌की शून्यताभी सत्यही है ॥ ३ ॥ और सांख्यके अनुसार चिन्मात्र पुरुष कर्ता है उसकी सत्तासे त्रिगुणकी साम्यअवस्थारूप अव्यक्त (प्रकृति) से जगत् उत्पन्न होताहै इस दृष्टिसे उनके अनुभवके अनुसार जगत्‌के सब पदार्थ सत्य हैं ॥ ४ ॥

विवर्त्तोब्रह्मणोदृश्यमित्येवंवादिनोपिसत् ॥ मतमेवंस्वरूपाणामर्थानामनुभूतितः ॥ ५ ॥ परमाणुसमूहात्मजगदित्यपिसत्यतः ॥ संवेद्यतेयथायद्यत्तत्तथैवानुभूतितः ॥ ६ ॥ यथादृष्टंतथैवेदमिहलोकेपरत्रच ॥ नासन्नसदितिप्रौढासत्यमाध्यात्मिकीगतिः ॥ ७ ॥ बाह्यमेवास्तिनास्त्यन्यदित्यन्येसत्यवादिनः ॥ स्वात्मन्यक्षगणातीतंप्राप्नुवंतिनतेयतः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंके स्वरूपके अनुभवसे ब्रह्मका विवर्त यह जगत् है यह वेदान्तवादीकाभी मत सत्यही है ॥ ५ ॥ तथा कणाद, गौतम, सौत्रान्तिक, वैशेषिक और आर्हत मतमें यह जगत् परमाणुओंका समूहरूप है यहभी सत्य है क्योंकि उनके अनुभवसे ऐसेही है ॥ ६ ॥ और इसलोक तथा परलोकमें जो जैसा देखपडताहै वह वैसाही है न कुछ सत्य है न असत्य है, यह माध्यात्मिकी गतिभी सत्य है ॥ ७ ॥ और चार्वाक आदि कहते हैं कि बाह्य पृथिवी आदि चारभूत सत्य हैं इससे परे आत्मा सत्य नहीं है यह कथनभी सत्य है क्योंकि वे इन्द्रिय आदिसे परे आत्माको देहमें नहीं देखते॥ ८॥

अनारतविपर्यासदर्शनात्क्षणभंगधीः ॥ युक्तैवतद्विदामाद्यंसर्वशक्तिहितत्पदम् ॥ ९ ॥ कलविंकघटन्यायोधर्मइत्यपितद्विदाम् ॥ तथात्मसिद्धेर्म्लेच्छानांतद्देशेषुनदुष्यति ॥ १० ॥ समाःसंतश्चविप्राग्निविषामृतमृतिष्वपि ॥ भांत्येवंतद्विदांसर्वमिदंसर्वात्मकंयतः ॥ ११ ॥ स्वभावसिद्धमेवेदंयुक्तमित्येवतद्विदाम् ॥ अन्विष्टायातिनोप्राप्तिंबुद्धिमत्सर्वकर्तृता ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रतिक्षण सब पद पदार्थोंका परिवर्तन देखनेसे क्षणिकवादियोंका मतभी ठीक है क्योंकि ब्रह्मपद सर्वशक्तियुक्त है ॥ ९ ॥ कलविंकघटन्यायसे जैसे चटकपक्षी घटमें बन्द रहताहै और उसका मुह खुलनेपर उडके चलाजाताहै ऐसेही परिच्छिन्नपरिमाण जीवभी कर्मोंके क्षय होनेसे निकलके उडजाताहै, यह अर्हतकल्पनाभी सत्य है, ऐसे यवन आदि म्लेंछोंके मतसे ईश्वरसे उत्पन्न देहाकार जीव मरनेपर देहके गर्तस्थानमें स्थित रहताहै पुनः प्रलयके अन्तमें उनके धर्मके अनुसार सदाकेलिये स्वर्ग वा नरकमें स्थापित कियाजाताहै यहभी उनके अनुसार सत्य है ॥ १० ॥ सर्वत्र समदृष्टि, ज्ञानीजन विष, अमृत, जन्म तथा मरण आदिमें एकरस रहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टिसे ब्रह्ममय यह जगत् सर्वत्र सर्वात्मक है ॥ ११ ॥ ऐसेही स्वभाववादियोंके अनुसार यह सब स्वभावसिद्धही युक्त है क्योंकि घटपटादिमें कर्तता देखभी पडती है परन्तु वृष्टि, पवन, तारागण तथा सूर्य्यआदिके विषयमें अन्वेषण करनेपरभी नहीं मिलती ॥ १२ ॥

एकःसर्वत्रकर्त्तेतिसत्यंतन्मयचेतसाम् ॥ सोयंनिश्चयवान्सोत्रतदाप्नोतीत्यबाधितम् ॥ १३ ॥ अयंलोकःपरश्चास्तिस्नानाम्यादिचनेतरत् ॥ एतदेतादृशंसत्यंविद्धिभावितभावनम् ॥ १४ ॥ अशेषंशून्यमेवेतिबौद्धानामेतदेवसत् ॥ लभ्यतेतद्विचारेणयत्रकिंचननैवहि ॥ १५ ॥ चितिश्चिंतामणिरिवकल्पद्रुमइवेप्सितम् ॥ आशुसंपादयत्यंतरात्मनात्मनिखात्मिका ॥ १६ ॥

अर्थ—और सर्वत्र सबका कर्ता एक ईश्वरही है यह उपासकोंका मतभी ठीक है क्योंकि ईश्वरार्पितचित्त भक्तगण अपने अभीष्ट विना किसी बाधाके सर्वत्र पाते हैं ॥ १३ ॥ यह लोक तथा परलोक सत्य है, तीर्थ, स्नान तथा अग्निहोत्रादि निष्फल नहीं हैं यह आस्तिकोंकी पूजितभावनाको सत्य जानो ॥ १४ ॥ यह सबाह्य पदार्थ शून्यही है यह बौद्धोंके लिये सत्य है क्योंकि उनके विचारसे शून्यके अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता ॥ १५ ॥ हे रामजी! यह चिदाकाशरूप चेतन चिन्तामणि तथा कल्पवृक्षके समान शीघ्रही अपने अभिलषितको सिद्ध करदेती है ॥ १६ ॥

नेदंशून्यंनचाशून्यमित्यवस्तुनतद्विदाम् ॥ सर्वशक्तिर्हिसाशक्तिर्नतद्विद्यतएवतत् ॥ १७ ॥ तस्मात्स्व निश्चयेयस्मिन्यःस्थितःसतथाततः ॥ अवश्यंफलमाप्नोतिनचेद्बाल्यान्निवर्त्तते ॥ १८ ॥ विचार्यपंडितैः सार्धंश्रेष्ठवस्तुनिधीमता ॥ सरूढोनिश्चयोग्राह्योनेतरत्रयथातथा ॥ १९ ॥ संभवत्युत्तमप्रज्ञःशास्त्रतो व्यवहारतः ॥ योयत्रनामतत्रासौपंडितस्तंसमाश्रयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—इसीप्रकार तत्वज्ञानियोंके मतमें न यह जगत् शून्य है, न अशून्य है, न वस्तु है, न अवस्तु है, क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्माकी मायाशक्ति न शून्य है, न ब्रह्म है, किन्तु दोनोंसे विलक्षण अनिर्वचनीय है ॥ १७ ॥ इसलिये जो जिस विश्वासमें स्थित है वह उसके फलको अवश्य पाताहै. यदि मूर्खतासे उस विश्वाससे न निवृत्त होजाय, तात्पर्य्य कि आत्मज्ञानकी प्राप्तितक सब सत्य हैं ज्ञानके पश्चात् आत्माही सत्य है ॥ १८ ॥ अनेक मतके कारण पंडितोंसे पूर्णरीतिसे विचार करके आत्मवस्तुमेंही निश्चय धारण करनाचाहिये अन्यत्र नहीं ॥ १९ ॥ जहां शास्त्रोंके अध्ययन तथा उत्तम आचरणमें उत्तम पंडित मिले उसकाही आश्रय लेना उचित है ॥ २० ॥

सतांविवदमानानांसच्छास्त्रव्यवहारिणाम् ॥ यःसमाह्लादकोनिंद्यःसश्रेष्ठस्तंसमाश्रयेत् ॥ २१ ॥ सर्व एवानिशंश्रेयोधावंतिप्राणिनोबलात् ॥ परिनिम्नंपयांसीवतद्विचार्यसमाश्रयेत् ॥ २२ ॥ कल्लोलैरुह्यमा नानांनृणांसंसारसागरे ॥ अज्ञातादिवसायांतितृणानामिवबिंदवः ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ जगत्पूर्व लतेवापिविश्रांतावितते पदे ॥ पूर्वापरविचारेणकेपराभावदर्शिनः ॥ २४ ॥

अर्थ—सच्छास्त्रके व्यवहारी तथा विवाद करनेवाले सज्जनोंमें जो आल्हादक तथा उत्तम आचरणयुक्त हो उसीका आश्रय लेनाचाहिये ॥ २१ ॥ निम्नस्थलमें जलकेसमान सब प्राणी अपने कल्याणार्थ निरंतर बलपूर्वक दौडतेहैं इस विचारसे सद्गुरुका आश्रय लेना उचितहै ॥ २२ ॥ इस संसारसागरमें मनोरथरूप तरंगोंसे वाहित मनुष्योंके अज्ञात दिन ऐसे चलेजातेहैं जैसे तृणके अग्रभागमें संलग्न जलके बिंदु- इससे शीघ्रही सद्गुरुका आश्रय लेना उचित है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! इस जगत्‌रूपी अनेक शाखायुक्त लतामें मनुष्योंकी भोगतृष्णा विश्रान्त है इसमें जगत्‌के पूर्वापर अनर्थके विचार करनेवाले आपके कथित पारदृष्टी महात्मा कहां है ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जातौजातौकतिपयेव्यपदेश्याभवंतिते ॥ येषांयांतिप्रकाशेनदिवसाभास्वतामिव ॥ २५ ॥ अधश्चोर्ध्वंचधावंतश्चक्रावर्त्तविवर्त्तनैः ॥ सर्वेतृणवदुह्यंतेमूढामोहभवांबुधौ ॥ २६ ॥ नष्टात्म स्थितयोभोगवह्निषुप्रज्वलंत्यलम् ॥ देवादिविदवेनाद्रौदह्यमानाद्रुमाइव ॥ २७ ॥ पातितामदसंपन्नादा नवादानवारिभिः ॥ गजाइवनिरालानाघोरेनारायणावटे ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! मनुष्यदेवताआदि जातिमें वे दुर्लभ महात्मा कहीं २ खोजनेसे मिलतेहैं और सूर्य्यकेसमान उनके दिवस प्रकाशमेंही जातेहैं ॥२५॥ और अन्य मूढजन इस संसारसागरमे भोगचक्रोंके परिवर्तनोंसे तृष्णारूपी तरंगोंसे नीचे ऊपर दोडतेहुये बहतेहैं ॥ २६ ॥ आत्मस्थितिको नाशकरके देवतागण स्वर्गमें भोगरूपी अग्निमें ऐसे जलरहेहैं जैसे पर्वतपर दावाग्निसे वृक्ष ॥ २७ ॥ और निजशत्रुभूत देवोंसे मदसम्पन्न दानवगण नारायणरूपी गर्तमें ऐसे गिरायेगयेहैं जैसे मदोन्मत्त हाथी महागर्तमें ॥ २८ ॥

नगंधमपिगंधर्वादर्शयंतिविवेकजम् ॥ गीतपीतपरामर्शाःसरंतिहरिणाइव ॥ २९ ॥ विद्याधराश्चविद्या नामाधारत्वेनमोहिताः ॥ स्फुरितानामुदाराणामपिकुर्वंतिनादरम् ॥ ३० ॥ यक्षाविक्षोभितभुवोदक्षता मक्षताइव ॥ दर्शयंत्यसहायेषुबालवृद्धातुरेषु च ॥ ३१ ॥ दंतिनामिवमत्तानांरंहसाहरिणारिणा ॥ कृतः करिष्यसित्वंचराक्षसानांपरिक्षयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और गन्धर्व विवेकजनित ज्ञानका लेशभी नहीं जानते किन्तु गीतरूप मद्यके वशी होकर हरिणके तुल्य मृत्युरूप व्याधके निकट दोडते हैं ॥ २९ ॥ विद्याधरभी भोगविद्याके आधारसे मोहित होके ब्रह्मविद्यामें उदारजनोंकाभी आदर नहींकरते ॥ ३० ॥ और भय, ज्वर तथा उन्माद आदिसे पृथ्वीको विक्षोभित करनेवाले यक्षभी मणिमंत्रादिसे

असहाय बालक, वृद्ध तथा आतुरोंमें अपनी दक्षता दर्शाते हैं ॥३१॥ और शत्रुभूत हरिने मत्त हांथियोंके समान उन्मत्त राक्षसोंका नाश तो पूर्वकालमें किया है और आपभी आगे करेंगे ॥ ३२ ॥

भृशंपिशाचाःपश्यंतिभूतभोजनचिंतया ॥ धूमांधकारानिलयाज्वालयाहुतयोयथा ॥ ३३ ॥ नागजाल मृणालानिमग्नानिधरणीतले ॥ नगानामिवमूलानिजडानीवस्थितान्यलम् ॥ ३४ ॥ विवरंशरणंयेषांकी टानामिवभूतले ॥ तेषामसुरबालानांविवेकेषुकथैवका ॥ ३५ ॥ अल्पमात्रकणार्थेनसंचरंतिदिवानि शम् ॥ पिपीलिकासधर्माणःप्रायेणपुरुषाअपि ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा धूमके अन्धकारसे पूर्ण अग्निके आहुतियोंसे तुल्य भूत पिशाचादि तो सदा भोजनकी चिन्तासे अपनेको दंदह्यमानही देखते हैं ॥ ३३ ॥ तथा वृक्षोंके मूलके सदृश जड नागजातिरूपी मृणालजालभी पातालमें विवेक-शून्यही स्थित हैं ॥ ३४ ॥ तथा भूतलमें कीटककेसमान विवरकी शरणमें रहनेवाले असुररूपी बालकोंमें विवेककी कथाही क्या होसकती है ॥ ३५ ॥ पिपीलिका (चेंटी) के समान मनुष्यभी अल्पविषयकणके लोभसे प्रायः रात्रिदिन पृथिवीपर भ्रमण किया करते हैं ॥ ३६ ॥

सर्वासांभूतजातीनांव्यग्राणांव्यर्थदीर्घया ॥ क्षीबाणामिवगच्छंतिदिवसानिदुरीहया ॥ ३७ ॥ नकंचि त्संस्पृशत्यन्तर्विवेकोविमलोजनम् ॥ जलेगाधेनिपतितंनिमज्जंतंरजोयथा ॥ ३८ ॥ नीयंतेनियमाधूता मानवामानवायुभिः ॥ कांपिकैःस्फुटतापूताःकिरारुनिकराइव ॥ ३९ ॥ पानभोजनजंबालेगहनेयोगि नीगणाः ॥ दुर्गंधपल्वलोद्गारेपतिताःपामराइव ॥ ४० ॥

अर्थ—व्यर्थ महादुष्ट चेष्टाओंमें व्याकुल सब भूतजातियोंके दिवस ऐसे व्यर्थ जाते हैं जैसे मद्यपोंके ॥ ३७ ॥ प्रायः विमल विवेक पुरुषको ऐसे नहीं स्पर्श करता जैसे अथाह जलमें पतित जनको धूलि ॥ ३८ ॥ देहादिमें अभिमानरूप प्रचंडपवनोंसे नियमोंसे संचालित ऐसे उडाये जाते हैं जैसे सूप चलानेवाले कृषकोंसे निःसार धान्याभासके समूह ॥ ३९ ॥ मदिरा रुधिर तथा मांसादिके पान भोजनरूप पंकसहित दुर्गन्धपूर्ण पल्वल (गर्त) में योगिनीगण ऐसे पतित हैं जैसे पामर कीटक ॥ ४० ॥

केवलंयमचंद्रेंद्ररुद्रार्कवरुणानिलाः ॥ जीवन्मुक्ताहरिब्रह्मगुरुशुक्रानलादयः ॥ ४१ ॥ प्रजापतीनांसप्त र्षिदक्षाद्याःकश्यपादयः ॥ नारदाद्याःकुमाराद्याःसनकाद्याःसुरात्मजाः ॥ ४२ ॥ दानवानांहिरण्याक्ष बलिप्रह्लादशंबराः ॥ मयवृत्रांधनमुचिकेशिपुत्रमुरादयः ॥ ४३ ॥ बिभीषणाद्यारक्षस्सुप्रहस्तेंद्रजिदाद यः ॥ शेषतक्षककर्कोटमहापद्मादयोहिषु ॥ ४४ ॥

अर्थ—देवताओंमें केवल यम, चन्द्र, सूर्य्य, रुद्र, वरुण, वायु, ब्रह्मा, विष्णु, शुक्र तथा अग्नि ये जीवन्मुक्त विवेकी हैं ॥ ४१ ॥ और प्रजापतियोंमें दक्षआदि, कश्यपादि, देवर्षियोंमें नारदादि और देवपुत्रोंमें सनकआदि कुमार ब्रह्मज्ञानी हैं ॥ ४२ ॥ तथा दानवोंमें हिरण्याक्ष, बलि, प्रह्लाद, शंबर, मय, वृत्र, अन्धक, नमुचि, केशिपुत्र तथा मुरआदि ब्रह्मज्ञानी हैं ॥४३॥ और राक्षसोंमें बिभीषण, प्रहस्त तथा इन्द्रजित आदि ज्ञानी थे, तथा सर्पोंमें शेष, तक्षक, कर्कोटक और महापद्मादि ज्ञानी थे ॥ ४४ ॥

ब्रह्मविष्ण्विन्द्रलोकेषुवास्तव्यामुक्तदेहिनः ॥ मुक्तस्वभावास्तुषिताःसिद्धाःसाध्याश्चकेचन ॥ ४५ ॥ मानुषेषुचराजानोमुनयोब्राह्मणोत्तमाः ॥ जीवन्मुक्ताःसंभवंतिविरलास्तुरघूद्वह ॥ ४६ ॥ भूतानिसंति सकलानिबहूनिदिक्षुबोधान्वितानिविरलानिभवंतिकिंतु ॥ वृक्षाभवंतिफलपल्लवजालयुक्ताःकल्पद्रुमा स्तुविरलाःखलुसंभवंति ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विवेकिविरलत्ववर्णनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अर्थ—तथा ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, इन्द्रलोक, इनमे रहनेवाले मुक्तशरीर, मुक्तस्वभाव देवयोनियोंमें तुषित और कोई २ सिद्ध साध्यभी मुक्त हैं ॥ ४५ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! मनुष्योंमें राजा, मुनि तथा उत्तम ब्राह्मण विरल जीवन्मुक्त हैं ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! दशदिशाओंमें अनेकप्रकारके बहुतसे प्राणी रहतेहैं परंतु उन प्राणियोंमें ज्ञानी बहुत न्यून हैं, जैसे फलपत्रादियुक्त वृक्ष तो सर्वत्र हैं, परन्तु कल्पवृक्ष थोडेही हैं ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विवेकिविरलत्ववर्णनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

सज्जन तत्वज्ञानियोंके लक्षण तथा परीक्षाकरके दोषयुक्तोंकी उपेक्षाकरके उत्तमका आश्रय लेना चाहिये यह विषय इस ९८ केसर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विवेकिनोविरक्तायेविश्रांतायेपरेपदे ॥ तेषांतनुत्वमायांतिलोभमोहादयोरयः ॥ १ ॥ नहृष्यंतिनकुप्यंतिनाविशंत्याहरंतिच ॥ उद्विजंतेपिनोलोकाल्लोकान्नोद्वेजयंतिच ॥ २ ॥ ननास्तिक्यान्न चास्तिक्यात्कष्टानुष्ठानवैदिकाः ॥ मनोज्ञमधुराचाराःप्रियपेशलवादिनः ॥ ३ ॥ संगादाह्लादयंत्यंतः शशांककिरणाइव ॥ विवेचितारःकार्याणांनिर्णेतारःक्षणादपि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जो विवेकी विरक्तजन परमपदमें विश्रान्त हैं उनके लोभमोहादि शत्रु अल्प होते हैं ॥ १ ॥ हे रामजी! विवेकीजन न कभी अधिक प्रसन्न होते हैं, न कोप करते हैं, न किसीमें आसक्त होते हैं, न अधिक पदार्थोंका संग्रह करते हैं, न संसारसे उद्विग्न होते हैं और न किसीको उद्विग्न करते हैं ॥ २ ॥ न नास्तिकतासे कोई दुराचार करते हैं और न आस्तिकतासे अतिक्लेशकारी वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें हठसे तत्पर होते हैं, किन्तु मनोहर मधुर आचरणशील तथा प्रिय और कोमलभाषी होते हैं ॥ ३ ॥ तथा संगसे ऐसे आनन्द देते हैं जैसे चन्द्रमाके किरण, तथा लौकिक वैदिककर्मोंमें परस्पर विरोध होनेसे अनुष्ठान संकट प्राप्त होनेपर संदेहको क्षणमें निर्णयकारी होते हैं ॥ ४ ॥

अनुद्वेगकराचाराबांधवानागराइव ॥ बहिःसर्वसमाचाराअंतःसर्वार्थशीतलाः ॥ ५ ॥ शास्त्रार्थरसिकास्तज्ज्ञाज्ञातलोकपरावराः ॥ हेयोपादेयवेत्तारोयथाप्राप्ताभिपातिनः ॥ ६ ॥ विरुद्धकार्यविरतारसिकाःसज्जनस्थितौ ॥ अनावरणसौगंध्यैःपरास्पदसुखाशनैः ॥ ७ ॥ पूजयंत्यागतंफुल्लाभृंगंपद्मइवार्थिनम् ॥ आवर्जयंतिजनतांजनतापापहारिणः ॥ ८ ॥

अर्थ—चतुर बांधवोंके समान सबको अनुद्वेगकारी, आचारशील, बाहरसे सबके साधारण आचरण करनेवाले और अन्तःकरणमें सब कार्य्योंमें शीतल होते हैं ॥ ५ ॥ शास्त्रोंके अर्थोंके रसिक, लोकके तत्वको जाननेवाले, हेय तथा उपादेयके ज्ञाता और यथाप्राप्त कार्य्योंके कर्ता ज्ञानीजन होते हैं ॥ ६ ॥ तथा शास्त्रविरुद्ध कार्य्योंसे विरक्त, सज्जनोंके आचारके रसिक तथा हृदयकोशके उद्घाटनद्वारा ज्ञानोदयरूप सौगन्ध्योंसे, उत्तम आश्रयके संप्रदानोंसे, तथा सुखदायक भोजनोंसे, निजगृहमें प्राप्त आर्थिजनोंकी ऐसी पूजा करते हैं जैसे विकसित कमल भृंगोंकी, तथा जनसमूहके पापनिवारणमें समर्थ ज्ञानीजन सज्जनोंको वशमें करलेते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

शीतलास्पदवत्स्निग्धाःप्रावृषीवपयोधराः ॥ भूभृद्भंगकरंधीरादेशभंगदमाकुलम् ॥ ९ ॥ रोधयंत्यागतं क्षोभंभूकंपमिवपर्वताः ॥ उत्साहयंतिविपदिसुखयंतिचसंपदि ॥ १० ॥ चंद्रबिंबोपमाकारादाराइवगुणाकराः ॥ यशःपुष्पामलदिशोभाविसत्फलहेतवः ॥ ११ ॥ पुंस्कोकिलसमालापामाधवाइवसाधवः॥ कल्लोलबहुलावर्त्तव्यामोहमकरालयम् ॥ १२ ॥

अर्थ – तथा ऐसे शीतल और स्निग्ध होते हैं जैसे वर्षाकालमें मेघ, तथा राजाओंके देशभंगकारक मरी दुर्भिक्षादिको निजतपोबलसे ऐसे रोकते हैं जैसे भूकंपको पर्वत, तथा विपत्तिमें उत्साह देते हैं, और संपत्तिमें सुखी करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ चन्द्रबिंबके समान शीतल, पतिव्रतास्त्रियोंके तुल्यरूप, माधुर्य्य तथा प्रेमआदिकी खानि, यशरूपी पुष्पोंसे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, भावी सत्फलोंके हेतु ॥ ११ ॥ और कोकिलके समान मधुरभाषी विवेकीजन ऐसे शोभित होते हैं जैसे वसंतऋतु, तथा अनेक मनोरथरूपी तरंगोंसे पूर्ण व्यामोहरूपी मकरका स्थान ॥ १२ ॥

लुठंतमिवहेमंतंलोडयंतंजनास्पदम् ॥ वीचिविक्षोभचपलंपरंचित्तमहार्णवम् ॥ १३ ॥ तच्चरोधयितुंशक्तास्तटस्थाःसाधुपर्वताः ॥ आपत्सुबुद्धिनाशेषुकल्लोलेष्वाकुलेषुच ॥ १४ ॥ संकटेषुदुरंतेषुसंतएवगतिःसताम् ॥ एभिश्चिह्नैरथान्यैश्चज्ञात्वातानुचिताशयान् ॥ १५ ॥ आश्रयेतैकविश्रांत्यैश्रांतःसंसारवर्त्मना ॥ यस्मादत्यंतविषमःसंसारोरगसागरः ॥ १६ ॥

अर्थ—निजआचरणोंसे जनोंके स्थानरूपी भृंगोंके निवासस्थान, कमलबनको हेमन्तके समान मथनेवाले तथा कामक्रोधादि षट् उर्मियोंके विक्षोभसे चंचल राजा आदिके चित्तरूपी महासमुद्रकोभी रोकनेमें ऐसे समर्थ साधुजन होते हैं जैसे तटस्थपर्वत, तथा आपत्तियोंमें, बुद्धियोंके नष्ट होनेपर, कामादिजनित व्याकुलताओंमें, तथा अन्यसंकटोंमें सज्जन ज्ञानीही शरण होते हैं, इन तथा और चिन्होंसे विशालहृदयवाले महात्माओंको जानकर संसारमार्गसे थकित पुरुषोंको आश्रय लेनाचाहिये, क्योंकि यह संसार सर्पके समान अति भयंकरहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

विनासत्संगमन्येनपोतकेननतीर्यते ॥ आस्तांकिमेविचारेणयद्भवेदस्तुतन्मम ॥ १७ ॥ इत्यंतःकल्कमासाद्यनस्थेयंगर्त्तकीटवत् ॥ एकोपिविद्यतेयस्यगुणस्तंसर्वमुत्सृजन् ॥ १८ ॥ अनादृतान्यतद्दोषंतावन्मात्रंसमाश्रयेत् ॥ गुणान्दोषांश्चविज्ञातुमाबाल्यात्स्वप्रयत्नतः ॥ १९ ॥ यथासंभवसत्संगशास्त्रैः प्राग्धियमेधयेत् ॥ दोषलेशमनादृत्यनित्यंसेवेतसज्जनम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह बिना सत्संगरूप जहाजके तरने योग्य नहीं है और बिचारसे क्या होगा, जो कुछ हमारा है वह होगा ॥ १७ ॥ इसप्रकारके प्रमादको अन्तःकरणमें धारण करके कीटके तुल्य नहीं रहनाचाहिये किन्तु उक्तगुणोंमेंसे जिसमें एकभी हो उसका आश्रय सब कार्य्योंको त्यागकर और अन्यदोषोंका अनादर करके ग्रहण करना उचित है, तथा बाल्यावस्थाहीसे प्रयत्नसे गुण तथा दोषोंको जाननेके अर्थ यथासंभव सत्संग और शास्त्रोंके अभ्याससे प्रथम बुद्धि बढानी चाहिये, पुनः दोषलेशोंको त्यागकर नित्य सज्जनका सेवन करै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

स्थूलदोषंत्वनिर्वाणंशनैःपरिहरेत्क्रमात् ॥ यातिरम्यमरम्यत्वंस्थिरमस्थिरतामपि ॥ २१ ॥ यथादृष्टंतथामन्येयातिसाधुरसाधुताम् ॥ एषसोत्यंतउत्पातोयःसाधुर्यातिदुष्टताम् ॥ २२ ॥ देशकालवशात्पापैर्महोत्पातोपिदृश्यते ॥ सर्वकर्माणिसंत्यज्यकुर्यात्सज्जनसंगमम् ॥ एतत्कर्मनिराबाधंलोकद्वितयसाधनम् ॥ २३ ॥ नसज्जनाद्दूरतरःक्वचिद्भवेद्भजेतसाधून्विनयक्रियान्वितः ॥ स्पृशंत्ययत्नेनहितत्समीपगंविसारिणस्तद्गतपुष्परेणवः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सज्जनसमागमप्रशंसानामाष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

अर्थ—पुनः स्थूलदोषसहित परिजनको धीरे २ त्याग दे क्योंकि संगसे रम्य शोधितचित्तभी रागादिसे मलिन होके अरमणीय होजाताहै और आत्मविश्रामका स्थिरसुखभी चंचल होजाताहै ॥ २१ ॥ क्योंकि दुष्टसंगसे साधु असाधुताको प्राप्त होजाताहै यह मैं मानताहूं और यह महाउत्पात है कि साधु दुष्टताको प्राप्तहो ॥ २२ ॥ और देशकालके वश पापोंके द्वारा महाउत्पात संसारमें देखनेमें आताहै, इसलिये सब कर्मोंको त्यागकर सज्जनका संग करना उचितहै क्योंकि सज्जनका संग निःसन्देह दोनों लोकका साधनहै ॥ २३ ॥ सज्जनोंसे दूर कभी न हो, नम्रतादि गुणयुक्त होके साधुओंकी सेवा करै, क्योंकि साधुके समीपस्थ पुरुषको विना परिश्रमही चारोओर उडनेवाले उसके गुणरूप पुष्पोंके रेणु स्पर्श करते हैं ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सज्जनसमागमप्रशंसानामाष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

क्रमि, कीट, पतंग, तिर्यक् तथा स्थावर योनियोंका संसारमें जैसे भोग है वह सब इस ९९ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ संतिदुःखक्षयेऽस्माकंशास्त्रसत्संगयुक्तयः ॥ मंत्रौषधितपोदानतीर्थपुण्याश्रमाश्रयाः ॥१॥ कृमिकीटपतंगाद्यास्तिर्यक्स्थावरजातयः॥ कथंस्थिताःकिमारंभास्तेषांदुःखक्षयःकथम् ॥२॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वाण्येवेहभूतानिस्थावराणिचराणिच ॥ आत्मोचितायांसत्तायांविश्रांतानिस्थितान्यलम् ॥३॥ भूतानामणुमात्राणामप्यस्माकमिवैषणाः ॥ किंत्वल्पास्थावयंविघ्नास्तेषांत्वचलसन्निभाः॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! हमारे दुःख नाश करनेके लिये शास्त्राभ्यास, सत्संग, मन्त्र, औषध, तप, दान तथा तीर्थस्थान आदि उपायहैं ॥ १ ॥ परन्तु कृमि, कीट, पतंगादि, तथा तिर्यक् और स्थावर जाति जो उपाय नहीं जानते वे कैसे जीते हैं और उनकी गति होनेका क्या उपाय है सो कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! सम्पूर्ण स्थावर जंगम प्राणी उन २ के योग्य भोगोंके उचित सुखकी सत्तामें स्थितहैं और जो जिस योनिमें हैं उस योनिके योग्य विषयकी प्राप्तिको महापुरुषार्थ मानते हैं ॥ ३ ॥ और सब छोटे तथा बडे प्राणियोंको और हम लोगोंको सुखभोगकी इच्छा है, परन्तु हम लोगोंमें न्यूनअवस्था और थोडे विघ्न हैं और उनको कामक्रोधादिकी प्रबलतासे तथा विवेक न होनेसे पर्वतके समान अचलभोगोंमें विश्वास तथा अनेक विघ्नहैं ॥ ४ ॥

यथाविराट्प्रयततेवालखिल्यास्तथैवखे ॥ बालमुष्ट्यल्पकायेपिपश्याहंकृतिजृंभितम् ॥ ५ ॥ जायंतेच म्रियंतेचनिराधारेंबरेखगाः ॥ शून्यैकविषयास्तेषांस्वास्थ्यंनभवतिक्षणम् ॥ ६ ॥ पिपीलिकायाश्चेष्टा भिर्गासावासात्मबंधुभिः ॥ अस्मद्दिवसकल्पोपिनपर्याप्तःक्षणोयथा ॥ ७ ॥ त्रसरेणुप्रमाणात्माक्रम्य णुस्तिमिनामकः ॥ गमनेव्यग्रतातस्यगरुडस्येवलक्ष्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—क्योंकि ब्रह्माण्ड शरीर विराट जैसे चेष्टा करतेहैं वैसेही अपने भोगोंके लिये बालके अग्रभागके समान लघु जीवभी करतेहैं ॥ ५ ॥ शून्यविषयोंके अभिलाषी पक्षीगण निराधार आकाशमें उत्पन्न होतेहैं और मरतेहैं और उनको शांति कहीं नहीं मिलती ॥ ६ ॥ देखो कुटुम्बके पालन पोषण आदि पिपीलिकाओंकी चेष्टासे हमारा दिवस तथा कल्पके समान दीर्घकाल उनका क्षणभी नहीं है ॥ ७ ॥ त्रसरेणुकी बराबर तिमिनाम कृमिकी गमनमें गरुडके समान व्यग्रता भान होती है ॥ ८ ॥

अयंसोहमिदंतन्मइत्याकल्पितकल्पनम् ॥ जगद्यथानृणांस्फारंतथैवोच्चैर्गुणैःकृमेः ॥ ९ ॥ देशकाल क्रियाद्रव्यव्यग्रयाजर्जरीकृतम् ॥ क्षीयतेव्रणकीटानामस्माकमिवजीवितम् ॥ १० ॥ पादपाःकिंचिदुन्नि द्राघननिद्राःखलूपलाः ॥ कृमिकीटादयःकार्येनरवत्स्वप्रबोधिनः ॥ ११ ॥ शरीरनाशएवैषांसुखंसंप्रति दुःखकृत् ॥ अस्माकमिवतेषांतज्जीवितंतुसुखायते ॥ १२ ॥

अर्थ—यह मैं, यह मेरा गृह धनादि इत्यादि कल्पना जैसे मनुष्योंमें बढी हैं वैसेही एक कृमि (कीडे) को भी हैं ॥ ९ ॥ देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यादि विषयोंकी चिन्तासे जर्ज्जरीभूत जैसे हमारा जीवन क्षीण होताहै ऐसेही पशु कीट आदिकाभी होताहै ॥ १० ॥ वृक्ष किंचित् जागरणशील हैं, पाषाण घनघोर निद्रामें हैं और कृमिकीट आदि अपने २ उचित विषयभोगोंमें मनुष्यके तुल्य कुछ जागृत कुछ निद्राशील हैं ॥ ११ ॥ इन कीटादिको शरीरसे प्राणका सम्बन्ध रहनेसे सुख भान होताहै और शरीरसे प्राणोंके वियोग समयमें हमारे समान उनको दुःख होताहै ॥ १२ ॥

जनोद्वीपांतरंयाद्दग्विक्रीतःपरिपश्यति ॥ पदार्थजालंपश्यंतिताद्दक्पशुमृगादयः ॥ १३ ॥ अस्माकमि वसंसारस्तिरश्चांसुखदुःखदः ॥ पदार्थप्रविभागेनकेवलंतेविवर्जिताः ॥ १४ ॥ हृदयात्सुखदुःखाभ्यां नासातोरशनागुणैः ॥ पशवःपरिकृष्यंतेविक्रीताःपामराअपि ॥ १५ ॥ सुप्तानांयाद्दगस्माकंवेदनंस्पष्ट सुत्वचाम् ॥ वृक्षगुल्मांकुरादीनांताद्दगुद्दामवेदनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण पशु मृग आदि अपने भोग्य पदार्थसमूहको ऐसे देखते हैं जैसे द्वीपान्तरमें प्राप्त विक्रितमनुष्य ॥ १३ ॥ हमारे समान तिर्य्यक् योनियोंकोभी यह संसार सुखदुःखदायकहै, केवल इतनाही भेद है गुण क्रियाके द्वारा उत्तम अभयके विभागसे शून्यहैं ॥ १४ ॥ विक्रीत पामर मनुष्यके समान पशुभी नासिकाकी रज्जु तथा बन्धनकी रस्सीद्वारा अन्तःकरणमें सुखदुःखसे आकृष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ सुकुमार त्वचाधारी शयनग्रस्त जैसे हम लोगोंको स्पर्शका ज्ञान होताहै ऐसेही वृक्ष गुल्म लता आदिकोभी होताहै ॥ १६ ॥

याद्दगस्माकमित्यर्थक्रमसंसारपातिनाम् ॥ पदार्थवेदनंताद्दक्तिरश्चांभ्रांतमभ्रमम् ॥ १७ ॥ आह्लादमा त्रसौम्यत्वंसुखतश्चेंद्रकीटयोः ॥ समंविकल्पविन्मुक्तंविकल्पस्त्वनतिक्रमः ॥ १८ ॥ रागद्वेषभयाहार मैथुनोत्थंसुखासुखम् ॥ तिरश्चांजन्ममृत्यादिखेदःकश्चिन्नभिद्यते ॥ १९ ॥ ऋतेपदार्थभूतार्थभविष्य द्वस्तुबोधतः ॥ शेषंबभ्रुवहिगोमायुगजादीनांनृभिःसमम् ॥ २० ॥

अर्थ—देशके क्षोभसे धावनादि व्यापारमें कुशकंटक तप्तस्थानादिरूप संसारमें पतित हम लोगोंको जैसे भयपूर्वक पदार्थज्ञान होताहै ऐसाही तिर्य्यग्योनियोंकोभी होताहै ॥ १७ ॥ विक्षेपके अनुभवको छोडकर आल्हादमात्रमें इन्द्र और कीटको समानही सुख है, और विकल्प तो दोनोंके लिये दुष्कर है ॥ १८ ॥ और राग, द्वेष, भय, आहार तथा मैथुनजनित सुखदुःख तथा जन्ममरण आदिके खेदमें मनुष्य तथा तिर्य्यक्योनिमें कुछभी भेद नहीं है ॥ १९ ॥ शास्त्रगम्य पुण्यपाप, ब्रह्मतत्त्वादिके ज्ञान, तथा भूतभविष्यत् पदार्थोंके ज्ञानके सिवाय, नकुल, सर्प, शृगाल तथा गजादि सब जीवोंका ज्ञान मनुष्योंके समानही है ॥ २० ॥

निद्रामयानांवृक्षाणांस्वसत्तामचलादयः ॥ स्थिताअनुभवंतोन्येचिदाकाशमखंडितम् ॥ २१ ॥ आपी ननिद्रावृक्षाद्याःस्वसत्तास्थास्तथाद्रयः ॥ जंगमानिचिदाकाशंनामकिंचित्कदाचन ॥ २२ ॥ अखंडचि त्ताशैलादिसत्तानिद्राचभूरुहाम् ॥ द्वैतोपलंभमुक्तत्वात्खमेवैकमतोजगत् ॥ २३ ॥ परिज्ञातंजगद्यावद परिज्ञानसंयुतम् ॥ नत्वंनाहंनचैवास्तिनास्तीनचभविष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ--निद्राग्रस्त वृक्षोंकी गाढनिद्राको पर्वत अनुभव करतेहुये स्थित हैं, और हिमालय मेरु आदि तत्वज्ञ पर्वत तो अखंड चिदाकाशहीका अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥ वृक्षादि महानिद्रामें, पर्वतादि आत्मसत्तामें स्थित हैं, और जो जंगम जीव हैं वेभी सुषुप्ति मरण मूर्च्छादि चिदाकाशरूपही हैं ॥ २२ ॥ पर्वतादिकी अखंड सत्ता तथा वृक्षादिकी निद्रासत्ता द्वैतभानसे निर्मुक्त होनेसे उनकी दृष्टिसे सब जगत् अज्ञानोपहित चिन्मात्रही है ॥ २३ ॥ हे रामजी ! आत्मतत्वका जबतक ज्ञान नहीं है तबतक यह संसार है, और ज्ञान होनेपर यह जगत् तथा तुम हम और अन्य न हैं, न थे,और न होंगे ॥ २४ ॥

यथास्थितंसदैवेदंमौनमेवशिलाघनम् ॥ अनाद्यंतमविच्छिद्रमनिद्रंचसनिद्रकम् ॥ २५ ॥ पूर्वसर्गाद्यथैवासीत्तथैवेकंसमस्थितम् ॥ भविष्यत्यधुनानंतंकालमेवंतथैवच ॥ २६ ॥ नैवात्मतानपरतानजगत्तान शून्यता ॥ नमौनतानमौनित्वंकिंचिन्नेहोपपद्यते ॥२७॥ त्वंयथास्थितमेवास्वयथास्थितमहंस्थितः ॥ सुखासुखेपराकाशेशांतेनेहास्तिर्किचन ॥ २८ ॥

अर्थ—यथार्थमें यह जगत् यथास्थित अनादि अनन्त शिलाके तुल्य सच्चिन्मात्र हैं, और अज्ञकी दृष्टिमें स्वप्नके तुल्य निजस्वरूपमेंही यह जगत्की विचित्रता कल्पित है ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें जैसे यह सृष्टि थी वैसीही अबभी है और आगेभी अनंतकालतक ऐसेही होती रहेगी ॥ २६ ॥ इस शुद्ध चिन्मात्रमें निजता, परता, संसारता, शून्यता, मौनता आदि कुछभी युक्त नहीं हैं ॥ २७ ॥ तुम हम सब यथास्थित ब्रह्ममात्रही हैं, इस शान्त चिदाकाशमें सुखदुःख कुछभी नहीं हैं ॥ २८ ॥

परमाकाशतांमुक्त्वाकिंस्वप्ननगरेवद ॥ विद्यतेकिलतच्छांतंचिद्व्योमाच्छमनामयम् ॥ २९ ॥ अपरिज्ञप्तिरेवैकातत्रसंभ्रमकारिणी ॥ परिज्ञातमिदंयावद्विद्यतेसापिनक्वचित ॥ ३० ॥ परिज्ञातेजगत्स्वप्नेयावत्सत्यंनकिंचन ॥ ग्रहस्तदेनंप्रतिकिंस्नेहोवंध्यासुतेतुकः ॥३१॥ स्वप्नकालेपरिज्ञातेजगत्स्वप्नमणावणौ ॥ किमुपादेयताकास्थाप्रबोधेसौनाकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—कहो स्वप्नके नगरमें परमाकाशको छोडकर और क्या है, और जो कुछ है वह शान्त निर्विकार चिदाकाशही है ॥ २९ ॥ केवल एक अज्ञानही भ्रमकारक है और ज्ञान होनेपर वहभी कहीं उपलब्ध नहीं होता ॥ ३० ॥ जगत्रूपी स्वप्नके परिज्ञात होनेपर इसमें सत्यता कुछ नहीं भासती तब इसमें आग्रह क्यों क्योंकि बन्ध्याके पुत्रमें स्नेह करना कौन बुद्धिमत्ता है ॥ ३१ ॥ स्वप्नकालके ज्ञात होनेपर परमाणुमेंभी संभावित जगत्रूपी स्वप्नके मणिमें क्या उपादेयता और आस्था, क्योंकि बोधरूपी जागरणमें यह कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥

यन्नकिंचित्प्रबोधोस्तिनाप्रबोधोस्तितत्क्वचित् ॥ यस्तूपलंभस्तत्कालेपूर्वावस्थैवसातथा ॥ ३३ ॥ विद्यतेवर्त्तमानत्वंभविष्यद्भूततातथा ॥ बोधाबोधश्चनोसत्यंवस्तुशांतंकिलाखिलम् ॥ ३४ ॥ यथोर्मिणोर्मौ निहतेनकाचित्पयसांक्षतिः ॥ तथादेहेननिहतेदेहेनास्तिचितेःक्षतिः ॥३५॥ चितावाकाशएवाहंदेहइत्युपजायते ॥ संविदेवततोदेहेनष्टेकिंनामनश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो जाग्रत्में कुछ नहीं है वह स्वप्नकालमेंभी कुछ नहीं है और जो कुछ भासताहै वह अज्ञानताही है ॥३३॥ जैसे उन पदार्थोंकी वर्तमान दशा है वैसीही भूतभविष्यत्भी है, क्योंकि जाग्रत् स्वप्न दोनों सत्य नहीं हैं किन्तु सब शान्त परमात्माही है ॥ ३४ ॥ किसी देहसे देहका नाश होनेपर आत्माकी हानि ऐसे नहीं होती जैसे तरंगोंसे तरंगोंका नाश होनेपर जलकी ॥३५॥ चिदाकाशमेही देहका भ्रम उत्पन्न होताहै तो संविद्रूप देहका नाश होनेपर चित्का क्या नाश हुआ ॥३६॥

प्रबुद्धस्यैवचिद्व्योम्नःस्वप्नोजगदितिस्थितम् ॥ पृथ्व्यादिरहितंयस्मात्तस्मात्स्वप्नात्मकंजगत् ॥ ३७ ॥ सर्गादौपूर्वचित्स्वप्नाजाताप्टथ्व्यादिवस्तुधीः ॥ स्वप्नार्थेसत्यताभ्रांतिःकल्पनामात्ररूपिणी ॥ ३८ ॥ पूर्वात्पूर्वतरस्यास्यस्वप्नस्यावयवस्थितौ ॥ सत्येवासत्यरूपायांपृथ्व्यादिकलनाकृता ॥ ३९ ॥ साच भ्रांतिस्तथारूढायथासत्यैवसत्यताम् ॥ परमामागतातत्तुसत्यमत्यंतनिर्मलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—प्रबुद्ध चिदाकाशका स्वप्नही यह जगत्रूपसे स्थित है, इसलिये पृथिवी आदिसे शून्य स्वप्नरूप यह जगत् है ॥ ३७ ॥ सृष्टिकी आदिमें पूर्व २ चित्के स्वप्नके संस्कारसे पृथिवी आदिमें वस्तुबुद्धि हुई है, और स्वप्नके पदार्थोंमें जो सत्यताका भ्रम है वह कल्पनामात्र है ॥ ३८ ॥ इसप्रकार अनादि प्रवाहरूप स्वप्नके अवयवरूप असत्य इस जगत्की स्थितिमें सत्यके समान कल्पना मूढोंने की है ॥ ३९ ॥ वह भ्रान्ति ऐसे दृढ होगई जैसे असत्यता सत्यरूपताको और जिसमें यह सब कल्पित है वह अत्यन्त निर्मल ब्रह्मतत्वही है ॥ ४० ॥

वस्तुतस्तुयथाभूतंचिद्ब्रह्मैवाततंस्थितम् ॥ नचतत्संस्थितंकिंचित्स्मर्त्तास्मर्त्ताकिमात्मकः ॥ ४१ ॥ एवंमात्रापरिज्ञानमेवात्रप्रतिबोधकम् ॥ अत्रैवतुपरिज्ञानंकवाटप्रविघाटनम् ॥ ४२ ॥ पारिशेष्यात्रपृथ्व्यादिकिंचित्संभवतिक्कचित् ॥ योद्रष्टायच्चवाद्दश्यंविमलंशिवमेवतत् ॥ ४३ ॥ मुकुरेंतर्यथाबिंबाद्विंबंभातिजगत्तथा ॥ चिद्व्योमनिस्वतोभातमबिंबादेवबिंबितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—यथार्थमें यह पृथिवी आदि पूर्वकल्पमें किंचित्‌भी सत्य न थे, किन्तु चिद्ब्रह्महो सर्वत्र व्याप्तरूपसे स्थित है तब इनके अनुभवका स्मरण वा विस्मरणका कर्ता कैसा होसकताहै ॥ ४१ ॥ चिन्मात्रका अज्ञानही जगत्‌की सत्यताका बोधक है और इसका ज्ञानही जगत्‌की सत्यताभ्रान्तिरूप कपाट (कवाड) को उद्घाटन करनेवाला है ॥ ४२ ॥ कार्य्यसहित अज्ञानका बाध होनेसे पृथिवी आदि कहीं किंचित्‌भी संभवताको नहीं प्राप्त होते किन्तु द्रष्टा तथा दृश्य दोनों निर्मल शिवरूप हैं ॥ ४३ ॥ जैसे दर्पणमें बाह्यबिंबसे प्रतिबिंब भासताहै ऐसेही चिदाकाशमें बाह्यबिंबके जगत् प्रतिबिंबित है ॥ ४४ ॥

मुकुरेंतर्यथाबिंबंनदृष्टमपिकिंचन ॥ तथाचिद्व्योमगंविश्वंनदृष्टमपिकिंचन ॥ ४५ ॥ लभ्यतेयद्विचारेण यत्सकारणकंस्थितम् ॥ तत्सच्छेषंतुभामात्रमभूतंसत्कथंभवेत् ॥ ४६ ॥ भवेद्भ्रमात्मकमपिकिंचिदर्थक्रियाकरम् ॥ स्वप्नांगनापिकुरुतेसत्यामर्थक्रियांनृणाम् ॥ ४७ ॥ यत्तद्भानंतुसाचिद्भापरमंतच्चिदंबरम् ॥ इतिक्काहंक्कविश्वश्रीःक्कत्वंदृश्यदृशश्चकाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणके भीतर बिंब कभी नहीं देखागया ऐसेही चिदाकाशमें यह विश्वभी कभी नहीं देखागया ॥ ४५ ॥ जो पदार्थ कारणसहित है वही विचारसे लब्ध होताहै और कारणरहित तो केवल प्रतिभासमात्र है वह सत् कैसे होसकताहै ॥ ४६ ॥ भ्रममय पदार्थभी अर्थक्रियाकारक ऐसे होताहै जैसे स्वप्नकी स्त्री वीर्य्यपातरूप क्रियाका ॥ ४७ ॥ जो कुछ जगत्‌का भान होताहै वह चिदाकाशकाही प्रकाश है, इसलिये कहां हम, कहां तुम, कहां यह संसारकी शोभा और कहां दृश्यकी दृष्टि ॥ ४८ ॥

मृत्वापुनर्भवनमस्तिकिमंगनष्टंमृत्वानचेद्भवनमस्तितथापिशांतिः ॥ विज्ञानदृष्टिवशतोस्त्यथचेद्विमोक्षस्तत्रेहकिंचिदपिदुःखमुदारबुद्धेः ॥ ४९ ॥ मूर्खस्ययादृशमिदंतुतदज्ञएवजानात्यसौनहिवयंकिलतत्रतज्ज्ञाः ॥ मत्स्योहियोमृगनदीसलिलेसएवजानातितच्चपलवीचिविवर्त्तनानि ॥ ५० ॥ अंतर्बहिस्त्वमहमित्यपिचैवमादिसर्वात्मकंतपतिचिन्नभएकमेव ॥ शाखाशिखाविटपपत्रफलैकदेहःसंकल्पवृक्षइवबोधखमात्रसारः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थनिरूपणं नाम नवनवतितमःसर्गः ॥ ९९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मरणके पश्चात् यदि देहकी पुनः उत्पत्ति मानों तो भी उत्पत्तिनाशरहित आत्माकी क्या हानि, यदि उक्त विज्ञानदृष्टिसे मरनेके पश्चात् पुनर्जन्म नहीं और मोक्षहै तब सबकी शांतिहुई और तुम उदारबुद्धिको कहीं दुःखका लेशभी नहीं है ॥ ४९ ॥ और मूर्खको जो जन्ममरणका अनुभव होताहै उसको तो वही जानताहै न कि हमलोग, क्योंकि मृगतृष्णाकी नदीके जलमें जिस मत्स्यको मैं मत्स्य हूं यह भावनाहै वही उस (मृगतृष्णा) नदीके तरंगोंके परिवर्तनको जानताहै ॥ ५० ॥ और तत्वज्ञानी दृष्टिसे तुम हम आदि सर्व जगत्‌रूप होके एक चिदाकाश हो बाह्य तथा आभ्यन्तरमें ऐसे स्फुरित होरहाहै जैसे मनोराज्यमें चिन्मात्र सार चिदाकाशही संकल्पवृक्ष होके वृक्ष शाखा पत्र पुष्प तथा फलादिरूपसे स्फुरित होताहै ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे परमार्थनिरूपणं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

देहात्मवादियोंके मतमें प्रविष्ट बुद्धिकाभी जैसे ब्रह्मतत्वमें प्रवेश हो वह युक्ति इस १०० के सर्गमें कहीगई है ॥

॥श्रीरामउवाच ॥ युक्तिःस्यात्कीदृशीब्रह्मन्संसारेदुःखशांतये ॥ तेषांयेषामयंपक्षःश्रूयतामुच्यतांततः ॥ १ ॥ यावज्जीवंसुखंजीवेन्नास्तिमृत्युरगोचरः॥ भस्मीभूतस्यशांतस्यपुनरागमनंकुतः ॥ २ ॥ श्रीव

सिष्ठउवाच ॥ यंयंनिश्चयमादत्तेसंविदंतरखंडितम् ॥ तत्तथैवानुभवतिप्रत्यक्षमितिसर्वगम् ॥ ३ ॥ यथाखंसर्वगंशांतंतथाचिद्व्योमसर्वगम् ॥ तदेवैक्यमथद्वैतमन्यार्थस्यात्यसंभवात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! संसारमें उनके दु:खके शांतिके अर्थ क्या युक्तिहै जिनका मत मैं कहताहूं उसको सुनके पुन: उत्तर दीजिये ॥ १ ॥ जबतक जीवै तबतक सुखसे जीवै. मृत्यु अप्रत्यक्ष नहीं है क्योंकि भस्मीभूत शान्त इस देहका पुन: आगमन कहां यह जिनका पक्षहै उनका दु:ख कैसे शान्तहो ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि जिस २ निश्चयको यह संवित् पूर्णरूपसे धारण करती है उस २ को वैसाही अनुभव करती है ये सबको प्रत्यक्ष अनुभवसिद्धहै ॥ ३ ॥ आकाशके समान चिदाकाश सर्वव्यापी तथा शान्तहै और पामर चार्वाकादिकल्पित देहादि द्वैत तथा ज्ञानीका अद्वैत सब चिदाकाशही है क्योंकि उससे भिन्न किसीका संभव नहीं है ॥ ४ ॥

सर्गादौतद्दतेऽन्योर्थोमहाप्रलयरूपिणि ॥ अकारणत्वान्नास्त्येवब्रह्मैवेदमतस्ततम् ॥५॥ समस्तवेदशास्त्रार्थयेमहाप्रलयादिच ॥ नेच्छंतितेमहामूढानि:शास्त्रानोमृताइव ॥ ६ ॥ सर्वशास्त्राविरुद्धेनसर्वब्रह्मेदमित्यलम् ॥ स्थितंसानुभवंयोक्तृयेषांतैर्नकथाक्रम: ॥ ७ ॥ नित्यानिरंतरोदेतियादृशीसंविदाशये ॥ भूयतेतन्मयेनैवपुंसादेहोस्तुमाथवा ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिके पूर्व अद्वितीय ब्रह्मरूप महाप्रलयमें ब्रह्मसे भिन्न कारण न होनेसे कोईभी पदार्थ नहीं है इसलिये सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मही है ॥ ५ ॥ समस्त वेदशास्त्रोंके तात्पर्यभूत महाप्रलयमें सिद्ध मोक्षरूप ब्रह्मकी जो इच्छा नहीं करते वे शास्त्रशून्य मूढ हमारी दृष्टिमें मृतकके तुल्यहैं उनके लिये हमारा शास्त्रोपदेश नहीं है ॥ ६ ॥ और सब देह इन्द्रियोंका प्रवर्तक प्रत्यगात्मा चेतन वा मन सब शास्त्रोंके अनुसार केवल एक ब्रह्मही है इस अनुभवसे जो पूर्णकाम कृतकृत्य स्थितहैं उनके लियेभी हमारा उपदेश नहीं है किन्तु जिज्ञासुओंके लिये है ॥ ७ ॥ अन्त:करणमें नित्य अपरोक्ष संवित् जैसी उदित होती है वैसाही जीव होताहै चाहै देह रहै वा न रहै ॥ ८ ॥

बोधाच्चेत्संविदोजात:सदु:खीपुरुषोभवेत् ॥ विरुद्धंवेदनंयावत्तावज्जीवोंगतन्मय: ॥ ९ ॥ जगच्चिद्व्योमकचनमात्रमेवेतिभाविते ॥ तत्कथंवेदनंव्योम्नाबोध:कस्यकुतोभवेत् ॥ १० ॥ नकानिचित्प्रधावंति एकनिश्चयसंविदाम् ॥ पुंसांसुखानिदु:खानिरजांसिनभसामिव ॥ ११ ॥ संवित्सत्यास्त्वसत्यावानिश्चयस्तावदीदृश: ॥ आबालमेतत्संसिद्धंकेनापन्हूयतेकथम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आनन्दस्वरूप आत्माके विरुद्ध जिसको अन्त:करणकी वृत्तिसे यह दृढ निश्चय है कि मैं दु:खी हुं वह अवश्य दु:खी होताहै ॥ ९ ॥ यह जगत् चिदाकाशका स्फुरणमात्र है ऐसा दृढ निश्चित होनेपर कूटस्थ अद्वैत चिदाकाशसे दु:खका अनुभव देहात्मवादियोंकोभी किस निमित्तसे होगा ॥ १० ॥ एकनिश्चय संविद्धारी पुरुषोंको कोई दु:ख सुख ऐसे लिप्त नहिं होते जैसे आकाशमें धूलि ॥ ११ ॥ संवित् यथार्थ हो वा अयथार्थ परन्तु जो सद् वा असदर्थका अनुभव होजाताहै उसका अपलाप कोई नहीं करसकता, यह बालकोंमेंभी प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥

नदेह:पुरुषोवापिजीवोन्यउपलभ्यते ॥ संवित्सर्वमिदंसातुयथावेत्तितथाजगत् ॥ १३ ॥ सासत्याप्यथवासत्यातयादेहोनुभूयते ॥ स्वातंत्र्येणयथास्वप्नेपातालेखेजलेदिवि ॥ १४ ॥ संवित्सत्यास्त्वसत्यावातावन्मात्र:स्मृत:पुमान् ॥ सयथानिश्चयोनूनंतत्सत्यमितिनिश्चय: ॥ १५ ॥ प्रामाण्यंसर्वशास्त्राणामेतेनैवप्रसिद्ध्यति ॥ सर्वसिद्धांतसिद्धांतएतएवेतिमेमति: ॥ १६ ॥

अर्थ—देहात्मवादियोंका देह, सांख्यका पुरुष, मीमांसकोंका जीव वा अन्य चित् संवित्से पृथक् कुछ उपलब्ध नहीं होता, इसलिये सर्व वादियोंके अभीष्ट देहादि संविद्रूप हैं, वह संवित् जैसा जानती है वैसाही इस जगत्का अनुभव होताहै ॥ १३ ॥ वह संवित् सत्य हो वा असत्य परन्तु वह पृथिवी आदिसे निरपेक्ष होके स्वप्नमें जैसे देहादिका अनुभव करती है वैसाही पाताल, आकाश, जल तथा स्वर्गमेंभी करती है ॥ १४ ॥ संवित् सत्य हो वा असत्य किन्तु सविन्मात्रही आत्मा है, वह आत्मा जिस रूपसे जिसको निश्चित है वही सत्य है ॥ १५ ॥ इस वेदान्तशास्त्रका सर्वोपरि प्रामाण्य इसीसे सिद्ध होता है कि यह सिद्धान्त सब वादियोंके सिद्धान्तोंका उपजीवक है ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १६ ॥

तस्मादबोधतायास्तेयथासंवित्तथैवसा ॥ भवत्यकलुषाकारातथैवफलभागिनी ॥ १७ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यवेदशास्त्रैषणाभ्रमै: ॥ अबोधतातुयासंवित्कदाचित्सानानश्यति ॥ १८ ॥ आविर्भवतिसाभूय:क्षीणाशंकाक्षणेनचेत् ॥ तत्केनसंविदोदु:खंकदानामोपशाम्यति ॥ १९ ॥ संविदेवनृणांजीव:सयथादृढभावन: ॥ तथासुखीवादु:खीवाभवेदित्येषनिश्चय: ॥ २० ॥

अर्थ—जो अविद्यासंवित् है वही सब वादियोंके अनुकूल परिणत होके उसके अनुसार अर्थक्रियामें प्रवृत्त होती है, और वही संवित् बोधित होनेसे निष्कलंक शुद्ध चिदाकाररूपसे मोक्षफलभागिनी होती है ॥ १७ ॥ इसीसे पवित्र देशकालादिमे स्नानदानादि क्रियाओंसे, रसायन मंत्र औषधादि द्रव्योंसे, तथा कर्मशास्त्रोंसे बोधित पुत्र, स्त्री तथा स्वर्गादिकी इच्छारूप भ्रमोंसे अविद्यारूप संवित् विक्षेपरूपताको प्राप्त होनेपरभी कभी नष्ट नहीं होती ॥ १८ ॥ यदि वह अविद्या संवित् क्षीण (नष्ट) होके पुनः क्षणमात्रमें आविर्भूत होती है तब उसका दुःख कदापि शांत न होगा ॥ १९ ॥ वही संवित् सब मनुष्यादिकोंका जीव है, वही जीव जैसी दृढभावना करताहै वैसाही सुखी वा दुःखी होताहै यह निश्चय है ॥ २० ॥

संविच्चेदस्तितज्ज्ञानांशरणंभवभेदने ॥ नास्तिचेत्तच्छिलामूकमांध्यमेवावशिष्यते ॥२१॥ यत्तयैवचसंवित्त्यावेदनेनैवलभ्यते ॥ अयंस्वभावज्ञस्त्यांतर्जाडय्यंपुंसेवनिद्रया ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ दिक्ष्वधस्ताच्चनांतोस्याभावीनापिजगत्क्षयः ॥ अस्तीतिभावितंयेनसंत्यक्ताभावबुद्धिना ॥ २३ ॥ विज्ञानघनमेवेदमितिनूनमपश्यता ॥ पश्यताचयथादृष्टंसर्वक्षयमपश्यता ॥ २४ ॥ तस्यस्यात्कीदृशीब्रह्मन्युक्तिराधिविनाशने ॥ इतिमेसंशयंछिंधिभूयोबोधाभिवृद्धये ॥ २५ ॥

अर्थ—संसारके बन्धनको तोडनेके लिये वही संवित् ज्ञात होनेसे ज्ञानियोंके लिये शरण है और यदि संवित् नहीं है तो शिलाकी मूकताके तुल्य जगत्में अन्धता होजायगी ॥ २१ ॥ क्योंकि पुरुष जैसे निद्रासे अपनी जडतारूप वृत्तिका अनुभव करताहै ऐसेही स्वभावसिद्ध स्वप्रकाश ज्ञप्तिरूप संवित्से आत्मस्वरूपके अज्ञानसे इस संसाररूप प्रपंचकी उपलब्धि होती है, और उसके अभावमें तो साक्षीशून्य अन्धता (जडता) ही शेष रहजायगी ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! जिनका यह मत है कि दशोंदिशाओंमें तथा तीनोंकालमें इस संसारका नाश नहीं है, और जो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव तथा अत्यन्ताभावको नहीं मानता, तथा जो आत्माको विज्ञानघन आनन्दस्वरूप नहीं जानता, उस पुरुषके संसाररोगकी शान्तिके लिये क्या युक्ति है इस मेरे संशयको अधिकज्ञानकी वृद्धिकेलिये छेदन कीजिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रैकंतावदुचितंपूर्वमेवतथोत्तरम् ॥ द्वितीयमुत्तरंन्याय्यंवक्ष्यमाणमिदंशृणु ॥२६॥ ईदृग्भावस्त्वयाप्रोक्तोयःपुमान्पुरुषोत्तम ॥ सतावच्चेतनामात्रंभवतीत्यनुभूयते ॥ २७ ॥ सचाकारविनाशेनयुज्यतेनात्रसंशयः ॥ अथाविनाशोदेहश्चेत्तद्दुःखस्यात्रकःक्रमः ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! इसमें उत्तर (जो वेदान्तशास्त्रको नहीं मानते वे हमारे लिये मृतकहैं) पूर्व कहाहै और द्वितीय योग्य उत्तर यह वक्ष्यमाण सुनो ॥ २६ ॥ हे पुरुषोत्तम रामजी ! जैसा पुरुष तुमने कहाहै वह देहसे भिन्न चेतनात्मवादी, वा नित्य सूक्ष्म देहात्मवादी, वा स्थूल देहात्मदर्शी, अथवा शुद्ध संविदात्मदर्शी, वा अज्ञानावृत संविदात्मदर्शी, आहोस्वित् संविदपलापी है यदि चेतनात्मवादी प्रथम पक्षहै तो क्रमसे उपासनादिसे वह आत्मतत्त्वका अनुभव करताही है ॥ २७ ॥ क्योंकि आकारवान् देहरूप उपाधिके सर्वथा नाश होनेपर वह परमात्माके साथ युक्त होजाताहै इसमें संशय नहीं हैं, द्वितीय नित्य सूक्ष्मदेहमें आत्मबुद्धि होनेसेभी नित्यमें आत्माका ज्ञान होनेपर दुःखका अवसर नहीं है ॥ २८ ॥

भवेद्भागविभागात्मविनाशस्त्वविचारितः ॥ अवश्यंतस्यभवतिकिलेतिनमुनिश्चयः ॥ २९ ॥ मृतः ससंविदात्मत्वाद्भूयोनोवेत्तिसंसृतिम् ॥ ज्ञानधौतानयासंविन्नसातिष्ठत्यसंसृतिः ॥३०॥ अथवानास्तिसंवित्तिरितिनिश्चयवान्यदि ॥ ततस्तादृग्वेदनतोभवत्येवदृषज्जड ॥ ३१ ॥ यथावेदनमर्थेषुचित्त्वेदेहक्षयात्क्षते ॥ मृतिरेवपरंश्रेयोदृष्टंनानुभवादिति ॥ ३२ ॥

अर्थ—देहात्मवादी तृतीय पक्षवालेने सावयव पदार्थका नाश होताहै इस न्यायको नहीं विचारा, काल पाके उसके नाशका विचार होनेपर उसकोभी अवश्य देहसे भिन्न चेतनमें आत्मबुद्धि होगी ॥ २९ ॥ और शुद्धसंविदात्मदर्शी जीवन्मुक्त लीलासे संसारको देखताहुआभी मृत्युके पश्चात् कैवल्यमुक्तिमें उसको नहीं देखता और पंचम अज्ञानावृत संविदात्मदर्शी तो संवित्के ज्ञानके विना कलुषित होनेसे अवश्य संसारसहित रहेगा और किसी जन्ममें ज्ञान होनेसे उसकाभी उद्धार होजायगा ॥ ३० ॥ और षष्ठ संवित्को न माननेवाला संवित् नहीं है इस ज्ञानसे पाषाणके समान चिरकालतक विशेष ज्ञानशून्य जडही रहेगा ॥ ३१ ॥ मरणपर्य्यन्त वैसाही जडात्मक दृढज्ञानसे चित्में विशेष ज्ञान न

होनेके कारण मृत्युहीको गाढी सुषुप्तिके तुल्य मोक्ष परमकल्याणका उसने (नैयायिक अभिमत मुक्तिका) अनुभव किया न कि नित्यानन्दस्वरूप ब्रह्मके अनुभवसे ॥ ३२ ॥

असंभवच्छुद्धविदोनिःशरीराभवंतिये ॥ जडभावाजडीभूयदुर्भेदांध्याभवंतिते ॥ ३३ ॥ येचापिस्वप्नपुरवत्सर्वंपश्यंतिचिन्मयाः ॥ तेषामिदमिवाशेषंजगज्जालंप्रवर्त्तते ॥ ३४ ॥ स्थैर्यास्थैर्येणभूतानांकिमपूर्वमतौभवेत् ॥ भूतस्थैर्येतथास्थैर्येसुखंचैवासुखंसमम् ॥ ३५ ॥ स्थिरमस्त्वस्थिरंवापिमह्यादिमहतामपि ॥ चिद्भामात्रमिदंभातियावदज्ञानमाततम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और जो शुद्ध संवित्का असंभव माननेवाले शरीररहित शून्यवादी हैं वे सर्वथा आत्माका अभाव माननेसे मृत्युके अनन्तर अति जड होके महातमसे आवृत दुर्भेद्य अन्धमय देशमें जातेहैं ॥ ३३ ॥ और जो क्षणिकविज्ञानवादी स्वप्नगरके समान चिन्मय (विज्ञानमय) जगत् देखतेहैं उनकाभी सब व्यवहार स्वप्नवत् होताही है ॥ ३४ ॥ पदार्थोंकी स्थिरता तथा क्षणिकरूपतामें सुखदुःख समानरूपसे होते हैं क्योंकि पदार्थोंकी स्थिरता वा क्षणिकतासे जगत् व्यवहारकी विचित्रबुद्धिमें क्या भेद होसकताहै ॥ ३५ ॥ पृथिवी आदि स्थूल वा सूक्ष्म पंचमहाभूत स्थिर हो वा क्षणिक हों इसमें ज्ञानियोंको विशेष आग्रह नहीं है क्योंकि जबतक अज्ञानहै तभीतक यह अध्यस्त जगत् शुक्तिमें रजतके तुल्य भासताहै, यथार्थमें तो अधिष्ठान चित्प्रकाशही यह सब है ॥ ३६ ॥

संविदासंविदोसत्तामिहाव्याप्यविनष्टया ॥ निर्णीयांगीकृतंयैर्वाजाड्यंतद्बालकैरलम् ॥ ३७ ॥ येषांविद्भ्यःशरीराणितेवंद्याःपुरुषोत्तमाः ॥ शरीरेभ्योविदोयेषांतैरलंपुरुषाधमैः ॥ ३८ ॥ चिद्रूपोजीवबीजौघआकाशकृमिजालवत् ॥ ऊर्ध्वंतिर्यगधोयातिपूर्यमाणइवस्वयम् ॥ ३९ ॥ चेत्यतेयेनकर्तान्योबीजौघेनसतत्परः ॥ तथैवानुभवत्यंतःस्वयमेवविवल्गति ॥ ४० ॥

अर्थ—और संविद् (आत्मा) कभी क्षणिक नहीं होसकती, क्योंकि वह अपनी क्षणिक सत्ता तथा नाशरूप जडता दोनोंको व्याप्त होके साक्षिरूप नहीं होसकती, और जिन बालकोंने संवित्सेही उसकी देशतः असत्रूप क्षणिकत्व तथा कालतः असत्तारूप जडताको निर्णय करिके अंगीकार किया है उनसे संभाषणका कुछ प्रयोजन नहीं है॥ ३७॥ जिनके मतमें चेतनसे उसके विवर्तरूप शरीर हैं वे पुरुषोत्तम वंदनीय हैं, और जिनके मतमे शरीरसे उसके विकारसे चेतन है वे चार्वाकादि अधमनरोंसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३८ ॥ आकाशके मशक आदि कृमिसमूहके समान सब जीवोंके बीजभूत चिद्रूप हिरण्यगर्भ जलयंत्रके जालके समान ऊपर नीचे तथा तिर्य्यग् देशमें नानारूप धारण करके भ्रमताहै ॥ ३९ ॥ वह नानाजीव समष्टिरूप कर्तता हिरण्यगर्भरूप बीजसमूहसे चेतित होती है वह उसीमें आसक्त होके नानाकर्ता होके स्वयं अपने अन्तःकरणमें अनुभव करती है और वासनाके अनुसार संसारमें भ्रमती है ॥ ४० ॥

यद्यथाचेत्यतेयेनतज्जीवेनाशुतेनतत् ॥ चिद्रूपेणाप्यतेसिद्धमेतदाबालमक्षतम् ॥ ४१ ॥ यथाधूमस्यनभसियथांभोधौमहांभसः ॥ आवर्त्तवृत्तयश्चित्रास्तथाचिद्व्योम्निसंस्तुतेः ॥ ४२ ॥ पुरीभवतिचिद्व्योमयथास्वप्नेनरंप्रति ॥ तथादिसर्गात्प्रभृतितदेवेदंजगत्स्थितम् ॥ ४३ ॥ सहकारिनिमित्तानियथास्वप्नेनसंतिवै ॥ पृथिव्यादीनिभूतानितथैवादौजगत्स्थितेः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस चिद्रूप जीवसे जो चेति होताहै शीघ्र वह उसीसे व्याप्त होताहै यह वार्ता आबालवृद्ध प्रसिद्ध है ॥ ४१ ॥ जैसे आकाशमें धूमकी, महासमुद्रमें जलकी अनेक विचित्र आवर्तवृत्तियां होती हैं ऐसेही चिदाकाशमें संसारकी अनन्त विचित्रताहै ॥ ४२ ॥ जैसे स्वप्नमें चेतनही मनुष्यके लिये महापुरी होजाताहै ऐसेही सृष्टिकी आदिसे लेके अबतक चिदाकाश जगत्रूप होके स्थित है ॥ ४३ ॥ और जैसे स्वप्नमें सहकारी कारणके बिनाही सब कुछ होजाताहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें जगत्की स्थितिमें पृथिवी आदि पंचभूतभी होते हैं ॥ ४४ ॥

अंगानांस्वप्नगरेवसुधाविविधाकृताः ॥ यास्ताएवजगत्स्वप्नगरेपुष्टतांगताः ॥ ४५ ॥ चिन्मात्राकाशमेवेमाःप्रजाद्वैतैक्यवर्जिताः ॥ केवान्यरंजनान्याखेयद्भाभातिखमेवतत् ॥ ४६ ॥ चिच्चंद्रिकाचतुर्दिक्कंशीतलाह्लादकारिणी ॥ तनोतिचेतनालोकंतस्येदंकचनंजगत् ॥ ४७ ॥ यद्येवाद्यंतयोर्व्योम्निचिन्मयेसर्गदर्शनम् ॥ चिदुन्मेषनिमेषाभ्यांखात्मोदेत्यस्तमेतिच ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नके नगरमें गृहादि अनेक कोमल भेद किये हैं वेही इस जगत्में पुष्टताको प्राप्तहैं ॥ ४५ ॥ द्वैत तथा ऐक्यसे शून्य यह सब प्रजा चिदाकाशमात्रही है, इसमें अन्यराग नहीं है जो कुछ भासताहै वह चिदाकाशही है ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! त्रिविधताप हरनेसे चारों दिशाओंमें शीतल तथा आल्हादकारिणी चित्रूप चन्द्रिका पदार्थोंकी

प्रसिद्धिरूप प्रकाशका विस्तार करती है और उसी प्रकाशका स्फूरण यह जगत् है ॥ ४७ ॥ सृष्टिके पूर्व तथा प्रलयदशामें सृष्टिसे शून्यस्वभाव चिन्मय आकाशमें जो इससमय सृष्टिका दर्शन है वह ब्रह्महो है वही (ब्रह्म) निजपरिच्छिन्न तथा अपरिच्छिन्नरूपसे उन्मेष तथा निमेषद्वारा स्वप्नके तुल्य उदय तथा अस्तको प्राप्त होताहै ॥ ४८ ॥

यद्यथावेत्तियत्तत्सत्तथैवानुभवत्यलम्॥ अस्मात्समस्तंचिन्मात्रंकिमिवात्रनविद्यते ॥ ४९ ॥ शरदाकाशविशदंसंविदःसौम्यमानसाः ॥ असंतएवतिष्ठंतिसंतोऽधिगततत्पदाः ॥ ५० ॥ निर्मानमोहाजितसंगदोषाःप्रवाहसंप्राप्तनिजार्थभाजः ॥ तिष्ठंतिकार्यव्यवहारदृष्टौनिरामयायंत्रमयाइवैते ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे नास्तिक्यनिराकरणं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

अर्थ—श्रुतिप्रसिद्ध चित्रूप सद्वस्तु सृष्टिके आदिमें जिस वस्तुको जैसे जानती है उसको अबभी वैसेही अनुभव करती है इसलिये चिन्मात्रमें समस्त वस्तु ऐसी कौन नहिं है कि जो सत् न हो ॥ ४९ ॥ ब्रह्मपदको प्राप्त सौम्यमन महात्माजन शरत्के आकाशके समान चिद्भिन्नरूपसे अविद्यमान और चिद्रूपसे विद्यमान रहते हैं ॥ ५० ॥ अभिमान तथा मोहादिसे रहित, संगके दोषोंको जीतनेवाले, तथा प्रवाहपतित कार्य्यके कर्ता जीवन्मुक्त महात्माजन अन्यद्रष्टाओंके कार्य्यव्यवहारदृष्टिमें यंत्रमय पुरुषके समान स्थित रहते हैं ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे नास्तिक्यनिराकरणं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

निर्मल संवित्के साथ एकता देखनेवालोंकी भयके हेतुओंसे रहित अभयपदमें स्थिति इस १०१ के सर्गमें वर्णितहै॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिन्मात्रमेवपुरुषस्तदेवेत्थमवस्थितम्॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणकिमन्यदुपपद्यते॥१॥ तच्चावदातमाकाशंतन्मयेद्रष्टृदृश्यते ॥ तावन्मात्रंजगदतोहेयोपादेयधीःकुतः ॥ २ ॥ नविद्यतेपरोलोकोबार्हस्पत्यस्ययस्यतु ॥ विदोन्यत्तस्यकिंसारंरागद्वेषावतःकुतः ॥ ३ ॥ इष्टानिष्टदृशोरामद्वेषदोषाःकिमात्मकाः ॥ संविद्व्योममयेस्वप्नेजगदाख्येंगकथ्यताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! पुरुष चिन्मात्रही है वही इसप्रकार क्षणिक आदि सर्वादीरूपसे स्थित है क्योंकि चित् सिवाय पृथक् और कुछ नहीं होसकता ॥१॥ और वह चित् आकाशवत् निर्मल है उसीके विवर्तरूपसे द्रष्टा तथा दृश्य हैं, और चिन्मात्रही यह जगत् है तब हेय और उपादेय बुद्धि कैसी?॥२॥ बृहस्पतिरचित बुद्धशास्त्रके अनुगामी जिस क्षणिकवादीके मतसे क्षणिक विज्ञानसे अन्य जगत् कुछ नहीं है उसके मतमेंभी राग द्वेष नहीं होसकते, परन्तु संवित्के सिवाय उसके मतमें क्या सारहै जिससे उसकी नित्यता वह नहीं मानता, अर्थात् क्षणिक अंशमें उसका मत असंगत है ॥ ३ ॥ और वेदान्तके अनुसार संविदाकाशमय स्वप्नरूप इस जगत्में राग, द्वेष, तथा इष्ट और अनिष्टदृष्टि क्या होसकती हैं सोकहो ॥ ४ ॥

इदंहेयमुपादेयंवेत्तिसंवित्खमात्मनि ॥ निर्मलेनिर्मलंभातिकेवात्रतदतद्दृशौ ॥ ५ ॥ संविन्नरोमरोनागः संवित्स्थावरजंगमम् ॥ भावाभावादयोस्याब्धेस्तरंगावर्त्तवृत्तयः ॥ ६ ॥ संविदाकाशमेवाहंभवानपि जनाअपि ॥ म्रियामहेनोकदाचित्संवित्किलकदामृता ॥ ७ ॥ संविदोनास्तिसंवेद्यंस्वयंसंवेद्यतामिता॥ चित्त्वादतोविशालाक्षद्वित्वैकत्वेकवास्थिते ॥ ८ ॥

अर्थ—और यह हेय है यह उपादेय है इस चिदाकाशरूप विकल्पाध्यासकोभी चिदाकाशरूप संवित् अपने चिदाकाशरूपमेंही देखती है, तबभी निर्मल चिदाकाशमें निर्मल चिदाकाशरूपही यह जगत् भासताहै, यहांपर इष्टानिष्ट दृष्टि कैसी ॥ ५ ॥ मनुष्य, देवता, नाग, स्थावर तथा जंगम सब संवित्रूपही हैं और इसी संवित्रूपसमुद्रकी जन्ममरण आदिभी तरंगोंकी वृत्तियां हैं ॥ ६ ॥ संविदाकाशही हम तुम तथा ये सब प्राणी हैं और हम तुम सब कभी मरते नहीं क्योंकि संवित् (चिदात्मा) कब मरताहै तथा कब मरा? ॥ ७ ॥ हे कमलनेत्र रामजी! चिद्रूप होनेसे संवित् किसीके संवेद्य (ज्ञेय) नहीं है और स्वयमेव स्वसंवेद्य होगई तो समझो कि ब्रह्मपद प्राप्त है तब इसमें द्वित्व एकत्व कैसे रह सकते हैं? ॥ ८ ॥

संविन्मात्राहृतेतस्माद्भूतंकिमिवकथ्यताम् ॥ कथ्यतांम्रियतेतच्चेत्तदद्येमेकुतोवयम् ॥ ९ ॥ वादिनःसौगताद्यायेयेलोकायतिकादयः ॥ संविदाकाशमुत्सृज्ययन्मन्यंतेतदुच्यताम् ॥ १० ॥ संविदाकाशमेवैतत्केनचिद्ब्रह्मकथ्यते ॥ केनचित्प्रोच्यतेज्ञानंकेनचिच्छून्यमुच्यते ॥ ११ ॥ केनचिन्मदशक्त्याभंकेनचित्पुरुषाभिधम् ॥ केनचिच्चचिदाकाशंशिवआत्माचकेनचित् ॥ १२ ॥

अर्थ—और संवित् (चिदात्मा) के अतिरिक्त सद्वस्तु क्या है सो कहो और कहो कैसे अब ये तथा हम मरते और जीते हैं ॥ ९ ॥ और सौगत तथा लोकायत आदि सब वादी संविदाकाशको छोडकर जो मानतेहैं सो कहो ॥ १० ॥ इस संवित् (चिद्रूप) आकाशकोही कोई ब्रह्म कहताहै, कोई ज्ञान कहताहै और कोई शून्य कहताहै ॥ ११ ॥ कोई इस चिद्रूपको मदिराकी शक्तिके तुल्य चेतनसहित देहाकारमें परिणत, कोई पुरुष, कोई चिदाकाश और शिव तथा आत्मा कहताहै ॥ १२ ॥

चिन्मात्रमेवमप्युक्तंयातिनक्कचिदन्यताम् ॥ यस्मात्स्वयंतदेवैवमात्मानंवेत्तिनेतरत् ॥ १३ ॥ चूर्णतांयांतुमेंगानिसंतुमेरूपमानिच ॥ काक्षतिःकाचवावृद्धिश्चिद्रूपवपुषोमम ॥ १४ ॥ मृताःपितामहाद्याश्चिन्नमृतासाम्रियेतचेत् ॥ तज्जन्मनैवनामस्यादस्माकंमृतसंविदाम् ॥ १५ ॥ नजायतेनम्रियतेसंविदाकाशमक्षयम् ॥ भवेत्कथंकथयकिंकिलाकाशस्यसंक्षयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार वादियोंसे अनेकप्रकार विकल्पसे कथितभी यह चिन्मात्र चित्शक्ति अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होती क्योंकि यह अनेकप्रकारसे विकल्पित अपने आत्माको आपही जानतीहै न कि दूसरा ॥ १३ ॥ हमारे अंग चूर्ण होजांय वा मेरुके सदृश विशाल होजाँय, परन्तु चिन्मात्र शरीर मेरी क्या हानि और क्या वृद्धि हुई ॥ १४ ॥ हमारे पितामह आदि सब मरगये परन्तु आत्मारूप चित् नहीं मरी, यदि वहभी मरती तो मृत आत्मासहित उनका वा हमारा जन्मही न होता ॥ १५ ॥ यह आकाशरूप अक्षय संवित् न कभी उत्पन्न हो न मरै, क्योंकि आकाश कैसे हो यह तुम कहो ॥ १६ ॥

जगद्रूपैककचनमविनाशिचिदंबरम् ॥ उदयास्तमयोन्मुक्तंस्थितमात्मनिकेवलम् ॥ १७ ॥ जगद्धानंदधद्दाहंचिन्नभःस्फाटिकाचलः ॥ अनादिमध्यपर्यंतःस्वच्छआत्मनितिष्ठति ॥ १८ ॥ यथायथांधकारेणप्रेक्ष्यमाणंप्रणश्यति ॥ किमप्यंगाभ्रचक्राभंतथेदंविश्वमात्मनि ॥ १९ ॥ यथांबुधिःस्वयंयातितोयाद्यावर्त्तकादिकम् ॥ स्थितोदधत्तथैवेदंचिदाकाशोंगमात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—इस संवित्के अविनाशी होनेपर यह जगत् स्फुरण चिदाकाशही उदय अस्तसे रहित होके अपने आत्मामें स्वयं स्थित है ॥ १७ ॥ आदि अंत तथा मध्यशून्य यह चिदाकाशरूप स्फटिक माणिक पर्वत अपने भीतर स्वयं जगत्के प्रकाशको धारण करताहुवा निजतत्वसाक्षात्काररूप अग्निसे दाहका विधान करके अपने आत्मामें आप स्थित रहता है ॥ १८ ॥ जैसे रात्रिके अन्धकारसे संपादित कुछ मेघके चक्रके समान जगत्का आवरण प्रातःकाल सूर्य्यके प्रकाशसे क्रमसे नष्ट होजाताहै ऐसेही अज्ञानान्धकारजनित यह संसारभी ज्ञानके प्रकाशसे क्रमशः नष्ट होजाताहै ॥ १९ ॥ जैसे समुद्र अपनेहीमें प्रवाह, तरंग, फेन, बुद्बुद तथा आवर्तरूप अंगोंको धारण करताहुवा अविचलरूपसे स्थित है ऐसेही चिदाकाशभी अपने आत्मा जगत् अंगोंको धारण करताहुवा स्थित है ॥ २० ॥

चिन्मात्रमेवपुरुषःखवत्सचननश्यति ॥ कदाचनापितद्व्यर्थंयन्नश्यामीतिशोकिता ॥२१॥ देहाद्देहांतरप्राप्तौनवएवमहोत्सवः ॥ मरणात्मनिकिंमूढाहर्षस्थानेविषीदथ ॥ २२ ॥ मृतश्चेन्नभवेद्भूयःसोत्राप्युपचयोमहान् ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गज्वरःप्रशममागतः ॥ २३ ॥ मरणंजीवितंतस्मान्नदुःखंनसुखंयतः ॥ नास्त्येवैतच्चिदाकाशःकिलेत्थमभिजृंभते ॥ २४ ॥

अर्थ—चिन्मात्रही पुरुष है कदापि वह नष्ट नहीं होता, और मैं नष्ट होता हुं यह शोक व्यर्थ है ॥ २१ ॥ जीर्णदेहको त्यागकर नूतन शरीरमें प्राप्तिरूप मरण तो महान् उत्सव है. हे मूढजन ! तुम हर्षके स्थानमें शोकित क्यों होते हो ॥ २२ ॥ यदि मरनेके पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता तबभी महान् पुरुषार्थ हुआ क्योंकि उत्पत्ति, नाश तथा ग्रहणत्यागादि सब ज्वरकी शान्ति मरणसेही होगई ॥ २३ ॥ इसलिये जीवन, मरण, सुखदुःखादि कुछ नहीं हैं, किन्तु चिदाकाशही इस सबरूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ २४ ॥

मृतस्यदेहलाभश्चेन्नवएवतदुत्सवः ॥ मृतिर्नाशोहिदेहस्यसामृतिःपरमंसुखम् ॥ २५ ॥ मृतिरत्यंतनाशश्चेत्तद्भवामयसंक्षयः ॥ भूयःशरीरलाभश्चेन्नवएवतदुत्सवः ॥ २६ ॥ कुकर्मभ्योथभीतिश्चेत्सासमेहप

रत्रच ॥ तानिमाकार्षभोस्तस्माल्लोकद्वितयसिद्धये ॥ २७ ॥ मरिष्यामिमरिष्यामिमरिष्यामीतिभाषसे ॥ भविष्यामिभविष्यामिभविष्यामीतिनेक्षसे ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि मरणके पश्चात् पुनः देहलाभ होताहै तो यह नूतन उत्सव हुआ, क्योंकि जीर्णदेहका नाशही मरण है वह तो परमसुख है ॥ २५ ॥ और यदि अत्यन्त नाशही मरण है तब तो बिना परिश्रम संसाररूप रोगका नाश हुआ, और यदि पुनः शरीरका लाभ होताहै तो यह नूतन उत्सव हुआ ॥ २६ ॥ और यदि मरके पुनर्जन्ममें कुकर्मोंसे नरकादिकी प्राप्तिरूप भय है तो वह भय राजदण्ड आदि कुकर्मियोंके लिये यहांभी है इसलिये दोनों लोककी उत्तम प्राप्तिके लिये कुकर्मोंको न करो ॥ २७ ॥ मैं मरुंगा, मरुंगा, मरुंगा, ऐसा लोक कहते हो, चिद्रूपसे मैं मरणके पश्चात्भी रहूंगा, रहूंगा, रहूंगा, ऐसा नहीं विचारते ॥ २८ ॥

क्वनामजन्ममरणेक्वभवाभवभूमयः ॥ संविदात्मकमेवेदंव्योमव्योम्निविवर्त्तते ॥ २९ ॥ संविदाकाशमात्रात्मापिबभुंक्ष्वास्वनिर्ममः ॥ आकाशकोशकांतस्यकुतइच्छोदयस्तव ॥ ३० ॥ स्वप्रवाहबलोद्युक्तदेशकालवशादितान् ॥ भावान्भुंक्तेभयोभव्यःपावनान्पावनादपि ॥ ३१ ॥ मध्यमध्यगतान्दोषान्देशकालवशोदितान् ॥ अनादृत्यांतरेवास्तेसुप्तधीरवहेलयन् ॥ ३२ ॥ नदुःखमेतिमरणात्सुखमेतिनजीवितात् ॥ नाभिवांछतिनद्वेष्टिसतदास्तेविवासनः ॥ ३३ ॥ मरणजीवितजन्मजरत्तृणान्यविमृशन्विगतेच्छमवासनः ॥ विदितवेद्यइहाज्ञइवोदितोवसतिवीतभयस्त्वचलोयथा ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमोपदेशोनामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थ—परमार्थमें जन्ममरण तथा उत्पत्तिनाशकी भूमि कहां है, यह सब चिदाकाशही है, वह आकाश अपने रूपमें आपही विवर्त्तभावको प्राप्त होताहै॥२९॥तुम आत्मज्ञान होनेपर संवित् आकाशमात्र हो,ममता त्यागके खाओ,पिवो और संसारमें व्यवहार करते विद्यमान रहो, क्योंकि आकाशकोशकेसमान स्वच्छआत्मामें इच्छा आदिका उदय कहां ३० निजप्रवाहकेबलसे प्रसक्त प्रयत्नसे तथा देशकालके वशसे प्राप्त और पवित्रसे पवित्र शब्दादिविषयोंको भव्य जीव निर्भयहोके भोगताहै॥३१॥ और मध्य २ में देशकालके वशसे प्राप्त दोषोंको अनादरकरके समाधिमें निमग्नबुद्धि वह जीव रहताहै ॥३२॥ न तो वह मरणसे दुःखी होताहै,न जीवनसे प्रसन्न होताहै, न किसीकी इच्छा करताहै और न द्वेष करताहै क्योंकि वह सदा वासनाशून्य रहताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त, विदितवेद्य प्राणी जन्ममरण आदि दुःखोंसें जीर्ण तृणकेसमान विचार करताहुवा इच्छा तथा वासनासे रहित और भयशून्य इससंसारमें ऐसे निवास करताहै जैसे अचल ३४

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे परमोपदेशोनामैकाधिक शततमःसर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १०२ ॥

ज्ञानीके लक्षणोंकी पंक्ति अभ्यासकरनेपर बोधकी दृढताके लिये पुनः इस १०२ के सर्गमें वर्णन कीजाती हैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ परिज्ञातेपरेवस्तुन्यन्यादिनिधनात्मनि ॥ संपद्यतेवदब्रह्मन्कीदृशःपुरुषोत्तम ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुसंपद्यतेकीदृग्ज्ञातज्ञेयोनरोत्तमः ॥ यावज्जीवंकथंचैषकिमाचारोवतिष्ठते ॥२॥ उपलाअपिमित्राणिबंधवोवनपादपाः ॥ वनमध्येस्थितस्यापिस्वजनामृगपोतकाः ॥ ३ ॥ आकीर्णंशून्यमेवास्यविपदश्चातिसंपदः ॥ स्थितस्यापिमहाराज्येव्यसनान्येवसूत्सवाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—कि हे ब्रह्मन् ! आदिअंतशून्य परमतत्व ब्रह्मवस्तुके ज्ञात होनेपर पुरुषोत्तम कौन २ लक्षणोंसे युक्त होताहै सोकहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि ज्ञातज्ञेय नरोंमें उत्तम जीवन्मुक्त कैसा होताहै और कैसे स्वभाव तथा आचरणसे जन्मभर रहताहै सो तुम सुनो ॥ २ ॥ जीवन्मुक्तके पाषाणभी मित्र, बनके वृक्षभी बन्धु, बनमें स्थित रहनेपरभी मृगोंके बच्चेभी स्वजन रहतेहैं, अर्थात् वह मित्र तथा पाषाणादिमें संयोग वियोग होनेसे समानरूप रहताहै ॥ ३ ॥ जनपूर्णस्थानभी इसको शून्यदेश है, विपत्तिभी संपत्ति है और महाराज्यमें स्थित रहनेपरभी दुःखोंकोही उत्सव मानताहै ॥ ४ ॥

असमाधिःसमाधानंदुःखमेवमहत्सुखम् ॥ व्यवहारोपिसन्मौनंकर्माण्येवात्यकर्मता ॥ ५ ॥ जाग्रदेवसुषुप्तस्थोजीवन्नेवमृतोपमः ॥ करोतिसर्वमाचारंनकरोतिचकिंचन ॥ ६ ॥ रसिकोत्यंतविरसोनिर्घृ

णोबंधुवत्सलः ॥ निर्दयोत्यंतकरुणोवितृष्णस्तृष्णयान्वितः ॥ ७ ॥ सर्वाभिनंदिताचारःसर्वाचारब हिष्कृतः ॥ वीतशोकभयायासःसशोकइवलक्ष्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—असमाधिकोभी समाधि, दुःखकोही महासुख, वचनके व्यवहारकोभी मौन और शारीरिक कर्मोंकोभी अकर्मता यह जीवन्मुक्त समझताहै ॥ ५ ॥ जाग्रत् रहनेपरभी सुषुप्तकेसदृश, जीताभी मृतकके तुल्य, तथा सब आचारोंको करताहुवाभी चिद्रूप शरीरसे कुछ नहीं करता ॥ ६ ॥ विषयोंके सुखोंमेंभी आत्मसुखकी दृष्टिसे अतिरसिक, विषयदृष्टिसे अति विरस, बंधुओंमें आत्मबुद्धिसे दयाशील, परबुद्धिसे दयारहित, पूर्णहोनेसे तृष्णाशून्य और अज्ञजनोंके उद्धार करनेके स्वभावसे उनके हितार्थ तृष्णामें बद्ध रहताहै ॥ ७ ॥ सबसे प्रशंसित आचरणयुक्त, सब आचारोंसे पृथक्, शोक भय तथा खेदसे रहित तथा अज्ञानियोंके दुःखोंके देखनेसे शोकयुक्तकेसमान वह भासताहै ॥ ८ ॥

तस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेतुसः ॥ परमुद्वेगमापन्नःसंस्तौरसिकोपिसन् ॥ ९ ॥ नाभिनंदति संप्राप्तंनाप्राप्तमभिवांछति ॥ आस्तेनुभूयमानेर्थेनचहर्षविषादयोः ॥ १० ॥ दुःखितेदुःखितकथःसुखिते सुखसंकथः ॥ आस्तेसर्वास्ववस्थासुहृदयेनापराजितः ॥ ११ ॥ कर्मणःसुकृतादन्यदस्मैकिंचिन्नरोच ते ॥ स्वभावएवमहतांननुयन्नविचेष्टितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—न उससे संसारके जन भयभीत होतेहैं और न वह संसारसे भीत होताहै, अन्यकी दृष्टिमें संसारमें रसिक होकेभी वह परम वैराग्यको प्राप्त रहताहै ॥ ९ ॥ प्राप्तवस्तुसे न प्रसन्न होताहै और न अप्राप्तकी आकांक्षा करताहै और हर्ष तथा विषादके हेतुभूतपदार्थके अनुभूत होनेपरभी वह महात्मा हर्ष तथा विषादमें नहीं रहता ॥ १० ॥ दुःखीजनमें दुःखकी कथा और सुखीमें सुखकी कथा कहताहुआ हृदयमें सब अवस्थाओंमें वह समान रहताहै ॥ ११ ॥ उत्तमकर्मके सिवाय उसको कुछ नहीं अच्छा लगता. हे रामजी ! महात्माओंका यह स्वभावही है कि वे शास्त्र-निषिद्ध चेष्टा नहीं करते ॥ १२ ॥

नालंबतेरसिकतांनचनीरसतांक्वचित् ॥ नार्थेषुविचरत्यर्थीवीतरागःसरागवत् ॥ १३ ॥ यथाशास्त्रव्य वहतेःसुखदुःखैःक्रमागतैः ॥ अनागतोपिचायातिनहर्षनविषादिताम् ॥ १४ ॥ संप्रहृष्टाश्चलक्ष्यंतेलक्ष्यं तेदुःखितास्तथा ॥ नस्वभावंत्यजंत्यंतःसंसाराररभटीनटाः ॥ १५ ॥ आत्मीयेष्वर्थजातेषुमिथ्यात्मसुसु तादिषु ॥ बुद्बुदेष्विवतोयानांनस्नेहस्तत्त्वदर्शिनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—न तो ज्ञानी किसीमें आसक्तताहै,न किसीसे प्रेमको तोड होताहै, न धनोंके अर्थ याचक बनके विचरताहै और बीतराग होकरभी रागसहित भासताहै ॥ १३ ॥ शास्त्रानुकूल व्यवहारोंसे क्रमप्राप्त सुखदुःखोंसे अस्पृष्ट होनेपरभी दुःखीके तुल्य भासताहै परन्तु वह हर्ष वा विषादको नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥ वे सुखदुःखके कारणोंसे प्रसन्न तथा दुःखी भासते हैं परन्तु अपने निरतिशय आनन्दजनित धीरस्वभावको नहीं त्यागते क्योंकि संसाररूपी नाट्यरचनाके वे नट हैं ॥ १५ ॥ निजधनादिमें तथा मिथ्या आत्मभूत पुत्र आदिमें तत्वदर्शी ऐसे स्नेह नहीं करते जैसे जलबुद्बुद आदिमें ॥ १६ ॥

अस्नेहएवसुघनस्नेहार्द्रहृदयोयथा ॥ वत्सलांदर्शयन्वृत्तिंज्ञस्तिष्ठतियथाक्रमम् ॥ १७ ॥ वायूनिवप्रवाह स्थाःस्पृशंतिविषयान्मुधा ॥ देहसत्ताविषान्मूढालीयंतेविषयोदरे ॥ १८ ॥ बहिःसर्वसमाचारमंतःस र्वार्थशीतलम् ॥ नित्यमंतरनाविष्टआविष्टइवतिष्ठति ॥ १९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वरूपमीदृशंतस्यको वेत्तिमुनिनायक ॥ वदसत्यमसत्यंवाभवत्यज्ञोह्यपीदृशः ॥ २० ॥

अर्थ—स्नेहरहित होनेपरभी ज्ञानी स्नेहसे आर्द्र हृदयके समान अपनी प्रेमपूर्ण वृत्तिको दर्शाताहुवा यथाक्रम स्थित रहताहै ॥ १७ ॥ और मूढजन तो देहको आत्मा जानकर कामादि सन्तापकी शांतिके लिये विषयोंके उदरमें लीन रहतेहैं और वैसे होकेभी प्रतप्त वैतरणीनदीके प्रवाहमें स्थित नारकीपुरुष वायुके समान व्यर्थ विषयोंका स्पर्श करते हैं न कि पूर्णरीतिसे विषयका अनुभव कर विश्राम करसकते ॥ १८ ॥ और तत्वज्ञानी तो बाहरसे सब शिष्टोंके आचारोंको करताहै और आभ्यन्तरसे शीतल रहताहै और नित्य सबसे पृथक् होकरभी प्रविष्टके समान भासताहै ॥ १९ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे मुनिनायक ! ऐसा ज्ञानीका स्वरूप सत्यहै वा असत्य इसको कौन जानसकताहै यह कहिये क्योंकि अज्ञानीभी दंभसे ऐसे चिन्होंसे युक्त देखपडताहै ॥ २० ॥

अश्ववद्ब्रह्मचर्येणचरंतोऽचारुचेतसः ॥ मिथ्यातपस्विदार्ढ्यायभवंत्येवंविधामुने ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउ वाच ॥ असत्यंवास्तुसत्यंवास्वरूपंवरमीदृशम् ॥ विद्धिवेदविदांत्वेषस्वभावानुभवस्थितः ॥ २२ ॥ अनाविष्टाविचेष्टंतेवीतरागाःसरागवत् ॥ गतहासाहसंत्यज्ञान्सहसाकरुणाकुलाः ॥ २३ ॥ चित्ताद र्शगतंदृश्यंसर्वंकपटकुट्टिमम् ॥ पश्यंत्यसत्परिज्ञातंस्वप्नेहेमेवहस्तगम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे मुने ! अश्वके समान ब्रह्मचर्य्य करतेहुये कलुषितचित्त इसप्रकार दांभिक अज्ञानीभी मिथ्या तपस्याकि दृढता दर्शानेकेलिये ऐसे होते हैं ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! असत्य हो वा सत्य हो परन्तु ऐसा स्वरूप उत्तम है. उनकी उपेक्षा अनुचित है और तत्ववेत्ताओंके ये लक्षण तो स्वभावहीसे होते हैं न कि दंभ वा हठसे ॥ २२ ॥ वीतराग और क्रियाके फलोंमें अनासक्तभी रागीके समान चेष्टा करते हैं और हांसरहित होनेपरभी करुणापूर्ण होके अज्ञानियोंपर हंसते हैं ॥ २३ ॥ चित्तरूपीदर्पणमें प्राप्त संपूर्ण दृश्यको कपटकी भूमिके तुल्य ऐसे असत् देखते हैं जैसे स्वप्नमें परिज्ञात हस्तगत सुवर्ण ॥ २४ ॥

अंतःशीतलतामेषांतांनजानंतिकेचन ॥ दूराच्चंदनदारूणामामोदमिवजंतवः ॥ २५ ॥ येतुविज्ञातविज्ञेयास्तादृशाःपावनाशयाः ॥ जानंतितांस्तथैवांतरहेःपादानिवाहयः ॥ २६ ॥ भावंनिगूहयंत्येतेतमुत्तममनुत्तमाः ॥ ग्राम्यैर्धनैःकिलानर्घ्यःकश्चिंतामणिरापणे ॥ २७ ॥ तस्मिन्निगूहनेभावोयतस्तेषांनदर्शने ॥ निर्वासनागतद्वैतागतमानाःकिलांगते ॥ २८ ॥

अर्थ—इनके अन्तःकरणकी शीतलता कोई ऐसे नहीं जानते जैसे दूरसे चन्दनके सुगन्धको कृमि आदि जीव ॥ २५ ॥ और जो ज्ञातज्ञेय पवित्र अन्तःकरणसहित ज्ञानीजन हैं वही उनको ऐसे जानते हैं जैसे सर्पके पादोंको सर्व ॥२६॥ सत्य सर्वोत्तम ज्ञानीजन तो अपने उत्तम भावको ऐसे छिपाते हैं जैसे कोईजन ग्रामके धनोंसे क्रय (खरिदने) के अयोग्य चिन्तामणिको आपण (बजार) में ॥ २७ ॥ तत्वज्ञानियोंको तात्पर्य्य तो अपने आन्तरिकभाव छिपानेमें रहताहै और पाषण्डियोंका प्रसिद्ध करनेमें, क्योंकि तत्वज्ञानी तो वासना द्वैत तथा अभिमानसे रहित होते हैं ॥ २८ ॥

एकांतामानदौर्गत्यजनावज्ञप्रयस्तुतान् ॥ सुखयंतियथारामनतथैवमहर्धयः ॥ २९ ॥ स्वसंवेदनसंवेद्यसाराविदितवेद्यता ॥ नैषादर्शयितुंशक्यादृश्यतेनचतद्विदा ॥ ३० ॥ गुणंममेमंजानातुजनःपूजांकरोतुमे ॥ इत्यहंकारिणामीहानतुतन्मुक्तचेतसाम् ॥ ३१ ॥ क्रियाफलानिचिद्व्योमगमनादीनिराघव ॥ अज्ञानामपिसिद्ध्यंतिमंत्रौषधिवशादिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इन महात्माओंको एकान्त, प्रतिष्ठा पूजाका अभाव, दरिद्रता और मनुष्योंसे अपमान जैसे सुखी करते हैं वैसे महा ऋद्धि सिद्धि नहीं क्योंकि प्रतिष्ठादिमें उनको आत्मसुखका विक्षेप होताहै ॥ २९ ॥ स्वसंवेदनमात्र सारवती आत्मज्ञता किसीको दर्शा नहीं सकते, क्योंकि यह आत्मज्ञानीकेभी दृष्टिगोचर नहीं होती किंतु स्वप्रकाशरूपसे अनुभूत होती है ॥ ३० ॥ मेरे इस गुणको संसार जानै और मेरी पूजा करै यह चेष्टा अहंकारियोंकी होती है, न कि जीवन्मुक्तोंकी ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! मंत्र औषधि आदिके बलसे आकाशगमन आदि सिद्धि तो अज्ञानियोंकोभी होजाती हैं ॥ ३२ ॥

योयादृक्क्लेशमाधातुंसमर्थस्तादृगेवसः ॥ अवश्यंफलमाप्नोतिप्रबुद्धोस्त्वज्ञएववा ॥ ३३ ॥ आमोदश्चंदनस्येवस्पंदनस्यफलंहृदि ॥ सर्वस्यैवास्तितन्नूनंतद्धतासमवाप्यते ॥ ३४ ॥ अहंतावासनाद्वैतंवस्तुतादृश्यवस्तुषु ॥ यस्यास्त्यसौसाधयतिखगमादिक्रियाफलम् ॥ ३५ ॥ इदंनकिंचिद्भ्रांतिर्वाखंचेतिज्ञस्तुवेत्तियः ॥ सोवासनःकर्मवात्याःकथंसाधयतिक्रियाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो जैसा क्लेश धारण करनेमें समर्थ है वह अवश्य वैसा फल पाताहै चाहै अज्ञानी हो वा ज्ञानी ॥ ३३ ॥ चन्दनके सुगन्धके समान विहित निषिद्ध कर्मोंका फल सबके हृदयमें है वह काल पाके अवश्य वैसी क्रियासे उस फलको पाताहै ॥ ३४ ॥ सिद्धिरूप दृश्यवस्तुओंमें मैं भोक्ता होऊं इसप्रकार अहंतावासनादिरूप परिच्छिन्न आत्मकलपनाको जो सिद्ध करताहै वह आकाशगमन आदि क्रियाफलको पाता है ॥ ३५ ॥ यह सब आकाशगमन आदि सिद्धिसमूह तुच्छ मनोभ्रममात्र है वह तो वासनारहित होके केवल चिदाकाशमात्र जानताहै, वह कर्मोंकी महावात्या (आंधी) से भ्रमणके तुल्य आकाशगमन आदि क्रियाफलोंको क्यों सिद्ध करैगा ॥ ३६ ॥

नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ३७ ॥ नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवाक्वचित् ॥ यदुदारमनोवृत्तेर्लोभायविदितात्मनः ॥ ३८ ॥ जगदेवतृणंयस्यनकिंचिद्व्रजएववा ॥ किंनामतस्यभवतुअन्यदादेयतांगतम् ॥ ३९ ॥ निर्वाहितजगद्यात्रःपरिपूर्णमनामुनिः ॥ यथास्थितमसावास्तेसंप्रयातियथागतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उसको इससंसारमें करने वा न करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, और न उसको पदार्थोंमें कुछ विरुद्ध हैं ॥ ३७ ॥ उदारमन तत्वज्ञानीको लोभानेके लिये पृथिवी स्वर्ग अथवा अन्यत्र कहीं कोईभी वस्तु नहीं है ॥ ३८ ॥ जि-

सको सम्पूर्ण जगत् तृणवत् है, और जिसके रजोगुण नहीं है उस धीर ज्ञानीपुरुषको आत्मासे अन्य क्या उपादेय होगा ॥ ३९ ॥ जगत्के व्यवहारोंको पूर्णरीतिसे निर्वाहक और परिपूर्ण चित्त, अपने आत्मस्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित ज्ञानीपुरुष यथाप्राप्त शिष्टाचारका अनुसरण करताहै ॥ ४० ॥

नित्यांतःशीतलोमौनीसत्वीभूतमनोवनिः ॥ परिपूर्णार्णवाकारोगंभीरप्रकटाशयः ॥ ४१ ॥ रसायनपरापूर्णह्रदवत्तह्लादमात्मनि ॥ धत्तेकरोतिवान्यस्यसकलेंदुरिवामलः ॥ ४२ ॥ मंदारमंजरीकुंजपिंजरादेवभूमयः ॥ नतथाह्लादयंत्येतायथापंडितबुद्धयः ॥ ४३ ॥ चंद्रबिंबैर्वसंतैश्चमहतामहताशयैः ॥ सारंसौभाग्यसौगंध्यसौरभालोकभोगिषु ॥ ४४ ॥

अर्थ—और नित्य अन्तःकरणमें शीतल, मौनी, सत्वयुक्त मनसे सबका रक्षक और पूर्णसमुद्रके तुल्य गंभीर तथा प्रकट आशययुक्त ज्ञानी रहता है ॥ ४१ ॥ अमृतसे पूर्ण ह्रदके समान अपने आत्मामें आनन्द धारण करताहै, और निर्मल तथा पूर्णचन्द्रमाके समान दूसरोंको आनन्द देता है ॥ ४२ ॥ मन्दारोंकी लता कुंजोंसे पूर्ण, देवताओंके नन्दनवनकी भूमि मनुष्यको ऐसी सुखी नहीं करसकती जैसी कि उपदेशोंके द्वारा पण्डितोंकी बुद्धि ॥ ४३ ॥ सारग्राही विवेकीजन ग्रीष्मऋतुसंबन्धी आलोकभोगियोंमें चन्द्रबिंबोंसे, सौगंध्यभोगियोंमें वसन्तसे और सौभाग्यभोगियोंमें तत्ववेत्ताओंके रागआदिसे शून्यआशयोंसे सार ग्रहण करताहै ॥ ४४ ॥

भ्रांतिमात्रमिदंविश्वमिंद्रजालमसन्मयम् ॥ त्यजतीतिविनिश्चित्यदिनानुदिनमेषणाः ॥ ४५ ॥ शीतातपादिदुःखानिनिजदेहगतान्यपि ॥ अन्यदेहगतानीवज्ञःपश्यत्यवहेलया ॥ ४६ ॥ करुणोदारयावृत्त्यात्स्याव्रततिर्धीरया ॥ नीरसोनीरसारांतुसारतांसरतिस्थितिम् ॥ ४७ ॥ व्यवहारंयथाप्राप्तंलोकसामान्यमाचरत् ॥ चराचराणांभूतानामुपर्येवावतिष्ठते ॥ ४८ ॥

अर्थ—उस सारग्रहणसे यह समझताहै कि इन्द्रजालकेसमान असन्मय यह संसार भ्रममात्र है इसप्रकार निश्चय करके प्रतिदिन इच्छाओंको त्यागता जाताहै ॥ ४५ ॥ निजदेहमें प्राप्तभी शीत आतप आदि दुःखोंको ज्ञानीपुरुष अन्य देहस्थके समान अनादरसे देखताहै ॥ ४६ ॥ अन्यके अर्थ पुष्पफलादिको धारण करनेवाली लताके तुल्य करुणा तथा उदारवृत्तिसे अन्यका पालन करताहै और स्वयं विरक्त होके जलमात्रसेभी सन्तोषवृत्तिको धारण करताहै ॥ ४७ ॥ यथाप्राप्त लोकसामान्य व्यवहारको करताहुआ चराचर भूतोंके ऊपर विद्यमान रहताहै ॥ ४८ ॥

प्रज्ञाप्रासादमारूढस्त्वशोच्यःशोचतेजनान् ॥ भूमिष्ठानिवशैलस्थःसर्वान्प्रज्ञोनुपश्यति ॥ ४९ ॥ चिरंकल्लोलवलितःसुमनाजलधौभ्रमे ॥ परंपारमुपागत्यपरांविश्रांतिमेतिसः ॥ ५० ॥ हसन्सशांतयावृत्त्याप्राक्तनीर्जागतीर्गतीः ॥ स्मयमानइवास्तेंतर्जनताश्चघनभ्रमाः ॥ ५१ ॥ एताःकांतारनिर्मग्नमिताःसंसारदृष्टयः ॥ असत्योहतवत्योमामित्यंतर्यातिविस्मयम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—ज्ञानी बुद्धिरूप प्रासाद (ऊंचीअटारी) पर चढके स्वयं अशोच्य अज्ञानियोंको शोचताहै और सबको ऐसा देखताहै जैसे पर्वतस्थजन भूमिस्थोंको ॥ ४९ ॥ भ्रमरूपीसमुद्रमें कामक्रोध आदि तरंगोंसे चिरकालतक विक्षिप्त यह ज्ञानसे परपारको प्राप्त होकर परम विश्रामको प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ अपनी पूर्वकालकी संसारकी गतियोंको अतिशान्तवृत्तिसे हसताहुआ, महाअज्ञानयुक्त जनसमूहोंको अन्तःकरणमें मुस्किरताहुवा स्थित रहताहै ॥ ५१ ॥ बनमें मार्गभ्रष्ट अन्धजनोंसे उपमित ये संसारकी असत्य दृष्टियां मुझे मोहित करतीथी, ऐसा समझके अन्तःकरणमें स्मित होताहै ॥ ५२ ॥

दृष्टयाष्टगुणमैश्वर्यमनिष्टंमेतृणायते ॥ इत्युपैत्युपशांतत्वात्स्मयमानोपिनस्मयम् ॥ ५३ ॥ कश्चिद्गिरिगुहागेहःकश्चित्पुण्याश्रमाश्रयः ॥ कश्चिद्गृहस्थाश्रमवान्कश्चिद्बहुरटन्स्थितः ॥ ५४ ॥ कश्चिद्भिक्षाचराचारःकश्चिदेकांततापसः ॥ कश्चिन्मौनव्रतधरःकश्चिद्ध्यानपरायणः ॥ ५६ ॥ कश्चिद्विपश्चिद्विख्यातःकश्चिच्छ्रोताश्रुतेःस्मृतेः ॥ कश्चिद्राजाद्विजःकश्चित्कश्चिदज्ञइवस्थितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—यह सौभाग्य है कि अष्टविध ऐश्वर्य्य मुझे अनिष्ट तथा तृणवत् भासते हैं ऐसा जानके किंचित् हंसताहुआभी गर्व नहींकरता ॥ ५३ ॥ कोई ज्ञानी तो पर्वतोंके कन्दरामें रहताहै, कोई गृहस्थ आश्रममें और कोई बहुत भ्रमण करता रहताहै ॥ ५४ ॥ कोई भिक्षाशन करताहुवा भ्रमताहै, कोई एकान्त तप करताहै, कोई मौनव्रत धारण करताहै और कोई ध्यानमेही परायण रहताहै ॥ ५५ ॥ कोई विख्यात पण्डित होताहै, कोई श्रुतिस्मृतिका श्रोता होताहै, कोई राजा, कोई ब्राह्मण और कोई अज्ञके समान स्थित रहताहै ॥ ५६ ॥

गुटिकाजनखड्गादिसिद्धःकश्चिन्नभोगतः ॥ कश्चिच्छिल्पकलाजीवीकश्चित्पामररूपभृत् ॥ ५७ ॥ कश्चित्त्यक्तसमाचारःकश्चिच्छ्रोत्रियनायकः ॥ कश्चिदुन्मत्तचरितःप्रव्रज्यांकश्चिदाश्रितः ॥ ५८ ॥ पुरुषोनशरीरादिनचचित्तादिकिंचन ॥ पुरुषश्चेतनंनामनसनश्यतिकर्हिचित् ॥ ५९ ॥ अच्छेद्योऽसावदाह्योसावक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोसौसनातनः ॥६०॥ इतिसम्यक्प्रबुद्धोयःसयथायत्रतिष्ठति ॥ तथातिष्ठतुतत्रात्रस्थानास्थानियमेनकिम् ॥ ६१ ॥ पातालमाविशतुयातुनभोविलंघ्यदिङ्मंडलंभ्रमतुवेपणमेवयेन॥चिन्मात्रमेतदजरंनतुयातुनाशमाकाशकोशइवशांतमजंशिवंतत् ॥६२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मरणाद्यभावोपदेशो नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

अर्थ—कोई गुटिका, अंजन वा खड्गादिसे सिद्ध होके आकाशगामी रहताहै, कोई शिल्पकलासे जीविका करताहै, और कोई पामरके समान रूप धारण करलेताहै ॥ ५७ ॥ कोई सब आचारोंको त्याग देताहै, कोई वेदवेत्ताओंका नायक होताहै, कोई उन्मत्त चरित करताहै और कोई सन्यास धारण करलेताहै ॥ ५८ ॥ पुरुष शरीर वा चित्त आदि नहीं है किन्तु चेतनमात्र है, वह कदाचित्‌भी नष्ट नहीं होता ॥ ५९ ॥ यह चेतन पुरुष न किसीसे छेदाजाय, न जलायाजाय, और न भिगोया वा सुखायाजाय, यह तो नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल तथा सनातन है ॥ ६० ॥ इसप्रकार जो चित्‌पुरुषको जानताहै वह चाहै जहां रहै उस वर्णाश्रमके धर्मोंसे वा यमनियमसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! चाहै तत्वज्ञानी पातालमें प्रवेश करै, आकाशको उल्लंघन करके ऊपर चलाजाय, दिशाओंमें भ्रमण करै, जिसमें मानसोत्तर लोकालोकादि पर्वतोंसे चूर्ण होजावे, परन्तु चिन्मात्र इसका स्वरूप कदापि नष्ट नहीं होता, क्योंकि वह तो आकाशके कोशके समान सर्वथा शान्त, अज और शिवपद है ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे मरणाद्यभावोपदेशो नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चित्‌की नित्यता, एकता और स्वतंत्रताका साधन तथा इस सत्‌शास्त्रका माहात्म्य और हितका उपदेश इस १०३ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भामात्रंभानमात्रंवाशांतंभासतएवच ॥ चिन्मात्रंयदनाद्यंतंतस्यनाशःकथंकदा ॥१॥ तावन्मात्रंचपुरुषःकदाचित्सननश्यति ॥ यदिनश्यतिचिन्मात्रंभूयोजायेतकिंकथम् ॥ २ ॥ नचान्यदन्यच्चिन्मात्रंक्वचित्किंचनकस्यचित् ॥ सर्वानुभवसादृश्येकीदृशीनामसान्यता ॥ ३ ॥ सर्वस्यैवहिमंशीतमुष्णोग्निर्मधुरंपयः ॥ चिन्मात्रस्यावदातस्यकीदृगन्यत्वमत्रतु ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—सुषुप्ति आदि सब अवस्थाओंके साक्षी प्रकाशमात्र अथवा विषयोंका प्रकाशमात्र जो यह अनादि अनन्त शान्तरूपसे चिन्मात्र भासताहै इसका नाश कैसे और कब किसकी साक्षितामें होसकता है ॥१॥ क्योंकि चिन्मात्रशरीर पुरुष है वह कभी नष्ट नहीं होता और यदि चिन्मात्रका नाश हो तो पुनः क्या और कैसे उत्पन्न हो, क्योंकि असाक्षिक सृष्टिही नहीं होसकती ॥ २ ॥ और चित्‌से भिन्न अन्य चित् कभी होही नहीं सकती, क्योंकि अनुभवमात्र चित् है और पूर्व तथा उत्तरकालमें जब अनुभवमात्रमें सर्वांशसमानता है तो उसकी भिन्नता कैसी ॥ ३ ॥ क्योंकि सब चिन्मात्रको हिम शीत, अग्नि उष्ण, दुग्ध मधुर भासताहै तब इस शुद्ध चिन्मात्रमें भेद कैसा ॥ ४ ॥

शरीरनाशेनाशश्चेच्चिन्मात्रस्यतदुच्यताम् ॥ हर्षस्थानेविषादःकिंमरणेसंसृतिक्षये ॥ ५ ॥ नचनामशरीरस्यनाशेनश्यतिचिन्नभः ॥ देहेनष्टेपिबंधूनांम्लेच्छैर्दृष्टापिशाचता ॥ ६ ॥ यावच्छरीरसत्ताचेच्चेतनस्यतदुच्यताम् ॥ शवःकस्मान्नचलतिसत्यखंडेशरीरके ॥ ७ ॥ पिशाचानुभवोजीवोधर्मश्चेतत्ससर्वदा ॥ किंनपश्यतिकिंबंधौमृतेपश्यतितत्तथा ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि चार्वाकादिके मतसे शरीरके नाशसेही चिन्मात्रका नाश हुआ तो इस मतमें मरणसेही संसारका नाश होगया तब हर्षके स्थानमें विषाद क्यों ॥ ५ ॥ परन्तु शरीरके नाशसे चिदाकाश कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि बन्धुओंके शरीर नष्ट होनेपरभी म्लेच्छबन्धुओंने पिशाचता देखी है ॥ ६ ॥ और जबतक शरीर है तबतक चेतनकी

सत्ता है यहभी अयुक्त है क्योंकि अखंडितशरीर रहनेपरभी मृतक क्यों नहीं चेतता ॥ ७ ॥ यदि कहो कि जीवित बन्धुका पिशाच देखना स्वभाव है तब वह जीवित बन्धुमें क्यों नहीं देखता और मृतक होनेपर देखताहै ॥ ८ ॥

जीवधर्मोविशिष्टश्चेत्तादृशस्तंनरःकथम् ॥ मिथ्यादेशांतरमृतेपिशाचत्वंनपश्यति ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वात्मकंत्वेतच्चिन्मात्रंननियंत्रितम् ॥ यद्यत्रयथावेत्तितत्तत्तत्रावगच्छति ॥ १० ॥ अबाधितैवैकधनासंविद्भवतियादृशी ॥ तादृश्येवानुभूतिर्हितत्स्वभावोत्रकारणम् ॥ ११ ॥ अन्यन्नसंभवत्यत्रसर्गादावेवकारणम् ॥ यन्नामतदिदानींस्यात्कथ्यतांकीदृशंकथम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यदि यह कहो कि बन्धुके मरणज्ञानविशिष्ट होनेसेही पिशाचदर्शन जीवका धर्म है तो मिथ्या देशान्तरमें कल्पित मरण सुननेसे पिशाचत्व क्यों नहीं देखता ॥ ९ ॥ इसलिये चित्के भेद तथा विनाशके असंभवसे वह सर्वात्मक नित्य है. वस्तुके परिच्छेद नियत नहीं है किन्तु जिस देशकालमें अपनेको जैसा जानती है तब वैसाही अनुभव करती है ॥ १० ॥ घन ज्ञानमय संवित् सृष्टिकी आदिमें सत्यसंकल्प होनेसे जिस संकल्पसहित होती है वैसीही अबभी सबको अनुभूत होती है इसमें उसका स्वभावही कारण है ॥ ११ ॥ और सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मसंवित्के सिवाय अन्य कारण नहीं होसकता, यदि है तो कहो किस रीतिसे और कैसा वह कारण है ॥ १२ ॥

सर्गादावेवनोत्पन्नानचैवाद्यावभासते ॥ विकल्पश्रीर्जगद्भासाकेवलंभातिचिन्नभः ॥ १३ ॥ आभासमात्रमेवेदंदृश्यमित्यवबुध्यते ॥ दृश्यमित्यवबोधेनतदृतेस्यात्क्वदृश्यता ॥ १४ ॥ सचमत्कारचातुर्यंचारुचिन्नभसारसात् ॥ बोधेनबुद्ध्यतेदृश्यमित्यबोधान्नबुध्यते ॥ १५ ॥ बोधोऽबोधश्चतद्रूपमेवमेवनिरामयम् ॥ भेदोत्रवाचिनत्वर्थेतस्मान्नास्त्येवदृश्यता ॥ १६ ॥

अर्थ—परमाणुवाद आदि विकल्पोंकी श्री न तो सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुई और न अब भासती है किन्तु जगत् प्रकाशरूपसे केवल चिदाकाशही भासताहै ॥ १३ ॥ और चित्के विवर्तमात्रको सब दृश्य जानतेहैं और ज्ञानसे इसको जब दृश्यरूपसे देखो तब शुक्तिके रजत वा मृगतृष्णाकी नदीके जलकेसमान चित्के सिवाय जगत्में सत्यता कहां है ॥ १४ ॥ केवल उत्तम चिदाकाशका चमत्काररूप चातुर्य्यही यह दृश्य है वह जाग्रत् तथा स्वप्नके बोधसे ज्ञात होताहै और सुषुप्तिमें बोध न होनेसे नहीं ज्ञात होता ॥ १५ ॥ और बोध तथा अबोध दोनों निरामय चिद्रूपही हैं इनमें भेद राहुका शिर इस कथनकेतुल्य केवल वचनमात्रमें है न कि अर्थमें इसलिये दृश्य कुछ नहीं है ॥ १६ ॥

याचासीदृश्यतैषांतांविद्धित्वमविचारणाम् ॥ साचेदानींविचारेणविनष्टातःक्वदृश्यते ॥ १७ ॥ अस्मिन्नेवधियोयत्नआत्मज्ञानविचारणे ॥ यत्नेनपरमोभ्यासःसलोकद्वयसिद्धिदः ॥ १८ ॥ अविद्योपशमस्त्वेषजातोपिभवतामिह ॥ अभ्यासेनविनासाधोनसिद्धिमुपगच्छति ॥ १९ ॥ नोद्वेगंसंपरित्यज्यगृहीत्वानुदिनंक्षणम् ॥ लोकद्वयहितंपथ्यमिदंशास्त्रंविचार्यताम् ॥ २० ॥

अर्थ—और अथवा जो कुछ पदार्थोंकी दृश्यता है वह चित्ततत्वका अविचारही जानो, यदि विचारसे वह अविचार नष्ट होगया तो दृश्यता कहां रही ॥ १७ ॥ इसलिये इस आत्मज्ञानके विचारमेही बुद्धिका महान् प्रयत्न लगाना चाहिये, क्योंकि यत्नसे विचारका परमअभ्यास दोंनों लोकमें सिद्धिदायक है ॥ १८ ॥ हे साधो रामजी ! आपको अविद्याकी शान्ति होनेपरभी जीवन्मुक्तिकी प्रतिष्ठाकी सिद्धि अभ्यासके विना न होगी ॥१९॥ उद्वेगकको त्यागकर दोनों लोकमें हितदायक तथा पथ्यरूप इस शास्त्रको लेके प्रतिदिन क्षणभर विचारो ॥ २० ॥

विज्ञातमप्यविज्ञातमात्मज्ञानमिदंभवेत् ॥ भवतांभूरिभागानांसंभूयाभ्यसनंविना ॥ २१ ॥ योयमर्थंप्रार्थयतेतदर्थंयततेतथा ॥ सोवश्यंतमवाप्नोतिनचेच्छ्रांतोनिवर्तते ॥ २२ ॥ तस्मादस्मान्निवर्तध्वमसच्छास्त्रविचारणात् ॥ शांतिंप्राप्स्यथसच्छास्त्राज्जयलक्ष्मींयथारणात् ॥ २३ ॥ विवेकेचाविवेकेचवहत्येषामनोनदी ॥ यत्रैववाह्यतेयत्नात्तत्रैवस्थितिमृच्छति ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेक असंभावनादिदोषयुक्त आपलोंगोंको विज्ञातभी आत्मज्ञान आपसमें परस्पर कथन बोधन तथा चिन्तनादि अभ्यासके विना अज्ञातकेसमान होजायगा ॥ २१ ॥ जो जिस वातके लिये प्रार्थना करताहै और उसके लिये उचित प्रयत्नभी करताहै तो यदि श्रान्त होके निवृत्त न होयजायगा अवश्य उसको पाताहै ॥ २२ ॥ इसलिये इस असत् अनात्मशास्त्रके विचारसे तुम निवृत्त हो और इस आत्मशास्त्रको विचारो क्योंकि इससे शान्तिको ऐसे पाओगे जैसे रणसे जयकी लक्ष्मीको ॥ २३ ॥ विवेक तथा अविवेक दोनोंओर यह मनरूपनदी वहती है, एक ओरके प्रवाहको रोककर प्रयत्नसे जिस ओर लगाओगे वहांही स्थितिको प्राप्त होगी ॥ २४ ॥

अस्माच्छास्त्रादृतेश्रेयोनभूतंनभविष्यति ॥ ततःपरमबोधार्थमिदमेवविचार्यताम् ॥ २५ ॥ स्वयमेव विचार्यैदंपरोबोधोनुभूयते ॥ संसाराध्वश्रमहरोनत्वेतद्वरशापवत् ॥ २६ ॥ यन्नपित्रानवामात्रानचापि सुकृतैःकृतम् ॥ श्रेयस्तद्दःपरिज्ञातमिदमाशुकरिष्यति ॥२७॥ भवबंधमयीसाधोविषमेयंविषूचिका ॥ आत्मज्ञानादृतेदीर्घानकदाचनशाम्यति ॥ २८ ॥

अर्थ – इस शास्त्रसे भिन्न उत्तम विवेक साधनके लिये न हुआ, न होगा, इसलिये परमबोधके लिये इसी शास्त्रको विचारो ॥ २५ ॥ संसाररूपीमार्गके खेदको हरनेवाले इसशास्त्रको विचारकरके स्वयं शीघ्र आत्माका बोध होताहै नकि वरवाशापके सदृश विलंबसे ॥ २६ ॥ जो कल्याण मातापिता वा अन्यसुकृतने तुमारा नहीं किया वह कल्याण यह शास्त्र शीघ्र करैगा ॥ २७ ॥ हे साधो ! संसारके बन्धनमयी यह भयंकर दीर्घ महामारी आत्मज्ञानकेविना कदापि नष्ट नहीं होती ॥ २८ ॥

महामोहमयीमायामिथ्यैवाहमितिस्थिता ॥ शास्त्रार्थभावनेनाशुमुच्यतांपरशोच्यता ॥ २९ ॥ यात मा॒ऽऽपातमधुरंव्योमव्योमैकरूपिणीम् ॥ शून्यंवायुंलिहंतोंतलैंलिहानाइवाहयः ॥ ३० ॥ यांतिवोदिव साःकष्टमविज्ञातगमागमाः ॥ व्यवहारेहितैरेवप्रतिपालयतांमृतिम् ॥ ३१ ॥ तावदाश्वासनैषास्तिभव तांभयभागिनाम् ॥ दिनानिकतिचिद्यावन्नायातिमरणावधिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह महामोहमयी अहंकाररूप माया मिथ्याही स्थित है, सो सत्शास्त्रोंके अर्थकी भावनासे इस परम शोच्यताको त्यागो ॥ २९ ॥ विना विचारे मधुर इस शून्य आकाशमयी संसारकी मायामें ऐसे तुम लोग न फंसो जैसे शून्यरस शून्यवायुको चाटतेहुये सर्प ॥ ३० ॥ अहो ! यह कैसे खेदकी बात है कि व्यवहारकी चेष्टाओंसे मृत्युकी प्रतीक्षा करतेहुये तुमारे अविज्ञात गमनागमन दिवस बीतेचलेजातेहैं ॥ ३१ ॥ भयके भागी तुमलोगोंको तभीतक सत्शास्त्रकी योग्यतासे आश्वासन है जबतक कुछ दिनमें मरणकी अवधि नहीं आती ॥ ३२ ॥

आगच्छंत्यांमृतौकष्टंपरितापमवाप्स्यथ ॥ तंयत्रांगांगविच्छेदःशीतचंदनलेपनम् ॥ ३३ ॥ क्रीणंतिप्रा णपण्येनधनंमानंघनभ्रमाः ॥ यथाशास्त्रैःकथंबुद्ध्यानक्रीणंत्यजरंपदम् ॥ ३४ ॥ पदंपरमयत्नेनक्रियतेयै श्चिदंबरे ॥ कथंतैःसह्यतेऽज्ञानशत्रुपादःस्वमूर्द्धनि ॥ ३५ ॥ निर्मानमोहमापन्नागतिंगच्छतमाध माम् ॥ क्रियतेस्वात्मबोधेनमूलकाषोमहापदाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और मृत्यु आनेपर कष्टदायक उस परितापको पाओगे जहां शीतचन्दन लेपके सदृश अङ्गोंका विच्छेदभी पाओगे ॥ ३३ ॥ यह कैसा आश्चर्य है कि मूढजन प्राण देके युद्ध आदिमें धन तथा जयके अभिमानार्थ क्रीडा करतेहैं परन्तु शास्त्रोक्त विवेक, वैराग्य तथा श्रवणादि उपायोंसे प्राप्त तत्त्वबुद्धिसे अजर मोक्षपदके लिये नहीं क्रीडा करते ॥३४॥ जो विवेकी केवल अपने विचारमात्र यत्नसे चिदाकाशमें स्थिति करतेहैं वे अज्ञानरूप शत्रुके पादप्रहारको अपने शिरपर कैसे सहसकतेहैं ॥ ३५ ॥ हे सभ्यजन ! आपलोग मानमोहको त्यागकर अधमगतिको नजाओ, क्योंकि आत्मज्ञान महाआपत्तियोंको मूलसे उखाड देताहै ॥ ३६ ॥

प्रलपंतमहोरात्रंयुष्मदर्थेनमामिमम् ॥ यंप्रदृश्येदमाकर्ण्यस्वात्मनैवात्मताप्यताम् ॥ ३७ ॥ अद्यैवनचि कित्सांयःकरोतिमरणापदः ॥ संप्राप्तायांमृतौमूढःकरिष्यतिकिमातुरः ॥ ३८ ॥ अस्माद्ग्रंथादृतेग्रंथो नान्यःस्वात्मावबोधने ॥ नूनमर्थकरोग्राह्यस्तिलस्तैलार्थिनामिव ॥ ३९ ॥ आत्मज्ञानमिदंशास्त्रंप्रका शयतिदीपवत् ॥ पितेवबोधयत्याशुकांतेवरमयत्यलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कंठशोषादि दुःखोंको धारणकरके तुमारेलिये रात्रिदिन जो कहताहुं मेरे ऊपर दयासे इसको सुनके स्वयं देहादिमें आत्मबुद्धि त्यागकर अपरिच्छिन्न ब्रह्मात्मभावको प्राप्त होओ ॥ ३७ ॥ जो मूढ मरणरूप आपत्तिका अभी औषध नहीं करता वह मृत्यु प्राप्त होनेपर आतुर होके क्या करैगा ॥३८॥ इसग्रन्थसे भिन्न आत्मज्ञानके लिये अन्यग्रन्थ नहीं है, इसलिये अभिलषित अर्थसाधक इसे ऐसा जाननाचाहिये जैसे तैलार्थियोंको तिल॥३९॥यह ग्रन्थ दीपके सदृश आत्मज्ञानका प्रकाश करताहै, पिताकेसमान शीघ्र बोधन करताहै और कान्ताके समान पूर्णरीतिसे रमण कराताहै ॥४०॥

विद्यमानमपिज्ञानंज्ञातंशास्त्रगणान्नयत् ॥ दुर्बोधंमधुरंतत्तुज्ञास्यंतीतोनसंशयः ॥ ४१ ॥ इदमुत्तममा ख्यानंमुख्यानांशास्त्रदृष्टिषु ॥ सुखेनबोधदंहृद्यमपूर्वंनतुकिंचन ॥ ४२ ॥ नानाख्यानकथाचित्रंविनोदेन विचारयेत् ॥ इदंशास्त्रंपरंयातिपुमान्नास्त्यत्रसंशयः ॥ ४३ ॥ योह्ययापिनसंप्राप्तःपंडितैरविखंडितैः ॥ सहतःप्राप्यतेबोधःसुवर्णमिवसैकतात् ॥ ४४ ॥

अर्थ—नित्यप्राप्तभी आत्मज्ञान अतिदुर्बोध होनेसे जो शास्त्रान्तरसमूहसेभी नहीं ज्ञात हुआ उसको इस ग्रन्थसे सरलतासे लोग जानेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ शास्त्रदृष्टियोंमे मुख्यआख्यानोंके मध्यमें यह उत्तम सुखसे ज्ञानप्रद और मनोहर है, इसमें अनादिकालसे सिद्धतत्त्ववेत्ताओंके सम्प्रदायके विरुद्ध निजकपोलकल्पित कुछ नहींहै ॥ ४२ ॥ नानाप्रकारके आख्यान तथा कथाओंसे विचित्र इस शास्त्रको मनोरंजनार्थभी यदि पुरुष विचारे तौभी निस्संदेह आत्मज्ञान प्राप्त करे ॥ ४३ ॥ जिस ज्ञानको पूर्णशास्त्रज्ञ पंडितोंने अबतक नहीं प्राप्त कियाहै वह ज्ञान इस शास्त्रसे ऐसे पातेहैं जैसे खानिमें सुवर्णको रेतसे ॥ ४४ ॥

शास्त्रकर्त्तरिमंक्तव्यंनकदाचनकुत्रचित् ॥ शास्त्रार्थएवतन्नित्यंयुक्तियुक्तानुभूतिदे ॥ ४५ ॥ अज्ञानान्म त्सरान्मोहादविचारिभिरेकता ॥ अवहेलितशास्त्रार्थैःकर्त्तव्यानात्महंतृभिः ॥ ४६ ॥ जानाम्येवयथैवे मायदहंत्वंयथाधियः ॥ तथाबोधितकारुण्यात्स्वभावोहिममेदृशः ॥ ४७ ॥ युष्मत्संविल्लवःशुद्धएवं वक्तुमिहस्थितः ॥ अहंनरोनगंधर्वोनामरोनचराक्षसः ॥ ४८ ॥

अर्थ—शास्त्रके कर्तामें बोधकी चिन्तासे निमग्न न होनाचाहिये, किन्तु युक्तियुक्त और अनुभवदायक उसके शास्त्रके अर्थमेंही निमग्न होना उचित है ॥ ४५ ॥ अज्ञान, मत्सर अथवा मोहसे इस शास्त्रको तिरस्कार करनेवाले अविचारी आत्महन्ताओंके साथ विवेकीको मित्रता न करनी चाहिये ॥ ४६ ॥ हे रामजी! ये श्रोतागण तथा तुम जैसे अधिकारसे संपन्न हो और जैसी अभ्यास आदिमें समर्थ तुम सबकी बुद्धि है इसको मैं पूर्णरीतिसे जानता हुं इसलिये पिताकी आज्ञा तथा निजकरुणासे तुमको उपदेश देनेमें मैं तुमसे मित्रता करके प्रवृत्त हुआ हुं, क्योंकि मेरा ऐसा दयालु स्वभावही है ॥ ४७ ॥ अथवा तुमारा शुद्ध संवित् (आत्मा) रूपही इसप्रकार तुमको उपदेश देनेको मैं मित्र होके स्थित हुं, और न मैं मनुष्य, न गन्धर्व और न राक्षस हुं ॥ ४८ ॥

संविन्मात्राभवंतोहितद्भावोस्त्यतिनिर्मलः ॥ स्थितोस्मीतिभवत्पुण्यैर्ननुनास्मिनचापरः ॥ ४९ ॥ श्यामायमानानायांतियावन्मरणवासराः ॥ सारःसंह्रियतांतावद्वैरस्यंवस्तुदृष्टिषु ॥ ५० ॥ इहैवनरक व्याधेश्चिकित्सांनकरोतियः ॥ गत्वानिरौषधंस्थानंसरुजःकिंकरिष्यति ॥ ५१ ॥ सर्वभावेषुवैरस्यंन यावत्समुपागतम् ॥ भावानांभावनातावत्तानवंनोपगच्छति ॥ ५२ ॥

अर्थ—और तुम लोगभी मेरी संवित् (आत्मा) ही हो, और वही निर्मल तुमारा आत्मा मैं तुमारे पुण्योंसे स्थित हुं. हे सभ्यजन! तुमारे आत्मासे भिन्न मैं कुछ नहीं हुं ॥ ४९ ॥ इसलिये महाकृष्ण अन्धकारमय मरनेके दिन जबतक नहीं आते उसके पूर्वही मुझे आप्त जानके मेरे उपदेशका प्रथम सार सब पदार्थोंमें वैराग्य संपादन करो ॥ ५० ॥ यदि इसी लोकमें अभी नरकरूप व्याधिका औषध जो नहीं करता तो वह नरकरूप रोगोंसे पीडित औषधरहित स्थानमें जाके क्या करैगा ॥ ५१ ॥ जबतक सब पदार्थोंमें वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ तबतक पदार्थोंकी वासना सूक्ष्म नहीं होती ॥ ५२ ॥

आत्मानमलमुद्धर्त्तुंवासनातानवादृते ॥ नास्त्युपायोमहाबुद्धेकश्चनापिकदाचन ॥ ५३ ॥ भावास्तुय दिविद्यंतेतद्धितेवस्तुभावना ॥ किंत्वेतेनैवसंतीहशशशृंगादयोयथा ॥ ५४ ॥ सर्वएवजगद्भावाअवि चारितचारवः ॥ अविद्यमानसद्भावाविचाराद्विशरारवः ॥ ५५ ॥ प्रामाणिकविचारेषुनविद्यंतेकृते षुये ॥ कथंसंतिजगद्भावास्तेकेसंतिसदैववा ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे रामजी! पूर्णरीतिसे आत्माका उद्धार करनेके लिये वासनाकी सूक्ष्मतासे भिन्न अन्य कोई उपाय कहीं और कभी नहीं है ॥ ५३ ॥ यदि ये पदार्थ सत्य और स्थायी हों तो उनमें तुमारी वासना युक्त है, परन्तु वे यथार्थमें ऐसे नहीं हैं जैसे शशके शृंगादि ॥ ५४ ॥ सत्यताशून्य संपूर्ण जगत्के पदार्थ अविचारसे रमणीय भासते हैं आर विचारसे वे असत् भासते हैं ॥ ५५ ॥ प्रामाणिक (वेदान्तानुसार) विचारोंके करनेमें जो पदार्थ सत् नहीं हैं वे भला किं स्वरूप हैं, क्या एकवस्तुरूप हैं वा सर्ववस्तुरूप हैं अथवा सदा हैं वा कदाचित् हैं, अर्थात् चित्से पृथक् ये कुछ नहीं हैं ॥ ५६ ॥

सर्वएवजगद्भावाःकारणाभावतोभृशम् ॥ सर्गादावेवनोत्पन्नायच्चेदंभातितत्परम् ॥ ५७ ॥ पदेसर्वें द्रियातीतेमनःषष्ठेंद्रियात्मनाम् ॥ भावानांकारणंनास्तिमनःषष्ठेंद्रियात्मकम् ॥ ५८ ॥ भावानांविवि धाख्यानामनाख्यंकारणंकुतः ॥ कुतोवस्तुन्यवस्तुत्वंव्योमन्यव्योमताकुतः ॥ ५९ ॥ साकारस्यहिसा कारंवटधानादिवद्भवेत् ॥ बीजंतद्वस्तुसाकारंजायतेन्यत्कुतोन्यथा ॥ ६० ॥

अर्थ—कारणके अभावसे ये सब जगत्के पदार्थ सृष्टिकी आदिमें नहीं उत्पन्न हुये, और जो यह भासताहै वह तो ब्रह्महीहै ॥ ५७ ॥ सब इन्द्रियोंसे परे ब्रह्मपदमें प्रलयदशामें मनसहित सब इन्द्रियादि पदार्थोंका कारण मन-

सहित इन्द्रियां नहीं होसकती, क्योंकि केवल चिन्मात्र ब्रह्ममें प्रलयदशामें इन्द्रियोंसे वेद्य विषयकी संभावनाभी नहीं होसकती ॥ ५८ ॥ अनेकप्रकारके नामरूपसहित पदार्थोंका कारण नामरूप शून्य ब्रह्म नहीं होसकता, क्योंकि वस्तुमें अवस्तुता और आकाशमें निराकाशता कैसे होसकती हैं ॥ ५९ ॥ साकार वटवृक्षादिका कारण साकार वटबीजादि होसकते हैं, और साकारसे साकार वस्तु उत्पन्न होती है न कि निराकारसे ॥ ६० ॥

नकिंचिदपियत्रास्तिबीजमाकृतिमन्मनाक् ॥ ततआकृतिमद्विश्वंभवतीतिविडंबनम् ॥ ६१ ॥ कार्यकारणभावादितस्मिन्नहिपरेपदे ॥ वाचालत्वेनयन्नामकल्प्यतेमौर्ख्यमेवतत् ॥ ६२ ॥ सहकारिनिमित्तानामभावेहिनकारणात् ॥ कार्यंभवेदन्यदेतिबालैरप्यनुभूयते ॥ ६३ ॥ तन्मात्रवेदनंभूयःपृथ्व्यादीनांचकारणम् ॥ किमस्तिकथ्यतांछायाकथमास्तेवदातपे ॥ ६४ ॥

अर्थ—जहां साकार बीज किंचित्भी नहींहै उससे यह साकार जगत् उत्पन्न हुआ यह वाक्य विडंबन (अर्थशून्य) है ॥ ६१ ॥ उस परंपद ब्रह्ममें कार्य्यकारणभाव नहीं है और जो वाचालतासे कल्पना कीजाती है वह केवल मूर्खताहै ॥ ६२ ॥ सहकारीकारणोंके अभावमें कारणसे कार्य्य नहीं होता यह वार्ता बालकोंके अनुभवमें आतीहैं ॥ ६३ ॥ घटका ज्ञान होनेमें उसके कारणत्वका अभाव होनेसे जगत्के ज्ञानमें पृथिवीआदि जडपदार्थोंका कारण चित् नहीं होसकती क्योंकि यह तुम कहो कि छाया घाममें कैसे रहसकतीहै ॥ ६४ ॥

परमाणुसमूहायेजगदित्यप्यवास्तवम् ॥ शशशृंगधनुःप्रख्यमज्ञानादभिधीयते ॥ ६५ ॥ परमाणुसमूहश्चेत्संभूयकुरुतेजगत् ॥ यदृच्छयैवनभसिशीर्यतेचयदृच्छया ॥ ६६ ॥ तदंगमिंगतेनित्यंदेशेदेशेगृहेगृहे ॥ अपूर्वात्मरजःशृंगंख्यातंवास्याद्दिनेदिने ॥ ६७ ॥ नचतदृश्यतेकिंचित्कस्यतत्कर्मताद्दशम् ॥ भवेद्व्यर्थमभव्यस्यजडास्तुपरमाणवः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अतीन्द्रिय परमाणुका समूहभी वास्तविकमें कारण नहीं होसकता, क्योंकि शशका शृंग धनुषकेसमान है यह कथन अज्ञानसेही है ॥ ६५ ॥ यदि परमाणुका समूह मिलके यदृच्छासे जगत् रचताहै तो यदृच्छासेही वह आकाशमें विशीर्णभी होजायगा ॥ ६६ ॥ अब जगत्का अवयव परमाणु प्रतिदिन गृह २ में भ्रमणकरताहै तो मिलके पर्वतका शृंग वा कूप क्यों नहिं बनजाता ॥ ६७ ॥ और परमाणुरूप निरवयवद्रव्य कभी किसीको देखभी नहीं पडता, झरोखोंकी किरणोंमें तो त्रसरेणुही दीखतेहैं, त्रसरेणुओंकी अवयवपरंपरा अवधि परमाणुका अनुमानभी नहीं हो क्योंकि उनमें संयोगकी अयोग्यतासे द्रव्यत्व नहीं है और खपुष्पवत् अतींद्रिय परमाणुओंके संयोगसे जगद्रचना करना यह कर्म किसका है संसारीकाकी असंसारीका ? परमाणुओंके संयोगसे जगद्रचना करना यह संसारीका सामर्थ्य नहिं यह तो स्पष्टही है. तब तो यह सामर्थ्य असंसारीका है. असंसारी तो एक परमेश्वर और जड पदार्थ है. इन दोनोंमें परमेश्वरको नित्य मुक्त होनेसे जगद्रचना करना निष्प्रयोजन है और जड परमाणु स्वतः जगन्निर्माण नहीं करसकते ॥ ६८ ॥

नाबुद्धिपूर्वंतत्कर्मसंभवत्यंगकस्यचित् ॥ बुद्धिपूर्वंतुयद्व्यर्थंकुर्यादुन्मत्तकोहिकः ॥ ६९ ॥ जडस्यबुद्धिपूर्वंहामरुतोनास्तितांविना ॥ नसंभवत्यणुचयोनान्यत्कर्तोपपद्यते ॥ ७० ॥ वयमात्मानएवेमेखात्मानःखात्मकाजनाः ॥ तथास्थितायथास्वप्नेभवतांस्वप्नमानवाः ॥ ७१ ॥ तस्मान्नजायतेकिंचिद्विश्वंनापिचविद्यते ॥ इत्थंचिन्नभएवाच्छंप्रकचत्यात्मनात्मनि ॥ ७२ ॥

अर्थ—और मनसेभी अचिन्त्य रचनासहित यह जगत् अबुद्धिपूर्वक नहीं रचा जा सकता और बुद्धिपूर्वक व्यर्थ कर्म कौन उन्मत्त करेगा ॥ ६९ ॥ और जड वायुकी संयोजनरूप चेष्टा बुद्धिपूर्वक हो नहीं सकती, इसलिये अन्यकर्ताके अभावसे परमाणुसमूह नहीं बनसकता ॥ ७० ॥ यदि कहोके जगत् जब नहीं तो हम सब क्या और कैसे जगत्में हैं, सो हम तुम तथा ये सबजन चिद्रूपही हैं और ऐसे स्थितहैं जैसे तुमारे स्वप्नके मनुष्य ॥ ७१ ॥ इसलिये यह संसार न उत्पन्न होताहै और न है किन्तु इस सब रूपसे चिदाकाश अपने आत्मामें आपही स्फुरित होरहाहै ॥ ७२ ॥

विश्वाकाशंचिदाकाशेविष्वग्विश्रांतिमागतम् ॥ स्पंदोद्रवत्वंशून्यत्वमनिलेंभसिखेयथा ॥ ७३ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौनिमेषेणातिदूरतः ॥ संविदोयद्वपुर्मध्येचिद्वयोम्नोविद्धितद्वपुः ॥ ७४ ॥ सस्वभावोहिसर्वेषामर्थानांतेचतन्मयाः ॥ तादृशास्तन्नभोरूपास्तेनविश्वमतोनभः ॥ ७५ ॥ स्वभावस्यपरावृत्तिर्भनागेवाश्रुतस्यसा ॥ स्वभावादविभिन्नेवसेदंजगदितिस्थिता ॥ ७६ ॥

अर्थ—इस कारण यह विश्वाकाश चिदाकाशमें अभिन्नरूपसे ऐसे विश्रान्त है जैसे वायुमें स्पन्द, जलमें द्रवत्व और आकाशमें शून्यता ॥ ७३ ॥ अतिदूरसेभी दूर एक देशसे दूसरेदेशमें क्षणमेंही प्राप्तिमें दोनों देशोंके मध्यमें

संवित् (ज्ञान) का स्वरूप है वही निर्विषय चिदाकाशका शरीर है ॥ ७४ ॥ सब पृथिवी आदि पदार्थोंका संविदाकाशही परमार्थमें स्वरूप है इसलिये वे सब चिदाकाशरूपसे हैं न कि शून्याकाशरूप ॥ ७५ ॥ उस चिदाकाशका जो अभिन्नरूपसे विवर्तभावसे (रज्जुसर्पवत्) परिवर्तन है वही जगत्‌रूपसे स्थितहै ॥ ७६ ॥

जगच्चित्रभसोस्तस्मान्नकदाचनभिन्नता ॥ एकमेवद्वयोरूपंपवनस्पंदयोरिव ॥ ७७ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौविदोमध्येहियद्वपुः ॥ शांताशेषविशेषात्मतन्मुख्यंनेतरद्विदुः ॥ ७८ ॥ सस्वभावोंगभूतानांतत्रतिष्ठंतिपंडिताः ॥ तस्मान्नविचलंत्येतेनित्यध्यानाद्धरादयः ॥ ७९ ॥ आभासाकाशमेवेदंभामात्रमवभासनम् ॥ विश्वमाकाररहितंस्वभावंविदुरव्ययम् ॥ ८० ॥

अर्थ—इसलिये जगत् तथा चिदाकाशका किंचित्‌भी भेद नहींहै, किन्तु पवन और स्वप्नकेसमान दोनोंका एकही रूपहै ॥ ७७ ॥ निमेषमेंही एकदेशसे अन्यदेशकी प्राप्तिसमयमें मध्यदेशमें सब विशेषरहित जो संवित्‌का रूप है उसीको मुख्य अनुभवका स्वरूप कहतेहैं न कि अन्यको ॥ ७८ ॥ हे प्रिय रामजी ! निर्विषय चित्स्वरूप सबभूतोंका स्वभाव है और उसीमें पण्डितजन स्थित रहतेहैं और उसी नित्य ध्यानरूपसे ये पृथिवी आदि पदार्थभी कभी चलायमान नहीं होते ॥ ७९ ॥ यह संसार चित्‌रूप दर्पणमें आभासाकाशमात्र है और इनका प्रकाशनभी चित्प्रभामात्र है, यह संसार आकारशून्य है, चित्स्वभावको अविनाशी कहतेहैं ॥ ८० ॥

नजायतेनम्रियतेनभूत्वाभाविकुत्रचित् ॥ अनन्यदेवचिद्व्योम्नःशून्यत्वमिवखाज्जगत् ॥ ८१ ॥ नविश्वमस्तिनैवासीन्नचनामभविष्यति ॥ इदमाभासतेशांतंचिद्व्योमपरमात्मनि ॥ ८२ ॥ चिन्मात्रमेवकचतिस्वप्नेपुरतयायथा ॥ तथैवजाग्रदाख्येस्मिन्स्वप्नेकचतिस्वयम् ॥ ८३ ॥ सर्गादावेवभावानामसत्तेत्यस्तिदेहकः ॥ कुतस्तस्माच्छरीरत्वंस्वप्नएवनभश्चितेः ॥ ८४ ॥

अर्थ—यह चिद्रूप न कभी उत्पन्न हो, न मरे, न कहीं उत्पन्न हुवा और न होगा, और यह जगत् चित्‌से ऐसे अभिन्न है जैसे आकाशसे शून्यत्व ॥ ८१ ॥ यह संसार न है, न था, और न होगा, यह शान्त चिदाकाश निज परमात्मरूपमें जगत्‌रूपसे भासताहै ॥ ८२ ॥ जैसे स्वप्नमें नगरादिरूपसे चिन्मात्रही स्फुरित होताहै ऐसेही इस जाग्रत् नाम स्वप्नमें वह चिन्मात्र स्वयं जगत्‌रूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ ८३ ॥ जब सृष्टिकी आदिमेंही सब पदार्थोंका अभाव है तो यह देह कहांसे होसकताहै और जो यह पृथिवी तथा शरीर आदिरूपसे भासताहै वह चिदाकाशका स्वप्नही है ॥ ८४ ॥

स्वयंभ्वाख्यंशरीरंस्वंपूर्वस्वप्नोमहाचितेः ॥ इतउत्थानास्तदनुस्वप्नात्स्वप्नांतरंवयम् ॥ ८५ ॥ गंडस्योपरिजातानांस्फोटानामतएवनः ॥ परमेणप्रयत्नेननमनोनामयास्यति ॥ ८६ ॥ ब्रह्मैवासत्यपुरुषःसत्यवचानुभूयते ॥ स्थितंततःप्रभृत्येवनत्वलीकमिदंततम् ॥ ८७ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतमलीकंजायतेजगत्॥ यथास्वप्नेतथालीकमेवमाशुविनश्यति ॥ ८८ ॥

अर्थ—महाचेतनका प्रथम स्वप्न ब्रह्माका शरीर है, और ब्रह्माके शरीरसे आविर्भूत हम लोग एकस्वप्नसें स्वप्रान्तरमें प्राप्त हुए हैं ॥ ८५ ॥ जैसे गलगंडके ऊपर निकसे फोडेका गलेसे साक्षात् संबन्ध नहीं रहता ऐसेही ब्रह्माके स्वप्नसे व्यवहित हम लोगोंका चित्त प्रयत्नसे प्रवर्तमान शीघ्र ब्रह्ममें नहीं जाता ॥ ८६ ॥ जैसे गलही गलगंडरूपसे रहके पुनः उस गलगंडगत स्फोटरूपसे अभिन्न होतेहुयेभी भिन्नके समान अनुभूत होताहै ऐसेही ब्रह्मही हिरण्यगर्भ समष्टिजीवरूप असत्य पुरुष होकेभी उस रूपसे पृथक्‌के समान भासताहै, और जबतक ब्रह्म जीवरूप है तभीतक यह विशाल जगत्‌रूप है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मासे लेके तृणपर्य्यन्त यह जगत् मिथ्याही स्वप्नवत् उत्पन्न है, और स्वप्नके समान शीघ्रही नष्टभी होजाताहै ॥ ८८ ॥

चिद्व्योमैवैत्यविश्वत्वंयथास्वप्नेविनश्यति ॥ अनुदित्वैवविश्वत्वंजाग्रदाख्येतथैवच ॥ ८९ ॥ अनुभूतमलीकंचाप्यलीकंसत्यवत्स्थितम् ॥ संविदेवयथास्वप्नेनगरादितयोदिता ॥ ९० ॥ साकारेवनिराकारास्थितातद्वज्जगत्तया ॥ संविदाकाशमाकाशादणुमेरोरणुर्यथा ॥ ९१ ॥ किलयत्तस्यनामस्यादाकाशादणुताकुतः ॥ कारणाभावतोन्यस्यनाकारउपपद्यते ॥ ९२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही संसाररूप धारण करके पुनः वह संसार नष्ट होजाताहै ऐसेही इस जाग्रत्‌रूप स्वप्नमेंभी चिदाकाश जन्मधारणके विनाही विश्वरूप होताहै ॥ ८९ ॥ यह जगत् अनुभूत तथा सत्यवत् भासनेपरभी मिथ्याही है और निराकारभी संवित् साकार जगत्‌रूपसे ऐसे भासती है जैसे स्वप्नमें नगरादिरूपसे और वह संवित् आकाशसेभी ऐसे सूक्ष्म है जैसे मेरुसे मेरुका अणु ॥ ९० ॥ ९१ ॥ और आकाशसे अणुता कहीं प्रसिद्ध हो तो वह

अणुता ब्रह्मका धर्म मानाजाय इसलिये कारणके अभावसे जगत् चिदाकाशके सिवाय अन्य स्थूल आकार नहीं होसकता ॥ ९२ ॥

सर्गादावेवयोजातोजातोयंजगतःकुतः ॥ यदेववेदनाकाशेपुरंस्वप्नेतदेवनः ॥ ९३ ॥ भेदःस्वप्नाद्रिचिद्व्योम्नोर्नशून्यांबरयोरिव ॥ यदेवचिन्नभोनामतदेवस्वप्नपत्तनम् ॥ ९४ ॥ यदेवस्पंदनंनामसएवपवनो यथा ॥ स्पंदास्पंदैकरूपात्मावायुर्व्योमोपमोयथा ॥ ९५ ॥ तस्माच्चिन्नभएवेदंजगदाकृतिलक्ष्यते ॥ सर्वंशून्यंनिरालंबंभासनंचिद्विवस्वतः ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो नगरआदि सृष्टिकी आदिमेंही न उत्पन्न हुये वे जगत्से कैसे होसकते हैं, और स्वप्नमें जैसे विना इंट आदिके नगरादि हैं ऐसेही वेदान्त सिद्धान्तमें जाग्रत्केभी चित्स्वरूपही हैं ॥ ९३ ॥ आकाश और शून्यके तुल्य चिदाकाश तथा स्वप्नके पर्वतादिमें भेद नहीं है, जो चिदाकाश है वही स्वप्नका नगर है ॥ ९४ ॥ जो स्पन्द है वही पवन है, और स्पन्द तथा अस्पन्दमें एकरूप वायु चिदाकाशसे अभिन्नरूप है ॥ ९५ ॥ इसलिये इस जगत्के आकारमें चिदाकाशही देखपड़ताहै, यह सब शून्यमात्र निरालंब चिन्मात्र सूर्य्यका प्रकाश है ॥ ९६ ॥

शांतमेवेदमखिलंनिरस्तास्तमयोदयम् ॥ सकृद्विभातममलंदृषन्मौनमनामयम् ॥ ९७ ॥ तस्माद्वदकथंभावाःकुतोभावाःक्वभावधीः ॥ क्वद्वैतंक्वैकताक्वाहंक्वभावाःक्वच भावनाः ॥ ९८ ॥ नित्योदितोव्यवहरन्नपिनिर्विकारोद्वित्वैक्यमुक्तमतिरुत्तमशीतलोंतः ॥ निर्वाणआस्वविगतामयशुद्धबोधबोधैकतामुपगतोंगनसंतिभावाः ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सकलभावाभावोपदेशेन परमार्थैकताप्रतिपादनं नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

अर्थ—यह संपूर्ण संसार, अस्त उदयशून्य, अखंड स्फुरणरूप, निर्मल, पाषाणवत् मौन निर्विकार और शांत ब्रह्मही है ॥ ९७ ॥ इसलिये हे रामजी! कहो ये पदार्थ कैसे? कहां अभाव तथा भावकी बुद्धि कहां द्वैत, कहां अद्वैत, कहां हम, कहां पदार्थ और कहां उनकी भावना है ॥ ९८ ॥ हे प्रिय रामजी! तुम निर्विकार शुद्धबोधरूप आत्माके ज्ञानसे एकताको प्राप्त तथा नित्य उदयरूप होकर व्यवहार करते हुयेभी उसमें अभिनिवेशन होनेसे द्वित्व तथा एकत्वसे मुक्तबुद्धि, अन्तःकरणमें शीतल होकर निर्वाण अर्थात् नित्य आनन्दस्वरूप स्थित रहो, क्योंकि तुमारे विक्षेपके हेतु ये पदार्थ नहीं हैं ॥ ९९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे सकलभावाभावोपदेशेन परमार्थैकताप्रतिपादनं नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

वायुआदि पदार्थ आकाशसेही अनुभवसे उत्पन्न हुये हैं, इसलिये जगत्के पदार्थ चिदाकाशसेही हैं यह विषय अनुभवसे इस १०४ के सर्गमें सिद्ध कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आकाशःशब्दतन्मात्रंस्पर्शतन्मात्रकोनिलः ॥ तत्संगोत्कर्षजंतेजस्तच्छांतिश्चेत्यपांस्थितिः ॥ १ ॥ भूरेषांसंघःस्वप्नाभेजगद्भानेक्रमस्त्विति ॥ कथंनामकिलामूर्ताद्व्योम्नोमूर्तिःप्रवर्त्तते ॥ २ ॥ गत्वासुदूरमप्येतज्ज्ञप्तेश्चेत्परिकल्पते ॥ तदादावेवसत्येथेंदोषोस्मिन्कइवामले ॥ ३ ॥ ज्ञप्तिरेवातिविमलास्वरूपात्मनिभातियत् ॥ तदेवजगदित्युक्तंसत्यमित्येवसत्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! शब्दतन्मात्र आकाश और स्पर्शतन्मात्र वायु है, इन दोनों (आकाशवायु) के संघर्षसे रूपतन्मात्र तेज है और तेजकी शान्तिसे रसतन्मात्र जलकी स्थिति है ॥ १ ॥ और इन सबका संघरूप गन्धतन्मात्र यह पृथिवी है, यह स्वप्नके तुल्य इस जगत्के भानमें क्रम है, अब इसमें यह पूंछतेहैं कि मूर्तिरहित आकाशमें मूर्तिसहित पृथिवी पर्य्यन्त भूत कैसे उत्पन्न हुये ॥ २ ॥ यदि अनुभवरूप ज्ञप्तिके बलसे यह कल्पना करो कि कूटस्थ (निष्क्रिय) आकाशसे चलनरूप वायु, रूपरहित वायुसे रूपसहित तेज, रसशून्य तेजसे रससहित जल और गन्धशून्य जलसे गन्धवती पृथिवी उत्पन्न हुई, तो इतनी दूर जाके यदि ज्ञप्तिही शरण लेनीहै तो वह ज्ञप्तिही आदिमें सब जगत्रूप विवर्तभावसे धारणकरलेगी, इसप्रकार सर्वरूप निर्मल तथा सर्वदोषरहित ब्रह्ममेंही यह

सृष्टि है इस सिद्धान्तमें क्या दोष है ॥ ३ ॥ यह निर्मल ज्ञप्ति जो अपने स्वरूप भासती है वही यथार्थ यह जगत् कहागयाहै यही सत्य है ॥ ४ ॥

नकचित्संतिभूतानिपंचकुड्यादयोनवा ॥ असंत्यप्यनुभूतानिननुस्वप्नदशास्विव ॥ ५ ॥ स्वभावएव विमलोयथास्वप्नेपुरादिवत् ॥ कचत्येवंजाग्रतीदंजगद्वद्वस्तुतत्सुखम् ॥ ६ ॥ चेतनाकाशएवाहंतदेवेदं जगत्स्थितम् ॥ इत्यहंजगदित्येकंखमेवैकंशिलाघनम् ॥ ७ ॥ यदादिसर्गजननंयत्कल्पांतविवर्त्तनम् ॥ यद्वाभुवनसंस्थानंतद्विव्योमनिराकृति ॥ ८ ॥ सतिवासतिवादेहेनिर्दुःखसुखत्वमक्षयंमोक्षः ॥ बुद्धे मलेस्वभावेनिर्भरविश्रांतिरस्तुसर्वेह ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगदसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

अर्थ—ये पंचभूत कहीं नहीं हैं और असत् होकेभी जो अनुभूत होतेहैं वह स्वप्नकी दशाके समान है ॥ ५ ॥ यह सुखरूप चित्स्वभाव जाग्रत्‌मेंभी स्वप्नके समान जगत्‌रूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ ६ ॥ मैं चिदाकाशही हुं वही चिदाकाश इस जगत्‌रूपसे स्थित है, इसलिये हम और यह जगत् एकरूप शिलाघनवत् चिद्रूपही है ॥ ७ ॥ जो आदिसृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलयरूप विवर्त और जो लोक लोकान्तरकी रचनाहै, वह सब निराकार चिदाकाशही है ॥ ८ ॥ हे रामजी ! निर्मलपदके ज्ञात होनेसे जो दुःखरहित निरतिशय सुखस्वरूप है वही मोक्ष है, चाहै वह देहकी विद्यमानतामें प्राप्त हो वा अविद्यमानतामें उस निर्मल मोक्षपदमें तुमारी पूर्ण विश्रान्ति हो ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जगदसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

जाग्रत् तथा स्वप्नरूपसे चित्स्वभावही प्रकाश करताहै, चित्स्वभावसे जाग्रत् तथा स्वप्नमें कोई भेद नहीं है यह १०५ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वभावंजगदाकारंचिद्भावोनुभवन्स्थितः ॥ स्वतःस्वप्नमिवानन्यमात्मनःकल्पनाभिधम् ॥ १ ॥ जाग्रत्सुषुप्तमेवेदंशिलाजठरमेववा ॥ आकाशमेववाशून्यंजगत्त्वेनचनोज्झितम् ॥२॥ स्वप्नएवात्रदृष्टांतःपुरमंडलमंडितः ॥ स्वप्नेजगन्नकिंचित्सदित्थमाभातिभासुरम् ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यमसदेवेदंयथास्वप्नेवभासते ॥ जाग्रत्यस्मिंस्तथैवेदंमनागप्यत्रनान्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! चित्स्वभाव आत्माही अपने स्वभावकोही जगत्‌के आकारसे अनुभव करता हुवा ऐसे स्थित है जैसे आत्मासे भिन्न अन्यकल्पनारूप स्वप्नको ॥ १ ॥ संसारतासे अपरित्यक्त यह जाग्रत् मूलसे सुषुप्तिका अज्ञान है, अथवा अधिष्ठानरूपसे शिलाघन चिदाकाशही है ॥ २ ॥ इसमें नगरमंडलादिसे शोभित स्वप्नही दृष्टान्त है, स्वप्नमें जाग्रत् कुछ नहीं है किन्तु सच्चित्‌रूप परमात्माही इस प्रकाशमय स्वरूपसे भासताहै ॥ ३ ॥ यह त्रैलोक्य मिथ्या जैसे स्वप्नमें भासताहै ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी भासताहै, इसमें अन्यथा किंचित्‌भी नहींहै ॥ ४ ॥

नजाग्रतिनचस्वप्नेजगच्छब्दार्थसंभवः ॥ स्वंवस्तुतस्तुचिद्व्योम्नोभानंबुद्धंजगत्तया ॥ ५ ॥ चिद्व्योम्ना स्वचमत्कारोव्योमन्यद्र्यादिरूपभृत् ॥ जगदित्येवबुद्धोंतर्जाग्रत्स्वप्नेस्वयंभुवा ॥ ६ ॥ जगन्नकिंचिदेवेदंचिद्रूपंचनकिंचन ॥ एतेकिंचिदिवाभातोनभश्चिज्जगतीमुधा ॥ ७ ॥ आभातमेवत्रैलोक्यंयथास्वप्ने नकिंचन ॥ शून्यमेवभवेदेवमेवंजाग्रतिनिर्वपुः ॥ ८ ॥

अर्थ—जगत्‌शब्द तथा उसके अर्थका संभव न जाग्रत्‌में है न स्वप्नमें है, किन्तु यथार्थमें स्वयंभूने अज्ञानावृत आत्मस्वरूपसे चिदाकाशके प्रकाशकोही पर्वतादिरूपधारी जाग्रत् वा स्वप्न जगत्‌रूपसे अपने अन्तःकरणमें जाना ॥ ५ ॥ ६ ॥ न यह जगत् कुछ है और न उसका नाशक चिद्रूप कुछ है किन्तु शून्यरूप ये चित् और जगत् ग्राह्य-ग्राहकरूपसे ब्रह्ममें मिथ्याही भासतेहैं ॥ ७ ॥ स्वप्नके पदार्थके तुल्य असत् होकेभी यह त्रैलोक्य भासमान होरहाहै, इसलिये जैसे स्वप्नमें जगत् शून्यरूप है ऐसेही जाग्रत्‌में है ॥ ८ ॥

स्वप्नेकिलमहाबुद्धेनानानिर्माणशालिनि ॥ आरंभाएवनारंभाअसत्सदिवचाततम् ॥ ९ ॥ अंव्योमैवा तिविततंव्योमांतपरिवर्जितम् ॥ व्योमैवाचलसंघातोनानापुरगणोत्करः ॥ १० ॥ अप्यब्दाब्ध्यद्रिनिर्घो षोमौनमेवयथातथा ॥ नशृणोत्येवपार्श्वस्थःसंप्रबुध्यापिकिंचन ॥ ११ ॥ प्रजायतेवाजातोपिवंध्याया स्तनयोयथा ॥ जातोप्यजातएवास्तेयथात्ममृतिविस्मृतौ ॥ १२ ॥

अर्थ— हे महाबुद्धि रामजी ! नानाप्रकारकी रचनासे शोभित स्वप्नमें अनारंभही आरंभ है और असत् सत्के तुल्य भासताहै ॥ ९ ॥ ब्रह्मही उस दशामें अतिविशाल अन्तशून्य आकाश होजाताहै, वही नाना पर्वतसमूह तथा नगरसमूह होजाताहै ॥ १० ॥ जैसे एकके स्वप्नमें प्रसिद्ध मेघसमुद्रादिके शब्दको दूसरा निकटस्थ सुप्त वा जाग्रत् होकेभी नहीं सुनता यही दशा जाग्रत्कीभी है ॥ ११ ॥ जैसे स्वप्नमें अनुत्पन्नभी वन्ध्याके पुत्रके विषयमें यह भास- ताहै कि उत्पन्न होताहै वा उत्पन्न हुआ और जैसे मरके जन्म लेनेपरभी अपने मरणके विस्मरणमें यह समझै कि हम अजात है यही दशा जाग्रत्की है ॥ १२ ॥

सदसद्भवतिक्षिप्रंभुवोननुभवोयथा ॥ विपर्यस्यतिसर्वंचरात्रिरेवयथादिनम् ॥ १३ ॥ असद्यत्संभव त्याशुदिनमेवयथानिशा ॥ असंभवःसंभवतियथास्वमृतिदर्शनम् ॥ १४ ॥ असंभवःसंभवतिजगद्भा नमिवांबरे ॥ तमएवमहालोकोयःसनिद्रःसवासरः ॥ १५ ॥ आलोकएवैतितमोयन्निद्रास्वप्नवासरा ॥ वसुधैवभवेद्व्योमश्वभ्रादिपतनेयथा ॥ १६ ॥

अर्थ— स्वप्नमें शीघ्र सत् असत् होजाताहै, जैसे स्वप्नस्थ भूमिका अभाव और सबका विपर्य्यय होजाताहै. रात्रि- ही दिन होजाती है ॥ १३ ॥ जो असत् है वह सत् होजाताहै, जैसे दिनही रात्रि भासती है और असंभवका संभव होजाता है जैसे अपने मरणका दर्शन ॥ १४ ॥ स्वप्नमें असंभवका संभव ऐसे होताहै जैसे आकाशमें संसारका भान, तम महाप्रकाश होजाताहै और निद्रायुक्त दिनका प्रकाशही अन्धकार होजाताहै और अन्धकारही प्रकाश होजाताहै, तथा गर्तादिके पतनमें पृथिवी आकाश होजाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

असत्यरूपमेवेतिभातिस्वप्नेजगद्यथा ॥ तथैवजाग्रदाभातिमनागप्यत्रनान्यता ॥ १७ ॥ यथाद्यौसद्द शौसूर्यौयथाद्यौसद्दशौनरौ ॥ जाग्रत्स्वप्नौतथैवैतौमनागप्यत्रनान्यता ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ नैतदे वमपिक्षिप्रात्प्रत्ययोयत्रबाधकः ॥ स्वप्नेतद्दर्शनेनांतःकथंजाग्रत्समंभवेत् ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विहृत्यस्वप्नजगतिस्वप्नबंधुजनैःसमम् ॥ मृतिमाप्नोतितत्रासौद्रष्टास्वप्नस्यराघव ॥ २० ॥

अर्थ— जैसे असत्यरूप जगत् स्वप्नमें भासताहै वैसेही जाग्रतमेंभी, इसमें भेद किंचित्भी नहींहैं ॥ १७ ॥ जैसे पूर्वदिन और आज दृष्ट दो सूर्य्य एक हैं और पूर्वदिन तथा आज दृष्ट दो मनुष्य एकही हैं ऐसेही ये जाग्रत् स्वप्न एकही हैं, इन दोनोंमें किंचित्भी भेद नहींहैं ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! यह जो आप कहतेहैं कि जाग्रत् और स्वप्न समान हैं यह युक्त नहीं भासताहै क्योंकि जिस स्वप्नदर्शनमें जाग्रत् भान शीघ्र बाधक होजाताहै वहां स्वप्न अपनेही अन्तःकरणमें असत् भासने लगताहै ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! स्वप्नके संसारमे स्वप्नका द्रष्टा अपने स्वप्नके बन्धुओंकेसाथ विहारकरके वहां स्वप्नदेहका नाशरूप मृत्युको प्राप्तहोताहै ॥ २० ॥

मृतःसन्स्वप्नजगतिस्वप्नजंतुवियोगवान् ॥ इहप्रबुध्यतेजंतुर्निद्रामुक्तश्चकथ्यते ॥ २१ ॥ सुखदुःखदशा मोहान्दिनरात्रिविपर्ययान् ॥ अनुभूयबहून्द्रष्टाम्रियतेस्वप्नसंस्तौ ॥ २२ ॥ गतनिद्रतयापश्चान्निद्रांत इहजायते ॥ नसत्यमेतदित्येवंततःप्रत्ययवान्भवेत् ॥ २३ ॥ स्वप्नद्रष्टायथास्वप्नसंसारेमतिमाप्तवान् ॥ अन्यंजाग्रन्मयंस्वप्नंद्रष्टुंभूयःप्रजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—और स्वप्नके जगत्में मरके स्वप्नके जीवसे वियुक्त होकर जाग्रत् जगत्में जागताहै और निद्रासे मुक्त कहाजाता है अर्थात् देशान्तर और कालान्तरका दृष्ट देशान्तर और कालान्तरके अदृष्टसे बाध नहीं होता ॥ २१ ॥ स्वप्नके संसारमें द्रष्टा सुखदुःखोंकी दशाओं अनेकप्रकारके मोहोंके और दिन तथा रात्रियोंके विपर्य्यय अनुभवकरके स्वप्नके देहको त्यागताहै ॥ २२ ॥ पश्चात् निद्राके अभावसे निद्राका अंत होताहै तो शयनदेशस्थ देहकेसाथ उसका संबंध (जन्म) होताहै तब उसको यह बुद्धि होती है कि स्वप्नके अनुभूत पदार्थ सत्य नहींहैं, सो बुद्धि अन्यदेहमें होनेसे स्वप्नके पदार्थकी बाधिका नहीं होसकती ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नके संसारमें मृत्युको पाता है, पुनः अन्य जाग्रत्मय स्वप्न देखनेकेलिये उत्पन्न होताहै ॥ २४ ॥

जाग्रद्द्रष्टातथाजाग्रत्संसारेमृतिमाप्तवान् ॥ अन्यंजाग्रन्मयंस्वप्नंद्रष्टुंभूयःसजायते ॥ २५ ॥ नस्वप्नम सदित्येवंपूर्वस्मिन्जाग्रदात्मनि ॥ पुनःप्रत्ययमादत्तेस्वप्नात्स्वप्नांतरंगतः ॥ २६ ॥ सजाग्रत्प्रत्ययं

तत्रपुनर्गृह्णातिमुग्धधीः ॥ स्वप्नसंदर्शनंत्वन्यत्तत्राप्यनुभवत्यथ ॥ २७ ॥ स्वप्नंजाग्रत्तयाजाग्रत्स्वप्नत्वं चेतिनामनि ॥ नजायतेनम्रियतेजायतेम्रियतेपिच ॥ २८ ॥

अर्थ--ऐसेही जाग्रत्का द्रष्टा जाग्रत्के संसारमें मृत्युको पाकर पुनः अन्य जाग्रन्मय स्वप्न देखनेकेलिये उत्पन्न होताहै ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जीव जाग्रत् संसारमें जैसे मरके जब अन्य जाग्रत् संसारमें उत्पन्न होताहै तब पूर्व-जाग्रत् संसारके स्वप्नमें जैसे असत्यता बुद्धिको नहीं ग्रहण करता ऐसेही एक स्वप्न संसारसे दूसरेमें प्राप्त होकर उत्तर-स्वप्नमें असत्यता बुद्धिको न ग्रहणकरके उसमें जाग्रत्वबुद्धि ग्रहणकरताहै, यद्यपि वहां स्वप्नका अनुभव है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसे उत्तरस्वप्नमें जाग्रत्वबुद्धि मूर्खतासे है ऐसेही पूर्वजाग्रत्में स्वप्नत्व और असत्यत्वका न ग्रहणकरनाभी मूर्खतासे है, इसप्रकार यह जीव इन दोनोंअवस्थाओंमें स्वयं न मरताहै न जन्मताहै और दोनोंदेहोंके अभिमानसे मरता-भीहै जन्मताभी है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

स्वप्नद्रष्टास्वप्नमृतःप्रबुद्धइहकथ्यते ॥ इहजाग्रन्मृतोजंतुःप्रबुद्धोन्यत्रकथ्यते ॥ २९ ॥ स्वप्नात्स्वप्नस्थितौजाग्रज्जाग्रत्स्वप्नप्रदर्शनम् ॥ मृत्वान्यत्रप्रबुद्धस्यजाग्रत्स्वप्नोभवत्यलम् ॥ ३० इतिहासमयावेवजाग्रत्स्वप्नावुभावपि ॥ परस्परंगतावेतावुपमानोपमेयताम् ॥ ३१ ॥ स्वप्नोजाग्रदिवाभातिजाग्रत्स्वप्नमिवोदितम् ॥ वस्तुतस्तुद्वयमसच्चित्खंकचतिकेवलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नमें मरके इस जाग्रत् जगत्में प्रबुद्ध (जगा) कहलाताहै ऐसेही जाग्रत् मरके स्वप्नमें प्रबुद्ध कहलाता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें जानेसे यह स्वप्न पूर्वस्वप्नसे विशेषदर्शनसे जाग्रत् भासताहै, ऐसेही जाग्रत्में मरके अन्य जाग्रत् वा स्वप्नमें प्रबुद्ध होनेसे पूर्वजाग्रत् अवश्य स्वप्न होजाताहै ॥ ३० ॥ इसकारण जाग्रत्में स्वप्न दोनों पूर्ववृत्त कथाके अर्थके सदृश परस्पर उपमान उपमेय (सादृश्यभाव) को प्राप्त हैं, यथार्थ नहीं हैं ॥ ३१ ॥ और वर्तमानदशामें स्वप्न जाग्रत्के सदृश प्रत्यक्ष भासता है, और भूतजाग्रत्भी प्रसिद्ध स्वप्नके तुल्य है, यथार्थमें दोनों असत् हैं, केवल चिदाकाश स्फुरित होरहाहै ॥ ३२ ॥

स्थावरंजंगमंचैवभूतजातमशेषतः ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणकिमन्यदुपपद्यते ॥ ३३ ॥ मृण्मयंतुयथा भांडंमृच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ चिच्चमत्कारमात्रात्मतथाकाष्ठोपलाद्यपि ॥ ३४ ॥ वस्तुजातमिदंस्वप्ने जाग्रत्यपितथैवनः ॥ दृष्टोयउपलःस्वप्नेचिच्चमत्करणादृते ॥ ३५ ॥ किमन्यत्संवदप्राज्ञकिलावश्यं चिदेवसा ॥ ननुयादृग्वपुःस्वप्नेजाग्रत्तादृगखंडितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्थावरजंगम सब प्राणी तथा भूतमात्र चित्के सिवाय और क्या होसकते हैं ॥ ३३ ॥ जैसे मृत्तिकाका पात्र मृत्तिकाको छोडकर और कुछ नहीं होसकता ऐसेही काष्ठ पाषाण आदि चित्के चमत्कारके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ ३४ ॥ स्वप्नमें वा जाग्रत्में जो कुछ वस्तुसमूह हमको दृष्ट वा अनुभूत होताहै वह सब चिन्मात्र है, स्वप्नमें जो हमने पाषाण देखा वह चिच्चमत्कारके सिवाय ॥ ३५ ॥ और क्या होसकताहै इस विषयमें हे प्राज्ञ रामजी ! तुम विद्वानोंके साथ संवाद करके विचार करो और विचारसे उत्पन्न तत्वदर्शनसे निश्चय करो कि वह पाषाण चिद्रूपही है, क्योंकि स्वप्नमें जैसा शरीर है वैसाही पूर्ण जाग्रत्में है ॥ ३६ ॥

जगज्जातमतःसर्वंचिन्मात्रंब्रह्मखंडितम् ॥ जगज्जातमतःसर्वंचिन्मात्रंब्रह्मकुट्टिमम् ॥ ३७ ॥ मृण्मयंतुयथाभांडंमृच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ चिन्मयंतुतथाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ३८ ॥ शैलात्मकंयथाभांडंशैलशून्यंनलभ्यते ॥ चिन्मयंतुतथाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ३९ ॥ द्रवरूपंयथावारिद्रवरिक्तंनलभ्यते ॥ चिन्मयंतुतथाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—अध्यारोपदृष्टिसे चिन्मात्र ब्रह्मही जगत्रूपमें विभक्त है, और अपवाददृष्टिसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मही है ॥ ३७ ॥ जैसे मृत्तिकाका पात्र मृत्तिकासे शून्य नहीं मिलता, ऐसेही चिन्मय विषय चित्से शून्य नहीं है ॥ ३८ ॥ पर्वतरूपमात्र पर्वतसे शून्य जैसे नहीं रहता ऐसेही चिन्मय विषय चित्से शून्य नहीं है ॥ ३९ ॥ जैसे द्रवरूप जल द्रवसे भिन्न नहीं मिलता ऐसेही चिन्मय पदार्थ चित्से शून्य नहीं है ॥ ४० ॥

ऊष्मरूपोयथावह्निर्निरूष्मानोपलभ्यते ॥ चिन्मयंतुतथाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ४१ ॥ यथा स्पंदमयोवायुरस्पंदोनोपलभ्यते ॥ चिन्मयंतुतथाचेत्यंचिच्छून्यंनोपलभ्यते ॥ ४२ ॥ यद्यन्मयंतद्धि नाद्युतत्कथंकिललभ्यते ॥ काशून्यंलभ्यतेव्योमकावनालभ्यतेमही ॥ ४३ ॥ चिद्व्योममयमेवेदंयथा

घटपटादिकम् ॥ स्वप्नेतथेदंशैलादिचिद्व्योमाभासमात्रकम् ॥ ४४ ॥ स्वप्नेयथागगनमेवपुराचलादिसं विन्मयंसुभगजाग्रतितद्वदेव ॥ स्वप्नोथजाग्रदितिशांतमनंतमेकंचिन्मात्रमत्रननुनामविनास्तुवादः॥४५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जाग्रत्स्वप्नैक्यप्रतिपादनं नाम पंचोत्तरशततमःसर्गः ॥ १०५ ॥

अर्थ—जैसे उष्णतासहित अग्नि उष्णताशून्य नहीं है ऐसेही चिन्मय विषय चित्से शून्य नहीं है ॥ ४१ ॥ जैसे स्पन्दमय पवन स्पन्दसे रहित नहीं मिलताहै ऐसेही चिन्मयपदार्थ चित्से शून्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ जो पदार्थ चिन्मय है वह उसके विना कैसे उपलब्ध होसकताहै, जैसे आकाश शून्यके विना और पृथिवी मूर्तिके विना कहां है ॥ ४३ ॥ जैसे स्वप्नमें घटपट आदि चिदाकाशमय हैं ऐसेही ये जाग्रत्के पर्वत आकाश आदिभी आभासमात्र चिद्रूपही हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रिय रामजी ! स्वप्नमें जैसे नगर पर्वत आदि चिदाकाशमय हैं ऐसेही जाग्रत्मेंभी हैं, इसलिये स्वप्न तथा जाग्रत्से रहित शेष ब्रह्मही है. इस विषयमें वादियोंका विवाद व्यर्थही है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जाग्रत्स्वप्नैक्यप्रतिपादनं नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

लक्षणोंके समूहोंसे चिदाकाशका प्रदर्शन और वही चिदाकाश जगत् है इस बातका पुनः वर्णन इस १०६ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ कीदृशंस्याच्चिदाकाशंतद्ब्रह्मन्ब्रह्मयत्परम् ॥ भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेऽमृतम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ समयोर्यमयोर्भ्रात्रोर्व्यवहारायनामनी ॥ यद्वत्क्रियेतेद्वैतद्वज्जाग्रत्स्वप्नशिलामये ॥ २ ॥ वस्तुतस्त्वनयोर्भेदोनद्वयोःपयसोरिव ॥ द्वयमप्येकमेवैतच्चिन्मात्रंव्योमनिर्मलम् ॥३॥ देशाद्देशांतरंदूरंप्राप्तायाःसंविदोवपुः ॥ निमिषेणैवतन्मध्येचिदाकाशंतदुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन्! वह चिदाकाश कैसा है यह पुनः कहिये क्योंकि आपके वचनरूपी अमृत श्रवणसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! जैसे एकसाथ उत्पन्न होनेवाले समान भ्राताओंके व्यवहारके लिये दो नाम किये जाते हैं ऐसेही जाग्रत् तथा स्वप्नरूप अखंड चित्के स्फटिकशिलाके प्रतिबिंब-सदृश दो नाम किये गये हैं ॥ २ ॥ यथार्थमें दो जल वा दुग्धके समान इन दोनोंका भेद किंचित्भी नहीं हैं. ये दोनों निर्मल चिन्मात्र आकाशही हैं ॥ ३ ॥ निमेषमेंही एकदेशसे दूसरे देशमें प्राप्त संविद् है उन दोनों देशोंके मध्यमें निर्विषय जो आत्मसंवित्का रूप है वही चिदाकाश है ॥ ४ ॥

यादृशस्तिष्ठतःस्वच्छंरसमाकर्षतस्तरोः ॥ भवेद्भावोनभःस्वच्छस्तादृशंचिन्नभःस्मृतम् ॥ ५ ॥ विनिवृत्ताखिलेच्छस्यपुंसःसंशांतचेतसः ॥ यादृशःस्यात्समोभावस्तादृशंचिन्नभःस्मृतम् ॥ ६ ॥ अनागतायांनिद्रायांमनोविषयसंक्षये ॥ पुंसःस्वस्थस्ययोभावःसचिदाकाशउच्यते ॥ ७ ॥ तृणगुल्मलतादीनांवृद्धिमागच्छतामृतौ ॥ यःस्यादुन्ममतोभावःसचिदाकाशउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—पृथिवीके रसको मूलदेशसे आकर्षण करके पान करते हुये वृक्षका आनन्दमय वृद्धिन्हासशून्य जो स्व-रूप स्थित रहताहै वही स्वच्छ चिदाकाशका रूप है ॥ ५ ॥ संपूर्ण इच्छाओंसे शून्य और शान्तचित्त मनुष्यका जो स्वाभाविक सुखस्वरूपका अनुभव होताहै वैसाही चिदाकाशका रूप है ॥ ६ ॥ निद्राके आरंभमें मनके सब विषयोंका नाश होनेपर स्वस्थपुरुषका जो आनन्दका अनुभव होताहै वही चिदाकाश है ॥ ७ ॥ वर्षा वा शरद्ऋतुमें वृद्धिको प्राप्त तृण गुल्म लता आदिका जो ममतारहित आनन्दभाव है वही चिदाकाश है ॥ ८ ॥

रूपालोकमनस्कारविमुक्तस्यामृतस्ययः ॥ भावःपुंसःशरद्व्योमविशदस्तच्चिदंबरम् ॥ ९ ॥ यदेतदासनंसृष्टंकाष्ठपाषाणभूभृताम् ॥ चेतनानांचसत्तात्माचिदाकाशःसउच्यते ॥ १० ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानांत्रयाणामुदयोयतः ॥ यत्रवास्तमयश्चित्खंतद्विद्धिविगतामयम् ॥ ११ ॥ यतउद्यंतियस्मिंश्चचित्राःपरिणमंत्यलम् ॥ पदार्थानुभवाःसर्वेचिदाकाशःसउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तररूपादि विषयोंसे मुक्तजीवित पुरुषका जो शरत्कालके आकाशके समान आनन्द-स्वरूप है वही चिदाकाश है ॥ ९ ॥ और ब्रह्माजीने जो काष्ठ पाषाण आदिकी चेष्टारहित स्थिति रची है ऐसेही सत्ता-

रूप स्थिति यदि जीवोंकी मनोनाशसे होजाय तो वही चिदाकाश है ॥ १० ॥ हे रामजी! जिस सुषुप्तिके साक्षीसे द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यरूप त्रिपुटीका उदय होताहै और जहां इस त्रिपुटी अस्त होती है उसीको तुम निर्विकार चिदाकाश जानो ॥ ११ ॥ तथा जिस साक्षीरूप चित्रविचित्र पदार्थोंके अनुभव उत्पन्न होते हैं, और जिसमें संकल्प, विकल्प, विचार, निश्चय तथा त्याग उपादान आदिरूपसे परिणत होते हैं ॥ १२ ॥

यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयःसर्वंसर्वतश्चयः ॥ यश्चसर्वमयोनित्यंसचिदाकाशउच्यते ॥ १३ ॥ दिविभूमौ बहिश्चांतस्तथान्यस्यसमाभिधः ॥ योविभात्यवभासात्माचिदाकाशःसउच्यते ॥ १४ ॥ यस्मिन्नित्ये ततेतंतौदृढेस्रगिवतिष्ठति ॥ सदसद्वस्थितंविश्वंविश्वांगेतच्चिदंबरम् ॥ १५ ॥ यस्मात्सर्वाःप्रसूयंते सर्गप्रलयविक्रियाः ॥ यस्मिंश्चैवप्रलीयंतेयन्मयास्तच्चिदंबरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसमें सब है, जिससे सब है, जो सबओर है और जो सर्वरूप है वह नित्य चिदाकाशरूप है ॥ १३ ॥ स्वर्गमें पृथिवीपर बाहर तथा भीतर, निज तथा अन्य नामरूपसे जो प्रकाशरूप प्रकाशित होरहाहै वही चिदाकाश है ॥ १४ ॥ दृढसूत्रमें मालाके सदृश जिस विश्वांगमें आविर्भूत होकर सदसत् तथा साकार निराकार यह संसार स्थित है वही चिदाकाश है ॥ १५ ॥ जिससे सृष्टि तथा प्रलय आदि विकार उत्पन्न होतेहैं, जिसमें लीन होते हैं और यन्मय हैं वही चिदाकाश है ॥ १६ ॥

निद्रायांविनिवृत्तायांयतोविश्वंप्रवर्त्तते ॥ निवर्त्ततेचयच्छांतौतच्चिदंबरमुच्यते ॥ १७ ॥ यस्योन्मेषनिमेषाभ्यांजगत्सत्तालयोदयौ ॥ स्वानुभूत्यात्मकंस्वांतःस्थितंतद्विद्धिचिन्नभः ॥ १८ ॥ नेदंनेदंतदित्येवंसर्वंनिर्णीयसर्वथा ॥ यन्नकिंचित्सदासर्वंतच्चिद्व्योमेतिकथ्यते ॥ १९ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ दूरतोर्धनिमेषेणतच्चिन्मात्रवपुःस्मृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुषुप्ति तथा प्रलयरूप निद्राके निवृत्त होनेपर जिस साक्षीरूपसे विक्षेपशक्तिकेद्वारा जाग्रत्स्वप्नरूपसंसार उत्पन्न होताहै तथा विक्षेपशक्तिकी शान्ति होनेसे निवृत्त होजाताहै वही चिदाकाश है ॥१७॥ जिसके उन्मेष तथा निमेषसे जगत्की सत्ताका लय और उदय होताहै और जो स्वानुभवरूप अपने अन्तःकरणमें (निजस्वरूपमें) स्थित है उसीको तुम चिदाकाशरूप जानो ॥ १८ ॥ जो नेति नेति अर्थात् यहभी नहीं २ इसप्रकार सब निषेधोंकी अवधि है, वही यह है, तथा सब निर्णयकरके जो सदासर्वदा सर्वरूप है और जो कुछ नहीं है वही चिदाकाश कहाताहै ॥ १९ ॥ अर्द्धनिमेषमें एकदेशसे दूसरे अतिदूरदेशमें संवित्के प्राप्तिसमयमें दोनोंदेशोंके मध्यदेशमें जो संवित्का रूप है वही चिन्मात्र चिदाकाश शरीर है ॥ २० ॥

विश्वंतन्मयमेवेदंयथाभूतंयथास्थितम् ॥ रूपालोकमनस्कारैर्युक्तमप्येवमीदृशम् ॥ २१ ॥ ईषदुन्मेषणादेतदन्यतामिवगच्छति ॥ अनन्यरूपमपिसच्चिद्व्योमविमलाकृति ॥ २२ ॥ पश्यन्नेवेंद्रियैरर्थान्नूनंनिर्वासनाशयः ॥ प्रबुद्धएवैकघनःसुषुप्तावस्थितोभव ॥२३॥ निर्वासनःशांतमनावदव्रजपिबाहर ॥ पाषाणइवसंजीवोनित्यंसुघनमौनवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तरविषयोंसे युक्त यथास्थित सब संसार चिदाकाशमय है ॥२१॥ यह संसार निर्मल सच्चिदाकार होनेपरभी किंचित् उसके उन्मेषमात्रसे अन्यकेसमान होजाताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इन्द्रियोंसे पदार्थोंका अनुभव करतेहुयेभी तुम वासनाशून्य तथा निरतिशय आनन्दरूप सच्चित् आत्माके ज्ञानसे युक्तहोके सुषुप्तिके समान स्थित होजाओ ॥ २३ ॥ वासनारहित, शान्तचित्त, चैतन्य रहते पाषाणवत् मौन धारणकर आत्मानन्दमें निमग्नहोके संभाषण करो, भ्रमण करो, खाओ, पिवो तथा अन्यव्यवहारोंकोंभी करो ॥ २४ ॥

इदंनसंभवत्येवदृश्यंपश्यसियत्पुरः ॥ मृगतृष्णाजलमिवद्वैतमिंदाविवोदितम् ॥ २५ ॥ इदमादावनुत्पन्नंकारणाभावतःकिल ॥ कारणेनविनाकार्यंनहिनामोपपद्यते ॥ २६ ॥ यद्वोपपद्यतेकिंचित्तदकारणकोद्भवम् ॥ यथास्थितंपररूपमुद्भूतमिवलक्ष्यते ॥ २७ ॥ तद्यथास्थितमेवांगपूर्वरूपमवस्थितम् ॥ भवत्यद्वयमेवाच्छंद्वयेनाप्युपलक्षितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस दृश्यको तुम अपने संमुख देखते हो यह ऐसा नहीं है किन्तु मृगतृष्णाके जल वा चन्द्रमामें द्वैतकेसमान यह चिदाकाशसे भिन्न भासताहै ॥ २५ ॥ क्योंकि यह जगत् सृष्टिकी आदिमें कारणके अभावसे उत्पन्नही नहींहुआ और बिनाकारण कार्य्य कहीं हो नहीं सकता ॥ २६ ॥ और बीजसे अंकुर आदि जो कुछ उत्पन्न तुम देखतेहो वह कारणशून्य ब्रह्महीसे है और वह ब्रह्म अपने स्वरूपसे ज्योंका त्यों स्थित है, उसमें यह अन्यकेसदृश उत्पन्न

भान होताहै ॥ २७ ॥ जो (ब्रह्म) जैसा अपने पूर्व स्वच्छ अद्वैतरूपसे स्थितभी भ्रमसे द्वैतकेसदृश ऐसे लक्षित होताहै जैसे एक चन्द्रमा भ्रांतिसे दो चन्द्र दीखतेहैं ॥ २८ ॥

तत्रेदंप्रत्ययःप्रौढोभवत्यनुभवोहियः ॥ समायातमिदंभ्रांततत्स्वप्नस्त्रीसमंविदुः ॥ २९ ॥ तस्माद्दृश्यंन चोत्पन्नंनैवास्तिनभविष्यति ॥ नचनश्यतियन्नास्तितस्यकिंनामनश्यति ॥ ३० ॥ तत्तदेवपरंशांतंचि द्व्योमैवतथास्थितम् ॥ स्वरूपादच्युतंस्वस्थंसौम्यंजगदिवोदितम् ॥ ३१ ॥ नहीदमग्रेयद्दृष्टंदृश्यंतत्स त्कदाचन ॥ नचापिद्रष्टादृष्टार्थाभावेकद्रष्टृताकिल ॥ ३२ ॥

अर्थ—उस अद्वैतब्रह्ममें जो दृढ जगत्का अनुभव होताहै वह अनादिकालके अज्ञानसे स्वप्नकी स्त्रीकेसमान है ॥ २९ ॥ इसलिये यह दृश्य न उत्पन्न हुआ, न है, न होगा और न नष्ट होताहै क्योंकि जो है ही नहीं है उसका क्या नाश होगा ॥ ३० ॥ इस हेतुसे वही शान्त परब्रह्म चिदाकाश अपने स्वरूपसे अच्युत स्वस्थ तथा सौम्य ज्यौंका त्यों स्थितभी जगत्रूपसे आविर्भूत है ॥ ३१ ॥ जो प्रथम दृष्ट नहीं हुआ वह दृश्य कैसे सत् होसकताहै और दृश्यके अभावसे द्रष्टाभी नहीं है क्योंकि दृश्यपदार्थोंके अभावसे द्रष्टा किसका हो. ॥ ३२ ॥

श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तद्वदब्रह्मन्द्रष्टृदृश्यावभासनम् ॥ किमिदंकथमाभातिभूयोपिवदतांवर ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असद्रूपस्यदृश्यस्यकारणाभावतःसदा ॥ दृश्यतास्येत्यपिप्रौढिनिर्देशस्यात्यसंभ वात् ॥ ३४ ॥ यदिदंभासतेकिंचिद्द्रष्टृदृश्यभ्रमात्मकम् ॥ जगदादिपरंरूपंतद्विद्धिपरमात्मनः ॥ ३५ ॥ स्वप्नेचिन्मात्रएवास्तेयथागगनकाननम् ॥ तथाजगत्तयाभातिस्वयंचिन्मात्रमात्मनि ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे ब्रह्मन् ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! यदि ऐसा है तो द्रष्टा तथा दृश्यका भान यह कैसे होताहै और यह क्या भान होताहै ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! कारणके अभावसे इस असत्रूप जग-त्की जो दृश्यता है वह परमात्माकी मायासे केवल प्रौढिवादमात्र है ॥ ३४ ॥ जो कुछ यह भ्रममय जगत् आदि पदार्थ द्रष्टा तथा दृश्य आदिरूपसे भासते हैं उसको तुम परमात्माका रूपही जानो ॥ ३५ ॥ जैसे स्वप्नमें आकाश वन आदि पदार्थ चिन्मात्र हैं ऐसेही जाग्रत्मेंभी चिन्मात्र आत्मा अपने आत्माहीमें जगत्रूपसे भासताहै ॥ ३६ ॥

इहादिसर्गात्प्रभृतिनास्त्युपादानकारणम् ॥ किंचनापिक्वचिदपिभातीत्थंब्रह्मकेवलम् ॥ ३७ ॥ यच्चि दाकाशकचनंस्वयमात्मनिजृंभते ॥ तदिदंभातितस्यैवजगदित्युदितंवपुः ॥ ३८ ॥ यथाभावस्यभाव त्वंयथाशून्यस्यशून्यता ॥ आकारिणोयथाकारस्तथाचिन्नभसोजगत् ॥ ३९ ॥ इदंविद्धिचिदाभासं परमार्थघनंघनम् ॥ इत्थंस्थितंस्वयंभातंद्रष्टृदृश्यदृगात्मकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—इस संसारमें सृष्टिसे लेके किसीका कुछभी कहीं उपादान कारण नहीं है इसलिये जो कुछ भासताहै वह केवल ब्रह्मही है ॥ ३७ ॥ जो चिदाकाशका स्फुरण स्वयं अपने आत्मामें परिणत होताहै वही (विवर्त) जगत्का शरीर है ॥ ३८ ॥ जैसे भावका भावत्व, शून्यका शून्यत्व और मूर्तद्रव्यका आकार है वैसेही चिदाकाशसे यह जगत् है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! समुद्रमें सैन्धवके तुल्य इस जगत्को तुम परमार्थ चिदाकाशही जानो और मायासे द्रष्टा दृश्य तथा दर्शनरूप त्रिपुटीस्वरूपसे स्वयं चेतन भासरहाहै ॥ ४० ॥

वस्तुतस्तुद्वयाभावान्नाभासिनचभासनम् ॥ किमपीदमनिर्देश्यंसद्वासद्वेतिवेत्तिकः ॥ ४१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ एवंचेत्तद्वदब्रह्मन्कार्यकारणतादिकः ॥ कथंभेदःकिमायातःकथंसत्यत्वमागतः ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्प्रकाशोयथाभानंयदाभावयतिस्वयम् ॥ स्वात्मातथातदेवाशुपश्यसीत्यसि दृष्टवान्॥४३॥ चिद्व्योमैवायमाकारःस्वेव्योम्न्येवनमुह्यति ॥ स्वयमेवयथास्वप्नेकोस्यपर्यनुयोगकृत्॥४४॥

अर्थ—और मायाके त्यागमें तो द्वैतके अभावसे भास्य भासक कोई नहीं है, तथा सत् वा असत् है इसको कौन जाने, यह तो अनिर्वचनीय है ॥ ४१ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! यदि द्रष्टा दृश्यसे यह शून्य है तो कार्य्य कारणता आदि भेद कैसे भासताहै ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! चित्प्रकाश जैसे जब सत्यसंकल्पसे प्रेरणा करताहै तब तुम वैसाही शीघ्र देखते हो और तुमारे रूपसे वही तुम हो यह पूर्वोक्तरीतिसे द्रष्टादृश्यभावका तुम अनुभव करचुके हो ॥ ४३ ॥ और यह कार्य्यकारणभावभी चिदाकाशही धारण करताहै और स्वप्नमें जब यह ज्ञात होजाताहै कि यह चिदाकाशमेंही सब कुछ होरहाहै तब मोह नहीं प्राप्त होता अन्यथा होताहै. यदि यह कहो कि समर्थ ईश्वर जीव होकर क्यों मोहको प्राप्त है तो इसको आक्षेपक करनेकी शक्ति किसमें है, यह संसार चित्की लीला है ॥४४॥

भावाद्भावांतरप्राप्तौमध्येयत्संविदोवपुः ॥ तच्चिद्व्योमतदेवेदंसर्वंचस्थितिनेतरत् ॥ ४५ ॥ कार्यकार णभावादिदृशोविद्याविजृंभिकाः ॥ जगद्वत्कल्पयत्येषकोस्यपर्यनुयोगकृत् ॥ ४६ ॥ द्रष्टाभोक्ताथक

र्त्तावाकाश्चित्स्यादितरोयदि ॥ तत्कथंकिमिदंदृश्यमितियुज्येतनान्यथा ॥ ४७ ॥ यत्रस्वप्नेनिराभासं चिद्व्योमैवविराजते ॥ शुद्धमेकमनेकान्तंतत्रकिंकविकल्प्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—दुग्धसे दधिभावमें तथा पिंडादिसे घटभावकी प्राप्तिमें पूर्वभावकी निवृत्ति तथा उत्तरभावकी उत्पत्तिके मध्यमें जो क्षणभर सन्मात्र प्रसिद्धरूप है वही चिदाकाशका रूप है और वही सब स्थितिकी विवेचना करताहै न कि अन्य ॥ ४५ ॥ और कार्य्यकारणकी सबदृष्टि अविद्या (माया) कल्पित हैं और जैसे चित्‌रूप समर्थ ईश्वरसे जीवभावकी कल्पना करताहै ऐसेही सुषुप्ति आदि तीनों अवस्था तथा कार्य्यकारणभावकीभी कल्पना करताहै. निजकल्पनामें इसको आक्षेप कौन करसकताहै ॥ ४६ ॥ द्रष्टा, भोक्ता, कर्ता, अथवा कल्पयिता इस चेतनसे अन्य होता तो यह दृश्य द्रष्टा आदिकी कल्पना कैसे है ऐसा आक्षेप हो सकता ॥ ४७ ॥ जब स्वप्नके बिना किसी पदार्थ तथा प्रकाशके चिदाकाशही स्वयं शुद्ध एकरूप होकेभी अनेक पदार्थ उनके प्रकाशरूपसे विराजतेहैं तब इस जाग्रत्‌के विषयमें क्यों कुतर्क करते हो ॥ ४८ ॥

आस्वयंभुवएवेयंचिन्मात्रेभातिसर्गभाः ॥ परिज्ञातासतीसाद्यब्रह्मैवभवतिक्षणात् ॥ ४९ ॥ एषैवत्वप रिज्ञाताभ्रांतिर्मायेतिकथ्यते ॥ जगदित्युच्यतेविद्याद्दृश्यमित्युपवर्ण्यते ॥ ५० ॥ चिदाकाशप्रकाशेन चित्ताद्दृश्यपिशाचकः ॥ वेतालोबालकेनेवबुद्धोसन्नेवसन्निव ॥ ५१ ॥ जगत्तात्मन्यसत्यापिचिद्व्यो म्नैवानुभूयते ॥ सत्वेवसांगलेखेवस्वप्नेद्रिपुरतायथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे लेके सबको यह सृष्टिकी भ्रान्ति भासती है और जब यह भ्रान्ति ज्ञात होजाती है तब क्षणमेंही ब्रह्मस्वरूप होजाती है ॥ ४९ ॥ यही सृष्टिकी भ्रान्ति अपरिज्ञात होनेसे शास्त्रोंमें माया कही गई है, लोकमें इसीको जगत् कहते हैं, अज्ञानी अविद्या और विवेकी इसीको दृश्य कहतेहैं ॥ ५० ॥ निजचित्प्रकाशके प्रकाश (ज्ञान) से यह सब भ्रान्ति दूर होजाती है, अपना चित्स्वभाव पृथक् अविद्यमानभी विद्यमानके सदृश होनेसे यह दृश्यपिशाच ऐसे जानाजाताहै जैसे बालक वेतालको ॥ ५१ ॥ निराकार आत्मामें यह जगत्‌रूपता असत्यभी है तथापि सत्य और सावयवके सदृश चिदाकाशही ऐसे अनुभव करताहै जैसे स्वप्नमें पर्वत, नगर आदि ॥ ५२ ॥

अहमद्रिरहंरुद्रःसमुद्रोहमहंविराट् ॥ चेत्यतेखेचितैवेतिस्वप्नेद्रिपुरतायथा ॥ ५३ ॥ आकारिकारणा भावाज्जातंकार्यंनकिंचन ॥ महाप्रलयचिव्द्योम्निचित्स्थितेत्थमिदंतया ॥ ५४ ॥ अकारणकमेवेदंव्यो मव्योम्नानुभूयते ॥ जगदित्येवशून्यांगंचिन्मात्रात्मचिदात्मनि ॥ ५५ ॥ सर्वएवजडाजीर्णादर्पणाइव जंतवः ॥ समीपगतएवांतःकुर्वतस्तुविचारणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—मेरु आदि पर्वत मैं हुं, रुद्र मैं हुं, समुद्र मैं हुं और विराट्‌रूपभी मैं हुं इत्यादि चेतनही चिदाकाशमें ऐसे अनुभव करताहै जैसे स्वप्नमें पर्वत नगर आदि ॥ ५३ ॥ महाप्रलयरूप चिदाकाशमें साकार कारणके अभावसे यह जगत् आदि कार्य्य कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ, किन्तु चिदाकाशही इस जगत्‌रूपसे स्थित है ॥ ५४ ॥ कारण तथा अवयवरहित इस जगत्‌को चिन्मात्र आत्मा स्वयं अपने स्वरूपमें अनुभव कररहाहै ॥ ५५ ॥ सब जीव दर्पणके सदृश अपने आभ्यन्तर कल्पित भेद होकेभी विचारके असमर्थ होनेसे जड होके वृथा जीर्ण होरहेहैं और विचार करनेवाले धीर पुरुषको परमपुरुषार्थ समीपमें प्राप्तही है ॥ ५६ ॥

तत्तत्स्वरूपमुत्सृज्यबुद्ध्वाचिन्मात्रखंजगत् ॥ अश्मनाचेतनेनैवस्थेयंनास्थेतरोत्तमा ॥ ५७ ॥ यथास्ते चलयद्देहंवार्यावर्त्तजगद्द्रवः ॥ चेततीतितथाचित्त्वंस्थिताचित्तज्जगद्दृशा ॥ ५८ ॥ यथाकल्पद्रुमोभीष्टं कुर्याचिंतामणिर्यथा ॥ तथायद्भावितंस्वांतस्तत्पूरयतिचित्क्षणात् ॥ ५९ ॥ चितिश्चिंतामणिरिवकल्प द्रुमइवेप्सितम् ॥ आशुसंपादयत्यंतरात्मनात्मनिखात्मिका ॥ ६० ॥

अर्थ—विचारसे संपूर्ण जगत्‌के जितने पदार्थ हैं उन २ के नाम रूपको त्यागकर केवल सच्चिन्मात्र यह जगत् है ऐसा जानकर पाषाणवत् अचल स्थित रहनाचाहिये और इससे भिन्न मायिक देहादिमें आस्था उत्तम नहीं है ॥ ५७ ॥ जैसे जल अपने देहका संचालन करतेहुये आवर्ततरंगादिरूपसे जगत्‌में द्रवीभूत होकर स्थित है ऐसेही चित् अपनेमें व्यापारकी कल्पना करके जगत्‌रूपसे स्थित है ॥ ५८ ॥ जैसे कल्पवृक्ष वा चिन्तामणि अभीष्टपदार्थको चिन्तामात्रसे देताहै ऐसेही चेतनभी जो कुछ संकल्प करताहै वह क्षणमेंही पूर्ण कर देताहै ॥ ५९ ॥ चिन्तामणि वा कल्पवृक्षके सदृश चेतन शीघ्रही अपने अभिलषितको निजआत्मामें संपादन करलेती है ॥ ६० ॥

देशाद्देशांतरप्राप्तौमध्यदेशेचितेर्वपुः ॥ यत्तन्मयमिदंदृश्यंकुतोद्वैतैक्यविभ्रमः ॥ ६१ ॥ चिच्छयैवंक चत्यच्छमनंताभास्वरोदरा ॥ अंगरिक्तापिदृश्यांतःशून्यतानीलतेवखे ॥ ६२ ॥ विसदृशकार्याेनुभवो नभवतिसहकारिकारणाभावात् ॥ सर्गादावतआद्याचिदेवदृश्यंयथास्वप्ने ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे कार्यकारणनिरासो नाम षडुत्तरशततमःसर्गः ॥ १०६ ॥

अर्थ—एकदेशसे दूसरे दूर देशकी प्राप्तिमें दोनों देशोंके मध्यमें जो चित्का रूप है तन्मय यह जगत् है इसमें द्वैत तथा ऐक्यका भ्रम कहां ? ॥ ६१ ॥ अवयवोंसे शून्य, आभ्यन्तरमें दृश्यरहित, अनन्त और प्रकाशसे पूर्ण चित्की स्वच्छ कान्तिही जगत्रूपसे ऐसे स्फुरित होरही है जैसे आकाशमें नीलता ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! सृष्टिकी आदिमें चित्से सर्वथा भिन्न जड जगत्रूप कार्य्य सहकारीकारणके अभावसे उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये स्वप्नके तुल्य यह जाग्रत् दृश्यभी चिद्रूपही है ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे कार्य्यकारणनिरासो नाम षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

पृथिवीआदिकी अवस्तुता और चिद्रूपमणिका स्फुरणही यह जगत् है यह विषय इस १०७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अचेत्यचिन्मयंविश्वंविष्वगाभातिचिन्नभः ॥ अत्रचिच्चेतनंचेदंचेत्यमप्येवमात्म कम् ॥ १ ॥ अतोजीवन्नपिमृतइवसर्वोवतिष्ठते ॥ असावहंचत्वंचेतिजीवंतोपिमृताइव ॥ २ ॥ काष्ठ मौनमृताएवव्यवहारगताअपि ॥ खगमाएववासर्वेभावाःस्थावरजंगमाः ॥ ३ ॥ आकाशकाचकच्या त्मयदिदंकिंचिदाततम् ॥ नकिंचिदेवतद्विद्धिकिंचिद्व्योम्निकुतोभवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! विषयशून्य चिन्मय चिदाकाशही चारो ओरसे संसारके रूपसे भासताहै और चित् (प्रकाशक) चेतन (प्रकाशन) और चेत्य (विषय) यह त्रिपुटीभी शुद्ध चिदात्मरूपही है ॥ १ ॥ इसलिये जीतेहुयेभी सब मृतककेसमान स्थित हैं. यह सब सभ्यआदि तथा तुम हम सब जीतेभी मृतक हैं, अर्थात् स्थितही जगत्के जगत्भाव तथा जीतेही हमारा जीवभाव निवृत्तहोनेसे शेष आत्मा रहजाताहै ॥ २ ॥ स्थावरजंगमरूप सब पदार्थ व्यवहारमें नियुक्तभी मृतक काष्ठवत् मौनहैं, अथवा सब चिदाकाशमय हैं ॥ ३ ॥ यह जो कुछ व्याप्त जगत्जीवादि हैं सब चिदाकाशरूपी काचका स्फुरण है, इस सबको तुम मिथ्याही जानो, क्योंकि आकाशमें कुछ कैसे होसकताहै ॥४॥

केशोंड्रकनदीवाहधूमालीमौक्तिकादिवत् ॥ यत्खंकचतितत्रास्तिनानुभूतेपिवस्तुता ॥ ५ ॥ तथैवास्मि न्जगन्नाम्निचिद्व्योम्निकचनेचिते ॥ अनुभूतेपिनिःशून्येकास्थास्थाभावकश्वकः ॥ ६ ॥ चिद्बालकल्प नाजालेशून्यात्मनिनिरर्थके ॥ अवस्तुभूतेपृथ्व्यादौभ्रांतिमात्रांबरोदये ॥ ७ ॥ किमास्थाबालकाब्रूतम मेदमहमित्यलम् ॥ आज्ञातंरमतेबालसंकल्पेबालएवच ॥ ८ ॥

अर्थ—आकाशमें नीलता, नदी, रथ, धूमपंक्ति, तथा भीतियोंके समूहके तुल्य जो कुछ स्फुरित होरहाहै उनके अनुभूत होनेपर उनमें वस्तुता नहींहै ॥ ५ ॥ आकाशमें नीलतादिकेसमान चिदाकाशके स्फुरणरूप इस जगत्के अनुभूत होनेपरभी सर्वथा शून्यमय इसमें क्या भोगकी आस्थाहै और आस्थाका उत्पादकभी कौन पदार्थ है ॥ ६ ॥ चिद्रूप बालकके कल्पनाजालशून्य निरर्थक मिथ्याभूत और भ्रान्तिमय पृथिवीआदि पदार्थमें ॥ ७ ॥ हे बालक ! कहो क्या आस्था होसकतीहै और यह मेरा यह हम तथा यह तुम इत्यादि बालकके संकल्पमें बालकही जबतक नहीं जानता तबतक रमण करसकताहै ॥ ८ ॥

पृथ्व्याद्यसद्विचारैर्वाव्यर्थंयास्यतिजीवितम् ॥ किंचिच्चनज्ञास्यतिभोराकाशक्षालनोद्यतः ॥ ९ ॥ सह कार्यादिपूर्वाणांकारणानामभावतः ॥ यदादावेवनोत्पन्नंतन्नामाद्यभवेत्कुतः ॥ १० ॥ अजातेनासता थैनखेनव्यवहरंतिये ॥ मूढामृतमजातंवातनयंपालयंतिते ॥ ११ ॥ कुतःपृथ्व्यादयःकेनकेनामकथमु त्थिताः ॥ चिद्व्योमेत्थमिदंशांतंप्रकचत्यात्मनात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ--हे रामजी! यह जीव पृथिवीआदि असत्पदार्थोंके विचारोंसे कुछ नहीं जानेगा और व्यर्थजन्म ऐसे व्यर्थ जायगा जैसे सुवर्णके अभिलाषीका आकाशके प्रक्षालनसे ॥ ९ ॥ सहकारीकारणआदिके अभावसे जो आदिमेंही नहीं उत्पन्न हुआ वह अब कैसे होगा ॥ १० ॥ अनुत्पन्न असत् आकाशवत् शून्यपदार्थोंकेसाथ जो सत् जानके व्यवहार करतेहैं वे मूढ मानो मृत वा अजातपुत्रका पालन करतेहैं ॥ ११ ॥ पृथिवीआदि पदार्थ कहांसे किसकेद्वारा और कैसे उत्पन्न हुये? यह शान्त चिदाकाशही इनके रूपसे अपने आत्मामें आप स्फुरित होरहाहै ॥ १२ ॥

कार्यकारणकालादिकल्पनाकुलचेतसाम् ॥ एवंपृथ्व्यादयःसंतितैर्बालैरलमस्तुनः ॥ १३ ॥ अपृथ्व्यादिजगन्नामसपृथ्व्यादिचखात्मकम् ॥ कचतीत्थंनभोरूपंस्वप्नादिष्विवचिन्मणिः ॥१४॥ अंगंयदेतस्य चिदंबरस्यनिराकृतिस्वानुभवानुमानम् ॥ तदेतदाभातिमहीतलादिरूपेणवेद्येतिकृताभिधानम् ॥१५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्याभावप्रतिपादनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अर्थ—कार्य्यकारण तथा काल आदिकी कल्पनासे व्याकुलचित्तवालोंकी दृष्टिसे पृथिवी आदि इसीप्रकार सत्य हैं उन मूढ बालकोंसे हमे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १३ ॥ पृथिवी आदिसे भिन्न तथा पृथिवी आदिसहित संपूर्ण जगत् चिदाकाशरूपही है, और जो कुछ यह स्फुरित होरहाहै यह स्वप्न आदिके तुल्य चिन्मणिहीका प्रकाश है ॥ १४ ॥ हे रामजी! इस चिदाकाशका जो निज अनुभवरूप निराकार शरीर है वही देव मनुष्यादि तथा पृथिवी आदि कल्पित विषयनामसे प्रसिद्ध भासताहै ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्याभावप्रतिपादनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

अविद्याका नाश न होनेसे जगत्का अन्त कहीं नहीं होता इस विषयमें अविद्याका विचित्र आख्यान इस १०८ के सर्गमें वर्णित है ॥ और उसमें बुद्धिमान्के चरितमें चारोओरसे शत्रुओंके उत्थानका वृत्तान्त श्रुत्यन्त इस सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ अविद्यादृश्यरूपेयंकचंतीयस्यविद्यते ॥ चिन्नभःस्वप्ननगरीदृश्यमानापिशून्यकम् ॥१॥ तस्यान्नस्यकियत्कालंकिंरूपास्यात्किमात्मिका ॥ कियतीसाचवेत्येवंमुनेमेकथ्यतांपुनः ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अविद्याविद्यतेयेषामज्ञानांभूतलादिका ॥ तेषामस्यांब्रह्मणीवनास्त्यंतोत्रकथांशृणु ॥३॥ सदृशंजगतोस्यास्तिकचिदंबरकोणके ॥ कस्मिंश्चित्रिजगत्किंचिदनयैवव्यवस्थया ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन्! यह चिदाकाशकी स्वप्ननगरी शून्यरूप होनेसेभी जिस पुरुषको अविद्याका नाश न होनेसे यह अविद्या दृश्यरूपसे स्फुरित होरही है उस पुरुषके लिये कितने दिन तथा कालतक तथा किस रूपसे रहती है यह मेरे ऊपर कृपा करके पुनः कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! यह पृथिवी आदि अविद्याजनित अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है उनको ब्रह्मके सदृश इसमेंभी अन्त नहीं मिलता. इस विषयमें तुम यह कथा सुनो ॥३॥ चिदाकाशके किसी कोनेमें पूर्वोक्त लोकालोकशिलाके सदृश किसी त्रसरेणुके मध्यमें इसीके समान भुवन द्वीपादि व्यवस्था (मर्य्यादा) सहित कोई त्रिलोक है ॥ ४ ॥

अस्तिकश्चिद्भुवोभागोभूषणंतत्रभूस्थितेः ॥ पुरीततमितिर्नाम्नासुव्यक्तकलनावनौ ॥ ५ ॥ तत्रासीत्पार्थिवःकश्चिद्विपश्चिदितिविश्रुतः ॥ यःसभायांसुसभ्यायांविपश्चित्त्वाद्विराजते ॥ ६ ॥ राजहंसइवाब्जिन्यामृक्षचक्रइवोडुराट् ॥ सुमेरुरिवशैलौघेयःसभायामराजत ॥ ७ ॥ निवर्त्ततेयतोशक्त्यावचनंगुणवर्णनात् ॥ कवीनामचलाकाराभवेद्वाभूधरोयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर जम्बुद्वीपरूप पृथिवीका भूषणरूप कोई पृथिवीका भाग है, उस भूमिमें नगर अश्वगजादिके संचारसे अति उत्तम " ततमिति " नाम एक प्रसिद्ध नगरी है ॥ ५ ॥ उस नगरीमें विपश्चित् इस नामसे एक राजा था, जो कि उत्तम सभासद्युक्त सभामें शास्त्रज्ञ होनेसे शोभित था ॥६॥ कमलोंसे शोभित तालमें राजहंसके समान, नक्षत्रसमूहोंमें चन्द्रमाके तुल्य, और पर्वतोंके समूहमें सुमेरुके सदृश वह राजा सभामें शोभायमान था ॥ ७ ॥ उस राजाके

अनंतगुणोंके वर्णनमें कवियोंकी वाणी अशक्त होकर निवृत्त होजाती थी तथा कविलोग उसका उत्तम यश शक्तिके अनुसार वर्णन करते थे क्योंकि उनकी संपत्ति उस राजासे अचल थी. वह राजा अपने आश्रितोंको सुमेरुके सदृश सुवर्णमय करदेता था ॥ ८ ॥

प्रातःप्रातर्विकसितात्सर्वाशाभासनोद्यतात् ॥ यतःप्रतापजनितश्रीरुदेत्यंबुजादिव ॥ ९ ॥ सब्रह्मण्य मतिर्मानीवह्निमेवाधिदैवतम् ॥ अपूजयत्समंभक्त्यादेवंवेत्तिस्मनेतरम् ॥ १० ॥ समत्स्यमकरव्यूहाग जवाजिगणान्विताः ॥ आवर्त्तचक्रव्यूहाढ्याःकल्लोलबलमालिताः ॥ ११ ॥ मर्यादापालनेयुक्ताअकंप नबलाधिकाः ॥ मंत्रिष्वप्यस्यचत्वारोदिक्षुसत्सागराइव ॥ १२ ॥

अर्थ—उस राजाके प्रतापसे प्रतिदिन लक्ष्मी ऐसे उदय होतीथी जैसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेमें उद्यत प्रातःकालमें विकसित कमलसे ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंका भक्त तथा मानी वह राजा देवताओंमें ब्राह्मणरूप अग्निहीकी पूजा बडी भक्तिसे करताथा, और अग्निके सिवाय और किसीको वह देवता नहीं जानताथा ॥ १० ॥ मत्स्य मकर आदि व्यूह रचनायुक्त, गजतुरंगादि समूहसंपन्न, आवर्त तथा चक्रादि सेनाओंकी रचनासे पूर्ण, तरंगोंके समान सेनाओंसे वेष्टित, मर्य्यादाके पालनमें तत्पर तथा धैर्य्य और बाहुबलसेभी अधिक शोभायुक्त तथा चारों दिशाओंको पालन करनेवाले चारि मंत्री ऐसे थे जैसे चारों समुद्र ॥ ११ ॥ १२ ॥

तैरशेषककुब्चक्रनाभिराभासितावनिः ॥ आसीत्सुदुर्जयोजेताससुदर्शनचक्रवत् ॥ १३ ॥ तमेकदाय यौपूर्वदिङ्मुखाच्चतुरश्चरः ॥ सउवाचरहोरंहोगतिघोराक्षरंवचः ॥ १४ ॥ देवदोर्द्रुमविश्रांतधरागोबं धनाच्युत ॥ श्रूयतांमन्मुखात्पश्चाद्यथाप्राप्तंविधीयताम् ॥ १५ ॥ पूर्वदिङ्मुखसामंतोज्वरेणास्तमुपा गतः ॥ मन्येजेतुंयमंयातस्त्वयारब्धोजितारिणा ॥ १६ ॥

अर्थ—इन मंत्रियोंसे सब दिशारूपी चक्रोंकी नाभिके समान, और पृथिवीको प्रकाशित करनेवाला वह राजा शत्रुओंसे अजेय और स्वयं सबकें ऊपर विजयी ऐसे था जैसे सुदर्शनचक्र ॥ १३ ॥ एकसमय उस राजाके निकट पूर्व-दिशासे एक चतुर दूत आया और कालके समान अनिवार्य्य कठोर वचन वह इसप्रकार बोला ॥ १४ ॥ कि हे निजभुजा-रूपी वृक्षोंमें पृथिवीरूपी गोबंधनयुक्त देव! मेरे मुखसे वचनको सुनके पुनः यथायोग्य कार्य्य कीजिये ॥ १५ ॥ हे म-हाराज! पूर्वदिशाका सामन्त ज्वरसे पीडित होके अस्त होगया. मेरी बुद्धिमें अपने शत्रुओंको जीतकर उसको यम-राजको जीतनेको भेजा है ॥ १६ ॥

तस्मिन्समंततोजेतुंदक्षिणापथनायकः ॥ पूर्वापराभ्यामाक्रम्यबलाभ्यामरिणाहतः ॥ १७ ॥ तस्मिन्मृ तेसमागम्ययावद्वारुणदिक्पतिः ॥ बलेनायातिककुभौतेसमादातुमादृतः ॥ १८ ॥ पूर्वदेशनृपैःसार्धं दक्षिणापथपार्थिवैः ॥ तावदेवारिभिरसावर्धमार्गेरणेहतः ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथास्मिन्क थयत्येवंत्वरार्त्तमपरश्चरः ॥ उपप्लवोजडोत्पीडइवहर्म्यंविवेशह ॥ २० ॥

अर्थ—उसके मरनेके पश्चात् जब दक्षिणदिशाका नायक पूर्व तथा दक्षिणदिशाको चारो ओरसे जीतनेमें प्रवृत्त हुआ तब पूर्व तथा दक्षिणदिशासे शत्रुओंकी सेनाने आक्रमण करके उसको मारडाला ॥ १७ ॥ उस दक्षिणदिशाके नाय-कके मरनेके पश्चात् पश्चिमदिशाका नायक जब सेना लेके पूर्व और दक्षिणदिशाओंको जीतनेमें आदरसे प्रवृत्त हुआ॥१८॥ इतनेहीमें दक्षिणदेशके राजाओंके साथ पूर्व देशके शत्रु राजाओंने आधेही मार्गमें संग्राममें उसको मारडाला ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! वह दूत इस बातको कहताही था कि इतनेमें दूसरा दूत शीघ्रतासे पीडित राजाकी अटारीपर ऐसे चढा जैसे प्रलयमें जलका प्रवाह ॥ २० ॥

चरउवाच ॥ उत्तराशाबलाध्यक्षोदेवारिभिरुपद्रुतः ॥ इतआयातिसबलोभग्नसेत्वंबुपूरवत् ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिश्रुत्वामहीपालःकालक्षेपमवास्तवम् ॥ मन्यमानउवाचेदंनिर्गच्छन्वरमंदि रात् ॥ २२ ॥ राज्ञःसन्नह्यसामंतानानीयंतांचमंत्रिणः ॥ उद्घाट्यंतांहेतिशालादीयंतांघोरहेतयः ॥ २३ ॥ श्लेष्यंतांकंकटादेहेष्वागच्छंतुपदातयः ॥ गण्यंतामाशुसैन्यानिक्रियंतांवरकल्पनाः ॥ २४ ॥

अर्थ—दूत बोला कि—हे देव ! उत्तरदिशाका सेनाध्यक्ष शत्रुओंसे पीडितहोके यहांपर सेनासहित ऐसे आताहै जैसे सेतु (पुल वा बंध) के टूटनेपर जलका प्रवाह ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! राजाने इतना सुनके कालक्षेपको धनधनधान्यादिका हानिकारक जानकर श्रेष्ठमंदिरसे निकलते हुये समीपस्थ मनुष्योंसे यह कहा ॥ २२ ॥ कि राजाओंको, सामन्तोंको, और मंत्रियोंको युद्धकेलिये सनद्धकरके यहां लाओ, शस्त्रास्त्रकी शालाओंको खोलो

और योधाओंको भयंकर अस्त्र देओ ॥ २३ ॥ सब योधा अपने देहोंमें कवच धारणकरैं, सब पैदलसेना प्रस्तुतहोके आवै, सब सेनाओंकी गणना शीघ्रकरो, और श्रेष्ठ वीरोंको पृथक् करो ॥ २४ ॥

कल्प्यंतांचबलाध्यक्षाःप्रेष्यंतामभितश्चराः ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वदत्येवंत्वरायुक्तंसंरंभवतिराजनि ॥ २५ ॥ प्रतिहारउवाचेदंप्रविश्याकुलमानतः ॥ प्रतीहारउवाच ॥ उत्तराशाबलाध्यक्षोदेवद्वार्यैवतिष्ठति ॥ कांक्षत्यब्जमिवार्कस्यदेवदेवस्यदर्शनम् ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ गच्छाविलंबितंतावदेनमेवप्रवेशय ॥ जानीमःकिंदिगंतेषुवृत्तंवृत्तांतसंश्रवात् ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तउत्तराशेशंप्रतिहारप्रवेशितम् ॥ प्रणामपरमग्रेसौराजापश्यद्बलाधिपम् ॥ २८ ॥

अर्थ—सेनाओंके अध्यक्ष नियत करो तथा चारोओर दूत भेजो. श्रीवसिष्ठजी बोले कि–जब शीघ्रतायुक्त राजा इतना कहताथा तभी ॥ २५ ॥ व्याकुलचित्त एक प्रतीहार नम्रहोके यह बोला कि-हे देव ! उत्तरदेशकी सेनाका अध्यक्ष द्वारपर खडा है और आपका दर्शन ऐसे चाहताहै जैसे कमल सूर्य्यका ॥ २६ ॥ राजा बोले कि–शीघ्र जाके उस सेनापतिको यहांही लाओ, क्योंकि वृत्तान्तोंके सुननेसे दिगन्तोंके समाचारको मैं जानताहुं ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–राजाके इतना कहनेपर द्वारपालसे प्रवेशित प्रणाम करतेहुये उत्तरदिशाके सेनापतिको राजाने अपने संमुख देखा॥२८॥

क्षतविक्षतसर्वांगमंगमंगेषुसंततम् ॥ श्वासाकुलंवमद्रक्तंधैर्येणाबलनिर्जितम् ॥ २९ ॥ सप्रणम्यत्वरायुक्तमुवाचेदमुपक्रमम् ॥ संस्तभ्यांगव्यथामाशुसंततोच्छ्वाससमुच्छ्वसन् ॥ ३० ॥ बलाध्यक्षउवाच ॥ देवत्रयोपिदिक्पालाबलेनबहुनासह ॥ त्वदाज्ञयेवनिर्जेतुंयमंयमपुरंगताः ॥ ३१ ॥ तद्देशपालनायार्थमशक्तंमामिमंततः ॥ अनुद्रवंतोबहवोभूपाःप्राप्ताबलादिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब अङ्गोंमें छिन्नभिन्न, प्रत्येक अंगोंमें बाणोंसे व्याप्त, श्वाससे व्याकुल, मुखसे रक्त बहातेहुये और बलरहित होनेसे पराजित उस सेनापतिको राजाने देखा ॥ २९ ॥ वह धैर्यसे अंगोंकी पीडाको स्तम्भन करके और त्वरासे श्वास लेतेहुये राजाको प्रणामकरके यह बोला ॥ ३० ॥ सेनापति बोला कि–हे देव तीनों (पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम) दिशाके सेनापति यमपुरको सब सेनाकेसाथ ऐसे गये मानो आपकी आज्ञासे यमराजको जीतनेकेलिये ॥ ३१ ॥ उन देशोंका पालन करनेमें मुझे असमर्थ जानके बलके गर्वसे बहुतसे राजा मेरा पीछा करतेहुये यहां आगये ॥ ३२ ॥

महत्परबलंप्राप्तमिदंदेवस्यमंडलम् ॥ विधीयतांतथाप्राप्तंनदेवस्यास्तिदुर्जयम् ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतस्मिन्वदत्येवमार्तिमत्याजिविक्षते ॥ सहसैवाभ्युवाचेदंप्रविश्यपुरुषोपरः ॥ ३४ ॥ पुरुषामंडलस्यास्यविपुलादलल्लीलया ॥ स्थितान्यरिबलान्युच्चैश्चतुर्दिक्कंनरेश्वर ॥ ३५ ॥ कचचक्रगदाप्रासकुंतकाननकांतिभिः ॥ वलितानोरिभिर्भूमिर्लोकालोकतटैरिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे देव ! आपके राज्यमें शत्रुओंकी बडी भारी सेना आगई जो कुछ उचित होसो कीजिये क्योंकि आपको कुछ दुर्जेय नहींहै ॥ ३३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–जब युद्धमें छिन्नांग तथा पीडाग्रस्त वह सेनापति कह रहाथा इतनेहीमें दूसरा पुरुष राजाके निकट शीघ्र आके यह बोला ॥ ३४ ॥ कि हे राजन् ! इस आपके मंडलको पीपलआदि पत्तोंके सदृश कँपानेवाले पुरुष यहां प्राप्तहैं और चारो ओर अगणित सेनाभी स्थितहै ॥ ३५ ॥ तथा चमकतेहुये चक्र, गदा, बर्च्छी और भालेआदि शस्त्रअस्त्र वनकी शोभायुक्त शत्रुओंसे हमारी यह भूमि चारोओरसे ऐसे घीरी है जैसे लोकालोकपर्वतके तटोंसे ॥ ३६ ॥

पताकायुधयोधंगाश्चलत्परिकराकुलाः ॥ विसरंतिरथास्तत्रप्रोड्डीनत्रिपुरौघवत् ॥ ३७ ॥ करानुन्नामयंतःखेमांसवृक्षवनोपमाः ॥ बृंहंतिवारणव्यूहावर्षावारिदवृंदवत् ॥ ३८ ॥ नतोन्नतानिकुर्वंतःस्पंदेनोर्वीनितोन्नतैः ॥ हेषंतेहयसंघातावातस्पंदमहाब्धिवत् ॥ ३९ ॥ रसंतितुरगापूराःफेनिलावर्त्तपातिनः ॥ सर्वतोवलयाकारालवणार्णववारिवत् ॥ ४० ॥

अर्थ—पताका ओर शस्त्रअस्त्र तथा योधाआदि अंगसंयुक्त और चंचलकर्मचारियोंसे पूर्णरथ चारो ओर ऐसे भ्रमणकरतेहैं जैसे उडतेहुये त्रिपुरासुरके नगरोंके समूह ॥३७॥ तथा आकाशमें शुंडारूपी हाथोंको घुमातेहुये और मांसमय वृक्षोंकेसमान बडे २ हांथी ऐसे झूम रहेहैं जैसे वर्षाकालमें मेघोंके वृन्द॥३८॥तथा पृथिवीके ऊपर ऊंचे नीचे उछलते हुये तुरंगोंके समूह ऐसी गर्जना करतेहैं जैसे वायुके आघातसे महासमुद्र ॥ ३९ ॥ तथा फेनसंयुक्त आवर्त (भँवरेह) के समान भ्रमणकरतेहुये चारोओरसे कटकके ओरसे घेरेहुये तुरंगोंके समूह ऐसे शब्द करतेहैं जैसे क्षारसमुद्रका प्रवाह ॥ ४० ॥

आकाशकांतिसन्नाहैर्दिशंप्रतिबलबलम्॥ उदेत्यलघुकल्लोलैःप्रलयार्णवपूरवत्॥ ४१॥ शरास्त्रशस्त्रसन्नाहमुकुटाभरणत्विषः॥ कचंतित्वत्प्रतापाग्नेर्ज्वालाइवतदंगगाः॥ ४२॥ समत्स्यमकरव्यूहाःसचक्रावर्त्तवृत्तयः॥ उद्यंतिसैन्यसंघट्टैःकल्लोलाजलधेरिव॥ ४३॥ परस्परपरामर्शात्कुंताद्यायुधपंक्तयः॥ कोपादिवोग्रहुंकारैर्ज्वलंतिविरटंतिच॥ ४४॥

अर्थ—और आकाशके सदृश स्वच्छ दीप्तिमय कवच तथा शस्त्रअस्त्रसे सन्नद्ध (तैय्यार) सेना प्रत्येकदिशामें ऐसे उदित होरहीहै जैसे प्रलयके समुद्रके प्रवाह॥ ४१॥ तथा बाण अनेक शस्त्र अस्त्र, कवच, मुकुट और आभरणोंकी दीप्तिसे पूर्ण उन वीरोंके अंगोंमें ज्वाला ऐसे प्रदीप्त होरही हैं जैसे अ पके प्रतापरूप अग्निकी॥ ४२॥ तथा मत्स्यमकरादिके आकारकी रचनासे शोभित और चक्ररूपी आवर्तोंसे भ्रमणशील तरंगें सेनाओंके परस्पर संघट्टोंसे ऐसे उठरही हैं जैसे समुद्रसे॥ ४३॥ तथा परस्परके संघर्षोंसे कुंत (भाले) आदि अस्त्रशस्त्रोंकी पंक्ति झून २ शब्दोंकेसाथ ऐसे प्रज्वलित होकर शब्दकरतीहैं मानो कोपकेकारण हुंकारशब्दोंसे॥ ४४॥

इतिकर्तुमहंदेवविज्ञप्तिस्वामिनेरितः॥ तस्मान्मंडलसीमांतगुल्माद्युद्धायगच्छता॥ ४५॥ तमहंदेव गच्छामिशक्त्यृष्टिशरसंगतः॥ मयेहावेदितंसर्वंदेवोजानान्यतःपरम्॥ ४६॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इत्युक्त्वाथप्रणामंचसकृत्वात्वरयाययौ॥ कृत्वागुलुगुलारावंशांतोवीचिरिवांबुधेः॥ ४७॥ संभ्रांतमंत्रिनृपयोधनियोगिनागनारीरथाश्वपरिचारकनागरौघम्॥ राज्ञोगृहंस्वभयतोलितहेतिसार्थचंडानिलाकुलमहावनतुल्यमासीत्॥ ४८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिद्दुपाख्याने अविद्याक्षेपणे पार्थिवसंरंभवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमःसर्गः॥ १०८॥

अर्थ—हे भगवन्! यह प्रार्थना करनेके अर्थ आपके सामन्तने जो उनसे युद्धकरनेके लिये जाताथा मुझे आपके निकट भेजा है॥४५॥ हे भगवन्! अब मैं शर, शक्ति, खड्ग तथा अन्यशस्त्रअस्त्रोंसे संपन्न होके उसी भेजनेवाले सामन्तके निकटजाताहुं, मैंने उसके वचनके अनुसार सब समाचार आपसे कहदिया अब इसमें जो कुछ कर्तव्यहो वह आप जानें॥ ४६॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इतना कहनेकेपश्चात् प्रणामकरके शीघ्रतासे गुद्२ शब्दकरके ऐसे चलगया जैसे समुद्रकी शांततरंग॥ ४७॥ हे रामजी! संभ्रांत मंत्री, राजा, योधा, राजसेवक, हांथी, घोडे, रथ, स्त्री पुरुष, दासवर्ग तथा नगरनिवासियोंके समूहसहित और निज २ भयसे अस्त्रशस्त्रयुक्त प्राणियोंकेसाहित वह राजाका गृह ऐसा भयंकर होगया जैसे प्रचंड पवनसे व्याप्त महावन॥ ४८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अविद्योपाख्यानान्तर्गतविपश्चिदुपाख्याने अविद्याक्षेपणे पार्थिवसंरंभवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमःसर्गः॥ १०८॥

नवाधिकशततमःसर्गः॥ १०९॥

मंत्रियोंके वचनोंको सुनके अग्निमें हुत राजाके चार देहोंकेसाथ शीघ्र समुत्थान इस १०९ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ एतस्मिन्नंतरेसर्वेमंत्रिणोनृपमाययुः॥ मुनयोवासवमिवदैत्याक्रांतनभोभुवम्॥१॥ मंत्रिणऊचुः॥ देवनिर्णीतमस्माभिर्यावन्नविषयोरयः॥ त्रयाणामप्युपायानांदंडस्तेषुविधीयताम्॥२॥ प्रणयोनुप्रवेशोवानकदाचनयःकृतः॥ अधुनातेषुतंदेवकुर्यात्तेषुकथैवका॥ ३॥ पापाम्लेच्छाधनाढ्याश्चनानादेश्याःसुसंहताः॥ बहवोलब्धरंध्राश्चसामादेर्नास्पदंद्विषः॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इसके पश्चात् सबमंत्री राजाके निकट ऐसे आये जैसे दैत्योंसे आक्रान्त स्वर्गलोकमें स्थित इन्द्रके समीप मुनिगण॥१॥ मंत्रीजन बोले कि–हे राजन्! हम सबने विचारकरके यह निर्णय कियाहै कि साम, दान तथा भेद इन तीनोंउपायोंके विषय (पात्र) शत्रु नहींहै इसलिये उनको दंड देनाचाहिये॥ २॥ हे भगवन्! दानमानादिसे स्नेह अथवा निजपक्षवाले राजाओंमेंसे किसीके शरणागतिके छलसे उनके वधकेलिये उनके भीतर प्रवेश जब कभी नहीं किया तब अब उसे कौन करैगा और प्रणयआदि उपायोंकी अब कथाही क्या॥ ३॥ हे भगवन्!

नानादेशमें उत्पन्न, हमारे छिद्रोंको जाननेवाले पापी धनाढ्य म्लेच्छ शत्रु बहुतसे मिलके यहां आयेहैं वे सामदानादि उपायोंके वशमें नहींहैं ॥ ४ ॥

तत्सुसाहसमेवेदंवर्जयित्वाप्रतिक्रिया ॥ नान्यास्तिशीघ्रमेवातोरणोद्योगोविधीयताम् ॥ ५ ॥ वीराणांदीयतामाज्ञापूज्यंतामिष्टदेवताः ॥ आहूयंतांचसामंताहन्यतांरणदुंदुभिः ॥ ६ ॥ सन्नह्यंतामशेषेणनिर्गच्छंतोरणेभटाः ॥ क्रियंतांकालकल्पाभ्रमेदुराराजितादिशः ॥ ७ ॥ आस्फाल्यंतांधनूंष्युच्चैः क्वणंतोगुणपंक्तयः ॥ भवंतुजलदश्यामाःककुभःखंडमंडलैः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये उत्तम साहसके सिवाय और कोई उपाय नहींहै इस हेतुसे शीघ्र युद्धका उद्योग कीजिये ॥ ५ ॥ वीरोंको आज्ञा दीजिये, इष्टदेवताओंको पूजिये, सामन्तोंको बुलाइये और युद्धकेडंकोंको बजाके शत्रुओंका वध कीजिये ॥ ६ ॥ पूर्ण तैय्यारीके साथ सब वीर रणकेलिये चलैं और संपूर्ण दिशाओंको हाथियोंसे ऐसे आच्छादन कीजिये जैसे प्रलयकालके मेघोंसे ॥ ७ ॥ तथा बडे २ धनुषोंकी टंकार मचै और धनुषोंकी डोरियां अपने शब्दोंसे दिशाओंको पूर्ण करें और अर्द्धमंडलाकार धनुषोंसे सब दिशा मघोंकेसमान श्यामवर्ण होजांय ॥ ८ ॥

स्फुरज्ज्याविद्युतःशूरवारिदाघनगर्जिताः ॥ नाराचधारामुंचंतोकचत्कोदंडकुंडलाः ॥ ९ ॥ राजोवाच॥ गम्यतांसंगरायाशुसंविधानंविधीयताम् ॥ स्नात्वाहंपूजयित्वाग्निंनिर्गच्छामिरणाजिरम् ॥ १० ॥ इत्युक्त्वानृपतिःस्नातोमहारंभोपिसक्षणात् ॥ प्रावृषीवनवोद्यानंगंगाजलधरैर्घटैः ॥ ११ ॥ अथप्रविष्टोग्निगृहंपूजयित्वाहुताशनम् ॥ आदरेणयथाशास्त्रंचिंतयामासभूमिपः ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रदीप्त प्रत्यंचा (धनुष्की दोरी) रूपी विद्युत्सहित, सिंहकेसमान गर्जनशील और दैदीप्यमान भुजकुंडलसे भूषित शूर वीररूपी मेघ बाणरूपी जलधाराओंकी वृष्टि करैं ॥९॥ राजा बोला कि–आपलोग जाइये और शीघ्र रणका विधान कीजिये, स्नानकरके तथा अग्निदेवकी पूजाकरके मैंभी रणक्षेत्रमें आताहुं ॥ १० ॥ इतना कहके राजाने अनेक अवश्य कार्य्योंको त्यागकर गंगाजलसे पूर्णघटोंसे शीघ्र ऐसे स्नानकिया जैसे वर्षामें नूतन उद्यान ॥ ११ ॥ स्नानके पश्चात् राजाने अग्निगृहमें प्रवेशकिया और शास्त्रोक्तविधिसे आदरपूर्वक अग्निदेवकी पूजाकरके यह चिन्तन किया ॥ १२ ॥

नीतमायुरनायासविलासविभवश्रिया ॥ प्रजाभ्योदत्तमभयमासमुद्रसमुद्रितम् ॥ १३ ॥ आक्रांतवसुधापीठाःपादपीठेकृताद्विषः ॥ लताःफलभरेणेवनमिताःककुभोदश ॥ १४ ॥ प्रजाचित्तेंदुबिंबेषुलिखितंधवलंयशः ॥ भूमावारोपिताकीर्तिलतात्रिपथगामिनी ॥ १५ ॥ कोशवद्भरितारत्नैःसुहृन्मित्रार्यबंधवः ॥ निपीतोर्णवतीरेषुनालिकेररसासवः ॥ १६ ॥

अर्थ—कि विलासत विभवकी लक्ष्मीसे अबतक आनन्दपूर्वक आयु व्यतीत किया और समुद्रपर्य्यन्त शासनमुद्रासहित प्रजाओंको अभय दिया ॥ १३ ॥ वसुधामंडलको जीता, शत्रुओंको चरणोंके नीचे किया और दशोदिशाओंको करके भारसे फल भारसे लताके सदृश नमित किया ॥ १४ ॥ तथा मैंने प्रजाओंके चित्तरूपी चन्द्रबिंबोंमें निर्मल धवलयश अंकितकिया और पृथिवीपरभी कीर्तिलतारूपी गंगा स्थापित की ॥ १५ ॥ तथा सुहृत्, मित्र, बन्धु और पूज्य ब्राह्मणोंको रत्नोंसे ऐसे पूर्ण किया जैसे कोशको और दिग्विजययात्रामें समुद्रके तटोंपर नालिकेरके रसको पान किया ॥ १६ ॥

द्विषामाकंपिताभेकगलांगत्वगिवस्रवः ॥ मच्छासनांकिताजाताद्वीपांतरकुलाचलाः ॥ १७ ॥ विहृतंसिद्धसेनासुदिगंतनवभूमिषु ॥ भूर्म्यंतभूभृतांमूर्ध्निविश्रांतंमेवलीलया ॥ १८ ॥ धियेवोच्चैःपदेज्ञानपूर्णयैकांतशीलया ॥ विलब्धान्यविनष्टानिराष्ट्रानीष्टार्थकारिणा ॥ १९ ॥

अर्थ—और बोलतेसमय मेंडकेके गलेके चर्मके सदृश शत्रुओंके प्राणोंको कंपितकिया, तथा द्वीपान्तरके कुलपर्वतभी मेरे शासनसे चिन्हितहैं ॥ १७ ॥ तथा दिगन्तोंमें प्रसिद्ध कांचनभूमियोंमें सिद्धोंकी सेनाकेसाथ विहारकिया और भूमिके अन्तमें लोकालोकादि पर्वतोंके शिखरोंपर मेघोंकी लीलासे ऐसे विश्रामभी किया ॥ १८ ॥ जैसे ज्ञानपूर्णबुद्धिसे समाधिद्वारा योगी ब्रह्मपदमे, तथा प्रजाओंके हितकारी मैंने अनेक संपन्न राज्य पाये और उनको बढाया ॥ १९ ॥

रक्षांस्यप्यविनीतानिबद्धानिनिगडैर्घनैः ॥ धर्मार्थकामैरन्योन्यंचयापचयवर्जितैः ॥ २० ॥ अखंडितैर्मयानीतंपीतातियशसावयः ॥ इदानींशष्पविश्रांतप्रालेयभरभासुरम् ॥ २१ ॥ आगतंवार्धकंसर्वभोगसंरंभमार्जनम् ॥ तस्योपर्यरयोरौद्राबलवंतोरणैषिणः ॥ २२ ॥ संभूयसर्वतःप्राप्ताःसंदिग्धोवर्त्ततेजयः ॥ तदिहैवानलायास्मैदेवायजयदायिने ॥ २३ ॥ मस्तकाहुतिमेवेमांसमुद्यम्यददामिवै ॥ राजोवाच ॥ कृशानोदेवमूर्धायंतुभ्यमाहुतितांगतः ॥ २४ ॥

अर्थ—गर्वी राक्षसोंकोभी मैंने निबिड बन्धनोंसे बांधा और परस्पर बाधारहित, वृद्धि ह्राससे वर्जित समानरूपसे संचित और अखंडित धर्म, अर्थ और कामसे आयुको मैंने बीताया. अब अधिक यशसे पीतके तुल्य तथा तृणोंके अग्रभागमें जमे हुये हिमके सदृश और भोगोंके संभवसे रहित वृद्धा अवस्था आके प्राप्त हुई, उस वृद्धावस्थामें रणके अभिलाषी भयंकर शत्रु ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ एकत्र होके प्राप्त हुये हैं, सो इससमय विजय मुझे संदिग्ध है, इसलिये इसी स्थानमें विजयके दाता अग्निदेवको इस मस्तककी आहुति आदरपूर्वक देऊं ॥ २३ ॥ राजा बोला–कि हे अग्निदेव ! यह मस्तक आपकी आहुतिको प्राप्त है ॥ २४ ॥

मयापूर्वपुरोडाशइवदेवेशदीयते ॥ यदितुष्टोसिभगवंस्तदनेनकृतेनमे ॥ २५ ॥ चत्वारोभवतःकुंडात्स्वदेहाःप्रोद्भवंतुमे ॥ बलवंतःश्रियादीप्तानारायणभुजाइव ॥२६॥ तैश्चतुर्दिक्कमेवारीन्वध्यामहमविघ्नतः॥ त्वयाचदर्शनंदेयंमह्यंमतिमतेविभो ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वासमहीपालःखड्गमादायचिच्छिदे ॥ शिरःकमलमालोलंलीलयेवाशुबालकः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे देवेश अग्नि ! पूर्वसमयमें इष्टियोंमें पुरोडाशके सदृश यह मस्तक आपको समर्पण करताहूं. हे भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो इस कर्मसे ॥ २५ ॥ आपके कुंडसे अतिबलवान् शोभासे प्रदीप्त नारायणके भुजाओंके सदृश मेरे चार शरीर उत्पन्न हों ॥ २६ ॥ और उन चारों शरीरोंसे मैं चारोंदिशाओंके शत्रुओंको निर्विघ्नतापूर्वक वध करूं. और हे विभो ! आपके दर्शनकी इच्छासे सर्वदा आपकी स्मृति मुझे बनी रहै इसलिये आप मुझे दर्शनभी दें ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! इतना कहके उस राजाने तरवार लेके अपने शिरको शीघ्र ऐसे काट डाला जैसे चंचल कमलको बालक ॥ २८ ॥

छिन्नमेषशिरोयावज्जुहोत्यसितवर्त्मने ॥ तावच्छरीरेणसहपपाताग्नौसपार्थिवः ॥ २९ ॥ भुक्त्वाथवह्निस्तंदेहंददावस्मैचतुर्गुणम् ॥ महतामुपयुक्तंहिसद्यएवाभिवर्धते ॥ ३० ॥ चतुर्मूर्तिरथोत्तस्थौपावकाद्वसुधाधिपः ॥ प्रज्वलंस्तेजसांपुंजैर्नारायणइवार्णवात् ॥ ३१ ॥ तेदेहास्तस्यचत्वारोविरेजुर्भास्वरत्विषः॥ सहजातोत्तमोत्तंसभूषणायुधवाससः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और उस कटेहुये शिरको ज्योंही राजा अग्निमें हवन करनेलगा त्योंही अपने शरीरके साथ राजाभी अग्निमें गिर पडा ॥ २९ ॥ अग्निदेव उस शरीरको हविषके समान भोजन (भस्म) करके उसको चतुर्गुण देता हुवा. क्योंकि महात्माजन जिसको स्वीकार करतेहैं वह शीघ्रही बढताहै ॥ ३० ॥ तेजोंके पुंजोंसे प्रज्वलित राजा उस अग्निकुंडसे चार (४) मूर्ति होके ऐसे निकला जैसे समुद्रसे नारायण ॥ ३१ ॥ साथ उत्पन्न उत्तम मुकुट आदि आभूषण, शस्त्र, अस्त्र तथा शास्त्रोंसहित तथा अतिप्रदीप्त कान्तिसहित वे राजाके चारों देह शोभित हुये ॥ ३२ ॥

सकंकटशिरस्त्राणाःसमौलिकटकांगदाः ॥ सहारकुंडलाभोगाःसर्वाःसर्वेमहाशयाः ॥ ३३ ॥ सर्वएवसमाकाराःसदृशावयवान्विताः ॥ चंचलोच्चैःश्रवःप्रख्यंहयरत्नमवस्थिताः ॥ ३४ ॥ ससुवर्णशरापूर्णतूणीराःसुमहाशयाः ॥ समानगुणकोदंडाःसमानवपुषःशुभाः ॥ ३५ ॥ समारोहंतितेयस्मिन्पुंसिनागेरथेहये ॥ सर्वेषामरिदोषाणांनैवगम्योभवत्यसौ ॥ ३६ ॥ पीत्वाधृत्वाचिरंकालंगर्भेपुरुषतापिताः ॥ वेद्याग्निवहितास्तत्रसागरावडवार्चिषा ॥ ३७ ॥ रत्नाश्वदेहकुसुमोत्करपूर्णदेहाश्चत्वारइहहसितैरवभासयंतः ॥ सन्मूर्तयोहरयएवयथाब्धयोवावेदाइवाहुतिहुतादनलात्प्रसस्रुः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने अग्निप्रवेशाद्देहलाभो नाम नवाधिकशततमःसर्गः ॥ १०९ ॥

अर्थ—कवच, शिरस्त्राण सहित, मुकुट, कडे तथा बिजापट युक्त तथा हारकुंडल और अनेक आभूषणसंपन्न वे सब देह थे तथा सब आश्रितोंके रक्षक और विशाल बुद्धि युक्त सब देह थे ॥ ३३ ॥ सब देह समान आकारधारी तथा सदृश अंगोंसे युक्त थे और उच्चैःश्रवा (इन्द्रके घोडे) के तुल्य चंचल तथा अति उत्तम तुरंगपर सब देह आरूढ (सवार) थे ॥ ३४ ॥ सुवर्णमय शरोंसे पूर्ण तूणीर (तर्कश) सहित, महाबुद्धिमान्, समानगुण तथा धनुषधारी, समानशरीरयुक्त तथा अतिशोभायुक्त सब थे ॥ ३५ ॥ और अधिक गुण यह थाकी वे राजाके देह जिस मनुष्य, हांथी, घोडे वा रथ आदि यानपर चढें वे यान (सवारी) शत्रुओंके यंत्र, मंत्र तथा शास्त्रादिके गम्य न थे ॥ ३६ ॥ और वे शरीर ऐसे भासतेथे मानो चारों समुद्रको वडवानलने प्रथम पान करके चिरकालतक अपने गर्भमें धारण किया,

अनन्तर पुरुषाकारमें प्राप्त करके इस अग्निके वेदीमें स्थापित करके उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥ पुनः रत्नोंसे भूषित देह, तथा रत्न पूर्णतुरंगोंपर स्थित, और पुष्पसमूहसे पूर्णशरीरसे चन्द्रबिंब समान हास्यसे दिशाओंको प्रकाशित करतेहुये, विपश्चित्की आहुतियोंसे हुतअग्निसे चारो विपश्चित्के देह ऐसे निकले जैसे चार विष्णु वा मूर्तिमान् समुद्र, अथवा वेद अग्निसे निकले ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्योपाख्यानान्तर्गतविपश्चिदुपाख्याने अग्निप्रवेशाद्देहलाभो नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

चारों ओरसे नगरके समीप प्राप्त शत्रुओंके साथ घोर युद्ध आरंभ हुआ यह विषय इस ११० के सर्गमें विस्तारपूर्वक वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पुरोपकंठसंप्राप्तैश्चतुर्दिक्कंसहारिभिः ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रप्रवृत्तंदारुणंरणम् ॥ १ ॥ लुंठितग्रामनगरंप्रजाकुलमहाकुलम् ॥ अग्निदाहज्वलद्देहंधूमाभ्रपटलावृतम् ॥ २ ॥ शरजालमहाधूमच्छन्नार्कविलसत्तमः ॥ क्षिप्रदृष्टरविक्षिप्रमदृष्टरविमंडलम् ॥ ३ ॥ अग्निदाहमहातापप्रतप्तपर्णकाननम् ॥ लोलालातलताशूलमुसलोपलपूर्णखम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इसी अवसरमें चारोओरसे नगरके समीप शत्रु प्राप्त हुये और उनके साथ भयंकर युद्ध आरंभ हुआ ॥ १ ॥ ग्राम तथा नगरोंको लूटनेवाला, प्रजासमूहकी महाव्याकुलताजनक, अग्निकी ज्वालासे जलते हुये देहसंयुक्त और धूमरूपी मेघोंके पटलसे आच्छन्न युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ बाणोंके समूहोंसे तथा धूमसे सूर्य्यके आच्छन्न होनेसे महाअन्धकारमय, क्षणमें दृष्ट और क्षणमेंही अदृष्ट सूर्य्यमंडलको करनेवाला युद्ध आरंभ हुआ ॥ ३ ॥ अग्निदाहजनित महातापसे पत्र बन आदिको जलानेवाला चंचल अलातचक्र, मूशल तथा पाषाण आदिसे आकाशकोभी पूर्ण करनेवाला संग्राम आरंभ हुआ ॥ ४ ॥

अनलप्रतिबिंबौघैर्द्विगुणज्वलनायुधम् ॥ रणभग्नमहाशूरप्राप्तेंद्रवनितासुधम् ॥ ५ ॥ उद्दामवारणारावैरणलंपटहर्षदम् ॥ भुशुंडीमंडलप्रासशूलतोमरवर्षदम् ॥ ६ ॥ भटकोलाहलोल्लासहृद्भंगमृतपामरम् ॥ रजःपटलशुभ्राभ्रकृतद्युपथवारणम् ॥ ७ ॥ मरणव्यग्रसामंतमुक्तनादव्रजद्व्रजम् ॥ इतश्चेतश्च निपतद्वैद्युतोपहतप्रजम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अग्निके प्रतिबिंबसमूहोंसे द्विगुण प्रज्वलित, शस्त्रअस्त्रसंयुक्त, संग्रामभग्न महाशूरवीरोंको अप्सरा तथा अमृतका प्रापक युद्ध आरंभ हुआ ॥५॥ प्रचंड मातंगोंके शब्दोंसे रणके उत्साहियोंको हर्षदायक, तोपसमूह, बर्च्छी, भाले, त्रिशूल तथा तोमर आदिकी वृष्टिकारक युद्ध आरंभ हुआ ॥ ६ ॥ वीरोंके कोलाहल तथा उत्साहके श्रवणमात्रसे कातरोंको मृत्युजनक तथा धूलिपटलरूपी शुभ्र मेघोंसे आकाशको आच्छादन करनेवाला ॥ ७ ॥ मरणमें व्यग्र सामन्तोंके मुक्तनादसे प्राप्त जनसमूहसहित और इधरउधरसे विद्युत्रूप अग्निपातसे नष्ट प्रजासहित युद्ध आरंभ हुआ ॥ ८ ॥

अग्निदग्धपतद्गेहप्रोज्झिताग्निमयांबुदम् ॥ मरणाह्लाददासंख्यशरधारामयांबुदम् ॥ ९ ॥ जितसागरकल्लोलंतुरंगमतरंगकैः ॥ दंतिदंतविनिष्पेषतारक्रेंकारकर्कशम् ॥ १० ॥ कोटकाटिकुटीकुड्यकंटकोद्भटसद्भटम् ॥ चटत्कुंठितकोटाट्टकूटाटननटच्छटम् ॥ ११ ॥ लुठत्पटनकुट्टाकसाटोपस्फुटपट्टिशम् ॥ खेवटत्केतुपट्टाट्टपटत्पटपटारवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अग्निसे दग्ध गृहोंसे निर्मुक्त अग्निवर्षी मेघमंडलसहित, तथा मरणसे आनन्दजनक असंख्य बाणवृष्टिकारक मेघमय वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ ९ ॥ तुरंगोंकी गतिरूप तरंगोंसे समुद्रकी तरंगोंको जीतनेवाला, तथा हांथियोंके दांतोंके संघर्षणपूर्वक चिग्घार शब्दसे कर्कश वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ १० ॥ दुर्गों (कीलों) के ऊपरके स्थानोंसे कंटकों सदृश शर वेधनेमें समर्थ उत्तम वीरसहित, तथा चटचटाशब्दसहित अग्निसे वेष्टित कीलोंकी अटारियोंपर मनुष्योंकी व्यग्रतापूर्वक अग्निकी छटासे वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ ११ ॥ छतोंपर लुढकते हुये पट्टिशसहित, तथा आकाशमें वेष्टित पताकाके वस्त्रोंसहित अटारियोंपर पटपटाशब्दसहित वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ १२ ॥

दंतिदंतगुणोद्गीर्णैर्हेतिपाषाणघर्षणैः ॥ तारक्रेंकारहुंकारैराहूतसुरवारणम् ॥ १३ ॥ वहच्छरनदीपूरपूर्णांबरमहार्णवम् ॥ विचलच्चक्रकुंतासिधारामकरकर्कशम् ॥ १४ ॥ उन्नादयोधसंघट्टककटोत्कटटां

कृतेः ॥ लसज्झणझणारावैर्घटितद्वीपमंडलम् ॥ १५ ॥ पादपातपरापिष्टशरसंजातकर्दमम् ॥ वहद्रक्त नदीरंहःप्रोह्यमाणरथद्विपम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हांथियोंके दांतोंकी शुक्लताके आविर्भाव तथा शस्त्रोंके पाँपाणोंसे संघर्षणोंसे कटकटाहट तथा हुंकार-शब्दोंसे मानों इन्द्रके हाथियोंके आव्हानसहित वह संग्राम प्रवृत्त हुआ ॥ १३ ॥ बहती हुई बाणोंकी नदीके प्रवाहोंसे पूर्ण, आकाशरूपी समुद्र संयुक्त, तथा चलतेहुये चक्र, भाले, तथा तरवारोंकी धारारूपी मकरोंसे भयंकर वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ १४ ॥ तथा सिंहनादकरनेसे योधाओंके संवर्षणोंसे कवचोंके टंकारशब्दोंसे शोभायमान झन २ झंझनाहटोंसे द्वीप और मंडलोंको व्याप्त करनेवाला वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥ तथा चरणोंके मर्दनोंसे चूर्ण बाणोंके कीचडसहित और बहतीहुई रक्तकी नदीके प्रवाहसे रथ तथा हांथियोंकोभी बहानेवाला युद्ध आरंभ हुआ ॥ १६ ॥

सुपर्णहेलानिपतत्प्रोत्पतत्पट्टपट्टिशम् ॥ शरवारितरंगार्त्तभग्नायुधजलेचरम् ॥ १७ ॥ हेतिसंघट्टनिष्क्रांतज्वालाप्रज्वलितांबरम् ॥ वलीपलितनिर्मुक्तशूराक्रांतत्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ पांडुपांसुपयोवाहकचक्राचिरद्युति ॥ हेतिनिर्विवराकाशायुधानाधारभूतलम् ॥ १९ ॥ कटद्भटभटाटोपरटत्प्रतिभटोत्कटम् ॥ चटच्छकटसंघट्टपिष्टकाष्ठलुठद्रथम् ॥ २० ॥

अर्थ—गरुडकेसमान बाणोंके गिरनेसे विपक्षीवीरोंके पट्ट तथा पट्टिशआदि शस्त्रोंके पतनसहित और बाणरूपी जलकी तरंगोंसे दुःखीवीरोंके आयुधरूपी जलचरोंका नाशक युद्ध आरंभ हुआ ॥ १७ ॥ शस्त्रोंके परस्पर संघट्टोंसे निःसृतज्वालासे आकाशको प्रदीप्तकारक, तथा देवप्रभावसे प्राप्त बडे २ शूरोंसे स्वर्गकोभी आक्रमणकारक युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ तथा पांडुरवर्ण धूलिरूप मेघोंमे चक्ररूपी विद्युत्की दीप्तिसहित, तथा शस्त्रअस्त्रोंसे अवकाश न होनेसे प्रहारोंको अनाधारतायुक्त भूतलसहित वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ १९ ॥ वीरोंकेऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेवाले वीरोंके आटोपोंसे रटतेहुये विपक्षीभटोंसे भयंकर, तथा पृथिवीको आच्छादन करनेवाले रथोंके संघट्टोंसे चूर्णभूत अन्यरथोंके काष्ठोंपर लुढकतेहुये रथसहित वह युद्ध था ॥ २० ॥

कबंधभटवेतालमिश्रकंटकसंकटम् ॥ वेतालभुज्यमानाग्र्यशवमांसहृदंबुजम् ॥ २१ ॥ शूरशातितशीरार्धशिरःकरखुरोरुकम् ॥ कबंधदोर्द्रुमस्पंदवनीकृतनभस्तलम् ॥ २२ ॥ तरल्लोलास्यवेतालहासघट्टितपेटकम् ॥ कंकटोत्कटसाटोपभटभ्रुकुटिभीषणम् ॥ २३ ॥ एकांतमारणैकांतमरणैकांतभूषणम् ॥ प्रहारदानग्रहणकार्पण्यापारदूषणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—मस्तकरहित वीर तथा वेतालआदिसे मिलित शत्रुओंसे अतिदुर्गम और मृतकेके हृदयकमलके मांसके खाते हुये वेतालोंसे अतिभयंकर युद्ध हुआ ॥ २१ ॥ शूरवीरोंसे खंडित अर्द्धशिर, तथा पूर्णशिर, हस्त, पाद तथा जंघासे शोभित, और मस्तकरहित भुजायुक्त कबन्धोंसे आकाशको वनके सदृश करनेवाला वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ २२ ॥ तथा उडतेहुये चंचल मुखधारी और प्रसन्न वेतालोंके पात्रोंको मृतकोंसे पूर्ण करनेवाला और कवचोंसे प्रचंड वीरोंकी भ्रुकुटियोंसे भयंकर युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ तथा सर्वथा मारना वा मरना इस दोनों वीरोंकी भूषणतासहित और प्रहारोंके ग्रहण तथा दानमें असामर्थ्यरूप महानिन्दायुक्त वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ २४ ॥

शूरवारणसामंतमदवारिविशोषणम् ॥ मारणैकांतरसिककृतांतानंदपोषणम् ॥ २५ ॥ अविकत्थनगुप्तानांशूराणांजयघोषणम् ॥ अशूराणांचगुप्तानांप्रभावुद्घोषणंपरम् ॥ २६ ॥ शौर्यादिनांप्रसुप्तानांसगुणानांप्रबोधनम् ॥ धनमाधारभूतानांराष्ट्रेषुभुजशालिनाम् ॥ २७ ॥ दंत्यारूढरथास्फोटप्रभग्नकटवारणम् ॥ समस्तमत्तगंधेभदानवारिनिवारणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—वीर, हांथी, तथा सामन्त इनके मदरूपी जलका शोषक और मारनेमें सर्वथा रसिक होनेसे कालके आनन्दका पोषक वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ २५ ॥ निजप्रशंसारहित छिपेहुये वीरोंके पराक्रमसेही स्वामीके निकट जयशब्दसहित, तथा छिपेहुये कातरोंकी निन्दायुक्त वह संग्राम आरंभ हुआ ॥ २६ ॥ राज्यमें दुर्बलोंके आधारभूत तथा बाहुबलसे शोभायमान वीरोंके शौर्य्यआदि गुणोंका कीर्तन धनकेसमान प्रिय उस युद्धमें था ॥ २७ ॥ हांथी तथा रथोंपर चढेहुये वीरोंके परस्पर संघर्षसे भग्न मातंगयुक्त तथा मत्त और सुगंधित दान (मदजल) युक्त हांथियोंके मदजलको शोषक वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ २८ ॥

सारसारवसामंतमुक्तमत्तमतंगजम् ॥ जरज्जितकरानीककल्पितासीकवेदनम् ॥ २९ ॥ दिनंदिनकरस्येवनृपस्यशरणंगतम् ॥ अनागतभटव्रातपिष्टार्धमृतमानवम् ॥ ३० ॥ मानवायुबलोन्मत्तनतप्रारब्ध

कुट्टनम् ॥ धनानांप्राणपण्यानांनवमापणपत्तनम् ॥ ३१ ॥ पटनद्धपताकौघजातसंचारिदोर्दुमम् ॥ र क्तोज्ज्वलत्वात्रैलोक्यलक्ष्म्याभूषणविद्रुमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा तडागमें मत्तमातंगोंके प्रवेश करनेपर शब्द करते हुये सारसपक्षियोंके समान चिल्लातेहुये सामंतोंसे त्यक्त गजेन्द्र सहित और अनन्तर खड्गविद्यामें अर्द्धशिक्षित वीरोंकेभी खड्गप्रहारोंसे उनकी प्रशंसाबोधक युद्ध आरंभ हुआ ॥ २९ ॥ वीरसमूहके न आनेपरभी उनके आगमनके भ्रमसे भागतेहुये कातरमनुष्योंके भागनेमें पादआदिसे मर्दित अर्द्धमृत मनुष्योंसहित, इसीसे सूर्य्यके शरणमें दिनके समान राजाके शरणमें प्राप्त वह युद्ध आरंभ हुआ ॥ ३० ॥ तथा अभिमानरूपी वायुके बलसे उन्मत्त वीरोंसे नम्रजनोंकेभी मर्दनयुक्त तथा प्राणोंसे क्रेय (खरीदनेयोग्य) पदार्थोंके नूतन क्रेयस्थान (बाजार) के समान वह युद्ध था ॥ ३१ ॥ वस्त्रोंसे बंधे हुये पताकाओंके समूहसे उत्पन्न भ्रमणशील भुजारूपी वृक्षसहित तथा अरुण और श्वेतवर्ण होनेसे त्रिलोकीरूपी लक्ष्मीके भूषणभूत विद्रुम (मूंगे) समान वह संग्राम था ॥ ३२ ॥

मंदारहननोद्भूतक्षीरोदजलसुंदरैः ॥ छत्रैश्छादितहेत्योघपुष्पाढ्यगगनांगनम् ॥ ३३ ॥ गणगीर्वाण गंधर्वगीतशूराशयंकृतम् ॥ तद्वातरलतालाग्रहेतिहालाहलायुधम् ॥ ३४ ॥ संघप्रहरणासंख्ययातुधानाझणज्झणम् ॥ भुक्त्वाचाद्रिगुहागेहपूरितापूर्वद्दुर्मम् ॥ ३५ ॥ कचत्कुंतवनव्यस्तशिरःकरव्रतांबरम् ॥ क्षेपणोन्मुक्तपाषाणपूरप्लुतककुब्लतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा मन्दराचलके आघातसे उत्पन्न क्षीरसमुद्रके जलके सदृश सुन्दर श्वेतछत्रोंसे आच्छन्नशस्त्र तथा अस्त्रोंके समूहरूपी पुष्पोंसे आकाशरूपी अंगनको व्याप्त करनेवाला वह युद्ध था ॥ ३३ ॥ तथा प्रमथ, गन्धर्व और देवताओंके द्वारा वीरोंके उत्साहका प्रकाशक तथा उन गन्धर्वादिकी दीप्तियोंसे मिलित ध्वजाओंके अग्रभाग और शस्त्रोंसे अनेक बलरामके सदृश वीरोंसे युक्त वह संग्राम था ॥ ३४ ॥ तथा एकत्र होकर लीलापूर्वक प्रहार करनेवाले असंख्य शब्दरहित राक्षसोंने उस युद्धमें आके मृतकोंका भोजन किया और अनन्तर पर्वतोंकी गुहारूपी निजगृहोंको पूर्ण करके अन्यविषवृक्षकेतुल्य राक्षसोंको भोजनभी कराया ॥ ३५ ॥ तथा उस युद्धमें वनकेतुल्य प्रदीप्त कुन्त (भाले) धारी वीरोंने छिन्नभिन्न मस्तकोंसे आकाशको पूर्ण करदिया था तथा फेंकेहुये पाषाणोंके प्रवाहोंसे दिशारूपी लता पूर्ण होगई थीं ॥ ३६ ॥

महाचटचटाशब्दस्फुटद्रवत्रहद्द्रुमम् ॥ नारीहलहलारावरणन्नगरमंदिरम् ॥ ३७ ॥ मंदरावानलाकार नभोभातायुधव्रजम् ॥ परित्यज्यधनंगेहंदूरोर्वीविद्रुतप्रजम् ॥ ३८ ॥ सर्वतोहेतिवहनात्समक्षप्रेक्षकोज्झितम् ॥ वर्जितंभीरुभिःपक्षिराजवृंदमिवाहिभिः ॥ ३९ ॥ दंतिदंतविनिष्पिष्टशिष्टसद्भटसंकटम् ॥ कटेमृत्योरिवनरद्राक्षापीडनयंत्रके ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा उस युद्धमें भुजाओंकी फटकारसे महा चटचटाशब्दोंसे जलतेहुयेके सदृश शब्दकारक अनेक वृक्ष थे, तथा जहांपर स्त्रियोंके कोलाहलसे मानो नगर और मंदिर शब्द करते थे ॥ ३७ ॥ जहां मन्दराचलपर दावानलके समान आकाशमें शस्त्र अस्त्रके समूह प्रदीप्त होरहे थे तथा प्रजा अपने धन तथा गृहकी भूमि त्यागकर दूरदेशमें भागतीथी ॥ ३८ ॥ तथा जहां चारोंओरसे शस्त्रअस्त्रोंके प्रहारसे दर्शकभी दूरसेही त्यागकर भाग गये थे और कातरोंने तो उस युद्धदेशको ऐसे त्यागदिया था जैसे गरुडके समूहको सर्प ॥ ३९ ॥ तथा मनुष्यरूपी द्राक्षा (दाख) के पीलनेकेलिये मृत्युके यंत्रके समान उस युद्धमें बचे हुये हांथियोंके दांतोंसे पीड्यमान उत्तम वीरोंको संकट होरहा था ॥ ४० ॥

यंत्रपाषाणसंघट्टपिष्टांबरगतायुधम् ॥ योधनादनदद्दंतिवृंदबंधुरकंदरम् ॥ ४१ ॥ धराधरदरीरंतःप्रतिश्रुत्प्रोतगर्जितम् ॥ अर्जितंप्राणसर्वस्वमर्जयद्भिरुपार्जितम् ॥ ४२ ॥ भर्जितंहेतिदहनैरग्निदाहैश्चसंततैः ॥ तैरेवान्यैरथान्यैश्चद्वंद्वयुद्धैरनिष्ठितम् ॥ ४३ ॥ वेष्टितंमृतशिष्टैश्चसारैःसुभटपेटकैः ॥ कैलासैरिवसंशुद्धैरीश्वराधारतांगतैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यंत्र तथा पाषाणोंके संघट्टसे अस्त्रोंको चूर्ण करके आकाशमें पहुंचानेवाला, तथा योधाओंके नाद और गर्जते हुये हांथियोंके वृन्दसे कन्दराओंकोभी पूरक वह संग्राम था ॥ ४१ ॥ पर्वतोंके कन्दराओंमें प्राप्त प्रतिध्वनियोंसे व्याप्त गर्जनायुक्त, तथा जन्ममरणसे उपार्जित प्राणरूप सर्वस्वको प्रकाश करते हुये वीरोंसे उपार्जित वह युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ४२ ॥ निरन्तर शस्त्र तथा अग्निके दाहसे भर्जित, और पूर्वोक्त अन्य२ वीरोंके द्वन्द्वयुद्धोंसे वह संग्राम समाप्त नहींहुआ ॥ ४३ ॥ और मृत्युसे शेष तथा स्वामीके भक्त उत्तम वीरोंसे वह संग्राम ऐसे वेष्टित था जैसे ईश्वरके आराधकोंसे कैलास ॥ ४४ ॥

तैरुदारैःसमाक्रांतंयेमृत्योरपिमृत्यवः ॥ मरणंजीवितंयेषांजीवितंमरणंरणे ॥ ४५ ॥ रणेनभसिनिर्लून वरवारणवारिजे ॥ सारसाःसरसीवात्ररेजुरत्युद्भटाभटाः ॥ ४६ ॥ यंत्राश्मक्षेपणानांप्रसरणसरिताधूकृतैःफूत्कृतैर्द्राक्क्रांतानांव्योम्निमूर्ध्नांशरसलिलमुचांसैनिकानांचनादैः ॥ टांकारैरायुधानांनभसिविसरतामश्वचक्रेभशब्दैरासीन्निःसंधिबंधोपलजठरजडंजीर्णकर्णगतंतत् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने संग्रामवर्णनं नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

अर्थ—जो सन्मुख रणमें मरणकोभी जीवनकेसमान प्रिय और भागकर जीवनकोभी मृत्युके सदृश द्वेष जानतेहैं तथा मृत्युकेभी मृत्यु अर्थात् रणमें मरके आगमनसे रहित होते हैं ऐसे उदार शूरवीरोंने आक्रमणकरके त्रैलोक्यकोभी जीतलिया ॥ ४५ ॥ संग्रामरूपी आकाशमें श्रेष्ठ हांथी तथा कवचरूपी कमलके छिन्नभिन्न होजानेसे प्रचण्ड वीर ऐसे शोभितहुये जैसे तडागमें सारसपक्षी ॥ ४६ ॥ फेंकेहुये यंत्रमय पाषाणोंके प्रवाहोंसे प्रवृत्त नदियोंके शब्दोंसे, विलक्षण प्रतिध्वनियोंसे शीघ्र छिन्नभिन्न आकाशमें उडतेहुये मस्तकोंके फूत्कारोंसे, बाणरूपी जलकी वृष्टिकरनेवाले योधाओंके नादोंसे, अस्त्रशस्त्रोंके टांकारशब्दोंसे, तथा हांथी घोडे और चक्रोंके शब्दोंसे व्याप्त उस युद्धने ऐसे सबको बधिरकरके कानोंको पूर्ण करदिया जैसे संधिरहित पाषाणका गर्भ ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विप० संग्रामवर्णनं नाम दशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

अपनी सेनाके क्षीण होनेपर निकलकर राजाने वायव्यअस्त्रोंसे चारोंओरसे शत्रुओंका क्षय किया यह विषय इस १११ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिकल्पांतसदृशेयत्तेसमरसंभ्रमे ॥ पतंतीषूत्पतंतीषुसेनासुसमरेजिरे ॥ १ ॥ तूर्यभेरीमहाशंखखड्गेषुखेनदत्सुच ॥ धनुर्ध्वनिषुवीराणांतारंकारकारिषु ॥ २ ॥ अन्योन्यकठिनास्फोटविकटेभटपेटके ॥ कवत्कटकटाटोपेकटुक्रितकंकटे ॥ ३ ॥ किंचित्प्रभज्यमानासुविशत्कश्मासुसंगरे ॥ विपश्चित्पक्षसेनासुलूयमानलतास्विव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–इसप्रकार प्रलयके सदृश समरके संभ्रम प्रवृत्त होनेपर, जब कोई सेनायें हारतीथीं कोई जीत रहींथीं उसीसमय राजाके चलनेका डंका बजा ॥ १ ॥ तथा जब तुरुही नगारे और महाशंखोंके प्रतिध्वनियोंकेसाथ आकाशमें तरवारोंके शब्द होरहेथे, तथा वीरोंके हुंकारशब्दकेसाथ जब धनुषकी टंकार होरहीथी तब राजाके प्रस्थानका डंका बजा ॥ २ ॥ तथा जब परस्पर भयंकर संघट्टोंसे विकट वीरोंकेसमूहके कठोर कटकटाशब्दोंके साथ कवच टूटरहेथे तब राजाके प्रस्थानका डंका बजा ॥ ३ ॥ तथा जब संग्राममें किंचित् मर्दित प्रवेश करतीहुई मूर्छायुक्त विपश्चित् राजाकी सेना लताकेसमान क्षीण होरहीथी उसीसमय राजाके प्रस्थानका डंका बजा ॥ ४ ॥

उदभूत्पूरयन्नाशानृपनिर्याणदुंदुभिः ॥ चतुर्धाशनिसंपूर्णकल्पाभ्ररवमांसलः ॥ ५ ॥ स्फुटतांकुलशैलानांतुल्यकालमिवोत्कटः ॥ स्फुटच्चटचटास्फोटैर्जडिताखिलदिक्तटः ॥ ६ ॥ लोकपालैरिवाकारैर्नारायणभुजैरिव ॥ सचतुर्भिश्चतुर्दिक्कंनिर्जगाममहीपतिः ॥ ७ ॥ चतुरंगेणमहतासैन्येनपरिवारितः ॥ अट्टालवलयात्कृच्छ्रान्निर्गत्यनगराद्बहिः ॥ ८ ॥

अर्थ—संपूर्णदिशाओंको पूर्ण करतेहुये, तथा चारप्रकारके वज्रकेसदृश और पूर्णकल्पान्तके मेघकेनादके समान गंभीर राजाके प्रस्थानका डंका बजा ॥ ५ ॥ समानकालमें तडकतेहुये सप्तकुलपर्वतोंकेसदृश उत्कट, तथा स्पष्ट चटचटाशब्दोंसे संपूर्ण दिशाओंको जडीभूत करनेवाला वह डंकेका शब्द था ॥ ६ ॥ इन्द्रआदि लोकपालोंकेसमान, तथा मूर्तिमान् नारायणकी चारोंभुजाओंके सदृश चारमूर्तियोंसे वह राजा चारोंदिशाओंमें गया ॥ ७ ॥ बडी भारी चतुरंगिनी सेनासे वेष्टित वह राजा अति ऊंचेनगरके घेरेसे बाहर कठिनतासे निकलकर ॥ ८ ॥

ददर्शात्मबलंरिक्तंबलवद्रिपुमंडलम् ॥ गर्जंतंचलयाकृत्याभीमंयुद्धोद्धतार्णवम् ॥ ९ ॥ शरसीकरनीरंध्रंमकरव्यूहसंकुलम् ॥ वारणव्यूहवलितंतरंगव्यूहविस्तृतम् ॥ १० ॥ चक्रावर्त्तवहद्व्यूहकल्लोलकलि

तांतरम् ॥ चलद्रथशतावर्त्तपताकालहरीगणम् ॥ ११ ॥ प्रस्फुरच्छत्रफेनाढ्यंहयहेषितफीत्कृतम् ॥ समुल्लसद्धेतिजलंकचद्धाराकरंपरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अपनी सेनाका निर्बल तथा चंचल कृत्याके सदृश भयंकर और युद्धार्थ उद्धत समुद्रके तुल्य गर्जतेहुये बलवान् शत्रुमण्डलको देखा ॥ ९ ॥ तथा बाणरूपी जलकणसे पूर्ण, मकरकी रचनासे व्याप्त, मातंगोंसे वेष्टित और तरंगोंके सदृश विस्तृत शत्रुमंडलरूपी समुद्रको राजाने देखा ॥ १० ॥ तथा चक्र और आवर्तोंकेसमान चलतीहुई सेनाओंकी रचनाओंसे तथा वीररूपी तरंगोंसे व्याप्त, चलतेहुये असंख्य रथरूपी आवर्तयुक्त और पताकारूपी तरंगसमूहसहित शत्रुमंडलरूपी समुद्रको राजाने देखा ॥ ११ ॥ देदीप्यमान छत्ररूपी फेनोंसे पूर्ण, घोडोंकी हिनहिनाहट रूपी जलचारियोंके फूंफकारसे भयंकर, शोभायमान अस्त्ररूपी जलसे पूर्ण और उनकी दीप्तिरूपी धाराओंका उत्तमस्थान शत्रुमण्डलरूपी समुद्रको राजाने देखा ॥ १२ ॥

तरत्तरलमातंगतुरंगौघतरंगकम् ॥ हेत्यंभसिकचत्पापमुखद्गुलुगुलोदरम् ॥ १३ ॥ दरीदलनसंक्षुब्ध मरुज्जनितघुंघुमम् ॥ नतोन्नतकृताद्रींद्रमहास्पंदशरीरकम् ॥ १४ ॥ मज्जन्मातंगतुरगहेलाहतमहीधरम् ॥ अपारविचरत्पूरकल्लोलालमहाजलम् ॥ १५ ॥ अकालकल्पांतदशासमुत्थानघनाकृतिम् ॥ आक्रांतरोदसीरंध्ररुधिरैकमहार्णवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा चंचल हांथी और तुरंगोंके समूहरूपी तरंगोंसे पूर्ण अस्त्ररूपी जलमें प्रदीप्त पापी म्लेच्छसमूहरूप कालेसर्पोंसे पूर्ण, तथा द्रविडआदि देशके वीरोंकी वार्ताओंसे गुड २ शब्दसहित शत्रुमंडलरूपी समुद्रको देखा ॥ १३ ॥ कंदराओंके दलनसे संक्षुब्ध पवनसे उत्पन्न घुंघुमशब्दसहित, तथा पर्वतोंकेसमान छोटेबडे मातंगोंके सदृश शरीरधारी वीरसहित उस शत्रुमंडलरूपी समुद्रको देखा ॥ १४ ॥ डूबतेहुये मातंग और तुरंगसहित लीलासे पर्वतोंकोभी चूर्णकारक और विचरती हुई अपार सेनाके प्रवाहरूपी तरंगोंसे भूषित महाजलसंयुक्त शत्रुमंडलरूपी समुद्रको देखा ॥१५॥ अकालमें कल्पांतकी दशाके आविर्भावके सदृश महाआकारधारी, तथा पृथिवी और आकाशको आक्रमण करनेवाला रुधिरसे पूर्ण वह शत्रुमंडलरूपी समुद्र राजाने देखा ॥ १६ ॥

कचदायुधखंडौघडीनरत्नावृतोदरम् ॥ चलव्यूहचलद्दृषत्यंत्राश्मक्षेपणाश्मकम् ॥ १७ ॥ रत्नसीकरनीहारसंध्याभ्रपटलानतम् ॥ क्वचित्पांसुपयोवाहपीतहेतिपयोधरम् ॥ १८ ॥ तमालोक्यरणांभोधिमगस्त्योस्यभवाम्यहम् ॥ इतिसंचिंत्यमनसासपातुंतंरणार्णवम् ॥ १९ ॥ अस्त्रंसस्मारवायव्यंचतुर्दिक्कं चसंदधे ॥ धनुषिशिखराधारेत्रिपुरांतइवोद्यतः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा प्रदीप्त शस्त्रास्त्रसमूहरूपी रत्नखंडोंसे पूर्ण और चलतीहुई सेनाके व्यूह तथा पाषाण यंत्रसहित॥१७॥ तथा रत्नोंके खंडोंसे नीहारसहित संध्याकालके मेघपटलकेसमान आवृत और कहीं धूलिरूप मेघोंसे पीत अस्त्ररूपी मेघयुक्त ॥ १८ ॥ उस रणरूपी समुद्रको देखकर इस सेनाके लिये मैं अगस्त्यऋषि होजाऊं, ऐसा विचारकरके उस रणसमुद्रको पानकरनेके लिये ॥ १९ ॥ वायव्यअस्त्रको स्मरण किया और धनुषपर बाणको चारोओरसे ऐसे संधान किया जैसे पर्वतोंके आधारभूत मेरुपर त्रिपुरासुरके वधमें उद्यत महादेवजी ॥ २० ॥

आत्मीयदेशसैन्यानांश्रेयोर्थंशांतयेऽनलम् ॥ नमस्कृत्याथजप्त्वाशुसतत्तत्याजदारुणम् ॥ २१ ॥ यथा तथैवतत्याजतस्यसाहायकायसः ॥ पर्जन्यास्त्रंमहास्त्रेशंद्विषदातपशांतये ॥ २२ ॥ तस्मादस्त्रजुषोघोराद्धनुषःपरिनिर्गताः ॥ अष्टमूर्त्तेश्चतुर्दिक्कमाशाकुहरपूरकाः ॥ २३ ॥ निर्ययुर्बाणसरितस्त्रिशूलसरितस्तथा ॥ शक्तीनामुग्रसरितोभुशुंडीसरितस्तथा ॥ २४ ॥

अर्थ—अपनी सेनाके कल्याणार्थ तथा शत्रुके दमनके अर्थ अग्निदेवको प्रणाम करके तथा मंत्र जपके शीघ्र उस दारुण अस्त्रको राजाने त्यागा ॥ २१ ॥ और जिसप्रकार वायव्यअस्त्रको छोडा वैसेही उसकी सहायताके अर्थ तथा शत्रुजनित तापकी शान्तिके अर्थ सब अस्त्रोंके स्वामी पर्जन्यास्त्रभी उसने छोडा ॥ २२ ॥ उस भयंकर दोनों अस्त्रोंसे संयुक्त अष्टमूर्ति धनुपसे निर्गत सब दिशाओंके अन्तरालको पूर्ण करनेवाली ॥ २३ ॥ बाणोंकी त्रिशूलोंकी शक्तियोंकी बन्दुक तथा तोप आदिकी भयंकर नदियां वह चलीं ॥ २४ ॥

मुद्गराणांचसरितःप्रासानांसरितोरयात् ॥ चक्राणांचैवसरितःपरश्वधनदीरयाः ॥ २५ ॥ तोमराणां चसरितोभिंदिपालमहापगाः ॥ पाषाणानांचसरितोवाताकल्पांतशंसिनः ॥ २६ ॥ अशनीनांचसरि

तोविद्युतांसरितस्तथा ॥ जलधारासरित्पूराःखड्गवर्षसमन्विताः ॥ २७ ॥ सनाराचामहावर्षहर्षलोत्पातपीवराः ॥ नागाश्वयुगपर्यंतस्फुटिताद्रीन्द्रजाइव ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा मुद्गरोंकी बर्च्छी तथा भालेआदिकी, चक्र और परशु (फर्से) आदिकी नदियोंके प्रवाह अतिवेगसे चले ॥ २५ ॥ तोमरों (हस्तसे फेकने योग्य दंडाकार अस्त्रों) की, अनेकप्रकारके बन्दुकों, तथा पाषाणोंकी महानदियां चली और कल्पान्तसूचक प्रचंड पवन वहने लगे ॥ २६ ॥ वज्रोंकी तथा विजुलियोंकी नदियां वहीं और खड्गोंकी वृष्टिसहित जलधाराकी नदियोंके प्रवाह अतिवेगसे चले ॥ २७ ॥ तथा बाणोंकी महावृष्टिसहित और महावायुसे वृद्धिको प्राप्त तथा उत्पातके समान अतिपुष्टशरीर सर्प ऐसे निकले जैसे प्रलयमें तडकतेहुये महापर्वतोंसे उत्पन्न रजःकणके समान ॥ २८ ॥

तेनास्त्रवर्षवेगेनधुतःसोरिबलार्णवः ॥ झटित्येवनकालेनपांसुराशिरिवाभितः ॥ २९ ॥ सलिलाशनिशस्त्राणामासारैश्चंडमारुतैः ॥ सरांसीवविसेतूनिसैन्यानिपरिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥ चतुरंगश्चतुर्दिक्कंबलौघःसपराङ्मुखः ॥ ययौप्रावृङ्गिरिणदीमहावाहइवद्रुतः ॥ ३१ ॥ वहत्स्विन्नवृहच्छिन्नपताकाकेतुपादपः ॥ मरीचिपुष्पशबलविलोलासिलतावनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उन अस्त्रोंकी वृष्टियोंसे शत्रुकी सेनारूप वह समुद्र अतिशीघ्रही धूलिकी राशिके समान चारोंओरसे उडगया ॥ २९ ॥ जल, वज्र तथा शस्त्रोंकी महावृष्टियोंसे तथा प्रचंड पवनोंसे शत्रुओंकी सेना चारोंओरसे ऐसे चली जैसे बिना बांधके तडागोंके जल ॥ ३० ॥ यह शत्रुओंकी चतुरंगिनी सेनाओंका समूह पराङ्मुख होके चारों ओरसे ऐसे भगा जैसे वर्षाकालमें पर्वतकी नदियोंका महाप्रवाह ॥ ३१ ॥ तथा वायुके प्रवाहसे बहतेहुये आर्द्र और छिन्नभिन्न पताकारूप वृक्षसहित और मरीचिके पुष्पोंकेसमान हरितवर्णकी चंचल तलवाररूपी लतावनसहित वह शत्रु-सेनारूप पर्वतनदीका प्रवाह वह निकला ॥ ३२ ॥

विलुठत्पुष्टपाषाणाद्दृषद्रक्तद्रवावचः ॥ घोरैर्घुरघुरारावैरलंहृदयभंगदः ॥ ३३ ॥ उह्यमानबृहद्दंतिदंतद्रुमविघट्टनैः ॥ स्फूर्जच्चटचटारावतर्जितोद्गर्जितांबुदः ॥ ३४ ॥ हेतिवृत्तोग्रसंघट्टपुष्पजातझणज्झणः ॥ तरत्तरलसारावतुरंगमतरंगकः ॥ ३५ ॥ रथादिभटचक्रौघशिलाक्रेंकारपीवरः ॥ पदातिरथहस्त्यश्वशिलासंघट्टसंकटः ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा भागनेमें असमर्थ पाषाणवत् स्थूलशरीरवाले वीरोंकी शरीरोंसें निकलतीहुई रक्तोंकी धारासे अनिर्वचनीय, तथा उनमें मूर्छित वीरोंके घोर नादोंसे हृदयको अतिभयंकर वह शत्रुसेनारूप नदीका प्रवाह वेगसे चला ॥ ३३ ॥ तथा बहतेहुये महामातंगोंके दांतोंके संघर्षणोंसे वज्रोंकेसमान चटचटाशब्दोंसे मेघोंकी गर्जनाकोभी तिरस्कार करनेवाला वह शत्रु नदीरूप सेनासमूह भगा ॥ ३४ ॥ तथा अस्त्रोंके पाषाणोंकेसाथ संघट्टरूप नदीतटके वृक्षोंके पुष्पोंमें उत्पन्न भ्रमरोंके झन २ शब्दसहित वह शत्रुसेनारूप नदीका प्रवाह वह चला ॥ ३५ ॥ रथादि, तथा वीर और चक्रोंके समूहोंसे पाषाणशिलाओंके साथ संघट्टरूपी मेडकोंके शब्दोंसे स्थूल, तथा पैदल, रथ, हांथी और घोडोंके शिलाओंकेसाथ संघट्ट होनेसे अति भयंकर वह शत्रुसेनारूपी पर्वत नदीका समूह भगा ॥ ३६ ॥

कटुचंकारचीत्कारक्रेंकारपरिपीवरः ॥ मृतामृतावयमितिघनकोलाहलाकुलः ॥ ३७ ॥ सेनावारिमहावर्त्तचलद्गुलुगुलारवः ॥ रक्तसीकरनीहारसंध्यांबुदवितानकः ॥ ३८ ॥ हेतिवीचिवटाच्छिन्नवारिवामनवारिदः ॥ वर्षपंकिलभूपीठतटखंडनमंडितः ॥ ३९ ॥ कुंतशूलगदाप्रासवहत्तालतलाद्भुतः ॥ साक्रंदभीरुजनताप्रतप्तमृगपोतकः ॥ ४० ॥

अर्थ—कानोंको दुःखदायी चिग्घाररूपी मेडकके शब्दोंसे पुष्ट, और हम मरे, हम मरे इत्यादि भयंकर कोला-हलोंसे व्याप्त वह शत्रुओंकी सेनारूप नदीका समूह भगा ॥ ३७ ॥ सेनारूपी जलके महावर्तके चलनेसे गुड २ शब्दसं-युक्त, तथा रक्तोंकी धारारूपी निहारसे संध्याकालके मेवमंडलके सदृश वह शत्रुओंकी सेनारूपी प्रवाह चला ॥ ३८ ॥ तथा तरंगोंसे वटवृक्षोंके सदृश जलसे छिन्नभिन्न वामन (छोटेवी) रूपी मेवसंयुक्त, तथा रक्तोंकी वृष्टिसे पंकयुक्त भू-तलके तटोंके खंडनसे शोभित वह शत्रुसेनासमूह भगा ॥ ३९ ॥ तथा भागते हुये बर्च्छों, भाला, त्रिशूल और गदाधारी वीररूपी वहते हुये ताल वृक्षोंके वनके समान अद्भुत, तथा करुणाजनक रोदनसहित भीरु (डरपोंक) जनसमूहरूपी संतप्तबालहरिणोंसे व्याप्त वह शत्रुसेनारूपी पर्वतीय नदीका समूह भगा ॥ ४० ॥

मृतहस्त्यश्वयोधौघजीर्णपर्णनिरंतरः ॥ पिष्टदेहवसामांसपंकसंजातकर्दमः ॥ ४१ ॥ चूर्णीकृतखुरा पिष्टमहास्थिघनसैकतः ॥ उह्यमानशिलापूरकाष्ठकोटिकटंकटः ॥ ४२ ॥ उद्गर्जत्प्रलयांभोदैर्वहत्प्रल यवायुभिः ॥ प्रपतत्प्रलयासारैःप्रलयाशनिसंकटैः ॥ ४३ ॥ पंकिलाखिलभूपीठैःसलिलोपप्लुतस्थ लैः ॥ सितशैत्यवशाश्यानधाराकृतखपंजरैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मरे हुये हांथी, घोडे तथा वीर आदिके समूहरूप जीर्णपत्रोंसे निरंतर पूर्ण और पीसे हुये देहोंकी चर्बी मांससे उत्पन्न कर्दमसहित वह शत्रुसेनारूप नदीसमूह भगा ॥ ४१ ॥ तथा हांथी आदिके चरणोंसे चूर्णीकृत महाअस्थियों (हड्डियों) से सैकत (वालू) संयुक्त, और वहते हुये काष्ठ और पाषाणोंके संघट्टोंसे कटकटशब्दसहित वह शत्रुओंकी सेनारूप नदीका समूह भगा ॥ ४२ ॥ प्रलयके मेघोंकी गर्जनाओंसे, प्रलयके प्रचंडपवनोंके वहनेसे, प्रलयकी जलधाराके गिरनेसे, तथा प्रलयके वज्रपातके संकटोंसे विपक्षी राजाओंकी भागती हुई सेना शीघ्र नष्ट हुई ॥ ४३ ॥ पंक (कीचड) युक्त संपूर्ण भूतलसे, जलपूर्णस्थलोंसे और प्रबल शीतसे शोषण शून्य जलधाराजनित आकाशस्थ पंजरोंसे शत्रु राजाओंकी भागती हुई सेना शीघ्र नष्ट हुई ॥ ४४ ॥

समग्रनगरग्रामगृहज्वलितवह्निभिः ॥ प्रजाश्वेभपदातीनामाक्रंदेनाभिघर्घरैः ॥ ४५ ॥ रथांभोधरनि र्ह्रादैर्दिविभूमौघनारवैः ॥ चतुर्दिक्कंघनंतारकेंकारस्यचतुष्टयैः ॥ ४६ ॥ विद्युद्वलयविस्तारकारिसंघट्ट घर्षणैः ॥ शरशक्तिगदाप्रासभिंदिपालादिवर्षणैः ॥ ४७ ॥ सर्वदिक्कमसंख्यानिबलानिबलशालिनाम् ॥ भूभृतांविद्रवंत्याशुविनेशुर्मशकौघवत् ॥ ४८ ॥ उद्दामपावकवनोपमहेतिसार्थमेघानलाकुलजनाशनि वर्षपातैः ॥ आसन्बलानिचपलाब्धिजलाबलानिपर्याकुलानिवडवाग्निमिवाविशंति ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने चतुर्दिग्गतबलद्रवणं नामैका- दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

अर्थ—संपूर्ण नगर तथा ग्रामके गृहोंमें प्रज्वलित अग्नियोंसे, प्रजा, तरंग तथा हांथियोंके करुणाजनक घर्घर म हारोदनोंसे ॥ ४५ ॥ पृथिवीपर रथ आदिके और आकाशमें मेघोंके गंभीर नादोंसे, और चारोंदिशाओंमें विपश्चित्के चारों धनुषोंके नादोंसे शत्रुओंकी भागती हुई सेना शीघ्र नष्ट होगई ॥ ४६ ॥ तथा विद्युत् (बिजुली) रूपी वलय (कटक) के विस्तार करनेवाले मेघोंके संघर्षणोंसे, बाण,शक्ति, गदा, बर्च्छी, भाले तथा बन्दुक आदिकी वृष्टियोंसे ॥ ४७ ॥ चारों दिशाओंमें अतिबली शत्रु राजाओंकी सेना भागती हुई शीघ्र ऐसे नष्ट हुई जैसे मच्छरोंके समूह ॥ ४८ ॥ प्रचंड दावानलके समान अस्त्रसमूहोंसे, तथा प्राणियोंको व्याकुलताकारक मेघ अग्नि और वज्रकी वृष्टियोंसे शत्रुओंकी सेना ऐसे व्याकुल होगई जैसे चंचल समुद्रमें वडवानलमें प्रवेश करते हुये बलहीन जलचारी जीव ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विपश्चिदुपा० चतुर्दिग्गतबलद्रवणं नामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥१११॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

जिस २ देशमें उत्पन्न शत्रुओंके वीर जहां २ जैसे २ नष्ट हुये और भगे वह सब इस ११२ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ लोकहारांबरव्यालंचेदिचंदनकाननम् ॥ छिन्नंपरशुधाराभिःपतितंदक्षिणार्णवे ॥ १ ॥ पर्णवत्प्रोह्यपूरेणपारसीकाःपरस्परम् ॥ प्रहरंतोविमोहेनविनष्टावंजुलावने ॥ २ ॥ दर्दुराद्रौ दुरंतेषुदरदीर्णहृदंतराः ॥ दरीरंध्रेषुसंलीनादरदादानवाइव ॥ ३ ॥ चतुरायुधधाराग्रचूर्णनीहारधा रिणः ॥ विद्युद्वलयिनोवातावेल्लितायुधवारिदाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! मनोहर हार तथा वस्त्ररूपी व्याल (सर्प) धारण किये हुये चेदिदेशके वीररूपी चन्दनका बन कुठारोंसे छिन्नभिन्न होके दक्षिण समुद्रमे जाके गिरा ॥ १ ॥ तथा अस्त्रोंके प्रवाहोंसे पत्तोंके समान उडते हुये पारस (पराशिआ) देशके वीर अज्ञानसे आपसमेंही प्रहार करते हुये जाके वंजुलदेशमें नष्ट होगये ॥ २ ॥ और हृदयमें विदीर्ण दरदेदेशके योधा दर्दुरपर्वतपर जाके भयंकर कन्दराओंके छिद्रोंमें लीन होगये ॥ ३ ॥ उससमय

---

१ यह देश काश्मीर और पेशावरके बाजूमें है और पर्वतमय है.

बाण, प्रास, खड्ग और कुठार इन चारप्रकारके शस्त्रोंकी धारारूपी नीहार (कुहिरे) के धारण किये तथा विद्युत्से वेष्टित और शस्त्ररूपी मेघसंयुक्त प्रचंड पवन चलरहे थे ॥ ४ ॥

दंतिनोन्योन्यमाभग्नदंतदेहौघपीडिताः ॥ मृत्यूदरोंभकग्रासपिंडपिंडाइवाभवन् ॥ ५ ॥ तज्जारैवतिकारात्रौरौद्रतोमरताडिताः ॥ रूपिकाभिःपिशाचीभिर्भुक्ताभागीकृतांगकाः ॥ ६ ॥ तालीतमालगहने दशार्णाजीर्णजंगले ॥ गलेपादंनिधायांतःकृत्ताःसिंहैर्गतासवः ॥ ७ ॥ पश्चिमार्णवतीरस्थानालिकेरधरावनौ ॥ यवनाविगतप्राणानिगीर्णामकरोत्करैः ॥ ८ ॥

अर्थ—तब परस्परके प्रहारोंसे भग्नदन्त और रुधिरसमूहसे देहमें पीडित हांथियों मृत्युके उदरको पूर्ण करनेवाले ग्रासके तुल्य खंड २ होगये ॥ ५ ॥ और भयंकर तोमरोंसे ताडित तथा रूपवती पुरुषवंचिका पिशाचियोंसे भुक्त तथा छिन्नदेह दरददेशके योद्धा रैवतक पर्वतमें छिपगये ॥ ६ ॥ और ताली तथा तमाल आदिसे भयंकर जीर्णजंगलमें दशार्णदेशके वीरोंके गलेपर सिंहोंने चरण रखकर प्राणरहित करदिया ॥ ७ ॥ और यवनलोग नारिअरसहित पश्चिम समुद्रके तटपर भागकरगये, वहांपर मकरो (मंगरो) ने निगलके प्राणरहित करदिया ॥ ८ ॥

नाराचनिकरंनीलंनिमेषंनासहञ्छकाः ॥ रमठानलिनीषंडाइवतांडवितासवः ॥ ९ ॥ श्रवणाभोगशृंगाग्रोमहेंद्रोद्रिर्दिविव्रजैः ॥ विद्रुतैर्वलितोनीलैर्जलैर्जलमुचामिव ॥ १० ॥ चामीकरवराकाराभग्नातंगणवाहिनी ॥ मृताहृतांबराचोरैर्भुक्तैकांतेनिशाचरैः ॥ ११ ॥ द्यौरिवर्क्षभरैरासीत्तदासारंभुवस्तलम् ॥ विवर्त्तमानैरभितःकचिद्विज्वलनायुधैः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा शकदेशके वीर कालेलोहके समान बाणोंके समूहको न सहि सके किन्तु भागगये, इसीप्रकार रमठदेशकेभी वीर कमलिनीके दंडकेसमान टूक २ होगये ॥ ९ ॥ श्रवणनक्षत्रकी रचनाकेसदृश तीनशृंगसहित महेन्द्रपर्वत भागेहुये नीलवर्ण वीरोंसे ऐसे घिर गया जैसे मेघोंकेजालसे ॥ १० ॥ सुवर्णकेसदृश आकारवाली तंगणदेशके वीरोंकी सेना भग्न होगई और मरनेसे शेषसेनाके वस्त्रादि प्रथम चोरोंने हरलिया पश्चात् निशाचरोंने एकान्तमें लेजाके खा लिया ॥ ११ ॥ उस तंगणदेशकी सेनाके भक्षण समयमें वहांका भूतल जलतेहुये भ्रमणशील उल्मुकधारी निशाचरोंसे ऐसे शोभित हुआ जैसे नक्षत्रसमूहोंसे आकाश ॥ १२ ॥

धाराधरधरारंध्रप्रतिश्रुद्धनघुंघुमा ॥ जगद्गेहगुहासीत्यौर्घनंगातुमिवोद्यता ॥ १३ ॥ द्वीपांतरजनाश्चक्रैर्जर्जराजीवितंजहुः ॥ मीनजंगलजंबालेजीर्णमत्स्याइवाजले ॥ १४ ॥ यावद्वीपाजिताःकुक्षौसह्याद्रौसमूर्त्तयः ॥ आश्वस्यदिवसान्सप्तयुरायासमंथरम् ॥ १५ ॥ गंधमादनपुन्नागवनकुंजेषुपुंजिताः ॥ विद्याधरकुमारीभिर्गांधाराःपरिरक्षिताः ॥ १६ ॥

अर्थ—और उस विपश्चित् राजाके विजयके समयमें जगत्रूपी गुहाधारी आकाश पर्वतोंकी कन्दराओंमें गर्जनकी प्रतिध्वनियोंसे मानों मृदंगकेसमान गंभीरनादसे उस राजाका यश गानेमें प्रवृत्त हुआ ॥ १३ ॥ चक्रोंकी वृष्टियोंसे जर्जरहोके द्वीपान्तरके लोगोंने अपने प्राणोंको ऐसे त्यागा जैसे जलरहित शैवालमें जर्जर मत्स्य ॥ १४ ॥ सब द्वीपोंके वीर सह्यपर्वतपर सात दिनतक छिपके अपने घावआदिकी औषधिकरके समानशरीर होके बडे परिश्रमसे अपने २ देशको गये ॥ १५ ॥ गंधमादनपर्वतपर पुन्नागकी कुञ्जोंमें विधाधरोंकी कुमारियोंने एकत्र हुये हुवे गांधार देशके वीरोंको रक्षण किया ॥ १६ ॥

हूणचीनकिरातानांमुक्तैस्तैश्चक्रवर्षणैः ॥ कमलानीवलूनानिशिरांस्यभिमुखानिलैः ॥ १७ ॥ निलीपानलिनीनालेकंटकाइवनिश्चलाः ॥ द्रुमेद्रुमेद्रुममयाभयात्तस्यावसंश्चिरम् ॥ १८ ॥ चारुसारंगरंगासुशैलकाननभूमिषु ॥ चतुर्दिक्कंतदापातैःसंपन्नंक्षोभणंघनम् ॥ १९ ॥ कंटकस्थलनामानःकंटकस्थलककेशाः ॥ कंटकस्थलगाआसन्कंटकस्थलमंडले ॥ २० ॥

अर्थ—हूणँ, चीन और किरातदेशके वीरोंके शिर विपश्चित् राजासे मुक्त, चक्र बाणोंकी वृष्टिसे कटगये जैसे अभिमुख पवनोंसे कमल ॥ १७ ॥ निलीपदेशके वीरगण कमलिनीमें कंटककेसमान निश्चलहोके वृक्षोंमें वृक्षमयहोके इस राजाके भयसे चिरकालतक निवास करतेरहे ॥ १८ ॥ उत्तम सारंगआदि पक्षियोंके विहारस्थान पर्वत तथा वनकी भूमियों

---

१ विंध्याद्रिका एक भाग है. २ विंध्याद्रिके आग्नेयीदिशाका एक प्रांत. ३ आरब, तुर्क, काबूली, इराणी, तातार इत्यादि सब मुसलमानलोक. ४ म्लेंछ लोकोंका देश विशेष. ५ सह्याद्रिपर्वत. ६ कंदाहार. ७ जंगलमें रहनेवाले म्लेच्छ विशेष. ८ जंगलमें रहनेवाले भील.

पर वीरोंको चारो ओर उस विपश्चित्के आपातके भयसे क्षोभ प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ कंटकस्थल नामवाले वीर करंज (कांटे) के वनकेसमान भयंकर रूपधारी होके चोरोंके स्थान करंजके वनमेंही भयसे छिपे हुये रहनेलगे ॥ २० ॥

पारसीकाःपरंपूरैःपारंप्राप्यपयोनिधेः ॥ निपेतुःपवनैःपूताःप्रलयेतारकाइव ॥ २१ ॥ ववुरंभोधिकुट्टाकाद्दषदांकटकांकिताः ॥ सर्वदिग्वनलुंटाकावाताःप्रलयशंकिताः ॥ २२ ॥ आसारसाराःपंकांबुप्लुताःसघनघुंघुमाः ॥ आसन्दशदिशोऽदृश्याबहुक्षुब्धायुवानिलैः ॥ २३ ॥ निर्ह्रादकारिभिर्वातैर्वहच्छपच्छपारवम् ॥ प्रससुर्भुविनीहारामहार्णवरयाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—पारसीकदेशके राजा तथा उनके योधा विपश्चित्के अस्त्रोंके प्रवाहोंसे प्रेरित समुद्रके उस तटपर प्राप्त होके समुद्रमें ऐसे गिरे जैसे प्रलयके पवनोंसे प्रेरित तारागण ॥ २१ ॥ समुद्रकोभी क्षोभकारक, पाषाणोंके प्रहारोंसे पर्वतोंपरभी चिन्ह करनेवाले सब दिशाओंमें बनकोंभी तोडने (उखाडने) वाले और प्रलयकी आशंकाजनक प्रचंड पवन उससमय चलतेथे ॥ २२ ॥ शस्त्र तथा वायुसे अति संक्षुब्ध, तथा गंभीर घुंघुमशब्दसहित संपूर्ण दशोंदिशा उस समय वृष्टि धारामात्रसार कीचड और जलसे अदृश्य होगई ॥ २३ ॥ शब्दकारी पवनोंकेसाथ छप २ शब्दपूर्वक भूमिपर नीहार (कुहिरा) का वेग ऐसे चलताथा जैसे महासमुद्रका प्रवाह ॥ २४ ॥

विदूरस्थारथेभ्यश्ववीचिचीत्कारकारिणः ॥ सरोंभस्यनिलैःपेतुःपद्मेभ्यइवषट्पदाः ॥ २५ ॥ आयुधौघेपिचक्रौघात्पादांतबलमाविलम् ॥ रजोराशिरिवासारेनसमर्थपलायने ॥ २६ ॥ हूणाआमस्तकंमग्नाउत्तरार्णवसैकते ॥ क्लिन्नास्तत्रैवपंकांतःपूरणाविलशूलवत् ॥ २७ ॥ तीरैलावनलेखासुशकाःपूर्वपयोनिधेः ॥ नीताबद्धादिनंमुक्तानगतायमसादनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—दूरस्थितभी वीर वायुके आघातोंसे चिग्घार करतेहुये रथोंपरसे तडागके जलमें ऐसे गिरे जैसे पवनोंके झोंकोंसे भ्रमर ॥ २५ ॥ उनके पैदल सेना शस्त्रोंके समूह होनेपरभी विपश्चित् राजाके चक्रोंके समूहसे अश्रुपूर्णहोके भागनेमें ऐसे असमर्थहुये जैसे धाराके गिरनेपर धूलिकीराशि ॥ २६ ॥ हूण (अङ्ग्रेज लोग) मस्तकपर्य्यन्त उत्तरसमुद्रकी रेतमें निमग्न होगये और वहांही कीचडमें ऐसे छिन्नभिन्न होगये जैसे मृत्तिकामें गढाहुआ लोहका शूल ॥ २७ ॥ और शकदेशके वीर पूर्वसमुद्रके तटके इलायचीके वनोंकी पंक्तिमें प्राप्त कियेगये. वहांपर विपश्चित्ने उनको दिनभर बंधवारक्खा पश्चात् दयासे छोडवादिया इससे यमलोक को नहींगये ॥ २८ ॥

मंदंमद्रामहेंद्राद्रौक्रंदंतःपतितादिवः ॥ आश्वासितामुनिवरैर्निजाश्रममृगाइव ॥ २९ ॥ प्रविष्टायाचनंसह्येलब्धाःसुरबिलाद्वयम् ॥ अनर्थेनार्थआयातिकाकतालीयतःक्वचित् ॥ ३० ॥ पतितादर्दुरारण्येदशार्णाजीर्णपर्णवत् ॥ भुक्त्वाविषफलान्यज्ञामृतास्तत्रैवतेस्वयम् ॥ ३१ ॥ विशल्यकरणींभुक्त्वाकाकतालीययोगतः ॥ हिमाद्रौहैहयायाताग्रहंविद्याधराइव ॥ ३२ ॥

अर्थ—और मद्रदेशके वीर धीरे २ महेन्द्रपर्वतपर पहुंचे पुनः उस ऊंचेस्थानसे गिरे और श्रेष्ठमुनियोंने उनको आश्रमके मृगकेसमान आश्वासन (शांत) किया ॥ २९ ॥ और सह्यपर्वतमें प्रविष्ट वीर भाग्यसे मुक अंबिका (देवी) के समीप प्राप्तहुये वहां प्रार्थनाकरनेसे ऐहिक और पारलौकिक दोनों मनोरथ सिद्धहुये, क्योंकि दैवसंयोगसे कहीं २ अनर्थमेभी अर्थसिद्धि होजातीहै ॥ ३० ॥ और दशार्णदेशके वीर दर्दुरपर्वतके अरण्यमें जीर्ण पत्रोंकेसमान प्राप्तहुये, वहां उन मूर्खोंने विषके फलोंको खाके स्वयं मरगये ॥ ३१ ॥ हैहय देशके योधा हिमालयपर पहुंचे वहां दैवयोगसे विशल्य करिणी (सब पीडानाशक तथा आकाशगमनसिद्धिदायिका) ओषधिको खाकर विद्याधरोंकेसमान आकाशचारी होके अपने २ गृहको चलेगये ॥ ३२ ॥

पृष्ठनृम्लानकुसुमाधेनुर्भिर्गृहमागताः ॥ वंगानाद्यापिदृश्यंतेपिशाचत्वमिवागताः ॥ ३३ ॥ अंगावनफलैर्भुक्तैर्विद्याधरपदप्रदैः ॥ विद्याधरीभिःक्रीडंतिदिविविद्याधराःस्थिताः ॥ ३४ ॥ तालीतमालखंडेषुपतिताःपातितांगकाः ॥ पारसीकागतामोहंभ्रमाद्वैमानिकाइव ॥ ३५ ॥ तरलासारमातंगंपतिततंगणांगणे ॥ अंगैरंगकलिंगानांचतुरंगंबलंहतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार वंगदेशके योधाभी पृष्ठलग्न मनुष्योंकेसमान म्लानमाला धारण कियेहुये बाणोंके व्यय (खर्च) होजानेसे केवल धनुषमात्र लेके अपने २ गृहपर आये और लज्जासे आजतक बाहर न निकले ॥ ३३ ॥ और अंगदेशके वीर विद्याधरपदको देनेवाले फलोंकों खाकर विद्याधर शरीरसे स्वर्गमें विद्याधरियोंकेसाथ क्रीडा करतेहैं ॥ ३४ ॥ और

---

१ यह देश हिंदुस्थानके वायव्य कूणमें है. २ बंगाला. ३ बंगालका एक भाग कर्णकी राजधानी.

पारसीकदेशके वीर ताली और तमालोंके वनोंमें गिरे, वहांपर शत्रुओंसे मर्दितशरीर होके भ्रमसे वैमानिकके सदृश होगये॥ ३५॥ हे प्रिय रामजी! कलिंगोंकी मत्त तथा चंचल मातंगोंसहित चतुरंगिनी सेना अंगदेशके वीरोंसे ताडित होके तंगणदेशमें जाके गिरी॥ ३६॥

क्रमत्यरिबलेसाल्वाःशरशैलोदकोदरे॥ पतिताःप्रभुणासार्धमद्याप्येवोपलाःस्थिताः॥३७॥ असंख्याः प्रपलायंतःककुभंककुभंप्रति॥ नराःसरत्तरंगेषुसागरेषुलयंगताः॥३८॥ क्षेत्राटवीपुरजलस्थलशैलकूल कुल्याग्रहारसरिदब्धिभृगुद्रुमेषु॥ ग्रामारपट्टिगिरिकूपगुहागृहेषुभ्रष्टानिकःकलयितुंकुबलानिशक्तः॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो पाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने बलपरिभ्रंशो नाम द्वादशोत्तरशततमःसर्गः॥ ११२॥

अर्थ—और शाल्वदेशके वीर शिलासमूह तथा जलसहित शत्रुकी सेनाके आक्रमण करनेपर अपने स्वामीकेसाथ जाके किसी देशमें गिरे वहांपर अवभी पाषाण होके देवमूर्तियोंकेसमान स्थित हैं॥ ३७॥ असंख्यमनुष्य प्रत्येकदिशामें भागतेहुये चंचलतरंगयुक्त समुद्रोंमें जाके नष्ट होगये॥ ३८॥ हे रामजी! क्षेत्र, वन, नगर, जल, स्थल, पर्वत, नदी, समुद्र, गर्त, वृक्ष, ग्राम, कूप तथा कन्दराओंमें भागतीहुई जो सेनायें नष्ट होगईं उनको भला कौन गणना करसकताहै॥ ३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो०विपश्चि० बलपरिभ्रंशो नाम द्वादशोत्तरशततमःसर्गः॥ ११२॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः॥ ११३॥

शत्रुओंकी शान्तिसे अस्त्र आदि साधनोंका नाश, तथा समुद्रोंका विभव विस्तारसे इस ११३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ बलान्यनुतरंतोथतदित्थंद्रवतांद्विषाम्॥ दूराद्दूरतरंप्रापाश्चत्वारस्तेविपश्चितः॥१॥ सर्वशक्तिमयैकेनचेतनेनेश्वरेणते॥ प्रहितादिग्जयंचक्रुःसर्वएवसमाशयाः॥ २॥ दूरात्तावदविच्छिन्न मनुसस्रुर्बलानिते॥ यावत्तीरंसमुद्राणांप्रवाहाःसरितामिव॥ ३॥ दूरविश्रांतयानेनतेषांतत्सर्वसा धनम्॥ आत्मीयंपरकीयंचक्षीणंकुसरिदंबुवत्॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इसप्रकार भागते हुये शत्रुओंकी सेनाका पीछा करतेहुये चारों राजा विपश्चित् दूरसेभी अधिक दूर प्राप्त हुये॥ १॥ सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर चेतनसे प्रेरित वे चारों महाशय विपश्चित् शरीरोंने दिग्विजय किया॥ २॥ समुद्रपर्य्यन्त निरन्तर घनीभूत सेनाओंकी पीछा उन्होंने ऐसे किया जैसे नदियोंके प्रवाह॥ ३॥ दूरपर्य्यन्त निरन्तर गमनसे विपश्चित् तथा उसके शत्रुओंका जीवनके लिये सब भोजनादि सामग्री, तथा युद्धके साधन अस्त्र आदि प्रतिदिनके व्यय आदि (खर्च) से वर्षाकालकी नदीके जलके समान क्षीण होगये॥ ४॥

आत्मीयान्यन्यदीयानितेषांवीक्ष्यबलान्यलम्॥ क्षीणानीवमुमुक्षूणांपुण्यपापानिधावताम्॥ ५॥ स्व यमस्त्राणिशांतानिकृतकृत्यान्यथांबरे॥ ज्वालाजालानिवक्षीनांदाह्यस्यासंभवादिव॥ ६॥ अलयेषुरथा श्वेभवृक्षौघादिषुहेतयः॥ आसन्निद्रालवोलीनादिनांतेविहगाइव॥ ७॥ तरंगाइवतोयेंतर्नीहाराइववा रिदे॥ मेघावायाविवामोदाव्योमनीवर्निलिल्यिरे॥ ८॥

अर्थ—मुमुक्षुओंके पुण्यपापके सदृश अपने तथा अन्य भागतेहुये शत्रुओंके सेना आदिको पूर्णरीतिसे क्षीण देखकर॥ ५॥ अस्त्रशस्त्र अपनेको कृतकृत्य मानके आकाशमें ऐसे शान्त होगये जैसे दाह्यके अभावसे अग्निकी ज्वालाके समूह॥ ६॥ तर्कश आदि अपने स्थानोंमे, तथा रथ, तुरंग, हांथी, तथा वृक्ष आदि समूहोंमें अस्त्रशस्त्र लीन होके ऐसे चेष्टारहित होगये जैसे दिनके अन्तमें निद्राग्रस्त पक्षी॥ ७॥ जलमें तरंग, मेघमें कुहिरे, वायुमें मेघ, और आकाशमें सुगन्धके समान अपने २ स्थानोंमें सब अस्त्रशस्त्र लीन होगये॥ ८॥

धारापंकतलालीनशांतहेतिजलेचरः॥ नाराचसीकरासारनीहारपरिवर्जितः॥ ९॥ चक्रावर्त्तशतो न्मुक्तोयुक्तःसौम्यतयाच्छया॥ प्रशांतमेघसंरंभतरंगोत्तुंगवर्षणः॥ १०॥ अंतर्लीनर्क्षरत्नौघकोणसं

स्थार्कवाडवः ॥ शून्यतावारिरमलोव्योमैकाब्धिरभूत्पृथुः ॥ ११ ॥ लंबप्रकाशगंभीरंप्रसन्नंकांतिमत्त तम् ॥ रजोविरहितंरेजेखंमनोमहतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—वर्षाकी धाराजनित पंकमें लीन तथा शान्त शस्त्ररूपी जलचरसहित, और बाणरूपी जल तथा नीहारसे रहित वह आकाशरूपी समुद्र उससमय होगया ॥ ९ ॥ अनेक चक्ररूपी भंवरेंहसे मुक्त, निर्मल, शान्तियुक्त, और मेघोंके क्षोभसे उत्पन्न तरंगोंसेभी उच्चवृष्टिसे वर्जित वह आकाशरूपी समुद्र होगया ॥ १० ॥ अन्तर्लीन नक्षत्ररूपी रत्नसमूहसहित, एककोणमें स्थित सूर्य्यरूपी वडवानलसे युक्त, और शून्यतारूप जलसे शोभित वह निर्मल विशाल आकाशरूपी समुद्र शोभाको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और विशाल आत्मा तथा सूर्यके प्रकाशसे गंभीर, निर्मल, शोभायुक्त, व्यापक, तथा धूलि और रजोगुणसे रहित आकाश महात्माओंके मनके सदृश शोभित हुआ ॥ १२ ॥

अथार्णवांस्तेददृशुराकाशस्यानुजानिव ॥ विस्तीर्णान्विमलाकारान्पूरिताखिलदिक्तटान् ॥ १३ ॥ तरंगकणकल्लोलमहागुलुगुलाकुलान् ॥ भूरिसीकरनीहारहारिहारिशरीरिणः ॥ १४ ॥ स्थितानात्मानमास्तीर्यभूमौव्याध्यातुरानिव ॥ श्वसनार्त्तांश्चलद्देहान्विवर्त्तोर्मिमहाभुजान् ॥ १५ ॥ जडानपिस्पंदमयान्कल्लोलाकोटकोटरान् ॥ संसारानिवविस्तीर्णांश्चक्रावर्तदशाकुलान् ॥ १६ ॥ रत्नराशिनटोद्योतपीवरीकृतभास्करान् ॥ शंखराशिविशद्वातशब्दतर्जितघुंघुमान् ॥ १७ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् आकाशके अनुज (छोटे भाई) के समान, विशाल और निर्मल आकारधारी, तथा सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाले समुद्रोंको चारों विपश्चित् और उनके मंत्री आदिने देखा ॥ १३ ॥ तरंगोंके कल्लोलोंसे महागुड २ शब्दसे पूर्ण अधिक जलविहार तथा मेघोंसे मनोहर शरीर और मानो मापनेके लिये भूमिपर अपने शरीरको फैलाके स्थित तरंगोंसे पीडित चंचल देहयुक्त और उछलती हुई तरंगरूपी महाभुजाओंसे युक्त समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ जड होनेपरभी चेष्टासहित, तरंगोंसे कुटिल आशयसहित, तथा चक्रवत् आवर्तोंकी दशाओंसे पूर्ण विशाल संसारोंके समान रत्नोंकी राशिसहित तटोंसे उदयकालके सूर्य्यकोभी स्थूल करनेवाले और शंखोंके समूहोंमें प्रवेश करते हुये वायुके शब्दसे तर्जन घुमघुम शब्द सहित समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ १६ ॥ १७ ॥

मांसलोर्मिघटाघोषघर्घरांबरडंबरान् ॥ वर्तुलावर्तविस्त्यरप्रभ्रमद्विद्रुमद्रुमान् ॥ १८ ॥ मकरव्यूहनिर्ह्रादघर्घरोदरघुंघुमान् ॥ मत्स्यपुच्छच्छटाच्छिन्नमज्जत्पोतकृतारवान् ॥ १९ ॥ उद्ग्रीवकूर्ममकरनिगीर्णोर्णनरोत्करान् ॥ ऊर्मिबिंबितसप्ताश्वसहस्रार्कनभोनिभान् ॥ २० ॥

अर्थ—पुष्ट तरंगोंकी घटाओंसे आकाशमें घर्घरशब्दका आडंबाकारक गोलाकार और विशाल भ्रमण करते हुये मुंगोंके वृक्ष सहित ॥ १८ ॥ मकरों (मंगरों) के समूहके शब्दोंसे घर्घर उदरसे घुंघुम शब्दयुक्त और मछलियोंके पुच्छोंके अग्रभागसे छिन्न भिन्न डुबती हुई नौकाओंसे शब्दसंयुक्त समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ १९ ॥ ऊंची ग्रीवा किये हुये कच्छप तथा मकरोंसे निगले हुये ऊर्णवस्त्रधारी मनुष्य समूहोंसे पूर्ण तथा तरंगोंमें प्रतिबिंबित सूर्य्यसे मानों सहस्रों सूर्य्यसहित आकाशके समान समुद्रको उन्होंने देखा ॥ २० ॥

भांकारकारिपवनपतद्भूत्यततोद्भटान् ॥ ऊर्म्युदस्तमणिव्रातबलाज्झणझणध्वनीन् ॥ २१ ॥ नानाजालैर्बलभुजैर्हेलास्पृष्टार्कमंडलान् ॥ नमदुन्नमदुद्दशिमरत्नमाणिक्यमंडलान् ॥ २२ ॥ उत्फालफेनिलावर्तविवर्तमकरोत्करान् ॥ क्वचित्करिकरोन्नामैःक्षणंवंशवनीकृतान् ॥ २३ ॥ लहरीवल्लरीवालान्पृष्ठतालिषुमाधवान् ॥ क्वचिदंतरविश्रांतसपरिच्छदमाधवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—विशालपालरूपी पटमें भांकारशब्दकारी पवनोंसे बेगसे चलतेहुये अनेकप्रकारके धनसहित महापोत (व्यापारियोंके जहाज) संयुक्त और तरंगोंसे फेंकेहुये मणियोंके समूहोंके पतनके बलसे झनझनध्वनिसहित समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ २१ ॥ नानाप्रकारके प्रदीप्त मणियोंके प्रभाजालरूपी भुजाओंसे लीलापूर्वक सूर्य्यमंडलको स्पर्श करनेवाले तथा नीचे ऊंचे फैलतीहुई दीप्तिसहित माणिक्यआदि अनेक रत्नोंसे पूर्ण समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ २२ ॥ ऊपर उछलतेहुये फेनसंयुक्त भंवरेंहोंके परिवर्तनोंमें मकरसमूहसहित, तथा कहीं २ आलोड करतेहुये हांथियोंके ऊर्ध्वगत शुण्डोंसे क्षणभरकेलिये बांसके बनके तुल्य, तथा तरंगोंमें हांथियोंके पुच्छरूपी लताओंसे शोभित और हांथियोंकी पृष्ठतारूपी भ्रमरकी पंक्तियोंपर फेनपूंजरूपी पुष्पोंसे वसन्तऋतुसहित और कहीं (श्वेतद्वीपमें) आभ्यन्तरप्रदेशमें परिवारसहित विश्राम करतेहुये माधव भगवान्से शोभित समुद्रको उन्होंने देखा ॥ २३ ॥ २४ ॥

एकदेशस्थितासंख्यनानासुरसुरालयान् ॥ तारानवतरंगौघपरिदंतुरितांबरान् ॥ २५ ॥ गुहामशकवद्व र्त्तभीतशाखायिताचलान् ॥ नयतोंबुतरंगौघैर्वेलाद्रीनतिखर्वताम् ॥ २६ ॥ स्वक्षेत्रारोपितानल्परत्नरश्मि पथांकुरान् ॥ शुद्धशुक्तिमुखोन्मुक्तिमुक्तांतरितसैकतान् ॥ २७ ॥ नानारत्नांशुकौशेयसूत्रचित्रांस्तरंगि तान् ॥ विशन्नदींदशादिग्भिःसमाकीर्णान्पटानिव ॥ २८ ॥

अर्थ—और कहीं एकदेशमें स्थित सुर तथा असुरोंके स्थान संयुक्त और प्रतिबिंबित तारागणसहित तरंगोंसे आकाशकोभी हसनेमें उद्यत समुद्रको देखा ॥ २५ ॥ तथा कहीं कंदरामें स्थित मच्छरोंके तुल्य पातालरूपी गर्तमें प्रविष्ट और बाहर आनेमें भयभीत वृक्षोंकी शाखाकेसमान पर्वतोंसे शोभित, तथा महातरंग समूहोंसे तटके पर्वतोंकोभी नीचा देखानेवाले समुद्रोंको विपश्चित्आदिने देखा ॥२६॥ और कहीं निजक्षेत्रमें आरोपित (लगायेहुये) महारत्नोंकी किरणरूपी अंकुरोंके विस्तारसे भूषित और शुद्ध शक्तियों (सीपों) में प्रक्षिप्त मुक्ताओंसे व्यवहित रेतोंसे पूर्ण समुद्रोंको देखा॥२७॥ और नानाप्रकारके रत्नोंको रणरूपी रेशमसे चित्रित तरंगयुक्त और प्रवेश करतीहुई नदियांरूपी तुरीद्वा दिशारूपी दशाओं बनतेहुये महावस्त्रोंकेसमान स्थित समुद्रोंको देखा ॥ २८ ॥

इंद्रनीलतटैर्व्युप्तमुक्ताशुक्तिशतांकितैः ॥ क्वचिद्दर्शयतःकांतशतेंदुकनखश्रियम् ॥ २९ ॥ रत्नांशुजालसं दिग्धास्तरंगादेशबिंबिताः ॥ परिवर्तयतःफुल्लास्तीरतालीवनावलीः ॥ ३० ॥ एलालवंगकंकोलफलमा लांजिघृक्षुभिः ॥ वेलावनलताभ्रष्टामात्तावृत्तीन्जलेचरैः ॥ ३१ ॥ चूतनीपकदंबाग्रविहगान्प्रतिबिंबि तान् ॥ भुंजानैर्विप्रलंभेनकृताच्छोटान्जलेचरैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—विखरे हुये मुक्तापूर्ण अनेक शुक्तियोंसे चिन्हित इन्द्रनीलमणिसे रमणीय अनेक चन्द्रमाके प्रमाणे नखशोभाको दर्शातेहुये समुद्रोंको विपश्चित् आदिने देखा ॥ २९ ॥ रत्नोंकी किरणजालोंसे मिलित, तरंगोंमे प्रतिबिंबित तथा विकसित तटकी तालीवनकी पंक्तियोंको कई गुण बढातेहुये समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥३०॥ तटके बनोंमें लताओंसे पतित इलायची, लवंग तजखरोटोंकी मालाओंको ग्रहणकरनेकी इच्छावाले जलचरोंको तटपर संचार करतेहुये समुद्रोंको सभोंने देखा ॥ ३१ ॥ जलमें प्रतिबिंबित तरंगोंसे आकृष्ट आम्रआदि उत्तमफलोंको खातेहुये जलचरोंसे कृत अंगुलियोंकी ध्वनिसहित समुद्रोंको देखा ॥ ३२ ॥

खेचरप्रतिबिंबेनविद्रवद्भिरितस्ततः ॥ भग्नबंधबृहत्सेतून्क्षणंप्रतिजलेचरैः ॥ ३३ ॥ अमूर्तान्प्रतिबिं बेनहृदयस्थजगत्त्रयान् ॥ चतुरोव्योमविमलान्दिक्षुनारायणानिव ॥ ३४ ॥ अतिगांभीर्यनैर्मल्यविस्तार विभवैर्नभः ॥ निगीर्यसंदर्शयतोहृदयादिवबिंबितम् ॥ ३५ ॥ जलचारिविहंगानांसाकाशंप्रतिबिंबि तम् ॥ आशयैर्दधतःसारैःपद्मान्भृंगमिवात्मगम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कहीं आकाशचारियोंके प्रतिबिंबसे इधर उधर भागतेहुये जलचरोंसे क्षणभरकेलिये भग्न महाबन्धसहित समुद्रोंको देखा ॥ ३३ ॥ प्रतिबिंबद्वारा हृदयस्थ त्रैलोक्यसहित चारोंदिशामें निर्मल चार नारायणकेसमान स्थित समुद्रोंको देखा ॥ ३४ ॥ गांभिर्य्य निर्मलता तथा विस्तारआदिके विभवोंसे प्रतिबिंबित आकाशको मानों निगलकर पुनः हृदयसे बाहर निकालके दर्शातेहुयेकेसमान समुद्रोंको देखा ॥ ३५ ॥ समीपके जलचारी पक्षियोंको प्रतिबिंबद्वारा गर्भमें धारणकरके ऐसे वे समुद्र स्थित थे जैसे कोशगत भृंगको कमल ॥ ३६ ॥

तरंगतरलास्फालमारुतैराहतांबरान् ॥ कंदरोद्गारगंभीरैःकल्पांतजलदालयान् ॥ ३७ ॥ गुहागुलुगुला वर्तनिर्घोषाशनिभीषणान् ॥ भृशंभावयतोग्रस्तानगस्त्यौर्वानलानिव ॥ ३८ ॥ भूरिसीकरपुष्पाणितरं गौघतरूणिच ॥ प्राप्तान्यंबुवनानीवलहरीमंजरीणिखम् ॥ ३९ ॥ सरत्तरंगजालानिप्रोड्डीनप्राणिमंत्यधः॥ आकाशखंडखंडत्वात्पतितानीवविभ्रमात् ॥ ४० ॥ एलालवंगबकुलामलकीतमालहिंतालतालदलतांड वखंडिताग्रे ॥ प्राप्तेपतल्लवणवारिधिदीर्घतीरेरेखाबभावलिनिभांबरशैलमूर्ध्नि ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने समुद्रवर्णनं नाम त्रयोदयोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११३ ॥

अर्थ—चंचल तरंगोंके संचालनमें प्रवृत्त पवनोंसे आकाशकोभी ताडित करनेवाले और आभ्यन्तरगत पर्वतोंकी कंदराओंमें पवनोंके गमनागमनसे अनुमेय गंभीरतासे प्रलयान्त मेघोंके स्थानभूत समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ ३७ ॥ गुहाओंके गुडगुड शब्दोंसे तथा आवर्तोंकी गर्जनाओंसे वज्रकेसमान भयंकर, तथा निजग्रासी अगस्त्य

और वडवानलको कंदराओंमें निगलेहुयेके समान स्थित समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ ३८ ॥ जलकणरूपपुष्पोंसे पूर्णलहरीरूप लतायुक्त और तरंगसमूहरूपी वृक्षोंसे व्याप्त जलमय वनोंको आकाशमें प्राप्त करतेहुये समान स्थित समुद्रोंको उन्होंने देखा ॥ ३९ ॥ तथा मत्स्यादिप्राणियोंसहित चंचल तरंगसमूहोंको शस्त्रोंसे खंड २ किये हुये दर्शातेहुयेकेसमान स्थित चारों दिशाओंमें चारों समुद्रोंको चारों विपश्चित् तथा उनके अनुगामियोंने देखा ॥ ४० ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तरंगोंसे उछलते क्षारसमुद्रोंके महातटपर विपश्चित्की सेना जब प्राप्त हुई उससमय आकाशको चुमनेवाले पर्वतोंके शिखरोंपर इलायची, लवंग, बकुल, आमला, तमाल तथा पुगीफल (सोपारी) आदिसे विभक्त भ्रमरकेसमान श्यामरेखा शोभितहुई ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विपश्चित्संवादे समुद्रवर्णनं नाम त्रयोदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

विपश्चित्के मंत्रीआदि अनुगामियोंने उनको वन, वृक्ष, समुद्र, पर्वत तथा वनचरोंको जो दिखलायाहै. सो वर्णन इस ११४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतेषांतदातत्रततस्तांस्तानदर्शयन् ॥ पार्श्वगावनवृक्षाब्धिशैलमेघवनेचरान् ॥१॥ देवपश्यास्यशैलस्ययेयमभ्रंकषाग्रभूः ॥ समरुन्मध्यदेशादेरश्मदेशमुपेयुषः ॥ २ ॥ इमाबकुलपुन्नाग नालिकेरकुलाकुलाः ॥ विपिनावलयोवांतविविधामोदमारुताः ॥ ३ ॥ लुनात्युपत्यकांवार्धिःशैलशा लिशिलावलीः ॥ वनालीर्लहरीदात्रैरापादफलपल्लवा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! समुद्रके तटोंपर प्राप्त होनेके पश्चात् पिश्चित्के मंत्री आदि पार्श्ववर्तियोंने उनको वन, वृक्ष, समुद्र पर्वत मेघ तथा बनचारियोंको दर्शाया ॥ १ ॥ मंत्री आदि बोले कि–हे राजन् ! मध्यदेशादि पर्वतोंकी ऊपरकी भूमियोंसे अधिक शिलामय देशमें प्राप्त इस पर्वतकी अतिऊंची, शीतल मन्द सुगन्धपवनोंसे युक्त तथा देवगन्धर्वादिके बिहारभूत शिखरभूमिको देखिये ॥ २ ॥ तथा पुन्नाग, बकुल और नारिअल आदिसे पूर्ण, तथा अनेक सुगन्धदायक पवनयुक्त इन बनोंकी पंक्तियोंको देखिये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! देखिये इस पर्वतके शिखरकी भूमि, उत्तम पर्वतोंसे शोभित शिलाओंकी पंक्तियोंको, तथा नीचेसे ऊपरतक पुष्प फल तथा पल्लवोंसे पूर्ण इन बनोंकी श्रेणियोंको समुद्र तरंगरूपी दातियोंसे कैसे छेदन कररहाहै ॥ ४ ॥

अधित्यकासुमेघालीर्नृत्यतांस्वांबुभूभृताम् ॥ धुनोतिजलधिर्बालोगृहधूमावलीमिव ॥ ५ ॥ राकाब्धिपू रसंप्रोतशंखशाखास्तटद्रुमाः ॥ चंद्रबिंबफलाःकल्पवृक्षाइवविभांत्यमी ॥ ६ ॥ रत्नपुष्पभरापूर्णरक्त पल्लवपाणयः ॥ भवंतंपूजयंतीवलतादारान्विताद्रुमाः ॥ ७ ॥ प्रोतोर्मिमकरग्रासैर्दृषद्दंतैर्गुहामुखैः ॥ ऋक्षवानृक्षवद्भूभृद्वत्तेघुरघुरारवम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा देखिये पवनोंसे कंपित वृक्ष लता आदिरूपी भुजाओंसे भाव बताके नृत्य करते हुये और जलकणोंसे सिंचित् इन पर्वतोंपर विश्रान्त मेघमालाओंको समुद्र ऐसे कंपित कररहाहै जैसे बालक गृहके धुमकी पंक्तिको व्यंजनसे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देखिये पूर्णिमाको चन्द्रोदय समयमें प्रवृद्ध समुद्रके प्रवाहोंसे प्रक्षिप्त शंखोंसे गुंथित, तथा चन्द्रबिंबके अमृतरससे पूर्णफलोंसे शोभित ये वृक्ष कल्पतरुके समान शोभित होरहे हैं ॥ ६ ॥ देखिये लतारूप स्त्रियोंसे संयुक्त रत्नोंके समान पुष्प धारण किये हुये और रक्तपल्लवरूप हस्तधारी ये वृक्ष गृह प्राप्त अतिथिरूप आपकी मानों पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ देखिये तरंगोंसे गुंथित मंगरोंको ग्रास करनेवाले शुक्ल पाषाणरूपी दांतोंसे, तथा गुहारूपी मुखोंसे युक्त यह ऋक्षवान्नाम पर्वत भल्लू (भालू) के समान घुर्घुरशब्द धारण करताहै ॥ ८ ॥

महेंद्रोमंद्रगर्जाभिरभिक्षिपतिगर्ज्जतः ॥ पर्जन्यानूर्जितोजन्यःप्रतिजन्यान्यथाजडैः ॥ ९ ॥ चंदनारूषि तःश्रीमान्जेतुंजलधिवेल्लनाः ॥ समुद्यतइवोच्चोसौमल्लोमलयपर्वतः ॥ १० ॥ सर्वतःकचितोऽजस्रंरत्न वीचिभिरंबुधिः ॥ भूरत्नवलयभ्रांत्याप्रेक्ष्यतेसूर्यमार्गगैः ॥ ११ ॥ सरंतिरत्नमूर्द्धानश्चलकानिलपा यिनः ॥ वानपूराःपर्वतकाःसर्पाइवनतोन्नतैः ॥ १२ ॥

अर्थ—देखो यह महेन्द्रनाम पर्वत गंभीर गर्जनाओंसे ऊपर गर्जते हुये मेघोंको ऐसे तर्जित करके नीचे फेंकता है जैसे कोई युद्धकुशल वीर कटुवाक्योंसे अपने शत्रुओंको ॥ ९ ॥ देखिये यह चन्दनोंसे वेष्टित शोभायुक्त तथा अति-

ऊंचा मलयपर्वतरूप मल्ल समुद्रकी तरंगरूप प्रतिपक्षीयोधाओंसे मानो मल्लयुद्ध करनेको उद्यत है ॥ १० ॥ देखिये चारोंओरसे रत्नमय तरंगोंसे जडित यह समुद्र सूर्य्यमार्गगामी आकाशचारियोंसे पृथिवीके रत्नजडित कडेके भ्रमसे देखाजाताहै ॥ ११ ॥ देखिये रत्नवत् पुष्पोंको शिरपर धारण कियेहुये वायुसे कंपित और वनसमूहसहित ये छोटे २ पर्वत नत उन्नत (उपर नीचे होते हुये) सर्पोंके समान मानों चलते हैं ॥ १२ ॥

भ्रमंतोवीचिशृंगेषुमकरेभाःकरोत्कटैः ॥ हरंतिसीकरांभोदामेघानुद्राविताइव ॥ १३ ॥ आवर्त्तवलिताकारःसीकरोत्करकीर्णदिक् ॥ पूर्णत्वात्तुशिरोऽशक्तोम्रियतेत्युत्करःकरी ॥ १४ ॥ विविधप्राणिसंपूर्णाःसजलाद्रिनतोन्नताः ॥ यथैवांभोधयःसर्वास्तथैवद्वीपभूमयः ॥ १५ ॥ आवर्त्तानात्मनोनन्यानप्यन्यानिवभास्वरान् ॥ गृह्यमाणानसद्रूपान्दृश्यमानानपिस्फुटान् ॥ १६ ॥ तरंगतरलानंतर्जडानप्यंबुधिश्चलान् ॥ धत्तेब्रह्मजगंतीवसांतानप्यंतवर्जितान् ॥ १७ ॥

अर्थ—देखिये तरंगोंमें समुद्रके मकर और पर्वतशिखरोंपरके हांथी भ्रमण करतेहुये तरंगोंके निर्गम और प्रवेशोंमें प्रचंड हस्तोंसे तथा खुले हुये मुखोंसे परस्पर ग्रहणके अभिलाषीके समान मेघोंसे अनुद्रुत जलकणवर्षी मेघोंके सदृश दर्शकोंके चित्तको हरते हैं ॥ १३ ॥ देखिये उनमेंसे एक हांथी भवरेहसे जलमें आकृष्ट होके जलसे दिशाओंके पूर्ण होनेके कारण शिर उडानेमें असमर्थ होके ऊपर शुंड किये मररहाहै ॥ १४ ॥ हे राजन्! अनेकप्रकारके प्राणियोंसे पूर्ण और सजल तथा पर्वतोंसे ऊंचे नीचे ये समुद्र ऐसे हैं जैसे सब द्वीपोंकी भूमि ॥ १५ ॥ हे राजन्! देखिये अपनेसे अभिन्नरूपभी तथापि भिन्नके समान असद्रूपभी तथा गृह्यमाण और प्रत्यक्षरूपसे दृश्यमान, और जड होनेपरभी तरंगोंसे चंचल आवर्तों (भवरेहों) को यह समुद्र ऐसे धारण करताहै जैसे ब्रह्म अनेक जगत्को ॥ १६ ॥ १७ ॥

यानंतरिंद्रवद्धानुमणीन्धत्तेंबुधिर्बहून् ॥ मंथापहृतसर्वस्वोदेवेभ्यःपरिरक्षितान् ॥ १८ ॥ दृश्यमानान्महातेजस्तथापातालतोप्यलम् ॥ प्रतिबिंबविभंग्यांतरसत्यानिवगोपितान् ॥ १९ ॥ तेषांमध्यादेकमेकंमत्यहंपश्चिमार्णवे ॥ निक्षेपायक्षिपतियंतेनमन्येदिनंभवेत् ॥ २० ॥

अर्थ—और देवता तथा असुरोंसे मथनसमयमें अपहृतसर्वस्वभी यह समुद्र उनसे गोपित अनेक सूर्य्यकान्त आदि मणियोंको आभ्यन्तरमें ऐसे धारण करताहै जैसे इन्द्र असुरोंसे छिपाके ॥ १८ ॥ और जिन मणियोंको प्रतिबिंबकी रचनासे छिपाके यह धारण करताहै वे महातेजस्वी होनेसे पाताल (अगाध जल) से भी देखपडते हैं ॥ १९ ॥ हे महाराज! उन मणियोंसे प्रतिदिन एकमणि (सूर्य्यरूप) जो पश्चिमसमुद्रमें फेकनेके अर्थ आकाशमें यह (पूर्व) समुद्र फेकता है उसीसे दिन होताहै ऐसा हम लोग मानते हैं ॥ २० ॥

नानादिग्देशपयसामब्धौसाधुसमागमः ॥ यात्रायामिवलोकानांमिथःकलकलान्वितः ॥ २१ ॥ जलेचरावरानूनंसागरार्णवसंगमे ॥ अन्योन्यवेल्लनायुद्धंनकदाचनशाम्यति ॥ २२ ॥ ताम्यत्तिमितरंगाग्रनर्त्तनावर्त्तविभ्रमम् ॥ वलयन्वायुरायातिवांतसीकरमौक्तिकैः ॥ २३ ॥ सरिन्मुक्तालतामध्यमध्यस्थाद्रमणीश्वराः ॥ दीर्घाःखणखणायंतेचंचलाःसर्वतोंबुधेः ॥ २४ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके देशोंके जलोंका इस समुद्रमें कलकलशब्दयुक्त साधु (उत्तम) समागम ऐसे होताहै जैसे यात्रामें सब मनुष्योंका परस्पर मेल ॥ २१ ॥ और हे राजन्! युद्धके उत्साहियोंमेंसे जलचारीही सबसे श्रेष्ठ भान होते हैं क्योंकि पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके समागममें उनका परस्पर मल्लयुद्ध कहीं नहीं शान्त होता ॥ २२ ॥ और हे राजन्! देखिये ग्लानिको प्राप्त तिमिनामक मत्स्योंका जो तरंगोंके अग्रभागके नृत्यमें आवर्तोंका विलास है उसको निगलेहुये जलकणरूप मोतियोंके समूहको समेटता हुवा प्रभुके समान यह वायु आताहै ॥ २३ ॥ तथा हे राजन्! देखिये नदीरूप मुक्तालताओंके मध्यमध्यमें स्थित जो मेघरूप श्रेष्ठ माणि हैं वे समुद्रके कंठमें परस्परके अभिघातसे खनखना रहे हैं ॥ २४ ॥

महेंद्राद्रेर्गुहागेहपरावृत्तार्णवाध्वनाम् ॥ भांकारिण्योभुवःसिद्धसाध्यानांसुसुखावहः ॥ २५ ॥ मंदरःकंदरोद्गीर्णैःप्रसरैर्मातरिश्वनः ॥ कंपाकुलवनाभोगःपुष्पमेघांस्तनोतिखे ॥ २६ ॥ चूतनीपकदंबाढ्यगंधमादनकंदरान् ॥ विशंतिमेघहरिणास्तडित्तरललोचनाः ॥ २७ ॥ हिमवत्कंदरोद्गीर्णावल्लीवलयतांडवम् ॥ तन्वानावायवोयांतिविभिन्नाद्वाब्धिवीचयः ॥ २८ ॥

अर्थ—और इस महेन्द्रपर्वतकी भांकारशब्दसे पूर्ण भूमिपर प्राप्त वायु गुहागृहोंसे रति करके समुद्रमार्गसे लोटेहुये सिद्ध तथा साध्योंके रतिश्रम दूर करनेवाला है ॥ २५ ॥ दूसरा कहताहै कि—हे राजन्! देखिये पवनसे कंपित

बनोंसे व्याप्त यह मन्दराचल कन्दराओंसे निकले हुये वायुके प्रवाहोंसे आकाशमें पुष्पवर्षी मेघोंका विस्तार करताहै ॥ २६ ॥ देखिये आम्र नीप और कदम्ब आदिसे पूर्ण गन्धमादनकी कन्दराओंमें विद्युत्रूपी चंचलनेत्रधारी मेघरूपी हरिण प्रवेश करते हैं ॥ २७ ॥ हिमालयकी कन्दराओंसे निकले हुये, तथा मेघ और तरंगोंको पृथक् करनेवाले (शैत्य, मांद्य तथा सौगन्ध्यगुणयुक्त) वायु लताके विलासोंका विस्तार करते हुये वह रहेहैं ॥ २८ ॥

तातचूतकंदबाग्रपरामर्शसुगंधयः ॥ वलयंत्यब्धिकल्लोलान्गंधमादनवायवः ॥ २९ ॥ जलदान्वलयन् वायुरलकालकतांगतान् ॥ इतआयातिपुष्पाभ्रंरचयन्वनवीथिषु ॥ ३० ॥ कुंदमंदारसंदोहमधुरामोद मंथरान् ॥ तुषारसीकरोन्मिश्रानिवात्रकलयानिलान् ॥ ३१ ॥ नालिकेरलतालास्यलब्धतिक्तसुगंधयः॥ पतंतिपवनाःपश्यपारसीकपुरीःपुरा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! देखिये आम्र कदंब आदि पुष्पोंकी सुगन्धोंसे पूर्ण ये गन्धमादनपर्वतके वायु समुद्रकों वेष्टित करते हैं ॥ २९ ॥ कुबेरकी अलकापुरीके सज्जित केशरूपताको प्राप्त मेघोंको वेष्टित करते हुवा, तथा बनके मार्गोंमें पुष्पवर्षी मेघोंकों रचता हुवा यह पवन देखिये इसी और आताहै ॥ ३० ॥ मन्दार तथा कुन्दादिपुष्पोंके मधुर सुगन्धयुक्त होनेसे मन्दगति, और तुषारके कणोंसे मिश्रित वायुको आप इस पर्वतपर अनुभव कीजिये ॥ ३१ ॥ देखिये नारिअरकी लताओंके साथ लास्य विलास करनेसे प्राप्त मद्यकी सुगन्धयुक्त पारसीककी नगरीकीओर बहता है ॥ ३२ ॥

धून्वानाः पुष्पितेशानवनकर्पूरवारिदान् ॥ चालयंतोनिलावांतिकैलासकमलाकरान् ॥ ३३ ॥ करींद्रकुंभनिष्क्रांतमदमंथरमूर्त्तयः ॥ इमेशुकशुकायंतेविंध्यकंदरवायवः ॥ ३४॥ शबरीणांशरीरेषुशीर्णपर्णोत्करेगिरौ ॥ नाराचैःपर्णशबरैर्वनालीनगरायते ॥ ३५ ॥ अब्ध्यद्रिसरिदंभोदवनलेखांगिकादिशः ॥ त्वत्प्रतापबलैरेताहसंतीवार्करश्मिभिः ॥ ३६ ॥ अत्रोपशैलवनवीथिपुपुष्पशय्याविद्याधरीविरचिताः परिवर्णयंति ॥ पार्श्वद्वयस्थपरिवृत्तपदात्समुद्राव्द्यावृत्तमुग्धवनितापुरुषायितानि ॥ ३७ ॥

इतिश्रीवासिष्ठमहारामायणेवाल्मीकीयेदे०मोक्षोपायेषुनिर्वाणप्रकरणेउत्तरार्द्धे अवि०विप० दिग्दर्शनं नामचतुर्दशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! श्रीमहादेवजीके प्रमदवनके केले तथा कर्पूरआदिसे सुगन्धित मेघोंको तथा कैलासपर्वतक कमलसमूहोंको कंपानेवाले पवन चलरहेहैं ॥ ३३ ॥ तथा मत्तगजेन्द्रोंसे निःसृत मदजलके कणसे मंथरशरीर ये विन्ध्याचलकी कन्दराके वायु शुकोंकेसमान अव्यक्तध्वनि करते तथा उनकेसाथ उडते हैं ॥ ३४ ॥ देखिये शबरियोंके वस्त्रोंके लिये पतित पत्रसमूहसहित इस मलयपर्वतपर पत्रपहिरेहुये शबरोंसे तथा उनके बाणोंसे पूर्ण तथा पशुआदिसे युक्त ये वनकी पंक्ति नगरीकेसमान भासतीहै ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! समुद्र, पर्वत, नदी, तथा मेघआदिरूप अंगधारिणी सबदिशा आपके प्रताप और बलसे मानों सूर्य्यके किरणोंसे अन्यलोकोंको हसती हैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! इस पर्वतपर सुरतकेलिये विद्याधरोंसे रचित पुष्पशय्या समुद्रकेतटसे लाक्षारंजित पादोंके चिन्होंसे सूचित करतीहैं कि पुरुषके रतिमें श्रान्त होनेपर अधोदेशसे ऊर्ध्वदेशमें आके मुग्धवनिताने विपरीत रति कीहै ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो० विप०दिग्दर्शनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

इस ११५ सर्गमें चारोंदिशाओंमें वन, पर्वत, वृक्ष, नदी, समुद्र, पवन, पक्षी तथा मेघआदिका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ पार्श्वगाऊचुः ॥ ॥ अत्रोत्तमाशयलतावलयालयेषुलीलाविलोलललनाःकलयंतिगीतम् ॥ उद्दामभावरसविस्मृतवासरेहाविश्रम्यकिंनरगणाःकलकाकलीकम् ॥ १ ॥ एतेहिमाद्रिमलयाचलविंध्यसह्यक्रौंचामहेंद्रमधुमंदरदर्दुराद्याः ॥ दूरस्थितादृशिसिताभ्रपटावहंतिसंशुष्कपर्णलवलांछितलोष्टलीलाम् ॥ २ ॥ अमीदूरालोकव्यवहितमहावर्त्मनिचयाः पुरःप्राकाराणांकुलशिखरिणोबिभ्रतिवपुः ॥ विशंतीरंभोधिंकलयल्ललिताभांतिसरितःपटस्यांतःसक्ताःप्रतनुसितसूत्राइवदशाः ॥ ३ ॥ दशाशाःशैलानामुपरिपरितःप्रावृतघनाघनश्यामाकाराःखगकलकलालापलपिताः ॥ लतामुक्तैःपुष्पैर्ललितवनलेखाभुजलताहसंत्यस्तेराजन्भवनवनिताभांतिपुरतः ॥ ४ ॥

अर्थ—पार्श्ववर्ती बोले कि–हे उत्तम अन्तःकरणयुक्त राजन्! इसपर्वतकी लताकुंजोंमें आसक्त चंचल अंगनाओंसे युक्त किन्नरगण लीलाओंमें उत्तम भाव, संचारीभाव तथा संभोग शृंगारादि रसोंसे दिवसकी चेष्टाओंको विस्मृतहोके किंचित् विश्रामकरके मधुर गीत गातेहैं और सुनतेहैं ॥ १ ॥ देखिये, ये हिमालय, मलय, विंध्य, सह्य, क्रौंच, महेन्द्र, मधु, मन्दर और दर्दुरआदि पर्वत दूर स्थित होनेसे और शुभ्र मेघरूपी वस्त्र धारण किये होनेसे द्रष्टाकी दृष्टिमें शुष्कवस्त्रोंसे आच्छादित पाषाणोंकी शिलाओंकी समता धारण कररहेहैं॥२॥हे राजन्! देखिये ये सप्त कुलपर्वत देखनेमें अतिदूर होनेसे अनेक वस्तुओंसे मार्गमें व्यवहित होकरभी सब ओरसे संलग्न होनेसे नगरकी अठारियोंकेसमान देखपडतेहैं,तथा समुद्रमें प्रवेश करतीहुई नदियां प्रवेशमें शीघ्रतासे वस्त्रमें आसक्त सूतकी दशा (स्सी) केसमान सूक्ष्म भासतीहैं ॥ ३ ॥ तथा हे राजन्! पर्वतोंपर मेघोंको विस्तृत किये, श्यामवर्ण, पक्षियोंकी मधुरध्वनिसे शब्दयुक्त, लताओंसे मुक्त पुष्पोंसे उपलक्षित तथो शोभायमान वनकी लेखारूप भुजायुक्त ये दशोंदिशा मानो आपके अन्तःपुरकी रानियोंको हंसतीहैं ॥ ४ ॥

तालीतमालबकुलाकुलतुंगशृंगमेकीकृताकृतिवनंतरलंविभाति ॥ अभ्याहतंजलनिधेस्तरलैस्तरंगैस्तीरां तलग्नघनशैवलजालकल्पम् ॥ ५ ॥ इतःस्वपितिकेशवःकुलमितस्तदीयद्विषामितोपिशरणार्थिनः शिखरिपत्रिणःशेरते ॥ इतोपिवडवानलःसहसमस्तसंवर्त्तकैरहोविततमूर्जितंभरसहंचसिंधोर्वपुः ॥ ६ ॥ एतेजंबुनदीतटारविकरैराभांतिहेमाखिलग्रामारण्यपुरस्थलीगिरितरुस्थाण्वग्रहारोच्चयाः ॥ ज्वालालीवलितांबरांतरलिहोमुंचंतिभासोभितःसर्वाभूमिपभूरिहैवममरासेव्यास्तिनोमानुषैः ॥ ७ ॥ एतेकदंबवनकंबलमंबुदाभमाभांतिभास्करपथानुगतावहंतः ॥ अस्याचलस्यवसुधेवतटंतवास्तुमासूर्य रोधकनभस्थघनौघशंका ॥ ८ ॥

अर्थ—देखिये ताली, तमाल, तथा बकुल आदिसे व्याप्त उच्चशिखर, दूरसे शिखरोंके सदृश भासमान, पर्वतोंसे एकाकार, पवनसे चंचल तथा समुद्रके तरंगोंसे ताडित वन ऐसे भासताहै जैसे तटसे संलग्न घनीभूत शैवालसमूह ॥ ५ ॥ देखो इस समुद्रका कैसा विशाल, बलवान् तथा भारसहिष्णु शरीर है कि एकओर तो विष्णुभगवान् शयन करतेहैं, एकओर विष्णुके द्वेषी दैत्योंका कुल है, एक ओर शरणार्थी पर्वतरूप पक्षी शयन करतेहैं और एकओर प्रलयकालके पुष्कर आवर्तक मेघोंके साथ वडवानल विराजमान् है ॥ ६ ॥ उत्तरदिशामें प्राप्त विपश्चित् राजासे कोई कहताहै कि हे राजन्! सुवर्णमय सब ग्राम आदिसहित ये जंबुनदीके तट सुर्य्यकिरणसे मिश्रित होके कैसे शोभित होरहेहैं, सुवर्णकी ज्वालाओंकी श्रेणियोंसे वेष्टित आकाशको चूमतेहुये चारोंओर दीप्तिको फेंकतेहैं. हे राजन्! यह संपूर्ण भूमि देवताओंके भोगके योग्य है न कि मनुष्योंके ॥ ७ ॥ हे राजन्! मेघके समान कदंबसमूह कंबलको धारण करनेवाले सूर्य्यमार्गगामी ये पर्वतके ऊपरके स्थान कैसे प्रकाशित होरहेहैं, इसलिये आपकी पृथिवीके समान यह तटभी है यह बुद्धि हो, और सूर्यके गतिके अवरोधक आकाशस्थ मेघसमूह इस के अवरोधक हैं यह शंका नहो ॥ ८ ॥

एषोसौमलयोलयोग्रलवलीवल्लीलसच्चंदनस्फीतामोदमदाद्रसेनतरवोवक्रेक्रियंतेत्रिभिः ॥ सज्वालोद्दहनाक्षसंस्थितकपोलोष्मोदयोत्तांडवेअंगुष्ठांगुलिभिर्यथोष्णककणास्तप्तायथायोषिताम् ॥ ९ ॥ एषोब्धिधौतकलधौततटाधिरूढभोगींद्रभोगपरिवेष्टितचंदनोगः ॥ विद्याधरीवदनपंकजदीप्तिपुंजहेमीकृताखिलशिलोमलयाभिधानः ॥ १० ॥ कूजत्कुंजकठोरगह्वरनदीकत्कारवत्कीचकस्तंभाडंबरमूकमौकुलिकुलःक्रौंचाचलोयंगिरिः ॥ एतस्मिन्प्रबलाकिनांप्रचलतामुद्वेजिताःकूजितैरुद्वेल्लंतिपुराण रोहणतरुस्तंभेषुकुंभीनसाः ॥ ११ ॥ कोमलकनकलतालयविलसितललनाविलोलवलयकृतम् ॥ श्रवणरसायनपानंविततमिहाकर्णयास्यतटे ॥ १२ ॥

अर्थ—दूसरा दक्षिणदिशामें प्राप्त विपश्चित्से कहताहै कि हे राजन्! यह मलयपर्वत ऐसा प्रभावशाली है कि इसकी श्रेष्ठ लताओंसे शोभित चन्दनोंके शुद्ध सुगन्धित रससे चन्दनभूत अन्यभी वृक्ष, देव, मनुष्य तथा असुरोंसें मुखरूपी कमलोंपर भ्रमरोंके सदृश तिलक किये जाते हैं तथा ज्वालासहित अग्निको तृतीयनेत्रमें धारण किये हुये शिवजीके कपोलोंपर उष्णतासहित प्रबल तांडवनृत्यमें उत्पन्न उष्णस्वेदाबिन्दुओंको इस सौगन्ध्ययुक्त शीतल पवनोंसे यह ऐसे शिशिर करताहै जैसे स्त्रियोंके रतिश्रमसे उत्पन्न बिन्दुओंको ॥ ९ ॥ हे राजन्! समुद्रतरंगोंसे धौत सुवर्णमय तटोंपर आविर्भूत सर्पोंसे वेष्टित चन्दनधारी तथा विद्याधरीयोंके मुखकमलोंके प्रकाशसमूहोंसे अन्यशिलाओंकोंभी सुवर्णमय करनेवाला यह संमुख स्थित मलयनाम पर्वत लक्ष्मीका निवासस्थान है ॥ १० ॥ हे राजन्! कूंजते हुये कुंज, कठोर गहन वन, तथा नदियोंके शब्दसहित बासोंके खंबोंके गीतके सुननेमें तत्पर मौनभ्रमरोंसे युक्त यह क्रौंचनाम पर्वत है इसमें बकोंकी पं-

क्तियोंसहित नील मेघप्रिय मयूरों (मोरों) के कूंजनोंसे उद्वेजीत (व्याकुल) सर्प जीर्ण वृक्षोंके कोटरोंमें आरूढ होके छिप जातेहैं ॥११॥ हे राजन् ! इस क्रौंचपर्वतकी कोमल सुवर्णकी लताओंसे रचित कुंजोंमें अपने २ प्रियोंके साथ बिलास करनेवाली ललनाओंके रतिसे उत्पन्न कटकों (कडों) के उत्तम तथा रागियोंके रसायनभूत शब्दोंको सुनिये ॥ १२ ॥

करिकरटगलितमदजलवलितश्चलवीचिचंचरीकचयैः ॥ चर्वितएषकदर्थितइवकणनिकरोविरौतिवारिनिधौ ॥ १३ ॥ पश्यामलेंदुरामृतनवनीतशरीरसुंदरीवलितः ॥ पितुरुत्संगेकुरुतेजललीलांक्षीरवारिनिधौ ॥ १४ ॥ नृत्यंतिमत्तकलकोकिलकाकलीकाःपश्यामलेमलयसानुनिबालवल्ल्यः ॥ लोलालिजालनयनारुणपत्रपाणिपुष्पामधूत्सवविलासविशेषवत्यः ॥ १५ ॥ वंशानांहृदिपर्वतेषुजलधौतोयार्थिनीनांतुयेशुक्तीनांहृदयेविशंतिसमयेवर्षांभसांबिंदवः ॥ तेमुक्ताफलतांव्रजंतिकरिणांकुंभेषुवान्यद्भवेत्शुद्धौमौक्तिकवस्त्युरुत्तमगुणाएतास्त्रिधाजातयः ॥ १६ ॥

अर्थ—हांथियोंके गंडस्थलोंसे गलित मदजलसे मिलित और इसीसे चंचलतरंगोंमें भ्रमरसमूहोंसे चर्वितके समान यह जलकण तिरस्कृतके तुल्य इस समुद्रमें मानों रोदन करताहै ॥ १३ ॥ हे राजन् ! यह निर्मल चन्द्रमा अमृत मथनसे उत्पन्न नवनीत (मक्खन) के समान शरीरधारी और वैसीही तारारूप सुन्दरियोंके साथ क्षिरसमुद्रमें प्रतिबिंबित होकर अपने पिता (क्षीरसमुद्र) के उत्संगमें जलक्रीडा करताहै, इस कौतुकको देखिये ॥१४॥ हे राजन् ! मधुरभाषी कोकिलोंकी मधुरगीतसहित, चंचल भ्रमररूप नेत्रधारिणी, अरुणपत्ररूपी हांथोंमें पुष्पलिंये, तथा वसन्तके विलासोंसे विशेष सुन्दरी ये बाललता देखिये इस निर्मल मलयके शिखरपर नृत्य करती है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! देखिये एक मोतीतो पर्वतोंपर बांसोंके छिद्रोंमें होतीहै दूसरी समुद्रमें जलार्थिनी शुक्तियोंके भीतर स्वातीके बिन्दुओंसे पडनेसे और तीसरी मदस्रावी हाथियोंके गंडस्थलमें होतीहैं, ये तीनोंप्रकारकी मोतियोंकी जाति स्थानके शुद्ध तथा उत्तम होनेसे उत्तमगुण युक्त होतीहैं ॥ १६ ॥

शैलेब्धौपुरुषेवनौजलधरेभेकेशिलायांगजेनानाकारधराभवंतिमणयःकर्माणितेषांविभो ॥ ह्लादोच्चाटनमारणज्वरभयभ्रांतिप्रकाशांधताखेदोत्तापनभूनभोगतिदृशोनाशोविधानंतथा ॥ १७ ॥ वातायनोदरगवाक्षकवाटकक्षाद्वारान्नैरिहपुराण्युदितेपठंति ॥ श्वभ्राभ्रकंदरदरीवनवेणुरंध्रवर्गेणमंदरइवामृतसिंधुमिंदुम् ॥ १८ ॥ एतच्छृंगंहरतिपवनःकिंस्विदित्युन्मुखीभिर्दृष्टोत्साहश्चकितचकितंमुग्धसिद्धांगनाभिः ॥ प्रालेयाद्रेःप्रतितटवनंप्रोत्पतत्यभ्रमूर्द्धवज्रस्तंभोगगनसुतलोत्तोलनायेवभूमेः ॥ १९ ॥ गंगातरंगहिमसीकरशीतलानिविद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥ पुष्पाभ्रसंवलितपुष्पितकाननानिराजन्विलोकयमहेन्द्रगिरेस्तटानि ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रभो ! इसीप्रकारसे पर्वत, समुद्र, मनुष्य, वन, मेघ, मंडूक, पाषाणशिला, तथा गजेन्द्रआदिमें नानाप्रकारके मणिभी होतेहैं और उनके कर्म ये हैं, आनन्द, उच्चाटन, मारण, ज्वर, भय, भ्रम, प्रकाश, अन्धकार, खेद, उत्तापन, और मणिके स्वामीको व्यवहितपदार्थोंका ज्ञान, पृथ्वीपर शीघ्रगति, आशाकगति, भूतभविष्यत्का दर्शन, व्याधि दुर्भिक्षादिका नाश तथा अन्यकृत मंत्र यंत्र तथा कृत्याआदिके प्रतिविधान ॥१७॥ हे राजन् ! इस स्थानमें चन्द्रमाके उदय होनेपर सब नगर गवाक्ष (झरोंके) रूप मुखोंसे, तथा मन्दराचल कन्दरागत तथा वनके बांसोंके छिद्रोंमे प्राप्त पवनकी प्रतिध्वनियोंसे मानो समुद्रसे उत्पन्न चन्द्रमाकी स्तुति करतेहैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! क्या इस पर्वतके शिखरको पवन उडायेजाताहै इस आशंकासे आश्चर्य्यपूर्वक मुग्ध सिद्धाङ्गनाओंसे दृष्ट, हिमालयकेतटोंसे वनके प्रति मेघका पतन ऐसा भासताहै मानों भूमिसे वज्रका स्तंभ आकाशपातालकी गुरुता तथा लघुताकी परीक्षाके लिये उद्यत है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! गंगाके तरंगोंसे हिमके कणके सदृश शीतल, विद्याधर तथा उनकी अंगनाओंसे सेवित सुन्दरशिलासहित और पुष्पमय मेवोंसे मिलित पुष्पित वनसहित महेन्द्रपर्वतके तटोंको देखिये ॥ २० ॥

देशांतरेषुविततानिवनांतराणिपुष्पस्थलान्युपवनान्यथपत्तनानि ॥ तार्थेषुपूतभुवनानिजलानिदृष्ट्वादौर्भाग्यभीतिरपयातिजवानुविद्धा ॥ २१ ॥ शृंगाणिपूरितदिगंतरमंडलानिश्वभ्राभ्रकंदरनिकुंजकुलाकुलानि ॥ व्योमोपमान्यपिचवारिधिकुंडलानिदृष्ट्वागलंतिकुकृतानिबृहत्तराणि ॥ २२ ॥ रम्याश्चंदनवीथयोहिमलयेविंध्येमदांधागजाःकैलासेनृपपादजातिकनकंचंद्रंमहेंद्राचले ॥ दिव्यश्चौषधयस्तुषारशिखरेसर्वत्ररत्नानिवैसंत्यंधाखुवदेषजीर्णसदनेव्यर्थंजनोजीर्यते ॥ २३ ॥ सोत्रतंजगदिवोरुतटाकंवारिणाविवलितंतिमिरेण ॥ प्रस्फुरंतिचयुगांतइवैताविद्युतःशफरिकाइवलोलाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! देशान्तरोंमें विशाल बनोंको, पुष्पपूर्ण स्थानोंको, उपवनोंको, पवित्र नगर, तीर्थ, सजल स्थानोंको देखकर दौर्भाग्यका भय वेगसे भागजाताहै ॥ २१ ॥ हे राजन् ! महात्माओंसे पूर्ण दिग्मंडलसहित श्रीपर्वतादिके

शिखरोंको, पवित्र वापियोंको, हिमालय आदिकी कन्दराओंको, निकुंजोंसे पूर्ण चम्पकादि बनोंको, निर्मल समुद्र और सेतुबन्ध आदि तीर्थोंको देखनेसे मनुष्योंके ब्रह्महत्यादि महा २ पातकभी नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन्! मलयगिरिमें रमणीय चन्दनोंके कुंजयुक्त मार्ग, बिन्ध्यपर मदान्ध गज, कैलासपर उत्तम सुवर्ण, महेन्द्रपर चन्द्रनाम धातु हैं और हिमालयपर दिव्यगुणयुक्त औषधि हैं, और सर्वत्र अनेक रत्न हैं, परन्तु इनके न देखनेसे भाग्यहीन जन अन्ध मूसा के समान व्यर्थही जीर्णगृहमें अपना जीवन बितताहै ॥ २३ ॥ हे राजन्! इससमय यहां ये दिशा मेघरूप अन्धकारसे आच्छादित होके युगके अन्तमें जलसे वेष्टित अन्तरिक्षलोकपर्य्यन्त संपूर्णजगत्‌रूपी महातडागके सहित स्फुरित होरही हैं और उस तडागमें ये चंचल विद्युत् अल्पमत्स्यी (मछली) के सदृश नाचती है ॥ २४ ॥

सावश्यायाश्याननीहारधाराधारोद्गारान्वारिदान्मादयंतः ॥ शीतानीतोद्दामरोमांचचर्चाःप्रोद्यच्छब्दं वांत्यहोवर्षवाताः ॥ २५ ॥ हावातिनीलजलदप्रसरानुसारीवातःकिरन्विटपिपल्लवपुष्पगुच्छान् ॥ धीरोत्करद्रुमवनांतरचारचारुरासारसीकरकदंबकसारसारः ॥ २६ ॥ मारुताःसुरतक्रांतकांतानिःश्वसितैरिमे ॥ वहंतिवृद्धिगंधंचलवंस्वर्गादिवच्युताः ॥ २७ ॥ कुवलयकुवलयविकचनकुसुमलताविदलनोद्यतामृदवः ॥ घनपटपाटनपटवोविधुतोपवनावहंत्यमीपवनाः ॥ २८ ॥

अर्थ—अहो हे राजन्! देखिये, हिमसहित, नीहारधाराको सूक्ष्म करनेवाले, शीतलस्पर्शसे मनुष्योंके रोमांचचर्चाको विस्तृत करनेवाले तथा धाराओंको उगिलनेवाले मेघोंको मदोन्मत्तकारी ये वृष्टिके पवन कैसे वहते हैं ॥ २५ ॥ हा! नीलमेघोंके संचारका अनुसारी, अंकुर तथा बनोंमें चलनेसे सुगन्धयुक्त, और जलकणोंके समूहोंसे धीर यह वायु वहताहै ॥२६॥ हे राजन्! ये वायु सुरतसे श्रमित देवांगनाओंके श्वाससे वृद्धिको प्राप्त पूर्वजन्मकी पुण्य बासनासे किंचित् लेश सुगन्धयुक्त और स्वर्गसे च्युतके सदृश बह रहेहैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! भूमंडलके सब कमलोंके विकासमे, पुष्प लता आदिके दलनमें उद्यत अर्थात् सुगन्धयुक्त, मन्द, तथा मेघरूपी पटोंके विदारणमें समर्थ, और उपवनोंको कंपित करनेवाले ये पवन बहते हैं ॥ २८ ॥

संध्याभ्रलेशानुपयंतिवातानभस्तलेकोमलकंपनेन ॥ नृपांगणेपुष्पविचित्रलेखानुवासितेभृत्यवराइवैते ॥ २९ ॥ क्वचित्कुसुमगंधयःकमलवर्गगंधाःक्वचित्क्वचित्कुसुमवर्षिणोललितकेसरासारिणः ॥ क्वचिद्धिमपांडवोहरितपितलश्यामलावहंतिशिखरानिलाःसुरतमंदघर्मच्छिदः ॥ ३० ॥ क्वचिद्धुंकारकांकारैरंगारनिकरान्करैः ॥ किंकरैर्विकिरत्यर्कोमूर्खसंसर्गवानिव ॥ ३१ ॥ नररसायनतृप्तिविमुक्तयाप्रमदयामदयापितलज्जया ॥ उपगतेवपुषानविषह्यतेविषविमूर्छनयेवसमायता ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे राजन्! आकाशमंडलमें मेघखंडोंको मन्द २ संचालन करते हुये ये पवन ऐसे चलते हैं जैसे पुष्पोंकी विचित्र रेखाओंसे सुगन्धित आपके आंगनमें पुष्पोंको मर्दन करते हुये श्रेष्ठ भृत्य ॥ २९ ॥ हे राजन्! देखिये कहीं तो उत्तम अनेक पुष्पोंके सौगन्ध्यसे पूर्ण, कहीं कमलसमूहोंके सुगन्धसे युक्त, कहीं ललितकेसरयुक्त पुष्पोंकी वृष्टि करते हुये, कहीं हिमसे पांडुरवर्ण, कहीं पर्वतकी धातुओंसे हरित, पीत तथा श्यामवर्ण, तथा सुरतसे थकित अंगनाओंके स्वेदबिन्दुओंको हरनेवाले ये शिखरके पवन बह रहे हैं ॥ ३० ॥ और देखिये कहीं सूर्य्यभगवान् सेवकोंके तुल्य आज्ञाकारी सूर्य्यकान्तमणियोंसे गुहा आदिसे दह्यमान प्राणियोंके हुंकार तथा आक्रन्दनोंसे उपलक्षित अंगारोंको निजकिरणोंसे ऐसे फेंकरहे हैं जैसे दुष्टसंसर्गसे दूषित जन ॥ ३१ ॥ हे राजन्! देखिये नररूपी अमृतसे अतृप्त और मदसे लज्जारहित इस अंगनाने पुनः पुरुषको आलिंगन कियाहै, इससमय सुरतसे निवृत्त होनेकी वक्रोक्तिरूप विषकी मूर्छनासे प्रत्युक्त निजमृत्युके समान नहीं सहसकती ॥ ३२ ॥

वलिततामरसामृदुशीकराःशशिकरोत्करवीचिविभेदिनः ॥ सदहनाइवतापमयाःपुरोविरहिणीषुवनावनिवायवः ॥ ३३ ॥ इहहिपूर्वपयोधितटावटेविकटपत्रपटाःकटकीतटाः ॥ नवमदासवयौवनसंश्रयाः कलयांतिकथंशबरस्त्रियः ॥ ३४ ॥ नवरसासवसारनिशागमक्षयभयातुरचित्ततयांगना ॥ त्यजति कांतमियंनमनागपिद्रुतमितोवलितेवपुरोहिभिः ॥ ३५ ॥ प्रभाततूर्यसुखरैर्दिवसैरिवतर्जिता ॥ हृद्येव स्फुटितानारीनिलीनादयितोरसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे राजन्! देखिये, कमलके परागोंसे मिलित तथा चन्द्रकिरण और तरंगोंको भेदन करनेवाले ये मन्द और शीतल वनभूमिके पवन विरहियोंको तापमय अग्निके सदृश जानपडतेहैं ॥ ३३ ॥ हे राजन्! देखिये इस पूर्वसमुद्रके तटरूप नीचेकी भूमिमें विकट पत्ररूप वस्त्रधारिणी, कांसेके कडोंसे सज्जित तथा नूतनमददायक यौवनसे पूर्ण ये शबरोंकी

स्त्रियां कैसे विलासपूर्वक गमन कररहीहैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! देखिये नवीनसुरतके रसको देनेवाले मदसहित संभोगमें निशाके नाशकेभयसे रागयुक्त प्रियको किंचित्भी न त्यागतीहुई अंगना सन्मुख ऐसे देखपडतीहै जैसे सर्पोंसे वेष्टित चन्दनकी लता ॥ ३६ ॥ तथा देखिये प्रातःकालके शंखआदिके शब्दसंयुक्त दिनसे तर्जितकेसमान निजहृदयमेंही विदीर्ण यह ललना अपने कान्तके वक्षस्थलपर लीन होरहीहै ॥ ३६ ॥

प्रोत्फुल्लकिंशुकैषादक्षिणजलधेस्तटेत्रवनराजी ॥ ज्वलितेवजलतरंगैःपौनःपुन्येनसिच्यतेंबुधिना॥३७॥ अस्यानिर्यात्यनिलैर्धूमाइवकृष्णकेसरांबुधराः ॥ अंगाराइवकुसुमान्युपशांतांगारवच्चखगभृंगाः ॥३८॥ ईदृश्येवविलोकयवनराजीसत्यवह्निनाज्वलिता ॥ गिरिशिरसितूत्तरस्यांदिशिदूरेधूयतेचखेपवनैः॥३९॥ क्रौंचाचलस्यभुविमंथरमेघचक्रगंभीरताररवनर्त्तितबर्हिणीयम् ॥ पश्योत्थितंतुमुलमाकुलवर्षवातव्या धूतपुष्पफलपल्लवकाननीयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे राजन् ! देखिये इस दक्षिणसमुद्रके तटपर विकसित पलाशके पुष्पोंसे प्रज्वलितके सदृश इस वनकी पंक्तिको समुद्र जलकी तरंगोंसे पुनः २ सींचताहै ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! देखिये इस विकसित पलाशपुष्पपूर्ण वनकी पंक्तिके समीपसे कृष्णकेसरको मस्तकपर धारण कियेहुये मेघ धूमकेसमान, पलाशपुष्प अंगारोंके तुल्य और मृग तथा पक्षीगण शान्त अंगारके सदृश निकलरहेहैं ॥ ३८ ॥ और हे राजन् ! दूर उत्तरदिशामें पर्वतके शिखरपरैं इसीके-समान वनोंकी पंक्तिको सत्य अग्निसे प्रज्वलित देखिये, उसको आकाशमें वायु कंपितभी करतेहैं ॥ ३९ ॥ तथा हे राज-न्‌ ! क्रौंचपर्वतकी भूमिपर मंदगति मेघमण्डलके गंभीरनादोंसे नृत्यमें तत्पर मयूरसमूहसहित तथा वर्षाके वायुसे कंपित पुष्प फल और पल्लवोंसे पूर्ण उच्चवनोंके समूहको देखिये ॥ ४० ॥

अस्ताचलेविकटकांचनकूटकोटिसंघट्टनस्फुरितजर्जरचारुसंधिः ॥ खर्वरथःपततिसस्मरवेःसचक्रची त्कारताररतकूबररासएषः ॥ ४१ ॥ भुवनभवनप्राकारेद्रौनिशाकरभेरुकंपरिविकसितंभातंभासामला लिरुपाश्रितः ॥ तदिहजगतांवस्तुश्रेष्ठंनकिंचनविद्यतेविधिरुपहतःकुर्यान्नोयत्क्षणेनकलंकितम् ॥ ४२ ॥ त्रिभुवनहराट्टहासोभुवनमहाभवनएषमंकोलः ॥ क्षीरसलिलावपूरोगगनाब्धेश्चांद्रआलोकः ॥ ४३ ॥ स्पष्टप्रदोषमयमंदरमथ्यमानचंद्रार्णवोल्लसितदुग्धतरंगभंगैः ॥ पश्यप्रभापटलकैःपरिपूरितांगीःपूरैरि वोग्रसरितःप्रसरद्भिराशाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! देखिये अस्ताचलके सुवर्णमय विकट शिखरपर संघट्टनोंसे जर्जर सुन्दरसंधियोंसे युक्त तथा चक्रोंके टूटनेके चीत्कारशब्दसे युक्त है भयंकर मध्यका ध्वनि जिसका ऐसा वही सूर्य्यका रथ अतिनीचेस्थलमें स्फुरितहोके गिरताहै ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मांडरूपी गृहकी अट्टालिका (अटारी) रूप इस उदयाचलपर चारोंओरसे प्रकाशसे पूर्ण मलिनतासे भीत अति मांगलिक चन्द्रमारूप पुष्प उदित हुआहै वहांभी विधातासे प्रेरित कलंकरूप भ्रमर आके प्राप्त होही गया, इससे यह सिद्धहुआ कि ब्रह्मांडोंके मध्यमें ऐसी श्रेष्ठ कोई वस्तु नहींहै जिसको दुष्ट विधाताने कलंकित नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! यह आकाशरूपी समुद्रका जो चन्द्रप्रकाश है क्या वह त्रैलोक्यके स्वामी महादेवजीका अट्टहास है, वा संसाररूप महागृहका सुधा (चूना) लेप है, अथवा क्षीरसागरके जलका शुद्धप्रवाह है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! सन्ध्याकालमें धातुओंके रागोंसे स्पष्ट मन्दराचलसे मथ्यमान चन्द्ररूपी क्षीरसागरके दुग्धमय तरंगोंकेसमान प्रसरणशील प्रभापुंजोंसे शिवजीसे मुक्त श्रीगंगाजीके संचरणशील प्रवाहोंसे पूर्णशरीर सब दिशाओंके देखिये ॥ ४४ ॥

एतेपतंत्यतुलतालकराललोलवेतालबालवलितानिशिगुह्यकौघाः ॥ हूणेश्वरस्यनगराणिनिरस्तशांतिस्व स्तिश्रवादिविकलानिबलेनभोक्तुम् ॥ ४५ ॥ तावद्विभातिगगनेपरिपूर्णचंद्रोयावद्वधूवदनमेतिनसद्मबा ह्यम् ॥ अभ्युद्गतेंगणनभस्यबलाननेंदाविंदोःसिताभ्रशकलस्यचकोविशेषः ॥ ४६ ॥ वृद्धानिचंद्रांशुनवांब राणिगंगौघनिर्धूतशिलान्यमूनि ॥ हिमाततान्युग्रलताजटानितुषारशैलेश्वरमस्तकानि॥४७॥सएषमंदार वनावतंसोदोलाप्सरोगेयविसारिवातः ॥ क्वचिन्मणिद्योतविचित्रचित्रःसंदृश्यतेव्योमनिमंदराद्रिः ॥४८॥

अर्थ—हे उपमारहित राजन् ! ये तालके सदृश भयंकर वेतालबालोंके सहित गुह्यकोंके समूह रात्रिमें स्वस्ति-वाचन तथा शान्तिसे शून्य इसलिये व्याकुल हूणेश्वरके नगरस्थ जनोंको भोगनेके अर्थ बलात्कारसे गिरते हैं ॥ ४५ ॥ हे रा-जन् ! आकाशमें यह पूर्णचन्द्रमा तभीतक शोभा देताहै जबतक गृहके बाहर ललनाका मुख नहीं आता, और आंगन रूपी आकाशमें अंगनाके मुखरूपी चन्द्रमाके उदित होनेपर पराजित तेजहीन चन्द्रमा तथा श्वेतमेघके खंडमें क्या वि-शेषता ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! अतिविशाल, चन्द्रकिरणरूप नूतनवस्त्रधारी, गंगाजीके प्रवाहसे धौतशिलाओंसे पूर्ण,

हिमसे व्याप्त और उग्रलतारूप जटा धारण किये हुये ये हिमालयके शिखर कैसे शोभित होरहे हैं ॥ ४७॥ हे राजन्! देखिये, मन्दारके वनरूपी शिरोभूषण संयुक्त झुलाओंमें आरूढ अप्सराओंके गीतोंका विस्तार करनेवाले पवनसे पूर्ण तथा कहीं २ मणियोंके प्रकाशसे विचित्रचित्रोंसे चित्रित यह मन्दराचल आकाशमें (अतिउच्च) देखपडता है॥ ४८॥

प्रोन्निद्रनीरंध्रशिलींध्रसांद्रपुष्पार्घ्यपात्रध्रमहामहीध्राः ॥ सांद्राभ्रनिर्ह्रादगभीरकुक्षौसर्क्षांतरिक्षश्रियमुद्वहंति ॥ ४९ ॥ इतःसकैलासगिरिर्गरीयसाप्रभाप्रवाहेणमितेनयस्यखम् ॥ शंभोरिवाभातिसुतस्यकुट्टिमंचंद्रोपिचक्षीरसमुद्रगोयथा ॥ ५० ॥ स्थाणूनांछिन्नशाखानांमृण्मयानांचवासवः ॥ संधत्तेपश्यदूराणांवातैर्मुक्तशिखाइव ॥ ५१ ॥ एतेकदंबकुलकुंदसुगंधिवातालिपंतिमांसलतयामकरंदवृष्टेः ॥ घ्राणंघनैःपरिमलैरलिजालनीलाव्यालोड्यमेघपटलैःखमिवाभ्रकायाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे राजन्! घनीभूत विकसित पुष्पोंसे पूर्ण सघन कदलीपत्ररूप पुष्पार्घ्यपात्रोंको धारण किये हुये ये महापर्वत गंभीर मेघनादोंसे पूर्ण अगाधनदियोंसे नक्षत्रमंडलसहित अन्तरिक्षकी शोभाको धारण करतेहैं ॥ ४९ ॥ हे राजन्! यहांसे उत्तरदिशामें कैलासपर्वत देखिये, जिसके व्याप्त प्रभाके प्रवाहसे अधोभागमें आकाश महादेवजीके पुत्र स्कन्दके मुक्ताचूर्णरचित क्रीडागृह कैसे भान होताहै और ऊर्ध्वभागमें तो क्षीरसमुद्रके तुल्य चन्द्रमाभी उसीमें निमग्न भासताहै॥ ५०॥ हे राजन्! देखिये, अतिदूरस्थभी कुठारोंसे छिन्न शाखाठुठोंको तथा अग्निसे भस्मीभूत गृहादिको वृष्टिसे अंकुरकी उत्पत्तिद्वारा मुक्तशिखाके समान रचके यह कौतुकी इन्द्र वायुद्वारा ग्रहण करताहै ॥ ५१ ॥ हे राजन्! कदंब, कुंद तथा बकुल आदिसे सुगन्धित, पुष्परससे पुष्ट तथा भ्रमरोंके समूहोंसे नीलवर्ण होके ये वायु सब सुगन्धित पदार्थोंको मथन करके घनीभूत सुगन्धके साथ प्राणियोंके नासिकाछिद्रमें ऐसे प्रवेश करते हैं जैसे मेघपटल आकाशमें ॥ ५२ ॥

उन्निद्रकुड्मलदलासुवनस्थलीषुसच्छायशाद्वलघनेषुचजंगलेषु ॥ ग्रामेषुसंततफलद्रुमसंकुलेषुलक्ष्मीःस्वयंनिवसतीवनिवासहेतोः ॥ ५३ ॥ वातायनागतलतावृतसौधकोशकोशातकीकुसुमकेसरमाहरद्भिः ॥ आगुल्फकीर्णमुकुलाजिरएषवातैर्ग्रामोविभातिनगरंवनदेवतानाम् ॥ ५४ ॥ उन्निद्रामलचंपकद्रुमलतादोलाविलोलांगनाःकूजन्निर्झरवारयःपरिसरप्रोन्निद्रतालद्रुमाः ॥ उत्फुल्लोज्ज्वलमंजरीसितसतागेहोल्लसद्बर्हिणःपर्यंतोन्नतसाललंबजलदारम्यागिरिग्रामकाः ॥ ५५ ॥ वातालोलविचित्रपत्रलतिकासंपूर्णनीलस्थलाःकूजल्लावककोककुक्कुटघटागायत्पुलिंदांगनाः ॥ बालाव्याकुलतर्णकादधिमधुक्षीराज्यपानोज्ज्वलाःकस्येवामृतमंडपाविरचितारम्यागिरिग्रामकाः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिद्दुपाख्याने विपश्चिदनुचरकृतपदार्थवर्णनं नाम पंचदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११५ ॥

अर्थ—हे राजन्! देखिये, वर्षाकालमें विकसित अनेक पुष्पसे युक्त वनस्थलियोंमें, छाया तथा सघन घास युक्त जंगलोंमें, निरंतर फलपुष्पपूर्ण वृक्षोंसे व्याप्त ग्रामोंमें अपने निवासकी अधिक शोभाके अर्थ मानो लक्ष्मी स्वयं निवास करती है॥ ५३॥ हे राजन्! झरोखोंके मार्गसे प्राप्त अनेक लताओंसे आच्छादित अटारियोंपर पुष्पपरागोंको प्राप्त करनेवाले पवनोंसे एणी पर्य्यन्त पुष्पोंसे व्याप्त यह सन्मुखकी ग्राम देवताओंके नगरके समान शोभित होरहाहै ॥ ५४ ॥ हे राजन्! देखिये विकसित तथा निर्मलपुष्पपूर्ण चंपकवृक्षोंकी लतारूप झुलाओंपर क्रीडा करतीहुई चंचल अंगनाओंसे युक्त, कल्लोल करते हुये झरनोंके जलसे पूर्ण, समीपमें विकसित तालवृक्षोंसे विकसित, उज्ज्वललताओंसे अलंकृत लतागृहोंमें नृत्य करते हुये मयुरोंसे शोभित और उच्च तालवृक्षोंपर लंबमान मेघोंसे भूषित ये पर्वतके ग्राम कैसे शोभित होरहे हैं ॥ ५५ ॥ तथा हे राजन्! वायुसे चंचल, विचित्र फलपुष्पपूर्णलताओंसे नीलस्थल युक्त, कूजते हुये मधुरभाषी कोक, कुक्कुट आदि पक्षियोंसे व्याप्त, गान करती हुई म्लेच्छ ललनाओंसे पूर्ण, बालकोंके पालनसे शान्तवत्ससहित और दधि, मधु, घृत तथा दुग्ध आदि पानसे पुष्ट बालकोंसे पूर्ण ये रमणीय पर्वतके ग्राम मानो ब्रह्माके विश्रामकेलिये अमृतसे पूर्ण मंडपके सदृश रचेगये हैं ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानान्तर्गतविपश्चिदुपाख्याने विपश्चिदनुचरकृतपदार्थवर्णनं नाम पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

संग्राम आकाशसे विरही शिखरयुक्त ग्रामोंका आडंबर तथा गव्हर पर्वत मेघ और मूर्खकाकोंका वर्णन इस ११६ के सर्गमें कियागया है ॥

अनुचराऊचुः ॥ देवपश्यात्रसंग्रामलग्नसीमांतभूभृताम् ॥ कचंतिहेतिसंघाताविसरंतिबलानिच॥१॥ हतान्हतानभिमुखान्वीरान्वीरैःसहस्रशः ॥ आरोप्यारोप्यखंयांतिपश्यपश्यांगनारथैः ॥ २ ॥ विजिगीषोःपुनःप्राप्तेसंकटेप्रकटेरणे ॥ धर्म्यैविराजतेयुद्धंयौवनेसुरतंयथा ॥ ३ ॥ लोकैरनिंदितालक्ष्मीरारोग्यं श्रीसमन्वितम् ॥ धर्म्ययुद्धंपरार्थेनजीवितस्योत्तमंफलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—अनुचर लोग बोले—कि हे राजन् ! देखिये यहांपर संग्राममें तत्पर सीमाके अन्तके राजाओंके अस्त्रोंके समूह प्रदीप्त होरहे हैं, और उनकी चारों प्रकारकी सेना फैल रही है॥ १ ॥ देखिये, रणमें वीरोंसे सन्मुख मारेहुये सहस्रों वीरोंको रथोंपर बैठा २ के अप्सरागण आकाशमें लिये जाती हैं ॥ २ ॥ विजयाकांक्षी बलवान्को शत्रुओंके रण-संकट प्राप्त होनेपर धर्मयुक्तही युद्ध शोभित होताहै ॥ ३ ॥ संसारसे अनिंदित लक्ष्मी, धनसंयुक्त आरोग्यता तथा प्रजाके अर्थ, धर्मपूर्वक युद्ध जीवनके उत्तम फल हैं ॥ ४ ॥

अविरोधेनधर्मस्ययुद्धेसंमुखमागतम् ॥ योधानुरूपंयोहंतिशूरःस्वर्ग्यःसनेतरः ॥ ५ ॥ हस्तस्थितासिवरनीलसरोजदामश्यामोहयोत्थघनरेणुनिशागमोत्र ॥ आलोकयक्रमणमेषकथंकरोतिप्रोन्नामहेतिभरभूषणभाजिलक्ष्म्याः ॥ ६ ॥ एतेकचंतिशरशक्तिगदाभुशुंडीशूलासिकुंतपट्टुतोमरचक्रपूर्णाः ॥ तापाःसतांडवकचप्रचलेचलेध्धौसेहेनवल्गतिभुवीवफणींद्रसंघाः ॥ ७ ॥ पश्यांबरंबलवदंबुधराब्धिपूर्णपश्यांबरंतरलतारकताराहारम् ॥ पश्यांबरंसुघनसक्तमसैकसारंपश्यांबरंविशदचंद्रकरावसिक्तम् ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्मसे अविरुद्ध रणमें संमुख प्राप्त तथा अनुरूप (अर्थात् एक हो तो एकही, रथपर हो तो रथपरसे, शस्त्रधारी हो तो शस्त्र धारण करके) योधाको जो मारताहै वही स्वर्गके योग्य है न कि अन्य ॥ ५ ॥ हे राजन् ! प्रचंड शस्त्ररूप आभूषणोंसे शोभित इस वीरपुरुषके निकट लक्ष्मीके हस्तमें स्थित उत्तम खड्गरूपी नीलकमलकी रज्जुसे श्यामवर्ण तुरंगके खुरोंसे उत्पन्न घनीभूत रेणुरूप अंधकारयुक्त रात्रिका आगमन इस संग्रामभूमिमें कैसे प्रवेश करताहै, अर्थात् रणकी धूलिसे जनित अन्धकारमय इस रात्रिमें लक्ष्मी इस वीरको स्वयं बरती है वा नहीं इस कौतुकको आप देखें ॥ ६ ॥ हे राजन् ! देखिये, बाण, शक्ति, भुशुंडी, त्रिशूल, भाले तथा चक्र आदिसे पूर्ण ये योधागण तांडवनृत्यमें चंचल तृणकाष्ठादिसहित पर्वतपर दावाग्निके सदृश प्रज्वलित होरहेहैं और उनमें शरशक्ति आदिके समूह ऐसे प्रदीप्त हैं जैसे समुद्रके देहसे गर्जना करनेपर उसमेंके महासर्प पृथिवीपर उत्पन्न होके ॥ ७ ॥ हे राजन् ! एक ओर इस आकाशको मेघ तथा समुद्रोंसे पूर्ण देखिये, दूसरी ओर इसको चंचल तारागणरूपी हारसे भूषित देखिये, और अन्य ओर घनीभूत अन्धकारसे नीलवर्ण इस आकाशको देखिये, और अन्य ओर चन्द्रमाके किरणोंसे सिक्त इस आकाशको देखिये ॥ ८ ॥

यत्रानेकसुरासुरास्पदघटातारापदेशंगताऋक्षाणांचयदास्पदंविसरतांसर्वोन्नतानांचयत् ॥ तस्मिञ्छून्यमितिप्रतीतिरधुनाप्यस्तंगतानांबरेकोन्योमार्जयितुंजनोऽजरचितंलोकापवादंक्षमः ॥ ९ ॥ मेघाटोपैःप्रलयदहनैरद्रिपक्षाभिघातैस्तारापूरैरमरदितिजक्षुब्धसंग्रामसंघैः ॥ व्योमाद्यापिप्रकृतिविकृतिनामनायात्यसंख्यैरंतःसाराशयगुणवतांलक्ष्यतेनोमहिम्नः ॥ १० ॥ आंदोलयस्यविरलंगगनार्कमंकेनारायणंचशशिनंचतथेतराणि ॥ तेजांसिभासुरतडित्प्रभृतीनिसाधोचित्रंतथापिनजहासियदांध्यमंतः ॥ ११ ॥ आकाशकाशसितुयत्रशशांकबिंबंत्वत्कीर्णकज्जलतमोमलिनोसितत्त्वम् ॥ संगान्नयन्नयसितत्खलुचित्रमुच्चैःकोनामवांतरमलंमलिनीकरोति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन्! जिस आकाशमें अनेकसुर असुरोंके निवासस्थान विमानोंकी घटा तारा इसनामको प्राप्त हुई है तथा आश्विनीआदि नक्षत्रोंको तथा सर्वोपरिविराजमान सूर्य्यचन्द्रादिकाभी जो निवासस्थान है उस विशाल आकाशमें शून्यताप्रतीति अबतक न गई, और जब महासमर्थ आकाशभी अज्ञरचित अपनी शून्यतारूप निन्दाको न मिटा सका तो अन्य कौन मिटानेको समर्थ है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! देखिये मेघोंकी घटाओंसे प्रलयकालकी अग्नियोंसे पर्वतके पक्षोंके अभिघातोंसे तारागणोंके समूहों तथा देवता और दैत्योंके असंख्य संक्षुब्ध संग्रामोंसे आकाश अबतकभी अपने स्वरूपसे विकारको नहीं प्राप्त होताहै क्योंकि उत्तम विशाल गुणधारी महात्माओंके महिमाका अन्त नहीं देख पडता ॥ १० ॥

हे साधो! आकाश तुम निरन्तर सूर्य्यनारायण तथा उनके परिजन सब देवताओंको, चन्द्रमाको तथा अन्य तेजस्वी ग्रह, नक्षत्र और विद्युत् आदि तेजोंको अपनी गोदमें धारण करतेहो तथापि अपने आभ्यन्तरकी अन्धकाररूप श्यामताको नहीं त्यागतेहो यह आश्चर्य्य है ॥ ११ ॥ हे आकाश! तुम मलिन हो क्योंकि तुमारे छिद्रसे निःसृत चन्द्रबिंबभी कज्जलवत् चिन्हयुक्त होगयाहै जिसमें तुम कलंकामिषसे प्रत्यक्ष मलिन भासते हैं, परन्तु संपूर्णचन्द्रबिंबको तुम मलिन नहीं करसकतेहो यह महाआश्चर्य्य है, अथवा मलिनके संगसे जो आभ्यन्तरमें मलिन है वही बाहरसेभी मलिन होजाताहै और आभ्यन्तरसे निर्मलको कौन मलिन करसकताहै ॥ १२ ॥

पूर्णस्यापिजगद्दोषैःसर्वदैवाविकारिणः ॥ खस्यमन्येबुधस्येवसुखंसर्वार्थशून्यता ॥ १३ ॥ कल्पाभ्रद्रुमवीरुदुन्नतिदृशांकर्त्तासिधर्तासिचआकाशेंदुघनार्ककिन्नरमरुत्स्कंधामराणामपि ॥ सर्वंरम्यमसंकुलाशयसमस्वच्छस्वभावस्यतेयत्त्वेतद्दहनत्वमंगतदहोमुख्यायखेदायनः ॥ १४ ॥ आकाशकाशमसिनिर्मलमच्छमुच्चैराधारउन्नततयोत्तमसुत्तमानाम् ॥ त्वामेत्यकिंतुविरलंकरकाघनोयंलोकंविमर्दयतितेनपरोसिनीचैः ॥ १५ ॥ आकाशकर्षकषएवनिकर्षणंतेमन्येचिरंसमुचितंनतुकिंचिदन्यत् ॥ शून्योसियज्जलधरर्क्षविमानचंद्रसूर्यानिलान्वहसिभासिनचार्थशून्यः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे आकाश यद्यपि तुम संसारके दोषोंसे पूर्णहो तथापि सदा अविकारी होनेसे ज्ञानीके तुल्य सर्वार्थशून्यतारूप सुख तुमको है यह मैं मानताहुं ॥ १३ ॥ आकाश तुम प्रलयकालके मेघोंके तथा उन्नतिशाली वृक्षादिके अवकाश देनेसे कर्ताहो और चन्द्र, सूर्य्य, मेघ, वायुपटल, किन्नर तथा अन्यदेवताओंकेभी आधार हो, इसलिये सम तथा निर्मलस्वभावयुक्त तुमारा सबकर्म रमणीय है, परन्तु सूर्य्यके प्रज्वलनको अवकाश देके जो सन्तापकत्व तुमारा कर्म है यह केवल हमारे खेदकेही लियेहैं ॥ १४ ॥ हे आकाश ! तुम निर्मल, प्रकाशमान, उत्तम तथा अपनी उच्चतासे उत्तम देवादिके आधारभी हो, परन्तु अवकाशसे तुमारा आश्रय लेके पाषाण (विनोले) वर्षी मेघ जो लोगोंको पीडा देताहै इससे तुम अतिनीच हो ॥ १५ ॥ हे आकाश ! कसौटीपर सुवर्णकेसमान तुमारी परीक्षा कसौटीपरही चिरकालतक होनीचाहिये, क्योंकि तुम शून्य होकेभी मेघ, नक्षत्रमंडल, विमान, चन्द्र, सूर्य्य तथा वायुआदिको धारण करतेहो, प्रकाशमान हो और निष्प्रयोजनभी नहीं हो ॥ १६ ॥

अह्निप्रकाशमसिरक्तवपुर्दिनांतेयामासुकृष्णमथचाखिलवस्तुरिक्तम् ॥ नित्यंनकिंचिदपिसद्वहसीतिमायांनव्योमवेत्तिविदुषोपिविचेष्टितंते ॥ १७ ॥ अकिंचनोपिकार्याणिसाधयत्याततःशयः ॥ अंतःशून्यमपिव्योमसर्वस्योन्नतिकारणम् ॥ १८ ॥ नतृणसलिलंनैवग्रामोननामचपत्तनंनचदलभरस्निग्धच्छायस्तरुर्नचसत्प्रपा ॥ तदपिगगनाध्वानंसूर्यःप्रयातिदिनेदिनेविषममपियत्प्रारब्धंतत्त्यजंतिनसात्विकाः ॥ १९ ॥ यामाध्वांतपटेनशीतलरुचिःकर्पूरपूरैःकरैरर्कालोकनवांशुकेनदिवसस्तारौघपुष्पोत्करैः ॥ द्यौरंभोदतुषारवारिकुसुमैःसर्वर्त्तवोभूषयंत्येतेकालकलात्मनोस्त्रिभुवनेव्योमांगणंनाथयोः ॥ २० ॥

अर्थ—हे आकाश ! दिनमें तो तुम प्रकाशयुक्त हो, सायंकालमें संध्याके रागसे रक्तशरीर हो और रात्रिमें कृष्णवर्ण हो तथा सदा कोईभी सद्वस्तु नहीं धारण करते हो, इसलिये सब पदार्थोंसे रहितभी तुम हो, इस हेतु तुमारी माया और तत्वज्ञानीकी चेष्टाको कोई नहीं जानता ॥ १७ ॥ अतिविशालबुद्धि तत्वज्ञानी धनशून्यभी अनेक कार्य्योंको ऐसे करता है जैसे अन्तशून्यभी आकाश सबकी उन्नतिका कारण है ॥ १८ ॥ मार्गमें विश्रामके लिये न तृण है, न जल है, न ग्राम न नगर हैं, न पत्तोंसे पूर्ण सघन वृक्ष हैं और न जलपानके अर्थ पौंशाला है, तथा सूर्य्य प्रतिदिन इस आकाशमार्गसे जाते हैं, क्योंकि मनस्वीजन अन्यके असाध्यभी कार्य्य जो आरंभ करते हैं उसको नहीं त्यागते ॥ १९ ॥ सूर्य्यके प्रकाशरूप नूतनवस्त्रसे दिन अपनेको भूषित करताहै, अन्धकाररूप पटसे शीतल रात्रि कर्पूरके परागके सदृश तारांगणरूप पुष्पोंसे अपनेको भूषित करती है और वसन्त आदि ऋतु अन्तरिक्षमें मेघ तुषार तथा हिमरूपी जलपुष्पोंसे अपनेको भूषित करते हैं, और ये सब मिलकर कालकलाके स्वामी, चन्द्र, सूर्य्यके क्रीडास्थान आकाशरूपी आंगनको भूषित करतेहैं ॥ २० ॥

धूमाभ्ररेणुतिमिरार्कनिशेशसंध्याताराविमानगरुडाद्रिसुरासुराणाम् ॥ क्षोभैरपिप्रकृतिमुज्झतिनांतरिक्षंचित्रोत्थितास्थितिरहोनुमहाशयस्य ॥ २१ ॥ दिग्भित्तिवद्धमिदमूर्ध्वतलांतरिक्षमुर्वीतलंघनपुराचलभूरिभांडम् ॥ विद्याधरामरमहोरगजालकारंलोकौघसंसरणसंघपिपीलिकाढ्यम् ॥ २२ ॥ कालःक्रियाचभुवनंभवनंचिरायनामाधितिष्ठतइवोपवनंविकासि ॥ आशंक्यतेप्रतिदिनंननुनष्टमेवनाद्यापिनश्य

तिचकेयमहोनुमाया ॥ २३ ॥ युगलकम् ॥ खंमन्येपादपादीनांरोधयत्यधिकोन्नतिम् ॥ अकर्त्तुरेवमह तोमहिम्नोदेतिकर्त्तृता ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! महाशयकी स्थिति आश्चर्य्यरूप उन्नत देख पडती है, क्योंकि धूम, मेघ, धूलि, अन्धकार, सूर्य्य, चन्द्रमा, संध्या, तारागण, विमान, गरुड, सुर तथा असुर आदिके संक्षोभसेभी आकाश अपनी स्वभाविक प्रकृतिको नहीं त्यागता ॥ २१ ॥ हे राजन् ! देखिये, दिशारूपी भित्तियोंसे बद्ध, अन्तरिक्षलोकरूपी अटारीसे शोभित पृथिवीरूप अधोभागसे भूषित, मेघ, नगर तथा पर्वतरूपी अनेक गृहके पात्रादिसे पूर्ण, विद्याधर, देवता तथा महा सर्पादि रूपी ऊर्णनाभी जालोंसे व्याप्त और जरायुज, अंडज आदि चारप्रकारके गतिशील प्राणीरूप पिपीलिका और चेटि-योंसे व्याप्त यह त्रैलोक्यरूप एक जीर्णगृह है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! देखिये, इसप्रकारके इस त्रिलोकीरूप गृहको काल तथा क्रियारूप स्त्रीपुरुष ऐसे पालन करते हैं जैसे विकसित बनको मालाकार स्त्रीपुरुष. (माली और मालिन) यद्यपि प्रतिदिनमें नष्ट हुये ऐसी आशंका होती है तथापि प्रवाहरूपसे अबतकभी नष्ट नहींहुये. अहो ! परमात्माकी यह कैसी आश्चर्य्यरूप माया है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! ऐसा मैं मानताहूं कि वृद्धि युक्त वृक्ष आदि सब पदार्थोंकी अधिक उन्नतिको यह आकाशही रोकताहै, क्योंकि जैसे व्यापारशून्य पर्वत मार्ग रोकते हैं यह व्यवहार होताहै ऐसेही कर्ता न रहतेभी महान् पुरुषकी महिमाहीसे कर्तृता उदय होती है ॥ २४ ॥

जगतांयत्रलक्षाणिनभवंत्युद्भवंतिच ॥ तच्छून्यमुच्यतेव्योमधिक्पांडित्यमखंडितम् ॥ २५ ॥ व्योम न्येवप्रलीयंतेव्योमतःप्रोद्भवंतिच ॥ गच्छतोन्मत्ततामेतामीश्वरान्यभिदाकृता ॥ २६ ॥ आयांतियांति निपतंतितथोत्पतंतिसर्गश्रियःकणघटाइवपावकोत्थाः ॥ यत्रामलंतदहमेकमनादिमध्यंमन्येखमेवनतु कारणमीश्वराख्यम् ॥ २७ ॥ आधारमायततरंत्रिजगन्मणीनामंगेबिभर्त्यमितमंतरशेषवस्तु ॥ व्योमै वचिद्वपुरहंपरमेवमन्येयत्रोदयास्तमयमेतिजगद्भ्रमोयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसमें लक्षों ब्रह्मांड उत्पन्न और नष्ट होते हैं उस आकाशको जो शून्य कहते हैं उनके पूर्णपा-ण्डित्यको धिक्कार है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आकाशमेंही सब जीव लीन होते हैं और आकाशसेही सब उत्पन्न होते हैं, इसलिये आकाश और ईश्वर एकही वस्तु हैं, और इस ज्ञानसे अनभिज्ञ ईश्वर आकाशभिन्न है इस भ्रान्तिको प्राप्त पुरुषने आकाशसे भिन्न ईश्वर आदि नाम किये हैं ॥ २६ ॥ अग्निसे स्फुलिंगसमूहके सदृश जिस आदि अन्त मध्य-शून्य निर्मल पदसे अनेक सृष्टिकी शोभा आती जाती है, जिसमें उत्पन्न और नष्ट होती हैं वह चिदाकाश (न कि जड) हम हैं, और नैयायिकको अभिमत ईश्वर जगत्का कारण नहीं है ॥ २७ ॥ हे राजन्! जो प्रमाणशून्य परमात्मा संपूर्ण वस्तुओंको अपने अंगमें धारण करताहै, तथा त्रिलोकीरूपी अनेक ब्रह्मांडरूप मणियोंका आधार है, और जिसमें उदय अस्तमय यह जगत्का भ्रम होताहै वही चिद्रूप आकाश परब्रह्मरूप मैं हुं, ऐसा मैं मानता हुं ॥ २८ ॥

वनावनौवनचरचारुकामिनामनोहरद्रुमगहनेषुगीयते ॥ इतोगिरेःशिरसिविलोक्यतेमुनावियोगिनाप थिवहतारसाकुलम् ॥ २९ ॥ गीतंशृंगतरूच्चपल्लवपुटेनिःश्वस्यसोत्कंठयाकंठाश्लिष्टगिरावियोगहतया विद्याधराणांस्त्रिया ॥ यत्रामात्रतदेषनाथपथिकःसोच्छ्वासमाकर्णयन्दोलांदोलनयेवचंचलधियानोया तिनोनूच्यते ॥ ३० ॥ गायत्यद्रिशिरस्तरौदलपुटेनिःश्वस्यविद्याधरीकाकल्यातिलकंवियोगविधुराबा ष्पाकुलैषापुरः ॥ नाथोत्संगगृहेगृहीतचिबुकंस्मेरंभवच्चुंबनंस्मृत्वास्वाद्यरसायनंहतसमानीतामयैता इति ॥ ३१ ॥ अस्याःप्राग्भवसत्पतिःसमुनिनाशापेनवृक्षीकृतोवर्षद्वादशकंतदेवगणयंत्येषैवसात्रस्थि ता ॥ गायत्युत्कलितातदेवदयितंतंपादपंसंश्रितामार्गेमार्गविहारिणांवदनतोराजन्ममैतच्छ्रुतम् ॥३२॥

अर्थ—हे राजन् ! देखिये ! इस पर्वतके रनभूमिपर कोई सुन्दर कामी वनचर मनोहर वृक्षोंके गहनवनमें गीत गाता है, और दूसरा अधोभागमें जानेवाला यह वियोगी पुरुष उस गीतको सुनकर रागसे अकुलतापूर्वक उस गानेवालेको ऊपरकी ओर देखताहै ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! इस शृंगके ऊंचे वृक्षके पल्लवोंके अग्रभागमें स्थित वियोगसे दुःखित तथा अति उत्कंठित विद्याधरकी यह स्त्री गद्गदकंठसे प्रेमपूर्णवाणीसे जो गीत गाती है, उसको नीचे चलनेवाला यह पथिक ठंढी श्वासके साथ सुनता हुआ झुलामें आन्दोलितके समान चंचलबुद्धिसे वहां स्थितहै, और उसके सहगामीभी आगे चलनेको नहीं कहते ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! पर्वतके शिखरपरके वृक्षके पल्लवपर स्थित, अश्रुसे पूर्ण, वियोगसे महा-दुःखित, यह सन्मुखस्थित विद्याधरी ठंढी श्वास लेकर मधुरस्वरसे यह गाती है कि हे नाथ! आपके कपोल ग्रहणपूर्वक किंचित् हास्यसहित चुंबनरूप अमृतको पुनः २ स्मरण करके मैंने इतने दुःखपूरित वर्षोंको बिताया ॥ ३१ ॥ हे राजन् !

वह वृक्ष पूर्वकालका इस विद्याधरीका पति था, उसी स्थानमें यौवनसे मदोन्मत्त होके गाताथा सो किसी मुनिने किसी अपराधसे उसको १२ बारह वर्षके लिये शापसे वृक्ष करदिया सो उन वर्षोंको गिनती हुई उसी वृक्षरूपपतिके आश्रित होके वहां वह स्थितथी ऐसा मैंने मार्गमें विहार करते हुये कीसीके मुखके सुना है ॥ ३२ ॥

पश्यैषसोऽस्मदवलोकनशांतशापोविद्याधरोविटपितामवमुच्यबालाम् ॥ कंठेकरोतिविटपाकृतिविप्रलंभैस्तैरेवबाहुभिरलंस्फुटपुष्पहासः ॥ ३३ ॥ शिखरिणांकरिणांकुसुमोत्करोविटपिषुस्फुटरोमसुराजते॥ गगनविच्युततारकलीलयाशिखरमेषतुषारसमानया ॥ ३४ ॥ मीनावलीसरभसप्लुतिघट्टितांबुवीचीविलोलविरुवत्कुररीकराला ॥ कावेर्यहोकुसुमशुक्लपटावभातिनिःशंकरंकुकुलसंकुलकूलकच्छा ॥३५॥ भात्यत्रपश्यरविणाकटकेसुवेलशैलस्यकांचनशिलासकलामलश्रीः ॥ वेलावलोलवरुणालयवीचिभंगपर्यस्तवाडवकृशानुकणोपमानम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—सो हे राजन्! वह शाप हम लोगोंके दर्शनपर्य्यन्तही था, देखिये वह विद्याधर अब वृक्षरूपताको त्यागकर स्पष्ट पुष्पके सदृश हास्ययुक्त होके उस विद्याधरीबालाको भुजाओंसे कंठमें लगाके आलिंगन करताहै ॥ ३३ ॥ हे राजन्! देखिये पर्वतरूप हांथियोंपर प्रत्यक्ष वृक्षरूप रोमसमूहोंपर आकाशसे पतित तारागणकी लीलाके समान पुष्पसमूह शोभित होरहाहै ॥ ३४ ॥ हे राजन्! देखिये मत्स्योंकी पंक्तियोंके शीघ्र संभ्रमयुक्त गमनोंसे संभेदित चंचल जलकी तरंगोंमें क्रीडा करती हुई कुररी पक्षियोंसे भयंकर पुष्परूप श्वेतवस्त्रधारिणी, तथा निःशंक रंकनाम मृगोंसे सजलतट प्रदेशोंमें व्याप्त यह कावेरी नदी शोभित होरही है, यह कैसा आश्चर्य्य है॥ ३५ ॥ हे राजन्! देखिये इस सुवेलपर्वतपर सूर्य्यके किरणोंसे प्रदीप्त यह कांचनकी निर्मल शिला ऐसे शोभित होरही है जैसे तटप्रदेशोंमें चंचल समुद्रकी तरंगोंसे व्याप्त वडवानलके कण ॥ ३६ ॥

आसन्नपीनजलदावलितालयानांगेहोपशल्यपरिफुल्लवनद्रुमाणाम् ॥ लक्ष्मीःपलाशपटलावलितांबराणांघोषैकसांसमवलोकयपर्वतेषु ॥ ३७ ॥ उन्निद्रपुष्पपटुपांडुरपुष्पखंडामंदारभांडविशिखंडिकरंडकच्छः ॥ ग्रामाःप्रपातजलजालविलासवाद्यावल्गद्गुहागहनगीतजनाजयंति ॥ ३८ ॥ उन्निद्रकंदलदलांतरलीयमानकूजन्मदांधमधुपोन्मदपामराणाम् ॥ मन्येनसाभवतितुष्टिरिहामराणांयागोकुलेषुगिरिगह्वरिणांनराणाम् ॥ ३९ ॥ भृंगावदोलितलताकुलकाननांतर्गायत्पुलिंददयिताननदत्तनेत्रम् ॥ लीलाकुलागतघृणंगिरिगह्वरेषुकिंघ्नंतिशत्रुमिवमुग्धमृगंकिराताः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे राजन्! इन पर्वतोंपर समीपस्थ पुष्टमेघोंसे वेष्टित स्थानके निवासी, गृहोंकी सीमाओंमें विकासित पुष्पसंयुक्त वृक्षोंसे व्याप्त और पलाशसमूहोंसे वेष्टित आकाशप्रदेशोंसे शोभित अहिरोंके गृहोंकी शोभा देखिये ॥ ३७ ॥ विकसित पुष्पोंसे अतिशुभ्र पुष्पवाटिकासहित, मन्दारवृक्षरूपी अनेक पुष्पपात्रोंसे पूर्ण, मयूरोंके नृत्यस्थान होनेसे जलमयशिशिरप्रदेशसहित और गर्तोंमें ऊपरसे गिरतेहुये जलजालके विलाससे मयूरोंके नृत्यमें वाद्यरूप प्रतिध्वनियोंसे पूर्ण गुहारूपी गृहोंसे संयुक्त ये पर्वतोंके ग्राम स्वर्गकोभी जीतते हैं ॥ ३८ ॥ तथा हे राजन्! इन पर्वतके ग्रामोंमें कुंजयुक्त गौओंके स्थानोंमें बिकसित पुष्पोंके दलोंमें लीन कूजतेहुये पुष्परससे मदान्ध भ्रमरोंको देखनेसे प्रदीप्तकाम तथा सघन पर्वतग्रामके निवासी पामर अहीरस्त्रीपुरुषोंको जो आनन्द होताहै वह स्वर्गके नन्दनबनके विहारी देवताओंकोभी नहीं होता ऐसा मैं मानताहुं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! मृगोंसे संचालित लताओंसे व्याप्तवनोंके भीतर गान करतीहुई व्याधोंकी ललनाओंकी ओर नेत्र कियेहुये मुग्धमृगोंको शृंगारकी चेष्टाओंसे पूर्ण किरातलोग दयारहित होके कैसे मारतेहैं ॥ ४० ॥

नानाविकासिकुसुमोत्करसारलब्धवल्लीदलावलनशीतलिताध्वगांगाः ॥ सांभःप्रथप्रसरणेनतरत्तरंगाग्रामागिरिंद्रगहनेषुजयंतिचंद्रम् ॥ ४१ ॥ कूजन्निर्झरवारयःपरिसरत्प्रोन्निद्रतालद्रुमाहेलोल्लासितपुष्पपल्लववलद्वल्लीवितानांबराः ॥ पर्यंतोन्नतसाललंबिजलदारम्यागिरिग्रामकाश्चंद्राश्वत्थमितावनिशशिपुरस्योद्यानभागाइव ॥ ४२ ॥ आसन्नपीतघनघर्घरमेघनादनृत्यच्छिखंडिनवतांडवविप्रकीर्णैः ॥ ग्रामाःकलापिकुलकोमलबर्हखंडैःप्रोड्डीनचंद्रकमणिप्रकराजयंति ॥४३॥ पार्श्वस्थचारुशशिमंडलमंडनेषुविश्रांतवारिगुरुवारिदवारणेषु ॥ ग्रामेषुयागिरितटेषुविलासलक्ष्मीराज्येषुसाविभववत्सुकुतोविरिंचेः॥४४॥

अर्थ—तथा हे राजन्! नानाप्रकारके विकसितपुष्पोंके समूहोंसे प्राप्त सुगन्धयुक्त वायुसे लताओंके संचालनसे पथिकोंके अंगोंको शीतल करनेवाले और जलसे शैत्यगुणको ग्रहण कियेहुये पवनोंके चलनेसे चंचलतरंगयुक्त जलाशयोंसे पूर्ण ये पर्वतके ग्राम शीतलतादि गुणोंकी अधिकतासे चन्द्रमाकोभी जीतलेतेहैं ॥ ४१ ॥ कूजतेहुये पक्षियोंसे पूर्ण, निर्मल

जलसहित, पवनसे आन्दोलित तालवृक्षसहित, शोभायमान पुष्पपल्लवपूर्ण चंचल लताओंसे लीलापूर्वक आकाशको व्याप्त करनेवाले तथा समीपभागमें उच्चतालवृक्षोंपर लंबितमेघोंसे शोभित चन्द्रनगरकेसमान ये पर्वतके ग्राम अमृतस्त्रावी अश्वत्थयुक्त ब्रह्मलोककी भूमिकोभी जीततेहैं ॥ ४२ ॥ तथा हे राजन् ! समीपमें पीतविद्युत्को धारणकियेहुये गंभीरगर्जनायुक्त मेघोंके नादोंसे नृत्य करतेहुये मयूरोंके कोमलपक्षखंडोंसे व्याप्त होनेसे चन्द्रकमणिके समूहोंसे पूर्ण ये पर्वतके ग्राम सर्वोत्तम हैं ॥ ४३ ॥ तथा हे राजन् ! एक ओर मनोहर चन्द्रमंडलरूप आभूषणसे भूषित तथा दूसरी ओर महामेघमंडलरूप मातंगोंसे शोभित पर्वतोंके तटपर स्थित ग्रामोंमें जो शोभाहै वह विभवयुक्त ब्रह्माके राज्यमेंभी कहां ? ॥ ४४ ॥

स्वामोदनंदनवनांतरसुंदरेषुसंतानकस्तबकहासिनिकुंजकेषु ॥ उन्निद्रमंद्रमधुपाकुलपारिभद्रसांद्रद्रुमेष्वभिरमेगिरिगह्वरेषु ॥ ४५ ॥ हरिणीरावरम्येषुहारिहारीतहारिषु ॥ गिरिग्रामेषुपुष्पेषुपुरेष्विवरतिर्नृणाम् ॥ ४६ ॥ स्फटिकस्तंभसंभाररम्यनिर्झरवारिणि ॥ नृत्यंत्येताःशिखंडिन्यःपश्यास्मिन्ग्रामगह्वरे ॥ ४७ ॥ शिखंडिन्योविलासिन्यःपुष्पभारनतालताः ॥ अत्रनृत्यंतिकुंजेषुरणनिर्झरपुष्करे ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! सुगन्धयुक्त नन्दनबनकेसमान रमणीय, कल्पवृक्षके गुच्छोंको हसनेवाले कुंजोंसे शोभित और पुष्प तथा मधुरभाषी भ्रमरोंसे पूर्ण सघन निंबके वृक्षोंसे व्याप्त इन पर्वतोंके बनोंमें मैं विहार करताहुं ॥ ४५ ॥ हरिणियोंके शब्दोंसे रमणीय तथा मनोहर शुकों (तोतों) से मनोरञ्जक इन पर्वतीय ग्रामोंमें मनुष्योंकी ऐसी प्रीति होती है जैसे कामदेवके नगरोंमें ॥ ४६ ॥ स्फटिकके खंभोंकेसमान गिरतेहुये झरनोंके जलसे शोभित इस पर्वतके ग्राममें देखिये ये मोरनी कैसे नृत्य कररहीहैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! देखिये शब्द करतेहुये झरनोंके जलसे भूषित इस पर्वतीय ग्रामके कुंजोंमें विलासयुक्त मयुरी (मोरनी) तथा पुष्पोंके भारसे नमित लता कैसी नृत्यकरती हैं ॥ ४८ ॥

हारीतहारिहरितोपवनद्रुमाम्बुवापीप्रमाणरणितामलकाकलीषु ॥ ग्रामस्थलीषुगिरिगह्वरगोपितासुमन्येमुदैषरमतेस्वरसेनकामः ॥ ४९ ॥ श्रीमद्वृत्तमहाशयातपहरप्रोच्चैर्गभीराकृतेभूभृन्मूर्द्धसुभूषणंभवसिभोभूमेरसैकास्पदम् ॥ एतत्तुक्षपयेन्मनांसियदिदंमेघत्वयावर्षताहर्षादूषरपल्वलस्थलतरुष्वंभोविभागक्रमः ॥ ५० ॥ नित्यंस्नासिसुतीर्थवारिविसरैरुच्चैःपदस्थोंबुदःशुद्धःसन्विपिनावनौनिवससिप्रारब्धमौनव्रतः ॥ रिक्तस्याप्यतिकांतिरेवभवतःकायाश्रयालक्ष्यतेप्रोत्थायाशनिमातनोषिकिमिदंतुच्छंतवाचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ वस्त्वस्थानगतंसर्वंशुभमप्यशुभंभवेत् ॥ दुर्मेघस्थानमासाद्यवारित्वसिततांगतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—हारीतनाम पक्षियोंसे मनोरह, हरितवर्ण उस बनके वृक्षोंसे शोभित वापियों (बाउलियों) के प्रमाणके अनुसार हंस सारस आदि पक्षियोंकी मधुरध्वनिसे पूर्ण तथा पर्वतके बनोंसे रक्षित इन ग्रामोंकी स्थलियोंमें कामदेव अपनी इच्छानुसार रमण करताहै ॥ ४९ ॥ हे उदारचरित ! हे महाशय ! तथा हे आतपहारिणी, उन्नत तथा गंभीर आकृतियुक्त मेघ ! तुम पर्वतोंके मस्तकोंके भूषण हो तथा पृथिवीके क्षेत्र वाटिका आदिकी संपत्तिके लिये जलके एकही स्थान हो, इसप्रकार अनेक उत्तमगुणयुक्त होकरभी तुम हर्षसे वर्षते समय अपात्र ऊषर भूमि तथा कटंक आदि वृक्षोंमेंभी जो जलसंप्रदान करते हो यह सज्जनोंके चित्तको पीडित करताहै ॥ ५० ॥ हे मेघ ! तुम उत्तम गंगासमुद्रादि तीर्थोंमें जलत्यागादिद्वारा प्रतिदिन स्नान करते हो तथा उच्चपदपर स्थित होके सब प्राणियोंको जल देते हो और शुद्ध होकर वनकी भूमिमें मौन होकर निवास करते हो तथा शरदृतुमें जलरहितभी तुमारी धवल शरीरकी कान्ति दृष्ट होती है, इसप्रकार होकेभी जलसंप्रदानके लिये ऊठके विद्युत्रूपी अग्निकी वर्षापूर्वक जो कठोरध्वनि करतेहो यह तुमारी चेष्टा अनुचित तथा तुच्छ है ॥ ५१ ॥ कुपात्रस्थानमें प्राप्त होकर सब शुभ वस्तुभी अशुभ होजाती है, जैसे दुष्टमेघमें प्राप्त होके स्वच्छभी जल श्यामवर्ण दृष्ट होताहै ॥ ५२ ॥

अहोनुमेघेनजलंविमुक्तमहोनुतोयेनविपूरिताभूः ॥ अहोनुभूमौपरिपोषितश्चजलैर्धनाढ्यैःप्रणयीवदीनः ॥ ५३ ॥ नैर्घृण्यमस्थैर्यमथाशुचित्वंरथ्याचरत्वंपरिकुत्सितत्वम् ॥ श्वभ्योगृहीतंकिमुनाममूर्खैर्मूर्खेभ्यएवायशुनानजाने ॥ ५४ ॥ गुणैःकतिपयैरेवबहुदोषोपिकस्यचित् ॥ उपादेयोभवत्येवशौर्यसंतोषभक्तिभिः ॥ ५५ ॥ उन्मत्तमत्तपतनोन्मुखधावमानमानाधिकान्विषयवीथिषुदत्तमूर्तिः ॥ यन्मन्यतेतृणलवाग्रविलोकयेच्छास्त्वंजडत्वमुतवास्यविचार्यतांतत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—अहो ! यह मेघ जलत्यागकर पृथिवीको पूर्ण करताहै, और भूमिपर शुष्क धान्य आदिको जलसे ऐसे पोषित करताहै जैसे धनाढ्य मनुष्य धनोंसे दीनजनको ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! निर्दयता, चंचलता, अपवित्रता, गलियोंमें भ्रमणता तथा सबओरसे निन्दा इन नीच कर्मोंको क्या कुक्कुरोंसे मूर्खोंने सीखाहै अथवा मूर्खोंसे कुक्कुरोंने सीखा है

यह मैं नहीं जानता ॥ ५४ ॥ कुत्तोंके समान शौर्य्य, सन्तोष तथा भक्ति आदि कुछ्गुणोंसे अनेक दोषयुक्तभी मूर्ख किसी दुष्टराजाओंके प्रिय होही जाते हैं ॥ ५५ ॥ हे तृणके अग्रभाग विषयमार्गमें आसक्त विषयलंपट मूर्ख, धत्तूर आदिके भक्षणसे उन्मत्त मादकवस्तुके सेवनसे मत्त तथा प्रमादक्रोधादिसे कूपादिपतनमें अभिमुख और पिशाचादिके आवेशसे पलायमान जनोंको और तत्वज्ञानसे देहके विस्मरणसे अहंब्रह्म इस ज्ञानसे सबसे अधिक मानके योग्य ज्ञानियोंकोभी जो तृणके समान जानताहै इसके रहस्यको तुमही विचारो कि उसकी इच्छाका सत्व है वा जडत्व है, यदि इच्छा है तब तो कुत्तोंके समान वह मूर्ख है, यदि जड है तब तृणसेभी तुच्छ है ॥ ५६ ॥

कोलाहलःसमानेपितिर्यक्त्वेक्षुब्धमानसैः ॥ अन्यथासह्यतेसिंहैर्मीलितैरन्यथाश्वभिः ॥ ५७ ॥ नित्याशुचेप्रियजनेभषणैकनिष्ठरथ्यांतरभ्रमणनीतसमस्तकाल ॥ कौलेयकाशयसमानतयैवमन्येमूर्खेण केनचिदहोबतशिक्षितोसि ॥ ५८ ॥ नित्यंसर्वंजगदसदृशंकुर्वतेचैविधात्रादौहित्रेस्मिञ्छुनिसमदृशे निर्मितंसर्वमेव ॥ वासोऽमेध्यावकरकुहरेभोजनंगूथपूयंसर्वालोकेकुरतिकुरतिःसर्वनिंद्यंशरीरम् ॥५९॥ त्वत्तःकोधमइत्युदीरितवतेश्वोवाचहासान्वितंमत्तोमौर्ख्यममेध्यमांध्यमशुभंयःसेवतेसोधिकः ॥ शौर्यं भक्तिरकृत्रिमाधृतिरितिश्रीमान्गुणोयोस्तिमेमूर्खादेषगुणःप्रयत्ननिचयैरन्विष्यनोलभ्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—हे राजन् ! सिंह तथा श्वानकी तिर्य्यक्जातिमें समानता होनेपरभी सिंह मेघआदिके गर्जनरूप कोलाहलको अक्षुब्धमनसे अनादरसे नेत्र मूंदके सहलेतेहैं और श्वान क्षुब्धमनसे भयके कारण नेत्र मूंदके सहलेतेहैं ॥ ५७ ॥ हे नित्य अपवित्र, हे प्रियजनोंपर सर्वदा भूंकनेमें तत्पर तथा हे गलियों (कुमार्ग) में भ्रमणकरके समस्तकालको वितानेवाले कुक्कुर ? तुमारी तथा मूर्खकी चित्तवृत्ति समान होनेसे मुझे यह भासताहै कि तुमने किसी मूर्खगुरुसे शिक्षापाई है ॥ ५८ ॥ अपवित्र निजरचित गर्तमें निवास, मलमूत्र पीउव, रक्तादि भोजन, सबजनोंसे दृष्ट मार्गमें निंदित मैथुन, उसमें दुष्टइच्छा तथा निंदितशरीर ये सब धर्म कर्मोंके अनुसार विषमजगत्के कर्ता ब्रह्माजीने सरमानाम्नी देवशुनीके अपत्य कुक्कुररूप अपने दौहित्रके लिये समानही रची हैं ॥ ५९ ॥ तुमसे अधिक अधम कौन है, ऐसा पूंछनेवालेसे श्वान हसिके बोला कि मुझसे अधिक अधम मूर्खता (अज्ञान) अपवित्रता, देहाभिमान, विवेकराहित्य और अशुभको सेवन करनेवाला मूर्ख है और शूरता स्वामीकी स्वाभाविक भक्ति तथा सन्तोष ये जो उत्तम गुण मुझमें हैं वे प्रयत्नसेभी ढुंढनेपर मूर्खमें न मिलेंगें ॥ ६० ॥

भुंक्तेऽमेध्यममेध्यएवरमतेनित्यंमहावस्करेतूष्णीमत्तिसचेतनंकृतरतिर्निश्चेतनंकृंतति ॥ सर्वैरेत्यरतेशुनीविवलितेलोष्टैर्जनैस्ताड्यतेधात्राखेलसमन्वितस्थितिरलंलोकेकृतोनेश्वरः॥६१॥ लिंगस्योर्ध्वंरटत्काक आत्मानंदर्शयत्ययम् ॥ सर्वाधःपातकोत्तुंगगतंपश्यतमामिति ॥ ६२ ॥ काककटुकल्कारवकवलित गुणकर्दमेभ्रमन्सरसिअंतरयसि ॥ मधुपरवंयदतोमेशिरसिफलभूतः ॥६३॥ कवलयतिनरकनिकरंपरिहरतिमृणालिकांध्वांक्षः ॥ यदतोस्तुमास्मयस्तेस्वभ्यस्तंसर्वदास्वदते ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपवित्रवस्तुको भक्षण करताहै, निजअपवित्र मलादिमें रमण करताहै, चेतननोला मूषकआदि सचेतन प्राणीको दैवसंयोगसे पाकर चुपचाप भक्षण करजाता, निश्चेतन तथा निर्बल छागआदिको निरपराधही काटताहै तथा कुत्तियासे मैथुनके समयमें सबसे पाषाण आदिसे ताडित होताहै, ऐसे असमर्थ श्वानको ब्रह्माजीने संमारमें संपूर्ण आयुपर्य्यन्त दुर्विलासयुक्तही रचाहै ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! शिवजीके लिङ्गपर अक्षताआदि शिवनिर्माल्य भक्षण करनेकेलिये रटता हुआ काक सबको यह उदाहरण दर्शाताहै कि सब पापोंमेंसे महाअधोगतिदायक शिवनिर्माल्यभक्षणमें प्रवृत्त प्रत्यक्ष काकयोनिमें प्राप्त मुझे देखिये ॥ ६२ ॥ (कोई तडागमें रहतेहुये काकसे कहताहै) कि हे कटुभाषणसे हंससारस आदिके गुणोंको ग्रासकरनेवाले दुष्टकाक तुम इस तडागके पंकमें भ्रमण करतेहुये अपने कटुशब्दोंसे जो भ्रमरआदिके मधुरभाषणको तिरोहित करदेते हो इस निमित्त मेरे मस्तकमें पीडाकारी होनेसे तुम शल्यरूप हो ॥ ६३ ॥ हे मित्र ! काक जो अपवित्र विष्ठादि पदार्थोंको ग्रास करताहै और प्राप्तभी कमलदंडको त्याग देताहै इससे तुमको आश्चर्य्य न हो, क्योंकि सब कोई सदा निज अभ्यस्तकोही भोजन करताहै ॥ ६४ ॥

विविधवनकुसुमकेसरधवलवपुर्हंसइवदृष्टः ॥ काकःकृमिकुलकवलंक्लिन्नमथोकवलयन्ज्ञातः ॥ ६५ ॥ तुल्यवर्णच्छदैःकृष्णःसंगतैःकिलकोकिलैः ॥ केनविज्ञायतेकाकःस्वयंयदिनभाषते ॥ ६६ ॥ अरण्यान्यामृदःस्थाणौस्थितःकाकोनिरीक्षते ॥ चैत्यादृशदिशश्चोरोनिशिसुप्तेजनेयथा ॥६७॥ सरभससारसविदलत्पुष्करमकरंदसुंदरेसरसि ॥ कथमिहविहरतिकाकःस्फुरदवकरनिकरधूसरस्कंधः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके वनके पुष्पोंके केसरोंसे प्रथम हंसके समान धवलशरीर दृष्ट हुआ, पुनः कृमियोंके समूहोंको कवलित करिते (खाते) हुये काक ज्ञात हुआ ॥ ६५ ॥ सहगामी कोकिलोंके समान पक्षधारी कृष्णवर्ण काक किससे ज्ञात होता यदि स्वयं भाषण न करता ॥ ६६ ॥ महावनके ऊंचे वृक्षपर बैठके काक चारोंओर ऐसे देखताहै जैसे रात्रिमें मनुष्योंके सोनेपर ग्रामके बडे वृक्षपरसे चोर ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! वेगयुक्त सारस हंसादि पक्षियोंसे दलित कमलोंके मकरंदोंसे मनोहर इस सरोवरमें पवनसे कंपित पुष्पपरोगोंसे धूसरशरीर काक यहां कैसे विहार करताहै अर्थात् अनुचित है ॥ ६८ ॥

हाकष्टमिष्टवपुषिस्फुटपुंडरीककोशेकषाहननयोग्यमुखःपिशाचः ॥ पश्यैषकाकउपविश्यकुपल्वलेस्मिन्लीलाःकरोतिविविधाःसहराजहंसैः ॥ ६९ ॥ हेकाककर्कशरवक्रकचैकचिह्नतादृकूस्वशंकनमपिकनुतेक्ययातम् ॥ कस्मादनर्थकमिदंपिकपाकमेकपुत्राशयातदमितेह्युपहाससिद्धयै ॥ ७० ॥ आलोक्यपंकजवनेसविलासवंतंकाकंकलंकसदृशंभृशमारटंतम्॥ हाकष्टशब्दशतनष्टविचेष्टितोयोनोरोदितिक्रकचकेनविदार्यतांसः ॥ ७१ ॥ विशरारुशरारुमयेबकमद्गुघनेचपल्वलेचपलाः ॥ स्युर्यदिकौशिककाकास्तत्स्यादेषासमन्वितागोष्ठी ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! विकसित कमलोंके कोशसे पूर्ण अपने अनुरूप इस तडागमें स्थित राजहंसोंके साथ, शिलाओंसे मुखताडन योग्य यह काकपिशाच इस अतिदुष्ट जलाशयमें बैठकर राजहंसोके विडंबनके लिये देखिये, कैसे अनेक लीला करताहै ॥ ६९ ॥ राजसभामें रहते हुये किसी दुष्टको काकके अपदेशसे कोई कहताहै कि हे कर्कशशब्दरूपी कर्णविदारणार्थ क्रकच (आरी) रूप चिन्हधारिन् काक काकोंके भागको उनसे भिन्न अन्य कोई न भोगे इस शंकासे सदाकाकोंको आव्हानरूप तुमारा आशंकायुक्त रटना आज कहां गया, तुम एक पुत्र मेरे जीवो इस आशयसे कोकिलके बच्चेको व्यर्थ क्यों पालते हो, क्योंकि तुम सदा कटुभाषी हो इसको पालके मधुर स्वरका लीखनाभी तुमारे मनोरथसिद्धिके लिये नहीं होगा, किन्तु तुमारे उपहासकेही लिये होगा ॥ ७० ॥ कमलोंके वनमें विलासयुक्त तथा कलंकके समान बार २ रटते हुये काकको देखके कोई कहताहै कि हे काक जो पुरुष तुमारे वा अन्य दुष्टोंके अनेक क्रूरवचनोंको सुनकर नष्टचित्त होकर रोदन करताहै उसको तुम अपने कटुवचनरूप आरेसे विदीर्ण करो, परन्तु मैं ऐसा नहीं हुं, इसलिये तुम व्यर्थ क्यों रटते हो ॥ ७१ ॥ दुष्टोंकी सभामें दुष्टही योग्य हैं न कि एकभी साधु इस बातको अन्यके अपदेशसे कहताहै कि हिंसक पक्षीनके सब कुलोंसे पूर्ण इस अल्प जलाशयमें यदि चपल उलूक तथा काकभी आजांय तो यह अल्पजलाशरूप सभायोग्यनके सभासदोंसे युक्त होजाय ॥ ७२ ॥

कोकिलःकाकसंघातैःसमसंवरणाकृतिः॥गदितैर्व्यक्ततामेतिसभायामिवपंडितः ॥७३॥ मृद्वकुसुमांकुरदलनंसोढुमलंकोकिलस्यकुसुमलता ॥ नतुकंकगृध्रमद्गुकबककुकुटवायसादीनाम् ॥७४॥ श्रोत्रोत्सवंतवकलंकलकंठकोत्रनादंशृणोतिरतिविग्रहसंधिदूतम् ॥ काकैरुलूककलहैरिहगुल्मकेषुकैंकारघर्घररवैःश्रुतिरागतास्तम् ॥ ७५ ॥ वाचाकोमलयासुकोकिलशिशुःकल्याणकल्पांकथांसर्वाविजनमार्जवेनकुरुतेयावत्पुरोरागिणाम् ॥ तावन्मत्तनयोयमित्यविरतंद्रांकारभीमारवैर्ध्वांक्षेणोपवनेनिपत्यनभसःसर्वेकृतानीरसाः ॥ ७६ ॥

अर्थ—काकोंके समूहमें कोकिल यद्यपि समानवर्ण और आकारका होताहै तथापि संभाषणसे भिन्न होजाताहै जैसे सभामें पण्डित ॥ ७३ ॥ जैसे पुष्पकी लता कोकिलके कोमलपुष्पोंके अंकुरोंके दलनरूप अपराधको सहसकती है, परन्तु गीध, बक, मुर्गे तथा काक आदिके स्पर्शकोभी नहीं सहसकती है ऐसेही साधुओंके अपराध सहे जासकते हैं ॥७४॥ खलोंकी सभामें सद्विद्यावर्णनमें उद्यत पुरुषको अन्यके अपदेशसे कोई कहताहै कि हे मधुरकंठ कोकिल दंपतिके रतिकलह तथा मान आदि विग्रहमें संधिके लिये दूतके समान और कर्णके उत्सवरूप आपके नादको यहां कौन सन सकताहै क्योंकि यहां कंटकोंकी लतामें उलूकोंके साथ सदा कलह करनेवाले काकोंके घर्घर (कांयर) शब्दोंसे सबके कर्ण बधिर होगये हैं ॥ ७५ ॥ उपवनमें मधुरशब्दके अनुरागी पुरुषोंके संमुख महोत्सवरूप कर्णसुखदायक कथाको कहके जब कोकिलका बालक श्रोताओंके मनको रंजन करता था इतनेहीमें आकाशसे काकने आके यह कोकिलबालक मेरा पुत्र, मेरा पालित इत्यादि भयंकर कठोरशब्दोंसे सब श्रोताओंको उत्साहहीन करदिया ॥ ७६ ॥

किंकिकोकिलकूजसिद्रुतरवंहर्षात्समुल्लासितंग्रीवाकोटरतःप्रवेशयपुनर्माभूच्चिरंतेभ्रमः ॥ उद्दामैःकुसुमैर्निरंतरतरंनेदंमधोर्जृंभितंहेमंतेनकृतास्तुषारनिकरैःशुष्काअमीपादपाः ॥ ७७ ॥ कूजत्कोकिलकोम

लंकलरवैर्नित्यंप्रशस्ताकृतेकेनेदंबतशिक्षितोसिवचनंदुःखप्रदंदुर्भगम् ॥ चैत्रेचित्रनवांकुरेविरहिणीव क्त्वियायात्मनःकस्यायंमधुरित्यतस्तवतवेत्युक्तंत्वरोच्चैस्तरोः ॥ ७८ ॥ मौनस्पंदविहारवर्णवपुषांसा म्येपिकाकव्रजेकाकःकोकिलएषकांतिरुचिरोदूरात्परिज्ञायते ॥ मध्येमूर्खजनस्यपंडितइवस्वाकारभव्य क्रियःसर्वोहिप्रथिमानमेतिसदृशस्वांतश्चमत्कारतः ॥ ७९ ॥ भ्रातःकोकिलकूजितैरलमलंनायात्यन घ्योगुणस्तूष्णीमास्वविशीर्णपर्णपटलच्छन्नेकचित्कोटरे ॥ उद्दामद्रुमकंदरेकटुरटत्काकावलीसंकुलः कालोयंशिशिरस्यसंप्रतिसखेनायंवसंतोत्सवः ॥ ८० ॥ चित्रंमातरमेषकोकिलशिशुःसंत्यज्यकाकीं गतःसैषेनंतुदतीतियावदहमप्याचिंतयामिक्षणम् ॥ तावत्सोपितथाशुमातृसदृशंश्लिष्टोरसाद्वर्धितुंयामा यातिदिशंस्वभावसुभगःसैवास्यमाहात्म्यदा ॥ ८१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने श्वकाककोकिलान्योक्तिवर्णनं नाम षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

अर्थ—हे कोकिल ! तुम श्रोताओंकी योग्यताको बिना विचारे शीघ्र २ अपने गुणके ख्यापनरूप हर्षसे क्यों कूजते हो, कंठरूप विवरसे निःसृत उल्लासित भाषणको पुनः कंठमें प्रविष्ट करो, यह हमारे गुणके प्रकट करनेका समय है. ये श्रोता योग्य हैं यह भ्रम तुमारा चिरकालतक न रहै, क्योंकि उत्तम विकसितपुष्पोंसे पूर्ण यह वसन्तका उत्सव नहीं है, किन्तु हेमंततुषारसमूहसे इन वृक्षोंको शुष्क करदिया ॥ ७७ ॥ चित्रविचित्र पुष्पांकुरयुक्त चैत्रमासमें विरहिणी कहती है कि हे मधुरशब्दोंसे नित्य कूजनेवाले मनोहर आकारधारिन् कोकिल जब मैं पूछती हुं कि यह मधु (चैत्रमास) किसका है तब तुम अपने मधुके ऊंचे वृक्षपरसे अतिशीघ्रतासे "तव तव" (तोतो कोकिलका शब्द होताहै) कहते हैं यह मिथ्याभाषण तुमने किससे सीखाहै, क्योंकि प्रियाके साथ गान करतेहुये तुमारीही मधु है न कि युक्त विरहिणीका, इसलिये तुमारा मिथ्याकथन मेरे दुःखकेही लिये है ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! काकोंके समूहमें चेष्टा, मौन, वर्ण तथा शरीरमें समान होनेपरभी कान्ति रुचिर और अपने भव्यक्रियाको सूचित करनेवाला कोकिल काकसे भिन्न दूरसेही ऐसे ज्ञात होताहै जैसे मूर्खजनके मध्यमें पंडित, क्योंकि सबजन गूढ रहनेपरभी अपने अनुरूप आभ्यन्तरके चमत्कारसे प्रसिद्धताको प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ हे भ्रातः कोकिल ! यह कटु रटनेवाले काकोंकी पंक्तियोंसे व्याप्त शिशिरऋतुका काल है, वसंतका उत्सव नहीं है, इससमय तुमारे मधुरकूजनसे अमूल्यगुण प्रसिद्ध नहीं होता अतः तुम अपना कूजना रहने दो, किन्तु कहीं किसी उत्तमवृक्षकी कन्दरामें पत्रसमूहोंसे आछन्न होके मौन धारण करो ॥ ८० ॥ अहो ! यह कैसा आश्चर्य्य है कि कोकिलबालक काकीमाताको त्यागकर अन्यत्र चलागया और उसके पश्चात् यह काकी माता इस कोकिलबालकको अपने चोचोंके प्रहारसे सतानेलगी यह अन्य आश्चर्य्य है, और जबतक क्षणभर इस विषयमें विचार करता हुं इतनेहीमें यह कोकिलबालक उत्साहसे माताके समान बढनेको उद्यत हुआ, क्योंकि स्वभावसे सुन्दर भाग्यवान् जन जिस दिशामें जाताहै वही इसको महात्म्यसंप्रद होजाती है ॥ ८१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० वि० श्वकाककोकिलान्योक्तिवर्णनं नाम षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

कमल, कुमुद आदिसे भूषित तडाग तथा उसके प्रसंगसे कमल और हंस आदिका वर्णनभी इस ११७ के सर्गमें कियागयाहै.

॥ सहचराऊचुः ॥ पश्याद्रिसानाविवबिंबितंखंपुरःसरोमारपुरःसरोयः ॥ कल्हारपद्मोत्पलजालनाल लसद्विचित्रारवपक्षिवीतम् ॥ १ ॥ विकासितोद्दंडसहस्रपत्रकोशस्थलस्थोद्धरराजहंसम् ॥ पीठद्विरेफ द्विजलोकजुष्टंभुवीवगेहंकमलासनस्य ॥ २ ॥ आकीर्णसीकरकरालदिगंतरालेफुल्लोत्पलाब्जपटलोदररे णुगौरम् ॥ आमोदमत्तमधुपद्विजगीतिगीतंयातंवितानकमिवांबरगंवहंतम् ॥ ३ ॥ क्वचित्तरत्तारतरंग भंगंक्वचिद्विपद्द्रविराविभृंगम् ॥ क्वचिद्गभीरामलवारिसुप्तंक्वचित्सरोजोज्ज्वलपुष्पगुप्तम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! नील, रक्त तथा श्वेतकमलोंके भीतरके तंतूओंके लिये विचित्र शब्दकारी पक्षियोंसे व्याप्त अतएव नक्षत्र तथा पक्षिगणसहित प्रतिबिंबित आकाशके सदृश तडाग इस पर्वतके शिखरपर आप देखिये, जो शिखर कामोद्दीपक होनेसे कामदेवके सेवकके समान है ॥ १ ॥ विकसित उत्तम सहस्रपत्रकमलोंके कोशोंमें शोभा धुरंधर राजहंसोंसे सेवित तथा इन्द्रनीलमणिके समान भ्रमरोंसे युक्त होनेसे भूमिपर ब्रह्माके गृहके सदृश इस तडागको देखिये ॥ २ ॥ व्याप्त जलकणोंसे आसमंतात् दिशाओंके अन्तरालमें विकसित कमलआदि रेणुओंसे गौरवर्ण, सुगन्धसमत्त भ्रमरोंके गीतोंसे पूर्ण तथा ऊर्ध्वदेशमें प्राप्त वितान (चांदनी) के सदृश आकाशगत मेघ तथा नीहारआदिको प्रतिबिंबके मिषसे धारण करतेहुये तडागको देखिये ॥ ३ ॥ कहीं चंचल उच्चतरंगोंसे युक्त, कहीं मदोन्मत्त भ्रमरोंसे व्याप्त, कहीं गंभीर निर्मल तथा निश्चल जलसे सुप्तकेसमान और कहीं कमलके उज्ज्वल पुष्पोंसे आच्छन्न इस सरोवरको देखें ॥ ४ ॥

कणाणुमुक्ताजलतापटालंतीरेषुसिंहेसुलतासुटालम् ॥ तरंगनिर्धूतशिलोग्रकच्छंमहीतलाकाशमनंतकच्छम् ॥ ५ ॥ तडित्प्रकाशोदरमस्यमेघनुन्नाब्जजातोत्थरजःप्रभाभिः ॥ पृषद्गरध्वांतमयैकदेशंसंध्यांबराभोगमिवाप्रकाशम् ॥ ६ ॥ वातावकीर्णशरदंबुदखंडखंडंव्योमेवकेवलसमीरणमावृतांगम् ॥ हंसैर्लसद्बिसलताकवलालसांसैःकालेनसंचयकृतैरिवचंद्रबिंबैः ॥ ७ ॥ आमोदमंदमकरंदकरालवातव्याधूतपंकपुटपाटनपाटवेन ॥ उद्यन्महापटपटावयतीवलेखाक्षुभ्यत्खगाश्रितलतोज्झितपुष्पवर्षम्॥८॥

अर्थ—तथा हे राजन् ! मोतियोंकी सदृश जलकणोंसे सन्तापनाशक, तीरस्थसिंहको प्रतिबिंबित अन्यसिंहको जानकर दूरप्रापक तरंगोंसे प्रच्छादित, शिलाओंके अग्रभागसे पूर्ण, तथा अनंत मेघोंसे अनंत सजलभूतलमें अवतीर्ण आकाशके समान स्थित तडागको देखिये ॥ ५ ॥ तथा मेघोंको अपसारित करनेवाले पवनसें कंपित कमलसमूहसे आविर्भूत धूलियोंकी दीप्तिसे विद्युत्की प्रभासे पूर्णउदर अतएव कहीं जलबिन्दुमय और कहीं अन्धकारव्याप्त सन्ध्याकालके आकाशके सदृश किंचित्प्रकाशयुक्त सरोवरको देखिये ॥ ६ ॥ तथा कालसे संचित चन्द्रबिंबोंको समान स्थित शोभित कमलदंडके हरणमें आलस्ययुक्त हंसोंसे आच्छादितशरीर तथा वायुसे छिन्नभिन्न मेघखंडोंसे पूर्ण केवल वायुयुक्त आकाशकेसमान स्थित इस तडागको देखिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! देखिये इस सरोवरके मानो सुगंधके भारसे आर्द्रपवनसे कंपितजलसहित पंकभागको अधोदेशमें विभक्त करनेकी त्वरासे निःसृत पटपटाशब्दयुक्त तरंगोंकी पंक्तिसे क्षुभित लताओंसे पुष्पोंकी वृष्टि यह ऐसी करताहै मानो अपने पुष्परूपी वस्त्रकी वृद्धि करताहै ॥ ८ ॥

वेल्लन्महाकमलपल्लवतालवृंतसंवीजितंवलितचामरचारुफेनम् ॥ राजायमानमलिकोकिलगीतगीतंसद्वृत्तपंकजलतालतांगनौघम् ॥ ९ ॥ भृंगाग्रभाजनमनोहरहारिगीतंराजीवरेणुरणकीर्णपिशंगतोयम्॥ डिंडीरपिंडपरिपांडुरपुंडरीकखंडोपमंडिततटोपवनावतंसम् ॥ १० ॥ विविक्तहृदयांभोजंहृदयाह्लादनंपरम् ॥ रसवत्स्वाद्वभातीदंसरःसत्संगमोपमम् ॥ ११ ॥ बिंबितेनमरुव्योम्नाभातीदंसौम्यनिर्मलम् ॥ शास्त्रार्थपरिणामेनमहतामिवमानसम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! चंचल महाकमलरूपी तालव्यजनोंसे वीजित, उत्तम फेनरूप चमरवेष्टित, भ्रमर तथा कोकिल आदिके गीतोंसे प्रशंसित, तथा उत्तमकमलकी लतारूपी अंगनाओंसे वेष्टित राजाके सदृश इस सरोवरको देखिये ॥ ९ ॥ तथा भ्रमररूपी श्रेष्ठ मनोहर गायकोंसे गीयमान, कमलोंकी रेणुओंसे व्याप्तहोनेसे पीतवर्ण जलसहित, समुद्रके फेनके पिंडके तुल्य पीतवर्ण कमलोंसे शोभित तथा तटके उपवनके शिरोभूषणकेसमान पुष्पसमूहोंसे भूषित इस तडागको देखिये ॥ १० ॥ तथा पवित्र हृदयकमलधारी, मनको परमानन्ददायक तथा अमृतके सदृश स्वादिष्टरसयुक्त यह तडाग सज्जनोंके संगकेसमान प्रकाश करताहै ॥ ११ ॥ हे सौम्यराजन् ! मरुदेशकेसमान निर्जल (शरदृतुके) प्रतिबिंबित आकाशसे ऐसा निर्मल यह सरोवर शोभताहै जैसे ब्रह्मसाक्षात्कारसे महात्माओंका मन ॥ १२ ॥

किंचिल्लक्ष्यमपश्यामंपृषत्परुषमारुतम् ॥ हिमाभ्रमिवभातीदंसरःसरससारसम् ॥ १३ ॥ यथेदंब्रह्मणोदृश्यमविकारादिनेतरत् ॥ तथांभसितरंगादिराजन्पृथगिवस्थितम् ॥ १४ ॥ आत्मनैवोह्यमानानांचक्रावर्त्तविधायिनाम् ॥ जडाशयानांविषमाहाकल्लोलपरंपरा ॥ १५ ॥ कूपवापीसरोब्धीनांदृश्यतेयादृगंतरम् ॥ नारीपुरुषतोयानांविज्ञेयंतादृगंतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हेमन्तऋतुमें तुषारसे आच्छन्न होनेसे किंचित् दृश्य, हिमसे श्यामतारहित, तथा सरससारस पक्षियोंसे युक्त हिमके मेघके तुल्य यह तडाग शोभित होताहै ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जैसे यह संसार ब्रह्मसे अभिन्न होके भिन्नसमान स्थित है ऐसी तडागसे अभिन्नभी तरंगआदि पृथक्केसमान स्थितहैं ॥ १४ ॥ अपनेहीसे धारित तथा चक्रवत्

भ्रम देनेवाली जडा (ला) शयोंके तरंगोंकी परंपरा भयंकर होती हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! कूप, वाउली, तडाग तथा समुद्ररूप उपाधियोंकी तारतम्यतासें जैसे जलके भेद हैं परंतु जल सर्वत्र एकही है ऐसेही स्त्रीपुरुषादि शरीरोंमे भेद है न कि आत्माका ॥ १६ ॥

जंतोरिवास्यमनसोजलजातिबंधजीर्णस्यजर्जरदशालहरीभ्रमेण ॥ आवर्त्तवृत्तिवलितान्यतिसंततानिको नामसंकलयितुंकमलानिशक्तः ॥ १७ ॥ चित्रंविजृंभितमहोजडसंघमस्यपद्मोपियन्निजगुणानगुणानि वैषः ॥ अंतःप्रगोपयतिकंठतलेनिवेश्यसर्वस्यदर्शयतिदुर्भगकंटकौघम् ॥ १८ ॥ सच्छिद्रैरदृढैःसूक्ष्मैर्गो पितैर्जाड्यसंयुतैः ॥ अनल्पैरपिनिःसारैःपद्मस्येवगुणैरलम् ॥ १९ ॥ महतांकुलपद्मानांगुणसौंदर्यशालि नाम् ॥ प्रभावंनास्तिसंख्यातुंवासुकेरपिशक्तता ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजन् ! नानाप्रकारके योनियोंके संबंधसे जर्जर इस जीवके इच्छाद्वेषादिवृत्तियोंके परिवर्तनोंको जैसे कोई नहीं गणना करसकता ऐसेही तडागके जलसे उत्पन्न अनेकप्रकारके कमलआदिको कोन गिनसकताहै ॥ १७ ॥ जड (पक्षमें जल) के संगकी चेष्टा आश्चर्य्यपूर्ण है क्योंकि सर्वगुणसंपन्न कमलभी अपने सुगंधआदि गुणोंको कंठमें स्थापित करके छिपाताहै और नष्ट कांटा आदिको बाहर सबको दिखाताहै ॥ १० ॥ तथा हे राजन् ! जो छिद्रसहित, अस्थिर, सूक्ष्म, गुप्त और जडतासंयुक्त अनेक निःसार कमलके सूतकेसमान गुण हैं वे व्यर्थ हैं ॥ १९ ॥ यशरूपी सुगन्धका प्रसिद्ध करनेवाले तथा गुण और सौन्दर्य्यसे शोभायमान महात्माओंके प्रभावकी गणना करनेमें शेषभगवान्‌भी असमर्थ हैं ॥ २० ॥

हरिवक्षोगतालक्ष्मीरपिशोभार्थमेवयत् ॥ बिभर्तिकमलंहस्तेकान्याऽऽशंसाधिकाभवेत् ॥ २१ ॥ सि तासिताभ्यांरूपाभ्यांकमलोत्पलखंडयोः ॥ वैसादृश्यंभवेत्किंतुसमाजडजडैतयोः ॥ २२ ॥ साम्यंन फुल्लविपिनेनसरःसुयातिव्योम्नानतारकयुतेननचंद्रवृंदैः ॥ नृत्यद्वधूविहसिताननशोभयैतिफुल्लस्यपंक जवनस्यनवोदिताश्रीः ॥ २३ ॥ येषांपुष्पलतास्वादैरनन्यमनसांगतम् ॥ भृंगाणामायुरायामितएवसु भगोत्तमाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और जिस कमलको शोभार्थ विष्णुभगवान्‌के वक्षस्थलप्राप्त सर्वसौन्दर्य्यसम्पन्न लक्ष्मीजीभी धारण करतीहैं उसकी ओर अधिक प्रशंसा क्या होसकतीहै ॥ २१ ॥ और श्वेत तथा नील इन कमलके खंडोंकी जड (ल) से जडीभूत अचेतन चन्द्रसूर्य्यमें द्वेष और प्रीतिरूप मूर्खतारूप वृत्तीतो समानही है परन्तु श्वेत और नीलरूपसे भिन्न है ॥ २२ ॥ और तडागोंमे विकसित कमलवनकी नूतन उदयको प्राप्त शोभा कल्पवृक्षोंके वनके साथ, तारागणसे शोभित आकाशके साथ, तथा चन्द्रबिंबोंके साथ साम्यताको तो नहीं प्राप्त होती, किन्तु नृत्य करतीहुई हास्ययुक्त स्त्रियोंके मुखकी शोभाकेसाथही समताको प्राप्त होतीहै ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जिनका दीर्घ आयु पुष्प तथा लताओंके आस्वादमें व्यतीत हुवा वेही उत्तम हैं ॥ २४ ॥

चूतचारुचमत्कारंचंचरीकाश्चरंतिये ॥ तएवसचमत्काराइतरेजातिपूरणम् ॥ २५ ॥ मत्तामधुमदामो दैःपुष्करेषुरणंतिये ॥ तुष्टानामितरस्वादैर्भ्रमराणांहसंतिते ॥ २६ ॥ येनोषितंविरुतमुल्लसितंप्रसुप्तंप द्मोदरेषुशशिकोटरकोमलेषु ॥ भृंगःसएषशिशिरेविरसेषुभावंकष्टंकरिष्यतिकथंतरुपुष्पकेषु ॥ २७ ॥ अफुल्लमल्लिकोद्दाममुकुलोपरिषट्पदः ॥ दृश्यतेकालरुद्रेणशूलेप्रोतइवांधकः ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा आम्रके सुन्दरचमत्कारजनक सुगन्धोंको जो आस्वादन करतेहैं वेही कोकिल तथा भ्रमर धन्य हैं और अन्य जातिकी जनती पुरीकरतेहैं ॥ २५ ॥ तथा सुगन्धित मधुसे मदोन्मत्त जो भ्रमर कमलोंपर गूंजतेहैं वे अन्य पदार्थोंके स्वादोंसे सन्तुष्ट भ्रमरोंको हसतेहैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! चन्द्रमाके अङ्कके तुल्य कोमलकमलोंके कोशमें जिस भ्रमरने विहार किया, विलास किया और चिरकालतक शयनकिया वह शिशिरऋतुमें शुष्कवृक्षोंमें कैसे प्रीति करैगा ॥ २७ ॥ मुकुलित (बन्ध) मल्लिकाकी कलीपर भ्रमर ऐसे देखपडताहै जैसे कालरूपी रुद्रसे शूलमें गूंथाहुआ अन्धक नाम दैत्य ॥ २८ ॥

आस्वादयन्विविधपुष्पमधूनिभृंगनित्यंभ्रमन्सकलशैललतागृहेषु ॥ नाद्यापितुष्यसिकिमंगदुराशयो सिमन्येनसारमुपगच्छसिवावनेभ्यः ॥ २९ ॥ कमलकुलकचलकोविदगच्छसरोमधुपमारूढम् ॥ ब दरदरीषुविदीर्णदेहंकुरुकंटककचैः ॥ ३० ॥ अतसीकुसुमेकुवलयदलवलयेविकसितेचतापिच्छे ॥ परभागमेहिमधुनातासुविसरदृशीवपंडितःपुरुषः ॥ ३१ ॥ पश्यैषानाभिनलिनीकेसरैःपालिताश्रिया ॥ हंसमालामलावल्लीसामगायनकूजिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे प्रिय भृंग ! सब पर्वतोंकी लतारूपी गृहोंमें अनेकप्रकारके पुष्पोंके मधुका स्वाद लेकर भ्रमणकरतेहुये अबभी सन्तुष्ट नहींहुये, मैं समझताहुं तुम दुष्टचित्त हो जो अबतक बनोंसे सारपदार्थको नहीं ग्रहण करते ॥ २९ ॥ कमलोंके बनमें पुष्परसके स्वाद लेनेमें निपुण हे भ्रमर तुम कमलपूर्ण सरोवरमें जाओ और पुष्पोंके रससे पुष्ट अपने देहको बेरके कांटेरूप आरोंसे विदीर्ण न करो ॥ ३० ॥ हे भ्रमर ! जब तु हेमन्त तथा शिशिरकालकी कलाओंमें कमल नहीं पाते तब तुमारे वर्णके सदृश अलसीके पुष्पोंमें, कुवलयके दलमें तथा विकसित तमालोंपर यथायोग्य प्राप्त मधुसे अपनी शेष आयुको ऐसे बिताओ जैसे पंडित अपने सदृश स्वामी तथा समाजके न मिलनेपर अपने स्वरूपके असदृश प्रभुके निकट विद्वान्‌की प्राप्तिके लिये निवास करताहे न कि दुष्टोंमें ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस सरोवरकी नाभि कमलिनीकेसरोंसे पालित अतएव उसीके वर्णरूपादिशोभासे युक्त सामवेदके गायनके सदृश गंभीर कूजती हुई हंसमालाको देखिये ॥ ३२ ॥

दोलाकमलनीडस्थांदृष्ट्वाखेप्रतिबिंबिताम् ॥ हंसोहंसीमनुसरन्मंडलेनेहचेतति ॥ ३३ ॥ माभुक्तस्य चिदेवैषाराजन्व्यसनिताभृशम् ॥ पश्यैतांबिबितांहंसोहंसीमनुसरन्मृतः ॥ ३४ ॥ हेलयाराजहंसेन यत्कृतंकलकूजितम् ॥ नतद्वर्षशतेनापिजानात्याशिक्षितुंबकः ॥ ३५ ॥ समानेष्वाकराकारजातिचेष्टा शनादिषु ॥ हंसस्यराजहंसस्यदूरमत्यंतमंतरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे राजन्! देखिये इस तडागके मंडलके आकाशमें हंस हंसीके पीछे गमन करताहुआ दोलाके समान कमलके नीडमें प्रतिबिंबित हंसीको देखकर पतनके भयसे मूर्छित होगया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार व्यसन किसीकोभी न हो, देखिये इस प्रतिबिंबित हंसीके पीछे दौडता हुआ मरगया ॥ ३४ ॥ हे राजन्! लीलासे हंसने जो मधुर कूजन कियाहै वह सौवर्षमेंभी बक नहीं सीख सकता ॥ ३५ ॥ जन्म, आकार, जाति, चेष्टा तथा भोजनादिमें समान्य हंस और राजहंस समान होनेपरभी इन दोनोंमें अत्यन्त भेद है ॥ ३६ ॥

शुक्लपक्षस्थितोव्योम्निकुमुदाकारभासकः ॥ आह्लादयतिचेतांसिहंसश्चंद्रइवोत्थितः ॥ ३७ ॥ उन्नालन लिनीनालकदलीस्तंभसंकुले ॥ वनेविहरतांलक्ष्मींहंसानामेतिकःखगः ॥ ३८ ॥ तरंगवलयालोलसी करोत्करहारिणी ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुष्पसंभारसुंदरी ॥ ३९ ॥ भृंगलोलालकलतारणत्सारसनूपरा ॥ वर्तुलावर्त्तनाभीकाचलद्वीचिविलोचना ॥ ४० ॥ प्रतीक्षमाणादयितंरसपूरकरंधरम् ॥ नारीवसरसी चारुहंसकाभ्यांविराजते ॥ ४१ ॥

अर्थ—शुक्लपक्षसे आकाशमें स्थित, कुमुदाकार प्रकाशित वह हंस चित्तको ऐसे आनन्दित करताहै जैसे चन्द्रमा ॥ ३७ ॥ युक्तिसे ऊर्ध्वदेशमें प्राप्त कमलिनीमें विहार करनेवाले हंसो (पेगियों) की शोभाको अन्य पक्षी (आकाशचारी देवभी) नहीं प्राप्त होसकता ॥ ३८ ॥ तथा हे राजन् ! तरंगरूप कटकधारिणी, चंचलजलकणरूपी हारसे शोभित, कुमुद तथा नील रक्त आदि कमलपुष्पोंसे मनोहर, भृंगरूपी चंचल अलकधारिणी, शब्दायमान सारसरूप नूपरसे युक्त, गोलाकार आवर्तरूप नाभिसे शोभित, चलायमान तरंगरूप लोचनसहित और दो हंसबालकोंसें भूषित यह सरसी (तलाई) अंगनाके सदृश मनोरथरूप जलकी पूर्ति करनेवाले पर्वतरूप पतिकी संमुख प्रतीक्षा करतीहुई शोभित होरही है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

हेहंसमद्गुबककाकशरारुसारेमात्वंसरस्यविरतंकुरुवासमेकः ॥ आपद्यपीहसमशीलवयोवचोभिःश्रेयः फलाभवतिसंगतिरात्मवर्गैः ॥ ४२ ॥ पादाक्रांतमहेभमस्तकतटःपद्माकरैकालयःकह्लारोत्पलकुंदचंपकलतासंभोगसौभाग्यवान् ॥ भृंगोप्येषविधेर्वशेनशिशिरेलोध्रंव्रणंस्वादयन्शीतिशुष्कबकत्यहो नुविपदादैन्येमनोदीयते ॥ ४३ ॥ पुत्रस्येहदलोदरेद्युतितरत्तारंचिरंसंस्मृतंहंसस्यांसविनुन्ननालग हनेसंचारिणाभोमया ॥ शुक्लासारमिवाब्जिनीविकिरतिस्वंवारिबिंदूत्करंमध्याह्नेशिशिरंविकासिसह सामूर्भिस्फुटंदृश्यताम् ॥ ४४ ॥ व्योम्नींदोरिवसौम्यवारिणिचिरंनिःशब्दकंसर्पतोहंसस्यांसहताब्जना लवलनानिष्कंपटंकक्षतेः ॥ गंगावारिवदत्रपुष्करपुटाद्ब्राह्मादिवास्योपरिभ्रष्टायेजलबिंदवोजलचराहृष्टाः पिबंत्याश्रुतान् ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने पद्मभ्रमरहंसवर्णनं नाम सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अर्थ—हे हंस ! तुम बक, जलकाक तथा साधारण काक आदि हिंसक पक्षियोंसे सेवित तडागमें अकेले निवास न करो, क्योंकि अपने समानशील अवस्था तथा वचनयुक्त आत्मवर्गीय हंसोंके साथ स्थिति विपत्तिमेंभी सुखदायिनी है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! देखिये पादोंसे मातंगोके गंडस्थलको दलनकारी, कमलबनका निवासी, तथा रक्त, नील, श्वेतकमल, कुंद तथा चंपाकी लताओंके संभोगसे अति सौभाग्यवान् यह भ्रमरभी दैवसंयोगसे शिशिरऋतुमें काष्ठ, तृण आदिका आस्वाद लेताहुआ शुष्क बकके समान वृत्ति धारण करता है. अहो ! विपत्तिमें बडोंका मनभी दीनता ग्रहण करलेताहै ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! हंसके पक्षोंसे ताडित कमलबालके बनमें प्रविष्ट मैंने प्रकाशमान कमलके उदरमें स्थित हंसके बालकके मुखसे निकलते हुये उच्चस्वर वचनसे निजपितासे कहतेहुये यह सुना कि हे पितः कमलिनी तो मुक्तामय जलबिन्दुसमूहको वर्ष रही है और ऊपर शिरपर मध्यान्हसमयमें इस प्रत्यक्ष शिशिरऋतुके हिमकोभी देखिये ॥४४॥ हे राजन् ! इस सरोवरमें आकाशस्थ चन्द्रमासेभी स्वच्छ जलमें निःशब्द चलतेहुये हंसके पक्षोंसे संचालित ब्रह्माके आसनके तुल्य इस तडागके कमल पुटसे गिरतेहुये जलबिन्दुओंको गंगाजलके समान सब चलचारी जीव प्रसन्न होके शीघ्रतासे पान करते हैं सो आप देखें ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्योपाख्याने वि० पद्महंसभ्रमरवर्णनं नाम सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

बक, जलकाक, वियोगीपथिक, मत्स्य, तथा चातकोंका चरित्र इस ११८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ सहचरंसहचर्यःक्रमेणोचुः ॥ निर्गुणस्यबकस्यास्यगुणएकोस्तिदृश्यताम् ॥ यत्प्रावृषंस्मारयतिप्रावृट्प्रावृडितिब्रुवन् ॥ १ ॥ बकहंसइवाभासिसरःस्थोमद्गुसौहृदम् ॥ नृशंसत्वंचवाणीचत्यक्त्वाहंसोभवस्फुटम् ॥ २ ॥ गंभीरंवारिगर्भप्रसृतजलचरंयेप्रविश्यप्रविश्यप्राङ्मत्स्यान्प्रोतचंच्वश्चतुरतरपरंजग्धवंतोविदग्धाः ॥ तेकेनाप्यद्यदिष्ट्यामृततिमिगमिताःकालयुक्तेमहिम्नानाक्रामंतिक्रमस्थाःसुहरमपिपुरःपंगवोमद्गवोमी ॥ ३ ॥ एवंविहन्यतेलोकःस्वार्थेनेतिप्रदर्शयन् ॥ मद्गुर्मद्गुरुतांयातइत्येवंस्तौतिदुर्जनः ॥ ४ ॥

अर्थ—सहचर तथा सहचरी क्रमसे बोली कि—हे राजन् ! इस गुणरहित बक (बकुले) में एक गुण है, देखिये कि यह प्रावृट् २ ऐसा कहता हुआ वर्षाऋतुको स्मरण करताहै ॥ १ ॥ हे बक ! तुम वर्णमें हंसके तुल्य (श्वेत) भान होतेहो सो जलकाकसे मित्रता, जीवहिंसारूप क्रूरता और कठोरवाणीको त्यागकर स्वच्छ हंस बनजाओ ॥ २ ॥ हे राजन् ! मत्स्योंके वधमें निपुण तथा अनेक जलजीवोंसे पूर्ण गंभीर जलमें पुनः २ प्रवेश कर २ के चोंचोंमें लेके मत्स्योंके भक्षण करनेवाले जो जलकाक तथा बक हैं वेही दैवयोगसे कालकी महिमासे मृतकति नामक मत्स्योंके भोजनसे जलके रोगसे पंगुल होके अब अधिक क्षुधासे पीडित होनेपर समीपस्थ सुलभ संमुख स्थित मत्स्योंके ऊपरभी आक्रमण नहीं करसकते ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बकके सदृश स्वार्थसे संसारमें अन्य लोकोंको मारकर अपना अर्थ सिद्ध करना चाहिये और बकुला ऐसा करनेसे हमारा गुरु है ऐसी स्तुति दुर्जन बकुलेकी करताहै ॥ ४ ॥

उत्कंधरोविततनिर्मलचारुपक्षोहंसोयमत्रनभसीतिजनैःप्रतीतः ॥ गृह्णातिपल्वलजलाच्छफरीयदासौज्ञातस्तदाखलुबकोयमितीहलोकैः ॥ ५ ॥ अतिबहुकालविलोलानवलोक्यबकांस्तपोदंभान् ॥ अत्रैवातिमिरस्थांस्तटवनिताविस्मिताधूर्तान् ॥ ६ ॥ अत्रजलेहिमहेलाःपश्यैताअपहरंतिसितपद्मान् ॥ इच्छसिताअनुगंतुंनाहंतेवल्लभाव्रजामीति ॥ ७ ॥ कुपितांतामनुनेतुंयत्नपरःपांथएषपथिकांताम् ॥ अवलोकयनरनायककुसुमलताकुहरकेलितीरवने ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! यह आकाशकीओर गला उठाये तथा निर्मल उत्तम पक्षोंको फैलायेहुये यह हंस है ऐसा प्रथम मनुष्योंने जाना परन्तु जब जलमेंसे सहरीको लेनेलगा तब लोगोंने जाना कि यह मत्स्य है ॥ ५ ॥ कपटदंभसे तपमें तत्पर और मत्स्यादि जीवोंके ग्रहणमें चंचल बकुलोंको तथा तट प्राप्त धूर्तोंको सायंकालपर्य्यन्त कपटसे तपमें तत्पर और यथार्थमें विषयके अभिलाषी देखकर इस सरोवके तटकी निवासिनी स्त्री विस्मित होगई ॥६॥ पथिककी स्त्री अपने पतिसे

(१) यहांसे बक आदिका अपदेश करके यह सब कथन अन्यकेलिये है ऐसे वचनोंको अन्योक्ति कहते हैं ॥

कहती है कि आप श्वेतकमलोंको लेजानेवाली स्त्रियोंको देखते हैं, यदि उनके पीछे आप जानाचाहते हैं तो आपकी प्रिया मैं नहीं हुं और जाती हुं ॥ ७ ॥ इसप्रकार कहती हुई कुपित उस नायिकाको मनाके यत्नमें तत्पर यह पथिक पुष्पलताओंके कुंजसे शोभित नदीके तटके बनमें उसकी प्रार्थना करताहै सो हे राजन्! आप देखिये ॥ ८ ॥

इतिहावभावविलसितविवलनकोपार्धदृष्टिहसितानि ॥ कुर्वाणावरवनिताकथयतितेदृश्यतांराजन् ॥ ॥ ९ ॥ बकमद्गुशरारूणांनित्यमेकौकसामपि ॥ संकरोस्तिमिथोबुद्धेनमूर्खविदुषामिव ॥ १० ॥ चंचव ग्रेखंजरीटस्थकीटःकिटिकिटायते ॥ दौर्भाग्यस्यपुराणस्यपताकेवोच्छ्रितोन्नते ॥ ११ ॥ तारंतीरतरौ सरौतितरलोयावद्बकःप्रोल्लसंस्तावत्पल्वलगोष्पदेंबुकलिलेयावद्दलाद्देहकम् ॥ मज्जंत्याप्रियवक्षसीव निपुणंत्रातंशफर्याभयाद्व्यंगेनमहापदीहहिमृतेर्नान्यद्भवेत्सौख्यदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन्! इसी पथिकके हावभाव विलाससे पूर्ण मिथुन संपादित बडे कोपयुक्त अर्धकटाक्षसहित हास्यआदि चेष्टाको यह आपकी श्रेष्ठ वाराङ्गना कहती है सो देखिये ॥ ९ ॥ नित्य एकस्थानमें रहनेवाले बक, जलकाक तथा हिंसक जीवोंकी परस्पर प्रीति ऐसे नहीं है जैसे मूर्ख और पंडितोंकी ॥ १० ॥ हे राजन्! देखिये खंजरीटपक्षीके चोंचके अग्रभागमें यह कीट (पतंग) ऐसे किटकिटा रहाहै जैसे उच्चभागमें पूर्वकालके संचित पापकी पताका ॥ ११ ॥ हे राजन्! देखिये इस वृक्षपर जबतक बक उच्चशब्द करताथा इतनेही सफरी (सहरी मछली) अपने संपूर्णबलसे अल्प जलसे कूदकर अपने प्रियके अंकमें जाके मृत्युको पाकरभी अपने शरीरको बचाया, क्योंकि इस संसारमें आपत्ति प्राप्त होनेपर मृत्युसे अधिक सुखदायक कोई शरण नहीं है ॥ १२ ॥

बकाजगरमद्गूनांहृदियाप्राणिनांधृतिः ॥ अचर्वितनिगीर्णानांमन्येनिद्रोपमैवसा ॥ १३ ॥ आसन्नमद्गुबकगृध्रबिडालसर्पदृष्ट्याभयंभवतियत्सलिलाशयानाम् ॥ तस्याग्रतस्तृणमिवाशनिपातभंगोजातिस्मरेणविदुषोक्तमदःपुरामे ॥ १४ ॥ इहसरोवरतीरतरोस्तलेकुसुमशालिनिमुग्धमृगान्पुरः ॥ समवलोकय लोकमलीबलात्समयकीर्णनवोत्पलकेतकान् ॥ १५ ॥ बर्हीप्रोन्नतचित्तत्वात्तोयमिंद्रंप्रयाचते ॥ सपूरयतितेनास्यमहात्मानिखिलांमहीम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राजन्! बक, जलकाक, तथा अजगर आदि प्राणियोंके उदरमें अचर्वित (समूचे) निगलेहुये मत्स्य आदि प्राणियोंकी जो स्थिति है वह सुषुप्तिके तुल्य मूर्च्छाही है ऐसा मैं मानतीहुं ॥ १३ ॥ हे राजन्! समीपस्थ बक, गृध्र, बिडाल तथा सर्पादि हिंसक जीवोंको देखकर मत्स्य मूषक आदि जीवोंको जो भय होताहै उस भयके सन्मुख वज्रपातभी तृणकेसमान है ऐसा पूर्वकालके जातिस्मरण करनेवाले तत्त्वज्ञानीने निज अनुभूतविषय कहाहै ॥ १४ ॥ पुष्पोंसे शोभित इस सरोवरके वृक्षके तले नेत्र तथा कर्णको शोभादायक भ्रमरकी विध मानतामें पूर्णरूपसे नूतन कमलोंको विखेरनेवाले मुग्ध मृगोंको अपनी प्रियाओंको दर्शाइये ॥ १५ ॥ मयूर उदार चित्त होनेसे इन्द्रसेही जलकी याचना करताहै और अति उदारचित्त महात्मा इन्द्रभी इसके उदारभावसे सन्तुष्टहोकर संपूर्ण पृथिवीको जलसे पूर्ण कर देताहै ॥ १६ ॥

मेघाननुसरंत्येतेमयूरास्तनपाइव ॥ मलिनोमलिनस्यैवपुत्रइत्यनुमीयते ॥ १७ ॥ मृगानालोक्यपथि कश्चित्तयन्दयितेक्षणे ॥ पुरस्थेषुपदार्थेषुयंत्रपुत्रिकतांगतः ॥ १८ ॥ शिखीवार्यपिनादत्तेभूमेर्भुंक्तेब लादहिम् ॥ दौरात्म्यंतन्नजानेकिंसर्पस्यशिखिनोथवा ॥ १९ ॥ सज्जनाशयनीकाशंत्यक्त्वाबर्हीमहत्सरः ॥ पिबत्यंब्वभ्रनिष्ठ्यूतंमन्येतन्नतिभीतितः ॥ २० ॥

अर्थ—ये मयूर (मोर) मेघोंका अनुसरण स्तन पीनेवाले बच्छडोंके समान करतेहैं, इससे मलिन (श्यामवर्ण) मयूर मलिन मेघहीका पुत्र है ऐसा अनुमान होताहै ॥ १७ ॥ पथिक मृगोंको देखकर अपनी प्रियाके नेत्रोंको चिन्तन करतेहुये, देखिये सन्मुखके पदार्थोंमें चित्रवत् चेष्टारहित होगया ॥ १८ ॥ हे राजन्! मयूर जलकोभी ग्रहण नहीं करता परन्तु सर्पको भूमिसे बलात्कार ग्रहणकरके भक्षणकर लेताहै, अब इसमें सर्प अथवा मोरकी दुष्टता है यह नहीं जाना जाता ॥ १९ ॥ सज्जनके अंतःकरणके समान महासरोवरके जलको त्यागकर मेघके मुखसे च्युतजलको जो पीताहै उसका कारण इस तडागको शिर नमानेका भय ज्ञात होताहै ॥ २० ॥

लसत्कलापजलदाःपश्यनृत्यंतिबर्हिणः ॥ धुन्वानाःपिच्छकांतींदुंप्रावृषःपोतकाइव ॥ २१ ॥ वरवनेव नवातविसारिणांचपलचंद्रकचारुतरंगिणाम् ॥ इहपयोनिधिरेवकलापिनांविस्तृतमुक्तयेवविलासनः ॥ २२ ॥ चरतृणानिपिबांबुवनावनौकलयविश्रमणंकदलीवने ॥ चकितचातकपावकदूषितानहिसुखा

यभवत्यतिमानिता ॥ २३ ॥ नायंमयूरमकरालयवारिपूरपूर्णोदरोजलधरोंबरमारुरुक्षुः ॥ दावाग्निद ग्धवनपादपकोटराग्रधूमावलीवलयउत्थितएषशैलात् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राजन्! मेघसे शोभित पक्षसहित और पक्षके चन्द्रसदृश बिन्दुओंको कंपातेहुये मयूर ऐसे नृत्य करते हैं मानों वर्षाके बालक ॥ २१ ॥ हे राजन्! देखिये इस श्रेष्ठ बनमें बनके वायुसे चंचल चन्द्रबिन्दुसहित सुन्दर पक्षोंसे तरंगयुक्त मयूरोंको ऐसे नृत्य कराता है जैसे निजतरंग विस्तारित मुक्तीओंको ॥ २२ ॥ हे चकितचातक! कदलीबनके समीपस्थ हरित तथा शीतल तृणोंको चरो और नदियोंके जलको पानकरो, तथा केलेके वनमें विश्राम करो, क्योंकि, इन वनकी भूमिमें ग्रीष्मऋतुके अग्निकी भ्राताके समान अतिमानिता सुखकेलिये है ॥ २३ ॥ हे मयूर ! यह सन्मुख स्थित पदार्थ समुद्रके जलसे पूर्णोदर मेघ नहीं है, किन्तु दावाग्निसे दग्ध वृक्षोंकें कोटरसे निःसृत धूमकी पंक्तियोंका बल यह इस पर्वतपर है ॥ २४ ॥

येनाब्देनशरद्विधावपिशिखीसंतर्पितोवारिभिर्नोवर्षास्वपिपूरयेद्यदिसरस्तब्दालीलोकोचितम् ॥ आरब्धंसमवेक्ष्यसज्जनजनोहासेनदुःस्थोभवेद्वर्हीत्यात्मतृषैवनेतुमखिलंकालंसमभ्युद्यतः ॥ २५ ॥ स्फटिकविमलंपीत्वातोयंघनोदरनिर्गतंपिबतिनपुनर्मार्गेक्षुभ्यंस्तृषापिशिखीजलम् ॥ स्फुरतिचघनंस्मृत्वास्मृत्वानचापिविपद्यतेगुणवतिजनेबद्धाशानांश्रमोपिसुखावहः ॥ २६ ॥ इहातिवाहयंत्येतेमार्गदौस्थ्यंघनागमे ॥ कथाभिःपथिकाःप्रायोविमूढार्जावितंयथा ॥ २७ ॥ पश्यात्रनाथसरसःकमलोत्पलकुमुदबिसमृणालानाम् ॥ कह्लारपत्रपयसांभारानादायबालिकाश्चलिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जिस मेघने शरत्कालके समयमें मयूरको तर्पित किया है, यदि वर्षाकालमें वह मेघ तडागको नहिं पूर्ण करे तो यह बालककी लीलाहै इसलिये उदारताके समयमें अनुदारताके आरंभको देखकर मयूर तृषित होकर अपना काल व्यतीत करनेमें उद्यत है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! वह मयूर (मोर) पूर्वकालमें स्फटिकके समान निर्मल मेघके उदरसे निःसृत जलको पानकरके पुनः मार्गमें कीचडसहित जलको कदापि पान नहीं करता, वह तो मेघका स्मरण करके प्रफुल्लित होताहै और मरता नहीं, क्योंकि गुणवान् जनमें आशावान् जनोंका परिश्रमभी सुखदायक होताहै ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस स्थानपर ये स्त्रीवियोगी पथिक अपने समयको कथावार्तासे वर्षाऋतुमें ऐसे बिताते हैं जैसे आत्मज्ञानसे हीन जीव अपने जीवनको ॥ २७ ॥ हे नाथ ! देखिये इस सरोवरसे रक्त तथा श्वेतकमलके पत्रदंडआदि और रक्तकमलसे आच्छन्न जलके भारकोभी लेकर ये तरुणी जारहीं हैं ॥ २८ ॥

किमिदंनयथेतितताःपृष्टाभिस्ताभिरुक्तयेतस्य ॥ व्यसनज्वरतप्तायाःपथिकवयंबालसख्यइति ॥ २९ ॥ अथरागरक्तहृदयाःस्तनभरवितताविलासललितांग्यः ॥ पथिकानांस्मरणपथंभूयोप्यनयन्प्रियाःस्वगेहस्थाः ॥ ३० ॥ सानूनंममकांताहृष्ट्वाशुस्निग्धघनतमःश्यामम् ॥ गगनंचशून्यगहनंप्रलपतिभुविपततिविस्खलति ॥ ३१ ॥ भृंगावलीकुवलयावलिताब्जपात्रसंप्रेर्यमाणनलिनीमधुपानमत्तः ॥ हावातितीरतरुपल्लवलास्यलब्धसंमुग्धशब्दगणगीतगुणोनभस्वान् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिद्दुपाख्याने हरिणमयूरबकमुग्धादिवर्णनं नामाष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८ ॥

अर्थ—और जब मैंने पूंछा कि तुम कमलके भारको क्यों ले जातीहो, तब उन्होंने उत्तर दिया कि—हे पथिक ! हम सब पतिवियोगसे संतप्त नायिकाकी बालसखी हैं इसलिये उसके उपचारार्थ यह सब लेजाती हैं ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् अपने प्रियतमोंमें अनुरागयुक्त तथा स्तनके भारसे विलास और ललित अङ्गवाली उन सखियोंने पथिकोंको उनके गृहके अङ्गनाओंको अधिक स्मरण कराया ॥ ३० ॥ अतिस्निग्ध, मेघरूपी अन्धकारोंसे श्यामवर्ण आकाश तथा गहनवनको देखकर पथिक बोला कि वह मेरी प्रिया वियोगमें प्रताप करती है और पृथ्विपर चलती हुई गिरतीभी है ॥ ३१ ॥ कोई पथिक कहताहै कि हा ! इस प्रियाके वियोगदशामें भृंगोंकी पंक्तियोंसे वेष्टित कमलपत्ररूपी पात्रसे दियेहुये मधु (मध) पानसे मत्त, तथा तटके वृक्ष और लताओंकी लीलासे प्राप्त कोमल तथा गंभीर शब्दगणसे प्रकट शैत्य मांद्यादि गुणयुक्त पवन वह रहा है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० भाषानुवादे हरिण मयूरबकमुग्धादिवर्णनं नामाष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

एक पथिकने अपनी पूर्वकालकी प्रियाको पाकर उससे विरहसे उत्पन्न अपनी पूर्वकालकी स्मशानान्त दुःखमयी दशाको इस ११९ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ सहचराऊचुः ॥ कथयत्येषपथिकःपश्यमंदरगुल्मके ॥ प्रियायाश्चिरलब्धायावृत्तांविरहसंकथाम् ॥ ॥ १ ॥ एकत्रशृणुकिंवृत्तमाश्चर्यमिदमुत्तमम् ॥ दातुंत्वन्निकटेदूतमहंचिंतान्वितोवदम् ॥ २ ॥ अस्मिन्महाप्रलयकालसमेवियोगेयोमांतयेहममयातिगृहंसकःस्यात् ॥ नैवास्त्ययोजगतियःपरदुःखशांत्यैप्रीत्यानिरंतरतरंसरलंयतेत ॥ ३ ॥ आएषशिखरेमेघःस्मराश्वइवसंयुतः ॥ विद्युल्लताविलासिन्यावलितो रसिकःस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ— सहचरलोग बोले कि–हे राजन् ! देखिये यह पथिक मंदरपर्वतके गुल्ममें चिरकालसे अपनी कालवियुक्त प्रियाको पाकर उससे पूर्वकालकी विरहकथाको कहताहै ॥ १ ॥ यह पथिक बोला कि–हे प्रिये ! इस मेरे एकदिनके उत्तम तथा आश्चर्य्यजनक वृत्तान्तको सुनिये, एकदिन तुमारे निकट अपना वृत्तान्त भेजनेके अर्थ दूतकी चिन्ता करतेहुये मैंने यह कहा ॥ २ ॥ कि इस महाप्रलयकालके समान वियोगके दुःखमें ऐसा दूत कौन है जो इस मेरे वृत्तान्तको गृहमें जाके मेरी प्रियासे कहै, क्योंकि इस संसारमें ऐसा मनुष्य नहीं है जो प्रीतिसे दूसरेके दुःखकी शान्तिके लिये सरलभावसे प्रयत्न करैं ॥ ३ ॥ इतनेमें मुझे स्मरण हो आयाकि इस पर्वतके शिखरपर दूसरेके दुःखको शान्तिकारक रसिक मेघ अपनी विलासिनी विद्युत् (विजुली) रूपी प्रियासे संयुक्त स्थित है ॥ ४ ॥

भ्रातर्मेघमहेंद्रचापमुचितंव्यालंब्यकंठेगुणंनीचैर्गर्जमुहूर्तकंकुरुदयांसाबाष्पपूर्णेक्षणा ॥ बालाबालमृणालकोमलतनुस्तन्वीनसोढुंक्षमातांगत्वासुगतेगलज्जललवैराश्वासयात्मानिलैः ॥ ५ ॥ चित्ततूलिकयाव्योम्निलिखित्वालिंगितासती ॥ नजानेकाधुनैवेतःपयोददयितागता ॥ ६ ॥ इत्थंचिंतापरवशमतेस्तन्विसार्द्धंत्वयासावंतर्लीनप्रसरमनसःकापियातास्मृतिर्मे ॥ संपन्नोहंपरवशवपुःकाष्ठकुड्योपमांगोभंगंसोढुंकइवविरहक्लेशजंनामशक्तः ॥ ७ ॥ पश्चाज्जातःकलकलरवःसंततेपांथसार्थेदीनालापैर्व्यसनविधुरैरालपंतेचमेघम् ॥ कष्टंपांथोमृतइतिमहारंभसंपन्नहाहाशब्दःप्रोद्यत्पथिकवनिताविस्तृतोरःप्रहारः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये उससे मैंने कहा कि–हे शोभनगतिसंयुक्त, तथा कंठमें शब्दगुणसहित भ्रातः मेघ तुम मेरी प्रियाके निकट जाके प्रथम जलकणयुक्त निजपवनोंसे उसको शान्ति दो, पश्चात् दया करके क्षणभर मन्द २ गर्जना करो, क्योंकि अश्रु पूर्ण नेत्र तथा कमलके समान कोमल और दुर्बलशरीरवाली मेरी बाला प्रिया वियोगके दुःखसे आपकी कठोर गर्जनाको सहनेके समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ हे मेघ ! मैंने अपनी प्रियाको हृदयाकाशमें चित्तरूपी लेखनीसे लिखकर आलिंगन किया इतनेमें न जाने वह कहां चलीगई ॥ ६ ॥ हे सूक्ष्मांगि ! इसप्रकार तुमारी चिन्तामें परवश होके मनके अन्तःकरणमें लीनहोनेसे धारणासमर्थ मेरी बुद्धि तुमारे साथ न जाने कहां चलीगई और बुद्धिलोप होनेके पश्चात् काष्ठ तथा पाषाणवत् मैं होगया, क्योंकि विरहजनित तापको कौन सहसकताहै ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! मुझे इसप्रकार चेष्टारहित देखकर सब पथिकसमूह हा ! हा ! यह पथिक मरगया इसप्रकार महाशब्दके साथ हा हा शब्द करनेलगा, पश्चात् वक्षस्थलताडनपूर्वक हा पथिक मरगया इसप्रकार आतीहुई पथिकवनिताओंका महाकोलाहल हुआ और वहांपर कोई २ दुःखसे मेघकी निन्दाभी करते थे ॥ ८ ॥

लोकेनायंमृतइतिततोबाष्पसंपूरिताक्षंशावींपूजांविरचितवतासंचयीकृत्यदारु ॥ दग्धुंनीतोस्यतिभयमहंप्रज्वलच्चित्यनंतप्रोद्यत्स्फोटस्फुटपटपटारावरौद्रंश्मशानम् ॥ ९ ॥ तत्राहंतैःकमलवदनेबाष्पपूर्णाक्षिपक्षैर्न्यस्तःकैश्चिच्चितिशयनकेबद्धलोकालिलेखे ॥ धूमोद्गाराविरलजटिलेमस्तकेमत्तमृत्योश्चूडारत्नत्तमइवकलामात्रदृश्येग्निहेम्नि ॥ १० ॥ अस्मिन्कालेकुवलयलताकोमलाधूमलेखानासारंध्रंमृदुगलबिलंमेप्रवृत्तानियातुम् ॥ उष्णाकृष्णानकुलकलितास्तत्वरंबालसर्पीभूमेरध्वंतनुमिवदराद्दैर्घ्यसंकोचकुब्जा ॥ ११ ॥ त्वत्संकल्पामृतकवचितोनापविद्धस्तयाहंकुंतश्रेण्याहठपतनयावज्रकायोयथाजः ॥ त्वामासन्नांमदनसरितंहृद्द्वेगाहमानोमर्मच्छेदेष्वपिविलसितानाविदंवेदनास्ताः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सब लोग मुझे मृतक जानकर रोदनपूर्वक काष्ठ एकत्रकरके गन्धमाल्य आदिसे पूजित चितापर मुझे पटापटाशब्दोंसे भयंकर श्मशानभूमिमें भस्म करनेको लेगये ॥ ९ ॥ हे कमलमुखि ! वहांपर अश्रुपूर्णनेत्र

पथिकोंनें चितारूपी शय्यापर स्थापित किया, और जब धूमोंकी लेखासे सघनजटायुक्त मृत्युके मस्तकके सदृश, और चूडामणिके समान प्रकाशमान कलामात्र अग्नि दृश्य हुआ ॥ १० ॥ तब कमलकी लताके समान कोमल, उष्ण, कुबरी तथा कृष्णवर्ण धूमकी लेखा मेरे कोमलगलरूपी बिलमें ऐसे प्रवृत्त होनेलगी जैसे नकुलसे भयभीत सर्पिणी ॥ ११ ॥ परन्तु हे प्रिये ! मैं तुमारे संकल्परूपी अमृतसे आवृत होनेके कारण उस धूमलेखासे ऐसे पीडित नहीं हुआ जैसे मृत्युकी बर्छीसे ब्रह्माजी, और हृदयरूपी गृहमें प्राप्त कामदेवके नदीके सदृश तुमारे स्वरूपमें स्नान करते हुये मैंने अग्निदाहजनित उन पीडाओंकोभी अनुभव नहीं किया ॥ १२ ॥

एतावंतंसमयमुचितंतन्विसार्द्धंत्वयांतर्लीलालोलंहृदिचिरतरंतन्मयात्रानुभूतम् ॥ यस्मिन्दृष्टेमृतहृदइवोन्मज्जनौघैर्यथासौराज्याभोगोविशसनमिवाल्पाल्पमेवेतिबुद्धिः ॥ १३ ॥ सालीलातेविलासावचनमपिचतत्सस्मितंतेकटाक्षाःसानंदानंतरस्यप्रसरसमुचितादूरमण्येकभूषा ॥ तानीहारावसारावहसनचलनावेगविक्षोभितानिकिंवातत्तन्नयत्संस्मृतममृतरसाह्लादमंतःकरोति ॥ १४ ॥ त्वत्संगमेसुरतसौख्यरसायनेनबालेततोहमतितृप्ततयाश्रमार्त्तः ॥ तत्रस्थितोमृदुनितल्पतलेशशांकबिंबेशरच्छिशिरनिर्मलशोचिषीव ॥ १५ ॥ अत्रांतरेझटितिचंदनपंकशीताद्दीर्घादिवेंदुशकलादशनिःसशब्दः ॥ दृष्टोमयाचितितलज्वलितोहुताशःक्षीराब्धिवाडवनिभोंगगतःस्वतल्पात् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे सूक्ष्मांगि ! इस मूर्छादशामें हृदयमें स्थित तुमारेसाथ सुखको अनुभव करते हुये उस दुःखको ऐसे तुच्छबुद्धि किया जैसे अमृतकुंडमें स्नान करनेवाला राज्यके भोगको ॥ १३ ॥ हे प्रिये ! तुमारी वह केवल अनुभववेद्यनिरतिशय आनंदरूप अनिर्वचनीय लीला, वे विलास, वे वचन, वह मुसकिरान, वे कटाक्ष, सबसे श्रेष्ठ सुखदायक मणिमय भूषणोंको दूर करके रतिसमयमें वह आलिंगन क्रिया तथा रतिसमयकी वे चेष्टा, भूषणोंके शब्द, हसन और अंगोंके संचालन, इनमेंसे ऐसे कौन हैं जो अमृतके समान सुख नहीं देते ॥१४॥ हे प्रिये ! उसके पश्चात् तुमारे समागममें सुरतरूपी अमृतसे तृप्त होनेसे श्रान्त होके शिथिलतासे मैं उस चितारूपी शय्यापर ऐसे स्थितथा जैसे शरदृतुमें शीतल किरणयुक्त चन्द्रबिंबमें ॥१५॥ हे प्रिये ! इसी अवसरमें चन्दनके पंकके सदृश शीतल चन्द्रमण्डलसे असंभूत वज्रके तुल्य अपनी शय्यासे निःसृत शब्दयुक्त चिताकी अग्निको मैंने ऐसे देखा जैसे क्षीरसागरसे निकलते हुये वडवानलको ॥ १६ ॥

सहचराऊचुः ॥ इत्युक्तवतिकांतेस्मिन्हाहतास्मीतिवादिनी ॥ मुग्धामौग्ध्याद्दरावर्त्तशंकयामूर्छितास्थिता ॥ १७ ॥ तामेनामेषनलिनीदलवीजेनवारिभिः ॥ आश्वासयंस्तथावस्थांकंठेकृत्वात्रसंस्थितः ॥ १८ ॥ पुनःप्रष्टोनयावक्तिपश्यतामेवसंकथाम् ॥ एषपार्श्वगतामेनांगृहीत्वाचिबुकेप्रियाम् ॥१९॥ हाहाहुताशईतिकिंचिदिवोपजातखेदोवदामिखलुयावदहंत्वरावान् ॥ तावच्चितिर्झटितितैरवलुंठितासापांथैःक्षणात्खरखराकुलितालसद्भिः ॥ २० ॥

अर्थ—सहचर बोले कि—हे राजन् ! कान्तके इतना कहनेपर वह मुग्धा अपनी मुग्धतासे महाप्रलय (पतिमरण) की आशंकासे हा ! हतास्मि (मारीगई) ऐसा कहती हुई मूर्छित होगई ॥ १७ ॥ तब उस अवस्थामें प्राप्त प्रियाको उसका यह पति कमलदलके पवनसे तथा जलसिंचनसे आश्वासन करतेहुये कंठमें लगाके यहां स्थितहै ॥ १८ ॥ पुनः जागृत होनेपर समीपस्थ उस अपनी प्रियाको चिबुक (ठोडी) पकडकर पूर्वोक्त कथाको आप देखैं यह कहताहै ॥ १९ ॥ कि मैं पुनः किंचित् खेदयुक्त होके ज्योंही यह कहनेलगा कि हा यह अग्नि ! इतनेहीमें प्रसन्नतायुक्त सब पथिकोंने खर २ शब्दयुक्त उस चिताको लूट लिया ॥ २० ॥

पांथास्ततस्तरलतालविलासवाद्यमालिंग्यमामतनुशेखरपूरितांगम् ॥ उत्थापितस्थितिमलंपरिवार्यसर्वेनेदुर्जगुर्जहसुराननृतुर्ववल्गुः ॥ २१ ॥ विषमविनायकसुखदंवलितंभस्माहिशवशिरःप्रकरैः ॥ शशिधवलास्थिकपालंवपुरिवरौद्रंश्मशानमथदृष्टम् ॥ २२ ॥ पार्श्वच्छायांहरंतोविचलितविदलत्क्लिन्नकंकालगंधास्तन्वंतोभूरिभस्मप्रविततमिहिकामाधुनानाःशवानाम् ॥ केशानाकाशकोशेशशिगलितशराकारिणःशांकराणामस्थीनांटांकृतेनारशितखरगिरस्तत्रवातावहंति ॥ २३ ॥ ज्वलदनलचितिप्रवाहनिर्यत्पवनहतोष्मविशुष्कपर्णवृक्षा ॥ ज्वलनपवनभास्करात्मजानांरमणगृहानुकृतिंबिभर्त्तिसाभूः ॥ २४ ॥

अर्थ—पुनः मृतकके उज्जीवनसे सब पथिकोंने तालीवादनपूर्वक चिताके मंगलार्थ पुष्पोंसे पूर्ण शरीर मुझे उठाके आलिंगन किया और चारोंओरसे मुझे घेरके प्रसन्नतासे हसने, गाने, बजाने और नाचने लगे ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् भस्म, सर्प, तथा मृतकोंके मस्तकोंसे पूर्ण, विकट विनायक तथा योगिनीआदिको सुखदायक और मनुष्योंको भयंकर

स्मशानभूमिको मैंने देखा ॥ २२ ॥ और भस्मके उडानेसे हरितवर्ण छायाको प्राप्त करनेवाले, गीले सडती हुई शरीरोंके गन्धसे पूर्ण, भस्मरूप कुहिरोंको फैलानेवाले, मृतकोंके केशोंको कंपातेहुये, तथा चन्द्रमासे गिरेहुये शरके सदृश और महादेवजीके भूषणके योग्य अस्थियों (हड्डियों) के अभिघातसे कठोरशब्द करनेवाले वायु उस श्मशानभूमिमें बहतेथे ॥ २३ ॥ हे प्रिये ! प्रज्वलित अग्निसहित चिताओंके प्रवाहसे निकलेहुये धूम तथा स्फुलिंग (अग्निकण) युक्त पवनसे शुष्कपत्रपूर्ण वह श्मशानभूमि अग्नि, वायु तथा शनैश्चरके रमण योग्य गृहोंको धारण करती है ॥ २४ ॥

दृष्टंश्मशानंतदनंतभीमकरंककंकालघनामगंधि ॥ माद्यच्छिवावायसकंकगृध्रपिशाचवेतालविरावरौद्रम् ॥ २५ ॥ आनीतनानाशवबंधुसार्थसंरोदनाहादिदिगंतकुंजम् ॥ खगावकृष्टार्द्रशिरांत्रतंत्रीनिबद्धदग्धद्रुमखंडजालम् ॥ २६ ॥ क्वचिच्चितिक्षोभकृतप्रकाशंक्वचिन्महाक्लेशकृताब्दवृंदम् ॥ क्वचिच्चरक्ताक्तधरावितानंनकंस्तनत्वभ्रमिवास्तशैलम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिद्रुपाख्याने पथिकविरहवृत्तवर्णनं नाम एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! अनन्त भयंकर अर्द्धदग्ध और दुर्गन्धपूर्णशरीरोंसे व्याप्त, तथा मदोन्मत्त शृगाल, काक, गृध्र, पिशाच और वेतालादिके शब्दोंसे अतिभयंकर उस श्मशानभूमिको मैंने देखा ॥ २५ ॥ पुनः नानादेशोंसे मृतकोंको लानेवाले उनके बन्धुओंके रोदनसे व्याप्त और पक्षियोंसे आकृष्टनस तथा आंतीआदिसे आच्छादित वृक्षोंसे पूर्ण वह श्मशानदेश था ॥ २६ ॥ हे प्रिये ! वह श्मशानदेश कहीं तो चिताओंके संचालन ज्वालाके प्रदीप्त होनेसे प्रकाशयुक्त, कहीं महाक्लेशोंसे मेघसमूहके तुल्य, कहीं कहीं पर्वतको त्यागनेवाले रक्तपूर्ण पृथिवीके मण्डपके तुल्य मेघके समान वह श्मशान था ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० भाषानुवादे पथिकविरहवृत्तान्तवर्णनं नाम एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

पवन, वृक्ष, भ्रमर, वनकी पंक्ति, देवांगना, समुद्रकी तरंग तथा हेमचूडपक्षी (मोर) आदिका वर्णन इस १२० के सर्गमें किया गयाहै ॥

सहचराऊचुः ॥ एवंप्रायाःकथाःकुर्वत्पश्यैनम्मिथुनंमहत् ॥ पानंप्रवृत्तवत्सारंपातुंपद्मनिभेक्षण ॥ १ ॥ कदलीकंदलीस्वच्छगुच्छाच्छोटनपंडिताः ॥ विविधावायवोवांतिपुष्पकेसरमंडिताः ॥ २ ॥ वांतिवातावनोद्वांतविविधामोदमांसलाः ॥ पतिघर्मकणाःकांतललनालकलालकाः ॥ ३ ॥ कुलाचलगुहागेहवलनोद्यन्मृगाधिपाः ॥ सरंत्यसुरसंरंभैर्लवणार्णवमारुताः ॥ ४ ॥

अर्थ—सहचर बोले—हे कमलनेत्र राजन् ! इत्यादि कथा कहतेहुये ये स्त्रीपुरुष देखिये अब उत्तम मद्यपान करनेमें तत्पर हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! केले, पतका तथा स्वच्छ अनेकप्रकारके पुष्पोंके गुच्छोंके विकसित करनेमें निपुण, और पुष्पोंके केसरोंसे व्याप्त, शीतल, मन्द और सुगन्ध पवन इस स्थानपर वहते हैं ॥ २ ॥ बनोंसे निःसृत अनेकप्रकारके सुगन्धोंसे पूर्ण, जलकणसहित, तथा सुन्दरी ललनाके विखरे हुये केशोंके विलासी ये पवन वहते हैं ॥ ३ ॥ तथा कुल-पर्वतोंके गुहारूपी गृहोंमें प्रवेश करके भ्रमणमें उद्युक्त सिंहोंके समान, और असुरोंके युद्धके सदृश मेरुके शिखरोंके आक्रमणमें तत्पर ये पवन वहते हैं ॥ ४ ॥

तमालतालतरलंलीलांदोलनलालिताः ॥ अनिलाजलकल्लोलोक्रांतकोमलपल्लवाः ॥ ५ ॥ ललल्लवलतावांतपुष्पधूलिविधूसराः ॥ सरंतिमरुतोमंदमुद्यानेषुनृपाइव ॥ ६ ॥ मधुरंवंशविश्रांतोगातुमेषवनानिलः ॥ प्रवृत्तःपांडुनगरनारीभिरिवशिक्षितः ॥ ७ ॥ निकारःकर्णिकारेणपवनस्ययदाकृतः ॥ तदापरिहरंत्येनंभ्रमराअपिदूरतः ॥ ८ ॥

अर्थ—तमाल और ताडोंमें चंचल बालकोंके समान लीलापूर्वक झूलामें झूलनेवाले और जलक्रीडाओंसे निकलकर कोमलपल्लवोंको ग्रहण करनेवाले ये वायु वहते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! विलासिनी लतारूपी ललनाओंसे

निःसृत पुष्पोंकी धूलियोंसे धूसर ये सुगंधित पवन राजाओंके सदृश वाटिकाओंमें भ्रमण करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! हस्तिनापुरकी गानविद्यामें प्रवीण स्त्रियोंसे शिक्षित बांसोंमें विश्राम करनेवाला यह बनका पवन गान करनेमें प्रवृत्त है॥ ७॥ हे राजन्! देखिये जब कर्णिकारवृक्षने सुगन्ध न देकर इस पवनका तिरस्कार करदिया तब भ्रमरभी इसको दूरसेही त्याग देते हैं ॥ ८॥

नददातिफलंकिंचिदर्थिनेनचपल्लवम् ॥ तालःस्तंभतयारंभह्यरूपेवविनाऽऽकृतिः ॥ ९ ॥ रागएवहि शोभायैनिर्गुणानांजडात्मनाम्॥ राजेवराजतेराजन्रागेणैवैषकिंशुकः ॥ १० ॥ आगच्छकर्णिकारोयंवि कारस्यैवभाजनम् ॥ निरामोदःकिमेतेननिर्गुणेनेवजंतुना ॥ ११ ॥ विलोलमंजरीजालतडित्संगस्थि तोऽसितः ॥ चातकस्यांबुदभ्रांतिंतमालःकुरुतेमुधा ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन्! यह महातालवृक्ष खंभेके समान स्थित जब अर्थीको फल तथा पत्र नहीं देताहै तब इसकी महाआकृतिभी रूपरहितके तुल्य शोभा नहीं देती ॥ ९ ॥ हे राजन्! औदार्य्यादि गुणोंसे शून्य मूर्खोंके वस्त्रआभूषणादिके आडंबरके सदृश यह किंशुक (टेसू) अपने अरुणरंगसेही शोभा देताहै ॥ १० ॥ हे भ्रमर आओ, यह निर्गुण-जीवके सदृश सुगन्धशून्य कर्णिकार केवल विकारमात्रका भागी है ॥ ११ ॥ चंचल लताजालरूपी विद्युत्के संगमें स्थित यह श्यामवर्ण तमाल चातकको वृथा भ्रान्ति उत्पन्न करताहै ॥ १२ ॥

पत्रालाघनसंघाताःसच्छायावृतभूभृतः ॥ गुणानांमहतांयोग्यावंशावंशाइवोन्नताः ॥ १३ ॥ हेमसा न्वासनस्थोऽग्र्योवातव्याधितटोंबुदः ॥ तडित्पीतांबरधत्तेक्षुब्धंहरिरिवोद्धवः ॥ १४ ॥ प्रवेशनिर्गमव्य ग्रसरत्खगशिलीमुखः ॥ प्रफुल्लकिंशुकोभातिवीरोरक्तइवासृजा ॥ १५ ॥ मंदारमंजरीपुंजपिंजरांभोदमं दिरे ॥ महेंद्रमस्तकेमत्ताःसुप्तागंधर्वकामिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—पत्र तथा वाहनोंसे भूषित, दुर्भेद्य संघातयुक्त तथा सज्जनोंके छायार्थ भूभृत (पर्वत पक्षमें राजों) का आश्रय करनेवाले ये वांस उत्तम वंशके समान बडे गुणोंके योग्य हैं ॥ १३ ॥ सुवर्णके शिखररूपी आसनपर स्थित, (कृष्णपक्षमें) मेरुशिखर सदृश उच्चासनपर स्थित, श्रेष्ठ, वायुरूप व्याधि जिसके तटमें है पक्षमें वातव्याधि (उद्धव) जिनके समीपमें है ऐसा मेघ संक्षुभित और विद्युल्लताओंसे पीतवर्ण आकाशको धारण करताहै. पक्षमें ऐसे श्रीकृष्णभगवान् बिजुलीके समान चमकते हुए पीतांबरको धारण करतेहैं ॥ १४ ॥ हे राजन्! प्रवेश तथा निर्गममे व्यग्र पक्षियोंके सदृश बाण तथा भ्रमरोंको धारण कियेहुये यह विकसित किंशुक (टेसू) ऐसे शोभित होताहै जैसे रणमें रुधिरसे रक्तवर्ण वीर ॥ १५ ॥ मन्दारोंकी लताओंके पुंजके सदृश विद्युद्वर्ण मेघरूपी मंदिरको धारण कियेहुये महेन्द्रके शिखरपर ये कामी गंधर्व मद्यपानसे मत्त होके शयन कररहे हैं ॥ १६ ॥

कल्पद्रुमवनच्छायाविश्रांतावितताऩ्विता ॥ पश्यपार्थिवगायंतिसिद्धविद्याधराध्वगाः ॥ १७ ॥ पश्य कल्पद्रुमस्यास्यपल्लवेपल्लवेवने ॥ विश्रांतासुरसुंदर्योगायंतिचहसंतिच ॥ १८ ॥ मंदिरंमंदपालस्यमंद रेमृद्रुमंदिरे ॥ मुनेरिदमुदारस्यभार्यासायस्यपक्षिणी ॥ १९ ॥ अन्योन्यामतसिंहेभनकुलोरगकेलि काम् ॥ पश्यमुन्याश्रमश्रेणिंसर्वर्तुकुसुमद्रुमाम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजन्! कल्पवृक्षोंके बनकी छायामें विश्रामकारी तथा वीणा आदि वाद्योंसे युक्त ये सिद्ध तथा विद्याधर आदि पथिक देखिये गान करते हैं॥ १७॥ हे राजन्! देखिये इस कल्पवृक्षके पल्लवित बनमें देवांगना विश्रांति लेकर गाती और हंसती हैं ॥ १८॥ हे राजन्! देखिये उत्तम मंदिरोंसे शोभित मंदराचलपर जिसकी प्रसिद्ध भार्य्या जरितानाम्नी पक्षिणी है उस मंदपालनाम मुनिका यह मंदिर है॥ १९ ॥ हे राजन्! परस्पर विरोधीभी सिंह, हस्ती तथा नकुल, सर्प आदिकी परस्पर क्रीडासहित मुनियोंके आश्रमोंकी श्रेणीको आप देखिये ॥ २० ॥

विद्रुमद्रुममिश्राणामंभोधितटवीरुधाम् ॥ बिंबितार्काःकचंत्येतेपल्लवेषूदबिंदवः ॥ २१ ॥ वीचयोरत्न माणिक्यपदेष्वावर्त्तवृत्तिभिः ॥ विलसंतिविलासिन्योवक्षःस्विवविलासिनाम् ॥ २२ ॥ नागलोकेंद्रलो कस्त्रीगमनागमनोद्भवः ॥ दिव्योभूषणझांकारःश्रूयतेनभसःशृणु ॥ २३ ॥ श्रवणोपांतविभ्रष्टमदमत्ता लिनीस्वैरः ॥ ऐरावणस्नानभुवोगायंतीवगुहागिरेः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राजन्! देखिये विद्रुममणियोंके वृक्षोंसे मिश्रित समुद्रतटके वृक्षोंके पल्लवोंमें प्रतिबिंबित सूर्य्यसहित ये जलके बिन्दु कैसी शोभा दे रहे हैं॥ २१ ॥ हे राजन्! रत्नमाणिक्य आदिको खानिये ये तरंगें आवर्तोंके भ्रमणद्वारा ऐसे विलास करती हैं जैसे अपने कान्तोंके वक्षस्थलोंपर विलासिनी ललना॥ २२ ॥ हे राजन्! नागलोक तथा इन्द्रलोकमें

स्त्रियोंके गमन तथा आगमनोंसे उत्पन्न यह दिव्य आभूषणोंका झंकारशब्द आकाशसे सुन पडताहै उसको सुनिये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! गंडस्थलोंसे पतित मदस्रावके मदसे मत्त भ्रमरोंके स्वरसे ऐरावत हांथीके स्नानकी भूमिसहित इस पर्वतकी ये गुफायें देखिये गान करती हैं ॥ २४ ॥

ऱ्हसतोनुदिनंकृष्णपक्षेकृष्णांतलेखिका: ॥ दृश्यंतेकृशगात्रस्यवास्तुकावलयोंबुधेः ॥ २५ ॥ आमोद गंधश्वसनासच्छायाशीतलांगिका ॥ एकांतदर्शिताकारानानाकुसुमपूरिता ॥ २६ ॥ वनविन्यासवस नानिर्झरामलहासिनी ॥ आस्तीर्णपुष्पास्तरणाधन्यावनविलासिनी ॥ २७ ॥ रमंतेनंदनोद्यानेनतथोदा रबुद्धयः ॥ यथोपशांतशब्दासुशुद्धासुवनभूमिषु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके अनुसार घटते हुये समुद्रके तटपर ये कृष्णवर्ण रेखा देखपडती हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! पुष्पोंके सौगन्ध्यसे सुगन्धित श्वासधारिणी, उत्तम छाया (स्त्री पक्षमें कांति) से शीतल शरीर, एकान्तमें अग्निके आकारको दर्शानेवाली, बनकी रचनारूप वस्त्रधारिणी, पुष्पशय्यायुक्त यह बनोंकी श्रेणीरूपी विलासिनी स्त्री शोभा देरही है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उदारबुद्धि देवताआदि शान्तशब्द तथा शुद्ध बनकी भूमियोंमें जैसे रमण करते हैं उस प्रकार नन्दनवनमें नहीं करते ॥ २८ ॥

सुविरक्तंमुनेश्वेतोरक्तंचविषयार्थिनः ॥ रमयंतिसमंरम्याविजनावनभूमयः ॥ २९ ॥ सलिलाधौतवप्रा णामंभोधितटभूभृताम् ॥ नूपुरैरिवरत्नौघैःपादाभांतिध्वनंतिच ॥ ३० ॥ पुन्नागनगविश्रांताःकांतकां चनकांतयः ॥ हेमचूडाःखगाभांतिदिविदेवगणाइव ॥ ३१ ॥ भ्रमरांभोदधूमाढ्याःफुल्लचंपककाननाः ॥ कंपंतेपश्यवातेनज्वलिताइवपर्वताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—रमणीय तथा जनशून्य बनकी भूमि अति विरक्त मुनिके तथा विषयार्थी कामीके चित्तको समानरूपसेही रमण कराती हैं ॥ २९ ॥ समुद्रके जलसे धौतरेणु समुद्रतटके पर्वतोंके नीचेके पर्वतरूपी चरण रत्नोंके समूहोंसे ऐसे प्रकाशित शब्दयुक्त तथा शोभित होरहेहैं जैसे नूपुरोंसे ॥ ३० ॥ पुन्नागनाम पर्वतपर विश्रामकारी, रमणीक सुवर्णवत् शोभायमान, हेमचूड (चाष) नाम पक्षी ऐसे शोभा दे रहे हैं जैसे स्वर्गमें देवगण ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! देखिये भ्रमर तथा मेघोंके द्वारा धूमसे पूर्ण तथा विकसित चंपकबनसे पूर्ण प्रज्वलितके समान ये पर्वत वायुसे कांपते हैं ॥ ३२ ॥

कुर्वंतंकरवीराग्रलतांदोलावदोलकम् ॥ कोकिलंकोकिलालिंग्यलोलाऽऽलापयतिप्रियम् ॥ ३३ ॥ लस त्कलकलारावमेतालावणसैंधवीः ॥ पूर्णास्तटभुवोभूपैःपश्योपायनपाणिभिः ॥ ३४ ॥ आपूर्वादापर स्माल्लवणजलनिधेरोत्तरादक्षिणाद्वादेवोदग्राजिशिष्टाइहनरपतयःपादपीठीक्रियंताम् ॥ दीयंतांमंडला नांदिशिदिशिचयथाशास्त्रमस्त्राण्यवन्यारक्षायैक्षांतिपूर्वंचिरमतुलबलंशांतयाशासनानि ॥ ३५ ॥

इतिश्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अवि० विप० दिगंतरवृत्तिवाय्वादिवर्णनं नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

अर्थ—हे राजन् ! करवीरवृक्षकी ऊपरकी शाखारूपी झूलेपर झूलतेहुये कोकिलको उसकी प्रिया कोकिला आलिंगनकरके मधुर गीत आलापती हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! शोभायमान कलकलशब्दपूर्वक ये क्षारसमुद्रके तटकी भूमि उपाहार हांथमें लिये राजाओंसे पूर्ण शोभा देरहीहैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस क्षारसमुद्रके पूर्वतटसे लेके पश्चिमतटके तथा उत्तरतटसे लेके दक्षिणतटपर्य्यन्त भयंकर युद्धसे शेष राजाओंके शिरपर पादार्पणरूप अनुग्रह कीजिये और पृथिवीके उन २ मण्डलोंकी प्रत्येक दिशामें रक्षाके अर्थ समाधानपूर्वक शान्तबुद्धिसे राजनीतिके अनुसार उनको अस्त्र तथा सेना दीजिये ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विप० अविद्यो० दिगन्तरवृत्ति वाय्वादिवर्णनं नाम विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

इस १२१ के सर्गमें मंडलोंकी मर्य्यादाओंको स्थापन करके अग्निके वरदानसे प्राप्त दिगन्तोंके दर्शनका उद्योग वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतेष्वर्णवतटेष्वेतेभूमौविपश्चितः ॥ उपविश्यैतदखिलंचक्रूराज्यप्रयोजनम् ॥ ॥ १ ॥ तदातत्रैवतेवासभूमिंकृत्वायथाक्रमम् ॥ तस्थुर्मंडलमर्यादांस्थापयामासुरक्षताम् ॥ २ ॥ अथव

र्णयितुंश्रीमांस्तत्प्रतापमिवागमत् ॥ संप्रविश्यसमुद्रांतरन्यलोकांतरंरविः ॥ ३ ॥ आययौयामिनीश्यामामेघलेखेवतानवम् ॥ संपादिताहर्व्यापारास्तस्थुःस्वशयनेषुते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! इसके पश्चात् ये सब विपश्चित् (चारों) राजा समुद्रोंके तटकी भूमिपर बैठकर मंत्रियोंकी संमत्तिके अनुसार पूर्वोक्तमंडलमर्य्यादारूप राज्यकार्य्य करतेहुवे ॥ १ ॥ वहांपर वे सब चारों विपश्चित् यथाक्रम भूमिपर निवास करतेभये और स्थित होकर अक्षत मंडल मर्य्यादाको नियत करतेभये ॥ २ ॥ इसके पश्चात् सूर्य्यभगवान् समुद्रमें प्रवेश करके मानो उन विपश्चितोंका प्रताप वर्णन करनेके अर्थ लोकान्तरमें गये ॥ ३ ॥ और मेघोंकी लेखाकेसमान श्यामवर्ण रात्रि विस्तारको प्राप्तहुई और उन विपश्चितोंने निज २ दैनिककार्य्य करके शयन किया ॥ ४ ॥

आसमुद्रंनदीवाहाइवदूराद्वुपागताः ॥ इदंसंपादयामासुर्विस्मयाकुलचेतसः ॥ ५ ॥ अहोनुदूरमध्वानंप्राप्तावयमयत्नतः ॥ प्रभावाद्देवदेवस्यवह्नेर्दिव्यैःस्ववाहनैः ॥ ६ ॥ कियतीस्यात्प्रविस्तीर्णाद्दृश्यश्रीरियमातता ॥ इतःसमुद्रास्तदनुद्वीपभूरंबुधिःप्रभुः ॥ ७ ॥ इतोद्वीपंततोंभोधिःकिमंतेस्यात्ततोपिच ॥ कियतीकीदृशीवास्यान्मायेयंचेत्यरूपिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—नदीके प्रवाहके सदृश अतिदूर समुद्रपर्य्यन्त हमलोग गये, इसप्रकार विस्मयपूर्णचित्त उन्होंने यह चिन्तन किया ॥ ५ ॥ अहो ! देवोंके देव अग्निदेवके प्रतापसे बिनापरिश्रम हमलोग अपने वाहनोंद्वारा अतिदूरमार्गमें प्राप्तहुये ॥६॥ यह विशाल दृश्यश्री कितनी होगी, इस जंबूद्वीपके आगे लवणसमुद्र है, पश्चात् प्लक्षद्वीप है, उसके पश्चात् लवणसमुद्रसे द्विगुण महान् इक्षुरसका समुद्र है ॥ ७ ॥ इक्षुसमुद्रसे परे कुश द्वीप है, उसके पश्चात् सुरोद समुद्र है इसप्रकार सातों द्वीप तथा समुद्रोंके पश्चात् क्या है, यह चेत्यरूपमाया कैसी है. यह सब दृश्यकी श्री कितनी तथा वस्तुओंकी विचित्रतासे कैसी होगी ॥ ८ ॥

तत्प्रार्थयामहेदेवंहुताशंतद्वरादिमाः ॥ प्रेक्षामहेदिशःसर्वाआपर्यंतमखेदिनः ॥ ९ ॥ इतिसंचिंत्यतेसर्वेयथास्थानमवस्थिताः ॥ सममेवाह्वयामासुर्भगवंतंहुताशनम् ॥ १० ॥ बभूवभगवानेषामथदृश्योहुताशनः ॥ आकारवान्वरंपुत्राःप्रगृह्णीतेत्युवाचह ॥ ११ ॥ विपश्चितऊचुः ॥ पंचभूतात्मकस्यास्यदृश्यस्यांतंसुरेश्वर ॥ देहेनमंत्रदेहेनतदंतेमनसापिच ॥ १२ ॥ यावत्संवेदनंयावत्संभवंयावदात्मकम्॥ पश्येमइतिनोदेवदीयतामुत्तमोवरः ॥ १३ ॥

अर्थ—इसकारण अग्निदेवकी प्रार्थना करैं, इनके वरसे सब दिशाओंका अन्त खेदरहित होके देखैंगे ॥ ९ ॥ इसकेपश्चात् वे चारों विपश्चित् यथाक्रम चारों समुद्रके तटपर विराजमान होकर सबोंने एकहीकालमें भगवान् अग्निदेवका आव्हान किया ॥ १० ॥ और इन चारोंको भगवान् अग्निने आकर दर्शन दिया और कहा कि हे पुत्रो ! वरदान ग्रहण करो ॥ ११ ॥ विपश्चित् बोले कि—सुरेश्वर इस पंचभूतमय दृश्यका अन्त, जिसको इस देहसे देखसके सो इससे देखे, उसकेपर वैदिक मंत्रसे संस्कृतदेहसे, पश्चात् मनसे, जो कुछ स्थूल, सूक्ष्म, कारण, जगत् उस सबको हम देखैं यह वर दीजियें ॥ १२ ॥ १३ ॥

आसिद्धगम्यमध्वानंपश्येमवपुषावयम् ॥ तदंतेमनसैवाथदृश्यंपश्येमभोप्रभो ॥ १४ ॥ आसिद्धगम्यमध्वानंमृत्युरस्माकमस्तुमा ॥ अध्वन्यसंभवद्देहेमनएवप्रयातुनः ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैवमस्त्वितिप्रोच्यपावकःसहसागमत् ॥ क्षणादौर्वलयायाहुंसमुद्रइवसत्वरः ॥ १६ ॥ अग्निर्जगामाथसमाजगामनिशाविलंब्याथजगामसापि ॥ समाजगामापिरविर्जगामतेषांचधीरार्णवलंघनेहा ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० विपश्चिन्निर्णयोनामैकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! योगियोंके गम्यस्थानको तो हम लोग इसी शरीरसे देखैं और योगियोंके अगम्यस्थानोंको मनसे देखैं ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! सिद्धोंके गम्यस्थानपर्य्यन्त हमारी मृत्यु नहीं और उत्तरायण दक्षिणायनआदि इस देहसे असंभवमार्गमें तो हमारा मनही जाय ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि इसके पश्चात् अग्निदेव ऐसाही हो यह कहके शीघ्र वडवानलरूपसे समुद्रमें जानेको प्रवृत्तहुये ॥ १६ ॥ अग्निके जानेके अनन्तर रात्रि प्राप्तहुई, रात्रि बीतनेपर सूर्य्यभगवान् उदित हुये और उसकेसाथही चारों विपश्चितोंकी समुद्र लांघनेकी अभिलाषा हुई ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विपश्चि० विपश्चिन्निर्णयो नामैकविंशत्युत्तर शततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

समुद्रोंकी तरंगोंमें आवर्त तथा मगरआदिको विदीर्ण करके पादोंसे चलतेहुये चारों विपश्चित् उत्तमतासे इस १२२ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततःप्रभातेप्रसभंपृथिव्याःकृत्वायथाशास्त्रमलंव्यवस्थाम् ॥ आविष्टदेहाइवतेर सेननिषेध्यमानाइवमंत्रिमुख्यैः ॥ १ ॥ निवार्यसर्वंपरिवारमात्रमाक्रंदमानंवदनैरुदद्भिः ॥ निरस्यचा स्नेहतयाभिमानमात्सर्यलोभाभिभवैषणादि ॥ २ ॥ दिगंतमालोक्यसमुद्रपारेक्षणात्समायामइतिब्रु वंतः ॥ स्वमंत्रशक्त्योत्तमतांगतैस्तैरद्भिःपदैरेवतदाप्रविष्टः ॥ ३ ॥ विपश्चितस्तेदिशिदिश्यनल्पैर्भृत्यैः समुद्रंप्रविशद्भिरेव ॥ भृत्यैश्चकैश्चित्त्वनुगम्यमानाययुर्यथावारिणिपद्भिरेव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इसके पश्चात् प्रातःकालही शीघ्र नीतिशास्त्रके अनुसार पृथिवीकी व्यवस्था करके, प्रधान मंत्रियोंसे चेष्टाद्वारा वर्जित होनेपरभी दिगन्तदर्शनकी महाअभिलाषासे ग्रहग्रस्तके तुल्य चारों विपश्चित् रोदन करतेहुये संपूर्ण परिवारवर्गको निषेधकरके और राज्य, स्त्री, पुत्र तथा शत्रुओंके हांस्ययुक्त तिरस्कारकोभी त्यागकर ॥ १ ॥ २ ॥ समुद्रके पार दिगन्तोंको देखकर क्षणमें पारजांयगे ऐसा कहतेहुये अपने मंत्रकी शक्तिसे उत्तम दिव्यरूपताको प्राप्त वे पादोंसेही समुद्रमें प्रविष्ट हुये ॥ ३ ॥ हे रामजी ! वे चारों विपश्चित् स्नेहकेकारण प्रत्येक दिशामें समुद्रमें प्रवेश करनेवाले अनेक भृत्योंसे अनुगम्यमान पैरोंसे समुद्रमें गये ॥ ४ ॥

तरंगजालेषुपदानिकृत्वापृष्ठेस्थलस्येवजलस्यचांतः ॥ चत्वारएकैकतयैवयुक्ताभृशंवियुक्तानिजसेनया ते ॥ ५ ॥ पदक्रमेणैवमहार्णवांतस्तावत्प्रविष्टाअवलोकितास्ते ॥ तटस्थितैर्यावदहश्यभावंशरन्नभोमेघ लवाइवापुः ॥ ६ ॥ तमध्वानमथोह्यस्तेजलधौपादचारिणः ॥ विततार्थवसायेनबद्धकक्षाहराइव ॥ ७ ॥ उन्नतावनतामद्रिसमारोहावरोहणैः ॥ श्रियंवारितरंगाणांहरंतोहरिमूर्त्तयः ॥ ८ ॥

अर्थ—भूतलके समान तरंगसमूहोंमे चरणोंको रखतेहुये बडी सेनासे अनुगत वे चारों विपश्चित् गये ॥ ५ ॥ उन चारों विपश्चित् राजाओंको समुद्रतटपर स्थित भृत्य आदि तबतक देखते रहे जबतक शरत्कालके आकाशमें मेघखंडोंके सदृश अदृश्यदशाको नहीं प्राप्त हुये ॥ ६ ॥ दृढ निश्चयसे पादगामी उन सभोंने उस समुद्रमार्गको ऐसे पार किया जैसे हाथिवान्से प्रेरित गज ॥ ७ ॥ पर्वतोंके सदृश ऊंची नीची तरंगोंकी शोभाको आरोहण तथा अवरोहण क्रमोंसे वे ऐसे धारण करते थे जैसे समुद्रमथनकालमे विष्णुभगवान्की चार मूर्ति ॥ ८ ॥

आवर्त्तेषुतृणानीवभ्रांताविगतसंभ्रमम् ॥ चिरंचंचलमत्ताभ्रचंद्रमंडलशोभिषु ॥ ९ ॥ मंत्रविद्याबलौ जोभिर्इजयाःशस्त्रपाणयः ॥ क्वचित्प्रमत्तैर्मकरैर्निर्गीर्णोद्गीर्णदेहकाः ॥ १० ॥ जलकल्लोलविश्रांतवातो त्सारितमूर्त्तयः ॥ नीतानीताःक्षणेनैवयोजनानांशतंशतम् ॥ ११ ॥ जलकल्लोलमातंगतुंगितांगतया तया ॥ दधानानिजराज्येभपृष्ठरोहस्थितिश्रियम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आवर्तोंमें भ्रमरहित वे सब तृणके समान ऐसे भ्रमण करते थे जैसे चंचलमेघोंमें प्रविष्ट चंद्रमंडल ॥ ९ ॥ मंत्रविद्याके बलसे संयुक्त, अतएव शत्रुओंसे अजेय, तथा हांथोंमें शस्त्रधारी उन राजाओंको कहीं २ प्रमत्त मकर निगल जातेथे, परन्तु अग्निदेवकी कृपासे पचा नहीं सकते अतः पुनः उगलदेतेथे ॥ १० ॥ जलकी तरंगोंमें विश्रान्त, और पवनसे प्रेरित देह वे क्षणमेंही सहस्रों योजन प्राप्त किये गये ॥ ११ ॥ हे रामजी ! जलकी तरंगरूप हांथियोंपर धारित मूर्ति वे राजा अपने राज्यके हांथियोंके पृष्ठोंपर आरोहणकी अपूर्व शोभाको धारण किये हुये समुद्रमें चलजातेथे॥१२॥

विस्तीर्णोर्मिघटापट्टपाटपट्टनपाटवैः ॥ दर्शयंतोजलांभोदनिष्क्रांतिमारुताइव ॥ १३ ॥ तरत्तरलमातं गतरंगौघविघट्टिताः ॥ अत्यजंतोनिजंधैर्यंवेलावरतटाइव ॥ १४ ॥ महोर्मिमुक्तामाणिक्यमंडलप्रतिबिं बिताः ॥ एकाकिनोपिपरितःपौरुषेयवृताइव ॥ १५ ॥ पांडुडिंडीरपिंडेषुकुर्वंतोलाघवात्पदम् ॥ श्वेतप त्रपरिक्रांतराजहंसश्रियंदधुः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! विशाल तरंगोंकी घटाओंको विदारण तथा अधोमुखीकरणरूपी कौशलसे जलरूपी मेघसे निःसृत पवनसे उद्दीपित विद्युत्के सदृश अपनेको दर्शाते हुये चलेजातेथे ॥ १३ ॥ चंचल मातंगोंके सदृश तरंगसमूहोंसे मर्दित होनेपरभी समुद्रके पर्वतोंके तुल्य अपने धैर्य्यको न त्यागते हुये वे चलेजातेथे ॥ १४ ॥ महातरंगोंमें तथा मुक्ता और माणिक्यसमूहोंमें प्रतिबिंबित होनेसे एकाकीभी वे पुरुषसमूहसे आवृतके समान भासतेथे ॥ १५ ॥

श्वेतवर्ण समुद्रके फेनोंके पिंडोपर लघुतासे चरणोंको रखतेहुये श्वेतकमलोंपर आरूढ राजहंसोंकी शोभाको वे धारणकरतेथे ॥ १६ ॥

घननिर्घातनिर्घोषभीषणार्णवघुंघुमात् ॥ नभीताभूभृतस्तत्रवेलावलनजृंभितात् ॥ १७ ॥ अभ्रंलिहज लांद्रींद्रपातोत्पातविघट्टिताः ॥ क्षणंपातालमाजग्मुःक्षणमर्कास्पदंययुः ॥ १८ ॥ अशंकितोत्पतद्वारि पूरपातपटावृताः ॥ उत्पातपातनिपतद्वितानकवृताइव ॥ १९ ॥ प्रक्रांतास्तैंबुराशौसहचरमकराःशूरन क्रैःकुलीरैर्व्याप्तावर्ताविवृत्ताःसलिलतरुलतासीकरैरंतरालैः ॥ कुर्वंतःकांतियुक्तंवपुरिवकुसुमैर्भ्रांतमाणि क्यमुक्तैर्व्यक्ताव्यक्तांशुजालैःप्रतिपदमितरैरभ्ररूपैरदभ्रैः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो पाख्यानांतर्गतविपश्चिद्दपाख्याने अर्णवपरिक्रमणं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमःसर्गः॥१२२॥

अर्थ—तटके संघट्टसे उत्पन्न भयंकर मेघके शब्दके तुल्य समुद्रके घुंघुमनादसे वे राजा पर्वतोंके समान भयभीत नहीं होतेथे ॥ १७ ॥ आकशस्थ मेघमंडलको चूमनेवाले समुद्रस्थ पर्वतेन्द्रोंके ऊपरसे गिरने तथा चढनेसे वे क्षणमेंही तो पातालमें पहुंच जातेथे और क्षणमेंही सूर्य्यमंडलमें ॥ १८ ॥ अकस्मात् उछलते हुये जलके प्रवाहके पतनरूपी पटसे आच्छादित वे ऐसे भासतेथे मानो उत्पात आनेपर गिरते हुये मेघपटलसे आवृत ॥ १९ ॥ हे रामजी ! महामेघमंडल-रूपी व्यक्त तथा अव्यक्त किरणसमूहयुक्त माणिक्य और मुक्ताओंके समूहोंसे और अन्तरालमे जलमय वृक्षों लतारूपी तरंगोंके पुष्पतुल्य कणोंसे अपने शरीरोंको भूषित करते हुये तथा शूर घरिआर और केकडे आदिसे व्याप्त आवर्तोंमें सहगामी मगरोंके साथ समुद्रमें वे सब विपश्चित् चलेजातेथे ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे विपश्चिदर्णवपरिक्रमणं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

समुद्र तथा द्वीपोंमें जाते हुये चारों विपश्चितोंकी पश्चिम आदि क्रमसे प्राप्त दशाओंका वर्णन इस १२३ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्येतेदृश्यरूपायाअविद्यायाविचारणे ॥ प्रवृत्ताःपादचारेणसमुद्रद्वीपगामिनः॥१॥ अब्धेर्द्वीपंपुनर्द्वीपादब्धिंद्वीपंगिरिंवनम् ॥ लाघवाल्लंघयामासुश्छेदभेदविवर्जिताः ॥ २ ॥ पीतोविपश्चि त्पाश्वात्योमीनेनामरमानिना ॥ विष्णुमीनकुलोत्थेनवितस्तावाहनौजसा ॥ ३ ॥ क्षीरोदंप्राप्यमत्स्येन तेनोद्गीर्णःसुदुर्जरः ॥ तेनक्षीरोदमुल्लंघ्यगतोदूरंदिगंतरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार समुद्र तथा द्वीपोंमें पदसे गमन करनेवाले चारों विपश्चित् दृश्यरूप अविद्याके विचारमें प्रवृत्त हुये ॥ १ ॥ समुद्रसे द्वीप द्वीपसे पुनः समुद्र समुद्रसे द्वीप, पर्वत तथा बनोंको अति शीघ्रतासे लांघतेहुये छेदन भेदनसे वर्जित वे चलेजातेथे ॥ २ ॥ मत्स्यावतारधारी विष्णुभगवान्‌के कुलमें उत्पन्न, निजपराक्रमसे जहाजसेभी अति शीघ्रगामी, तथा अपनेको अमर होनेके अभिमानी एक मत्स्य पश्चिम दिगन्तके दर्शनमें प्रवृत्त विपश्चित्‌को निगलगया ॥ ३ ॥ पुनः क्षीरसमुद्रमें पहुंचकर उसको पचानेमें असाध्य जानकर उगल दिया, और वह विपश्चित् क्षीरसमुद्रको लंघन करके अति दूर दिगंतमें प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

दक्षिणोयक्षनगरेसंप्रेक्ष्येक्षुरसार्णवे ॥ शिक्षादक्षिणयाक्षिप्ययक्षिण्याकामुकीकृतः ॥ ५ ॥ पूर्वोमकरमा क्रम्ययदागंगांनिकृत्तवान् ॥ गंगयासतदानीयकान्यकुब्जेसमुज्झितः ॥ ६ ॥ उत्तरस्तूत्तरकुरूनाराध्य प्राप्तवान्श्रियम् ॥ तंतयैनंनबाधंतेदिगंतेमृतभीतयः ॥ ७ ॥ तयामकरमातंगनिगीर्णोद्गीर्णमूर्तिमान् ॥ अतिचक्रामसुबहून्द्वीपांतरकुलाचलान् ॥ ८ ॥

अर्थ—और दक्षिणादिगन्त देखनेमें प्रवृत्त विपश्चित्‌को इक्षसमुद्रके मध्यमें यक्षोंके नगरमें वशीकरणविद्यामें प्रवीण एक यक्षिणीने वशमें करके अपना कामुक पति बनालिया ॥ ५ ॥ और पूर्वदिगंतके देखनेमें प्रवृत्त विपश्चित् गंगाजीके सहस्रमुखोंको देखते हुये जब कोई मगर उसको ग्रास करनेमें प्रवृत्त हुआ तब बलसे उसको आक्रमण करके गंगाजीमें लाके उसको विदीर्ण करदिया उससमय गंगाजीने अपने प्रवाहसे उसे लाके कान्यकुब्जनगरमें फेंकदिया

॥ ६ ॥ और उत्तरदिगन्त देखनेमें प्रवृत्त विपश्चित् उत्तरदिशामें आके शिवजीकी आराधनासे अणिमादि सिद्धिको पाया, और अमर होगया ॥ ७ ॥ उस अणिमादिके प्रभावसे श्रीमकरादिसे प्रथम ग्रस्त पुनः त्यक्तमूर्ति उत्तरका विपश्चित् अनेक द्वीपांतरके कुलपर्वतोंको पार करता हुवा ॥ ८ ॥

पश्चिमःपृष्ठमारोप्यहेमचूडेनपक्षिणा ॥ कुशद्वीपेकुशांगश्रीस्तरसातारितोर्णवान् ॥ ९ ॥ क्रौंचद्वीपाच लेपूर्वोनिर्गीर्णोरक्षसावने ॥ तद्रक्षःपाटितंतेनहृदयेंत्रविकर्त्तनैः ॥ १० ॥ दक्षिणोदक्षशापेनयक्षतामाग तःक्षणात् ॥ शाकद्वीपेशतेनासौवर्षाणांमोक्षमागतः ॥ ११ ॥ उत्तरस्तरसोत्तीर्णताराबरतरंगिणः ॥ म हार्णवसुवर्णोर्व्यांसिद्धशापाच्छिलांगतः ॥ १२ ॥

अर्थ—पश्चिमका विपश्चित् हेमचूड (गरुड) नाम पक्षीके पृष्ठपर आरूढ होकर कुशद्वीपमें प्राप्त हो उस गरुडकी आराधनासे सुवर्णवत् अंगोंकी शोभाको धारण करके शीघ्रही द्वीप तथा समुद्रोंके पारको प्राप्तकिया गया ॥ ९ ॥ और पूर्वदिगन्तके विपश्चित्को क्रौंचद्वीपके पर्वतपर एक राक्षस निगलगया परंतु उस विपश्चित्ने उस राक्षसकी आंतको तोडकर हृदयमें फारडाला ॥ १० ॥ और दक्षिणदिगन्तका विपश्चित् दक्षके शापसे यक्ष होगया, पुनः शाकद्वीपमें उस शापसे मुक्त हुआ सौवर्षोंके पीछे मोक्षको प्राप्त हुवा ॥ ११ ॥ और उत्तरदिगन्तका विपश्चित् वेगसे छोटे बडे समुद्रोंको पारकरके महासमुद्रके सुवर्णमयी भूमिमें एक सिद्धकेशापसे शिला होगया ॥ १२ ॥

ततोवर्षशतेनासौप्रसादाज्जातवेदसः ॥ तेनैवोन्मोचितस्तत्रसिद्धेनरतिमाप्तवान् ॥ १३ ॥ वर्षाण्यष्टा वभूद्राजानालिकेरनिवासिनाम् ॥ पूर्वःपरमधर्मिष्ठःप्राप्तवान्प्राक्स्मृतिंततः ॥ १४ ॥ कल्पवृक्षवनेमे रोरुतरेप्सरसासह ॥ उवासदशवर्षाणिनालिकेरफलाशनः ॥ १५ ॥ विहगाश्वासतत्त्वज्ञःशाल्मलिद्वी पशाल्मलौ ॥ पश्चिमःपक्षिणीनीडेक्रीडयान्यवसत्समाः ॥ १६ ॥ मंदराद्रौमृदुलतेमंदारतरुमंदिरे ॥ किंनरीमंदरीनाम्नीदिनमेकमसेवत ॥ १७ ॥ क्षीरोदवेलावनकल्पवृक्षवनावलीनंदनदेवताभिः ॥ सार्धं समाःसप्ततिमप्सरोभिर्निनायकामाकुलितोथपूर्वः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विपश्चिदुपाख्याने दिग्विहरणं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

अर्थ—पुनः एकशत वर्षकेपश्चात् अग्निकी प्रसन्नतासे उसी सिद्धने उसको शापसे मुक्त किया तब चित्तकी प्रसन्नताको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और पूर्वदिशाका विपश्चित् कान्यकुब्जनगरसे उत्तरकी ओर नालिकेरप्रधान देशनिवासियोंका ८ वर्षपर्य्यन्त अतिधर्मात्मा राजा हुआ तब उसको पूर्वकालके वृत्तान्तकी स्मृति हुई ॥ १४ ॥ नालिकेरफलको खानेवाला उत्तरदिगन्तका विपश्चित्ने मेरुके कल्पवृक्षके वनमें एक अप्सराके संग दशवर्षपर्य्यन्त निवास किया ॥ १५ ॥ और पक्षियोंके वश करनेमें निपुण पश्चिमदिगन्तके विपश्चित्ने शाल्मलिद्वीपके शाल्मलिवृक्षके ऊपर एक पक्षिणीके घोसलेमें उसकेसाथ क्रीडा करतेहुये दशवर्षपर्य्यन्त निवास किया ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् मन्दराचलपर प्राप्त पश्चिमके विपश्चित्केसाथ कोमललतायुक्त मन्दारवृक्षके मंदिरमें एक किन्नरीने एक दिन समागम किया ॥ १७ ॥ और पूर्वदिगन्तका विपश्चित् नालिकेरवनसे क्षीरसमुद्रके तटपर प्राप्त हुआ, वहां कल्पवृक्षके वनकी श्रेणियोंमें नंदनवनकी देवता अप्सराओंकेसाथ कामसे व्याकुल होके सत्तर ७० वर्षपर्य्यन्त निवास किया ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विपश्चिदुपाख्याने दिग्विहरणं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२४ ॥

जीवात्माके एक होनेपरभी चार शरीरधारी चारों विपश्चितोंका अनेक द्वीप तथा पर्वतोंमें भिन्न २ व्यवहारोंका समर्थन इस १२४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एकसंविन्मयाःसर्वएवैकवपुषोपिते ॥ विविधेच्छाःकथंब्रह्मन्संपन्नाएकदेहिनः ॥ ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एकसंविद्धनाकाशमप्यनानैवसर्वगम् ॥ स्वयंनानेवसंपन्नंसुप्तेचित्तमिवा त्मनि ॥ २ ॥ तस्याच्छत्वात्तथाभूतमात्मैवात्मानिबिंबति ॥ तादृशस्यतथाभूतौमुकुरस्येवनिर्मला ॥३॥ एकलोहमयाएवयथादर्शाःपरस्परम् ॥ तथैतेप्रतिबिंबंतिपदार्थाःपरमार्थिकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन्! एक संवित् तथा एकप्रकारके शरीरधारी चारों विपश्चित् भिन्न २ इच्छाधारी कैसे हुये सो वर्णन कीजीये॥ १॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! जैसे स्वप्नमें एकही साक्षी चेतन नानाप्रकारके शत्रु मित्र उदासीनादिमें अविद्यासे अनेक इच्छा धारण करके व्यवहार करताहै ऐसेही विपश्चित्के शरीरोंमेंभी उसने सर्वव्यापी एकहोंकेभी अनेक इच्छाओंसे व्यवहार किया॥२॥ हे रामजी! चिद्घन परमात्माकी कांक्षा अति स्वच्छहोनेसे उसका आत्माही निजआत्मामें नानारूपके समान ऐसे प्रतिबिंबित होताहै जैसे दर्पणके उदरमें गिरि नदी आदिसहित महदाकाश॥ ३॥ और जैसे एक लोह आदिमय दर्पण परस्पर प्रतिबिंबित होतेहैं ऐसेही परमार्थमें ये चिद्रूपभी सब पदार्थ मायाशक्तिसे परस्पर प्रतिबिंबित होतेहैं॥ ४॥

तेनयस्ययदायद्यत्पुरोभवतिवस्त्वसौ॥ यदर्थंयुज्यतेतेनचिद्घनैकस्वभावतः॥ ५॥ इत्यनानैवनानेदंनानानानाचवस्तुतः॥ नचनानानचानानानानानानात्मकंततः॥ ६॥ तेनयस्यपदायातंपुरोवस्तुविपश्चितः॥ सतेनसंविन्मयतामेत्यतद्वशमागतः॥ ७॥ एकदेशगताविष्वग्व्याप्यकर्माणिकुर्वते॥ योगिनस्त्रिषुकालेषुसर्वाण्यनुभवंत्यपि॥ ८॥

अर्थ—इसी कारणसे अध्यस्त भोग्य जगत्के आकारमें परिणत ब्रह्म जिन जिन भोग्य पदार्थोंका इन्द्रियोंके साथ सन्निकर्ष होताहै उन उन वस्तुओंके भोगार्थ यह स्वभावसेही प्रवृत्त होताहै॥ ५॥ इस रीतिसे यह एक होनेपरभी नानारूपसे भासताहै और एक तथा अनेकभी और यथार्थमें तो इस आत्मामें एकत्व तथा अनेकत्व दोनोंका निषेध है और मायाके प्रभावसे यह एक तथा अनेक उभयरूप है॥ ६॥ इसकारण एकही जीवके एककालमें नानाप्रकारके भोगदायक प्रारब्धकर्मकी परिपाकता होनेसे जिस विपश्चित्के संमुख जो वस्तु प्राप्त हुई उस विपश्चित्की संवित् तन्मय होगई और वही उसीके वशमें होगया॥ ७॥ और जब योगीजन एकदेशमेंभी प्राप्त होके तीनों कालमें नानादेशस्थविषयोंको अनुभव करतेहैं तब अनेकदेशमें चार विग्रहको धारण करके चारों विपश्चितोंने अनेक विषयोंका अनुभव किया इसमें क्या कहना॥ ८॥

अब्दोपिव्याप्तिमानेकस्तुल्यकालंपृथक्क्रियाः॥ आह्लादस्तेनपादेनकरोत्यनुभवत्यपि॥ ९॥ तुल्यकालमसंख्यातमीश्वरप्रतियोगिनः॥ कर्मजालंजगज्जातंकुर्वंत्यनुभवंतिच॥ १०॥ एकोविष्णुश्चतुर्भिःस्वैर्बाहुभिर्वाशरीरकैः॥ पृथक्कुर्वन्क्रियाःपातिजगद्भुंक्तेवरांगनाः॥ ११॥ बहुबाहुर्यदाद्वाभ्यांहस्ताभ्यांह्यर्थसंग्रहम्॥ करोतिबहुभिर्भूयःसंग्रामंसततंकरैः॥ १२॥

अर्थ—और मेघभी अनेकदेशमें व्याप्त होकर समानकालमें उन उन अंगोंसेही कहीं क्षालन, कहीं भेदन, कहीं जलवर्द्धन, और सस्यपोषणादि अनेक क्रियाओंको करताहै, और मेघाभिमानी जीव यह अनुभवभी करताहै कि मैने अमुक २ क्रियायें की॥ ९॥ और अणिमादि ऐश्वर्य्यको प्राप्त ईश्वरके समान योगीजन अनेक कर्म तथा जगत्की रचना करते हैं और उनका अनुभवभी करते हैं॥ १०॥ एकही विष्णुभगवान् अपनी चारोंभुजा तथा अनेक शरीरोंसे कहीं योगनिद्रा, कहीं तप, कहीं इन्द्रके भ्राता हो होके उनकी सहायता और कहीं वैकुंठके भोग इत्यादि पृथक् २ क्रियाओंको करते हुये जगत्रक्षा तथा श्रेष्ठअंगनाओंके भोगोंको अनुभव करते हैं॥ ११॥ जैसे अनेक भुजाधारी विष्णु दो अर्थकी प्राप्तिमें दोनों भुजाओंसे कार्य्य करते हैं और जब युद्धआदि कार्य्यका प्रसंग होताहै तब सब भुजाओंको एकत्र करके उस कार्यकोभी निरंतर करते हैं॥ १२॥

तथैवतैर्विपश्चिद्भिःसर्वदिक्कंतथास्थितैः॥ तथाव्यवहृतंप्राप्तमेकसंविन्मयैरपि॥ १३॥ सुप्तंतैर्भूमिशय्यासुभुक्तंद्वीपांतरेषुच॥ विहृतंवनलेखासुप्रक्रांतंमरुभूमिषु॥ १४॥ उषितंगिरिमालासुभ्रांतंसागरकुक्षिषु॥ विश्रांतंद्वीपलेखासुनिलीनंघनमालिषु॥ १५॥ रूढमर्णवमालासुवात्यासुजलवीचिषु॥ क्रीडितंभूभृदब्धीनांतटीषुनगरीषुच॥ १६॥

अर्थ—ऐसेही एक संवित्रूपभी चारोंदिशामें प्राप्त चारों विपश्चित्ने यथाप्राप्त सुखदुःखादिका व्यवहार किया॥ १३॥ उन चारों विपश्चितोंने भूमिपर शयन किया, द्वीपांतरोंमें यथाप्राप्त वस्तुओंको भोजन किया, वनोंकी पंक्तियोंमें विहार किया और मरुस्थलमें गमन किया॥ १४॥ तथा पर्वतोंमें निवास और समुद्रोंमें भ्रमणकिया, अनेक द्वीपोंमें विश्राम किया और मेघाच्छादित पर्वतोंके शिखरोंपर छिपके निवास किया॥ १५॥ महापवन तथा तरंगयुक्त समुद्रोंमेंभी विद्यमान रहे, तथा पर्वत और समुद्रोंके तटोंपर और नगरियोंमें क्रीडाभी की॥ १६॥

शाकद्वीपोदयगिरितटेसप्तवर्षाणिसुप्तंपूर्वेणांतर्विदलगहनेयक्षसंमोहितेन ॥ पाषाणांबुप्रसभमसुनैवा त्रपीत्वाद्दषत्तामागत्यांतःस्थितमथसमाःसप्तजात्येनभूमेः ॥ १७ ॥ शाकद्वीपेस्तशैलस्यशिरस्यभ्रगुहा गृहे ॥ पिशाचाप्सरसामासंपाश्चात्यःकामुकीकृतः ॥ १८ ॥ यत्रशांतभयेवर्षेजलधारेमहागिरौ ॥ ह रीतकीवनेवर्षपूर्वोंतर्द्धानमाययौ ॥ १९ ॥ अत्ररैवतकेशैलेवर्षेशिशिरनामनि ॥ दशरात्रमभूत्सिंहःपूर्वो यक्षवशीकृतः ॥ २० ॥

अर्थ—और पूर्वदिशाके विपश्चित्ने शाकद्वीपके प्रसिद्ध उदयाचलपर्वतके तटपर पत्ररहित सेहुण (चूहर) के भयंकर वनमें यक्षसे मोहित होकर सात वर्ष पर्य्यन्त निवास किया और इसी विपश्चित्ने पाषाणकारक जल इसी पर्वतपर कहीं पीकर बलात्कार पाषाणरूप होकर सातवर्षपर्य्यन्त भूमिके ऊपर निवास किया॥१७॥ और शाकद्वीपके अस्ताचलके मेघके समीपस्थ गुहागृहयुक्त शिखरपर पिशाचोंकी अप्सराने पश्चिमके विपश्चित्को एक मासपर्य्यन्त अपना वल्लभ बनाया ॥ १८ ॥ और पूर्वका विपश्चित् जलकी धार तथा महापर्वत संयुक्त शान्तभयनामक देशमें कीसी मुनिके शापसे हरीतकी (हड) का वृक्ष होके सत्तर वर्षपर्य्यन्त मनुष्योंसे अदृश्य रहा ॥ १९ ॥ और शिशिरनाम वर्षमें रैवतक पर्वतपर पूर्वके विपश्चित्को किसी यक्षने अपने वशमें करके दशरात्रिके लिये सिंह बनाया ॥ २० ॥

अत्रकांचनशैलाद्रिदरीदर्दुरतांगतः ॥ पिशाचमायाछलितोदशवर्षाण्युवासस ः ॥ २१ ॥ कौमारंवर्ष मासाद्यश्यामाद्रेरुत्तरस्तटम् ॥ शाकद्वीपेंधकूपेंधोन्यवसच्छरदांशतम् ॥ २२ ॥ मरीबकेकरोद्दषेंवर्षा ण्यत्रचतुर्दश ॥ विद्याधरत्वंपाश्चात्यःसविद्याधरविद्यया ॥ २३ ॥ रतक्लमक्लांतपुरारिलक्ष्मीचलांगले खाक्रमसीकराक्तम् ॥ एलालतालिंगनलब्धगंधमालंब्यवेलावनगंधवाहम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

अर्थ—और यही विपश्चित् पिशाचोंकी मायाके वशमें आकर इसी स्थानपर सुवर्णके पर्वतकी गुहाओंमें मंडूक होके निवास करता हुवा ॥ २१ ॥ और उत्तरके विपश्चित्ने कौमारवर्षमें जाकर शाकद्वीपमें कीसी अंध कूपमें अन्धा मंडूक होकर शत (१००) वर्ष पर्य्यन्त निवास किया ॥ २२ ॥ और पश्चिमके विपश्चित्ने विद्याधरकी विद्यासे मरीबक नाम देशमें १४ वर्ष पर्य्यन्त विद्याधर होके निवास किया ॥ २३ ॥ सुरतके परिश्रमसे परिश्रान्त श्रीमहादेवजीके शरीरकी शोभाकी अधिकतासे चंचल अंगोंसे उत्पन्न जलकणोंसे मिलित, तथा एला (इलायची) की लताके स्पर्शसे सुगन्धयुक्त आनन्दके हेतु पवनका आनन्द लेतेहुये चतुर्दशवर्षपर्य्यन्त विद्याधरपदवीका आनन्द उत्तरके विपश्चित्ने किया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विप० चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

जीवन्मुक्त चारों विपश्चितोंकी विपत्तिमें परस्पर उपकारिता तथा अन्यके उपकारार्थ क्रिया इस १२५ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वर्षेशांतभयाभिख्येजलधारेगिरौतरौ ॥ ताद्दक्कर्त्तरिपानीयंशाकद्वीपेपिबन्स्थितः ॥ १ ॥ पूर्वोथवर्षसप्तत्यापाश्चात्येनैत्यमोक्षितः ॥ विद्ययाक्रकचेनेवछित्त्वावृक्षत्वमक्षतः ॥ २ ॥ पा श्चात्यःशिशिरेवर्षेपाषाणत्वमुपागतः ॥ मोचितोदक्षिणेनाशुगोमांसादिप्रयोगतः ॥ ३ ॥ शिवेस्ताच लपारस्थेवर्षेवर्षेणपश्चिमः ॥ मोचितोदक्षिणेनैत्यगोपिशाच्यावृषीकृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! पूर्वका विपश्चित् शाकद्वीपमें शान्तभयनाम स्थानमें जलधारायुक्त पर्वतपर शापसे हरीतकी वृक्ष होके कतरनीके सदृश मूलदेशसे जलपीते हुये स्थितथा यह विषय पूर्वमें कहाहै ॥ १ ॥ वहांपर पश्चिमके विपश्चित्ने आकर शाप देनेवाले मुनिको प्रसन्न करके उसकी विद्यासे वृक्षको छेदन करके उसको वृक्षत्वसे मुक्त किया ॥ २ ॥ और पश्चिमके विपश्चित्को गौरूपधारिणी पिशाचीने अपनी पिशाचविद्यासे वृषभ बनालियाथा, उसको दक्षिणके विपश्चित्ने आके गोमांस आदिके प्रयोगसे शीघ्र मुक्त किया ॥ ३ ॥ और अस्ताचलके

समीपस्थ शिवनामक वर्षमें गोरूपधारिणी पिशाचीने पश्चिमके विपश्चित्कोभी वृषभ बनालियाथा उसको दक्षिणके विपश्चित्ने आके मुक्त किया ॥ ४ ॥

अत्रैवक्षेमकेवर्षेआंबिकेयगिरौतरौ ॥ दक्षिणोयक्षतांयातोमोक्षंयक्षेणलब्धवान् ॥ ५ ॥ अत्रैववृषकेवर्षे शैलेकेसरनामनि ॥ केसरित्वंगतःपूर्वःपाश्चात्येनैवमोचितः ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एकदेशगताविष्वग्व्याप्यकर्माणिकुर्वते ॥ योगिनस्त्रिषुकालेषुसर्वाणिभगवन्कथम् ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इह रामाप्रबुद्धानांयदस्त्यस्त्वलमेवनः ॥ तेनयत्तुप्रबुद्धानांतदिदंशृणुकथ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—और क्षेमकनाम वर्षमें आंबिकेय पर्वतके वृक्षपर दक्षिणदिशाका विपश्चित् पिशाच होगयाथा उसको पश्चिमदिशाके विपश्चित्ने प्रेतराजको प्रसन्नकरके प्रेततासे मुक्त किया ॥ ५ ॥ और वृषकवर्षके केसरनाम पर्वतपर पूर्वदिशाका विपश्चित् हांथी होगयाथा उसकोभी पश्चिमदिशाके विपश्चित्ने मुक्त किया ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! एक देशमें स्थितभी योगीजन तीनोंकालमें सबदेशमें व्याप्त होकर अनुग्रह शापादि कार्य्योंको कैसे करते हैं सो कहिये ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इस संसारमें अज्ञानियोंकी दृष्टिमें जैसे यह भौतिक स्थूल पदार्थ हैं उससे हमको कुछ प्रयोजन नहीं है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें जैसा यह है सो सुनिये मैं कहताहुं ॥ ८ ॥

चिन्मात्रसत्तासामान्याद्दतेन्यन्नात्मतद्विदाम् ॥ दृश्यात्यंताभावबोधेसर्गासर्गदृशोःक्षये ॥ ९ ॥ चिन्मात्रसत्तासामान्येविश्रांतस्यनिरंतरम् ॥ सर्वेशस्येहसर्वत्वंसर्वात्मत्वंचसर्वदा ॥ १० ॥ वदकेनकथंकुत्र कदाकिमिवरोध्यते ॥ सर्वगस्त्वथसर्वात्मायत्रभातियदायथा ॥ ११ ॥ तथाभातितदातत्रसर्वात्मनि किमस्तिनो ॥ अतीतंवर्तमानंचभविष्यत्स्थूलमप्यणु ॥ १२ ॥

अर्थ—तत्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें चिन्मात्रसत्तासे पृथक् इस जगत्का स्वरूप कुछ नहीं है; क्योंकि दृश्यके अत्यन्ताभावका निश्चय होनेपर और सृष्टि तथा उसके अभावकी दृष्टिके शांत होनेपर ॥ ९ ॥ चिन्मात्रसत्ता सामान्यमें निरंतर विश्रान्त और सबके स्वामी चित्पुरुषकी सदासर्वरूपता तथा सर्वक्रियाकारिता ॥ १० ॥ कहो कैसे, कब, कौन निवारण करसकताहै, और सर्वव्यापी तथा सर्वरूप आत्मा जब जैसे जहां भासताहै ॥ ११ ॥ तब वहां वैसाही सब भासने लगताहै, क्योंकि सर्वरूप चित्पुरुष भूत, भविष्यत्, वर्तमान तथा स्थूलसूक्ष्म जगत्मेंसे क्या नहीं है, अर्थात् सब है॥१२॥

तथादूरमदूरंचनिमेषःकल्पएवच ॥ स्वरूपमजहत्येवसामान्येतानिसर्वदा ॥ १३ ॥ सर्वात्मनिस्थितान्येवपश्यमायाविजृंभितम् ॥ अजातमनिरुद्धंचयथास्तितमवस्थितम् ॥ १४ ॥ विज्ञानघनमेवेदमत एवजगत्त्रयम् ॥ नभस्त्वमत्यजंश्चैवसर्वात्मैवनभःस्थितम् ॥ १५ ॥ जगदात्माजगद्रूपंद्रष्टृदृश्यतयोदितम् ॥ विश्वात्मदृग्वपुर्यत्स्यात्तत्किंकेनकथंकदा ॥ १६ ॥

अर्थ—और वह आत्मा दूर, निकट, निमेष तथा कल्पादि और भूतादिस्वरूपको सदा अपना स्वरूप न त्यागता हुवा धारण करलेताहै ॥ १३ ॥ सर्वरूप इस आत्मामें भूत, भविष्यत् तथा सूक्ष्मादि सब स्थित है, देखो इस मायाका प्रभाव कि अनुत्पन्न और अनष्ट यह सब जगत् ज्योंका त्यों इस आत्मामें स्थितहै ॥ १४ ॥ इसीसे यह त्रैलोक्य विज्ञानघनरूपही है, क्योंकि चिदाकाश अपने स्वरूपको न त्यागताहुवा सर्वात्मरूपसे स्थितहै ॥ १५ ॥ मायाशबलित जगत्रूप परमात्मा द्रष्टा तथा दृश्यरूपसे उदित है, क्योंकि विश्वात्मा परमेश्वरका जो दृक् (शुद्ध चित्) मात्ररूप है उसमें कैसे कौन और कब क्या होसकताहै ॥ १६ ॥

दुःसाध्यंब्रूहितत्त्वज्ञसाध्यासाध्यस्वरूपिणः ॥ तस्मादस्याःसदैकस्याविपश्चिद्राजसंविदः ॥ १७ ॥ प्रबोधमनुगच्छंत्याअप्राप्तायाःपरंपदम् ॥ एकस्याअप्यनेकस्याःसर्वंसर्वत्रयुज्यते ॥ १८ ॥ बोधाबोधात्मरूपेहिंकिंनामास्तिपरात्मनि ॥ अप्राप्तायाःपरंबोधंपदार्थाकुलतोचिता ॥ १९ ॥ किंचिद्बोधंप्रविष्टायाःसिद्धताप्युचितैवसा ॥ एवंतेसर्वदिक्संस्थाःसर्वमेवपरस्परम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे तत्वज्ञ रामजी ! साध्य असाध्य उभयरूपधारी मायाशबलितको कहो क्या असाध्य है, इसलिये ईश्वर चिद्रूप एकभी विपश्चित् राजाकी संवित्ने उपाधि द्वारा अनेक स्थानमें अनेक कार्य्य किये ॥१७॥ प्रबोधकी ओर अनुगत अप्राप्त परपद, एकभी विपश्चित्संवित्के सर्वत्र व्याप्त होनेसे सब कुछ युक्त है ॥ १८ ॥ बोधाबोधरूप मायाशबलित परमात्मामें क्या असाध्य है, क्योंकि परमार्थबोधके न प्राप्त होनेसे पदार्थोंमें आकुलता उचित है ॥ १९ ॥ और कुछ बोध प्राप्त होनेपर विपश्चित्की संवित्को सिद्धताभी उचित है इसप्रकार सब दिशामें स्थित वे सब विपश्चित् परस्पर॥२०

पश्यंत्यनुभवंत्याशुचिकित्संतेचसंकटम् ॥ बोधाकाशःस्वकाद्रूपादीषच्च्युतइवाशुचेत् ॥ २१ ॥ तदन्यतामिवादत्तेसुस्थितोपियथास्थितम् ॥ श्रीरामउवाच ॥ विपश्चितःप्रबुद्धाश्चेत्कथंसिंहवृषादिताम्

॥ २२ ॥ दिक्षुयांतीतिमेब्रह्मन्बोधायकथयाश्वलम् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रबुद्धाकथितायेतेयोगिनस्तेमयानघ ॥२३॥ प्रसंगरूपांतरतोनप्रबुद्धाविपश्चितः॥ विपश्चितोमहाबाहोप्रबुद्धानिपुणंनते ॥२४॥

अर्थ—एक दूसरेको देखते हैं और शीघ्रही विपत्तिका प्रतीकारभी करते हैं, क्योंकि बोधाकाश (चित्) अपने स्वरूपसे किंचित् च्युतके समान होके ॥ २१ ॥ अपने निजस्वरूपसे स्थितभी अन्यके समान (मन जगत् आदि) स्वरूप धारण करताहै. श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन्! यदि चारों विपश्चित् ज्ञानी थे तब सिंह वृषभ आदिरूपताको॥२२॥ सब दिशाओंमें क्यों प्राप्त हुये यह मेरे बोधके लिये कहिये. श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! आपसे मैंने ज्ञानी योगियोंकी दशा कही है कि वे एकदेशस्थभी अनेक कार्य्य करते हैं॥ २३ ॥ प्रसंग विपश्चितोंके विषयमें कहा है. और चारों विपश्चित् पूर्णरीतिसे ज्ञानी न थे ॥ २४ ॥

बोधाबोधदृशोर्मध्येतेहिदोलायिताःस्थिताः ॥ मोक्षचिन्हानिदृश्यंतेबंधचिह्नानिचाभितः ॥ २५ ॥ नित्यधर्मप्रबुद्धानांतथाभूततयातया ॥ विपश्चितोधारणयायोगिनोनपरंगताः ॥ २६ ॥ धारणायोगिनस्तेहिधारणाप्राप्तसिद्धयः ॥ येपरंबोधमायातायेष्वविद्यानविद्यते ॥ २७ ॥ किमविद्यामवेक्षंतेतेतामरसलोचन ॥ धारणायोगिनोह्येतेवरेणप्राप्तसिद्धयः ॥ २८ ॥

अर्थ—वे तो ज्ञान अज्ञान दोनों दृष्टियोंके मध्यमें स्थित थे, उनमें मोक्ष तथा बन्ध दोनों चिन्ह चारोंओरसे देख पडते थे ॥ २५ ॥ वे चारों विपश्चित् अग्निदेवकी कृपासे धारणामात्रके योगी थे न कि पारंगत आत्मज्ञानी ॥ २६ ॥ हृदयआदि देशमें अग्निदेवतामें चित्तके निरोधसे वे धारणा प्राप्त योगी थे और जो परमबोधको प्राप्त होते हैं उनमें अविद्या नहीं रहती ॥ २७ ॥ हे कमलनेत्र रामजी! क्या ज्ञानयोगी अविद्याको देखते हैं, और ये विपश्चित् तो अग्निकी कृपासे वरदानसे सिद्धिप्राप्त योगी थे ॥ २८ ॥

अविद्याविद्यतेतेषांतेनतेऽतद्विचारिणः ॥ अन्यच्चशृणुहेरामजीवन्मुक्तशरीरिणाम् ॥ २९ ॥ भवेद्व्यवहृतावेवपदार्थांतरवेदनम् ॥ मोक्षेपिचेतसोधर्मश्चेतस्येवसतिष्ठति ॥ ३० ॥ नदेहेदेहधर्मस्तुनदेहाद्विनिवर्त्तते ॥ नकदाचनर्मुिक्तंचेतोभूयोनिबद्धयते ॥ ३१ ॥ यत्नेनापिपुनर्बद्धंकेनवृंतच्युतंफलम् ॥ देहस्तुदेहधर्मेणजीवन्मुक्तिमतामपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—उनमें अविद्या बनीथी इसलिये वे आत्मविचारसे शून्यथे. तथा हे रामजी! औरभी सुनिये कि जीवन्मुक्तोंको ॥ २९ ॥ व्यवहारदशामेंही अन्यपदार्थ देहादिका भान होताहै न कि आत्माका, इस हेतुसे वह चित्तमेंही स्थित रहताहै ॥ ३० ॥ न कि देहमें और देहका धर्म देहसे निवृत्त नहीं होता और मुक्तचित्ततो पुनः बन्धनमें नहीं आता ॥३१॥ क्योंकि वृंत (घपरि) से गिरेहुये फलको उसके स्थानपर प्रयत्नसेभी कोई नहीं बांधसकता और जीवन्मुक्त जीवोंकाभी देह देहके धर्मसे ॥ ३२ ॥

गृह्यतेतद्वतंतेषांचेतस्त्वचलमेवतत् ॥ मोक्षोहिनपरज्ञेयोधारणादिप्रयोगवत् ॥ ३३ ॥ आत्मसंवेद्यएवासौमध्वाद्यास्वादसौख्यवत् ॥ सुखदुःखैर्युतोयोसौस्वयंबंधानुभूतिमान् ॥ ३४ ॥ तन्मुक्तौमुक्तइत्युक्तःस्वानुभूतिप्रदस्त्वसौ ॥ अंतःशीतलचित्तोहिमुक्तइत्यभिधीयते ॥ ३५ ॥ बंधःसंतप्तचित्ततिदेहादेस्तन्नदृश्यते ॥ शरीरेकणशःकृत्तेराज्येवाविनियोजिते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अवश्य युक्त होताहै इसलिये देहादिमें निमग्न उनका चित्त सबको विदित होताहै और धारणाआदिके तुल्य मोक्षपर बोध नहीं है॥ ३३ ॥ मिष्टान्नआदिके आस्वादके तुल्य यह मोक्ष आत्मवेद्य है और सुखदुःखादि मनके धर्मोंको अपने अध्यास करनेसे आत्मा बंधनका अनुभव करताहै ॥ ३४ ॥ और मनके मुक्त होनेपर इस स्वानुभूतिप्रद आत्मामें मुक्त व्यवहार होताहै, क्योंकि आभ्यंतरमें शीतलतायुक्त है जो उसीको मुक्त कहतेहैं ॥ ३५ ॥ और सन्तप्तचित्त बद्ध कहाताहै, अतःबन्ध मोक्ष देहादिमें नहीं और शरीरको कण २ छेदनेसे वा राज्यादि देनेसे ॥ ३६ ॥

रुदतोहसतश्चैवजीवन्मुक्तमतेरिह ॥ नदुःखंनसुखंकिंचिदंतर्भवतितत्स्थितम् ॥ ३७ ॥ गृह्णतोप्यनुभूतिस्तुतत्रैवैषास्तिनापरे ॥ दृश्यंतेपंडिताभग्नारूपांतरमुपागताः ॥ ३८ ॥ देहादिजीवन्मुक्तानांस्वभावान्नकदाचन ॥ मृतोपिनैवम्रियतेरुदन्नपिनरोदिति ॥ ३९ ॥ विहसन्नहसत्येवजीवन्मुक्तोमहोदयः ॥ वीतरागाःसरागाभाअकोपाःकोपसंयुताः ॥ ४० ॥

अर्थ—हंसते हुये वा रोते हुये जीवन्मुक्तके अन्तःकरणमें शरीरस्थ सुख वा दुःख कुछभी नहीं होता ॥ ३७ ॥ और अवच्छेदकसंबंधसे सुखदुःखका अनुभव देहमें ग्रहण होनेपरभी मैं सुखी, मैं दुःखी हुं इत्यादि अनुभवसे अध्या-

सको आश्रय आत्माही है नकि अन्य देहादि, इसी देहात्माभिमानी चार्वाक बौद्धादिके शान्तियोंसे पराजित होकर रूपान्तरको प्राप्तहुये ॥ ३८ ॥ और अज्ञानीको देहादिमें सुखदुःखका अनुभव होनेपरभी जीवन्मुक्तोंको तो मोक्षका अनुभव आत्माहीमें होताहै, और देहके मरणसे ज्ञानी नहीं मरता, रोते हुयेभी वह यथार्थमें नहीं रोता ॥ ३९ ॥ हंसते हुयेभी वह नहीं हंसता, राग तथा कोपयुक्तके समान होनेपरभी यथार्थमें वीतराग और कोपरहितही रहते हैं ॥ ४० ॥

अमोहामोहवलिताहश्यंतेतत्त्वदर्शिनः ॥ इदंसुखमिदंदुःखमित्यादिकलनास्तुताः ॥ ४१ ॥ अलंदूर गतास्तेषामंकुरानभसोयथा ॥ जगदात्माचनास्त्येवयस्यैकंसर्वमस्तिच ॥ ४२ ॥ सुखदुःखादितस्ये तिवाग्व्योमविटपोपमा ॥ अशोकाएवशोचंतेजीवन्मुक्ताजयान्विताः ॥ ४३ ॥ अच्छिन्नाएकतद्भावाह श्यंतेतत्त्वदर्शिनः ॥ शिरःकमलजस्योच्चैःसामगायनतत्परम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—तत्वज्ञानी जन मोहसे आच्छादित होनेपरभी मोहरहितही रहते हैं, क्योंकि यह सुख है यह दुःख है इत्यादि उनकी कल्पना ॥ ४१ ॥ पूर्णरूपसे ऐसे दूर चली गई है जैसे आकाशके अंकुर और जिस आत्मज्ञानी की दृष्टिमें जगत्का स्वरूप तथा उसका मूल अविद्याही नहीं है, और जिसकी दृष्टिमें सबकुछ एकरस सदात्माही है ॥ ४२ ॥ उसकी दृष्टिमें सांसारिक सुखदुःख है यह वचन आकाशके वृक्षवत् है. शोकमोहादिमें विजयी आत्मज्ञानी शोचते हुयेभी शोकरहित रहते हैं ॥ ४३ ॥ तत्वदर्शी च्छिन्नांग होनेपर एकरस रहते हैं, देखो सामगानमें तत्पर ब्रह्माजीके शिरको ॥ ४४ ॥

हरोनखेनचिच्छेदसुकुमारमिवांबुजम् ॥ शक्तोपिनपुनर्ब्रह्माजनयामासतच्छिरः ॥ ४५ ॥ व्योमैकता स्यचिद्व्योम्नोमुधामूर्धेतरेणकिम् ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ ४६ ॥ यद्यथानामसंपन्नंतत्त थास्त्वितरेणकिम् ॥ हरोहरिणशावाक्षीमक्षीणशरतोश्रुच ॥ धत्तेवपुषिदुग्धाब्धिर्गुप्तामृतकलामिव ॥ ॥ ४७ ॥ शक्तोपिरागितामेषनत्यजत्युत्तमाशयः ॥ पंचेषुदाहसमयेदृष्टानीरागतागुणाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—महादेवजीने अपने नखसे ऐसे छेदन करदिया जैसे कोमलकमलको और ब्रह्माजीने समर्थ होकेभी उस शिरको पुनः नहीं उत्पन्नकिया ॥ ४५ ॥ क्योंकि चिदाकाशके समान इस ब्रह्माको व्यर्थ मिथ्याभूत इस पंचमे शिरसे क्या प्रयोजन था और चार मुखसे जो ब्रह्माजीने वेदोपदेश किया उनके होने वा न होनेसे इनको कुछ प्रयोजन नहीं हैं ॥ ४६ ॥ प्राणिओंके कर्मवशसे जो बात जैसे सिद्ध है वह उसीप्रकार रहै अन्यसे कुछ प्रयोजन नहीं है. देखो महादेवजी अनुगृहित कामदेवके वशसे मृगनेत्रा श्रीपार्वतिजीको अपने अर्द्धशरीरमें ऐसे धारण करते हैं जैसे क्षीरसागर अमृतकी कलाको और कामदेवके पराजित होनेपर समाधिकालमें आनन्दकी अश्रुकलाको धारण करते हैं ॥ ४७ ॥ समर्थ होकरभी पवित्रअन्तःकरणयुक्त महादेवजी रागको नहीं त्यागते, क्योंकि कामदेवके दाहके समयमें इनके निरागताआदि गुण दृष्ट हैं ॥ ४८ ॥

नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ४९ ॥ रागितैषास्तुमा वास्यकिमरागितयान्यया ॥ यद्यथानामसंपन्नंतत्तथास्त्वितरेणकिम् ॥ ५० ॥ करोतिकारयत्युच्चैर्म्रि यतेमार्यतेपिच ॥ जायतेवर्धतेजस्रंजीवन्मुक्तोजनार्दनः ॥ ५१ ॥ नचाजवंजवीभावंत्यक्तुंशक्तोप्यसौन तम् ॥ तेनत्यक्तेननैवार्थस्तस्यनैवाश्रितेनच ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीमहादेवजीको कोई कार्य्य करने वा न करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है और सब भूतोंमेंभी इनको कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ४९ ॥ इनकेलिये रागिता हो वा न हो, दोनों समान हैं, तब इस अरागितासे क्या प्रयोजन है, जो जैसा सिद्ध है वह वैसाही रहै, अन्यसे क्या अर्थ ॥ ५० ॥ जीवन्मुक्त श्रीजनार्दनभगवान् असुरआदिका निग्रह स्वयं करतेहैं और इन्द्रआदिसे करातेभी हैं, अवतारकी समाप्तिमें मरणको अंगीकार करतेहैं, लुब्धकादिसे मारेभी जातेहैं, तथा निरंतर उत्पन्न तथा बढतेभी रहतेहैं ॥ ५१ ॥ प्राणियोंके कर्माधीन प्राप्त व्यवहारकी पद्धतिको समर्थ होनेपरभी विष्णुभगवान् नहीं त्यागते और न इनको इसके त्याग वा ग्रहणसे कुछ प्रयोजन है ॥ ५२ ॥

तद्यथास्थितमेवास्तुइहइत्यस्तवासनम् ॥ हरिर्निरिच्छएवास्तेशुद्धचिन्मात्ररूपभृत् ॥ ५३ ॥ आत्मा नमांदोलयतिकालकंदुकतांगतम् ॥ अजस्रंनित्यमादित्योजगद्गृहनभोंगणे ॥ ५४ ॥ नचरोधयितुंदेहंन समर्थोदिनेश्वरः ॥ निरिच्छएवनिर्वाणस्तथाप्यास्तेयथास्थितम् ॥ ५५ ॥ चंद्रोनुभवतिव्यर्थमाकल्पं क्षयमक्षयम् ॥ जीवन्मुक्ततयाखिन्नोयथास्थितमवस्थितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—इस संसारमें जो वस्तु जैसे है वह वैसाही रहो, इसकारणसे विष्णुभगवान् वासनारहित शुद्धचिन्मात्र रूपधारी हैं ॥ ५३ ॥ इस जगत्के आकाशरूपी अंगणमें कालके कन्दुकरूपताको प्राप्त श्रीसूर्य्यभगवान् निरंतर सदा

अपनेको भ्रमण करातेहैं ॥ ५४ ॥ समर्थ होनेपरभी सूर्य्यभगवान् अपने देहको नहीं रोकते किन्तु जीवन्मुक्त होनेसे ज्यों के त्यों इच्छारहित स्थित हैं ॥ ५५ ॥ कल्पपर्य्यन्त चन्द्रमा वृद्धि तथा क्षयका अनुभव करतेहैं, परन्तु जीवन्मुक्त होनेसे खेदरहित ज्योंके त्यों स्थित हैं ॥ ५६ ॥

मरुत्तहव्यगौरीशवीर्यग्रासादिखेदिताम् ॥ जीवन्मुक्तोवहत्यग्निर्यथास्थित्यासमस्थितिः ॥ ५७ ॥ बह्वीभिर्विजिगीषाभिःकृपणाविवतिष्ठतः ॥ जीवन्मुक्तावपिगुरूलोकेशुक्रबृहस्पती ॥ ५८ ॥ करोतिजनकोराज्यंजीवन्मुक्तमनामुनिः ॥ जगत्यामाजिषूग्रासुदेहंजर्जरतांनयन् ॥ ५९ ॥ नलमांधातृसगरदिलीपनहुषादयः ॥ जीवन्मुक्ताश्चिरंराज्यंचक्रुराकुलिताइव ॥ ६० ॥

अर्थ—मरुत्तके यज्ञमें १२ वर्षपर्य्यन्त हांथीके शुंडकेसमान घृतकी धाराआदिके पतनसे अजीर्णताजनित तथा स्कंदकी उत्पत्तिमें महादेव पार्वतीजीके समागममें देवताओंके विघ्नकरनेपर वीर्य्यके अपने स्थानसे च्युत होनेके पश्चात् ब्रह्माजीकी आज्ञासे ग्राससे आभ्यन्तरके दाहसे उत्पन्न और देवताओंको निरन्तर हव्यकी प्राप्तिजनित खेदको अग्निभगवान् जीवन्मुक्त होनेसे समान स्थितिसेही धारण करतेहैं ॥ ५७ ॥ जीवन्मुक्तभी शुक्राचार्य्य और बृहस्पति कृपणके सदृश गुरुलोकमें अनेकप्रकारकी परस्पर जीतनेकी अभिलाषाओंसे संयुक्त स्थित हैं ॥ ५८ ॥ इस संसारमें जीवन्मुक्त मुनि राजाजनक भयंकर युद्धोंमें अपने देहको जर्जर करतेहुये राज्य करतेहैं ॥ ५९ ॥ जीवन्मुक्तभी नल, मांधाता, सगर दिलीप तथा नहुष आदि राजाओंने व्याकुलसदृश चिरकालतक राज्य किया ॥ ६० ॥

व्यवहारेयथैवाज्ञस्तथैवखलुपंडितः ॥ वासनावासनेएवकारणंबंधमोक्षयोः ॥ ६१ ॥ बलिप्रह्लादनमुचिवृत्रांधकमुरादयः ॥ जीवन्मुक्ताःस्थितिंचक्रुर्वीतरागाःसरागवत् ॥ ६२ ॥ तस्मादसत्वेसत्वेचरागद्वेषक्षयोदये ॥ नमनागपिभेदोस्तिज्ञखंप्रतिस्वरूपिणि ॥ ६३ ॥ ज्ञानेनाकाशशुद्धेनधर्मान्येगगनोपमान् ॥ विदंतिजीवन्मुक्तानांतेषांभेदमतिःकुतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—व्यवहारोंमें ज्ञानी तथा अज्ञानी समानही वर्तते हैं, केवल वासना तथा उसका अभावही बंध तथा मोक्षके कारण है ॥ ६१ ॥ जीवन्मुक्त और वीतरागभी बलि, प्रह्लाद, नमुचि, वृत्र, अंधक तथा मुर आदि असुर रागयुक्तसमान इस संसारमें स्थित थे ॥ ६२ ॥ आत्मज्ञान होनेपर जीवन्मुक्तोंके रागद्वेषके क्षय वा उदय होनेपर मोक्षमें कुछभी भेद नहीं है ॥ ६३ ॥ ब्रह्माकाशके सदृश शुद्ध अन्तिम आत्मसाक्षात्कारवृत्तिरूप ज्ञानसे देह मन और प्राण आदि धर्मोंको जो जीवन्मुक्त जीव आकाशके तुल्य शुद्धब्रह्मभावसे धारण करते हैं उनको भेदबुद्धि कहांसे होसकती है ॥ ६४ ॥

भास्वरंशक्रकोदंडंयथानानेवशून्यकम् ॥ आभासमात्रमेवायंतथादृश्यात्मकोभ्रमः ॥ ६५ ॥ शक्रचापेयथाभांतिनानावर्णानभोंगणे ॥ तथाशून्यात्मकाएवब्रह्मांडपरमाणवः ॥ ६६ ॥ इदंजगदसद्भातिसदिवव्यक्तिमागतम् ॥ अजातमनिरुद्धंचयथाशून्यत्वमंबरे ॥ ६७ ॥ साद्यंतमप्यनाद्यंतमशून्यमपिशून्यकम् ॥ जगज्जातंतथाजातमरुद्धंरुद्धमेवच ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे मेघपटलमें स्थित सूर्य्यकिरण शून्यरूप होते हुये नानारंगका प्रकाशमान इन्द्रका धनुष भ्रमसे देखपडताहै ऐसेही यह आभासमात्र दृश्य जगत्का भ्रम है ॥ ६५ ॥ जैसे आकाशरूपी अंगणमें इन्द्रके धनुषमें नानाप्रकारके रंग भासते हैं, ऐसेही ये ब्रह्मांडके परमाणुभी शून्यरूपही हैं ॥ ६६ ॥ अजात तथा अनष्ट यह असत् जगत् सत्के समान प्रकट ऐसे भासताहै जैसे आकाशमें शून्यता ॥ ६७ ॥ अनादि अनन्त होनेपरभी सादि, अशून्य होनेपरभी शून्य, अनुत्पन्न होनेपरभी उत्पन्न, तथा अनष्ट होनेपरभी नष्टके तुल्य यह जगत् भासताहै ॥ ६८ ॥

जातंनिरुद्धमस्त्येवंब्रह्मव्योमैवभासते ॥ यथादारुमयस्तंभस्तथातच्छालभंजिका ॥ ६९ ॥ समस्तकलनोन्मुक्तंसमंनिर्निद्रमासनम् ॥ यदेकांतचिदाकाशंतद्विद्यात्तन्मयंजगत् ॥ ७० ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ अनुन्मेषंचिदाकाशंतद्विद्यात्तन्मयंजगत् ॥ ७१ ॥ तत्रयद्द्वैतमैक्यंतन्मन्येतदपिनैवच ॥ तद्व्योमकेवलंभातिमन्येतदपिनैववा ॥ ७२ ॥ जगदाकाशमेवेदमात्मैवात्मनिवास्थितम् ॥ भविष्यत्पुरवदृष्टमपिस्फारमपिस्फुटम् ॥ ७३ ॥ आकाशकोशविशदाशयदृश्यजातंमौनात्मतिष्ठतिशिलाघनमेवशांतम् ॥ यन्नामतस्यजगदित्यभिधांविधायस्वात्मैवमोहितइवायमहोनुमाया ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्योपाख्यानांतर्गतविपश्चिदुपाख्याने जीवन्मुक्तकलनं नाम पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठमय स्तंभ काष्ठही है और उसके देशमें स्थित कल्पनासे भासमान प्रतिमादिभी वही हैं ऐसेही कूटस्थ ब्रह्माकाशही उत्पन्न और नश्वर आदिवत् कल्पनासे भासताहै ॥ ६९ ॥ समस्त कल्पनाओंसे रहित, सर्वत्र एकरस, सर्वथा चिदाकाशरूप, और निद्रारहित जो समाधिकालमें ब्रह्मरूपसे स्थिति है तन्मय इस जगत्को जानना चाहिये ॥ ७० ॥ एकदेशसे दूसरे देशमें वृत्तिकी प्राप्तिमें दोनों देशके मध्यमें निश्चल चिदाकाशका स्वरूप तन्मय इस जगत्को जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ इसप्रकार चिदात्मामें विशेषरूप द्वैत और सामान्यरूप ऐक्य जो भान होताहै वहभी चिदाकाशके स्वभावहीसे नहीं है, और उसमें शून्यका भान समाधिमें साक्षात्कार करनेसे नहीं मानता, क्योंकि पूर्णानन्दमें शून्यकाभी अभाव है ॥ ७२ ॥ और शून्यता तथा पूर्णता अन्यप्रतियोगीकी अपेक्षासे होती है, जैसे जलसे शून्य वा पूर्ण घट यह व्यवहार होताहै, और यह आत्मारूप जगदाकाश जो आत्मामें गन्धर्वनगरके सदृश विशाल देशकालविशिष्ट दृष्ट है ॥ ७३ ॥ हे आकाशवत् विशाल आशययुक्त रामजी ! जो यह दृश्यसमूह शिलाघनवत् मौन ब्रह्महो स्थित है उसकी जगत् यह आख्या ब्रह्महो विधान करके अपनी मायासे मोहितके समान स्थित है, अहो कैसी प्रबल यह माया है ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विप० जीवन्मुक्तकलनं नाम पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

षड्विंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

इस १२६ के सर्गमें मृतकदशामें प्राप्त सब विपश्चितोंके अन्तःकरणमें संसारका भ्रम, और उत्तरके विपश्चित्का अन्धकार खन्दकके दर्शनान्त भ्रमका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनंतरंमुनिश्रेष्ठकुर्वंतःकिंविपश्चितः ॥ आसंस्तेषुदिगंतेषुसद्वीपाब्धिवनाद्रिषु ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुकिंवृत्तमेतेषांतातत्रविपश्चिताम् ॥ तालीतमालमालाढ्यद्वीपाद्रिवनचारिणाम् ॥ २ ॥ क्रौंचद्वीपगिरेरेकोविपश्चित्पश्चिमेतटे ॥ कटेनाद्रितटेपिष्टःकरिणाकमलंयथा ॥ ३ ॥ द्वितीयोनभसानीतोरक्षसाविक्षतांगकः ॥ निक्षिप्तोवाडवेवह्नौतत्रभस्मत्वमागतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् द्वीप, समुद्र, वन, तथा पर्वतादिसहित दिगन्तोंमें प्राप्त सब विपश्चितोंने क्या २ किया ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे प्रिय रामजी ! ताली तथा तमालआदि वृक्षोंसे पूर्ण द्वीप वन तथा पर्वतादिमें विचरनेवाले इन विपश्चितोंका वृत्तान्त आप सुनिये ॥ २ ॥ उनके मध्यमेंसे एक विपश्चित्को क्रौंचद्वीपके सीमापर्वतके पश्चिमतटपर किसी मातंगने अपने गंडस्थलसे ऐसे चूर्ण करडाला जैसे कमलको ॥ ३ ॥ और दूसरे विपश्चित्को एक राक्षस युद्धमें भग्नाङ्ग करके आकाशमें ले गया, वहांसे समुद्रमें वडवाग्निके मध्यमें फेंकदिया जिससे वह भस्म होगया ॥ ४ ॥

तृतीयःखेदर्शदेशंनीतोविद्याधरेणवै ॥ गतोऽप्रणामकुपितशक्रशापेनभस्मताम् ॥ ५ ॥ चतुर्थश्चतुरंगच्छन्कुशद्वीपगिरेस्तटे ॥ दुर्वारेणनदीकच्छेमकरेणाष्टधाकृतः ॥ ६ ॥ इतितेपंचतांप्राप्तादिङ्मुखेष्वाकुलाशयाः ॥ क्षयेचतुर्षुचत्वारोभूपालालोकपालवत् ॥ ७ ॥ अथतेषांददर्शासौव्योम्नेवव्योमरूपिणाम् ॥ संवित्प्राक्तनसंस्काराद्व्योमात्मावनिमंडलम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और तृतीय विपश्चित्को कोई विद्याधर स्वर्गमें इन्द्रकी सभामें लेगया, वहांपर प्रणाम न करनेसे कुपित होके इन्द्रने भस्म करदिया ॥ ५ ॥ और चतुर्थ विपश्चित्को कुशद्वीपमें पर्वतके समीपस्थ नदीके तटपर किसी मकरने अष्टखंड करके नष्ट करदिया ॥ ६ ॥ इसप्रकार दिशाओंके अन्तमें व्याकुल अन्तःकरणयुक्त चारों विपश्चित्भूपाल मरणदशाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे कल्पान्तमें लोकपाल ॥ ७ ॥ और मरणके पश्चात् आकाशरूपी उन चारों विपश्चित्की आकाशरूप संवित्ने अपने २ पूर्वजन्मोंके संस्कारसे पृथिवीमंडलको देखा ॥ ८ ॥

सप्तद्वीपाब्धिवलयंपुरपत्तनभूषणम् ॥ सुरशैलशिरःपीठंब्रह्मलोकशिरोमणिम् ॥ ९ ॥ चंद्रार्कबिंबनयनंतारामुक्ताकलापकम् ॥ विलोलमेघवसनंनानावनतनूरुहम् ॥ १० ॥ देहान्विपश्चितांसंविद्ददर्शचतुरोपिसा ॥ प्राग्वत्कल्पपरावृत्तौद्यौर्दिगंतानिवाततान् ॥ ११ ॥ आतिवाहिकसंवित्तेस्तेऽव्योम्निव्योमतात्मकाः ॥ आधिभौतिकदेहत्वभावान्ददृशुरग्रतः ॥ १२ ॥

अर्थ—सप्तद्वीप तथा सप्तसमुद्ररूपी वलय (कंकण) से आवृत, सुमेरुरूपी शिरपीठसे उन्नत और ब्रह्मलोकरूप शिरोमणि संयुक्त भूमंडलको उनकी संवित्ने देखा ॥ ९ ॥ चन्द्रसूर्य्यरूपी नेत्रोंसे भूषित, तारागणरूपी मुक्तासमूह संयुक्त, चंचल मेघरूपी वस्त्रसे भूषित, तथा नानाप्रकारके वनके वृक्षलतारूपी रोमावलीसंयुक्त पृथिवीमण्डलको देखा ॥ १० ॥ चारों विपश्चित्राजाओंकी संवित्ने पूर्वके सदृश अपने देहोंको ऐसे देखा जैसे सृष्टिकालके आरंभमें अन्तरिक्षमें पूर्वसृष्ट प्रजापति विशाल दिगन्तोंको ॥ ११ ॥ भौतिक आकाशरहित चिदाकाशमें चिद्रूपताको प्राप्त उन विपश्चितोंने मनके प्रतिभासमात्रके विषयीभूत प्रातिभासिक शरीरमें आधिभौतिक स्थूलपदार्थोंको संमुख देखा ॥ १२ ॥

अस्यात्मकत्वेविद्येयंकियतीस्यादितीक्षितुम् ॥ चत्वारोपिप्रवृत्तास्तेसंस्कारवशतःपुरः ॥ १३ ॥ दृश्यदर्शनयोरुर्वीमंडलानुभवाकृतेः ॥ निष्ठांद्रष्टुमविद्यायाभ्रेमुर्द्वीपांतराणिते ॥ १४ ॥ द्वीपसप्तकमुल्लंघ्यसमहार्णवसप्तकम् ॥ विपश्चित्पश्चिमःप्रापघनभूमौजनार्दनम् ॥ १५ ॥ तस्मादनुत्तमंज्ञानंसमासाद्यदिगंतरे ॥ तस्मिन्नेवसमाधानेस्रोतिष्ठद्वर्षपंचकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस देहके आत्मज्ञान न होनेपर इस दृश्य अविद्याका परिमाण कितना है इस विषयको अवलोकन अनेके अर्थ पूर्वकालके संस्कारसे वे प्रवृत्त हुये ॥ १३ ॥ दृश्यदर्शनके मध्यमें पृथिवीमंडलरूप अनुभवाकार अविद्याका कितना परिमाण है इस इयत्ताके दर्शनार्थ एक द्वीपसे दूसरे द्वीपमें भ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ सप्तसमुद्रसहित सप्तद्वीपोंको उल्लंघन करके पश्चिमके विपश्चित्ने स्वर्णमयी पृथिवीपर भाग्यवश जाके क्रीडा करतेहुये जनार्दनभगवान्को देखा ॥१५॥ उन जनार्दनभगवानसे अनुपम ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान पाकर उसी स्थानपर समाधिमें ५ वर्ष पर्यन्त स्थितरहा ॥१६॥

ततोदेहंपरित्यज्यचित्तेसत्तामुपागते ॥ सतत्प्राणइवाकाशंपरंनिर्वाणमाययौ ॥ १७ ॥ पूर्वःपर्वणिशीतांशुबिंबपार्श्वेस्थितंवपुः ॥ चिंतयंश्चिरमुत्रष्टदेहश्चंद्रपुरेस्थितः ॥ १८ ॥ दक्षिणःशाल्मलिद्वीपेराज्यमुत्सन्नशात्रवः ॥ करोत्यद्यापिनसतोविस्मृतान्यविनिश्चयः ॥ १९ ॥ उत्तरस्तरलास्फालकल्लोलेसप्तमांबुधौ ॥ सहस्रमेकंवर्षाणामुवासमकरोदरे ॥ २० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् देहको त्यागकर चित्त प्राण आदिके आकाश भावके प्राप्त होनेपर विदेहकैवल्यमुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ और पूर्वदिशाका विपश्चित् पूर्णचन्द्रबिंबके निकट अपने शरीरको शुद्ध चन्द्ररूपसे भावना करता हुवा शरीरके नष्ट होनेपर चन्द्रलोकमें उसी रूपसे स्थित हुआ ॥ १८ ॥ और दक्षिणदिशाका विपश्चित् सब शत्रुओंका नाश करके अबभी शाल्मलीद्वीपमें राज्य करताहै. तत्वज्ञानके अभावसे उसको बाह्यार्थका विस्मरण नहीं हुआ ॥ १९ ॥ और उत्तरदिशाका विपश्चित्ने विशालतरंगयुक्त सप्तमसमुद्रमें मकरसे निगलित होनेसे उसके उदरमें एकसहस्र वर्ष पर्य्यन्त निवास किया ॥ २० ॥

मकरोदरमांसाशीमृतेमकरनायके ॥ मकरोदरतोब्धेश्चनिर्गतोमकरोयथा ॥ २१ ॥ ततोशीतिसहस्राणियोजनानांघनावनिम् ॥ हिमकल्पजलांभोधेरुल्लंघ्यसुघनोदरीम् ॥ २२ ॥ प्राप्तोदशसहस्राणियोजनानांमहामहीम् ॥ सौवर्णीसुरसंचारसरणिंमृतवानसौ ॥ २३ ॥ तस्यांभूमौचमध्येचविपश्चिन्नाकितामगात् ॥ उत्तमामग्निमध्यस्थंक्षणात्काष्ठमिवाग्निताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वहां मकरके उदरमें मकरके मांसका भोजन करताथा, और उस मकरके नायकके मरनेपर मकरके उदर तथा समुद्रसे मकरके सदृश बाहर निकला ॥ २१ ॥ उसके पश्चात् हिमके सदृश शीतलजलयुक्त स्वादूदक समुद्रके शेष अस्सी (८०) सहस्र योजनको पार करके विशाल उदर युक्त दशसहस्र योजन विस्तीर्ण, और देवगम्य सुवर्णमयी पृथिवीपर प्राप्त होकर प्राणोंको त्यागदिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस भूमिपर मरनेसे विपश्चित् उत्तम देवभावको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे अग्निके मध्यमें स्थित काष्ठ अग्निरूपताको ॥ २४ ॥

प्रधानदेवोभूत्वासौलोकालोकगिरिंगतः ॥ अस्यभूमंडलतरोरालवालमिवस्थितम् ॥ २५ ॥ सपंचाशत्सहस्राणियोजनानांसमुन्नतः ॥ आलोकलोकाचाराढ्योभागएकोस्यनेतरः ॥ २६ ॥ लोकालोकशिरःप्राप्तंतारकामार्गसंस्थितम् ॥ अधःस्थिताअपश्यंस्तमुच्चनक्षत्रशंकया ॥ २७ ॥ तस्मात्प्रदेशात्तत्पारेतमस्तस्यमहागिरेः ॥ चतुर्दिक्कंमहाखातंनभःशून्यमनंतकम् ॥ २८ ॥ ततोभूगोलकोयंहिसमाप्तोवर्त्तुलाकृतिः ॥ नभःशून्यंमहाखातंततस्तिमिरपूरितम् ॥ २९ ॥ तत्रालिकज्जलतमालनभोंतरालनीलंतमोनचमहीनचजंगमादि ॥ नालंबनंनचमनागपिवस्तुजातंकिंचित्कदाचिदपिसंभवतीतिविद्धि ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० विपश्चिज्जन्मांतराचरणं नाम षड्विंशाधिकशततमःसर्गः ॥ १२६ ॥

अर्थ—वहांपर श्रेष्ठदेवताभावको प्राप्त होकर मेरुके शृंगसेभी उन्नत होनेसे इस भूमंडलरूप वृक्षके आलवाल (वृक्षके मूलभागमें थाले) के समान स्थित लोकालोकपर्वतपर गया ॥ २५ ॥ वह लोकालोक पर्वत पचाससहस्र-योजन ऊंचा है, और उसका केवल प्रथम भाग सूर्य्यके प्रकाश तथा देवादिप्राणियोंके व्यवहारसे युक्त न कि अन्य ॥ २६ ॥ उस लोकालोकपर्वतके अतिउच्च शिखरपर नक्षत्रमार्गमें प्राप्त देवरूपविपश्चित्को अधोभागमें स्थितप्राणियोंने नक्षत्रकी आशंकासे देखा ॥ २७ ॥ उस लोकालोकपर्वतसे परे भागमें अन्धकारमय आकाशवत् शून्य और चारोंओर अतिविशाल अनेकयोजन विस्तीर्ण परिखाकार गर्त है ॥ २८ ॥ हे रामजी ! उस परिखातमें (खन्दक) भ्रमर, कज्जल तथा तमालवत् नीलआकाशके अन्तरालमें केवल अंधकारही अन्धकार है, वहांपर न पृथिवी है, न कोई जंगम प्राणी हैं, न कोई आश्रय है और न कभी किसी वस्तुका संभव है यह आप जानें ॥ २९ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विपश्चिज्जन्मान्तराचरणं नाम षड्विंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

उस परिखाके परे आकाश, भूमि तथा नक्षत्र आदिकी स्थिति, तथा ब्रह्मांड खप्परद्वन्द्वकी स्थितिका वर्णन इस १२७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्कथयैतन्मेकथंभूगोलकंस्थितम्॥ कथमृक्षगणोयातिलोकालोकःकथंगिरिः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथासंकल्परचिताशिशोर्व्योमनितिष्ठति ॥ वीटाचिन्मात्रबालेनकल्पिता भूस्तथांबरे ॥ २ ॥ यथातिमिरिकाक्षाणांकेशचंद्रादिदर्शनम् ॥ चिदाकाशस्यसर्गादौतथापृथ्व्यादिद र्शनम् ॥ ३ ॥ यथासंकल्पनगरंधार्यमाणंनदृश्यते ॥ धार्यतेधार्यतेमाचतथोर्व्यनुभवश्चितेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे भगवन् ! निराधार यह भूगोल कैसे स्थितहै, नक्षत्रमंडल निराधार कैसे चलताहै, और लोकालोक यह संज्ञा पर्वतकी कैसे हुई सो वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! जैसे बालकके संकल्पसे रचित आकाशमें कन्दुक स्थित रहताहै ऐसेही चिन्मात्र बालक (हिरण्यगर्भ) से कल्पित यह भूलोक आकाशमें स्थितहै ॥ २ ॥ अथवा जैसे तिमिररोगग्रस्त नेत्रवालोंको आकाशमें केश चन्द्रादिका दर्शन होताहै ऐसेही अविद्यासे सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशको पृथिवी आदिका दर्शन होताहै ॥ ३ ॥ और जैसे संकल्पके नगर आदि धार्य्यमाणभी संकल्पयितासे अन्यको नहीं देखपडते और यद्यपि सांकल्पिक स्तंभादि वे धार्य्यमाण होते हैं यथार्थमें नहीं, ऐसेही पृथिवी आदिका अनुभव चेतनको होताहै ॥ ४ ॥

यद्यथायावदाभातिचितिचित्वात्स्वभावतः ॥ तत्तथातावदाभातितत्रतत्रतदात्मकम् ॥ ५ ॥ तिमिराक्रांतनेत्रस्यकेशोंड्रकमिवांबरे ॥ चिन्मात्रस्यमहीगोलोयोभातःसतथास्थितः ॥ ६ ॥ ऊर्ध्ववहंत्यःसरितस्तदधस्ताद्धुताशनः ॥ चितिचेत्स्वप्नवद्भातितत्तथातत्स्थितंभवेत् ॥ ७ ॥ तस्मात्पतंतीभूर्भातापतत्यवानिशंजगत् ॥ उत्पतंतीतुचिद्भातातथानानात्मिकाभवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—चेतन निजस्वभावसे जहां जिस रूपसे जितनी आयु आदि सहित भासताहै वहां २ उसी रूपसे तन्मय उतनेही कालतक भासताहै ॥ ५ ॥ तिमिररोगग्रस्त नेत्रवालेको जैसे आकाशमें केशादि भासते हैं ऐसे अविद्याद्वारा चिन्मात्रका यह भूगोल जैसे भासताहै वह वैसाही स्थितहै ॥ ६ ॥ निजविपरीतस्वभावसे ऊर्ध्वधारायुक्त नदियोंका वहना और अधोज्वालायुक्त अग्नि यदि चेतनको भासैं तो वह स्वप्नके तुल्य वैसाही स्थित है ॥ ७ ॥ इसीकारणसे उन २ वादियोंकी बुद्धि अवछिन्नचित्सत्तासे पृथिवीका निरंतर अधःपतन, ऊर्ध्वगमन, पवन, चारोंदिशाओंमें सूर्य्यकी प्रदक्षिणरूप भ्रमण इत्यादि नानाकल्पनासे भान होना सत्यही है ॥ ८ ॥

स्तब्धभातास्थितास्तब्धासालोकातुप्रकाशिनी ॥ निरालोकानिरालोकलोकानामात्मनिस्थिता ॥ ९ ॥ चिद्भानैकानुसारेणताराचक्रंतथामही ॥ असदेवसदैवेदंभातीदमविखंडितम् ॥ १० ॥ आलोकालोकमेवाथनभःखातंततोमहत् ॥ तमएकार्णवाकारंस्थितंतत्रक्वचित्क्वचित् ॥ ११ ॥ दूरत्वादृक्षचक्रस्यकरालत्वान्महागिरेः ॥ क्वचित्तमःक्वचित्तेजस्तत्रैवाचत्वरेपिच ॥ १२ ॥

अर्थ—किन्हीं प्राणियोंकी दृष्टिमें निश्चल भासतीहैं, रात्रिदिन अप्रतिहतदृष्टि योगी, देव बिडालादिको प्रकाशमयी उलूकादिको अन्धकारमयी इसप्रकार भिन्न २ आत्माओंको प्रकाश तथा अन्धकारमयी यह भासतीहैं ॥९॥ इसप्रकार सदसत्वादियोंके मतमें चित्के भानके अनुसार नक्षत्रमंडल तथा यह पृथिवी अविखंडित सत्असत्स्वरूपसेभी भासती है ॥ १० ॥ इसप्रकार लोकालोकपर्वतपर्य्यन्त यह भूमि है, उसके पश्चात् आकाशरूप वलयाकार महापरिखात है, अनन्तर महासमुद्राकार कहीं २ अन्धकार है ॥ ११ ॥ और नक्षत्रमंडलके अतिदूर होनेसे, तथा उस पर्वतके अतिमहान् होनेसे कहीं अन्धकार और कहीं अधोभागमें प्रकाश होनेसे इसका नाम लोकालोक है ॥ १२ ॥

लोकालोकगिरेःपारेस्थितादाकाशमंडलात् ॥ दशदिक्कंसुदूरेणऋक्षचक्रंविवर्त्तते ॥ १३ ॥ अपातालदिवोनद्धमृक्षचक्रंतदंबरे ॥ दशदिक्कंप्रसरतिपतदूर्ध्वाहतेभितः ॥ १४ ॥ भूलोकमेवपातालयुतंनक्षत्रमंडलम् ॥ पर्येतिलोकालोकांतेनान्यच्चित्कल्पनाचतत् ॥ १५ ॥ सलोकालोकभूलोकद्विगुणात्खादनंतरम् ॥ पक्वाक्षोटस्यभिस्सेवस्थितंनक्षत्रमंडलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस लोकालोकपर्वतके अतिदूर स्थित आकाशमंडलसे बहुत दूरपर दशोंदिशामें नक्षत्रचक्र भ्रमण करताहै ॥ १३ ॥ पातालसे लेके स्वर्गपर्य्यन्त नक्षत्रचक्र उसी पर्वतके आकाशमें गुंथा हुआ ध्रुवको छोडके और गिरता हुआ भ्रमण करताहै ॥ १४ ॥ यह सब नक्षत्रमंडल तथा पातालसहित सम्पूर्ण भूलोक जो लोकालोकपर्वतकी प्रदक्षिणा करताहै सब चित्कल्पनासे भिन्न कुछ नहीं है ॥ १५ ॥ लोकालोकसहित भूलोकसे द्विगुण आकाशसेपर यह सब नक्षत्रमंडल पक्व अखरोटफलके छिलकेसमान स्थित है ॥ १६ ॥

द्विगुणानभसस्तस्माहक्षचक्रस्यपुष्टता ॥ दशदिक्कंविसरतोबिल्वत्वक्सदृशस्थितेः ॥ १७ ॥ संविद्घनस्यकचनंयादृशंकल्पनात्मकम् ॥ यदित्थंसंनिवेशेननन्वियंजागतीस्थितिः ॥ १८ ॥ नक्षत्रचक्राद्विगुणंततोन्यद्विद्यतेनभः ॥ तच्चकचित्प्रकाशाढ्यंकचित्सांद्रतमोमयम् ॥ १९ ॥ पर्यंतेतस्यनभसःस्थितंब्रह्मांडखर्परम् ॥ एकमूर्ध्वंपरमधोगगनंमध्यमेतयोः ॥ २० ॥

अर्थ—और उस भूलोकसे द्विगुण आकाशसेभी द्विगुण दशोंदिशाओंमें भ्रमणशील तथा बिल्वकी त्वचाकेसमान स्थितिवाले नक्षत्रमंडलके दलका विस्तार है ॥ १७ ॥ हे रामजी ! मायाशबलित ब्रह्मका सत्यसंकल्परूप जैसा जैसा स्फुरण है उसीके अनुसार रचनाविशेषसंयुक्त यह जगत्की स्थिति है ॥ १८ ॥ नक्षत्रचक्रसे उसका द्विगुण पुनः आकाश है और आकाश कहींतो प्रकाशसे पूर्ण है और कहीं घनीभूत अन्धकारमय है ॥ १९ ॥ उस आकाशकेसमीप ऊपर नीचे दो ब्रह्मांडके खप्पर हैं और इन दोनों खप्परोंके मध्यमें आकाश है ॥ २० ॥

योजनानांकोटिशतंपुष्टंवज्रदृढंचतत् ॥ स्थितंसंवेदनमयंव्योम्निव्योममयात्मकम् ॥ २१ ॥ सर्वदिक्कंमहागोलेनभसिस्वर्कतारकम् ॥ किमत्रोर्ध्वमधःकिंस्यात्सर्वमूर्ध्वमधश्चवा ॥ २२ ॥ पतनमुत्पतनंगमनंस्थितंचितइतिस्फुरितंनवस्तुतत् ॥ पतनमस्तिनचोत्पतनंनवागमनमागमनंस्थितमित्यपि ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० विप० भूगोलकनिर्णयोनाम सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अर्थ—और शत (१००) करोड योजन वज्रके समान दृढ उस ब्रह्मांडखप्परके दलका व्यास है और यह भौतिकरूपसे दृष्टहोनेपरभी यथार्थमें कल्पनाम चिदाकाशरूपही चिदाकाशमें स्थित है ॥ २१ ॥ महागोलाकार आकाशमें सूर्य्यचन्द्रादिसहित यह सब ज्योतिश्चक्र चारो ओर स्थित है, इस शून्याकार आकाशमें ऊर्ध्वता तथा अधस्ता क्या होसकती है, यदि कल्पना होसकतीहै तो सभी कुछ ऊपर है और सब नीचे है यह होसकतीहै ॥ २२ ॥ जो कुछ इस पृथिवीआदि संसारका अधःपतन, उत्पतन, चारो ओर भ्रमण और एकत्र अवस्थान भासताहै वह सब प्रत्येक चेतनका स्फुरणमात्र है और यथार्थमें न पतन, न उत्पतन, न गमनागमन और न एकत्र स्थिति है ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अवि० विपश्चि० भूगोलकनिर्णयो नाम सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अष्टविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

अन्धकाररूपी गर्त तथा ब्रह्मांडके आवरणको पाकरके विपश्चित्का अविद्यामें भ्रमण इस १२८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मदादेर्जनस्यैतत्प्रत्यक्षंनानुमानिकम् ॥ शुद्धबोधशरीरेणनाधिभौतिकरूपिणा ॥ १ ॥ एतदस्मज्जगत्स्वप्नेनान्येषुकथितंमया ॥ अन्येष्वस्तिजगत्स्वप्नेष्वेवमन्यापिचस्थितिः ॥ २॥ जगत्स्वप्नेषुचान्येषुसंस्थानकथनेनकिम् ॥ नह्युपयोगिकादन्याकथाभवतिधीमताम् ॥ ३ ॥ सर्वेषा मुत्तरेमेरुर्लोकालोकश्चदक्षिणे ॥ येषामित्यनुमाशेषभूतौघेतनपंडिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! लोकालोक पर्वत, नक्षत्रचक्र तथा भूमंडलादिसहित सब ब्रह्मांडखप्पर संपूर्ण ब्रह्मांड अस्मदादि योगीजनोंको शुद्ध ज्ञानरूपी शरसे न कि आधिभौतिकसे प्रत्यक्ष है और अनुमान नहीं है इसलिये हमारा कथन अनुभवसे है ॥ १ ॥ हे रामजी ! यह जो लोकालोक तथा ज्योतिश्चक्रादिके रचनाके विषयमें मैंने तुमसे वर्णन कियाहै यह अस्मदादि दृष्ट जगत् स्वप्नमें है और अन्य स्वप्नदृष्ट लक्षों ब्रह्मांडोंमें ऐसीही और कहीं २ इससे विलक्षण जगत्की स्थिति है ॥ २ ॥ अन्य स्वप्नदृष्ट जगत्की रचनादिके विषयमें कथन निरर्थक है, क्योंकि बुद्धिमानोंकी कथा उपयोगितासे अधिक नहीं होती ॥ ३ ॥ हे पंडितजन ! सब ब्रह्मांडोंके मध्यमें और सब द्वीप तथा समुद्रोंके उत्तर तो सुमेरु है और लोकालोकपर्वत सबके दक्षिण है, इसप्रकार सब प्राणीसमूहोंके अर्थ जिसकी जिज्ञासा हो वह अनुमान करे ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षमेतदन्येषांयत्रतेन्येजगद्भ्रमाः ॥ नास्माकंविषयेतेहितथासंस्थानशोभिनः ॥ ५ ॥ सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकश्चदक्षिणे ॥ सप्तद्वीपनिवासानांनान्येषामितिनिश्चयः ॥ ६ ॥ प्रकृतंशृणुहेरामतद्ब्रह्मांड कवाटकम् ॥ यत्प्रमाणंततोवारिबाह्येदशगुणंस्थितम् ॥ ७ ॥ तद्ब्रह्मांडकवाटंतुतृणंतृणमणिर्यथा ॥ धत्तेवारिस्वभावेननित्यंकल्पकरत्नवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो वहांके निवासी हैं उन्हींको अन्य ब्रह्मांडोंके आन्तरालिक जगद्रूप प्रत्यक्ष है, क्योंकि उस २ प्रकारकी रचनासे शोभायमान वे ब्रह्मांड हम लोगोंके विषयमें नहींहैं ॥ ५ ॥ सब सप्तद्वीपनिवासियोंके न कि अन्यके उत्तरमें तो मेरु है और दक्षिणमें लोकालोक है यह निश्चय है ॥ ६ ॥ अब हे रामजी ! प्रकृतविषय सुनो, जो शतकोटि योजन ब्रह्मांडखप्पर तुमसे वर्णन कियाहै उससे परे उस खप्परसे दशगुण अधिक जलका आवरण है ॥ ७ ॥ उस जलको वह ब्रह्मांड-खप्पर पार्थिवभाग होनेसे निज आकर्षणशक्तिसे ऐसे निराधारस्थानमें धारण करताहै जैसे तृणचुम्बकमणि तृणको ॥ ८ ॥

सर्वेषामेवभावानांस्थितःकल्पकरत्नवत् ॥ सर्वदापार्थिवोभागस्तेनात्रैतेपतंत्यलम् ॥ ९ ॥ जलाद्दश गुणंबाह्येस्थितंतेजोनिरिंधनम् ॥ आकाशविशदंशांतस्तब्धज्वालोदरोपमम् ॥ १० ॥ तस्माद्दशगुणो बाह्येसंस्थितोवायुरायतः ॥ वायोर्दशगुणंबाह्येव्योमतिष्ठतिनिर्मलम् ॥ ११ ॥ ततःपरतरंशांतंब्रह्मा काशमनंतकम् ॥ नप्रकाशंनचतमोमहाचिद्घनमव्ययम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जलादि सब पदार्थोंमें कल्पक रत्नकेसमान पार्थिवभाग स्थित है इसलिये वृष्टिके जलादि समुद्र नदी आदिकेभी पार्थिवभागमें गिरतेहैं ॥ ९ ॥ और ब्रह्मांडखप्परके आवरणभूत जलसे दशगुण अधिक, आकाशवत् विशाल और शान्त तथा स्तब्ध ज्वालाके उदरके सदृश इन्धनशून्य तेज स्थित है ॥ १० ॥ और उसतेजसे परे उससे दशगुण अधिक वायु स्थित है और वायुसे दशगुण अधिक उस वायुसे परे निर्मल आकाश है ॥ ११ ॥ और उससे परे शान्त और अनन्त मायाशबलित ब्रह्माकाश है, वह ब्रह्माकाश न प्रकाश और न तमरूप है, किन्तु अविनाशी चिद्घनरूप है ॥ १२ ॥

अनादिमध्यपर्यंतेतस्मिन्ब्रह्ममहांबरे ॥ महाचिन्नाम्निसर्वात्मन्ययोनिर्वाणरूपिणि ॥ १३ ॥ ब्रह्मांडा नांतादृशानांदूरेदूरेपुनःपुनः ॥ मिथोलक्षाणिलक्षाणिकचंत्युपरमंतिच ॥ १४ ॥ नकिंचित्कचयत्यत्र समेकचनरूपिणि ॥ तादृङ्मयंतथारूपंतदात्मन्येवसंस्थितम् ॥ १५ ॥ एषतेकथितःसर्वोदृश्यानु भवनक्रमः ॥ अधुनाशृणुकिंवृत्तंलोकालोकेविपश्चितः ॥ १६ ॥

अर्थ—आदि अन्त तथा मध्यशून्य, सर्वात्मरूप, तथा अयोघनवत् निर्वाणस्वरूप महाचित्नामक उस ब्रह्माकाशमें पूर्वोक्त ब्रह्मांडोंके सदृश लक्षों (लाखों) ब्रह्मांड दूर २ परस्पर पुनः २ उत्पन्न होतेहैं और लीन होजाते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्वयंप्रकाशरूप इस ब्रह्माकाशमें अनन्त ब्रह्मांडोंको उत्पन्न करानेवाला कोई अन्य कारण नहींहै किन्तु ये सब ब्रह्मांड ब्रह्ममय और ब्रह्मस्वरूप ब्रह्ममेंही स्थित हैं ॥ १५ ॥ हे राम ! तुमसे दृश्यका मैंनें अनुभव कहा, अब तुम लोकालोकपर्वतपर विपश्चित्का वृत्तान्त सुनो ॥ १६ ॥

स्वभ्यस्तपूर्वसंस्कारोविलसन्निश्चयेरितः ॥ लोकालोकगिरेर्मूर्ध्नस्तमःश्वभ्रंपपातसः ॥ १७ ॥ ददर्श तत्रशिखरप्रतिमैर्विहगैर्वपुः ॥ विकर्त्तितंमनोदेहंप्रस्तंचस्वचिंतिते ॥ १८ ॥ देशस्यतस्यपुण्यत्वाद्देहंय

चातिवाहिकम् ॥ आधिभौतिकताबोधंनानयन्निर्मलाशयः ॥ १९ ॥ तावन्मात्रप्रबोधोसौनाधिकंबोध मागतः ॥ चिंतयित्वासितंकार्यंबभूवप्रकृतेर्हितः ॥ २० ॥

अर्थ—पूर्वोक्त दिगन्तदर्शनरूप संस्कारके अत्यन्त अभ्याससे प्रेरित विपश्चित् लोकालोकपर्वतके शिखरपरसे पूर्वोक्त अन्धकारमें गिरा ॥ १७ ॥ उस अन्धकारमें पर्वतके शिखराकार गृध्रआदि पक्षियोंसे छिन्नभिन्न अपने देवशरीरको देखा, पश्चात् अपने मनोमय शरीरकोही निजचिन्तित दिगन्तदर्शनमें प्रवृत्त देखा ॥ १८ ॥ जहां विपश्चित्का मरण हुआ उस देश (लोकालोक) के पवित्र होनेसे निर्मल अन्तःकरणयुक्त विपश्चित्ने अपने उस सूक्ष्म देहको भौतिकरूपसे नहीं स्मरण किया ॥ १९ ॥ केवल स्थूलशरीरसे परे सूक्ष्मशरीरमें आत्मबुद्धिमात्र ज्ञान विपश्चित्को हुआ, किन्तु तीनों शरीरसे परे शुद्ध चिन्मात्रमें आत्मबुद्धि नहीं हुई, इसकारणसे दिगन्तदर्शनरूप कार्य्यको असमाप्त समुझके अपने भ्रमणशील स्वभावमेंही तत्पर हुआ न कि उपरामताको प्राप्तहुआ ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ अदेहंप्रसरत्येतच्चित्तंकार्येकथंमुने ॥ आतिवाहिकसंवित्तेर्बोधःस्यात्कीदृशोधिकः ॥ ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्पपथिकत्वेनयथांतःपुरवासिनः ॥ इदंमनःप्रसरतितथास्यप्रसृतं मनः ॥ २२ ॥ भ्रमेस्वप्नेमनोराज्येमिथ्याज्ञानेकथाश्रुतौ ॥ यथामनःप्रसरतितथातत्प्रसृतंमनः ॥ २३ ॥ पतंतितद्शरीरंतदातिवाहिकमुच्यते ॥ आधिभौतिकधीर्भातिविस्मृत्यात्रैवकालतः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! देहरहित चित्त कार्य्यमें कैसे प्रवृत्त होताहै और केवल चित्त (मन) मय देहके प्रवृत्त होनेपरभी उसमें सूक्ष्मशरीरकी अपेक्षा क्या अधिक बोध होताहै ॥ २१ ॥ जैसे अन्तःपुरनिवासीका यह मन देहकी अपेक्षासे शून्य होके संकल्पके मार्गमें प्रवृत्त होताहै ऐसेही इस विपश्चित्का मन दिगन्तदर्शनमें प्रवृत्त हुआ ॥ २२ ॥ भ्रममें, स्वप्नमें, मनोराज्यमें, मिथ्या ज्ञान तथा कथाके श्रवणमें जैसे देहकेविना मन प्रवृत्त होताहै ऐसेही विपश्चित्का मन इस कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ ॥ २३ ॥ मनोमयशरीर तो अन्यत्र स्वप्नादिमें जाताहै और जिसमें स्वप्न, भ्रम, मनोराज्यादि आके गिरतेहैं वह आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर है और काल पाके सूक्ष्मदेहके विस्मरणसे इसमेंही तुमको आधिभौतिक स्थूलशरीरबुद्धि होती है ॥ २४ ॥

तेतदांतर्धिमायातेसर्परज्जुभ्रमोपमे ॥ आधिभौतिकदेहेस्मिञ्छिष्यतेत्वातिवाहिकः ॥ २५ ॥ आतिवाहि कएषोंगनिपुणंप्रविचार्यताम् ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणयावदत्रान्यदस्तिनो ॥ २६ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौ यन्मध्येसंविदोवपुः ॥ चिन्मात्रस्यास्यतद्रूपमनंतस्यैकरूपिणः ॥ २७ ॥ क्वद्वैतंक्वचवाद्वेषःक्वरागादि तुकथ्यताम् ॥ सर्वंशिवमनाद्यंतंपरोबोधइतिस्मृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—और रज्जुमें सर्पके भ्रमके सदृश इस आधिभौतिक शरीरके नष्ट होनेपर केवल आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर शेष रहताहै ॥ २५ ॥ हे रामजी इस सूक्ष्मशरीरको निपुणतासे विचारिये, क्योंकि इसमें चिन्मात्रसे पृथक् कुछभी नहीं है ॥ २६ ॥ और वृत्तिके एकदेश (शाखादि) से दूसरे (सूर्य्यचन्द्रादि) देशकी प्राप्तिमें जो मध्यमें निर्विषय चेतनका रूप है वही इस अनन्त शुद्ध चित्का स्वरूप है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जब सब कुछ आदिअन्तशून्य परम बोधरूप परमात्माही है तब कहो कहां द्वैत कहां द्वेष और कहां राग आदि ॥ २८ ॥

निर्मनोमननंशांतमासितंबोधउत्तमः ॥ आतिवाहिकदेहस्थोनतंबोधमुपागतः ॥ २९ ॥ विपश्चित्तद्वि बोधोसौददर्शविसरन्मनः ॥ आतिवाहिकबोधेनगर्भवासोपमंतमः ॥ ३० ॥ तमसोंतेविरिंचांडकवाट च्छेदभूतलम् ॥ वज्रसारंहेममयंकोटियोजनविस्तृतम् ॥ ३१ ॥ तदंतेप्रापसलिलंतस्मादष्टगुणंततः ॥ कपाटभूम्यैवसमंस्थितमर्णवपृष्ठवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनोवासनारहित जो शान्त स्थिति है वही उत्तम बोध है, और सूक्ष्मशरीरमात्रमें स्थित विपश्चित् उस बोधको नहीं प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ उस बोधसे शून्य केवल आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरमात्रके बोधसे चारोंओर भ्रमणशील अपने मनको देखा, और गर्भवासके समान अंधकारको देखा ॥ ३० ॥ और उस अंधकारके अन्तमें वज्रके समान दृढ, सुवर्णमय और कोटियोजन विस्तृत ब्रह्मांडकपाटके सदृश खंड अर्थात् ब्रह्मांडकपाट तथा भूतलका संपुट देखा ॥ ३१ ॥ उसके अन्तमें उससे दशगुण अधिक, कपाटभूमि और समुद्रपृष्ठके सदृश जल उस विपश्चित्ने पाया ॥ ३२ ॥

तमतीत्यततःप्रापतेजोर्कगणभीषणम् ॥ प्रलयाग्निघनज्वालापिंडकोटरभास्वरम् ॥ ३३ ॥ दाहशोका दिमुक्तेनवपुषामानसेनतत् ॥ तत्रगच्छन्सबुबुधेवहनंपूर्ववासितम् ॥ ३४ ॥ उह्यमानोविवेदासावा

त्मानंत्वातिवाहिकम् ॥ चित्तमात्रात्मनःस्वस्यकिमिवोह्यतइत्यपि ॥ ३५ ॥ इतिबोधेनधीरात्मातंतता रानिलार्णवम् ॥ प्रापतद्वितंव्योमतस्माद्दशगुणंस्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—उसको उल्लंघन करके सूर्य्यसमूहके सदृश भयंकर, प्रलयकालके अग्निकी सघन ज्वालापिंडके कोरके तुल्य प्रकाशमान तेजमें वह विपश्चित् पहुंचा ॥ ३३ ॥ दाहशोकादिरहित मानसशरीरसे तेजके आवरणमें चलतेहुये विपश्चित्ने उससे परे वायुके आवरणमें अपनेको चलते हुये जाना ॥ ३४ ॥ और पूर्व संस्कारसे प्राप्यमाण अपने आत्माको आतिवाहिकरूप जाना और यहभी जाना कि—इस चित्तमात्र स्वरूप अपना क्या उह्यमान होताहै ॥ ३५ ॥ इसप्रकारके बोधसे वह धीर विपश्चित् उस वायुरूपी समुद्रके पार हुआ, अनन्तर उससे दशगुण विशाल आकाशप्रदेशमें आया ॥३६॥

तदतिक्रम्यसप्रापब्रह्माकाशमनंतकम् ॥ यत्रसर्वंयतःसर्वंयन्नकिंचिच्चकिंचन ॥ ३७ ॥ मनसाप्रभ्रमंस्त त्रदूराद्दूरतरंययौ ॥ तेनदृष्टंचपृथ्व्यापस्तेजोवायुस्तथाजगत् ॥ ३८ ॥ पुनःसंसाररचनाःपुनःसर्गाः पुनर्दिशः ॥ पुनर्महीधराव्योमपुनर्देवाःपुनर्नराः ॥ ३९ ॥ पुनःपंचमहाभूतपर्यंतेब्रह्मनिर्घनम् ॥ पुनस्त त्रजगंत्युच्चैःपुनःसर्गाःपुनर्दिशः ॥ ४० ॥

अर्थ—और उस आकाशको उल्लंघन करके जिसमें सब है, जिससे सब कुछ उत्पन्न होताहै, यथार्थमें जिसका भौतिक कुछभी रूप नहीं है और जो वाणीका अविषय सच्चिन्मात्र है ऐसे अनन्त ब्रह्माकाशमें प्राप्तहुआ ॥ ३७ ॥ उस अनन्त ब्रह्माकाशमें भ्रमण करतेहुवा दूरसेभी अतिदूर गया और पूर्वके संस्कारसे पुनः पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा जगत्को उसने देखा ॥ ३८ ॥ और उसने संसारकी रचना, सृष्टि, दिशा, पर्वत, आकाश और देवता तथा मनुष्योंको पुनः देखा ॥ ३९ ॥ और पंचमहाभूतोंमें ब्रह्मको स्थित देखा, तथा पुनः बडे २ ब्रह्मांडोंको, सृष्टियोंको, जगत्को और पुनः दिशाओंको देखा ॥ ४० ॥

ब्रह्माकाशस्ततःसर्गाःपुनरन्येत्वनिष्ठिताः ॥ इत्यसौविहरन्दीर्घकालमद्यापिसंस्थितः ॥ ४१ ॥ स्व निश्चयाच्चिराभ्यस्तान्नासौविरतिमेतिहि ॥ अंतोनैवास्त्यविद्यायाःसाहिब्रह्मैवसत्यतां ॥ ४२ ॥ वस्तु तोनास्त्यविद्येहब्रह्मण्यविकलात्मनि ॥ इदंदृश्यमविद्येयमित्यात्मैषविकासितः ॥ ४३ ॥ यद्यथाजाग्र तिस्वप्नेदृष्टंद्रक्ष्यसिपश्यसि ॥ तत्तथाब्रह्मसच्छांतमासीदस्तिभविष्यति ॥ ४४ ॥ घनतमःप्रविलोकन चक्रकंक्रमजगत्प्रतिभानमिदंमहत् ॥ परतयाप्रतिभात्मतयानयानचसदंगनवाप्यसदाकृति ॥ ४५ ॥ तेष्वेवतेष्विवचतेषुतनूतरेषुब्रह्मोदरेषुचिरदूरतरंजगत्सु ॥ सोद्याप्यसंविदिततत्वतयातयोच्चैःखंडेषुरं कुरिवराघवबंभ्रमीति ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० अ० वि० ब्रह्मगीतासु ब्रह्माकाशविपश्चिज्जगच्चंद्रदर्शनंनामाष्टाविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२८ ॥

अर्थ—और पूर्ववत् सब देखके उसने पुनः ब्रह्माकाश देखा, और पुनः अनेक अव्यवस्थित सृष्टि देखी, इसप्रकार यह दीर्घकालपर्य्यन्त विहार करता हुवा अबभी स्थित है ॥ ४१ ॥ दीर्घकालके अभ्याससे जगत्में निजसत्यता निश्चयसे यह वैराग्यको नहीं प्राप्त होता क्योंकि—इस अविद्याका तो कहीं अन्त नहीं है और इसमें जो सत्यका भान है विचारसे ब्रह्मरूपही है ॥ ४२ ॥ क्योंकि—कल्पनारहित ब्रह्ममें अविद्या नहीं है और यह दृश्य अविद्या है इसरूपसेभी आत्माही स्फुरित है ॥ ४३ ॥ और जाग्रत् वा स्वप्नमें जैसे जिसप्रकारकी वासनाकी उत्पत्तिसे जिस ब्रह्मको (पदार्थरूपमें परिणत ब्रह्मको) पूर्वमें जैसे देखा, वर्तमानमें देखतेहो, औरभविष्यंत्में देखोगे, वह ब्रह्म वैसाही है और होगा ॥ ४४ ॥ हे प्रियरामजी ! इस भूत वर्तमान तथा भविष्यत् क्रमयुक्त जगत्का जो भान है वह घनीभूत अविद्यामात्रही है और दोनों नेत्रोंके मूंदनेपर अन्धकार चक्रके सदृश महान् भासताहै और वह पर चिन्मात्ररूप है, उस दृष्टिसे सत् नहीं है और अज्ञानियोंकी दृष्टिसे असदाकारभी नहीं है ॥ ४५ ॥ हे राघव ! वह विपश्चित् ब्रह्मतत्वके न जाननेसे, पूर्वदृष्ट संसारोंमें उनके सदृश संसारोंमें तथा वासनामात्र शरीर होनेसे ब्रह्मा तथा विराड् पुरुषोंके उदरमें प्रसिद्ध अनेक सूक्ष्म ब्रह्मांडोंमें और महा २ बनके खंडोंमें अपनी वासनाकी अधिकतासे रंकुनामक मृगविशेषके तुल्य पुनः २ भ्रमण करताहै ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० भाषानुवादे ब्रह्मगीतासुब्रह्माकाशविपश्चिच्चन्द्रदर्शनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२९ ॥

शेष दो विपश्चित्का वृत्तान्त और उनमेंसे एकका मृगशरीरका धारण तथा अन्तमें रामका समागम १२९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ तयोर्द्वयोर्मुनिश्रेष्ठसंपन्नंकिमतःपरम् ॥ पश्चाद्विपश्चितोस्तस्यरुद्धयोर्वैविपश्चितोः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तयोरेकश्चिराभ्यस्तवासनाविवशीकृतः ॥ भ्रमन्द्वीपेषुदेहौघैस्तामेवपदवींगतः ॥ २ ॥ तथैवावरणांस्त्यक्त्वापरमाकाशकोटरे ॥ पश्यन्संसारलक्षाणितथैवाद्यापिसंस्थितः ॥ ३ ॥ तयोर्द्वितीयःस्वभ्यस्तादादावासंगतेर्वशात् ॥ त्यक्तवान्प्रभ्रमंदेहैरद्यशैलेमृगःस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! एक विपश्चित्तो विष्णुकी कृपासे ज्ञान पाकर मुक्त होगया और दूसरा अबतक अविद्यामें भ्रमण करताहै और अवशेष पूर्वका विपश्चित् चन्द्रलोकमें और दक्षिणका शाल्मलीद्वीपके राज्यके भोगमें जो रुद्ध है इन दोनोंका इससे परे क्या वृत्तान्त हुआ सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! उनमेंसे दक्षिणका विपश्चित् चिरकालके अभ्याससे मायाशबलित ब्रह्ममें अनेकादि ब्रह्मांडोंमें भ्रमणरूप उत्तर विपश्चित्की पदवीकोही प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ उसीप्रकार ब्रह्माकाशके कोटरमें जलादि आवरणोंको लंघनकरके लक्षावधि संसारोंको देखताहुआ अबभी स्थित है ॥ ३ ॥ और उनमेंसे दूसरा पूर्वका विपश्चित् चन्द्रमाके समीपस्थ होनेसे चन्द्रमंडलगतमृगमें अधिक स्नेहाभ्यासमे प्रतिमास चन्द्रमाके साथ उत्पन्न शरीरोंसे भ्रमण करताथा और उन शरीरोंको त्यागकर मृगकाही रूप धारणकरके पर्वतपर स्थित है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ एकैववासनाब्रह्मन्याचतुर्णांसदोदिता ॥ नानातांसाकथंप्राप्ताहीनोत्तमफलप्रदाम् ॥ ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वभ्यस्तावासनाजंतोर्देशकालक्रियावशात् ॥ तनुदार्ढ्यान्यतामेतिघनदार्ढ्यैतिनान्यताम् ॥ ६ ॥ देशकालक्रियाद्येतदेकतावासनैकता ॥ तयोर्यदेवबलवत्तदेवजयतिक्षणात् ॥ ७ ॥ एवंविभागेनैतेत्रचत्वारःसमवस्थिताः ॥ कृष्यंतेद्वावविद्यार्थमन्योमुक्तोमृगोपरः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे ब्रह्मन् ! चारोंविपश्चित्को एकही वासना सदा उदित थी वह उत्तम मध्यम नीचफलदायिनी अनेकताको कैसे प्राप्त हुई सो कहिये ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जीवकी निजअभ्यस्त वासना यदि अपरिपक्व होती है तब तो देश कालक्रियाके वशसे अन्यभावको प्राप्तहोती है और परिपक्व वासना अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होती ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जब भोग्यफलके अनुकूल देशकालक्रियाओंके प्रयत्नोंकी सामग्रियोंकी एकता होती है तब तो भिन्न वासनाओंकीभी एकता होजातीहै और जब सामग्रियोंका भेद होताहै तब वासनायेंभी भिन्न होजातीहैं और जब समान देशकालक्रियाके अनुकूल फल देनेवाली एक वासना है और उससे भिन्न देश कालक्रियाके अनुकूल दूसरी वासना दोनों एककालमें उत्पन्नहुई उससमय उनमेंसे जो अधिक प्रबल होती है वही क्षणभरमेंही विजयिनी होती है ॥ ७ ॥ इसप्रकार चारों विपश्चित्ने एककालमें विरुद्ध देशकालादि भोग्यवासनाके विभागसे प्रेरित आश्रयके विभागसे प्रस्थान किया उनमें दो अविद्याजनित संसारोंके भ्रमणमें, एक मृगशरीरमें इसप्रकार तीनो निज २ देशकालक्रियाओंके वासनाओंसे आकृष्ट हैं और एक मुक्त होगया ॥ ८ ॥

नाद्यापितैरविद्यायालब्धोंतोभ्रांतिबुद्धिभिः ॥ अनंतेयमविद्येयमज्ञानपरिबृंहिता ॥ ९ ॥ क्षिप्रेणशांताभवतिविज्ञानालोकआगते ॥ असूलमेवगलतितिमिरश्रीरिवोदये ॥ १० ॥ कालेनान्यजगज्जातंशृणुवृत्तंविपश्चितः ॥ तस्मिन्दूरतरेदेशेकस्मिंश्चित्संसृतिभ्रमे ॥ ११ ॥ क्वचिद्ब्रह्ममहाव्योम्निकस्मिंश्चिद्दृश्यमंडले ॥ तस्यदृश्यात्मनाप्राप्तेवस्तुतोब्रह्मरूपिणि ॥ १२ ॥

अर्थ—और अबतक इन्होंने अविद्याका अन्त नहीं पाया, क्योंकि अज्ञान परि वर्द्धित यह अविद्या अनन्त है ॥ ९ ॥ और विज्ञानरूपी प्रकाश आनेपर शीघ्रही ऐसे नष्ट होजाती है जैसे सूर्य्यके उदयसे पूर्णरूप हो अन्धकारकी शोभा ॥ १० ॥ अब तुम स्वादूदक समुद्र कपरभागमें अति दूरस्थ निजवासनासे कल्पित सुवर्ण भूमिमय किसी संसारके भूममे अन्य ब्रह्मांका पश्चिमके विपश्चित्का वृत्तान्त सुनो ॥ ११ ॥ महा ब्रह्माकाशके किसी एक देशमें अध्यस्त कोई दृश्यमंडल यथार्थमें वह ब्रह्मरूपही जब उस विपश्चित्की अभ्यस्त वासना दृश्यरूपताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

सएकःशुभसंगत्याविदुषांमध्यमागतः ॥ दृश्यंयथावद्विज्ञायब्रह्मतामलमागतः ॥ १३ ॥ तत्रैवाशुपरिज्ञानात्साऽविद्यासचदेहकः ॥ मृगतृष्णांब्विवाशांतिमागतौरागतंत्रितौ ॥ १४ ॥ इतितेसर्वमाख्यातं

विपश्चिच्चेष्टितंस्फुटम् ॥ अनंतैवमविद्येयंब्रह्मवत्तन्मयीयतः ॥ १५ ॥ येनयत्रैवववर्षाणांलक्षलक्षाणिग म्यते ॥ तत्रतत्रस्वभावेनचिताकिमपिलक्ष्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—तब वहांपर पश्चिमका विपश्चित् शम, दम, तथा भगवद्भक्ति आदि शुभगुणसमूहोंकी संगतिसे जीवन्मुक्त महात्माओंके मध्यमें प्राप्त हुआ और उनसे दृश्यको पूर्णरूपसे जानकर निर्मल ब्रह्मरूपताको प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ रागके आधीन वह संसार विष जीर्ण अविद्या तथा उसका देह दोनों मृगतृष्णाके जलके तुल्य शान्त होगये ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यह मैने विपश्चित्का चारित्र तुमसे स्पष्टरूपसे कहा, इस कार्य्यरूप अविद्याका उन दोनोंने अबतकभी अन्त नहीं देखा क्योंकि–कारणब्रह्मके समान यहभी अनन्त है ॥ १५ ॥ जहांपर जिसने लक्षोंवर्षोंकी गणना की है वहां २ चित्स्वभावही किंचिन्मात्र लक्षित होताहै ॥ १६ ॥

तदेवाश्वपरिज्ञातंमिथ्याविद्येतिकथ्यते ॥ परिज्ञातंतुतच्छांतंतथाब्रह्मेतिकथ्यते ॥ १७ ॥ भेदोनभेदस्त त्रायंभेदोयंयन्मयःकिल ॥ तद्ब्रह्मैवचिदाभासंचिद्रूपैवहिभिन्नता ॥ १८ ॥ ब्रह्मांडमंडपस्यास्यभ्रमतेत्य विपश्चिता ॥ लब्धोयुगशतैरंतोनाविद्यायाविपश्चिता ॥१९॥ श्रीरामउवाच ॥ सब्रह्मांडकपाटःकिंनसं प्राप्तोविपश्चिता ॥ त्वयैतत्कथितंब्रह्मन्नकथंवदतांवर ॥ २० ॥

अर्थ—अपरिज्ञात होनेसे वही ब्रह्म मिथ्या अविद्या जगत् इत्यादि शब्दोंसे कहाजाताहै और परिज्ञात होनेसे शान्त ब्रह्म इत्यादि शब्दोंसे कहाजाता ॥ १७ ॥ और अविद्या तथा ब्रह्मका जो भेद भासताहै यह भेद नहीं है, क्योंकि ब्रह्म अविद्यामय है और अविद्याभी ब्रह्मरूपही है, और चिद्भास्य होनेसे भिन्नताभी चिद्रूप ब्रह्मही है ॥ १८ ॥ ज्ञानशून्य विपश्चित्ने अनेकयुगोंतक भ्रमण करनेसे अद्यावधिभी इस ब्रह्मांडमंडपकी अविद्याका अन्त नहीं पाया ॥ १९ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! ब्रह्मांडकपाटकी संधिके आकाशसे उत्तर विपश्चित् कैसे निकला क्योंकि ब्रह्मांड-कपाटके भंगका प्रसंग आपने नहीं कहा ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जातेनैवविरिंचेनपुराब्रह्मांडमंडलम् ॥ द्वाभ्यामधस्तादूर्ध्वात्स्वभुजाभ्यांप्रविदारि तम् ॥ २१ ॥ भागस्तेनोर्ध्वतस्तस्मादतिदूरतरंगतः ॥ अतोभागोगतोधस्तादतिदूरतरांतरम् ॥ २२ ॥ ताविवाश्रित्यतिष्ठंतिजलाद्यावरणास्ततः ॥ तएवचतदाधारालंबंतेसंस्थितास्तयोः ॥ २३ ॥ एतयोर्म ध्यमाकाशंविदुरंडकपाटयोः ॥ अपारावारमानीलमिदमालक्ष्यतेद्वयत् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जिससमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुये उसीसमय उनने अपनी दोनों भुजाओं-सें ब्रह्मांडके खप्परको ऊपर नीचेसे दो भागोमें विदीर्ण कियाथा ॥ २१ ॥ उसीसे ऊपरका भाग ऊपरकी ओर अतिदूर गयाथा और नीचेका नीचेकी ओर अतिदूरतर गयाथा ॥ २२ ॥ और उन्ही दोनोंका आश्रयलेके जलआदि आवरण स्थित हैं और वेही उन्होंके आधारभूत दोनों खप्परकेद्वारा आकृष्ट लम्बायमान स्थित हैं ॥ २३ ॥ यह जो पारावाररहित नीलवर्ण लक्षित होताहै उसको दोनो ब्रह्मांडकपाटके मध्यका आकाश कहतेहैं ॥ २४ ॥

जलद्यावरणास्तत्रनलग्नंतिनसंतिच ॥ तद्धिनिर्मलमाशून्यमालानंकल्पकृत्तिभिः ॥ २५ ॥ तेनमार्गेण यातोसौविपश्चिद्दक्षचक्रवत् ॥ अविद्यायाःपरीक्षार्थमामोक्षमतिदीक्षितः ॥ २६ ॥ ब्रह्मैवानंतरूपेयम विद्यातन्मयीयतः ॥ अतोस्तिसाऽपरिज्ञातापरिज्ञातानविद्यते ॥ २७ ॥ विपश्चितइतिप्राप्यदूराद्दूरंपरे बरे ॥ जगद्रूपेष्वविद्यायाभ्रमंत्यन्येषुकेषुचित् ॥ २८ ॥

अर्थ—और जलादिके आवरण उसमें संलग्न नहीं हैं और न यथार्थमें हैं, वह तो प्रलयकालकी कल्पनापर्य्यन्त निर्मल, सर्वथा शून्य और भूतोंका आधार है ॥ २५ ॥ नक्षत्रचक्रके समान और मोक्षपर्य्यन्त अविद्याकी परीक्षामें दीक्षितके तुल्य यह विपश्चित् उसी आकाशमार्गसे गया ॥ २६ ॥ ब्रह्ममयी होनेसे इस अविद्याका पार उसने नहीं पाया, इसलिये ब्रह्मके अपरिज्ञानसे यह अविद्या है और परिज्ञात होनेपर नहीं रहती इसकारण जन इसका पार पाते हैं ॥ २७ ॥ इसीसे विपश्चित् ब्रह्माकाशमें दूरसेभी अतिदूर जाकर अविद्याके किसी जगत्‌रूपमें भ्रमण किया करतेहैं ॥ २८ ॥

कश्चिन्मुक्तोमृगःकश्चित्क्कौचिदद्यापितौकाचित् ॥ भ्रमतःप्राक्तनानल्पसंस्कारविवशीकृतौ ॥ २९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कीदृशेषुकदूरेषुतेजगत्सुविपश्चितः ॥ भ्रमंतीतिमुनेब्रूहिमयिचेज्जायतेकृपा ॥ ३० ॥ कियत्यध्वनिसंसारास्तेजातायेषुतेमुने ॥ महदेतदिहाश्चर्यमस्माकंकथितंत्वया ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ स्थितौविपश्चितौरामताबुभौजगतोर्ययोः ॥ तेस्माकंगोचरंयातेजगतीयत्नतोपिनो ॥ ३२ ॥

अर्थ—उनमेंसे कोई तो मुक्त होगया, कोई मृगरूप है और दो अविद्याके अन्तदर्शनरूप महासंस्कारसे वशीभूत अबभी भ्रमण किया करतेहैं ॥ २९ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने! यदि मुझपर कृपा है तो यह कहिये कि–किसप्रकार और कितने दूरस्थ संसारोंमें वे विपश्चित् भ्रमण करतेहैं ॥ ३० ॥ और हे मुने जहांपर वे विपश्चित् गये वे ब्रह्मांड कितने दिनके मार्ग हैं, यह तो आपने मुझे बडा आश्चर्य्यजनक वृत्तान्त कहा ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जिन ब्रह्मांडोंमें अविद्यापारदर्शी दोनों विपश्चित् अब स्थितहैं वे यत्नसे विचारनेपरभी अभी हमारी बुद्धिमें नहीं प्राप्तहुये ॥ ३२ ॥

तृतीयोमृगतांयातोविपश्चिद्यत्रतिष्ठति ॥ सकदाचित्ससंसारोगोचरेनोवतिष्ठते ॥ ३३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विपश्चिन्मृगतांयातोयस्मिन्जगतिसंस्थितः ॥ तज्जगत्कमहाबुद्धेयथावत्कथयेतिमे ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दूराद्दूरतरंगत्वापरब्रह्ममहांबरे ॥ मृगोविपश्चिज्जगतिसयस्मिंस्तजगच्छृणु॥३५॥ तदिदंविद्धित्रिजगदिहासौसंस्थितोमृगः ॥ इदंतत्परमाकाशंदूराद्दूरेजगत्स्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और तीसरा विपश्चित् मृगरूप धारण करके जिस संसारमें है वह कदाचित् हमारी बुद्धिका विषय है ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे महाबुद्धे मुने! मृगरूपताको प्राप्त विपश्चित् जिस संसारमें है वह कहां है सो यथावत् कहिये ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! वहांपर ब्रह्माकाशमें दूरसेभी अतिदूर जाके मृगरूपधारी विपश्चित् जिस जगत्में स्थित है वह सुनिये ॥ ३५ ॥ इसीको तुम वह त्रिलोकी समझो और यहांही वह मृगरूप धारण करके स्थितहै, और यही वह परब्रह्माकाश है जो विपश्चित्के जन्मदेशसे दूरसेभी अतिदूर व्यवस्थित है ॥ ३६ ॥

श्रीरामउवाच ॥ विपश्चिदस्मादेवासौजगतस्तांगतिंगतः ॥ इहैवाद्यमृगोजातःकथमेतत्समंजसम् ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अवयवानवयवीनित्यंवेत्तियथाखिलान् ॥ तथासर्वानहंवेद्मिब्रह्मण्यात्मन्यवस्थितान् ॥ ३८ ॥ अनिष्ठितान्ससंहारान्नानाकारानुतान्बहून् ॥ मिथःप्रोतान्मिथोदृश्यान्स्वरूपानिवपार्थिवान् ॥ ३९ ॥ तत्रकस्मिंश्चिदन्यस्मिन्मार्गेस्मिन्निवतिष्ठति ॥ यद्वृत्तंकथितंरामतदेतद्भवतेमया ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे मुने! आपने यह कहाहै कि–दक्षिणका विपश्चित् यहांसे लक्षों ब्रह्मांडोंमें दिगन्त दर्शनकी अभिलाषासे भ्रमणरूप उत्तर विपश्चित्की पदवीको प्राप्त हुआ और यहांही वह मृगरूप धारण करके उत्पन्न हुआ यह कैसे संगत होसकताहै क्योंकि–वहांसे यहां आये बिना जन्म कैसे होसकताहै ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! दूरसेभी दूर इत्यादि कथन परिच्छिन्न आत्मदर्शीयोंके लिये है और मैं तो ब्रह्मरूप निज आत्मामें सम्पूर्ण ब्रह्मांडोंको ऐसे समीप जानताहुं जैसे अपने हस्तपादादि अवयवोंको अवयवी ॥ ३८ ॥ भावी तथा नष्ट और नानाप्रकारके वर्तमान परस्पर अदृश्य पृथिवीके विकारमय अनेक ब्रह्मांडोंको मैं देखताहूं ॥ ३९ ॥ उन ब्रह्मांडोंमेंसे किसी अन्य ब्रह्मांडमें जो कि कितने अंशमें इसी तुमारे ब्रह्मांडके समान हैं इसलिये इसीमें विपश्चित् है ऐसा तुमसे कहा ॥ ४० ॥

विपश्चितोन्यसंसारेदेहैर्भ्रांतादिगंतरान् ॥ताननंतांबरेव्योम्निताक्त्कालमखिन्नधीः ॥ ४१ ॥ इहैवहरिणोजातःकस्मिंश्चिद्गिरिकंदरे ॥ काकतालीययोगेनभ्रांत्वाभूरिजगद्भ्रमम् ॥ ४२ ॥ सजगंतिभ्रमन्दूरेयस्मिन्सर्गेमृगःस्थितः ॥ ससर्गोयमितिव्योम्निकाकतालीयवत्स्थितम् ॥ ४३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तद्वदब्रह्मन्कस्यांककुभिमंडले ॥ कस्मिन्कस्मिंश्चशैलेसौवनेकस्मिन्मृगःस्थितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अनन्त दिगन्तोंमें निज २ वासनाकल्पित ब्रह्मांडोंमें उन्हींके अनुकूल शरीरोंसे सब विपश्चितों-ने भ्रमण किया, और उनमेंसे पूर्व विपश्चित् अनेक संसारमें अखिन्नबुद्धिसे भ्रमणकरके काकतालीयन्यायसे इसी ब्रह्मांडके किसी पर्वतकी कन्दरामें मृगरूपसे उत्पन्न हुआहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ दूर २ अनेक संसारोंमें भ्रमण करतेहुये अब जिस संसारमें है वह संसार दैवसंयोगसे ब्रह्माकाशमें यही है ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे ब्रह्मन्! यदि ऐसा है तो किसदिशामें और किस पर्वतमें वह विपश्चित् मृगरूपसे स्थित है ॥ ४४ ॥

किंकरोतिकथंदूर्वांश्चर्वयत्युर्वरास्पदः ॥ जातितांजरठग्लानीकदोदारांस्मरिष्यति ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ योसौत्रिगर्तनाथेनदत्तःक्रीडामृगस्तव ॥ स्थितःक्रीडामृगागारेविद्धितंत्वंविपश्चितम् ॥४६॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ श्रुत्वेतिराघवस्तस्यांसभायांविस्मयान्वितः ॥ बालकान्मृगमानेतुंप्रेषयामासभूरिशः ॥ ॥ ४७ ॥ अथानीतोमृगोमुग्धःसभांस्फारांविवेशसः ॥ सर्वैःसभ्यगणैर्दृष्टःपुष्टिमांस्तुष्टिमानपि ॥ ४८ ॥

अर्थ—और वह क्या करताहै तथा सर्वसस्यसंपन्न भूमिमें दुर्वाओंको कैसे चरताहै और वृद्धके तुल्य शिथिल ज्ञानयुक्त अपनी पूर्वकालकी जातिको कब स्मरण करैगा ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जो त्रिगर्तदेशके राजाने आपको उपहार (भेट) में क्रीडामृग दियाथा और आपके क्रीडामृगस्थानमें बंधा है उसीको तुम विपश्चित् जानों ॥ ४६ ॥ श्रीवाल्मीकिमुनिजी बोले कि–हे भारद्वाज! इसबातको सुनके सभामें विस्मययुक्त श्रीरामचन्द्रजीने अनेक बालकोंको उस मृगको सभामें लानेकी आज्ञा दी ॥ ४७ ॥ इसके पश्चात् सभामें प्राप्त वह मुग्ध मृग विशाल-सभामें प्रविष्ट हुआ और सभ्योंने उसको हृष्टपुष्ट देखा ॥ ४८ ॥

ताराबिंदुयुतंदेहबिंदुभिःखंविडंबयन् ॥ दृष्टिपातोत्पलासारैः सुंदरीःपरितर्जयन् ॥ ४९ ॥ आदृताना दृतसभेनीलामरकतत्विषः ॥ धावंस्तृणेच्छयालोलंमुग्धैश्चकितवीक्षितैः ॥ ५० ॥ उत्कर्णोन्नयनोद्ग्रीवं क्षणंभंगावलस्थितैः ॥ उत्कर्णनयनोद्ग्रीवैःसभ्यानाकुलयन्जवैः ॥५१॥ मृगमालोक्यतंलोकाःसराज मुनिमंत्रिणः ॥ अनंताबतमायेतिचिरमासन्स्मयाकुलाः ॥ ५२ ॥ आश्चर्यचर्वणसुविस्मितसर्वलो कासर्वावलोकनघनोत्पलवर्षकृष्णम् ॥ रत्नांशुजालकचितंमृगमीक्षमाणासासीत्सभाकमलिनीलिपि निर्मितेव ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० विपश्चिन्मृगलाभोनामैकोनत्रिंशाधिकशततमःसर्गः ॥ १२९ ॥

अर्थ—अपने देहके श्वेतबिन्दुओंसे तारागणयुक्त आकाशका अनुकरण करतेहुये और कमलके सदृश दीर्घ कटाक्षपातोंसे सुन्दरी ललनाओंको तर्जना करतेहुये उसने सभामें प्रवेश किया ॥ ४९ ॥ और सभासे आदृतभी स्वयं सभाको अनादर करनेवाले चकित तथा मुग्धदृष्टिपातोंसे नीलमकरतमणिके सदृश हरितवर्ण सभाके स्तंभ (खंभे) आदिको तृणकी भ्रांतिसे ग्रहणके इच्छासे दौडतेहुये उसने सभामें प्रवेश किया ॥ ५० ॥ तथा कर्ण, नेत्र और ग्रीवाको ऊपर उठाके चंचल तथा अनिवार्य्य वेगपूर्वक गमनोंसे आक्रमणके भयसे सभ्योंको व्याकुल करतेहुये उसने प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ सब ऋषि, मुनि, राजा तथा मंत्रीआदि जन उस मृगको देखकर चिरकालतक विस्मित होके यह कहनेलगे कि–अहो! परमेश्वरकी माया कैसी अनंत तथा आश्चर्य्यजनक है ॥ ५२ ॥ सब सभासदोंके अवलोकनरूप नीलकमलकी दृष्टियोंसे कृष्णवर्ण, तथा अनेकप्रकारके रत्नोंके किरणसमूहोंसे अलंकृत उस मृगको देखती हुई तथा आश्चर्य्यसे अद्भुत रसके पूर्ण अनुभवसे सब विचारोंको विस्मृत होनेसे जडीभूत सब मनुष्य सहित वह सभा चित्रलिखित कमलबनकी स्थलीके सदृश शोभित हुई ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विप० विपश्चिन्मृगलाभो नामैकोनत्रिंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२९ ॥

त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३० ॥

श्रीवसिष्ठजीमहाराजके ध्यानसे उत्पन्न अग्निमें मृगका प्रवेश और विपश्चित्की शरीर पानेसे पूर्वकालकी स्मृति इस १३० के सर्गमें वर्णन की है ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ अथरामउवाचास्यमुनेकेनविपश्चितः ॥ स्यादुपायेनदुःखांतःप्राक्तनात्मोद यादिति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येनैवाभ्युदितायस्यतस्यतेनविनागतिः ॥ नशोभतेनसुखदानहि तायनसत्फला ॥ २ ॥ विपश्चितोग्निःशरणंतत्प्रवेशादयंमृगः ॥ पूर्वरूपमवाप्नोतिनिर्मलंकनकंयथा ॥ ३ ॥ करोम्येतदहंसर्वंदृश्यतांदर्शयामिवः ॥ अग्निप्रवेशंहरिणःकरोत्येषोधुनापुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे इस मृगरूपधारी विपश्चित्का पुनः विपश्चित् शरीर पाकर आत्मज्ञानद्वारा दुःखका अन्त किस उपायसे होसकताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जिसके द्वारा जिसको मनोरथकी सिद्धि प्राप्त होती है उसके विना भविष्यत्में उसकी गति (अभिलषित सिद्धि) नहीं होती, होभी जाय तो शोभा नहीं देती, शोभाभी दे तो परिणाममें सुखदायक नहीं होती और कदाचित् सुखदायकभी हुई तो परलोकमें हितकारक कदापि नहीं होती ॥ २ ॥ इस विपश्चित्का अग्निभगवान् शरण है उसमें प्रवेश करनेसे यह अपना निर्मल पूर्वरूप इसप्रकार पासकता है जैसे सुवर्ण ॥ ३ ॥ और यह सब मैं अब करताहूं, यह विपश्चित् तुम लोगोंके संमुख अग्निमें प्रवेश करै मैं तुमको यह कौतुक देखाताहूं देखो ॥ ४ ॥

वाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वासमुनिस्तत्रवसिष्ठःश्रेष्ठचेष्टितः ॥ उपस्पृश्ययथान्यायंस्वकमंडलुवारिणा ॥ ५ ॥ दध्यावनिंधनंवह्निंज्वालापुंजमयात्मकम् ॥ तद्ध्यानेनसभामध्याज्ज्वालाजालंसमुद्ययौ ॥ ६ ॥ अंगाररहिताकारमिंधनेनविवर्जितम् ॥ स्वच्छंधमधमायंतमधूममपकज्जलम् ॥ ७ ॥ मुग्धमुग्धकचत्कांतिहेममंदिरसुंदरम् ॥ उत्फुल्लकिंशुकाकारंसंध्यांबुदवदुत्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–हे भरद्वाज ! श्रेष्ठचेष्टायुक्त वसिष्ठमुनिने इतना कहके विधिपूर्वक अङ्गन्यास करके अपने कमण्डलके जलसे आचमन करके ॥ ५ ॥ इन्धनरहित ज्वालापुंजमय अग्निभगवान्‌का ध्यान किया और उनके ध्यानमात्रसे ज्वालाका समूह सभाके मध्यमें प्रकट हुआ ॥ ६ ॥ अंगाररहित, आकारयुक्त इन्धनरहित, निर्मल, धूम तथा कज्जलशून्य धक् २ शब्द करते हुये अग्निभगवान् प्रकट हुये ॥ ७ ॥ अतिस्निग्ध प्रकाशयुक्त कान्तिसहित सुवर्णके मंदिरके सदृश रमणीय तथा विकसित किंशुकाकार संध्याकालके मेघवत् आविर्भूत ॥ ८ ॥

दूरापस्तसभ्यंतज्ज्वालाजालंविलोकयन् ॥ मृगःप्राग्भक्तिभावेनप्रोल्लसविलोकितैः ॥ ९ ॥ तंसमालोकयन्वह्निंविविक्षुःक्षीणदुष्कृतः ॥ पश्चादुपससाराशुदूरंसिंहइवोत्पतन् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरेध्यानेविचार्यमुनिपुंगवः ॥ मृगंविलोकितैःक्षीणपापंकुर्वन्नुवाचह ॥ ११ ॥ संस्मृत्यप्राक्तनींभक्तिंभगवन्हव्यवाहन ॥ कुरुकारुण्यतःकांतंमृगमेनंविपश्चितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—निजतेजसे सभासदोंको दूरकरनेवाला, ज्वालाके समूहसे भूषित उस अग्निभगवान्‌को देखतेहुये वह मृग पूर्वजन्मके भक्तिभावसे अति प्रसन्न हुआ ॥ ९ ॥ और क्षीणपाप मृगरूपधारी विपश्चित् प्रवेश करनेकी इच्छासे उस अग्निको देखताहुवा सिंहके सदृश उछलता हुआ शीघ्र पीछेकी ओर हटा ॥ १० ॥ और इसी अवसरमें मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ध्यानसे विचारकरके निजदृष्टिपातोंसे मृगको पापरहित करतेहुये अग्निभगवान्‌से बोले ॥ ११ ॥ हे हव्यवाहन ! अग्निभगवन् अपनी पूर्वकालकी भक्तिको स्मरणकरके और इसके ऊपर कृपाकरके इस मृगको विपश्चित् कीजिये ॥ १२ ॥

वदत्येवंमुनौदूराद्धावित्वानृपसंसदि ॥ मृगोग्निवेगनिर्मुक्तःशरोलक्ष्यमिवाविशत् ॥ १३ ॥ ज्वालाजालंप्रविष्टोसावादर्शइवबिंबितः ॥ संध्याभ्रइवविश्रांतोदृष्टस्पष्टशरीरकः ॥ १४ ॥ सपश्यत्स्वेवसभ्येषुमृगोथनरतामगात् ॥ ज्वालोदरेनभस्यभ्रलवोरूपांतरंयथा ॥ १५ ॥ अदृश्यताथज्वालायामंतःकनककांतिमान् ॥ पुरुषःपावनाकारःकांतावयवसुंदरः ॥ १६ ॥

अर्थ—इतना मुनिके कहतेही दूरसेही वह मृग उस राजसभामें दौडकर अग्निमें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे वेगसे छूटाहुआ बाण लक्ष्यमें ॥ १३ ॥ उस ज्वालासमूहमें प्रविष्ट यह मृग दर्पणमें प्रतिबिंबके तुल्य, तथा संध्याकालके मेघके समान विश्रान्त स्पष्टशरीरयुक्त सब सभासदोंके दृष्टिगोचर हुआ ॥ १४ ॥ ज्वालाके उदरमें सब सभासदोंके देखतेही देखते वह मनुष्यरूपताको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे आकाशमें मृगरूप मेघखंड रूपान्तरको ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस अग्निकी ज्वालामें कनकके सदृश शोभायुक्त, अतिरमणीय अङ्गोंसे सुन्दर तथा पवित्राकार पुरुष देखपडा ॥ १६ ॥

अर्कबिंबइवादित्यश्चंद्रबिंबइवोडुपः ॥ महांभसीववरुणःसंध्याभ्रइववाशशी ॥ १७ ॥ चक्षुःकनीनिकाकोशेमुकुरेसलिलेमणौ ॥ प्रतिबिंबइवार्काभोभक्तिनाधारपावकः ॥ १८ ॥ अनंतरंसभामध्याद्वातैर्दीपइवाहतः ॥ ज्वालाजालंययौकापिसंध्यांबुदइवांबरात् ॥ १९ ॥ कुटीकुड्येषुभग्नेषुप्रतिबिंबइवामरः ॥ अतिघ्नत्पुरुषस्तत्रपटान्नटइवोद्गतः ॥ २० ॥

अर्थ—सूर्य्यमंडलमें सूर्य्य, चन्द्रलोकमें चन्द्रमा, समुद्रमें वरुण, तथा संध्याकालके मेघके सदृश वह पुरुष शोभित हुआ ॥ १७ ॥ नेत्रके तारेमें, दर्पणमें, जलमें, अथवा मणिमें सूर्य्यके प्रतिबिंबके सदृश अग्निरूप आधारमें वह पुरुष ऐसे विराजमान था मानो भक्तिहीन पुरुषका रूप धारणकियाहै ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् वह ज्वालाका समूह सभाके मध्यसे न जानै कहां ऐसे लुप्त होगया जैसे पवनसे ताडित संध्याकालका मेघ आकाशसे ॥ १९ ॥ अनंतर देवालयकी भित्तिके भग्न होनेसे विष्णुआदिकी प्रतिमा वा जवनिका (परदे) मेंसे नटके तुल्य वह पुरुष प्रकट हुआ ॥ २० ॥

अक्षमालाधरःशांतोहेमयज्ञोपवीतवान् ॥ अग्निशौचांबरच्छत्रःसद्यश्चंद्रइवोदितः ॥ २१ ॥ अहाभाइतिसभ्योक्त्यातस्यवेषस्यभासनात् ॥ भास्वानिवविशालाभोभासइत्येषशब्दितः ॥ २२ ॥ असौमूर्तइवाभासोभासनाम्नाभविष्यति ॥ सभास्थैःकैश्चिदित्युक्तंतेनभासःसउच्यते ॥ २३ ॥ अथोपविश्यतत्रैवसभासोध्यानसंस्थितः ॥ आत्मोदंतमशेषेणसस्मारप्राक्तनंतनौ ॥ २४ ॥

अर्थ—रुद्राक्षमालाधारी, शांत, सुवर्णवत् यज्ञोपवीतयुक्त, अग्निदाहसे निर्मल वस्त्रोंसे आच्छादित तात्कालिक चन्द्रमाके सदृश उदित वह पुरुष प्रकट हुआ ॥ २१ ॥ उसके वेषके प्रकाशसे सभासदोंने कहा कि अहो! यह दीप्ति! और सूर्य्यके सदृश विशाल (महा) प्रकाशयुक्त भास (प्रकाशमय) ऐसा उसको सबने कहा ॥ २२ ॥ यह मूर्तिमान् प्रकाश होनेसे भास इस नामसे प्रसिद्ध होगा ऐसा कितने एक सभासदोंने उसको कहा इस हेतुसे वह विपश्चित् भास ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् उसी स्थानमें ध्यानमें स्थित होकर उस भासने उस शरीरमें अपने पूर्वके सब वृत्तान्तको स्मरण किया ॥ २४ ॥

सभालोकेगतस्पंदेस्मयेनात्मनितिष्ठति ॥ भासोमुहूर्तमात्रेणदृष्ट्वास्वोदंतमक्षतम् ॥ २५ ॥ आयायौपूर्वजन्मभ्योध्यानालोकाद्व्यबुद्ध्यत ॥ सभामालोकयामाससमुत्थाययथाक्रमम् ॥ २६ ॥ सचागत्यव सिष्ठायप्रणाममकरोन्मुदा ॥ ज्ञानार्कप्राणदब्रह्मन्नमस्तेस्त्वित्युदाहरत् ॥ २७ ॥ तमुवाचवसिष्ठोपिह स्तेनशिरसिस्पृशन् ॥ अद्यतेसुचिराद्राजन्नविद्यायाःक्षयोस्त्विति ॥ २८ ॥

अर्थ—विस्मयसे सभाके सबजन चेष्टारहित जिससमय स्थित थे तब भासने एक मुहूर्तमें ध्यानस्थित होकर अपने अखंडित सब पूर्व वृत्तान्तको स्मरण किया ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् पूर्वजन्मोंके वृत्तान्तके ध्यानसे जागृत् होके मुनि, रामचन्द्रजी तथा राजा आदि युक्त सभाको उठकर उसने यथाक्रम देखा ॥ २६ ॥ अनंतर आकर और हे ज्ञानरूपी सूर्य्यके द्वारा प्राणप्रद भगवन् आपको नमस्कार है ऐसा कहते हुये वसिष्ठभगवान्‌को प्रसन्नतासे नमस्कार किया ॥ २७ ॥ और श्रीवसिष्ठजीभी हस्तसे उसके मस्तकको स्पर्श करते हुये उससे बोले कि–हे राजन्! अतिदीर्घकालके पश्चात् आज तुमारी अविद्याका नाश हो ॥ २८ ॥

रामंजयेतिजल्पंतंनतंदशरथोथतम् ॥ आसनात्किंचिदुत्तिष्ठन्ससुवाचिहसान्नव ॥ २९ ॥ श्रीदशरथउवाच ॥ स्वागतंतेस्तुभोराजन्निदमासनमास्यताम् ॥ अनेकभवसंसारभ्रांतविश्रम्यतामिह ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ वदत्येवंदशरथेविपश्चिद्भासनामभृत् ॥ विवेशविष्टरेविश्वामित्रादीन्प्रणमन्मुनीन् ॥ ३१ ॥ दशरथउवाच ॥ अहोबतचिरंकालमालानेनेवदंतिना ॥ वन्येनाविद्ययादुःखमनुभूतंविपश्चिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी! आपकी जय हो ऐसा कहते हुये तथा नम्रीभूत उस विपश्चित्‌से राजा दशरथ हंसतेहुये तथा आसनसे किंचित् उठके बोले ॥ २९ ॥ श्रीदशरथजी बोले कि–हे राजन्! आपका यह आगमन शुभ हो, इस आसनपर विराजिये, अनेक जन्मोंके भ्रमणरूपी भारसे आप श्रान्त हो अब विश्राम कीजिये ॥ ३० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–दशरथराजाके इतना कहनेपर भासनामधारी विपश्चित् विश्वामित्र आदि मुनियोंको प्रणाम करताहुआ आसनपर विराजमान हुआ ॥ ३१ ॥ श्रीदशरथजी बोले कि–अहो! कैसे कष्टका विषय है कि बंधनके स्तंभमें बनके हस्तीके सदृश अविद्याके कारण विपश्चित्‌ने चिरकालतक दुःख भोगा ॥ ३२ ॥

असम्यग्बोधदुर्दृष्टेरहोनुविषमागतिः ॥ व्योम्न्येवदर्शयत्येषासर्गाडंबरसंभ्रमम् ॥ ३३ ॥ कियंत्याश्चर्यमेतानिजगंतिविततात्मनि ॥ संततानिचिरंतानिविभ्रांतानिविपश्चिता ॥ ३४ ॥ व्योमात्मनोपिमहिमायमहोनुकीदृगस्यस्वभावविभवस्यचिदात्मवृत्तेः ॥ यःशून्यएवपरमात्मघनेबरेंतरेवंविधानिविविधानिजगंतिभाति ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० मृगवह्निप्रवेशोनाम त्रिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १३० ॥

अर्थ—अहो इस अविद्यारूप दुष्टदृष्टिकी भयंकर गति है, यह अविद्या चिदाकाशमेंही अनेक सृष्टिके आडंबरके संभ्रम दर्शाती है ॥ ३३ ॥ सर्वव्यापी आत्मामें कितने विशाल संसारोंमें चिरकालतक विपश्चित्‌ने भ्रमण किया ॥ ३४ ॥ अहो यथार्थमें आकाश मायास्वरूप इस चिद्रूप विभवकीभी कैसी महिमा है, जो शून्य होकरभी परमात्मघन असंग आत्मामें पूर्वोक्त नानाप्रकारके ब्रह्मांडोंके रूप धारण करके भासताहै ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विपश्चिन्मृगवन्हिप्रवेशो नाम त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३० ॥

एकत्रिंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १३१ ॥

विश्वामित्रजीने वटधाना राजपुत्रोंकी कथा कही पश्चात् उनसे अपने भ्रमका विस्तारसे इस १३१ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीदशरथउवाच ॥ क्लिष्टोयंयदविद्यार्थैर्विपश्चिदविपश्चितः ॥ तदहंचेष्टितंमन्येकष्टोऽवस्तुनिकिंग्रहः ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ अस्मिन्नवसरेतत्रराज्ञःपार्श्वेव्यवस्थितः ॥ प्रसंगपतितंवाक्यंविश्वामित्रोभ्युवाचह ॥ २ ॥ अप्राप्तोत्तमबोधानांबोधवैद्याविलक्षणाः ॥ भवंत्येवंविधाराजन्बहूनांबहवोभृशम् ॥ ३ ॥ अद्यसप्तदशंवर्षलक्षमक्षीणनिश्चयाः ॥ एवमेवभ्रमंतोस्यांवटधानाभुविस्थिताः ॥४॥

अर्थ—श्रीदशरथजी बोले कि–इस दिगन्तदर्शनरूप अविद्यामें वशीभूत होके मूर्खके सदृश विपश्चित्ने जो कुछ क्लेश सहाहै वह सब मैं भ्रमसे इनकी वृथा चेष्टा मानताहुं ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिमुनिजी बोले कि–इस अवसरमें राजाके निकट बैठेहुये विश्वामित्रजी प्रसंगोपात वचन बोले ॥ २ ॥ कि–हे राजन्! अपने यथार्थ कहा, आत्मज्ञानरहित मनुष्योंमेंसे बहुत ऐसे अनेकप्रकारकी विचित्रवासनासे अनन्त जगत्के दर्शी प्रायः होते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन्! इस मायारूप जगत्के दर्शनमें बद्धनिश्चय वटधाना नामके राजपुत्र सत्तरह (१७) लक्ष वर्षपर्य्यन्त भ्रमण करते हुवे इस पृथिवीपर स्थित हैं ॥ ४ ॥

भूमेरंतावलोकार्थमद्याप्युद्वेगवर्जितम् ॥ प्रवृत्तानिवर्त्ततेवहनात्सरितोयथा ॥ ५ ॥ अयंखलुमहालोकोवर्त्तुलोव्योम्निसंस्थितः ॥ बालसंकल्पतरुवद्ब्राह्मसंकल्पनिश्चयः ॥ ६ ॥ कंदुकेव्योम्निसंरुद्धेदशदिक्कंपिपीलिकाः ॥ इत्थंभ्रमंतिभूतानितदाधाराणिनित्यदा ॥ ७ ॥ भूगोलकाधोभागानितदंगान्यूर्द्ध्वंतिच ॥ तदाभूतानितिष्ठंतितान्याविश्यभ्रमंतिच ॥ ८ ॥

अर्थ—भूमिके अन्तदर्शनमें उद्वेगशून्य प्रवृत्त वे अबतक ऐसे नहीं निवृत्त होते जैसे वहनेसे नदी ॥ ५ ॥ हे राजन्! भूलोकादि चतुर्दश भुवनसहित यह महालोक (ब्रह्मांड) बालकसे संकल्पित वृक्षके तुल्य हिरण्यगर्भके निश्चयसे अभिन्न आकाशमेंही स्थितहै ॥ ६ ॥ जिसप्रकार मधुसेयुक्त कंदुकके चारोंओर पिपीलिका भ्रमण करतीहैं इसीप्रकार उस ब्रह्मांडके आधार नित्य सबजीव भ्रमण करते हैं ॥ ७ ॥ इस भूलोकके ऊपर तथा अधोभागमें जो उस ब्रह्मांडके अंगभूत लोक हैं उनमें प्रवेश करके सबप्राणी स्थित रहतेहैं और भ्रमण करतेहैं ॥ ८ ॥

तमेवाविश्यदूरेणसरितश्चर्क्षमंडलम् ॥ असंस्पर्शाभ्रमंत्युच्चैःसचंद्रार्कादिसंततम् ॥ ९ ॥ इहैवसर्वदिक्कंद्यौस्तामावेष्टयव्यवस्थिता ॥ सर्वदिक्कंखमत्यूर्द्ध्वंतस्याधस्तान्महीतलम् ॥ १० ॥ भावाःपतंतोधावंतितस्याधःसर्वतोंगकम् ॥ यत्रोत्पतंतोगच्छंतितदूर्ध्वमितिशब्दितम् ॥ ११ ॥ तत्रैकदेशेविद्यंतेवटधानाभिधानकाः ॥ जातास्तेषांत्रयोराजन्राजपुत्राःपुराभवन् ॥ १२ ॥

अर्थ—अन्तरिक्षमें वहनेवाली मन्दाकिनी आदी तथा चन्द्रसूर्य्यसहित नक्षत्रमंडलादि सब भूलोकको स्पर्श न करके अति दूर उंचे निरंतर भ्रमण किया करतेहैं ॥ ९ ॥ और ज्योतिषचक्रसहित इसी पृथिवीको आवेष्टित करके इसी भूमिपर अन्तरिक्षभी व्यवस्थित है और आकाशकी कल्पना ऊपर, महीतलकी अधोभागमें हैं ॥ १० ॥ और पृथिवीके अधोभागके पदार्थ उसके सब अवयवोंपर गिरतेहुये भ्रमण करतेहैं तथा जहां पक्षीआदि उडतेहैं उसको ऊर्ध्वभाग कहते हैं ॥ ११ ॥ उसी भूलोकके एकदेशमें वटधाना नाम देश तथा इसी (वटधाना) नामके उस देशके स्वामी क्षत्रिय हैं उनके तीन राजपुत्र हुये ॥ १२ ॥

तेह्येवमेकसंकल्पाभूम्यादेर्दृश्यवर्त्मनः ॥ कोंतःस्यादितिनिर्याताविहर्त्तुंदृढनिश्चयाः ॥ १३ ॥ पुनर्वारिपुनर्भूमिस्तेषामाक्रमतांचिरम् ॥ नवलब्धशरीराणांदीर्घकालोव्यवर्त्तत ॥ १४ ॥ स्वच्छकंदुकवम्रीकन्यायेनानिशमत्रते ॥ भ्रमंतोनाप्नुवत्यंतमन्यत्वंसंविदंतिच ॥ १५ ॥ व्योमस्थकंदुकभ्रांतपिपीलिकवदाकुलम् ॥ अद्यापिसंस्थिताराजन्नचखेदंव्रजंतिते ॥ १६ ॥

अर्थ—सो दृश्यरूप इस भूमिआदिका अन्त कहां और क्या ऐसा दृढसंकल्प करके वे सब राजपुत्र इस भूमिके अन्तके दर्शनार्थ निकले ॥ १३ ॥ तब उनको द्वीप समुद्रआदिके क्रमसे भूमिके पश्चात् पुनः समुद्र, अनन्तर भूमि, भूमिके पश्चात् पुनः समुद्र इसप्रकार मरणके पश्चात् पुनः २ नूतन २ अनेक शरीर धारण कर २ के भ्रमण करतेहुये अति दीर्घकाल बीतगया ॥ १४ ॥ इस पृथिवीपर वे स्वच्छ कन्दुकके ऊपर संलग्न कीटकके तुल्य निरंतर भ्रमण करते

हुये अन्त नहींपाते और अन्य २ देशोंमें प्राप्त होतेहैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! आकाशस्थ कंदुकमें निरंतर भ्रमण करती-हुई पिपीलिकाओंके सदृश वे स्थित हैं और खेदकोभी नहीं प्राप्त होते ॥ १६ ॥

देशंभूगोलकस्यास्ययंयमासादयंतिच ॥ इहेवतत्रतत्रोच्चैरधश्चोर्ध्वंतथादिशः ॥ १७ ॥ तेवदंतिमहारा जयद्यस्माभिरितोद्यतैः ॥ नतावदंतःसंप्राप्तःसंचरामइतःपरम् ॥ १८ ॥ इत्थंनकिंचिदेवेदंब्रह्मसंक ल्पडंबरम् ॥ किंचित्संकल्पमज्ञानमनंतंस्वप्नदृश्यवत् ॥ १९ ॥ कल्पनंतत्परंब्रह्मपरंब्रह्मैवकल्पनम् ॥ चिद्रूपंनानयोर्भेदःशून्यत्वाकाशयोरिव ॥ २० ॥

अर्थ—और इस भूगोलके अधोभाग तथा ऊर्ध्वभागके देशोंमें प्राप्त होतेहैं, दिशाओंको देखते हैं और अन्त नहीं पाते ॥ १७ ॥ और हे महाराज ! वे कहतेहैं कि उद्योगी हमलोग जबतक इसका अन्त नहीं पावेंगे तबतक इसके आगे भ्रमण करेंगे ॥ १८ ॥ इसप्रकार यह ब्रह्मके संकल्पमात्रका आडंबर तथा यह जगत् स्वप्नके जगत्के तुल्य संकल्प-जनित अज्ञानसे अनन्त भासता है ॥ १९ ॥ ब्रह्मकी कल्पनारूप यह जगत् केवल चिद्रूप परब्रह्महीं है, चिद्रूप और जगत्में भेद ऐसे नहीं है जैसे शून्यता और आकाशमें ॥ २० ॥

चिन्मात्रंयद्यदाभातंजलवाहविवर्त्तवत् ॥ तत्तादृक्कथमन्याभमन्यस्यासंभवाद्भवेत् ॥ २१ ॥ अभावः खेचखमिदंसर्गादौपरमांबरम् ॥ स्वयंजगदिवाभातिनान्यत्प्रलयसर्गकौ ॥ २२ ॥ यथाकपतिचिद्रूपंत थैवरतिमेत्यतत् ॥ दृष्टादृष्टैःस्वसंसारैश्चिरमास्तेयथाचिरम् ॥ २३ ॥ दृश्यात्मकंरूपमेकमेकमस्यैव मक्षयम् ॥ स्वयमेवमजंभातियन्नभातीवकिंचन ॥ २४ ॥

अर्थ—चिन्मात्रके स्फुरणसे जिस २ रूपसे यह जगत् भान हुआहै वह जलके प्रवाह तथा उसके तरंग आदिके सदृश अन्यके असंभव होनेसे अन्य नहीं होसकता ॥ २१ ॥ हे राजन् ! यह जगत् सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशमें अभाव-रूपही है इसकारण शून्य है, क्योंकि सृष्टिसे पूर्व परब्रह्म चिदाकाशही है इसलिये स्वयं परब्रह्मही जगत्रूपसे भासताहै क्योंकि चिदाकाशसे भिन्न प्रलय और सृष्टि कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ वह चिद्रूप प्राणियोंके काम कर्मवासनाके अनुसार जैसी २ कल्पना करताहै उसी २ रीतिसे आसक्त होकर निजस्वरूपमें परस्पर अध्यस्त वेद्य तथा अवेद्य जड चिद्रूप संसारोंसे जैसे प्रथम चिरकालतक था वैसाही है और भविष्यत्‌मेंभी रहैगा ॥ २३ ॥ एक तो विनाशी दृश्यरूप इसका है और दूसरा चिद्रूप अविनाशी है और स्वयं यह अजन्मा परमेश्वर जगत्के स्वरूपसे भासताहै और यथार्थमें वह किसी रूपसे नहीं भासता ॥ २४ ॥

चिदणोरुदरेसंतिसमस्तानुभवाणवः ॥ शिलाःशैलोदरइवस्वच्छाःखात्मनिखात्मिकाः ॥ २५ ॥ स्व भावनिष्ठास्तिष्ठंतितेयदव्याकृतात्मनि ॥ मातिष्ठंतिष्ठवैतेयदव्यावृत्ताःपरेपदे ॥ २६ ॥ तदेवजगदित्यु क्तंब्रह्मभारूपमाततम् ॥ पूर्वापरपरामर्शान्निपुणंनिपुणाशयाः ॥ २७ ॥ अत्याश्चर्यमनष्टोयंपरमात्सद नात्स्वयम् ॥ नानात्वबुद्ध्यानानैवजीवोहमितिताम्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—इस चिद्रूप परमाणुके उदरमें उन २ विलक्षण आकारोंसे वासनामय जगत्के अनुभवरूप परमाणु पर्वतके उदरमें शिलाके तुल्य ऐसे हैं जैसे स्वच्छ आकाश ॥ २५ ॥ मायाशबलित जगत्रूपमें परिणत आत्मामें उसके स्वभावरूपही सब जगत् स्थित हैं और मायाशून्य शुद्धचैतन्य परमपदमें तो कोईभी जगत् नहीं रहते क्योंकि उसके स्वरूपसे जगत् सर्वथा भिन्नरूप है ॥ २६ ॥ हे शुद्धविचारयुक्त सभ्यगण ! मायाशबलित परमात्मासे अभिन्न संसार हैं इसीसे पूर्वापरके विचारसे मैंने यह कहा कि उसके स्वरूपमें अभिन्न स्थित रहतेहैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार परमात्मासे ऐक्य होनेसे परब्रह्मरूपी निजस्थानसे अप्रच्युतभी यह जीव नानात्वबुद्धिसे मैं अल्पज्ञ जीव हुं ऐसी दीनतायुक्त ग्ला-निको जो प्राप्त होताहै यह अत्याश्चर्य्य है ॥ २८ ॥

उच्यतांभासभोराजन्विपश्चिदपराख्यहे ॥ कियद्दृष्टंकियद्भ्रांतंदृश्यंस्मरसिकिंचवा ॥ २९ ॥ भासउ वाच ॥ बहुदृष्टंमयादृश्यंबहुभ्रांतमखेदिना ॥ बह्वेवबहुधानूनमनुभूतंस्मराम्यहम् ॥ ३० ॥ मयानुभू तानिमहांतिराजंश्चिरंसुदूरेविविधैःशरीरैः ॥ सुखानिदुःखानिजगंत्यनंतान्यनंतमासाद्यमहांबरंतत् ॥ ॥ ३१ ॥ विचित्रदेहैर्वरशापयोगाद्दृश्यान्यनंतानिमयामहात्मन् ॥ जन्मांतरावर्त्तविवर्त्तनानिदृष्टैकचि त्तेनवरात्कृशानोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अब हे भास द्वितीय नामयुक्त राजन् ! अपना कुछ संक्षिप्त चरित्र कहिये, कितना दृश्य आपने देखा, कहां २ कितना भ्रमण किया और क्या तुमको स्मरण है ॥ २९ ॥ भासनामयुक्त विपश्चित् बोला कि, हे मुने ! मैंने बहुत

कुछ यह दृश्य देखा और बहुत भ्रमण किया, तथा अनेकप्रकारसे बहुत कुछ अनुभवभी किया सो सब मैं स्मरण करताहुं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उस अनंत अव्याकृत आकाशमें अतिदूर प्राप्त होके मैंने अनेक शरीरोंसे बडे २ सुख तथा दुःखोंको भोगे और अनंतानंत जगत्‌भी देखे ॥ ३१ ॥ हे महात्मन् ! मैंने वर तथा शापके योगसे चित्रविचित्र देहोंसे तथा अग्निभगवान्‌के वरदानसे दिगन्तदर्शनमें दृढनिश्चययुक्त होके अनेक जन्मान्तररूपी आवर्तोंमें परिवर्तनोंको तथा उनमें अनेकप्रकारके ब्रह्मांडोंको देखा ॥ ३२ ॥

दृश्यात्मकोर्वीवपुषस्त्वविद्यादृशोजवेनांतपरीक्षणाय ॥ देहेनदेहेनजगत्प्रतिप्राक्स्मृतेःसदाहंघनयत्न मासम् ॥ ३३ ॥ समाःसहस्रंविटपोहमासमंतर्मनाश्वेतनभुक्तदुःखः ॥ चित्तंविनापुष्पफलप्रतानेवा कंदवत्तत्तरसांगरागः ॥ ३४ ॥ समाःशतंमेरुमृगोहमासंसुवर्णवर्णस्तरुपर्णकर्णः ॥ दूर्वांकुरास्वादन गीतिनिष्ठअहन्कनिष्ठोवनवासिमध्ये ॥ ३५ ॥ पादाष्टकैरावलितात्मपृष्ठोमृतेभसःक्लेशकृतात्ममृत्युः ॥ समाःशतार्द्धंशरभोहमासंक्रौंचाचलेकांचनकंदरासु ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! प्रत्येक ब्रह्मांडमें नानाप्रकारके शरीरोंको धारण करके भ्रमण करतेहुयेभी पूर्वजन्मोंके दृढ संस्कारके स्मरणसे पृथिवीआदिरूप शरीरधारिणी अविद्यादृष्टिके अन्तके परीक्षार्थ सदा वेगसे अतिप्रयत्नयुक्त मैं था ॥ ३३ ॥ उसके पश्चात् चित्तकी चंचलतासे किसी जन्मके मरणसमय वृक्षके दर्शनके संस्कारकी प्रबलतासे देह-ग्रहणमें रागयुक्त होनेसे सहस्रवर्षपर्य्यन्त वृक्षरूपमें था, उस रूपमें मैं बाह्यप्रवृत्तिके कारण प्राणोंकी चेष्टासे रहित, अन्तर्मनयुक्त, वृक्षाभिमानी जीवमें सुखदुःखका भोक्ता तथा पूर्वापरके विचारके हेतु चित्तके अभावसे पुष्पफलादिके उत्पन्न करनेमें कन्दके सदृश भूमिके रसके आधारसे था ॥ ३४ ॥ तथा हे राजन् ! सुवर्णके समान वर्णयुक्त, वृक्षके पत्रके तुल्य कर्णधारी, दुर्वाअंकुर आदिके आस्वाद तथा गीतश्रवणमें अति अनुरागी तथा वनवासियोंके मध्यमें अल्पबल तथा लघुजीव होनेसे किसीकी हिंसा न करता हुवा मृगरूपधारी मैं शतवर्षपर्य्यन्त मेरुपर्वतपर था ॥ ३५ ॥ तथा आठपादोंसे वेष्टित निजपृष्ठयुक्त तथा मरणसमय उपस्थित होनेपर गर्जते हुये मेघसे पतित ओलेके जलके हेतुसे उस मेघके साथ युद्ध करनेको पर्वतके शिखरसे उछलनेके क्लेशसे निजमृत्युके संपादन करनेवाले शरभनामक मृगका शरीर धारण करके पचास वर्षपर्य्यन्त क्रौंचनाम पर्वतकी सुवर्णमयी कन्दराओंमें मैंने निवास किया ॥ ३६ ॥

कालागुरुद्रुमलतावलितानिलेनविद्याधरीसुरतधर्मकलामृतानि ॥ पीतानिमेमलयसानुनिमंदरेचमंदा रचंदनकदंबलतागृहेषु ॥ ३७ ॥ हेमारविंदमकरंदपिशंगिताऽपिपीतानिपंचदशवर्षशतानिमेरौ ॥ वैरिं चहंसतनयेनमयापयांसितीरांतरेषुरमतोपरिनिर्झरिण्याः ॥ ३८ ॥ क्षीरोदवेलावनगंधवाहविलोलनी लालकवल्लरीणाम् ॥ समाःशतंशोकजरापहारिगीतंश्रुतंमाधवसुंदरीणाम् ॥ ३९ ॥ कालंजरेमंजरितेक रंजगुंजावनेजंबुकतांगतोहम् ॥ गजेनपिष्टेहरिणाहतोसौहस्तीमयात्रार्द्धमृतेनदृष्टः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा विद्याधरका जन्म धारण करके मलय तथा मेरुपर्वतके शिखरोंपर कालागरुनाम वृक्षोंकी लताओंसे आलिंगित शीतल मंद सुगन्ध पवनके साथ विद्याधरियोंके सुरतोंमें उनकी लीलारूप अमृतका अनुभव मैंने किया ॥ ३७ ॥ तथा ब्रह्माके हंसमें पुत्र जन्म धारण करके मेरुके ऊपर मन्दाकिनीके तटपर रमण करतेहुये मैंने सुवर्णके कमलके रससे पीतवर्ण पयका पान १५ शतवर्षपर्य्यन्त किया ॥ ३८ ॥ तथा क्षीरसागरके तटके बनके त्रिविध पवनसे चंचल कृष्णवर्ण केशरूप लताओंको धारण करनेवाली माधवभगवान्‌की सुन्दरियोंके शोक तथा वृद्धावस्थाके नाशक गीतको मैंने शतवर्षपर्य्यन्त श्रवण कियाहै ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् करंजों (कंटकयुक्त कंजों) तथा गुंजाओंसे पूर्ण कालंजरनाम पर्वतपर मैंने शृगालका जन्म पाया, उस जन्ममेंभी किस हांथीने मेरे शरीरको मर्दित करदियाथा तब अर्द्धमृतकदशाको प्राप्त मैंने उसी गजको किसी सिंहसे मारा हुआ देखा ॥ ४० ॥

संतानकप्रकरहासिनिसह्यसानौकस्मिंश्चिदन्यजगतींदुमुखीसुरस्त्री ॥ एकाकिनीकृतयुगार्द्धमथाहमा संकल्पद्रुमस्तबकसद्मनिसिद्धशापात् ॥ ४१ ॥ अद्रींद्रकच्छकरवीरलतालयेषुनीतंसमाशतमशंकधि यामयान्यत् ॥ अन्यत्रदूरजगतींद्रगिरौविराविवाल्मीकपक्षिवपुषानिशमेकेन ॥ ४२ ॥ अन्यत्रसानु निमयापरिलंबमानाःसच्छायचंदनवनावलितेलतानाम् ॥ दृष्टाःस्त्रियःफलमिवावलिताविलासैर्भुक्ता श्वताअपहृताअपिसिद्धपांथैः ॥ ४३ ॥ अन्यत्रपर्वतनितंबकदंबकच्छेनीतानितापसतयोत्तमयादिना नि ॥ प्रत्येकवस्त्वभिनिवेशविषूचिकार्त्तचित्तेनतांतमतिनाऽमतिनामयांतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सन्तानक नाम कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे हास्यके सदृश शोभायमान सह्यपर्वतके शिखरपर किसी सिद्धके शापसे एकाकिनी चन्द्रमुखी देवाङ्गनारूपसे सत्युगके अर्द्धभागपर्य्यन्त मैंने निवास किया ॥ ४१ ॥

इसके पश्चात् हिमालयकी समीपतासे सह्यपर्वतके अनूप (जलमय) देशमें उत्पन्न करवीर वृक्षोंकी लताओंके कुंजोंमें निरंतर शब्द करनेवाले वाल्मीकिनाम पक्षीके रूपमें शतवर्षपर्य्यन्त निवास किया, इसके पश्चात् मेरे भार्य्या पुत्रादिकेसाथ करवीर वृक्षोंके नष्ट होनेपर अन्यत्र अतिदूरस्थ संसारमें इन्द्रनाम पर्वतपर वियोगसे पीडित मैंने शेष अवस्थाको विताया ॥ ४२ ॥ इसप्रकार दो जन्मोंमें सिद्धशापसे मुक्त होके उसी सिद्धके अनुग्रहसे सिद्ध जन्म धारण करके मैंने उसी महेन्द्रपर्वतके उत्तम छायायुक्त चन्दनोंकी लताओंसे आच्छादित दूसरे शिखरपर लताओंके झूलोंमें उनके फलोंके तुल्य झूलती हुई तथा विलासोंसे पूर्ण स्त्रियोंको देखा और सिद्धपथिकोंसे अपहृतभी उन अङ्गनाओंके साथ भोगभी किया ॥ ४३ ॥ पुनः उसके पश्चात् अविवेकी, तथा केवल अविद्याके अन्तदर्शनके आग्रहरूप विषूचिकासे वशीभूतचित्त, अतएव श्रान्त बुद्धियुक्त मैंने निर्वेदको प्राप्त होकर अन्यपर्वतके कदम्बादियुक्त अनूपप्रदेशमें तपस्वी होके दिवसोंको व्यतीत किया ॥ ४४ ॥

ब्रह्मांडसंपूरितमन्यदस्तिजलेचराशेषदिगंतभूतम् ॥ संदिग्धतेजोंबरवातसत्तंजलस्थभूताकृतिमात्रभूमि ॥ ४५ ॥ एकत्रदृष्टावनितामयैकातस्याःशरीरेत्रिजगंतिभांति ॥ प्रतिबिंबितानीवसुदर्पणेंतराकाशशैलादिदिगादिमंति ॥ ४६ ॥ पृष्टामयासैवरगात्रिकासिशरीरमेतच्चकिमीदृशंते ॥ तयोक्तमंगेहचिदस्मिशुद्धामममांगमेतानिमहाजगंति ॥ ४७ ॥ यथाहमेवंस्मयदेहिकेयंसर्वंतथैवांगनचित्रमेतत् ॥ अन्यैःस्वभावोविदितोनशुद्धोयदानपश्यंतितदेत्थमंग ॥ ४८ ॥

अर्थ—और हे भगवन् ! अनन्तब्रह्मांडोंसे पूर्ण, जलचरजीवोंकेसदृश संपूर्ण दिगन्तके प्राणियोंसे युक्त, जल, वायु तथा आकाशरूप महाभूतोंकी सत्तामें सन्देहसहित, और जलमें प्रतिबिंबित आकारधारिणी भूमिसंयुक्त अतिआश्चर्यमय यह अन्य आकार मैंने देखा ॥ ४५ ॥ और उसी स्वरूपके एकदेशमें मैंने एक स्त्री देखी और उस स्त्रीके शरीरमें आकाश, पर्वतादि तथा दिशाआदि सहित अनेक जगत् उत्तमदर्पणमें प्रतिबिंबितके सदृश देखे ॥ ४६ ॥ अनन्तर उस स्त्रीसे मैंने पूंछा कि उत्तमअंग भगवति तुम कौन हो और यह अनेकसंसारसे पूर्ण यह तुमारा शरीर कैसा है ? तब उसने उत्तर दिया कि हे प्रिय ! संपूर्ण पदार्थमात्रमें सबकी प्रकाशिका शुद्ध चित् मैं हुं और ये सब महा ब्रह्मांड मेरे अंग हैं ॥ ४७ ॥ और हे प्रिय ! जैसे आश्चर्य्यरूप शरीरधारिणी मैं हुं ऐसाही यह संपूर्ण ब्रह्मांडभी है परन्तु अन्य अविवेकी जन प्रत्येक वस्तुमें मेरे शुद्ध चिद्रूपको नहीं जानते इस कारणसे मेरे स्वरूपमें इसप्रकार आश्चर्य्यरूप जगत्कोभी नहीं देखते और जब सूक्ष्मशरीरमें दृढता होनेसे जान जावेंगे तब इसीप्रकार आश्चर्य्य मेरे शरीरको तथा उसमें वैसेही जगत्भी देखेंगे ॥ ४८ ॥

अवेदशास्त्रेणजगत्यशेषैर्भूतैःस्वदेहालयभित्तिभागात् ॥ एतद्विधेयंनविधेयमेतद्ध्वनिःस्वतःश्रूयतएवनित्यम् ॥ ४९ ॥ ईदृक्स्वभावैवपदार्थसत्तासातेत्रयद्भित्यचलादयोपि ॥ स्वप्नादिमायास्विवमेवदंतिवाचंनयुष्मास्वसमंजसंतत् ॥ ५० ॥ अस्त्रीकसंसारगतेनदृष्टंमयाकचिद्यावदनन्यकामम् ॥ भूतानिनिर्यांतिबहूनिभूताद्विशंतिभूतानिबहूनिभूतम् ॥५१॥ एकानिदृष्टानिमयांजसानिखेऽभ्राण्यदभ्रांगझणज्झणानि ॥ वृष्ट्यासमंतान्निपतंतिखंडैर्भवंतितीक्ष्णानिजनायुधानि ॥ ५२ ॥

अर्थ—और तुमारे सदृश अज्ञानी प्राणिभी वेदशास्त्रोंके अभिमत वाह्यसे अन्य निज शरीरान्तर्गत जगत्में निजस्थानभूत देहके एकभाग कर्णमात्रसे विधिनिषेधमय संपूर्ण वेदशास्त्रके वादको प्रतिदिन सदा जैसे सुनतेहैं ऐसेही वेदशास्त्रप्रतिपाद्य सब जगत्भी शरीरके अन्तर्गत है ऐसी संभावना करें ॥ ४९ ॥ और ब्रह्मरूप उस स्त्रीने कहा कि– हे भद्र ! जैसे सब पदार्थोंमें अनुगत ब्रह्मसत्ता है और जैसे स्वतः निरंतर स्वभावसिद्ध अप्रतिहत नाद होताहै ऐसेही संपूर्ण जगत्की जो सामान्य सत्ता है वहभी सब जगत्से पूर्ण है, अर्थात् प्रत्येक जगत्परमाणुमें सब ब्रह्मांड है, क्योंकिं ये भित्ति और पर्वतादि जो हैं यहभी ब्रह्मसत्ताही है और तुमारे प्रसिद्ध स्वप्नादिमाया जैसे ये भित्तिआदिही प्राणी आदिका रूप धारण करके भाषणादि व्यवहार करतेहैं ऐसेही ये मेरे संमुख बोलरहे हैं, इससे भित्ति पृथिवी आदि अचेतन हैं यह भ्रम न करना, और जब अत्यन्त जडरूपसे प्रसिद्ध भित्ति आदि संपूर्णजगत्घटित चेतनत्व असंगत नहीं है तौ प्रसिद्ध चेतनप्राय तुमारे शरीरोंमें सुतरां असंगत नहिं है. ॥ ५० ॥ और हे भगवन् ! इससेभी अधिक आश्चर्य्य मैंने स्त्रीसे सर्वथा शून्यसंसारमें प्राप्त होके स्त्रीकी अभिलाषारहित संपूर्ण पुरुषरूप प्राणियोंको देखा वहांपर मैथुनके बिनाही प्राणियोंके शरीरसे पृथिवी आदिसे निकलतेहुये तथा उसीमें प्रवेश करते हुये अनेक भूतोंको देखा ॥ ५१ ॥

तथा अन्यत्र जाके उत्पात आदिसे रहित तथा शस्त्रोंके संवर्षणध्वनिके तुल्य निजगर्जनाओंसे झन २ शब्द करते हुये महामेघोंके खंड मैंने देखे, और उनसे वृष्टिसे जो कुछ विद्युत् आदि गिरतेथे वे प्राणियोंके शस्त्रास्त्र होजातेथे ॥ ५२ ॥

अन्यत्रदृष्टंगगनेनयावदिहांधयाग्रामगृहाणियांति ॥ विशंत्यमुत्रांतइहाभवद्योग्रामःसएवान्यतएवलब्धः ॥ ५३ ॥ नरामराहिप्रविभागमुक्तान्यन्यत्रभूतानिसमानिसंति ॥ खादेवसर्वाणिसमुद्भवंतितत्रैव कालेनलयंप्रयांति ॥ ५४ ॥ अचंद्रतारार्कमनंधकारंस्वयंप्रकाशाखिलभूतजातम् ॥ स्मरामिकिंचिज्जगदेककांतंज्वालोदराभंदिनरात्रिमुक्तम् ॥ ५५ ॥ अपूर्वदैत्याहिनरामरादिभूतान्यपूर्वद्रुमपत्तनानि ॥ अपूर्वलोकांतरकार्यवंतिस्मराम्यनंतानिमहाजगंति ॥५६॥ दिगस्तिसानोविहृतंनयस्यांनसोस्तिदेशःखलु योनदृष्टः ॥ यन्नानुभूतंनतदस्तिकार्यमन्याश्रयंनापरमस्तिमर्शात् ॥ ५७॥ क्षीरोदकभ्रमितमंदररत्नशृंगधाराग्रनिर्दलनजातझणज्झणानाम्॥एकत्रसंयुतमुपेंद्रभुजांगदानांशब्दंस्मरामिघनगर्जितशंकितेन ॥५८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० भाससंसारवर्णनं नाम एकत्रिंशाधिकशततमःसर्गः ॥ १३१ ॥

अर्थ—तथा अन्यत्र जाके क्या आश्चर्य्य देखा कि इस जगत्में जितने ग्रामके गृह हैं उतनेही अंधकारादिसे प्रतिहत दृष्टिसेही आकाशमार्गसे जाते हैं और दूर दिगन्तमें जाके उसमें प्रविष्ट होजातेहैं और वह जो तुमारा ग्राम यहां था उसीको मैंने अन्यत्र पाया यह कैसा आश्चर्य्य है ॥ ५३ ॥ और मनुष्य, देवता तथा नाग इन तीनोंलोकनिवासियोंके अन्तरालभागोंको छोडकर जो अन्य लोक हैं वहांके प्राणी सब समान हैं, और वे सब आकाशसेही उत्पन्न होतेहैं और काल पाके उसीमें लयको प्राप्त होतेहैं ॥ ५४ ॥ औरभी अतिआश्चर्य्यभूत किसी संसारको स्मरण करताहुं जो कि सूर्य्य, चन्द्र तथा तारागणसे रहित, अतएव रात्रिदिनके विभागसे शून्य, ज्वालाके उदरके सदृश, तथा स्वयं प्रकाशमान सब प्राणिसमूहसहित अतिअन्धकारसे शून्य वह संसार था ॥ ५५ ॥ तथा दृष्ट श्रुतसे विलक्षण दैत्य, सर्प, मनुष्य और देवता आदि प्राणियोंसे पूर्ण, अपूर्व वृक्ष नगरादियुक्त, तथा अपूर्वलोकान्तरोंकी व्यवस्थासंयुक्त, अनन्त महासंसारोंको मैं स्मरण करताहुं ॥ ५६ ॥ हे सभ्यगण ! अधिक कथन व्यर्थ है परन्तु ऐसी कोई दिशा नहीं है जहां मैंने विहार न कियाहो, ऐसा कोई देश नहीं है जिसको मैंने नहीं देखा, ऐसा कोई आश्चर्य्यजनक कार्य्यभी नहीं है जिसका अनुभव मैंने नहीं किया, और मेरे अनुभवरूप सर्वसाक्षीसे भिन्न अधिष्ठानभी कोई इस संपूर्ण दृश्यका नहीं है ॥ ५७ ॥ तथा क्षीरसागरके मथनार्थ संचालित मन्दराचलके रत्नमय शृंगोंके सदृश तीक्ष्ण अग्रभागोंके संघर्षणसे उत्पन्न झण २ शब्दयुक्त श्रीभगवान्के भुजाओंके अंगदोंके मेघगर्जनके तुल्य श्रुत शब्दोंकोभी मैं स्मरण करताहुं ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अवि० विप० भाससंसारवर्णनं नाम एकत्रिंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १३२ ॥

इस १३२ के सर्गमें पुनः भासने अपने अनेक जन्मोंके भ्रमण, अनेक आश्चर्य्य तथा संसारकी असारताका वर्णन कियाहै ॥

॥ भासउवाच ॥ मंदरेमृदुमंदारमंदिरेमंदराभिधाम् ॥ आलिंग्याप्सरसंसुप्तंसरित्तृणमिवानयत् ॥ ॥ १ ॥ मामथासौमयापृष्टासमाश्वास्यजलाकुला ॥ बालेकिमिदमित्युक्तंतयाचपलनेत्रया ॥ २ ॥ इह चंद्रोदयेष्वेताश्चंद्रकांतकटप्रजाः ॥ नद्योमाद्यंतिवनिताःसेष्टाइवनिशागमे ॥ ३ ॥ त्वत्संगमरसावेशवशात्तन्ननुविस्मृतम् ॥ इत्युक्त्वामामुपादायसोड्डीनाविहगीवखे ॥ ४ ॥

अर्थ—भास बोला कि—हे मुने ! जिससमय तापसरूपमें मैंने सिद्धिको प्राप्त कियाथा तब मन्दराचलके कोमल मन्दारलताके कुंजभवनमें मन्दरानाम्नी अप्सराको आलिंगन करके सोगया उससमय मुझे तृणके समान वक्ष्यमाण नदी वहा लेगई ॥ १ ॥ इसके पश्चात् जलप्रवाहसे व्याकुल उस अप्सराको धैर्य्य देकर मैंने पूंछा कि—हे बाले ! यह क्या है तब उस चंचलनेत्राने यह उत्तर दिया ॥ २ ॥ कि—हे कांत ! इस स्थानमें चंद्रकांतशिलामयपर्वतोंकी मेखला (मध्यभूमि) से उत्पन्न ये नदियां चन्द्रोदयकालमें ऐसी मदोन्मत्त (प्रसवित जलसे वृद्धिको प्राप्त) होजाती हैं जैसी रात्रिके आगमनमें निज प्रियतमके आगमनसहित अंगना कामदेवसे ॥३॥ और हे प्रिय ! आपके समागमरूपी अमृतरसके

आस्वादके वशीभूत होके सायंकालमेंही आपसे इस विषयका निवेदन करना मुझे विस्मृत होगया, ऐसा कहके गंगाजीके कमलमें स्थित भृंगके सदृश मुझे लेके पक्षिणीके सदृश वह आकाशमें उडी ॥ ४ ॥

भृंगशृंगवत:शृंगेगंगाकनकपंकजे ॥ अहमासंसमा:सप्ततक्लिन्नोऽकर्दमाप्लुते ॥ ५ ॥ अन्यन्मयाजग दृष्टमृक्षचक्रविवर्जितम् ॥ गर्भगर्भस्थैकजातिस्वप्रकाशजनावृतम् ॥ ६ ॥ नदिग्विभागोनदिनानियत्र नचैवशास्त्राणिनवेदवादा: ॥ नचैवदैत्यादिसुरादिभेदोजगन्मयातादृगथात्मदीप्तम् ॥ ७ ॥ विद्याधरा मरविहारविमानभूमावभ्रंलिहाचलनितंबकदंबकच्छे ॥ आसंसमा:समरसोमरसोमनामासप्तान्यस प्तससमुद्रतटेतपस्वी ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उस जलसे आर्द्रशरीर मैंने कर्दमशून्य निर्मल मन्दराचलके शिखरपर उस अप्सराके साथ सातवर्ष पर्य्यन्त निवास किया ॥ ५ ॥ और इसके पश्चात् अनन्त नक्षत्रोंके चक्रसे शून्य, तथा केलेके दलक सदृश एकके भीतर दूसरे और उसके भीतरभी दूसरे एकजातिके स्वयंप्रकाशमान प्राणियोंसे पूर्ण अतिआश्चर्य्यमय अन्य संसारको मैंने देखा ॥ ६ ॥ उस जगत्में न दिशाओंका विभाग था और रात्रिदिनका भेद था, न शास्त्र तथा वेदोंकी चर्चाभी और न दैत्य देवादिका भेद था, किन्तु स्वयं प्रकाशमान उस जगत्को मैंने देखा ॥ ७ ॥ तथा विद्याधर और देवताओंके विहार्य विमानोंकी भूमि तथा समुद्रतटके समीप अतिऊंचे पर्वतोंके कदंबयुक्त अनूप शिखरपर अमर सोमरसनाम विद्याधरका जन्म पाके तपस्वीहोके चतुर्दश वर्ष पर्य्यन्त मैंने निवास किया ॥ ८ ॥

पवनवहनसंनिवेशनानासुहयपयोधरदेहकैरनेकै: ॥ गजहरिणमृगेंद्रवृक्षवल्लिमृगनगपन्नगपक्षिभि:परी तम् ॥ ९ ॥ गगनमवनित:समेत्यवह्नेर्वरविभवेनजगत्यनंतकोशम् ॥ क्वचिदहमभितोदिदृक्षुरग्रेस्तउ रगाशनवद्बलादविद्याम् ॥ १० ॥ क्वचिदहंजगत:परिनिर्गत:पतितएकमहार्णवविस्तृते ॥ नभसितत्र निवासिनिभेसित:समयमन्वभवंपतनंतथा ॥ ११ ॥ आकाशकोशपतनानुभवैकवृत्ते:श्रांतस्यमेपदम कार्यथनिद्रयांत: ॥ तादृक्सुषुप्तवपुषाथमयोपलब्धंस्वप्नात्मजाग्रतितदात्मनितत्रविश्वम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सभ्यगण! इसके पश्चात् अविद्याको चारोंओरसे देखनेका अभिलाषी मैं अग्निभगवान्‌के वरदानके प्रभावसे पवनके प्रवाहके सदृश गमनमें उद्यत, नानाप्रकारके उत्तम अश्व, मेघ आदिके तुल्य देहधारी जनोंसे तथा हस्ती, हरिण, सिंह, वृक्ष, लता, मृग, पर्वत, सर्प, गरुड तथा पक्षी आदिसे व्याप्त अनन्त कोश आकाशमें पृथिवीसे प्राप्त होकर गरुडके सदृश वेगसे आगे फेंकदियागया ॥ ९ ॥ १० ॥ इसके पश्चात् इस जगत्से निकलके महासमुद्रके तुल्य विस्तृत किसी आकाशमें गिरा और वहां निवासियोंके समान नक्षत्रगणमें बद्ध होके रात्रि, दिन, मास तथा ऋतु आदि समयका तथा दिशाओंमें गमनका अनुभव किया ॥ ११ ॥ हे भगवन्! उक्तरीतिसे आकाशकोशमें पतनरूप मुख्य व्यापारके निरंतर अनुभवयुक्त मैं अति थकित होगया, उसी अवसरमें मेरे अन्त:करणमें निद्राने प्रवेश किया, तब सुषुप्तशरीरसे स्थित स्वप्नजाग्रत् अवस्थाकी प्रवृत्तिमें अपने अभ्यन्तरमेंही संपूर्ण संसार पाया ॥ १२ ॥

भूयोदिगंतभुवनामरमंदराद्रिसंसारचंचलतयालतयेवपक्षी ॥ अक्षीणवातबलयापरिचाल्यमानस्तन्मा सुतासुपतितोहिजगद्गुहासु ॥ १३ ॥ विषयाशादृशोयावत्तावद्यात:क्षणादहम् ॥ पुनस्तयैवपश्यंस्तद्दृ श्यंयात:पुन:पुन: ॥ १४ ॥ इतिदृश्यमदृश्यंचगम्यंचागम्यमेवच ॥ वेगाल्लंघयतोदेशांममवर्षगणाग ता: ॥१५॥ दृश्याख्यायाअविद्यायानन्तवंतंप्राप्तवाहनम् ॥ मिथ्यैवहृदिरूढाया:पिशाच्याइवबालक: ॥१६॥

अर्थ—हा! उस आभ्यन्तरदृष्ट स्वप्नजाग्रत्‌के संसारमेंभी पुन: दिगन्त भुवनादि जगत्में वायुसे संचालित लताकेद्वारा पक्षीके चंचलताकेसमान दोनों नेत्रोंको संचालित करताहुआ उन्ही दृश्योंकी इयत्ता (कितना है) परिच्छेदरूप जगत्‌रूपी गुहाओंमें गिरा ॥ १३ ॥ जहांतक दृष्टिका विषय संसार था वहांतक मैं क्षणभरमें पहुंचगया इसीप्रकार दर्शनके कौतुकसे देखताहुवा पुन: २ दृश्यमें मैं प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ इसप्रकार जाग्रत् तथा स्वप्नमें देखनेके योग्य तथा अयोग्य विषयको लक्ष्य करके गम्य तथा अगम्यस्थानोंको अतिवेगसे लंघन करतेहुये मुझे वर्षोंके समूहके समूह बीत गये ॥ १५ ॥ परन्तु पिशाचीके वशीभूत बालकके सदृश मिथ्याही हृदयमें आरूढ इस दृश्यनामवाली अविद्याका अंत मैंने नहीं पाया ॥ १६ ॥

नेदंनेदंसदित्येवविचारानुभवेस्थितम् ॥ तथापीदमिदंचेतिदुर्दृष्टिर्ननिवर्त्तते ॥ १७ ॥ प्रतिक्षणंसुखैर्दु:खैर्देशकालै:समागमै: ॥ सरिद्वारिवदालोलानवमायांतियांतिच ॥ १८ ॥ तालीतमालबकुलाकुलतुंग शृंगसुन्नादवातजवमेकमहंस्मरामि ॥ सूर्यादिभिर्विरहितंप्रकटंस्वकांत्यासस्थावराद्रितटजंगममेववि

श्रम् ॥ १९ ॥ यदेतदेकांतविहारहारिस्वच्छंदमेकामितमस्तशंकम् ॥ कचिन्मयाचारुजगत्सुदृष्टंतु ल्यानतस्यामरराजलक्ष्मीः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० विप० भासवर्णितस्वजन्मपरंपरानाम द्वात्रिंशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १३२ ॥

अर्थ—यद्यपि यह सत्य नहीं यह सत्य नहीं ऐसा विचार अनुभवमें स्थित हुआ तथापि यह सत्य है, यह सत्य है, इस रीतिसे प्रत्येक विषयमें चिरकालके द्वैतके अभ्याससे प्रविष्ट जो दुष्टबुद्धि है वह निवृत्त नहीं होती ॥१७॥ विचारसे दुरीकृतभी मिथ्यादृष्टि परन्तु प्रत्येक क्षणमें प्राप्त सुख तथा दुःखोंसे, और देशकालादिके भेदसे प्राप्त इष्ट अनिष्टजनोंके समागमोंसे नूतन २ चंचल संसारदृष्टि पुनः ऐसे आती और जाती हैं जैसे चंचल नदीका जल ॥ १८ ॥ तथा अतिआश्चर्य्यरूप अनुपम एक महाउच्च पर्वतशिखर (ब्रह्मरूप) को मैं स्मरण करताहुं जो कि अतिनादयुक्त पवनके वेगसे पूर्ण ताली, तमाल तथा बकुलवृक्षोंसे भूषित, सूर्य्यादिसे रहित होनेपरभी अपनी दीप्तिसे प्रकाशमान तथा पर्वतादि स्थावर तथा मनुष्यादि जंगमप्राणिओंसे पूर्ण है ॥ १९ ॥ जो शृंग एकान्तविहारी तत्ववेत्ताओंको मनोहर, स्वच्छन्द, एक, प्रमाणरहित, देश, काल तथा वस्तुकृत परिच्छेदशून्य, अतिरमणीय कहीं तत्ववेत्ताओंकी मंडलियोंमें मैंने देखाहै, और इन्द्र तथा ब्रह्माकी लक्ष्मी (आनंदरूपलक्ष्मी) उसके तुल्य नहीं है ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विप० भासवर्णित स्वजन्मपरंपरानाम द्वात्रिंशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३३ ॥

सप्तद्वीप्रमाण शव (मृतक) का स्वर्गसे पतनरूप कचित् दृष्ट अति आश्चर्य्य भासने १३३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ विपश्चिदुवाच ॥ कस्मिंश्चिदन्यत्रजगत्यपूर्वेदृष्टंमयेदंशृणुकिंविचित्रम् ॥ महाघवृत्तांतदशासमान मविद्ययांधेनबलात्कृतंयत् ॥ १ ॥ अतिक्वचित्खेभवतामगम्येजगज्ज्वलद्दीप्तिविचित्रसर्गः ॥ एतादृ गप्यंबरतस्तदन्यत्स्वाप्नंपुरंजाग्रतिचेतसीव ॥ २ ॥ तस्मिन्मयाविहरताहृदयस्थमर्थमन्वेष्टुमक्षिनि हितंककुभांमुखेषु ॥ पश्यामियावदचलप्रतिमाधरायांछायालिजालमलिनापरिबंभ्रमीति ॥ ३ ॥ आ श्चर्यमात्रमुचितंकिमिदंनिमेषादित्यक्षिवैजगतियावदहंत्यजामि ॥ खात्तावदद्रिमतुलंपुरुषाकृतिंद्रागा वर्त्तवृत्तिभिरपश्यमहंपतंतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—भास बोला कि–हे मुने ! इस जगत्से भिन्न किसी अपूर्व जगत्में ब्रह्महत्यादि महापापोंके फलभूत रौरवादि नरक वृत्तान्त दशाके समानभी अविद्यासे अन्धरूप मुझसे अग्निभगवान्के वरदानसे अनुभूत तथा दृष्ट विचित्र इस वृत्तान्तको सुनिये ॥१॥ हे सभ्यगण ! आपलोगोंके अगम्य आकाशके किसी स्थानमें सूर्य्यादिकी जाज्वल्यमती दीप्तिसे प्रकाशमान एक विचित्र ब्रह्मांड है वह रचना आदिमें इस ब्रह्मांडके तुल्य होनेपरभी आकाशके इसकी दृष्टिमें शून्य होनेसे इससे भिन्न ऐसे है जैसे स्वप्नका नगर जाग्रत्में दृष्ट नगरके समान होनेपरभी जाग्रत्दृष्टिमें असत् होनेसे अन्यके समान चित्तमें स्थित है ॥ २ ॥ उस ब्रह्मांडमें भ्रमण करते हुये मैंने हृदयस्थ पदार्थ देखनेके लिये ज्योंही दिशाओंमें दृष्टिपात किया त्योंही क्या देखताहूं कि पर्वताकार भ्रमरसमूहके तुल्य मलिन छाया भूमिपर वार २ भ्रमण कररही है ॥३ ॥ यह अतिआश्चर्य्यभूत क्या है ऐसा विचार करके कौतुकसे जबतक मैंने दृष्टिपात किया इतनेहीमें अनेक पर्वतोंके तुल्य महाआकारधारी, आवर्तकी रीतिसे चक्कर देके गिरते हुये पुरुषाकार शीघ्र मैंने देखा ॥ ४ ॥

कःस्यादयंगिरिगुरुःपुरुषोविराड्वापर्यस्तपर्वतवदाशुपतच्छरीरः ॥ आकाशपूरकवपुःपरमांबरोपियो नैवभातिपिहिताखिलवासरश्रीः ॥ ५ ॥ एवंविधांहृदिमनाक्कलयामियावत्तावत्पपातसहसानभसोवि वस्वान् ॥ कल्पांतवातपरिवृत्तपितामहांडघ्रष्टावपातघनघोषजुषाजवेन ॥ ६ ॥ तस्मिन्पतति भीमात्म न्यपारावारदेहिनि ॥ सप्तद्वीपांवसुमतींपरिपूरयतिक्षणात् ॥ ७ ॥ स्वात्मनोनाशमाशंक्यसद्वीपभुवनैः सह ॥ अवश्यभाविपार्श्वस्थमहमग्निमथाविशम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह महापर्वताकार, निजशरीरसे आकाशको पूर्ण करनेवाला, और गिरतेहुये शरीरसहित पुरुष ब्रह्मा अथवा ब्रह्मांड शरीरधारी विराट्पुरुष होगे ऐसी संभावना होती है क्योंकि परमाकाशरूप सूर्य्यभगवान्भी निजसंपूर्ण

दिवसोंकी शोभा (प्रकाश) से रहित नहीं होसकते ॥ ५ ॥ जबतक इसप्रकारकी किंचित् चिन्ता मैं मनमें करताथा इतनेहीमें कल्पान्त पवनसे प्रेरित ब्रह्मांडखप्परके ऊपरके कपालके गिरनेके भयंकरशब्दयुक्त वेगसे सूर्य्य आकाशप्रदेशसे गिरे ॥ ६ ॥ सप्तद्वीपवती पृथिवीको क्षणमेंही पूर्ण करनेवाले अपार तथा भयंकर शरीरधारी उस सूर्य्यके गिरनेपर, सप्तद्वीप तथा भुवनोंके साथ अपने शरीरका अवश्यभावी नाश देखकर मैंने समीपस्थ अग्निमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ ८ ॥

सजातवेदाभगवान्जन्मांतरशतार्चितः ॥ माभैषीरितिदेहेनमामुवाचेंदुशीतलः ॥ ९ ॥ जयदेवत्वमस्माकंप्रतिजन्मपरायणम् ॥ अकालएवकल्पांतोजातोतःपाहिमांप्रभो ॥ १० ॥ इत्युक्तेनाग्निनाप्रोक्तंमाभैषीरितितत्पुनः ॥ उत्तिष्ठागच्छगच्छावोमल्लोकमितिचानघ ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वाशुकपृष्ठेसावारोप्य भगवांस्ततः ॥ देहैकदेशेतत्पातिभूतंदग्ध्वानभःप्लुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—और जन्मान्तरोंमें अनेकवार पूजित चन्द्रमाके सदृश शीतल शरीर धारण करके उन अग्निभगवान्ने मुझसे कहा कि–हे पुत्र ! भय न करो ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आपका जय हो, आप प्रत्येक जन्ममें हमारे शरणस्थान हो यह अकालमेंही कल्पान्त उपस्थित हुआ इस हेतुसे रक्षा कीजिये ॥ १० ॥ ऐसा मेरे कहनेके पश्चात् पुनः अग्निभगवान्ने कहा कि–हे पापरहित भय न करो, उठो, आओ हमारे (अग्नि) लोकमें चलें ॥ ११ ॥ इतना कहके निजवाहन शुकके पृष्ठपर मुझे चढाके और उस पूर्वोक्त गिरेहुये भूतके शरीरके एकदेशमें दाहद्वारा छिद्रकरके अग्निभगवान् आकाशमार्गसे उडे ॥ १२ ॥

अनंतरंनभःप्राप्यदृष्टःकष्टाकृतिर्मया ॥ सताद्दग्भूतसंपातमहोत्पातोभयप्रदः ॥ १३ ॥ तस्मिन्जवेन पतितेवसुधाचचालसांभोधिशैलवनपत्तनजंगलौघा ॥ चक्रेभृगुद्वयमयानजलस्रवंतीभीमाकृतीन्व्यधुर देहविभेदगर्तान् ॥ १४ ॥ उर्वीररासककुबुत्तरतोररासपूर्वाररासविररासचदक्षिणादिक् ॥ द्यौराररास विररासस शैलभूतंसर्वजगत्प्रलयसंभ्रमभीतमुच्चैः ॥ १५ ॥ उर्वीररासधरणेसविरावरंहःसंरंभतर्जित समस्तदिगंतरासा ॥ व्योमापिघुंघुममलंघ्यमलंचकारनागारिवृंदभयविद्रवणप्रचंडम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अनंतर आकाशमें पहुंचकर मैंने कष्टजनक आकारधारी, उसप्रकारके उत्पातसे महाउत्पातसहित और भयंकर उस पतनशील भूतको मैंने देखा ॥ १३ ॥ उसके गिरनेपर समुद्र, पर्वत, वन, नगर तथा जंगल आदिसहित पृथिवी चलनेलगी, तथा रुद्धप्रवाह नदियोंसे संयुक्तभूमिने नदियोंके जल मार्गान्तरसे निकलनेसे उनके दोनों ओर दो प्रवाह करदिया तथा उन गिरतेहुये जलोंने मनुष्यरचित तडागादिसे विलक्षण गर्त (गढे) बनादिये ॥ १४ ॥ उसके पश्चात् संपूर्ण पृथिवी, पूर्व, उत्तर, दक्षिण तथा पश्चिम चारोंदिशा, आकाश, पर्वत तथा संपूर्ण प्राणीसमूह जगत्प्रलयके संभ्रमसे भयभीत होकर उच्चस्वरसे मानों रोदन करनेलगे ॥ १५ ॥ शब्दयुक्त पतनवेगके भयसे तर्जित समस्त दिगन्तराल सहित पृथिवी तथा आकाशने उस पतित शवके धारण करनेमें गरुडआदिको भयसे विद्रावणकारक अतिप्रचंड तथा अन्यशब्दोंसे अलंघ्य दुःसह घुंघुम महाशब्द किया ॥ १६ ॥

निर्घातशब्दउदभूदभितोभयायभीमायभूधरदरीदृढदारणोत्थः ॥ उत्पातभीमजवजालयुगांतवातसंरब्धकल्पघनघोषवितीर्णतर्जः ॥ १७ ॥ तस्मिन्जवेनपतितेवसुधाररासस्सारावदिङ्मुखतयाशतवेध मागात् ॥ तत्रास्फुटन्कुलगिरींद्रमहातटानिपातालदेशमविशन्हिमवच्छिरांसि ॥ १८ ॥ आसीत्तत्प तनंतस्यमेरुशैलशिलाकृतेः ॥ दलनंशैलशृंगाणांविदारणकरंभुवः ॥ १९ ॥ क्षोभणंजलराशीनामद्रीणां भूतलार्पणम् ॥ पीडनंसर्वभूतानांक्रीडनंप्रलयार्थिनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—पर्वतोंकी कन्दराओंको प्रबलतासे विदारण करनेसे प्रादुर्भूत, तथा उत्पातोंसे भयंकरवेगयुक्त होनेसे जालकेसमान आकर्षणकरनेवाले युगान्तके पवनोंसे संक्षुभित प्रलयकालके मेघोंके शब्दोंसे सबको भयदायक वह निर्घातजनितशब्द महाभयके लिये उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ वेगसे उस शवके गिरनेपर पृथिवीने शब्द किया, सब दिशाओंके शब्दयुक्त होनेसे शतगुण अभिघात हुआ और उस अभिघातसे हिमालय, सप्त कुलपर्वतोंके महाशिखर, तडाग, पातालमें प्रविष्ट होगये ॥ १८ ॥ मेरुकी शीलाके सदृश आकारवान् उस शवका पर्वतोंके शिखरोंका संमर्दक तथा पृथिवीका विदारक वह पतन हुआ ॥ १९ ॥ समुद्रोंका संक्षोभकारक, पर्वतोंका पृथिवीके सदृश समानकारक, सर्वजीवोंका पीडक, तथा प्रलयार्थी रुद्रगणोंका क्रीडन वह पतन हुआ ॥ २० ॥

पातनंभूतलेभानोःस्थगनंद्वीपपद्धतेः ॥ चूर्णीकरणमद्रीणांदलनंमंडलावनेः ॥ २१ ॥ द्वितीयमिवभूपीठंब्रह्मांडार्द्धमिवापरम् ॥ पतितंखमिवाकृत्यातदपश्यन्नभश्वराः ॥ २२ ॥ अथपश्याम्यहंयावदसौमां

समयोऽचलः ॥ नमातिसप्तद्वीपायांभुवितस्यांगमेककम् ॥ २३ ॥ तमालोक्यमयादेवःप्रसादेसमव स्थितः ॥ संपृष्टोभगवान्वह्निःप्रभोकिमिदमित्यथ ॥ २४ ॥

अर्थ—सूर्य्यका भूमिपर पतन, द्वीपोंका आच्छादन, पर्वतोंका चूर्णीकरण, तथा भूमिमंडलका दलनरूप वह पतन हुआ ॥ २१ ॥ द्वितीय भूपीठके तुल्य, ब्रह्मांडके अन्य अर्द्धभागके समान, मूर्ताकारसे पतित उस शवको आकाशचारियोंने देखा ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् जबतक मैं देखताहुं इतनेहीमें वह मांसमयपर्वत ऐसा होगया कि उसका एक अंगभी सप्तद्वीपवती पृथिवीमें नहीं समाता ॥ २३ ॥ इसप्रकार उसको देखकर मेरे ऊपर प्रसन्नहोकर विराजमान अग्निभगवान्से मैंने पूंछा कि हे प्रभो ! यह क्या है ॥ २४ ॥

कथंमांसमयःसार्द्धसचार्कःपतितोदिवः ॥ सनमातिहिभूपीठेसपर्वतवनांबुधौ ॥ २५ ॥ अग्निरुवाच ॥ प्रतिपालयपुत्रत्वंक्षणमेकंगतत्वरः ॥ यावच्छाम्यतुदोषोयंकथयिष्यामितेततः ॥ २६ ॥ अथतस्मिन्व दत्येवंसमाजग्मुर्नभश्वराः ॥ तज्जगज्जालजातीयादिग्भ्योगगनजाखिलाः ॥ २७ ॥ सिद्धसाध्याप्सरो दैत्यगंधर्वोरगकिन्नराः ॥ ऋषयोमुनयोयक्षाःपितरोमातरोमराः ॥ २८ ॥ अथसर्वेश्वरींदेवींशरण्यांतेन भश्वराः ॥ भक्तिनम्रशिरःकायाःकालरात्रिंप्रतुष्टुवुः ॥ २९ ॥ नभश्वराऊचुः ॥ बद्धाखट्वांगशृंगेकपिल मुरुजटामंडलंपद्मयोनेःकृत्वादैत्योत्तमांगैःस्रजमुरसिशिरःशेखरंताक्ष्र्यपक्षैः ॥ यादेवीभुक्तविश्वापिब तिजगदिदंसाद्रिभूपीठभूतंसादेवीनिष्कलंकाकलिततनुलतापातुनःपालनीयान् ॥ ३० ॥

इतिश्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अवि० विप० शवोपाख्याने महाशववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमःसर्गः ॥ १३३ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह मांसमय पिंड कैसे गिरा और उसकेसाथही आकाशसे सूर्य्य कैसे गिरे और पुनः वह पर्वत वन तथा समुद्रसहित संपूर्ण भूपृष्ठपर कैसे नहीं समाता ? ॥ २५ ॥ अग्निभगवान् बोले कि–हे पुत्र ! जबतक यह दोष शान्त हो तबतक उद्वेग रहित होके एकक्षणभर प्रतीक्षा करो, इसके पश्चात् सब तुमसे मैं कहूंगा ॥२६॥ इसकेपश्चात् जब अग्निभगवान् मुझसे वैसा कहरहेथे, उसीसमय सब दिशाओंसे स्वर्गके अनुकूल वस्त्र आभूषण आदिको धारणकरके उसी जगत्के जातिके आकाशचारी जीव आये ॥ २७ ॥ उनमें सिद्ध, साध्य, अप्सरा, दैत्य, गन्धर्व, किन्नर, उरग, मनुष्य, ऋषि, मुनि, यक्ष, पीतर तथा मातृगण और सब देवता आये ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् भक्तिसे नम्रीभूत शिरआदि कायसंयुक्त सब आकाशचारी सर्वेश्वरी, भक्तवत्सल तथा शरणागतरक्षिका उस कालरात्रि भगवतीकी स्तुति करनेलगे ॥ २९ ॥ कि जो देवी कल्पान्तमें ब्रह्माजीके कपिलवर्ण जटामंडलको खट्वाके शृंगसे बांधकर, दैत्योंके मुंडोंकी माला गलेमें धारण करके, तथा गरुडके पक्षोंसे शिरका शृंगारकरके, सब संसारका ग्रास करके पर्वतादिसहित इस संपूर्ण भूपीठको पान करती है और इसप्रकार ब्रह्मांडका संहार करकेभी सर्वथा नित्य पापरहित शुद्ध चिद्रूप रहती है और केवल भक्तोंके लिये शरीर धारण करती है वह देवी अवश्य पालनीय हम लोगोंकी रक्षाकरै ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अविद्यो० विपश्चि० शवोपाख्याने महाशववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३४ ॥

उससमय आविर्भूतदेवीके शरीरका वर्णन, तथा उससे पीतरक्त मृतकका गणोंसे भोजन यह विषय इस १३४ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ विपश्चिदुवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेव्योम्नःसपतन्पुरुषोमया ॥ स्थगिताखिलभूपीठःशवरूपोविलोकितः ॥ १ ॥ सयावद्दराभिख्योदेहभागोस्ययेनभूः ॥ सप्तद्वीपापिपिहितामातुःशैलोपमोमहान् ॥ २ ॥ व ह्निनोक्तमनंततत्तद्भुजोरुशिरश्रमे ॥ लोकालोकात्परंपारंप्राप्तंह्यविषयेनृणाम् ॥ ३ ॥ व्योमवासिचयेदे वीमथस्तुवतिसादरम् ॥ व्योम्नःप्रकटतामागाच्छुष्कानुभवतिस्वयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—विपश्चित् बोला कि–जिससमय देवगण भगवतीकी स्तुति करतेथे उसी अवसरमें आकाशसे पतित तथा संपूर्ण भूपृष्ठका आच्छादक उस मृतकको पूर्णरीतिसे मैंने जाना ॥ १ ॥ हे मुने ! जिस शवने सप्तद्वीपवती पृथिवीको आच्छादित कियाथा उसशवका महापर्वतके तुल्य केवल उदरभागमात्र मैंने देखा ॥ २ ॥ और मनुष्योंके अविषय

लोकालोककेभी परपारको प्राप्त उसके अनन्तभुजा, जंघा तथा शिरोभागको तो अग्निभगवान्‌ने मुझसे कहा ॥ ३ ॥ इस रीतिसे आकाशचारी गण जब देवीकी स्तुति कररहाथा तब वह स्वयं रक्तशून्य भगवती आकाशसे प्रकट हुई ॥ ४ ॥

प्रेतवृंदैरनुगतामातृमंडललालिता ॥ कुभांडयक्षवेतालजालतारकितांबरा ॥ ५ ॥ शिरालदीर्घदोर्दंडव नीकृतनभस्तला ॥ किरंतीकीर्णदिग्दाहैर्दृष्टिपातैर्दिवाकरान् ॥ ६ ॥ स्फुरन्नानायुधाकारकचज्झणझण ध्वनि ॥ शतखंडंखगानीकंकुर्वाणाव्योमकोटरे ॥ ७ ॥

अर्थ—प्रेतसमूहोंसे अनुगत, मातृगणसे भूषित, कुभांड, यक्ष तथा वेतालादिके समूहोंसे आकाशप्रदेशको तारासंयुक्तके सदृश करनेवाली वह भगवती प्रकट हुई ॥ ५ ॥ नाडीयुक्त दीर्घ भुजदण्डोंसे वनवत् आकाशतलको संपादन करनेवाली तथा दिशाओंमें दाह विकीर्ण करनेवाले दृष्टिपातोंसे सूर्य्यसमूहको विखेरती हुई, जाज्वल्यमान नानाप्रकारके शस्त्रोंके आकरोंसे शोभायमान झन २ ध्वनिपूर्वक आकाशकोटरमें पक्षिसमूहको शतखंड करनेवाली वह देवी प्रकट हुई ॥ ६ ॥ ७ ॥

देहज्वालेक्षणोष्माढ्यैःशरीरावयवैस्त्विषः ॥ दीर्घवेणुवनाकाराःकिरंतीकोटियोजनाः ॥ ८ ॥ दंतकां तींदुविद्योतदुग्धस्नपितदिङ्मुखा ॥ कृशातिदीर्घविस्तीर्णशरीरापूरितांबरा ॥ ९ ॥ निरालंबास्पदासां ध्यावितताेवाभ्रमालिका ॥ प्रेतासनसमारूढासुरूढापरमेपदे ॥ १० ॥

अर्थ—तथा देहकी ज्वाला और नेत्रोंकी उष्णतासे पूर्ण शरीरके अवयवोंसे दीर्घ बासोंके बनाकार करोडों योजनतक प्रभाका विस्तार करती हुई, चन्द्रप्रभा तुल्य दांतोंकी दीप्ति सब दिशाओंको मानों दुग्धसे स्नान कराती हुई, कृश तथा दीर्घशरीरसे आकाशको पूर्ण करनेवाली, आलंबशून्य संध्याकालकी मेघमालिकाके समान विस्तृत, प्रेतासनपर स्थित, और ब्रह्मसे आविर्भूत वह भगवती प्रकट हुई ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

स्फुरंतीप्रज्वलद्रूपासंध्याजलधरारुणा ॥ दधानागगनांभोधौवाडवज्वलनश्रियम् ॥ ११ ॥ शवैःशवांगै र्मुसलैःप्रासतोमरमुद्गरैः ॥ बृसिकोलूखलहलैःकिरंतीचंचलाःस्रजः ॥ १२ ॥ प्रजांकटकटाटोपैर्वहंती गगनांगणे ॥ दृषदांघर्घरारावैःप्रावृड्गिरिरिवाचले ॥ १३ ॥

अर्थ—चंचल जाज्वल्यमान रूपवती, संध्याकालके मेघके समान अरुण, तथा आकाशरूपी समुद्रमें वडवानलकी शोभाको धारण करनेवाली, तथा प्रेतोंसे, प्रेतोंके शरीरोंसे, और मुसल, कुन्त, तोमर, मुद्गर, आसन, ऊलूखल तथा हलादिरचित चंचल मालाओंको विस्तारयुक्त करतीहुई वह देवी प्रकट हुई, तथा गगनरूपी अंगणमें दन्तोंके कट २ शब्दयुक्त आडंबरोंसे प्राणियोंकी मालाको ऐसे धारण कियेहुये थी जैसे वर्षाकालमें पर्वत अपने शरीरपर पाषाणोंकी मालाको धारण करता है ऐसी भगवती प्रकट हुई ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

देवाऊचुरयंदेविउपहारःकृतोंबिके ॥ सार्धस्वपरिवारेणशीघ्रमाह्रियतामिति ॥ १४ ॥ वदत्येवंसुरानीके तंशवंप्राणवायुना ॥ देवीप्रववृतेरक्तसारमाक्रष्टुमंजसा ॥ १५ ॥ प्राणेनाकृष्यमाणंतद्रक्तंभगवतीमुखे ॥ आविशत्सांध्यमेघौघइवमेरोर्गुहांतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—देवगण उस भगवतीसे बोले कि—हे देवि! यह मृतकशरीर हमलोगोंने आपको भेट कियाहै सो परिवारसहित इसका भोग लगाइये ॥ १४ ॥ इतना देवगणके कहतेही स्वयं सबके प्राणशक्तिरूप भगवतीने प्राणवायुकेद्वारा उस मृतकके सारभूत रक्तको बिना परिश्रमही आकर्षण करना आरंभ किया ॥ १५ ॥ वायुसे आकृष्यमाण वह उस शवका रक्त भगवतीमुखमें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे संध्याकालके मेघसमूह मेरुकी गुहामें ॥ १६ ॥

तावद्रक्तंतयापीतंप्राणाकृष्टंनभःस्थया ॥ यावच्छुष्कासतीतृप्तापीनासाचंडिकास्थिता ॥ १७ ॥ ततोब भूवसारक्तपरिपीनशरीरिणी ॥ रक्तावर्षाभ्रमालेवतडित्तरललोचना ॥ १८ ॥ लंबोदराभगवतीविषमा हिविभूषणा ॥ रक्तासवमदक्षीबासमस्तायुधधारिणी ॥ १९ ॥ व्योम्निनर्त्तनमारेभेस्वशरीरार्द्धपूरिते ॥ पर्यंतगिरिमालायस्थितामरनिरीक्षिता ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशमें स्थित भगवतीने प्राणसे आकृष्ट उस रक्तको यहांतक पिया कि उसके पानसे तृप्त होकर पूर्व शुष्करूपसे वह चण्डिका स्थूल होकर शोभित हुई ॥ १७ ॥ उस रुधिरपानके पश्चात् रक्तवर्ण शरीरधारिणी तथा विद्युत्के सदृश चंचल लोचनयुक्त और वर्षाकालके रक्तवर्ण मेघमालामें स्थित विद्युत्के तुल्य वह भगवती स्थित हुई ॥ १८ ॥ लंबोदरयुक्त, भयंकर सर्पोंसे भूषित, रक्तरूपी मद्यसे उन्मत्त, और नानाप्रकारके शस्त्रास्त्रधारिणी देवीने

निजशरीरसे अर्द्धभागपूरित आकाशमें नृत्य करना आरंभकिया, और नृत्य करतेहुये उस महेश्वरीका दर्शन लोकालोकपर्वतके शिखरपर स्थित देवताओंने किया ॥ १९ ॥ २० ॥

ततःपिशाचकुंभांडरूपिकादिमहागणाः ॥ शवमावार्यांचक्रुर्महाचलमिवांबुदाः ॥ २१ ॥ शवशैलो गृहीतोसौकुंभांडैःकटिभागतः ॥ उदराद्रूपिकावृंदैर्यक्षैःकुंजरविक्षतैः ॥ २२ ॥ भुजोरुकंधराद्यास्तेत स्यान्येवयवायतः ॥ ब्रह्मांडस्यपरंपारंप्राप्ताःपरमविस्तृताः ॥ २३ ॥ ततस्तैर्भूतसंघातैःस्थितादूरेदिगं तरे ॥ नप्राप्तावैहितत्रैवकालेनकलिताःस्वयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उस नृत्यारंभके पश्चात् पिशाच कुभांड आदि भगवतीके पार्षदरूप महागणने उस शवको ऐसे घेरलिया जैसे महापर्वतको मेघमण्डल ॥ २१ ॥ कुभांडनामक गणने उस शवरूपी पर्वतको कटिभागसे ग्रहणकिया, रूपिकासमूहने उदरभागसे और यक्षोंने तो निजकुंजर दंतोंसे क्षत पृष्टभागसे ग्रहण किया ॥ २२ ॥ और परमविशाल भुजा, जंघा, तथा कन्धराआदि उस शवके अवयवतो ब्रह्मांडखप्परकेभी परभागमें प्राप्त थे, इस हेतुसे प्रेतादिके समूह वहां नहीं प्राप्त होसके, किन्तु वे भाग उसी स्थानपर काल पाके स्वयं गलित होगये ॥ २३ ॥ २४ ॥

नृत्यंत्यांचंडिकायांखेभूतवृंदेशवाकुले ॥ देवेष्वद्रिषुतिष्ठत्सुबभूवभुवनंतदा ॥ २५ ॥ पिंडाहार्यामदुर्गं धिगुंठीकृतककुब्गणम् ॥ रक्तगर्भाभ्रनिर्व्यूहैःखादिरज्ज्वलनोज्ज्वलम् ॥ २६ ॥ मांसचर्वणसंरंभप्रो द्यच्छवशवस्वनम् ॥ लतास्थिखंडनोड्डीनबृहत्कटकटारवम् ॥ २७ ॥ भूतसंघट्टविश्लेषवशाद्भीषणनिःस्व नम् ॥ हिमवद्विंध्यशैलाद्रिप्रमाणास्थ्यचलावृतम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिससमय भगवतीआकाशमें नृत्य करतीथी, प्रेतसमूह मृतशरीरके भक्षणमें व्यग्र थे और देवतागण लोकालोकपर्वतके शिखरपर स्थित थे. उससमय भुवनमंडल इसप्रकार हुआ ॥ २५ ॥ कि भक्ष्यमाण तथा एकदेशसे दूसरे देशमें प्राप्यमाण अपक्क मांस तथा चर्बीआदिके दुर्गन्धसे व्याप्त दिग्मण्डलसहित, तथा रक्तपूर्ण मेघसमूहोंसे खदिरसंयुक्त अग्निकेसमान उज्ज्वल, तथा मांसके भक्षणमें व्यग्र प्रेतोंके शव २ शब्दोंसे व्याप्त, तथा लताओंके सदृश अस्थियों (हड्डियों) के खंडनोंसे आकाशमें महा कट २ शब्दोंसे पूर्ण भुवन उससमय होगया ॥ २६ ॥ २७ ॥ प्राणिनके संघट्ट तथा विभागसे भयंकर शब्दयुक्त तथा हिमालय और विंध्याचलके प्रमाण अस्थिरूपपर्वतसे आच्छादित ॥ २८ ॥

देवीमुखानलज्वालापक्वमांसाक्तभूतलम् ॥ रक्तसीकरनीहारसिंदूरितककुब्गणम् ॥ २९ ॥ सर्वतःप्रेक्ष कैर्देवैःसप्राकारदिगंतरम् ॥ रुधिरैकार्णवीभूतसप्तद्वीपवसुंधरम् ॥ ३० ॥ अत्यंतांतर्हिताशेषसमस्ता चलमंडलम् ॥ रक्तप्रभाभ्रसंभारवस्त्रावृतदिगंगनम् ॥ ३१ ॥ वृत्तालोलभुजभ्रांतहेतिच्छन्ननभस्तलम् ॥ दूरस्मृतिपथप्राप्तपुरपत्तनमंडलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—देवीके मुखके अग्निकी ज्वालासे पक्कमांससे पूर्ण भूतलसंयुक्त, तथा रक्तकणयुक्त कुहिरेसे सिंदुरवर्ण दिशागणसहित भुवन होगया ॥ २९ ॥ तथा चारोंओरसे दर्शक देवगणसहित रक्तवर्णसे आच्छादितके तुल्य सब दिशाओंके अन्तरालप्रदेशयुक्त और रुधिररूपी महासमुद्रके समान सप्तद्वीपवती पृथिवीसहित सब ब्रह्मांड होगया ॥ ३० ॥ तथा रुधिर अस्थि आदिसे आच्छादित होनेसे अन्तर्धानदशाको प्राप्त समस्तपर्वतसहित और रक्तप्रभासे रंजित मेघसमूहोंसे रक्तवर्णवस्त्रसे आच्छादित दिशारूपी अंगनाओंसे शोभित जगत् होगया ॥ ३१ ॥ अतिदृढ तथा चंचल भुजाओंसे भ्रामित देवी और उसके गणोंसे आच्छादित आकाशतलसहित, तथा अतिदूर और स्मरणदशामात्रको प्राप्त ग्राम नगरादि मंडलयुक्त ॥ ३२ ॥

अत्यंतासंभवद्रूपसर्वस्थावरजंगमम् ॥ संपन्नानंतकुंभांडरूपिकाद्येकसंगमम् ॥ ३३ ॥ नृत्तलोककरा कारखगावलनजालकैः ॥ मानसूत्रैरिवविधेरन्यद्रचयतोजगत् ॥ ३४ ॥ भूमेरार्कगतंनीतैःपिशाचैरांत्र तंतुभिः ॥ मिमानमिवदिक्कुंजैस्तिर्यगूर्ध्वमधोजगत् ॥ ३५ ॥ जगदालोक्यतत्तादृगुदक्कोपप्लवाप्लुतम् ॥ भूतपूर्वमहीपीठस्थितिरक्तार्णवीकृतम् ॥ ३६ ॥ द्वीपसप्तकपर्यंतेलोकालोकाद्रिमूर्द्धनि ॥ तदंगकैरना क्रांतेस्थिताःखिन्नतराःसुराः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अत्यन्त विलक्षणरूपताको प्राप्त सम्पूर्ण स्थावरजंगमसहित, तथा अनन्तरूपधारी कुभांड पिशाचादिके समाजसंयुक्त वह संसार होगया ॥ ३३ ॥ तथा नृत्यमें तत्पर भूतगणोंके अभिनयाकार बन्धनार्थ प्रसारित हस्तरूपजालोंसे मानों अन्यजगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजीके मानसूत्रोंके सदृश स्थित, तथा पिशाचोंके द्वारा पृथिवीसे लेके सूर्य्यमार्गपर्य्यन्त प्रापित दिशारूपी कुंज तथा आन्त्ररूपी सूत्रोंसे, नीचेऊपर सब त्रैलोक्य मापितके सदृश भा-

सनेलगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उसप्रकारके उपद्रवसे आक्रान्त और पूर्वभूत महीतलपर स्थित रुधिरसे महासमुद्रके सदृश रचित जगत्को देखके, उस शवके दुष्ट अंगोंके आक्रमणसे रहित लोकालोकपर्वतके शिखरपर स्थित देवगण अतिदुःखित हुये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मांडादपिनिर्गत्ययस्यतेवयवागताः ॥ लोकालोकाचलस्तेनब्रह्मन्नस्थगितःकथम् ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्वीपसप्तकमध्येस्मिन्रामतस्योदरंस्थितम् ॥ शिरःखुरभुजाद्यंगंब्रह्मांडात्परतःस्थितम् ॥ ३९ ॥ पार्श्वाभ्यामूरुमध्याच्चकटिपार्श्वद्वयात्तथा ॥ शिरोंसद्वयमध्याभ्यांलोकालोकःसमक्ष्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी बोले कि–हे भगवन्! जिस मृतकके हस्तपादआदि अवयव ब्रह्मांडसेभी बाहर जाके गिरे तो उसके अवयवोंसे लोकालोकपर्वत क्यों न आच्छादित हुआ ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! उस मृतकका उदरभाग सातोद्वीपमें स्थितथा और उसके पाद तथा भुजा आदि अंग सब ब्रह्मांडके बाहर थे यह भासका कथन सत्य है परन्तु ॥ ३९ ॥ उसके जंघड कटिके नीचेके भाग तथा गलासे लोकालोक पर्वतका शिखर ऊंचा है इससे वह ऊपर लक्षित होताहै ॥ ४० ॥

तत्रोपविष्टास्तेदेवालक्ष्यंतेशृंगमूर्द्धसु ॥ सुशुद्धकांतयस्तापादजलाजलदाइव ॥ ४१ ॥ प्रसारितांगकमधोवक्त्रंतत्पतितंशवम् ॥ संभक्षयतिभूतौघेप्रनृत्यंतीषुमातृषु ॥ ४२ ॥ वहत्स्वसृक्प्रवाहेषुमेदोगंधे विजृंभिते ॥ दुःखिताश्चिंतयामासुःप्रत्येकममराइदम् ॥ ४३ ॥ हाकष्टंक्कगताप्रथ्वीक्कगताजलराशयः ॥ क्कगताजनसंघाताःक्कगताधरणीधराः ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस शिखरस्थित देवता ऐसे लक्षित होतेहैं जैसे सूर्य्यके तापसे जलरहित शुद्ध शोभायुक्त मेघ ॥ ४१ ॥ सर्वत्र विस्तृत अंगसहित और अधोमुखपतित उस मृतकको जब भूतसमूह भक्षण करतेथे, तथा जिससमय मातृकायें नृत्य करतीथीं ॥ ४२ ॥ तथा रुधिरकी अविच्छिन्न धारा वहतीथी, और चारोंओरसे चर्बीमांसादिका दुर्गन्ध पूर्ण था, उससमय दुःखित प्रत्येक देवताओंने यह चिंतन किया ॥ ४३ ॥ कि हा! अति खेद है! पृथिवी कहां गई! समुद्र कहां गये! संपूर्ण जनसमूह क्या होगये! और पर्वतभी क्या होगये? ॥ ४४ ॥

तादृक्चंदनमंदारकदंबवनमंडितः ॥ मंडपःपुष्पराशीनांक्कष्टंक्कमलयोगतः ॥ ४५ ॥ उच्चावदाताविपुलाहिमवद्भूमयोपिताः ॥ नीताःशौक्ल्यरुषेवाशुरुधिरेणात्मपंकताम् ॥ ४६ ॥ क्रौंचद्वीपतलेक्रौंचेयोभूत्कल्पद्रुमोमहान् ॥ ब्रह्मलोकलसच्छाखःसोपिचूर्णत्वमागतः ॥ ४७ ॥ हाक्षीरार्णवपारिजातकमलाचंद्रामृतानांपतेहादध्यर्णवनावनीतशिखरिप्रोद्भूतवेलावन ॥ हामध्वर्णवनालिकेरगिरिकेयोगेश्वरीसेवितक्केदानींसमुपैष्यथक्कवनितादिग्दर्पणत्वंगताः ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा उसप्रकारके विलक्षण चन्दन, मन्दार और कदम्बआदिके वनसे भूषित तथा पुष्पराशियोंके मंडपकेसमान मलयाचल क्या होगया ॥ ४५ ॥ हा! अति ऊंचि, शुद्ध तथा विशाल हिमालयकी उन भूमियोंकोभी मानों श्वेतवर्णके ऊपर क्रोधकरके रक्तने अपने तुल्य (रक्त) कर्दमभावको प्राप्तकियाहै ॥ ४६ ॥ क्रौंचद्वीपके तले क्रौंचपर्वतपर ब्रह्मलोकतक शोभायमान शाखायुक्त जो महान् कल्पद्रुम था वह भी चूर्णताको प्राप्त होगया ॥ ४७ ॥ पारिजात, लक्ष्मी, चन्द्र तथा अमृतके उत्पादक होनेसे चारोंके अधिपतिरूप हे क्षीरसागर! नवनीत (मक्खन) पूर्णपर्वतोंपर उत्पन्न तटस्थबनसंयुक्त हे दधिसमुद्र! तथा तटस्थ नालिकेरप्रधान शोचनीयपर्वतपर स्थित श्रीमहामाया योगीश्वरीसे सेवित हे मधुसमुद्र! हा आप सब कहांगये, तथा देवांगना और दिशाओंके दर्पणभूत स्फटिकमणिके पर्वत इससमय कहांगये? ॥ ४८ ॥

हाकल्पद्रुमकांचनामललतानिःसंधिबंधाचलक्रौंचद्वीपविरंचहंसनलिनीनीरंध्रदिग्जालक ॥ यातःक्केहकदंबकाननदरीविश्रांतविद्याधरीक्रीडाकोविदनागरामरगृहत्वंपुष्करद्वीपक ॥ ४९ ॥ स्वादूदोदग्रतापावलकुसुममहीपावनानांवनानांगोमेधद्वीपकल्पद्रुमकनकलतासुंदरीणांदरीणाम् ॥ शाकद्वीपाचलानाममरतरुवनैर्दर्शितानांसितानांस्मृत्यैवोदेतिपुण्यंसुरपदसुखदंमानवानांनवानाम् ॥ ५० ॥ मंदानिलावलितपल्लवबालवल्लीसंतानभासितसमस्तदिगंतराणि ॥ ध्वस्तानितानिसकलानिवनानिकष्टमाश्वासमे

---

१ यह प्रश्न श्रीरामजीने वसिष्ठजीको सर्वज्ञ जानकर उन्हींसे किया न कि भाससे अतएव उन्हीने उत्तर दिया ॥

ष्यतिकथंजनतानजाने ॥ ५१ ॥ कदानुतानीक्षुरसाब्धितीरेवनानिखंडाचलभूमिकासु ॥ द्रक्ष्येमभूयो गुडमोदकानितथाकुमाराण्यपिशर्कराया: ॥ ५२ ॥

अर्थ—हा ! कल्पवृक्षोंसे संयुक्त कांचनमयी लताओंसे निरंतर सम्बद्ध क्रौंचाचलसहित हे क्रौंचद्वीप! तथा ब्रह्माके हंसो और कमलिनीयों निरंतर आवृत दिग्जालसहित, तथा कदम्बोंके वनसहित कन्दराओंमें विश्राम करनेवाली विद्याधरियोंकी रतिक्रीडाओंमें कुशल नागर तथा देवताओंके गृहरूप हे पुष्करद्वीप! तुम दोनों यहांसे कहां चलेगये ॥ ४९ ॥ निजसेवियोंके प्रचंड सन्तापोंके रोकनेवाले स्वादुजलयुक्त समुद्र तथा पुष्पोंसे आच्छन्न और पृथ्वीको पवित्र करनेवाले बनोंके गोमेधद्वीप, उसके कल्पवृक्ष, वहांकी लताओंसे वेष्टित कन्दराओंके तथा कल्पवृक्षोंके बनोंसे उनके पुष्पोंसे अंकित तथा श्वेतवर्ण क्रौंचाचलसहित नूतनपदार्थोंके स्मरणमात्रसे मनुष्योंको स्वर्गसुखदायक पुण्यका उदय होताहै ॥ ५० ॥ मन्दपवनसे आवेष्टित कोमललताओंसे संयुक्त कल्पवृक्षोंसे संपूर्ण दिगन्तरालोंको प्रकाशित करनेवाले वे अपूर्व बन सब नष्ट होगये. हा ! अब अस्मदादि जनसमूह कहां विश्राम करैंगे यह मैं नहीं जानता ॥ ५१ ॥ हा ! इक्षुरससमुद्रके तटपर पाषाणीभूत भूमियोंपर मधुरमोदकमय बनोंको तथा शर्कराकी पुत्तलिकाओंको पुन: कब देखैंगे ? ॥ ५२ ॥

कदंबकल्पद्रुमशीतलेषुतालीतमालीसवनाचलस्य ॥ कदानुतच्चंदनसुंदरीणांपश्येमनृत्तंकनकालयेषु ॥ ५३ ॥ गतानिकष्टंस्मरणीयरूपतांजंबूद्रुमस्याग्रफलानितान्यपि ॥ येषांनदीद्वीपसमुद्रमेखलावहत्य सौजंबुमतीरसांबुभि:॥५४॥ शिलींध्रनीरंध्रमहीध्ररंध्रशीबामरस्त्रीकृतगीतनृत्यम् ॥ संस्मृत्यसंस्मृत्यसु रोदतीरंप्रागब्जमुर्वीवहृदावदीर्ये ॥ ५५ ॥ पश्यास्रगंभसिनवार्णवमूर्ध्निभासासौवर्णपर्वतशताग्रशिखा: कचंति ॥ संध्यारुणाउदयनास्तमयावनीनांस्तोकोदितेंदुकलिकाइवदिङ्मुखेषु ॥ ५६ ॥ तादृक्सागरवा रिराशिवलयाद्वीपांतरालंकृताप्रोच्चाद्रींद्रनिविष्टवारिदघटानीलोत्पलानांस्थली ॥ स्रोतोजंगलकाननोग्र नगरग्रामाग्रहारांबरानोजानेतरुपल्लवांकुरवतीकष्टंकयातामही ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ०वि० शवोपाख्याने देवपरिदेवनवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदुत्तरशततम:सर्ग: ॥ १३४ ॥

अर्थ—हा ! ताली तथा तमालीआदिके वनसहित उस मेरुपर्वतके कदंब कल्पवृक्षादिसे शीतल सुवर्णके स्थानोंमें स्थित चन्दनलिप्त अप्सराओंके वह अनेक वार अनुभूत नृत्य पुन: कब देखैंगे ॥ ५३ ॥ हा अतिखेदका विषय है कि जंबूवृक्षके गजप्रमाण तथा जांबूनदसुवर्णके हेतु वे उत्तमफल नष्ट होगये, जिन फलोंके रससे उत्पन्न नदीको द्वीप तथा समुद्ररूप मेखलाधारिणी यह जंबूद्वीपकी पृथिवी धारण करती है ॥ ५४ ॥ भ्रमरोंसे पूर्ण पर्वतोंकी गुहाओंमें मद्यसे उन्मत्त देवांगनाओंके नृत्यसहित सुरासमुद्रके तटको पुन: २ स्मरणकरके प्रात:कालके कमलके सदृश मेरा हृदय विदीर्ण होताहै ॥ ५५ ॥ हे मित्र ! देखिये रुधिररूपी जलसे पूर्ण इस नूतनसमुद्रके ऊपरभागमें सुवर्णमय मेरुआदि पर्वतोंके शिखर उत्तरआदि दिशाओंमें उदयाचल तथा अस्ताचलके निकटकी भूमियोंकी दोनोंकालकी संध्याओंसे अरुण किंचित् उदित चन्द्र कलिकाके सदृश दीप्तिसे प्रकाशित होरहेहैं ॥ ५६ ॥ हा ! कष्ट ! ! पूर्वोक्त जलसमुद्ररूप कंकणधारिणी, अनेक द्वीपद्वीपान्तरोंसे अलंकृत, ऊंचेनीचे पर्वतरूप स्तनोंमें संलग्न मेघरूप कमलमालाओंसे भूषित, स्रोत, जंगल, भटोंसे उग्रनगर तथा ब्राह्मणोंके ग्रामरूपी वस्त्रधारिणी, तथा वृक्षोंके पत्र पुष्पआदिसे भूषित पृथिवी नजानै कहां चलगई ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विपश्चि० शवोपाख्याने देवपरिदेवनवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदुत्तरशततम: सर्ग: ॥ १३४ ॥

पंचत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

योगीश्वरीके सेवकोंके द्वारा मांस भुक्त होने तथा रक्तपान करनेपर चर्बीकेसाथ शेषरक्तसे यह भूमि मदिराका समुद्र बनादीगई इस विषयका वर्णन इस १३५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मत्तेनभूतवृंदेनकिंचिच्छेषीकृतेशवे ॥ इदमूचु:पुनर्दिक्षुगिरौदेवा:सवासवा: ॥ ॥ १ ॥ विद्याधरामरविहारविमानभूमावप्यास्तृतान्यशिशिरीकरणायभूतै: ॥ मेदोमयानिपवनप्रसृता मलाभ्रखंडांचितांबरसमान्युरुजालकानि ॥ २ ॥ द्वीपेषुसप्तस्वपिपश्यमेदोजलानिभूतै:प्रविसारिता

नि ॥ भुक्तंचमांसंरुधिरंचपीतंकिंचिद्गतासंप्रतिदृश्यतांभूः ॥ ३ ॥ मेदःपटैरावलिताखिलांगीकष्टंस्थितासंप्रतिमोदनाभूः ॥ मेदोमयैःशारदमेघजालैःसकंबलानीववनानिभांति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! मत्तभूतसमूह शवको भोजनके द्वारा किंचित् शेषकरके दिशाओंमें जब स्थिततथा उससमय लोकालोकके शिखरपर स्थित इन्द्रादिदेवोंने यह कहा ॥ १ ॥ कि देखो विद्याधर तथा देवताओंके विहारस्थान विमानोंकी भूमि (आकाश) कोभी संतप्त करनेकेलिये भगवतीके गणोंने चर्बीसे पूर्ण पवनसे विस्तृत निर्मल मेघखंडोंसे युक्त आकाशके तुल्य महाआंतोंकी जालोंको फैलायाहै ॥ २ ॥ देखो सातोद्वीपोंमें चर्बी मिश्रितजलोंको देवीके गणोंने फैलायेहैं मांस खालिया और रक्तपान किया अब किंचित् दृश्यरूपताको यह भूमि प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ ४ ॥

पश्यैतानितदस्थीनिसंपन्नानिमहाद्रयः ॥ हिमाद्रिशिखराणीवस्थितान्यावार्यदिक्तटम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देवेषुकथयत्स्वेवंकृत्वेमांमेदिनींधराम् ॥ मेदोजालैःसभूतौघोमत्तोव्योम्निननर्तह ॥ ६ ॥ नृत्यत्सुभूतवृंदेषुशिष्टंरक्तंसुरैर्भुवः ॥ एकप्रवाहेणैकस्मिन्निक्षिप्तंमकरालये ॥ ७ ॥ सुरार्णवंतमेवैनंसंकल्पंविदधुःसुराः ॥ ततःप्रभृतिसोद्यापिसंपन्नोमदिरार्णवः ॥ ८ ॥

अर्थ—देखो उस शवकी अस्थियोंके महापर्वत बनगये हैं जो कि हिमालयके शिखरोंके तुल्य सब दिशाओंको रोध (क) करके स्थित हैं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—जिससमय देवतागण ऐसा कहरहेथे उससमय देवीगण इस पृथिवीको चर्बियोंके जालोंसे लिप्तकरके और मत्त होके आकाशमें नाचनेलगे ॥ ६ ॥ जिससमय भगवतीके गण इसप्रकार नृत्य कररहेथे उसीसमय पृथिवीपरका संपूर्ण शेषरक्त सबदेवता तथा भगवतीके संकल्पसे एकही प्रवाहसे किसी एक समुद्रमें फेंकदिया गया ॥ ७ ॥ और उसीको देवताओंने मदिराका समुद्र अपने संकलपसे बनाया, और उसीसमयसे लेके अबतक वह मदिराका समुद्र है ॥ ८ ॥

भूतानिनृत्तमाकाशेतानिकृत्वापिबंतिताम् ॥ मदिरांपुनराकाशेनृत्यंत्यानंदमंदिरे ॥ ९ ॥ पिबंत्यद्यापितानीवमदिरांमदिरार्णवात् ॥ खेनृत्यंतिचभूतानिसहयोगेश्वरीगणैः ॥ १० ॥ तेषांतान्यथभूतानांमेदोजालानिभूतले ॥ विस्तृतान्यवशुष्काणिस्थितातोमेदिनीमही ॥ ११ ॥ इतिक्रमाच्छांतिमुपागतेशवे पुनःप्रवृत्तेदिनयामिनीक्रमे ॥ प्रजांससर्जाथनवाःप्रजापतिःपुनःससर्गोभवदत्रपूर्ववत् ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० शवोपशमोनाम पंचत्रिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १३५ ॥

अर्थ—भूतगण आकाशमें नृत्यकरके उस मद्यको पान करतेहैं और पुनः आनन्दमंदिर आकाशमें नृत्यकरते हैं ॥ ९ ॥ भगवतीके गण अबभी उस समुद्रके मद्यको पीते हैं और आकाशमें योगीश्वरीके साथ नृत्यभी करते हैं ॥ १० ॥ उन भूतगणोंसे भुक्त तथा पीत शेष जो मेद (चर्बी) के शुष्क जाल भूतलपर विस्तृत हुये इसीकारणसे यह पृथिवी मेदिनी (मेदावाली) इस नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ इसप्रकार क्रमसे उस शवके नष्ट होनेपर, सूर्य्य आदिके निज २ स्थानपर आरोपणके पश्चात् मेरुआदि पर्वतोंके उद्धारपूर्वक जब रात्रिदिनका क्रम पुनः प्रवृत्त हुआ तब प्रजापतिने नूतन प्रजाओंको उत्पन्न किया, और यह सृष्टि पुनः पूर्ववत् होगई ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अ०वि०विप० शवोपशमो नाम पंचत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

षड्त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३६ ॥

भासके पूंछनेपर अग्निभगवान्ने उस शवका आरंभ सब वृत्तान्त तथा मशक, एण और व्याध आदि असुरका वृत्तान्त इस १३६ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ भासउवाच ॥ अथाहंतंमहादेवंपावकंपृष्टवानिदम् ॥ शुकपक्षतिकोणस्थःश्रूयतामवनीश्वर ॥ १ ॥ भगवन्सर्वयज्ञेशस्वाहाधिपहुताशन ॥ किमिदंनामसंपन्नंकथ्यतांकिमिदंशवम् ॥ २ ॥ वह्निरुवाच ॥ श्रूयतामखिलंराजन्यथावद्वर्णयामिते ॥ त्रैलोक्यभासुरानंतशववृत्तांतमक्षतम् ॥ ३ ॥ अस्त्यनंतमनाकारंपरमंव्योमचिन्मयम् ॥ यत्रेमान्यपसंख्यानिजगंतिपरमाणवः ॥ ४ ॥

अर्थ—भास बोला कि-हे राजन् दशरथ ! सुनिये उससमय अग्निके वाहन शुकके पक्षके मूलमें स्थित मैंने महादेव सबको पवित्रकारक अग्निभगवान्से यह पूंछा कि ॥ १ ॥ हे सब यज्ञोंके स्वामी तथा स्वाहाके अधिप अग्निभगवन् कृपाकरके कहिये यह क्या हुआ और यह शव क्या है ॥ २ ॥ अग्निभगवान् बोले कि-हे राजन् ! सुनो यथावत् सब तुमसे कहताहुं. त्रिलोकको प्रकाशकरनेवाला यह अनन्त शवका वृत्तान्त है ॥ ३ ॥ अनन्तआकार शून्य तथा परम चिन्मय आकाश है, जिसमें असंख्य जगत्रूप परमाणु हैं ॥ ४ ॥

शुद्धचिन्मात्रनभसितस्मिन्सर्वगतेकचित् ॥ सर्वात्मन्युदभूत्संवित्संवेदनमयीस्वयम् ॥ ५ ॥ सा तेजःपरमाणुत्वमपश्यद्वेदनावशात् ॥ भावितार्थात्मिकतयास्वप्नेत्वमिवपांथताम् ॥ ६ ॥ परमाणुरसं विस्वादपश्यदणुतांस्वयम् ॥ भास्वतींपद्मजरजस्तुल्यांसंकल्पनात्मिकाम् ॥ ७ ॥ सोच्छूनतांभावयंतीपुनरप्यभवत्स्वयम् ॥ चक्षुरादीनींद्रियाणिवपुष्यन्वभवत्स्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—शुद्ध चिन्मय, सर्वव्यापी तथा सर्वरूप आकाशमें विषयाकार ज्ञानमयी संवित् स्वयं उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ निज ज्ञानमय स्वभावसे उस संवित्ने अपनेहीके भावीपदार्थरूप होनेसे तेजःपरमाणुरूप ऐसे देखा जैसे तुम भावनावशसे स्वप्नमें अपने पथिकरूपसे ॥ ६ ॥ और अज्ञानावृत चित्स्वभाव होनेसे उसपरमाणुने अपनेको कमलके रजके तुल्य प्रकाशमयी संकल्पमय अणुरूपतासे देखा ॥ ७ ॥ इसकेपश्चात् अपनेमें वर्द्धनशीलताकी भावना करतीहुई नेत्रआदि इन्द्रियोंको अनुभव उसने किया और पुनः उन इन्द्रियोंको स्वयं शरीरमें संलग्न अनुभव किया ॥ ८ ॥

अपश्यदग्रेचजगच्चक्षुरादिस्वभावतः ॥ आधाराधेयवद्भूतमयंस्वप्नपुरंयथा ॥९॥ असुरोनामतत्रासीत्प्राणीमानीबभूवह ॥ असत्यप्रतिभासात्मपितृमातृपितामहः ॥ १० ॥ दर्पोत्सिक्ततयातत्रकस्यचित्समहामुनेः ॥ यदाश्रमंदितवानासीदाश्रमंशर्मभाजनम् ॥ ११ ॥ मुनिःशापमदात्तस्यमहाकारतयाश्रमः ॥ त्वयायन्नाशितोभूत्वाभवत्वंमशकोधमः ॥ १२ ॥

अर्थ—और नेत्रआदिके स्वभावसे शब्द, स्पर्श, रूपादिगुणोंके आधार तथा आधेयरूप भूतमय इस संसारको स्वप्नके नगरवत् देखा ॥ ९ ॥ उसीसंसारमें असुरजातिका एक प्राणी था जो कि असुर स्वभावसेही अभिमानादि दुर्गुणोंसे युक्त था, तथा उसके पितृपितामहादिभी विदूरथके पिताकेसमान मिथ्याप्रतिभासरूप अध्यस्त थे ॥ १० ॥ निजअसुर स्वभावके अभिमानसे उसने किसी महामुनिके मंगलदायक आश्रमको निजमहाशरीरसे मर्दन करदियाथा ॥ ११ ॥ तब मुनिने उसको शाप दिया कि तुने इस अपने महाशरीरसे इस आश्रमको नष्ट कियाहै इसलिये महाअधम क्षुद्र मशक (मच्छर) होजा ॥ १२ ॥

सतच्छापहुताशोथतस्मिन्नेवतदाक्षणे ॥ असुरंभस्मसाच्चक्रेजलमौर्वइवानलः ॥ १३ ॥ निराकारंनिराधारमाकाशवलयोपमम् ॥ चित्तंकिंचिदिवाचेत्यमासीच्चेतनमासुरम् ॥ १४ ॥ तदेकत्वंययौसाम्याद्भूताकाशेनचेतनम् ॥ तदास्पदेनतत्राथवायुनाचैकतांययौ ॥ १५ ॥ आसीच्चेतनवानात्माभविष्यत्प्राणिनामकः ॥ रजसापयसाव्याप्तस्तेजसानभसाणुना ॥ १६ ॥

अर्थ—उस महामुनिके शापरूपअग्निने उसी क्षणमें उसे ऐसे भस्म करडाला जैसे जलको वडवानल ॥ १३ ॥ उससमय उसअसुरका चेतन निराकार, तथा निराधार आकाशके कटकवत् मूर्छित समान स्थित था ॥ १४ ॥ और वह अकृत चेतन भूताकाशकेसाथ समताहोनेसे मिलगया और भूताकाश वायुमें मिला ॥ १५ ॥ और वह प्राणवायु भविष्यत् प्राणीनामसे अपंचीकृत पार्थिवआदि चारोंभूतोंसे व्याप्त था ॥ १६ ॥

सपंचतन्मात्रमयश्चिन्मात्रलवकोणुकः ॥ स्पंदमापस्वभावेनव्योम्निवातलवोयथा ॥ १७ ॥ अथतस्यानिलांतस्थंचेतनंतद्व्यबुध्यत ॥ कालानिलजलैर्भूमौबीजमंकुरकद्यथा ॥ १८ ॥ शुद्धशापविदंतस्थामशकत्वविदास्यचित ॥ वेधितामशकांगानिविदित्वामशकोभवत् ॥ १९ ॥ स्वेदजस्याल्पदेहस्यनिःश्वासनिपतत्तनोः ॥ द्वेतस्यमशकस्येहदिनेभवतिजीवितम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह प्राणवायु पंचतन्मात्रामय चिन्मात्र अणु आकाशमें चेष्टाको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे वायु ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् उस चेष्टाके कारण उस प्राणवायुमें विद्यमान चेतनको लिंगशरीरका ज्ञान ऐसे उत्पन्न हुआ जैसे वर्षाकालमें वायु तथा जलके द्वारा भूमिस्थ बीजमें अंकुर ॥ १८ ॥ अनन्तर शुद्ध मुनिके शापके जाननेवाली वह असुरके प्राणस्थ संवित् (चित्) मशकके संस्कारसे विद्ध होकर मशकके हस्तपादआदि अवयवोंको जानकर स्वयं मशकरूप

होगई ॥ १९ ॥ स्वेदसे उत्पन्न, अल्पशरीर तथा श्वाससेभी उडनेवाले देहयुक्त उस मशक (मच्छर) का जीवन केवल दोही दिन हुआ ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ प्राणिनामिहसर्वेषांयोन्यंतरजएवकिम् ॥ समुद्भवःसंभवतिकिमुतान्योपिवाप्रभो॥२१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मादीनांतृणांतानांद्विधाभवतिसंभवः ॥ एकोब्रह्ममयोन्यस्तुभ्रांतिजस्ताविमौ शृणु ॥२२॥ पूर्वरूढजगद्भ्रांतिभूततन्मात्ररंजनात् ॥ भूतानांसंभवःप्रोक्तोभ्रांतिजोदृश्यसंगतः ॥ २३ ॥ अभातायांजगद्भ्रांतौभूतभावःस्वयंभवन् ॥ यःसब्रह्ममयःप्रोक्तःसंभवोनसयोनिजः ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! जाग्रत्दशामें किसी न किसी योनिसेही प्राणियोंकी उत्पत्ति होतीहै वा प्रकारान्तरसेभी ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी तृणसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्तकी दोप्रकारसे उत्पत्ति है एक तो ब्रह्ममय और दूसरी भ्रान्तिमय सो उन दोनोंको तुम सुनो ॥ २२ ॥ पूर्वजन्मोंकी योनियोंके अनुभवसे देहोंमें दृढीभूत अभेदभ्रमसे तत्तत् भूतोंके एकाकारसे दृश्यमें प्राप्त जो प्राणियोंकी उत्पत्ति होतीहै वह भ्रान्तिजन्य है ॥ २३ ॥ नित्य मुक्त ब्रह्मको सर्वथा भानरहित जगत्भ्रान्तिमें विवर्तोपादानरूपसे जो सृष्टिकी आदिमें ब्रह्म स्वयं चारप्रकारके जीवोंका रूप धारण करताहै वह संभव (उत्पत्तिक्रम) ब्रह्म कहाताहै, वह योनिज नहीं है ॥ २४ ॥

एवंस्थितेसमशकोजगद्भ्रांतिवशोत्थितः ॥ नतुब्रह्मोत्थितस्तस्यरामचेष्टाक्रमंशृणु ॥ २५ ॥ क्षमेक्षुशष्प कक्षादिपुंजगुंजेषुगुंजता ॥ स्वायुषोर्द्धंदिनंतेनसर्वंभुक्तंविवल्गता ॥ २६ ॥ शाद्वलोदरदोलायांदोलनं बाललीलया ॥ चिरमारब्धमेतेनसार्द्धंमशिकयास्वयम् ॥ २७ ॥ दोलाश्रमार्तस्तत्रासौयावद्विश्राम्यति क्वचित् ॥ तावद्धरिणपादाग्रगिरिपातेनचूर्णितः ॥ २८ ॥

अर्थ—परन्तु उस ब्रह्ममय उत्पत्तिका अनुभव अजातसिद्ध कपिल सनकादि सिद्धोंहीको होताहै न कि अज्ञोंको इसप्रकार सिद्धान्त होनेपर वह मच्छर जगत्भ्रमसेही उत्पन्न हुआ न कि ब्रह्मसे और अब उसके चेष्टाक्रमको तुम सुनो ॥ २५ ॥ भूमिपर ईख तथा कोमल तृणादिके समूहपर अन्य मच्छरोंकेसाथ गूंजतेहुये इस मच्छरने अपनी आयुका अर्द्धभाग अर्थात् एक दिन बिताया ॥ २६ ॥ और दूसरे दिन कोमल घासके झूलापर बाललीलापूर्वक अपनी मच्छरीके साथ चिरकालतक क्रीडाका इसने आरंभ किया ॥२७॥ उस झूलेके श्रमसे थकितहोकर जबतक कहीं विश्राम करनेलगा इतनेहीमें हरिणके चरणरूपी पर्वतके पातसे चूर २ होगया ॥ २८ ॥

हरिणाननसंदर्शत्यक्तप्राणतयातया ॥ पूर्वक्रमगृहीताक्षःसजातोहरिणस्ततः ॥ २९ ॥ विहरन्हरिणो रण्येव्याधेनधनुषाहतः ॥ व्याधाननगदृष्टित्वात्संजातेव्याधएवसः ॥ ३० ॥ व्याधोवनेषुविहरन्संया तोमुनिकाननम् ॥ तत्रविश्रांतवान्संगान्मुनिनाप्रतिबोधितः ॥ ३१ ॥ भ्रांतःकिमिदमादीर्घदुःखायधनु षामृगान् ॥ हंसिपासिनकस्मात्त्वंतत्रंजगतिभंगुरे ॥ ३२ ॥ आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलांबुवद्भंगुरं भोगामेघवितानमध्यविलसत्सौदामनीचंचलाः ॥ लोलायौवनलालनाजलरयःकायःक्षणापायवान्पुत्र त्रासमुपेत्यसंसृतिवशान्निर्वाणमन्विष्यतां ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० विप० श० मशकव्याधबोधनं नाम षट्त्रिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १३६ ॥

अर्थ—हरिणके मुखको देखकर प्राण त्यागनेसे पूर्वोक्तक्रमसे इन्द्रियादि ग्रहणपूर्वक यह हरिणशरीर होगया ॥ २९ ॥ पुनः हरिणरूपसे वनमें विचरतेहुये किसी व्याधसे धनुषसे मारागया, पश्चात् व्याधके मुखदर्शनसे मृत्यु प्राप्त होनेसे व्याधही होगया ॥ ३० ॥ व्याधरूपसे वनमें विहरतेहुये किसी मुनिके वनमें गया और वहांपर विश्रामकिया, वहां मुनिके समागमरूप भाग्यके लाभसे मुनिने उपदेश किया ॥ ३१ ॥ कि तुम दीर्घकालसे भ्रममें क्यों पडे हो और धनुषसे निरपराधी मृगोंको महादीर्घ दुःखके अर्थ क्यों मारतेहो और इस क्षणभंगुर संसारमें महाफल देनेवाली सब शास्त्रोंके सारभूत अहिंसा व्रतका पालन क्यों नहीं करते ॥ ३२ ॥ हे पुत्र! यह आयु वायुसे अपसारित मेघपटलस्थ चंचलजलके सदृश क्षणभंगुर है, भोग मेघमंडलमें चमकतीहुई विद्युत्के सदृश चंचल हैं, यौवनके विलास जलके वेगके सदृश अनित्य हैं, तथा भोगोंसे अक्षय इस शरीरकी क्षणभरभी स्थिरता नहीं है, इसकारण परलोकसंबन्धी भावी अनर्थ परंपराके स्थानभूत इससंसारसे भयभीत होके अभय अहिंसा आदि उपायोंसे नित्य निरातिशय आनन्दरूप ब्रह्मका अन्वेषण गुरु तथा शास्त्र आदिके द्वारा करो ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० वि० शबो० मशकव्याधबोधनं नाम षट्त्रिंशदुत्तरशततमः सर्ग ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

व्याधसे पूंछेहुये मुनिने स्वयं धारणाके अभ्यासद्वारा परकायामें प्रवेशकरके उसके देखेहुये स्वप्नका वर्णन इस १३७ के सर्गमें किया है ॥

व्याधउवाच ॥ एवंचेत्तन्मुनेब्रूहिकीदृग्दुःखपरिक्षये ॥ नकर्कशोनचमृदुर्व्यवहारक्रमोभवेत् ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ इदानीमेवसंत्यज्यधनुषासहसायकान् ॥ मौनमाचारमाश्रित्यशांतदुःखमिहोष्यताम् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंबोधितस्तेनपरित्यज्यधनुःशरान् ॥ आसीन्मुनिसमाचारस्तत्रैवायाचिताशनः ॥ ३ ॥ विवेशमनसामौनीततःशास्त्रविवेकिताम् ॥ दिनैरेवयथापुष्पमामोदेननराशयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—व्याध बोला—कि हे भगवन् ! यदि हिंसादि व्यवहार दुःखहेतु है तो दुःखके क्षयमें न अतिक्रूर और न अतिकोमल व्यवहारका क्रम कैसाहै सो कहिये ॥ १ ॥ मुनि बोले—कि इसीसमय धनुष् तथा बाणोंको त्यागकर मुनियोंके आचारोंका आश्रय लेके दुःखोंको शांतकरके यहां निवास करो ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—इसप्रकार मुनिसे बोधित होनेपर उस व्याधने मुनियोंके यमनियादि आचारोंको अवलंबनकरके तथा अयाचितभोजन होके वहांही निवास किया ॥ ३ ॥ और थोडेही दिनोंमें मुनियोंके व्रतधारणसे सत्संगद्वारा शास्त्रजन्य सारासारविवेकितामें ऐसे प्रविष्टहोके मनुष्योंके चित्तको आल्हादन किया जैसे मुकुल कलिकादिके विकास क्रमसे सुगन्धद्वारा पुष्प ॥ ४ ॥

अपृच्छन्मुनिशार्दूलंकदाचित्तमरिंदम ॥ भगवन्दृश्यतेस्वप्नःकथमंतर्बहिःस्थितः ॥ ५ ॥ मुनिरुवाच ॥ ममापिसाधोप्रथममेषएवविवेकिनः ॥ पुराचित्तेवितर्कोभूत्कुतोप्यभ्रमिवांबरे ॥ ६ ॥ ततएतद्दिदृक्षार्थमहमभ्यस्तधारणः ॥ बद्धपद्मासनस्तस्यांसंविद्येवाभवंस्थिरः ॥ ७ ॥ तत्रस्थोदूरविक्षिप्तंतर्त्यैवाहृतवानहम् ॥ चेतःस्वहृदयंसायंरुचेवरविरातपम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और हे शत्रुनाशक ! कदाचित् उस श्रेष्ठ मुनिसे उसने यह पूंछा कि—हे भगवन् ! प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित स्वाप्निक पदार्थ बाह्य जाग्रत्रूपसे कैसे देखपडताहै ॥ ५ ॥ मुनि बोले—हे साधो ! प्रथम साधारण विवेक जब प्राप्त हुआ तब मेरे चित्तमेभी यही वितर्क हुआ कि आकाशमें मेघवत् यह स्वप्न कहांसे आताहै ॥ ६ ॥ अनन्तर उसके देखनेकी इच्छासे परकाय प्रवेशादि धारणाका अभ्यास करके पद्मासन बांधके सब प्राणीमात्रके आत्मारूपसे प्रसिद्ध संवित्में स्थिर हुआ ॥ ७ ॥ उस संवित्में स्थिर होके मैंने दूर निक्षिप्त (अन्यशरीरआदिमें फेंके हुये) चित्तका उसी संवित्के द्वारा निजहृदयमें ऐसे उपसंहार किया जैसे सायंकालमें सूर्य्यभगवान् अपनीही दीप्तिसे आतपको ॥ ८ ॥

वेदनेरणयाप्राणस्ततश्चित्तान्वितोमया ॥ शरीराद्रेचितोबाह्येसौरभंकुसुमादिव ॥ ९ ॥ व्योमस्थचित्तवलितःसप्राणपवनोमया ॥ अग्रस्थस्यमुखाग्रस्थेजंतोःप्राणेनियोजितः ॥ १० ॥ यःप्राणवलितःप्राणस्तेननीतोहृदंतरम् ॥ स्वेहयास्वंस्वकःसर्पःकरभेणेवहिंसितः ॥ ११ ॥ ततोहंहृदयंतस्यप्रविष्टःप्राणवाजिना ॥ संकटस्थःस्वयाबुद्ध्यातावेवानुसरोंतरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—प्राणान्तर्गत चित्की प्रेरणा (जीवको प्राणके साथ बाह्यदेशमें निःसारणरूप योगशास्त्रप्रसिद्ध प्रयत्न) से जीवोपाधियुक्त प्राणको निजशरीरसे बाह्यदेशमें मैंने ऐसे निकाला जैसे पुष्पसे सुगन्धको ॥ ९ ॥ अनन्तर आकाशस्थ चित्तके साथ मिलित प्राणवायुको मैंने संमुख स्थित किसी छात्रके मुखाग्रभागमें स्थित प्राणमे नियुक्तकिया ॥ १० ॥ इसके पश्चात् उसके प्राणके साथ मिलित निजप्राणको उसके हृदयमें मैंने ऐसे प्राप्त किया जैसे भल्लूक अपने बिलप्रदेशमें रहकर निजमुखके वायुसे आकर्षणरूप चेष्टाद्वारा निजमुखमें सर्पको ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् उसके प्राणरूप अश्वद्वारा उसके हृदययें प्रविष्ट होकर निज तथा उसके परस्पर मिलित प्राणोंका अनुसरण करताहुआ मैं उसके देहमें प्रवेशकरके निजबुद्धिसे वक्ष्यमाण संकटमें प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

चरद्रसाभिर्बह्वीभिर्नाडीभिरभितोवृतम् ॥ कुल्याभिःस्थूलतन्वीभिर्बाह्यदेशमिवाखिलम् ॥ १३ ॥ पर्शुकापंजरप्लीहयकृद्रक्तादिडिंबकैः ॥ संकटंजीवसदनंभांडोपस्करणैरिव ॥ १४ ॥ सर्वैःशलशलायद्भिरुष्णैरवयवैर्वृतम् ॥ निदाघतापसंतप्तैरूर्मिजालैरिवार्णवम् ॥ १५ ॥ नवंनवंबहिःशैत्यंनासाग्राच्चेतनात्मकम् ॥ जावनायानिशंचेतोवातोन्नीतमनारतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चलतेहुये रससंयुक्त अनेक नाडियोंसे आभ्यन्तरप्रदेश चारोंओरसे ऐसे व्याप्त था जैसे स्थूल तथा सूक्ष्म कृत्रिम नदियोंसे संपूर्ण बाह्यप्रदेश ॥ १३ ॥ दोनों भागोंके अस्थिपंजर, प्लीहा (पिलई) यकृत, तथा रक्तादि-

सहित मांसपिंडोंसे वह जीवका स्थान ऐसे व्याप्त था जैसे पात्र आदि सामग्रियोंसे गृह ॥ १४ ॥ तथा जठरानलसे शल २ शब्द करतेहुये, तथा अतिउष्ण सब अवयवोंसे वह स्थान ऐसे आवृत था जैसे उष्णकालकी सूर्य्यकिरणसमूहोंसे समुद्र ॥ १५ ॥ तथा जीवनके लिये निरंतर प्राणवायुसे संयुक्त, बाह्यदेशस्थ सोमनामक अपानवायुके नासिकाके अग्रभागसे प्रवेश करते हुये नूतन २ शैत्ययुक्त अतएव चेतनात्मक वह जीवनका स्थान था ॥ १६ ॥

रक्तकुट्टरसश्लेष्मवसानिःस्रावपिच्छिलम् ॥ घनांधकारमुष्णंचसंकटंनरकोपमम् ॥ १७ ॥ उदयावयवाश्लेषस्पष्टास्पष्टमरुद्गतैः ॥ स्थित्यंतानांतुवैषम्यादागामिगदसूचकम् ॥ १८ ॥ दरत्सरभसच्छिद्रावातवातेनशब्दितम् ॥ पद्मनालप्रणालांतर्ज्वलदर्णववाडवम् ॥ १९ ॥ मिलत्पदार्थनीरंध्रंस्वितमच्छंसवायुभिः ॥ क्वचित्सौम्यंक्वचित्क्षुब्धंचोरैरिवपुरंनिशि ॥ २० ॥

अर्थ—तथा नाडीमार्गोंसे रक्तोंके भेदन करनेवाले श्लेष्मवसाआदि अन्नरसोंके स्रावसे स्निग्ध, घनान्धकारमय, उष्ण तथा नरकके सदृश संकटरूप वह जीवस्थान था ॥ १७ ॥ तथा ७२ सहस्र नाडियोंमें रक्त तथा रसजन्य कफ, पित्त आदिके कहीं उदय, कहीं अपचय, कहीं अवयवोंमें मेलन, तथा कहीं गतिकी लघुतासे स्पृष्ट, कहीं अस्पृष्ट प्राणपवनोंके क्रीडनोंसे सप्तधातुओंमें स्थितिकी विषमता होनेसे आगामी रोगोंका तथा स्वप्नादिका सूचक वह जीवस्थान था ॥ १८ ॥ वेगके साथ संचलित अपानादि छिद्रोंमें पवनके गमनागमनसे शब्दयुक्त तथा हृदयकमलके नालान्तर्गत छिद्रमें जाज्वल्यमान समुद्रस्थ वडवानलके सदृश उस जीवस्थानको देखा ॥ १९ ॥ मिले हुये वासनामय पदार्थोंसे घनिष्ट, वायुसहित इन्द्रियोंसे बद्ध, निजआत्मस्वभावसे शुद्ध तथा चित्तकी वृत्तियोंके भेदोंसे तथा प्रदेशोंके भेदोंसे कहीं सौम्य, तथा कहीं रात्रिमें चोरोंके द्वारा क्षुब्धके सदृश स्थान देखा ॥ २० ॥

रसनादपरैर्नाडीमार्गविद्याधराध्वगैः ॥ संचरद्भिर्वृतंवातैराकारार्द्धार्द्धगीतिभिः ॥ २१ ॥ तदहंहृदयंजंतोराविशंविषमांतरम् ॥ नरोवयवसंबाधंनरवृंदमिवाधिकः ॥ २२ ॥ अनंतरमहंप्राप्तस्तेजोधातुंहृदंतरे ॥ दूरस्थमिवयत्नेनरात्राविंदुमिवार्करुक् ॥ २३ ॥ यस्मात्त्रिभुवनादर्शोदीपस्त्रैलोक्यवस्तुषु ॥ सत्तासर्वपदार्थानांजीवस्तत्रावतिष्ठते ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा द्विमात्र एकमात्र तथा अर्द्धमात्र स्वरसंपन्न गीतयुक्त, कोष्ठगत अन्नरसके परिपाकमें नाद करते वायुसे ऐसे आवृत था जैसे पथिक विद्याधरोंसे ॥ २१ ॥ इसप्रकार भयंकर आभ्यन्तरप्रदेशयुक्त जीवके हृदयमें मैंने ऐसे प्रवेश किया जैसे कोई मनुष्य घनीभूत मनुष्योंके समूहमें ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् हृदयके आभ्यन्तरमें समीपस्थ होनेपरभी अनेक नाडियोंके मार्गसे प्राप्य होनेसे दूरस्थके सदृश स्थित जठराग्निरूप सारभूत तेजको यत्नसे मैंने ऐसे प्राप्त किया जैसे रात्रिमें सूर्य्यकिरण चन्द्रमाको ॥ २३ ॥ क्योंकि त्रैलोक्यका दर्पण, त्रिलोकी तथा तदन्तर्गत पदार्थोंका प्रकाश और सब पदार्थोंकी सत्तामय जीव तथा तत्स्वरूप परमात्मा उसी तेजोमयी शिखामें स्थित रहताहै ॥ २४ ॥

कायेसर्वगतोजीवःस्वामोदःकुसुमेयथा ॥ तथाप्योजसिकिंजल्कैर्मुखेशैत्यंविवस्वता ॥ २५ ॥ तज्जीवाधारमोजस्तुप्रविष्टोहमलक्षितम् ॥ रक्षितंपरितःप्राणैर्वातैःप्रच्छादनंयथा ॥ २६ ॥ ततोंजःसंप्रविष्टोहमामोदइवमारुतम् ॥ उष्णांशुरिवशीतांशुंमृत्पात्रमिववापयः ॥ २७ ॥ द्वितीयेंद्वंशुसंकाशेशुक्लाभ्रलवपेलवे ॥ नवनीतगुडप्रख्येक्षीरबुद्बुदसुंदरे ॥ २८ ॥

अर्थ—यद्यपि सर्वशरीरमें जीव व्याप्त है तथापि तेजमें विशेषरूपसे इसप्रकार अभिव्यक्त होताहै जैसे सूर्य्यविकासित शैत्ययुक्त पुष्पके अग्रभागमें विशेषकरके सौगन्ध्य ॥ २५ ॥ दीपज्योतिके घटआदि आच्छादनको उसके सूक्ष्म छिद्रगत वायुसे रक्षितके सदृश प्राणपवनोंसे चारोंओरसे रक्षित उस जीवाधारतेजमें अलक्षितरूपसे मैंने प्रवेश किया ॥ २६ ॥ उसकेपश्चात् साक्षात् जीवकी उपाधिरूप मनोमय तथा वे ज्ञानकोशमिलित आनन्दमय कोशमें मैं ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे वायुमें सुगन्ध, चन्द्रमामें सूर्य्य अथवा मृत्तिकाके पात्रमें जल ॥ २७ ॥ तथा अमृतमय द्वितीयाके चन्द्रके तुल्य, शुक्लमेघके सदृश कोमल, शर्करामिलित नवनीतके समान, तथा क्षीरसागरके बुद्बुदके सदृश सुन्दर उस तेजमें मैंने प्रवेश किया ॥ २८ ॥

तत्रपश्याम्यहंतिष्ठन्प्रवेशव्यग्रयोज्झितः ॥ स्वौजसीववसन्स्वप्नइवविश्वमखंडितम् ॥ २९ ॥ सार्कससपर्वतंसाब्धिससुरासुरमानवम् ॥ सपत्तनवनाभोगंसलोकांतरदिङ्मुखम् ॥ ३० ॥ सद्वीपसागरांभोधिसकालकरणक्रमम् ॥ सकलपक्षणसर्वर्त्तुसहस्थावरजंगमम् ॥ ३१ ॥ तत्स्वप्रदर्शनंतत्रस्थिरमेवसंस्थितम् ॥ वसाम्यत्येवनिद्रांतेनिद्रांतेनागतायतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और वहांपर प्रविष्टहोकर पूर्वोक्तस्थानोंमें प्रवेशकी विश्रान्ति (परिश्रम) से रहित, तथा निजहृदयस्थ तेजमें स्वस्थतापूर्वक निवास करतेहुयेके सदृश मैंने उसके स्वप्नमय संपूर्ण विश्वको निजस्वप्नके समान देखा ॥ २९ ॥ वहांपर सूर्य्य, पर्वत, समुद्र, सुर, असुर, तथा मनुष्यसहित, तथा पत्तन (नगरग्रामादि) वनके विस्तार, लोकलोकान्तर, दिशाओंके अन्तरालोंसे युक्त द्वीप, समुद्र तथा कालक्रमसहित और कल्प, क्षण तथा सब ऋतुओंके क्रमसहित स्थावरजंगमादि प्राणियोंसहित संपूर्ण संसारको मैंने देखा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे व्याध ! उसके स्वप्नमें स्थित यह संपूर्ण विश्व स्थिरही था और मैं निद्राके अन्तमें जाग्रत् अवस्थामेंही स्थित होके यह सब देखताथा क्योंकि जाग्रत्के अन्तमें निद्रा आगईथी ॥ ३२ ॥

अनिद्रएवकिंस्वप्नंपश्यामीतिमयाततः ॥ परिचिंतयताज्ञातमिदंव्याधविबोधिना ॥३३॥ ननुनामास्यचिद्धातोःस्वरूपमिदमैश्वरम् ॥ स्वयद्व्यपदिशत्येषजगन्नाम्नांबरात्मकम् ॥ ३४ ॥ चिद्धातुर्यत्रयत्रास्तेतत्र तत्रनिजंवपुः ॥ पश्यत्येषजगद्रूपंव्योमतामेवचात्यजत् ॥ ३५ ॥ अहोत्वद्येदमाज्ञातंयदित्थंदृश्यतेजगत् ॥ तत्कथ्यतेस्वप्नइतिस्वचित्कचनमात्रकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ— पश्चात् निद्राशून्यही यह स्वप्न क्या देखताहुं ऐसे चिन्ता करतेहुये अनन्तर ज्ञानयुक्त मैंने यह जाना कि ॥ ३३ ॥ इस चित्का यह ईश्वरसंबंधी स्वरूपही है क्योंकि यह चित्स्वरूप ईश्वर निज चिदाकाशरूपको घट, पट, जगत् वा जीवआदिरूपसे जब जैसा नाम रूप उपदेश करनाचाहताहै तब वैसेही जगत्जीवादि नामरूपसे होजाताहै ॥३४॥ यह चित्स्वरूपधातु निजचिदाकाशता न त्यागतेहुये जहां २ निजस्वरूपकी जैसी भावना करताहै वहां २ उसी २ रूपसे स्थित रहताहै ॥ ३५ ॥ अहो ! इससमय यह मुझे ज्ञात हुआ कि यह चित्स्वरूपका स्फुरणमात्र जो जगत् देखपडताहै उसीको सब स्वप्न कहतेहैं ॥ ३६ ॥

चिद्धातोर्यत्त्वकचनंतत्किंचित्स्वप्नउच्यते ॥ किंचिच्चजाग्रदित्युक्तंजाग्रत्स्वप्नोतुनद्विधा ॥ ३७ ॥ स्वप्नः स्वप्नोजागरायामेषस्वप्नेतुजागरा ॥ स्वप्नस्तुजागरैवेतिजागरैवस्थिताद्विधा ॥ ३८ ॥ चेतनंनामपुरुषः समृतेषुशतेष्वपि ॥ शरीरेषुमहाबुद्धेकथंकस्यकदामृतः ॥ ३९ ॥ तच्चेतनंखमेवास्तिस्थितंतद्देहवत्कचत् ॥ अनंतमविभागात्मप्रतिघाप्रतिघात्मकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी चित्स्वरूपके किसी स्फुरणको स्वप्न तथा किसी स्फुरणको जाग्रत् कहते हैं, यथार्थमें जाग्रत् तथा स्वप्न भिन्न नहीं हैं, किन्तु दोनों चिद्रूप आत्माके स्फुरणमात्र हैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि जाग्रत्अवस्थामेंही स्वप्नरूपसे ज्ञात होताहै, और स्वप्नअवस्थामें यह जाग्रतभी स्वप्नही, तथा स्वप्नअवस्थामें स्वप्नभी निजदृष्टिसे जाग्रत्स्वरूपही है और पदार्थकी निजदृष्टिसे जाग्रत्ही स्वप्न तथा जाग्रत् इन दोनों रूपसे स्थित है ॥ ३८ ॥ और अनेक मृतशरीरोंमें चेतनपुरुष कब मरा, किसकी दृष्टिमें मरा, और निराकार चिन्मात्र कैसे मरा? इसलिये मरणभी कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ यह चेतन तो अनंत अविभागी शुद्ध चिदाकाशमात्रही है, किन्तु मूर्त तथा अमूर्तसे विलक्षण होकेभी भ्रमसे देहधारीके समान भासताहै ॥ ४० ॥

स्वभावस्याप्रतिघस्यनित्यानंतोदितात्मनः ॥ परमाणोश्चिदाख्यस्यमज्जाजगदितिस्मृतः ॥ ४१ ॥ चिद्व्योम्नउदरेभांतिसमस्तानुभवाणवः ॥ तथायथावयविनोविचित्रावयवाणवः ॥ ४२ ॥ निवृत्तोबाह्यतोजीवोजीवाधारेहृदिस्थितः ॥ रूपंस्वंस्वप्नसर्गोयमितिवेत्तिचिदाकचान् ॥ ४३ ॥ बाह्योन्मुखंबहिर्जाग्रच्छब्दितंकचितंस्वकम् ॥ रूपंपश्यतिजीवोयमंतस्थंस्वप्नइत्यपि ॥ ४४ ॥

अर्थ—अमूर्त, नित्य, अनंत, उदितस्वभाव, चित्नाम परमाणुका सारभूतही भ्रमसे यह साकार जगत्नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४१ ॥ जगत्के भ्रमरूप सम अणु चिदाकाशकेही उदरमें ऐसे भासते हैं जैसे अवयवीके ॥ ४२ ॥ जब मनुष्य बाह्य अर्थात् जाग्रत्के भोगरूपी पंकसे निवृत्त होताहै तब अपने स्वरूपकोही बाह्यसंस्कारके अनुरोधसे बाह्य स्वप्नसृष्टिरूपसे चित्का विवर्तमय जानताहै ॥ ४३ ॥ जब चित् बहिर्मुख वृत्ति होताहै तब निजस्वरूपको जाग्रत् नामरूपसे देखताहै और जब अन्तर्मुखवृत्ति होताहै तब अपनेही स्वरूपको स्वप्न नामरूप देखताहै ॥ ४४ ॥

द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ प्रसृतोजीवइत्यंतर्बहिश्चैकात्मकःस्थितः ॥ ४५ ॥ अर्कोर्कबिंबसंस्थोपियथेहापिस्थितस्त्विषा ॥ तथाजीवोजगद्रूपोबहिरंतश्चसंस्थितः ॥ ४६ ॥ अंतःस्वप्नोबहिर्जाग्रदहमेवेतिवेत्तिचेत् ॥ चिदात्मकोयथाभूतंमुच्यतेतदवासनः ॥ ४७ ॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमपिजीवोन्यथावदन् ॥ द्वैतसंकल्पयक्षेणमुह्यत्येवशिशुर्यथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तर एकरूपसे स्थित यह जीवात्माही आकाश, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, पर्वत, नदी तथा दिशाआदि नामरूपसे विस्तृत होरहाहै ॥ ४५ ॥ जैसे सूर्य्यमंडलमें स्थितहोकरभी निजदीप्ति तथा प्रतिबिम्बरूपसे यहांभी स्थित है वैसे जगत्‌रूप यह जीव बाह्य तथा आभ्यन्तररूपसे स्थित है ॥ ४६ ॥ आभ्यन्तरस्वरूपसे तथा बाह्य जाग्रत्‌रूपसे चित्स्वरूप मैंही स्थितहुं इसप्रकार यथार्थ ज्ञानसंपन्न तथा वासनारहित होनेसे जीवन्मुक्त होताहै ॥ ४७ ॥ यह जीव यथार्थमें अच्छेद्य तथा अदाह्य होनेपरभी इससे विरुद्ध अपने स्वरूपको कहतेहुये द्वैतसंकल्परूपी पिशाचसे बालकके समान मोहित होताहै ॥ ४८ ॥

अंतर्मुखोंतरात्मानंबहिःपश्यन्बहिर्मुखः ॥ आस्तेजीवोजगद्रूपंयत्स्वंतेस्वप्नजाग्रती ॥ ४९ ॥ इतिचिंतयतःकिंस्यात्सुषुप्तमितिमेमतिः ॥ जातातेनसुषुप्तांशमन्वेष्टुमहमुद्यतः ॥ ५० ॥ यावत्किंदृश्यदृष्ट्यांतस्तूष्णींतिष्ठाम्यहंचिरम् ॥ निश्चित्तइतिसंवित्तिःशमानान्यत्सुषुप्तकम् ॥ ५१ ॥ नखकेशादिदेहस्मिन्विदिताविदितंयथा ॥ नजडंचजडंचैवसुषुप्तंचेतनात्मनि ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह जगत्‌रूप जीव अन्तर्मुख होनेसे अपनेके स्वाप्निक जगत्‌रूपसे देखताहै और बहिर्मुख होनेसे बाह्य जगत्‌रूपसे देखताहै और यही इस आत्माके स्वप्न तथा जाग्रत् हैं ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जाग्रत् तथा स्वप्नके तत्वको चिन्तन करतेहुये मेरी ऐसी बुद्धि हुई कि सुषुप्ति क्या वस्तु है, अनन्तर सुषुप्तिके तत्वान्वेषणमें मैं उद्यत हुआ ॥ ५० ॥ उससमय हृदयप्रदेशमें स्थित मैंने यह विचारा कि इस दृश्यकी दृष्टिसे मुझे क्या लाभ, निश्चितहोके तुष्णींभावसे चिरकालतक स्थित रहुं इसप्रकार विचारकरतेही यह भान हुआ कि चित्तशून्य शान्तिभावसे आभ्यन्तरस्वरूपमें स्थितिरूप ज्ञानही है अन्य नहीं ॥ ५१ ॥ हे व्याध ! विशेष अहंकाररूपसे अविदितहोनेपरभी नखकेशादिमय इस देहके तुल्य सामान्यरूपसे विदित होनेसे विदिताविदितरूप तथा न जड, न चेतन यह सुषुप्ति चिदात्मामें स्फुरित होती है ॥ ५२ ॥

संवित्त्याकिंश्रमार्तोस्मिशांतमासेविमानसम् ॥ इत्येकपरिणामत्वान्नान्यदस्तिसुषुप्तकम् ॥ ५३ ॥ एतन्निदाघनंजाग्रत्यपिसंभवतिस्वतः ॥ नकिंचिच्चिंतयाभ्यासेशांतइत्येकरूपकम् ॥ ५४ ॥ एषावस्थायदायातिघनतामुच्यतेतदा ॥ निद्राशब्देनतन्वीतुस्वप्नशब्देनकथ्यते ॥ ५५ ॥ सुषुप्तमितिनिश्चित्यतुरीयान्वेषणामहम् ॥ प्रवृत्तःकर्तुमुद्युक्तोयुक्तःपरमयाधिया ॥ ५६ ॥

अर्थ—जाग्रत् तथा स्वप्नके भ्रमणसे थकित होरहाहुं, विशेष ज्ञानसे मुझे क्या प्रयोजन, कुछकालपर्य्यन्त शान्तिभावसे स्थित रहुं, इसप्रकारके संकल्पके सदृश गाढनिद्राकारसे आत्माका परिणामविशेषही सुषुप्ति है और कुछ नहीं ॥ ५३ ॥ कुछ चिन्तन न करूं, शान्त एकवृत्तिसे स्थित रहुं इसप्रकार चिन्ताके त्यागसे जाग्रत्‌पुरुषमेंभी इस घनीभूत निद्रारूप सुषुप्तिका संभव है ॥ ५४ ॥ यह सुषुप्ति अवस्थातो जब घनताको प्राप्त होती है तबही निद्राशब्दसे कहीजातीहै और किंचित् विक्षेपद्वारा शिथिल होनेसे वही स्वप्नावस्था वा स्वप्नशब्दसे कहीजाती है ॥ ५५ ॥ इसरीतिसे सुषुप्तिको निश्चयकरके तुरीयावस्थाको परम उद्योगयुक्तबुद्धिसे तुरीयावस्थाके अन्वेषण करनेमें मैं प्रवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥

यावद्रूपंतुरीयस्याकिंचनापिनलभ्यते ॥ सम्यग्बोधादृतेशुद्धात्प्रकाशस्तमसोयथा ॥ ५७ ॥ यथास्थितमिदंविश्वंसम्यग्बोधाद्विलीयते ॥ यथास्थितंचभवतिनचकिंचिद्विलीयते ॥ ५८ ॥ अतःस्वप्नोजागराचसुषुप्तंचतुरीयके ॥ सयथास्थितमस्तीदंनूनंनास्तिचकिंचन ॥ ५९ ॥ कारणाजगदुत्पन्नंनब्रह्मेत्थमवस्थितम् ॥ जगत्तयाशांतमजंबोधइत्येवतुर्यता ॥ ६० ॥ असंभवात्संभवकारणानांनजायतेकिंचननामसर्गः ॥ चिच्चेतनेनैवहिसर्गसंवित्स्वयंगृहीताद्रवतांबुनेव ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो० वि० श० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुरीयवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

अर्थ—जैसे अन्धकारका स्वरूप जानेविना उसके नाशक प्रकाशका पूर्ण स्वरूप नहीं जानाजाता ऐसेही अज्ञाननाशक पूर्ण स्वरूपके बोधविना तुरीयका बोध नहीं होता ॥ ५७ ॥ सम्यग् बोधसे यथास्थितही इस संसारका लय होजाताहै और आत्मामें विलीनभी यह संसार आत्मस्वरूपसे ज्योंका त्यों स्थितभी रहताहै ॥ ५८ ॥ इसकारण जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति ये तीनोंअवस्था यथास्थित इस संपूर्णविश्वकेसाथ तुरीयस्वरूपमें स्थित हैं और तुरीयस्वरूपसे भिन्न कुछ नहींहै ॥ ५९ ॥ हे व्याध ! यह जगत् किसीकारणसे नहीं उत्पन्न हुआ किन्तु ब्रह्मही इस जगत्‌रूपसे स्थित है

॥ ६० ॥ अद्वैतब्रह्ममें जन्मकारक कारणोंका असंभव होनेसे यह जगत्‌की सृष्टि किसीप्रकार द्वैतरूपसे उत्पन्न नहीं होती किन्तु चेतनकी जगदाकार स्फुरणाने जगत्‌का रूप ऐसे धारण कियाहै जैसे जल द्रवताको ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० शवो० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयस्वरूपवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

अष्टत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३८ ॥

उस प्राणी तथा निजजीवके मिलनेमें द्विगुण, तथा ऐक्य होनेमें एक विश्व मैंने देखा, इत्यादि विषय मुनिने व्याधसे इस १३८ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ तापसउवाच ॥ गंतुमेवंविचार्याहंतनस्तत्संविदैकताम् ॥ प्रवृत्तश्चैतमाब्जेनसौरभेणेवसौरभम् ॥ ॥ १ ॥ यावत्तच्चेतनंतस्यतमोजोधातुमत्यजम् ॥ प्रवृत्तंबाह्यसंवित्तौसमस्तेंद्रियसंविदा ॥ २ ॥ संविदं संविदागृह्णंस्तान्बाह्येंतरपिक्षणात् ॥ अहंप्रसृतवांस्तत्रतैलबिंदुरिवांभसि ॥ ३ ॥ तत्संविदितथैवाथ यावत्परिणनाम्यहम् ॥ भुवनंदृष्टवांस्तावत्सर्वंद्विगुणितंस्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तापसमुनि बोला कि—हे व्याध ! इसप्रकार जाग्रत्आदि चारोंअवस्थाओंके तत्वको विचारकरके उस प्राणीके जीवके साथ एक होनेमें मैं ऐसे प्रवृत्त हुआ जैसे कमलके बनमें वायुसे आनीत पुष्पित आम्रका सुगन्ध कमलके सुगन्धके साथ ॥ १ ॥ मैंने उस प्राणीके चिदाभास (जीव) में प्रवेश करनेको ज्योंही हृदयस्थ तेजको त्यागा त्योंही मेरी समस्त बाह्य इन्द्रियोंकी वृत्ति बहिर्मुख व्यापारमें बलात्कार प्रवृत्त होगई ॥ २ ॥ इसके पश्चात् बहिर्मुख प्रवृत्त इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको आभ्यंतरको अभिमुख प्रयत्नवृत्तिसे बलपूर्वक निग्रह करताहुवा क्षणमेंही आभ्यन्तरमें ऐसे मैं व्याप्त होगया, जैसे जलमें तैलबिन्दु ॥ ३ ॥ इसप्रकार उपाधिके द्वारा उस प्राणीके चिदाभास संविद्‌के मेलनमें ज्योंही मैं परिणत होनेलगा उससिमय उसकी तथा निजवासना (दोनों) ओंके अन्तः प्रतिभाससे संपूर्ण संसारको मैंने द्विगुणित देखा ॥ ४ ॥

दिशोद्विगुणितांयातास्तपतस्तपनावुभौ ॥ भूमंडलेद्वेसंपन्नेद्वेवैव्यावौसमुत्थिते ॥ ५ ॥ वदनप्रतिबिंबे द्वेदर्पणप्रतिबिंबिते ॥ यथाभातस्तथाभातेमिश्रितेतेजगच्चितम् ॥ ६ ॥ तैलवद्धातिकोशस्थंयच्चेतनति लद्वये ॥ तस्मिन्जगद्वयंतत्तत्तथाभातिविमिश्रितम् ॥ ७ ॥ संविद्वितयकोशस्थेमिश्रितेअप्यमिश्रिते ॥ तेउभेजगतीभातेसमेक्षीरजलेयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—सब दिशायें द्विगुण होगई, सूर्य्य दो तपनेलगे, भूमंडल दो होगये, और आकाशभी दो भासनेलगे ॥ ५ ॥ जैसे दो दर्पणमें मुखके दो प्रतिबिंब भासते हैं ऐसेही जगत् तथा चिदाभास दो मिश्रित होनेसे द्विगुण भासनेलगे ॥ ६ ॥ जैसे चेतन दोतिलोमें बुद्धिकोशमें दोनों तैलवान् भासतेहैं ऐसेही उस मिलित उपाधिस्थ दो चिदाभासोंमें दोनोंका मिश्रितहोके द्विगुणित जगत् भासताहै ॥ ७ ॥ दोनोंवासनाओंका मेल न होनेसे दो चिदाभासमें स्थित अमिश्रितभी दोनोंके जगत् क्षीर नीरवत् मिश्रितके सदृश भासतेथे ॥ ८ ॥

निमेषादृष्टमात्रेणसातत्संविन्मयाततः ॥ सकलैवात्मतांनीतापरिमित्येवसंविदा ॥ ९ ॥ ऋतुर्ऋत्वंत रेणेवसरितेवाल्पिकासरित् ॥ वातेनामोदलेखेवधूमलेखेववार्मुचा ॥ १० ॥ एकत्वेनाशुसंवित्तेर्ययौमे जगदेकताम् ॥ दुर्दृष्टेर्द्विवपुश्चंद्रःसुदृष्टेरेकतामिव ॥ ११ ॥ ततोमेतच्चितिस्थस्यस्वंविवेकमनुज्झतः ॥ अल्पीभूतःस्वसंकल्पस्तत्संकल्पस्थितिंगतः ॥ १२ ॥

अर्थ—अनंतर एक निमेषमात्र उस प्राणीको चिदाभाससंवित्‌को निज संविद्‌से परिच्छिन्नकरके दोनों उपाधियोंके मेलनद्वारा मैंने एकरूपताको प्राप्त किया ॥ ९ ॥ जैसे एक ऋतु अन्यऋतुसे, छोटीनदी बडीनदीसे, वायुसे सुगन्ध, और मेघसे धूमलेखा मिलके एक होजाती है ऐसेही मेरी संवित्‌में उसकी संवित् मिलकर एक होगई ॥ १० ॥ दोनों संविद्‌के मिलनेसे जगत् शीघ्रही एकरूपताको ऐसे प्राप्तहुआ जैसे दुष्टदृष्टिवालेका दोचन्द्रस्वरूप शुद्धदृष्टि होनेसे एक-रूपताको प्राप्त होजाताहै ॥ ११ ॥ इसकेपश्चात् स्वकीय पूर्वापर परामर्शको न त्यागतेहुये उस प्राणीके चेतनमें मेरा संकल्प अल्प होकर उस प्राणीके संकल्पके अनुसार स्थितिको प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥

तच्चित्तवृत्त्यैवततोबाह्यमालोकयंस्ततः ॥ अभुंजितद्दिनाचारंतत्तद्धृदयमत्यजन् ॥ १३ ॥ ततोयदृच्छयैवा सौशनैर्निद्राकुलोभवत् ॥ पद्मःसायमिवापीयपयोभुक्त्वान्नमुच्छ्रमः ॥१४॥ प्रसृतंदिग्निकुंजेषुरूपालोक

क्रियाकरम् ॥ संजहारबहिश्चित्तंसायमर्कोरुचियथा ॥ १५ ॥ सहचित्तेनतास्तस्यसमस्तेंद्रियवृत्तयः ॥ हृत्कोशमविशञ्छन्नाःकूर्मस्येवांगसंधयः ॥ १६ ॥

अर्थ—वहांपर उसकी चित्तवृत्तिके अनुसारही उसके भोग्य शब्दादिविषयोंको ग्रहणकरतेहुये तथा उसके हृदय-को न त्यागतेहुये उसके जाग्रत्रूप उस दिनके व्यवहारका अनुभव किया ॥ १३ ॥ उसकेपश्चात् वह प्राणी भोजन, जल, पानादिकरके श्रान्तहोनेसे सायंकालमें कमलके सदृश स्वेच्छासे निद्रावशीभूत होगया ॥ १४ ॥ दिशाओंके कुंजोंमें रूपादिग्राहक क्रियाओंको उसके चित्तने ऐसे उपसंहार किया जैसे सायंकालमें सूर्य्यभगवान् किरणोंको ॥ १५ ॥ और चित्तकेसाथही उसके संपूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियां छन्नहोके हृदयकोशमें ऐसे प्रविष्ट होगई जैसे कूर्मके अंगोंकी संधियां उसके अंगमें ॥ १६ ॥

मुद्रिताहृदयाकारास्तआसंश्चक्षुरादयः ॥ लोष्टरूपामृतावेवलिपिकर्मार्पिताइव ॥ १७ ॥ अहंतच्चित्तवृत्त्यैवसहसोन्नम्यतत्स्थितः ॥ तच्चित्तानुविधायित्वात्तत्हृदयमाविशम् ॥ १८ ॥ संहृत्यबाह्यानुभवमंतरेवतदोजसि ॥ क्षणमन्वभवंशून्यंसुषुप्तंतल्पकोमले ॥१९॥ क्रमान्नपानबहुलैर्निबिडास्वतिनाडिषु ॥ सुषिरास्वेववावायुर्ननिर्यात्येवयातिच ॥ २० ॥

अर्थ—तथा नेत्रआदि सब इन्द्रियां मुद्रितहोके हृदय पद्माकार होकर मरणदशाके समान चित्रमें लिखितके तुल्य सर्वथा व्यापाररहित होगई ॥ १७ ॥ मैंभी उस प्राणीके चित्तके अनुकूल होनेसे उसीकी चित्तवृत्तिकेसाथही उसके इन्द्रियगोलको त्यागकर उन २ नाडीमार्गोंसे उसीके हृदयप्रदेशमें प्रविष्टहुआ ॥ १८ ॥ बाह्यअनुभवका उपसंहार करके पूर्वोक्त आभ्यन्तरीय तेजस्थ अतिरमणीय शय्याके तुल्य कोमल आनन्दमयकोशमें क्षणभर सर्वव्यापारशून्य सुषुप्तिका अनुभव मैंने किया ॥ १९ ॥ उससमय समाननामक प्राणवायु छिद्रसहित नाडियोंमें श्रमसे अन्नपानके रसके अधिक विकारोंसे निरुद्ध होनेसे बाह्यदेशमें स्फुटरूपसे नहीं आताजाताथा तथापि सूक्ष्मतर गतिसे संचार करताही था ॥ २० ॥

यदातदात्मकात्मैकपरोहृदिसहस्थितम् ॥ अप्रधानीकरोत्येतच्चित्तंस्वार्थस्वभावतः ॥ २१ ॥ स्वार्थमात्रोद्यतस्यातःपरकृत्यंनकस्यचित् ॥ कचतिस्वार्थसत्तायामेतदेववपुर्यतः ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनःप्राणवशादेवमनुतेकिंमहामुने ॥ स्वरूपंमनसोनास्तितस्मात्तत्केवलंचकिम् ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहएवेहनास्त्येवस्वानुभूतोप्ययंनिजः ॥ मनसःकल्पनात्मेदंवपुःस्वप्नेगिरिर्यथा ॥२४॥

अर्थ—जब यह सुषुप्तिदशा प्राप्त होती है उससमय प्राण अद्वैतआत्माके साथ एकरूप होताहुआ पुरीतति नाडीमें प्रविष्ट आत्माके साथ स्थित चित्तको स्वाधीन करलेताहै, क्योंकि प्रत्यगात्मारूप पदार्थके स्वभावमात्रसे उस-समय सुखके विश्राममें प्रवृत्ति रहती है ॥ २१ ॥ प्रत्यगात्माके स्वभावरूप सुखविश्रामार्थ उद्यत आत्मामें मनइन्द्रि-यादिका कुछभी कृत्य नहीं रहता, क्योंकि निरतिशयानन्दरूप स्वार्थसत्तामय सुषुप्तिकालमें विक्षेपशून्य निरतिशय आनन्दशरीर आत्माही प्रकाश करताहै ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने! यदि सुषुप्तिमें प्राणके आधीन मन अ-थवा चित्त मननआदि क्रियाओंको नहीं करता तो इस जाग्रत्दशामेंभी क्यों करताहै, क्योंकि प्राणसे भिन्न मनका स्वरूप कुछभी नहीं है, इसलिये प्राणशून्य केवल मन कुछभी नहीं है ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! अधिष्ठानसत्तामात्र चित्से पृथक् करनेपर नित्य अनुभूत यह अपना शरीर तथा प्राणआदि जगत्का रूप कुछभी नहीं, और स्वप्नके पर्वतवत् यह शरीर तो मनकी कल्पनामय है इसलिये मनसे पृथक् कृत यह शरीरभी कुछ नहीं है ॥ २४ ॥

तच्चित्तमपिनास्त्येवचेत्यार्थाभावयोगतः ॥ सर्गादौकारणाभावाद्दृश्यानुत्पत्तिहेतुतः ॥ २५ ॥ अतः सर्वमिदंब्रह्मतच्चसर्वात्मकंयदा ॥ तदाविश्वमिदंविष्वगस्त्येवचयथास्थितम् ॥ २६ ॥ अस्तिचित्तादि देहादितद्ब्रह्मैवचतद्विदाम् ॥ यादृक्तत्त्विदामेतदस्माकंविषयेनतत् ॥ २७ ॥ यथेदंत्रिजगद्ब्रह्मयथेतिविविधात्मकम् ॥ अत्रेमंराजपुत्रत्वंवर्ण्यमानंक्रमंशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—और सृष्टिकी आदिमें दृश्यके उत्पादक कारण न होनेसे चेत्यपदार्थके अभावसे चित्त वा मनभी कुछ वस्तु नहीं है ॥ २५ ॥ इसकारण यह सब ब्रह्ममय है, और जब ब्रह्म सर्वरूप है तब उसकी सत्तासे मन आदि सबकुछ है ॥ २६ ॥ इसकारण ब्रह्मवेत्ताओंकी दृष्टिसे जो कुछ यह चित्त जगत् आदि है वह सब ब्रह्मरूपही है और अज्ञा-नियोंकी दृष्टिमें जैसा यह मन जगत् आदि है वैसा हमलोगोंका विषय नहीं है ॥ २७ ॥ हे राजपुत्र रामजी! जैसे यह त्रिलोक ब्रह्ममय तथा विविधरूपभी है वह क्रम आप सुनिये ॥ २८ ॥

अस्तिचिन्मात्रममलमनंताकाशरूपियत् ॥ सर्वदासर्वरूपात्मनजगन्नचदृश्यता ॥ २९ ॥ सर्ववित्वा त्तुतेनेदंमनस्त्वंचेतितंस्वतः ॥ रूपमत्यजताशुद्धंबुद्धमाधिविवर्जितम् ॥ ३० ॥ मनसाकल्पितंतेनयद्दे सरणमात्मनः ॥ तदेतत्प्राणपवनंविद्धिवेद्यविदांवर ॥ ३१ ॥ प्राणतैषाययातेनकल्पितेवानुभूयते ॥ तथैवेंद्रियदेहादिदिक्कालकलनादिच ॥ ३२ ॥

अर्थ—अमल, अनन्त, आकाशस्वरूप तथा सर्वदा सर्वरूप एक आत्माही है और न यह जगत् है, न दृश्यता है ॥ २९ ॥ और सर्ववित् होनेसे उस चेतनने निजशुद्धबुद्ध तथा चिन्तादिरहित चित्स्वरूपको न त्यागतेहुये सबसे प्रथम मनका अध्यारोप स्वतः किया ॥ ३० ॥ और वेद्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी उस चेतनने मनसे आत्माकी संचरण-शीलता कल्पित की है उसीको तुम यह प्राणपवन जानो ॥ ३१ ॥ जैसे उस परमात्मासे कल्पित प्राणरूपताका अनुभव होताहै, ऐसेही यह देह, इन्द्रिय, जगत् दिशा और कालआदिकी कल्पनाभी है ॥ ३२ ॥

इतिविश्वमिदंविष्वक्चित्तमात्रमखंडितम् ॥ चित्तंतुचित्परंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मेदमाततम् ॥ ३३ ॥ अनाकारमनाद्यंतमनाभासमनामयम् ॥ शांतंचिन्मात्रसन्मात्रंब्रह्मैवेदंजगद्वपुः ॥ ३४ ॥ सर्वशक्तिपरंब्रह्मम नःशक्त्यायथास्थितम् ॥ यत्रतत्रतथारूपंस्वमेवानुभवत्यलम् ॥ ३५ ॥ संकल्पात्ममनोब्रह्मसंकल्पय तियद्यथा ॥ तत्तथैवानुभवतिसिद्धमाबालमीदृशम् ॥ ३६ ॥ प्राणीकृतःस्वयमयंननुचेतसात्मादेही कृतस्त्रिभुवनीकृतएवनाद्यः ॥ देहीकृतःखवपुरेवगिरीकृतश्चस्वप्नेषुकल्पितपुरीष्वनुभूतमेतत् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० अ० वि० श० चित्तसर्वात्मकताप्रतिपादनं नामाष्टत्रिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १३८ ॥

अर्थ—इसप्रकार यह संपूर्ण संसार केवल मनोमात्र है और मन परब्रह्मरूप है, इसकारण वह सब विशाल जगत् व्यापक ब्रह्ममात्रही है ॥ ३३ ॥ यह संपूर्णजगत्का शरीर निराकार, अनादि, अनन्त, आभासशून्य, सबप्रकारके विकारोंसे वर्जित, शान्त तथा सत्तामात्र चिन्मात्र ब्रह्महीं ॥ ३४ ॥ सर्वशक्तिमान् होनेसे निज प्राथमिक मनशक्तिसे जहां जैसा यह जगत् कल्पित है वहां वैसेही जाग्रत् वा स्वप्नमें अपने स्वरूपकोही पूर्वसिद्ध यथास्थित जगत्रूपसे अनुभव करताहै ॥ ३५ ॥ संकल्पस्वरूप मनोरूप कार्य्यब्रह्म जहां जिसप्रकार भूलोक तथा अन्यलोकोंका संकल्प करताहै वहां वैसाही अनुभव करताहै, यह वार्ता बालकसे वृद्धपर्य्यन्तको विदित है ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! यह चिदाकाश आदि पुरुष परमाही निजकल्पित मनकेद्वारा प्रथम प्राणवान् हुआ, पुनः देहधारी, पुनः त्रिलोकीरूप होगया और स्वप्नोंमें कल्पित नगरियों पर्वतादिरूप यह आत्मा सबको अनुभूत है ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० शवो० चित्तसर्वात्मकप्रतिपादनं नामाष्टत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३९ ॥

प्राणसेभी चित्तकी प्रधानता, तथा मुनिको सुषुप्तिसे प्राप्त प्रलयका दर्शन विस्तारसे इस १३९ के सर्गमें वर्णनकियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तमेवजगत्कर्तृसंकल्पयतियद्यथा ॥ असत्सत्सदसच्चैवतत्तथातस्यतिष्ठ ति ॥ १ ॥ तेनसंकल्पितःप्राणःप्राणोमेगतिरित्यपि ॥ नभवामिविनानेनतेनतत्तत्परायणम् ॥ २ ॥ अ हंकतिपयंकालंननुप्राणविनाकृतः ॥ नभवामिपुनर्नूनंभवाम्येवेतिकल्पितम् ॥ ३ ॥ यत्रतेनांगतत्रैतत् प्राणेनाशुक्षणाद्वपुः ॥ उदितंपश्यतिमनोमायापुरमिवाततम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! यह चित्तही जगत्का कर्ता है, यह जहां जैसा असत् (मिथ्या) सत्य (व्यावहारिक) वा सदसत् (प्रतिभासिक) संकल्प करताहै वहां वैसाही उसके लिये स्थितरहताहै ॥ १ ॥ उस चित्तनेही प्रथम प्राणकी कल्पना की, और यहभी कल्पना की कि प्राणही मेरे संपूर्ण कार्य्योंका निर्वाहक है उसके बिना मैं क्षणभरभी नहीं रहसकता, अतः प्राणकेही आधीन चित्त है ॥ २ ॥ मैं प्राणके बिना कुछ (दीर्घ) कालतक नहीं रहसकता यह कल्पना की, पुनः स्वप्नमनोराज्यादिमें प्राणके बिनाभी रहसकताहुं ऐसीभी कल्पना इसी चित्तने किया ॥ ३ ॥ जहां २ उस मनने प्राणके साथ शरीरकी कल्पना की वहां २ क्षणमेंही शीघ्र मायानगरके स-दृश उसको सिद्धही पाया ॥ ४ ॥

नभवाम्येवभूयोहंप्राणदेहविनाकृतः ॥ दृढनिश्चयभागित्थंचितोभवतिनोपुनः ॥ ५ ॥ दोलायितंतुसं देहादुःखमास्तेकुनिश्चयम् ॥ विकल्पेनैवमस्यैतज्ज्ञानान्नाल्पेनयास्यति ॥ ६ ॥ यस्यायमहमित्यस्तित स्यतन्नोपशाम्यति ॥ वर्जयित्वात्मविज्ञानंकेनचिन्नामहेतुना ॥ ७ ॥ नान्यत्रप्रथतेज्ञानंमोक्षोपायविचा रणात् ॥ ऋतेतस्मात्प्रयत्नेनमोक्षोपायोविचार्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—प्राण तथा देहकी कल्पनाके पश्चात् यह चित्त (चिदाभास) ऐसा निश्चययुक्त तो होताहै कि मैं प्राण देहकेविना नहीं रहसकता, परन्तु यह निश्चय नहीं होता कि मैं चित्स्वभावकेविना कहीं नहीं रहसकता ॥ ५ ॥ इसी-कारण मैं चिद्रूप हुं वा शरीरादि हुं इत्यादि सन्देहरूप ज्ञानसे यह जीव दुःखी रहताहै और तत्वज्ञानकेविना अल्पविचारसे शरीर प्राणआदि आत्मनिश्चयरूप विपरीतज्ञान कदापि न नष्ट होगा ॥ ६ ॥ जिसको शरीर प्राणआदि मैं हूं ऐसा ज्ञान है वह मिथ्याज्ञानपूर्वक संसार आत्मज्ञानविना किसी अन्यहेतुसे नहीं जासकता ॥ ७ ॥ जैसा इस मोक्षोपायरूप ग्रन्थके विचारसे आत्मज्ञानका विस्तार होताहै वैसा अन्यग्रन्थोंसे नहीं होता इसलिये इस मोक्षोपायका विचार अवश्य करनाचाहिये ॥ ८ ॥

किलाहमिदमित्येवनाविद्याविद्यतेक्वचित् ॥ मोक्षोपायादृतेनैतत्कुतश्चिदयतेन्यतः ॥ ९ ॥ एवंयन्मन साभ्यस्तमुपलब्धंतथैवतत् ॥ तेनमेजीवितंप्राणइतिप्राणेमनःस्थितम् ॥ १० ॥ देहेसौम्येस्थितेप्राणेम नोमननवद्भवेत् ॥ क्षुब्धेप्राणगतंक्षोभंपश्यन्नान्यत्प्रपश्यति ॥ ११ ॥ यदाचकर्मणिस्पंदेव्यग्रःप्राणोभृ शंभवेत् ॥ तदातदीहितव्यग्रःप्राणोनात्मोद्यमीभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह शरीरादि मैं हुं और यह गृहआदि मेरा है, इन दोनोंमें दोकेसिवाय और अविद्या कहीं नहीं है सो वह इस मोक्षोपायके विचारके विना अन्यसे नहीं जाती ॥ ९ ॥ इसप्रकार मनने जहां जैसा निश्चय किया वहां वैसाही पाया और प्राणही मेरे परमप्रेमास्पद जीवनाधार हैं इस मनके दृढ अभ्याससेही प्राणके आधीन मन है ॥ १० ॥ देहके शान्त रहनेपर देहगतशान्तिको प्राणनिष्ठ मानके यह मन मननआदि व्यापार करताहै और देहके क्षुभित होनेपर देहके क्षोभको प्राणमें मानके अन्य वा आत्मज्ञानका कुछभी विचार नहीं करता ॥ ११ ॥ जब यह प्राण निज (श्वासोच्छासरूप) कार्य्यमें अति व्यग्र रहताहै तब मनके अभिलषित सम्पादनमें व्यग्र रहकर आत्मज्ञानका उद्यम नहीं करता, इससे यह सिद्ध है कि प्राणनिरोधके बिना आत्मज्ञान सिद्ध नहीं होता ॥ १२ ॥

एतेहिप्राणमनसीत्वन्योन्यंरथसारथी ॥ केनामनानुवर्ततेरथसारथिनौमिथः ॥ १३ ॥ इत्यादिसर्गेस्वा त्मैवचेतितःपरमात्मना ॥ तेनैषाद्यापिनियतिर्नाबुधानांनिवर्त्तते ॥ १४ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यैर्मनःप्रा णशरीरिणाम् ॥ प्रयांत्यधिगतादेहेष्वरूढानांपरेपदे ॥ १५ ॥ स्वप्राणमनसीसाम्यात्कुर्वतकिर्मतिष्ठ तः ॥ वैषम्याद्विषमंचैकंशांतेशांतासुषुप्तता ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ये प्राण तथा मन परस्पर एकदूसरेके रथ तथा सारथी हैं, और संसारमें ऐसे कौन रथ तथा सारथी हैं जो एक दूसरेके अनुगामी न हों ॥ १३ ॥ प्राण तथा मनकी परस्पर अनुवृत्ति आत्मज्ञानके पूर्वकालतक आदिसृष्टिमें प्राणमनोरूप आत्माहीने संकल्पित कियाहै इसलिये यह मर्य्यादा अज्ञानियोंके लिये अद्यावधि निवृत्त नहीं होती ॥ १४ ॥ आत्मपदमें अनारूढ मन, प्राण तथा शरीरोंके शरीरोंहीमें देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यसे प्राप्त व्यवहार प्रवृत्त होतेहैं ॥ १५ ॥ जिससमय प्राण तथा मन समतासे अपने २ कार्य्योंको करते हैं उससमय जाग्रत् व्यवहार होताहै, प्राण जब इन्द्रियोंके व्यापारसे निवृत्त होकर विषमता धारण करताहै तब स्वप्नरूप केवल एक मानसका व्यापार होताहै और जब मन शान्त होजाताहै तब सुषुप्ति होती है ॥ १६ ॥

यदाहारादिरुद्धासुनाडीषुकापिपीडितः ॥ शांतमास्तेजडःप्राणस्तदोदेतिसुषुप्तता ॥ १७ ॥ नाडीष्व न्नावपूर्णासुतथाक्षीणासुवाक्कमात् ॥ निःस्पंदस्तिष्ठतिप्राणस्तदोदेतिसुषुप्तता ॥ १८ ॥ नाडीनांमृदुरू पत्वात्पूर्णत्वाद्वाव्रणोदरे ॥ कापिप्राणेस्थितेलीनेनिःस्पंदास्तेसुषुप्तता ॥ १९ ॥ तापसउवाच ॥ अथ यस्यप्रविष्टोहंहृदयेसोभवन्निशि ॥ सुषुप्तघननिद्रालुराहारपरितृप्तिमान् ॥ २० ॥

अर्थ—जब भुक्त आहारके रससे, परिश्रमसे वा पित्तादिसे नाडियोंके रुद्ध होनेपर पिडित प्राण मन्दसंचार होकर कहीं रहताहै तब सुषुप्तिका उदय होताहै ॥ १७ ॥ तथा नाडियों अन्नसे पूर्ण होनेपर वा क्षुधा तथा श्रमसे क्षीण होनेपरभी प्राणकी मन्दगति होनेपर सुषुप्तिका उदय होताहै ॥ १८ ॥ तथा मर्दनादिसे नाडियोंके मृदु होनेपर और बाणआदिके क्षतों

(घावों) के रुधिरसे पूर्ण होनेपर प्राणोंकी किसी स्थानमें लीनतादशामेंभी सुषुप्ति उदित होती है ॥ १९ ॥ तापस बोला कि–जिस प्राणीके हृदयमें मैं प्रविष्ट हुआ वह रात्रिमें आहारादिसे तृप्त होकर गाढ सुषुप्ति निद्रामें ग्रस्त होगया ॥ २० ॥

तेनसार्धमहंतत्रतच्चितेनैकतांगतः ॥ सुषुप्तनिद्रांसुघनांगुणीभूतोनुभूतवान् ॥ २१ ॥ ततोंधस्यास्यजीर्णैतर्नाडीमार्गेस्फुटेस्थिते ॥ प्राक्तेस्पंदितेप्राणेसुषुप्तंतनुतांययौ ॥ २२ ॥ सुषुप्तेतनुतांयातेहृदयादिव निर्गतम् ॥ अवश्यमहमत्रैवभुवनंभास्करादिमत् ॥ २३ ॥ तच्चक्षुब्धार्णवोत्थेनपूर्यमाणंमहांभसा ॥ विमुक्तेनेवकल्पाभ्रैरभ्रंकषतरंगिणा ॥ २४ ॥

अर्थ—उस प्राणीके साथही उसके चित्तके साथ एकताको प्राप्त निजस्वतन्त्रताको त्यागकर गाढीनिद्राका मैंनेभी अनुभव किया ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् इस प्राणीके भुक्त आहारके परिपक्व होनेपर नाडीमार्गमें जब प्राण पूर्ण स्पष्टरूपसे गमनागमन करनेलगा तब सुषुप्ति अल्पताको प्राप्त होगई ॥ २२ ॥ तब सुषुप्तिके सूक्ष्म होनेपर हृदयसे निःसृतके सदृश सूर्य्यआदि सहित स्वप्नमय सबसंसार इसी हृदयप्रदेशमेंही मैंने देखा ॥ २३ ॥ और प्रलयकालके मेघसे मुक्त संक्षोभित समुद्रसे आविर्भूत तथा आकाशको चूमनेवाले तरंगोंसे युक्त महाजलसे पूर्ण भुवनको मैंने देखा ॥ २४ ॥

प्रोह्यत्पर्वतपूरेणमहावर्त्तविराविणा ॥ वहद्वनालीतृण्याढ्यैर्व्याप्तेनोन्मूलितागया ॥ २५ ॥ पूर्वमेवावदग्धायास्त्रिलोक्याःखंडखंडकैः ॥ पूर्णेनपरितःप्रौढैःखपुराद्रिमहीमयैः ॥ २६ ॥ अहंतत्रैवपश्यामियावत्कस्मिंश्चिदास्पदे ॥ कस्यांचित्पुरिकस्मिंश्चिद्गृहेवध्वापुरेस्थितः ॥ २७ ॥ सदारःसहभृत्योहंसपुत्रः सहबांधवः ॥ सहभांडोपस्करणःसगृहोपहतोंभसा ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा वहतेहुये महापर्वतोंके प्रवाहसे पूर्ण, महाआवर्तोंसे भयंकर शब्दयुक्त, वहती हुई वनकी पंक्तिरूप तृणसमूहोंसे पूर्ण पर्वतोंसे व्याप्तजलके प्रवाहसे आच्छादित, तथा पर्वत वृक्षादिको निर्मूल करनेवाली अग्निकी ज्वालासे पूर्वदग्ध त्रिलोकीके खण्डोंसे और देव असुर आदिके नगरोंसे व्याप्त ब्रह्मांडको मैंने देखा ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसी हृदयप्रदेशमेंही क्या देखताहुं कि प्रलयाभिमुख संसारके किसी नगरके गृहमें निजभार्य्याकेसाथ मैं वर्तमानहुं ॥ २७ ॥ उसके पश्चात् स्त्री, पुत्र, भृत्य तथा बन्धुसहित और गृहके पात्र तथा अन्यसामग्रीसहित मैं उस प्रलयके जलसे प्रवाहित हुआ ॥ २८ ॥

उह्यमानंक्षयांभोभिस्तद्गृहंतच्चपत्तनम् ॥ लंघ्यमानंद्रुमाकारैःपूर्यमाणंचवारिभिः ॥ २९ ॥ बृहत्कलकलारावंजेतुमब्धिमिवोद्यतम् ॥ अतिक्षुभितवास्तव्यमनपेक्षितपुत्रकम् ॥ ३० ॥ आवर्ततरलाढ्याभिर्वृत्तिभिर्व्यूढमाकुलम् ॥ साक्रंदोरस्ताडनोत्कजनजंबालभीषणम् ॥ ३१ ॥ स्फुटत्कुड्यत्रुटत्काष्ठरटच्छंकुकतोद्रटम् ॥ प्रपतच्छादनच्छत्रगव क्षस्थांगनामुखम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रलयके जलसे प्रवाहित, जलपूर्ण, वृक्षाकार महातरंगोंसे लंघ्यमान, महाकलकलशब्दसंयुक्त, समुद्रकोभी जीतनेको उद्यतके सदृश, तथा पुत्रादिकीभी अपेक्षा न करनेवाले अतिक्षुभित नगरनिवासियोंकरके सहित उस गृह तथा नगरको मैंने देखा ॥ २९ ॥ ३० ॥ तथा महाआवर्तोंसे चंचल जलकी प्रवृत्तियोंसे व्याप्त अतएव व्याकुल, वक्षस्थलोंके ताडनपूर्वक रोदनमें तत्पर, जनरूपी जंबालों (शैवालों) से अतिभयंकर उस भुवनको मैंने देखा ॥ ३१ ॥ तथा तडकतेहुये गृहों और टूटतेहुये काष्ठोंसे उत्पन्न महाशब्दसहित, तथा छतोंपरसे गिरतीहुई गवाक्षों (झरोखों) में स्थित अंगनाओंके मुखसहित उस गृहको मैंने देखा ॥ ३२ ॥

इतियावत्क्षणंपश्यन्नहंतद्भावमागतः ॥ परिरोदिमिदीनात्मातावत्तत्सकलंगृहम् ॥ ३३ ॥ चतुर्द्धाभित्तिभेदेनवृद्धबालांगनान्वितम् ॥ जगामशतधावीच्यांशिलायामिवनिर्झरः ॥ ३४ ॥ उह्यमानोहमभवंततःप्रलयवारिणि ॥ त्यक्तसर्वकलत्रादिचितःप्राणपरायणः ॥ ३५ ॥ क्षिप्तस्तरंगजालेनयोजनाद्योजनव्रजे ॥ उह्यमानद्रुमशिखाज्वालांतरितजर्जरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसप्रकार उन्हीके भावको प्राप्त मैं क्षणभर इस उपद्रवको देखताहुवा दीनचित्त होके ज्योंही रोदन करनेलगा, इतनेहीमें चारभागोंमें भित्तियोंके विदारणसे बाल, वृद्ध तथा स्त्रियोंकरके सहित वह संपूर्ण गृह तरंगोंमें ऐसे शतखंड होगया जैसे शिलापर गिरनेसे झरनेका जल ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् सब स्त्रीपुत्रादिसे रहित, केवल निजप्राणरक्षामें तत्पर मैं उस प्रलयके जलमें प्रवाहित हुआ ॥ ३५ ॥ तरंगोंके जालोंसे अनेक योजनोंपर प्रक्षिप्त (फेंका हुआ) तथा साथ वहते हुये वृक्ष और उनमें व्याप्त प्रलयाग्निकी ज्वालासे जर्जरित ॥ ३६ ॥

काष्ठकुडयतटीपीठकटुसंघट्टघट्टितः ॥ आवर्तनृत्यपातालतलेगत्वोत्थितश्चिरात् ॥ ३७ ॥ चलाचलाग मापायवलद्गुडुगुलारवे ॥ जलेबहुलकल्लोलेमग्नोन्मग्नःपुनःपुनः ॥ ३८ ॥ संघट्टभग्नशैलेंद्रपंकिलेसलि लेक्षणम् ॥ पल्वलेवारणइवमग्नःसत्पयसोद्धृतः ॥ ३९ ॥ यावदाश्वसिमिक्षिप्रंडिंडीरेचाद्रिखंडके ॥ तावदेत्यहतोवेगाद्वैरिणेवातिवारिणा ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा काष्ठ, गृह और पर्वतादिके दुःसह संघर्षणोंसे मर्दित, और आवर्तोंके भ्रमणोंसे पातालतलमें जाकर पुनः चिरकालमें जलके ऊपर प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ तथा चंचलपर्वतोंके गमनागमनसे गुड २ शब्दसहित, तथा अनेक तरंगोंसे व्याप्त जलमें मैं पुनः २ डूबता तथा तरताथा ॥ ३८ ॥ और परस्परके संघर्षणोंसे मर्दित पर्वतेन्द्रोंसे कर्दम (कीचड) युक्त जलमें तडागमें गजेन्द्रके समान क्षण निमग्न होके पुनः दैवसंयोगसे उत्तमजलके प्रवाहसे उद्धृत हुआ ॥ ३९ ॥ वहांपर फेनपुंजमें और पर्वतखंडमें ज्योंही कुछ विश्राम लेनेलगा इतनेहीमें शत्रुके सदृश अतिवेगसे प्राप्त महाजलतरंगसे ताडित हुआ ॥ ४० ॥

नानावलनकल्लोलजलजालजुषातदा ॥ नतदस्तिनयद्दृष्टंदुःखंदुःखात्मनामया ॥ ४१ ॥ एतस्मिन्नंतरेत त्रतदातत्तामसेक्षण ॥ यावज्जीवचिराभ्यासाद्विषादित्वात्स्वचेतसः ॥ ४२ ॥ प्राक्तनंसंस्मृतंरूपंस्वंस माधिमयंमया ॥ आअहोनुजगत्यन्यरूपेहंतापसःस्थितः ॥ ४३ ॥ अहंकस्यचिदन्यस्यस्वप्नदृष्टिदि दृक्षया ॥ प्रविष्टोहमयंस्वप्नेपश्यामीमंभ्रमंत्विति ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र रामजी ! उससमय मुनिने कहा कि व्याध नानाप्रकारके तरंगोंसे आवृत, जलप्रवाहमें पतित, दुःखपूर्ण मैंने उससमय ऐसा कोई दुःख नहीं है जिसको न देखाहो और न अनुभव कियाहो ॥ ४१ ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! तापस व्याधसे कहताहै कि इसीसमय पूर्वकालके अभ्याससे तथा विषादपूर्णचित्त होनेके कारण ॥ ४२ ॥ अपने पूर्वकालिक समाधिमय स्वरूपका स्मरण मैंने किया कि अहो ! मैं तापस अन्यरूप जगत्में स्थित था ॥ ४३ ॥ और स्वप्न देखनेकी इच्छासे किसी प्राणीके हृदयमें प्रविष्ट हुआ, अतएव उसीके स्वप्नमें यह भ्रम देखताहुं ॥ ४४ ॥

वर्त्तमानदृढाभ्यासमिथ्याज्ञानमयात्मनि ॥ कल्लोलैरुह्यमानोपितत्तोहंसुखितःस्थितः ॥ ४५ ॥ इदंवा रितयापश्यंप्रलयाब्धिविवर्त्तनाः ॥ उह्यमानाद्रिनगरग्रामोर्वीखंडपादपाः ॥ ४६ ॥ उह्यमानामराहींद्रना रीनरनभश्चराः ॥ उह्यमानमहारंभलोकपालपुरालयाः ॥ ४७ ॥ अथाहमद्रिमिश्रांबुकल्लोलाद्रिविघट्ट नाः ॥ मुहुःपश्यञ्जगन्नाशमनंतरमचिंतयम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसीसे वर्तमान स्वप्नप्रपंचमय दृढअभ्यासजनित मिथ्याज्ञानमय देहमें तरंगोंसे प्रवाहित होनेपरभी समाधिमयस्वरूपके स्मरणके पश्चात् सुखसे स्थित था ॥ ४५ ॥ मृगतृष्णाके जलके सदृश मिथ्याप्रवाहित पर्वत, नगर, ग्राम, पृथिवीके खंड तथा वृक्षादिपूर्ण प्रलयके समुद्रकी बिडंबनाओंको मैंने देखा ॥ ४६ ॥ तथा वहतेहुये देवता, शेष, स्त्री, पुरुष और आकाशगामी देवगणसहित, तथा महान् आरंभकेसाथ प्रवाहि लोकपाल तथा उनके पुर और स्थानसहित प्रलयसमुद्रकी विडंबनाओंको मैंने देखा ॥ ४७ ॥ इसके पश्चात् पर्वतसहित तरंगोंसे परस्पर पर्वतोंके संमर्दनोंको तथा वारंवार जगत्के नाशको देखतेहुये मैंने चिन्तन किया ॥ ४८ ॥

चित्रमेषत्रिनेत्रोपिजीर्णतृणमिवार्णवे ॥ उह्यतेहाहतविधेर्नाकार्यनामविद्यते ॥ ४९ ॥ चतुर्धाभित्तिभे देनप्रकटाशयतामहम् ॥ पद्मानीवगृहाण्यप्सुदर्शयंतिरवेःप्रभाः ॥ ५० ॥ चित्रंतरंगवलनासुसमुल्लसं तिगंधर्वकिन्नरनरामरनागनार्यः ॥ भूरिभ्रमैर्भ्रमरहारमिवहृदिन्यःपद्मिन्यएवसकलामलजंगमाख्याः ॥ ॥ ५१ ॥ विद्याधरीभुजलतावलितेंदुकांतकक्ष्याविभागमणिजालगवाक्षलक्ष्म्यः ॥ देवासुरोरगमहागृ हभित्तिभागाःसौवर्णनौगणवदंबुभरेभ्रमंति ॥ ५२ ॥

अर्थ—कि अहो ! यह कैसा आश्चर्य्य है कि तीनों अवस्थारूप त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरजीभी जीवरूप होकर इस मायाके समुद्रमें प्रवाहित होरहेहैं. हा ! इस दुष्ट दैवको अकरणीय कुछभी नहींहै ॥ ४९ ॥ जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यकी प्रभा जलमें विकसितकमलोंको दर्शातीहैं ऐसेही चारप्रकारसे भित्तियोंके विदारणसे गृहोंकोभी जलमें प्रकटित आशयकी शोभापूर्वक दर्शातीथीं ॥ ५० ॥ अहो ! यह कैसा आश्चर्य्य है कि गंधर्व, किन्नर, मनुष्य तथा देवताओंके स्त्रीपुरुष तथा संपूर्ण निर्मल अन्य जंगमजाति अधिकभ्रमणयुक्त आवर्तोंसे उपलक्षित तथा पुष्पधूलिसे श्वेतवर्ण भ्रमरोंकी पंक्तिरूप हार धारण कियेहुये मुख हस्त पादादियुक्त नदियोंकेसमान तरंगोंकी क्रीडाओंमें शोभित होरहीहैं ॥ ५१ ॥ तथा विद्याधरियोंके भुजारूपी लताओंसे वेष्टित चन्द्रकान्तमणियोंमें वर्गसम्बन्धी

विभागोंके समान प्रकाशमान मणिसमूहरचित गवाक्षों (झरोंखों) की शोभासहित देवता तथा असुरआदिके गृहोंकी भित्तियोंके भाग प्रलयसमुद्रके जलप्रवाहोंमें सुवर्णकी नौकाओंके सदृश भ्रमण करतेहैं ॥ ५२ ॥

मत्तेभकुंभपरिणाहिनिकुंकुमांकेशच्याःपयोधरभरेरतिखेदखिन्नः ॥ लग्नःसुखादिवकरोतितरंगदोलाः संशीर्यमाणमणिगेहगतोत्रशक्रः ॥ ५३ ॥ हावांतिवारिवलनावलितांतरिक्षमृक्षावधूतकुसुमप्रकरान् किरंतः ॥ वाताःपतद्विबुधमंदिररत्नसानावुद्यानकोटरगताइवसाक्षतेन ॥ ५४ ॥ यंत्रोत्थहेमदृषदासदृशांबुरूपंक्षुब्धाद्रिभीमजलवीचिशिखेरितंखे ॥ व्यावर्त्ततेदिविदलावृतकर्णिकास्थध्यानैकनिष्ठपरमेष्ठिसरोजमेतत् ॥ ५५ ॥ मेघाइवातिननघुंघुमघोषभीमावीचीचयाःकतकपत्तनविद्युतोमी ॥ व्योम्निभ्रमंतिगजवाजिमृगेंद्रनागवृक्षाद्रिकाननमहीतलतुल्यदेहाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—देख भग्न होतेहुये मणिरचितगृहमें प्राप्त इन्द्र, इस प्रलयकालके जलप्रवाहमें पतित, कुंकुमसे चिन्हित मत्तकुंजरके गंडस्थलके सदृश विशाल इन्द्राणीके स्तनमंडलपर रतिखेदसे श्रान्त होके मानों खेदके दूरकरनेके लिये जलक्रीडाके सुखकी अभिलाषासे तरंगोंके झूले ले रहाहै ॥ ५३ ॥ हा ! जलके वेष्टनोंसे अन्तरिक्षको व्याप्त करके नक्षत्रसमूहरूप कंपित पुष्पोंको बिखेरतेहुये पवन गिरतेहुये देवमन्दिररूप विमानसंयुक्त सुमेरुपर ऐसे चलतेहैं जैसे उस पर्वतके उद्यानकोटरमें प्राप्त तथा अक्षतसहित पुष्पवर्षाव करतेहुये प्राणी ॥ ५४ ॥ आकाशमें क्षोभको प्राप्त पर्वतोंके सदृश भयजनक तरंगोंकी शिखाओंसे प्रेरित, तथा यंत्रसे प्रक्षिप्त सुवर्णके सदृश यह जलका रूप ब्रह्मलोकमें पत्रोंसे वेष्टित कर्णिकामें ध्यानस्थित ब्रह्माजीके आसनभूत कमलतक प्राप्त होके भ्रमण करताहै ॥ ५५ ॥ अतिगंभीर घुंघुमशब्दोंसे भयंकर, देवता तथा असुरोंके सुवर्णमय नगरीरूप विद्युत्से शोभित, तथा गज, तुरंग, सिंह, नाग, वृक्ष, पर्वत, बन और भूतलके सदृश विशालदेहधारी ये तरंगोंके समूह आकाशमें मेघोंके सदृश भ्रमणकरतेहैं ॥ ५६ ॥

उह्यमानोदभूवीच्यामतसीकुसुमश्रियाम् ॥ यमोप्ययंयमेनेववारिपूरेणनीयते ॥ ५७ ॥ एतेबुडंतिसलिलेखिललोकपालानागानगैश्र्वनगरैःसहलक्षसंख्याः ॥ लक्ष्म्याकरोदरगुहागतवारिपूरव्यावर्त्तनागुडगुडैरभिलक्ष्यपूराः ॥ ५८ ॥ दुर्वारवारिवलनापरिपूरितेषुपातालभूतलनभस्तलदिक्तटेषु ॥ मत्स्याइवेंद्रयमयक्षसुरासुरौघाःसग्रामपत्तनविमाननगाभ्रमंति ॥ ५९ ॥ उह्यमानस्यकृष्णस्यतनुरेवांबुरूपिणी ॥ मातृजंघेववत्सस्यकष्टंबंधनतांगता ॥ ६० ॥

अर्थ—अतसी (अलसी) के पुष्पके सदृश शोभा धारण किये वहतेहुये प्रलयसमुद्रकी तरंगमें ये यमराजभी जलप्रवाहरूपी अन्य यमसे मानों प्रवाहित होरहे हैं ॥ ५७ ॥ अहो धनके आकर (खानि) भूत पर्वतोंकी गुहाओंमें प्रविष्ट जलप्रवाहके निर्गमनार्थ निकलते हुये वायुके गुड २ शब्दोंसे लक्ष्य और नाग, पर्वत तथा नगरादिसहित ये संपूर्ण लोकपाल इस प्रलयके जलमें निमग्न होरहेहैं ॥ ५८ ॥ अनिवारणीय जलके प्रवाहोंसे परिपूर्ण पाताल, भूतल तथा आकाश और दिशाओंके तटोंमें ग्राम, नगर तथा विमानोंसहित ये इन्द्र, यम, कुबेर तथा यक्ष और अन्य संपूर्ण देवताओंके समूह मत्स्योंके समान भ्रमण करते हैं ॥ ५९ ॥ अहो ! कैसे कष्टकी वार्ता है कि श्रीकृष्णभगवान्‌की जलरूप शरीरही उनके वहानेमें कारणताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे दोहनकालमें माताकी जंघा वत्सके बन्धनताको ॥ ६० ॥

अन्योन्यमावलयतामहोबुडबुडारवः ॥ श्रूयतेदेवदैत्यानांस्वस्त्रीहलहलाकुलः ॥ ६१ ॥ कोलाहलाकुलपुरोत्तमवेगपातविक्षुब्धवारिपटलीवलितांबरासु ॥ दिक्षुभ्रमज्जलदजालघनास्विवैषसंलक्ष्यतेचलमयःस्फुटकुड्यबंधः ॥ ६२ ॥ हाकष्टमेषतरसापयसापनीतआवर्तवृत्तिपरिवर्तनयास्त्वधस्तात् ॥ एतेकुबेरयमनारदवासवाद्याःप्राणान्पयोभ्रपटलैर्विधुरास्त्यजंति ॥ ६३ ॥ ब्रह्माःप्रशांतजडदेहमिहोह्यमानंमानोज्झिताःशवतयैवचतद्वहंति ॥ ब्रह्मेंद्रविष्णुपुरखंडकसंकटांबुसंघट्टनेनकटुकुट्टनहृक्षुतेन ॥ ६४ ॥

अर्थ—परस्पर लपटते हुये देव और दैत्योंके बुडनेके यह ध्वनि ऐसे सुनपडती है जैसे स्वार्थ वा स्त्रीके लिये कोलाहल ध्वनि ॥ ६१ ॥ कोलाहलोंसे पूर्ण देवदानवोंके उत्तम नगरोंके वेगसे पतनद्वारा क्षुभित जलपटलोंसे व्याप्त दिशाओंमें यह प्रत्यक्षजलमय आगार (गृह) ऐसे भान होताहै जैसे भ्रमण करतेहुये घनीभूत मेघजालोंमें ॥ ६२ ॥ हा ! खेद ये प्रसिद्ध सूर्य्यभगवान्‌भी वेगयुक्त जलके आवर्तोंके परिवर्तनसे पूर्णरूपसे अधोभागमें प्राप्त करदिये, तथा जलरूप मेघपटलोंसे व्याकुल ये कुबेर, यम, नारद तथा इन्द्र आदि देव असमर्थ होके अपने प्राणोंको त्यागते हैं ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्रादिके नगरोंके खंडोंसे व्याप्त जलके संघट्टनसे कटु कुट्टनशब्दोंके सुननेवालोंके मध्यमें जो तत्व

ज्ञानी हैं वे निजदेहमें आत्माभिमानसे रहित होके उसको मृतकशरीरके सदृश धारण करतेहैं, इसी हेतुसे वे छेदन, भेदन तथा अभिघातादिसे दुःखोंसे लिप्त नहीं हैं ॥ ६४ ॥

स्त्रीणांगणोर्धपरिपिष्टइहेतिकष्टंकस्त्रातुमेनमपरःकुजडंसमर्थः ॥ नह्यंतकस्यदशनैरभिचर्व्यमाणात्रातुं परस्परमियंजनतासमर्था ॥ ६५ ॥ पर्वतप्रतिघसर्पसर्पणाःसंसरंतिविपुलाजलोच्चयाः ॥ तेषुनावइव देवपत्तनान्युन्नमय्यवपुराशुयांत्यधः ॥ ६६ ॥ द्वीपाद्रींद्रसुरासुरोरगनरैर्नागाप्सरश्चारणैर्व्याप्तंवारिविलोलितैःसरसिजैराल्लूनमूलैरिव ॥ एकांभोधिसरःस्थितंत्रिभुवनंकालेननिर्मूलितंकष्टंतेक्वगतामहर्द्धिविभवादेवाजगन्नायकाः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० जगन्नाशवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३९ ॥

अर्थ—हा ! अतिमूर्खरूपसे पृथिविमें प्रसिद्ध अर्द्धमर्दित यह स्त्रियोंका समूह वहा चलाआताहै, इसकी रक्षा करनेमें कोई समर्थ नहींहै, क्योंकि कालके दांतोंसे चर्व्यमाण यह प्राणियोंका समूह इससमय परस्परकी रक्षामें समर्थ नहीं है ॥ ६५ ॥ पर्वतोंके विदारणमें समर्थ और सर्पके सदृश कुटिलगति ये विशालजलके तरंग अतिवेगसे जातेहैं, उनमें देवताआदिके नगर नौकाओंके तुल्य प्रथम अपनी देह झुकाके अनन्तर शीघ्र अधोभागमें प्रविष्ट होजातेहैं ॥ ६६ ॥ अहो ! यह त्रिभुवन कालसे निर्मूलित होके जलके तरंगोंसे संक्षोभित द्वीप, पर्वत, सुर, असुर, मनुष्य, नाग, गज, अप्सरा तथा गन्धर्वादिसे व्याप्त, मूलरहित कमलोंसे पूर्ण, प्रलयकालके समुद्ररूप तडागका रूप धारणकरके विद्यमान है. हा ! कष्ट महाऐश्वर्य्यसंपन्न जगत्के नायक इन्द्रादिदेव कहां गये ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विप० श० जगन्नाशवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १३९ ॥

चत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४० ॥

प्रलयके समुद्रका विनाश, ग्राममें ब्राह्मणरूपसे स्थिति तथा उस प्राणीके शरीरसे मुनिका बाह्यदेशमें निःसरण इत्यादि विषयोंका वर्णन इस १४० के सर्गमें कियाहै ॥

॥ व्याधउवाच ॥ भगवंस्त्वादृशस्तांतामवस्थांचकथंगतः ॥ कथंध्यानप्रयोगेणतदानोपशमंगतः ॥ ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ कल्पांतेषुविनश्यंतिनाशैर्नानाविधात्मभिः ॥ जगंतिभ्रांतिरूपाणिनभस्याभासरूपिभिः ॥ २ ॥ कदाचित्क्रमशोनाशःकल्पांतेसंप्रवर्त्तते ॥ अशंकितंकदाचिद्वागेकधादिग्विकारतः ॥ ३ ॥ तदाद्रागित्येवयदाविकृतंवारितत्तथा ॥ तेनयावत्सरंत्याद्यंतावन्नीताजलैःसुराः ॥ ४ ॥

अर्थ—व्याध बोला–कि हे भगवन् ! आपके सदृश त्रिकालदर्शी योगी उन २ महाकष्टदायिनी जलप्रलयकी भ्रमरूप अवस्थाओंमें कैसे प्राप्त हुआ, तथा ध्यानद्वारा उस भ्रमकी शान्तिको क्यों न प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ मुनि बोले–कि हे व्याध ! आकाशमें आभासरूप नानाप्रकारके नाशोंसे कल्पान्तमें ये भ्रान्तिमय नानाजगत् नष्ट होतेहैं ॥ २ ॥ हे व्याध ! कल्पके अन्तमें जगत्का नाश कदाचित् क्रमसे होताहै और कदाचित् सातोंसमुद्रोंके मेलनरूप विकारसे आकस्मिक प्रलय एककालही होजाताहै, इसलिये क्रमसे प्रलय होनेसे भूतभविष्यके विचारका समय मिलताहै और आकस्मिकमें नहीं मिलता इससे मैंने नहीं विचारा ॥ ३ ॥ और यह प्रलयतो शीघ्रतासे ऐसे आकस्मिक हुआ कि देवता जब ब्रह्माजीसे प्रार्थना करनेको जातेथे इतनेहीमें जलप्रवाहसे प्रवाहित हुये. (बहायेगये) जब देवताओंकोभी इसका विचार न हुआ तो हमारी क्या कथा है ॥ ४ ॥

अन्यच्चविपिनाधीशकालःसर्वंकषोह्ययम् ॥ यत्रकालेततस्तस्मिंस्त्ववश्यंभावितत्तथा ॥ ५ ॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चक्षयकालउपस्थिते ॥ विपर्यस्यतिसर्वत्रसर्वथामहतामपि ॥ ६ ॥ अन्यच्चविपिनाधीशमयैतत्तववर्णितम् ॥ स्वप्नदृष्टंकिलस्वप्नेकिंनसंभवतीहकिम् ॥ ७ ॥ व्याधउवाच ॥ असदेतद्यदिविभोस्वप्नसंभ्रममात्रकम् ॥ कथितेनतदैतेनकोर्थःकल्याणकोविद ॥ ८ ॥

अर्थ—औरभी हे व्याध ! यह काल सबका नाशक है जिस कालमें जो वार्ता अवश्य होनेवाली है वह अवश्य उसीप्रकारसे होतीहै ॥ ५ ॥ जब विनाशकाल उपस्थित होताहै तब महात्माओंका बल, बुद्धि तथा तेज सर्वथा विपर्य्यय-भावको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ और यह जो मैंने तुमसे वर्णन कियाहै वह दूसरेके चित्तस्थ स्वप्नदृष्ट वृत्तान्त है और स्वप्नमें

क्या नहीं संभव होता ॥ ७ ॥ व्याध बोला–कि हे विभो ! तथा हे कल्याणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यदि यह स्वप्नवत् असत्यही है तो इस अनर्थक प्रलापसे क्या प्रयोजन ? ॥ ८ ॥

मुनिरुवाच ॥ त्वद्बोधनात्मकंकार्यमहदस्त्यत्रबुद्धिमन् ॥ एतद्भ्रमात्मकंवेत्तिभवान्सत्यंतुमेशृणु ॥ ॥ ९ ॥ अनंतरमहंतस्मिन्मत्तैकार्णवरंहसि ॥ जंतोरोजःस्थितःस्वप्नेभ्रांतंभ्रांतोव्यलोकयम् ॥ १० ॥ यावत्ससकलंवारिकापिनिर्गंतुमुद्यतम् ॥ विक्षुब्धवज्रवित्रस्तसपक्षाद्रींद्रवृंदवत् ॥ ११ ॥ लब्धवानुह्य मानोहंकंचिद्दैववशात्तटम् ॥ अवसन्तमवष्टभ्यशिखरप्रांतसन्निभम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मुनि बोले कि–हे बुद्धिमन् ! यह असत् होनेपरभी तुमारे बोधनार्थ मोक्षपर्य्यवसायी होनेसे महाप्रयोजनवान् है, इस दृष्टान्तसे इस विश्वमात्रको स्वप्नवत् भ्रममात्र जानतेहो, क्योंकि दृश्यमात्र भ्रमरूप जाननेसे दृक्रूप सत्य तुमही शेष रहजातेहो, अब इस कथाको अन्वय व्यतिरेकसे सुनो ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर उस प्रलयके महासमुद्रमें उस जीवके हृदयस्थतेजमें स्थित मैंभी स्वप्नमें भ्रान्तहोके तबतक भ्रम देखतारहा ॥ १० ॥ जबतक कि संक्षुब्ध तथा भ्रमित वज्रधारी इन्द्रादिदेव और पर्वतवृन्दसहित तथा आवर्ततरंगादि युक्त वह जल कहीं निकलनेको नहीं उद्यत हुआ ॥ ११ ॥ उस जलमें वहतेहुये मैंने शिखरके सदृश किसी तटको दैवसंयोगसे पाया और उसको अवलम्बन (पकड) कर वहांही ठहरगया ॥ १२ ॥

अथक्षणेनसलिलंतदशेषेणनिर्ययौ ॥ वीच्यग्रस्फुटिताकारैर्देवैस्तारकितांबरम् ॥ १३ ॥ तारागणैश्वपातालगतैर्मणिमयोदरम् ॥ आवर्त्तेषुपरावृत्तैःस्फारमद्रिजरत्तृणैः ॥ १४ ॥ हेमद्वीपोपमैर्व्याप्तंगीर्वाणपुर मंदिरैः ॥ भ्रमत्सुरांगनालीननलिनीजालमालितम् ॥ १५ ॥ मध्योह्यम नकल्पाभ्रनीलशैवालजालकम् ॥ विद्युद्गोरोचनांभोदनीलनीरजनिर्भरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् क्षणमेंही वह संपूर्ण जल न जानै कहां चलागया, और तरंगोंके अग्रभागमें स्पष्ट आकारधारी देवताओंने तारागणके सदृश आकाशको शोभित किया ॥ १३ ॥ पातालमें प्राप्त तारागणोंसे मणिमय उदरके सदृश, तथा आवर्तोंमें भ्रमण करतेहुये पर्वतरूप जीर्णतृणोंसे पूर्ण ॥ १४ ॥ सुवर्णके द्वीपोंके तुल्य देवताओंके नगर और मन्दिरोंसे व्याप्त, तथा भ्रमण करतीहुई देवांगनारूप कमलिनीसमूहोंसे वेष्टित वह जलका प्रदेश होगया ॥ १५ ॥ तथा मध्यभागमें वहतेहुये कल्पान्तमेघरूप नील शैवालजालसे पूर्ण और विद्युत्रूप गोरोचनतुल्य परागोंसे युक्त मेघरूप नीलकमलोंसे पूर्ण वह प्रलयजल होगया ॥ १६ ॥

स्फुरत्सीकरनीहारमेघाद्रिकृतदिक्तटम् ॥ उल्लोलद्वीचिसंदिग्धवहत्कल्पद्रुमव्रजम् ॥ १७ ॥ अथैकार्णवखातोसावभवच्छुष्ककोटरः ॥ क्वचिद्गलितसह्याद्रिःक्वचित्संशीकमंदरः ॥ १८ ॥ क्वचित्पंकनिमग्नेंदुयमवासवतक्षकः ॥ क्वचित्पंकनिमग्नाधःशाखकल्पद्रुमोत्करः ॥ १९ ॥ क्वचित्कमलवत्कीर्णलोकपालशिरःकरः ॥ क्वचित्पंकजविश्रांतरुधिरहृदपाटलः ॥ २० ॥ क्वचिदाकंठनिर्मग्नक्रणद्विद्याधरीगणः ॥ क्वचित्स्वप्नमृतेभाभयाम्योग्रमहिषावृतः ॥ २१ ॥

अर्थ—और चंचल नीहार, (कुहिरा) मेघ तथा पर्वतोंसे दिशाओंमें तट संपादन करनेवाला, और चंचल तरंगोंमें वहते हुये कल्पवृक्षसहित वह प्रलयका जल शोभित हुआ ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् शुष्ककोटरसहित, कहीं गलित सह्यआदि पर्वतोंसे युक्त, कहीं जीर्ण होनेसे रूपान्तरमें प्राप्त मन्दराचलसम्पन्न, कहीं पंकमें निमग्न चन्द्र, यम, इन्द्र तथा शेषसहित, और कहीं कर्दमके अधोभागमें निमग्न शाखायुक्त कल्पवृक्षोंके समूहोंसे पूर्ण वह प्रलयका महासमुद्ररूप खन्दक होगया ॥ १८ ॥ १९ ॥ तथा कहीं कमलके सदृश विखरेहुये लोकपालोंके शिर तथा हस्तपादादिसे व्याप्त और कहीं रुधिरोंके ऱ्हदोंसे रक्तवर्ण, तथा कहीं कंठदेशतक निमग्न रोदन करतीहुई विद्याधरियोंके गणसे व्याप्त और कहीं स्वप्नमें मृतकेसमान गजाकार यमके वाहन भयंकर महिषोंसे पूर्ण वह प्रलयका खन्दक होगया ॥ २० ॥ २१ ॥

क्वचित्सन्नमहाकायगरुडामरपर्वतः ॥ क्वचिन्मत्तमहासेतुर्यमदंडेनभूजुषा ॥ २२ ॥ क्वचित्प्रमृतवैरिंचहंससस्मितपंकभूः ॥ क्वचित्पंकविनिर्मग्नदेहार्धामरवारणः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रसानुंप्राप्याश्रमेश्रमात् ॥ विश्रांतोस्मियदातेनभृशंनिद्राऽऽजगाममाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा कहीं हीनावस्थामें प्राप्त महाकायधारी गरुडरूपदेव पर्वतसहित और कहीं भूमिमें पतित यमदंडसे जलरोधनमें असमर्थ महासेतु (पुल) सहित वह प्रलयजल होगया ॥ २२ ॥ कहीं ब्रह्माजीके मृतक हंससे किंचित् हास्यवती पंकयुक्त भूमिसहित, तथा कहीं पंकमें अर्द्धदेहनिमग्न ऐरावतहांथीसे शोभित वह प्रलयका खन्दक

था॥ २३ ॥ इसी अवसरमें तटस्थ पर्वतके शिखरपर किसी मुनिके आश्रममें श्रान्तहोनेसे जब मैं विश्राम करनेलगा तो गाढी निद्रा मुझे आगई ॥ २४ ॥

ततःसुषुप्तनिद्रांतस्तयावासनयान्वितः॥ तंतादृगेवकल्पांतमपश्यंस्वौजसिस्थितः॥ २५॥ दृष्ट्वात द्विगुणंदुःखंचिरेणात्राहमाकुलः॥ प्रबुद्धोदृष्टवान्सानुंतमेवास्यहृदिस्थितम्॥२६॥ अथतत्रद्वितीयेन्हि भास्करोदयसुंदरम्॥ सलोकाकाशभूशैलंभुवनंदृष्टवानहम्॥ २७॥ द्यौःक्ष्मावायुराकाशंपर्वताःस रितोदिशः॥ इतिमेचेतसोजातंपत्रादिविटपादिव॥ २८॥

अर्थ—पुनः सुषुप्तिके पश्चात् उसी वासनासे युक्त होनेसे निजहृदयमेंभी स्थित मैंने उसी पूर्वोक्त कल्पान्त (प्रलय) को देखा ॥ २५ ॥ उसको देखकर द्विगुण दुःख मुझे हुआ जिससे चिरकालतक मैं व्याकुल रहा और सर्वथा जाग्रत् होनेपर पुनः मैंने उस तटके शिखरको उस प्राणीके हृदयमें स्थित देखा ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् दूसरे दिन सूर्य्योदयसे सुन्दर, लोक आकाश पृथिवी तथा पर्वतादिसहित संसारको मैंने देखा ॥ २७ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां तथा दिशा ये सब मेरे मनसेही ऐसे उत्पन्न हुये जैसे वृक्षसे पत्र पुष्प आदि ॥ २८ ॥

ततस्तस्मिंस्तथादृष्टेभूतलेतैःपदार्थकैः॥ व्यवहारंप्रवृत्तोहंकिंचिद्विस्मृतधीरितः॥ २९॥ जातस्यमे व्यवर्षाणिषोडशैषपितामम॥ इयंमातास्पदंचेदमितिमेप्रतिभोदभूत्॥ ३०॥ अपश्यंग्रामकंकंचित्कं चिच्चब्राह्मणाश्रमम्॥ किंचिद्गेहंतथाकश्चिद्बंधुःकस्मिंश्चिदाश्रमे॥ ३१॥ अथमेतिष्ठतःसार्द्धंबंधुभि र्ग्राममंदिरे॥ अहोरात्रेषुगच्छत्सुजाग्रदादींस्तदेवसत्॥ ३२॥

अर्थ—अनन्तर उसप्रकारके भूतल देखनेपर पूर्व अनुभूत विषयोंसे किंचित् विस्मृतबुद्धि होकर मैं उन पदार्थोंके साथ व्यवहार करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ २९ ॥ आज मुझे उत्पन्न हुये १६ वर्ष होगये, ये मेरे पिता हैं, यह माता है और यह गृह है, ऐसी बुद्धि मुझे हुई ॥ ३० ॥ वहांपर किसी छोटे ग्रामको देखा, वहां किसी ब्राह्मणके आश्रमको देखा, उस आश्रममें कोई मेरा निजगृह भान हुआ और कोईजन बन्धु भासनेलगे॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् उस ग्रामके गृहमें बन्धुओंके साथ मैं रहनेलगा और उसी प्रकार जाग्रत्आदि अवस्थाओंको अनुभव करतेहुये मेरे रात्रिदिन बीतनेलगे॥३२

ततःकालवशात्तत्रप्राक्तनीबोधधीर्मम॥ विस्मृतातादृशाभ्यासादहोतस्येवमत्स्यता॥ ३३॥ इत्यहंग्रा मवास्तव्यःसंपन्नोब्राह्मणस्तदा॥ देहमात्रकबद्धास्थोदूरीकृतविवेकभूः॥ ३४॥ शरीरमात्रात्मवपुर्दा रमात्रानुरंजितः॥ वासनामात्रसारात्माधनमात्रैकतत्परः॥ ३५॥ जीर्णगोमात्रकधनःसंरोपितलता वृतिः॥ संचिताग्न्यवनिप्राणिरुपार्जितकमंडलुः॥ ३६॥

अर्थ—इसके पश्चात् काल पाके अविद्याजन्य विषयोंके अभ्याससे मेरी पूर्वकालकी विवेकबुद्धि विस्मृत होगई. अहो! मेरी इससमय वही दशा हुई जैसे दाम, व्याल, कटाख्यानमें वर्णित मत्स्यके साथ सहवासके अभ्याससे कटको निजवासनारहित स्वरूप विस्मृत होके मत्स्यरूपकी प्राप्ति ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विवेकरहित केवल देहमात्रमें आस्था-बद्ध मैं पूर्णरूपसे ग्रामनिवासी ब्राह्मण होगया॥ ३४ ॥ शरीरमात्रमें आत्मबुद्धि, स्त्रीमात्रका सन्तोषकारी, वासनामात्र देहस्वभाववान्, तथा धनमात्रके उपार्जनमें तत्पर उससमय मैं होगया ॥ ३५ ॥ तथा जीर्णगोमात्रका धनी, गृहांगण लता आदिका आरोपण कर्ता, अग्नि, भूमि तथा पशु आदिका संचयकारक तथा कमंडलुधारी ब्राह्मण मैं बनगया॥ ३६॥

चलवृक्षकबद्धास्थोलोकाचाररतःसदा॥ गृहपार्श्वगतानीलशाद्वलस्थलिकास्थितिः॥ ३७॥ शाकशा कायतारामरचनानीतवासरः॥ सरित्ह्रदनदीतीर्थसरसिस्नानतत्परः॥ ३८॥ गोमयान्नजलाम्बग्निका ष्ठेष्टाकष्टसंचयी॥ इदंकार्यमिदंनेतिपाशाभ्यांविवशीकृतः॥३९॥ इतिमेजीवतस्तत्रसंवत्सरशतंगतम्॥ एकदाभ्यागतोदूरात्तापसोतिथिरात्मवान्॥ ४०॥

अर्थ--तथा अल्पकालस्थायी वृक्षादिमें दृढ आस्थासहित, लोकाचारमें तत्पर, और गृहके समीपवर्ती हरितघा-समय स्थानोंमें स्थितिशील ब्राह्मण मैं होगया ॥ ३७ ॥ शाकों तथा शाकफलादिसे पूर्णवाटिका आदिकी रच-नासे दिनको बितानेवाला, तथा नदी, नद, ह्रद तथा तडागादि तीर्थस्नानोंमें तत्पर ब्राह्मण मैं होगया ॥ ३८ ॥ तथा गोमय, अन्न, जल, अग्नि, काष्ठ, तथा इष्टका (ईंट) आदिको कष्टसे संचय करनेवाला, और यह कर्तव्य है यह नहीं, इन दोनों पाशों (फांसी) से परवशीभूत मैं होगया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार मेरे जीवते शत (१००) वर्ष व्यतित होगये, अनन्तर एकसमय दूरसे एक तपस्वी तथा आत्मज्ञानी अतिथि मेरे गृहपर आया॥ ४० ॥

पूजितोसौविशश्राममद्गृहेस्नानपूर्वकम् ॥ भुक्तवाञ्छयनेस्थित्वारात्रौवर्णितवान्कथाम् ॥ ४१ ॥ नाना दिग्देशशैलोर्वीव्यवहारमनोहरे ॥ कथाप्रसंगेकस्मिंश्चिन्नानाविधरसाश्रये ॥ ४२ ॥ सर्वंचिन्मात्रमेवेद मनंतमविकारिच ॥ जगत्त्रयेवकचतियथास्थितमपिस्थितम् ॥ ४३ ॥ इत्यहंबोधितस्तेनबोधैकघनतां गतः ॥ स्मृतवांस्तमशेषेणवृत्तांतंधारणावशात् ॥ ४४ ॥

अर्थ—अतिथिसत्कारसे पूजित उसने स्नानसंध्यादि करके मेरे गृहपर विश्राम किया, अनन्तर भोजनकरके रात्रिमें शयनपर स्थित उसने आत्मज्ञानकी कथाका वर्णन किया ॥ ४१ ॥ नानाप्रकारके देश, पर्वत, तथा पृथिवी-आदिके व्यवहारोंसे मनोहर, तथा नानाप्रकारके शान्तआदि रसोंसे पूर्ण किसी कथाके प्रसंगमें उसने वर्णन किया॥४२॥ कि यह जो जगत्‌रूपसे स्फुरित होरहाहै यह सब यथास्थित अविकारी अनन्त चिन्मात्र ब्रह्मही है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार उस अतिथिसे बोधित मैं घनबोधरूपताको प्राप्त हुआ और धारणाके अभ्याससे पूर्वकालके प्राणीके शरीरमें प्रवेश-आदि सब वृत्तान्तको स्मरण किया ॥ ४४ ॥

स्मृतवानात्मवृत्तांतंयस्याहमुदरेस्थितः ॥ तंविराड्रूपमाशंक्यतस्मान्निर्गंतुमुद्यतः ॥ ४५ ॥ तदास्यं निर्गमद्वारमथजानामिनोयदा ॥ विस्तीर्णेभुवनेयस्मिन्भूम्यब्ध्यद्रिसरिद्वृते ॥ ४६ ॥ तदातमत्यजन्नेव देशंबंधुजनावृतम् ॥ तस्यप्राणंप्रविष्टोहंनिर्गंतुंपवनंबहिः ॥ ४७ ॥ इहस्थस्यविराजोस्यबाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ अन्यजंसर्वमीक्षेहमितिनिर्णीयितादृशम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—मैंने अपने पूर्वकालके सब वृत्तान्त स्मरण किये और जिस प्राणीके उदरमें मैं स्थित था उसको विराट्-रूपकी आशंका करके उससे बाहर निकलनेका उद्योग किया ॥ ४५ ॥ जिस प्राणीके अतिविशाल, पृथिवी तथा समुद्र आदिसे आवृत भुवनरूप उदरमें प्रविष्टहोके भ्रमण करताथा उसके निर्गमनद्वारभूत मुखको जब न जानसका तब उस बन्धुजनसे आवृतदेशको न त्यागताहुवा मैं बाहर आनेके अर्थ प्राणवायुमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उससमय मैंने यह निश्चय किया कि यहांपर स्थित इस विराट् प्राणीसे बाह्य अन्य विराट्से उत्पन्न आभ्यन्तर मैं सब कुछ देखूं॥४८॥

धारणांसंविदाबद्ध्वाप्रवेशंस्वंतमत्यजम् ॥ तत्प्राणैःसहनिर्यातआमोदःकुसुमादिव ॥ ४९ ॥ पवनस्कं धमासाद्यप्राप्यतन्मुखकोटरम् ॥ बहिर्वातरथेनाहंनिर्गतोदृष्टवान्पुरः ॥ ५० ॥ यावत्तथैवमद्देहोबद्ध पद्मासनःस्थितः ॥ क्वापिमुन्याश्रमःशिष्यैःपालितोगिरिकंदरे ॥ ५१ ॥ पुरोमेतिष्ठतांतेषांमत्संरक्षण कर्मणाम् ॥ मुहूर्तमात्रंचगतःकालश्चांतेनिवासिनम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसीके अनुकूल धारणा बान्धके उस अन्तःकरणरूप प्रदेशको त्यागा और उसके प्राणोंकेसाथ बाहर निकलआया जैसे पुष्पसे सौगन्ध्य ॥ ४९ ॥ पवनस्कन्धपर आरूढहोके उसके मुखकोटरमें प्राप्त होकर वायुरूपी रथसे बाहर निकलकर ज्योंही संमुख देखा ॥ ५० ॥ तो क्या देखताहुं कि बाहर किसी पर्वतकी कन्दरामें मुनिका आश्रम है वहांपर मेरा शरीर वैसाही पूर्वकालका अनुभूत पद्मासनबद्ध स्थित है ॥ ५१ ॥ और मेरे सम्मुख मेरे रक्षण आदि सेवामें तत्पर सब विद्यार्थीभी स्थितहैं और उनको अभीतक केवल मुहूर्तमात्रकाल मेरी समाधिके पश्चात् बीता है ॥ ५२ ॥

हृदयंसंप्रविष्टोसौयस्याहंसपुमानपि ॥ पृष्टेनोत्सवलब्धेनशेतेतृप्तोंधसासुखम् ॥ ५३ ॥ तदाश्चर्यमया दृष्ट्वानोक्तंकिंचनकस्यचित् ॥ पुनस्तस्यैवहृदयंप्रविष्टःकौतुकादहम् ॥ ५४ ॥ प्राप्तोस्म्योजःप्रदेशंतंत स्यतस्मिन्हृदंतरे ॥ अवेक्षितुंस्वबंधूंस्तान्व्याप्तोवासनयातया ॥ ५५ ॥ यावत्तत्रयुगस्यांतःसंप्रवृत्तो तिदारुणः ॥ भुवनंतद्विपर्यासमागतंसहसंस्थया ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जिस प्राणीके हृदयमें मैं प्रविष्ट हुआ था वह पुरुषभी ग्राममें किसी उत्सवमें लब्ध मिष्टान्नके भोजनसे तृप्तहो उत्तान होके सुखपूर्वक शयन करताहै ॥ ५३ ॥ इस आश्चर्य्यमय वृत्तान्तको देखकर मैंने किसीसे कुछ नहीं कहा और पुनः कौतुकसे उसीके हृदयमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५४ ॥ पूर्वकालके बन्धुके देखनेके अर्थ उस वासनाके वशी-भूत मैं पूर्वानुभूत तेजसे व्याप्त उसी हृदयप्रदेशमें प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ जितने कालमें मैं उस हृदयमें प्राप्तहुआ इतनेहीमें वहां भयंकर युगका अन्त प्राप्त होगया, और धर्माधर्मकी मर्य्यादाके साथ वह संसार विपरीतदशाको प्राप्त होगया ॥५६॥

अन्यएवाचलास्तत्रवसुधान्याचसंस्थिता ॥ अन्यएवककुब्भेदस्तथान्याभुवनस्थितिः ॥ ५७ ॥ तेबंध वःसचग्रामःसभूभागःसदिक्तटः ॥ नजानेक्वगतंसर्वंव्यूह्यनीतमिवानिलैः ॥ ५८ ॥ तदापश्यामिभुव नंयावदन्यदवस्थितम् ॥ अपूर्वसन्निवेशंतज्जगदन्यदिवोदितम् ॥ ५९ ॥ तपंतिद्वादशादित्याःप्रज्वलं तिदिशोदश ॥ शीताश्यानांबुवच्छैलाःप्रवृत्तागलितुंबलात् ॥ ६० ॥

अर्थ—वहांपर औरही पर्वत तथा अन्यप्रकारकी पृथिवी स्थित थी, दशाके भेद तथा संसारकी स्थितिभी औरही थी ॥ ५७ ॥ और वे पूर्वके बन्धु, वह ग्राम, वह भूभाग, तथा वे दिशाओंके तट संपूर्णरूपसे मानो पवनने संकलित करके न जानेकहां प्राप्त कियेगये ॥ ५८ ॥ उससमय संसार सर्वथा औरही रूपसे स्थितथा और जगत्‌की रचनाभी औरही प्रकारसे थी ॥ ५९ ॥ उस समय द्वादशसूर्य्य तपतेथे, दशों दिशा जलतीथी, शीतसे जमे हुये जलकेसमान हिमालयआदि पर्वत बलात्कार गलनेलगे ॥ ६० ॥

अद्रावद्रौदिशिदिशिज्वलंतिवनपंक्तयः ॥ दग्धाःस्मृतिपदंयाताःसमन्तात्रत्नभूतयः ॥ ६१ ॥ सर्वएवाब्धयःशुष्कामहावाताःपुरःस्थिताः ॥ अंगारराशितांयातंभूमंडलमशेषतः ॥ ६२ ॥ पातालतोभूतलतो थदिग्भ्योज्वालाविनिर्गतुमनुप्रवृत्ताः ॥ संध्याभ्रवच्चाशुबभूवविश्वंज्वालामयंमंडलमेकमेव ॥ ६३ ॥ ज्वालामयेसद्मनिहेमपद्मकोशेभ्रमद्भृंगइवप्रविष्टः ॥ ततोहमाराच्छलभक्रमेणनचाप्तवान्दाहविकार दुःखम् ॥ ६४ ॥ ज्वालामयेसाधुमहांबुवाहेभ्रमाम्यहंविद्युदिवानिलात्मा ॥ ज्वालापरिस्पंदविलोलवर्माःस्थलाब्जखंडभ्रमरोपमश्रीः ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० हृदयकल्पनावर्णनंनाम चत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४० ॥

अर्थ—प्रत्येक पर्वतपर, प्रत्येक दिशामें वनोंकी पंक्ति जलतीथी और समस्त रत्नभूत पदार्थ जलके भस्म होगये, केवल स्मरणमात्रके विषय रहगये ॥ ६१ ॥ सब समुद्र शुष्क होगये, प्रचंड पवन संमुख चलनेलगे, किंबहुना संपूर्ण भूमंडल अङ्गारकी राशि होगया ॥ ६२ ॥ पातालसे भूतलसे तथा सबदिशाओंसे ज्वाला निकलनेलगी और शीघ्र संध्याकालके मेघके सदृश भूमण्डल एकज्वालामय होगया ॥ ६३ ॥ उस ज्वालामय गृहमें, सुवर्णकमलकोशमें प्रविष्ट भृङ्गके तुल्य मैं था, इस हेतुसे शलभोंके नाशार्थ प्रवृत्तभी दाहादिदुःख मुझे नहीं हुआ क्योंकि मनोमय सूक्ष्म-शरीरमात्रमेंही मेरी आत्मबुद्धि थी ॥ ६४ ॥ ज्वालाओंके संचलनमें चंचलतेजयुक्त होकर स्थूलकमलोंमें भ्रमरोंके तुल्य मैं मेघमें विद्युत्‌के सदृश भ्रमण करताथा ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० हृदयकल्पनावर्णनं नाम चत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४० ॥

एकचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४१ ॥

अग्निकी ज्वालासे व्याप्त संसारमें प्रचण्ड पवनका वहना, तथा ज्वालामयमेघसे अंगारकी वृष्टि इस १४१ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ तत्रदंदह्यमानोपिनाभवंदुःखभागहम् ॥ स्वप्नेस्वप्नोयमित्येषजानन्नग्नावपिच्युतः ॥ ॥ १ ॥ ज्वालाजालनवोड्डीतिमंडलैरखिलैर्नभः ॥ अलातचक्रवच्चारुकेवलंभ्रांतवानहम् ॥ २ ॥ तंदवाग्निमहंयावत्तत्त्वविस्त्वादखिन्नधीः ॥ विचारयाम्य खिन्नात्मामारुतस्तावदाययौ ॥ ३ ॥ सीत्कारमतिगंभीरंदधन्मेघरवोपमम् ॥ जगत्पदार्थैराव्रत्तैरुह्यमानैःपराव्रतः ॥ ४ ॥

अर्थ—चारोंओरसे अग्निकी ज्वालासे व्याप्तभी सन्तापका भागी मैं ऐसे नहीं हुआ जैसे स्वप्नमें अग्निमें पतित यह स्वप्न है ऐसा जाननेवाला पुरुष ॥ १ ॥ उडतेहुये नूतन संपूर्ण ज्वालासमूहोंकेसाथ आलातचक्रके तुल्य मैंने भ्रमण किया ॥ २ ॥ तत्ववित् होनेसे खेदरहित किंचित् श्रान्तचित्त होके ज्योंही उस ज्वालासमूहके विषयमें विचारनेलगा इतनेहीमें प्रचंड पवन आके प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ अतिगंभीर मेघके शब्दके तुल्य अग्निके फूत्कारशब्दयुक्त, तथा उडतेहुये शिलाआदि जगत्‌के पदार्थोंसे व्याप्त ॥ ४ ॥

बृहद्भिर्घुंघुमावेगैर्वनेद्विगुणितांबुदः ॥ सूर्यैरावृत्तिभिर्व्यूढैर्विमिश्रालातचक्रकः ॥ ५ ॥ ज्वालासंध्याभ्रनिवहैर्बृहदग्निनदीशतः ॥ शैलद्विगुणभूखंडदानवामरपत्तनः ॥ ६ ॥ भूतैर्द्विगुणपात्रौघोभ्रांतैरंबरकुक्षिषु ॥ दग्धादग्धाभिरप्यर्द्धदग्धाभिरितरेतरम् ॥ ७ ॥ पतंतीभिःसुरस्त्रीभिर्द्विगुणाग्निशिखालवः ॥ पतदंगारधारौघकणसीकरदंतुरः ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा वेगयुक्त महा घुंघुमशब्दोंसे वनमें द्विगुणित मेघसहित और प्रवाहसे प्रवाहित भ्रमणशील द्वादश सूर्य्योंसे अलातचक्रमिश्रित पवन आकर प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ तथा ज्वालारूपी संध्याकालके मेघोंसे सेंकडों अग्निकी

महानदियोंका प्रवर्तक और पर्वतोंसे द्विगुण विशाल भूखंड, पाषाण, तथा देवदानवोंके नगरोंसहित आकाशकोटरमें भ्रमणकरनेवाले भूसमूहोंसे, पूर्वोक्त नदीरूप पात्रसमूहोंको द्विगुण करनेवाला, तथा दग्ध, किंचिद् दग्ध, तथा अर्द्धदग्ध परस्परके संघर्षसे गिरतीहुई देवाङ्गनाओंसे द्विगुणित अग्निज्वालासहित, तथा गिरतेहुये अंगारोंकी धाराके प्रवाहोंसे और अग्निके कणोंसे उन्नत दन्तोंसे युक्तके समान स्थित पवन चलनेलगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अलातविद्युतोधुन्वन्पूतांगारोग्रमंडलीः ॥ धूमांधकारैःस्थगयन्म्लानमूर्ध्वदिशोमुखम् ॥ ९ ॥ भूमेर्व्योम्नोदिङ्मुखेभ्यःसमंताज्ज्वालासंध्यावारिदानिर्गतास्ते ॥ यैस्तैर्ज्वालशैलसंपिंडमात्रंसव्योमौकाःसंस्थितासप्तलोकी ॥ १० ॥ क्वापिप्रोत्फालकीर्णानलकणकपिलप्रोल्लसन्मूर्द्धजालिःक्वापिप्रोड्डीनकुड्यःकटुरटनपटुर्भस्मसंपिंडपांडुः ॥ क्वापिज्वालापटालींपरिदधदभितःसंपतंतींगृहीतांरौद्रःकर्त्तुंप्रवृत्तोहरइवसतदामारुतोनृत्यलीलाः ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० कल्पांतवर्णनं नामैकचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४१ ॥

अर्थ—तथा भस्मरहित शुद्ध अंगारकी भयंकर मंडलीसहित, अंगारजनित अलातचक्ररूपी विद्युत्समूहको कंपाते हुये और धूमरूपी अन्धकारोंसे मानो दिशाओंके मुखको आच्छादन करताहुवा अतिप्रचंड पवन वहनेलगा ॥ ९ ॥ भूमिसे, आकाशसे तथा चारोंओरको दिशाओंके मुखसे ज्वालारूपी संध्याकालके मेघ निकले, जिनसे स्वर्गनिवासी देवगणसहित सातोंलोक ज्वालाके पिंडरूप होके शोभित हुये ॥ १० ॥ इससमय कहीं ऊर्ध्वदेशमें उछलनेसे विखरेहुये अग्निकणोंसे पीतवर्ण शोभायमान केशसहित, कहीं पादाघातसे उडते हुये देवादिस्थानसहित, कहीं कटुशब्दकारी भस्मसे पांडुवर्ण और कहीं मध्यभागमें गिरती हुई ज्वालाओंकी पंक्तिका उपसंहारके वस्त्रवत् धारण करताहुवा महाप्रचंड पवन प्रलयकालमें नृत्यमें प्रवृत्त महादेवके सदृश नृत्यलीलामें तत्पर हुआ ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० कल्पान्तवर्णनं नामैकचत्वारिंशदुत्तरशततम सर्गः ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४२ ॥

इस १४२ के सर्गमें स्वप्नादि जगत्का तत्त्व ब्रह्मही है, तत्वदृष्टिसे जगत्के बीजभूत कर्मोंके अभावकी सिद्धि वर्णन कीगई है ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ वर्तमानेतदातस्मिन्कष्टेसंभ्रांतसंभ्रमे ॥ उह्यमानोहमत्यंतंखेदमभ्यागतोभवम् ॥१॥ अचिंतयंतत्स्वप्नोयंपरस्यहृदयेमम ॥ तदतःपरिनिर्वामिङ्खंपश्यामिकिंमुधा ॥ २ ॥ व्याधउवाच ॥ किंस्वित्स्यात्स्वप्नइत्येवकिलसंदेहशांतये ॥ प्रविष्टोहृदयंतस्यकिंतंनिर्णीतवानसि ॥ ३ ॥ किमेतद्भव तादृष्टंहृदयेकमहार्णवः ॥ जठरेकल्पवातःकिंहृदिकल्पानलःकथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनिजी बोले—उस कष्टदायक महासंभ्रमें वहताहुआ मैं अतिखेदको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ उससमय मैंने यह चिन्तन किया कि यह अन्यके हृदयका स्वप्न है, इस अवस्थासे निकलके जाग्रत् होऊं, क्यों वृथा इस दुःखको देखरहाहुं ॥ २ ॥ व्याध बोला कि—हे भगवन्! स्वप्न क्या है, इस सन्देहकी निवृत्तिके लिये उस जीवके हृदयमें आपने प्रवेश कियाथा सो इस विषयमें क्या निर्णय किया सो कहिये ॥ ३ ॥ आपने वहां जो देखा सो क्या है, हृदयमें महासमुद्र कहांसे आया ? तथा उदरमें प्रलयका पवन और अग्नि कहांसे आये ॥ ४ ॥

द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ कथंहृदिजगन्नामकथयेतियथास्थितम् ॥ ५ ॥ मुनिरुवाच ॥ अकारणत्वात्सर्गादावेवानुत्पादतःस्फुटात् ॥ आज्ञातौसर्गशब्दार्थावेवनस्तोमनागपि ॥ ६ ॥ तच्चैतौसर्गशब्दार्थौत्वज्ञातौपरमात्मनि ॥ यतस्तत्पदमज्ञानज्ञानात्मकमनामयम् ॥ ७ ॥ अतःसुभग सिद्धांतेत्वत्पक्षेबोधमागते ॥ मौर्ख्यशांतावनाद्यंतेपदेपरमपावने ॥ ८ ॥

अर्थ—अन्तरिक्ष, भूमि, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां तथा दिशा इत्यादि हृदयमें कैसे होसकताहै सो यथार्थरूपसे जैसा आपने निर्णय कियाहै वह कृपा करके कहिये ॥ ५ ॥ मुनि बोले कि—सृष्टिकी आदिमें जगत्के कारणका असंभव होनेसे और कूटस्थ वा विकारीसे उत्पत्तिके अभावसे सृष्टिशब्द तथा उसके अर्थ दो वे निजरूपसे सर्वथा

कुछभी नहीं हैं किन्तु अधिष्ठानरूपसे ब्रह्मरूपही हैं ॥ ६ ॥ ये सृष्टिके शब्दार्थ अज्ञात परमात्मामें उसके रूपही हैं, और वह अज्ञात आत्मपद मायाशबलित होनेसे ज्ञानअज्ञान उभयरूप निर्विकार इसलिये अज्ञानांश लेके सृष्टिशब्दार्थ अज्ञात हैं और ज्ञानांशसे ये प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥ इसकारणसे हे सुभग ! तुमारे इष्ट स्वप्नआदि जगत्तत्वके विषयमें ज्ञान होनेपर अज्ञानकी शान्तिसे परमसिद्धान्तभूत अतिपावन परमपदमें स्थित होकर ॥ ८ ॥

वच्मीदंमूढसंवित्तौयदिदंतन्नवेद्म्यहम् ॥ वस्त्ववस्तुजमाभातंबोधमात्रमिदंततम् ॥ ९ ॥ क्वशरीरंक्वहृद यंक्वस्वप्नःक्वजलादिच ॥ क्वबोधोबोधविच्छित्तिःक्वजन्ममरणादिच ॥ १० ॥ स्वच्छंचिन्मात्रमस्तीह तन्नामयदपेक्षया ॥ स्थूलमेवखमप्यद्रिरणूनांनिकटेयथा ॥ ११ ॥ स्वभावात्सचिदाकाशःकिंचिच्चेतति चितया ॥ खमेववपुराकाशंयत्तद्देत्तिजगत्तया ॥ १२ ॥

अर्थ—सृष्टिशब्द तथा उसके अर्थ नहीं है यह मैं कहताहूं, और मूढोंके अनुभवके अनुसार (जगत्शब्दार्थ निजरूपसे है) इसका अत्यन्ताभाव होनेसे सृष्टिशब्दार्थ मैं नहीं जानता, क्योंकि वस्तु तथा अवस्तु जो कुछ है वह सब व्यापक ब्रह्मरूपही है ॥ ९ ॥ जब सब ब्रह्ममात्रहीहै तब कहां शरीर! कहां हृदय ! कहां जल आग्नि आदि, कहां जाग्रत् कहां उसका अभाव, और कहां जन्ममरण आदि ॥ १० ॥ किन्तु यह सब शुद्धचिन्मात्र ब्रह्महीहै. जिसकी अपेक्षा यह आकाशभी ऐसे स्थूल है जैसे परमाणुओंकी अपेक्षा पर्वत ॥ ११ ॥ निजस्वभावहीसे जब सब सच्चिदाकाश (ब्रह्म) जब चाहताहै तब निज चिदाकाशरूपकोही जगत्स्वरूपसे देखताहै ॥ १२ ॥

यथास्वप्नेपुरतयाचिदेवाभातिकेवला ॥ नतुकिंचित्पुराद्येवंजगच्चिन्मात्रमेवखे ॥ १३ ॥ इदंशांतमना भातमनन्यन्नैतदात्मनि ॥ चितिदृशौतमसिखेचक्रकादीवभातिते ॥ १४ ॥ अस्माकंतुनचाभानंनचा सन्नचसन्नखम् ॥ अनाकारमनाद्यंतमेकंचिद्व्योमकेवलम् ॥ १५ ॥ भात्यकारणकंस्वप्नेशुद्धोद्रष्टैवकेव लः ॥ तेनात्रकारणाभावोनद्रष्टास्तिनदर्शनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें निर्मल चिन्मात्रही नगर आदिरूपसे भासताहै, ऐसेही यह नगर आदि जगत् जाग्रत्‌मेंभी कुछ नहीं है, किन्तु चिदाकाशमें चिदाकाशही जगत्‌रूपसे भासताहै ॥ १३ ॥ ज्ञानीकी दृष्टिमें यह सम्पूर्ण जगत् चेतनसे भिन्न नहीं है, और तुमारी दृष्टिसे अज्ञानसे यह जगत्‌रूपसे ऐसे भासताहै जैसे नेत्रमें तिमिररोगसे चक्राकार पदार्थ ॥ १४ ॥ और हम तत्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह प्रातिभासिक तथा व्यावहारिक दोनोंप्रकारका संसार शून्यही भासताहै, किन्तु सब कुछ निराकार, अनादि तथा अनन्त चिदाकाशरूपही भासताहै ॥ १५ ॥ स्वप्नमें कारणरहित त्रिपुटीशून्य शुद्ध द्रष्टाही सब पदार्थरूपसे भासताहै, इस हेतुसे जाग्रत्‌मेंभी कारणके अभावसे द्रष्टा दर्शन आदि त्रिपुटी नहीं है, किन्तु शुद्ध चिन्मात्रही है ॥ १६ ॥

शुद्धंकिमपितद्भातिस्वानुभूतमपिस्फुटम् ॥ यदवाच्यमनाद्यंतमेकंद्वैतैक्यवर्जितम् ॥ १७ ॥ एकःकालो यथाकल्पःप्रकाशश्चोभयात्मकः ॥ बीजंवाफलपुष्पांतंब्रह्मसर्वात्मकंतथा ॥ १८ ॥ यदन्यस्यमहत्कु ड्यंतदन्यस्यामलंनभः ॥ दृष्टमेतत्स्थिरस्वप्नसंकल्पभ्रमभूमिषु ॥ १९ ॥ स्वच्छंतदातदात्मैकंभाति चिन्मात्रखंयथा ॥ स्वप्नेजागृतिवत्तद्वज्जाग्रत्स्वप्नेपिनान्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध निजअनुभवरूप जो स्पष्टरूपसे भासताहै वहभी कुमारीके सुखके तुल्य अनिर्वाच्य, एक, द्वैत और एकत्वसे रहित अनादि अनन्तरूप है ॥ १७ ॥ जैसे एकही काल प्रलय तथा सृष्टिरूप होताहै और एकही बीज जैसे अंकुर, शाखा, वृक्ष, पुष्प, फल तथा पत्रादिरूप होताहै ऐसेही ब्रह्म सर्वरूप है ॥ १८ ॥ स्वप्न तथा संकल्प भ्रमादिस्थानों जो एकके लिये महान् उत्तम स्थान है, वही दूसरेकेलिये निर्मल आकाशरूप देखागयाहै ॥ १९ ॥ जैसे स्वप्नमें चिन्मात्र आकाशही जाग्रत्‌के समानरूपसे भासताहै, ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी वही आत्मा सर्वरूपसे भासताहै इसमें किंचित्‌भी भेद नहीं है ॥ २० ॥

अदृश्येपवनेयद्वदृश्यंसौरभंस्थितम् ॥ चिन्मात्रेऽप्रतिघेतद्वज्जगदप्रतिघंस्थितम् ॥ २१ ॥ समस्तम ननत्यागेयोसिसोसिनिरामयः ॥ बहिरंतरनंतात्मासुस्थितोपिनिरंतरम् ॥ २२ ॥ व्याधउवाच ॥ भग वन्प्राक्तनंकर्मकेषामिहहिविद्यते ॥ केषांनविद्यतेतद्वद्विनापिभवतःकथम् ॥ २३ ॥ मुनिरुवाच ॥ सर्गा दिषुस्वयंभांतिब्रह्माद्यायेस्वयंभुवः ॥ विज्ञप्तिमात्रदेहास्तनतेषांजन्मकर्मणी ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अदृश्य पवनमें अदृश्यरूपसे स्थित सुगन्ध घ्राणइन्द्रियसे अनुभूत होताहै ऐसेही सुषुप्ति तथा प्रलयमेंभी अविनाशी चिन्मात्र चिन्मात्रआत्मामें एकपुरुषकी दृष्टिमें अदृश्यभी यह जगत् अन्यपुरुषकी दृष्टिमें

अविनाशीरूपसे स्थितही है ॥ २१ ॥ हे व्याध ! मनके मननरूप समस्त व्यापारके त्यागसे जो तुम निरामय बाह्य आभ्यन्तर शुद्ध आत्मरूपसे स्थितहो वही तुम हो ॥ २२ ॥ व्याध बोला कि–हे भगवन् ! पूर्वकालके कर्महीके अनुसार मन मनन करताहै नाकि मनकेविना सो वह कर्म किन प्राणियोंको है और किनको नहीं है और उस कर्मके बिना मनन वा त्याग कैसे होतेहैं सो कहिये ॥ २३ ॥ मुनि बोले–कि हे व्याध ! सृष्टिके आदिमें ब्रह्माआदि केवल चिन्मात्र शरीरधारी स्वयं भासतेथे, इसलिये उनके जन्ममरणआदि नहीं थे ॥ २४ ॥

तेषामस्तिनसंसारोनद्वैतंनचकल्पनाः ॥ विशुद्धज्ञानदेहास्तेसर्वात्मानःसदास्थिताः ॥ २५ ॥ सर्गादौप्राक्तनंकर्मविद्यतेनेहकस्यचित् ॥ सर्गादौसर्गरूपेणब्रह्मैवेत्थंविजृंभते ॥ २६ ॥ यथाब्रह्मादयोभांतिसर्गादौब्रह्मरूपिणः ॥ भांतिजीवास्तथान्येपिशतशोथसस्रशः ॥ २७ ॥ किंतुयेब्रह्मणोन्यत्वंबुद्धयं तेसात्त्विकोद्भवाः ॥ अबोधायेत्वचिदाख्यंबुद्धद्वैतमिदंस्वयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उनकी दृष्टिमें न यह संसार है, न द्वैत है और न अन्यकल्पना है, किन्तु शुद्ध ज्ञानमात्र देह होनेसे वे सदासर्वसे स्थितहैं ॥ २५ ॥ उन तत्त्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें सृष्टिकी आदिमें किसीकाभी कुछ कर्म नहीं है, किन्तु सृष्टिकी आदिमें सृष्टिरूपसे ब्रह्मही स्फुरित होरहाहै॥२६॥जैसे सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माआदि ब्रह्मरूप भासतेहैं, ऐसेही अन्य असंख्य जीवभी भासतेहैं ॥ २७ ॥ किन्तु जो अज्ञानी सत्वगुणशून्य रजोगुण तमोगुणमिलित परिणामसे उत्पन्न हैं, अपनेको ब्रह्मसे भिन्न मानतेहैं और इस जगत्को द्वैतसहित सत्य मानतेहैं वे उस वासनासे ग्रस्त मृत्युको पातेहैं ॥ २८ ॥

तेषामुत्तरकालंतत्कर्मभिर्जन्मदृश्यते ॥ स्वयमेवतथाभूतैस्तैरवस्तुत्वमाश्रितम् ॥ २९ ॥ यैस्तुनब्रह्मणोन्यत्वंबुद्धंबोधमहात्मनि ॥ निरवद्यास्तएतेत्रब्रह्माविष्णुहरादयः ॥ ३० ॥ सर्वात्मसंविदोऽच्छत्वंब्रह्मात्मन्येवसंस्थितम् ॥ तत्कचिर्ज्जीवबद्धानंस्वयमात्मनिपश्यति ॥ ३१ ॥ यत्रवेत्तितुजीवत्वंतत्राविद्येतितिष्ठति ॥ तत्रसंसृतिनाम्नात्माधत्तेरूपंतथास्थितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उनका कर्मोंकेसाथ उत्तरकालमें जन्म होताहै, क्योंकि वे स्वयं जडदेहआदिमें आत्माभिमानसे परमार्थवस्तुको भूलकर मिथ्यावस्तुके आश्रितहुयेहैं ॥ २९ ॥ और जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, तथा सनकादि मुनि कदापि अपनेको ब्रह्मसे भिन्न नहीं जानतेये बोधमयपरमात्मा स्थित सर्वथा कर्मबन्धनरूप कलंकसे रहित, तथा पूजनीय हैं ॥ ३० ॥ संपूर्ण जीवमात्रकी निर्मल चिद्रूपता स्वाभाविक है, क्योंकि ब्रह्म निजनिर्मल चित्स्वभावमें सदा स्थितहै और अपना जीवरूपसे भान मलिन उपाधिसे स्वयं अपने आत्मामें अनुभव करताहै ॥ ३१ ॥ और जहांपर जीवरूपसे अपनेको जानताहै वहांही अविद्याभी निवास करतीहै, तथा वहांही संसारनामसे स्थित अपना रूप आत्मा धारण करताहै ॥ ३२ ॥

स्वयमेवहिकालेनबुद्धास्वंरूपमात्मनः ॥ स्वयमेवस्वरूपस्थंब्रह्मैवभवतिस्वयम् ॥ ३३ ॥ यथाद्रवत्वाद्व्वंतरेतिचावर्त्ततामिव ॥ ब्रह्मचित्त्वात्तथैतीवसर्गतामस्यसर्गकम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मभानमयंसर्गोनस्वप्नोनचजागरः ॥ कास्यकान्यत्रकर्माणिकीदृशानिकियंतिवा ॥ ३५ ॥ वस्तुतःकर्मनास्त्येवनाविद्यास्तिनसर्गधीः ॥ स्वसंवेदनतःसर्वमसदेवप्रवर्त्तते ॥ ३६ ॥

अर्थ—और कालपाके सत्संगआदिसे अपने निज शुद्धरूपको जानकर अपने निजस्वरूपस्थ ब्रह्म स्वयं होजाताहै ॥ ३३ ॥ और जैसे द्रवीभूत जलके स्वभावसे जलही निजरूपमें आवर्त तरंगादि भावको प्राप्त होताहै ऐसेही अज्ञात चिद्रूप ब्रह्मही सृष्टिभावको प्राप्त होताहै, क्योंकि अज्ञात ब्रह्ममें सृष्टिके भ्रमका स्वभावही है ॥ ३४ ॥ यह ब्रह्मका स्फुरणही सृष्टिरूपसे भासताहै और उससे भिन्न न स्वप्न और न जागर कोई पदार्थ है, क्योंकि अविद्याके सिवाय इसकी सृष्टिरूपता क्या होसकती है ? और इस शुद्ध चिद्रूपके जन्मान्तरके कर्म कैसे तथा कितने होसकते हैं ॥ ३५ ॥ यथार्थमें तो न कर्म है, न अविद्या है, और न सृष्टिकी बुद्धि है, किन्तु आत्माकी स्फुरणमात्रसे यह सब मिथ्याही प्रवृत्त होताहै ॥ ३६ ॥

ब्रह्मैवसर्गोभूतात्माकर्मजन्मेतिकल्पनाः ॥ स्वयंकुर्वदिदंभातिविभुत्वात्कल्पितार्थभाक् ॥ ३७ ॥ नसंभवतिजीवस्यसर्गादौकर्मकस्यचित् ॥ पश्चात्स्वकर्मनिर्मायभुंकेकल्पनयासचित् ॥ ३८ ॥ जलावर्त्तस्यकोदेहःकानिकर्माणिचोच्यताम् ॥ यथांबुमात्रमावर्त्तोब्रह्ममात्रंतथाजगत् ॥ ३९ ॥ यथास्वप्नेषुदृष्टानांनप्राक्कर्मनृणांभवेत् ॥ आदिसर्गेषुजीवानांतथाचिन्मात्ररूपिणाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—सर्वशक्तिमान् तथा सत्यसंकल्प होनेसे ब्रह्म सृष्टिरूप होकर कर्म तथा उसके अनुसार जन्मकी कल्पना करताहुआ स्वयं इस जगत्जीवादिरूपसे भासताहै ॥ ३७ ॥ सृष्टिकी आदिमें किसीजीवका कोई कर्मका संभव नहींहै किन्तु अविद्याकी स्थितिके कल्पनाके अनन्तर कर्मकी कल्पना करके स्वयं उसके फलको भोगताहै ॥ ३८ ॥ जलके आवर्तका कहो क्या शरीर है और कौनसे उसके कर्म हैं? जैसे जलमात्रही आवर्त है ऐसेही ब्रह्ममात्र यह जगत् है॥३९॥ जैसे स्वप्नमें दृष्ट जीवोंके उस स्वप्नके पूर्व कोई कर्म नहींहैं, ऐसेही शुद्धसात्विक शरीर आदि सृष्टिमें उसके पूर्व चिन्मात्रजीवोंकेभी कोई कर्म नहीं हैं ॥ ४० ॥

सर्गेसर्गतयारूढेभवेत्प्राक्कर्मकल्पना ॥ पश्चाज्जीवाभ्रमंतीमेकर्मपाशवशीकृताः ॥ ४१ ॥ सर्गएवनसर्गोयंब्रह्मेत्थंकिलतिष्ठति ॥ यत्रतत्रककर्माणिकानिवाकस्यतानिवा ॥ ४२ ॥ अपरिज्ञानमात्रंयत्स्वयंवैपरमात्मनः ॥ तदेतत्कर्मबंधायतत्तज्ज्ञस्योपशाम्यति ॥ ४३ ॥ यावद्यावत्परिज्ञानंपंडितस्यप्रवर्त्तते ॥ तावत्तावत्तदैवास्यकर्मशाम्यतिबंधदम् ॥ ४४ ॥ यन्नामकिलनास्त्येवतच्छांतौकाकदर्थना ॥ परमार्थाद्दतेबंधःकिंचिन्नामनविद्यते ॥ ४५ ॥ तावन्मायाभवभयकरीपंडितत्वंनयावत्तत्पांडित्यंपतसिनपुनर्येनसंसारचक्रे ॥ यत्नंकुर्यादविरतमतःपंडितत्वेमलात्मज्ञानोदारेभयमितरथानैववःशांतिमेति ॥ ४६ ॥

इतिश्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अवि० विप० श० कर्मनिर्णयो नाम द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४२ ॥

अर्थ—सृष्टि यदि सृष्टिरूपसे यथार्थमें प्रसिद्ध होतो उसके पूर्वकर्मोंकी कल्पना होसकतीहै, परन्तु यहां तो अविद्यासे कर्मकी कल्पना होनेके पश्चात् जीव कर्मोंके वशीभूत होके नानायोनियोंमें भ्रमण करतेहैं ॥४१ ॥ जब यह सृष्टिही अपने सृष्टिरूपसे नहींहै तब कहां किसके कौन कर्म हैं, यह तो केवल ब्रह्मही सृष्टिरूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ ४२ ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मसे बन्धन नहींहै किन्तु परमात्माके अज्ञानसे, इस हेतुसे अज्ञानमूलक कर्म बन्धनके लिये होताहै सो यह अज्ञानमूलककर्म आत्मज्ञानीके अज्ञानके नाशहोनेसे मूल (अज्ञानरूप) सहित कर्मभी शान्त होजाताहै ॥ ४३ ॥ इसकारण ज्ञानीका ज्ञान जिस २ प्रकारसे जितना २ बढताजाताहै उसीप्रकारसे उतनाही बन्धदायक कर्मभी मूलसहित शान्त होजाताहै ॥ ४४ ॥ जो पदार्थ यथार्थमें नहींहै उसकी शान्तिमें भला क्या क्लेश है, जैसे स्वप्नके बन्धकी रज्जुके सर्पकी शान्तिके अर्थ जागृत तथा ज्ञान होनेके सिवाय अन्यउपाय नहींहै ऐसेही परमार्थभूत ब्रह्मके ज्ञानसे यह बन्ध शान्त होताहै, क्योंकि उसके अज्ञानकेसिवाय बन्ध कुछभी नहीं है ॥ ४५ ॥ हे व्याध ! जबतक पांडित्य नहीं संपादन होता तबतक यह माया भयकारिणी है और पांडित्य वही है जिससे पुनः इस संसारचक्रमें न गिरो, इस हेतुसे निर्मल तथा उदार आत्मज्ञानरूप पांडित्य प्राप्त करनेमें श्रवण आदिरूप प्रयत्न करो, क्योंकि इसकेविना तुमारा भय नहीं शान्त होगा ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० कर्मनिर्णयो नाम द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४३ ॥

पांडित्य (आत्मज्ञान) की प्रशंसा, उसकी चिन्मात्रताके दर्शाना और चिद्रूप ब्रह्मही जगत् है इसका पुनः युक्तिसे समर्थन इत्यादि विषय इस १४३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ सर्वेषामेवधर्माणांकर्मणांशर्मणामपि ॥ पंडितःपुंडरीकाणांमार्त्तंडइवमंडनम् ॥ १ ॥ आत्मज्ञानविदोयांतियांगतिंगतिकोविदाः ॥ पंडितास्तत्रशक्रश्रीर्जरत्तृणलवायते ॥ २ ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेसुखमैश्वर्यमेववा ॥ नतत्पश्यामियन्नामपांडित्यादतिरिच्यते ॥ ३ ॥ पंडितस्ययथाभूतावस्तुदृष्टिःप्रसीदति ॥ दृग्विवेंदौनिरंभोदेसकलामलमंडले ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले-संपूर्ण धर्म तथा कर्मोंके निर्णयमें और धर्म तथा कर्मोंके फलभूत ऐहिक और पारलौकिक कल्याणके निर्णयमें संदेहरूप ग्रन्थिके भेदन करनेसे श्रोताओंकी बुद्धिका प्रकाशक पंडित इसप्रकार सभाका भूषण है जैसे कमलोंका प्रकाशक सूर्य्य आकाशका ॥ १ ॥ गतिके जाननेवाले आत्मज्ञानी पंडित जिस गति (मोक्षसुख) को प्राप्त होतेहैं वहांपर इन्द्रादिके सुखकी लक्ष्मीभी जीर्णतृणके कणके समान है क्योंकि इसी ब्रह्मानन्दके लेशसे अन्यजीव

आनन्दित होतेहैं ॥ २ ॥ पाताल, भूतल, वा स्वर्गमें ऐसा कोई सुख वा ऐश्वर्य्य मैं नहीं देखता जो आत्मज्ञानरूप पांडित्यसे विशेष हो ॥ ३ ॥ सत्शास्त्रोंके विचारसे उत्पन्न आत्मज्ञानवान् पंडितकी परमार्थवस्तुरूप ब्रह्ममयी दृष्टि (बुद्धि) निजआत्माहीमें ऐसे प्रसन्न होती है जैसे शरत्कालके मेघशून्य निर्मल संपूर्ण चन्द्रमण्डलमें नेत्र ॥ ४ ॥

इदंदृश्यमविद्यात्मब्रह्मसंपश्यतेक्षणात् ॥ बुधस्यबोधात्स्रग्दामसर्पत्वमिवशाम्यति ॥ ५ ॥ यत्स्थितं ब्रह्मणिब्रह्मकृतास्तेनैवसत्यता ॥ स्वभावैकात्मिकाःसंज्ञादेहसर्गक्षयादिकाः ॥ ६ ॥ सर्गोविद्यतएवा यंनयत्रकिलकिंचन ॥ तस्यधर्मणिकर्माणिनचैवाक्षरमालिका ॥ ७ ॥ पृथ्व्यादिसंभवतिचेत्तत्सकारण मस्तुतत् ॥ तदेवयत्रनास्त्येवतत्रकिंकस्यकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मज्ञानीको ब्रह्मद्वारा देह तथा सृष्टि आदि यह सब दृश्यसमूह ऐसे शान्त होजाताहै जैसे रज्जुके ज्ञानसे उसका सर्पत्व ॥ ५ ॥ और ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानसे ब्रह्मका निजस्वभाव जो स्थित है उसीने अपने निजरूपमें निजस्वभावरूपही शरीर तथा सृष्टि और प्रलयआदि संज्ञा कल्पित की है, यही परमार्थताहै, इस हेतु ब्रह्मस्वभावसे देह सृष्टिआदिकी शान्ति भिन्न है यह शंका युक्त नहीं है ॥ ६ ॥ जिस ब्रह्ममें यह सृष्टिही सत्य नहीं है तब उस शेषभूत ब्रह्ममें सृष्टि तथा क्षयके धर्म और कर्मभी नहीं है तथा उस सृष्टि और प्रलयके बोधक पदवाक्यादिका समूहभी नहीं है ॥ ७ ॥ और पृथिवी आदिका यदि संभव है तो वह कारणसहित होनाचाहिये, जब पृथिवी आदि पदार्थही यथार्थमें नहीं हैं तब उसका कारण कैसे होसकताहै ॥ ८ ॥

ब्रह्मणःप्रतिभानंयत्तदिदंजगदुच्यते ॥ तेनैवकुतएतानिपृथ्व्यादीनिककारणम् ॥ ९ ॥ स्वप्नद्रष्टुर्दृश्यनृ णामस्तिकाल्पनिकंयथा ॥ नवास्तवंपूर्वकामंजाग्रत्स्वप्नेतथानृणाम् ॥ १० ॥ यथाप्राक्कर्मपुंस्त्वेचस्वप्नेपुं सांनविद्यते ॥ इहजाग्रत्स्वप्ननृणांभातानामपिनोतथा ॥ ११ ॥ जीवःसर्वेषुसर्गेषुस्वप्नार्थान्निखिलान् मिथः ॥ प्राक्कर्मसत्त्वंमिथ्यात्मयथावासनमेषुच ॥ १२ ॥

अर्थ— ब्रह्मका जो प्रतिभास है उसीको जगत् इस नामसे कहतेहैं और प्रतिभास मिथ्या है इसलिये कहां पृथिवी आदि और कहां उनके कारण सिद्ध होसकतेहैं ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नद्रष्टाके दृश्यमनुष्यका कारण काल्पनिक है ऐसेही जाग्रत्स्वप्नमेंभी मनुष्योंके पिता आदि कारण कल्पनाहीसे सिद्ध हैं न कि वास्तविक ॥ १० ॥ और जैसे स्वप्नअवस्थामें पुरुषोंके पुरुषादिरूप प्राप्ति होनेमें पूर्वकालके कर्म मिथ्या हैं ऐसेही इस जाग्रत्स्वप्नमेंभी भान होनेसे मनुष्योंकेभी कर्म काल्पनिक तथा मिथ्या हैं ॥ ११ ॥ इन सब सृष्टियोंमें वासनाके अनुसार मिथ्याभूत सब जगत्के व्यवहारमें यह जीव संपूर्ण स्वप्नके पदार्थोंको परस्पर देखताहै, और उन जीवोंके पूर्वजन्मके कर्मोंकी सत्ताभी वासनाके अनुसार मिथ्याही है ॥ १२ ॥

सर्गादावथदेहांतेभांतिस्वप्नार्थवन्मिथः ॥ यथासंवेदनंजीवाःसंतोसंतश्चतेनते ॥ १३ ॥ यथासंवेदनं सर्वेभांतिभावयतस्ततः ॥ तेसंत्यात्मन्यदिस्वप्नेजाग्रतीवार्थदामिथः ॥ १४ ॥ संकल्पसंविदग्रस्थव स्तुनिष्ठतयास्फुटम् ॥ फलंचाप्नोतितेस्वप्नेलोकानिष्ठतयास्फुटः ॥ १५ ॥ शुद्धासंवित्स्वभावस्थायत्स्वयं भातिभास्वरा ॥ तस्याभानस्यतस्यास्यजाग्रत्स्वप्नाभिधाःकृताः ॥ १६ ॥

अर्थ—भूतभुवनादिकी सृष्टिसे लेके देहकी सिद्धिपर्य्यन्त इस संसारमें अपने ज्ञानके अनुसार स्वप्नके पदार्थके तुल्य सब जीव परस्पर एक दूसरेको भासते हैं, इसलिये स्वप्नके पदार्थके समान भासनमात्र अंशमें तो वे विद्यमानके सदृश हैं और अन्य अंशमें अविद्यमान असत् हैं ॥१३॥ निज २ वासनाके अनुसार भावना करते हुये सब परस्पर भासतेहैं इसलिये आत्मामें स्वप्नके तुल्य जाग्रत्मेंभी परस्पर अर्थक्रिया करनेमें समर्थ हैं ॥ १४ ॥ हे साधो ! जैसे तुमारे स्वप्नमें बाह्यपदार्थके अभावमेंभी भोजनादिके संकल्पकी संवित् (उस ओर अभिमुखआत्मा) ही पाकादिक्रमसे अग्रभागमें स्थित ग्रासादिसे तृप्तिफलको प्राप्त होतीहै ऐसेही लोकमें जाग्रत्संकल्पकी संवित्भी है. भेद केवल इतनाही है जाग्रत् स्पष्ट है और स्वप्न अस्पष्ट है ॥ १५ ॥ निजस्वभावस्थ शुद्ध संवित् स्वयं प्रकाशशील स्वप्न वा जाग्रत्रूपसे भासती है, उसके भानकीही जाग्रत् वा स्वप्नादि संज्ञा कीगईहैं ॥ १६ ॥

सर्गादावथदेहांतेभातंयद्वेदनंयथा ॥ तत्तथाऽऽमोक्षमेवास्तेतदिदंसर्गउच्यते ॥ १७ ॥ जाग्रत्स्वप्नार्थ सार्थस्यसंविदश्चनभिन्नता ॥ अस्त्यप्रतिघरूपायाःप्रकाशालोकयोरिव ॥ १८ ॥ अग्नौष्ण्ययोरिवतथा वातस्पंदनयोरिव ॥ द्रवांभसोरिवावीचिवाशैत्यानिलयोरिव ॥ १९ ॥ सर्वमप्रतिघंशांतंजगजातमस न्मयम् ॥ इत्थंसन्मयमेवास्तिनास्त्यर्थेनचसंयुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मांडके आरंभमें सृष्टिसे लेके देहपर्य्यन्त जो पदार्थ जैसे भान हुआहै वह प्रवाहरूपसे मोक्षपर्य्यन्त वैसाही रहेगा, इसीका नाम सृष्टि है ॥ १७ ॥ जाग्रत्स्वप्नके पदार्थ और उनकी अपूर्व संवित्में ऐसे भेद नहीं है जैसे प्रकाश और आलोकमें ॥ १८ ॥ अथवा इन संवित् और पदार्थोंमें ऐसे भेद नहीं है जैसे अग्नि तथा उष्णता, वायु तथा स्पन्द, तरंगोंमें जल तथा द्रवता, और शीतलता तथा पवनमें ॥ १९ ॥ यह संपूर्ण अमूर्त शांत ब्रह्मरूपही है, और जगत्समूह निजरूपसे असत् अधिष्ठान चिद्रूपसे सन्मय है, और "नेति नेति" इत्यादि श्रुतिसे निषिध्यमान होनेसे अस्ति-(सत्ता) रूप अर्थसे तथा निषेधार्थसे प्रतियोगीभावसे संयुक्त है ॥ २० ॥

ब्रह्मप्रोद्भूयमृत्वाचदृश्यानुभवरूपिच ॥ चिन्मात्रमजरंशांतमेकमेवामलंस्थितम् ॥ २१ ॥ कार्यकारणतार्थानांयायथाहृदिकल्पिता ॥ ब्रह्मणापुरुषेणेवनगर्यंतस्तथैवसा ॥ २२ ॥ ब्रह्मणोहृदिसर्गोयंहृदिते स्वप्नपूर्यथा ॥ कार्यकारणतातत्रतथास्तेभिहितायथा ॥ २३ ॥ संविद्घनोदरेसर्गेकार्यकारणतास्थिता ॥ तथायथोहितातेनत्वयावाकल्पनापुरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा व्यवहारदशामें ब्रह्म जगत्रूपसे उत्पन्न होकर तथा प्रलयरूपसे नष्ट होकर दृश्यके अनुभवरूप है, और परमार्थदशामें केवल चिन्मात्र, अजर, शान्त ब्रह्मरूपसेही स्थितहै ॥ २१ ॥ जैसे किसी नगरीमें पुरुषसे कल्पित मृत्तिका पाषाणादिके स्थानादिका कार्य्यकारणभाव ज्योंका त्यों स्थित रहताहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मासे कल्पित आकाश पवनादिका कार्य्यकारणभाव अद्यावधि ज्योंका त्यों स्थितहै ॥ २२ ॥ जैसे तुमारे हृदयमें स्वप्नके नगर आदि रहतेहैं, ऐसेही ब्रह्माके हृदयमें यह सृष्टि रहतीहै, और कार्य्यकारणभावभी इस सृष्टिका पूर्वोक्त स्वप्नके पदार्थोंके समानही है ॥ २३ ॥ जैसे ब्रह्माजीने कल्पना की है अथवा तुमने स्वप्नावस्थामें नगरादि कल्पित कियाहै ऐसेही चिद्घन संवित्के उदरमें सृष्टिका कार्य्यकारणभाव स्थितहै ॥ २४ ॥

चितासंकल्परूपिण्यासर्गेसंकल्पपत्तने ॥ त्वयैवस्थापितासंस्थाकार्यकारणरूपिणी ॥ २५ ॥ आकाशएवकचनंयच्चित्तेस्वात्मरूपिणि ॥ नियतंसन्निवेशत्वात्तदंतःसर्गउच्यते ॥ २६ ॥ यासंविद्रव्यवस्था स्तेहृदिसंकल्पपत्तने ॥ सैषास्वभावसंसिद्धिःकार्यकारणतार्थजा ॥ २७ ॥ प्रथमंयद्यथाभातिचित्त्वम स्तितथेहतत् ॥ तस्यैवनियतिःकालोदेशादीत्यभिधाकृता ॥ २८ ॥

अर्थ—संकल्पके नगरमें संकल्परूपिणी चित्के द्वारा निजइच्छाके अनुसार जैसे कार्यकारणभावकी व्यवस्था तुमने स्थापित की है ऐसीही इस सृष्टिमेंभी है ॥ २५ ॥ निजआत्मारूप चिदाकाशका स्फुरणही संकल्पके नगर तथा उसके रचनादिकी व्यवस्था नियत होनेसे चित्का स्फुरणही सृष्टि कही जातीहै ॥ २६ ॥ हृदयस्थित संकल्पके नगरमें चित्रूपी सूर्य्यकी जो स्वप्रकाशरूप व्यवस्था सदा स्थितहै वही कार्य्यकारणता सृष्टिके पदार्थोंमें स्वभावसिद्ध है उससे किंचिन्मात्रभी भेद नहीं है ॥ २७ ॥ सृष्टिके आरंभमें हिरण्यगर्भचेतनने पृथिवीआदि नामोच्चारण जैसे रचनाकी कल्पना कीहै वैसीही अबभी भासतीहै और उसकी नियति जिस पदार्थके लिये जैसे स्थितहै अर्थात् पृथिवीमें गन्ध काठिन्य आदिरूपसे, जलमें द्रवत्व रसादिरूपसे, तेजमें उष्ण प्रकाशादिरूपसे, वायुमें स्पन्दादिरूपसे, भूतभविष्यत् कालादिरूपसे और पूर्वादिदिशारूपसे जो नियति स्थित है उसके ये सब नाम कियेगयेहैं ॥ २८ ॥

यानामाशुयथाभातिचेतनाकाशशून्यता ॥ तयातथावस्तुतयाकार्यकारणताश्रिता ॥ २९ ॥ चिच्चमत्कारमात्रेस्मिन्सर्गाभेभावरूपिणि ॥ पूर्वभावाःप्रवर्त्ततेपश्चात्सर्गाभिध विदः ॥ ३० ॥ शून्यतास्त्रिजगद्रूपास्तथाचिद्व्योमनिस्थिताः ॥ अनन्याःपवनेसौम्येस्पंदसत्तायथानिजाः ॥ ३१ ॥ व्योम्निसौषिर्यनैबिड्यंयथानीलमितिस्थितम् ॥ चितिचेतननैबिड्यंतथासर्गउपस्थितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यथार्थमें सर्वशून्य चिदाकाश जिस नामसे जहां निजकल्पनासे शीघ्र भासताहै वहां वैसीही कार्य्यकारणकी व्यवस्था स्थित है, अर्थात् गौआदिमें दुग्धादिरूपसे और घटआदिमें उसके धारणादिरूपसे कारणता स्थितहै ॥ २९ ॥ चित्के चमत्कारमात्र, सृष्टिके सदृश भासमान इस हिरण्यगर्भरूप मनमें प्रथम रूपकी कल्पना होतीहैं पश्चात् सृष्टि इत्यादि नामकी कल्पना होतीहै ॥ ३० ॥ जैसे पवन तथा उसके स्पन्दकी सत्ता पवनसे भिन्नरूपसे शून्यरूप है तथा उससे अभिन्नरूप है ऐसेही चिदाकाशमें त्रिलोकी उसके स्वरूपसे भिन्न शून्यरूप तथा चिदाकाशसे अभिन्नरूप है ॥ ३१ ॥ जैसे शून्य निर्मलआकाशमें नीलता भ्रमसे भासतीहै ऐसेही चिद्घन चिदाकाशमें भ्रमसे यह सृष्टि प्राप्त हुईहै ॥ ३२ ॥

आभातएवभातेस्मिन्कृच्छ्रात्सर्गेविसर्गता ॥ बुध्यतेरज्जुभुजगेरज्जुरूपंयथापुनः ॥ ३३ ॥ मृतःसस्वप्न वत्सर्वःसंपश्यतिपृथग्जगत् ॥ तच्चान्यदिदमन्यच्चनित्याप्रतिघमंबरम् ॥ ३४ ॥ व्याधउवाच ॥ परतः सुखदुःखार्थंदेहःसंपद्यतेकथम् ॥ किमस्यहेतुःकेवास्यहेतवःसहकारिणः ॥ ३५ ॥ कुर्वंतिधर्माधर्मा श्चेत्तेनप्रतिघरूपिणा ॥ तदस्याप्रतिघंरूपंकुर्वंतीत्यसमंजसम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आपातसे भासमान इस सृष्टिमें श्रवण मननआदि क्लेशसे जब देश, काल तथा वस्तुकृत परिच्छेदसे शून्य ब्रह्मके ज्ञानसे अज्ञानका नाश होताहै तब ब्रह्ममें सृष्टिकी शून्यता ऐसे ज्ञात होती है जैसे भ्रमनाशोत्तर रज्जुके सर्पमें शून्यता तथा पुनः रज्जुका स्वरूप ॥ ३३ ॥ निजस्वप्नके तुल्य मृत्युके पश्चात् सब प्राणी पृथक् २ जगत् अपनी २ वासनाके अनुसार देखताहै और यथार्थमें तो इसलोकका तथा परलोककाभी जगत् मूर्तिशून्य चिदाकाशरूपही है ॥ ३४ ॥ व्याध बोला–कि हे भगवन् ! इस शरीरके नाशोत्तर अन्यशरीर कैसे उत्पन्न होताहै, उसके (शरीरके) उपादान क्या हैं और सहकारी निमित्त कारणभी कौन हैं ॥ ३५ ॥ और धर्माधर्म अपने भोगके लिये सबकुछ करतेहैं ऐसा जो मानतेहैं तो साकार इस शरीरसे कृत धर्मादिकर्मोंकी निवृत्ति तथा उससे निराकार मोक्षकी प्राप्ति यह असंगत ज्ञात होताहै, क्योंकि ज्ञानसे कर्मोंकी निवृत्ति कैसे होसकती है ॥ ३६ ॥

मुनिरुवाच ॥ धर्माधर्मौवासनाचकर्मात्माजीवइत्यपि ॥ पर्यायशब्दभारोत्रकल्प्यतेनतुवास्तवः ॥३७॥ चित्त्वात्कल्पितचित्त्वेनस्वयंचिन्नभसात्मनि ॥ कृतानिनामान्येतानिकश्चिदस्तीतिचेतसा ॥ ३८ ॥ संविदात्मास्वयंचित्त्वाद्देहंवेत्तिखमेवखे ॥ मृत्वासंतंसंतमिवसंकल्पस्वप्नयोरिव ॥ ३९ ॥ स्वयंस्वप्नइ वाभातिमृतस्यपरलोकधीः ॥ तमेवपश्यतिचिरंनतत्राप्यस्तिसत्यता ॥ ४० ॥

अर्थ—मुनि बोले कि–हे व्याध ! संस्काररूपसे स्थित विहित निषिद्धके आचरणरूप धर्माधर्म, संस्कारके समूहरूप मन, उसमें स्थित वासना, और चिदाभास व्याप्त मनही कर्मात्मक जीव, इत्यादि शब्दसमूह सब पर्य्यायवाचक तथा चेतनमें कल्पित हैं यथार्थ नहीं हैं ॥ ३७ ॥ देहादिप्रपंचभी कोई पदार्थ है इसप्रकार चित्तसे कल्पित होनेसे चिदाभासरूपसे चिदाकाशमें स्थित होके स्वयं उस चित्तमय हिरण्यगर्भने धर्माधर्मादिनामोंकी कल्पना की है ॥ ३८ ॥ संकल्प तथा स्वप्नके समान मरनेके पश्चात् संवित्रूप आत्मा निजचिदाकाशरूपमें चिदाकाशकोही देहरूपसे जानताहै ॥ ३९ ॥ स्वप्नकेही तुल्य मृतपुरुषको परलोकबुद्धि स्वयं, और उसको चिरकालके स्वप्नके तुल्य देखताहै, उसमें सत्यता नहीं है ॥ ४० ॥

मृतंनिर्मातिचेदन्यःकथंवास्यस्मृतिर्भवेत् ॥ कथंवास्यात्सएवासौचेतनत्वंतमेवखम् ॥ ४१ ॥ मृतौन जायतेतस्माच्चेतसेवसकेवलम् ॥ इहायमित्थमित्येववेत्तिखेवासनात्मकम् ॥ ४२ ॥ स्वमेवभावमभ्य स्तमास्तेसोनुभवंश्चिरम् ॥ स्फुटप्रत्ययवांस्त्वत्रसत्यमित्येववेत्त्यलम् ॥ ४३ ॥ खात्माखमेवतत्रैवस्व प्नाभंदृश्यमाहरन् ॥ पुनःस्वमरणंवेत्तिपुनर्जन्मपुनर्जगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—"तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" ॥ (परमात्माने निजरूपसे देहादि जगत्को रचा और स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिसे वह आत्मा मरके अपने स्वरूपको स्वयं देहादिरूपसे रचताहै. यदि मरनेके पश्चात् रचै तौ स्तनपानादिमें उसको स्मरण कैसे हो ! और चेतन है यह प्रत्यभिज्ञानभी कैसे हो ? तथा तद्रूप न माननेसे उसकी चेतनताभी शून्य होजाय ॥ ४१ ॥ इसलिये यह मरके उत्पन्न नहीं होता, किन्तु सर्वविकारशून्य चिदाकाशमेंही यह मैं मरके पुनः उत्पन्न हुआ ऐसी कल्पना निजवासनासे करताहै ॥ ४२ ॥ अपनीही अभ्यस्तभावनाको चिरकालतक यह अनुभव करता है तथा उसमें स्पष्ट विश्वासयुक्त होनेसे उसको पूर्ण सत्यरूपसे जानताहै ॥ ४३ ॥ चिदाकाशरूप निजआत्माही उसी स्थानपर स्वप्नके तुल्य दृश्यका अभ्यास करताहुआ पुनः २ निजमरण जन्म तथा जगत्का अनुभव करताहै ॥ ४४ ॥

अलीकजालमेवंखेपश्यन्प्रत्येकमास्थितः ॥ पश्यत्याचारयत्यत्तिकिंचित्कश्चिन्नकस्यचित् ॥ ४५ ॥ इ त्येवंजगतांसंतिकेटीनांकोटिकोटयः ॥ परिज्ञातास्तुताब्रह्मकेवलंदृश्यमन्यथा ॥ ४६ ॥ ताभिर्नकस्य चित्किंचिदावृतंनचसंतिताः ॥ तासांचवेत्तिप्रत्येकमिदमेवजगत्त्विति ॥ ४७ ॥ भूतानितासांप्रत्येकंत थैवान्योन्यमास्थिते ॥ सत्यान्येवासत्यदृष्ट्याऽसत्यदृष्ट्यात्वजंपदम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार चिदाकाशमेंही व्यष्टि (एकजीव) भावसे अनेक मिथ्या जगज्जलको जाग्रत् तथा स्वप्नमें स्वयं देखताहै और इसीको जगत्में प्रवृत्तभी कराताहै, तथा सुषुप्ति, प्रलय और मोक्षमें इस जगज्जालका भक्षणभी करजाताहै, परन्तु यथार्थमें न कुछ देखताहै और न किसीका भक्षणकरताहै ॥ ४५ ॥ इसरीतिसे प्रत्येकजीवकी अपेक्षा

कोटिशः जगत् हैं और ज्ञातहोनेसे वे सब ब्रह्मरूप हैं, अज्ञात होनेसे दृश्यरूप ॥ ४६ ॥ और ये अनेक जगतों कोटिकोटि कभी किसीका आच्छादन नहीं करती, न यथार्थ हैं, परन्तु प्रत्येक जीव यही जानताहै कि यह एक मेराही जगत् है अन्य नहीं ॥ ४७ ॥ उन अनन्तकोटिब्रह्मांडोंके पृथिवीआदि पंचभूत, तथा अंडजादि चारप्रकारके जीव प्रत्येक जीवरूप जगत्में विशालरूप हैं और वे व्यवहारदृष्टिसे सत्य, तथा परमार्थदृष्टिसे अज (ब्रह्मरूप) हैं ॥ ४८ ॥

सद्यद्विदितवेद्यस्यतदज्ञस्यासदक्षयम् ॥ असद्यत्संप्रबुद्धस्यतत्सदज्ञस्यसुस्फुटम् ॥ ४९ ॥ चितेर्यद्य यथाभानंतत्तत्सत्यंयथायतः ॥ सद्रूपाणिसमग्राणि भूतानीमान्यतोमिथः ॥ ५० ॥ नित्यमन्योन्यस त्यानितानितान्येववाप्यतः ॥ किलसंविद्विनिर्णेयंरूपमप्रतिघंयतः ॥ ५१ ॥ संविन्मात्रविनिर्णेयंकान्य तानान्यताकथा ॥ यथासंवेदनंभातिवस्त्वोघेक्द्वितैकते ॥ ५२ ॥

अर्थ—ज्ञानीकी दृष्टिमें जो अविनाशी ब्रह्म सत् है वह अज्ञानीको असत्तुल्य तथा जो जगत् ज्ञानीकी दृष्टिमें असत् है वह अज्ञानीकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष सद्रूप है ॥ ४९ ॥ अथवा इस चिद्रूपको जो २ जैसा २ भान होताहै वह सब चिद्रूपसे सत्यही है, इस रीतिसे संपूर्ण भूतभौतिक सृष्टि सत्य चिद्रूपही है ॥ ५० ॥ अथवा जो जो जगत् जिस २ संवित्के प्रति भान होतेहैं वे २ परस्पर उस २ संवित्के प्रति नित्य सत्य हैं, क्योंकि संवित् अटलरूप है और सत्य वा असत्य उसी संवित्केद्वारा निर्णय है ॥ ५१ ॥ जब सब कुछ संवित्केहीद्वारा निर्णय कियाजाताहै तब जहां जैसा उसको भासताहै वहां वैसाही है, इस दशामें संविद्रूप वस्तुमें भेद, अभेद, द्वित्व अथवा एकत्वकी क्या कथा है॥५२॥

तदेवेदमिदंज्ञप्तेस्तदेवेदंभवत्यलम् ॥ तदेवैतत्तदेवेतिभवेज्ज्ञप्तेरसत्यतः ॥ ५३ ॥ तच्चेदर्थस्ततोज्ञप्तेर्ना यंतस्याःपृथक्स्थितः ॥ स्थितेज्ञप्यात्मनित्वर्थेत्वज्ञस्यायंततोव्रजेत् ॥ ५४ ॥ ज्ञानंयदेवतज्ज्ञेयंज्ञेयस्या संभवात्पृथक् ॥ यथाज्ञानमतोज्ञेयंतनोत्यात्मानमात्मना ॥ ५५ ॥ पश्यंतोपिमिलंतोपिपृथक्सर्गान किंचन ॥ सतएवासतोज्ञस्यमूर्खज्ञातांस्तुवेद्मिनो ॥ ५६ ॥

अर्थ—और यह ज्ञेय (दृश्यसमूह) ज्ञान है, इसप्रकार ज्ञानज्ञेयके अभेद बोध सब दृश्य पूर्णज्ञानरूपही शेष रहताहै, और यह ज्ञानज्ञेयरूप है इसप्रकार ज्ञप्तिकी असत्यतासे ज्ञानरहित ज्ञेयकी सत्तासंभव नहींहोता ॥ ५३ ॥ इसप्रकार परिशेषतासे जब यह पृथिवी आदि पदार्थ ज्ञानस्वरूपही स्थितहैं तब यह ज्ञानस्वरूप आत्मासे पृथक् नहीं स्थित है, और सब पदार्थोंके ज्ञानस्वरूप स्थित होनेपर यह द्रष्टा आत्माके अज्ञानसेही निजज्ञानरूप आत्मासे च्युत होताहै न कि यथार्थमें ॥ ५४ ॥ ज्ञानसे पृथक् ज्ञेयके असंभवसे ज्ञेय ज्ञानरूपही है, इसलिये निजस्वरूपके अज्ञानको आत्मा स्वेच्छानुसार ज्ञेयरूपसे विस्तार करताहै ॥ ५५ ॥ इस हेतुसे ज्ञानरूप आत्मासे पृथक् और उस रूपसे सत् संसारको देखनेवाले ज्ञानीके लिये रूपादिको देखनेवाली तथा उनसे मिलके ग्रहण करनेवालीभी नेत्रआदि सृष्टि आत्मासे पृथक् नहीं हैं, और मूर्खोंसे ज्ञात आत्मासे भिन्न सृष्टियोंको तो मैं नहीं जानता ॥ ५६ ॥

एकंप्रबोधतःसर्वंचिन्मात्रंतावदात्मखम् ॥ तदेवानेकसंवित्त्यासहस्रंचिज्जडात्मनाम् ॥ ५७ ॥ एकंतथा चचिन्मात्रंस्वप्नेलक्षात्मतिष्ठति ॥ पुनर्लक्षात्मतस्स्वप्नादेकमास्तेसुषुप्तके ॥ ५८ ॥ चिद्व्योम्निस्वप्नसं वित्तिर्यासैवजगदुच्यते ॥ सुषुप्तंप्रलयःप्रोक्तस्तस्मान्न्यायोयमेवसन् ॥ ५९ ॥ एकैवसंविन्नानात्वंनृलक्ष त्वंचगच्छति ॥ शून्यत्वंचतथार्थत्वंस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ६० ॥

अर्थ—आत्माके ज्ञानसे संपूर्ण जगत् एक चिन्मात्र चिदाकाशही है, और आत्माको न जाननेवाले अज्ञानियोंके लिये वही एक आत्मा अनेक जगत्रूप है ॥ ५७ ॥ एकही चिन्मात्र आत्मा स्वप्नमें लक्षों आत्मस्वरूप धारण करके स्थित रहताहै, और पुनः वही लक्ष आत्मरूपधारी चिदात्मा सुषुप्तिमें एक आत्मरूप होके स्थित रहताहै ॥ ५८ ॥ चिदाकाशमें जो स्वप्नसंवित् है वही जगत् है, और सुषुप्ति प्रलय है, स्वप्न तथा सुषुप्तिका यह न्याय जगत्की उत्पत्ति तथा प्रलयमेंभी समान है ॥ ५९ ॥ एकही संवित् नानाभोग्यरूप तथा लक्षों भोक्तामनुष्यादिरूपताको स्वप्न तथा संकल्पदशाके समान प्राप्त होती है, और सुषुप्तिके तुल्य पुनः वही पदार्थोंसे शून्यरूपभी होजाती है ॥ ६० ॥

इदमप्रतिघंसर्वंकिलवेदनमात्रकम् ॥ शुद्धंतद्यद्यथायत्रभातितत्रतथाभवेत् ॥ ६१ ॥ एकैवसंवित्सर्गा दौभवत्यम्बंबुखादिकम् ॥ पृथ्व्यादितावत्सर्गार्थेस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ६२ ॥ संविदाकाशरूपैवभा तिपृथ्व्यादिनामिका ॥ यत्तदेवखमेवेदंजगदित्येवभासते ॥ ६३ ॥ संवित्सप्रतिघंभातिभातिचाप्रति घंतथा ॥ नवस्तुतस्तुप्रतिघासंवित्सांतेनिवर्तते ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह सब दृश्यमात्र केवल निश्चल शुद्ध चिन्मात्रही है, वह शुद्ध चिन्मात्र जहां जिस रूपसे भासती है वहां वैसाही होताहै ॥ ६१ ॥ सृष्टिकी आदिमें स्वप्न तथा संकल्पके तुल्य एक अविकारी संवित् पृथिवीआदिके सृष्टिकी

सिद्धिके लिये पृथिवी, अग्नि, वायु तथा आकाशादिरूप होजाती है ॥ ६२ ॥ चिदाकाशरूप संविद्ही पृथिवी इत्यादि नामसे भासती है, क्योंकि वही चिदाकाशरूप संवित् जगत् इस रूपसे भान होरही है ॥ ६३ ॥ हे व्याध ! यही चिद्रूप संवित् नश्वर तथा मूर्तिमान्रूपसे और अनश्वर अमूर्तभावसेभी भासती है, और यथार्थमें तो उसका नाश हैही नहीं किंतु वह नाशभी अन्तमें निवृत्त होकर केवल चिन्मात्र संवित् शेष रहती है ॥ ६४ ॥

यासिपूर्वांपश्चिमांचदिशंवेत्सिचिरंविदन् ॥ प्रतिघंनामतेनास्तिनचसप्रतिघाक्कचित् ॥ ६५ ॥ दृष्टंसंकल्पितंचार्थंसद्दाभ्यस्यतियश्चिरम् ॥ सोवश्यंतदवाप्नोतिनचेच्छ्रांतोनिवर्तते ॥ ६६ ॥ यासिपूर्वांपश्चिमांचदिशंवेत्तिचिरंविदन् ॥ यआस्तेयात्यसौतत्तामन्यस्त्यक्त्वातुनेतराम् ॥ ६७ ॥ दृष्टःसंकल्पितश्चार्थःस्यामित्यचलसंविदः ॥ द्वयंभवेद्द्वयंनश्यत्यन्यस्याचलसंविदः ॥ ६८ ॥

अर्थ—तुम मनसे पूर्व तथा पश्चिमदिशामें चिरकालतक जातेहो, और उन २ स्थानोंपर दृष्ट श्रुत तथा अनुमित आदि पदार्थोंको जानते हुये अपने चित्स्वरूपकोभी जानतेहो, वहां संविद्रूप तुमारा विनाशी वा साकार नाम नहीं है, इसलिये कहींभी संवित् नाश वा आकारसहित नहीं है ॥ ६५ ॥ प्रमाणसिद्ध संकल्पितपदार्थको जो पुरुष निरन्तर अभ्यास करताहै वह यदि श्रान्त होके उससे निवृत्त न होजाय तो अवश्य उस पदार्थको पाताहै ॥ ६६ ॥ अथवा तुम पूर्व तथा पश्चिमदिशामें मनसे जातेहो, और वहांपर चिरकालतक उन २ पदार्थोंको जो संकल्प करनेवाला जानता हुआ स्थित रहताहै वह दिगन्तगमन तथा वहांके पदार्थरूपताको अपने संकलपदृढताके अनुसार प्राप्तहोताहै, अन्य केवल संकल्पमात्र करनेवाला तो संकल्पके सिवाय वहां मनसेभी नहीं जाता ॥ ६७ ॥ मैं संकल्पितपदार्थ होजाऊं, इसप्रकारके संकल्पसे अचल संविद्वाले पुरुषको प्रथम प्रातिभासिक तथा संकलपकी दृढतासे व्यावहारिकभी पदार्थकी प्राप्ति यह दोनों ऐन्दवके उपाख्यानमें दृष्ट है, तथा संकलपरहित वा विषयान्तरमें अचल संविद्वालेका दोनों (प्रातिभासिक तथा व्यावहारिक) नष्ट होताहै ॥ ६८ ॥

दक्षिणादुत्तरांवाशांयामीत्यचलसंविदः ॥ द्वयंभवेद्द्वयंनश्यत्यन्यस्याचलसंविदः ॥ ६९ ॥ खेपुरंस्यां भुविमृगःस्यामित्यचलसंविदः ॥ द्वयंभवेद्द्वयंनश्यत्यन्यदन्यत्तुतज्जगत् ॥ ७० ॥ एकंप्रबोधतःसर्वंचिन्मात्रंतावदात्मखम् ॥ तदेवानेकसंवित्त्यासहस्रांचिज्जडात्मनाम् ॥ ७१ ॥ शरीरमस्त्वप्रतिघमथसप्रतिघंचवा ॥ स्वप्नात्मकोयंसंसारोजीवस्येहपरत्रच ॥ ७२ ॥

अर्थ—तथा दक्षिणदिशासे उत्तरदिशाको मैं जाऊं इसप्रकार अचलसंविद्युक्त पुरुषको मानसिक तथा शारीरिक दोनों अर्थकी सिद्धि होती है और अन्यत्र अचल संविद्वालेका दोनों नष्ट होताहै ॥ ६९ ॥ इसीरीतिसे आकाशमें नगर तथा पृथिवीपर मृगरूप होजाऊं, इस अचल धारणावालेको दोनोंकी सिद्धि होती है और इससे विपरीतका दोनों नष्ट होताहै क्योंकि उन दोनोंका जगत् भिन्न २ है ॥ ७० ॥ इसप्रकार आत्माके ज्ञानसे संपूर्ण जगत् एक चिन्मात्रही है और अज्ञानियोंको अनेक संवित् होनेसे सहस्रोंरूप है ॥ ७१ ॥ जीवका ऐहिक तथा पारलौकिक यह संसार स्वप्नके समानही है, इसलिये यह शरीर चिद्रूपसे अविनाशी निराकार हो वा अन्यरूपसे विनाशी साकार हो इसमें चिद्रूपकी कोई हानि नहीं है, क्योंकि मिथ्यापदार्थके गुणदोषसे अधिष्ठानका कुछ संबंध नहीं है ॥ ७२ ॥

एतन्म्लेच्छादिदेशेषुमृतानांदर्शनात्पुनः ॥ स्मृतिपूर्वंचकथनात्प्रत्यक्षमनुभूयते ॥ ७३ ॥ येमृताभस्मसाज्जाताम्लेच्छदेशेषुतेपुनः ॥ आगत्यकथयित्वार्थंगच्छंत्यप्रतिघात्मकाः ॥ ७४ ॥ एषचेज्जीवतोधर्मस्तद्देशांतरगेजने ॥ मृतइत्येवबुद्धेर्थेकस्मान्नैवप्रवर्त्तते ॥ ७५ ॥ जीवधर्मःसोपिसंश्चेन्मृतधर्मोपिकिंनसन् ॥ यादृगनुभवस्त्वस्मिन्समेन्यायद्वयेस्थिते ॥ ७६ ॥

अर्थ—देहकेनाशसे जीवचित् नष्ट नहींहोती, यह विषय म्लेंच्छदेशोंमें मरके पिशाचदेहोंसे पुनः इस देशमें प्राप्त जीवोंको भूतविद्याके जाननेवालोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेसे, तथा स्मरणकरके उन भूतोंके अपने गृहके व्यापारादिके कथनादिसे प्रत्यक्ष अनुभव कियाजाताहै ॥ ७३ ॥ तथा म्लेंच्छादिदेशोंमें जो मरणके पश्चात् शरीरसे भस्मीभूत होगयेहैं वे पुनः प्रेतादिरूपसे यहां आके अपने पूर्वजन्मके पदार्थोंको कहके पुनः अविनाशी चित्रूपसे लोकान्तरमें जातेहैं ॥ ७४ ॥ कदाचित् चार्वाक यह कहै कि जीवितभूत वैद्यका पिशाचके दर्शन तथा संभाषणआदि व्यवहार भ्रमरूप धर्म है न कि मरके आनेवालेका, तो अन्यदेशमें प्राप्त जीवितमनुष्यमें भ्रमसे मृतकबुद्धि होनेपर उससे दर्शन भाषणआदि व्यवहार क्यों नहीं प्रवृत्त होता ॥ ७५ ॥ कदाचित् वह भाषणआदि भ्रम जीवधर्म सत् है तो अनुभव प्रमाण माननेवालेको जैसा अनुभव इस जीवनमें स्थितहै, यह समानन्याय जीवित तथा मृत दोनोंमें स्थित रहनेसे वह मृतधर्म क्यों न सत् हो ॥ ७६ ॥

स्वप्नवज्जगदाभानमित्येवंसत्यखंडितम् ॥ आर्यानुभवशास्त्राणामनेनास्त्येकवाक्यता ॥ ७७ ॥ दृष्टिजालंजनौघानांपश्यतामिंदुमंदिरे ॥ यादृगप्रतिघंतादृग्जगत्सदसदात्मकम् ॥ ७८ ॥ सन्मात्रमात्रानुविधमच्छानुभवमात्रकम् ॥ ॥ चिन्मात्रंभानमात्रात्मसर्वार्थात्मार्थवर्जितम् ॥ ७९ ॥ सर्वमप्रतिघंशांतंजगदेकंचिदंबरे ॥ अनिंगनमनाभासमात्मन्येवात्मनास्यताम् ॥ ८० ॥

अर्थ—इसप्रकार अनुभवको अर्थसाधकता होनेसे स्वप्नोत्तर जागनेपर स्वप्नके पदार्थके तुल्य आत्मज्ञानोत्तर जाग्रत्के पदार्थोंका बाधभी समानही है, इसलिये स्वप्नवत् इस जगत्का भान होताहै यह वार्ता अखंडित है. इस हेतुसे आर्य्योंका अनुभव तथा "वाचारंभणं विकारो नामधेयं नेह नानास्ति किंचन" यह सब जगत्रूपविकार केवल वाणीमात्रका विषय है, इसमें चिद्रूपके सिवाय अनेकता कुछभी नहीं है इत्यादि शास्त्रोंकी एकवाक्यता है ॥ ७७ ॥ चन्द्रमंडलमें देखनेवाले मनुष्योंका दृष्टिसमूह जैसे परस्पर प्रतिघातशून्य है ऐसेही यह जगत्भी किसीको सद् और किसीको असद्रूप है ॥ ७८ ॥ सन्मात्रकेही अंशसे ग्राह्य, निर्मल, अनुभवरूप, सन्मात्रसे भासमान तथा सबपदार्थोंसे वर्जित होकरभी सर्वपदार्थमय आत्मारूपही जगत्है ॥ ७९ ॥ यह सब जगत् चिदाकाशमें प्रतिघातशून्य, शान्त, निश्चल, तथा आभासशून्य है, इसलिये निज चिदात्मरूपसे अपने आत्माहीमें स्थिर रहो ॥ ८० ॥

अचलासंविदेवास्तेस्थिरंकृत्वायथायथा ॥ तथातथाभवत्याशुकिमसत्किंचवापिसत् ॥ ८१ ॥ शरीराण्यथकर्माणिदुःखानिचसुखानिच ॥ यथास्थितान्युपायांतुयांतुवांकस्यकिंग्रहः ॥ ८२ ॥ इत्थमस्तुसदथान्यथास्तुवामैवभूद्भवतुकोत्रसंभ्रमः ॥ मुंचफल्गुनिफलेफलावहंबुद्धवानसिकृतंपरिभ्रमैः ॥८३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० निर्वाणबोधोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४३ ॥

अर्थ—केवल अचल संविन्मात्रही जैसे २ मनको स्थिरकरके रहती है वैसावैसाही चाहै वह सत् हो वा असत् हो शीघ्र होती है और शरीर, कर्म, सुख, तथा दुःख यथास्थित प्राप्त हो वा जाय, इसमें किसीका कुछ आग्रह नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इसप्रकार यह जगत् सद् वा असद्, इसमें किसीको भ्रम न होनाचाहिये, इसहेतु संसारके तुच्छफलोंमें प्रयत्नको त्यागो, क्योंकि अब तुम निजआत्मस्वरूपको जानगयेहो, संसारमें भ्रमण अब व्यर्थहै ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विप० शवो० निर्वाणबोधोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः ॥ १४३ ॥

चतुःचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४४ ॥

चेतनही जगत्रूपसे भासताहै तथा जगत्भी चेतनही है इस विषयमें युक्ति और ब्रह्मकी सर्वशक्तिमत्ता इस १४४ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ सर्वथाभावभावेषुस्वप्नसंवेदनात्मसु ॥ नित्याप्रतिघरूपेषुकिंबद्धंकिंविमुच्यते ॥ १ ॥ खेदृष्टिभासांस्फुरणांयादृशंतादृशंजगत् ॥ विपर्ययस्यत्यविरतमबोधाल्लक्ष्यतेस्थिरम् ॥ २ ॥ यद्यथापुरसंस्थानंचिरैरेतितदन्यताम् ॥ जगदप्येवमनिशंवार्यावर्तविवर्त्तवत् ॥ ३ ॥ भूम्यंब्वंबरशैलादिभवत्यसदिदंक्षणात् ॥ तस्मिन्नेवक्षणोदंतैर्युगकल्पाभिधाःकृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले–कि हे व्याध ! स्वप्नके अनुभवके तुल्य नित्य अविनाशीरूप सर्व भाव तथा अभावपदार्थोंमें जब चिद्रूपताही है तब उसमें कौन बद्ध है और कौन मुक्त है ॥ १ ॥ जैसे आकाशमें नेत्रकी किरणोंका सूत्र केश तथा मुक्ता (मोती) आदिरूपसे अधिक अज्ञानसे स्फुरण होताहै, और दृष्टिकी स्थिरतासे नहींहोता ऐसेही आत्माके अज्ञानसे यह जगत् भासताहै अन्यथा नहीं ॥ २ ॥ जलके आवर्तके परिणामके समान नगरआदिकी रचना जैसे अन्यथाभावको प्राप्तहोती है ऐसेही यह जगत्भी निरंतर परिणामको प्राप्त होतारहताहै ॥ ३ ॥ जिससमय यह पृथिवी, जल, अन्तरिक्ष तथा पर्वतादि जगत् क्षणमेंही असत्यरूप होताहै उसीसमय क्षण, लव तथा त्रुटि आदि अवयवोंके वृत्तान्तोंसे विद्वानोंने युग तथा कल्पादिसंज्ञा की है ॥ ४ ॥

जगत्स्वप्नइवाशेषमसदप्यनुभूयते ॥ यन्नास्तिचेतन्निःशेषंचिदेवेत्थंकचत्यलम् ॥ ५ ॥ यथेदंनोजगत्तद्वच्छतानांखेशतानिहि ॥ नृणांपश्यंतुतेषांतुनान्योन्यमनुभूतयः ॥ ६ ॥ सरोब्धिकूपभेकानांदृष्टाः

प्रत्येकमास्पदे ॥ नतेन्योन्यंविदंत्यन्यांदृश्यादिनियतिंक्वचित् ॥ ७ ॥ यथाजनशतस्वप्ननगराण्येकमं दिरे ॥ तथाजगंतिखेभांतिखानिनोसंत्यसंतिनो ॥ ८ ॥

अर्थ—स्वप्नके पदार्थोंके तुल्य असत्‌रूपही यह जगत् अनुभूत होताहै, तो जब यह जगत् हैही नहीं तब संपूर्णरूपसे चेतनही स्फुरित होरहाहै ॥ ५ ॥ जैसे यह हमारा जगत् प्रसिद्ध अनुभूत होताहै, ऐसेही अन्यमनुष्योंकेभी लक्षों जगत् आकाशमें, ऐसा निश्चय करो. परन्तु वे सब जगत् अयोग्यतासे हमको परस्पर अनुभूत नहींहोते ॥ ६ ॥ जैसे तड़ाग, कूप तथा समुद्रआदिके मंडूक आदि प्रत्येक जीव अपने स्थानमें दृष्ट हैं, परन्तु वे परस्पर एकदूसरेकी दृश्यआदि मर्य्यादाको कभी नहीं जानते, यह दशा हमारी है ॥ ७ ॥ तथा जैसे एकस्थानमें अनेक स्वप्नद्रष्टाओंके स्वप्नमें असंख्य नगरादि परस्पर अविदित रहतेहैं, ऐसे आकाशमें अनेक जगत् भान होतेहैं, वे सब नगर वा जगत् आकाशादि जिसको भान होतेहैं उसकी दृष्टिमें असत्य नहिं हैं और अन्यकी दृष्टिमें सत्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

कचंतिनृशतस्वाप्नपुराण्येकगृहेयथा ॥ नचनामकचंत्येवंसंत्यसंतिजगंतिखे ॥ ९ ॥ चिच्चमत्कारमात्रं स्वंस्वात्मांगंदृश्यमद्वयम् ॥ सरूपमेवनीरूपंसकारणमकारणम् ॥ १० ॥ दधत्याश्चित्स्वभावायाःसं स्काराद्यभिधाःकृताः ॥ प्रतिमायाःप्रभाविन्यानसंस्कारादयःपृथक् ॥ ११ ॥ अपूर्वत्वात्स्मृतिःस्वप्नः संकल्पार्थानुभूतिषु ॥ स्वमृत्यनुभवाद्यास्तुदृष्टार्थसदृशीषुच ॥ १२ ॥

अर्थ—एकगृहमें पुरुषके स्वप्नमें असंख्य स्वप्न मनुष्य नगर आदि स्फुरित होतेहैं, क्या वे स्वप्नके न देखनेवालेको न भासनेसे असत् नहीं हैं ? वा स्वप्नद्रष्टाको भासनेसे सत् नहीं हैं ? ऐसेही क्या आकाशमें असंख्य ब्रह्मांड सदसत्‌रूपसे स्फुरित नहीं होते ॥ ९ ॥ यह द्वैतवर्जित जगत् आत्माका निज अंगभूत चित्‌का चमत्कारमात्रही है, तथा यह किसीको साकार किसीको निराकार तथा एकही पुरुषको किसीसमय साकार, किसीसमय निराकार तथा कभी किसीको कारणसहित, कभी कारणरहित है, और यथार्थमें तो निराकार तथा कारणशून्यही यह जगत् है ॥ १० ॥ तथा उन २ दृश्याकार परिणामोंको धारण करनेवाली, चिदाभासव्याप्त, चित्स्वभाववाली बुद्धिहीके जगत् संस्कार आदि नाम कियेगयेहैं क्योंकि देह वा चित्‌के पृथक् २ संस्कार नहीं हैं ॥ ११ ॥ पूर्वदृष्ट पदार्थोंके समानभी संकल्पितपदार्थोंके अनुभवोंमें अपूर्वता होनेसे पूर्व अनुभूत पदार्थोंके तत्ता अंशको त्यागकर स्मृतिही स्वप्नरूप होती है, उसमें अपने मरणआदिके अनुभव यद्यपि इस जन्ममें अनुभूत नहीं है तथापि जन्मान्तरमें वे अनुभूतही हैं इसहेतु मरणादिके संस्कारोंसे युक्तही स्मृतिरूप बुद्धि सब स्वाप्निक जगत्‌रूप धारण करती है यह निश्चित है ॥ १२ ॥

इदंसर्गात्मसर्गादौप्रतिमेवविजृंभते ॥ चिद्भामात्रात्मिकास्वच्छानान्यन्नामोपपद्यते ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवभा तिजगदित्युक्तमुक्त्यानयाभवेत् ॥ नचभातंनवंतच्चब्रह्मैवेदमतःस्थितम् ॥ १४ ॥ कारणंकार्यमित्युक्तः सपूर्वःसविशिष्यते ॥ संस्कारइतितेनैषसंस्कारःकृतिरुच्यते ॥ १५ ॥ तत्स्वप्नादावपूर्वोर्थोदृष्टांतइ तिभातियः ॥ ससंस्कारादिनामोक्तोनबाह्योर्थोस्तिचेतसि ॥ १६ ॥

अर्थ—केवल चित्‌के निर्मल प्रकाशमात्रही यह जाग्रत्‌का जगत्‌भी सृष्टिकी आदिमें स्वप्नकी प्रतिमाके तुल्य स्फुरित होताहै, उसकेसिवाय अन्य कुछभी नहीं बनसकता ॥ १३ ॥ यह जगत् ब्रह्मरूपही भासताहै और वह जगत् पूर्वमें भान न होकर नूतन भासताहै यह नहीं है, किन्तु अनादिप्रकाशरूपी ब्रह्मकेसाथ अभिन्न होकर यह अनादि जगत् परब्रह्मरूपही है यह सिद्धान्त अटल स्थितहै ॥ १४ ॥ और उपादानकारणही कार्य्यरूप होताहै, यह कथितहै, इनमें पूर्व सामान्यकारणही विशेष कार्य्यरूप होताहै, तथा कार्य्यके संस्कारोंका आधारभूत बीजरूप कारण सम्यक्‌रीतिसे कार्य्यको करनेवाला संस्कारक होताहै इस व्युत्पत्तिसे संस्काररूपभी यह आत्माही है, तथा संस्कारशब्दके अन्तर्गत कार्य्यके अनुकूल यत्नरूप अर्थसहित कृतिरूप संस्कारभी यह आत्माही कहाजाताहै ॥ १५ ॥ इसहेतुसे स्वप्नआदिमें जाग्रत्‌में दृष्टपदार्थोंसे विलक्षण पदार्थ जो भासताहै, वहभी संस्कार तथा वासनाआदि नामयुक्त आत्माही है क्योंकि चित्तमें बाह्यपदार्थ नहीं है ॥ १६ ॥

वस्तुदृष्टंनदृष्टंचसच्चास्तेचेतनेवखे ॥ स्वभावाद्भातिखात्मापिदृष्टवच्चातिजृंभते ॥ १७ ॥ वेदांतार्थात्म कंपूर्वसर्गाभावंप्रवर्तते ॥ ततोवेद्यव्यवस्थाज्ञैःक्रियतेस्वार्थसिद्धये ॥ १८ ॥ स्वप्नेतुजाग्रत्संस्कारोयस्त जाग्रत्कृतंनवम् ॥ आजाग्रज्जाग्रदाभासंकृतमित्येवतद्विदः ॥ १९ ॥ ततोवायाविवाऽऽस्पंदाश्चित्तेभा वाःस्थिताःस्वतः ॥ तेस्वतःसंप्रवर्त्तंतेकात्रसंस्कारकर्तृता ॥ २० ॥

अर्थ—वह संस्काररूप वस्तु स्वप्नमें दृष्ट है और जाग्रत् अदृष्ट होनेपर उसका अभाव नहीं होसकता, क्योंकि वह चित्तरूप चिदाकाश चेतनके सदृश सदा विद्यमान है और चिदाकाशरूप होनेपरभी साक्षीके स्वभावसे भासताहै तथा जाग्रत्के समान विस्तारकोभी प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ वही साधनसंपत्तिसहित श्रवणादिसे निश्चित अद्वितीयसाक्षीरूप ब्रह्म वेदान्तके अर्थ आत्मा सत् है, वही पूर्वप्रसिद्ध द्वैतार्थके बाधपूर्वक यथास्थित स्वभावमें प्रवृत्त होताहै, इसप्रकार स्वभावयुक्त ब्रह्मको निश्चय तत्वज्ञानियोंने शिष्योंमें परमपुरुषार्थरूप स्वार्थकी सिद्धिके लिये अज्ञातब्रह्महीही जगत्का सार है, तथा सम्यक्विचारसे ज्ञात होनेसे वही अद्वैत ब्रह्म मोक्ष है ऐसी व्यवस्था शास्त्रोंमें की है ॥ १८ ॥ और स्वप्नमें जो जगत्का संस्कार है वह जाग्रत्जनित है, और जो अपूर्व नूतन है वह जाग्रत् भिन्न जाग्रत्के तुल्य भासमान है वहभी जन्मान्तरकृत जाग्रत्जनित है ऐसा कोई तत्ववेत्ता जन मानते हैं ॥ १९ ॥ सो यथार्थ नहीं है, क्योंकि वायुमें स्पन्दके तुल्य स्वाप्निक आदि पदार्थ आत्मामें स्वयं स्थित हैं, वे स्वयं स्वप्नादिरूपसे प्रवृत्त होतेहैं इसमें संस्कारकी कर्तृता क्या है ॥ २० ॥

एकंतथाचचिन्मात्रंस्वप्नेलक्षात्मतिष्ठति ॥ पुनर्लक्षाद्यतःस्वप्नएकमास्तेसुषुप्तकम् ॥ २१ ॥ चिद्व्योम्नि स्वप्नसंवित्तिर्यासैवजगदुच्यते ॥ सुषुप्तंप्रलयःप्रोक्तस्तस्मान्न्यायोयमेवसन् ॥ २२ ॥ एकमेवचिदाकाशंसाकारत्वमनेककम् ॥ स्वरूपमजहद्धत्तेयत्स्वप्नइवतज्जगत् ॥ २३ ॥ एवंचित्परमण्वंतर्जगद्भावमिदं स्थितम् ॥ तदनन्यात्मचाभोगिस्वप्नादर्शतलेष्विव ॥ २४ ॥

अर्थ—एकही चिन्मात्र स्वप्न लक्षों रूप धारणकरके स्थित होताहै, और पुनः अनेक लक्षस्वरूपधारी वह स्वप्न एक सुषुप्तिरूपसे शेष रहताहै ॥ २१ ॥ चिदाकाशमें जो स्वप्नकी स्फुरणा है वही जगत् कहाजाताहै और सुषुप्ति प्रलय कहागयाहै, यही समानन्याय सत्य है ॥ २२ ॥ एकही चिदाकाश अपने स्वरूपको न त्यागता हुवा साकार अनेकरूप जो धारण करताहै यही स्वप्नवत् जगत् है ॥ २३ ॥ इसप्रकार चित् परमाणुमें जो जाग्रत्भाव स्थित है, और अनेक विस्तारयुक्त जगत् स्वप्न तथा दर्पणमें निजमुख तथा वननगरादिके सदृश आत्मासे अभिन्नरूपही है ॥ २४ ॥

चिद्व्योमसंविन्मात्रंयत्परमाणुवदाततम् ॥ अनादिमध्यपर्यंतंतदेवजगदुच्यते ॥ २५ ॥ तस्माद्यत्रचिदाकाशमनंतंसत्ततंस्थितम् ॥ तत्रास्तीतिजगद्भानंतदंगानन्यरूपियत् ॥ २६ ॥ चिन्मात्रएवभुवनंत्वमहंचिन्मयंजगत् ॥ इतिन्यायाज्जगद्यातिपरमाणूदरेप्यजम् ॥ २७ ॥ तस्मादहंपराण्वात्मासमस्तजगदाकृतिः ॥ सर्वत्रैवचतिष्ठामिपरमाणूदरेपिच ॥ २८ ॥

अर्थ—चिदाकाशका स्फुरणमात्र जो परमाणुके तुल्य सूक्ष्म व्याप्त है, तथा कालसेभी आदि अन्त तथा मध्यशून्य है वही जगत् है ॥ २५ ॥ इसलिये जहां अनन्त चिदाकाश निरन्तर स्थितहै वहांही उस चिदाकाशके अंगके तुल्य उससे अभिन्नरूप जगत्काभी भान है ॥ २६ ॥ चिन्मात्रही यह जगत्, तथा तुम हम सब चिन्मात्रही हैं, इस गुरुशास्त्रोक्तयुक्तिसमूहसे चिन्मात्र परमाणुके उदरमें यह जगत् अपनी स्थूलताको त्यागकर अजन्मा चिद्रूपताको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ इस हेतुसे हमपर सूक्ष्म आत्मरूप होनेपरभी समस्त जगदाकार है, और सर्वत्र जगत्रूपसे तथा सूक्ष्मरूपसे परमाणुके उदरमेंभी स्थितहैं ॥ २८ ॥

चिन्मात्रपरमाणुःसन्जगदात्माप्ययंनभः ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रपश्यामिभुवनत्रयम् ॥ २९ ॥ अहंचित्परमाण्वात्मातेनचित्परमाणुना ॥ एकतामागतोवारिवारिणेवतदीक्षणात् ॥ ३० ॥ तदोजःसंप्रविश्याहंस्थितस्तदनुभूतिवत् ॥ अंतस्थत्रिजगद्रूपोयथाब्जेबीजमंकुरे ॥ ३१ ॥ तत्रमेत्रिजगद्रूपमंतःकचितमात्मनि ॥ तथातत्रतुतद्बाह्येविद्यतेकेनचित्क्वचित् ॥ ३२ ॥

अर्थ—चिदाकाशरूप मैं चिन्मात्र परमाणु होकरभी इस विशाल जगत् आकारसे स्थित हुं, और जहां मैं निजचिदाकाशरूप रहता हुं वहांही त्रिलोकीको देखताहुं ॥ २९ ॥ मैं चित् परमाणु (शोधितत्वंपदार्थ) रूप हुं सो उस चित् परमाणु (शोधितत्वंपदार्थ) ब्रह्मस्वरूपके साथ उस आत्मज्ञानसे एकताको ऐसे प्राप्तहुआहुं जैसे जलमे निक्षिप्त जलके साथ जल ॥ ३० ॥ आभ्यन्तरमें तीनोंलोकको धारण करनेवाला मैं उस ब्रह्मरूप तेजमें प्रविष्ट होकर उन २ प्राणियोंके अन्तर्गत वासनामय जगत्के अनुभवरूपसे ऐसे स्थितहुं जैसे कमलके सूक्ष्म अंकुरमें भावी अनेक विचित्रतायुक्त बीज ॥ ३१ ॥ मेरे अभ्यन्तरही तदीय, मदीय तथा अन्यदीय, (उसका मेरा तथा अन्यका) त्रिलोकीरूप जगत् साक्षी चेतनमें स्फुरित होरहाहै और वह जगत्का रूप बाह्यप्रदेशमें कुछभी नहीं है क्योंकी बाह्यप्रदेशकाही अभाव प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

यत्रयत्रयदाभातिस्वप्नेजाग्रदितीहवा ॥ सबाह्याभ्यंतरंदृश्यंनिजंचिद्भानमेवतत् ॥ ३३ ॥ भातिस्वप्नेय दाजंतोर्जगदानंदमाततम् ॥ चिदणोरेवतद्भानमात्मनस्तत्पदात्मना ॥ ३४ ॥ व्याधउवाच ॥ अकारणं चेदृश्यंतत्कथमेतत्प्रसिध्यति ॥ सकारणंचेद्दृश्यंतत्स्वप्नेसर्गादिधीःकुतः ॥ ३५ ॥ मुनिरुवाच ॥ अ कारणकएवायंसर्गआदौप्रवर्तते ॥ समस्तकारणाभावाद्यतःसर्गात्मचिन्नभः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तर जाग्रत् वा स्वप्नमें जहां २ यह जगत् भासताहै वहां २ निजचेतनकाही भान है॥३३॥ जब जीवके स्वप्नावस्थामें आनन्दव्याप्तरूप जगत् भासताहै वह चिदणुकेही आभ्यन्तर आत्मकाही स्वप्नस्थानरूपसे भान होताहै ॥ ३४ ॥ व्याध बोला कि–हे मुने ! यह दृश्य जगत् यदि कारणशून्य है तो इसकी प्रसिद्धि कैसे होती है, क्योंकि कारणरहित शशशृंगआदि लोकमें प्रसिद्ध नहीं है, और यदि कारणसहित है तो स्वप्नमें दंडचक्रादि कारण-के अभावसे घटआदि सृष्टिकी बुद्धि कैसे होती है ? ॥ ३५ ॥ मुनि बोले–कि हे व्याध ! कारणरहितही यह सृष्टि आरंभमें प्रवृत्त होती है, क्योंकी समस्त कारणोंके अभावमेभी चिदाकाश सृष्टिकारणरूप शक्तिमय है ॥ ३६ ॥

अकारणानांभावानामत्यंतासंभवादिह ॥ क्वचित्सप्रतिघःसर्गोनसंभवतिकश्चन ॥ ३७ ॥ ब्रह्मेदमि त्थमाभातिभास्वरंचित्स्वभावतः ॥ सर्गादिशब्दपर्यायमाद्यंतपरिवर्जितम् ॥ ३८ ॥ इत्यकारणकेसर्गे कचतिब्रह्मरूपिणि ॥ परस्यावयवाभासेनित्यात्मावयवात्मना ॥ ३९ ॥ अनानात्वेपिनानात्वेब्रह्मण्यब्र ह्मरूपिणि ॥ अनाकारेपिसाकारेरचत्यप्रतिघंप्रति ॥ ४० ॥ तद्ब्रह्मैवनिराकारंचिद्रूपत्वात्स्फुरद्वपुः ॥ साकारमिवभातात्मभूत्वास्थावरजंगमम् ॥ ४१ ॥ देवर्षिमुनिभारूपंकरोतिनियतिंक्रमात् ॥ विधीं श्चप्रतिषेधांश्चदेशकालाक्रियादिकान् ॥ ४२ ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचराचराः ॥ अर्थाव्य भिचरंत्येतेनियतिर्नाखिलास्ततः ॥ ४३ ॥ ततःप्रभृतिभावानांसकारणकतांविना ॥ सैकतादिवतैलानां नसंभवतिसंभवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कारणशून्य स्थूलपदार्थोंके अभावसे स्थूल, सृष्टि, कारणरहित कहींभी संभव नहीं है, और प्राति-भासिकके तो मिथ्या होनेसे कारणका नियम नहीं है ॥ ३७ ॥ आदि अन्त वर्जित सृष्टि आदि शब्द पर्य्यायरूपसे प्रकाशित ब्रह्महीं इस जगत्‌रूपसे प्रकाशित होरहाहै ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कारणके सर्वथा असंभव होनेपर ब्रह्मरूप मायाके प्रतिबिम्ब चैतन्यमें नित्य आत्माका औपाधिकरूपसे नानात्वरूपका अत्यन्त अयुक्त होनेपरभी निराकार ब्रह्मके उससे भिन्न साकाररूपमें अप्रतिघातरूपसे स्फुरित होनेसे यह निश्चित है कि चिद्रूप होनेसे सर्व शक्तिमान् निराकार ब्रह्महीं स्फुरितशरीर साकाररूपसे भासमान शक्तियुक्त होकर देवर्षि आदिरूप स्थावरजंगममय जगत्‌को तथा क्रमसे उन सबकी मर्य्यादाको, शास्त्रीयविधि निषेधिको, तथा देश, काल, क्रियादिके नियमोंको करता है ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ब्रह्मकृत होनेसेही, भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, तथा स्थूल, सूक्ष्मआदि चराचर सब पदार्थोंके व्यभिचार होनेपरभी नियति (मर्य्यादा) का व्यभिचार कदापि नहीं होता ॥ ४३ ॥ और ब्रह्मकृत नियति-कल्पनाके पश्चात् कारणके विना पदार्थोंकी उत्पत्ति ऐसे नहीं होसकती जैसे वालुकासे तैलकी ॥ ४४ ॥

नियतिर्नायकश्चैवब्रह्मतश्चांगमात्मना ॥ स्वांगेनसंयमयतिकरेणेवनिजंकरम् ॥ ४५ ॥ अबुद्धिपूर्वंचा निच्छमेवमेवप्रवर्तते ॥ काकतालीयवत्स्पंदादावर्त्ताइववारिणि ॥ ४६ ॥ सन्निवेशोहिनियतिस्तांविना प्रतिघोदयम् ॥ ब्रह्मस्थातुंनशक्नोतितच्चसर्वात्मताक्षयम् ॥ ४७ ॥ एवंसकारणंसर्वंसर्वदादृश्यमंड लम् ॥ यस्यसर्गेयतःकालात्ततःप्रभृतितंप्रति ॥ ४८ ॥

अर्थ—नियति तथा उसका भोक्ता नायक अर्थात् जीव, ये दोनों ब्रह्मसेही स्वयं हस्तद्वयरूप अंगके सदृश प्रवृत्तहुयेहैं, सो वह ब्रह्म निजअंगरूप एकसे दुसरेका ऐसे नियमन करताहै जैसे एकहांथसे दूसरे हांथका ॥ ४५ ॥ इसलिये जीवकी जाग्रत् तथा स्वप्नमयी सृष्टि अबुद्धि और अनिच्छापूर्वक काकतालीयन्यायसे ऐसे प्रवृत्तहुई है जैसे स्पन्दसे जलमें आवर्त ॥ ४६ ॥ कारणकृतकार्यमें रचनाके विशेष नियमको नियति कहतेहैं उस संनिवेशरूप नियतिकेविना अप्रतिबोदय अज्ञात ब्रह्म क्षणभरभी ऐसे नहीं रहसकता जैसे चूर्ण, पिंड तथा घट कपलादिमेंसें किसीएकके संनिवेशा-विनामृत्तिका और संनिवेशरूप नियतिका धारण जबतक ज्ञानसे सब पदार्थोंका क्षयरूप मोक्ष नहीं होता तबतक प्रवृत्त होतारहताहै ॥ ४७ ॥ इसप्रकार जिस जीवको सृष्टिप्रति जिससमयसे नियतिकी कल्पना कीगई है उसकालसे उस जीवके लिये सर्वदा सब यह दृश्यमंडल कारणसहित है, न कि अन्यपुरुष था कालान्तरमें भावीपदार्थके प्रति ॥ ४८ ॥

भात्यकारणकंब्रह्मसर्गात्माप्यबुधंप्रति ॥ तंप्रत्येवच भात्येषकार्यकारणदृग्भ्रमः ॥ ४९ ॥ काकतालीय वत्सर्गेस्थितेत्वावृत्तिवृत्तिवत् ॥ इदमित्थमिदंनेत्थमितीयंनियतिःस्थिता ॥ ५० ॥ सकारणत्वंभावा

नामवश्यंभाविनिक्रमे ॥ जाग्रत्स्वप्नदृशोनेहसंभवंत्यपकारणाः ॥ ५१ ॥ यथास्वप्नेखिलामंबुसंक्षोभात्मलयभ्रमाः ॥ दृश्यतेकारणंतत्रश्रूयतामनुभूयताम् ॥ ५२ ॥ सर्ववस्तुषुकचंतिसर्वदायुक्तयःस्फटिकशुक्तयोयथा ॥ भावनानुभवएवसस्वयंशक्तिमान्जयतिजीवितात्मकः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० पदार्थविचारो नाम चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४४ ॥

अर्थ—कारणशून्य ब्रह्म अज्ञानीके प्रति सृष्टिरूप होकर भान होताहै, तथा उसीको यह कार्य्यकारणदृष्टिका भ्रम भासताहै ॥ ४९ ॥ और विवेकीकी दृष्टिमें काकतालीय (आकस्मिक प्राप्त) के सदृश आवर्तचक्रवत् यह सृष्टि स्थित है और अन्यकेप्रति पूर्वापर नियमके दर्शनसे घटरूप कार्य्य, मृत्तिका, दंड, चक्रआदि सामग्रीसे तथा पटरूपकार्य्य इससे विरुद्ध तन्तु तुरी वेमादि सामग्रीसे उत्पन्न है इत्यादि नियति नित्यवेदकी व्याकरणआदि नियतिके तुल्य स्थित है ॥ ५० ॥ और जो यथार्थमेंही जन्यपदार्थोंके लिये अवश्य पूर्वापर भावरूप कार्य्यकारणका नियम है ऐसा मानतेहैं उनके मतमें जाग्रत् स्वप्नकी सृष्टिभी कारणरहित नहींहोसकती, किन्तु स्वप्न वा सुषुप्तिके अनन्तर जाग्रत् प्रपंचकी उत्पत्तिमें कारणोंका संभव नहींहै, ऐसेही जाग्रत् वा सुषुप्तिके पश्चात् स्वप्नके प्रपंचमेंभी कारण नहीं है ॥ ५१ ॥ जैसे मैंनेही प्राणीके हृदय तेजमें प्रविष्ट होकर संपूर्ण पृथिवीको व्याप्त करनेवाले जलके संयोगसे प्रलयके भ्रम देखे, क्या वहां तुम कुछ कारण देखतेहो वा श्रुतिसे सुनतेहो अथवा अनुभव करतेहो ॥ ५२ ॥ उक्तरीतिसे ब्रह्मके साथ जगद्रूप प्रपंचकी एकताप्रतिपादक स्फटिकमणिके सदृश अनेक युक्ति प्रकाशित हैं, इसहेतुसे शास्त्रानुकूल युक्ति तथा सर्वशक्तिमान् आत्मारूप अनुभव सब प्रमाणोंका जीवन सर्व श्रेष्ठ प्रमाण है ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवियो० वि० शवो० पदार्थविचारो नाम चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४४ ॥

पंचचत्वारिंशदुत्तरशततम. सर्गः ॥ १४५ ॥

श्लेष्म, पित्त, तथा वायुसे पूर्ण जीवके हृदयरूप तेजमें कल्पित स्वप्नोंके भेद तथा इन्द्रियोंके द्वारा बाह्यपदार्थोंके भेद इस १४५ के सर्गमें वर्णन किये हैं ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ बहिष्ठैर्बाह्यमेवांतरंतस्थैःस्वप्नमिंद्रियैः ॥ जीवोवेत्तिद्वयस्थातितीव्रसंवेगिभिर्द्वयम ॥ ॥ १ ॥ यदेंद्रियाणितिष्ठंतिबाह्यतश्चसमाकुलम् ॥ तदाम्लानानुभवनःसंकल्पार्थोनुभूयते ॥ २ ॥ यदात्वंतर्मुखान्येवसंत्यक्षाणितदाजगत् ॥ अणुमात्रंस्ववपुषिजीवस्तेनातिवेत्तितत् ॥ ३ ॥ जगत्सप्रतिघंनास्तिकिंचिदेवकदाचन ॥ जीवेक्षणानामक्षाणांदृष्टिरप्रतिघाजगत् ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले कि–हे व्याध! यह जीव बाह्य इन्द्रियोंसे बाह्य तथा आभ्यंतरस्थित इन्द्रियोंसे आन्तरिक स्वप्नके पदार्थोंको जानताहै, और अतितीव्रसंवेगयुक्त बाह्य तथा आभ्यंतरस्थित इन्द्रियोंसे तो दोनों (बाह्य तथा आभ्यन्तरिक जगत्) को जानताहै ॥ १ ॥ जिससमय इन्द्रियां बाह्यव्यवहारनिमग्न रहती हैं तब संकल्पितपदार्थोंको मलिन (स्वप्नवत्) अनुभवके साथ अनुभव करताहै ॥ २ ॥ और जब इन्द्रियां अन्तर्मुख रहती हैं तब अणुमात्र अर्थात् सूक्ष्म स्वप्नके जगत्कोभी स्थूलके सदृश अपने शरीरमेंही पूर्णरूपसे जानताहै ॥ ३ ॥ यह जगत् सप्रतिघ अर्थात् स्थूल कदापि नहीं है, किन्तु जीवके दर्शनमें करणभूत इन्द्रियोंके द्वारा स्थूलताकी कल्पनामें प्रतिघातशून्य जो दृष्टि है वही स्थूल जगत् है ॥ ४ ॥

जीवनेत्राणींद्रियाणियदाबाह्यमयान्यलम् ॥ तदाबाह्यात्मकंवेत्तिचितिजीवोजगद्वपुः ॥ ५ ॥ श्रोत्रंत्वगीक्षणंघ्राणंजिह्वाचेतीहितात्मकः ॥ संघातःप्रोच्यतेजीवश्चिद्रूपोनिलमूर्त्तिमान् ॥ ६ ॥ सर्वत्रसर्वदा जीवःसर्वेंद्रियमयःस्थितः ॥ चिच्चिद्व्योमाव्ययस्तेनसर्वसर्वत्रपश्यति ॥ ७ ॥ श्लेष्मात्मनारसेनांतर्जीवआपूर्य्यतेयदा ॥ तेक्षाणुकेणुरूपात्मातदातत्रैवविंदति ॥ ८ ॥

अर्थ—जब जीवकी नेत्रआदि इन्द्रियां बाह्य जगद्रूप होजाती हैं तब जगत् शरीरधारी यह जीव चिदाकाशमेंही बाह्य जगत्को देखताहै ॥ ५ ॥ श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, प्राण, तथा जिव्हा, वाक्आदि पंचकर्म इन्द्रिय, इच्छाप्रधान अन्तःकरणचतुष्टय और पंचप्राण, इन सबका संघातरूप जो सूक्ष्मशरीर है यह कूटस्थ चिदाभासके मिलनेसे चिद्रूप जीव कहाता है ॥ ६ ॥ अविनाशी कूटस्थ चित् आकाशही चिदाभास जीवहै वह समष्टिप्राणरूप होके सर्वदा तथा सर्वत्र सर्व-

इन्द्रियनमें स्थित है, इसलिये वह सर्वत्र निजवासनामय बाह्य जगत्‌भी देखताहै ॥ ७ ॥ जब यह तुमारा जीव सूक्ष्मनाडियोंमें प्रविष्ट होताहै और श्लेष्ममय अन्नरससे पूर्ण होताहै तब स्वयं अतिसूक्ष्मरूप उन्हीं नाडियोंमें वक्ष्यमाण स्वप्नके भेदोंको अनुभव करताहै ॥ ८ ॥

क्षीरार्णवइवोड्डीनोनभश्चंद्रोदयान्वितम् ॥ सरांसिफुल्लपद्मानिकह्लारवलितानिच ॥ ९ ॥ पुष्पाभ्रप्रतिधानानिपरिगीतानिषट्पदैः ॥ वसंतांतःपुराण्यंतरुद्यानान्युदितानिखे ॥ १० ॥ उत्सवान्मंगलाकीर्णाल्लीलालोलांगनागणान् ॥ भक्ष्यभोज्यान्नपानश्रीपरिपूर्णगृहाजिरान् ॥ ११ ॥ सपुष्पाःफेनहसनास्तरलातरलेक्षणाः ॥ विलासेनांबुधिंयांतिसरितोमत्तयौवनाः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वयं क्षीरसागरमें उडतेहुये चन्द्रोदयसहित आकाश, पुष्पमय मेघोंके प्रतिनिधिके सदृश, विकसित कमल, कल्हारादिसे शोभित तथा भ्रमरोंसे गुंजित तडागोंको और वसन्तराजके अन्तःपुरमें शोभित उद्यानोंको जीवाकाशमें उदित यह जीव अनुभव करताहै ॥ ९ ॥ १० ॥ तथा उत्सवोंसे पूर्ण मंगलोंको, लीलाओंसे ललनासमूहोंको और भक्ष्य भोज्य, तथा अन्नपानआदि अनेकप्रकारकी लक्ष्मियोंसे पूर्ण गृह तथा अंगणोंकोभी अपने हृदयमेंही देखताहै ॥ ११ ॥ तथा विविधभांतिके पुष्पोंसे शोभित, फेनरूपी हास्ययुक्त, शफरीरूप चंचलनेत्रधारिणी तथा मत्तयौवनसहित नदियोंको विलासपूर्वक समुद्रमें जातेहुये यह जीव अनुभव करताहै ॥ १२ ॥

हिमवच्छुभ्रशृंगाणिसौधानिशिशिराण्यलम् ॥ सुधावधौतभित्तीनिकृतानींदुतलैरिव ॥ १३ ॥ शिशिरासारहेमंतप्रावृण्मेघवृतानिच ॥ स्थलानिनीलनलिनीलताशाद्वलवंतिच ॥ १४ ॥ पुष्पप्रकरसंछन्नाविश्रांतहरिणाध्वगाः ॥ स्निग्धपत्रतरुच्छायाःपुरोपवनभूमिकाः ॥ १५ ॥ कदंबकुंदमंदारमकरंदेंद्वकांतिभिः ॥ भासमानासनस्थानसंस्थानाःकुसुमस्थलीः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा हिमालयके शिखरोंके तुल्य अतिशुभ्र शिखरयुक्त, अतिशीतल, सुधा (चूना) से लिप्त भित्तियोंसे शोभित और चन्द्रमाके तलसे रचितके समान उच्च अट्टालिकाओंको देखताहै ॥ १३ ॥ तथा शीतल जलकणोंसे आच्छन्न, हेमन्तआदि ऋतुओंसे शोभित, वर्षाकालके मेघोंसे आवृत, तथा नीलकमलिनी, लता और हरी २ घासोंसे पूर्ण अनेकस्थानोंको अनुभव करताहै ॥ १४ ॥ तथा पुष्पोंके समूहोंसे आछन्न, हरिण तथा पथिकके विश्रामस्थान तथा अतिस्निग्ध पत्रपूर्ण वृक्षोंकी छायासे युक्त नगरोंकी उद्यानभूमियोंकोभी देखताहै ॥ १५ ॥ और कदंब, कुंद तथा मन्दारआदिके पुष्परसोंकी शोभाओंसे भासमान आसनके सदृश रचनायुक्त पुष्पस्थलियोंकोभी अपने हृदयमें देखताहै ॥ १६ ॥

नलिनीजालिनीर्नीलाःपुष्पकस्थलधारिणीः ॥ वनावलीर्विलीनाभ्रनिर्मलाकाशकोमलाः ॥ १७ ॥ कदलीकंदलीकुंदकदंबकृतशेखराः ॥ गिरिमालाश्चलच्चारुलीलापल्लवपेलवाः ॥ १८ ॥ हेलावलितधम्मिल्लमुक्तमालतिकालताः ॥ इवबालांगनानृत्यंतन्वानास्ततनुगात्रिकाः ॥ १९ ॥ उत्फुल्लश्वेतनलिनीनिभानरपतेःसभाः ॥ चारुचामरभृंगारवितानकशतावृताः ॥ २० ॥

अर्थ—कमलिनियोंके समूहोंसे पूर्ण, नीलवर्ण, पुष्पमयस्थलोंसे शोभित, गुप्त शरत्कालके मेघकेसदृश अतिकोमल वनस्थलियोंकोभी अनुभव करताहै ॥ १७ ॥ कदली कंदलीआदि मृग तथा कुंद कदंबआदि शिरोभुषणयुक्त तथा सुन्दर लीलायुक्त पल्लवोंसे शोभित पर्वतकी मालाओंकोभी देखताहै ॥१८॥ तथा लीलावलितसे वेष्टित मुक्तकेशोंसे विस्तृत मालतीलताओंके सदृश नृत्य करतेहुये सूक्ष्मशरीर बालअंगनाओंकोभी अनुभव करता है ॥ १९ ॥ तथा विकसित नीलकमलिनीके सदृश सुन्दर चमरछत्र तथा अनेक सुवर्णरचित झारियोंसे आवृत राजाओंकी सभाओंको देखताहै ॥ २० ॥

वल्लीवलयविन्यासविलासवलितांगिकाः ॥ वनमालाविलोलांबुप्रणालीकाकलीकलाः ॥ २१ ॥ धराभरकरालांगधाराधरधराधराः ॥ दिशःसीकरनीहारहारोदरधरादश ॥ २२ ॥ पित्तात्मनारसेनांतर्जीवआपूर्यतेयदा ॥ ओजोंतरणुमात्रात्मातदातत्रैवविंदति ॥ २३ ॥ पवनस्पंदसंशुष्ककिंशुकद्रुमशोभनाः ॥ ज्वालालीरुज्ज्वलांभोजदलपल्लवपेलवाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और लताओंके वलयाकार रचनाके विलासवेष्टित शरीर तथा चंचलजलोंकी कृत्रिमनदियोंमें पक्षियोंके मधुरध्वनिसे गंभीर वनोंकी पंक्तियोंको देखताहै ॥ २१ ॥ तथा वृष्टिसे पृथिवीको पूर्ण करनेवाले मेघोंसे आच्छन्न पर्वतोंसे शोभित तथा जलकणजनित नीहार (कुहिरा) रूप हारोंको उदरमें धारण किये दशोंदिशाओंको देखताहै ॥ २२ ॥ और जब नाडियां पित्तरससे पूर्ण होती हैं तब बाह्य इंद्रियोंके व्यापारसे शून्य हृदयरूप तेजमें सूक्ष्मरूप स्थित यह जीव वक्ष्यमाण

स्वप्नोंको देखताहै ॥ २३ ॥ पवनके स्पंदसे अतिशुष्क किंशुक (टेसू) के वृक्षके सदृश शोभायमान उज्ज्वल कमलके पल्लवके सदृश ज्वालाओंकी पंक्तियोंको देखताहै ॥ २४ ॥

संतप्तसिकतासेकसनीहारसरिच्छिराः ॥ दावानलशिखाश्यामधूमश्यामलदिङ्मुखाः ॥ २५ ॥ कृशा नुकर्कशानर्कांश्चक्रधाराशितत्विषः ॥ दावदाहविषावेशविपरीतरसाकरान् ॥ २६ ॥ स्वेदमुष्णीकृता ब्धिवास्विन्नंत्रैलोक्यमंडलम् ॥ क्षरत्क्षाराण्यरण्यानिप्रतप्तगहनान्यपि ॥ २७ ॥ प्रतरन्मृगतृष्णांबुसर त्सारसरूपिच ॥ स्थलान्यदृष्टपूर्वाणिभूतपूर्वतरूणिच ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा संतप्तवालुकाओंके सिंचनसे नीहारसंयुक्त नदीरूप नाडियोंसे और दावानलकी शिखाओंसे उत्पन्न श्यामधूमसे दिशाओंके मुखको श्याम करनेवाली ज्वालाकी पंक्तियोंको यह जीव स्वप्नमें देखताहै ॥ २५ ॥ तथा अग्निके सदृश कर्कश, चक्रधाराके तुल्य तीक्ष्णदीप्तिधारी, और दावानलके दाहरूप विषसे तडागादिजलाशयोंको विपरीत (शीतसे उष्णगुणयुक्त) करनेवाले सूर्य्यमण्डलकोभी देखताहै ॥ २६ ॥ आर्द्र उष्णतायुक्त समुद्रको स्वेदसे खिन्न त्रैलोक्यमण्डलको, उष्णतासे नष्टप्राय तथा मुझाई हुई लतादियुक्त वनोंकोभी देखताहै ॥ २७ ॥ चंचल सारसोंसे शोभित मृगतृष्णाके जल तथा अनेक अदृष्ट पूर्व स्थानोंको, और पूर्वदृष्ट वृक्षआदिकोभी देखताहै ॥ २८ ॥

अध्वगंसंभ्रमवशात्तप्तधूलिविधूसरम् ॥ दूरादमृतवद्दृष्टंस्निग्धच्छायाध्वपादपम् ॥ २९ ॥ ज्वरज्वालित माकारंभुवनंतप्तमग्निवत् ॥ पांसूपहतदेशानिदिङ्मुखानिचखानिच ॥ ३० ॥ ग्राहग्रामार्णवाद्र्यब्धिवन व्योमाग्निकादिशः ॥ तुहिनाहारहानंतासंख्यांबुदघटोद्भटान् ॥ ३१ ॥ शरद्ग्रीष्मवसंतांश्चतापानातप दायिनः ॥ तृणपत्रलतौघाभ्रराश्यूष्मपिहितावनीः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा संभ्रमसे भागते हुये धूलिसे मलिन वर्णन और छायायुक्त मार्गके वृक्षको अमृतके तुल्य दूरसे देखनेवाले अपनेको पथिकरूपसे देखताहै ॥ २९ ॥ ज्वरग्रस्त आकारवान् तथा अग्निके सदृश संतप्त भूवनको, धूलिसे दूषित देशोंको, दिशाओंको तथा आकाशकोभी देखताहै ॥ ३० ॥ तथा जलतीहुई अग्निसंयुक्त गृह, ग्राम, पर्वत, वन, समुद्र और दिशाओंको तथा शीतके भक्षक और अग्निकी वर्षा करनेवाले असंख्य मेघोंके तुल्य प्रचंड ॥ ३१ ॥ और अतिसंतापप्रदायक ग्रीष्म तथा वसन्तऋतुओंको, तथा तृण, पत्र और लताआदिके समूह और उष्णअग्निसे आच्छादित भूमियोंको देखताहै ॥ ३२ ॥

सौवर्णमंबरतलंभूतलंदिक्तटानिच ॥ तप्तान्यदभ्रसरसीहिमशैलस्थलानिच ॥ ३३ ॥ रसानुरिक्तेवाते नजीवआपूर्यतेयदा ॥ ओजोंतरणुमात्रात्मातदातत्रैवविंदते ॥ ३४ ॥ वातविक्षुब्धसंवित्त्वादपूर्ववसुधा तलम् ॥ अपूर्वानगरग्रामशैलाब्धिवनमंडलीः ॥ ३५ ॥ उड्डीयमानमात्मानंशिलाःशैलस्थलानिव ॥ घ नघुंघुमसारावानचक्रभ्रमणानिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—संतप्त सुवर्णके तुल्य भूतल तथा आकाशतलको, अतिसंतप्त दिशाओंके, तटों और बडी २ वापियां तथा हिममय प्रदेशोंकोभी अतिसंतप्त देखताहै ॥ ३३ ॥ और अन्नरसभूत श्लेष्मा तथा पित्तको अनुसरण कर केवल पवन (वात) से जब नाडियां पूर्ण होतीहैं तब निजतेजोमय हृदयमें सूक्ष्मरूपसे स्थित यह जीव वक्ष्यमाण स्वप्नको देखताहै ॥ ३४ ॥ उससमय वायुसे संक्षुब्धबुद्धि होनेसे अपूर्व वसुधातल तथा अपूर्व नगर, ग्राम, पर्वत, समुद्र, तथा वनकी मंडलियोंको देखताहै ॥ ३५ ॥ तथा पाषाणोंकी शिला तथा पर्वतोंके स्थलोंके तुल्य उडतेहुये अपनेको मेघोंकी गर्जनाओंसे शब्दयुक्त देशोंको और कुलालचक्रादि विनाभी घटआदिके भ्रमणोंको स्वप्नमें देखताहै ॥ ३६ ॥

हयोष्ट्रगरुडांभोदहंसयानावरोहणम् ॥ यक्षविद्याधरादीनांगत्यागमनसंचरम् ॥ ३७ ॥ साद्रिद्यूर्वीनदी शानांवनभूग्रामपूर्दिशाम् ॥ कंपंभयोन्मुखांगानांबुद्बुदानामिवार्णवे ॥ ३८ ॥ अंधकूपेनिपतितंविपुले संकटेऽथवा ॥ अथवारूढमात्मानंखमाभंपादपंगिरिम् ॥ ३९ ॥ वातपित्तश्लेष्मयुक्तोजीवआपूर्य्यते यदा ॥ भार्गैर्वातवशंप्राप्तैरार्त्तोसौविंदतेतदा ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा तुरंग, ऊंट, गरुड, मेघ और हंसआदि वाहनोंपर आरोहण तथा उनके द्वारा भ्रमण और यक्ष, विद्याधरआदिकी गतिसे गमन भ्रमणआदि व्यवहारोंकोभी अनुभव करताहै ॥ ३७ ॥ पर्वत, अन्तरिक्ष, पृथिवी, नदी, तथा समुद्रआदिसहित वृक्षोंके, ग्राम, नगर, दिशा और भयग्रस्तमनुष्योंके कम्पनको ऐसे अनुभव करताहै जैसे समुद्रमें तरंगोंका ॥ ३८ ॥ तथा अन्धकूपमें पतित, अतिसंकटमें निमग्न, अथवा अतिउच्च वृक्षपर चढेहुये अपनेको देखताहै

॥ ३९ ॥ और वात, पित्त, श्लेष्मा इन तीनोंसे पूर्ण नाडियोंमें जब यह जीव रहताहै तब वायुके वशीभूत भागोंसे पीडित यह जीव वक्ष्यमाण स्वप्नोंको देखताहै ॥ ४० ॥

पतंतींपार्वतींवृष्टिंसुशिलावृष्टिसंकटम् ॥ स्फुटाट्टकटकारावभ्रमत्पादपमंडलम् ॥ ४१ ॥ भ्रमद्भिर्वनविन्यासैःसंदिग्धांभोधरोत्कटम् ॥ सिंहवारणवर्षाभ्रनिरंतरदिगंतरम् ॥ ४२ ॥ तालीतमालहिंतालमालाज्वलनसंकुलम् ॥ गुहाघुंघुमनिर्ह्रादभांकारघनघर्घरम् ॥ ४३ ॥ मंद्रमंदरमंथानशब्दसंदर्भसुंदरीम् ॥ दरींदलनदुर्वारमिथःसंघट्टघट्टिताम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—गिरतीहुई पर्वतोंकी वृष्टिको और शिलाओंकी वृष्टिसे व्याप्त, तथा तडतीहुई अट्टालि (अंटारि) यां तथा पर्वतोंके तटोंके शब्दोंसे भ्रमणकरतेहुये वृक्षमंडलकोभी अनुभव करताहै ॥ ४१ ॥ तथा भ्रमणशील वनस्थलोंसे मिश्रित मेघमंडलसे व्याप्त, तथा सिंह, हाथी, और वर्षतेहुये मेघोंसे आच्छन्न दिशाओंके मध्यभागको देखताहै ॥ ४२ ॥ तथा ताली, तमाल और हिंतालआदि मालाओंमें प्रज्वलित अग्निसे पूर्ण, तथा गुहाके घुंघुम-भांकार और घर्घरशब्दोंसे भयंकर दिशाओंको अनुभव करताहै ॥ ४३ ॥ गंभीर मन्दराचलके मंथानशब्दकी रचनासे अतिसुन्दरी तथा दलनेमें दुर्वार परस्परके संघट्टसे मर्दित कन्दराकोभी देखताहै ॥ ४४ ॥

शृंगसंघट्टसदृशाःक्रेंकारोत्करकर्कशाः ॥ नदीर्मुक्तालतापातसस्रग्दामनभस्तलाः ॥ ४५ ॥ शिलाशकलपूर्णार्णपूर्णांबरमहार्णवम् ॥ वहद्वनघनोद्धातघट्टितब्रह्ममंडलम् ॥ ४६ ॥ परस्परविनिर्मृष्टदशदर्शनदंतुरम् ॥ चटत्कटकटारावस्फुटत्कटकटंकितम् ॥ ४७ ॥ खपातपवनाधूतवनवातलतोदयम् ॥ रणदात्मदृषच्चूर्णकर्बुरांबुजधारिणम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—दो शिखरोंके मध्यमें प्रवाहकी ध्वनिसे दोपर्वतशिखरोंके संघट्टके समान, चक्रवाकआदिके क्रेंकार (कांकां) ध्वनिके तुल्य कर्कश, तथा मुक्तालताओंके तुल्य प्रपातोंसे मालासहित आकाशतलकी शोभा करनेवाली नदियोंको देखताहै ॥ ४५ ॥ पाषाणशिलाओंसे व्याप्त जलसे पूर्ण, वहतेहुये जंगल तथा मेघोंके उदवातोंसे सप्तर्षिलोकको डुबानेवाले आकाशरूप महासमुद्रको देखताहै ॥ ४६ ॥ परस्पर तरंगोंके सिंचनेसे प्रक्षालित दशोंदिशाओंके दर्शनसे हंसतेहुयेके तुल्य, तथा सबदिशाओंको आच्छादन करनेवाले कटकटाशब्दपूर्वक तडकते पर्वतोंके टंकारध्वनिसहित समुद्रको देखा ॥ ४७ ॥ तथा आकाशगामी पवनसे कंपित वनके वायुके अनुसार वहांकी लताओंकी लीलासे पूर्ण, तथा निजकृत पाषाणोंके शब्दकारी चूर्णोंसे चित्रवर्ण कमल शैवाल आदिधारी समुद्रको देखा ॥ ४८ ॥

प्राग्भटोद्भटभेदोत्थैर्मर्द्दैर्मरमरारवैः ॥ क्रूराक्रंदैरिवाभातिविराजितजगत्त्रयम् ॥ ४९ ॥ इतितैःकाष्ठपाषाणमृद्युग्वातभटैर्वृतः ॥ परिपीडितएवास्तेयदाजीवोजडीकृतः ॥ ५० ॥ मृदंतःकीटकणवच्छिलांतर्गतभेकवत् ॥ गर्भस्थापक्वशिशुवत्फलांतर्गतबीजवत् ॥ ५१ ॥ बीजोदरस्थांकुरवद्द्रव्यपिंडोदराणुवत् ॥ अश्रांतस्तंबकोशस्थदारुपुत्रकदेहवत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—समुद्रोंके आक्रमणके पूर्व युगान्तमें प्रवृत्त प्रचण्ड शूरवीरोंके परस्पर मर्दनसे उत्पन्न अतिगंभीर ताडोंके मर्दनसे उत्पन्न मर्मरशब्दोंसे, तथा प्राणियोंके भयंकर आक्रन्दोंसे परिपूर्ण त्रैलोक्य उससमय भासताहै ॥ ४९ ॥ इसप्रकार वात, पित्त तथा श्लेष्मा तीनोंसे पूर्ण नाडियोंके होनेपर, काष्ठ, पाषाण तथा मृत्तिकापूर्ण प्रचंड पवनरूप भटोंसे आवृत और जडीकृत यह जीव स्वप्नमें पीडित रहताहै ॥ ५० ॥ तथा मृत्तिकाके अन्तर्गत कीटके कणके समान, शिलाके अन्तर्गत मंडूकके तुल्य, गर्भस्थ अपरिपक्व बालकके सदृश, फलके आभ्यन्तरगत बीजवत् ॥ ५१ ॥ तथा बीजमें अंकुरवत्, द्रव्यपिंडमें परमाणुवत् तथा काष्ठ वा पाषाणके स्तंभके अन्तर्गत प्रतिमाके देहके तुल्य स्थित यह जीव स्वप्नका अनुभव करताहै ॥ ५२ ॥

सौषिर्यासंभवात्प्राणपवनस्पंदवर्जितः ॥ प्रोन्नमत्पर्शुपूरेणशिलापूरेणतर्जितः ॥ ५३ ॥ तदानिबिडतेजोंतरेवानुभवतिस्वयम् ॥ सुषुप्तंशैलकोशाभमंधकूपोदरोपमम् ॥ ५४ ॥ यदापरिणतंयत्नंपुनःसौषिर्यमागतम् ॥ पुनर्वेत्तितदाजीवःस्वप्नंप्राणावबोधितः ॥ ५५ ॥ यदातस्मिन्प्रदेशेंतर्भागभागान्पतंतिते ॥ देहेपरिणमंतोंतस्तदेवात्यद्रिवर्षणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तथा हे व्याध ! जिससमय यह जीव पुरिततिनामक नाडीके पिंजरेमें सब भागोंकी अस्थियोंके अग्रभागसे घटित हृदयकी अस्थिमें प्रविष्ट होताहै, उससमय आगे संचारार्थ छिद्रके अभावसे प्राणकी गतिसे वर्जित होताहै और

पार्श्वभागकी अस्थियोंकी ग्रंथिसे शिलाके खंडसे बिलमें निरुद्धके तुल्य होके अन्यव्यवहारमें असमर्थके समान होके पूर्वोक्त तेजरूप हृदयमेंही गाढ अज्ञानके कारण अन्धकूपमें पतितके सदृश सुषुप्तिका अनुभव करताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और जब पुनः परिपाकसे परिणत होकर अन्नरसजनित मार्गके निरोध न होनेसे अधिक अवकाशयुक्त छिद्र होताहै तब प्राणके अधिक संचारसे निःसरणके यत्नको पाकर प्राणसे बोधित होकर यह जीव स्वप्न देखताहै ॥ ५५ ॥ और परिणाम-दशाको प्राप्त होतेहुये अन्नरस जब जहां जीवसंयुक्त एकनाडीदेशसे दूसरे नाडीभागोंमें गिरतेहैं तब यह जीव हृदय-तेजके भीतरही पर्वतवृष्टिका अनुभव करताहै ॥ ५६ ॥

बह्वेववह्निबहुनास्वल्पेनाल्पंप्रपश्यति ॥ वातपित्तादियोगेनबहिरंतश्च्वसंभ्रमम् ॥ ५७ ॥ पश्यत्येतद्यथैवांतरेषजीवोवशीकृतः ॥ वातपित्तादिवलितोबहिर्वैत्त्येवमेतिवा ॥ ५८ ॥ क्षुब्धैरंतर्बहिश्चैवस्वल्पैःस्वल्पंप्रपश्यति ॥ समैःसममिदंदृश्यंवातपित्तकफादिना ॥ ५९ ॥ बहिःपश्यत्ययंजीवःकुपितैरेभिरावृतः ॥ स्पंदंभूम्यद्रिनभसांज्वलनंवानलोच्चयैः ॥ ६० ॥

अर्थ—और अधिक जठराग्निसे अधिक और मन्द अग्निसे अल्प स्वप्न देखताहै, और वातपित्तादिके संयोगसे बाह्य तथा आभ्यन्तरभी संभ्रम देखताहै ॥ ५७ ॥ जैसे वातपित्तादिसे वेष्टित तथा वशीकृत यह जीव अपने स्वरूपके भीतरही ज्ञानइन्द्रियोंसे पूर्वोक्त पदार्थोंका अनुभव करताहै ऐसेही कर्मेंद्रियोंसे इन विषयोंको प्राप्तभी होताहै ॥ ५८ ॥ वात, पित्त तथा कफादिसे अल्पसंक्षुब्ध अन्नरसोंसे अल्पदृश्यको भ्रमसे देखताहै, समसंक्षुब्ध होनेसे समदृश्य देखताहै, और अति-शय संक्षुब्ध होनेसे अतिशय भ्रमसे अनेक दृश्योंको बाह्य तथा आभ्यन्तरसे देखताहै ॥ ५९ ॥ कुपित वातपित्तादिसे संक्षुब्ध अन्नरसोंसे आवृत यह जीव, सन्निपात, मद तथा मणिमंत्रादि निमित्तोंमें बाह्यइन्द्रियोंसे भूमि, पर्वत और आकाशादिके भ्रमणको, वा अग्निसमूहसे पदार्थोंके संज्वलनको अनुभव करताहै ॥ ६० ॥

आकाशगमनंचैवचंद्रोदयहिमाचलान् ॥ गहनंवृक्षशैलानांनभःप्लवनमर्णसाम् ॥ ६१ ॥ मज्जनोन्मज्जनं वाब्धौसुरतंसुरसद्मसु ॥ शैलोपवनशुभ्राभ्रपीठविश्रमणोच्चयम् ॥ ६२ ॥ बृहत्क्रकचनिष्पेषंनरकानुभवभ्रमम् ॥ तालीतमालहिंतालमालावलनमंबरे ॥ ६३ ॥ चक्रवृत्तैश्चपतनंझटित्युत्पतनंदिवि ॥ शून्येपिजनतावृंदंस्थलेप्यब्धिनिमज्जनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—आकाशमें गमन, चन्द्रोदय, हिमालयादिपर्वत, वृक्ष पर्वतादिसे व्याप्त बन, समुद्रादिका आकाशमें उडना ॥ ६१ ॥ समुद्रमें डूबना तथा उतरना, देवमन्दिरोंमें अप्सराओंके साथ रमण तथा पर्वत, उपवन और निर्मल मेघोंके पृष्ठोंपर स्थिति तथा विश्रामादिका अनुभव करताहै ॥ ६२ ॥ तथा महान् आराओं (लौहयंत्रों) से पेषण नरकोंके अनुभवका भ्रमण, और ताली, तमाल तथा हिंतालआदिसे व्याप्त बनका आकाशमें भ्रमण देखताहै ॥ ६३ ॥ चक्ररखाके आकाशसे गिरना, पुनः शीघ्र आकाशमें उडना, शून्यस्थानमेंभी प्राणियोंके समूह और स्थलमेंभी समुद्रमें निमग्न होना, (डूबना) इत्यादि भ्रम देखताहै ॥ ६४ ॥

विचित्रंविपरीतंचव्यवहारंमहानिशि ॥ अहीवभास्करालोकंद्युभेद्यंचाह्निवातमः ॥ ६५ ॥ साद्रिभूतलमाकाशेकुड्यबंधेघनेस्थलम् ॥ कुड्यबंधांश्चगगनेमित्रभावंचविद्विषि ॥ ६६ ॥ स्वजनेपरताबुद्धिसुजनत्वंचदुर्जने ॥ सुसमस्थलतांश्वभ्रेश्वभ्रत्वंसुसमेस्थले ॥ ६७ ॥ उद्गीतालापमसृणान्सुधाधौतान्सुचित्रितान् ॥ अद्रीञ्छ्वेतमयान्वापिनवनीतमयांश्चवा ॥ ६८ ॥

अर्थ—विचित्र तथा विपरीत व्यवहारोंको, जैसे रात्रिमेंभी दिनके सदृश सूर्य्यका प्रकाश और दिनमेंभी गाढ अन्धकारका भ्रमसे अनुभव करताहै ॥ ६५ ॥ पर्वत, भूतल तथा गृहआदिसे घनीभूत आकाशमें विशाल स्थल (मैदान) निर्मल आकाशमेंभी गृहआदिकी रचना, शत्रुमेंभी मित्रभाव ॥ ६६ ॥ मित्रमेंभी शत्रुताबुद्धि, दुर्जनमेंभी सज्जनता, सज्जनमें दुष्टता, गर्त (गढे) में सम धरातल तथा समधरातलमेंभी गर्त (गढे) की बुद्धिका अनुभव भ्रमसे करताहै ॥ ६७ ॥ उत्तम गीत तथा आलापादिसे मनोहर, सुधा (चूनेआदि) से पुते हुये अतिवचित्र स्थानोंको, और स्फटिक-मणिमय तथा मक्खनके सदृश श्वेतपर्वतोंकोभी देखताहै ॥ ६८ ॥

कदंबनीपजंबीरपत्रस्तबकसद्मसु ॥ सुखविश्रमणंस्त्रीभिःसाकंपद्मेष्विवालिनः ॥ ६९ ॥ अंतर्निमीलिताह्येताःपश्यंत्युन्मीलिताबहिः ॥ धातूनामितिवैषम्याद्भ्रांतिमिंद्रियवृत्तयः ॥ ७० ॥ एवंविधान्यनेकानिपश्यंत्यनुभवंतिच ॥ बहिरेवयथास्वप्नेवस्तून्यसमधातवः ॥ ७१ ॥ बहिश्चांतश्चदृश्यंतेविपरीतान्यनेकशः ॥ कार्याण्यतिकरालानिजीवैरसमधातुभिः ॥ ७२ ॥

अर्थ—तथा कदंब अशोक और नीपआदि वृक्षोंसे पूर्ण और अनेकप्रकारके पत्र, लता, पुष्पादिके गुच्छे आदिसे रचित स्थानोंमें उत्तमस्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक विश्रामका अनुभव ऐसे करताहै जैसे कमलोंमें भ्रमर ॥ ६९ ॥ वातपित्तादि धातुओंकी विषमतासे इन सब भ्रमोंको आभ्यन्तरनिद्रासे निमीलित इन्द्रियोंकी वृत्ति अनुभव करती है और जाग्रत्से निमीलित इंद्रियोंकी वृत्ति इन्द्रजालआदिमें भ्रमका अनुभव करती है ॥ ७० ॥ इसप्रकार विषम वातपित्तआदि धातुयुक्त पुरुष स्वप्नके सदृश बाह्यवस्तुमेंभी अनेकप्रकारके भ्रमोंको देखता तथा अनुभव कियाकरताहै ॥ ७१ ॥ विषमधातुयुक्त जीव बाह्य तथा आभ्यन्तर अनेक विपरीत तथा भयंकर कार्य्योंको अनुभव करतेहैं ॥ ७२ ॥

समेषुधातुष्वेषोंतर्जीवोनुभवतिस्वयम् ॥ तेजोंतर्गतएवेमांव्यवहारस्थितिंसमाम् ॥ ७३ ॥ अथास्थितांपुरग्रामपत्तनारण्यसंततिम् ॥ सौम्यवारितरुच्छायादेशाध्वगगमागमम् ॥ ७४ ॥ सुखातपमयेंद्वर्कताराहोरात्रमंडितम् ॥ एवमेतदसद्भूतंसद्भूतमिवभासते ॥ ७५ ॥ दृश्योपलंभचित्तत्त्वेस्पंदनंपवनेयथा ॥ असदेवसदाभासमभिन्नंभिन्नवत्स्थितम् ॥ ७६ ॥ शांताद्उदेतिसकलंजगदंबरात्मशांतंनकिंचननामसदित्युदेति ॥ तद्व्योमनीदृशमनंतचितेःशरीरेभामात्रमाततमनंतवपुर्विभाति ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो० वि० श० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४५ ॥

अर्थ--और जब वातपित्तआदि धातु समरूपसे रहतीहैं तब यह अपने तेजोमय हृदयमें लौकिक तथा शास्त्रीय इस व्यवहारकी स्थितिको समरूपसे अनुभव करताहै ॥ ७३ ॥ धातुओंकी समतामें यथास्थित नगर, ग्राम, महानगर, तथा बनआदिके समूहको तथा स्वच्छ शीतल जलयुक्त वृक्षोंकी छायासे पूर्ण प्रदेशोंमें पथिकोंके गमन आगमनका अनुभव करताहै ॥ ७४ ॥ सुखदायक शीतलता तथा आतपयुक्त तथा चन्द्र, सूर्य्य, तारा और रात्रिदिनसे शोभित यह असद्रूपही जगत् सत्के समान भासताहै ॥ ७५ ॥ चेतनवस्तुमें इस दृश्यकी प्राप्ति असत् होनेपरभी सत्केसमान भासमान और चित्से अभिन्न होनेपरभी भिन्नके समान ऐसे स्थित है जैसे वायुमें स्पन्द ॥ ७६ ॥ शान्त प्रपंचरहित परब्रह्मसे यह संपूर्ण जगत्प्रपंच उत्पन्न होताहै और शान्तब्रह्मकेसिवाय न अन्य कुछहै, न उत्पन्न होताहै, क्योंकि जो सत् है वह दृश्यमान जन्यरूपसे उत्पन्न नहींहोताहै इसलिये आकाशवत् अनन्त चित्के शरीरमें उसका प्रतिभासमात्र अनन्तशरीरधारी यह जगत् भासताहै न कि अन्य ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विप० श० जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४६ ॥

प्रस्तुत स्वप्नदर्शनके पश्चात् अपनी सुषुप्तिका तथा स्वप्नके प्रसंगसे विस्तारसे अद्वैतब्रह्मका वर्णन इस १४६ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ व्याधउवाच ॥ अनंतरंमुनिश्रेष्ठतस्मिन्हृदितदोजसि ॥ स्थितस्यतवकिंवृत्तंनामतोभ्रांतिरूपिणि ॥ ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ अनंतरंतदातत्रशृणुकिंवृत्तमंगमे ॥ तेजोधातुनिषण्णस्यतज्जीवावलिताकृतेः ॥ ॥ २ ॥ तस्मिंस्तदावर्त्तमानेघोरेकल्पांतसंभ्रमे ॥ तृणवत्प्रौढशैलेन्द्रेवहतिप्रलयानिले ॥ ३॥ गिरिवृष्टिर्झटित्येवकुतोपिसमुपाययौ ॥ उह्यमानवनाभोगशिखरग्रामपत्तना ॥ ४ ॥

अर्थ—व्याध बोला–कि हे मुनिश्रेष्ठ ! भ्रान्तिमय नाममात्र उस प्राणीके हृदयरूप तेजमें स्थित आपका आगे स्वप्नदर्शनआदि क्या वृत्तान्त हुआ सो कहिये ॥ १ ॥ मुनि बोले–कि हे प्रिय ! उस प्राणीके तेजोमय धातुमें स्थित, तथा उस जीवकेसाथ मिलित लिंगशरीरधारी मेरा आगे जो कुछ वृत्तान्त हुआ वह तुम सुनो ॥ २ ॥ उस वर्तमान भयंकर महाप्रलयमें जब प्रचंड प्रलयके पवनमें बडे २ पर्वतभी तृणवत् उडतेथे ॥ ३ ॥ इतनेहीमें वनके विस्तार, शिखर तथा ग्राम नगरादिकोभी उडातीहुई पर्वतोंकी वृष्टि न जाने कहांसे आकर प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

तस्यांतस्तत्रसंप्राप्तंतदापरिणतंयदा ॥ तदातदेवसूक्ष्मोहमपश्यंशैलवर्षणम् ॥ ५ ॥ तेनात्रलवशैलोच्चपूरेणप्रतिपिंडितः ॥ सुषुप्तमंधतामिस्रमहमन्वभवंघनम् ॥ ६ ॥ अथकंचित्तदाकालमनुभूयसुषुप्तताम् ॥ तदापद्माकरइवशनैर्बोधोन्मुखोभवम् ॥ ७ ॥ यथादृष्टिश्चिराद्भ्रांतेभातिचक्रकरूपिणी ॥ सुषुप्तमेवतत्रासीत्तथास्वप्नत्वमागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब उस प्राणीके हृदयतेजमें सूक्ष्मजीवरूपमें परिणत मैंने पर्वतोंकी वृष्टि देखी ॥ ५ ॥ और उस प्राणीके नाडीके अन्तर्गत अन्नरसलवरूप पर्वतसे पिंडीकृत आकारसहित निचेष्टहोकर मैंने अज्ञानरूप अन्धतामिस्रसे मिश्रित सुषुप्तिका अनुभव किया ॥ ६ ॥ वहां किंचित्कालपर्य्यन्त सुषुप्तिके सुखको अनुभवकर निर्गमनमार्गका अवरोधक अन्नरसके जीर्ण होनेपर प्रातःकालमें पद्माकरकेसमान किंचित् बोधकी ओर मैं उन्मुख हुआ ॥ ७ ॥ जैसे अन्धकारमें चिरकालतक दृष्टिके मुंदनेपर चक्राकारतेज भासनेलगताहै ऐसेही आत्मरूप सुषुप्तही स्वप्नरूपताको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

तथासुषुप्तविश्रांतेःस्वप्नेनिद्रामहंविशम् ॥ अपश्यंदृश्यमोजोंतःस्वमूर्मित्वमिवार्णवः ॥ ९ ॥ संवित्को शात्मकंदृश्यंतत्तथामामुपागतम् ॥ अस्पंदस्यानिलस्यांतरनन्यत्स्पंदनंयथा ॥ १० ॥ अग्न्यादौचयथो ष्णत्वंजलादौद्रवतायथा ॥ मरीचादौयथातैक्ष्ण्यंचिद्व्योम्नश्चजगत्तथा ॥ ११ ॥ चित्स्वभावैकरूपत्वा ज्जगदृश्यंतदाततम् ॥ तत्सुषुप्तात्मनोदृश्यात्प्रसूतंबालपुत्रवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—उसप्रकार सुषुप्तिके विश्रामसे स्वप्ननिद्रामें मैं प्रविष्टहुआ और जैसे शान्तसमुद्र अपनेको तरंगआदिरूप देखता है ऐसेही तेजके अन्तर्गत मैंनेभी अनेक विक्षेपोंको देखा ॥ ९ ॥ चिदाकाशकोशमय यह दृश्य मुझको अभिन्नरूपसे ऐसे प्राप्तहुआ जैसे स्पन्दरहित पवनमें उससे अभिन्नरूप स्पन्द ॥ १० ॥ जैसे अग्नि आदिमें उष्णता, जलादिमें द्रवता, तथा मिरिचि आदिमें तीक्ष्णता है ऐसेही चिदाकाशमें यह जगत् है ॥ ११ ॥ चित्स्वभावके साथ एकरूप होनेसे यह जगत् उससमय व्याप्त होगया और उस दृश्य सुषुप्तिरूप आत्मासे ऐसे उत्पन्नहुआ जैसे मातासे बालक पुत्र ॥ १२ ॥

व्याधउवाच ॥ तत्सुषुप्तात्मनोदृश्यादितितद्व्यपदेशतः ॥ सुषुप्तदृश्यंकिंवक्षिवदमेवदतांवर ॥ १३ ॥ तत्सुषुप्तात्मनोदृश्यात्त्वत्सुषुप्तात्मनोपिच ॥ किमन्यज्जायतेजन्यमथवान्यसुषुप्तता ॥ १४ ॥ मुनिरुवाच ॥ जायतेभातिकचतिघटादिजगदादिच ॥ इतिद्वैतोपतप्तानांप्रलापःकल्पनात्मकः ॥ १५ ॥ जातशब्दोहिसन्मात्रपर्यायःश्रूयतांकथम् ॥ प्रादुर्भावेजनिस्तूक्तःप्रादुर्भावस्यभूर्वपुः ॥ १६ ॥

अर्थ—व्याध बोला कि—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुने! जिस सुषुप्तरूप आत्मदृश्यका आपने तत्शब्दसे कथन किया है उस सुषुप्तदृश्यका क्या स्वरूप है सो आप कहैं ॥ १३ ॥ हे भगवन्! जिसके हृदयमें आप प्रविष्ट थे उस प्राणीके तथा आपके सुषुप्त आत्मारूप दृश्यसे क्या अन्य जगत्रूप जन्य दृश्य उत्पन्न होताहै अथवा अन्य सुषुप्तिरूपता होतीहै ॥ १४ ॥ मुनि बोले कि—हे व्याध! यदि तुमारा यह प्रश्न परमार्थ है तो कुछ नहीं उत्पन्न होता यह उत्तर है, क्योंकि घट आदि दृश्य उत्पन्न होताहै, भासताहै और प्रकाशताहै, यह द्वैतसंतापसे तप्त मूर्खोंका कल्पनामय जो प्रलाप है उसीका अनुवाद हमने कियाहै ॥ १५ ॥ और पण्डितोंके विचारमें तो जातशब्द सन्मात्रका पर्य्याय है, यह कैसे है सो सुनो, पाणिनिआदि मुनियोंने "जन" धातुका अर्थ प्रादुर्भाव कहाहै, इसमें "प्रादुर्" इस अव्ययको द्योतकतामात्र है, और उसमें प्रधानांश भू धातुका सत्तामात्र अर्थ उसका प्रधान् शरीर है ॥ १६ ॥

सत्तार्थएवभूःप्रोक्तस्तस्मात्संजातमुच्यते ॥ सर्गतोजातइत्युक्तेसन्सर्गइतिशब्दितम् ॥ १७ ॥ बुधा नामस्मदादीनांनकिंचिन्नामजायते ॥ नचनश्यतिवाकिंचित्सर्वंशांतमजंचसत् ॥ १८ ॥ सर्वसत्तात्मकं ब्रह्मसर्वसत्तात्मकंजगत् ॥ विधयःप्रतिषेधाश्चवदतत्रलगंतिके ॥ १९ ॥ यानामशक्तिःकाचित्सातत्रै वास्तिचनास्तिच ॥ यस्मात्तदात्मतद्ब्रह्मतथैवात्मतदात्मकम् ॥ २० ॥

अर्थ—और सत्तार्थमेंही भूधातु कथित है, इसलिये प्रादुर् उपसर्गसहित सन्मात्रभावशब्दही संजात कहाजाताहै, सर्ग (सृष्टि) शब्दभी भाव (सत्ता) रूप अर्थ प्रतिपादक घञ् प्रत्ययसे होनेसे सन्मात्र सर्ग है, यह सर्ग उत्पन्न हुआ इस शब्दकाभी अर्थ है ॥ १७ ॥ और अस्मदादि ज्ञानियोंके मतमें तो न कुछ उत्पन्न होताहै, न नष्ट होताहै, किंतु सब शान्त अज सन्मात्र ब्रह्मही सबकुछ है ॥ १८ ॥ सर्वसत्तात्मक ब्रह्म तथा सर्वसत्तात्मक उसमें स्फुरित जगत्भी है तब कौन विधि तथा प्रतिषेध उसमे कैसे लगते हैं ॥ १९ ॥ और उस आत्मामें मायाशक्ति होनेसे उसीमें अस्तिनास्ति इत्यादि व्यवहार हैं इसलिये अनिर्वचनीय मायाशक्ति अपने स्वरूपको जैसे धारणकरती है वैसेही सर्वशक्तिमान् ब्रह्म आत्माभी जगत् मायारूपसे स्फुरित होताहै ॥ २० ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तादिपरमार्थविदांविदाम् ॥ नविद्यतेकिंचिदपियथास्थितमवस्थितम् ॥ २१ ॥ स्वप्नसं कल्पपुरयोर्नास्त्यप्यनुभवस्थयोः ॥ मनागपियथारूपंसर्गादौजगतस्तथा ॥ २२ ॥ द्रष्टास्याःस्वप्नदृष्टे

स्तुजीवःसंभवतीहहि ॥ चिदचेत्यात्तुसर्गादौभात्यच्छागगनादपि ॥ २३ ॥ नेहद्रष्टास्तिनोभोक्तासर्वम स्तीहतादृशम् ॥ यन्नकिंचिन्नकिंचिन्नमौनभेवातिवागपि ॥ २४ ॥

अर्थ—और परमार्थज्ञानियोंको तो जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्तआदि कुछ नहीं है किन्तु यथास्थित ब्रह्मही सर्वरूपसे स्थितहै ॥ २१ ॥ जैसे अनुभवमें स्वप्न तथा संकल्पके नगरोंका किंचित्भी स्वरूप नहीं है, ऐसीही दशा सृष्टिकी आदिमें जगत्‌कीभी है ॥ २२ ॥ जीवोपाधिक सृष्टिके पश्चात् तो इस स्वप्नदृष्टिका द्रष्टा प्राणआदिसहित जीव संभव है परंतु इसके पूर्वसृष्टिके आदिमें तो विषयशून्य आकाशसेभी निर्मल चेतनही द्रष्टा भासताहै ॥ २३ ॥ सृष्टिको मानके यह द्रष्टाका कथन है, यथार्थमें तो द्रष्टा तथा भोक्ताआदि त्रिपुटिही नहीं है किंतु सब कुछ चिदेकरसही है, जो न कुछ होकर सब कुछ, तथा मौन होकरभी वह वक्ता चिन्मात्र है वही सब कुछ है ॥ २४ ॥

सर्गादौकारणाभावाद्यथाकचितंचितौ ॥ तत्तथास्तेचिरंरूपंस्वप्नसंकल्पपूर्यथा ॥२५॥ तथास्माच्चेत नाद्वैताद्विभेतिनबिभेतिवा ॥ अंगसंस्थाद्यथाचित्रात्स्वरूपात्पुरुषःस्वयम् ॥२६॥ अनादिमध्यांतमनं तमेकमत्यच्छमेवातिविकारिनाना ॥ यथास्थितंभास्वरमप्यशांतमिदंसमस्तंपरिशांतमेव ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० शवोपाख्याने सुषुप्तविचारोनामषट्‌चत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४६ ॥

अर्थ—स्वप्न तथा संकल्पके नगरवत् सृष्टिकी आदिमें चित्स्वरूपमें जो वस्तु जैसे स्फुरित हुई वह अबभी तथा प्रलयपर्य्यन्त रहैगी ॥ २५ ॥ जैसे निजअंग आदिमें लिखित व्याघ्रआदिके चित्रको देखकर बालक भीत होताहै प्रौढ नहीं, ऐसेही चेतन आत्मासे कल्पित इस द्वैतसे अज्ञानी भयभीत होताहै ज्ञानी नहीं ॥ २६ ॥ परमार्थमें आदि अन्त मध्यशून्य, अनन्त, एक तथा अतिनिर्मल ब्रह्मही भ्रमसे अतिविकारी नानास्वरूप होकर निजस्वरूपको न त्यागता हुवा भासताहै, इसलिये अज्ञानसे अशान्तभी यह जगत् बोधसे सर्वथा शान्त ब्रह्मरूपही है ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्त मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० सुषुप्तविचारो नाम षट्‌चत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४६ ॥

सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४७ ॥

सुषुप्तसे दृष्टान्तोंकेद्वारा स्वप्नमें निकलनेका क्रम तथा वहां कुटुंबआदिके दर्शनका तत्व इत्यादिविषय इस १४७ के सर्गमें वर्णन कियेगयेहैं ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ अनंतरंमहाबाहोसुषुप्तान्निर्गतस्यमे ॥ स्वप्नेजगद्दृश्यमिदंसागरादिवनिर्गतम् ॥ १ ॥ आकाशांगादिवोत्कीर्णमुत्कीर्णमवनेरिव ॥ उत्कीर्णमिववाचित्ताद्दुत्कीर्णमिववादृशः ॥ २ ॥ प्रफुल्लमि वद्वृक्षेभ्यःसर्गःपूर्वमिवोत्थितः ॥ तरंगजालंरोधोऽब्धेरिववाकचनंदृशाम् ॥ ३ ॥ नभस्तलादिवायातंक कुब्भ्यइवचागतम् ॥ पर्वतेभ्यइवोत्कीर्णंभूमेरिवसमुत्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले–कि हे महाबाहो ! सुषुप्तसे जब मैं निकला, तब यह स्वप्नका दृश्य ऐसे प्राप्तहुआ जैसे सागरसे मणिआदि ॥ १ ॥ सुषुप्तसे यह स्वप्नका जगत् ऐसा प्राप्त हुआ जैसे आकाशके अंगसे उत्पन्न, वा पृथिवीसे शिलाआदिमें टांकीसे छिन्न प्रतिमादिका प्रादुर्भाव अथवा चित्त वा दृष्टिसे उत्पन्न पदार्थ ॥ २ ॥ अथवा वृक्षोंसे विकसित पुष्पके तुल्य वह स्वप्नकी सृष्टि पूर्वसिद्धसृष्टिके सदृश भासनेलगी वा तटके समीपस्थ समुद्रसे तरंगसमूह अथवा दृष्टिके दोषसे आकाशमें केशादिके समान वह स्वप्नका जगत् भान हुआ ॥ ३ ॥ अथवा आकाशतलसे प्राप्त, दिशाओंसे प्रकटितके तुल्य, पर्वत वा भूमिसे आविर्भूतके सदृश वह स्वप्नका दृश्य था ॥ ४ ॥

हृदयादिवनिष्क्रांतंसंप्रविष्टमिवांबुदैः ॥ प्रसूतमिववृक्षेभ्योजातंवासस्यवद्भुवः ॥ ५ ॥ अंगेभ्यइवनि र्यातंसमुत्कीर्णमिवेंद्रियैः ॥ पटादिवप्रकटितंमंदिरादिवनिर्गतम् ॥ ६ ॥ कुतोप्यागत्यपतितमुड्डीयगग नादिव ॥ उपायनंपरेलोकेगृहीतमिववाभुवः ॥ ७ ॥ प्रसूनंब्रह्मवृक्षस्यतरंगमिववांबुधेः ॥ अनुत्कीर्णप्र कटनाच्चित्स्तंभेचारुपुत्रिका ॥ ८ ॥

अर्थ—अथवा हृदयसे निःसृतके सदृश, मेघोंकी वृष्टिसे प्राप्तके तुल्य, वृक्षोंसे उत्पन्नके समान अथवा भूमिसे उत्पन्न घासआदिके सदृश सुषुप्तिसे वह दृश्य प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ अथवा अंगोंसे उत्पन्न विकारादिके सदृश, इन्द्रियरूप

टांकियोंसे दिशाओंके खननेसे उपलब्ध, पटसें प्रकटित चित्रके समान वा मंदिरसे निःसृतवस्तुके तुल्य वह दृश्य प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ अथवा आकाशसे उडके कहींसे आके पतितके सदृश, प्रजाओंसे आनीतराजाके उपहारके सदृश वा इस लोकमें संचित पुण्य परलोकमें फलरूपसे प्राप्तके तुल्य सुषुप्तिसे वह स्वप्नका दृश्य प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ ब्रह्मरूपी वृक्षके पुष्पवत्, समुद्रके तरंगके सदृश, चित्स्वरूप स्तंभ (खंभे) में विना खोदेही सुन्दर प्रतिमाके सदृश प्रकट वह दृश्य था ॥ ८ ॥

आकाशमृण्मयानंतकुड्यमाकाशपत्तनम् ॥ मनोमत्तोगजमयोमिथ्याजीवस्यजीवितम् ॥ ९ ॥ अभित्तिकमरंगंचविचित्रंचित्रमंबरे ॥ शंबरेशस्यसर्वस्वमविद्याख्यस्यकस्यचित् ॥ १० ॥ महारंभंस्थिरमपिदेशकालविवर्जितम् ॥ नानाढ्यमपिचाद्वैतंनानात्मापिनकिंचन ॥ ११ ॥ गंधर्वपुरदृष्टांतस्याप्यवस्तुतयासमम् ॥ जागरायांहिकिलतद्भ्रांतमप्युपलभ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा आकाशरूप मृत्तिकाके विकारभूत असंख्यात गृहयुक्त आकाशमें गन्धर्वनगरकेसमान, मनकी मतंगजमयी क्रीडाके सदृश, तथा मिथ्या जीवका सर्वस्व वह दृश्य था ॥ ९ ॥ विना भित्ति तथा रंगादिके आकाशमें विचित्रचित्रवत् तथा शंबरासुरकी मायाके स्वामी अविद्यानामक किसी ऐन्द्रिजालिकके सर्वस्वके सदृश वह दृश्य था ॥ १० ॥ महान् आरंभोंसे युक्त तथा स्थिर होनेपरभी देशकालसे वर्जित, नानापदार्थोंसे पूर्ण होकरभी अद्वैत, तथा नानारूप होकरभी अरूप वह दृश्य उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ गन्धर्वनगरके तुल्य होनेपरभी अवस्तुके तुल्य, तथा भ्रमसे जाग्रत्में जो रज्जुके सर्प तथा मृगतृष्णाआदिका जल जो उपलब्ध होतेहैं उसकेसमान वह दृश्य था ॥ १२ ॥

चिद्भामात्रमनारब्धमप्यारब्धमिवस्थितम् ॥ देशकालक्रियाद्रव्यसर्गसंहारसंयुतम् ॥ १३ ॥ सुरासुरनराधारगर्भगर्भमनोहरम् ॥ पृथक्कोष्ठस्थबीजौघसंपूर्णमिवदाडिमम् ॥ १४ ॥ नदीशैलवनादिस्थव्योमताराभ्रसंकुलम् ॥ गीताब्धिरणपाठाढ्यपवनारावघर्घरम् ॥ १५ ॥ ततोविलोकितंतत्रतन्मयादृश्यमंडलम् ॥ यावत्तमेवपश्यामिग्रामंप्राक्तनमास्पदम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्की प्रभामात्र, आरंभरहित होनेपरभी आरंभसहितके सदृश विद्यमान, तथा देश, काल, क्रिया और द्रव्यकी सृष्टि तथा संहारयुक्त, और सुर, असुर, तथा मनुष्यादियुक्त त्रैलोक्यके आधारभूत गर्भ और उन त्रिलोकियोंके आधार अनेकगर्भपरंपरासे मनोहर तथा उन गर्भोंके अवान्तरगर्भोंमेंभी (प्रत्येक परमाणुओंमेंभी) अनन्त ब्रह्मांडोंकी कल्पनाओंसे पृथक् कोठोंमें स्थित बीजसमूहोंसे पूर्ण दाडिम (अनार) फलकेसमान स्थित वह दृश्य प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ नदी, पर्वत, वनादिसंयुक्त, अकाशस्थ तारागण तथा मेघादिसे व्याप्त तथा गीतसंयुक्त समुद्रके शब्दरूप पाठसे पूर्ण और पवनके घर्घरशब्दसे भयंकर वह दृश्य उपस्थित हुआ ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् जब उस दृश्यमंडलके देखनेमें मैं प्रवृत्त हुआ, इतनेही देखता क्या हुं कि वही पूर्वकालका परिचित निजग्राम तथा स्थान प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

तानेवसकलान्बंधूंस्तथासंस्थानसंस्थितान् ॥ तान्पुत्रांस्तांमहेलांचतदेवचतदागृहम् ॥ १७ ॥ तांदृष्ट्वाप्राक्तनींग्राम्यामहरद्वासनांबलात् ॥ तटस्थंमुह्यमानांगमिववीचिर्महार्णवे ॥ १८ ॥ अथाहमभवंतत्रतदालिंगननिर्वृतः ॥ गृहीतवासनोनूनंविस्मृतप्राक्तनस्मृतिः ॥ १९ ॥ बिंबंतत्तद्वशादत्तेयद्यदग्रेवतिष्ठति ॥ यथादर्शश्चिदादर्शस्तथैवायंस्वभावतः ॥ २० ॥

अर्थ—निज २ यथास्थानपर स्थित उन्ही अपने पूर्वकालके बन्धुओंको, उन्ही निजपुत्रोंको, उसी प्रियभार्य्याको तथा उसी निजगृहकोभी देखा ॥ १७ ॥ महासमुद्रमें तटस्थ तरंगके सदृश, व्याकुल निजअंगकेसमान स्थित उस पूर्वकालके ग्रामसंबन्धी निजगृह, क्षेत्र, स्त्री, पुत्र तथा बन्धुआदिको अभिमानरूप वासनाको बलात् चित्तको आकर्षण करतेहुये देखकर ॥ १८ ॥ अनन्तर वासनामें बद्ध, तथा पूर्वकालकी स्मृतिसे शून्य मैं उन बन्धुस्त्रीपुत्रादिके आलिंगनसे सुखी हुआ ॥ १९ ॥ जैसे दर्पण जो बिंब उसके संमुख स्थित रहताहै उसका प्रतिबिंब वह स्वयं ग्रहण करताहै ऐसेही चिदादर्शभी वासनासे उपस्थित जो २ वस्तु होती है उसके आकारको स्वयं चित्स्वभावसे ग्रहण करताहै ॥ २० ॥

यस्तुचिन्मात्रगगनंसर्वमित्येवबोधवान् ॥ द्वैतेनबोध्यतेनेहसोंगतिष्ठतिकेवलः ॥ २१ ॥ ननश्यतिस्मृतिर्यस्यविमलाबोधशालिनी ॥ अयंद्वैतपिशाचस्तंमनागपिनबाधते ॥ २२ ॥ येषामभ्यासयोगेनसाधुसच्छास्त्रसंगमैः ॥ उदेतिबोधधीर्भूयोयाविस्मरतिनोदयम् ॥ २३ ॥ अप्रौढामेतदासासीद्बोधधीर्यातयाहता ॥ अद्यशक्नोतिमेबुद्धिंहंतुंकइवदुर्ग्रहः ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे प्रिय ! जो यह सब चिदाकाशमात्रही है ऐसा बोधयुक्त है वह द्वैतकी वासनासे बोधित नहीं होता, किन्तु शुद्ध चिद्रूपसेही स्थित रहताहै ॥ २१ ॥ जिसकी निर्मलआत्माके बोधसे शोभित स्मृति नष्ट नहींहोती वह द्वैतरूपी पिशाचसे इस संसारमें किंचित्‌भी बाधित नहींहोता ॥ २२ ॥ जिनमहात्माओंकी श्रवणमननआदिके अभ्याससे और साधु तथा सत्‌शास्त्रोंके समागमसे आत्मबोधकी बुद्धि उदित होतीहै वह पुनः कदाचित् विस्मृत नहीं होती, किन्तु निरंतर ब्रह्मके अनुसंधानसे पूर्ण रहती है ॥ २३ ॥ और उससमय मेरी बुद्धि प्रौढ आत्मज्ञानयुक्त नथी, इसलिये बन्धुआदिकी वासनासे हत होगई और अब मेरी बुद्धिको कौन वासनासमूह नष्ट करसकताहै ॥ २४ ॥

तवापिव्याधविद्धीदंबुद्धिःसत्संगवर्जिता ॥ द्वैतबोधेनकष्टेनकृच्छाच्छांतिमुपैष्यति ॥ २५ ॥ व्याधउवाच ॥ एवमेतन्मुनेसत्यंपावनैस्त्वद्विबोधनैः ॥ ईदृशैरपिमेबुद्धिर्नविश्राम्यतिसत्पदे ॥ २६ ॥ स्यादीदृशमथोनस्यादितिसंदेहजालिका ॥ नैतस्मिन्स्वानुभूतेपिवस्तुन्यद्यापिशाम्यति ॥ २७ ॥ अहोबतदुरंतेयमभ्यासमुदृढीकृता ॥ अविद्याविद्यमानैवयाशांतैवनशाम्यति ॥ २८ ॥ सत्संगतैःपदपदार्थविबुद्धबुद्धेःसच्छास्त्रसत्क्रमविचारमनोहरांगैः ॥ अभ्यासतःप्रशममेतिजगद्भ्रमोयंनान्येनकेनचिदपीतिविनिश्चितिर्मे ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० स्वप्नोपलंभनं नाम सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १४७ ॥

अर्थ—और हे व्याध! तुमारी बुद्धिभी सत्संगआदिसे रहितथी इस हेतुसे अभी शान्त नहींहोगी, किन्तु वक्ष्यमाण तपआदिसे तथा जन्मान्तरके राज्यादिकष्टसे द्वैतबोधपूर्वक क्लेशसे साधन अभ्यासादिद्वारा ज्ञान पाकर शान्त होगी ॥ २५ ॥ व्याध बोला कि–हे मुने! यह जो आप कहतेहैं यह ऐसाही सत्य है, क्योंकि आपके इस पवित्र कथनसेभी मेरी बुद्धि सत्‌पद (ब्रह्मपद) में विश्रान्त नहीं होती ॥ २६ ॥ जो आप कहतेहैं वह ऐसा है वा अन्यथा है इत्यादि संदेहजाल उपस्थित होताहै, इसकारण स्वानुभूत आत्मपदमें मेरी बुद्धि अबतक शान्त नहींहोती ॥ २७ ॥ अहो ! यह पूर्वजन्मोंके अभ्यासोंसे कैसे दृढीभूत अविद्या है कि जो अविद्यमान तथा शान्त होनेपरभी शान्त नहींहोती ॥ २८ ॥ हे भगवन्! सत्‌शास्त्र तथा सत्‌गुरुके संप्रदाय तथा विचारआदि मनोहर अंगसहित सज्जनोंके समागमोंसे उत्पन्न पदपदार्थकी बुद्धिके अभ्याससे उत्पन्न आत्मज्ञानसे भूमिकाके क्रमद्वारा यह जगत्‌का भ्रम शान्त होताहै, और किसी उपायसे नहीं ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० स्वप्नोपलंभनं नाम सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततम सर्गः ॥ १४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

स्वप्नकी सत्यता तथा असत्यताका हेतु, और सर्वात्मा चित्‌की एकता शुद्धिकेसाथ जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी एकताका वर्णन इस १४८ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ व्याधउवाच ॥ एवंचेत्तन्मुनिश्रेष्ठसत्यतासत्यताकथम् ॥ स्थितःस्वप्नदृशाचैषसुमहान्संशयोमम ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यैर्यासंविन्निश्चितोदिता ॥ काकतालीयवद्भातिसासत्यस्वप्ननामिका ॥ २ ॥ मणिमंत्रौषधिद्रव्यैःक्वचिदव्यभिचारिणी ॥ क्वचित्सव्यभिचाराचित्सत्यस्वप्नाभिधा स्मृता ॥ ३ ॥ सत्यस्वप्नस्थितिर्लोकेष्वीदृग्रूपायदास्थिता ॥ तदैषाकाकतालीयन्यायादन्यानलभ्यते ॥४॥

अर्थ—व्याध बोला कि–हे मुने ! यदि वासनाके अनुसारही स्वप्नका ज्ञान तथा जाग्रत्‌भी स्वप्नतुल्यही है तो प्रातःकालमें गजका आरोहण आदि स्वप्न लाभादि फलसूचक होनेसे असत्य तथा अन्य जंगलमें भ्रमणादिका फल न होनेसे असत्यता कैसे होती है, इसीप्रकार ब्रह्माके मनोरथजन्य सृष्टि अर्थक्रिया करनेमें समर्थ होनेसे सत्य और हमारी मनोरथकी असत्य है यह मुझे महान्‌संशय है, तथा अधिष्ठान चेतनकी सत्यतासे सत्य तथा स्वतः असत्य यह वार्ता तो जाग्रत्‌स्वप्नमें समान है ॥ १ ॥ भगवतीके समीपस्थदेश, प्रातःकाल, तप आराधनादि क्रिया तथा हविष्य कुशास्तरणआदि द्रव्यसामग्रीओंसे जो स्वप्ननामिका निश्चयात्मक संवित् (वृत्ति) उदय होतीहै वह काकतालीय न्यायसे सत्य भासती है ॥ २ ॥ और मणिमंत्रआदिसे कहीं योग्यपुरुषमें विधिकी पूर्णतासे सत्य और कहीं अयोग्यपुरुषमें विधिकी अपूर्ण-

तासे असत्यभी होताहै इसलिये सत्यत्व ऐसी संज्ञा कीगई है ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त देशकालादिसामग्रियोंसे युक्त होनेसे लोकमें काकतालीयन्यायसे (आकस्मिकघटना) स्वप्नकी स्थिति सत्य होती है अन्य नहीं ॥ ४ ॥

यंयंनिश्चयमादत्तेसंवित्स्वदृढनिश्चया ॥ तथातथाभवत्येषाफलयुक्तस्वभावतः ॥ ५ ॥ तमेवनिश्चयं त्वस्याअन्यःप्रतिनिहंतिचेत् ॥ तत्रासौनिश्चयःप्रौढःसकथंलक्ष्यभाग्भवेत् ॥ ६ ॥ नबहिर्नांतरेसंति पदार्थाःकेचनक्वचित् ॥ संविदेकाजगद्रूपैर्यथेच्छतितथास्थिता ॥ ७ ॥ स्वप्नोयंसत्यइत्यंतर्निश्चयेनत थोदिता ॥ तथैवाशुभवत्येषासंशयात्संशयंव्रजेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—और ब्रह्माआदिकी संवित् तो उपासनाआदिकी परिपक्वतासे अतिदृढ निश्चय होनेसे जिस २ निश्चयको धारणकरती है वह २ निश्चय वैसाही होताहै, क्योंकि दृढसंवित्‌का फलयुक्त होनेका स्वभावही है ॥ ५ ॥ और यदि उस संवित्‌के निश्चयको अन्य प्रबल विरोधी दृढनिश्चय दबाताहै तो वह निश्चयफलभागी कैसे होसकताहै, इसलिये ब्रह्माआदिके निश्चयके अविरोधी सिद्धोंका संकल्प होताहै नकि विरोधी ॥ ६ ॥ इस हेतुसे न बाहर, न भीतर जगत्‌आदि कोई पदार्थ हैं, किन्तु एक स्वतंत्र संवित् जहां जैसी इच्छा करती है वहां उसीप्रकार जगत्‌के रूपोंसे स्थित है ॥ ७ ॥ इसकारणसे शास्त्रादिप्रमाणसे दृढनिश्चयसे जो स्वप्न उदयको प्राप्त होता है वहां शीघ्र वैसीही वह स्वप्नसंवित् सत्य होती है और संशय होनेसे फलकाभी संशय प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

अन्यतोपिफलंप्राप्तंस्वप्नसत्यत्वकल्पनात् ॥ स्वप्नेनसूचितमिदंफलमित्येववेत्त्ययम् ॥ ९ ॥ सर्वएवनि जयाजगत्त्रयेसंविदातिशयितादृढाअपि ॥ कालतोव्यभिचरंतिदेशतोयत्ततश्चचिरतोऽचिरेणवा ॥१०॥ सर्गादावेवचिद्व्योमभानमप्रतिघंजगत ॥ वस्तुसत्तांचिदेवातोयथेष्टंतनुतेतनुः ॥ ११ ॥ चिन्मात्रंवर्ज यित्वैकंब्रह्मान्यत्सर्वदाखिलम् ॥ विद्धिसत्यमसत्यंचनियतानियतंस्थितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और कहीं अन्यकारणसेभी फल प्राप्त होनेपरभी स्वप्नकी सत्यकल्पना होनेसे यह स्वप्नसे सूचितफल हमको प्राप्तहुआ ऐसा आभ्यंतरमें स्वयं संवित् अनुभव करलेती है ॥ ९ ॥ इसीप्रकार तीनोंलोकमें जाग्रत्‌केभी सच पदार्थ उन २ पुरुषोंकी निज २ संवित्‌से दृढनिश्चित होनेपरभी देशकालादिकी विषमता होनेसे शीघ्र वा विलंबसे यदि प्रधानसंवित्‌के विरोधी हैं तो व्यभिचारित होतेहैं और अनुकूल होनेसे सत्य होतेहैं ॥ १० ॥ और सृष्टिकी आदि में अप्रतिघातस्वभाव चिदाकाशसंवित् सत्यसंकल्प होनेसे अपनी इच्छाके अनुसार असत्य तथा सप्रतिघ (नश्वर) स्वभाव जगत्‌स्वरूपको धारणकरती है ॥ ११ ॥ केवल एक चिन्मात्रब्रह्मको छोडके और जो कुछ संपूर्ण जगत् है वह चित्‌की इच्छानुसार सत्य, असत्य, नियत तथा अनियतरूपसे स्थित है ॥ १२ ॥

यस्माद्ब्रह्मैवसर्वात्मसदेकमेवनेतरत् ॥ तस्मात्किंनामतत्सत्यंकिमसत्यंचवाभवेत् ॥ १३ ॥ अतःस्वप्नः क्वचित्सत्यःक्वचिच्चासत्यएववा ॥ अबुद्धानांप्रबुद्धानांनासद्रूपोनसन्मयः ॥१४॥ संविद्भ्रांतिरियंभातिज गन्नाम्निस्वरूपिणि ॥ स्वयंचभ्रांतिरस्मीतिवादिनीकात्रनिश्चिता ॥ १५ ॥ चितिरेवचिरायेदंचित्तंचिम चिमायते ॥ यदात्मन्येवसलिलंद्रववत्तदिदंजगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जब कि सर्वात्मा एक ब्रह्म सब जगत् है, अन्य कुछभी उससे भिन्न नहीं है तब क्या सत्य और क्या असत्य होसकताहै ॥ १३ ॥ इसलिये यह स्वप्न कभी (संवित्‌की दृढतामें) सत्य औरभी (संवित्‌की अदृढतामें) असत्य अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो न सत् न असत् किन्तु अनिर्वचनीय है ॥ १४ ॥ संवित्‌का भ्रमही इस जगत्‌रूपसे भासताहै, जब स्वयं भ्रांतिरूप हूं ऐसा संवित् कहती है तब इसमें यथार्थरूपता क्या है ॥ १५ ॥ चिरकालसे चित्‌ही चित्तरूप होके चित्‌के आभासयुक्त जो स्फुरित होरही है वही यह आत्मामें जलके द्रवके तुल्य स्पन्दरूप यह जगत्‌स्वरूप है ॥ १६ ॥

यथास्वप्नंसमालोक्यसुषुप्तमनुभूयते ॥ तथाजाग्रत्समालोक्यनिद्रासमनुभूयते ॥ १७ ॥ अतस्त्वंजाग्र देवेदंस्वप्नंविद्धिमहामते ॥ स्वप्नंचविद्धिजाग्रत्त्वमेकमेतदजंद्वयम् ॥ १८ ॥ व्योमैवाचेत्यचिन्मात्रभान मेकमिदंततम् ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्याःपर्यायरचनाइह ॥ १९ ॥ नेहनामास्तिनियतिर्नचानियतिरस्ति च ॥ नियत्यनियतीब्रूहिकीदृशेस्वप्नसंविदि ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे स्वप्न देखकर सुषुप्तिका अनुभव होताहै, ऐसेही जाग्रत् देखकर स्वप्नकाभी अनुभव होताहै ॥ १७ ॥ इसलिये हे महामते! तुम जाग्रत्‌को स्वप्नही जानो और स्वप्नकोभी जाग्रत् जानो, क्योंकि ये दोनों एक अज ब्रह्मस्वरूपही हैं ॥ १८ ॥ विषयशून्य चिन्मात्र चिदाकाशका प्रकाशमात्रही यह सब व्याप्त है, और अविद्यासे आवृत चि-

न्मात्र सुषुप्तिके जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्तिआदि नामरूप भेद सब पर्य्यायरचना इस संसारमें है ॥ १९ ॥ स्वप्नादिफलोंकी नियति तथा अनियतिभी चित्से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि स्वप्नके ज्ञानमें नियति वा अनियति कैसी होसकती है सो कहो ॥ २० ॥

यावद्भानंकिलस्वप्नेतावत्सैवनियंत्रणा ॥ सएवसंविद्धानस्यकुर्यान्नियमनंमुनिः ॥ २१ ॥ स्वच्छंदंवातलेखायाःस्फुरंत्याःसंविदस्तथा ॥ अकारणकमेवांगनियतिःकेवकीदृशी ॥ २२ ॥ अथाकारादियन्नामकल्प्यतेकारणंविदः ॥ तदकारणकंसर्गःस्यादनन्यन्नवेचितेः ॥ २३ ॥ एतावत्येवनियतिरत्रयन्नामययथा ॥ यावत्प्रस्फुरितंभानंतत्तथानतदन्यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञानसे आवृत चित्ही जाग्रत् तथा स्वप्न, श्रमादिसे वही चित् सुषुप्ति, श्रवणमननादि प्रयत्नसे वही चित् समाधिरूप, तथा अज्ञानके नाशसे वही चित् मुक्तिरूपमें परिणत होतीहै, ऐसा होनेपर जब जाग्रत्के निरोधसे मनोव्यापाररूप स्वप्नमें जगत्का भान है वही चित्की बाह्यप्रवृत्तिरूप नियंत्रणा रहती है, और जब जाग्रत् स्वप्न दोनों संवित्का निरोध रहताहै तब सुषुप्तिरूप संवित्का भान होता है. तीनोंके नियमनसे सब शोकरहित समाधि होती है ऐसा जानकर शोकरहित समाधिसुखार्थी मुनि सबवृत्तियोंको नियमन करके आत्माकारवृत्ति (समाधि) संपादन करै ॥ २१ ॥ हे प्रिय ! स्वच्छन्दवायुकी लेखाके सदृश निष्कारण स्फुरित होनेवाली संवित्की स्वप्नादिविषयाकारसेही स्फुरणरूप नियति नहीं है क्योंकि सुषुप्तिमें विषय नहीं हैं, क्योंकि स्वतंत्र तथा कारणरहित चिद्रूपकी नियति क्या और कैसी होसकती है ॥ २२ ॥ यदि घट पट आकारके धारणही संवित्की नियतिरूप कारणताकी कल्पना करो सोभी नहीं, क्योंकि सृष्टिकी अकारणता पूर्वोक्तकथनसे सिद्ध है अतः घटपटादि सृष्टि चित्से अभिन्न तथा कारणरहित है ॥ २३ ॥ केवल इतनीही नियती है कि जिस उपाधिमें जो चित् जब जिस रूपसे जितनेकालतक स्फुरितहोती है तब उसीप्रकारसे उतनेकालतक वह पारमार्थिक, व्यावहारिक वा प्रातिभासिकरूपसे यावत् व्यवहार है, यही नियति इससे अन्यथा नहीं ॥ २४ ॥

कदाचित्सत्यतास्वप्नेकदाचिच्चाप्यसत्यता ॥ अभावान्नियतेरेवकाकतालीयमेवतत् ॥ २५ ॥ यत्त्वेनेवात्मनाभातिमणिमंत्रौषधात्मना ॥ यन्नामनियतंतत्तुजाग्रत्यपिहिदृश्यते ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नश्चचिद्भानमात्रमेवान्यतात्रका ॥ जाग्रतिस्वप्ननगरेवेदनात्सदृशात्मकम् ॥ २७ ॥ जाग्रन्नसंभवत्येवयज्जाग्रदितिशब्दितम् ॥ स्वप्नएवजगद्रूपंनिर्निद्रस्यैवचात्मनः ॥ २८ ॥

अर्थ—और नियतिके अभावसेही काकतालीयन्यायसे स्वप्नमें कभी सत्यता और कभी असत्यता है ॥ २५ ॥ और जो मणिमंत्र तथा औषधरूप आत्माही जो नियतफलरूप होताहै वह तो जाग्रत्मेंभी संवित्की दृढतासे देखपडताहै ॥ २६ ॥ चित्प्रकाशमात्रसे अतिरिक्त जाग्रत् तथा स्वप्नमें भेद क्या है, जाग्रत् और स्वप्नके नगरमें ज्ञेय तथा ज्ञान दोनों अनुभवमें समानही हैं ॥ २७ ॥ स्वप्न अथवा जाग्रत् यथार्थमें नहीं है, स्वप्नादिशब्दसे जो कहागयाहै वह आत्माही है क्योंकि निद्राशून्य आत्मामें जाग्रत् स्वप्न दोनों नहीं हैं ॥ २८ ॥

स्वप्नोवानामनास्त्येवयःस्वप्नइवशब्दितः ॥ सुप्तासुप्तकरूपस्यब्रह्मणोबोधरूपता ॥ २९ ॥ जाग्रत्स्वप्नादयोवैतेनकेचनकदाचन ॥ दृश्यंपश्यतिसत्ताशुमृतिभ्रांतेरनंतरम् ॥ ३० ॥ यथानवरतंकालमनंतंसीकरोर्मयः ॥ तएवान्यवदभ्राशावदनन्याःस्फुरंत्यलम् ॥ ३१ ॥ तथानन्येपरेसर्गाःस्फुरंत्यस्फुरिताअपि ॥ शिलाकोशांतलेखावज्जाग्रत्स्वापादितत्रकिम् ॥ ३२ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुर्यकवपुःसाकारतावर्जितंसर्वाकारमपिव्यतीतकलनंसर्गंशरीरंदधत् ॥ व्याप्तंचिद्वपुषातथापिसुषिरंशून्येनदृश्यात्मनाचिन्मात्रंखमिदंमनागपिनभोमात्रान्नभिन्नंपुनः ॥ ३३ ॥ साकाशानिलवह्निवारिधरणीलोकांतरांभोधरंसर्गादावपिकारणाननुभवाच्चित्तात्मकंकेवलम् ॥ नाम्नावर्जितमेवबोधवपुषासंयुक्तमेवांततःशुद्धंवेदनमात्रमेवसकलंदृश्यंनवस्त्वंतरम् ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० स्वप्ननिर्णयोनामाष्टचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

अर्थ—इसलिये सुप्त तथा असुप्तरूप ब्रह्ममें केवल ज्ञानरूपता है ॥ २९ ॥ जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति ये आत्मामें यथार्थमें कदापि नहीं हैं, किंतु सदा अतुल्यरूप चित्सत्ताही भ्रांतिसे शरीरपातोत्तर मृत्युको तथा अन्यदृश्यकोभी शीघ्र अनुभव करती है ॥ ३० ॥ जैसे निरंतर कालचक्र तथा अनंत समुद्रकी तरंग, और दिग्भ्रम दिशा अन्य

न होनेपरभी अन्यके सदृश भासती हैं ऐसेही जाग्रत्स्वप्नादि तथा उनके विषय ब्रह्मसे अभिन्न होनेपरभी अन्यकेसमान स्फुरित होरहेहैं ॥ ३१ ॥ जैसे शिलाके कोशमें रेखा स्फुरित होती हैं ऐसेही परमात्मामें अभिन्नरूपसे सब सृष्टि स्फुरित होती हैं, तो उस परमात्मामें जाग्रत्स्वप्नादि कैसे रहसकते हैं ॥ ३२ ॥ हे व्याध ! यह आत्मस्वरूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति शरीर तथा उससे विरुद्ध तुरीयावस्थारूप, आकारवर्जित होकरभी साकार सर्वात्मरूप, तथा कालकी कल्पनासे रहितभी कालसे परिच्छिन्नशरीर धारणकरतेहुये, शून्यरूप चित्शरीरसेही शून्यदृश्यसे आकाशरूप छिद्रको व्याप्तकरके स्थित है तथापि निज शुद्ध चिन्मात्रस्वरूपसे किंचित्भी भिन्न नहीं है ॥ ३३ ॥ आकाशसहित वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, लोकलोकान्तर तथा मेघआदि सब पदार्थ, सृष्टिकी आदि अन्यकारणके अनुभव न होनेसे ब्रह्माके चित्तरूपहीहैं और चित्तमय मनोराज्यके पदार्थोंके सब पदार्थ नामरूपके अभावसे ज्ञानशरीरधारी मनोमयसाक्षीसे संयुक्त हैं और अन्तमें मनकेभी लय होनेपर केवल ज्ञानरूपही सब दृश्य है न कि अन्य वस्तु ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० शवो० स्वप्ननिर्णयो नामाष्टचत्वारिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

एकोनपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

उस स्वप्नके वृत्तान्तमें गृहमें आयेहुये मुनिके मुखसे श्रुत अनेक प्राणियोंके समान दुःखादिनिमित्तका वर्णन इस १४९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ व्याधउवाच ॥ अनंतरंमुनेब्रूहितत्त्वंजागतस्यते ॥ किंवृत्तमुरुवृत्तांतशतनिर्वाणसंस्तेः ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ ततःशृणुतदासाधोतस्मिंस्तद्धृदयौजसि ॥ अपूर्वएववृत्तांतःकोवृत्तोवृत्तसस्पृह ॥ २ ॥ तथाममचतत्रस्थविस्मृतात्मचमत्कृतेः ॥ अभ्यवर्तत्तवैकालोऋतुसंवत्सरात्मकः ॥ ३ ॥ कलत्ररंजितमतेर्ममवर्षाणिषोडश ॥ तत्रतान्यतीतानिगृहस्थाश्रमतोऽमतेः ॥ ४ ॥

अर्थ—व्याध बोला कि–हे मुने ! उस प्राणीके हृदयमें प्रलय आदि बडे २ अनेकवृत्तान्तोंके साथ सब संसारोंकी शांतियुक्त आप जब गृहपर आये तथा वहांपर भार्य्यापुत्रादि अन्यवासनाओंको अनुभव करतेथे उसके पश्चात् आपका क्या वृत्तान्त हुआ सो कहिये ॥ १ ॥ मुनि बोले कि–हे वृत्तान्तश्रवणके अभिलाषी साधुपुरुष ! उस प्राणीके तेजोमय हृदयमें जो कुछ मेरा अपूर्व वृत्तान्त हुआ है उसको तुम सुनो ॥ २ ॥ वहांपर स्थित मेरी आत्माकी चमत्कृति विस्मृत होगई और ऋतु तथा संवत्सरआदिकाल मुझे उस दशामें रहते व्यतीत होगया ॥ ३ ॥ उस गृहस्थाश्रममें निवास करतेहुये स्त्रीके प्रेमसे अनुरक्तबुद्धि होनेसे आत्मज्ञानरहित मुझे सोलहवर्ष बीतगये ॥ ४ ॥

कदाचिच्चाजगामाथगृहमुग्रतपामम ॥ मुनिर्मान्योमहाबोधोबुधोतिथितयातथा ॥ ५ ॥ सोत्रसंपूजितस्तुष्टःसुप्तवान्भुक्तवांस्ततः ॥ इदमंगमयापृष्टोविमृश्यजनताक्रमम् ॥ ६ ॥ भगवन्भूरिबोधोसिजानासिजगतोगतीः ॥ यस्माददृष्टक्रोधोसिसुखेगृह्णासिनोरतिम् ॥ ७ ॥ सुखदुःखान्युपायांतिकर्मभिःकर्मशालिनाम् ॥ शुभाशुभैःशरत्कालेसस्यानीवफलार्थिनाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीदशामें रहते हुये कदाचित् अतितपस्वी, महापंडित, और पूजनीय एक मुनि मेरे गृहपर आये, सो अतिथिके सत्कारसे ॥ ५ ॥ मैंने उनकी पूजा की और मेरे पूजा सत्कारआदिसे उनने अतिसंतुष्ट होकर भोजन किया और वहाही शयन किया. अनन्तर हे प्रिय ! मनुष्यसमूहके क्रमोंको विचारकर मैंने उनसे यह पूछा ॥६॥ कि हे भगवन् ! आपके शरीरमें क्रोध नहीं है, और सांसारिकसुखमें प्रीतिभी नहीं है इससे आप महाज्ञानी आत्मज्ञ पंडित हैं और संसारकी दशाओंकोभी जानतेहो ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! कर्मयुक्त प्राणियोंके शुभ तथा अशुभकर्मोंसे सुखदुःख ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे उद्योगी फलाभिलाषियोंको शरत्कालमें सस्य (धान्यआदि) ॥ ८ ॥

सममेवाशुभंकर्मकिमिमाःसकलाःप्रजाः ॥ कुर्वंत्यासांयदायांतिदोषाःसर्वादयःसमम् ॥ ९ ॥ दुर्भिक्षावग्रहोत्पातंसर्वादिसममेवकिम् ॥ जनजालस्यफलतिसमानाकस्यदुष्क्रिया ॥ १० ॥ इत्याकर्ण्यसमालोक्यस्मयमानइवोन्मनाः ॥ सउवाचवचोवंद्यममृतस्यंदसुंदरम् ॥ ११ ॥ अन्यमुनिरुवाच ॥ साधोसाधुविविक्तांतःकरणेयत्तुकारणम् ॥ सद्वासद्वास्यदृश्यस्यकस्मा(ज्जानासिकथ्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—क्या सब जनसमूह अशुभकर्म एककालमेंही करतेहैं जो सब प्राणियोंको भक्ष्याभक्ष्य खिलाले ऐसे दुर्भिक्षआदि दोष एककालमेही होतेहैं ॥ ९ ॥ जो दुर्भिक्ष तथा अवृष्टिके होनेसे अन्यउत्पात जो सबकुछ खिलादेतेहैं, वे जनसमूहको जो एकसाथ होतेहैं, ऐसे दुष्कर्म किसकेसमान होतेहैं अर्थात् एककालमें सब बुराचरणमें नहीं प्रवृत्त हो सकते तो सबको एकसाथ समान दुःख क्यों होताहै? ॥ १० ॥ ऐसा सुनकर विचारकरके मुसकिराते हुयेके समान मुनि अमृतप्रवाहसे अतिसुन्दर तथा दोषरहित बचन बोले ॥ ११ ॥ गृहमें प्राप्त अन्य मुनि बोले-कि हे साधो! चित् तथा अचित्के विवेकयुक्त अन्तःकरणमें इस दृश्यका कारण सत् अथवा असत् जो तुम जानतेहो वह किससे जानतेहो सो तुम कहो ॥ १२ ॥

संस्मरात्मानमखिलंकस्त्वंकेहस्थितोसिच ॥ काहंवाकिमिदंदृश्यंकिंसारंकिंचिदेवच ॥ १३ ॥ स्वप्न मात्रमिदंभातिकिलकस्मान्नवेत्सिभोः ॥ अहंस्वप्ननरोयत्तेत्वंस्वप्नपुरुषोपम ॥ १४ ॥ अनाकारमना ख्येयमनाद्यमपकल्पनम् ॥ इदंचिन्मात्रकाचस्यकाचकच्यंजगत्स्थितम् ॥ १५ ॥ रूपमीदृशमेवास्य चिन्मात्रस्यास्त्यकृत्रिमम् ॥ सर्वगस्ययदेतद्यद्यत्रवेत्त्यस्तितत्रतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—विवेकके अभावसे मुझे मौन देखकर वे मुनि बोले-कि तुम अपने पूर्ववृत्तान्तोंके साथ उन सबके साक्षी आत्माका स्मरण करो और यहभी स्मरण करो कि तुम कौन हो तथा कहां स्थित हो और हम कौन हैं, यह दृश्य क्या है और इसमें सार क्या तथा असार है यहभी चिन्तन करो ॥ १३ ॥ हे साधो! यह सब दृश्य स्वप्नमात्रही भासताहै, इस बातको तुम क्यों नहीं जानते, मैं तुमारे स्वप्नका मनुष्य हूं, और तुमभी मेरे स्वप्नकेही मनुष्य हो ॥ १४ ॥ आकारशून्य, अनिरूपणीय आदिअन्त तथा मध्यशून्य तथा सबप्रकारकी कल्पनासे वर्जित यह जो जगत् है वह चिन्मात्र ब्रह्मका कान्तिविशेष है ॥ १५ ॥ सर्वव्यापी चिन्मात्रका यह ऐसाही स्वाभाविक रूप है कि वह जहां जैसा चाहताहै वहां वैसाही रूप होके अनुभव करनेलगताहै ॥ १६ ॥

सकारणत्वकलनात्सर्वमस्यसकारणम् ॥ अकारणत्वकलनादस्यसर्वमकारणम् ॥ १७ ॥ आसांप्रजा नांत्वस्माकंविराडात्मासआततः ॥ वयंहृदिस्थितायस्यसचास्मच्चिद्वशादितः ॥ १८ ॥ भविष्यत्यप रोन्यासांविराडात्मासएवच ॥ कारणंसुखदुःखानांभावाभावात्मकर्मणाम् ॥ १९ ॥ विराड्धातुविका रेणविषमस्पंदनादिना ॥ तदंगावयवस्यास्यजनजालस्यवैसमम् ॥ २० ॥

अर्थ—कारणसहित कल्पना करनेसे इसका रचित सबकुछ कारणसहित है और कारणरहितकी कल्पनासे सबकुछ कारणशून्यही है ॥ १७ ॥ जिस प्राणीके तेजोमयहृदयमें हम सब स्थितहैं वह अस्मदादि इन प्रजाओंका विराट्रूप आत्मा व्याप्त होरहाहै और वह हमारी चित्की कल्पनाहीसे विराट्भावको प्राप्तहुआहै ॥ १८ ॥ तथा इस प्राणीकेसमान अन्यप्राणी अन्यप्रजाओंका विराट्आत्मा होगा यह संभव है और प्राणी संपत्ति, विपत्ति, पुण्य तथा पापादिका भोक्तारूपसे कारणभी होगा ॥ १९ ॥ और उस विराट्आत्माके विषमगतिशील कफपित्तादि धातुओंके विकारसे उस विराट्आत्माके अङ्गोंके अवयवस्वरूप जो जनसमूह हैं उनको समानही होगा ॥ २० ॥

दुर्भिक्षावग्रहातीतमायातिशममेतिवा ॥ यस्माद्विराजोयासत्तासासर्गस्यास्यसर्गता ॥ २१ ॥ काकताली यवत्साधोकेषुचिद्दुष्टकर्मसु ॥ समंपततिदुःखादिपादपेष्वशनिर्यथा ॥ २२ ॥ कर्मकल्पनयासंवित्स्व कर्मफलभागिनी ॥ कर्मकल्पनयोन्मुक्तानकर्मफलभागिनी ॥ २३ ॥ यायायत्रयथोदेतिकल्पनाल्पाथवा धिका ॥ सासातत्रतथैवास्तेसहेतुकमहेतुकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—दुर्भिक्ष, वृष्टिका अभाव तथा प्रलय, वा इन सबकी शान्ति ये सब साथही उस विराट्की सृष्टिमें स्थित सबजनोंको होगा, क्योंकि उस विराट्पुरुषकी जो सत्ता है वही उसकी सृष्टिकी सृष्टिरूपता है ॥ २१ ॥ और हे साधो! काकतालीयन्यायसे किन्हीं अशुभकर्मयुक्त प्राणियोंमें सुखदुःखादिसाथही ऐसे गिरताहै, जैसे वृक्षोंपर विद्युत् ॥ २२ ॥ और चित्केद्वारा कर्मोंकी कल्पना होनेहीसे वह संवित् (उस उपाधिमें स्थित चित्) अपने कर्मकी फलभागिनी होती है, और कर्मकी कल्पनाओंसे मुक्त संवित् कर्मफलभागिनी नहीं होती ॥ २३ ॥ सहेतुक वा हेतुरहित, न्यून वा अधिक, जो २ कल्पना जहां २ जिस २ प्रकारसे उदित होती है वहां २ उसीप्रकारसे वह २ कल्पना रहती है ॥ २४ ॥

नास्त्येवस्वप्नमयेकारणसहकारिकारणादिपुरे ॥ तस्मात्तदनादिशिवंचेतनमजरंपरंब्रह्म ॥ २५ ॥ एवं स्वप्नभ्रमोनाम भातिकश्चिदकारणम् ॥ कश्चित्सकारणोभातिशून्यःसदसदात्मकः ॥ २६ ॥ काकता

लीयवद्भांतिस्वाप्नाःसकलसंविदः ॥ ताभ्यस्तुल्योपलंभत्वान्नान्यज्जगदिदंततम् ॥ २७ ॥ सकारणत यारूढमिहयत्तत्सकारणम् ॥ अकारणतयारूढमिहयत्तदकारणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—स्वप्नादिके नगरमें कारण अथवा सहकारणादि कुछ नहीं है, इसलिये अनादि, अजर, अमर, शिवस्वरूप ब्रह्महो सब कुछ है ॥ २५ ॥ यह सदसदात्मा शून्य स्वप्नका भ्रम कोई तो अकारण भासताहै और कोई सकारण ॥ २६॥ स्वप्नकी संपूर्णवृत्ति काकतालीयन्यायसे कोई सत् और कोई असत् भासती हैं, विषयआदिका समान अनुभव होनेसे स्वप्नसे वा चित्से भिन्न यह व्याप्त जगत् नहीं है ॥ २७ ॥ जो कारणतासे रूढ (कल्पित) है वह कारणसहित है, और जो अकारणतासे रूढ है वह कारणरहित है ॥ २८ ॥

कार्यकारणमयक्रमोदितंस्वप्नएषचितिभानमात्रकम् ॥ जाग्रदाख्यमहतःस्वभावकंतेनशांतमखिलंपरं विदुः ॥ २९ ॥ सत्यकारणकाभावाःकेतेशृणुमहामते ॥ कारणंकिंस्वभावानांकिमिहाकाशकारणम् ॥ ॥ ३० ॥ पृथ्व्यादेर्घनपिंडत्वसर्गादेःकिंचकारणम् ॥ किंकारणमविद्यायाःकारणंकिंस्वयंभुवः ॥ ३१ ॥ सर्गादौकारणंकिंस्याद्वायूनांतेजसांचकिम् ॥ किमपांवेदनामात्ररूपाणांगगनात्मकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कार्य्यकारणक्रमसेभी उदित यह स्वप्न चित्प्रकाशमात्रही है, और जाग्रत् नाम स्थूलप्रपंचभी ऐसाही है, इसलिये इस संपूर्ण प्रपंचको चित्स्वभावमात्रसे उदित शान्त ब्रह्मरूपही जानतेहैं ॥ २९ ॥ और सबपदार्थोंका सत्यब्रह्महो जब कारण है तब सत्य होनाचाहिये, इस शंकाका उत्तर हे महामते सुनो, तुम यह कहो ब्रह्म सत्य-स्वभावपदार्थोंका कारण है, वा मिथ्या, वा सजातीय, अथवा विजातीयका, इनमें प्रथम दो पक्षोंमें ब्रह्मसे ब्रह्महो होगा, और अन्तके पक्षोंमेंभी ब्रह्मसे उत्पन्न असत्य नहीं होसकता इसलिये अकारणता सिद्ध हुई और आकाशका कारण क्या होसकताहै ॥ ३० ॥ घनीभूत पिंडयुक्त पृथिवीआदिसृष्टिका कहो क्या कारण है? और अविद्या तथा हिरण्यगर्भ-काभी कहो क्या कारण है? ॥ ३१ ॥ सृष्टिकी आदिमें अनुभवरूप वायु, तेज तथा जलका क्या कारण होसकताहै, कारणके न सिद्ध होनेसे सबशून्य आकाशमात्रही है ॥ ३२ ॥

पिंडग्रहेदेहलाभेमृतानांकिंचकारणम् ॥ एवमेवप्रवर्त्ततेसर्गाःप्रथमतोखिलाः ॥ ३३ ॥ एवमेवप्रवर्तंते जगत्यावलयंतिच ॥ चक्रकाणीवनभसिचिरसंप्रेक्षणाद्दृशा ॥ ३४ ॥ एवमेवप्रवृत्तेनसर्गेणब्रह्मरूपि णा ॥ पश्चात्स्वस्यैवरूपस्यसंज्ञाःपृथ्व्यादिकाःकृताः ॥ ३५ ॥ वातस्पंदवदाभांतिसर्गाःपूर्वंचिदंबरे ॥ स्वयमेवचकुर्वंतिदेहकारणकल्पनाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और मृत्युके पश्चात् पुनः अन्यदेहपिंडके ग्रहणमें क्या कारण है? इसलिये आरंभसेही सब सृष्टि निष्कारण प्रवृत्त होतीहै ॥ ३३ ॥ भ्रमसे ये सबजगत् निष्कारण ऐसे उत्पन्न तथा लीन होजातेहैं जैसे चिरकालतक आकाशमें देखनेसे चक्राकार भ्रमण ॥ ३४ ॥ इसप्रकार निष्कारण स्वयंप्रवृत्त हिरण्यगर्भधारी ब्रह्मरूप सृष्टिने पश्चात् अपनेही स्वरूपकी स्वयं पृथिवीआदि यह संज्ञा किया ॥ ३५ ॥ प्रथम चिदाकाशमें मनोराज्यके सदृश अतिसूक्ष्म सर्ग (अनेकसृष्टि) भासतेहैं, पश्चात् चिरकालके अभ्याससे स्थूलभावको प्राप्त होके स्वयं देहकर्मादिकारणोंकी कल्पना करतेहैं ॥ ३६ ॥

यद्यथाकल्प्यतेधत्तेतत्तथानियतिर्वपुः ॥ कल्पितायाश्चितेर्यस्मादेवमेतन्निजंवपुः ॥ ३७ ॥ यद्यद्भानात्म कंरूपंप्रथमंचेतितंचिता ॥ स्वतोहमेवचित्येवतदद्यापितथास्थितम् ॥ ३८ ॥ पुनरन्येनयत्नेनतद्वत्कुष्टे नसैवचित् ॥ शक्तातदन्यथाकर्तुंयत्नेनमहतापुनः ॥ ३९ ॥ कल्प्यतेकारणंयत्रतत्रकारणसारता ॥ न कल्प्यतेविदायत्रकारणंतदकारणम् ॥ ४० ॥ वात्यावर्तवदाभातमिदंप्रथममाततम् ॥ असदेवयथाभा तंतथैवाद्यापिसंस्थितम् ॥ ४१ ॥ संभूयकेचनशुभाशुभमात्मकर्मकुर्वंतितस्यसदृशंफलमाप्नुवंति ॥ सं प्राप्नुवंतिचशिलाशनिवच्चकेचिदुःखंत्वकारणकमेवसहस्रसंख्याः ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अवि० वि० श० कारणविचारो नामैकोनपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

अर्थ—प्रथम चित् जहां जैसी कल्पना करती है वहां वैसाही स्वरूप चिद्रूप नियति स्वयं धारणकरती है और यह निजकल्पितपदार्थोंमें अनुभवसिद्ध है, क्योंकि ये निजशरीरभी कल्पित चित्काही निजस्वरूप है ॥ ३७ ॥ सृष्टिकी ओर अभिमुख हिरण्यगर्भ चित् स्वयं मैं इस निज चिद्रूपमेंहीं ऐसा २ स्वरूप धारणकरूं, इसप्रकारसे जो प्रकाशमय कल्पना करतीहै वह अद्यावधि ज्योंका त्यों व्यवस्थित है ॥ ३८ ॥ और पुनः उस कल्पनाको वही चित्

अतिमहान् उत्कृष्टप्रयत्नसे (तपश्चर्या तथा आत्मज्ञानरूप प्रयत्नसे) अन्यथा करनेमें समर्थ होती है ॥ ३९ ॥ जहां चेतन कारणकी कल्पना करताहै वहां कारणकी सफलता होती है और जहां नहींकरता वहां कारणभी अकारण हो-जाताहै ॥ ४० ॥ प्रथम यह वायुके आवर्तके तुल्य भानहुआ, जैसे यह असत्स्वरूपसे भानहुआ वह चित्की कल्पनाके अनुसार अबभी स्थितहै ॥ ४१ ॥ और कोई (किसी उपाधिमें स्थितसे कल्पित) जीव जब मिलके शुभ-कर्म करतेहैं तब उन कर्मोंके फलभी वे साथही अनुभव करतेहैं और कोई असंख्य (जीवन्मुक्त) जीव कर्तृत्वके अभिमानसे रहितहोनेपरभी प्रारब्ध कर्मानुसार निष्कारणही दुःखादिका ऐसे अनुभव करतेहैं जैसे पर्वतके शिलादि वज्रपातादि दुःखोंको ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अ० वि० श० कारणविचारो नामैकोनपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५० ॥

उन मुनिके वाक्योंसे अपनेको आत्मज्ञान, तथा उसकेसाथ अपनी स्थिती, तथा पूर्वदेहमें गमनके असामर्थ्यसे प्रश्न करनेपर दाह आदिका वर्णन इस १५० के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ एवंप्रकारयायुक्त्यातेनायंमुनिनातदा ॥ तथाहंबोधितोयेनगतोविदितवेद्यताम् ॥ १ ॥ ततोसौनमयात्यक्तश्चिरप्रार्थनयातया ॥ अवसत्तेनतत्रासौमृतस्यापितथैवच ॥ २ ॥ येनैतन्मुनिनाप्रोक्तमिंदूदयशुभंवचः ॥ सोयंपश्यमुनिश्रेष्ठस्तवपार्श्वेव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ अनेनोक्तमनुक्तेनममैतन्मोह घातिना ॥ दृश्यपूर्वापरज्ञेनयज्ञेनेवात्तमूर्तिना ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले कि-इसप्रकारकी युक्तियोंसे उस मुनिकेद्वारा मैं इसप्रकारसे बोधित हुआ कि आत्मज्ञानी होगया ॥ १ ॥ इसके पश्चात् उस मुनिको मैंने नहीं त्यागा, और मेरी अनेक प्रार्थना तथा सेवाआदिसे सन्तुष्ट वह मुनि मेरे ग्रहपर रहा. यद्यपि आत्मविचारसे शून्य होनेसे मैं उस मुनिके आगमनके पूर्व मृतकसमानही था तथापि मेरी प्रार्थनासे मुनिने निवास किया ॥ २ ॥ हे व्याध ! जिस मुनिने चन्द्रोदयके सदृश शीतल तथा शुभ यह वचन मुझसे कहाथा वह दयालु श्रेष्ठमुनि देखो तुमारे समीपही इससमय स्थितहै ॥ ३ ॥ पूर्वापरको जाननेवाले, मुझसे अनुष्ठित यज्ञादि-पुण्यकी मूर्ति धारण करनेवाले इन्ही दयालु मुनिने मेरे मोहनाशक वचनका उपदेश कियाथा ॥ ४ ॥

अग्निरुवाच ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्यमुनेर्व्याधोभवत्तदा ॥ प्रत्यक्षःस्वप्नसर्गःकिमितिखिन्नइवस्मयात् ॥ ॥ ५ ॥ व्याधउवाच ॥ अहोमहच्चित्रमिदंमुनेमनसिदुःसहम् ॥ कथितंमेद्यभवताभवतापापहारिणा ॥ ॥ ६ ॥ यत्स्वप्नकथितस्येयंजाग्रत्प्रत्यक्षतोच्यते ॥ लभ्यतेपिचतन्नामवेदचित्रमिदंमुने ॥ ७ ॥ कथमेष महान्स्वप्नपुरुषःसमुनीश्वर ॥ जाग्रत्यपिस्थिरीभूतोभूतोबालमतेरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—अग्निभगवान् बोले कि-हे सभ्य ! उस मुनिके इस बचनको सुनकर वह व्याध इस हेतुसे विस्मयसे खिन्नके तुल्य होगया कि क्या वह स्वप्नकी सृष्टि और इनके स्वप्नके उपदेशक मुनि मेरे प्रत्यक्ष संभव होसकते हैं ॥ ५ ॥ व्याध बोला कि-हे भगवन् ! संसारके तापहारी आपने यह अतिआश्चर्य्य तथा मनको अविश्वसनीय बचन कहा ॥ ६ ॥ कि स्वप्नमें अपने उपदेशक मुनिको इस जाग्रत्में प्रत्यक्ष कहतेहो, और मुझेभी यह प्रत्यक्षरूपसे भानहोताहै सो अतिही आश्चर्य्य है ॥ ७ ॥ कैसे यह स्वप्नके पुरुष महामुनि जाग्रत्मेंभी बालककी बुद्धिमें भूतके सदृश स्थिर रहगये ॥ ८ ॥

एवमाश्चर्यमाख्यानमुच्यतांमेयथाक्रमम् ॥ कुतःकस्यकिमेतद्वापरमोहिसविस्मयः ॥ ९ ॥ मुनिरुवाच ॥ ततःशृणुमहाभागवृत्तंचित्रंकिमत्रमे ॥ कथयामिसमासेनसहसामाकुरुत्वराम् ॥ १० ॥ अनेनैत त्तदात्रवर्णितंबोधनायमे ॥ बुधोहमभवंचाशुमहतोस्यतयागिरा ॥ ११ ॥ ततएतद्गिरापूर्वःस्वस्वभा वःस्मृतोमया ॥ अवदातोवदातेननभसेवतपात्यये ॥ १२ ॥

अर्थ—हे मुने ! यह आश्चर्य्यमय आख्यान मुझसे कहिये, इस स्वप्नके पुरुषका दर्शन इससमय कैसे हुआ, और यह मेरा दर्शन स्वप्न है वा जाग्रत् है, मुझे इस विषयमें परमविस्मय है ॥ ९ ॥ मुनि बोले कि-हे महाभाग ! इस आश्चर्य्यमय वृत्तान्तको मुझसे सुनो मैं संक्षेपसे कहताहुं, सहसा अतिशीघ्रता न करो ॥ १० ॥ हे व्याध ! तुमारे समीपमें स्थित इन्ही मुनिने यह उपदेशमयी वाणीका उपदेश किया, और इस महात्माकी वाणीसे मैं आत्मज्ञानी होगया ॥ ११ ॥

तब इनकी वाणीसे मैंने अपूर्व शुद्ध चिन्मात्रस्वभावका ऐसे स्मरणकिया जैसे हेमन्तऋतुके बीतनेपर शुद्ध आकाश अपने निर्मलस्वभावको ॥ १२ ॥

अहोनुसोहमभवंमुनिरित्युदिताशयम् ॥ अहमासंहृदास्फीतात्स्नातोवस्थितविस्मयात् ॥ १३ ॥ इमां भोगास्थयावस्थांप्राप्तोस्म्यज्ञइवाध्वगः ॥ धावञ्छ्रमार्त्तिरंव्वर्थीव्यर्थयामृगतृष्णया ॥ १४ ॥ कष्टंदृश्योप लंभेनभ्रांतिमात्रात्मनासता ॥ बालोवेतालकेनेवप्राज्ञोपिच्छलितोह्यहो ॥ १५ ॥ अहोनुचित्रमेतेनमि थ्याज्ञानेनवल्गता ॥ नीतःसर्वार्थशून्येनपदवींकामिमामहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अहो ! मैं शुद्ध अन्तःकरणयुक्त मुनि पूर्वमें था, इसकारण निज मुनिस्वभावकोभी स्मरण किया और मैं शुद्धविस्मययुक्त हृदयसे स्नात (आर्द्र) के तुल्य होगया ॥ १३ ॥ संसारके भोगोंमें विश्वास करनेसे बुद्धिमान् होकरभी मैं इस दीनदशाको ऐसे प्राप्तहुआ जैसे श्रमसे पीडित दौडताहुआ जलार्थी पथिक मृगतृष्णासे ॥ १४ ॥ अहो ! कैसे खेदका विषय है कि भ्रमसिद्ध इस दृश्यकी प्राप्तिसे बुद्धिमान् होकरभी मैं ऐसे ठगगया जैसे बालक भूतसे ॥ १५ ॥ अहो ! आश्चर्य, सब पदार्थोंसे शून्य मिथ्याभूतभी गर्जते हुये इस दृश्यसे इस शोचनीयपदवीको मैं प्राप्तहुआ ॥ १६ ॥

अथवायःसोहमपिभ्रांतिमात्रंनसन्मयः ॥ तथापिचित्रशततायन्नामासद्विडंब्यते ॥ १७ ॥ नाहमस्मिन चैवेयमिदंनायमपिभ्रमः ॥ चित्रंसर्वमिदंमिथ्यासर्वंचसदिवस्थितम् ॥ १८ ॥ किमिदानींमयाकार्यमि हबंधभिदांतरः ॥ विद्यतेमेंकुरश्छेद्यंतत्तावत्संत्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ आस्तामेतदविद्यैषाव्यर्थरूपाकि मेतया ॥ भ्रांत्याभ्रांतिरसद्रूपात्यक्तैवैषामयाधुना ॥ २० ॥

अर्थ—अथवा वही मैं हुं, इस प्रत्यभिज्ञानका विषय तत्ता अहंतादि जो है वहभी भ्रांतिमात्र है, सत् नहीं ह, तथापि साक्षी (चित्) जो असद्रूपका विडंबना करताहै उसमें अनेक आश्चर्य हैं ॥ १७ ॥ यह शरीरादि मैं नहीं हुं, यह मायाभी नहीं है तथा यह दृश्यभी नहीं है, यह विचारभी भ्रम है. अहो ! यह कैसा आश्चर्य है ! कि यह मिथ्या होकरभी सत्के तुल्य स्थित है ॥ १८ ॥ मुझे अब क्या कर्तव्य है, बन्धनको भेदन करनेवाला ब्रह्माकारवृत्तिरूप जो अन्तःकरणमें अंकुर है वहभी छेदनके योग्य है उसेभी मैं त्यागताहुं ॥ १९ ॥ जगत्की भ्रान्तिरूप अविद्या जो व्यर्थ मिथ्यारूप है वह रहो, यह भ्रान्तिसे सिद्ध असद्रूपविद्याकी वृत्तिसे नष्ट तथा त्यक्तके समानही है ॥ २० ॥

उपदेष्टामुनिरयमेषोत्रभ्रांतिमात्रकम् ॥ ब्रह्मैवाहमिवाभातिरूपमेतद्दिवाभ्रवत् ॥ २१ ॥ तदेवंतावद्वदि तज्ज्ञानंवक्ष्येमहामुनिम् ॥ इतिसंचिंत्यसमुनिस्तत्रप्रोक्तइदंमया ॥ २२ ॥ मुनिनायकगच्छामितच्छरीर मिदंनिजम् ॥ द्रष्टुंयच्चप्रवृत्तोस्मिशरीरंतदपीक्षितुम् ॥ २३ ॥ इत्याकर्ण्यसमामाहहसन्मुनिवरस्तदा ॥ कुतस्तौभवतोदेहौतौसुदूरतरंगतौ ॥ २४ ॥

अर्थ—यह मेरे उपदेशक मुनि और यह मैं इनका शिष्य, यहभी भ्रममात्रही है, ब्रह्मही मेरा तथा ऋषि आदिके रूपसे ऐसे भासताहै जैसे दिनमें दृष्ट मेघकी पुरुषाकारता ॥ २१ ॥ इसलिये जिससे ज्ञान प्राप्त हुआ है उस महामुनिको अपना वक्ष्यमाण अभिप्राय कहुं, ऐसा विचारकर इस मुनिसे मैंने कहा ॥ २२ ॥ कि हे मुनिनायक ! उस आश्रममें स्थित अपने शरीरको तथा जिसके हृदयमें मैं स्वप्नका संसार देखनेके अर्थ प्रवृत्त हुआ उसकोभी देखनेको अब जाताहुं ॥ २३ ॥ इस वचनको सुनकर हंसते हुये यह मुनीश्वर मुझसे बोले कि—तुमारा तथा उस प्राणीका दोनों देह अब कहां ! वे तो दाहसे भस्म होजानेसे अति दूर चलेगये ॥ २४ ॥

गच्छात्मनैववापश्यवृत्तांतंवृत्तकोविद ॥ पश्यतावद्यथावृत्तंदृष्ट्वांतंज्ञास्यसिस्वयम् ॥ २५ ॥ इतिसंचि त्यतंदेहंविदंभूस्तत्तयास्मिकम् ॥ त्यक्त्वाचिदात्मातत्प्राणात्पवनेयोजितोमया ॥ २६ ॥ प्राक्तनंदेहमा लोक्ययावदायाम्यहंमुने ॥ इहैवतावत्स्थातव्यमित्युक्त्वाहंगतोनिलम् ॥ २७ ॥ अथवातरथारूढोगग नंभ्रांतवानहम् ॥ पुष्पामोदइवानंतंगत्वाचत्वरयाचिरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अथवा हे वृत्तान्त जाननेमें चतुर स्वयं तुम जाकर देखो, जाकर देखनेसे उस वृत्तान्तको तुम पूर्णरूपसे स्वयं जानोगे ॥ २५ ॥ ऐसा सुनकर उस पूर्वदेहको चिन्तनकरके और स्वप्नका देह मैं इस विचारकेसाथ उस रूपको त्यागकर निजजीवको उसके प्राणकेद्वारा पवनस्कन्धमें युक्त किया ॥ २६ ॥ और मुनिसे यह कहा कि हे मुने ! जबतक मैं अपने पूर्वशरीरको देखकर यहां आऊं तबतक आप यहांही स्थित रहना ऐसा कहके पवनस्कंधमें आरूढ हुआ ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् वायुरूपी रथपर आरूढ होकर और शीघ्रतासे जाके अनन्तआकाशमें पुष्पके सुगन्धके सदृश मैंने भ्रमणकिया ॥ २८ ॥

ततश्चिरमपिभ्रांत्वायदागलबिलंचलन् ॥ अहंनप्राप्तवांस्तस्यकिंचिदस्याशयस्थितः ॥ २९ ॥ तदाखेद मुपायातःपरमंपुनरागतः ॥ इदमेवजगज्जालमहमालानमात्मनः ॥ ३० ॥ इहेमंलब्धवानग्रेततोमुनिम नुत्तमम् ॥ पृष्टवानहमेकाग्रस्ततएवमिदंगृहे ॥ ३१ ॥ किमेतद्भगवन्ब्रूहिपूर्वापरविदांवर ॥ त्वंपश्यसि यथावृत्तमुत्तमज्ञानचक्षुषा ॥ ३२ ॥

अर्थ—तब चिरकाल कभी भ्रमणकरके बाहर निकलनेके अर्थ उस प्राणीका गलरूपी बिल तथा अन्यभी द्वार जब मैंने नहीं पाया तब उसके हृदयमें स्थित मैं ॥ २९ ॥ अतिखेदको प्राप्तहुआ और पुनः निजआत्माका बन्धनरूपी इसी जगत्जाल तथा गृहमें आकर प्राप्तहुआ ॥ ३० ॥ और इसी श्रेष्ठ मुनिको संमुख पाया और पश्चात् गृहमें स्थित इस मुनिसे एकाग्रचित्त होके मैंने पूंछा ॥ ३१ ॥ कि हे पूर्वापरके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! यह क्या है इस वृत्तान्तके आप निज ज्ञानरूपी नेत्रसे इस वृत्तान्तको जैसे देखतेहो वह कृपाकरके कहिये ॥ ३२ ॥

यस्यदेहंप्रविष्टोहंसचमद्वपुरेवच ॥ कतावुभौगतौदेहौनलब्धौकेनहेतुना ॥ ३३ ॥ मयातिचिरमाभोगि भ्रांतंसंसारमंडलम् ॥ स्थावरादात्मनःकस्मात्प्राप्तंगलबिलंनतत् ॥ ३४ ॥ गत्वेतिपृष्टःसमुनिःसमुवा चमहाशयः ॥ जानासितत्स्वयंकस्मादितितामरसेक्षण ॥ ३५ ॥ एतदालोकयसिचेत्स्वयंयोगैकसंवि दा ॥ तत्पश्यस्येवनिःशेषंयथाकरतलांबुजम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिसकी देहमें प्रविष्ट हुआ वह देह तथा मेरा देह वे दोनों कहां गये और मैंने उनको क्यों न पाया ॥ ३३ ॥ मैंने स्थावरसे लेके संपूर्ण विशाल इस संसारमंडलमें भ्रमण किया, परन्तु उस प्राणीके गलरूपी बिलके बाहर निकलनेके मार्गको नहीं पाया ॥ ३४ ॥ इतना पूंछनेपर वे महाशय मुनि मुझसे बोले कि—हे कमलके सदृश नेत्रधारी! मेरे उपदेशकेविना तुम निजबुद्धिहीसे उस वृत्तान्तको कसे जानोगे ॥ ३५ ॥ इसको यदि तुम देखनाचाहते होतो योगरूपी नेत्रसे स्वयं इसको पूर्णरूपसे करतलमें स्थित कमलके सदृश जानोगे ॥ ३६ ॥

तथापियदिशुश्रूषातवास्तिवचसामम ॥ तदिदंशृणुवक्ष्यामियथावृत्तमखंडितम् ॥ ३७ ॥ तपस्तामरसो ष्णांशुःकल्याणकमलाकरः ॥ ज्ञानाब्जस्यहरेर्नाभिर्नास्तितावदयंभवान् ॥ ३८ ॥ सत्वंकदाचित्तपसि स्थितःस्वप्नदिदृक्षया ॥ कस्यचिद्धृदयंजंतोःप्रविष्टःपुष्टसंविदा ॥ ३९ ॥ यत्त्वंप्रविष्टोहृदयंतत्रेदंभुवन त्रयम् ॥ दृष्टवानसिविस्तीर्णंरोदसीविपुलोदरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—तथापि यदि मेरे वचनको श्रवण करनेकी तुमको इच्छा है तो सुनो मैं संपूर्ण तुमसे कहूंगा ॥ ३७ ॥ अपने शरीरके वृत्तान्तके पूर्व प्रथम तुम यह जानो कि जो तुम अपनेको पृथक् व्यष्टिजीवरूप समझतेहो सो तुम नहीं हो, किन्तु सबप्राणियोंके पुण्यरूपी कमलोंका फलदानसे प्रकाशक होनेसे सूर्य्यरूप, तथा सबसुखोंका आकर, तथा विष्णुभगवान्की नाभिकमलसे उत्पन्न सर्वजीवसमष्टिका आत्मा हिरण्यगर्भस्वरूपही तुम हो ॥ ३८ ॥ सो वही हिरण्यगर्भ तुम कदाचित् व्यष्टिभावसे स्वप्नके देखनेकी इच्छासे मनोराज्यद्वारा किसी आश्रममें तपस्वी हुये और उस व्यष्टिभावकी संवित्के पुष्ट होनेपर किसी जीवके हृदयमें तुम प्रविष्ट हुये ॥ ३९ ॥ और जब हृदयमें प्रविष्ट हुये तब वहांपर विशाल त्रैलोक्य तथा उदरसंयुक्त आकाश और पृथिवीको देखा ॥ ४० ॥

इतित्वयिचिरंव्यग्रेदेहस्तस्यतथापिच ॥ ससंसुप्ताकृतिर्यत्रस्थितस्तत्रमहावने ॥ ४१ ॥ लग्नोग्निर्धूमधू म्राभ्रसांबरांबरडंबरः ॥ वलद्बलचलालातचक्रसूर्येंदुमंडलः ॥ ४२ ॥ दग्धाभ्रभस्मसंपूर्णधूमाभ्रासितकं बलैः ॥ आनीलाकाशदलपैरिवसंछादितांबरः ॥ ४३ ॥ दरीगृहविनिष्क्रांतसिंहनिर्हादतर्जितैः ॥ स्फुटै श्चटचटास्फोटैर्जडीकृतदिगंतरः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस रीतिसे उस प्राणीके हृदयमें प्रविष्ट होके तुम जब स्वप्न देखनेमें व्यग्र थे तब सुप्तके समान तुमारा शरीर तथा जिसके हृदयमें तुम प्रविष्ट हुये उस ब्रह्मचारीकाभी शरीर उसी आश्रममें महाबनमें स्थितथा ॥ ४१ ॥ इत-नेही धूमरूप महामेघोंसे शंबरासुरकी मायाके आडंबरके तुल्य तथा अतिचंचल प्रबलतासे चलनेवाले आलातचक्रोंके द्वारा सूर्य्यचन्द्रमण्डलको संपादन करनेवाला दावानल प्रदीप्त हुआ ॥ ४२ ॥ दग्धमेघोंसे धूलिपूर्ण धूमरूपी कृष्णकं-बलोंसे तथा अतिनील दिशारूपी आवरणोंसे आकाशका आच्छादक, तथा कन्दरारूपी गृहोंसे निःसृत सिंहोंकी गर्जनाओंसे तर्जित महाचटचटाशब्दोंसे दिगन्तकेभी प्राणियोंको बधिर करनेवाला दावानल (बनका अग्नि) प्रदीप्त हुवा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

तालीतमालमालानांगतानामग्निवृक्षताम् ॥ पातैरुत्पातवद्भयभ्रकवत्करकैर्घनः ॥ ४५ ॥ दूरदेशगतैर्दृष्ट स्थिरसौदामनीधिया ॥ द्रवत्कनकनिष्यंदकुट्टिमंव्योमदर्शयन् ॥ ४६ ॥ कणैस्तारागणकांतैर्व्योम्निदिग्

णतांनयन् ॥ वक्षःस्थबालवनितानयनानंदनंदनः ॥ ४७ ॥ ज्वालाधमधमाशब्दप्रध्मातगगनोदरः ॥ दरीगृहविनिष्क्रांतभ्रांतोन्निद्रवनेचरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा अग्निरूपताको प्राप्त तालीतमालादि वृक्षोंके पतनोंसे अग्नि और मेघके उत्पातके तुल्य कोलाहल-शब्दोंसे वृद्धिको प्राप्त, और दूरदेशस्थ मनुष्योंको दृष्ट स्थिर विद्युत्की बुद्धिसे आकाशको द्रवभूत सुवर्णसे अट्टालिकाके सदृश दर्शाता हुवा बनमें अग्नि लगा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तथा अतिप्रदीप्त अग्निकणोंसे आकाशमें तारागणको द्विगुणित करता हुवा, आकाशके वक्षस्थलपर स्थित ज्वालारूपिणी बालवनिताके कटाक्षोंसे नेत्रोंको आनन्ददायक, ज्वालाके धम २ शब्दोंसे आकाशके उदरके शब्दोंसे पूर्ण करनेवाला, तथा कन्दरारूपी गृहोंसे निकले हुये बनचरोंको भ्रांत तथा निद्रारहित करनेवाला अग्नि बनमें प्रदीप्त हुआ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अर्धदग्धद्रवत्सिंहमृगव्याधविहंगमः ॥ क्वथत्सरःसरित्स्रोतोरंधितोग्रवनेचरः ॥ ४९ ॥ वलज्ज्वालाज्वलद्वालचमरीचारुचंचुरः ॥ दह्यमानवनप्राणिमेदोगंधावृतांबुदः ॥ ५० ॥ तेनकल्पाग्निकल्पेनवल्गतावनवह्निना ॥ सयुष्मदाश्रमोदग्धःसर्पेणेवप्रसर्पता ॥ ५१ ॥ व्याधउवाच ॥ तत्रतस्याग्निदाहस्यहेतुःकः प्राकृतोमुने ॥ तद्वनंतेबद्ववराःसर्वंनष्टंकथंसह ॥ ५२ ॥

अर्थ—तथा अर्द्धदग्ध, सिंह, व्याघ्र, मृग, व्याध तथा पक्षियोंको भगानेवाला तथा क्राथके समान चुरते हुये तडाग और नदी आदिके जलोंमें भयंकर व्याध, व्याघ्र आदि वनचरों और चलचरोंकोभी पकानेवाला, चारोंओरसे घेरती हुई प्रबलज्वालाओंमें बालचमरी नाम पशुओंके जलानेसे सुंदररूपधारी और जलतेहुये वनके प्राणियोंकी चर्बीसे गन्धसे आवृत किये हैं मेघ जिसने ऐसा अग्नि वनमें प्रदीप्त हुआ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस पूर्वोक्त प्रलयाग्निके समान भभकती हुई अग्निसे वह तुमारा आश्रम तुमारे तथा उस प्राणीके शरीरके साथ ऐसे भस्म होगया, जैसे दौडतेहुये सर्पके फुफकारसे ॥ ५१ ॥ व्याध बोला कि–हे मुनि ! उस प्राकृत अग्निके दाहमें क्या कारण है और जिसके हृदयमें आप प्रविष्ट थे उससे आदि लेके आपके सब ब्रह्मचार्यादि देह एकसाथहि क्यों भस्म हुये ॥ ५२ ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ संकल्पकमनस्पंदःसंकल्पादिक्षयोदये ॥ यथाहेतुर्निरास्पंदोचिराद्धित्रिजगत्तथा ॥ ५३ ॥ हृदयेचवनांतेचक्षोभाक्षोभेषुकारणम् ॥ यथास्पंदोऽचिरात्स्पंदस्तथात्रिजगतामिह ॥ ५४ ॥ धातुःसंकल्पनगरंजगत्तत्स्पंदनंत्विह ॥ प्रजोदयक्षयक्षोभवर्षावर्षादिकारणम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादिमानसोप्यस्यसोप्यन्यत्रचिदंबरे ॥ इत्यपर्यवसानेयंशांतैकाचिन्नभोगतिः ॥ ५६ ॥ चितिनभसिचिन्नभःश्रीः कचतीतिनिरामयाविदुषाम् ॥ ॥ मूर्खाणांतुयथैषायादृग्वातन्मयीहनसत् ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० परमोपदेशोनाम पंचाशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १५० ॥

अर्थ—मुनि बोले कि–हे व्याध ! जैसे नाश तथा उदयमें संकलपकरनेवाले पुरुषके मनका स्पन्द हेतु है, ऐसेही तीनों लोकके संकलपकरनेवाले ब्रह्माजीके शीघ्रप्रवृत्त मनका स्पन्दही त्रिलोक है और उनके मनका स्पन्दही त्रिलोकके क्षय तथा उत्पत्तिमें कारण है ॥ ५३ ॥ जैसे हृदयमें भय आदिसे क्षोभ तथा शान्तिमें मनका स्पन्दही कारण है ऐसेही तीन लोक तथा वनान्तमें क्षोभ तथा शान्तिमें हिरण्यगर्भके मनका स्पन्दही कारण है ॥ ५४ ॥ ब्रह्माका संकलपनगरही यह त्रिलोक है और उनके मनका स्पन्दही प्रजाके नाश, उदय, वर्षण, अवर्षण इत्यादिमें कारण है ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजीका मानससंकलपही इस समष्टित्रिलोकका कारण है, वह समष्टि त्रिलोकभी अन्यचिदाकाशमें कल्पित है और वहभी दूसरे चिदाकाशमें कल्पित है तथा वहभी दूसरेमें कल्पित है, इसप्रकार मायाशबलित चिदाकाशकी कल्पनाकी परंपरा अनन्त है ॥ ५६ ॥ और यथार्थमें तो चिदाकाशमें चिदाकाशकीही शोभा इस जगत्‌रूपसे स्फुरित होरही है, यह तत्वज्ञानियोंका विचार है और मूर्खोंकी यह जगत्‌मयी दृष्टि है वह सत् नहीं है ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अ० वि० श० परमोपदेशो नाम पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५० ॥

एकोनपंचादुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५१ ॥

आश्रम तथा शरीर आदिको दग्धकारक अग्निकी तथा भस्मकी वायुके द्वारा शान्ति और इसीसे स्वप्नमें जाग्रत्‌की स्थिति यह न्याय इस १५१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ अन्यमुनिरुवाच ॥ तत्रतेनगरंतानिगृहाणितरवश्वते ॥ क्षिप्रेणशुष्कतृणवत्सर्वंभस्मत्वमागतम् ॥ १ ॥ तत्रैवंभस्मतांप्राप्तेसुप्तेतेभवतस्तव ॥ तनूतथातिसंतापविदारितमहाशिले ॥ २ ॥ सशशामश नैर्वह्निर्निःशेषीकृतकाननः ॥ परिपीतार्णवोगस्त्यइवास्तंसमुपाययौ ॥ ३ ॥ तस्मिन्नस्तंगतेवह्नौतद्भस्मेद्धंसुशीतलम् ॥ दुधावकणशोवायुरशेषंपुष्पराशिवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—स्वप्नके मुनि व्याधके संवादकरनेवाले मुनिसे बोले-इस अग्निसे वहांका नगर, वे सब गृह और वृक्ष आदि सब क्षणमेंही शुष्कतृणके समान भस्म होगये ॥ १ ॥ इसप्रकार तुमारे आश्रममें अतिसंतापसे दोशिला विदीर्ण होगई और सुप्त दोनों (तुमारे तथा उस प्राणीके) शरीरभी भस्म होगये ॥ २ ॥ अनन्तर अगस्त्यऋषिसे पीत समुद्रके सदृश वह अग्नि सब वनको भस्मकरके शान्त होगया ॥ ३ ॥ उस अग्निके शान्त होनेपर प्रथम प्रदीप्त पश्चात् अति शीतल उस भस्मको वायु पुष्पोंकी राशिके सदृश कण २ उडालेगया ॥ ४ ॥

ततोनज्ञायतेनासीत्काश्रमःक्वतनूतथा ॥ क्वपेटकंबहूनांतत्स्वप्नपूजग्रितोयथा ॥ ५ ॥ अभावमुपयातेते यदेवंभवतस्तनू ॥ स्वपतस्तेभ्रमवतःसंविदेवविजृंभते ॥ ६ ॥ तस्मात्क्वतद्गलबिलंविराडात्मासचक्वते॥ दग्धोदग्धस्यसौजस्कःसौजस्कस्यैवदेहकः ॥ ७ ॥ लब्धवानसिनोतस्माद्वेतोर्देहद्वयंमुने ॥ अनंतेस्वप्नसंसारजाग्रतीहावतिष्ठसे ॥ ८ ॥

अर्थ—इसकारणसे यह नहीं भान होताहै कि वह आश्रम कहांगया, वे दोनों शरीरभी नहीं ज्ञात होते कहां गई और अनेकजनोंका निवासस्थान पेटारीके तुल्य वह नगरभी ऐसे नहीं भान होता जैसे जाग्रत् पुरुषको स्वप्नका नगर ॥ ५ ॥ इसप्रकार तुमारा तथा उस प्राणीका शरीर अभावको जब प्राप्तहुवा तब तुम स्वप्नके भ्रमसे ग्रस्त थे और अब इस स्वप्नमयी शरीररूपसे केवल तुमारी संवित् स्फुरित होरहीहै ॥ ६ ॥ इसी (दग्ध होने) से उस प्राणीका गलरूपी बिल अब कहां और कहां वह तुमारा विराट्रूपप्राणी, क्योंकि हृदयके तेजसंयुक्त उस प्राणीका तेजसहितही शरीर दग्ध होगया ॥ ७ ॥ हे मुने ! इसी हेतुसे तुमने उन दोनों देहोंको नहीं पाया और अनंतस्वप्न संसाररूप जाग्रत्में से एक स्वप्नजाग्रत्में तुम स्थित हो ॥ ८ ॥

तदेवंस्वप्नएवायंजाग्रद्भावमुपागतः ॥ सर्वेवयमिहस्वप्नपुरुषास्तवसुव्रत ॥ ९ ॥ अस्माकंत्वंस्वप्ननरस्तवस्वप्ननरावयम् ॥ अयमेवचिदाकाशःसर्वदात्मात्मनिस्थितः ॥ १० ॥ ततःप्रभृतिसंपन्नोभवान्स्वप्ननरोभवन् ॥ जाग्रत्प्रत्ययवान्जाग्रन्नरोगार्हस्थ्यसुस्थितः ॥ ११ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंयथावृत्तमशेषतः ॥ अनुभूतंसुदृश्यंचध्यानेनैतचपश्यसि ॥ १२ ॥ इत्यादिमध्यरहितोयमनंतरूपःसंविद्घनःकचतिकांचनतापवत्खे ॥ तत्फाललोलवपुरात्मनिचिन्मयात्मासर्गात्मभिर्विकसितैरसितैःसितैश्च ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० अभावदर्शनंनामैकपंचाशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १५१ ॥

अर्थ—इसप्रकार यह स्वप्नही जाग्रत्भावको प्राप्त हुआ और हे सुव्रत ये सब हम तुमारे स्वप्नके पुरुष हैं ॥ ९ ॥ और हमारे स्वप्नपुरुष तुम हो, और तुमारे स्वप्नपुरुष हम सबहैं, परन्तु तीनों अवस्थाओंमें यह चिदाकाश अपने अद्वैतस्वभावसे निजचित्स्वरूप आत्मामें सदा एकहीहै ॥ १० ॥ प्रथम तुम स्वप्नके पुरुष होके अनन्तर जाग्रत्पुरुष हुये और गृहस्थधर्ममें स्थित हो ॥ ११ ॥ यह तुमारा संपूर्ण वृत्तान्त तुमसे मैंने कहदिया और यदि संदेह होतो स्वयं ध्यानसे इस अनुभव कियेहुये दृश्यको स्वयं तुम पूर्णरूपसे देखोगे ॥ १२ ॥ इसप्रकार आदिअन्तशून्य, चिद्घन तथा अनन्तरूप परमात्मा निज विशाल स्फुरणशक्तिसे चंचलशरीर धारणकरके सत्कर्मोंके तथा असत्कर्मोंके तथा सदसत् उभयरूप कर्मोंकी फलभूत सृष्टियोंके रूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० अभावदर्शनं नामैकपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५१ ॥

द्विपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५२ ॥

स्वप्नके पदार्थोंकी सत्यताकी आशंकाको अन्यमुनि निवारणकरके प्रस्तुत मुनिके व्याधके गुरुत्वका उपक्रम इस १५२ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ इत्युक्त्वासमुनिस्तत्रतूर्ष्णीस्वशयनेनिशि ॥ आसीद्विस्मयतश्चाहमथांसंप्रोह्यमान वत् ॥ १ ॥ ततश्चिरेणकालेनमयोक्तंतस्यसन्मुने ॥ एवंस्वप्नोविभोसर्वःसद्रूपइतिमेमतिः ॥ २ ॥ अन्य मुनिरुवाच ॥ सत्संभवतियत्रान्यत्तत्रेदसदितिस्मयः ॥ युक्तोयत्रत्वेतदेवसत्तात्पंतत्रकाप्रमा ॥ ३ ॥ यथास्वप्नस्तथैवायमादौसर्गोविभासते ॥ पृथ्व्यादिरहितोप्येषपृथ्व्यादिभिरवस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रस्तुत मुनि बोले कि–हे व्याध ! मेरे स्वप्नके मुनि इतना कहके अपने शयनस्थानपर मौन होगये और मैंभी विस्मयसे ऐसी दशामें प्राप्त हुआ मानो प्रबलपवन मुझे उडालिये जाताहै ॥ १ ॥ अनन्तर बहुतकाल पीछे मैंने उस महात्मामुनिसे कहा कि हे भगवन् ! मेरी बुद्धिमें तो यह आताहै कि स्वप्न सद्रूपही है ॥ २ ॥ अन्य मुनि बोले–कि यदि अन्य जाग्रत्वस्तु कोई सत् हो तब यह स्वप्न सत् है ऐसा विस्मय तुमारा युक्त हो, परन्तु जब यह जाग्रत् दृश्यही मिथ्या है तब उसके स्वप्नके सत्य होनेमें क्या प्रमाण है, अर्थात् जाग्रत्के मिथ्या होनेसे उसके स्वप्नका मिथ्यात्व स्वयं सिद्ध है ॥ ३ ॥ जैसे यह स्वप्न है ऐसेही सृष्टिभी आरंभमें भासती है, सृष्टि पृथिवीओंसे शून्य होनेपरभी पृथिवीआदिसहित भासती है ॥ ४ ॥

इत्यमद्यतनात्स्वप्नात्सर्गस्वप्नोमलात्मकः ॥ शृणुपुष्पकरपत्राक्षमुनेव्याधमहागुरो ॥ ५ ॥ अद्यदृष्टपदा र्थाभ्यांस्वप्नेस्वप्नवतोभवत् ॥ सर्गस्वप्नस्तुदृष्टार्थएवादौखेविराजते ॥ ६ ॥ एवंसत्स्वप्नइत्येवसंदिग्धमि ववक्षिकिम् ॥ स्फुटमप्यनुभूतंसत्स्वप्नध्यानोद्यमःकथम् ॥ ७ ॥ इदमित्थंयदाभोगिस्फुटंस्वप्नजगन्मुने॥ सदेवानुभत्येवतत्रसंदिग्धताकथम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसप्रकारसे दृश्यमान इस हमारे स्वप्नके सर्ग (सृष्टि) से भी जाग्रत्नामसे प्रसिद्ध स्वप्नमयसर्गकी सत्ता नहीं है. हे कमलपत्राक्ष ! व्याधके महागुरो इस विषयमें तुम उपपत्ति (कारण) सुनो ॥ ५ ॥ इससमयमें दृष्ट शब्द तथा अर्थसे बुद्धिमें संस्कार होनेसे रात्रिमें जो स्वप्नमें शब्दार्थका अनुभव तुमको हुआ इससे संस्कार आदि सामुग्रीसे उसकी सत्यताकी संभावना होतीहै, परन्तु सृष्टिकी आदिमें स्वप्नरूप सृष्टिमें शब्दार्थ पूर्वमें जो अनुभूत थे वेही चिदाकाशमें हैं, उसमें चिरकालसे प्रलयकालके व्यवधानसे पूर्व अनुभव संस्कार आदिके नष्ट होनेसे इससमयके स्वप्नकी अपेक्षाभी तुच्छ है, अर्थात् स्वप्नके पदार्थोंकी स्वप्नकालमें सत्ता तथा जाग्रत्में उनका स्मरण रहताहै और जाग्रत्के पदार्थ तो केवल जाग्रत्मेंही रहते हैं स्वप्नमें उनका स्मरणभी नहीं रहता इस हेतुसे स्वप्नसेभी तुच्छ हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकारसे जाग्रत्प्रपंचके अधिक मिथ्यात्व होनेसे स्वप्न सद्रूप मेरी बुद्धिमें भासताहै यह संदिग्ध वचन क्यों बोलतेहो और इस निज गृहादिको स्पष्ट अनुभवकरकेभी मेरे उपदेशसे पुनः तुमारा स्वप्नध्यानमें उद्यम कैसे हुआ, क्योंकि–कोईभी स्वप्नद्रष्टा स्वप्न मिथ्या है ऐसा अनुभव नहीं करता ॥ ७ ॥ और हे मुने ! इसप्रकार इस विशाल जगत्को तुम स्पष्ट सत्यरूपसे अनुभव करतेहो, इसके असत्यका संदेह तुमको कैसे हुआ ॥ ८ ॥

अथैवंवादिनस्तस्यवाक्यमाक्षिप्तवानहम् ॥ पृष्टवान्व्याधगुरुताकासौमेकथ्यतामिति ॥ ९ ॥ अन्यमु निरुवाच ॥ श्रूयतामिदमाख्यानमपरंकथयामिते ॥ संक्षेपेणमहाप्राज्ञनास्त्यंतोविस्तरस्यमे ॥ १० ॥ अस्म्यहंतावदादीर्घतपास्त्वमतिधार्मिकः ॥ श्रुत्वेदंमद्वचःसत्यमिहैवरतिमेष्यसि ॥ ११ ॥ इहस्थंमा मिमंत्वंचनत्यक्ष्यसिसपर्यया ॥ अहंभवद्भिःसहितोनिवत्स्यामीतिनिश्चयः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार जब वे मुनि कहरहेथे तब उनके वचनका अवरोध करके मैंने यह कहा कि–हे भगवन् आपने मुझे व्याधका गुरु कहा सो वह व्याधकी गुरुता क्या है सो मुझे कहिये ॥ ९ ॥ अन्य मुनि बोले कि–सुनो. यह तिसरा विचित्र आख्यान तुमसे संक्षेपसे कहताहुं क्योंकि मेरे विस्तारका अन्त नहीं है ॥ १० ॥ हे मुने ! जबतक तुम व्याधके गुरु होगे तबतक मैं दीर्घतपस्वीभी यहांही हुं, तुमभी बडे धर्मात्मा हो और मेरे वचनको सुनके तुम इसी गृहमें प्रसन्नताको प्राप्त होओगे ॥ ११ ॥ और मुझे यहांपर स्थित पूजा सत्कार आदिसे तुम त्यागोगे नहीं और मैं तुमारे साथ रहुंगा यह निश्चय है ॥ १२ ॥

साधोयातेषुवर्षेषुततःकतिपयेष्विह ॥ सर्वबंधुविनाशस्तेदुर्भिक्षेणभविष्यति ॥ १३ ॥ मत्तसीमांतसा मंतविग्रहेणतदैवच ॥ सर्वोगृहात्तनुप्राणिग्रामकोयंविनंक्ष्यति ॥ १४ ॥ ततोदुःखमजानंतौचिरमाश्वसि तौमिथः ॥ शांतौविदितवेद्यत्वात्समौसर्वार्थनिस्पृहौ ॥ १५ ॥ इहैवैकत्रकस्मिंश्चित्तरुखंडकजालके ॥ समाचारौनिवत्स्यावःशून्येचंद्ररवीयथा ॥१६॥ उत्पत्स्यतेत्वरण्येस्मिन्कालेनवनमुत्तमम् ॥ शालताल

लताजालवलिताखिलभूतलम् ॥ १७ ॥ तालीतमालदलतांडवमंडिताशंव्याकोशपद्मवनवंद्यविकासिद्रुक्षम् ॥ कूजच्चकोरचयचारुलतानिकुंजमुद्भासिनंदनमिवागतमंतरिक्षात् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० मुनिरात्रिसंकथावर्णनं नाम द्विपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५२ ॥

अर्थ—और हे साधो ! कुछवर्षोंके बीतनेपर तुमारे सब बंधुओंका दुर्भिक्षसे नाश होगा ॥ १३ ॥ और मदोन्मत्त सीमाके अन्तके छोटे राजाओंके परस्पर युद्धसे अल्पप्राणीयुक्त इस ग्रामसे सब भाग जांयगे ॥ १४ ॥ तब परस्पर एक दूसरेको धैर्य्य देते हुये, ज्ञानी होनेसे शान्त, सम तथा निस्पृह होके उत्तम आचरणयुक्त हम दोनों एकवृक्षके नीचे शून्यस्थानमें ऐसे निवास करेंगे जैसे चन्द्रमा और सूर्य्य ॥ १५ ॥ १६ ॥ तथा काल पाके हम दोनोंके निवाससे शाल, ताल, तमाल तथा उत्तम २ लताओंसे वेष्टित भूतलसहित यहांपर अतिरमणीय वन होगा ॥ १७ ॥ हे मुने ! ताली तथा तमाल आदिके पत्रोंसे दिशाओंको भूषित करनेवाला, विकसित कमलोंके वनोंसे सबको वन्दनीय प्रफुल्ल पुष्पोंसे पूर्णवृक्षोंसे शोभित तथा कूंजते हुये चकोरादि पक्षियोंके समूहोंसे पूर्ण रमणीय लताकुंजोंसे युक्त वह विकसित वन ऐसा भान होगा मानो आकाशसे नन्दनवनही आके प्राप्त हुआ है ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० विप० श० मुनिरात्रिसंकथावर्णनं नाम द्विपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५२ ॥

त्रिपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५३ ॥

व्याधके आगमनादिके कथनसे उसमें मुनिका गुरु होना, काल पाके उसको विज्ञान होना, तथा सबपदार्थोंकी आत्माके साथ एकताका वर्णन इत्यादि विषय इस १५३ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ अन्यमुनिरुवाच ॥ आवयोश्वरतोस्तस्मिन्वनेचिरतरंतपः ॥ मृगानुसरणश्रांतोमृगव्याधउपैष्यति ॥ १ ॥ तंत्वंस्वभावपुण्याभिःकथाभिर्बोधयिष्यसि ॥ तपस्तत्रैवविपिनेसविरक्तश्चरिष्यति ॥ २ ॥ ततस्तपस्विचर्याणामात्मज्ञानबुभुत्सया ॥ मध्येसस्वप्नजिज्ञासुःप्रक्ष्यतिस्वप्नसंकथाम् ॥ ३ ॥ कथयिष्यसितस्मैत्वमात्मज्ञानमखंडितम् ॥ स्वप्नाख्येनप्रसंगेनसोतोयोग्योभविष्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—अन्यमुनि बोले कि उस बनमें जब हमलोगोंको बहुतकाल तप करते होजायगा तब मृगके पीछे दौडते हुये थकित होकर एक मृगव्याध आवैगा ॥ १ ॥ और उसको तुम स्वाभावसेही पवित्रकथाओंसे उपदेश देओगे, वह तुमारे उपदेशसे विरक्त होके वहांही तप करैगा ॥ २ ॥ इसके पश्चात् तपके अभ्याससे शम, दमआदि साधनसंपत्तिके पश्चात् वह आत्मज्ञानकी इच्छासे स्वप्नकी कथा तुमसे पूंछेगा ॥ ३ ॥ और तुम स्वप्नके प्रसङ्गसे उसको पूर्ण आत्मज्ञानका कथन करोगे, और वह इस उपदेशसे योग्य होजायगा ॥ ४ ॥

इत्यनेनप्रकारेणगुरुस्तस्यभविष्यसि ॥ तेनतातमयोक्तोसिगिराव्याधगुरोइति ॥ ५ ॥ इतितेसर्वमाख्यातंयथायंसंसृतिभ्रमः ॥ यथाहंयादृशश्चत्वमिहयत्तेभविष्यति ॥ ६ ॥ इतितेनाहमुक्तःसन्विस्मयाकुलयाधिया ॥ तेनसार्धविमृश्यैतत्परंविस्मयमागतः ॥ ७ ॥ अथरात्र्यांव्यतीतायांसप्रभातेमहामुनिः ॥ तथासंपूजितोयेनतत्रैवरतिमाप्तवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसरीतिसे तुम उसके गुरु होओगे, इसहेतुसे हे प्रिय तुमको मैंने हे "व्याधगरो!" ऐसा संबोधन कियाहै ॥ ५ ॥ हे मुने! इसप्रकार संसारका भ्रम, यह जैसा है जैसा मैं हुं, जैसे तुम हो, और जो कुछ तुमको होगा मैंने कहदिया ॥ ६ ॥ हे व्याध ! इसप्रकार उस मुनिसे कथित मैं विस्मयसे व्याकुलबुद्धिसे इस दृश्यसमूहको उस मुनिकेसाथ विचारकर परमविस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् रात्रिके बीतनेपर जब प्रातःकाल हुआ तब उस मुनिका उसीप्रकार मैंने पूजा सत्कार किया, इसीसे वहांही उनका चित्त लगगया ॥ ८ ॥

अनंतरंगृहेतस्मिंस्तस्मिन्ग्रामगृहेतथा ॥ स्थितावावांस्थिरमतीकृतभावौपरस्परम् ॥ ९ ॥ ततोवहतिकालोयमृतुसंवत्सरात्मकः ॥ स्थितोहमागतान्भावांस्त्यजन्गृह्णन्गिरिर्यथा ॥ १० ॥ नाभिवांछामिमरणंनाभिवांछामिजीवितम् ॥ यथास्थितोस्मितिष्ठामितथैवविगतज्वरम् ॥ ११ ॥ ततोविचारितंतत्रत्वन्मयादृश्यमंडलम् ॥ किंकारणमिदंतुस्यात्किमयंवेत्तिचेतसा ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उसी वनमें स्थित ग्रामके गृहमें परस्पर स्नेहमें बद्ध तथा स्थिरचित्त हम दोनों रहनेलगे ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् ऋतु तथा वर्ष आदिरूप यह काल बीतनेलगा और मैं इष्ट तथा अनिष्टसे मिलित पदार्थोंको ग्रहण तथा त्याग करते ऐसे स्थित था जैसे दावाग्नि तथा वृष्टिआदिको पर्वत ॥ १० ॥ न तो मैं मरणकी आकांक्षा करताथा, न जीवन की, किन्तु जिस दशामें था उसीमें संतापरहित होके वर्तमान रहताथा ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् मैंने इस दृश्यमंडलके विषयमें विचार किया कि यह क्या है, और आत्मा इसको चित्तमें क्या जानताहै, इसका कारण क्या है ॥१२॥

कोयंपदार्थसंघातःकिंनामैतस्यकारणम् ॥ अस्त्यस्मिन्स्वप्नसंदर्शेचिद्व्योमैकस्वरूपिणि ॥ १३ ॥ द्यौः क्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ चिन्मात्रनभएवैतेकचंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥ १४ ॥ चिच्चंद्रिका चतुर्दिक्कमवभासंतनोतियत् ॥ तदिदंजगदाभातिचित्रमप्रतिघात्मखे ॥ १५ ॥ नेमेद्रयोनचेयंभूर्नेदंखं नायमप्यहम् ॥ चिन्मात्रव्योमकचनमिदमाभातिकेवलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यह पदार्थसमूह क्या है, इसका निमित्त क्या है, केवल चिदाकाशरूप स्वप्नमय इस दृश्यमें क्या है ॥ १३ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, पर्वत, दिशा, तथा नदियां इत्यादिरूपसे निज चिद्घनस्वभावमें चिदाकाशही स्फुरित होताहै ॥ १४ ॥ चित्स्वरूप चन्द्रिका (चांदनी) जो चारोंदिशामें अपने स्वरूपका प्रकाश करती है, वही (चित्प्रकाश) चिदाकाशमें स्थूलताके अभावसे प्रतिघातरहित जगत् भान होताहै ॥ १५ ॥ यथार्थमें न ये पर्वत हैं, न यह पृथिवी है, न यह विशाल आकाश है और इस शरीर इन्द्रिय आदिरूपसे मैंभी नहीं हुं किन्तु यह सब केवल चिदाकाशका स्फुरणमात्र है ॥ १६ ॥

पदार्थजातस्यास्यस्यात्किंनामबतकारणम् ॥ पिंडग्रहेहेतुनातुविनाकोप्यर्थसंभवः ॥ १७ ॥ भ्रांतिमात्रमिदंचेत्स्याद्भ्रांतेःकिंनामकारणम् ॥ द्रष्टामंताचकोभ्रांतेःकारणंवाककीदृशम् ॥ १८ ॥ यस्याहमवसंसंविन्मात्रकंहृदयौजसि ॥ असौमयासहगतःकिलाशेषेणभस्मसात् ॥ १९ ॥ तस्मादिदमनाद्यंतंचिदाभामात्रमंबरम् ॥ अकर्तृकर्मकरणंरूपंचिद्घनमक्रमम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस पदार्थसमूहका कारण क्या होसकताहै, क्योंकि इस पिंडग्रह तथा उसके हेतुके बिना इस पदार्थसमूहका असंभव है ॥ १७ ॥ कदाचित् इसको भ्रांति कहैं तो वहभी अनिर्वचनीय है, क्योंकि भ्रांतिका कारण क्या है, उस भ्रांतिका द्रष्टा तथा मनन करनेवाला कौन कैसा और कहांपर है ॥ १८ ॥ संवित्मात्र मैं जिस प्राणीके तेजोमय हृदयमें निवास करताथा वह प्राणीभी मेरे देहकेसाथ भस्म होगया ॥ १९ ॥ इस हेतुसे उस प्राणी तथा मेरे देहादिके असंभव होनेसे यह सब दृश्यमंडल कर्तारहित, कर्मशून्य तथा क्रमवर्जित केवल अनादि अनन्त चिद्घनमात्र चिदाकाशकी प्रभामात्र है अन्य कुछ नहीं ॥ २० ॥

इदंचिद्व्योमकचनंघटावटपटादिकम् ॥ स्फुटंकुतइवाकारिघटावटपटाद्यतः ॥ २१ ॥ नापिचिन्मात्रकचनंचिन्मात्रंव्योमकेवलम् ॥ तस्यकिंकचनंकीदृक्कथंकचतिकिंनभः ॥ २२ ॥ अयंफेनश्चिदंभोधेःकिमस्यकचनंनवम् ॥ कचत्स्वभावएवायमनंतश्चिद्घनःस्थितः ॥ २३ ॥ चिन्मात्रकचनंशुद्धंब्रह्मबृंहितच्चिद्घनम् ॥ इदंजगदिवाभातिकदृश्यंद्रष्टृताकुतः ॥ २४ ॥ आद्यंतवर्जितममेयमनादिमध्यमेकंविभुं विगतकारणकार्यसत्त्वम् ॥ सत्तामयंभुवनशैलदिगंतनानानानात्मकंकिमपिचेतनमेवसर्वम् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० सर्वैकात्म्यप्रतिपादनं नाम त्रिपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५३ ॥

अर्थ—घट, पट, कुड्य, कुसूलआदिरूपसे यह स्फुरण चिदाकाशमात्रही है, क्योंकि घटपटआदि स्पष्ट आकारधारी कहांसे होसकते हैं ॥ २१ ॥ और चिन्मात्रका स्फुरण है यह भेदबुद्धिभी राहुका शिर इस कथनके तुल्य केवल विकल्पमात्रही है, किन्तु केवल चिदाकाशही है, क्योंकि "चित्का स्फुरण" इस षष्ठीसमासप्रयोजक भेद तथा उसके संबन्धकी जब सिद्धि नहीं है तब उस चिदाकाशका स्फुरण कैसे होसकताहै, और कैसे चिदाकाश स्फुरित होताहै ॥ २२ ॥ समुद्रफेनवत् यह जगत् चिद्रूप समुद्रका फेन है, इसका नूतन स्फुरण वा प्रकाश क्या होसकताहै, यह अनन्तचिद्घन परमात्मा स्फुरण वा प्रकाशस्वभावहीसे स्थितहै ॥ २३ ॥ शुद्ध सन्मात्रही बुद्धिको प्राप्त चिद्घन ब्रह्म है, उसी चिन्मात्रका स्फुरण यह जगत् भासताहै तब कहां तो पृथक् दृश्य है, तथा कहां द्रष्टृता है ॥ २४ ॥ देशकाल तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्यहोनेसे आदिअन्तमध्यरहित, एक, अप्रमेय, व्यापक, कार्य्यकारणवर्जित

तथा निजसत्ताप्रधान परमात्माही एकरूप होकेभी भुवनपर्वतादिरूपसे स्फुरित होताहै, यथार्थमें यह मन वाणीका अविषय चिन्मात्रही है ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० सर्वैकात्म्यप्रतिपादनं नाम त्रिपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५३ ॥

चतुष्पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५४ ॥

विचारसे उत्पन्न निजकी जीवन्मुक्तिकी स्थिति और अभ्यासहीन व्याधकी अनवस्थिति इस १५४ के सर्गमें मुनिने वर्णन की है ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ इतिनिर्णीयदृश्येस्मिन्स्थितोस्मिविगतज्वरः ॥ वीतरागोनिराशंकोनिर्वाणोनिरहंकृतिः ॥ १ ॥ निराधारोनिराधेयोनिर्मानोनिरुपाश्रयः ॥ स्वभावस्थःस्वयंशांतःसर्गात्मासर्वथोदितः ॥ २ ॥ यथाप्राप्तस्यकर्तास्मिनकर्तास्मिकदाचन ॥ स्वयमेवह्रियोव्योमकर्तृतातस्यकीदृशी ॥३॥ द्यौःक्षमावायु राकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ इत्येकात्मनभःसर्वंभूतजालैकचिद्वपुः ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले—कि हे व्याध ! ऐसा निर्णयकरके इस दृश्यमें संतापरहित, वीतराग, शंकाशून्य, अभिज्ञानरहित तथा निर्वाण (शान्त) स्वरूप मैं स्थित हुं ॥ १ ॥ तथा आधार और आधेयसंबन्धसेरहित, मानवर्जित, आश्रयशून्य, निज चित्स्वभावमें स्थित, स्वयं शांत और सर्वथा उदित सृष्टिरूप मैं स्थित हुं ॥ २ ॥ यथाप्राप्तकार्य्यका कर्ता और यथार्थमें किसीकार्य्यका कर्ता नहीं हुं, क्योंकि जो स्वयं निष्क्रिय चिदाकाशरूप है उसकी कर्तृता कैसी ! ॥ ३ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, तथा दिशाआदि सब प्राणीसमूह एक सत् चिदाकाशही है ॥ ४ ॥

शाम्याम्यिपरिनिर्वामिसुखमास्थेचकेवलम् ॥ नविधिप्रतिषेधोमेनमेबाह्यंनमेंतरम् ॥ ५ ॥ इतिमेतिष्ठतइह यथासंस्थानसंस्थितेः ॥ अद्यायंत्वमनुप्राप्तःकाकतालीयवत्पुरः ॥ ६ ॥ इतितेसर्वमाख्यातंयथास्वप्नो यथावयम् ॥ यथाजगद्यथाचत्वंयथादृश्यमिदंतथा ॥ ७ ॥ त्वंचयादृग्दृश्यमिदंयथादृश्यमिदंपुरः ॥ यथाभावायथाब्रह्मयथेमाजनताःपुरः ॥ ८ ॥ एतद्बुद्ध्वाभवाञ्छांतोमिथ्यालुब्धकलुब्धक ॥ शांतैवैव मियंसत्ताचिन्मात्रव्योमरूपिणी ॥ ९ ॥

अर्थ—मैं शान्त हुं, सबओरसे तृप्त हुं, केवल निजसुस्वरूपमें स्थित हुं, न मुझे विधि है, न निषेध है और न बाह्य है न आभ्यन्तरहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार जैसी यह स्थिति है उसीमें स्थित मेरे संमुख तुम इससमय काकतालीयन्यायसे (अकस्मात्) प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ इसरीतिसे जैसा स्वप्न है, जैसे हम सब हैं, जैसा यह जगत् हैं, जैसे तुम हो और जैसे इस दृश्यको देखतेहैं वह संपूर्ण वृत्तान्त तुमसे मैंने कहा ॥ ७ ॥ और तुम इस प्रपंचके द्रष्टा, देह, इन्द्रियआदि आध्यात्मिक दृश्य, यह संमुख स्थित पृथिवीआदि दृश्य, यह संमुख वर्तमान जनसमूह, इनमें राग, द्वेष, त्याग तथा ग्रहणआदि भावना और ब्रह्म, इन सबको जैसे हैं वैसेही पूर्णरीतिसे जानकर हे मिथ्याव्याध ! तुमभी निजस्वरूपमें शान्तहोओगे, क्योंकि इस सब (द्रष्टाआदि) की सत्ता केवल चिन्मात्र आकाशरूपही है, अतएव यह स्वयं शान्तहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

स्वयमाभातिनिर्वाणनैववाभातिकिंचन ॥ लुब्धकउवाच ॥ एवंचेत्तदहंत्वंचसर्वेवाविबुधादयः ॥१०॥ सर्वएवमिथःस्वप्नपुरुषाःसदसन्मयाः॥ मुनिरुवाच॥ एवमेतदिदंसर्वमन्योन्यंस्वप्नवत्स्थितम्॥११॥ अन्योन्यमात्मनितथासदसच्चानुभूयते ॥ दृश्यंयेनयथाबुद्धंतथातेनानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—यह चित्सत्ता निर्वाण (शांत) रूप स्वयं भासती है, अथवा कुछ नहीं भासती, अर्थात् सब दृश्य सर्वथा भान न होनाही आत्मसत्ताकी शान्तिमयसत्ताहै. व्याध बोला—कि हे भगवन् ! यदि देव, मनुष्य, तिर्य्यग् तथा स्थावरआदि सब स्वप्नमय हैं तब तुम, हम, तथा सब इन्द्रादिदेवभी ॥ १० ॥ सब परस्पर सद् असन्मय एकदूसरेके स्वप्नपुरुषही हैं. मुनि बोले—कि हां यह ऐसाही है परस्पर एकदूसरेको स्वप्नरूपही यह जगत् स्थितहै ॥ ११ ॥ सब किसीको आत्माके विषयमें तो सत् और अन्यपदार्थोंके विषयमें असत्पदार्थोंकाही अनुभव होताहै, इस दृश्यके जिस उपाधियुक्त चिदाभासने जहां जैसा जानाहै वहां उस चिदाभासआत्माको वैसाही निश्चय होताहै ॥ १२ ॥

नानैकंवस्त्वतोनेकंनसन्नासन्नमध्यगम्॥ जाग्रतिस्वप्नगरमिववेदनमात्रकम्॥ १३॥ अदृष्टपूर्वदूरस्थ दृश्यमानपुरोपमम्॥ इतितेसर्वमाख्यातंबोधितोसिनिरंतरम्॥ १४॥ स्वयंप्राज्ञोसिजानासियथेच्छसि तथाकुरु॥ एवंप्रबोधितस्यापितवव्याधमतेमतिः॥१५॥ क्षणंप्रबोधविश्रांतानविश्रांतापरेपदे॥ नाभ्या सेनविनाबोधएवयातिमनोहृदि॥ १६॥ परांपरिणतिंप्राज्ञदारुणीवांबुधारणे॥ अभ्यासाद्बोधविश्रांतौ गुरुशास्त्रैकसेवनात्॥ द्वैताद्वैतदृशोःशांत्यानिर्वाणंचित्तमुच्यते॥ १७॥ निर्मानमोहाजितसंगदोषाअ ध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाःपदमव्ययंतत्॥ १८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० यथाभूतार्थवर्णनं नाम चतुष्पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः॥ १५४॥

अर्थ—यह जगत् अनेकभी नहीं है, एकभी नहीं है, एकानेकभी नहीं है, ऐसेही सद्, असत् तथा सदसद्रूपभी नहीं है, जैसे एकही घट कपाल कपालिकासे परमाणुपर्य्यन्त अवयवसमूहोंसे अनेक और एकत्वभावसे एक भासताहै यथार्थमें कुछ नहीं है, इसमें नानारूप देखनेवालोंको एक असत् है, एकरूपद्रष्टाओंको अनेकत्व असत् है, दोनों स्वरूप देखनेवालोंको सत् असत् पाक्षिक है और तत्त्वज्ञानियोंको जाग्रत्में स्वप्ननगरके तुल्य सब अनुभवमात्रही है केवल अनुभवरूपही सब भासताहै॥ १३॥ और तत्त्वज्ञानियोंको यह जगत् पूर्व अदृष्ट दूरस्थनगरके सदृश भासताहै इसरीतिसे तुमसे सब कुछ मैंने कहा और निरंतर बोधित किया॥ १४॥ अब तुम स्वयं विद्वान् हो जैसी इच्छा हो वैसा करो. परंतु हे व्याध! इसप्रकार तुम मुझसे बोधितभी हो तथापि तुमारी बुद्धि निज अभिमत जगत्के सत्यत्वभ्रममें विश्रान्त है॥ १५॥ नकि परमपदमें विश्रांत है, क्योंकि इसप्रकारका आत्मबोध अभ्यासकी परम परिणतिके विना हृदयमें ऐसे नहीं जाता जैसे काष्ठमें छेदनभेदनादि कमंडलरूप परिणामके विना जलका धारण नहीं होता. और दृढ अभ्याससे बोधके चित्तमें स्थिर होनेपर तथा द्वैताद्वैतदृष्टिके शान्त होनेपर चित्त निर्वाण (शान्त) कहाताहै॥ १६॥ १७॥ क्योंकि आभ्यन्तरसे मानमोहरहित, बाहर संगके दोषोंको जीतनेवाले, बाह्याभ्यन्तर नित्य आत्मामें लीन, पूर्णानन्द आत्मलाभ होनेसे अन्यकामनाओंसे रहित तथा सुखदुःखादिद्वन्द्वरहित तत्वज्ञानी परमपद निर्वाणको जाते (अनुभव करते) हैं॥ १८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अ० वि० श० यथाभूतार्थवर्णनं नाम चतुःपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः॥ १५४॥

पंचपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः॥ १५५॥

व्याधकी मूढतपस्यासे अतिक्लेशसे ब्रह्माके वरदानसे आकाशमें गति, शरीरकी वृद्धि, तथा मरणभी इस १५५ के सर्गमें मुनिने वर्णनकियाहै॥

अग्निरुवाच॥ इत्याकर्ण्याथसव्याधस्तदातस्मिन्वनांतरे॥ आसीच्चित्रकृताकारइवविस्मयमंथरः॥१॥ नविश्रामचेतोस्यस्वाभ्यासेनविनापदे॥ आसीदुद्भ्रांतइवसप्रोह्यमानइवार्णवे॥२॥ आरूढइववाचक्रे चक्रेणतपसाहृतः॥ नक्रेणेवसमाक्रांतःपराक्रमविवर्जितः॥ ३॥ किमेतत्स्यादुतान्यत्स्यान्निर्वाणमि तिसंशयात्॥ नाध्यगच्छदसौशांतिंमूर्खोयौवनवानिव॥ ४॥

अर्थ—अग्नि बोले—कि हे दशरथ तथा अन्य सभ्य! इस वृत्तान्तको सुनकर वह व्याध उस वनके मध्यमें विस्मयसे चित्रलिखित तथा प्रतिमाकेसमान स्तब्ध होगया॥ १॥ और निज अभ्यासकेविना उसका चित्त परमपदमें विश्रामको नहीं प्राप्त हुआ किन्तु समुद्रमें तरंगोंसे वाहितके तुल्य उद्भ्रांत होगया॥ २॥ चक्रमें आरूढके सदृश, किसी सिद्धतपस्वी वा निजतपोबलसे अपहारितकेसमान और जलाशयमें मगरसे ग्रसितहोनेके तुल्य पराक्रमसे रहितहोगया॥ ३॥ जैसा मुनि कहतेहैं वह सत्य निर्वाण है वा नहीं है इस संशयसे वह मूर्ख युवाके सदृश शान्तिको नहीं प्राप्त हुआ॥ ४॥

अविद्याकृतमेवेदंदृश्यमित्येवचिंतयन्॥ अविद्याजगदित्येषानायातिनिपुणंहृदि॥ ५॥ कियदंतमिदं दृश्यंस्यात्पश्याम्येतदादितः॥ दूरतोर्ध्वप्रमाणेनतपोलब्धशरीरकः॥ ६॥ भावाभावात्मनोनित्यम स्यांतेस्थीयतेसुखम्॥ तस्मादाकाशमप्यस्तियत्रनोतत्रयाम्यहम्॥ ७॥ इतिनिर्णीयहृदयेमूर्खएवबभू वसः॥ गतंतादृशमप्युक्तंविनाभ्यासेनभस्मनि॥ ८॥

अर्थ—यह दृश्य अविद्याजनित है इसका चिन्तन करतेहुये, यह जगत् अविद्यारूप है यह पदार्थ ठीक २ हृदयमें आरूढ नहीं हुआ ॥ ५ ॥ भाव तथा अभावरूप यह दृश्य कहांतक है यह विषय तपसे महाप्रमाण शरीर प्राप्तकरके पृथिवीसे लेके ऊपरतक मैं देखूंगा ॥ ६ ॥ भाव अभावमय इस दृश्यके अन्तमें जहां आकाशभी नहीं है उस नित्य सुखमें मैं स्थितहोऊंगा ॥ ७ ॥ इसप्रकार निर्णयकरकेभी वह हृदयमें मूर्खही रहा, क्योंकि अतिविशाल दृष्टान्तोंकेसाथ मुनिके कथनसेभी अभ्यासके विना उसको ज्ञान नहीं हुआ, वह कथन भस्ममें हवनके तुल्य उसको हुआ ॥ ८ ॥

ततस्ततःप्रभृत्येवतेनैवमुनिभिःसह ॥ लुब्धकत्वंपरित्यज्यतपश्चरितुमुद्यतः ॥ ९ ॥ तस्मिन्जगतितैर्भावैस्तैःसमंनिवसन्सदा ॥ बहून्यब्दसहस्राणिचकारसुमहत्तपः ॥ १० ॥ तपःकुर्वन्कदाचित्स पुनःपप्रच्छतंमुनिम् ॥ कदास्यादात्मविश्रांतिर्ममेत्याहमुनिस्ततः ॥ ११ ॥ मुनिरुवाच ॥ ज्ञानंतदुपदिष्टंतेजीर्णदार्वल्पकाग्निवत् ॥ संस्थितंहृदयेकिंतुदाह्यमाक्रम्यनोचितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—परन्तु उससमयसे लेके उस निर्णयसे मुनियोंकेसाथ व्याधत्व त्यागकरके तपकरनेको उद्यतहुआ ॥ ९ ॥ उस संसारमें उन उत्तमभावोंकेसाथ उन मुनियोंकेसाथ निवास करतेहुये अनेक सहस्रवर्ष महातप उस व्याधने किया ॥ १० ॥ तप करतेहुये उस मुनिसे पुनः उसने पूंछा कि उपद्रवशून्य आत्मामें मेरी विश्रान्ति कब होगी, तब मुनि उससे बोले ॥ ११ ॥ मुनि बोले—कि तुमको जो ज्ञानका उपदेश मैंने कियाहै वह जीर्ण इन्धनमें अल्प अग्निके सदृश तुमारे हृदयमें स्थितहै, यद्यपि वह दग्धकरनेमें समर्थहै तथापि दाह्य दृश्यको आक्रमणकरके स्थित नहीं है किन्तु जन्मान्तरमें प्रदीप्त होकर दृश्यको भस्म करेगा ॥ १२ ॥

नाभ्यासेनविनाज्ञानेशिवेविश्रांतवानसि ॥ अभ्यासेनतुकालेनभृशंविश्रांतिमेष्यसि ॥ १३ ॥ भविष्यदिदमात्मीयमथाकर्णयनिर्णयम् ॥ ममवर्णयतःकर्णभूषणंसुतलाद्भुतम् ॥ १४ ॥ संस्तुतानवबुद्धात्मा ज्ञानसारतयानया ॥ दोलायमानसंवित्त्वंनमूर्खोनचपंडितः ॥ १५ ॥ अविद्यारूपमाभोगिकिंप्रमाणमिदंजगत् ॥ स्यादित्यात्मविकल्पेनतपस्त्वंकर्तुमुद्यतः ॥ १६ ॥

अर्थ—अभ्यासके बिना आत्मज्ञानमें तुमको विश्राम नहीं मिला और चिरकालमें अभ्यासकेद्वारा पूर्णविश्रामको प्राप्त होओगे ॥ १३ ॥ अब तुम अपना अतिअद्भुत तथा कर्णका भूषण भूत भविष्यत् वृत्तान्त मुझसे सुनो मैं वर्णन करताहुं ॥ १४ ॥ विद्वानोंमें प्रसिद्ध उत्तम सारभूत तत्वज्ञानसे तुमने आत्माको नहीं जाना, इसीसे तुम संदिग्धचित्त हो, न तो तुम पण्डित हो और न सर्वथा मूर्खही हो ॥ १५ ॥ अविद्यारूप इस विशालजगत्का कितना प्रमाण है, इस निजमनोरथकी कल्पनामात्रसे तप करनेमें उद्यत हुयेहो ॥ १६ ॥

इत्थंतपस्त्वयाघोरंकार्यंयुगशतंपृथु ॥ परमेष्ठीततस्तुष्टस्त्वामुपैष्यतिसामरः ॥ १७ ॥ मार्गयिष्यसि तस्यत्वंवरदस्यवरंवर ॥ इदमुद्दामदौरात्म्यान्निजंसंदेहसंशयम् ॥ १८ ॥ देवायंदृश्यरूपेस्मिन्दृष्टाविद्याभ्रमेसति ॥ क्वचिदादर्शवन्नास्तिप्रतिबिंबमलोज्झितः ॥ १९ ॥ चिद्व्योपदर्पणस्यास्यपरमाण्वाकृतेरपि ॥ अंतस्थस्यैववायत्रतत्रेदंप्रतिबिंबति ॥ २० ॥

अर्थ—इसी रीतिसे तुम अनेक जन्मोंमें शतयुगपर्य्यन्त घोर तप करोगे तब देवताओंसहित ब्रह्माजी तुमारे निकट आवेंगे ॥ १७ ॥ तब तुम उस वरदायक ब्रह्माजीके समीप निजप्रचंड दुष्टस्वभावसे अपने मनोरथसे कल्पित संशयग्रस्त वरदानकी प्रार्थना करोगे ॥ १८ ॥ तुम प्रार्थना करोगे कि हे विधे! अविद्यारूप भ्रमसहित इससंसाररूप दृश्यके ज्ञात होनेपर दर्पणके समान प्रतिबिंबरूप मलसेरहित कोई प्रदेश नहीं है जहांपर विक्षेपरहित मेरी स्थिति हो ॥ १९ ॥ क्योंकि परमाणुके सदृशभी सूक्ष्म चिद्रूप दर्पण जहां स्थितहै वहांही उसके भीतर यह जगत् प्रतिबिंबित होताहै ॥ २० ॥

तस्मात्कियदनंतंस्यादिदंदृश्यमनर्थकृत् ॥ तस्यपारेकियद्वास्यादाकाशंदृश्यमेवतत् ॥ २१ ॥ एवमर्थमहंज्ञातुमिमंसंप्रार्थयेवरम् ॥ शृणुदेवेश्वराविघ्नंतच्चैवाशुप्रयच्छमे ॥ २२ ॥ इयंस्वच्छंदमृत्युर्मेनीरोगास्तुतनुश्चिरम् ॥ गारुडेनचवेगेनसंयुताव्योमगामिनी ॥ २३ ॥ प्रतिनाडीकमेषातुवृद्धिंगच्छतुयोजनम् ॥ क्रमेणजगतोबाह्येभवत्वाकाशरूपिणी ॥ २४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! जब अविद्यासहित चित्में ही जगत्की स्थिति है तब अविद्याजनित यह दृश्य कहांतक है, और अविद्यारूप दृश्यके पार ब्रह्म कितनी दूर कहांतक है, सो संसारशून्य आकाशके तुल्य अविद्यारहित ब्रह्मको मैं अवश्य देखना चाहताहुं ॥ २१ ॥ हे देवोंके ईश्वर! इस विषयको प्रत्यक्ष देखनेके अर्थ आपसे इस (भाविष्यत्) वरके लिये प्रार्थना करताहुं, आप मेरी प्रार्थनाको सुनिये, तथा शीघ्रही मुझे अभिलषित वर दीजिये ॥ २२ ॥ हे भगवन्!

मेरी मृत्यु इच्छाके अनुकूल हो, मेरा शरीर रोगरहित तथा गरुडकेसमान वेगयुक्त आकाशगामीनी हो ॥ २३ ॥ तथा यह मेरा शरीर प्रतिक्षण तथा प्रत्येक अङ्गमें एकयोजन बढे, इसप्रकार कालके क्रमसे बढते २ तीनोलोकसे बाहर निकलजावै, और आकाशके तुल्य यह विशालरूप होजाय ॥ २४ ॥

साकाशस्यास्यदृश्यस्यलभेयपरमेश्वर ॥ अंतमित्थमनंतस्यपरमोस्त्विवतिमेवरः ॥ २५ ॥ इतिसाधो त्वयाप्रोक्तेदेवदेवोवरंप्रभुः ॥ एवमस्तुतवेत्युक्त्वायास्यत्यंतर्द्धिमीश्वरः ॥ २६ ॥ गतेतस्मिन्महादेवेदेवैःसहदिवस्पतौ ॥ तपसातिकृशोदेहश्चंद्रकांतिर्भविष्यति ॥ २७ ॥ मामापृच्छन्नमस्कृत्यतस्मिन्नेवक्षणेततः ॥ प्लुतिमेष्यतिसव्योम्निचित्तस्थार्थदिदृक्षया ॥ २८ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! इसप्रकार आकाशसहित इस दृश्यसमूहका अन्त मैं पाऊं यह उत्तम वरदान मुझे दीजिये ॥२५॥ हे साधो ! ऐसा जब तुम कहोगे तब देवोंके देव भगवान् ब्रह्माजी "तुमारा वांछित वरदान ऐसाही तुमको हो" यह कहके लोप होजांयगे ॥ २६ ॥ देवताओंके स्वामी महान् ब्रह्माजी जब देवोंके साथ चलेजांयगे तब तपसे कृश तुमारा देह चन्द्रमाकी कान्तिके सदृश दैदीप्य होजायगा ॥ २७ ॥ उस वरप्राप्तिके पश्चात् मुझे नमस्कारकरके तुमारा देह मनमें रहे पदार्थोंके देखनेकी इच्छासे मेरे आश्रमसे आकाशको उडेगा ॥ २८ ॥

द्वितीयइवशीतांशुर्द्वितीयइवभास्करः ॥ द्वितीयइववौर्वाग्निश्चंद्रार्कस्पर्धयोत्थितः ॥ २९ ॥ ततोगरुडवेगेनदृश्यस्यनभसस्तथा ॥ अंतंप्राप्तुंवहन्वेगाज्जगन्तःसरितामिव ॥ ३० ॥ जगतोंतेततोजस्त्रंततोवर्द्धिष्यतेवपुः ॥ कल्पांतमत्तार्णववन्निष्पारांबरपूरणम् ॥ ३१ ॥ द्रक्ष्यस्यथमहाव्योम्निवर्द्धमानोबृहद्वपुः ॥ सर्गान्निरर्गलाधारनिरंतगगनक्रमात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—चन्द्र तथा सूर्य्यसे स्पर्द्धाकरके आविर्भूतके सदृश तुमारा शरीर द्वितीय सूर्य्य, द्वितीय चन्द्र तथा द्वितीय वडवानलके तुल्य प्रकाशित होगा ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् दृश्य तथा आकाशका अन्त प्राप्त करनेकेलिये तुमारा शरीर गरुडके वेगसे चलता हुआ नदियोंके अन्तके समान त्रिलोकीके अन्तमें वृद्धिको प्राप्त होगा और उससमय सबके आधार अनंत आकाशको तभी सब ऋषियोंको विना रोकटोक आक्रमण करनेसे कल्पान्तमें अतिसंक्षुब्ध समुद्रके तुल्य आकाशमें बढते हुये अपने महाशरीरको तुम देखोगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

परमार्थमहाकाशशून्यतावातचक्रकान् ॥ स्वभावद्रवतोद्देशाच्चिदर्णवतरंगकान् ॥ ३३ ॥ संविद्घनेयथास्वप्नेपुराद्याभांतिखात्मकाः ॥ तथातदातवैष्यंतिसर्गवर्गानिर्गलाः ॥ ३४ ॥ विस्फुरंतिमहाव्योम्निपर्णौघाःक्षुभितानिलैः ॥ तथासर्गाननंतांस्त्वंद्रक्ष्यस्यक्षीणनिश्चयः ॥ ३५ ॥ सभासत्येक्षणरुचांयथाजालंसदप्यसत् ॥ जगदात्मतथाकाशसंविदांखेसदप्यसत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और परमार्थ ब्रह्मरूप महाचिदाकाशकी शून्यतामें वायुके चक्रके तुल्य तथा स्वभावसे द्रवताके उद्देशसे चिद्रूप समुद्रके तरंगोंके समान अनेक सृष्टियोंको तुम देखोगे ॥ ३३ ॥ और स्वप्नमें चिद्घन आत्मामें चिदाकाशरूपही अनेक नगर आदि जैसे भासते हैं ऐसेही उससमय तुमारे स्वरूपमें अनेक सृष्टियोंके समूह विनाप्रतिबंधके आके प्राप्त होंगे ॥ ३४ ॥ प्रचंडपवनसे महाकाशमें संचलित पत्रसमूहोंके समान अनेक सृष्टियोंको निश्चययुक्त तुम देखोगे ॥ ३५ ॥ जैसे प्रासादपर स्थित विचित्र झरोखोंसे देखनेमें अनुरागिणी स्त्रियोंको बाह्यदेशमें स्थित नृत्यसभा देखनेमें अच्छी लगती है और अनुरागरहित स्त्रियोंकी दृष्टिमें विद्यमानभी वह नृत्य असत्के तुल्य है ऐसेही तत्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें चिदाकाशमें विद्यमानभी जगत् असत्के समान है ॥ ३६ ॥

सर्वैर्वीजनदृष्टानांलग्नानामिंदुमंडले ॥ यादृग्जालंजगत्तादृक्स्थितेनन्यत्वमात्मनः ॥ ३७ ॥ पुनःसर्गः पुनर्व्योमपुनःसर्गःपुनर्नभः ॥ इत्येवंपश्यतस्तेत्रदीर्घकालःप्रयास्यति ॥ ३८ ॥ अथदीर्घेणकालेनप्रस्फुरन्सर्गपर्णके ॥ उद्वेगमेष्यसिव्योम्निमहामहिमनिस्वयम् ॥ ३९ ॥ उद्वेगमेष्यसिततस्तपसोनुभवन्फलम् ॥ निर्देक्ष्यसितदादेहमनंतांबरपूरकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे पृथिवीपर स्थित संपूर्णजनोंसे दृष्टभी चन्द्रमण्डलमें धूलिआदिका समूह चन्द्रमण्डलस्थजनोंकी दृष्टिमें अत्यन्त असत् है ऐसेही आत्मामें अभेदरूपसे स्थितभी जगत् तत्ववेत्ताकी दृष्टिमें सर्वथा असत् है ॥ ३७ ॥ इस पुनः २ आकाश तथा अनेक सृष्टिको तुमको देखते २ दीर्घकाल बीतजायगा ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् चिरकालतक सृष्टिरूपपत्रोंसे पूर्ण व्यक्ताकाशमें विचरतेहुये निजमहामाहिमा तुम स्वयं वैराग्यको प्राप्त होओगे ॥ ३९ ॥

उसके पश्चात् तपस्याके फलको अनुभव करतेहुये अनन्तआकाशको पूर्णकरनेवाले अपने शरीरको धारणकरनेमें वैराग्यको प्राप्त होओगे ॥ ४० ॥

किमिदंकुशरीरंमेभारभूतमितिस्थितम् ॥ मेर्वादिभूभृतांलक्षमपियस्मिंस्तृणायते ॥ ४१ ॥ देहोममाप्रमाणोयंव्याप्तंव्योममयाखिलम् ॥ पूरयामिखमद्यापिभाविनैवोपगम्यते ॥ ४२ ॥ अविद्याबतघोरेयमनंताचप्रमीयते ॥ मीयतेनचकेनापिब्रह्मज्ञानंसमंविना ॥ ४३ ॥ तमिमंसंत्यजाम्येवदेहमावितांतरम् ॥ नानेनकिंचिदाप्नोमिसाधुसच्छास्त्रसंगमम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—कि यह मेरा निन्दित शरीर, जिसमें लाखो मेरुआदि पर्वतभी तृणवत् हैं, भारभूत क्यों स्थितहै ? ॥ ४१ ॥ यह मेरा शरीर प्रमाणशून्य है, मैंने अपने देहसे समस्त आकाशको व्याप्त करलियाहै और अबभी आकाशको व्याप्त करताहुं, अद्यापि यह नहीं जानाजाता कि भविष्यत्में क्या होगा ॥ ४२ ॥ अहो ! कष्ट ! इस भयंकर अविद्याका अनुभव तथा प्रमाण मैं करताहुं, परन्तु सर्वत्र समानरूप ब्रह्मज्ञानकेविना इसका प्रमाण किसीसे नहीं होता ॥ ४३ ॥ इसलिये संपूर्णआकाशको आच्छदनकरनेवाले अपने इस देहको मैं त्यागताहुं, क्योंकि इस अपारदेहसे साधुसमागम वा अन्य कुछ मोक्षका साधन मैं नहीं प्राप्तकरसकता ॥ ४४ ॥

अनंतापारपर्यंतंनिरालंबांबरास्पदम् ॥ किंनामेदंशरीरंमेसुदुष्प्रापार्थसंगमम् ॥ ४५ ॥ इतिसंचिंत्यतंदेहंधारणांप्राणरेचनीम् ॥ कृत्वात्यक्ष्यसिसंभुक्तात्फलाच्छुष्कंयथाखगः ॥ ४६ ॥ कृत्वादेहपरित्यागंजीवःप्राणसमन्वितः ॥ व्योम्निस्थास्यतितेतस्मिन्वातात्सूक्ष्मोपिवातवत् ॥ ४७ ॥ छिन्नपक्षोमहामेरुरिवदेहःपतिष्यति ॥ तत्रभूलोकशैलादिसर्वंचूर्णीकरिष्यति ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनन्त अपारदेशतक विस्तृत, निराधार आकाशमें स्थित तथा दुष्प्राप श्रेष्ठ तत्ववेत्ताओंके सङ्गसे शून्य यह मेरा शरीर क्यों स्थितहै ? ॥ ४५ ॥ इसप्रकार विचारकरके प्राणको त्याग करने वा धारणाकरके अपने देहको तुम ऐसे त्यागोगे जैसे पक्षी दाडिमादि फलको सेवन करके उसके नीरस बीज त्वचा आदिको त्यागताहै. ॥ ४६ ॥ देहको त्यागकर प्राणसंयुक्त और वायुसेभी सूक्ष्म तुमारा जीव वायुकेसदृश आकाशमें स्थित रहेगा ॥ ४७ ॥ तब पक्षरहित महामेरुके सदृश तुमारा शरीर गिरेगा और वहां भूतलके पर्वतादि सबको वह चूर्ण करेगा ॥ ४८ ॥

शुष्काभगवतीदेहंतत्तदाभक्षयिष्यति ॥ समातृमंडलातेननिर्दोषाभूर्भविष्यति ॥ ४९ ॥ इत्यात्मोदंतमखिलंश्रुतवानसिसुव्रत ॥ तपस्तालीवनेकृत्वायथेच्छसितथाकुरु ॥ ५० ॥ व्याधउवाच ॥ अहोनुभगवन्दुःखंपरिभोक्तव्यमक्षयम् ॥ मयाव्यर्थमनर्थाययदर्थेनद्रुरर्थितम् ॥ ५१ ॥ विद्यतेकिंविभोकाचिद्युक्तिःसैषास्थितिर्वर ॥ अन्यथाभवितव्योर्थोयदिनास्तितदुच्यताम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—और रक्तशून्य शुष्क भगवती अपने मातृमंडलसहित पूर्वोक्तरीतिसे उस तुमारे महाशरूपदेहको भक्षणकरेगी उससे भूमि दोषरहित होगी ॥ ४९ ॥ हे सुव्रत ! यह तुमने अपना संपूर्णवृत्तान्त सुनलिया, अब ताडोंके वनमें तपकरके जो तुमारी इच्छा होसो करो ॥ ५० ॥ व्याध बोला—कि अहो ! हे भगवन् ! मुझे महादुःख अभी भोगनाहै, क्योंकि मैंने व्यर्थ अनर्थके लिये पुरुषार्थके भ्रमसे निजसंकल्पसे दुःखही संपादन किया ॥ ५१ ॥ हे विभो ! यह मेरी भविष्यत् स्थिति आपने कही, अब यह भवितव्यअर्थ जिससे औरप्रकारसे होजाय ऐसी कोई युक्ति है वा नहीं, वहभी आप कहिये ॥ ५२ ॥

मुनिरुवाच ॥ अवश्यंभवितव्योर्थोनकदाचनकेनचित् ॥ विधातुमन्यथाशक्यस्तन्नक्षरतियत्नतः ॥५३॥ वामावामशिरःपादविपर्ययविधौयथा ॥ पुंसोनविद्यतेशक्तिस्तथाभावान्यथास्थितौ ॥ ५४ ॥ ज्योतिःशास्त्रार्थविज्ञानैरिहभाव्यर्थवेदनम् ॥ भवत्यन्यदपूर्वंतुनकिंचनकदाचन ॥ ५५ ॥ जयंतिकर्माणिहिवेदनानियैःप्राक्तैरयतनान्युपेत्य ॥ शरीरदाहैरपिनिर्विकारसंविन्नयैर्ब्रह्मतयैवसुप्तम् ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० भाविसंपत्तिवर्णनं नाम पंचपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५५ ॥

अर्थ—मुनि बोले कि-हे साधो ! अवश्य भवितव्य अर्थ कभी कोई किसीप्रकारसे अन्यथा नहीं करसकता और वह इससमयके किसी यत्नसे नष्ट नहीं होता ॥ ५३ ॥ जैसे अपने देहमें स्थितभी वाम और दक्षिणभागके शिर तथा पादके विपर्य्यय करनेमें पुरुषकी शक्ति नहीं है, ऐसेही भावी अर्थके अन्यथा करनेमेंभी शक्ति नहीं है ॥ ५४ ॥ ज्योतिष-

शास्त्रोंके ज्ञानोंसे भावीअर्थोंका केवल प्रथमसे ज्ञानमात्र होताहै, परंतु उसमें कदाचित्भी कुछ अपूर्वता नहीं होती ॥ ९९ ॥ हे व्याध ! किन्तु जिन श्रेष्ठपुरुषोंने इससमय शमदमादि साधनोंको प्राप्तकरके ब्रह्मज्ञान संप्रापक श्रवण मनन आदि उपायोंसे तत्वज्ञानको प्राप्त होके ब्रह्मरूप होके जगत्के दर्शनके विषयमें शयन कियाहै वैही महापुरुष दुष्टसंकल्पोंसे अतिदुःखदायी कर्मोंको मूलसे उच्छिन्न करनेमें सर्वोपरि हैं, अर्थात् आत्मज्ञानीही भावीकर्मोंको तथा उनसे उत्पन्न सुखदुःखादिको जीतसकते हैं न कि अन्य ॥ ९६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे अ० वि० श० भाविसंपत्तिवर्णनं नाम पंचपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५५ ॥

षट्पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५६ ॥

वायुमें स्थित व्याधका जीव सिंधुराजा होकर विदूरथको मारकर मंत्रीके मुखसे अपना रहस्यतत्व सुनेगा यह विषय इस १५६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

व्याधउवाच ॥ अनंतरंहेभगवन्विततकाशवासिनः ॥ किंभविष्यतिमेतत्रदेहेऽधःपातिनिक्षितौ ॥ १ ॥ मुनिरुवाच ॥ शृणुष्वावहितस्तस्मिन्देहेतवपरिक्षते ॥ किंभविष्यतिभव्यात्मंस्तस्मिन्परमकांबरे॥२॥ देहेतस्मिन्परिभ्रष्टेजीवस्तुप्राणसंयुतः ॥ भविष्यत्यंबरेवातलवोव्याततरूपिणि ॥ ३ ॥ तस्मिन्वातलवेचेतोद्रक्ष्यंहृत्स्थंस्थितंपुरः ॥ स्फारंद्रक्ष्यतिभूपीठंभवान्स्वप्नेजगद्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ— व्याध बोला कि—हे भगवन् ! जब मेरा शरीर पृथिवीपर गिरजायगा उसके पश्चात् विशाल आकाशमें रहनेवाले मेरी (जीवकी) क्या दशा होगी ? ॥ १ ॥ मुनि बोले कि—हे साधो ! सावधान होके सुनो तुमारे उस शरीरके नष्ट होनेपर अव्यक्ताकाशमें स्थित तुमारे जीवकी क्या दशा होगी सो मैं कहताहुं ॥ २ ॥ उस तुमारे देहके नष्ट होनेपर प्राणसहित तुमारा जीव विशाल अव्यक्त आकाशमें अतिसूक्ष्मवायुके कणके तुल्य स्थित रहैगा ॥ ३ ॥ उसी सूक्ष्मवायुके कणके तुल्य जीवमें तुमारा अंतःकरण स्वांतस्थ वासनामय भूपीठको अर्थात् अन्तः विशाल जगत्को ऐसे देखेगा जैसे स्वप्नमें ॥ ४ ॥

महत्त्वाच्चित्तवृत्तेस्तुजीवोद्रक्ष्यतितेततः ॥ राजाहमस्मिभूपीठइतिसंकल्पितार्थभाक् ॥ ५ ॥ तत्रास्य सहसैवाशुप्रतिभोदेष्यतिस्वयम् ॥ अहमस्मिनृपःश्रीमान्सिंधुर्नाम्नातिमानितः ॥ ६ ॥ अष्टवर्षायमेराज्यंगतेपितरिकाननम् ॥ भुवश्चतुःसमुद्रायाःपित्रादत्तमुपागतम् ॥ ७ ॥ सीमांतेभूपतिःशत्रुर्विदूरथइतिश्रुतः ॥ विद्यतेयःप्रयत्नेनविनानामनजीयते ॥ ८ ॥

अर्थ—तुमारी चित्तवृत्तिहीके महत्वद्वारा महाजगदाकारसे परिणत होनेसे संकल्पितअर्थको पानेवाले तुम तब यह देखोगे कि भूमंडलपर मैं राजा हुं ॥ ५ ॥ तब शीघ्रही स्वयं तुमको यह प्रतिभा उत्पन्न होगी कि मैं सामन्तआदिसे संमानित श्रीमान् सिन्धुनाम राजा हुं ॥ ६ ॥ मेरे पिताके बनमें चलेजानेपर पिताका दियाहुआ यह चतुःसमुद्रान्त पृथिवीका राज्य मुझे अष्टवर्षकीही अवस्थामें प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ सीमाके अन्तमें एक विदूरथनामा महाशत्रु है वह बिना प्रयत्नके नहीं जीताजासकता ॥ ८ ॥

इदंमेकुर्वतोराज्यंसंवत्सरशतंगतम् ॥ अहोभृत्यकलत्रौघैःसहभुक्तंमयासुखम् ॥ ९ ॥ कष्टमेषप्रवृद्धोमे सीमांतवसुधाधिपः ॥ अनेनसहसंग्रामोदारुणःसमुपस्थितः ॥ १० ॥ इतिचिंतयतस्तत्रविदूरथमहीभुजा ॥ भविष्यतिमहद्युद्धंचतुरंगबलक्षयि ॥ ११ ॥ महतातेनयुद्धेनहनिष्यसिविदूरथम् ॥ करवाललताछूनजंघंत्वंविरथोपिसन् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह मुझे राज्य करते हुये १०० शतवर्ष होगये, अहो! भृत्य, पुत्र, स्त्रीआदिकेसाथ मैं सुखभोग किया ॥ ९ ॥ यह खेदका विषय है कि मेरे सीमाके अन्तका राजा बहुत बढगयाहै, अतएव इसकेसाथ हमारा भयंकर संग्राम उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ ऐसा विचार करतेहुये तुमारा विदूरथराजाकेसाथ चतुरंगिणीसेनाका नाशक महासंग्राम होगा ॥ ११ ॥ उस महासंग्रामद्वारा खड्गरूप लतासे छिन्नजंघावाले विदूरथको तुम विरथ होकरभी मारोगे ॥ १२ ॥

चतुःसागरपर्यंतेभूतलेभूपतिस्ततः ॥ भविष्यसिभयाक्रांतदिक्पालादृतशासनः ॥ १३ ॥ सत्वंसिंधुर्भवन्प्राप्तसकलावनिमंडलः ॥ पंडितैर्मंत्रिभिःसार्द्धंकरिष्यसिकथाइमाः ॥ १४ ॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ अत्याश्चर्यमिदंदेवयद्देवंसविदूरथः ॥ दवेनविजितोयुद्धेनीतश्चयमसादनम् ॥ १५ ॥ त्वंवक्ष्यसि ॥ भोःसाधोसधनस्यास्यकल्पांतार्णवरंहसः ॥ वैरीविदूरथोराजाकिमर्थंवदद्वःसहः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके वधके अनन्तर भयसे आक्रान्त दिक्पालोंसे शिरसे धृतशासन तुम चतुःसागरपर्य्यन्त भूतलमें चक्रवर्ती सम्राट् होओगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार संपूर्ण भूमंडलको प्राप्तकरके तुम निजपण्डित मंत्रियोंकेसाथ इन २ कथाओंको कहोगे ॥ १४ ॥ तत्वज्ञानी तुमारा मंत्री कहेगा कि–हे देव ! यह अतिआश्चर्य्यका विषय है कि ऐसा प्रतापी विदूरथराजाभी आपसे पराजित होकर यमलोकको प्राप्त किया ॥ १५ ॥ तब तुम कहोगे–हे साधो ! महाऐश्वर्य्य तथा सेनायुक्त और प्रलयान्त समुद्रकेसमान वेगसहित मेरा विदूरथ शत्रु दुःखसे जीतनेयोग्य क्यों हुआ सो कहो ॥ १६ ॥

मंत्रीवदिष्यति ॥ लीलानामास्यभार्यास्तितयातितपसार्जिता ॥ मातासरस्वतीदेवीजगद्धात्रीनिरंजना ॥ १७ ॥ गृहीतायाःसुतात्वेनसास्याभुवनभाविनी ॥ संसाधयति कार्याणिमोक्षादीन्यपिहेलया ॥ १८ ॥ वरेणशब्दमात्रेणजगदप्यजगत्क्षणात् ॥ करोतिसाभवन्नाशेतस्याःकैवकदर्थना ॥ १९ ॥ सिंधुर्वदिष्यति ॥ त्वयावैयुक्तंकथितंयद्येवंतद्विदूरथः ॥ अशक्योजेतुमाश्चर्यएतस्यसमरेवधः ॥ २० ॥

अर्थ—मंत्री कहेगा–हे भगवन् ! लीलानामकी उस राजाकी पत्नी है, उसने अपने तपसे जगत्को धारण करनेवाली निरंजना सरस्वतीभगवतीको मातृभावसे अपने वश करलियाहै ॥ १७ ॥ श्रीभगवतीजीसे कन्यारूपसे अङ्गीकृत लीलाके मोक्षआदि कार्य्योंकोभी वह अनेकब्रह्मांडोंको रचनेवाली भगवती बिना प्रयास सिद्ध करती है ॥ १८ ॥ वह भगवती अपने शब्दमात्रवरदानसे क्षणमात्रमें जगत्काभी अभाव करती है तो आपके नाशकरनेमें उसको क्या क्लेश हैं ॥ १९ ॥ सिंधु राजा कहेगा–"तुमने जो कहा सो युक्त है, यदि ऐसा है तो वह विदूरथ जीतनेमें अशक्य था, "उसका संग्राममें वध आश्चर्यही है" ॥ २० ॥

तदेवंसंप्रसादेनभगवत्यासमन्वितः ॥ किमित्यस्मिन्रणेतस्मिन्जयंराजानलब्धवान् ॥ २१ ॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ तेनसंप्रार्थितादेवीसर्वकालमखेदिना ॥ मोक्षोस्तुममसंसारादितितामरसेक्षण ॥ २२ ॥ तयातेनविभोतस्यसएवावंध्यसंविदा ॥ संपादितस्तेनतदाश्रितआजौपराजयः ॥ २३ ॥ सिंधुर्वदिष्यति॥ यद्येवंतन्मयादेवीसदैवैषाप्रपूज्यते ॥ मोक्षंकिमितिमेनैषाददातिपरमेश्वरी ॥ २४ ॥

अर्थ—परन्तु यदि ऐसा है तब भगवतीके प्रसाद (कृपा) से युक्त वह विदूरथ इस युद्धमें विजयी क्यों न हुआ ? ॥ २१ ॥ मंत्री बोलेगा–"हे कमलनेत्र राजन् ! खेदरहित उस विदूरथ राजाने सदा भगवतीसे यही प्रार्थना की कि–इस संसारसे मेरी मुक्ति हो ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! इसकारणसे उस सत्यसंकल्प भगवतीने उस राजाका मोक्षरूप कार्य्य सिद्ध किया और राजाने स्वयं संग्राममें अपना पराजय स्वीकार किया" ॥ २३ ॥ सिंधु बोलेगा–"हे मंत्री ! यदि ऐसा है तो उस देवीकी पूजा हम सदा करते हैं तौ वह परमेश्वरी हमको मोक्ष क्यों नहीं देती ! ॥ २४ ॥

॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ एषाहिज्ञप्तिरास्तेंतःसर्वस्यहृदयेसदा ॥ संविद्रूपाभगवतीसैवप्रोक्तासरस्वती॥२५॥ येनयेनयथात्मीयाप्रार्थ्यतेस्वयमेवसा ॥ प्रयच्छतितथैवाशुतस्माच्चिदनुभूयते ॥ २६ ॥ नप्रार्थितैषाभवतामोक्षार्थमरिमर्दन ॥ प्रार्थितैवत्वयासंविदात्मीयाशत्रुशांतये ॥ २७ ॥ सिंधुर्वदिष्यति ॥ नप्रार्थितामयाकस्मादनेनैषासरस्वती ॥ संविच्छुद्धामयाकस्मात्प्रार्थितानेहमुक्तये ॥ २८ ॥

अर्थ—मंत्री बोलेगा–"हे राजन् ! यह जो चिद्रूप भगवती सदा सबके हृदयमें निवासकरती है उसीको सरस्वती देवी कहते हैं ॥ २५ ॥ जिस जिस भावसे जिस २ से वह आत्महितकारिणी चिद्रूप भगवती प्रार्थित होतीहै उस २ को वैसाही वर शीघ्र देती है और उस वरदानसे सत्यसंकल्प चिद्रूपही वरदानके फलरूपसे अनुभूत होती है ॥ २६ ॥ हे शत्रुनाशक ! तुमने इस भगवतीसे मोक्षके अर्थ नहीं प्रार्थना की, किन्तु अपने शत्रुके नाशार्थ इसकी प्रार्थना की" ॥ २७ ॥ सिंधु राजा बोलेगा–"इस राजा विदूरथने इस भगवती सरस्वतीको राज्यकेलिये क्यों न प्रार्थना की और इस शुद्धसंवित्स्वरूप भगवतीसे मैंने मुक्तिके लिये क्यों न प्रार्थना की ? ॥ २८ ॥

मदाशयगताप्येषाज्ञप्तिंदत्वासरस्वती ॥ मन्मोक्षायकिमित्यंगसद्रूपापिनचेष्टते ॥ २९ ॥ मंत्रीवदिष्यति॥ अशुभःप्राक्तनोभ्यासस्तवास्तिरिपुघातिनः ॥ तेनैषामुक्तयेनत्वात्वयानप्रार्थिताविभो ॥ ३० ॥ यच्चित्तस्तन्मयोजंतुर्भवतीत्याजगत्स्थितेः ॥ आबालमेवसंसिद्धंकर्त्तुंशक्नोतिकोन्यथा ॥ ३१ ॥ यदेवयेनामलयामलात्मसंवेद्यतेभ्यासमयंविदांतः ॥ सर्वोपमर्देनतदेवसोंगसदस्त्वसद्वास्तुभवत्यविघ्नम् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अविद्यो० वि० श० सिंधुसंबोधनंनामषट्पंचाशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १५६ ॥

अर्थ—मेरे चित्तरूप (सत्य आत्मस्वरूप) होकरभी यह सरस्वती मुझे मुक्तिकी इच्छा देकर मेरी मुक्तिके अर्थ यह क्यों नहीं चेष्टा करती ? " ॥ २९ ॥ मंत्री कहेगा–"हे प्रभो ! शत्रुके घातमें प्रवृत्त तुमारा पूर्वजन्मोंका

अशुभ अभ्यास है, इसलिये प्रणामकरके तुमने इस भगवतीसे मुक्तिके अर्थ प्रार्थना नहीं की ॥ ३० ॥ सृष्टिके आरंभसे ही जैसी वासनासहित चित्त होताहै वैसाही तन्मय वह जीव होताहै और भक्तके चित्तके अनुसारही न कि स्वतंत्रतासे देवताभी उसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, इसलिये भक्तके चित्तको कोई अन्यथा नहीं करसकता, यह वार्ता जगत्में आबालवृद्ध प्रसिद्ध है ॥ ३१ ॥ हे प्रिय राजन् ! जो पुरुष निज निर्मलबुद्धिसे अपने चित्तमें राज्य, मोक्ष, वा अन्य कुछ दृढ निर्मल अभ्यासकरके अनुभव करताहै उसी अभ्यासमय, चाहै वह सत् वा असत् हो वह पुरुष शीघ्र अन्यका उपमर्दनकरके स्वयं होजाताहै ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अविद्यो० विप० शवो० सिंधुसंबोधनं नाम षट्पंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५६ ॥

सप्तपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५७ ॥

सिंधुके जीवकी तामसीजाति तथा राज्यको त्यागनेवाले सिंधुकी अन्तमें विवेकसे मुक्ति, यह विषय इस १५७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ सिंधुर्वदिष्यति ॥ आर्यानार्यवपुःकोहमभवंविमतिःपुरा ॥ यद्वशान्मेकुसंस्कारःप्राक्तनोस्तिभवप्रदः ॥ १ ॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ रहस्यंशृणुभोगजन्सावधानपरःक्षणम् ॥ चोदितःसंदधासिदमयमांद्यविनाशनम् ॥ २ ॥ किमप्याद्यंतरहितमस्तीहसदनामयम् ॥ स्थितंत्वमहमित्यादिरूपेणब्रह्मशब्दितम् ॥ ३ ॥ तद्ब्रह्मस्वयमेवाहंचिच्चेतामीतिसंविदम् ॥ जीवतामिवगत्वास्तेचित्तीभूयात्यजद्वपुः ॥ ४ ॥

अर्थ—पुनः राजा सिंधु कहैगा–कि हे आर्य्य अनार्य्यशरीर पूर्वजन्ममें मैं कौन था जिसकारणसे मेरा पूर्वकालका दुष्टसंस्कार जन्मप्रद है ॥ १ ॥ पुनः मंत्री बोलैगा–कि हे राजन् ! अपना रहस्य सावधानहोकर क्षणभर सुनो तो इससमय मुझसे प्रेरित तुम इस मेरे अज्ञाननाशकवचनको हृदयमें धारणकरोगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! आदिअन्तशून्य, निरामय ब्रह्मशब्दवाच्य कोई वस्तुही तुमारे तथा मेरे आदिरूपसे स्थितहै ॥ ३ ॥ वही ब्रह्म मैं चित्तयुक्त होऊं इसप्रकार संकल्पसंविद् धारणकरके तथा समष्टिव्यष्टि चित्तरूप होकर उस उपाधिमें जीवदशामें प्राप्तकेसमान उपाधिको न त्यागताहुवा स्थितहै ॥ ४ ॥

चित्तंतुगगनाच्छात्मवपुर्विद्ध्यातिवाहिकम् ॥ तदेववास्तिनेहान्यदाधिभौतिकतादिकम् ॥ ५ ॥ चित्तमेतदनाकारमपिसाकारवत्स्थितम् ॥ संकल्पैःपरलोकाद्यैःस्वप्नाद्यैरेतदेवसत् ॥ ६ ॥ अनाकारमपिस्फारंचित्तंजगदिदंविदुः ॥ यएवपवनोनामसएवस्पंदनंयथा ॥ ७ ॥ यथागगनशून्यत्वेजगच्चितेतथैककम् ॥ अत्राप्रतिघरूपेस्तिनमनागपिभिन्नता ॥ ८ ॥

अर्थ—और चित्त आकाशसेभी स्वच्छ आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरहै, वही सब कुछ है और यह आधिभौतिक आदि कुछभी सत् नहीं है ॥ ५ ॥ निराकारभी वह चित्तही इसलोक तथा परलोकादिके स्वप्नके सदृश जीवन, रमण, भोग तथा मोक्षादिसंकल्पोंसे साकारवत् स्थितहै ॥ ६ ॥ तत्ववेत्ताजन निराकार चित्तकोही यह विशालजगत् ऐसे जानतेहैं जैसे पवन है वही स्पन्द है ॥ ७ ॥ जैसे आकाश तथा शून्यता एकही पदार्थहै ऐसेही जगत् तथा चित्त एकहीभी हैं, क्योंकि जगदाकार कल्पनामें निरंकुश सामर्थ्ययुक्त इस चित्त तथा जगत्में किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ८ ॥

हृदयस्थंजगज्जालंनकिंचित्किंचिदास्थितम् ॥ जगद्विद्धिनिराकारंचित्तमेवनवास्तवम् ॥ ९ ॥ सत्वमेववपुःपूर्वमुदितंब्रह्मणःपदात् ॥ अयमेवससंपन्नोयोद्यतामसतामसः ॥ १० ॥ सिंधुर्वक्ष्यति ॥ किमुच्यतेमहाभागवदतामसतामसः ॥ क्रियंतेपूर्वमेवैताःकेनसंज्ञापरेपदे ॥ ११ ॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ जंतोःसावयवस्येहहस्ताद्यवयवायथा ॥ तथानवयवस्यैवमातिवाहिकतात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—मिथ्याहोनेसे अवस्तुरूप हृदयस्थवासनाकोही जगत्जालको तुम जानो और जगत्कल्पक निराकार चित्तभी वास्तवरूप नहीं है ॥ ९ ॥ इसप्रकार प्रथमसर्गमें तुम ब्रह्मपदसे सात्विक हिरण्यगर्भनामक समष्टिरूप उत्पन्न हुये और अब क्रमसे व्यष्टिदशामें विषयके संगसे तामसरूप होगयेहो ॥ १० ॥ पुनः सिंधु कहैगा कि, हे महाभाग ! तामस क्या कहतेहो तामससेभी तामस मैं होगया, अब तुम यह कहो कि परंपदब्रह्ममें इन तामसआदि संज्ञाओंको कौन रचताहै ॥ ११ ॥ मंत्री कहैगा कि, जैसे सावयवप्राणीके हस्तपादआदि अवयव हैं ऐसेही निरवय आत्माकी आतिवाहिकरूपता होती है ॥ १२ ॥

पश्चादात्मनिसैवात्मानानासंज्ञाःकरिष्यति ॥ आधिभौतिकतानाम्निपृथ्व्याद्याआतिवाहिके ॥ १३ ॥ स्वप्नाभेस्मिन्जगद्भानसंकल्पेनात्मरूपिणा ॥ संज्ञात्मनात्मरूपेणस्वयंव्यवहरिष्यति ॥ १४ ॥ त्वामातिवाहिकाकारायत्तत्स्फुरितवान्नवम् ॥ जातिर्महातमस्कोयमितितत्राभिधाकृता ॥ १५ ॥ ब्रह्मणोनिर्विकारस्यविकारिणइवप्रभो ॥ जातयोजीवतापत्तौकलिताविविधाभिधाः ॥ १६ ॥

अर्थ—और अपरिच्छिन्न दशासे परिच्छिन्न दशामें प्राप्त हिरण्यगर्भ समष्टिरूप आत्माही निजदेहमें पंचीकरणद्वारा आधिभौतिकतानाम करनेके पश्चात् पृथिवीआदि संज्ञा करेगा ॥ १३ ॥ स्वप्नके तुल्य इस जगत्भानमें निजआत्मसंकल्पसे वह समष्टिरूप आत्मा व्यष्टिनामसे स्वयं व्यवहारको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ और तुमारे नूतन व्यष्टिभाव कल्पनाके विषे जो हिरण्यगर्भ तामसरूपसे स्फुरित हुये इसी हेतुसे आतिवाहिकाकार तामसतामसी तुमारी संज्ञा कीगई ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! निर्विकारीब्रह्मके जीवभाव होनेमें उपाधियोंके गुणके अनुसार राजससात्विकआदि त्रयोदश (१३ पूर्वोक्त) जातिकी संज्ञा नियत कीगई ॥ १६ ॥

प्राथम्येनैवयद्ब्रह्मजीवतामिवगच्छति ॥ तदैवबुद्ध्याभोक्तातज्जातिःसात्विकसात्विकी ॥ १७ ॥ वर्त्तमानेभवेभव्यगुणैर्युक्तातुमानद ॥ केवलासात्विकीप्रोक्ताजातिर्जातिविदांवरैः ॥ १८ ॥ नवाभवैश्चेद्बहुभिर्भोगमोक्षैकभागिनी ॥ जातिस्तत्प्रोच्यतेतज्ज्ञैःसद्भीराजसराजसी ॥ १९ ॥ वर्त्तमानेभवेभव्यगुणैर्मुक्तातुमानद ॥ केवलाराजसीप्रोक्ताजातिःस्वल्पभवेभवेत ॥ २० ॥

अर्थ—जो कल्पकी आदिमेंही ब्रह्मभावसे जीवभावको प्राप्त होती है वह उसी जन्ममें उत्पत्तिमात्रसे ज्ञान ऐश्वर्य्ययुक्त बुद्धिसे विषयको भोगता होताहै और उसी जन्ममें मुक्तभी होजाताहै उस जीवकी जाति सात्विकसात्विकी कही गई है ॥१७॥ और हे मानद ! जो कुछकालतक संसार हेतु अज्ञानके वर्तमान रहनेपर उसी जन्ममें ज्ञान ऐश्वर्य्यादि भव्यगुणोंसे युक्त होके मुक्त होजाती है वह जीवजाति सात्विकी कहीगई है ॥ १८ ॥ तथा जो कल्पकी आदिमें नूतनरूपसे प्रकट होकरभी अनेकजन्मोंसे भोगोंके भोगनेपर क्रमसे मोक्षभागिनी होती है वह जीवजाति राजसराजसी है ॥ १९ ॥ तथा जो दशपांच जन्मोंमेंभी भव्यगुणोंसे रहित है और अनेकजन्मोंके पश्चात् यदि भव्यगुणोंसे युक्त होकर मुक्त होती है वह जीवजाति केवल राजसी कहीगई है ॥ २० ॥

प्रथमात्यंतबहुभिर्भवैश्चेन्मोक्षगामिनी ॥ जातिस्तत्प्रोच्यतेतज्ज्ञैःसद्भिस्तामसतामसी ॥ २१ ॥ सामान्येनैवबहुभिर्जन्मभिर्मोक्षभागिनी ॥ केवलातामसीप्रोक्ताजातिर्जातिविशारदैः ॥ २२ ॥ क्रमेणानेनजातीनांविविधाभेदकल्पना ॥ तासांतामसतामस्यांजातोजातोसिमानद ॥ २३ ॥ बहूनितवजन्मानिसमतीतानितान्यहम् ॥ विविधानिविचित्राणिवीरजानामिनोभवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा जो कल्पके आरंभसे अनेक स्थावर, कीट, पशु, किरातआदि जन्मोंसे भोग भोगनेपर अन्तमें मोक्षभागिनी होती है वह जीवजाति जातिवेत्ताओंसे तामसतामसी कहीगई है ॥ २१ ॥ और सामान्यरूपसे राक्षस, पिशाच, शूद्रादि अनेकजन्मोंके भोग भोगनेपर अन्तमें मुक्त होती है उसको जातिविशारदोंने केवल तामसीही कहाहै ॥ २२ ॥ हे मानद ! इस क्रमसे जातियोंके अनेक भेदकी कल्पना है, उनमेंसे आप तामसतामसीजातिमें उत्पन्न हुयेहो ॥ २३ ॥ हे वीर राजन् ! आपके अनेक विचित्र जन्म बीतगये हैं उन सबको मैं जानताहुं आप नहीं जानते ॥ २४ ॥

विशेषेणत्वनेनैषव्यर्थकालोतिवाहितः ॥ महाशवशरीरेणत्वयानंतखगामिना ॥ २५ ॥ एवंतामसतामस्याजात्यासिजनितोयदा ॥ तदादुर्लभमोक्षस्त्वंसंसारकुहरादिति ॥ २६ ॥ सिंधुर्वदिष्यति ॥ आर्योदाहरकेनैषाप्राग्जातिर्जीयतेधमा ॥ यावत्तथैवतिष्ठामिस्याच्चेत्तद्वदपावनम् ॥ २७ ॥ मंत्रीवदिष्यति ॥ नकिंचनमहाबुद्धेतदस्तीहजगत्त्रये ॥ यदनुद्वेगिनानामपौरुषेणनलभ्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—और विशेषकरके तो महाशवशरीरधारी आकाशगामी तुमने व्यर्थ बहुतकाल बिताया ॥ २५ ॥ इसरीतिसे जब तामसतामसी जातिसे उत्पन्न हुये हो इसीसे संसाररूपी महागर्तसे मोक्ष तुमको दुर्लभ होगया है ॥ २६ ॥ पुनः सिंधु कहेगा कि-हे आर्य्य ! यह पूर्वजन्मकी अधमजाति किस उपायसे जीती जासकती है, सो कहो. यदि पूर्वजातिको पवित्रकारक कोई उपाय है तो मैं उसी आपके कथित उपायके अनुष्ठानमें यावज्जीवन स्थितरहूंगा ॥ २७ ॥ मंत्री कहेगा कि-हे महाबुद्धे ! इस त्रिलोकीमें ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जो उद्वेगरहित (न घबरानेवाला) पुरुष अपने पुरुषार्थसे न प्राप्त करे ॥ २८ ॥

ह्यस्तनीदुष्क्रियाभ्येतिशोभांसंक्रियययायथा ॥ अद्यैवप्राक्तनींतस्माद्यत्नात्सत्कार्यवान्भव ॥ २९ ॥ यो यमर्थंप्रार्थयतेतदर्थंयततेतथा ॥ सोवश्यंतदवाप्नोतिनचेच्छ्रांतोनिवर्त्तते ॥ ३० ॥ नायथायततेनित्यंय द्भावयतियन्मयः ॥ यादृगिच्छेच्चभवितुंतादृग्भवतिनान्यथा ॥ ३१ ॥ मुनिरुवाच ॥ एवमुक्तःसतेना थसिंधुरुद्धुरयाधिया ॥ तदातत्रतथानामराष्ट्रंत्यक्ष्यत्यशेषतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे पूर्वदिनकृत दुष्टक्रिया आजकी सत्क्रियासे शोभित होतीहै ऐसेही तुम पूर्वकी अधमजातिको इससमयके उत्तमकर्मोंसे जीतकर सत्कार्य्यकारी होजाओ ॥ २९ ॥ जो जिस पदार्थको चाहताहै यदि उसकेलिये वैसाही प्रयत्नभी करता रहै और भ्रांत होकर परिश्रम (प्रयत्न) को न छोड दे तो अवश्य उसको वह पदार्थ मिलताहै ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह मनुष्य जैसा प्रयत्न करताहै, नित्य जैसी भावना करताहै, नित्य यन्मय रहताहै और जैसा होनेकी इच्छा करताहै वैसाही वह होताहै, अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥ मुनि बोले कि—हे व्याध ! उस मंत्रीसे इसप्रकारसे कथित वह राजा सिंधु राज्यभारको त्यागकरनेवाली उत्तमबुद्धिसे संपूर्णरूपसे अपने राज्यको त्यागदेगा ॥ ३२ ॥

गमिष्यतिवनंदूरंप्रार्थितोपिहिमंत्रिभिः ॥ नाश्रयिष्यतितद्भूयोराज्यमुच्छिन्नशात्रवम् ॥ ३३ ॥ तिष्ठतः साधुमध्येथतद्विवेककथावशात् ॥ पुष्पसंगादिवामोदोविवेकःसमुदेष्यति ॥ ३४ ॥ ततःकथमिदंज न्मकुतःसंसारआगतः ॥ इत्थंविचारसांतत्यात्सयास्यतिविमुक्तताम् ॥ ३५ ॥ नित्यंविचारणपरोथभ वन्ससिंधुःसत्संगमेनपदमाप्स्यतिपावनंसः ॥ तद्यत्रपत्रमिववातविधूयमानंनोवस्तुतांव्रजतिकाचन नामलक्ष्मीः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० सिंधुनिर्वाणं नाम सप्तपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः १५७ ॥

अर्थ—और अतिदूर वनमें चलाजायगा तथा मंत्रियोंसे अतिप्रार्थित होनेपरभी पुनः उस शत्रुशून्य निष्कटंक राज्यको नहीं स्वीकार करैगा ॥ ३३ ॥ और साधुओंके मध्यमें निवास करतेहुये इस राजाको उनकी विवेकमयी कथासे पुष्पोंके संगसे तिलादिसुगंधके तुल्य इसको विवेक उत्पन्नहोगा ॥ ३४ ॥ उसके पश्चात् किसप्रकार यह जन्म हुआ, कैसे आत्मामें यह संसार आया इत्यादि निरंतर विचारसे यह मुक्तहोजायगा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार साधुसमागममें नित्य विचारमें तत्पर राजा सिंधु उस पवित्र मोक्षपदको पावेगा जिसमें वायुसे कंपित पत्रके तुल्य कोईभी (ब्रह्मादिकी) ऐश्वर्य्य शोभा वस्तुताको नहीं प्राप्त होती अर्थात् अतितुच्छ है ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० सिंधुनिर्वाणं नाम सप्तपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५७ ॥

अष्टपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५८ ॥

मुनिके वचन सुनके व्याध तपकरके ब्रह्मासे वर पाके आकाशमें उडा और विशाल शव (मृतक) होकर पृथिवीपर गिरा, इत्यादि विषय इस १५८ के सर्गमें वर्णित है ॥

मुनिरुवाच ॥ एतत्तेकथितंसर्वंभविष्यद्भूतवत्तव ॥ यथेच्छसितथेदानींव्याधसाधुविधीयताम् ॥ १ ॥ अग्निरुवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाविस्मयाकुलचेतनः ॥ क्षणंस्थित्वाजगामाशुस्नातुंव्याधस्तथा मुनिः ॥ २ ॥ इतितौचेरतुस्तत्रतपःशास्त्रविचारणैः ॥ अकारणसुहृद्भूतौवुभौव्याधमहामुनी ॥ ३ ॥ अथाल्पेनैवकालेनमुनिर्निर्वाणमाययौ ॥ देहंत्यक्त्वापदेशांतेपरेपरिणतिंगतः ॥ ४ ॥

अर्थ—मुनि बोले कि—हे व्याध ! यह तुमारा भविष्यत्वृत्तान्त भूतके सदृश मैंने कहा, अब तुमारी जो इच्छा हो सो करो ॥ १ ॥ अग्नि बोले कि—हे विपश्चित् राजन् ! इसप्रकार मुनिके वचनको सुनकर व्याध विस्मयसे पूर्णचित्त होगया, एकक्षण वहां स्थित रहकर व्याध तथा मुनि दोनों स्नानको गये ॥ २ ॥ अकारण मित्रभूत वे व्याध तथा महामुनि दोनों इसप्रकार शास्त्रोंके विचारपूर्वक तप करते रहै ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् व्याध तो मुनिकी आज्ञासे तपकरने चलागया और समाधिसे अल्पकालमें देहको त्यागकर निर्वाणको प्राप्त होगया और ब्रह्ममें मिलगया ॥ ४ ॥

कालेनबहुनान्येनततोयुगशतात्मना ॥ व्याधस्यकामनांदातुंपद्मजन्मासमाययौ ॥ ५ ॥ व्याधःस्ववास नावेशंनिवारयितुमक्षमः ॥ जानन्नपिवरंपूर्ववर्णितंसमयाचत ॥ ६ ॥ ब्रह्मैवमस्त्विवतिप्रोच्ययययावभिम

तांदिशम् ॥ व्याधस्तपःफलंभोक्तुंखगवद्व्योमपुप्लुवे ॥ ७ ॥ वर्द्धमानेनदेहेनजगत्परेमहानभः ॥ वेगादगणितंकालंपूरयामासशैलवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—पश्चात् सैकडों युगरूप दीर्घकाल व्याधको तप करते २ बीत गया, तब ब्रह्मा व्याधकी कामना पूर्ण करनेको आये ॥५॥ व्याध अपनी वासनाके वेगको निवारण करनेमें असमर्थ था, इसलिये मुनिकथित व्यर्थत जानतेहुये भी पूर्वोक्त (शरीर, वृद्धि तथा आकाशमें गति) वरकी प्रार्थना की ॥ ६ ॥ जो तुम चाहतेहो एवमस्तु (ऐसाही हो) यह कहकर ब्रह्माजी अपनी अभिमतदिशाको चलेगये और व्याध निजतपस्याका फल भोगनेके लिये पक्षीके समान आकाशमें उडा ॥ ७ ॥ अपने बढतेहुये देहसे त्रिलोकीसेपरेभी अपरिमित महाकाश (अव्याकृताकाश) को शीघ्रही शैलके सदृश पूर्ण करदिया ॥ ८ ॥

महागरुडवेगेनतिर्यगूर्द्धमधस्तथा ॥ व्योमपूरयतस्तस्यकालोबहुतरोययौ ॥ ९ ॥ अथदीर्घेणकालेनयदाविद्याभ्रमस्यसः ॥ अंतंनसमवाप्नोतितन्नोद्वेगमुपाययौ ॥ १० ॥ उद्वेगादथबद्धासौप्राणरेचनधारणाम् ॥ प्राणांस्तत्याजनभसिशवीभूतमधोवपुः ॥ ११ ॥ चित्तंप्राणान्वितंव्योम्निययौतत्रैवसिंधुताम् ॥ विदूरथारिरूपांतामखिलावनिपालिनीम् ॥ १२ ॥

अर्थ—महागरुडके वेगसे नीचे ऊपर तिर्य्यक् (इधर उधर) आकाशको पूर्ण करतेहुये उसको बहुतकाल बीतगया ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् दीर्घ कालसे जब उसको अविद्यारूप भ्रमका अन्त न मिला, तब उस शरीरकी वृद्धि तथा अविद्याका अन्त लेनेसे वैराग्य प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ उस वैराग्यसे प्राणको त्यागकरनेवाली धारणाद्वारा प्राणोंको आकाशमें त्यागकर मृतकशरीरसे भूमिपर गिरा ॥ ११ ॥ और प्राणसहित जो आकाशमें उसका चित्त था वह विदूरथका शत्रुरूप तथा संपूर्णपृथिवीका पालक सिंधुदेशका सिंधुनाम राजा हुआ ॥ १२ ॥

देहोमेरुशताकारमहाशवइवाभवत् ॥ द्वितीयोर्वीनिभोव्योम्नःपपाताशनिवज्रवत् ॥ १३ ॥ पिधानमिव कस्योर्वीवीथीकस्मिंश्चिदंबरे ॥ केशोंड्रकवदाभातेकस्मिंश्चिज्जागतेभ्रमे ॥ १४ ॥ आकारपूरिताशेषवसुधाचलमंडलः ॥ विपश्चिच्छ्रेष्ठकथितमेतत्तेतन्महाशवम् ॥ १५ ॥ यस्मिञ्छवंसंपतितंजगत्यवनिमंडले ॥ तदिदंजगदाभातमस्माकंस्वप्नपूर्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—और उसका देह सैंकडो मेरुके आकारके तुल्य, महाशव होकर द्वितीयपृथिवीके तुल्य वज्रवत् आकाशमार्गसे गिरा ॥ १३ ॥ वह महाशव किसी ब्रह्माके जगत्में तो पृथिवीके आच्छादन, किसीके आकाशसे भूमिपर उतरनेका मार्ग और किसी जगत्में आकाशकेभी आच्छादनके सदृश भासनेलगा ॥ १४ ॥ उसने अपने आकारसे संपूर्ण भूमंडलको पूर्ण करदिया. हे श्रेष्ठ विपश्चित् राजन् ! यह तुमसे मैंने महाशवका संपूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ १५ ॥ जिस भूमंडलपर यह महाशव गिरा है वह जगत् हमको स्वप्नके नगरके समान भासताहै ॥ १६ ॥

तदेतच्छवमास्वाद्यशुष्कापूर्णामहोदरी ॥ संपन्नाचंडिकादेवीरक्तारक्तांत्रपूरिता ॥ १७ ॥ मेदिनीमेदिनीजाताशवस्यैतस्यमेदसा ॥ पूरिताऽपूर्वरूपेणहिमवद्गिरिरूपिणा ॥ १८ ॥ तदेवैतन्महामेदोमृद्धातुत्वमुपागतम् ॥ कालेनवसुधाभूयोभूत्वामृण्मयतांगता ॥ १९ ॥ भूयःप्रजातानिवनानिवभूमौग्रामाःकृताःपत्तनसंयुताश्च ॥ पातालतःसाधुसमुत्थितास्तेशैलाःप्रवृत्ताव्यवहारलक्ष्मीः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० वि० श० शवनिर्णयो नामाष्टपंचाशदुत्तरशततमःसर्गः ॥ १५८ ॥

अर्थ—इस महाशवको भक्षणकरके महोदरी शुष्का भगवती चण्डिकादेवी रक्त तथा आंत्र (आंतों) से पूर्ण होकर रक्तवर्ण होगई ॥ १७ ॥ हिमालयके सदृश आश्चर्यभूत इस महाशवके मेदद (चर्बी) से संपूर्ण मेदिनी (पृथिवी) मेदिनी (चर्बीपूर्ण) होगई ॥ १८ ॥ वही महाशवका महामेद काल पाके मृत्तिकारूप होगया और काल पाके यह मेदिनी (पृथिवी) भी पुनः मृत्तिकामय हुई ॥ १९ ॥ हे राजन् ! उस महाशवसे नाशित बन काल पाके पुनः उत्पन्नहुये. भूमिपर नगरग्रामादिकी रचना पुनः हुई, चूर्णभूत पर्वत पातालसे पुनः निकले और प्राणियोंके व्यवहारकी शोभा पुनः प्रवृत्त हुई ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० शवनिर्णयो नामाष्टपंचाशदुत्तरशततमः सर्गः ॥ १५८ ॥

एकोनषष्ट्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १५९ ॥

विपश्चित् राजाको अग्निभगवान्‌के गमनका उपदेशकरके अन्तमें अनेक आश्चर्य्य तथा ब्रह्मतत्वका निरूपण इस १५९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ अग्निरुवाच ॥ विपश्चिच्छ्रेष्ठभोसाधोत्वंगच्छाभिमतांदिशम् ॥ स्थिरंभूमंडलंभूयःप्रकृतव्यवहारवत् ॥ १ ॥ यज्ञंयष्टुंप्रजौघस्यशक्रःशततमंदिवि ॥ तत्राहूतोस्मिमंत्रेणगच्छामिगतिकोविद ॥ २ ॥ भास उवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवानग्निस्तत्रैवांतरधीयत ॥ गगनेनिर्मलेयातिअनलोविद्युतोयथा ॥ ३ ॥ तथाहम पिचित्तेनप्राक्तनांश्वस्वयंवहन् ॥ पुनःस्वकर्मनिर्णेतुंभ्रमन्व्योमनिसंस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—अग्निभगवान् बोले कि–हे श्रेष्ठ साधो विपश्चित्! अब पुनः प्राकृतव्यवहारके उपयोगी स्थिरताको प्राप्त भूमंडलपर जाके अपने दिशाको जाओ ॥ १ ॥ और प्रजाओंके स्वामी इन्द्रभी शततम (सवमां) यज्ञ सर्गमें करनेको प्रवृत्त हैं वहांपर मंत्रद्वारा मैं आहुतहुं सो हे गतिकोविद ! मैंभी स्वर्गमें जाताहुं ॥ २ ॥ भासनामधारी बोला–भगवान्‌अग्नि इतना कहके वहांही मूर्तिरूपसे अन्तर्धान होगये तथा अग्निरूपसे विद्युत् अग्निके समान स्वर्गमें चलेगये ॥ ३ ॥ उसीप्रकार मैंभी अपने अविद्याके देखनेके पूर्वकालके कुसंस्कारोंको धारणकरताहुवा अपने कर्मका निर्णय करनेको आकाशमें भ्रमणकरताहुवा स्थित रहा ॥ ४ ॥

भूयोपिदृष्टवानस्मिजगंत्यगणितानिखे ॥ नानाचारविचाराणिनानासंस्थानवंतिच ॥ ५ ॥ क्वचिच्छत्र मयांगानिएकीभूतानिभूपते ॥ भांतिचेतंतिचोपंतिहृदयानिहरंतिच ॥ ६ ॥ क्वचिन्मृण्मयदेहानिसर्वभू तानिराघव ॥ भांतिचेतंतिचोपंतिपर्वतप्रतिमानिच ॥७॥ क्वचिद्दारुमयांगानिभांतिभूतानिकुत्रचित् ॥ क्वचित्पाषाणदेहानिसंतिभूतानिभूरिशः ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनरपि नानाप्रकारके आचारविचार तथा रचनासहित अनन्तब्रह्माण्डोंको आकाशमें मैंने देखे ॥ ५ ॥ हे भूपते दशरथ! कहीं वे जीव छत्रके सदृश शरीरयुक्त कहीं परस्पर मिलित भासतेथे कहीं चेष्टा तथा मंदगमन करनेसे द्रष्टाओंके चित्तको हरतेथे ॥ ६ ॥ हे राघव ! किसी जगत्‌में संपूर्णप्राणी पर्वतके समान आकारधारी भासतेथे, चेष्टा करते और मंद २ गमन करतेथे ॥ ७ ॥ तथा किसी जगत्‌में काष्ठमय शरीरधारी भासतेथे, और किसी जगत्‌में पाषाणमय-शरीर जीव अनेकप्रकारके दृष्ट हुये ॥ ८ ॥

क्वचिदाजीवमेकत्रस्थितान्युपलदेहवत् ॥ वाङ्मात्रव्यवहाराणिभूतान्यालोकितानिखे ॥ ९ ॥ इत्यहं सुचिरंकालंपश्यन्नश्यन्मनस्तया ॥ अविद्यांतमपश्यंश्वतत्रोद्विग्नोभवंदशाम् ॥ १० ॥ तपःकर्तुंसमुद्यु क्तःकस्मिंश्चिन्मोक्षसिद्धये ॥ प्राहेंद्रोममचैवेदंमृगयोन्यंतरंहिखे ॥ ११ ॥ प्रवृत्तःस्वर्गसंमोहेपूर्वाभ्यास वशीकृतः ॥ मंदारकाननेतत्रभ्रमतोवैममांबरे ॥ १२ ॥

अर्थ—किसी जगत्‌में पाषाणकी प्रतिमाके तुल्य जन्मभर एकही स्थानमें आकाशमें स्थितथे, गमनादिव्यापार-शून्य केवल वाणीमात्रसे व्यवहार करतेथे ॥९॥ इसप्रकार चिरकालतक देखतारहा परंतु अविद्याके अन्तको न देखताहुवा मनमें ग्लानि होनेसे उनके देखनेसे उद्विग्न होगया ॥ १० ॥ अनंतर किसी एकान्तस्थानमें मोक्षसिद्धिके लिये मैं तप करनेमें उद्यत हुआ तब इन्द्रने मुझसे कहा कि–हे विपश्चित् ! तुमारे तथा हमारे चित्ताकाशमें मृगयोनि उपस्थित हुई है जिससे ये आत्मतत्व देखनेका काल नहीं है ॥ ११ ॥ स्वर्गके भोगोंमें जब मैं मोहित था, तब कल्पवृक्षोंके बनमें भ्रमण करते पूर्वकालके अभ्याससे दुर्वासाके अपराधसे मेरे चित्तमेंभी मृगयोनिका संस्कार प्रवृत्त हुआ ॥ १२ ॥

तेनेत्युक्तेमयाप्रोक्तंदेवखिन्नोस्मिसंसृतेः ॥ मुच्येयंशीघ्रमित्युक्तंश्रुत्वोवाचततोमम ॥ १३ ॥ विशुद्धात्मा त्वरूपोहमितिचैवहुताशनात् ॥ वरंगृहाणेत्युक्तेसततोन्यंयाचितोमया ॥ १४ ॥ इंद्रउवाच ॥ तवेयंमृ गयोन्यंतश्चिरंसंसरतेचितिः ॥ अवश्यंभवितव्योर्थइतिदृष्टोमयातव ॥१५॥ मृगोभूत्वामहांपुण्यांतांस भांसमवाप्तवान् ॥ यस्यांतदहतंज्ञानंमदुक्तंबोधमेष्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—इन्द्रके इतना कहनेपर मैंने कहा कि–हे देव ! मैं अब संसारसे खिन्न हुं, मैं मुक्त होजाऊं यह वर दीजिये, यह सुनके इन्द्र मुझसे बोले ॥ १३ ॥ कि शीघ्र मुक्ति तो मैं निराकार रूपरहित शुद्धचित्स्वरूप आत्मा हुं इस ज्ञानसे होती है (बरसे नहीं) यह वार्ता तुम अग्निसे सुनचुकेहो, इसलिये दूसरा वर मागो, तब मैंने अन्य अर्थात् मृगरूप धारणके आगे क्या होगा इस ज्ञानरूप वरदानको मांगा ॥ १४ ॥ इन्द्र बोले कि–हे विपश्चित् ! यह मृगयोनिका

संस्कार तुमारे अन्तःकरणमें चिरकालसे है, और वह अवश्य भवितव्य है, ऐसा मैंने तुमारे विषयमें निश्चित कियाहै ॥ १५॥ मृग होकर जब तुम महापवित्र दशरथकी सभामें जाओगे तब तुमको मेरा कहा ज्ञान (मैं निराकार शुद्ध चित्स्वरूप आत्मा हुं यह ज्ञान) उदित होगा ॥ १६ ॥

तदेवंतत्रहरिणोभवार्तस्त्वंभवावनौ ॥ आत्मोदंतमिदंवंध्यंसकलंसंस्मरिष्यसि ॥ १७ ॥ स्वप्नभ्रममिवाशेषसंकल्परचितोपमम् ॥ परलोकानुभूतार्थकथायातार्थसन्निभम् ॥ १८ ॥ यदातुमृगतोन्मुक्तःपुरुषस्त्वंभविष्यसि ॥ ज्ञानाग्निदग्धदेहांतेतदाहृत्स्थंस्फुरिष्यति ॥ १९ ॥ तेनतांत्वमविद्याख्यांभ्रांतिंत्यक्त्वाचिरंस्थिताम् ॥ भविष्यसिविनिर्वाणोगतस्पंदइवानिलः ॥ २० ॥

अर्थ—इसरीतिसे तुम संसारदुःखी पृथिवीपर हरिण होओ, और उस सभामें वसिष्ठजीकी कृपासे यह अपने बन्धनआदि तथा मृगरूपताआदि सब वृत्तान्तको स्मरण करोगे ॥ १७ ॥ और यह मृगयोनिका बन्धन तुमको उससमय स्वप्नके भ्रम, संकल्पसे रचितके तुल्य, परलोकमें अनुभूत तथा कथाके यात अर्थके समान भानहोगा ॥ १८ ॥ और जब तुम मृगशरीरसे उन्मक्तहोकर पुरुषरूप धारणकरोगे तब ज्ञानरूपअग्निसे सब अज्ञानजनित देह तथा अज्ञानका भस्म होजायगा उससमय सब तुम स्मरणकरोगे ॥ १९ ॥ उस आत्मस्वरूपके स्फुरणसे चिरकालसे स्थित अविद्यारूप भ्रांतिको तुम त्यागोगे और ऐसे निर्वाण (शान्त) होजाओगे जैसे संचलन शून्य वायु ॥ २० ॥

इत्युक्तेतेनदेवेनतदैवप्रतिभोदभूत् ॥ ममायंहरिणोस्मीतिवनेस्मिन्निनिश्चिता ॥ २१ ॥ ततःप्रभृतिसंपन्नस्तत्रैवांतरकोणके ॥ हरिणोहंगिरिवरेतृणदूर्वांकुराशनः ॥ २२ ॥ ततःसीमांतसामंतमागतंमृगयार्थिनम् ॥ दृष्ट्वाहमेकदाभीतःपलायनपरोभवम् ॥ २३ ॥ ततस्तेनसमाक्रम्यगृहंनीत्वादिनत्रयम् ॥ संस्थाप्यतवलीलार्थमिहानीतोरघूद्वह ॥ २४ ॥

अर्थ—उस इन्द्रदेवके इतना कहनेपर उसीसमय व्यवहारमें समर्थ मैं हरिण हुं ऐसी बुद्धि उस वनमें मुझे उत्पन्नहुई ॥ २१ ॥ उससमयसे लेके उस पर्वतके ऊपर उसी मन्दारके वनके कोनमें तृण दूर्वा तथा अंकुरका भोजी हरिण होगया ॥ २२ ॥ इसकेपश्चात् सीमाके अन्तके मृगयार्थी सामन्त (छोटेकरदेनेवाले राजा) को देखकर भयभीत होकर मैं पलायन (भागने) में तत्पर हुआ ॥ २३ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इसकेपश्चात् वह मुझे पकडके अपने घर लेगया और वहां तीन दिन होके आपके क्रीडार्थ मैं यहां प्राप्तकिया ॥ २४ ॥

एषतेकथितःसर्वआत्मोदंतोमयानघ ॥ संसारमायाप्रतिमोनानाश्चर्यरसान्वितः ॥ २५ ॥ अविद्यैवमनंतेयंशाखाप्रसरशालिनी ॥ आत्मज्ञानादृतेनैवकेनचिन्नामशाम्यति ॥ २६ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ यदाविपश्चिदित्युक्त्वातत्रतूष्णींस्थितःक्षणात् ॥ समवोचत्तदारामस्तमनिंद्यमतिस्त्विदम् ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंपश्यत्यसंकल्पोयोन्यसंकल्पआत्मनि ॥ मृगश्चेद्दृश्यतांयातःकथंसगैवदप्रभो ॥२८॥

अर्थ—हे पापरहित श्रेष्ठ ! यह संसार प्रसिद्ध इन्द्रजालकी मायाके सदृश और नानाप्रकारके आश्चर्योंसे संयुक्त अपना संपूर्णवृत्तान्त आपसे कहा ॥ २५ ॥ अनेकशास्त्रोंके विस्तारोंसे शोभायमान यह अविद्या अनन्तरूप है और आत्मज्ञानकेविना यह किसीउपायसे शान्त नहीं होती ॥ २६ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि हे भरद्वाज ! जिससमय राजा विपश्चित् इतना कहके क्षणभरकेलिये मौन होगया उससमय अनिन्दनीयमति श्रीरामचन्द्रजी यह वक्ष्यमाणवचन बोले ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! जब यह मृग हमलोगोंको दृष्टिगोचर हुआ तब यह सिद्ध हुआ कि संकल्परहितभी पुरुष अन्यप्राणीके संकल्पकी सृष्टिमें स्थितपदार्थ देखताहै सो यह कैसे युक्त है ॥ २८ ॥

॥ विपश्चिदुवाच ॥ महाशवंयत्पतितंयस्मिन्जगतिभूतले ॥ तांभुवंपूर्वमिंद्रेणयज्ञगर्वेणगच्छता ॥२९॥ पादेनाभिहतोव्योम्निदुर्वासाध्यानसंस्थितः ॥ गतासुरित्यविज्ञानात्तेनासौकुपितोऽशपत् ॥ ३० ॥ शक्रशक्रावनितलंब्रह्मांडप्रतिमंशवम् ॥ अचिरेणमहाघोरंतवचूर्णीकरिष्यति ॥ ३१ ॥ मामिमंशवबुद्ध्यात्वंयदतिक्रांतवानतः ॥ शापेनममतांपृथ्वींशीघ्रमासादयिष्यसि ॥ ३२ ॥

अर्थ—विपश्चित् बोले–कि हे रामजी ! जिसजगत्के भूतलपर वह महाशव गिरा उस पृथिवीपर यज्ञ समाप्तकरके गर्वसे जब इन्द्र जातेथे ॥ २९ ॥ तब आकाशमें विद्यमान ध्यानमें स्थित दुर्वासाऋषिको मृतकजानके चरणसे अज्ञानसे ताडना की उससे वे महर्षि कुपितहोके शाप दिया ॥ ३० ॥ कि हे इन्द्र ! जिस भूतलपर यज्ञकरनेके घमंडसे तुं अंधा होगयाहै उसको ब्रह्मांडके सदृश महाशव शीघ्रही चूर्णकरैगा ॥ ३१ ॥ क्योंकि तुमने मुझे शव (मृतक) बुद्धिसे पादसे आक्रमण कियाहै इसलिये मेरे शापसे मृतकशरीर शीघ्र इस पृथिवीको आक्रमणकरैगा ॥ ३२ ॥

मृगार्थंतेनमुनिनातथादेवेतिसद्यथा ॥ तत्तयाकथयायातंतदैवविषयंदृशाम् ॥ ३३ ॥ वस्तुतस्तुनचैकंस न्नद्वितीयंनचाप्यसत् ॥ सातथाप्रतिभोदेतिकिंसत्किमथवाप्यसत् ॥ ३४ ॥ अन्यच्चराघवेमांतांयुक्तिं त्वमपरांशृणु ॥ एतस्मिन्नयसंदर्भेसुस्फुटप्रतिपत्तये ॥ ३५ ॥ यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयत्सर्वंसर्वतश्च यत् ॥ ब्रह्मतस्मिन्महाभागकिंनसंभवतीहहि ॥ ३६ ॥

अर्थ—और इन्द्रकेसाथ एककालमेंही विपश्चित् मृगभावको प्राप्तहो यह शापभी उन्ही मुनिने दियाथा, इस हेतुसे महामुनिके कथनसे अन्यसंकल्पितभी आपलोगोंके दृष्टिगोचर हुआ ॥ ३३ ॥ यथार्थमें तो न व्यावहारिक जगत् सत् है और सांकल्पिक असत् है किन्तु दोनों अनिर्वचनीय हैं, और उभयरूपसे चित्प्रतिभाही उदयको प्राप्त होती है, इसमें किसको सत् कहें और किसको असत् ॥ ३४ ॥ और हे रामचन्द्रजी ! इस युक्तिके प्रकरणमें तुम स्पष्टबोधके लिये इस दूसरी युक्तिकोभी सुनो ॥ ३५ ॥ हे महाभाग रामजी ! जिस ब्रह्ममें सबकुछ है, जिससे सबकुछ उत्पन्नहोताहै जो सर्वरूप है तथा जो सर्वत्र व्याप्त है उस ब्रह्ममें क्या नहीं संभव होसकताहै ॥ ३६ ॥

संकल्पजातंनान्योन्यंमिलतीत्युपपद्यते ॥ संकल्पजातमन्योन्यंमिलतीत्युपपद्यते ॥ ३७ ॥ संकल्प जातमन्योन्यंमिलतीत्यवगम्यते ॥ सर्वात्मनिहियत्रैवछायातत्रैवचातपः ॥ ३८ ॥ नसंभवतिचेत्तत्त त्कथंसर्वात्मतामियात् ॥ कस्मात्संकल्पनगरंनमिथःश्लिष्यतीतिसत् ॥ ३९ ॥ मिथश्चश्लिष्यतीत्येवम पिसत्सर्वरूपिणि ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयन्मृषा ॥ ४० ॥

अर्थ—संकल्पसे उत्पन्न परस्पर नहीं मिलता यहभी सर्वशक्तियुक्त ब्रह्ममें युक्त है और संकल्पजनित परस्पर मिलताहै यहभी युक्त है॥ ३७ ॥ सर्वात्मारूप ब्रह्ममें संकल्पजनित परस्पर मिलताहै यह इस मेरेमें मृगरूपदर्शनादिमें प्रत्यक्ष उपलब्ध है, क्योंकि जहां छाया है वहां आतप (परस्पर विरुद्ध) भी होताहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि यदि परस्पर विरुद्धभी एकत्र न हो तो परब्रह्म सर्वात्मरूपही कैसे हो, और संकल्पके नगर परस्पर नहीं मिलते यहभी सत् है ॥ ३९ ॥ अनेकसंकल्पजनित वस्तु परस्पर मिलती हैं यहभी सत् है, क्योंकि सत् तथा सर्वरूप परमात्मामें ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सत् न हो, और ऐसेभी कोई नहीं जो मिथ्याभी न हों ॥ ४० ॥

सर्वत्रसर्वथासर्वंसर्वदासर्वरूपिणि ॥ अहोनुविषमामायामनोमोहविधायिनी ॥ ४१ ॥ विधयःप्रतिषे धाश्चयदेकत्रस्थितिंगताः ॥ ईदृशीब्रह्मसत्तैषायदेवात्मानमात्मना ॥ ४२ ॥ तयाअनादिःसादिश्चेत्य विद्येत्यनुभूयते ॥ नज्ञप्तिमात्रकचनंयदिस्याद्भुवनत्रयम् ॥ ४३ ॥ तन्महाकल्पनष्टानांसृष्टिःस्यात्कथ मंजसा ॥ कथमग्नेःकथंवायोःसत्ताभूमेःकथंभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वरूप परमात्मामें यह अघटितघटना पटीयसीमाया अतिभयंकर तथा महामोह-कारिणी है ॥ ४१ ॥ विधि तथा निषेधभी एकत्र स्थितिको प्राप्त हैं क्योंकि यह ब्रह्मसत्ता ऐसीही है कि वह निजआत्मासे निजआत्माहीको अनेकरूपमें सृजती है ॥ ४२ ॥ वही ब्रह्मसत्ता यह अविद्या अनादि तथा (ज्ञानद्वारा नष्ट होनेसे) उभयरूपसे अनुभूत होती है, और यह त्रिभुवन यदि ज्ञप्तिमात्रका स्फुरण न हो तो ॥ ४३ ॥ महाकल्पमें जो नष्ट होगये हैं उनकी सृष्टि पुनः बिना प्रयास कैसे हो ! और अग्नि, वायु तथा भूमिआदिकीभी सत्ता कैसे हो ॥ ४४ ॥

तस्मात्स्वभावकचनमात्रान्नान्यदिहतेजगत् ॥ शास्त्राण्यनुभवालोकाआमहाकल्पवादिनाम् ॥ ४५ ॥ येषांप्रमाणंनोसर्वंप्रशस्तैस्तैरलंसताम् ॥ ज्ञप्तिदृष्ट्यानयासर्वंप्रमाणीभवतिक्षणात् ॥ ४६ ॥ नान्ययात नुतेनैवमेवसारंविदुर्बुधाः ॥ शुद्धाज्ञप्तिर्ब्रह्मसत्तात्वविद्यास्मीतिचेतनात् ॥ ४७ ॥ स्फुरतीयंजगद्रूपावा तश्रीःस्पंदनादिव ॥ नकश्चनेहम्रियतेजायतेनचकश्चन ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसलिये चित्स्वभावके स्फुरणसे भिन्न यह जगत् कुछ नहीं है और शास्त्र तथा महाकल्पसे आदिलेके विद्वानोंके अनुभव ॥ ४५ ॥ जिन मूर्खोंको प्रमाण नहीं हैं, उन निंद्यपुरुषोंके साथ तो सज्जनोंको भाषणआदि व्यवहारभी नहीं करनाचाहिये. क्योंकि इस चिद्विलास दृष्टिसे सबकुछ क्षणमेंही प्रमाणीभूत होताहै ॥ ४६ ॥ इस चिद्दृष्टिसे भिन्न अन्य दृष्टिसे कुछभी नहीं प्रमाणीभूत होताहै, इसलिये पंडितजन इस ज्ञानदृष्टिको सार जानतेहैं, क्योंकि शुद्ध ज्ञप्तिरूप ब्रह्मसत्ताही मैं अविद्या हुं ऐसे चलनेसे ॥ ४७ ॥ जगत्स्वरूपसे ऐसे स्फुरती है जैसे स्पन्द (संचलन) से पवनकी श्री, इस हेतुसे न कोई इस संसारमें मरताहै और न जन्मताहै ॥ ४८ ॥

मृतोहमिदमस्तीतिप्रतिभैवचिदात्मिका ॥ स्मृतिरत्यंतनाशश्चेत्तत्सानिद्रासुखोपमा ॥ ४९ ॥ पुनर्दृ श्योपलंभश्चेन्ननुजीवितमेवतत् ॥ तस्मान्नेहास्तमरणंतन्नैवेहास्तिजीवितम् ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिन्मात्र

कचनेद्वयंवाप्यस्तिनैववा ॥ चेतितंद्वयमप्यस्तिनास्तिद्वयमचेतितम् ॥ ५१ ॥ चेतितंचैकमेवास्तिस्व स्त्यनंतमतश्चितः ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणकिंनामवदजीवनम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—मैं मरगया यह चिद्रूप प्रतिमाही उदित होती है और यदि दृश्यका नाश मरण है सुखके तुल्य सुषुप्ति है ॥ ४९ ॥ यदि पुनः दृश्यकी प्राप्ति होती है तब वह जीवनही है इसलिये इस संसारमें न कुछ मरण है न जीवन है ॥५०॥ एकचित् स्वरूपमेंही दोनों हैभी और नहीं हैं जब उसमें स्फुरणा हुई तब दोनों हैं और नहीं हुई तब दोनों नहीं हैं ॥ ५१ ॥ जिसमें द्वैत अद्वैतका चेतन (स्फुरण) होताहै व चित् एकही है इसलिये सर्वसाक्षिणी चित् सदा अनन्त कल्याणरूप है, कहो चिन्मात्रसे भिन्न जीवन क्या है ॥ ५२ ॥

अदुःखमक्षयत्वात्तदतोदुःखंककस्यचित् ॥ वाच्यंसवाचकंसर्वंयत्रचिद्व्योममात्रकम् ॥ ५३ ॥ तदन्य तदनन्यच्चकेतेतत्रैकताद्विते ॥ आवर्तादियथातोयेशरीरादितथापरे ॥ ५४ ॥ तत्सत्तासन्निवेशात्मका रणानन्यखात्मच ॥ चिद्भानमात्रमव्यग्रंखमेवाप्रतिघंजगत् ॥ ५५ ॥ आश्चर्यंसुघनंव्यग्रंद्रव्यंसप्रतिघं स्थितम् ॥ तथेतेभूतिभूर्नास्तिवर्तमानानुभूतिभूः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अक्षयरूप होनेसे दुःखरहित जीवन (शुद्ध आत्मचित्) सबको अभिलषित है, अतः कहां किसको दुःख है क्योंकि तत्वदृष्टिमें वाच्यरूप और वाचक नाम सब चिदाकाशमय है ॥ ५३ ॥ उस चित्से अन्य तथा अनन्य तथा द्वैत और अद्वैतभी क्या वस्तु हैं. क्योंकि जलमें आवर्त तरंग आदि हैं ऐसे परब्रह्ममें ये शरीर आदिभी हैं ॥ ५४ ॥ और कारण सत्तासे अभिन्न होनेसे पूर्ण जगत् चिदाकाशमात्रही है, यह जगत् सर्वथा निराकार चित्का भानमात्रही है ॥ ५५ ॥ निराकार परमात्माही रहते यह जो घनीभूत साकार द्रव्य भासताहै यह आश्चर्य्य है और यथार्थमें जैसे पूर्वकाल यह संसार अनुभवका विषय न था ऐसेही वर्तमानमेंभी नहीं है ॥ ५६ ॥

तत्रभ्रांत्यापिशाचोयंभातिखात्मेतिबुध्यताम् ॥ यथैतत्खंतथैतत्खमेतत्खमितिखंस्थितम् ॥ ५७ ॥ तथे तोभूरितोभूतमितोन्यदितिखंपरम् ॥ यैवचिद्भाजगत्सैवनैकतात्रनचद्विता ॥ ५८ ॥ नचप्रतिघताकाचि न्नचाप्रतिघरूपता ॥ सर्वमप्रतिघंदृश्यंयथाभूतार्थदर्शिनः ॥ ५९ ॥ तज्ज्ञताताज्ज्ञतेचेहनसतीनाप्यस त्स्थिती ॥ सत्येसदसतीचैकंकाष्ठमौनमतोखिलम् ॥ ६० ॥

अर्थ—किन्तु भ्रमसे वर्तमानकालके अनुभव यह शून्य चिदाकाशही इस दृश्य पिशाचका रूप धारणकरके भासताहै, ऐसा आप जानै और जैसे यह अनुभूयमान भूताकाश है ऐसेही यह चिदाकाशभी है क्योंकि चिदाकाशही भूताकाशरूपसे स्थित है ॥ ५७ ॥ जैसे ऊपर आकाशरूपसे भासताहै, ऐसेही अधोभागमें पृथिवी अन्यस्थान वायुआदि, तथा दिशाआदि वृक्षादिरूप चिदाकाश है, क्योंकि जो चित्प्रकाश है वही जगत् है इसमें एकत्व तथा द्वैत नहीं है ॥ ५८ ॥ तत्ववेत्ताकी दृष्टिमें न साकारता है न निराकारता है किन्तु सब यह दृश्य चिदाकाशरूप है ॥ ५९ ॥ पूर्णदृष्टिमें ज्ञानिता अज्ञानिता तथा सत् असत्का भेदभी कुछ नहींहै, क्योंकि पूर्णसत्व चिद्रूप आत्मामें सदसत् तुल्य हैं इसलिये सब काष्ठवत् मौन है, अर्थात् चिद्रूपहै ॥ ६० ॥

यदृश्यंब्रह्मतानंतंतदेवपरमंपदम् ॥ इदंसर्वंपरंब्रह्ममात्रमित्येवसंस्थितम् ॥ ६१ ॥ एवंनामैषचिद्धातुः कचत्येवंयदात्मनि ॥ यस्येदंकचनंव्योम्नोरूपमप्रतिघंजगत् ॥ ६२ ॥ सर्गाद्यामृतजीवानांसर्वत्रैवांगुलें गुले ॥ असंख्याःसंत्यसंख्यानामदृश्याप्रतिघामिथः ॥ ६३ ॥ अन्योन्यंसिद्धलोकास्तेस्वंयत्रप्राप्यसं गताः ॥ परस्परंनपश्यंतिमिथःप्रोताअपिस्थिताः ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह जो दृश्य है वही अनंतब्रह्महै, वही परमपद है क्योंकि इस संपूर्ण दृश्यरूपसे ब्रह्ममात्रही स्थित है ॥ ६१ ॥ इस चिद्रूप धातुका जगत्रूपसे स्फुरित होनेका स्वभावही है, उसी चिदाकाशका स्फुरण यह अप्रतिघरूप जगत् है ॥ ६२ ॥ मृतजीवोंकोभी अंगुल २ पर सर्वत्र असंख्य संसारकी सृष्टि हैं और ये अनन्तानन्त ब्रह्मांडभी एक अंगुलमें ऐसे हैं जो परस्पर मिलते नहीं ॥ ६३ ॥ देखो उत्तरोत्तर सूक्ष्म सिद्ध लोक अपने स्वरूपको पाकर ब्रह्ममें संयुक्तहैं और ओतप्रोत होनेपरभी एक दूसरेको नहीं देखते ॥ ६४ ॥

भवत्याकाशएवैषादृश्यश्रीर्गगनात्मिका ॥ अनन्यद्द्रष्टाचिद्रूपास्वप्नवत्स्वात्मद्रष्टृका ॥ ६५ ॥ एषाहिसं परिज्ञातातिष्ठत्यपियथास्थितम् ॥ भामात्ररूपनिर्वाणानिशांताप्रतिभाकृतिः ॥ ६६ ॥ शांताशेषविशेषा त्मयथास्थितमवस्थितम् ॥ सदसद्भाजगज्जालंपरिज्ञानेनशाम्यति ॥ ६७ ॥ यथाब्धिजलबिंदूनांक्षणवि श्लेषसंगमम् ॥ चिदणूनांतथाब्रह्मवारिधौस्फुरतांमिथः ॥ ६८ ॥ स्वप्नवद्भातिसर्गश्रीःसर्गादौचित्रभो

मयी ॥ अतःसर्वमिदंब्रह्मशांतमित्युपपद्यते ॥ ६९ ॥ दृष्टान्यनंतविभवानिमयाजगंतिभुक्तानिकार्यपरिणामविजृंभितानि ॥ भ्रांतादिशोदशबह्वनियुगानियावज्ज्ञानाद्दतेक्षयमुपैतिनदृश्यदोषः ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अवि० वि० श० विपश्चित्संसारभ्रमवर्णनं नामैकोनषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १५९ ॥

अर्थ—यह आकाशादिकी शोभा चिदाकाशरूपही है, किन्तु यह स्वप्नकेतुल्य स्वयं अपनेको देखनेवाली चिद्रूप अन्यसे दृष्ट नहींहै ॥ ६५ ॥ यह चिद्रूपसे ज्ञात होनेपर ज्योंकि त्यों स्थितरहतीहै और प्रकाश निर्वाणरूप होनेपरभी अज्ञानसे दृश्यरूप ऐसे भासतीहै जैसे रात्रिके अन्तमें बिनाजागे अन्धकार ॥ ६६ ॥ जब पूर्णरूपसे इसके सब विशेष ज्ञात होजातेहैं तब चाहै सत् हो वा असत् हो कुछ हानिकारक इसमें नहींहै, क्योंकि आत्मज्ञानसे जगत्जाल शान्त होजाताहै ॥ ६७ ॥ जैसे समुद्रके जलबिन्दुओंकेसाथ केवल समुद्र क्षणभर (ऊपर उछलतेसमय) वियोगयुक्त है ऐसेही चित्रूपसमुद्रमें स्फुरणशील जीवोंकाभी जबतक अज्ञान है तबतक अंशाशिभावसे वियोग वा भेद है ॥ ६८ ॥ चिदाकाशमयी यह सृष्टिकी शोभा सृष्टिकीआदिमें स्वप्नवत् भासतीहै, इसलिये यह शान्त ब्रह्मही है यही युक्त है ॥ ६९ ॥ हे राघव! अनंत विभवयुक्त अनेक जगत् मैंने देखे, निजकर्मोंसे प्रापित सुखदुःखरूप फलभी भोगे और अनेक युगोंतक दिशाओंमें भ्रमणभी किया परन्तु ज्ञानकेविना यह दृश्य कदापि शान्त नहीं होता ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० विपश्चित्संसारभ्रमवर्णनं नामैकोनषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १५९ ॥

षष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६० ॥

सायंकालमें सभाका विसर्जन दूसरे दिन पुनः उसका आगमन, भासकी जीवन्मुक्ति अविद्या इत्यादि विषयोंका वर्णन इस १६० के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ विपश्चितिवदत्येवंतद्वृत्तांतमवेक्षितुम् ॥ इवलोकांतरभानुःपादैर्दूरायतैर्ययौ ॥ १ ॥ उदभूत्पूरयन्नाशादिनपर्यंतदुंदुभिः ॥ तुष्टाभिरिविनिर्मुक्तोदिग्भिर्जयजयारवः ॥ २ ॥ विपश्चितेदशरथोगृहदारधनादिकम् ॥ राज्यानुरुपंविभवंप्रोत्तस्थौकल्पयन्क्रमात् ॥ ३ ॥ राजारामवसिष्ठाद्यामिथःकृत्वाविसर्जनम् ॥ यथाक्रमंपूजनंचप्रययुःस्वास्वदानिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले कि-हे राजन्! जिससमय विपश्चित् इसप्रकार कहताथा उसीसमय उसके वृत्तान्तको मानो प्रत्यक्ष देखनेके अर्थ सूर्य्यभगवान् निज दीर्घकिरणरूप चरणोंसे लोकान्तरमें गये ॥ १ ॥ तथा दिनके अन्तका सूचक दिशाओंको पूर्ण करताहुवा डंका इसप्रकार बजा जैसे कथार्थसे संतुष्ट दिशाओंसे प्रोक्त जय २ कार शब्द ॥ २ ॥ तथा राजा दशरथ विपश्चित्को गृह, स्त्री, धनादि और राज्यके अनुरूप ऐश्वर्य्य देतेहुये क्रमसे उठे ॥ ३ ॥ राजा दशरथ, रामचन्द्रजी तथा वसिष्ठ आदि परस्पर विसर्जन और यथायोग्य आदर सत्कारकरके अपने २ गृहको गये ॥ ४ ॥

स्नात्वाभुक्त्वानिशांनीत्वाप्रभातेपुनराययुः ॥ तेनैवसन्निवेशेनसासभासंस्थिताभवत् ॥ ५ ॥ क्रमान्मुनिरुवाचाथतांयथाप्रस्तुतांकथाम् ॥ शशीवामृतमाह्लादमुद्गिरन्मुखदीप्तिभिः ॥ ६ ॥ राजन्नेयमविद्येयमसत्येवसतींस्थिता ॥ नेदृशेनापियत्नेननिर्णीतैषाविपश्चिता ॥ ७ ॥ अविद्यैवमविज्ञाताचिरानंतावभासते ॥ परिज्ञातातुनास्त्येवमृगतृष्णानदीयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—और सायंकालकी संध्या तथा स्नान आदिके पश्चात् भोजनकरके रात्रिको विलासकर पुनः संध्यास्नानोत्तर आके सभामें प्राप्त हुये और वह सभा पूर्वदिवसके अनुसार पुनः स्थित हुई ॥ ५ ॥ अनन्तर मुनि श्रीवसिष्ठजी निजमुखकी दीप्तियोंसे आनंदजनक वचनको निकालते हुये ऐसे बोले जैसे चन्द्रमा अमृतको ॥ ६ ॥ हे राजन्! यह असत्य अविद्या जो सत्यके समान स्थित है इसका अन्त इतना प्रयत्नकरनेपरभी विपश्चित् निर्णीत न करसके ॥ ७ ॥ यह अविद्या अज्ञात होनेपर अनन्तरूपसे भासतीहै और ज्ञात होनेसे मृगतृष्णाकी नदीके तुल्य सर्वथा नहीं भासती ॥ ८ ॥

मंत्रिणस्तेमहाबुद्धेभासस्यास्यविपश्चितः ॥ इतिवृत्तंत्वमित्यस्यस्वयमेवहिदृष्टवान् ॥ ९ ॥ सदृशोयमितस्त्वाभिःकथाभिर्ज्ञाततत्पदः ॥ अविद्यायांप्रशांतायांजीवन्मुक्तोभविष्यति ॥ १० ॥ अविद्येतिधृतासंविद्ब्रह्मणात्मनिसत्तया ॥ तद्भ्रमेणासदप्यस्याःसद्रूपमिवलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यदाब्रह्मात्मिकैवेयमविद्यानेतरात्मिका ॥ तदास्येषाऽपरिज्ञातापरिज्ञातानभिद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे राजन्! इस भासनामधारी विपश्चित्के मंत्रीगणने इस वृत्तान्तको जो आपने देखाहै स्वयं देखा ॥ ९ ॥ अब इन उत्तम कथाओंसे आत्मारूप तत्वको जानकर अविद्याके शान्त होनेसे आपके सदृश यह विपश्चित्भी जीवन्मुक्त होजायगा ॥ १० ॥ ब्रह्मनेही अविद्या संवित्को धारण कियाहै इसलिये इसका असत्‌रूपभी सत्‌के तुल्य लक्षित होताहै ॥ ११ ॥ ब्रह्मसे अभिन्नरूप यह जबतक अज्ञात है तभीतक भिन्न सत्तावाली यह भासती है और ज्ञात होनेपर तो यह ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासती ॥ १२ ॥

अविद्यैवमनंतेयंनानाप्रसवशालिनी ॥ जडाहृद्यारसमयीमोहमाधवमंजरी ॥ १३ ॥ अंतःशून्याग्रंथिगतीश्लक्ष्णास्वंकुरकंटका ॥ जडारसमयीदीर्घालतेववनवैणवी ॥ १४ ॥ फलाशंकामुधैवातिनिष्फला चित्तहारिणी ॥ अकालपुष्पमालेवश्रेयसानाभिनंदिता ॥१५॥ नकिंचिद्रूपिणीपीनानानाभुवनपूरिणी ॥ भूताकुलानिरालोकासुदीर्घेवतमोमयी ॥ १६ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके शाखासमूहको उत्पन्न करनेसे शोभित, जड, रमणीय तथा आसक्तिरूप रससे पूर्ण यह अनंतअविद्या मोहरूपी वसंतकी लताके तुल्य शोभायमान होरही है ॥ १३ ॥ यथार्थमें आभ्यंतरसे शून्य, तथापि ग्रन्थिसहित, अतिचिक्कण, कंटकयुक्त उत्तम अंकुरयुक्त, जड, रसपूर्ण तथा अतिदीर्घ बनके बांसकी लताके समान यह अविद्या है ॥ १४ ॥ निष्फल होनेपरभी फलसहितके समान भासमान, तथा चित्तहारिणी कुसमयके पुष्पोंकी मालाके समान इस अविद्याकी कल्याणके अभिलाषी तत्त्वज्ञजन प्रशंसा नहीं करते ॥ १५ ॥ रूपरहित होनेपरभी अतिपीन (स्थूल) अनेक ब्रह्मांडोंको पूर्ण करनेवाली, प्राणियोंसे व्याप्त, प्रकाशरहित तथा अतिदीर्घ यह अविद्या पिशाचपूर्ण अन्धकारमयी रात्रिकेसमान है ॥ १६ ॥

केशोंड्रकभ्रांतिरिवविचित्रग्रंथिवेष्टना ॥ मिथ्यैवदृश्यमानाखेदृश्यमानानकिंचन ॥ १७ ॥ विचित्रवर्णा विगुणाशून्येचबितताकृतिः ॥ जडस्पंदोत्पातमयीशक्रचापलतेवखे ॥१८॥ जडकल्लोलबहुलाकलुषोल्ला सफेनिला ॥ चक्रावर्त्ताक्षयमयीप्रावृषीवतरंगिणी ॥ १९ ॥ अनारतवहच्छून्यजगन्मृगनदीशता ॥ रजोराशिमयीरूक्षाशवभूरिवदुर्भगा ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशमें केशादि भ्रांतिके तुल्य, तथा विचित्र ग्रंथिमय वेष्टनसहित यह अविद्या अवस्तुरूप होतेभी मिथ्याही चिदाकाशमें भासती है ॥ १७ ॥ विचित्रवर्णयुक्त, गुणशून्य, शून्यमें विशालआकारवाली, तथा जड (ल) के स्पन्दसे अनेक उत्पातोंको प्रकट करनेवाली, यह आकाशमें इन्द्रकी चापलताके तुल्य शोभित होरही है ॥१८॥ जड (ल) तरंगोंसे पूर्ण, मलिनविलासरूप फेनधारिणी, तथा चक्राकार आवर्तोंकी उत्पत्ति और क्षयसहित यह अविद्या वर्षाकालकी नदीके समान है ॥ १९ ॥ निरन्तर शून्यस्थानमें वहतीहुई अनेक जगत् तथा मृगआदिरूप नदीसे संयुक्त, धूलिकी राशिसे पूर्ण तथा रुक्ष श्मशानभूमिके समान अशुभ यह अविद्या है ॥ २० ॥

अंतंप्राप्नोतिनयथाचिरंस्वप्नपुरेचरन् ॥ जाग्रदाख्येस्वप्नपुरेतथैवास्मिंश्चिरंचरन् ॥ २१ ॥ यानिसंकल्पजालानिप्रतिष्ठामागतान्यलम् ॥ त्यक्तैकदृश्यजालस्थदेहानांदृढचेतसाम् ॥ २२ ॥ स्थितानितानिचिद्व्योमकोशरत्नान्यसंकटम् ॥ विमानपुरभूम्यादिरूपेणेत्थंस्थितात्मना ॥२३॥ तान्येवसिद्धसद्मानिव्योम्निभांतिपरस्परम् ॥ अदृष्टान्यप्यसंख्यानिसूपलब्धान्यसंत्यपि ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे चिरकालतकभी भ्रमण करके स्वप्नके नगरका अन्त प्राणी नहीं पाता इसीप्रकार इस जगत्‌नाम स्वप्नके नगरमेंभी चिरकालतक भ्रमण करताहुवा यह जीव अन्त नहीं पाता ॥ २१ ॥ मृत्युसमय त्यागे हुये एक दृश्यजालमें स्थित शरीरवाले तथा जगदाकार दृढचित्तयुक्त मनुष्योंके हृदयमें जो दृढसंकल्प हैं वेही इस जगत् तथा देहादिरूपसे पूर्णरूपसे प्रतिष्ठाको प्राप्त हुये हैं ॥ २२ ॥ मनके संकलपही चिदाकाशरूप कोशमें रत्नके तुल्य विमान, नगर तथा भूमिआदिरूपसे स्थितहैं ॥ २३ ॥ वेही मनके संकल्प असंख्य अदृष्ट, तथा अनेक पूर्णरूपसे दृष्ट सिद्धोंके स्थानरूपसे परस्पर प्रकाशित होरहेहैं ॥ २४ ॥

सुवर्णमणिमाणिक्यमुक्तावनिमयानिच ॥ भक्ष्यभोज्यान्नपानाढ्यरसायनसरांसिच ॥ २५ ॥ मधुमद्यदधिक्षीरघृतकुल्याकुलानिच ॥ रसायनमयाकारवनितावलितानिच ॥ २६ ॥ सर्वर्तुपुष्पफलपल्लवपूरवंतिलीलाविलोलललनाकुलितालयानि ॥ संकल्पमात्ररचनेनचसर्वकालंसंपन्नसर्वविभवोत्करसंकुलानि ॥ २७ ॥ सहस्रचंद्रबिंबानिशतसूर्याणिकानिचित् ॥ सुवर्णामृतवेषांबुमयभूतानिकानिचित् ॥२८॥

अर्थ—अनेक सिद्धोंकेस्थान सुवर्ण, मणिं, माणिक्य तथा मुक्तामय भूमिसे पूर्ण, तथा भक्ष्य भोज्य अन्नपानादिसे पूर्ण रसायनमय तडागोंसे शोभितहैं ॥ २५ ॥ तथा मधु, मध, दुग्ध, दधि, और घृतपूर्ण कृत्रिमनदियों (नहरों) से व्याप्त तथा चन्द्रमुखी ललनाओंसे व्याप्त सिद्धोंके स्थान हैं ॥ २६ ॥ सबकालमें सबप्रकार पुष्प, फल तथा पत्रादिपूर्ण वृक्षोंसे व्याप्त, अनेकप्रकारकी लीलाओंसे चंचल वनिताओंसे पूर्ण गृहोंसे युक्त तथा संकल्पमात्रकी रचनासे प्राप्त सबप्रकारके विभवसमूहोंसे व्याप्त सिद्धोंके स्थान हैं ॥ २७ ॥ कितने सिद्धलोक अनेक सूर्य्यचन्द्रके बिम्बके सदृश और कितने सुवर्ण तथा अमृतमय जलके सदृश वेष (अतिप्रकाशमय) प्राणियोंसे पूर्ण हैं ॥ २८ ॥

स्वेच्छातमःप्रकाशानिनित्यानंदमयानिच ॥ कानिचिन्नीयमानानितनुतूललघूनिच ॥ २९ ॥ क्षणोत्पत्तिविनाशानिकानिचित्कलनावशात् ॥ अनंतस्वन्नपानानिनिर्जरामरणानिच ॥ ३० ॥ विचित्रसन्निवेशानिविचित्रविभवानिच ॥ सर्वर्तुगुणरम्याणिसर्वकाममयानिच ॥ ३१ ॥ तानिसंकल्पजालानिकिल कल्याणकारतः ॥ स्थिराणांमनसांभित्तिःकथमेवंभवेत्तासा ॥ ३२ ॥

अर्थ—कितने सिद्धलोक इच्छाके अनुसार अन्धकार तथा प्रकाशसे पूर्ण और नित्य आनन्दमय हैं और कितने सिद्धस्थान तूल (रुई) के सदृश लघुशरीरधारी होनेसे वायुकेद्वारा निज अभीष्टदेशमें प्राप्तकियेजातेहैं ॥ २९ ॥ कितने अपनी कल्पनाके अनुसार क्षणमेंही उत्पत्ति तथा नाशयुक्त हैं और कितने लोक अपरिमित उत्तम अन्नपानसे पूर्ण जरा (वृद्धावस्था) तथा मृत्युसे रहितहैं ॥ ३० ॥ विचित्ररचना, विचित्रविभवोंसे पूर्ण, सब ऋतुओंके गुणोंसे रमणीय तथा सब कामनाओंको देनेवाले वे स्थान हैं ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! कल्याणदायक शास्त्रोक्त सत्कर्मोंकी उपासनासे उन २ फलोंके आकारमें उन २ लोकोंके भोगके योग्यरूपसे स्थिर जो प्राणियोंके मनकेही सब परिणाम हैं, क्योंकि यह विचित्रपरिणाम स्थूल भित्तिरूपसे कैसे होसकतेहैं ॥ ३२ ॥

नान्यत्किंचननामेहब्रह्ममात्रमयात्मनि ॥ संभवत्यंगतेनैतदुच्यतामस्तुकिंमयम् ॥ ३३ ॥ सर्गादावेव सर्गादिकिंचनापीदमस्तिनो ॥ कारणाभावतस्तेनजगत्किमयमस्त्विदम् ॥ ३४ ॥ संकल्प्यंतेनिरंतानि किलतानियथायथा ॥ चितौतथातथाभांतिकेवात्रवदचित्रता ॥ ३५ ॥ इदानीमपिहेसाधोत्वमप्यन्येपि केपिवा ॥ तीव्रसंवेगसंकल्पनगराण्येवमेवखे ॥ ३६ ॥ कुर्वत्येकरसाभ्यासाद्यदिनामयदृच्छया ॥ तत्तानीदंवपुस्त्यक्त्वाप्राप्नुवंत्यचिरेणखे ॥ ३७ ॥

अर्थ—और स्वप्न तथा मनोरथादिमें मनके परिणाममय पदार्थ तो चित्सत्तारूप हैं इसलिये सबजगत् ब्रह्ममयसे भिन्न कुछ नहीं हैं. हे प्रिय ! यदि इससे भिन्नप्रकारसे जगत्का संभव है तो कहो वह किं रूप है ? ॥ ३३ ॥ यद्यपि इससमय पंचभूतमय सृष्टि भासती है तथा सृष्टिकीआदिमें सत् चित्से भिन्न जब कुछ नहीं है तब कारणके अभावसे यह जगत् किंमय होसकताहै ॥ ३४ ॥ अत्यन्त असत् होनेपरभी जिस २ प्रकारसे ये अनंत जगत् तथा उसमें भोग्यपदार्थ संकल्पित होते हैं उसी २ प्रकारसे वे सब चित्में भान होतेहैं तब कहो इसमें क्या विचित्रताहै. क्योंकि स्वप्नादिमें अत्यंत असत्का भान दृष्ट है ॥ ३५ ॥ हे साधो ! इससमयभी तुम अन्यतीव्र संवेगयुक्त संकल्पसे निज इच्छानुसार नगर आदि चिदाकाशमें बनातेही हैं और तीव्र संवेगकी न्यूनता रहनेसे इस शरीरको त्यागकर संकल्पित पदार्थको शीघ्रही चिदाकाशमें प्राप्त कहते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

यस्त्विदंकल्पितंचद्वेवस्तुनीअनुवर्तते ॥ स्वर्गादिविदवाप्नोतिप्राप्नोत्यैवैकमेकधीः ॥ ३८ ॥ सिद्धाः सदाविभांत्येवंयथांतःकल्पनावशात् ॥ नरकादीनिदुःखानितथैवाभांतिकल्पनात् ॥ ३९ ॥ यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तत्तथाप्यनुभूयते ॥ सतिवासतिदेहेस्मिन्देहएवमनोमयः ॥ ४० ॥

अर्थ—और जो पुरुष पूर्वसिद्ध उपासनादिजन्य तथा निजकल्पित ये दोनों प्रपंच दृढसंकल्पसे मिलतेहैं इस बुद्धिसे युक्त चलताहै उसको यज्ञकर्ताको स्वर्गादिके तुल्य दोनों मिलतेहैं और उपासनादिसे उत्पन्न तथा निजसंकल्पित इनमेंसे एकही सत्य है ऐसी जिसकी दृढबुद्धि है उसको एकही मिलताहै ॥ ३८ ॥ जैसे पूर्वोक्त सिद्धादिलोक दृढसंकल्पसे होतेहैं, ऐसेही नरकादिके दुःखभी हैं, इनमें इतना भेद है कि उपासनाका फल उसमें सत्यबुद्धि तथा दृढ अभ्याससे होताहै, पुण्यफल आस्तिकता तथा अनुष्ठानसे होताहै और पापका फल तो आस्तिक्य तथा अभ्यासके अभावमें पापके आचरणमात्रसे सत्यही है यह दृढकल्पना है ॥ ३९ ॥ जो २ संकल्पित करताहै उस २ को देह रहै वा न रहै अवश्य अनुभव करता है, क्योंकि यह सब देहभी मनोमय है ॥ ४० ॥

जीवस्त्यजतियद्भावेएकांदेहमयींधियम् ॥ तद्भावैकमयीमन्यामाशुतत्रैवपश्यति ॥ ४१ ॥ शुभासंविच्छुभाँल्लोकान्संपश्यत्यशुभाऽशुभान् ॥ खात्मिकाखात्मकानेवचिरंवानुभवत्यपि ॥ ४२ ॥ शुद्धासिद्धपुराण्येवपश्यत्युनुभवत्यपि ॥ चिदशुद्धानिरूपाणिदुःखानिनरकेष्वति ॥ ४३ ॥ घूर्णत्पाषाणयमलगिरिचक्रकपेषणम् ॥ तत्रांधकूपपतनंपुनरुद्धारवर्जितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह जीव जिस भावसे एकदेहमयी बुद्धिको त्यागताहै उसी भावसे दूसरी देहमयी बुद्धि (अन्यदेह) को शीघ्रही चिदाकाशमें देखताहै ॥ ४१ ॥ यह चिदाकाशमयी पुण्यकरनेवाली संवित् चिदाकाशमय शुभलोकोंको और पापकरनेसे अशुभ चिदाकाशमय लोकोंको देखती है और चिरकालतक उनका अनुभवभी करती है ॥ ४२ ॥ जो उपासनादिसे शुद्ध संवित् है वह अन्यसंकलिपत सूक्ष्मसिद्धनगरोंको और निजसंकलिपतको भोगती है और पापाचरणसे अशुद्ध संवित् नरकादि दुःखोंको देखती तथा अनुभवभी करती है ॥ ४३ ॥ चक्कीकेसमान घूमते हुये दो पर्वताकार यंत्रोंके भीतरका पेषण तथा पुनः उद्धाररहित अंधकूपादिमें पतनादि दुःखोंको नरकोंमें यह अनुभव करती है ॥ ४४ ॥

दारुणेनातिशीतेनदेहंपाषाणतांगतम् ॥ भूतांगारमयानंतमरुमार्गास्पदंवपुः ॥ ४५ ॥ पूतांगारमयांभोदसरदंगारवर्षणम् ॥ तप्तनाराचनिकरपरुषासारदारुणम् ॥ ४६ ॥ वहत्पाषाणचक्रासिसरिदाकाशसंचरम् ॥ वक्षोमुक्तांबुदाकारकुठाराघातभेदनम् ॥ ४७ ॥ तप्तायःपरुषाश्लेषशमिच्छमितिमज्जनम् ॥ बृहत्कटकटाशब्दशस्त्रयंत्रनिपीडनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—और अतिभयंकर शीतसे अपने अंग पाषाणरूपताको प्राप्त तथा भूतपिशाचादिपूर्ण निर्जल तथा अनंत मरुदेशके पथिकरूपताको प्राप्त अपने देहको नरकोंमें पापकारिणी संवित् अनुभव करती है ॥ ४५ ॥ अतिसंतप्त बाणोंके समूहको कठोरवृष्टिके तुल्य भयंकर शुद्ध अङ्गारमय मेघोंसे गिरती हुई अंगारोंकी वर्षाको नरकोंमें अशुभसंवित् अनुभवकरती है ॥ ४६ ॥ पाषाण वहानेवाली नदियोंसे आकाशमें भ्रमण, तथा वक्षस्थल (छाती) पर फेंकेहुये मेघाकार कुठारके आघातोंसे भेदन ॥ ४७ ॥ तप्तलोहकी प्रतिमा तथा शूलादिसे शब्दकेसाथ आलिंगन और महा कटकटाशब्दयुक्त शस्त्र तथा यंत्रोंमें पीडन अशुभसंवित् (पापीजीव) नरकोंमें अनुभव करतीहैं ॥ ४८ ॥

चक्रवज्रगदाप्रासशूलासिशरवर्षणम् ॥ शाल्मलीग्रहणंपाशंकुशक्तिशततोदनम् ॥ ४९ ॥ तप्तसैकतसंभारपातपातालमज्जनम् ॥ दीपच्छन्नानलभयंबृहद्वायसचर्वणम् ॥ ५० ॥ निर्गिमाकृशांगारमहांगारप्रवेशनम् ॥ शरशक्तिगदाप्रासभुशुंडीचक्रवेधनम् ॥ ५१ ॥ क्षुत्क्षोभपरुषप्रेतव्रातान्योन्यांगचर्वणम् ॥ तालोत्तालातिपरुषशिलातलनिपातनम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—चक्र, वज्र, गदा, भाला, शूल, खड्ग तथा बाणोंकी वर्षा, कंटकित सेहुणआदि वृक्षोंका ग्रहण, पाशबंधन तथा भयंकर शक्ति (बर्छी) आदिसे छेदन ॥ ४९ ॥ संतप्त वालुका (रेत) के भारका पतन, पातालमें निमज्जन, (डूबना) दीपके आकारमें प्रच्छन्न उल्काकी अग्निका भय और महाकाकोंकेद्वारा अंगोंका चर्वण नरकोंमें पापीजीव भोगतेहैं ॥ ५० ॥ शरीरको छेदनेवाले महाअंगारोंका प्रवेश, बाण, शक्ति, गदा, बर्छी, भुशुंडी तथा चक्रआदि शस्त्रअस्त्रोंसे शरीरका वेधन नरकोंमें पापजीव सहतेहैं ॥ ५१ ॥ क्षुधासे क्रुद्ध क्रूरप्रेतसमूहोंसे परस्पर अंगोंका चर्वण, तथा ताडवृक्षोंसेभी उंची महापाषाणशिलाओंके नीचे निपातन (गिराना) पापीजीव सहतेहैं ॥ ५२ ॥

रुधिरामेध्यपंकांकपूयनद्यादिसंकटम् ॥ शिलाशस्त्रमयाश्वेभपादपाषाणपेषणम् ॥ ५३ ॥ श्वभ्रभोल्लकलिखितंजनौघमुसलाहतिम् ॥ शिरःकरखुरस्कंधखंडोत्कगृध्रमंडलम् ॥ ५४ ॥ एतस्मात्कुकृतादेतत्फलमित्येवभावनात् ॥ पश्यत्येवंदेशदृढादविसंवादिविस्तृतः ॥ ५५ ॥ यन्नामकिंचनकदाचनचेतनंखेभातंनभातमथवायदपूर्वमेव ॥ तत्कल्पनाद्भवतितन्मयमेवतद्धितस्माच्चिरंचचलतीतियदृच्छयैव५६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० वि० श० स्वर्गनरकोपलंभवर्णनं नाम षष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६० ॥

अर्थ—रुधिर तपीबआदिके अपवित्र कर्दमपूर्णनदीआदिके क्लेशका सहन तथा शिला और शस्त्रमय अश्व हाथीआदिके चरणरूप पाषाणोंसे संपेषण ॥ ५३ ॥ गर्तोंमें उल्लूकआदि पक्षियोंसे देहका विदारण, जनसमूहोंके मुशलोंके प्रहारोंको तथा मस्तक और हस्तपादआदिके खंडनमें अतिअभिलाषी गीधआदि समूहके आघातोंका सहन पापीजीव नरकोंमें करतेहैं ॥ ५४ ॥ इन २ कुकर्मोंसे ये नरकके फल मिलतेहैं इसप्रकार शास्त्रोंके निर्णयसे तथा पूर्वजन्मोंमें अनेकवार नरकके फलभोगकी दृढभावनासे निज आत्माही अवश्यभावी नरकादिरूपसे विस्तृतहै ॥ ५५ ॥

चिदाकाशमें जो कुछ देहादि प्रथम भान हुआहै, वा भावीस्वप्नआदि दर्शनसे जो नहीं भासमान है अथवा जो अपूर्व है वह सबकुछ संकल्पकी भ्रान्तिसे भासताहै, और यह सब भान मनोमय है, इसकारण चिरकालकी अनुभूतभावनासे यह जीव बिनाप्रयासही निरंतर संसारमें आवागमन करता रहताहै ॥ ९६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० वि० श० स्वर्गनरकोपलंभवर्णनं नाम षष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६० ॥

एकषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६१ ॥

यह विचित्रजगत् चित्से भिन्न कारणशून्य चित्की प्रतिभामय जो है वह अज्ञानसे भासताहै और ज्ञानसे यह ब्रह्मरूपही है यह विषय इस १६१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ यन्मुनिव्याधयोरेतद्वृत्तंनानादशाशतम् ॥ अन्यकारणकंकिंस्यादेतत्किंवास्वभावजम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ईदृशाःप्रतिभावर्ताःपरमात्ममहांबुधौ ॥ अनारतंप्रवर्ततेस्वनःस्वात्मनिखात्मकाः ॥ २ ॥ यथास्पंदात्मनोवायोरजस्रंस्पंदलेखिकाः ॥ उद्यंत्येवसतश्चिस्वाच्चिद्व्योम्निप्रतिभायुताः ॥ ३ ॥ यायथास्वांगभूतास्मादुदिताप्रतिभाप्रमा ॥ तावत्सेहतथैवास्तेनहतायावदन्यया॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे महर्षे! यह जो भासवर्णित मुनि तथा व्याधका वृत्तान्त अनेकप्रकारके सुख-दुःखआदिकी दशाओंसे पूर्णहै वह प्रतिदिन दृश्यमान स्वप्नआदिके तुल्य चित्भिन्न कारणरहित है, अथवा लवण गाधिआदिके चांडालभावआदि इन्द्रजालिकआदिकेद्वारा भगवान्के वरदानआदि निमित्तकेसमान स्वभावजनित है॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! कुछभी निमित्त हो जबतक मुक्ति नहीं होती तबतक चिदाकाश अनंत पर-मात्मारूप महासमुद्र चित्प्रतिभारूप आवर्तवत् ऐसे अनेक ब्रह्मांड निरन्तर स्वयं चिदाकाशमय हुआ करतेहैं ॥ २ ॥ जैसे व्यजनआदि अन्यनिमित्त हो वा न हो वायुमें मंद २ स्पंदलेखा निरंतर चलतीरहती हैं ऐसेही सच्चित्परमात्मासे पदार्थाकार प्रथा चिदाकाशमें सदा स्वयं उत्पन्नहोती हैं ॥ ३ ॥ निजअंगभूत इस परमात्मासे जो प्रतिभा जैसे उदित हुई वह जबतक दूसरी प्रबल प्रतिभासे हत नहीं होती तबतक इसमें वैसीही बनी रहती है ॥ ४ ॥

नानावयववानेकएवेहावयवीयथा ॥ चिद्ब्रह्मैकमिदंव्योमतथैवंप्रतिभात्मकम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मकाश्चित्स्थिराःकाश्चिदस्थिराःप्रतिभार्थवत् ॥ देहावस्थाइवात्मस्थाःस्थितमात्मनिखात्मनि ॥ ६ ॥ स्वात्मनिस्वप्नपुरवद्भानंचितिचमत्कृतिः ॥ किंसारंकिमसारंवाकिंसत्किंवाप्यसद्भवेत ॥ ७ ॥ परिज्ञातमिदंयावत्सर्वंचिद्व्योममात्रकम् ॥ दृश्यंजगद्भवद्बुद्धंनसन्नासत्किमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे पत्रपुष्प शाखादि अवयवोंमें एक अवयवी वृक्ष है, ऐसेही चित्प्रतिभामय देह जगत्आदि अवयवोंका अधिष्ठानरूप अवयवी चिदाकाशरूप ब्रह्म है ॥ ५ ॥ और जैसे देहस्थ हस्तपादादिआकारवाली अवस्था चिरकाल-स्थायिनी है और निमेष आदि अल्पकालस्थायिनी है ऐसेही ब्रह्ममें भूमि, अन्तरिक्ष दिशाआदि अवस्था दीर्घकालस्था-यिनी हैं तथा शरीरआदि अवस्था अल्पकालस्थायिनी हैं ॥ ६ ॥ स्वप्नकेनगरके तुल्य स्वात्मामें चित्की चमत्कृ-तिमात्रही यह जगत् है, इसमें सार, असार, सत् तथा असत् क्या होसकताहै ॥ ७ ॥ परमात्मस्वरूप ज्ञातहोनेसे यह सब चिदाकाशमात्रही है. आप अज्ञजन इस दृश्यजगत्को जानें तब इसको सत् असत् कुछ नहीं कहसकते ॥ ८ ॥

चिद्व्योममात्रकचनंसंसारेसर्वतःशिवे ॥ आस्थानास्थादिकिंतज्ज्ञायथासंस्थानमास्थित ॥ ९ ॥ समुद्यंतिस्वतांभोधेर्वीचिवत्प्रतिभाकृताः ॥ स्वात्मिकाःस्वात्मनोदेवात्कार्यकारणदृक्तया ॥ १० ॥ स्फारं यत्परमंव्योम्नःस्वसंकल्पस्वसर्गवत् ॥ तत्तेनैवजगद्भूद्धंकुतःपृथ्व्यादयोऽत्रके ॥ ११ ॥ भात्येवमयमाभासोनैवभातिचकिंचन ॥ ब्रह्मण्येवस्थितंब्रह्मतदविद्याभिधंस्वतः ॥ १२ ॥

अर्थ—सर्वथा कल्याणमय ब्रह्मरूप इस संसारमें केवल चिन्मात्रका स्फुरण है. हे तत्वज्ञजन! इसमें आस्था वा अनास्था क्या करनी, किन्तु जैसा इसका स्वरूप (ब्रह्ममय) है उसको अवलम्बन करके स्थित रहो ॥ ९ ॥ का-र्य्यकारणके साक्षीरूप होनेसे स्वात्मभूत परमात्मादेवसे ये देह जगत्आदि आकारकी निजआत्मरूप प्रतिभा सदा स्वयं ऐसे उत्पन्न होती हैं जैसे समुद्रसे तरंग ॥ १० ॥ निजसंकल्प तथा स्वप्नमयी निजरचितसृष्टिके समान विशाल जो

प्रतिभान है उसीको इस आत्माने जगत्‌रूपसे जाना है, इसमें पृथिवीआदि क्या पदार्थ हैं ॥ ११ ॥ यह चित्‌का आभासही जगत्‌रूपसे भासताहै, और यथार्थदृष्टिमें कुछ नहींभासता, अतः यह अविद्यानामक ब्रह्मरूप जगत् ब्रह्ममेंही स्थितहै ॥ १२ ॥

घनताचिद्घनेनेहचिद्व्योमैवाखिलंजगत् ॥ इत्येवपरमोबोधएतत्प्रौढिस्त्वमुक्तता ॥ १३ ॥ चिद्व्योमशून्यतारूपमात्रमाभासआततः ॥ इदमप्रतिघंशांतंजगदित्येवभासते ॥ १४ ॥ ध्यायिनःक्षीणदेहस्य ध्यानेहृत्क्षणंस्थिते ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणशक्तत्वंस्यात्किमुच्यताम् ॥ १५ ॥ चिद्धातुव्योमभागो योभातियत्रयथायथा ॥ तथातथासतत्रास्तेयावदित्थंस्वभावतः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस संसारमें पृथिवीआदिरूपसे जो घनता है चिद्‌घनपरमात्माहीसे है, और चिदाकाश संपूर्ण जगत् है, ऐसा ज्ञान होनाही परमआत्मज्ञान है, और भूमिकाओंके अभ्याससे दृढीभाव इस ज्ञानताकी मुक्ति है ॥१३॥ आकाशकी नीलताके सदृश चिदाकाशका अविद्यासे जो रूप भासताहै वही अप्रतिघ (निराकार सर्वगत) रूप इस जगत्‌रूपसे अज्ञानद्वारा भासताहै ॥ १४ ॥ देहके संबन्धसे शून्य निर्विकल्पसमाधिस्थके हृदय क्षणभरकोलिये निर्विकल्पध्यानस्थित होनेपर चिन्मात्र साक्षीस्वरूपमें जगत् दर्शनकी शक्ति क्या होसकती है सो कहो ॥ १५ ॥ स्वभावसेही चिद्रूप धातुके चिदाकाशका जो (कल्पित) भाग जहां २ जिस २ प्रकारसे भासताहै वहां २ उसी २ प्रकारसे है, अर्थात् अज्ञचित्तरूप उपाधिमें जगत्‌रूपसे तथा ज्ञानीचित्तरूप उपाधिमें केवल चिन्मात्ररूपसे भासताहै ॥ १६ ॥

अविचारवतोदृश्यभ्रांतिर्गगनमय्यपि ॥ जातितैमिरिकद्वींदुदोषवन्नोपशाम्यति ॥ १७ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचित्तद्ब्रह्मैवनिरामयम् ॥ चिदाकाशमनाद्यंतंतत्कथंकिंप्रशाम्यति ॥ १८ ॥ स्वमसंत्यजतोरूपंस्वच्छसंवेदनात्मकम् ॥ स्वप्नवत्कचनंस्वस्ययन्नामतदिदंजगत् ॥ १९ ॥ शास्त्रार्थैस्तीक्ष्णयाबुद्ध्यामिथोयन्नविकल्पनैः ॥ कृत्वासुप्तमिवात्मानंकिंचिद्बुद्धेनबोध्यते ॥ २० ॥

अर्थ—अविचारवान् पुरुषकी दृश्यभ्रांति चिदाकाशरूप होतेहुयेभी ऐसे नहीं है जैसे जन्मसेही तिमिर रोगीको द्वितीयचन्द्रकी ॥ १७ ॥ जो कुछ यह भासताहै वह अनादि अनन्त निर्विकार चिदाकाश ब्रह्मही है, कहो वह कैसे शान्तहो ॥ १८ ॥ अपने निर्मलज्ञानस्वरूपको न त्यागते हुये स्वप्नमें चित्स्फुरणके तुल्य चित्तका स्फुरण यह जगत् है ॥ १९ ॥ विकल्पशून्य वेदान्तशास्त्रोंसे तीक्ष्णबुद्धिसे निजआत्माको सुषुप्तके समान करके ज्ञानीसे जो कुछ चित्स्वरूप बोधित होताहै वही आत्मा है ॥ २० ॥

रूढायेयमविद्येतिसंविदव्यभिचारिणी ॥ भवतांननुनास्त्येवसासरित्स्विवपांसुभूः ॥ २१ ॥ यथास्वप्नेवनिर्नास्तिस्वानुभूतापिकुत्रचित् ॥ तथेयंदृश्यतानास्तिस्वानुभूताप्यसन्मयी ॥ २२ ॥ चिद्व्योममात्रमेवार्थानलवद्भासतेयथा ॥ स्वप्नेतथैवजाग्रत्त्वेऽनलंस्वस्यैवलक्ष्यते ॥ २३ ॥ इदंजाग्रदयंस्वप्नइतिनास्त्येवभिन्नता ॥ सत्येवस्तुनिनिःशेषसमयोर्यानुभूतितः ॥ २४ ॥

अर्थ—आप लोगोंको यह अविद्यारूप अन्यव्यभिचारिणी जगदाकारसे बुद्धि प्रौढ होरही है वह हम सब ज्ञानियोंको ऐसे नहीं है जैसे नदियोंमें धूलियुक्त भूमि ॥ २१ ॥ जैसे निजअनुभूतभी स्वप्नके नगर पृथिवी आदि कहीं नहीं हैं, ऐसेही निज अनुभूतभी असत्‌रूप यह दृश्य जगत् यथार्थमें नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही पदार्थ तथा उनका प्रकाश तेजरूपसे भासताहै ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी निजसाक्षीका प्रकाशरूपही पूर्णतासे न भासताहुआ जगत्‌रूपसे भासताहै ॥ २३ ॥ तत्वज्ञोंके अनुभवसे समानरूप जाग्रत् तथा स्वप्नकी यह जाग्रत् है, यह स्वप्न है यह भिन्नता जो अज्ञानसे भासती है वह सत्यवस्तुमें सर्वथा नहीं है ॥ २४ ॥

नैतदेवमितिस्वप्नप्रबोधात्प्रत्ययोयथा ॥ मृत्वामुत्रप्रबुद्धस्यजाग्रतिप्रत्ययस्तथा ॥ २५ ॥ कालमल्पमनल्पंचस्वप्नजाग्रदितीहधीः ॥ वर्तमानानुभवनसाम्यात्तुल्यैतयोर्द्वयोः ॥ २६ ॥ बाह्येतदेवमित्यादिगुणसाम्यादशेषतः ॥ नजाग्रत्स्वप्नयोर्ज्यायानेकोपियमयोरिव ॥ २७ ॥ यदेवजाग्रत्स्वप्नोयंयःस्वप्नोजाग्रदेवतत् ॥ नैतदेवंकिलेत्यस्तिधीःकालेनोभयोरपि ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नसे प्रबुद्ध पुरुषकी स्वप्नकी वृत्ति बाधित होती है ऐसेही मरणके पश्चात् शरीरान्तरमें प्रबुद्ध जातिस्मरगर्भस्थपुरुषकी जाग्रत् अवस्थामें प्रसिद्ध वृत्ति (विषयोंकी अनुभूति) भी बाधित होती है ॥ २५ ॥ स्वप्न अल्पकालस्थायी और जाग्रत् दीर्घकालस्थायी है यह बुद्धिभी दोनोंके वर्तमानसमयमें अनुभव होनेसे समानही है ॥२६॥ और जाग्रत् बाह्यदेशमें अनुभूत होताहै स्वप्न अन्तःकरणमें अनुभूत होताहै यह भेदभी नहीं है, क्योंकि जाग्रत्‌के तुल्य

स्वप्नके नगर आदिभी बाह्यदेशमेंही अनुभूत होनेसे एककालमें उत्पन्न दो बालकके सदृश जाग्रत् तथा स्वप्नमें कोईभी बडा नहीं है ॥ २७ ॥ जो जाग्रत् वही स्वप्न तथा जो स्वप्न वही जाग्रत् है, क्योंकि स्वप्नसे प्रबुद्धको जाग्रतदशामें जैसे स्वप्नके पदार्थकी बाधबुद्धि होती है ऐसेही जाग्रत्‌दशासे प्रबुद्धको ज्ञानरूप जाग्रत्‌दशामें जाग्रत्‌पदार्थोंकीभी बाधबुद्धि होती है ॥ २८ ॥

आजीवितांतंस्वप्नानांशतान्यनियतंयथा ॥ अनिर्वाणमहाबोधेतथाजाग्रच्छतान्यपि ॥ २९ ॥ उत्पन्नध्वंसिनःस्वप्नाःस्मर्यंतेबहवोयथा ॥ तथैवबुद्धेःस्मर्यंतेसिद्धैर्जन्मशतान्यपि ॥ ३० ॥ एवंसमस्तसाधर्म्येसमस्तानुभवात्मनि ॥ कचतिस्वप्नवज्जाग्रज्जाग्रद्वत्स्वप्नवेदनम् ॥ ३१ ॥ यथादृश्यंजगच्चेतिनित्यमेकार्थतांगतौ ॥ उभौशब्दौतथैवैतज्जाग्रत्स्वप्नात्मकौस्मृतौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे जीवनपर्य्यन्त अनेक स्वप्नोंका अन्त नहीं है ऐसेही निर्वाणशून्य पुरुषके अज्ञानरूप महास्वप्नमें अनेक संसारोंकाभी अन्त नहीं है ॥ २९ ॥ और जैसे उत्पत्तिविनाशयुक्त अनेक स्वप्नोंका स्मरण जाग्रत् पुरुषोंको होताहै ऐसेही ज्ञानमें जाग्रत् सिद्धपुरुषोंको अनेक जन्मोंकाभी स्मरण होताहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार समस्त अनुभवसाक्षीस्वरूपमें जाग्रत् और स्वप्नका सर्वथा सादृश्य सिद्ध होनेसे स्वप्नके तुल्य जाग्रत् तथा जाग्रत्के सदृश स्वप्नका स्फुरण है ॥ ३१ ॥ जैसे दृश्य तथा जगत् ये दोनों शब्द नित्य एकार्थरूपताको प्राप्त होकरभी दोनों भिन्न २ शब्द हैं ऐसेही जाग्रत् तथा स्वप्नभी हैं ॥ ३२ ॥

एवंस्वप्नपुरस्फारंयथाव्योमैवचिन्मयम् ॥ तथैवेदंजगदतःकाविद्यादृश्यतेकुतः ॥ ३३ ॥ तदेवाकाशमात्मयद्यविद्येतिकथ्यते ॥ तद्यदास्तेतदेवाहंबंधःस्वकलनात्मकः ॥ ३४ ॥ तन्मैवंक्रियतामेतदबंधस्यैवबंधनम् ॥ कान्यताअमलव्योम्नश्चिन्मयस्यनिराकृतेः ॥ ३५ ॥ चिन्मयाकाशकवनेकास्मिन्किलनिराकृतेः ॥ दृश्यनामान्यविद्याख्येबंधोमोक्षोथवाकुतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसरीतिसे जैसे स्वप्नके विशालनगरआदिरूपसे चिदाकाशही स्फुरितहोताहै ऐसेही इस महाजगत्-रूपसेभी वही स्फुरित है. इसमें कहां ! और कहा वह देखपडती है ॥३३॥ "वही परमात्मा स्वप्न होके स्फुरित होताहै" इत्यादि श्रुतिमें स्वप्न वा अविद्याशब्दसे यदि ब्रह्मही कहाजाताहै तो शब्दविपयमें हमारा विवाद नहीं है किन्तु संपूर्ण-भ्रमकी शांति होनेपर जो शेष है वही शुद्ध सच्चित् हमारा रूप है और आत्मज्ञानके पूर्व निजसंकल्पही बंध है यह हमारा सिद्धान्त सिद्ध है ॥ ३४ ॥ इसलिये बन्धनरहित चिदात्माका बन्धन न करो, क्योंकि निर्मल आकाश तथा चिद्रूप तथा निराकार आत्मामें क्या भेद अथवा विलक्षणता है जिससे आकाशको बन्धन नहीं और चिदात्माको होताहै, दोनों निर्मल, सूक्ष्म तथा निराकार होनेसे बन्धनरहित हैं ॥ ३५ ॥ जब यह दृश्यनाम अविद्या चिदाकाशका स्फुरणमात्र है तब इस निराकारको यथार्थ बन्ध वा मोक्ष किससे होसकताहै ॥ ३६ ॥

नाविद्याविद्यतेनामबंधोबंधोनकस्यचित् ॥ मोक्षोनकस्यचिन्मोक्षश्वास्तिनास्तीतिनास्त्यलम् ॥ ३७ ॥ नास्त्येवविद्याविद्यावाचिदेवेयंकचत्यजा ॥ खएवखाकृतिःस्वप्नइवसर्गस्वदेहिनी ॥ ३८ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ तज्जाग्रत्स्वप्नदृश्यस्यरूपमित्येवनिश्चयः ॥ ३९ ॥ सबाह्याभ्यंतरेदृश्येशांतनिद्रस्ययद्वपुः ॥ एकस्यनिशितद्रूपंजाग्रत्स्वप्नदृशामिह ॥ ४० ॥

अर्थ—जब अविद्याही कुछ नहीं है तब किसीका बन्ध बन्ध नहीं है और मोक्षभी मोक्ष नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसे भिन्न कुछ है वा नहीं यह व्यवहारही नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ हे रामचन्द्रजी ! विद्या अथवा अविद्या कुछभी नहीं है किन्तु जन्मरहित चित्‌ही स्वयं चिदाकाशरूप निजआकाशस्वरूपमें सृष्टिका रूप धारणकरके स्फुरित होरही है ॥ ३८ ॥ एकदेशसे दूसरे सूर्य्यादि देशकी प्राप्तिमें दोनों देशोंके मध्यमें जो संवित्‌का शुद्धरूप है वही स्वप्न तथा जाग्रत्‌रूप दृश्यका स्वरूप है ऐसा निश्चय करनाचाहिये ॥ ३९ ॥ बाह्य तथा आभ्यन्तरदृश्यमें निद्राकी अभावदशामें तथा रात्रिमें सुप्तदशामें जो इन्द्रिय, मन, उनके विकार, विषय तथा विषयोंके अभावका जो प्रकाशक ज्योतिरूप आत्मा है वही जाग्रत् तथा स्वप्नकाभी पारमार्थिकरूप है ॥ ४० ॥

विद्धितद्रूपमेवेदंभेदवेदनमित्यपि ॥ चित्यंतमागतःकोन्येनामस्याद्भेदवेदने ॥ ४१ ॥ विद्द्योमैवाभेदबुद्धिश्चिद्द्योमैवचभेदधीः ॥ द्वैताद्वैतेचैकमेवतथाशांतमखंडितम् ॥ ४२ ॥ सदंशोबोधतद्वाह्यमयएवयथातथा ॥ दृष्टायएवदृश्यंतद्वैतवेदनमेककम् ॥ ४३ ॥ तद्ब्रह्मखंविदुर्द्वैतमद्वैतद्वैतमेवच ॥ सर्गएवपरंब्रह्मद्वैतमद्वैतमेवसत् ॥ ४४ ॥ नेतिनेतिविनिर्णीयसर्वतोभिभवत्यपि ॥ पश्चात्त्यक्त्वाचिदाकाशेशिलां

कृत्वास्यतामिह ॥ ४५ ॥ यथाक्रमंसुभगयथास्थितस्थितियथोदयंव्रजपिबभुंक्ष्वभोजय ॥ अभीप्सितं गतमननोनिरिंगनःसुचिन्मयेपरमपदोपलोभवान् ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे अ० निर्वाणवर्णनं नामैकषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६१ ॥

अर्थ—अतएव जाग्रत्स्वप्नका जो भेदज्ञान है वहभी उनके साक्षी चिद्रूपही है, क्योंकि तीनोंअवस्थामें अनुगत चित्के अन्तमें कौन आया जो उसके भेदज्ञानमें समर्थ होसकताहै ॥ ४१ ॥ भेदबुद्धि तथा अभेदबुद्धिभी चिदाकाशही है, और द्वैतअद्वैतभी वही है, इसलिये अखंडित शान्त चिद्ब्रह्म सबकुछ है ॥ ४२ ॥ जैसे ब्रह्मके सत्, चित् और आनंद इन अंशोंमें सत्अंश बोधमय है, बोध (ज्ञान) से ग्राह्यमयभी है, इसप्रकार ज्ञाता और ज्ञेय दोनोंस्थलमें सदंश अभिन्नरूप है, ऐसेही द्वैत तथा उसका ज्ञानभी एकही है, इस रीतिसे चिदंशभी अभिन्नरूपही है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो विषय (दृश्य) को साक्षात्कार कर्ता द्रष्टा है वही दृश्यभी है,अतएव विषय विषयाभाव चित्से भिन्न नहीं होसकता ॥४३॥ जब सत् परब्रह्महो द्वैत तथा अद्वैतरूपसे प्रतिभासमान होरहाहै तब द्वैत, अद्वैत तथा अद्वैतसे अभिन्नरूप चिदाकाश ब्रह्महीहै ॥४४॥ प्रथम साधक द्वैत अद्वैत प्रपंचकी ब्रह्मरूपता निर्णयकरके पश्चात् “नेतिनेति” इस वेदवाक्यजन्य अनुभवसे सब द्वैतके निषेधद्वारा संपूर्ण द्वैतको त्यागकर सर्वथा आविर्भूत साक्षीरूप चिदाकाशमें उत्तर २ भूमिकाके अभ्याससे आनन्दघन शिला रचके स्थितरहे ॥ ४५ ॥ हे प्रियदर्शन रामजी ! इसरीतिसे चिन्मयब्रह्ममें परमपदरूप शिला होकर अभिमानशून्य, निजवर्णाश्रमाचार, तथा लोकमर्य्यादाका उल्लंघनकरके अपने विभवके अनुसार अभीष्टदेशको जाओ, विषयोंको भोगो और इष्टमित्रादिको भोजन कराओ ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अ० निर्वाणवर्णनं नामैकषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६१ ॥

द्विषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६२ ॥

संपूर्ण द्वैतका ब्रह्ममात्र निरूपण तथा कल्याणदायक कथनोंसे अविद्याका निरास १६२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिद्व्योमार्थतयार्थानांयथास्थितमिदंजगत् ॥ सरूपालोकमननमपिचिद्व्योमकेवलम् ॥ १ ॥ स्वप्नचित्पुररूपत्वादन्यद्यस्मान्नविद्यते ॥ जगत्तस्मान्नभःशांतंनेहनानास्तिकिंचन ॥२॥ चिदाभानमनानैवनानेवपरिलक्ष्यते ॥ अनात्मैवात्मनात्मानंस्वप्नाकाशपुरेष्विव ॥ ३ ॥ सर्गादाविवचिद्व्योमस्वप्नाकाशपुरंजगत् ॥ आभातमेवासत्यंचनूनंसत्यमिवस्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—तृणआदि जैसे गोआदिके अर्थ होनेसे उन्हीके स्वरूपमें परिणत होतेहैं ऐसेही संपूर्णपदार्थोंका स्फुरण चिदाकाशके उपभोगार्थ है अतः बाह्य तथा आभ्यन्तर यह संपूर्ण जगत् केवल चिदाकाशरूपही स्थित है ॥ १ ॥ जैसे स्वप्नके नगरआदि द्रष्टा चेतनके भोग्य होनेसे उससे किंचित्भीभिन्न नहींहैं ऐसेही जाग्रत्के पदार्थभी चित्के भोग्य हैं, वे चित्से अन्य कुछ नहीं हैं इस हेतु केवल चिदाकाशके सिवाय इस संसारमें अनेकरूपता नहीं है ॥ २ ॥ चित्का स्फुरण अनानारूप होकरभी नानारूपसे जो भानहोताहै वह वास्तविक चित्का स्वरूप नहीं है, क्योंकि स्वप्न, संकल्प तथा गंधर्वनगरआदिमें साक्षी निजआत्मा अपने चित्स्वरूपकोही अयथार्थ नानारूपसे दर्शाताहै, स्वप्नान्तमें पुनः केवल अद्वैतही रहताहै ॥ ३ ॥ प्रलयकालके सदृश अबभी यह जगत् नहीं है और स्वप्नके आकाशनगरादिवत् असत्य तथा अभासित होकरभी जो सत्यकेसमान स्थितहै वह केवल चिदाकाशही है ॥ ४ ॥

तज्ज्ञाज्ञातोनमूर्खाणामज्ञाज्ञातोनतद्विदाम् ॥ विद्यतेसर्गशब्दार्थःसत्यासत्यमयात्मकः ॥ ५ ॥ तज्ज्ञाज्ञयोस्तयोरंतःप्रतिपत्तौतुर्यस्थितम् ॥ नबोद्धुंनचवक्तुंतेजानीतस्तौपरस्परम् ॥ ६ ॥ स्वबुद्धौसर्गशब्दार्थोमिथोंतस्तत्किलानयोः ॥ स्थैर्यास्थैर्येजाग्रतोद्वेअक्षीबक्षीबयोरिव ॥ ७ ॥ द्रवस्थितिमितायद्वत्सरिद्वारिणिवीचयः ॥ चितौस्थितिमितास्तद्वच्चेतनात्सर्गवीचयः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह सत्य तथा असत्यमयसृष्टिका शब्दार्थ जो ज्ञानीको ज्ञात है वह अज्ञानीको नहीं और जैसा अज्ञानीको ज्ञात है वैसा ज्ञानीको नहीं है, अतः अनिर्वाच्य है ॥५॥ क्योंकि ज्ञानी केवल अन्तर्दृष्टि हैं और अज्ञानी केवल बाह्यदृष्टि हैं

और जगत् दोनोंके मध्य बुद्धिवृत्तिमें स्फुरितहै अतः परस्पर बोधन वा बोध न करनेमें असमर्थहैं ॥ ६ ॥ जगत्का शब्दार्थ दोनोंकी निज २ बुद्धिमेंही स्थित है, उसमें विक्षिप्त तथा सावधानके सदृश भ्रान्त तथा अभ्रान्त परस्पर इन दोनोंके अंतः-स्थित प्रपंचरूपमें यह भेद है कि ज्ञानीकी बुद्धि सदा स्थिर आत्माके विषयमें जागती है अतः वह स्थिर आत्मतत्त्व-कोही देखती है और अज्ञानीकी बुद्धि अस्थिरमें सावधान है वह सदा बाह्यरूपही देखती है, और अन्तरालबुद्धिमें स्थित जगत्प्रपंच न तो अतिआभ्यन्तर है न अतिबाह्य है इसलिये दोनोंको उसका परिज्ञान नहीं है ॥ ७ ॥ जैसे जलके द्रवत्वस्वभावसे नदीसमुद्रादिके जलमें तरंगादि स्थितिको प्राप्त हैं, ऐसेही अज्ञात चित्के स्फुरण स्वभावसे है चित्स्वरूपमेंही ये सृष्टिरूप तरंग स्थितहैं ॥ ८ ॥

चिद्रूपंयन्नकिंचित्तदिदंकिंचिदवस्थितम् ॥ भातिदृश्यमिवादृश्यमपिस्वप्नपुरेष्विव ॥ ९ ॥ चिच्छायेयं प्रकचतिजगदित्यभिशब्दिता ॥ नन्वमूर्तैवमूर्त्तेवद्द्रव्यच्छायेववैतता ॥ १० ॥ कायमात्रकमेवेदंभ्रांति मात्रमसन्मयम् ॥ पिशाचविभ्रमालोकप्रायमायासनंदृढम् ॥ ११ ॥ मनोराज्यमिवासत्यंलोलंलंबांबुबिं दुवत् ॥ द्वाभ्यामित्यनुभूतिभ्यांयदसत्तत्रकात्मता ॥ १२ ॥

अर्थ—इस हेतुसे स्वप्नके नगरादिके यह दृश्य किंचित्रूप न होकर भासमान स्थित है वह चित्काही स्वरूप है ॥ ९ ॥ अथवा मायामें जो चित्का प्रतिबिंब (छाया) निराकार होकरभी जगत्के आकारसे ऐसे स्फुरित है जैसे दर्पणमें घट आदि द्रव्यका प्रतिबिंब (छाया) ॥ १० ॥ पिशाचके भ्रमके सदृश यह देहमें जो आत्माका भ्रम है वही जगत्रूपसे अतिक्लेशकारक है ॥ ११ ॥ मनोराज्य तथा कमलपत्रस्थ चंचल जलबिन्दुके सदृश असत्य यह जगत् है और जो ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनोंके अनुभवके अनुसार यथार्थ नहीं है उसमें भला क्या सत्यता है ॥ १२ ॥

विदार्यदारुखवत्तरंगानिलशब्दवत् ॥ खेशब्दाःपवनस्फोटाभांत्यर्थावासनोदयाः ॥ १३ ॥ सर्गादितः स्वपरिभाकचतिस्वप्नशैलवत् ॥ वस्तुतस्तुनशब्दोऽस्तिनार्थोऽस्तिनचदृश्यता ॥ १४ ॥ यदिदंचास्तिचा भातितत्सर्वंपरमार्थसत् ॥ अन्यादृक्कारणाभावात्सर्गादावेवनोदितम् ॥ १५ ॥ निरस्तशब्दभेदार्थम निरस्ताखिलार्थकम् ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिव्योमैवास्मीतिबुद्ध्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—विदार्यमाण (फाडे जातेहुये) बांस और अन्यकाष्ठ, जलमें, तरंगसे और अग्निआदिके आभ्यन्तरसे शब्द निकलतेहुयेके समान भासतेहैं तथा आकाशमें वायुके प्रतिध्वनिके शब्द तथा कंठ, तालु आदि देशोंमें वर्ण, पद तथा वाक्यस्फोटरूप शब्दभी निकलतेहुयेके सदृश भान होतेहैं जैसे ये पूर्वोक्तशब्द न उन पदार्थोंके भीतर हैं और प्रथम न बाहर निकलते हैं परन्तु वैसे भासते हैं, ऐसेही जाग्रत् स्वप्नके पदार्थभी उन २ वासनाओंके उदयसे आत्मासे बाह्य-देशमें निकलतेहुये सदृश भासतेहैं ॥ १३ ॥ सृष्टिके आरंभसे केवल निजआत्मप्रभाही स्वप्नके पर्वतके सदृश जगत्-रूपसे स्फुरित होती है, यथार्थमें न शब्द, न अर्थ है और न दृश्यरूपता है ॥ १४ ॥ जो कुछ यह भासताहै वह सब परमार्थ चेतनही है, क्योंकि सत्से भिन्न तो सृष्टिकी आदिमेंही कारणके अभावसे नहीं उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ संपूर्ण शब्दार्थरहित तथा अधिष्ठानरूपसे सब शब्दार्थसहित शुद्धचिदाकाशरूप मैं सर्वथा शान्त तथा सुखरूप हुं, ऐसा जाननाचाहिये ॥ १६ ॥

त्यज्यतामात्मविश्रांत्याशुद्धबोधैकरूपया ॥ जीवेजवंजवीभावस्त्वसदुत्थितआत्मना ॥१७॥ आत्मैवह्या त्मनोबंधुरात्मैवरिपुरात्मनः ॥ आत्मात्मनानचेत्त्रातस्तदुपायोस्तिनेतरः ॥ १८ ॥ तरतारुण्यमस्तीदं यावत्तेतावदंबुधेः ॥ नतुसंसारनाम्नोस्माद्बुद्ध्यानावाविशुद्धया ॥ १९ ॥ अद्यैवकुरुयच्छ्रेयोवृद्धःसन्किं करिष्यसि ॥ स्वगात्राण्यपिभारायभवंतिहिविपर्यये ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्धबोधमय आत्मरूपमें विश्रान्तिसे असत्रूपसे आविर्भूत जीवात्मामें जो मनोविक्षेप है उसको त्यागो ॥ १७ ॥ आत्मज्ञानार्थ दृढप्रयत्न करनेसे आत्माही आत्माका बंधु है न करनेसे वही आत्मा आत्माका शत्रु है, यदि आत्माहीसे आत्मा ज्ञानद्वारारक्षित न हुआ तो अन्य उपाय आत्माकी रक्षामें नहीं है ॥ १८ ॥ जबतक तुमारी तरुण अवस्था विद्यमान है तभीतक शुद्धबुद्धिरूप नौकाद्वारा संसाररूपी समुद्रसे पार होजाओ ॥ १९ ॥ आत्मज्ञानरूप जो परमकल्याण है उसको अभी संपादन करो, क्योंकि वृद्ध होनेपर क्या करसकोगे, उससमय तो शरीरके अवयव, हस्त, पाद, आदिभी भारभूत होतेहैं ॥ २० ॥

शैशवंवार्द्धकंज्ञेयंतिर्यक्त्वंमृतिरेवच ॥ तारुण्यमेवजीवस्यजीवितंतद्विवेकिचेत् ॥ २१ ॥ संसारमिममा साद्यविद्युत्संपातचंचलम् ॥ सच्छास्त्रसाधुसंपर्कैःकर्दमात्सारमुद्धरेत् ॥ २२ ॥ अहोबतनराःक्रूराग

तिःकैषांभविष्यति ॥ कुर्वंतिकर्दमोन्मग्नेनात्मन्यपिनिजोदयम् ॥ २३ ॥ यथामृण्मयवेतालसभाग्राम्यस्यभंगदा ॥ यथाभूतार्थविज्ञानान्मृण्मय्येवनभंगदा ॥ २४ ॥

अर्थ—बाल्य तथा वृद्ध अवस्था ज्ञानका असाधक होनेसे पशु, पक्षी वा मरणकेही सदृश है, केवल तरुण अवस्थाही यदि विवेकयुक्त हो तो जीवका जीवन है और विवेक न होनेपर तो वह पशुआदिसेभी अधम है ॥ २१ ॥ विद्युत्पातके सदृश चंचल इस संसारमें आके शास्त्र तथा साधुसमागमोंसे मनुष्यको उचित है कि मोहरूप कर्दमसे अपने आत्माको निकाले ॥ २२ ॥ हा ! अज्ञानरूपी कर्दममें आत्माके निमग्न होनेपर जो शास्त्रादिउपायोंसे अपना उद्धार नहीं करते वे नर अतिक्रूर अधम हैं. अहो ! उनकी क्या गति होगी ॥ २३ ॥ जैसे मृत्तिकामय पिशाचोंकी सभा मृत्तिकारूप न जाननेवाले ग्रामीणको दुःखदायिनी होतीहै और यथार्थरूप जाननेवालेको वही मृत्तिकामयी सभा नहीं दुःख देती ॥२४॥

तथाब्रह्ममयीदृश्यलक्ष्मीरज्ञस्यभंगदा ॥ यथाभूतार्थविज्ञानेब्रह्मैवास्तेनभंगदा ॥ २५ ॥ शाम्यत्यशांतमेवेदंस्थितमेवविलीयते ॥ दृश्यंतत्त्वपरिज्ञानदृश्यमानंनदृश्यते ॥ २६ ॥ स्फुटानुभवनस्यापिस्वप्रकालेनिजेयथा ॥ परिज्ञानादसत्यत्वमेवसत्यपदंगता ॥ २७ ॥ तथानुभूयमानापिसर्गसंवेदनांबरे ॥ चिन्मयेतत्त्वविज्ञानाच्छून्यतैवावशिष्यते ॥ २८ ॥ जातिज्वरज्वलितजीवितजंगलेषुजीर्णानिवातहरिणाहरणक्रमेण ॥ मात्यन्मनःपवनपातयुतान्यमूनिजित्वेंद्रियाणिजयमेहिजहीहिजन्म ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अ० अविद्यानिरसनं नाम द्विषष्ट्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६२ ॥

अर्थ—इसीप्रकार यह ब्रह्मरूपभी दृश्यकी लक्ष्मी (शोभा) उस रूपको न जाननेवालेको दुःखदायिनी है और जगत्रूप ब्रह्मका यथार्थ स्वरूप जाननेसे वह ब्रह्महो है न कि दुःखप्रद ॥ २५ ॥ तत्त्वज्ञानसे अशान्तही यह दृश्य शान्त होजाताहै, स्थित रहतेभी लीन होजाताहै और देखपडतेहुयेभी नहीं देखपडता ॥ २६ ॥ जैसे स्वप्नके पदार्थ प्रत्यक्ष अनुभूतभी स्वप्नरूप परिज्ञान होनेसे असत् होजातेहैं ऐसे यह स्पष्ट अनुभूतभी जाग्रत्के पदार्थ आत्मज्ञानसे असत् भासतेहैं ॥ २७ ॥ जैसे आकाशमें अनुभूयमानभी बिलता शून्यरूपही है ऐसेही सृष्टिबोधक चिदाकाशमें अनुभूयमानभी सृष्टिरूपता चिन्मयआत्माके तत्वज्ञानसे केवल शून्यताही शेष रहती है ॥ २८ ॥ हे रामजी ! जन्मके ज्वरभूत, काम, क्रोध, लोभ, मोहादिरूप अग्नि प्रदीप्त जन्मरूप जंगलोंमें हरिणके सदृश कदाचित् इष्टलाभ होनेसे और कदाचित् न होनेसे शिथिल तथा उन्मत्त मन और प्राणवायुकेद्वारा बाह्यविषयदेशमें संचारयुक्त इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानद्वारा अविद्याको जीतो और उस ज्ञानसे मुक्तहोकर जन्ममरणको त्यागो ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे अवि० अविद्यानिरसनं नाम द्विषष्ट्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६३ ॥

इन्द्रियोंके जीतनेका उपाय चित्तका निरोध तथा इस (यो० वा० वेदान्त) शास्त्र अद्वैत चेतनमें बोधके हेतु इस १६३ के सर्गमें वर्णन कियेगयेहैं ॥

श्रीरामउवाच ॥ विनेंद्रियजयेनेदंनाज्ञत्वमुपशाम्यति ॥ तदिंद्रियाणिजीयंतेकथंकथयमेमुने ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नचप्रभूतभोगेषुनपुंस्त्वेनचजीविते ॥ नचेंद्रियजयोन्मुक्तौदीपस्तनुदृशोयथा ॥२॥ तदिंद्रियजयेयुक्तिमिमामविकलांशृणु ॥ सिद्धिमेतिस्वयत्नेनसुखेनतनुरेतया ॥ ३ ॥ चिन्मात्रंपुरुषंविद्धिचेतनाज्जीवनामकम् ॥ यच्चेततिसजीवोंतस्तन्मयोभवतिक्षणात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् इन्द्रियोंके जीतेविना अज्ञान नहीं शान्त होता, अतः इन्द्रियां किन उपायोंसे जीती जाती हैं सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! तुमारा प्रश्न बहुत योग्य है क्योंकि जैसे मन्ददृष्टिको प्रज्वलितदीप दर्शनका साधन नहीं होता ऐसेही भोगोंमें आसक्त, निजउन्नति तथा धनोपार्जनमें आसक्तचित्त, तथा इन्द्रियोंके जयसे रहित पुरुषको ब्रह्मज्ञान होनेमें शास्त्रादि उपयोगी नहीं होसकता ॥ २ ॥ इसलिये इन्द्रियोंके जयार्थ यह पूर्णयुक्ति तुम सुनो क्योंकि इस मेरी कथित युक्तिसे इन्द्रियाविजयद्वारा अल्पभी साधन निजयत्नसे

मोक्षरूपसिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! तुम पुरुषको चिन्मात्रही जानो, वह चित्तमें प्राप्तविषयोंका ज्ञाता होने-(चित्तके वशीभूतहोने) से जीवनामधारी होताहै, क्योंकि चित्तकी वृत्तिसे व्याप्तहोकर जिसका ध्यान करताहै क्षणमेंही तन्मय होजाताहै ॥ ४ ॥

संवित्प्रयत्नसंबोधनिशितांकुशकर्षणैः ॥ मनोमतंगजंमत्तंजित्वाजयतिनान्यथा ॥ ५ ॥ चित्तमिंद्रियसेनायानायकंतज्जयाज्जयः ॥ उपानद्गूढपादस्यननुचर्मावृतैवभूः ॥ ६ ॥ संविदंसंविदाकाशेसंरोप्यहृदितिष्ठतः ॥ स्वयमेवमनःशाम्येन्नीहारइवशारदः ॥ ७ ॥ स्वसंविद्यत्नसंरोधाद्यथाचेतःप्रशाम्यति ॥ नतथांगतपस्तीर्थविद्यायज्ञक्रियागणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस हेतुसे चित्तको प्रत्याहाररूप यत्नसे आभ्यन्तर आकर्षण करके बाह्यआकारके निरोधसे ब्रह्माकारतारूप प्रबोधनके अभ्याससरूपी तीक्ष्ण अंकुशद्वारा मनरूपी मदोन्मत्त हस्तिको जीतनेसे स्वयं पंगूलभूत इन्द्रियोंको प्राणी जीतता है अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥ चित्तही इन्द्रियरूपी सेनाका नायक है उसके जीतनेसे इन्द्रियोंके ऊपर विजय होताहै, क्योंकि जिसके पदमें पादत्राण (जूता) है उसके अर्थ मानो पृथिवी चर्मसे मढी है ॥ ६ ॥ चित्तोपहित चेतन (चित्तवृत्ति) को ब्रह्मकेसाथ एककरके जो निजआत्मामें स्थित रहताहै उसका मन स्वयं ऐसे शान्त होजाताहै जैसे शरत्कालका नीहार ॥ ७ ॥ निजजीवसंवित् (बाह्यविषयाकार चित्तवृत्ति) के निरोधसे जिसप्रकार चित्त शान्त होताहै वैसा तप, तीर्थ, विद्या तथा यज्ञआदि क्रियासमूहोंसे नहीं होता ॥ ८ ॥

यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तत्तत्संविदिसंविदा ॥ नूनंविस्मार्यतेयत्नाद्भोगानामितितज्जयः ॥ ९ ॥ स्वसंवेदनयत्नेनविषयामिषतोनिशम् ॥ किंचित्संरोधितासंवित्तत्प्राप्तंवैबुधंपदम् ॥ १० ॥ स्वधर्मव्यवहारेणयदायातितदेवमे ॥ रोचतेनान्यदित्येवपदेवज्रदृढीभव ॥ ११ ॥ संवित्प्रवृत्तिमर्थेषुविरुद्धेषुविवर्जयन् ॥ अर्जयञ्छमसंतोषौयःस्थितःसजितेंद्रियः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिन २ विषयोंका बलात्कार चित्तवृत्तिमें स्मरण हो उन २ को अधिष्ठान ब्रह्मसंवित्में लय करनेसे विषयोंके संस्कारके नाशसे विषयोंकी विस्मृतिरूप उपायसे भोगके हेतुभूत विषयोंका जय स्वयं होजाताहै ॥ ९ ॥ निजअभ्यासरूप यत्नसे यदि चित्तकी वृत्ति विषयरूपी मांससे कुछभी अवरुद्ध हुई तो तत्ववेत्ताओंके अनुभवसिद्ध स्वाराज्यपद प्राप्तही समझो ॥ १० ॥ निजवर्णाश्रमधर्मके व्यवहारसे यदृच्छाप्राप्त पदार्थही मुझे रुचताहै अन्य नहीं, इसप्रकारभी इन्द्रियोंको जीतकर आत्मपदमें वज्रवत् दृढ होजाओ ॥ ११ ॥ अपने धर्मके विरुद्ध पदार्थोंमें इच्छाको रोकतेहुये, तथा शम और सन्तोषको उपार्जन करतेहुये जो स्थित रहताहै वह जितेन्द्रिय है ॥ १२ ॥

संविद्रसिकतास्वंतस्तथानीरसतासुच ॥ यस्यनोद्वेगमायातिमनस्तस्योपशाम्यति ॥ १३ ॥ संवित्प्रयत्नसंरोधान्मनःस्वायनमुज्झति ॥ चेतश्चपलतोन्मुक्तंविवेकमनुधावति ॥ १४ ॥ विवेकवानुदारात्माविजितेंद्रियउच्यते ॥ वासनावीचिवेगेनभवाब्धौनसमुह्यते ॥ १५ ॥ साधुसंपर्कसच्छास्त्रसमालोकनतोनिशम् ॥ जितेंद्रियोयथावस्तुजगत्सत्यंप्रपश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो आभ्यंतर चित्तकी वृत्तियोंके रसताके अभ्यासमें, तथा बाह्यनीरसताके अभ्यासमें उद्विग्न नहीं होता (अर्थात् बाह्यचित्तवृत्तियोंको रोककर आभ्यन्तर उनकी अधिक रुचिके करनेको घबराता नहीं) उसका मन शान्त होताहै ॥ १३ ॥ संवित्के प्रयत्नसे अवरोधद्वारा मन विषयकीओर धावनरूप दुर्व्यसनको त्यागदेताहै, और जब विषयोंकीओर धावनरूप चपलतासे मुक्त हुआ तब विवेककीओर दौडताहै ॥ १४ ॥ और विवेकी होनेसे वह उदारात्मा जितेन्द्रिय कहाजाताहै, और जितेन्द्रिय होनेसे वासनारूपी तरंगोंके वेगसे वह संसारसागरमें वाहित नहीं होता ॥ १५ ॥ जितेन्द्रिय पुरुष निरंतर साधुसमागम तथा सत्शास्त्रोंके अवलोकनसे जगत्को सत्यब्रह्मरूप देखताहै ॥ १६ ॥

सत्यावलोकनाच्छांतिमेतिसंसारसंभ्रमः ॥ मराविवजलज्ञानंमिथ्यापतनदुःखदम् ॥ १७ ॥ अचेत्यमेवचिन्मात्रमिदंजगदितिस्थितम् ॥ इत्येवंसत्यबोधस्यबंधमोक्षदृशौकुतः ॥ १८ ॥ अनाकारंयथावारिक्षीणंवहतिनोपुनः ॥ अकारणंतथादृश्यंज्ञानच्छिन्नंनरोहति ॥ १९ ॥ वेदनंव्योममात्रंत्वमहमित्यादिरूपधृक् ॥ वर्जयित्वैतदन्यत्स्यादहमित्यादिकंजगत् ॥ २० ॥

अर्थ—और सत्यके अवलोकनसे संसाररूप भ्रम ऐसे शान्त होजाताहै जैसे मरुस्थलकी मृगतृष्णाके यथार्थज्ञानसे मिथ्यावस्तुमें पतनादिसे क्लेशदायक जलज्ञान ॥ १७ ॥ इस रीतिसे सत्यब्रह्मज्ञानयुक्त प्राणीको यह जगत् विषयशून्य केवल चिन्मात्रही स्थितहै, तब उसको बन्धमोक्षदृष्टि कहांसे होसकती है ॥ १८ ॥ जैसे शोषणसे क्षीण जल पुनः

नहीं वहता, ऐसेही ज्ञानसे छिन्नमूल यह दृश्य पुनः नहीं उदयको प्राप्त होता ॥ १९ ॥ चिदाकाशसंविद्ही "त्वम्" "अहम्" (तुम हम) इत्यादि जगत्‌रूपको धारण किये हैं. इस हेतुसे अविद्याद्वारा निजआत्मामें अध्यस्त जगत्‌को ज्ञानसे धोकर अध्यस्त जगतसे भिन्न अधिष्ठान चिन्मात्र होना चाहिये ॥ २० ॥

अविद्यामात्रमेवेदमहमित्यादिकंजगत् ॥ चिद्व्योम्न्येवस्थितंशांतंशून्यमात्रशरीरकम् ॥ २१ ॥ इदंवि द्व्योम्निचिच्छायाजगदित्येवभासते ॥ शून्यशून्यैवचिद्वासौशून्याचेत्येवनिश्चयः ॥ २२ ॥ स्वप्नदर्शन दृष्टांतःकेननामात्रखंड्यते ॥ असन्मयोनुभूतश्चस्वानुभूतोप्यसन्मयः ॥ २३ ॥ सोंगसंवित्तिमात्रात्मा यद्वद्राज्यंमहीयते ॥ नकर्तृकर्मकरणंरूपंतद्वज्जगच्चितेः ॥ २४ ॥

अर्थ—तुम, हम तथा यह इत्यादिरूप अविद्यामात्र जगत् चिदाकाशमेंही अध्यस्त है, यथार्थमें वह निजस्वरूपरहित अधिष्ठान चिन्मात्रही है ॥ २१ ॥ चिदाकाशमेंही चिदाकाशका प्रतिबिम्ब जगत्‌रूपसे भासताहै और जगत्‌से शून्य चिदाकाश शून्यसेभी अतिशून्य (अतिसूक्ष्म) है, यही परम सिद्धान्त है ॥ २२ ॥ असत् होनेपरभी अनुभूत और निजआत्मासे अनुभूत होनेपरभी असत्‌रूप इस स्वप्नके दृष्टान्तको कौन खंडन करसकताहै ॥ २३ ॥ हे प्रिय रामजी ! कर्ता, कर्म तथा करणसे निरपेक्ष स्वप्नके अनुभवरूप चिदात्मा स्वप्नमें निजचित्स्वरूपको राज्यआदि ऐश्वर्य्यरूप बनाकर प्रतिष्ठित होताहै ऐसेही यह जाग्रत्‌काभी कारणरहित जगत् चित्‌का स्वरूप है ॥ २४ ॥

अकर्तृकर्मकरणमहंचिद्घनमात्रकम् ॥ जगच्चेदमनिर्देश्यंस्वसंवेदनलक्षणम् ॥ २५ ॥ यथास्वप्नेषुमरण मनुभूतंनविद्यते ॥ मरौजलेच्छाविद्येयंविद्यमानानविद्यते ॥ २६ ॥ चिद्व्योम्नाकाचकव्यंस्वंसर्गादौ व्योम्निचेतितम् ॥ जगदित्येवनिर्मूलंकाकतालीयवत्स्वयम् ॥ २७ ॥ निर्मूलमेवभातीदमभातमपिभात वत् ॥ तस्माद्यद्भासुरमिदंतत्तदेवपदंविदुः ॥ २८ ॥

अर्थ—जो कुछ कर्ता, कर्म तथा करणआदि सामग्रीसे रहित भासताहै, वह चिद्घन मेरा स्वरूपही है, यह जगत्‌भी सृष्टिकी आदिमें कर्ता आदि सामग्रीसे अनिर्वचनीय है, अतः निजआत्माका प्रकाशरूपही है ॥ २५ ॥ जैसे स्वप्नका मरण तथा मरुस्थलमें जलका भ्रम अनुभूतभी सत् नहीं है ऐसेही ज्ञानसे बाधित होनेसे अविद्यारूप जगत्‌भी नहीं है ॥ २६ ॥ सृष्टिकी आदिमें यह जगत् चित्‌रूप मणिका प्रकाशरूपही है, यह कारणरहित काकतालीन्यायके तुल्य प्रत्यक्षरूपसे मिथ्याही भासताहै ॥ २७ ॥ यथार्थमें निर्मूल तथा भानरहितभी यह जगत् स्वात्मामें संकल्पित होनेसे भासमानवत् प्रतीत होताहै, इस हेतुसे जो निष्कारण होकर भासमान है उसको तत्वज्ञ परमपद (ब्रह्म) रूप कहतेहैं ॥ २८ ॥

जीवादिकचनंत्वत्रयद्भातीदंतदेवतत् ॥ शून्यतैवभवेद्व्योमवार्य्येवावर्त्तवृत्तयः ॥ २९ ॥ यथावयविनो रूपमेकंसावयवंभवेत् ॥ एकंजीवाद्यवयवंब्रह्मानवयवंतथा ॥ ३० ॥ आभासमात्रंदृश्यात्मचिन्मात्रंशां तमव्ययम् ॥ स्थितमास्थाःकिमेतस्मिन्स्वभावेस्वेविचार्यते ॥ ३१ ॥ नाद्यंतमंतःकलनाःकाश्चित्संति परेपदे ॥ तद्रूपमेवाविद्येयंनाविद्यास्तिविहविद्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—जीवादि पदार्थरूपसे जो चित् स्फुरित है वह चिद्रूपही है क्योंकि शून्यता आकाश तथा आवर्त तरंगादि जलही हैं ॥ २९ ॥ जैसे सब अवयव मिलकेही अरूप अवयवीका सावयव एक रूप होताहै, ऐसे निरवयव ब्रह्मका यह सावयव जीव आदि जगत् एक रूप है ॥ ३० ॥ अथवा स्फटिकशिलामें बन आदिके प्रतिबिंबके समान चिन्मात्रमें आभासवत् स्थित यह जगत् स्थित है, स्वच्छताविशिष्ट परमात्मरूपमें भासनेवाले इस जगत्‌के विषयमें क्या विश्वास तथा विचार करतेहो ? ॥ ३१ ॥ इस परमपद ब्रह्ममें आदि, अन्त तथा मध्यकी कल्पना नहीं है, जगत् तथा उसका कारण यह अविद्या परमात्माका रूप है, उससे भिन्न अविद्या कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥

जीवःस्वप्नाद्विशञ्जाग्रज्जाग्रतःस्वप्नमाविशन् ॥ प्रबुद्धोवास्त्वबुद्धोवाप्येकरूपतयास्थितः ॥ ३३ ॥ स्थि तेसुषुप्ततुर्येद्वेसदास्वप्नेथजाग्रति ॥ जाग्रत्स्वप्नावेकमवतुर्येवेत्तितुबुद्धधीः ॥ ३४ ॥ जाग्रत्स्वप्नःसुषुप्तं चसर्वंतुर्यंप्रबोधिनः ॥ नाविद्याविद्यतेतस्यद्वयस्थोप्येवसोद्वयः ॥ ३५ ॥ द्वैतमद्वैतमित्येतदहंत्वमिदमि त्यपि ॥ निरविद्यस्यकलनाकुतःकाप्यंबरंकुतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह जीव चाहे प्रबुद्ध हो वा अप्रबुद्ध हो, परन्तु स्वप्नसे जाग्रत् तथा जाग्रत्‌से स्वप्नमें प्रवेश करता-हुआ एक शुद्ध चिद्रूपसे स्थित है ॥ ३३ ॥ सुषुप्तिकालमें अज्ञानसे आवृत आत्मा तथा तुरीया अवस्थामें शुद्धआत्मा चिद्रूपसे दोनों एकही है, ऐसेही जाग्रत् तथा स्वप्नमें एकरूपही है, केवल रज्जुमें सर्पवत् जाग्रत् तथा स्वप्नमें

आत्मा तद्रूप भासताहै ज्ञानी तो जाग्रत् स्वप्न तथा तुरीयाअवस्थाको एकही समझताहै ॥ ३४ ॥ जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन सबको तत्वज्ञानी तुरीय (चिद्रूप) जानताहै, क्योंकि उसको अविद्या न होनेसे वह द्वैतमें स्थित भी अद्वैतरूपही है ॥ ३५ ॥ द्वैत, अद्वैत, तुम, हम तथा यह, इत्यादि कल्पना अविद्यारहित ज्ञानीको कहांसे होसकती है, तथा सर्वत्र पूर्णचिद्रूप देखनेवाले उसको शून्यताभी कहां ? ॥ ३६ ॥

द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्वाक्यसंदर्भविभ्रमैः ॥ क्रीडंत्यबुद्धाःशिशवोबोधवृद्धाहसंतितान् ॥ ३७ ॥ द्वैताद्वैतविवादेहाहृदयाकाशमंजरी ॥ विनैतयेहनोदेतिप्रबोधाकाशमार्जनम् ॥ ३८ ॥ सुहृद्भूत्वाविवादेनद्वैताद्वैतविचारणा ॥ कृताहृदयगेहेंतरविद्याभस्ममार्जनी ॥ ३९ ॥ तच्चित्तास्तद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम् ॥ कथयंतश्चतन्नित्यंतुष्यंतिचरमंतिच ॥ ४० ॥

अर्थ—द्वैतअद्वैतआदि भेदोंसे युक्त वाक्योंकी रचनारूप विलासोंसे अज्ञानीरूप बालक क्रीडाकरते हैं, और ज्ञानी उनको हसतेहैं ॥ ३७ ॥ द्वैत तथा अद्वैतके विवादकी इच्छारूपलता तत्त्वज्ञोंके हृदय हैं. शिष्योंको ज्ञान-फल देनेके अर्थ अध्यारोपित होतीहै, क्योंकि इसकेविना प्रबोध (ज्ञान) रूप आकाशका शोध नहीं होता ॥ ३८ ॥ इसी हेतुसे सुहृद् होकर कल्पित द्वैतअद्वैतका विचारणारूप मार्जनीका अंगीकार विवादद्वारा कियाहै, और हृदयरूप गृहसे अविद्यारूपी भस्मको शोधन (निकालने) करनेपर मार्जनी (झाडू) के सदृश इस (द्वैताद्वैतविचारणा) को एक ओर उठाके फेंकदेंगे ॥ ३९ ॥ और अविद्यारूप भस्मके मार्जित होनेपर अधिकारीजन ब्रह्मपरायण होकर परस्पर उसीका बोधन तथा कथन करतेहुये नित्य उसी ब्रह्मरूपमें संतुष्टहोकर रमणकरतेहैं ॥ ४० ॥

तेषांसततयुक्तानांभजतांप्रीतिपूर्वकम् ॥ जायतेबुद्धियोगोसौयेनतेयांतितत्पदम् ॥ ४१ ॥ किलोपकुरुतेयत्नात्तृणमात्रावगोपने ॥ कथंसिध्यत्ययत्नेनत्रैलोक्यगणगोपनम् ॥ ४२ ॥ अध्यात्मव्यसनोन्मुक्तंततं हृत्स्थाधमाऽप्रभु ॥ उपहासास्पदंयस्याजगदप्युत्तमस्थितेः ॥ ४३ ॥ किंनामेदंकिलसुखंयद्राज्यादिमनोंकुरम् ॥ तत्त्वज्ञानैकविश्रांतौदेवराजपदंतृणम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रीतिपूर्वक नित्य आत्मतत्वका विचार तथा भजन करनेवाले प्राणियोंके हृदयमें यह मेरा कथित बुद्धियोग काल पाके दृढ होजाताहै जिससे मोक्षनामक आत्मतत्वको वे प्राप्त होतेहैं ॥ ४१ ॥ जब कि तृणमात्रकी रक्षामेंभी यत्नसे कियाहुआ उपायही उपयोगी होताहे तब ब्रह्मांडसमूहको ब्रह्मरूपतासंपादनरूप रक्षा-विना महाप्रयत्न कैसे सिद्ध होसकतीहै ॥ ४२ ॥ अध्यात्मशास्त्रके व्यसनसे रहित, मनुष्यके आनन्दसे लेके ब्रह्माके आनन्दपर्य्यन्त एकसे शत २ गुण अधिकसुखभोगकेलिये चतुर्दशभुवनोंमें व्याप्त तथा हृदयस्थ अधमकामके जीतनेमें असमर्थ संपूर्ण जगत्भी जिस निरतिशय आनन्दकी स्थितिका हास्यास्पदहै, उसके संपादनमें अधिकयोग क्यों न हो ॥ ४३ ॥ मनके अंकुररूप संसारके राज्यआदिमें क्या (तुच्छ) सुखहै ? क्योंकि तत्वज्ञानमें विश्राम होनेपर इन्द्रका सुखभी तृणवत् भान होताहै ॥ ४४ ॥

सुप्ताःप्रबुद्धाःपश्यंतिदृश्यंदृश्येरतायथा ॥ तथादृश्येऽरताःशांताःसंतःपश्यंतितत्पदम् ॥ ४५ ॥ विनायत्नभरेणेदंनकदाचनसिद्ध्यति ॥ महतोभ्यासवृक्षस्यफलंविद्धिपरंपदम् ॥ ४६ ॥ इदंबहूक्तमेतेनकिमेतेनेतिदुर्मतिः ॥ नग्राह्यैतावताप्युक्तेनादत्तेनेदमज्ञधीः ॥ ४७ ॥ भूयोभूयःपरावृत्त्याचिरमास्वाद्यते यदि ॥ श्रूयतेकथ्यतेचेदंतज्ज्ञेनाज्ञेनभूयते ॥ ४८ ॥

अर्थ—अज्ञानरूप निद्रामें सुप्त विषयलंपट जन जैसे संसारको अतिआसक्तिसे देखतेहैं ऐसेही शान्ततत्वज्ञानी संसारकी ओर सुप्त होकर निरतिशय आनन्दरूप आत्मपदको देखतेहैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सर्वोत्तम आनन्दरूप मोक्ष बिना यत्नसमूहके नहीं सिद्ध होता, क्योंकि महाअभ्यासरूपी वृक्षका फल परमपदको जानो ॥ ४६ ॥ अतः अभ्यासके दृढ होनेके अर्थ इसी विषयको नानाप्रकारकी युक्ति, तथा अनेक रीति और कथा आख्यानसे बार २ कहाहै, सो बार २ कथनका क्या प्रयोजन है ? ऐसी दुर्बुद्धि किसीको न हो, क्योंकि शुद्धहृदय उत्तम अधिकारीको तो कदाचित् अल्पकथनसे बोध होजाय, परन्तु अज्ञानी तो इतने अधिक कथनसेभी दुर्बोध आत्मतत्वको नहीं ग्रहण करता ॥ ४७ ॥ इस-कारण इस मेरे कथित ग्रन्थको यदि अज्ञानीभी पुनः २ आवृति करके श्रवण तथा कथन करेंगे तो वेभी अभ्याससे ज्ञानी होजायंगे ॥ ४८ ॥

यस्त्वेकवारमालोक्यदृष्टमित्येवसंत्यजेत् ॥ इदंसनामशास्त्रेभ्योभस्माप्याप्नोतिनाधमः ॥ ४९ ॥ इदमुत्तममाख्यानमध्येयंवेदवत्सदा ॥ व्याख्येयंपूजनीयंचपुरुषार्थफलप्रदम् ॥ ५० ॥ यदस्मात्प्राप्यतेशा

स्त्रात्तत्तद्वेदादवाप्यते ॥ अस्मिन्ज्ञातेक्रियाज्ञानंद्वयंयातिपवित्रताम् ॥ ५१ ॥ वेदांततर्कसिद्धांतस्त्वस्मि न्ज्ञातेचबुद्ध्यते ॥ इदमुत्तममाख्यानंव्याख्यातंशास्त्रदृष्टिषु ॥ ५२ ॥

अर्थ—और जो एकबार आलोकन करके "हमने देखलिया" ऐसा कहके इसे त्यागदेताहै उस अधमको वेदान्तशास्त्रसे भस्म (खाक) भी नहीं प्राप्तहोता ॥ ४९ ॥ परमपुरुषार्थ मोक्षरूप फलदायक इस उत्तमग्रन्थको वेदके तुल्य सदा पढना, व्याख्यान करना तथा इसकी पूजा करनीचाहिये ॥ ५० ॥ जो इस शास्त्रसें प्राप्तहोताहै वही वेदसेंभी प्राप्त होताहै, क्योंकि इस शास्त्रके जाननेसे क्रिया, ज्ञान (कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड) दोनों पवित्र होजाते हैं ॥ ५१ ॥ व्यासआदि महर्षियोंने जो वेदान्तके उपक्रम तर्कआदि तात्पर्य्यके निर्णयार्थ दर्शाये हैं वे सब इसके जाननेपर ज्ञात होजातेहैं, वेदान्तशास्त्रोंमें यह श्रेष्ठ मानागयाहै ॥ ५२ ॥

कारुण्याद्भवतामेतदहंवच्मिनमायया ॥ भवंतस्त्ववगच्छंतिमायामेतद्विचार्यताम् ॥ ५३ ॥ अस्माच्छा स्त्रवराद्बोधाजायंतेयेविचारितात् ॥ लवणैर्व्यंजनानीवभांतिशास्त्रांतराणिते: ॥ ५४ ॥ अनार्यमिदमा ख्यानमित्यनादृत्यदृश्यधी: ॥ माभवंत्वात्महंतारोभवंतोभवभागिन: ॥ ५५ ॥ तातस्यकूपोयमितिब्रु वाणा:क्षारंजलंकापुरुषा:पिबंति ॥ यथाभवंतोविविचारवंतस्तथानिशंमाभवताज्ञतास्यै ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे इंद्रियजयोपायशास्त्रवर्णनं नाम त्रिषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६३ ॥

अर्थ—मैं तुम सबके ऊपर करुणासे इसको कहताहुं न कि मायासेही, तुम जब इस शास्त्रको विचारोगे तब यह जगत् माया है ऐसा जान जाओगे ॥ ५३ ॥ इस उत्तम शास्त्रके विचारसे ऐसा उत्तम ज्ञान होताहै जिससे कि अन्य शास्त्र ऐसे रुचते हैं जैसे लवणसे व्यंजन ॥ ५४ ॥ काव्यवत् यह शास्त्र उत्तम नहीं है ऐसा जानकर इसका अनादर करके तुम सब आत्महन्ता तथा संसारके भागी न बनो ॥५५॥ हमारे पूर्वज मीमांसक, नैय्यायिक वा सांख्यशास्त्रवेत्ता तथा उनके मतको मानतेथे, हमभी उसीको जानेंगे व मानेंगे ऐसा समझके तुम अज्ञानकी प्राप्तिमे विचारवान् न बनो, क्योंकि हमारे बापदादोंका खनाकूप है ऐसा समझके निन्दितजल गंगाजलको छोडकर कूपका खाराजल पीते हैं ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे इन्द्रियजयोपायशास्त्रवर्णनं नाम त्रिषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६४ ॥

ब्रह्मज्ञानसे जीव तथा जगद्भावके मार्जनोंसे जीव जगत् तथा ब्रह्मकी समानता इस १६४ के सर्गमें सिद्ध कीगई है॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवाणवोजगत्यंतश्चिदादित्यांशुमंडले ॥ यत्रतेवयवास्तुल्यास्तेनानवयवात्मता ॥ १ ॥ सर्वप्राप्यपरंबोधंवस्तुस्वंरूपमुज्झति ॥ पुनस्तदेकवाक्यत्वात्किंचिद्वापरंभवेत् ॥ २ ॥ सर्वा स्वेवास्ववस्थासुतत्त्वज्ञविषयंतुतत् ॥ परमेवामलंब्रह्मनान्यत्किंचित्कदाचन ॥ ३ ॥ यज्ञातत्त्वज्ञविष यंतज्जानातिसएवतत् ॥ वयंत्वविज्ञोनाहंत्वंनातत्त्वज्ञंनवस्तुतत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! परिपूर्ण चित्‌रूपी सूर्य्यमंडलके स्फुरित होनेपर जिस जगत्‌में प्रसिद्ध जीवरूप अणु स्फुरित होतेहैं वहां अग्निकणके तुल्य चिद्रूप सूर्य्यमंडलके समान प्रकाशरूपही स्फुरित होतेहैं अतः चिद्रूप सूर्य्य तथा जीवरूप उसके अवयवमें भेद न होनेसे चिद्रूप सूर्य्य अनवयव सिद्ध हुआ, क्योंकि हस्तपादादि अवयवोंका विलक्षणरूप होनेसे अवयव तथा अवयवीमें भेद है न कि समानरूपतामें ॥ १ ॥ नक्षत्रोंके परस्पर भेदके सदृश जीवोंका भेद नहीं है किन्तु अन्तःकरणादि उपाधिसे है, सो अनुभवसे निज अखंड पूर्ण ब्रह्मरूपता प्राप्त होकर संपूर्ण उपाधिप्रयुक्त भेदको जीव त्यागदेताहै अथवा ज्ञानप्राप्तिके पूर्व अविद्यासे अनेक विरुद्ध धर्म देखनेसे भेदभान होताथा, परन्तु "अहं ब्रह्मास्मि" इस वाक्यजन्य बोधसे अविद्याका नाश होनेसे अन्यजीवका भेद करनेवाला कौन होसकताहै ॥ २ ॥ और तत्वज्ञानीका विषय शुद्धब्रह्म सब अवस्थाओंमें भेदरूपी कलंकसे शून्य निर्मलरूपही सदा रहताहै, वह कदापि अन्यरूप नहीं होता ॥ ३ ॥ और जो "अहंता, त्वंता" आदि अज्ञानीका विषय है उसको वही जानताहै, अस्मद् आदि तत्वज्ञानी जन तो अहंता, त्वन्ता, अज्ञत्व तथा मलिनवस्तुको यथार्थमें नहीं जानते ॥ ४ ॥

अयंसोहमयंचाज्ञःसत्योयमितिबुद्धयः ॥ संभवंतिनतत्त्वज्ञेकमेरौमृगतृष्णिका ॥ ५ ॥ यथैकद्रव्यनिष्ठे हिचितेन्यद्रव्यसंविदः ॥ नभवंतिपरेतद्वन्नान्यास्तिष्ठंतिसंविदः ॥ ६ ॥ इदंनासीन्नचोत्पन्नंनचास्ति नभविष्यति॥ जगद्ब्रह्मैवसद्रूपमिदमित्थमवस्थितम् ॥ ७ ॥ चिन्नभःकाचकच्यंचस्वात्मन्येवावतिष्ठते॥ जगदित्येवतत्तत्रतज्ज्ञानेनैवचेत्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—यह, वह, मैं, यह अज्ञानी तथा वह सत्य इत्यादि बुद्धि अज्ञानीहीको होती है, न कि तत्वज्ञानीको, क्योंकि मरुस्थलमें तृषार्तकी दृष्टिमें मृगतृष्णाका भ्रम होताहै, न कि स्वर्गरूप मेरुपर ॥ ५ ॥ जैसे यह स्थाणुही है, यह शुक्तिही है, इसप्रकार यथार्थ एकद्रव्यनिश्चयवाले पुरुषको स्थाणुमें यह स्थाणु है वा पुरुष यह संशय तथा शुक्तिमें यह रजत है, यह विपरीतज्ञान नहीं होता, ऐसे ब्रह्मका निश्चय होनेपर अन्यपदार्थका ज्ञान नहीं होता ॥ ६ ॥ यह जगत् नहिं तथा न उत्पन्न हुआ, न है और न होगा, किन्तु ब्रह्मही इसप्रकार जगत्रूप होकर स्थित है ॥ ७ ॥ इसप्रकार मार्जन करनेपर जगत्रूपसे गृहीत चिदाकाशका स्फुरण निज आत्मा (शुद्ध ब्रह्मभाव) मेंही स्थित रहताहै, उस दशामें जीवन्मुक्त जन जगत्को ब्रह्मही जानतेहैं ॥ ८ ॥

स्वप्नेषुकल्पनपुरेषुयथान्यदस्तिचिन्मात्रमच्छगगनंननुवर्जयित्वा॥ नोकिंचनापिनचरूपमरूपकेषुरू पंतथाजगतिसंप्रतिजाग्रदाख्ये ॥ ९ ॥ पूर्वंकिलोद्भवतिकिंचननामनेदंतच्चावभातितदनादिखमेवचि त्वात् ॥ नोकारणंनसहकारिकिलास्तियत्रतस्मात्स्वयंभवतिवस्त्विवतिकेयमुक्तिः ॥ १० ॥ तस्मात्स्व यंभवतिनेहहिकश्चिदादौब्रह्मादयोज्ञविदितानचनामसंति ॥ व्योमेदमाततमयंसइतःस्वयंभूरित्यादि चिद्गगनमेवचिताविभाति ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगत्परमात्मनोरैक्ययोगोपदेशोनामचतुःषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्न तथा मनोराज्यादिके कल्पित रूपरहित नगर आदिमें चिन्मात्रके सिवाय अन्य कुछ नहीं है, ऐसेही इससमय इस जाग्रत् नाम जगत्मेंभी चिन्मात्रसे भिन्न उपाधिका स्वरूप किंचित्भी नहीं है ॥ ९ ॥ इस हेतुसे "सदेवसौम्येदमग्रआसीत्" इत्यादिश्रुति प्रमाणसे सृष्टिके पूर्व उपादान वा निमित्तकारण कुछभी न था, ज्ञानीकी दृष्टिमें ब्रह्माआदिभी नहीं हैं, अतः यह कुछभी उत्पन्न नहीं होता और जो कुछ उत्पन्नहुयेके सदृश भासताहै वह सर्वत्र व्याप्त चिदाकाशही वैसा होताहुआ भासताहै, इसीसे वह ब्रह्म स्वयंभू इत्यादिनामसे प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जगत्परमात्मनोरैक्ययोगोपदेशो नाम चतुःषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६४ ॥

पंचषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६५ ॥

परस्पर एकदूसरेमें प्रवेश करनेसे, तथा एक दूसरेसे उत्पन्नहोनेसे, चिन्मात्र दृढ करनेके अर्थ जाग्रत् तथ स्वप्नकी एकता इस १६५ के सर्गमें प्रतिपादन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नेस्वप्नएवजाग्रत्त्वमनुगच्छति ॥ स्वप्नजाग्रतिजाग्रत्तुस्वप्नतामुपगच्छति ॥ १ ॥ स्वप्नोजाग्रत्प्रविशतिजाग्रत्स्वप्नात्प्रबुद्धयते ॥ जाग्रत्स्वप्नंप्रविशतिप्रबुद्धःस्वप्नजाग्रतः ॥ २ ॥ जाग्रत्स्वप्नवतास्वप्नःस्वप्नइत्यभिधीयते ॥ स्वप्नजाग्रद्वताजाग्रज्जाग्रदित्यभिधीयते ॥ ३ ॥ तज्जाग्रज्जाग्र तीवेहनतुस्वप्नःकदाचन ॥ स्वप्नेस्वप्नोजाग्रदेवनतुजाग्रत्कदाचन ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति, ये तीनों एकदूसरेमें प्रविष्ट होनेसे प्रत्येक तीन २ प्रकारके होतेहैं, जैसे जाग्रत् जाग्रत, १ जाग्रत्स्वप्न, २ जाग्रत्सुषुप्ति, ३ स्वप्नजाग्रत, ४ स्वप्नस्वप्न, ५ स्वप्नसुषुप्ति, ६ सुषुप्तिजाग्रत, ७ सुषुप्तिस्वप्न, ८ तथा सुषुप्तिसुषुप्ति, इनमें मनोराज्यरूप जाग्रत्स्वप्नमें मनोमयपदार्थ होनेसे स्वप्नही जाग्रत्दशाको प्राप्त होताहै इसलिये वह जाग्रत्स्वप्न है, और स्वप्नमें इतने कालतक मैंने शयन किया अब जागताहुं, इसअनुभवसे प्रसिद्ध जाग्रत्स्वप्नदशामें निजअनुभवसिद्ध जाग्रत्ही स्वप्नरूपताको प्राप्तहोताहै, अतः यह स्वप्नरूपजाग्रत् है ॥ १ ॥ स्वप्नसे जाग्रत्में प्रविष्टहोताहै और जाग्रत्से स्वप्नमें, अतः स्वप्नरूपजाग्रत्से प्रबुद्धहोकर जाग्रत्रूपस्वप्नमें आत्माके प्रविष्टहोनेसे परस्पर निमित्तता है ॥ २ ॥ जाग्रत्स्वप्नसे स्वप्नहोनेपर स्वप्न २

कहाजाताहै, और स्वप्नजाग्रत्से जाग्रत् होनेसे जाग्रत् २ कहाजाताहै ॥ ३ ॥ उसमें स्वप्नमें जो जाग्रत् होताहै वह अनुभवसे वर्तमान जाग्रत्के तुल्य होनेसे जाग्रत्ही न कि कदाचित् स्वप्न, तथा मनोराज्यरूप जाग्रत्स्वप्नमें जो जाग्रत् है वह स्वप्नही है न कि कदाचित् जाग्रत् ॥ ४ ॥

लघुकालात्मकःस्वप्नःसर्वदैवहिजाग्रति ॥ लघुकालात्मकंजाग्रत्स्वप्नकालेसदैवच ॥ ५ ॥ नजाग्रत्स्वप्नयोर्भेदःकश्चनास्तिकदाचन ॥ एकस्यावसरोन्यत्रद्वयोरपिनसन्मयः ॥ ६ ॥ मृतिप्रबोधसमयेजाग्रत्स्वप्नःप्रशाम्यति ॥ स्वप्नानुभवबोधेचशून्यएवातिभास्वरः ॥ ७ ॥ जीवतःस्वप्नसमयेमृतिबोधोदयंविना॥ परलोकात्मकंजाग्रत्किंचनापिनदृश्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—और जाग्रत्में स्वप्न सदा अल्पकाल रहताहै तथा स्वप्नकालमें जाग्रत्भी सदा अल्पकालही रहताहै, इसपरप्रवेशमें जाग्रत्स्वप्नमें दीर्घकाल तथा अल्पकालस्थितिकीभी विपरीतताहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार जाग्रत्स्वप्नका कुछभी भेद नहीं है और दोनोंमेंसे एकका दूसरेमें प्रवेश सत् नहीं है ॥ ६ ॥ और स्वप्न जाग्रत् होनेपर सर्वथा शान्त होजाताहै, तथा स्वप्नके पदार्थभी जाग्रत्में शून्यरूपही हैं, ऐसा स्वप्नसमयमें जाग्रत् नतो शान्त होताहै और न उसके पदार्थ असत् नहीं दीखते यहभी भेद नहीं है, क्योंकि मृत्युके पश्चात् परलोकरूप जाग्रत्में तथा ज्ञान होनेपर जाग्रत्-रूप स्वप्नभी शान्त होताहै और स्वप्नके अनुभवकालमें तथा सुषुप्तिमें जाग्रत्के पदार्थभी शून्य वा असत्रूपही हैं ॥ ७ ॥ कदाचित् यह कहो कि आजके स्वप्नकेपदार्थ कल प्रातःकालमें नहीं रहते,आजके जाग्रत्के पदार्थ तो कल प्रातःकाल होनेपर ज्योंके त्यों मिलतेहैं, सो यह भेदभी नहीं है, क्योंकि इस जीवनरूप स्वप्नसमयमें मरणके अनन्तर जन्मरूप जाग्रत्समयमें दूसरे जन्मरूप जाग्रत्के पदार्थ कहां देखपडतेहैं ॥ ८ ॥

स्थितेजीवितबोधेस्मिञ्छून्येनानामयात्मनि ॥ परलोकात्मकःस्वप्नःकश्चनापिनदृश्यते ॥ ९ ॥ चिच्चमत्कृतिमात्रात्मयथास्वप्नेजगत्त्रयम् ॥ हृदिसर्गात्प्रभृत्येवतथैवाभातिजाग्रति ॥ १० ॥ सत्येवासत्यभूतानिस्फारापिपरमार्थतः ॥ नास्त्येवाकारवत्तेयंस्वप्नेव्योमिवजाग्रति ॥ ११ ॥ नानात्मभासुरमपिस्वप्नेशून्यंयथाजगत् ॥ तथैवजाग्रत्यखिलंव्योमैवेदंचिदात्मकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार स्थित होनेपर जीवनादि सब पदार्थ शून्य आजके स्वप्नमें भ्रमसे नानारूप आत्मामें मैं जीताहुं ऐसा बोध होनेपर गत वा आगामी दिवसका स्वप्न अथवा उसके पदार्थ कुछ नहीं देख पडते ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नमें त्रिलोकी चित्का चमत्कारमात्र है, ऐसेही सृष्टिके आरंभसे लेके अबतक जाग्रत्दशामेंभी चित्का चमत्कार यह जगत्रूपसे भासताहै ॥ १० ॥ स्वप्नकी पृथिवी तथा उसके पदार्थके तुल्य जगत्के सब पदार्थ और उनका विशालाकार भासनेपरभी परमार्थ वह नहीं है ॥ ११ ॥ स्वप्नमें नानाप्रकारसे स्फुरितभी यह जगत् जैसे शून्यरूपही है ऐसेही जाग्रत्-मेंभी यह संपूर्ण जगत् चिदाकाशरूपही है ॥ १२ ॥

चिद्व्योम्नोहिस्वभावोयंयदिदंजगदंबरे ॥ कचतीत्थमिहस्फारमालोकइवतेजसः ॥ १३ ॥ चितेश्चमत्कृतिरियंजगन्नाम्नीचकास्त्यलम् ॥ सहजागगनेकुड्येपरमाणौस्थलेजले ॥ १४ ॥ भ्रांतावसत्यरूपायांस्थितायांसत्यवस्तुवत् ॥ आकाशमात्रदेहायांकइवैनांप्रतिग्रहः ॥ १५ ॥ ग्रहीतृग्रहणग्राह्यरूपमाशून्यमेवच ॥ सदस्त्वेवासदेवास्तुजगदत्रांगकिंग्रहः ॥ १६ ॥ इत्थमस्त्विदमथान्यदस्तुवामैवभूद्भवतुकोत्रसंभ्रमः ॥ कोत्रफल्गुनिफलेफलग्रहोबुद्धमेवतदलंविकल्पनैः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जाग्रत्स्वप्नैक्यवाक्योपदेशो नाम पंचषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६५ ॥

अर्थ—यह चिदाकाशका स्वभावही है कि यह विशालरूप जगत् चिदाकाशमें ऐसे प्रकाशित होताहै जैसे तेजका प्रकाश ॥ १३ ॥ यह जगत्नामिका चित्की स्वाभाविकी चमत्कृति है जो आकाशमें, कुड्य (भित्ति) में, परमाणुमें, जलमें तथा स्थलमें पूर्णरूपसे प्रकाश करती है ॥ १४ ॥ चिदाकाशमात्र देहधारिणी सत्यवस्तुके तुल्य भासमान इस असत्यरूप जगत्भ्रांतिकी स्थितिमें विश्वास करना अनुचितही है ॥ १५ ॥ हे प्रिय रामजी ! ग्रहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य त्रिपुटीशून्य यह जगत् अधिष्ठानसत्तासे सत् हो वा निजसत्तासे असत् हो, इसमें किसी पक्षके स्थापनरूप दुराग्रहसे क्या प्रयोजन है ॥ १६ ॥ यह जैसा भासताहै वैसाही है वा अन्यप्रकारका है इसमें एकपक्षके पक्षके स्थापनका आग्रह क्यों ? अल्पफलयुक्त इस जगत्के अन्तर्गत भोगरूप फलका तथा इस जगत्का खंडनमंडन अनुचितहो है,

क्योंकि अज्ञानसे यह जगत् सत्य है वा असत्य है इन दोनों पक्षोंमेंसे कदाचित् किसी पक्षमें अभिमान हो, परन्तु आपने तो अब इसके तत्वको जानलिया अब इसमें विकल्प व्यर्थही है ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जाग्रत्स्वप्नैक्यवाक्योपदेशो नाम पंचषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६५ ॥

षट्षष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

आत्मख्याति, तथा अन्यख्यातियोंकी स्थिति और प्रश्नोत्तरसहित ब्रह्मनीलशिलाका आख्यान इस १६६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सार्थकेनात्मशब्देनख्यातिशब्देनचोज्झिताम् ॥ आत्मख्यातिमिमांविद्धिशिलाजठरनिर्घनाम् ॥ १ ॥ आदिसर्गात्प्रभृत्येवचिद्व्योमैवेत्थमाततम् ॥ कचत्यात्मनियत्तस्यबुद्धातेनैवसगता ॥ २ ॥ नवहंतीहसरितोनेहोन्मज्जनमज्जने ॥ व्योमव्योम्न्येवचिद्रूपंकचत्येवमनिंगितम् ॥ ३ ॥ कचनोत्त्याद्गुरहितांसमग्रेणास्तकल्पनाम् ॥ विनोत्तरपदार्थेनत्वात्मख्यातिमिमांविदुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! अख्याति, असत्ख्याति, अन्यथाख्याति, तथा आत्मख्याति, इनसे विलक्षण वाच्यार्थसहित आत्मशब्द तथा ख्यातिशब्दसेभी परित्यक्त अखंडार्थ दोनोंपदके लक्ष्यभूत तथा पाषाणशिलाके गर्भके सदृश घनीभूत इस आत्मख्यातिको तुम समझो ॥ १ ॥ सृष्टिके आरंभसे पूर्णव्यापक चिदाकाशही इस जगद्रूपसे स्फुरित है, और उसने स्वयं निजआत्मामें आत्माहीसे निजचैतन्यबलसे सृष्टिको ख्यापित (प्रसिद्ध) कियाहै इसलिये "आत्मख्याति" इस पदमें "आत्मा एव ख्यातिः" (आत्माही सृष्टिरूप है) ऐसा समास करके अर्थ करना चाहिये ॥ २ ॥ न तो ये नदियां वहती हैं, और न उनमें डूबना उतराना है किन्तु इन सबरूपसे निष्क्रिय चिद्रूप चिदाकाशही अपने स्वरूपमें स्फुरित है ॥ ३ ॥ अतः स्फुरणवाचक ख्यातिशब्द तथा उसके वाच्यार्थसे शून्य अखंडार्थ सब कल्पनाओंसे स्वप्रकाश आत्मस्वरूपको सृष्टिरूपसे प्रकट करनेसे तत्वज्ञानीजन इसको आत्मख्याति कहतेहैं ॥ ४ ॥

आत्मैवेदंजगत्सर्वंख्यातिर्यत्रनकिंचन ॥ आख्यातोनामनख्यात्याकदाचित्ख्यापितःक्वचित् ॥ ५ ॥ ख्यातिरख्यातिरित्यत्रवाचोयुक्तिरवास्तवी ॥ किंतत्रख्यापनंनामस्याद्वाप्यख्यापनंचकिम् ॥ ६ ॥ अख्यातिरन्यथाख्यातिरसत्ख्यातिरितीतरा ॥ दृश्याश्चिन्मात्ररूपस्यभासश्चित्त्वचमत्कृताः ॥ ७ ॥ यथायथायदायेयेचिन्मात्रव्योमभास्वतः ॥ चिदंशवःकचंत्यच्छास्तदातेतेतथातथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जब आत्माही यह संपूर्ण जगद्रूप है, उसने निजस्वप्रकाशसे भिन्न किसी ख्यातिसे इसे ख्यापित (प्रसिद्ध) नहीं किया तब अख्यातशब्दका प्रयोग कदाचित् इसमें घटित हो न कि भावार्थमें ख्याधातुसे क्तिन् (ति) प्रत्ययसे सिद्ध अख्याति इस संसारको सिद्ध होती है ॥ ५ ॥ "ख्या" धातुका अर्थ प्रथा (प्रसिद्धि) है, और "ति" प्रत्ययका भाव (सत्ता) अर्थ है दोनों मिलके ख्यात (प्रसिद्धि) रूप सत्ता यह ख्यातिशब्दका अर्थ है, तो प्रसिद्धिसत्तारूप आत्माही जगत् है उसका निषेधार्थक नञ् (अ) शब्दके साथ संबन्ध नहीं है, इस हेतुसे ख्याति अख्याति यह अन्यवादियोंकी युक्ति अयथार्थ है, और प्रेरणार्थकभी ख्यातिशब्द नहीं है क्योंकि जब जगत् चित्से भिन्न हो तब उसमें प्रेरणा होसकती है और जब चिद्रूपही जगत् है तब उसमें अन्यका ख्यापन वा अख्यापन क्या युक्त होसकताहै इससे असत्ख्याति वा अन्यथाख्यातिभी खंडित हुई ॥ ६ ॥ और यदि अख्याति, अन्यथाख्याति तथा असत्ख्यातिको स्वमनोराज्यरूप अन्यदृश्यके समान चित्मात्रके चमत्कारभूत कल्पनामात्र मानो तो रहैं उसमें हमारी कुछ क्षति नहीं है ॥ ७ ॥ जिस २ प्रकारसे जब २ चिदाकाशरूपी सूर्य्यके अग्निके स्फुलिंगके समान कल्पित जो २ निर्मल चिद्भाग जैसे २ स्फुरित होते हैं वहां वे उसी २ रीतिसे भासते हैं ॥ ८ ॥

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिःख्यातिरन्यथा ॥ इत्येताश्चिचमत्कृत्याआत्मख्यातेर्विभूतयः ॥ ९ ॥ आत्मख्यातिपदस्यार्थआत्मख्यातिपदोज्झितः ॥ अनाद्यंतोनिरुल्लेखःसोयमेकघनःस्थितः ॥ १० ॥ तत्रेदंमहदाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ दूषणंद्वैतदृष्टीनांद्योतनंबोधभास्वतः ॥ ११ ॥ अस्तियोजनकोटीनांसहस्राणिप्रमाणतः ॥ आनीलकुड्यकठिनाविमलाविपुलाशिला ॥ १२ ॥

अर्थ—आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति और अन्यथाख्याति ये सब चित्के आत्मख्याति (अखंडार्थ अनिर्वचनीय आत्मरूप सर्गताख्याति) की विभूति हैं ॥ ९ ॥ आत्मख्यातिशब्दके वाच्यार्थसे रहित आत्मख्याति-शब्दका लक्ष्यार्थ आदिअन्तरहित और वाणीका अविषय है, यह पाषाण शिलाके गर्भके तुल्य अति एक घनीभूत स्थित है ॥ १० ॥ इस विषयमें श्रवणका भूषण, द्वैतदृष्टिओंका दूषण तथा ज्ञानरूपी सूर्य्य इस महाशिलाआख्यानको तुम सुनो ॥ ११ ॥ अनेक सहस्रोंकोटि योजनप्रमाणवती (अनन्त) सर्वथा चारोंओरसे अतिनील आकाशरूपी भित्ति यदि हो तो उसीके सदृश घनीभूत, निर्मल तथा विशाल एक शिला है ॥ १२ ॥

नसंधिबंधनिबिडावज्रसाराविसारिणी ॥ अत्यंतपुष्टकठिनजठराकाशनिर्मला ॥ १३ ॥ असंख्यकल्पनिचयमविनाशाघनांगिका ॥ कांतांगीनिर्मलत्वेनव्योमरूपैवलक्ष्यते ॥ १४ ॥ जातिस्तुज्ञायतेतस्याविशिष्टानैवकेनचित् ॥ कथंकुत्रकदाचेतिनविज्ञातासदैवसा ॥ १५ ॥ अंतस्तस्यास्तुहृदयेभूतधातुविवर्जिते ॥ निबिडानंतकठिनावज्रसाराऽविनाशिनी ॥ १६ ॥ लेखामयानिविद्यंतेस्वांगभूतानिभूरिशः ॥ पद्मजालानिशंखाश्चगदाश्चक्रादयस्तथा ॥ १७ ॥

अर्थ—अवयव तथा संधियोंसे रहित, अतिनिबिड, वज्रवत् दृढ, अतिविशाल, अतिपुष्ट, पाषाणकेसदृश कठोर, गर्भसहित तथा आकाशवत् निर्मल वह शिला है ॥ १३ ॥ निरन्तर अनेककल्पपर्य्यन्त अविनाशिनी, अतिनिबिड तथा रमणीय शरीरधारिणी तथा निर्मलतासे आकाशकेही तुल्य वह नीलशिला लक्षित होतीहै ॥ १४ ॥ और उसके सजातीयकी अप्रसिद्धि होनेसे विजातीयसे व्यावृत्त उसकी विशिष्टजाति कभी किसीने नहीं जाना और किस देश तथा कालमें वह कैसे थी यह सदा विद्यमान रहतेभी किसीने नहीं जाना ॥ १५ ॥ इसप्रकार अतिघनीभूत, वज्रके समान दृढ तथा नाशरहित वह शिला है और उसका आभ्यन्तरप्रदेश पंचमहाभूत तथा चतुर्विधप्राणियोंसे रहित है परन्तु उसमें स्फटिकमणिकी रेखाके तुल्य निजअंगभूत अनेक पद्मसमूह, शंख, गदा, चक्र तथा खड्ग आदि हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

खंवायुःसलिलंतेजोवसुधेत्यभिधाकृता ॥ नासीत्तत्रस्वलेखानांजीवइत्येववैतया ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ शिलासौचेतनंतस्याःकुतइत्युच्यतांमम ॥ अचेतनाशिलानामकथंनामकरोतिच ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नचेतनानचजडासाशिलाविपुलोज्ज्वला ॥ जातिंजानातिकस्तस्याःकस्तत्रान्यश्चविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और उस शिलाके भीतर गर्भमें आकाश, वायु, अग्नि, पृथिवी इत्यादिरूपसे यह जगत् न था किन्तु उस शिलानेही निजगर्भगत रेखाओंकी आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि जगत्नामसे संज्ञा की है और स्वयं अपनी जीवसंज्ञा उसनेही की है ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! क्या यह शिला चेतन है ? शिला इस नामसे यह चेतन कहांसे हो सकती है ! और यदि अचेतन है तो अपने गर्भगत रेखाओंकी आकाश, वायु आदि संज्ञा तथा निजकी जीवसंज्ञा कैसे करसकती है यह मुझसे कहिये ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वह विशाल निर्मल शिला न जड है, न चेतन है, क्योंकि वहां जब उससे भिन्न कोई हैही नहीं तब उसकी जाति कौन जानसकताहै ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ तस्याःपश्यतिताालेखाःकःकथंजठरस्थिताः ॥ कथंवाकेनसामग्नाकदानामेतिमेवद ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नभेत्तुंयुज्यतेसोग्रानचभेत्ताचविद्यते ॥ तथैवापारपर्यंतदेहिन्यासर्वमात्रतम् ॥ २२ ॥ लेखामयानिविद्यंतेतत्रानंतानिकोटरे ॥ वृक्षपर्वतजालानिनगराणिपुराणिच ॥ २३ ॥ तत्र लेखामयाःसंतिदेवदानवनामकाः ॥ सूक्ष्मासूक्ष्मानिराकाराःसाकारइवपुत्रिकाः ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! यदि उससे भिन्न अन्य कोई नहींहै तो आपसे कथित उसके गर्भगत आकाश वायुआदि रेखाओंको कौन देखताहै, और आभ्यन्तरमें विचित्र लेखाकारसे टंकोंसे किसने तथा कब उसे विदीर्ण किया और आभ्यन्तरमें टांकीआदिके प्रवेशके असंभवसे वह कैसे विदीर्ण कीगई सो मुझसे कहिये ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! वह अतिदृढ शिला किसीके भेदन करनेयोग्य नहींहै और वह निज अपारशरीरसे सर्वत्र व्याप्त है ॥ २२ ॥ और उसके आभ्यन्तर रेखामय अनंत वृक्ष पर्वतआदि समूह तथा ग्राम नगरादिकेभी समूहकेसमूह हैं ॥ २३ ॥ उसमें सूक्ष्म, स्थूल, निराकार तथा साकार (विभक्त आकार तथा अविभक्त-आकार) प्रतिमाके तुल्य रेखामय असंख्यदेवदानवआदि समूह हैं ॥ २४ ॥

आकाशनाम्नीतत्रास्तिलेखावैपुल्यशालिनी ॥ उपलेखाश्चसंत्यस्यामध्येचंद्रार्कनामिकाः ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ केनदृष्टावदब्रह्मँल्लेखास्तास्तत्रकिंविधाः ॥ कथंवावदहश्यंतेनिबिडोपलकोशगाः ॥२६॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मयाराघवताद्दृष्टास्ताद्दृश्यस्तत्रलेखिकाः ॥ तवापीच्छायदिभवेत्तत्तास्त्वमपि पश्यसि ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ तादृशीवज्रसारासाशिलाभंक्तुंनयुज्यते ॥ तथापिभवताद्दृष्टालेखा स्तत्कोशगाःकथम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उस शिलाके भीतर आकाशनामकीभी अतिविशाल रेखा है और मध्य २ में सूर्य्यचन्द्रनामक अवान्तर लेखाभी हैं ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! उसप्रकारकी लेखाओंको वहां किसने देखाहै ! और अतिघनीभूत शिलाके गर्भमें वे रेखा देख कैसे पडतीहैं ? ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे राघव उन आकाश वायुआदिके आकारवती रेखाओंको मैंने देखाहै और यदि तुमको इच्छा है तो तुमभी समाधिसे उनको देखोगे ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे मुने ! वह वज्रकेसमान शिला विदीर्ण तो हो नहीं सकती तथापि उसके गर्भगत लेखाओंको आपने देखा सो कैसे देखा यह कृपाकरके कहिये ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्याजठरेरामलेखाहंजठरेस्थितः ॥ तेनपश्यामितत्रस्थोलेखाजालंतदक्षतम् ॥ २९ ॥ कोसौशक्तोन्यथाभंक्तुंतांशिलामहमंतरे ॥ तत्सर्वंदृष्टवांस्तस्याअहंतत्रांतरस्थितः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कासौशिलाथकश्चत्वंवदमेकासिसंस्थितः ॥ किमेतद्वदसिब्रूहिकिमेतद्दृष्टवानसि ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमात्ममहासत्ताकथितैषामयातव ॥ अनयैववचोभंग्यानत्वेषाविपुलाशिला॥३२॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! इस शिलाके गर्भमें मैंभी एक रेखारूपही हुं, इस हेतुसे उस गर्भमें स्थित संपूर्ण लेखाओंको अखंडितरूपसे मैं देखरहाहुं ॥ २९ ॥ इस शिलाके आभ्यन्तरमेंही स्थित मैंने सब कुछ देखाहै, अन्यथा इस शिलाको तोडनेको कौन समर्थ है ॥ ३० ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे मुने ! यह शिला यथार्थमें क्या है और आपभी क्या हैं, तथा किस स्वरूपसे इसमें आप कहां स्थित हैं, इस शिलारूपसे आप कौन पदार्थ कहतेहैं तथा आपने इसके भीतर क्या देखा ? ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! मैंने इस शिलाआख्यानरूपकसे परमात्माकी महासत्ता (सर्वव्यापी चेतन) का कथन कियाहै न कि चेतनसे भिन्न किसी शिलाका निरूपण कियाहै ॥ ३२ ॥

परमात्ममहासत्ताशिलायाजठरेवयम् ॥ तच्छिलामांसमेवेमेसौषिर्यपरिवर्जिते ॥ ३३ ॥ तच्छिलांगंनभोविद्धितच्छिलांगंसदागतिः ॥ तच्छिलांगंक्रियाशब्दावासनाकालकल्पना ॥ ३४ ॥ भूमिरापोनलो वायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥ अहंकारइतीदंतत्तच्छिलांगमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥ परमात्ममहासत्ताशिलामांसमिमेवयम् ॥ सर्वएवततोनन्येप्यन्येत्वितिचविग्रहे ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमात्माकी महासत्तारूप शिलाके छिद्रशून्य गर्भमेंही हम सब उसके मांसके सदृश हैं ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! आकाशको तुम उस परमात्ममहासत्तारूप शिलाका अंगही जानो. वायु, अग्नि आदि सब पंचभूत उसी शिलाके अंगही हैं. क्रिया, शब्द, स्पर्श आदि वासना, मन आदि तथा कालकी कल्पना ये सब उस परमात्मसत्तारूप शिलाके अंग हैं ॥ ३४ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये सब उस शिलाके अंग कहेगयेहैं ॥ ३५ ॥ उस परमात्ममहासत्तारूप शिलाके मांसके समान ये सब हैं और इसी हेतुसे हम सब अभिन्न (एकरूप) हैं तथापि भ्रमसे भिन्न मानते हैं ॥ ३६ ॥

चिन्मात्रैकात्मिकायेयंकिलातिमहतीशिला ॥ एतस्याव्यतिरेकेणकतदस्तिकिमुच्यताम् ॥ ३७ ॥ शुद्धंवेदनमेवेदंघटावटपटादिकम् ॥ यथास्वप्नेतथाभातिजलमूर्मितयायथा ॥ ३८ ॥ इदंब्रह्मघनंसर्वंचिन्मात्रघनमाततम् ॥ परमार्थघनंशांतंसर्वमेकघनंविदुः ॥ ३९ ॥ एकंमहाचितिशिलोदरमेवसर्वंसौषिर्यवर्जितमपारमनादिमध्यम् ॥ तेनात्मनैवकलिताकलनात्मनेयंसर्गोजगद्भुवनमित्यपिदृश्यनाम्नी ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शिलोपाख्यानं नाम षट्षष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

अर्थ—चिन्मात्ररूपसे यह सब एकही महाशिला है, यदि इस परमात्मसत्तारूप शिलासे भिन्न कुछ है तो वह कहां है और क्या है सो कहो ॥ ३७ ॥ घट, गर्त, पट तथा कूपादि शुद्धज्ञानमात्रही है, यह सब स्वप्नवत् अथवा जल जैसे तरंग आदिरूपसे भासताहै ऐसेही चिद्रूपही भासताहै ॥ ३८ ॥ यह सब अतिनिबिड सर्वथा व्याप्त शान्त परमार्थघनभूत अभिन्नरूप एक चिन्मात्र ब्रह्महीहै ॥ ३९ ॥ यह नानारूपसे दृश्यमान विशाल जगत् परमात्ममहासत्ता

(चिद्रूप) शिलाका उदरही है और वह चिद्रूप उदर छिद्रशून्य तथा आदि अन्त और मध्यसे रहित है, इस ब्रह्मरूप शिलाने निज आत्मासे आत्मामेंही सृष्टि, जगत्, चतुर्दश भुवन आदि दृश्यनामकी कल्पना स्वीकृत की है ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे शिलोपाख्यानं नाम षट्षष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६७ ॥

ज्ञानीकी दृष्टिमें चारोंख्यातियोंका, तथा अवस्थात्रयसे निर्मुक्त आत्मतत्वका निरूपण इस १६७ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आत्मख्यातिरसत्ख्यातिःख्यातिरख्यातिरन्यथा ॥ शब्दार्थदृष्टयस्तज्जंप्रत्येताःश शशृंगवत् ॥ १ ॥ कदाचनापिनामांगसंभवंतिनकाश्चन ॥ शांतमव्यपदेश्यात्माज्ञआस्तेस्तंगतेंगनः ॥ २ ॥ एताउद्यंतिचिन्मात्रादात्मख्यात्यादिकादृशः ॥ तच्चशुद्धतरंव्योमतन्मय्येवचदृश्यते ॥ ३ ॥ अयमात्मात्वियंख्यातिरित्यंतःकलनाभ्रमः ॥ नसंभवत्यतश्चैनंशब्दंत्यक्त्वाभवार्थभाक् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति, तथा अन्यथाख्याति, इन शब्दार्थोंकी दृष्टि तत्वज्ञानीको शशशृंगवत् (मिथ्या) है ॥ १ ॥ हे प्रिय ! इन असत्ख्यातिआदिका कदापि संभव नहींहै, क्योंकि ज्ञानी सदा शांत, व्यपदेशरहित, तथा ख्यातिआदि कल्पनाओंके मूलकारण चित्तकी चेष्टाओंसे रहित आत्मरूपसे स्थित रहताहै ॥ २ ॥ ये सब आत्मख्यातिआदि कल्पनादृष्टि चिन्मात्रपरमात्मासेही उदयको प्राप्त होती हैं और वेभी सब शुद्ध चिदाकाशमात्रही हैं, क्योंकि संपूर्णकल्पना मैं चिद्रूपही देखताहुं ॥ ३ ॥ यह आत्मा, यह उसकी ख्याति (सृष्टिरूपता) इत्यादि कल्पनामात्र होनेसे संभव नहींहै, अतः तुम शब्दको त्यागकर परमार्थके भागी बनो ॥ ४ ॥

गच्छंस्तिष्ठन्नददपिसर्वंशांतमतोजगत् ॥ आकाशमौनमेवाच्छमच्छिन्नंवाप्रवृत्तिमत् ॥ ५ ॥ नानामहाशब्दमपिशिलामौनमवस्थितम् ॥ अनारतंगच्छदपिव्योमवच्छैलवत्स्थितम् ॥ ६ ॥ नानाविधारंभमपिमहाशून्यमनंकितम् ॥ पंचभूतात्मकमपिखमिवालब्धपंचकम् ॥ ७ ॥ पदार्थसंकुलमपिशून्यंसंवित्तिमात्रकम् ॥ स्वप्नेमहापुरमिवदृष्टमप्यच्छचिन्मयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह संपूर्ण जगत् गमन, आगमन, तथा भोजन आदिसंपूर्ण व्यापार करताहुआभी निरन्तर प्रवृत्तिशून्य स्वच्छ निर्मल चिदाकाशमात्रही है ॥ ५ ॥ नानाप्रकारके महाशब्दोंसे युक्त होनेपरभी शिलाके सदृश मौन स्थित है, निरंतर गमनशील होनेपर आकाशवत् वा पर्वतके सदृश एकस्थानपरही स्थितहै ॥ ६ ॥ नानाप्रकारके आरंभसे युक्त होनेपरभी चिन्हरहित महाआकाशके तुल्य है तथा पंचभूतमय होनेपरभी केवल आकाशके तुल्य है ॥ ७ ॥ अनेक पदार्थोंसे पूर्णभी यह जगत् शून्य ज्ञानमात्र है, तथा स्वप्नके नगरआदिके समान दृष्ट होनेपरभी निर्मल चिन्मात्रही है ॥ ८ ॥

सारंभमप्यनारंभंसंकल्पनगरंयथा ॥ आकाशमात्रंभ्रांत्यात्मस्वप्नस्त्रीसंगमोपमम् ॥ ९ ॥ अनुभूतमपिव्यर्थंप्रतिबिंबांगनासमम् ॥ नानानुभवनिर्माणंवस्तुशून्यंतुवस्तुतः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नात्मकमिदंमन्येस्मृत्यैवदृश्यते ॥ सद्रूपबाह्यार्थकृतास्मृतिरेवेहकारणम् ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यत्तच्चित्काचकच्येनकाकतालीयवद्वपुः ॥ व्योमात्माभातिभावानांसत्तामात्रमभित्तिमत् ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक आरंभयुक्त होनेपर संकल्पनगरके तुल्य आरंभरहित, स्वप्नकी स्त्रीके समागमके समान यह मिथ्या केवल शून्य आकाशमात्रही सब जगत् है ॥ ९ ॥ प्रतिबिम्बकी अंगनाके तुल्य यह अनुभूत होनेपरभी व्यर्थही है, तथा नानाप्रकारके अनुभवयुक्त रचनासहित होनेपरभी यथार्थमें वस्तुशून्यही है ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! यदि अविद्यमान यह जाग्रत्स्वप्नमय जगत् वासनामात्रसे देखपडताहै ऐसा मैं मानताहुं तो सद्रूप बाह्यपदार्थोंकी स्मृतिही जगत्का कारण है न कि भ्रांति ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जो चित्के स्फुरणमात्रसे अधिष्ठान चेतनके अज्ञानमात्रद्वाराही आकस्मिक शरीरधारी यह जगत् भासताहै, क्योंकि विनाभित्ति (निष्कारण) जो चिदाकाशसत्ता भासती है वही यह भ्रमसिद्ध जगत् है ॥ १२ ॥

तदेतदविनाशात्मसर्वत्रपरमात्मनि ॥ सर्वदाविद्यतेशांतेपयसीवतरंगकाः ॥ १३ ॥ निर्निमित्तंस्वरूपात्मतदेतत्परमात्मनि ॥ सर्वात्मन्यपिनिर्वाणेव्योमात्मनिनिरात्मनि ॥ १४ ॥ यदायदावभात्यंतर्येन तेनयथातथा ॥ सर्वदानकदाचिद्वायत्रतत्रनकिंचन ॥ १५ ॥ तस्यैवब्रह्मभानस्यतेनैवब्रह्मणात्मना ॥ स्वच्छस्यैवस्वभावस्यस्वस्वभावमनुज्झता ॥ १६ ॥ इदंजाग्रदयंस्वप्नःसुषुप्तंतुर्यमित्यपि ॥ कृतंनाम स्वयंचित्त्वाद्ब्रह्मतात्मेतिचात्मनि ॥ १७ ॥

अर्थ—सो अविनाशी तथा शान्त और सर्वव्यापी परमात्मामें यह जगत् सदा ऐसे है जैसे जलमें तरंग ॥ १३ ॥ सर्वरूप, निर्वाणस्वरूप तथा कारणरहित चिदाकाशमय परमात्मामें निमित्तशून्य यह जगत् परमात्मरूपसेही विद्यमान है ॥१४॥ जब२ अविद्याद्वारा जैसे२ जहां२ आभ्यंतरमें परमात्मचेतन स्फुरित होताहै वहां२ उसी २ प्रकारसे यह जगत् सदा भासताहै और जहां चित्में कोई स्फुरण नहीं होता वहां कुछभी नहीं भासता ॥ १५ ॥ उसी स्वच्छ निर्मलस्वभाव ब्रह्मसत्ताकेही, उसी ब्रह्मस्वरूप आत्माने सर्वशक्तिमान् चित्स्वरूप होनेसे अपने चित्स्वरूपको न त्यागतेहुये, निजआत्मामेंही यह जाग्रत् है, यह स्वप्न है, यह सुषुप्ति है, यह तुरीय है, यह ब्रह्म है तथा यह आत्मा है, इत्यादि अपने नाम स्वयं धारणकियेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

वस्तुतस्त्वस्तिनस्वप्नोनजाग्रन्नसुषुप्तता ॥ नतुर्यंनततोतीतंसर्वंशांतंपरंनभः ॥ १८ ॥ अथवासर्वमेवेदं जाग्रद्रूपंसदैवच ॥ सर्वदैवचवास्वप्नःसुषुप्तंसर्वदैवच ॥ १९ ॥ सर्वदैवचवातुर्यंतदंतःसर्वदैववा ॥ तदिदंवानयद्विद्मोवयमाशांतरूपिणः ॥ २० ॥

अर्थ—और यथार्थमें तो न स्वप्न है, न जाग्रत् है, न सुषुप्ति है और न तुरीय अवस्था है, किन्तु इन सबमें अनुस्यूत तथा इनसे परे जो परब्रह्मरूप चिदाकाश है वही सब कुछ है ॥ १८ ॥ अथवा चित्को कदाचित्भी शमन न होनेसे सदा जाग्रत्रूपही है, वा भ्रममात्र होनेसे सदा स्वप्नही है, अथवा अविद्या आवरणमात्र होनेसे सदा सुषुप्तिरूपही यह आत्मा है ॥ १९ ॥ अथवा स्वयं तीनोंअवस्थाका उल्लंघन करनेसे सदा तुरीयरूपही है वातो जाग्रत्आदि तीनोंअवस्थाओंके मिथ्या होनेसे तुरीय (चतुर्थरूप) त्वभी उस आत्मामें असत् है, सर्वथा शान्तरूप हम सब निर्विकल्प परमात्मामें यह है, यह नहीं है, इत्यादि विकल्प नहीं जानते ॥ २० ॥

इदंफेनोनकिंचिद्वाबुद्बुदोवानकश्चन ॥ शून्यतांभसिचिद्व्योममहार्णवमहोदरे ॥ २१ ॥ यथासंवेद्यते यद्यत्तथातदनुभूयते ॥ सद्वासद्वाभवत्स्वप्नेव्योम्नीवसदसच्चतत् ॥ २२ ॥ संवित्कचनमेवेदंयथाभानं विभासते ॥ व्योमव्योमनिचिद्रूपंचिद्रूपेविततात्मनि ॥ २३ ॥ संविच्चचिन्नभोमज्जासैवरूपैवसर्वदा ॥ नास्तमेतिनचोदेतितस्याःस्वांगमिदंजगत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे सर्वथा जलमय समुद्रमें यह फेन है वा कुछ नहीं, यह बुद्बुद् है वा कुछ नहीं है इत्यादि विकल्प मिथ्या हैं, ऐसेही चिदाकाशमय महासमुद्रके महाउदरमें यह जाग्रत्, यह स्वप्न इत्यादि विकल्प मिथ्या हैं ॥ २१ ॥ किन्तु जिससमय जैसी वासना होतीहै उससमय सद् हो अथवा असत् हो वैसाही यह चित्त अनुभव करताहै, क्योंकि स्वप्नअवस्थाके तुल्य यह चित् निजचिदाकाशरूपमेही सदसद्पदार्थोंका अनुभव करताहै ॥ २२ ॥ चिद्रूप सर्वव्यापी चिदाकाशस्वरूपमें स्वयं चिदाकाशही है, अतः जैसा यह जगत्का भान है वह संपूर्ण संवित्का स्फुरणमात्रही भासताहै ॥ २३ ॥ और संवित् चिदाकाशकी मज्जा है, वह संवित् सदा एकरूप रहतीहै, न कदाचित् उदय हो और न अस्त हो, उसी संवित् (चित्स्वरूप महासत्ता) का निजअंगभूत यह संपूर्ण जगत् है ॥ २४ ॥

महाप्रलयसर्गाद्यामहाप्रलयरात्रयः ॥ तस्याएवावयवतांयाताःकेशनखादिवत् ॥ २५ ॥ तस्याभानमभानंतद्वास्वरंजिह्ममेववा ॥ नान्यत्स्वभाववत्स्पंदइववायोर्महाचितेः ॥ २६ ॥ तस्मात्किंनामजाग्रत्स्यात्कःस्वप्नःकासुषुप्तता ॥ किंतुर्यंकास्मृतिःकेच्छातुच्छाएताःकुदृष्टयः ॥ २७ ॥ अंतःसंवेदनंभातिस्वंबाह्यार्थतयायतः ॥ क्वद्वैतंक्वचवार्थश्रीःस्मृतिरेवमतःकुतः ॥ २८ ॥

अर्थ—महाप्रलयआदिरूप रात्रि, तथा सर्ग (सृष्टि) आदिरूप दिनआदि कालविभाग संवित् चेतनके ऐसे अवयवस्वरूपताको प्राप्त हैं जैसे केश नखआदि ॥ २५ ॥ भासमान वा अभासमान, चिद्रूप वा मायारूप जो कुछ यह भासताहै वह वायुके स्पन्द (गति) के सदृश महाचित्का स्वभावही है और कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ इसहेतुसे जाग्रत् क्या है, स्वप्न क्या है, सुषुप्ति क्या है, तुरीय क्या है, स्मृति क्या है और इच्छाभी क्या होसकती है ! ये सब जाग्रत्

आदि कुदृष्टियां तुच्छ (मिथ्या) हैं ॥ २७ ॥ जब चित्का आभ्यन्तर स्फुरणही बाह्यपदार्थाकार भासताहै तब कहां द्वैत है और कहां पदार्थोंकी शोभा है और इसीसे स्मृतिभी क्या होसकती है ? ॥ २८ ॥

तदिदंभातिनिर्भित्तितत्स्वभानंयदात्मना ॥ भानोर्नभसिभारूपमेवभूतविवर्जितम् ॥ २९ ॥ सद्रूपोय दिबाह्योर्थोविद्यतेतत्तदुत्थिता ॥ स्मृतिःकारणतामेतुतामाद्यजगतःस्थितेः ॥ ३० ॥ किंतुनास्त्येषबा ह्योर्थोभूतानामत्यसंभवात् ॥ पंचानामादिसर्गादौकारणानामभावतः ॥ ३१ ॥ शशशृंगंयथानास्ति यथानास्तिखपादपः ॥ यथावंध्यासुतोनास्तियथानास्त्यसितःशशी ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस हेतुसे भेदशून्य आत्मरूपसे जो भासताहै वह भूतभौतिकरूप शून्यआत्माके निजस्वरूपकाही भान ऐसे है जैसे निराधार आकाशमें प्रकाश्यपदार्थकी अपेक्षारहित सूर्य्यका भान ॥ २९ ॥ यदि बाह्यपदार्थ निजरूपसे सत् हो तो उससे उत्पन्न स्मृति आदि सृष्टिकालकी जगत्स्थिति कारण होसकती है ॥ ३० ॥ सो सृष्टिकी आदिमें कारणरूप पंचभूतोंका सर्वथा असंभव होनेसे बाह्यपदार्थ नहीं है अतः बाह्यपदार्थ नहीं है ॥ ३१ ॥ जैसे शशशृंग, आकाशका पुष्प, वंध्यापुत्र और कृष्णवर्ण चन्द्रमा नहीं है ॥ ३२ ॥

तथाज्ञप्रतिभातोर्थोजगदाद्यहमादिकः ॥ अप्रेक्षितोस्तिनास्त्येवप्रेक्षितःसन्नकश्चन ॥ ३३ ॥ यथास्ती दंमहाकारंनकिंचिद्रूपमेववा ॥ तत्वज्ञविषयंरामतथास्तीदमखंडितम् ॥ ३४ ॥ संविद्घननभोमज्जायथो देतियदायदा ॥ नित्योदितोपचारेणकल्पितास्तमयोदया ॥ ३५ ॥ मुधाव्योम्न्येवपृथ्व्यादितयावेत्ति दातदा ॥ स्वस्यैवतस्यभानस्यधत्तेपृथ्व्यादिकल्पनाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऐसेही तत्वज्ञकी दृष्टिमें यह जगत्भी नहीं है, क्योंकि सृष्टिके आदिकालमेंही अज्ञोंके प्रतिभासित अहम् त्वम् आदि जगत्के पदार्थ विना विचारेही भासते हैं और विचार करनेपर कोईभी नहीं हैं ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! यह महान् आकारधारी जगत् जैसा अज्ञानियोंको भासताहै वह तत्वज्ञोंकी दृष्टिमें अखंडित चिद्रूपही भासताहै ॥ ३४ ॥ यह संविद्घनरूप चिदाकाशकी मज्जा जब जैसे २ उदित होती है, वह नित्य उदित होनेपरभी व्यवहारमें अस्तमय उदयसहित कल्पित है ॥ ३५ ॥ अज्ञानी चिदाकाशमें मिथ्याही जब २ पृथिवी आदिरूप जानताहै तब २ वह निजआत्मसत्ताके भानकोही पृथिवी आदि कल्पना करताहै ॥ ३६ ॥

स्वमेवभानमाकाशमात्रमेवमहाचितिः ॥ पृथ्व्यादिव्यपदेशेनपश्चाद्व्यपदिशत्यजा ॥ ३७ ॥ आकाश एवपृथ्वीयमितिधत्तेस्वसंविदम् ॥ मनोराज्यपुरंबालइवचिन्मात्रमव्ययम् ॥ ३८ ॥ किंभानंकिमभानं स्यात्तस्येतिनविकल्प्यते ॥ स्पंदास्पंदस्वभावंतद्विद्धिवातमिवांबरे ॥ ३९ ॥ यथाभातिचिदाकाशंतथे दमवभासते ॥ व्योमव्योम्न्येवनीरूपंनेदंपृथ्व्यादिसत्क्वचित् ॥ ४० ॥

अर्थ—अजन्मा महाचितिरूप चिदाकाश निजमहासत्तारूप भानकोही प्रथम पृथिवी आदि नाम देताहै और पश्चात् उन्ही २ नामोंसे व्यवहारभी करताहै ॥ ३७ ॥ अविनाशी चिन्मात्र आत्मा आकाशवत् निर्मल तथा विशाल अपने आत्मामें यह पृथिवी है ऐसी अपनी संवित् (चिद्वृत्ति) को ऐसे धारण करताहै जैसे मनोराज्यके नगरको बालक ॥ ३८ ॥ यदि वह चिन्मात्रही है तो जगत् आकारसे उसका भान तथा अभान कैसे होताहै यह विकल्प सर्वशक्तिमान् चेतनमें नहीं करसकते क्योंकि वह प्राण, शक्ति, स्पन्द, स्वभाव तथा चित्शक्ति, अस्पन्द, स्वभाव ऐसे है जैसे आकाशमें वायु ॥ ३९ ॥ वासनाके उदयसे जिस २ प्रकारसे चिदाकाश स्फुरित होताहै वैसेही वैसे यह सब पृथिवीआदि जगत् भासताहै, यह सब स्वरूपसेरूपरहित चिदाकाशही अपने स्वरूपमें भासताहै और यह पृथिवीआदि सत् कदाचित्भी नहीं है ॥ ४० ॥

यथाभातिचिदाकाशरूपत्वाद्भातमप्यलम् ॥ नसन्नासदितिकिंचित्तत्रकिंचिच्चकिंचन ॥ ४१ ॥ इदमि त्थमनित्थंचसद्वाऽसद्वायथास्थितम् ॥ लोकपर्यायवृत्तांतंप्राज्ञोजानातिनेतरः ॥ ४२ ॥ सएवहृदयाकाशे कचंत्यादृश्यसंविदा ॥ बाह्यंब्रह्मांडमित्यादिकृतंनाममहाचिता ॥ ४३ ॥ किमत्रबाह्यंकिंवांतःकिंदृश्यं कास्यदृश्यता ॥ शिवंशांतमशांतंचसर्वमोमितिशाम्यताम् ॥ ४४ ॥ नोवाच्यवाचकदृशारहितोविचारः संपद्यतेसचविकल्पमयेनसिद्ध्यै ॥ सिद्धिश्चसंभवतितेनविनानकाचिद्दीपंविनानिशियथानयनोपलंभः ॥ ४५ ॥ तस्मादपास्यपरयामलयाधियांतःसंकल्पकल्पनमनल्पविकल्पजालम् ॥ कृत्वामनःसकलशा स्त्रमहार्थनिष्ठमुड्डीयगच्छपदमुत्तममेकनिष्ठः ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभावप्रतिपादनं नाम सप्तषष्ट्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६७ ॥

अर्थ—जो जैसा भासताहै वह वैसा भासै, किन्तु चिदाकाशरूप होनेसे वह सर्वथा न सत् और न असत् है, न किंचित् है और न अकिंचित् है किन्तु अनिर्वचनीय है ॥ ४१ ॥ यह जैसा भासताहै ऐसाही है वा इससे विरुद्ध है, सत् है वा असत् है इत्यादि लोकके पर्य्यायवृत्तान्तको तत्वज्ञानीही जानताहै अन्य नहीं जानता ॥ ४२ ॥ क्योंकि वही तत्त्वज्ञ सबके हृदयाकाशमें आत्मारूपसे स्थितहै इस हेतुसे उसीके रूपसे स्फुरणशील दृश्यसंवित्से इस आन्तरिक शरीर आदि तथा बाह्य ब्रह्मांड इत्यादि भेदकल्पनासे निजनाम स्वयं उसने कियाहै ॥ ४३ ॥ हे रामजी! इसमें क्या बाह्य है, क्या आभ्यन्तर है, क्या दृश्य है और क्या इसकी दृश्यता है, सब शान्त वा अशान्तको ओंकारके लक्ष्यभूत कल्याणमय ब्रह्ममें प्रविलाप (लय) करके शान्त होजाओ ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! जबतक पूर्णज्ञान न हो तबतक वाच्य-वाचकदृष्टिसे शून्य श्रवण मननआदि विचारविधि नहीं प्रवृत्त होता, और वह विचार विषम, विशय (संशय) पूर्वपक्ष, उत्तर तथा प्रयोजन, इस पंचांगसे कियाहुआ सिद्धि (आत्मज्ञान सिद्धि) के अर्थ होताहै, और इस पंचांगविचार बिना सिद्धि ऐसे नहीं होती जैसे रात्रिमें दीपकके बिना चाक्षुष प्रत्यक्षकी उपलब्धि ॥ ४५ ॥ इसकारणसे हे रामचन्द्रजी! पंचांगविकल्पशोधित उत्तमविचारसे शुद्ध निर्मल सर्वोत्तमबुद्धिसे संपूर्ण संकल्पमय महाविकल्पजालको अन्तः-करणसे दूर करके और मनको सब शास्त्रोंके सिद्धान्त सिद्ध महार्थस्वरूप सच्चिदानन्द आत्मामें परायण करके तथा स्वयं आत्मनिष्ठित होके इस संसारसे उडके उत्तम मोक्षपदमें प्राप्त होओ ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभावप्रतिपादनं नाम सप्तषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६८ ॥

अबुद्धिपूर्वक सृष्टिका अध्यारोप तथा वह चिन्मात्रही है और चित्के अविकारी होनेसे उसका अपवादभी इस १६८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अबुद्धिपूर्वमेवागोयथाशाखाविचित्रताम् ॥ करोत्येवमजश्चित्राःसर्गाभासाःखएव खम् ॥ १ ॥ यथाकरोत्यबुद्धयादिरावर्तादिपयोनिधिः ॥ तथाकरोतिखेखात्मासर्वेशःसर्ववेदनाः ॥२॥ तासांस्वसंविदामेवततःसकुरुतेस्वयम् ॥ मनोबुद्धिरहंकारइत्याद्याविविधाभिधाः ॥ ३ ॥ अबुद्धिपूर्वमारंभोदृश्यरूपःस्वतश्चितेः ॥ संकल्प्यमानोबुद्धयादिस्तरंगादिर्यथांबुधेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जैसे वृक्ष अबुद्धिपूर्वकही शाखाआदिकी विचित्रताका प्रकाश करताहै ऐसेही अजन्मा परमात्मा आकाशमें आकाशरूपही चित्रविचित्र सर्गाभासों (सृष्टियों) को रचताहै ॥ १ ॥ तथा जैसे समुद्र अबुद्धिपूर्वक आवर्ततरंगादिकी रचना करताहै ऐसेही चिदाकाशरूप सर्वस्वामी परमात्मा आकाशमें सर्गाभासोंको रचताहै ॥ २ ॥ निजस्वरूपभूत जगदाकार संविदों (चिद्वृत्तियों) के बुद्धि, अहंकार इत्यादि अनेक नाम श्रुतिके अनुसार वह परमात्मा स्वयमेव करताहै ॥ ३ ॥ समुद्रके तरंगादिके तुल्य चेतनके बुद्धिपर्य्यन्त दृश्यका आरंभ स्वतः अबुद्धिपूर्वकही है और बुद्धिसिद्धिके अनन्तर जो संकल्पमान पदार्थोंका आरंभ है वह बुद्धिपूर्वक है ॥ ४ ॥

चिन्मात्रात्संप्रवर्ततेमनोबुद्धयादयस्तथा ॥ आवर्तकणकल्लोलवीचयोवारिधेर्यथा ॥ ५ ॥ भित्तिमात्रं यथाचित्रंजगदालोकमात्रकम् ॥ चितिचिद्व्योममात्रात्मतथैवाभासमात्रकम् ॥ ६ ॥ अबुद्धिपूर्वमारंभोनियत्यासंनिवेशवान् ॥ यथासंपद्यतेवृत्तेतथासर्गात्मकश्चिति ॥ ७ ॥ तरोर्गुलुच्छकादीनांयथान्यः कुरुतेऽभिधाः ॥ तथाचिद्वृक्षपुष्पादिपृथ्व्यादिविहिताभिधम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रसे आवर्तोंके कण, कल्लोल तथा तरंगआदि स्वतः प्रवृत होतेहैं ऐसे चिन्मात्र आत्मासे मन बुद्धिआदिकी सृष्टि होती है ॥ ५ ॥ जैसे भित्तिमें चित्रलिखित जगत् भित्तिमात्रही है ऐसेही चिदाकाशमें भासनेवाला यह जगत् चिदाकाशमात्रही है ॥ ६ ॥ जैसे वृक्ष तथा समुद्रादिमें शाखातरंगआदिका आरंभ अबुद्धिपूर्वक होनेपरभी पश्चात् प्रकृतिद्वारा यथायोग्य रचनासंयुक्त कियाजाताहै ऐसेही चेतनमें प्रथम अबुद्धिपूर्वक प्रवृत्त सृष्टिका आरंभ पश्चात् प्रकृतिसेसमान अवयवयुक्त होताहै ॥ ७ ॥ जैसे वृक्षसे उत्पन्न पुष्पगुच्छआदिनाम अन्यकृत होतेहैं ऐसेही चित्तरूपीवृक्षके पुष्पादिके तुल्य पृथिवीआदि नाम समष्टिरूप हिरण्यगर्भआदिकृत हैं ॥ ८ ॥

अनन्यत्पुष्पपत्रादियथानाममहातरोः ॥ तथैवानन्यदेवेदंचिद्व्योम्नःपरमात्मनः ॥ ९ ॥ तराववयवेष्व न्यःकरोतिविविधाभिधाः ॥ चिद्व्योमात्मनिसर्वेषुभूत्वाम्यइवखात्मसु ॥ १० ॥ चित्तरोःपल्लवाःसर्गा

श्चित्त्वादेवनसंत्यलम् ॥ कार्यकारणवद्भातिसएवस्वप्नवत्स्वयम् ॥ ११ ॥ वक्षिचेत्कथमेतस्माद्वयर्थंत दनुभूयते ॥ सर्गाद्यसुत्रस्वप्नादिष्वेषुकोपह्नवंभजेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—और जैसे महावृक्षके पुष्पपत्रादि उस वृक्षसे अभिन्न हैं ऐसेही चिदाकाश परमात्मासे उत्पन्न यह पृथिवीआदि जगत् चिदाकाशसे अभिन्नरूप है ॥ ९ ॥ तथा वृक्षके अवयवोंके अनेक विविधप्रकारके नाम दूसरा रखताहै ऐसेही चिदाकाशआत्मासे प्रवृत्त व्यष्टिजीव अन्यके सदृश होके चिदाकाशरूप निजपुत्रादिमें तथा अन्य-कार्य्योंमें अनेक नाम रचताहै ॥ १० ॥ चित्‌रूपीवृक्षके पल्लवके सदृश प्रवृत्तसर्ग (अनेकसृष्टि) चिद्रूप होनेसे उससे चित् पृथक् नहीं है, किन्तु चित्‌रूपवृक्षही स्वप्नके तुल्य कार्य्यकारणरूपसे भासताहै ॥ ११ ॥ यदि यह कहो कि संसार नहीं है तो विहित तथा निषिद्धकर्मफलका संबन्ध न होनेसे परलोकमें आत्मा व्यर्थ उन फलोंको कैसे भोगताहै तो यह वैयर्थ्य स्वप्नादिके पदार्थोंमेंभी है, जैसे भोगाभासमात्रसे वहां कर्मफलोंकी सफलता स्वप्न तथा रज्जुके सर्पादिमें है वैसेही जाग्रत्‌मेंभी है ॥ १२ ॥

तरावाकारवत्येषाकल्पनारचितायथा ॥ चितेरकाशमात्रायास्तथैषाकल्पनाकृता ॥ १३ ॥ यथागंधा दयःपुष्पेगगनेशून्यतादयः ॥ यथास्पंदादयोवायौतथाबुद्ध्यादयःपरे ॥ १४ ॥ यथागंधादयःपुष्पेगग नेशून्यतादयः ॥ यथास्पंदादयोवायौतथेमाःसृष्टयश्चिति ॥ १५ ॥ यथाखानिलपुष्पाणांशून्यतास्पंद गंधदृक् ॥ शून्यरूपानुभूताचतथासर्गस्थितिश्चिति ॥ १६ ॥

अर्थ किन्तु वृक्ष तथा चिद्रूप वृक्षमें यह भेद है कि साकारवृक्षमें साकारपुष्पपत्र आदिकी रचनाहै और निराकार चिद्रूप वृक्षमें तो साकार तथा निराकार दोनों प्रकारके जगत्‌का अध्यास है ॥ १३ ॥ जैसे पुष्पमें गन्ध आदि आकाशमें शून्यता आदि तथा वायुमें स्पन्द आदि अभिन्नरूपसे हैं ऐसेही परमात्मामें मन बुद्धि आदिभी अभिन्नरूपसे हैं ॥ १४ ॥ तथा जैसे पुष्पमें गन्धादि, आकाशमें शून्यतादि और वायुमें स्पन्द आदि स्वभावसिद्ध अभिन्नरूपसे हैं ऐसेही चेतनमें ये अनेक ब्रह्मांडोंकी सृष्टिभी स्वभावतः अभिन्नरूपसे हैं ॥ १५ ॥ जैसे आकाशकी शून्यदृष्टि, वायुकी स्पन्ददृष्टि और पुष्पोंकी गन्धदृष्टि अनुभूत होनेपरभी उनसे पृथक् शून्यरूपही है ऐसेही चेतनमें यह सृष्टि अनुभूत होनेपरभी चेतनसे पृथक् शून्यतारूपही है ॥ १६ ॥

नपृथक्शून्यताव्योम्नोनपृथग्द्रवतांभसः ॥ नपृथक्कुसुमाद्गंधोनानिलात्स्पंदनंपृथक् ॥ १७ ॥ अग्नेर्नपृ थगुष्णत्वंपृथक्शैत्यंचनोहिमात् ॥ चिद्व्योमैकात्मनःस्वच्छात्रजगत्पृथगीश्वरात् ॥ १८ ॥ सर्गादावे वयद्व्योम्निस्वप्नाद्धृदिचदृश्यते ॥ अकारणंतच्चिद्व्योम्नःकथमन्यद्भवेत्किल ॥ १९ ॥ स्वप्नएवात्रदृष्टांतो नित्यदृष्टोविचार्यताम् ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणसारंकिंतत्रकथ्यताम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे आकाशसे शून्यता, जलसे द्रवता, पुष्पसे सुगन्ध तथा वायुसे स्पन्द पृथक् नहीं है इसीप्रकार ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं है ॥ १७ ॥ जैसे अग्निसे उष्णता, हिमसे शीतलता पृथक् नहीं है ऐसेही निर्मलचिदाकाशआत्मासे जगत्‌भी पृथक् नहीं है ॥ १८ ॥ सर्गके आरंभमेंही जो कारणशून्य है और स्वप्नमें चिदाकाशरूप हृदय (हृदयाकाश) में जो देख पडताहै वह भला कूटस्थ चेतनसे भिन्न होसकताहै ॥ १९ ॥ इन सब पदार्थोंके चिद्रूप होनेमें नित्य दृष्ट स्वप्नही दृष्टान्त है उसको विचारिये, अतः इस संसारमें चिन्मात्रसे भिन्न क्या सार है सो कहो ? ॥ २० ॥

तदिदंबुद्धिसंस्कारदृश्यमित्यादिकास्मृतिः ॥ नसंभवतियत्तत्त्वंकथयेदंकथंभवेत् ॥ २१ ॥ यत्तत्रदृष्टं तदिहस्मृतिकालेभवेद्यदि ॥ नानुभूयेततत्तत्रकैवैकस्यद्विधास्थितिः ॥ २२ ॥ तस्मादावर्तवृत्त्येदंकाक तालीयवज्जगत् ॥ चितियद्भातितत्रैषापश्चात्स्वप्नादिकल्पना ॥ २३ ॥ अबुद्धिपूर्वसंपन्नेसर्गेवीच्याद योयथा ॥ सन्निवेशःस्थितिःपश्चात्स्वयंसंपद्यतेतथा ॥ २४ ॥

अर्थ—यदि कहो कि स्वप्न स्मृति है, यद्यपि स्मृतिमें यह वही है ऐसा (सोयं देवदत्तः) तत्तांशका भान होताहै परन्तु यहां निद्रादि दोषोंसे तत्तांशको त्यागकर इदन्तामात्र भासतीहै इसहेतुसे बुद्धिजन्यसंस्कार (स्मृति) रूप दृश्य जाग्रत्स्वप्न दोनोंस्थानमें है, यह कथन संभवित नहीं क्योंकि तत्ता इदंता नहीं होसकती, क्योंकि इदंता (यह बुद्धि) प्रत्यक्षमें होती है और स्मृतिमें अतीतकाल पदार्थ परोक्षरूपसे भासताहै ॥ २१ ॥ और यदि बनके दृष्ट व्याघ्रआदि स्वप्न स्मृतिकालमें आजांय सो वनस्थपुरुषोंको उनका अनुभव होना चाहिये और निद्रादि एकपदार्थकी दोरूपसे स्थिति नहीं होसकती, अतः स्वप्नस्मृतिकी अपेक्षा न रखके चेतन नूतनसृष्टि रचताहै ॥ २२ ॥ इस हेतुसे काकतालीयन्यायवत् आकस्मिक आवर्तके तुल्य इस जगत्‌की स्थिति है, चेतनमें स्वप्नादिका अनुभव सिद्ध होनेके अनन्तर जाग्रत्स्वप्नादि

नामकी कल्पना होतीहै ॥ २३ ॥ समुद्रमें तरंगआदिके समान प्रथम अबुद्धिपूर्वक सृष्टि सिद्ध होनेपर पश्चात् अवयव संनिवेशकी स्थिति प्रकृतिसे स्वयं होजाती है ॥ २४ ॥

जातमेवनतज्जातंजातंयत्कारणंविना ॥ यतोऽजातंतदेवाद्यंतत्समंसंस्थितंतथा ॥ २५ ॥ अबुद्धिपूर्वसं जातारत्नादीनांयथार्चिषः ॥ सत्तैवसन्निवेशेनतथैवासांजगद्दृशाम् ॥ २६ ॥ यथाकथंचिदेवेदमादौसंप द्यतेजगत् ॥ पश्चाद्गृह्णातिनियतिमावर्तोऽंधाविवात्मनि ॥ २७ ॥ चिद्व्योम्निस्वप्नजालानिचिज्जगंत्यपका रणम् ॥ प्रवर्ततेनिवर्ततेशून्यशून्यात्मकान्यपि ॥ २८ ॥

अर्थ—जो कारणके विना उत्पन्न हुआ है वह शुक्ति रजतादिके तुल्य नहीं उत्पन्नहुआ और सृष्टिके आरंभमें यह जगत् नहीं उत्पन्न हुआ किन्तु ब्रह्ममें अध्यासमात्र हुआहै इस हेतुसे वही आदि ब्रह्म है और जगत्भी उसीके सदृश स्थित है ॥ २५ ॥ जैसे रत्नादिकी दीप्ति अबुद्धिपूर्वक स्थित है ऐसेही ब्रह्मसत्ता जगत्के रूपसे स्फुरित होरही है ॥ २६ ॥ प्रथम अनिर्वचनीय मायारूप कारणके बलसे जगत् सिद्ध होताहै पश्चात् अर्थक्रियामें समर्थ नियतिरूप सत्यताको आत्माहीमें ऐसे ग्रहण करताहै जैसे समुद्रमें आवर्तआदि ॥ २७ ॥ चिदाकाशमें स्वप्नजालके सदृश बिनाकारण अतिशून्यरूपभी अनेक ब्रह्मांड उत्पन्न होतेहैं तथा लीनभी होते हैं ॥ २८ ॥

यावत्सर्वमथान्योन्यंयातिकारणतांचिरम् ॥ तेषांशून्यात्मकाएवपदार्थाईश्वरादयः ॥ २९ ॥ जायतेशू न्यमेवेदंशून्यमेवचवर्द्धते ॥ ननुशून्यतयात्यंतंशून्यमेवविनश्यति ॥ ३० ॥ शून्यंकचत्यशून्याभंदृष्टां तंस्वप्नमत्रयः ॥ अपन्हुतेनुभूतंसपशुभर्त्तृकुकंकुधीः ॥३१॥ असदेवेदमाभातिभ्रांतिमात्रंसुकृत्रिमम् ॥ चिच्चमत्कारमात्रात्मज्ञेसन्मात्रमकृत्रिमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जबतक परस्पर चिरकालतक कार्य्यकारणभावको नहीं प्राप्त होते तबतक ईश्वरआदि सब पदार्थ शून्यरूपही हैं ॥ २९ ॥ अविद्यमानही यह जगत् उत्पन्न होताहै तथा वृद्धिकोभी प्राप्त होताहै, किंबहुना सर्वथा अविद्यमानतामेंही यह स्वयं शून्य (अविद्यमान) रूप नष्टभी होजाता है ॥ ३० ॥ असत्रूपही सत्के समान यह जगत् भासताहै, इसमें स्वयं अनुभूत स्वप्नरूप दृष्टान्तका जो अपलाप करताहै वह कुबुद्धि स्वयं मेषपाल (गडेरिया) होकर निजदृष्ट महामेष (बडे भेडे) को वृक (भेडिये) से पकडनेका निषेध करताहै ॥ ३१ ॥ चित्का चमत्कारमात्र स्वरूपधारी यह कृत्रिम (नकली) जगत् असत् होकरभी सत्के तुल्य अज्ञानीको भ्रमसे भासताहै और ज्ञानीको तो स्वयंसिद्ध सन्मात्र (ब्रह्मरूप) ही भासताहै ॥ ३२ ॥

अयंचिरस्थसंकल्पःसर्गप्रलयविभ्रमः ॥ ज्ञानंस्वभावकचनमज्ञानंभ्रांतिजृंभणम् ॥ ३३ ॥ झटित्युदेति ब्रह्मात्मदृश्यंदृष्टमकारणम् ॥ खेसुषुप्तादिवस्वप्नःपश्चान्नियतिमृच्छति ॥ ३४ ॥ काकतालीयवच्चित्वा चितिदृश्यंप्रकाशते ॥ स्वयमेवस्वभावस्थमावर्तादियथांबुधौ ॥ ३५ ॥ ईदृशोनामचिद्धातुरयमाकाश मात्रकः ॥ यदित्थंनामकचतिजगद्रूपेणचिद्वपुः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह जगत्का सृष्टि तथा प्रलयका भ्रम चेतनमें स्थित चिरकालका संकल्पमात्रही है, इसका यथार्थ स्फुरण तत्वज्ञान है और भ्रमसे जगत्रूपसे स्फुरण अज्ञान है ॥ ३३ ॥ दृश्यसे सर्वथा शून्य आत्मामें सुषुप्तिदशासे नित्य अनुभूत स्वप्नके तुल्य मायोपहित ब्रह्मसे शीघ्रही बिनाकारण यह जगत् उत्पन्न होजाताहै और पुनः अर्थक्रियाकी व्यवस्थासे कार्य्यकारणभाव नियतिको प्राप्तहोताहै ॥ ३४ ॥ चेतनमें चित्स्वभावसे स्वभावस्थही यह जगत् दृश्य काकतालीय (अकस्मात् घटना) से ऐसे प्रकाशित होताहै जैसे समुद्रमें तरंगादि ॥ ३५ ॥ आकाशमात्र शरीरधारी यह चेतनपदार्थ ऐसाही है कि स्वयं चिन्मात्र शरीर न त्यागताहुवाभी इसप्रकार नानाप्रकारके जगत्रूपसे स्फुरताहै ॥ ३६ ॥

तेनचिद्रूपिणापश्चाद्दृश्येनात्मनिकल्पिताः ॥ संज्ञाःस्मृत्यादिपृथ्व्यादिबुद्ध्यादिकलनात्मिकाः ॥३७॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेहेभगवन्बुद्धिसंस्कारतःस्मृतिः ॥ इतिकिंप्राप्यतेब्रूहिसंबुद्धायदिनस्मृतिः ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामभिनद्म्येनंप्रश्नंसिंहइवेभकम् ॥ अभेदंस्थापयाम्येकमालोकमिव भास्करः॥३९॥विद्यतेजगदात्मेदंदृश्यंचिन्मात्रकोटरे ॥ अनुत्कीर्णायथावृक्षेवनस्थाशालभंजिका॥४०॥

अर्थ—प्रथम उस चिद्रूप आत्माने दृश्याकार प्रतिभास होके पश्चात् निजआत्मामें अतिभान होनेपर स्मृति आदि वर्तमान भान होनेपर पृथिवी आदि तथा तत्तदाकार बुद्धिआदि कल्पितसंज्ञा की हैं ॥ ३७ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! यदि तत्कालके प्रतिभासमात्रही जगत् है तो क्षणिकत्वाददोष होगा तथा स्मृति नहीं है तो वेदादि प्रामाणिक अनुभवरूप बुद्धिसे उत्पन्न संस्कारद्वाराजनित तथा प्रत्यभिज्ञाआदि होती है यह सब शिष्टजनोंके अनुभवसिद्ध नियम

है वह कैसे प्राप्त होताहै सो आप कहिये ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सुनिये आपके इस प्रश्न (आक्षेप) को ऐसे भेदन करताहुं जैसे सिंह हाथीके बालकको तथा अभेद (आत्मतत्व) को ऐसे स्थापन करताहुं जैसे सूर्य्य प्रकाशको ॥ ३९ ॥ यह जगत् उत्पत्तिके पूर्व असत् होकर क्षणिक प्रतिभासमात्र बौद्धमतानुसार वेदान्तमें नहीं है किन्तु यह जगत्‌रूप दृश्य चिन्मात्रकोटरमें उत्पत्तिके पूर्व ऐसे है जैसे वनके वृक्षमें विना खुदी हुई प्रतिमा ॥ ४० ॥

उद्धरेद्वृक्षतस्तक्षाकदाचिच्छालभंजिकाम् ॥ अद्वितीयाचितिस्तंभाद्रुत्कीर्णांकःकरोतिताम् ॥ ४१ ॥ स्तंभेजडेनसाव्यक्तिमनुत्कीर्णेहगच्छति ॥ चितित्वंतर्गताचित्त्वादेवात्मन्येवभात्यलम् ॥ ४२ ॥ भासमानात्वनुत्कीर्णदेहैवापिचखात्मिका ॥ स्वरूपादच्युताचैवचिन्मात्रादात्मनिस्थिता ॥ ४३ ॥ सर्गादौसर्गकलनाकरोतिकलनावती ॥ साचित्स्वभावतःस्वप्नेखात्मन्यद्योदितामिव ॥ ४४ ॥ आकाशएव हृदयेपरमाकाशरूपिणा ॥ संकल्पयतिचिच्छालभंजिकाःस्वात्मनात्मनि ॥ ४५ ॥

अर्थ—परन्तु वृक्षसे तो बढई आवरणरूप काष्ठोंको खोदके कदाचित् प्रतिमाओंको निकालताहै और अद्वितीय चेतनरूप स्तंभसे जगत्‌रूप प्रतिमाको चित्‌के सिवाय अन्य कौन खोदके निकालसकताहै ॥ ४१ ॥ अतः जडस्तंभमें वह प्रतिमा विना अन्यके खोदे प्रकटताको नहीं प्राप्त होती परन्तु चेतनमें तो उस अधिष्ठानचेतनके आवरणके निवृत्त होनेसे चेतनके प्रभावसे निजचेतनरूप आत्माहीमें पूर्णरूपसे जगत् प्रतिमा भासने लगती हैं ॥ ४२ ॥ और भासमान होतीहुईभी जगत्प्रतिमा स्तंभकी प्रतिमाके तुल्य उत्कीर्ण (खुदीहुई) देहसहित नहीं है, किन्तु आकाशमात्र निजस्वरूपसे अच्युत चिन्मात्र आत्मामें स्थित है, सत्तासामान्यसे प्रलय सुषुप्तिमेंभी है ॥ ४३ ॥ और सृष्टिकी आदिमेंभी प्रथम निर्विकल्प कल्पनावती होकर पश्चात् प्राणियोंके भोजक अदृष्टोंके अनुसार उत्पन्न विकल्पोंसे स्वयं परमचिदाकाशरूप चित् निज आकाशरूपहृदयमें चित्रविचित्र सृष्टिरूप प्रतिमाओंकी कल्पना ऐसे करताहै जैसे आजके स्वप्नमें उत्पन्न कल्पनाओंकी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

इयंब्रह्मकलासेहचिन्मात्रकलनात्वियम् ॥ इयंचितिरियंजीवस्त्वहंकारस्त्वसाविति ॥ ४६ ॥ इयंबुद्धिरिदंचित्तमयंकालइदंनभः ॥ अयंसोहंक्रियाचेयमिदंतन्मात्रपंचकम् ॥ ४७ ॥ इंद्रियाणामिदंवृंदंपुर्यष्टकमिदंस्मृतम् ॥ इहातिवाहिकोदेहस्तथायंचाधिभौतिकः ॥ ४८ ॥

अर्थ—यह ब्रह्मकलासत्ता सामान्यरूपसे जगत्‌का बीज है, इस ब्रह्मकलामें सर्वदा अनावृतस्वभाव यह प्रतिबिम्ब चित् है, यही (चित्) प्राणआदिसे युक्त होनेसे जीव है, तथा अभिमानवृत्तिकी प्रधानता यही अहंकार है ॥ ४६ ॥ निश्चयात्मिक होनेसे यही बुद्धि है, यही चित्त, यही काल, यह आकाश, यही चित् यह, वह, तथा मैं (विषय तथा ज्ञातृरूप) है, क्रिया (कर्म) रूप यही चित् है तथा यह पंचभूत तन्मात्राहै ॥ ४७ ॥ यह ज्ञानकर्मेन्द्रियोंका समूह, मनुबुद्धिआदि पुर्य्यष्टक यही चित् है, इस शरीररूप संघातमें आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर यही चित् है तथा अपंचीकृत भूतमय आधिभौतिक शरीरभी यही है ॥ ४८ ॥

ब्रह्माहंशंकरश्चाहमुपेंद्रोहमहंरविः ॥ इदंबाह्यमिदंचांतरयंसर्गइदंजगत् ॥ ४९ ॥ इत्यादिकलनाजालंचिद्व्योमैवातिनिर्मलम् ॥ तस्मात्कैतेपदार्थौघाःक्वस्मृतिःक्वद्वयेकते ॥ ५० ॥ अकारणकमेवेतिजगदाभोगिखंडकः ॥ सर्गादौस्वप्नवद्भातिखेखात्मैवविकारिवत् ॥ ५१ ॥ व्योम्न्येवकचतिव्योमचिन्मयेचिन्मयंहियत ॥ बुद्धंतदेवतेनैवजगद्बोधात्कतज्जगत ॥ ५२ ॥

अर्थ—यही चिद्रूप मैं ब्रह्मा हुं, यही चिद् मैं शंकर हुं; यही मैं विष्णु हुं, यह मैं सूर्य्य हुं, यह बाह्य तथा आभ्यन्तर चिद्रूप मैंही हुं, यह सृष्टि यह जगत्‌भी चिद्रूप मैंही हुं ॥ ४९ ॥ इत्यादि पूर्वोक्तरीतिसे कल्पनाजाल अतिनिर्मल चिदाकाशही है, उससे भिन्न अणुमात्रभी कहीं नहीं है, तब अज्ञकल्पित जडपदार्थोंका समूह कहां? स्मृति कहां? और द्वैत तथा एकत्वभी कहां है? ॥ ५० ॥ इस रीतिसे यह विशालजगत्‌खंड सृष्टिकीआदिमें विनाकारण चिदाकाशमें चिदाकाशरूप होकरभी स्वप्नकेसमान विकारवान् भासताहै ॥ ५१ ॥ चिन्मयआकाशमें चिन्मयरूपही यह जगत् स्फुरित होरहाहै और उस चिदात्माने स्वयं अपने रूपमें कल्पित जगत्‌रूपको जानाहै, तब निजशुद्धरूप ज्ञानसे कल्पित जगत् कहां है? ॥ ५२ ॥

क्वस्मृतिःक्वचवास्वप्नःक्वकालाःकलनाश्चकाः ॥ चिदाभानमिदंभातिशांतंशून्यमिवांबरे ॥ ५३ ॥ यदंतश्चिद्घनस्यास्तितद्बहिर्भूततांगतम् ॥ वस्तुतस्तुनतद्वाह्यंनांतःसन्मात्रकादृते ॥ ५४ ॥ निरस्तावय

वाच्छांतादनाख्याद्यत्प्रवर्तते ॥ अकारणंभवेद्भूतंतदंधाःकथमन्यथा ॥ ५५ ॥ तस्माद्याद्दक्परंब्रह्मता दृगृदृश्यमिदंपरम् ॥ यदेवचिन्नभःस्वप्नेतदेवस्वप्नपत्तनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जब आकाशमें शून्यताकेसमान एक अद्वितीय शांत चिदात्माही इस विशाल जगत्रूपसे भासताहै तो कहां स्मृति ! कहां काल ! ! और अनेक ब्रह्मांडोंकी कल्पनाभी कहां हैं ! ! ! ॥ ५३ ॥ चिद्घनके जो अन्तरमें (ब्रह्मसत्ता) है वही बाह्यभूतरूपताकोभीं प्राप्त है और यथार्थमें तो सच्चिन्मात्रको छोडके न कुछ बाह्य है और न आभ्यन्तर है ॥ ५४ ॥ हे अन्ध वादीजन ! जो अवयवशून्य, शान्त तथा वाणीके अविषय चिन्मात्रसे विनाकारण आविर्भूत होताहै वह उत्पन्न कैसे होसकताहै ? और वह कूटस्थ चेतनभी विकारसहित कैसे होसकताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इस हेतुसे जैसा परब्रह्म निर्मल शुद्धरूप है ऐसाही यह दृश्य जगत्भी निर्मल परब्रह्मरूपही है, क्योंकि स्वप्नमें जो चिदाकाश है वही स्वप्नकाभी नगर है ॥ ५६ ॥

नकिंचित्किंचनापीदंदृश्यमस्तिमनागपि ॥ करजःपूर्णजलधौकदृश्यंपरमांबरे ॥ ५७ ॥ तच्चेदंभातिवा किंचित्तच्चिन्मात्रमचेत्यकम् ॥ अकचत्त्वेवसंशांतमात्मनीत्थमवस्थितम् ॥ ५८ ॥ पूर्णाद्धिब्रह्मणःपूर्ण मप्यनुद्धृतमुद्धृतम् ॥ इवेदंभातिभारूपमाभानंपरमात्मकम् ॥ ५९ ॥ इत्थंमयिप्रकथयत्यनुभूयमान मप्युच्चकैर्बतजनस्यविमूढतांतः ॥ स्वप्नेजगद्वपुषिजाग्रदितिप्रतीतिंनाद्यापियत्त्यजतिनामविदन्नपिद्राक्‌६०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शालभंजिकोपदेशो नामाष्टषष्ठ्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह दृश्य किंचित्भी नहीं है क्योंकि समुद्रमें धूलि (जलसे विनाभिगा धूलकण) कहां! और परमचिदाकाशमें यह दृश्य कहां ! ॥ ५७ ॥ और जो कुछ यह भासताहै वह विषयशून्य परमात्माही अन्यपदार्थका प्रकाशन करके स्वयं प्रकाशरूप निजआत्मामें शुद्धस्वरूपसे स्थितहै, भ्रमसे जगत्के आकारसे भान होताहै ॥ ५८ ॥ पूर्णब्रह्मसे पूर्णरूपही यह जगत् अनुत्पन्नभी उत्पन्नके समान जो भासताहै वह प्रकाशरूप परमात्माही है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार स्वयं अनुभव करके प्रतिदिन विस्तारपूर्वक पुनः २ अनेक दृष्टान्तोंसे जगत्के मिथ्यात्वके विषयमें मेरे कहनेपरभी मन्द अधिकारियोंके मनकी मूढता स्वप्नशरीरमय जगत्के विषयमें सत्यताका विश्वास नहीं त्यागती, तथा ज्ञानवान् अधिकारीभी जाग्रत् जगत्की सत्यताका विश्वास शीघ्र नहींत्यागता ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे शालभंजिकोपदेशो नामाष्टषष्ठ्युत्तरशततमः सर्गः ॥१६८॥

एकोनसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १६९ ॥

विश्रान्तचित्त जीवन्मुक्तके पुनः अनेक लक्षण, तथा आत्मज्ञानीकी सदा सुषुप्ति इस १६९ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नसुखायसुखंयस्यदुःखंदुःखाययस्यनो ॥ अंतर्मुखमतेर्नित्यंसमुक्तइतिकथ्यते ॥१॥ यस्यनस्फुरतिप्रज्ञाचिद्व्योमन्यचलस्थितेः ॥ प्रसृतेष्विवभोगेषुसमुक्तइतिकथ्यते ॥ २ ॥ चिन्मात्रात्म निविश्रांतंयस्यचित्तमचंचलम् ॥ तत्रैवरतिमायातंसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ३ ॥ परमात्मनिविश्रांतंयस्य व्यावृत्त्यनोमनः ॥ रमतेस्मिन्पुनर्दृश्येसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिस साक्षीचेतनमें आसक्तबुद्धिवाले आत्मज्ञानीपुरुषको लौकिकसुखके साधन विषयसमूह न सुखके लिये हों और न दुःखके साधन दुःखकेलिये हों उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १ ॥ जैसे अज्ञानियोंकी बुद्धि विस्तृतभोगोंसे चलायमान नहीं होती ऐसेही जिस ज्ञानीकी बुद्धि चिदाकाशसे नहीं चलती किन्तु अचल स्थित है उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ २ ॥ तथा चिन्मात्र आत्मामें विश्रान्त जिसका चित्त अचंचल है और उसी आत्माहीमें सन्तुष्ट होकर रमण करताहै उसको जिवन्मुक्त कहते हैं ॥ ३ ॥ तथा परमात्मामें विश्रान्त होकर जिसका चित्त पुनः उससे लोटकर इस दृश्यमें नहीं रमता उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ नसुखायसुखंयस्यदुःखंदुःखाययस्यनो ॥ जडमेवमुनेमन्येमानवंतमचेतनम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिद्व्योमैकांतनिष्ठत्वात्प्रयत्नेनविनासुखम् ॥ नवेत्तिशुद्धबोधात्मायःसविश्रांतउ च्यते ॥ ६ ॥ सर्वएवपरिक्षीणाःसंदेहायस्यवस्तुतः ॥ सर्वार्थेषुविवेकेनसविश्रांतःपरेपदे ॥ ७ ॥ यस्य कस्मिंश्चिदप्यर्थेकचिद्रसिकतास्तिनो ॥ व्यवहारवतोप्यंतःसविश्रांतउदाहृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि—हे मुने ! जिसको सुखके साधन विषयसुखकेलिये नहीं हैं तथा दुःखके हेतु दुःखार्थ नहीं हैं उस मनुष्यको तो मैं चेतनरहित जड (उन्मत्त वा मूर्छित) ही मानताहुं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मज्ञानयुक्त मनुष्य केवल चिन्मात्रमें परायण होनेसे बिना प्रयत्नके लौकिकसुखका अनुभव नहीं करता (अन्तर्मुख रहता) है उसको विश्रान्त वा जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ६ ॥ तथा विवेकद्वारा मूल अज्ञानके नाश होनेसे सब पदार्थोंमें जिसके सन्देह नष्ट होगये हैं वह मनुष्य परमपदमें विश्रान्त है ॥ ७ ॥ तथा व्यवहार करतेहुयेभी जिसका किसी पदार्थमें अतिराग नहीं है वह परमपदमें बिश्रान्त कहागयाहै ॥ ८ ॥

यस्यसर्वेसमारंभाःकामसंकल्पवर्जिताः ॥ यथाप्राप्तंविहरतःसविश्रांतइतिस्मृतः ॥ ९ ॥ अविश्रामे निरालंबेदीर्घेसंसारवर्त्मनि ॥ चिरवादात्मनिविश्रांतिःप्राप्तायेनजयत्यसौ ॥ १० ॥ धावित्वायेचिरंकालंप्राप्तविश्रांतयःस्थिताः ॥ तेसुप्ताइवलक्ष्यंतेव्यवहारपराअपि ॥ ११ ॥ तेहिचेत्यचिदाभासनभस्या भांतिभामयाः ॥ भास्कराउदितानित्यंनेहतिष्ठंतितेक्वचित् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके संपूर्ण आरंभ कामनाके संकल्पसे वर्जित हैं तथा यथाप्राप्तवस्तुमें विहार करताहै उसको शास्त्रकारोंने विश्रान्त कहा है ॥ ९ ॥ विश्रामशून्य, निरालम्ब तथा दीर्घ इस संसाररूपी मार्गमें थकित होकर चिन्मात्र आत्माके दर्शनसे उसीमें जिसकी बुद्धिने विश्राम पायाहै वही पुरुष सबसे उत्तम है॥ १० ॥व्यवहारमें तत्परभी चिरकालतक इस संसारमें विषयसुखके अर्थ भ्रमण करके उस भ्रमणजनित श्रमके निवारणार्थ जो सुप्तके सदृश (पराङ्मुख) हैं और आत्मामें विश्राम करते हैं वे जीवन्मुक्त हैं ॥ ११ ॥ ऐसे ज्ञानीपुरुष द्रष्टा तथा दृश्यशून्य निजचित्ताकाशमें प्रकाशमय सूर्य्यके समान नित्य उदित (सदा आत्मध्यान तत्पर) रहते हैं और इस संसारमें वे कहीं रमण नहीं करते ॥ १२ ॥

सदेहाव्यवहारस्थाअपिसुप्ताइवोत्तमाः ॥ प्रक्षीणाइवलक्ष्यंतेजडाभानतुतेजडाः ॥ १३ ॥ सुप्ताइवेहदृश्यासुयेस्वप्नगरेस्थिताः ॥ सुप्ताइतितउच्यंतेनतुतेजडतांगताः ॥ १४ ॥ दीर्घाध्वपरिविश्रांतोविश्रांतोनददातियः ॥ वाक्यंसस्सुखमौनस्थःप्रोच्यतेनजडाकृतिः ॥ १५ ॥ यानिशासर्वभूतानामविद्यास्तमयात्मिका ॥ परोबोधःपराशांतिस्तत्रासौसममास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसे उत्तम जीवन्मुक्त व्यवहारमें स्थित देहधारी होकरभी क्षीणसंशय, विदेह तथा सुप्तके सदृश व्यवहारमें उदासीन भान होते हैं, तथा वे जडके तुल्य देखपडते हैं परंतु यथार्थमें जड नहीं हैं ॥ १३ ॥ जो इस संसारको स्वप्ननगर समझकर उससे उदासीन स्थित शय्यापर सुप्तके समान लक्षित होते हैं वे सुप्त (जीवन्मुक्त) कहलाते हैं, किन्तु वे निद्राके वशीभूत होके सुप्त नहीं हैं ॥ १४ ॥ तथा जो संसाररूपी मार्गके परिभ्रमणसे निवृत्त, आत्मामें विश्रान्त (संसारके श्रमसेरहित) तथा निजनिरतिशय आनन्दरूप आत्मसुखमें मौनसें स्थित है और बहिर्मुखवृत्ति अज्ञानियोंसे संभाषण नहीं करता वह सुप्त कहलाताहै, न कि जडाकृति ॥१५॥ उल्लूके सदृश अविद्याअन्धकारमें व्यवहार करनेवालोंकेलिये जो रात्रि है अर्थात् जिस ज्ञानके विषयमें वे सुप्त हैं वही परमबोध शान्तिकी पराकाष्ठा है उस ज्ञानस्वरूपमें यह जीवन्मुक्त सदा एकरस स्थित रहताहै॥ १६ ॥

यस्मिन्जाग्रतिभूतानिदृश्येस्मिन्दुःखदायिनि ॥ तत्रासौसततंसुप्तस्तंनपश्यत्यसौसुखी ॥ १७ ॥ यः कर्मौघमनादृत्यस्वात्मन्येवावतिष्ठते ॥ सआत्मारामइत्युक्तोनजडोसौरघूद्वह ॥ १८ ॥ दुःखादतिगतः सोस्मात्प्राप्तःपारंभवांबुधेः ॥ तिष्ठत्यनुभवन्भव्योविश्रांतिसुखमात्मनि ॥ १९ ॥ दीर्घाध्वनिपरिश्रांतोविषयैश्चतुरैश्चिरम् ॥ भोगभावातुरःक्रूरैःप्रोत्थितःपथिडामरैः ॥ २० ॥

अर्थ—जिस दुःखदायी संसाररूपी दृश्यमें सम्पूर्णप्राणी जागते हैं अर्थात् अतिसावधान हैं, उसमें जो निरन्तर सुप्त (वेपरवाह) होके उस संसारको नहीं देखताहै यही सुखी (जीवन्मुक्त) है ॥ १७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! जो संसारसे विरक्त होके सब काम्यकर्मसमूहोंको छोडके सुखरूप निजआत्माहीमें स्थित है वह आत्माराम कहागयाहै, वह जड नहीं है ॥ १८ ॥ वह भव्यपुरुष इस संसाररूपी दुःखदायी समुद्रसे पार प्राप्त होके विश्रामके सुखको अनुभव करताहुवा अपने आत्मामें स्थित रहताहै ॥ १९ ॥ दीर्घसंसाररूपी मार्गके चिरकालके भ्रमणसे परिश्रान्त, भोगसाधन पदार्थोंसे व्याकुल तथा ठगनेमें प्रवीण, क्रूर और लूटेरोंके समान विषयोंसे उपद्रुतके तुल्य अतएव मार्गमें प्रस्थित यह प्राणी व्याकुल होताहै ॥ २० ॥

जरातुषाराशनिभिर्भूयोभूयोजडीकृतः ॥ जन्मजंगलसारंगोव्यर्थव्यग्रविहारवान् ॥ २१ ॥ परमात्मपरिक्रांतोदुःखकंटकसंकटे ॥ सुदुष्प्रापसुखच्छायेपांथःसंसारवर्त्मनि ॥ २२ ॥ दुष्कृतैःकृतपाथेयोलुठ

न्क्षिणःपदेपदे ॥ अर्थानर्थमयैर्मार्गैःसंकटैर्विवशीकृतः ॥ २३ ॥ संसारजलधेःपारंप्राप्यभूतविवर्जितम् ॥ अशय्योपिप्रमाबुद्धःसशेतेसुखमात्मवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा वृद्धावस्थारूप तुषार और वज्रपातसे पुनः २ जडीकृत और जन्मरूपी जंगलमें मृगके सदृश निरर्थक विहारमें व्यग्र यह संसारी पथिक रहताहै ॥ २१ ॥ तथा दुःखोंसे पूर्ण, तथा सुखरूप छायासे सर्वथा शून्य इस संसाररूपी मार्गमें जीवरूपी पथिकको एकाकी (अकेला) चलना पडताहै ॥ २२ ॥ तथा पापरूप धनके पाथेय (राहखर्च) से युक्त, पद २ में पतित होनेसे लोटता हुआ, तथा इष्ट और अनिष्टपूर्ण मार्गके दुःखोंसे विवश यह संसारी पथिक महादुःखग्रस्त रहताहै ॥ २३ ॥ और कदाचित् सौभाग्यसे अनेक जन्मोंके पुण्यद्वारा साधनचतुष्टय संपत्तियुक्त होनेसे सत् शास्त्र सत् गुरुकी कृपासे तत्त्वसाक्षात्काररूप बुद्धिसे प्रबुद्ध होकर संसारसमुद्रके प्राणियोंसे शून्य परदेशमें प्राप्त होके आत्मज्ञानी शय्या न रहनेपरभी सुखपूर्वक शयन करताहै ॥ २४ ॥

अपसर्पनिरस्तेहमस्वप्नमसुषुप्तकम् ॥ प्रबुद्धमबहिर्निद्रंहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ २५ ॥ जात्यश्ववदिहा जातिरश्नन्गच्छन्श्वसन्वदन् ॥ लोकमध्येमहारण्येहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ २६ ॥ अपूर्वैवघनानिद्रा कापिसातत्त्वदर्शिनाम् ॥ यानशाम्यतिकल्पाभ्ररवैर्नांगविकर्तनैः ॥ २७ ॥ अपूर्वैवघनानिद्राकापिसात त्त्वदर्शिनाम् ॥ प्रबुद्धानामपिहियानिमालयतिदृग्दृशौ ॥ २८ ॥

अर्थ—अहो ! कैसा आश्चर्य्य है गृह, शय्या आदि प्राप्तिके विना और प्राण, चेष्टा, स्वप्न तथा सुषुप्तिके अभावपूर्वक, निजस्वरूपसे बहिर्भूत निद्रानामक वस्तुशून्यतापूर्वक और आत्मस्वरूपमें सावधानता (जागरुकता) पूर्वक आत्मज्ञानी पुरुष सुखसे शयन करताहै ॥ २५ ॥ उत्तम अश्वके सदृश आत्मज्ञानी जन खाते, चलते, फिरते, श्वासलेते तथा भाषणकरतेहुयेभी इस संसाररूपी महाजंगलमें सुखपूर्वक शयन (बहिर्मुखताको त्यागकर आत्मध्यान सुखानुभव) करते हैं ॥ २६ ॥ इस संसारीनिद्रासे विलक्षण वह तत्वदर्शीयोंकी निद्रा अतिघनीभूत (गाढी) होती है, जो कि प्रलयकालकी गर्जनाओंके तथा अंगच्छेदनादिसेभी शान्त नहीं होती ॥ २७ ॥ वह तत्वदर्शीयोंकी कोई अनिर्वचनीय निद्रा होती है जो कि चिन्मात्रके दर्शनमें उनके प्रबुद्ध होनेपरभी बाह्यपदार्थोंके दर्शनमें दृष्टिको निमीलित (बन्ध) करती है॥ २८ ॥

अनिमीलितनेत्रस्ययस्यविश्वंप्रलीयते ॥ सक्षीबःपरमार्थेनहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ २९ ॥ विनिगीर्यजगत्सर्वंपरमांपूर्णतांगतः ॥ आतृप्तेरमृतंपीत्वाहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३० ॥ निरानंदमहानंदीसुखमद्वैतमक्षयम् ॥ निरालोकमहालोकोहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३१ ॥ लोभांधकारोपरमोलोकलंपटतांगतः॥ अघनत्वघनाभोगोहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हा ! हर्षका विषय है कि जिसके नेत्र खोले रहतेभी संपूर्ण संसार लीन (अविद्यमान) होजाताहै वह आत्मज्ञानी सुखसे शयन करताहै ॥ २९ ॥ संपूर्ण जगत्को अपने भीतर (आत्मामें) करके तथा तृप्तिपर्य्यन्त आत्मानन्दरूपी अमृत पानकरके परमपूर्णताको प्राप्त आत्मज्ञानी सुखसे शयन करताहै ॥ ३० ॥ विषयजनित आनन्दके अभावमेंभी निरतिशय आत्मानन्दसे महान् आनन्दयुक्त, अन्यप्रकाशसे अप्रकाशनीय आत्माके महाप्रकाशसे पूर्ण तथा अविनाशी अद्वैतसुखयुक्त आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ३१ ॥ काम, क्रोध, लोभादिरूप अन्धकारके अभावसे आत्माके महाप्रकाशमें लंपटता (तत्परता) को प्राप्त तथा अमूर्त आत्मानन्दरसमें घनीभूत आस्वादयुक्त आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ३२ ॥

अनंतदुःखमाशांतमशांतंजनतास्थितौ ॥ अबहिर्मुखमाभोगिहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३३ ॥ अणीयसामणीयांसंस्थविष्ठंचस्थवीयसाम् ॥ कृत्वात्मानंनभःशय्यंहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३४ ॥ परमाणौपरमाणौजगत्कोटिशतान्यपि ॥ अणौस्थूलेदधद्देहंहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३५ ॥ कुर्वन्संहारसर्गौघान कुर्वंश्चकथंचन ॥ परमालोकशय्यायांहाशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हा ! संसारिक महादुःखोंके अनुभवसे उपरत तथा वर्णाश्रमके व्यवहारमें लोकसंग्रहार्थ तत्पर, बाह्यपदार्थोंमें अनासक्त और आभ्यन्तर आत्मानन्दरसके आस्वादमें अनुरक्त आत्मज्ञानी सुखसे शयन करताहै ॥ ३३ ॥ अहो ! कैसे हर्षका विषय है कि सूक्ष्म पदार्थोंसेभी अतिसूक्ष्म तथा स्थूलोंसेभी अतिस्थूल अपने स्वात्माको करके और चिदाकाशरूप शय्यामें स्थित होकर आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ३४ ॥ अतिसूक्ष्म होनेसे अणु तथा महान् होनेसे

१ ऐसी लोकमें प्रसिद्धि है कि–उत्तम जातिके अश्व संग्राममूमिकेसिवाय अन्यत्र खाते, पीते, चलते, फिरते, निद्रालेते रहतेहैं ।

स्थूल निजचित्स्वरूप देहमें प्रतिपरमाणुमें अनन्तकोटिब्रह्मांडोंको धारणकरताहुवा आत्मज्ञानी सुखसे शयन करताहै ॥ ३५ ॥ अनेक सृष्टिसमूहोंका संहार करताहुवा और यथार्थ कुछ न करताहुवा आत्मज्ञानी आत्माके परमप्रकाशमयी शय्यापर सुखसे शयन करताहै ॥ ३६ ॥

संसारनिचयस्वप्नंपरिज्ञायसुषुप्ततताम् ॥ नयन्प्रकटदिग्दीर्घांह्यशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३७ ॥ सर्वेषांजगदर्थानांसत्तासामान्यतांगतः ॥ आकाशादधिकोव्यापीह्यशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३८ ॥ अच्छाच्छमंबरंकृत्वाजगदप्यंबरीकृतम् ॥ शांतशब्दपरश्वासंह्यशेतेसुखमात्मवान् ॥ ३९ ॥ इदमस्मज्जगत्पश्यन्स्वयमाकाशकोणके ॥ विशदाकाशकोशात्माह्यशेतेसुखमात्मवान् ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा संसारसमूहको स्वप्नवत् निश्चयकरके पूर्ण आत्मप्रकाशसे प्रकट दिशारूप दीर्घ (अपरिच्छिन्न) सुषुप्तिको प्राप्तहोताहुवा आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ३७ ॥ संपूर्ण जगत्पदार्थोंकी सामान्यसत्तारूपको स्वयं प्राप्त अतएव आकाशसेभी अधिक व्यापक (आकाशकोभी निजचित्स्वरूपमें धारणकियेहुये) आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ३८ ॥ प्रथम लयक्रमसे पृथिवीआदि जगत्को आकाशरूप करके पश्चात् संपूर्ण जगत् तदाश्रय आकाशकोभी अव्याकृत आकाशसेभी स्वच्छ चिदाकाशरूपता संपादनकरके आत्मज्ञानी शब्द (घुर्राहटके शब्द) तथा श्वास प्रश्वासकी शान्तिपूर्वक शयन करताहै, यह कैसे आनन्दका विषय है ॥ ३९ ॥ स्वयं साक्षी तथा विशालरूप आत्मज्ञानी इस हमारे जगत्को आकाशरूप निजस्वरूपके किसी कोनेमें स्वप्नवत् देखताहुआ सुखसे सोताहै ॥ ४० ॥

यथाप्रवाहसंप्राप्तव्यवहारमनोरम ॥ तृण्यास्तरणविश्रांतोह्यशेतेसुखमात्मवान् ॥ ४१ ॥ परमेणस्वयत्नेनपरिज्ञानात्स्वरूपिणा ॥ स्वप्नसंदर्शनेनैवजीवन्खमिवखेनखे ॥ ४२ ॥ ज्ञानेनाकाशकल्पेनधर्मान्गगनसन्निभान् ॥ ज्ञेनयत्नेनसंबुद्धःपरमांबरतांगतः ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धःसुप्तःसुप्तोपिप्रबुद्धोरमतेनिशम् ॥ सुषुप्तोभूत्ततोजाग्रत्स्वप्नार्थसुहृदासह ॥ ४४ ॥ जन्मांतरैकसहवाससमाशयेनचित्तानुवृत्तिमधुरेणचिरंतनेन ॥ मित्रेणसार्द्धमखिलानिदिनानिनीत्वाविश्रांतिमेष्यतिपदेपरमेचिरंसः ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांतचित्तवर्णनं नामैकोनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६९ ॥

अर्थ—तथा प्रवाहपतित यथाप्राप्त व्यवहाररूप तृणसमूहरूपी कट (चेटाई) पर विश्रान्त आत्मज्ञानी सुखसे सोताहै ॥ ४१ ॥ जैसे प्रसिद्ध गाढीनिद्रामें अनुभूत स्वप्नके यथार्थको मनुष्य बडे प्रयत्नसे स्मरणकरताहै ऐसेही आत्म-विचाररूप सुषुप्तिमें शयनशील आत्मज्ञानी अन्य वा निजके अधिकप्रयत्नसे बहिर्मुखवृत्ति होकर बाह्यपदार्थके परिज्ञानसे नाममात्रको कठिनता शरीरधारणादि व्यवहार ऐसे करताहै जैसे निरवकाशदेशमें स्थित रहनेमें असमर्थ आकाश द्वितीय कल्पितके समान निजआकाशस्वरूपमें सत्ताको धारण करताहै ॥ ४२ ॥ परमचिदाकाशरूपताको प्राप्त आत्मज्ञानी आकाशवत् विशाल निजस्वरूपज्ञानसे अत्यन्त असत् होनेसे आकाशके तुल्य (शून्यप्राय) जगत् तथा जीवधर्मोंको यत्नसे देखता (उनका ज्ञाता बनता) है ॥ ४३ ॥ इसप्रकार ज्ञानीपुरुष सुषुप्ति तथा जाग्रत्को अन्य संसारी जीवकेही सदृश करताहुआभी जाग्रत् तथा स्वप्नके पदार्थोंके भोगोंमें सहायक (वक्ष्यमाण मित्र) के साथ चिरकालतक रमणकरताहै ॥ ४४ ॥ जन्मान्तरोंमें चिरकालके सहवासी, ज्ञानदशामें निजविषमताको त्यागकर अपने साथ एक अभिप्रायताको प्राप्त विचित्र शमदमवैराग्यादिकी अनुवृत्तिसे अतिस्नेहयुक्त वक्ष्यमाण मित्रकेसाथ संपूर्ण प्रारब्धभोगोंके दिन बिताके देहपातके अनन्तर परमानन्दरूप विदेहकैवल्यरूप मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विश्रान्तचित्तवर्णनं नामैकोनसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १६९ ॥

सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७० ॥

पुत्र, स्त्री तथा भृत्यादिसहित निजकर्मही अपना मित्र है, उसके गुण तथा सुखोदयपूर्वक उसकेसाथ रमण इस १७० के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्कोस्यसुहृद्ब्रूहियेनासौरमतेसह ॥ रमणंकिंस्वभावंस्यादितरत्यात्मवास्यतत् ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्रवाहेहितंनामस्वप्रायेहितनामच ॥ स्वकर्मनामचास्यास्तेमित्रमेकमकृत्रि

मम्॥ २॥ पितृवद्विहिताश्वासंदाराइवनियंत्रणम्॥ संकटेषुदुरंतेषुनित्यमव्यभिचारिच ॥ ३॥ अशं कितोपचरणंसुसंपादितनिर्वृति॥ कोपेष्वकोपनतयावितीर्णविर्जनामृतम्॥ ४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! जिसकेसाथ यह जीवन्मुक्त रमण करताहै वह मित्र कौन है, और इसका रमणभी क्या निजस्वभाव (आत्मामें स्थिति) है अथवा रमणीकभोगके पदार्थोंमें प्रीति है, यह कहिये॥ १॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! निजकुलकी परंपराके प्रवाहसे प्राप्त सहजकर्म, लोकसंग्रहार्थ शास्त्रीयकर्म तथा निजप्रयत्नसे अभ्यास कियाहुआ सत्शास्त्रका अभ्यास, विचार, शम, दम, तितिक्षा, उपरति, शौच, सन्तोष तथा ईश्वर-प्रणिधान संयमादि स्वकर्म ये उपाधिभेदसे तीन होनेपरभी एक हैं, यह कर्म इसका अकृत्रिम मित्र है॥ २॥ यह इसका सत्शास्त्रका अभ्यासआदि कर्म पिताके तुल्य आश्वासन करताहै, कुकर्मोंमें उत्तमस्त्रीकेसमान प्रवृत्त होनेसे लज्जा भयआदि द्वारा रोकताहै, तथा महासंकटोंमें नित्य साथ देताहै॥ ३॥ शंकारहित कार्य्यमें प्रवर्तक, उत्तम रीतिसे शान्तिसंपादक, कोपादिमें साम (शान्त) रीतिसे समाधानरूप अमृतका दायक मित्र है॥ ४॥

दुर्गदुर्गमदुर्वारदोषोद्धरणतत्परम्॥ सर्वविश्वासरत्नानांकोशआशैशवोषितम्॥ ५॥ सहपांसुकृताक्री डमाबाल्यादेवसंगतम्॥ विनिवारितदुश्चेष्टंपितृवद्रक्षणोन्मुखम्॥ ६॥ वह्नेरिवौष्ण्यंसौगंध्यंकुसुमस्ये वसर्वदा॥ अविनाभाविविमलंरवेरिवचवासरम्॥ ७॥ लालनैकरतंनित्यंपालनैकपरायणम्॥ सर्व संकटसंघट्टरक्षणैकसमुद्यतम्॥ ८॥

अर्थ—तथा अतिदुर्गम दुर्वार कलहादिमें आसक्त होनेपर उनसे उद्धार करनेमें तत्पर, संपूर्ण विश्वासरूपी रत्नोंका भण्डार और अनेकजन्मोंके अभ्याससे अनुवृत्त होनेसे बाल्यावस्थासेही सहवास यह शास्त्रीयकर्म है॥ ५॥ बाल्यावस्थासे प्राप्त होनेसे पांसु (धूलि) क्रीडामें साथी (लंगोटियार) दुश्चेष्टाओंके निवारणपूर्वक पिताके समान रक्षामें तत्पर यह कर्म (उत्तमकर्म) मित्र है॥ ६॥ अग्निकी उष्णता, पुष्पके सौगन्ध्य, तथा सूर्य्यके निर्मल दिवसके सदृश जीवका सर्वदाका सहचारी यह कर्मरूपी मित्र है॥ ७॥ तथा लालनपालनमें नित्य परायण और संपूर्ण संकटोंके समूहमें रक्षा करनेको उद्यत यह कर्मरूपी सुहृद् है॥ ८॥

हेम्नोग्निरिवदेहस्यसर्वावस्थस्यशुद्धिदम्॥ इदंहेयमुपादेयमितिदर्शनतत्परम्॥ ९॥ आह्लादकमनिंद्या भिःकथाभिरिवनागरम्॥ सच्चेष्टामणिमाणिक्यभांडसंभारमंदिरम्॥ १०॥ सूर्यस्तमइवाजस्रमप्रद र्शयदप्रियम्॥ अनुरक्तामहेलेवप्रियमेवप्रदर्शयत्॥ ११॥ जनंप्रियंवदंकुर्वत्प्रियमेवसमाचरत्॥ पेश लंमधुरंस्निग्धमक्षुब्धमुदिताशयम्॥ १२॥

अर्थ—तथा अशुचिस्पर्श और अशुचिभक्षणसे अशुद्धअवस्थामें प्राप्तभी शरीरको ऐसे शुद्धिदायक है जैसे सुवर्णको अग्नि, तथा यह त्याज्य है, यह ग्राह्य है, इसको विवेक करके दर्शानेमें तत्पर यह कर्मरूपी मित्र है॥ ९॥ चतुरजनके सदृश अनिन्द्य कथाओंसे मनोरंजक तथा मन वचन कार्यकी शुभचेष्टारूप मणिमाणिक्यआदि सामग्रियोंका भंडार यह कर्मरूपी मित्र है॥ १०॥ तथा अप्रियपदार्थोंको दूरसेही नेत्रदर्शनसे ऐसे हटादेताहै जैसे सूर्य्य अन्धकारको और अनुरक्तस्त्रीकेसमान सदा प्रियपदार्थोंका प्रदर्शक यह कर्मरूपी मित्र है॥ ११॥ तथा प्रिय आचरण करातेहुये मनुष्यको कोमल, स्निग्ध, शान्त, क्रोधादि शून्य, प्रमादवर्जित मधुर तथा प्रियवादी बनानेवाला यह कर्मनाम मित्र है॥ १२॥

लोकोपचारकंपूज्यंस्मितपूर्वाभिभाषणम्॥ कामोपशांतंसद्रूपंपरमार्थैककारणम्॥ १३॥ रणेऽज्ञान समुद्भूतेपूर्वंप्रहरणोद्यतम्॥ अपूर्वनर्मनिर्माणलीलाललनलालकम्॥ १४॥ पालकंशीलसाराणांदारा णांचकुलस्यच॥ आधिव्याधिपरीतस्यचेतसोऽमृतमौषधम्॥ १५॥ विशेषविद्यावैदग्ध्यवादवंद्यविनो दनम्॥ समानकुलशीलत्वाद्द्विधाभावइवस्थितम्॥ १६॥

अर्थ—प्राप्त सज्जनपुरुषोंका सेवक, पूज्य, स्मित (मुसकिरान) पूर्वक भाषी, कामनाओंसे उदासीन, इसीसे सज्जनोंके रूपधारी और परमार्थ (मोक्ष) में परायण यह सत्शास्त्रोंके अभ्यासादि कर्मरूपी सुहृद् है॥ १३॥ तथा दैवसंयोगसे अज्ञानियोंसे युद्ध होजानेसे सबसे प्रथम प्रहार करनेमें उद्यत (वीर) तथा अपूर्वक्रीडाआदिकी रचना तथा लालन आदिसे विलासकारक यह कर्मरूपी मित्र है॥ १४॥ उत्तमशीलोंका तथा शीलगुणयुक्त स्त्रियोंका और कुलका पालक तथा चिन्ता और रोगग्रस्त मन तथा शरीरकेलिये अमृततुल्य संजीवनी बुटी यह कर्मरूपी मित्र है॥१५॥

तथा विशेषकरके विद्याकी कुशलतासे तथा निर्णयजनक वादोंसे अपने उत्कृष्ट गुरु, स्वामी, मान्य और मित्रआदिको विनोदकारक तथा समानकुलशीलादिसे विभागद्वारा कहीं द्वैतरूपसे स्थितके सदृश यह कर्मरूपी मित्र है ॥ १६ ॥

अनुरक्तान्नृपान्साधून्वदान्यान्कारयत्सदा ॥ यज्ञदानतपस्तीर्थन्यायार्थप्रेरणोन्मुखम् ॥ १७ ॥ पुत्रदारद्विजातिस्त्रीभृत्यबंधुजनैःसह ॥ शुभभोजनपानार्हमुत्तमश्लाघ्यसंगति ॥ १८ ॥ भोगादिबद्धतृष्णत्वं दुःखदंविनिवारयत् ॥ सुस्निग्धसंकथोदारंसमाश्वासोत्तमास्पदम् ॥ १९ ॥ ईदृशेनात्ममित्रेणसकलत्रेणसंयुतः ॥ स्वकर्मनाम्नारमतेस्वभावेनैवनेरितः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा राजाआदिको अपनेमें अनुरक्त करके उनको सदा साधु, सत्यप्रतिज्ञ तथा दानशील करताहुआ, पुनः सदा उनको यज्ञ, दान, तप, तीर्थ और न्याय करनेके अर्थ प्रेरणा करनेको तत्पर यह कर्मरूपी मित्र है ॥ १७ ॥ तथा पुत्र, स्त्री, ब्राह्मण तथा बन्धुजनसहित उत्तमपदार्थभोजी तथा महान् और प्रशंसित मनुष्योंके साथ संगतिकारी यह कर्मरूपी मित्र है ॥ १८ ॥ दुःखदायक भोगादिमें बद्धतृष्णाकी निवारक अतिमधुर तथा उदारकथाका प्रचारक तथा धैर्य्यका उत्तमस्थान यह कर्मरूपी सुहृद् है ॥ १९ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष इसप्रकारके अपने अकृत्रिममित्रके साथ स्त्रीपुत्रादिसहित निजसहजस्वभावसेही आत्मामें रमण करताहै ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ कलत्रमस्यमित्रस्यतदीयस्यमुनीश्वर ॥ किंतत्किंरूपमेवस्यात्समासेनैवमेवद ॥२१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्नानदानतपोध्याननामानोस्यमहामते ॥ संतिपुत्रामहात्मानःस्वनुरक्ताखिलप्रजाः ॥ २२ ॥ चंद्रलेखेवलोकस्यदृष्टैवाह्लाददायिनी ॥ अविनाभाविनीभार्यामुदितास्यानुरागिणी ॥ २३ ॥ करुणाकारणाकीर्णधनाहृदयहारिणी ॥ आनंदजननीचास्यवयस्याऽव्यभिचारिणी ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे मुनीश्वर ! इस मित्रके स्त्रीपुत्रादि पालनीय कुटुम्ब कौन हैं तथा उनका स्वरूप क्या है, यह संक्षेपसे कृपाकरके कहिये ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे महामते रामजी ! बडेमहात्मा तथा सब प्रजाओंको अपनेमें अनुरक्त करनेवाले स्नान, दान, तप तथा ध्यानआदि नामवाले कोई पुत्र इसके हैं ॥ २२ ॥ और चन्द्रलेखा (कला) के सदृश दर्शनमात्रसे सबको आनन्द देनेवाली सदा सहगामिनी और अतिअनुरागवती मुदिता (नित्यसंतोषरूपता) नाम्नी इसकी भार्य्या है ॥ २३ ॥ तथा अनुकंपासे सर्वत्र धनको बिखेरनेवाली, हृदयहारिणी तथा आनन्दकी जननी, करुणानामिका सदा सहगामिनी इसकी सखी है ॥ २४ ॥

समतास्यमतानित्यमास्तेहृदयवल्लभा ॥ प्रतीहारिपुरःप्रज्ञासंमुखंसुखदायिनी ॥ २५ ॥ धैर्येधर्मेचधीः साधोर्नित्यमाधीयतेचया ॥ सास्यधीरस्यधुर्यस्यपुरोधन्यस्यधावति ॥ २६ ॥ अस्यसत्रासमस्कंधेसर्वदैवमहौजसः ॥ विषयारिजयेराज्ञोमैत्रीमंत्रप्रदायिनी ॥ २७ ॥ कार्याणामार्यमर्यादाचार्याचातुर्यशालिनी ॥ सर्वेषामस्यमान्यस्यसत्यतास्वार्थदायिनी ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा समतानाम्नी हृदयवल्लभा इसकी दूसरी भार्य्या है. तथा हे साधो ! इसकी प्रतिहारी (द्वारपालिका) सदा संमुखमें स्थित अतिसुखदायिनी तथा धैर्य्य और धर्मकी ओर झूकी हुई बुद्धि है वह बुद्धिरूपा द्वारपालिका इस महात्मा, धीर और धर्मधुरंधर ज्ञानीके संमुख नित्य दौडतीरहती है ॥ २५ ॥ २६ ॥ तथा इस महातेजस्वी राजाके विषयरूपी शत्रुओंके विजयमें सर्वदा स्कंधदेशमें स्थित तथा मन्त्र देनेवाली मैत्रीनाम्नी दूसरी भार्य्या है ॥ २७ ॥ तथा श्रेष्ठमर्य्यादाके कार्य्योंमें आचार्य्यवत् उपदेशदात्री तथा चतुरतासे शोभायमान और स्वार्थ देनेवाली सत्यता, इस सर्वमान्य महात्माकी धनस्वामिनी है ॥ २८ ॥

इत्येवंपरिवारेणमित्रेणसहमंत्रिणा ॥ स्वकर्मणाव्यवहरन्नहृष्यतिनकुप्यति ॥ २९ ॥ सयथास्थितमेवास्तेविनिर्वाणमनामुनिः ॥ चित्रार्पितइवाजस्रंलोकेव्यवहरन्नपि ॥ ३० ॥ वस्तुशून्येषुवादेषुमूकःशैलमयोयथा ॥ निष्प्रयोजनशब्देषुपरंबाधिर्यमागतः ॥ ३१ ॥ लोकाचारविरुद्धेषुशवंसकलकर्मसु ॥ आर्याचारविचारेषुवासुकिर्वाबृहस्पतिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसप्रकार परिवारसहित मंत्री तथा सुहृद्भूत निजकर्मकेसाथ व्यवहार करताहुआ जीवन्मुक्त लाभ हानिमें न तो प्रसन्न होताहै और न कोप करताहै ॥ २९ ॥ चित्रलिखित योधाके सदृश सदा व्यवहार करताहुआभी जीवन्मुक्त मुनि सदा निर्वाणमें लीन अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित रहताहै ॥ ३० ॥ तत्वज्ञानसे रहित वादोंमें पर्वतके तुल्य वह मौन रहताहै और निरर्थकशब्दोंमें परमबधिरता धारणकरताहै ॥ ३१ ॥ लोकाचारविरुद्ध कर्मोंके करनेमें वह मृतकके समान रहताहै और शिष्टोंके आचार तथा विचारोंमें शेष अथवा बृहस्पति होजाताहै ॥ ३२ ॥

प्रवृत्तवाक्पुण्यकथोजिह्मानांप्रतिभानवान् ॥ निमेषेणैवनिर्णेतावक्ताशुबहुवस्तुनः ॥ ३३ ॥ समदृष्टि रुदारात्मावदान्यःसंविभागवान् ॥ पेशलस्निग्धमधुरःसुंदरःपुण्यकीर्तनः ॥ ३४ ॥ स्वभावएषैवभवे त्प्रबुद्धधियांप्रयत्नेनतुनेदृशास्ते ॥ भवंतिनेंदर्कहुताशनाद्याःक्वचित्परप्रेरणयाप्रकाशाः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे तत्त्वज्ञव्यवहारवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमःसर्गः ॥ १७० ॥

अर्थ—पवित्रकथाओंका कहनेवाला, निज परकीय कुटिलतादि दोषोंका जाननेवाला, और कठिनविषयों-कोभी निर्णय करके वक्ता यह जीवन्मुक्त होताहै ॥ ३३ ॥ समदृष्टि, उदाराचित्त, दानशील, भृत्यआदिको विभाग करके पदार्थभोजी, अतिकोमल, स्निग्धस्वभाव, मनोहर तथा पवित्रकीर्ति यह रहताहै ॥ ३४ ॥ पूर्वोक्त उत्तम गुण आत्मज्ञा-नियोंका स्वभावही है, अन्यके प्रयत्नसे वे ऐसे गुणयुक्त नहीं होते, क्योंकि चन्द्र, सूर्य्य तथा अग्निआदि दूसरेकी प्रेरणासे प्रकाशशील नहीं होते किन्तु उनका यह स्वभावही है ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे तत्वज्ञव्यवहारवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७० ॥

एकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७१ ॥

जीवन्मुक्तिकी प्रतिष्ठाके अर्थ तथा सब सन्देहोंकी निवृत्तिके लिये पुनः तत्वोपदेशसे दृश्यका मार्जन इस १७१ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संविदाकाशकचनमिदंभातिजगत्तया ॥ वस्तुतोनजगन्नाभानशून्यंनचसंविदः॥१॥ यदिदंभातिचिद्व्योमजगदाख्यंनतत्ततः ॥ आकाशादिवशून्यत्वमन्यदन्यदपिस्थितम् ॥ २ ॥ देशाद्दे शांतरप्राप्तौमध्येयत्संविदोवपुः ॥ तदृश्यमितिभातीदंदृश्यमन्यन्नविद्यते ॥ ३ ॥ महाप्रलयसंपत्तावा दिसर्गःपुनःकिल ॥ परस्मात्कारणाभावेकुतोदृश्यस्यसंभवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! संविद् (वृत्यवच्छिन्न) चिदाकाशका स्फुरणही इस जगत्रूपसे भासताहै, यथार्थमें तो न जगत् है, न स्फुरण, न संविद् (वृत्तिसहित चित्) है और न शून्य है ॥ १ ॥ यह जो जगत्-नामसे भासताहै वह चिदाकाशसे ऐसे अभिन्नरूप है जैसे आकाशसे शून्यता ॥ २ ॥ वृत्तिके एकदेशसे दूसरे चन्द्रम-ण्डलआदि देशकी प्राप्तिमें दोनों देशोंके मध्यमें निर्विषय चित्का जो स्वरूप है वही (चिद्रूप) यह जगत् दृश्यरूपसे भासताहै, उस चित्से यह अन्य नहीं है ॥ ३ ॥ महाप्रलय होनेके पश्चात् पुनः नियतकालके अनन्तर आदिसृष्टि होती है, सो " सृष्टिके पूर्व सत् परमात्माही था " इत्यादि अर्थबोधक श्रुतियोंसे परमात्मासे भिन्न अन्यकारणके अ-भावसे इस दृश्यका संभव कहांसे होसकताहै ॥ ४ ॥

तदाणुमात्रमपिहिदृश्यबीजंनविद्यते ॥ किलयस्मादिदंचक्रंपुनर्मूर्तंप्रवर्तते ॥ ५ ॥ उत्पन्नमेवनैवातो मूर्तंदृश्यमिदंजगत् ॥ वंध्यापुत्रइवात्यंतमतोस्त्येवनदृश्यधीः ॥ ६ ॥ यच्चेदंकिंचिदाभातिदृश्यमित्य भितःस्थितम् ॥ तच्चिन्मात्रंखमेवाच्छंपरमेवपदंविदुः ॥ ७ ॥ यथासुषुप्तात्स्वप्नत्वंगच्छत्यात्यनवस्थि तिम् ॥ चिन्मात्रमजहत्स्वच्छंनिजंरूपमनामयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस महाप्रलयदशामें जब अणुमात्रभी जगत् नहीं है तब अणुसे यह मूर्तिमान् जगत् होताहै यह कल्प-नाभी असंगत है ॥ ५ ॥ यह मूर्तिमान् दृश्य संसार उत्पन्नही नहींहुआ, इसी विषयमें सबश्रुतियोंका तात्पर्य्य है, इस हेतुसे वन्ध्यापुत्रवत् यह दृश्यबुद्धि असत्य है ॥ ६ ॥ और यह जो चारोंओरसे प्रत्यक्ष जगत् भासताहै, वह निर्मल चिन्मात्र चिदाकाश परमात्माही है ऐसे श्रुतितात्पर्य्यवेत्ता जानते हैं ॥७॥ और जैसे अपने स्वच्छ निर्विकार चित्स्वरूप-को न त्यागता हुवाभी सुषुप्तिसे स्वप्नदशामें जाताहुवा आत्मा अनवस्थिति (रूपान्तरके सदृश स्थिति) को प्राप्त होताहै ॥८॥

सर्गस्यादौतथैवेदमात्मैवस्वात्मनात्मनि ॥ व्योमात्मैवचिदाभासंदृश्यमित्यवभासते ॥ ९ ॥ यथापुर तयाभातिमनःसंकल्पमंथरम् ॥ तथादृश्यमिवाभातिसर्गादौचिन्नभःपरम् ॥ १० ॥ यथातमन्यनिलः स्पंदश्चक्रावर्तवदीहते ॥ सर्गादौचिन्नभःस्थितत्वाद्दृश्यमित्येवतिष्ठति ॥ ११ ॥ अतोज्ञानमनाभातमेव दृश्यंजगत्त्रयम् ॥ ब्रह्मैवेदंपरंभातिस्वात्मनीत्थमवस्थितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही सृष्टिकी आदिमें आकाशरूप चिदात्माही अपने आत्मामें स्वयं इस दृश्यरूपसे भासताहै ॥ ९ ॥ जैसे सुषुप्तिदशासे स्वप्नप्राप्तिमें मनका संकल्पही नगरआदिरूपसे भासताहै, ऐसेही सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशही दृश्यरूपसे भासताहै ॥ १० ॥ जैसे वायु स्पन्दरूप होके निजस्वरूपमें स्वयं चक्र, आवर्त, महावायु इत्यादि नामोंसे चेष्टा करताहै, ऐसेही अज्ञात चिदाकाशही सृष्टिकी आदिमें स्वयं अपने आत्मामें दृश्यरूप होके स्थित होताहै ॥ ११ ॥ इस हेतुसे यदि ज्ञात हो तो यह प्रतीत होताहै कि परब्रह्मही त्रिलोकरूपी दृश्य होके अपने आत्मामें भासताहै ॥ १२ ॥

नास्त्येवमूर्तंपृथ्व्यादिकिंचनापिकदाचन ॥ अस्तुमूर्तममूर्तंवाब्रह्मैवेदंविराजते ॥१३॥ प्रबोधकालेस्वप्नाद्रिर्यथाव्योमैवनिर्वपुः ॥ तथेदंशांतचिन्मात्रंखप्रबोधेजगत्त्रयम् ॥ १४ ॥ प्रबुद्धानांपरंब्रह्मनिर्विभागमिदंजगत् ॥ धीमंतोपिनतद्विद्मोयदिदंत्वप्रबोधनम् ॥ १५ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ स्वस्वभावोहिभूतानांतत्पदंपरमात्मकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह पृथिवी आदि कुछभी कदाचित् मूर्तिमान् नहीं है और अज्ञानीकी दृष्टिमें चाहे मूर्तिमान् हो वा अमूर्ति हो, परन्तु परब्रह्मही इस मूर्त तथा अमूर्त जगत्‌रूपसे विराजताहै ॥ १३ ॥ जैसे जाग्रत् होनेपर स्वप्नके पर्वतआदि शरीर शून्य आकाशरूपही होजाते हैं, ऐसेही आत्मज्ञान होनेपर यह तीनों लोक शान्त चिदाकाशरूपही भासताहै ॥ १४ ॥ ज्ञानियोंकी दृष्टिमें विभागशून्य यह त्रिलोक परब्रह्मरूपही है, क्योंकि हम सब बुद्धिमान् और विचारतेहुयेभी यह नहीं जानते कि यह आत्माका अज्ञान कैसा है ॥ १५ ॥ भूतलप्रदेशसे दूसरे चन्द्रमंडलआदि देशमें प्राप्तहोनेपर दोनों देशके मध्यमें जो निर्विषय चित्‌का स्वरूप है वही सब भूतोंका निजस्वभाव है और वही परमपद परमात्मा है ॥ १६ ॥

देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ एतत्तत्परमाकाशमत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ यादृगेतत्पदंतादृगिदंसदसदात्मकम् ॥ येनार्थपंचकादन्यत्किंचनापिनविद्यते ॥ १८ ॥ रूपालोकमनस्काराएतदेवपदंविदुः ॥ एतेतेद्रवतावर्ताःपदस्यास्यमहांभसः ॥ १९ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ एतस्याव्यतिरेकेणजगत्तानास्तिकाचन ॥ २० ॥

अर्थ—तथा एकदेशसे दूसरे देशमें संवित्‌की प्राप्तिमें दोनोंके मध्यमें जो चित्‌का रूप है यही वह परमात्मारूप चिदाकाश है और इसी निर्विषय चित्स्वरूपमें सब प्रतिष्ठित है अर्थात् यही सबका अधिष्ठानभी है ॥ १७ ॥ जैसा निर्विषय यह अधिष्ठान परमात्मा है तद्रूपही यह सदसद्मय अध्यस्त जगत्‌भी है, क्योंकि यह संपूर्ण ब्रह्मांड पंचभूतसे अन्य कुछ नहीं है और वह पंचभूत निजअधिष्ठान चित्‌से भिन्न कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ बाह्यइन्द्रियजन्य विषयाभासस्वरूप रूपालोक तथा आभ्यन्तर मनके आधीन कल्पित विषयमनस्कार (बाह्याभ्यन्तर जगत्) यह सब परमपदरूप ही हैं क्योंकि ये द्रवता तथा आवर्तादिरूप इस महासमुद्ररूप परमात्माहीके स्वरूप हैं ॥ १९ ॥ एकदेशसे अन्यदेशकी प्राप्तिमें मध्यमें जो निर्विषय संवित्‌रूप है इस रूपसे भिन्न जगत्‌स्वरूप कुछभी नहीं है ॥ २० ॥

रागद्वेषादयोभावाभावाभावदृशस्तथा ॥ एतद्रूपममुंचंतएतस्यावयवाःस्थिताः ॥ २१ ॥ त्यक्त्वापूर्वापरेकोट्यौमध्येयत्संविदोवपुः ॥ सस्वभावःपरोज्ञेयोजगत्पयसिसंज्ञितः ॥ २२ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौविद्धिमध्यमसंविदः ॥ जगदित्यपरंनामस्वरूपादच्युतात्मनः ॥ २३ ॥ आदिसर्गात्प्रभृत्येवदृश्यमुत्पन्नमेवनो ॥ यन्नामतदिहास्तीतिमायाशंबरडंबरः ॥ २४ ॥

अर्थ—राग, द्वेष तथा भाव अभावकी दृष्टि ये सब इस परमात्माके अस्ति, भाति तथा प्रिय, इस रूपको न त्यागतेहुये इसीके कल्पित अवयवरूपसे स्थित हैं ॥ २१ ॥ शाखासे चन्द्रदर्शनमें पूर्वकोटि शाखा और अपरकोटि चन्द्र इन दोनोंको त्यागकर मध्यमें जो निर्विषय स्वरूप है वही चित्‌का परम (सर्वोत्तम) स्वभाव है और वही जगत्‌रूप मरुस्थलकी मृगतृष्णाका स्वभावभी है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! जाग्रद्देशसे स्वप्नदेशकी प्राप्तिमें दोनोंके मध्य सुषुप्तिमें जो संवित्‌का रूप है तथा एकसृष्टिरूप देशसे दूसरी सृष्टिरूप देशकी प्राप्तिके मध्य महाप्रलयमें जो संविद्‌का स्वरूप है तथा इस लोकसे परलोक प्राप्ति देशके मध्य मूर्छा अवस्थामें जो संवित्‌का स्वरूप है वही सर्वदा रहताहै और उसी अपने स्वरूपसे अप्रच्युत कूटस्थचित्‌का जगत् यह दूसरा नाम अज्ञानियोंने कल्पित कियाहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! प्रथमसर्गसे यह दृश्य जगत् उत्पन्नही नहीं हुआ और जो न होकर भासताहै वह जगत्‌रूप मायाका इन्द्रजाल है ॥२४॥

कथंनास्त्येवयद्दृश्यंतदप्यस्तीतिसंस्थितम् ॥ यदप्यस्तिपरंब्रह्मकथंनास्तीतितत्स्थितम् ॥ २५ ॥ अत्रह्यण्यंकगच्छामिविपरीतमतोजगत् ॥ असद्दृश्यंसदित्युक्तंब्रह्मैवंनावगम्यते ॥ २६ ॥ नचोत्पन्नंनचा

भातिदृश्यंकिंचनकुत्रचित् ॥ यदिदंभातितद्ब्रह्मव्योमैवकचतिस्वयम् ॥२७॥ यथामणिःप्रकचतिस्वभासाऽव्यतिरिक्तया ॥ आत्मनोनन्ययासृष्ट्याचिद्व्योमकचितंतथा ॥ २८ ॥

अर्थ—अहो! जो जगत् दृश्य नहीं है उसमें तो "है" ऐसी सत्यता बुद्धि है और जो परब्रह्म है उसमें "नहीं है" ऐसी असत्यता बुद्धि होरही है; यह मणिमें कांच तथा कांचमें मणिबुद्धि मूर्खोंको होरही है यह कैसे खेदका विषय है ॥ २५ ॥ मुझे तो ब्रह्मभावसे शून्य जगत् कहीं मिलताही नहीं है, और अज्ञजन असत् दृश्यकोही सत् मानताहै, और ब्रह्म जो सत् है उसको सत् नहीं जानते ॥ २६ ॥ और यह जगत् तो न उत्पन्न हुआ और न कहीं भान होताहै, जो कुछ यह भासताहै वह ब्रह्मही इस स्वरूपसे भासताहै ॥ २७ ॥ जैसे मणि अपने अभिन्न दीप्ति प्रकाशताहै ऐसेही चिदाकाश अपने आत्मामें निजस्वरूप अभिन्नसृष्टिरूपसे स्वयं स्फुरित होरहाहै ॥ २८ ॥

तस्मिन्नेवपदेशांतेतपत्येषदिवाकरः ॥ तस्यैवावयवश्चैवननामान्योस्तिभास्करः ॥ २९ ॥ स्थितोपितन्नतपत्यर्कोनचनिशाकरः ॥ प्रकाशयतिदेवोसावर्कंनार्कस्तमीश्वरम् ॥ ३० ॥ तस्यभासाविभातीदंतदहोदृश्यमंडलम् ॥ सर्वचंद्रार्कवह्नीनांपदार्थानांसदीपकः ॥ ३१ ॥ ससाकारोनिराकारइतिशब्दार्थकल्पना ॥ खपुष्पवदसद्रूपानसंभवतितद्विदाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—सूर्य्य उसी शान्त चित्पदमें सत्रूपसे तपता है, उसी परमात्माका अवयव यह सूर्य्य है, चित्से अन्य सूर्य्य कोई वस्तु नहीं है ॥ २९ ॥ स्थितभी सूर्य्य तथा चन्द्रमा उस चित्स्वरूपको प्रकाशित नहींकरते, यह चिद्रूपी देव तो सूर्य्यको प्रकाशित करताहै, परन्तु सूर्य्य उस ईश्वर चिदात्माको नहीं प्रकाशितकरता ॥ ३० ॥ अहो! उसी चेतनके प्रकाशसे यह संपूर्ण सूर्य्यआदि दृश्यसमूह प्रकाशित होताहै. सूर्य्य, चन्द्र तथा अग्निआदि संपूर्ण पदार्थों (प्रकाशक पदार्थों) काभी वह चित्परमात्मा दीपक (प्रकाशक) है ॥ ३१ ॥ वह साकार है वा निराकार, यह शब्दार्थकल्पना आकाशपुष्पवत् असत्रूप है, इसलिये यह कल्पना तत्त्वज्ञानियोंको नहीं होती ॥ ३२ ॥

स्वांगभूतोयथैकोणुर्भातिजीवार्कतेजसि ॥ नभांतिभांतिवातत्रतथासूर्यादयोणवः ॥ ३३ ॥ चिन्मात्राकाशरत्नस्यसृष्टयोर्कादिसंयुताः ॥ याभासस्ताःकथंतस्माद्व्यतिरिक्ताःस्युरुच्यताम् ॥३४॥ चिन्मात्रेणापिरहितंशून्यत्वेनापिवर्जितम् ॥ ॥ पदंसर्वात्मरिक्तंतत्सर्वार्थैश्चसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ पृथ्व्यादीन्यपिसंत्येवतत्रसंतिनकानिचित् ॥ जीवंतोपिनविद्यंतेजीवास्तत्रचकेचन ॥ ३६ ॥

अर्थ—जीवनभूत जगत्के द्रष्टा सूर्य्यके तेजमें उसीका अंगभूत अणु जैसे झरोंखे आदिमें भासताहै ऐसेही अपारप्रकाशमय ब्रह्मरूप सूर्य्यके तेजमें अनेक सूर्य्यआदि जगत्रूप भासते हैं, वा उसकी इच्छाके अनुसार नहींभी भासते हैं ॥ ३३ ॥ ये सूर्य्यआदिसहित अनेक जगत्की सृष्टियां चिन्मात्र आकाशरूप महारत्नकी दीप्ति हैं, सो ये दीप्ति चिद्रूप रत्नसे कैसे भिन्न होसकती हैं ॥ ३४ ॥ अचित्के असत् होनेसे चिन्मात्रसेभी रहित, सर्वत्र पूर्ण होनेसे शून्यतासेभी रहित, पदार्थोंके असत् होनेसे सबसे रहित, तथा सबकल्पनाके अधिष्ठान होनेसे सबपदार्थोंसे युक्त वह चिद्रूप परमपद है ॥ ३५ ॥ कल्पितरूपसे पृथिवीआदि सब पदार्थ चिद्रूपमें और यथार्थमें कोईभी नहीं है, कल्पित चिदाभासरूपसे सब जीव जीवित रहतेहुयेभी यथार्थमें उस परमात्मामें निजरूपसे कोईभी नहीं हैं ॥ ३६ ॥

अत्यजंतोद्व्यस्थौल्यंतत्रैतेपरमाणवः ॥ स्वरूपमत्यजद्वैतमैक्यंवात्रनकिंचन ॥ ३७ ॥ किंचिदत्रनकिंचिद्वेनकिंचिच्चनकिंचन ॥ किंचिन्नकिंचिदित्येषाकलनात्रातिदूरगा ॥३८॥ एकानिरंतरानंतानित्यमत्याततात्मना ॥ चिन्मात्रव्योमसत्त्वेवजगन्नाम्नात्मनिस्थिता ॥ ३९ ॥ एकंचेत्यंत्यक्तवत्याअप्राप्तायाश्चितोपरम् ॥ यद्रूपंजगतोरूपमस्यनानात्मनोपितत् ॥ ४० ॥

अर्थ—दो अवयवोंसे उत्पन्न स्थूलताको न त्यागतेहुयेभी ये सूर्य्यआदि पदार्थ उस चित्स्वरूपमें परमाणुरूपही हैं, और यथार्थमें तो निजसत्तारूपको न त्यागते हुये उस चित्स्वरूपमें द्वैत तथा एकत्व कुछभी नहीं है ॥ ३७ ॥ तथा किंचित् स्वरूप, न किंचित् स्वरूप, और किंचित् अकिंचित् इत्यादि कल्पना इस शुद्ध निर्विषय चित्स्वरूपसे अत्यन्त दूर है ॥ ३८ ॥ एक, सबका आत्मा, अनन्त, नित्य और सर्वत्र व्याप्त जो चिदाकाश है वही अपने आत्मामें जगत् इस नामसे स्थित है ॥ ३९ ॥ एक विषयको त्यागकर दूसरेमें अप्राप्त चित् (मध्यमें निर्विषय चित्) का जो स्वरूप है वही इस नानारूपसे भासमान जगत्काभी स्वरूप है ॥ ४० ॥

नानेवेदमनानैवचिद्व्योमैवेदमाततम् ॥ भूतपंचकरूपेणस्वप्नेचितिरिवस्थितम् ॥ ४१ ॥ सुषुप्ताद्विशतःस्वप्नंसुषुप्तस्थैवचिद्यथा ॥ यथास्थितैवस्वप्नत्वमेत्येवंसर्गतामिमाम् ॥ ४२ ॥ यादृक्सुषुप्तंस्वप्नस्तुता

द्दगेवतथैवच ॥ जाग्रत्तुर्यंतथैवेदमतोव्योमसमंजगत् ॥ ४३ ॥ जाग्रत्स्वप्नःसुषुप्तंचतुर्यमेवाखिलंस्थितम् ॥ तत्त्वविद्गोत्रमूढस्तुयद्वेत्तिनवेमितत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे नानाप्रकार विचित्र पंचभूतरूपसे स्वप्न अवस्थामें केवल चेतनही स्थित रहताहै ऐसेही इस जाग्रत्के नानाप्रकारके पंचभूतमय जगत्रूपसेभी एक चिदाकाशही व्याप्त है ॥ ४१ ॥ जैसे सुषुप्तिसे स्वप्नमें प्रवेशकरनेवाली चित् निजस्वरूपमें स्थितही नानारूप धारणकरलेती है ऐसेही प्रलयसे सृष्टिमेंभी ज्योंका त्यों अद्वैतरूपसे स्थितभी नानारूप यह चित् धारण करती है ॥ ४२ ॥ जैसा चिद्रूप सुषुप्त है वैसाही स्वप्नभी है और इसीप्रकार जाग्रत् तथा तुरीय अवस्थाभी है, इस हेतुसे समस्त जगत् चिदाकाशके समानही है ॥ ४३ ॥ तत्ववेत्ताओंके सम्प्रदायमें जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्तरूप संपूर्ण जगत् तुरीयरूपही स्थित है और ब्रह्मविद्यासंप्रदायके विषयमें मूढजन जैसा इस जगत्को जानताहै वह मैं नहीं जानता ॥ ४४ ॥

जडानामजडानांयःसर्वार्थानामनारतम् ॥ दुर्लक्ष्यपरिणामोंतर्मनोबुद्ध्यादिवर्जितः ॥ ४५ ॥ सुशुद्धाया श्चितोरूपंपदार्थास्तन्मयाश्च्वते ॥ तेवसंतिनसद्रूपास्तदेवहितथास्थितम् ॥ ४६ ॥ परिणामादिशब्दा र्थद्दशामतइहानघ ॥ उपदेशार्थमुक्तीनांगंधोप्येवंनविद्यते ॥ ४७ ॥ आदिसर्गात्प्रभृत्येवमहासत्तात्मना त्मनि ॥ चिन्मात्रपरमाकाशंस्थितमेकंमहात्मनः ॥४८॥ प्रपूर्णैकात्मनिप्रख्यासासर्वव्यापिनीचितिः ॥ स्थितातयात्मन्येवांतर्जगदित्यभिधाःकृताः ॥ ४९ ॥

अर्थ— जड तथा चेतन दोनोंके आभ्यन्तर स्थित दुर्लक्ष्यतापूर्वक जगत्का परिणाम करानेवाला परमेश्वरही है और वही ईश्वर शुद्ध चित्का स्वरूप है और संपूर्ण निजरूपसे सत् नहीं है किन्तु ईश्वरमय है इसलिये सर्वरूपसे चिद्रूप ईश्वरही स्थित है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और हे पापरहित रामजी ! पृथिवीआदिमें अन्तर्य्यामी होके परमात्मा सबका साक्षी तथा परिणामका प्रेरक है इत्यादि उक्ति (कथन) लौकिकव्यवस्थाको मानकर उपदेशार्थ हैं, परमार्थमें इन कथनोंका लेशभी नहीं है, इससे सब चिद्रूपही है तो उससे पृथक् चित् कैसे साक्षी तथा प्रेरक है यह शंका दूर हुई ॥ ४७ ॥ अतएव आदिसृष्टिसे लेके चिन्मात्र परमआकाशही महासत्तारूप निजआत्मामें जगत्रूपसे स्थित है और इस विषयमें तत्ववेत्ताओंके सर्वथा पूर्ण आत्माके अनुभव प्रमाण हैं, वही अनुभवरूप सर्वव्यापिनी चिति (चेतन) सर्वत्र स्थित है, इसीने निजआत्मामें अज्ञानियोंकेलिये जगत् जीव इत्यादि संज्ञाकल्पित की है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

परिज्ञातेयथास्वप्नेस्वांगीकारात्सुखंसुखम् ॥ अनंगीकारतोदुःखंसदुःखंभवतिक्षणात् ॥ ५० ॥ गच्छ तस्तिष्ठतश्चैवजाग्रतःस्वपतस्तथा ॥ नित्यमेकंसमाधानंस्थितंशांतस्यतद्विदः ॥ ५१ ॥ भेदेप्यभेदनि ष्ठस्यदुःखेपिहिसुखस्थितेः ॥ सतोप्येवासतोज्ञस्यकिमन्यदवशिष्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपके ज्ञात होनेसे तथा शुद्ध शेष आत्मामात्रके ग्रहण करनेपर जो कुछ जगत्के कौतुकका अनुभव कि वह सब सुखही सुख होताहै और न जाननेपर और शुद्धस्वरूपके ग्रहण न करनेपर सब दुःखमय ऐसे होताहै जैसे स्वप्नके बोध तथा अबोधसे ॥ ५० ॥ इसी हेतुसे शान्त तत्वज्ञानीको चलते, बैठते, जाते तथा सोते सदा समाधिका सुख रहताहै ॥ ५१ ॥ मायाकृत भेद रहनेपरभी सर्वत्र एकरस, अभिन्न, आत्मामें परायण, कल्पित शरीर मनआदिके दुःख होनेपरभी नित्य सुखमय आत्मामें स्थित तथा बाह्यसंसार रहनेपरभी आभ्यन्तरमुक्त होनेसे असत् संसारको जाननेवाले ज्ञानीको आत्मासे भिन्न क्या शेष रहताहै जो वह ग्राह्य वा त्याज्य होनेसे सुख वा दुःखदायक हो ॥ ५२ ॥

नसंत्यजतिनादत्तेकिंचिद्व्यवहरन्नपि ॥ हृदयेनबहिःकार्येऽकार्यएवावतिष्ठते ॥ ५३ ॥ यथाहिमस्यशी तत्वंवह्नेरौष्ण्यंतथेद्दशः ॥ स्वभावोस्यभवेन्नित्यंनत्वाहार्योगुणोस्यसः ॥ ५४ ॥ यस्यत्वेषस्वभावःस्या न्नासनसतत्त्ववित् ॥ एतदेवाज्ञताचिह्नंयदिच्छाप्रकृतेतरा ॥ ५५ ॥ आश्वस्तांतःकरणःक्षीणविकल्पः स्वरूपसारमयः ॥ परमशमामृततृप्तस्तिष्ठतिविद्वान्निरावरणः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्वैतैक्यनिरामययोगोपदेशोनामैकसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७१ ॥

अर्थ—ऊपरसे संपूर्ण व्यवहार करताहुवाभी आत्मज्ञानी हृदयसे न कुछ त्यागताहै, न ग्रहण करताहै किन्तु अकार्य्य (सर्वाधिष्ठान) ब्रह्ममेंही स्थित रहताहै ॥ ५३ ॥ और हिमकी शीतता तथा अग्निकी उष्णताके सदृश, नित्य आनन्दरूप स्थिति ज्ञानीका स्वभावही है, न कि प्रयत्नजनित गुण ॥ ५४ ॥ जिसकी आत्मामें नित्य स्थितिही स्वभाव है वही तत्वज्ञानी है और जिसका यह स्वभाव नहीं है वह ज्ञानी नहीं है क्योंकि आत्मासे भिन्न पदार्थमें प्रीति यही

अज्ञानता चिन्ह है ॥ ९५ ॥ अज्ञानरूपी आवरणसे रहित जो ज्ञानी है वह सदा शान्त अन्तःकरण, समाहितचित्त शत्रुमित्रादि विकल्पोंसे शून्य सारभूत स्वात्मानुभवरूप सुखसे पूर्ण तथा परमोत्तम शमरूप अमृतसे नित्य तृप्त आत्मामें स्थित रहताहै ॥ ९६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे द्वैतैक्यनिरामययोगोपदेशो नामैकसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७२ ॥

मनोमात्रही ब्रह्मा है, उसका संकल्पही जगत्का भ्रम है, न इस ब्रह्माके देह है, न स्मरण है, और स्मृति (स्मरण) का तत्त्व इत्यादि विषय इस १७२ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंपृथ्व्यादिरहितःखमेवाद्यःप्रजापतिः ॥ मनोमात्रमहंमन्येसंकल्पविटपीयथा ॥ १ ॥ मनइत्यभिधानेनपश्चादास्थाप्रकल्पिता ॥ वार्यावर्तविवर्तेनप्रोत्थायावर्ततायथा ॥ २ ॥ सत्तामात्रात्मनस्तस्यकुतोबुद्ध्यादयःकिल ॥ अविद्यमानेपृथ्व्यादौखस्यानंतस्यकिंरजः ॥ ३ ॥ नतस्यदेहचित्तादिनेंद्रियाणिनवासनाः ॥ सदप्येतत्सदातस्यनकिंचिदपिविद्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! इसप्रकार आदि प्रजापति (विराट्) भी पृथिवीआदि शून्य चिदाकाशही है, उस (प्रजापति) को मैं समष्टि मनरूप ऐसे मानताहुं जैसे संकल्पजनित वृक्षको ॥ १ ॥ मनन आकार कल्पनाके पूर्व वह चिन्मात्रस्वरूपही थे, कल्पनाके पश्चात् मन यह संज्ञा उसी आत्मामें आत्मासेही ऐसे कल्पित हुई जैसे जलमें स्वयं जल आवर्तादिरूपसे आविर्भूत होके आवर्तआदिकी कल्पना ॥ २ ॥ केवल चिन्मात्र स्वरूप उस ब्रह्माके बुद्धिआदि कहांसे होसकते हैं, क्योंकि पृथिवीआदिके न होनेपर केवल अनन्त आकाशमें धूलि कहांसे आसकती है ॥ ३ ॥ न तो उस ब्रह्माके देह है, तथा चित्त, बुद्धि, इन्द्रिय और वासना आदिभी नहीं हैं, व्यवहारके निर्वाहार्थ कल्पित देहइन्द्रिआदि रहतेभी परमार्थमें उसके कुछ नहीं हैं ॥ ४ ॥

प्राक्तनस्यप्रजेशस्यमुक्तत्वात्कथमेवच ॥ भूयःसंभवतिप्राज्ञनस्मृतिर्नचसंभवः ॥ ५ ॥ नभवत्येवमुक्तानांस्मृतिर्देहोदयःपुनः ॥ नदेशकालावर्तत्वमावर्तानांसतामिव ॥ ६ ॥ यदिवापिभवेत्किंचित्स्मृत्या देहादितस्यतत् ॥ तदपृथ्व्यादिभिःशांतंसंकल्पनगरंतनु ॥ ७ ॥ यथासंकल्पशैलस्यदृश्यमानमपि स्फुटम् ॥ पृथ्व्यादिरहितंरूपंतद्विराड्वपुषस्तथा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्राज्ञ रामजी ! द्विपरार्द्धके अन्तमें पूर्व प्रजापतिके मुक्त होनेपर पुनः नूतन प्रजापतिके स्मृति आदिका संभव कैसे होसकताहै ॥ ५ ॥ संसारमें आवागमन परिवर्तनशील जीवोंके समान मुक्त जीवोंके देशान्तर वा कालान्तरमें स्मृति वा देहादिकी उत्पत्ति पुनः नहीं होती ॥ ६ ॥ और यदि कथंचित् पूर्वकल्पकी वासनासे ब्रह्माके अहंभावरूप संस्कारजनित स्मृतिसे देहादिका संभव हिरण्यगर्भको हो तो वह पृथिवीआदि शून्य, अतितुच्छ, शान्त तथा संकल्पके नगरके समानही होगा ॥ ७ ॥ जैसे संकल्प वा स्वप्नके पर्वतका रूप स्पष्ट दृश्यमान होनेपरभी पृथिवी आदिरहित है ऐसेही विराटके शरीरकाभी रूप है ॥ ८ ॥

स्मृतिश्चसंभवत्येवनकदाचनकाचन ॥ एषालौकिकबुद्ध्यायासासद्बुद्ध्यानविद्यते ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथंनसंभवत्येषांस्मृतिःस्मृतिमतांवर ॥ स्मृतेश्चासंभवेकस्माद्गुणोगुणगणाकर ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दृश्येहिसंभवत्येषाकार्यकारणतात्मनि ॥ तद्भावाभावसंपन्नानतुसंभवतिस्मृतिः ॥ ११ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंदृश्यंकिंचिन्नविद्यते ॥ यत्रतत्रकथंकीदृक्कुतःस्यात्संभवःस्मृतेः ॥ १२ ॥

अर्थ—और आदि सर्गमें पूर्वअनुभवके अभावसे प्रजापतिकी स्मृतिका संभव नहीं है और ब्रह्माजीने पूर्वकल्पके अनुसार सूर्य्य, चन्द्र तथा पृथिवीआदि जगत्को रचा इस अर्थको कहनेवाली श्रुतिसे स्मृतिका बोध होताहै, सो यह श्रुति अज्ञानियोंकी लौकिकबुद्धिसे अनादिसिद्ध कर्ममार्गमें प्रवृत्तिके अर्थ है, किन्तु तत्ववेत्ता प्रजापतिकी बुद्धिसे वह स्मृति नहीं है ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे स्मृतिधारियोंमें श्रेष्ठ तथा हे गुणगणसागर मुने! इन हिरण्यगर्भादिकी स्मृतिका संभव कैसे नहीं है, क्योंकि यदि इनकी स्मृतिका असंभव है तो पूर्वकल्पके ब्रह्माके संपूर्ण गुणसमूह उस कल्पमें कैसे आते हैं सो कहिये? ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! सत्यपदार्थ शून्यकल्पित भ्रम-

जनित स्मृतिसे आत्मा (मायोपहित आत्मामें) में कार्य्यकारणीकी कल्पना होती है, परन्तु सत्यार्थके अनुभवसे उत्पन्न स्मृतिका अन्वयव्यतिरेकसे कार्य्यकारणसे संभव नहीं है ॥ ११ ॥ ब्रह्मासे लेके तृणपर्य्यन्त जो कुछ अनुभूत होताहै यथार्थमें वह जहां नहीं है वहां स्मृतिका संभव कैसे होसकताहै ॥ १२ ॥

भूत्वाभावेहिदृश्यस्यस्मरणंस्मृतिरुच्यते ॥ दृश्यमेवनयत्रास्तितत्रैताःकलनाःकुतः ॥ १३ ॥ अत्यंताभावएवास्यदृश्यस्यकिलसर्वदा ॥ सर्वंब्रह्मेतिसत्यार्थास्तत्स्मृतेःकलनाःकुतः ॥ १४ ॥ स्मृतिर्नसंभवत्येवतस्मादाद्याप्रजापतेः ॥ आकारवत्त्वमेवास्यशुद्धज्ञानात्मनःकुतः ॥ १५ ॥ स्मर्तव्यंभाववशतःस्मृतिर्नास्त्येवलौकिकी ॥ स्मृत्यर्थस्त्वन्यदीयोस्तिसत्यात्मात्वमिमंशृणु ॥ १६ ॥

अर्थ—क्योंकि जो पदार्थ यथार्थमें उत्पन्न होकर पुनः विद्यमानतादशामें प्रमाणोंसे अनुभूत होके पश्चात् कालान्तरमें जो उसका स्मरण होताहै उसको स्मृति कहते हैं, सो जब यथार्थमें दृश्य नहीं है तब ये अनुभव तथा स्मृतिआदि कल्पनाओंका संभव कहांसे होसकताहै ? ॥ १३ ॥ इस दृश्यका निश्चयरूपसे सर्वदा अत्यन्ताभाव है क्योंकि जब सब ब्रह्महीहै तो निजरूप सत्यदार्थ नहीं है, तब उनकी स्मृतिकी कल्पना कैसे होसकती है ॥ १४ ॥ इसकारण प्रजापतिकी आदि स्मृति नहीं होसकती, क्योंकि शुद्ध ज्ञानरूप हिरण्यगर्भका शरीरही कहांसे होसकताहै ॥ १५ ॥ जब ब्रह्माका पूर्वजन्म यथार्थमें हो तो जगत् शरीरकी भावनाके वशसे मैं जगत् शरीर हुं ऐसा ब्रह्मा स्मरण करें, क्योंकि वह मेरी माता, वह मेरी कन्या इत्यादिरूप पदार्थके अनुभवसे उत्पन्न जो लौकिक स्मृति है वह ब्रह्माको नहीं है, सो माता कन्याआदि अन्यलौकिक स्मृतिके योग्य हैं और उपासनाविषय ब्रह्मका अहंभाव मनोराज्यके तुल्य कैसे नहीं है सो तुम सुनो ॥ १६ ॥

भूतस्यांतःपदार्थस्यस्मरणंस्मृतिरुच्यते ॥ पदार्थस्तुनचैवास्तिनभूतोनभविष्यति ॥ १७ ॥ एवंहिखल्विदंब्रह्मपरमेवाचलंयतः ॥ अनादिमध्यपर्यंतंकुतःस्मृत्यादयस्ततः ॥ १८ ॥ सर्वात्मत्वात्पदार्थात्मचिद्व्योमकचनंतुयत् ॥ व्यवहारेप्यलंशांतंस्मृत्यातच्छब्दितंमया ॥ १९ ॥ तदेतत्स्मरणंनामस्वभावकचनंहितत् ॥ तेनाभ्यस्तोथबाह्यार्थःसादृश्यादवभासते ॥ २० ॥

अर्थ—अनुभूत भूतकालके पदार्थका संस्कारके वशसे जो स्मरण होताहै, उसको लोकमें स्मृति कहते हैं, सो ब्रह्माकेलिये कल्पितरूपसे कल्पकी आदिमें विद्यमानभी पदार्थ यथार्थमें वे नहीं हैं न थे और न होंगे ॥ १७ ॥ इसप्रकार आदि, मध्य तथा अन्तरहित कूटस्थ परब्रह्महो यह सबकुछ है तो स्मृतिआदिका उदय किसको, कहांसे और किसहेतुसे होसकताहै ॥ १८ ॥ और यदि सबका आत्मा होनेसे सब पदार्थरूप चेतनही है, इस रीतिसे स्मृतिभी चिदाकाशका स्फुरण है तो कल्पितरूपसे स्मृति ब्रह्म रहो, इसको हमने कहाभी है, कि जो कुछ है वह ब्रह्मही है, परन्तु स्मृतिआदिसे व्यवहार करनेपरभी वह ब्रह्म पूर्णरूपसे शान्त है ॥ १९ ॥ इसलिये अज्ञात ब्रह्मस्वभावही स्मृतिआदिरूपसे स्फुरताहै, मैं ब्रह्मा हुं इस उपासनासे पुनः २ अभ्यास करनेसे ब्रह्मारूप आत्माही उपासनाका फलीभूत बाह्यपदार्थ होकर उपासनासे कल्पित आकारके समान भासताहै ॥ २० ॥

यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तत्स्वभावंस्वभावयत् ॥ तेनावभासतेयोर्थस्तस्यस्मृत्यभिधाकृता ॥ २१ ॥ अविद्यमानंभातीवयथादृश्यंतथास्थितिः ॥ भातैवाविद्यमानैवमृगतृष्णायथोद्यता ॥ २२ ॥ सर्वात्मनिस्थिताःसत्येयाःकचंतिसुसंविदः ॥ ताएवाभ्यासरूढार्थाःसादृश्यात्स्मृतयःस्मृताः ॥ २३ ॥ काकतालीयवद्भांतिसर्वात्मनिसुसंविदः ॥ स्वांगभूताःस्वतःस्वस्थास्ताएवस्मृतयःकृताः ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञानोपहित ब्रह्म जीवद्वारा जिस २ स्वभावसे ज्ञात होताहै उसी स्वभावको अवलम्बन करके उस स्वभावको भावना करताहुआ उसी आकारसे कालान्तरमें युक्त होनेसे जो पुनः पदार्थ भासताहै उसकी स्मृतिसंज्ञा निजआत्मामें उसने कल्पित की है ॥ २१ ॥ परन्तु जैसे भ्रमितके अनुभवमें अविद्यमानही यह दृश्य भासताहै ऐसेही स्मरणमें अविद्यमान पदार्थ भासताहै, क्योंकि भ्रम तथा स्मरणमें दृश्यकी स्थिति समानहै, और मृगतृष्णाके भ्रममें अविद्यमान पदार्थका भासना तो प्रसिद्धही है ॥ २२ ॥ सर्वात्मपरमात्मामें जो संविद् (वित्ति) स्फुरित होती है वेही अभ्यासकी दृढतासे भ्रमके अनुभवके तुल्य होनेसे स्मृति कहीगई है ॥ २३ ॥ आकस्मिकघटनासे उद्बोधको प्राप्त चित्के अङ्गभूत जो संवित् (चिद्वृत्ति) भ्रमके अधिकरणभूत सर्वात्मपरमात्मामें भासती हैं उन्हींको स्मृति कहते हैं यद्यपि वे संवित् (वृत्ति) विषयकी ओर झुकनेसे परोक्षभान होती हैं तथापि स्वतः वे अपरोक्ष चिद्रूपही हैं ॥ २४ ॥

यद्यत्कचतिसद्रूपंस्वांगंसर्वात्मनःस्वतः ॥ तदभ्यस्तार्थसादृश्यात्स्मृतिरित्युच्यतेबुधैः ॥ २५ ॥ हेतौ लब्धेप्यलब्धेवापवनस्पंदवद्विदः ॥ ताएवाभ्यासरूढार्थाःसादृश्यात्स्मृतयःकृताः ॥ २६ ॥ काकतालीयवद्भ्रांतियास्ताःस्मृत्यभिधाःकृताः ॥ यथातवैतेऽवयवाःकचंतिनकचंतिच ॥ २७ ॥ स्थिताएवात्मनितथासर्वाःसर्वात्मिकाविदः ॥ मिथ्याज्ञानमयायद्वदर्थाघटपटादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—सर्वात्म परमेश्वरका स्वांगभूत जो २ सत् चिद्रूप स्फुरित होताहै वह २ पुनः २ अभ्यस्तपदार्थके सदृश होनेसे कालान्तरमें उसी स्फुरणको पण्डितजन स्मृति कहतेहैं ॥ २५ ॥ पवनकी गतिके तुल्य हेतुके उपलब्ध वा अनुपलब्ध होनेपर अभ्यासमें रूढ वही संवित् पूर्वकालमें अनुभूत पदार्थके सदृश होनेसे कालान्तरमें स्मृति कहलाती है ॥ २६ ॥ जैसे तुमारे हस्त, पादआदि अवयव उद्बोधक हो वा न हो मनोयोग होनेसे तुमको भासते हैं ऐसेही चित्के अवयव (कल्पित) भूत संवित् काकतालीयन्यायसे कदाचित् जो भ्रमसंबंधसे कालान्तरमें स्फुरती हैं उन्हींकी स्मृतिसंज्ञा आत्माने की है ॥२७॥ जैसे स्वप्न तथा इन्द्रजाल आदिमें मिथ्याज्ञानमय घटपटआदि पदार्थ स्थितहैं और वे समय पाके अकस्मात् भासनेलगते हैं, ऐसेही आत्मामें सर्वरूप सब संवित् विद्यमान हैं वे समय पाके भासनेलगती हैं॥२८॥

तद्वत्स्मृतिपदार्थस्यकिंभ्रमस्यविचार्यते ॥ दृश्यस्यासंभवाज्ज्ञस्यस्मृतिर्नास्त्येवतत्त्वतः ॥ २९ ॥ सततैकघनत्वाच्चचिद्व्योमत्वाज्जगत्स्थितेः ॥ यथास्थितमिदंदृश्यमस्त्येवाज्ञस्यसंप्रति ॥ ३० ॥ नमोक्षोपायकथनंनचजानामितत्स्थितिम्॥ संदेहादिवजिज्ञासुस्तावन्मोक्षकथोच्यते ॥ ३१ ॥ यावद्दृश्यंस्मृतिश्चैवसंस्मृतिश्चास्यशाम्यति ॥ अविद्यायास्तुमौर्ख्यस्यविमोहस्यात्यसंभवात् ॥ ३२ ॥ अज्ञस्थोनिश्चयोस्माकंनकदाचनगोचरः ॥ यच्चयद्विषयेनास्तितन्नैवानुभवत्यसौ ॥ ३३ ॥

अर्थ—जब स्वप्नके पदार्थोंके मूल कारण नहीं विचारतेहो तब इस भ्रममय स्मरणके मूल विचारनेमें क्यों चेष्टा करते हो क्योंकि इस जाग्रत् दृश्यकेही असंभव होनेसे तत्वज्ञानीकी दृष्टिमें यथार्थमें स्मृति नहीं है ॥ २९ ॥ ज्ञानीकी दृष्टिमें जगत्‌ही चिन्मात्र होनेसे वह पूर्ववत् निर्विकार स्थित रहताहै और अज्ञानीकी दृष्टिमें यह जगत् सत्य भासताहै अतः उसको पूर्वकालके अनुभूत पदार्थोंकी स्मृतिभी सत्य भासती है इसलिये पदार्थोंमें तन्मय होनेसे निजस्वरूपसे निर्विकार नहीं रहता ॥ ३० ॥ तत्वज्ञानीकेलिये न तो मोक्षोपायकथन है और न मूर्खके अनुभवके अनुसार तत्वज्ञानीकी स्थिति मैं जानताहुं, क्योंकि सौभाग्यसे साधनचतुष्टयसंपत्ति होनेसे संदेह वश जिज्ञासु होके जो कुछ वह पूंछताहै सो जबतक इसके दृश्यकी शांति नहीं होती तभीतक उसके अर्थ गुरु मोक्षकी कथा कहताहै और दृश्यके शांत होनेपर अविद्यासे उत्पन्न स्मृति आदि इसके स्वयं शांत होजातेहैं. और जैसे अज्ञानी तत्वज्ञानीकी स्थिति नहीं जानते ऐसेही अविद्या तथा उससे जनित मूर्खताके मोहके सर्वथा असंभव होनेसे अज्ञानियोंके हृदयस्थ निश्चय हमारे विषयगोचर कदापि नहीं होता, क्योंकि जो पदार्थ जिसका (जैसे नेत्रका शब्द) विषय नहीं वह उसको कदापि नहीं अनुभव करता ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रजन्यनुभवोभानोर्भवत्यंगकथंवद ॥ भातंवस्तुस्वरूपात्मचिन्मात्रेकिंचिदेवयत् ॥३४॥ तदभ्यस्तार्थसादृश्यात्तत्संस्कारइतिस्मृतम्॥ आत्मास्वभावभूतानामपिचिद्व्योमरूपिणाम् ॥ ३५ ॥ सर्वेषांपरिकल्प्यानामाभासेप्यनवस्थितेः ॥ एवंनसंभवत्येवजगत्किंचित्कदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! कहो—सूर्य्यको रात्रिका अनुभव कैसे होसकताहै, और अन्तःकरणोपहित चेतनमें जो बाह्यपदार्थका भान होताहै वही व्यवहारसे अभ्यस्त होकर दृढतापूर्वक चित्तमें स्थिर होनेसे सदृशवस्तुके योगसे पुनः विस्मरण न होनेको संस्कार कहतेहैं परन्तु तत्त्वज्ञानीकी दृष्टिमें आत्माके स्वभावभूत केवल चिदाकाशरूपपरिकल्पनीय सब पदार्थोंके भासमान होनेपरभी आत्मज्ञानसे बाध होनेसे उनकी यथार्थमें अविद्यमानताहै इसलिये संस्कारद्वारा स्मृति कदापि नहीं होसकती ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दृष्टंमृगतृषेवांबुनतुतत्परमार्थतः ॥ यदात्वयंतदास्वप्नेसर्गादौचावभासते ॥ ३७ ॥ चिद्व्योमैवपरंसर्गपर्यायंस्वात्मनिस्थितम् ॥ चिद्व्योमैवेत्थमाभातंनच्युतंसत्स्वरूपतः ॥ ३८ ॥ आत्मनात्मनिरूपंवासद्रूपमिवसंस्थितम्॥ सर्गादावेवकचितेमिथ्याकचदपिस्थितम् ॥ ३९ ॥ अतःकुतःकचिन्नामहेयादेयादिभासनम् ॥ नेदमाकारवत्किंचिन्नापिस्मृत्यात्मकंक्वचित् ॥ ४० ॥

अर्थ—और जब मृगतृष्णाका जल तथा स्वप्नआदिमें परमार्थमें पदार्थ न होनेपर भासमान दृष्ट हैं तो यह सिद्ध हुआ कि यह सृष्टि यथार्थमें न होकरभी सृष्टिकी आदिमें भासती है ॥ ३७ ॥ परमात्मा चिदाकाशही सृष्टिके रूपसे भासमान होकरभी अपने आत्मामें निजस्वरूपसे च्युत नहीं होता ॥ ३८ ॥ आत्मा निजस्वरूपमेंही अपने आ-

त्माईद्वारा जगत्स्वरूपसे भासताहुआ स्थित है अथवा सृष्टिके आरंभमें ब्रह्म स्वयं मिथ्या जगत्का स्वरूप धारणकरके स्थित है ॥ ३९ ॥ सब कुछ ब्रह्मरूप होनेसे इसमें हेय वा उपादेयरूपसे कुछभी नहीं भासता, इस ब्रह्मरूप जगत्में न कुछ आकारवान् और न उसके स्मरण आदिका संभव है ॥ ४० ॥

कारणाभावतोभातिस्वरूपंपरमात्मनः ॥ आकारवत्त्वेयद्दुःखंभवेत्स्मृत्यांतदेवच ॥ ४१ ॥ द्वयमेतदसत्तस्माद्बंधोनामनविद्यते ॥ चिद्व्योम्निभूतव्योमाभेशून्यएवयथास्थितम् ॥ ४२ ॥ स्थितंस्वरूपमजहद्भुवनार्काचलादिकम् ॥ यथास्थितोग्रदिक्कालंजगत्स्वंरूपमत्यजत् ॥ ४३ ॥ स्वमेवात्यजतोरूपंचिद्व्योम्नउदरेस्थितम् ॥ स्वानुभूत्येकमात्रात्मप्रमातृस्वाप्नपत्तनम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—निमित्त आदि कारणके अभावसे परमात्माका स्वरूपही जगत्रूपसे भासताहै, क्योंकि यदि यह जगत् साकार होता तो भार्य्यापुत्रादिके स्मरणके समान इसके स्मरणमेंभी दुःख होता ॥ ४१ ॥ इस जगत्के आकार तथा उसका स्मरण दोनों मिथ्या है, इसलिये यथार्थमें बन्धभी नहीं है, अतः भूताकाशमें नीलताके सदृश चिदाकाशमें शून्यरूपही यह जगत् स्थित है ॥ ४२ ॥ परमात्मा निजशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूपको न त्यागताहुवा सूर्य्य, चन्द्र तथा पर्वत आदिरूपसे ऐसे स्थित है जसे स्वप्नमें चिदात्मा निजस्वरूपको न त्यागताहुवा विशाल दिशाकालादिसहित जगत्रूपसे भासताहै ॥ ४३ ॥ अपने शुद्ध स्वरूपको न त्यागनेवाले चिदाकाशके उदरमें स्थित तथा निजअनुभवमात्रसार प्रमातास्वरूपही स्वप्नका नगर है ॥ ४४ ॥

अपृथ्व्यादिकुतस्तत्रकिलपृथ्व्यादयोवद ॥ तद्भातिकेवलंशांतंचिदाकाशंतथात्मनि ॥ ४५ ॥ सर्वादौस्वप्नकालेचपृथ्व्यादेःसंभवःकुतः ॥ उद्भूयेवजगद्रूपाद्ब्रह्मसत्तात्मनात्मनि ॥ ४६ ॥ करोतिपृथ्व्याद्यभिधाःपश्चात्सत्यार्थदाइव ॥ नस्मृत्यात्मनसाकारंपृथ्व्यादीनामसंभवात् ॥ नभ्रांतिर्नविवर्तादिजगद्ब्रह्मात्मकेवलम् ॥ ४७ ॥ ब्रह्मेदमाकचतिचारुजगत्स्वरूपंतच्चैकमेवकचनाकचनात्मनिष्ठम् ॥ दृश्याभमप्यमलमेवनभःप्रशांतंनित्योदितंप्रलयसर्गमयोदयात्म ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जगतोब्रह्मत्वप्रतिपादनंनामद्विसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७२ ॥

अर्थ—उस स्वप्नदशामें पृथिवीआदि पदार्थ उनके रहतेभी कहो कहांसे आते हैं, केवल शांत चिदात्माही अपने आत्मामें जगत्स्वरूपसे भासताहै ॥ ४५ ॥ सृष्टिकी आदिमें तथा स्वप्नकारणके अभावसे कहो पृथिवीआदि कहांसे आते हैं, किन्तु निजआत्मामें केवल ब्रह्मसत्ताही जगत्स्वरूप धारणकरके भासती है ॥ ४६ ॥ परमात्माही हिरण्यगर्भ (समष्टि मन) स्वरूप धारणकरके सृष्टिकी कल्पनाके पश्चात् पृथिवी, जल तथा वायुआदि सत्य अर्थ देनेवालीके सदृश अनेक संज्ञा करताहै और यथार्थ पृथिवीआदिके असंभव होनेसे यह जगत् न ब्रह्माकी स्मृति (स्मरण) मय है, न साकार है, न भ्रममय है और न विवर्तमय है, किन्तु केवल ब्रह्मरूपही है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सृष्टि तथा प्रलयमें एक अविकृत चित्स्वरूपसे स्थित ब्रह्मही इस रमणीय जगत्स्वरूपसे भासताहै और सृष्टि तथा प्रलयमय इस दृश्यरूपसे भासनेपरभी वह एक अद्वितीय निर्मल चिदाकाशरूपसेही नित्य उदित है ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जगतो ब्रह्मत्वप्रतिपादनं नाम द्विसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७३ ॥

जिसप्रकारसे चेतनभी देहादि जडभाव क्रिया ग्रहण करताहै तथा जैसे इस चेतनको सर्वरूपता है, यह विषय इस १७३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्वानुभवरूपस्यतथासर्वात्मनोऽव्ययम् ॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यदेहेपिकिमहंग्रहः ॥ १ ॥ चितःपाषाणकाष्ठत्वंस्वप्नादिषुकथंभवेत् ॥ इदंपाषाणकाष्ठादिकथंनास्त्यस्तिवाकथम् ॥ २ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शरीरिणोयथाहस्तेहस्ततायांयथाग्रहः ॥ सर्वात्मनस्तथादेहेदेहतायांतथाग्रहः ॥ ३ ॥ पादपस्ययथापत्रेपत्रतायांयथाग्रहः ॥ सर्वात्मनस्तथावृक्षेवृक्षतायांतथाग्रहः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! यदि सर्व अनुभवरूप अनन्त चित्चमत्कारही सर्वजगत्स्वरूप है तो सर्वत्र चित्की समानता होनेसे शरीरमेंही क्यों अहंभावका ग्रह (मैं शरीर हुं ऐसा अहंकार) है और अन्यत्र नहीं

है ऐसा नियम कहांसे है ? ॥ १ ॥ और स्वप्नआदिमें चेतनका चित्स्वभावसे विरुद्ध अचेतन काष्ठ पाषाणआदिरूपसे ग्रहण कैसे होताहै, क्योंकि चिद्रूपका त्याग और अचिद्रूपका ग्रहण नहीं बनता, तथा जब चेतनही सर्वात्मा है तब काष्ठ पाषाणादिकी नास्ति कैसे होतीहै ? क्योंकि चेतनकी नास्ति (निषेधरूपता) नहीं होसकती और सर्वथा चित्स्वभावसे विरुद्ध यह अचेतन पाषाणआदि कैसे अस्ति (हैं) तात्पर्य्य यह है कि जब चित्का अचिद्रूप होनाही असंभव है तब चित् सर्वरूप है यह कैसे होसकताहै ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—जैसे शरीरधारीको सबशरीरमें अहंभावकी समानता होनेपरभी हस्तमेंही हस्तकी अहंभावना, पादमेंही पादकी अहंभावना, नेत्रमेंही नेत्रकी अहंभावना होती है ऐसेही सर्वरूप चेतनकी देहमेंही देहकी अहंभावना होतीहै ॥ ३ ॥ तथा वृक्षरूपता सर्वत्र समान रहतेभी वृक्षाभिमानी जीवको पत्रमेंही पत्रकी अहंभावना है ऐसेही सर्वरूप चित्का वृक्षरूपमेंही वृक्षताका अहंभाव है ॥ ४ ॥

आकाशस्ययथाशून्येशून्यतायांयथाग्रहः ॥ सर्वात्मनस्तथाद्रव्येद्रव्यतायांतथाग्रहः ॥ ५ ॥ स्वप्नोचितः स्वप्नपुरेरूपतायांयथाग्रहः ॥ सर्वात्मनस्तथास्वप्नजाग्रदादौतथाग्रहः ॥ ६ ॥ ययागेंद्रेदृषद्वृक्षवार्यादौ सतथाग्रहः ॥ तथासर्वात्मनोगेंद्रपुरतायांतथाग्रहः ॥ ७ ॥ शरीरस्ययथाकेशनखादिषुयथाग्रहः ॥ सर्वात्मनस्तथाकाष्ठदृषदादौतथाग्रहः ॥ ८ ॥

अर्थ—और आकाशाभिमानी जीवको जैसे शून्यमेंही शून्यताका अहंग्रह (अहंभाव) है ऐसेही सर्वात्मा चित्का निजस्वरूप मणि, मुक्ता तथा सुवर्णआदि द्रव्यमें मणि, मुक्ता तथा सुवर्णआदि (प्रयत्नपूर्वक उपार्जनीय) द्रव्यताका अहंभाव है ॥ ५ ॥ तथा रूपादिशून्य चिद्रूपस्वप्नके प्रमाताको स्वप्नके नगरमें जैसे साकारताका आग्रह है ऐसेही सर्वरूप चेतनको स्वप्न, जाग्रत्आदि अवस्थाओंमें स्वप्न जाग्रत्आदिका अहंभाव है ॥ ६ ॥ पर्वत तथा नगरमें पाषाण वृक्ष तथा जलादि समान होनेपरभी तदभिमानी जीवको पर्वतमेंही पर्वतका अहंभाव तथा नगर वृक्षआदिमें नगर वृक्षआदिका अहंभाव होताहै ऐसेहि सर्वरूप चेतनको निजपर्वतरूपमें पर्वतका अहंभाव तथा नगरमें नगराहंभाव होताहै ॥ ७ ॥ और चेतनत्वरूपसे अभिमत शरीरका जैसे केश नखआदिमें चेतनताका ग्रहण नहीं है, इसप्रिकार सर्वरूप चित्काभी काष्ठ पाषाणआदिमें चेतनताका ग्रहण नहीं है ॥ ८ ॥

चितएवयथास्वप्नेभवेत्काष्ठोपलादिता ॥ चिदाकाशस्यसर्गादौतथैवावयवादिता ॥ ९ ॥ चेतनाचेतनात्मैकंपुरुषस्ययथावपुः ॥ नखकेशजलाकाशधर्ममाकारभासुरम् ॥ १० ॥ चेतनाचेतनात्मैकंतथासर्वात्मनोवपुः ॥ जंगमंस्थावरमयंकिंतुनित्यमनाकृति ॥ ११ ॥ यथास्थितंशाम्यतीदंसम्यग्ज्ञानवतोजगत् ॥ स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञातुर्यथादृष्टार्थसंभ्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—और स्वप्नमें निरवय चेतनही चित्स्वभावसे विरुद्ध साकार तथा जडरूपता धारण करताहै ऐसेही सृष्टिकी आदिमें चिदाकाशही साकार जडरूप अवयवता धारण करताहै ॥ ९ ॥ और जैसे मनुष्यका शरीर केश, नख, जल, आकाश तथा पवनादि धर्मयुक्त शोभायमान आकारधारी चेतन तथा अचेतन दोनों धर्मयुक्त है ॥ १० ॥ स्थावर, जंगम, चेतनअचेतनमय यह संपूर्ण जगत् सर्वरूप परमात्माका शरीर है, किन्तु यथार्थमें परमात्माके सदृश यह सबभी नित्य निराकारही है ॥ ११ ॥ सम्यग्ज्ञानीकी दृष्टिमें ज्योंका त्यों स्थितभी यह संसार ऐसे शान्त होजाताहै जैसे स्वप्नमें स्वप्नज्ञाताको संपूर्ण उस अवस्थामें दृष्ट पदार्थोंका भ्रम ॥ १२ ॥

चिन्मात्राकाशमेवेदंनद्रष्टास्तिनदृश्यता ॥ इतिमौनमलंस्वप्नद्रष्टुर्यत्साप्रबुद्धता ॥ १३ ॥ कल्पकोटिसहस्राणिसर्गाआयांतियांतिच ॥ तएवान्येचचिद्व्योम्निजलावर्त्ताइवार्णवे ॥ १४ ॥ करोत्यब्धौयथोर्म्यादौ नानाकचकचंवपुः ॥ चित्करोतितथासंज्ञाःसर्गाद्याश्चेतनेनिजे ॥ १५ ॥ यथास्थितमिदंविश्वंब्रह्मैवानामयंसदा ॥ तत्त्वज्ञंप्रत्यतत्त्वज्ञजनतानिश्चयादृते ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वप्नके द्रष्टाकी जो प्रातःकालमें प्रबुद्धरूपता है वही न द्रष्टा है, न दृश्य है, इस बातके निश्चय करानेमें समर्थ है, इसलिये मौन (चिद्रूप) ही सब है ॥ १३ ॥ जैसे समुद्रमें जलके अनेक आवर्त उत्पन्न तथा लीन होतेरहते हैं ऐसेही चिदाकाशमें सहस्रों (हजारों) कोटि वेही तथा अन्य २ सृष्टि उत्पन्न तथा नष्ट होतीरहती हैं, परन्तु अधिष्ठानकी एकरूपतामें कोई हानि नहीं होती ॥ १४ ॥ जैसे समुद्रमें जलतरंगआदि नानारूपमें अपने शरीरको स्फुरित करताहै ऐसेही चेतन निजचित्स्वरूपमेंही सृष्टिआदि अनेक संज्ञा रचता रहताहै ॥ १५ ॥ अज्ञजनसमूहके निश्चयके सिवाय ज्ञानीके लिये यथास्थित यह संपूर्ण संसार सदा निर्विकार ब्रह्मरूपही है ॥ १६ ॥

नाहंतरंगःसलिलमहमित्येवयुक्तितः ॥ बुद्धंयेनतरंगेनकुतस्तस्यतरंगता ॥ १७ ॥ ब्रह्मणोस्यतरंगत्व मिवाभानंयतस्ततः ॥ तरंगत्वातरंगत्वेब्राह्मयौशक्तीस्थितिंगते ॥ १८ ॥ चिद्व्योम्नोऽत्यजतोरूपंस्वप्नव द्व्यस्तवेदनम् ॥ तदिदंहिमनोरामब्रह्मेत्युक्तःपितामहः ॥ १९ ॥ एवमाद्यःप्रजानाथोनिराकारोनिरा मयः ॥ चिन्मात्ररूपसंकल्पपुरवत्कारणोज्झितः ॥ २० ॥

अर्थ—मैं तरंग नहीं हूं किन्तु शुद्धजल हूं, ऐसा जिस तरंगने युक्तिसे जानलिया, उसको तरंगता कहां रहती है ॥ १७ ॥ ब्रह्मका जो जगत्स्वरूप तरंगाकारसे भान होताहै अतः तरंगत्व तथा अतरंगत्व (जगत् तथा उसका अभाव) ये दोनों ब्रह्मकी शक्ति स्थितिको प्राप्त हैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! निज शुद्धरूपको न त्यागते हुये चिदाकाशका परस्पर धर्मके विनिमयसे विपरीत चेतनभावयुक्त समष्टि मन उपहित जो रूप है उसीको मन, ब्रह्मा तथा पितामह इत्यादि नामसे कहा है ॥ १९ ॥ इसप्रकार आदि प्रजापति निराकार निर्विकार कारणशून्य संकल्पनगरकेसमान चिन्मात्रस्वरूप हैं ॥ २० ॥

येनांगदत्वंनास्तीतिबुद्धंहेमांगदेनवै ॥ अंगदत्वंकुतस्तस्यतस्यशुद्धैवहेमता ॥ २१ ॥ अजेसंकल्पमा त्रात्मचिन्मात्रव्योमदेहिनि ॥ अहंत्वंजगदित्यादियद्विभातंतदेवतत् ॥ २२ ॥ चिच्चमत्कृतयोभांतिया श्चिद्व्योमनिशून्यताः ॥ एतास्ताःसर्गसंहारस्थितिसंरंभसंविदः ॥ २३ ॥ अच्छंचिन्मात्रनभसःकच नंस्वयमेवतत् ॥ स्वप्नाभंचित्ततामात्रंसएषप्रपितामहः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस अंगद (हस्तके सुवर्णभूषण) ने यह जानलिया कि मुझमें अंगदत्व नहीं है, उसमें अंगदत्व कहां ! उसमें तो शुद्ध सुवर्णता है ॥ २१ ॥ संकल्पस्वरूप चिदाकाशमात्र देहधारी अजन्मा ब्रह्मामें अहं, त्वम् (मैं, तुम,) तथा जगत् इत्यादि रूपसे जो भान है वही उनका ब्रह्मापन है ॥ २२ ॥ चिदाकाशमें चिच्चमत्कृतियां जो यथार्थमें पदार्थशून्यही भासती हैं यह सृष्टि स्थिति तथा संहारकी संविद् हैं ॥ २३ ॥ चिन्मात्र आकाशका निर्मल जो स्वयं स्वप्नवत् चित्ततामात्र स्फुरण है वही ब्रह्मा है ॥ २४ ॥

यथातरंगस्तेनैवरूपेणान्येनवानिशम् ॥ स्फुरत्येवमनाद्यंतःसर्गप्रलयविभ्रमः ॥ २५ ॥ चिद्व्योम्नःकच नंकांतंयद्विराडितिशब्दितम् ॥ भवेत्संकल्पपुरवत्तस्यकुर्यान्मनोपिवै ॥ २६ ॥ सर्गःस्वप्नःस्वप्नएवजा ग्रद्देहःसएवच ॥ घनंसुषुप्तंतैमिर्याद्यथासंवेदनंभवेत् ॥ २७ ॥ तस्यकल्पांतरजनीशिरोरुहतयोदिता ॥ प्रकाशतमसीकालक्रियाख्याःस्वांगसंधयः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे जलतरंग उसी रूपसे वा रूपान्तरसे स्फुरता रहताहै ऐसेही अनादि अनन्त चिद्रूपभी निरन्तर सृष्टि तथा प्रलयके भ्रमरूपसे स्फुरताहै ॥ २५ ॥ और विराट् इस शब्दसे प्रसिद्ध हिरण्यगर्भ रूप मनभी जो भुवन तथा भूतसमूहादिकी रचना करताहै वहभी संकल्पनगरकेतुल्य चिदाकाशका स्फुरणमात्रही है ॥ २६ ॥ इसप्रकार वही विराट्सृष्टि है, वही स्वप्न है, और उस स्वप्नहेही जाग्रत् समष्टिरूप धारणकियाहै और जैसे घनीभूत सुषुप्ति (गाढीनिद्रा) निद्राकी अधिकतारूप अन्धकारताही स्वप्नके अनुभव होजाताहै ऐसेही प्रलयमें अविद्यारूप अन्धकारा-वृत आत्माही जगत्का अनुभवरूप होजाताहै ॥ २७ ॥ और कल्पान्तकी रात्रि अर्थात् अवान्तर प्रलय विराट्स्वरूपधा-रीके (ब्रह्माके) केशके सदृश उदित हैं, तथा कालकी क्रियानामक प्रकाश और अन्धकार उसके अंगसंधि हैं ॥ २८ ॥

तस्याग्निरास्यंद्यौर्मूर्धाखंनाभिश्चरणौक्षितिः ॥ चंद्रार्कौदृग्दिशौश्रोत्रेकल्पनेतिविजृंभिता ॥ २९ ॥ एवं सम्यग्दृश्यमानोव्योमात्मविततात्कृतिः ॥ अस्मत्संकल्पशैलाभोविराड्स्वप्नाकृतिस्थितः ॥ ३० ॥ य च्चेतच्चिदाकाशेस्वयंकचकचायते ॥ तदेतज्जगदित्येवंतेनात्मैवानुभूयते ॥ ३१ ॥ विराडात्मैवमाकाशं भातिचिन्मयमाततम् ॥ स्वभावस्वप्ननगरंनगनागमयात्मकम् ॥ ३२ ॥ अनुभवितैवानुभवंसत्यंस्वा त्मानमप्यसंतमिव ॥ अनुभवतीयत्त्वेनस्वप्ननटःस्वप्नदेशमिव ॥ ३३ ॥ वेदांतार्हतसांख्यसौगतगुरु त्र्यक्षादिसूक्तादृशोब्रह्मैवस्फुरितंतथात्मकलयास्तादात्मनित्यंयतः ॥ तेषांचात्मविदोनुरूपमखिलंस्वर्ग फलंतद्भवत्यस्यब्रह्मणईदृगेवमहिमासर्वात्मयत्तद्वपुः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुपरमार्थोपदेशोनामत्रिसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७३ ॥

अर्थ—उस विराट्रूप परमात्माका अग्नि मुख है, अन्तरिक्ष मस्तक है, आकाश नाभी है, पृथिवी चरण है, चंद्रसूर्य्य नेत्र हैं, और दिशा कर्ण हैं, इसप्रकार कल्पनाही विराट्रूपसे आविर्भूत है ॥ २९ ॥ इसरीतिसे भली-भांति दृश्यमानभी विराट् भगवान् हमारे संकल्पके पर्वतके सदृश वा स्वप्नाकार स्थित हैं, अतएव वे चिदाकाश

रूपही हैं ॥ ३० ॥ जो परमात्मा चेतनात्मक जीवस्वरूप होकर स्वयं अतिशयरूपसे प्रकाशित होताहै वही यह जगत् है उसको यह आत्मा स्वयं अनुभव करताहै ॥ ३१ ॥ इसरीतिसे सर्वव्यापक चिन्मात्र आकाशस्वभावही स्वप्नके नगर, पर्वतआदिके तुल्य इस जगत्रूपसे भासताहै ॥ ३२ ॥ जैसे स्वप्नमें नट अवस्थामें प्राप्त प्राणी निजआत्माहीको अपनेसे भिन्नके सदृश नाट्यवस्तु तथा द्रष्टाआदि समाजसे पूर्ण देशकी कल्पना करके उस नाटकको स्वयं अनुभव करताहै, ऐसेही अनुभवकर्ता चिदात्माही अनुभव तथा सत्यरूप निजस्वरूपको मायासे आवृत होनेसे असत्के समान करके परिच्छिन्न प्रपंचरूपसे अनुभव करताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्म उपासक सर्वज्ञ ईश्वरोपासक अर्हत्मतावलम्बी जैन, सांख्य तथा बौद्धामतानुयायीओंके गुरु, व्यास, अर्हत्, कपिल, पतंजलि तथा बौद्धने और पाशुपत, गाणपत्य, वैष्णव तथा शाक्तमतके, प्रवर्तक आचार्य्योंने जो २ दर्शन निज २ शास्त्रोंमें प्रतिपादन कियाहै उन २ सबरूपसे उनके वासनाके अनुसार हमारा ब्रह्मही स्फुरित है और उन २ वादियोंके निश्चयके अनुकूल ऐहिक तथा पारलौकिक स्वर्गादि फलरूपभी ब्रह्मही धारण करताहै, क्योंकि उनवादियोंने आत्माहीमें उन २ फलसिद्धिकी भावना की थी और इस ब्रह्मकी ऐसीही महिमा प्रसिद्ध है कि मायाशबलित सर्वात्मक ब्रह्म सबकी वासनाके अनुसार सर्व शरीर धारणकरके सब फल सिद्ध करताहै ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासु परमार्थोपदेशो नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७३ ॥

चतुःसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७४ ॥

जाग्रत होनेपर स्वाप्निक पदार्थोंके मार्जनके तुल्य ज्ञानसे दृश्यका मार्जन होनेपर परमपदरूप चिदात्माही शेष रहताहै इस विषयका वर्णन इस १७४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्गादौस्वप्नसंवित्त्याचिदेवाभातिकेवला ॥ जगदित्यवभासेवब्रह्मैवातोजगत्त्रयम् ॥ १ ॥ सर्गास्तरंगाब्रह्माब्धेस्तेषुसंवेदनंद्रवः ॥ सर्गांतरंसुखाद्यात्मद्वैतैक्यादीतरत्कुतः ॥ २ ॥ यथास्वप्नसुषुप्तात्मनिद्रारूपकमेवखम् ॥ दृश्यादृश्यांशमेकात्मरूपंचिन्नभसस्तथा ॥ ३ ॥ जाग्रतिस्वप्ननगरंयाद्दक्ताद्दगिदंजगत् ॥ परिज्ञातंभवेदत्रकथमास्थाविवेकिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! स्वप्नके अनुभवके समान सृष्टिकी आदि केवल चिन्मात्रही जगत्के समान भासताहै यह सिद्ध करचुके, इसलिये यह त्रिलोकी ब्रह्मरूपही है ऐसा दृढज्ञान होनेपर कैवल्यमुक्ति सिद्ध है ॥ १ ॥ ब्रह्मरूप समुद्रके तरंगके समान सब सर्ग (सृष्टि) हैं, उनका अनुभव द्रवरूपता है, सो जब यह अज्ञानियोंकी दृष्टिमें प्रसिद्ध दुःखमय जगत्ज्ञानसे मार्जित (नष्ट) होगया तब जीवन्मुक्तोंके व्यवहारार्थ जो यह जगत् है वह तो सच्चित्स्वरूप होनेसे उससे भिन्न सुखरूपही है उसमें दुःखरूप द्वैत एकत्वादि अन्यबुद्धि कहां है ॥ २ ॥ जैसे स्वप्न तथा सुषुप्तिमें स्वप्नरूप भेदके भासनेपरभी निद्रारूप सुखमें भेद नहीं है, ऐसेही विदेहमुक्तिमें दृश्यकी प्रातिभासिक सत्तामात्र भेद भासनेपरभी सुखरूप चिदाकाशके स्वरूपमें भेद न होनेसे जीवन्मुक्तोंकी सुखस्थितिसमानही है ॥ ३ ॥ जैसे जाग्रत्में स्वप्नका नगर भासताहै ऐसेही ब्रह्मके परिज्ञात होनेपर यह जगत् भासताहै तब भला विवेकीकी आस्था इस स्वप्नवत् जगत्में कैसे होसकती है ॥ ४ ॥

सर्गादौसर्गसंवित्तेर्यथाभूतार्थवेदनात् ॥ जाग्रतिस्वाप्ननगरंयाद्दशंताद्दशंजगत् ॥५॥ जाग्रतिस्वप्ननगरवासनाविविधायथा ॥ सत्याअपिनसत्यास्ताजाग्रत्योवासनास्तथा ॥ ६ ॥ अन्यथोपपप्रपद्येहकल्प्यतेयदिकारणम् ॥ तत्किंनेदीयसीनात्रभ्रांतताकल्प्यतेतथा ॥७॥ स्वानुभूयतएवेयंभ्रांतिःस्वप्नजगत्स्विव ॥ कारणंत्वनुमासाध्यंकानुमानुभवाधिका ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिकी आदिमें चिद्रूपही जगत्रूपसे अनुभूत होनेसे जाग्रत् होनेसे जैसे स्वप्नके नगरआदि बाधित होते हैं ऐसेही ब्रह्मज्ञानसे यह जाग्रत् जगत्भी बाधित होताहै इसीसे तत्वज्ञानीको यह दुःखदायक नहींहोता ॥ ५ ॥ जैसे जाग्रत्में स्वप्नके नगरादिमें अनेक वासना रहती हुईभी वे असत्य होनेसे दुःखदायिनी नहीं होती ऐसेही ज्ञान होनेपर जगत्की वासनाभी दग्धपटके सदृश ज्ञानीको क्लेश नहीं देसकती ॥ ६ ॥ और इस जगत्की परमाणुओंसे रचना मानकर बाध न होनेसे दुःखदायी कल्पनाकी अपेक्षा श्रुतिसिद्ध स्वप्नके दृष्टान्तसे अतिसमीपस्थ भ्रान्तिजनित जगत्

है यही कल्पना क्यों नहीं करते ॥ ७ ॥ और स्वप्नके जगत्के तुल्य मृत्तिका सूत्रके सिवाय घटपटादि जैसे भिन्न नहीं ऐसेही चित्भिन्न जगत्भी नहीं है इसकी भ्रांति जब स्वयं अनुभूत होती है तो परमाणुआदि कारणका अनुमान कैसे होसकताहै, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभवसे बलवान् अनुमान कहां देखागयाहै ॥ ८ ॥

दृष्टमप्यस्तियन्नेशेनचात्मनिविचारितम् ॥ अन्यथानुपपत्त्यांतभ्रांत्यात्मस्वप्नशैलवत् ॥ ९ ॥ निर्विक ल्पपरंजाड्यंसविकल्पंतुसंसृतिः ॥ ध्यानंतेनसमाधानंनसंभवतिकिंचन ॥ १० ॥ सचेत्यंसंसृतिर्ध्यान मचेत्यंतूपलस्थिति ॥ मोक्षोनोपलवद्धानंनविकल्पात्मकंततः ॥ ११ ॥ नचनामोपलाभेननिर्विकल्प समाधिना ॥ अन्यदासाद्यतेकिंचिल्लभ्यतेकिंस्वनिद्रया ॥ १२ ॥

अर्थ—पुरुषकी इष्टकी रचना तथा अनिष्टके निवारण करनेमें अशक्ति होनेसे, अचिन्तित आकस्मिक घटनाके देखनेसे प्रत्यक्षके अतिरिक्त अनुमानभी स्वप्न पर्वतके तुल्य भ्रान्तिमय जगत् होनेमें प्रमाण है ॥ ९ ॥ इसी हेतुसे आत्माको आनंदस्वरूप न माननेवाले योगियोंकोभी निर्विकल्पसमाधि महाजडतामय, और सविकल्पसमाधि संसारदायक है, अतः ध्यानसेभी ज्ञानपूर्वक जगत्के बाध विना समाधान मोक्षप्राप्तिरूप पुरुषार्थ नहींहोसकता ॥ १० ॥ क्योंकि सविषयक ध्यान तो संसारही है, और निर्विषय पाषाणवत् आत्माकी स्थिति न मोक्ष है और न विकल्पमय है किन्तु आनन्दस्वरूपही मुक्ति है ॥ ११ ॥ पाषाणके तुल्य निर्विकल्पसमाधिसे सांख्यके इष्ट (पाषाणवत् स्थिति) के सिवाय और कुछ नहीं प्राप्तहोता क्योंकि यदि उससे मुक्ति लब्ध हो तो निजनिद्रासेभी हो ॥ १२ ॥

तस्मात्सम्यक्परिज्ञानाद्भ्रांतिमात्रंविवेकिनः ॥ सर्गात्यंतासंभवतोयोजीवन्मुक्तातोदयः ॥ १३ ॥ निर्वि कल्पंसमाधानंतदनंतमिहोच्यते ॥ यथास्थितमविक्षुब्धमासनंसर्वभासनम् ॥ १४ ॥ तदनंतसुषुप्ताख्यं ततुरीयमितिस्मृतम् ॥ तन्निर्वाणमितिप्रोक्तंतन्मोक्षइतिशब्दितम् ॥ १५ ॥ सम्यग्बोधैकघनतायासौध्यान मितिस्मृतम् ॥ दृश्यात्यंतासंभवात्मबोधमाहुःपरंपदम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसकारण उत्तम आत्मज्ञानसे विवेकीको भ्रांतिमात्रही यह जगत् है और चिदाकाशमात्र होनेसे सृष्टिके अनन्त अभावज्ञानसे उस (विवेकी) की जीवन्मुक्तताका उदय है वही ॥ १३ ॥ निर्विकल्प समाधि है, वही अद्वैत-सिद्धान्तमें अनन्त निर्वाण है, तथा वही निर्विकाररूपसे निजस्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित होकर सबका प्रकाशनभी है ॥ १४ ॥ तथा वही (चित्स्वरूपमात्र स्थिति) अनन्त सुषुप्ति, वही तुरीय, वही निर्वाण और मोक्षभी कहागयाहै ॥ १५ ॥ दृश्यको भ्रांत्रिमात्र जानकर जो आत्मबोध है उसीको परमपद कहतेहैं और सम्यग् ज्ञान होनेसे चिन्मात्रमें जो परायणता है वही ध्यान है ॥ १६ ॥

तच्चनोपलवज्जाड्यंनसुषुप्तोपमंभवेत् ॥ ननिर्विकल्पंनचवासविकल्पंनवाप्यसत् ॥ १७ ॥ दृश्यात्यंतासं भवात्मतदेवाद्यंहिवेदनम् ॥ तत्सर्वंतन्नकिंचिच्चतद्वदेवांगवेत्तितत् ॥ १८ ॥ सम्यक्प्रबोधान्निर्वाणंपरं तत्समुदाहृतम् ॥ यथास्थितमिदंविश्वंतत्रालंप्रलयंगतम् ॥ १९ ॥ नतत्रनानानानानानचकिंचिन्नकिंच न ॥ समस्तसदसद्भावसीमांतःसउदाहृतः ॥ २० ॥

अर्थ—सब जगत्के बाधपूर्वक वह आनन्दस्वरूपपरता, कणादगौतमको अभीष्ट मुक्तिके तुल्य पाषाणवत् जड नहीं है, हिरण्यगर्भको इष्ट प्रकृति लीनतारूप युक्तिके समान सुषुप्तिरूपभी नहीं है, पातंजलके अभिमत निर्विकल्परूपभी नहीं और न बौद्धको अभीष्ट युक्तिके तुल्य असत् नैरात्म्यस्वरूपही है ॥ १७ ॥ किन्तु इस दृश्यके अत्यन्त अभावपूर्वक यह सब ब्रह्मही है और वहां शुद्ध चिद्रूप ब्रह्म मैं हुं ऐसा दृढ अनुभवही मोक्ष है, वह अधिष्ठानरूपसे सब कुछ है और अध्यासरूपसे कुछ नहीं है, क्योंकि वही परमपद है, जब ब्रह्मसे अतिरिक्त किसीका अनुभव न हो ॥ १८ ॥ आत्माके पूर्णज्ञानसे जो निज निरतिशय आनन्दकी प्राप्ति है उसीको परम निर्वाण कहाहै, उस अवस्थामें यथास्थितभी यह संपूर्णरीतिसे लयको प्राप्तहोताहै ॥ १९ ॥ उस चिद्रूप परमात्मामें न नानात्व है, न अनानात्व है, न किंचित्, न किंचन है, किन्तु समस्त सदसद्भावकी कल्पनाका अंत वही है, जैसे पट सत् वा असत् है इस कल्पनाकी सीमा सूत्र घट सत् वा असत् इस कल्पनाकी सीमा कपाल, वहभी सत् वा असत् इसकी सीमा बीज, बीज सत् वा असत् इसकी सीमा मृत्पाषाणमयी पृथिवी, पृथिवीकी सीमा जल, जलकी सीमा तेज, तेजकी सीमा वायु, वायुकी सीमा आकाश, आकाश सत् वा असत् इस कल्पनाकी सीमा अव्याकृत और उसकी सत् असत् कल्पनाकी सीमाका अस्त केवल चिदाकाशही है ॥ २० ॥

अत्यंतासंभवंद्दश्ययद्वैनिर्वाणमासितम् ॥ शुद्धबोधोदयंशांततद्विद्धिपरमंपदम् ॥ २१ ॥ सचसंप्राप्यते शुद्धोबोधोध्यानमनुत्तमम् ॥ शास्त्रात्पदपदार्थज्ञबोधिनोत्पन्नबुद्धिना ॥२२॥ मोक्षोपायाभिधंशास्त्रमिदं वाचयतानिशम् ॥ बुद्ध्युपायेनशुद्धेनपुंसानान्येनकेनचित् ॥ २३ ॥ नतीर्थेननदानेननस्नानेननविद्यया ॥ नध्यानेननयोगेननतपोभिर्नचाध्वरैः ॥ २४ ॥

अर्थ—दृश्यके अत्यन्त असंभवपूर्वक विक्षेपरहित जो निरतिशय आनन्दमय आत्मस्वरूपकी स्थिति है, उसी शुद्धबोधोदय शान्तरूपको तुम परमपद तथा परमपुरुषार्थ जानो ॥ २१ ॥ और परमपदार्थका बोधकरानेवाले इस शास्त्रसे उत्पन्न बुद्धियुक्त मनुष्य उस शुद्ध आत्मबोधरूप उत्तम ध्यानको पाताहै ॥ २२ ॥ मोक्षोपायनामक इस शास्त्रको निरन्तर विचारपूर्वक पढो, क्योंकि शुद्ध अध्यात्मशास्त्रजनित ज्ञानरूप उपायकेसिवाय और किसी उपायसे मोक्ष पुरुषको नहीं प्राप्तहोता ॥ २३ ॥ चिदात्मस्वरूपमें स्थितिरूप मोक्ष, तीर्थ, दान, स्नान, ब्रह्मविद्यासे भिन्नविद्या, ब्रह्मध्यानसे भिन्न अन्यध्यान, योग, तप तथा यज्ञसेभी नहीं प्राप्तहोता ॥ २४ ॥

भ्रांतिमात्रंकिलेदंसदसत्सदिवलक्ष्यते ॥ व्योमैवजगदाकारंस्वप्नोऽनिद्रेचिदंबरे ॥ २५ ॥ नशाम्यतित पस्तीर्थैर्भ्रांतिर्नामकदाचन ॥ तपस्तीर्थादिनास्वर्गाःप्राप्यंतेनतुमुक्तता ॥ २६ ॥ भ्रांतिःशाम्यतिशास्त्रा र्थान्सम्यग्बुद्ध्यावलोकितात् ॥ आत्मज्ञानमयान्मोक्षोपायादेवेहनान्यतः ॥ २७ ॥ आलोककारिणात्य र्थंशास्त्रार्थेनैवशाम्यति ॥ अमलेनाखिलाभ्रांतिःप्रकाशेनैवतामसी ॥ २८ ॥ सर्गसंहारसंस्थानांभासो भांतिचिदंबरे ॥ स्पंदनानीवमरुतिद्रवत्वानीववारिणि ॥ २९ ॥ द्रव्यस्यहृद्येवचमत्कृतिर्निजानभस्वतः स्पंदइवानिशंयथा ॥ यथास्थितास्थितिरियंतथास्तितालयंनभस्यंतरनन्यरूपिणी ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुनिर्वाणोपदेशोनामचतुःसप्तत्यधिकशततमःसर्गः ॥ १७४ ॥

अर्थ—अनिर्वचनीय यह जगत् भ्रान्तिमात्रही है, निद्राशून्य चिदाकाशमें यह जगदाकार स्वप्न चिदाकाशरूपही है ॥ २५ ॥ और आत्मज्ञानकेसिवाय जगत्की भ्रान्ति, तप, तीर्थ तथा व्रतादिसे कदापि नहीं शान्त होती, क्योंकि तप, तीर्थादिसे स्वर्गलोकादि प्राप्त होतेहैं न कि मुक्ति ॥ २६ ॥ आत्मज्ञानपूर्ण मोक्षोपायरूप इस शास्त्रके अर्थको उत्तम शुद्धबुद्धिसे विचारनेहीसे शान्त होती है और किसी उपायसे नहीं ॥ २७ ॥ निर्मल ज्ञानरूप प्रकाशको करनेवाले अध्यात्मशास्त्रके अर्थसे संसारकी संपूर्णभ्रान्ति ऐसे नष्ट होतीहै जैसे सूर्य्यके प्रकाशसे अन्धकारमयी रात्रि ॥ २८ ॥ सृष्टि, स्थिति तथा संहारकी प्रतिमा चिदाकाशमें ऐसी भासती है जैसे वायुमें स्पन्द वा जलमें द्रवत्व ॥ २९ ॥ जैसे वटके बीजमें वटवृक्षाकार चमत्कृति वा वायुमें स्पन्दकी चमत्कृति है ऐसेही मायाशबलित ब्रह्मचिदाकाशमें यह सृष्टिकी स्थिति है और उसीमें लयभी होगा ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासु निर्वाणोपदेशो नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७४ ॥

पंचसप्तत्युत्तरशततम.सर्गः ॥ १७५ ॥

जबतक अज्ञान है तबतक निष्कारण चेतनही जगत्के सदृश भासताहै और आत्मज्ञानद्वारा अज्ञानका नाश होनाही मुक्ति है, यह विषय इस १७५ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्नाभमाद्यंचिद्व्योमकारणंदेहसंविदाम् ॥ दृश्यान्यतासंभवतश्चिद्व्योम्नस्त त्कुतोवपुः ॥१॥ सर्गादौस्वप्नसंवित्तिरूपंसर्वंविनानघ ॥ नसर्गोनपरोलोकोदृश्यमानोपिसिद्ध्यति॥२॥ असदेवानुभूरित्थमेवेदंभासतेजगत् ॥ स्वप्नांगनासंगइवशांतंचिद्व्योमकेवलम् ॥ ३ ॥ एवंनामास्ति चिद्धातुरनादिनिधनोमलः ॥ शून्यात्मैवाच्छरूपोपिजगदित्यवभातियः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामचन्द्रजी ! आदिचिदाकाश (ब्रह्मा) निजकल्पित अविद्यासे आवृत होके स्वप्नवत् जीवभाव धारणकरके मैं देव हुं, मैं मनुष्य हुं, इत्यादि उन २ देहोंके साध्य अभेदाध्याससे काम कर्म वासनाद्वारा देहसंविद्का कारण होताहै, क्योंकि जीवोपाधिसिद्धिके पूर्व महाप्रलयमें दृश्यके भेदका अत्यंत असंभव होनेसे चिदाकाशका शरीर कहांसे होसकताहै ॥ १ ॥ हे पापरहित रामजी ! सृष्टिकी आदि स्वप्नसंवित्केविना यह दृश्यमान सर्ग (सृष्टि) तथा परलोक कुछभी नहीं सिद्ध होता ॥ २ ॥ स्वप्नकी स्त्रीके संगके तुल्य अनुभवरूप शांत चिदाकाशही इसप्रकार निज-

अविद्या (माया) शक्तिसे असत् जगत्रूपसे भासताहै ॥ ३ ॥ आदिअन्तशून्य निर्मल चेतन परमात्माकी ऐसीही महिमा है कि वह सर्व दृश्यसे शून्य निर्मलरूप होकरभी जगत्स्वरूपसे भासताहै ॥ ४ ॥

मलस्त्वेषोऽपरिज्ञातःपरिज्ञातःपरंभवेत् ॥ कुतःकिलपरेव्योमन्यनादिनिधनेमलः ॥ ५ ॥ यदेतद्वेदनं शुद्धंतदेवस्वप्नपत्तनम् ॥ जगत्तदेवसर्गादौपृथ्व्यादेःसंभवःकुतः ॥ ६ ॥ चिद्व्योमात्मावभासस्यनभ सःसर्गरूपिणी ॥ कृतापृथ्व्यादिकलनामनोबुद्ध्यादितातथा ॥ ७ ॥ वार्यावर्तइवाभातिपवनस्पंदवच्च यत् ॥ अबुद्धिपूर्वंचिद्व्योम्निजगद्भानमभित्तिमत् ॥ ८ ॥

अर्थ—यावत्काल अज्ञात है तभीतक यह अविद्यारूप मल भासताहै, ज्ञात होनेपर तो अविद्यामलभी परब्रह्मही होजाताहै, क्योंकि ज्ञान होनेपर स्वप्नके पदार्थोंका बाध होनेसे आदिअन्तशून्य चिदाकाशमें अविद्यामल कहांसे आसकताहै ॥ ५ ॥ जो यह जगत्का अनुभव है वह स्वप्नके नगरके समान शुद्ध चिदाकाशरूपही है. क्योंकि अविद्या भासकेविना सृष्टिकी आदिमें अन्यकारण न होनेसे यथार्थ पृथिवीआदिका संभव कहांसे होसकताहै ॥ ६ ॥ चिदाकाशके स्फुरणकीही सर्गरूपधारिणी पृथिवीआदि तथा मन बुद्धिआदि कल्पना कीगई है ॥ ७ ॥ जलमें आवर्त तथा वायुमें स्पन्दके तुल्य जो चिदाकाशमें निष्कारण स्फुरण है वही भित्तिरहित जगत्का भान है ॥ ८ ॥

पश्चात्तस्यैवतेनैवस्वयमैश्वर्यशंसिना ॥ कृतंबुद्ध्यादिपृथ्व्यादिकल्पनंसदसन्मयम् ॥ ९ ॥ स्वयमेवक चत्यच्छाछायेयंस्वामहाचितिः ॥ सर्गाभिधानमस्यैवनभएवेहनेतरत् ॥ १० ॥ नचकिंचननामांगक चत्यच्छैवसास्मृता ॥ चिन्मात्रैकैककलनंततमेवात्मनात्मनि ॥ ११ ॥ चिदाकाशश्चिदाकाशेतदिदं स्वमलंवपुः ॥ चित्तंदृश्यमिवाभातियथास्वप्नेतथास्थितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आकस्मिक जगत्भानके पश्चात् जीवभावसे परमात्माही जगत्में प्रविष्ट होकर, सृष्टिकर्ता मैं ब्रह्मा हुं इत्यादि निज ऐश्वर्य्यको प्रसिद्धकर्ता उस परमेश्वरने पृथिवीआदि तथा बुद्धि मूर्त अमूर्त सदसन्मय जगत्की कल्पना की है ॥ ९ ॥ निर्मल आकाशसेभी अतिनिर्मल यह महाचेतन निजशक्तिसे स्वयं जगत्रूपसे भासताहै, अतः यह जगत् चिदाभासही है न कि अन्य ॥ १० ॥ हे प्रिय रामजी ! विचारदृष्टिसे अन्य कुछ नहीं भासता किन्तु पूर्वकथित परमनिर्मल एक अद्वैत चिन्मात्र ब्रह्मही निजआत्मामें इस जगत्रूपसे व्याप्त है ॥ ११ ॥ निजपूर्ण (शुद्ध सच्चिद् आनन्द) स्वरूप चिदाकाशही चिदाकाशमें अज्ञात होनेसे स्वप्नके तुल्य निर्विकाररूपसे ज्योंका त्यों स्थितभी चित्त तथा जगत्रूपसे भासताहै ॥ १२ ॥

अन्यथानुपपत्त्यार्थकारणाभावतःस्वतः ॥ सर्गादावेवस्वात्मैवदृश्यंचिद्व्योमपश्यति ॥ १३ ॥ स्वप्नव त्तच्चनिर्धर्ममनागपिनभिद्यते ॥ तस्माच्चिद्व्योमचिद्व्योमशून्यत्वंगगनादिवत् ॥ १४ ॥ यदेवतत्परंब्र ह्मसर्वरूपविवर्जितम् ॥ तदेवैकंतथारूपमेवंसर्वतयास्थितम् ॥ १५ ॥ स्वप्नेनुभूयतेचैतत्स्वप्नोह्यात्मै वभासते ॥ नानाबोधमनानैवब्रह्मैवामलमेवतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—आरंभमें सत् कारणके अभावसे अन्यप्रकारसे सृष्टिकी असिद्धि होनेसे यह वार्ता स्वतः सिद्ध हुई कि स्वात्माचिदाकाशही दृश्यका रूप धारणकरके स्वयं उसका द्रष्टाभी बनताहै ॥ १३ ॥ और यह चिदाकाशका दृश्यरूप धारणकरना मिथ्या मायामय है, स्वप्न और इस संसारमें किंचिद्भी भेद नहीं है, इस हेतुसे यह संपूर्ण विश्व आकाशवत् शून्य चिदाकाशमात्रही है ॥ १४ ॥ जो सर्वरूपसे वर्जित एक परब्रह्म है, वही निज अपने सच्चिदानन्द अद्वितीयरूपसे स्थितभी निजमायाशक्तिसे सर्व जगत्स्वरूपसेभी स्थित है ॥ १५ ॥ कारणशून्य सृष्टि स्वप्नमें प्रत्येक प्राणी (मनुष्य) अनुभव करताहै और स्वाप्निकपदार्थरूप होके तो आत्माही भासताहै, अतः एक ज्ञानरूप निर्मल ब्रह्मही जगत् नानापदार्थोंके ज्ञानरूपसे भासताहै ॥ १६ ॥

ब्रह्मैवात्मनिचिद्भावाज्जीवत्वमिवकल्पयत् ॥ रूपमत्यजदेवाच्छंमनस्तामिवगच्छति ॥ १७ ॥ इदंसर्वं तनोतीवतच्चखात्मकमेवखम् ॥ भवतीवजगद्रूपंविकारीवाविकार्यपि ॥१८॥ मनएवस्वयंब्रह्मासर्गस्यह दिस्थितः ॥ करोत्यविरतंसर्वमजस्रंसंहरत्यपि ॥ १९ ॥ पृथ्व्यादिरहितोयस्मिन्मनोहृद्यंगवर्जिते ॥ अन्यद्भात्रिजगद्भातियथास्वप्नेनिराकृति ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मही चेतन होनेसे निजआत्मामें जीवभावकी कल्पना करताहुआ तथा अपने अतिनिर्मल चित्स्वरूपको न त्यागताहुवाभी मनोभावको प्राप्त होता हुआ भासताहै ॥ १७ ॥ स्वयं चिदाकाशरूपही समष्टि मनरूपसे इस संपूर्ण जगत्स्वरूपका विस्तार करताहै, तथा स्वयं निर्विकाररूप होकरभी विकारीके तुल्य जगत्स्वरूप होताहै ॥ १८ ॥

समष्टिमनरूप ब्रह्मा इस संसारसृष्टिके हृदयमें स्थित निरंतर सब सृष्टिको रचताहै, और इसका संहारभी वह स्वयं करताहै ॥ १९ ॥ पृथिवीआदिसे रहित समष्टिमनरूप ब्रह्मा अवयवशून्य जिस जगत्के हृदयमें स्थित है उससे भिन्नके समान त्रिलोकरूपसे ऐसे भासते हैं, जैसे निराकार चिदात्मा स्वप्नमें स्वाप्निकपदार्थरूपसे भासताहै ॥ २० ॥

देहरूपजगद्रूपैरहमेकमनाकृति ॥ मनस्तिष्ठाम्यनंतात्मबोधाबोधंपराभवम् ॥ २१ ॥ नेहपृथ्व्यादिनोदेहोनचैवान्यास्तिदृश्यता ॥ जगत्तयाकेवलंखंमनःकचकचायते ॥ २२ ॥ विचार्यदृष्टेचैतदपिनकिंचिदपिविद्यते ॥ केवलंभातिचिन्मात्रमात्मनात्मनिनिर्घनम् ॥ २३ ॥ यतोवाचोनिवर्ततेतूष्णींभावोवशिष्यते॥ व्यवहार्यपिखात्मैवतद्वत्तिष्ठतिमूकवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—अद्वितीय निराकार तथा सर्वत्र पूर्णचित्रूपसे होकरभी निजअविद्यासे पूर्ण चित्स्वभावसे च्युतके समान भावको प्राप्त होकर वह समष्टि मन (ब्रह्मा) अहंकारस्वरूपसे शरीर तथा जगत्के स्वरूपोंसे अनन्तस्वरूप होकर जड तथा चेतन जगत्स्वरूपसे स्थित है ॥ २१ ॥ और यथार्थमें तो न पृथिवीआदि है, न देह है, और न चित्से पृथक् कोई दृश्यरूप है किन्तु चिदाकाशही कल्पित समष्टिमनरूप होकर कल्पित जगत्रूपसे स्फुरित होरहाहै ॥ २२ ॥ और सूक्ष्मविचारदृष्टिसे तो यह कल्पितभी जगत्का स्फुरण नहीं है, किंतु सर्वथा केवल चिद्घन निरतिशय आनन्दस्वरूप आत्माही निजआत्मामें प्रकाश करताहै ॥ २३ ॥ जहां वाणी तथा मन नहीं पहुंचते उस निरतिशय आनन्दरूप आत्माका लाभ होनेपर केवल मौनभाव (निश्चल आत्मरूपता) ही शेष रहताहै, और शुद्ध सच्चिद्आत्मरूपी संसारके व्यवहारमें लीन होनेपरभी निजस्वरूपमें ज्योंका त्यों मूकवत् चिदाकाशरूपसे स्थिर रहताहै ॥ २४ ॥

अनंतापारपर्यंताचिन्मात्रपरमेष्ठका ॥ तूष्णींभूत्वाभवत्येषप्रबुद्धःपुरुषोत्तमः ॥ २५ ॥ अबुद्धिपूर्वंद्रवतोयथावर्तादयोंभसि ॥ क्रियंतेब्रह्मणातद्वच्चित्तबुद्ध्यादयोजडाः ॥ २६ ॥ अबुद्धिपूर्ववातेनक्रियतेस्पंदनं यथा ॥ अनन्यदेवंबुद्ध्यादिक्रियतेपरमात्मना ॥ २७ ॥ अनन्यदात्मनोवायोर्यथास्पंदनमव्ययम् ॥ अनन्यदात्मनस्तद्वच्चिन्मात्रंपरमात्मनः ॥ २८ ॥

अर्थ—अनन्त अपार तथा परमप्रेमास्पद वह चिन्मात्ररूपता निजस्वरूपमें प्रबुद्ध होनेपर निश्चल होके स्वयं पुरुषोत्तम (ब्रह्म) रूपसे स्थित रहती है ॥ २५ ॥ जैसे जलमें जलसे भिन्न आवर्ततरंगादिकी कल्पना आत्मामें अज्ञानसे होती है ऐसेही ज्ञानसे नाशके योग्य अविद्या (माया) से आवृतही ब्रह्म जड चित्त बुद्धिआदि जगत्की कल्पना करताहै ॥ २६ ॥ तथा अज्ञानसे आवृत ब्रह्म वायुभावको प्राप्त होके स्पन्दआदिकी कल्पना करताहै ऐसेही अविद्यावृत परमात्मा अपनेसे अभिन्नरूपही बुद्धिआदि जगत्की कल्पना करताहै ॥ २७ ॥ जैसे वायुके स्वरूपसे उसका स्पन्द (संचलन) अभिन्न तथा अविनाशी आत्मारूपही है, ऐसेहि चिदाभासरूप जीवभी साक्षी परमात्मासे अभिन्न चिन्मात्ररूपही है ॥ २८ ॥

चिद्व्योमब्रह्मचिन्मात्रमात्माचितिमहानिति ॥ परमात्मेतिपर्यायाज्ज्ञेयाज्ञानवतांवर ॥२९॥ ब्रह्मोन्मेषनिमेषात्मस्पंदास्पंदात्मवातवत् ॥ निमेषोयादृगेवास्यससमुन्मेषस्तथाजगत् ॥ ३० ॥ दृश्यमस्यसमुन्मेषोदृश्याभावोनिमेषणम् ॥ एकमेतन्निराकारंतद्द्वयोरप्युपक्षयात् ॥ ३१ ॥ निमेषोन्मेषयोरेकरूपमेवपरं मतम् ॥ अतोस्तिदृश्यंनास्तीतिसदसच्चसदाचितिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी! इसहेतुसे (सब चिद्रूप होनेसे) चिदाकाश, ब्रह्म, चिन्मात्र, आत्मा (जीव) चेतन, महान् तथा परमात्मा ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं ॥ २९ ॥ अविद्यासे आवृत ब्रह्म नेत्रके सदृश उन्मेष वा निमेषस्वरूप अथवा वायुके तुल्य स्पन्द वा अस्पन्द (संचलन वा स्थिर) स्वरूप है, जैसा इसका निमेष (स्फुरणरूप न होना) प्रलय है ऐसेही इसका उन्मेष (स्फुरणरूप होना) जगत्की सृष्टि है ॥ ३० ॥ इस परमात्माका समुन्मेष दृश्य है और निमेष दृश्यका अभाव है, इससे यह सिद्ध हुआ जैसे उन्मेष निमेष (पलकका गिराना तथा न गिराना) दोनों एक नेत्रगोलका स्वरूप है ऐसेही उत्पत्ति तथा प्रलय एक निराकार चिन्मात्रही है, क्योंकि दोनों उसीके स्वरूपमें लीन होजाते हैं ॥ ३१ ॥ उन्मेष तथा निमेषका एकही परमरूप है, और दृश्यके भावअभावकी चेतनसेही स्फुरणा होनेसे दृश्य सत् तथा असत् उभयरूप है और चेतन तो सदा एक सत्तारूपही है ॥ ३२ ॥

निमेषोनान्यउन्मेषान्नोन्मेषोपिनिमेषतः ॥ ब्रह्मणःसर्गवपुषोनिमेषोन्मेषरूपिणः ॥ ३३ ॥ तद्यथास्थितमेवेदंविद्धिशांतमशेषतः ॥ अजातमजरंव्योमसौम्यंसमसमंजगत् ॥ ३४ ॥ चिदचित्यात्मकंव्योम

रूपंकचकचायते ॥ चिन्मात्रमतदिदंभातिजगदित्येवतद्वपुः ॥ ३५ ॥ ननश्यतिनचोत्पन्नंदृश्यंनाप्यनुभूयते ॥ स्वयंचमत्करोत्यंतःकेवलंकेवलैवचित् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे पलकसहित नेत्ररूप होनेसे निमेष उन्मेषसे भिन्न नहीं हैं और उन्मेपभी निमेषसे भिन्न नहीं है, ऐसेही मायाशबलित सर्गप्रलयरूप ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति और नाश भिन्न नहीं हैं ॥ ३३ ॥ इस हेतुसे अजन्मा, अजर, अमर, सौम्य, तथा शान्त, उन्मेषनिमेषसमानरूप चिदाकाश ब्रह्मके समानही इस संपूर्ण यथास्थित जगत्को तुम जानो ॥ ३४ ॥ जैसे आकाश अपनेमें कल्पित नीलरूपसे स्फुरताहै, ऐसेही चिद्भी अचेतन जगत्रूपसे स्फुरती है, इसलिये जो कुछ भासताहै वह जगत्शरीरधारी चिन्मात्र ब्रह्मही है ॥ ३५ ॥ न तो यह दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ, न नष्ट होताहै, और न ज्ञानदृष्टिमें अनुभूत होताहै, किन्तु केवल चित्स्वरूपही निजआत्मामें स्वयं यह जगत्स्वरूपका चमत्कार दर्शाताहै ॥ ३६ ॥

महाचिद्व्योममणिभादृश्यनाम्नीनिजाकरात् ॥ अनन्यान्येवभातापिभानुभासइवोष्णता ॥ ३७ ॥ सुषुप्तंस्वप्नवद्भातिभातिब्रह्मैवसर्गवत् ॥ सर्वमेकंशिवंशांतंनानेवापिस्थितंस्फुरत् ॥ ३८ ॥ यद्यत्संवेद्यते याहक्सद्वासद्वायथायदा ॥ तथानुभूयतेताहक्तत्सदस्त्वसदस्तुवा ॥ ३९ ॥ अन्यथानुपपत्त्याचेत्कारणं परिकल्प्यते ॥ तत्स्वप्नाभोजगद्भावादन्यथानोपपद्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—महाचिदाकाशरूप मणिकी प्रभास्वरूप यह दृश्य जगत्नामकी सत्ता भिन्नरूपसे भासनेपरभी निज उत्पत्तिस्थान मणिसे अन्य ऐसे नहीं है जैसे सूर्य्यकी प्रभासे उष्णता ॥ ३७ ॥ जैसे सुषुप्तिही स्वप्नरूपमें परिणत होती है ऐसेही वही सृष्टिरूपमें परिणत है, अतः नानारूपसे स्फुरितभी यह संपूर्ण जगत् एक शान्त शिव ब्रह्मरूपही है ॥ ३८ ॥ जिससमय जैसा भाव वा अभावरूपसे चित्से प्रकाशित होताहै उससमय वैसाही चाहै वह सत् वा असत् हो चिदाभाससे अनुभूत होताहै ॥ ३९ ॥ यदि जगत् जडकी अन्यरीतिसे असिद्धि होनेसे प्रकृति वा परमाणु कारणकी कल्पना करो तो वह स्वप्नतुल्य जगत्में युक्तियुक्त नहीं है, अर्थात् स्वप्नमें जैसे अन्यकारणके अभावसे आत्माही जगत्रूप धारण करताहै, ऐसेही सृष्टिकी आदिमेंभी वही जगत्रूप धारण करताहै ॥ ४० ॥

प्रमातीतात्पराद्विश्वमनन्यदुदितंयतः ॥ प्रमातीतमिदंचैवकिंचिन्नाभ्युदितंततः ॥ ४१ ॥ यस्ययद्रसिकंचित्तंतत्तथातस्यगच्छति ॥ ब्रह्मैकरसिकंतेनमनस्तत्तांसमश्नुते ॥ ४२ ॥ यच्चित्तोयद्गतप्राणोजनोभवतिसर्वदा ॥ तत्तेनवस्त्वितिज्ञानंजानातितदसौस्फुटम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मैकरसिकंयत्स्यान्मनस्तत्तद्भवेत्क्षणात् ॥ यस्ययद्रसिकंचेतोबुद्धंतेनतदेवसत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्रमाणोंके अविषय परमात्मासे अभिन्न यह जगत् प्रादुर्भूत है अतएव यह संसारभी प्रमाणोंका अगोचर अनिर्वचनीय है, इससे यहभी सिद्ध हुआ कि कुछ नहीं उत्पन्न हुआ, किन्तु अद्वैत परमात्माही है ॥ ४१ ॥ और जिसका चित्त जिस ओर रसिक है वह उसीको अनुभव करताहै, इसीसे जिनका मन ब्रह्ममें रसिक (अनुरक्त) है उनका मन जगत्को ब्रह्मरूपही अनुभव करताहै ॥ ४२ ॥ जिस जनका चित्त तथा प्राण जिसमें सदा अनुरक्त रहताहै उस प्राणीने उसीको सत्यरूपसे जानाहै और उसीको स्पष्टरूपसे वह जीव अनुभव करताहै ॥ ४३ ॥ जो मन केवल ब्रह्ममें अनुरक्त रहताहै वह क्षणभरमेंही ब्रह्मरूप होजाताहै, अतः जिसका चित्त जिसमें अनुरक्त है उसने उसी पदार्थको सत्य जानाहै ॥ ४४ ॥

विश्रांतंयस्यवैचित्तंजंतोस्तत्परमार्थसत् ॥ व्यवहृत्यैकरोत्यन्यत्सदाचारादतद्रसम् ॥ ४५ ॥ द्वित्वैकत्वादिकलनानेहकाचनविद्यते ॥ सत्तामात्रंचहृगियमितश्चेदलमीक्ष्यते ॥ ४६ ॥ अदृश्यदृश्यसदसन्मूर्त्तामूर्त्तदृशामिह ॥ नैवास्तिनवनास्त्येवकर्त्ताभोक्ताथवाक्वचित् ॥ ४७ ॥ इदमित्थमनाद्यंतंजगत्पर्यायमात्मनि ॥ ब्रह्मैकघनमाशांतंस्थितंस्थाणुरिवाध्वनि ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस प्राणीका चित्त जहां दृढनिश्चयसे विश्रान्त है उसकेलिये वही परमार्थ और सत् है, अतएव ब्रह्मवेत्ता वा नास्तिक जो यज्ञ, दान, तपआदि करताहै वह केवल व्यवहार और सदाचार जानकर अनिच्छापूर्वक करताहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! इस मेरे कथित युक्तिसे यदि जगत्को देखोगे तो वह सब तुमको पूर्ण ब्रह्मसत्तामात्रही अनुभूत होगा क्योंकि इस ब्रह्मदृष्टिमें द्वित्व एकत्वआदि कोईभी कल्पना नहीं है ॥ ४६ ॥ जिनको यह दृढ निश्चय है कि अदृश्य ब्रह्मही सत्, असत्, मूर्त तथा अमूर्त दृश्य जगत्रूप धारणकरताहै उनको जीवका कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं भासता और न उसका अभावही भासताहै, क्योंकि केवल ब्रह्ममात्र शेष रहनेसे किसमें किसमें कर्तृत्वआदिका आरोप

करें ॥ ४७ ॥ अनादि, अनन्त, सर्वथा शान्त तथा चिद्घन ब्रह्महि निजआत्मामें इस संपूर्ण जगत्पर्य्यायसे ऐसे स्थित है जैसे अज्ञपथिकोंको चोरके भ्रमादियोग्य बनमार्गमें स्थाणु ॥ ४८ ॥

यदेवब्रह्मबुद्ध्यादितदेवैतन्निरंजनम् ॥ यदेवगगनंशांतंशून्यंविद्धितदेवतत् ॥ ४९ ॥ केशोंडकादयोव्योम्नियथासदसदात्मकाः ॥ द्वितामिवागताभांतिपरेबुद्ध्यादयस्तथा ॥ ५० ॥ तथाबुद्ध्यादिदेहादिवेदनादिपरापरे ॥ अनेकान्यप्यनन्यानिशून्यत्वानियथांबरे ॥ ५१ ॥ सुषुप्ताद्विशतःस्वप्नमेकनिद्रात्मनोयथा॥ सर्गस्थस्यापिनद्वित्वंनैकत्वंब्रह्मणस्तथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो समष्टि मन हिरण्यगर्भआदि लेके संपूर्ण जगत् है उसीको तुम निरंजन ब्रह्म जानो और ऐसेही जो शान्त निर्मल आकाश है उसीको तुम शून्यता जानो ॥ ४९ ॥ जैसे आकाशमें केशनीलताआदि सदसद्रूप उससे द्वैत (भिन्न) रूपसे भासते हैं, ऐसेही परब्रह्ममें बुद्धिआदि जगत् हैं ॥ ५० ॥ जैसे आकाशमें घटपटादिके संपूर्ण अभाव शून्यरूपही हैं ऐसेही सर्वसामान्यसत्तारूप ब्रह्ममें बुद्धि देहआदिके अनुभव अनेकरूप भासनेपरभी ब्रह्मसे अभिन्नरूपही हैं ॥ ५१ ॥ जैसे सुषुप्तिसे स्वप्नरूपमें प्रवेशकरनेवाले एकनिद्रारूप आत्माका द्वित्व एकत्वरूपसे निर्वचन नहीं होता ऐसेही प्रलयसे सर्गस्थ (सृष्टिरूपमें स्थित) ब्रह्मकाभी द्वित्व वा एकत्वरूपसे निरूपण नहीं होसकता ॥ ५२ ॥

एवमेवकचत्यच्छछायेयंस्वामहाचितेः ॥ नचकिंचननामांगकचत्यच्छैवमास्थिता ॥ ५३ ॥ चिद्व्योम्निहिचिदाकाशमेवस्वममलंवपुः ॥ चेत्यंदृश्यमिवाभातिस्वप्नेष्विवयथास्थितम् ॥ ५४ ॥ अन्यथानुपपत्त्यार्थकारणाभावतःस्वतः ॥ चिद्व्योमात्मानमेवादौदृश्यमित्येवपश्यति ॥ ५५ ॥ सर्गादावेवखात्मैवदृश्यंभातिनिराकृति ॥ संभ्रमःस्वप्नसंकल्पमिथ्याज्ञानेष्विवाभितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी! महाचेतन (ब्रह्म) की निर्मल कान्तिही इसप्रकार जगत्स्वरूपसे स्थित है, और यथार्थमें निज शुद्ध निर्मलरूपसे स्थित किंचित्रूपसेभी नहीं स्फुरती है ॥ ५३ ॥ चिदाकाशमें चिदाकाश शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रहरूपसे स्थितभी इस दृश्य जगत्स्वरूपसे ऐसे भासताहै जैसे स्वप्नमें ॥ ५४ ॥ सृष्टिके आरंभमें ब्रह्मसे अतिरिक्त सत्कारणके अभावसे जगत्की सिद्धि किसीप्रकार कोई नहीं करसकता इस हेतुसे सृष्टिकी आदिमें परमात्मा निजआत्मचिद्रूपकोही दृश्य जगत्स्वरूपसे अनुभव करताहै ॥ ५५ ॥ मूर्तिमान् आकारसे चिदाकाश परमात्माही दृश्य जगदाकार भासताहै, और वह निराकारका जगत्रूपसे भान स्वप्नसंकल्प तथा मिथ्या ज्ञानोंके समान सर्वथा भ्रमरूपही है ॥ ५६ ॥

स्वप्नवत्तचनिर्धर्ममनागपिनभिद्यते ॥ विकार्य्यपिसधर्मापिचिद्व्योम्नोवस्तुनोमलात् ॥ ५७ ॥ तत्स्वप्ननगराकारंसधर्माप्यसधर्मकम् ॥ शिवादनन्यमेवेत्थंस्थितमेवनिरंतरम् ॥ ५८ ॥ दृश्यंस्वप्नाद्रिवत्स्वच्छंमनागपिनभिद्यते ॥ तस्माच्चिद्व्योमचिद्व्योम्नःशून्यत्वंगगनादिव ॥ ५९ ॥ यदेवतत्परंब्रह्मसर्वरूपविवर्जितम् ॥ तदेवेदंतथाभूतमेवसर्गतयास्थितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—स्वप्नवत् यह संसारभी सर्वथा धर्मरहित है क्योंकि भ्रममात्र होनेसे इसमें कोई धर्म नहीं है, और अविद्यारूपी मलसे इस आत्मवस्तु चिदाकाशके विकारी तथा धर्मसहितभी आकार है ॥ ५७ ॥ स्वप्नाकार यह संसार देखनेमें अनेक धर्मसहित होनेपरभी धर्मरहित ह, और अधिष्ठान सन्मात्र परमात्मासे अभिन्नरूप है, तथा अज्ञानियोंकी दृष्टिमें इसीप्रकार जगत्के आकारसे निरंतर स्थित है ॥ ५८ ॥ स्वप्नके पर्वतके तुल्य यह जगत्रूप दृश्य निजअधिष्ठान चेतनसे किंचित्भी भिन्न नहीं है, अतः शेष चिन्मात्र आकाशरूप जगत्की सूक्ष्मता आकाशसेभी अतिसूक्ष्म सिद्ध हुई ॥ ५९ ॥ सर्वरूपरहित जो परब्रह्म ह वही निजशुद्धरूपसे सृष्टिरूपसे स्थित है ॥ ६० ॥

स्वप्नेनुभूयतेचैतत्स्वप्नेह्यात्मैवभासते ॥ पुरादित्वेननत्वसत्पुरादिरचितंतदा ॥ ६१ ॥ स्वप्नेचप्रत्यभिज्ञायाःसंस्कारस्यस्मृतेस्तथा ॥ नसत्तातदिदंदृष्टमित्यर्थस्यात्यसंभवात् ॥ ६२॥ तस्मादेतत्त्रयंत्यक्त्वा यद्भानंब्रह्मसंविदः ॥ तस्यदृष्टार्थसादृश्यान्मूढैःस्मृत्यादितोहिता ॥ ६३ ॥ यथायत्रैवलहरीवारिण्येतिपुनःपुनः ॥ तत्रैवैतितथातद्वदनन्याखेपरेजगत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—स्वप्नमें जो नगरआदिरूपसे अनुभूत होताहै वह आत्माही उन २ पदार्थरूपसे भासताहै, और यथार्थ नगरादि वह नहीं रचता, किन्तु निजअविद्याशक्तिसे वैसा भासताहै ॥ ६१ ॥ स्वप्नमें हृदय कण्ठ नाडी छिद्रआदि देशोंमें गृहादिपदार्थोंकी सत्ताका सर्वथा असंभव होनेसे सादृश्य, संस्कार तथा स्मृतिभी नहीं होसकती अतः यह भ्रममात्रही है ॥ ६२ ॥ इस हेतुसे प्रत्यभिज्ञा, संस्कार तथा स्मृति इन तीनोंको त्यागकर केवल ब्रह्मसंविद् निद्रादिदोषसे स्वप्नमें अन्य भासती है उसी स्वप्नका सादृश्य इस जाग्रत् जगत्मेंभी है, और संस्कार स्मृतिआदि मूढोंने कल्पित कि-

याहै ॥ ६३ ॥ जैसे जलमें तरंग तथा दीपककी ज्वाला उसी स्थानपर अन्य २ आनेपरभी वही है ऐसा सादृश्यज्ञान होताहै, ऐसेही ब्रह्मसे अभिन्नरूप अनेक भ्रान्तिसिद्ध जगत् वेही हैं ऐसा भान होताहै ॥ ६४ ॥

विधयःप्रतिषेधाश्चसर्वएवसदैवच ॥ विभक्ताश्चविमिश्राश्चपरेसंतिनसंतिच ॥ ६५ ॥ तस्मात्सद्ब्रह्म सर्वात्मकिमिवात्रनविद्यते ॥ सैवसत्तैवसर्वात्मचैतदप्येतदात्मकम् ॥ ६६ ॥ भ्रांतस्यभ्रमणंभूमेर्नभू भ्रांतैववागणैः ॥ नशाम्यतिज्ञात्रुरपितथाभ्यासंविनात्रदृक् ॥ ६७ ॥ शास्त्रस्यास्यतुयन्नामवादनंतद्विना परः ॥ अभ्यासोदृश्यसंशांत्यैनभूतोनभविष्यति ॥ ६८ ॥

अर्थ—कल्पनामात्र होनेसे उस परमात्मामें अन्तरिक्ष पृथिवीआदि ओतप्रोत हैं इत्यादि विधि तथा यहां नानाभाव नहीं इत्यादि निषेध, ये सब विभक्त तथा मिलित अधिष्ठानरूपसे ब्रह्म हैं निजरूपसे नहीं है ॥ ६५ ॥ इस हेतुसे सद्ब्रह्म सर्वात्मा होनेसे निजमायाशक्तिसे क्या नहीं होसकता वह सर्वरूप ब्रह्मसत्ताही सद्रूप तथा अनेक जगद्रूपभी है ॥ ६६ ॥ सर्वात्मिक चित्सत्तासे सब वादियोंका समावेश होताहै और जैसे क्रीडामें भ्रमणकरतेहुये बालककी दृष्टिमें वृक्ष, पर्वत, नदीआदि समूहसहित पृथिवी भ्रमण करतीहुई भासती है न कि अन्यदृष्टिमें ऐसेही जगत्भ्रमभी अज्ञकी दृष्टिमें है और ज्ञानीकीभी आत्मस्वरूपके दृढ अभ्यासके विना भ्रमकी दृष्टि शांत नहीं होती ॥ ६७ ॥ और इस मोक्षोपाय नाम शास्त्र (वेदान्त) के सद्गुरुको सेवादिद्वारा वशीभूतकरके उसके मुखसे प्रतिपादनपूर्वक श्रवण मननआदि अभ्यासके विना इस दृश्यकी शान्तिके अर्थ अन्य उपाय न हुआ और न होगा ॥ ६८ ॥

नजीवन्नमृतंचित्तंरोधमायातिसंसृतेः ॥ अविनाभाविदेहत्वाद्बोधात्त्वेतन्नपश्यति ॥ ६९ ॥ सर्वदैवाविनाभाविचित्तंदृश्यशरीरयोः ॥ इहचामुत्रचैतस्यबोधांतेशाम्यतःस्वयम् ॥ ७० ॥ चित्तदृश्यशरीराणि त्रीणिशाम्यंतिबोधतः ॥ पवनस्पंदसैन्यानिकारणाभावतोयथा ॥ ७१ ॥ कारणंमौर्ख्यमेवास्यतच्चास्मा देवशास्त्रतः ॥ किंचित्संस्कृतबुद्धीनांवाचितादेवशाम्यति ॥ ७२ ॥

अर्थ—जाग्रत् स्वप्नमें जीवित सुषुप्तिमें लय होनेसे मृतवत् संसारका अनुगामी वह चित्त योगादिके अभ्याससे निरुद्ध नहीं होता, किन्तु इस शास्त्रके अभ्याससे उत्पन्न ज्ञानसे संसारका बाध होनेसे उसको चित्त नहीं देखता ॥ ६९ ॥ जैसे चित्त संसारका सहचारी है ऐसेही संसारभी चित्तका सहचारी है, चित्त तथा संसार दोनों दृश्यके देह हैं इस शास्त्रके अभ्यासजनित बोधसे प्रतिबन्धक न होनेसे इसी जन्ममें, अन्यथा जन्मान्तरमें बोधसे दोनों (चित्त तथा संसार) स्वयं शान्त होजाते हैं ॥ ७० ॥ ज्ञानके होनेसे अविद्यारूप कारणके अभावसे चित्त दृश्यजगत् तथा शरीर तीनों ऐसे शांत होजाते हैं जैसे शुक्रोदयास्तादि कारणके न होनेसे पवनस्पन्दप्रेरित मेघ सैन्य ॥ ७१ ॥ और चित्त दृश्यादिका कारण तो ब्रह्मज्ञानप्रतिबन्धक अविद्याही है सो किंचित् संस्कृत वेत्ताओंके केवल इस शास्त्रके पढनेसे शांत होजाती है ॥ ७२ ॥

अबुद्धमुत्तरग्रंथात्पूर्वपूर्वंहिबुद्ध्यते ॥ ग्रंथंपदपदार्थज्ञःखेदवान्ननिवर्तते ॥ ७३ ॥ उपायमिदमेवातोविद्धिशास्त्रंभ्रमक्षये ॥ अनन्यसाधारणतांगतमित्यनुभूयते ॥ ७४ ॥ तस्मादस्मान्महाशास्त्राद्यथाशक्तिविचारयेत् ॥ भागौद्वौभागमेकंवातेनदुःखक्षयोभवेत् ॥ ७५ ॥ आरुषेयमिदमितिप्रमादाच्चेन्नरोचते ॥ तदन्यदात्मविज्ञानशास्त्रंकिंचिद्विचारयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो विषय प्रथम पूर्वग्रन्थके पढनेसे नहीं ज्ञातहोता वह पूर्व २ विषय उत्तरग्रन्थके पाठसे पदपदार्थको जानजाताहै यदि वह (पढनेवाला) खेदयुक्त होके इसके पढनेसे निवृत्त न होजाय ॥ ७३ ॥ इसलिये अन्यग्रन्थोंसे विलक्षण यह मोक्षोपाय नाम (यो० वा०) शास्त्रही भ्रमके नाशार्थ उत्तम उपाय है ऐसा तुम जानो ॥ ७४ ॥ इस हेतुसे इस महाशास्त्र (यो० वा०) के यथाशक्ति पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध दोनों भाग अथवा एकही भाग पूर्णरीतिसे विचारै तो कि दुःखका नाश होताहै ॥ ७५ ॥ यह शास्त्र (यो० वा०) वेदमूलक है तो वेद (उपनिषद्भाग) ही क्यों न विचारैं, इस प्रमादसे यदि किसीको यह न रुचै तो वह आत्मज्ञानदायक उपनिषद् तथा सूत्र भाष्यादि शास्त्रकोही विचारै ॥ ७६ ॥

अनर्थेनाविचारेणवयःकुर्यान्नभस्मसात् ॥ बोधेनज्ञानसारेणदृश्यंकर्तव्यमात्मसात् ॥ ७७ ॥ आयुषः क्षणएकोपिसर्वरत्नैर्नलभ्यते ॥ नीयतेतद्वृथायेनप्रमादःसुमहानहो ॥ ७८ ॥ अनुभूतमपिचनोसद्दृश्य मिदंद्रष्टृसहितमपि ॥ स्वप्ननिजमरणबांधवरोदनमिवसदिवकचितमपि ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थगीतास्वद्वैतयुक्तिर्नामपंचसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७५ ॥

अर्थ—अनर्थप्रद अविचारसे अपने आयुको नष्ट न करैं किन्तु श्रवण मननआदि उपायद्वारा प्राप्त तत्वज्ञानसे अपने बन्धभूत इस दृश्यको आत्मरूप संपादन करे ॥ ७७ ॥ निजआयुको यदि एकक्षणभी वृथा व्यतीत किया-जाय तो वह अनन्तरत्नोंकी राशिसेभी नहीं प्राप्त होता, अतः समयको आत्मविचारके बिना विताना महान् प्रमाद है ॥ ७८ ॥ हे रामजी! अन्तःकरणोपहित जीव चेतनद्रष्टाकेसहित प्रत्यक्ष अनुभूतभी यह जगत्दृश्य ऐसे सत् नहीं है जैसे स्वप्नमें निजमरणसे सद्रूपसे दृष्टभी बान्धवआदिका रोदन ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे परमार्थगीतास्वद्वैतयुक्तिर्नामपंचसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७५ ॥

षट्सप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७६ ॥

सृष्टिकीआदिमें अनेक ब्रह्मांड चेतनरूप अणुमें स्वप्नवत् भासते हैं, इस विषयमें ब्रह्मासे कथित ब्रह्माण्डा-ख्यानका वर्णन इस १७६ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ जगंतिसंत्यसंख्यानिभविष्यंतिगतानिच ॥ तत्कथाभिःकथंब्रह्मन्प्रबोधयसिमामि मम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगत्स्वप्नेषुशब्दार्थसंबंधोवगतस्त्वया ॥ ननामनचलोकेनव्यर्थंतत्कथ नंततः ॥२॥ याकथावगतात्मभ्यांशब्दार्थाभ्यांनिगद्यते ॥ बुद्ध्यतेसेतरानांतःसैवेहव्यवहारिणी ॥ ३ ॥ यदाविदितवेद्यःसंस्त्रिकालामलदर्शनः ॥ भविष्यसितदातानिप्रत्यक्षेणैवभोत्स्यसे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! असंख्य ब्रह्मांड जो बीते तथा होंगे उनके बाधकी कथाओंसे आप मुझे बन्धका अभाव कैसे बोधन करते हैं, क्योंकि भूत तथा भविष्यत् ब्रह्मांडोंकी तो अप्रतीतिहिसे बन्धका अभाव सिद्ध है, इसलिये वर्तमान जगत्काही बाधबोधन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! यदि इस शास्त्र (यो० वा०) के श्रवण मननआदिसे तुमने अनेक जगत्रूप स्वप्नोंमें शब्दार्थोंका वाचकभावसंबन्धका निश्चय किया है तो भूतभविष्यत् ब्रह्मांडोंका कथन व्यर्थ नहीं है, क्योंकि पदपदार्थसंबन्ध व्याप्तिग्रह तथा दृष्टान्तकी सिद्धिआदि अतीतआदि व्यवहारके आधिन है, उसके बिना अध्यात्मविचारशास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं होसकती ॥ २ ॥ ज्ञातशब्दार्थोंसे जो कथा कहीजाती है वह अन्तःकरणमें अच्छीतरह समझमें आती है, और उसीसे लोकमें व्यवहार होता है अन्यसे नहीं ॥ ३ ॥ हे रामजी! जब तुम दिव्यदृष्टि त्रिकालज्ञ तत्ववेत्ता होजाओगे तब स्वयं तथा वर्तमान निजस्वरूपको सर्वत्र द्रष्टा तथा दृश्यरूप अनुभव करनेसे भूतभविष्य तथा वर्तमान ब्रह्मांडोके अभावको प्रत्यक्षरूपसे जानजाओगे ॥ ४ ॥

स्वप्नेचिन्मात्रमेवाद्यंस्वयंभातिजगत्तया ॥ यथातथैवसर्गादौनात्रान्यदुपपद्यते ॥ ५ ॥ अणावणावसं ख्यानितेनसंतिजगंतिखे ॥ तेषांतान्व्यवहारौघान्संख्यातुंकइवक्षमः ॥ ६ ॥ अत्रैवमेपुराप्रोक्तंमत्पित्रा पद्मजन्मना ॥ पद्मरेणुमताख्यानंशृणुतत्कथयामिते ॥७॥ पुरापृष्टोमयाब्रह्माजगज्जालमिदंकियत् ॥ क वाभातीतिवदमेब्रह्मोवाचततःसमाम् ॥ ८ ॥

अर्थ – स्वप्नमें जैसे सबका आदि चिन्मात्रही जगत्स्वरूपसे भासताहै, ऐसेही सृष्टिकी आदिमेंभी वही पर-मात्मा संसाररूपसे भासताहै, यहांपर चित्से भिन्न अन्य नहीं होसकता ॥ ५ ॥ उस परमात्माकी मायाशक्तिसे एक २ अण्डमें असंख्य ब्रह्मांड हैं, इस हेतु उन ब्रह्मांडोंके व्यवहारसमूहोंकी संख्या करनेमें कौन समर्थ है ॥ ६ ॥ कमलकी कलियोंसे व्याप्तशरीर मेरे पिता (ब्रह्माजी) ने इस (अणु २ में असंख्य ब्रह्मांड हैं) विषयमें जो आख्यान कहा है वह तुम सुनो मैं कहताहूं ॥ ७ ॥ पूर्वकालमें अपने पिता ब्रह्माजीसे मैंने पूंछा कि हे भगवन्! यह जगत्जाल कितना है, और कहां भासताहै! तब मेरे पिता मुझसे बोले ॥ ८ ॥

॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ ब्रह्मैवेदंमुनेसर्वंजगदित्यवभासते ॥ सतामनंतंसत्वेनजगत्त्वेनासतामपि ॥ ९ ॥ शुभंममेदमाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ ब्रह्मांडपिंडइत्युक्तंब्रह्मांडाख्यानमेवच ॥ १० ॥ अस्तिखेखा दनन्यात्माचिद्व्योमपरमाणुकः ॥ शून्यरूपमिवाकाशेशुद्धःस्पंदइवानिले ॥ ११ ॥ सोपश्यदात्मनास्व प्नइवजीवत्वमात्मनि ॥ शून्यरूपमिवाकाशंपवनस्पंदनंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्माजी बोले कि–हे मुने! ब्रह्मही संपूर्णजगत्रूपसे भासताहै, तत्वज्ञानियोंको तो ब्रह्मसत्तारूपसे अनन्त ब्रह्म भासताहै और अज्ञानियोंको जगत्रूपसे ॥ ९ ॥ कर्णके भूषणरूप इस शुभआख्यानको मुझसे तुम सुनो, इसीको ब्रह्मांडाख्यान तथा ब्रह्मपिण्डआख्यानभी कहते हैं ॥ १० ॥ आकाशमें शून्य, वा वायुमें शुद्धस्पन्दके सदृश निजस-

त्तामात्रसे जगत्की चेष्टाका कारण चिदाकाशरूप परमाणु आकाशसे अभिन्नरूप आकाशमें है ॥ ११ ॥ जैसे आकाश निजरूपमें शून्य, वायु स्पन्दका अनुभव करताहै ऐसेही उस चिदाकाशरूप परमाणुने स्वप्नके तुल्य अपने चिद्रूपमें समष्टिजीवको देखा ॥ १२ ॥

आकाशरूपमजहदेवजीवस्ततःस्वयम् ॥ अपश्यदहमित्येवरूपमाकाशरूपकम् ॥ १३ ॥ अहंकारस्त्वहंबुद्धिरित्येवापश्यदात्मनि ॥ एकनिश्चयनिर्माणमयीमायानुरूपिणी ॥ १४ ॥ बुद्धिर्मनोहमित्येवं स्वप्नेपश्यदसन्मयम् ॥ नमयंत्यात्मनात्मानमविकल्पंविकल्पनैः ॥ १५ ॥ अपश्यत्तन्मनःस्वप्नेदेहेपंचेंद्रियंततः ॥ अनाकारंघनाकारंस्वप्नाद्रित्वमिवाज्ञधीः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने अविकारी, पूर्ण, सूक्ष्म तथा असंगचिद्रूपको न त्यागताहुवां उस चित् परमाणु समष्टिजीवने यह अनुभव किया कि मैं आकाशके सदृश अहंकार हुं ॥ १३ ॥ और उस अहंकारने अपनेमें बुद्धिरूप देखा, जो (बुद्धि) एक निश्चयरूप रचनामयी तथा माया (असत्पदार्थका भ्रम करनेवाली माया) पूर्ण है ॥ १४ ॥ अविकल्प आत्माका विकल्पाभासोंके आरोपणोंसे अधःपात करतीहुई उस बुद्धिने स्वप्नके समान अपने स्वरूपमें असन्मय मनका अनुभव किया ॥ १५ ॥ और उस मनने स्वप्नके सदृश पंचेन्द्रियका अनुभव ऐसे किया जैसे अविद्यासे आवृत जीव स्वप्नमें निराकार चेतनकोही घनाकार पर्वतरूप अनुभव करताहै ॥ १६ ॥

ददर्शसमनोदेहोवपुस्त्रिभुवनात्मकम् ॥ स्वात्माखात्मैवनिर्भित्तिभित्तिभासुरमाततम् ॥ १७ ॥ अनेकभूतवलितंनानास्थावरजंगमम् ॥ कलनाकालकलितंकल्पितान्योन्यसंगमम् ॥ १८ ॥ स्वप्नेप्रत्येकमेवात्रपश्यत्यादर्शबिंबितम् ॥ इवत्रैलोक्यनगरंनवरंगमनोहरम् ॥ १९ ॥ अथप्रत्येकमत्रापिनवरंगमनोहरम् ॥ त्रिजगद्वेत्तिहृदयेस्वादर्शइवबिंबितम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार वह मनोदेह समष्टिरूपको प्राप्त चित्परमाणु (चिदाकाशरूप) ने निराकार भित्तिशून्य निजस्वरूपमेंही भित्तिमय प्रकाशशील विशाल त्रिभुवन अर्थात् विराट्रूप अनुभव किया ॥ १७ ॥ अनेकभूतोंसे व्याप्त नानाप्रकार तथा जंगमप्राणीमय कालादिकी कल्पित और परस्परकल्पित समागमयुक्त वह त्रिभुवन विराट्रूप है ॥ १८ ॥ और स्वप्नके सदृश प्रत्येक व्यष्टिजीवभी द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, भोक्ता, भोग्य, भोग, तथा कर्ता, कार्य्य और क्रिया इन तीन त्रिपुटीरूप नौ (९) रंगोंसे मनोहर दर्पणमें प्रतिबिंबितके समान इस त्रैलोक्यरूपी नगरको देखताहै ॥१९॥ स्वप्नके समान इस जाग्रत्‌मेंभी प्रत्येक जीव निजहृदयमें आत्मारूप दर्पणमें प्रतिबिंबितके सदृश उक्त तीन त्रिपुटीरूप नौरंगोंसे मनोहर इस त्रैलोक्यको अनुभव करताहै ॥ २० ॥

परमाणोःपरमाणोरितिसंतितनूदरे ॥ अतनूनिजगंत्युच्चैर्घनानिविचतान्यपि ॥ २१ ॥ अविद्येयमनंतेयमविद्यात्वेनचोदिता ॥ ब्रह्मत्वेनपरिज्ञाताभवतिब्रह्मनिर्मलम् ॥ २२ ॥ एवंद्रष्टापियःस्वप्नजालंदृष्टेनर्किचन ॥ कोत्रद्रष्टाकुतोदृश्यंक्वद्वैतंक्वचकारणम् ॥ २३ ॥ सर्वंनिःशांतमाभातंखात्मनिर्भित्तिकेवलम् ॥ ब्रह्मात्मनिस्थितंस्वच्छमाद्यंतपरिवर्जितम् ॥२४॥ ब्रह्मांडलक्षनिचयाःपरमात्मनीतिनित्यंस्थितानिपुणमन्यवदप्यनन्ये ॥ वारिण्यवारितविसारितरंगवेगाल्लोलंस्थितांबुपरमाणुचयायथैते ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुब्रह्मांडोपाख्याननंनामषट्सप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७६ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रत्येक जीवभेदोंसे भिन्न त्रैलोक्यके अतिसूक्ष्म परमाणुमेंभी अतिविशाल असंख्य ब्रह्मांड हैं, और वेभी जीव तथा पृथिवीआदिके समूहोंसे पूर्ण हैं ॥२१॥ इसरीति आत्मतत्वके अज्ञानसे यह अविद्या अनन्तरूप है, और आत्मज्ञानसे बाधित होनेसे केवल निर्मल ब्रह्मरूपही है ॥ २२ ॥ इसप्रकार संपूर्ण त्रिपुटीमय ब्रह्मरूपसे सब जगत्‌रूप स्वप्नजालका द्रष्टाभी कुछ नहीं है तब यहांपर द्रष्टा कहां ! द्रष्टाके अभावमें दृश्यभी कहांसे होसकताहै और द्रष्टादृश्यके अभावसे कहां द्वैत तथा कहां इसका कारण होसकताहै ॥२३॥ किन्तु सर्वथा शांत, भेदरहित, निर्मल तथा आदिअन्तशून्य चिदाकाश ब्रह्महो अपने आत्मामें स्थित जगत्स्वरूपसे निजमायासे भासताहै ॥ २४ ॥ इससे यह सिद्धान्त है कि जबतक अज्ञान है तबतक परमात्मामें लक्षोंब्रह्मांडोंके समूह परमात्मासे अभिन्न होकरभी भिन्नके तुल्य ऐसे भासते हैं जैसे समुद्रमें अप्रतिरुद्धप्रसर तरंगोंके वेगसे चंचलरूपसे स्थित जलके असंख्य कणसमूह ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासुब्रह्मांडोपाख्यानं नाम षट्सप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

कल्पनादृष्टिसे कारणसहित और यथार्थदृष्टिसे कारणरहित यह जगत् अज्ञानसे स्वप्नके समान है और ज्ञानसे केवल ब्रह्मरूपही है, यह विषय इस १७७ के सर्गमें वर्णनकियाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अकारणकमेवेदंजगद्ब्रह्मपरात्पदात् ॥ यदिप्रवर्ततेनामस्वप्नसंकल्पनादिवत् ॥१॥ तदकारणतःसिद्धेःसंभवेन्यदकारणम् ॥ कथंनजायतेवस्तुकचित्किंचित्कदाचन ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यद्यथाकल्पितंयेनससंपश्यतितत्तथा ॥ कल्पनैवान्यथानस्यात्तादृक्कारणविच्युतेः ॥ ३ ॥ यथेदंकल्पितंदृश्यंमनसायेनतत्तथा ॥ वेत्त्यसौयादृगन्येनकल्पितंवेत्त्यसौतथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! यदि स्वप्नादिके समान यह जगत् ब्रह्मरूप परमपदसे विनाकारणही उत्पन्नहोताहै तो ॥ १ ॥ अन्य अभिलषित वस्तुओंकीभी उत्पत्ति विना कारणही संभव है तब कृषकोंके धान्यआदि क्षेत्रकर्षण (जोतना) बीज तथा वृष्टिआदि कारणके विना क्यों नहीं होते? ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! व्यवहारदशामें जिस २ वस्तुको जैसें २ कल्पितकियाहै उसको वह वैसाही अटल (कल्पित कार्य्यकारण नियमबद्ध) अनुभव करताहै, क्योंकि कल्पित कार्य्यकारणभावके तोडनेसे तत्वज्ञानके अभ्यासकीभी कल्पना नहीं होसकती ॥ ३ ॥ जिस मनने जिस वस्तुको जैसे कल्पितकियाहै वह वैसाही अनुभव करताहै और अन्यनिजकल्पनाके भेदसे उसी वस्तुको अन्यरूपसे अनुभव करताहै ॥ ४ ॥

कल्पनाकल्पनात्मैकंतच्चब्रह्मस्वभावतः ॥ कल्पनात्मेदृशंजंतुर्यथाकेशनखादिमान् ॥ ५ ॥ अकारणपदार्थत्वंसकारणपदार्थता ॥ ब्रह्मणिद्वयमप्यस्तिसर्वशक्त्यात्मतयतः ॥ ६ ॥ यतःस्याद्ब्रह्मणस्त्वन्यत्कचित्किंचित्कदाचन ॥ तत्कारणविकल्पेनसंयोगस्तस्ययुज्यते ॥ ७ ॥ यत्रसर्वमनाद्यंतंनानानानात्मभासते ॥ ब्रह्मैवशांतमेकात्मतत्रकिंकस्यकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कल्पना तथा अकल्पना यह दोनों ब्रह्मका स्वभाव है उसमें अचित् अंश कल्पित और चित् अंश अकल्पित यह उभय मिलित यह जगत् ऐसे है जैसे जीव, शरीर, केश, नखआदि देशमें अचेतन और अन्यत्र चेतन है ॥ ५ ॥ ब्रह्मदृष्टिसे पदार्थ अकारण हैं और कल्पना दृष्टिसे सकारण हैं, क्योंकि ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है इसलिये उसमें दोनों धर्म हैं ॥ ६ ॥ जो अज्ञदृष्टिसे ब्रह्मसे भिन्न कहीं कदाचित् किंचित् प्रतीयमान होतो वह कारणके विकल्पसेही है और उसका कार्य्यकारणभाव संयोगयुक्त है ॥ ७ ॥ और जब (तत्वदृष्टिसे) अनादि, अनन्त, अद्वैत, शांत और सदा एकरूप ब्रह्मही निजमायासे सब नानाप्रकारके जगत्‌रूपसे भासताहै तो उसका कारण क्या होसकताहै ॥ ८ ॥

नेहप्रवर्ततेकिंचिन्नचनामनिवर्तते ॥ स्थितमेकमनाद्यंतंब्रह्मैवब्रह्मखात्मकम् ॥ ९ ॥ किंकस्यकारणंकेनकिमर्थंभवतुक्वा ॥ किंकस्यकारणंकेनकिमर्थंमास्तुवाकचित् ॥ १० ॥ नेहशून्यंनवाशून्यंनसन्नासन्नमध्यता ॥ विद्यतेनमहाशून्येननेतिननेतिच ॥ ११ ॥ इदंनकिंचित्किंचिद्वायन्नामास्त्यथनास्तिवा॥ सर्वंब्रह्मैवतद्विद्धियत्तथैवातथैवतत् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस संसारमें न कुछ उत्पन्न होताहै और न नष्ट होताहै किन्तु एक अनादि अनन्त चिदाकाश ब्रह्मही स्थित है ॥ ९ ॥ जब यथार्थमें अकारणताही है और कारणकी केवल कल्पनामात्र है तो क्यों कोई किसीका कारण हो और क्यों न हो, क्योंकि कल्पितकार्य्यकी उत्पत्ति तथा अनुत्पत्ति दोनों समान तथा अविरुद्ध हैं ॥ १० ॥ इस ब्रह्ममें शून्यता और अशून्यता दोनों नहीं हैं क्योंकि, अशून्यता शून्यकी अपेक्षासें होताहै अतएव न सत् न असत् है तथा न शून्याशून्य और सदसत् है, क्योंकि महाशून्य (चिदाकाश) में "ननेनि ननेति" इसप्रकारसे कथन होताहै ॥ ११ ॥ स्वरूपसे यह कुछ नहीं है और अधिष्ठानसे किंचित् रूप है, क्योंकि अध्यारोपदृष्टिसे ब्रह्मको सर्वरूप जानो और अपवाददृष्टिसे कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

श्रीरामउवाच ॥ अतज्ज्ञविषयेब्रह्मन्कार्यैकारणसंभवे ॥ किमकारणतात्मस्यात्कथंवेतिवदप्रभो॥१३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अतज्ज्ञोनामनास्त्येवतावत्तज्ज्ञजनंप्रति ॥ असतोव्योमवृक्षस्यविचारःकीदृशस्ततः ॥ १४ ॥ एकबोधमयाःशांतविज्ञानघनरूपिणः ॥ तज्ज्ञास्तेषामसद्रूपेकथमर्थेविचारणा ॥१५॥ अतज्ज्ञत्वंचबोधेंतरवभातितदंगता ॥ गतेस्वप्नसुषुप्तेंतरिवनिद्रात्मकेवलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! जब आप अज्ञानियोंके बोधनार्थ अध्यारोप तथा अपवादरूप स्वीकार करके कार्य्यकारणभाव मानते हैं, तब पृथिवी, जल, तेज तथा वायुरूप कार्य्यके अवयवोंकी परंपराकी सूक्ष्मताके अ-

वधिभूत परमाणुओंकी वा प्रधानवादकी कारणताका संभव रहते कारणशून्य कौन द्रव्य है सो कहिये ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! कल्पितसृष्टिके पूर्व सब ब्रह्मरूपही था इत्यादि श्रुतियोंसे जब अज्ञ कोई हैही नहीं तो ज्ञानीके असत् आकाशवृक्षवत् इस जगत्का विचार किसप्रकार होसकताहै और अध्यारोप अपवादक्रम तो केवल ब्रह्मबोधार्थ कल्पित है ॥ १४ ॥ और ज्ञानी तो अद्वैतबोधमय तथा शांत चिद्घन ब्रह्मरूपही हैं, उनकेलिये असत्पदार्थमें परमाणु आदि कारणका विचार कैसे होसकताहै ॥१५ ॥ और प्रबुद्ध अधिष्ठानभूत आत्मामें अज्ञकी अंगरूपता उसके स्वरूपमें मैं अज्ञानी हुं इस अनुभवसेही अभिन्नरूपसे ऐसे भासती है जैसे सुषुप्तिकी अंगतामें प्राप्त स्वप्न केवल निद्रारूपता॥१६॥

तथाप्यभ्युपगम्यापिमूर्खनिश्चयउच्यते ॥ मयेदमणुसर्वात्मयस्माद्ब्रह्मनिरामयम् ॥ १७ ॥ संत्यकारणकाएवसंतिकारणजास्तथा ॥ भावाःसंविद्यथायस्मात्कल्प्यतेलभ्यतेतथा ॥ १८ ॥ सर्वकारणसंशांतौ सर्वानुभवशालिनाम् ॥ सर्गस्यकारणंनास्तितेनसर्गस्त्वकारणः ॥ १९ ॥ हृदयंगमतात्यक्तमीश्वरादि प्रकल्प्यते ॥ यदत्रकिंचिद्दुःस्वाद्वव्यर्थंवाग्जालमेवतत् ॥ २० ॥

अर्थ—तथा अज्ञान अणुवादादि संपूर्ण जगत्का अधिष्ठान ब्रह्म है यह तटस्थ ब्रह्मका लक्षणभी मूर्खनिश्चयको स्वीकारके मैं कहताहुं, यथार्थमें तो ब्रह्म नित्य शुद्ध निरतिशयानन्द निर्विकाररूप है ॥ १७ ॥ कल्पनानुसार जगत्के पदार्थ कारणसहित तथा कारणरहितभी हैं, क्योंकि संवित् जिसको जैसा कल्पित करती है उसको वैसाही निजअनुभवमें पाती है, अतएव शुक्तिमें रजत, रज्जुमें सर्पके सदृश कार्य्यकारणभाव माननेमें अद्वैतकी हानि नहीं है ॥ १८ ॥ सब कल्पित जगत्के कारणभूत अविद्याके ज्ञानद्वारा शांत होनेपर सब अनुभवी तत्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें सृष्टिका कारण कुछ नहीं हैं, इसलिये यह जगत्की सृष्टि कारणरहित है ॥१९॥ प्रत्यक्ष श्रुति तथा विद्वानोंके अनुभव आदिसे मायामात्र जगत्के सिद्ध होनेपरभी (“ मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनंतु महेश्वरम् ॥ समायी सृजति ” माया प्रकृति है मायावी महेश्वर जगत् रचताहै) इत्यादि श्रुतिका आश्रय लेकर परमाणु वा प्रधान कारणवाद मानतेहैं वह व्यर्थ स्वादरहित वाग्जालमात्र है इसलिये वह त्यागदियाहै, क्योंकि श्रुति अनुमूलक होनेसे मायावादही ज्ञानियोंके हृदयंगम है ॥ २० ॥

अन्यथानुपपत्त्यैवस्वप्नाभाकलनाद्दते ॥ स्थूलाकारात्मिकाकाचिन्नास्तिदृश्यस्यदृश्यता ॥ २१ ॥ स्वप्नपृथ्व्याद्यनुभवेकिमबुद्धस्यकारणम् ॥ चित्स्वभावादृतेब्रूहिस्वप्नार्थोनामकीदृशः ॥ २२ ॥ स्वप्नार्थो ह्यपरिज्ञातोमहामोहभरप्रदः ॥ परिज्ञातोनमोहाययथासर्गस्तथैवच ॥ २३ ॥ शुष्कतर्कहठावेशाद्यद्वाप्यनुभवोज्झितम् ॥ कल्प्यतेकारणंकिंचित्सामौर्ख्याभिनिवेशिता ॥ २४ ॥

अर्थ—ज्ञानसे बाधित होनेसे स्वप्नवत् कल्पनाके अतिरिक्त इस संसारकी स्थूलाकार कोईभी दृश्यरूपता नहीं है ॥ २१ ॥ अज्ञानीकोभी स्वप्नके पृथिवीआदि पदार्थोंके अनुभव क्या कारण होसकतेहैं, क्योंकि चित्स्वभावसे भिन्न स्वाप्निकपदार्थ कहो कैसा है? ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्नका पदार्थ मिथ्यारूपसे ज्ञात न होनेपर महामोहसमूहदायक है और मिथ्यारूपसे ज्ञात होनेपर नहीं, ऐसेही सृष्टिभी मिथ्यारूपसे निश्चय होनेसे दुःखप्रद नहीं है ॥ २३ ॥ और शुष्कतर्कोंके हठसे यदि स्वप्नादि अनुभवशून्य प्रधान वा परमाणुकारणकी कल्पना करतेहो तो यह मूर्खतासे आग्रहमात्र है॥२४॥

अग्नेरौष्ण्यमपांशैत्यंप्राकाश्यंसर्वतेजसाम् ॥ स्वभावोवाखिलार्थानांकिमबुद्धस्यकारणम् ॥ २५ ॥ किं ध्यातृशतलब्धस्यध्येयस्यैकस्यकारणम् ॥ किंचगंधर्वनगरेपुरेभित्तिषुकारणम् ॥ २६ ॥ धर्माद्यमूर्तत्वान्मूर्तेदेहेनकारणम् ॥ देहस्यकारणंकिंस्यात्तत्रसर्गादिभोगिनः ॥ २७ ॥ भित्त्यभित्त्यादिरूपाणां ज्ञानस्यज्ञानवादिनः ॥ किंकारणमनंतानामुत्पन्नध्वंसिनांमुहुः ॥ २८ ॥

अर्थ—अथवा अग्निकी उष्णता जलकी द्रवता, तेजस्वी पदार्थोंके तेज तथा अन्य सब पदार्थोंकाभी अज्ञानोपहित आत्मस्वभावके सिवाय और क्या कारण होसकताहै ॥ २५ ॥ मनोरथके नगरके तुल्य अनेक ध्याताओंसे (कल्पकों) से लब्ध पदार्थोंका एक क्या कारण है ! और गन्धर्वनगर भित्तिआदिमेंभी क्या कारण है? ॥ २६ ॥ और मिमांसक मतके अनुसार अमूर्त धर्म अधर्म मूर्त शरीरआदिके कारण नहीं होसकते तो विशाल आकारवान् इस सृष्टिके कारण वे कैसे होसकते हैं ॥ २७ ॥ और विज्ञानवादीका अमूर्त क्षणिक विज्ञानभी साकार तथा निराकार अनन्त उत्पत्तिविनाशवाले क्षणिकपदार्थोंका उपादान कारण कैसे होसकताहै? ॥ २८ ॥

स्वभावस्यस्वभावोसौकिलकारणमित्यपि ॥ यदुच्यतेस्वभावस्यसापर्यायोक्तिकल्पना ॥ २९ ॥ तस्मादकारणाभ्रांतिर्भावाभांतिचकारणम् ॥ अन्नेन्नेत्वखिलंकार्यकारणाद्भवतिस्थितम् ॥ ३० ॥ यद्वत्स्वप्नप

रिज्ञानात्स्वप्नेद्रव्यापहारिभिः ॥ नदुःखाकरणंतद्वज्जीवितंतत्त्वदर्शनात् ॥ ३१ ॥ सर्गादावेवनोत्पन्नंद्द इयंचिद्गगनंत्विदम् ॥ स्वरूपंस्वप्नवद्भातिनान्यदत्रोपपद्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ— तथा चार्वाकको इष्ट अंकुरआदि स्वभावका कालक्षेत्र जलादिसहित बीजादिस्वभावभी कारण नहीं कहा जासकता, क्योंकि बीजस्वभाव पदका अर्थ अभिन्न होनेसे अंकुरके स्वभावका कारण है, यहां षष्ठचर्थ अयुक्त है, इसलिये दोनोंके पर्य्यायवाचक होनेसे कल्पना निरर्थक है ॥ २९ ॥ इसलिये यही सिद्धान्त है कि कारणरहित सब पदार्थ अज्ञानीकी दृष्टिमें कारणसहितके सदृश भासतेहैं और ज्ञानीको तो संपूर्ण कार्य्य चिद्रूपही हैं उसी (चित्) से सब पदार्थ चित्के चमत्कारसे आविर्भाव तथा तिरोभावको प्राप्त होतेरहतेहैं ॥ ३० ॥ अतएव जैसे स्वप्नके ज्ञान होनेके अनन्तर स्वप्नके पदार्थ हरनेवाले स्वप्नद्रष्टाको दुःखके कारण नहीं होते ऐसेही तत्त्वदर्शनसे मिथ्या ज्ञात होनेसे ज्ञानीको संसारका जीवनभी दुःखका हेतु नहीं होता ॥ ३१ ॥ क्योंकि सृष्टिकी आदिमेंही यह दृश्य नहीं उत्पन्नहुआ, किन्तु चिदाकाशस्वरूपही स्वप्नवत्पदार्थरूपसे भासताहै, चिदाकाशसे भिन्न किंचित्भी संसारमें नहीं है ॥ ३२ ॥

अन्यानकाचित्कलनादृश्यतेसोपपत्तिका ॥ अस्मान्न्यायादृतेकस्माद्ब्रह्मैवैषानुभूतिभूः ॥ ३३ ॥ ऊर्म्या वर्तद्रवत्वादिशुद्धेजलघनेयथा ॥ तथेदंसर्गपर्यायंब्रह्मणिब्रह्मभासते ॥ ३४ ॥ स्पंदावर्तविवर्तादिनिर्मलेपवनेयथा ॥ तथायंब्रह्मपवनेसर्गस्पंदोवभासते ॥ ३५ ॥ यथानंतत्वसौषिर्यशून्यत्वादिमहांबरे ॥ ससन्नासन्नबोधात्मतथासर्गःपरापरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पूर्वोक्तन्यायसे अतिरिक्त अन्यकल्पनायुक्ति नहीं देखपडती, इस हेतुसे यह जगत्की कल्पना केवल ब्रह्मानुभवमात्र है ॥ ३३ ॥ जैसे शुद्धजलमें तरंग, आवर्त तथा द्रवत्वादि जलमें अभिन्न होतेहुयेभी भिन्नके समान प्रतीत होतेहैं ऐसेही ब्रह्ममें यह सृष्टिका पर्य्यायभी है ॥ ३४ ॥ जैसे निर्मल पवनस्पन्द विवर्तआदि भासते हैं ऐसेही ब्रह्मरूप पवनमें यह सृष्टिका स्पन्द है ॥ ३५ ॥ जैसे महाकाशमें अनन्तत्व, छिद्रत्व तथा शून्यत्वादि धर्म हैं, ऐसेही बोध समीप होनेसे आत्मामें यह जगत् चिदाकाशरूपही है ॥ ३६ ॥

एषुनिद्रादिकेष्वेतेसूपलब्धाअपिस्फुटम् ॥ भावाअसन्मयाएवमेतेनन्यात्मकायतः ॥ ३७ ॥ सर्गप्रलयसंस्थानान्येवमात्मनिचिद्घने ॥ सौम्येस्वप्नसुषुप्ताभाशुद्धेनिद्राघनेयथा ॥ ३८ ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरण्यास्तेनिद्रायांमानवोयथा ॥ सर्गात्सर्गांतराण्यास्तेस्वसत्तायामजस्तथा ॥ ३९ ॥ पृथ्व्यादिरहितोप्येषब्रह्माकाशोनिरामयः ॥ अतद्वांस्तद्वदाभातियथास्वप्नानुभूतिषु ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नसंकल्पादिमें असन्मय पदार्थ चिद्रूप स्पष्टरीतिसे ज्ञात होतेहैं ऐसेही वो जाग्रत्के पदार्थभी ब्रह्मसे अभिन्नरूप हैं ॥ ३७ ॥ जैसे स्वप्नके पदार्थ गाढीनिद्रामें तन्मय (सुषुप्तिरूप) हैं ऐसेही चिद्घन ब्रह्ममें सृष्टि तथा प्रलयकी रचनाभी ब्रह्मरूपही है ॥ ३८ ॥ जैसे निद्रामें मनुष्य एकस्वप्नसे दूसरे स्वप्नोंको प्राप्तहोताहै ऐसेही निजसत्तामें स्थित अजन्मा परमेश्वर एकसृष्टिसे अन्य अनेकसृष्टिरूप होजाताहै ॥ ३९ ॥ पृथिवीआदिसे रहितभी यह निर्विकार ब्रह्माकाश स्वप्नके अनुभवोंके तुल्य पृथिवीआदि युक्तके समान भासताहै ॥ ४० ॥

स्थितायथास्यांपश्यंत्यांशब्दाघटपटादयः ॥ जाताजाताःस्थिताःसर्गास्तथानन्येमहाचिति ॥ ४१ ॥ पश्यंत्यामेवपश्यंतीयथाभातितथैवच ॥ यथाशब्दास्तथासर्गाश्चितैवचितिचिन्मयाः ॥ ४२ ॥ किंशास्त्रकंतत्रकथाविचारैर्निर्वासनंजीवितमेवमोक्षः ॥ सर्गेत्वसत्येवमकारणत्वात्सत्येवनास्त्येवननामकाचित् ॥ ४३ ॥ एषाचसिद्धेहहिवासनेतिसाबोधसत्त्वेनिरंतरैका ॥ नानात्वनानारहितैवभातिस्वप्नेचिदेवेहपुरादिरूपा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासु सत्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

अर्थ—जैसे वर्तमानसमयमें सर्वदर्शनरूप परमात्मामें घटपटआदि अभिन्नरूप शब्द हैं ऐसेही भूत भविष्य सब सृष्टिभी महाचेतन परमात्मामें अभिन्नरूप हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मसे अभिन्न सृष्टिके शब्दार्थ ब्रह्ममें हैं यह आधाराधेयभावकी उक्ति अभिन्नमेंही भेदके उपचारसे है क्योंकि चेतनकी दृष्टिही वे हैं अतः सब चिन्मय हैं ॥ ४२ ॥ जब सृष्टिशब्दार्थ चिन्मय है तब शास्त्रभी सफल है अन्यथा शास्त्रभी क्या करेगा, क्योंकि वासनारहित जीवनही मोक्ष है इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसे कारणके अभावसे यथार्थमें सृष्टिके न होनेसे तथा कल्पित प्रत्यक्ष भान होनेपरभी सिद्धान्तमें कोई कल्पना

नहीं है ॥ ४३ ॥ और जो प्रपंचका बीजभूत वासना भासती है केवल एक बोधसत्ताही नानारूपरहित होकरभी निरंतर नानारूपसे ऐसे भासती है जैसे स्वप्नमें शुद्ध चित् नगरआदि रूपसे ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासु सत्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

अष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७८ ॥

अमूर्त चित्का मूर्तरूपमें संचालित होनेमें युक्ति, तथा ऐन्दव उपाख्यानसे जगत्की स्पष्टरीतिसे अमूर्त चिन्मात्ररूपता इत्यादि विषय इस १७८ के सर्गमें वर्णन कियेगयेहैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ पदार्थाद्विविधाःसंतिमूर्तामूर्ताजयत्रये ॥ यत्रसप्रतिघाःकेचित्केचिदप्रतिघाअपि ॥१॥ तानिहाप्रतिघानाङ्गर्नान्योन्यंवेल्लयंतिये ॥ तांश्चसप्रतिघानाङ्गरन्योन्यंवेल्लयंतिये ॥ २ ॥ इहसप्रतिघानांतुदृष्टमन्योन्यवेल्लनम् ॥ नत्वप्रतिघरूपाणांकेषांचिदपिकिंचन ॥ ३ ॥ तत्रसंवेदनंनामयदिदंचंद्रमंडले ॥ इतःपतत्यप्रतिघंतत्सर्वेणानुभूयते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन्! त्रिलोकमें मूर्त तथा अमूर्त (साकार तथा निराकार) दोप्रकारके पदार्थ हैं, उनमें मूर्त वा साकारका अन्यपदार्थसे प्रतिघात होताहै और अमूर्त वा निराकारका नहीं ॥ १ ॥ इस संसारमें जो पदार्थ एकदूसरेसे संचालित वा आश्लिष्ट नहीं होते उनको अप्रतिघ कहते हैं और जो परस्पर एकदूसरेसे संचालित अथवा संश्लिष्ट होते हैं उनको सप्रतिघ कहते हैं ॥ २ ॥ इस संसारमें सप्रतिघ पदार्थोंका परस्पर संश्लेष वा संचालन देखागयाहै परन्तु अप्रतिघपदार्थोंका वह नहीं देखागया ॥ ३ ॥ उनमें चन्द्रमण्डलका जो अनुभव है वह अप्रतिघ (अमूर्ति) है क्योंकि इस देशसे नेत्रज्योतिके अनुगामी चित्तकेसाथ तदुपहित अनुभव (चन्द्रमंडलविषयके ज्ञान) विना संश्लेष वा रु काटके चन्द्रमंडलपर जाके पडते हैं अतः वे ज्ञान अमूर्त हैं, यह वार्ता चन्द्रमाको देखनेवाले सब जीव अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

अर्द्धप्रबुद्धसंकल्पविकल्पद्वैतकल्पितम् ॥ वदाम्यभ्युपगम्येदंनतुबोधदशास्थितम् ॥ ५ ॥ कःप्राणमारुतःक्षोभंजनयत्याशयस्थितः ॥ प्रवेशनिर्गममयंकथंवावदमेप्रभो ॥ ६ ॥ कथमप्रतिघंनामवेदनंप्रतिघात्मकम् ॥ इमंदेहंचालयतिभारंभारहरोयथा ॥ ७ ॥ यदिसप्रतिघंवस्तुवेल्लत्यप्रतिघात्मकम् ॥ कथंसंवित्तिमात्रेणपुंसःशैलोनवल्गति ॥ ८ ॥

अर्थ—और हे भगवन्! यह आक्षेप तृतीय चतुर्थभूमिकाके मध्यवर्ती अर्द्धज्ञानी जीवोंके संकल्पविकल्पद्वैतसे कल्पित इस जगत्को मानकर करताहुं न कि ज्ञानदृष्टिसे शेष चिन्मात्ररूपसे स्थित मानकर ॥ ५ ॥ हे भगवन्! प्राणपन क्या पदार्थ है और हृदयदेशमें स्थित होकर उसको क्षोभितकरके नासिकाछिद्रद्वारा गमनागमनव्यापार कौन कराताहै यह कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ तथा हे प्रभो! अमूर्त ज्ञान मूर्त इस प्राणादि शरीरान्तसंघातको ऐसे कौन चलाताहै जैसे भारवाही भारको ॥ ७ ॥ और यदि निराकार ज्ञान साकार प्राणादि शरीरान्तसंघातको चलाताहै तो पुरुषके ज्ञानमात्रसे पर्वत क्यों नहीं चलता? ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विकासमथसंकोचमत्रनालीहृदिस्थिता ॥ यदायातितदाप्राणश्छेदैरायातियाति च ॥ ९ ॥ बाह्योपस्करभस्त्रायांयथाकाशास्पदात्मकः ॥ वायुर्यात्यपिचायातितथात्रस्पंदनंहृदि ॥ १० ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बहिर्भस्त्रामयस्कारःसंकोचनविकासनैः ॥ योजयत्यांतरंनाडींकश्चालयतिचालकः ॥ ११ ॥ शतंकथंभवेदेकंकथमेकंशतंभवेत् ॥ कथंसचेतनाएतेकाष्ठलोष्टोपलादयः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! इडा पिंगला दोनों नाडियोंके मध्यभाग-हृदयप्रदेशमें स्थित सुषुम्ना-नाडी जब विकास तथा संकोचभावको प्राप्त होती है तब नासिकादि छिद्रोंद्वारा प्राणवायु बाहर आताहै और अपानरूप होके पुनः जाताहै ॥ ९ ॥ जैसे लोहारकी भाथीमें बाह्यप्रदेशस्थ वायु छिद्रप्रदेशमें स्थित होके आताजाताहै और निजसमीपस्थ पदार्थोंका संचालन करताहै ऐसेही हृदयस्थित वायुका गमनागमन तथा शरीरादिका संचालनआदि व्यापार होताहै ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन्! बाह्यप्रदेशमें तो लोहाररूप चेतन संकोचविकाससे भाथीको युक्त करताहै तब वह बाह्यवायु संचाल करताहै ऐसेही आभ्यन्तरप्रदेशमें प्रवेश करके नाडीको कौन संचालित करताहै?

॥ ११ ॥ तथा हे भगवन् हृदयदेशमें एकसोएक (शतंचैका हृदयेलपनाड्यः इति श्रुतिः) नाडी हैं पुनः उनमें प्रतिशाखायें बहत्तरि सहस्र (" तत्रैकशतं नाडीनां तासां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखं नाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानः संचरति " इति श्रुतिः) हैं, सो शतका एक और एकका शत कैसे होजाताहै, और यथार्थमें अमूर्त चेतनका संबन्ध तो देहमेंभी नहीं है तब कैसे नाडियां चेतनके सदृश संचालित होती हैं और आध्यासिक संबन्ध मानाजाय तो वह काष्ठ लोष्ठ पाषाणादिमें समान है ये चेतन क्यों नहीं हैं ? ॥ १२ ॥

कस्मान्नस्थावरंवस्तुप्रस्पंदयपिचमत्कृतम् ॥ वस्तुजंगममेवेहस्पंदिमात्रेवकिंवद ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अंतःसंवेदनंनामचालयत्यांत्रवेष्टनम् ॥ बहिर्भस्त्रामयस्कारइवलोकेनुचेष्टनम् ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वाय्वंत्रादिशरीरस्थंसर्वंसप्रतिघंमुने ॥ कथमप्रतिघासंविच्चालयेदितिमेवद ॥ १५ ॥ संविदप्रतिघाकारायदिसप्रतिघात्मकम् ॥ चालयेदचलिष्यत्तद्दूरमंभोयदिच्छया ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा चेतनके आध्यासिक संबन्धसे स्थावर वस्तुमें यंत्राधिष्ठित पदार्थवत् स्पन्दरूप गमनागमन चमत्कार क्यों नहीं और जंगमवस्तुमें स्वप्रस्पन्द क्यों है सो कृपाकरके कहिये ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—कार्य्यकारणके स्वामी भोक्ता जीवचेतनका अनादिकालके प्रवाहसे पतित काम कर्म वासनाजनित जिस प्राणवायुमें अभेदसंबन्ध है उसी प्राणवायुसे अभेदाभिमान करनेवाला आभ्यन्तर जीव चेतन स्वतंत्रतासे आभ्यन्तरनाडीसमूह तथा देहकोभी ऐसे चलाताहै जैसे बाह्यदेशमें लौहकार (लोहार) भाथीको, इसीके अनुसार संसारमें संपूर्ण बाह्यचेष्टा होती है ॥ १४ ॥ श्रीरामजी बोले कि—हे मुने ! शरीरस्थ वायु यंत्रादि सब मूर्त है उसको अमूर्त संवित् (जीव चित्) कैसे चलाती है यह मुझसे कृपाकरके कहिये ॥ १५ ॥ और यदि निराकार संवित् साकार प्राणादि शरीरान्त संघातको चलावै तो तृषित पथिककी इच्छा वा चेष्टासे दूरदेशस्थ जल चलके स्वयं उसकेपास आजायगा ॥ १६ ॥

सप्रतिघाप्रतिघयोर्मिथोयदिपदार्थयोः ॥ वेल्लनंस्यात्तदिच्छैवकर्तृकर्मेंद्रियैःक्किम् ॥ १७ ॥ सप्रतिघाप्रतिघयोःश्लेषोनास्तिबहिर्यथा ॥ तथैवांतरहंमन्येशेषंकथयमेमुने ॥ १८ ॥ अंतःस्वयंयोगिनावायथैतदनुभूयते ॥ अमूर्तस्यैवमूर्तेनवेल्लनंतद्वदाशुमे ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वसंदेहवृक्षाणांमूलकाषमिदंवचः ॥ सर्वैकतानुभूत्यर्थंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ २० ॥

अर्थ—और यदि साकार तथा निराकार पदार्थोंका परस्पर संचालनव्यापर हो तब तो इच्छाही बाह्य भाषण, आदानगमनादि व्यापार करलेगी, पुनः कर्मेन्द्रियोंका क्या प्रयोजन है ॥ १७ ॥ जैसे बाह्यदेशमें निराकार तथा साकार पदार्थोंका संबन्ध नहीं है ऐसेही आभ्यन्तरमें नहीं है ऐसा मैं मानताहूं, इसलिये उक्त युक्तियोंसे अन्ययुक्ति कहिये ॥ १८ ॥ अथवा हे भगवन् ! स्वयं योगिराज आप मूर्तका अमूर्तसे संचालन जैसे अनुभव करते हैं वह कृपाकरके शीघ्र कहिये ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! सब सन्देहरूपी वृक्षोंको मूलसे उच्छेदकारक और श्रवणके भूषणभूत इस वचनको सबके साथ एकताके अनुभवार्थ आप सुनिये ॥ २० ॥

नेहकिंचिन्ननामास्तिवस्तुसप्रतिघंक्वचित् ॥ सर्वदासर्वमेवेदंशांतमप्रतिघंततम् ॥ २१ ॥ शुद्धंसंविन्मयंसर्वंशांतमप्रतिघात्मकम् ॥ पदार्थजातंपृथ्व्यादिस्वप्नसंकल्पयोरिव॥२२॥ आदावंतेचनास्तीदंकारणाभावतोखिलम् ॥ भ्रांत्यात्मावर्तमानापिभातिचित्स्वप्नगायथा ॥२३॥ द्यौःक्ष्मावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ महताकारणौघेनबोधमप्रतिघंविदुः ॥ २४ ॥

अर्थ—इस ब्रह्ममय जगत्में सप्रतिघ (मूर्तिमान्) कोई पदार्थही नहीं है, किन्तु सर्वदा यह सब अप्रतिघ (अमूर्त वा निराकार) शांत ब्रह्मही है ॥ २१ ॥ स्वप्न तथा संकल्पके तुल्य पृथिवीआदि सम्पूर्ण पदार्थसमूह शुद्ध संविद्रूप, शांत तथा निराकार ब्रह्मही है ॥ २२ ॥ जो कारणके अभावसे आदि अन्तमें नहीं है वह सब भ्रमरूपही है और उन सर्वरूपसे चेतन ब्रह्म ऐसे भासताहै जैसे स्वप्नमें ॥ २३ ॥ अतएव तत्वज्ञानी जन महान् वैराग्य, त्याग, विवेक तथा श्रवणादि कारणसमूहसे ज्ञानोत्पत्तिद्वारा वासनामूर्ताकार जगत्का बाध करके अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, नदी तथा दिशाआदि पदार्थोंको निराकार बोधरूपही जानतेहैं ॥ २४ ॥

अंतःकरणभूतादिमृत्काष्ठदृषदादिवा ॥ सर्वंशून्यमशून्यंचचेतनविद्धिनेतरत् ॥ २५ ॥ तत्रैवमेंदवाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ मयाचपूर्वमुक्तंतत्किंचान्यदभिवर्ण्यते ॥ २६ ॥ तथापिवर्तमानोक्तप्रश्नबोधायतच्छृणु ॥ यथेदंसर्वमद्व्यादिचिदित्येवप्रभोत्स्यते ॥ २७ ॥ कस्मिंश्चित्प्राक्तनेनैवजगज्जालेभवद्विजः ॥ तपोवेदक्रियाधारोब्रह्मन्निंदुरितिस्मृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—अन्तःकरण, सर्वभूत, मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण तथा अन्तरिक्षआदिसे शून्य संपूर्ण जगत्को सत्तारूप चिन्मय ब्रह्महीं तुम जानो न कि अन्य ॥ २५ ॥ इसविषयमें तुम श्रवणके भूषणरूप ऐन्दव (१० इन्दुके पुत्रका) उपाख्यान सुनो, इसको मैंने पूर्वसंसारकी मनोमयताप्रदर्शनार्थ कहाहै, यहांपर कुछ और (जगत्की चिन्मात्रता) वर्णन करते हैं ॥ २६ ॥ और अमूर्त चेतन मूर्त शरीरादिका संचालन कैसे करताहै इस प्रश्नके समाधानार्थभी इसको तुम सुनो, जिससे कि यह सब पर्वतआदि जगत् चिन्मात्रही है यह तुमको अनुभूत होजायगा ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उत्पत्तिप्रकरणमें कथित किसी एक जगज्जालमें तप, वेदाध्ययन तथा वेदोक्तकर्मोंके अनुष्ठानका आधारभूत इन्दुनाम एक ब्राह्मण था ॥ २८ ॥

दशतस्याभवन्पुत्राजगतोदिक्तटाइव ॥ महाशयामहात्मानोमहतामास्पदंसताम् ॥ २९ ॥ सतेषांकालवशतःपितांतर्धिमुपाययौ ॥ दशानांभगवान्रुद्रएकादशइवक्षये ॥ ३० ॥ तस्यानुगमनंचक्रेभार्याद्वैधव्यभीतिभिः ॥ अनुरक्तादिनस्येवसंध्यातारविलोचना ॥ ३१ ॥ तयोस्तेतनयादुःखकलिताविपिनंगताः ॥ कृतौर्ध्वदेहिकास्त्यक्त्वाव्यवहारंसमाधये ॥ ३२ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मणके ब्रह्मांडकी दशोदिशाओंके दशतटके तुल्य, महाशय, महात्मा तथा महात्मा और सज्जनोंके प्रतिष्ठाके पात्र दश पुत्र उत्पन्नहुये ॥ २९ ॥ सो कालके वश होके उनका पूज्य पिता ऐसे अन्तर्धान होगया जैसे महाप्रलयमें दशोंरुद्रोंके अधिपति एकादश रुद्र ॥ ३० ॥ पतिके वियोगमें वैधव्यके दुःखोंके भयसे अतिपीडित उसकी सती पत्नीने उस ब्राह्मणका अनुगम ऐसे किया जैसे दिनके अनुरक्त संध्या सूर्य्यका ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र, मातापिताके और्ध्वदेहिक दाहादि संस्कारोंको करके जननीजनकके वियोगके दुःखसे व्याप्त होके संसारके संपूर्ण व्यवहारको त्यागकर समाधिके अर्थ वनमें गये ॥ ३२ ॥

धारणानांसमस्तानांकास्यादुत्तमसिद्धिदा ॥ धारणायन्मयाःसंतःस्यामःसर्वेश्वरावयम् ॥ ३३ ॥ इतितेतत्रसंचिंत्यबद्धपद्मासनादश ॥ इदंसंचितयामासुर्निर्विघ्नेकंदरोदरे ॥ ३४ ॥ पद्मजाधिष्ठिताशेषजगद्धारणयास्थिताः ॥ भवामःपद्मजोपेतंजगद्रूपमविघ्नतः ॥ ३५ ॥ इतिसंचिंत्यसब्रह्मजगद्धारणयाचिरम् ॥ निमीलितदृशस्तस्थुस्तेचित्ररचिताइव ॥ ३६ ॥

अर्थ—सब धारणाओंमेंसे कौनसी धारणा (विशेष विषयाकार मनकी स्थिरता) उत्तम सिद्धिदायक है जिसमें तन्मय होके हम सब (दशोंभ्राता) सर्वेश्वर ब्रह्मा होजांय ॥ ३३ ॥ ऐसा निश्चयकरके उन दशोंभ्राताओंने हिंसकजीवोंके उपद्रवसे शून्य एक कंदरामें पद्मासनमें स्थित होकर यह वक्ष्यमाण विषय चिन्तन करनेलगे ॥ ३४ ॥ पद्मयोनि ब्रह्मासे अधिष्ठित सम्पूर्ण ब्रह्मांडरूप हम हैं इस निश्चलध्यानसे ब्रह्मासे युक्त सब जगद्रूप हम सब निर्विघ्नतापूर्वक होजाय ॥३५॥ ऐसा चिन्तनकरके ब्रह्मारूप जगत्की धारणासे चिरकालतक दृष्टि मूंदकरके चित्रमें रचितके समान स्थित रहे ॥ ३६ ॥

अथैतद्धारणाबद्धचित्तास्तेतावदच्युताः ॥ आसन्मासान्दशाष्टौचयावत्तेतत्रदेहकाः ॥ ३७ ॥ शुष्काःकंकालतांयाताःक्रव्यादैश्वविर्वितांगकाः ॥ नाशमभ्याययुस्तत्रछायाभागाइवातपैः ॥ ३८ ॥ अहंब्रह्माजगच्चेदंसर्गोयंभुवनान्वितः ॥ इतिसंपश्यतांतेषांदीर्घकालोभ्यवर्तत ॥ ३९ ॥ तानिचितान्यदेहानिदशैकध्यानतस्ततः ॥ संपन्नानिजगंत्येवदशदेहानिवैपृथक् ॥ ४० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् इसी धारणामें १८ अष्टादश मास जबतक स्थूल शरीर दृश्य था निश्चलरूपसे वे स्थित रहे ॥ ३७ ॥ उनका शुष्क तथा व्याघ्र आदिसे भक्षितशरीर मृतकदशाको प्राप्त होके ऐसे नष्ट होगया जैसे छायाप्रदेश आतपोंसे ॥ ३८ ॥ हम ब्रह्मा हैं और अनेक भुवनोंसे युक्त हमारा रचित ब्रह्मांडभी हमसे अभिन्नरूप है ऐसा चिन्तन करतेहुये उनको दीर्घकाल बीतगया ॥ ३९ ॥ शरीरशून्य दशोंपुत्रोंके दश चित्त ध्यानमें स्थित ध्यानके परिपाकसे पृथक् २ दश ब्रह्मांड शरीर होगये ॥ ४० ॥

इतितेषांचिदिच्छासासंपन्नासकलंजगत् ॥ अत्यंतस्वच्छरूपैवस्थिताचाकारवर्जिता ॥४१॥ संविन्मयत्वाजगतांतेषांभूम्यचलादितत् ॥ सर्वंचिदात्मकंविद्धिनोचेदन्यत्किमुच्यताम् ॥ ४२ ॥ किलयत्रिजगजालंतेषांकिमात्मतत्तथा ॥ संविदाकाशशून्यत्वमात्रमेवेतरन्नतत् ॥ ४३ ॥ विद्यतेनयथाकिंचित्तरंगःसलिलादृते ॥ संवित्तत्वादृतेतद्वद्विद्यतेचलनादिकम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसप्रकार निजनिर्मलरूपसे स्थित और आकारशून्य चित् (चेतन) उनकी इच्छारूप होकर पुनः ब्रह्मांडरूप होगई ॥ ४१ ॥ उन सब ब्रह्मांडोंके संविद्रूप (चिन्मय) होनेसे भूमि पर्वतआदि सबको तुम चिन्मात्र जानो,

यदि ऐसा नहीं (चिन्मात्रता नहीं) है तो उन दशोंपुत्रोंसे रचित ब्रह्मांडोंका क्या शरीर है सो कहो? अतः वे सब ब्रह्मांड चिन्मात्र हैं अन्य कुछ नहीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जैसे समुद्रमें जलके सिवाय तरंगआदि कुछ नहीं ऐसेही संवित्तत्व (चेतन ब्रह्म) के सिवाय चलनआदिभी कुछभी नहीं है ॥ ४४ ॥

ऐंदवानियथैतानिचिन्मयानिजगंतिखे ॥ तथाचिन्मयमेतेषुकाष्ठलोष्टोपलाद्यपि ॥ ४५ ॥ यथैवैंदवसंकल्पास्तेजगत्त्वमुपागताः ॥ तथैवाब्जजसंकल्पोजगत्त्वमयमागतः ॥ ४६ ॥ तस्मादिहेमेगिरयोवसुधापादपाघनाः ॥ महाभूतानिसर्वंचचिन्मात्रमयमाततम् ॥ ४७ ॥ चिद्वृक्षाश्चिन्महीचिद्द्यौश्चिदाकाशंचिदद्रयः ॥ नाचित्क्वचित्संभवतितेष्वैंदवजगत्स्विव ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे इन्दुके पुत्रोंसे कल्पित आकाशमें दश ब्रह्मांड चिन्मय (चित्स्वरूप) हैं ऐसेही इस वर्तमान काष्ठ मृत्पाषाण तथा लोष्ठमय ब्रह्मांडमें संवित्से भिन्न कुछ नहीं है ॥ ४५ ॥ जैसे इन्दुके पुत्रोंके संकल्पही जगत्स्वरूपताको प्राप्त हुये हैं ऐसेही ब्रह्माका संकल्प इस जगद्रूपताको प्राप्त हुआहै ॥ ४६ ॥ इस हेतुसे ये पर्वत, पृथिवी, वृक्ष, मेघ तथा महाभूत सबकुछ व्याप्त चिन्मात्रही है ॥ ४७ ॥ सब वृक्ष चिद्रूप हैं, पृथिवी चित्स्वरूपही है, अन्तरिक्ष चिद्रूप है, आकाश चिद्रूपही है, और पर्वतभी चित्स्वरूप हैं, ऐन्दवके ब्रह्मांडोंके सदृश कहीं कोईभी पदार्थ अचित् संभव नहीं है॥४८॥

चिन्मात्रखकुलालेनस्वदेहचलचक्रके ॥ स्वशरीरमृदासर्गःकुतोयंक्रियतेनिशम् ॥ ४९ ॥ संकल्पनिर्मितेसर्गेदृषदश्चेन्नचेतनाः ॥ तदत्रलोष्ठशैलादिकिमेतदितिकथ्यताम् ॥ ५० ॥ कलनस्मृतिसंस्कारादयस्त्यर्थचनोदरे ॥ प्राङ्मृष्टंकल्पनादीनामन्यैवार्थकलावताम् ॥ ५१ ॥ तद्धामसंविदोनाम्निमणिराशौमणिर्यथा ॥ सर्वात्मनितथाचित्तेकश्चिदर्थउदेत्यलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—चिदाकाशमात्र कुलाल (कुंभार) निजदेहरूप चंचल चक्र (चाक) पर निजशरीररूप मृत्तिकासे यह सृष्टि निरंतर कैसे कहांसे करता (मिथ्या कल्पित) है ॥ ४९ ॥ यदि संकल्परचित सृष्टिमें पाषाण चेतनस्वरूप नहीं हैं तो कहो ये पाषाण लोह पर्वतआदिका क्या रूप है? ॥ ५० ॥ अनुभव, स्मृति, संस्कार तथा इच्छा ये सब संवित्केही आकारविशेष हैं, और ये निजस्वरूपमें अभिव्यक्त चित्स्वरूपको धारणकरते हैं न कि जडपदार्थको, क्योंकि अर्थशून्य कल्पनामय पदार्थोंकी अन्य (अनिर्वचनीय) ही स्थिति है, और तत्त्वज्ञानियोंकी अन्यही चमत्कृति (सर्वत्र चिन्मात्रहीकी दृष्टि) है यह हमने (तत्वज्ञोंने) प्रथमही निश्चय कियाहै ॥ ५१ ॥ सब प्रकारकी संवित् (वृत्त्यवच्छिन्न चेतन) के अधिष्ठान सर्वरूप चिद्रूप धाम (ब्रह्म) समष्टि तथा व्यष्टि चित्तमें मणिकी राशिमें मणिके तुल्य प्रविष्ट होके किसी तृणकाष्ठादिरूपसे स्वयं उदित होताहै ॥ ५२ ॥

अकार्यकरणस्यार्थोनभिन्नोब्रह्मणःक्वचित् ॥ स्वभावइतितेनेदंसर्वंब्रह्मेतिनिश्चयः ॥ ५३ ॥ यथाप्रवृत्तंचिद्वारिवहत्यावर्ततेवनौ ॥ स्वयत्नेनातितीव्रेणपरात्मीयात्मनाविना ॥ ५४ ॥ पद्मलीलाजगदिवप्रकचंतिजगंतियत् ॥ चिन्मात्रद्ब्रह्मणःस्वस्मादन्यानिनमनागपि ॥ ५५ ॥ अजातमनिरुद्धंचसन्मात्रंब्रह्मखात्मकम् ॥ शांतंसदसतोर्मध्यंचिद्धामात्रमिदंजगत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—कार्य्य तथा कारण (असाधारण कारण) शून्य ब्रह्माकी यह सृष्टि उनसे भिन्न कहीं ऐसे नहीं जैसे सूर्य्यसे सूर्य्यकी प्रभा, किन्तु जैसे सूर्य्यप्रभा सदा प्रकाशस्वभाव है ऐसेही ब्रह्मस्वभावही जगत्परिणाम है, अतः यह सब तृणकाष्ठादि ब्रह्मरूप है यह निश्चय है ॥ ५३ ॥ जैसे निम्न (नीचे) प्रदेशकीओर चलताहुआ नदीआदिका जल विना अन्यके प्रयत्नही प्रवाह तरंगआदि रूपसे वहताहै ऐसेही चेतनभी निजस्वभावसे जगत्स्वरूपसे प्रवृत्त होताहै ॥ ५४ ॥ जैसे पाद्मकल्पमें विष्णुभगवान्की नाभि कमलकी लीलाही ब्रह्मा तथा जगत्से विकसित होती है और वह विष्णुसे भिन्न नहीं है ऐसेही अन्यकल्पोंमें ब्रह्मसे कल्पित अनेक ब्रह्मांड ब्रह्मसे भिन्न किंचित्भी नहीं है ॥५५॥ अजन्मा, अप्रतिरुद्ध, सापेक्षिक भाव अभाव दोनोंके मार्जनसे उभयमध्यगत, शान्त, सन्मात्र, चित्प्रकाशमात्र तथा चिदाकाश ब्रह्मही यह जगत् है ॥५६॥

यत्संविन्मयमद्र्यादिसंकल्पजगतिस्थितम् ॥ तदसंविन्मयमितिवक्ताऽज्ञोज्ञैर्विहस्यते ॥ ५७ ॥ जगंत्यात्मेवसंकल्पमयान्येतानिवेत्तिखे ॥ खात्मकानितथेदंचब्रह्मसंकल्पजंजगत् ॥५८॥ यावद्यावदियंदृष्टिःशीघ्रंशीघ्रंविलोक्यते ॥ तावत्तावदिदंदुःखंशीघ्रंशीघ्रंविलीयते ॥ ५९ ॥ यावद्यावदियंदृष्टिःप्रेक्ष्यतेनचिराच्चिता ॥ तावत्तावदिदंदुःखंभवेत्प्रतिघनंघनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—संकल्परचित इस जगत्में पर्वत, पृथिवीआदि जो संवित्मय चेतन हैं, उनको जो अज्ञानी असंविन्मय अचेतन कहताहै, वह तत्वज्ञानियोंके उपहासास्पद होताहै ॥ ५७ ॥ ब्रह्मके मनोरूप ब्रह्मा निजसंकल्पमय सब लोकोंको

अनुभव करतेहैं, इसलिये ब्रह्मा तथा उनके संकल्पसे उत्पन्न संपूर्ण जगत् चिदाकाशरूपही है ॥ ५८ ॥ जैसे २ इस प्रपंच संसारको दृढताको प्राप्त चित् दृष्टि (चिद्रूपता) से शीघ्रताके साथ देखते हैं वैसेही वैसे शीघ्रतासे इस संसारका दुःखभी विलयको प्राप्त होताजाताहै ॥ ५९ ॥ और जैसे २ इसको चित्की दृष्टि (चिद्रूप) से नहीं देखते तैसेही तैसे यह संसारका दुःख दृढ तथा घनीभूत होताजाताहै ॥ ६० ॥

दीर्घदुष्कृतमूढानामिमांदृष्टिमपश्यताम् ॥ संसृतिर्वज्रसारेयंनकदाचित्प्रशाम्यति ॥ ६१ ॥ नेहाकृतिर्न चभवाभवजन्मनाशाःसत्तानचैवनचनामतथास्त्यसत्ता ॥ शांतंपरंकचतिकेवलमात्मनीत्थंब्रह्माथवा कचनमप्यलमत्रनास्ति ॥ ६२ ॥ आद्यंतवर्जितमलभ्यलताग्रमूलनिर्माणमूलपरिवेशमशेषमच्छम् ॥ अंतस्थनिर्गगनसर्गकपुत्रकौघंनित्यंस्थितंननुघनंगतजन्मनाशम् ॥ ६३ ॥ सन्मात्रमंतरहिताखिलहस्तजातंपर्यंतहीनगणनांगमयुक्तरूपम् ॥ आत्मांबरात्मकमहंत्विदमेवसर्वंस्तुस्तंभरूपमजमौनमलंविकल्पैः ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतास्वैंदवोपाख्यानं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७८ ॥

अर्थ—जो महापापसे मूढ अन्ध होके इस चिद्दृष्टिसे जगत्को नहीं देखते उनके लिये यह संसार वज्रवत् दृढ है और कदापि शान्त नहीं होता ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! यहां न कोई आकार है, न भवाभव है, न जन्मनाश हैं और न सत्ता वा असत्ता है, किन्तु शान्त परब्रह्मही अपने स्वरूपमें प्रकाश करताहै अथवा सापेक्ष होनेसे प्रकाशभी नहीं है ॥ ६२ ॥ किन्तु अवकाशशून्य स्फटिकमणिके सदृश अनेक सृष्टिरूप प्रतिमासमूहोंसे पूर्ण होकरभी अलभ्य जगत्स्वरूप लताग्रभूमि रचनायुक्त आदिअन्तशून्य जन्मनाशादिविकाररहित तथा अतिनिर्मल चिद्घनरूपसे स्थित है ॥ ६३ ॥ यह परमात्मा जब अयुक्तरूप है तब आदिअन्तशून्य संपूर्णविश्वमें व्याप्त तथा हस्तपर्य्यन्त देशमेंभी असंख्य हस्तपादनेत्रादिसहित है, यही सर्व जगत्स्वरूप है और युक्तरूप तो यही चिदाकाश उत्तम स्तंभरूप अजन्मा मौन सन्मात्र है. मैंही हुं, अन्यविकल्पोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतास्वैन्दवोपाख्यानं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७८ ॥

एकोनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७९ ॥

संपूर्ण संसार निराकार चिन्मात्रही स्थित है तो पूर्वक्त शंकाका क्या प्रसंग है यह विषय इस १७९ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंचिन्मात्रमेवैकंशुद्धंसत्त्वंजगत्त्रयम् ॥ संभवंतीहभूतानिनाज्ञबुद्धानिकानिचित् ॥ १ ॥ तस्मात्कुतःशरीरादिवस्तुसप्रतिघंकुतः ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचित्तदप्रतिघमाततम् ॥ २ ॥ स्थितंचिद्व्योमचिद्व्योम्निशांतेशांतंसमंस्थितम् ॥ स्थितमाकाशमाकाशेज्ञप्तिर्ज्ञप्तौविजृंभते ॥ ३ ॥ सर्वंसंविन्मयंशांतंसत्स्वप्नइवजाग्रति ॥ स्थितमप्रतिघाकारंकासौसप्रतिघास्थितिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इसप्रकार त्रैलोक्य शुद्ध सचिन्मात्र ब्रह्मही है, क्योंकि अज्ञानियोंकी बुद्धिमें आरूढ साकार कोईभी पदार्थ नहीं है ॥ १ ॥ इसलिये कहां और कैसे साकार शरीरआदि होसकते हैं जो कुछ यह देखपडताहै वह सब निराकार ब्रह्मही व्याप्त है ॥ २ ॥ चिदाकाशमें चिदाकाश तथा शान्तमें शान्तही समानरूपसे स्थित है, तथा आकाशमें आकाश और ज्ञानस्वरूप निजआत्मामें ज्ञानस्वरूप ब्रह्मही आविर्भूत है ॥ ३ ॥ जब स्वप्नके समान इस जाग्रत्मेंभी सब शांत अप्रतिघ (निराकार) सच्चिन्मात्र ब्रह्मही स्थित है तब साकार (सप्रतिघ) जगत्की स्थिति कहां है ॥ ४ ॥

कदेहावयवाःकांत्रवेष्टनीकास्थिपंजरम् ॥ व्योमेवाप्रतिघंविद्धिदेहंसप्रतिघोपमम् ॥ ५ ॥ संवित्करोशिरःसंवित्संविदिंद्रियवृंदकम् ॥ शांतमप्रतिघंसर्वंनसप्रतिघमस्तिहि ॥ ६ ॥ ब्रह्मव्योम्नःस्वप्नरूपस्वभावत्वाज्जगत्स्थितेः ॥ इदंसर्वंसंभवतिसहेतुकमहेतुकम् ॥ ७ ॥ नकारणंविनाकार्यंभवतीत्युपपद्यते ॥ यद्यथायेननिर्णीतंतत्तथातेनलक्ष्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब चिन्मात्रही सब है तब देहके अवयव कहां ? कहां आभ्यन्तर आंतको वेष्टित करनेवाली सुषुम्ना नाडी और कहां अस्थिपंजर है ? किन्तु स्वप्नके देहके तुल्य इस देहादिको तुम निराकार चिदाकाशही जानो ॥ ५ ॥ दोनों हस्त संविद्रूप हैं, मस्तक संविद्रूप है, इन्द्रियसमूह संविद्रूपही है, किंबहुना संपूर्ण जगत् शान्त अप्रतिघ चिन्मात्रही है, सप्रतिघ (साकार) कुछभी नहीं है ॥ ६ ॥ चिदाकाश ब्रह्मका स्वप्नरूपस्वभावही जगत्स्थितिका मूल है, इसलिये यह प्रत्यक्षसिद्ध जगत् प्रमाणरहित और सकारणक उपलब्ध होनेपरभी अकारणक है, इसप्रकार जगत्का अपलाप "नेहनानास्तिकिंचन" (ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं है) इत्यादि श्रुतिनेही कियाहै ॥ ७ ॥ तत्व-दृष्टिसे ब्रह्मके निर्विकार होनेसे जगत्के अन्यकारणके अभावसे इसकी उत्पत्ति न होनाही इसका अपलाप है और भ्रान्त-दृष्टिसे कारणके विना कार्य्य नहीं होसकता अतः कार्य्यकारणकी कल्पना होती है, जिसने जैसा निर्णय कियाहै उसको वैसाही अनुभूत होताहै, अतः निज २ निश्चयके अनुसार दोनों अनुत्पन्न हैं ॥ ८ ॥

कारणेनविनाकार्यंसद्वदित्युपपद्यते ॥ यथाभावितमेवार्थंसंविदाप्नोत्यसंशयम् ॥ ९ ॥ यथासंभवति स्वप्नेसर्वंसर्वत्रसर्वथा ॥ चिन्मयत्वात्तथाजाग्रत्यस्तिसर्वात्मरूपता ॥ १० ॥ सर्वात्मनिब्रह्मपदेनाना नानात्मनिस्थिता ॥ अस्त्यकारणकार्याणांसत्ताकारणजापिच ॥ ११ ॥ एकःसहस्रंभवतियथाह्येतेकि लैंदवाः ॥ प्रयाताभूतलक्षत्वंसंकल्पजगतांगणैः ॥ १२ ॥

अर्थ—युक्तिदृष्टिसे तो कारणके विना उत्पन्न और संविद्रूपकरके लब्ध यह जगत् अत्यंत असत्भी नहीं है और अत्यंत सत्भी नहीं किन्तु कारणविना कार्य्य सत्के समान भासताहै, संवित् जैसी कल्पना करतीहै वैसेही पदा-र्थको उत्पन्न करती है ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नमें चिन्मय आत्माके सर्वरूप होनेसे सर्वथा सर्वत्र सब कुछ संभव है, ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी चिन्मय ब्रह्मकी सर्वरूपतासे सबकुछ संभव है ॥ १० ॥ मायाशबलित सर्वात्मब्रह्मपदमें नाना तथा अनाना (अद्वैत) रूपसे स्थित है, उसमें यथार्थमें तो कार्य्योंकी सत्ता कारणरहितही है, परन्तु कल्पितरूपसे कार्य्योंकी सत्ता कारणजन्यभी है ॥ ११ ॥ एकही (चित्) सहस्ररूप धारण करताहै, जैसे इन्दुके पुत्र संकल्परचित जगत्समूहोंसे असंख्य भूतरूपताको प्राप्तहुये ॥ १२ ॥

सहस्रमेकंभवतिसंविदांचतथाह्ययत् ॥ सायुज्येचक्रपाण्यादेःसर्गैरेकंभवेद्वपुः ॥१३॥ एकएवभवत्य ब्धिःस्रवंतानांशतैरपि ॥ एकएवभवेत्कालऋतुसंवत्सरोत्करैः ॥ १४ ॥ संविदाकाशएवायंदेहःस्वप्नइ वोदितः॥ स्वप्नाद्रिवन्निराकारःस्वानुभूतिस्फुटोपिच ॥ १५ ॥ संवित्तिरेवानुभवात्सैवाननुभवात्मिका॥ द्रष्टृदृश्यदृशाभातिचिद्व्योमैकमतोजगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसेही विपश्चित् उपाख्यानोक्तरीतिसे चक्रपाणि, विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्रआदिके सायुज्यके विषयमें उपाधियोंके मेलद्वारा सहस्रों संविदोंका एक शरीरभी होताहै ॥ १३ ॥ जैसे सैंकडो नदियां मिलकर एक समुद्र होताहै और ऋतुओंका समूह मिलकर एक काल होताहै ॥ १४ ॥ ऐसेही वास्तविक एकही संविदाकाश (चेतन) स्वप्नके स-दृश भ्रमसे नानाशरीर धारणकरके प्रादुर्भूत होता है और वह स्वप्नके पर्वतके तुल्य निराकारही है, जो निजके नित्य अनुभवसे स्पष्ट है ॥ १५ ॥ अनुभवसे यह स्पष्ट है केवल संवित् जो स्वयं अनुभव तथा चिदाकाशरूप है वही भ्रमसे द्रष्टा, दृश्य तथा दर्शनरूप भेदसे भासती है ॥ १६ ॥

वेदनावेदनात्मैकंनिद्रास्वप्नसुषुप्तवत् ॥ वातस्पंदाविवाभिन्नौचिद्व्योमैकमतोजगत् ॥ १७ ॥ द्रष्टादृश्यं दर्शनंचचिद्व्योमपरमार्थखम् ॥ शून्यस्वप्नइवाभातिचिद्व्योमैकमतोजगत् ॥ १८ ॥ जगत्त्वमसदेवेशेभ्रां त्याप्रथमसर्गतः ॥ स्वप्नेभयमिवाशेषंपरिज्ञातंप्रशाम्यति ॥ १९ ॥ एकस्याःसंविदःस्वप्नेयथाभानमने कधा ॥ नानापदार्थरूपेणसर्गादौगगनेतथा ॥ २० ॥ बहुदीपेगृहेछायाबह्वयोभांत्येकवद्यथा ॥ सर्वश केस्तथैवैकाभातिशक्तिरनेकधा ॥ २१ ॥ यत्सीकरस्फुरणमंबुनिधौशिवाख्येव्योम्नीववृक्षनिकरस्फुरणंस सर्गः ॥ व्योम्न्येषवृक्षनिकरोव्यतिरिक्तरूपोब्रह्मांबुधौनतुमनागपिसर्गबिंदुः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्ममयत्वप्रतिपादनंनामैकोनाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १७९ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें पदार्थोंके ज्ञानरूप सुषुप्तिमें अज्ञानरूप निद्रा एकरूप है तथा पवन और स्पन्द एकरूप है, ऐसेही चिदाकाश तथा जगत् एकरूपही हैं ॥ १७ ॥ स्वप्नके सदृश सबपदार्थशून्यचिदाकाशही द्रष्टा, दृश्य तथा द-र्शनरूपसे यथार्थ चिदाकाशही भासताहै, इसलिये यह जगत् एक चिदाकाशरूपही है ॥ १८ ॥ आदिसृष्टिसेही यह

असत् जगत् परमात्मामें भ्रान्तिसे सत्के समान भासताहै और स्वप्नमें व्याघ्र आदि भयके सदृश ज्ञात होनेपर शीघ्रही नष्ट होताहै ॥ १९ ॥ जैसे स्वप्नमें एकही संवित् अनेकरूपसे भासती है ऐसेही सृष्टिकी आदिमें परब्रह्ममें एकही संवित् नानापदार्थरूपसे भासती है ॥ २० ॥ जैसे अनेकदीपयुक्तगृहमें अनेक दीपप्रभा एकरूपसे भासती हैं ऐसेही सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी एकही शक्ति अनेकरूप भासती है ॥ २१ ॥ आकाशमें भ्रान्तिसे वृक्षसमूहके सदृश परब्रह्मरूप समुद्रमें जो जलकणवत् स्फुरण पाता है वही सृष्टि है, केवल इतनी विशेषता है कि शून्यताधर्मयुक्त आकाशवृक्षसमूह भिन्नरूप है और ब्रह्मसमुद्रमें स्फुरित सृष्टिरूप बिन्दु किंचित् भिन्न नहीं है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्ममयत्वप्रतिपादनं नामैकोनाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १७९ ॥

अशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८० ॥

रामचन्द्रजीसे कथित कुन्ददन्ताख्यानमें पर्वतके वृक्षपर लटकतेहुये तपस्वीके वरलाभपर्यन्त विषय इस १८० के सर्गमें कहागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ इमंमेसंशयंछिंधि भगवन्भास्करंतमः ॥ भुवनस्येवभावानांसम्यग्रूपानुभूयते ॥१॥ कदाचिदहमेकाग्रोविद्यागेहेविपश्चिताम् ॥ संसदिस्थितवान्यावत्तापसःकश्चिदागतः ॥ २ ॥ विद्वान् द्विजवरःश्रीमान्विदेहजनमंडलात् ॥ महातपाःकांतियुतोदुर्वासाइवदुःसहः ॥ ३ ॥ सम्प्रविश्याभिवाद्याशुसभामाभास्वरद्युतिम् ॥ उपविश्यासनेतिष्ठन्नस्माभिरभिवादितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! जैसे संसारके संपूर्ण पदार्थोंके भलीभांति जाननेके अर्थ सूर्य्य अन्धकारका नाश करते हैं ऐसेही सबपदार्थोंके पूर्णरूपसे बोधार्थ मेरे इस संशयका छेदन कीजिये ॥ १ ॥ हे भगवन्! किसीसमय जब मैं पाठशालामें पण्डितकी सभामें विद्यमान था इसी अवसरमें एक तपस्वी वहां आया ॥ २ ॥ विदेहदेशसे आयाहुवा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कान्तियुक्त तथा महातपस्वी दुर्वासाऋषिके समान दुःसहतेजधारी था ॥ ३ ॥ उस महाप्रभायुक्त ब्राह्मणोंकी सभामें शीघ्र प्रवेश करके वह ब्राह्मण दियेहुये आसनपर विराजमान हुआ और हम सबोंने उसको प्रणाम किया ॥ ४ ॥

वेदांतसांख्यसिद्धांतवादान्संहृत्यसत्तमम्॥सुखोपविष्टंविश्रांतंतमहंपृष्टवानिदम् ॥५॥ दीर्घाध्वनापरिश्रांतःसयत्नइवलक्ष्यसे ॥ वदाद्यवदतांश्रेष्ठकुतआगमनंकृतम् ॥ ६ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ एवमेतन्महाभागसुमहायत्नवानहम् ॥ यदर्थमागतोस्मीहतस्याकर्णयनिर्णयम् ॥ ७ ॥ वैदेहोनामदेशोस्तिसर्वसौभाग्यसंयुतः ॥ स्वर्गस्यांबरसंस्थस्यप्रतिबिंबमिवावनौ ॥ ८ ॥

अर्थ—जब वह ब्राह्मण सुखपूर्वक बैठगया तब मैंने निजपठित वेदान्त तथा सांख्यके सिद्धान्तवादोंका उपसंहार करके यह वक्ष्यमाण विषय पूंछा ॥ ५ ॥ कि हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मन्! आप दीर्घमार्ग चलनेसे श्रान्त (थकित) के समान ज्ञात होते हैं सो आपका आगमन कहांसे होताहै सो कृपाकरके कहिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण बोला कि–हे महाभाग! आपका कथन यथार्थ है, मैं बडे प्रयत्नमें हुं, और जिस कार्य्यकेलिये आयाहुं उसका निर्णय सुनिये ॥ ७ ॥ आकाशमें स्थित स्वर्गके प्रतिबिंबके समान संपूर्ण सौभाग्ययुक्त एक विदेहनाम देश है ॥ ८ ॥

तत्राहंब्राह्मणोजातःप्राप्तविद्यश्चसंस्थितः ॥ कुंदावदातदंतत्वात्कुंददंतइतिश्रुतः ॥ ९ ॥ अथाहंजातवैराग्यःप्रविहर्तुंप्रवृत्तवान् ॥ देवद्विजमुनींद्राणांसंभ्रमाच्छमशांतये ॥ १० ॥ श्रीपर्वतमखंडेहंकदाचित्प्राप्तवानहम् ॥ तत्रावसंचिरंकालंमृदुदीर्घंतपश्चरन् ॥ ११ ॥ तत्रास्त्यरण्यंविदितंमुक्तंतृणवनादिभिः ॥ त्यक्ततेजस्तमोभ्रादिभूमाविवनभस्तलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वहांपर ब्राह्मणकुलमें मैं उत्पन्नहुआ और विद्याभी उपार्जन कि है, मेरे दांत कुन्दके समान शुद्ध (श्वेत) हैं इसलिये मेरा नाम कुन्ददन्त है ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् वैराग्य उत्पन्न होनेसे संसारके श्रमकी शान्तिके अर्थ अखंड चेष्टायुक्त मैं देव, ब्राह्मण तथा मुनियोंके स्थानोंमें विचरनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ १० ॥ बिचरते २ श्रीपर्वतपर मैं पहुंचा, वहां दीर्घकालपर्य्यन्त कोमल तप करता हुवा स्थित रहा ॥ ११ ॥ तृणआदिसे शून्य, तेज अन्धकार तथा मेघादिरहित, भूमिपर आकाशके समान वहां एक विदित अरण्य है ॥ १२ ॥

तत्रास्तिमध्येविटपीलघुःपेलवपल्लवः ॥ स्थितएषोंबरेशून्येमंदरश्मिरिवांशुमान् ॥ १३ ॥ लंबतेतस्य शाखायांपुरुषःपावनाकृतिः ॥ भानुर्भानाविवरश्मिगृहीतोग्रंथिताकृतिः ॥ १४ ॥ मौंजदामनिबद्धोर्ध्व पादोनित्यमवाक्शिराः ॥ अष्ठीलत्वंदधदिवमहाष्ठीलस्यशाल्मलेः ॥ १५ ॥ दृष्टःप्राप्तेनतंदेशंसकदाचि न्मयापुमान् ॥ विचारितोनिकटतोवक्षःस्थांजलिसंपुटः ॥ १६ ॥

अर्थ—वहांपर अनेक शाखा तथा पल्लवयुक्त मध्यदेशमें एक छोटा वृक्ष ऐसा है जैसे आकाशमें मन्दकिरणयुक्त सूर्य्य ॥ १३ ॥ उस वृक्षकी शाखामें एक पवित्र आकार पुरुष ऐसे लटकता है जैसे ग्रंथित आकार सूर्य्य अपनी किरणोंके आधारसे ॥ १४ ॥ मूंजकी रज्जुसे ऊर्ध्वभाग पादसे बंधाहुआ नित्य नीचे शिर किया हुवा वह ऐसे लटकताहै जैसे महाशाल्मलिवृक्षके अतिलंबे पर्वको धारण करताहुवा उसीका कोई भाग ॥ १५ ॥ किसीसमय उस देशमें जाकर उस पुरुषको मैंने देखा और उसके वक्षस्थल (छाती) पर हांथ धरके बिचारा ॥ १६ ॥

यावज्जीवत्यसौविप्रोनिःश्वसित्यहताकृतिः ॥ शीतवातातपस्पर्शान्सर्वान्वेत्तिचकालजान् ॥ १७ ॥ अनंतरमसावेकोनोपचर्यमयाबहून् ॥ दिवसातपखेदेनविश्रंभेपातितःशनैः ॥ १८ ॥ पृष्टश्चकोसिभगवन्किमर्थदारुणंतपः ॥ करोषीदंविशालाक्षलक्ष्यालक्ष्यात्मजीवितः ॥ १९ ॥ अथतेनोक्तमर्थस्तेकइवानेनतापस ॥ अर्थेनातिविचित्राहिभवंतीच्छाःशरीरिणाम् ॥ २० ॥

अर्थ—कि निश्चय करके अभीतक यह ब्राह्मण जीता तो है और कालजनित सब शीत, वात तथा आतपके स्पर्शोंका अनुभवभी करताहै ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिनके आतपआदि दुःखसहनपूर्वक उस लटकतेहुये पुरुषकी बहुत सेवा करके शनैः २ उसको अपने विश्वासमें स्थित किया ॥ १८ ॥ तब उससे पूंछा कि–हे विशालाक्ष भगवन् ! तुम जीवनके संकटमें स्थित इस दारुण तपको किस प्रयोजनकेलिये करतेहो ॥ १९ ॥ तब उसने कहा कि मेरे तप कुलआदि जाननेसे तुमारा क्या प्रयोजन है, क्योंकि किसी न किसी अर्थसे प्राणियोंकी विचित्रवस्तु जाननेकी इच्छा होती है ॥ २० ॥

इत्युक्तवान्प्रयत्नेनसोनुबंधेनवैमया ॥ यदापृष्टस्तदातेनममोक्तमिदमुत्तरम् ॥ २१ ॥ मथुरायामहंजातो वृद्धियातःपितुर्गृहे ॥ बाल्ययौवनयोर्मध्येस्थितःपदपदार्थवित् ॥ २२ ॥ समग्रसुखसंभारकोशोभवति भूमिपः ॥ इत्यहंश्रुतवांस्तत्रभोगार्थीनवयौवनः ॥ २३ ॥ अथसप्तमहाद्वीपविस्तीर्णायाभुवःपतिः ॥ स्यामित्यहमुदारात्मापारिबिंबितवांश्चिरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इतना उसके कहनेपर जब मैंने बहुत प्रयत्न तथा स्नेहसे पूंछा तब उसने मुझे यह वक्ष्यमाण उत्तर दिया ॥ २१ ॥ कि मैं मथुरामें उत्पन्न हुआ और अपने पिताके गृहमें पालित होके बाल्य तथा यौवनअवस्थाके मध्यमें शास्त्रोंके पदपदार्थज्ञानसे संयुक्तहुआ ॥ २२ ॥ तब नूतन युवावस्थायुक्त तथा विषयभोगोंका अभिलाषी मैंने शास्त्र तथा अन्यपुरुषोंसे वहां यह सुना कि राजा समस्तसुखकी सामग्रियोंका कोशके समान आश्रय होताहै ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् मैंने चिरकालतक यह इच्छा की कि संपूर्ण अर्थियोंके मनोरथोंका पूरक सप्तद्वीपवती इस विशाल पृथिवीका राजा मैं कैसे होऊं ॥ २४ ॥

इत्यर्थेनसमागत्यदेशमित्थमहंस्थितः ॥ अत्रद्वादशवर्षाणिसमतीतानिमानद ॥ २५ ॥ तदकारणमित्र त्वंगच्छेष्टंदेशमाशुगः ॥ अहंचाभिमतप्राप्तेरित्थमेवदृढस्थितिः ॥ २६ ॥ इतितेनाहमुक्तःसंस्तमित्थं प्रोक्तवाञ्छृणु ॥ आश्चर्यश्रवणेचेतःखेदमेतिनधीमतः ॥ २७ ॥ साधोयावत्त्वयाप्राप्तोननामाभिमतोवरः ॥ त्वद्रक्षापरिचर्यार्थमिहतावदहंस्थितः ॥ २८ ॥

अर्थ—इस प्रयोजनसे इस देशमें आकर इसप्रकार तपस्या करताहुवा मैं स्थित हुं. हे मानद ! इस दशामें मुझे द्वादश (१२) वर्ष बीतगये ॥ २५ ॥ सो हे अकारणमित्र आपके प्रश्नका उत्तर मैंने दिया अब आप शीघ्र अपने अभीष्टस्थानको चलेजाइये, और मैं तो अपने मनोरथप्राप्तिपर्य्यन्त दृढतासे ऐसे तपमें स्थितरहुंगा ॥ २६ ॥ इतना उसके कहनेपर मैंने उससे जो कहा सो सुनिये, क्योंकि आश्चर्य्यमयी कथा श्रवण करनेमें बुद्धिमानूका चित्त खिन्न नहींहोता ॥ २७ ॥ मैंने उससे कहा कि–हे साधो ! जबतक आपको अभीष्टवरकी प्राप्ति न होगी तबतक आपकी रक्षा तथा सेवा करताहुआ मैंभी यहांही विद्यमान रहूंगा ॥ २८ ॥

मयेत्युक्तेसपाषाणमौनवानभवच्छमी ॥ निमीलितेक्षणःक्षीणरूपस्त्वकलनोबहिः ॥ २९ ॥ तथाहंपुर तस्तस्यकाष्ठमौनवतोवसम् ॥ षण्मासान्विगतोद्वेगंवेगान्कालकृतान्सहन् ॥ ३० ॥ अर्कबिंबाद्विनिष्क

म्यतत्प्रदेशांतरेस्थितम् ॥ एकदादृष्टवानस्मिपुरुषंभानुभास्वरम् ॥ ३१ ॥ सतेनपूज्यतेयावन्मनसाक र्मणामया ॥ उवाचतावद्वचनममृतस्यंदसुंदरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मेरे इतना कहनेपर वह शममें निरत मुनि नेत्र मूंदकर बाह्यचेष्टारहित पाषाणवत् मौन होगया ॥ २९ ॥ और उसप्रकार काष्ठवत् मौन धारण कियेहुवे उस तपस्वीके पृष्ठदेशमें कालकृत शीतोष्णादि अनेक क्लेशोंको सहता हुवा उद्वेगरहित मैंभी स्थित था ॥ ३० ॥ एकसमय मैंने क्या देखा कि सूर्य्यके बिंबसे निकलकर सूर्य्यवत्प्रकाशमान एक पुरुष उस स्थानपर आके संमुख स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ जबतक मैं तथा वह तपस्वी मिलके मन, कर्म तथा वाणीसे उस पुरुषकी पूजा करैं इतनेहीमें अमृतस्राविणी सुन्दरवाणीसे वह पुरुष बोला ॥ ३२ ॥

शाखाप्रलंबनपरहेब्रह्मन्दीर्घतापस ॥ तपःसंहरसंहारिगृहाणाभिमतंवरम् ॥ ३३ ॥ सप्ताब्धिद्वीपवल यांपालयिष्यसिमेदिनीम् ॥ सप्तवर्षसहस्राणिदेहेनानेनधर्मतः ॥ ३४ ॥ एवंसमीहितंदत्वासद्वितीयोदि वाकरः ॥ गंतुमस्तमथार्काब्धिमविशत्प्रोदितोयतः ॥ ३५ ॥ तस्मिन्यातेमयाप्रोक्तंतस्यशाखातपस्विनः ॥ श्रुतदृष्टानुभूताऽयवरदस्यविवेकिनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कि-हे शाखाके प्रलम्बनपरायण! हे दीर्घतपस्वी ब्राह्मण! आप अपनी तपस्याका अब उपसंहार कीजिये और मनोहर अपना अभीष्ट वर ग्रहण कीजिये ॥ ३३ ॥ इस शरीरसे जो कुछ तुमने तप किया है उस पुण्यसे सप्त समुद्र तथा सप्तद्वीपोंसे वेष्टित (घिरीहुई) इस पृथिवीको सप्तसहस्र (सात हजार) वर्ष पालन करोगे ॥ ३४ ॥ इसप्रकार अभिमत वरदान देकर वह द्वितीय सूर्य्य (सूर्य्यके सदृश) जिस सूर्य्यरूपी समुद्रसे निकला था उसीमें पुनः अन्तर्धान होनेकेलिये प्रविष्ट होगया ॥ ३५ ॥ उस वरदाता आदित्यपुरुषके चले जानेपर, शास्त्रद्वारा श्रुत, प्रत्यक्षदृष्ट तथा वरदानव्यवहारसे वर देनेवाले आदित्यको अनुभवकरनेवाले उस शाखाके तपस्वीसे मैंने कहा ॥ ३६ ॥

संप्राप्ताभिमतंब्रह्मंस्तरुशाखावलंबनम् ॥ तपस्त्यक्त्वायथाप्राप्तंव्यवहारंसमाचर ॥ ३७ ॥ एवमंगीकृ तवतःपादौतस्यमयाततः ॥ मुक्तौविटपिनस्तस्मादालानात्कलभाविव ॥ ३८ ॥ स्नातःपवित्रहस्तोसौ चक्रेजप्त्वाघमर्षणम् ॥ फलेनपुण्यलब्धेनविटपाद्व्रतपारणम् ॥ ३९ ॥ तत्पुण्यवशतःप्राप्तैःस्वादुभिस्तै स्तरोःफलैः ॥ समाश्वस्तावसंक्षुब्धावावांतत्रदिनत्रयम् ॥ ४० ॥ सप्तद्वीपसमुद्रमुद्रितदिशंभोक्तुंसम ग्रांमहींविप्रःपादपलंबितेनवपुषातप्त्वोर्ध्वपादस्तपः ॥ संप्राप्यभिमतंवरंदिनकृतोविश्रम्यचाह्नांत्रयंसार्धं मत्सुहृदास्वमेवसदनंगंतुंप्रवृत्तोभवत् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुतापसोपाख्याननंनामाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८० ॥

अर्थ—कि-हे ब्रह्मन्! अब आपको अभिमत वर मिलगयाहै, अतः शाखावलम्बनरूप (कष्टदायक) इस तपको त्यागकर अब यथार्थ प्राप्त अपने गृहादिगमनरूप व्यवहारको करो ॥ ३७ ॥ इसप्रकारके कथनको अंगीकार करनेपर उस वृक्षकी शाखासे उसके दोनोंपादोंको मैंने ऐसे मुक्त किया जैसे बन्धनसे हस्तीको ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् स्नानकरके पवित्रहस्तसे उस ब्राह्मणने अवमर्षणमंत्रका जप किया, अनन्तर तपके पुण्यसे प्राप्त उसी वृक्षके फलका मेरे साथ व्रतका पारण किया ॥ ३९ ॥ इसके अनंतर तपके प्रभावसे प्राप्त अतिस्वादिष्ट उस वृक्षके फलोंको अतिक्षुधित हम दोनोंने भोजन करतेहुये तीन दिवस वहां निवास किया ॥ ४० ॥ सप्तद्वीपवती समस्त पृथिवीका राज्य करनेकेलिये ऊपर पाद तथा नीचें मस्तककरके उस वृक्षकी शाखामें लटकताहुआ वह ब्राह्मण दीर्घतपस्याकरके सूर्य्यपुरुषसे अभिमत वरदान पानेके पश्चात् पादपीडाकी निवृत्तिके अर्थ तीन दिवस वहां विश्रामकरके मुझ सुहृत्के साथ मथुराजीमें स्थित निज गृहको गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासु तापसोपाख्यानं नामाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८० ॥

एकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८१ ॥

मथुराजी जातेहुये मार्गके भूलनेसे गौरीवनकी प्राप्ति तथा वहां एक वृद्ध तपस्वीसे संवाद इस १८१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

कुंददंतउवाच ॥ आवासमंतरेगंतुंप्रवृत्तौमुदिताकृती ॥ मथुरानगरींचंद्रसूर्याविंद्रपुरीमिव ॥ १ ॥ प्राप्यरोधाभिधंग्रामंविश्रम्याम्रवनाचले ॥ उषितौद्वेदिनेतस्मिन्सालीसेनगरेसुखम् ॥ २ ॥ अध्वानंदितचित्ताभ्यामावाभ्यामतिवाहितः ॥ द्वितीयेहनिशीतांबुस्निग्धच्छायावनद्रुमाः ॥ ३ ॥ नदीतीरलतोन्मुक्तपुष्पप्रकरपांडुराः ॥ तरत्तरंगझांकारगायनानंदिताध्वगाः ॥ ४ ॥

अर्थ—कुन्ददन्त बोला कि–जैसे इन्द्रपुरीको जातेहुये सूर्य्य तथा चन्द्रमा सायंकालमें पश्चिमदिशामें निवास करते हैं ऐसेही दिनभर चलके सायंकालमें हम दोनोंभी मध्यमें निवास करनेमें प्रवृत्तहुये ॥ १ ॥ चलते २ रोधनाम ग्राममें प्राप्त होकर वहां आमके बनसे शोभित पर्वतपर विश्राम करके सालीसनाम नगरमें दोदिवस सुखपूर्वक निवासकिया ॥ २ ॥ अनन्तर प्रसन्नचित्त हम दोनों अपने मार्गको पार करते रहे, और द्वितीयदिनमें शीतलजल, स्निग्धछायासहित बनवृक्षोंसे पूर्ण सजलभूमियोंको पार किया ॥ ३ ॥ नदियोंके तटोंपर लताओंसे गिरेहुये पुष्पोंके समूहसे पीतवर्ण, तथा चंचलतरंगोंके झंकारसे गानमें तत्पर आनन्दित पथिकोंसे शोभित ॥ ४ ॥

स्निग्धद्रुमवनच्छायरणन्मृगविहंगमाः ॥ स्थूलशाद्वलशाखाग्रप्रोतावश्यायमौक्तिकाः ॥ ५ ॥ जंगलाद्रिपुरग्रामश्वभ्रानूपस्थलावनीः ॥ समुल्लंघ्यदिनेतस्मिन्सरित्स्रोतःसरांसिच ॥ ६ ॥ नीतवंतौनिशामावांकदलीकाननेघने ॥ तुषारशिशिरेश्रांतौकदलीदलतल्पके ॥ ७ ॥ प्राप्तावावांतृतीयेह्निषंडषंडकमंडितम् ॥ जंगलंजनविच्छेदविभक्तंखमिवाकृतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा सघन बन और वृक्षोंकी छायामें शब्द करते मृग तथा पक्षियोंसे युक्त, तथा स्थूल हरिततृणोंकी शाखाओंमें गूंथे हुये मोतियोंके सदृश निहारोंसे पूर्ण ॥ ५ ॥ तथा जंगल, पर्वत, नगर और ग्रामोंसे पूर्ण सजलभूमियोंको तथा नदी, झरने और तडागोंको उल्लंघन करके उस दिन भ्रान्त हम दोनोंने हिमसे शीतल कदलीके सघनबनमें केलेके पत्तोंकी शय्यापर रात्रि व्यतीत किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ और तृतीयदिन कमल तथा लतासमूहोंसे मंडित तथा मेघखंडोंसे आकाशके तुल्य मनोहर तृणवृक्षादिसे विभक्त एक जंगलमें पहुंचे ॥ ८ ॥

तत्रसप्रकृतंमार्गंपरित्यज्यवनांतरम् ॥ प्रविशन्समुवाचेदमकार्यकरणंवचः ॥ ९ ॥ गच्छावोत्राश्रमेगौर्यामुनिमंडलमंडिते ॥ भ्रातरोमेस्थिताःसप्तवनेष्वेवमिवार्थिनः ॥ १० ॥ भ्रातरोष्टौवयमिमेजातानेकतयातया ॥ एकसंविन्मयाजाताएकसंकल्पनिश्चयाः ॥ ११ ॥ तेनतेप्यत्रतपसेस्वनिश्चयसमाश्रयाः ॥ स्थिताआगत्यविविधैस्तपोभिःक्षपितैनसः ॥ १२ ॥

अर्थ—वहांपर प्रकृतमार्गको त्यागकर अन्यवनमें प्रवेश करतेहुये उस तपस्वीने अकार्य्यकारी इस वचनको कहा ॥ ९ ॥ कि हे मित्र मुनियोंके मंडलसे शोभित इस गौरीके आश्रममें आओ हम दोनों चलैं, क्योंकि–मेरेही समान अर्थी मेरे सात भ्राता यहां स्थित थे ॥ १० ॥ अनेक मनोरथोंसे युक्त होनेसे हम आठों भ्राता तप करनेमें दृढ निश्चय करके एकसंविन्मय होगयेथे ॥ ११ ॥ इसी हेतुसे अपने २ निश्चयमें परायण वे सातों भ्राताभी यहां आके अनेकप्रकारके तपोंमें स्थित पापरहित होगये ॥ १२ ॥

तैःसार्द्धंभ्रातृभिःपूर्वमागत्याहमिहावसम् ॥ षण्मासानाश्रमेगौर्यास्तेनदृष्टोमयैषसः ॥ १३ ॥ पुष्पखंडतरुच्छायासुप्तमुग्धमृगार्भकः ॥ पर्णोटजाग्रविश्रांतशुकोद्ग्राहितशास्त्रदृक् ॥ १४ ॥ तद्ब्रह्मलोकसंकाशमेहिमुन्याश्रमंश्रिये ॥ गच्छावोच्छतरंतत्रचेतःपुण्यैर्भविष्यति ॥ १५ ॥ विदुषामपिधीराणामपितत्त्वविदामपि ॥ त्वरतेहिमनःपुंसामलंबुद्धिविलोकने ॥ १६ ॥

अर्थ—उन निज सप्त भ्राताओंके साथ आकर इस गौरीजीके आश्रममें मैंनेभी छः मासपर्य्यन्त निवासकियाथा उससमय इस आश्रमको मैंने देखाथा ॥ १३ ॥ पुष्पसमूहसे युक्त वृक्षोंकी सघनछायामें शयन करतेहुये मृगशिशुओंसे पूर्ण तथा तपस्वियोंकी पर्णशालाओंमें विश्रान्त नानाशास्त्रोंके ज्ञाता शुकोंसेभी पूर्ण यह पवित्र आश्रम है ॥ १४ ॥ अतः ब्रह्मलोकके समान इस आश्रममें आओ, निजकल्याणकेलिये चलैं, क्योंकि इस आश्रमके दर्शनके पुण्योंसे हम दोनोंका चित्त दोषरहित तथा निर्मल होजायगा ॥ १५ ॥ क्योंकि तत्वदर्शनसे पूर्णचित्त मुनियोंके दर्शनार्थ धीर विद्वानोंकाभी चित्त त्वरायुक्त होताहै तो हमारे समान जनोंकी कथा क्या है ॥ १६ ॥

तेनेत्युक्तेचतावावांप्राप्तौमुन्याश्रमंचतम् ॥ यावत्तत्रमहारण्येपश्यावश्वांतरूपिणम् ॥ १७ ॥ नवृक्षंनोटजंकिंचिन्नगुल्मंनचमानवम् ॥ नमुनिनाभर्कंनान्यत्रवेदिनचवाद्विजम् ॥ १८ ॥ केवलंशून्यमेवातितदरण्यमनंतकम् ॥ तापोपतप्तमभितोभूमौस्थितमिवांबरम् ॥ १९ ॥ हाकष्टंकिमिदंजातमितितस्मिन्वदत्यथ ॥ आवाभ्यांसुचिरंभ्रांत्वादृष्टएकत्रवृक्षकः ॥ २० ॥

अर्थ—इतना उस तपस्वीके कहनेपर हम दोनों उस मुनियोंके आश्रममें प्राप्तहुये और उस महाअरण्यमें प्रवेश करतेही आश्रमको सर्वथा शून्य देखा ॥ १७ ॥ वहांपर न वृक्ष है, न पर्णशाला हैं, न कोई लता है, न मनुष्य है, न कोई मुनि है, न बालक है, न वेदी है, न कोई ब्राह्मण है और न अन्य कुछ है! ॥ १८ ॥ तापसे अतिसंतप्त भूमिपर स्थित आकाशके तुल्य वह महाअरण्य केवल शून्य है! ॥ १९ ॥ हा! कष्ट! यह क्या होगया, ऐसा जब मेरा मित्र तापस कहताथा तब हम दोनोंने चिरकालतक भ्रमणकरनेके पश्चात् एक वृक्ष देखा ॥ २० ॥

स्निग्धच्छविर्घनच्छायःशीतलोंबुधरोपमः ॥ तलेतस्यसमाधानेसंस्थितोवृद्धतापसः ॥ २१ ॥ आवामग्रेमुनेस्तस्यछायायांशाद्वलस्थले ॥ उपविष्टौचिरंयावन्नासौध्यानान्निवर्तते ॥ २२ ॥ ततश्चिरेणकालेनमयोद्वेगेनचापलात् ॥ उक्तंमुनेप्रबुध्यस्वध्यानादित्युच्चकैर्वचः ॥ २३ ॥ शब्देनोच्चैर्मदीयेनसंप्रबुद्धोभवन्मुनिः ॥ सिंहोंबुदरवेणेवजृंभांकृत्वाभ्युवाचच ॥ २४ ॥

अर्थ—मनोहर शोभायुक्त, घनीभूत छायासहित तथा मेघके समान शीतल वह वृक्ष था और उसके नीचे समाधिपरायण एक वृद्ध तपस्वी स्थितथा ॥ २१ ॥ हरिततृणपर उस मुनिके आगे हम दोनों चिरकालपर्य्यन्त यावत्काल वह समाधिध्यानसे विरत न हुआ स्थित रहे ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् चिरकालसे घबराके चंचलस्वभाव होनेसे उच्चस्वरसे मैंने कहा कि-हे मुने! समाधिसे अब जागो ॥ २३ ॥ तब जैसे मेघकी गर्जनासे सिंह जागताहै ऐसेही मेरे उच्चस्वरसे वह मुनि समाधिसे विरत हो झँभाई लेके बोला ॥ २४ ॥

कौभवंताविमौसाधूकासौगौर्याश्रमोगतः ॥ केनवाहमिहानीतःकालोयंकश्ववर्तते ॥ २५ ॥ तेनेत्युक्ते मयाप्युक्तंभगवन्विद्धिईदृशम् ॥ नकिंचिदावांबुद्धोपिकस्माज्जानासिनस्वयम् ॥ २६ ॥ इतिश्रुत्वासभगवान्पुनर्ध्यानमयोभवत् ॥ ददर्शोदंतमखिलमस्माकंस्वात्मनस्तथा ॥ २७ ॥ मुहूर्तमात्रेणोवाचप्रबुद्धध्यानतोमुनिः ॥ श्रूयतामिदमाश्चर्यमार्यौहिकार्यवेदिनौ ॥ २८ ॥

अर्थ—कि-हे साधु! तुम दोनों कौन हो, गौरीका आश्रम कहां गया और मुझे यहां किसने प्राप्तकिया! तथा यह कौन काल वर्त रहाहै ॥ २५ ॥ उस मुनिके इतना कहनेपर मैंने कहा कि-हे भगवन्! आपके इस प्रश्नको हम कुछ नहीं जानते अतः आप योगबलसे स्वयं सब कुछ क्यों नहीं जानलेते ॥ २६ ॥ इस वचनको सुनके वह भगवान् मुनि पुनः ध्यानमें परायण होगया और उस ध्यानमें हम दोनोंका तथा अपना सब वृत्तांत देखा ॥ २७ ॥ एकमुहूर्तमें ध्यानसे प्रबुद्ध होकर वह मुनि बोला कि-तुम दोनों श्रेष्ठ पुरुष तथा कार्य्यके ज्ञाता हो, इस आश्चर्य्यको सुनो ॥ २८ ॥

यमिमंपश्यथःसाधूकदंबतरुपुत्रकम् ॥ मदास्पदमरण्यान्याधम्मिल्लमिवपुष्पितम् ॥ २९ ॥ केनापिकारणेनास्मिन्सतीवागीश्वरीसती ॥ अवसद्दशवर्षाणिसमस्तर्तुनिषेविता ॥ ३० ॥ तदातेनेहविस्तीर्णमभवद्घनकाननम् ॥ गौरीवनमितिख्यातंभूषितंकुसुमर्तुभिः ॥ ३१ ॥ भृंगांगनाजनमनोहरहारिगीतलीलाविलोककलकंठविहंगमंग ॥ पुष्पांबुवाहशतचंद्रनभोवितानंराजीवरेणुकणकीर्णदिगंतरालम् ॥३२॥

अर्थ—हे साधो! पुत्रके तुल्य केशपाशवत् सघनपुष्पयुक्त इस छोटे कदम्बवृक्षको जो तुम देखतेहो यह इस बनमें मेरा निवासस्थान है ॥ २९ ॥ किसी कारणसे वागीश्वरी भगवती गौरीने समस्तऋतुओंसे सेवित सरस्वती रूप धारण करके यहां दशवर्षपर्य्यन्त निवास किया ॥ ३० ॥ तिसकारणसे उस सरस्वतीदेवीके निवासकालमें यह अरण्य वृक्षोंसे सघन होकर विस्तारको प्राप्तहुवा. और उससमयसे समस्त ऋतुओंके पुष्पोंसे शोभित वह बन गौरीबन इस नामसे प्रसिद्ध हुवा ॥ ३१ ॥ हे प्रिये! भ्रमरियोंके मनोहरगीतोंकी लीलाओंसे दर्शनसे मधुरकंठ कोकिलादि पक्षियोंसे पूर्ण, तथा मेघोंके तुल्य पुष्पवर्षी वृक्षोंसे शतचन्द्रयुक्त आकाशके वितानकेसमान बन यहांपर था ॥ ३२ ॥

मंदारकुंदमकरंदसुगंधिताशंसंसूच्छ्लसत्कुसुमराशिशशांकनिभम् ॥ संतानकस्तबकहासविकासकांतमामोदिमारुतसमस्तलतांगनौघम् ॥ ३३ ॥ पुष्पाकरस्यनगरंनवगीतभृंगंभृंगांगनाकुसुमखंडकमंडपाढ्यम् ॥ चंद्रांशुजालपरिकोमलपुष्पदोलादोलायमानसुरसिद्धवधूसमूहम् ॥ ३४ ॥ हारीतहंसशुककोकिलकोककाकचक्राह्वभासकलविंककुलाकुलांगम् ॥ भेरुंडकुक्कुटकपिंजलहेमचूडराढामयूरबककल्पितकेलिरम्यम् ॥ ३५ ॥ गंधर्वयक्षसुरसिद्धकिरीटघृष्टपादाब्जकर्णिककदंबसरस्वतीकम् ॥ वातायनंकनककोमलचंपकौघतारांबरांबुधरपूरगृहीतगंधम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा मन्दार और कुन्दआदि पुष्परसोंसे संपूर्ण दिशाओंको सुगन्धित करनेवाला, चारोंओरसे विकसित पुष्पराशियोंसे चन्द्रबिंबके समान, कल्पवृक्षोंके विकसित हास्यतुल्य गुच्छोंसे अतिरमणीय, तथा सुगन्धयुक्त वायुसे व्याप्त समस्त लतारूप अंगनाओंके समूहसे पूर्ण यह बनथा ॥ ३३ ॥ तथा वसन्तके नगरके समान विराजमान, भृंगा-

नाओंसे युक्त पुष्पमंडपोंसे पूर्ण, और चन्द्रकिरणोंके समान उत्तम पुष्पमयी झूलाओंमें झूलतीहुई सुर तथा सिद्धांगनाओंके समूहसें पूर्ण यह बन था ॥ ३४ ॥ तथा हारीत (मैना) हंस, शुक, कोकिल, काक, चक्रवाकादि पक्षिसमूहोंसे व्याप्त तथा भेरुंड, कुक्कुर (मुर्गे) कपिंजल, तित्तिर, मयूर तथा बकआदि पक्षियोंकी क्रीडाओंसे रमणीय यह बन था ॥ ३५ ॥ तथा गन्धर्व, यक्ष, सुर, तथा सिद्धआदिके मुकुटमणियोंसे घृष्ट (पूजित) चरणारविन्दकदम्बयुक्त सरस्वतीसे शोभित, सुगन्धितवायुका स्थान, अतएव कनकवत् कोमल चंपकसमूहोंसे तारा तथा मेघोंसे गृहीत सुगन्धयुक्त यह बन था ॥ ३६ ॥

मंदानिलस्खलितपल्लवबालवल्लीविन्यासगुप्तदिवसाधिपरश्मिशीतम् ॥ पीतंकदंबकरवीरकनालिकेरतालीतमालकुलपुष्पपरागपूरैः ॥ ३७ ॥ कह्लारकीर्णकुमुदोत्पलपद्मखंडवल्गच्चकोरबककोककदंबहंसम् ॥ तालीसगुग्गुलकचंदनपारिभद्रभद्रद्रुमोदरविहारिविचित्रशक्ति ॥ ३८ ॥ तस्मिन्वनेचिरमुवासहरार्धदेहाकेनापिकारणवशेनचिरायगौरी ॥ भूत्वाप्रसन्नशशिबिंबमुखीकदंबवागीश्वरीशशिकलेवशिवस्यमूर्ध्नि ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुतापसोपा० गौर्याश्रमवर्णनं नामैकाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८१ ॥

अर्थ—तथा मन्दपवनसे गिरीहुई बाललताओंके विस्तारोंसे गुप्त कुंजोंमें अवरुद्ध सूर्य्यकिरणोंसे आभ्यन्तरप्रदेशमें अतिशीतल, तथा कदंब, करवीर, नारिअर, ताली और तमालादि पुष्पपरागोंके समूहोंसे पीतवर्ण यह बन था ॥ ३७ ॥ तथा रक्तकमलमिश्रित नीलकमलयुक्त श्वेतकमलोंके बनोंमें कूजते हुये चकोर तथा हंसआदि पक्षियोंसे शोभित, तथा ताली, गुग्गुल, चन्दन, निंब और पारिभद्रादि वृक्षोंके मध्यमें विहार करानेवाली समस्तमनोरथपूरक सब विचित्रशक्तियोंसे पूर्ण यह बन था ॥ ३८ ॥ इसप्रकार इस उत्तमबनमें किसीकारणसे प्रसन्न होकर चन्द्रवर्णी, श्रीशिवजीकी अर्द्धांगिनी वागीश्वरी गौरीभगवतीने चिरकालतक ऐसे निवास किया जैसे शिवजीके मस्तकपर चन्द्रकला ॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासुतापतोपा० गौर्य्याश्रमवर्णनं नामैकाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८१ ॥

द्वयशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८२ ॥

कदंबके तापसका उसके भ्राताओंके साथ समागम, तथा गृहोंमें वरशापादिके हेतु तथा सिद्धिका वर्णन इस १८२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

वृद्धतापसउवाच ॥ तस्मिन्नेवकदंबेस्मिन्वर्षाणिस्वेच्छयादश ॥ स्थित्वागौरीजगामाथहरवामार्धमंदिरम् ॥ १ ॥ तत्स्पर्शामृतसिक्तोयंकदंबतरुपुत्रकः ॥ उत्संगइवचासीनोनयात्येवपुराणताम् ॥ २ ॥ ततोगौर्यांप्रयातायांनद्वनंताद्दशंमहत् ॥ सामान्यवनतांयातंजनवृंदोपजीवितम् ॥ ३ ॥ मालवोनामदेशोस्तितत्राहंपृथिवीपतिः ॥ कदाचित्त्यक्तराज्यश्रीर्मुनीनामाश्रमान्भ्रमन् ॥ ४ ॥

अर्थ— वृद्धतापस बोला कि–हे साधू ! इसी मेरे निवासभूत कदंबपर निजइच्छासे गौरीभगवतीने दशवर्ष निवास किया, पश्चात् वह श्रीमहादेवजीकी अर्द्धांगी निजमंदिरको चलीगई ॥ १ ॥ उस भगवती गौरीके स्पर्शरूपी अमृतसे सिक्त यह पुत्रवत् कदंबवृक्ष बालकके समान मेरे समीप स्थित प्राचीनताको नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥ उस गौरीभगवतीके चलेजानेके पश्चात् पुष्प, फल तथा काष्ठादिसंप्रदानसे मनुष्यसमूहका आश्रय यह महाबन साधारणबनके समान होगया ॥ ३ ॥ मालवनामका एक देश है, वहांका मैं राजा हुं, किसीसमय वैराग्यसे राज्यको त्यागकर मुनियोंके आश्रमोंमें भ्रमण करताहुआ ॥ ४ ॥

इमंदेशमनुप्राप्तइहचाश्रमवासिभिः ॥ पूजितोस्यकदंबस्यध्याननिष्ठस्तलेस्थितः ॥ ५ ॥ केनचित्त्वथकालेनभ्रातृभिःसप्तभिःसह ॥ भवानभ्यागतःपूर्वंतपोर्थमिममाश्रमम् ॥ ६ ॥ तपस्विनोष्टाविहतेतथानामतदावसन् ॥ यथातपस्विनोन्येतेतेषांमान्यास्तपस्विनः ॥ ७ ॥ कालेनानंतरमसावेकःश्रीपर्वतंततः ॥ स्वामिनंकार्तिकेयंचद्वितीयस्तपसेगतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस स्थानपर प्राप्त हुआ, तथा इस आश्रमके निवासियोंसे पूजित होकर इस कदम्बवृक्षके तले ध्यानमें परायण हुआ ॥ ५ ॥ पश्चात् कुछकालके बीतनेपर सातभ्राताओंके साथ आप इस आश्रममें तप करनेके अर्थ आये

॥ ६ ॥ तुम आठो भ्राता अन्य तपस्वियोंके तुल्य उससमय यहां निवास करनेलगे, और उन तपस्वियोंकेभी तुम पूजनीय थे ॥ ७ ॥ अनन्तर कुछकाल बीतनेपर उनमेंसे तुम एक तपके अर्थ श्रीपर्वतपर गये, और दूसरा भ्राता स्वामी कार्तिकेयके स्थानपर तपके लिये गया ॥ ८ ॥

वाराणसींतृतीयस्तुचतुर्थोगाद्धिमाचलम् ॥ इहैवतेपरेधीराश्चत्वारोन्येपरंतपन् ॥ ९ ॥ सर्वेषामेव चैतेषांप्रत्येकंत्वेतदीप्सितम् ॥ यथासमस्तद्वीपायाभुवोस्याःस्यांमहीपतिः ॥ १० ॥ अथसंपादितंते षांसर्वेषामेतदीप्सितम् ॥ तपस्तुष्टाभिरिष्टाभिर्देवताभिर्वरैर्वरैः ॥ ११ ॥ तपतस्तेततोयाताभ्रातरःस दनंनिजम् ॥ भूमौधर्मयुगंभुक्त्वावेधाब्रह्मपुरीमिव ॥ १२ ॥

अर्थ—और तीसरा भ्राता श्रीकाशीजीको तथा चतुर्थ हिमालयपर गया, और अन्य चार भाइयोंने इसी स्थानपर उग्र तप किया ॥ ९ ॥ और सब भ्राताओंमेंसे प्रत्येकको यह अभीष्ट था कि इस सप्तद्वीपवती समस्तपृथिवीका मैं राजा होऊं ॥ १० ॥ इसके अनन्तर तपसे सन्तुष्ट देवताओंकेद्वारा श्रेष्ठवरोंकी प्राप्तिसे यह अभिलषित सबका सिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ तुम जब तप कररहे थे तभी वे सब तुमारे भाई वर पाके निजगृहको ऐसे गये जैसे पृथिवीपर धर्मप्रधान सत्ययुगको भोगकर ब्रह्माजी ब्रह्मपुरीको ॥ १२ ॥

तैर्भवद्भ्रातृभिर्भव्यवरदानविधौतदा ॥ इदंवरोद्यतायत्नात्प्रार्थिताःस्वेष्टदेवताः ॥ १३ ॥ देव्यस्माक मिमेसर्वेसप्तद्वीपेश्वरस्थितौ ॥ सत्याःप्रकृतयःसंतुसर्वेआश्रमवासिनः ॥ १४ ॥ तमिष्टदेवतासार्थमु रीकृत्यसादरम् ॥ तेषामस्त्वेवमित्युक्त्वाजगामांतर्द्धिमीश्वरी ॥ १५ ॥ तेततःसदनंयातास्तेषामाश्र मवासिनः ॥ सर्वएवगताःपश्चादेकएवास्मिनोगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! तुमारे भ्राताओंने वरदान देनेमें उद्यत देवताओंसे यत्नपूर्वक यह प्रार्थना की ॥ १३ ॥ कि हे देवि ! जब हम सब सप्तद्वीपके स्वामी हों तब हमारी संपूर्ण प्रजा असत्यको त्यागकर सत्यमें तत्पर हो, तथा संपूर्ण निज २ वर्णाश्रमधर्ममें परायण हो ॥ १४ ॥ उस इष्टदेवता भगवती परमेश्वरी उनकी इस प्रार्थनाको आदरपूर्वक अंगीकार करके "एवमस्तु" ऐसाही हो ऐसा उनसे कहके अन्तर्द्धान होगई ॥ १५ ॥ अनन्तर वे सब अपने स्थानको गये, उनके पश्चात् अन्य आश्रमनिवासी तपस्वीभी चलेगये, केवल एक मैंही शेष रहगया ॥ १६ ॥

अहंकेवलमेकांतेध्यानैकगतमानसः ॥ वागीश्वरीकदंबस्यतलेतिष्ठामिशैलवत् ॥ १७ ॥ अथकालेव हत्यस्मिन्नृतुसंवत्सरात्मनि ॥ इदंसर्ववनंछिन्नंजनैःपर्यंतवासिभिः ॥ १८ ॥ इदंकदंबमम्लानंजनताः पूजयंत्यलम् ॥ वागीश्वरीगृहमितिमांचैवैकसमाधिगम् ॥ १९ ॥ अथैनंदेशमायातौभवंतौदीर्घतापसौ॥ एतत्तत्कथितंसर्वंध्यानदृष्टंमयाखिलम् ॥ २० ॥

अर्थ—मैं अकेला ध्यानमें दत्तचित्त इस वागीश्वरीके कदम्बके तले पर्वतके तुल्य निश्चल स्थित हूं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर ज्यों २ ऋतु तथा सम्वत्सरकाल बीतने लगा त्यों २ निकटके निवासियोंने इस संपूर्ण बनको काटडाला ॥ १८ ॥ श्री वागीश्वरीभगवतीका गृह जानकर इस लहलहाते हुये कदम्बवृक्षकी तथा ध्यानमें निष्ठ मेरी संपूर्ण जनसमूह पूर्णरीतिसे पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर तुम दोनों दीर्घ तपस्वी इस स्थानपर आये यह ध्यानसे दृष्ट मैंने तुमसे तब कहदिया ॥ २० ॥

तस्मादुत्थायहेसाधूगच्छतंगृहमागतौ ॥ तत्रतेभ्रातरःसर्वेसंगतादारबंधुभिः ॥ २१ ॥ अष्टानांभव तांभव्यंसदनेस्वेभविष्यति ॥ महात्मनांब्रह्मलोकेवसूनामिवसंगमः ॥ २२ ॥ इत्युक्तेतेनसमयादृष्टः परमतापसः ॥ संदेहादिदमाश्चर्यमार्यास्तद्वर्णयाम्यहम् ॥ २३ ॥ एकैवसप्तद्वीपास्तिभगवन्भूरियं किल ॥ तुल्यकालंभवंत्यष्टौसप्तद्वीपेश्वराःकथं ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये इस स्थानसे उठके तुम दोनों निज २ गृहको जाओ और वहांपर तुमारे सप्तभ्राता तुमसे पूर्वेही अपनी स्त्रियों तथा बंधुओंसे संयुक्त हैं ॥ २१ ॥ वहां गृहमें तुम आठो भ्राताओंका ऐसे समागम होगा जैसे ब्रह्मलोकमें अष्टवसुओंका ॥ २२ ॥ इतना उस वृद्ध तपस्वीके कहनेपर उससे संदेहसे जो आश्चर्य्यमय विषय पूंछा वह हे रामआदि भद्रपुरुषो ! आपसे मैं वर्णन करताहूं ॥ २३ ॥ मैंने उस वृद्धतपस्वीसे पूंछा कि हे भगवन् ! सप्तद्वीपवती यह पृथिवी जो एकही है, तो एकहीकालमें सप्तद्वीपेश्वर (सात द्वीपके राजा) सातों कैसे होंगे ? ॥ २४ ॥

कदंबतापसउवाच ॥ असमंजसमेतावदेवनोयावदुच्यते ॥ इदमन्यदसंबद्धतरंसंश्रूयतांमम ॥ २५ ॥ एतेष्टौभ्रातरस्तत्रतापसादेहसंक्षये ॥ सप्तद्वीपेश्वराःसर्वेभविष्यंतिगृहोदरे ॥ २६ ॥ अष्टौह्येतेमहीपीठे

ष्वेतेष्वेतेषुसद्मसु ॥ सप्तद्वीपेश्वराभूपाभविष्यंतीहमेशृणु ॥ २७ ॥ अस्त्येतेषांकिलाष्टानांभार्याष्टकम निंदितम् ॥ दिगंतराणांनियतंताराष्टकमिवोज्ज्वलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कदम्बका तपस्वी बोला–कि हे ब्रह्मन्! सातों एककालमें सप्तद्वीपेश्वर होंगे इतनाही असमंजस जो तुम कहते हो नहीं है किन्तु यह और असंबद्धतर (अधिक असमंजस वा आश्चर्य्य) मैं जो कहता हूं उसे सुनो ॥ २५ ॥ ये आठों तपस्वीभ्राता शरीरोंके नाश होनेपर उसी अपने गृहाकाशमें सब एककालमें सप्तद्वीपके राजा होंगे ॥ २६ ॥ ये आठों उन्ही निजगृहोंमें इस भूमंडलपर सप्तद्वीपवती पृथिवीके स्वामी एककालमेंही होंगे यह तुम मुझसे सुनो ॥ २७ ॥ प्राचीआदि अष्टदिशाओंमें अष्टताराओंके तुल्य इन आठों भ्राताओंकी आठ उज्ज्वल कर्मकारिणी अनिन्दित भार्य्या हैं ॥ २८ ॥

तद्भार्याष्टकमेतेषुयातेषुतपसेचिरम् ॥ बभूवदुःखितंक्षीणांयद्वियोगोहिदुःसहः ॥ २९ ॥ दुःखिताःप्रत्ययेतेषांचक्रुस्तादारुणंतपः ॥ शतचांद्रायणंतासांतुष्टाभूत्तेनपार्वती ॥ ३० ॥ अदृश्योवाचसातासांव चोंतःपुरमंदिरे ॥ देवीसपर्यावसरेप्रत्येकंपृथगीश्वरी ॥ ३१ ॥ देव्युवाच ॥ भर्त्रर्थमथचात्मार्थंगृह्यतां बालिकेवरः ॥ चिरंक्लिष्टासितपसानिदाघेनेवमंजरी ॥ ३२ ॥

अर्थ—वे आठों भार्य्या पतिओंके तपके अर्थ चलेजानेपर उनके दुःसह वियोगसे अतिदुःखित हुई ॥ २९ ॥ पतिके बारबार स्मरणसे अतिदुःखी उन स्त्रियोंने शतचान्द्रायण व्रतनाम दारुण तप किया, और उनके उस तपसे भगवती पार्वती सन्तुष्ट होगई ॥३०॥ पूजाके समयमें अदृश्य परमेश्वरी उन सबके अन्तःपुरमें सबसे पृथक् २ बोली ॥३१॥ देवीजी बोली–कि हे पुत्रि! पतिके लिये तथा अपने लिये तुम वरको ग्रहण करो, क्योंकि ग्रीष्मऋतुसे लताके समान चिरकालके तपसे तुम अतिक्लेशित हो ॥ ३२ ॥

इत्याकर्ण्यवचोदेव्यादत्तपुष्पाचिरंटिका ॥ स्ववासनानुसारेणकुर्वाणैवेश्वरीस्तवम् ॥ ३३ ॥ आनंदमंथरोवाचवचनंमृदुभाषिणी ॥ आकाशसंस्थितांदेवींमयूरीवाभ्रमालिकाम् ॥ ३४ ॥ चिरंटिकोवाच ॥ देवीदेवाधिदेवेनयथातेप्रेमशंभुना ॥ भर्त्रामेमतथाप्रेमसभर्तास्तुममामरः ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ आसृष्टेर्नियतेर्दार्ढ्यादमरत्वंनलभ्यते ॥ तपोदानैरतोन्यंत्वंवरंवरयसुव्रते ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस भगवतीके वचनको सुनके चिरंटिकानाम भार्या भगवतीके चरणोंमें पुष्पांजलि चढाके निजवासनाके अनुसार देवीकी स्तुति करती हुई ॥ ३३ ॥ आनन्द गद्गदस्वर मृदुभाषिणी आकाशमें स्थित देवीसे ऐसे बोली जैसे मयूरी मेघमालासे ॥ ३४ ॥ चिरंटिका बोली कि–हे देवि! देवाधिदेव श्रीशंकरजीसे जैसे आपका प्रेम है ऐसेही मेरे पतिसे मेरा प्रेम हो, और वह मेरा पति अमर हो जाय ॥ ३५ ॥ देवीजी बोली कि–हे सुव्रते पुत्रि! सृष्टिके आरंभसेही नियति (जिसका भंग मैं नहीं करसकती) की दृढतासे तप तथा दानादिसे अमरपदवी नहीं मिलती इससे तुम अन्यवर मांगो ॥ ३६ ॥

चिरंटिकोवाच ॥ अलभ्यमेतन्मेदेवितन्मद्भर्तुर्गृहांतरात् ॥ मृतस्यमाविनिर्यातुजीवोबाह्यमपिक्षणात् ॥ ३७ ॥ देहपातश्चमेभर्तुर्यदास्यादात्ममंदिरे ॥ तदेतदस्त्वितिवरोदीयतामंबिकेमम ॥ ३८ ॥ देव्युवाच ॥ एवमस्तुसुतेत्वंचपत्यौलोकांतरास्थिते ॥ भविष्यसिप्रियाभार्यादेहांतेनात्रसंशयः ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वाविररामासौगौर्यागीर्गगनोदरे ॥ मेघमालाध्वनिरिवनिरवद्यसमुद्यता ॥ ४० ॥

अर्थ—चिरंटिका बोली कि–हे देवि! यदि यह (अमरपदवी) अलभ्य है तो मेरे मृतपतिका जीव मेरे अन्तःपुरसे क्षणभरकेलियेभी बाहर न जाय ॥ ३७ ॥ जब मेरे पतिका देहपात मेरे मंदिरमें हो तब ऐसा (मेरे पतिका जीव बाहर न जाय) हो, यह वर हे अम्बिके मुझे दीजिये ॥ ३८ ॥ श्रीदेवीजी बोली कि–हे पुत्रि! "एवमस्तु" (ऐसाही हो) तुमारे पतिके लोकान्तरगमन करनेपर इस शरीरके अन्तमें तुम उसकी प्रिया (भार्य्या) होओगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ ऐसा कहके आकाशके उदरमें वह गौरीजीकी वाणी ऐसे मौन होगई जैसे निर्दोषतापूर्वक जगदानन्दार्थ प्रादुर्भूत होके मेघमालाकी ध्वनि ॥ ४० ॥

देव्यांगतायांभर्तारस्तासांकालेनकेनचित् ॥ तेककुब्भ्यःसमाजग्मुःसर्वेप्राप्तमहावराः ॥ ४१ ॥ अद्यायमपिसंयातुभार्यायानिकटंपतिः ॥ भ्रातॄणांबांधवानांच भवत्वन्योन्यसंगमः ॥ ४२ ॥ इदमन्यदथैतेषामसमंजसमाकुलम् ॥ शृणुकिंवृत्तमाश्चर्यमार्यकार्योपरोधकम् ॥ ४३ ॥ तप्यतांतपएतेषांपितरौतौव धूयुतौ ॥ तीर्थमुन्याश्रमश्रेणींद्रष्टुंदुःखान्वितौगतौ ॥ ४४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजीके जानेके अनन्तर कुछकालमें उन सब स्त्रियोंके महावरदानप्राप्त पति सब दिशाओंसे आके प्राप्तहुये ॥ ४१ ॥ अब यह अष्टम भ्राताभी अपनी भार्य्याके निकट जाके प्राप्तहो, और वहांपर सब भ्राताओंका तथा बन्धुओंका परस्पर समागम हो ॥ ४२ ॥ अब यह दूसरा इन सब असमंजस, सत्कर्मफलोंका अवरोधक जो आश्चर्य्य-जनक वृत्तान्त हुआ उसकोभी सुनो ॥ ४३ ॥ जिससमय ये सब भ्राता तप करतेथे उसीसमय पुत्रोंके वियोगसे अति-दुःखित इनके माता पिता बहुओं (पतोहुओं) के साथ तीर्थाश्रम श्रेणियोंके दर्शनार्थ गये ॥ ४४ ॥

शरीरनैरपेक्ष्येणपुत्राणांहितकाम्यया ॥ गंतुंकलापग्रामंतंयत्नवंतौबभूवतुः ॥ ४५ ॥ तौप्रयातौमुनिग्राम मार्गेददृशतुःसितम् ॥ पुरुषंकपिलंह्रस्वंभस्मांगंचोर्ध्वमूर्द्धजम् ॥ ४६ ॥ धूलीलवमनादृत्यतंजरत्पांथ शंकया ॥ यदातौजग्मतुस्तेनसउवाचान्वितःक्रुधा ॥ ४७ ॥ सवधूकमहामूर्खतीर्थार्थीदारसंयुतः ॥ मांदुर्वाससमुल्लंघ्यगच्छस्यविहितानति ॥ ४८ ॥

अर्थ—शरीरके सुखभोगकी इच्छारहित पुत्रोंकी हितकामनासे प्रसिद्ध कलापग्रामनाम तीर्थमें जाके स्त्रीपुरुष दोनोंने व्रत किया ॥ ४५ ॥ मुनिग्राममें जातेहुये मार्गमें उन्होंने एक गौर, कपिलवर्ण, ह्रस्वाकार, अंगमें भस्म लगाये तथा ऊर्ध्वजटाधारी एक पुरुषको देखा ॥ ४६ ॥ वृद्ध पथिक जानकर नमस्कार प्रणामादि न करनेसे उसका अनादर करके तथा उसके ऊपर किंचित् धुली प्रक्षेपभी करके जब वे चले तब क्रोधसे वह तपस्वी बोला ॥ ४७ ॥ कि वधू तथा स्त्रीसहित हे मूर्ख ! तूं तीर्थयात्राका अभिलाषी मुझ दुर्वासाको बिना नमस्कार किये उल्लंघन करके जो जाताहै ॥ ४८ ॥

वधूनांतेसुतानांचगच्छतस्तपसार्जिताः ॥ विपरीताभविष्यंतिलब्धाअपिमहावराः ॥ ४९ ॥ इत्युक्तवं तंतंयावत्सदारोथवधूयुतः ॥ सन्मानंकुरुतेतावन्मुनिरंतर्द्धिमाययौ ॥ ५० ॥ अथतौपितरौतेषांसवधू कौसुदुःखितौ ॥ कृतीभूतौदीनमुखौनिराशौगृहमागतौ ॥ ५१ ॥ अतोवदाम्यहंतेषांनैकंनामासमंज सम् ॥ असमंजसलक्षाणिगंडेस्फाटाःस्फुटाइव ॥ ५२ ॥ चिद्व्योमसंकल्पमहापुरेस्मिन्नित्थंविचित्रा ण्यसमंजसानि ॥ निःशून्यरूपेपिहिसंभवंतिदृश्येयथाव्योमनिदृश्यजृंभाः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासुतापसोपाख्यानांतर्गतसप्तद्वीपेश्वरोपाख्याने सप्तद्वीपेश्वरवर्णनं नाम द्व्यशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८२ ॥

अर्थ—इस हेतुसेही वधुओंको तथा पुत्रोंको तपसे प्राप्तभी महावर विपरीतफलके देनेवाले होंगे ॥ ४९ ॥ उस मुनिके इतना कहनेपर जब वह स्त्री तथा वधुओंकेसहित प्रणामादि उनका सन्मान करनेमें प्रवृत्त हुआ इतनेहीमें वे मुान अन्तर्धान होगये ॥ ५० ॥ इसके पश्चात् वधुओंसहित इनक मातापिता अतिदुःखित, कृशशरीर, दीनमुख तथा निराश होके निजगृहको आये ॥ ५१ ॥ इसलिये मैं कहताहुं कि इनके वृत्तान्तमें एकही असमंजस (असंबद्ध या क-ठिनता) नहीं है, किन्तु लक्षों असमंजस ऐसे हैं जैसे गलगंड (गलेमें लोटेके सदृश पिंड) में स्फोट (फोडे) और वेभी फूटे हो, अर्थात् अनिष्टके ऊपर अनिष्टोंकी परंपरा होगई है ॥ ५२ ॥ इसीप्रकार चिदाकाशके संकल्पसे रचित इस संसाररूपी महानगरमें अनेक विचित्र असमंजस वार्ता ऐसे हैं जैसे शून्यआकाशमें उत्पातक कारण गन्धर्व, धूमकेतु कबन्ध तथा उल्कापातआदि अनेक दृश्य उपद्रवोंके प्रादुर्भाव होते हैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासुतापसोपाख्यानान्तर्गतसप्तद्वीपेश्वरोपाख्यानेसप्तद्वीपेश्वर-वर्णनं नाम द्व्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८३ ॥

आभ्यन्तरमें सारतायुक्त परस्परविरुद्ध वर तथा शापोंका ब्रह्माजीके वाक्यसे परस्पर विजय इस १८३ के स-र्गमें उत्तम रीतिसे वर्णन कियागयाहै ॥

कुंददंतउवाच ॥ ततःपृष्टोमयातत्रसगौर्याश्रमतापसः ॥ तापसंशुष्कदर्भाग्रजराजर्जरमूर्धजः ॥ १ ॥ एकैवसप्तद्वीपास्तिवसुधायत्रतत्रते ॥ सप्तद्वीपेश्वराअष्टौभवंतिकथमुत्तमाः ॥ २ ॥ यस्यजीवस्यसदना न्नास्तिनिर्गमनंबहिः ॥ सकरोतिकथंसप्तद्वीपेशत्वेनदिग्जयम् ॥ ३ ॥ यैर्वरावरदैर्दत्ताःशापैस्तेतद्विरुद्ध ताम् ॥ कथंगच्छंतिगच्छंतिकथंछायाहितापताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—कुन्ददन्त बोला कि–इसके पश्चात् ग्रीष्मके तापसे शुष्क कुशाके तुल्य परस्पर गूंथी हुई जटाधारी उस गौरीके आश्रमके तपस्वीसे मैंने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! जब एकही सप्तद्वीपवती पृथिवी है तो एककालमेंही आठ उत्तम सप्तद्वीपेश्वर कैसे होंगे ? ॥ २ ॥ तथा हे भगवन् ! जिस जीवका गृहके बाहर गमन नहींहोता वह सप्तद्वीपकी स्वामितासे दिग्विजय कैसे करताहै ? ॥ ३ ॥ तथा श्रेष्ठ वरदाताओंके दिये हुये जो उत्तम वर हैं वे शापोंसे विरुद्धताको कैसे प्राप्त होंगे क्योंकि शिशिरऋतुकी शीतल छाया ग्रीष्मऋतुकी आतपताको कैसे प्राप्त होती है ? ॥ ४ ॥

मिथोशक्यांकथंधर्मौस्थितिमेकत्रगच्छतः ॥ आधारएवाधेयत्वंकरोतिकथमात्मनि ॥ ५ ॥ गौर्याश्रमतापसउवाच ॥ संपश्यसिकिमेतेषांभोसाधोशृण्वनंतरम् ॥ अष्टमेस्मिन्सुसंप्राप्तेतंप्रदेशंसबांधवम् ॥ ६ ॥ इतोभवंतौतंदेशमासाद्यसुखसंस्थितौ ॥ स्वबंधुसुखसंस्थानौकंचित्कालंभविष्यतः ॥७॥ ततस्तेष्टौमरिष्यंतिभ्रातरःक्रमशोगृहे ॥ बंधवोथकरिष्यंतितेषांदेहाँस्तदग्निसात् ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा विरुद्ध वर शापके शुभत्व तथा अशुभत्व धर्म एकधर्मीमें कैसे स्थित होंगे, कदाचित् धर्मोंकोही परस्पर आश्रय मानो सो आधारही निजआत्मामें आधेय कैसे होसकताहै ? ॥ ५ ॥ गौरीके आश्रमका तपस्वी बोला कि–हे साधो ! इनका विरुद्ध असमंजस तुम यही क्या देखतेहो, आजके आठवें दिन इसी दिनको बन्धुसहित उस (मथुरा) स्थानको ॥ ६ ॥ यहांसे तुम प्राप्त होके तुम दोनों सुखसे रहोगे, और कुछकालतक निज २ बन्धुओंकी परस्पर सुख-पूर्वक स्थितिके कारण होओगे ॥ ७ ॥ उसके अनन्तर गृहमें आठों भ्राता मृत्युको प्राप्तहोंगे, और उनके बन्धु उनके शरीरोंकी दाहादि क्रियायें करेंगे ॥ ८ ॥

तेषांतेसंविदाकाशाःपृथक्पृथगवस्थिताः ॥ मुहूर्तमात्रंस्थास्यंतिसुषुप्तस्थाजडाइव ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नंतरेतेषांतानिकर्माणिधर्मतः ॥ एकत्रसंघटिष्यंतिवरशापात्मकानिखे ॥ १० ॥ कर्माणितान्यधिष्ठातृदेवरूपाणिपेटकम् ॥ वरशापशरीराणिकरिष्यंतिपृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ वरास्तेत्रगमिष्यंतिसुभगाःपद्मपाणयः ॥ ब्रह्मदंडायुधाश्चंद्रधवलांगाश्चतुर्भुजाः ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर उन सबके संविदाकाश (जीव) पृथक् २ स्थित मुहूर्तपर्य्यन्त सुषुप्तिमें स्थितके तुल्य जडवत् विद्यमान रहेंगे ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें उनके वे सब वरशापरूप कर्म अवश्य फलदातृत्वधर्मसे उनके चित्ताकाशमें एकत्र संघटित होंगे ॥ १० ॥ वे उनके वरशापरूप कर्मफलप्रद अधिष्ठातृ देव तद्रूप (वरशापरूप) होके निज २ के अनुकूल समूहघटित संपुट (एकत्र स्थिति) को पृथक् २ करेंगे, और इसप्रकार मिलित वर शाप अपने २ फल भोग देनेके अनुकूल पृथक् २ शरीरोंको पहुचेंगे ॥ ११ ॥ उनमेंसे वर सुभग, हस्तमें कमलधारी, ब्रह्मदंडादि अस्त्र धारण किये हुये चंद्रमाके समान शुभ्रांग तथा चतुर्भुज विष्णुरूपधारी होके यहां प्राप्त होंगे ॥ १२ ॥

शापास्तत्रभविष्यंतित्रिनेत्राःशूलपाणयः ॥ भीषणाःकृष्णमेघाभाद्विभुजाभ्रुकुटीमुखाः ॥ १३ ॥ वरावदिष्यंति ॥ सुदूरंगम्यतांशापःकालोस्माकमुपागतः ॥ ऋतूनामिवतन्नामकःसमर्थोतिवर्तितुम् ॥ १४ ॥ शापावदिष्यंति॥गम्यतांहेवरादूरंकालोस्माकमुपागतः॥ऋतूनामिवतन्नामकःसमर्थोतिवर्तितुम् ॥१५॥ वरावदिष्यंति ॥ कृताभवंतोमुनिनावयंदिनकृताःकृताः ॥ मुनीनांचाधिकोदेवोभगवंतंपुरायतः ॥ १६ ॥

अर्थ—और शाप त्रिनेत्र, हस्तमें त्रिशूल लिये, भयंकर आकारधारी, कृष्णमेघके तुल्य द्विभुजरूपधारी, तथा भ्रुकुटी (भोंह) की ओर संमुख किये हुये क्रोधमूर्ति शिवजीके समान होके आके प्राप्त होंगे ॥ १३ ॥ वर बोलेंगे कि–हे शाप ! तुम सब यहांसे अतिदूर चलेजाओ, ऋतुओंके सदृश यह हमारा आगमनकाल आके प्राप्तहुआहै, इसका (हमारे आगमनका) उल्लंघन करनेमें कौन समर्थ है ॥ १४ ॥ तब शाप बोलेंगे कि–हे वर ! तुम सब यहांसे दूर चलेजाओ, ऋतुओंके समान यह हमारा आगमनकाल है इसका उल्लंघन करनेमें कौन समर्थ है ॥ १५ ॥ पुनः वर कहेंगे कि तुम (शाप) दुर्वासामुनिसे कृत (दत्त) हो, और हम (वर) श्रीसूर्य्यभगवान्‌से कृत (दत्त) हैं, और मुनियोंकी अपेक्षा देव श्रेष्ठ हैं क्योंकि ब्रह्माजीने मुनियोंसे प्रथम भगवान् सूर्य्यको रचा है ॥ १६ ॥

प्रवदत्सुवरेष्वेवंशापाःक्रुद्धधियोवरान् ॥ विवस्वताकृतायूयंवयंरुद्रांशतःकृताः ॥ १७ ॥ देवानामधिकोरुद्रोरुद्रांशप्रभवोमुनिः ॥ इत्युक्त्वाप्रोद्यताशतेषांचक्रुःशृंगाण्यगाइव ॥ १८ ॥ शापेषूद्यतशृंगेषुवराइदमरातिषु ॥ विद्वसंतःप्रवक्ष्यंतिप्रमेयीकृतनिश्चयम् ॥ १९ ॥ हेशापाःपापतांत्यक्त्वाकार्यस्यांतोविचार्यताम् ॥ यत्कार्यंकलहस्यांतेतदेवादौविचार्यताम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार जब वर कहते रहेंगे तब शाप क्रुद्धचित्त होके वरोंसे कहेंगे कि तुम सूर्य्यसे किये (दिये) हो, और हम श्रीरुद्र महादेवजीके अंशभूत दुर्वासाजीसे किये (दिये) हैं ॥ १७ ॥ संपूर्ण देवोंमें श्रीरुद्रभगवान् श्रेष्ठ हैं,

और श्रीदुर्वासामुनि रुद्रके अंशसे उत्पन्न हैं, इतना कहके शापोंनें क्रुद्ध होके उन वरोंके उपर त्रिशूलोंके अग्रभागोंको ऐसे उठाया जैसे पर्वत अपने शिखरोंको ॥ १८ ॥ और जब शाप त्रिशूल उठावेंगे तब वर हंसते हुये अपने शत्रुओंसे अपना निश्चित कर्तव्य अर्थ कहैंगे ॥ १९ ॥ कि हे शाप ! अपनी पापरूप अनुचितकारिताको त्यागकर कार्य्यका अन्त विचारो, क्योंकि जो कलहके अन्तमें कर्तव्य है उसको आदिमें बिचारना चाहिये ॥ २० ॥

पितामहपुरींगत्वाकलहांतेविनिर्णयः ॥ कर्तव्योस्माभिरेतत्किमादौनेहविधीयते ॥ २१ ॥ शापैर्वरोक्त माकर्ण्यबाढमित्युररीकृतम् ॥ कानगृह्णातिमूढोपिवाक्यंयुक्तिसमन्वितम् ॥ २२ ॥ ततःशापावरैःसार्द्धं यास्यंतिब्रह्मणःपुरम ॥ महानुभावाहिगतिःसदासंदेहनाशने ॥ २३ ॥ प्रणामपूर्वतत्सर्वंयथावृत्तंपर स्परम् ॥ ब्रह्मणेकथयिष्यंतिश्रुत्वातेषांसवक्ष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—कलहके अन्तमें पितामहकी (ब्रह्माकी) नगरीमें जाके हमको तुमको निर्णय कर्तव्य है वह प्रथमही क्यों नहीं करतेहो ॥ २१ ॥ शापोंने वरोंसे कथित वाक्य सुनके उसको बहुत अच्छा ऐसा कहके स्वीकार करलिया, क्योंकि मूढभी ऐसा कौन है जो युक्तियुक्त वाक्यको न ग्रहण करै ॥ २२ ॥ उसके अनन्तर वरोंके साथ शाप ब्रह्मपुरीको जांयगे, क्योंकि सन्देहनाशार्थ महानुभावोंके समीप जानाही शरण है ॥ २३ ॥ प्रणामपूर्वक वे सब अपना २ परस्पर यथार्थ वृत्तान्त ब्रह्माजीसे कहैंगे उसको सुनकर ब्रह्माजी उनसे कहैंगे ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ वरशापाधिपाभोभोयेंतःसाराजयंतित ॥ केंतःसाराइतिमिथोनूनमन्विष्यतांस्वयम्॥२५॥ इतिश्रुत्वाप्रविष्टास्तेसारतांसमवेक्षितुम् ॥ वराणांहृदयंशापाःशापानांहृदयंवराः ॥ २६ ॥ तेपरस्परम न्विष्यस्वयंहृदयस गताम् ॥ ज्ञात्वाचसमवायेनप्रवक्ष्यंतिपितामहम् ॥ २७ ॥ शापावक्ष्यंति ॥ जिताः प्रजानाथवयंनांतःसारावयंयतः ॥ अंतःसारावराएववज्रस्तंभाइवाचलाः ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्रह्माजी बोले हे हे! वर तथा शापोंके अधिप जो अन्तःसार (जिस आकारकी संवित् दृढ) होताहै वही विजयी होताहै, सो तुममें अन्तःसार (ज्ञानाकारमें दृढ) कौन हैं, इसको तुम स्वयं परस्पर ढूंढो ॥ २५ ॥ इसको सुनके सारता (दृढता) देखनेके लिये वरोंके हृदयमें शाप प्रविष्टहुये और शापोंके हृदयमें वर ॥ २६ ॥ वे परस्पर एक दूसरेकी सारताको देख तथा जानकर एकमत होकर ब्रह्माजीसे बोलेंगे ॥ २७ ॥ शाप कहैंगे कि–हे प्रजानाथ! हम वरोंसे पराजित हुये, क्योंकि हम अन्तःसार नहीं हैं, और ये वर अन्तःसार (आभ्यन्तर दृढ संविदाकार) ऐसे हैं जैसे वज्रस्तंभ वा पर्वत ॥ २८ ॥

वयंकिलेमेभगवन्वराःशापाश्चसर्वदा ॥ ननुसंविन्मयाएवदेहोन्योस्माकमस्तिनो ॥ २९ ॥ वरदस्यहि यासंविद्वरो दत्तइतिस्थिता ॥ सैवार्थिनेमयालब्धोवरोयमितितिष्ठति ॥ ३० ॥ विज्ञप्तिमात्रकचनंदेहंसै वफलंततः ॥ पश्यत्यनुभवत्यत्तिदेशकालशतभ्रमैः ॥ ३१ ॥ वरदात्मागृहीतत्वाच्चित्कालांतरसंभृता ॥ यदातदांतःसारासैदुर्जयानतुशापजा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! हम वर तथा शाप निश्चयरूपसे सदा संविदाकारही हैं, इससे भिन्न हमारा शरीर नहीं है ॥ २९ ॥ वर देनेवालेकी जो संवित् है "वर दिया" इस रूपसे जो स्थित है वही मैंने यह "वर पाया" इस रूपसे अर्थी (वर पानेवाले) में वररूपसे स्थित रहती है ॥ ३० ॥ और अनन्तर वही विज्ञप्तिमात्र संवित् फल अर्थात् सुख-भोगोंका स्थान शरीररूप होजाती है, अनन्तर वही संवित् अनेकदेशकालके भ्रमोंसे उस फलको देखती, अनुभव करती तथा भोज्यपदार्थोंको खातीभी है ॥ ३१ ॥ अतः वरदानवाली संवित् शास्त्रीय तपकालके दृढसंकल्पसे वशीभूत आत्मासे गृहीत होके कालान्तरमें अवश्य फलदानमें जब पुष्ट होजाती है तो यह अन्तःसार होनेसे दुर्जय (अजेय) होती है, और शापसंवित् ऐसी नहीं होती ॥ ३२ ॥

वरप्रदानंवरदैर्वरदानांवरार्थिभिः ॥ यदासुचिरमभ्यस्तंवराणांसारतातदा ॥ ३३ ॥ यदेवसुचिरंसंविद भ्यस्यतितदेवसा ॥ सारमेवाशुभवतिभवत्याशुचतन्मयी ॥ ३४ ॥ शुद्धानामतिशुद्धैवसंविज्जयतिसं विदाम् ॥ अशुद्धा नांत्वशुद्धैवकालात्साम्यंनंविद्यते ॥ ३५ ॥ क्षणांशेनापियोज्येष्ठोन्यायस्तेनावपूर्यते ॥ नार्थेन्यायांतरंकिंचित्कर्त्तुमुत्सहतेमदम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—वरप्रदान करनेवाले तथा वरके ग्रहण करनेवाले अर्थी जब वरदानका चिरकालपर्य्यन्त दृढ अभ्यास करते हैं तब वरों (वरसंवित्) में अन्तःसारता आती है ॥ ३३ ॥ जो संवित् चिरकालपर्य्यन्त पूर्णरीतिसे अभ्यस्त होकर गृहीत होती है वही सार होती है और शीघ्र फलादिमें तन्मयी होजाती है ॥ ३४ ॥ शास्त्रीय शुद्ध सं-

विदोंमेंसे जो अधिक शुद्ध और प्रबल होती है वही शुद्धसंवित्को जीतती है, ऐसे अशुद्धोंमेंसे प्रबल अशुद्धको जीतती है अतः काल वा फलसे समता नहीं है ॥ ३५ ॥ और क्षणभरसेभी ज्येष्ठ होताहै वही न्यायसे दूसरेको दबाताहै, और छीपमें रजतज्ञान ज्ञानकी अपेक्षासे अप्रमाणकृत ज्येष्ठ है, अतः वह न्यायसे उस छीपके बाधा करनेमें उत्साह नहीं करसकता, इसलिये वरसंवित् ज्येष्ठ होनेसेभी हमसे प्रबल है ॥ ३६ ॥

समेनोभयकोटिस्थंमिश्रंवस्तुभवेत्समम् ॥ वरशापविलासेनक्षीरमिश्रंयथापयः ॥ ३७ ॥ समाभ्यांवरशापाभ्यामथवाचिद्विरूपताम् ॥ स्वयमेवानुभवतिस्वप्नेष्विवपुरात्मिका ॥३८॥ शिक्षितंत्वत्तएवेतियत्त देवतवप्रभो ॥ पुनःप्रतीपंपठितंशीघ्रंयामोनमोस्तुते ॥ ३९ ॥इत्युक्त्वासस्वयंशापःक्वापिशापगणोययौ॥ प्रशांतेतिमिरेदृष्टेव्योम्निकेशोंड्रकंयथा ॥ ४० ॥

अर्थ—इस हेतुसे जहां विरुद्ध वर तथा शापकी अभ्यासप्रमाणसे समता है वहांहीं नीरक्षीरवत् मिश्रितफल होताहै ॥ ३७ ॥ समान अभ्यासयुक्त वर तथा शाप संवित् उपहित चित् दो (भिन्न २) रूप धारण करके फलोंको स्वयं ऐसे अनुभव करती है जैसे स्वप्नोंमें नगररूपधारिणी चित् पुरवासी जनोंके देह भेद करके विभागको प्राप्त होती है तद्वत् ॥३८॥ हे भगवन् ! आपसे जो कुछ हमने सीखाथा वही पुनः आपके संमुख पढदिया, अतः अधिक तत्वज्ञान छांटना अपराधहै सो क्षमा करें, आपको नमस्कार है, हम सब अब शीघ्र जाते हैं ॥३९॥ ऐसा शाप स्वयं कहके वह शापसमूह इसप्रकार न जाने कहां लुप्त होगया जैसे तिमिररोग नष्टहोनेपर आकाशमें भ्रांतिकृत केश मशकादि कहींभी चलाजाताहै ॥ ४० ॥

अथान्योवरपूगोत्रगृहनिर्गमरोधकः ॥ स्थानिस्थानमिवादेशःसमानार्थोभ्यपूरयत् ॥ ४१ ॥ शापस्थानकावदिष्यंति ॥ सप्तद्वीपेशजीवानांनिर्याणंशवसद्मनः ॥ देवेशविद्मोनवयमंधकूपादिवांभसाम् ॥ ४२॥ सप्तद्वीपेश्वरानेतानिमेद्वीपेषुसद्मसु ॥ कारयंतिवरावर्यावीरादिग्विजयंरणे ॥ ४३ ॥ तदेवमनिवार्येस्मिन्विरोधेविबुधेश्वर ॥ यदनुष्ठेयमस्माभिस्तदादिशशिवायनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सप्तद्वीपाधिपत्यताका विरोधी भार्य्याओंको प्राप्त गौरीदत्त गृहोंसे निरोधकारी वरसमूहने शापोंके स्थानको ऐसे पूर्ण किया जैसे वैयाकरणोंका " वध " आदि आदेश " हन " आदि स्थानीके स्थानको ॥ ४१ ॥ शापस्थानी पत्नियोंके वर कहैंगे—हे देवेश ! भावी सप्तद्वीपके स्वामीरूपसे अभिमत इन जीवोंका मृतकगृहसे बाहर निर्गमन हम ऐसे नहीं जानते जैसे अन्धकूपसे ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! ये सूर्य्यभगवान्‌से दियेहुये बीरवर गृहरूपही द्वीपोंमें इनको सप्तद्वीपेश्वर तथा रणमें दिग्विजय कराते हैं और हम इनका गृहसे गमन रोकते हैं ॥ ४३ ॥ अतः हे देवेश्वर ! इस अनिवार्य्य विरोधमें जो हमारे कल्याणार्थ कर्तव्य हो वह आज्ञा हमको दीजिये ॥ ४४ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ सप्तद्वीपेश्वरवरागृहरोधवराश्वहे ॥ कामःसंपन्नएवेहभवतांभवतामपि ॥ ४५ ॥ व्रजतैतदपेक्षत्वंयावन्नेष्टावपिक्षणात् ॥ चिरंचिरायसदनेसप्तद्वीपेश्वराःस्थिताः ॥ ४६ ॥ समनंतरमेवैतेदेहपातात्स्वसद्मसु ॥ सप्तद्वीपेश्वराःसर्वेसंपन्नाःपरमंवराः ॥ ४७ ॥ सर्वेवरावदिष्यंति ॥ कुतोभूमंडलान्यष्टौसप्तद्वीपानिभूतयः ॥ एकमेवेहभूपीठंश्रुतंदृष्टंचनेतरत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—ब्रह्माजी बोले कि—हे सप्तद्वीपेश्वरत्वप्रद वर, तथा हे गृहसे बाह्यगमननिरोधक वर! आपकी (सप्तद्वीपेश्वरदायक वरोंकी) तथा आपकी (अवरोधक वरोंकी) भी कामना सिद्ध होगई ॥ ४५ ॥ क्योंकि आप परस्पर सापेक्षताको प्राप्त होजाओ, क्योंकि आपके चिरकालसे अनिष्ट अर्थात् परस्परकी इच्छाके विरोधमेंभी ये आठों भ्राता मरणके उत्तरक्षणमेंही चिरकालसेही अपने गृहोंमेंही सप्तद्वीपवती पृथिवीके राजा होके स्थित हैं ॥ ४६ ॥ अपने गृहोंमें देहपातके समकालमेंही ये आठों परमचिदाकाशरूप सप्तद्वीपके ईश्वर होके विद्यमान हैं ॥ ४७ ॥ सब वर मिलके कहैंगे कि—हे भगवन्! सप्तभूमंडल तथा सप्तद्वीप कहां हैं, तथा उनके सब अन्य ऐश्वर्य्यभी कहांसे प्राप्त हुये, हम सभोंने तो यही एक भूमंडल सुना तथा देखा है न कि अन्य ॥ ४८ ॥

कथंचैतानितिष्ठंतिकस्मिंश्चिद्गृहकोशके ॥ पद्माक्षकोशकेसूक्ष्मेकथंमांतिमतंगजाः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मोवाच॥ युक्तंयुष्माभिरस्माभिःसर्वव्योमात्मकंजगत् ॥ स्थितंचित्परमाण्वंतरंतःस्वप्नोनुभूयते ॥ ५० ॥ भाति यत्परमस्याणोरंतस्थस्वगृहोदरे ॥ स्फुरितंतत्किमाश्चर्यंकःस्मयःप्रकृतेःक्रमे ॥ ५१ ॥ मृतेरनंतरंभाति यथास्थितमिदंजगत् ॥ शून्यात्मैवघनाकारंतस्मिन्नेवक्षणेचितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—और किस गृहके कोशमें ये सप्तभूमंडल कैसे स्थित हैं, क्योंकि कमलके कोशमें अनेक मत्त मातंग (हस्ती) कैसे समासकते हैं ? ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि—हे वर ! तुम तथा हमसहित यह संपूर्ण ब्रह्मांड चिदाका-

शरूपही है, इसलिये यह सब चित्परमाणुके उदरमेंही है, और यह नित्य निजस्वप्नमेंही सबको अनुभव होताहै ॥ ५० ॥ जब कि चित्परमाणुके भीतर अनेक ब्रह्मांड हैं तब उस गृहके भीतर वे सप्तद्वीपेश्वर स्फुरित हैं और उसी गृहोदरमें वे सब समाते हैं तो प्रकृत क्रममें कौन आश्चर्य्य तथा क्या विस्मय है ॥ ५१ ॥ मरणके अनंतरही शून्यरूप होनेपरभी सच्चिदानन्द घनाकार परमात्मा स्वयं यह यथास्थित जगदाकार भासनेलगताहै ॥ ५२ ॥

अणावपिजगन्मातियत्रतत्रगृहोदरे ॥ सप्तद्वीपावसुमतीकचतीतिकिमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ यद्भातीदंचचित्तत्त्वंजगत्त्वंनजगत्क्वचित् ॥ चिन्मात्रमेवतद्भातिशून्यत्वेनयथांबरम् ॥ ५४ ॥ इतितेब्रह्मणाप्रोक्तावरदेनवरास्ततः ॥ तानाधिभौतिकभ्रांतिमयान्संत्यज्यदेहकान् ॥ ५५ ॥ प्रणम्याजंसमंजग्मुरातिवाहिकदेहिनः ॥ सप्तद्वीपेचदेवानांगृहकोशान्कचज्जनात् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जब एक अणुमेंभी जगत् (ब्रह्मांड) समा सकताहै तब उस गृहके उदरमें सप्तद्वीपवती पृथिवी स्फुरित है इसमें क्या आश्चर्य्य है ॥ ५३ ॥ जो कुछ यह भासताहै यह चित्तत्वही है इसलिये यह मूर्ताकार जगत् कहीं नहीं है जो गृहके भीतर न समासकै, चिन्मात्रही जगत्रूपसे ऐसे भासताहै जैसे शून्यरूपसे आकाश ॥ ५४ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीसे कथित वर वरदाताकी प्रेरणासे अपने आधिभौतिक भ्रांतिमय देहोंको त्यागकर ब्रह्माजीको प्रणाम करके निज-सूक्ष्मशरीरसे उन २ भ्राताओंके मनसे कल्पित सप्तद्वीपमें तथा उन २ देवोंके गृहरूप कोशमें प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

यावत्तेतत्रसंपन्नाःसप्तद्वीपाधिनायकाः ॥ अष्टावपीष्टापुष्टानांदिनाष्टकमहीभुजाम् ॥ ५७ ॥ तेपरस्परमज्ञाताअज्ञाश्चान्योन्यबंधवः ॥ अन्योन्यभूमंडलगाअन्योन्याभिमतेहिताः ॥ ५८ ॥ तेषांकश्चिद्गृहस्यांतरेवतारुण्यसुंदरः ॥ उज्जयिन्यांमहापुर्यांराजधान्यांसुखेस्थितः ॥ ५९ ॥ शाकद्वीपास्पदःकश्चिन्नागलोकजिगीषया ॥ विचरत्यब्धिजठरेसर्वदिग्विजयोद्यतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जिससमय उनके बन्धुजन दाहादि कर्म करतेथे उसीसमयमें यज्ञादि सत्कर्मोंसे पुष्ट स्वायंभू मनुओंके कालमें उत्पन्न ब्रह्माजीके अष्टदिनके भेदसे अष्टभूमंडलके अधिभूत वे आठों भ्राता पूर्णरूपसे संपन्न होगये ॥ ५७ ॥ वे अष्टभ्राता परस्पर सप्तद्वीपेश्वरत्वमें एक दूसरेसे अज्ञात, तत्वज्ञानशून्य, अन्योन्य बन्धु, अन्योन्यभूमंडलगामी, तथा अन्योन्य (एक दूसरेके) हितमें तत्पर थे ॥ ५८ ॥ उनमेंसे कोई भ्राता उसी गृहके आभ्यन्तरप्रदेशमें तारुण्या-वस्थासे सुंदर उज्जयिनी नाम महानगरी राजधानीमें सुखसे विराजमान है ॥ ५९ ॥ कोई उनमेंसे शाकद्वीपराजधानीमें स्थित नागलोकके जीतनेकी ईच्छासे संपूर्ण दिशाओंके विजयमें उद्यत होके समुद्रके उदरमें विचर रहाहै ॥ ६० ॥

कुशद्वीपराजधान्यांनिराधिःसकलप्रजाः ॥ कृतदिग्विजयःकश्चित्सुप्तःकांतावलंबितः ॥ ६१ ॥ शाल्मलिद्वीपशैलेंद्रशिरःपुर्याःसरोवरे ॥ जललीलारतःकश्चित्सहविद्याधरीगणैः ॥ ६२ ॥ क्रौंचद्वीपेहेमपुरेसप्तद्वीपविवर्धिते ॥ प्रवृत्तोवाजिमेधेनकश्चिद्यष्टुंदिनाष्टकम् ॥ ६३ ॥ उद्यतःशाल्मलिद्वीपेकश्चिद्द्वीपांतचारिणा ॥ योद्धुमुद्धृतदिग्दंतिदंताकृष्टकुलाचलः ॥ ६४ ॥

अर्थ—कोई कुशद्वीपरूपराजधानीमें संपूर्ण आधिव्याधिसेरहित, संपूर्ण सुखीप्रजासहित, तथा सब दिशाओंको जीतकर अपनी कान्ताके वक्षस्थलपर हांथ धर सुखसे शयन करताहै ॥ ६१ ॥ तथा कोई शाल्मलिद्वीपके शैलेन्द्रके शिखरपरकी नगरीके क्रीडासरोवरमें विद्याधरियोंके गणोंकेसाथ जलक्रीडामें निमग्नहै ॥ ६२ ॥ तथा कोई इनमेंसे सप्तद्वीपोंसे आनीतमहाऋद्धियोंसे वर्धित क्रौंचद्वीपके हेमपुरमें आठ दिनसे वाजपेय नाम यज्ञ करनेमें प्रवृत्त है ॥ ६३ ॥ तथा उखाडे हुये दिशाओंके हस्तियोंके दांतोंसे कुलाचलोंकोभी आकर्षण करनेवाला कोई द्वीपान्तरचारी राजासे युद्ध करनेमें प्रवृत्त है ॥ ६४ ॥

गोमेदद्वीपकःकश्चित्पुष्करद्वीपराट्सुताम् ॥ समानेतुंवशाद्यातिकपत्सेनोष्टमोभवत् ॥ ६५ ॥ पुष्करद्वीपकःकश्चिल्लोकालोकाद्रिभूभुजः ॥ दूतेनसहनिर्यातोधनभूमिदिदृक्षया ॥ ६६ ॥ प्रत्येकमित्थमेतेषांद्वीपद्वीपाधिनायताम् ॥ कुर्वतांस्वगृहाकाशेदृष्ट्वास्वप्रतिभोचिताम् ॥ ६७ ॥ त्यक्ताभिमानिकाकाराद्विविधास्तेवरास्ततः ॥ तत्संविद्धिर्गृहेष्वंतरेकतांखानिखैरिव ॥ ६८ ॥ यास्यंतितेभविष्यंतिसंप्राप्ताभिमताश्चिरम् ॥ सप्तद्वीपेश्वरास्तुष्टानन्वष्टावपितुष्टिमत् ॥ ६९ ॥ इत्येतेप्रविकसितोदितक्रियार्थाःप्राप्स्यंतिप्रविततबुद्धयस्तपोभिः ॥ अंतर्यत्स्फुरतिविदस्तदेवबाह्येनाप्तंकैस्तद्वचितकर्मभिःकिलेति ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्र० ताप० द्वीपसप्तकाष्टकवर्णनंनामत्र्यशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८३ ॥

अर्थ—तथा शत्रुओंके देशोंको बाधा करनेमें समर्थ सेनायुक्त सब भ्राताओंमें पूर्व अष्टम गोमेदनिवासी कोई भ्राता कामके वशीभूत होके पुष्करद्वीपके राजाकी कन्याको रणमें जीतकर उसके साथ विवाहार्थ यात्रा करताहै ॥ ६५ ॥ तथा कोई पुष्करद्वीपमें निवास करताहुआ लोकालोकपर्वतके राजाके दूतके साथ भूमिस्थ धन देखनेकी इच्छासे जाता है ॥ ६६ ॥ इनमेंसे प्रत्येकको अपनी बुद्धिके योग्य सप्तद्वीप प्रभुताको करतेहुये देखकर ॥ ६७ ॥ वे दो (अरोधक तथा सप्तद्वीपकी प्रभूता देनेवाले दो प्रकारके वर अपने अभिमानसिद्ध आतिवाहिक आकारको त्यागकर जैसे आकाश औपाधिक आकाशोंके एकताको प्राप्तहोताहै ऐसेही उन आठों भ्राताओंके जीके साथ एकरूपताको प्राप्त होंगे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तथा आठों भ्राता अतिऐश्वर्य्यसम्पन्न राज्योंको पाकर निजअभिलषित पदार्थको प्राप्त सप्तद्वीपके स्वामी चिरकालतक होंगे ॥ ६९ ॥ इसप्रकार तपके द्वारा विकसित पूर्वोक्त वररूप क्रियासाधक अर्थसहित विशाल बुद्धि आठों भ्राता सप्तद्वीपाधिपत्यताको प्राप्तहोंगे, क्योंकि साक्षीचेतनकी दृढतासे जो आभ्यन्तरमें स्फुरताहै उसको बाह्य तपजपादिके कौंन नहीं प्राप्त होते ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे द्वीपसप्तकवर्णनं नाम त्र्यशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८३ ॥

चतुरशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८४ ॥

गृहके आभ्यन्तर आठ जगत् क्या करोडों होसकतेहैं, क्योंकि अज्ञात चिन्मात्र परमात्माही जगत्के रूपोंसे भासताहै, यह विषय इस १८४ के सर्गमें वर्णनकियागयाहै ॥

॥ कुंददंतउवाच ॥ इत्युक्तवानसौपृष्टःकदंबतलतापसः ॥ सप्तद्वीपाभुवाष्टौताःकथंभाताग्रहेष्विति ॥ १ ॥ कदंबतापसउवाच ॥ चिद्धातुरीदृगेवायंयदेषव्योमरूप्यपि ॥ सर्वगोयत्रयत्रास्तेतत्रतत्रात्मनि स्वयम् ॥ २ ॥ आत्मानमित्थंत्रैलोक्यरूपेणान्येनवानिजम् ॥ परिपश्यतिरूपंखमत्यजन्नेवखात्मकम् ॥ ३ ॥ कुंददंतउवाच ॥ एकस्मिन्विमलेशांतेशिवेपरमकारणे ॥ कथंस्वभावसंसिद्धानानातावास्तवीस्थिता ॥ ४ ॥

अर्थ—कुन्ददन्त बोला कि–हे रामजी आदि सब सभ्य! इतना कहनेपर उस कदम्बतलके वृद्ध तपस्वीसे मैंने पूंछा कि–हे भगवन्! प्रत्येक पचासकोटि योजन विस्तारयुक्त वे सप्तद्वीपवती आठ पृथिवी अल्पअवकाशयुक्त गृहोंके भीतर कैसे भान हुई ॥ १ ॥ कदंबका वृद्ध तापस बोला कि–इस चेतनवस्तुका यह स्वभावही है कि यद्यपि चिदाकाशरूप प्रपंच शन्य है तथा यह सर्वव्यापी जहां २ है वहां २ स्वयं निजआत्मामें निजआत्माहीको अपने शुद्ध चिदाकाशरूपको न त्यागताहुवा त्रलोक्यरूपसे तथा सुषुप्त वा तुरीयरूपसे देखताहै ॥ २ ॥ ३ ॥ कुन्ददन्त बोला कि–हे भगवन्! विमल, शान्त, शुद्ध परमकारण तथा एक अद्वैत परमात्मामें उससे विरुद्ध स्वभावसिद्ध नानारूपता वास्तविकरूपसे कैसे स्थित है? ॥ ४ ॥

॥ कदंबतापसउवाच ॥ सर्वंशांतंचिदाकाशंनानास्तीहनकिंचन ॥ दृश्यमानमपिस्फारमावर्तात्मायथांभसि ॥ ५ ॥ असत्स्वेषुपदार्थेषुपदार्थाइतिभांतियत् ॥ चित्खंस्वप्नसुषुप्तात्मतत्तस्याच्छंनिजंवपुः ॥ ६ ॥ सस्पंदोपिहिनिःस्पंदःपर्वतोपिनपर्वतः ॥ यथास्वप्नेषुचिद्भावःस्वभावोर्थगतस्तथा ॥ ७ ॥ न स्वभावानचैवार्थाःसंतिसर्वात्मकोचिते ॥ सर्गादौकचितंरूपंयद्यथातत्तथास्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कदंबका तापस बोला कि–हे ब्राह्मण! सबकुछ शान्त चिदाकाशरूपही है, भ्रांतिसिद्ध विशालरूपसे दृश्यमानभी नानारूप इसमें ऐसे नहीं हैं जैसे जलमें आवर्त ॥ ५ ॥ इन पदार्थोंके असत् होनेपरभी जो इसप्रकार भासतेहैं वे स्वप्न तथा सुषुप्तिके समान विस्मित निजयथार्थस्वभाव आत्माके स्वरूपही हैं ॥ ६ ॥ जैसे स्वप्नोंमे चित्स्वभाव संचलनसहित होनेपरभी संचलनरहित है, पर्वतरूप होनेपर पर्वत नहीं है, ऐसेही जाग्रत् पदार्थोंमेंभी है ॥ ७ ॥ सर्वरूप परमात्मामें न तो सृष्टिआदि यथार्थस्वभाव है, और न सृष्टिकृत पदार्थही हैं, किन्तु सृष्टिकी आदि ब्रह्माके संकलपसे जो जैसा स्फुरित हुआ वह अबभी वैसाही स्थित है ॥ ८ ॥

नचनामपरंरूपंकचनाकचनात्मकम् ॥ द्रव्यात्माचिच्चचिद्व्योमस्थितमित्थंहिकेवलम् ॥ ९ ॥ एकैव चिद्यथास्वप्नेसेनायांजनलक्षताम् ॥ गतेवाच्छैवकचतितथैवास्याःपदार्थता ॥ १० ॥ यत्स्वतःस्वात्म

निस्वच्छेचित्खंकचकचायते ॥ तत्तेनैवतदाकारंजगदित्यनुभूयते ॥ ११ ॥ असत्यपियथावह्नावुष्णसं विद्धिभासते ॥ संविन्मात्रात्मकेव्योम्नितथार्थःस्वस्वभासकः ॥ १२ ॥

अर्थ—परब्रह्मका स्वरूप स्वप्रकाशअप्रकाशरूप नहीं है, तथा न वह द्रव्यरूप है, न अचित्रूप है, किन्तु अपने इसी निज शुद्ध चित्रूपसे स्थित है ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्रकी सेनामें एकही साक्षी चित् लक्षजनरूपताको प्राप्तभी निजनिर्मलरूपसेही प्रकाश करती है ऐसेही इसकी पदार्थरूपता है ॥ १० ॥ जो स्वच्छ निर्मल निजआत्मामें स्वयं चिदाकाश स्फुरित होताहै वह उसी स्फुरणाकारको स्वयं चेतन जगत्स्वरूपसे अनुभव करताहै ॥ ११ ॥ जैसे स्वप्रमें अग्निके न रहनेपरभी स्वयं स्वप्नोपहित चेतन उष्णतारूपसे भासताहै ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी संविन्मात्र चिदाकाशमें निज-चित्स्वभावही पदार्थाकार भासताहै ॥ १२ ॥

असत्यपियथास्तंभेस्वप्नेखेस्तंभताविदः ॥ तथेदमस्यानानात्वमनन्यदपिचान्यवत् ॥ १३ ॥ आदि सर्गेपदार्थत्वंतत्स्वभावाच्छमेवच ॥ चिद्वयोम्नायद्यथाबुद्धंतत्तथाद्यापिविदते ॥ १४ ॥ पुष्पेपत्रेफले स्तंभेतरुरेवयथाततः ॥ सर्वंसर्वत्रसर्वात्मपरमेवतथापरम् ॥ १५ ॥ परमार्थांबरांभोधावापःसर्ग परंपरा ॥ परमार्थमहाकाशेशून्यतासर्गसंविदः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें स्तंभ (खंभे) आदिके न होनेपरभी स्तंभबुद्धि होती है ऐसेही यह नानारूपता चिद्रूप होतीहुईभी चित्से भिन्नकेतुल्य भासती है ॥ १३ ॥ आदिसृष्टिमें पदार्थरूपता निर्मलचिद्रूपही है, उससमय चिदाकाशने जिस पदार्थको जैसे अर्थक्रियाकारितारूपसे जाना वह अद्यावधि वैसाही है ॥ १४ ॥ जैसे पत्र, पुष्प, फल, तथा कांडरूपमें वृक्षरूपता व्याप्त है, ऐसेही जगत् सर्वत्र सर्वरूप परमात्माही है ॥ १५ ॥ परमार्थ (चिद्रूप) महासमुद्रमें जलकेसमान सृष्टियोंकी परंपरा (श्रेणि) हैं, तथा परमार्थ (चिद्रूप) महाकाशमें सृष्टिके प्रतिभास शून्यताकेसमान हैं ॥ १६ ॥

परमार्थश्चसर्गश्चपर्यायौतरुवृक्षवत् ॥ बोधादेतदबोधात्तुद्वैतंदुःखायकेवलम् ॥१७॥ परमार्थोजगच्चेदमे कमित्येवनिश्चयः ॥ अध्यात्मशास्त्रबोधेनभवेत्सैषाहिमुक्तता ॥ १८ ॥ संकल्पस्यवपुर्ब्रह्मसंकल्पक चिदाकृतेः ॥ तदेवजगतोरूपंतस्माद्ब्रह्मात्मकंजगत् ॥ १९ ॥ यतोवाचोनिवर्तंतेननिवर्तंतएववा ॥ विधयःप्रतिषेधाश्चभावाभावदृशस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—तत्वबोध परमार्थ तथा सर्ग (सृष्टि) दोनों शब्द, तरु और वृक्षके तुल्य पर्यायवाचक हैं, और अबोधसे तो यह द्वैत केवल दुःखकेही लिये है ॥ १७ ॥ अध्यात्मशास्त्रके ज्ञानसे परमार्थ तथा जगत् एक है ऐसा निश्चय होताहै, और वही (अपरोक्ष आत्मानुभूति) मुक्तता है ॥ १८ ॥ संकल्पका शरीर ब्रह्म है, और संकल्पकारकभी चिदाकार है, वही संकल्प जगत्का रूप है, इस हेतुसे जगत् ब्रह्मात्मक हैं ॥ १९ ॥ जहांपर जाके संपूर्ण वाणी निवृत्त होती हैं, अथवा न निवृत्त होके उसी निज अधिष्ठान चिद्रूपमें लीन होजाती हैं, तथा सब विधि प्रतिषेध और भावाभावदृष्टिभी जिसमें नहीं प्रवृत्त होती वा लीन होती हैं वही आत्मा ब्रह्म है ॥ २० ॥

अमौनमौनंजीवात्मयत्पाषाणवदासनम् ॥ यत्सदेवासदाभासंतद्ब्रह्माभिधमुच्यते ॥२१॥ सर्वस्मिन्नेक सुघनेब्रह्मण्येवनिरामये ॥ काप्रवृत्तिर्निवृत्तिःकाभावाभावादिवस्तुनः ॥ २२॥ एकस्यामेवनिद्रायांसुषुप्त स्वप्नविभ्रमाः ॥ यदाभांत्यविचित्रायांचित्राइवनिरंतराः ॥ २३ ॥ एतस्यांचित्खसत्तायांतथामूलकसर्ग काः ॥ बहवोभांत्यचित्रायांचित्राइवनिरंतराः ॥ २४ ॥

अर्थ—अमौनमौनके मध्यमें जीवस्वरूपकी जो पाषाणवत् चिद्घनरूप स्थिति है तथा सद्रूप होकेभी शरीरादिमें तादात्म्याध्यासे असत्‌के तुल्य जो भासताहै उसीको ब्रह्मनामसे कहते हैं ॥ २१ ॥ सर्वरूप निर्विकार अद्वैत चिद्घन ब्रह्ममें भावाभावादिस्वभावयुक्त वस्तुकी क्या उत्पत्ति और क्या प्रलय होसकताहै ॥ २२ ॥ एकही अविचित्र निद्रामें चित्रविचित्र सुषुप्ति स्वप्नादि विभ्रम जैसे निरन्तर भानहोतेहैं ॥ २३ ॥ ऐसेही इस अविचित्र (सदासमानरूप) चिदाकाशसत्तामें अनेक बीजभूत विचित्र सृष्टि तथा प्रलय भासतेहैं ॥ २४ ॥

द्रव्येद्रव्यांतरंश्लिष्टंयत्कार्यांतरमाक्षिपेत् ॥ तद्वदंतस्तथाभूतचित्सारंस्फुरणंमिथः ॥ २५ ॥ सर्वेपदार्था श्चित्सारमात्रमप्रतिघाःसदा ॥ यथाभांतितथाभांतिचिन्मात्रैकात्मतावशात् ॥ २६ ॥ चिन्मात्रैका त्मसारत्वाद्यथासंवेदनंस्थिताः ॥ निःस्पंदानिर्मनस्काराःस्फुरंतिद्रव्यशक्तयः ॥ २७ ॥ अविद्यमान मेवेदंदृश्यतेथानुभूयते ॥ जगत्स्वप्नइवाशेषंसरुद्रोपेंद्रपद्मजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे दधिआदि द्रव्यमें अन्य शर्कराआदि द्रव्य मिलित होके प्रत्येक कार्य्यकी अपेक्षासे अन्य रुचि, पुष्टि तथा पित्तोपशमआदि कार्य्यको सिद्ध करताहै ऐसेही प्राणियोंके अन्तःकरणरूप द्रव्यमें अभिव्यक्त प्रमाता चेतनसार, बाह्यदेशमें नेत्रआदिद्वारा निकलकर घटपटआदि वृत्त्याकारमें मिलित होकर घटपटादिविषयोंके अधिष्ठानभूत चिदावरणके भंगद्वारा परस्पर त्रिपुटीस्फुरणरूप कार्य्य सिद्ध करताहै ॥ २५ ॥ अतएव घटपटादि सब पदार्थ निजअधिष्ठान चिन्मात्रसार जैसे सृष्टिकी आदिमें स्फुरते हैं ऐसे चिन्मात्रकी एकतावशसे उसी चित्के स्वाधीन सत्तायुक्त होके अबभी स्फुरते हैं ॥ २६ ॥ तथा एक चिन्मात्रसार होनेसे सबपदार्थोंकी स्थिति है चिद्रूप होनेहीसे संपूर्णद्रव्योंकी शक्तियां, निस्पन्द तथा निर्मनस्कार (मानस द्वैताकार ग्रहणशून्य) होके चित्स्फुरणसे स्फुरती हैं ॥ २७ ॥ रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मादिसहित यह संपूर्ण जगत् अविद्यमान होकरभी स्वप्नके जगत्के तुल्य दृष्ट तथा अनुभूतभी होताहै ॥ २८ ॥

विचित्राःखलुदृश्यंतेचिज्जलेस्पंदरीतयः ॥ हर्षामर्षविषादोत्थजंगमस्थावरात्मनि ॥ २९ ॥ स्वभाववाताधूतस्यजगज्जालचमत्कृतेः ॥ हाचिन्मरीचिपांशुभ्रनीहारस्यविसारिता ॥ ३० ॥ यथाकेशोंड्रकंव्योम्निभातिव्यामलचक्षुषः ॥ तथैवेयंजगद्भ्रांतिर्भात्यनात्मविदोंबरे ॥ ३१ ॥ यावत्संकल्पितंतावद्यथासंकल्पितंतथा ॥ यथासंकल्पनगरंकचतीदंजगत्तथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—सर्वदा स्थितिशील, चिद्रूप जलमें स्वप्नवत् हर्ष तथा आमर्षादिसे आविर्भूत, चित्रविचित्र, चंचल तरंगश्रेणियां देखपडती हैं ॥ २९ ॥ अज्ञात चित्स्वभावनिष्ठ विक्षेपशक्तिरूप वायुसे कंपित, जगत्समूहाकार चमत्कारसहित, चिद्रूप सत्वगुणरूप प्रकाशमय किरणयुक्त, रजोगुणरूप धूलिपटलसहित, तथा तमोगुणरूप आवरणजडताकी प्रधानतायुक्त जन्ममरणादि अनेक अनर्थरूप मेघ तथा कुहिराआदिका चिदाकाशमें कैसा खेदजनक विस्तार है! हा!! ॥ ३० ॥ जैसे तिमिररोगयुक्त दृष्टिवाले पुरुषको आकाशमें केश मशकादि भासते हैं ऐसेही अज्ञानावृतचिद्दृष्टियुक्त मनुष्यको यह जगत्की भ्रांति निजचिदाकाशमेंही भासती है ॥ ३१ ॥ संकल्पनगरके समान यह जगत् जबतक जितना जिसप्रकार संकल्पित है वैसाही उतनेकालतक स्फुरताहै ॥ ३२ ॥

संकल्पनगरेयावत्संकल्पसकलास्थितिः ॥ भवत्येवाप्यसद्रूपासतीवानुभवेस्थिता ॥ ३३ ॥ प्रवहत्येवनियतिर्नियतार्थप्रदायिनी ॥ स्थावरंजंगमंचैवतिष्ठत्येवयथाक्रमम् ॥ ३४ ॥ जायतेजंगमंजीवात्स्थावरंस्थावरादपि ॥ नियत्याधोवहत्यंबुगच्छत्यूर्द्ध्वमथानलः ॥ ३५ ॥ वहंतिदेहयंत्राणिज्योतींषिप्रतपंतिच ॥ वायवोनित्यगतयःस्थिताःशैलादयःस्थिराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—संकल्पके नगरमें जबतक संकल्पकी स्थिति है तबतक वह असत्रूप होनेपरभी सत्के तुल्य अनुभवमें स्थित रहती है ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीके संकल्पसे कल्पित नियतपदार्थोंको देनेवाली नियतिही इससमय चलरही है और भविष्यमें चलेगी, और उसी नियतिसे स्थावरजंगमादि प्राणीसमूह नियतरूपरूपसे यथाक्रम स्थित हैं ॥ ३४ ॥ नियतिकेही नियमसे जङ्गमप्राणी जंगमसे तथा स्थावरसे स्थावर उत्पन्न होते हैं, और उसीके जल अधोदेशमें अग्नि ऊर्ध्वदेशमें चलते हैं ॥ ३५ ॥ नियतिसे नियमित शरीररूपी यंत्र चलते हैं, ज्योतिर्मय सूर्य्यादि तपते हैं, वायु नित्य गतिशील है, तथा पर्वत स्थिर हैं ॥ ३६ ॥

ज्योतिर्मयंविवृत्तंतुधारासारांबरीकृतम् ॥ युगसंवत्सराद्यात्माकालचक्रंप्रवर्तते ॥ ३७ ॥ भूतलेकांतराब्ध्यद्रिसंनिवेशःस्थितायते ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गद्रव्यशक्तिश्वतिष्ठति ॥ ३८ ॥ कुंददंतउवाच ॥ प्राग्दृष्टंस्मृतिमायातितत्स्वसंकल्पनान्यतः ॥ भातिप्रथमसर्गेतुकस्यप्राग्दृष्टभासनम् ॥ ३९ ॥ तापस उवाच ॥ अपूर्वंदृश्यतेसर्वंस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ प्राग्दृष्टंदृष्टमित्येवतत्रैवाभ्यासतःस्मृतिः ॥ ४० ॥

अर्थ—उसी नियतिके ही प्रभावसे ज्योतिर्मय कालचक्र दक्षिणायनमार्गसे वर्तनेपर वर्षाऋतुमें आकाश वृष्टिकी धारासे व्याप्त होजाताहै, और युगसम्वत्सरादिरूप कालचक्रभी नियतिसे चलताहै ॥ ३७ ॥ नियतिकेही प्रतापसे भूतलपर द्वीपोंके भेदोंसे एक २ द्वीपका अन्तराल देके सप्तसमुद्रोंकी तथा पर्वतोंकी रचना स्थित हैं, तथा उत्पत्ति, नाश, ग्रहण और त्यागादि द्रव्योंकी शक्तिभी नियतिकेही बलसे स्थित है ॥ ३८ ॥ कुन्ददन्त बोला कि—हे भगवन्! पूर्वानुभूत पदार्थ स्मरणमें आताहै अतः हमलोगोंका वह संपूर्ण अनुभवादि व्यवहार हमसे अन्य ब्रह्माजीके संकल्पसे कल्पित नियतिसे है, परन्तु ब्रह्माजीकी प्रथम सृष्टिके संकल्पमें पूर्वअनुभवादिके अभावसे उनको प्रथमानुभवसंस्कारके बिना जगत् कैसे भासा ॥ ३९ ॥ कदंबका तापस बोला—स्मृतिसंस्कारादिके बिनाही स्वप्नमें निजमर-

णके सदृश ब्रह्माके ज्ञानमें अपूर्वही यह जगत् अनुभूत होताहै, और उसी ज्ञानमें अभ्याससे मैंने इसको पूर्वमें अनुभव कियाहै ऐसी स्मृतिकाभी अध्यास होताहै ॥ ४० ॥

चित्त्वाच्चिद्व्योम्निकचतिजगत्संकल्पपत्तनम् ॥ नसन्नासदिदंतस्माद्भाताभातंयतःस्वतः ॥ ४१ ॥ चित्प्रसादेनसंकल्पस्वप्नाद्यद्यानुभूयते ॥ शुद्धंचिद्व्योमसंकल्पपुरंमास्मर्यतांकथम् ॥ ४२ ॥ हर्षामर्षविनिर्मुक्तैर्दुःखेनचसुखेनच ॥ प्रकृतेनैवमार्गेणज्ञैश्चक्रैरिवगम्यते ॥ ४३ ॥ निद्राव्यपगमेस्वप्ननगरेयादृशंस्मृतौ ॥ चिद्व्योमात्मपरंविद्धितादृशंत्रिजगद्भ्रमम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चिद्रूप होनेसे चिदाकाशमें यह जगत् संकल्पनगरवत् स्फुरताहै, इसलिये यह जगत् सत् है, न असत् है, क्योंकि इसका मानामान दोनों रूप है ॥ ४१ ॥ स्मरणके बिनाभी जीवको चित्के प्रभावसे स्वप्नसंकल्पादिमें जब कल्पनामात्रसे जगत्की स्मृति तथा अनुभव होताहै तब शुद्धचिदाकाशके संकल्पमात्रसे जगत्स्वरूप नगरकी स्मृति तथा उसका अनुभव कैसे न हो ॥ ४२ ॥ इसीसे हर्ष, आमर्ष, सुख तथा दुःखादिसे विनिर्मुक्त ज्ञानीजन कुलालचक्रवत् निजप्रवाहपतितमार्गसे प्रारब्धके वेगसे इससंसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे अज्ञानियोंको निद्राका नाश होनेपर स्वप्नके नगरमें केवल स्मृतिमात्र रहती न कि ममताआदि, ऐसेही ज्ञानीको यह त्रिलोकका भ्रम बाधित होनेसे कथंचित्स्मरणमात्र है, यथार्थमें वह चिदाकाशरूपही है ॥ ४४ ॥

संविदाभासमात्रंयज्जगदित्यभिशब्दितम् ॥ तत्संविद्व्योमसंशांतंकेवलंविद्धिनेतरत् ॥ ४५ ॥ यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ सर्वसर्वतयासर्वंतत्सर्वंसर्वदास्थितम् ॥ ४६ ॥ यथेयंसंस्थितिर्ब्राह्मीभवतोयद्भविष्यति ॥ यथाभानंचदृश्यस्यतदेतत्कथितंमया ॥ ४७ ॥ उत्तिष्ठतंत्रजतमास्पदमद्यिपभृंगाविवाभिमतमाशुविधीयतांस्वम् ॥ तिष्ठामिदुःखमलमस्तसमाधिसंस्थंभूयःसमाधिमहमंगचिरंविशामि ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्र० ता० कुंददंतोपदेशो नाम चतुरशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८४ ॥

अर्थ—संविद्का आभास (स्फुरण) मात्र जगत् कहलताहै, और उस संवित्स्फुरणकोभी तुम केवल शांत चिदाकाशही जानो न कि अन्य ॥ ४५ ॥ जिसमें सब है, जिससे सब है, जो सर्वरूपतासे सर्वत्र सर्वरूप है, उसीको सर्वदा सर्वरूपसे सर्वत्र तुम स्थित जानो ॥ ४६ ॥ जिसप्रकार यह ब्रह्माकी सृष्टि है, और जैसे इस दृश्यका भान होताहै और तुमको जो होगा वह सब मैंने कहदिया ॥ ४७ ॥ हे प्रिय दोनों ब्राह्मण ! तुम अब उठो और प्रातःकालमें जैसे दो भ्रमर कमलमें जाते हैं ऐसेही अपने गृहको जाओ, तथा वहां अभिमत सत्कर्मोका अनुष्ठान करो, क्योंकि मुझे इससमय समाधि न होनेसे अतिदुःख होताहै इसलिये उस दुःखके परिहारार्थ चिरकालके अर्थ पुनः समाधिमें प्रविष्टहोताहूं ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासुतापसोपा० कुन्ददन्तोपदेशो नाम चतुरशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८४ ॥

पंचाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८५ ॥

उन दोनोंका गृहमें आगमन, क्रमसे भ्राताओंका परलोकगमन, और कुन्ददन्तका रामजीके संमेलन होनेसे मोहका नाश इत्यादि विषय इस १८५ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

कुंददंतउवाच ॥ जरन्मुनिरपीत्युक्त्वाध्यानमीलितलोचनः ॥ आसीदस्पंदितप्राणमनाश्चित्रइवार्पितः ॥ १ ॥ आवाभ्यांप्रणयोदारैःप्रार्थितोपिपुनःपुनः ॥ वाक्यैःसंसारमविदन्नवचोदत्तवान्पुनः ॥ २ ॥ आवांप्रदेशतस्तस्माच्चलित्वामंदमुत्सुकौ ॥ दिनैःकतिपयैःप्राप्तौगृहंमुदितबांधवम् ॥ ३ ॥ अथतत्रोत्सवंकृत्वाकथाःप्रोच्यचिरंतनीः ॥ स्थितास्तावद्वयंयावत्सप्तापिभ्रातरोथते ॥ ४ ॥ क्रमेणविलयंप्राप्ताः प्रलयेष्वर्णवाइव ॥ मुक्तोसौमेसखैवैकएकार्णवइवाष्टकः ॥ ५ ॥

अर्थ—कुन्ददन्त बोला-कि हे रामादि सभ्य ! उस वृद्ध गौरीवनके तपस्वीने इतना कहके ध्यानस्थित होनेसे नेत्रोंको मुंदलिया, और मन तथा प्राणकी चेष्टासे रहित चित्रमें लिखितकेसमान होगया ॥ १ ॥ और नम्रता

तथा उदारतायुक्त वाक्योंसे हम दोनोंसे पुन: २ प्रार्थित होनेपरभी बाह्यवृत्तिके अभावसे संसारको न जानतेहुये उसने पुन: कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ २ ॥ पश्चात् हम दोनों मुनिके वियोगसे दुःखी उस स्थानसे चलके कुछ दिनोंमें प्रसन्न बन्धुयुक्त गृहमें प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ अनन्तर उस गृहमें देवाराधन ब्राह्मभोजनादि उत्सव करके तथा पूर्वकालकी कथाओंको कहके तब स्थित रहे जबतक वे सातोंभ्राता क्रमसे ऐसे लयको प्राप्त हुये जैसे द्वादशसूर्य्यके तापजनित प्रलयमें सप्तसमुद्र, अब वही अष्टमभ्राता मेरा मित्र ऐसे शेष रहगया जैसे जलप्रलयमें एक महासमुद्र ॥ ४ ॥ ५ ॥

ततःकालेनसोप्यस्तंदिनांतेर्कइवागतः ॥ अहंदुःखपरीतात्मापरंवैधुर्यमागतः ॥६॥ ततोहंदुःखितोभूयः कदंबतरुतापसम् ॥ गतोदुःखोपघातायतज्ज्ञानंप्रष्टुमादृतः ॥ ७ ॥ तत्रमासत्रयेणासौसमाधिविरतोभवत् ॥ प्रणतेनमयापृष्टःसन्निदंप्रोक्तवानथ ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर काल पाके वहभी ऐसे अस्त होगया जैसे दिनके अन्तमें सूर्य्य, और मैं मित्रके वियोगसे महादुःखसे व्याप्त होगया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् अत्यन्त दुःखित मैं उस दुःखके नाशार्थ तथा पूर्वोक्त आत्मज्ञानके पूंछनेके अर्थ उस कदंबके वृद्धतपस्वीके निकट अति आदरसे पुन: गया ॥ ७ ॥ वहांपर तीनमासके पश्चात् वह समाधिसे जाग्रत हुआ, और नम्रतापूर्वक मेरे पूंछनेपर उसने यह कहा ॥ ८ ॥

कदंबतापसउवाच ॥ अहंसमाधिविरतःस्थातुंशक्तोमिनक्षणम् ॥ समाधिमेवप्रविशाम्यहमाशुकृतत्वरः ॥ ९ ॥ परमार्थोपदेशस्तेनाभ्यासेनविनानघ ॥ लगत्यत्रपरांयुक्तिमिमांशृणुततःकुरु ॥ १० ॥ अयोध्यानामपूरस्तितत्रास्तिवसुधाधिपः ॥ नाम्नादशरथस्तस्यपुत्रोरामइतिश्रुतः ॥ ११ ॥ सकाशंतत्रगच्छत्वंतस्मैकुलगुरुःकिल ॥ वसिष्ठाख्योमुनिश्रेष्ठःकथयिष्यतिसंसदि ॥ १२ ॥

अर्थ—कदंबका तपस्वी बोला कि–हे ब्राह्मण ! मैं समाधिसे विरक्त होके एकक्षणभी नहीं रहसकता, अतः शीघ्रतायुक्त समाधिमेंही प्रविष्ट होताहुं ॥ ९ ॥ हे प्रिय ! अभ्यासके बिना परमार्थका उपदेश तुमको नहींलगता, इसलिये तुम इस विषयमें इस परमोत्तमयुक्ति तुमको कहताहूं सो सुनो अनन्तर उसीके अनुकूल कार्य्य करो ॥ १० ॥ अयोध्यानामकी एक नगरी है, वहांपर वसुधाके स्वामी राजा दशरथ हैं, उनके पुत्र राम इस नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ उनके निकट तुम जाओ, इक्ष्वाकुकुलके गुरु मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी रामचन्द्रके लिये सभाके मध्यमें मोक्षोपाय कहैंगे ॥ १२ ॥

मोक्षोपायकथांदिव्यांतांश्रुत्वासुचिरंद्विज ॥ विश्रांतिमेष्यसिपरेपदेहमिवपावने ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाससमाधानरसायनमहार्णम् ॥ विवेशाहमिमंदेशंत्वत्सकाशमुपागतः ॥ १४ ॥ एवोहमेतद्वृत्तंमेसर्वकथितवानहम् ॥ यथावृत्तंयथादृष्टंयथाश्रुतमखंडितम् ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सकुंददंतइत्यादिकथाकथनकोविदः ॥ स्थितस्ततःप्रभृत्येवमत्समीपगतःसदा ॥ १६ ॥

अर्थ—सो हे ब्राह्मण ! उस दिव्य मोक्षोपायकथाको श्रवण करके इस परमपावन ब्रह्मपदमें मेरेही सदृश चिरकालके लिये विश्रांतिको प्राप्त होओगे ॥ १३ ॥ इतना कहके वह तपस्वी समाधिरूप रसायनके महासमुद्रमें प्रविष्ट हुआ, और मैं उसकी आज्ञानुसार तुमारे (रामचंद्रजीके) समीप आयाहूं ॥ १४ ॥ यह मैंने यथार्थवृत्तान्तको जैसा देखाहै और सुनाहै संपूर्ण आपसे कहदिया ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे महर्षे ! कथाके कहनेमें प्रवीण वह कुन्ददन्तब्राह्मण उसी समयसे मेरेही निकट सदा वर्तमान है ॥ १६ ॥

सएषकुंददंताख्योद्विजःपार्श्वेसमास्थितः ॥ श्रुतवान्संहितामेतांमोक्षोपायाभिधामिह ॥ १७ ॥ सएषकुंददंताख्योममपार्श्वगतोद्विजः ॥ अयनिःसंशयोजातोनवेतिपरिपृच्छयताम् ॥ १८ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तेराघवेणाथप्रोवाचवदतांवरः ॥ सवसिष्ठोमुनिश्रेष्ठःकुंददंतंविलोकयन् ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुददंतद्विजवरकथ्यतांकिंत्वयानघ ॥ बुद्धंश्रुतवताज्ञेयंमदुक्तंमोक्षदंपरम् ॥ २० ॥

अर्थ—और वह कुन्ददन्त यही है जो (देखाके) यह मेरेसमीप स्थित है यही है, सो इतने यहांपर आपसे कही हुई इस मोक्षोपाय नाम संहिताको सुनी है ॥ १७ ॥ वही यह कुन्ददन्त नामक ब्राह्मण मेरे समीपमें स्थित है सो इससमय इस मोक्षोपाय संहिताको सुनकर सन्देहरहित हुआ वा नहीं यह इससे पूंछनाचाहिये ॥ १८ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–श्रीरामजीके इतना कहनेपर वक्ताओंमें प्रमुख मुनि श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी कुंददंतको अवलोकन करके पूछतेभये ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे पापरहित ब्राह्मण कुन्ददन्त ! कहो मेरे कथनको सुनकर मुझसे कथित मोक्षदायक तथा ज्ञेय ब्रह्मपदको तुमने जाना ॥ २० ॥

कुंददंतउवाच ॥ सर्वसंशयविच्छेदिचेतएवजयायमे ॥ सर्वसंशयविच्छेदोज्ञातंज्ञेयमखंडितम् ॥ २१ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यममलंदृष्टंद्रष्टव्यमक्षतम् ॥ प्राप्तंप्राप्तव्यमखिलंविश्रांतोस्मिपरेपदे ॥ २२ ॥ बुद्धेयंत्वदिदं

सर्वपरमार्थघनंघनम् ॥ अनन्येनात्मनोव्योम्निजगद्रूपेणजृंभितम् ॥ २३ ॥ सर्वात्मकतयासर्वरूपिणः सर्वगात्मनः ॥ सर्वंसर्वेणसर्वत्रसर्वदासंभवत्यलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—कुन्ददन्त बोला कि–हे भगवन् ! संपूर्ण संशयोंके उच्छिन्न करनेमें समर्थ मेरा सचित्तही विजयकेलिये है मेरे सब संदेहोंका विच्छेद होगया, क्योंकि मैंने भेदशून्य ज्ञेयवस्तुताको पूर्णरूपसे आपके उपदेशसे जानलिया है ॥ २१ ॥ हे भगवन्! मैंने निर्मल ज्ञातव्य वस्तुको जानलिया, अखण्डित द्रष्टव्य वस्तुको देखलिया, संपूर्ण प्राप्तव्य-वस्तुको पाया, और अब मैं परम (ब्रह्म) पदमें विश्रान्त हुं ॥ २२ ॥ हे भगवन्! अपनेसे अभिन्नरूपसे निजचिदाका-शरूपमें जो जगत्स्वरूपसे प्रादुर्भूत है उस परमार्थघन इस अपरोक्ष आत्मचित्को आपसे मैंने जाना ॥ २३ ॥ सर्वात्मक-रूपतासे सर्वरूपी तथा सर्वव्यापी परमात्मासे सर्वत्र, सर्वदा तथा सबप्रकारसे सबकुछ पूर्णरूपसे संभव होताहै ॥ २४ ॥

संभवंतिजगंत्यंतःसिद्धार्थकणकोटरे ॥ नसंभवंतिचयथाज्ञातमेतदशेषतः ॥ २५ ॥ गृहेंतःसंभवत्येवसप्तद्वीपावसुंधरा ॥ गेहंचशून्यमेवास्तेसत्यमेतदसंशयम् ॥ २६ ॥ यद्यद्यदावस्तुयथोदितात्मभातीहभूतैरनुभूयतेच ॥ तत्तत्तदासर्वघनस्तथास्तेब्रह्मेत्यमध्यंतविमुक्तमस्ति ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्र० ता० कुंददंतप्रबोधोनाम पंचाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८५ ॥

अर्थ— एक सर्षप (सरसों) के कोणेमेंभी सर्वशक्तियुक्त चेतनकी सत्तासे उसकी मायाशक्तिके द्वारा अनेक ब्रह्मांड उत्पन्न होतेहैं और परमार्थदृष्टिसे कुछ नहीं होते, यह आपकी कृपासे मैंने पूर्णरूपसे जानलिया ॥ २५ ॥ गृहके आभ्यन्तर सप्तद्वीपवती सप्त वसुंधरा उत्पन्न होगई, और वह गृहभी यथार्थमें शून्यही है, यह विषय निश्चयरूपसे सत्य है ॥ २६ ॥ जो वस्तु जिसप्रकारसे जहां और जब भासती तथा अनुभूत होती है वह २ उस २ समय तथा उस २ प्रकारसे आदिअन्तशून्य सर्वथा चिद्घन ब्रह्मही है, उससे भिन्न कभी किसीको कुछ अनुभूत नहीं होता ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगी० कुन्ददन्तप्रबोधो नाम पंचाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८५ ॥

षडशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८६ ॥

सब ब्रह्मरूपही है इस सिद्धान्तकी युक्तियोंसे अचलता तथा चेतनके संकल्पसे वरशापादिकी सिद्धि यह विषय इस १८६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ कुंददंतेवदत्येवंवसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ उवाचेदमनिंद्यात्मापरमार्थोचितंवचः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बतविज्ञानविश्रांतिरस्यजातामहात्मनः ॥ करामलकवद्विश्वंब्रह्मेतिपरिपश्यति ॥ २ ॥ किलेदंभ्रांतिमात्रात्मविश्वंब्रह्मेतिभात्यजम् ॥ भ्रांतिर्ब्रह्मैवचब्रह्मशांतमेकमनामयम् ॥ ३ ॥ यद्यथायेनयत्रास्तियादृग्यावद्यदायतः ॥ तत्तथातेनतत्रास्तितादृक्तावत्तदाततः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वाल्मीकीजी बोले–कि जब कुन्ददन्त यह विषय कहताथा तब अनिन्द्यस्वरूप भगवान् वसिष्ठजी यह परमार्थोचित बचन बोले ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि यह हर्षका विषय है कि इस महात्मा कुन्ददन्तको शास्त्रजन्यज्ञानसे आत्मामें पूर्णविश्राम प्राप्तहुआ है, क्योंकि यह संपूर्णविश्वको करामलकवत् ब्रह्मरूपसे देखताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! भ्रमसे अजन्मा ब्रह्मही जगत्रूपसे भासताहै, क्योंकि वह भ्रमभी ब्रह्मरूपही है, इसलिये सब कुछ निर्विकार शान्त ब्रह्मरूपही है ॥ ३ ॥ जो, जिसप्रकारसे, जिसके द्वारा, जहां, जैसा, जितना, जब और जिससे होताहै, वह, उसप्रकार, उसके द्वारा, वहां, वैसा, उतना, उसीसमय, तथा उससे ब्रह्मही होताहै ॥ ४ ॥

शिवंशांतमजंमौनमामौनमजरंततम् ॥ सुशून्याशून्यमभवमनादिनिधनंध्रुवम् ॥ ५ ॥ यस्यायस्यास्त्ववस्थायाःक्रियतेसंविदाभरः ॥ सासासहस्रशाखत्वमेतिसेकैर्यथालता ॥ ६ ॥ परोब्रह्मांडमेवाणुश्चिद्व्योम्नोंतःस्थितेोयतः ॥ परमाणुरेवब्रह्मांडमंतःस्थितजगद्यतः ॥ ७ ॥ तस्माच्चिदाकाशमनादिमध्यमखंडितंसौम्यमिदंसमस्तम् ॥ निर्वाणगस्तंगतजातिबंधोयथास्थितंतिष्ठनिरामयात्मा ॥ ८ ॥

अर्थ—शिव, शान्त, अजन्मा, मौन, अमौन (निरुपाधिक) अजर, व्याप्त, शून्याशून्य, प्रपंचरहित, अनादिनिधन तथा ध्रुव ब्रह्मही सब कुछ है ॥ ५ ॥ मायाशबलित चेतन जिस २ अवस्थाका दृढसंकल्प करताहै वह २

अवस्था सहस्रों शाखाओंमें ऐसे विकसित होती है जैसे जलसेचनसे लता ॥ ६ ॥ क्योंकि ब्रह्मांडरूपही परमाणु उस चिदाकाशके भीतर स्थितहै, और परमाणुभी उसके आभ्यन्तर ब्रह्मांड जगत्‌रूपसे स्थित है, ऐसी प्रबल उस परमात्माकी मायाशक्ति है ॥ ७ ॥ अतएव यह सब जगत् आदिअन्तमध्यशून्य, अखंड चिदाकाशरूपही है, इस हेतुसे शरीरादि विचित्रआदि बन्धरहित, निर्विकार तथा निर्वाण यथास्थित ब्रह्मरूप होके तुम स्थित रहो ॥ ८ ॥

स्वयंदृश्यंस्वयंद्रष्टृस्वयंचित्त्वंस्वयंजडम् ॥ स्वयंकिंचिन्नकिंचिच्चब्रह्मात्मन्येवसंस्थितम् ॥ ९ ॥ यथा यत्रजगत्येतत्स्वयंब्रह्मस्वमात्मनि ॥ स्वरूपमजहच्छांतंयत्रसंपद्यतेतथा ॥ १० ॥ ब्रह्मदृश्यमितिद्वैतं नकदाचिद्यथास्थितम् ॥ एकत्वमेतयोर्विद्धिशून्यत्वाकाशयोरिव ॥ ११ ॥ दृश्यमेवपरंब्रह्मपरंब्रह्मैवदृश्यता ॥ एतन्नशांतंनाशांतंनानाकारंनचाकृतिः ॥ १२ ॥

अर्थ—और व्यवहारदृष्टिसे ब्रह्म स्वयं द्रष्टा, स्वयं दृश्य, स्वयं दर्शन, स्वयं चित्, स्वयं जड तथा किंचित् और अकिंचित्‌रूपसेभी स्थित है, और परमार्थदृष्टिसे स्वरूपमें अद्वितीय चित्प्रकाशानन्दरूपमें स्थित है ॥ ९ ॥ यह मायाशबलित ब्रह्म जहां जिस वासनासे जैसा रूप धारण करताहै वहां निजचिदाकाशरूपमें सच्चित्स्वरूपको न त्यागता हुवा उस २ रूपसे स्थित रहताहै ॥ १० ॥ ब्रह्म निजमायाशक्तिसे दृश्य जगत्‌स्वरूप होजाताहै इससे द्वैतकी सत्ता कदाचित् नहीं सिद्ध होती, क्योंकि शक्तिसे रजतवत् अन्यरूप भासनेपरभी अपने यथास्थित निर्विकाररूपसेही स्थित है, जगत् तथा ब्रह्मकी एकता तुम ऐसे जानो जैसे शून्य और आकाशकी ॥ ११ ॥ दृश्यही परब्रह्म है, और परब्रह्मही दृश्य है, यह ब्रह्म न शान्त है, न अशान्त है, न आकारशून्य है और न आकारवान् है, क्योंकि ये शान्त अशान्तआदि शब्द सापेक्ष है ॥ १२ ॥

यादृग्प्रबोधेस्वप्नादिस्तादृग्देहोनिराकृतिः ॥ संविन्मात्रात्माप्रतिघःस्वानुभूतोप्यसन्मयः ॥ १३ ॥ संविन्मयोयथाजंतुर्निद्रात्मास्तजडोभवत् ॥ जडीभूतातथैषास्तेसंवित्स्थावरनामिका ॥ १४ ॥ स्थावरत्वाज्जडाच्चिस्त्वंजंगमात्मप्रयातिचित् ॥ जीवःसुषुप्तात्मास्वप्नंजाग्रच्चैवजगच्छ्रतैः ॥ १५ ॥ आमोक्षमेषाजीवस्यभुव्यंभस्यनिलेऽनले ॥ खेस्वात्मभिर्जगल्लक्षैःस्वप्नाभैर्भासतेस्थितिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे जागनेपर स्वप्नके पदार्थ निराकार भासतेहैं ऐसेही ज्ञान होनेपर यह जाग्रत् देहभी निराकार भासताहै, और स्वप्नमें यह संविद्रूप आत्मा स्वयं साकार अनुभूत होनेपरभी यथार्थमें वह सब असन्मय है ॥ १३ ॥ जैसे चिन्मयभी जीव निद्रास्वरूप होनेपर जड होजाताहै, ऐसेही यह स्थावरनाम संवित् (स्थावरदशामें प्राप्त जीव) जडीभूत (मूर्छित) है ॥ १४ ॥ जैसे सुषुप्तिदशासे जीव स्वप्न तथा जाग्रत्‌में आताहुआ अनेक जगत्‌की कल्पनाओंसे युक्त होजाताहै ऐसेही जडीभूत स्थावरदशासे जंगम चेतनतारूपदशाको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ जबतक मुक्ति नहीं होती तबतक इस जीवकी पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशमें तत्तद्रूपसे स्वप्नवत् अनेकजगत्‌रूप स्थिति भासती है ॥ १६ ॥

चिच्चिनोतितथाजाड्यंनरोनिद्रास्थितिर्यथा ॥ चिनोतिजडतांचित्त्वंननामजडतावशात् ॥ १७ ॥ चिता वेदनवेत्तारंस्थावरंक्रियतेवपुः ॥ चितावेदनवेत्तारंजंगमंक्रियतेवपुः ॥ १८ ॥ यथापुंसोनखाःपादावेकमेवशरीरकम् ॥ तथैकमेवाप्रतिघंचितःस्थावरजंगमम् ॥ १९ ॥ आदिसर्गेस्वप्नइवयत्प्रथामागतंस्थितम् ॥ चितोरूपंजगदितितत्तथैवांतउच्यते ॥ २० ॥ तच्चैवाप्रतिघंशांतंयथास्थितमवस्थितम् ॥ नप्रथामागतं किंचिन्नासीदप्रथितंहितम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे मनुष्य निद्रास्थितिका अभ्यास करताहै ऐसे चित् जडताका अभ्यास करती है, परन्तु निजरूपमें अध्यस्त जडताका अभ्यास नहीं करती, क्योंकि वह चित् है यथार्थमें जडरूपता कदापि नहीं धारणकरती ॥ १७ ॥ जडता ज्ञानको अनुभव करनेवाले जीवके प्रति जैसे चित् स्थावर शरीर धारणकरती है ऐसेही जंगमशरीरभी धारण करती है ॥ १८ ॥ जैसे मनुष्यके चेतन हस्तपादआदि और अचेतन केशनखादि शरीर हैं, ऐसेही महाचित्‌के निजस्वरूपमें अध्यस्त स्थावरजंगम दोनोंही शरीर हैं ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीके प्रथम सृष्टिविषयके संकल्पमें जो जंगम वा स्थावररूप जगत् जैसे प्रथाको प्राप्तहुआ वह अबभी वैसाही स्थित है, किन्तु इसप्रकार चिरकालपर्य्यन्तभी जडरूपसे स्थित होनेपरभी यथार्थमें चिन्मय होनेसे वह यथास्थित निराकार शान्त ब्रह्मही है इत्यादि शब्दोंसे जगत्‌का अन्त (अपवाद) कहतेहैं, क्योंकि यथार्थरूपसे न यह था न प्रथाको प्राप्तहुआ यही हित है ॥ २० ॥ २१ ॥

अयमादिरयंचांतःसर्गस्येत्यवभासते ॥ चितःसुघननिद्रायाःसुषुप्तस्वप्नकोष्ठतः ॥ २२ ॥ स्थितएकोह्य नाद्यंतःपरमार्थघनोयतः ॥ प्रलयस्थितिसर्गाणांननामाप्यस्तिमांप्रति ॥ २३ ॥ प्रलयस्थितिसर्गादि दृश्यमानंनविद्यते ॥ एतत्रचात्मनश्चान्यच्चित्रेचित्रवधूर्यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नके जगत्की आदि गाढी निद्राको अनुभवकर्ता चेतन आदि है और जाग्रत् प्रपंचोपहित चेतन अन्त है अर्थात् वह दोनोंके मध्यमेंही है ऐसेही सृष्टिकाभी आदि और अन्त भासताहै परन्तु चेतनका अन्त नहीं भासता ॥ २२ ॥ सृष्टि तथा स्वप्नादि अवस्था सबका आदि अन्त है और चेतन आदिअन्तशून्यही सदा है इसलिये मुझ ज्ञानीके प्रति प्रलय, स्थिति तथा सृष्टिका नाम भी नहीं है ॥ २३ ॥ यह प्रलय, स्थिति तथा सर्ग दृश्यमानभी आत्मासे भिन्न ऐसे नहीं है जैसे चित्रगत चित्रसे चित्रकी स्त्री ॥ २४ ॥

कर्तव्यचित्रसेनास्माद्यथाचित्रान्नभिद्यते ॥ नानानानैवप्रतिघाचित्तत्वेसर्गतातथा ॥ २५ ॥ विभागहीनयाप्येषभागश्चिद्घननिद्रया ॥ सुषुप्तान्मुष्यतेमोक्षइतिस्वप्नस्तुचित्तकम् ॥ २६ ॥ प्रलयोयमियंसृष्टि रयंस्वप्नोघनस्त्वयम् ॥ भासोप्रतिघरूपस्यचित्सहस्ररुचेरिति ॥ २७ ॥ चिन्निद्रायाःस्वप्नमयोभाग श्चित्तमुदाहृतम् ॥ तदेवमुच्यतेभूतंजीवोदेवासुरादिदृक् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे कर्तव्यचित्रकी सेना इस चित्रकारकी बुद्धिसे भिन्न नहीं है ऐसेही साकार नानाप्रकारकी सृष्टिभी स्रष्टाके चित्तसे भिन्न नहीं है अतः सब अद्वैतरूपही है ॥ २५ ॥ विभागशून्यभी चिद्घन निद्रा अविद्याद्वारा सुषुप्तिरूप आवरणसे अपना प्रसिद्ध मोक्षरूप भाग चोरा लेती है और इसके विरुद्ध चित्तस्वरूप होके जाग्रत्भाग तथा स्वप्नभागको दर्शाती है ॥ २६ ॥ यह प्रलय है, यह सृष्टि है, यह स्वप्न है, तथा यह जाग्रत् इत्यादि प्रज्ञाघन सुषुप्तिरूप चेतन महासूर्य्यके प्रकाशके भेद हैं ॥ २७ ॥ चित्स्वरूप निद्राका स्वप्नमय वासनाप्रधान भाग चित्त है, वही चित्त उपाधि अंशकी प्रधानतासे जीव कहलाताहै, और वही जीव अधिकारी देव मनुष्यादि शरीरभावको ग्रहण करके तत्वज्ञानद्वारा अविद्यारूप निद्राका नाश करके मुक्त होजाताहै ॥ २८ ॥

एषएवपरिज्ञातःसुषुप्तिर्भवतिस्वयम् ॥ यदातदामोक्षइतिप्रोच्यतेमोक्षकांक्षिभिः ॥ २९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ चित्तंदेवासुराद्यात्मचिन्निद्रास्वात्मदर्शनम् ॥ कियत्प्रमाणंभगवन्कथमस्योदरेजगत् ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विद्धिचित्तंनरंदेवमसुरंस्थावरंस्त्रियम् ॥ नागंनगंपिशाचादिखगकीटादिराक्षसम् ॥ ३१ ॥ प्रमाणंतस्यचानंतंविद्धितयत्ररेणुताम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंजगद्यातिसहस्रशः ॥ ३२ ॥

अर्थ—यही जीव चतुर्थपंचमभूमिकामें ज्ञात होनेसे षष्ठभूमिकामें स्वयं सुषुप्तिरूप होजाताहै, और सप्तमभूमिकामें वह स्वयं मोक्षरूप होजाता है ॥ २९ ॥ हे भगवन्! देव असुरआदि भेदसे चित्तका कितना प्रमाण और कितनी कैसी उसकी स्थिति है, तथा चिन्निद्राके उदरमें जगत्का क्या प्रमाण और कितनेपर्य्यंत उसकी स्थिति रहती है ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! मनुष्य, देव, असुर, स्थावर, स्त्रि, नाग, नग, पिशाचादि, पक्षी, कीटादि तथा राक्षसआदि इन सबको तुम चित्तही जानो ॥ ३१ ॥ और उस चित्तका प्रमाण तुम अनन्त जानो, जहांपर रेणुता अवधि करके ब्रह्मासे लेके स्तंबपर्य्यंत सहस्रों जगत् प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

यदेतदादित्यपथादूर्ध्वसंयातिवेदनम् ॥ एतच्चित्तंभूतमेतदपर्यंतामलाकृति ॥ ३३ ॥ एतद्वग्रंचितो रूपमस्यांतर्भुवनद्वयः ॥ यदायांतितदासर्गश्चित्तादागतउच्यते ॥ ३४ ॥ चित्तमेवविदुर्जीवंतदाद्यंत विवर्जितम् ॥ खंघटेष्विवदेहेषुचास्तेनास्तेतदिच्छया ॥ ३५ ॥ निम्नोन्नतान्भुवोभागान्गृण्हातिचज हातिच ॥ सरित्प्रवाहोंगयथाशरीराणितथामनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह जो ऊपरकी ओर नेत्र फेकनेपर आदित्यमार्ग (आकाश) ऊर्ध्वदेश तथा ध्रुवान्धकारदेशमें चाक्षुषज्ञान प्राप्त होताहै सो यह इतना अपर्यन्त प्रमाण, निर्मलाकार और सर्वानुसिद्ध चित्तही है ॥ ३३ ॥ दुःसह संसारके दुःखोंसे पूर्ण होनेसे यह चित्त भयंकर चित्काही रूप है और जब इसी समष्टिरूप चित्तके आभ्यन्तर अनेक लोकोंकी समृद्धि आके प्राप्त होती हैं तब चित्तसे सृष्टि प्राप्त हुई ऐसा कहते हैं ॥ ३४ ॥ आदिअन्तशून्य चित्तकोही जीव कहते हैं, घटोंमें आकाशवत् वह समष्टिरूपसे सर्वशरीरोंमें है, तथा विधाताकी इच्छासे व्यष्टिरूपसे देहसे निकलनेसे नहीं है ॥ ३५ ॥ जैसे नदीका प्रवाह ऊंचे नीचे भूमिके भागोंको ग्रहणभी करताहै और त्यागताभी है ऐसाही मनभी ऊंचे नीचे शरीरोंको त्यागता तथा ग्रहण करतारहताहै. ॥ ३६ ॥

अस्यत्वात्मपरिज्ञानादेषदेहादिसंभ्रमः ॥ शाम्यत्याश्ववबोधेनमरुवाःप्रत्ययोयथा ॥ ३७ ॥ जगत्यंतर णुर्यत्रतत्प्रमाणंहिचेतसः ॥ सदेवचपुमांस्तस्मात्पुंसामंतस्थितंजगत् ॥ ३८ ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यं तच्चित्तंस्वप्नभूमिव ॥ तदेवचपुमांस्तस्मात्कोभेदोजगदात्मनोः ॥ ३९ ॥ चिदेवायंपदार्थौघोनास्त्यन्य स्मिन्पदार्थता ॥ व्यतिरिक्तास्वप्नइवहेम्नीवकटकादिता ॥ ४० ॥

अर्थ—इसको आत्मारूप (चित्स्वरूप) जाननेसे यह देहादि भ्रम शीघ्र ऐसे नष्टहोजाताहै जैसे यथार्थज्ञानसे मरुस्थलके जलका ज्ञान ॥ ३७ ॥ और जगत्को अपने गर्भमें धारणकरनेवालेभी चित्तका प्रमाण अणुरूपही है, वही अणुस्वरूप चित्त पुरुष है, और पुरुषके आभ्यन्तरमें यह जगत् है ॥ ३८ ॥ स्वप्नकी भूमियोंके तुल्य जो कुछ यह देखपडताहै वह सब चित्तही है, और वही चित्त पुरुष है, अतएव जगत् तथा आत्मामें किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ३९ ॥ यह पदार्थसमूह चित्स्वरूपही है, क्योंकि चित्से भिन्नमें पदार्थता नहीं है, तथा स्वप्नवत् उससे भिन्न पदार्थ ऐसे नहीं हैं जैसे सुवर्णमें कटकआदिरूपता ॥ ४० ॥

यथैकदेशेसर्वत्रस्फुरंत्यापोंबुधौपृथक् ॥ ब्रह्मण्यनन्यानित्यस्थाश्चितोदृश्यात्मिकास्तथा ॥ ४१ ॥ यथा द्रवत्वमंभोधावापोजठरकोशगाः ॥ स्फुरंत्येवंविदोनन्याःपदार्थौघास्तथापरे ॥ ४२ ॥ यथास्थितंजग च्छालभंजिकाकाशरूपधृक् ॥ चित्स्तंभोयमपस्पंदःस्थितआद्यंतवर्जितः ॥ ४३ ॥ यथास्थितमिदंवि श्वंसंविद्व्योम्निव्यवस्थितम् ॥ स्वरूपमत्यजच्छांतंस्वप्नभूमाविवाखिलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें जल एकरूप होके तरंग तथा आवर्तआदिरूपसे पृथक् २ स्फुरताहै ऐसेही ब्रह्मरूप समुद्रमें चित्शक्तिद्वारा अभिन्नरूपतासे दृश्यरूप अनेक तरंग स्फुरित होतेहैं ॥ ४१ ॥ जैसे समुद्रके उदरमें विद्यमान जल तथा द्रवत्व अभिन्नरूपसे स्फुरतेहैं ऐसेही परमात्मामें संवित्से अभिन्नरूपही पदार्थ स्फुरते हैं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार यथास्थित जगत्रूप प्रतिमाओंका आधार अत्यन्त शून्य आकाशमात्रशरीरधारी तथा आदिअंतशून्य चेतनही निश्चल स्तंभरूपसे स्थित है ॥ ४३ ॥ स्वप्नभूमिके तुल्य संविदाकाशमें यथास्थित यह संपूर्ण विश्व निज शान्त चित्स्वरूपको न त्यागता हुवा जीव स्थित है ॥ ४४ ॥

समतासत्यतासत्तचैकतानिर्विकारिता ॥ आधाराधेयतान्योन्यंचैतयोर्विश्वसंविदोः ॥ ४५ ॥ स्वप्नसं कल्पसंसारवरशापदृशामिह ॥ सरोब्धिसरिदंबूनामिवान्यत्वंनवाथवा ॥ ४६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वर शापार्थसंवित्तौकार्यकारणताकथम् ॥ उपादानंविनाकार्यंनास्त्येवकिलकथ्यताम् ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ स्ववदातचिदाकाशकचनंजगदुच्यते ॥ स्फुरणेपयसामब्धावावर्तचलनंयथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—समता, सत्यता, सत्ता, एकता, निर्विकारता तथा आधाराधेयता, इन पांचोप्रकारसे स्तंभ तथा तद्गतप्रतिमाओंके तुल्य संसार तथा संवित्की सदृशता है अर्थात् किंचित्प्रतिभासमात्र भेद भान होताहै ॥ ४५ ॥ स्वप्न तथा संकल्पके संसारवत् वर तथा शापसे नन्दी और नहुषके देव तथा सर्पभावके प्रतिभासदृष्टिवालोंको तडाग, समुद्र तथा नदियोंके जलके समान चेतन तथा संसारमें भेद है परमार्थमें भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! वर तथा शापकी संवित्में कार्य्यकारणभाव कैसे होताहै, क्यों नन्दीके मनुष्यदेहमें देवशरीरका उपादानकारण चन्द्रामृत भाग नहीं है, ऐसे नहुषके मनुष्यदेहमें सर्पके उपादान उसके अंडआदि नहीं हैं, और उपादानकारणके बिना कार्य्य नहीं होता, सो यह कैसे हुआ यह कृपाकरके कहिये ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! समुद्रमें जलके स्फुरणमें जैसे तरंग आवर्तआदिका संचालन होताहै ऐसेही अत्यन्त निर्मल चिदाकाशके सत्यसंकल्पजनित स्फुरणही जगत् है, उनके सत्यसंकल्प उपहित चेतनही देव सर्पादिभावसे विवर्तभावको प्राप्त होता है इसमें उपादानकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४८ ॥

ध्वनंतोब्धिजलानीवभांतिभावाश्चिदात्मकाः ॥ संकल्पादीनिनामानितेषामाहुर्मनीषिणः ॥ ४९ ॥ का लेनाभ्यासयोगेनविचारेणसमेनच ॥ जातेर्वासात्त्विकत्वेनसात्त्विकेनामलात्मना ॥ ५० ॥ सम्यग्ज्ञा नवतोज्ञस्ययथाभूतार्थदर्शिनः ॥ बुद्धिर्भवतिचिन्मात्ररूपाद्वैतैक्यवर्जिता ॥ ५१ ॥ निरावरणविज्ञान मयीचिद्ब्रह्मरूपिणी ॥ संवित्प्रकाशमात्रैकदेहादेहविवर्जिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—समुद्रमें शब्दायमान जलवत् ब्रह्मारूप चेतनमें चित्स्वरूपही जगद्भाव अकस्मात् भासतेहैं, उन भासनकोही वेद तथा ऋषि संकलपादिनामसे कहते हैं ॥ ४९ ॥ कर्कटीआदिके तुल्य काल पाके अभ्यासयोगसे, समदृष्टिरूप विचारसे, अथवा देवादिजातिके निर्मल सात्विकभावके उदयसे यथार्थतत्वदर्शी सम्यग् ज्ञानीकी बुद्धि द्वैत तथा एकत्वसे वर्जित चिन्मात्र शेष होजाती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ आवरणशून्य, विज्ञानमयी, देहादेहके भावसे रहित, तथा चिद्ब्रह्मरूपिणी वह बुद्धि संवित् प्रकाशमात्र रहती है ॥ ५२ ॥

सोयंपश्यत्यशेषेणयावत्संकल्पमात्रकम् ॥ स्वमात्मकचनंशांतमनन्यत्परमार्थतः ॥ ५३ ॥ अस्याइदं हिसंकल्पमात्रमेवाखिलंजगत् ॥ यथासंकल्पनगरंयथास्वप्नमहापुरम् ॥ ५४ ॥ आत्मास्वसंकल्प वरःस्ववदातोयथायथा ॥ यद्यथासंकल्पयतितथाभवतितस्यतत् ॥ ५५ ॥ संकल्पनगरेबालःशिला प्रोड्डयनंयथा ॥ सत्यंवेत्त्यनुभूयाशुस्वविधेयनियंत्रणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—ऐसा निरावरणज्ञानयुक्त पुरुष जो कुछ संकल्प करताहै वह निजआत्माही अपने सत्यसंकल्पसे कल्पित सबकुछ परमार्थसे निजरूपसे अभिन्न देखताहै ॥ ५३ ॥ संकल्प तथा स्वप्नके महानगरके समान इस शुद्ध चित्का संकल्पमात्रही यह संपूर्ण जगत् है ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार अन्यभी शुद्धआत्मा जो संकल्प वरआदिरूपसे करताहै वह वैसाही उसके लिये शीघ्र होजाताहै ॥ ५५ ॥ संकल्पके नगरमें बालक नीजाधीन शिलाआदिके उडनेका अनुभव करके उसे सत्य जानताहै ॥ ५६ ॥

स्वसंकल्पात्मभूतेस्मिन्परमात्माजगत्त्रये ॥ वरशापादिकंसत्यंवेत्त्यनन्यत्तथात्मनः ॥ ५७ ॥ स्वसंकल्पपुरेतैलंयथासिद्ध्यतिसैकतात् ॥ कल्पनात्सर्गसंकल्पैर्वरादीहतथात्मनः ॥ ५८ ॥ अनिरावरणज्ञप्तेर्यतःशांतानभेदधीः ॥ ततःसंकल्पनाद्वैताद्वराद्यस्यनसिद्ध्यति ॥ ५९ ॥ यायथाकलनारूढातावत्सा व्यापिसंस्थिता ॥ नपरावर्तितायावद्यत्नात्कल्पनयान्यया ॥ ६० ॥

अर्थ—ऐसेही निजसंकल्पभूत इस त्रैलोक्यमेंहि गर्भादि आवरणरहित शुद्धात्मा वरशापादि निजसंकल्पको अपनेसे अभिन्नरूप सत्य अनुभव करताहै ॥ ५७ ॥ निजसंकल्पित नगरमें जैसे बालुसेभी तेलकी सिद्धि होती है ऐसेही ब्रह्मादिकी कल्पनाजनित सृष्टिआदि संकल्पोंसे वरशापादि आत्माको प्राप्तहोते हैं ॥ ५८ ॥ आवरणसहित ज्ञानवालेकी भेदबुद्धि शान्त नहीं हुई है इसलिये उसके द्वैतसंकल्पसे वरआदिकी सिद्धि नहीं होती ॥ ५९ ॥ निराबरण ज्ञानयुक्त ब्रह्मादिकी कल्पना जैसे २ दृढ होती गई वह अबभी वैसीही है, वह जब अन्यकल्पनासे यत्नपूर्वक न अन्यथा कीजाय तबतक वैसी परिवर्तनशून्य विद्यमान रहेगी ॥ ६० ॥

ब्रह्मण्यवयवोन्मुक्तेद्वित्वैकत्वेतथास्थिरे ॥ यथासावयवेतत्त्वेविचित्रावयवक्रमः ॥ ६१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ अनिरावरणाज्ज्ञानात्केवलंधर्मचारिणः ॥ शापादीन्संप्रयच्छंतियथाब्रह्मंस्तथावद ॥ ६२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्पयतियन्नामसर्गादौब्रह्मब्रह्मणि ॥ तत्तदेवानुभवतियस्मात्तत्तास्तिनेतरत् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मवेत्तियदात्मानंसब्रह्मायंप्रजापतिः ॥ सचनोब्रह्मणोभिन्नंद्रवत्वमिववारिणः ॥ ६४ ॥

अर्थ—अवयवशून्य ब्रह्ममें सत्यसंकल्पकल्पित द्वित्व एकत्वादि ऐसे स्थिर हैं जैसे सावयव जगत् पदार्थोंमें अवयवोंके क्रम ॥ ६१ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! आवरणसहित ज्ञानी केवल तपआदि धर्मनिरत जो अपने ज्ञानसे शापादि देते वा वरआदिकी प्रार्थना करतेहैं वह कैसे सत्य होताहै सो कहिये ॥ ६२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मस्वरूपमें ब्रह्माजी जो संकल्प (देवाराधन तपआदिसे वरशापादि सत्य हो यह संकल्प) करतेहैं उसको आत्मा वैसाही अनुभव करताहै, उसमें कोई प्रतिबन्धकता नहीं है ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा सत्यसंकल्पयिता निजअधिष्ठानभूत ब्रह्मको जानते हैं अतएव वह ब्रह्माभी सत्यसंकल्प हैं, परन्तु ब्रह्माब्रह्मसे ऐसे अभिन्न हैं जैसे जलसे द्रवत्व ॥ ६४ ॥

संकल्पयतियन्नामप्रथमोसौप्रजापतिः ॥ तत्तदेवाशुभवतितस्येदंकल्पनंजगत् ॥ ६५ ॥ निराधारंनिरालंबंव्योमात्मव्योम्निभासते ॥ दुर्दृष्टेरिवकेशोंड्रंदृष्टमुक्तावलीवच ॥ ६६ ॥ संकल्पिताःप्रजास्तेनधर्मो दानंतपोगुणाः ॥ वेदाःशास्त्राणिभूतानिपंचज्ञानोपदेशनाः ॥ ६७ ॥ तपस्विनोथवादेश्वयद्ब्रूयुरविलंबितम् ॥ यद्यद्वेदविदस्तत्स्यादितितेनाथकल्पितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—इसीसे यह प्रथम प्रजापति ब्रह्मा जो संकल्प करतेहैं वह शीघ्र वैसाही होजाताहै, क्योंकि उनका संकल्पही यह जगत् है ॥ ६५ ॥ निराधार तथा निरालंब चिदाकाशही अपने स्वरूपमें जगदाकार ऐसे भासताहै जैसे दूषितदृष्टिको आकाशमें मशकादि वा मोतियोंकी पंक्ति ॥ ६६ ॥ उस प्रजापतिनेही धर्म, दान, तप, सुशीलतादि गुण, चारोंवेद षट्शास्त्र सबभूत तथा वेदत्रयी, सांख्य, योग, पशुपति और वैष्णवमत ये पंचउपदेश संकलिपत किये हैं ॥ ६७ ॥ उन्हीं ब्रह्माजीने यहभी कल्पितकियाहै कि वेदवेत्ता तपस्वीजन वाद अथवा सहजवृत्तिसे जो कुछ कहैं वह शीघ्रही सत्य हों ॥ ६८ ॥

इदंचिद्ब्रह्मछिद्रंखंवायुश्चेष्टाग्निरुष्णता ॥ द्रवोंभःकठिनंभूमिरितितेनाथकल्पिताः ॥ ६९ ॥ चिद्वातुरी दृशोवासौयद्यत्स्वात्मापिचेतति ॥ तत्तथानुभवत्याशुत्वमहंसइवाखिलम् ॥ ७० ॥ यद्यथावेत्तिचि द्व्योमतत्तथातद्भवत्यलम् ॥ स्वप्नेत्वमहमादीवसदात्माप्यसदात्मकम् ॥ ७१ ॥ शिलानृत्तंयथासत्यंसं कल्पनगरेतथा ॥ जगत्संकल्पनगरेसत्यंब्रह्मणईप्सितम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह चेतन ब्रह्म छिद्रस्वभाव आकाश हो, चेष्टास्वभाव वायु हो, उष्णस्वभाव अग्नि हो, द्रवत्वस्वभाव जल हो , और कठिनस्वभाव पृथिवी हो, इसप्रकार सबके स्वभावभी ब्रह्माजीनेही कल्पित किये है ॥ ६९ ॥ इसप्रकार सब कल्पनापूर्ण ब्रह्मारूपधारी चेतन ब्रह्म चिदाकाश जो २ कल्पना करताहै तुह्मारे हमारे तथा अन्यके तुल्य शीघ्र अनुभव करताहै ॥ ७० ॥ चिदाकाश जिस वस्तुको जैसा अनुभव करताहै वह पूर्णरूपसे वैसाही शीघ्र ऐसे हो-जाताहै जैसे स्वप्नमें हम तुम असत्कोभी सद्रूपसे जानते हैं ॥ ७१ ॥ जैसे संकल्पके नगरमें शिलाकाभी नृत्य सत्य भासताहै ऐसेही संकल्पनगरमें ब्रह्माजीके अधिकारप्राप्त प्रारब्धभोगके अर्थ यह जगत्भी सत्य है ॥ ७२ ॥

चित्स्वभावेनशुद्धेनयद्बुद्धंयच्चयादृशम् ॥ तदशुद्धोन्यथाकर्तुंनशक्तःकीटकोयथा ॥ ७३ ॥ अभ्यस्तंबहु लंसंवित्पश्यतीतरदल्पकम् ॥ स्वप्नेजाग्रत्स्वरूपेचवर्तमानेखिलंचसत् ॥ ७४ ॥ सदाचिद्व्योमचिद्व्यो म्निकचदेकमिदंनिजम् ॥ द्रष्टृदृश्यात्मकंरूपंपश्यदाभातिनेतरत् ॥ ७५ ॥ एकंद्रष्टाचदृश्यंचचिन्नभः सर्वगंयतः ॥ तस्माद्यथेष्टंयद्यत्रदृष्टंतत्तत्रसत्सदा ॥ ७६ ॥

अर्थ—शुद्ध चित्स्वभावने जिस वस्तुको जैसा अनुभव कियाहै उसको अशुद्धस्वभाव कीटवत् अन्यथा करनेको समर्थ नहीं है ॥ ७३ ॥ स्वप्न तथा वर्तमान जाग्रत्मेंभी अशुद्ध संवित् (मायाग्रस्त) जीव अपने अभ्यासकी दृढतासे सब जगत् सत्के समान देखतेहैं परन्तु उनको स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि ये लोहकी शृंखलासे बंधी हुई सदृढ जाग्रत्के अभ्यास स्वप्नमें भी बंधनकी परतंत्रताही अनुभव करताहै ॥ ७४ ॥ इसरीतिसे द्रष्टा, दृश्य, तथा दर्शनरूप त्रिपुटी-स्वरूपसे अपनेको एकचिदाकाशही निजस्वरूपमेंही अनुभव करताहुआ जगत् आकार भासताहै न कि अन्य कोई ॥ ७५ ॥ द्रष्टा तथा दृश्य एकरूपही है, क्योंकि सर्वव्यापी चिदाकाश एकरूपही है, अतएव चिदाकाशने जहां जिस वस्तुको जैसा अनुभव किया वहां पूर्णरूपसे वह वैसाही सदा होगया ॥ ७६ ॥

वाय्वंगगस्पंदनवज्जलांगद्रवभाववत् ॥ यथाब्रह्मणिब्रह्मत्वंतथाजस्यांगगंजगत् ॥७७॥ ब्रह्मैवाहंविराडा त्माविराडात्मवपुर्जगत् ॥ भेदोनब्रह्मजगतोःशून्यत्वांबरयोरिव ॥ ७८ ॥ यथाप्रपातेपयसोविचित्राः कणपंक्तयः ॥ विचित्रदेशकालांतानिपतंत्युत्पतंतिच ॥ ७९ ॥ निपत्यैवैकयाकल्पंमनोबुद्ध्यादिव र्जिताः ॥ आत्मन्येवात्मनोभांतितथायाब्रह्मसंविदः ॥ ८० ॥

अर्थ—जैसे वायुका अंग स्पन्द है, जलका अंग द्रवता है, ब्रह्ममें जगदाकारसें वृद्धिका हेतु माया शक्तिमत्व है, ऐसे वर्द्धनशक्तियुक्त अजन्मा ब्रह्माका अंग यह संपूर्ण जगत् है ॥ ७७ ॥ विराट्स्वरूप ब्रह्माको यह अनुभव है कि मैं ब्रह्मही हूं, और यह जगत् विराट्का शरीरही है, अतः शून्य और आकाशके सदृश ब्रह्म तथा जगत्में भेद नहीं है ॥७८॥ पर्व-तादिके अग्रभागसे नीचेकी ओर जलपतनस्थानमें विचित्रदेशकालपर्य्यन्त विचित्र जलकणोंकी पंक्ति निरन्तर गिरती हैं, ॥७९॥और एकही धारासे कल्पपर्य्यन्त गिरके अनन्तर मन बुद्धिआदि शून्य अनेक कणमें विभक्त होनेपरभी पुनः एकताको प्राप्त एक गंगादिप्रवाहरूपसे जैसे भासती हैं ऐसेही मनोबुद्धिआदि प्रकृति ब्रह्मसंवित्से जगत्के भेदभी भासतेहैं ॥ ८० ॥

ताभिःस्वयंस्वदेहेषुबुद्ध्यादिपरिकल्पनाः ॥ कृत्वोररीकृतासर्गश्रीरद्भिर्द्रवतायथा ॥ ८१ ॥ तदेवंजग दित्यस्तिदुर्बोधेनममत्विदम् ॥ अकारणकमद्वैतमजातंकर्मकेवलम् ॥ ८२ ॥ अस्तस्थितिःशरीरेस्मि न्यादृग्रूपानुभूयते ॥ उपलादौजडासत्तातादृशीपरमात्मनः ॥ ८३ ॥ यथेकस्यांसुनिद्रायांसुषुप्तस्वप्न कौस्थितौ ॥ तथैतौसर्गसंहारभासौब्रह्मणिसंस्थितौ ॥ ८४ ॥

अर्थ—केवल इतना भेद है कि जलकणोंकी पंक्ति मनबुद्धिसे रहित् हैं, और ब्रह्मसंवित्ने निजशरीरोंमें मनबु-द्धिआदिकी कल्पना करके अपने भोग्य सर्ग (सृष्टि) की शोभाका ऐसे अंगीकार कियाहै कि जैसे जलद्रवताको ॥ ८१ ॥ इसप्रकार मनोबुद्धिआदि विक्षिप्त अज्ञानरूप दुर्बोधसे यह जगत् अज्ञानमात्र है, और हमारेसे अज्ञानरहित पुरुषोंकी दृष्टिमें वह मन बुद्धिआदि संपूर्णजगत् केवल अद्वैतमात्रही है, वह कदापि उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ८२ ॥ इस शरीरमें जैसे मन बुद्धिआदिशून्य मृतकअवस्थाका चेतन अनुभव करताहै, अथवा पाषाणादिमें जडसत्ताका ऐसेही विक्षेपशून्य

परमात्माकीभी सत्ताहै ॥ ८३ ॥ जैसे एकनिद्रामें सुषुप्ति तथा स्वप्न विद्यमान हैं ऐसेही ब्रह्ममें सृष्टि तथा प्रलयके भानभी स्थितहैं ॥ ८४ ॥

सुषुप्तस्वप्नयोर्भातःप्रकाशतमसीयथा ॥ एकस्यामेवनिद्रायांसर्गासर्गौतथापरे ॥ ८५ ॥ यथानरोनभवतिनिद्रायांदृषदःस्थितिम् ॥ परमात्मानुभवतितथैतज्जडसंस्थितिम् ॥८६॥ अंगुष्ठस्याथवांगुल्यावाताद्यस्पर्शनेसति ॥ योन्यचित्तस्यानुभवोदृषदादौसआत्मनः ॥ ८७ ॥ व्योमोपलजलादीनांयथादेहानुभूतयः ॥ तथास्माकमचित्तानामद्यनानानुभूतयः ॥ ८८ ॥ कालेकल्पेषुभांत्येतायथाहोरात्रसंविदः ॥ तथासंख्याःपरेभांतिसर्गसंहारसंविदः ॥८९॥ आलोकरूपमननानुभवैषणेच्छामुक्तात्मनिस्फुरतिवारिघनेस्वभावात् ॥ आवर्तवीचिवलयादियथातथायंशांतेपरेस्फुरतिसंहतिसर्गपूरः ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मगीतासु सर्वंखल्विदंब्रह्मेतिप्रतिपादनयोगोपदेशोनामषडशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८६ ॥

अर्थ—जैसे एकही निद्रामें सुषुप्ति तथा स्वप्नदशामें प्रकाश और अन्धकार दोनों भासते हैं ऐसेही परब्रह्ममें सृष्टि तथा प्रलय दोनों हैं ॥ ८५ ॥ जैसे निद्रामें जीव पाषाणकी स्थितिका अनुभव करताहै ऐसेही परमात्मा जडपदार्थोंकी स्थितिका अनुभव करताहै ॥ ८६ ॥ जैसे अन्यत्र संलग्नचित्त पुरुषके अंगुष्ठ वा अन्यअंगुलीसे पवन, आतप तथा धूलिआदिका स्पर्श होनेपरभी अविद्यमानके समान अनुभव होताहै ऐसेही पाषाणआदिमें चिद्रूपता होनेपरभी उसके अभावके तुल्य आत्माको जडताका अनुभव होताहै ॥ ८७ ॥ और जैसे आकाश पाषाण (पृथिवी) जलादिमें विराट् देहभावका अथवा आकाशआदिके अधिष्ठातृ देवताओंके देहभावका अनुभव होताहै ऐसेही चित्तरहित हमलोगोंको प्रलयमें तथा इससमय सृष्टिकालमें नानाविषयक अनुभव होताहै ॥ ८८ ॥ जैसे अखंडकालमें ब्रह्माजीके दिनभेद कल्पोंमें हमारे असंख्य दिनरात्रि संवित् भासती हैं ऐसेही परब्रह्ममें असंख्य सृष्टि तथा प्रलयोंके समूह भासतेहैं ॥ ८९ ॥ जैसे जलमात्रस्वभाव समुद्रमें स्वभावसिद्ध आवर्त तथा तरंगादि वलय स्फुरित होताहै ऐसेही ज्ञानके विषयभूत रूपादिके मनन उन विषयोंके भोगरूप अनुभवकी इच्छा तथा रागद्वेषादिविक्षेपोंसे विनिर्मुक्त, अतएव शान्तस्वभाव परमपद ब्रह्ममें यह सृष्टि तथा प्रलयका समूह स्वभावसेही भासताहै ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मगीतासु सर्वं खल्विदंब्रह्मेतिप्रतिपादनयोगोपदेशो नाम षडशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८६ ॥

सप्ताशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८७ ॥

संपूर्ण भावपदार्थोंका स्वभाव नियति है और जीवरूपताप्राप्तिके हेतुओंका उत्पत्तिस्थान शुद्ध ब्रह्मरूपता है इस विषयका वर्णन इस १८७ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ विचित्राणामसंख्यानांभावानांनियतिःकुतः ॥ कथंस्वभावोभावानामेकरूपःस्थितोऽचलः ॥ १ ॥ सत्स्वसंख्येषुदेवेषुसूर्यएवोग्रभाःकथम् ॥ दीर्घत्वमथह्रस्वत्वंदिवसानांतुकिंकृतम् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काकतालीयवद्भानंयत्परेनियतंस्वतः ॥ यथास्थितंयथारूपंस्थितेतज्जगदुच्यते ॥ ३ ॥ सर्वशक्तेर्यथायद्यद्भातितत्तत्तथैवसत् ॥ संवित्सारतयायायात्कथंभातमभातताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—की हे भगवन् ! विचित्र असंख्य पदार्थोंकी नियति (एकरूप नियम) कहांसे है और अग्निआदिका उष्णत्व, जलआदिका द्रवतादिरूप अव्यभिचारी स्वभाव जगत्में किस हेतुसे सदाके लिये स्थित है, क्योंकि स्वप्नादि मिथ्यावस्तुओंमें ऐसा दृढनियम नहीं दखाजाता ॥ १ ॥ असंख्यदेवताओंके विद्यमान रहतेभी सूर्य्यही अत्यन्त्य प्रचंड प्रकाशयुक्त क्यों हैं, तथा रात्रि और दिनोंकी दीर्घता तथा ह्रस्वता (छोटेबडेका) हेतु कौन है ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! काकतालीयन्यायसे आदिसृष्टिमें ब्रह्माजीको जो पदार्थ परब्रह्मके स्वरूपमें जैसा भान हुआ वह अद्यावधि उसीप्रकारसे अर्थक्रियारूपसे नियतस्वभावसे जो स्थित है वह जगत् है अर्थात् ब्रह्माजीकी इच्छाही अव्यभिचारी स्वभावमें हेतु है ॥ ३ ॥ सर्वशक्तिमान् परमात्माकी संवित्सारता (सत्यसंकल्प) से जो २ पदार्थ जिस २ स्वभावसे सृष्टिकी आदिमें भान हुआ वह अभावरूपताको कैसे प्राप्त होसकताहै, किन्तु वह नियतस्वभावसे वैसाही सत् है ॥ ४ ॥

यथास्थितंयथाभातिचित्त्वाद्ब्रह्मचिराययत् ॥ तस्यभानमभानाभंनियत्यभिधमेवतत् ॥ ५ ॥ इदमित्थमिदंचेत्थंस्वयंब्रह्मेतिभातियत् ॥ तन्नियत्यभिधंप्रोक्तंसर्गसंहाररूपधृक् ॥ ६ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यं यत्स्वतःकचनंचिति ॥ तत्ततोनन्यदेकाच्छंद्रवत्वमिववारिणि ॥ ७ ॥ यथाशून्यत्वमाकाशेकर्पूरेसौरभंयथा ॥ यथौष्ण्यमातपेनान्यज्जाग्रदादितथाचिति ॥ ८ ॥

अर्थ—मायाशबलित ब्रह्मके उदरमें यथास्थित जगत् सृष्टिकालमें चिरकालतक उसकी चित्शक्तिसे भासताहै और प्रलयकालमें सूक्ष्मता प्राप्त होनेसे वही जगत् अभासमान होजाताहै, यह सब अनादि परब्रह्म नियतिनामसे कथित है ॥ ५ ॥ यह अग्नि उष्ण है, यह जल शीतल है, इत्यादि सबपदार्थरूपसे जो स्वयं ब्रह्म भासताहै उसी सृष्टिसंहारादिरूपधारी ब्रह्मकोही नियति कहतेहैं ॥ ६ ॥ तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूपसे जो चेतनमें स्वयं स्फुरण है, वह नियतस्वभाव नियति निर्मल ब्रह्मसे ऐसे अभिन्नरूप है, जैसे जलसे द्रवत्व ॥ ७ ॥ तथा जैसे आकाशमें शून्यता, कर्पूरमें सुगन्ध तथा आतपमें उष्णता उन पदार्थोंसे अभिन्नरूप हैं ऐसेही चेतनमें जाग्रत्आदि अवस्था हैं ॥ ८ ॥

सर्गप्रलयनाम्न्येकप्रवाहानन्यसत्तया ॥ चिन्मात्रगगनात्मैकब्रह्मात्मन्येवसंस्थितम् ॥ ९ ॥ सर्गोयमितितद्बुद्धंक्षणंयत्कचनंचितः ॥ कल्पोयमितितद्बुद्धंक्षणंतत्कचनंचितः ॥ १० ॥ तत्कालस्तत्क्रियातत्त्वं देशद्रव्योदयादितत् ॥ यत्स्वप्नइवचिन्मात्रकचनंस्वस्वभावतः ॥ ११ ॥ रूपालोकमनस्कारदेशकालक्रियादितत् ॥ चित्त्वंकचतिचिद्व्योम्नियन्नामानाकृतिस्वतः ॥ १२ ॥

अर्थ—बीजांकुरन्यायसे सृष्टि तथा प्रलय अनादिप्रवाहसे चिन्मात्र गगनाकार ब्रह्ममें उसकी अनन्यसत्तासे स्थित हैं इसलियेभी नियतरूपसे अर्थक्रियाकारक हैं ॥ ९ ॥ यह सर्ग (सृष्टि) है, ऐसा जिसको चित्स्फुरणसे समझा वह नियमरूपसे यह सर्ग और यह कल्प है ऐसा जिसको चित्स्फुरणसे समझा वह नियमरूपसे कल्प है ॥ १० ॥ वही चित्स्फुरणकाल है, वही देश है, वही द्रव्य है, वही आकाश है, वही क्रिया है और वही क्रियाद्रव्यादिका उदय आदि है, क्योंकि स्वप्नमें चित्स्फुरणही सब होजाताहै ॥ ११ ॥ बाह्य रूप आलोकादि, आभ्यन्तर मननआदि, तथा देश, काल, क्रियाआदिरूपसे चेतनही निज चिदाकाशरूपमें स्फुरताहै, क्योंकि पदार्थोंका स्वयं कोई आकार नहीं है ॥ १२ ॥

यद्यथाकचितंकालेयत्किंचित्कल्पितंतथा ॥ तेनैवेयंहिनियतिरित्यप्याकाशरूपकम् ॥ १३ ॥ आकल्पाख्यंनिमेषंयत्कचनंचैकरूपकम् ॥ स्वाभाविकाः स्वभावंतंप्राहुःप्रसृतबुद्धयः ॥ १४ ॥ एकस्यसंविन्मात्रस्यपदार्थशततातथा ॥ यथेदंसंविदंशस्यरूपंस्वंस्वमनुज्झतः ॥ १५ ॥ संविन्मयेसंविदोयाः कचंतीवपरेतथा ॥ ताभिस्तेषांस्वदेहानांयासांसाकलनाकृता ॥ १६ ॥

अर्थ—जो पदार्थ जिस कालमें जैसा चित्से स्फुरित हुआ और जिसको उस चित्ने जैसा कल्पित किया वह सब नियतिरूपभी चिदाकाशही है ॥ १३ ॥ ब्रह्म निमेषसे लेकर कल्पपर्य्यन्त पदार्थोंका एकरूप (अग्नि उष्ण, जल, शीत इत्यादिरूप) से जो स्फुरण है, उसीको स्वभावतत्त्व जाननेवालोंने पदार्थोंका स्वभाव कहाहै ॥ १४ ॥ एकही संविन्मात्र अग्निआदिपदार्थ देशकालभेदसे अनेकप्रकारसे व्यवस्थित होनेपरभी निज २ उष्णप्रकाशआदि स्वभावको ऐसे नहीं त्यागता, जैसे संविद्का अंश जीव मनुष्य, देव, पशुपक्षीआदि अनेकरूपसे व्यवस्थित होनेपरभी अपने अनुगत चित्स्वभावको ॥ १५ ॥ हे रामजी ! संविन्मय परब्रह्ममें जो चिदाभास जैसे स्फुरित हैं वेही उनके स्वभाव हैं, अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायुआदिमें उन वृत्तिके आकारसे आभाससंविदोंने अपने २ देहाकारवृत्तिभेदोंमें जिस संविद्ने जैसे आकारकी कल्पना की है वही उसका स्वभाव है ॥ १६ ॥

चिद्वीर्सलिलंतेजःस्पंदःशून्यत्वमेवच ॥ प्रत्येकमाकरस्त्वेषांतानिस्वप्नइवांबरम् ॥ १७ ॥ तत्रसप्रतिघस्यास्यकठिनस्याकरोमहान् ॥ भूपीठंजनताधारोराजन्राजेवराजते ॥ १८ ॥ अपामब्धिःप्रधानानांतेजसामेषभास्करः ॥ स्पंदस्यपवनोव्योमशून्यतायाजगद्दतम् ॥ १९ ॥ पंचानामितिभूतानामाकरत्वेनसंविदः ॥ पंचतान्युचिताब्राह्म्यःप्रश्नःकिंभास्करंप्रति ॥ २० ॥

अर्थ—और यथार्थमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तथा आकाशका पारमार्थिकस्वभाव अधिष्ठान चेतनही है, और वे पृथिवीआदि प्रत्येक अपने २ कार्य्योंकी खानि हैं, अर्थात् अपने २ कार्य्यमें पृथिवीआदि अनुगत स्वभावरूपसे हैं और स्वप्नवत् सबका अधिष्ठान मायाशबलित ब्रह्म है ॥ १७ ॥ उनमें सप्रतिघ मूर्त तथा कठिनपदार्थोंका

आकर (खानि) सब जनसमूहका आधार यह भूपीठ जीवनप्रद राजाकेसमान शोभित है ॥ १८ ॥ और प्रधान गंगाआदि जलका आकर समुद्र, तेजोमयपदार्थोंका यह प्रत्यक्षसिद्ध सूर्य्य, स्पन्दका महापवन और शून्यताका आकाश आकर (खानि) है, इसप्रकार जगत्के अन्तर्गत अपने २ कार्य्यमें सब अनुगतस्वभाव है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पंचभूतोंके आकर (खानि) रूपसे पंच (पांच) ब्रह्मसंबंधी संविद्ही उदित है, अतः तुमारे प्रश्न सूर्य्यके (सबमें सूर्य्यही अतितेजस्वी क्यों हैं इत्यादिरूपसे) विषयमें क्यों है ॥ २० ॥

बुधासंविच्चिदित्युक्तासर्वगासर्वरूपिणी ॥ सर्वत्रस्वमहिम्नैषासर्वैणैवानुभूयते ॥ २१ ॥ ब्रह्मात्मात्रह्म बालोयंस्वसंवित्स्फुरणामिमाम् ॥ व्योमात्मक्षौमभूनाम्नींस्फारयत्यंबराकृतिः ॥ २२ ॥ सायदैतत्त थैतच्चचिरमत्त्यजसंविदा ॥ तदातदंगस्यार्कादेर्नात्तानोत्पादिचंचलम् ॥ २३ ॥ संकल्पपूर्वमशकजा लवद्धिष्ण्यचक्रकम् ॥ आवर्तवर्तिनाभातिचिद्व्योमेदंचदृश्यवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—सर्वप्रकाशक सर्वज्ञ संवित् जिसको चेतन कहते हैं, वही सर्वव्यापिनी, सर्वरूपिणी, सर्वत्र निजमहिमासे सबकुछ अनुभव करती है, यही नियति तथा सबका अधिष्ठान है, यह सब तत्वज्ञानी अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥ चिदाकाशरूप यह चतुर्मुखरूप (ब्रह्म) बालक निज आत्मभूत तथा आकाशरूप सूक्ष्मवस्त्रधारिणी पृथिवी नाम्नी संवित्का विस्तार करताहै ॥ २२ ॥ और जब वह सर्वज्ञ संवित् चतुर्मुख (ब्रह्मा) संवित्केसाथ इस संपूर्ण स्थूल प्रपंचको भक्षण करती है, अर्थात् निजस्वरूपका उपसंहार करलेती है तब ब्रह्माके अङ्गसंवित् सूर्य्यआदिका भ्रमण नहींहोता, अतएव उस पुरुषको अत्ता कहतेहैं ॥ २३ ॥ मशकबन्धनजालवत् ब्रह्माजीके संकल्पमात्रसे रचित यह ज्योतिश्चक्र दक्षिणायन तथा उत्तरायण आवर्तरूपमार्गमें भ्रमणकरनेवाले सूर्य्यसे भासताहै उसी सूर्य्यके गतिके भेदसे दिनोंकी लघुता तथा दीर्घता होती है और यथार्थमें चिदाकाशही इस ग्रहनक्षत्रादिके अधिष्ठानभूत दृश्य ज्योतिश्चक्ररूपसे भासताहै ॥ २४ ॥

तत्रप्रभास्वराःकेचित्केचिदप्यल्पभास्वराः ॥ केचिच्चाभास्वराभाताःपदार्थाश्चित्ररूपिणः ॥ २५ ॥ पदार्थजातंत्वेतावन्नजातंनचदृश्यते ॥ ज्ञस्याजातमिदंभातिखमात्मास्वप्नदृश्यवत् ॥ २६ ॥ चिन्मात्र मात्मासर्वेशःसर्वएवातिदृश्यवत् ॥ नश्यतीवविदेहेस्वेनचभातिननश्यति ॥ २७ ॥ स्वप्नदर्शनवद्भाति यच्चिद्व्योमचिदंबरे ॥ चिद्व्योमत्वादृतेरूपंतदस्यजगतःकुतः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस ज्योतिश्चक्रमें कोई सूर्य्यआदि अतिप्रकाशशील हैं, कोई चन्द्रताराआदि अल्पप्रकाशशील हैं, तथा कोई राहुआदि प्रकाशरहित हैं, इसप्रकार चित्रविचित्रपदार्थ उसमें भासते हैं ॥ २५ ॥ यथार्थमें यह पदार्थसमूह जो देखपडताहै, कोईभी उत्पन्न नहीं हुआ है और ज्ञानीको यह स्वप्नदृश्यवत् अनुत्पन्न चिदाकाशरूपही भासताहै ॥ २६ ॥ चिन्मात्र आत्मा सबका स्वामी तुम हम इत्यादि प्रसिद्ध दृश्यरूपसे भासताहै, तथा मृतकदेहमें नष्ट होतेहुये के सदृश भासताहै, और यथार्थमें तो वह न तुम हमरूपसे भासताहै और न नष्ट होताहै ॥ २७ ॥ यह चिदाकाश निजस्वरूपमेंही जगदाकारसे स्वप्नदर्शनके तुल्य भासताहै, क्योंकि चिदाकाशसे भिन्न इस जगत्का पारमार्थिकरूप कहांसे होसकताहै ॥ २८ ॥

यद्यथास्फुरितंतस्ययावत्सत्तंस्फुरद्वपुः ॥ तत्स्वभावनियत्याख्यैःशब्दैरिहानिगद्यते ॥ २९ ॥ गगनांगस्य सत्तांतःशब्दतन्मात्रकल्पया ॥ कुशूलबीजांकुरवत्तिष्ठत्याशांतरूपिणी ॥ ३० ॥ संपद्यतेततइदमितीयं रचनेहया ॥ कृतासामुग्धबोधायमूर्खैर्विरचितामुधा ॥ ३१ ॥ नास्तमेतीहनोदेतितत्कदाचनकिंचन ॥ शिलाजठरवच्छांतमिदंनित्यंसदप्यसत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आदिसृष्टिमें जो पदार्थ जिस रूपसे चित्को स्फुरित हुआहै और जबतक उन घटादि पदार्थोंकी सत्ता है तबतक उनसे अभिन्नरूपसे स्फुरितशरीर वह सद्रूप परमात्मा है, उसी परमात्माके स्फुरणको स्वभाव नियति इत्यादि शब्दोंसे कहतेहैं ॥ २९ ॥ वही ब्रह्मसत्ता चिदाकाशरूप ब्रह्माजीके शरीरमें शब्दतन्मात्राकी कल्पना करके कोठिले के भीतर बीजोंमें अप्रकट अंकुरशक्तिके तुल्य अप्रकट वायुआदिके बीजरूपसे सर्वथा शान्तरूप स्थितहै ॥ ३० ॥ उस शब्दतन्मात्रसे यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवीरूप भूतभौतिक यह जगत् उत्पन्न होताहै, यह कल्पना अज्ञानियोंके तत्वबोधकेलिये श्रुति तथा मुनियोंने कि है न कि जगत्की रचनाके कथनकी इच्छासे, क्योंकि यह सृष्टिकी रचना वास्तविक है यह मूर्खोंकाही निश्चय है ॥ ३१ ॥ क्योंकि वास्तविक चित्स्वरूप ब्रह्मका न कभी अस्त हो और न उदय हो, किन्तु पाषाणके उदरवत् नित्य शान्तरूप (चिद्रूप) है इसलिये यह सत्रूपसे भासमानभी जगत् असत् है ॥ ३२ ॥

यथावयविनोनांत:सदैवावयवाणवः ॥ नास्तंयांतिनचोद्यंतिजगंत्यात्मपदेतथा ॥ ३३ ॥ ब्रह्मव्योम्नि जगद्व्योमव्योमव्योम्नीवविद्यते ॥ तत्कथंकिलसंशुद्धमस्तमायात्युदेतिवा ॥ ३४ ॥ तस्यानंतप्रकाशात्मरूपस्याततचिन्मणेः ॥ सत्तामात्रात्मकचनंयदजस्रंस्वभावतः ॥ ३५ ॥ तदात्मनास्वयंकिंचिच्चेत्यतामिवगच्छति ॥ अगृहीतात्मकंसंविदूहामर्शनसूचकम् ॥ ३६ ॥ भाविनामार्थकलनैःकिंचिदूहितरूपकम् ॥ आकाशादणुशुद्धंचसर्वस्मिन्भाविबोधनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जैसे अवयवीका अन्त नहीं है और जैसे अवयवभूत अणु सदा अन्तभावको नहीं प्राप्तहोते और न उदित होतेहैं ऐसेही आत्मपदमें असंख्य जगत्‌भी उदय अस्तसे रहितहैं ॥ ३३ ॥ जैसे महाआकाशमें महाकाश है ऐसेही ब्रह्माकाशमें जगदाकाश है, अर्थात् ब्रह्मकी एक सत्ता है तो वह जगत् सत्तारहित शुद्धब्रह्मरूप जगदाकाश कैसे अस्त हो वा उदयहो ॥ ३४ ॥ उस अनन्तप्रकाश सर्वव्यापक चिन्मणिकी सत्तामात्रका स्फुरणही नित्यस्वभावसे जगत्स्वरूपसे भासताहै ॥ ३५ ॥ वह चिद्रूप मणि स्वयं विषयकी ओर कुछ अभिमुखके सदृश होताहै, अनन्तर वह अज्ञातसंवित् किंचिदन्यथाभावसे परामर्शपूर्वक भावीप्रपंचके नाम तथा अर्थकी कल्पनाओंसे आकाशसेभी अतिसूक्ष्म तथा अणुस्वरूप होकर सबपदार्थोंमें भावी नामरूपका पर्य्यालोचन करताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ततःसापरमासत्तासतीतच्चेतनोन्मुखी ॥ चिन्नामयोग्याभवतिकिंचिल्लभ्यतयातया ॥ ३८ ॥ घनसंवेदनात्पश्चाद्भाविजीवादिनामिका ॥ साभवत्यात्मकलनायद्भवंतीपरंपदम् ॥ ३९ ॥ गर्भीकृत्यस्थितानाख्या चिदाकाशापिधानताम् ॥ संप्रतित्वतिशुद्धस्यपदस्यानन्यरूपिणी ॥ ४० ॥

अर्थ—इसकेपश्चात् वह परमसत्ता सबपदार्थोंके चेतन (प्रकाशन) में अभिमुख होकर अवसर पाके चित् (चेतानेवाली) इस नामके योग्य होती तथा उस नामको प्राप्त करती है ॥ ३८ ॥ पश्चात् घनसंवेदन (शरीरादिमें अभिमान करने) से भावीजीवनामवाली होतीहुई पुनः अधिकारी मनुष्यादिशरीरकी कल्पना करती है, जिस अधिकारीजन्ममें पुनः परंपद (ब्रह्म) रूप होजाती है ॥ ३९ ॥ क्योंकि जीवदशामें वह चिदाकाश (निर्मलब्रह्मस्वरूप) रूपको आच्छादन करनेवाली अविद्याको गर्भमें धारणकरके स्थितरहती है अतः स्वच्छ चिद्रूप परपद अप्रकट रहताहै और इससमय तो ज्ञानलाभसे अतिशुद्ध ब्रह्मपदसे अभिन्नरूप स्पष्टरीतिसे होजाती है ॥ ४० ॥

स्वतैकभावनामात्रसारसंसरणोन्मुखी ॥ तदाविनाभावकृताअनुतिष्ठंतितामिमाः ॥ ४१ ॥ शून्यरूपास्वसत्तैकाशब्दादिगुणगर्भिणी ॥ चिद्भावनाभिसंपन्नाभविष्यदभिधार्थता ॥ ४२ ॥ अहंतोदेतितदनुसहवैकालसत्तया ॥ भविष्यदभिधार्थेतेबीजंमुख्यंजगत्स्थितेः ॥ ४३ ॥ चितिशक्तेःपरायास्तुस्वसंवेदनमात्रकम् ॥ जगज्जालमसद्रूपंचेतनात्सदिवस्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस आवृतजीवदशामें तो आत्माकेसाथ देह इन्द्रियादिमें अभेदाध्यासमात्रसार होतीहुई देहेन्द्रियादिद्वारा नानायोनियोंमें गमन करनेमें अभिमुख रहती है, इसीसे शुद्धस्वरूपको तिरोहित करनेवाले मलिनकर्म इसके पीछे लगे रहते हैं ॥ ४१ ॥ वह अद्वितीय ब्रह्मसत्ता शब्दादिगुणोंको निजगर्भमें धारण करतीहुई सविकल्प चिद्भावनासे भावी आकाशादि पंचभूतोंकी अभिधा (नाम) की प्रवृत्तिनिर्मित्तरूपता अर्थात् सूक्ष्म पंचभूतरूप होती है ॥ ४२ ॥ उस सूक्ष्मभूतरूप ब्रह्मसत्तासे लिंगशरीरसहित प्राणक्रियाप्रेरित कालसत्ताकेसाथ अहन्ता अर्थात् अहंकार उदित होती है, और भविष्य महत्तत्व पंचभूतादिको धारण करनेवाली वह अहन्ता तथा कालसत्ता, जगत्‌की स्थितिका मुख्य बीज हैं ॥ ४३ ॥ उस पराचितिशक्तिके चेतनसेही निजस्फुरणमात्र यह असद्रूप जगत्‌जाल उत्पन्न होकर सत्‌के समान स्थित है ॥ ४४ ॥

एवंप्रायात्मिकासाचिद्वीजंसंकल्पशाखिनः ॥ अहंतांभावयत्यंतःसैवेहभवतिक्षणात् ॥ ४५ ॥ जीवाभिधानासैषाद्यभावाभावप्लवभ्रमैः ॥ भ्रमत्यात्मपदेवीचिरूपैर्वारीववारिणि ॥ ४६ ॥ चिदेवंभावनवती व्योमतन्मात्रभावनाम् ॥ स्वतोघनीभूयशनैःखतन्मात्रंप्रचेतति ॥ ४७ ॥ भाविनामार्थरूपंतद्वीजंशब्दौघशाखिनः ॥ पदवाक्यप्रमाणाढ्यवेदार्थादिविकारिच ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार संकल्परूप वृक्षका बीज वह चित् अहन्ताकी भावना करतीहुई क्षणमेंही अहन्तास्वरूप होजाती है ॥ ४५ ॥ यह हिरण्यगर्भ जीवनामिका चित् उत्पत्ति तथा प्रलयरूप भ्रमोंसे मायाशबलित ब्रह्मपदमें ऐसे भ्रमण करती है जैसे तरंगोंसे जल जलमें ॥ ४६ ॥ इस सूक्ष्मभूत भावनायुक्त समष्टि हिरण्यगर्भ चित् सूक्ष्म आकाशतन्मात्राकी भावनाके घनीभूत होनेसे स्थूलाकाशरूपसे प्रकट होती है ॥ ४७ ॥ भविष्यनाम तथा अर्थरूप, शब्दसमूहरूपी (वेद) वृक्षका बीज, पद, वाक्य तथा प्रमाणोंसे पूर्ण वेदशास्त्रादिका आधारभूत यही आकाशरूप चित् है ॥ ४८ ॥

तस्माद्वदेष्यत्यखिलाजगच्छ्रीःशब्दतत्त्वतः ॥ शब्दौघनिर्मितार्थौघपरिणामविसारिणी ॥ ४९ ॥ चिदेवंव्यवसायासाजीवशब्देनकथ्यते ॥ भाविशब्दार्थजालेनबीजंभूतौघशाखिनः ॥ ५० ॥ चतुर्दशविधंभूतजातमावलितांबरम् ॥ जगज्जठरकर्णौघंतस्मात्संप्रसरिष्यति ॥ ५१ ॥ असंप्राप्ताभिदाचाराजीवत्वाचेतनेनचित् ॥ काकतालीयवत्स्पंदचिन्मात्रंचेततिस्वयम् ॥ ५२ ॥ पवनस्कंधरूपस्यबीजंत्वक्स्पर्शशाखिनः ॥ सर्वभूतक्रियास्पंदस्तस्मात्संप्रसरिष्यति ॥ ५३ ॥

अर्थ—वेदरूप शब्दसारभूत इसी चित्से संपूर्णजगत्की शोभा प्रादुर्भूत होगी, तथा शब्दोंके समूहसे रचित पदार्थसमूहके परिणामभावसे विस्तारको प्राप्तहोनेवाली यही चित् है, जैसे उस चित्ने "भूः" ऐसा शब्दोच्चारण करके भूमिको रचा इत्यादि ॥ ४९ ॥ इसप्रकार विचित्र संकल्परूप व्यवसाय करनेवाली चित् जीव (हिरण्यगर्भजीव) शब्दसे कहीजाती है और भावी शब्दार्थजालसे भूतसमूहरूपी वृक्षका बीजभूत यही चित् है ॥ ५० ॥ आकाशमें व्याप्त, तथा जगत् गर्भपोतसमूह पूर्ण चतुर्दशभुवनोंके भेदसे चतुर्दश (चौदह १४) प्रकारके प्राणियोंका समूह इसी चित्से उत्पन्न होगा ॥ ५१ ॥ अद्यावधि शाब्दव्यवहार तथा शरीरादि आचरको न प्राप्त यह हिरण्यगर्भ चित् चेतन होनेसे काकतालीयन्यायसे (अकस्मात्) स्वयं स्पन्द चिन्मात्रका संकल्प करती है, पवनस्कन्धरूप त्वक्स्पर्शरूपी वृक्षका बीजभूत यह चित् है क्योंकि सब प्राणियोंकी क्रियाओंके संचलन हेतु वायु इसे उत्पन्न होगा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तत्रयच्चिद्विलासस्यप्रकाशानुभवोभवेत् ॥ रूपतन्मात्रकंतद्वद्भविष्यदभिधार्थदम् ॥५४॥ प्रकाशचेतनंतेजोनतेजोन्यकृतंभवेत् ॥ स्पर्शसंवेदनंस्पर्शोनेतरस्पर्शसंभवः ॥५५ ॥ शब्दसंवेदनंशब्दःस्वतएवानुभूयते ॥ खंखेनेवस्वयंकोशेनान्यच्छब्दकृदस्तिहि ॥ ५६ ॥

अर्थ—उस पवनस्कन्धरूपताको प्राप्त हिरण्यगर्भ चित्में जो चिद्विलासके प्रकाशसे अनुभव होताहै वह रूप तन्मात्रमय तथा तेजशब्दार्थका बिजभूत है ॥ ५४ ॥ क्योंकि तेज (अग्नि) में जो प्रकाश है वह चेतनकाही प्रकाश है, अन्यकृत नहीं होसकता, इसीप्रकार स्पर्शज्ञानभी चेतनकृतही है, अन्य किसी स्पर्शका संभव नहीं है ॥ ५५ ॥ आकाशकोशमें आकाश (चिद्रूप) ही स्वयं शब्दरूप होकर शब्दज्ञानका अनुभव करताहै, क्योंकि चित्से अन्य शब्दका जनक कोई नहीं है ॥ ५६ ॥

किलतस्यामवस्थायांकोपरःशब्दकृद्भवेत् ॥ यथातथातदाद्यापिद्वैतैक्यस्यात्यसंभवात् ॥ ५७ ॥ एवंहिरसतन्मात्रंगन्धतन्मात्रमेवच ॥ असत्यमेवसदिवस्वप्नाभमिवचेत्यते ॥ ५८ ॥ तेजःसूर्यादिजृंभाभिर्बीजमालोकशाखिनः ॥ तस्माद्रूपविभेदेनसंसारःप्रसरिष्यति ॥ ५९ ॥ भविष्यदभिधस्याथखतःस्वतइवासतः ॥ स्वदनंतस्यसंघस्यरसतन्मात्रमुच्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे सृष्टिकी आदिमें समष्टिदशामें चित्से भिन्न अन्य कोई शब्दआदिका जनक नहीं होसकता किन्तु चेतनही सर्वरूप होताहै ऐसेही इस दशामेंभी द्वैत तथा ऐक्यके अभावसे सर्वज्ञान तथा ज्ञेयरूप चेतनही है ॥ ५७ ॥ इसीप्रकार स्वप्नवत् असत्यही रसतन्मात्रा तथा गन्धतन्मात्राका संकल्पभी वह चेतन सत्यके तुल्य करताहै ॥ ५८ ॥ यह तेजोभावको प्राप्त चेतन सूर्य्यादिके प्रादुर्भावोंसे प्रकाशरूप वृक्षका बीज है क्योंकि रूपादिके भेदसे संसार इसीसे उत्पन्न होगा ॥ ५९ ॥ भविष्य जल नामार्थकी उत्पत्ति इस अविकारी चेतनसे ऐसे होती है जैसे विकारशून्य आकाशसे नीलताआदिकी और पंचीकृत अन्नपानादिसमूहकी माधुर्य्यसंवित्को रसतन्मात्रा कहतेहैं ॥ ६० ॥

भविष्यद्रूपसंकल्पनामासौसकलोगणः ॥ संकल्पात्माथतन्मात्रंगंधायमनुचेतति ॥ ६१ ॥ भाविभूगोलकत्वेनबीजमाकृतिशाखिनः ॥ सर्वाधारात्मनस्तस्मात्संसारःप्रसरिष्यति ॥ ६२ ॥ अजातएवसंजातस्तन्मात्राणांगणस्त्विति ॥ अनाकारोपिसाकारःसंपन्नःकल्पनावशात् ॥ ६३ ॥ एषतन्मात्रकगणःकाकतालीयवत्स्वयम् ॥ रूपंयेनप्रदेशेनवेत्त्यक्षीतितदुच्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—भविष्यपदार्थके संकल्पनाम बोला यह कार्य्यकारणसंघातरूप हिरण्यगर्भरूप संकल्पमयजीव अपने स्वरूपमें गन्धतन्मात्राका संकल्प करताहै ॥ ६१ ॥ और भावीभूगोलरूपसे आकारवान् भूगोलरूपवृक्षका यही चेतन बीज है, क्योंकि सर्वाधाररूप इसी चेतनसे पृथिवीआदि संसार उत्पन्नहोगा ॥ ६२ ॥ इसरीतिसे यथार्थसे अजातही यह आकाशादितन्मात्राओंका समूह उत्पन्न हुआ और निराकार होनेपरभी मायाशबलित चेतनकी कल्पनासे साकार होगया ॥ ६३ ॥ यह चेतनसहित तन्मात्राओंका समूह काकतालीयन्यायसे जिस स्थानसे स्वयं रूपका अनुभव करताहै उस स्थानको नेत्र कहतेहैं ॥ ६४ ॥

शब्दंयेनप्रदेशेनवेत्तिश्रोत्रंतदुच्यते ॥ स्पर्शंयेनप्रदेशेनवेत्तितत्तुत्वगिंद्रियम् ॥ ६५ ॥ रसंयेनप्रदेशेनवेत्तितद्रसनेंद्रियम् ॥ गंधंयेनप्रदेशेनवेत्तिघ्राणेंद्रियंतुतत् ॥ ६६ ॥ दिक्कालभेदान्जीवोयंनियतामाकृतिंगतः ॥ सर्वेणांगेननोसर्वंवेत्त्यसर्वात्मतावशात् ॥ ६७ ॥ इतिकलनमनंतमात्मनांतर्गतमनुमेयमनन्यदात्मभूतम् ॥ नतदुदयमुपैतिनास्तमेतिस्थितमुपलोदरवद्घनंसुमौनम् ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवत्वसंसृतिप्रतिपादनंनामसप्ताशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८७ ॥

अर्थ—तथा जिस स्थानसे शब्दका अनुभव करताहै उसको श्रोत्र (कर्ण) और जिसस्थानसे स्पर्श (उष्ण-शीतता) को जानताहै उसको त्वक्इन्द्रिय कहतेहैं ॥ ६५ ॥ तथा जिस स्थानसे रसको जानताहै उसको रसनेंद्रिय और जिससे गंधको जानता है उसको घ्राणइन्द्रिय कहतेहैं ॥ ६६ ॥ पश्चात् नियत आकारताको प्राप्त यह जीव दिक्कालादिकी कल्पना करता है, और व्यष्टिभावमें प्राप्त यह जीव असर्वरूपतादोषसे नेत्र तथा कर्णआदि सब अंगोंसे रसगन्धादिको नहीं जानता, और सब भोग्यविषयको सब शरीरसे नहीं जानता ॥६७॥ हे रामजी ! इस पूर्वोक्तरीतिसे प्रतिजीवमें आत्माकेही भीतर अनुक्तभी अनन्तसंसारकी कल्पना समझनी चाहिये, और वह अनन्तकल्पित संसार आत्मासे अभिन्नरूप है, इसलिये न वह उदित होताहै और न अस्तंगत होताहै, किन्तु शिलाके उदरके तुल्य चिद्घनरूपसे मौन स्थित है ॥६८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जीवत्वसंसृतिप्रतिपादनं नाम सप्ताशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८८ ॥

जीव ब्रह्महीहै उसीकी उपचारसे लिंगशरीरकी भ्रांतिसे उत्पत्ति कही है, यह विषय स्पष्टरूपसे इस १८८ के सर्गमें वर्णितहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आदिमत्त्वमिदंप्रोक्तमेतस्यकलनस्ययत् ॥ परस्मादद्वितीयंतत्त्वद्बोधायनवास्तवम् ॥ १ ॥ एवंविधंतत्कलनमात्मनोंगमकृत्रिमम् ॥ चेत्योन्मुखचिदाभासंजीवशब्देनकथ्यते ॥ २ ॥ कलनस्यास्यनामानिबह्निनरघुनंदन ॥ शृणुतानिविचित्राणिचेत्योन्मुखचिदात्मनः ॥ ३ ॥ जीवनाच्चेतनाज्जीवोजीवइत्येवकथ्यते ॥ चेत्योन्मुखतयाचित्तंचिदित्येवनिगद्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! कल्पनामय इस चिदाभासरूप जीवकी आदिता (उत्पत्ति) मैंने कही वह कल्पनामय जीव परब्रह्मसे अभिन्नरूप है इस तुमारे बोधकेलिये है न कि वास्तविक ॥ १ ॥ इसप्रकार आत्माका अकृत्रिम अंगभूत, विषयाभिमुख इस चिदाभासको जीवशब्दसे कहतेहैं ॥ २ ॥ हे रघुनन्दन ! विषयकी ओर अभिमुख चिद्रूपकल्पनामय इस जीवके कार्य्यभेदसे विचित्र अनेक नाम हैं, उनको तुम सुनो ॥ ३ ॥ सबको चेताने तथा जीवन (प्राण) धारण करनेसे इसको जीव कहतेहैं, तथा विषयोंकी ओर अभिमुख होनेसे चित्त वा चित् कहतेहैं ॥ ४ ॥

इदमित्थमितिस्पष्टबोधाबुद्धिरिहोच्यते ॥ कल्पनान्मननज्ञत्वान्मनइत्यभिधीयते ॥ ५ ॥ अस्मीतिप्रत्ययादंतरहंकारश्चकथ्यते ॥ चेतनाख्यमृतंचित्तमितिशास्त्रविचारिभिः ॥ ६ ॥ प्रौढसंकल्पजालात्सपुर्यष्टकमितिस्मृतम् ॥ संसृतेःप्रकृतत्वेनप्राथम्यात्प्रकृतिःस्मृता ॥ ७ ॥ बोधादविद्यमानत्वादविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ इत्यादिकलनस्यास्यनामानिकथितानिते ॥ ८ ॥

अर्थ—यह ऐसा है इसप्रकार निश्चित बोध होनेसे बुद्धि, तथा कल्पना करनेसे मनन करनेसे और जाननेसे मनभी इसीको कहतेहैं ॥ ५ ॥ तथा "अस्मि" मैं हूं, इस वृत्तिसे अहंकार, और पूर्वानुभूत अतीत अनागत विषयकी ओर झुकनेसे शास्त्रज्ञोंने चित्त वा चित् भी इसको कहा है ॥ ६ ॥ तथा संकल्पजालोंसे मनइन्द्रियादिकी पूर्णता होनेसे पुर्य्यष्टक कहते हैं, और सृष्टिके आदिकालमें प्रथमसे प्रकृत (विद्यमान वा प्रस्तुत) होनेसे इसको प्रकृतिभी कहतेहैं ॥ ७ ॥ तथा तत्वज्ञानसे औपाधिकरूपसे अविद्यमान होनेसे पण्डितजन अविद्याभी इसको कहते हैं, इत्यादि इस चिदाभास जीवके नाम मैंने आपसे कहे ॥ ८ ॥

एतत्कलनमाद्यंतमनाकारमनामयम् ॥ आतिवाहिकदेहोक्त्यासमुदाहियतेबुधैः ॥ ९ ॥ इत्येवंस्वप्रसंकल्पपुरवत्त्रिजगद्भ्रमः ॥ भात्यर्थकार्य्यप्यवपुःशून्यमप्रतिघात्मकम् ॥ १० ॥ इत्यातिवाहिकःप्रो

कोदेहोदेहभृतांवर ॥ चित्रभश्चित्तदेहोसौशून्यआकाशतोपिच ॥ ११ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिजगत्या मोक्षसंविदः ॥ चतुर्दशविधस्यैकाभूतसर्गस्यचित्तभूः ॥ १२ ॥

अर्थ—यह जीव यथार्थमें निर्विकार निराकार है किन्तु लिंगशरीरकी कल्पनासे इसे आदि अन्तवान् पंडितजन कहतेहैं ॥ ९ ॥ इसप्रकार स्वप्नाकार स्वप्न तथा संकल्पके नगरकेसमान यह त्रिलोकीका भ्रम शरीरशून्य निराकार होकरभी भोग तथा मोक्ष उभयप्रदरूप होकर भासताहै ॥ १० ॥ देहधारियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! इसरीतिसे चिदाकाश-का यह मैंने लिंगशरीर कहा और इसका चित्तरूपदेह तो आकाशसेभी सूक्ष्म तथा शून्यरूप है ॥ ११ ॥ चतुर्दश भूतसृष्टिका चित्तरूप उत्पत्तिस्थान मोक्षपर्य्यन्त न उदित होता और अस्त होताहै, किन्तु ज्योंका त्यों स्थिर रहताहै॥१२॥

अत्रसंसारलक्षाणिभविष्यंतिभवंतिच ॥ भूतानिचफलानीवयथाकालव्यवस्थया ॥ १३ ॥ एषचित्त मयोदेहोजगत्यंतर्बहिस्त्वपि ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शःशून्यएवनभोयथा ॥ १४ ॥ महाकल्पस्यपर्यंतेसर्व नाशेस्थिरेस्थिते ॥ महाशून्यपदेप्रौढेब्रह्मात्मनिनिरामये ॥ १५ ॥ स्वतश्चितिघनोचिरवाचिद्वानामि दमात्मनः ॥ आतिवाहिकदेहाभंक्रमेणानेनचेतति ॥ १६ ॥

अर्थ—कालकी व्यवस्थासे वृक्षमें फलके तुल्य इस चित्तरूप भूमिमें लक्षों संसार तथा प्राणी होंगे, होगये और होते हैं ॥ १३ ॥ यह चित्तरूप देहदर्पण प्रतिबिंबके सदृश आभ्यन्तर तथा बाहर असंख्य जगत्रूप प्रतिबिंब धारण करताहै तथापि आकाशवत् शून्य है ॥ १४ ॥ महाकल्प (प्राकृतप्रलय) के अन्तिमक्षणमें जब सबका नाश स्थिर होजाताहै और महाशून्यप्रद (अवकाशदायक) निर्विकार ब्रह्मपद शेष रहताहै ॥ १५ ॥ तब चेतनमें शुद्ध चित्स्वरू-पावरक अज्ञानसे आत्माहीसे यही चित्ताकाश पूर्वोक्तरीतिसे आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरका संकल्प करताहै ॥ १६ ॥

सआतिवाहिकोदेहस्तदालोकप्रवर्तितः ॥ कैश्चिद्ब्रह्मेतिकथितःस्मृतःकैश्चिद्विराडिति ॥१७॥ कश्चित्स नातनाभिख्यःकश्चिन्नारायणाभिधः ॥ कश्चिदीशइतिख्यातःकश्चिदुक्तःप्रजापतिः ॥ १८ ॥ काकता लीयवद्भाताःपंचस्येंद्रियसंविदः ॥ यत्रयत्रयथातेषांस्थितास्तत्रतथास्थिताः ॥ १९ ॥ एवमत्यंतवित तेसंपन्नेदृश्यविभ्रमे ॥ नकिंचिदपिसंपन्नंसर्वशून्यंततंयतः ॥ २० ॥

अर्थ—उस जीवरूप आतिवाहिकदेहको तथा उससे प्रवर्तित जगदालोकनरूप प्रकाशको कोई ब्रह्मा (चतुर्मुख) कहते हैं और कोई विराट् कहतेहैं ॥ १७ ॥ और इसी निजसंकल्पसे जगत्कर्ताका कोईभाग सनातन पुरुष, कोई नारायण, कोई भाग ईश, तथा कोई भाग प्रजापति कहाजाताहै ॥ १८ ॥ जिस २ भागमें पंच ज्ञानेन्द्रिय संविद् भासती हैं वहां २ उन २ इन्द्रियोंके अर्थ उसीप्रकार व्यवस्थित हैं ॥१९॥ इसप्रकार अत्यन्त विशाल इस दृश्यके विभ्रमके संपन्न होनेपरभी कुछभी नहीं उत्पन्नहुआ, क्योंकि सर्वत्र व्याप्त आत्मतत्व सर्वथा दृश्यसे शून्य है ॥ २० ॥

अनादिमत्परंब्रह्मनसच्चासदुच्यते ॥ तदेवेदमनाद्यंतंतथास्थितमवेदनम् ॥ २१ ॥ आतिवाहिकदे हस्यतस्यानुभवतःस्वयम् ॥ यातिव्यसनिनःस्वप्नःकांतेवपरिपुष्टताम् ॥ २२ ॥ शून्योप्यनाकृतिरपिघ टाकारोनुभूयते ॥ स्वप्नसंकल्पयोःस्वस्यदेहस्यजगतोयथा ॥ २३ ॥ भवत्यर्थकरोत्युच्चैस्तच्चित्खस्व प्रवस्तुवत् ॥ आकाशात्मकएवोग्रःपदार्थइवभासते ॥ २४ ॥

अर्थ—आदिअन्तशून्य परब्रह्म न सत् (आविर्भूत) है और न असत् (अनाविर्भूत) है, वही स्वरूप साक्षात्कारकी हीनतासे इस सदसदाकार जगत्रूपसे स्थित है ॥ २१ ॥ सूक्ष्मशरीरधारी ब्रह्माके स्वयं अनुभवसे उसका संकल्पही जगत्रूपसे ऐसे पुष्ट होजाताहै जैसे स्त्रीव्यसनीको स्वप्नकी स्त्री ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्न तथा संकल्पमें शून्य आकाररहितभी घटाकार अनुभूत होताहै ऐसेही जाग्रत्में निजदेह तथा जगत्का अनुभव है ॥ २३ ॥ स्वप्नकी वस्तुवत् वह चिदाकाश स्वयं पूर्णरूपसे अर्थक्रियाकारक होताहै और पदार्थवत् कठि-नाकारभी होजाताहै ॥ २४ ॥

आतिवाहिकदेहोसौस्वतोनुभवतिक्रमात् ॥ अनाकारोपिशून्योपिस्वप्नाभोसन्नपिस्थितः ॥ २५ ॥ चेतत्यस्थिगणःस्थूलंकराद्यवयवावलिम् ॥ त्रिकलोमशिरास्नायुसन्निवेशतयास्थितम् ॥ २६ ॥ जन्म कर्मेहितस्थानंपरिणामवयःस्थितम् ॥ देशकालक्रमाभोगभावार्थायोद्भवभ्रमम् ॥ २७ ॥ जरामरणमा धानदशदिङ्मंडलक्रमम् ॥ ज्ञानज्ञेयज्ञातृभावमादिमध्यांतवेदनम् ॥ २८ ॥ क्षितिजलगगनदिवाकरज नताव्यवहारनगरशिखरात्मा ॥ स्वाधाराधेयमयंपश्यतिवपुषःपुरातनःपुरुषः ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवरूपवर्णनं नामाष्टाशीत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८८ ॥

अर्थ—यह आतिवाहिक जीव शून्य तथा निराकार होनेपरभी क्रमसे स्वयं स्वप्नवत् आकारका अनुभव करनेलगताहै ॥ २५ ॥ वह आतिवाहिक शरीरी जीव अस्थि (हड्डी) समूहसहित तथा पृष्ठदेशस्थ वंश, लोम, नाडी, मांसादि सान्निवेशरूपसे स्थित स्थूल हस्तपादादि अवयवोंकी पंक्तिरूप निजसंकल्पसेही होजाताहै ॥ २६ ॥ तथ उसी देहमें देशकालके क्रमोंको विस्तारपूर्वक पदार्थोंके भोगार्थ जन्मका भ्रम, जन्मकर्मके अभिलषितस्थान तथा अवस्थाओंके परिणामकोभी अनुभव करताहै ॥ २७ ॥ तथा जरा, मृत्यु, गुण और दोषादिको धारणकियेहुये दश-दिशाओंमें भ्रमण, ज्ञातृ, ज्ञेय और ज्ञानरूप त्रिपुटी, तथा पदार्थोंके आदि, मध्य और अन्तके ज्ञानकोभी उसी शरीरमें अनुभव करताहै ॥ २८ ॥ वह आतिवाहिक देह (चतुर्मुखरूप) रूपताको प्राप्त सनातनपुरुष, निजकल्पित व्यष्टि समष्टि स्थूलशरीरोंके कारणसे, स्वयं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य्य, नगर, जलसमूह तथा उनके व्यवहाररूपताको प्राप्त होकर पृथिवीआदिको अपना आधार तथा अपनेको आधेयरूप भ्रांतिमय संसाररूपी स्वप्नको देखताहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे जीवरूपवर्णनं नामाष्टाशीत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८८ ॥

एकोननवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८९ ॥

आतिवाहिकदेहरूप प्रजापतिके मनोरथरूप (सूक्ष्म) जगत्में आधिभौतिकरूपकी भ्रान्ति है इस विषयका वर्णन इस १८९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आतिवाहिकदेहोसौतस्यत्वस्यप्रजापतेः ॥ काकतालीयवच्चित्वाद्यथेत्यादिचेतति ॥ १ ॥ तत्तथास्थितिमायातिचिरंसंवित्स्वभावतः॥ बतविश्वमिदंभासमत्रासत्येकुतःस्मयः॥२॥ द्रष्टाऽसत्यमसत्यंदृगसत्यंदर्शनंततम् ॥ सत्यमेवाथवासर्वंब्रह्मैवात्मतयातया ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच॥ इत्यातिवाहिकालोकःसतस्याद्यप्रजापतेः ॥ कठिनत्वंकथंयातःकथंस्वप्नस्यसत्यता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! उस आदिप्रजापतिका आतिवाहिक देह (हिरण्यगर्भ जीवसहित देह) काकतालीयन्यायसे जब जैसा संकल्प करताहै ॥ १ ॥ उससमय वैसाही संसार चिरकाल चित्संवित्के स्वभावसे स्थितिको प्राप्त होताहै. अहो! इसप्रकार संवित्के संकल्पमात्रसे यह जगत् भासमान है जो फलकी असत्यतामें क्या आश्चर्य है ॥ २ ॥ भ्रममात्र होनेसे द्रष्टा, दर्शन, तथा दृश्यरूपी त्रिपुटी असत्य है, अथवा ब्रह्मरूप होनेसे सभी सत्य है ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! उक्तरीतिसे आदिप्रजापतिके आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरका संकल्पमात्र आलोक (विचार) शिलादिकठिनभावको कैसे प्राप्तहोगया क्योंकि स्वाप्निक संकल्पित-पदार्थकी सत्यता (पारलौकिक) फल देनेमें समर्थता कैसे होती है ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आतिवाहिकआलोकःस्वतएवानुभूयते ॥ सदानवरतंतेनसएवाभातिपुष्टवत्॥५॥ यथास्वप्नस्यपुष्टत्वंचिरानुभवनोचितम् ॥ अतिसत्यमिवाभातिस्वातिवाहिकतातथा ॥ ६ ॥ आतिवाहिकदेहस्यचिरस्वानुभवोदये ॥ आधिभौतिकताबुद्धिरुदेतिमृगवारिवत् ॥ ७ ॥ जगत्स्वप्नभ्रमाभासंमृगतृष्णांबुवत्स्थितम् ॥ असदेवेदमाभातिसत्यप्रत्ययकार्यपि ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! यह आतिवाहिक आलोक (सूक्ष्मचित्त शरीरका संकल्प) निरंतर स्वयं अनुभूत होताहै. वही (सूक्ष्म संकल्प) चिरकालके अभ्याससे पुष्ट (स्थूल) होजाताहै ॥ ५ ॥ जैसे हरिश्चंद्र आदिका स्वप्नका चिरकालका अनुभव अतिसत्य स्थूल भासनेलगा ऐसेही आतिवाहिक संकल्पभी चिरकालके अभ्याससे सत्य होजाताहै ॥ ६ ॥ आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरके चिरकालके अनुभवमें आधिभौतिक बुद्धि ऐसे उदित होती है जैसे मृगतृष्णाके जलमें ॥ ७ ॥ स्वप्नके भ्रम तथा मृगतृष्णाके जलके सदृश असत्यही स्थित यह जगत् सत्य विश्वासकारीके समान भासताहै ॥ ८ ॥

आतिवाहिकरूपाणामाधिभौतिकतास्वयम् ॥ असतीसत्यवद्दूरमर्वाग्दर्शिभिरर्थिता ॥ ९ ॥ अयंसोहमिदंतन्मइमागिरिनभोदिशः ॥ इतिमिथ्याभ्रमोभातिभास्वरस्वप्नशैलवत् ॥ १० ॥ आतिवाहिकदेहोसौस्रष्टुराद्यस्यभावितः ॥ आधिभौतिकतांचैतत्पिंडाकारंप्रपश्यति ॥ ११ ॥ चित्रभश्चेतनंत्यक्त्वात्र ह्माहमितिपश्यति ॥ अयंदेहोयमाधारइतिबध्नातिभावनाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—आतिवाहिक (संकल्पमय) रूप पदार्थोंमें आधिभौतिकरूपता असत्य होनेपरभी अविवेकियोंने स्वयं अपनी आसक्तिसे स्वीकार करली है ॥ ९ ॥ यह मेरे शरीरादि, वह मुझसे भिन्न, यह पृथिवी आदि, वे मेरे पुत्रादि, ये पर्वत आकाशदिशादि सब पदार्थ, इत्यादि मिथ्याभ्रम स्वप्नके प्रकाशमान पर्वतके तुल्य भासताहै ॥ १० ॥ आदिस्रष्टा ब्रह्माका यह आतिवाहिक शरीर चिरकालके दृढसंकल्पसे अपनेही शरीर आधिभौतिकरूपता तथा पिंडाकार पृथिवी आदि रूपको देखताहै ॥ ११ ॥ चिदाकाशरूप ब्रह्मा निज यथार्थ चेतनस्वरूपको त्यागकर यह मनुष्यादि शरीर मैं हूं तथा यह पृथिवी आदि मेरा आधार है ऐसा देखते हैं और उसमें आस्थाभी करते हैं ॥ १२ ॥

असत्येसत्यबुद्ध्यैवबद्धोभवतिभावनात् ॥ बहुशोभावयत्यंतर्नानात्वमनुधावति ॥ १३ ॥ शब्दान्करोतिसंकेतंसंज्ञाश्चस्पंदनानिच ॥ ओमित्युक्तेततोवेदाञ्छब्दराशीन्प्रगायति ॥ १४ ॥ तैरेवकल्पयत्याशु व्यवहारमितस्ततः ॥ मनोह्यसौकल्पयतियच्चेततितदेवहि ॥१५॥ योहियन्मयएवासौसनपश्यतितत्कथम् ॥ असत्यैवजगद्भ्रांतिरेवंप्रौढिमुपागता ॥ १६ ॥

अर्थ—असत्य शरीरादिमें सत्यबुद्धिकी भावनासे जीव बद्ध होजाताहै, और अपने स्वरूपमेंही नानात्वकी भावना करताहै और उसीका अनुसरण करताहै ॥ १३ ॥ प्रथम ब्रह्मरूप शरीर वैदिक तथा लौकिकशब्दोंको रचताहै, पुनः उस शब्दोंके उन २ उपाधिमान् अर्थोंमें संकेत करताहै; तथा संकेतोंमें संज्ञा और उनका अनुगमन करताहै, जैसे "ओम्" ऐसा कहके शब्दराशिभूत वेदोंको रचताहै ॥ १४ ॥ और उन्ही वेदशब्दोंसे संसारके चारोंओर के व्यवहारोंको रचताहै, क्योंकि यह मन जो कुछ कल्पना करताहै तन्मय होजाताहै ॥ १५ ॥ जो यन्मय होताहै वह उसको कैसे नहीं देखता अर्थात् अवश्य देखताहै; क्योंकि ब्रह्माके मनके संकल्पसेही असत्यभी यह जगत्की भ्रांति इसप्रकार दृढताको प्राप्तहोगई ॥ १६ ॥

आब्रह्मणोमुधाभातिचिरस्वप्नेंद्रजालवत् ॥ इत्यातिवाहिकस्येयमाधिभौतिकतोचिता ॥ १७ ॥ आधिभौतिकतानास्तिकाचित्किंचिदपिक्वचित् ॥ आतिवाहिकतैवैनामभ्यासाद्यातिभावनाम् ॥ १८ ॥ मूलादेवैवमायातोमिथ्यानुभवनात्मकः ॥ मोहोब्रह्मणएवायमित्यस्त्येषमहात्मनाम् ॥ १९ ॥ एवमित्थं दशारामपिंडबंधःक्वविद्यते ॥ भ्रांतिरेवेदमखिलंब्रह्मैवाभातमेववा ॥ २० ॥ नशाश्वतादन्यदिहास्तिकारणान्नकारणंतत्खलुकार्यतांविना ॥ नकार्यताकारणतादिसंभवोस्त्यनामयेतत्किमपीदमाततम् ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नामैकोननवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १८९ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे लेके मशकपर्य्यन्त स्थूलरूपता स्वप्न तथा इन्द्रजालवत् मिथ्याही भासतीहै, किन्तु दृढ-संकल्पसे आतिवाहिक (सूक्ष्म) देहकी आधिभौतिकरूपता उचितहीहै ॥ १७ ॥ यथार्थमें कोईभी आधिभौतिकरूपता कहीं किंचित्भी नहींहै, किन्तु यह आतिवाहिकशरीरही इस आधिभौतिक भावनाको निजअभ्याससे प्राप्त होती है॥१८॥ हे रामजी ! जगत्का आधिभौतिकरूप मोह (भ्रम) मूलभूत आदिस्रष्टा ब्रह्माजीसे चलाआताहै अतएव तत्वज्ञानियोंकोभी यह जगद्दर्शनभ्रम प्रारब्धके क्षयपर्य्यन्त बनारहताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! चिन्मात्र परब्रह्मकी ऐसी दुर्दशा कहां होसकतीहै कि वह यथार्थशरीर अथवा पृथिवीआदिसे पिंडबन्ध आकाररूप हो, किन्तु यह सब जगत् भ्रांतिमात्र है, अथवा लीलार्थ निजशक्तिके आविष्करणार्थ ब्रह्मही जगत्जीवादि आकारसे भासताहै ॥ २० ॥ सनातनब्रह्मके अतिरिक्त कोई जगत्का कारण नहींहोसकता, तथा वह कारणताभी कार्य्यताकेविना नहीं हो-सकती और निर्विकार चिदानन्दब्रह्ममें कार्य्यकारणभावका संभवही नहीं है, अतः यह सब जगदाकार भ्रांतिमात्रही विस्तारको प्राप्त हुवाहै ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नामैकोननवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १८९ ॥

नवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९० ॥

भूत तथा भविष्य सब शंकाओंको युक्तियोंसे उन्मूलन करके ज्ञानकी ज्ञेयतारूप शान्तिसे तद्रूप मुक्तिका वर्णन इस १९० के सर्गमें कियाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञानस्यज्ञेयतापत्तिर्बंधइत्यभिधीयते ॥ तस्यैवज्ञेयताशांतिर्मोक्षइत्यभिधीयते ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञानस्यज्ञेयताशांतिःकथंब्रह्मन्प्रवर्तते ॥ सारूढाबंधताबुद्धिःकथंवात्रनिवर्तते ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सम्यग्ज्ञानेनबोधेनमंदबुद्धिर्निवर्तते ॥ निराकारानिजाशांतामुक्तिरेवंप्रवर्तते ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बोधःकेवलतारूपःसम्यग्ज्ञानंकिमुच्यते ॥ येनबंधादयंजंतुरशेषेणविमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! ज्ञानकी ज्ञेय (विषय) रूपताप्राप्तिही बन्ध कहाताहै और उसी ज्ञानकी ज्ञेय (विषय) रूपताकी शान्ति (केवल ज्ञानस्वरूपस्थिति) मोक्ष कहाताहै ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! ज्ञानकी ज्ञेयतारूप शान्ति कैसे होती है और दृढरूपसे अभ्यस्त बन्धता (ज्ञेयरूपता) बुद्धि कैसे निवृत्त होती है सो कृपाकरके कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! शमदमादिसाधनोंसे दृढ अभ्यस्त सम्यग् आत्मज्ञानसे विषयज्ञानरूपभ्रान्ति निवृत्त होती है और इसप्रकार ज्ञेयताकी शान्तिरूप निराकार, शान्त, निजआत्मस्वरूप मुक्ति प्रवृत्त होती है ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! केवल रूपता बोध सम्यग् ज्ञान किसको कहतेहैं जिससे कि यह जीव सर्वथा बन्धसे विनिर्मुक्त होजाताहै ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञानस्यज्ञेयतानास्तिकेवलंज्ञानमव्ययम् ॥ अवाच्यमितिबोधोंतःसम्यग्ज्ञानमिति स्मृतम् ॥ ५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञानस्यज्ञेयताभिन्नात्वंतःकेतिमुनेवद ॥ उत्पाद्योज्ञानशब्दश्चभावेवा करणेथकिम् ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बोधमात्रंभवेज्ज्ञानंभावसाधनमात्रकम् ॥ नज्ञानज्ञेययोर्भेदः पवनस्पंदयोरिव ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथमयंज्ञानज्ञेयादिविभ्रमः ॥ सिद्धःशशविषाणा भोभविष्यद्भूतभव्यशः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ज्ञानकी (चित्स्वरूपआत्माकी) ज्ञेयरूपता कदापि नहीं है, किन्तु यह भासमान भ्रांतिरूप अनिर्वचनीय जगत् केवल अविनाशी ज्ञान (चिद्रूप) है, ऐसा आभ्यन्तरमें जो दृढनिश्चय है उसीको सम्यग्ज्ञान कहतेहैं ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! चिन्मात्र आत्मस्वरूपमें उससे भिन्न ज्ञेयता क्या वस्तु है, तथा ज्ञानशब्दकी व्युत्पत्ति भाव "ज्ञप्तिर्ज्ञानम्" (जाननामात्र ज्ञान) में है, अथवा कारण "ज्ञायतेऽनेनेतिज्ञानम्" (जिससे जानाजाय वह ज्ञान) है यह कृपा करके कहिये ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! बोधमात्र भावसाधन "ज्ञप्तिर्ज्ञानम्" (केवल जानना) ज्ञान शब्द है, और ज्ञेय जगत्स्वरूपताभी ज्ञानकाही मायिकभेद है, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय विषय) में ऐसे भेद नहीं है जैसे पवन और स्पन्दमें ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! यदि ऐसाही (ज्ञेय ज्ञानहीका भेद) है तब यह शशशृंगके समान ज्ञानका ज्ञेयरूप भ्रम कैसे सिद्धहुआ, और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भूत, भविष्य तथा वर्तमानादि विभागोंसे व्यवहारके समर्थ कैसे होगया सो कहिये ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बाह्यार्थभ्रांतितोज्ञेयाभ्रमबुद्धिरिहोदिता ॥ बाह्यश्चाभ्यंतरश्चार्थोनिसंभवतिकश्चन ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ योयंप्रत्यक्षदृश्योर्थोमुनेत्वमहमादिकः ॥ भूतादिरनुभूतात्मासकथंनास्ति मेवद ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आदिसर्गविधावेवविराडात्मादिकोनघ ॥ जातोनकश्चिदेवार्थोज्ञे यस्यातोनसंभवः ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भविष्यद्भूतभव्यस्थाजगद्दृष्टिरियंमुने ॥ नित्यानुभूयमा नापिनजातेतिकिमुच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह बाह्यपदार्थके भ्रमसे ज्ञेयाकार भ्रमबुद्धि यहां कहीगई है, और बाह्य तथा आभ्यन्तरभी आत्मासे भिन्न पदार्थका संभव नहीं है, अर्थात् अभानमें वा अर्थक्रियाकारितामें असत्ता प्रयोजक नहीं है, क्योंकि स्वप्नके भ्रममें असत्का भासना तथा अर्थक्रियाकारिता सहस्रशः प्रसिद्ध है, किन्तु पदार्थोंका बाधही अभान आदिमें प्रयोजक है और वह बाध विचारवानोंको युक्तिसिद्ध तथा तत्वज्ञानियोंको प्रत्यक्षसिद्ध है ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् ! यह जीव, शरीर तथा पृथिवीआदि अनुभवसिद्ध प्रत्यक्ष दृश्य जगत् कैसे नहीं है? यह कहिये ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पापरहित रामजी ! आदिसृष्टिमेंही ब्रह्माआदि कोईभी पदार्थ यथार्थमें उत्पन्न नहींहुये, इसलिये इस ज्ञेयदृश्य जगत्का संभव नहीं है, अर्थात् यह प्रत्यक्षसिद्ध तथा उसके व्यवहार भ्रममात्र केवल लौकिकदृष्टिसे स्वप्नवत् हैं, उसका श्रुति तथा युक्तिसे बाध सिद्ध है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे मुने ! भूत, भविष्य तथा वर्तमानव्यवस्थासहित और सब प्राणियोंको प्रत्यक्षसिद्ध नित्य अनुभूयमानभी यह जगत्की दृष्टि नहीं उत्पन्नहुई यह आप क्या कहते हैं, अर्थात् अनेकप्राणियोंको प्रत्यक्षसिद्ध इस जगत्का एकतत्वज्ञानसे बाध कैसे होसकताहै ? ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्नार्थमृगतृष्णांबुद्वींदुसंकल्पितार्थवत् ॥ मिथ्याजगदहंत्वंचभातिकेशोंड्रकंयथा ॥ १३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहंत्वमयमित्यादिजगज्जठरमप्यलम् ॥ कथंनजातंभगवन्सर्गादावनुभूतिमत् ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कारणाज्जायतेकार्यंनान्यथेत्येवनिश्चयः ॥ सर्वोपशांतौजगतामुत्पत्तौनास्तिकारणम् ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौशिष्टंयदजमव्ययम् ॥ तत्कथंनामसर्गस्यनभवेत्कारणंमुने ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी! स्वप्नसंकल्पके पदार्थ, मृगतृष्णाके जल, दोचन्द्रकी भ्रान्ति, आकाशमें केशमशकादि, जैसे अनुत्पन्न असत् भासते हैं और उनका एक जाग्रत् तथा यथार्थज्ञानसे बाध होताहै, ऐसेही "त्वम् अहम्" आदि जगत्भी मिथ्या और बाधित है ॥ १३ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! अनुभवसिद्ध त्वम् अहम् (तुम हम) आदि सबजगत् सृष्टिकी आदिमेंभी कैसे नहीं उत्पन्नहुआ, अर्थात् किसयुक्तिसे इसका बाध है ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! कारणसेही कार्य्य होताहै अन्यथा नहीं यह निश्चय है, सो कारणके अभावसे सर्वथा उत्पत्तिके शान्त होनेसे जगत्की उत्पत्तिका कोई कारण नहीं है ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे मुने! महाप्रलयके पश्चात् अविनाशी अजन्मा ब्रह्म शेष रहताहै वही ब्रह्म सृष्टिका कारण क्यों नहींहोता॥१६॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदस्तिकारणेकार्यंतत्तस्मात्संप्रवर्तते ॥ नत्वसज्जायतेरामनघटाज्जायतेपटः ॥१७॥ श्रीरामउवाच ॥ जगत्सूक्ष्मेणरूपेणमहाप्रलयआगते ॥ आस्तेब्रह्मणितत्तस्मात्पुनरेवप्रवर्तते ॥१८॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयपर्यंतेकेनसर्गास्तितानघ ॥ अनुभूतामहाबुद्धेतत्रस्थासाचकीदृशी ॥१९॥ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञप्त्यात्मिकाश्रीस्तत्रस्थातादृशैरनुभूयते ॥ व्योमात्मिकातुनभवेन्नसत्तामसदेतिहि ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! जो कारणमें कार्य्य है वही उस कारणसे उत्पन्न होताहै असत्कार्य्य नहीं होता, क्योंकि घटसे पट नहीं होता, अर्थात् केवल चिदेकरसब्रह्म जगत्का बीज नहीं है इससे उसकी उत्पत्ति यथार्थ नहीं है ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! महाप्रलय होनेपर सूक्ष्मरूपसे जगत् है, वह उसीसे पुनः प्रवृत्त होताहै ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे पापरहित महाबुद्धे रामजी! महाप्रलयमें सर्ग (सृष्टि) के बीजकी सत्ता ब्रह्ममें किसने अनुभव की है और श्रुतिविरुद्ध बाधित जगत्की सत्तामें आस्थाभी कैसे होसकती है ॥ १९ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! ज्ञप्तिरूपसत्ता तो ब्रह्ममें तत्वज्ञानियोंको उससमयभी अनुभूत होती है, सो स्वप्रकाश चिद्रूपसे अभिन्न जगत्सत्ताभी उससमय रहती है न कि मायाकाशरूप, क्योंकि मायाकाशरूपके असत्स्वरूप होनेसे असत् जगत् सत्ताको कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंचेत्तन्महाबाहोज्ञप्तिरेवजगत्त्रयम् ॥ विशुद्धज्ञानदेहस्यकुतोमरणजन्मनी ॥२१॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ तदेवमादितोनास्तिसर्गस्तदियमागता ॥कुतःकथमिवभ्रांतिरितिमेभगवन्वद॥२२॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कार्यकारणताभावाद्भावाभावौस्तएवनो ॥ इदंचचेत्यतेयद्यत्स्वात्माचेततिचेतितम् ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ चेतिताचेततियंत्रंद्रष्टादृश्यत्वमीश्वरः ॥ कथमेतिकथंवह्निर्दहेत्काष्ठंकदाकिल ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे महाबाहो रामजी! यदि चिद् ब्रह्मरूपही जगत्की सत्ता मानतेहो तब ज्ञप्ति (चिद्रूप) ही त्रिलोक है, क्योंकि विशुद्ध सच्चिदानन्ददेहधारी आत्माके जन्ममरणादि कैसे होसकतेहैं ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! यदि यह सृष्टि आदिसेही नहीं है किन्तु ब्रह्म है तब यह जगत्का भ्रम किस कारणसे हुआ सो यह कहिये ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि ब्रह्ममें कार्य्यकारणताके अभावसे उत्पत्ति तथा प्रलय हैही नहीं और यह जो कुछ जगत् भान होताहै, जिसको भान होताहै तथा जो भात (ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेयरूप त्रिपुटी) है सब आत्मा स्वयं है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले-हे महाभाग कार्य्यकारणसंघात (शरीर इन्द्रियादि) रूपताको उस यंत्रका चलानेवाला कैसे प्राप्तहोताहै, तथा सर्वद्रष्टा परमात्मा कहीं जड रूपदृश्यताको कैसे प्राप्तहोताहै, क्योंकि काष्ठ दग्धा (जलानेवाला) होके और अग्निको दाह्य (जलनेकी वस्तु) करके कैसे जलासकताहै ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्रष्टानयातिदृश्यत्वंदृश्यस्यासंभवादतः ॥ द्रष्टैवकेवलोभातिसर्वात्मैकघनाकृतिः ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ चिन्मात्रंतदनाद्यंतंचेत्यंचेतयतेतदा ॥ तदिदंजगदाभानंकुतःस्याच्चेत्यसंभवः ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेत्यंहिकारणाभावान्नसंभवतिकिंचन ॥ चेत्याभावाच्चेतनस्यमुक्तताऽवाच्यतासदा ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तदहंतादिचेत्यंकथमिदंकुतः ॥ कथंजगद्वेदनंचकथंस्पंदादिवेदनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! दृश्यका सर्वथा असंभव होनेसे द्रष्टा दृश्यरूपताको नहीं प्राप्तहोता, किन्तु दृङ्मात्र चिद्घनाकार सर्वात्मा द्रष्टाही त्रिपुटीरूपसे निज मायाशक्तिद्वारा भासताहै ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! सृष्टिकीआदिमें जगत्का अभाव है, अतः उससमय अनादि अनन्त शुद्ध चिन्मात्रही जगत्का संकल्प करताहै तब जगत्का भान होताहै, सो उससमय शुद्ध चिद्ब्रह्ममें चेत्य (विषय) का संभव कहां है ॥२६॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! कारणके अभावसे चेत्य (दृश्यजगत्) का सर्वथा असंभव है क्योंकि चेत्यके असंभवसे चेतन आत्माकी नित्यमुक्तरूपताभी वाणीका विषय नहीं है ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! यदि आत्मा नित्यमुक्त है तो अहंकार आदि संपूर्ण जगत् कहांसे उत्पन्न हुआ, तथा कैसे इस जगत्का तथा आत्माका ज्ञान होताहै और स्पन्दआदि विषयोंका ज्ञानभी कैसे होताहै, क्योंकि नित्यमुक्तआत्मा स्वीकार करनेपर गुरु-शास्त्रादि सभी निष्फल है ॥ २८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कारणासंभवादादावेवोत्पन्नंनकिंचन ॥ कुतश्चेत्यमतःशांतंसर्वंसर्गस्तुविभ्रमः ॥२९॥श्रीरामउवाच ॥ अत्रमेविगतोल्लेखेनिश्चेत्यचलनादिके॥सकृद्विभातेविमलेविभ्रमःकस्यकीदृशः ॥३०॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कारणाभावतोरामनास्त्येवखलुविभ्रमः॥ सर्वंत्वमहमित्यादिशांतमेकमनाम यम् ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्भ्रमभिवापन्नःप्रष्टुंजानामिनाधिकम् ॥ नात्यंतंचप्रबुद्धोस्मिपृच्छा मिकिमिहाधुना ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! कारणके अभावसे सृष्टिकी आदिमेंही यथार्थमें यह जगत् नहींउत्पन्न हुआ, इसलिये यह चेत्य (जगत्) कहां है, अतः सब कुछ शान्त परमात्माही है और यह सृष्टि तो भ्रममात्रही है ॥ २९ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! वाणीके अविषय, स्वप्रकाश, नित्यमुक्तब्रह्ममें भ्रम किसको और कैसा होताहै इसका उत्तर मुझे दीजिये ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-शास्त्रादिद्वारा जिसने ब्रह्मतत्वको जानलिया है उसकी दृष्टिमें कारणके अभावसे यथार्थ यह जगत् उत्पन्नही नहीं हुआ, तब जगत्का भ्रमही नहीं है और "त्वम् अहम्" इत्यादि जगत् सब शान्त निर्विकार आत्माही है ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे ब्रह्मन्! मैं इस भ्रममें निमग्नके सदृश हूं इससे अधिक कुछ पूंछना नहींजानता और न अत्यन्त ज्ञानी हुं, सो अब क्या पूंछू परन्तु नित्यमुक्तपरब्रह्ममें यह जगत्का भ्रम कैसे हुआ यह मेरा सन्देह नहीं गया ॥ ३२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कारणस्यैवनिकषंपृच्छमाकारणक्षयात् ॥ परेस्वभावेनिर्वाच्येस्वयंविश्रांतिमे ष्यसि ॥ ३३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मन्येहंकारणाभावात्पूर्वमेवनसर्गता ॥ उदितातेनकस्यायंचेत्यचेत नविभ्रमः ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अकारणत्वात्सर्वत्रशांतत्वाद्भ्रांतिरस्तिनो ॥ अनभ्यासवशादे वनविश्राम्यतिकेवलम् ॥ ३५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कुतोभवेदनभ्यासोभवेदभ्यसनंकुतः ॥ कुतोभ्या सात्मिकाभ्रांतिरेषापुनरुपस्थिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! निरुत्तर होनेसे प्रश्नसे विरक्त न हो किन्तु कसौटीके तुल्य सारासारकी परीक्षाके स्थानभूत मुझसे कारणीभूत अविद्याका नाश जबतक न हो तबतक निःशंक होके प्रश्न करो उससे प्रश्नोंके कारण संशयोंका तथा संशयके कारण अज्ञानका सर्वथा क्षय होनेसे वाणीके अविषय पर स्वभाव आत्मामें स्वयं विश्रान्त होओगे ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! कारणके अभावसे आरम्भमेंही सृष्टि नहीं उत्पन्न हुई यह आपने जो सिद्धान्त कहाहै उसको मैं मानताहुं, परन्तु यह चेत्यचेतन (विषय तथा चित्) का विभ्रम किसको होताहै यह मेरा संशय नहीं जाता ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी! यदि मेरे कथित सिद्धान्तको जानतेहो तो कारणके अभावसे सर्वत्र शान्त परमात्माही है, भ्रान्ति कहींभी नहीं है, केवल अनभ्यासके वशसे शुद्ध परमात्माही सर्वत्र है इस ज्ञानकी दृढता नहीं अतएव विश्रान्ति नहीं है इसीसे नानात्वकी भ्रांन्ति तुमको वृथा होरही है ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन्! जब जगत् भ्रमकाभी कारण नहीं है तब अभ्यास तथा अनभ्यास कहांसे होसकतेहैं और यह अभ्यासरूप भ्रांतिभी कहांसे उपस्थित हुई? ॥ ३६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनंतत्वादनंतस्यभ्रांतिर्नास्तिचसंप्रति ॥ अभ्यासभ्रांतिरखिलंमहाचिद्घनमक्ष तम् ॥ ३७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ उपदेश्योपदेशादावनयाशब्दसंपदा ॥ किमन्यद्वदमेब्रह्मन्सर्वस्मिञ्छां ततांग ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उपदेश्योपदेशात्मब्रह्मब्रह्मणिसंस्थितम् ॥ बोधात्मनिनमोक्षो

स्तिनबंधोस्तीतिनिश्चयः ॥ ३९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यभेदवेदनचेतसाम् ॥ सर्वस्या संभवेसर्वसत्ताकथमुपस्थिता ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! यथार्थमें कोईभी भ्रांति नहीं है परन्तु अनन्त परमात्मा निजमायासे अनन्त भासताहै उसी चिद्घनरूप संपूर्ण वस्तुओंमें जैसे जीवन्मुक्तोंके व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है ऐसेही महाचिद्-घनरूप अभ्यासकी भ्रांतिमें तुमारीभी प्रवृत्ति हो ॥ ३७ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे ब्रह्मन् ! आप जैसे जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें संपूर्ण जगद्भ्रम शान्त होनेपर इस अध्यात्मशास्त्रकी शब्दसंपत्तिसे उपदेशके योग्य हमारे सदृश मनुष्योंको उपदेश देनेमें अन्य क्या कारण है सो कहिये ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें उप-देश्य तथा उपदेशरूप ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है क्योंकि बोधस्वरूप परमात्मामें न बन्ध है न मोक्ष है, यही निश्चय है ॥ ३९ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! सब पदार्थोंके असंभव होनेपर देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यादिके भेददर्शी अज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सबकी सत्ता कहांसे उपस्थित हुई ? ॥ ४० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यभेदवेदनचेतसाम् ॥ अज्ञानमात्रादितरासत्तानान्यास्तिनो पुरा ॥ ४१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बोध्यबोधकतापत्तेरभावाद्बोधताकथम् ॥ द्वैतैक्यासंभवेब्रह्मन्कारणा संभवेसति ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बोधेनबोधतामेतिबोधशब्दस्तुबोध्यताम् ॥ भवद्विषयमेवाय मुचितोनास्मदादिषु ॥ ४३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बोधएवयदाहंत्वमेतिबोधान्यतातदा ॥ कुतएषापरेनं तेनासावतिजलेमले ॥ ४४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! देश, काल, क्रिया द्रव्यादिके भेददर्शी अज्ञानीयोंको सब सत्ता भान होनेमें अज्ञानको छोडके अन्य कोई सत्ता नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! तत्ववेत्ताओंकी दृष्टि कारणके अ-भाव होनेसे द्वैत तथा ऐक्यका असंभव होनेपर बोध्यबोधकभावकाभी अभाव है तब बोधता (ज्ञान) भी कैसे हो स-कती है. क्यों कि जिसका बोध हो वह कर्म अवश्य होनाचाहिये ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि हे रामजी ! अज्ञात ब्रह्म निजविषयके अज्ञानक्षयरूप फलका आश्रय होनेसे बोध्यता (बोधकर्मता) को प्राप्त होताहै और इसीसे बोध-शब्दभी बोधफलरूप सकर्मकताको प्राप्त होताहै, परन्तु यह सब अज्ञानयुक्त तुमारे सदृशजनकेही अर्थ उचित है और हमारे सदृश जीवन्मुक्तोंमें नहीं ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! अस्मदादिमें अहंता नहीं है ऐसा कह-नेसे जीवन्मुक्तोंमेंभी आपने अहंताकी प्रवृत्ति दर्शाई और वह अहन्ता अज्ञानका कार्य नहीं है क्योंकि जीवन्मुक्तोंमें अज्ञान नहीं है अतः बोधही अहंतारूप परिणत होताहै, इस दशामें बोधसे अहन्ताका भिन्न होना दुर्वार है, तो जब यह अहन्ता जीवरूपभी नहीं है तब त्रिविधपरिच्छेदशून्य, जलसेभी अत्यन्त निर्मल शुद्ध चिन्मात्र परतत्वस्वरूप तुममें कैसे रहसकती है ॥ ४४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यत्तद्बोधस्यबोधत्वंतदेवाहंत्वमुच्यते ॥ द्वित्वमत्रानिलस्पंददृशोरिवनिगद्यते॥४५॥ श्रीरामउवाच ॥ सौम्याब्ध्यंतस्तरंगादिर्यथादत्तेयथास्थितम् ॥ तथास्वरूपमात्रात्मबोध्यंबोधोवबुद्ध वान् ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथंकःस्याद्दोषोद्वित्वादिदोषतः ॥ अनंतेस्थितएकस्मिञ्छां तेपूर्णपरेपदे ॥ ४७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कोत्रकल्पयिताहंत्वंभुंक्तेभोक्ताचकश्चवा ॥ यन्मूलंयज्जगद्भ्रां तिरनंताप्रविजृंभते ॥ ४८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे राम ! जो बोधकी बोधरूपता है वही वायुके स्पन्दके तुल्य भिन्नरूपसे अहं-तानामसे अस्मदादिमें कहीजाती है न कि अज्ञानियोंके अभिमान प्रधान अहंतारूपसे ॥ ४५ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! यदि ऐसा है जैसे शान्तसमुद्रमें तरंगआदि आकार होताहै ऐसेही जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें चिन्मय आत्म-स्वरूपही अहंतादि जगत् बोध्य, बोध तथा बोद्धारूप धारण करताहै ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-यदि अनंत, शान्त पूर्ण परमात्माही केवल सर्वरूप स्थित है तो तुमारी कही हुई द्वित्वादिदोषरूप अद्वैतहानि कैसे तथा क्या होसकती है ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले कि-हे भगवन् ! शुद्ध अद्वैतपक्षमें जिस निमित्तसे यह अनन्तसंसारका भ्रम विकसित होरहाहै उस अहन्तारूप विकल्पकी कल्पना करनेवाला कौन है तथा उस कल्पनाके व्यवहारका भोक्ताभी कौन है ॥ ४८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ज्ञेयसत्तावबोधेहिबंधनंसच्चनात्यलम् ॥ ज्ञप्तेःसर्वार्थरूपत्वाद्बंधमोक्षावतःकुतः ४९ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञप्तेर्बाह्यार्थतादीपान्नीलादीवप्रवर्तते ॥ बाह्यस्त्वर्थोस्तिसद्रूपोननुदृष्टोपलंभतः ॥५०॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अकारणस्यकार्यस्यबाह्यस्यार्थस्यसत्यता ॥ येयंसाभ्रांतिमात्रात्मरूपिणीनेतरां

गिका ॥ ५१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नःसत्योस्त्वसत्योवादुःखंतावत्प्रयच्छति ॥ तथैवेयंजगद्भ्रांतिःक उपायोत्रकथ्यताम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! परब्रह्मसे भिन्न ज्ञेयपदार्थकी सत्ताही बन्धन है, ब्रह्म सर्वथा सत्य नहीं है; किन्तु तत्त्ववेत्ताओंको ज्ञानस्वरूप परमात्मा सब पदार्थरूप होके प्रारब्धका भोग कराताहै इसलिये यथार्थमें बंध मोक्ष कहां हैं ॥ ४९ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन्! प्रकाशक दीप वा सूर्य जैसे नील पीत घटपट आदि पदार्थ अपनी स्थितिको प्राप्तहोताहै ऐसेही ज्ञानस्वरूप परमात्माकी सत्तासे बाह्यपदार्थभी स्थितिको प्राप्त होताहै अतः प्रत्यक्ष रूपसे ग्रहण होनेसे बाह्यपदार्थकी चेतनसे पृथक् सत्ता सिद्ध होगई ॥५०॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! कार्य्य-रूप पृथिवी आदि बाह्यपदार्थ कारणशून्य है यह पूर्व सिद्ध करचुके हैं तब इसकी सत्यता जो प्रत्यक्षरूपसे भासती-है वह केवल भ्रमरूपही है, भ्रमके सिवाय उसका साधक अन्य कुछ नहीं है ॥ ५१ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे भगवन् स्वप्न सत्य हो वा असत्य हो परंतु दुःख अवश्य देताहै, ऐसे यह जगत्की भ्रान्तिभी है इसकी निवृत्तिके लिये क्या उ-पाय हैं सो कहिये ॥ ५२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंतावद्यथास्वप्नस्तथेयंचेज्जगत्स्थितिः ॥ तत्पिंडग्रहतार्थानांसर्वैवभ्रांतितो दिता ॥ ५३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमेतावतिसंपन्नेसंपन्नंभवतिप्रियम् ॥ कथंचशाम्यत्यर्थानांस्वप्नादौ पिंडरूपता ॥ ५४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पूर्वापरपरामर्शात्पिंडतार्थेषुशाम्यति ॥ स्वप्नेप्येवंस्थितेस्थू लाभावनाविनिवर्तते ॥ ५५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भावनातनुतांयातायस्यासौकिंप्रपश्यति ॥ कथंशाम्य तितस्यायंसंसारकुहरभ्रमः ॥ ५६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जब स्वप्नवत् इस जगत्स्थिति सिद्ध है तब जैसे जाग्रत् होनेपर स्वप्नके पदार्थका बाध होनेसे दुःखकी निवृत्ति होती है ऐसेही आत्मज्ञानसे जगत्के पदार्थोंमें पिण्डग्रह (साकार सत्यताज्ञान) का बाध होनेसे सब दुःख शान्त होजाताहै, और स्वप्नके सदृश यह सब पदार्थोंकी सत्यता भ्रमसेही उदित है ॥ ५३ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन्! क्या संसारको स्वप्नवत् मिथ्यामात्र जाननेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है, और केवल मिथ्याज्ञानसे स्वप्न तथा संसारके पदार्थोंकी स्थूलरूपता कैसे शान्त होती है ॥ ५४ ॥ श्रीवसि-ष्ठजी बोले–हे रामजी! पूर्वापर अध्यात्मशास्त्रके विचारसे ज्ञानोदय होनेसे स्थूलभावना निवृत्त होती है, और स्वप्नमें जाग्रत् होनेसेही स्थूल सत्यत्वबुद्धि जाती रहती है ॥ ५५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन्! पूर्वापरके विचारसे जिसकी जगत् स्थूलभावना सूक्ष्म होगई है वह जीवन्मुक्त जगत्को कैसा देखताहै और उसका यह संसाररूपी गर्तका भ्रम कैसे शान्त होताहै ॥ ५६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उद्ध्वस्तमसदाभासमुत्पन्ननगरोपमम् ॥ वर्षप्रोन्मृष्टचित्राभंजगत्पश्यत्यवासनः ॥ ५७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ततःकिंतस्यभवतिवासनातानवेस्थिते ॥ पिंडग्रहेगतेर्थानांस्वप्नोपमजग त्स्थितेः ॥ ५८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्परूपजगतःक्रमात्सापिविलीयते ॥ वासनातस्यतेनाशुस निर्वातिविवासनः ॥ ५९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अनेकजन्मसंरूढाशाखाप्रसवशालिनी ॥ भवबंधकरीघो राकथंशाम्यतिवासना ॥ ६० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि वासनारहित मुक्त जीव भ्रमणशील, असत्के तुल्य, गन्धर्वनगरकेसमान तथा वृष्टिसे नष्ट चित्रकेसदृश इस जगत्को देखताहै ॥ ५७ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन्! वासनाओंके सूक्ष्म होनेपर स्वप्नके तुल्य इस जगत्के पदार्थोंमें स्थूलबुद्धि नष्ट होनेपर पुनः क्या होताहै ॥ ५८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! संकल्परूप इस जगत्की स्थूलताबुद्धि नष्ट होनेपर उत्तरोत्तर भूमिकाओंके परिपाकक्रमसे इसकी सूक्ष्मवासनाभी नष्टहोजाती है, पश्चात् वासनारहित जीव शीघ्रही आत्मज्ञानसे शान्त होजाताहै ॥ ५९ ॥ श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन्! अनेकजन्मोंसे दृढमूलशाखा तथा पुष्पपत्रादिसे शोभित जन्मरूप बंधनको देनेवाली अतिभयंकर यह वासना शीघ्र कैसे शान्त होती है ॥ ६० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥यथाभूतार्थविज्ञानाद्भ्रांतिमात्रात्मनिस्थिते॥पिंडग्रहवियुक्तेस्मिन्दृश्यचक्रक्रमात्क्षयः ॥ ६१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ पिंडग्रहविमुक्तेस्मिन्दृश्यचक्रेक्रमान्मुने॥संपद्यतेकिमपरंकथंशांतिःप्रजायते ॥ ६२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पिंडग्रहभ्रमेशांतेचित्तमात्रात्मतांगते ॥ निरोधगौरवोन्मुक्तेजगत्यास्थो पशाम्यति ॥ ६३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बालसंकल्परूपेस्मिन्स्थितेजगतिभासुरे ॥ कथमास्थोपशम नंतादृग्दुःखायकिंनरः ॥ ६४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सत्य आत्मस्वरूपके ज्ञानसे केवल भ्रमरूप इस संसारचक्रमें जब स्थूलबुद्धि निवृत्त होजाती है तब शेष प्रारब्धके भोगक्रमसे उसकाभी क्षय होताहै ॥ ६१ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! इस दृश्यचक्रमें स्थूलबुद्धि क्रमसे निवृत्त होनेके पश्चात् अन्य निर्विक्षेपताका साधक क्या है, और पूर्णशान्ति कैसे होती है ॥ ६२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! स्थूलबुद्धिसे रहित सत्यके गौरवसे शून्य केवल चित्तस्वरूपताको प्राप्त जब यह जगत् होजाताहै तब भोगोंकी आस्था सर्वथा शान्त (परवैराग्य) होती है ॥ ६३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! बालकके संकल्पके तुल्य अतिकोमल प्रकाशशील इस जगत्‌के स्थितरहते, दुःखके हेतुभूत भोगोंकी आशाकी शान्ति कैसे होती है, और उस दशामें अतिकोमलसंकल्प बालक मनुष्यभी दुःखोंका अनुभव करतेहुये कैसे देखपडताहै ॥ ६४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्पमात्रसंपन्नेनष्टेदुःखंकथंभवेत् ॥ संकल्पचित्तमात्रंयत्तत्तावत्प्रविचार्यतां ॥ ६५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कीदृशंभगवंश्चित्तंकथंतत्प्रविचार्यते ॥ किंचसंपद्यतेब्रूहितस्मिन्सम्यग्विचारिते ॥ ६६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चितश्चेत्योन्मुखत्वंयत्तच्चितमितिकथ्यते ॥ विचारएषएवास्यवासनानेनशाम्यति ॥ ६७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कियन्नामभवेद्ब्रह्मन्नचेत्योन्मुखताचितेः ॥ चित्तस्याचित्ततोदेतिकथंनिर्वाणकारिणी ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! जब यह जगत् केवल संकल्पमात्र सिद्ध होगया तब दुःखका हेतु कैसे होसकताहै, इसकी सूक्ष्म (चित्त) रूपताके बिनाबिचारे बालककोभी दुःखहेतु होताहै, और विचारसे इसकी संकल्परूपता ज्ञात होनेसे उसके नाशादिसे दुःख नहीं होता, अतएव तुमभी इसके तत्वको विचारो ॥ ६५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! चित्तका स्वरूप क्या है, कैसे उसका विचार होताहै, तथा पूर्णरूपसे उसका विचार करनेपर क्या होताहै ॥ ६६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–चित्‌का विषयकी ओर अभिमुख होना यही चित्तका स्वरूप है, और मेरे संमुख महारामायणका जो तुम श्रवण मनन करतेहो यही चित्तका बिचार है, और इसके विचारसे वासनाकी शान्ति होती है ॥ ६७ ॥ श्रीरामजी बोले कि–चित्तकी विद्यमानतामें चित्तके निरोधद्वारा चित्‌की विषयकी ओर अभिमुखताका अभाव कितना (कबतक) होसकताहै इसलिये निर्वाणकारिणी चित्तकी अचित्तता (सर्वथा शान्ति) कैसे होती है ॥ ६८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेत्यंनसंभवत्येवचित्किंचेतयतेकुतः ॥ चेत्यासंभवतश्चित्तसत्तानास्तिततश्चिरम् ॥ ६९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथंनसंभवत्येतच्चेत्यंयदनुभूयते ॥ अपह्नवश्चानुभवेक्रियतेकथमीदृशः ॥ ७० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यादृक्स्यादज्ञविषयंजगत्तस्यनसत्यता ॥ यादृक्चतज्ज्ञविषयंतदनाख्यंयदद्वयम् ॥ ७१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ त्रिजगत्कीदृगज्ञानांकथंतस्यनसत्यता ॥ तज्ज्ञानांतुजगद्यादृक्तद्वक्तुंकिंनयुज्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यथार्थ चेत्य (विषय) का संभवही नहीं है तो चित् किसका प्रकाश करेगी अतःचेत्यके असंभवसे चित्तकी सत्ताही नहीं है ऐसी चिरकालतक भावनाही चित्तके नाशका उपाय है ॥ ६९ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! चेत्य (दृश्यजगत्) सदा प्रत्यक्षरूपसे सबको अनुभव होताहै उसका असंभव कैसे है, इसप्रकार प्रत्यक्ष अनुभवका अपलाप (निषेध) आप कैसे करते हैं ॥ ७० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जैसा साकार जगत् अज्ञानजीवको अनुभूत होताहै वह सत्य नहीं है और जो ज्ञानीको अनुभूत होताहै वह नामरूपसे परे अद्वैतब्रह्मही है ॥ ७१ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! अज्ञानियोंका यह त्रिलोक कैसा भासताहै, और उसकी सत्यता क्यों नहीं है, और ज्ञानियोंको जैसा भासताहै वह वाणीका विषय क्यों नहीं है ॥ ७२ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आद्यंतद्वैतमज्ञानांतज्ज्ञानांतन्नविद्यते ॥ जगच्चनोसंभवतिनित्यानुत्पन्नमादितः ॥ ७३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आदितोयदनुत्पन्नंनसंभवतिकर्हिचित् ॥ असद्रूपमनाभासंकथंतदनुभूयते ॥ ७४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असदेवसदाभासमनुत्पन्नमकारणम् ॥ जाग्रत्स्वप्नवदुद्भूतमर्थकृच्चानुभूयते ॥७५॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नादौकल्पनादौचयद्दृश्यमनुभूयते ॥ तज्जाग्रद्रूपसंस्कारादनुष्ठानानुभूतितः ॥ ७६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अज्ञानियोंको यह जगत् आदिअन्तसहित अर्थात् देशकालवस्तुकृत परिच्छेदसहित द्वैतरूप भासताहै, और ज्ञानियोंको सर्वथा उत्पत्तिरहित तथा असंभव होनेसे यह जगत् देशकालादिके परिच्छेदसे शून्य (ब्रह्म) रूप है इसलिये वैसा नहीं भासता ॥ ७३ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! जो संसार आरम्भसेहि उत्पत्तिरहित असंभव, असद्रूप तथा अनाभास है वह सबको अर्थक्रियासमर्थ अनुभूत कैसे होताहै ॥ ७४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि कारणशून्य उत्पत्तिरहित तथा असत्यरूपही यह जगत् जाग्रत्स्वप्नके

तुल्य सत्केसमान भासमान तथा अर्थक्रियामें समर्थ अनुभूत होताहै ॥ ७५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! स्वप्न तथा मनोराज्यादिकी कल्पनादिमें जो जगत् अनुभूत होताहै वह तो जाग्रत्के व्यवहारसे उत्पन्न संस्कारसे अनुभूत होताहै और यह जाग्रत् किससे अनुभूत होताहै ? ॥ ७६ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ किंजाग्रद्रूपमाहोस्विदन्यत्स्वप्नेनुभूयते ॥ संकल्पेचमनोराज्येइतिमेवदराघव ॥ ७७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नेषुकल्पनाद्येषुजाग्रदेवावभासते ॥ संस्कारात्मतयानित्यंमनोराज्यभ्रमेषुच ॥ ७८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तदेवजाग्रत्संस्कारात्स्वप्नश्चेदवभासते ॥ तत्स्वप्नेलुठितंगेहंकथंप्रातरवाप्यते ॥ ७९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ नजाग्रद्राजतेस्वप्नेतद्ब्रह्मान्यत्तदेवहि ॥ बुद्धमेतत्कथंत्वन्यदपूर्वमिवभासते ॥ ८० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! स्वप्नसंकल्प तथा मनोराज्यादि जो पदार्थ अनुभूत होतेहैं वे इस प्रसिद्ध जगत्के हैं अथवा अन्य हैं यह मुझसे कहो ॥ ७७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–स्वप्न, कल्पना, भ्रम तथा मनोराज्यादिमें जो जगत् भासताहै वह नित्य जाग्रत्केही है तथा उसके संस्कारसेही भासताहै ॥७८॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–यदि जाग्रत्केही पदार्थ संस्कारसे स्वप्नादिमें भासतेहैं तो रात्रिके स्वप्नमें गिराहुआ गृह प्रातःकालमें कैसे मिलताहै ॥ ७९ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! स्वप्नकल्पनादि जो जगत् भासताहै वह जाग्रत्का नहीं है किन्तु ब्रह्मही स्वप्नके पदार्थरूपसे भासताहै यह आपके अभिप्रायको मैंने जानलियाहै, परन्तु केवल इतना संदेह शेष है कि ब्रह्मसे अपूर्वकेसमान यह जगत् भासताहै ॥ ८० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नानुभूतोनुभूतश्चचेतस्यर्थोविभासते ॥ सर्गाद्यंतादिमध्येषुस्वभ्यस्तस्त्विति भासते ॥ ८१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्वप्नात्मकंभातिजगदित्येवबुद्धवान् ॥ ग्रहवत्स्वप्नयक्षोयंकथंब्रह्मंश्चिकित्स्यते ॥ ८२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ योयंसंसरणस्वप्नःस किंकारणकोभवेत् ॥ कार्यान्नकारणंभिन्नमितिदृष्टंविचारय ॥ ८३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ चित्तंस्वप्नोपलंभानांहेतुस्तस्मात्तदेवते ॥ विश्वंचाद्यंतरहितमनसारमनामयम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! ब्रह्मसे अपूर्व यथार्थमें यह जगत् नहीं भासता किन्तु कोई पदार्थ चित्तमें अनुभव किया और कोई नहीं किया इसप्रकार कल्पितसृष्टिके आदि अन्त मध्यमें जिस २ आकारसे अनुभूत है उसी २ आकारसे भासताहै और उसमें जब तुम ब्रह्माकारका पूर्ण अभ्यास करोगे तब इसी ब्रह्म आकारसे भासेगा ॥ ८१ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! आपके इस कथनानुसार यह जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् मिथ्या भासताहै यह मैंने जाना तथापि ग्रहके तुल्य यह संसार स्वप्नरूपी पिशाचबाधा करताहै अतः इसकी शान्ति किस उपायसे होती है यह कहिये ॥ ८२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! कारणसे कार्य्य भिन्न नहीं होता इसलिये इस संसाररूपी स्वप्नका कारण क्या है यह तुम विचारो उस विचारद्वारा कारणके नाशसे कार्य्य जगत्काभी नाश होगा ॥ ८३ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे ब्रह्मन् ! स्वाप्नपदार्थोंका हेतु चित्तही है, इसलिये स्वप्नके पदार्थभी चित्तरूपही हैं और सारताशून्य यह संसार आदिअन्तशून्य निरामय ब्रह्मरूपही है ॥ ८४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंचित्तंमहाबुद्धेमहाचिद्घनमेवतत् ॥ तथास्थितंनस्वप्नादिकिंचनास्तीतरात्मकम् ॥ ८५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अवयवावयविनोर्यथाभिन्नस्तथासहि ॥ तत्रानवयवेब्रह्मण्येकताजगदादिना ॥ ८६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंनसंभवत्येवनित्यानुत्पन्नमादितः ॥ जगतेनाजरंशांतमजंसर्वमवेधितम् ॥ ८७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ काकतालीयवन्मन्येसर्गाद्यंतादयोभ्रमाः ॥ भ्रांतिद्रष्टृत्वभोक्तृत्वसहिताःपरमेपदे ॥ ८८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ याव्यापारवतीरसाद्रसविदांकाचित्कवीनांनवादृष्टिर्यापरिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषाचवैपश्चिती ॥ तेद्वेअप्यवलंब्यविश्वमखिलंनिर्वर्णितंनिर्वृतंयावदृष्टिहशोनसंतिकलितानोशून्यतानोभ्रमः ॥ ८९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे रामविश्रांतिर्नामनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९० ॥

अर्थ— श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबुद्धे रामजी ! यह चित्त महाचिद्घनरूपही है, ऐसी स्थिति होनेपर ब्रह्मसे भिन्न स्वप्नादि कुछभी नहीं है ॥ ८५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे ब्रह्मन् ! जब चिज्जगत् है, तथा विषयकी ओर अभिमुख

चित् चित्तरूप है तो जैसे शाखारूपअवयवोंका अवयवी वृक्षका भेदसहिष्णु अभेद है ऐसेही चित्त और जगत्‌काभी क्यों नहीं मानते और जगत्‌के आदि समष्टिचित्तके निरवयव ब्रह्मकी एकताभी होजायगी ॥ ८६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! यह जगत् तो आरंभसे उत्पन्नही न हुआ, इसलिये कल्पितजगत्‌का ब्रह्मकेसाथ भेदाभेदका अधिकरण अवयवअवयवीभावसबन्धका संभव नहीं है इसलिये यह जगत् शान्त, अजर, अमर, अजन्मा तथा अखण्ड परमात्मरूपही है ॥ ८७ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! आपके उपदेशसे मैं ऐसा मानताहुं कि भ्रमसे द्रष्टृत्व तथा भोक्तृत्वआदि सहित सृष्टिके आदिअन्तभ्रम काकतालीयन्याय (अकस्मात्) से ब्रह्ममें स्थित हैं ॥ ८८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! पामरदृष्टि, यौक्तिकदृष्टि, तथा तत्वदृष्टि ये तीन दृष्टि प्रसिद्ध हैं, इनमेंसे प्रथम पामर (मूर्ख) दृष्टि द्वितीयदृष्टिसे और द्वितीयतृतीयदृष्टिसे निराकरण करनेके योग्य है अतः मैंने सारमेंसेभी निर्मथन करके मुख्य सारभूत पदार्थको ग्रहणकरनेमें समर्थ तथा प्रमाणप्रमेयतत्वकी परीक्षा करनेमें कुशल कवियोंकी दृढविचारमें व्यापारवती द्वितीय अभिनवदृष्टि तथा अध्यात्मशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनादिसे सिद्ध परमतत्वको साक्षात्करनेवाली जीवन्मुक्तोंकी तृतीय तत्वदृष्टि इन उत्तरकी दोनोंदृष्टियोंको अवलम्बनकरके यावत्पर्य्यन्त सर्वदृष्टि, द्रष्टा जीव कालत्रयमें नहीं है जगत्‌की शून्यता तथा भ्रमभी नहीं है इस ज्ञानपूर्वक नित्य अपरोक्ष परमानन्द ब्रह्ममें अद्वैतरूपस्थितिपर्य्यन्त इस संपूर्णविश्वका वर्णन किया ॥ ८९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे रामविश्रान्तिर्नाम नवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९० ॥

एकनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९१ ॥

अज्ञानसे ब्रह्मही जगत्‌रूपसे भासता है और ज्ञानसे केवल निर्वाण ब्रह्मस्वरूपही शेष रहताहै यह विषय उत्तमरीतिसे १९१ के सर्गमें वर्णनकिया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तन्मुनिश्रेष्ठपरमार्थमयंजगत ॥ सर्वदासर्वभावात्मानोदेतिनचशाम्यति ॥ १॥ भ्रांतिरेवेयमाभातिजगदाभासरूपिणी ॥ भ्रांतिरेवापिवानैवब्रह्मसत्तैवकेवला ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच काकतालीयवद्ब्रह्मयद्भातीवात्मनात्मनि ॥ सततैवात्मनात्मैवजगदित्यवबुद्ध्यते ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथंतपत्यहोदिक्कंसर्गस्यादौपरत्रच ॥ कथंभित्त्याविनाभातिवदर्दीपप्रभामुने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे मुनिश्रेष्ठ ! इसरीतिसे यह संपूर्णजगत् परमार्थभूत ब्रह्मका विवर्तमात्र है और वह सदा सबपदार्थमय ब्रह्मन कदाचित् उदित होताहै न शान्त होताहै ॥ १ ॥ और यौक्तिक (तर्क) दृष्टिसे केवल भ्रान्ति (विक्षेपशक्तिप्रधान अविद्या) ही जगत्‌स्वरूपसे भासती है और तत्वदृष्टिसे तो वह भ्रान्तिभी नहीं है किन्तु केवल ब्रह्मसत्ताही है ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! तुमने यथार्थ जाना है काकतालीयवत् अविद्यासे निज आत्मामें अपनेहीको जो ब्रह्म जगदाकार भासताहै वह जीवभूत ब्रह्मही अपने आपको आपही जगत्‌स्वरूपसे जानताहै ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले-हे मुने अहो ! आश्चर्य है कि महाप्रलय, सृष्टिके आरंभ तथा मोक्षदशामें आलम्बनभूत दिशादिके विभागसे शून्य अपरिच्छिन्न चित्प्रकाश कैसे प्रकाश करताहै, क्योंकि प्रकाश्य भित्तिआदि आलम्बनके विना दीपप्रभा किसका और कैसे प्रकाश करती है यह कहिये ॥ ४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंरूपमिदंभातिचितिरूपप्रभाप्रभा ॥ पश्यसैवात्मनास्तेयत्प्रकाशादिभिरेवच ॥ ५ ॥ भित्तौप्रकाशोभातीवतत्कुड्यंभासनंचतत् ॥ दृश्यस्यासंभवादादौवक्ताद्रष्टाप्रदृश्यताम् ॥ ६ ॥ तस्माद्द्रष्टास्तिनोदृश्यंनैवास्तीदमनामयम् ॥ चित्प्रभैवात्मनाभित्तिर्भवत्याभासनंतथा ॥ ७ ॥ द्रष्टृदृश्यात्मिकैकैवस्वात्मनैवविराजते ॥ स्वप्नादिषुयथेहाद्यद्रष्टृदृश्यात्मिकासती ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अवश्य यह परमात्मा सूर्य्य आदि अन्यप्रकाशकोंकोभी प्रकाशक इसप्रकार आश्चर्यरूपही प्रकाशकरताहै, तुम स्वयं विचारदृष्टिसे देखो रात्रिमें सूर्य्य चन्द्र आदि प्रकाशके अभावमें यह आत्मप्रकाशही सबका प्रकाशकरताहै, तथा सूर्य्यादिके उदयमें उनके प्रकाशादिको प्रकाशताहुआ (तस्य भासा सर्वमिदंविभाति, तमेवभान्तमनुभाति सर्वम्) उनके साथ विद्यमान है ॥ ५ ॥ तथा भित्ति आदिमें सूर्य्य आदिका प्रकाशभी भित्ति आदिकी अपेक्षा नहींरखता, किन्तु इसके विपरीत भित्ति आदि तथा उसका भान स्वप्रका-

शताबलसेही सिद्ध है और कुड्य (भित्ति) आदि संबन्धके विना पूर्व तथा भाविदशामें जैसे आकाशमें दृष्ट है ऐसेही दृश्यके अभाव प्रलयसृष्टिके अभाव वा मोक्षदशामें वक्ता तथा श्रोतारूप यह आत्मा विषयरहित स्वस्वरूपमात्रका साक्षी तुम स्वयं देखो अनुभव करो ॥ ६ ॥ इस हेतुसे द्रष्टा तथा दृश्य आदि त्रिपुटी कुछभी नहीं है, किन्तु सृष्टिकी आदिमें चित्प्रभाही स्वयं आलम्बन भित्ति तथा उसका भासनादिरूप धारणकरती है ॥ ७ ॥ जैसे स्वप्नादिमें चित्प्रभा द्रष्टा तथा दृश्य आदि त्रिपुटीरूप होती है ऐसेही जाग्रत्‌मेंभी वह एक अद्वितीयस्वरूपही दृश्य द्रष्टा तथा दर्शनरूप धारण करके विराजती है ॥ ८ ॥

चिद्भात्येवहिसर्गादौकचंतीभातिसर्गवत् ॥ भासनीयंचभानंचरूपंयत्रस्वयंप्रभा ॥ ९ ॥ एकैवचित्त्रयं भूत्वासर्गादौभातिसर्गवत् ॥ एषएवस्वभावोस्यायदेवंभातिभासुरा ॥ १० ॥ एतत्तुस्वप्नसंकल्पनगरे ष्वनुभूयते ॥ इत्थंनामतपत्येषाचिद्दीप्तिःप्रथमोदिता ॥ ११ ॥ नभस्येवनभोरूपायदिदंभासतेजगत् ॥ अनाद्यंतमिदंतस्याःसर्गाःसर्गात्मभासनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस सृष्टिकालमें भासनीयपदार्थ, भान तथा भासयित्री चित्प्रभा स्वयं है वहां सृष्टिकेसमान प्रकाश करतीहुई चित्‌ही प्रकाशती है ॥ ९ ॥ एकही चित् सृष्टिकी आदिमें द्रष्टा, दर्शन, तथा दृश्य इन तीनोंरूप होके सर्गकेसमान भासती है, मायाशक्तिप्रधान इस चित्‌का यह स्वभावही है कि इसप्रकार प्रकाशशील वह जगत्-स्वरूपसे भासती है ॥ १० ॥ स्वप्नसंकल्प तथा गन्धर्वनगरादिमें यह अनुभूत होताहै कि सबसे प्रथम उदित चित्प्रभा इस संसाररूपसे प्रकाशती है ॥ ११ ॥ निज चिदाकाशरूपमें चिदाकाशरूपही यह जगत्‌रूपसे भासती है, और इस चित्‌का सृष्टिरूपसे भान होनाही अनेक सृष्टि हैं ॥ १२ ॥

स्वभावभूतमस्माकंत्विदंभातिमहात्मनाम् ॥ भास्यभासकसंवित्तिर्नश्यतिप्रतिभामिता ॥ १३ ॥ तदा तुनामसर्गादौनासीद्भास्योनभासकः ॥ मिथ्याज्ञानवशादेवस्थाणौपुंप्रत्ययोयथा ॥ १४ ॥ तथात्मनि द्वितानाचित्तेद्वैतविभासनम् ॥ सर्गादौनचभास्योस्तिनचवानास्तिभासकः ॥ १५ ॥ कारणाभा वतोद्वैतंचिद्व्योमाभातिकेवलम् ॥ १६ ॥ किंनामकारणंब्रूहिसर्गादौचितिवस्तुतः ॥ १६ ॥

अर्थ—अज्ञानियोंको यह आश्चर्य्यवत् भासती है, और हमारेसमान ज्ञानी महात्माओंको तो स्वभाव (ब्रह्म-रूप) ही भासती है, क्योंकि भास्यभासककी संवित्ति (त्रिपुटीज्ञान) हमको होनेपरभी तत्वके अनुसन्धानसे शीघ्र नष्टहोजातीहै ॥ १३ ॥ सृष्टिके पूर्व भास्यभासकक्रम नहीं था किन्तु पश्चात् मिथ्या अज्ञानके वशसे परमात्म-स्वरूपमेंही यह जगत्‌का भ्रम ऐसे हुआ जैसे स्थाणु (ठुंठ) में पुरुषकी बुद्धि, इसरीति तत्वका अनुसंधान करना चाहिये ॥ १४ ॥ ऐसेही आत्मामें द्वैतका भान नहीं है किन्तु चित्तमें द्वैत भासताहै, और सृष्टिकी आदिमें भास्य जगत् नहीं था परन्तु चिद्रूप परमप्रकाश परमात्मा अवश्य है, ऐसे विचारोंसे तत्वानुसन्धान करनाचाहिये ॥ १५ ॥ कारणके अभावसे चिदाकाशही द्वैतरूपसे भासताहै, क्योंकि यथार्थ सर्गके आरम्भमें शुद्धचेतनमें क्या कारण हो-सकताहै सो कहो ॥ १६ ॥

अभावादर्थदृष्टीनांचिदेवेत्थंप्रकाशते ॥ जगद्भानमिदंयत्तत्रजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तकम् ॥ १७ ॥ नस्वप्नोसंभव दृश्यंकेवलंब्रह्मभासते ॥ चिन्मात्रव्योमसर्गादावित्थंकचकचायते ॥ १८ ॥ यत्स्वमेववपुर्वेत्तिजगदि त्यजगन्मयम् ॥ चिन्मात्रव्योमसर्गादावित्यंभातिविकासनम् ॥ १९ ॥ यदिदंजगदित्येवशून्यत्वांबर योरिव ॥ २० ॥ बुद्धावयावत्स्वनुभूतियुक्तंस्थातव्यमेतेनविकल्पमुक्तम् ॥ पाषाणमौनंभुजनेनतूकंन ग्राह्यमज्ञेनहिभुक्तमुक्तम् ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अवि० महावादबोधनंनामैकनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९१ ॥

अर्थ—पदार्थदृष्टियोंके अभावसे चिदाकाशही इस जगदाकारसे प्रकाशताहै, इसहेतुसे सृष्टिकी आदिमें जो जगत्‌का भान है वह जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिसे रहित तुरीय ब्रह्मरूपही है ॥ १७ ॥ इस स्वप्नरूप दृश्यका संभव नहीं है किन्तु ब्रह्मही भासताहै, सृष्टिकी आदि केवल चिन्मात्र आकाश इसप्रकार जगत्‌रूपसे स्फुरितहोताहै ॥ १८ ॥ जो परमात्मा स्वयं निजस्वरूप तथा जगत्‌को जानता है वही जगत्‌से शून्य ब्रह्म चिन्मात्र आकाश सृष्टिकी आदिमें जगत्‌रूपसे भान होताहै ॥ १९ ॥ प्रकाशरूप परमात्माही यह जगत् है, जगत् तथा परमात्मा आकाश तथा शून्यताके तुल्य अभिन्नरूप है ॥ २० ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मेरे कहेहुये तत्वके अनुसंधानरीतिसे आत्मतत्वको

जानकर भूमिकाओंके परिपाकसे निजअनुभवकी दृढतायुक्त वचनादि इन्द्रियोंके निरोधद्वारा पाषाणवत् मौन धारण-करके निर्विकल्पसमाधिमें स्थित रहना चाहिये, तथा अज्ञदशामें अपनेसे और अन्यप्राणियोंसे अनादिसंसारमें जो विषयसुख भोगाहै वह अब अधिक वैराग्यसे परित्यक्त हुआहै, उसको दुष्टप्राणीके कथनसे पुनः नहीं ग्रहणकरनाचाहिये क्योंकि विषयसुख समाधिका विघातक है ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महावादबोधनं नामैकनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९१ ॥

द्विनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९२ ॥

बोधदशाको प्राप्त रामचन्द्रजीने जिसप्रकार यह जगत् चिन्मात्र है उसको विस्तारसे गुरुके समीपमें वर्णन कियाहै इस विषयको इस १९२ के सर्गमें वर्णनकियाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ अहोनुसुचिरंकालंसंभ्रांतावयमंतरे ॥ अपरिज्ञातमात्रेणसंसारपरमांबरे ॥ १ ॥ बुद्धे यावदियंनामजगद्भ्रांतिर्नकिंचन ॥ नचाभून्नचवास्तीयंनचनाम भविष्यति ॥ २ ॥ सर्वंशांतंनिरालंबंविज्ञानंकेवलंस्थितम् ॥ अनंतंचिद्घनंव्योमनीरागमपकल्पनम् ॥ ३ ॥ परमाकाशमेवेदमपरिज्ञातमात्रकम् ॥ संसारतामिवास्माकंगतंचित्रमहोनुभोः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—अहो! कैसे आश्चर्य्यका विषय है कि इस अगाध आकाशके अन्तर्गत इस ब्रह्मांडके एकदेशमें केवल आत्मतत्त्वके अज्ञानमात्रसे दीर्घकालतक हम सब भ्रमण करतेरहे ॥ १ ॥ और आत्मतत्वका ज्ञान होनेपर तो यह जगत्की भ्रान्ति न निश्चयरूपसे थी, न है, और न होगी ॥ २ ॥ यह सब जगत् शान्त, निरालंब, विज्ञानघन, अनन्त, कल्पनाशून्य, रागरहित और केवल चिदाकाशमात्रही स्थित है ॥ ३ ॥ हे मुने! यह कैसा आश्चर्य्य है, कि यह परमचिदाकाशही हमारे अज्ञानमात्रसे संसारके सदृश भासताहै ॥ ४ ॥

इत्थंद्वैतमिदंभातमिमेलोकाइमेऽद्रयः ॥ परमाकाशमित्यच्छमेवानच्छमिवस्थितम् ॥ ५ ॥ सर्गादौ परलोकादौस्वप्नादौकल्पनादिके ॥ चिदेवचेत्यवद्भातिकुतोन्याकिलदृश्यधीः ॥ ६ ॥ स्वर्गेवानरकेवापि स्थितोस्मीतिमतिर्यदि ॥ तत्तस्यानरकस्यांतोदृश्यंसंविन्मयात्मकम् ॥ ७ ॥ नेदंदृश्यंनचद्रष्टानसर्गो नजगन्नचित् ॥ नजाग्रत्स्वप्नसिद्धादिकिमपीदंतदप्यसत् ॥ ८ ॥

अर्थ—परमनिर्मल चिदाकाशही अपने स्वरूपसे स्थित इसप्रकारसे द्वैतरूपसे भासताहै, वही इन संपूर्णलोक-रूपसे भासताहै, इन सब पर्वतरूपसेभी वही स्वच्छ परमात्मा स्थित है ॥ ५ ॥ हे भगवन्! सृष्टिके आदिमें, पर-लोकादिमें, स्वप्नादिमें, काव्यादिकी रचनामें तथा मनोराज्यआदिमें चित्स्वरूप परमात्माही पदार्थरूपसे भासताहै, चित्तसे भिन्न अन्यदृश्यकी बुद्धि कहांसे होसकती है ॥ ६ ॥ मैं स्वर्ग वा नरकमें स्थित हुं ऐसी जो भ्रान्ति है वही पुरु-षकेलिये नरक वा स्वर्गका बन्धन है अतः यह सब संवित्स्वरूपही है ॥ ७ ॥ यथार्थमें न यह दृश्य है, न द्रष्टा है, न सर्ग है, न चिदाभास (जीव) है, न जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति है, जो अनिर्वचनीय अविद्या यह भासती है वहभी असत् है ॥ ८ ॥

कुतोस्याःसंभवोभ्रांतेरितिचेद्दृश्यतेमुने ॥ तदेतदविनोयुक्तंभ्रांत्यभावानुभूतितः ॥ ९ ॥ भ्रांतिर्नसंभवत्येवनिर्विकारेज्ञतापदे ॥ यत्विदंभ्रांतिताज्ञानंतत्तदेवेत्तरन्नतत् ॥ १० ॥ निरंतरेनिराद्यंतेव्योम्निशैलोदरेथवा ॥ कुतोन्यताकल्पकंस्याज्ज्ञपदेचाविकारिणि ॥ ११ ॥ मिथ्यैवानुभवोभ्रांतेःस्वप्नेस्वमरणोपमः ॥ यदनालोकनंनामशाम्यतीदंविलोकनात् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे मुने! इस भ्रान्तिकी उत्पत्ति कहांसे हुई, यदि इसका विचार करैं सो यहभी योग्य नहीं है क्योंकि भ्रान्तिके असत्रूप होनेसे कारणकी चिन्ताभी व्यर्थही है ॥ ९ ॥ निर्विकार तत्त्वज्ञानस्वरूप आत्मामें भ्रान्तिका संभव नहीं है, और जो कुछ यह भ्रान्तिका ज्ञान है वहभी चित्स्वरूप परमात्माही है न कि अन्य ॥ १० ॥ अन्तरालशून्य तथा आदिअन्तरहित आकाशमें, अथवा स्फटिकशिलाके गर्भमें, तथा निर्विकार ज्ञानस्वरूप परमपदमें द्वैतभेदकी कल्पना करनेवाला अन्य कौन होसकताहै ॥ ११ ॥ बिनाविचारे स्वप्नमें निजमरणके समान जो भ्रान्तिका अनुभव है वह मिथ्याही है, क्योंकि विचारसे यह शान्त होजाताहै ॥ १२ ॥

मृगतृष्णांबुगंधर्वनगरद्वींदुविभ्रमः ॥ तथाविद्याभ्रमश्चायंविचारान्नोपलभ्यते ॥ १३ ॥ बालवेतालव द्भ्रांतिर्नविद्याजाग्रगापिहि ॥ अविचारेणसंरूढाविचारेणोपशाम्यति ॥ १४ ॥ कुतआसीदितिमुनेना त्रप्रश्नोविराजते ॥ सतएवविचारेणलाभोभवतिनासतः ॥ १५ ॥ प्रामाणिकविचारेणप्रेक्षितंयन्नलभ्य ते ॥ तदेतदसदेवादितत्तर्ह्यनुभवोभ्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे मृगतृष्णाका जल, गन्धर्वनगर, द्वितीयचन्द्रमा भ्रम, विचारसे नहीं प्राप्तहोताहै ऐसेही अविद्याका भ्रमभी ज्ञानोत्तर नहीं मिलता ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! बालकको वेतालके समान यह भ्रान्ति प्रत्यक्षदृष्ट होनेपर यथार्थमें कुछ नहीं है, अविचारसे यह प्रौढ होती है और विचारसे शान्त होजाती है ॥ १४ ॥ हे मुने ! यह भ्रान्ति कहांसे आई यह प्रश्नभी इसकेविषयमें शोभित नहींहोता क्योंकि सत्केही विचारसे लाभ होता है नकि असत्के और भ्रान्तिकी मूलभूत अविद्या असत् होनेसे विचारके योग्य नहीं है ॥ १५ ॥ जो वस्तु प्रामाणिक-विचारसे दृष्ट लब्ध न हो वह असत् है, जगत्का आदि मूल अविद्या है और वह अनुभवसे असत् भ्रमरूप है ॥ १६ ॥

यन्नास्तीतिपरिच्छिन्नंप्रमाणैःसुविचारितम् ॥ खपुष्पशशशृंगाभंतत्कथंलभ्यतेसतः ॥ १७ ॥ सर्वतः प्रेक्ष्यमाणोपियःकुतश्चिन्नलभ्यते ॥ तस्यस्यात्कीदृशीसत्तावंध्यातनयरूपिणः ॥ १८ ॥ भ्रांतिर्नसंभव त्येवतस्मात्काचित्कदाचन ॥ निरावरणविज्ञानघनमेवेदमाततम् ॥ १९ ॥ यत्किंचिज्जगदत्रात्रभातीदं परमेवतत् ॥ परंपरेपरापूर्णेपूर्णमेवावतिष्ठते ॥ २० ॥ नभातंनचनाभातमिहकिंचित्कदाचन ॥ इदमि त्थंस्थितंस्वच्छंशांतमेवजगद्वपुः ॥ २१ ॥ अजममरमहार्यमार्यजुष्टंपरमविकारिनिरामयंसमंतात् ॥ पदमहमुदितंततंहिशुद्धंनिरहमनेकमथाद्वयंविकासि ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांत्युपगमवर्णनंनामद्विनवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९२ ॥

अर्थ—जो श्रुति आदि प्रामाणिक विचारोंसे सुविचारित होनेपरभी परिच्छिन्नरूपसे उपलब्ध नहींहोता वह शशशृंगवत् असत्के तुल्य है ॥ १७ ॥ सबओरसे विचारपूर्वक देखनेपरभी जो किसी कारण वा प्रमाणसे उपलब्ध नहींहोता उस वन्ध्यापुत्रके सदृशकी सत्ता कैसी होगी ॥ १८ ॥ इसलिये कदाचित् किसी भ्रान्तिका संभव नहीं है किन्तु निरावरण विज्ञान आत्माही इस सर्वरूपसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ जो कुछ जगत् यहां इससमय भासताहै वह परब्रह्मस्वरूपही है, क्योंकि निरतिशयआनन्दसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपमें वह ब्रह्मही स्थित है ॥ २० ॥ यह कदाचित् न भान हुआ, और न अभानस्वरूप है, किन्तु स्वच्छ, निर्मल, परब्रह्मही इस जगत्स्वरूपसे स्थित है ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! अजर अमर दूसरेको अपहरण करनेके अयोग्य श्रेष्ठविद्वानोंसे सेवनीय विकारशून्य निरामय सब-ओरसे बोधरूपसे उदयको प्राप्त शुद्ध अहंभावही निरहंकाररूपताको प्राप्त तथा अनेकरूप होनेपरभी अद्वैतरूप सर्वथा आवरणशून्य वा ब्रह्मही स्थित है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विश्रांत्युपगमवर्णनं नाम द्विनवत्युत्तर शततमः सर्गः ॥ १९२ ॥

त्रिनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

ज्ञानद्वारा क्षणमेंही अज्ञानरूप निद्राका क्षय होनेपर संपूर्ण द्वैतके मार्जनपूर्वक नित्य आत्मस्वरूपकी स्थिति श्रीरामचन्द्रजीने इस १९३ के सर्गमें वर्णन की है यह विषय वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ अनादिमध्यपर्यंतंनदेवानर्षयोविदुः ॥ यत्पदंतदिदंभातिकजगत्कचदृश्यता ॥ १ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदवाक्यसंदेहविभ्रमैः ॥ अलमस्माकमाशांतमाद्यंरूपमनामयम् ॥ २ ॥ व्योमनिव्योम भावानांप्रशांतंयादृगासितम् ॥ तादृक्चिद्व्योमनिस्फारत्रिजगद्व्योमभासनम् ॥ ३ ॥ यथाव्योमनिव्यो मत्वंदृषत्त्वंदृषदिस्थितम् ॥ जलत्वंचजलस्यांतर्जगत्त्वंचिद्घनेतथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुने ! कर्मोपासनासे सिद्धदेव, तपोयोगसे सिद्ध ऋषि अथवा नेत्र आदि इन्द्रियगण जिस आदिअन्तमध्यशून्य परमात्मस्वरूपको नहींजानते वही परब्रह्म इस जगत्रूपसे भासता है, उससे भिन्न कहां जगत् और कहां दृश्य है ॥ १ ॥ हे मुने ! द्वैत अद्वैतके अनुसन्धानसे मनमें उत्पन्न भेदजनित वाक्योंसे आविर्भूत भ्रमोंसे हमको कुछ प्रयोजन नहींहै किन्तु सृष्टिसे पूर्व आदिसिद्ध सर्वथा शान्त श्रुतिसिद्ध जो ब्रह्मस्वरूप है वही

इस सर्वरूपसे भासताहै ॥ २ ॥ जैसे आकाशमें आकाशत्व, केशभ्रम, मुक्तावली तथा गन्धर्वनगर आदि पदार्थ अभेदरूपसे स्थित हैं ऐसेही चिदाकाशमें विशाल यह त्रिलोकरूप आकाशत्व आदि धर्म अभिन्नरूपसे स्थित हैं ॥ ३ ॥ जैसे आकाशमें आकाशत्व, पाषाणमें पाषाणत्व, तथा जलमें जलत्व, अभेदरूपसे स्थित है ऐसेही चिद्घन ब्रह्ममें संसारत्व है ॥ ४ ॥

साहंतादिजगद्दृश्यमाशाकाशविसार्यपि ॥ महाचिदुदरंविद्धिखंशांतंशून्यतोदितम् ॥ ५ ॥ जीवस्यास्मिन्विमूढस्यपरेपरिमितोदये ॥ प्रस्फुरंश्चापिसंसारपिशाचउपशाम्यति ॥ ६ ॥ भेदोपलब्धिर्गलति व्यवहारवतोप्यलम् ॥ जडस्येवाजडस्यैववीचेरिवजलोदरे ॥ ७ ॥ काप्यज्ञानरवौयातेप्रतापायाकरेभृशम् ॥ संसारसत्तादिवसोयात्यस्तंसनिशागमः ॥ ८ ॥

अर्थ—दिशा तथा आकाशमें यह अहन्तासहित त्रिलोकीरूप दृश्य असंख्येयरूपसे विशाल होनेपरभी इसको आप शान्त शून्यरूपसे उदित महाचेतनका उदरही समझो ॥ ५ ॥ इस मूढजीवके हृदयमें अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वरूपका उदयमात्र होनेसे यह प्रस्फुरितभी संसाररूप पिशाच शीघ्रही शान्त होजाताहै ॥ ६ ॥ ज्ञानीपुरुषके व्यवहारमें तत्पर होनेपरभी भेदकी प्राप्ति ऐसे नष्ट होजाती है जैसे जलमें तरंग ॥ ७ ॥ अज्ञानरूपी सूर्य्यके चलेजानेपर आध्यात्मिक, तथा आधिदैहिक आदि त्रिविध संतापरूप अज्ञानसूर्य्यका प्रताप नष्टहोजाताहै, तथा संसारकी सत्तारूप दिवसभी अस्त होजाताहै और मोक्षसुखरूपी विश्राम शैत्यादिरूप निशागम प्राप्तहोताहै ॥ ८ ॥

भावाभावेषुकार्येषुजरामरणजन्मसु ॥ ज्ञआजवंजवीभावेतिष्ठन्नपिनतिष्ठति ॥ ९ ॥ नाविद्यास्तीहनभ्रांतिर्नदुःखंनसुखोदयः ॥ विद्याविद्यासुखंदुःखमितिब्रह्मैवनिर्मलम् ॥ १० ॥ परिज्ञातंसदेतत्तुयावद्ब्रह्मैव निर्मलम् ॥ अपरिज्ञातमस्माकमब्रह्मात्मनविद्यते ॥ ११ ॥ प्रबुद्धोस्मिप्रशांतामेसर्वाएवकुदृष्टयः ॥ शांतंसमंसोहमिदंखंपश्यामिजगत्रयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा उत्पत्तिविनाशसहित कार्य्योंमें तथा जरा जन्म और मरणआदि अतिवेगयुक्त व्यवहारमें स्थितभी ज्ञानी पुरुष यथार्थमें नहीं स्थितरहता ॥ ९ ॥ न अविद्या है, न भ्रम है, न दुःख है और विषयजनित सुखक उदय है, किन्तु विद्या, अविद्या, सुख तथा दुःखादिरूप निर्मलब्रह्मही है ॥ १० ॥ परिज्ञात होनेसे यह सब निर्मल ब्रह्महीहै और अस्मद्आदि तत्त्ववेत्ताओंको कुछभी अपरिज्ञात तथा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! अब मैं प्रबुद्ध हूं, मेरी सब कुदृष्टि (भ्रान्ति) शान्त होगई, अतः मैं अब इस त्रिलोकको सर्वथा द्वैतकी विषमतासे शून्य शान्त चिदाकाशरूपही देखताहूं ॥ १२ ॥

सम्यग्ज्ञातंयावदिदंजगद्ब्रह्मैवकेवलम् ॥ अज्ञातात्माभवद्ब्रह्मज्ञातात्मन्यधुनास्थितम् ॥ १३ ॥ ज्ञाताज्ञातमनिर्भासंब्रह्मैकमजरंतथा ॥ शून्यत्वैकत्वनीलत्वरूपमेकंनभोयथा ॥ १४ ॥ निर्वाणमासगतशंकमासेनिरीहमासेसुसुखेहमासे ॥ यथास्थितंनित्यमनंतमासेतदेवमासेनकथंसमासे ॥ १५ ॥ सर्वंसदैवाहमनंतमेकंनकिंचिदेवाप्यथवातिशांतः ॥ सर्वंनकिंचित्सदेकमस्मिनचास्मिचेतीयमहोनुशांतिः ॥ १६ ॥ अधिगतमधिगम्यंप्राप्तमप्राप्तमन्यैर्गतमिदमलमस्तंवस्तुजातंसमस्तम् ॥ उदितमुदितबोधंतादृशंयत्र भूयोस्तमयसमुदयानांनामनामापिनास्ति ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांतिकथनंनामत्रिनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

अर्थ—सम्यक् ज्ञात होनेसे संपूर्ण जगत् केवल ब्रह्मरूपही भासताहै. हे मुने ! पूर्वकालसे अब मैं कुछ अन्यरूप नहींहोगयाहूं, किन्तु जो ब्रह्म पूर्वकालमें अज्ञात आत्मा था वही अब ज्ञात होनेपर आप निजस्वभाव आत्मरूपमें स्थित है ॥ १३ ॥ ज्ञात तथा अज्ञातरूप सब अपनेसे भिन्न ज्ञानाज्ञान निर्भासशून्य अजरअमरस्वरूप ब्रह्मही ऐसे है जैसे शून्यत्व, एकत्व, तथा नीलतारूप आकाश ॥ १४ ॥ हे मुने ! ज्ञानोदय मैं निर्वाणरूप हूं, अज्ञानके नाशसे शंकारहित हूं, विक्षेपरहित नित्य आत्मसुखमें स्थित हूं, यथास्थित नित्य अनंत आत्मस्वरूपमें स्थित हूं, ब्रह्मभावसे च्युत होनेके कारण अज्ञानादिके अभावसे समतारूप ब्रह्मस्वरूपमें मैं क्यों न स्थित होऊं ॥ १५ ॥ सर्वदा सर्वरूप अनन्तब्रह्म मैंही हुं, सर्वाधार सत् अद्वितीय मैंही हुं, अदेशकालादि अपनेसे भिन्न आधारके अभावसे कहींभी नहीं हुं अथवा शान्त सर्वरूप हुं, वा सच्चित्स्वरूप हुं, अथवा सापेक्ष होनेसे कुछभी नहीं हुं, अहो यह निर्वाणरूप शान्ति आश्चर्यरूप है ॥ १६ ॥ हे मुने ! जानने योग्य ब्रह्मतत्त्व मैंने जाना, अज्ञजनोंसे अप्राप्य मोक्षसुख

मुझे प्राप्तहुआ, संसारके अनर्थ सब अस्त होगये, अन्तिम परमात्मस्वरूपके साक्षात्कारके उदयसे वह बोधस्वरूप मेरा उदित हुआ जिस स्वरूपमें उदय अस्तमय जननमरणआदि दु:खोंका नामभी नहीं है ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विश्रान्तिकथनं नाम त्रिनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

चतुर्नवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९४ ॥

इस १९४ के सर्गमें मोक्षका साधनभूत जो आत्मतत्व तथा जगत्तत्व जिसप्रकार श्रीरामजीने जाना वह श्रीगुरु वसिष्ठऋषिके कारण निवेदन किया इस कथाका वर्णन है ॥

श्रीरामउवाच ॥ सर्वात्मसर्वभावेषुयेनयेनयदायदा ॥ यथाभातिस्वयंबोधस्तथानुभवतिस्वयम् ॥१॥ स्वभावव्वतिष्ठंतिसर्गाःसंमिलिताअपि ॥ अत्राषिस्वीकृताएवनानारत्नांशवोयथा ॥ २ ॥ अत्रदृष्टमदृष्टंचमिथोविशतिगच्छति ॥ जगद्रश्मिघनंरत्नं नारत्नघनंयथा ॥ ३ ॥ दीपानामिवसर्गाणांबहूनांज्वलतांपरम् ॥ केषांचिदस्त्यनुभवोमिथःकेषांचिदेवनो ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन्! सबजीवोंको सम्पूर्ण मनकी वृत्तियोंमें जब २ जिस २ भोगके निमित्तसे स्वयं बोधस्वरूप चिदात्मा विवर्तभावको प्राप्तहोताहै तब २ उसी २ प्रकारसे भोक्ता (जीव) आदि त्रिपुटीस्वरूपसे स्वयं उसको निजमायासे अनुभव करताहै ॥ १ ॥ एक निरवयव तथा अतिसूक्ष्म ब्रह्ममें सबजीव एकसमय अध्यस्त होनेसे मिलितभी हैं तथापि उनके अनन्तसर्ग प्रत्येकजीवकेलिये ब्रह्मांड भुवनआदि भेदोंसे अतिविस्तीर्णस्वभाव परब्रह्ममें परस्पर असंमिलितही रहते हैं, क्योंकि वे सब जीवसर्ग निरवयब्रह्ममें अभेदाध्याससे ऐसे आत्मीकृत (परमसूक्ष्मताप्रापित) हैं जैसे एकगृहमें अनेकरत्नोंका किरणसमूह ॥ २ ॥ इस विशाल परमात्मस्वरूपमें समीपस्थ दृष्ट, तथा देशकालव्यवहित अदृष्ट नानाजगत्रूपी रत्नकिरण परस्पर असंबाधपूर्वक ऐसे आतेजाते हैं जैसे एकगृहमें नानारत्नोंके किरणसमूह ॥ ३ ॥ जैसे एकसमयमें जलतेहुये अनेक दीपोंका नेत्रादिसमान इन्द्रिययुक्त जीवोंको परस्पर अनुभव होताहै ऐसेही तुल्य कर्मवासनासे अध्यस्त जीवोंको परस्परकी सृष्टियोंका अनुभव होताहै और अन्यको नहीं ॥ ४ ॥

अप्स्वप्स्विवरसोंभोधावावर्तरमणावनौ ॥ सर्गोस्तिप्रत्यणुंतस्मिन्नापिसर्गास्तथाक्रामः ॥ ५ ॥ सर्वत्र सर्वतोनित्यांचिद्घनस्यांबुवेदनम् ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेसर्गाधारपरंपराः ॥ ६ ॥ यथावयविताभिन्नानैवावयविनःक्वचित् ॥ शब्दभेदादृतेभिन्नानतथासर्गतापरे ॥ ७ ॥ एकस्यानंतरूपस्यकारणाभावतः स्वयम् ॥ नोदेतिनचयात्यस्तंजगदादिःस्वभावतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे आवर्तादिक क्रीडास्थान समुद्रमें प्रत्येक जलके कणमें लवणादि रस है ऐसेही सृष्टिके प्रत्येक परमाणुमेंभी ब्रह्मांड हैं तथा उन ब्रह्मांडोंके प्रत्येक अणुमें अनन्त सृष्टि हैं, और यथार्थमें कुछभी नहीं है ॥ ५ ॥ समुद्रमें जलपरमाणुके रसके तुल्य सर्वत्र सर्वव्यापी नित्य चिद्घन परमात्मामें जो सर्गोंकी धाराकी परंपरा श्रेणि हैं उनकी गणना कौन करसकताहै ॥ ६ ॥ शब्दभेदके सिवाय जैसे अवयवीसे अवयविता भिन्न नहीं है ऐसेही परब्रह्मसे सर्गभी भिन्न नहीं है ॥ ७ ॥ वास्तविकमें एकरूप आत्माकी मायाशक्तिसे अनन्तरूप जगत्की अधिष्ठानता उसके स्वभावसेही न उदितहो और न अस्तहो ॥ ८ ॥

तपंतीज्ञप्तिरेवेयमखंडज्ञेयतामिमाम् ॥ करोत्यकर्तृरूपैवसमालोकमिवार्कभाः ॥ ९ ॥ वैतृष्ण्यात्सर्वभावानांसमाप्त्यैवाक्षयंस्वयम् ॥ संपद्यतेसमाधानंयत्तन्निर्वाणमुच्यते ॥ १० ॥ नबुद्ध्याबुद्ध्यतेबोधोबोधाबुद्धेर्नबोध्यते ॥ नबुद्ध्यतेवातेनापिबोध्योबोधःकथंभवेत ॥ ११ ॥ प्रबुद्धएवसुप्ताभःस्वयंबोधोविबुद्ध्यते ॥ देशकालाद्यभावेपिमध्याह्नेर्कातपोयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—यह चिद्रूप अखंड ज्ञप्तिही इस संपूर्ण ज्ञेय घटपटादिरूपमें स्वयं परिणत होके उनका प्रकाशकर्त्री न होकर ऐसे करती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा ॥ ९ ॥ हे मुने! सम्पूर्णपदार्थोंमें तृष्णाके अभावसे अध्यासकी समाप्ति होनेहीसे विनाशशील देहादिमें अध्यास न होनेके कारण अविनाशी सच्चित्स्वरूप इस जीवको प्राप्तहोताहै, और संपूर्णविक्षेपशून्य होनेसे समाधिगम्य इसी शुद्धरूपको निर्वाण कहतेहैं ॥ १० ॥ कदाचित् कहो कि स्वयं बोधरूप निर्वाणरूपता कैसे होती है, परमपुरुषार्थ चरम आत्मसाक्षात्काररूप बुद्धि मुक्तिमें माननीचाहिये सो नहीं, क्योंकि जडबुद्धि परमपुरुषार्थ बोधरूप आत्माको नहीं जानसकती, और जैसे सुप्तराजाको बन्दीगण जगातेहैं ऐसेभी बोधशक्ति-

मान् परमात्माको बुद्धि नहीं जगासकती, क्योंकि ज्ञातराजाको बन्दीगण जगातेहैं और बुद्धि तो उस बोधको नहीं जानती, अपनेहीमें कर्मकर्तृभाव न बननेसे, तथा बोधरूप आत्माके निष्क्रिय, निर्विकारी होनेसे बोधसेभी बोध नहीं जानाजाता ॥ ११ ॥ अतः अध्यासादिकी समाप्ति होनेसे प्रबुद्धही बोधरूप आत्मा सुप्तके तुल्य स्वयं ऐसे बोधित होताहै जैसे नीहारआदिके नाशसे मध्यान्हकालमें सूर्य्य तथा उसका प्रताप ॥ १२ ॥

सर्वकर्मवितृष्णानांशांतेच्छानांप्रबोधतः ॥ सतामनिच्छतामेवनिर्वाणंसंप्रवर्तते॥१३॥ प्रबुद्धबोधोध्यानस्थःस्वभावेकेवलेस्थितः ॥ नकिंचिदपिगृह्णातिनकिंचिदपिचोज्झति ॥ १४ ॥ योयथास्थितएवास्ते पश्यन्दीपइवाक्रियः ॥ अमनोमानमननोमनोमननवानपि ॥ १५ ॥ व्युत्थानेविश्वरूपाख्यमन्यत्रब्रह्म संज्ञितम् ॥ स्सर्गासर्गात्मचिन्मात्रंसत्यंसर्वत्रभासते ॥ १६ ॥

अर्थ—संपूर्णकर्मजनित इस लोक तथा परलोकरूप फलोंमें वासनारहित तथा शान्ताभिलाष सज्जनपुरुषोंको इच्छा न करनेपरभी निर्वाणस्वरूपता स्वयं प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ मोहनिद्रासे प्रबुद्ध ध्यानस्थ महात्मा निज केवल चित्स्वभावमें स्थित न कुछ ग्रहण करताहै और न त्यागताहै ॥ १४ ॥ आसक्ति न होनेसे व्यवहारमें तत्परभी वह अमन है अतएव देखताहुआभी वह दीपके सदृश निष्क्रिय यथास्थितरूपही है ॥ १५ ॥ समाधिकालके व्युत्थानमेंभी उस योगीको विश्वरूप सृष्टिसहित होनेपरभी उससे मुक्त सर्वत्र नित्य सत्यरूप चिन्मात्रही उसको भासताहै ॥ १६ ॥

अभिन्नबोधसद्रूपस्वरूपानुभवेस्थितः ॥ व्युत्थितःसन्निरुद्धश्चयःपश्यतिसशाम्यति ॥ १७ ॥ जगत्पदार्थसार्थानांबोधमात्रैकनिष्ठताम् ॥ विनानास्त्यपरासत्ताव्योम्नःशून्येतरायथा ॥ १८ ॥ शिष्यतेस्फीतबोधानांकेवलानंतबोधता ॥ सापिस्वपरिणामेनपरेणायात्यवाच्यताम् ॥ १९ ॥ तद्विश्रांतौपरासत्ताशिष्यतेवानशिष्यते ॥ याकाष्ठ्यत्यंतशांतानांनवाग्गोचरमेतिसा ॥ २० ॥

अर्थ—जो समाधिकालमें निज सद्रूप अनुभवरूपमें स्थितरहताहै तथा व्युत्थानकालमें उदासीनवृत्तिसे संसारको देखताहै उसी दोनोंदशामें समानबोधयुक्त पुरुषको संसारके विक्षेपसे शान्ति प्राप्तहोती है ॥१७॥ जगत्के पदार्थ-समूहोंकी केवल बोधमात्रस्वरूपसे भिन्न सत्ता ऐसे नहीं है जैसे शून्यतासे भिन्न आकाशकी ॥ १८ ॥ साक्षी चेतनका साक्षात्काररूप निर्मल बोधयुक्त महात्माओंकी जगत्के बाध होनेसे केवल अनन्त बोधरूपसत्ता शेष रहती है और वहभी सन्मात्र ब्रह्मरूप परमपरिणामरूप वाणीके अविषय अखण्डरूपताको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ पूर्ण आत्म-ज्ञानियोंकी ब्रह्मभावमें स्थिति होनेसे अपूर्व जो अनन्तबोधता शेष रहती है वा नहींरहती यह वाणीका विषय नहीं है २०

यासमस्यपराकाष्ठासैवबोधस्यसन्मयी ॥ सर्गस्तन्मयएवातःसकलंशांतमव्ययम् ॥ २१ ॥ निर्वाणायवितृष्णायस्वच्छशीतलसंविदे ॥ स्पृहयंतिसदासत्तांब्रह्मविष्णुहराअपि ॥ २२ ॥ सर्वार्थात्मैवसर्वत्रसर्वदासर्वथोदितम् ॥ चेतनंशुद्धमेवास्तिनाशोनास्योपपद्यते ॥ २३ ॥ अत्यंततप्तःसंसारोनिर्वाणमतिशीतलम् ॥ अतिशीतलमेवास्तितप्तस्त्वेवनविद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—जो सत्ता सामान्य (शोधिततत्पदार्थ) की पराकाष्ठा है वही बोध (शोधितत्वंपदार्थकीभी पराकाष्ठा स्थिति) है, इस दशामें आकाशादिरूप तथा जाग्रत्आदिअवस्थात्रयरूप सर्ग (सृष्टि) सब शान्त अविनाशी अस्तिभातिप्रिय सर्वानुभव आत्मबोधरूपही है ॥ २१ ॥ तृष्णाशून्य, स्वच्छ, शीतल तथा परमप्रेमास्पद उस बोधरूप सत्ताकेलिये सदा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवआदिभी स्पृहा करतेहैं ॥ २२ ॥ सबकालमें सबका प्रेमास्पद देदीप्य स्वप्रकाशस्वरूप शुद्ध स्वात्मबोध चेतनही सर्वथा सर्वत्र उदित है उसका नाश (अदर्शन) कदापि नहीं होता ॥ २३ ॥ यह संसार अतिसंतप्त (निरतिशय दुःखरूप) है और निर्वाण (आत्मबोध) परमशीतल (निरतिशय सुखरूप) है, इनमें निरतिशयसुखरूप परम शीतल शुद्ध आत्मबोध निर्वाणही सत्य है, अतिसंतप्त दुःखरूप संसार तो कल्पित है ॥ २४ ॥

संचेतंतिशिलांतस्थायथालंशालभंजिकाः ॥ अनुत्कीर्णास्तथाब्रह्मचेततीदमखंडितम् ॥ २५ ॥ यथाचेततिसौम्यांबुकोशस्थंवीचिमंडलम् ॥ तथाचेततिकोशस्थंमहाचिच्चेत्यमव्ययम् ॥ २६ ॥ अविभक्तो विभागस्थैरविशांतैरनंतकैः ॥ परमार्थांबराभोगैस्स्वबोधात्मत्वमंथरैः ॥ २७ ॥ यैर्यैर्यथास्वआत्मांतर्भावितश्चेतितश्चिरम् ॥ भोगमोक्षप्रभेदेषुतेषांतेषांतथोदितः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे शिल्पी (कारीगर) की बुद्धिमें स्थित विनाखुदी प्रतिमा पाषाणके भीतरसे शिल्पीकी इच्छानुसार स्फुरित होती है ऐसेही ब्रह्मके भीतरसेही यह संपूर्णजगत्का वेष मायारूप शिल्पीद्वारा स्फुरितहोताहै ॥ २५ ॥

जैसे शान्त समुद्रादिजलाशयोंमें स्थित जल स्वयं तरंगसमूहरूपसे स्फुरितहोताहै ऐसेही अन्नमयादिकोश तथा ब्रह्मांडकोशमें स्थित अविनाशी महाचित् स्वयं विषयरूप होके स्फुरितहोती है ॥ २६ ॥ हे मुने! अविभक्तरूपसे स्थित अज्ञानावृत निजआत्माही परमार्थ चिदाकाशके कृत्रिमवेषधारी विभक्तकेसमान स्थित जिन २ जीवोंसे चिरकालसे जिस २ प्रकारसे भावित होताहै उन २ को भोग तथा मोक्षप्रदभेदोंमें वैसाही प्रादुर्भूत होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

मृतेवाप्यमृतेबंधौस्वप्नेस्वप्नविबोधिनः ॥ नयथोदेतिसत्याख्यातथाद्दश्येषुतद्विदः ॥ २९ ॥ यदिदंकिल दृश्यादितच्छांतमखिलंशिवम् ॥ भावितेवगतेप्यंतरितिभ्रांतेःकउद्भवः ॥ ३० ॥ सर्वथादेहसंख्येषुवै तृष्ण्यमुपजायते ॥ सम्यग्बोधेसतिस्वप्नइवापिस्वार्थकादिषु ॥ ३१ ॥ वैतृष्ण्याद्वर्धतेबोधोबोधाद्वैतृष्ण्य वर्धनम् ॥ परस्परेणप्रकटेएतेकुड्यप्रकाशवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें निजबन्धुके मरने वा जीनेपर स्वप्नसे जागृतप्राणीको स्वप्नके विषयमें सत्यबुद्धि नहीं होती ऐसेही तत्वज्ञानीको स्वप्नवत् इस दृश्यको पदार्थोंमेंभी सत्यबुद्धि नहीं होती अतएव उसको हर्षशोकादिभी नहीं होते ॥ २९ ॥ जो कुछ यह दृश्यआदि जगत् है वह संपूर्ण शान्त अविनाशी परमात्मरूपही है इसप्रकार दृढ ज्ञान होनेपर पुनः भ्रांतिका संभव कहां है ॥ ३० ॥ पूर्णज्ञान होनेपर देहसे संबन्ध रखनेवाले भोग तथा उनके उपायोंमें तृष्णाका अभाव ऐसे होजाताहै जैसे स्वप्नके पदार्थोंमें ॥ ३१ ॥ तृष्णाके अभावसे स्वात्मबोध चढताहै और बोधसे तृष्णाका अभाव होताहै, ये परस्पर ऐसे प्रकट हैं जैसे कुड्य और प्रकाश ॥ ३२ ॥

येनबोधेनवैतृष्ण्यंधनदारसुतादिवा ॥ स्वनूनमपिसंपन्नंजाड्यंतत्संस्थितंतथा ॥ ३३ ॥ एतावदेवबोध स्यबोधत्वंयद्वितृष्णता ॥ पांडित्यंनामतन्मौर्ख्यंयत्रनास्तिवितृष्णता ॥ ३४ ॥ नतुवैतृष्ण्यबोधाढ्यौनप रस्परवर्धितौ ॥ असत्यावेवतौनामनष्टौचित्रहुताशवत् ॥ ३५ ॥ परमाबोधवैतृष्ण्यसंपत्तिर्मोक्षउच्यते॥ तत्रानंतेपदेशांतेवसताचनशोच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—जहां तृष्णाके अभावकी वृद्धि है वहां जडताके अभाव बोधकीभी वैसीही है, और जहां धनपुत्रादिमें तृष्णाकी वृद्धि है वहां जडताभी उसी वृद्धिक्रमसे स्थितहै ॥ ३३ ॥ बोधके बोधत्वरूपपांडित्यका यही स्वरूप है कि जहां तृष्णा नहीं है, और मूर्खताका यही स्वरूप है कि जहां तृष्णा बनी है ॥ ३४ ॥ जहांपर वासनाका अभाव और बोधकी पूर्णता परस्पर न बढे वहां दोनों ऐसे मिथ्या (व्यर्थ) हैं जैसे चित्रका अग्नि ॥ ३५ ॥ बोधकी पूर्णता तथा तृष्णाके अभावकी (वैराग्यकी) पराकाष्ठाही मोक्ष है, उस शान्त अनन्त मोक्षपदमें स्थित जीव शोक-योग्य नहीं है ॥ ३६ ॥

गतंगम्यंकृतंकार्यंदृष्टंदृश्यमशेषतः ॥ यावत्सर्वंशिवंशांतमेकमाद्यमनामयम् ॥ ३७ ॥ आत्मारामस्य शांतस्यवैतृष्ण्यस्यानहंकृतेः ॥ असंकल्पैवभवतिस्थितिःखस्येवनिर्मला ॥ ३८ ॥ सहस्रेभ्यःसहस्रेभ्यः कश्चिदुत्थायवीर्यवान् ॥ भिनत्तिवासनाजालंपंजरंकेसरीयथा ॥ ३९ ॥ प्राप्तज्योतिर्बोधशुद्धिःपरमंतः प्रकाशवान् ॥ नीहारःशरदीवाशुस्वयमेवोपशाम्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भगवन्! आपकी वैराग्य तथा बोध दोनोंकी वृद्धिकी पराकाष्ठाको प्राप्तहूं अतएव त्याज्यको मैं त्याग चुका, कर्तव्यको करचुका, द्रष्टव्य (आत्मतत्व) पूर्णरूपसे देखा, क्योंकि अब यह सबकुछ एक, शान्त, निर्विकार तथा सबका आदि ब्रह्मरूपही भासताहै ॥ ३७ ॥ आत्माराम, शान्त तथा वासना और अहंकाररहित पुरुषकी स्थिति संकल्परहित तथा आकाशवत् निर्मल होती है ॥ ३८ ॥ प्रयत्न करनेवाले लक्षों पुरुषोंमेंसे कोईएक महाबली पुरुष वासनाजालको ऐसे भेदनकरताहै जैसे सिंह पींजराको ॥ ३९ ॥ शुद्धबोधयुक्त प्राप्त आत्मप्रकाश प्राणी आभ्यन्तरमें प्रकाशयुक्त होनेसे आपही ऐसे शान्त होजाताहै जैसे शरदृतुमें सूर्य्यप्रकाशयुक्त नीहार (कुहिरा) ॥ ४० ॥

ज्ञातज्ञेयस्त्वसंकल्पःसंकल्पातिशयाशयः ॥ अवासनोव्यवहतौवातवत्स्पंदतेनवा ॥ ४१ ॥ आसीद्वी रान्मनस्कारैर्भ्रांतिमात्रैकनिश्चयात् ॥ यःसर्वत्रखवद्भावस्तदवासनमासितम् ॥ ४२ ॥ निर्वासनेभाव उदारसत्वेब्रह्माखिलंदृश्यमितिप्रबुद्धे ॥ स्थिरैकनिर्वाणमतावनंतोमोक्षाभिधानःप्रशमोभ्युदेति ॥४३॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे रामविश्रांत्युपगमोनामचतुर्नवतितमःसर्गः ॥ १९४ ॥

अर्थ—ज्ञातज्ञेय संकल्परहित तथा वासनाशून्य जीवन्मुक्त प्राणी संसारके व्यवहारमें वायुके सदृश चेष्टा करता है और नहींभी करताहै ॥ ४१ ॥ शुद्धान्तःकरण उदार जीवमें जब वासनाका अभाव सर्वथा उदितहोताहै, तब यह

संपूर्ण दृश्य ब्रह्मस्वरूप है ऐसा बोध उदित होताहै, उससमय स्थिर निर्वाणयुक्त उस प्राणीमें मोक्षनामक सर्व संसारका उपशम (शान्तिमय बोध) उदित होताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे रामविश्रान्त्युपगमो नाम चतुर्नवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९४ ॥

पंचनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९५ ॥

प्रबुद्ध रामचन्द्रजीके शुभवचनोंको श्रवणकरके प्रसन्न गुरुवसिष्ठजीने स्वयं उनकी प्रशंसा करके परीक्षार्थ प्रश्न किये समाधान रामचन्द्रजीने दिये यह विषय इस १९५ के सर्गमें वर्णनकियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहोनुसंप्रबुद्धोसिराघवाघविघातिनी ॥ वागियंतवसंपन्नाप्रबुद्धेष्ववहासिनी ॥१॥ विभातीवासदेवेदमसंकल्पेनशाम्यति ॥ एतच्छांतिस्तुनिर्वाणमित्येवपरमार्थता ॥ २ ॥ कल्पनाकल्पनेरूपंपरस्यैवेतरस्यनो ॥ स्पंदनास्पंदनेवायोर्यथानात्रैकताद्विते ॥ ३ ॥ प्रबुद्धस्यैवयापुंसःशिलाजठरवत्स्थितिः ॥ शांतौव्यवहृतौवापिसामलामुक्ततोच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि अहो ! हे रामजी ! तुमारी वाणी अज्ञानियोंके पापसमूहकी नाशिनी तथा अनुभवसिद्ध युक्तियुक्तअर्थका अनुवादकरनेसे ज्ञानियोंको आनन्ददायिनी है ॥ १ ॥ हे रामजी ! तुमारा कथन यथार्थ है, असद्रूपही यह जगत् संकल्पसे भासमानके सदृश भान होताहै, यह बन्धका सिद्धान्त है, असंकल्पकी दृढतासे सिद्ध तत्वज्ञानसे शान्त होताहै, मुक्तिसाधनका यह सिद्धान्त है, तथा इस शान्तिहीका नाम निर्वाण है यह मुक्तिका सिद्धान्त (निचोड)है, और इसी निर्वाणकी प्राप्तिका नाम परमार्थता है ॥ २ ॥ कल्पना तथा अकल्पनारूप बन्ध और मोक्ष अप्रबुद्ध तथा प्रबुद्ध परब्रह्मकेही रूप ऐसे हैं जैसे स्पन्द तथा स्पन्दाभाव वायुके अतः इस ब्रह्ममें एकत्व तथा द्वैतता नहीं है ॥ ३ ॥ ज्ञानीपुरुषकी समाधिकाल वा व्यवहारकालमें शिलागर्भके तुल्य जो चिद्घनरूपसे एकरूप स्थिति है वही निर्मल मुक्तता है ॥ ४ ॥

वयमस्मिन्पदेस्थित्वाराघवाघविघातिनि ॥ शांतत्वेव्यवहारेचसममित्थमवस्थिताः ॥ ५ ॥ अस्मिन्नेवपदेनित्येब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ तिष्ठंतिव्यवहारस्थाअपिशांताज्ञरूपिणः ॥ ६ ॥ शैलोदरस्थितिमितांप्रबुद्धानामनामयम् ॥ अस्माकंपदमेवंतदालभ्यैतदिहोष्यताम् ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मण्येवमसद्रूपमनुत्पन्नमभासुरम् ॥ अनारंभमनाकारमेवेदंभासतेजगत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राघव पातकनाशी सर्वदा एक चिद्घन इस निर्वाणपदमें स्थित होकरही अस्मदादि जीवन्मुक्त समाधि तथा व्यवहारमें समानरूपसे स्थित हैं ॥ ५ ॥ इसी नित्य एकरूप परमबोधरूपपदमें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तथा अन्य जीवन्मुक्त वर्तमान रहतेहैं, चाहै वे समाधिमें रहैं वा व्यवहारस्थ हों परन्तु सदा प्रबुद्धरूपही हैं ॥ ६ ॥ शिलागर्भवत् विक्षेपरहित स्थितिवाले हमलोगोंके इस पदको प्राप्तकरके तुमभी इसीमें निवास करो ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! असद्रूप, उत्पत्तिरहित, अधिष्ठानसे पृथक् अभासमान, आरंभरहित तथा आकारशून्यही यह जगत् ब्रह्ममेंही भासताहै ॥ ८ ॥

मृगतृष्णांबुसदृशंतरंगावर्तवारिवत् ॥ रुचकादीवकनकेस्वप्नसंकल्पशैलवत् ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बुद्धवानसिचेद्रामतत्स्वबोधविवृद्धये ॥ कुरुसंशयविच्छेदंपृच्छतःपृच्छकस्यमे ॥ १० ॥ इत्थंनित्यानुभूतोपिशिरस्थोप्यतिभासुरः ॥ जगदाख्योयमाभासःकथंनामनविद्यते ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ पूर्वमेवेदमुत्पन्नंनकिंचनकदाचन ॥ तेनवंध्यासुतस्यास्यनसत्ताकल्पनादृते ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे मृगतृष्णामें जल, तरंगावर्तआदि जलमें, कुंडलकटकादि सुवर्णमें तथा स्वप्नसंकल्पादिमें पर्वत भासतेहैं ऐसेही परब्रह्ममें यह जगत् भासताहै ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! यदि तुमने परमपद आत्मतत्व जानलियाहै तो मैं प्रश्न करताहुं मेरे संशयका छेदन कीजिये ॥ १० ॥ इसप्रकार प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसे दृढसिद्ध, अर्थक्रियासाधक, सत्यरूपसे शिरपर स्थित अतिभास्वरभी यह जगत्नामका आभास कैसे नहीं है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! कारणके अभावसे यह जगत् कदापि उत्पन्नही नहींहुआ, इस हेतुसे वन्ध्यापुत्रके सदृश इस जगत्की सत्ता कल्पना (भ्रम) के अतिरिक्त अन्य कुछभी नहींहै ॥ १२ ॥

किमिवास्याजगद्भ्रांतेःकारणंप्रोत्थितायतः ॥ नकारणंविनाकार्यंकिंचित्संभवतिक्वचित् ॥१३॥ नचावि कारमजरंसविकारंक्षयादृते ॥ कारणंक्वचिदेवेहाकिंचिद्भवितुमर्हति ॥१४॥ ब्रह्मैवेदमनाख्यात्मकारणंप्र विजृंभते ॥ तत्ककस्यकथंनामजगच्छब्दार्थसंविदः ॥ १५ ॥ तदनाख्येपदेशांतेचिरात्प्रथमचेतनम् ॥ कंचित्काललवंतिष्ठत्यातिवाहिकदेहभृत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस जगत्की भ्रान्तिका कारण क्या होसकताहै जहांसे यह उत्पन्न हुई है ! और कारणके विना कोई कार्य्य कहींभी संभव नहीं है ॥ १३ ॥ निर्विकार, अजर, अमर ब्रह्म इसका कारण कदापि नहीं होसकता, क्योंकि पूर्वावस्थाके नाशके विना सविकार कहींभी कोई पदार्थ संभवित नहीं है ॥ १४ ॥ यदि निर्विकार ब्रह्महि विवर्तोपादान कारण (रज्जुसर्पवत्) होके जगदाकारसे भासताहै तो कहिये कहां कैसे यह जगत् शब्दार्थका ज्ञान सत्य होसकताहै ॥ १५ ॥ इस हेतुसे वाणीके अविषय शान्त ब्रह्मपदमें प्रथम चेतन (हिरण्यगर्भ) कुछकाल अर्थात् दोपरार्द्धपर्य्यन्त आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर धारण करके स्थित रहताहै, उसकी कल्पनाही इस जगत्भ्रमका मूल सिद्ध होती है ॥१६॥

क्षणेवत्सरसंवित्तिस्वप्नेत्वमिवचेतति ॥ काकतालीयवत्तत्रचंद्रार्कादींश्चपश्यति ॥ १७ ॥ संकल्पैका त्मनस्तस्यदेशकालक्रियान्वितम् ॥ अत्यंतमेवव्योम्न्येवभुवनंभासतेस्वयम् ॥ १८ ॥ तस्मिन्मि थ्योपसंपन्नेसमिथ्यापुरुषस्ततः ॥ मिथ्यैवतत्समाचारंकुर्वन्विपरिवर्तते ॥ १९ ॥ अधस्थादूर्ध्वमाया तिपुनरूर्ध्वाद्व्रजत्यधः ॥ कल्पितानंतसंभारपदार्थानर्थसंभ्रमः ॥ २० ॥

अर्थ—स्वप्नमें आप मेरे सदृश वह ब्रह्मा क्षणमेंही अनेक वर्षोंके भ्रमको देखताहै और उस भ्रममें काकतालीय-न्यायसे चन्द्रसूर्य्यादि जगत्भी अनुभव करताहै ॥ १७ ॥ सत्यसंकल्परूप उस हिरण्यगर्भको देशकालक्रियायुक्त यह सम्पूर्ण भुवन चिदाकाशमेंही भासताहै ॥ १८ ॥ उस मिथ्याभ्रमसिद्ध जगत्में वह कल्पनासिद्ध हिरण्यगर्भ मिथ्याहीं भुवनादि समाचारको करताहुआ विवर्तभावको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ और स्वकल्पित भुवनोंमें समष्टिसे व्यष्टिभाव जीवरूपताको प्राप्त होकर पापपुण्य भोगनेके अर्थ नीचे उपर भ्रमण कियाकरताहै ॥ २० ॥

काकतालीयवत्तस्यसंकल्पस्यभवेद्यदि ॥ यद्यथातत्तथाप्यापिसुस्थिरामात्तवान्स्थितिम् ॥ २१ ॥ शिलावंध्यासुतमुखेव्योमचूर्णेनरंजनम् ॥ करोतीत्यादिवदिदंमिथ्याजगदुपस्थितम् ॥२२॥सत्यमेवेदम थवामिथ्यात्वंतुकुतःकिल ॥ नमिथ्यात्वंनसत्यत्वंकिमपीदमजंततम् ॥ २३ ॥ आकाशकोशवत्स्वच्छं शिलाजठरवद्घनम् ॥ पाषाणमौनवच्चेदंशांतमेवाक्षयंजगत् ॥ २४ ॥

अर्थ—काकतालीयवत् (आकस्मिक) उसके संकल्पकी जैसे पूर्व स्थिति थी वैसीही अबभी होती किन्तु उसीसे उसने भ्रमसे अतिस्थिर (नियमबद्ध) स्थितिको ग्रहणकिया ॥ २१ ॥ पाषाणकी कामिनी वन्ध्याके पुत्र अपने कान्तके ललाटमें आकाशके चूर्णका तिलक रचके उसकी शोभा बढाती है, इस वाक्यके अर्थके समान मिथ्याही इस जगत्को उपस्थित करताहै ॥ २२ ॥ अथवा अधिष्ठान (ब्रह्म) सत्तासे यह जगत्भी सत्य (ब्रह्मरूप) ही है क्योंकि व्यावर्तनीयकी अप्रसिद्धिसे मिथ्यात्वभी कहांसे सिद्ध होसकताहै, वा यह मिथ्या न सत्य है किन्तु वाणी-का अविषय अज परत्माही इस जगत्रूपसे व्याप्तहै ॥ २३ ॥ आकाशकोशके सदृश निर्मल, शिलागर्भवत् चिद्घन, पाषाणवत् इन्द्रियव्यापारसे शून्य, तथा शान्त अखंड परमात्माही यह जगत्है ॥ २४ ॥

चिन्मात्रेसर्वसंकल्पेविराडात्मातिवाहिके ॥ देहेसंवेदनंव्योमजगदित्यवभासते ॥ २५ ॥ एवंब्रह्मम हाकाशमेवेदंकजगत्कथा ॥ शांतंसमसमाभोगमेकमाद्यंतवर्जितम् ॥ २६ ॥यथापयसिवीचीनामुन्म जननिमज्जनैः ॥ नजलान्यत्वमेवंहिभावाभावैःपरैःपरे ॥ २७ ॥ परावरविदःकेचिदेतस्मिन्परमेपदे ॥ शुद्धेपरिणमंत्यंतर्वारिबिंदुरिवांभसि ॥ २८ ॥

अर्थ—हे मुने! सर्वाकार संकल्पधारी, सूक्ष्मशरीरवान् चिन्मात्र विराट्पुरुषके देहमें जो विषयाभिमुख स्फुरण है वही जगत्रूपसे भासताहै ॥ २५ ॥ हे गुरो! इसप्रकार सर्वथा विषमतादिरूपदोषशून्य सच्चिदानन्दविग्रह, आदि-अन्तवर्जित, तथा अद्वितीय शान्त ब्रह्म महाकाशही यह सबकुछ है, जगत्की कथा कहां? ॥ २६ ॥ जैसे जलमें तरंगोंके उत्पत्तिविनाशसे जलसे भिन्नता नहीं है ऐसेही संसारकी सृष्टि और प्रलयद्वारा परब्रह्मसे उनका भेद किंचित्भी नहीं है ॥ २७ ॥ कोई सारासारके विवेकी तत्त्वज्ञानी इस शुद्ध परमपद ब्रह्ममें एकरसताको ऐसे प्राप्तहोतेहैं जैसे जलबिन्दु जलमें ॥ २८ ॥

परेऽपरमिदंभातिपरस्येवपरात्मकम् ॥ संभवंत्यमलेशांतेनजगंतिनतत्क्रियाः ॥ २९ ॥ स्वप्नेस्वप्नइति ज्ञातेदृश्येब्रह्मतयापिच ॥ मृगांबुनिपरत्वेनकोभावयतिभावनाम् ॥ ३० ॥ परमार्थचमत्कारमंतःस्था

नुभवंविना ॥ अन्यस्यान्यंनजानातिसीधुस्वादुमिवद्विजः ॥ ३१ ॥ निर्वाप्यनिजआत्मायंपरिवृत्त्यावलो कितः ॥ चेत्योन्मुखत्वमुत्सृज्यसंतिष्ठेच्छांतआत्मनि ॥ ३२ ॥

अर्थ—उस परब्रह्ममेंही उसीके अवयवके तुल्य यह जीव उससे भिन्नके सदृश भासताहै, परन्तु विचारसे वह परब्रह्मरूपही है, क्योंकि निर्मल शान्तब्रह्ममें जीव, जगत् तथा जगत्के व्यवहारोंका संभव नहीं है ॥ २९ ॥ मृगतृष्णामें ऊपरबुद्धिसे स्वप्नके पदार्थोंमें स्वप्नरूपसे तथा इस दृश्य जगत्ब्रह्मरूपसे ज्ञात होनेपर जल जगत्आदिके विषयमें सत्यबुद्धि कौन करसकताहै ॥ ३० ॥ अन्तःकरणमें परमार्थ चित्चमत्कारके अनुभवविना अपवित्र जगत्-प्रपंचके भोगका स्वाद ज्ञानी ऐसे नहींजानता जैसे ब्राह्मण मद्यके स्वादको ॥ ३१ ॥ बाह्यदृष्टिसे अपने आत्माको हटाके विषयाभिमुखताको त्यागकर समाधिचरमसाक्षात्कारवृत्तिसे निज शुद्धस्वरूप दृष्ट (अनुभूत) शान्त शिवरूपआत्मामें स्थितरहै ॥ ३२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दृश्यंबीजांकुरइवस्थितंब्रह्मणिकारणे ॥ इतिसर्गादिसद्भावःकस्मान्नेहोपपद्यते ॥ ३३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बीजेंकुरोंकुरतयासंश्रितोनोपलभ्यते ॥ बीजोदरेतुयासत्ताबीजमेवहिसाभ वेत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मणोंतर्जगत्तैवंजगत्तैवोपलभ्यते ॥ अस्तिचेत्तद्भवेन्नित्यंसाब्रह्मैवाविकारितत् ॥ ३५ ॥ अविकारादनाकाराद्विकार्याकृतिभासुरम् ॥ उदेतीतिकिलास्माभिर्नैवदृष्टंनचश्रुतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! बीजांकुरन्यायसे कारणभूतब्रह्ममें यह जगत् विद्यमान है, इसरीतिसे सृष्टिकी सत्ता क्यों नहीं मानते ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! यदि बीजमें अंकुर अपने अंकुर स्वरूपसे रहे तो बीजको भेदन करके बाह्यदेशमें निकलताहै यह सिद्ध हो परन्तु बीजके भेदन करनेसे अंकुर नहींमिलता और बीजके भीतर जो सूक्ष्मभागकी सत्ता है वह बीजकीही है, इससे यह सिद्धहुआ कि जैसे बीजही अंकुरवृक्षआदि रूपमें परिणतहोताहै ॥ ३४ ॥ और ब्रह्ममें जगत्सत्ता है वह वैसी नहीं है किन्तु जगत् (रज्जुसर्पवत्) रूपसे उपलब्ध होतीहै, यदि प्रलयकालमें ब्रह्मरूपवत् उपलब्ध होती है तो वह ब्रह्मरूपही है, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार है अतः बीजांकुरन्याय इसमें नहींहै ॥ ३५ ॥ हे मुने ! निर्विकारसे सविकार तथा निराकारसे साकार उत्पन्न होताहै यह न हमने कहीं देखा और न सुना ॥ ३६ ॥

अनाकृतावाकृतिमन्नचैतत्स्थातुमर्हति ॥ परमाणौनचैवांतरिवसंभातिमेरवः ॥ ३७ ॥ समुद्गकेरत्न मिवजगद्ब्रह्मणितिष्ठति ॥ महाकारंनिराकारइत्युन्मत्तवचोभवेत् ॥ ३८ ॥ शांतंपरंचसाकारस्याधारइ तिराजते ॥ नवत्कुंराजतेकेवसाकारस्याविनाशिता ॥ ३९ ॥ बोधएवायमाकारइतिकल्पनयापिधीः ॥ अपूर्वैःस्वप्नवद्दृढैःसंसारैर्नोपलभ्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—और निराकार तथा निरवयववस्तुमें साकार तथा सावयव नहीं रहसकता, क्योंकि परमाणुमें मेरु कहां मासकतेहैं ॥ ३७ ॥ पेटारीमें रत्नके सदृश ब्रह्ममें जगत् है और निराकारमें महान्आकारसंयुक्तपदार्थ है यह उन्मत्तोंका प्रलाप है ॥ ३८ ॥ सबसे उपरत शान्त ब्रह्म साकारजगत्का अभेदसंबन्धसे आधार है यह कथन शोभा नहीं देता, क्योंकि साकार वस्तु अविनाशी है यह कथन कब शोभा दे सकताहै ॥ ३९ ॥ इसी हेतुसे अपूर्व स्वप्नवत् दृढ आकारोंसे बोधही क्षणिकाररूपमें परिणत है बौद्धकल्पनाभी अयुक्त है ॥ ४० ॥

अपूर्वएवस्वप्नोयंयद्वैसर्गोनुभूयते ॥ स्वप्नःकिलानुभूतार्थःस्वभ्यस्तइवदृश्यते ॥ ४१ ॥ यदेवजाग्रत्त त्स्वप्नइतिनात्रोपपद्यते ॥ स्वप्नेप्रदग्धःपुरुषःकथंप्रातर्विलोक्यते ॥ ४२ ॥ अशरीरस्यनस्वप्नइत्येतदपि नोचितम् ॥ संभवंतिपिशाचाद्यास्तेषांचस्वप्नवत्स्थितिः ॥ ४३ ॥ तस्मात्स्वप्नवदाभासःसविदात्म निसंस्थितः ॥ सर्गादिनानाकृतिनापरमात्मानिराकृतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—क्योंकि यह सर्गरूप स्वप्नतो अपूर्व पूर्वकालमें अनंतभूतही सब अनुभव करतेहैं और स्वप्नतो जाग्रत्में अनुभूत सब अनुभव करते हैं, यह लोकमें प्रसिद्धहै ॥ ४१ ॥ अतएव जाग्रत् है वही स्वप्न है यह बौद्धोंका कथन संसारके विषयमें संगत नहींहोता, क्योंकि ऐसा होतो स्वप्नमें मृत स्मशानभूमिमें दग्धपुरुष प्रातःकालमें कैसे देखपडे ॥ ॥ ४२ ॥ स्थूलशरीरशून्य सूक्ष्मशरीरधारी जीवको स्वप्न नहीं होता, यह चार्वाकका कथनभी उचित नहीं है, क्योंकि पिशाचादिकोंकी स्थिति स्वप्नवत् संभवहै ॥ ४३ ॥ इसहेतुसे निराकार परमात्माही अपने ज्ञानस्वप्नस्वरूप स्थित रहतेही स्वप्नकेतुल्य सृष्टि आदि नानाआकारोंमे विवर्तभावको प्राप्त स्थितहै यही सिद्धान्तहै ॥ ४४ ॥

स्वप्नेचिदेवशैलादिरूपेणात्मनितिष्ठति ॥ ब्रह्मात्माखिलमुक्तोसावन्येनासौकृतोयदि ॥ ४५ ॥ नेहा स्तित्वंननास्तित्वमुपलब्धेनुभूयते ॥ नैवानुभवितृत्वंचनचानुभवनक्रमः ॥४६ ॥ किमपीदमनाख्येयं

बुद्धेनैवानुभूयते ॥ स्वसंवेदनसंवेद्यंसत्तासत्ताविजृंभितम् ॥ ४७ ॥ अभावरूपिणोभावाअभावाभा वरूपिणः ॥ सर्वदासर्वथासर्वेभांतिभासुरतांगताः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और स्वप्न चिद्रूपही पर्वतआदिरूप धारण करके अपने स्वरूपमें स्थितरहताहै यह स्पष्टही है, और यह साक्षीचेतन तो संपूर्णबन्धनोंसे युक्त है, और यह संपूर्ण प्रपंच अज्ञाननेही इस आत्मामें कल्पितकियाहै ॥ ४५ ॥ इस-प्रकार ब्रह्मका बोध होनेपर इस जगत्प्रपंचमें अस्तित्वनास्तित्वआदि धर्म नहीं अनुभूत होते, तथा इस जगत्के अनुभविता अनुभवआदिका क्रमभी नहीं उपलब्ध होता ॥ ४६ ॥ अतः यह जगत् तुच्छ अनिर्वचनीयरूपही है, और सत्ता असत्ता विलक्षण स्वानुवेद्य यह अनिर्वचनीयताभी अज्ञदशाहीमें है, परमात्मस्वरूपका पूर्णज्ञान होनेपर तो वहभी अनुभूत नहीं होती, किन्तु ब्रह्मस्वरूपही शेष रहताहै ॥ ४७ ॥ भाव (आत्माके अस्तित्व प्रियत्वआदि धर्म) अभावरूप तथा अभाव (जगत्के नास्तित्वधर्म) सब सर्वथा, सर्वदा प्रकाशस्वरूपताको प्राप्त भासतेहैं ॥ ४८ ॥

बृंहतिब्रह्मणिब्रह्मव्योमव्योमनिवर्द्धते ॥ नचोपपद्यतेकिंचिद्ब्रह्मव्योम्निविबृंहणम् ॥ ४९ ॥ द्रष्टृदृश्यदृगा त्मायमहंसर्गादिविभ्रमः ॥ शांतचिद्व्योमविस्तारोनकुड्याद्युपपद्यते ॥ ५० ॥ यथानसन्नकुड्यादि स्वसंकल्पनपत्तनम् ॥ तथैवायंजगदितिशांतमेकमनामयम् ॥ ५१ ॥ पूर्णंहिपरमंशांतमिदंसर्वमखं डितम् ॥ अनिंगनमनाभासमनाद्यंतमचेतितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—और ब्रह्माकाशमें जगद्रूपसे ब्रह्म बढताहै, यहभी निराकारस्वरूप ब्रह्ममें उत्पन्न नहीं है ॥ ४९ ॥ द्रष्टा, दृश्य, दर्शन तथा अहंकार आदि यह सर्गका विभ्रम सबकुछ शांत चिदाकाशकाही विस्तारहै, यह कुड्य (साका-रता) युक्त नहीं है ॥ ५० ॥ जैसे स्वप्नसंकल्पादिका नगर तथा उसके साकारतादि सर्व धर्म सत् नहीं हैं, ऐसेही यह जगत्भी सत् नहीं है, किन्तु शान्त, निर्विकार एकब्रह्मही है ॥ ५१ ॥ यह संपूर्ण प्रपंच पूर्ण, परमशान्त, निष्क्रिय, वै-षयिकआभासशून्य, अनादि, अनन्त, स्वप्रकाशरूप तथा अखण्डित अद्वितीय ब्रह्मही है ॥ ५२ ॥

अजन्ममरणंशांतमनादिनिधनंमहत् ॥ अनुपाधिनिराकारंस्वपदंबुद्धवानहम् ॥ ५३ ॥ यासंविदंतःस्फु रतिसैवोपायातिवाक्यताम् ॥ यद्बीजंक्ष्मानमवनैतद्यात्यंकुरतांकिल ॥ ५४ ॥ शुद्धज्ञानमयैकात्माद्वै तैक्यपरिवर्जितः ॥ मनागपिनजानामिद्वैतैक्यकलनाकलाम् ॥ ५५ ॥ सर्वेतूष्णींमयाएवजीवन्मुक्ताइमे जनाः ॥ संशांतसर्वसंरंभाःखेखभावइवस्थिताः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने ! जन्ममरणशून्य, अनादिनिधन, उपाधिरहित, निराकार तथा महत् निजपरमात्मपदको आपकी कृपासे मैंने जाना ॥ ५३ ॥ हे भगवन् ! यह मेरा कथन यथार्थ है, क्योंकि जैसी वृत्ति अन्तःकरणमें स्फुरितहोती है वही वाक्यरूपमें परिणत है, और जो बीज भूमिके अन्तर्गत होताहै वही अंकुरताको प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ हे भग-वन् ! द्वित्व तथा एकत्वसे वर्जित शुद्धज्ञानमय आत्माही मैं हुं, द्वैत तथा एकत्वकल्पनाका लेशभी मैं नहीं जानता ॥ ५५ ॥ हे भगवन् ! निज अज्ञान वशभी ये सब जीव, मेरी दृष्टिमें शांत सर्वइन्द्रिय व्यापार, पाषाणोदरवत् चिद्घन मौन नित्य जीवन्मुक्त ब्रह्मस्वरूप ऐसे हैं जैसे आकाशमें आकाशत्व ॥ ५६ ॥

जगत्स्पर्शमहारंभमपितूष्णीमिदंस्थितम् ॥ चित्रभित्ताविवकृतंमनोराज्यइवोदितम् ॥ ५७ ॥ शैलादि वोत्कीर्णसमंकथायामिववर्णितम् ॥ शंबरेणेवरचितंव्योम्निस्वप्नइवोदितम् ॥ ५८ ॥ किलस्वप्नवदेवेदं सर्गादावेवभातियत् ॥ अभित्तिकंनिष्प्रतिघंजगत्केवास्यसत्यता ॥ ५९ ॥ जगद्बुद्धाविदंसत्यंपरिज्ञान वतोमृषा ॥ ब्रह्मात्मकइदंब्रह्मशांतेशांतपरांबरम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे मुने ! शब्दस्पर्शादिगुणयुक्त, और अनेक कार्य्योंके आरंभसहितभी यह जगत् मेरी दृष्टिमें मौन भित्तिचित्रके समान तथा मनोराज्यवत् आविर्भूत है ॥ ५७ ॥ हे मुने ! पाषाणमें खुदीहुई प्रतिमाकेसदृश, कथामें वर्णि-तके तुल्य, आकाशमें शंबरकी मायासे रचितके समान तथा स्वप्नके तुल्य प्रादुर्भूत यह जगत् मुझे भासताहै ॥ ५८ ॥ हे गुरो ! जब सृष्टिकी आदिमेंही स्वप्नवत् उदित, भित्तिरहित चित्रवत् निरालम्ब तथा निराकार यह जगत् भासताहै तब इसको सत्यता कैसी ? ॥ ५९ ॥ हे भगवन् ! यह जगत् अज्ञानीकी दृष्टिमें सत्य विवेकीकी दृष्टिमें मिथ्या ब्रह्मस्वरूप देखनेवालेको ब्रह्म और भूमिकाओंके आरोहणक्रमसे पुरुषके शान्त होनेपर सर्वथा शान्त आकाशरूपही भासताहै॥६०॥

सर्वएवइमेभावाःसहस्थावरजंगमाः ॥ अस्मदादयआकाशंजगज्ज्ञविषयंतथा ॥ ६१ ॥ खमहंखंभवां श्चित्खंजगत्खंखंखमेवच ॥ चिदाकाशकतामेत्यभजैकाकाशरूपताम् ॥ ६२ ॥ ज्ञानेनाकाशकल्पेनस र्वात्मगगनोपमम् ॥ ज्ञेयाभिन्नेनसंबोधात्त्वंवंदेद्विपदांवरम् ॥ ६३ ॥ चिद्रूपत्वाद्इदेतीदंजगत्तन्नैवली यते ॥ अकारणकमेवांतःपरंव्योमैवनिर्मलम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे गुरो ! अस्मदादिसहित संपूर्ण ये स्थावरजंगमरूपपदार्थ आकाशवत् भान होतेहैं यह चतुर्थपक्ष केवल पूर्ण ज्ञानीकाही विषय है ॥ ६१ ॥ हे भगवन् मैं चिद् आकाशरूपही हुं, आप चिदाकाशरूपही हैं, आकाश चिदाकाशरूप है और यहजगत् चिदाकाशही है, चिदाकाश है चिदाकाशही, हे गुरो मेरे कथनकी परीक्षाकेलिये आप चिदाकाशरूपताको प्राप्त हो जांय ॥ ६२ ॥ हे गुरो ! इसप्रकार ब्रह्माकाशभावको प्राप्त सबमनुष्योंमें श्रेष्ठ महाकाशवत् निर्मल तथा विशाल निजस्वरूपज्ञानसे सर्वरूप आकाशवत् पूर्ण ब्रह्मानन्दसे अभिन्न ब्रह्मरूप आपको जानकर नमस्कार करताहुं ॥ ६३ ॥ हे गुरो ! विनाकारण यह जगत् चिद्रूपसेही उत्पन्नहोताहै और पुनः उसी चिद्रूपब्रह्ममेंही लीनहोताहै, इस हेतुसे निर्मलचिदाकाशरूपही है ॥ ६४ ॥

एतत्सर्वपदातीतंसर्वशास्त्रकलातिगम् ॥ पदमासाद्यनिर्द्वंद्वंत्वमाकाशात्मकोभवः ॥ ६५ ॥ अहंजगच्च नोपादपाण्यादिनघटादिच ॥ सर्वमाकाशमाकाशमेवाच्छंसूक्ष्मचिद्भवेत् ॥ ६६ ॥ सर्वापह्नवएवायंम यायोदर्शितस्तव ॥ सानिंद्योवादिनांवादेष्वात्मज्ञानेषुराजते ॥ ६७ ॥ काष्ठमौनात्मकोवादेनसर्वापह्न वोयदा ॥ क्रियतेतेनवादेषुनात्मज्ञानंप्रसीदति ॥ ६८ ॥ प्रत्यक्षादिप्रमाणानांयदगम्यमचिह्नितम् ॥ स्वानुभूतिभवब्रह्मवादैस्तल्लभ्यतेकथम् ॥ ६९ ॥ सर्वागमार्थसमतीतमचिह्नमच्छमाकाशमेकमजमा द्यमनामरूपम् ॥ शुद्धंचिदात्मकमिहास्त्यनुभूतिमात्रंशांताभिधानकलनंमलशंकयालम् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे बोधप्रकाशीकरणयोगोपदेशोनामपंचनवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९५ ॥

अर्थ—सब तर्कशास्त्रादिकी युक्तियोंसे परे इस निर्द्वंद्वपदमें प्राप्त होके आप सदा चिदाकाशरूपही थे, हैं और भविष्यमेंभी रहेंगे ॥ ६५ ॥ हे भगवन् ! मैं तथा मेरे हस्तपादादि अवयव और बाह्य घटपटादि यह सब जगत् कुछ नहीं है, क्योंकि यह सब परम निर्मल तथा अतिसूक्ष्म चिदाकाशरूपही है ॥ ६६ ॥ हे गुरो ! यह सब पदार्थोंका अपन्हव (अभाव) जो आपके संमुख दर्शायाहै वह यद्यपि मेरी माता वन्ध्या, मेरे मुखमें जिव्हा नहीं है इसवाक्यके तुल्य व्याघातादिदोषारोपसे तार्किकआदि वादियोंकी सभामें निन्दनीय होगा, तथापि अनेकवादीद्वारा अनेकरीतिसे आत्मज्ञानके निरूपण होनेपर परमपुरुषार्थरूप ज्ञान क्या है इस विषयके परीक्षकोंकी सभामें अवश्य शोभादेताहै, क्योंकि सबपदार्थोंके अभावविना सर्वथा अनर्थकी निवृत्तिरूप निरतिशय अद्वितीय ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति नहींहोती ॥ ६७ ॥ तथा काष्ठमौनवत् सबपदार्थोंका अपलाप वादमें नहीं कियाजाता इसलिये शुष्कवादमें आत्मज्ञानका प्रकाश नहींहोता किन्तु विचारसेही आत्मज्ञानका विकाश होताहै ॥ ६८ ॥ हे भगवन् ! जो प्रत्यक्षादि (इन्द्रियजन्य) प्रमाणोंका विषय नहीं है, जिसमेंकोई चिन्ह नहीं है, ऐसा निजअनुभवरूपब्रह्म वादविवादोंसे कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ ६९ ॥ हे गुरो ! सब तर्कादिशास्त्रोंके मन्तव्य अर्थसे अतीत, चिन्हशून्य, चिद्आकाशरूप, परमनिर्मल, कल्पनाशून्य, अनुभवमात्रप्रमाणगम्य, अज, अनादि, अनाम, निराकार तथा शुद्धचिदाकाशरूप अद्वितीय ब्रह्मही सबकुछ है, उसमें विकारआदि मलकी शंका कदापि नहीं करनीचाहिये ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे बोधप्रकाशीकरणयोगोपदेशो नाम पंचनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९५ ॥

षण्णवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९६ ॥

गुरु तथा शास्त्रादि उपायोंसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति है इस विषय इस १९६ के सर्गमें दारुवैवधिक आख्यान संक्षेपसे वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ एवमुक्त्वामहाबुद्धेरामोराजीवलोचनः ॥ मुहूर्तमात्रंविश्रम्यतूष्णींस्थित्वापरेपदे ॥ १ ॥ परमांतृप्तिमापन्नोविश्रांतःपरमात्मनि ॥ मुनिंपुनरपृच्छत्तंजानन्नपिहिलीलया ॥ २ ॥ श्रीराम उवाच ॥ भगवन्संशयाभोदशरत्कालमुनीश्वर ॥ इदानींसंशयोयंमेजातोमनसिपेलवः ॥ ३ ॥ एवमेत न्महाज्ञानंसंसारार्णवतारणम् ॥ समस्तमेववाग्जालंसमतीत्यावतिष्ठते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिमुनि बोले—हे महाबुद्धे भरद्वाजजी इसप्रकार कमलनेत्र श्रीरामजी कहके मुहूर्तमात्र मौन होकर परमपदमें विश्राम (समाधिमें स्थित हो) करके ॥ १ ॥ परमब्रह्मानन्दसे तृप्त होकर आत्मस्वरूपमें विश्रान्त

हुये. रामचन्द्रजीने पुनः गुरुमुखसे श्रवणके कुतूहलसे प्रश्न किया ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले कि–हे संशयरूपीमेघके अर्थ शरत्कालरूपी मुनीश्वर! इससमय मेरे मनमें यह तुच्छ संदेह उत्पन्न हुआहै ॥ ३ ॥ हे मुने! संसाररूपीसमुद्रसे पार करनेवाला पूर्णज्ञान यही है कि परमात्मा समस्त वाग्जालसे परे है ॥ ४ ॥

यदिदंकिलसद्ब्रह्मस्वसंविन्मात्रनिश्चयम् ॥ तदवाच्यंकिलगीरांमहतामपिमानद ॥ ५ ॥ एवंस्थिते परंज्ञेयंसर्वसंकल्पनोज्झितम् ॥ स्वसंवित्तुर्यतन्मात्रलभ्यंदुर्गमतांगतम् ॥ ६ ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेद संख्याभेदैषिणांकिल ॥ कथंशास्त्रपदैस्तुच्छैःसविकल्पैरवाप्यते ॥ ७ ॥ विकल्पसारशब्दाद्यैर्ज्ञानिंशास्त्रैर्नलभ्यते ॥ तत्किमर्थमनर्थायगुरुशास्त्रादिकल्पितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मानद गुरो! स्वानुभवमात्र चिद्रूप जो ब्रह्म है वही सत् है, और वह महात्माओंकी वाणीका विषय नहीं है ॥ ५ ॥ हे भगवन्! पूर्वोक्तरीतिसे ज्ञेयभूत, सब संकल्पोंसे रहित, स्वानुभवरूप, तीनोंअवस्थासे परे, तुरीय स्वप्रकाश वस्तुमात्र लभ्य परब्रह्म है, तब वह जाग्रत्अवस्थाके अन्तर्भूत गुरुशास्त्रादिसे दुर्ज्ञेय है ॥ ६ ॥ हे गुरो! प्रतियोगी (संसार परमात्मामें नहीं है) व्यवच्छेद, (परब्रह्मसे भिन्न कोई पदार्थ सत् नहीं है) संख्या (एक अद्वितीय ब्रह्महीहै) तथा भेद (परमात्मा पंचकोशसे भिन्न है) इनकी अपेक्षा रखनेवाले सविकल्प गुरु तथा शास्त्रपदोंसे वाणीसे परे "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (जहां मन और वाणी नहीं पहुंचते) कैसे प्राप्तहोसकताहै ॥ ७ ॥ हे गुरो! विकल्पपूर्णशब्दादियुक्त शास्त्रोंसे आत्मज्ञान नहीं प्राप्तहोसकता, तब सहस्रोंविकल्पोंसे पूर्ण भ्रान्तिपरंपरा (श्रेणि) रूप अनर्थके लिये गुरुशास्त्रादि क्यों कल्पित किये गये ॥ ८ ॥

गुरुशास्त्रादिविज्ञानेकारणंवास्त्यकारणम् ॥ तदत्रनिश्चयंब्रह्मन्ब्रूहिमेवदतांवर ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्महाबाहोनशास्त्रंज्ञानकारणम् ॥ नानाशब्दमयंशास्त्रमनामचपरंपदम् ॥ १० ॥ तथापिराघवश्रेष्ठयथैतद्धेतुतांगतम् ॥ शास्त्राद्युतमबोधस्यतत्समासेनमेशृणु ॥ ११ ॥ संतिकचिद्वैवधिकाःकीरकाश्चिरदुर्भगाः ॥ दुःखेनाभ्यागताःशोषंग्रीष्मेणेवजरद्द्रुमाः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे गुरो! इस हेतुसे आत्मज्ञानकेविषयमें गुरुशास्त्रआदि कारण हैं वा नहीं इस मेरे संशयके विषयमें जो निश्चय हो वह कृपाकरके कहिये ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे महाबाहो रामजी! जैसा तुम कहतेहो सो यथार्थ है, ब्रह्मज्ञानके कारण (साक्षात्) शास्त्र गुरुआदि नहीं हैं, क्योंकि शास्त्र नानाप्रकारके शब्दविकल्पादिसे पूर्ण हैं और ब्रह्मपद अनाम अर्थात् शब्दोंके प्रवृत्तिनिमित्त धर्मोंसे शून्य है ॥ १० ॥ तथापि हे राघव! जिसप्रकार शास्त्र गुरु उत्तम ब्रह्मात्मज्ञानके तथा उसके फलभूत मोक्षके कारण हुयेहैं वह तुम संक्षेपसे काष्ठवैवधिक आख्यानद्वारा श्रवण करो ॥ ११ ॥ हे रामजी! किसीस्थानमें वैवधिक अर्थात् बहिंगाढोनेवाले कहां २ भोई वा मुसहराआदि नीच जातिके शूद्र हैं जो दुःखसे ऐसे दुर्बलताको प्राप्त होगयेहैं जैसे ग्रीष्मऋतुके प्रचंड आतपसे जीर्ण वृक्ष ॥ १२ ॥

दारिद्र्येणदुरंतेनकंथासंस्थानकारिणा ॥ दीनाननाशयाःपद्मानिर्गतेनेववारिणा ॥ १३ ॥ दौर्गत्यपरितप्तास्तेजीवितार्थमचिंतयन् ॥ जठरस्यकथायुक्त्यावयंकुर्मःप्रपूरणम् ॥ १४ ॥ इतिसंचिंत्यविधिनादिनांतेनदिनंप्रति ॥ दारुभारेणजीवामोविक्रीतेनेतिसंस्थिताः ॥ १५ ॥ इतिसंचिंत्यतेजग्मुर्दार्वर्थंविपिनांतरम् ॥ यथैवाजीव्यतेयुक्त्यासैवापदिविराजते ॥ १६ ॥

अर्थ—महादरिद्रतासे केवल मार्गपति चिथड़ोंकी कथरीसे शरीरको ढांकनेवाले अथवा पूर्वकालमें कदापि अनुभूत अन्नवस्त्रादिकथामात्रसे जीवन बितानेवाले वे ऐसे दीनमुख (अतिशुष्क) होगयेहैं जैसे तडागके बंधके टूटनेपर जल निकलजानेपर कमल ॥ १३ ॥ दरिद्रतासे अत्यंत दुःखी होकर उन्होंने अपने प्राणरक्षाकी चिन्ता की कि इस दुष्ट उदरको हम किसप्रकारके पूर्ण करें ॥ १४ ॥ ऐसा विचारकरके उन्होंने यह निश्चय किया कि दिनभर परिश्रमकरके जंगलमें काष्ठ काटें और सायंकालमें बहिंगेपर भार लादके नगरआदिमें लाके उसके विक्रयसे अपने २ जीवनकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ ऐसा निश्चयकरके काष्ठकेलिये वे जंगलमें गये क्योंकि आपत्कालमें जिस उपायसे प्राणकी रक्षा हो वही शोभा देताहै ॥ १६ ॥

इतितेप्रत्यहंगत्वाकाननंभवचारिणः ॥ दारूण्यानीयविक्रियचक्रुर्देहस्यधारणम् ॥ १७ ॥ यत्प्रयांतिवनांतंतेतस्मिन्संत्यखिलानिहि ॥ गुप्तागुप्तानिरत्नानिदारूणिकनकानिच ॥ १८ ॥ तेषांभारभृतांमध्यात्केचित्कतिपयैर्वनात् ॥ जातरूपाणिरत्नानितानिसंप्रापुर्वंतिहि ॥ १९ ॥ केचिच्चंदनदारूणिकेचित्पुष्पाणिमानद ॥ केचित्फलानिविक्रीयजीवंतिचिरकीरकाः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार वे प्रतिदिन बनमें जाके वहांसे काष्ठ (लकडी) लाके नगरमें उसको बेंचके जो कुछ द्रव्य मिलजाय प्रतिदिन उसीको भोजन करके अपने शरीरकी रक्षा करनेलगे ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जिस वनमें वे जातेथे वहां संपूर्ण अनेकप्रकारके गुप्त (छिपेहुये) तथा प्रकट रत्न थे, सुवर्णभी थे और उत्तम काष्ठभी थे ॥ १८ ॥ उन काष्ठवाहियोंके मध्यमेंसे कोई २ भाग्यवान् वनमें उत्तम सुवर्ण तथा रत्नभी पातेथे ॥ १९ ॥ कोई उन काष्ठवाहकोंमेंसे चन्दनकी लकडी, कोई पुष्प और कोई फलोंको वेंचकर अपने जीवनकी रक्षा करतेथे ॥ २० ॥

केचित्सर्वमनासाद्यदुर्दारूण्येवदुर्धियः ॥ नीत्वाविक्रीयजीवंतिवनवीथ्युपजीविनः ॥ २१ ॥ दार्वर्थमुद्यताःसर्वेतेसंप्राप्यमहावनम् ॥ केचित्प्राप्यस्थिताःसर्वेझटित्येवंगतज्वरम् ॥ २२ ॥ इतियावदजस्त्रंतेसेवंतेतन्महावनम् ॥ प्रदेशात्तावदेकस्मात्प्राप्तश्चिंतामणिर्मणिः ॥ २३ ॥ तस्माच्चिंतामणेःप्राप्ताः समग्राविभवश्रियः ॥ परमंसुखमायातास्तत्रतेसंस्थिताःसुखम् ॥ २४ ॥ दार्वर्थमुद्यताःसंतःप्राप्य सर्वार्थदंमणिम् ॥ सुखंतिष्ठंतिनिर्द्वंद्वादिविदेववराइव ॥ २५ ॥ सर्वार्थसारपरिपूर्णतयातयातेकाष्ठोद्यमाधिगतसन्मणयोमहांतः ॥ तिष्ठंतिशांतभयमोहविषादुःखमानंदमंथरधियःसमतामुपेताः॥२६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे काष्ठवैवधिकोपाख्यानेचिंतामणिलाभो नाम षण्णवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९६ ॥

अर्थ—कोई भाग्यहीन काष्ठवाहक जो उत्तमवस्तुको दुर्बुद्धिके कारणसे नहीं पहिचानसकतेथे वे केवल खराब जलानेहीकी लकडी ढोलाले और उसके विक्रयसे अपने प्राणकी रक्षा करतेथे ॥ २१ ॥ वे सब महावनमें काष्ठकेही अर्थ गयेथे परन्तु उनमें कितने रत्नोंके प्राप्त होनेसे दारिद्रचके संतापसे रहित होकर शीघ्र धनाढ्य होगये ॥ २२ ॥ इस रीतिसे जब वे निरन्तर उस बनकी सेवा करते (बनमें प्रतिदिन जाके उसमें प्राप्त वस्तुसे जीवन बीताते) थे, इतनेमें किसी स्थान चिन्तामणि (वांछित पदार्थ देनेवाला) नामक मणि दैवयोगसे आगया ॥ २३ ॥ उस चिन्तामणिसे सब प्रकारके मनोवांछित ऐश्वर्य उन सबको प्राप्तहुये और उन ऐश्वर्य्योंसे परमसुखको प्राप्त वे जहां निवास करतेथे ॥ २४ ॥ काष्ठके लिये उन्होंने उद्योग कियाथा, परन्तु भाग्यवश सब पदार्थ देनेवाला चिन्तामणि मिलगया, इससे विरुद्ध होके ऐसे सुखसे रहने लगे जैसे स्वर्गमें श्रेष्ठ देवता ॥ २५ ॥ हे रामजी ! काष्ठके उद्यममें उत्तममणिके मिलनेसे सब उत्तम पदार्थोंकी परिपूर्णतासे वे काष्ठवाही महात्मा भय मोह तथा विषाद तथा सब दुःखोंको शान्ततापूर्वक आनन्दसे पूर्णबुद्धि परमार्थ समताको प्राप्त होकर रहनेलगे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे काष्ठवैवधिकोपाख्याने चिन्तामणिलाभो नाम षण्णवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९६ ॥

सप्तनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९७ ॥

वैवधिक उपाख्यानके स्पष्ट तात्पर्य्य वर्णनके क्रमसे गुरुशास्त्रादिको आत्मज्ञानका हेतु श्रीवसिष्ठजीने इस १९७ के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ तथाकुरुमुनिश्रेष्ठयथावैवधिकक्रमम् ॥ असंदेहमिमंसम्यगवगच्छामिमानद ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येतेवैवधिकारामतएतेमानवाभुवि ॥ तेषांदारिद्र्यदुःखंयत्तदज्ञानंमहातपः ॥ २ ॥ यत्तन्महावनंप्रोक्तंगुरुशास्त्रक्रमादितत् ॥ यदुद्यतास्तेग्रासार्थंजनाभोगार्थिनोहिते ॥ ३ ॥ भोगौघाः सिद्धिमायांतुममनिष्कृपणोजनः ॥ अनपेक्षितकार्यार्थःशास्त्रादौसंप्रवर्तते ॥ ४ ॥

अर्थ – श्रीरामजी बोले—कि हे मानदमुनिश्रेष्ठ ! इस वैवधिक उपाख्यानके तात्पर्य्यको इस रीतिसे वर्णन कीजिये जिससे निस्संदेह इसके तात्पर्य्यको मैं जानजाऊं ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! जो मैंने वैवधिक (काष्ठका बोझा ढोनेवाले) कहेहैं उनको तुम सम्पूर्ण मनुष्योंको जानो, और जो उनका दरिद्रता आदि दुःख कहाहै वह अज्ञानजन्य त्रिविध संसारका ताप है ॥ २ ॥ और जो महाबन मैंने कहा है वह गुरुशास्त्रादिका क्रम है, तथा जो अपनी प्राणरक्षाके लिये वे उद्यत हुये वह भोगार्थीमनुष्य शास्त्र पठनेके अर्थ प्रवृत्त होते हैं वे हैं ॥ ३ ॥ जो अतिकृपणजन है वह परमार्थकी इच्छा न रखके शास्त्रमें इसलिये प्रवृत्त होताहै कि संपूर्णभोगोंके समूह मुझे प्राप्त होजांय ॥ ४ ॥

भोगार्थसंप्रवृत्तोपिप्राप्नोत्यभ्यासतःक्रमात् ॥ जंतुश्चिंतितमेवाद्यपदंपरवशोपिसन् ॥५॥ दार्वर्थमुद्यतो भावीयथासंप्राप्तवान्मणिम् ॥ भोगार्थमात्तशास्त्रोयंतथाप्नोतिजनःपदम् ॥ ६ ॥ किंस्याच्छास्त्रविचारा भ्यामितिसंदेहलीलया ॥ कश्चित्प्रवर्ततेपश्चादाप्नोतियदनुत्तमम् ॥ ७ ॥ अदृष्टोत्तमतत्वार्थःशास्त्रा दौसंप्रवर्तते ॥ संदेहेनार्थभोगार्थंजनःप्राप्नोतितत्पदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—शास्त्रोंके अभ्यासमें भोगार्थही प्रवृत्त मनुष्य अभ्याससे चिन्तित चिन्तामणिरूप परमपदको विवश होकर प्राप्त होजाताहै ॥ ५ ॥ जैसे सारअसारके विचारमें कुछ काष्ठवाही काष्ठके लिये उद्यत होनेपरभी मणि प्राप्त किया, ऐसेही भोगार्थभी शास्त्रको अवलम्बन करताहुवा मनुष्य परमपदको प्राप्तकरलेताहै ॥ ६ ॥ और शास्त्रपठन तथा उसके विचारसे देखे क्या होताहै कोई इस कौतुकसे प्रवृत्त होताहै पश्चात् उत्तमपदको प्राप्तहोजाताहै ॥ ७ ॥ और कोई उत्तमब्रह्मतत्वको न देखनेवाला संदेहसे विषयभोगके अर्थ शास्त्रादिमें प्रवृत्त होताहै पुनः परमपदको प्राप्तहोजाताहै ॥ ८ ॥

अन्यथासंप्रवर्ततेशास्त्रैर्वासनयाजनाः ॥ अन्यदासादयंत्याद्यंमणिंवैवधिकाइव ॥ ९ ॥ परोपकारेवि रतंस्वभावेनप्रवर्तते ॥ यःससाधुरितिप्रोक्तःप्रमाणंत्वस्यचेष्टितम् ॥ १० ॥ साध्वाचारवशाल्लोकोभो गसंप्राप्तिशंकया ॥ संदेहश्चाप्यतत्त्वज्ञःशास्त्रादौसंप्रवर्तते ॥ ११ ॥ भोगार्थंसंप्रवृत्तोसौभोगमोक्षावु भावपि ॥ तस्मात्प्राप्नोतिदार्वर्थीविनाचिंतामणिंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—अपनी २ वासनाके अनुसार अन्य २ प्रयोजनसे मनुष्य शास्त्रआदिमें प्रवृत्त होते हैं और अन्य निर- तिशय आनन्दको ऐसे प्राप्त करते हैं जैसे काष्ठवाहक मणिको ॥ ९ ॥ और जो निरंतर स्वभावसेही परोपकारकेही अर्थ शास्त्र तथा अन्यकार्य्यमें प्रवृत्त होताहै वही साधु है, इसमें प्रमाण स्वभावसेही साधुकी चेष्टा है ॥ १० ॥ सज्जन- पुरुष साधुआचरणके लिये, अज्ञानि भोगप्राप्तिकी शंकासे अथवा संदेहकी निवृत्तिके अर्थ शास्त्रआदिमें प्रवृत्त होताहै ॥ ११ ॥ विषयभोगकेलिये शास्त्रमें प्राणी प्रवृत्त होताहै, कोई उनमें भोग मोक्ष दोनों ऐसे प्राप्तकरताहै जैसे काष्ठार्थी बनसे चिन्तामणिको पाया ॥ १२ ॥

केचिच्चंदनदारूणिकेचिच्चिंतामणिंमणिम् ॥ केचित्सामान्यरत्नानिप्राप्नुवंतियथावनात् ॥ १३ ॥ केचि त्कामंकेचिदर्थंकेचिद्धर्मंत्रयंतुवा ॥ केचिन्मोक्षमशेषंचलभंतेशास्त्रतस्तथा ॥ १४ ॥ वर्गत्रयोपदेशो हिशास्त्रादिष्वस्तिराघव ॥ ब्रह्मप्राप्तिस्त्ववाच्यत्वान्नास्तितच्छासनेष्वपि ॥ १५ ॥ केवलंसर्ववाक्यार्थै र्ध्वन्यमानावगम्यते ॥ कालश्रीःप्रसवेनेवस्वयंस्वानुभवेनसा ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठके अर्थियोंमेंसे किसीने चन्दनकी लकडी पाया, किसीने चिन्तामणिनाम मणि पाया, और किसीने सामान्य रत्नही पाया ॥ १३ ॥ इसीप्रकार शास्त्रसेभी कोई काम, कोई अर्थ, कोई धर्म, कोई धमार्थ काम तीनो, और कोई मोक्षसहित संपूर्ण पुरुषार्थको पाते हैं ॥ १४ ॥ हे राघव ! त्रिवर्ग धर्म, अर्थ, काम, इसकी प्राप्तिका उपदेश शास्त्रोंमें है और वाणीका विषय न होनेसे ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्तशास्त्रोंमेंभी ब्रह्मप्राप्ति वाच्यवृत्तिसे नहीं है किंतु ब्रह्मप्राप्ति लक्षणादिवृत्तिसे "तत्वमसि" इत्यादि वाक्योंसे होती है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! सब वेदान्तवाक्यार्थोंसे ध्व- न्यमान (व्यंजनाशक्तिजन्य) स्वानुभवमात्रसे ब्रह्मप्राप्ति ऐसे ज्ञात होती है जैसे आपने पुष्पफलादिसे वसंत आदि कालकी शोभा ॥ १६ ॥

सर्वार्थातिगतंशास्त्रेविद्यतेब्रह्मवेदनम् ॥ सर्वगातिगतंस्वच्छंलावण्यमिवयोषिति ॥ १७ ॥ नशास्त्रान्न गुरोर्वाक्यान्नदानान्नेश्वरार्चनात् ॥ एषसर्वपदातीतोबोधःसंप्राप्यतेपरः ॥ १८ ॥ एतान्यकारणान्येवका रणत्वंगतान्यलम् ॥ परमात्मैकविश्रांतौयथाराघवतच्छृणु ॥ १९ ॥ शास्त्रादभ्यासयोगेनचित्तंयातंवि शुद्धताम् ॥ अनिच्छदेवमेवाशुपदंपश्यतिपावनम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! धर्म अर्थ तथा कामसे परब्रह्मज्ञान (मोक्ष) यद्यपि वाचकताशक्तिसे नहींहोता तथापि लक्षण वा व्यंजनाशक्तिसे शास्त्रोंमें अधिकारीजनोंके लिये ऐसे है जैसे मणिदर्पणचन्द्रादिसे परे सौन्दर्य्य स्त्रीमें ॥ १७ ॥ ह रामजी ! सब पदोंसे परे यह ब्रह्मबोध साक्षात् न तो शास्त्रसे प्राप्त होताहै, न गुरुकेवाक्यसे, न दानसे और न तपसे, किन्तु परंपरा इन्हीकेद्वारा व्यंजित होताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यद्यपि शास्त्र गुरुआदि साक्षात् कारण ब्रह्मज्ञानके नहीं हैं तथापि जिसप्रकार परमात्माके स्वरूपमें विश्रांतिके लिये ये पूर्णरूपसे कारणताको प्राप्तहुयेहैं वह तुम सुनो ॥ १९ ॥ शास्त्रोंके अभ्याससे जब चित्त शुद्धताको प्राप्त होजाताहै और संपूर्णभोगोंकी इच्छासे रहित होजाताहै तब परम- पावन ब्रह्मपदको शीघ्र देखताहै ॥ २० ॥

एतच्छास्त्रादविद्यायाःसात्त्विकोभागउच्यते ॥ तामसःसात्त्विकेनास्याभागेनायातिसंक्षयम् ॥ २१ ॥ नूनंमलंप्रधानेनक्षालयच्छास्त्ररूपिणा ॥ पुरुषःशुद्धतामेतिपरमांवस्तुशक्तितः ॥ २२ ॥ अनिच्छयोरेव यथासप्तसप्तिसमुद्रयोः ॥ प्रागदृश्यंतृतीयत्वंस्वभाववशतःस्वतः ॥ २३ ॥ स्वसन्निधानमात्रेणविदित प्रतिभासनम् ॥ सदसन्मयमाभोगिप्रतिबिंबंप्रवर्तते ॥ २४ ॥

अर्थ—शास्त्रके अभ्याससे अविद्याका सात्त्विकभाग वृद्धिको प्राप्त होताहै और अविद्याके इस सात्त्विकभागसे तामसभाग नष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥ शास्त्ररूपजलसे पातकरूप मलको धोताहुआ पुरुष शास्त्रजन्य अपूर्वबोधसे परम-शुद्धताको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ जैसे इच्छा न करनेवाले सूर्य्य तथा समुद्रके सन्निधाममात्रसे स्वच्छताके कारण तृतीयवस्तु सूर्य्यका प्रतिबिंब समुद्रमें अवश्य पडताहै ऐसेही इच्छा न रखनेपरभी मुमुक्षु तथा शास्त्रके संबन्धमात्रसे आत्मज्ञान प्रवृत्त होताहै ॥ २३ ॥ दर्पण तथा पदार्थके सन्निधानमात्रसे अनुभवसिद्ध स्फुरणसहित, तथा सदसन्मय विशाल प्रतिबिंब जैसे पडताहै ॥ २४ ॥

मुमुक्षुशास्त्रयोरेवंमिथःसंबंधमात्रतः ॥ सर्वसंवित्पदातीतमात्मज्ञानंप्रवर्तते ॥ २५ ॥ अनयोःप्रेक्षणा द्देहेविवेकोजायतेयथा ॥ तथास्वभावतःशास्त्रविवेकाज्ज्ञेयवेदनम् ॥ २६ ॥ लोष्टेनलोष्टंसलिलेक्षालयन् बालकोयथा ॥ क्षयेणलोष्टयोर्हस्तनैर्मल्यंलभतेपरम् ॥ २७ ॥ तथाशास्त्रविकल्पौघैर्विकल्पांश्चेतना द्बुधः ॥ क्षालयन्स्वविचारेणपरमांयातिशुद्धताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—ऐसेही मुमुक्षु और शास्त्रके परस्परसंबन्धमात्रसे सब इन्द्रियसंबन्धीज्ञानसे परे आत्मज्ञान प्रवृत्त होताहै ॥ २५ ॥ जैसे सूर्य्य तथा समुद्रके देखनेसे दोनोंके अत्यन्त भेदज्ञान होताहै ऐसे शास्त्रजनित विवेकसे देहमें सब उपाधियोंसे निर्मुक्त ज्ञेय आत्माका ज्ञान होताहै ॥२६॥ जैसे बालक जलमें पाषाणसेही पाषाणको धोताहुआ दगडसे उन पाषाणोंके नाशोत्तर हस्तमें परम निर्मलताको प्राप्त करताहै ॥ २७ ॥ ऐसेही विवेकीपुरुष शास्त्रजनित विकल्पसमूहोंसे विकल्पको दूर करतेहुये आत्मतत्वकी विचारसे परीक्षा करनेसे परमशुद्धताको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥

महावाक्यार्थनिष्यंदंस्वात्मज्ञानमवाप्यते ॥ शास्त्रादेरिक्षुरसतःस्वाद्विवस्वानुभूतितः ॥ २९ ॥ प्रभा भित्त्योःसमासंगाद्यथालोकोनुभूयते ॥ श्रुतश्रुतवतोःसंगादात्मज्ञानंतथाभवेत् ॥ ३० ॥ त्रिवर्गमात्रसि द्ध्यैयन्नमोक्षयचतच्छ्रुतम् ॥ विपुलश्रुतचर्चासुतुच्छमश्रुतमेवतत् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुतंयत्किलज्ञप्त्यैसा ज्ञप्तिःसमतायया ॥ तत्साम्यंयत्रसौषुप्तीस्थितिर्जाग्रतिजायते ॥ ३२ ॥ एवंहिसर्वमेतत्तच्छास्त्रादःसम वाप्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनशास्त्राद्यभ्यासमाहरेत् ॥ ३३ ॥ शास्त्रार्थभावनवशेनगिरागुरूणांसत्संग मेननियमेनशमेनराम ॥ तत्प्राप्यतेसकलविश्वपदादतीतंसर्वेश्वरंपरममाद्यमनादिशर्म्म ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शास्त्रमाहात्म्यं नाम सप्तनवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९७ ॥

अर्थ—उपनिषद्, सूत्रभाष्य तथा उनके व्याख्यानभूत महारामायणआदि शास्त्रोंको गुरुमुखसे श्रवण मननादि उपायोंसे "तत्वमसि, अयमात्माब्रह्म, प्रज्ञानंब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि वाक्योंके निष्पन्दपदवाच्यार्थ शोधित लक्ष्यभूत अखंड अपरोक्षानुभव निजअनुभवसे ऐसे प्राप्त करताहै जैसे इक्षु (ईख) के पीडनरूप उपायसे उसके माधुर्य्य रसका स्वाद ॥ २९ ॥ जैसे आकाशमें विकसित प्रकाश भित्तिप्रभाके संयोगसे ज्ञात होताहै ऐसेही शास्त्र तथा उसके अभ्यास करनेवालेके संबन्ध (समागम) से आत्मज्ञान होताहै ॥ ३० ॥ जो त्रिवर्ग (धर्मार्थ काम) की सिद्धिके लिये केवल पांडित्यसम्पादनरूप श्रुत (शास्त्राभ्यास) है न कि मोक्षार्थ वह श्रुत नहीं है, क्योंकि बहुश्रुत आत्मज्ञानियोंमें तत्वबोधकी चर्चामें वह निष्फल होनेसे मूर्खताही है ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! वही शास्त्रका अभ्यास यथार्थ है जो ज्ञानके लिये है, वही ज्ञान है जिसमें आत्मदर्शनसे सर्वत्र समता उत्पन्न होती है, और वही समता है जहां जाग्रत्मेंही सुषुप्ति (निर्विकल्प आत्मस्वरूपमें स्थिति) प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! गुरुओंकी वाणी (उपदेश) के अनुकूल शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे, सत्समागमसे, नियम, यम तथा शमसे संपूर्णसंसारके पदोंसे अर्थात् ब्रह्मलोकके सुखसेभी परे अन्तआदिशून्य परमकल्याणरूप सर्वेश्वर मोक्ष नाम निरतिशय सुख प्राप्तहोताहै ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे शास्त्रमाहात्म्यं नाम सप्तनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९८ ॥

ज्ञानियोंकी निर्विक्षेपस्थितिमें सर्वत्र समदर्शन ऐसे हेतु है जैसे जलकी स्थितिमें सेतु (बन्ध) है इस विषयका वर्णन इस १९८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूयोनिपुणबोधायशृणुकिंचिद्रघूद्वह ॥ पुनःपुनर्यत्कथितंतदज्ञेप्यवतिष्ठते ॥ १ ॥ राघवप्रथमंप्रोक्तंस्थितिप्रकरणंमया ॥ येनेदमित्थमुत्पन्नमितिविज्ञायतेजगत् ॥ २ ॥ ततोजगतिजाते नपरोपशमशालिना ॥ भवितव्यमितिप्रोक्तंमयोपशमयुक्तिभिः ॥३॥ उपशांतिप्रकरणेप्रोक्तैरुपशमक्रमैः ॥ परमोपशमंगत्वावस्तव्यमिहविज्वरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! बोधकी दृढताके लिये पुनः तुम कुछ रहस्य सुनो, यद्यपि पूर्व-प्रसंगमें कथित है तथापि पुनः २ जो कहाजाताहै वह अज्ञानियोंके हृदयमेंभी स्थितरहताहै ॥ १ ॥ हे रामजी ! प्रथम जो मैंने उत्पत्ति तथा स्थितिप्रकरण कहाहै जिनसे यह जगत् भ्रान्तिमात्र उत्पन्नहोके स्थित है यह जानाजाताहै ॥ २ ॥ इन दोनों उत्पत्ति तथा स्थितिप्रकरणोंसे जब यह पूर्णरीतिसे ज्ञात होगया कि यह जगत् भ्रममात्र है ऐसा ज्ञात होनेपर अनन्तर उपशमप्रकरणकी युक्तियोंसे यह उपदेश किया इस भ्रान्तिमात्र जगत्‌में उत्पन्न पुरुषको शान्त तथा सर्वत्र समदर्शी होके रहना योग्यहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

प्राप्तप्राप्येनतज्ज्ञेनयथासंसारदृष्टिषु ॥ विहर्तव्यंहिनःकिंचित्स्वल्पंश्रोतव्यमस्तिते ॥ ५ ॥ जन्मसंप्राप्यजगतिबाल्यएवजगत्स्थितिम् ॥ यथाभूतामिमांबुद्ध्वावस्तव्यमिहविज्वरम् ॥ ६ ॥ सर्वसौहार्दजननींसर्वस्याश्वासकारिणीम् ॥ समतामलमाश्रित्यविहर्तव्यमिहानघ ॥ ७ ॥ सर्वसंपत्तिसुभगंसर्वसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ समतासुलतायास्तुफलंभवतिपावनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसको प्राप्य (ब्रह्मज्ञान) वस्तु प्राप्तहोगई उस ज्ञानीको संसारके व्यवहारमें कैसे व्यवहार करनाचाहिये इस विषयमें मेरे मुखसे तुमको कुछ अल्प रहस्य श्रोतव्य है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इस संसारमें जन्म (मनुष्य जन्म) पाकर और तुमारे सदृश बाल्यअवस्थाहीमें जगत्स्थिति (भ्रान्तिमात्र) जानकर वक्ष्यमाणरीतिसे निर्विक्षेप रहना चाहिये ॥ ६ ॥ हे अनघ रामजी ! सब जीवमात्रमें सौहार्द (मित्रता) की जननी, प्राणीमात्रको विश्वासकारिणी जो समता जीवमात्रमें एक आत्माकी दृष्टि है उसको पूर्णरीतिसे अवलंबन करके इस संसारमें विहार करनाचाहिये ॥ ७ ॥ सबसम्पत्तियोंमें उत्तम सब सौभाग्योंका वर्द्धक समतारूप लताका फल (सर्वभूमैत्रीरूप) अति-पावन होताहै ॥ ८ ॥

समतासुभगेहानांकुर्वतांप्रकृतंक्रमम् ॥ सर्वैर्येयंजगल्लक्ष्मीर्भृत्यतामेतिराघव ॥ ९ ॥ नतदासाद्यतेराज्यान्नकांताजनसंगमात् ॥ अनपायिसुखंसारंसमत्वाद्यदवाप्यते ॥ १० ॥ द्वंद्वोपशमसीमांतंसंरंभज्वरनाशनम् ॥ सर्वदुःखातपांभोदंसमत्वंविद्धिराघव ॥ ११ ॥ मित्रीभूताखिलरिपुर्यथाभूतार्थदर्शनः ॥ दुर्लभोजगतांमध्येसाम्यामृतमयोजनः ॥ १२ ॥

अर्थ— हे रामजी ! समतासे सब जीवोंके हितकी चेष्टा करते हुये यथाप्राप्त वर्णाश्रमका व्यवहार करनेवाले पुरुषोंकी यह संपूर्ण जगत्की लक्ष्मी दासी होजाती है ॥९॥ जो अविनाशी उत्तम सुख समतासे प्राप्त होताहै वह न राज्यसे प्राप्त हो, और न उत्तम स्त्रीके समागमसे ॥ १० ॥ हे राघव ! रुद्रके शान्त करनेकी परमा सीमा, चिन्तारूपी ज्वरका नाशकारक तथा त्रिविधदुःखरूप तापके लिये मेघस्वरूप समताको तुम जानो ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण शत्रुओंको मित्र समझनेवाला और तत्वदर्शी समतारूपी अमृतसे पूर्ण मनुष्य तीनोंलोकोंमेंभी दुर्लभ है ॥ १२ ॥

प्रबुद्धस्यस्वचित्तेंदोर्निष्यंदममृताधिकम् ॥ साम्यमास्वाद्यजीवंतिसर्वेवैजनकादयः ॥ १३ ॥ साम्यमभ्यस्यतोजंतोःस्वदोषोपिगुणायते ॥ दुःखंसुखायतेनित्यंमरणंजीवितायते ॥ १४ ॥ साम्यसौंदर्यसुभगंवनितामुदितादिकाः ॥ आलिंगंतिमहात्मानंनित्यंव्यसनिताइव ॥ १५ ॥ समःसमुदितोनित्यंसमोनुदितधीःसदा ॥ नकाश्चिदिहताःसंतियाः समस्यहिनर्द्धयः ॥ १६ ॥

अर्थ—अमृतसेभी अधिक आस्वादयुक्त समतारूप अपने प्रबुद्ध (ज्ञानयुक्त) चित्तके रसका आस्वाद लेके सब जनक आदि तत्वज्ञानी जीते हैं ॥ १३ ॥ समताका अभ्यास करनेवाले जीवके निज काम, क्रोध तथा लोभादि दोष क्रमसे शान्ति उदारतादिमें परिणत होके गुण होजाते हैं, दुःखभी सुख होजाताहै, तथा अपना मरणभी जीवनके सदृश

सुखका हेतु होताहै ॥ १४ ॥ समताऋप सुदृढतासे सुन्दर महात्मा पुरुषको मैत्री, करुणा, तथा उपेक्षाआदि उत्तम ललना ऐसे नित्य लपटती हैं जैसे पतिको कामिनी स्त्रियां ॥ १५ ॥ जिसको पूर्णरीति समदर्शिताका उदय हुआहै और समदर्शन जो चिन्तारहित होगयाहै उस पुरुषको कौनसी इस लोकमें ऐसी सम्पत्ति हैं जो नहीं प्राप्त होतीं ॥ १६ ॥

सर्वकार्यसमंसाधुंप्रकृतव्यवहारिणम् ॥ चिंतामणिमिवोदारंप्रवांछंतिनरामराः ॥ १७ ॥ सम्यक्कारिणमुद्दामसमुदितंसमचेतसम् ॥ नदहंत्यग्नयोरामनापःसिंचंतिमानवम् ॥ १८ ॥ यद्यथातत्तथायेनक्रियतेदृश्यतेतथा ॥ आनंदोद्वेगमुक्तेनकस्तंतोलयितुंक्षमः ॥१९॥ मित्राणिबंधुरिपवोराजानोव्यवहारिणः ॥ सम्यक्कारिणितत्त्वज्ञेविश्वसंतिमहाधियः ॥ २० ॥

अर्थ—जो अपने तथा पराये सब कार्य्योंमें समानवर्ताव करनेवाला तथा क्षमा उदारतादि गुणसम्पन्न हैं और प्रकृतव्यवहारोंको निष्पक्षपातसे करताहै उस चिन्तामणिके तुल्य साधुपुरुषको सब मनुष्य तथा देवताभी चाहते हैं॥१७॥ सदाचार तथा सर्वहितकारी और निर्भय वीर समतायुक्त चित्तवाले पुरुषको हे रामजी ! न अग्नि जलासकती है और न जल भिगाकर दुःखी करसकताहै ॥ १८ ॥ जो कार्य्य जैसे करनाचाहिये उसको वैसाही जो करताहै और हर्ष-विषादसे वर्जित सब कार्य्योंको समताहीसे करनेवाला जो देखपडताहै उस महापुरुषकी तुलना कौन करसकताहै ॥ १९ ॥ समतासे व्यवहारकरनेवाले ज्ञानीपुरुषके ऊपर शत्रु, मित्र, राजा तथा महाबुद्धिमान् व्यापारीजन सब विश्वास करतेहैं ॥ २० ॥

नानिष्टात्प्रपलायंतेनेष्टाद्यांतितुष्टताम् ॥ प्रकृतक्रमसंप्राप्तास्तत्त्वज्ञाःसमदर्शिनः ॥ २१ ॥ त्यक्त्वासर्वानुपादेयान्रामभावाननिंदितान् ॥ समतायामदुःखायांदधानावृत्तिमुत्तमाम् ॥ २२ ॥ विहसंतिजगज्जालंजीवयंतिनिरामयाः ॥ पूज्यंतेविबुधैःसर्वैःसमतामुदिताशयाः ॥ २३ ॥ प्रकृतक्रमसंप्राप्तमुखेंदौकोपमेवयः ॥ समाशयोधारयतिस्यात्सौम्यामृतवज्जनः ॥ २४ ॥

अर्थ—यथाप्राप्त व्यवहार करनेवाले समदर्शी तत्वज्ञ महात्मा न तो अनिष्टसे घबराके भागे हैं और न इष्टसे अतिप्रसन्न होतेहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! अन्यपुरुषोंके ग्रहणकरनेयोग्य अनिन्दित गृह क्षेत्रआदिपदार्थोंकोभी त्यागकर निर्लोभताऋपवृत्तिको धारणकरके दुःख शून्य समतामें विराजमान निर्विकार तथा प्रसन्नचित्त महात्मा, इस जगत्जालको हंसतेहैं, दूसरोंको उपदेश देते हैं और सब देवतासेभी पूजातेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे रामजी ! समतायुक्त अन्तःकरणवाला प्राणी यदि प्रकृतव्यवहारसे प्राप्तकोपभी निजमुखरूपी चन्द्रमामें धारणकरताहै तो वह कोपभी अमृतवत्फलदायक होताहै न कि किसीको क्षोभकारक ॥ २४ ॥

यत्करोतियदश्नातियदाक्रामतिनिंदति ॥ समदृष्टिस्तदस्येयंस्तौतिनित्यंजनावलिः ॥ २५ ॥ यच्छुभंवाशुभंयच्चयच्चिरेणयदद्यवा ॥ समदृष्टिकृतंसम्यगभिनंदतितज्जनः ॥ २६ ॥ सुखदुःखेषुभीमेषुसंततेषुमहत्स्वपि ॥ मनागपिनवैरस्यंप्रयांतिसमदृष्टयः ॥ २७ ॥ शिबिर्भूपःकपोतायमांसमंगविकर्तनम् ॥ ददौमुदितयाबुद्ध्यासमदृष्टितयानया ॥ २८ ॥

अर्थ—समदर्शीप्राणी जो कुछ करताहै, जो खाताहै और अनुचित जानकर जिसकी निन्दा करताहै उसके इन सब कर्मोंकी प्राणीमात्र स्तुति करताहै ॥ २५ ॥ शुभ हो, वा अशुभ हो, शीघ्र हो, वा चिरकालसे हो, समदृष्टि पुरुष जो कुछ करताहै उसकी सज्जनपुरुष प्रशंसा करताहै ॥ २६ ॥ चिरकालतक घोरसंकट पडनेपरभी समदृष्टि पुरुष कुछभी नहीं घबराता ॥ २७ ॥ राजाशिबिने समदर्शिताके कारणसेही प्रसन्नचित्तसे अपना शरीर काटके कपोतको मांस देदिया ॥ २८ ॥

प्राणेभ्योपिप्रियतमांकांतामग्रेविकालिताम् ॥ दृष्ट्वाप्यगंमहीपालोनमुमोहसमाशयः ॥ २९ ॥ मनोरथशतप्राप्ततनयंसमयाधिया ॥ राक्षसायत्रिगर्तेशोददौस्वपणहारितम् ॥ ३० ॥ नगर्यांदह्यमानायांभूषितायांतथोत्सवे ॥ समएवमहीपालोजनकोभूभृतांवरः ॥ ३१ ॥ न्यायतःपरिविक्रीतंसाल्वराद्समदर्शनः ॥ स्वमेवविचकर्ताशुशिरःपद्मदलंयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—समदर्शीराजा अङ्ग शत्रुओंसे क्लेशित प्राणसेभी प्रिय अपनी प्रियाको देखकर मोहित नहींहुये ॥ २९ ॥ समदृष्टिकेही कारण त्रिगर्तके राजाने अनेक मनोरथोंके अनन्तर प्राप्त पुत्रको वाग्द्यूतमें हारजानेसे राक्षसको देदिया ॥ ३० ॥ महाउत्सवमें अनेकप्रकारके धनधान्यसे पूर्ण तथा शोभायुक्त मिथिलानगरीके जलनेपर राजश्रेष्ठ जनकजी समभाव (उदासीनतारहित) बनेरहे ॥ ३१ ॥ मैं तमारी इच्छाके अनुकूल दक्षिणा दूंगा इस

प्रतिज्ञासे विक्रीतके सदृश अपनेही शिरको साल्व राजाने समदर्शिताहीके कारण शीघ्र ऐसे छेदनकिया जैसे कमलदलको ॥ ३२ ॥

कुंदप्रकरनिर्भासंयज्ञेपांडुमिवाचलम् ॥ जहौजरत्तृणमिवसौवीरःसमयाधिया ॥ ३३ ॥ समयैवधिया नित्यंनिजमभ्याहरन्क्रमम् ॥ मातंगःकुंडपोनामप्रापवैमानिकस्थितिम् ॥ ३४ ॥ सर्वभूतक्षयकरींसा म्याभ्यासेनभूरिणा ॥ तत्याजराक्षसींवृत्तिकदंबवनराक्षसः ॥ ३५ ॥ बालचंद्राभिजातोपिसमबुद्धित याजडः ॥ ॥ गुडमोदकवन्न्यायप्राप्तमग्निमभक्षयत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कुन्दकेसमान श्वेतवर्ण कैलासकेसमान महान्आकारयुक्त इन्द्रके विजयसे प्राप्त ऐरावतको यज्ञमें ऋत्विजोंके वचनसे राजा सौवीरने समदृष्टिहीसे पुनः इन्द्रको देदिया ॥ ३३ ॥ निजशरीरयात्राके निमित्त अपने व्यवहारप्राप्त क्रम करताहुआ कुंडपनाम मातंग (चांडाल) ने एक गौ लेनेका नियमकरके कीचडमें फंसीहुई, ब्राह्मणकी पांच गौओंको निकाला, अनन्तर उस अपनी गौकोभी समदृष्टिसे पुष्करतीर्थमें उसी ब्राह्मणको देदिया इससे वह देवपदवीको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ सबप्राणियोंको नाशकरनेवाली निज राक्षसीवृत्तिको कदंबवनके राक्षसने समताहीके अभ्याससे त्यागदिया ॥ ३५ ॥ द्वितीयाके चन्द्रमाके तुल्य शुद्धभी जडभरत समदर्शिताहीके कारणसे भिक्षाके पात्रमें भिक्षाके सदृश प्राप्त अग्निको गुडके मोदक (लड्डु) के समान भोजन करगये ॥ ३६ ॥

समबुद्धितयाक्रूरव्यवहारपरोपिसन् ॥ धर्मव्याधस्तनुंत्यक्त्वाजगामपरमंपदम् ॥ ३७ ॥ नंदनोद्यानसं स्थोपिपुरुषोपिकपर्दनः ॥ क्षुब्धेनक्षुरस्त्रीषुनूनंप्रणयिनीष्वपि ॥ ३८ ॥ समचित्ततयाऽस्पंदःकरंजगह नेष्वपि ॥ विंध्यकांतारकच्छेषुराज्यंत्यक्त्वावसच्चिरम् ॥ ३९ ॥ ऋषयोमुनयश्चैवयेसिद्धाःसुरपूजि ताः ॥ समदृष्टितयोद्विग्नानतेतासुव्रतर्धिषु ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! समदृष्टिहीके कारण धर्मव्याध अपने हिंसादि क्रूरव्यवहारमें तत्परभी इस शरीरको त्यागकर परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ आत्मज्ञानजनित समदर्शिताहीके कारण नन्दनवाटिकामें स्थितभी देवांगना-ओंके भोगमें समर्थभी कपर्दननाम राजर्षि अपनेमें अनुरागयुक्तभी अप्सराओमें मोहित नहींहुये ॥ ३८ ॥ मनमें सम-दर्शिता होनेहीसे उसी राजाने अपने राज्यको त्यागकर करंजवृक्षोंसे पूर्ण विंध्याचलके गहनवनोंमें चिरकालतक चेष्टारहित होके सुखसे निवास किया ॥ ३९ ॥ देवोंसे पूजित बडे २ ऋषि, मुनि तथा सिद्ध तपस्याके क्लेशोंमें और उत्तमभोगदायक ऋद्धियोंके प्राप्त होनेपरभी समदर्शिताहीसे उद्विग्न न हुये ॥ ४० ॥

राजानःप्राकृताश्चैवधर्मव्याधादयोपरे ॥ समदृष्टिपदाभ्यासान्महतांपूज्यतांगताः ॥ ४१ ॥ इहामुत्रच सिद्ध्यर्थपुरुषार्थप्रवृत्तये ॥ समदृष्टितयानित्यंविचरंतिसुबुद्धयः ॥ ४२ ॥ अभिवांछेन्नमरणमभिवांछेन्न जीवितम् ॥ यथाप्राप्तसमाचारोविचरेदविहिंसकः ॥ ४३ ॥ समकलितगुणागुणैकभावःसमसुखदुः खपरावरोविलासी ॥ प्रविचरतिसमावमानमानःप्रकृतवरव्यवहारपूतमूर्तिः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे समदृष्टिप्रशंसानामाष्टनवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अनेक राजा तथा धर्मव्याध आदि प्राकृतजनभी समता (सर्वत्र एकात्मदृष्टि) केही अभ्या-ससे महात्माओंकेभी पूज्य हुये ॥ ४१ ॥ इस तथा परलोककी सिद्धिके अर्थ और परमपुरुषार्थ आत्मज्ञानकी प्रवृत्तिके लिये उत्तमबुद्धियुक्त जन सदा समदृष्टि होके संसारमें विचरते हैं ॥ ४२ ॥ न तो मरणकी इच्छा करैं न जीवनकी किन्तु यथाप्राप्त व्यवहार करताहुआ अहिंसा करके इस संसारमें विचरै ॥ ४३ ॥ समतासे गुण तथा अवगुणके समान-भावसे द्रष्टा, उत्कृष्ट तथा निकृष्टयोनिमें सुखदुःखको समान समझनेवाला, तथा मान और अपमानमें समभावभावसे स्थित, और प्रकृतव्यवहारको आसक्तिरहित होके करनेसे पवित्रमूर्ति विलासी पुरुष इस जगत्में लोकोपकारार्थ विचरताहै ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे समदृष्टिप्रशंसानामाष्टनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९८ ॥

नवनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९९ ॥

मुक्त (जीवन्मुक्त) जनोंको कृतकार्य्योंसे न कुछ लाभ है और न अकृतकार्य्योंसे कुछ हानि तथापि लोकसंग्रहार्थ वे सत्कर्मोंको करतेहैं इस विषयका वर्णन इस १९९ के सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ नित्यंज्ञानैकनिष्ठत्वादात्मारामतयातथा ॥ मुक्तैःकर्मपरित्यागःकस्मान्नक्रियतेमुने॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ हेयोपादेयदृष्टीद्वेयस्यक्षीणेहितस्यवै ॥ क्रियात्यागेनकोर्थःस्यात्क्रियासंश्रयणेनवा ॥ २ ॥ नतदस्तीहयत्त्याज्यंज्ञस्योद्वेगकरंभवेत् ॥ नवास्तियदुपादेयंतज्ज्ञसंश्रेयतांगतम् ॥ ३ ॥ ज्ञस्य नार्थःकर्मत्यागैर्नार्थःकर्मसमाश्रयैः ॥ तेनस्थितंयथायद्यत्तत्तथैवकरोत्यसौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे मुने ! नित्य एक ब्रह्मज्ञानमें परायण होनेसे, तथा सदा निजआत्माहीमें रमण शील होनेसे जीवन्मुक्त पुरुष कर्मोंका त्याग क्यों नहींकरते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! जिसकी हेय और उपादेय दोनोंदृष्टि क्षीण होगई हैं उस जीवन्मुक्तको कर्मोंको त्यागनेसे वा ग्रहणसे क्या प्रयोजन है ॥ २ ॥ ज्ञानीको कोई कर्म उद्वेगकारी नहीं है जिसको वह त्यागै और न कोई हर्षजनक है जिसको वह ग्रहणकरै ॥ ३ ॥ जीनन्मुक्त ज्ञानीको न कर्मोंके त्यागनेसे कुछ प्रयोजन है और न उनके ग्रहणसे इस हेतुसे वर्णाश्रमके अनुसार जो प्रवाहपतित कार्य्य जैसा है उसको वह वैसाही करताहै ॥ ४ ॥

यावदायुरियंरामनिश्चितंस्पंदतेतनुः ॥ तद्यथाप्राप्तमव्यग्रंस्पंदतांमपरेणकिम् ॥५॥ अन्यथान्यत्रचेत्कार्यक्रियात्यक्त्वानिजंक्रमम् ॥ समानेहिक्रियास्पंदेकोदोषःसक्रमेकिल ॥ ६ ॥ समयास्वच्छयाबुद्ध्यास ततंनिर्विकारया ॥ यथायत्क्रियतेरामतददोषायसर्वदा ॥ ७ ॥ इहमह्यांमहाबाहोबहवोबहुदृष्टयः ॥ बहुदाबहुदोषेषुविहरंतिविचक्षणाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक आयु है तबतक इस शरीरका धर्म है कि वह चेष्टा अवश्य करै, इससे यह उचित है कि वर्णाश्रम तथा अपने कुलक्रम प्राप्त धर्मके अनुकूल चेष्टा करे और चेष्टाके अभावसे तथा वर्णाश्रम और कुलके विरुद्ध चेष्टाकरनेसे क्या प्रयोजन है ॥ ५ ॥ निजवर्णाश्रमकुलक्रमको त्यागकर अन्यथा क्रिया करनाहै तो शास्त्रीय और अशास्त्रीयक्रियाकी चेष्टा समान होनेपरभी शास्त्रीय निजसत्कर्म करै तो इसमें क्या दोष है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! कार्य्यकी सिद्धि वा असिद्धिमें समान, निर्मल तथा निरन्तर पक्षपातादिविकाररहितबुद्धिसे जो कुछ मनुष्य करताहै वह सब निर्दोषताहीकेलियेहै ॥ ७ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इस पृथिवीपर सब शास्त्रोंके रहस्यके ज्ञाता बहुदर्शी निज समदर्शिताके बलसे लोकसंग्रहमें चतुरजन प्रायः द्रव्यार्जन तथा ऋत्विगूआदिके अनुष्ठान साध्य दोषयुक्त कर्मोंमेभी प्रवृत्त रहतेहैं ॥ ८ ॥

गतसंगतयाबुद्ध्याविहरंतियथास्थितेः ॥ गृहस्थारंभिणःकेचिज्जीवन्मुक्ताःस्थिताभुवि ॥ ९ ॥ तज्ज्ञा राजर्षयश्चान्येवीतरागाभवादृशाः ॥ असंसक्तधियोराज्यंकुर्वंतिविगतज्वराः ॥ १० ॥ केचित्प्रकृतवेदार्थव्यवहारानुसारिणः ॥ यज्ञशिष्टाशिनोनित्यमग्निहोत्रेव्यवस्थिताः ॥ ११ ॥ केचिच्चतुर्षुवर्णेषुध्यानदेवार्चनादिकाम् ॥ स्वक्रियामनुतिष्ठंतःस्थिताविविधयेहया ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई जीवन्मुक्त संगरहितबुद्धिसे, और कोई यथाप्राप्त कार्य्य तथा कोई गृहस्थाश्रमको धारणकरके संसारमें विहार करते हैं ॥ ९ ॥ और हे रामजी ! आपके सदृश अनेक शान्त तथा वीतराग राजर्षि आसक्तिरहितबुद्धिसे सन्तापरहित होके राज्य करते हैं ॥ १० ॥ तथा कितने प्रचलित वेदार्थके अनुसार व्यवहार करनेवाले, यज्ञाशिष्टभोजी अति अग्निहोत्रमेंही स्थित रहतहैं ॥ ११ ॥ तथा कोई जीवन्मुक्त चारों वर्णाश्रममें निज २ वर्णाश्रमके योग्य ध्यान देवार्चनादि क्रियाओंको तथा चतुर्थ आश्रमके योग्य ध्यानको करतेहुये अनेकप्रकारकी चेष्टाओंसे विचरते हैं ॥ १२ ॥

केचित्सर्वपरित्यागमंतःकृत्वामहाशयाः ॥ सर्वकर्मपरानित्यंतज्ज्ञाएवाज्ञवत्स्थिताः ॥ १३ ॥ स्वर्गेप्यदृष्टलोकासुमुग्धमुग्धमृगासुच ॥ वनावनीषुशून्यासुकेचिध्यानपरायणाः ॥ १४ ॥ पुण्यवद्भिःसदा जुष्टेपुण्येपचयकारिणि ॥ शमशालिसमाचारेकेचिदायतनेस्थिताः ॥ १५ ॥ रागद्वेषप्रहाणार्थंत्यक्त्वादेशंसमाशयाः ॥ केचिदन्यत्रदेशेचपदमालंब्यसंस्थिताः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कोई २ जीवन्मुक्त महाशय अन्तःकरणसे सब कर्मोंके फलोंको त्यागकर सबकर्मोंमें तत्पर रहतेहैं, ज्ञानी होकरभी अज्ञानीके सदृश व्यवहार करते हैं ॥ १३ ॥ और कोई जीवन्मुक्त स्वप्नमेंभी मनुष्यदर्शनशून्य (निर्जन) अतिमुक्त मृगआदि पशुओंसे युक्त शून्य वनस्थलियोंमें ध्यानमेंही परायण रहतेहैं ॥ १४ ॥ पवित्र साधुजनोंसे सेवित, अतएव धर्मवर्द्धक, तथा शान्तिसमतादि आचारोंसे पूर्ण तीर्थस्थानोंमें (बदरीहरिद्वारादि आश्रमोंमें) ही स्थित रहते हैं ॥१५ ॥ तथा कोई समदर्शी बन्धुजनोंके समागममें सैंकडों विक्षेप होनेसे रागद्वेषादिके नाशार्थ अपना देश त्यागकर अन्यत्र कुटी बनाके आत्मध्यानमें परायण रहते हैं ॥ १६ ॥

वनाद्वनंपुराद्ग्रामंस्थानात्स्थानंगिरेर्गिरिम् ॥ भ्रमंतःसंस्थिताःकेचित्संसारोच्छित्तयेबुधाः ॥ १७ ॥ वाराणस्यांतथापुर्यांप्रयागेचैवपावने ॥ श्रीपर्वतेसिद्धपुरेबदर्याश्रमकेतथा ॥ १८ ॥ शालग्रामेमहापुण्येकलापग्रामकोटरे ॥ मथुरायांचपुण्यायांतथाकालंजरेगिरौ ॥ १९ ॥ महेंद्रवनगुल्मेषुगंधमादनसानुषु ॥ दर्दुराचलवप्रेषुसह्यकाचलभूमिषु ॥ २० ॥

अर्थ—तथा कोई २ ज्ञानी संग्रहजन दोषके परिहारार्थ तथा संसारके उच्छेदके लिये एक बनसे दूसरे बनमें, एकनगर वा ग्रामसे दूसरे नगर वा ग्राममें, एक तीर्थस्थानसे दूसरे तीर्थमें, तथा एकपर्वतसे दूसरे पर्वतपर भ्रमण करते हुये काल बितातेहैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! सर्वोत्तम महापुरी काशी, पवित्र प्रयाग, श्रीपर्वत, सिद्धपुर तथा बदरीकाश्रममें तपस्वीजन निवास करते हैं ॥ १८ ॥ पवित्र शालग्राममें कलापकी कन्दराओंमें, पवित्र मथुरामें तथा कालंजरपर्वतपर महात्माजन विचरते हैं ॥ १९ ॥ तथा महेन्द्रपर्वतके बन और लताकुंजोंमें गन्धमादनपर्वतके पवित्र शिखरोंपर, दर्दुरपर्वतकी तटभूमियोंमें, तथा सह्यपर्वतकी भूमियोंमें कोई २ समदर्शीजन विचरते हैं ॥ २० ॥

विंध्यशैलस्यकच्छेषुमलयस्योदरेषुच ॥ कैलासवनजालेषुऋक्षवत्कुहरेषुच ॥ २१ ॥ एतेष्वन्येषुचान्येषुवनेष्वायतनेषुच ॥ तपस्विनस्तथारामबहवोबहुदृष्टयः ॥ २२ ॥ केचित्त्यक्तनिजाचाराःकेचिच्चक्रमसंस्थिताः ॥ केचित्प्रबुद्धमतयोनित्यमुन्मत्तचेष्टिताः ॥ २३ ॥ केचित्स्वदेशरहिताःकेचित्त्यक्तनिजास्पदाः ॥ एकस्थानरताःकेचिद्भ्रमंतःकेचिदास्थिताः ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा विन्ध्याचलके सजलप्रदेशोंमें, मलयगिरिकी भूमियोंमे, कैलासपर्वतके वनसमूहोंमें और ऋक्षवान् पर्वतकी कन्दराओंमें योगीजन विचरतेहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इन पूर्वोक्तस्थानोंमें तथा अन्य पवित्र तीर्थादिस्थानोंमें अनेक तपस्वी और बहुदर्शी ज्ञानीजन विचरतेहैं ॥ २२ ॥ किसीने संन्यासविधिसे अपने वर्णाश्रमके आचारोंको त्याग-दियाहै और कोई ब्रह्मचर्य्यआदि आश्रमोंमें स्थित हैं, तथा कोई ज्ञानी होकेभी नित्य उन्मत्तोंकीसी चेष्टा करतेहैं ॥ २३ ॥ कोई अपने देशकोही त्यागदेतेहैं, कोई स्थानमात्र त्यागतेहैं, कोई एकस्थान (अपने गृह) परही स्थितरहतेहैं ॥ २४ ॥

एतेषांमहतांमध्येनभस्तलनिवासिनाम् ॥ पातालनिरतानांचदैत्यादीनांमहामते ॥ २५ ॥ विज्ञातलोकपर्यायाःसम्यग्दर्शननिर्मलाः ॥ केचित्प्रबुद्धमतयोदृष्टदृश्यपरावराः ॥२६॥ अप्रबुद्धधियःकेचिद्दोलांदोलितचेतसः ॥ निवृत्ताःपापकाचारात्सुजनानुगताःस्थिताः ॥ २७ ॥ अर्द्धप्रबुद्धमतयःकेचिज्ज्ञानावलेपतः ॥ परित्यक्तक्रियाचाराउभयभ्रष्टतांगताः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे महामते रामजी ! इन आकाश, पाताल तथा मर्त्यलोकनिवासी देव तथा दैत्यआदि महात्माओंके मध्यमें कितनेही लोककी स्थिति (भ्रान्तिमय) के ज्ञाता, परावरके द्रष्टा, तथा सम्यग् (ब्रह्म) दर्शनसे निर्मलचित्त प्रबुद्धमति जीवन्मुक्त हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ और कितनेही अबुद्धमति अतएव संदेहग्रस्त तथा पापआचारसे निवृत्त सुजनोंके मार्गपर चलनेवालेहैं ॥ २७ ॥ और कितनेही अर्द्धज्ञानी हम ब्रह्म हैं निषिद्धाचरणसें हमारे क्या होगा ऐसे गर्वसे संपन्न, निजवर्णाश्रमके आचारोंको त्यागनेसे उभयलोकसे भ्रष्ट होगयेहैं ॥ २८ ॥

इत्थमस्मिन्जनानीकेजन्मसंतरणार्थिनः ॥ बहवःसंस्थितारामबहुधाबहुदृष्टयः ॥ २९ ॥ संसारोत्तरणेतत्रनहेतुर्वनवासिता ॥ नापिस्वदेशवासित्वंनचकष्टतपःक्रियाः ॥ ३० ॥ नक्रियायाःपरित्यागोनक्रियायाःसमाश्रयः ॥ नाचारेषुसमारंभविचित्रफलपालयः ॥ ३१ ॥ स्वभावःकारणंनामसंसारोत्तरणंप्रति ॥ असंसक्तंमनोयस्यसतीर्णोभवसागरात् ॥ ३२॥

अर्थ—इसप्रकार हे रामजी ! इस जनसमूहमें कितनेही जन्ममरणरूप समुद्रसे पार होनेके अभिलाषी, तथा कितनेही बहुदर्शी हैं ॥ २९ ॥ किन्तु हे रामजी ! संसारसे पारहोनेके अर्थ न तो वनका निवास है, न स्वदेशका निवास

है, तथा न कष्टदायक तप है ॥ ३० ॥ और न कर्मोंका परित्याग है, न कर्मोंका ग्रहण है, और न अनेकप्रकारके कर्मोंके अनुष्ठानसे सिद्ध प्रसिद्धिका लाभ, ऐश्वर्य्य तथा वरशापादि फलसमूहही है ॥ ३१ ॥ किन्तु अपने शुद्ध सच्चित्स्वभावमें जो स्थिति है वही संसारसागरसे पार होनेमें कारण है, क्योंकि तत्वज्ञानसे जिसका मन संसारके विषयोंमें आसक्त नहीं है वह संसारसे पार होचुका ॥ ३२ ॥

शुभाशुभाःक्रियानित्यंकुर्वन्परिहरन्नपि ॥ पुनरेतिनसंसारमसंसक्तमनामुनिः ॥ ३३ ॥ शुभाशुभाःक्रियानित्यमकुर्वन्नपिदुर्मतिः ॥ निमज्जत्येवसंसारेपरित्यक्तमनाःशठः ॥ ३४ ॥ मक्षिकेवांतःसारज्ञादुःखादुःखप्रदायिनी ॥ नर्निवारयितुंशक्यानचमारयितुंमतिः ॥ ३५ ॥ काकतालीययोगेनकदाचित्स्वस्यचेतसः ॥ प्रवृत्तिर्जायतेसिद्धयैस्वयमात्मावलोकने ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आसंगरहित होके शुभक्रियाओंको करताहुआ और अशुभका परिहार करताहुआ असंगचित्त जीवन्मुक्त पुनः इस संसारमें नहींआता ॥ ३३ ॥ जो दुर्बुद्धि शुभाशुभ क्रियाओंको शरीरसे नहींभी करता, परन्तु विषयोंमें प्रविष्ट अपने चित्तको वश नहीं किया है वह स्वात्मवंचक इस संसारमें अवश्य डूबताहै ॥ ३४ ॥ मधु (सहत्) के घडेमें फसी हुई मक्षिकाकेसमान विषयरसके स्वादको जाननेवाली मति न निवारण कीजासकती है और मारी जासकती है अतः तत्वाभ्याससेही वह वशीभूत होती है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! कदाचित् सौभाग्यसे साधनचतुष्टयकी सम्पत्ति होनेपर आकस्मिक आत्मज्ञानके लिये अपने चित्तकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ ३६ ॥

अवलोकनतोलब्धवातत्त्वंनैर्मल्यमागतम् ॥ चेतोभवतिनिर्द्वंद्वमसंसक्तमनामयम् ॥ ३७ ॥ अचित्तत्वंप्रयातेनसत्स्वरूपेणचेतसा ॥ समोभूत्वासुखंतिष्ठपराकाशांशरूपभृत् ॥ ३८ ॥ अधिगतपरमार्थस्त्यक्तरागादिदोषःसममतिरुदितात्मात्वंमहात्मामहात्मन् ॥ रघुतनयविशोकस्तिष्ठनिःशंकमेकोजननमरणमुक्तंपावनंतत्पदंत्वम् ॥ ३९ ॥ प्रकृतिमलविकारोपाधिबोधादिरूपंजगतिविमलरूपेनास्तिकिंचित्कचिच्च ॥ स्फुटमकृतकमस्तिब्रह्मचिद्धामतच्चस्वयमहमितिमत्वातिष्ठनिःशंकमेकः ॥ ४० ॥ अधिकवचनगम्यंनान्यदस्त्यंगकिंचित्तवशुभमुपदेश्यंज्ञानसंबोधनाय ॥ उदितमखिलमाद्यंज्ञानसारंसमग्रंविदितसकलवेद्योराघवत्वंहिजातः ॥ ४१ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वामुनिनायकोव्यपगताशेषैषणेराघवेसर्वस्मिंश्वसभाजनेस्थितवतिध्यानैकतानोपमे ॥ प्राप्तेब्रह्मपदंधियाधवलयातूष्णीमभूत्षट्पदःकृत्वेवारणितंसरोजपटलेपातुंप्रवृत्तोरसम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मुक्तपुरुषस्थितिवर्णनंनामनवनवत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १९९ ॥

अर्थ—आत्माके दर्शनमात्रसे निर्मलताको प्राप्तचित्त निर्द्वन्द्व असंसक्त निर्विकार ब्रह्मरूपही होजाताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! अमनीभावको केवल ब्रह्मरूप चित्तसे सर्वत्र समदर्शी होके सर्वप्रपंचका अधिष्ठान चिदाकाशरूपधारी तुम सुखपूर्वक स्थित रहो ॥ ३८ ॥ हे रघुकुलतनय महात्मन् रामजी ! तुम अब प्राप्तपरमार्थतत्व, रागद्वेषादिरहित तथा अभ्युदित आत्मबोध हो अतः निःशंक स्थित रहो, क्योंकि जन्मरणसे विनिर्मुक्त परमपावन ब्रह्मपद तुमही हो ॥ ३९ ॥ और निर्मल ब्रह्मस्वरूप इस जगत्में प्रकृतिजनित मलका विकार तथा औपाधिक हेय उपादेय भोगादिकही किंचित्भी नहीं है, किन्तु अकृत्रिम ब्रह्मधामही सबकुछ है, उस ब्रह्मको निजअनुभवसे आत्मारूप जानकर निःशंक अद्वैतरूपसे स्थित रहो ॥ ४० ॥ हे सुभग रामजी ! अब इससे अधिक तुमको ज्ञानकेलिये शुभ उपदेश नहीं है, क्योंकि आद्यसारभूत सम्पूर्ण ज्ञान तुमारे हृदयमें उदितहै, तुम संपूर्ण वेद्यवस्तु (ब्रह्मको) जानगये ॥ ४१ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि हे भरद्वाजजी मुनि श्रेष्ठ ! वसिष्ठजीके इतना कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी निर्मल पवित्रबुद्धिसे ब्रह्मपदकी प्राप्तिसे संपूर्ण एषणाओंसे रहित होगये, और जब उससमय सब सभाके मनुष्य केवल ध्यानमें निमग्न होगये तब ब्रह्म स्वयं रसायनके आस्वाद लेनेमें ऐसे मौन होगया जैसे शब्द करनेके पश्चात् पुष्परस पीनेमें भ्रमर ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे मुक्तपुरुषस्थितिवर्णनं नाम नवनवत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १९९ ॥

द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

सिद्धोंका साधुवाद (स्तुति) दुंदुभिशब्दकेसाथ पुष्पवृष्टि, तथा सब जनोंका गुरुपूजाके महोत्सवका आरम्भ इत्यादि विषय इस २०० के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ निर्वाणवाक्यसंदर्भसमाप्तौमुनिनायके ॥ पाश्चात्यवाक्यविरतिंकुर्वतिक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ निर्विकल्पसमाधानसमतांसमुपागते ॥ शांतस्वच्छमनोवृत्तौसर्वस्मिंश्वसभाजने ॥ २ ॥ सत्वकोटिमुपारूढेपरांपावनतांगते ॥ संवित्तत्वेसमग्रस्यजनस्यश्रुतशालिनः ॥ ३ ॥ झटित्येवांबरद्तापूर्वमुक्तधियांमुखात ॥ सिद्धानांसाधुवादेनव्योमकोटरवासिनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे भरद्वाज तथा अरिष्टनेमिराजन्! जब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठऋषिने निर्वाणवाक्योंके संदर्भको समाप्त करके क्रमप्राप्त अनन्तवाणीकी विरामता (मौन) भाव धारणकिया ॥ १ ॥ जब सर्वथा निर्विकल्पसमाधिसे समता आकर प्राप्त हुई, और देव, मनुष्य तथा ऋषि सब नरनारी सभागतजन शान्त तथा निर्मल-अन्तःकरणयुक्त चित्रलिखितसमान होगये ॥ २ ॥ तथा समस्तविवेकीजनोंके निर्विकल्पसमाधिक्रमसे साक्षीचेतनमात्रमें स्थिति पराकाष्ठाको प्राप्त होकर परमपावनताको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ तब शीघ्रही आकाशनिवासी सिद्ध तथा पूर्वमुक्त सनकादिके आकाशमें व्याप्त साधुवादसे ॥ ४ ॥

तथासभास्थितानांचमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ गाधेयप्रमुखानांचसाधुवादगिरोच्चया ॥ ५ ॥ कोलाहलःसमुदभूद्भूरिपूरितदिङ्मुखः ॥ मधुरःपवनात्तानांकीचकानामिवारवः ॥ ६ ॥ सिद्धानांसाधुवादेनसहवैसहसाततः ॥ देवदुंदुभयोनेदुःप्रतिश्रुत्पूरिताचलाः ॥ ७ ॥ देवदुंदुभिभिःसार्द्धंतुषारासारसुंदरी ॥ दिग्भ्यःस्थगितदिक्चक्रापुष्पवृष्टिःपपातह ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा सभामें विद्यमान प्रतिष्ठित तथा तत्वज्ञानी विश्वामित्रआदि मुनियोंके साधुवाद तथा प्रशंसावचनोंसे ॥ ५ ॥ संपूर्णदिशाओंको पूर्ण करनेवाला अतिमधुर महाकोलाहल ऐसे हुआ जैसे पवनसें बासोंकी मधुर ध्वनि ॥ ६ ॥ सिद्धोंके साधुवादकेसाथही शीघ्रही अपनी प्रतिध्वनिसे पृथिवी पर्वतादिको पूरित करनेवाले देवताओंके दुंदुभि (नक्कारों) के डंके बजे ॥ ७ ॥ तथा देवदुंदुभियोंकेसाथही हिमकेसदृश श्वेतवर्ण और दिङ्मंडलोंको आच्छादित करनेवाली पुष्पोंकी वृष्टि आकाशसे गिरि ॥ ८ ॥

पुष्पौघपूरितस्थानःशब्दापूरितकंदरः ॥ रजःसंरंजिताकाशोगंधरंजितमारुतः ॥ ९ ॥ ससाधुवादशब्दस्यदेवतूर्यरवस्यच ॥ कुसुमासारघोषस्यसमवायोरराजह ॥१०॥ उन्मुखाखिलसभ्याक्षिरश्मिश्यामलितांतरः ॥ उत्कर्णमृगमातंगहयपक्षिरयुश्रुतः ॥ ११ ॥ सविस्मयभयोन्नेत्रबालकांताजनेक्षितः ॥ विस्मयस्मेरवदनराजलोकावलोकितः ॥ १२ ॥

अर्थ - हे भरद्वाज! पुष्पोंके समूहोंसे सब स्थानोंको पूर्ण करनेवाला, शब्दोंसें कंदराओंको भरित करनेवाला, पुष्पपरागोंसे आकाशका रंजक, सुगन्धित पवनसे शोभित वह सिद्धोंके साधुवादोंका, देवताओंके दुंदुभियोंका तथा पुष्पोंकी वृष्टिका शब्दसमूह महाशोभाको प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ १० ॥ ग्रीवा उठाके देखनेवाले सम्पूर्ण सभासदोंके नेत्र-किरणोंसे दिशाओंके अन्तरालको श्यामवर्ण करनेवाला, कानउठाके हरिण, शुक, अश्व, तथा हस्तीआदि पशुओंसे श्रुत, विस्मय तथा भययुक्त बालक तथा स्त्रीजनोंसेभी अवलोकित, तथा विस्मयसे प्रसन्नमुख राजसमूहसे दृष्ट वह साधुवाद तथा दुंदुभिआदिका शब्द अपूर्वशोभाको प्राप्तहुआ ॥ ११ ॥ १२ ॥

कुसुमासारसारेणशब्दशोभातिशायिना ॥ संरंभेणजगामाशुरोदोरंध्रमपूर्वताम् ॥ १३ ॥ पुष्पवर्षसुधाधौतंरटद्भूतसुघुंघुमम् ॥ समतांसदनेनागातध्मातशंखशतेनखम् ॥ १४ ॥ भुवनंभूरिभांकारभासुरंसुरचारणैः ॥ वृतंमत्तोत्सवेरेजेसमंकुसुममंडितम् ॥ १५ ॥ शनैर्द्दृभिसिद्धौघवाक्यपुष्पभरःसमम् ॥ प्रययौरोदसीरंध्रेवेलाचलमिवांबुधौ ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कुसुमोंकी महावृष्टिकी धाराजनित शब्दोंसे अपूर्वशोभाको प्राप्त उस सिद्धआदिके साधुवाद और दुंदुभिआदि शब्दसमूहसे पृथिवी तथा आकाशका अन्तराल अपूर्वशोभाको प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ हे राजन्! पुष्पोंके धारामृतप्रवाहसे धौत, जयजयध्वनि करतेहुये प्राणिके शब्दोंसे पवित्रशब्दसे व्याप्त, तथा देवादिशंख-ध्वनिसे पूर्णआकार श्रीराजा दशरथके राजभुवनके तुल्य होगया ॥ १४ ॥ देवसिद्धादिके महाजयजयकार-शब्दोंसे दैदीप्यमान, सुरगन्धर्वादिदेव तथा चारणोंसे व्याप्त, महाउत्सवसे पूर्ण तथा पुष्पवृष्टिसे भूषित संपूर्ण

जगत् राजादशरथके गृहकेही समान शोभितहुआ ॥ १५ ॥ देवदुंदुभि, सिद्धोंके वाक्य, तथा पुष्पवृष्टिके शब्द-समूह धीरे २ एककालमें भूमि आकाशके अन्तराल (मध्य) तथा दिगन्तमें ऐसे प्राप्तहुआ जैसे समुद्रमें आविर्भूत रंगसमूह तटके पर्वतोंतक ॥ १६ ॥

तस्मिन्विबुधसंरंभेक्षणेनसमयागते ॥ वाक्यानीमानिसिद्धानामभिव्यक्तिमुपाययुः ॥ १७ ॥ सिद्धाऊचुः ॥ आकल्पसिद्धसंघेषुमोक्षोपायाःसहस्रशः ॥ व्याख्याताश्चश्रुताश्चालमीदृशास्तुनकेचन ॥१८॥ तिर्यञ्चोवनिताबालाव्यालाश्चानेननिर्वृतिम् ॥ मुनेर्वाक्यविलासेनयांतिनास्त्यत्रसंशयः ॥ १९ ॥ दृष्टांतैर्हेतुभिर्युक्त्यायथारामोवबोधितः ॥ तथाचारुंधतीसाक्षात्संबोधयतिवानवा ॥ २० ॥

अर्थ—जिससमय देवतासिद्धादि साधुवाद तथा पुष्पवृष्टिआदिका महान् आरंभ होरहाथा उसीसमय सिद्धोंके ये वक्ष्यमाण वाक्य प्राणियोंके कर्णगोचर हुये ॥ १७ ॥ सिद्ध बोले—हे महर्षे तथा सभ्यगण ! कल्पके आरंभसेही मोक्षोपायके सहस्रों ग्रन्थ हमने सुने और स्वयं उनके व्याख्यानभी किये परन्तु ऐसे (आपसे कथित योगवासिष्ठके सदृश) कोई न सुने न कहे ॥ १८ ॥ इस महामुनिश्रीवसिष्ठजीके वाक्यविलाससे तिर्यग्योनि, स्त्री, बालक और व्यासआदिभी शान्तिको प्राप्त होतेहैं इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १९ ॥ श्रीवसिष्ठजीमहाराजके स्नेहपूरित वाक्योंसे, दृष्टान्तोंसे, युक्तियोंसे तथा तर्कोंसे जैसे श्रीरामजी बोधितकियेहैं ऐसीरीतिसे कदाचित् साक्षात् अरुंधती (श्रीवसिष्ठजीकी पत्नी) भी बोधित की जाय वा नहीं ॥ २० ॥

अनेनमोक्षोपायेनतिर्यञ्चोपिगतामयाः ॥ स्थितामुक्ताभविष्यंतिकेनामभुविनोनराः ॥ २१ ॥ श्रवणांजलिभिःपीत्वाज्ञानामृतमिदंवयम् ॥ परांपूर्णनवीभूतसिद्धयःश्रियमागताः ॥ २२ ॥ इतिशृण्वन्सभांलोकोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ कुसुमासारसंपूर्णांराजीवानांददर्शताम् ॥ २३ ॥ मंदारादिमहापुष्पच्छत्रच्छादनसंचयाम् ॥ पारिभद्रलतागुच्छनीरंध्राजिरभूमिकाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस मोक्षोपाय नाम महारामायणके श्रवणसे पशुपक्षीआदिभी मुक्तिको प्राप्तहुये तब भले संसारमें ऐसे कोन मनुष्य है जो इसको सुनैंगे और मुक्त न होंगे ॥२१॥ हे सभ्यसमूह ! इस ज्ञानामृतको कर्णरूप अंजलियोंसे हमलोग पानकरके परमतृप्तिकारक नूतनसिद्धिको प्राप्त होके अपूर्वशोभाको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ इसप्रकार विस्मयसे विकसित नेत्र अयोध्यानिवासीजनोंने सिद्धोंके इन वाक्योंको सुनतेहुये उस सभाको कमलआदि पुष्पोंकी वृष्टियोंसे पूर्ण देखा ॥ २३ ॥ कल्पवृक्षके मन्दरादिमहापुष्पोंके गुच्छोंसे आच्छादितवस्त्र, तथा पारिभद्रआदि कल्पलताओंसे पूर्ण अङ्गणादिप्रदेशसहित उस सभाको देखा ॥ २४ ॥

पारिजातप्रसूनाढ्यमहीतलविराजिताम् ॥ संतानकमहांभोदव्याप्तसभ्यशिरःकराम् ॥ २५ ॥ मौलिरत्नविटंकाग्रविश्रांतहरिचंदनाम् ॥ वारिपूरप्रलंबाभ्रवदालंबिवितानकाम् ॥२६॥ इतिपश्यन्सभांलोकः साधुवादेनभूरिणा ॥ तत्कालोचितवाक्येनतेनतेनतथोद्यतः॥ २७ ॥ वसिष्ठंपूजयामाससर्वेंद्रियगणानतः ॥ कुसुमांजलिमिश्रेणप्रणामसहितेनच ॥ २८ ॥

अर्थ—नन्दनवाटिकाके पारिजातआदिके पुष्पोंसे पूर्ण महीतलशोभित तथा सन्तानक (कल्पवृक्ष विशेष) पुष्परूपी मेघसे व्याप्त सभासदोंके शिरहस्तादिभूषित सभाको देखा ॥ २५ ॥ तथा मुकुटोंके रत्नोंके अग्रभागोंमें हरिचन्दनसे शोभित और जलप्रवाहपूर्ण लम्बायमान मेघकेसदृश पुष्पमयवितान (ऊपरकी चान्दनी) से भूषित उस सभाको सभोंने देखा ॥ २६ ॥ इसप्रकार अनेक साधुवादोंकेसाथ सभाको देखतेहुये सब सज्जन उससमयके उचित उन २ वाक्योंसे वसिष्ठजीकी पूजा करनेको उद्यतहुये ॥ २७ ॥ संपूर्ण इन्द्रियगणोंसे नम्रीभूत होके पुष्पपूर्णअंजलियोंसे प्रणामसहित वसिष्ठ भगवान्की पूजा की ॥ २८ ॥

नृपप्रणाममालासुकिंचिच्छांतासुतास्वथ ॥ मुनिमापूजयन्नाहसार्घ्यपात्रकरोनृपः ॥ २९ ॥ दशरथ उवाच ॥ क्षयातिशयमुक्तेनपरमेणात्मवस्तुना ॥ परांतःपूर्णतोत्पन्नाबोधेनारुंधतीपते ॥ ३० ॥ नतदस्तिमहीपीठेदिविदेवेषुवापिच ॥ महर्त्किचिद्यदप्राप्तंतवपूज्यस्यपूजनम् ॥ ३१ ॥ तथाप्यात्मकर्मब्रह्मन्निमंनेतुमवंध्यताम् ॥ अहंवच्मियथाप्राप्तंनकोपंकर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

अर्थ—और राजाओंकी प्रणाममाला जब किंचित् शान्त हुई तब हस्तमें अर्घ्यपात्र लिये श्रीवसिष्ठजीकी पूजा-करतेहुये राजा दशरथ बोले ॥ २९ ॥ राजा दशरथजी बोले—कि हे अरुन्धतीपते भगवन् ! आपके इस अपूर्व उपदेशसे निर्विकार परम निरतिशयानन्दरूप आत्मवस्तुके बोधसे हमारे अन्तःकरणमें सर्वोत्तम पूर्णता उत्पन्नहुई ॥ ३० ॥

हे मुने! इस पृथिवीपर, स्वर्गमें अथवा पातालमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आपको अप्राप्त हो, और उस वस्तुसें सर्वपूज्य परमपुरुपार्थदायक आपकी हम पूजा करें॥ ३१ ॥ तथापि हे गुरो! लोकशास्त्रप्रसिद्ध अपना अवश्य कर्तव्यरूप इस गुरुपूजनकी सफलता प्राप्त करनेके अर्थ यह मैं कहताहूं. भगवन्! मेरे इस तुच्छ उपहारसे क्रोध करनेयोग्य आप नहीं हैं॥ ३२ ॥

आत्मनासकलत्रेणलोकद्वयशुभेनच ॥ राज्येनाखिलभृत्येनभवंतंपूजयाम्यहम् ॥ ३३ ॥ एतत्सर्वंतव विभोस्वायत्तंस्वइवाश्रमः ॥ नियोजययथादेशंयथाभिमतयेच्छया ॥ ३४ ॥ श्रीवासिष्ठउवाच ॥ प्रणाममात्रसंतुष्टाब्राह्मणाभूपतेवयम् ॥ प्रणामेनैवतुष्यामःसएवभवताकृतः ॥ ३५ ॥ पातुंत्वमेवजानासि राज्यंभातितवैवच ॥ भवत्वेतत्तवैवेहब्राह्मणाःक्वमहीभृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे गुरो! स्त्रीसहित मैं अपनेको दोनोंलोकार्थ संचित सुकृत और अमात्यआदिसहित संपूर्ण राज्यको आपको समर्पण करके सर्वपूज्य आपकी पूजा करताहूं॥ ३३ ॥ हे गुरो! यह सब राज्यादि आपका है, मुझसहित यह सब आपकेही आधीन है, मैंने आत्मासहित आपको समर्पण करदिया आप इसके स्वामी हैं, अपने आश्रमके सदृश निजइच्छाके अनुसार चाहिये जो आज्ञा सबको दीजिये॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे राजन्! हम ब्राह्मण प्रणाममात्रसे सन्तुष्ट होते हैं, अतः हम केवल प्रणामसेही सन्तुष्ट होंगे, और वह प्रणामभी आप करचुके॥ ३५ ॥ हे राज्यपते! इस राज्यकी तथा प्रजाकी रक्षा करना आपही (क्षत्रिय) जानते हो, राज्य करना तुमकोही शोभा देताहै, विचारोतो कहां हम तपस्वी ब्राह्मण! और कहां ये राजा॥ ३६ ॥

दशरथउवाच ॥ कियन्मात्रंतुराज्यंस्यादितिलज्जामहेमुने ॥ प्रकर्षेणात्रतेनेशयथाजानासितत्कुरु ॥३७॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवतिभूपालेरामःपुष्पांजलिंददत् ॥ उवाचप्रणतोवाक्यंपुरस्तस्यमहागुरोः ॥ ३८ ॥ निरुत्तरीकृतमहाराजब्रह्मन्प्रणौमिते ॥ प्रणाममात्रसारोहंरामःपादाविमौप्रभो ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वापादयोस्तस्यशिरोवंदनपूर्वकम् ॥ तत्याजांजलिपुष्पाणिहिमानीवनगिरेः ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीदशरजी बोले—कि हे गुरो! मनुष्योंके आनन्दकी परमावधि निष्कंटक सप्तद्वीपाधिपत्यका आनन्द है, उसका शतगुण आनन्द मनुष्यगन्धर्वोंका है, उसकाभी शतगुण देवगन्धर्वोंका है, इस प्रकार बढते २ विषयके आनन्दकी परमावधि ब्रह्माजीका आनन्द है, वहभी इस आपके दियेहुये मोक्षानन्दसमुद्रमें एकबिन्दुके सदृशभी नहीं है, तो इस मोक्षदानरूप आपके उपकारके प्रत्युपकारमें राज्यदान क्या (तुच्छ) पदार्थ है यह देख मैं लज्जित होताहुं, इसलिये हे भगवन्! इस विषयमें कर्तव्य आपही जानते हैं, जो इच्छा हो कीजिये॥ ३७ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि हे भरद्वाजजी! इसप्रकार राजा दशरथके कहनेपर गुरुचरणोंमें पुष्पांजलि समर्पित करतेहुये अति नम्रीभूत श्रीरामचन्द्रजी उस अपने गुरुवसिष्ठजीके सन्मुख यह वाक्य बोले॥ ३८ ॥ हे मेरे पिता! महाराज दशरथजीको निरुत्तर करनेवाले ब्रह्मन्! हे गुरो! आपके इस महापुरुषार्थरूपदानके उपकारमें प्रत्युपकारके योग्य कोई पदार्थ नहीं है अतः केवल प्रणाममात्रसार यह राम मैं आपके चरणारविन्दोंमें साष्टांगप्रणाम करताहुं॥ ३९ ॥ ऐसा कहके प्रणामपूर्वक गुरुके चरणोंमें पुष्पांजलिको ऐसे समर्पण किया जैसे वनपर्वतके पाद (अधोभाग) में पल्लवादिमें संलग्न हिममयजलको॥ ४० ॥

आनंदबाष्पसंपूर्णनयनोनयकोविदः ॥ गुरुंपरमयाभक्त्याप्रणनामपुनःपुनः ॥ ४१ ॥ शत्रुघ्नोलक्ष्मणश्चैवतथान्येतत्समाश्रये ॥ निकटस्थास्तथैवाशुतेप्रणेमुर्मुनीश्वरम् ॥ ४२ ॥ दूरप्रणामैर्दूरस्थाःपुष्पांजलिसमीरणैः ॥ राजानोराजपुत्राश्चप्रणेमुर्मुनयश्चतम् ॥ ४३ ॥ अस्मिन्नवसरेतत्रकुसुमांजलिवर्षणैः ॥ हिमैरिवहिमाद्रीन्द्रोमुनिरंतर्धिमाययौ ॥ ४४ ॥

अर्थ—आनन्दजनित अश्रुसे पूर्णनेत्र, तथा नीतिविशारद श्रीरामजीने परमभक्तिसे गुरुके चरणोंमें पुनः २ प्रणाम किया॥ ४१ ॥ शत्रुघ्नजी, लक्ष्मणजी तथा अन्य जो रामचन्द्रजीके निकट उनके समानवयके सखा थे उन सभोंने उसीप्रकार मुनीश्वर वसिष्ठजीको प्रणामकिया॥ ४२ ॥ जो राजा तथा राजपुत्र दूर थे उनने दूरके योग्य पुष्पांजलिपूर्वक उन महामुनिको प्रणाम किया॥ ४३ ॥ इस प्रणामके अवसरमें पुष्पांजलियोंसें मुनि ऐसे आच्छादित होगये जैसे हिमसमूहोंसे हिमालय॥ ४४ ॥

अथशांतेसभाक्षोभेप्रणामनिवहेतथा ॥ संस्मरच्छासनंकिंचित्सत्येकृष्णसिताशयम् ॥ ४५ ॥ मुनिःकुसुमराशिंतंबाहुभ्यांप्रविचालसः ॥ मुखंसंदर्शयामाससिताभ्रादिवचंद्रमाः ॥ ४६ ॥ शांतेसिद्धवचोराशौतथाढुंढुभिनिःस्वने ॥ नभःकुसुमवर्षेचसभाकलकलेतथा ॥ ४७ ॥ प्रणामानंतरंतस्मिन्रामा

वैः स्वसभाजने ॥ शांतवातइवांभोदेजनेसौम्यत्वमागते ॥ ४८ ॥ आकर्णयन्साधुवादंविश्वामित्रंमृदुस्वनम् ॥ उवाचेदमनिंद्यात्मावसिष्ठोमुनिनायकः ॥ ४९ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रणामसमूहजनित सभाके क्षोभके शान्त होनेपर मेरा उपदेश बुद्धिकी मलिनतासे दोषयुक्त तथा बुद्धिकी निर्मलतासे निर्दोष है ऐसा विचारतेहुये तथा कुछ उपदेष्टव्यका स्मरण करके अपने चरित्रसे मुनियोंकोभी कुछ शिक्षा देनेकी इच्छासे वसिष्ठजी वे अपनी भुजाओंसे पुष्पराशिको हटाके निजमुखचन्द्रका दर्शन ऐसे दिया जैसे श्वेतमेघपटलको हटाके चन्द्रमा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सिद्धोंके वचन, दुंदुभियोंके शब्द, पुष्पोंकी वृष्टि तथा सभाके कोलाहलके शान्त होनेपर ॥ ४७ ॥ तथा प्रणामके पश्चात् रामचन्द्रजीआदि सभास्थितजनोंके पवनकी शान्तिमें मेघके तुल्य शान्त होनेपर मधुरस्वरयुक्त साधुवादोंको सुनतेहुये अनिन्दनीय ऋषिनायक वसिष्ठजी विश्वामित्रजीसे यह बोले- ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मुनेगाधिकुलांभोजवामदेवनिमेक्रतो ॥ भरद्वाजपुलस्त्यात्रेघष्टेनारदशांडिले ॥ ५० ॥ हेभासभृगुभारंडवत्सवात्स्यायनादयः ॥ मुनयस्तुच्छमेतत्तु भवद्भिर्मद्वचःश्रुतम् ॥ ५१ ॥ यदत्रानुदितंकिंचित्तदनुग्रहतोधुना ॥ दुरर्थंविगतार्थंवाभवंतःकथयंतुमे ॥ ५२ ॥

अर्थ—कि हे गाधिकुलकमल विश्वामित्रजी ! हे वामदेव ! हे निमे ! हे क्रतो ! हे भरद्वाज ! हे पुलस्य ! हे अत्रे ! हे नारद ! हे शांडिले ! हे भास ! हे भृगु, भारंड, वत्सवात्स्यायनादि मुनियो ! आप सबने कृपाकरके इस मेरे तुच्छ (कदाचित् किसीकी दृष्टिमें दोषयुक्त) वचनकोभी श्रवण किया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ सो जो कुछ इस मेरे वचनमें न्यून, दोषयुक्त, असंगतार्थ, वा दुष्टअर्थयुक्त हो उसको शिष्य (रामजीआदि) सहित मुझपर कृपाकरके कहिये ॥ ५२ ॥

सभ्याऊचुः ॥ वसिष्ठवचनेब्रह्मन्परमार्थैकशालिनि ॥ दुरर्थोभवतीत्यद्यनवैवखलुगीःश्रुता ॥ ५३ ॥ यत्संभृतमनंतेनजन्मदोषेणनोमलम् ॥ तत्प्रमृष्टंत्वयेहाद्यहेम्नामिवहविर्भुजा ॥ ५४ ॥ ब्रह्मबृंहितयावाचाविभोविकसितावयम् ॥ कुमुदानींदुदीप्त्येवपरमामृतशीतया ॥ ५५ ॥ सर्वसत्वमहाबोधदायिनंमुनिनायकम्॥ भवंतमेकांतगुरुंप्रणमामइमेवयम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—सभ्यजन बोले-कि हे ब्रह्मन् ! परमार्थसे शोभायमान श्रीवसिष्ठजीके वचनमें असंत अर्थ यह नूतन वाणी हमने आजही सुना है ॥ ५३ ॥ हे भगवन् ! जो अनन्त जन्मोंसे संचय कियाहुआ हमारा मलथा उसको आपने इससमय ऐसे नष्ट करदिया जैसे सुवर्णके मलको अग्नि ॥ ५४ ॥ हे मुने ! ब्रह्मज्ञानसे विस्तारको प्राप्त परम शीतल इस आपकी वाणीसे हम सब ऐसे विकसित होगये जैसे चन्द्रमाकी दीप्तिसे कुमुद ॥ ५५ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मज्ञानरूप महाबोध (मोक्ष) दायक मुनिश्रेष्ठ सर्वथा परमगुरुरूप आपको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ५६ ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वामुनिनाथायनमस्तइतितेपुनः ॥ वदंतएकशब्देनतारेणाब्दरवौजसा ॥५७ ॥ अर्वाक्पुष्पांजलिव्रातैःखात्सिद्धैःसममुज्झितैः ॥ वसिष्ठंपूरयामासुर्हिमैरब्दाइवाचलम्॥५८॥ इत्थंदशरथंभूपंशशंसुश्र्वाथराघवम् ॥ माधवंचतुरात्मानंराघवोदंतकोविदाः ॥ ५९ ॥ सिद्धाऊचुः ॥ नमामचतुरात्मानंनारायणमिवापरम् ॥ रामंसभ्रातरंजीवन्मुक्तंराजकुमारकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-कि हे भरद्वाज ! आप मुनिश्रेष्ठको हम सब नमस्कार करतेहैं ऐसा एककालमें उच्चनाद करतेहुये, आकाशसे सिद्धोंसे मुक्त पुष्पांजलियोंकेसाथ निजपुष्पांजलियोंसे श्रीवसिष्ठजीको ऐसे आच्छादित किया जैसे मेघमण्डल पर्वतको ॥५७॥५८॥ इसप्रकार राजा दशरथकीभी उन्होंने प्रशंसा की, अनन्तर विष्णुअवतारके सिद्धान्तको जाननेवाले उन ऋषि तथा सिद्धादिकने भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण तथा स्वयं चतुररूपधारी लक्ष्मीके पति श्रीराचन्द्रजीकी प्रशंसा की ॥ ५९ ॥ सिद्ध बोले-द्वितीयनारायणके सदृश चतुर्रूप भ्रातृवर्गसहित राजकुमार तथा जीवन्मुक्त श्रीरामचन्द्रजीको हम सब प्रणाम करते हैं ॥ ६० ॥

चतुरब्धिनिखातांतधरावलयपालकम् ॥ त्रिकालस्थमहीपालचिह्नंदशरथंनृपम् ॥ ६१ ॥ मुनिसेनाधिपंभूपंभास्करंभूरितेजसम् ॥ वसिष्ठंसुप्रवादाढ्यंविश्वामित्रंतपोनिधिम् ॥ ६२ ॥ एषामेवप्रभावेणज्ञानयुक्तिपरामिमाम् ॥ श्रुतवंतोवयंसर्वेभ्रांतिसंरंभनाशिनीम् ॥ ६३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वागगनात्सिद्धाभूयःपुष्पाणिचिक्षिपुः ॥ सभायामथतूर्ष्णीचतस्थुर्मुदितचेतसः ॥ ६४ ॥ तथैवव्योमगाः

सिद्धाःशशंसुस्तंजनंपुनः ॥ तथैवसभ्यास्तांस्तत्रसमानर्चुर्धनस्तवम् ॥ ६५ ॥ नभश्चराधरणिचरामुनीश्वरामहर्षयोविबुधगणाद्विजानृपाः ॥ अपूजयन्नितिजनमोजसैवतेगिरोच्चयासहकुसुमार्घ्यदानया ॥६६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे साधुवादसपर्यादिवर्णनंनामद्विशततमःसर्गः ॥ २०० ॥

अर्थ—चतुःसमुद्रमेखलावती पृथिवीपालनके त्रिकालमें चिन्हधारी श्रीरामचन्द्रजीके जनकदशरथजीकी पुनः २ उन्होंने प्रशंसा की ॥ ६१ ॥ मुनियोंकी सेनाके स्वामी, भानुके समान प्रकाशमान, अतितेजस्वी तथा मुक्तिकथासे पूर्ण श्रीमहाराज वसिष्ठजी और तपोनिधि विश्वामित्रजीकी उन्होंने प्रशंसा की ॥ ६२ ॥ इन्ही दशरथ रामचन्द्र और विश्वामित्रआदि मुनियोंके प्रभावसे सम्पूर्ण भ्रमसमूहको नाश करनेवाली श्रीवसिष्ठजीकी वाणी हमने सुना ॥ ६३॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि इतना कहके सिद्धोंने आकाशसे पुनः पुष्पवृष्टि की, और सभामें कुछकालतक प्रसन्नचित्त मौन होके स्थित रहे ॥ ६४ ॥ इसीप्रकार अन्य आकाशचारी सिद्धोंने वसिष्ठजीकी स्तुति की, और उन सभासदोंने महास्तुतिकेसाथ उन सिद्धादिकी पूजा की ॥ ६५ ॥ हे राजन्! आकाशचारी, पृथिवीचारी, मुनीश्वर, महर्षि, सिद्ध, देवता, ब्राह्मण और अनेक नृपगण आदि सभोंने उच्चवाणीसे श्रीवसिष्ठजीकी पुष्पवृष्टि तथा अर्घ्यदानपूर्वक पूजा करते हुये उन्होंने परस्पर एकदूसरेकी पूजा की ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे साधुवादसपर्य्यादिवर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

एकोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०१ ॥

श्रीगुरुजीके पूंछनेपर आदरपूर्वक पुनः श्रीरामचन्द्रजीने पूर्णानन्द ब्रह्मपदमें अपनी विश्रान्ति प्रकटकिया ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ अथार्वाक्साधुवादेषुप्रशांतेषुशनैःशनैः ॥ ज्ञानोपदेशमासाद्यप्रोल्लसत्स्विवराजसु ॥१॥ प्रशांतसंसृतिभ्रांतौजनेचरितमात्मनः ॥ स्वयंहसतिचित्तेनसत्यंसमनुधावता ॥ २ ॥ वलचित्तकलंज्ञानसमास्वादनतत्परे ॥ विवेकिनिसभालोकेशांतेध्यानमिवास्थिते ॥ ३ ॥ बद्धपद्मासनेरामे सभ्रातरिगुरोःपुरः ॥ स्थितेकृतांजलौदीप्तगुरुवक्त्रगतेक्षणे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकीजी बोले–कि शनैः २ जब साधुवाद शान्त हुआ और ज्ञानोपदेशको प्राप्त होके राजमण्डल विकसित होरहाथा तथा संसारके भ्रमके शान्त होजानेपर स्वयं चित्त ब्रह्मज्ञानकी ओर दोडताथा और सबजन अपनी २ अज्ञदशाके चरित्रोंको स्मरणकरके हंसतेथे ॥ २ ॥ और जब सभोंका चित्त बलात्कार ब्रह्मानन्दमें तत्पर होरहाथा, तथा जिससमय विवेकी सभाके जन शान्त होके ध्यानस्थकेसमान भान होतेथे ॥ ३ ॥ तथा भ्राताओंसहित श्रीरामजी पद्मासन बांधके गुरुके संमुख केवल उनके मुखकी ओर देखतेहुये स्थित थे ॥ ४ ॥

पार्थिवेकिमपिध्यानमिवास्वादयतिस्थितिम् ॥ जीवन्मुक्तात्मिकामंतरादिमध्यांतपावनीम् ॥ ५ ॥ ग्रहीतुमर्चांभक्तानांमानितार्थजनोमुनिः ॥ तूर्ष्णींक्षणमिवस्थित्वाप्रोवाचानाकुलाक्षरम् ॥ ६ ॥ स्वकुलाकाशशीतांशोरामराजीवलोचन ॥ किमन्यदिच्छसिश्रोतुंकथयाभिमतेच्छया ॥ ७ ॥ स्थितिंचकीदृशीमेनामद्यानुभवसिस्वयम् ॥ किंरूपमिदमाभासंजागतंवदपश्यसि ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा जिससमय राजा दशरथ ध्यानस्थितके सदृश होके आदिअन्तमध्यरहित, तथा परमपावनी जीवन्मुक्तोंकी स्थितिका आस्वाद लेरहेथे ॥ ५ ॥ उससमय सबको मान देनेवाले श्रीवसिष्ठजी भक्त राजाआदिकी पूजाको ग्रहणकरनेके अर्थ क्षणभर मौनस्थित होके अनन्तर निराकुलतापूर्वक उत्तम वाणीसे यह बोले ॥ ६ ॥ कि हे निजसूर्य्यकुलरूप आकाशके चन्द्र, कमलकेसमान नेत्रधारिन् रामजी ! अब स्वेच्छापूर्वक कहो और तुम क्या श्रवण करनाचाहतेहो ॥ ७ ॥ हे रामजी ! इससमय तुम अपनी स्थिति कैसी अनुभव करतेहो और इस जगत्के आभासकोभी कैसा देखतेहो सो कहो ॥ ८ ॥

इत्युक्तेमुनिनातेनप्राहराजकुमारकः ॥ अविह्वलंमृदुस्पष्टंगुरोरालोकयन्मुखम् ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ त्वत्प्रसादेनयातोस्मिपरांनिर्मलतांप्रभो ॥ शांताशेषकलंकांतंशरदीवनभस्तलम् ॥ १० ॥ सर्वाएवोपशांतामेभ्रांतयोभवभंगदाः ॥ स्वरूपेणावदातेनतिष्ठाम्यच्छमिवांबरम् ॥ ११ ॥ स्थितोहंगलितग्रंथिःशांताशेषविशेषणः ॥ स्फटिकालयमध्यस्थस्फटिकामलधीरहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार मुनिनायकने कहनेपर राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी गुरुका मुख देखतेहुये अविव्हलतापूर्वक् कोमल तथा स्पष्टवाणीसे बोले ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले-हे प्रभो ! आपकी कृपासे मैं परमनिर्मलताको ऐसे प्राप्तहुआहुं जैसे शरत्की पूर्णिमाको संपूर्ण कलंककी शान्तिपूर्वक पूर्णचन्द्रसहित आकाश ॥ १० ॥ हे गुरो ! नश्वर संसारदायिनी मेरी संपूर्ण भ्रान्ति नष्ट होगई, निर्मलआकाशके सदृश इससमय मैं शुद्धस्वरूपसे स्थित हुं ॥ ११ ॥ हे गुरो ! गलितग्रन्थि तथा सर्वविशेषणरहित हुं और जगत्के विषयमें निर्मल शुद्ध ब्रह्मबुद्धि मुझे ऐसे है जैसे स्फटिकके स्थानमें स्थितकी शुद्ध स्फटिकबुद्धि ॥ १२ ॥

अन्यच्छ्रोतुमथाहर्तुंशांतंनेच्छतिमेमनः ॥ परांतृप्तिमुपायातंसुषुप्तमिवसंस्थितम् ॥ १३ ॥ शांताशेषप रामर्शोविगताशेषकौतुकम् ॥ संत्यक्ताशेषसंकल्पंशांतंममसुनेमनः ॥ १४ ॥ परिनिर्वामिशाम्यामिजा ग्रदेवजगत्स्थितौ ॥ अस्वप्नमपुनर्बोधंस्वपिमीवनिरामयम् ॥ १५ ॥ आशाविधुरितामात्मसंस्थितिंप्रा क्तनींतनौ ॥ प्रविहस्यस्फुरत्सूक्तैःस्वस्थास्तिष्ठाम्यसंशयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! परमतृप्तिको प्राप्त सुषुप्तकेसमान स्थित मेरा मन अब इस आपके उपदेशसे अन्य न श्रवणकरने चाहताहै और न संपादन करनेको ॥ १३ ॥ हे मुने ! विषयोंके स्मरण, उनके भोगमें कौतुक, तथा उनकी प्राप्तिके लिये संकल्पोंसेभी शून्य होके मेरा मन शान्त है ॥ १४ ॥ हे गुरो ! इस जाग्रत्जगत्की स्थितिमें विषयविचारसें रहित है अतएव मैं सुषुप्तस्थ (तुरीयपदस्थ) के समान सर्वथा तृप्त और शांत हुं ॥ १५ ॥ हे गुरो ! अनेकप्रकारके विषयोंकी आशाओंसे व्याकुल पूर्वकालकी देहमें आत्मबुद्धिरूप स्थितिको हंसतेहुये आपके उपदेशरूप उत्तम वाक्योंसे इससमय मैं अपने आत्मस्वरूपमें स्वस्थ स्थित हुं ॥ १६ ॥

नोपदेशेननार्थेननशास्त्रैर्नचबंधुभिः ॥ त्यागेनचनचैतेषाममधुनाममकारणम् ॥ १७ ॥ साम्राज्यस्याथवा व्योम्नियास्थितिःक्षोभवर्जिता ॥ तामेवानुभवाम्यत्रमच्चित्तामनपायिनीम् ॥ १८ ॥ खादप्यतितरामच्छं चिदाकाशांशमात्रकम् ॥ जगदित्येवपश्याभिलोचनाद्यंगकांगतः ॥ १९ ॥ आकाशमात्रमेवेदंजगदि त्येकनिश्चयः ॥ दृश्यनाम्निनभस्यस्मिन्क्षयेजागर्मिचाक्षयः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपकी कृपासे इससमय मुझे न उपदेशसे, न अन्यअर्थसे, न शास्त्रसे, न बंधुओंसे, और न इनके त्यागसेही कुछ प्रयोजन है ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! असुरादिक्लेशसेरहित स्वर्गमें जो साम्राज्य (लोक-दृष्टिमें) की स्थिति होती है उसी नित्य जीवन्मुक्त अविनाशिनी स्थिति (पूर्णात्मानन्द) को मैं अनुभव करताहूं ॥ १८ ॥ हे मुने ! लोकदृष्टिसे नेत्रादि अंगरूपताको प्राप्तभी मैं परन्तु इस जगत्को आकाशसेभी निर्मल केवल चिदाकाशमात्रही देखताहूं ॥ १९ ॥ हे मुने ! यह जगत् अद्वितीय चिदाकाशमात्रही है यह परमनिश्चय है, क्योंकि इस दृश्यनाम जगत्रूप मोहनिद्राके ज्ञानद्वारा बाधित होनेपर मैं अविनाशी चित्स्वरूप जागताहूं ॥ २० ॥

यथाकामंयथाप्राप्तंयथास्थितमिवस्थितम् ॥ यद्वाक्तिदविघ्नेनकरोम्यपगतैषणम् ॥ २१ ॥ नतुष्यामिनहृ ष्यामिनपुष्यामिनरोदिमि ॥ कार्यंकार्यंकरोम्येकोभ्रांतिर्दूरंगताम ॥ २२ ॥ अन्यतामेतुसर्गोयंवातु वाप्रलयानिलः ॥ सौम्योभवतुवादेशःस्वस्थोहंस्वात्मानिस्थितः ॥ २३ ॥ विश्रांतोस्मिविलक्ष्योस्मि दुर्लक्ष्योस्मिनिरामयः ॥ नाशाभिर्बंधमाप्नोमिसुनेखमिवमुष्टिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे गुरो ! भावीकार्य्यको यथाकाम, वर्तमानको यथाप्राप्त, अतीतको यथास्थित जैसा आप उपदेश देते हैं वैसाही गुरुकी आज्ञा तथा शास्त्रानुसार फलकी आकांक्षासे रहित होके करूंगा ॥ २१ ॥ हे गुरो ! विषयके लाभसे न मैं मनसे तुष्ट हूं, और न देहमें इष्टकी प्राप्तिसे प्रसन्न हूं और न अनिष्टसे रोता (विषाद करता) हूं, किन्तु अवश्यप्राप्त लौकिक तथा वैदिककार्य्यको करताहूं, क्योंकि मेरा भ्रम अब दूर होगया ॥ २२ ॥ हे मुने ! यह सृष्टि चाहै विपरीतदशाको प्राप्त हो, चाहै प्रलयका पवन वहै, देश सौम्य हो वा नहो, परन्तु मैं अपने स्वरूपमें स्वस्थ स्थित हूं ॥ २३ ॥ हे गुरो ! मैं विश्रान्त हूं, बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियोंसेभी दुर्लक्ष्य हूं, और मैं विषयकी आशाओंसे ऐसे बन्धनमें नहीं आता जैसे मुट्ठीसे आकाश ॥ २४ ॥

यथातरुगतात्पुष्पाद्गंधःप्राप्यनभःपदम् ॥ तिष्ठत्येवमहंदेहादतीतःसंस्थितःसमः ॥ २५ ॥ यथैवसर्वे राजानोविहरंतियथासुखम् ॥ अप्रबुद्धाःप्रबुद्धाश्वराज्येषुबहुकर्मसु ॥ २६ ॥ शांतहर्षविषादाशःस्थिरै कसमदर्शनः ॥ स्थितआत्मनिनिःशंकंतथैवविहराम्यहम् ॥ २७ ॥ सर्वस्योपर्यपिसुखीसुखंनेहामिमे प्रभो ॥ जनसाम्येनतिष्ठामियथेच्छंमांनियोजय ॥ २८ ॥

अर्थ--जैसे वृक्षके पुष्पसे सुगन्ध निकलके पुष्पस्थ होनेपरभी आकाशमें स्थित होताहै ऐसेही देहमें स्थित-भी देहसे परे चिद्रूपसे समतापूर्वक् मैं स्थित हूं ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! जैसे ज्ञानी तथा अज्ञानी सब राजा राज्यादि अनेक कार्य्योंमें सुखपूर्वक विहार करतेहैं ऐसेही मैंभी हर्षविषादसेरहित, स्थिरबुद्धि, सर्वत्र समदर्शी तथा निः-शंक अपने स्वरूपमें स्थित बाहरसे सब व्यवहार करताहुआ विहरूंगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे गुरो ! मैं सबसुखोंसे ऊपर ब्रह्मानन्दसुखमें स्थित हूं अतएव देहमें विषयसुखकी इच्छा नहींकरता, और लोकदृष्टिसे सब मनुष्योंके समान मैंभी स्थित हूं. हे प्रभो ! निजइच्छानुसार मुझे आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥

बालोलीलामिवत्यक्तशंकंसंसारसंस्थितिम् ॥ यावद्देहमिमांसाधोपालयाम्यमलैकदृक् ॥ २९ ॥ भुंजेपि बामितिष्ठामिपालयामिनिजाक्रियाम् ॥ जातोहंविगताशंकस्त्वत्प्रसादान्मुनीश्वर ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ अहोबतमहापुण्यंपदमासादितंत्वया ॥ अनादिमध्यपर्यंतमिदंयत्रनशोच्यते ॥ ३१ ॥ सम्य क्समसमाभोगेशीतलेस्वात्मनिस्वयम् ॥ नभसीवनभःशांतेविश्रांतिमसिलब्धवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जबतक यह मेरा शरीर रहैगा तबतक निर्मलदृष्टिसे संसारकी मर्य्यादाको ऐसे पालन करूंगा जैसे बालक अपनी अवस्थाके अनुकूल लीलाको ॥ २९ ॥ हे मुनीश्वर ! आपकी कृपासे मैं शंकारहित होगया, अब भोजन पानादि व्यवहार करूंगा, सर्वत्र समदृष्टिसे स्थित निजक्रियाका पालन करूंगा ॥ ३० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–अहो रामजी ! यह अतिहर्षका विषय है कि तुमने महापवित्र आदिअन्तरहित (ब्रह्म) पद प्राप्तकियाहै, इस पदमें प्राप्त प्राणी पुनः शोचनेके योग्य नहीं रहता ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! आकाशमें शान्त आकाशके तुल्य सर्वत्र समभाव परम-शीतल निरतिशयानन्द आत्मस्वरूपमें अब तुमने स्वयं विश्राम प्राप्तकियाहै ॥ ३२ ॥

दिष्टयाजातोविशोकस्त्वंदिष्टयासम्यगवस्थितः ॥ दिष्टयालोकद्वयेनर्थशंकातेशममागता ॥ ३३ ॥ दि ष्टयारघूणांतनयसंज्ञःपावितवानसि ॥ भूतभव्यभविष्यस्थांबोधेनकुलसंततिम् ॥ ३४ ॥ अधुनामुनि नाथस्यविश्वामित्रस्यराघव ॥ पूरयित्वार्थितांभुक्त्वापित्रासहमहीमिमाम् ॥ ३५ ॥ त्वयान्विताःसत नयभृत्यबांधवाःपदातयःसरथगजाश्वमंडलाः ॥ निरामयाविगतभयाःस्थिरश्रियःसदोदयाःसुभगभ वंतुराघवाः ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विश्रांतिप्रकटीकरणंनामैकोत्तरद्विशततमोध्यायः ॥ २०१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सौभाग्य है कि तुम शोकरहित हुये, सौभाग्यसे तुम ब्रह्मपदमें स्थित हो, तथा सौ-भाग्यसे तुमारी इस लोक और परलोकके अनर्थकी शंका शांत हुई ॥ ३३ ॥ हे पुत्र रामजी ! यह सौभाग्य है कि तुम आत्मवेत्ता होके भूत, वर्तमान तथा भविष्य रघुकुलकी सन्ततिको पवित्र किया ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! तुम अब मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्रजीके कार्य्य (यज्ञविघ्ननिवारण) करके तथा पिताकी आज्ञासे अन्य (राक्षसवध) देवकार्य्यके लिये इस पृथिवीका उनके साथ पालन करके निःशंक विराजमान रहो ॥ ३५ ॥ हे सुभग रामजी ! तुमारे द्वारा पुत्र, पौत्र, क-लत्र, भृत्य, बान्धव, अश्व, गज, रथ तथा पदातिसेना और नगरनिवासी सहित सब रघुवंशी निरामय, भ्रमशून्य, स्थिरसं-पत्तिसहित तथा सदा अभ्युदयसे युक्त हो ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे विश्रान्तिप्रकटीकरणं नामैकोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०१ ॥

द्व्युत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०२ ॥

ज्ञानसे प्रसन्न सब राजा तथा रामजीका वर्णन और रामचन्द्रजीने अपनी शुद्ध निर्मल स्थितिका वर्णन इस २०२ के सर्गमें कियाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावसिष्ठस्यवचःसंसदिपार्थिवाः ॥ सिक्ताइवामृतापूरैरंतःशीतलतांय युः ॥ १ ॥ रामःकमलपत्राक्षोरराजवदनेंदुना ॥ क्षीरोदइवसंपूर्णःसुधापूरेणचारुणा ॥ २ ॥ वामदेवा दयःसर्वेतत्वज्ञानविशारदाः ॥ अहोभगवताज्ञानमुक्तमित्यूचुरादरात् ॥ ३ ॥ शांतांतःकरणोराजा मुदादशरथोबभौ ॥ तुष्टयैवसंप्रहृष्टांगोनवांद्युतिमुपागतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि हे राजन् ! इसप्रकार सभामें सब राजा श्रीवसिष्ठजीके वचनको श्रवण करके अमृतसे सिंचितके समान शीतलताको प्राप्तहुये ॥ १ ॥ और कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजी निजचन्द्रसदृशमुखसे ऐसे शोभित हुये जैसे अमृतपूर्ण पूर्णचन्द्रमासे क्षीरसागर ॥ २ ॥ और ज्ञानविशारद वामदेवादिमुनियोंने आदरसे यह कहा कि अहो ! वसिष्ठभगवान्ने आश्चर्य्यजनक ज्ञान कहा ॥ ३ ॥ अधिकसन्तोषकंटकित शरीर, नूतनशोभायुक्त, और शान्तमन राजा दशरथ अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥

ज्ञातज्ञेयेषुबहुषुसाधुवादकथास्वथ ॥ उवाचगलिताज्ञानोरामोवाक्यमिदंपुनः ॥५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भूतभव्येशत्वयास्माकमलंमलम् ॥ सप्रमृष्टमिदंहेम्नःश्यामत्वमिववह्निना ॥ ६ ॥ अभूमवयमा त्मीयकायमात्रदृशःपुरा ॥ प्रभोसंप्रतिसंपन्नाविष्वग्विश्वावलोकिनः ॥ ७ ॥ स्थितोस्मिसर्वसंपूर्णःसंप न्नोस्मिनिरामयः ॥ जातोस्मिविगताशंकोबुधोजागर्मिसंप्रति ॥ ८ ॥

अर्थ—ज्ञानियोंकी अनेक साधुवाद कथाओंके पश्चात् अज्ञानरहित रामचन्द्रजीने पुनः यह वाक्य कहा ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले–कि हे भगवन् ! हे भूतभविष्यवर्तमानके स्वामिन् आपने इस हमारे अज्ञानरूपी मलको ऐसे दूर किया जैसे अग्नि सुवर्णके मलको ॥ ६ ॥ हे गुरो ; हे प्रभो ! प्रथम हम सब केवल देहमात्रमें आत्मदर्शी थे और अब संपूर्ण ब्रह्मांडको आत्मा देखतेहैं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! अब सर्वथा सर्वत्र पूर्ण होके निरामय, निर्विकार तथा शंका-रहित स्थित होके आत्मस्वरूपमें जागताहुं ॥ ८ ॥

आनंदितोस्म्यखेदायसुखितोस्मिचिरायच ॥ स्थितोनस्तमयायैवशाश्वतार्थोदयोमम ॥ ९ ॥ अहोबत पवित्रेणशीतेनज्ञानवारिणा ॥ त्वयासिक्तोस्मिहृष्यामिपद्मवद्धृदयेस्वयम् ॥ १० ॥ इयमद्यमयालब्धाप दवीत्वत्प्रसादतः ॥ यस्यांस्थितस्यमेसर्वममृतत्वंगतंजगत ॥ ११ ॥ अंतःप्रसन्नमतिरस्तसमस्त शोकःशोभांगतोहममलाशयएवशांत्या ॥ आनंदमात्मनिगतःस्वयमात्मनैवनैर्मल्यमभ्युपगतोस्मिनम स्तुमह्यम् ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे आत्मविश्रामांगीकरणंनामद्व्युत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०२ ॥

अर्थ—हे गुरो ! पुनः खेद न प्राप्त होनेकेलिये आनन्दितहुं, चिरकालकेलिये सुखी हुं और पुनः अस्त न होनेके लिये अभ्युदितहुं, क्योंकि अब मेरे परमपुरुषार्थका आविर्भाव हुआ ॥ ९ ॥ अहो गुरो ! आपके ज्ञानरूपी परम शीतलजलसिंचित मैं निजहृदयमें स्वयं शरदृतुके कमलकेसमान विकसित हुं ॥१०॥ हे गुरो! आपकी कृपासे मैंने इस साम्राज्यपदवीको प्राप्तकिया कि जिसमें स्थित होनेसे मुझे यह संपूर्णजगत् अमृत (ब्रह्म) रूपताको प्राप्तहोगया ॥ ११ ॥ हे गुरो ! अन्तःकरणमें प्रसन्न, समस्त शोकोंसे रहित, ज्ञानद्वारा कार्य्यसहित अविद्याके नाशसे निर्मल निजआत्माहीमें निरतिशय आनन्दको प्राप्त, पूर्णपरीक्षासे स्वयं साक्षी चेतनके दर्शनसे परमनिर्मलताको प्राप्त, अतएव परमशोभायुक्त मैं हुं, इसलिये परमात्मरूप मुझेही मेरा नमस्कार है ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे आत्मविश्रामाङ्गीकरणं नाम द्व्युत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०२ ॥

त्र्युत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०३ ॥

मध्यान्हके तूर्य शंख नगारेआदिका शब्द, दिनके तुल्य रात्रिका आगमन और प्रातःकाल होनेपर सभामें रामचन्द्रजीकी निःसंदेहताका वर्णन इत्यादि विषय इस २०३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्थंविचारपरयोर्मुनिराघवयोस्तयोः ॥ भास्करःश्रवणायेवव्योममध्यमुपाययौ ॥ १ ॥ तीक्ष्णतामाजगामाशुसर्वदिक्कमथातपः ॥ पदार्थौघविकासार्थंरामस्येवमहामतिः ॥ २ ॥ उत्फु ल्लहृदयांभोजस्फाराकारतयातदा ॥ लीलापद्माकरारेजुस्तत्रस्थाःपार्थिवाइव ॥ ३ ॥ जालंमुक्ताकलापा नंतरमाक्रांतभास्करम् ॥ ननर्त्तेवतरद्व्योमविज्ञानश्रवणादिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-कि जब इसप्रकार श्रीवसिष्ठमुनि तथा रामचन्द्रजी अध्यात्मविचारमें तत्पर थे तब सूर्यभगवान् मध्य आकाशमें मानों उनकी कथा सुनके प्राप्त हुये ॥ १ ॥ सम्पूर्णदिशाओंमें सूर्यका आतप तीक्ष्णताको ऐसे प्राप्तहुआ जैसे पदार्थसमूहको स्पष्ट दर्शानेको श्रीरामचन्द्रजीकी महाबुद्धि ॥ २ ॥ विकसित हृदयकमलके विशालआकारसे क्रीडार्थ कमलतडाग उससमय ऐसे शोभित हुये जैसे उस सभाके राजा ॥ ३ ॥ प्रतिबिंबद्वारा सूर्य्यसे व्याप्त, मुक्तासमूहसे शोभित, स्फटिकमणिके झरोखे मानो वसिष्ठजीके विज्ञानमयवचन सुनके नाचनेलगे ॥ ४ ॥

पुस्फुरुःपद्मरागेषुलग्नार्कतरुणत्विषः ॥ भासोव्योमतलोड्डीनाधियोज्ञानकलाइव ॥ ५ ॥ एवंनिर्वृतिमायातेरामेस्वकुलकैरवे ॥ मुनींद्रवदनालोकात्सविकासमिवस्थिते ॥ ६ ॥ रवावौर्वोपमेव्योममहाब्धेर्नाभितांगते ॥ तेजःपुंजलसज्ज्वालेसमग्ररसपायिनि ॥ ७ ॥ नभोनीलोत्पलेनीलेगलद्रजसिराजति ॥ घर्माशुकर्णिकाकांतेस्फुरत्किरणकेसरे ॥ ८ ॥ अवतंसेजगल्लक्ष्म्यास्त्रिलोकीकर्णकुंडले ॥ अंतर्लीनस्फुरत्तारारत्नराजिविराजिते ॥ ९ ॥

अर्थ—आकाशतलसे उडके पद्मरागमणिमें संलग्न सूर्य्यकी दीप्ति ऐसे स्फुरितहोनेलगी जैसे उपदेशकी ज्ञानकलासे पूर्ण बुद्धि ॥ ५ ॥ इसप्रकार शान्तिको प्राप्त, निजकुलकुमुद श्रीरामचन्द्रजी श्रीवसिष्ठजीके मुखचन्द्रके दर्शनसे विकासयुक्तकेसदृश जब विराजमान हुये ॥ ६ ॥ तथा तेजःपुंजसे क्षोभित, समग्रपदार्थोंके रसके पाता सूर्य्यभगवान् वडवानलकेसदृश आकाशरूपी महासमुद्रके नाभिप्रदेश (मध्यदेश) में जब प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ तथा संसाररजसे (धूलि) वर्जित, सूर्य्यरूपी कर्णिकासे शोभित, संचालितरूप लक्ष्मीके शिरोभूषणरूप त्रिलोकीरूपी ललनाके कुण्डलवत् आभ्यंतरमें दैदीप्यमान ताराऊपीरत्नोंसे शोभित किरणरूपी केसरसहित नीलकमलकेसमान आकाशरूपी कमल जब शोभित होरहाथा ॥ ८ ॥ ९ ॥

दिग्वधूभिर्बृहच्छृंगपाणिभिर्मुकुरेष्विव ॥ धृतेषुतापभिन्नेषुमहाभ्रेषुनिरंबुषु ॥ १० ॥ सूर्यकांतवरोत्थेनवह्निनेवसमेधिते ॥ द्विगुणंप्रज्वलत्यर्कशून्येगगनधामनि ॥ ११ ॥ विनेदुर्भेदुरोद्दाममुखमारुतपूरिताः ॥ मध्याह्नशंखाःकल्पांतवातपूर्णाइवार्णवाः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा महापर्वतोंके शिखररूपीहस्तोंसे सूर्य्यके आतपसे व्याप्त जलरहित महामेघरूपी दर्पणोंको दिशारूपी अङ्गनाओंके धारणकरनेपर श्रेष्ठसूर्य्यकांतमणियोंसे उत्पन्न अग्निसे जब सूर्य्यसे शून्यभी आकाशप्रदेश द्विगुण संतप्त होरहाथा ॥ १० ॥ ११ ॥ उससमय अतिस्निग्ध तथा उत्तममुख पवनसे पूर्ण मध्यान्हसूचक शंखोंका ऐसा नाद हुआ जैसे कल्पान्तके पवनसे पूर्ण समुद्रोंका ॥ १२ ॥

प्रालेयश्रीरिवाब्जेषुधर्मश्रीर्वदनेष्विव ॥ चकारपदमाकीर्णशुद्धमुक्ताफलोपमा ॥ १३ ॥ गृहभित्तिपराघृत्तासत्वसंरंभमांसला ॥ शब्दश्रीःपूरयामासकर्णमर्णइवार्णवम् ॥ १४ ॥ पुरंध्रीभिर्निदाघौघशांतये समुदीरिता ॥ उल्ललासनवापांडुकर्पूरजलदावलिः ॥ १५ ॥ सराजासहसामंतःसभूपःसपरिच्छदः ॥ सवसिष्ठःसमुत्तस्थौसहरामःससंसदः ॥ १६ ॥

अर्थ—उससमय कमलोंपर तुषारके बिन्दुओंकी शोभाकेतुल्य तथा पद्मोंपर बिखरेहुए मोतियोंकेसदृश मनुष्योंके मुखकमलोंपर प्रस्वेदबिंदुओंकी शोभा हुई ॥ १३ ॥ तथा गृहभित्तिआदिसे अभिघात (टकराने) से लौटीहुई और मनुष्योंके कार्य्योंकी शीघ्रताके शब्दोंसे पुष्ट शंखादिके शब्दोंकी शोभाने कर्णको ऐसे पूर्ण किया जैसे वृष्टि नदीआदिका जल समुद्रको ॥ १४ ॥ उष्णताकी शान्तिके लिये स्त्रियोंके हस्तोंसे मुक्त कर्पूरयुक्त पांडुवर्ण जलसिंचनरूप मेघोंकी पंक्ति शोभित हुई ॥ १५ ॥ उससमय मंडल तथा देशाधिपति सामन्तराजाओंकेसाथ, तथा अमात्यआदिसहित राजादशरथ और श्रीरामजी तथा अन्यसभासदोंकेसाथ श्रीवसिष्ठजी उठ खडे हुये ॥ १६ ॥

राजानोराजपुत्राश्चमंत्रिणोमुनयस्तथा ॥ अन्योन्यंपूजिताजग्मुर्मुदिताःस्वंनिवेशनम् ॥ १७ ॥ अंतःपुरगृहाग्रेषुतालवृंतानिलाहृतैः ॥ कर्पूरधूलिभिरभून्नवैवांबुदमालिका ॥ १८ ॥ अथमध्याह्नतूर्याणांरवेस्फूर्जतिभित्तिषु ॥ उवाचवचनंवाक्यकोविदोमुनिनायकः ॥ १९ ॥ सर्वमेवश्रुतंश्राव्यंज्ञेयंज्ञातमशेषतः ॥ त्वयाराघवभोनास्तिज्ञातव्यमपरंवरम् ॥ २० ॥

अर्थ—राजा, राजपुत्र, मंत्रीगण तथा मुनि परस्पर पूजित होके अपने २ निवासस्थानको गये ॥ १७ ॥ अन्तःपुरके गृहोंके अग्रभागमें ताडके व्यजनों (पंखों) से आनीत कर्पूरकी धूलियोंसे एक नूतनप्रकारकी मेघमाला शोभित

हुई ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् मध्यान्हकालके शंखआदिका शब्द भित्तिआदिकी प्रतिध्वनियोंसे जब वृद्धिको प्राप्त होरहाथा, उससमय वाक्यरचनाचतुर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी यह बोले ॥ १९ ॥ कि–हे राघव! तुमने जो श्रोतव्य था उसको सुना, और ज्ञेयवस्तुको पूर्णरूपसे जानभी लिया, अब तुमको अन्य कुछ ज्ञातव्य नहीं है ॥ २० ॥

यथामयोपदिष्टोसियथापश्यतिशास्त्रतः ॥ यथानुभवसिश्रेष्ठमेकवाक्यंतथाकुरु ॥ २१ ॥ उत्तिष्ठताव त्कार्यायवयंस्नातुंमहामते ॥ मध्याह्नसमयोस्माकमयमंगातिवर्तते ॥ २२ ॥ अपरंयत्त्वयाभद्रस्वाकांक्षाविनिवृत्तये ॥ प्रष्टव्यंतच्छुभंप्रातःप्रष्टव्यंभवतापुनः ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तेमुनिना थेनराजादशरथःस्वयम् ॥ पूजयामासतान्सभ्यान्सर्वान्साधून्सपर्यया ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राम! जो मैंने तुमको उपदेश दियाहै, जैसा शास्त्रसे जानतेहो, और जो तुम स्वयं अनुभव करतेहो उसकी एक अर्थमें परतारूप एकवाक्यता करो ॥ २१ ॥ हे महाबुद्धे प्रिय रामजी! अब उठो, हमारे मध्यान्हस्नानका समय अब बीतता है ॥ २२ ॥ और पूर्वोक्तविषयोंको मनननिदिध्यासनद्वारा एकवाक्यता करके जो कुछ तुमको प्रष्टव्य हो उसको निजसंदेहनिवृत्तिके लिये प्रातःकाल अवश्य पूंछना उपेक्षा नहीं करना॥२३॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–मुनिवसिष्ठजीके इतना कहनेपर राजा दशरथने स्वयं सब सभासदोंकी तथा साधुब्राह्मदिकी भक्तिपूर्वक पूजा की ॥२४॥

सहरामेणधर्मात्मामुनिविप्रांनृपांश्वसः ॥ वसिष्ठाद्युपदिष्टेनक्रमेणव्योमगांस्तथा ॥ २५ ॥ मणिमुक्ता गणार्थेनदिव्येनकुसुमेनच ॥ मणिरत्नप्रदानेनमुक्ताहारार्पणेनच ॥ २६ ॥ प्रणयेनप्रणामेनप्रदानेनार्थशालिना ॥ वस्त्रासनान्नपानेनकनकेनतथाभुवा ॥ २७ ॥ धूपेनगंधमाल्याभ्यांयथोदितमानिंदितः ॥ पूर्वान्संपूजयामाससर्वानेवमहीपतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—रामचन्द्रजीके साथ राजा दशरथने वसिष्ठके उपदेशके अनुसार मुनि, ब्राह्मण तथा राजाओंकी अनेकप्रकारके दानमानादिसे पूजा की ॥ २५ ॥ किसीकी मणिमुक्ताओंसे, किसीकी धनसे, किसीकी विविधरत्नोंके दानसे और किसीकी मोतिओंकी मालाओंके समर्पणसे पूजा की ॥ २६ ॥ प्रणायसे, प्रणामसे, धन, अन्न, वस्त्र, आसन, अन्न, पान, सुवर्ण तथा गोदानभूमिदानादिसे सबकी पूजा राजा दशरथने की ॥ २७ ॥ तथा धूप, दीप और गन्धमाल्यआदिसे सबकी पूजा अनिन्दनीय राजा दशरथने की ॥ २८ ॥

अथोत्तस्थौसभामध्यात्सभयासहमानदः ॥ सवसिष्ठादिदेवर्षिःसायमिंदुरीवांबरात् ॥ २९ ॥ ससभोत्थानसमयःससंरंभोव्यराजत ॥ जानुदघ्नसुरोन्मुक्तपुष्पसंजातकर्दमः ॥ ३० ॥ संघट्टाघट्टकेयूर रत्नचूर्णारुणावनिः ॥ छिन्नहारस्फुरन्मुक्तातारजितनिशांबरः ॥ ३१ ॥ देवर्षिमुनिविप्रेंद्रपार्थिवस्पंद संकुलः ॥ व्यग्रभृत्यांगनाहस्तकेशचंचलचामरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सभासद तथा वसिष्ठआदि देवर्षियोंसहित मानदेनेवाले राजादशरथसभासे ऐसे उठे जैसे सायंकालमें आकाशसे चन्द्रमा ॥ २९ ॥ घुटनोंतक देवताओंनेमुक्त पुष्पपराग तथा चन्दनादि कर्दमोंसे पूर्ण त्वरायुक्त वह उठनेके समय सभास्थानका संभ्रम अपूर्वरूपसे शोभित हुआ ॥ ३० ॥ परस्परके संघट्ट तथा आघातसे अगंदआदिके रत्नोंके चूर्ण होनेसे अरुण पृथिवीसहित तथा हारोंके छिन्नभिन्न होनेसे मुक्तारूपी ताराओंसे सायंकालके आकाशकोभी जीतनेवाला वह समय शोभित हुआ ॥ ३१ ॥ तथा मुनि, देवर्षि, उत्तम ब्राह्मण और राजा आदिके संचलनसे व्याप्त तथा कार्य्यमें व्यग्र भृत्य और स्त्रियोंके चंचल हस्तकेशादिसे चमरयुक्त वह समय शोभित हुआ ॥ ३२ ॥

ज्ञानप्रमेयीकरणस्पंदमानोनदारुणः ॥ शिरःकरत्रिनयनजिह्वेष्वेवविराजितः ॥ ३३ ॥ परस्परमथाप्टच्छ्यपूजिताःपेशलोक्तयः ॥ राजानोमुनयश्चैवसर्वेदशरथादयः ॥ ३४ ॥ स्वाश्रमान्साधवोजग्मुस्तुष्ट स्निग्धाशयामिथः ॥ लोकसप्तकवास्तव्यादेवाःशक्रपुरादिव ॥ ३५ ॥ अन्योन्यंप्रणयात्सर्वेपूजयित्वाय थाक्रमम् ॥ तद्विसृष्टाःस्वमागत्यगृहंचकुर्दिनक्रियाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीने उपदिष्ट ज्ञानके मननादि भूमिकाओंके क्रमसे प्रमाविषय करनेके लियेही चलायमान इससे दारुण नहिं ऐसा और कदाचित् किंचित् अंगका संघट्टन होनेपरभी परस्परकी क्षमा मांगनेके लिये मस्तकके विषे बद्धांजलि ऐसे अग्रभागमें और पार्श्वभागमें ऐसे तीनोंभागोंमें अवलोकन तथा क्षमा मांगनेके अर्थ प्रवृत्त हैं जिव्हा और नेत्र जिनके ऐसे जनोंकेविषेही शोभितहुवा ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् कोमलभाषी, परस्पर गुणोंकी प्रशंसासे संतुष्ट और स्नेहयुक्त अन्तःकरणसहित सप्तलोकवास्तव्य सब राजा, साधु, मुनि तथा सदेव सिद्ध परस्पर आज्ञा लेके अयोध्यासे

निजस्थानको ऐसे गये जैसे इन्द्रपुरसे देव ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ परस्परके प्रेमसे यथाक्रम पूजा करके राजा दशरथसे बिदा कियेहुये अपने २ आश्रमको गये और आन्हिक क्रिया की ॥ ३६ ॥

अथसर्वेवसिष्ठाद्यास्तथादशरथादयः ॥ चक्रुर्दिवसकार्याणिराजानोमुनयस्तथा ॥ ३७ ॥ यथाप्राप्तंक्रियां तेषुकृतवत्स्वथदैवसीम् ॥ क्रमेणाकाशपथिकोभास्करोस्तमुपाययौ ॥ ३८ ॥ तयैवकथयातेषांरामस्यच महामतेः ॥ प्रबोधवशतःशीघ्रंसाव्यतीयायशर्वरी ॥ ३९ ॥ उत्सारिततमःपांसुताराकुसुमनिर्भरम् ॥ भुवनंभवनीकुर्वन्नाजगामदिवाकरः ॥ ४० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर वसिष्ठ आदि ऋषियोंने, मुनियोंने और दशरथआदि राजाओंने नित्य दिनकी क्रियाओं-को किया ॥ ३७ ॥ यथाप्राप्त दिनकी क्रियाओंके समाप्त होनेपर क्रमसे आकाशके पथिक श्रीसूर्य्य अस्ताचलको प्राप्त-हुये ॥ ३८ ॥ इसीप्रकार महाबुद्धि श्रीरामचन्द्रकी रात्रि जागरणसे शीघ्र व्यतीत हुई ॥ ३९ ॥ प्रातःकालमें गृहके साफ करनेकेसमान अपने किरणोंसे दूरकिये हैं अन्धकाररूप रजःकण और तारासमूहरूप पुष्पसमुदाय जिनने ऐसे श्री-सूर्यभगवान संपूर्णजगत्को गृहकेसमान निर्मल करतेहुये उदयको प्राप्तहुये ॥ ४० ॥

करवीरकुसुंभाभैःकरैररुणयन्दिशः ॥ विवेशगगनांभोधिमथबालदिवाकरः ॥ ४१ ॥ राजानोराजपुत्राश्वमंत्रिणोमुनयस्तथा ॥ वसिष्ठाद्याःसमाजग्मुःपुनर्दाशरथींसभाम् ॥ ४२ ॥ यथाक्रमंयथासंस्थंयथादेशंयथासनम् ॥ साविवेशसभातत्रधिष्ण्यश्रीरंबरेयथा ॥ ४३ ॥ ततोदशरथाद्येषुसुमंत्रादिषुवाप्यलम् ॥ वसिष्ठंसंप्रशंसत्सुमुनिमासनसंस्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—करवीरके पुष्पोंके सदृश किरणोंसे दिशाओंको रक्तवर्ण करतेहुये बालसूर्य्यने आकाशरूपी समुद्रमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥ राजा, राजपुत्र, मंत्री तथा वसिष्ठादि मुनि पुनः राजा दशरथकी सभामें प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ यथाक्रम तथा यथायोग्य देश और आसनादिपर वह सभा ऐसे विराजमान हुई जैसे नक्षत्रोंकी शोभा आकाशमें ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर मुनि आसनपर समासीन श्रीवसिष्ठजीकी दशरथ आदि राजा तथा सुमंत्र आदि मंत्रीमंडल जब पूर्णरीतिसे प्रशंसा कररहेथे ॥ ४४ ॥

वसिष्ठस्यपितुश्चाग्रेराजीवदललोचनः ॥ उवाचराघवोधीमान्मृदुवर्णमिदंवचः ॥ ४५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्वज्ञानमहार्णव ॥ सर्वसंदेहपरशोपरशोकभयापह ॥ ४६ ॥ श्रोतव्यमपरंकिंमे विद्यतेवेद्यमेववा ॥ श्रोतव्यंविद्यतेयद्यातत्सर्ववक्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामसंप्राप्तबुद्धिस्त्वंश्रोतव्यंतेनविद्यते ॥ कृतकृत्यातवैषाधीःप्राप्तप्राप्यास्थितात्मनि ॥ ४८ ॥

अर्थ—उससमय गुरु वसिष्ठ तथा पिताके सन्मुख कमलदलके सदृश विशालनेत्रधारी श्रीरामचन्द्र कोमल-वाणीसे यह बोले ॥ ४५ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वज्ञानमहासिन्धो ! हे सर्वसन्देहकुठार ! तथ हे सर्वजीवशोकभयहारिन् भगवन् ! ॥ ४६ ॥ मुझे श्रोतव्य तथा ज्ञेय क्या वस्तु अब शेष है, जो कुछ श्रोतव्य तथा ज्ञेय हो वह सब कृपाकरके कहिये ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! अब तुमको आत्मबुद्धि प्राप्त है अतः श्रोतव्य शेष नहीं है क्योंकि यह प्राप्तव्यवस्तुसे युक्त कृतकृत्य तुमारी बुद्धि निजआत्मामें स्थित है ॥ ४८ ॥

त्वमेवतावत्कथयप्रविचार्यधियात्मना ॥ कीदृशोद्यभवानंतःकिंशेषंश्राव्यमस्तिते ॥ ४९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्नेवमहंमन्येयथाहंकृतकृत्यधीः ॥ निर्वाणोस्मिप्रशांतोस्मिनाकांक्षाममविद्यते ॥ ५० ॥ वक्तव्यमुक्तंभवताज्ञातंज्ञेयंमयाखिलम् ॥ तवविश्रांतिमायातुकृतकृत्यासरस्वती ॥ ५१ ॥ अधिगतमधिगम्यंज्ञेयमाप्तंमयेदंविगतमखिलमैक्यंद्वैतमस्तंप्रयातम् ॥ परिगलितमशेषंदृश्यभेदावभानंननुनिपुणप्रपास्ताशेषसंसारितास्था ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनं नाम त्र्युत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०३ ॥

अर्थ—अब तुमही अपनी बुद्धिसे विचारकरके कहो कि तुम निजअनुभवसे अब कैसे हो, तुमारा अन्तःकरण कैसा है और अवश्य श्रोतव्य अब तुमको क्या है ॥ ४९ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे भगवन् ! मैं आपकी कृपासे अपनेको ऐसा मानताहुं, कि मैं कृतकृत्यबुद्धि हुं, तृप्त हुं, शांत हुं, अब मुझे कुछभी आकांक्षा नहींहै ॥ ५० ॥ जो कुछ वक्तव्य था वह आपने सब कहा, उसके अनुसार संपूर्ण ज्ञेयपदार्थ मैंने जानलिया, हे गुरो ! अब आपकी कृतकृत्य (सफल) वाणी विश्रामको प्राप्तहो ॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! प्रपंचशून्य अधिगम्य ब्रह्मपदार्थ मैंने प्राप्त-

किया, जीवब्रह्मका भेदरूप द्वैत अस्त होगया, उपाधिभूत दृश्यभेदका भान गलितहोगया, क्योंकि मैंने पूर्णरूपसे विचारकरके संसारमें सत्यताबुद्धि त्यागदी है ॥ ९२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे निर्वाणवर्णनं नाम त्र्युत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०३ ॥

चतुरुत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०४ ॥

शुद्धचिदात्माके ज्ञानके अर्थ श्रीवसिष्ठजी तथा रामचन्द्रजी पुनः उत्तमयुक्तियोंसे चेतनसे दृश्यका शोधन करते हैं यह विषय इस २०४ के सर्गमें कहाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमेपरमंवचः ॥ आदर्शोराजतेत्यर्थंपौनःपुन्येनमार्जितः ॥ १ ॥ अर्थोविदनसंकेतःशब्दोजलरवोपमः ॥ दृश्यमेतच्चिदाभानंस्वप्नवत्काभवज्जगत् ॥ २ ॥ जाग्रद्वैस्वप्नसं दृष्टःस्मरणात्मस्थितंपुरः ॥ संविद्वेदनमात्रंसत्तदन्याकारवत्ततम् ॥ ३ ॥ यथाच्छंसंविदाकाशंमयिस्व प्नपुरात्मकम् ॥ सरूपमपिनीरूपंतथेदंभुवनत्रयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! मेरे इस उत्तमवचनको पुनः तुम श्रवण करो. क्योंकि पुनः २ शोधित दर्पण अधिक शोभितहोताहै ॥ १ ॥ हे रामजी ! नामरूपभेदसे दृश्य दोप्रकारका है इन शब्दोंकी प्रवृत्ति जाति, गुण, क्रिया, तथा संस्थान इन चारप्रकारसे होतीहै, जैसे गौ नील चपल भद्रनामवाली, सो एकही पदार्थमें अन्यकी व्यावृत्तिआदिकेलिये शब्दसंकेतकल्पनासे जातिगुणादिकल्पित भ्रमरूप हैं न कि यथार्थ, अर्थके असत्होनेसे जल बुद्बुद्के तुल्य शब्द क्षणभंगुर है, इसलिये यह सब सच्चिदानन्दही है, तब स्वप्नवत् जगत् कहां ॥ २ ॥ और जब जाग्रत्काही नाम असत् है तब स्वप्न तो उसी दृष्टान्तसे असत् इस अवस्थामें जाग्रत्के संस्कारसे स्मरणके तुल्य पदार्थशून्यआत्माहीमात्र है, वही संवित् अन्यपदार्थाकारके समान व्याप्त है तात्पर्य वहांभी संवित्के अतिरिक्त अन्य कुछभी किंचित्भी पदार्थ नहिं है. ॥ ३ ॥ हमारेलिये स्वप्नके नगरादि जैसे स्वच्छ चिदाकाशमात्र हैं ऐसेही रूपसहित यह भासताहुआभी संपूर्ण जगत् यथार्थरूपरहित चिन्मात्रही है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ संपन्नेयंकथंभूमिःसंपन्नागिरयःकथम् ॥ कथंसंपन्नमंभश्चसंपन्नाउपलाःकथम् ॥ ५ ॥ कथंचतेजःसंपन्नंसंपन्नाचकथंक्रिया ॥ कथंचकालःसंपन्नःसंपन्नःपवनःकथम् ॥ ६ ॥ कथंचशून्यं संपन्नंसंपन्नंचिन्नभःकथम् ॥ इतिज्ञातंमयाभूयोबोधायवदमेप्रभो ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ब्रूहिराघ वतत्वेनस्वप्नदृष्टमहापुरे ॥ संपन्नाभूःकथमिवसंपन्नंकथमंबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि हे भगवन् ! चेतन आत्मामें जडता कैसे और उसमें पृथिवी, पर्वत, जल, आकाश तथा पाषाणादि विचित्रपदार्थ कैसे बनगये ? ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! तेज कैसे सिद्धहुआ, क्रिया कैसे हुई, काल कैसे हुआ, पवन कैसे हुआ और जडसे अपेक्षा रखनेवाला चिदाकाशभी कैसे हुआ, यह सब आपके उपदेशसे जानभी लियाहै तथापि असंभावनाकी शान्तिसे बोधकी वृद्धिके लिये पुनः कहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! तुम यह यथार्थ कहो कि तुमारे स्वप्नके महानगरमें पृथिवी कैसे हुई, आकाश कैसे हुआ ॥ ८ ॥

कथंवारिचसंपन्नंसंपन्नाउपलाःकथम् ॥ कथंचतेजःसंपन्नंसंपन्नाश्चकथंदिशः ॥ ९ ॥ संपन्नश्चकथंकालः संपन्नाचकथंक्रिया ॥ कथमेतन्निमित्तादिसर्वसंपन्नमुच्यताम् ॥ १० ॥ केनेदंनिर्मितंदग्धमानीतंरचितं चितम् ॥ उत्पादितंप्रकटितंकिमाचारंकिमात्मकम् ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मास्यकेवलंव्योमन सद्भूम्यचलादिकम् ॥ जगतःस्वप्नरूपस्यनिराकारोनिरास्पदः ॥ १२ ॥

अर्थ—जल कैसे हुआ, पाषाण कैसे हुये, तेज कैसे हुआ तथा दिशा कैसे हुई ॥ ९ ॥ और काल तथा क्रिया कैसे हुये, तथा यह सब कार्य्यकारणव्यवहार कैसे हुआ ? ॥ १० ॥ किसने इसको रचा, कौन लाया, किसने एकत्र किया, प्रकट किया, क्या इसका आचार है और क्या इस स्वप्नके नगरआदिका स्वरूप है यह सब तुम कहो ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे गुरो ! मुझे तो इस स्वप्नरूप जगत्का आत्मा निराकार तथा निराश्रय चिदाकाशही भासताहै, यह पृथिवी पर्वत आदि सत् नहीं है ॥ १२ ॥

आत्मैवव्योमरूपोस्यनिराधारोनिराकृतिः ॥ विनाकृतेर्वाव्योम्नोस्यकिमाधारेणकारणम् ॥ १३ ॥ नकिंचिदेततत्संपन्नंसच्चथैतन्नसंविदः ॥ एतच्चित्कचनंनाममनएवतथास्थितम् ॥ १४ ॥ दिक्कालाद्यत्रचिद्वानंचिद्वानमचलादिकम् ॥ चिज्जलादितथाबोधाच्चित्खंवाय्वादितद्विदः ॥ १५ ॥ संविदेवकिलव्योम तिष्ठतिव्योमतामिता ॥ दृषत्तयास्तेकाठिन्याद्द्रवाज्जलमिवस्थिता ॥ १६ ॥

अर्थ—हे गुरो ! निराधार तथा निराकार चिदाकाशही इस जगत्का स्वरूप है और उस निराकार चित्स्वरूपकेलिये अन्य आधारकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! इन पृथिवीआदिकी सम्पत्ति मानकर मैंने कहा कि इस जगत्का आत्मा चिदाकाश है, यथार्थमें तो यह कुछ हैही नहीं चित्संविद् अपने स्वरूपसे यथास्थित है और यह जगदाकार चित्का स्फुरण जो है वह मनही इसरूपसे स्थित है और कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ दिक्कालादि चित्स्फुरणमात्र है, ज्ञानियोंको ज्ञानसे पर्वत, जल तथा वायुआदि सब चित्स्फुरणमात्र है ॥ १५ ॥ शून्यताको प्राप्त संविद्ही आकाशरूपसे स्थित है, काठिन्यभावको प्राप्त पाषाणरूपसे तथा द्रवताको प्राप्त जलरूपसे स्थित है ॥ १६ ॥

वस्तुतस्तुनभूम्यादिकिंचित्तन्नचदृश्यता ॥ चिदाकाशमनंतंतत्सर्वमेकंतदात्मकम् ॥ १७ ॥ द्रवत्वादंबुद्ध्याब्धेर्नानावृत्तितयायथा ॥ अनानैवभवेन्नानाचिद्व्योमात्मनिवैतथा ॥ १८ ॥ काठिन्यवेदनाद्वुर्वीगिरितामागतेवचित् ॥ शून्यतावेदनाच्छून्यंवेत्तिव्योमेवचिद्वपुः ॥ १९ ॥ द्रवत्ववेदनाद्वेत्तिवारिस्पंदतयानिलम् ॥ औष्ण्यसंवित्ततोवह्निमित्यजंतीनिजंवपुः ॥ २० ॥

अर्थ—यथार्थमें न भूमिआदि हैं, न दृश्यरूपता है किन्तु एक अनन्त चिदाकाशही है, तद्रूपही यह सब है ॥ १७ ॥ जैसे एकरूप प्रसन्न (स्वच्छ) समुद्र तरंग, फेन, आवर्तादि नानारूपसे भासताहै ऐसेही एकरूप चिदाकाश पृथिवी, जलादिनानारूपसे भासताहै ॥ १८ ॥ काठिन्यके अनुभवसे चित् अपनेको पृथिवीपर्वतादिरूपसे जानती है तथा शून्यताके अनुभवसे वही चिदाकाश अपनेको आकाशरूप जानताहै ॥ १९ ॥ तथा वहीं चिदाकाश अपने शुद्ध चिद्रूपको न त्यागताहुवा द्रवत्वके अनुभवसे जल, स्पन्दके अनुभवसे वायु तथा उष्णताके अनुभवसे अग्नि अपनेको जानताहै ॥ २० ॥

एवंस्वभावएवायंचिद्धातुर्गगनात्मकः ॥ यदेवंनामकचतिनिष्कारणगुणक्रमम् ॥ २१ ॥ नचैतद्व्यतिरेकेणाकिंचिन्नापीहविद्यते ॥ अन्यच्छून्यत्ववारिभ्यामृतेखार्णवयोरिव ॥ २२ ॥ नतुचिद्गगनादन्यत्रसंभवतिकिंचन ॥ इदंत्वमहमित्यादितस्मादाशांतमास्यताम् ॥ २३ ॥ त्वंयथास्मिन्गृहेकुर्वन्नग्निशैलादिकांविदम् ॥ तदेवपश्यस्यवपुरेवंचिद्गगनंतथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इस चिदाकाशका ऐसा स्वभावही है कि निष्कारणही इसप्रकार नामरूप (दृष्टसृष्टिवाद) से स्फुरित होताहै ॥ २१ ॥ जैसे जलसे भिन्न समुद्र कुछ नहीं है और शून्यताके सिवाय आकाश कुछ नहीं है ऐसेही चित्से भिन्न जगत्पदार्थ कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ तुम, हम और यह जगत् सब चिदाकाशके सिवाय और कुछ नहीं है, इसलिये सर्वथा शान्त स्थित रहो ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नमें तुम निराकारही सब इस गृहके विषे अग्निजलादिसंबन्धिनी क्रिया करतेहो ऐसेही सब यह पृथिवी अग्नि तथा पर्वतादिके दर्शनस्पर्शनादि क्रिया करतेहो ॥ २४ ॥

चिद्व्योमभातिदेहाभंसर्गादौनतुदेहकः ॥ अकारणत्वादसतश्चिदुदेतीतिचिंत्यताम् ॥ २५ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोभूतानिगिरयोदिशः ॥ शिलाजठरवन्मौनमयंसर्वंयथास्थितम् ॥ २६ ॥ एवंनकिंचिदुत्पन्नंनष्टंनचनकिंचन ॥ यथास्थितंजगद्रूपंचिद्ब्रह्मात्मनितिष्ठति ॥ २७ ॥ चितैयत्कचनंनामस्वरूपप्रविजृंभणम् ॥ तदेतज्जगदित्युक्तंद्रवएवयथाजलम् ॥ २८ ॥ इदंजगद्भानमभानमेवचिद्व्योमशून्यंपरमार्थएव ॥ यथार्थसंदर्शनबुद्धबुद्धेरबुद्धबुद्धेस्तुयथातथास्तु ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चिदाकाशैकताप्रतिपादनं नाम चतुरुत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नादिमें देह न रहतेभी देहाकारसे चित् प्रकट है ऐसेही सृष्टिके आरंभमें सृष्टिरूपसे चित्स्वरूपही आविर्भूत होताहै ऐसे बुद्धिमानोंको विचारनाचाहिये ॥ २५ ॥ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचभूत, पर्वत तथा दिशाआदि यह सब शिलागर्भवत् मौनमय (अनिर्वाच्य) चिदाकाशही यथास्थित है ॥ २६ ॥ इसप्रकार न कुछ उत्पन्न हुआ और न नष्टहुआ, किन्तु यह सब जगद्रूप यथास्थित चिद्रूप ब्रह्मस्वरूपमेंही स्थित है ॥ २७ ॥ चित्का जो जगत्स्वरूपसे स्फुरण है वह उसके स्वरूपकाही परिणाम है, अतः यह जगत्नामसे प्रसिद्ध चिद्रूप ऐसे है जैसे द्रव जलरूप

है ॥ २८ ॥ ज्ञानीके यथार्थदृष्टिसे यह जगत् भासताहुवाभी नहींभासताहै किन्तु परमार्थ चिदाकाशही है, और मूर्खदृष्टिसे तो जैसा चाहै वैसा हो उसके विचारसे हमे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे चिदाकाशैकताप्रतिपादनं नाम चतुरुत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०४ ॥

पंचोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०५ ॥

स्वप्नतुल्य विवर्तमात्र यह जगत्की स्थिति न उत्पन्न हुई, न स्थित है, और न अस्तको प्राप्त है किन्तु चिन्मात्र है यह विषय इस २०५ के सर्गमें वर्णनकियाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ एवंयथैतद्भगवन्स्वप्नेदृश्यंपरंनभः ॥ तथैवजाग्रतीत्यत्रनचेत्संदेहजालिका ॥ १ ॥ इदंमेभगवन्ब्रूहिमहाप्रश्नमनुत्तमम् ॥ कथंभवत्यदेहाचिज्जाग्रत्स्वप्नेस्वदेहवत् ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दृश्यंजाग्रत्यथस्वप्नेखाधारंखात्मकंखजम् ॥ खंचनान्यत्परंजातुसंदेहोस्त्युपपत्तितः ॥ ३ ॥ समस्तकारणाकारप्रत्यस्तमयरूपिणि ॥ सर्गादावेवभूतानिसंभवंतिनकानिचित् ॥ ४ ॥ पृथ्व्यादिनियतस्तेनदेहोयंनास्तिकिंचन ॥ भूतान्येवकिलैतानिदेहस्तानिनसंत्यलम् ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे भगवन्! जैसे स्वप्नमें यह दृश्य परमचिदाकाशरूप है ऐसेही जाग्रत्में संभव है यदि यह संदेहजाल न होता ॥ १ ॥ हे भगवन्! मेरे इस परमोत्तम महाप्रश्नका उत्तर दीजिये कि देहरहित निराकार कूटस्थ चित् विवर्तभावसेभी निजदेहाकार कैसे होती है ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! जाग्रत् तथा स्वप्नमें यह दृश्य आकाशके चिद्रूप आधार आकाशरूप और हेतुरहित आकाशसेही उत्पन्न है, वह आकाश परब्रह्मरूपही है, इसलिये यह सन्देह उपपत्तियुक्त नहीं है ॥ ३ ॥ संपूर्णकारणोंके आकारसे शून्य कोईभी पृथिवीआदि भूत सृष्टिकी आदिमेंही संभव नहीं है तब यह देहभी नहीं है, संपूर्ण पृथिवी जलआदिभूतभी नहीं है॥ ४ ॥ ५ ॥

तेनस्वप्नवदाभासमिदंपश्यतिचिन्नभः ॥ स्वरूपमात्रकचनमाकारवदिवाकुलम् ॥ ६ ॥ भानमाभानमात्रत्वमिदंयत्तच्चिदात्मना ॥ नभसास्वप्नशब्देनकथ्यतेजगदाकृतिः ॥ ७ ॥ यदेतद्वेदनंनामाचिद्व्योम्नो व्योमनिर्मलम् ॥ एतदंतश्चितोरूपंस्वप्नोजगदितिस्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये चिदाकाशही मायाके गुणसे क्षुब्ध केवल अपने स्वरूपके स्फुरणमात्र स्वप्नवत् इस जगत्के आभासको देखताहै ॥ ६ ॥ जो चित्का स्फुरण है वही स्वप्नका भान है, क्योंकि जगत्के आकारसे जो चिदाकाशका स्फुरण है वही स्वप्न, विवर्त तथा जगत्आदिशब्दोंसे कहाजाताहै ॥ ७ ॥ चिदाकाशके अनुभवमें सूक्ष्मरूपसे भासमान जगत्का रूप स्वप्न और स्थूलरूपसे भासमान जगत् कहाजाताहै और यथार्थमें निर्मलचिदाकाशही है ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नेवतेनाथस्वभावकचनेतते ॥ चिद्रूपेणकृताःसंज्ञाःपृथक्पृथ्व्यादिकाइमाः ॥ ९ ॥ चिद्भानमेवतत्स्वप्नजगच्छब्दैःप्रकथ्यते ॥ भानंचास्याःस्वभावःखंतत्कदाचिन्नशाम्यति ॥ १० ॥ बह्व्यःसर्गदृशोभिन्नाब्रह्मैवब्रह्मखेचताः ॥ शून्यतानभसीवातस्तिष्ठंतिचविशंतिच ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्गाणांकोटयःप्रोक्ताभगवन्भवताकिल ॥ काश्चिद्ब्रह्मांडकोशस्थाःकाश्चिदंडविवर्जिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसी व्याप्त चिद्रूपस्वभावस्फुरणमें नामरूपकल्पक चेतननेही पृथक् पृथिवीजलादि संज्ञा कल्पित की है ॥ ९ ॥ अतः चित्स्वरूपका भानही स्वप्न तथा जगत्आदिशब्दोंसे कहाजाताहै, चिदाकाशरूप भान इसका स्वभावही है, स्वप्नादिके शान्त होनेपरभी चित्स्वरूपकी शान्ति कदापि नहीं होती ॥ १० ॥ जैसे शून्यता आकाशमें रहती है ऐसेही अनेक भिन्न २ सृष्टियोंकी दृष्टि ब्रह्मस्वरूप ब्रह्माकाशमेंही स्थित और प्रविष्ट रहती है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे भगवन्! आपने कोटियों (करोडों) प्रकारकी सृष्टि लीलोपाख्यानादिमें वर्णन की है, उनमेंसे कोई ब्रह्मांडकोशमें स्थितहैं, और कोई उससे वर्जित (मनआदिमें) स्थित हैं ॥ १२ ॥

काश्चिन्महीकोशगताःकाश्चिदाकाशसंस्थिताः ॥ तेजःकोशगताःकाश्चित्काश्चित्पवनकोशगाः ॥ १३ ॥ काश्चिद्व्योमस्थभूपीठाऊर्ध्वाधस्थविनिश्चयाः ॥ बुध्नाकाशादूर्ध्वखुरालंबमानवनाचलाः ॥ १४ ॥ काश्चिद्वातात्मभूतौघाःकाश्चिन्नित्यंतमोधराः ॥ व्योमसंस्थानकाःकाश्चित्काश्चित्क्रिमिकुलाकुलाः ॥ १५ ॥ काश्चिदाकाशकोशस्थाःकाश्चिच्चोपलकोशगाः ॥ काश्चित्सकुंडकोशस्थाःकाश्चित्खेखगवत्स्थिताः ॥ १६ ॥

अर्थ—कोई सर्ग महीकोशमें, कोई आकाशकोशमें, कोई तेजःकोशमें, और कोई पवनकोशमें स्थित हैं ॥ १३ ॥ कोई आकाशतलमें स्थित गोलाकार भूपीठस्थ, ऊर्ध्व तथा अधोभागस्थ पिपीलिकाकेसमान भूगोलमें संलग्न देव, असुरआदिमें हमी ऊपर हैं, हमी ऊपर हैं इसप्रकारके अनेकनिश्चयसहित, भूमिके मूल आकाशसे ऊपर ऊर्ध्वदेशमें पद और अधोदेशमें शिर कियेहुये लटकते वन पर्वतादिसहित लोक हैं ॥ १४ ॥ कोई वायुमयप्राणियोंसे पूर्ण हैं, कोई सदा अंधकारसे व्याप्त हैं, कोई २ आकाशमय शरीरधारीप्राणियोंसे पूर्ण हैं, तथा कोई ब्रह्मांडकोटि क्रिमियोंसेही पूर्ण हैं ॥ १५ ॥ कोई २ आकाशकोशस्थ हैं, कोई पाषाणके उदरमें हैं, कोई ब्रह्मांडकोटि ग्रहमंडपके अन्तर्गत हैं, और कोई २ आकाशमें पक्षियोंके तुल्य लटकरहीहैं ॥ १६ ॥

तासांमध्येयथाहीदंब्रह्मांडंयादृशंस्थितम् ॥ अस्माकंभगवंस्तन्मेब्रूहितत्वविदांवर ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदपूर्वमदृष्टंवानानुभूतंनवाश्रुतम् ॥ तद्वर्ण्यतेसुदृष्टांतैर्गृह्यतेचतदूह्यते ॥ १८ ॥ इदंतुराम ब्रह्मांडमागमैर्मुनिभिःसुरैः ॥ शतशोवर्णितंतचज्ञातमेतत्त्वयाखिलम् ॥ १९ ॥ यथेदंभवताज्ञातमागमै र्वर्णितंयथा ॥ स्थितंतदेतदखिलंकिमन्यदिहवर्ण्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे तत्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरो! उन सब ब्रह्मांडोंके मध्यमें यह हमारा ब्रह्मांड जैसा है और जिसप्रकार स्थित है वह मुझसे कहिये ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी! जो वस्तु अपूर्व, अदृष्ट, अननुभूत, तथा अश्रुत (ब्रह्मसत्व) है वही उत्तमदृष्टान्तोंसे वर्णनकियाजाताहै और उसीको शिष्य श्रवण करता तथा मननादिसे ग्रहण करताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी! इस ब्रह्मांडको तो ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक मुनियोंने देवताओंने तथा पुराणादिने अनेकप्रकारसे वर्णन कियाहै, उसको तुमनेभी शास्त्रद्वारा पूर्णरूपसे जानलियाहै ॥ १९ ॥ हे रामजी! जिसप्रकार यह ब्रह्मांड स्थित है उसको तुम पूर्णरूपसे शास्त्रोंसे जानते हो अब इसके विषयमें अन्य क्या वर्णनकियाजाय, क्योंकि तत्वोपयोगी न होनेसे इसका वर्णन व्यर्थ है ॥ २० ॥

श्रीरामउवाच ॥ कथमेतद्वदब्रह्मन्संपन्नंचिन्महानभः ॥ कियत्प्रमाणमेतद्वाकियत्कालंचवास्थितम् ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनादिनिधनंब्रह्मानित्यमस्त्येतदव्ययम् ॥ आदिमध्यांततानास्तिनाकाराः परमांबरे ॥२२॥ ब्रह्माकाशमनाद्यंतमेतदव्ययमाततम् ॥ एतन्मयमिदंविश्वंविष्वगाद्यंतवर्जितम्॥२३॥ परमस्यास्यचिद्व्योम्नः स्वयंयद्भानमात्मनि ॥ तदेतद्विश्वमित्युक्तंस्वयंतेनैवतन्मृषा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि–हे ब्रह्मन्! तो यह कहिये कि ब्रह्म ब्रह्मांडाकार कैसे हुआ, इसका प्रमाण क्या है, और कितनेकालतक यह स्थितरहैगा ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! यह ब्रह्म आदिअन्तरहित नित्य निराकार है उस परमचिदाकाशमें न आदि, अन्त, मध्यता, है और उसमें आकार नहींहै ॥२२॥ ब्रह्माकाश अनादि अनन्त अव्यय और सर्वत्र व्याप्त है, और आदिअन्तरहित इसी ब्रह्ममय यह संपूर्ण संसारभी है ॥ २३ ॥ इस परमचिदाकाशका जो उसीके स्वरूपमें स्फुरण है उसीको स्वयं उसने विश्व कहाहै, और वह संसार मिथ्या है ॥२४॥

पुरुषस्ययथास्वप्नपुरसंदर्शनंतथा ॥ तत्तस्यभानंपुरवत्तदिदंविश्वमुच्यते ॥ २५ ॥ कठिनानेहगिरयो नद्रवाणिजलानिच ॥ नशून्यमेतदाकाशंकालोनकलनात्मकः ॥ २६ ॥ यद्यथाअव्ययंयत्रस्तःसंचेतितं चिता ॥ तत्तथातत्रचित्तत्वेअलंशैलादिवत्स्थितम् ॥ २७ ॥ अशिलैवशिलास्वप्नेनभएवानभोयथा ॥ भवे त्तथेहसर्गादिस्वप्नेदृश्यस्थितिश्चितौ ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे पुरुषको अपने स्वरूपका भान नहीं और स्वप्ननगरादिका दर्शन है ऐसेही स्वप्ननगरवत् चित्का स्फुरणंही यह संसार कहाजाताहै ॥ २५ ॥ चित्स्वभावमें ये पर्वतआदि कठिन नहीं है, जल द्रवीभूत नहीं है, आकाश शून्य नहीं है तथा काल कल्पनामय नहीं है ॥ २६ ॥ किन्तु मायाशबलित नित्यचेतनने जैसा जहां अनुभव किया वह वैसाही पृथिवीआदिरूपसे पूर्ण तथा स्थित है ॥ २७ ॥ जैसे स्वप्नमें पाषाण तथा आकाशसे भिन्न चेतन पाषाण तथा आकाशरूप होजाताहै ऐसेही जगत्में दृश्यजगतरूप चेतन होताहै ॥ २८ ॥

अनाकारैवचिच्छांतास्वप्नवद्यत्स्वचेतनम् ॥ वेत्तितज्जगदित्युक्तंतच्चानाकारमेवसत् ॥ २९ ॥ वायोः स्पंदोयथांतस्थोवातएवनिरंतरः ॥ तथेदंब्रह्मणिब्रह्मनचोदेतिनशाम्यति ॥ ३० ॥ द्रवत्वमंभसियथाशू न्यत्वंनभसोयथा ॥ यथावस्तुनिवस्तुत्वंब्रह्मणीदंजगत्तथा ॥ ३१ ॥ नप्रयातंनवायातमकारणमकार णात् ॥ नचनास्तिनवास्तीदंभिन्नंब्रह्मपदेजगत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—निराकार तथा शान्त चित् निजस्फुरणकोही स्वप्नवत् जगत्को अनुभव करतीहै, अतः चिद्रूपजगत्भी निराकारही है यह तुमसे अनेकवार मैं कहचुका ॥ २९ ॥ जैसे वायुका स्पन्द वायुमें स्थित निरन्तर वायुरूपही है ऐसेही ब्रह्ममें ब्रह्मरूप यह जगत् न उदित होताहै न शान्त होताहै ॥ ३० ॥ जैसे जलमें द्रवत्व, आकाशमें शून्यत्व, और वस्तुमें वस्तुत्व है ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् न प्रलयमें तिरोहित है, न सृष्टिमें आविर्भूत है, और ब्रह्ममें यह जगत् नहीं है और है तथा भिन्न है इत्यादि कथन नहीं होसकता ॥ ३२ ॥

नचानादिनिराभासंनिराकारंचिदंबरम् ॥ दृशःकारणमन्यस्याःक्वचिद्भवितुमर्हति ॥ ३३ ॥ तस्माद्यथा वयविनोवयवाःस्वात्ममात्रकाः ॥ तथानवयवेब्रह्मव्योम्निव्योमजगत्स्थितम् ॥ ३४ ॥ सर्वंशांतंनिरालंबं ज्ञप्तिमात्रमनामयम् ॥ नेहसत्तानवासत्तानचनानास्तिकिंचन ॥ ३५ ॥ संकल्पस्वप्ननगरवृत्तवत्सर्वमा ततम् ॥ स्थितमेवसमंशांतमाकाशमजमव्ययम् ॥ ३६ ॥ परमचिदंबरहृदयंचित्वाद्यत्कचतिकांतमम लमलम् ॥ तदिदंजगदितिकलितंतेनैवतदात्मरूपमाकल्पम् ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सर्गकारणनिरासो नाम पंचोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०५ ॥

अर्थ—और अनादि, निराभास तथा निराकार चिदाकाशसे भिन्न किसी सृष्टिका कारण कोई कहीं नहीं हो-सकताहै ॥ ३३ ॥ जैसे अवयवीसे हस्तपादादि अवयव पृथक् न रहके उसके स्वरूपमात्र हैं ऐसे निरवय ब्रह्माकाशमें ब्रह्मरूप यह जगत् उससे अभिन्नरूपसे स्थित है ॥ ३४ ॥ यह सब शान्त निराधार तथा निराकार, निर्विकार ज्ञप्ति-मात्र ब्रह्मही है, क्योंकि "नेहनानास्तिकिंचन" इत्यादि श्रुतियोंसे ब्रह्मसे भिन्न अन्यपदार्थकी सत्ता वा असत्ता कुछभी नहीं है ॥ ३५ ॥ संकल्प तथा स्वप्नके नगरके नृत्यके समान यह सब जगत् सर्वत्र एकरूप, अजन्मा, अविनाशी सर्वव्यापी चिदाकाशरूपही स्थित है ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् निर्मल, स्वच्छ, परमरमणीय तथा प्रकाशरूप सारभूत ब्रह्मका स्वरूपही है, चित्के स्वभावसे जो २ आकार अविद्यासे स्फुरितहोताहै उसीको उस चित्ने निजकल्पित आत्मस्वरूपकोही प्रलयपर्य्यन्त जगत्रूपसे जानाहै ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे सर्ग कारण निरासो नाम पंचोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०५ ॥

षष्ठोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

ब्रह्मही सत् है जगत् नहीं इस निर्णयके हेतुभूत कुशद्वीपमें ईश्वरप्रोक्त प्रश्नोंका इस २०६ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदकारणकंभातिभानंतन्नैवकिंचन ॥ तत्तथापरमार्थेनपरमार्थस्थितोनघ ॥ १ ॥ अत्रेमंकेनचित्पृष्टयमहंतंमहामते ॥ सम्यग्बोधस्यपुष्ट्यर्थंमहाप्रश्नंपरंशृणु ॥ २ ॥ अस्त्यब्धिभ्यामुभ यतोव्याप्तंख्यातंजगत्रये ॥ कुशद्वीपमितिद्वीपंभूमौवलयवत्स्थितम् ॥ ३ ॥ तत्रास्तीलावतीनामहैमीपू र्वोत्तरेपुरी ॥ दीप्तिज्वालामयस्तंभप्रोतावनिनभस्तला ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे पापरहित रामजी ! विनाकारण जो यह जगत् भासताहै वह कुछ नहीं है, किन्तु परमार्थ परब्रह्मही स्थित है ॥ १ ॥ हे महामते ! इसविषयमें सम्यग्ज्ञानकी पुष्टिकेलिये किसीने मुझसे पूंछा था उस महाप्रश्नको तुम सुनो ॥ २ ॥ हे रामजी ! सुरोद तथा घृतोद इन दोनों समुद्रोंसे कट (कडे) से घिरेहुयेके समान त्रिलोकविदित इस भूमिपर कुशद्वीपनाम करके एकद्वीप है ॥३॥ वहांपर सुवर्णरचित, दीप्तिरूप ज्वालामयस्तंभोंसे पृथिवी तथा आकाशतलको गूंथनेवाली इलानाम पुरी पूर्वोत्तर दिशामें है ॥ ४ ॥

पूर्वंतस्याममूद्राजाप्रज्ञप्तिरितिविश्रुतः ॥ अनुरक्तजगद्भूतःशक्रःस्वर्गइवापरः ॥ ५ ॥ केनचित्कारणेना हंकदाचित्तस्यभूपतेः ॥ प्राप्तःसमीपंनभसःप्रलयार्कइवच्युतः ॥ ६ ॥ पुष्पार्घ्याचमनीयैर्मांपूजयित्वो पविश्यसः ॥ मध्येकथायांकस्यांचिदपृच्छत्प्रणयादिदम् ॥ ७ ॥ भगवन्सर्वसंहारेजातेशून्यततेस्थि ते ॥ अवाच्येपरमेव्योम्निसर्वकारणसंक्षये ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्वकालमें उस नगरीमें संपूर्णजगत्के प्रेमका पात्र प्रज्ञप्ति नाम राजा ऐश्वर्य्यवान् हुआ जैसे स्वर्गमें इन्द्र ॥ ५ ॥ किसीकारणविशेषसे उस राजाके निकट मैं अकस्मात् प्राप्तहुआ जैसे प्रलयकालमें ज्योतिश्चक्रमें सूर्य्य

॥ ६ ॥ पुष्प, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीयआदिसे मेरी पूजा करके सभाके मध्यमें अतिप्रेमसे मुझसे यह पूंछा ॥ ७ ॥ कि-हे भगवन् ! सर्वनाश होनेपर, तथा अनिर्वाच्य सबकारणोंके अभावरूप शून्यमय केवल चिदाकाशके स्थित रहनेपर ॥ ८ ॥

सर्गारंभस्यभूयःस्याद्वदकिंमूलकारणम् ॥ कानिवासहकारीणिकारणानिकुतःकथम् ॥ ९ ॥ किंजगत्किंचसर्गादिकाश्चिन्नित्यंतमोधराः ॥ व्योमसंस्थार्णवाःकाश्चित्काश्चित्कृमिकुलाकुलाः ॥ १० ॥ काश्चिदाकाशकोशस्थाःकाश्चिच्चापलकोशगाः ॥ कचावाभूतभूतादिकुतोबुद्ध्योदयःकथम् ॥ ११ ॥

अर्थ—इस सृष्टिके आरम्भका पुनः मूलकारण क्या होसकताहै, और सर्वथा अभावसे सहकारी कारण क्या होसकते हैं ॥ ९ ॥ तथा हे भगवन् ! यह जगत् क्या है, और सृष्टि तथा प्रलयभी क्या पदार्थ है, कोई भूमितो सर्वदा अन्धकारमय हैं, कोई ब्रह्मलोकादि आकाशमें स्थित हैं, और कोई नरकादि क्रिमिकीटकादिसे व्याप्त हैं इस विचित्रताका क्या कारण है ॥ १० ॥ कोई २ (अन्तरिक्षस्थ) आकाशकोशस्थ हैं, कोई पाषाणान्तर्गत (दैत्यादिके नगर) हैं, अतः हे गुरो ! पृथिवीआदि पंचभूत तथा उसके निवासी जरायुज अंडजादि चतुर्विध प्राणीसमूह यथार्थमें क्या हैं और बुद्धिआदिभी क्या पदार्थ हैं ? ॥ ११ ॥

कःकर्त्ताकोथवाद्रष्टाकाधाराधेयताकथम् ॥ नकदाचिन्महानाशोजगतामितिनिश्चयः ॥ १२ ॥ समस्तवेदशास्त्रार्थाविरोधायसमर्थितः ॥ यथासंवेदनंनामतथानामानुभूतयः ॥ १३ ॥ यतस्ततोवेदनंस्यात्किमनाशमसन्मयम् ॥ अन्यच्चजंबूद्वीपादौदेशेग्रमुनिनायक ॥ १४ ॥ मृतानामग्निदग्धानामिहवा देहनाशिनाम् ॥ नरकस्वर्गभोगायविदेहेदेहकारणम् ॥ १५ ॥ किंतत्स्यात्सहकारीणिकारणान्यथकानिवा ॥ धर्माधर्मावमूर्तौद्वौतस्यामूर्तस्यमूर्त्तता ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इन सब लोकोंका कर्ता कौन है, और यदि कर्म तथा ज्ञानकाण्डके समस्त वेदशास्त्रोंके अविरोधकेलिये कदाचित् लोकोंका नाश नहीं होता, किन्तु प्राणियोंके कर्मोंके व्यवहार सदा होते हैं, तो ज्ञानके अनुसार अनुभव होतेहैं यह प्रसिद्ध है तो ज्ञानही देहादिजगत्‌हेतु है ऐसा कहाजासकताहै, वा अन्य यदि ज्ञान है, तो वह ज्ञान नित्य वा अनित्य, यदि नित्य है तो कूटस्थसे विकारी देहादि कैसे ? और अनित्य है तो उसीका कारण क्या ! क्योंकि वहभी संवेदन (ज्ञान) विना नहीं होसकताहै और संवेदनसे अन्य कारण है तो हे मुनि श्रेष्ठ ! जंबूद्वीप वा कुशद्वीपमें मृत तथा अग्नि दग्ध प्राणियोंको नरक वा स्वर्ग भोगानेके अर्थ देहके जनक मातापितासे शून्यस्थानमें इस देहके उपादान तथा सहकारी कारण क्या हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ और धर्म अधर्म तो अमूर्तपदार्थ हैं अतः वे दोनोंभी मूर्तिमान्‌के कारण नहीं बनसकते, इसलिये उपादान वा सहकारी कारण क्या होसकताहै ॥ १६ ॥

निर्द्रव्यंकुरुतेद्रव्यैर्युक्तिरित्यसमंजसा ॥ मातापित्राद्यभावोहिबीजंकिंतत्रकारणम् ॥ १७ ॥ अन्येवाहेतवःकेस्युःकथंद्रव्यादिसंभवः ॥ परलोकोस्यनास्तीतियथासंवेदनंस्थितेः ॥ १८ ॥ समस्तलोकवेदादिविरोधाच्चासमंजसम् ॥ अनिच्छितेहितैर्दूरदेशांतरगतैःफलम् ॥ १९ ॥ प्रजाप्राप्नोत्यसंबंधैरमूर्तैरत्र कःक्रमः ॥ स्तंभोवरेणसौवर्णोविनाहेमगमागमैः ॥ २० ॥ क्षणात्संपद्यतेतत्रसंपत्तिःकथमुच्यताम् ॥ विधिनांप्रतिषेधानांनिर्निमित्तंविवल्गताम् ॥ २१ ॥

अर्थ—और विना द्रव्य अथवा द्रव्यसे भिन्न अन्य कोई किसी पदार्थोंसे देह रचताहै यह असंगत है, तथा मातापिताके अभावसे विना वीर्य्य (बीज) केभी शरीरका कारण क्या होसकताहै ॥ १७ ॥ और अन्य क्या हेतु होसकतेहैं, ये द्रव्यादि कैसे उत्पन्न हुये ? यदि नास्तिकके अनुसार कहो कि परलोक हैही नहीं सो ज्ञानानुसार अनुभवस्थिति होनेसे पूर्वजन्मकी अपेक्षा यही जन्म परलोक है ॥ १८ ॥ और समस्तलोकवेदविरुद्ध होनेसे परलोकका अभाव यह नास्तिकमत असंगतभी हैं, तथा निजइच्छा तथा चेष्टांसेरहित, असंबन्ध और अमूर्त राजाज्ञादिसे प्रजा वध बन्धनआदि दंडरूप फल जो पाती है उसमें क्या युक्ति है ॥ १९ ॥ तथा हे भगवन् ! बिना सुवर्णकेही देवादिके वरदानसे क्षणमेंही सुवर्णके स्तम्भ (खंभे) तथा गृहादि बनजातेहैं, निजप्रयोजनशून्य अचेतन कितने लोकमें कार्य्यरूप रूढ और कितने अप्रचलित गर्जनेवाले वेदशास्त्रोंके विधिनिषेधोंका क्या प्रयोजन है ? ॥ २० ॥ २१ ॥

रूढानामप्यरूढानांकिंप्रयोजनमुच्यताम् ॥ असदासीज्जगत्पूर्वंसत्संपन्नमनंतरम् ॥ २२ ॥ इतिश्रुतेःकथंब्रह्मन्कथ्यतांसंगतार्थता ॥ अयंभवेत्कथंब्रह्माभवेच्चेत्तन्महामुने ॥ २३ ॥ एवंप्रभावान्नभसःकिंसवेस्मात्रजायते ॥ ओषधीनामथार्थानांसर्वेषांवास्थितिंगताः ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा सृष्टिके पूर्व यह सब "असदेवेदमग्रआसीत्ततोवैसदजायत, असदेवेदमग्रआसीत्, सदेवसौम्येद मग्रआसीत्, एकमेवाद्वितीयंब्रह्म, नासदासीन्नोसदासीत्" असद्रूप था पुनः उससे सत् उत्पन्न हुआ, यह असद्रूपही था. हे सौम्य! यह सब सद्रूपही था, एक अद्वितीय ब्रह्मही है, न सत् था न असत् था, इत्यादि परस्परविरुद्धार्थ श्रुतियोंकी संगति कैसे होसकती है, और शून्यआकाशसे ब्रह्मा कैसे उत्पन्न हुये सो कहिये ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ यदि कहिये इसप्रकार प्रभावयुक्त चिदाकाशसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं तो वह प्रभावयुक्त चिदाकाश सर्वत्र है तब सब स्थानसे ब्रह्मा क्यों नहीं उत्पन्न होते? तथा जब चिदाकाश एकही था तब औषधियोंके अपने २ भिन्न २ बीजादिके उत्पन्न करनेके पृथक् २ स्वभाव, तथा अग्निजलादिके उष्ण तथा शीतलआदि पृथक् २ स्वभाव कैसे हुये सो कृपा करके कहिये ॥ २४ ॥

कथंस्वभावाःकथययथाबोधंमुनीश्वर ॥ एकस्यजीवितंपुंसःसुहृदामरणंद्विषा ॥ २५ ॥ मृत्वार्थितंप्रया गादौक्षेत्रेतत्कथमुच्यताम् ॥ खेस्यामक्षयपूर्णेंदुरितिध्यायिचितैःफलैः ॥ २६ ॥ तुल्यकालमनुप्राप्तैःसह स्रेंदुनकिंनभः ॥ अन्यच्चध्यायिनांलक्षैर्ध्यातैकास्त्रीयथाक्रमम् ॥ २७ ॥ जायात्वेनसमंकालंलब्धंध्यानफलं चतैः ॥ साध्व्यसाध्वीगृहेभर्तुःसंस्थितातपसापरा ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा हे मुनीश्वर ! एकहीपुरुषके मित्रने प्रयागआदि कामनाप्रद क्षेत्रमें जीवनकी कामना की और शत्रुने उसीके मरणकी कामना की, दोनोंके मरणके पश्चात् विरुद्धस्वभाव कार्य्य कैसे होंगे, तथा एकहीकालमें जब लक्षोंमनुष्य यह ध्यान करते हैं कि हम पूर्णचन्द्ररूप आकाशमें हों तब उनके तुल्यकालमें फल प्राप्त होनेसे सहस्रों चन्द्र आकाशमें क्यों नहींहोते, तथा एकही स्त्रीको निज २ स्त्री प्राप्त करनेके अर्थ समकालमें जब अनेक मनुष्योंने ध्यान किया तब उन पुरुषोंके ध्यानका फल प्राप्त होनेपर भिन्न देश तथा गृहादिमें एककालमें एकही कैसे रहेगी, तथा वह स्त्री अपने तपसे तथा प्रत्येक उन पुरुषोंके साध्वी और अनेक पुरुषोंके भोग्य होनेसे असाध्वी (असती) एकहीकालमें कैसे होगी ! सो कहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

तेषांचजायासंपन्नाकथमेतन्महामुने ॥ गृहानिर्गच्छमाकल्पंनृपःसद्वीपसप्तके ॥ २९ ॥ वरत्वंवरशापा भ्यामितिअंतःक्वतिष्ठति ॥ दानधर्मादितपसामौर्द्ध्वदैहिककर्मणाम् ॥ ३० ॥ इहस्थानाममूर्तानांमूर्तप्री त्यास्तिसत्फलम् ॥ व्यवहर्तानमूर्तोत्रविद्यतेलोकयोर्द्वयोः ॥३१॥ देशांतरेभृशंजीवोभृशंकालांतरेपिवा ॥ फलंसंभवतीयत्तद्विनानुभवनंमुने ॥३२॥ असमंजसमेवातिकथंस्यात्सुसमंजसम् ॥ इत्यादिसंशयगणं गिराशीतावदातया ॥ छिंधिमेऽभ्युदितंभासासांध्यमांध्यमिवोडुपः ॥ ३३ ॥ परमवस्तुनिसंशयनाश नाद्भयलोकहितंभवतिस्फुटम् ॥ तदिहमेकुरुसाधुसमागमस्तनुफलोभवतीहनकस्यचित् ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे महाप्रश्नोनामषड्डुत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

अर्थ—तथा मैं गृहसे न निकलताहुवाभी सप्तद्वीपका अधिपति होजाऊं, यह किसीने वरदानादिसे प्राप्तकिया तब गृहके भीतर सब भोग और सप्तद्वीपका अधिपतित्व कहां रहेगा, तथा यहांके दान, धर्म तथा श्राद्धादिके अमूर्त अदृष्टका मूर्तफल शून्य परलोकमें कैसे होगा, अदृष्ट पुण्यपापादि मूर्तिमान् शरीरमेंही फल देसकतेहैं, जीव तो सर्वत्र अमूर्ति हैं और यहांके देहादि देशान्तर तथा कालान्तरमें मृत्युके पश्चात् नहीं रहते अतः किसको फल मिलता है सो कहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! यह पूर्वोक्त असमंजस (असंगत) संगत कैसे होसकताहै अतः मेरे इस संशयसमूहको शुद्धवाणीसे आप ऐसे छेदन करो जैसा सायंकालके अन्धकारको चन्द्रमा ॥ ३३ ॥ हमने परमवस्तुविषयका उपदेश संशयका नाशक होताहै, अनेक विरुद्धफलभी सब स्पष्टरूपसे अविरुद्ध होजातेहैं, ऐसा सुना है इसलिये मुझे परम (ब्रह्म) वस्तुकाही उपदेश कीजिये, क्योंकि आपके सदृश साधुमहात्माका समागम किसको महाफल नहींदेता ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महाप्रश्नो नाम षड्डुत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

सप्तोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०७ ॥

क्रम तथा विपरीतक्रमसे इन प्रश्नोंका तथा अन्यप्रश्नोंकाभी समान तीन सर्गद्वारा महात्मा वसिष्ठजी देंगे यह विषय इस २०७ के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्यथास्पष्टमेतत्तेकथयाम्यहम् ॥ येनतेसर्वसंदेहायास्यंत्यलममूलताम् ॥ १ ॥ सर्वेतावज्जगद्भावाअसद्रूपाःसदैवहि ॥ सद्रूपाश्चसदैवेमेयथासंवेदनंस्थिते: ॥ २ ॥ इदमित्थमितिप्रोतायत्रसंवित्तदेवतत् ॥ भवत्यवश्यंतत्त्वंगसदेवास्त्यसदेववा ॥ ३ ॥ ईदृक्स्वभावासंवित्तिस्तयादेहोविभाव्यते ॥ एकएवस्वरूपेणतस्यास्तेनचतद्विदा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे प्रज्ञाप्ति राजन् ! सुनों मैं तुमसे यह (आत्मतत्व) कहताहुं जिससे तुमारे सब प्रश्न निर्मूल होजांयगे ॥ १ ॥ संवित्भगवतीके अनुभवके अनुसार ये संपूर्णजगत्के पदार्थ सदा सद्रूपभी हैं और असद्रूपभी हैं जिसमें संवित्ने नास्तिप्रत्यय किया है वह असद्रूप और जिसमें उसने अस्तिप्रत्यय कियाहै वह सद्रूप है ॥ २ ॥ हे प्रिय राजन् ! जिसमें यह ऐसाही नील पीत घट वा पट है वा नहीं जैसा संवित्ने दृढ निश्चय कियाहै वह वैसाही अवश्य होताहै इसमें उस वस्तुकी सत्ता वा असत्ता प्रयोजक नहीं है ॥ ३ ॥ इस संवित्का ऐसा स्वभाव है कि अपने चित्स्वरूपमें देहकी भावना करती है, प्रथम एकही मैं देह होजाऊं ऐसी भावना करती है, पुनः उसी देहसे संवित्की अभिव्यक्ति और पुनः उस देहमेंही आत्मभावका अभ्यास करती है ॥ ४ ॥

विदमेवविदुर्देहंस्वप्नादावितरेतरा ॥ संवित्काचित्संभवतिनचान्यास्तिशरीरता ॥ ५ ॥ आश्रितस्वप्नसंदर्शस्तथेदंभासतेजगत् ॥ समस्तकारणाभावात्सर्गादावन्यतात्रका ॥ ६ ॥ एवंयदेवविमलंवेदनंब्रह्मसंज्ञितम् ॥ तदेवेदंजगद्भातितत्केवजगतोन्यता ॥ ७ ॥ एवंपूर्वापरंशुद्धमविकार्यंजगत्स्थितेः ॥ लोकवेदमहाशास्त्रैरनुभूतमुदाहृतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीसे स्वप्न तथा जाग्रत्शरीरको जाननेवालेहीको आत्मा जानतेहैं और चेतनपिताके धर्मको स्वयं चेतायिता है ऐसा नहीं जानते, अतः भ्रमरूप कोई संवित्ही शरीरताहै अन्य कुछ नहीं॥५॥ अन्यकारणकेअभावसे अवश्य सबका आश्रयभूत स्वप्नका द्रष्टा सृष्टिकी आदिमें जगत्रूपसे भासताहै, क्योंकि इससंसारमें स्वप्नसे विलक्षण कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ इस हेतुसे हे राजन् ! परमनिर्मल ब्रह्मनामकी जो संवित् है वही इस जगत्रूपसे भासतीहैं, तब जगत्का उससे भेद कहां है ॥ ७ ॥ इसप्रकार सदा एकरस विकारसे रहित ब्रह्मही जगत्रूपसे स्थित है इस वार्ताको हमने ब्रह्मवेत्ताजनोंसे तथा वेद और अध्यात्मशास्त्रोंसे अनुभव कियाहै वैसाही तुमसे कहा ॥ ८ ॥

अपलाप्यैवयेमूढाअंधकूपकभेकवत् ॥ समस्तभूतसंवित्तौरूढपूर्णमहात्मभिः ॥ ९ ॥ वर्तमानानुभवनमात्रमोहप्रमाणकाः ॥ शरीरकारणासंविदितिमोहमुपागताः ॥ १० ॥ उन्मत्ताएवतेज्ञास्तेयोग्यानास्मत्कथासुते ॥ अक्षीबक्षीबयोर्मूढबुद्धयोःकैवसंकथा ॥ ११ ॥ ययाविपश्चित्कथयासर्वसंशयसंक्षयः ॥ नभवेत्रिषुलोकेषुज्ञेयामूर्खकथैवसा ॥ १२ ॥

अर्थ—समस्तप्राणियोंके अनुभव सर्वत्र सत्तारूपसे पूर्ण तथा अनुभवीमहात्माओंसे कथितभी जगत्की नित्य संवित्स्वरूपताको अपलाप करके वर्तनामरूपके अनुभवमात्रप्रमाणको स्वीकारके जो कहते हैं कि संवित् नित्य नहीं है किन्तु शरीरही चेतनका कारण है ऐसे जडको उपादानकारण माननेवाले अन्धकारके मंडूककेतुल्य मोहमें प्राप्त हैं, उनको उन्मत्तही जानना योग्य है, वे हमारी आध्यात्मिक कथाके अधिकारी नहीं है क्योंकि उन्मत्त तथा सचेतकी और मूढ तथा ज्ञानीकी कथा कैसे होसकती है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ जिस बुद्धिमान्की कथासे संपूर्ण सन्देहोंकी निवृत्ति नहीं हो उसको त्रिलोकीमें मूर्खकथाही जाननाचाहिये ॥ १२ ॥

प्रत्यक्षमात्रनिष्ठोसौमूढास्थइतिवक्तियत् ॥ तेननिर्युक्तिनोकेनशिलासदृशवृत्तिना ॥ १३ ॥ प्रोक्तःसर्वविरुद्धेनसोज्ञःकूपांधदर्दुरः ॥ पूर्वापरधियंत्यक्त्वावर्तमानेमतिस्थितः ॥ १४ ॥ वेदालोकादयश्चैतेदृष्टाःस्वानुभवान्विताम् ॥ वदंतीमांदृशंसर्वेयथानश्यंतिसंशयाः ॥ १५ ॥ संविदेवशरीरंचेच्छवंकस्मान्नचेतति ॥ इतियस्यमतिस्तस्मैमूढायेदमिहोच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जो मूढबुद्धि प्रत्यक्षमात्रनिष्ठ पूर्वापर विचारसे शून्य केवल वर्तमान मात्र परायण चार्वाकादि कहताहै कि प्रत्यक्षसे भिन्न श्रुतिआदि नहीं मानना चाहिये उस युक्तिशून्य पाषाणहृदय कटुवादी अज्ञको विद्वानोंने अन्धकूपका

मण्डूक कहाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ वेदतत्वज्ञजन पूंछनेपर यही सिद्धान्तदृष्टि जो मैंने तुमसे कहीहै कहतेहैं, जिससे कि संपूर्ण सन्देह नष्ट होजातेहैं ॥ १५ ॥ तथा जो यह कहताहै यदि संवित् (चेतन) ही शरीर है तो मृतकशरीरभी क्यों नहीं चेतता उस मूढ शुश्रूषुके लिये यह कहताहूं तुम सुनो ॥ १६ ॥

ब्रह्मणोब्रह्मरूपस्यसंकल्पनगरंततम् ॥ इदंतावज्जगद्भानंतवस्वप्नपुरंयथा ॥ १७ ॥ तत्समस्तंसदैवेदं चिन्मात्रात्मनिरंतरम् ॥ भवत्यत्रनतेभ्रांतिःस्वेस्वप्ननगरेयथा ॥ १८ ॥ तत्रतावद्दिशःशैलाःपृथ्व्यादिन गरादिच ॥ सर्वेचिन्मयमाकाशमितितेस्वानुभूतिमत् ॥ १९ ॥ संविद्व्योमवनंब्रह्मतत्संकल्पपुरंविरा ट् ॥ शुद्धसंविन्मयोब्रह्मातदिदंजगदुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) रूप ब्रह्मका संकल्पनगर यह विशाल जगत्का भान ऐसे है जैसे तुमारे स्वप्नका नगर ॥ १७ ॥ यद्यपि तुमारा स्वप्ननगर तथा ब्रह्माजीका संकल्पनगर निरन्तर चिन्मात्रही है तथापि तुमारे स्वप्ननगरमें जैसे चेतनकी भ्रान्ति नहीं होती ऐसेही मृतकशरीरमेंभी जानो ॥ १८ ॥ देखो पृथिवी, नगर, दिशा तथा पर्वतादि सब चिदाकाशरूप हैं यह प्रतिदिनके स्वप्नमें तुमारे अनुभवसिद्ध है ॥१९॥ ब्रह्मसंवित् चिद्घनरूप है उसीका संकल्पनगर शुद्ध संवित्स्वरूप ये ब्रह्मा है और उसीका संकल्पनगर शुद्ध संविद्रूप यह जगत् कहाजाताहै ॥ २० ॥

ब्राह्मेसंकल्पनगरेयद्यत्संकल्पितंयथा ॥ तथानुभूयतेतत्तत्त्वत्संकल्पपुरेयथा ॥ २१ ॥ संकल्पनगरेयद्य थासंकल्प्यतेतथा ॥ तत्तथास्त्येवचतदात्वत्संकल्पपुरेयथा ॥ २२ ॥ तस्माद्देहस्यनियतौयथैतौब्रह्म णाचिता ॥ स्पंदास्पंदौकल्पितौद्वौसतथैवानुभूतवान् ॥ २३ ॥ महाप्रलयपर्यंतेपुनःसर्गःप्रवर्त्तते ॥ समस्तकारणाभावाद्द्रव्यंतात्रवन्नविद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्माजीके संकल्पनगरमें जो पदार्थ जिसरूपसे संकल्पित है वह वैसाही तुमारे संकल्पनगरके सदृश अनुभूत होताहै ॥ २१ ॥ तुमारे स्वप्न वा संकल्पनगरके तुल्य ब्रह्माजीके संकल्पनगररूप इस जगत्में जो २ पदार्थ जैसा २ संकल्पित है वह वैसाही स्वभावयुक्त है ॥ २२ ॥ इस हेतु देहकी नियतिमें ब्रह्मारूप चित्ने जैसी कल्पना की है अर्थात् जीवितशरीरमें चेष्टा और मृतकशरीरमें चेष्टाका अभाव कल्पितकियाहै वह दोनों वैसेही अनुभूत होतेहैं ॥ २३ ॥ और महाप्रलयके अन्तमें समस्तकारणोंका अभाव है, सृष्टिके आरंभके द्रव्य कुछ नहीं है परन्तु सृष्टि पुनः प्रवृत्त होती है ॥ २४ ॥

विमुक्तत्वात्प्रजेशस्यनचसंभवतिस्मृतिः ॥ ब्रह्मैवेयमतोदीप्तिर्जगदित्येवभासते ॥ २५ ॥ तस्मादाद्या त्मनाभातंस्वमेवब्रह्मणास्वतः ॥ जगत्संकल्पनगरमितिबुद्धंचखेनखम् ॥ २६ ॥ यथासंकल्पनगरंचि न्मात्रंभातिकेवलम् ॥ तथैवाकारणंभातिचिन्मात्रोन्मेषणंजगत् ॥ २७ ॥ शरीरमस्त्ववामास्तुयत्रयत्रा स्तिचिन्नभः ॥ वेत्त्यात्मानंतत्रतत्रद्वैताद्वैतमयंजगत् ॥ २८॥

अर्थ—प्रलयके पूर्वही प्रजा तथा जगत्के स्वामी ब्रह्माके मुक्त होनेसे उसकी स्मृतिभी नहीं है जो सृष्टिका कारण हो, अतः स्वयं ब्रह्मज्योति जगत्स्वरूप भासती है ॥ २५ ॥ इसकारणसे ब्रह्म प्रथम ब्रह्मारूपसे भान हुआ, पुनः ब्रह्माजीने अपने संकल्पनगरको जगत्रूपसे और वह उनका संकल्पनगर जगत् चिदाकाशमें चिदाकाशरूपही है ॥ २६ ॥ जैसे केवल चिन्मात्रही तुमारा स्वप्न संकल्पनगररूपसे भासताहै ऐसे निष्कारण चित्स्फुरणमात्रही वह जगत् है ॥२७ ॥ शरीर रहै वा नरहै जहां २ चिदाकाश है वहां २ वह निजचित्स्वरूपकोही द्वैत तथा अद्वैतजगत्रूपसे जानताहै ॥ २८ ॥

तस्माद्यथास्वप्नपुरंयथासंकल्पपत्तनम् ॥ तथापश्यतिचिद्व्योममरणानंतरंजगत् ॥ २९ ॥ अपृथ्व्यादि मयंभातिपृथ्व्यादिमयवज्जगत् ॥ यथेदमाप्रथमतोमृतस्याप्यखिलंतथा ॥ ३० ॥ देशकालौनसर्गेणप्रबु द्धस्येवतौयथा ॥ अणुमात्रमपिव्याप्तौतथैवपरलोकिनः ॥ ३१॥ इदंप्रबुद्धविषयेस्वानुभूतमपिस्फुटम् ॥ जगन्नविद्यतेकिंचित्कारणंगगनेयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसलिये जैसे चित् अपनेहीको स्वप्न तथा संकल्पनगररूपसे देखतीहै ऐसेही चिदाकाशभी मरणानन्तर चित्स्वरूपकोही निजसंकल्पानुसार जगत्स्वरूपसे देखताहै ॥ २९ ॥ जैसे सृष्टिके आदिमें पृथिवीआदिके विनाही चिदाकाश पृथिवीआदि जगद्रूपसे भासताहै ऐसेही मृत्युके पश्चात्भी वही सर्वजगत्स्वरूपसे भासताहै ॥ ३० ॥ जैसे तत्वज्ञानी वा स्वप्नसे जाग्रत् पुरुषको जाग्रत्की सृष्टिमें स्वप्नके देशकाल अणुमात्रभी नहीं व्याप्त होते ऐसेही मरणके पश्चात् परलोकप्राप्त प्राणीको यहांके देशकाल किंचित्भी नहीं व्यापते ॥ ३१ ॥ ऐसेही ज्ञानीको स्पष्ट प्रत्यक्षरूपसे अनुभूतभी है यह जगत् अपने स्वरूपमें ऐसे नहीं है जैसे आकाशमें कारण ॥ ३२ ॥

अप्रबुद्धस्यासदेवयथेदंभातिभासुरम् ॥ तथैवसर्गवद्भातिव्योमैवपरलोकिनः ॥ ३३ ॥ वसुधराद्रियमा व्याढ्यंखमेवपरलोकिनः ॥ अभूतपूर्वमाभाति भूतपूर्ववदाततम् ॥ ३४ ॥ मृतोयंपुनरुत्पन्नोयमलोकेशु भाशुभम् ॥ भुंजेहमित्यतिघनंमृतोभ्रांतिंप्रपश्यति ॥ ३५ ॥ मोक्षोपायानादरिणामेषमोहोनशाम्यति ॥ बोधादवासनत्वेनमोहएषप्रशाम्यति ॥ ३६ ॥ अप्रबुद्धस्ययासंवित्साधर्माधर्मवासना ॥ खएवखात्मि काभातियत्तदेवजत्स्थितम् ॥ ३७ ॥ नशून्यरूपंनचसत्स्वरूपंब्रह्माभिधंभातिजगत्स्वरूपम् ॥ तच्चाप रिज्ञानवशादनर्थभूतंपरिज्ञातवतःशिवात्म ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे महाप्रश्नोत्तरंनामसप्तोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०७ ॥

अर्थ—स्वप्नमें जैसे असद्रूपही जगत् भासताहै ऐसेही परलोकगामीको चिदाकाशही सृष्टिकेसमान भासताहै ॥ ३३ ॥ परलोकगामीको आकाश, पृथिवी तथा यमलोकादिसे पूर्ण, पूर्व असिद्धभी पूर्वसिद्धिके समान सर्वत्र विशाल इस जगत्रूपसे चिदाकाशही भासताहै॥३४॥ मैं मृत्युको प्राप्तहुआ, यमलोकमें आया ,पुनः नारकीजीवरूपसे उत्पन्नहुआ तथा यहां शुभअशुभ फलोंको भोगताहुं इत्यादि भ्रम देखताहै ॥ ३५ ॥ जो मोक्षोपाय (ज्ञान) का अनादर करतेहैं उनका यह मोह कदापि शान्त नहीं होताहै और ब्रह्मज्ञानसे वासनारहित होनेसे सर्वथा शान्त होजाताहै ॥ ३६ ॥ अज्ञानीकी धर्मअधर्मकी जो वासना संवित्केद्वारा विहित वा निषिद्ध आचरणके अनुभवरूप है, वह चिदाकाशमें चिदाकाशरूपही जो भासती है वही यह जगत् है ॥ ३७ ॥ जगत् न शून्य न असत्रूप है किन्तु ब्रह्मनाम चेतन है वही जगत्स्वरूपसे भासताहै और वह जगत् अज्ञानसे अनर्थभूत और ज्ञानीको शिवकल्याण ब्रह्मरूपही है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महाप्रश्नोत्तरं नाम सप्तोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०७ ॥

अष्टोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०८ ॥

अन्यत्र दूरदेशमें यत्नपूर्वक चलेजानेपरभी प्रजा अपने कियेहुयेका फल पाती है ऐसेही विधाताकी इच्छासे परलोकादिमें जीवको फल मिलताहै यह विषय इस २०८ के सर्गमें वर्णित है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शुभाशुभंयथोदेतिप्रजानांगृहसंगमे ॥ असंबद्धैरप्रतिवैर्दूरस्थैस्तदिदंशृणु ॥ १ ॥ ब्रह्मसंकल्पनगरंजगत्तावदिदंस्थितम् ॥ यद्दृश्यंदृश्यबोधेनब्रह्मैवब्रह्मबोधतः ॥ २ ॥ यद्यत्संकल्पनगरे यदासंकल्प्यतेयथा ॥ तथानुभूयतेतत्तत्ताद्दग्विरचनंतदा ॥ ३ ॥ एवमस्मिन्गृहेयातेसंपन्नैवमियं प्रजा ॥ एवंसंकल्पसंपन्नेजगत्येवंभवत्यलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! दूरदेशस्थ, असंबद्ध तथा अमूर्त पुण्यपापका शुभ वा अशुभ फल प्रजाओंको गृहके समागममें जैसे मिलताहै वह तुम सुनो ॥ १ ॥ ब्रह्मही अज्ञानसे जगद्दृश्यके बोधसे जगद्दृश्य तथा ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मरूप है इसलिये ब्रह्मका संकल्पनगरही यह जगत् है ॥ २ ॥ संकल्पनगरमें जो २ जब २ तथा जैसा २ संकल्प करताहै तब २ वह वैसाही वैसा अनुभव करताहै ॥ ३ ॥ जैसे तुमारे इस संकल्पानुसार प्रजा सिद्ध है ऐसेही ब्रह्मके संकल्पानुसार यह जगत्रूप ब्रह्मके संकल्पमें सिद्ध है ॥ ४ ॥

एतत्स्वसंकल्पपुरेयादृशंतेतथास्थितम् ॥ यथासंकल्पयसियत्तत्तथाकिलपश्यसि ॥ ५ ॥ यथैववरशा पाभ्यांशुद्धसंविदवाप्यते ॥ संवित्तथैवभवतिब्राह्ममेवेतिकल्पनम् ॥ ६ ॥ प्रजाविधिनिषेधाभ्यामेकया स्थाव्यवस्थया ॥ तथैवफलमाप्नोतिब्राह्ममेवेतिकल्पनम् ॥ ७ ॥ देहिनोयेजगत्यस्मिंस्तान्प्रत्यनुपलं भतः ॥ असदासीज्जगत्पूर्वंसत्यमित्युपलभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—तुमारे संकल्पनगरमें तुम जैसा संकल्प करतेहो वैसाही उसमें स्थित तुम देखतेहो ॥ ५ ॥ और तुम अपने संकल्पसे विलक्षण जो अनुभव करतेहो वह वर वा शापसे जैसे शुद्धसंवित्के संकल्पसे विलक्षण होजाताहै ऐसेही ब्रह्माके प्रबलसंकल्पसे वह होजाताहै और तपस्वीमुनियोंके वर वा शाप सत्य हो यह ब्रह्मके सत्यसंकल्पसे होताहै ॥ ६ ॥ तथा शास्त्रोंके विधिनिषेधसे बोधित धर्माधर्मसे फलको पावै, यहभी ब्रह्मके संकल्पसेही होताहै ॥ ७ ॥ इस संसारमें जितने प्राणी हैं उनकी सृष्टिरूपसे आविर्भावके पूर्व उपलब्धि न होनेसे प्रथम यह जगत् न था, पश्चात् प्राप्त होनेसे कहागयाहै, यह प्रथम न था अनन्तर सत्यरूपसे प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥

चिद्रूपब्रह्मसंकल्पवशादेवैतदंगसत् ॥ चिदुन्मेषनिमेषौयौतावेतौप्रलयोदयौ ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ किं नोपलभ्यतेपूर्वंकिंपश्चादुपलभ्यते ॥ जगच्चलद्वपुरिदंसुस्थिरारंभभास्वरम् ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मिंश्चिद्व्योमसंकल्पपुरस्थेभावईदृशः ॥ यद्भूत्वानभवत्येवपुनर्भवतिचक्षणात् ॥ ११ ॥ बालसंकल्पपुरवद्व्योमकेशोंड्रकादिवत् ॥ किलैतेसदसद्रूपाभांतिसर्गाश्चिदात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—हे प्रिय राजन् ! इस असत्जगत्का जो किंचित्का भान है वहभी ब्रह्मके संकल्पसे होताहै इसलिये ब्रह्मका उन्मेष तथा निमेषही यह इस जगत्की उत्पत्ति तथा प्रलय है ॥ ९ ॥ राजा बोला कि–हे भगवन् ! यदि यह जगत् ब्रह्मके संकल्परूपसे सत् है तो प्रलय तथा सुषुप्तिके पूर्वभी क्यों नहीं उपलब्धहोता, तथा जाग्रत् और सृष्टिकालमें कैसे उपलब्ध होताहै, और सदा विकारको प्राप्त यह जगत् अतिसुस्थिररूपसे कैसे भासताहै ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे राजन् ! इस चिदाकाशके मायिक संकल्पनगरमें यह स्वभावही है, सृष्टिस्वप्न जाग्रत्में सुषुप्ति तथा प्रलयमें नहीं होता, और पुनः क्षणमें स्वप्नादिअवस्थामें होजाताहै ॥ ११ ॥ बालकके संकल्पनगरवत् (संकल्पकालमात्रस्थायी) तथा आकाशमें केशमुक्तादिक भ्रमकेसमान सदसद्रूप ये सर्ग चिदाकामें भासतेहैं ॥ १२ ॥

त्वंसंकल्पपुरंकृत्वाविनाशयसितत्क्षणात् ॥ स्वतोन्यसंविद्वशतःस्वस्वभावःसतेयथा ॥ १३ ॥ चिद्व्योमकल्पनपुरेयदुन्मज्जनमज्जनम् ॥ स्वभावकचनंतस्यतद्विद्धिविमलंतथा ॥ १४ ॥ संविद्घनस्त्वनाद्यंतव्योमैवत्रिजगन्नभः ॥ तेनासावद्ययन्नामकरोत्यपिचचेतति ॥ १५ ॥ तदनावरणस्यास्ययोजनानां शतेष्वपि ॥ युगैरपिस्वप्नइवकार्यकृद्वर्तमानवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—तुम स्वयं वा अन्यउपाधिके संवित्के वशमें होकर संकल्पनगरको रचतेहो और पुनः क्षणमें उसका नाशभी करतेहो यह तुमारा जैसे स्वभाव है ॥ १३ ॥ ऐसेही चिदाकाशके संकल्पनगरमें उत्पत्तिनाश उसके विमलस्वभावकाही स्फुरण है ॥ १४ ॥ इसलिये यह त्रिलोक अनादि चिद्घन ब्रह्माकाशही है, और जो २ चेतता और करताहै वह आचरणशून्य इस परमेश्वरके सत्यसंकल्पके बलसे वह पुण्यपापादिकर्म सहस्रोंयोजनकी दूरीपर तथा युगोंके व्यवधानोंमेंभी समीपस्थ तथा वर्तमानके सदृश स्वर्गनरकादिकार्य्यको करताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

किलदेशांतरेनित्यमथलोकांतरेपिच ॥ निरावृत्तोयएकात्मासकिंनामनचेतति ॥ १७ ॥ यथामणौप्रकचतिप्रोन्मज्जननिमज्जने ॥ परावर्तःस्वभासास्यचिन्मणौजगतांतथा ॥ १८ ॥ विधीनांप्रतिषेधानांलोकसंस्थाप्रयोजनम् ॥ सैवसंविदिरूढत्वात्प्रेत्यापिफलदास्थिता ॥ १९ ॥ नकदाचनयात्यस्तमुदेतिनकदाचन ॥ ब्रह्मब्रह्मचिदाभानंसर्वदात्मन्यवस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—देशान्तर और कालान्तरमें कर्म तथा उनके फलोंके अध्यासोंका अधिष्ठान निरावरण चेतन नित्य एकही है वह क्या नहीं चेतसकता ॥ १७ ॥ जैसे मणिके प्रकाशित होनेपर निजप्रकाशसेही शोभाविशेषका आविर्भाव तथा तिरोभाव अनुभूत होताहै ऐसे चिदाकाशमणिमें ब्रह्मांडोंके उत्पत्तिप्रलयमय तथा कर्मोंके विचित्रफलोंसे पूर्ण निजप्रकाशसेही परावर्तन अनुभूत होताहै ॥ १८ ॥ वेदशास्त्रोंके विधि तथा निषेधोंके सफलताप्रयोजक लोककी स्थिति जो ब्रह्ममें रूढ है वही मरणके पश्चात् दूरस्थकर्मोंके फलोंकी कल्पना करती है ॥ १९ ॥ यथार्थमें तो ब्रह्म आत्मा न कदापि अस्तंगत हो और न कदापि उदित होताहै, किन्तु सदा अपने आत्मामें स्थित रहताहै और इसके जन्ममरण भ्रमसे कल्पित हैं ॥ २० ॥

यथातुद्रष्टृदृश्यत्वात्कल्पनाकल्पनापुरम् ॥ स्वयंजगदिवाभातिजातमित्युच्यतेतथा ॥ २१ ॥ यदास्वभावात्कचनंसंहृत्यात्मनितिष्ठति ॥ ब्रह्मचिद्गगनैकात्माशांतइत्युच्यतेतदा ॥ २२ ॥ कचनाकचनेयस्य स्वभावोनिर्मलोक्षयः ॥ यथैतावात्मनोनान्यौस्पंदास्पंदौनभस्वतः ॥ २३ ॥ जरामरणहंतृणिक्षणान्यत्र पृथक्पृथक् ॥ भवंत्विवितियथैतानिसंतित्वत्कल्पनापुरे ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे द्रष्टादृश्यआदि जगत् स्वयं चित्से कल्पित है ऐसेही यह उत्पन्न हुआ यहभी वाणीकी कल्पनामात्र है ॥ २१ ॥ ऐसेही ब्रह्म चिदाकाश जब निजस्वभावके स्फुरणका उपसंहार करके अपने आत्मामें स्थितहोताहै उससमय यह शान्त (मृतक) हुआ यह व्यवहार होताहै ॥ २२ ॥ जैसे वायुका संचलन तथा स्थिरता स्वभाव है ऐसेही दृश्यरूपसे स्फुरण तथा उसका दोनों चिदाकाशका निर्मल अविनाशी स्वभाव है ॥ २३ ॥ तथा जरा, मृत्यु और हिंसादिकारक मणिमंत्र औषधादिके पृथक् स्वभावही अमुक मंत्र वा औषधि इसप्रकारके प्रभावसहित हो ऐसा ब्रह्मके सत्यसंकल्पसेही होतेहैं ॥ २४ ॥

ब्रह्मसंकल्पनगरेस्वभावाउदितास्तथा ॥ ओषधीनांपदार्थानांसर्वेषांचजगत्रये ॥ २५ ॥ नसंकल्पयिताराजन्संकल्पनगरेस्वयम् ॥ तृणंतृणंकल्पयतिबालःक्रीडनकानिव ॥ २६ ॥ स्वयंस्वभावएवैषचिद्घनस्यास्यसुस्फुटम् ॥ यद्यत्संकल्पयत्याशुतत्तत्रतेऽवयवाअपि ॥ २७ ॥ चिदात्मकतयाभांतिनानात्मकतयात्मना ॥ अप्येकसारास्तिष्ठंतिनानाकारस्वभावगाः ॥ २८ ॥ प्रत्येकंकिलतत्रास्तिब्रह्मचिन्मात्रतात्मनि ॥ सर्वात्मिकासायत्रास्तेयथांतर्भातितत्तथा ॥ २९ ॥ अनादिमध्यांतमनंतवीर्यंकिंचिन्नकिंचिच्च सदप्यसत्यम् ॥ स्थितंयथायत्रतदात्मतत्तत्सर्वात्मभूभूतत्तृणादिजातौ ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे महाप्रश्नमोक्षणेअष्टोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २०८ ॥

अर्थ—हे राजन्! इसप्रकार औषधि तथा मणि संपूर्णपदार्थोंके स्वभाव ब्रह्मके संकल्पनगररूप त्रिलोकमें पृथक् २ उदित हैं ॥ २५ ॥ और प्रतिक्षण तथा प्रतिवस्तुमें ईश्वर संकल्पयिताकी कल्पना नहींकरताहै किन्तु बालक जैसें अपने क्रीडासाधनोंका एकवार संकल्प करताहै ऐसेही किन्तु एकवारही यह २ वस्तु उत्पन्न होके अमुक २ कार्य्य करें इस कल्पनाके पश्चात् बीजांकुरन्यायसे पूर्व २ अंकुर तृणआदि उत्तरोत्तर अंकुरतृणादिकी कल्पना कल्पपर्य्यन्त करतारहताहै ॥ २६ ॥ हे राजन्! चिद्घन परमात्माका यह स्वभाव है कि वह जहां २ जिस २ पदार्थ तथा शक्तिआदिकी कल्पनाकरताहै वहां २ वह २ पदार्थ शीघ्रही वैसी २ कार्य्यकारणशक्तिसे युक्त होके सदाकेलिये आविर्भूत होजातेहैं ॥ २७ ॥ वे संकल्पकल्पित सम्पूर्णपदार्थ नानारूपसे स्थितभी स्फुरणस्वभाव चिदाकाशमें एकरूपही भासते हैं, ऐसेही नानाआकारसे स्वयं स्थितभी परन्तु सद्रूपसे एक परमात्मस्वभावही स्थितहैं ॥ २८ ॥ प्रत्येकपदार्थमें अस्तिभाति तथा प्रियरूपसे ब्रह्मचिद्रूपताहै, क्योंकि चित् सर्वरूप है, वह जहां जिसरूपसे है वहां उसीरूपसे भानहोती है ॥ २९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार आदिअन्तमध्यशून्य, अबाध्य तथा अपरिच्छिन्नशक्तियुक्त परमात्मा सत् तथा असत् दोनों रूपसे स्थितहै क्योंकि "सत्यंचानृतं च सत्यमभवत्" (सत्य परमात्मा सत् तथा असत् दोनोंरूपसे आविर्भूत हुआ) यह श्रुति है. परमात्मा सर्वरूपधारी है वह प्राणी तथा तृणादिपदार्थोंमें जहां जिसरूपसे प्रसिद्ध है वहां वही रूपही कर स्थित है ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महाप्रश्नमोक्षणं नाम अष्टोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०८ ॥

नवमद्विशततमः सर्गः ॥ २०९ ॥

विरुद्धफल देनेवाले कर्मोंका एकसमयमेंही भोग प्राप्त होनेपर अविरोधसे सफलता होती है यह विषय युक्तिसे इस २०९ के सर्गमें सिद्धकियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एकस्यजीवितंपुंसःसुहृदामरणंद्विषा ॥ मृत्वार्थितंप्रयागादौक्षेत्रेयत्तदिदंशृणु ॥ १ ॥ क्षेत्राणामर्थधर्माणांसर्वेषांप्रतितंफलम् ॥ ब्रह्मणाकल्पितंसर्गेस्वकेसंकल्पपत्तने ॥ २ ॥ यत्रपुण्यंयदर्थंचक्षेत्रंताभ्यांतथाकृतम् ॥ यदितद्विनियोज्यस्यतस्योन्नमतिनिष्कृतात् ॥ ३ ॥ तत्तस्मान्महतःपापाद्गमेनोखिलंचवा ॥ चितिशक्त्यात्मतत्पुण्यंपरिभ्राम्योपशाम्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे राजन्! प्रयागआदि कामनाप्रदक्षेत्रमें एकही पुरुषके मित्रने अपने प्राण देके उसके जीवनकी प्रार्थना की और शत्रुने अपने प्राण देके उसके मरणकी प्रार्थना की वहां विरुद्धफल एककालमें कैसे होगा इस प्रश्नका उत्तर सुनो ॥ १ ॥ सब क्षेत्र तथा तपआदिके फल अधिकारीकेलिये ब्रह्माने अपने संकल्पनगरसृष्टिमें अवश्य कल्पितकिये हैं ॥ २ ॥ जिस अधिकारीके मनोरथसिद्धिकेलिये जो प्रयागआदि क्षेत्र हैं वहांपर यदि शास्त्रके अनुकूल अधिकारीने स्नान दान तपआदि पुण्य कियाहै, तो उसके विधिपूर्वक कर्मके अनुष्ठानसे वह प्रयागादिका मरणआदि अवश्य फलदायक होगा ॥ ३ ॥ यदि श्रद्धालु महापापीभी श्रद्धापूर्वक प्रयागमें मरताहै तो चेतनमें महापापोंकोभी नाशक शक्तियुक्त वह पुण्य उस महापापको सर्वथा नष्ट करके स्वयंभी प्रयागादिके महात्म्यके तारतम्यके अनुसार भ्रमण करके स्वयंभी शान्त होजाताहै ॥ ४ ॥

विनेयपापमल्पंचेत्क्षेत्रधर्मोधिकस्ततः ॥ तत्पापंनाशयित्वातच्छब्दएवविवल्गति ॥ ५ ॥ क्षेत्रधर्मेणतेनास्यविनेयस्यमहीपते ॥ द्वेशरीरेविदौसम्यक्चतःप्रतिभात्मिके ॥ ६ ॥ इत्येवमादिपापानांपुण्यानांच

फलंमहत् ॥ ब्रह्मसंकल्पकाचितंयथायद्यत्तथैवतत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोच्यतेसौचिद्धातुःसोब्जजाद्यहमादिच ॥ सयथास्तेतथातत्तस्यसंकल्पनंजगत् ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि शास्त्रके अनुसार चलनेवाले पुरुषका पाप अल्प है और धर्म क्षेत्रादिमें अधिक उपार्जन कियाहै तो धर्म पापका नाश करके उसके मनोरथकोभी पूर्ण करके श्रुतिआदिमें गर्जताहै ॥ ५ ॥ और जहां क्षेत्रादिमें अर्जित पुरुषका धर्म पापके समान है वहांपर पुण्य तथा पाप दोनों भोगनेके अर्थ दो शरीर स्फुरित होते हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकार न्यूनाधिकभावसे पुण्यपापका महत्फल ब्रह्मके संकल्पसे जैसा २ स्फुरित है वहां २ वैसाही वैसा व्यवस्थित है ॥ ७ ॥ यही ब्रह्मचेतन, समष्टिजीवका संकल्प, ब्रह्मा, तथा अस्मदादि व्यष्टिजीवरूप कहाजाताहै, जिस २ प्रकार वह संकल्प करताहै वहां २ उसीप्रकारसे स्थित है, क्योंकि उसका संकल्पही जगत् है ॥ ८ ॥

प्रतिभैवविनेयस्यक्षेत्रपुण्येनतादृशी ॥ तथैवोदेतिसाधातुर्विपरीतवतोयथा ॥ ९ ॥ एकात्मनाहमद्यैषमृतोमीममबंधवः ॥ रुदंतीमेपरंलोकंप्राप्तोयमहमेककः ॥ १० ॥ बंधूनामपितत्रैवतद्देवास्यतथैवच ॥ प्रतिभातादृशैवेतिधातुक्षोभवतामिव ॥ ११ ॥ अत्युग्रैःपुण्यपापैःस्वैर्वामहात्मभिरीक्षिते ॥ लक्ष्याण्यप्यन्यथासंतिनृणांचित्कल्पनावशात् ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षेत्रादिमें किये पुरुषके पुण्यके अनुसार उसकी प्रतिभाही स्वर्गादिफलभोगार्थ उदितहोती है और पापीकी वही नरकादिरूपसे प्रकट होती है ॥ ९ ॥ ऐसी प्रतिभा उदित होती है कि एकाकी (अकेला) मैं मृत्युको प्राप्त हुआ, ये मेरे बन्धु जीते हैं और मेरेलिये रोदन करते हैं, मैं परलोकमें प्राप्तहुआ ॥ १० ॥ जैसे वातपित्तादिधातुओंके क्षोभसे सन्निपातवाले मनुष्यकी बुद्धिमें अनेकप्रकारका भ्रम होताहै ऐसेही मरणवत् बन्धुका रोदन, शवका बाह्यदेशमें निष्कासन तथा दाहादिरूपसे प्रतिभाही पुरुषकी उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ और जब इस पुरुषोंके अतिउग्र पुण्य वा पाप होतेहैं तब उन्हीं अपने पुण्यआदिसे क्षुब्ध महात्माओंसे निग्रह वा अनुग्रहदृष्टिसे देखनेपर अन्यसे लक्ष्य वा अलक्ष्य शरीरादिफल चित्के कल्पनावशसे होतेहैं ॥ १२ ॥

अचेतनंशवीभूतंतेपिपश्यंतितंमृतम् ॥ रुदंतितंचदहनेक्षिपंतिसहबांधवैः ॥ १३ ॥ विनेयःसयथान्येन संविद्रूपेणदेहिना ॥ जरामरणमात्मानंवेत्तिस्थितमदुःखितम् ॥ १४ ॥ यथास्थितेनदेहेनवेत्त्यसौजीवितस्थितम् ॥ मृतिंत्वदृश्येनान्येनक्षेत्रपुण्यविदेरितः ॥ १५ ॥ आविलासंविदासंविच्छून्ययावेद्यतेक्षणात् ॥ नहिसन्नद्धगात्रस्यक्लेशोसन्नद्धभेदने ॥ १६ ॥

अर्थ—और इसके बन्धुआदिभी अचेतन मृतशरीरको देखते हैं, रोते हैं, और सबबन्धुओंकेसाथ फेकदेतेहैं ॥ १३ ॥ और मित्र तथा शत्रुके कर्मोंसे एकही पुरुष स्नेहसंविद्रूप अन्यदेह धारणकरके मित्रसे प्रार्थित जरामरणरहित तथा दुःखशून्य अपनेको अनुभव करताहै ॥ १४ ॥ यथास्थितदेहसे जो यह जीवनका अनुभवकरताहै और बन्धु सुहृत्जनोंसे अदृश्य अन्य देह धारणकरके प्रयागादिक्षेत्रमें शत्रुसे प्रार्थित मरणकाभी उसीकालमें अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ शत्रुकृत अभिचार (मरण) आदिके प्रतीकारमें असमर्थ व्याकुल संवित् क्षणमेंही मरणादिका अनुभव करती है, क्योंकि वर्म (कवच) आदिसे आच्छादितशरीरवाले शत्रुको वर्मआदिसे रहित शरीरवाले तथा विश्वस्तजनके खड्ग बाणादि छेदनमें क्लेश नहीं होता ॥ १६ ॥

पश्यंतिबंधवोप्येनंतथैवामरतांगतम् ॥ द्वयमित्येपलभतेजीवितंमरणंसमम् ॥ १७ ॥ इदमप्रतिघारंभं भ्रांतिमात्रंजगत्त्रयम् ॥ नसंभवतिकोनामभ्रांतौभ्रांतिविपर्ययः ॥ १८ ॥ संकल्पस्वप्नपुर्योर्याभ्रांतिरनुभूयते ॥ ततोधिकोयंनन्यूनाजाग्रत्स्वप्नेनुभूयते ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ धर्माधर्मौकथंब्रह्मन्कारणंदेहसंविदः ॥ तस्यामूर्तौकथंचैकोद्विशरीरत्वमृच्छति ॥ २० ॥

अर्थ—अतः बन्धुआदि इसको मृत्युसेरहितभी देखतेहैं तथा सुहृद्आदिसे अलक्षित देहसे मृत्युकोभी इसरीतिसे यह समकालमें जीवन मरण दोनोंका अनुभवकरताहै ॥ १७ ॥ अप्रतिहतरूपसे प्रादुर्भूत यह त्रिलोक भ्रान्तिमात्र है और भ्रान्तिमें क्या विपरीत नहीं होसकता ! क्योंकि सन्निपातआदिमें अनेक विरुद्धकार्य्य एककालमेंही देखपडतेहैं ॥ १८ ॥ संकल्प तथा स्वप्नके नगरोंमें जो भ्रान्ति अनुभूत होती है उससे बहुत अधिक न कि न्यून जाग्रत्रूप स्वप्नमें प्राणियोंको सदा अनुभूत होती है ॥ १९ ॥ राजा बोला—कि हे ब्रह्मन् ! धर्म तथा अधर्म देहसंवित्के कारण कैसे होतेहैं, क्योंकि धर्मअधर्मकी जब मूर्ति नहीं है तब द्वितीयशरीरभावको वे कैसे प्राप्त होतेहैं ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ संकल्पनगरेब्राह्मेजगत्यस्मिन्महामते ॥ किंनामनोसंभवतिसत्यंवाप्यसमंजसम् ॥ २१ ॥ यथैवसंकल्पपुरेयन्नसंभवतीहहि ॥ तन्नास्त्येवतदेतस्मिन्किंवास्तुब्रह्मकल्पने ॥ २२ ॥ स्वप्नसंक

ल्पपुरयोरेकोगच्छतिलक्षताम् ॥ तथैवैकैवचित्स्वप्नेसेनात्वमुपगच्छति ॥ २३ ॥ सहस्राण्येकतांयांति तथासैवसुषुप्तकम् ॥ अन्यथास्वप्नसंकल्पसेनानुभवसंस्मृतौ ॥ २४ ॥ संकल्पस्वप्नपुरयोरितिकोनानु भूतवान् ॥ संविदाकाशमात्रेस्मिञ्जगत्यनुभवात्मनि ॥ २५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे महाबुद्धि राजन् ! इस ब्रह्मके संकल्परूप जगत्में कौनसा असमंजस (असंगत) सत्य नहीं होसकता, अर्थात् विधाताके सत्यसंकल्पसे अमूर्तभी मूर्त होजाताहै ॥ २१ ॥ जैसे तुमारे संकल्प वा स्वप्न-नगरमें ऐसा असंभव कुछभी नहीं है जो संभव नहींहोता, ऐसेही इस ब्रह्मकी कल्पनामें कुछभी असंभव नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्न और संकल्पमें एकही चित् लक्षों (लाखों) रूप धारण करती है ऐसेही जाग्रत्स्वप्नमेंभी एकही चित् महासेनाकाररूप धारण करती है ॥ २३ ॥ और जैसे एकसे अनेकरूप होती है ऐसेही सुषुप्तिमें सहस्रोंरूपकी एकताको वही चित् धारण करती है, यदि एकही चित् अनेकरूप तथा अनेकसे एकरूपताको न प्राप्त हो तो स्वप्न तथा संकल्पकी सेनाके अनुभव तथा स्मृति, तथा एकाकारता और अमुकस्थानमें मैंने देखा इत्यादि चिदाकाश तथा अनुभवरूप इस जगत्में कौन अनुभव करै ॥ २४ ॥ २५ ॥

तस्मादस्मिंश्चिदाकाशसंकल्पेजगदात्मनि ॥ नसंभवतिकिंनामतत्संभवतिवापिकिम् ॥ २६ ॥ एवमेवमियंभ्रांतिर्भातिभास्वन्नभोमयम् ॥ नेहकिंचनसन्नासन्नवाऽऽसदिहकिंचन ॥ २७ ॥ यथानुभूयतेयद्यत्तत्तथातत्त्वदर्शिनः ॥ प्रबुद्धस्यात्रकिंनामतत्सएवांगतेत्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इस हेतुसे चिदाकाशके संकल्पमात्र इस जगत्में कोई ऐसा पदार्थ वा वार्ता नहीं जो संभव वा असंभव न हो ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार यह जगत्रूप भ्रान्ति प्रकाशशील चिदाकाशरूपही भासतीहै, इस जगत्में न कुछ सत् है, न असत्, न सदसत् है, किन्तु चिन्मात्र है ॥ २७ ॥ हे प्रिय राजन् ! जो २ पदार्थ जिस २ प्रकारसे अनुभूत होताहै वह २ उसी २ प्रकारसे वह परमात्माही विवर्तभावको प्राप्त होताहै, क्योंकि तत्वद्रष्टा ज्ञानीको सर्वसामर्थ्ययुक्त इस आत्मामें कुछभी असमंजस नहीं है ॥ २८ ॥

इहचेद्विहितोधर्मस्तत्स्वर्गेमृतपर्वताः ॥ स्थिताइतीहसंकल्पेकस्मान्नप्राप्तवान्गिरीन् ॥ २९ ॥ इहयत्क्रियतेकर्मतत्परत्रोपभुज्यते ॥ इतीहसंकल्पपुरेसर्वमेवासमंजसम् ॥ ३० ॥ यदिस्यात्सुस्थिरंकिंचिद्वस्तुतद्दृश्यकोभवेत् ॥ न्यायएषोखिलःकिंतुसंवित्वात्स्वस्वकंस्थितः ॥ ३१ ॥ इत्येषकथितोन्यायः सिद्धास्वानुभवस्ततः ॥ यतोजगंतिसंकल्पश्चितोब्रह्मस्वरूपतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—देवता तथा उनके भोगकी सब सामग्री, जैसे अमृतरसपूर्ण झरने ह्रद पुष्पादिसेपूर्ण पर्वत वाटिका और अप्सराआदि सब स्वर्गमें हैं ऐसा शास्त्रसे जानकर जो शास्त्रके अनुसार संकल्प करके धर्म करताहै, वह स्वर्गमें जाकर उन सब पर्वतादि पदार्थोंको अपनेको प्राप्त क्यों नहीं करता अर्थात् अवश्य करताहै ॥ २९ ॥ यदि मिथ्या जान यह सब असमंजस है ऐसी तुमारी बुद्धि है तो यह लोक तथा इसलोकमें कियाहुआ कर्म और उससे परलोकमें फलका भोग इत्यादि सभी कुछ इस संकल्पनगरमें असमंजसही है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यदि इस संसारमें कोईभी वस्तु स्थिर होती तो दृश्यस्थिति होती और यह समंजस है यह असमंजस है इत्यादि सब न्याय अकुंठित होगा, किन्तु सभी द्रष्टा निज २ कल्पनानुसार दृश्यरूपसे स्थित है न कि यथार्थ ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सर्वप्रसिद्ध स्वप्न तथा संकल्पकी कल्पनाओंमें जो न्याय असमंजसतादोषपरिहारार्थ हमने निर्णीत कियाहै यही सर्वानुभवसिद्ध जगत्में लगाना उचित है, क्योंकि स्वप्नवत् सर्वजगत्भी ब्रह्मस्वरूपही है ॥ ३२ ॥

तवसंकल्पनगरेनास्त्येवासंभवोयथा ॥ सर्वार्थानांतथाब्राह्मेसंकल्पेनास्त्यसंभवः ॥ ३३ ॥ यद्यथाकल्पितंतत्रयावत्संकल्पमेवतत् ॥ स्वभावेनतथैवास्तियतस्तत्सन्निवेशवत् ॥ ३४ ॥ ततःसंप्रेक्षणमिहसंकरोनप्रवर्त्तते ॥ विनान्यच्चित्प्रयत्नेनभवत्यर्थस्तुनान्यथा ॥ ३५ ॥ आकल्पमजसंकल्पेयथाभातंजगत्स्थितम् ॥ पुनरन्येनसंकल्परूपेणान्यदुपैष्यति ॥ ३६ ॥ संकल्पात्मस्वयंभातिकल्पेकल्पेजगत्तथा ॥ प्रतिजीवंचितिस्वप्नेस्वप्नेस्वाप्नपुरंयथा ॥ ३७ ॥ संकल्पपत्तननतोनैतदस्तिकिंचिद्यद्यन्नसंभवतितच्चिदात्मनोस्मात् ॥ नान्यत्प्रकल्पयितुराद्यपरस्वरूपाद्ब्रह्मैवतेनसकलंजगदंगविद्धि ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे महाप्रश्नोत्तरेसर्वास्तित्वानुभूतिदर्शनं नाम नवोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०९ ॥

अर्थ—जैसे तुमारे स्वप्न और संकल्पनगरमें सब विरुद्धपदार्थोंकाभी असंभव नहीं है ऐसेही ब्रह्मके संकल्प-नगर इस जगत्मेंभी नहीं है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मके संकल्पमें जो वस्तु जिसप्रकारसे जहां कल्पित है वह उसी आकार तथा

स्वभावसे वहां स्थित है ॥ ३४ ॥ उसप्रकार अवयवकी रचना तथा नियतस्वभावकेही वशसे ज्ञानेन्द्रियोंसे सबपदार्थोंका निर्विवाद ज्ञान होताहै, और कर्मेन्द्रियोंके व्यवहारोंसे संकरदोषभी नहीं होता, पूर्वकालमें चित्के प्रयत्नसे कृत अवयवरचनासहित पदार्थ उत्तरकालमें प्रबल चित्प्रयत्नके विना अन्यथाभावको नहींप्राप्तहोता ॥ ३५ ॥ ब्रह्माके संकल्पसे जो पदार्थ जिसप्रकार जैसे कल्पित है वह वैसाही प्रलयपर्य्यन्त स्थित है, और पुनः प्रलयके अनन्तर उस कल्पके चित्के प्रयत्नसे अन्यथाभावको प्राप्तहोगा ॥ ३६ ॥ हे प्रिय राजन् ! संकल्पमय परमात्मा कल्पकल्पमें जगत्रूपसे ऐसे भासताहै जैसे प्रतिजीव चित्के प्रत्येक स्वप्नमें स्वप्ननगर ॥ ३७ ॥ संकल्पनगररूप इस जगत्में तुम जिसका असंभव समझतेहो वह नहीं है किन्तु सबकुछ संभव है, और वह संपूर्ण संकलिपत जगत् संकल्पयिता इस चिदात्मासे भिन्न नहीं है, इसलिये इस संपूर्णजगत्को ब्रह्मरूपही जानो ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महाप्रश्नोत्तरेसर्वास्तित्वप्रतिपादनं नाम नवोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०९ ॥

दशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१० ॥

वसिष्ठके प्रश्नोंका समाधान तथा सम्यक्दृष्टिसे देहादिक संपूर्णजगत्की शोभनदृष्टिसे ब्रह्मरूपता इस २१० के सर्गमें निरुपित कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ फलेक्षयेंदुभारूपेप्राप्तेध्यातृशतैर्नभः ॥ यथानशतपूर्णेंदुतथेदंकथनंशृणु ॥ १ ॥ चंद्रबिंबस्यध्यातारःप्राप्ताःप्राप्तव्यसुस्थिताः ॥ नेदंनभस्तलंप्राप्तानचेमंशशिनंश्रिताः ॥ २ ॥ क्वेवान्य संकल्पपुरमन्यःप्राप्नोतिकथ्यताम् ॥ संकल्पपुर्यामर्थाप्तिस्तज्जंतावेवनापरे ॥ ३ ॥ पृथक्पृथक्स्वसंक ल्पसर्गखेष्वेवतेस्थिताः ॥ चंद्रास्तपंतितत्रैवकलाक्षयविवर्जिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! आकाशमें पूर्णचन्द्ररूप हम होजांय ऐसे एककालमें अनेक ध्यान करनेवालोंके होनेपर आकाश अनेक पूर्णचन्द्रमाओंसे युक्त जैसे नहीं होता वह कथन तुम सुनो ॥ १ ॥ अहंभावसे चन्द्रबिम्बको ध्यान करनेवाले चिरकालके ध्यानसे अन्यभावके विस्मरणसे इन्दुके पुत्रोंके सदृश चन्द्रभावको अवश्य प्राप्त होके स्थिरतापूर्वक विद्यमान हैं, परन्तु न तो वे इस आकाशमें प्राप्त हुये और न इस हमारे तुमारे दृष्टिगोचर चन्द्रमंडलमेंही प्रविष्ट हुये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अन्यके स्वप्न वा संकल्पनगरमें अन्य कहां प्राप्तहोताहै सो तुम कहो क्योंकि संकल्प स्वप्नके नगरमें पदार्थोंकी प्राप्ति उसी संकल्प करनेवाले जीवमें होती है न कि अन्यजीवमें ॥ ३ ॥ पृथक् २ अपने २ संकलिपत सृष्टिरूप चिदाकाशमें पृथक्रूपसेही वे सब स्थित हैं, और वहां कलाके क्षयसे वर्जित चन्द्ररूपसे वे प्रकाश करते हैं ॥ ४ ॥

विशेयमस्मिन्नेवेंदावितिध्यातानिशाकरे ॥ अस्मिन्नेवविशत्यंतरात्मबुद्धिसुखोज्झितः ॥ ५ ॥ अहमिंदुं प्रविष्टःस्यामिदुबिंबसुखान्वितः ॥ ध्यातेतितादृक्सुखभाग्भवतीतिविनिश्चयः ॥ ६ ॥ यथायमनुसंध त्तेस्वभावंसंविदव्यया ॥ तंतथैवानुभवतिभवेच्चेदृढनिश्चयः ॥ ७ ॥ यथेंदुत्वंस्वसंकल्पात्सर्वध्यातुः पृथक्पृथक् ॥ भात्येवमेववनितालाभःकाल्पनिकःस्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं इस चन्द्रमामेंही प्रविष्ट होऊं ऐसा ध्यान करनेवाला इसी चन्द्रमामें आत्मज्ञानके सुखसे रहित प्रविष्टहोताहै ॥ ५ ॥ क्योंकि इस चन्द्रमाके सुखसहित इस चन्द्रमामें प्रविष्ट होऊं ऐसा ध्यान करनेवालाही इस चन्द्रमामें प्रविष्ट सुखका भागी होताहै ऐसा निश्चय है, और उन्होंने केवल पूर्णचन्द्रमा होके आकाशमें प्रकाश करैं ऐसा ध्यान किया इसलिये इसमें नहीं प्रविष्ट हुये, जो दृढसंकल्पसे जैसे स्वभावका ध्यान करताहै वह उसी स्वभावका अनुभव करताहै ऐसा नियम है ॥ ६ ॥ ७ ॥ जैसे चन्द्रत्वप्राप्ति पृथक् २ होती है ऐसेही एकही स्त्रीका सब ध्यान करनेवालोंकोभी उसका लाभ अपनी २ कल्पनासे पृथक् २ होताहै ॥ ८ ॥

याध्यानेध्यातृलक्षाणांसाध्वीभार्यात्वमागता ॥ तत्कल्पनानुभवनंतेषांसत्वात्मनिस्थितम् ॥ ९ ॥ गृहाद निर्गतोजीवःसप्तद्वीपपरःस्थितः ॥ तस्यापितत्काल्पनिकंराज्यंव्योम्निस्वमंदिरे ॥ १० ॥ समस्तंकल्प नामात्रमिदमाद्यन्तजन्मनः ॥ शून्यमप्रतिघंशांतंतेष्वपिस्यात्किमन्यथा ॥ ११ ॥ दानैर्ध्वदेहिकतपोज पादीनांपरत्रयत् ॥ अस्तूतानांफलंमूर्ततदिदंकथ्यतेशृणु ॥ १२ ॥

अर्थ—जो सतीभार्य्या लक्षों ध्याताओंके ध्यानमें प्राप्त है वही उनके कल्पनाके अनुसार साक्षीचेतनमें पृथक् २ अनुभवरूपसे स्थित है ॥ ९ ॥ तथा जिस जीवने यह ध्यान किया कि मैं गृहसे न निकलकर सप्तद्वीपका अधिपति हो-जाऊं, उसकोभी निजमंदिरमेंही कल्पनासिद्ध सप्तद्वीपका राज्य निजचित्ताकाशमेंही वर्तमान है ॥ १० ॥ जब यह हमाराही जगत् प्रथम सिद्ध सर्वज्ञ ब्रह्माकी कल्पनामात्र अमूर्त शांतचिद्रूप है, उसमें किसी पदार्थकी असमंजसता नहीं है तब उस जगत्के उपासकोंसे कल्पित जगतोंमें भला असमंजसतादोष कैसे होगा ॥ ११ ॥ और इस संसारमें कृत दान, मरणोत्तर दाहपिंडदानादि क्रिया, तथा तपजपादिकर्मोंका अमूर्त पापादिकोंका परलोकमें मूर्तफल कैसे होताहै वह सुनो ॥ १२ ॥

दानादिचिह्नितधियःपरत्रस्वप्नवत्फलम् ॥ पश्यंत्यमूर्त्तामूर्त्ताभमजंचिन्मूर्तिकल्पनात् ॥ १३ ॥ वेदनावेदनाकारास्पंदास्पंदात्मवैपुनः ॥ चिन्मात्रस्यास्यतद्भ्रांतिशांतौशांतात्मनिर्मलम् ॥ १४ ॥ चिन्मात्राभमितोदानादमुत्रात्तमवाप्नुयात् ॥ संकल्पात्मेतिकवयःकथंतन्नोपलभ्यते ॥ १५ ॥ कल्पनात्मनिसंसारे संकल्पोऽकृत्रिमंफलम् ॥ चिन्मात्रमभितोऽदानाद्दानाद्दास्त्वयथोदितः ॥ १६ ॥

अर्थ—दानआदिसे अंकित बुद्धिवाले अमूर्त जीव स्वप्नके सदृश परलोकमें चेतनकेहीद्वारा मूर्ताकारमें कल्पित फलको पाते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मन तथा ज्ञानेंद्रियोंसे वेदना तथा अवेदनाकार भ्रान्ति होती है, उस भ्रान्तिसेही विषय-प्राप्तिके अर्थ चिन्मात्रही मनसहित कर्मेन्द्रियोंके साथ संचलासंचलरूप होजाताहै, और भ्रमकी शान्ति होनेसे निर्मल शान्त चिद्रूप आत्माही शेष रहताहै ॥ १४ ॥ इस लोकमें अनुष्ठित दानादिसे परलोकचित्के प्रतिभासरूप चित्सेही प्रापित फल संकल्पमें जीव प्राप्त होताहै ऐसा अनुभवी विद्वान् कहते हैं, पुनः वह क्यों न मिले ॥ १५ ॥ इस कल्पना-मय संसारमें, दानसे अकृत्रिम चिद्रूपपरमात्माही भोग ऐश्वर्य्यआदि फलरूप, और अदानसे दारिद्र्यआदि फलरूप हो इसमें कुछभी विरोध नहीं है ॥ १६ ॥

एतत्तेकथितंसर्वंयथापृष्टंमहीपते ॥ जगदप्रतिघंसर्वमिदंचिन्मात्रकल्पनम् ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ सर्गादौभगवन्देहमिदंचिन्मात्रकल्पनम् ॥ कथंभातिकथंकुड्यंविनादीपःप्रकाशते ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ त्वयार्थोदेहशब्दस्ययोबुद्धःसमहामते ॥ तत्त्वज्ञंप्रतिनास्त्येवशिलानृत्तमिवांबरे ॥ १९ ॥ यएवब्रह्मशब्दार्थोदेहशब्दार्थएवसः ॥ नार्थयोरनयोर्भेदोविद्यतेंब्वंभसोरिव ॥ २० ॥

अर्थ—हे राजन् ! यह तुमसे मैंने स्पष्टरूपसे कहदिया, यह संपूर्णसंसार अमूर्त तथा चित्की कल्पनामात्र है ॥ १७ ॥ राजा बोला–कि हे भगवन् ! सृष्टिकी आदि देहशून्य चैतन्य तथा उससे कृत देहादिकल्पना कैसे भासती है क्योंकि देहकेबिना चेतनका प्रकाश ऐसे नहीं होसकता जैसे भित्तिआदिकेबिना दीपका, अर्थात् सृष्टिके आरंभमेंही भ्रान्ति सिद्ध हो ले तो देहकी सिद्धि और देह सिद्ध हो ले तो भ्रान्ति सिद्ध हो यह अन्योन्याश्रय दोष है ॥ १८ ॥ हे महामत राजन् ! आपने जो देहशब्दका अर्थ (जड) समझा है वह तत्त्वज्ञकी दृष्टिमें ऐसे नहीं है जैसे आकाशमें पाषाणशिला का नृत्य, अर्थात् ज्ञानीकी दृष्टिमें सब ब्रह्मही है, वह देहादि सब कल्पना करलेताहै ॥ १९ ॥ जो ब्रह्मशब्दका अर्थ है वही देहशब्दका अर्थ है, जल तथा सलिलशब्दोंके अर्थके तुल्य इन दोनों (ब्रह्म तथा देह) शब्दोंके अर्थमें किंचि-त्भी भेद नहीं है ॥ २० ॥

यदेवब्रह्मदेहोसौस्वप्नाभःस्वप्नएषतु ॥ त्वद्बोधायोच्यतेयुक्तिर्नतुतत्स्वप्नएवतु ॥ २१ ॥ स्वप्नस्तवानुभूतार्थस्तेनातस्त्वंप्रबोध्यसे ॥ नतुसर्गेचिदाभातेसादृश्यंस्वप्नभस्मना ॥ २२ ॥ कस्तत्रनामदेहोयंकस्यैतेस्वप्नधीःक्वा ॥ स्वप्नेनज्ञावबुद्धेनभ्रमेणाज्ञोवबोध्यते ॥ २३ ॥ तत्रजाग्रन्नचस्वप्नोनसुषुप्तंनचेतरत् ॥ किमपीत्थमिदंभानंखमात्रंमौनमोमलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह देह जो तुम देखतेहो वह स्वप्नके देहवत् ब्रह्मही है और स्वप्नका दृष्टान्तभी तुमारे समझनेकेलिये कहतेहैं, यथार्थमें वह स्वप्नभी स्वप्न नहीं किन्तु ब्रह्मही है ॥ २१ ॥ स्वप्न तुमको अनुभूत है इसलिये इससे तुमको बोध करातेहैं, स्वप्नरूप भस्मसे बाधित पदार्थसे सृष्टिमें ब्रह्मकाशसे सादृश्य नहीं है किन्तु चिदात्मा ब्रह्मही सृष्टिरूपसे भासताहै ॥ २२ ॥ जब केवल ब्रह्मही है तब वहां देह क्या ! स्वप्नके पदार्थ किसके ! तथा स्वप्नबुद्धिभी क्या ! किन्तु स्वप्नरूप मिथ्याभ्रमसे ज्ञानी अज्ञानीको बोधित करताहै ॥ २३ ॥ न इस ब्रह्मपदमें जाग्रत्, सुषुप्ति, न स्वप्न और न अन्य कुछ है, किन्तु कुछ वाणीका अविषय, विराट्, विश्व तथा तैजस सबके लयका अधिष्ठान तुरीय ओंकारक लक्ष्य परमपुरुषार्थ चिदाकाशही यह सर्वरूपसे भासताहै ॥ २४ ॥

अभातमेवभातीवयदद्येत्थमिदंहुतत् ॥ प्राग्विभातंतथात्यच्छंजाग्रत्स्वप्नादिनोयथा ॥ २५ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौयन्मध्येसंविदोवपुः ॥ तन्मयंसर्वमेवेदंद्वैतमद्वैतमेवच ॥ २६ ॥ अन्यत्रचिन्मयंस्वप्नंद्वैताद्वैतंशुभाशुभम् ॥ निरावरणचिन्मात्रनभसैवोपमीयते ॥ २७ ॥ शून्यमर्थोपलंभश्चभानंचाभानमेवच ॥ द्वैतमैक्यमसत्सच्चसर्वंचिद्गगनंपरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! जो यह जगत् इससमय भासतास्त भान होताहै यह यथार्थमें नहीं भासताहै और सच्चिदानन्दपरमात्मा यद्यपि जगत्स्वरूपसे भासताहै तथापि स्वप्नवत् वह स्वच्छ अपनेही स्वरूपसे जाग्रत्‌मेंभी है और जाग्रत् तथा स्वप्न कुछभी नहीं हैं किन्तु ब्रह्मही है ॥ २५ ॥ एकदेशसे दूसरेदेशमें संवित्के प्राप्त होनेपर मध्यदेशमें जो निर्विषय चेतन है तन्मय यह संपूर्ण द्वैतअद्वैतरूप जगत् है ॥ २६ ॥ अज्ञानीकी दृष्टिमें समझानेके अर्थ स्वप्नका दृष्टान्त देतेहैं और ज्ञानीकी दृष्टिमें तो स्वप्नादि द्वैताद्वैत तथा शुभाशुभ संपूर्णजगत् शुद्ध चिन्मय है, तथा उसी निरावरण चिदाकाशकेसाथ उपमा दीजाती है ॥ २७ ॥ बिना पदार्थोंके उनकी उपलब्धि, पदार्थोंका भान, अभान (प्रलय) द्वैत, ऐक्य, सत् तथा असत् सब केवल चिदाकाशही है ॥ २८ ॥

पूर्णात्पूर्णंप्रसरतिपूर्णमेवस्थितंजगत् ॥ नचभातंनचाभातंशिलाबद्धोदरोपमम् ॥ २९ ॥ यतोजगच्चिदुन्मेषोव्योमात्माप्रतिघंततः ॥ चिन्मात्रंयत्रयत्रास्तितत्रतत्रोचितंजगत् ॥ ३० ॥ चिद्व्योमचास्तिसर्वत्रसर्वंचैतज्जगन्मयम् ॥ सर्वंब्रह्ममयंशांतंजगदित्यपिशब्दितम् ॥ ३१ ॥ यथास्थितमिदंविश्वंतथासंस्थमनामयम् ॥ ब्रह्मैवनिरवद्यात्मचित्संकल्पपुराकृति ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्णपरमात्मासे पूर्णस्वरूपही यह जगत् विस्तारको प्राप्तहोताहै और पूर्णरूपही स्थित है, न यह भात है और न अभात है, किन्तु शिलाके घनीभूत उदरके समान चिद्घनमात्र है ॥ २९ ॥ यह जगत् चित्का स्फुरणमात्र है इसलिये निराकार चिदाकाशमात्रही है, और जहां २ चिन्मात्र है (सर्वत्र) वहां २ जगत्‌भी स्थित है ॥ ३० ॥ चिदाकाश सर्वत्र है, सर्वजगत्‌रूपसे वही है, इस जगत्‌शब्दसे कथितभी सब शान्त ब्रह्मही है ॥ ३१ ॥ चित्के संकल्पित नगराकार यथास्थित यह संपूर्ण जगत् निरवद्य तथा निर्विकार ब्रह्मही है ॥ ३२ ॥

असंभवादन्ययुक्तेर्युक्तिरेषैवशोभना ॥ अयुक्त्यनुभवंवूक्तंनार्थिनामिहशोभते ॥ ३३ ॥ लोकेशास्त्रेथवेदादौयत्सिद्धंसिद्धमेवतत् ॥ सदस्त्वसद्वात्मनितद्धातुंशक्यंनवाक्वचित् ॥ ३४ ॥ तदेवेत्थंपरिज्ञातंब्रह्मतामुपगच्छति ॥ यदातेनसमंविश्वंस्थितमेवविलीयते ॥ ३५ ॥ न्यायेनैतदिहोक्तेनलोकवेदादिसिद्ध्यति ॥ सर्वंसजीवन्मुक्तत्वमेषएवोचितस्ततः ॥ ३६ ॥

अर्थ—परपुरुषार्थी श्रोताओंके संमुख अन्ययुक्तिका असंभव होनेसे स्वप्न तथा संकल्पके दृष्टान्तरूप युक्ति शोभित होती है, क्योंकि युक्ति तथा अनुभवरहित कथन उत्तम नहीं होता ॥ ३३ ॥ पुरुषार्थके अभिलाषी श्रद्धालु श्रोताओंको वेद, शास्त्र तथा लोकशिष्टाचारसे जो सिद्ध है वह वैसाही सिद्ध है, चाहै वह सत् हो वा असत् हो उसको त्याग नहींसकते ॥ ३४ ॥ स्वप्नसंकल्पके दृष्टान्तसे अब्रह्मरूपसे अंगीकृत तथा ज्ञात यह विश्व परमसाक्षीचेतनके साक्षात्कारवृत्तिरूप ज्ञानसे लय होकर ब्रह्मरूपताकोही प्राप्तहोताहै ॥ ३५ ॥ देह तथा ब्रह्मशब्दका अर्थ एकही है इत्यादि पूर्वकथित न्यायसे जीवन्मुक्तिसहित लोकवेदादि संपूर्णजगत् ब्रह्मरूपही सिद्ध होताहै, अतः यही उचित न्याय ज्ञानाभिलाषियोंको ग्रहण करना योग्य है ॥ ३६ ॥

परिज्ञातंचिदाकाशमपरिज्ञातपादपे ॥ सोहंत्रिजगदित्येवबंधमोक्षविनिर्णयः ॥ ३७ ॥ यथास्थितमिदंदृश्यंपरिज्ञानाद्विलीयते ॥ तज्ज्ञस्यास्तंगतस्यैवशिलामौनंतुशिष्यते ॥ ३८ ॥ लोकेशास्त्रेचवेदेचयत्सिद्धंसिद्धमेवतत् ॥ संवेद्यतेतदेवातस्तदेवंफलतिस्फुटम् ॥ ३९ ॥ सकलार्थनिरासेनयद्यत्संवेद्यतेचिरम् ॥ तदेवप्राप्यतेवश्यंसर्वत्रैवान्यभावितम् ॥ ४० ॥ यथानुभूतंयत्तत्तत्तथानामानुभूयते ॥ तत्सत्यमस्त्वसत्यंवायावल्लाभंतथानुतत् ॥ ४१ ॥ इत्थंमहाप्रश्नविचारणंतेमयेदमुक्तंमतिमन्महात्मन् ॥ अनेनगच्छाशुपथानिराधिर्निरामयोनिर्व्यसनोभवोच्चैः ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्वैतैक्योपलंभनिरासेनमहाप्रश्नोत्तरवाक्यसमाप्तिर्नाम दशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१० ॥

अर्थ—अपरिज्ञात आत्मारूप इस संसाररूपी पिप्पलवृक्षमें परिज्ञात चिदाकाशसे भिन्न अणुमात्रभी नहीं है, इस हेतुसे वह अपरिज्ञात चिदाकाश परिज्ञात होनेपर मैंही त्रिलोक, बन्ध तथा मोक्षरूप हूं यह सब निर्णीत होजाताहै

॥ ३७ ॥ ज्ञानमात्रसे यथास्थित यह विश्व लयको प्राप्तहोताहै, क्योंकि ज्ञानीका दृश्यरूप अस्त होनेसे वाणीका अविषय चिद्घनदर्शन (आत्मा) मात्र शेष रहताहै ॥ ३८ ॥ वेद, शास्त्र तथा जीवन्मुक्तजनोंमें जो अनेकविचारसे सिद्ध (सर्वब्रह्ममय) है वही निजअनुभवसेभी ज्ञात होताहै, अतः वही (सर्वब्रह्ममात्रता) परमपुरुषार्थ मोक्षरूपसे स्पष्ट फलित होताहै ॥ ३९ ॥ संपूर्णपदार्थोंका बाध करनेसे जो चिरकालतक (ब्रह्मभाव) भावित होताहै और लौकिककार्य्यमेंभी यदि अन्यरूपसे भावना कीजाय तो वही प्राप्तहोगा ॥ ४० ॥ इसमें इतना भेद है कि लौकिकपदार्थोंकी भावना असत्य है और मोक्षकी सत्य है, परन्तु लाभमें विशेषता नहीं है चाहै सत्य हो वा असत्य हो जैसी भावना जो करैगा उसको वैसाही अनुभूत होगा ॥ ४१ ॥ हे बुद्धिमते राजन्! इसप्रकार तुमारे प्रश्नोंका समाधान विचार, फल तथा निर्णयरूपसे मैंने किया, यदि तुम इस मेरे कथित मार्गसे चलोगे तो मानसिक तथा दैहिकपीडाओंसे रहित तथा इन्द्रियोंके व्यसनोंसे मुक्त होके सर्वोत्तम (जीवन्मुक्त) होजाओगे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे द्वैतैक्योपलंभनिरासेनमहाप्रश्नोत्तरवाक्यसमाप्तिर्नाम दशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१० ॥

एकादशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २११ ॥

सिद्धसाध्यादिके दर्शनोपायसहित सकल जगत् ब्रह्ममय है यह विषय पुनः स्पष्टरूपसे २११ के सर्गमें वर्णनकियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितत्रोपविश्याहंपूजितस्तेनभूभुजा ॥ प्रयोजनंस्वंसंपाद्यस्वर्गतुंगगनंप्लुतः ॥ १ ॥ अथैतद्भवताप्रोक्तंमयामतिमतांवर ॥ अनयासुदृशाशांतमनाःखात्माभविष्यसि ॥ २ ॥ ब्रह्मैवतदिदंसर्वंनिर्नामैवामलंनभः ॥ किमप्येवाजमाशांतमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ ३ ॥ चिद्घानमात्रमित्युक्तंब्रह्मेतिकल्पिताभिधम् ॥ परात्परमितिप्रोक्तंतत्तन्निर्नामकंपदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इसके पश्चात् वहां कुशद्वीपमें स्थित उस राजासे विधिपूर्वक पूजित होकर मैं अपना प्रयोजन (ज्ञानद्वारा राजाकी प्रसन्नता) सम्पादन करके स्वर्गगमनार्थ आकाशमार्गमें उडा ॥१॥ हे रामजी! इससमय अयोध्याजीमें यह मोक्षमार्ग तुमसे कहा, इस उत्तमज्ञानदृष्टिसे तुम शान्तमन चिदाकाशरूपही होजाओगे ॥ २ ॥ हे रामजी! आदि मध्य तथा अन्तशून्य, अजन्मा, अनिर्वचनीय, शान्त तथा शब्दशून्य आकाशवत् निर्मल ब्रह्मही यह सब है ॥ ३ ॥ हे रामजी! चिद्घानमात्र परमात्माका ब्रह्म यहभी नाम काल्पनिक है क्योंकि कूटस्थमें वृद्धिआदिका संबंध नहीं है, और परात्पर यहभी कथन इसलिये है कि परमात्माका कोईभी नाम नहीं है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरदिवौकसाम् ॥ ब्रह्मन्कथयदृश्यंतेलोकालोकधराःकथम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरदिवौकसाम् ॥ अन्येषामपिभूतानामपूर्वाणांमहात्मनाम् ॥ ६ ॥ प्रतिरात्रंप्रतिदिनंपुरःपश्चादुपर्यधः ॥ पश्यस्यालोकयंल्लोकानपश्यंश्चनपश्यसि ॥ ७ ॥ एतेलोकाःकिलैतेषांनाभ्यासःस्थानदूरगाः ॥ एतेसंकल्पलोकाख्याव्याप्तमेभिःकिलाखिलम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–कि हे ब्रह्मन्! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा तथा विद्याधरआदि जन तथा उनके आधारभूत लोक कहिये कैसे देखपडते हैं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा तथा विद्याधरादिको और इनके लोकोंको तथा अन्य अपूर्व महात्माओंको प्रतिरात्रि चूडालोपाख्यानोक्त धारणासे आगे, पीछे, नीचे तथा ऊपर तुम देखना चाहो तो देखो और न देखनाचाहो तो नहीं देखोगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे रामजी! इन सिद्ध, साध्य, यमादिके दोप्रकारके लोक हैं, एक तो महर्जन, तप तथा सत्यआदि हैं जो स्थानसे दूर हैं और दूसरे जो सर्वत्र भ्रमणकारी सिद्धादिक सकल सिद्ध लोक हैं, उनसे सम्पूर्ण ब्रह्मांड व्याप्त है, इन दोनोंप्रकारके लोक देखनेको धारणाका अभ्यास चाहिये वह तुमको नहीं है ॥ ८ ॥

यथैतेकल्पनालोकाअयंलोकस्तथैवनः ॥ यतेकाल्पनिकोवातोलोकालोकास्तथैवते ॥ ९ ॥ संकल्पस्वप्नलोकायेतवभांतिदिवानिशम् ॥ तएवतादृशाश्चान्येसंकल्पान्निःस्थिरीकृताः ॥ १० ॥ ध्यानेनत्वमपीतांश्चेत्स्थिरतांसुस्थिरात्मना ॥ नयस्याशुतदैवैतेस्थिरतांयांत्यविघ्नतः ॥ ११ ॥ यथाभिमतविस्ताराययथाभिमतसंपदः ॥ संकल्पभाववलितोजनःपश्यतिसिद्धवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार इन सिद्धादिके कल्पनासिद्ध लोक हैं ऐसेही यह हमाराभी लोक है, जैसे कल्पनासिद्ध पवन सर्वत्र भ्रमण करताहै ऐसेही लोकालोकभी हैं ॥ ९ ॥ जैसे तुमको संकल्प तथा स्वप्नमें अहर्निश लोक भासतेहैं वेही उनके लोकहैं, उन सिद्धादिकोंने अपने संकल्पसे उनको रचकर स्थिर करलियाहै ॥ १० ॥ हे रामजी ! तुम भोगधारणाके दृढध्यानसे तुमभी संकल्पसे प्राप्त लोकोंको यदि स्थिर कियाचाहो तो वे निर्विघ्नतापूर्वक स्थिरताको प्राप्त होजांयगे ॥ ११ ॥ और यदि अन्य कोईभी दृढ ध्याता अपने संकल्पभावसे निश्चित हो तो वह सिद्धके तुल्य अपनी इच्छानुसार विस्तार तथा इच्छानुसार सम्पत्तिसहित लोकोंको स्थिर देखताहै ॥ १२ ॥

किंतुतेस्थिरतांनीताःसिद्धैःस्वर्यानसंपदा ॥ अस्थिरैर्ध्यानविश्रांतौतैर्दुःखैस्तदमीकृताः ॥ १३ ॥ जगदप्रतिघंसर्वंशांतंचिद्व्योमसर्वदा ॥ यथादृढंसंविदितंतथैवाभातिनान्यथा ॥ १४ ॥ नभात्येवासंविदितमस्तिनास्तिनचोद्यता ॥ शून्यंह्यप्रतिघंचैतत्पराकाशमरोधकम् ॥ १५ ॥ चित्स्वभावतयाभातंभारूपमिवदृश्यते ॥ अस्मिंश्चिदभिमानश्चविद्यतेनस्वभावतः ॥ १६ ॥

अर्थ—किन्तु इतना विशेष है कि स्वर्ग तथा सिद्धलोकोंको प्राप्तकरनेवाली पूर्वकालकी धर्मसंपत्तिसे सिद्धोंने इन लोकोंको स्थिर करलिया और अनित्यधारणाके अभ्यासोंसे ध्यानके विश्रान्तिमें दुःखसे स्थिर होसकतेहैं, अर्थात् केवल ध्यानकालतक इससमयके ध्याताओंके संकल्पके लोक रहतेहैं ॥ १३ ॥ यह जगत् तो सर्वदा निराकार चिदाकाशरूप है, वह चिदाकाश जैसा दृढनिश्चय होताहै वैसाही भासताहै अन्यथा नहीं ॥ १४ ॥ क्योंकि असंविदित आत्मामें अस्तिनास्ति तथा भाति इत्यादि तर्कविषयता नहीं है और यह सब अवरोध (रुकावट) शून्य, निराकार चिदाकाशही है ॥ १५ ॥ दृढसंवेदनसे संवेदनप्रकाशरूप भासमान देखपडताहै वह चित्स्वभावसे है, यथार्थमें इस असंवित्में स्वभावसे चिदभिमान, चित्सत्ताकी व्याप्ति नहीं (क्योंकि स्वयं चिद्रूप) है ॥ १६ ॥

कार्यकारणभावाच्चेत्कथैवात्रनविद्यते ॥ व्योम्नोनंतस्यसिद्धस्यकिंकथंकिलजायते ॥ १७ ॥ यच्चजातमिवाभातिव्योम्निव्योमैवतत्तथा ॥ तत्रैकद्वित्वकलनाकीदृशीस्यादरूपिणी ॥ १८ ॥ तद्वियादृशमेवासीत्तादृगेवावतिष्ठते ॥ निर्विकारंयथास्वप्नेव्योमैवाचलवद्भवेत् ॥ १९ ॥ संकल्पेचित्तमाकारंयथोदेत्यद्रिलीलया ॥ नचसोद्रिर्नतद्व्योमतथाब्रह्मजगत्स्थितिः ॥ २० ॥

अर्थ—कार्य्यकारणभावसे इसकी अन्यसत्ता नहीं है, क्योंकि अनन्तसिद्ध चिदाकाशसे कैसे और क्या उत्पन्नहोगा, इसलिये उसकी (कार्य्यकारणकी) यहां कथाही नहीं है ॥ १७ ॥ और जो भूत भुवनआदि उत्पन्न हुयेकेसमान भासताहै वह आकाश (चिद्रूप) में आकाशही प्रादुर्भूत है, उसमें तो रूपरहित द्वित्व एकत्वआदिकीभी कल्पना नहीं होसकती तो कार्य्यकारणभावकी कल्पना कैसे होसकती है ॥ १८ ॥ और जिस चिदाकाशमें यह उत्पत्ति आदि भासती है वह तो जैसा निर्विकार है वैसाही विवर्तका अधिष्ठानभूत स्वप्नके चित्केसमान ज्योंका त्यों अचल स्थितरहताहै ॥ १९ ॥ स्वप्न तथा संकल्पमें चित्तही आकारकी कल्पना करके पर्वतादिकी लीलासे उदित होताहै और वहांपर चित्तसे भिन्न न पर्वत है, न वह आकाशादि है, ऐसेही इस ब्रह्म जगत्कीभी स्थिति है ॥ २० ॥

काष्ठवन्मौनमास्थायरटंतोपिमहाधियः ॥ इहव्यवहरंत्येवबुधादारुनराइव ॥ २१ ॥ यथावारिणिवर्ततेतरंगावर्तवृत्तयः ॥ अनन्याःपरिवर्ततेतथाब्रह्मणिसृष्टयः ॥ २२ ॥ यथावायौपरिस्पंदोयथाव्योमनिशून्यता ॥ अनन्याश्चाप्यमूर्ताश्चतथाब्रह्मणिसृष्टयः ॥ २३ ॥ यथासंकल्पनगरंशून्यमेवपुरःस्थितम् ॥ साकारमप्यनाकारंब्रह्मणीदंतथाजगत् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसीहेतुसे महाबुद्धिमान् जीवन्मुक्तजन निजतत्वदृष्टिसे काष्ठवत् व्यापाररहित मौन और ऊपरसे काष्ठकी प्रतिमाओंकेसमान शब्द करतेहुये व्यवहार करतेतेहैं ॥ २१ ॥ जैसे जलमें तरंग तथा आवर्तआदि जलसे अभिन्नरूपसे हैं ऐसेही ब्रह्म ये सब संसारकी सृष्टि हैं ॥ २२ ॥ तथा जैसे वायुमें संचलन और आकाशमें शून्यता उनसे अभिन्न और अमूर्तरूपसे है ऐसेही ब्रह्ममें सब भूतभौतिक सृष्टि हैं ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नसंकल्पका नगर शून्य तथा निराकार होकेभी साकार संमुखस्थित भासताहै ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् है ॥ २४ ॥

चिरानुभूतमप्यर्थकार्यपीदंजगत्रयम् ॥ शून्यमेवनिराकारंसंकल्पनगरंयथा ॥ २५ ॥ यदेवचित्तसंकल्पस्तदेवनगरंयथा ॥ तदातथायंब्रह्माच्छंतदेवजगदुच्यते ॥ २६ ॥ चिरंनित्यानुभूतोपिजगदर्थोनकिंचन ॥ विद्यतेपुरुषस्येहस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ २७ ॥ स्वप्नेपुंसामृतेनापिस्वदाहोदृश्यतेयथा ॥ असदेवसदाभासंजगदृष्टंपरेतथा ॥ २८ ॥ जगत्ताचाजगत्ताचपरस्यैवामलंवपुः ॥ पराभिधानंचपरंनचसत्

परमार्थतः ॥ २९ ॥ इत्थमस्तुयदिवान्यथास्तुवामैवभूद्भवतुकोत्रसंभ्रमः ॥ मुंचफल्गुनिफलेफलग्रहं बुद्धवानसिकृतंपरिश्रमैः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थोपदेशो नामैकादशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २११ ॥

अर्थ—चिरकालसे अनुभूत लौकिक तथा वैदिककार्य्य करनेमें समर्थभी यह त्रिलोक संकल्प तथा स्वप्नके नगरके सदृश शून्य तथा निराकारही है ॥ २५ ॥ जैसे स्वप्नसंकल्पके व्यवहारकालमें स्वप्नसंकल्पके नगरआदि चित्तरूपही हैं ऐसेही यह पूर्णरूपसे दृश्यमान संसारभी निर्मल ब्रह्मरूपही है ॥ २६ ॥ चिरकालसे नित्य अनुभूतभी जगत्का पदार्थ ऐसे कुछ नहीं है जैसे स्वप्नमें पुरुषका निजमरण ॥ २७ ॥ जैसे स्वप्नमें मृतपुरुष असत्यरूपही अपना दाह सत्केसमान भासमान देखताहै ऐसेही परब्रह्ममें यह जगत् है ॥ २८ ॥ जगत् तथा उसका अभाव (प्रलय) ये दोनों निर्मल परमात्माका स्वरूपही है, क्योंकि रज्जुआदिमें जो सर्पआदिका भान है वह परमार्थसे सत् नहीं है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! मुझसे कथित रीतिके अनुसार सिद्धआदि लोकोंके भोगआदि फल कल्पनामात्र हों वा अन्यमुनियोंसे वर्णित अन्यप्रकारके हों अथवा न हों, परन्तु जीवन्मुक्तदशाको प्राप्त तुमारा इसमें क्या आदर है, तुम सिद्धिआदि फलकी प्राप्तिमें पुरुषार्थबुद्धि त्यागो, क्योंकि तुम ब्रह्मपदको जानगयेहो, तुमारा सिद्धआदिके लोकोंके ऐश्वर्य्यआदि जाननेका परिश्रम व्यर्थ है ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे परमार्थोपदेशो नामैकादशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २११ ॥

द्वादशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१२ ॥

ब्रह्ममेंही ब्रह्माहंभावकी कल्पनासे ब्रह्माजी तथा त्रिलोक है इसलिये ब्रह्माका संकल्परूपही यह त्रैलोक्य है, इसकारण यह सब जगत् ब्रह्मरूपही है इसविषयका वर्णन इस २१२ के सर्गमें है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्त्वाद्ब्रह्मखमेवाहमितिवेत्तीवयत्स्वयम् ॥ तदेवपरमेष्ठित्वंतस्योदरमिदंजगत् ॥ १ ॥ एवंस्थितेनचब्रह्मानचजातंजगत्स्थितम् ॥ स्थितंयथास्थितमजंपरंब्रह्मैवपूर्ववत् ॥ २ ॥ संवित्तौतुजगद्रूपंभासतेप्येवमेवतत् ॥ मृगतृष्णेवमिथ्यैवदृश्यमानमपित्वसत् ॥ ३ ॥ अतःप्रभृतिशून्येयंभ्रांतिरभ्युदितानवा ॥ कुतःकेवकिलभ्रांतिर्ब्रह्मैवतदनामयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–कि हे रामजी ! चित्स्वभावसे प्रथम ब्रह्म आपही मैं समष्टिजीवरूप हुं इसप्रकार अहंसमष्टिरूपसे निजस्वरूपको अनुभव करताहै, परब्रह्मका यह स्फुरणरूप ज्ञानही हिरण्यगर्भरूप है उस हिरण्यका संकल्प यह संपूर्ण जगत् है ॥ १ ॥ जब ब्रह्मका संकल्पमात्रही सबकुछ है तब न ब्रह्मा कुछ है और न यह भासमान जगत् कभी उत्पन्न हुआ किन्तु अजन्मा ब्रह्म निजनिर्विकाररूपसे स्थित है ॥ २ ॥ और संवित् (अनुभव वा ज्ञान) में यद्यपि जगत्का रूप भासताहै परन्तु वह दृश्यमान होनेपरभी मृगतृष्णाके जलकेसमान मिथ्याही है ॥ ३ ॥ इस हेतु सृष्टिकालसे लेके यह रूप भ्रान्तिही उदित है, अथवा भ्रान्तिभी क्या होसकती है यह सब निरामय ब्रह्मही है ॥ ४ ॥

जगद्ब्रह्मजलावर्तोद्वित्वैकत्वेकिलात्रके ॥ कावर्तपयसोर्द्वित्वंद्वित्वाभावात्क्वचैकता ॥ ५ ॥ तद्ब्रह्मघनमाशांतंचित्त्वाचेतत्यहंविदत् ॥ निजंशून्यत्वमंतस्थंव्योमेवविततांतरम् ॥ ६ ॥ पवनःस्पंदनमिवहुताशनइवोष्णताम् ॥ स्वशैत्यमिवपूर्णेंदुःसत्तामर्थइवात्मनः ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एतद्ब्रह्मन्कदानामतन्नचेतितवन्मुने ॥ निरावृत्तमनाद्यंतंकिमिदानींप्रचेतति ॥ ८ ॥

अर्थ—जगत् तथा ब्रह्म, और जल तथा आवर्त इनमें द्वित्व एकत्व क्या होसकते हैं, जल तथा आवर्तमें द्वित्व कहां है, और द्वित्व न होनेसे एकताभी कहां है ॥ ५ ॥ इस हेतुसे सब शान्त ब्रह्मही है, वह चित्स्वभावसे समष्टिअहंकाररूप अहंभाव चेतताहै जैसे निजअन्तस्थ शून्य तथा विशालरूपको आकाश ॥ ६ ॥ जैसे वायु स्पन्दताको अग्नि उष्णताको और पूर्णचन्द्र स्वयं शीतताको चेतताहै ऐसेही ब्रह्म स्वयं पदार्थसत्ताको चेतताहै ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले कि–भगवन् ! यह ब्रह्मचेतन पदार्थ सत्तारूपसे कब नहीं चेतता क्योंकि वह अनादि अनंत निरावरण तो सदाही रहताहै तो सृष्टिकालमेंही पदार्थरूपसे क्यों चेतताहै ॥ ८ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतत्सदैवैतदहमाद्यपिचेतति ॥ नह्यनादेरजस्यास्यकाप्यपेक्षास्वसंविदा ॥ ९ ॥ सर्गासर्गनभोरूपंब्रह्मसर्वत्रसर्वदा ॥ नकदाचिदिदंनेदंज्ञातंनेदंचकिंचन ॥ १० ॥ पवनस्पंदनंचंद्रशै

त्यंशून्यत्वमंबरम् ॥ ब्रह्माहंत्वमनन्यात्मनकदाचिन्नचेतति ॥ ११ ॥ सर्वदैवेदृशीसत्तानकदाचिदनीदृशी ॥ जगद्यस्मादनाद्यंतंब्रह्मात्मैवनिरामयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! तुमारा कथन यथार्थ है, यह ब्रह्मचेतन सदा अहंभावादि निजरूपसे चेतताहै, क्योंकि इस अनादि अजन्मा परमात्माको स्वरूप चैतन्य (विश्व) द्वारा निजस्वरूपकी स्फुर्तिमें तथा अविद्याद्वारा अहंकारादि सकल जगत्‌रूपसे स्फूर्तिमें अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं है ॥ ९ ॥ सृष्टि तथा उसका अभाव ये दोनों चिदाकाशकेही स्वरूप हैं, वह ब्रह्म सदा सर्वत्र है अविद्या (जगत् आदि) दृष्टिसे यह शुद्धचिद्रूप नहीं ज्ञात होता और विद्यादृष्टिसे यह कुछ हैही नहीं, केवल चिद्रूपही सब है ॥ १० ॥ और दोनों मिलितदृष्टिसेभी पवन तथा स्पन्द, चन्द्रमा और शीतलता तथा आकाश और शून्यता जैसे अभिन्नरूप हैं ऐसेही ब्रह्म तथा अहंकारादि जगत् अभिन्नरूप है, अतः वह कब अपने स्वरूपको नहीं चेतता (अनुभव करता) है ॥ ११ ॥ चिदाकाशसे अभिन्न समष्टि वा व्यष्टि चेतनकी कल्पनानुसार संसारकी सत्ता सदा ऐसेही रहती है, इससे भिन्न नहीं रहती, क्योंकि यह जगत् अनादि अनन्त तथा निरामय ब्रह्मही है ॥ १२ ॥

केवलंत्वमबुद्धत्वाच्छब्दश्रवणवेधितः ॥ अद्वयेब्रह्मबोधेस्मिन्द्वितामभ्युपगच्छसि ॥ १३ ॥ नकश्चिल्किंचिदेवेहनकदाचिन्नचेतति ॥ नकश्चिच्चतदन्यात्मानकदाचिच्चचेतति ॥ १४ ॥ इदंत्रिभुवनाभासमीदृशंभातिसर्वदा ॥ शांतंरामसमंब्रह्मनेहनानास्तिकिंचन ॥ १५ ॥ नकदाचनजायंतेनभसःपादपाद्रयः ॥ ब्रह्मणश्चजगंतीतिमत्वाशांतिपरांव्रज ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमको यद्यपि ब्रह्मज्ञान होगयाहै तथापि अज्ञानको स्वीकार करके मेरे उपदेशके शब्दश्रवणमें आसक्तचित्त होके प्रपंच तथा निष्प्रपंचरूप द्वैतताको मानतेहो न कि यथार्थमें ॥ १३ ॥ हे रामजी ! उभयदृष्टिसे सब ब्रह्ममय है उसके अन्तर्गत कोई जीव जो कुछ चेतताहै वह उस जीवसे अभिन्नरूप ब्रह्मही चेतताहै और निर्विक्षेप ब्रह्मदृष्टिसे कदापि कोई कुछ नहीं चेतता ॥ १४ ॥ हे रामजी ! बद्धकी दृष्टिमें यह त्रिलोकीरूपसे ब्रह्मही सदा भासताहै, और मुक्तकी दृष्टिमें तो शान्त, सर्वत्र एकरूप ब्रह्मही सब है अन्य नानाभाव कुछ नहीं है ॥ १५ ॥ और अज्ञदृष्टिके मिथ्या सिद्ध होनेसे जैसे आकाशसे वृक्ष पर्वतआदि नहीं उत्पन्न होते ऐसेही ब्रह्मसे जगत्‌भी नहीं उत्पन्न होते ऐसा मानकर तुम शान्तिको प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

उपदेश्योपदेशार्थंसंदेहावसरेल्पधीः ॥ यावन्नबुद्धस्तावत्त्वंभेदमभ्युपगच्छसि ॥ १७ ॥ बोधस्यतुविबुद्धस्यनशास्त्रादिनशब्दधीः ॥ नभेदबुद्धिर्नोभेदःकिमप्येषप्रजापतेः ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ बुद्धमेतन्मयाब्रह्मन्प्रकृतंतदुदाहर ॥ वचोमदवबोधार्थंयद्उदाहृतवानसि ॥ १९ ॥ किंतस्मिंश्चेतितेऽहंत्वेपदेसंपद्यतेपरे ॥ बुद्धवानसिशुश्रूषुर्नाहंतृप्तिमुपैमिहि ॥ २० ॥

अर्थ—और यदि उपदेश तथा उपदेश्यक्रमकी प्रवृत्तिके अर्थ संदेहके अवसरमें अल्पबुद्धि होकर जबतक तत्त्वपदार्थ नहीं जाना तबतक भेद मानतेहो तो मानो, इसमें कोई हानि नहीं है ॥ १७ ॥ और बोधरूप ब्रह्मस्वरूप माननेवालेको तो न शास्त्रादि, न शब्दबुद्धि, अहंकार, उसके संकल्पमय जगत्‌बुद्धि, तथा प्रजापति और निजस्वरूपमें भेदबुद्धि सब शान्त होजाती है ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! इसविषय (ब्रह्म कब नहीं चेतता) को मैंने समझलिया, अब प्रकृत मेरे बोधार्थ जो समष्टि अहंकारके अध्यासनिरूपणका प्रस्ताव कियाथा उसे कहिये ॥ १९ ॥ हे गुरो ! उस परब्रह्ममें अहन्तास्फुरणके अनन्तर पुनः क्या होताहै, आप सर्वज्ञ हैं अतः सब कुछ जानतेहैं और मैं आपके वचनोंको सुनकर तृप्त नहीं होता इसलिये कहिये ॥ २० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अहंत्वेसत्यथैतस्मिन्व्योमसत्ताप्रवर्तते ॥ दिक्सत्ताकालसत्ताचभेदसत्ताभ्युदेतिच ॥ २१ ॥ यदाकिलेहाहमितितदानात्राहमित्यपि ॥ भातीत्युदेतिनानाखेस्वात्मैवद्वैतमक्रमम् ॥ २२ ॥ व्योमात्मिकानामेतासांसत्तानामभिधानधीः ॥ भविष्यत्युत्तरंकालंतदात्वाकाशमेवतत् ॥ २३ ॥ एतस्मिन्परिसंपन्नेदिक्कालकलनात्मनि ॥ अहंभावेनिराकारेव्योमतन्मात्रवेदिनि ॥ २४ ॥ इदमाभातिभारूपंवेदनंदृश्यनामयत् ॥ भूत्वाब्रह्मैवनिर्बाधमब्रह्मेवविराजते ॥ २५ ॥ ब्रह्मैवशांतमजमेकमनादिमध्यंव्योमैवजीवकलनामिवभावयित्वा ॥ व्योम्न्येवपश्यतिनिरावरणेविसारिदृश्यंस्वरूपमपिचान्यदिवात्मविस्वात् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थनिरूपणं नाम द्वादशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस परमपदमें अहन्ताके स्फुरण होनेपर आकाशसत्ताका अध्यास है, पुनः दिक्सत्ता, कालसत्ता और भेदसत्ता अर्थात् देश, काल तथा वस्तुकृत परिछिन्न भेदसत्ता उदित होती है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! जब इस आत्माको देहादि अहंभान होताहै, तब यहभी अवश्य भान होताहै कि अमुक देशकालमें मैं नहीं हूं इसप्रकार देश, काल तथा वस्तुकृत परिच्छेदरूपसे निजआत्माही नानाप्रकार अक्रम द्वैतरूप होकर उदित होताहै ॥ २२॥ अनन्तर इन चिदाकाशमय सत्ताओंकी परस्पर भेदकजाति, गुण तथा क्रियादिके प्रवृत्तिनिमित्तभेदक कल्पनासे नाम अर्थात् वाचकशब्दोंका अध्यास होताहै परन्तु यथार्थमें वह चिदाकाशरूपही है ॥ २३ ॥ इसप्रकार निराकार इस परमपदमें अहंभावसे देशकालादि कल्पना सिद्ध होनेपर यह जो प्रकाशरूपसे दृश्यनामसे भासताहै उसमें अहंभावमें जीव साक्षीचित्में आवरणके अभावसे सर्वत्र स्वाभाविकचित्की अभिव्यक्ति होनेसे उस २ स्थानमें जगत्आकारसे ब्रह्मही अब्रह्म संसाररूपसे विराजताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे रामजी ! शान्त, अजन्मा, आदिअन्तमध्यशून्य जीव जगद्भावरहित तथा अद्वितीय ब्रह्मही जीवादिका अध्यास करके निरावरण साक्षीचिदाकाशमेंही अतिविशाल इस जगद्दृश्यको देखताहै, और जबतक आत्मज्ञान नहीं होता तबतक निजशुद्धचिद् आत्मस्वरूपकोभी अन्यके सदृश देखताहै॥२६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे परमार्थनिरुपणं नाम द्वादशोत्तरद्विशततः सर्गः ॥ २१२ ॥

त्रयोदशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥

श्रीरामजी तथा वसिष्ठजीके पूर्वभवके संवादमें गुरुशिष्यआख्यायिकारूपसे सब ब्रह्मही है यह निश्चित विषय इस २१३ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथायत्पृष्टवानद्यत्वंमामरिनिषुदन ॥ शिष्येणैवसतापूर्वमहंपृष्टोगुरुस्त्वया ॥ १ ॥ पुराकल्पेहिकस्मिंश्चित्तत्त्वमात्मादिकात्मिका ॥ आसीदियंचित्प्रतिभागुरुशिष्यात्मनावने ॥ २ ॥ गुरुस्तत्राहमभवंशिष्यस्त्वमभवस्तदा ॥ पृष्टवान्मांत्वमग्रस्थइदमुद्दामधीरधीः ॥ ३ ॥ शिष्यउवाच॥ सर्वस्यभगवञ्छिधिममेममतिसंशयम् ॥ किंनश्यतिमहाकल्पेकिंवस्तुनविनश्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे शत्रुनिषूदन रामजी ! जो विषय इससमय तुमने मुझसे पूंछा है यही विषय अन्यरामावतारमें तुमने पूंछाथा उससमय मैं गुरु था और तुम शिष्य थे ॥ १ ॥ हे पूर्वकल्पमेंभी तुम राम थे और मैं वसिष्ठ था, उससमयभी तुमको वैराग्य हुआ और मेरे आगमनमें किसी बनमें गुरुशिष्यके संवादमें इसी चित्प्रतिभाके विषयमें उससमयभी प्रश्नोत्तर हुयेथे ॥२॥ हे रामजी ! उससमय जब मैं गुरु हुआ और तुम शिष्य हुये तब उदारबुद्धि तुमने इस वक्ष्यमाण विषयमें पूंछा ॥ ३ ॥ शिष्य बोला कि—हे भगवन् ! मुझे इस संपूर्णजगत्के विषयमें अधिक संशय है उसे आप छेदन कीजिये. हे गुरो ! महाकल्पमें कौन वस्तु नष्ट होती है और कौन नहीं ॥ ४ ॥

गुरुरुवाच ॥ पुत्रशेषमशेषेणदृश्यमाशुविनश्यति ॥ यथातथास्वप्नपुरंसौषुप्तींस्थितिमीयुषः ॥ ५ ॥ निर्विशेषेणनश्यंतिभुवःशैलादिशोदश ॥ क्रियाकालःक्रमश्चैवनकिंचिदवशिष्यते ॥ ६ ॥ नश्यंतिसर्व भूतानिव्योमापिपरिणश्यति ॥ ससर्वजगदाभासमुपलब्धुरसंभवात् ॥ ७ ॥ ब्रह्मविष्णिवद्ररुद्राद्यायो हिकारणकारणम् ॥ तेषामप्यतिकल्पांतेनामापीहनविद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—गुरु बोले कि—हे पुत्र ! जैसे सुषुप्तिदशामें प्राप्त आत्माके उसके स्वरूपके व्यतिरिक्त संपूर्ण स्वप्नप्रपंच नष्टहोजाताहै ऐसेही महाप्रलयमें ब्रह्मसे सब जगद्दृश्य नष्टहोजाताहै ॥ ५ ॥ हे शिष्य ! संपूर्णरूपसे यह पृथिवी, पर्वत दशोंदिशा तथा क्रियाकालादिका क्रम सब नष्ट होजाताहै, कुछभी शेष नहीं रहता ॥ ६ ॥ हे शिष्य ! संपूर्ण भूत नष्टहोजातेहैं और संपूर्णजगत्के आभाससहित अव्याकृतमें यह आकाशभी लीन होजाताहै, क्योंकि प्रलयकालमें भोक्ताहीका असंभव है तब भोग्यवस्तु कैसे रहै ॥ ७ ॥ हे शिष्य ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश जो कारणोंकेभी कारण हैं, उनकाभी नाम महाकल्पके अन्तमें नहीं रहता ॥ ८ ॥

शिष्यतेहिचिदाकाशमव्ययस्यानुमीयते ॥ तत्कालशेषतानेनसर्गानुभवहेतुना ॥ ९ ॥ शिष्यउवाच ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ इदंतत्कथमाभोगिविद्यमानंकगच्छति ॥ १० ॥ गुरुरुवाच ॥ नविनश्यतएवेदंततःपुत्रनविद्यते ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ ११ ॥ यत्तुवस्तुतएवास्तिनकदाचनकिंचन ॥ तदभावात्मतद्रामकथंनामविनश्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—उससमय केवल अविनाशी चिदाकाश शेष रहताहै, क्योंकि निजस्वरूपमें अध्यस्त सृष्टियोंके अनुभवका हेतु चिदाकाशही सर्वप्रपंचके अभावकाभी साक्षी होताहै, और उसकाभी नाश हो तो साक्षी बिना प्रलयकीही असिद्धि होजाय अतः चिन्मात्रकी सत्ता अनुमानसेभी सिद्ध है ॥ ९ ॥ शिष्य बोला—कि हे गुरो ! असत्पदार्थका भाव (सत्ता) नहीं है, और सत्का अभावभी नहीं होसकता, तब यह विशाल विद्यमान जगत् प्रलयकालमें कहां चलाजाताहै ॥ १० ॥ गुरु बोले कि—हे शिष्य ! यह जगत् नष्ट नहीं होता अतएव यह नहीं है, अर्थात् श्रुति स्मृति आदिमें प्रसिद्ध जगत्काही प्रलय अपलापके योग्य नहीं है, किन्तु मायिकसिद्ध जगत्काही अभाव दर्शाते हैं अतः यह तुमारेही कथनसे युक्त हुआ कि असत् (मायासिद्ध जगत्) का भाव नहीं है, और सत् ब्रह्मका अभावभी नहीं है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! और जो यथार्थमें है वह असत् कदापि नहीं होसकता, और उसके सद्भावका नाशभी किसीप्रकार नहीं होता ॥ १२ ॥

कस्थितंमृगतृष्णांबुकस्थिरोद्वींद्वविभ्रमः ॥ कस्थिराकेशदृग्व्योम्निकभ्रांत्यनुभवःस्थिरः ॥ १३ ॥ सर्वंदृश्यमिदंपुत्रभ्रांतिमात्रमसन्मयम् ॥ स्वप्नेपुरमिवाभातिकथमेतन्नशाम्यति ॥ १४ ॥ शाम्यतीदमशेषेणतथासर्वत्रसर्वदा ॥ यथाजाग्रद्विधौस्वप्नःस्वप्नेवाजागरोयथा ॥ १५ ॥ यथास्वप्नपुरंशांतंनजानेकाशुगच्छति ॥ शांतंतथाजगद्दृश्यंनजानेकाशुगच्छति ॥ १६ ॥

अर्थ—मृगतृष्णाका जल कहां स्थिर है ! दोचन्द्रका भ्रम कहां स्थिर है ! आकाशमें केशादिका दर्शन कहां स्थिर है ! और भ्रमसिद्ध अनुभव कहां प्रतिष्ठा प्राप्तकरताहै ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! यह सम्पूर्ण दृश्यभी मृगतृष्णाआदिके तुल्य असत् है, स्वप्ननगरवत् जो भासताहै वह कैसे नहीं शान्त होसकताहै ॥ १४ ॥ जैसे जगत्में स्वप्नमें जाग्रत्का बाध सदा तथा सर्वत्र सिद्ध है ऐसेही यह संपूर्ण दृश्यभी सर्वथा बाधित होनेसे शान्त होजाताहै ॥ १५ ॥ जैसे स्वप्नका नगर जाग्रत् होनेपर शान्त होके न जानै शीघ्र कहीं जाताहै ऐसेही यह जगत्दृश्यभी आत्मज्ञानसे शान्त होके न जानै शीघ्र कहां चलाजाताहै ॥ १६ ॥

शिष्यउवाच ॥ किमिदंभातिभगवन्नविभातिचकिंपुनः ॥ कस्येदंवस्तुनोरूपंचिद्व्योम्नोविततारुतेः ॥ १७ ॥ गुरुरुवाच ॥ चिदाकाशमिदंपुत्रस्वच्छंकचकचायते ॥ यन्नामतज्जगद्भातिजगदन्यन्नविद्यते ॥ १८ ॥ अस्यैतद्वस्तुनोरूपंचिद्व्योम्नोविततारुतेः ॥ रूपमत्यजदेवाच्छंयदित्थमवभासते ॥ १९ ॥ कचनाकचनंसर्गक्षयात्मास्यनिजंवपुः ॥ व्योमात्मशुक्लकृष्णंस्याद्यथावयविनोवपुः ॥ २० ॥

अर्थ—शिष्य बोला कि—हे भगवन् ! यदि दृश्य नहीं है तो कुछकालतक दृश्यरूपसे क्या भासताहै और बोधोत्तर पुनः नहीं भसता, यह भान तथा अभान किसका रूप है ! क्या विशालाकार चिदाकाशके यह दोनों (भानाभान) रूप हैं ॥ १७ ॥ गुरु बोले कि—हे पुत्र ! जैसे शुक्ति निजचाकचक्यसे रजत (चांदी) रूपसे स्फुरती है ऐसे स्वच्छ चिदाकाशही निजचित्स्वभावसे जगत्स्वरूपसे स्फुरित होरहाहै, उससे भिन्न कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ इस व्यापक चिद्वस्तु चिदाकशका यह स्वरूपही है कि वह अपने निर्मल चित्स्वरूपको न त्यागता हुवाभी इसप्रकार जगत्स्वरूपसे भासताहै ॥ १९ ॥ स्फुरण तथा उसका अभाव, सृष्टि और प्रलय ये दोनों इस चिदाकाशके ऐसे स्वरूप हैं जैसे आकाशके शुक्ल कृष्ण वा अवयवीके अवयव ॥ २० ॥

यथायंत्वंसितोदांतरेकएवादितःकचैः ॥ तथाब्रह्मैवमच्छात्मसर्गेसर्गक्षयेऽक्षयम् ॥ २१ ॥ यथास्वप्नेसुषुप्तेचनिद्रैकैवाक्षयानिशम् ॥ सर्गेस्मिन्प्रलयेचैवब्रह्मैकंचितिरव्ययम् ॥ २२ ॥ यथास्वप्नेजगद्द्रष्टुःशांतंशाम्यत्यशेषतः ॥ तद्वदस्मज्जगदिदंशांतंशाम्यत्यशेषतः ॥ २३ ॥ तदन्यत्रास्तिखेखाख्यंतथेत्यंगनविद्महे ॥ अशंक्यंपरखेत्वेतदस्मच्चिद्व्योम्निसंभवात् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हे रामजी ! जैसे तुम स्वच्छोदक ह्रदमें प्रवेशके पूर्व और बिंबप्रतिबिंबभावादिरूपसे स्फुरणके पश्चात् अक्षय उदयसहित एकही हो ऐसेही ब्रह्मभी सृष्टिके पूर्व सृष्टिका तथा प्रलयादिरूपसे भासनेपरभी एक अविनाशी स्वरूपही है ॥ २१ ॥ जैसे स्वप्न तथा सुषुप्तिमें सदा अविनाशी चेतन एकरूप रहताहै ऐसेही सृष्टि तथा प्रलयमें ब्रह्मचेतन एक अक्षय (अविकारी) रूप रहताहै ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्नमें जाग्रत् तथा सुषुप्तिमें शान्तरूपही पूर्णरूपसे शान्त होजाताहै, ऐसेही शान्त यह हमारा जगत्भी बोधदशामें सब शान्त होजाताहै ॥ २३ ॥ बाधित होनेसे शून्यरूप वह स्वप्नका जगत् अन्यत्र है इसको हम बोधदृष्टिसे नहीं जानते, और वह अन्यजीवाकाशमें रहैगा ऐसी शंका तो सर्वथा अयोग्य है क्योंकि हमारे वासनामय संसारका हमारेही (इस शरीरोपाधिसहित) जीवाकाशमें संभव है ॥ २४ ॥

यथेहास्मच्चिदाकाशकचनंसर्गसंक्षये ॥ तथान्यत्संविदाकाशंनैवमित्यत्रकाप्रमा ॥ २५ ॥ शिष्यउवाच ॥ एवंचेत्तद्यथास्वप्नेद्रष्टुरन्यःसद्दृश्यधीः ॥ विद्यतेतद्वदन्यत्रमन्येस्तिजगदादिधीः ॥ २६ ॥ गुरुरुवाच ॥ एवमेतन्महाप्राज्ञस्वरूपंतुनतज्जगत् ॥ चितिभातिस्वरूपंतत्तद्वदेवनभातिच ॥ २७ ॥ नभातिनचतत्किंचिन्नचतत्किंचिदेवसत् ॥ तच्चिदाकाशकचनंकेतत्रसदसद्दृशौ ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे हमारे चिदाकाशका जगत्रूपसे स्फुरण सृष्टिके क्षय वा प्रलय बाधित होनेपर नहीं है वैसाही अन्यभी नहीं है इसमें क्या प्रमाण है अर्थात् हमारा अनुभवसिद्ध जगत् ज्ञानसे बाधित होके अन्यजीवाकाशमें प्रविष्ट हो तो अन्यके बोधसे ऐसा नहीं होता इसमें कुछ प्रमाण नहीं है ॥ २५ ॥ शिष्य बोला कि–हे भगवन् ! यदि हमारे संवित्का विषय अन्यसंवित्में नहीं प्रविष्टहोता तो स्वप्नद्रष्टासे भिन्न जाग्रत्पुरुषको जैसे दृश्यकी बुद्धि रहती है ऐसेही एक पुरुषके प्रलयकालमेंभी अन्यपुरुषको जगत्की बुद्धि रहैगी ऐसी सम्भावना करताहूं ॥ २६ ॥ गुरु बोले कि–हे महाप्राज्ञ रामजी ! जैसा कहतेहो यह ऐसाही है, यदि जगत् यथार्थमें चित्का स्वरूप होता तो सर्वसाधारण एकरूप होता किन्तु यह नहीं है, चित्में अध्यस्त जगत्के द्रष्टाओंको वह भासताहै अन्यको नहीं भासता ॥ २७ ॥ यह जगत् सबको साधारण एकरूपसे नहीं भासता अतएव तुच्छ है सत् नहीं है किन्तु तत्तज्जीव चिदाकाशका स्फुरणमात्र है, इसमें सदसद्दृष्टि कहां होसकती है ॥ २८ ॥

विद्यतेतद्धिसर्वत्रसर्वंसर्वेणसर्वदा ॥ नविद्यतेचतत्किंचित्सर्वंसर्वत्रसर्वदा ॥ २९ ॥ तत्सत्तत्सर्वदा सर्वमसच्चासद्धिवाखिलम् ॥ तन्मयंतच्चिदाकाशंननाशिनचनाशितत् ॥ ३० ॥ यन्नामसच्चिदाकाशंसर्गप्रलयरूपितत् ॥ तद्दुःखायापरिज्ञातंपरिज्ञातंपरःशमः ॥ ३१ ॥ विद्यतेसर्वथैवेदंसर्वंसर्वत्रसर्वदा ॥ नविद्यतेसर्वथाचसर्वंसर्वत्रसर्वदा ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि जगत्की सत्ता अधिष्ठान चिदाकाशरूपसे कहो तो वह सर्वत्र सर्वदा सबप्रकारसे है और यदि जगत्स्वरूपसे कहो तो किंचित् कदाचित् कहींभी नहीं है ॥ २९ ॥ ब्रह्मही सदसद्स्वरूप (रूपसे सत् वृत्तियोंसे तिरोहित होनेसे असत्) है अतः जगत्भी सदसत् है और चिदाकाश अविनाशी है ॥ ३० ॥ चिदाकाशही सृष्टि तथा प्रलयरूप है, वह अपरिज्ञातरूप दुःखार्थ है और ज्ञात होनेसे परमशान्तिरूप है ॥ ३१ ॥ ज्ञानीको यह ब्रह्म सदा सर्वरूप सर्वत्र है और अज्ञानीकेलिये कहीं कदाचित् किसीरूपसे नहीं है ॥ ३२ ॥

एषदेवोघटःशैलःपटःस्फोटस्तटोवटः ॥ तृणमग्निःस्थावरंचजंगमंसर्वमेवच ॥ ३३ ॥ अस्तिनास्तिचशून्यंचक्रियाकालोनभोमही ॥ भावाभावौभवोभूतिर्नाशाःपाशाःशुभाशुभाः ॥ ३४ ॥ तन्नास्त्येवनयन्नामनित्यमेकस्तथाबहिः ॥ आदिमध्यमथांतंतुकालत्रितयमेवच ॥ ३५ ॥ सर्वंसर्वेणसर्वत्रसर्वदैवात्रविद्यते ॥ सर्वंसर्वेणसर्वत्रसर्वदात्रनविद्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यही ब्रह्म, देव, घट, पट, शैल, पृथिवी तट जलस्फोट, गढा, अग्नि, तृण तथा सर्व स्थावरजंगमरूप सर्वत्रहै ॥ ३३ ॥ अस्ति, नास्ति, शून्य, क्रिया, काल, आकाश, पृथिवी, भाव, अभाव, जन्म, नाश, पाश तथा शुभ-अशुभ सर्वरूप यही परमात्मा है ॥ ३४ ॥ ऐसा कोईपदार्थ नहीं है जहां यह एक अद्वितीय नित्य परमात्मा बाह्य, आभ्यन्तर, आदि, अन्त, मध्य तथा त्रिकालरूपसे न हो ॥ ३५ ॥ अधिष्ठानरूपसे सबप्रकारसे सब सर्वदा इस चिदाकाशमें और निज २ रूपसे सब सदा सर्वप्रकारसे इस चिदाकाशमें नहीं है ॥ ३६ ॥

यदेवंरामसर्वात्मसर्वमेवास्तिसर्वदा ॥ ब्रह्मात्मत्वात्स्वप्नसंवित्पुरन्यायेनचैतदा ॥ ३७ ॥ तृणंकर्तृतृणंभोक्तृब्रह्मात्मत्वात्तृणंविभुः ॥ घटःकर्ताघटोभोक्ताघटःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ ३८ ॥ पटःकर्त्तापटोभोक्तापटःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ दृशिःकर्त्तादृशिर्भोक्तादृशिःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ ३९ ॥ गिरिःकर्त्तागिरिर्भोक्तागिरिःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ नरःकर्त्तानरोभोक्तानरःसर्वेश्वरेश्वरः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! स्वप्नसंवित्के नगरआदि दृष्टान्तसे सर्वब्रह्ममय होनेसे संपूर्णपदार्थ सर्वत्र सर्वात्मक है ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! सर्व ब्रह्ममय होनेसे तृण कर्ता, तृण भोक्ता, तृण व्यापक है, घट कर्ता, घट भोक्ता और घटही इन्द्रादि ईश्वरोंकाभी ईश्वर ॥ ३८ ॥ इसीरीतिसे पट कर्ता, पट भोक्ता और पट ईश्वरोंकाभी ईश्वर है, दर्शन, (नेत्रेन्द्रिय वा ज्ञानरूप ब्रह्म) कर्ता, दर्शन भोक्ता, तथा दर्शनही सर्वेश्वरोंका ईश्वर है ॥ ३९ ॥ पर्वत कर्ता पर्वत भोक्ता तथा पर्वतही सब इश्वरोंका ईश्वर है, तथा सर्व ब्रह्ममय होनेसे मनुष्यही कर्ता, मनुष्यही भोक्ता और मनुष्यही इन्द्रादि ईश्वरोंकाभी ईश्वर है ॥ ४० ॥

प्रत्येकंसर्ववस्तूनांकर्त्ताभोक्तापरात्परः ॥ अनादिनिधनोधातासर्वंब्रह्मात्मकंयतः ॥ ४१ ॥ तृणकुंभाद यस्त्वेतेस्वयाविभुतयाविभुः ॥ एवंरूपास्थितारूपंयद्विभातःक्षयोदयौ ॥ ४२ ॥ बाह्योर्थोस्तिसएवेहक र्त्ताभोक्तातथाविधः ॥ विज्ञानमात्रमेवास्तिकर्तृभोक्तृतथाविदाम् ॥ ४३ ॥ नकश्चिच्चैवकर्तेहनचभोक्ता तथाविदाम् ॥ कश्चिदीश्वरएवेहकर्ताभोक्तातथाविदाम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब ब्रह्मस्वरूप है इस हेतुसे सब वस्तुओंमें प्रत्येक वस्तु कर्ता प्रत्येक भोक्ता और प्रत्येक वस्तु श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठ (ब्रह्मरूप) तथा प्रत्येक वस्तु अनादिनिधन और विधाता है ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! ये तृण घटपटादि पदार्थ निजसाक्षी व्यापकरूपसे विभु (ब्रह्म) रूपसे स्थित हैं और जिस रूपसे क्षयोदय भासतेहैं, वहां उस रूपसे व्यापक ब्रह्मरूपताही स्थित है ॥ ४२ ॥ जिनके मतमें बाह्यविज्ञानसे भिन्न पदार्थ है उनके (वैशेषिकादिके) मतसे वही कर्ता भोक्ता है और जिनके (बौद्धोंके) मतमें विज्ञानमात्रही सबकुछ उनके मतसे वही (विज्ञान) कर्ता भोक्ता सब कुछ है ॥ ४३ ॥ शून्यवादियोंके मतमें कुछ नहीं है तो उनके मतमें वह वैसा है और पाशुपतआदिके मतमें प्रकियाप्रसिद्ध ईश्वर है तो उसप्रकार ज्ञानवालोंको वही ईश्वर सर्व कर्ता भोक्ता है ॥ ४४ ॥

सर्वमेवपदेतस्मिन्संभवत्युत्तमोत्तमे ॥ विधयःप्रतिषेधाश्चकेतेस्संतिनसंतिके ॥ ४५ ॥ शुद्धेद्रष्टेवचि द्व्योमदृश्यतामिवभासयत् ॥ स्वमात्मानंजगदितिपश्यंस्तिष्ठेदनामयम् ॥ ४६ ॥ सर्वाद्दशोविधिनिषे धदृशश्चसर्वाःसंकल्पवेदनविशेषसशेषपूर्वाः ॥ सत्यात्मिकाःसततमेवनचैवसत्यारूपंयथानुभवमत्र यतःस्वरूपम् ॥ ४७ ॥ इतित्वयाशिष्यतयामदंतिकाच्छ्रुतंपुरातेननचासिबुद्धवान् ॥ ततोनुभूयाम्य जगद्भवाद्भवानिहाद्यजातोसितदेवपृच्छसि ॥ ४८ ॥ ज्ञानंसदेतदखिलंश्रुतमुत्तमंचित्संसारदीर्घरजनी सितरश्मिबिंबम् ॥ जातस्त्वमभ्युदयवानमलैकबोधउत्सार्यमोहमनुतिष्ठयथागतंत्वम् ॥ ४९ ॥ तिष्ठं स्तदात्मनिपरेविमलस्वभावेसर्वात्मकेतपतिसर्वपदार्थमुक्तः ॥ निर्वाणशांतमतिरंबरकोशकांतोधर्मेण राज्यमनुपालयतीर्णतृष्णः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे प्राक्तनरामशिष्यत्वोपाख्यानं नाम त्रयोदशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१३ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस सर्वशक्तिमान् सर्वरूप तथा सर्वोत्कृष्ट पदमें परस्परविरुद्धभी सबकुछ संभव है, तथा इसी सर्वोत्तम ब्रह्मपदमें सबवादियोंके अभिमत परस्परविलक्षण विधि तथा निषेधभी हैं, तत्तद्बुद्धि अवच्छिन्न चैतन्यमें वरशापन्यायसे निज २ संकलपरूपसे सब विवर्तोंका अधिष्ठान यही चिदाकाश है, ऐसा कोईभी विधि वा निषेध नहीं जो इस चिदाकाशमें संभव न हो ॥ ४५ ॥ उन २ उपाधियोंमें निजशुद्ध चिदाकाश आत्मामेंही उन २ वासनाओंके अनुसार दृश्यकी भावना करताहुआ अपने चिद्रूपको जगद्रूपसे देखताहुआभी निजनिर्विकाररूपसे स्थितहै ॥४६॥ हे रामजी ! सब जीवोंके निज २ अनुभवसिद्ध पदार्थोंकी दृष्टि, परस्पर विधि तथा निषेधदृष्टि उन २ संकल्प तथा अनुभववासना तथा तत्तत्कामनापूर्वक विधिसे अनुष्ठित होनेसे उन २ व्यवहारोंमें अर्थक्रियामें समर्थ होनेसे सत्य हैं, और आत्मदृष्टिसे तो सर्वथा असत् (शशशृंग) के समान हैं, क्योंकि इस परब्रह्ममें सब वस्तुओंका रूप निज २ संकल्प तथा अनुभवके अनुसारही है ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! इसरीति पूर्वभवमें मेरेसमीप शिष्य होके यह सब उपदेश सुना है, परन्तु उस-समय तुमको बोध नहींहुआ, अतएव पुनः इससमय त्रेतायुगमें तुम दशरथके गृहमें उत्पन्न हुये हो, और पुनः मुझसे वही विषय (आत्मज्ञान) पूंछते हो ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! इस जन्ममें मुझसे उपदिष्ट संसाररूप रात्रिके ताप तथा अन्धकारके नाशार्थ चन्द्रबिंबकेसमान सर्वोत्तम समग्र ज्ञान तुमने सुना, अब तुम ज्ञानरूप अभ्युदयसे युक्त निर्मल-बोधरूप हो अतः अज्ञानको दूर करके यथाप्राप्त व्यवहार करतेहुये निरतिशय आनन्दरूपसे स्थित रहो ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! विमलस्वभाव, सबओरसे प्रकाशमान, तथा सर्वरूप ब्रह्मपदमें स्थित, सब दृश्यपदार्थोंकी दृष्टिसे मुक्त, निर्वाणरूप निरतिशय ब्रह्मानन्दमें मग्न, आकाशकोशवत् परम मनोहर तथा तृष्णासे पार होके समदृष्टिसे राज्यका पालन करो ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे प्राक्तनरामशिष्यत्वोपाख्यानं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥

चतुर्दशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१४ ॥

उपदेशकी प्रशंसा, श्रोताओंकी कृतकृत्यता तथा अंतमें दिव्य और मनुष्यमहोत्सवका वर्णन इस २१४ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौनभसोननादवर्षामृताभ्रमिवदुंदुभिरामरोद्राक् ॥ शुक्लीकृताखिलककुब्वदनातुषारवर्षोपमाभुविपपातचपुष्पवृष्टिः ॥ १ ॥ किंजल्कजालदिवसांतघनांगरागावातावधूतसितकेसरगौरहारा ॥ पुष्पोदरोत्थमृदुसीकरशीतलांगाप्राप्तास्वयंसुरपुरादिवपुण्यलक्ष्मीः ॥ २ ॥ कल्पांतकालकपिकंपितशुष्कशाखात्स्वर्गद्रुमात्पतितमाशुविडंबयंती ॥ तारागणंप्रथितभासमनल्पहासमाशामुखप्रसृतभैरवमंबरस्था ॥ ३ ॥ सापुष्पवृष्टिरथदुंदुभिनादगर्जत्किंजल्कपुंजजलदाशममाजगाम ॥ आपूरिताखिलसभाहिमहारिपुष्पपूरेणकौतुकविकासकरीक्षणेन ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–हे राजन्! मुनिवसिष्ठजीके इतना कहनेपर अमृतसे पूर्ण मेघके गंभीरशब्दवत् देवताओंके दुंदुभि शीघ्र बजे, तथा तुषारकी वृष्टिके सदृश संपूर्णदिशाओंको श्वेत करनेवाली आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि हुई ॥ १ ॥ पुष्पधूलिरूपी सायंकालके मेघोंसे अरुण अंगरागसे शोभित, पुष्पोंसे निःसृत कोमल जलकणोंसे शीतलशरीर तथा वायुसे कंपित केसररूपी गौरहारोंसे भूषित वह पुष्पवृष्टि मानों स्वयं सुरपुरपुण्यलक्ष्मीका रूप धारण करके उत्सव देखनेको प्राप्तहुई है ॥ २ ॥ तथा प्रलयकालरूपी मर्कटसे कंपित शुष्क दिक्पालोंके नगर तथा लोकरूपी शाखाओंसे युक्त स्वर्गरूपवृक्षसे पतित दिशाओंके मुखमें विस्तृत संहाररुद्रके अट्टहाससे शोभित प्रकाशमान तारगणयुक्त आकाशका अनुकरण करतीहुई वह पुष्पवृष्टि आकाशसे गिरी ॥ ३ ॥ तथा दुंदुभियोंके नादोंसे गर्जतेहुये पुष्पधूलिरूप मेघोंसे शोभित, हिमके समान पुष्पपरागोंसे संपूर्णसभाको पूर्णकरनेवाली तथा दर्शनमात्रसे सबको आनन्दकारिणी वह पुष्पवृष्टि कुछकालमें शान्त हुई ॥ ४ ॥

तानिदिव्यानिपुष्पाणियथास्थानमधःस्थिताः ॥ वसिष्ठायनमस्कृत्वासभ्याःसंशोकितांजहुः ॥ ५ ॥ दशरथउवाच ॥ अहोनुसुविशात्मानःसंसारविततात्कृतेः ॥ विश्रांताःस्मश्चिरंश्रांताःशुद्धामेघाइवाचले ॥ ६ ॥ कर्मणामवधिःपूर्णोदृष्टःसीमांतआपदाम् ॥ ज्ञातंज्ञेयमशेषेणविश्रांताःस्मःपरेपदे ॥ ७ ॥ ध्यानलब्धपरव्योमचिरानुभवनभ्रमैः ॥ धारणाधारविश्रांत्यादेहसंत्यजनक्रमैः ॥ ८ ॥ संकल्पनवनिर्माणैःस्वप्नदृष्टिजगज्ज्वरैः ॥ शुक्तिरूप्यानुभवनैःस्वप्नात्ममृतिदर्शनैः ॥ ९ ॥

अर्थ—अनन्तर क्रमसे यथास्थान श्रीवसिष्ठजीके अधोभागमें मुनिगण तथा दशरथआदि सब सभ्यजनोंने उन दिव्य पुष्पोंको लेके वसिष्ठभगवान्के चरणोंमें पुष्पांजलि समर्पण करके प्रणाम किया तथा उस पुष्पांजलिकेसाथही जन्ममरणआदि शोकको भी त्यागदिया ॥ ५ ॥ श्रीदशरथजी बोले–कि हे भगवन् ! आपके अनुग्रहपूर्ण उपदेशसे अतिशान्त आत्मा हम सब विशालसंसाररूपी महाअरण्यसे चिरकालसे ऐसे विश्रामको प्राप्तहुये हैं जैसे जडता तथा कृष्णतादिसे मुक्त शरत्कालके शुद्ध मेघ हिमालयआदि पर्वतोंपर ॥ ६ ॥ हे गुरो ! परमपुरुषार्थ सिद्ध होनेसे हमारे अवश्य कर्तव्यकर्मोंकी अवधि पूर्ण हुई, आपत्तियोंकी सीमा दृढ हुई, पूर्णरूपसे ज्ञेयवस्तुको जानलिया, तथा परमपदमें विश्रान्तहुये ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! लीलोपाख्यानमें ध्यानसे कल्पित अन्यआकाशके चिरकालतक अनुभवोंसे तथा योगधारणासे सर्वाधार ब्रह्ममें विश्रान्तिद्वारा इस देहके त्यागके कर्मोंसे, संकल्प तथा स्वप्नादिमें नूतन निर्मित जगत्समूहोंसे, और शुक्तिमें रूप्यके अनुभवके तुल्य स्वप्नमें निजमरणवत् जगत्वर्णनोंसे हमारी संसारकी दृष्टिका आपने मार्जनकिया ॥ ८ ॥ ९ ॥

अनन्यैःपवनस्पंदैरनन्यैःसलिलद्रवैः ॥ इंद्रजालपुरापूरैर्गंधर्वनगरोत्करैः ॥१०॥ मायापूर्णपुराभोगमृगतृष्णानदीरयैः ॥ आयतौपवनस्पर्शैर्द्विचंद्रानुभवोदयैः ॥ ११ ॥ मदभ्रंशपुरस्पंदैर्सुधात्ववनिकंपनैः ॥ बालयक्षाद्यनुभवैःखकेशोंड्रकदर्शनैः ॥ १२ ॥ एवमादिभिरन्यैश्चदृष्टांतैःस्वानुभूतिदैः ॥ अहोनुमार्जितादृश्यदृष्टिर्भगवताभम ॥ १३ ॥

अर्थ—तथा अभिन्न पवनस्पन्द, अभिन्न जलद्रवत्वआदिके दृष्टान्तोंसे, इन्द्रजालके तथा गन्धर्वनगरोंके समूहोंसे, पूर्णदृष्टान्तोंसे, मृगतृष्णानदियोंके वेगसहित मायासे प्रदर्शित जलपूर्ण प्रवाहोंकी रचनाओंसे प्रलयकालमें वर्णित अतिप्रचण्ड उष्णस्पर्शोंसे, दोचन्द्रोंके अनुभवादि उदयसे हमारी संसारदृष्टिको आपने प्रक्षालित किया ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ तथा मदसे विवेकके नाशसे अनुभूयमान नरादिके संचलनोंसे, शुभाशुभके सूचनाविनाहि व्यर्थ भूकंपोंसे,

बालकोंको यक्षादिके अनुभवोंसे, तथा आकाशमें केशादिके दर्शनोंसे, इत्यादि आत्माके अनुभवकारक अनेक दृष्टान्तोंसे आपने हमारी इस संसारदृष्टिका मार्जन (दूरीकरण) किया. अहो ! यह कैसे हर्षका विषय है ॥ १२ ॥ १३ ॥

श्रीरामउवाच ॥ नष्टोमोहःपदंप्राप्तंत्वत्प्रसादान्मुनीश्वर ॥ संपन्नोहमहंसत्यमत्यंतमवदातधीः ॥१४॥ स्थितोस्मिगतसंदेहःस्वभावेब्रह्मरूपिणि ॥ निरावरणविज्ञानःकरिष्येवचनंतव ॥१५॥ स्मृत्वास्मृत्वाऽमृतासेकसौख्यदंवचनंतव ॥ अर्हितोपिचशांतोपिहृष्यामीवमुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-हे मुनीश्वर ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्टहुआ, परमपद प्राप्तकिया, किंबहुना हे गुरो ! अब मैं परमशुद्ध बुद्धि साक्षात्परब्रह्मरूपही होगया ॥ १४ ॥ हे गुरो ! अब में सन्देहरहित, निरावरण ज्ञानयुक्त ब्रह्मरूप स्वभावमें स्थितहुं और आपकी आज्ञा (आसक्तिरहित राज्यादि पालनआदि कार्य्य) करूंगा ॥ १५ ॥ हे गुरो ! आपके अमृतवत् आनन्ददायक वाक्योंको पुनः २ स्मरण करके पूजित वा अपमानित होनेपरभी हर्षशोकके अभावसे शान्तभी मैं हृष्टके समान होताहुं ॥ १६ ॥

नैवमेद्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ यथास्थितोस्मितिष्ठामितथैवविगतज्वरः ॥ १७ ॥ उपायस्तुतथातेनदृष्टिर्वास्तीहकीदृशी ॥ अहोनुविततभूमिःकष्टमेतादृशीदशा ॥ १८ ॥ नशत्रुर्नचमित्रंमेनक्षेत्रंदुर्जनोजनः ॥ दुर्बोधैषाजगल्लुब्धाशांतासर्वार्थसुंदरी ॥ १९ ॥ कथमेतांजनोवेत्तिविनाभवदनुग्रहम् ॥ विनैवसेतुंपोतंवाबालोब्धिलंघयेत्कथम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे गुरो ! अब मुझे न कुछ करनेसे प्रयोजन है और न करनेसे है, संसारके व्यवहारजनित तापसे शून्य मैं अब पूर्वकालके समानही व्यवहारमें स्थितहुं ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! आपके वचनसे जो विश्रामका उपाय प्राप्तहुआ है ऐसे अन्य क्या (कोई नहीं) होसकताहै, अथवा कौन ऐसा दर्शन है (कोई नहीं) अहो ! अपरिच्छिन्न विश्रामकी भूमि मुझे प्राप्त हुई. हे गुरो ! इस आपके उपदेशसे रहित प्राणियोंकी जन्ममरणआदि अनेक अनर्थोंसे व्याप्त संसारकी दशा अतिभयंकर है ॥ १८ ॥ हे गुरो ! अब न मेरा कोई शत्रु है न मित्र है, न यह शरीर है न बाह्य है, न कोई सज्जन न दुर्जन है, और न आत्मीय न परकीय है, यह स्वात्मचित्ही अज्ञात होनेसे दुःखप्रद जगत्स्वरूप थी, वही अब ज्ञात होनेसे शान्त सर्वार्थसुन्दरी होगई ॥ १९ ॥ हे गुरो ! आपके अनुग्रह बिना इस शुद्ध आत्मदृष्टिको प्राणी कैसे जानसकताहै, भला बिना सेतु (पुल) वा नौका (समुद्र पोत वा जहाज) के बालक समुद्रपार कैसे जासकताहै २०

लक्ष्मणउवाच ॥ जन्मांतरोपचितसंशयनाशनेनजन्मांतरोपचितपुण्यशतोदितेन ॥ जातोद्यमेमुनिवचःपरिबोधनेनजातोद्यमेमनसिचंद्रइवप्रकाशः ॥ २१ ॥ इदृश्यांदृश्यमानायांदृशिदोषदशाशतैः॥काष्ठवद्दह्यतेलोकःस्वदुर्भगतयातया ॥ २२ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ अहोबतमहत्पुण्यंश्रुतंज्ञानंमुनेर्मुखात्॥ येनगंगासहस्रेणस्नाताइववयंस्थिताः ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ संपदामथदृष्टीनांशास्त्राणामापदांगिराम् ॥ देशानामथदृष्टानांदृष्टःसीमांतउत्तमः ॥ २४ ॥

अर्थ—लक्ष्मणजी बोले कि–हे भगवन् ! अनेक जन्मोंमें संचित पापोंके नाशसे, तथा अनेकजन्मोंके पुण्यके उदयरूप आपके उपदेशपूर्णवचनसे उत्पन्न आत्मविचारयुक्त मेरे मनमें इससमय चन्द्रके सदृश परम आल्हादकारी प्रकाश उत्पन्नहुआहै ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आपके सदृश महानुभवोंके उपदेशसे नित्य अपरोक्ष आत्मदृष्टिके बिद्यमान रहतेभी निजदौर्भाग्यसे महात्माओंकी शुश्रूषादिसे हीन यह लोक (प्राणी) राग, द्वेष, अहंकार तथा जन्ममरणादि अनेक दोषमयींदशाओंसे अहर्निश काष्ठवत् पुनः २ भस्म होरहाहै यह कैसा आश्चर्य है ॥ २२ ॥ श्रीविश्वामित्रजी बोले–अहो ! कैसे हर्षका अवसर है कि अतिपवित्र ज्ञान मुनिके मुखसे श्रवण किया जिससे सहस्रों गंगामें स्नान कियेसें अधिक पवित्र हम सब स्थित हैं ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे गुरो ! सम्पूर्णसम्पत्तियोंका, दर्शनोंका, शास्त्रोंका, काव्यरसादिसे शोभित वाणियोंका तथा सुखके साधन प्रासाद नदी आरामादि देशोंकी सीमाका अन्त इससमय देखा क्योंकि आत्मलाभ सर्वोत्तम सम्पत्ति, दर्शन तथा सुखमय है ॥ २४ ॥

नारदउवाच ॥ यन्नश्रुतंब्रह्मलोकेस्वर्गेभूमितलेतथा ॥ कर्णौतज्ज्ञानमाकर्ण्ययातौमेद्यपवित्रताम् ॥२५ लक्ष्मणउवाच ॥ हार्दंबाह्यंचतिमिरमपमृष्टवतात्वया ॥ मुनेपरमभानुत्वंनूनंनःसंप्रदर्शितम् ॥ २६ ॥ शत्रुघ्नउवाच ॥ निर्वृतोस्मिप्रशांतोस्मिप्राप्तोस्मिपरमंपदम् ॥ चिरायपरिपूर्णोस्मिसुखमासेचकेवलम्॥ ॥ २७ ॥ दशरथउवाच ॥ बहुजन्मोपरुद्धेनपुण्येनायंमुनीश्वरः ॥ धीरःकथितवान्नस्तद्येनपावनतांगताः ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीनारदजी बोले—हे मुने! जो ज्ञानमय उपदेश न ब्रह्मलोक, न स्वर्ग और न भूतलपर श्रवण कियाथा, उसको इससमय सुनके हमारे कर्ण परमपवित्रताको प्राप्तहुये ॥ २५ ॥ श्रीलक्ष्मणजी पुनः बोले—कि हे गुरो! बाह्य तथा आभ्यन्तर अन्धकार (अज्ञानान्धकार) को नाश करनेवाले आपने हमारेविषे सर्वोत्कृष्ट सूर्य्यता प्रदर्शित की ॥ २६ ॥ शत्रुघ्नजी बोले—कि हे मुने आपकी कृपासे मैं तृप्त हुं, शान्त हुं, परमपद (ब्रह्म) में प्राप्त हुं और चिरकालकेलिये परिपूर्णस्वरूप निरतिशयानन्द केवल आत्मस्वरूपमें सुखपूर्वक स्थित हुं ॥ २७ ॥ श्रीदशरथजी बोले—कि हे भगवन्! अनेकजन्मोंके पुण्यके लाभसे धीर विवेकी आपने वह वस्तु (ब्रह्मज्ञानोपदेश) कही जिससे हम सब परमपवित्रताको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इतितेषुवदत्स्वत्रसभ्येषुसहभूभृता ॥ वसिष्ठःसउवाचेदंज्ञानपावनयागिरा ॥ २९ ॥ राजन्रघुकुलैकेंदोयदहंवच्मितत्कुरु ॥ इतिहासकथांतेहिपूजनीयाद्विजातयः ॥ ३० ॥ तदद्य ब्राह्मणौघांस्त्वंसर्वकामैःप्रपूरय ॥ वेदार्थसमनुष्ठानफलंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ मोक्षोपायकथा वस्तुसमाप्तौद्विजपूजनम् ॥ शक्तितःकीटकेनापिकार्यंकिमुमहीभृता ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—कि हे राजन्! जिससमय राजा दशरथ, उनके पुत्र तथा ऋषिमुनि सब सभासद् इसप्रकार धन्यवादके वचन कहरहेथे उससमय ज्ञानसे पवित्रवाणीसे वसिष्ठजीभगवान् बोले ॥ २९ ॥ हे रघुकुलचन्द्र राजन्! अब जो मैं कहताहूं वह तुम करो, क्योंकि मंगलआदि, मंगल मध्य और मंगलान्त शास्त्र सर्वथा फलीभूत होताहै इसलिये इस अध्यात्ममय इतिहासकथाके अन्तमें द्विजातियोंको पूजना चाहिये ॥ ३० ॥ इसकारण इससमय तुम ब्राह्मणसमूहोंको सब कामनाओंसे पूर्ण करो जिससे कि इस वेदार्थश्रवणरूप अनुष्ठानके नित्य सर्वोत्तमफलको प्राप्त होओगे ॥ ३१ ॥ मोक्षोपायकथाकी समाप्तिमें अतिदरिद्रकोभी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणपूजन करनाचाहिये पुनः आपके सदृश राजाको क्या कहना ॥ ३२ ॥

इतिमौनंवचःश्रुत्वासहस्राणिनृपोदश ॥ दूतैराकारयामासद्विजानांवेदवादिनाम् ॥ ३३ ॥ मथुरायांसु राष्ट्रेषुगौडेषुचवसंतिये ॥ तेभ्यःकुलेभ्यःसोभ्यर्च्यसमानीयद्विजन्मनाम् ॥३४॥ अधिकात्यधिकज्ञानप्र कृतद्विजभोजनः ॥ तदादशसहस्राणिभोजयामासभूपतिः ॥ ३५ ॥ यथाभिमतभोज्यान्नदानदक्षिण यातया ॥ एवंसंपूज्यतान्विप्रान्पितॄन्दैवान्नृपांस्तथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसप्रकार मुनिके वचनको श्रवण करके गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य्य समझके बिना कुछ उत्तर दिये राजा दशरथने दूतोंकेद्वारा वेदवक्ता दशसहस्र (१० हजार) ब्राह्मणोंका आव्हान किया ॥ ३३ ॥ मथुरामें, सौराष्ट्रदेशमें, तथा गौडआदि देशोंमें जो ब्राह्मण निवास करतेथे उन श्रेष्ठकुल ब्राह्मणोंको आव्हानकर उनका पृथक् २ तथा मिलितभी पूजन किया ॥ ३४ ॥ सर्वोत्तम ज्ञानीब्राह्मणसे लेके साधारणब्राह्मणपर्य्यन्तको राजाने भोजन कराया ॥ ३५ ॥ यथेष्ट भोज्य अन्नोंसे, दान तथा दक्षिणआदिसे ब्राह्मणोंकी, श्राद्धआदिसे पितरोंकी, यज्ञआदिसे देवताओंकी, तथा गन्धमाल्यरत्नोपहारआदिसे राजाओंकी दशरथने पूजा की ॥ ३६ ॥

पौरामात्यांस्तथाभृत्यान्दीनांधकृपणांश्चतान् ॥ तस्मिन्दशरथोराजादिनेसहसुहृज्जनैः ॥ ३७ ॥ लब्ध संसृतिसीमांतश्चकरोत्सवमुत्तमम् ॥ तथानृपगृहेतस्मिन्कौशेयमणिकांचने ॥ ३८ ॥ भूषितेनगरेचैव गीर्वाणनगसुंदरे ॥ ननृतुर्मत्तकामिन्योविलासिन्योगृहेगृहे ॥ ३९ ॥ लसद्वंशलताकांस्यवीणामुरजमर्द्द लम् ॥ तांडवेनोद्धतारावमन्योन्येतरशेखराः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा नगरनिवासियोंको, आमात्योंको, भृत्यादिकोंको, दीन तथा अन्धेआदि कृपणोंको भोजन तथा दानमानादिसे तृप्त करके उस दिन सुहृत् तथा बन्धुजनोंके साथ संसारका अन्त पानेवाले राजा दशरथने महाउत्सव किया ॥ ३७ ॥ तथा कौशेय (रेशमी वस्त्रों) मणियों तथा सुवर्णसे भूषित, और देवताओंके निवासस्थान मेरुके समान सुन्दर उस राजा दशरथके राजभवनमें तथा नगरनिवासियोंके गृह २ में विलासयुक्त मत्त अंगनाओंने नृत्य किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ मुरली, मंजीरा, मृदंग, वीणा तथा मर्द्दल (दिलरुबा अथवा हृदयहारक एकप्रकारकी सारंगी) आदि वाद्योंको बजातीहुई तांडवनृत्यसे उच्चस्वरपूर्वक परस्पर विलक्षण केशबन्धयुक्त तथा विलक्षण वस्त्रालंकारादिसे विभूषित वारांगनाओंने नृत्य किया ॥ ४० ॥

क्षुब्धीकृतापणकरभ्रांतिपल्लवितांबराः ॥ मुग्धाट्टहासविक्षिप्तदंतेंदुकिरणच्छटाः ॥ ४१ ॥ मदाकुलितहुं कारालीलासुतरलस्वराः ॥ एकपादतलाघातहेलाहतधरातलाः ॥४२॥ स्रग्दामतारविगलत्कुसुमासा

रपांडुराः ॥ धारापातितविच्छिन्नहारमुक्तास्खलत्पदाः ॥ ४३ ॥ लोलाभरणसाकारंकामंननृतुरंगनाः ॥ पेठुःस्फुटपदंविप्राबंदिनोप्यंगनाश्चताः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा विविधप्रकारके अभिनय (भाव बताने) में क्षुब्ध हस्तोंके भ्रमणसे चारोओरसे आकाश वा वस्त्रोंको पल्लवित करनेवाली तथा हास्यरसके अभिनयमें मुग्ध अट्टहासों (उच्चहासों) से दन्तरूप चन्द्रकिरणोंको सबओर विस्तारित करनेवाली नर्तकियोंने नृत्य किया ॥ ४१ ॥ तथा वीररसके अभिनयमें मद (गर्व) युक्त हुंकारशब्दकारिणी, करुणा अद्भुतआदि रसोंके अभिनयलीलाओंमें चंचलस्वरसे शोभित तथा शृंगारमानादिके अभिनयमें एकपादसे लीलापूर्वक धरातलको ताडन करनेवाली कामिनियोंनें नृत्य किया ॥ ४२ ॥ तथा शृंगार कोपादिके अभिनय (दर्शाने) में पुष्पमालादिके कंपनसे नक्षत्रोंके सदृश गिरती हुई पुष्पवृष्टियोंसे पांडुवर्ण तथा जलधाराओंके सदृश पतित हारोंसे पूर्णस्थानोंमें स्खलित पदसे शोभित और चंचल वस्त्र आभरणोंसे साकार कामदेवको दर्शातीहुई विलासिनियोंनें नृत्य किया ॥ ४३ ॥ तथा ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया, बन्दियोंने स्तुति और चारणोंने वंशका वर्णन तथा अन्यअंगनाओंनेभी आनन्दसूचक नृत्यगानादि किया ॥ ४४ ॥

पपुरुत्तांडवंपानंपानपामदशालिनः ॥ भोज्यंबुभुजिरेचित्रंभूषिताभोजनार्थिनः ॥ ४५ ॥ सुधादिपरिलेपेनरंजिताग्रहभित्तयः ॥ रेजूरामेंदुभानेनपुष्पधूपविलेपनैः ॥ ४६ ॥ वासांसिवसिताश्चित्राण्युत्तमस्त्रग्विभूषणाः॥ चेरुःपरिचराश्चेटयश्चारुगंधानृपाध्वरे ॥४७॥ देहयष्टिषुसंयोज्यवनितायक्षकर्दमम् ॥ जग्मुस्तांडवनर्त्तक्यःशृंगारात्मांगणांतरम् ॥ ४८ ॥ भवबहुलनिशावसानहर्षादितिघनमुत्सवमेवसप्तरात्रम् ॥ दशरथनृपतिःसदानभोगश्रियमकरोत्पदमक्षयंसमेतः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे महोत्सववर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१४ ॥

अर्थ—वहां उत्सवमें जो ब्राह्मणसे भिन्न थे उन्होंने उत्तम विहित आसवपान किया और भोजनार्थियोंने उत्तम चित्रविचित्र भोज्यका भोजन किया ॥ ४५ ॥ रामचन्द्ररूप चन्द्रचन्द्रिका तथा पुष्पधूलि और धूपादिलेपनद्रव्योंसे रंजितगृहोंकी भित्ति अतिशोभाको प्राप्तहुई ॥ ४६ ॥ चित्रविचित्र उत्तम वस्त्रालंकार धारण कियेहुये, तथा माल्यादिसे विभूषित दासी तथा दासवर्ग राजा दशरथके महोत्सवरूप यज्ञमें इतस्ततः भ्रमण करतेथे ॥ ४७ ॥ कर्पूर, अगरु, तथा कस्तुरी केसरआदिके साथ घृष्ट देवचन्दनोंको अपनी २ अंगलतामें लगाके उत्तम नृत्य करनेवाली वनिता शृंगाररूपसे अलंकृत राजसभाके अंगणमें प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! अक्षयब्रह्मपदमें प्राप्त राजा दशरथ संसाररूप दीर्घ कृष्णपक्षकी रात्रिके अन्तमें ज्ञानरूपी सूर्य्योदयके आनन्दसे पूर्वोक्तरीतिसे सप्तरात्रिपर्य्यन्त विविधप्रकारके दानभोगादि सहित महोत्सव करतेरहे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे महोत्सववर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ २१४ ॥

पंचदशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१५ ॥

रामादिके सदृश प्रबुद्ध तुमभी संसारमें असंग सुखी होके विहरो इसप्रकार वाल्मीकिमुनिसे शिष्य बोधित कियेगये हैं यह विषय इस २१५ के सर्गमें वर्णनकियागयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ भरद्वाजमहाबुद्धेममशिष्याधिनायक ॥ इतिरामादयोज्ञातज्ञेयानिःशोकतां गताः ॥ १ ॥ एतामेवदृशंकांतामवष्टभ्ययथासुखम् ॥ नीरागस्तिष्ठनिःशंकोजीवन्मुक्तःप्रशांतधीः॥२॥ धीरनभ्यस्तसंगाद्धिरामादीनामिवानघ ॥ घनमोहनिमग्नापिविमूढापिनमुह्यति ॥ ३ ॥ एवमेतेमहासत्वाजीवन्मुक्तपदंगताः ॥ राजपुत्राराघवाद्याराजादशरथादयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-कि हे मेरे शिष्योंके नायक महाबुद्धे भरद्वाज ! इसप्रकार रामआदि ज्ञातज्ञेय होकर निःशोकताको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ हे भरद्वाज ! इसी उत्तमदृष्टिको अवलम्बन करके रागद्वेषशून्य, निःशंक, शान्तचित्त तथा जीवन्मुक्त होके सुखपूर्वक स्थितरहो ॥ २ ॥ हे पापरहित भरद्वाज ! यह पूर्वोक्त बुद्धि, (आत्मज्ञानता) रामादिके सदृश, भोगोंमें संगके अभ्याससे यदि रहित कीजाय तो अतिमोहमय संसारानिमग्न तथा

मूढ होनेपरभी नष्ट नहीं होती ॥ ३ ॥ इसी पूर्वोक्तज्ञानसे दशरथआदि राजा और रामचन्द्रआदि राजपुत्र जीवन्मुक्त-पदको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥

त्वंचपुत्रभरद्वाजस्त्वयमेवासिमुक्तधीः ॥ सत्यंमुक्ततरोस्यद्यश्रुत्वेमांमोक्षसंहिताम् ॥ ५ ॥ मोक्षोपाया निमान्पुण्यान्प्रत्यक्षानुभवार्थदान् ॥ बालोप्याकर्ण्यतज्ज्ञत्वंयातिकात्वाद्दशेकथा ॥ ६ ॥ यथापदंपु ण्यमनुप्रयातामहानुभावारघवोविशोकाः ॥ वसिष्ठवाक्यप्रसरेणसाधोगंतव्यमाद्यंपदमेवमेव ॥ ७ ॥ सतांनयेनोत्तमसेवयाचप्रश्नेनचोदारकथागतेन ॥ विंदंतिवेद्यंसुधियोऽप्रमत्तावसिष्ठसंगादिवराघ वाद्याः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे पुत्र भरद्वाज ! तुमभी स्वयं निजविचारसेही रामादिके तुल्य मुक्तबुद्धि हो और इससमय इस मोक्षो-पायसंहिताको श्रवण करके तो अत्यन्त मुक्त होगये ॥ ५ ॥ प्रत्यक्ष आत्मानुभव करानेवाले इन पवित्र मोक्षोपायके आख्यानोंको सुनकर बालक (मन्दाधिकारी) भी आत्मज्ञताको प्राप्त होसकताहै और तुमारे सदृश विचारवानोंकी क्या कथा है ॥ ६ ॥ हे साधो भरद्वाज ! जैसे भगवान् वसिष्ठजीके वाक्योंका हृदयमें प्रभाव होनेसे संपूर्ण संशयसहित अज्ञानका नाश होनेसे रामचन्द्रआदि रघुवंशी पवित्र जीवन्मुक्तपदको प्राप्त होके शोकरहित होगये इसीप्रकार तुमकोभी नित्य शुद्धबुद्धआदि जीवन्मुक्तपदमें प्राप्तहोके शोकादिसे मुक्त होनाचाहिये ॥ ७ ॥ हे भरद्वाज ! सज्जनमहात्मा-ओंकी शिक्षासे, उत्तमसेवासे, आदरपूर्वक प्रश्नोंसे, विचारवान्, सावधन तथा त्यागी अन्यजनभी इस मोक्षोपाय-कथाके श्रवणसे वेद्य (ब्रह्म) को ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे वसिष्ठके संगसे रामचन्द्रआदि ॥ ८ ॥

तृष्णावरत्राद्दृढबंधबद्धायेग्रंथयोज्ञस्यहृदिप्ररूढाः ॥ सर्वेहितेमोक्षकथाविचाराद्बालाद्यबालाइवयांत्यभे दम् ॥ ९ ॥ मोक्षाभ्युपायान्सुमहानुभावान्ज्ञास्यंतियेतत्त्वविदांवरिष्ठाः ॥ पुनःसमेष्यंतिनसंसृतिंते कोर्थःसुतान्येनबहूदितेन ॥ १० ॥ बहुश्रुतायेप्रविचार्यसम्यक्प्रबोधितार्थंकथयाजनाय ॥ संतोवदि ष्यंतिपुनःशिशुत्वंनतेप्रयास्यंतिकिमन्यवाक्यैः ॥ ११ ॥ येवाचयिष्यंत्यनपेक्षितार्थायेलेखयिष्यंतिचपु स्तकंवा ॥ येकारयिष्यंत्यपिवाचकंवाव्याख्यातृयुक्तंशुभमार्यदेशे ॥ १२ ॥ तेराजसूयस्यफलेनयुक्ता मुहुर्मुहुःस्वर्गमुदारसत्वाः ॥ मोक्षंप्रयास्यंतितृतीयजन्मलाभेनलक्ष्मीमिवपुण्यवंतः ॥ १३ ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! तृष्णारूपी चर्मकी रज्जुसे दृढतासे बद्ध देहइन्द्रियादिमें अभेदाध्यासरूप, तथा पुत्र, स्त्री, गृह तथा धनादिमें ममतारूप, जो सब प्राणियोंमें एक आत्माके अनुभवके अभावसे रागद्वेषके हेतुभूत अनेक ग्रन्थि अज्ञानीके हृदयमें प्ररूढ हैं वे सब इस मोक्षोपायकथाके विचारसे आत्माकेसाथ ऐसे अभेदरूपताको प्राप्त होती हैं जैसे बाल्यअवस्थामें क्रीडादिमें आसक्त रसानभिज्ञ स्त्रियां प्रौढदशामें अपने पतिके साथ ॥ ९ ॥ हे पुत्र भ-रद्वाज ! अधिककथनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, मन्दाधिकारी जनभी जो महात्मा गुरुके मुखसे श्रवण करके महा अभव-प्रद पवित्र इन मोक्षोपायको जानेंगे वे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होके पुनः इससंसारमें नहीं आवेंगे ॥ १० ॥ तथा अधिककथनसे प्रयोजन नहीं है जो बहुश्रुत वक्ता पंडित इस मोक्षोपायको गुरुसंप्रदायसे पूर्णरीतिसे विचारके उत्तम बोध होनेपर शिष्यजनोंको कहैंगे वे पुनः मूर्खता तथा जन्म नहीं धारणकरैंगे ॥ ११ ॥ हे भरद्वाज ! जो पुरुष अर्थको न जानकर इस मोक्षोपायका केवल पाठमात्र करैंगे वा जो पुस्तक लिखैंगे तथा जो उत्तम आर्य्यदेशमें पंडितोंकी जीविका कल्पन करके इसकी कथा करावेंगे वे यदि सकाम होंगे तो पुण्यवान् लक्ष्मीके सदृश राजसूययज्ञके फलसे युक्त होकर बारबार स्वर्ग पावेंगे और यदि निष्काम होंगे तो जिस जन्ममें कथा करावेंगे उससे तृतीयजन्ममें ज्ञानी होके मोक्षमें प्राप्तहोंगे ॥ १२ ॥ १३ ॥

इमांपुरामोक्षमयींविचार्यसुसंहितांसद्वचनाद्विरिंचः ॥ प्रयुक्तवानेतदचिंत्यरूपोभवंत्वसत्याश्वनतस्य वाचः ॥ १४ ॥ मोक्षाभ्युपायाख्यकथाप्रबंधेयातेसमाप्तिंसुधियाप्रयत्नात् ॥ सुवेश्मदत्वाभिमतान्नपा नदानेनविप्राःपरिपूजनीयाः ॥ १५ ॥ देयंचतेभ्यःखलुदक्षिणादिचित्तेप्सितंस्वस्यधनस्यशक्त्या ॥ मत्वानुरूपंकृतमेवसंगपुण्यंयथाशास्त्रमुपैत्यसौतत् ॥ १६ ॥ एतत्तेकथितंकथाक्रमशतैर्बोधायबुद्धेर्बृ हच्छास्त्रंबृंहितब्रह्मतत्त्वममलंदृष्टांतयुक्त्यांचितम् ॥ श्रुत्वैतच्चिरनिर्वृतिंभजभृशंजीवद्विमुक्ताशयोलक्ष्मीं ज्ञानतपःक्रियाक्रमयुतांभुक्त्वाक्षयामक्षयः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये बालकांडे द्वात्रिंशत्साहस्र्यांसंहितायां निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ग्रंथप्रशंसा तद्वाचनादिविधिर्नामपंचदशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१५ ॥

अर्थ—हे भरद्वाज ! पूर्वकालमें मुझसे रचित इस मोक्षमयी संहिताको विचारकरके अचिन्त्यप्रभाव ब्रह्माजीने मुनियोंके समाजमें इस बाणीको कहा कि सत्यवक्ता वाल्मीकिजी तथा वसिष्ठजीकी वाणी कदापि असत्य नहीं होती ॥ १४ ॥ और मोक्षोपायकथाके अन्तमें उत्तम ग्रह अभीष्ट अन्न तथा धनादिसे बाचनेवालेसे आदिलेके सब ब्राह्मणोंकी तथा मुनिमित्रादिकीभी पूजा करनी चाहिये ॥ १५ ॥ तथा दानादिकर्ता निजकृत सुकृतका फल शास्त्रके अनुसार अवश्य पाताहै ऐसा चित्तमें विचारके अपने धनमेंसे शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणों तथा अन्यमुनि और दीनादिको दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये ॥ १६ ॥ हे भरद्वाज ! यथाक्रम अनेकउपाख्यानोंसे वर्द्धित तथा नानादृष्टान्त और युक्तियोंसे पूजित इस ब्रह्मतत्वप्रतिपादक मोक्षोपाय निर्मलशास्त्र तुमारे बोधार्थ मैंने कहा, इसको सुनकर जीवन्मुक्तआशययुक्त होकर तुम लोकानुग्रहार्थ ज्ञान तथा तपआदिके फलसहित और प्रारब्धकर्मोंके भोगनेकेलिये सत्कर्मफलरूप योगज्ञानादिसिद्धिजन्य अक्षय तथा चिरस्थायिनी ऐश्वर्य्य लक्ष्मीका भोगकरके पुनः सदेह वा विदेह चिरकालकेलिये शान्तिमय नित्य निरतिशय ब्रह्मानन्दरूप मुक्तिरूपको सदाके प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भाषानुवादे ग्रन्थप्रशंसा तद्वाचनादिविधिर्नाम पंचोदशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१५ ॥

षोडशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१६ ॥

अरिष्टनेमिराजा, सुरूचि अप्सरा, तथा कारुण्यआदिकी कृतार्थता तथा शिष्योंने गुरुओंको आत्मनिवेदन वर्णन कियाहै, यह विषय इस २१६ के सर्गमें प्रतिपादन कियाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ एतत्तेकथितंराजन्कुंभयोनेःसुभाषितम् ॥ अमुनातत्त्वमार्गेणतत्पदंप्रास्यसिध्रुवम् ॥१॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवतोदृष्टिर्भवबंधविनाशनी ॥ आलोकितोययाचाहमुत्तीर्णोस्मिभवांबुधेः ॥ २ ॥ श्रीदेवदूतउवाच ॥ इत्युक्त्वासौततोराजाविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाचवचनंमांतुमधुरंश्लक्ष्णयागिरा ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ देवदूतनमस्तुभ्यंकुशलंचास्तुतेविभो ॥ सतांसाप्तपदंमैत्रमित्युक्तंतत्त्वयाकृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि हे राजन् ! श्रीवसिष्ठजीका रामादिकेप्रति और अगस्त्यका सुतीक्ष्णआदि शिष्योंकेप्रति इस मोक्षोपायरूप सुभाषितग्रन्थको मैंने तुमसे कहा, तत्वमार्गोपदेशक इस ग्रन्थसे तुम ध्रुव (ब्रह्म) पदको प्राप्तहोओगे ॥ १ ॥ राजा अरिष्टनेमि बोला–कि हे भगवन् ! यह आपकी कृपाकटाक्षपूर्णदृष्टि संसारबन्धनको नाश करनेवाली है जिससे आलोकित (दृष्ट) संसारसागरसे उत्तीर्ण होगया ॥ २ ॥ देवदूत अप्सरासे बोला–कि हे अप्सरे ! विस्मयसे विकसितनेत्र राजा ऐसा कहके पुनः मधुर तथा स्निग्धवाणीसे मुझसे बोला ॥ ३ ॥ राजा बोला–कि हे देवदूत ! आपको मेरा नमस्कार है, आपका कुशल हो, सज्जनोंकी " साप्तपदी मैत्री " (सप्तशब्दोंसे वार्तालापकरने वा सप्तपद साथ चलनेसे) मिलती है उसको आपने सत्य किया ॥ ४ ॥

इदानींगच्छभद्रंतेदेवराजनिवेशनम् ॥ अनेनश्रवणेनाहंनिर्वृतोमुदितोपिच ॥ ५ ॥ श्रुतार्थंचिंतयन्नत्रस्थास्यामिविगतज्वरः ॥ इत्युक्तोहंततोभद्रेपरंविस्मयमागतः ॥ ६ ॥ नश्रुतंपूर्वमेवैतज्ज्ञानसारंश्रुतंमया ॥ तेनैवमुदितश्चांतःपीतामृतइवाधुना ॥ ७ ॥ ततोवाल्मीकिमापृच्छ्यआगतोस्मित्वदंतिके ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंत्वयापृष्टंममानघे ॥ इतःपरंगमिष्यामिशक्रस्यसदनंप्रति ॥ ८ ॥

अर्थ—अब आप इन्द्रलोकमें जाईये, आपका कल्याण हो, इस मोक्षोपायकथाके श्रवणसे मैं शान्त तथा प्रसन्न हूं ॥ ५ ॥ इस कथाके अर्थको विचारताहुआ सन्तापरहित मैं इसीस्थानपर स्थित रहूंगा, इसप्रकार उसके कहनेपर उस राजाके विनयवैराग्यादि गुणोंसे मैं परमविस्मयको प्राप्तहुआ ॥ ६ ॥ हे देवदूत ! जो ज्ञानसार मैंने पूर्वकालमें कभी नहीं सुना, इसी हेतुसे अमृतपान करनेकेसमान मैं अतितृप्त तथा मुदित हूं ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् वाल्मीकिमुनिसे आज्ञा लेके तुमारे निकट आया. तथा हे अनघे ! तुमने जो कुछ मुझसे पूंछाथा वह मैंने सब कहदिया, अब इसके पश्चात् मैं इन्द्रके भुवनको जाऊंगा ॥ ८ ॥

---

(१) पूर्वरामायणके रचतेसमय ब्रह्माजीने वाल्मीकिजीको वरदान दिया कि– ॥ नतेमुनेवागनृताकाव्येकाचित्भविष्यति ॥ (काव्यमें तुमारी बाणी असत्य कदापि न होगी)

मुनिसे आज्ञा लेके तुमारे निकट आया. तथा हे अनघे ! तुमने जो कुछ मुझसे पूंछाथा वह मैंने सब कहदिया, अब इसके पश्चात् मैं इन्द्रके भुवनको जाऊंगा ॥ ८ ॥

अप्सराउवाच ॥ नमोस्तुतेमहाभागदेवदूतत्वयाऽमम ॥ श्राविताद्दर्थविज्ञानात्परांनिर्वृत्तिमागता ॥ ९ ॥ कृतार्थावीतशोकास्मिस्थास्यामिविगतज्वरा ॥ इदानींगच्छभद्रंतेयथेच्छंशक्रसन्निधौ ॥ १० ॥ अग्निवेश्यउवाच ॥ ततःसासुरुचिःश्रेष्ठातमेवार्थमचिन्तयत् ॥ स्थितासाहिमवत्पृष्ठेसमीपेगंधमादने ॥ ११ ॥ कच्चिदेतत्श्रुतंपुत्रवसिष्ठस्योपदेशनम् ॥ तत्सर्वमवधार्याथयथेच्छसितथाकुरु ॥ १२ ॥

अर्थ—अप्सरा बोली–कि हे देवदूत ! हे महाभाग ! आपके श्रवण करायेहुये शास्त्रके अर्थज्ञानसे मुझे परमशान्ति प्राप्तहुई ॥ ९ ॥ हे देवदूत ! इससमय मैं आपकी कृपासे कृतार्थ तथा शोकरहित हुं और सन्तापरहित स्थित रहूंगी, आप अपनी इच्छानुसार इन्द्रके निकट जाईये आपका कल्याण हो ॥ १० ॥ अग्निवेश्य ब्राह्मण बोला–कि हे पुत्र ! उसके अनन्तर वह श्रेष्ठांगना सुरुचि देवदूतसे उपदिष्ट उसी ब्रह्मैक्यरूप अर्थको चिन्तन करतीहुई गन्धमादनके समीप हिमालयके शिखरपर विराजमान रही ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! तुमने यह वसिष्ठका उपदेश सुना, इस सबको निश्चय करके अर्थात् कर्म मोक्षका साधन है वा ज्ञान इसको विचारकर पुनः अपनी इच्छाके अनुसार करो ॥ १२ ॥

कारुण्यउवाच ॥ स्मृतिर्वाग्व्यहृष्टिसत्ताचस्वप्नेवंध्यासुतेऽजले ॥ मरीचिकायथातद्वज्ज्ञानात्सांसारिकी स्थितिः ॥ १३ ॥ ममनास्तिकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ यथाप्राप्तेनतिष्ठामिह्यकर्मणिकआग्रहः ॥ १४ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ इत्युक्त्वानामकारुण्यअग्निवेश्यसुतःकृती ॥ प्राप्तकर्मायथान्यायंकालेकालेह्युपाहरत् ॥ १५ ॥ संदेहोत्रनकर्तव्यःसुतीक्ष्णज्ञानकर्मणि ॥ संशयाद्भ्रश्यतेस्वार्थात्संशयात्माविनश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—कारुण्य बोला–कि हे पितः ! अतीत, अनागत तथा दूरस्थपदार्थोंके विषयमें स्मृतिके सदृश स्वप्न प्रतीत होनेपर प्रत्यक्षविषयमें वाग्व्यवहारके तुल्य, वन्ध्याके पुत्रके समान तथा जलरहित मरुदेशमें मृगतृष्णावत् संसारकी स्थिति विषयशून्य इससमय तत्वज्ञानसे मुझे भासती है ॥ १३ ॥ हे पूज्यपितः ! मुझे अब न कर्तव्यकार्य्योंके करनेसे कुछ प्रयोजन है और न उनके न करनेसे कुछ प्रयोजन है, कि रामचन्द्रादिकेसमान यथाप्राप्त वर्णाश्रमके व्यवहारोंको करताहुआ इस संसारमें रहुंगा, कर्मके न करनेहीसे मुझे क्या आग्रह है ॥ १४ ॥ अगस्तिऋषि बोले–कि हे सुतीक्ष्ण! ज्ञानसे कृतार्थ अग्निवेश्यका पुत्र कारुण्य इसप्रकार कहके विवाहआदिसे लेके यथोचितकालमें स्नानदान अग्निहोत्रादि यथाप्राप्त कर्मोंको करतारहा ॥ १५ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! ज्ञानोत्तरभी कर्मानुष्ठान बन्धनार्थ होताहै इसमें तुम सन्देह न करना, क्योंकि संशयसे स्वार्थसे भ्रष्ट होताहै और संशयात्मा नष्ट होताहै ॥ १६ ॥

एतच्छ्रुत्वामुनेर्वाक्यमनेकार्थैक्यबोधनम् ॥ नमस्कृत्यगुरुंप्राहअंतिकेविनयान्वितः ॥ १७ ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ नष्टमज्ञानतत्कार्यंप्राप्तंज्ञानमनुत्तमम् ॥ साक्षिणिस्फुरिताभासेध्रुवेदीपइवक्रियाः ॥ १८ ॥ सतियस्मिन्प्रवर्ततेचित्तेहाःस्पंदपूर्विकाः ॥ कटकांगदकेयूरनूपूरैरिवकांचनम् ॥ १९ ॥ पयसीवतरंगालीयस्मात्स्फुरतिदृश्यभूः ॥ तदेवेदंजगत्सर्वंपूर्णंपूर्णंव्यवस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—संदेहविरुद्ध अनेककोटिविषयक सांसारिकपदार्थोंकेसाथ सब विरोधत्यागपूर्वक ब्रह्मकी एकताबोधक मुनि अगस्तिके इस (मोक्षोपाय कथा) को श्रवण करके विनयादियुक्त सुतीक्ष्ण समीपमें स्थित गुरुको नमस्कारकरके यह बोला ॥ १७ ॥ सुतीक्ष्ण बोला–हे गुरो ! मेरा निजकार्य्य संसारसहित अज्ञान नष्टहोगया, सर्वोत्तम (आत्म) ज्ञान मुझे प्राप्तहुआ. हे मुने ! स्वयं ज्योतिःस्वरूप नित्यप्रकाशरूप, ध्रुव तथा निष्क्रिय जिस परमात्माके स्थित रहनेपर उससे प्रकाशित चित्तदेहादिकी चेष्टा तथा लौकिक तथा वैदिकआदि सब क्रिया ऐसे प्रवृत्त होती हैं जैसे दीपके स्थित होनेपर नाट्यशालामें नटनर्तकादिकी क्रिया, तथा सुवर्णमें कटककुंडलादि और जलमें तरंगआदिके तुल्य उसी परमात्माहीमें यह सब दृश्य जगत् स्फुरित होताहै, परमात्माही यह संपूर्ण जगत् है, उससे भिन्न अणुमात्रभी नहीं है, पूर्णस्वरूपमें पूर्णही स्थित है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

यथाप्राप्तोनुवर्तामिकोलंघयतिसद्वचः ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनज्ञातज्ञेयोस्मिसंस्थितः ॥ २१ ॥ कृतार्थोहंनमस्तेस्तुदंडवत्पतितोभुवि ॥ गुरोरुत्तीर्णताकेनशिष्याणामस्तिकर्मणा ॥ २२ ॥ कायवाङ्मनसातस्मांच्छिष्यैरात्मनिवेदनम् ॥ गुरोरुत्तीर्णतासैवनान्याकेनापिकर्मणा ॥ २३ ॥ स्वामिंस्तवप्रसादेनउत्तीर्णोहंभवांबुधेः ॥ आपूरितजगज्जालंस्थितोस्मिगतसंशयः ॥ २४ ॥ यत्सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिचस्फुटम् ॥ श्रुत्वाह्युदीर्यतेसाम्नितस्मैब्रह्मात्मनेनमः ॥ २५ ॥ ब्रह्मानंदंपरमसुखदंकेवलंज्ञानमू

र्निर्द्वंद्वातीतंगगनसदृशंतत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥ एकंनित्यंविमलमचलंसर्वधीसाक्षीभूतंभावातीतंत्रिगुणरहितंश्रीवसिष्ठंनताःस्मः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे बालकांडे द्वात्रिंशच्छतसाहस्र्यांसंहितायां षोडशोत्तरद्विशततमःसर्गः ॥ २१६ ॥

निर्वाणप्रकरणंसंपूर्णम् ॥ ६ ॥

अर्थ—यह निश्चय करके यथाप्राप्त वर्णाश्रमके व्यवहारोंको करताहुआ इस संसारमें रहूंगा, क्योंकि आपके सदृश सज्जनोंके वचनका उल्लंघन कौन करसकताहै. हे भगवन् ! आपकी कृपासे अब मैं ज्ञातज्ञेय स्थित हुं ॥ २१ ॥ हे गुरो ! मैं आपके अनुग्रहसे कृतार्थ हुं, पृथिवीपर दंडवत् होकर आपको साष्टांग प्रणाम करताहुं. हे भगवन् ! गुरुके उपकारसे शिष्यजन किसीकर्मसेभी उत्तीर्ण नहींहोसकते अतः यावज्जीवन केवल आपके दास्यकर्ममें अपनेको नियुक्त करताहुं ॥ २२ ॥ गुरुके महान्उपकारसे शिष्य कदापि उत्तीर्ण नहीं होसकता इसलिये काया, वचन तथा मनसे अपनेको गुरुके चरणोंमें समर्पण करना यही उत्तीर्णता है ॥ २३ ॥ हे स्वामिन् ! आपकी कृपासे मैं संसार-सागरसे पारहोगया, और अब निजसच्चित्पूर्णानन्दरूपसे ब्रह्मांडसमूहको पूर्ण करताहुआ स्थितहूं ॥ २४ ॥ यह संपूर्ण संसार ब्रह्मसें उत्पन्न, ब्रह्मस्थित और ब्रह्ममें लीन होताहै, अतएव यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूपही है. ऐसी ब्रह्मकी उपासना करना सामवेदमें तथा अन्यत्र उपनिषदादिमें स्पष्टरीतिसे अनेकस्थलमें कहाहै उस सर्वरूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ २५ ॥ ज्ञानोपदेशद्वारा परमसुखदायक, केवल ज्ञानस्वरूप, सुखदुःखादि सब द्वन्द्वोंसे परे वर्तमान, आकाशवत् निर्मल, "तत्वमसि" इत्यादि वेदवाक्योंके लक्ष्यभूत, एक, अद्वैत, निर्मल, नित्यकूटस्थरूप, अचल, सब बुद्धिवृत्तियोंके साक्षीभूत, सबभावोंसे अतीत तथा त्रिगुणरहित, परमानन्दस्वरूप, श्रीवसिष्ठ ब्रह्मको हम सब प्रणाम करते हैं ॥ २६ ॥

श्रीपार्वतीशम्भुपदारविन्दान्, धर्मार्थकामोत्तरमोक्षदात्रन् ।
वन्देसदायत्कृपयासमाप्ति, प्रायाद्वसिष्ठोक्त्यनुवादएषः ॥ १ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां बालकाण्डे मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धे निखिलपाठालयललामभूत काशिकराजकीयपाठालयप्रधानाध्यापक महामहोपाध्यायोपाधिधारि पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रीशिष्येण, दिल्लिनिवासि सेशनजज्जपदारूढ रायबहादुरोपाधिधारि श्रीलालावैद्यनाथगुप्तप्रेरितेन प्रयागमण्डलान्तर्गत हरिपुरनामक ग्रामनिवासि द्विवेद्युपनामक पूज्यपाद श्री ६ नन्हईप्रसादात्मजेन आचार्य्योपाधिधारिणा द्विवेद्युपनामक ठाकुरप्रसादशर्म्मणा प्रणीते भाषानुवादे षोडशोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २१६ ॥

श्रौतस्मार्तविशेषधर्मनिपुणंशास्त्रस्वतंत्रंविभुम् ॥ श्रीकाश्यांजनताविमोहपटलंघ्नन्तंसदाशंकरम् ॥
छात्रायस्यदिगन्तव्यापियशसोलोकेसुपूज्याजनैः ॥ श्रीदामोदरसंज्ञकंनिजगुरुंवन्देहृदब्जेसदा ॥ १ ॥

श्रीवैद्यनाथोविदुषांसुसेवी प्रतिष्ठितोजज्जपदेविवेकी ॥ तत्प्रेरितोमुंविवृतिंहिताय ठाकुरप्रसादोऽरचद्विजाग्र्यः ॥ २ ॥

समाप्तोयंग्रन्थः ॥ श्रीसाम्बायनमः ॥

श्री.

योगवासिष्ठका शुद्धिपत्र।

शुद्ध.	अशुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
करतीहुई भ्रमरी कमलिनीकी ओर	करतीहुई कमालिनीको सूर्यका उदयकाल	५—२२
असत्ताकी	अससत्ताकी	१३—३७
पीब	पिउव ...	१६—२५
स्वामी ...	स्वामा	२०—२५
जैसे ...	जैखे	२८—५
गाडी	गाँडी	२८—३१
वाणी	वाणि	३१—२४
किया	कीया	३३—३०
आकाश	आकश	३५—३६
निश्चय	निश्च	३६—४
पूर्णबुद्धिवाले धीरपुरुष	पूर्णबुद्धि अर्थात् शोधितत्वं पदार्थवाले	३६—१३
सो मैंने	सो मैं	३९—१८
क्या इस महामोह जगत्में	क्या महामोकार्य्य इस जगत्में	४४—१
शोभा देनेवाले	शोभानेवाले	४५—४०
चण्डनामसे	चंडाख्यनामसे	४६—४२
दसहजार	दहाहजार	५६—८
किसी सृष्टिकोमें स्मरण करताहूं	किसी सृष्टि (जब विराट्ब्रह्माण्ड इत्यादि	५६—१९
जिससे	जिसमें	६२—१३
पिंगला	पिडालाना	६४—२२
नाडियोंमें	नाडिमें	६४—३७
यात्री ...	यात्रा	६५—१६
यह प्राण नित्य	यह नित्य	६६—३
भुशुण्डो	भुशुंडी	७०—२७
कलना	कल्पना	७६—२८
दूरसे	दरसे	८६—१०
मन	मनरूप	९०—११
अब हे पद विदांवर ! तुम	अब तुम	१०८—४०
उनसे	उमसे	११२—३१
अतीन्द्रिय	अती इन्द्रिय	१२१—१८
देवतातत्व	देवतात्व	१२३—५
०	विचारसे	१२३—३८
देखता और विचारताहै	देखताहै	१२३—३८
जानली	जानलि	१३१—२४
निरूप	चितिरूप	१३६—१६
चिन्ता	चित्ता	१४२—१६
चित्होनेसे	चित् होनेपर	१४६—२८
०	अघटितघटना पटीयसी मायाशबलस्वभाव अपने	१४६—२८
और पुर्य्यष्टकत्व	पुर्य्यष्टक	१४६—२८
दग्ध	दग्द	१६२—९
मुग्धमृग	मृग्धमृग	१७७—१७
स्तवकं	स्तबकं	१८०—३
चूडालोपाख्याने मणिकाचोपाख्यानम्	चूडालोपाख्यानम्	२५३—३८
चिन्तामणिसाधक वृत्तान्त	चिन्तामणिसाधक	२५७—२९
अज्ञादेर्ज्ञस्य	अज्ञादेर्ज्ञस्प	३३२—२९
पूर्वार्द्धे ब्रह्मदर्शने	पूर्वार्द्धे	३५३—१६
अजीवित	आजीवित	३५५—१९
कल्पसे	कल्पस	३५६—३७
किससे	किसे	३५८—१२
शाखादि	शास्त्रादि	३५८—२७
उनके	नउके	३६२—३४
दृश्योपशम	दृशोप०	३६३—२८
सर्वथा ...	सवथा	३६५—२८
मलकआ ...	मलकका	३६६—२६
कमलपरओस	कमलपदवाला	३६८—१८
०	कमलमें	३६८—२३
अविवेक	अविशेक	३७५—१
बाहर ...	बाह	३७५—२४

शुद्ध.	अशुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
आक्रान्त	दृष्टिहो	३७९—९३
प्रतिर्पत्ति	पतित्ति	३८१—२९
स्थानको	स्थान	३८२—३०
शान्ति	शान्त	३८२—३८
कीया	किया	३८२—३९
देखे	देखा	३८३— ४
०	नें	३८३—१८
वेद्य	वेद	३८३—३६
लोकोंको	लोकोंका	३८४—२६
स्पन्द	स्थन्द	३८६—१४
आभ्यन्तर	आभ्यतर	३८६—३७
विद्याधरोंकास्वामी	विद्याधरोंका	३८७—
निदिध्यासना	विदिध्यासना	३८७—१०
वस	बस	३८७—१७
निकसता	निककता	३८९— ३
सर्व	सर्म	३९१—२३
अनुभव न कर०	अनुभव कर०	३९३—४०
पुर्य्यष्टक	पुर्य्यष्टकर	३९३—३४
ही	नही	३९६— २
वर्णाश्रम	वर्णाशुभ	३९७—१७
प्रकाशसे	प्रकाश	३९७—२८
ज्ञानरूप	क्षानरूप	३९९—१०
अयोध्याजीको	अयोध्याजीके	४०१—१९
धर्ममें	धर्ममें	४०१—३१
विवेकको	विवेक	४०४—
संचयोंसे	संचयों	४०४—३२
चलते	चलने	४०५—३३
बुद्धि	बुद्धिजो	४०६— ९
जगत् और चित्	जगत्चित्	४०६—२१
सद्रूप	यदिसद्रूप	४०६—२२
वह न होने	उसको नदी	४०६—२८
०	तथा	४०६—३०
अज्ञता कौनसी है	कौनसी है	४०६—४१
आश्चर्यकी बातहै कि	आश्चर्यकी	४०७—३९
असावधान	असावथान	४०८—२०
अपनेसे	अपने	४०८—२४
पासकती	पासकते	४०८—२९
स्फुरणमात्रकी सत्ता	स्फुरणमात्रकी	४०९—२०
उक्ति	लता	४०९—२१
रहित	रहिन	४१०— ९
लगाई	लगाया	४१०— ६
अनन्त	अन्त	४१०—३२
कर्मों	अर्मों	४११—३९
श्रीरामचन्द्र बोले हे भगवन्!	हे भगवन्!	४१५—२६
अन्तर्मुख	अन्तमुख	४१५— ९
श्रेष्ठ	श्रे	४१५—२९
कोई वस्तु	कोई	४१५—३६
वसिष्ठजीकी	वसिष्ठजी	४१५—४१
क्या होसकती है	होसकती है	४१८—१५
आवरण	आचरण	४१९— ७
लेखाके	लिखा	४१९—१८
आभ्यन्तर	आभ्यन्त	४१९—३९
कहाजावे	कहा	४२१—१७
होना	होगा	४२१—२७
दृष्टिमें	दृष्टियें	४२१—३९
भयोदयः	भवोदयः	४२२—२९
दोनोंके	दोनों	४२२—२६
द्वेष	देश	४२२—२८
भयरहित	रहित	४२२—३०
मतकरो	करो	४२४— ४
प्राप्त न किया	प्राप्तकिया	४२५—२६
होताहै	होतेहैं	४२६—३०
नीरस	नीर	४२६—४१
आवर्त्तोंके	आवर्लोंके	४२७— ३
अव्यक्त	अन्यक्त	४२७—१९
आभासरहित	आसरहित	४२७—२३
आत्माको	आत्माकी	४२८—२०
अपलाप	अल्पलाभ	४२८—२९
द्रष्टा	द्रष्टा	४३०—१६
अक्षुब्ध	क्षुब्ध	४३१—१०
विषय सहितके	विषयसे हितके	४३२— ७
कणसे	कारणसे	४३२—१६
करते हैं	कहते हैं	४३३— ७
इसी	ऐसी	४३३—१७
सृष्टियोंका	सृष्टियों	४३३—४०
भ्रान्ति	भान्ति	४३४—२९

शुद्ध.	अशुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
इच्छाकी शान्तिकोही	इच्छाकी शान्तिकी शान्तिकोही	४३५—३२
जीवकी इच्छा	जीवकी	४३५—३३
विषयभोगकी इच्छा	भोगकी	४३५—३५
खिंच सकताहै	खिससकताहै	२५—२४
उत्पन्न होने	उत्पन्न न हाने	४३६—१०
पाश	पास	४३६—३२
अपहृत	अवहृत	४३६—३४
उसका ज्ञाता	उसका उसका ज्ञाता	४३७—१२
विस्तारको	वित्तारको	४३८— २
उदयहो वा नहो	उदयवानहो	४३८—१८
क्योंकि अन्धकार और	क्योंकि और	४३८—२८
चित्का	चित्की	४४०— २
विषयके	विषयकी	४४०— २
अवछिन्न	अबछिन्न	४४२—३१
लघिमा	लखिमा	४४३—३६
उनको वे सत्यदृष्टिसे	उनको न सत्यदृष्टि०	४४७—१०
मोहरूप	मोहगरूप	४४७—३०
अनुभवही	अनुभवकी	४५४— ८
विद्यामें	विद्यमें	४५४—१७
और ज्ञेयरूप	और रूप	४५८— ६
घृत घनीभूत होके	घृतभूतहोके	४५८—१५
गामिनी	गामिनीयें	४६०— ३
वक्ष्यमाण	लक्ष्यमाण	४६०— ३
मनरूपी	समरूपी	४६०—३४
इस संसारमें	उससंसारमें	४६४—३८
स्थितिके तुल्य	स्थितिके	४६४—३०
अंशसे	अंश	४६५—४०
निरोध	विरोध	४७१—३५
अज्ञान	अज्ञन	४७५—२९
जैसे	सैजे	४७४—३२
विस्तारके तुल्य	विस्तारके	४७९—१७
प्राप्तहोताहै जैसे स्वर्ण	प्राप्तहोताहै	४८०—२१
इसलिये चिन्मात्र	इस चिन्मात्र	४८२—१६
अपरिछिन्न	परिछिन्न	४८३—३०
भावसेरहित	अभावसेरहित	४८६—२८
जिनसे कि साकार	जिनसे किलाकार	४८७—३३
साकारका	साकारको	४८८—२९
समानही है	समान नही है	४९३—३४
चतनही	चेतन नही	५०२—१३
व्यष्टि	वोष्टि	५०३—३३
मेरी स्थिति	मेरे स्थिति	५०७—३८
मेरी सत्ता	मेरे सत्ता	५०७—३८
न नष्ट हुई	नष्ट हुई	५०७—३९
जगद्वृन्दै	जगद्वन्दै	५०८— ८
स्पन्दंवेत्ति	स्पन्दवेत्ति	५०८— ९
समूह व्यतीत किये	समूहोंको मैंने व्यतीत किये	५१५—१६
विषयका	विषका	५१७—२५
आकाशमें नक्षत्र प्रकाश करतेहैं	आकाश नक्षत्र तथा प्रकाश करतेहैं	५१९—२५
प्रकाशका आश्रय लिया	आश्रय लिया	५२०—११
दर्शाया है	दर्शा रहाहै	५२५—२२
दृश्यानुपपत्ति	दृश्या अनुपपत्ति	५२६—२२
अध्यारोपके	अध्यारोहके	५३६—३४
तिल्ली	पिल्ली	५४१—१०
संकल्पमय	मलसंकल्पमय	५४२—१२
से	कैसे	५४४— १
आतिवाहिक	आधिदैहिक	५८३—३५
हो	हौ	५८६—३०
जाग्रत्	में जाग्रत्	५८८—१७
मैंनें	मैंबे	५९२—२२
मुख्य	मख्य	५९५—४१
अप्रबुद्ध	प्रबुद्ध	५९८—१५
अनेकभोग वार २ भोगे	अनेकभोगभोगबार २-	६०१—३१
नष्ट	क्षमेंही नष्ट	६०२—३५
दूसरेसे	दूसरे	६०४—३१
दह्यमान	दंदह्यमान	६१६— ८
तत्वज्ञानीकी	तत्वज्ञानी	६२१—३१
चेतित	चेति	६२४—३०
से	सिवाय	६२५—२३
पाषाणादि	पापाणादि	६२७—३६
तोडताहै	तोडहोताहै	६२८—२३
परिच्छेदसे	परिच्छेद	६३२—२९

शुद्ध.	अशुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
मानकोखरीदतेहैं	जयकेअभिमानार्थ क्रीडा करते हैं	६३३—२४
ओर	आर	६३४—३३
जन्मधारणकरके	जन्मधारणके विनाही	६३६—३९
ईंट	इंट	६३७— ८
वैसा	वसहा	६३९—२४
पर्वतरूप पात्र	पर्वतरूपमात्र	६४०—३६
यह	इस	६४२— २
साक्षीरूपमें	साक्षीरूप	६४२— ३
होते हैं वही चिदाकाश कहलाताहै	होते हैं	६४२— ४
विजापट	विजायट	६५१—३५
फुंकार	फुंफकार	६५६— ८
बन्दूक	बन्दुक	६५८—२४
हाथी	हाथीयों	६५९— ७
नारिकेल	नारिअर	६५९—१०
विद्याधरों	विधाधरों	
चूमनेवाले	चुमनेवाले	६६४— ६
करता	करते	६६६—१०
रस्सी	रसी	६६७— ७
तथा	तथो	६६७— ९
सूर्य्य	सुर्य	६६७—२२
क्षीरसमुद्र	क्षिरसमुद्र	६६८—१२
फैल	फेल	६७२— ८
महात्माओंकी	महात्माओंके	६७२—४०
लिखना	लीखना	६७८—१८
देखिये	देखें	६८०— ८
सुगन्धके	सुगन्धका	६८१—१४
पूरीकरते	पुरीकरते	६८१—३३
आदिकी	आदिको	६८९—४१
दिगन्तके	दिगन्तका	६९४—२५
इन्द्रके भ्राता	इन्द्रके भ्राताहो	६९५—२८
अवलोकनकरने	अवलोकन अरने	७०२—११
उत्तरदिशाके	उत्तरदिशाका	७०२—२४
शरीरसे	शरसे	७०५—
श्रीवसिष्ठजी बोले-जैसे	जैसे	७०६—१५
करताहुआ	करतेहुवा	७०७—१४
हे राजन्	ह राजन्	७१४—१९
और वहाँके	और वहाँ	७१९—२४
पितृ	पीतर	७२२—२३
कमलिनियोंसे	कमलिनीयों	७२६— ४
कल्पनामात्र	कल्पनामय	७३५—३१
परमात्मा	परमा	७३६—२३
उत्पन्न	उत्पत्र	७५२— ९
अतिविचित्र	अतिवचित्र	७६३—३६
इतनेहीमें	इतनेही	७६७—२६
मुनि बोले-भगवतीके	भगवतीके	७६८—३७
असत्यता है	असत्यता ह	७७०—२४
वहाँही	वहाही	७७१—३२
ब्रह्मकी	ब्रह्मका	७७२—१७
कीया	किया	७७३—२७
नहीं है	नहीं ह	७७५—१६
मेरे	मेरा	७७५—२६
०	इस वृत्तान्तके	७७६— ९
	आप निज	७७६— ९
इतनेहीमें	इतनेही	७७६—३६
गए	गई	७७८—१५
तीसरा	तिसरा	७७९—३२
आत्माको	आत्भाको	७८४ २२
आकाशगामिनी	आकाशगामीनी	७८५ १
देदीप्य	दैदीप्य	७८५ ११
अव	अब	७८६ २७
हुआ	विया	७८८ ४
चित्तभी एकही है	चित्त एकहीभीहैं	७८९ २९
विषयका भोक्ता	विषयको भोगता	७९० १६
और मुनिसमाधिसे	और समाधिसे	७९१ ३७
भेद	भेदद	७९२ ३४
सौवाँ	सवमां	७९३— ८
उसके	उनके	७९३—२८
अज्ञानभस्म	अज्ञानकाभस्म	७९४ १२
प्रतिभा	प्रतिमा	७९६ ३
बनातेहीहो	बनातेही हैं	७९९ ३०
कहतहो	कहते हैं	७९९ ३१
पापीजीव	पापजीव	८०० २९
पीब	तपीब	८०० ३७
हृदयमें	हृदय	८०२ ११
इसमें अविद्या कहाँ	इसमें कहाँ	८०३ २०

शुद्ध.	अशुद्ध.	पृष्ठ. पंक्ति.
उल्लंघन न करके	उल्लवनकरके	८०४—१९
हस्तीको	हस्तिका	८०७— ९
शून्य	शन्य	८०७—४१
निन्दितजन	निन्दितजल	८१०—२०
वा	वातो	८१७—१९
वही	यही	८२४—३४
राहखर्च	राहखच	८२४— ६
आदिमें	आदि	८३९—२२
शान्ति	शान्त	८४१—२२
महात्मा और	महात्मा तथा महात्मा औ	८५४— ०
कीया	किया	८६१—१८
ब्रह्मगीतासु तापसोपा०	ब्रह्मगीतासु तापतोपा	८६३—२२
ऊर्ध्वंजटाधारीपुरुषको	ऊर्ध्वंजटाधारी एकपुरुषको	८६६—१२
स्वप्नोंमें	जैसे स्वप्नोंमें	८६९—११
तपजपादिद्वारा	तपजपादिके	८७१—१०
तथापि	तथा	८७१—२४
इसने	इतने	८७५—३६
निर्वाणमस्तंगत	निर्वाणगस्तंगत	८७६—३७
शुक्तिमें शक्तिसे	शक्तिसे	८७७—१३
श्रीरामजी बोलेहेभग०	हेभगवन्	८७८—२९
उसभासनेकोही	उनभासनकोही	८७९—३८
पुरुषोंकी	पुष्पोंकी	८८१—३९
उसकी	उस	९०१—२१
हे भगवन्!	हे भगवन् आपकी	९०५—२९
मुक्त	युक्त	९०९— ४
हे रामजी!	हरामजी!	९१३—३८
समदर्शनसे	समदर्शन	९१६— ३
देवताओंसेभी पूजेजातेहैं	दवतासेभी पूजाते हैं	९१६—२२
तुम्हारी	तमारी	९१६—४१
नित्य	अति	९१८—३२
रहते हैं	रहतेहैं	९१८—३२
और न	और	९२०—१३
अमनीभावको प्राप्त	अमनीभावको	९२०—२७
सर्व प्रपञ्चके	सर्व प्रपञ्चका	९२०—२७
तुल्य वह आकाशहोगया	तुल्य होगया	९२१—३९
व्याल (सर्प)	व्यास	९२२—१२
होंगे	होगे	९२३—१३
वसिष्ठजीनें	वसिष्ठजी	९२४— ५
सुनी	सुना	९२५— ८
तथा	तथ	९३१—२६
०	हमनें	९३८—३४
ऐसा हमने सुनाहै	ऐसा सुनाहै	९३८—३५
अल्प फल	महाफल	९३८—३७
जगत्‌रूपसे देखा	जगत्‌रूपसे	९४०—२९
चिदाकाशमें	चिदाकामें	९४२—११
शान्त होजाताहै	स्वयंभी शान्त होजाताहै	९४३—३८
एकवारही	किन्तु एकवारही	९४३—११
वसिष्ठजी बोलेहेमहामते!	हेमहामत	९४७—२६
पाषाण शिला	पापाण शिला	९४७—२७
भासतासा	भासतास्त	९४८— ५
संसाररूपी	संसारूपी	९४८—४०
वही	और	९४९— ४
प्राप्तहोगा	वही प्राप्तहोगा	९४९— ५
हिरण्यगर्भका	हिरण्यका	९५१—२४
हे पूर्वकल्प०	पूर्वकल्प०	९५३—२२
०	मुनिसे आज्ञा० इत्यादि	९६३—[१ २

योगवासिष्ठका शुद्धिपत्र समाप्त।

मुहूर्तप्रकाशमूलभाषाटीका सहित–

मुहूर्त विषयका ऐसा ग्रन्थ अनुपम आजतक कहीं नहीं छपा मुहूर्तसंबंधी कोई बात इसमें नहीं छोडीगईहै जो बातें सैंकडों ग्रन्थोंके पठन पाठनसेभी मिलना दुर्लभहै उन सबका संग्रह इस ग्रन्थमें पूर्ण समावेश है जिन द्विजवरोंको मुहूर्तादि देखनेका काम पडताहै उनको अवश्यही पास रखनेके योग्य है नई बात इसमें यह हैं कि साधारण बांचनशक्तिवालाभी अपना कार्यकर शकताहै, जैसे भट्ट श्रीकासीनाथजीने शीघ्रबोध बनाया इसीप्रकार पंडितजी श्रीचतुर्थीलालजीनेभी यह १ मुहूर्त विषयका ग्रंथ बनायाहै यह परमउपयोगी है आपलोगोंके लेनेहीके योग्यहै किं० १॥ रु० म० ४आ०

वर्षप्रबोध मूल और भाषाटीका सहित–

यह ग्रन्थ ज्योतिषियोंको तेजी मंदी बतानेके लिये परमोपयोगी है इसमें सालभरका सब वृत्तान्त विस्तारसहित पूर्ण रीतिसे लिखागयाहै इस ग्रन्थमें संवत्सर फल, मास, दिन, संक्रान्ति, उत्पात, ग्रहोंकी गति, बक्रता, उदय, अस्त, राशिगमन, भूकम्प तिथियोंके अनुसार वर्षाका ज्ञान, मेघोंके आवाहन और बिदाईके मंत्र, मेघशकुन, वायसप्रश्न, इत्यादि वर्षाके जाननेके अनेक उपयोगी विषय लिखे गये हैं. और सब प्रकारके पदार्थ, धान्य, धातु, कपडा आदिलेके तेज मंदे होनेका सविस्तर वर्णन है. । बहुत कहां तक कहैं ब्राह्मण लोग इसके अनुसार फल कहकर सिद्ध कहलावेंगे और व्योपारी अपने क्रय विक्रयमें अमित लाभ उठावेंगे. किं०॥। रु०डा० म० २ आ०

भर्तृहरिशतकत्रय.

इसग्रंथका नाम किसीसे छिपा नहींहै यह बहुतसी जगह छपछपकर हजारों बिकचुकीहै परंतु हमने इसे निरालेही ढंगसे छापाहै अर्थात् श्लोकके ऊपर अन्वय नीचे संस्कृतटीका फिर भाषाटीकाहै एकबात औरभी विशेष कीहै कि महाराज प्रतापसिंहजी नरेंद्रने जो इसके प्रत्येक श्लोकके ऊपर दोहा छप्पय कुंडलिया आदि रचेथे वे भी प्रत्येक श्लोकके नीचे लगादियाहै पुस्तकके आदिमें भर्तृहरिका जीवन चरित्र भी दियाहै ऐसा पुस्तक आजतक नहीं छपाहै आशाहै कि जो खरीद चुकेहै वेभी एकवार अवश्य खरीदेंगे. किं, १ रु० ट० ख० ४ आना.

सर्व पुस्तकोंका मिलनेका पत्ता.

पंडित–श्रीधर शिवलालात्मज पं० किसनलाल.

'ज्ञानसागर' छापाखाना मुंबई.